आरण्यकाण्डम् २

दोहा ॥ कटि निषंग कांधे धनुष, माथे तिलक विशाल ॥ शत्रुशाल सुरपालकर, वंदौं दशरथलाल ॥ १ ॥

श्रीगणेशायनमः ॥ आत्मवान् महादुर्द्धर्ष श्रीरामचंद्रजीने दंडक नामक महावनमें प्रवेश करके तपस्वी लोगोंके आश्रम मंडल देखे ॥ १ ॥ जिन आश्रमोंमें जगह २ कुश चीर पडेहैं, जहां ब्रह्मविद्याकी लक्ष्मीका तेज अच्छी तरह विराजमान होरहाहै, यद्यपि सूर्यनारायण आकाशमें रहतेहैं और उनको मारे प्रकाशके कोई नहीं निहार सक्ता, तैसेही बहुत तपस्वियोंके आश्रम ब्रह्मविद्याके प्रभाव करके तेजवान होनेसे बडे कठिनतासे देखने योग्यहैं ॥ २ ॥ ॥ वह आश्रम सब जीवोंके आसरा लेनेके थलेहैं, उनके आंगन सदाही झाड बुहारकर साफ किये जाते

श्रीगणेशायनमः ॥ प्रविश्यतुमहारण्यंदंडकारण्यमात्मवान् ॥ रामोददर्शदुर्धर्षस्तापसाश्रममंडलम् ॥ १ ॥ कुशचीरपरिक्षिप्तंब्राह्म्यालक्ष्म्यासमावृतम् ॥ यथाप्रदीप्तंदुर्दर्शंगगनेसूर्यमंडलम् ॥ २ ॥ शरण्यंसर्वभूतानांसुसंमृष्टाजिरंसदा ॥ मृगैर्बहुभिराकीर्णपक्षिसंघैःसमावृतम् ॥ ३ ॥ पूजितंचोपनृत्तंचानित्यमप्सरसांगणैः ॥ विशालैरग्निशरणैःस्रुग्भांडैरजिनैःकुशैः ॥ ४ ॥ समिद्भिस्तोयकलशैःफलमूलैश्चशोभितम् ॥ आरण्यैश्चमहावृक्षैःपुण्यैःस्वादुफलैर्वृतम् ॥ ५ ॥ बलिहोमार्चितंपुण्यंब्रह्मघोषनिनादितम् ॥ पुष्पैश्चान्यैःपरिक्षिप्तंपद्मिन्याचसपद्मया ॥ ६ ॥ फलमूलाशनैर्दांतैश्चीरकृष्णाजिनांबरैः ॥ सूर्यवैश्वानराभैश्चपुराणैर्मुनिभिर्युतम् ॥ ७ ॥

और चारों ओर अनेक प्रकारके पशु पक्षियोंसे जो सदापूर्ण रहते ॥ ३ ॥ अप्सराओंके झुण्डके झुण्ड सदा यहां आकर इनके समीप नाच गाकर इनकी पूजा करतीं जहां बडे विस्तारकी यज्ञशाला बनीहै जिनमें अग्निकुंड स्रुव मृगचर्म और कुशादि धरेहैं ॥ ४ ॥ होम करनेका ईंधन जलके भरे हुए कलश व कंद मूल फल भोजन करनेके लिये रक्खेहैं, और बडी २ जातके बनैले स्वादयुक्त फल पवित्र २ वृक्षोंके समूहोंमें लग रहेहैं ॥ ५ ॥ इन सब आश्रमोंमें नित्यही बलि और होम होताहै, प्रतिदिन पुण्यमय वेदध्वनि उठतीहै अनेक प्रकारके फूलभी इधर उधर खिल रहेहैं, और विचित्र कमल जिनमें खिले हुए ऐसी तलैयेंभी विराजमान होरहीं हैं ॥ ६ ॥ इन सब आश्रमोंमें कंद मूल फल खानेवाले चीर मृग

चर्म वल्कलादि धारण करनेवाले सूर्य और अग्निके समान प्रकाशमान नियत समयपर बोलने, देखने, सुननेवाले, जितेन्द्रिय प्राचीन वृद्ध मुनियोंके समूह वास करतेहैं ॥ ७ ॥ नियताहारी पवित्र परमर्षियोंके समूहसे शोभित, और सदा वेद पढनेका शब्द प्रतिध्वनित होनेसे सब आश्रम ब्रह्मलोकके समान शोभायमानहैं ॥ ८ ॥ महातेजवान श्रीमान् रामचंद्रजी महाभाग ब्रह्मको पहचाने हुए ब्राह्मण गणोंसे शोभित उन तपस्वियोंके आश्रममंडलको देखकर ॥ ९ ॥ अपने महाधनुषकी प्रत्यंचा उतारकर उनकी ओरको चले, दिव्यज्ञानसंपन्न महर्षियोंने रामचंद्रजीको देखा व जाना ॥ १० ॥ इसकारण प्रसन्नहो सबही श्रीरामचन्द्र व महायशवान श्रीजानकीजीके सन्मुख वे मुनिलोग चले फिर

पुण्यैश्चनियताहारैःशोभितंपरमर्षिभिः ॥ तद्ब्रह्मभवनप्रख्यंब्रह्मघोषनिनादितम् ॥ ८ ॥ ब्रह्मविद्भिर्महाभागैर्ब्राह्मणैरुपशोभितम् ॥ तद्दृष्ट्वाराघवःश्रीमांस्तापसाश्रममंडलम् ॥ ९ ॥ अभ्यगच्छन्महातेजाविज्यंकृत्वामहद्धनुः ॥ दिव्यज्ञानोपपन्नास्तेरामंदृष्ट्वामहर्षयः ॥ १० ॥ अभिजग्मुस्तदाप्रीतावैदेहींचयशस्विनीम् ॥ तेतुसोममिवोद्यंतंदृष्ट्वावैधर्मचारिणम् ॥ ११ ॥ लक्ष्मणंचैवदृष्ट्वातुवैदेहींचयशस्विनीम् ॥ मंगलानिप्रयुंजानाःप्रत्यगृह्णन्दृढव्रताः ॥ १२ ॥ रूपसंहननंलक्ष्मींसौकुमार्यंसुवेषताम् ॥ ददृशुर्विस्मिताकारारामस्यवनवासिनः ॥ १३ ॥ वैदेहींलक्ष्मणंरामंनेत्रैरनिमिषैरिव ॥ आश्चर्यभूतान्ददृशुःसर्वेतेवनवासिनः ॥ १४ ॥ अत्रैनंहिमहाभागाःसर्वभूतहितेरताः ॥ अतिथिंपर्णशालायांराघवंसन्न्यवेशयन् ॥ १५ ॥

चन्द्रमाके समान धर्मका आचरण करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीको उदय देख ॥ ११ ॥ व लक्ष्मण जानकीजीकोभी निहार सब मुनियोंनें मंगलके आशिर्वाद दिये और उनका भलीभांति आदर सन्मान किया ॥ १२ ॥ वह सब वनवासी ऋषिलोग विस्मिताकार होकर रामचन्द्रजीके रूपकी सुंदरता, लावण्यता, सुकुमारता, और सुवेषता देखकर विचार करनेलगे कि ऐसे सुकुमार वनमें क्योंकर आये ॥ १३ ॥ वह सब मुनिलोग अचरजमें आकर रामचन्द्र लक्ष्मण और जानकीजीको विना पलक मारे इकटक देखनेलगे ॥ १४ ॥ सर्व जीवोंके ऊपर दयाकरनेवाले बडे

भाग्यशाली ऋषिलोगोंने अपूर्व अतिथि रामचन्द्रजीको पर्णकुटीमें लाय टिकाया ॥ १५ ॥ पहुँचतेही प्रथम भलीभांति कुशल प्रश्नकर सत्कार कर अग्निकी समान तेजवाले धर्मात्मा ऋषिलोगोंने सुन्दर पवित्र जल लाय पैर इत्यादि धोनेको दिया ॥ १६ ॥ अनन्तर उन समस्त धर्मके जाननेवाले ऋषिलोगोंने परम हर्ष युक्तहो मंगल आशिर्वाद प्रयोग करके सुन्दर कंद फलादि खानेको दिया और आश्रम रहनेको दिया ॥ १७ ॥ फिर सब धर्मके जाननेवाले ऋषिलोग हाथ जोडकर श्रीरामचन्द्रजीसे बोले कि आप हम लोगोंके धर्मपाल शरण्यहैं व परम यशस्वीहै ॥ १८ ॥ आप परम पूजनीय व मान्यभीहैं। क्योंकि दंडधारी राजा गुरुके समान होताहै राजा इन्द्रका चौथा भाग होताहै इस कारण सबही प्रकार आप

ततोरामस्यसत्कृत्यविधिनापावकोपमाः ॥ आजह्रुस्तेमहाभागाःसलिलंधर्मचारिणः ॥ १६ ॥ मंगलानिप्रयुंजानामुदापरमयायुताः ॥ मूलंपुष्पंफलंसर्वमाश्रमंचमहात्मनः ॥ १७ ॥ निवेदयित्वाधर्मज्ञास्तेतुप्रांजलयोब्रुवन् ॥ धर्मपालोजनस्यास्यशरण्यश्चमहायशाः ॥ १८ ॥ पूजनीयश्चमान्यश्चराजादंडधरोगुरुः ॥ इंद्रस्यैवचतुर्भागःप्रजारक्षतिराघव ॥ १९ ॥ राजातस्माद्वरान्भोगान्रम्यान्भुंक्तेनमस्कृतः ॥ तेवयंभवतारक्ष्याभवद्विषयवासिनः ॥ २० ॥ नगरस्थोवनस्थोवात्वंनोराजाजनेश्वरः ॥ न्यस्तदंडावयंराजन्जितक्रोधाजितेंद्रियाः ॥ २१ ॥ रक्षणीयास्त्वयाशश्वद्गर्भभूतास्तपोधनाः ॥ एवमुक्त्वाफलैर्मूलैःपुष्पैरन्यैश्चराघवम् ॥ वन्यैश्चविविधाहारैःसलक्ष्मणमपूजयन् ॥ २२ ॥

पूजा करनेके योग्यहैं, क्योंकि जब आपही प्रजाकी रक्षा करतेहैं तो उनके अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों पदार्थ सिद्ध होजातेहैं ॥ १९ ॥ सब लोकोंके नमस्कार करनेसे राजा श्रेष्ठहै और वह श्रेष्ठ रमणीय भोगोंको भी भोग करताहै। हे राघव! हम लोग आपके राज्यमें वास करतेहैं अतएव आप करके हमारी रक्षा करनी चाहिये ॥ २० ॥ हे राजन्! नगरमें रहो या वनमेंही रहो आपही हम लोगोंके राजाहैं सो आपको हमारी रक्षा करनी चाहिये यदि आप कहैं कि तुम लोगभी तपोबलसे अपनी रक्षा कर सकतेहो सो नहीं क्योंकि हम लोगोंनें क्रोधका त्यागकर इन्द्रियोंको जीत एकवारही दंड देना छोड दियाहै ॥ २१ ॥ तपस्याके सिवाय हम लोगोंका और कुछ धन नहींहै, अतएव गर्भके बालककी समान

आपको हमारी रक्षा करनी उचितहै यह कहकर उन सब ऋषि मुनियोंने विविध प्रकारके पुष्प और वनफल द्वारा लक्ष्मण व सीता सहित रामचंद्रजीकी पूजाकी॥२२॥इसी प्रकारसे औरभी सिद्ध, तापस मुनिलोगोंने अग्निकी समान तेजमान उन प्रभु ईश्वर रामचन्द्रजीकी यथाविधा नसे पूजाकी॥२३॥इत्यार्षे श्रीम०वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे प्रथमः सर्गः॥१॥श्रीरामचन्द्रजीने इस प्रकार अच्छी पहुनई पाकर जब प्रभात हुआ तब उन आश्रमवासी सब मुनियोंसे पूछ पाछकर वनमें विचरण करने लगे ॥१॥ इस वनमें अनेक भांतिके जीव जन्तु विद्यमानथे रीछ और शार्दूलभी घूम रहेथे । इन वनके पेड व बेलें सब सूख गईथीं और सब ताल तलैयें सूखकर भयावनी होगईथीं ॥२॥ इस वनमें पक्षियोंका

तथान्येतापसाःसिद्धारामंवैश्वानरोपमाः ॥ न्यायवृत्तायथान्यायंतर्पयामासुरीश्वरम् ॥ २३ ॥ ॥ इत्यार्षेश्री मद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेप्रथमःसर्गः ॥ १ ॥ ॥ कृतातिथ्योथरामस्तुसूर्यस्योदयनंप्रति ॥ आमंत्र्यसमुनीन्सर्वान्वनमेवान्वगाहत ॥ १ ॥ नानामृगगणाकीर्णमृक्षशार्दूलसेवितम् ॥ ध्वस्तवृक्षलतागुल्मंदुर्द र्शसलिलाशयम् ॥ २ ॥ निष्कूजमानशकुनिझिल्लिकागणनादितम् ॥ लक्ष्मणानुचरोरामोवनमध्यंददर्शह ॥ ३ ॥ सीतयासहकाकुत्स्थस्तस्मिन्घोरमृगायुते ॥ ददर्शगिरिशृंगाभंपुरुषादंमहास्वनम् ॥ ४ ॥ गभीराक्षंमहावक्त्रंविक टंविकटोदरम् ॥ बीभत्संविषमंदीर्घंविकृतंघोरदर्शनम् ॥ ५ ॥ वसानंचर्मवैयाघ्रंवसार्द्रंरुधिरोक्षितम् ॥ त्रासनंसर्व भूतानांव्यादितास्यमिवांतकम् ॥ ६ ॥

चह चहाना सुनाई नहीं आताथा न भौरोंकी गुंजार हो रहीथी केवल झिल्ली की झनकार सुनाई आतीथी । इस प्रकार रामचन्द्रजीनें इस वनकी दशा देखी ॥ ३ ॥ तिसके पीछे काकुत्स्थ रामचंद्रजी सीताजीके साथ उस घोरपशुओंकरके सेवित वनमें पहाडके शिखरकी समान आदमीके खानेवाले बडे शब्द करनेवाले एक राक्षसको देखते हुये ॥४॥इस राक्षसकी आंखें बहुतही गंभीरथीं, वदन अति विशाल था, थोंद महा विकटथी, उसके शरीरका गठन अति भयंकरथा वह राक्षस ऐसा भयावनाथा कि जिसे देखतेही मनुष्य डर जाय, कहीं टेढा, कहीं सीधा, कहीं ऊंचा, खाली बराबर अंग कोई नथा, उसकी सूरत बडी डरावनीथी ॥५॥ वह राक्षस रुधिरसे भीगा व्याघ्रका चमडा ओढेथा जिस समय वह उवासी लेताथा

तो प्रलयकालकी समान सब भूतोंको त्रास उपजानेवाला होता ॥ ६ ॥वह तीन शेर, बारह व्याघ्र, दोभेडिये, दश चीतल मृग, व दांत सहित चरबी लगा एक हाथीका मस्तक ॥७॥ जो लोहेके शूलमें विधा हुआथा लियेथा और बडाही चिल्ला रहाथा फिर वह रामचन्द्र लक्ष्मण और मैथिली सीताजीको देख ॥ ८ ॥ महा क्रोधके वश होकर संहारके कालमें कृतान्तकी समान उनके ऊपरको दौडा वह महा भयावनी गर्जना करके पृथ्वीको कँपाता हुआ ॥ ९ ॥ विदेहराजाकी दुहिता सीताजीको गोदमें लेकर श्रीरामचन्द्रजीसे बोला कि तुम दोनों जन जटा चीर धारण किये वनमें स्त्री सहित आयेहो इस्से अपनेंको मराहुआही समझो ॥ १० ॥शरचाप,तलवार हाथमें लेकर इस वनमें आयेहो. फिर यह तो मुझसे कहो कि

त्रीन्सिंहांश्चतुरोव्याघ्रान्द्वौवृकौपृषतान्दश ॥ सविषाणंवसादिग्धंगजस्यचशिरोमहत् ॥ ७ ॥ अवसज्ज्यायसेशूले विनदंतंमहास्वनम् ॥ सरामंलक्ष्मणंचैवसीतांदृष्ट्वाचमैथिलीम् ॥ ८ ॥ अभ्यधावत्सुसंक्रुद्धःप्रजाःकालइवांतकः ॥ सकृत्वाभैरवंनादंचालयन्निवमेदिनीम् ॥ ९ ॥ अंकेनादायवैदेहीमपक्रम्यतदाब्रवीत् ॥ युवांजटाचीरधरौसभार्यौक्षीणजीवितौ ॥ १० ॥ प्रविष्टौदंडकारण्यंशरचापासिपाणिनौ ॥ कथंतापसयोर्वांचवासःप्रमदयासह ॥ ११ ॥ अधर्मचारिणौपापौकौयुवांमुनिदूषकौ ॥ अहंवनमिदंदुर्गंविराधोनामराक्षसः ॥ १२ ॥ चरामिसायुधोनित्यमृषिमांसानिभक्षयन् ॥ इयंनारीवरारोहाममभार्याभविष्यति ॥ १३ ॥ युवयोःपापयोश्चाहंपास्यामिरुधिरंमृधे ॥ तस्यैवंब्रुवतोदुष्टंविराधस्यदुरात्मनः ॥ १४ ॥ श्रुत्वासगर्वितंवाक्यंसंभ्रांताजनकात्मजा ॥ सीताप्रवेपितोद्वेगात्प्रवातेकदलीयथा ॥ १५ ॥

तुम्हारे साथ यह स्त्री क्योंकर है॥११॥ तुम लोग अधर्मका आचरण करनेवाले पाप स्वभावीहो, और तुमसे मुनियोंके चरित्रको कलंक लगाहै सो तुम लोग कौनहो ? हम राक्षसहैं हमारा नाम विराधहै हम दुर्गम वनमें रहतेहैं ॥ १२ ॥ हम प्रतिदिन ऋषियोंका मांस खातेहुये हथियार बांधकर इस दुर्गम वनमें फिरा करतेहैं इस वरारोहास्त्रीको हम अपनी भार्या बनावेंगे॥१३॥तुम दोनों महापापी हो इस्से युद्धकर हम तुम्हारा दोनोंका रुधिर पियेंगे जब दुष्टात्मा विराधनें ऐसे दुर्वचन कहे ॥ १४ ॥ ऐसे गर्वीले वचन सुनकर जनककुमारी सीताजी बहुतही घबराई जिस प्रकार प्रचंड पव

नके वेगसे केला कांप जाय इसी प्रकार उनका शरीर भयसे कांपनेंलगा ॥ १५ ॥ श्रीरामचन्द्रजी शुभ सीताजीको विराध राक्षसकी गोदमें बैठे देखकर उदास हो लक्ष्मणजीसे बोले हे सौम्य ! राजा जनकजीकी कन्या शुभाचरण करनेवाली हमारी स्त्री सीताजीका विराधकी गोदीमें बैठी हुई देखो ॥१६॥१७॥ यह यशस्विनी राजपुत्री अत्यंत सुखसे पालन पोषण की गई सो अब यह राक्षसके वश पडीं सो वरदान मांगनेंसे जो कैकेयीकी इच्छाथी वह आज सफल हुई ॥ १८ ॥ जो दुष्ट कैकेयी अपनें पुत्रको राज्यदिलाकरभी सबरसे न रही उसनें बडी दूरका आगम देखा कि यदि यहां रहैंगे तो हमारे पुत्रका राज्य अटल नहीं रहैगा इस्से वनवास दिलवाया ॥ १९ ॥ समस्त प्राणियोंका प्यारा जानकर हमको वनमें

तांदृष्ट्वाराघवःसीतांविराधांकगतांशुभाम् ॥ अब्रवीह्लक्ष्मणंवाक्यंमुखेनपरिशुष्यता ॥ १६ ॥ पश्यसौम्यनरेंद्रस्यजनकस्यात्मसंभवाम् ॥ ममभार्यांशुभाचारांविराधांकेप्रवेशिताम् ॥ १७ ॥ अत्यंतसुखसंवृद्धांराजपुत्रींयशस्विनीम् ॥ यदभिप्रेतमस्मासुप्रियंवरवृतंचयत् ॥१८॥ कैकेय्यास्तुसुसंवृत्तंक्षिप्रमद्यैवलक्ष्मण ॥ यानतुष्यतिराज्येनपुत्रार्थेदीर्घदर्शिनी ॥ १९ ॥ ययाहंसर्वभूतानांप्रियःप्रस्थापितोवनम् ॥ अद्येदानींसकामासायामातामध्यमामम ॥ २० ॥ परस्पर्शात्तुवैदेह्यानदुःखतरमस्तिमे ॥ पितुर्विनाशात्सौमित्रेस्वराज्यहरणात्तथा ॥ २१ ॥ इतिब्रुवतिकाकुत्स्थेबाष्पशोकपरिप्लुतः ॥ अब्रवील्लक्ष्मणःक्रुद्धोरुद्धोनागइवश्वसन् ॥ २२ ॥ अनाथइवभूतानांनाथस्त्वंवासवोपमः ॥ मयाप्रेष्येणकाकुत्स्थकिमर्थंपरितप्यसे ॥ २३ ॥

भिजवाया अब उन विचली माता कैकेयीदेवीका मनोरथ सफल हुआ ॥ २० ॥ हे लक्ष्मण! इस्से अधिक और दुःख क्या होगा कि राज्य हरा गया पिताजीका मरण हुआ जानकीजीको राक्षसनें छुआ भला इस्से बढकर कोई दुःखहै ? ॥ २१ ॥ जब रामचंद्रजीनें ऐसा कहा तब शोकसे घिरे आंसू भरे हुये, मंत्रसे बँधे सर्पकी समान ऊंचे श्वासले गर्जकर महा क्रोधयुक्तहो लक्ष्मणजी बोले ॥ २२ ॥ हे काकुत्स्थ! आप इन्द्रकी समान सब प्राणियोंके मालिक होकर विशेषतः मुझ सरीखे सेवकके विद्यमान रहते इस प्रकारका विलाप क्यों करतेहैं? ॥ २३ ॥

हमक्रोधित होकर इस विराध राक्षसको वाण मारतेहैं वस वाणके लगतेही यह प्राण छोडदेगा और पृथ्वी इसका रुधिर पियेगी ॥ २४ ॥ राज्यक
कामना करते हुये भरतजीपर जो क्रोध हमको उत्पन्न हुवाथा सो वज्र धारण करनेवाले इन्द्रनें जिस प्रकार पर्वतोंपर वज्र छोडाथा उसी भांति
मैंभी यह क्रोध विराधपर छोडताहूं ॥ २५ ॥ हमारी भुजाओंके वलोंके वेगसे वेगयुक्त होकर हमारे छोडे तीर उसके हृदयमें जाकर गडेंगे,
उसका जीवन नाशको प्राप्त हो जायगा, और वह घूम २ कर पृथ्वीपर गिर जायगा॥२६॥इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०आरण्यकांडे द्वितीयःसर्गः ॥२॥
फिर वह विराध राक्षस अपने वचनके शोरसे समस्त वनको पूर्ण करता हुआ यह वोला—जो मैं पूछताहूं सो वताओ, कि तुम कौनहो और

शरेणनिहतस्याद्यमयाक्रुद्धेनरक्षसः॥विराधस्यगतासोर्हिमहीपास्यतिशोणितम्॥२४॥राज्यकामेममक्रोधोभरतेयो
वभूवह॥तंविराधेविमोक्ष्यामिवज्रीवज्रमिवाचले॥२५॥ ममभुजवलवेगवेगितःपततुशरोस्यमहान्महोरसि॥ व्यप
नयतुतनोश्चजीवितंपततुततश्चमहींविघूर्णितः ॥ २६ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०अ०द्वितीयःसर्गः ॥ २ ॥ अथोवा
चपुनर्वाक्यंविराधःपूरयन्वनम् ॥ पृच्छतोममहिव्रूतंकौयुवांक्वगमिष्यतः ॥ १ ॥ तमुवाचततोरामोराक्षसंज्वलिता
ननम्॥ पृच्छंतंसुमहातेजाइक्ष्वाकुकुलमात्मनः ॥२॥ क्षत्रियौवृत्तसंपन्नौविद्धिनौवनगोचरौ॥ त्वांतुवेदितुमिच्छावः
कस्त्वंचरसिदंडकान्॥३॥तमुवाचविराधस्तुरामंसत्यपराक्रमम्॥ हंतवक्ष्यामितेराजन्निवोधममराघव॥४॥ पुत्रः
किलजवस्याहंमाताममशतह्रदा। ॥ विराधइतिमामाहुःपृथिव्यांसर्वराक्षसाः ॥ ५ ॥

कहांको जाओगे ॥ १ ॥ उस अंगारेके समान जलते वदनवाले राक्षसनें जव इस प्रकार पूछा तव महातेजवान् श्रीरामचंद्रजी इक्ष्वाकु कुलमें
अपना जन्म वताकर कहने लगे ॥ २ ॥ कि हम क्षत्रियहैं और जो धर्म क्षत्रियोंके हैं वहभी हम सव करतेहैं, इस समय हम वनमें आयेहैं इस
वातको तू जान; हम लोगभी तुझको जाननेकी इच्छा करतेहैं कि तू कौनहै ? और किस कारण इस दंडकारण्यमें विचरण करताहै ? ॥ ३ ॥
तिसके पीछे विराध राक्षस उन सत्यपराक्रम करनेवाले श्रीरामचंद्रजी से वोला कि राम! मैं अपना वृत्तान्त कहताहूं श्रवण करो ॥ ४ ॥ मैं जव
नामक राक्षसका पुत्रहूं मेरी माताका नाम शतह्रदाहै इस पृथ्वीके वीच सव राक्षस हमको विराध नामसे पुकारा करतेहैं ॥ ५ ॥

मैंने तपस्या करके ब्रह्माजीके प्रसादसे किसी शस्त्रद्वारा हम न मारे जांय न हमारे अंगही कट टूटसकें न हम मारे जांय ऐसा वरदान पायाहै ॥ ६ ॥ अतएव तुम लोग युद्धकी वासना छोड शीघ्रतासे इस स्त्रीको यहीं पर त्याग कर जिस स्थानसे आये हो वहींको चले जाओ क्योंकि मैं तुम्हारा जीव नहीं लेना चाहता ॥ ७ ॥ तब रामचंद्रजी क्रोधसे लाल २ नेत्र कर उस पाप निरत विकटाकार राक्षसको यह उत्तर देते हुए—रे अधम! तुझको धिक्कारहै तेरा आशय और इच्छा बहुत बुरीहै तू निश्चयही मृत्युको खोजताहै सो अभी उसको प्राप्त होगा खडाहो;जबतक तू जीता रहेगा तब तक तेरा निस्तार हमसे नहीं ॥ ८ ॥ ९ ॥ अनन्तर श्रीरामचंद्रजीनें अति शीघ्र धनुषपर बाणचढाकर बहुत सारे तेजवान् उस राक्षसको लक्ष्य करके

तपसाचाभिसंप्राप्ताब्रह्मणोहिप्रसादजा ॥ शस्त्रेणावध्यतालोकेऽच्छेद्याभेद्यत्वमेवच ॥ ६ ॥ उत्सृज्यप्रमदामेनाम नपेक्षौयथागतम् ॥ त्वरमाणौपलायेथांनवांजीवितमाददे ॥ ७ ॥ तंरामःप्रत्युवाचेदंकोपसंरक्तलोचनः ॥ राक्षसं विकृताकारंविराधंपापचेतसम् ॥ ८ ॥ क्षुद्रधिक्त्वांतुहीनार्थंमृत्युमन्वेषसेध्रुवम् ॥ रणेप्राप्स्यसिसंतिष्ठनमेजीवन्विमो क्ष्यसे ॥ ९ ॥ ततःसज्यंधनुःकृत्वारामःसुनिशितान्शरान् ॥ सुशीघ्रमभिसंधायराक्षसंनिजघानह ॥ १० ॥ धनु षाज्यागुणवतासप्तबाणान्मुमोचह ॥ रुक्मपुंखान्महावेगान्सुपर्णानिलतुल्यगान् ॥ ११ ॥ तेशरीरंविराधस्याभि त्त्वाबर्हिणवाससः ॥ निपेतुःशोणितादिग्धाधरण्यांपावकोपमाः ॥ १२ ॥ सविद्धोन्यस्यवैदेहींशूलमुद्यम्यराक्ष सः ॥ अभ्यद्रवत्सुसंक्रुद्धस्तदारामंसलक्ष्मणम् ॥ १३ ॥ सविनद्यमहानादंशूलंशक्रध्वजोपमम् ॥ प्रगृह्याशोभतत दाव्यात्ताननइवांतकः ॥ १४ ॥

छोडे ॥ १० ॥ उन्होंनें धनुषपर रोदा चढाय सुवर्णके पंखे लगे अतिवेगवान् गरुड और पवनकी समान शीघ्रगामी सात तीर चलाये ॥ ११ ॥ वह सातों बाण मोरकी पूंछके समान चित्र विचित्र विराधकी देहको भेदकर रुधिरमें लिपट अग्निकी समान चमकते हुये पृथ्वीपर गिरे ॥ १२ ॥ तब वह राक्षस बाणसे विंधकर विदेहराजकुमारी सीताजीको पृथ्वीपरबैठालकर शूल उठा क्रोधमें भर रामचंद्र व लक्ष्मणजीकी ओरको दौडा ॥ १३ ॥ वह बहुतही चिल्लाता हुआ इन्द्रध्वजके समान शूल धारणकर मुख फैलाये यमराजकी समान शोभा धारण करता हुआ ॥ १४ ॥

उस राक्षसको आतादेख दोनों भाई उस यमराजकी समान विराधराक्षस पर दीप्तिमान बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ १५ ॥ तब उस अति भयानक राक्षसनें हँसकर खडे हो जँभाई ली, जब कि उसनें जँभाईली तब उसके शरीरसे वह सब शीघ्रगामी बाण निकलकर पृथ्वीपर गिर पडे ॥ १६ ॥ तिसके पीछे वह विराध राक्षस बहुतही दुःखको प्राप्तहोकरभी ब्रह्माजीके वरदान देनेसे मरा नहीं और जीता रहा व शूल उठा कर श्रीराम लक्ष्मणके सामनेको दौडा ॥ १७ ॥ उस कालमें वह वज्रसमान शूलका अग्रभाग आकाशको छूता अग्निकी समान रूप धारण करता हुआ। तब शस्त्र धारण करनें वालोंमें श्रेष्ठ रामचंद्रजीनें दोबाणोंसे उस शूलको काट डाला ॥ १८ ॥ जिस प्रकार वज्रसे कटकर

अथतौभ्रातरौदीप्तंशरवर्षंववर्षतुः ॥ विराधेराक्षसेतस्मिन्कालांतकयमोपमे ॥ १५ ॥ सप्रहस्यमहारौद्रःस्थित्वाऽजृंभतराक्षसः ॥ जृंभमाणस्यतेबाणाःकायान्निष्पेतुराशुगाः ॥ १६ ॥ स्पर्शात्तुवरदानेनप्राणान्संरोध्यराक्षसः ॥ विराधःशूलमुद्यम्यराघवावभ्यधावत ॥ १७ ॥ तच्छूलंवज्रसंकाशंगगनेज्वलनोपमम् ॥ द्वाभ्यांशराभ्यांचिच्छेदरामः शस्त्रभृतांवरः ॥१८॥ तद्रामविशिखैश्छिन्नंशूलंतस्यापतद्भुवि ॥ पपातशनिनाच्छिन्नंमेरोरिवशिलातलम् ॥ १९ ॥ तौ खड्गौक्षिप्रमुद्यम्यकृष्णसर्पाविवोद्यतौ ॥ तूर्णमापेततुस्तस्यतदाप्रहरतांबलात् ॥ २० ॥ सवध्यमानःसुभृशंभुजाभ्यां परिगृह्यतौ ॥ अप्रकंप्यौनरव्याघ्रौरौद्रःप्रस्थातुमैच्छत ॥ २१ ॥ तस्याभिप्रायमाज्ञायरामोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ वहत्वयमलंतावत्पथानेनतुराक्षसः ॥ २२ ॥

मेरु पर्वतकी बडी शिला पृथ्वीपर गिरै वैसेही श्रीरामचंद्रजीके बाणसेटुकडे २ होकर विराध राक्षसका शूल पृथ्वीपर गिर पडा ॥ १९ ॥ जब उसका शूल कट गया तब राम और लक्ष्मण अति शीघ्र काटनेंकोतैयार काले नागकी समान दो खड्ग ले उसके सामनेको दौडे और उसके समीप जा बल वीर्यसे खड्ग उसके ऊपर प्रहार करने लगे॥२०॥तबवह राक्षस उन दोनों नर श्रेष्ठों करके अधमरासा होकर अपनें दोनों हाथोंसे दोनोंको पकड़ यह सोचने लगा कि इनको कहीं दूर ले जाकरपटक २ मारडालूं॥२१॥तबतकभी उस राक्षसका शरीर नहीं कांपा तिसकेपीछे श्रीरामचंद्रजी उस राक्षसके मनकी बातको जानकर लक्ष्मणजीसे बोले कि भला होगा यह राक्षस अपनें कंधोंपर चढाकर इस मार्गमें चले ॥२२॥

हे सुमित्रानंदन ! यह राक्षस जहां हमको ले जानेकीइच्छा करताहै वहां ले जावै। क्योंकि वह जिस रास्तेपर हमें लिये जाताहै वही हमारे जानेका मार्गहै ॥ २३ ॥ उस अतिवलवान् विराधराक्षसनें अपने बल द्वारा राम और लक्ष्मणको दो बालकोंकी समान अपनें दोनों कंधोंपर उठा लिया॥२४॥ फिर वह उन दोनों जनोंकोकंधोंपर बैठाल कर भयानक वनकी ओर चिल्लाता हुआ वह निशाचर दौडने लगा॥२५॥ फिर वह राक्षस अनेक २ भांतिके वृक्ष लगे, विविध प्रकारके पक्षियोंके समूहसे मनोहर शृगालों करके युक्त चीते व्याघ्रों सर्पोंसे भरे और महा मेघकी समान निविड वनमें प्रवेश करता हुआ ॥ २६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे तृतीयः सर्गः ॥३ ॥

यथावेच्छतिसौमित्रेतथावहतुराक्षसः ॥ अयमेवहिनःपंथायेनयातिनिशाचरः ॥ २३ ॥ सतुस्वबलवीर्येणसमुत्क्षिप्य निशाचरः ॥ बालाविवस्कंधगतौचकारातिबलोद्धतः ॥ २४ ॥ तावारोप्यततःस्कंधंराघवौरजनीचरः ॥ विराधोविनदन्घोरंजगामाभिमुखोवनम् ॥ २५ ॥ वनंमहामेघनिभंप्रविष्टोद्रुमैर्महद्भिर्विविधैरुपेतम् ॥ नानाविधैःपक्षिकुलैर्विचित्रंशिवायुतंव्यालमृगैर्विकीर्णम् ॥ २६ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेतृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥ ॥ ह्रियमाणौतुकाकुत्स्थौदृष्ट्वासीतारघूत्तमौ ॥ उच्चैःस्वरेणचुक्रोशप्रगृह्यसुमहाभुजौ ॥ १ ॥ एषदाशरथीरामःसत्यवाञ्छीलवाञ्शुचिः ॥ रक्षसारौद्ररूपेणह्रियतेसहलक्ष्मणः ॥ २ ॥ मामृक्षाभक्षयिष्यंतिशार्दूलद्वीपिनस्तथा ॥ मांहरोत्सृजकाकुत्स्थौनमस्तेराक्षसोत्तम ॥ ३ ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वावैदेह्यारामलक्ष्मणौ ॥ वेगंप्रचक्रतुर्वीरौवधेतस्यदुरात्मनः ॥ ४ ॥

जब विराध रघुनंदन रामचंद्र और लक्ष्मणजीको हरण करके ले चला यह देखकर सीताजी अपनी बडी २ बाहें उठाकर बडे जोरसे रोय २ विलाप करनें लगीं ॥ १ ॥ और बोलीं कि हा ! यह भयंकर आकारवाला राक्षस साधु स्वभाववाले, सत्यमें रत, पवित्र, दशरथकुमार श्रीरामचंद्र व लक्ष्मणजीको हरे लिये जाताहै ॥ २ ॥ कोई चीता व व्याघ्रभेडिया इकली पाकर हमको खा जायगा तिससे हे राक्षसोंमें श्रेष्ठ ! हम तुमको नमस्कार करतीहैं कि तुम इन दोनोंको छोडदो हमें खालो ॥३॥बल वीर्यवाले रामचंद्र और लक्ष्मणजीनें जानकीजीके ऐसे दीन वचन

सुनकर उस दुरात्मा विराधके मार डालनेंमें बडी जलदीकी ॥ ४ ॥सुमित्रानंदन लक्ष्मणजीनें उस भयानक राक्षसका वांया हाथ और श्री रामचंद्रजीनें शीघ्रतासे उसका दहना हाथ तोड डाला ॥ ५ ॥ जब दोनोंहाथ टूट गये तब मेघ वर्ण विराध भग्नचित्तहो मूर्छाको प्राप्त होकर उसी समय पृथ्वीमें गिर पडा तब ऐसा बोध हुआ मानों कोई पर्वतवज्रकी चोटसे फटकर पृथ्वीपर गिरा ॥ ६ ॥ जब वह गिर गया तब श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजीनें लात मुक्की घूसोंसे उसको खूब मारा और वारंवार पृथ्वीपर उठा २ कर पटकनें लगे और फिर बहुतही घसीटा ॥ ७ ॥ वह विराध पहलेभी रामचंद्रजीकेवहुत बाणोंसे विधा और खड्गके प्रहारसे शरीर छिन्न भिन्नभी हुआथा और इस समय वार २

तस्यरौद्रस्यसौमित्रिःसव्यंबाहुंबभंजह ॥ रामस्तुदक्षिणंबाहुंतरसातस्यरक्षसः ॥ ५ ॥ सभग्नबाहुःसंविग्नःपपाताशुविमूर्छितः ॥ धरण्यांमेघसंकाशोवज्रभिन्नइवाचलः ॥ ६ ॥ मुष्टिभिर्बाहुभिःपद्भिःसूदयंतौतुराक्षसम् ॥ उद्यम्योद्यम्यचाप्येनंस्थंडिलेनिष्पिपेषतुः ॥७॥ सविद्धोबहुभिर्बाणैःखड्गाभ्यांचपरिक्षतः ॥ निष्पिष्टोबहुधाभूमौनममारसराक्षसः ॥ ८ ॥ तंप्रेक्ष्यरामःसुभृशमवध्यमचलोपमम् ॥ भयेष्वभयदःश्रीमानिदंवचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥ तपसापुरुषव्याघ्रराक्षसोयंनशक्यते॥शस्त्रेणयुधिनिर्जेतुंराक्षसंनिखनावहे ॥१०॥ कुंजरस्येवरौद्रस्यराक्षसस्यास्यलक्ष्मण ॥ वनेस्मिन्सुमहच्छ्वभ्रंखन्यतांरौद्रवर्चसः ॥ ११ ॥ इत्युक्त्वालक्ष्मणंरामःप्रदरःखन्यतामिति ॥ तस्थौविराधमाक्रम्यकंठेपादेनवीर्यवान् ॥ १२ ॥

पृथ्वीपर पटकाभी गया परन्तु तौभी नहीं मरा क्योंकि ब्रह्माजीका वरदानथा ॥ ८ ॥ दीनको शरणदेनेवाले श्रीरामचंद्रजी पर्वतकी समान विराध राक्षसको सवही प्रकारसे अवध्य देख लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ९ ॥ हे पुरुष श्रेष्ठ ! इस राक्षसनें ऐसी तपस्याकीहै कि शस्त्रकी सहायतासे वींधकर इसको कोईभी नहीं जीत सकता, अतएव इसको जीता हुआही पृथ्वीमें गढाकर दाबे देतेहैं ॥ १० ॥ हे लक्ष्मण ! तुम इस समय हाथीकी समान प्रचंड स्वभाववाले इस राक्षसके लिये वनमें एक अति बडा गढा खोदो ॥ ११ ॥ वीर्यवान् लक्ष्मणजीको इस प्रकार गढा खोदनेंकी आज्ञा

देकर श्रीरामचंद्रजी अपनें चरणसे उस राक्षसका गला दाबकर खडे रहे ॥ १२ ॥ इस समय निशाचर विराध पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीके यह वचन श्रवण करके विनय सहित यह बोला ॥ १३ ॥ हे पुरुषसिंह! मैं आपके इन्द्रतुल्य पराक्रमसेही अधमरा हो गयाहूं, हे नरश्रेष्ठ! मैंनें अबतक अज्ञानसे आपको नहीं पहँचाना ॥ १४ ॥ हे तात! इस समय जाना कि आप श्रीरामचंद्रजीहैं सती कौशल्याजी आपको पाकर श्रेष्ठ पुत्रवती हुईहैं और इन महाभाग्यवती जानकी और परम कीर्तिमान् लक्ष्मणजीकोभी मैंने भली भांति पहचान लिया ॥ १५ ॥ मैं पहले तुम्बुरु नाम गन्धर्वथा; विश्रवाके पुत्र कुवेरजीनें हमको शाप दिया बस उसी शापके वश हम यह पापी निशाचर योनिको प्राप्त हुए ॥ १६ ॥ जब

तच्छ्रुत्वाराघवेणोक्तंराक्षसःप्रश्रितंवचः ॥ इदंप्रोवाचकाकुत्स्थंविराधःपुरुषर्षभम् ॥ १३ ॥ हतोहंपुरुषव्याघ्रशक्रतुल्यबलेनवै ॥ मयातुपूर्वंत्वंमोहान्नज्ञातःपुरुषर्षभ ॥ १४ ॥ कौसल्यासुप्रजास्तातरामस्त्वंविदितोमया ॥ वैदेहीचमहाभागालक्ष्मणश्चमहायशाः ॥ १५ ॥ अभिशापादहंघोरांप्रविष्टोराक्षसींतनुम् ॥ तुंबुरुर्नामगंधर्वःशप्तोवैश्रवणेनहि ॥ १६ ॥ प्रसाद्यमानश्चमयासोब्रवीन्मांमहायशाः ॥ यदादाशरथीरामस्त्वांवधिष्यतिसंयुगे ॥ १७ ॥ तदाप्रकृतिमापन्नोभवान्स्वर्गंगमिष्यति ॥ अनुपस्थीयमानोमांसक्रुद्धोव्याजहारह ॥ १८ ॥ इतिवैश्रवणोराजारंभासक्तमुवाचह ॥ तवप्रसादान्मुक्तोहमभिशापात्सुदारुणात् ॥ १९ ॥ भुवनंस्वंगमिष्यामिस्वस्तिवोस्तुपरंतप ॥ इतोवसतिधर्मात्माशरभंगःप्रतापवान् ॥ २० ॥

उन्होंनें हमको शाप दिया तब मैंने बहुत विनय करके प्रसन्न किया तब महायशवाले वैश्रवणजीनें हमसे कहा कि जब दशरथजीके पुत्र रामचंद्रजी युद्धमें तुम्हारा वध करेंगे ॥ १७ ॥ तब फिर तुम गन्धर्वका शरीर पाकर स्वर्गमें आओगे, और शाप उन्होंने इसकारण दियाथा कि मैं समय पर उनकी सेवामें नहीं उपस्थित हुआथा तब उन्होंने अतिशय क्रोधारूढ होकर यह शाप दिया कि राक्षस होजा, ॥ १८ ॥ और उनकी सेवामें न पहुँचनेंका यह कारणथा कि मैं रंभा अप्सरापर मोहित हो रहाथा तब राजा वैश्रवणनें मुझको यह शापदिया, सो अब मैं तुम्हारे प्रसादसे इस घोर शापसे छूट गया ॥ १९ ॥ हे परंतप! अब मैं अपनें स्थानको जाताहूं आपका भलाहो कि हमको इस शापसे छुटाया अब

ऐसा कीजिये कि यहांसे छैः कोशकी दूरीपर महाप्रतापी शरभंग नाम महात्मा रहतेहैं॥ २० ॥ उन महर्षिका तेज सूर्यके समानहै आप उनके पास शीघ्र जाइये वह आपका कल्याण शीघ्रही करेंगे ॥ २१ ॥ हे रामचंद्रजी ! अब हमें गढेमें डालकर कुशलपूर्वक चले जाइये, गढेमें दब नाही मरनेंके पीछे राक्षसोंका सनातन धर्महै ॥ २२ ॥ जोकि मरनेंके पीछे गडहा खोदकर दाब दिये जातेहैं उनको अक्षय लोकोंकी प्राप्ति होतीहै, बाणसे पीडित महाबलवान विराध रामचंद्रजीसे यह कह ॥ २३ ॥ देहको त्यागकर स्वर्गको प्राप्त हुआ, श्रीरामचंद्रजीनें राक्षसके ऐसे वचन सुनकर लक्ष्मणजीको आज्ञादी ॥ २४ ॥ कि हे लक्ष्मण ! तुम इस वनके बीच प्रचंड हाथीकी समान भीम कर्म करने

अध्यर्धयोजनेतातमहर्षिःसूर्यसन्निभः ॥ तंक्षिप्रमभिगच्छत्वंसतेश्रेयोभिधास्यति ॥२१॥ अवटेचापिमांरामनिक्षिप्यकुशलीव्रज ॥ रक्षसांगतसत्त्वानामेषधर्मःसनातनः ॥ २२ ॥ अवटेयेनिधीयंतेतेषांलोकाःसनातनाः ॥ एवमुक्त्वातुकाकुत्स्थंविराधःशरपीडितः ॥ २३ ॥ बभूवस्वर्गसंप्राप्तोन्यस्तदेहोमहाबलः ॥ तच्छ्रुत्वाराघवोवाक्यंलक्ष्मणंव्यादिदेशह ॥२४॥ कुंजरस्येवरौद्रस्यराक्षसस्यास्यलक्ष्मण ॥ वनेस्मिन्सुमहाञ्छ्वभ्रःखन्यतांरौद्रकर्मणः ॥२५॥ इत्युक्त्वालक्ष्मणंरामःप्रदरःखन्यतामिति ॥ तस्थौविराधमाक्रम्यकंठेपादेनवीर्यवान् ॥ २६ ॥ ततःखनित्रमादायलक्ष्मणःश्वभ्रमुत्तमम् ॥ अखनत्पार्श्वतस्तस्यविराधस्यमहात्मनः ॥ २७ ॥ तंमुक्तकंठमुत्क्षिप्यशंकुकर्णमहास्वनम् ॥ विराधंप्राक्षिपच्छ्वभ्रेनदंतंभैरवस्वनम् ॥ २८ ॥ तमाहवेदारुणमाशुविक्रमौस्थिरावुभौसंयतिरामलक्ष्मणौ ॥ मुदान्वितौचिक्षिपतुर्भयावहंनदंतमुत्क्षिप्यबलेनराक्षसम् ॥ २९ ॥

वाले राक्षसके दाबनेको एक बहुत बडा गडहा खोदो ॥ २५ ॥ लक्ष्मणजीको गढहा खोदनेकी आज्ञा देकर वीर्यवान रामचंद्रजी स्वयंभी अपनें पैरसे विराधका गला दबाकर खड़े रहे ॥ २६ ॥ फिर लक्ष्मणजीनें खन्ता लेकर महात्मा विराधके निकटही एक बडा गढहा खोदा ॥ २७ ॥ फिर रामचंद्रजीनें गधेकेसे कान जिसमें लगे हुएहैं ऐसे विराधके मस्तक परसे अपना चरण हटालिया और उसको उठाकर उस गढेमें डाल दिया उस समय विराध अति घोर शब्दसे चिल्लानें लगा ॥ २८ ॥ युद्धमें दृढचित्त और सत्य विक्रम करनेवाले श्रीरामचं

द्रजी व लक्ष्मणजी दोनोंने हर्ष सहित विकटाकार उस बड़े राक्षसका संग्राममें पराजय करा, और अपनी भुजाओंके बलसे उठाकर उस रोते हुएको गढहेमें डालकर पाट दिया ॥ २९ ॥ सब कुछ जाननेंमें चतुर वह दो नरश्रेष्ठ तीखे बाण व खड्गसे असुर विराधका संहार न होते देखकर बुद्धिके प्रभावसे गडहे में उसके मरनेका उपाय जानकर और उसमें ही उसको डालकर वध करते हुए ॥ ३० ॥ श्रीरामचंद्रजीनें जिस प्रकार अपनें प्रयोजनानुसार विराधको मृत्युके मुखमें डालनेका अभिलाष किया, काननचारी विराधनेंभी वैसेही अपने प्राण त्यागनेंकी काम नासे स्वयं रामचंद्रजीसे कहाथा कि तुम शस्त्रसे हमको नहीं मार सकोगे ॥ ३१ ॥ रामचंद्रजीने विराधके ऐसे वचन सुन उसको गढहेमें

अवध्यतांप्रेक्ष्यमहासुरस्यतौशितेनशस्त्रेणतदानरर्षभौ ॥ समर्थ्यचात्यर्थविशारदावुभौबिलेविराधस्यवधंप्रचक्रतुः ॥ ३० ॥ स्वयंविराधेनहिमृत्युमात्मनःप्रसह्यरामेणयथार्थमीप्सितः ॥ निवेदितःकाननचारिणास्वयंनमेवधःशस्त्रकृतोभवेदिति ॥ ३१ ॥ तदेवरामेणनिशम्यभाषितंकृतामतिस्तस्यबिलप्रवेशने ॥ बिलंचतेनातिबलेनरक्षसाप्रवेश्यमानेनवनंविनादितम् ॥ ३२ ॥ प्रहृष्टरूपाविवरामलक्ष्मणौविराधमुर्व्यांप्रदरेनिपात्यतम् ॥ ननंदतुर्वीतभयौमहावनेदिविस्थितौचंद्रदिवाकराविव ॥३३॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०आरण्यकांडेचतुर्थःसर्गः ॥ ४॥ ॥ ५ ॥हत्वातुतंभीमबलंविराधंराक्षसंवने ॥ ततःसीतांपरिष्वज्यसमाश्वास्यचवीर्यवान् ॥ १ ॥ अब्रवीद्भ्रातरंरामोलक्ष्मणंदीप्ततेजसम् ॥ कष्टंवनमिदंदुर्गंनचस्मोवनगोचराः ॥ २ ॥

दाबनेका विचार किया, तिसके पीछे उस गढेमें डालनेंके समय विराध ऐसा घोर चिल्लायाकि उस शब्दसे सब वन और वह गढा एक साथही भर गया ॥ ३२ ॥ इस प्रकार महावनमें श्रीरामचंद्र व लक्ष्मणजी उस विराध राक्षसको पृथ्वीमें पाट पूटकर दोनोंही एक प्रकार हर्षसे भर खिलगये और भयहीन होकर उस समय वह दोनों जन आकाशमें उदय हुए सूर्य चंद्रमाकी समान दीप्तिमान होनें लगे ॥ ३३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे चतुर्थःसर्गः ॥ ४ ॥ तत्पश्चात् वीर्यवान् श्रीरामचंद्रजीनें भीमबलवाले राक्षसको मारकर सीताजीको प्रेम सहित लपटाय बहुत समझाया बुझाया ॥ १ ॥ और तेजसे दीप्तिमान अपने छोटे भाई लक्ष्मणजीसे बोले कि यह वन स्वभा

वसेही दुर्गम और कष्टका देनेवालाहै । इससे पहले कभी इस भांतिका वन हम लोगोंनें नहीं देखा ॥ २ ॥ तिससे शीघ्रही तपोधन शरभंग जीके आश्रमको चले चलो यह कहकर श्रीरामचंद्रजी शरभंगजीके आश्रमकी ओर को चले ॥ ३ ॥ वहां पहुँच कर तपोबलसे जिनकी आत्मा शुद्ध हुई है, देवताओंकेसा प्रभाव जिनमें है ऐसे महर्षि शरभंगजीके निकट एक बडे अचरजकी बात रामचंद्रजीनें देखी ॥ ४ ॥ कि सूर्यकी अग्निकी प्रभाके समान देवराज इन्द्र अपने शरीरकी प्रभासे प्रकाशित देवताओंके साथ श्रेष्ठ रथ पर चढेहैं ॥ ५ ॥ उनका रथ पृथ्वीमें न खडा होकर आकाशमार्गमें ही टिकाहै उनके सब गहनोंमेंसे चमक निकल रही और पहरनेंके वस्त्र बहुतही उजलेथे ॥ ६ ॥

अभिगच्छामहेशीघ्रंशरभंगंतपोधनम् ॥ आश्रमंशरभंगस्यराघवोभिजगामह ॥ ३॥ तस्यदेवप्रभावस्यतपसाभावितात्मनः॥ समीपेशरभंगस्यददर्शमहदद्भुतम्॥४॥विभ्राजमानंवपुषासूर्यवैश्वानरप्रभम् ॥ रथप्रवरमारूढमाकाशेविबुधानुगम् ॥ ५ ॥ असंस्पृशंतंवसुधांददर्शविबुधेश्वरम् ॥ संप्रभाभरणंदेवंविरजोंबरधारिणम् ॥ ६ ॥ तद्विधैरेव बहुभिःपूज्यमानंमहात्मभिः॥हरितैर्वाजिभिर्युक्तमंतरिक्षगतंरथम् ॥७॥ ददर्शदूरतस्तस्यतरुणादित्यसन्निभम् ॥ पांडुराभ्रघनप्रख्यंचंद्रमंडलसन्निभम् ॥ ८ ॥ अपश्यद्विमलंछत्रंचित्रमाल्योपशोभितम् ॥ चामरव्यजनेचाग्र्येरुक्मदंडेमहाधने ॥ ९ ॥ गृहीतेवरनारीभ्यांधूयमानेचमूर्धनि ॥ गंधर्वामरसिद्धाश्चबहवःपरमर्षयः ॥ १० ॥

वैसेही वस्त्राभूषणोंसे सजे हुए औरभी अनेक महात्मा उनकी पूजाकररहेहैं रामचंद्रजीने दूरसे देखाकि इन्द्रका सूर्यकी समान प्रभावाला हरित वर्ण व श्याम वर्णके घोडे जिसमें जुतरहे ऐसा रथ अन्तरिक्षमें खडाहै ॥ ७ ॥ जिसकी दीप्ति दुपहरियाके सूर्यकी समान पाण्डु वर्णके बादलकी समानहै उज्वल चंद्र मंडलकी समान गोल ऐसे रथको श्रीरामचंद्रजीने देखा ॥ ८ ॥ उसमेंका छत्र बहुतही उज्वलहै उस पर चित्र विचित्र मालायें लटक रहीहैं फिर चामर व्यजन देखे जिनमें सुवर्णकी दंडी लग रहीथी जो बडे कीमती और बडे श्रेष्ठथे ॥ ९ ॥ दो उत्तम स्त्रियें छत्र और चमरको धारण किये इन्द्रजीके मस्तक पर घुमातीथीं बहुत सारे गंधर्व, देवता, सिद्ध, और परमर्षिगण एक साथ मिलकर॥१०॥

श्रेष्ठ वचनोंसे उन देवराज इन्द्रकी स्तुति कर रहेथे उस कालमें इन्द्रजी महर्षि शरभंगजीके साथ वार्त्तालाप करनेमें लगेहुए थे ॥ ११ ॥ श्रीरामचंद्रजी उन्हें देख उनके रथको बता भाई लक्ष्मणको अचरजके सहित वह दिखाकर कहने लगे ॥ १२ ॥ हे भइया! देखो, परम दीप्तिमान, श्रीयुक्त, सूर्यकी समान देदीप्यमान यह विचित्र रथ अन्तरिक्षमें टिकाहुआ शोभा पारहाहै ॥ १३ ॥ हमनें पहले जो शत यज्ञ करनेवाले इन्द्रजीके घोडोंकी जो वार्त्ता सुनीथी, सो यह अन्तरिक्षमें टिकेहुए, निश्चय वही घोडे होंगे ॥ १४ ॥ हे पुरुषसिंह! इस रथके चारों ओर जो सैकडो खड्ग हाथमें लिये, कुंडल पहरे युवा पुरुष खडेहै ॥ १५ ॥ जिन सबकीही छाती बडी चौडीहै, बाहें परिघकी

अंतरिक्षगतंदेवंगीर्भिरग्र्याभिरैडयन्॥ सहसंभाषमाणेतुशरभंगेनवासवे ॥११॥ दृष्ट्वाशतक्रतुंतत्ररामोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ रामोथरथमुद्दिश्यभ्रातुर्दर्शयताद्भुतम् ॥१२॥ अर्चिष्मंतंश्रियाजुष्टमद्भुतंपश्यलक्ष्मण॥ प्रतपंतमिवादित्यमंतारिक्षगतंरथम् ॥१३॥ येहयाःपुरुहूतस्यपुराशक्रस्यनः श्रुताः ॥ अंतरिक्षगतादिव्यास्तइमेहरयोध्रुवम्॥१४॥ इमेचपुरुषव्याघ्रयेतिष्ठंत्यभितोदिशम् ॥ शतंशतंकुंडलिनोयुवानःखड्गपाणयः ॥ १५ ॥ विस्तीर्णविपुलोरस्काःपरिघायतबाहवः ॥ शोणांशुवसनाःसर्वेव्याघ्राइवदुरासदाः ॥ १६ ॥ उरोदेशेषुसर्वेषांहाराज्वलनसंनिभाः ॥ रूपंबिभ्रतिसौमित्रेपंचविंशतिवार्षिकम् ॥ १७॥ एतद्धिकिलदेवानांवयोभवतिनित्यदा ॥ यथेमेपुरुषव्याघ्रादृश्यंतेप्रियदर्शनाः ॥ १८ ॥ इहैवसहवैदेह्यामुहूर्तंतिष्ठलक्ष्मण ॥ यावज्जानाम्यहंव्यक्तंकएषद्युतिमान्रथे ॥ १९ ॥

समान विशाल हैं, पहरनेके कपडे जिनके लालहैं, जो लोग कि व्याघ्रकी समान दुर्द्धर्षहैं, अर्थात् उनके पास कोई नहीं जा सकता ॥ १६ ॥ जिन सबोंके ही गलेमें जलती हुई अग्निकी समान हार शोभा पारहेहैं और पचीस २ वर्षकीहीसी उमर जान पडतीहै ॥ १७ ॥ यह सब पुरुष श्रेष्ठ जिस प्रकार कि प्रियदर्शन जान पडतेहैं, वैसेही सब देवता गण ऐसे रूप व उमरवाले जान पडा करतेहैं, व इनका शरीर सदा ऐसाही रहता कि मानों पचीस वर्षहीकी अवस्थाहै ॥ १८ ॥ तिससे हे लक्ष्मण! वैदेहीजीके सहित यहां पर एक मुहूर्त्त भरतक तुम टिके रहो तबतक

कि हम स्पष्ट २ यह नजान आवें कि रथवाले द्युतिमान यह तेजस्वी पुरुष कौनहैं? ॥ १९ ॥ लक्ष्मणजीसे यह कहकि तुम यहीं टिके रहो रामचंद्रजी शरभंगजीके आश्रमको गमन करने लगे ॥ २० ॥ श्रीरामचंद्रजीको आते हुए देखकर शचीनाथ इन्द्रजी शरभंगजीसे विदाले अनुचर देवताओंसे बोले ॥ २१ ॥ यह रामचंद्रजी इस ओरको चले आतेहैं, सो जबतक कि यह हमसे कुछ बोल सकें तिससे पहलेही तुम हमको और जगह ले चलो जिस्से यह हमको देख न सकें ॥ २२ ॥ इनको अभी और लोकोंके न करने योग्य बडा कठिन विशेष भारी कार्य करना पडेगा। जबकि यह राक्षसको जीतकर कृतकार्य होंगे तब इनके दर्शन करैंगे जो अभी दर्शन करें तो न मालूम रावण यह वृत्तान्त

तमेवमुक्त्वासौमित्रिमिहैवस्थीयतामिति॥अभिचक्रामकाकुत्स्थःशरभंगाश्रमंप्रति ॥२०॥ ततःसमभिगच्छंतंप्रेक्ष्य रामंशचीपतिः ॥ शरभंगमनुज्ञाप्यविबुधानिदमब्रवीत् ॥२१॥ इहोपयात्यसौरामोयावन्मांनाभिभाषते॥ निष्ठांनय तावत्तुततोमांद्रष्टुमर्हति ॥२२॥ जितवंतंकृतार्थंहितदाहमचिरादिमम्॥कर्मह्यनेनकर्तव्यंमहदन्यैःसुदुष्करम् ॥२३॥ अथवज्रीतमामंत्र्यमानयित्वाचतापसम् ॥ रथेनहययुक्तेनययौदिवमरिंदमः ॥ २४ ॥ प्रयातेतुसहस्राक्षेराघवःसप रिच्छदः॥ अग्निहोत्रमुपासीनंशरभंगमुपागमत् ॥ २५ ॥ तस्यपादौचसंगृह्यरामःसीताचलक्ष्मणः ॥ निषेदुस्तदनुज्ञा तालब्धवासानिमंत्रिताः ॥२६॥ ततःशक्रोपयानंतुपर्यपृच्छतराघवः ॥ शरभंगश्चतत्सर्वंराघवायन्यवेदयत्॥ २७॥

जानकर क्या कुछ उपद्रव कर उठावे ॥ २३ ॥ तिसके पीछे वज्रधारी इन्द्रजी महर्षि शरभंगजीसे आज्ञा ले और उनका विशेष सन्मान करके घोडे जुते हुए रथपर बैठकर स्वर्ग चलेगये ॥ २४ ॥ जब सहस्राक्ष इन्द्रजी चलेगये तब रामचंद्रजी भ्राता और भार्या सीताजीके सहित अग्निहोत्रमें बैठे हुए शरभंगजीके समीप आये॥ २५ ॥ राम लक्ष्मण और सीताजी सबनेही उनके दोनों चरण पकडे तब शरभंगजीने उनको टिकनेके लिये स्थान बतादिया और भोजनादिके लिये निमंत्रणभी करदिया और बैठनेको कहा तब श्रीरामचंद्रजी सीताजी लक्ष्मणजी वहां पर बैठे ॥ २६ ॥ तिसके पीछे रघुनंदन रामचंद्रजीने शरभंगजीसे इन्द्रके वहां आनेका कारण पूछा तब शरभं

गजीने इन्द्रके आनेका सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥ २७ ॥ और बोले हे राघव ! यह वरदाता इन्द्रजी हमको ब्रह्मलोकमें लेजानेकी इच्छासे यहां आयेथे हमने उग्र तप करके उस लोकको जीत लियाहै कि जिसका जीतना बिना परमात्माके भजन किये बहुत दुर्लभहै ॥ २८ ॥ परन्तु हे पुरुषसिंह श्रीरामचन्द्रजी ! आप निकटही आगयेहैं यह जानकर आप सरीखे प्रिय पाहुनेके साथ बिना मिले ब्रह्मलोकको नहीं गया ॥ २९ ॥ हे पुरुषव्याघ्र ! आपही परम धर्मनिष्ठ और महात्माहैं सो हमारे मनमें यहहै कि आपसे मिलकर फिर स्वर्ग, या ब्रह्मलोक कहींको चले जाँयगे ॥ ३० ॥ हे नरश्रेष्ठ ! हमने स्वर्ग और ब्रह्मलोक इत्यादि जितनें भर शुभ और अक्षय लोकहैं सबहीको जय कर लियाहै

मामेषवरदोरामब्रह्मलोकंनिनीषति ॥ जितमुग्रेणतपसादुष्प्रापमकृतात्मभिः ॥ २८ ॥ अहंज्ञात्वानरव्याघ्रवर्तमान मदूरतः ॥ ब्रह्मलोकंनगच्छामित्वामदृष्ट्वाप्रियातिथिम् ॥ २९ ॥ त्वयाहंपुरुषव्याघ्रधार्मिकेणमहात्मना ॥ समा गम्यगमिष्यामित्रिदिवंचावरंपरम् ॥ ३० ॥ अक्षयानरशार्दूलजितालोकामयाशुभाः ॥ ब्राह्म्याश्चनाकपृष्ठ्या श्चप्रतिगृह्णीष्वमामकान् ॥ ३१ ॥ एवमुक्तोनरव्याघ्रःसर्वशास्त्रविशारदः ॥ ऋषिणाशरभंगेनराघवोवाक्यमब्रवी त् ॥ ३२ ॥ अहमेवाहरिष्यामिसर्वाँल्लोकान्महामुने ॥ आवासंत्वहमिच्छामिप्रदिष्टमिहकानने ॥ ३३ ॥ राघवेणै वमुक्तस्तुशक्रतुल्यबलेनवै ॥ शरभंगोमहाप्राज्ञःपुनरेवाब्रवीद्वचः ॥ ३४ ॥ इहराममहातेजाःसुतीक्ष्णोनामधार्मिकः॥ वसत्यरण्येनियतःसतेश्रेयोविधास्यति ॥ ३५ ॥

सो अपनी तपस्यासे जीते हुए वह सब लोकही हम आपके अर्पण करतेहैं आप उनको ग्रहण कीजिये ॥ ३१ ॥ महर्षि शरभंगजीनें जब इस प्रकार कहा तब सब शास्त्रोंके जाननेवाले पुरुषश्रेष्ठ रामचन्द्रजी उनसे बोले ॥ ३२ ॥ हे महामुने ! यदि आप कहैं तो जो लोक आपने जीतेहैं हम उन सबको यहीं बुलादें परन्तु इस वनमें आपकी आज्ञा लेकर हम वसना चाहतेहैं सो बताइये कि कौनसे स्थानमें वासकरें ॥ ३३ ॥ इन्द्रकी समान बलवान् रघुनंदन श्रीरामचन्द्रजीनें जब इस प्रकार कहा तब फिर महापंडित शरभंगजी बोले ॥ ३४ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! इस वनमें सुतीक्ष्ण नामक परम तेजस्वी धार्मिक और जितेन्द्रिय एक महर्षि वास करतेहैं वह तुम्हारा भला करेंगे और रहनेको स्थानभी बतावेंगे ॥३५॥

और यह जो पुष्पों करके शोभित मन्दाकिनी नदी पूर्वकी ओर को वह रहीहै सो इसके किनारे २ ही चले जाइये बस महर्षि सुतीक्ष्णका आश्रम आजायगा ॥ ३६ ॥ हे पुरुषशार्दूल! वहां जानेका यह मार्ग दृष्टि आताहै हेतात! सर्प जिस प्रकार पुरानी केंचलीको छोड़कर चला जाताहै वैसेही हमभी इस समय यह पुराना देह छोड़ेंगे आप एक मुहूर्त्त तक हमारे ऊपर दृष्टि करके इस स्थानपर खडे रहिये ॥ ३७ ॥ यह कहकर परम तेजस्वी शरभंगजी यथाविधि अग्निमें ईंधन लगाय मंत्र पढ घृतसे आहुतिदे उसमें प्रवेश करते हुए ॥ ३८ ॥ भगवान् अग्नि जीने क्षणमात्रमेंही उन महात्मा शरभंगजीके समस्त रुवें, केश, हड्डी, मांस रुधिर और पुरानी खाल इत्यादि जलाडाली ॥ ३९ ॥ तब शरभंगजी

इमांमंदाकिनींरामप्रतिस्रोतामनुव्रज ॥ नदीपुष्पोडुपवहांततस्तत्रगमिष्यसि॥३६॥ एषपंथानरव्याघ्रमुहूर्तंपश्यतात माम् ॥ यावज्जहामिगात्राणिजीर्णांत्वचमिवोरगः ॥ ३७ ॥ ततोग्निंससमाधायहुत्वाचाज्येनमंत्रवत् ॥ शरभंगोम हातेजाःप्रविवेशहुताशनम् ॥ ३८ ॥ तस्यरोमाणिकेशांश्चतदावह्निर्महात्मनः ॥ जीर्णांत्वचंतदस्थीनियच्चमांसंचशो णितम् ॥ ३९ ॥ सचपावकसंकाशःकुमारःसमपद्यत ॥ उत्थायाग्निचयात्तस्माच्छरभंगोव्यरोचत ॥ ४० ॥ स लोकानाहिताग्नीनामृषीणांचमहात्मनाम् ॥ देवानांचव्यतिक्रम्यब्रह्मलोकंव्यरोहत ॥ ४१ ॥ सपुण्यकर्माभुवनेद्वि जर्षभःपितामहंसानुचरंददर्शह ॥ पितामहश्चापिसमीक्ष्यतंद्विजंननंदसुस्वागतमित्युवाच ॥ ४२ ॥ इत्यार्षेश्रीम द्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेपंचमःसर्गः ॥ ५ ॥ ७ ॥ ॥

साक्षात् अग्निकी समान मूर्त्तिमान कुमारका रूप धारण कर अग्निके ढेरसे निकल कर शोभा पाने लगे। और उनका पहला रूप जाता रहा ॥ ४० ॥ तिसके पीछे वह अग्निहोत्र करनेवाले महात्मा ऋषिगणोंके और देवताओंके सब लोकोंको नांघकर ब्रह्मलोकको चले गये ॥४१॥ वहां जाकर पुण्य कर्म करनेवाले ब्राह्मणश्रेष्ठ शरभंगजी अनुचर वेष्टित पितामह ब्रह्माजीके दर्शन करतेहुये ब्रह्माजीनेभी उन द्विजश्रेष्ठके दर्शन कर उनको अपने धोरे बिठा कुशल प्रश्नकर सब वृत्तान्त पूछा ॥४२॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे पंचमः सर्गः॥५॥

शरभंगजी जब ब्रह्मलोकको चले गये, तब दंडकवनवासी मुनिगण इकट्ठे होकर तेजसे देदीप्यमान रामचंद्रजीकी शरणमें आये ॥ १ ॥ उनमें वैखानस जोकि प्रजापतिके नखोंसे उत्पन्न हुएथे, वालखिल्य जो रेतसे उत्पन्न हुएहैं कुछ सम्प्रक्षथे जो परमात्माके चरणोंके धोनेसे हुएथे कुछ मरीचिपथे जो सूर्य या चंद्रमाकी किरणकोही पीकर रहते कुछ अश्मकुट्टथे, जो पत्थरसे कूट २ कर कचाही अन्न भक्षण करते, कुछ पत्राहार तापसथे जो केवल पत्तेही भोजन करते ॥ २ ॥ कुछ दन्तोलूखलीथे जिनके दांतही ओखलीकी समानथे कुछ उन्मज्जकथे जो सदा कंठतक जलमें डूबे रहते बहुत सारे गात्रशय्य थे जो बिना बिछाये पृथ्वी परही सोते, बहुत अशय्यथे जो सोतेही नहीं कुछ बिछातेही नहीं वैसेही पृथ्वीपर पडे रहतेथे, बहुत अनवकाशकथे, जिनको वेदाध्ययन और पूजा पाठ करनेसे छुट्टीही नहीं मिलतीथी ॥ ३ ॥ बहुतसे मुनि जला

शरभंगेदिवंप्राप्तेमुनिसंघाःसमागताः ॥ अभ्यगच्छंतकाकुत्स्थंराममंज्वलिततेजसम् ॥ १ ॥ वैखानसावालखिल्याः संप्रक्षालामरीचिपाः ॥ अश्मकुट्टाश्चबहवःपत्राहाराश्चतापसाः ॥ २ ॥ दंतोलूखलिनश्चैवतथैवोन्मज्जकाःपरे ॥ गात्रशय्याअशय्याश्चतथैवानवकाशिकाः ॥ ३ ॥ मुनयःसलिलाहारावायुभक्षास्तथापरे ॥ आकाशनिलयाश्चैवत थास्थंडिलशायिनः ॥ ४ ॥ तथोर्ध्ववासिनोदांतास्तथार्द्रपटवाससः ॥ सजपाश्चतपोनिष्ठास्तथापंचतपोन्विताः॥५॥ सर्वेब्राह्म्याश्रियायुक्तादृढयोगसमाहिताः ॥ शरभंगाश्रमेराममभिजग्मुश्चतापसाः ॥ ६ ॥

हारीथे जो जलही पीकर रहते कुछ वायुभोजी जो केवल हवाही खाकर जीते, जो आकाशनिलयथे जो बिना ऊपर कुछ छाये हुये खुले मैदा नमें पडे रहते कुछ स्थण्डिलशायी जो पृथ्वीहीपर पडे रहते ॥४॥ कुछ ऊर्ध्ववाहु जो कि सदा ऊपरही को हाथ उठाये रहते, कुछ दान्तथे जिनकी इन्द्रिय सदा अपने २ समय पर ही अपनी २ वासनाको चाहतीं, कुछ ऋषि ऐसेथे जो सदा गीले वस्त्र पहरे रहते ऐसे अर्द्रपट वासर, बहुत जपी जो सदा जप किया करते कुछ तपोनिष्ठथे जो सदा तपही किया करके भगवान्का ध्यान किया करते। कुछ पंचतपानुष्ठाईथे जो गरमियोंमें पंचाग्नितापा करतेथे ॥ ५ ॥ यह जितने भर ऋषि लोगथे सबपर ब्राह्मी श्री विराजमानथी, सबके चित्त दृढ योगाभ्यासमें लग रहेथे, यह

सब तपस्वी गण शरभंगजीके आश्रममें आकर रामचन्द्रजीके शरणापन्न हुए ॥ ६ ॥ इस प्रकार धर्मात्मा ऋषि लोग सब वहां आकर धार्मिक श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीसे कुशल प्रश्न पूछकर बोले ॥ ७ ॥ हे परमधर्मज्ञ ! तुम रथी गणोंमें श्रेष्ठहो, इक्ष्वाकु कुलके मध्यमें प्रधानहो, इन्द्रजी जिस प्रकार संसारकी रक्षा करतेहैं वैसेही तुमभी सब लोगोंके रक्षा करताहो ॥ ८ ॥ आप यश और विक्रम द्वारा तीनों लोकोंहीमें विख्यात होगयेहैं पितृव्रतत्व सत्य वचन और सर्वांगसे पूर्ण धर्म तुममें टिकेहैं ॥ ९ ॥ हे महात्मन् ! आप धर्मके जाननेवाले और धर्म प्रियहैं, अतएव नाथ ! हम प्रार्थनावान् होकर आपसे जो कुछ कहैं सो उसके लिये क्षमा करैं ॥ १० ॥ हे नाथ ! जो राजा प्रजासे पैदावारीका छठवाँ हिस्सा

अभिगम्यचधर्मज्ञारामंधर्मभृतांवरम् ॥ ऊचुःपरमधर्मज्ञमृषिसंघाःसमागताः ॥ ७ ॥ त्वमिक्ष्वाकुकुलस्यास्यपृथिव्याश्चमहारथः ॥ प्रधानश्चापिनाथश्चदेवानांमघवानिव ॥ ८ ॥ विश्रुतस्त्रिषुलोकेषुयशसाविक्रमेणच ॥ पितृव्रतत्वंसत्यंचत्वयिधर्मश्चपुष्कलः ॥ ९ ॥ त्वामासाद्यमहात्मानंधर्मज्ञंधर्मवत्सलम् ॥ अर्थित्वान्नाथवक्ष्यामस्तच्चनःक्षंतुमर्हसि ॥ १० ॥ अधर्मःसुमहान्नाथभवेत्तस्यतुभूपतेः ॥ योहरेद्बलिषड्भागंनचरक्षतिपुत्रवत् ॥ ११ ॥ युंजानःस्वानिवप्राणान्प्राणैरिष्टान्सुतानिव ॥ नित्ययुक्तःसदारक्षन्सर्वान्विषयवासिनः ॥ १२ ॥ प्राप्नोतिशाश्वतींरामकीर्तिंसबहुवार्षिकीम् ॥ ब्रह्मणःस्थानमासाद्यतत्रचापिमहीयते ॥ १३ ॥ यत्करोतिपरंधर्मंमुनिर्मूलफलाशनः ॥ तत्रराज्ञश्चतुर्भागः प्रजाधर्मेणरक्षतः ॥ १४ ॥

लेतेहैं और फिरभी प्रजाको पुत्रकी समान पालन नहीं करतेहैं उन नरपतियोंको महा अधर्म होताहै ॥ ११ ॥ हे रामचन्द्रजी ! जो सदा यत्न करके और सावधान होकर अपनें अधिकारमें वास करती हुई प्रजाको अपने प्राणोंकी समान, या प्राणोंसेभी अधिक प्रिय अपने पुत्रोंकी समान सदा रक्षा करतेहैं ॥ १२ ॥ वह महीपाल इस लोकमें बहु वर्षव्यापिनी स्थाई कीर्त्ति प्राप्त करके अन्त समय ब्रह्मलोकमें जाकर विशेष आदर मान पातेहैं ॥ १३ ॥ ऋषि मुनि लोग कंद मूल फल खाकर जो परम धर्म बटोरतेहैं, सो धर्मानुसार प्रजाकी रक्षा करनेवाले राजाको उस धर्मका

चौथा भाग प्राप्त होताहै ॥ १४ ॥ सो वही यह महान्वानप्रस्थ ऋषिगण जिनमें कि ब्राह्मणही अधिकहैं आप सा रखवाला पाकरभी नितान्त अनाथकी नांई राक्षसों करके मारे जातेहैं॥ १५॥ विशुद्ध चित्तवाले मुनिगणोंके शरीर, समस्त वनमें अनेक प्रकारके भयानक राक्षसोंसे मारे जाकर जहां तहां पडेहैं॥ १६॥ हम यह बात कुछ मिथ्या नहीं कहते आप स्वयंही आकर देख लीजिये कि पंपा और नदियों तथा मंदाकिनीके तीरपर वसनेवाले और चित्रकूट निवासी बहुत सारे मुनिलोग राक्षसोंसे महा दुःख पारहेहैं उन मुनिलोगोंका नाश हुआ जाताहै ॥ १७ ॥ भयंकर कर्म करनेवाले राक्षसगण तपस्वी लोगोंका नाश करतेहैं सो यह दुःख हम लोगोंपर नहीं सहा जाता ॥ १८ ॥ तिससे हे शरण्य! हम आश्रय लेनेंके

सोयंब्राह्मणभूयिष्ठोवानप्रस्थगणोमहान् ॥ त्वन्नाथोनाथवद्रामराक्षसैर्हन्यतेभृशम् ॥ १५ ॥ एहिपश्यशरीराणिमुनीनांभावितात्मनाम् ॥ हतानांराक्षसैर्घोरैर्बहूनांबहुधावने ॥ १६ ॥ पंपानदीनिवासानामनुमंदाकिनीमपि ॥ चित्रकूटालयानांचक्रियतेकदनंमहत् ॥ १७॥ एवंवयंनमृष्यामोविप्रकारंतपस्विनाम् ॥ क्रियमाणंवनेघोरंरक्षोभिर्भीमकर्मभिः ॥ १८ ॥ ततस्त्वांशरणार्थंचशरण्यंसमुपस्थिताः ॥ परिपालयनोरामवध्यमानान्निशाचरैः ॥ १९ ॥ परात्वत्तोगतिर्वीरपृथिव्यांनोपपद्यते ॥ परिपालयनःसर्वान्राक्षसेभ्योनृपात्मज ॥ २० ॥ एतच्छ्रुत्वातुकाकुत्स्थस्तापसानांतपस्विनाम् ॥ इदंप्रोवाचधर्मात्मासर्वानेवतपस्विनः ॥ २१ ॥ नैवमर्हथमांवक्तुमाज्ञाप्योहंतपस्विनाम्॥ केवलेनस्वकार्येणप्रवेष्टव्यंवनंमया ॥ २२ ॥

लिये आपके निकट आयेहैं हे श्रीरामचन्द्रजी! आप हम लोगोंकी रक्षा कीजिये। क्योंकि निशाचर गण हम लोगोंका नाश किये देतेहैं ॥ १९ ॥ हे राजकुमार! इस पृथ्वीपर आपके सिवाय हमारी कोई गति नहींहै हे रघुकुलचूडामणि! राक्षसोंके हाथसे हम सबकी आप रक्षा करें ॥ २० ॥ धर्मात्मा काकुत्स्थनंदन श्रीरामचन्द्रजी उन तपस्वी ऋषि लोगोंकी ऐसी विपद उनके मुखसे सुनकर सबसे बोले ❋ ॥ २१ ॥ कि हमसे इस प्रकार कहनेकी आपको कुछ आवश्यकता नहींहै, हम तो आप लोगोंकी आज्ञाके पालन करनेवालेहैं सो केवल आप अपनेही कार्य करनेंको हमें

❋ चौपाई—आरत वचन सुनत रघुनायक। बोले ? रन धरे धनुशायक ॥

चाहे जिस वनको भेज दीजिये ॥२२॥ जबकि हम इस वनमें आयेहैं तब आप लोगोंको जो डर राक्षसोंसे है उसहीको मिटानेंके अर्थ व पिताजीकी आज्ञा पालनेंके लिये इन दोनों कार्योंके अतिरिक्त और कार्य करनेको हम नहीं आये ॥ २३ ॥ हम जो इस वनमें आयेहैं सो आप लोगोंके कार्यको साधन करनेंहीके लिये आयेहैं क्योंकि जो पिताजीहीकी आज्ञा पालन करनी होती तो किसी और ही तरफको चले जाते अब हमारा वनवास सफल होजायगा क्योंकि आपका कार्यभी सधैगा ॥ २४ ॥ हमनें वनमें तपस्वी लोगोंके शत्रु राक्षसोंके संहार करनेंका संकल्प कियाहै । तपोब लसे युक्त ऋषिलोग हमारे और हमारे भ्राताके बाहुबलको देखें ॥ २५ ॥ धर्मधुरन्धर वीर रामचन्द्रजी तपस्वी लोगोंको ऐसा वरदानदे उन लोगों

विप्रकारमपाक्रष्टुंराक्षसैर्भवतामिमम् ॥ पितुस्तुनिर्देशकरःप्रविष्टोहमिदंवनम् ॥ २३ ॥ भवतामर्थसिद्ध्यर्थमाग तोहंयदृच्छया ॥ तस्यमेऽयंवनेवासोभाविष्यतिमहाफलः ॥ २४ ॥ तपस्विनांरणेशत्रून्हंतुमिच्छामिराक्षसान् ॥ पश्यंतुवीर्यमृषयःसभ्रातुर्मेतपोधनाः ॥ २५ ॥ दत्वावरंचापितपोधनानांधर्मेधृतात्मासहलक्ष्मणेन ॥ तपोधनै श्चापिसहार्यदत्तःसुतीक्ष्णमेवाभिजगामवीरः ॥ २६ ॥ ॥ इत्यार्षश्रीम० वा० आ० आर० षष्ठःसर्गः ॥ ६ ॥ रामस्तुसहितोभ्रात्रासीतयाचपरंतपः ॥ सुतीक्ष्णस्याश्रमपदंजगामसहतैर्द्विजैः ॥ १ ॥ सगत्वादूरमध्वानंनदी स्तीर्त्वाबहूदकाः ॥ ददर्शविमलंशैलंमहामेरुमिवोन्नतम् ॥ २ ॥ ततस्तदिक्ष्वाकुवरौसततंविविधैर्द्रुमैः ॥ काननंतौविविशतुःसीतयासहराघवौ ॥ ३ ॥

की पूजा प्राप्तकर और उन्हें साथले लक्ष्मणके सहित सुतीक्ष्णऋषिके आश्रमकी ओर चले ✻ ॥२६॥ इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०आर०षष्ठःसर्गः ॥६॥ शत्रुओंके तपानेवाले श्रीरामचंद्रजी भ्राता लक्ष्मण, सीता और ब्राह्मणोंके साथ सुतीक्ष्णजीके आश्रममें आये ॥ १ ॥ शरभंगजीके आश्रम से बहुत दूर चलकर मार्गमें बहुत सारी जलवाली विविध नदियोंको उतरकर सुमेरुकी समान ऊंचे एक निर्मल पर्वतको देखते हुए ॥ २ ॥ तिसके पीछे इक्ष्वाकुके वंश बढानेवाले प्रधान दो रघुवीर सीताजीके सहित अनेक प्रकारके वृक्ष जिसमें विराज रहे ऐसे वनमें प्रवेश करते हुए ॥ ३ ॥

✻ दोहा ॥ निशिचर हीन करों महि, भुज उठाय प्रण कीन ॥ सकल मुनिनके आश्रमन, जायजाय सुखदीन ॥

श्रीरामचंद्रजीनें उस घोर वनमें प्रवेश करके अनेक प्रकारके फल फूल वाले वृक्षोंके झुन्डसे घिरा हुआ जिसपर चीर और मालायें टँगरहीथीं ऐसा एक
आश्रम देखा ॥ ४ ॥ फिर श्रीरामचन्द्रजीनें वहां तप करनेमें चित्त लगाये मलिन कमलके फूलोंकी माला धारण किये अथवा पाप दूर करनेंके
निमित्त कमलासनसे बैठे हुये सुतीक्ष्णको देखकर उनसे यथाविधि संभाषण करकै बोले ॥ ५ ॥ हे भगवन्! हमारा नाम रामचन्द्रहै आपके दर्शन
करनेके लिये यहां आयेहैं; अतएव हे धर्मज्ञ! हे अक्षततपःप्रभावसम्पन्न महर्षे! आप हमसे बोलिये ॥ ६ ॥ तब वह अति धीर सुतीक्ष्णजी
ऋषि धार्मिकश्रेष्ठ रामचंद्रजीकी ओर देखते हुये दोनों बाहोंसे पकड उनको हृदयसे लगाकर बोले ॥ ७ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! तुम भले आये! हे रघुश्रेष्ठ!

प्रविष्टस्तुवनंघोरंबहुपुष्पफलद्रुमम् ॥ ददर्शाश्रममेकांतेचीरमालापरिष्कृतम् ॥ ४ ॥ तत्रतापसमासीनंमलपंकज
धारिणम् ॥ रामःसुतीक्ष्णंविधिवत्तपोधनमभाषत ॥ ५ ॥ रामोहमस्मिभगवन्भवंतंद्रष्टुमागतः ॥ तन्माभिवद
धर्मज्ञमहर्षेसत्यविक्रम॥ ६ ॥ सनिरीक्ष्यततोधीरोरामंधर्मभृतांवरम् ॥ समाश्लिष्यचबाहुभ्यामिदंवचनमब्रवीत् ॥७॥
स्वागतंतेरघुश्रेष्ठरामसत्यभृतांवर ॥ आश्रमोयंत्वयाक्रांतःसनाथइवसांप्रतम् ॥ ८ ॥ प्रतीक्षमाणस्त्वामेवनारोहेहं
महायशः ॥ देवलोकमितोवीरदेहंत्यक्त्वामहीतले ॥ ९ ॥ चित्रकूटमुपादायराज्यभ्रष्टोसिमेश्रुतः ॥ इहोपयातः
काकुत्स्थदेवराजःशतक्रतुः ॥ १० ॥ उपागम्यचमेदेवोमहादेवःसुरेश्वरः ॥ सर्वाँल्लोकाञ्जितानाहममपुण्येनक
र्मणा ॥ ११ ॥ तेषुदेवर्षिजुष्टेषुजितेषुतपसामया ॥ तत्प्रसादात्सभार्यस्त्वंविहरस्वसलक्ष्मणः ॥ १२ ॥

हे धार्मिकवर! आपके पदार्पण करनेसे आज यह आश्रम सफल हुआ ॥ ८ ॥ हे परमयशवाले श्रीरामचन्द्रजी! हे वीर! हम आपकेही दर्शनकी
अभिलाषा किये इतने दिनतक पृथ्वीमें रहे और देवलोकको नहीं गये ॥ ९ ॥ हमनें इन्द्रसे यह भी सुना है कि आप राज्य छोडकर चित्र
कूट में आएहैं। हे काकुत्स्थ! यहां देवराज इन्द्रके आनेंका यह प्रयोजनथा कि ॥ १० ॥ हमनें ऐसे पुण्य कर्म किये हैं कि जिनसे सब लोक
जीतलिये सो देवोंके देव इन्द्रजी यही कहनें आयेथे कि आप इस लोकको छोडकर उन लोकोंमें वास कीजिये ॥ ११ ॥ सो हमें आपके
दर्शनकी अभिलाषाथी इस्से वहां नहीं गये अब हम प्रसन्न होकर आपको वरदान देतेहैं कि आप हमारे प्रसादसे भ्राता लक्ष्मण और भार्या

सीताजीके सहित जो कि हमनें तपस्यासे पायेहैं उन सब देवर्षियोंकरके सेवित लोकोंमें आनन्द से वस कर काल व्यतीत कीजिये ॥ १२ ॥ पुरन्दर इन्द्रजी जिस प्रकार ब्रह्माजीसे बोलतेहैं वैसेही आत्मज्ञानी श्रीरामचन्द्रजी, कठोर तपके तेजसे प्रदीप्तमान सत्यवादी महर्षि सुतीक्ष्णजीसे बोले ॥ १३ ॥ हे महामुने! जब हम चाहेंगे तब आपही उन लोकोंको ग्रहण कर लेंगे इस समय हम यह प्रार्थना करते हैं कि इस समय इस वनमें हमारे रहनेंको आप स्थान बतादीजिये ॥ १४ ॥ गौतमवंशीय महात्मा शरभंगजीके मुखसे हमने यह बात सुनी है कि आप सबही कुछ वृत्तान्त जानते हैं; और सब प्राणियों का हित साधन करनेमें रतहैं ॥ १५ ॥ जगत्प्रसिद्ध महर्षि सुतीक्ष्णजीसे जब राम

तमुग्रतपसंदीप्तंमहर्षिंसत्यवादिनम् ॥ प्रत्युवाचात्मवान्रामोब्रह्माणमिववासवः ॥ १३ ॥ अहमेवाहरिष्यामिस्वयंलोकान्महामुने ॥ आवासंत्वहमिच्छामिप्रदिष्टमिहकानने ॥ १४ ॥ भवान्सर्वत्रकुशलःसर्वभूतहिते रतः ॥ आख्यातंशरभंगेनगौतमेनमहात्मना ॥ १५ ॥ एवमुक्तस्तुरामेणमहर्षिर्लोकविश्रुतः ॥ अब्रवीन्मधुरंवाक्यंहर्षेणमहतायुतः ॥ १६ ॥ अयमेवाश्रमोरामगुणवान्रम्यतामिति ॥ ऋषिसंघानुचरितःसदामूलफलैर्युतः ॥ १७ ॥ इममाश्रममागम्यमृगसंघामहीयसः ॥ अहत्वाप्रतिगच्छंतिलोभयित्वाकुतोभयाः ॥ १८ ॥ नान्योदोषोभवेदत्रमृगेभ्योन्यत्रविद्धिवै ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्यमहर्षेर्लक्ष्मणाग्रजः ॥ १९ ॥

चन्द्रजीने ऐसा कहा तो वह अतिशय आनन्दित होकर मधुर वचन बोले ॥ १६ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी! यही आश्रम बहुतही श्रेष्ठ है, इसमें अनेकानेक ऋषि लोग वसते हैं और कन्द मूल फल भी इस आश्रम में सब समय बहुत सारे मिला करते हैं अतएव तुम इस स्थानमें ही बसकर विहार करो ॥ १७ ॥ इस आश्रममें अनेक बडे २ शरीर वाले मृग गण आकर निडर हो इधर उधर सबको अपने रूपसे लुभाते हुए घूमा करते हैं, उनसे कोई नहीं बोलता, और फिर वहभी लौट जाते हैं ॥ १८ ॥ अतएव आप जानलें कि कुछ थोडा बहुत डर हैभी वह केवल पशुगणोंका ही भय है इसके सिवाय इस स्थानमें और कोई भय नहीं है महर्षिके ऐसे वचन सुन श्रीरामचन्द्रजी ॥ १९ ॥

धनुष और शरग्रहण करके उनसे बोले कि हे महाभाग ! उन आये हुए मृगके झुण्डोंको ॥ २० ॥ अपने पैने धारवाले बाणोंसे हम संहार कर डालेंगे परन्तु ऐसा करनेसे आपको कष्ट होगा सो इस्से हमें बडा कष्ट होगा ॥ २१ ॥ यह वचन सुन ऋषिराज कुछ न बोले तब रामचन्द्रजीनें जाना कि मुनि मृगोंका वध नहीं चाहते तब उनसे बोले कि इस मृगबाधिक आश्रम पर बहुत दिनोंतक रहनेंकी हमारी इच्छा नहीं है यह कहकर रामचन्द्र सन्ध्या करनेंको गये ॥ २२ ॥ सायंकालकी सन्ध्या करके श्रीरामचन्द्रजी वहीं सुतीक्ष्णजीके आश्रम पर लक्ष्मण और जानकीजीके सहित बसे ॥ २३ ॥ तिसके पीछे सन्ध्या होनेके पश्चात् जब रात्रि होआई तब महात्मा

उवाचवचनंधीरोविगृह्यसशरंधनुः ॥ तानहंसुमहाभागमृगसंघान्समागतान् ॥ २० ॥ हन्यांनिशितधारेणशरेणानतपर्वणा ॥ भवांस्तत्राभिषज्येतकिंस्यात्कृच्छ्रतरंततः ॥२१॥ एतस्मिन्नाश्रमेवासंचिरंतुनसमर्थये ॥ तमेवमुक्त्वोपरमंरामःसंध्यामुपागमत् ॥ २२ ॥ अन्वास्यपश्चिमांसंध्यांतत्रवासमकल्पयत् ॥ सुतीक्ष्णस्याश्रमेरम्येसीतयालक्ष्मणेनच ॥ २३ ॥ ततःशुभंतापसयोग्यमन्नंस्वयंसुतीक्ष्णःपुरुषर्षभाभ्याम् ॥ ताभ्यांसुसत्कृत्यददौमहात्मासंध्यानिवृत्तौरजनींसमीक्ष्य ॥ २४ ॥ इत्यार्षेश्री० वा० आ० आरण्यकांडेसप्तमःसर्गः ॥ ७ ॥ ॥ रामस्तुसहसौमित्रिःसुतीक्ष्णेनाभिपूजितः ॥ परिणाम्यनिशांतत्रप्रभातेप्रत्यबुध्यत ॥ १ ॥ उत्थायचयथाकालंराघवःसहसीतया ॥ उपस्पृश्यसुशीतेनतोयेनोत्पलगंधिना ॥ २ ॥ अथतेग्निंसुरांश्चैववैदेहीरामलक्ष्मणौ ॥ काल्यंविधिवदभ्यर्च्यतपस्विशरणेवने ॥ ३ ॥

सुतीक्ष्णजीनें आपही तपस्वियोंके भोजन करनेंयोग्य अन्न उन दो पुरुष श्रेष्ठोंको प्रदान किया और बहुत भांतिसे आदर भी करते हुए ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० आ० सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥ श्रीरामचन्द्रजी सुतीक्ष्ण करके इस प्रकार पूजे जाकर लक्ष्मणजीके सहित वह रात्रि इसी आश्रमपर व्यतीत करकै प्रभात होते ही जागे ॥१॥ और सीताजीके सहित यथाकालमें उठकर श्रीरामचन्द्रजीनें उस जलसे स्नान करा व हाथ पैर धो जोकि कमलोंकी सुवाससे युक्तथा ॥ २ ॥ फिर श्रीरामचन्द्र लक्ष्मण और वैदेहीजी देवताओंके कालोचित

विधानानुसार अग्नि आदि देवताओंकी पूजा उस तपस्वी सेवित वनमें करते हुए ॥ ३ ॥ और उदय होते हुए सूर्य भगवानके दर्शन कर निष्पापहो सुतीक्ष्णके निकट आकर विनीत मनोहर वचनसे बोले ॥ ४ ॥ हे भगवन्! आपके निकट पहुनई पाकर हम इस रात्रिमें यहां बहुत सुखसे बसे अब हम दण्डकारण्यमें जांयगे इस कारण आपकी अनुमति चाहते हैं क्योंकि यह ऋषि लोग हमको चलनेके अर्थ शीघ्रता करा रहे हैं॥५॥ दण्डकारण्यवासी पवित्र स्वभाववाले ऋषि लोगोंके समस्त आश्रम मण्डल दर्शन करनेके लिये हमारी इच्छा हुई है सो हम उनको शीघ्र देखेंगे ॥ ६ ॥ अब इच्छाहै कि आप आज्ञा दे दें तो हम इन सब विना धुँवेवाली अग्निके समानं प्रभायुक्त सत्यनिष्ठ तप करके जिन्होंनें

उदयंतंदिनकरंदृष्ट्वाविगतकल्मषाः ॥ सुतीक्ष्णमभिगम्येदंश्लक्ष्णंवचनमब्रुवन्॥४॥सुखोपिताःस्मभगवंस्त्वयापूज्येनपूजिताः॥ आपृच्छामःप्रयास्यामोमुनयस्त्वरयंतिनः॥५॥त्वरामहेवयंद्रष्टुंकृत्स्नमाश्रममंडलम् ॥ ऋषीणांपुण्यशीलानांदंडकारण्यवासिनाम् ॥ ६ ॥ अभ्यनुज्ञातुमिच्छामःसहैभिर्मुनिपुंगवैः ॥ धर्मनित्यैस्तपोदांतैर्विशिखैरिवपावकैः ॥ ७ ॥ अविषह्यातपोयावत्सूर्योनातिविराजते ॥ अमार्गेणागतांलक्ष्मींप्राप्येवान्वयवर्जितः ॥ ८ ॥ तावदिच्छामहेगंतुमित्युक्त्वाचरणौमुनेः ॥ ववंदेसहसौमित्रिःसीतयासहराघवः ॥ ९ ॥ तौसंस्पृशंतौचरणावुत्थाप्यमुनिपुंगवः ॥ गाढमाश्लिष्यसस्नेहमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १० ॥ अरिष्टंगच्छपंथानंरामसौमित्रिणासह ॥ सीतयाचानयासार्धंछाययेवानुवृत्तया ॥ ११ ॥

अपनी इन्द्रियोंको जीत लिया है ऐसे मुनिश्रेष्ठोंके साथ चले जांय ॥ ७ ॥ अन्याय करके प्राप्त हुई लक्ष्मीको पाकर जिस प्रकार पुरुषान पुरुषोंके संबंध छोड मनुष्य असह हो उठता है, सो सूर्यका ताप वैसा असह न होते २ ॥८॥ हम यहां से चलने की वासना करते हैं श्रीरामचन्द्रजीनें यह कह कर लक्ष्मण और सीताजीके साथ सुतीक्ष्णजीके चरणोंकी वन्दनाकी ॥ ९ ॥ मुनिश्रेष्ठ सुतीक्ष्णजीनें चरण वन्दन करते हुए उन दोनों राम और लक्ष्मणजीको उठाकर गाढ आलिङ्गन किया और उनसे स्नेह साने वचन बोले ॥ १० ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी! लक्ष्मणजी और

छायाके समान साथ चलनेंवाली इन सीताजीके संग आप निर्विघ्न मार्गमें चले जांय ॥ ११ ॥ हे वीर ! योगमें जिनके चित्त लगे हुएहैं ऐसे दण्डकारण्यवासी इन सब ऋषियोंके रमणीय आश्रम देख आइये॥१२॥अनेक प्रकारके बहुत कंद मूल फल सहित फूले हुए वनोंमें जिनमें भलेर श्रेष्ठ मृग गण रहते हैं और पक्षियोंके झुन्डके झुन्ड भरेहैं॥१३॥जहां साफ जल वाली ताल तलैयोंमें कमल फूल रहेहैं और उन्हीं तालावों पर हंस और कारंडवादि पक्षी विराजरहेहैं ॥ १४ ॥ और इनके अतिरिक्त देखनेमें अति मनोहर पर्वतोंके झरने और जहां मोर शोर कर रहे

पश्याश्रमपदंरम्यंदंडकारण्यवासिनाम् ॥ एषांतपस्विनांवीरतपसाभावितात्मनाम् ॥ १२ ॥ सुप्राज्यफलमूलानिपुष्पितानिवनानिच॥ प्रशस्तमृगयूथानिशांतपक्षिगणानिच॥ १३ ॥ फुल्लपंकजखंडानिप्रसन्नसलिलानिच॥ कारंडवविकीर्णानितटाकानिसरांसिच ॥ १४ ॥ द्रक्ष्यसेदृष्टिरम्याणिगिरिप्रस्रवणानिच ॥ रमणीयान्यरण्यानिमयूराभिरुतानिच ॥ १५ ॥ गम्यतांवत्ससौमित्रेभवानपिचगच्छतु ॥ आगंतव्यंचतेदृष्ट्वापुनरेवाश्रमंप्रति ॥ १६ ॥ एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वाकाकुत्स्थःसहलक्ष्मणः ॥ प्रदक्षिणंमुनिंकृत्वाप्रस्थातुमुपचक्रमे ॥ १७ ॥ ततःशुभतरेतूणीधनुषीचायतेक्षणा ॥ ददौसीतातयोर्भ्रात्रोःखड्गौचविमलौततः ॥ १८ ॥ आबध्यचशुभेतूणीचापेचादायसस्वने ॥ निष्क्रांतावाश्रमाद्गंतुमुभौतौरामलक्ष्मणौ ॥ १९ ॥

हैं ऐसे वन भी आप देखेंगे ॥ १५ ॥ वत्स सौमित्रे ! गमन करो श्रीरामचन्द्रजी आपभी जांय, परन्तु इन सब आश्रमोंके दर्शन करके फिर भी इस स्थानमें आप लौट कर आवें ॥ १६ ॥ जब सुतीक्ष्णजी यह बोले तब श्रीरामचन्द्रजीनें कहा कि ऐसाही होगा यह कहकर लक्ष्मणजीके साथ सुतीक्ष्णजीकी परिक्रमा कर जानेके लिये तैयार हुये ॥ १७ ॥ अनन्तर बडे २ नेत्रवाली सीताजीनें दोनों भाइयों को श्रेष्ठ तरकस धनुष और दो निर्मल खड्ग दिये जो कि रामचन्द्रजीने व लक्ष्मणजीनें खोलकर धर दियेथे ॥ १८ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजी व लक्ष्मणजी

दोनों शुभ तरकस बांध और दो शब्द सहित धनुष कांधेमें डाल यात्रा करनेके लिये आश्रमसे बाहर हुए ॥ १९ ॥ रूपवान् दोनों रघुवीरोंने महर्षि सुतीक्ष्णजीकी आज्ञा पाकर धनुष बाण धारण करके सीताजीके सहित शीघ्र यात्राकी ॥२०॥ इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०आ०अष्टमःसर्गः ॥८॥ रघुनंदन रामचंद्रजी जब सुतीक्ष्णजीकी आज्ञा लेकर यात्रा करते हुए तब सीताजी स्नेह साने मनोहर वचन श्रीरामचंद्रजीसे बोलीं ॥ १ ॥ यद्यपि आप अतिशय महात्माहैं परन्तु परम सूक्ष्म रूपसे विचार कर देखनेसे आप अधर्मको संचय करतेहैं इस समय कामजव्यसनसे निवृत्त होतेही यह अधर्म नहीं होगा ॥ २ ॥ कामज व्यसन तीन प्रकारके हैं मिथ्यावाक्य अर्थात् झूंठ बोलना व इस्से भी परम भारी और दो

शीघ्रंतौरूपसंपन्नावनुज्ञातौमहर्षिणा ॥ प्रस्थितौधृतचापासीसीतयासहराघवौ ॥ २० ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ० आ०अष्टमःसर्गः॥ ८ ॥७॥ सुतीक्ष्णेनाभ्यनुज्ञातंप्रस्थितंरघुनंदनम् ॥ हृष्टयास्निग्धयावाचाभर्तारमिदमब्रवीत्॥ १ ॥ अधर्मंतुसुसूक्ष्मेणविधिनाप्राप्यतेमहान् ॥ निवृत्तेनचशक्योयंव्यसनात्कामजादिह ॥ २ ॥ त्रीण्येवव्यसनान्यद्य कामजानिभवंत्युत ॥ मिथ्यावाक्यंतुपरमंतस्माद्गुरुतरावुभौ ॥ ३ ॥ परदाराभिगमनंविनावैरंचरौद्रता ॥ मिथ्या वाक्यंनतेभूतंनभविष्यतिराघव ॥ ४ ॥ कुतोभिलषणंस्त्रीणांपरेषांधर्मनाशनम् ॥ तवनास्तिमनुष्येंद्रनचाभूत्तेकदा चन ॥ ५ ॥ मनस्यपितथारामनचैतद्विद्यतेक्वचित् ॥ स्वदारानिरतश्चैवनित्यमेवनृपात्मज ॥६ ॥ धर्मिष्ठःसत्यसंधश्च पितुर्निर्देशकारकः ॥ त्वयिधर्मश्चसत्यंचत्वयिसर्वंप्रतिष्ठितम् ॥ ७ ॥

पापहैं ॥ ३ ॥ परस्त्री गमन (पराई स्त्रीसे भोग करना) और विना वैरकेही वृथा प्राणीको मार डालना यह पाप बडे भारीहैं हे रघुनंदन ! आपने कभी मिथ्या वचन नहीं कहा न कभी आप आगेको कहैंगे॥ ४॥ हे नरश्रेष्ठ! और आप धर्मका नाश करनेंवाला परस्त्रीगमन नहीं करते सो हे नरनाथ! ना तो यह बात आपमें कभी हुई न होगी ॥ ५ ॥ आपने किसी कारण वश होकर मनके बीचमें भी पराई स्त्रीकी अभिलाषा नहीं की। हे राजकुमार! आप सदाही अपनी स्त्रीमें अनुरागी रहतेहैं॥६॥ आप धर्मात्मा और सच्ची प्रतिज्ञा करनेवालेहैं पिताजीकी आज्ञा आप

पालन कर रहेहैं धर्म और सत्य सब आपमेंही टिके हुएहैं ॥ ७ ॥ हे महाबाहो! जो लोग जितेन्द्रियहै वह लोगही इन सब बातोंका पालन कर सकतेहैं। हे शुभदर्शन! सब प्राणी आपकी जितेन्द्रियताको जानतेहैं ॥ ८ ॥ परन्तु विना अपराध प्राणियोंकी हिंसा करनेका जो यह भयानक तीसरा व्यसनहै इस समय वही व्यसन आपमें उपस्थित हुआहै ॥ ९ ॥ हेवीर! आपने प्रतिज्ञाकीहै कि दंडकारण्यवासी ऋषि लोगोंकी रक्षा करनेके लिये युद्धमें हम राक्षसोंके प्राण संहार करेंगे ॥ १० ॥ इसीकारण आपने धनुष बाण ग्रहण करके लक्ष्मण सहित दण्डक नामसे जो वन विख्यातहै उसमेंको यात्रा की है ॥ ११ ॥ अतएव आपको यात्रा करते हुए देखकर और आपका अंगीकार पालन

तच्चसर्वंमहाबाहोसत्यंवोढुंजितेंद्रियैः ॥ तववश्येंद्रियत्वंचभूतानांशुभदर्शन ॥ ८ ॥ तृतीयंयदिदंरौद्रंपरप्राणाभिहिंसनम् ॥ निर्वैरंक्रियतेमोहात्तच्चतेसमुपस्थितम् ॥ ९ ॥ प्रतिज्ञातस्त्वयावीरदंडकारण्यवासिनाम् ॥ ऋषीणांरक्षणार्थायवधःसंयतिरक्षसाम् ॥ १० ॥ एतन्निमित्तंवचनंदंडकाइतिविश्रुतम् ॥ प्रस्थितस्त्वंसहभ्रात्राधृतबाणशरासनः ॥ ११ ॥ ततस्त्वांप्रस्थितंदृष्ट्वाममचिंताकुलंमनः ॥ त्वद्वृत्तंचिंतयंत्यावैभवेन्निःश्रेयसंहितम् ॥ १२ ॥ नहिमेरोचतेवीरगमनंदंडकान्प्रति ॥ कारणंतत्रवक्ष्यामिवदंत्याःश्रूयतांमम ॥ १३ ॥ त्वंहिबाणधनुष्पाणिर्भ्रात्रासहवनंगतः ॥ दृष्ट्वावनचरान्सर्वान्कच्चित्कुर्याःशरव्ययम् ॥ १४ ॥ क्षत्रियाणामिहधनुर्हुताशस्येंधनानिच ॥ समीपतःस्थितंतेजोबलमुच्छ्रयतेभृशम् ॥ १५ ॥

रूप व्रत जानकर आपके पारलौकिक और ऐहिक सुखके विषयमें हमारे मनको बडी चिन्ता हो रहीहै ॥१२॥ हे वीर! दंडकारण्यका जाना हमें अच्छा नहीं लगता सो इसका कारणभी कहतीहैं आप श्रवण करें ॥ १३ ॥ हे महाराज! आप धनुष बाण ग्रहण करके भाईके सहित वनको जांयगे वहां पर जो आप किसी राक्षसको देख पावेंगे तो कहीं न कहीं अवश्यही बाण त्याग करेंगे ॥१४॥ निकट रक्खा हुआ काठ जैसे अग्निके तेजको बढाताहै वैसेही यह धनुष जिसके पास रहताहै वहभी किसो न किसीपर चलायांही चाहताहै क्योंकि क्षत्रियोंके पास रहकर धनुष

उनके बलको बढाताहै ॥ १५ ॥ हे महाबाहो! पहले कोई मृग पक्षियों करके युक्त पुण्यमय वनके बीच एक सत्यमें टिके हुए पवित्र आचरण करनेवाले तपस्वी रहतेथे ॥ १६ ॥ शचीपति इन्द्रजी इन ऋषिको तपस्यामें विघ्न करनेके लिये योद्धाका वेष बनाय खड्ग हाथमें लेकर उनके आश्रममें आये ॥ १७ ॥ और उस आश्रममें उस तपोनिष्ठ पवित्र मुनिके पास धरोहरकी भांति यह खड्ग रख कर चले गये॥ १८ ॥ मुनि जी इस अस्त्रको पाकर इसकी रक्षा करनेके लिये बहुत यत्न करनेंमें लगे और विश्वासघातक न बनना पडे इस कारण इस अस्त्रको संगही लेकर वनमें घूमनें लगे ॥ १९ ॥ वह धरोहर वस्तुकी रक्षाकरनेंमें इतना यत्न करते कि जब कहींसे कंद मूल फल लेनेंके लिये जाते तोभी विना

पुराकिलमहाबाहोतपस्वीसत्यवाञ्छुचिः ॥ कस्मिंश्चिदभवत्पुण्येवनेरतमृगद्विजे ॥१६॥ तस्यैवतपसोविघ्नंकर्तुमिंद्रः शचीपतिः ॥ खड्गपाणिरथागच्छदाश्रमंभटरूपधृक् ॥ १७॥ तस्मिंस्तदाश्रमपदेनिहितःखड्गउत्तमः ॥ संन्यासविधिनादत्तःपुण्येतपसितिष्ठतः ॥ १८ ॥ सतच्छस्त्रमनुप्राप्यन्यासरक्षणतत्परः ॥ वनेतुविचरत्येवरक्षन्प्रत्ययमात्मनः ॥१९॥ यत्रगच्छत्युपादातुंमूलानिचफलानिच ॥ नविनायातितंखड्गंन्यासरक्षणतत्परः ॥२०॥ नित्यंशस्त्रंपरिवहन्क्रमेणसतपोधनः॥चकाररौद्रींस्वांबुद्धिंत्यक्त्वातपसिनिश्चयम् ॥२१॥ततःसरौद्राभिरतःप्रमत्तोधर्मकर्षितः ॥ तस्यशस्त्रस्यसंवासाज्जगामनरकंमुनिः ॥२२॥ एवमेतत्पुरावृत्तंशस्त्रसंयोगकारणम् ॥अग्निसंयोगवद्धेतुःशस्त्रसंयोगउच्यते ॥२३॥ स्नेहाच्चबहुमानाच्चस्मारयेत्वांतुशिक्षये ॥ नकथंचनसाकार्यागृहीतधनुषात्वया ॥ २४ ॥

इस खड्गके गमन नहीं करतेथे ॥ २० ॥ सदा खड्ग संग लिये फिरनेंसे सहज २ में मुनिका विश्वाश तप करनेंसे हट गया और उनका स्वभाव कठोर होगया ॥ २१ ॥ तिसके पीछे वह उसी शस्त्रसे प्राणियोंको मारने लगे और मतवालेसे होगये और अधर्मसे घिर शस्त्र साथ रखने से अंत समय नरक को गये ॥ २२ ॥ शस्त्रको पास रखनेंसे पहले ऐसा हुआथा इसही कारणसे पंडित लोग शस्त्र संयोगको अग्नि संयोगकी समान विकारका हेतु कहा करतेहैं ॥ २३ ॥ हे प्राणनाथ! हम आपसे बहुत स्नेह करतीहैं इस कारण आपको याद दिलादी कुछ हम आपको शिक्षा नहीं

करती। हे वीर! आप धनुष धारण करके ऐसा कार्य मत कीजिये॥२४॥ निरपराध दंडकवासी राक्षसोंको मारनेंका विचार मत कीजिये हे वीर! विना अपराध किसी को भी वध करना आपको उचित नहीं है ॥ २५ ॥ वनमें विचरते हुए क्षत्रियोंका धनुष धारण करना निरपराध जीवोंको मारनेके लिये नहीं वरन दुःखी लोगोंकी रक्षाही करनेके लियेहै ॥ २६ ॥ वनवासोको क्या शस्त्रधारण करना उचितहै ? तपस्वियोंमें क्या क्षत्रियोंका स्वभाव शोभा पाताहै? कहां शस्त्र? कहां वन? कहां क्षत्रिय धर्म? कहां तप? यह सब कर्म एक दूसरेसे विरुद्धहैं इससे वनका ही धर्म यहां पर वर्तना चाहिये ॥ २७ ॥ बराबर शस्त्रका व्यवहार करनेसे बुद्धि कादर और मलीन होजातीहै जब आप अयोध्याजीको लौट चलें तब फिर

बुद्धिवैरंविनाहंतुंराक्षसान्दंडकाश्रितान् ॥ अपराधंविनाहंतुंलोकोवीरनमंस्यते ॥ २५ ॥ क्षत्रियाणांतुवीराणांवने षुनियतात्मनाम् ॥ धनुषाकार्यमेतावदार्तानामभिरक्षणम् ॥ २६ ॥ क्वचशस्त्रंक्वचवनंक्वचक्षात्रंतपःक्वच ॥ व्याविद्धमिदमस्माभिर्देशधर्मस्तुपूज्यताम् ॥ २७ ॥ कदर्यकलुषाबुद्धिर्जायतेशस्त्रसेवनात् ॥ पुनर्गत्वात्वयोध्यायांक्षत्रधर्मंचरिष्यसि ॥२८॥ अक्षयातुभवेत्प्रीतिःश्वश्रूश्वशुरयोर्मम ॥ यदिराज्यंहिसंन्यस्यभवेस्त्वंनिरतोमुनिः॥२९॥ धर्मादर्थःप्रभवतिधर्मात्प्रभवतेसुखम् ॥ धर्मेणलभतेसर्वंधर्मसारमिदंजगत् ॥ ३० ॥ आत्मानंनियमैस्तैस्तैःकर्षयित्वाप्रयत्नतः ॥ प्राप्यतेनिपुणैर्धर्मोनसुखाल्लभतेसुखम् ॥ ३१ ॥ नित्यंशुचिमतिःसौम्यचरधर्मंतपोवने ॥ सर्वंतुविदितंतुभ्यंत्रैलोक्यमपितत्वतः ॥ ३२ ॥

क्षत्रियोंके धर्मका आचरण कर लेना ॥ २८ ॥ आप राज्य परित्याग करके जो यहां पर ऋषियोंके धर्मका आचरण करेंगे तो हमारे श्वशुर दशरथजीकी प्रीतिभी आपमें अधिकहोगी। क्योंकि उन्होंनेभी यही आज्ञा दीहै कि मुनिवेष धारण कर वनमें वसो ॥ २९ ॥ धर्मसे ही अर्थका लाभ होताहै धर्मसे ही सुख उत्पन्न होताहै वरन धर्मसे ही सब कुछ प्राप्त होजाताहै इस कारण धर्मही संसारमें एक मात्र सार वस्तुहै अतएव आपभी धर्मका ही आचरण कीजिये ॥ ३० ॥ चतुर मनुष्य बहुत यत्नसे शरीरको कष्ट दे दुर्बल करके धर्मका लाभ करतेहैं; क्योंकि शारीरक सुख जनक उपायसे धर्म प्राप्त नहीं होता॥३१॥हे प्रियदर्शन ! तुम सदा शुद्ध चित्त होकर, तपोवनमें करने योग्य जो

धर्मानुष्ठानहैं उनके करनेमें मन लगाओ त्रिभुवनके सूक्ष्मातुसूक्ष्म सब विषयही आपको विदितहैं तब फिर कौन धर्म विषयमें, आपको समझा सकताहै?॥ ३२ ॥ हमने केवल स्त्रियोंके स्वभावसे जो चंचलता होतीहै उसकेही वश होकर ऐसा कहा इस समय अनुज लक्ष्मणके साथ विचार करके जो उचित समझा जाय, विलंब न लगाकर उसको कीजिये ॥३३॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

पतिकी भक्ति करनेंवाली मैथिली जानकीजीके ऐसे वचन कहनेंपर परम धर्मनिष्ठ रामचंद्रजी उनको सुनकर अपनेको भली भांति समाहृत जान उत्तर देते हुए ॥ १ ॥ हे धर्मज्ञ देवि जानकी! तुमने स्नेह वचनसे क्षत्रिय कुलका धर्म बताकर जो कुछ कहा वह सबही हितकारी और

स्त्रीचापलादेतदुपाहृतंमेधर्मंचवक्तुंतवकःसमर्थः॥ विचार्यबुद्ध्यातुसहानुजेनयद्रोचतेतत्कुरुमाचिरेण ॥ ३३ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० आरण्यकांडेनवमः सर्गः ॥ ९ ॥ वाक्यमेतत्तुवैदेह्याव्याहृतंभर्तृभक्तया ॥ श्रुत्वाधर्मेस्थितोरामःप्रत्युवाचाथजानकीम् ॥ १ ॥ हितमुक्तंत्वयादेविस्निग्धयासदृशंवचः ॥ कुलंव्यपदिशंत्याचधर्मज्ञेजनकात्मजे ॥ २ ॥ किंनुवक्ष्याम्यहंदेवित्वयैवोक्तमिदंवचः ॥ क्षत्रियैर्धार्यतेचापोनार्तशब्दोभवेदिति ॥ ३ ॥ तेचार्तादंडकारण्येमुनयःसंशितव्रताः ॥ मांसीतेस्वयमागम्यशरण्यंशरणंगताः ॥ ४ ॥ वसंतःकालकालेषुवनेमूलफलाशनाः ॥ नलभंतेसुखंभीरुराक्षसैःक्रूरकर्मभिः ॥ ५ ॥ भक्ष्यंतेराक्षसैर्भीमैर्नरमांसोपजीविभिः ॥ तेभक्ष्यमाणामुनयोदंडकारण्यवासिनः ॥ ६ ॥

बहुत अच्छाहै ॥ २ ॥ किन्तु देवी! कोई दुःखित होकर वचन न सुनावे इसही कारण क्षत्रिय लोग धनुष धारण करतेहैं सो यह वार्ता कहकर तुमने स्वयंही अपने प्रश्नका उत्तर देलियाहै फिर भला हम और क्या उत्तरदें ॥ ३ ॥ दंडकारण्यके रहनेंवाले महातपस्वी ऋषि लोग दुःखित होकर स्वयंही यहां आकर हमको सबका शरण देनेवाला समझ हमारी शरण आये ॥ ४ ॥ अयि भीरु! वह लोग नित्य फल मूल भक्षण करके वनमें वास करतेहैं परन्तु क्रूर कर्म करनेवाले राक्षसोंके उपद्रव करनेंसे वह मुनिगण सुख नहीं पा सकते ॥ ५ ॥ इसके सिवाय राक्षस नर मांस

भोजी तो होतेहीहैं सो वैसे नरमांसोपजीवी भयंकर स्वभाववाले राक्षसोंसे अनेक मुनि लोग भक्षण किये गयेहैं ॥ ६ ॥ उनसे बचे कुचे दंड
कारण्यवासी मुनि लोगोंने हमारे निकट आ हमसे यह सब दुःखका वृत्तान्त कहा तब हम उनके ऐसे वचन सुन ॥ ७ ॥ उनकी प्रतिष्ठा करते
हुए उनसे बोले कि आप हम पर प्रसन्न हूजिये हमको बहुतही लज्जा आतीहै कि आपके ऐसे दुःखित वचन सुनें ॥ ८ ॥ क्योंकि आप लोग
स्वभावसेही हम लोगोंके पूज्यहैं किन्तु इस समय आप हमारी शरणमें आये अनन्तर हमनें उनके सामनेही कहा कि हमें क्या करना होगा सो
आज्ञा कीजिये ॥ ९ ॥ तब सबहीनें एकत्रहो मिलकर कहा राम ! दंडकारण्यमें बहुसंख्याक कामरूप निशाचरोंने एकत्र होकर अतिशय
सताना आरंभ कियाहै ॥ १० ॥ आप उनके हाथोंसे हमारा उद्धार कीजिये । हे अनघ ! होम करनेके काल और पौर्णमासी अमावास्याके

अस्मानभ्यवपद्यैतेमामूचुर्द्विजसत्तमाः ॥ मयातुवचनंश्रुत्वातेषामेवमुखाच्च्युतम् ॥ ७ ॥ कृत्वावचनशुश्रूषांवाक्यमे
तदुदाहृतम् ॥ प्रसीदंतुभवंतोमेह्रीरेषातुममातुला ॥ ८ ॥ यदीदृशैरहंविप्रैरुपस्थेयैरुपस्थितः ॥ किंकरोमीतिचमया
व्याहृतंद्विजसंनिधौ ॥ ९ ॥ सर्वैरेवसमागम्यवागियंसमुदाहृता ॥ राक्षसैर्दंडकारण्येबहुभिःकामरूपिभिः ॥ १० ॥
अर्दिताःस्मभृशंरामभवान्नस्तत्ररक्षतु ॥ होमकालेतुसंप्राप्तेपर्वकालेषुचानघ ॥ ११ ॥ धर्षयंतिस्मदुर्धर्षाराक्षसाःपि
शिताशनाः॥राक्षसैर्धर्षितानांचतापसानांतपस्विनाम् ॥१२॥ गतिंमृगयमाणानांभवान्नःपरमागतिः॥कामंतपःप्रभा
वेणशक्ताहंतुंनिशाचरान् ॥१३॥ चिरार्जितंनचेच्छामस्तपःखंडयितुंवयम्॥ बहुविघ्नंतपोनित्यंदुश्चरंचैवराघव ॥१४॥

दिन जब हम यज्ञ करने लगतेहैं ॥ ११ ॥ तब वह मांसके खानेवाले राक्षस लोग आयर कर हठ सहित यज्ञ विध्वंस करते और हमको सता
तेहैं अतएव इन राक्षसोंसे व्याकुल महा तपस्वी लोगोंको ॥ १२ ॥ आप बचाइये उन लोगोंको हम पराजित नहीं कर सकते तपमें रत ऋषिगण
इस प्रकार राक्षसोंके दुःख फंदमें फँसकर छुटकारा पानेकी वासनासे आपको शरण लेतेहैं । आपही हम लोगोंके परम गतिहैं यद्यपि हम तप
स्याके प्रभावसे स्वयंभी राक्षसोंका संहार कर सकतेहैं ॥ १३ ॥ तथापि बहुत कालकी बटोरी हुई तपस्याके क्षय करनेको हमारा अभिलाष
नहीं होता। हे रघुनंदन ! तपस्या जैसे कि बहुत कष्टोंसे इकट्ठी होतीहै वैसेही इकट्ठा करनेके समय इसमें अनेक विघ्नभी होतेहैं ॥ १४ ॥

इसी कारणसे राक्षस लोग खाभी लेतेहैं पर हम उनको शाप देकर नहीं मारते क्योंकि तपका फल शाप देनेंसे नहीं रहता तिस्से दंडकारण्यवासी राक्षसोंसे सताये हुए हम लोगोंकी ॥ १५ ॥ भ्राता लक्ष्मणके सहित आप रक्षा करें क्योंकि आपही हमारे रक्षा करताहैं जब हमने मुनियोंके ऐसे वचन सुने तब उनसे कहा कि आप लोगोंका पालन हम सब प्रकारसे करैंगे ॥ १६ ॥ हे जानकि ! हमने दंडकारण्यवासी तपस्विगणोंकी यह वार्त्ता सुनकर उनकी रक्षा करनेकी प्रतिज्ञाकीहै सो प्राण रहते इस प्रतिज्ञाके पालन करनेमें किसी भांति विमुख नहीं होंगे ॥ १७ ॥ एक तो ऋषि गणोंके सामने प्रतिज्ञा फिर उसमें सत्यही हमाराभी परम अभीष्टहै। फिर भला हम इसके विपरीत कैसे कर सकतेहैं ? हे सीते! तुम्हें,

तेनशापंनमुंचामोभक्ष्यमाणाश्चराक्षसैः ॥ तदर्द्यमानान्रक्षोभिर्दंडकारण्यवासिभिः ॥ १५ ॥ रक्षकस्त्वंसहभ्रात्रा त्वन्नाथाहिवयंवने ॥ मयाचैतद्वचःश्रुत्वाकात्स्न्र्येनपरिपालनम् ॥ १६ ॥ ऋषीणांदंडकारण्येसंश्रुतंजन कात्मजे ॥ संश्रुत्यचनशक्ष्यामिजीवमानःप्रतिश्रवम् ॥ १७ ॥ मुनीनामन्यथाकर्तुंसत्यमिष्टंहिमेसदा ॥ अप्यहं जीवितंजह्यांत्वांवासीतेसलक्ष्मणाम् ॥ १८ ॥ नतुप्रतिज्ञांसंश्रुत्यब्राह्मणेभ्योविशेषतः ॥ तदवश्यंमयाकार्यमृषीणां परिपालनम् ॥ १९ ॥ अनुक्तेनापिवैदेहिप्रतिज्ञायकथंपुनः ॥ ममस्नेहाच्चसौहार्दादिदमुक्तंत्वयावचः॥२०॥ परितुष्टो स्म्यहंसीतेनह्यनिष्टोनुशास्यते॥सदृशंचानुरूपंचकुलस्यतवशोभने ॥ सधर्मचारिणीमेत्वंप्राणेभ्योपिगरीयसी॥२१॥

लक्ष्मणको और अपने प्राणकोभी हम त्याग कर सकतेहैं॥ १८ ॥ परन्तु प्रतिज्ञा करके विशेषतः ब्राह्मणोंके विषयमें सो हम कभी त्याग नहीं कर सकते तिस्से ऋषि लोगोंका पालन करना हमारा परम कार्यहै ॥ १९ ॥ ऋषि लोगोंके न कहनेपरभी जब कि सबही भांतिसे उन लोगोंकी रक्षा करना हमारा आवश्यकीय कार्यहै, फिर भला प्रतिज्ञा करके किस प्रकार उस कार्यसे विमुखहों। जो हो हे सीते! तुमने हमारे प्रति स्नेह और सौहार्दसे जो वचन कहे सोभी हमने जाने ॥ २० ॥ इस्से हम बहुत संतुष्टहैं क्योंकि कोईभी कुप्यारे मनुष्यसे हितकारो वचन नहीं कहता । हे शोभने ! तुमने हमसे अपने वंशके लायक उचित बचनही कहेहैं तुम हमारी धर्म चारिणीहो, हम तुमको प्राणसेभी अधिक प्यारा समझतेहैं ॥२१॥

धनुष धारण किये हुए महानुभाव श्रीरामचंद्रजी जनकदुलारी सुकुमारी सीताजीसे इस प्रकारके वचन कहकर लक्ष्मणजीके
सहित परम रमणीय तपोवनोंमें गमन करते हुए ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० आर० दशमः सर्गः ॥ १० ॥
श्रीरामचंद्रजी आगे, सुशोभित सीताजी बीचमें और लक्ष्मणजी धनुष धारण करके पीछे २ जाने लगे ॥ १ ॥ उन दोनों भाइयोंनें जानकीजीके
सहित जानेके समय विविध भांतिके पर्वत, वन, नदी, तालाव आदि देखे ॥ २ ॥ सारस और चकवा, चकवी नदियोंके किनारे घूम रहे और
कमल फूल फूले हुए जल मुरगावी आदिकों करके युक्त सरोवर देखे॥३॥चीता, वाघ आदिकोंके झुन्डके झुन्ड, सुविशाल शींग जिनके ऐसे मदसे

इत्येवमुक्त्वावचनंमहात्मासीतांप्रियांमैथिलराजपुत्रीम् ॥ रामोधनुष्मान्सहलक्ष्मणेनजगामरम्याणितपोवना
नि ॥ २२ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०आरण्यकांडेदशमःसर्गः ॥ १० ॥ ॥ ७ ॥ अग्रतःप्रययौरामःसी
तामध्येसुशोभना ॥ पृष्ठतस्तुधनुष्पाणिर्लक्ष्मणोनुजगामह ॥ १ ॥ तौपश्यमानौविविधान्शैलप्रस्थान्वनानिच ॥
नदीश्चविविधारम्याजग्मतुःसहसीतया ॥ २ ॥ सारसांश्चक्रवाकांश्चनदीपुलिनचारिणः ॥ सरांसिचसपद्मानियुता
निजलजैःखगैः ॥ ३ ॥ यूथबंधांश्चपृषतांमदोन्मत्तान्विषाणिनः ॥ महिषांश्चवराहांश्चगजांश्चद्रुमवैरिणः ॥ ४ ॥
तेगत्वादूरमध्वानंलंबमानेदिवाकरे ॥ ददृशुःसहितारम्यंतटाकंयोजनायतम् ॥ ५ ॥ पद्मपुष्करसंबाधंगजयूथैर
लंकृतम् ॥ सारसैर्हंसकादंबैःसंकुलंजलजातिभिः ॥ ६ ॥ प्रसन्नसलिलेरम्येतस्मिन्सरसिशुश्रुवे ॥ गीतवादित्रनि
र्घोषोननुकश्चनदृश्यते ॥ ७ ॥

उन्मद भैंसे वराह और वृक्षोंके वैरी हाथी ॥ ४ ॥ देखते दिखाते चले तिसके पीछे जब दिवाकर अस्ताचल सन्मुखीन हुए तब रामचंद्र लक्ष्मण
व सीताजीने बहुत दूर चलकर एक योजनमें विस्तार जिसका ऐसा एक तालाव देखा ॥ ५ ॥ इस तालावमें हाथियोंके झुन्डके झुन्ड नहा रहे
बहुत सारे लाल और श्वेत कमल फूल खिल रहे जल पक्षी सारस और हंस कल्लोलें कर रहेथे ॥ ६ ॥ और इसका जल अति निर्मल था श्री
रामचंद्र लक्ष्मण व जानकीजीनें इस रमणीय सरोवरपर गीत और बाजेका शब्द सुना; परन्तु कोई गानें बजानेंवाला दिखाई न दिया ॥ ७ ॥

महारथी श्रीरामचंद्र और लक्ष्मणजी दोनों कौतूहलके वश होकर धर्मभृत् नामक ऋषिसे पूछते हुए ॥ ८ ॥ हे महर्षे ! यह बडे आश्चर्यका शब्द सुनकर हम सबकोही बडा कौतूहल हुआहै ! अतएव इस घटनाका सविशेष समस्त वर्णन कीजिये ॥ ९ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें इस प्रकार कहा तब धर्मात्मा ऋषि तत्क्षण इस सरोवरके प्रभावका वर्णन करने लगे ॥ १० ॥ ऋषि बोले हे रामचंद्रजी ! इस तडागका नाम पंचाप्सरहै इसमें सदा जल रहताहै कभी सूखता नहीं । महर्षि माण्डकर्णिनें तपोबलसे इसको बनायाहै ॥ ११ ॥ वह महामुनि माण्डकर्णि दश हजार वर्ष केवल पवन भोजन करते यहां रह कठोर तप करते रहे॥१२॥इस तपस्यासे इन्द्र, वरुण, कुबेर, अग्नि सूर्यादि देवता सब बहुतही व्यथित

ततःकौतूहलाद्रामोलक्ष्मणश्चमहारथः ॥ मुनिंधर्मभृतंनामप्रष्टुंसमुपचक्रमे ॥ ८ ॥ इदमत्यद्भुतंश्रुत्वासर्वेषांनोमहामुने ॥ कौतूहलंमहज्जातंकिमिदंसाधुकथ्यताम् ॥ ९ ॥ तेनैवमुक्तोधर्मात्माराघवेणमुनिस्तदा ॥ प्रभावंसरसःक्षिप्रमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ १० ॥ इदंपंचाप्सरोनामतटाकंसार्वकालिकम् ॥ निर्मितंतपसारामम्रुनिनामांडकर्णिना॥११॥ सहितेपेतपस्तीव्रंमांडकर्णिर्महामुनिः ॥ दशवर्षसहस्राणिवायुभक्षोजलाशये ॥ १२ ॥ ततःप्रव्यथिताःसर्वेदेवाः साग्निपुरोगमाः ॥ अब्रुवन्वचनंसर्वेपरस्परसमागताः ॥ १३ ॥ अस्माकंकस्यचित्स्थानमेषप्रार्थयतेमुनिः ॥ इतिसंविग्नमनसःसर्वेतत्रदिवौकसः ॥ १४ ॥ ततःकर्तुंतपोविघ्नंसर्वदेवैर्नियोजिताः ॥ प्रधानाप्सरसःपंचविद्युच्चलितवर्चसः ॥ १५ ॥ अप्सरोभिस्ततस्ताभिर्मुनिर्दृष्टपरावरः ॥ नीतोमदनवश्यत्वंदेवानांकार्यसिद्धये ॥ १६ ॥ ताश्चैवाप्सरसःपंचमुनेःपत्नीत्वमागताः ॥ तटाकेनिर्मितंतासांतस्मिन्नंतर्हितंगृहम् ॥ १७ ॥

होकर परस्पर इकट्ठे होकर कहनें लगे ॥१३॥ यह ऋषि हममें से किसीका पद पानेंके लिये तप करतेहैं । इस प्रकार निश्चय करके देवताओंके अंतःकरण महा उद्विग्न होगये ॥ १४ ॥ तब उन सब देवताओंनें मिलकर उनके तपमें विघ्न करनेकी अभिलाषसे; विजलीकी समान प्रभावाली पांच मुख्य अप्सराओंको भेजा ॥ १५ ॥ अप्सराओंनेभी देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये अपने और पराये विषयके जाननेंवाले महर्षि माण्डकर्णिजीको मदनके मदसे मतवाला कर दिया ॥ १६ ॥ ऋषिजी उन पांचों अप्सराओंको अपनी स्त्रीकी भांति ग्रहण करके

उनके लिये इस सरोवरमें न दीखनेंवाला सुन्दर घर बनाया ॥ १७ ॥ पांचों अप्सरायें यथा सुखसे इस गृहमें वास करके तपके प्रभावसे युवा अवस्थाको प्राप्त हुए उन ऋषिका मन मुदित करनेंको उनके संग विहार करनें लगीं ॥ १८ ॥ मुनिजीके सहित विहार करती हुईं उन अप्सरा गणोंकेही बाजे बजाने और गानेका यह शब्दहै, व उन्हींके गहनोंका यह मनोहर शब्द सुनाई देताहै ॥ १९ ॥ महायशवान श्रीराम चंद्रजी भ्राता लक्ष्मणजीके सहित विशुद्ध चित्त महर्षिजीकी इस कथाको सुन बडा अचरज पाते हुए ॥ २० ॥ और कैसे अचरजकी बातहै यह कहते २ चारों ओर कुश चीर जिनमें पडे, ब्राह्मी शोभा समन्वित आश्रममंडळ श्रीरामचंद्रजी देखते हुए ॥ २१ ॥ वह बहुत शीघ्र भ्रात।

तत्रैवाप्सरसःपंचनिवसंत्योयथासुखम् ॥ रमयंतितपोयोगान्मुनिंयौवनमास्थितम् ॥ १८ ॥ तासांसंक्रीडमाना नामेषवादित्रनिःस्वनः ॥ श्रूयतेभूषणोन्मिश्रोगीतशब्दोमनोहरः ॥ १९ ॥ आश्चर्यमितितस्यैतद्वचनंभाविता त्मनः ॥ राघवःप्रतिजग्राहसहभ्रात्रामहायशाः ॥ २० ॥ एवंकथयमानःसददर्शाश्रममंडलम् ॥ कुशचीरपरि क्षिप्तंब्राह्म्यालक्ष्म्यासमावृतम् ॥ २१ ॥ प्रविश्यसहवैदेह्यालक्ष्मणेनचराघवः ॥ तदातस्मिन्सकाकुत्स्थःश्रीमत्या श्रममंडले ॥ २२ ॥ उषित्वासुखंतत्रपूज्यमानोमहर्षिभिः ॥ जगामचाश्रमांस्तेषांपर्यायेणतपस्विनाम् ॥ २३ ॥ येषामुषितवान्पूर्वंसकाशेसमहास्त्रवित् ॥ क्वचित्परिदशान्मासानेकसंवत्सरंक्वचित् ॥ २४ ॥ क्वचिच्चचतुरोमासान्पं चषट्चपरान्क्वचित् ॥ अपरत्राधिकान्मासानध्यर्धमधिकंक्वचित् ॥ २५ ॥

लक्ष्मण और भार्या जानकीजीके सहित वन शोभासम्पन्न आश्रमोंमें प्रवेश करते हुए ॥ २२ ॥ जब वहां ऋषियोंनें कंद मूल फलोंसे उनकी पूजाकी तब रामचंद्रजी वहां सुखसे बसे, फिर बारी२ से रामचंद्रजी सबही ऋषियोंके आश्रमों पर गये और पूजा पाते हुए ॥ २३ ॥ वह महास्त्र वित् श्रीरामचंद्रजी पहले जिनके आश्रममें बसेथे, इस समय फिर उनके आश्रममें जाते हुए। वह किसी आश्रममें पूरे दश महीने, कहीं पूरे वर्ष भर ॥ २४ ॥ कहीं चार महीने कहीं पांच महीने कहीं छः महीने कहीं एक वर्षसेभी अधिक, कहीं पखवाडेसे अधिक कहीं तीन महीनें और

कहीं २ साढे तीन २ महीने ॥ २५ ॥ कहीं तीन मास, कहीं आठ महीनेतक रहे कहीं इस्से न्यूनाधिक रहे ऐसे तिन मुनियोंके आश्रमों पर श्रीरामचंद्रजी बसे ॥ २६ ॥ सबही जगह वह सुख सहित रहे; उन आश्रमोंमें वसते हुए ऋषि लोगोंकी अनुकूलतासे सीता सहित दश वर्ष श्रीरामचंद्रजीनें बितादिये ॥ २७ ॥ इस प्रकारसे धर्मके जाननेवाले श्रीरामचंद्रजी सीताके साथ सब पुण्य आश्रमोंमें घूम घाम कर फिर महर्षि सुतीक्ष्णजीके आश्रममें आये जहां मुनि गणोंनें उनकी बडी पूजाकी ॥ २८ ॥ वहां पर दुश्मनोंके मारनेवाले श्रीरामचंद्रजी कुछ एक दिन रहकर एक दिन विनय सहित उन महामुनि सुतीक्ष्णजीसे ॥ २९ ॥ श्रीरामचंद्रजी पूछते हुए, कि हे भगवन्! इस वनमें

त्रीन्मासानष्टमासांश्चराघवोन्यवसत्सुखम् ॥ तत्रसंवसतस्तस्यमुनीनामाश्रमेषुवै ॥ २६ ॥ रमतश्चानुकूल्येनययुः संवत्सरादश ॥ परिसृत्यचधर्मज्ञोराघवःसहसीतया ॥ २७ ॥ सुतीक्ष्णस्याश्रमपदंपुनरेवाजगामह ॥ सतमाश्रममागम्यमुनिभिःपरिपूजितः ॥ २८ ॥ तत्रापिन्यवसद्रामःकिंचित्कालमरिंदमः ॥ अथाश्रमस्थोविनयात्कदाचित्तंमहामुनिम् ॥ २९ ॥ उपासीनःसकाकुत्स्थःसुतीक्ष्णमिदमब्रवीत् ॥ अस्मिन्नरण्येभगवन्नगस्त्योमुनिसत्तमः ॥ ३० ॥ वसतीतिमयानित्यंकथाःकथयतांश्रुतम् ॥ नतुजानामितंदेशंवनस्यास्यमहत्तया ॥ ३१ ॥ कुत्राश्रमपदंरम्यंमहर्षेस्तस्यधीमतः ॥ प्रसादार्थंभगवतःसानुनःसहसीतया ॥ ३२ ॥ अगस्त्यमधिगच्छेयमभिवादयितुंमुनिम् ॥ मनोरथोमहानेषहृदिसंपरिवर्तते ॥ ३३ ॥ यदहंतंमुनिवरंशुश्रूषेयमपिस्वयम् ॥ इतिरामस्यसमुनिः श्रुत्वाधर्मात्मनोवचः ॥ ३४ ॥

मुनियोंमें श्रेष्ठ भगवान् अगस्त्यजी ॥ ३० ॥ वसतेहैं, यह बात हमनें बहुत ऋषि लोगोंसे सुनीहै परन्तु यह हमने अबतक नजान पाया कि उन महा तपस्वीजीके रहनेंका कौन वनहै? ॥ ३१ ॥ फिर यहभी नहीं जानते कि उन धीमान् महर्षिजीका उस वनमें रमणीक आश्रम कौनसाहै? उनके प्रसादके लिये लक्ष्मण और जानकीके सहित ॥ ३२ ॥ अगस्त्यजीके पास हम प्रणाम करनेको जाया चाहतेहैं। इस प्रकारका महा मनोरथ हमारे हृदयमें वर्त्त रहाहै ॥ ३३ ॥ वहां पर जाकर हम स्वयं मुनिराजजीकी सेवा करेंगे। इस प्रकार सुतीक्ष्णजीनें

धर्मात्मा रामचंद्रजीकी वाणी सुन ॥ ३४ ॥ दशरथजीके प्यारे दुलारे पुत्र श्रीरामचंद्रजीसे बोले कि हम लक्ष्मण सहित आपसे यह बतलानेको हीथे कि ॥ ३५ ॥ आप लक्ष्मण व जनककुमारी सीताजीके सहित अगस्त्यजीके निकट जाइये, सो बडे भाग्यकी बातहै कि आपनेंही अपनें मुखसे यह वार्त्ता पूछी ॥ ३६ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! महर्षि अगस्त्यजी जिस वनमें रहतेहैं उसको हम बतातेहैं,—हे तात! इस आश्रमसे दक्षिण दिशाकी ओर सोलह कोश मार्ग चले जाइये, तब अगस्त्यजीके भ्राताका आश्रम आपकी दृष्टि आवेगा ॥३७॥ इस आश्रमकी भूमि बडी व समा नहै यहां पिप्पलीके वृक्षोंका वन शोभित होरहाहै और नाना भांतिके पक्षी शब्द करतेहैं। ऐसे परम मनोहर और विविध भांतिके फल पुष्प

सुतीक्ष्णःप्रत्युवाचेदंप्रीतोदशरथात्मजम् ॥ अहमप्येतदेवत्वांवक्तुकामःसलक्ष्मणम् ॥ ३५ ॥ अगस्त्यमभिगच्छेतिसीतयासहराघव ॥ दिष्ट्यात्विदानींमर्थेऽस्मिन्स्वयमेवब्रवीषिमाम् ॥ ३६ ॥ अयमाख्यामितेरामयत्रागस्त्योमहामुनिः ॥ योजनान्याश्रमात्तातयाहिचत्वारिवैततः ॥ दक्षिणेनमहाञ्छ्रीमानगस्त्यभ्रातुराश्रमः ॥ ३७ ॥ स्थलीप्रायवनोद्देशेपिप्पलीवनशोभिते ॥ बहुपुष्पफलेरम्येनानाविहगनादिते ॥ ३८ ॥ पद्मिन्योविविधास्तत्रप्रसन्नसलिलाशयाः ॥ हंसकारंडवाकीर्णाश्चक्रवाकोपशोभिताः ॥ ३९ ॥ तत्रैकांरजनींव्युष्यप्रभातेरामगम्यताम् ॥ दक्षिणांदिशमास्थायवनखंडस्यपार्श्वतः ॥ ४० ॥ तत्रागस्त्याश्रमपदंगत्वायोजनमंतरम् ॥ रमणीयेवनोद्देशेबहुपादपशोभिते ॥ ४१ ॥ रंस्यतेतत्रवैदेहीलक्ष्मणश्चत्वयासह ॥ सहिरम्योवनोद्देशोबहुपादपसंयुतः ॥ ४२ ॥

युक्त वनके देशमें यह आश्रम प्रतिष्ठितहै ॥ ३८ ॥ वहां पर स्वच्छ वारिसे भरे बहुत सारे सरोवरहैं, हंस, कराकुल, चकवा, चकवी और सारस इत्यादि जलमें खेल किया करतेहैं ॥ ३९ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! उस आश्रममें आप एक रात्रि वास करके प्रभात होतेही उस आश्रमके निकटस्थ वनको करवटमें छोड, दक्षिणकी ओरको गमन कीजिये ॥ ४० ॥ बस चार कोश मार्ग चलतेही विविध भांतिके वृक्षोंसे घिरा हुआ रमणीय वनमें हर्षित अगस्त्यजीके रहनेका आश्रम देखोगे ॥४१॥ सीता और लक्ष्मणजी तुम्हारे साथ वहां वास करके परम प्रसन्न होंगे,

क्योंकि वह अनेक प्रकारके वृक्षोंसे युक्त वन अतिरमणीयहै ॥ ४२ ॥ हे महामते । यदि महर्षि अगस्त्यजीके दर्शन करनेका अभिलापहै तो आजही जानेका विचार कीजिये ॥ ४३ ॥ श्रीरामचंद्रजी सुतीक्ष्णमुनिके ऐसे वचन सुन उनको प्रणाम करके भ्राता लक्ष्मण और जानकीजीके सहित अगस्त्यजीके देखनेको प्रस्थान करतेहुए ॥ ४४ ॥ मार्गमें जानेकेसमय बहुत सारे विचित्र वन, बादलोंकी समान ऊंचे २ पहाड, नदी सरोवर सबही श्रीरामचंद्रजी देखते जातेथे ॥ ४५ ॥ इस प्रकार श्रीरामचंद्रजी सुतीक्ष्णजीके बताये हुए मार्गमें यथासुखसे गमन करके परम

यदिबुद्धिःकृताद्रष्टुमगस्त्यंतंमहामुनिम् ॥ अद्यैवगमनेबुद्धिंरोचयस्वमहामते ॥ ४३ ॥ इतिरामोमुनेश्रुत्वासहभ्रात्राभिवाद्यच ॥ प्रतस्थेगस्त्यमुद्दिश्यसानुजःसहसीतया ॥ ४४ ॥ पश्यन्वनानिचित्राणिपर्वतांश्चाभ्रसन्निभान् ॥ सरांसिसरितश्चैवपथिमार्गवशानुगान् ॥ ४५ ॥ सुतीक्ष्णेनोपदिष्टेनगत्वातेनपथासुखम् ॥ इदंपरमसंहृष्टोवाक्यंलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ ४६ ॥ एतदेवाश्रमपदंनूनंतस्यमहात्मनः ॥ अगस्त्यस्यमुनेर्भ्रातुर्दृश्यतेपुण्यकर्मणः ॥ ४७ ॥ यथाहीमेवनस्यास्यज्ञाताःपथिसहस्रशः ॥ सन्नताःफलभारेणपुष्पभारेणचद्रुमाः ॥ ४८ ॥ पिप्पलीनांचपक्कानांवनादस्मादुपागतः ॥ गंधोयंपवनोत्क्षिप्तःसहसाकटुकोदयः ॥ ४९ ॥ तत्रतत्रचदृश्यंतेसंक्षिप्ताःकाष्ठसंचयाः ॥ लूनाश्चपरिदृश्यंतेदर्भावैदूर्यवर्चसः ॥ ५० ॥ एतच्चवनमध्यस्थंकृष्णाभ्रशिखरोपमम् ॥ पावकस्याश्रमस्थस्यधूमाग्रंसंप्रदृश्यते ॥ ५१ ॥

प्रसन्न और हर्षितहो लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ४६ ॥ कि निश्चयही पुण्य कर्म करनेवाले महात्मा अगस्त्यऋषिके भ्राताका यह आश्रम दिखलाई देताहै ॥ ४७ ॥ क्योंकि जिस प्रकारसे सुनाथा वैसेही मार्गमें इस वनमेंको आते २ फल और फूलोंके बोझसे झुकेहुए सैकडों हजारों पेड हमनें देखेहैं ॥ ४८ ॥ यह देखो पकेहुए पिप्पलोके फलोंकी कडवी गन्ध पवन वेगसे वहीहुई चली आतीहै ॥४९॥ स्थान२में इकट्ठे किये हुए काठके बोझ और छिन्न वैदूर्यमणिके वर्णकी समान हरे कुशभी यहां देख पडतेहैं ॥ ५० ॥ आश्रममें स्थित हुई अग्निकी यह वही धूमशिखा,

कृष्णमेघयुक्त पर्वतके शिखरकी समान वनके बीच दृष्टि आतीहै ॥५१॥ और यह ब्राह्मण लोग स्वच्छ तीर्थके जलमें स्नान करके अपने लाये हुये फूलोंके समूहसे इष्ट देवताओंकी पूजा कर रहेहैं ॥५२॥ हे सौम्य! महर्षि सुतीक्ष्णजीके मुखसे जैसा श्रवण कियाथा उसीके अनुसार यहांपर सब कुछ देखकर हमको निश्चयही जान पडताहै कि यही अगस्त्यजीके भ्राताका आश्रमहै॥५३॥जिनमहर्षि अगस्त्यजीनें सब लोकोंका हित करनेकी कामनासे बल सहित साक्षात् मृत्युकी समान दैत्यको मारकर इस दक्षिण दिशाकोभी सबके वसने योग्य कियाहै ॥५४॥ ऐसा प्रसिद्धहै कि पहले एक समय महा असुर ब्राह्मणोंका घात करनेवाले वातापि और इल्वल नामक दो क्रूर कर्म करनेवाले भाई इकट्ठे इस वनमें वास करतेथे ॥ ५५ ॥ उन

विविक्तेषुचतीर्थेषुकृतस्नानाद्विजातयः ॥ पुण्योपहारंकुर्वंतिकुसुमैःस्वयमर्जितैः ॥५२ ॥ ततःसुतीक्ष्णवचनंयथासौम्यमयाश्रुतम् ॥ अगस्त्यस्याश्रमोभ्रातुर्नूनमेषभविष्यति ॥ ५३ ॥ निगृह्यतरसामृत्युंलोकानांहितकाम्यया ॥ यस्यभ्रात्राकृतेयंदिक्शरण्यापुण्यकर्मणा ॥ ५४ ॥ इहैकदाकिलक्रूरोवातापिरपिचेल्वलः ॥ भ्रातरौसहितावास्तांब्राह्मणघ्नौमहासुरौ ॥५५॥ धारयन्ब्राह्मणंरूपमिल्वलःसंस्कृतंवदन् ॥ आमंत्रयतिविप्रान्सश्राद्धमुद्दिश्यनिर्घृणः॥ ५६ ॥ भ्रातरंसंस्कृतंकृत्वाततस्तंमेषरूपिणम् ॥ तान्द्विजान्भोजयामासश्राद्धदृष्टेनकर्मणा ॥ ५७॥ ततोभुक्तवतांतेषांविप्राणामिल्वलोऽब्रवीत् ॥ वातापेनिष्क्रमस्वेतिस्वरेणमहतावदन् ॥ ५८ ॥ ततोभ्रातुर्वचःश्रुत्वावातापिर्मेषवन्नदन् ॥ भित्त्वाभित्त्वाशरीराणिब्राह्मणानांविनिष्पतत् ॥ ५९ ॥ ब्राह्मणानांसहस्राणितैरेवंकामरूपिभिः ॥ विनाशितानिसंहत्यनित्यशःपिशिताशनैः ॥ ६० ॥

दोनोंमेंसे निर्दयी इल्वल जब श्राद्धका समय आवे तौ ब्राह्मणका वेष धर संस्कृत उच्चारण करके ब्राह्मणोंको निमंत्रण करै ॥५६॥ जब सब ब्राह्मण आजावें तब अपने भ्राता मेषरूपी वातापिको श्राद्धके कहे अनुष्ठानके अनुसार उत्तम रूपसे रांधकर सब ब्राह्मणोंको भोजन करादेवे ॥ ५७ ॥ तिसके पीछे जब ब्राह्मण भोजन कर चुकें इल्वल अति ऊंचे स्वरसे (वातापि ! निकल आओ) यह वचन कहता ॥ ५८॥ वातापि भ्राताका शब्द सुनकर मेंढेकी समान शब्द करता हुआ ब्राह्मणोंके शरीर फार २ निकल आता ॥ ५९ ॥ यह इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले मांस

भोजी असुर इस प्रकारसे प्रतिदिन परस्पर मिलकर सहस्र २ ब्राह्मणोंकी हत्या करते ॥ ६० ॥ यह देखकर महर्षि अगस्त्यजीनें देवताओंकी प्रार्थनाके वश होकर श्राद्धमें उस महा असुर वातापिको भक्षण करलिया,ऐसी बात प्रसिद्धहै ॥ ६१ ॥ जब श्राद्ध पूरा होगया इस प्रकारसे कहके ब्राह्मणोंके हाथ धुलानेंके लिये जल देकर " वातापि! बाहर निकल आओ " यह कहकर इल्वल भ्राताको पुकारने लगा ॥६२॥ जब इल्वलनें बार २ अपने भाईको पुकारा तब यह देखकर मुनियोंमें श्रेष्ठ अगस्त्यजीनें हँसकर विप्रघाती इल्वलसे कहा ॥६३॥ हमनें तुम्हारे मेषरूपी भ्राता वातापिको पचा डाला, वह यमराजके गृहको चला गया सो अब उसको बाहर होनेकी सामर्थ्य कहां ? ॥ ६४ ॥ निशाचर इल्वल भाईके मरनेकी वार्त्ता

अगस्त्येनतदादेवैःप्रार्थितेनमहर्षिणा ॥ अनुभूयकिलश्राद्धेभक्षितःसमहासुरः ॥ ६१ ॥ ततःसंपन्नमित्युक्त्वादत्त्वा हस्तेवनेजनम् ॥ भ्रातरंनिष्क्रमस्वेतिइल्वलःसमभाषत ॥ ६२ ॥ सतदाभाषमाणंतुभ्रातरंविप्रघातिनम् ॥ अब्रवी त्प्रहसन्धीमानगस्त्योमुनिसत्तमः ॥ ६३ ॥ कुतोनिष्क्रमितुंशक्तिर्मयाजीर्णस्यरक्षसः ॥ भ्रातुस्तुमेषरूपस्यगतस्य यमसादनम् ॥ ६४ ॥ अथतस्यवचःश्रुत्वाभ्रातुर्निधनसंश्रितम् ॥ प्रधर्षयितुमारेभेमुनिंक्रोधान्निशाचरः ॥ ६५ ॥ सोऽभ्यद्रवद्द्विजेंद्रंतंमुनिनादीप्ततेजसा ॥ चक्षुषाऽनलकल्पेननिर्दग्धोनिधनंगतः ॥ ६६ ॥ तस्यायमाश्रमोभ्रातुस्त टाकवनशोभितः ॥ विप्रानुकंपयायेनकर्मेदंदुष्करंकृतम् ॥ ६७ ॥ एवंकथयमानस्यतस्यसौमित्रिणासह ॥ रामस्यास्तंगतःसूर्यःसंध्याकालोभ्यवर्तत ॥ ६८ ॥

सुन करके क्रोध युक्तहो महर्षि अगस्त्यजीके मारनेको तैयार हुआ॥६५॥जैसेही वह मारनेको दौडा कि महर्षिजीनें प्रज्वलित अग्निकी समान दृष्टिसे एक बार देख दिया, बस देखनें मात्रसेही, वह भस्म होगया और प्राण त्यागन करदिये ॥६६॥ जिन्होंने ब्राह्मणगणोंके ऊपर दयाके वश होकर इस प्रकारका औरके न करने योग्य अनुष्ठान कियाथा उन अगस्त्यजीके महात्मा भाईकाही यह तडागमय शोभित आश्रमहै ॥ ६७ ॥ श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके साथ यह वार्त्ता कहतेही रहेकि इतनेमें भगवान् भास्कर अस्ताचलचूडावलम्बी हुए और संध्या होआई ॥ ६८ ॥

तब श्रीरामचंद्रजीनें भ्राता लक्ष्मणजीके सहित विधिवत् सायंकालकी संध्या समाप्त करके अगस्त्यजीके भाईके आश्रममें प्रवेश किया और अगस्त्यजीके भाईको प्रणाम किया॥ ६९ ॥ और अगस्त्यजीके भाईनेंभी उनका भली भांति शिष्टाचार किया और कंद मूल फल खानेको दिये सो भोजनकर श्रीरामचंद्रजी एक रात्रि वहां पर बसे ॥७०॥ फिर जब रात बीत गयी और सूर्य नारायण निकल आये तब श्रीरामचंद्रजीने विदाकी प्रार्थना करते ऋषिसे निवेदन करते हुए॥७१॥कि हे भगवन् ! हम आपको प्रणाम करतेहैं हमने यहां बडे सुखसे यह रात्रि बिताई अब इस समय विदा दीजिये अब आपके बडे भाई गुरुदेव अगस्त्यजीके दर्शन करनेको हमारी अभिलाषा हुईहै ॥ ७२ ॥ यह कहकर ऋषिकी आज्ञा ले उनके

उपास्यपश्चिमांसंध्यांसहभ्रात्रायथाविधि ॥ प्रविवेशाश्रमपदंतमृषिंचाभ्यवादयत् ॥ ६९ ॥ सम्यक्प्रतिगृहीतस्तु मुनिनातेनराघवः ॥ न्यवसत्तांनिशामेकांप्राश्यमूलफलानिच ॥ ७० ॥ तस्यांरात्र्यांव्यतीतायामुदितेरविमंडले ॥ भ्रातरंतमगस्त्यस्यआमंत्रयतराघवः ॥ ७१ ॥ अभिवादयेत्वांभगवन्सुखमस्म्युषितोनिशाम् ॥ आमंत्रयेत्वांगच्छामिगुरुंतेद्रष्टुमग्रजम् ॥ ७२ ॥ गम्यतामितितेनोक्तोजगामरघुनंदनः ॥ यथोद्दिष्टेनमार्गेणवनंतच्चावलोकयन् ॥ ७३ ॥ नीवारान्पनसान्सालान्वंजुलांस्तिनिशांस्तथा ॥ चिरिबिल्वान्मधूकांश्चबिल्वानथचतिंदुकान् ॥७४॥ पुष्पितान्पुष्पिताग्राभिर्लताभिरुपशोभितान् ॥ ददर्शरामःशतशस्तत्रकांतारपादपान् ॥ ७५ ॥ हस्तिहस्तैर्विमृदितान्वानरैरुपशोभितान् ॥ मत्तैःशकुनिसंघैश्चशतशःप्रतिनादितान् ॥ ७६ ॥ ततोब्रवीत्समीपस्थंरामोराजीवलोचनः ॥ पृष्ठतोनुगतंवीरंलक्ष्मणंलक्ष्मिवर्धनम् ॥ ७७ ॥

आश्रमका वन देखते भालते सुतीक्ष्ण मुनिके बताए हुए आश्रमको जाते हुए ॥ ७३॥ जानेके समय वनके मध्यमें शत २ नीवार, पनस, शाल, वञ्जुल, तिनिश, चिरिबिल्व (नक्तमाल) मधूक, वेल॥७४॥ तिन्दुक इत्यादि वृक्ष परस्पर फूली फली लताओंसे शोभित सैकडों हजारों वृक्ष श्रीरामचंद्रजीनें देखे ॥ ७५ ॥ अनेक प्रकारके पक्षीगण मतवाले होकर उन वृक्षोंपर गुंजार कर रहेथे कुसुमित शिखर लता और वानरगणोंके निकट रहनेंसे वहां अतिशय शोभा होरही,और हाथियोंकी शूंडके आघातसे उन वृक्षोंकी टहनियां टूट फूट रहींथीं ॥ ७६ ॥ यह देखकर राजीवलोचन

श्रीरामचंद्रजी अपने पीछे आते हुए निकटवर्ती लक्ष्मीके बढानेवाले लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ७७ ॥ इन सब वृक्षोंके पत्ते जैसे चिकने दिखाई देतेहैं और मृगगण जैसे शान्तचित्त दृष्टि आतेहैं सो इन सब बातोसे ज्ञात होताहै कि उन विशुद्धचित्त महर्षि अगस्त्यजीका आश्रम अब अधिक दूर नहींहै ॥ ७८ ॥ जिन्होंनें अनेक कर्म द्वारा लोकमें प्रसिद्ध अगस्त्य नाम पायाहै, उनही महर्षिजीका थके हुए लोगोंके श्रमका हरनेवाला यह आश्रम दिखाई देताहै ॥ ७९ ॥ यज्ञका धुवाँ वनमें छाय रहाहै वृक्षोंकी डालियोंपर चीर वस्त्र टँग रहेहैं; वैरको छोडे हुए सब मृग इधर उधर घूमरहेहैं। अनेक प्रकारके पक्षी मधुर २ नाद कर रहेहैं ॥ ८० ॥ जिन्होंने मनुष्योंका हित करनेकी कामनासे बल सहित जम ऐसे

स्निग्धपत्रायथावृक्षायथाक्षांतामृगद्विजाः ॥ आश्रमोनातिदूरस्थोमहर्षेर्भावितात्मनः ॥७८॥ अगस्त्यइतिविख्यातोलोकेस्वेनैवकर्मणा ॥ आश्रमोदृश्यतेतस्यपरिश्रांतश्रमापहः ॥ ७९ ॥ प्राज्यधूमाकुलवनश्चीरमालापरिष्कृतः ॥ प्रशांतमृगयूथश्चनानाशकुनिनादितः ॥ ८० ॥ निगृह्यतरसामृत्युंलोकानांहितकाम्यया ॥ दक्षिणादिक्कृतायेनशरण्यापुण्यकर्मणा ॥ ८१ ॥ तस्येदमाश्रमपदंप्रभावाद्यस्यराक्षसैः ॥ दिगियंदक्षिणात्रासाद्दृश्यतेनोपभुज्यते ॥ ८२ ॥ यदाप्रभृतिचाक्रांतादिगियंपुण्यकर्मणा ॥ तदाप्रभृतिनिर्वैराःप्रशांतारजनीचराः ॥ ८३ ॥ नाम्नाचेयंभगवतोदक्षिणादिक्प्रदक्षिणा ॥ प्रथितात्रिषुलोकेषुदुर्धर्षाक्रूरकर्मभिः ॥ ८४ ॥ मार्गंनिरोद्धुंसततंभास्करस्याचलोत्तमः ॥ संदेशंपालयंस्तस्यविंध्यशैलोनवर्धते ॥ ८५ ॥

असुरोंको जीतकर दक्षिण दिशाको सबके वास योग्य कर दियाहै ॥८१॥ और जिनके प्रभावसे राक्षस लोग त्रासित होकर इस दक्षिण दिशाके ओर केवल देखते और आते तो हैं; परन्तु किसीको पीडा नहीं दे सकते; उन्हीं पुण्य कर्म करनेवाले महर्षि अगस्त्यजीका यह आश्रमहै ॥ ८२ ॥ उन पवित्र वेत्ता अगस्त्यजीनें जबसे इस आश्रममें आकर वास कियाहै तबसे निशाचर लोग वैर छोडकर शान्तचित्तहोगये हैं ॥ ८३ ॥ भगवान् अगस्त्यजीकी यह दक्षिण दिशा आगस्त्यादिक् नामसे त्रिलोकीमें प्रसिद्ध होगईहै और उनके प्रभावसे क्रूर कर्म करनेंवाले निशाचरगणोंके दबजानेंसे यह दिशा मुनिलोगोंके वास करनें योग्य होगईहै ॥ ८४ ॥ पर्वतोंमें श्रेष्ठ विन्ध्याचल उनकी आज्ञाका

प्रति पालनही करता हुआ, सूर्यका मार्ग रोकनेके लिये और निरन्तर नहीं बढता ✻ ॥ ८५॥ लोकोंके बीचमें विख्यात कर्म करनेवाले दीर्घायु महर्षि अगस्त्यजीका विनय युक्त मृगगण सेवित यही आश्रमहै॥८६॥जबकि हम सर्व लोकोंमें पूजित सदा साधु लोकोंका हित चाहनेंवाले साधु चरित्र इन महर्षि अगस्त्यजीके आश्रममें जांयगे, तब वह अवश्यही हमारा मंगल विधान करेंगे ॥ ८७ ॥ हे शुभदर्शन ! हम इसी आश्रममें रहकर महर्षि अगस्त्यजीकी आराधना करेंगे और वनवासका शेष समय यहीं विता देंगे ॥ ८८॥ इस आश्रममें देवता गन्धर्व, तपस्या करके सिद्ध हुए महर्षि

अयंदीर्घायुषस्तस्यलोकेविश्रुतकर्मणः ॥ अगस्त्यस्याश्रमःश्रीमान्विनीतमृगसेवितः ॥ ८६ ॥ एषलोकार्चितःसाधुर्हितेनित्यंरतःसताम् ॥ अस्मानधिगतानेषश्रेयसायोजयिष्यति ॥ ८७ ॥ आराधयिष्याम्यत्राहमगस्त्यंतंमहामुनिम् ॥ शेषंचवनवासस्यसौम्यवत्स्याम्यहंप्रभो ॥ ८८ ॥ अत्रदेवाःसगंधर्वाःसिद्धाश्चपरमर्षयः ॥ अगस्त्यंनियताहाराःसततंपर्युपासते ॥ ८९ ॥ नात्रजीवेन्मृषावादीक्रूरोवायदिवाशठः ॥ नृशंसःपापवृत्तोवामुनिरेषतथाविधः ॥ ९० ॥ अत्रदेवाश्चयक्षाश्चनागाश्चपतगैःसह ॥ वसंतिनियताहाराधर्ममाराधयिष्णवः ॥ ९१ ॥ अत्रसिद्धामहात्मानोविमानैःसूर्यसन्निभैः ॥ त्यक्त्वादेहान्नवैर्देहैःस्वर्याताःपरमर्षयः ॥ ९२ ॥

लोग निराहार रहकर सदाही अगस्त्यजीकी भलीभांति सेवा किया करते हैं ॥ ८९ ॥ महर्षि अगस्त्यजीका प्रभाव ऐसाहै कि इनके आश्रममें झूंठ बोलनेवाला, शठ दुष्ट निर्लज्ज पापपरायण पुरुष किसी भांति जीता हुआ नहीं रह सकता ॥ ९० ॥ इस आश्रममें देव, यक्ष, नाग और पक्षी गण धर्मकी आराधना करनेंके लिये नियताहारी होकर वास करते हैं ॥ ९१ ॥ महात्मा महर्षि लोग इस आश्रममें सिद्धहो देह त्याग नवीन

✻ एक समय अगस्त्यजीका शिष्य विन्ध्याचल पर्वत सूर्यका मार्ग रोकनेके लिये अधिकतासे बढने लगा यह देख देवता बहुत भयभीतहो अगस्त्यजीकी शरण जाकर कहने लगे कि आप अपने शिष्यको इस दुर्घट कार्यके करनेसे निवारण कीजिये तब अगस्त्यजी विन्ध्याचलके निकट गये पर्वतने इन्हैं देखकर प्रणाम किया और चरण पकडे २ पूछा गुरु देव ! आज्ञा कीजिये कैसे आगमन हुआ अगस्त्यजी बोले जबतक हम लौटकर न आवें तवतक तुम योंही पडे रहो विन्ध्यने तथास्तु कहा तबसे अगस्त्यजी दक्षिणदिशामें आकर रहनेलगे और फिर उधर न गये विन्ध्याचल गुरु आज्ञासे आजतक लेट रहाहै ॥

देह धारण कर सूर्य तुल्य देदीप्यमान विमान में सवार हो स्वर्गको गयेहैं ॥ १२ ॥ जो समस्त पवित्र कर्म करनेंवाले प्राणीगण इस आश्रममें रहतेहैं वह देवताओंकी उपासना करके देवताओंके प्रसादसे देवत्व, यक्षत्व, और विविध राज्योंको प्राप्त होतेहैं ॥ १३ ॥ हे सुमित्राकुमार ! हम इस समय उसही आश्रममें आय पहुँचेहैं । तुम पहले प्रवेश करके उन मुनिसे यह निवेदन करदोकि हम सीताके सहित उनके आश्रममें आयेहैं ॥ १४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे एकादशःसर्गः ॥ ११ ॥ ऐसा जब रामचंद्रजीनें कहा, तब उनके छोटे भइया लक्ष्मणजी आश्रममें प्रवेश करके अगस्त्यजीके शिष्यके समीप पहुँचकर कहने

यक्षत्वममरत्वंचराज्यानिविविधानिच ॥ अत्रदेवाःप्रयच्छंतिभूतैराराधिताःशुभैः ॥ १३ ॥ आगताःस्माश्रमपदंसौमित्रेप्रविशाग्रतः ॥ निवेदयेहमांप्राप्तमृषयेसहसीतया ॥ १४ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकिये आरण्यकांडेएकादशःसर्गः ॥ ११ ॥ ॥ ७ ॥ सप्रविश्याश्रमपदंलक्ष्मणोराघवानुजः ॥ अगस्त्यशिष्यमासाद्यवाक्यमेतदुवाचह ॥१॥ राजादशरथोनामज्येष्ठस्तस्यसुतोबली॥रामःप्राप्तोमुनिंद्रष्टुंभार्ययासहसीतया॥२॥ लक्ष्मणोनामतस्याहंभ्रातात्ववरजोहितः ॥ अनुकूलश्चभक्तश्चयदितेश्रोत्रमागतः ॥ ३ ॥ तेवयंवनमत्युग्रंप्रविष्टाःपितृशासनात् ॥ द्रष्टुमिच्छामहेसर्वेभगवंतंनिवेद्यताम् ॥ ४ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वालक्ष्मणस्यतपोधनः ॥ तथेत्युक्त्वाग्निशरणंप्रविवेशनिवेदितुम् ॥ ५ ॥

लगे ॥ १ ॥ कि राजा दशरथजीके बडे पुत्र महाबलवान श्रीरामचन्द्रजी अपनी स्त्री सीताजीके साथ महर्षिजीके चरणोंका दर्शन करनेको आयेहैं ॥ २ ॥ और हमारा नाम लक्ष्मणहै, हम उनके हितकारी परम भक्त और उनके अनुकूल चलनेवाले उनके छोटे भाई हैं सो कदाचित् आपने हमारी वार्त्ता सुनीही होगी ॥३ ॥ हमने पिताजीकी आज्ञासे अतिभयंकर वनमें प्रवेश कियाहै और अब भगवान् अगस्त्यमुनिके दर्शन करनेकी हमको अभिलाष हुईहै, सो आप उनसे यह वृत्तान्त निवेदन कर दीजिये ॥४॥ वह तपोधन लक्ष्मणजीके यह वचन श्रवण कर उनसे आपका आना निवेदन करता हूं यह कह कर इस वार्त्ताको महर्षि अगस्त्यजीसे कहनेके निमित्त अग्निगृहमें प्रवेश करता हुआ ॥ ५ ॥

और वहां पहुँचकर हाथ जोड तपोवलसे प्रदीप्त मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजीसे रामचन्द्रजीके आनेका समाचार कहा ॥ ६ ॥ अगस्त्यजीका शिष्य लक्ष्मणजीके वचनके अनुसार कहने लगा कि अयोध्याजीके राजा दशरथ कुमार राम और लक्ष्मण ॥ ७ ॥ आपके आश्रममें अपनी भार्या सहित आयेहैं, वह शत्रुतापन आपकी सेवा करनें व देखनेके लिये यहां आयेहैं ॥ ८ ॥ सो इसमें जैसा कर्त्तव्यहो वही आज्ञा आप कीजिये, शिष्यके मुखसे रामचन्द्र व लक्ष्मणजीका आगमन सुन ॥ ९ ॥ और महा भाग्यवती सीताजीकीभी आगमनकी वार्ता सुन करके महर्षि अगस्त्यजी बोले, कि बडे भाग्यकी वातहै बहुत दिनोंपर श्रीरामचंद्रजी हमारे दर्शन करनेको यहां आयेहैं ॥ १० ॥ और मैंनेभी मनसे इनके समा

सप्रविश्यमुनिश्रेष्ठंतपसादुष्प्रधर्षणम् ॥ कृतांजलिरुवाचेदंरामागमनमंजसा ॥ ६ ॥ यथोक्तंलक्ष्मणेनैवशिष्योगस्त्यस्यसंमतः ॥ पुत्रौदशरथस्येमौरामोलक्ष्मणएवच ॥ ७ ॥ प्रविष्टावाश्रमपदंसीतयासहभार्यया ॥ द्रष्टुंभवंतमायातौशुश्रूषार्थमरिंदमौ॥८॥यदत्रानंतरंतत्त्वमाज्ञापयितुमर्हसि ॥ ततःशिष्यादुपश्रुत्यप्राप्तंरामंसलक्ष्मणं ॥९॥ वैदेहींचमहाभागामिदंवचनमब्रवीत ॥ दिष्ट्यारामश्चिरस्याद्यद्रष्टुंमांसमुपागतः ॥ १० ॥ मनसाकांक्षितंह्यस्यमयाप्यागमनंप्रति ॥ गम्यतांसत्कृतोरामःसभार्यःसहलक्ष्मणः ॥ ११ ॥ प्रवेश्यतांसमीपंमेकिमयंनप्रवेशितः ॥ एवमुक्तस्तुमुनिनाधर्मज्ञेनमहात्मना॥१२॥अभिवाद्याब्रवीच्छिष्यस्तथेतिनियतांजलिः ॥तदानिष्क्रम्यसंभ्रांतःशिष्योलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ १३॥ कोऽसौरामोमुनिंद्रष्टुमेतुप्रविशतुस्वयम् ॥ ततोगत्वाश्रमपदंशिष्येणसहलक्ष्मणः ॥ १४ ॥

गमकी आकांक्षा कीथी तिस्से आगे जाकर आदर मान सहित श्रीरामचन्द्रजीको भ्राता और स्त्री सहित ॥ ११ ॥ यहां लिवालाओ और अब तक तुम किस कारणसे उनको यहां नहीं लिवालाये, जब महात्मा धर्मज्ञ अगस्त्यजीनें इस प्रकार कहा ॥१२॥तो शिष्य कर जोडकर जो आज्ञा अभी लिवाये लाताहूं कह और प्रणाम करके तभी वहांसे बाहर आ आदर सहित लक्ष्मणजीसे बोला॥१३॥आपमें राम कौनसेहैं ? वह भगवान् अगस्त्यजीके दर्शन करनेके लिये आवें और स्वयं प्रवेश करें अनन्तर लक्ष्मण उस शिष्यके सहित वहां गये जहां श्रीरामचन्द्रजीथे ॥ १४ ॥

और उस शिष्यको जनककुमारी सीता व श्रीरामचन्द्रजीको दिखादिया, उस शिष्यने बडी नरमाईसे अगस्त्यजीके वचन श्रीरामचंद्रजीसे जाय कहे ॥ १५ ॥ यथा नियम भलीभांति आदर सत्कार करके श्रीरामचंद्रजीको लक्ष्मण व सीताजीके सहित आश्रममें प्रवेश कराया ॥ १६ ॥ उस आश्रममें प्रवेश करनेके समय श्रीरामचंद्रजीनें देखाकि परम शान्तस्वभाव हरिण चारों ओर बैठेहैं, ब्रह्मा, शिव ॥१७॥ विष्णु, इन्द्र, सूर्य, चंद्र, भग, कुबेर ॥ १८ ॥ धाता, विधाता, पवन, पाशहस्त महात्मा वरुण ॥१९ ॥ गायत्री, वसु, नागराज वासुकी

दर्शयामासकाकुत्स्थंसीतांचजनकात्मजाम्॥ तंशिष्यःप्रश्रितंवाक्यमगस्त्यवचनंब्रुवन् ॥ १५॥ प्रावेशयद्यथान्यायंसत्कारार्हंसुसत्कृतम् ॥ प्रविवेशततोरामःसीतयासहलक्ष्मणः ॥ १६ ॥ प्रशांतहरिणाकीर्णमाश्रमंह्यवलोकयन् ॥ सतत्रब्रह्मणःस्थानमग्नेःस्थानंतथैवच॥१७॥विष्णोःस्थानंमहेंद्रस्यस्थानंचैवविवस्वतः॥ सोमस्थानंभगस्थानंस्थानंकौबेरमेवच ॥ १८॥ धातुर्विधातुःस्थानंचवायोःस्थानंतथैवच ॥ स्थानंचपाशहस्तस्यवरुणस्यमहात्मनः ॥ १९ ॥ स्थानंतथैवगायत्र्यावसूनांस्थानमेवच ॥ स्थानंचनागराजस्यगरुडस्थानमेवच ॥ २०॥ कार्तिकेयस्यचस्थानंधर्मस्थानंचपश्यति ॥ ततःशिष्यैःपरिवृतोमुनिरप्यभिनिष्पतत् ॥ २१॥ तंददर्शाग्रतोरामोमुनीनांदीप्ततेजसाम् ॥ अब्रवीद्वचनंवीरोलक्ष्मणंलक्ष्मिवर्धनम् ॥ २२ ॥ बहिर्लक्ष्मणनिष्क्रामत्यगस्त्योभगवानृषिः ॥ औदार्येणावगच्छामिनिधानंतपसामिदम् ॥ २३ ॥ एवमुक्त्वामहाबाहुरगस्त्यंसूर्यवर्चसम् ॥ जग्राहापततस्तस्यपादौचरघुनंदनः ॥ २४॥

आदि सर्प, गरुड ॥ २० ॥ कार्त्तिकेय और धर्म, इन सबकी पूजाके निमित्त अलग २ स्थान बनें हुए एक २ करके श्रीरामचंद्रजीनें देखे मुनिअगस्त्यजीभी अपने शिष्योंके संग होमशालामेंसे निकले ॥ २१ ॥ वीर्यवान् श्रीरामचंद्रजी सब तपस्वियोंमें बडे तेजवान् अगस्त्यजीको सामनेसे आते देखकर लक्षण युक्त लक्ष्मणजीसे बोले ॥ २२ ॥ हे लक्ष्मण ! भगवान् अगस्त्यजी ऋषि कुटीसे बाहर निकलतेहैं इस समय हम उदारता युक्त होकर उन तप प्रकाशित ऋषिवरके निकट गमन करेंगे ॥ २३ ॥ ऐसा कहकर महाबाहु श्रीरामचंद्रजी कुटीसे बाहर आये

हुए सूर्यकी समान तेजवान महर्षि अगस्त्यजीके चरण छूकर प्रणाम करते हुए ॥ २४ ॥ धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मणजीके सहित ऋषिजीके चरणोंकी वंदना करके करजोड उनके आगे खडे रहे ॥ २५ ॥ यह देखकर महर्षि अगस्त्यजीनें आदर सहित रामचन्द्र जीको ग्रहण किया चरण पखारनेके लिये जल मंगवा दिया, आसन देकर बैठनेकी अनुमतिदी फिर कुशल प्रश्न किया ॥ २६ ॥ तिसके पीछे अगस्त्यजीनें अग्निमें आहुति देकर उन आये हुए पाहुनोंको अर्घ्य दिया, और वानप्रस्थ धर्मके अनुसार आहार करनेकी सामग्रीदी ॥ २७॥ अनन्तर धर्मके जाननेवाले महर्षि अगस्त्यजी प्रथम स्वयं बैठ पीछे कर जोडकर बैठे हुए धर्मपंडित श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ २८ ॥ हे रामच

अभिवाद्यतुधर्मात्मातस्थौरामःकृतांजलिः ॥ सीतयासहवैदेह्यातदारामःसलक्ष्मणः ॥ २५ ॥ प्रतिगृह्यचकाकुत्स्थमर्चयित्वासनोदकैः ॥ कुशलप्रश्नमुक्त्वाचआस्यतामितिसोब्रवीत् ॥ अग्निंहुत्वाप्रदायार्घ्यमतिथीन्प्रतिपूज्यच ॥ वानप्रस्थेनधर्मेणसतेषांभोजनंददौ ॥ २७ ॥ प्रथमंचोपविश्याथधर्मज्ञोमुनिपुंगवः ॥ उवाचराममासीनंप्रांजलिंधर्मकोविदम् ॥ २८ ॥ अन्यथाखलुकाकुत्स्थतपस्वीसमुदाचरन् ॥ दुःसाक्षीवपरेलोकेस्वानिमांसानिभक्षयेत् ॥ २९ ॥ राजासर्वस्यलोकस्यधर्मचारीमहारथः ॥ पूजनीयश्चमान्यश्चभवान्प्राप्तःप्रियातिथिः ॥ ३० ॥ एवमुक्त्वाफलैर्मूलैः पुष्पैश्चान्यैश्चराघवम् ॥ पूजयित्वायथाकामंततोगस्त्यस्तमब्रवीत् ॥ ३१ ॥ इदंदिव्यंमहच्चापंहेमवज्रविभूषितम् ॥ वैष्णवंपुरुषव्याघ्रनिर्मितंविश्वकर्मणा ॥ ३२ ॥

न्द्रजी ! तपस्वी यदि पाहुनेका सत्कार न करके उसके प्रति और कोई अन्यथा आचरण करे तो वह झूठी गवाही देनेवाले मनुष्यकी समान परलोकमें अपना मांस भक्षण करताहे ॥ २९ ॥ फिर आप तो महारथी और सब लोकोंके धर्मचारी राजाहैं तिस पर आपने प्रिय अतिथि की भांति हमारे आश्रममें आगमन कियाहे । अतएव आपकी पूजा और सन्मान करना हमारा सब भांतिसे कर्त्तव्यहे ॥ ३० ॥ यह कहकर महर्षि जी फल, मूल, पुष्प, व औरभी उत्तम २ वनके पदार्थोंसे यथाभिलषित भांतिसे रामचंद्रजीकी पूजा करके फिर कहनें लगे ॥ ३१ ॥ हे पुरुष श्रेष्ठ ! हमको यह विश्वकर्माका बनाया हुआ, स्वर्ण और वज्र मणिसे विभूषित दिव्य और बडा वैष्णव चाप ॥ ३२ ॥

और सूर्यकी समान प्रभासम्पन्न उत्तम बाण यह दोनों चीजें हमें ब्रह्माजीनें दीहैं और इन्द्रजीने दो तरकस जिनके बाण कभी नहीं निबडते हमको दियेहैं ॥ ३३ ॥ तीखे बाणोंसे परिपूर्ण और अग्निकी समान चमकते हुए यह उत्तम दो तरकस और यह स्वर्णमय कोश बद्ध खड्ग इन्द्रजीने हमको दियाहै ॥ ३४ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! पहले भगवान् विष्णुजीनें इस वैष्णव धनुकी सहायतासे युद्धमें महाबली छली असुरोंको संहार करके देवताओंको दीप्तिमती लक्ष्मी प्रदानकीथी ॥ ३५ ॥ हे मानद! वज्रधर इन्द्रजी जिस प्रकार वज्र धारण करतेहैं, तुमभी तैसेही पवित्र यश प्राप्त करनेंके अर्थ यह शर चाप खड्ग और दो तरकस ग्रहण करो ॥ ३६ ॥ महा तेजवान् भगवान् महर्षि अगस्त्यजी ऐसा कह कर महापण्डित

अमोघःसूर्यसंकाशोब्रह्मदत्तःशरोत्तमः ॥ दत्तोममर्महेंद्रेणतूणीचाक्षय्यसायकौ ॥ ३३ ॥ संपूर्णौनिशितैर्बाणैर्ज्वलद्भिरिवपावकैः॥महारजतकोशोयमसिर्हेमविभूषितः॥३४॥अनेनधनुषारामहत्वासंख्येमहासुरान्॥आजहारश्रियंदीप्तांपुराविष्णुर्दिवौकसाम्॥३५॥ तद्धनुस्तौचतूणीचशरंखड्गंचमानद॥ जयायप्रतिगृह्णीष्ववज्रंवज्रधरोयथा॥३६॥ एवमुक्त्वामहातेजाःसमस्तंतद्वरायुधम् ॥ दत्वारामायभगवानगस्त्यःपुनरब्रवीत् ॥ ३७॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआरण्यकांडेद्वादशःसर्गः ॥ १२ ॥ रामप्रीतोस्मिभद्रंतेपरितुष्टोस्मिलक्ष्मण॥ अभिवादयितुंयन्मांप्राप्तौस्थःसहसीतया ॥ १ ॥ अध्वश्रमेणवांखेदोबाधतेप्रचुरश्रमः ॥ व्यक्तमुत्कंठतेवापिमैथिलीजनकात्मजा ॥ २ ॥ एषाचसुकुमारीचखेदैश्चनविमानिता ॥ प्राज्यदोषंवनंप्राप्ताभर्तृस्नेहप्रचोदिता ॥ ३ ॥

प्रवीण रामचन्द्रजीको वह समस्त अतिश्रेष्ठ वैष्णव आयुध देकर फिर बोले ॥ ३७ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आ० द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥ हे श्रीरामचन्द्र! तुम जो सीता सहित हमको प्रणाम करनें आये हो इससे हम तुम्हारे और लक्ष्मणके प्रति बहुतही प्रसन्न हुए हैं; तुम्हारा मंगल होवे ॥ १ ॥ यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि मार्ग चलनेकी थकावट से तुमको महा कष्ट हुआ है। जनककुमारी सुकुमारी जानकीजीभी विश्राम करना चाहतीहैं ॥ २ ॥ यह बडी ही सुकुमार हैं; इन्होंने भला कभी काहेकोही कष्ट सहा होगा परन्तु पतिसे स्नेहके कारण इस

बडे कष्ट देनेवाले वनमें यह आई हैं ॥ ३ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! जानकीजीका मन जिसमें प्रसन्न रहे वही तुमको करना चाहिए, क्योंकि तुम्हारे साथ २ वनको आकर इन्होंनें बडा दुष्कर काम किया है ॥ ४ ॥ हे रघुनन्दन ! जबसे स्वयंभूकी उत्पत्ति हुई है तबसे स्त्रिओंका स्वभावही ऐसा है कि धनवान पुरुषको ग्रहण करती और दरिद्रको त्याग करती हैं ॥ ५ ॥ स्त्रियें बिजलीकी चपलता, अस्त्रोंकी तीक्ष्णता, गरुड और पवनकी शीघ्रताका अनुकरण करती हैं ॥ ६ ॥ परन्तु इन तुम्हारी भार्या जानकीजीमें इन सबमें से कोई दोष भी नहीं है । यह देवताओंके बीचमें अरुन्धती की समान प्रशंसनीय और कीर्तिवान हैं ॥ ७ ॥ हे शत्रुदमनकारी ! तुम सुमित्राकुमार और सीताजीके साथ जिस देशमें

यथैषारमतेरामइहसीतातथाकुरु ॥ दुष्करंकृतवत्येषावनेत्वामभिगच्छति ॥ ४ ॥ एषाहिप्रकृतिःस्त्रीणामासृष्टे रघुनंदन ॥ समस्थमनुरज्यंतेविषमस्थंत्यजंतिच ॥ ५ ॥ शतह्रदानांलोलत्वंशस्त्राणांतीक्ष्णतांतथा ॥ गरुडानिलयोःशैघ्र्यमनुगच्छंतियोषितः ॥ ६ ॥ इयंतुभवतोभार्यादोषैरेतैर्विवर्जिता ॥ श्लाघ्याचव्यपदेश्याचयथादेवेष्वरुंधती ॥ ७॥ अलंकृतोयंदेशश्चयत्रसौमित्रिणासह ॥ वैदेह्याचानयारामवत्स्यासित्वमरिंदम ॥ ८ ॥ एवमुक्तस्तुमुनिनाराघवःसंयतांजलिः ॥ उवाचप्रश्रितंवाक्यमृषिंदीप्तमिवानलम् ॥ ९ ॥ धन्योऽस्म्यनुगृहीऽतोस्मियस्यमेमुनिपुंगवः ॥ गुणैःसभ्रातृभार्यस्यगुरुर्नःपरितुष्यति ॥ १० ॥ किंतुव्यादिशमेदेशंसोदकंबहुकाननम् ॥ यत्राश्रमपदंकृत्वावसेयंनिरतःसुखम् ॥ ११ ॥ ततोऽब्रवीन्मुनिश्रेष्ठःश्रुत्वारामस्यभाषितम् ॥ ध्यात्वामुहूर्तंधर्मात्माततावाचवचःशुभम् ॥ १२ ॥

वास करोगे वही देश शोभायमान हो जायगा ॥ ८ ॥ जब ऋषिनें इस प्रकार कहा तब श्रीरामचन्द्रजीनें हाथ जोड विनीत वचनसे अग्नि समान तेजवान उन महर्षि अगस्त्यजीसे कहा ॥ ९ ॥ हे मुनिवर ! हमारे, हमारी भार्याके, और हमारे भ्राताके गुणोंसे जो आप प्रसन्न हुएहैं इससे मैं धन्य और अनुग्रह भाजन हुआ ॥ १० ॥ तिस्से आज्ञा कीजिये कि ऐसा कोई स्थानहै जहां वनभी बडा हो और जलभी सरलतासे प्राप्त हो जाया करे और यहां हम कुटी बनाकर स्वच्छन्दतासे वास कर सकें ॥ ११ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके वचन श्रवण करके धर्मात्मा

मुनिवर मुहूर्त भरतक चिंता करके शुभ वचन बोले ॥ १२ ॥ वत्स! इस स्थानसे आठ कोशके अन्तर पर पंचवटी नामक विख्यात एक अति सुन्दर स्थान है इस स्थानमें फल,मूल और जल बहुतायतसे मिलताहै और अनेक प्रकारके पशुभी वहां वास करते हैं॥१३॥तुम लक्ष्मणजीके साथ वहां जा और आश्रम बनाकर पिता दशरथजीका सत्य पालन करते हुए सुखसे वास करो॥१४॥हे पापरहित! हम स्नेहके वश होनेके कारण तपके प्रभावसे तुम्हारा और दशरथजीका समस्त वृत्तान्त जानते हैं कारण, दशरथजीका हमसे बडा स्नेहथा नहीं तो ऐसे वृत्तान्त जाननेकी क्या आवश्यकता थी॥ १५॥ और हम तपके प्रभावसे यहभी जानते हैं कि यह प्रतिज्ञा करके कि हमारे निकट आप बसैंगे, और फिर अब वासस्थानकी

इतोद्वियोजनेतातबहुमूलफलोदकः ॥ देशोबहुमृगःश्रीमान्पंचवट्याभिविश्रुतः॥१३॥तत्रगत्वाश्रमपदंकृत्वासौमित्रिणासह ॥ रमस्वत्वंपितुर्वाक्यंयथोक्तमनुपालयन् ॥ १४ ॥विदितोह्येषवृत्तांतोममसर्वस्तवानघ ॥ तपसश्चप्रभावेनस्नेहाद्दशरथस्यच॥ १५ ॥ हृदयस्थंचतेच्छंदोविज्ञातंतपसामया ॥ इहवासंप्रतिज्ञायमयासहतपोवने ॥ १६ ॥ अतश्चत्वामहंब्रूमिगच्छपंचवटीमिति ॥ सहिरम्योवनोद्देशोमैथिलीतत्ररंस्यते ॥ १७ ॥ सदेशःश्लाघनीयश्चनातिदूरेचराघव ॥ गोदावर्याःसमीपेचमैथिलीतत्ररंस्यते ॥ १८॥ प्राज्यमूलफलैश्चैवनानाद्विजगणैर्युतः ॥ विविक्तश्चमहाबाहोपुण्योरम्यस्तथैवच ॥ १९ ॥ भवानपिसदाचारःशक्तश्चपरिरक्षणे ॥ अपिचात्रवसन्नामतापसान्पालयिष्यसि ॥ २० ॥

वार्त्ता क्यों पूछते हैं? अर्थात् हमारे निकट राक्षस नहीं आसक्ते आप उनका मारना चाहते हैं इस कारण आप यहां रहना नहीं चाहते ॥१६॥ इसही कारण हम कहते हैं कि तुम पंचवटीको चले जाओ वह बनैला देश अति रमणीय है वहां सीताके मनकोभी सन्तोष होगा ॥ १७॥ पंचवटी बडाई करनेंके योग्य है और बहुत दूरभी नहीं है, इस गोदावरीके निकटही है मिथिलेशदुलारी वहां पर प्रसन्न होकर रहैंगी ॥ १८॥ हे महाबाहो! वह बहुत फल मूल करके युक्त अनेक भांतिके विहंगमोंसे परिपूर्ण पुण्यमय और निर्जन देश अति रमणीय है ॥ १९ ॥ तुमभी सदाचारी और रक्षाकार्य करनेमें समर्थ हो उस स्थानमें वास करके तपस्वीलोगोंका पालन भली प्रकार कर सकोगे ॥ २० ॥

देवीर! यह जो महुयेके वृक्षोंका महावन दिखलाई देताहै उसके उत्तर ओर होकर तुमको जाना होगा, फिर उसके पीछे तुमको न्यग्रोध आश्रम प्राप्त होगा ॥२१॥ तिसके पीछे विशेष स्थानपर पहुँचनेसे तुमको एकपर्वत दिखाई देगा, उस पर्वतके कुछ दूर ही विख्यात पंचवटीका वन है वह सदाही फूला फला रहता है॥२२॥ श्रीअगस्त्यजीके ऐसे वचन श्रवण करके श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके सहित ऋषिका भली भांति आदर सत्कार करके उनसे विदा मांगते हुए ॥ २३ ॥ अगस्त्यजीकी आज्ञा पाकर दोनोंजन उनके चरणोंकी वन्दना करके सीताजीके साथ पंच

एतदालक्ष्यतेवीरमधूकानांमहावनम् ॥ उत्तरेणास्यगंतव्यंन्यग्रोधमपिगच्छता ॥ २१ ॥ ततःस्थलमुपारुह्यपर्वतस्याविदूरतः ॥ ख्यातःपंचवटीत्येवनित्यपुष्पितकाननः ॥ २२ ॥ अगस्त्येनैवमुक्तस्तुरामःसौमित्रिणासह ॥ सत्कृत्यामंत्रयामासतमृषिंसत्यवादिनम् ॥ २३ ॥ तौतुतेनाभ्यनुज्ञातौकृतपादाभिवंदनौ ॥ तमाश्रमंपंचवटींजग्मतुःसहसीतया ॥ २४ ॥ गृहीतचापौतुनराधिपात्मजौविषक्ततूणीसमरेष्वकातरौ ॥ यथोपदिष्टेनपथामहर्षिणाप्रजग्मतुःपंचवटींसमाहितौ ॥ २५ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेत्रयोदशःसर्गः ॥ १३ ॥ ॥ छ ॥ अथपंचवटींगच्छन्नंतरारघुनंदनः ॥ आससादमहाकायंगृध्रंभीमपराक्रमम् ॥ १ ॥ तंदृष्ट्वातौमहाभागौवनस्थंरामलक्ष्मणौ ॥ मेनातेराक्षसंपक्षिंब्रुवाणौकोभवानिति ॥ २ ॥ ततोमधुरयावाचासौम्ययाप्रीणयन्निव ॥ उवाचवत्समांविद्धिवयस्यंपितुरात्मनः ॥३॥

वटी आश्रमके लिये चले ॥ २४ ॥ समरमें न डरनेवाले दोनों नृपकुमार धनुष धारण कर और तरकस बांधकर महर्षि अगस्त्यजीनें जो मार्ग बता दियाथा अति सावधानसे उस मार्गके द्वारा पंचवटीकी यात्रा करते हुए ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आरण्यकांडे त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥ अनन्तर श्रीरामचन्द्रजीनें पंचवटीके मार्गमें जाते २ एक भयानक पराक्रमवान महाशरीरवाले गीधको देखा ॥ १ ॥ महाभाग श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणजी वनमें इस पक्षीको देख राक्षस समझ कर उससे पूछनें लगे, कि तुम कौन हो? ॥ २ ॥ गीध मधुर और प्यारे वचनोंसे

उनको प्रसन्न करके बोला, कि— वत्स! तुम हमको अपने पिताका मित्र समझो ॥ ३ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजीनें उसको पिताका मित्र जानकर पूजा करते हुए व्यग्र भावसे उसका कुल और नाम पूछा ॥ ४ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके वचन सुनकर गीध सब जीवोंकी उत्पत्तिका वर्णनाका प्रसंग वर्णन करके अपना कुल और नाम कहनें लगा ॥ ५ ॥ हे महाबाहो हे राघव! पूर्वकालमें जो कि प्रजापति हुएथे, हम क्रमशः उन सबका नाम बतलाते हैं आप श्रवण कीजिये ॥ ६ ॥ कर्दम उन सबमें बडेथे उनके बाद विकृत, शेष, संश्रय, वीर्यवान् बहुपुत्र ॥ ७ ॥ स्थाणु, मरी

सतंपितृसखंमत्वापूजयामासराघवः ॥ सतस्यकुलमव्यग्रमथपप्रच्छनामच ॥ ४ ॥ रामस्यवचनंश्रुत्वाकुलमात्मा नमेवच ॥ आचचक्षेद्विजस्तस्मैसर्वभूतसमुद्भवम् ॥ ५ ॥ पूर्वकालेमहाबाहोयेप्रजापतयोभवन् ॥ तान्मेनिगदतः सर्वानादितःशृणुराघव ॥ ६ ॥ कर्दमःप्रथमस्तेषांविकृतस्तदनंतरम् ॥ शेषश्चसंश्रयश्चैवबहुपुत्रश्चवीर्यवान् ॥ ७ ॥ स्थाणुर्मरीचिरत्रिश्चक्रतुश्चैवमहाबल ॥ पुलस्त्यश्चांगिराश्चैवप्रचेताःपुलहस्तथा ॥ ८ ॥ दक्षोविवस्वानपरोऽरिष्टने मिश्चराघवः ॥ कश्यपश्चमहातेजास्तेषामासीच्चपश्चिमः ॥ ९ ॥ प्रजापतेस्तुदक्षस्यबभूवुरितिविश्रुताः ॥ षष्टिर्दुहि तरोरामयशस्विन्योमहायशः ॥ १० ॥ कश्यपःप्रतिजग्राहतासामष्टौसुमध्यमाः ॥ अदितिंचदितिंचैवदनूमापिचका लकाम् ॥ ११ ॥ ताम्रांक्रोधवशांचैवमनुंचाप्यनलामपि ॥ तास्तुकन्यास्ततःप्रीतःकश्यपःपुनरब्रवीत् ॥ १२ ॥ पुत्रां स्त्रैलोक्यभर्तॄन्वैजनयिष्यथमत्समान् ॥ अदितिस्तन्मनारामदितिश्चदनुरेवच ॥ १३ ॥

चि, अत्रि महाबलवान क्रतु, पुलस्त्य, अंगिरा, प्रचेता, पुलह ॥ ८ ॥ दक्ष, विवस्वान, अरिष्टनेमि यह क्रमसे उत्पन्न हुए महात्मा कश्यप उन सबमें छोटेथे ॥ ९ ॥ हे महायशवान् श्रीरामचन्द्रजी! उनमें दक्ष प्रजापतिके यशस्विनी लोकमें विख्यात साठ ६० कन्यायें उत्पन्न हुई ॥ १० ॥ उनमें अति सुन्दरी आठ कन्याओंका कश्यपजी विवाह करते हुए। उनके नाम अदिति, दिति, दनु, कालका, ॥ ११ ॥ ताम्रा, क्रोधवशा, मनु, व अनला, विवाह होजानें पर प्रसन्नहो कश्यपजी इन दक्षकन्याओंसे बोले ॥ १२ ॥ कि तुम हमारी समान त्रिलोकीका भरण

पोषण करनेंवाले पुत्र उत्पन्न करो यह सुन दिति अदिति दनु ॥१३॥ और कालका यह तो वैसे पुत्र प्राप्त करनेंके लिये अभिलाषिता हुई और शेष चारोंने पतिके कहनेंमें ध्यान न लगाया अदितिके तेंतीस ३३ देवता हुए ॥ १४ ॥ अदितिके गर्भमें १२ आदित्य ८ वसु ११ रुद्र २ अश्विनी कुमार उपजे। और दितिने भी बडे यशवान् दैत्य उत्पन्न किये ॥ १५ ॥ पहले वन और समुद्र सहित यह पृथ्वी उनहीकी थी। हे अरिन्दम! दनुने अश्वग्रीव नामक एक पुत्र उत्पन्न किया ॥ १६ ॥ और कालकानें नरक और कालक नामक दो पुत्र उत्पन्न किये क्रौञ्ची भासी

कालकाचमहाबाहोशेषास्त्वमनसोभवन् ॥ अदित्यांजज्ञिरेदेवास्त्रयस्त्रिंशदरिंदम ॥ १४ ॥ आदित्यावसवोरुद्राअश्विनौचपरंतप ॥ दितिस्त्वजनयत्पुत्रान्दैत्यांस्तातयशस्विनः ॥ १५ ॥ तेषामियंवसुमतीपुरासीत्सवनार्णवा ॥ दनुस्त्वजनयत्पुत्रमश्वग्रीवमरिंदम ॥ १६ ॥ नरकंकालकंचैवकालकापिव्यजायत ॥ क्रौंचींभासींतथाश्येनींधृतराष्ट्रींतथाशुकीम् ॥ १७ ॥ ताम्रातुसुषुवेकन्याःपंचैतालोकविश्रुताः ॥ उलूकाञ्जनयत्क्रौंचीभासीभासान्व्यजायत ॥ १८ ॥ श्येनीश्येनांश्चगृध्रांश्चव्यजायतसुतेजसः ॥ धृतराष्ट्रीतुहंसांश्चकलहंसांश्चसर्वशः ॥ १९ ॥ चक्रवाकांश्चभद्रंतेविजज्ञेसापिभामिनी ॥ शुकीनतांविजज्ञेतुनतायांविनतासुता ॥ २० ॥ दशक्रोधवशारामविजज्ञेप्यात्मसंभवाः ॥ मृगींचमृगमंदांचहरींभद्रमदामपि ॥ २१ ॥ मातंगीमथशार्दूलींश्वेतांचसुरभींतथा ॥ सर्वलक्षणसंपन्नांसुरसांकद्रुकामपि ॥ २२ ॥

श्येनी, धृतराष्ट्री और शुकी ॥ १७ ॥ ताम्रासे यह लोकविख्यात पांच कन्या जन्मी उसमें क्रौञ्चीसे उलूक पैदा हुए भासीसे भास जन्मे ॥ १८ ॥ श्येनीने अति तेजस्वी श्येन और गीधोंको प्रसव किया और धृतराष्ट्री से सब हंस ॥ १९ ॥ और चकवा चकवियोंको भी उसीनें उत्पन्न किया शुकी के नता कन्या हुई और नताके विनता उत्पन्न हुई ॥ २० ॥ हे राम! क्रोधवशाके दश कन्या उत्पन्न हुई उनके नाम यह हैं यथा—मृगी मृगमंदा, हरी, भद्रमदा ॥ २१ ॥ मातंगी, शार्दूली, श्वेता, सुरभी, सुरसा, कद्रुका यह सब कन्यायें शुभ लक्षण सम्पन्न थीं ॥ २२ ॥

हेनरश्रेष्ठ! समस्त मृग,मृगीसे उत्पन्न हुए और काले व सफेद रीछ सृमर चमरी आदि मृग मन्दाके जन्मे॥२३॥ भद्रमदानें इरावती नामक कन्या प्रसव की उसका पुत्र लोकपाल महा गज ऐरावत हुआ॥२४॥ सिंह वानर और गोपुच्छ गण हरीके उत्पन्न हुए शार्दूलीने व्याघ्रोंको प्रसव किया॥२५॥ हे पुरुषवर श्रीरामचंद्रजी ! सब हाथी मातङ्गीके पुत्र हुए । श्वेताने दिग्गजोंको उत्पन्न किया ॥२६॥ सुरभीके दो कन्या हुईं, यशस्विनी रोहिणी और गन्धर्व्वी ॥ २७ ॥ रोहिणीने गौ बैल आदिकों को और गन्धर्वीनें अश्वोंको प्रसव किया हे राम ! सुरसाने नागोंको प्रसव किया, और

अपत्यंतुमृगाःसर्वेम्रग्यानरवरोत्तम ॥ ऋक्षाश्चसृगमंदायाःसृमराश्चमरास्तथा ॥ २३ ॥ ततास्त्विरावतींनामजज्ञेभद्रमदासुताम् ॥ तस्यास्त्वैरावतःपुत्रोलोकनाथोमहागजः ॥ २४ ॥ हर्याश्चहरयोपत्यंवानराश्चतपस्विनः ॥ गोलांगूलाश्चशार्दूलीव्याघ्रांश्चाजनयत्सुतान् ॥२५॥ मातंग्यास्त्वथमातंगाअपत्यंमनुजर्षभ ॥ दिशागजंतुकाकुत्स्थश्वेताव्यजनयत्सुतान् ॥ २६ ॥ ततोदुहितरौरामसुरभिर्देव्यजायत ॥ रोहिणींनामभद्रंतेगंधर्वींचयशस्विनीम् ॥ २७ ॥ रोहिण्यजनयद्गावोगंधर्वीवाजिनःसुतान् ॥ सुरसाजनयन्नागान्रामकद्रूश्चपन्नगान् ॥ २८ ॥ मनुर्मनुष्याञ्जनयत्कश्यपस्यमहात्मनः ॥ ब्राह्मणान्क्षत्रियान्वैश्याञ्छूद्रांश्चमनुजर्षभ ॥ २९ ॥ मुखतोब्राह्मणाजाताउरसःक्षत्रियास्तथा ॥ ऊरुभ्यांजज्ञिरेवैश्याःपद्भ्यांशूद्राइतिश्रुतिः ॥ ३० ॥ सर्वान्पुण्यफलान्वृक्षाननलापिव्यजायत ॥ विनताचशुकीपौत्रीकद्रूश्चसुरसास्वसा ॥ ३१ ॥ कद्रूर्नागसहस्रंतुविजज्ञेधरणीधरान् ॥ द्वौपुत्रौविनतायास्तुगरुडोऽरुणएवच ॥ ३२ ॥ तस्माज्जातोहमरुणात्संपातिश्चममाग्रजः ॥ जटायुरितिमांविद्धिश्येनीपुत्रमरिंदम ॥ ३३ ॥

कद्रुके सर्प उत्पन्न हुए ॥ २८ ॥ महात्मा कश्यपजीकी दूसरी स्त्री मनुसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र यह सब मनुष्य जन्मे ॥ २९ ॥ सो ऐसी कहावत चली आतीहै कि मुखसे ब्राह्मण, वक्षःस्थलसे क्षत्रिय जंघाओंसे वैश्य, और चरणोंसे शूद्रोंकी उत्पत्ति हुई ॥ ३० ॥ अनलानें परम श्रेष्ठ फल युक्त वृक्ष जनें, विनता शुकीकी पौत्री, और कद्रु सुरसाकी कन्या हुई ॥ ३१ ॥ उनमें कद्रुनें सहस्रों नाग पुत्र उत्पन्न किये यही सब पृथ्वीको धारण किये हुएहैं और विनताके दो पुत्र गरुड व अरुण हुए ॥ ३२ ॥ हम तिनही गरुडजीसे उत्पन्न हुएहैं, सम्पाति हमारे बडे

भाईहैं। हे अरिनाशक! हमारा नाम जटायु व हमारी माताका नाम श्येनी जानिये ॥ ३३ ॥ हे तात! यदि इच्छा होवे तो हम तुम्हारी वनमें वसने के समय सहायता करैं और जब तुम लक्ष्मणजीके सहित कहीं वनमें कंद, मूल, फल लेने जाया करोगे तो हम सीताजीकी रक्षा किया करेंगे ॥ ३४ ॥ रामचंद्रजी प्रफुल्लतासे जटायुको भेंट और उसकी पूजाकर उसको प्रणाम करते हुए, और पिताजीके साथ जो मित्रता उसकी थी सो उस जटायुके मुखसे वारंवार श्रवण करने लगे ॥ ३५ ॥ फिर वह बलवान जटायुके हाथमें सीताजीकी रक्षाका भार सौंपकर उसको साथले लक्ष्मणजीके सहित शत्रुओंको जलाते वनकी रक्षा करनेंके लिये सुप्रसिद्ध पंचवटीमें गमन करते हुए ॥ ३६ ॥ इत्यार्षे

सोहंवाससहायस्तेभविष्यामियदीच्छसि ॥ सीतांचतातरक्षिष्येत्वयियातेसलक्ष्मणे ॥ ३४ ॥ जटायुषंतुप्रतिपू
ज्यराघवोमुदापरिष्वज्यचसन्नतोऽभवत् ॥ पितुर्हिशुश्रावसखित्वमात्मवान्जटायुषासंकथितंपुनःपुनः ॥ ३५ ॥
सतत्रसीतांपरिदायमैथिलींसहैवतेनातिबलेनपक्षिणा ॥ जगामतांपंचवटींसलक्ष्मणोरिपून्दिधक्षन्सवनानिपाल
यन् ॥ ३६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेचतुर्दशःसर्गः ॥ १४ ॥ ततःपंचवटीं
गत्वानानाव्यालमृगायुताम् ॥ उवाचलक्ष्मणंरामोभ्रातरंदीप्ततेजसम् ॥ १ ॥ आगताःस्मयथोद्दिष्टंयंदेशंमुनिरब्र
वीत् ॥ अयंपंचवटीदेशःसौम्यपुष्पितकाननः ॥ २ ॥ सर्वतश्चार्यतांदृष्टिःकाननेनिपुणोह्यसि ॥ आश्रमःकतर
स्मिन्नोदेशेभवतिसंमतः ॥ ३ ॥ रमतेयत्रवैदेहीत्वमहंचैवलक्ष्मण ॥ तादृशोदृश्यतांदेशःसन्निकृष्टजलाशयः ॥ ४ ॥

श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे चतुर्दशःसर्गः ॥ १४ ॥ तिसके पीछे यह अनेक प्रकारके सर्प और पशुयुक्त पंचवटीमें गमन करके तेजसे प्रकाशमान भ्राता लक्ष्मणसे बोले ॥ १ ॥ हे सौम्य! महर्षि अगस्त्यजीनें जिसको बतायाथा अब हम उसी सदा फूले फले वन करके शोभायमान पंचवटीमें आगयेहैं ॥ २ ॥ आश्रम बनानेंके लायक स्थान निर्णय करनेंमें तुम भलीभांति चतुरहो तिस्से इस काननके चारों ओर दृष्टि डालिये कि कौनसे स्थानमें हमारे मनमाना आश्रम बनसकताहै ॥ ३ ॥ हेलक्ष्मण! जिसे स्थानमें तुम हम और जानकीजी विशेषप्रसन्नता

सहित रहसकें और जल भी जहां निकटही हो ऐसे स्थानको तुम खोजो ॥ ४ ॥ जिस जगह वन और जल दोनोंही रमणीय और पावनहों व ईंधन, पुष्प, कुश, जल जहां निकटही पाया जावे ऐसा स्थानदेखो ॥ ५ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें जब इस प्रकार कहा तब लक्ष्मणजीनें कर जोड कर सीताजीके सामने रामचंद्रजीसे कहा ॥ ६ ॥ हे भाई साहब! हम आपके विद्यमान रहते सैकडों वर्षतकभी स्वाधीन नहींहैं न कुछ विचार करही सकतेहैं और हमारा विचार ठीकभी नहींहै तिस्से अब आप स्वयंही मनोहर स्थान देख भाल हमको वहां आश्रम बनानेकी आज्ञा दीजिये ॥ ७ ॥ महाद्युतिमान श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके यह वचन सुन परम प्रसन्न हो विचार करके सर्व गुणों करके युक्त एक मनोहर स्थान खोज लेते

वनरामण्यकंयत्रजलरामण्यकंतथा ॥ सन्निकृष्टंचयस्मिंस्तुसमित्पुष्पकुशोदकम् ॥ ५ ॥ एवमुक्तस्तुरामेणलक्ष्मणः संयतांजलिः ॥ सीतासमक्षंकाकुत्स्थमिदंवचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥ परवानस्मिकाकुत्स्थत्वयिवर्षशतंस्थिते ॥ स्वयंतुरुचिरेदेशेक्रियतामितिमांवद ॥ ७ ॥ सुप्रीतस्तेनवाक्येनलक्ष्मणस्यमहाद्युतिः ॥ विमृशन्रोचयामासदेशंसर्वगुणान्वितम् ॥ ८ ॥ सतंरुचिरमाक्रम्यदेशमाश्रमकर्मणि ॥ हस्तेगृहीत्वाहस्तेनरामःसौमित्रिमब्रवीत् ॥ ९ ॥ अयंदेशः समःश्रीमान्पुष्पितैस्तरुभिर्वृतः ॥ इहाश्रमपदंरम्यंयथावत्कर्तुमर्हसि ॥ १० ॥ इयमादित्यसंकाशैःपद्मैःसुरभिगंधिभिः ॥ अदूरेदृश्यतेरम्यापद्मिनीपद्मशोभिता ॥ ११ ॥ यथाख्यातमगस्त्येनमुनिनाभावितात्मना ॥ इयंगोदावरीरम्यापुष्पितैस्तरुभिर्वृता ॥ १२ ॥

हुए ॥ ८ ॥ यह स्थान सब भांतिसे मनोहर और आश्रम बनानेंके लायक था वहां श्रीरामचंद्रजी पदार्पणकर अपने हाथसे लक्ष्मणजीका हाथ पकडकर बोले ॥ ९ ॥ यह स्थान परम श्रीसम्पन्न भूमि वहांकी बराबरहै और फूले हुए वृक्षोंसे घिराहुआहै तिस्से तुम इस स्थानमें वित्तानुसार पर्णकुटी बनाओ ॥ १० ॥ सूर्यकी समान उज्वल चित्त प्रसन्न करनेवाली सुगन्धि जिनमें आरहीहैं ऐसेकमलके फूलोंके सहित यह पुष्करणी यहांसे निकटही बहरहीहै॥ ११॥ विशुद्धात्मा महर्षि अगस्त्यजीने जिस प्रकार कहाथा यह देखो वैसेही फुलाने वृक्षोंसे शोभित

गोदावरी दृष्टि आतीहै ॥ १२ ॥ वहां हंस और कारंडव बोल रहेहैं चकवा चकवी पक्षियोंसे शोभायमान यह नदी न यहांसे बडी दूरहै न बहुत निकटहीहै मृगोंके यूथके यूथ जहां घूम रहेहैं ॥ १३ ॥ खिले हुए वृक्षोंसे शोभित मोर गण जहां नाद कर रहेहैं बहुत गुफा जिनमें विद्यमान परम मनोहर देखनेमें दिव्य बडे २ ऊंचे यह सब पहाड दिखाई देतेहैं ॥ १४ ॥ उन सब पहाडों के स्थान २ में सब हाथी सुवर्ण चांदी और ताम्र वर्ण की विचित्र रचना से सजे हुएकी समान शोभा पारहेहैं ॥१५॥ साल,ताल, तमाल,खजूर, कटहल, निवार, निमिश,पुन्नागसे शोभित॥१६॥आम, अशोक,तिलक, केतकी, और चंपा आदि पुष्प, गुल्म, लता इत्यादि वृक्षोंसे शोभाय मान॥१७॥स्यन्दन, चन्दन, कदंब, लुचकुच,

हंसकारंडवाकीर्णाचक्रवाकोपशोभिता ॥ नातिदूरेनचासन्नेमृगयूथनिपीडिता ॥ १३ ॥ मयूरनादितारम्याःप्रांशवोबहुकंदराः ॥ दृश्यंतेगिरयःसौम्याःफुल्लैस्तरुभिरावृताः ॥ १४ ॥ सौवर्णैराजतैस्ताम्रैर्देशेदेशेतथाशुभैः ॥ गवाक्षिताइवाभांतिगजाःपरमभक्तिभिः ॥ १५ ॥ सालैस्तालैस्तमालैश्चखर्जूरैःपनसैर्द्रुमैः ॥ नीवारैस्तिनिशैश्चैव पुन्नागैश्चोपशोभिताः ॥१६॥चूतैरशोकैस्तिलकैःकेतकैरपिचंपकैः ॥ पुष्पगुल्मलतोपेतैस्तैस्तैस्तरुभिरावृताः ॥१७॥ स्यंदनैश्चंदनैर्नीपैःपनसैर्लकुचैरपि ॥ धवाश्वकर्णखदिरैःशमीकिंशुकपाटलैः ॥ १८ ॥ इदंपुण्यमिदंरम्यमिदंबहुमृगद्विजम् ॥ इहवत्स्यामसौमित्रेसार्धमेतेनपक्षिणा॥१९॥एवमुक्तस्तुरामेणलक्ष्मणःपरवीरहा ॥ अचिरेणाश्रमंभ्रातुश्चकारसुमहाबलः ॥ २० ॥ पर्णशालांसुविपुलांतत्रसंघातमृत्तिकाम् ॥ सुस्तंभांमस्करैर्दीर्घैःकृतवंशांसुशोभनाम् ॥ २१ ॥ शमीशाखाभिरास्तीर्यदृढपाशावपाशिताम् ॥ कुशकाशशरैःपर्णैःसुपरिच्छादितांतथा ॥ २२ ॥

धव, अश्वकर्ण, खैर, शमी, ढाक और पटल इन तरुवरोंसेभी घिरे हुएहैं ॥ १८ ॥ हे लक्ष्मण ! यह स्थान अतिशय पवित्र, अतिशय मनोहर, अनेक प्रकारके मृग और पक्षियोंसे परिपूर्णहै; सो जटायुके सहित इस स्थानपर हम वास करेंगे ॥ १९ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा तब श्रीलक्ष्मणजीनें बहुत शीघ्र रामचंद्रजीके रहनेके लिये परम श्रेष्ठ एक स्थान बनाया ॥ २० ॥ उसमें बडी भारी पर्णशाला बनाई, भीतें मिट्टीसे उठादीं सुन्दर थंभ गाड दिये, ऊपर लंबे २ बांस धरे ॥ २१ ॥ उन तिरछे वासोंपर शमीकी डालियें काट २ कर छादीं फिर उन

शाखाओंको रस्सियोंसे अति दृढता सहित बांध दिया, कुश, कांश, और शर पत्रसे भलीभांति उसको छाकर बराबर करदिया ॥ २२ ॥ तिसपर शमीकी डालियोंकी बतियें छा कसकर बांधदीं, ऐसा मनोहर स्थान लक्ष्मणजीनें श्रीरामचंद्रजीके रहनेके लिये बनाया ॥ २३ ॥ जब स्थान बन चुका तो श्रीमान् लक्ष्मणजी गोदावरी नदीमें नहाकर वहांसे कमलके फूल और अनेक फल लेकर आश्रमको लौटे ॥ २४ ॥ फिर लक्ष्मण जीनें फूलोंसे यथा विधि वास्तुशान्ति करके उस कुटीको पवित्रकर श्रीरामचंद्रजीको दिखाया ॥ २५ ॥ श्रीरघुनंदन रामचंद्रजी सीताके सहित लक्ष्मणजीकी बनाई वह शुभदर्शन कुटी देखकर परम प्रसन्न हुए ॥ २६ ॥ और बहुतही हर्षमें भरकर दोनों बाहोंसे लक्ष्मणजीको स्नेह

समीकृततलांरम्यांचकारसुमहाबलः ॥ निवासंराघवस्यार्थेप्रेक्षणीयमनुत्तमम् ॥ २३ ॥ सगत्वालक्ष्मणःश्रीमान्नदींगोदावरींतदा ॥ स्नात्वापद्मानिचादायसफलःपुनरागतः ॥ २४ ॥ ततःपुष्पबलिंकृत्वाशांतिंचसयथाविधि ॥ दर्शयामासरामायतदाश्रमपदंकृतम् ॥ २५ ॥ सतंदृष्ट्वाकृतंसौम्यमाश्रमंसहसीतया ॥ राघवःपर्णशालायांहर्षमाहारयत्परम् ॥ २६ ॥ सुसंहृष्टःपरिष्वज्यबाहुभ्यांलक्ष्मणंतदा ॥ अतिस्निग्धंचगाढंचवचनंचेदमब्रवीत् ॥ २७ ॥ प्रीतोस्मितेमहत्कर्मत्वयाकृतमिदंप्रभो ॥ प्रदेयोयन्निमित्तंतेपरिष्वंगोमयाकृतः ॥ २८ ॥ भावज्ञेनकृतज्ञेनधर्मज्ञेनचलक्ष्मण ॥ त्वयापुत्रेणधर्मात्मानसंवृत्तःपितामम ॥ २९ ॥ एवंलक्ष्मणमुक्त्वातुराघवोलक्ष्मिवर्धनः ॥ तस्मिन्देशेबहुफलेन्यवसत्ससुखंसुखी ॥ ३० ॥

सहित अपनी छातीसे लगा लिया और बडे मनोहर प्रेमसने वचन बोले ॥ २७ ॥ हे कार्य करनेमें चतुर! हम तुमपर बहुतही प्रसन्न हुए हैं तुमनें यह बडा भारी कार्य किया सो इस कार्यका तुमको इनाम देना चाहिये अतएव इसके बदलेहीमें हमनें तुमसे भेंटकी ॥ २८ ॥ हे लक्ष्मण जी! तुम्हारी समान विचारवान् सबका भाव जाननेंवाले, उपकार माननेंवाले, और धर्मके जाननेंवाले पुत्रके रहते राजा दशरथजीकी मृत्यु नहीं हुई ॥ २९ ॥ लक्ष्मीके बढानेवाले श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणसे ऐसा कहकर परम सुखभोगमय बहु फल युक्त उस आश्रमपदमें वास करने लगे ॥ ३० ॥

वह धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मण करके सेवित होनेंपर देवलोकमें देवताकी समान वहां कुछ दिन वास करते हुए ॥ २१ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आर० पंचदशःसर्गः ॥ १५ ॥ महात्मा रामचंद्रजीके वहां सुखसे वास करते२शरत्काल वीता और सबका प्यारा हेमन्त समय आया ॥ १ ॥ एक समय रात्रि वीतकर प्रभात हुआ तो उस समय श्रीरामचंद्रजी स्नानकरनेंके लिये रमणीक गोदावरी नदीपर जाते हुए ॥ २ ॥ वीर्यवान् भ्राता लक्ष्मणजी सीताजीके साथ जलका कलश हाथमें लेकर उनके पीछे २ चलते हुए नम्रता से बोले ॥ ३ ॥ हे प्रिय बोलनेवाले ! जो इस समय आपको प्याराहै; यह वही हेमन्तकाल उपस्थित हुआहै । इस हेमन्तके समागमसेही शुभ

कंचित्कालंसधर्मात्मासीतयालक्ष्मणेनच ॥ अन्वास्यमानोन्यवसत्स्वर्गलोकेयथामरः ॥ २१ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा०आ०आर०पंचदशःसर्गः ॥ १५ ॥ ॥ ७ ॥ वसतस्तस्यतुसुखंराघवस्यमहात्मनः ॥ शरद्व्यपायेहेमंतऋतुरिष्टःप्रवर्तत ॥ १ ॥ सकदाचित्प्रभातायांशर्वर्यांरघुनंदनः ॥ प्रययावभिषेकार्थंरम्यांगोदावरींनदीम् ॥ २ ॥ प्रह्वः कलशहस्तस्तुसीतयासहवीर्यवान् ॥ पृष्ठतोनुव्रजन्भ्रातासौमित्रिरिदमब्रवीत् ॥ ३ ॥ अयंसकालःसंप्राप्तःप्रियोयस्तेप्रियंवद ॥ अलंकृतइवाभातियेनसंवत्सरःशुभः ॥ ४ ॥ नीहारपरुषोलोकःपृथिवीसस्यमालिनी ॥ जलान्यनुपभोग्यानिसुभगोहव्यवाहनः ॥ ५ ॥ नवाग्रयणपूजाभिरभ्यर्च्यपितृदेवताः ॥ कृताग्रयणकाःकालेसंतोविगतकल्मषाः ॥६॥ प्राज्यकामाजनपदाःसंपन्नतरगोरसाः ॥ विचरंतिमहीपालायात्रार्थंविजिगीषवः ॥ ७ ॥ सेवमानेदृढंसूर्येदिशमंतकसेविताम् ॥ विहीनतिलकेवस्त्रीनोत्तरादिक्प्रकाशते ॥ ८ ॥

संवत्सर मानों सजकरही मनोहर हुआहै ॥४॥ शरदीके प्रभावसे सबही लोगोंके शरीर रूखे होगये, और पृथ्वी अनाजोंसे भरपूर होरहीहै और अग्निही इस समय लोगोंको प्रिय लगतीहै शरदीसे पानी नहीं छुआ जाता ॥ ५ ॥ इस समय मनुष्य गण नये अनाजसे देवता और पित्रोंकी विशेष भांतिसे पूजा करके नवशस्य निमित्तक यज्ञ करते हुए निष्पाप हुएहैं ॥ ६ ॥ इस समय सब देशोंमें काम्यवस्तु; दही, दूध, गोरस आदि बहुत प्राप्त होताहै इस समय विजयकी इच्छा किये हुए राजा लोग देशोंमें घूमनेंके लिये यात्रा करतेहैं ॥ ७ ॥ दक्षिण दिशामें सूर्य भगवा

नका अधिक अनुराग होनेसे उत्तरदिशा तिलकहीन स्त्रीकी नांई शोभारहित होगईहै ॥ ८ ॥ एक तो हिमालय पर स्वभावसेही बहुत
पाला पडताहै तिसपर अब सूर्य भगवान् उस्से बहुत दूर होगयेहैं; तिस्से हिमवानका हिमालय (पालेका घर) नाम ठीक २ होरहाहै ॥ ९ ॥ इस
समय दुपहरियामें घूमना अच्छा लगताहै धूप लगनेसे सुख होताहै, इस समय सूर्य सबके सुख देनेंवाले, और छाया जल एकवारही
नहीं सेवन किया जाता ॥ १० ॥ अब सूर्य नारायणका वह पहलासा तेज नहींहै। कुहरा पडने व पवन चलनेसे जाडा बहुतही अधिक
पडताहै तिस जाडेके पडनेंसे जीवमात्रही जडीभूत होगये, तिससे सब ही वन सूनेसे जान पडतेहैं प्रभातकाल हिमग्रस्त होकर प्रकाशित

प्रकृत्याहिमकोशाढ्योदूरसूर्यश्चसांप्रतम् ॥ यथार्थनामसुव्यक्तंहिमवान्हिमवान्गिरिः ॥ ९ ॥ अत्यंतसुखसंचारा
मध्याह्नेस्पर्शतःसुखाः ॥ दिवसाःसुभगादित्याश्छायासलिलदुर्भगाः ॥ १० ॥ मृदुसूर्याःसुनीहाराःपटुशीताःसमा
हिताः ॥ शून्यारण्याहिमध्वस्तादिवसाभांतिसांप्रतम् ॥ ११ ॥ निवृत्ताकाशशयनाःपुष्यनीताहिमारुणाः ॥ शी
तवृद्धतरायामास्त्रियामायांतिसांप्रतम् ॥ १२ ॥ रविसंक्रांतसौभाग्यस्तुषारारुणमंडलः ॥ निःश्वासांधइवादर्श
श्चंद्रमानप्रकाशते॥१३॥ज्योत्स्नातुषारमलिनापौर्णमास्यांनराजते ॥ सीतेवचातपश्यामालक्ष्यतेनचशोभते ॥१४॥
प्रकृत्याशीतलस्पर्शोहिमविद्धश्चसांप्रतम् ॥ प्रवातिपश्चिमोवायुःकालेद्विगुणशीतलः ॥ १५ ॥

होताहै ॥ ११ ॥ पुष्य नक्षत्र युक्त इस पुष्य मासमें और पाला पडती हुई धूसर वर्ण इन दिनोंको रात्रिमें विना छाये हुए स्थानमें नहीं सोया
जाता अब रात्रियों में शीत अधिक पडताहै ॥१२॥ जिस प्रकार श्वासकी वाफ लगनेंसे दर्पण अंधासा होजाताहै, वैसेही सुखसेव्यतादि सबही सौ
भाग्य इस समय सूर्यसे दबजानें और बरफके द्वारा किरणोंके ढक जानें और धूसरवर्ण होजानेंसे चंद्रमाकाभी अब प्रकाश नहींहैं॥१३॥तुषार करके
मलीन होनेंसे चांदनी अब पूर्णमासीकी रात्रिमेंभी नहीं खिलती केवल दीखतीहै जैसे सीताजी धूमके लगनेंसे श्याम होगईहैं और शोभित
नहीं होतीं ॥ १४ ॥ स्वभावतः शीतलता युक्त पछादिया पवन अब हिमसे आवृत और उससे मिलकर दूना शीतलहो चल रहाहै ॥ १५ ॥

यव और गेहुओं करके पूर्ण ओस जिनमें पडी हुई ऐसे समस्त वन सूर्यके उदय होनेपर शब्द करते हुए सारस और क्रौंचादिक पक्षियोंसे व्याप्त होकर शोभा विस्तार करतेहैं ॥ १६ ॥ सुवर्णके वर्णवाले शालि समूह खजूरके फूलकी समान तन्दुल भरी हुई वालोंके लगनेसे कुछ एक झुके हुए विराजरहेहैं ॥ १७ ॥ सूर्य आकाशमें ऊँचे उठकर चन्द्रमाकी समान शीतल अल्प प्रकाशमय दृष्टि आतेहैं, क्योंकि इधर उधर फैली हुई उनकी किरणें पालेसे ढक रहीहैं ॥ १८ ॥ धूपका तेज सबेरे २ तो कुछ होताही नहीं दुपहर को कुछ एक सुखका देनेवाला होता

बाष्पच्छन्नान्यरण्यानियवगोधूमवंतिच ॥ शोभंतेभ्युदितेसूर्येनदद्भिःक्रौंचसारसैः ॥ १६ ॥ खर्जूरपुष्पाकृतिभिःशिरोभिःपूर्णतंडुलैः ॥ शोभंतेकिंचिदालंबाःशालयःकनकप्रभाः ॥ १७ ॥ मयूखैरुपसर्पद्भिर्हिमनीहारसंवृतैः ॥ दूरमभ्युदितःसूर्यःशशांकइवलक्ष्यते ॥ १८ ॥ अग्राह्यवीर्यःपूर्वाह्णेमध्याह्नेस्पर्शतःसुखः ॥ संसक्तःकिंचिदापांडुरातपःशोभतेक्षितौ ॥ १९ ॥ अवश्यायनिपातेनकिंचित्प्रक्लिन्नशाद्वला ॥ वनानांशोभतेभूमिर्निविष्टतरुणातपा ॥ २० ॥ स्पृशन्सुविपुलंशीतमुदकंद्विरदःसुखम् ॥ अत्यंततृषितोवन्यःप्रतिसंहरतेकरम् ॥ २१ ॥ एतेहिसमुपासीनाविहगाजलचारिणः ॥ नावगाहंतिसलिलमप्रगल्भाइवाहवम् ॥ २२ ॥ अवश्यायतमोनद्धानीहारतमसावृताः ॥ प्रसुप्ताइवलक्ष्यंतेविपुष्पावनराजयः ॥ २३ ॥

है और उसी समय वर्ण कुछ पीला पडजानेसे पृथ्वीमें शोभित होता है ॥ १९ ॥ प्रभातमें ओसकी बूंदोंके गिरनेसे हरी २ घास गीली होरहीहै उस घासपर सूर्यकी किरणें पडनेसे वन भूमिकी शोभाकी सीमा नहीं रहती ॥ २० ॥ वनैला हाथी अधिक प्यासा होनेपरभी शीतल जल छूतेही उसी समय शूंड खेंच लेताहै ॥ २१ ॥ डरपोक आदमी जिस प्रकार युद्धमें नहीं जाते, वैसेही यह जलचर पक्षीगण जलके समीप बैठे रह करभी किसी प्रकारसे जलमें डुबकी नहीं मारते ॥ २२ ॥ प्रसून शून्य वनश्रेणी रात्रिमें ओस और अंधकारसे ढक जाने और प्रभातको

कुहरके अंधेरेसे छिपजानेंपर ऐसी लगतीहै मानों सोयरहीहै ॥ २३ ॥ अब समस्त नदियें वाफसे ढकी हुईहैं, और उनके तीरका रेतभी पालेके पडनेंसे गीला होरहाहै; और शब्द करते हुए सारसोंके घूमनेंसे सब नदियें बहुतही शोभायुक्त हुईहैं ॥ २४ ॥ वर्फके गिरनें और सूर्यका तेज मंद होनेंसे, शीतके वशहो पर्वतोंके अग्रभागका जलभी प्रायः स्वादिष्ट होगयाहै ॥ २५ ॥ अब जराके वश होजानेंसे पत्तोंके गिरजानें और पंखडियोंके टूट जानें व हिमग्रस्त होजानेंसे कमल फूलमें केवल डंडी मात्र रह गईहै अब कमलाकर सरोवर शोभा नहीं पाते ॥ २६ ॥ हे पुरुष श्रेष्ठ! इस दारुण हेमन्त कालमें धर्मात्मा भरतजी आपकी भक्तिके वशहो नगरमें रहकरभी दुःखका वोझ सहन करते हुए तपस्या करते

बाष्पसंछन्नसलिलारुतविज्ञेयसारसाः ॥ हिमार्द्रवालुकास्तीरैःसरितोभांतिसांप्रतम् ॥ २४ ॥ तुषारपतनाच्चैवमृदुत्वाद्भास्करस्यच ॥ शैत्यादगाग्रस्थमपिप्रायेणरसवज्जलम् ॥ २५ ॥ जराझर्झरितैःपत्रैःशीर्णकेसरकर्णिकैः ॥ नालशेषाहिमध्वस्तानभांतिकमलाकराः ॥ २६ ॥ अस्मिंस्तुपुरुषव्याघ्रकालेदुःखसमन्वितः ॥ तपश्चरतिधर्मात्मात्वद्भक्त्याभरतःपुरे ॥ २७ ॥ त्यक्त्वाराज्यंचमानंचभोगांश्चविविधान्बहून् ॥ तपस्वीनियताहारःशेतेशीतेमहीतले ॥ २८॥ सोपिवेलामिमांनूनमभिषेकार्थमुद्यतः ॥ वृतःप्रकृतिभिर्नित्यंप्रयातिसरयूंनदीम् ॥ २९ ॥ अत्यंतसुखसंवृद्धःसुकुमारोहिमार्दितः ॥ कथंत्वपररात्रेषुसरयूमवगाहते ॥ ३० ॥ पद्मपत्रेक्षणःश्यामःश्रीमान्निरुदरोमहान् ॥ धर्मज्ञःसत्यवादीचह्रीनिषेधोजितेंद्रियः ॥ ३१ ॥

होंगे ॥ २७ ॥ और राज्य मान और अनेक प्रकारके राज्योचित सुख छोडकर नियत समयपर आहार करके तपस्वी हो शीतल पृथ्वीपर शयन करते होंगे ॥ २८ ॥ वह निश्चय प्रति दिन इस समय निरालस्यहो मंत्री आदिकोंके साथ सरयू नदीमें नहानेंके लिये जाते होंगे ॥ २९ ॥ भरतजी स्वभावसेही सुकुमारहैं और परम सुखसे पलकर इतनें बडे हुएहैं । सो अब वह किस प्रकारसे पाला पडते हुये प्रभात कालमें सरयूके जलसे स्नान करते होंगे! ॥ ३० ॥ आर्य! वह कमलनेत्र, श्यामवर्ण, बडाई करके युक्त शोभावान सूक्ष्मोदर, धर्मज्ञ, सत्यवादी, सभामें बडे ढीठे जितेन्द्रिय ॥ ३१ ॥

प्रिय वचन बोलनेवाले शत्रुओंका दमन करनेवाले लंबी भुजाओंवाले लज्जाशील श्रीमान् भरतजी सब सुख भोगको जलांजलि देकर अंतःकरणसे आपकोही आश्रय किये हुएहैं ॥ ३२ ॥ हे वनवासिन् ! यद्यपि आपके भ्राता महात्मा भरतजी तापस धर्मका आश्रय करके वनवासी नहीं हुएहैं तथापि उन्होंने आपके अनुरूप कार्यकर स्वर्गको जीत लियाहै ॥ ३३ ॥ जगत्में जो यह कहावत चली आतीहै कि मनुष्योंमें पिताका भाव नहीं आता वरन माताहीका स्वभाव आताहै सो भरतजीनें इस कहावतके विरुद्ध किया क्योंकि उनमें कैकेयीका स्वभाव नहींहै॥३४॥परन्तु श्रीराजाधिराज महाराज दशरथजी जिसके स्वामी और साधु भरतजी जिसके पुत्र वह जननी कैकेयी किस प्रकारसे ऐसी क्रूर

प्रियाभिभाषीमधुरोदीर्घबाहुररिंदमः ॥ संत्यज्यविविधान्सौख्यानार्यंसर्वात्मनाश्रितः ॥ ३२ ॥ जितःस्वर्गस्तवभ्रात्राभरतेनमहात्मना ॥ वनस्थमपितापस्येयस्त्वामनुविधीयते ॥ ३३ ॥ नपित्र्यमनुवर्ततेमातृकंद्विपदाइति ॥ ख्यातोलोकप्रवादोयंभरतेनान्यथाकृतः ॥ ३४ ॥ भर्तादशरथोयस्याःसाधुश्चभरतःसुतः ॥ कथंनुसांबाकैकेयीतादृशीक्रूरदर्शिनी ॥ ३५ ॥ इत्येवंलक्ष्मणेवाक्यंस्नेहाद्वदतिधार्मिके ॥ परिवादंजनन्यास्तमसहन्राघवोऽब्रवीत् ॥ ३६ ॥ नतेऽबामध्यमातातगर्हितव्याकदाचन ॥ तामेवेक्ष्वाकुनाथस्यभरतस्यकथांकुरु ॥ ३७॥ निश्चितैवहिमेबुद्धिर्वनवासेदृढव्रता ॥ भरतस्नेहसंतप्ताबालिशीक्रियतेपुनः ॥ ३८ ॥ संस्मराम्यस्यवाक्यानिप्रियाणिमधुराणिच ॥ हृद्यान्यमृतकल्पानिमनःप्रह्लादनानिच ॥ ३९ ॥

बुद्धिवाली हुई ? ॥ ३५ ॥ महात्मा लक्ष्मणजीनें जब भाईके स्नेहके वश हो इस प्रकार कहा तब श्रीरामचंद्रजी माता कैकेयीकी वह निन्दा न सहते हुए कहनें लगे ॥ ३६ ॥ हे भइया ! मँझली माता कैकेयीकी निन्दा मत करो तुम केवल इक्ष्वाकुनाथ भरतजीकेही गुणगणोंका बखान करो ॥ ३७ ॥ यद्यपि हमारी बुद्धि एक मात्र वनवासमें निश्चित और दृढव्रत हुईहै तथापि भरतजीके स्नेहके वश होकर बावरीसी होगईहै ॥ ३८ ॥ भरतजीकी प्रिय मधुर हृदयको अमृतकी नांई सिंचन करनेवाली मनको आह्लाद देनेवाली वार्त्ता वार २ हमारे मनमें स्मरण

होरहीहै ॥ ३९ ॥ नहीं जानते कि कितनें दिनोंमें फिर महात्मा भरतजी और शत्रुघ्नजीसे तुम्हारे सहित हम मिलेंगे ! ॥ ४० ॥ रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी इस प्रकारसे विलाप करते २ भ्राता लक्ष्मण और सीताके सहित गोदावरी नदीपर पहुंचकर स्नान करते हुए ॥ ४१ ॥ फिर सबनें गोदावरीके जलसे पितृगणोंको देवतोंको तर्पण करके उदित सूर्य व और दूसरे देवताओंका स्तोत्र किया ॥ ४२ ॥ भगवान् भूतनाथ पार्वती और नन्दिके सहित स्नान करके जिस प्रकारसे शोभाको प्राप्त होते हैं सीताजी और लक्ष्मणजीके सहित नहाकर श्रीरामचन्द्रजीनेंभी वैसेही शोभा धारण की ॥४३॥ इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०आर० षोडशः सर्गः ॥१६॥ श्रीरामचन्द्रजी, सीताजी, व लक्ष्मणजी तीनों जन स्नान करके गोदा

कदाह्यहंसमेष्यामिभरतेनमहात्मना ॥ शत्रुघ्नेनचवीरेणत्वयाचरघुनंदन ॥४०॥ इत्येवंविलपंस्तत्रप्राप्यगोदावरींनदीम् ॥ चक्रेभिषेकंकाकुत्स्थःसानुजःसहसीतया॥ ४१ ॥ तर्पयित्वाथसलिलैस्तैःपितॄन्दैवतानपि ॥ स्तुवंतिस्मोदितंसूर्यंदेवताश्चतथानघाः ॥ ४२ ॥ कृताभिषेकःसरराजरामःसीताद्वितीयःसहलक्ष्मणेन ॥ कृताभिषेकस्त्वगराजपुत्र्यारुद्रःसनंदिर्भगवानिवेशः ॥४३॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आदिकाव्येआरण्यकांडेषोडशःसर्गः ॥ १६ ॥ छ॥

कृताभिषेकोरामस्तुसीतासौमित्रिरेवच ॥ तस्माद्गोदावरीतीरात्ततोजग्मुःस्वमाश्रमम् ॥१॥ आश्रमंतद्रुपागम्यराघवःसहलक्ष्मणः ॥ कृत्वापौर्वाह्णिकंकर्मपर्णशालामुपागमत् ॥ २ ॥ उवाससुखितस्तत्रपूज्यमानोमहर्षिभिः ॥ सरामःपर्णशालायामासीनःसहसीतया ॥ ३ ॥ विरराजमहाबाहुश्चित्रयाचंद्रमाइव ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्राचकारविविधाःकथाः ॥ ४ ॥ तदासीनस्यरामस्यकथासंसक्तचेतसः ॥ तंदेशंराक्षसीकाचिदाजगामयदृच्छया ॥ ५ ॥

वरीके तीरसे आश्रमको लौटे ॥ १ ॥ और श्रीरामचन्द्रजीनें आश्रममें पहुँच कर लक्ष्मणजीके साथ प्रथम कालकी सब क्रिया कर पर्णशालामें प्रवेश किया ॥ २ ॥ और महर्षि लोगों से पूजे जाकर वहां सुखसे वास करनेंलगे उस काल सीताजीके सहित पर्णशालामें आसीन होनेंसे ॥ ३ ॥ महाबाहु रामचन्द्रजी; चित्रा नक्षत्र युक्त चन्द्रमा की समान शोभा पानें लगे। तिसके पीछे भ्राता लक्ष्मणजीके सहित रामचन्द्रजीनें अनेक प्रकारकी कथा वार्त्ता आरंभ करदी ॥ ४ ॥ इस प्रकारसे बैठे रहकर कथा वार्त्ता कहनेंमें लगे हुयेहैं कि इतनेंही में कोई राक्षसी

अपनी इच्छासे घूमतीहुई वहां आई ॥ ५ ॥ यह राक्षसी दशवदन रावणकी बहनथी नाम इसका शूर्पणखा था वह देवताओंकी समान रामचन्द्रजीके निकट आकर उनको देखती हुई ॥ ६ ॥ उसनें देखा कि रामचन्द्रजीका वदन प्रदीप्तमान है बाहें घुटनोंतक आती हैं दोनों नेत्र कमलदलकी समान बडे हैं चाल हाथीकी समान है शिर पर जटा धारण किये हुयेहैं ॥ ७ ॥ अंग प्रत्यंग अति कोमल हैं बल विक्रम अपार है। शरीर राजलक्षणों करके युक्त है। वर्ण नीले कमलकी समान श्यामता लिये हुयेहैं, कोटि मदनकी समान सुन्दर हैं ॥ ८ ॥ इस प्रकार साक्षात् इन्द्रकी समान श्रीरामचन्द्र जीको देखकर राक्षसी कामसे मोहित हुई । श्रीरामचन्द्रजीका वदन मण्डल श्रेष्ठथा। राक्षसीका मुख खरा तथा रामचन्द्रजीका मध्य देश गोलाकार व राक्षसीका उदर अति बृहत् था ॥ ९ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके दोनों नेत्र अति विशाल व राक्षसी

सातुशूर्पणखानामदशग्रीवस्यरक्षसः ॥ भगिनीराममासाद्यददर्शत्रिदशोपमम् ॥ ६॥ दीप्तास्यंचमहाबाहुंपद्मपत्रायतेक्षणम् ॥ गजविक्रांतगमनंजटामंडलधारिणम् ॥ ७ ॥ सुकुमारंमहासत्त्वंपार्थिवव्यंजनान्वितम् ॥ राममिंदीवरश्यामंकंदर्पसदृशप्रभम् ॥ ८ ॥ बभूवेंद्रोपमंदृष्ट्वाराक्षसीकाममोहिता ॥ सुमुखंदुर्मुखीरामंवृत्तमध्यंमहोदरी ॥ ९॥ विशालाक्षंविरूपाक्षीसुकेशंताम्रमूर्धजा ॥ प्रियरूपंविरूपासासुस्वरंभैरवस्वना ॥ १० ॥ तरुणंदारुणावृद्धादाक्षिणंवामभाषिणी ॥ न्यायवृत्तंसुदुर्वृत्ताप्रियमप्रियदर्शना॥ ११॥शरीरजसमाविष्टाराक्षसीराममब्रवीत्॥जटीतापसवेषेणसभार्यःशरचापधृक् ॥ १२॥आगतस्त्वमिमंदेशंकथंराक्षससेवितम्॥ किमागमनकृत्यंतेतत्त्वमाख्यातुमर्हसि॥ १३॥

की आंखें अति बुरीथीं रामचन्द्रके अति श्रेष्ठ घूंघर वाले बालथे और राक्षसी के केश ताम्रवर्ण थे। श्रीरामचन्द्र जी प्रिय रूपवान् और राक्षसी महाभयानक रूपथी श्रीरामचंद्रजीका अति मधुर स्वरथा और राक्षसीका स्वर नितान्त कर्कश भीषण और भयंकरथा ॥ १०॥ श्रीरामचंद्रजी युवाथे, व राक्षसी महावृद्धाथी, श्रीरामचंद्रजी अति मधुर वचन बोलनेंवाले, व राक्षसी अत्यन्त कर्कशभाषिणी थी, श्रीरामचंद्रजी न्यायवृत्त, और राक्षसी दुर्वृत्तथी, श्रीरामचंद्रजी देखनें में जैसे प्यारे थे ! वह राक्षसी देखनें में वैसीही कुप्यारीथी ॥ ११ ॥ ऐसी शूर्पणखा महाकामातुर होकर श्रीरामचंद्रजीसे बोली कि तुम जटा रखाये तपस्वीका वेष धारे धनुप वाण लिये स्त्री सहित ॥ १२ ॥ किस कारणसे राक्षसोंसे

सेवित देशमें आयेहो तुम्हारे यहां पर आनेका क्या प्रयोजन है ? सो यथार्थ कहो ॥ १३ ॥ शत्रुओंके तपानेवाले श्रीरामचंद्रजी राक्षसी शूर्पणखाकी यह वार्त्ता सुनकर सरलता सहित कुछ न छिपाते हुए सब वर्णन करने लगे ॥ १४ ॥ श्रीरामचंद्रजी बोले कि देवताओंकी समान विक्रमवान दशरथजी नामक एक राजाथे हम उनके ज्येष्ठ पुत्रहैं लोकमें हमारा नाम रामहै ॥ १५ ॥ और इनका नाम लक्ष्मणहै, यह हमारे आज्ञाकारी छोटे भ्राताहैं, और यह विदेहकुमारी हमारी भार्या हैं इनका सीता ऐसा नामहै ॥ १६ ॥ पिता और माता कैकेयीके कहनेंसे धर्मके लाभकी आशा और धर्मकी रक्षा करनेंके कारण वनमें वास करनेंके लिये हम इस स्थानमें आयेहैं ॥ १७ ॥ इस समय यह

एवमुक्तस्तुराक्षस्याशूर्पणख्यापरंतपः ॥ ऋजुबुद्धितयासर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ १४ ॥ आसीद्दशरथोनामराजा त्रिदशविक्रमः ॥ तस्याहमग्रजःपुत्रोरामोनामजनैःश्रुतः ॥ १५॥ भ्रातायंलक्ष्मणोनामयवीयान्मामनुव्रतः ॥ इयं भार्याचवैदेहीममसीतेतिविश्रुता ॥ १६ ॥ नियोगात्तुनरेंद्रस्यपितुर्मातुश्चयंत्रितः ॥ धर्मार्थंधर्मकांक्षीचवनंवस्तुमिहागतः ॥ १७ ॥ त्वांतुवेदितुमिच्छामिकस्यत्वंकासिकस्यवा ॥ त्वंहितावन्मनोज्ञांगीराक्षसीप्रतिभासिमे ॥ १८ ॥ इहवाकिंनिमित्तंत्वमागताब्रूहितत्त्वतः ॥ साब्रवीद्वचनंश्रुत्वाराक्षसीमदनार्दिता ॥ १९ ॥ श्रूयतांरामतत्त्वार्थंवक्ष्यामिवचनंमम ॥ अहंशूर्पणखानामराक्षसीकामरूपिणी ॥ २० ॥ अरण्यंविचरामीदमेकासर्वभयंकरा ॥ रावणोनाम मेभ्रातायदितेश्रोत्रमागतः॥२१॥प्रवृद्धनिद्रश्चसदाकुंभकर्णोमहाबलः॥विभीषणस्तुधर्मात्मानतुराक्षसचेष्टितः२२॥

हमारी इच्छा तुमको जाननेंकी हुईहै, तुम कौनहो किसकी बेटीहो; और किसकी स्त्रीहो ! हमें तो ऐसा जान पडताहै कि तुम राक्षसोंका मन मोहने वालीहो॥१८॥ और तुम किसलिये यहां आई हो सो सत्यही सत्य कहो ! यह वचन सुनकर वह मदनसे आतुर हुई राक्षसी बोली ॥ १९ ॥ हे रामचंद्र ! तुम ठीक २ हमारा परिचय सुनो हम कहती हैं; हम शूर्पणखा नामक कामरूपा राक्षसी॥२०॥ सबको भय उपजाती हुई अकेली इस वनमें घूमा करतीहैं हमारे भइयाका नाम रावणहै सो कदाचित् तुमने उसका वृत्तान्त व नाम सुनाही होगा॥२१॥हमारे और दो भाइयोंका नाम कुम्भकर्ण और विभीषणहै कुंभकर्ण अति बलवान्है और सदा सोताही रहता है और विभीषण परम धार्मिक है राक्षसोंके चरित्र उसमें नहीं हैं ॥२२॥

खर और दूषण यह दोनोंभी हमारे भ्राता रणमें बडे वीर्यवान् और बलशाली लोकमें प्रसिद्ध हैं ॥ २३ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी ! तुमको प्रथम देखते ही हम उन सबको छोड छाँड तुम्हारा अपूर्व रूप देख पुरुषोत्तम जान प्रेमके मारे अपना पति बनानेंके लिये यहां आईहैं ॥२४॥ हममें बडा पराक्रमहै; और बल होनेके कारण जहां इच्छा होतीहै वहीं स्वच्छन्दतासे घूमती रहती हूं।सो तुम सदाके लिये हमारे स्वामी बेना। इस सीताको लेकर क्या करोगे ? ॥ २५ ॥ यह सीता विकटाकार और कुरूपाहै; किसी भांतिभी यह तुम्हारे योग्य नहींहै हमको देखो; हमहीं रूपके

प्रख्यातवीर्यौचरणेभ्रातरौखरदूषणौ॥२३॥तानहंसमतिक्रांतारामत्वापूर्वदर्शनात् ॥समुपेतास्मिभावेनभर्तारंपुरुषोत्तमम् ॥ २४ ॥अहंप्रभावसंपन्नास्वच्छंदबलगामिनी ॥ चिरायभवभर्तामेसीतयाकिंकरिष्यसि ॥ २५ ॥ विकृताच विरूपाचनसेयंसदृशीतव ॥ अहमेवानुरूपातेभार्यारूपेणपश्यमाम् ॥ २६ ॥ इमांविरूपामसतींकरालांनिर्णतोदरीम् ॥ अनेनसहतेभ्रात्राभक्षयिष्यामिमानुषीम् ॥ २७ ॥ ततःपर्वतशृंगाणिवनानिविविधानिच ॥ पश्यन्सहमयाकामींदंडकान्विचरिष्यसि ॥ २८ ॥ इत्येवमुक्तःकाकुत्स्थःप्रहस्यमदिरेक्षणाम् ॥ इदंवचनमारेभेवक्तुंवाक्यंविशारदः ॥ २९ ॥इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेसप्तदशःसर्गः ॥ १७ ॥ ॥ छ ॥ तांतुशूर्पणखांरामःकामपाशावपाशिताम् ॥ स्वेच्छयाश्लक्ष्णयावाचास्मितपूर्वमथाब्रवीत् ॥ १ ॥ कृतदारोस्मिभवतिभार्येयंदयितामम ॥ त्वद्विधानांतुनारीणांसुदुःखाससपत्नता ॥ २ ॥

हेतु तुम्हारी भार्या बननेंके लायकहैं॥२६॥हम तुम्हारे इस भ्राताके सहित इस मानवी, कुरूपा, असती, कराला और नतोदरी सीताको भक्षण कर जांयगी॥२७॥तुम काम भोग में तत्पर होकर हमारे सहित और पर्वतोंके शृङ्गोंको देखते हुए दंडकारण्यमें विचरण करोगे॥२८॥वचन बोलनेमें चतुर रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी यह वचन सुन ऊंचे स्वरसे हँसकर क्रूरनयना शूर्पणखासे बोले॥ २९ ॥इत्यार्षे श्रीम० वा० आ०आ० सप्तदशः सर्गः ॥१७॥ श्रीरामचंद्रजीनें उपहास करनेंके लिये हँस कर मधुर वचनसे उस कामके फंदमें फँसी शूर्पणखासे कहा ॥ १ ॥ अयि कल्याणी ! हमारा

विवाह होगयाहै यह सीताजी हमारी स्त्रीहै । सो तुम सरीखी स्त्रियोंको सौतका होना बहुतही दुःखका विषय है ॥ २ ॥ परन्तु हमारे यह छोटे भ्राता लक्ष्मणजी सच्चरित्र श्रीमान् वीर्यवान् और प्रियदर्शनहैं । इनका विवाह अभी नहीं हुआहै अथवा अकृतदार इनके निकट स्त्री नहींहैं अथवा इन्होंनें स्त्री परिग्रह नहीं कियाहै ॥ ३ ॥ इन्होंनें पहले कभी स्त्रीका सुख नहीं भोगा है इसी कारण यह विवाहार्थी हुएहैं और विशेष करके यह युवाहैं तिस्से यह सब प्रकारसे तुम्हारे लायक स्वामी होंगे ॥ ४ ॥ हे बडे नेत्रोंवाली ! सूर्यकी प्रभा जिस प्रकार सुमेरुकू भजना करतीहै, तुमभी वैसेही सोत रहित होकर हमारे इन भाईकी स्वामीकी भांतिसे सेवा करो ॥ ५ ॥ वह कामसे मोहित हुई राक्षसी राम-

अनुजस्त्वेषमेभ्राताशीलवान्प्रियदर्शनः ॥ श्रीमानकृतदारश्चलक्ष्मणोनामवीर्यवान् ॥ ३ ॥ अपूर्वीभार्ययाचार्थी तरुणःप्रियदर्शनः ॥ अनुरूपश्चतेभर्तारूपस्यास्यभविष्यति ॥ ४ ॥ एनंभजविशालाक्षिभर्तारंभ्रातरंमम ॥ असपत्नावरारोहेमेरुमर्कप्रभायथा ॥ ५ ॥ इतिरामेणसाप्रोक्ताराक्षसीकाममोहिता ॥ विसृज्यरामंसहसाततोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ ६ ॥ अस्यरूपस्यतेयुक्ताभार्याहंवरवर्णिनी ॥ मयासहसुखंसर्वान्दंडकान्विचरिष्यसि ॥ ७ ॥ एवमुक्तस्तुसौमित्रीराक्षस्यावाक्यकोविदः ॥ ततःशूर्पणखींस्मित्वालक्ष्मणोयुक्तमब्रवीत् ॥ ८ ॥ कथंदासस्यमेदासीभार्याभवितुमिच्छसि ॥ सोहमार्येणपरवान्भ्रात्राकमलवर्णिनी ॥ ९ ॥ समृद्धार्थस्यसिद्धार्थानुदितामलवर्णिनी ॥ आर्यस्यत्वंविशालाक्षिभार्याभवयवीयसी ॥ १० ॥

चंद्रजीके यह वचन सुनकर तुरन्त लक्ष्मणजीके निकट जाकर कहनें लगी॥६॥मैं सब स्त्रियोंसे अधिक सुन्दरहूं तिससे तुम्हारे इस रूप लायकही भार्या बनूंगी तुम हमारे सहित सुखपूर्वक समस्त वनोंमें विचरण करोगे ॥ ७ ॥ उस राक्षसीसे ऐसा सुन वचन बोलनेंमें चतुर सुमित्रानंदन लक्ष्मणजी मन्द मन्द हँसकर उस्से यह युक्तियुक्त वचन बोले ॥ ८ ॥ अयि कमलवर्णनि ! हम दासहैं फिर किस कारण तुम हमारी स्त्री बनकर दासी बननेंकी अभिलाषिणी हुईहो ! हम इन बडे भ्राता रामचन्द्रजीके दासहैं ॥ ९ ॥ हे विशालनेत्रवाली ! तुम सिद्धकामा, और आनन्दिता

होकर सर्व भावसे संपत्तिमान् हमारे बडे भ्राता आर्य श्रीरामचन्द्रजीकी दूसरी स्त्री बनो क्योंकि उनसे विवाह करनेंमें तुम्हारी विधि भली मिलेगी। उनका श्यामरंग तुम्हारे वर्णसे कुछ २ मिलता हुआहै । परन्तु हमारा तुम्हारा रंग कुछभी नहीं मिलता ॥ १० ॥ फिर जब इनसे विवाह कर लेगी तो यह कुरूपा, असती, भय उपजानेंवाली, कृशोदरी, और वृद्धा भार्याको त्याग करके तुममेंही अनुरागी हो जांयगे ॥११॥अयि वरवर्णिनि! अयि वरारोहे! कौन चतुर पुरुषहै जो तुम्हारे इस श्रेष्ठ रूपका अनादर करके मानुषीमें अनुरागीहो ? ॥ १२ ॥ जब लक्ष्मणजीनें इस प्रकार कहा तो बडे पेटवाली सबलोकोंको डरावनेंवाली निशाचरी शूर्पणखा उस हँसीकी बातको न समझकर लक्ष्मणजीकी बातको सत्यही

एतांविरूपामसतींकरालांनिर्णतोदरीम् ॥ भार्यांवृद्धांपरित्यज्यत्वामेवैषभजिष्यति ॥११॥ कोहिरूपमिदंश्रेष्ठंसंत्यज्यवरवर्णिनि ॥ मानुषीषुवरारोहेकुर्याद्भावंविचक्षणः॥१२॥ इतिसालक्ष्मणेनोक्ताकरालानिर्णतोदरी॥ मन्यतेतद्वचः सत्यंपरिहासाविचक्षणा॥१३ ॥सारामंपर्णशालायामुपविष्टंपरंतपम् ॥ सातयासहदुर्धर्षमब्रवीत्काममोहिता ॥१४॥ इमांविरूपामसतींकरालांनिर्णतोदरीम् ॥ वृद्धांभार्यामवष्टभ्यनमांत्वंबहुमन्यसे ॥ १५ ॥ अद्येमांभक्षयिष्यामि पश्यतस्तवमानुषीम् ॥ त्वयासहचरिष्यामिनिःसपत्नायथासुखम् ॥ १६ ॥ इत्युक्त्वामृगशावाक्षीमलातसदृशेक्षणा ॥ अभ्यगच्छत्सुसंक्रुद्धामहोल्कारोहिणीमिव ॥ १७ ॥ तांमृत्युपाशप्रतिमामापतंतींमहाबलः ॥ निगृह्यरामः कुपितस्ततोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ १८ ॥

समझी ॥ १३ ॥ तिसके पीछे वह मोहित होकर पर्णकुटीमें सीताजीके साथ बैठे हुये शत्रुओंके तपानेंवाले अजेय श्रीरामचन्द्रजीसे कहनें लगी ॥ १४ ॥ कि तुम इस बुढिया कुरूपा कृशोदरी, भय उपजानेंवाली असती स्त्रीमें अनुरागी होकर हमारा आदर सन्मान नहीं करते ॥ १५ ॥ तिससे तुम्हारे सामनेंही इसी मुहूर्त्तमें हम इस मानुषीको भक्षण करेंगी और सौतहीन होकर यथा सुखसे घूमा करेंगी ॥ १६ ॥ यह कहकर जलते अंगारेकी समान चमकते हुये नेत्रोंवाली निशाचरी महा क्रोधमें भरकर हरिणके बच्चोंकी समान नेत्रहैं जिनके ऐसी सीताजीके सामनेको दौडी जैसे रोहिणीकी ओर उल्का धावमानहो ॥ १७ ॥ उस यमकी फांसीकी समान राक्षसीको सामने आते देखकर श्रीरामचन्द्रजी क्रोधमें

भर उसको रोक लक्ष्मणजीसे बोले ॥ १८ ॥ हे लक्ष्मण ! क्रूर स्वभाववाले ! दुष्टोंके साथमें हँसी करनाभी किसी भांति कर्त्तव्य नहींहै ! देखो इस परिहासके होनेंसेही जानकीजीको अपने जीवनमें संदेह हुआहै॥१९॥हे पुरुषश्रेष्ठ ! इस समय तुम इस कामसे मत्त हुई बडे पेटवाली कुरूपिणी असती राक्षसीको औरभी कुरूप करदो ॥ २०॥ महाबलवान् श्रीलक्ष्मणजीनें श्रीरामचन्द्रजीके यह वचन सुनकर महाक्रोधितहो तलवार उठाकर उनके सामनेही राक्षसी शूर्पणखाके नाक कान काट डाले ॥२१॥ नाक कान कटायेहुए घोर स्वभाववाली वह राक्षसी उस समय विकट

क्रूरैरनार्यैःसौमित्रेपरिहासःकथंचन ॥ नकार्यःपश्यवैदेहींकथंचित्सौम्यजीवतीम् ॥ १९ ॥ इमांविरूपामसतीम
तिमत्तांमहोदरीम् ॥ राक्षसींपुरुषव्याघ्रविरूपयितुमर्हसि ॥ २० ॥ इत्युक्तोलक्ष्मणस्तस्याःक्रुद्धोरामस्यपश्यतः ॥
उद्धृत्यखड्गंचिच्छेदकर्णनासेमहाबलः ॥ २१ ॥ निकृत्तकर्णनासातुविस्वरंसाविनद्यच ॥ यथागतंप्रदुद्रावघोराशू
र्पणखावनम् ॥ २२॥ साविरूपामहाघोराराक्षसीशोणितोक्षिता ॥ ननादविविधान्नादान्यथाप्रावृषितोयदः ॥ २३॥
साविक्षरंतीरुधिरंबहुधाघोरदर्शना ॥ प्रगृह्यबहुगर्जंतीप्रविवेशमहावनम् ॥ २४ ॥ ततस्तुसाराक्षससंघसंवृतंखरंजन
स्थानगतंविरूपिता ॥ उपेत्यतंभ्रातरमुग्रतेजसंपपातभूमौगगनाद्यथाशनिः ॥ २५ ॥

शब्दसे चिल्लातीहुई जहांसे आईथी उसी वनकी ओर शीघ्रतासे दौडी ॥२२॥ अति भयंकर शरीरवाली कुरूपा वह राक्षसी शरीरमें रुधिर लगाये हुए वर्षा कालीन बादरकी समान विविध प्रकारके शब्द करनें लगी॥२३॥तिसके पीछे वह बांहे उठाकर घावोंसे रुधिर बहाती–गर्जती हुई महा वनमें प्रवेश कर गई ॥ २४ ॥ वहां प्रवेश करके उसी कुरूप रूपसे राक्षसगणोंसे घेरे हुए जनस्थानवासी उग्र तेजवान् अपनें भाई खरके

निकट जाकर आकाशसे वज्रपातकी समान पृथ्वीमें गिरी ॥२५॥ रुधिर जिसके सब अंगोंमें लगा हुआ भय और मोहसे जिसका चित्त ठिकानें नहीं ऐसी उस खरकी बहिन राक्षसी शूर्पणखानें खरसे स्त्री और भ्राताके सहित श्रीरामचन्द्र जीका वनमें आना और उनसे अपने नाक कान काटे जानेंका सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा॰ वा॰ आ॰ पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषानुवादे आर॰ अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥ राक्षसगण खर अपनी बहनको कुरूपा, शरीरमें रुधिर लगा हुआ और पृथ्वीमें पडा हुआ देखकर. क्रोधसे संतापित हो, बूझनें लगा ॥ १ ॥ खरनें कहा, उठकर बैठो, वृत्तान्त तो कहो, मूर्च्छा और चित्त की चपलताको छोडो, साफ़ २ कहो कि किसनें तुमको ऐसा विरूप

ततःसभार्यंभयमोहमूर्छितासलक्ष्मणंराघवमागतंवनम् ॥ विरूपणंचात्मनिशोणितोक्षिताशशंससर्वंभगिनीखरस्य सा ॥ २६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेअष्टादशःसर्गः ॥ १८ ॥ ॥ छ ॥ ॥ तांतथापतितांदृष्ट्वाविरूपांशोणितोक्षिताम् ॥ भगिनींक्रोधसंतप्तःखरःपप्रच्छराक्षसः ॥ १ ॥ उत्तिष्ठतावदाख्याहिप्र मोहंजहिसंभ्रमम् ॥ व्यक्तमाख्याहिकेनत्वमेवंरूपाविरूपिता ॥ २ ॥ कःकृष्णसर्पमासीनमाशीविषमनागसम् ॥ तुदत्यभिसमापन्नमंगुल्यग्रेणलीलया ॥ ३ ॥ कालपाशंसमासज्यकंठेमोहान्नबुध्यते ॥ यस्त्वामद्यसमासाद्यपी तवान्विषमुत्तमम् ॥ ४ ॥ बलविक्रमसंपन्नाकामगाकामरूपिणी ॥ इमामवस्थांनीतात्वंकेनांतकसमागता ॥ ५ ॥ देवगंधर्वभूतानामृषीणांचमहात्मनाम् ॥ कोयमेवंमहावीर्यस्त्वांविरूपांचकारह ॥ ६ ॥

किया? ॥ २॥ किसनें सामने बैठे हुए, कुण्डली बाँधे हुए निरपराध विषधर काले सांपको खेलसेही उंगली के पोरुएसे छेडकर जगायाहै? ॥३ ॥ उसनें तेरे साथ कुत्सित व्यापार कर अब भयंकर विष पिया, अपने गलेमें कालकी फांसी डाली सो वह अज्ञानी इस बात को जो विपत्ति उसके ऊपर पडेगी उसको नहीं समझा है ॥ ४ ॥ बल विक्रम सम्पन्न यमराजकी समान चलनेवाली कामरूपिणी यमसमान तुम किसके पास गईथी, कि जिसनें तुम्हारी यह दशा की है? ॥५ ॥ देव गन्धर्व भूत और महात्मा ऋषि लोगोंमें कौन ऐसा वीर्यवान् है कि–जिसनें

तुमको विरूप किया है। ॥ ६ ॥ देवताओंमें पाकशासन सहस्रलोचन, इन्द्रके सिवाय, ब्राह्मणमें हम ऐसा और किसीको नहीं देखते जो हमारा अप्रिय कार्य करे ॥ ७ ॥ हंस जिस प्रकार जलसे मिले हुए दूधको अलग कर पीलेताहै आज हम भी प्राण हरणकारो तीरोंके समूहसे उसके शरीरसे प्राण अलग करेंगे, कि जिसनें तुमको विरूप किया है ॥ ८ ॥ समर में मुझ करके शरजालद्वारा छिन्न मर्म किस मरे हुए पुरुषका फेन सहित रुधिर पृथ्वीनें पीनेंकी इच्छा की है। ॥ ९ ॥ लडाईमें मुझ करके मारे हुए किस पुरुषके देहसे मांस नोच २ कर आनंद सहित चील गिद्धादि पक्षी खांयगे ॥ १० ॥ हम संग्राममें जिसके ऊपर चढाई करेंगे उस हतभागेको, क्या देवता, क्या गन्धर्व, क्या

नहिपश्याम्यहंलोकेयःकुर्यान्ममविप्रियम् ॥ अमरेषुसहस्राक्षंमहेंद्रंपाकशासनम् ॥ ७ ॥ अद्याहंमार्गणैःप्राणानादा स्येजीवितांतगैः ॥ सलिलेक्षीरमासक्तंनिष्पिबन्निवसारसः ॥ ८ ॥ निहतस्यमयासंख्येशरसंकृत्तमर्मणः ॥ सफेनं रुधिरंकस्यमेदिनीपातुमिच्छति ॥ ९ ॥ कस्यपत्ररथाःकायान्मांससमुत्कृत्यसंगताः ॥ प्रहृष्टाभक्षयिष्यंतिनिहत स्यमयारणे ॥ १० ॥ तंनदेवानगंधर्वानपिशाचानराक्षसाः ॥ मायापकृष्टंकृपणंशक्तास्त्रातुंमहाहवे ॥ ११ ॥ उपा लभ्यशनैःसंज्ञातंमेशंसितुमर्हसि ॥ येनत्वंदुर्विनीतेनवनेविक्रम्यनिर्जिता ॥ १२ ॥ इतिभ्रातुर्वचःश्रुत्वाक्रुद्धस्यचाविशे पतः ॥ ततःशूर्पणखावाक्यंसबाष्पमिदमब्रवीत् ॥ १३ ॥ तरुणौरूपसंपन्नौसुकुमारौमहाबलौ ॥ पुंडरीकवि शालाक्षौचीरकृष्णाजिनांबरौ ॥ १४ ॥ फलमूलाशनौदांतौतापसौब्रह्मचारिणौ ॥ पुत्रौदशरथस्यास्तांभ्रातरौराम लक्ष्मणौ ॥ १५ ॥ गंधर्वराजप्रतिमौपार्थिवव्यंजनान्वितौ ॥ देवौवादानवावेतौनतर्कयितुमुत्सहे ॥ १६ ॥

पिशाच, क्या राक्षस, कोई भी उद्धार करनेंको समर्थ नहीं होगा ॥ ११ ॥ इस समय तुम सहज २ सावधान होकर हमसे कहो कि किस दुष्ट व्यक्ति नें वनमें पराक्रम प्रकाश करके तुमको पराजय किया है। ॥ १२ ॥ महा क्रोधित हुए अपनें भाई खरके यह वचन सुनकर शूर्पणखा आंसू पोंछती हुई बोली ॥ १३ ॥ कि तरुण, रूपसम्पन्न, सुकुमार, महाबलवान् कमलनयन चीर व मृग चर्म धारण किये ॥ १४ ॥ कन्द मूल फलके खानेवाले, जितेन्द्रिय, तपस्वी, ब्रह्मचारी राजा दशरथके दो पुत्र राम, व लक्ष्मण ॥ १५ ॥ वह देखनेंमें गन्धर्वराजकी समान

... ॥ १६ ॥ हमने देखा है
और राजलक्षणोंकरके युक्त जान पडतेहैं। वह दोनों जन देव हैं; अथवा दानव इसका कुछ निश्चय नहीं हो सकता ॥ १६ ॥ हमने देखा है
कि वहां पर उन दोनों जनोंके साथ एकरूपवती सब भूषण धारण किये हुए युवाअवस्थाको प्राप्त एक स्त्रीभीहै ॥ १७ ॥ उन दोनों भाइयोंनें
मिलकर उस स्त्रीके कहनेसे, जैसे कोई अनाथ कुलटा स्त्रीकी दुर्दशा करताहै, वही दशा हमारी की अर्थात् नाक कान काट डाले ॥ १८ ॥
हम कुटिल चरित्रवाली उस स्त्रीका और उन दोनों जनोंका झाग सहित रुधिर समरमें पान करनेकी इच्छा करतीहैं ॥ १९ ॥ तुम हमारी यह
पहली अभिलाषा पूर्ण करो हम संग्राममें उस स्त्रीका और उन दोनों का खून पियेंगी ॥ २० ॥ जब शूर्पणखाने यह वचन कहे तब खर

तरुणीरूपसंपन्नासर्वाभरणभूषिता॥ दृष्टातत्रमयानारीतयोर्मध्येसुमध्यमा ॥ १७ ॥ ताभ्यामुभाभ्यांसंभूयप्रम
दामधिकृत्यताम्॥ इमामवस्थांनीताहंयथाऽनाथाऽसतीतथा ॥ १८॥ तस्याश्चानृजुवृत्तायास्तयोश्चहतयोरहम्॥
सफेनंपातुमिच्छामिरुधिरंरणमूर्धनि ॥ १९ ॥ एषमेप्रथमःकामःकृतस्तत्रत्वयाभवेत्॥ तस्यास्तयोश्चरुधिरंपिबे
यमहमाहवे ॥ २० ॥ इतितस्यांब्रुवाणायांचतुर्दशमहाबलान्॥ व्यादिदेशखरःक्रुद्धोराक्षसानंतकोपमान्॥ २१ ॥
मानुषौशस्त्रसंपन्नौचीरकृष्णाजिनांबरौ॥ प्रविष्टौदंडकारण्यंघोरंप्रमदयासह ॥ २२ ॥ तौहत्वातांचदुर्वृत्तामुपावर्ति
तुमर्हथ॥ इयंचभगिनीतेषांरुधिरंममपास्यति॥ २३॥ मनोरथोयमिष्टोस्याभगिन्याममराक्षसाः॥ शीघ्रंसंपाद्यतां
गत्वातौप्रमथ्यस्वतेजसा॥२४॥ युष्माभिर्निहतौदृष्ट्वातावुभौभ्रातरौरणे॥इयंप्रहृष्टामुदितारुधिरंयुधिपास्यति॥२५॥

ने क्रोधित होकर महाबलवान् [१४] राक्षसोंको आज्ञादी कि ॥ २१ ॥ शस्त्र लगाए हुए चीर व मृगचर्म पहरे हुए, दो मनुष्य घोर दण्डका
रण्यमें स्त्रीसहित आये हैं ॥ २२ ॥ सो तुम उन दोनों जनोंको और उस दुष्टा स्त्रीको मार करके लौट आओ क्योंकि हमारी यह बहन उन
का रुधिर पियेगी ॥ २३ ॥ हे राक्षसो! तुम लोग शीघ्र जाकर बलसे उन दोनोंजनोंको संहार करके हमारी बहनका यह अभीष्ट मनोरथ पूरा
करो ॥ २४ ॥ तुमनें युद्धमें उन दोनों भाइयोंको मार डालाहै सो देखकर हमारी यह बहन अतिशय संतोषित और हर्षित होकर युद्धके

स्थलमें उनका रुधिर पियेगी ॥ २५ ॥ इस प्रकारकी आज्ञा पाकर यह चौदह राक्षस वायुसे चलायमान मेघको समान शूर्पणखाके साथ जहां श्रीरामचन्द्रजीथे, उस स्थानकी यात्रा करते हुए ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आर० एकोनविंशःसर्गः ॥ १९ ॥ तिसके पीछे शूर्पणखा श्रीरामचन्द्रजीके आश्रममें आई, और राक्षसोंको सीताजीके सहित उन दोनों भ्राताओंको दिखा दिया ॥ १ ॥ उन राक्षसों नें पर्णशालामें महाबलवान् श्रीरामचन्द्रजीको श्रीसीताजीके सहित बैठा और लक्ष्मणजीसे सेवित देखा ॥ २ ॥ श्रीमान् रघुनन्दन रामचन्द्रजी इन राक्षसोंको आया हुआ देखकर दीप्तिसे तेजमान भ्राता लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ३ ॥ हे लक्ष्मण! एक घडीभर तुम सीताजीके निक

इतिप्रतिसमादिष्टाराक्षसास्तेचतुर्दश ॥ तत्रजग्मुस्तयासार्धंघनावातेरिताइव ॥ २६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेएकोनविंशःसर्गः ॥१९॥ ॥छ॥ ॥ ततःशूर्पणखाघोराराघवाश्रममागता॥ राक्षसानाचचक्षेतौभ्रातरौसहसीतया ॥ १ ॥ तेरामंपर्णशालायामुपविष्टंमहाबलम् ॥ ददृशुःसीतयासार्धंलक्ष्मणेनापिसेवितम् ॥ २ ॥ तांदृष्ट्वाराघवःश्रीमानागतांस्तांश्चराक्षसान् ॥ अब्रवीद्भ्रातरंरामोलक्ष्मणंदीप्ततेजसम् ॥ ३ ॥ मुहूर्तंभवसौमित्रेसीतायाःप्रत्यनंतरः ॥ इमानस्यावधिष्यामिपदवीमागतानिह ॥ ४ ॥ वाक्यमेतत्ततःश्रुत्वारामस्यविदितात्मनः ॥ तथेतिलक्ष्मणोवाक्यंराघवस्यप्रपूजयन् ॥ ५ ॥ राघवोपिमहच्चापंचामीकरविभूषितम् ॥ चकारसज्जंधर्मात्मातानिरक्षांसिचाब्रवीत् ॥ ६ ॥ पुत्रौदशरथस्यावांभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ प्रविष्टौसीतयासार्द्धंदुश्चरंदंडकावनम् ॥ ७ ॥ फलमूलाशनौदांतौतापसौब्रह्मचारिणौ ॥ वसंतौदंडकारण्येकिमर्थमुपहिंसथ ॥ ८ ॥

ट रहो। इतनेमें हम इस राक्षसीके पक्षपाती इन सब राक्षसोंको मार डालें ॥ ४ ॥ तब विदितात्मा लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीके वचन श्रवण करके तथास्तु कह उनकी बात शिरमाथे चढाते हुए ॥ ५ ॥ व इधर धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रभी सुवर्णभूषित महाधनुषमें रोदा चढाय इन सब राक्षसोंसे बोले ॥ ६ ॥ हम दो भ्राता हैं, नाम हमारा राम व लक्ष्मण है राजा दशरथजीके पुत्र हैं; हम सीता सहित इस दुर्गम दण्डकारण्यमें आयेहैं ॥ ७ ॥ हम फल मूल खानेवाले अपनी इन्द्रियोंको जीतेहुएहैं तपस्वी और धर्मचारी होकर दण्डकारण्यमें वास करतेहैं,

सो तुम किसकारण हमारें ऊपर चढाई करते हो॥८॥ यदि कहो कि तुम तपस्वी होकर धनुष क्यों धारण किये हो तौ इसका उत्तर यह है कि तुम लोग पापात्मा हो सो महावनमें ऋषि लोगोंकी आज्ञासे हम तुमको विनाश करनेके लिये धनुष धारणकर यहां आयेहैं ॥ ९ ॥ सन्तुष्ट हो कर इसी स्थानमें खडे रहो, और आगे न बढो; हे निशाचरगण! यदि प्राणोंका मोह होवे, और तुम इसका प्रयोजन समझते हो तौ यहांसे लौट जाओ हम किसीको नहीं मारेंगे ॥ १० ॥ ब्रह्मघाती, शूलधारी, भयंकर यह चौदह राक्षस श्रीरामचंद्रजीके यह वचन श्रवण करके महाक्रोधित हो बोले ॥ ११ ॥ सबही लाल २ नेत्र कर रामचंद्रके प्रति कठोर वचन कहते थे वह सब श्रीरामचंद्रजीके परा

युष्मान्पापात्मकान्हंतुंविप्रकारान्महाहवे ॥ ऋषीणांतुनियोगेनसंप्राप्तःसशरासनः ॥ ९॥ तिष्ठतैवात्रसंतुष्टानोपाव र्तितुमर्हथ ॥ यदिप्राणैरिहार्थोवोनिवर्तध्वंनिशाचराः ॥ १० ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाराक्षसास्तेचतुर्दश ॥ ऊचुर्वाचंसु संक्रुद्धाब्रह्मघ्नाःशूलपाणयः ॥११॥ संरक्तनयनाघोरारामंसंरक्तलोचनम्॥परुषामधुराभाषंहृष्टादृष्टपराक्रमम् ॥१२॥ क्रोधमुत्पाद्यनोभर्तुःखरस्यसुमहात्मनः ॥ त्वमेवहास्यसेप्राणान्सद्योस्माभिर्हतोयुधि ॥१३॥ काहितेशक्तिरेकस्यब हूनांरणमूर्धनि ॥ अस्माकमग्रतःस्थातुंकिंपुनर्योद्धुमाहवे ॥ १४॥ एभिर्बाहुप्रयुक्तैश्चपरिघैःशूलपट्टिशैः ॥ प्राणांस्त्य क्ष्यसिवीर्यंचधनुश्चकरपीडितम् ॥ १५ ॥ इत्येवमुक्त्वासंरब्धाराक्षसास्तेचतुर्दश ॥ उद्यतायुधनिस्त्रिंशारामभेवाभि दुद्रुवुः ॥ १६ ॥ चिक्षिपुस्तानिशूलानिराघवंप्रतिदुर्जयम् ॥ तानिशूलानिकाकुत्स्थःसमस्तानिचतुर्दश ॥ १७ ॥

क्रमको नहीं जानतेथे इससे हर्षयुतहो मधुर वचन बोलनेंवाले श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ १२ ॥ तुमने हमारे प्रभु महात्मा खरको क्रोध उपजा याहै, इस कारण अभी युद्धमें हमारे हाथसे मारे जाकर तुमको शीघ्रही प्राण छोडने पडेंगे ॥ १३ ॥ तुम इकले हो और हम बहुतहैं, इसलिये लडाईमें युद्ध करना तौ दूर रहै हमारे सामनें भी तुम खडे नहीं हो सकोगे ॥ १४ ॥ हमारे इन बाहोंसे परिघ, शूल, और पटासे घायल होकर तुमको प्राण, वीर्य और हाथमें धारण किया हुआ धनुष त्याग करना पडेगा ॥ १५ ॥ यह चौदह राक्षस इस भांतिसे कहकर महा क्रोधित हो आयुध और खड्ग उठाकर श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख दौडे ॥१६॥ और यह सब दुर्जय अस्त्र शस्त्र शूलादि श्रीरामचंद्रजीके ऊपर चलानें

लगे । उन चौदह राक्षसोंके चलाये हुए शूल आदि श्रीरामचंद्रजीनें ॥ १७ ॥ चौदहही स्वर्ण भूषित बाणोंसे काटकर फेंक दिये । तत्प श्चात् महातेजवान् श्रीरामचंद्रजीनें सूर्यकी समान प्रभावाले बाण ग्रहणकर ॥ १८ ॥ उनको धनुष पर चढाय महा क्रोधवान् हो चौदह राक्ष सोंको ताक कर शिलपशाणित नामक बाण ॥ १९ ॥ छोडे, जिस प्रकार इन्द्र वज्र छोडतेहैं । यह सब नाराच अति वेगसे राक्षसोंकी छातियों में प्रवेश कर रुधिरमें सन ॥ २० ॥ पृथ्वीमें गिरे जिस प्रकार वँमईमें से सांप निकला करतेहैं।राक्षसभी इन सब बाणोंसे छिन्न भिन्न हृदयहो पृथ्वी में गिरे । जैसे जड कटे हुए वृक्ष भूमिमें गिर पडतेहैं ॥२१॥ वह राक्षस कलेजेमें बाण लगनेके कारण रुधिरमें सराबोर हो रहेथे, प्राण जाते रहेथे

तावद्भिरेवचिच्छेदशरैःकांचनभूषितैः ॥ ततःपश्यन्महातेजानाराचान्सूर्यसन्निभान् ॥ १८ ॥ जग्राहपरमक्रुद्धश्च तुर्दशशिलाशितान् ॥ गृहीत्वाधनुरायम्यलक्ष्यानुद्दिश्यराक्षसान् ॥१९॥ मुमोचराघवोबाणान्वज्रानिवशतक्रतुः ॥ तेभित्त्वारक्षसांवेगाद्वक्षांसिरुधिरप्लुताः ॥ २० ॥ विनिष्पेतुस्तदाभूमौवल्मीकादिवपन्नगाः ॥ तैर्भग्नहृदयाभूमौभि न्नमूलाइवद्रुमाः ॥२१॥ निपेतुःशोणितस्नाताविकृताविगतासवः ॥ तान्भूमौपतितान्दृष्ट्वाराक्षसीक्रोधमूर्च्छिता २२ ॥ उपगम्यखरंसातुकिंचित्संशुष्कशोणिता ॥ पपातपुनरेवार्तासनिर्यासेववल्लरी॥ २३ ॥ भ्रातुःसमीपेशोकार्तासससर्ज निनदंमहत् ॥ सस्वरंमुमुचेबाष्पंविवर्णवदनातदा ॥ २४ ॥ निपातितान्प्रेक्ष्यरणेतुराक्षसान्प्रधाविताशूर्पणखापुन स्ततः ॥ वधंचतेषांनिखिलेनरक्षसांशशंससर्वंभगिनीखरस्यसा ॥ २५ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआ दिकाव्येआरण्यकांडेविंशतितमःसर्गः ॥ २० ॥

उनकी सूरतें विगडगईथीं ऐसा उन राक्षसोंको गिरा हुआ देखकर राक्षसी शूर्पणखा क्रोधसे अधीरा होकर ॥ २२ ॥ अपने भाई खरके पास जा फिर कातरहो गिर पडी उस समय उसके शरीरका रक्त कुछेक सूख गयाथा इस कारण वह गोंद लगी लताके समान दृष्टि आतीथी ॥ २३॥ राक्षसी अपने भ्राता खरके निकट शोकसे पीड़ितहो घोर चिल्लाने लगी और उदासीन मुख व विकट शब्दसे रोने लगी ॥ २४ ॥ खरकी बहन शूर्पणखा राक्षसी राक्षसोंको मराहुआ देख वेगसे दौडआकर खरसे बोली कि राक्षस सब मारे गये ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा

मायणे आदिकाव्ये वाल्मीकीये आरण्यकांडे विंशतितमःसर्गः ॥ २० ॥ अनर्थके निमित्त आईहुई शूर्पणखाको फिर पृथ्वीमें पड़ा
देखकर खर क्रोधमें भर फिर जोरसे कहनें लगा ॥ १ ॥ कि हमनें तुम्हारा प्रिय कार्य करनेंके लिये मांस खानेवाले, चौदह राक्षसोंको आज्ञादीथी
सो अब फिर तुम किस कारणसे रो रहीहो? ॥ २ ॥ वह राक्षस जो कि हमनें भेजेहैं सब हमारे अनुरागी भक्त और सदाही हित करनेंवालेहैं
वह किसीके मारेसे मरनेंवाले नहींहैं और सबही अंतःकरणसे हमारी आज्ञाका पालन करते रहतेहैं ॥ ३ ॥ फिर तुम किस कारण हानाथ
कह वार २ चिल्लाकर सर्पकी समान लोट रहीहो सो इसका क्या कारणहै! उसको मैं जानना चाहताहूं ॥ ४ ॥ हमसा रक्षक होनेंपरभी तुम

सपुनःपतितांदृष्ट्वाक्रोधाच्छूर्पणखांपुनः ॥ उवाचव्यक्तयांवाचातामनर्थार्थमागताम् ॥ १ ॥ मयात्विदानींशूरास्तेरा
क्षसाःपिशिताशनाः ॥ त्वत्प्रियार्थंविनिर्दिष्टाःकिमर्थंरुद्यतेपुनः ॥ २ ॥ भक्ताश्चैवानुरक्ताश्चहिताश्चममनित्यशः ॥
हन्यमानानहन्यंतेनकुर्युर्वचोमम ॥३॥ किमेतच्छ्रोतुमिच्छामिकारणंयत्कृतेपुनः॥हानाथेतिविनर्दंतीसर्पवच्चेष्टसे
क्षितौ ॥ ४ ॥ अनाथवद्विलपसिकिंनुनाथेमयिस्थिते ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठमामैवंवैक्लव्यंत्यज्यतामिति ॥५॥ इत्येवमु
क्तादुर्धर्षाखरेणपरिसांत्विता ॥ विमृज्यनयनेसास्रेखरंभ्रातरमब्रवीत् ॥ ६ ॥ अस्मीदानीमहंप्राप्ताहतश्रवणना
सिका ॥ शोणितौघपरिक्लिन्नात्वयाचपरिसांत्विता ॥ ७॥ प्रेषिताश्चत्वयाशूराराक्षसास्तेचतुर्दश ॥ निहंतुंराघवं
घोरंमत्प्रियार्थंसलक्ष्मणम् ॥ ८॥ तेतुरामेणसामर्षाःशूलपट्टिशपाणयः॥ समरेनिहताःसर्वेसायकैर्मर्मभेदिभिः ॥ ९ ॥

किस कारण अनाथकी समान विलाप करतीहो! उठो और शोकका त्याग करो ॥ ५ ॥ खरनें जब इस प्रकार कहकर विशेष भांतिसे शूर्प
णखाको समझाया बुझाया तब दुर्द्धर्ष शूर्पणखा आंसूभरे नेत्रोंको पोंछ बोली ॥ ६ ॥ कि हमारे नाक कान दोनोंही गयेहैं और मैं खूनसे भीज
गईहूं इस अवस्थामें पहले की समान फिर तुम्हारे पास आईहूं और तुमने हमको बहुत समझाया बुझाया ॥ ७ ॥ परन्तु तुमनें जो हमारा प्रिय
कार्य करनेंकी कामनासे लक्ष्मण सहित भयानक रामचंद्रको मार डालनेंके लिये जो वीर चौदह राक्षस भेजेथे ॥ ८ ॥ रामचंद्रनें मर्मभेदी

बाणोंको छोडकर शूल, पटा आदि, हाथमें लिये हुए क्रोधपरायण, उन सबही राक्षसोंको युद्धमें मारडाला॥९॥ अतिशय तेजस्वी राक्षसोंको क्षण भरमेंही पृथ्वी पर पडा हुआ देख और रामचंद्रका यह भारी कार्यदेख मुझको महा भय लगताहै॥१०॥मैं डरी हुईहूं, उत्कंठितहूं, और विषादित होकर सबही जगह भय देखती हुई तुम्हारी शरणमें आईहूं ॥११॥ तुम किस कारणसे हमारा उद्धार नहीं करते? हम विषाद रूप मगर और गोहोंसे भरे हुए तरङ्ग उठते हुए गंभीर शोक सागरमें डूब रहींहैं॥१२॥जो मांस खानेवाले राक्षस हमारे साथ तुमनें भेजेथे उन सबको रामचंद्रनें तीखे बाणोंसे मारडाला ॥१३॥ यदि हमारे ऊपर और उन सब राक्षसोंकी सन्तानोंके ऊपर तुमको दयाहो, यदि रामचंद्रसे युद्ध करनेकी शक्ति और

तान्भूमौपतितान्दृष्ट्वाक्षणेनैवमहाजवान् ॥ रामस्यचमहत्कर्ममहांस्त्रासोभवन्मम ॥ १० ॥ सास्मिभीता समुद्विग्नाविषण्णाचनिशाचर ॥ शरणंत्वांपुनःप्राप्तासर्वतोभयदर्शिनी ॥ ११ ॥ विषादनक्राध्युषितेपरित्रासोर्मिमालिनि ॥ किंमांनत्रायसेमग्नांविपुलेशोकसागरे ॥ १२ ॥ एतेचनिहताभूमौरामेणनिशितैःशरैः ॥ येचमेपदवींप्राप्ताराक्षसाःपिशिताशनाः ॥ १३ ॥ मयितेयद्यनुक्रोशोयदिरक्षःसुतेषुच ॥ रामेणयदिशक्तिस्तेतेजोवास्तिनिशाचर ॥ १४ ॥ दंडकारण्यनिलयंजहिराक्षसकंटकम्॥यदिराममामित्रघ्नंनत्वमद्यवधिष्यसि ॥१५ ॥तवचैवाग्रतःप्राणांस्त्यक्ष्यामिनिरपत्रपा॥बुद्ध्याहमनुपश्यामिनत्वंरामस्यसंयुगे ॥ १६ ॥ स्थातुंप्रतिमुखेशक्तःसबलोपिमहारणे ॥ शूरमानीनशूरस्त्वंमिथ्यारोपितविक्रमः॥१७॥अपयाहिजनस्थानात्त्वरितःसहबांधवः॥जहित्वंसमरेमूढान्यथातुकुलपांसन॥१८॥

तेज तुममेंहो ॥ १४ ॥ तब तो राक्षस कुलके कण्टक रूप दंडकारण्यवासी रामचंद्रको आजही मारडालोयदि शत्रु ओंके मारनेवाले रामचंद्रको तुम आजही संहार न कर डालोगे ॥ १५॥ तो हम लाजरहित होकर तुम्हारे सामनेंही प्राण त्याग करेंगी क्योकि हमें अपनी बुद्धिसे जान पडता है कि तुम संग्राममें ॥ १६॥ रामचंद्रके सामने खडे न हो सकोगे यद्यपि तुम्हारे साथ चतुरंगिनी सेनाभी भारीहै और तुम अपनेको शूर कहकर अभिमानभी करतेहो किन्तु वास्तवमें तुम शूर नहीं हो और तुम्हारा विक्रमभी मिथ्या कहनेकेही लियेहै ॥ १७ ॥ हे मूढ! हे कुलाधम,

तुम इस मुहूर्त्तही बन्धु बान्धव कुटुम्ब सहित इस जनस्थानसे भाग जाओ ॥ १८ ॥ नहीं तो राम और लक्ष्मणको संग्रा संहार करो, राम लक्ष्मण मनुष्यहैं यदि उनको मारनेकीभी सामर्थ्य तुममें नहींहै तो हीनवीर्य दुर्बल होकर किस प्रकारसे यहां रह सकोंगे ॥ १९ ॥ रामचंद्रके तेजसे निन्दितहो थोडेही समयमें तुम्हारा नाश हो जायगा । दशरथकुमार रामचंद्र स्वभावसेही अतिशय तेज मानहैं ॥ २० ॥ और उनके भाई लक्ष्मणभी महावीर्यवानहैं कि जिन्होंनें हमारे नाक कान काट डालेहैं इस प्रकारसे वह बडे उदरवाली राक्षसी बहुत भांतिसे विलाप कर॥२१॥अपने भ्राता खरके निकट शोकके मारे व्याकुलहो अचेतन होगई और दुःखसे व्याकुलहो दोनों हाथोंसे छाती पीटर

मानुषौतौनशक्तोषिहंतुंवैरामलक्ष्मणौ ॥ निःसत्त्वस्याल्पवीर्यस्यवासस्तेकीदृशस्त्विह ॥ १९॥ रामतेजोभिभूतो हित्वंक्षिप्रंविनशिष्यसि ॥ सहितेजःसमायुक्तोरामोदशरथात्मजः ॥ २० ॥ भ्राताचास्यमहावीर्योयेनचास्मि विरूपिता ॥ एवंविलप्यबहुशोराक्षसीप्रदरोदरी ॥ २१ ॥ भ्रातुःसमीपेशोकार्तानष्टसंज्ञाबभूवह ॥ कराभ्यामुद रंहत्वारुरोदभृशदुःखिता ॥२२॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआ०आरण्यकांडेएकविंशःसर्गः ॥२१॥ एवमा धर्षितःशूरःशूर्पणख्याखरस्ततः ॥ उवाचरक्षसांमध्येखरःखरतरंवचः ॥ १॥ तवापमानप्रभवःक्रोधोयमतुलोमम ॥ नशक्यतेधारयितुंलवणांभइवोल्बणम् ॥२॥ नरामंगणयेवीर्यान्मानुषंक्षीणजीवितम् ॥ आत्मदुश्चरितैःप्राणान्हतो योद्यविमोक्ष्यते ॥ ३ ॥ बाष्पःसंधार्यतामेषसंभ्रमश्चविमुच्यताम् ॥ अहंरामंसहभ्रात्रानयामियमसादनम् ॥ ४ ॥

कर रोनें लगी ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० आर० एकविंशः सर्गः ॥२१॥ शूर्पणखानें जब क्रोधमें भरकर इस प्रकार खरका तिरस्कार किया तब तेजस्वभाववाला शूरवीर खर राक्षसोंकी सभाके बीचमें उससे कठोर वचन कहने लगा ॥१॥ कि तुम्हारा अपमान होनेसे जो क्रोध हमको हुआहै उसकी तुलना नहींहै घावमें छोडे हुए नमकीन जलकी समान इस क्रोधको धारण करनेंकी हममें शक्ति नहींहै ॥२॥रामचंद्र और लक्ष्मण तो मनुष्यहैं. हममें जो पराक्रमहै उससे हम रामको कुछ नहीं गिनते उस रामनें जो कुकर्म कियाहै उसके पापसे वह आजही निहत होकर प्राण त्याग करेगा ॥ ३ ॥ इसकारण तुम रोना धोना छोड डरका त्याग करो हम अवश्यही रामके सहित लक्ष्मणको यमपुरीमें

पठावेंगे ॥ ४ ॥ अयि राक्षसि ! अब मरणोन्मुख रामचंद्रजी जब हमारे शरसे घायल होकर मर जायगा तब तुम उसका लाल २ गरम २ रुधिर पान करना ॥ ५ ॥ शूर्पणखा खरके मुखसे निकले हुए यह वचन सुन मोहसे अधिक हर्षमें भर फिर उस राक्षसश्रेष्ठ खरकी बडाई करनें लगी ॥ ६ ॥ जब निशाचरी शूर्पणखानें प्रथम निन्दाकी और फिर प्रशंसाकी तब तत्क्षण खर दूषण नामक अपने सेनापतिसे बोला ॥ ७ ॥ कि हे शुभदर्शन ! जो सब भांतिसे हमारा प्रिय अनुष्ठान करनेंवालेहैं जो कभी युद्धमें पीठ नहीं दिखाते अति वेगवान् भयंकर चौदह हजार राक्षस ॥ ८ ॥ जो लोगोंकी हत्या करके सदा खेला करतेहैं जिनका पराक्रम भयानक और जिनका वर्ण नीले बादरकी समानहै ऐसे राक्षसोंको

परश्वधहतस्याद्यमंदप्राणस्यभूतले ॥ रामस्यरुधिरंरक्तमुष्णंपास्यसिराक्षसि ॥ ५ ॥ संप्रहृष्टावचःश्रुत्वाखरस्य वदनाच्च्युतम् ॥ प्रशशंसपुनर्मौर्ख्याद्भ्रातरंरक्षसांवरम् ॥ ६ ॥ तयापरुषितःपूर्वंपुनरेवप्रशंसितः ॥ अब्रवीद्दूषणं नामखरःसेनापतिंतदा ॥७॥ चतुर्दशसहस्राणिममचित्तानुवर्तिनाम् ॥ रक्षसांभीमवेगानांसमरेष्वनिवर्तिनाम् ॥८॥ नीलजीमूतवर्णानांलोकहिंसाविहारिणाम् ॥ सर्वोद्योगमुदीर्णानांरक्षसांसौम्यकारय ॥ ९ ॥ उपस्थापयमेक्षिप्रं रथंसौम्यधनूंषिच ॥ शरांश्चचित्रान्खड्गांश्चशक्तीश्चविविधाःशिताः ॥ १० ॥ अग्रेनिर्यातुमिच्छामिपौलस्त्यानां महात्मनाम् ॥ वधार्थंदुर्विनीतस्यरामस्यरणकोविद ॥११॥ इतितस्यब्रुवाणस्यसूर्यवर्णमहारथम् ॥ सदश्वैःशबलै र्युक्तमाचचक्षेथदूषणः ॥ १२ ॥ तंमेरुशिखराकारंतप्तकांचनभूषणम् ॥ हेमचक्रमसंबाधंवैदूर्यमयकूबरम् ॥ १३ ॥

सब प्रकारसे सजाकर हमारे सामनें लाओ ॥ ९ ॥ इसके सिवाय शीघ्र चलनेंवाला रथ, धनुष, विचित्र बाणसमूह तेजधारवाली अनेक भांतिकी शक्तियें और खड्गभी ले आओ ॥ १० ॥ हे रणपंडित ! महानुभव राक्षसोंके प्रथमही; हम महात्मा पुलस्त्यवंशसे उत्पन्न, जो रामचंद्र राक्षसोंको मारनेंके लिये आयेहैं उन दुर्विनीत रामचंद्रके वधार्थ संग्राममें जानेंकी इच्छा करतेहैं ॥ ११ ॥ खरनें जब इस प्रकार कहा तो दूषण तुरन्तही विचित्र वर्णवाले श्रेष्ठ घोडे जिसमें जुते हुए सूर्यकी समान चमकता हुआ रथ खरके समीप ले आया ॥ १२ ॥ इस रथका आकार मेरु

पर्वतकी समान सब गहनें इसमें तपाए हुए सुवर्णके लगेथे पहिये सुवर्णके बनेथे और दोनों गुम्भजभी वैदूर्य मणिके बनेथे ॥ १३ ॥ जिसमें मछली पुष्प, द्रुम, शैल, चन्द्रकान्त मणि यह सुवर्णके लगे हुएथे और सुवर्णकेही पक्षि और तारागणभी इस रथमें जड रहेथे ॥ १४ ॥ छोटी २ पेटिया, इसमें लगी हुईथीं खर क्रोधमें भरा हुआ, कुछभी विलम्ब न करके ध्वजा पताका युक्त अच्छे घोडों करके चलाये जाते हुए रथपर सवार हुआ ॥ १५ ॥ खरको सवार हुआ देखकर दूषणनें रथ चर्म आदि हथियार लिये, ध्वजा युक्त बडी सेनाको युद्धके लिये कूच करनेंकी आज्ञादी उसनें जब सब राक्षसोंसे इस प्रकार कहा ॥ १६ ॥ तब भयंकर चर्म ध्वजा युक्त वह राक्षसोंकी सेना महावेगसे महाकुलाहल मचाती हुई जन

मत्स्यैःपुष्पैर्द्रुमैःशैलैश्चंद्रकांतैश्चकांचनैः॥मांगल्यैःपक्षिसंघैश्चताराभिश्चसमावृतम् ॥१४॥ध्वजनिस्त्रिंशसंपन्नंकिंकिणीवरभूषितम् ॥ सदश्वयुक्तंसोमर्षादारुरोहखरस्तदा ॥ १५ ॥ खरस्तुतन्महत्सैन्यंरथचर्मायुधध्वजम् ॥निर्यातेत्यब्रवीत्प्रेक्ष्यदूषणःसर्वराक्षसान् ॥ १६ ॥ ततस्तद्राक्षसंसैन्यंघोरचर्मायुधध्वजम् ॥ निर्जगामजनस्थानान्महानादंमहाजवम् ॥ १७ ॥ मुद्गरैःपट्टिशैःशूलैःसुतीक्ष्णैश्चपरश्वधैः ॥ खड्गैश्चक्रैरथस्थैश्चभ्राजमानैःसतोमरैः ॥ १८ ॥शक्तिभिःपरिघैर्घोरैरतिमात्रैश्चकार्मुकैः ॥ गदासिमुसलैर्वज्रैर्गृहीतैर्भीमदर्शनैः ॥ १९ ॥ राक्षसानांसुघोराणांसहस्राणिचतुर्दश ॥ निर्यातानिजनस्थानात्खरचित्तानुवर्तिनाम् ॥ २० ॥ तांस्तुनिर्धावतोदृष्ट्वाराक्षसान्भीमदर्शनान् ॥ खरस्याथरथःकिंचिज्जगामतदनंतरम् ॥ २१ ॥ ततस्ताञ्छबलानश्वांस्तप्तकांचनभूषितान् ॥ खरस्यमतमाज्ञायसारथिःपर्यचोदयत् ॥ २२ ॥

स्थानसे चली ॥ १७ ॥ उस सेनामें राक्षस मुद्गर, पटा, तेजशूल, फरशे, खड्ग, चक्र, व तोमरादि शस्त्र धारण किये शोभायमान थे ॥ १८ ॥ शक्ति, परिघ, महा भयंकर धनुष, गदा, तलवार, मूसल और भयंकर अस्त्र शस्त्र ग्रहण कर राक्षस जनस्थानसे निकले ॥ १९ ॥ इस प्रकार खरके मनकी बात करनेंवाले बडे भयंकर स्वरूप चौदह हजार राक्षस जनस्थानसे बाहर हुए ॥ २० ॥ वह भयंकर राक्षस जब महा वेगसे दौडे तब इसको देखकर खरका रथभी कुछ तिनके निकटही पहुँचा ॥ २१ ॥ सारथिनें खरकी आज्ञा जानकर विचित्र वर्णवाले सुवर्णके गहनें पहनें

घोडोंको शीघ्रतासे चलाया ॥२२॥ उस समय रिपुघाती खरका चलताहुआ रथ अपनें शब्दसे सहसा दिशा विदिशाओंको भर देता हुआ ॥२३॥ अतिबलवान् वह बडे स्वरवाला खर क्रोधमें भर यमराजकी समान शत्रु संहार करनेंमें विशेष शीघ्रतायुक्त हो ओले वर्षानेंवाले महा मेघकी समान गर्जताहुआ सारथीसे बोला कि रथ जल्दी २ चलाओ ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आ० द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥ जब इस प्रकारके वह भयंकर राक्षसोंकी सेना युद्ध करनेंके लिये चली, तब गंधर्वकी समान धूसरवर्ण महा डरावने मेघ आकाशमें उठकर

संचोदितोरथःशीघ्रंखरस्यरिपुघातिनः ॥ शब्देनापूरयामासादिशःसप्रदिशस्तथा ॥ २३ ॥ प्रवृद्धमन्युस्तुखरःखर स्वरोरिपोर्वधार्थंत्वरितोयथांतकः ॥ अचूचुदत्सारथिमुन्नदन्पुनर्महाबलोमेघइवाश्मवर्षवान् ॥ २४ ॥ इत्यार्षेश्रीम द्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेद्वाविंशःसर्गः ॥ २२ ॥ ॥ ७ ॥ तत्प्रयातंबलंघोरमशिवंशोणितो दकम् ॥ अभ्यवर्षन्महाघोरस्तुमुलोगर्दभारुणः ॥ १ ॥ निपेतुस्तुरगास्तस्यरथयुक्तामहाजवाः ॥ समेपुष्पचिते देशेराजमार्गेयदृच्छया ॥ २ ॥ श्यामंरुधिरपर्यंतंबभूवपरिवेषणम् ॥ अलातचक्रप्रतिमंप्रतिगृह्यदिवाकरम् ॥ ३ ॥ ततोध्वजमुपागम्यहेमदंडंसमुच्छ्रितम् ॥ समाक्रम्यमहाकायस्तस्थौगृध्रःसुदारुणः ॥ ४ ॥ जनस्थानसमीपेच समाक्रम्यखरस्वनाः ॥ विस्वरान्विविधान्नादान्मांसादान्मृगपक्षिणः ॥ ५ ॥

कडा शब्द करके रुधिर मिला हुआ जल वर्षानें लगे ॥१॥ खरके रथमें जो तेज चलनेवाले घोडे जुत रहेथे वह राजमार्गमें चलनेंके समय सहसा कुल बिछी हुई बराबर हुई पृथ्वीमें गिर पडे ॥ २ ॥ सूर्य मंडलके चारों ओर श्यामवर्णका घेरा बन गया इस घेरका बाहरी भाग अरुण वर्ण और आकार अंगार चक्रकी समान गोलथा ॥ ३ ॥ इसके पीछे बडे आकारवाला भयंकर गिद्ध बडा ऊंचा सुवर्णकी रथकी ध्वजाके निकट आकर पंख उठाकर उसके ऊपर बैठ गया ॥ ४ ॥ विकट शब्दकारी, मांस खानेंवाले पशु पक्षीगण जनस्थानके समीप आकर भयंकर शब्द करके

चिल्लाने लगे ॥ ५ ॥ भयंकर सियार पूर्व दिशामें राक्षसोंका अमंगलदायक भयंकर घोर शब्द करने लगे ॥ ६ ॥ मतवाले हाथियोंकी समान भयंकर मूर्तिवाले मेघ जलकी समान रुधिरकी वर्षा करके वहांके सब आकाशको एक वारही छालेते हुए ॥ ७ ॥ रुवें खडा करनेंवाला ऐसा घोर अंधकार छाया कि दिशा विदिशा समस्त एक साथही उस्से ढकगई, फिर कुछभी दृष्टि न आया ॥ ८ ॥ संध्या खूनसे भीगे वस्त्रकी समान वर्ण धारण करके अकालमेंही प्रकाशित होगई भयंकर पशुपक्षीगणोने खरके सन्मुख मुख करके कठोर स्वरसे चिल्लाना आरंभ किया ॥ ९ ॥

व्याजह्रुरभिदीप्तायांदिशिवैभैरवस्वनम् ॥ अशिवंयातुधानानांशिवाघोरामहास्वनाः ॥ ६ ॥ प्रभिन्नगजसंकाशास्तोयशोणितधारिणः ॥ आकाशंतदनाकाशंचक्रुर्भीमांबुवाहकाः ॥ ७ ॥ बभूवतिमिरंघोरमुद्धतंरोमहर्षणम् ॥ दिशोवाप्रदिशोवापिसुव्यक्तंनचकाशिरे ॥ ८ ॥ क्षतजार्द्रसवर्णाभासंध्याकालंविनाबभौ ॥ खरंचाभिमुखंनेदुस्तदाघोरामृगाःखगाः ॥ ९ ॥ कंकगोमायुगृध्राश्चचुक्रुशुर्भयशंसिनः ॥ नित्याशिवकरायुद्धेशिवाघोरनिदर्शनाः ॥ १० ॥ नेदुर्बलस्याभिमुखंज्वालोद्गारिभिराननैः ॥ कबंधःपरिघाभासोदृश्यतेभास्करांतिके ॥ ११ ॥ जग्राहसूर्यंस्वर्भानुरपर्वणिमहाग्रहः ॥ प्रवातिमारुतःशीघ्रंनिष्प्रभोभूद्दिवाकरः ॥ १२ ॥ उत्पेतुश्चविनारात्रिंताराःखद्योतसप्रभाः ॥ संलीनमीनविहगानलिन्यःशुष्कपंकजाः ॥ १३ ॥

सफेद चील शियार और गिद्धगण खरको भय उपजाते हुए ऊंची आवाजसे शब्द करनेंलगे और युद्धमें जिनका बोलना महा अमंगलका उपजानेंवालाहै ऐसी शृगालियांभी भय उपजाती हुई ॥ १० ॥ सनोक सामनें घोर शोर करनें लगीं सूर्यके निकट परिघाकार कबंध दिखलाई देनेंलगा ॥ ११ ॥ महा ग्रह राहुनें विना अमावस्या और पर्वकालकेही सूर्यको ग्रस लिया पवन प्रचंड चलनें लगी सूर्यकी दीप्ति जाती रही ॥ १२ ॥ और रात्रि न होनें परभी तारागण पट वीजनेंकी समान चमककर उदय हुए तालावोंके कमल सूख गये मछलीभी सागर सरोवरोंमें हो लीन होगई

और पक्षीभी नाशको प्राप्त होगये ॥ १३ ॥ उस समय सब वृक्ष फल फूलों करके रहित होगये और विना पवनके चलनेंपरभी महा धूरि उडनें लगी बादल लाल होगये ॥ १४ ॥ उस काल मैंना पक्षी सिखाये हुए शब्दोंको त्याग करके (चीची कूचि इत्यादि) अर्थ रहित शब्द करनें लगे घोर भयावन उल्कायें यह कांप करके पृथ्वीपर गिरनें लगीं॥१५॥और वन उपवन और पर्वत सहित पृथ्वी कांपनें लगी धीमान् खर रथमें वैठकर गर्जन करनेलगा ॥ १६ ॥ खरकी वांई भुजा बहुतही कांपनें लगीं स्वर बिगड गया इस प्रकार इधर उधर देखते २ उसके दोनों नेत्रोंमें आंसू भर आये ॥ १७ ॥ उस खरके शिरमें वारंवार पीर होनें लगी तथापि मोहके मारे वह संग्राममें जानेंसे नहीं लौटा इन सब रोमहर्षण

तस्मिन्क्षणेबभूवुश्चविनापुष्पफलैर्द्रुमाः ॥ उद्धूतश्चविनावातंरेणुर्जलधरारुणः ॥ १४ ॥ चीचीकूचीतिवाश्यंतोबभूवुस्तत्रसारिकाः ॥ उल्काश्चापिसनिर्घोषानिपेतुर्घोरदर्शनाः ॥ १५ ॥ प्रचचालमहीचापिसशैलवनकानना ॥ खरस्यचरथस्थस्यनर्दमानस्यधीमतः ॥ १६ ॥ प्राकंपतभुजःसव्यःस्वरश्चास्यावसज्जत ॥ सास्रासंपद्यतेदृष्टिःपश्यमानस्यसर्वतः ॥१७॥ ललाटेचरुजाजातानचमोहान्न्यवर्तत ॥ तान्समीक्ष्यमहोत्पातानुत्थितान्रोमहर्षणान् ॥ १८ ॥ अब्रवीद्राक्षसान्सर्वान्प्रहसन्सखरस्तदा॥महोत्पातानिमान्सर्वानुत्थितान्घोरदर्शनान् ॥१९॥ नचिंतयाम्यहंवीर्याद्बलवान्दुर्बलानिव ॥ ताराअपिशरैस्तीक्ष्णैःपातयेयंनभस्तलात् ॥ २० ॥ मृत्युंमरणधर्मेणसंक्रुद्धोयोजयाम्यहम् ॥ राघवंतंबलोत्सिक्तंभ्रातरंचापिलक्ष्मणम् ॥२१॥ अहत्वासायकैस्तीक्ष्णैर्नोपावर्तितुमुत्सहे॥यन्निमित्तंतुरामस्यलक्ष्मणस्यविपर्ययः ॥ २२ ॥

महाउत्पातोंको उपस्थित हुआ देख ॥ १८ ॥ खर हँसता २ सब राक्षसोंसे बोला कि यह तो घोर दिखाई देनेवाले महाउत्पात इस समय हो रहेहैं इनको देखकर मैं ॥ १९ ॥ ऐसे कुछ नहीं समझता कि बलवान जिस प्रकार दुर्बलोंको नहीं गिनता वैसेही हमारे पराक्रमसे इन उत्पातोंको मनमें स्थान नहीं देते । जो हम क्रुद्ध होवें तो तीखे बाणोंसे आकाश मंडलसे तारागणोंकोभी पृथ्वीपर गिरादें ॥ २० ॥ हम क्रोधित हों तो यमराजकीभी मृत्यु शोध लावें; इस्से हम बलसे दर्पित रामचंद्रको उसके भाई लक्ष्मण सहित ॥ २१ ॥ तीखे बाणोंके आघातसे विना मार

डाले हुए नहीं लौटेंगे । जिसके लिये रामचंद्र व लक्ष्मणकी विपरीत बुद्धि हुई और उन्होंनें इसके नाक कान काट डाले ॥ २२ ॥ ऐसी हमारी बहन शूर्पणखा भ्राताके सहित रामका रुधिर पीकर सफल मनोरथ होवे। और हमें पराजय होनेका कुछ डरही नहीं क्योंकि आजतक हम किसी संग्राममें पहले नहीं हारेहैं ॥ २३ ॥ सो तुम लोगोंको ज्ञातहीहै इस कारण हम मिथ्या नहीं कहते जो हम क्रुद्ध होजांय तो मत्त ऐरावत हाथीपर असवार इन्द्रको ॥२४॥ यद्यपि रणके मध्य उसके हाथमें वज्रभी हो तथापि मार डालें फिर राम लक्ष्मणके मारनेंमें क्या बडी बातहै वह तो मनुष्यहैं यह कहकर खर गर्जने लगा जिसे श्रवणकर राक्षसोंकी बडीभारी फौज॥२५॥अतुलित हर्षित हुई, यद्यपि यमके फंदमें फँसीथी। इस ओर युद्धके देख

सकामाभगिनीमेऽस्तुपीत्वातुरुधिरंतयोः ॥ नकचित्प्राप्तपूर्वोमेसंयुगेषुपराजयः ॥ २३ ॥ युष्माकमेतत्प्रत्यक्षंनानृतंकथयाम्यहम् ॥ देवराजमपिक्रुद्धोमत्तैरावतगामिनम् ॥ २४ ॥ वज्रहस्तंरणेहन्यांकिंपुनस्तौचमानवौ ॥ सातस्य गर्जितंश्रुत्वाराक्षसानांमहाचमूः ॥ २५ ॥ प्रहर्षमतुलंलेभेमृत्युपाशावपाशिता ॥ समेयुश्चमहात्मानोयुद्धदर्शनकांक्षिणः॥ २६ ॥ ऋषयोदेवगंधर्वाःसिद्धाश्चसहचारणैः ॥ समेत्यचोचुःसहितास्तेन्योन्यंपुण्यकर्मणः ॥ २७ ॥ स्वस्तिगोब्राह्मणेभ्यस्तुलोकानांयेचसंमताः ॥ जयतांराघवोयुद्धेपौलस्त्यान्रजनीचरान् ॥ २८ ॥ चक्रहस्तोयथाविष्णुःसर्वानसुरसत्तमान् ॥ एतच्चान्यच्चबहुशोब्रुवाणाःपरमर्षयः ॥ २९ ॥ जातकौतूहलास्तत्रविमानस्थाश्चदैवताः ॥ ददृशुर्वाहिनींतेषांराक्षसानांगतायुषाम् ॥ ३० ॥

नेंकी वासनासे महात्मा लोग आये ॥ २६ ॥ उनमें ऋषिगण, देवगण गन्धर्वगण, व सिद्ध लोग सबही आये । वह पुण्य कर्म करनेंवाले वहां सबही एकत्र होकर परस्पर कहनें लगे ॥ २७ ॥ कि, गौ, ब्राह्मण सुखसे रहैं इसके सिवाय औरभी सब लोकसम्मत प्राणियोंका मंगल होवे और श्रीरघुनंदन श्रीरामचंद्रजी युद्धमें पुलस्त्य वंशी राक्षसोंको जीतें ॥ २८ ॥ जैसे चक्रधारी विष्णुजीनें समस्त असुरश्रेष्ठोंको जीताथा । परमर्षिगण ऐसे, व औरभी अनेक प्रकारके वचन परस्पर कहनें लगे ॥ २९ ॥ विमानमें बैठे हुए देवता लोग कौतूहलके वश होकर मृत्यु जिनकी

निकट आईहै ऐसे राक्षसोंको बडी सेनाको देखनें लगे ॥ ३० ॥ इस समय खर रथपर चढा हुआ सेनाके अगले भागमें हुआ, तब उसके अगल बगल श्येनगामी, पृथुश्याम, यज्ञ शत्रु, विहङ्गम, ॥३१॥ दुर्जय, परवीराक्ष, परुष, कालिकार्मुक, हेममाली, महामाली, सर्वास्य, और रुधिराशन। यह बारह महावीर राक्षस खरको घेरे हुए जातेथे॥३२॥ महाकपाल, स्थूलाक्ष, प्रमाथ और त्रिशिरा, यह चार राक्षस दूषण सेनापतिके पीछे२चले जातेथे ३३॥ जिस प्रकार ग्रहजाल चंद्र और सूर्यको प्राप्त होताहै, वैसेही भीम वेग सुदारुण, महा बलवान् राक्षसगण संग्रामका अभिलाष किये हुए सहसा राजपुत्र रामचंद्र और लक्ष्मणजीके निकट पहुंचे ॥ ३४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकिये आदिकाव्ये आरण्यकांडे त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

रथेनतुखरोवेगात्सैन्यस्याग्राद्विनिःसृतः ॥ श्येनगामीपृथुग्रीवोयज्ञशत्रुर्विहंगमः ॥ ३१ ॥ दुर्जयःपरवीराक्षःपरुषः कालकार्मुकः ॥ हेममालीमहामालीसर्पास्योरुधिराशनः ॥ द्वादशैतेमहावीर्याःप्रतस्थुरभितःखरम्॥३२ ॥ महाक पालःस्थूलाक्षःप्रमाथस्त्रिशिरास्तथा ॥ चत्वारएतेसेनाग्रेदूषणंपृष्ठतोऽन्वयुः॥ ३३ ॥ साभीमवेगासमराभिकांक्षिणी सुदारुणाराक्षसवीरसेना ॥ तौराजपुत्रौसहसाभ्युपेतामालांग्रहाणामिवचंद्रसूर्यौ ॥ ३४ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवा ल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेत्रयोविंशःसर्गः ॥ २३ ॥ ॥ ॥ ॥ आश्रमंप्रतियातेतुखरेखरपराक्रमे ॥ तानेवौत्पातिकान्रामःसहभ्रात्राददर्शह ॥ १ ॥ तानुत्पातान्महाघोरान्रामोदृष्ट्वात्यमर्षणः ॥ प्रजानामहितान्दृष्ट्वावा क्यंलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ २ ॥ इमान्पश्यमहाबाहोसर्वभूतापहारिणः॥ समुत्थितान्महोत्पातान्संहर्तुंसर्वराक्षसान् ॥३॥ अमीरुधिरधारास्तुविसृजंतेखरस्वनाः ॥ व्योम्निमेघाविवर्तंतेपरुषागर्दभारुणाः ॥ ४ ॥

इस भांति तीक्ष्ण पराक्रमवाला खर जब रामचंद्रजीके आश्रमकी ओर चला तब श्रीरामचंद्रजीनें भ्राता लक्ष्मणके सहित वह उत्पात जोकि खरके चलनेंके समय हुएथे वह सब देखे ॥ १ ॥ श्रीरामचंद्रजी प्रजागणोंके अमंगलकारी महाघोर इन सब उत्पातोंको देखकर अस्वस्थ चित्तसे लक्ष्मणजीसे बोले ॥ २ ॥ हे महाबाहो ! सब प्राणियोंके प्राणनाश करनें वाले यह बडे भारी उत्पात राक्षस कुलका संहार करनेंके लिये होरहेहैं सो तुम देखो ॥ ३ ॥ गर्दभकी समान धूसर वर्णवाले वादलोंका समूह इस आकाशमें इधर उधर दौडकर बडे शब्दसे गर्ज२रुधिर वर्षाताहै॥४॥

हमारे सब बाणोंसे धुआं निकलताहै, सो यह युद्ध होनेंका आनंद मना रहेहैं; और स्वर्ण जिनकी पीठमें लगा हुआहै ऐसे धनुषभी विचलित हो रहेहैं ॥ ५ ॥ वनचर पक्षीगण जिस प्रकारसे शब्द करतेहैं इससे राक्षसोंको भय और प्राणसंशय आकर उपस्थित हुआहै ॥ ६॥ अब शीघ्रही महा युद्ध होगा, इसमें कुछभी संदेह नहींहै। परन्तु हे वीर! हमारा यह दहना हाथ वार २ फडककर हमारे जयकी सूचना करताहै ॥ ७ ॥ हे शूर! हमारी जय और शत्रुओंकी पराजय निकट आय पहुंचीहै, तुम्हारा वदनभी प्रसन्न और प्रभायुक्त देख पडताहै ॥ ८ ॥ हे लक्ष्मण! युद्ध करनेंके लिये तैयार हुए जिन पुरुषोंका मुख मलीन हो जाताहै, इससे उन लोगोंकी आयुका क्षय होताहै ॥ ९ ॥ राक्षसोंके घोर और

सधूमाश्चशराःसर्वेममयुद्धाभिनंदिताः ॥ रुक्मपृष्ठानिचापानिविचेष्टंतेविचक्षण ॥ ५ ॥ यादृशाइहकूजंतिपक्षिणो वनचारिणः ॥ अग्रतोनोभयंप्राप्तंसंशयोजीवितस्यच ॥ ६ ॥ संप्रहारस्तुसुमहान्भविष्यतिनसंशयः ॥ अयमाख्या तिमेबाहुःस्फुरमाणोमुहुर्मुहुः ॥७॥ सन्निकर्षेतुनःशूरजयंशत्रोःपराजयम् ॥ सुप्रभंचप्रसन्नंचतववक्त्रंहिलक्ष्यते॥८॥ उद्यतानांहियुद्धार्थंयेषांभवतिलक्ष्मण ॥ निष्प्रभंवदनंतेषांभवत्यायुःपरिक्षयः ॥ ९ ॥ रक्षसांनर्दतांघोषःश्रूयतेयंम हाध्वनिः ॥ आहतानांचभेरीणांराक्षसैःक्रूरकर्मभिः ॥१०॥ अनागतविधानंतुकर्तव्यंशुभमिच्छता ॥ आपदाशंक मानेनपुरुषेणविपश्चिता ॥११॥ तस्माद्गृहीत्वावैदेहींशरपाणिर्धनुर्धरः ॥ गुहामाश्रयशैलस्यदुर्गांपादपसंकुलाम्॥१२॥ प्रतिकूलितुमिच्छामिनहिवाक्यमिदंत्वया ॥ शापितोममपादाभ्यांगम्यतांवत्समाचिरम् ॥ १३ ॥

गंभीर गर्जनका यह शब्दभी अब सुनाई आताहै। व उन क्रूर कर्म करनेंवाले राक्षसोंके भेरीकी ध्वनिभी अब सुनाई आतीहै ॥१०॥ कल्याणके चाहनेवाले पंडित पुरुष विपत्तिकी शंका रहनेसे प्रथमही उस आनेवाली विपत्तिका ऐसा उपाय करतेहैं कि जिस्से वह विपत्ति निकट न आवै ॥ ११ ॥ इस कारण तुम धनुष धारण करके जानकीजीको ले वृक्षोंकरके युक्त दुर्गम पर्वतकी कन्दरामें चले जाओ ॥ १२ ॥ तुम हमारे इन वचनोंके प्रतिकूल आचरण मत करना। वत्स! हम तुमको अपने चरणोंकी सौगन्ध देतेहै कि तुम शीघ्रही जानकीको लेकर गिरिगुहामें

चले जाओ ॥ १३ ॥ तुम . शूर और बलवान्हो. निश्चय इन राक्षसोंको वधकर सकतेहो इसमें सन्देह नहींहै परन्तु हम आपही इन सर्व निशाचरोंके मार डालनेंकी इच्छा करतेहैं ॥ १४ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा तब लक्ष्मणजी सीताजीके सहित शर और चाप ग्रहण करके दुर्गम पर्वतकी कन्दरामें चले गये ॥ १५ ॥ जब जानकीजीके साथ लक्ष्मणजी पर्वतकी कन्दरामें चले गये, तब श्रीरामचंद्रजी बडे हर्षित हुए और कवच व बाण रघुनंदनजीनें ग्रहण किया ॥ १६ ॥ अग्निवर्ण वाले कवचके धारण करनेंसे श्रीरामचंद्रजी अन्धकारमध्यमेंसे उठे हुए महा अग्निकी समान जान पडनें लगे ॥ १७ ॥ तत्पश्चात् वीर्यवान् श्रीरामचंद्रजी धनुषको उठाय, बाणोंको ग्रहण कर प्रत्यंचाकी टंकारके शब्दसे दशोंदिशाओंको पूर्ण करते हुए भली भांतिसे दृढहो वहां खडे होगये ॥ १८ ॥ उस समय महात्मा देवगण, गन्धर्वगण, सिद्धगण, और चारण गण संग्राम देखनेंकी अभिलाषसे वहां आये ॥ १९ ॥ लोकमें जो ब्रह्मर्षि प्रसिद्धहैं वह सब महर्षिभी वहां आये वह सब पुण्य कर्म करनेंवाले एकत्र होकर परस्पर मिल कहनें लगे ॥ २० ॥ गौ, ब्राह्मण व और सब लोकोंका सब प्रकारसे मंगलहो और श्रीरामचंद्रजी युद्धमें पुलस्त्यवंशीय निशाचरोंको जीतें, ॥ २१ ॥ जिस प्रकार श्रीविष्णुजीनें चक्र हाथमें लेकर असुर श्रेष्ठोंको हरायाथा। इस प्रकार कहकर वह फिर परस्पर अवलोकन

त्वंहिशूरश्चबलवान्हन्याएतान्नसंशयः ॥ स्वयंनिहंतुमिच्छामिसर्वानेवनिशाचरान् ॥ १४ ॥ एवमुक्तस्तुरामेणलक्ष्मणःसहसीतया ॥ शरानादायचापंचगुहांदुर्गांसमाश्रयत् ॥ १५ ॥ तस्मिन्प्रविष्टेतुगुहांलक्ष्मणेसहसीतया ॥ हंतनिर्युक्तमित्युक्त्वारामःकवचमाविशत् ॥ १६ ॥ सतेनाग्निनिकाशेनकवचेनविभूषितः ॥ बभूवरामस्तिमिरेमहानग्निरिवोत्थितः ॥ १७ ॥ सचापमुद्यम्यमहच्छरानादायवीर्यवान् ॥ संबभूवास्थितस्तत्रज्यास्वनःपूरयन्दिशः ॥ १८ ॥ ततोदेवाःसगंधर्वाःसिद्धाश्चसहचारणैः ॥ समेयुश्चमहात्मानोयुद्धदर्शनकांक्षया ॥ १९ ॥ ऋषयश्चमहात्मानोलोकेब्रह्मर्षिसत्तमाः ॥ समेत्यचोचुःसहितास्तेन्योन्यंपुण्यकर्मणः ॥२०॥ स्वस्तिगोब्राह्मणानांचलोकानांचेतिसंस्थिताः ॥ जयतांराघवोयुद्धेपौलस्त्यान्रजनीचरान् ॥ २१ ॥ चक्रहस्तोयथायुद्धेसर्वानसुरपुंगवान् ॥ एवमुक्त्वा पुनःप्रोचुरालोक्यचपरस्परम् ॥ २२ ॥

करते हुए कहनेंलगे ॥ २२ ॥ कि भयंकर कर्म करनेंवाले राक्षस तो चौदह हजार [१४०००] हैं, और धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी इकलेहैं; सो इस्से कह नहीं सकते कि किस प्रकार युद्ध होगा ॥ २३ ॥ इस प्रकारसे राजर्षिगण, सिद्धगण, विद्याधरादि समस्त देवयोनि गण प्रधान २ ब्रह्मर्षिगण कौतूहलाक्रांत चित्त किये वहां खडेथे ॥ २४ ॥ महा तेजवान श्रीरामचंद्रजीको समर स्थलमें अकेला खड़ा देख, प्राणिमात्रही भयके मारे दुःखी हुए कि न जानें महाराजको आज कैसा परीश्रम पडेगा और कैसे इन १४००० हजार दुष्टोंसे लडेंगे ? ॥ २५ ॥ महात्मा रुद्रजी जब क्रोध करतेहैं और उनका रूप जैसा होजाताहै, वैसाही क्लेशरहित कर्म करनेंवाले श्रीरामचंद्रजीका रूप होगया जिसके समान विकराल

चतुर्दशसहस्राणिरक्षसांभीमकर्मणाम्॥एकश्चरामोधर्मात्माकथंयुद्धंभविष्यति ॥२३॥इतिराजर्षयःसिद्धाःसगणाश्च द्विजर्षभाः॥ जातकौतूहलास्तस्थुर्विमानस्थाश्चदेवताः ॥२४॥ आविष्टंतेजसारामंसंग्रामशिरसिस्थितम् ॥ दृष्ट्वासर्वाणिभूतानिभयाद्विव्यथिरेतदा ॥ २५ ॥ रूपमप्रतिमंतस्यरामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ बभूवरूपंक्रुद्धस्यरुद्रस्येवमहात्मनः ॥ २६ ॥ इतिसंभाष्यमाणेतुदेवगंधर्वचारणैः ॥ ततोगंभीरनिर्ह्रादंघोरचर्मायुधध्वजम् ॥ २७ ॥ अनीकंयातुधानानांसमंतात्प्रत्यपद्यत॥वीरालापान्विसृजतामन्योन्यमभिगच्छताम्॥२८॥ चापानिविस्फारयतांजृंभतांचाप्यभीक्ष्णशः ॥ विप्रघुष्टस्वनानांचदुंदुभींश्चाभिनिघ्नताम् ॥ २९ ॥ तेषांसुविपुलःशब्दःपूरयामासतद्वनम् ॥ तेनशब्देनवित्रस्तास्त्रासितावनचारिणः ॥ ३० ॥ दुद्रुवुर्यत्रनिःशब्दंपृष्ठतोनावलोकयन ॥ तच्चानीकंमहावेगंरामंसमनुवर्तत ॥ ३१ ॥

रूप और नहींथा ॥२६ ॥ आकाशमें देव गन्धर्व और चारण लोग ऐसा कहही रहेहैं कि इतनेंमें महा गंभीर शब्द करती, अति घोर ढाल खड्गादि हथियार लिये ॥ २७ ॥ चारोंओरसे राक्षसोंकी सेना अनी वनी ठनी आ पहुँची, जो वीरपनेकी वार्त्ता आपसमें कर रहीथी ॥ २८ ॥ उस सेनाके कोई २ लोग धनुषकी प्रत्यंचा खेंच २ वजाते कोई वार २ जंभाई लेते कोई ऊँचे स्वरसे चिल्लाते और कोई नगाडोंकोही वजातेथे ॥ २९ ॥ इस सब सेनाके राक्षसोंका ऐसा घोर शब्द हुआ कि जिस्से वह वन भर गया और उस शब्दसे वनचारी पशु पक्षीभी घवडा गये ॥३०॥ और लौटकर पीछेको न देखतेहुए जिस जगह वह शब्द श्रवणगोचर न होवै वहांको भागे। व इसओर राक्षसी सेना धूम धामसे श्रीरामचंद्रजीके

निकट आय पहुँची ॥ ३१ ॥ उस सेनाके वीरगण अनेक प्रकारके हथियार धारण कियेथे, वह समुद्र समान उफनती चली आतीथी समरपंडित श्रीरघुनंदन रामचंद्रजीनें नेत्र डाल चारों ओर निहारातो॥३२॥युद्ध करनेंको खरकी सेना, उनकीसोंही चली आतीहै, तब श्रीरामचंद्रजीनें धनुष को उठाय, और तरकसमेंसे बाण समूहको ग्रहणकर ॥ ३३ ॥ राक्षस कुलका संहार करनेंके लिये महाक्रोध किया, उस समय श्रीरामचंद्रजीका ऐसा विकट स्वरूप होगया मानों प्रलयकालकी अग्निहो॥३४॥वन देवता लोग उनका वह तेजवान स्वरूप देखकर बडेही व्यथित हुए क्योंकि उन्हों ने वह भयावना रामचन्द्रजीका रूप काहेको देखाथा।परन्तु दक्षका यज्ञ विनाश करनेंको तैयार महादेवजीकी समान श्रीरामचन्द्रजीकी वह क्रोधभरी

धृतनानाप्रहरणंगंभीरंसागरोपमम् ॥ रामोपिचारयंश्चक्षुःसर्वतोरणपंडितः ॥ ३२ ॥ ददर्शखरसैन्यंतद्युद्धायाभिमुखोगतः॥ वितत्यचधनुर्भीमंतूण्याश्चोद्धृत्यसायकान् ॥ ३३ ॥ क्रोधमाहारयत्तीव्रंवधार्थंसर्वरक्षसाम् ॥ दुष्प्रेक्ष्यश्चाभवत्क्रुद्धोयुगांताग्निरिवज्वलन् ॥३४॥ तंदृष्ट्वातेजसाविष्टंप्राव्यथन्वनदेवताः ॥तस्यरुष्टस्यरूपंतुरामस्यदद्दृशेतदा ॥ दक्षस्येवक्रतुंहंतुमुद्यतस्यपिनाकिनः ॥ ३५ ॥ तत्कार्मुकैराभरणैरथैश्चतद्वर्मभिश्चाग्निसमानवर्णैः ॥ बभूवसैन्यंपिशिताशनानांसूर्योदयेनीलमिवाभ्रजालम् ॥ ३६ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०आरण्यकांडेचतुर्विंशःसर्गः ॥ २४ ॥

अवष्टब्धधनुंरामंक्रुद्धंतंरिपुघातिनम् ॥ ददर्शाश्रममागम्यखरःसहपुरःसरैः ॥ १ ॥ तंदृष्ट्वासगुणंचापमुद्यम्यखरनिःस्वनम् ॥ रामस्याभिमुखंसूतंचोद्यतामित्यचोदयत् ॥ २ ॥ सखरस्याज्ञयासूतस्तुरगान्समचोदयत् ॥ यत्ररामोमहाबाहुरेकोधुन्वन्धनुःस्थितः ॥ ३ ॥

मूर्त्ति उस समय उन सबनें देखीथी ॥ ३५ ॥ जैसे नीले रंगके बादर सूर्योदयमें शोभा पातेहैं। राक्षससेनाभी अग्नि सम वर्ण,कवच, रथ, आभरण और धनुष युक्त होकर उस काल वैसीही शोभा पाने लगी ॥ ३६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे चतुर्विंशःसर्गः ॥ २४ ॥ अपने साथियोंके साथ आश्रममें आकर खरनें शत्रुओंके मारनेंवाले श्रीरामचन्द्रजीको क्रोधमें भरे और धनुष ग्रहण किये देखा ॥१॥ ऐसा देखकर उसनें कठोर प्रत्यंचा युक्त धनुष उठाकर सारथिसे ऊंचे स्वरसे कहा कि रामचंद्रके सामनें रथ लेचलो ॥ २ ॥ सारथिनें खरकी आज्ञा

नुसार जहां महाबाहु श्रीरामचंद्रजी धनुषपर टंकार देते हुए इकले खडेथे वहांपर घोडोंको चलाया ॥३॥ खरको रामचंद्रजीके आगे जाता हुआ
देखकर उसके मंत्री श्येनगम्यादि बारह राक्षस उसके चारों ओर हो लिये ॥ ४ ॥ तब रथपर चढा हुआ खर दुर्विनीत राक्षसोंके बीचमें ऐसा
शोभित होताथा, जैसे ताराओंके बीचमें प्रदीप्त मंगल ग्रह शोभित होताहै ॥ ५ ॥ अनन्तर वह खर श्रीरामचंद्रजीके ऊपर युद्धमें हजार बाण
छोडकर महा शब्दसे चिल्लानें लगा ॥ ६ ॥ तिसके पीछे सब निशाचर क्रोधित होकर भयंकर धनुषधारी, निवारण करनेंके योग्य श्रीरामचंद्र
जीको ताककर विविध भांतिके शर वर्षानें लगे ॥ ७ ॥ वह राक्षस सेना, युद्धमें क्रोधितहो अनेक २ लोहेके मुन्दर, शूल, फांसी, तलवार, और

तंतुनिष्पतितंदृष्ट्वासर्वतोरजनीचराः ॥ मुंचमानामहानादंसचिवाःपर्यवारयन् ॥४॥ सतेषांयातुधानानांमध्येरथग
तःखरः ॥ बभूवमध्येताराणांलोहितांगइवोद्धतः ॥ ५ ॥ ततःशरसहस्रेणराममप्रतिमौजसम् ॥ अर्दयित्वामहाना
दंननादसमरेखरः ॥६॥ ततस्तंभीमधन्वानंक्रुद्धाःसर्वेनिशाचराः ॥ रामंनानाविधैःशस्त्रैरभ्यवर्षंतदुर्जयम् ॥ ७ ॥
मुद्गरैरायसैःशूलैःप्रासैःखड्गैःपरश्वधैः ॥ राक्षसाःसमरेशूरंनिजघ्नूरोषतत्पराः ॥ ८॥ तेबलाहकसंकाशामहाकायाम
हाबलाः ॥ अभ्यधावंतकाकुत्स्थंरथैर्वाजिभिरेवच ॥ ९ ॥ गजैःपर्वतकूटाभैरामंयुद्धेजिघांसवः॥ तेरामेशरवर्षाणि
व्यसृजन्रक्षसांगणाः ॥ १० ॥ शैलेंद्रमिवधाराभिर्वर्षमाणामहाघनाः ॥ सर्वैःपरिवृतोरामोराक्षसैःक्रूरदर्शनैः ॥११॥
तिथिष्विवमहादेवोवृतःपारिषदांगणैः ॥ तानिमुक्तानिशस्त्राणियातुधानैःसराघवः ॥ १२ ॥

फरसे आदिकसे श्रीरामचंद्रजीके ऊपर प्रहार करनेंलगे ॥ ८ ॥ फिर वह बडे २ शरीरवाले महाबलवान्, मेघ समान निशाचर गण,
रथ, घोडे, हाथियोंपर चढ २ युद्धमें श्रीरामचन्द्रजीको मार डालनेंके लिये उनके पीछे दौडे ॥ ९ ॥ उनसे कुछ राक्षस पर्वतोंके शृंग समान
आकारवाले हाथियोंपर चढकर श्रीरामचंद्रजीको युद्धमें मार डालनेंके लिये आयेथे, इस कारण वह सब रामचंद्रजीपर बाणोंकी वर्षा करनें
लगे॥१०॥जैसे मेघमाला पर्वतोंपर वर्षा करतीहै, वैसेही बाणवर्षा उन निशाचरोंने श्रीरामचंद्रजीके ऊपर की, सब राक्षसोंके मध्य जानकी जीवन
कैसे शोभित होतेथे॥११॥जैसे प्रदोषकी यामिनीयोंमें पार्षदोंके मध्य महादेवजी शोभित होतेहैं।राक्षसोंके चलाये अस्त्र शस्त्रश्रीरामचंद्रजीनें॥१२॥

अपने बाणोंके सहित ग्रहण किये, जैसे नदीयोंकी धाराओंको महोदधि ग्रहण करताहै यद्यपि श्रीरामचन्द्रजीके अंगमें अतिघोर वह अस्त्र शस्त्र लगेथे पर इससे उनको कुछ व्याधि न हुई ॥ १३ ॥ जैसे प्रकाशमान बहुतसे वज्रोंसे हिमालय पर्वतको पीडा नहीं होती। सर्व शरीरमें बाणोंके लगनेंसे रुधिर वहनेंसें श्रीरामचन्द्र ऐसे शोभित हुए ॥१४॥ जैसे संध्याकालीन बादरोंके बीचमें होनेसे सूर्य भगवान् शोभित होतेहैं। रघुनंदनजीकी यह अवस्था देख देव, गन्धर्व, और सिद्ध व परमर्षिगण बडे विषादित हुए ॥ १५ ॥ कारण कि अकेले रामचंद्रजीको सहस्रों निशाचर घेरे हुएथे। ऋषि आदिकोंकी यह अवस्था देख श्रीरामचंद्रजीनें महाक्रोध युक्तहो धनुषको जोरसे खेंच ॥ १६ ॥

प्रतिजग्राहविशिखैर्नद्योघानिवसागरः ॥ सतैःप्रहरणैर्घोरैर्भिन्नगात्रोनविव्यथे ॥ १३ ॥ रामःप्रदीप्तैर्बहुभिर्वज्रैरिवमहाचलः ॥ सविद्धःक्षतजादिग्धःसर्वगात्रेषुराघवः ॥ १४ ॥ बभूवरामःसंध्याभ्रैर्दिवाकरइवावृतः ॥ विषेदुर्देवगंधर्वाः सिद्धाश्चपरमर्षयः ॥ १५ ॥ एकंसहस्रैर्बहुभिस्तदादृष्ट्वासमावृतम् ॥ ततोरामस्तुसंक्रुद्धोमंडलीकृतकार्मुकः ॥ १६ ॥ ससर्जनिशितान्बाणाञ्छतशोथसहस्रशः ॥ दुरावारान्दुर्विषहान्कालपाशोपमान्रणे ॥ १७ ॥ मुमोचलीलयाकंकपत्रान्कांचनभूषणान् ॥ तेशराःशत्रुसैन्येषुमुक्तारामेणलीलया ॥ १८ ॥ आददूरक्षसांप्राणान्पाशाःकालकृताइव॥ भित्त्वाराक्षसदेहांस्तांस्तेशरारुधिराप्लुताः ॥ १९ ॥ अंतरिक्षगतारेजुर्दीप्ताग्निसमतेजसः ॥ असंख्येयास्तुरामस्यसायकाश्चापमंडलात् ॥ २० ॥

शत २ सहस्र २ अति तीखे बाण छोडे वे सब बाण किसीके रोकनेंसे नहीं रुकते, वरन अनिवारथे सहन करनेंके योग्य नहींथे और देखनेंमें यमराजकी फांसीके समानथे ॥ १७ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें लीला पूर्वक सुवर्णसे चित्र विचित्र कंकपत्र युक्त बाण शत्रुकी सेनामें चलाये। वह सब बाण शत्रुकी सेनामें पहुँच २ ॥ १८ ॥ चलाई हुई यमकी फाँसियोंकी समान राक्षसोंका देह भेद व प्राण ग्रहण करके रुधिरके लगनेंसे लाल गेरकंही॥१९॥आकाशमें जाकर जलती हुई अग्निकी समान शोभा पानें लगे, उस समय श्रीरामचन्द्रजीके चाप मंडलसे असंख्यों बाण छूटे ॥२०॥

श्रीरामचंद्रजी उन सब बाणोंसे राक्षसोंके शत २ शरासन और सहस्र २ शरासन, ध्वजाके अग्रभाग ढाल, कवच ॥ २१ ॥ हाथके गहनों करके युक्त बाहु हाथियोंकी शुण्डके समान जंघाएँ सैकडों हजारों काट डालीं ॥ २२ ॥ इनके अतिरिक्त सुवर्णके कवच धारण किये घोडे रथ और सारथी महावत् व सवारसहित हाथी घुडसवारसहित घोडे ॥ २३ ॥ इन सबको प्रत्यंचासे छूटे हुए श्रीरामचंद्रजीके बाणोंनें छिन्न भिन्न किया, और पैदलोंकोभी संहार करके यमराजके भवनमें पहुंचाया ॥ २४ ॥ राक्षसगण, अग्रभाग जिनका महातीक्ष्णहै ऐसे नालीक, नाराच, और विकर्ण समूहसे कट कुट कर भयंकर शब्द कर आरत पुकारने लगे ॥ २५ ॥ शुष्कवनश्रेणी जिस प्रकार अग्निको पाकर

विनिष्पेतुरतीवोग्रारक्षःप्राणापहारिणः ॥ तैर्धनूंषिध्वजाग्राणिचर्माणिकवचानिच ॥२१॥ बाहून्सहस्ताभरणानूरून्करिकरोपमान् ॥ चिच्छेदरामःसमरेशतशोथसहस्रशः ॥ २२ ॥ हयान्कांचनसन्नाहान्रथयुक्तान्ससारथीन् ॥ गजांश्चसगजारोहान्सहयान्सादिनस्तदा ॥ २३ ॥ चिच्छिदुर्बिभिदुश्चैवरामबाणागुणच्युताः ॥ पदातीन्समरेहत्वा अनयद्यमसादनम् ॥ २४ ॥ ततोनालीकनाराचैस्तीक्ष्णाग्रैश्चविकर्णिभिः ॥ भीममार्तस्वरंचक्रुश्छिद्यमानानिशाचराः ॥ २५ ॥ तत्सैन्यंविविधैर्बाणैरर्दितंमर्मभेदिभिः ॥ नरामेणसुखंलेभेशुष्कंवनमिवाग्निना ॥ २६ ॥ केचिद्भीमबलाःशूराःप्रासान्शूलान्परश्वधान् ॥ चिक्षिपुःपरमक्रुद्धारामायरजनीचराः ॥ २७ ॥ तेषांबाणैर्महाबाहुःशस्त्राण्यावार्यवीर्यवान् ॥ जहारसमरेप्राणांश्चिच्छेदचशिरोधरान् ॥ २८ ॥ तेछिन्नशिरसःपेतुश्छिन्नचर्मशरासनाः ॥ सुपर्णवातविक्षिप्ताजगत्यांपादपायथा ॥ २९ ॥

खूबही घूम २ कर जलतीहैं, वैसेही राक्षस सेनाभी श्रीरामचंद्रजीके मर्मभेदी बाणोंसे पीडित होकर सुख प्राप्त करनेंको समर्थ नहीं होसकी ॥२६॥ उस सेनाके कोई २ महाबलवान् शूरवीर राक्षस महा क्रोधित होकर श्रीरामचंद्रजीके ऊपर, प्रास, फरसे और शूल इत्यादि चलानेंलगे ॥२७॥ महाबाहु वीर्यवान् श्रीरामचंद्रजीनें अपनें बाणोंसे राक्षसोंके चलाये हुए अस्त्र शस्त्रोंको रोक उनके प्राण हरण करके उनके मस्तकभी धडसे उडा देते हुए ॥ २८ ॥ गरुडजीके उडनेंके समय जो उनके पंखोंसे पवन निकलती जिस प्रकार उससे वृक्षसमूह पृथ्वीपर गिर जातेहैं वैसेही

राक्षसगण छिन्नमस्तकहो पृथ्वीपर गिरनेंलगे उनका धनुष और ढाल तलवारभी टूट टाट गई ॥ २९ ॥ बचे बचाये राक्षस श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसें घायल होनेके कारण व्याकुल हो मलीनभावसे खरकी शरणमें गये ॥ ३० ॥ यह देखकर दूषण महा क्रोधित होकर धनुष सँभाल भागे हुए राक्षसोंको धीर बँधाता हुआ क्रोधित कालकी समान रोष परायण श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख दौडा ॥ ३१ ॥ तब रणसे भागे हुए निशाचर गण दूषणका आसरा पाय लौटकर शाल, ताल, शिला, पाश, मुद्गर, और शूल इन सब आयुधोंको धारण कर श्रीरामचंद्रजीके सामने धाये ॥ ३२ ॥ उन राक्षसोंने संग्राममें आतेही शूल, मुद्गर, पाशादि, अस्त्र शस्त्रोंकी वर्षा श्रीरामचंद्रजीके ऊपर की ॥ ३३॥ फिर वृक्षोंकी वर्षा और

अवशिष्टाश्चयेतत्रविषण्णास्तेनिशाचराः॥खरमेवाभ्यधावंतशरणाथशराहताः॥३०॥ तान्सर्वान्धनुरादायसमाश्वा
स्यचदूषणः॥अभ्यधावत्सुसंक्रुद्धःक्रुद्धंक्रुद्धइवांतकः ॥३१॥निवृत्तास्तुपुनःसर्वेदूषणाश्रयनिर्भयाः॥ राममेवाभ्यधा
वंतसालतालशिलायुधाः॥३२॥ शूलमुद्गरहस्ताश्चपाशहस्तामहाबलाः ॥ सृजंतःशरवर्षाणिशस्त्रवर्षाणिसंयुगे ॥ ३३ ॥
द्रुमवर्षाणिमुंचंतःशिलावर्षाणिराक्षसाः ॥ तद्बभूवाद्भुतंयुद्धंतुमुलंरोमहर्षणम् ॥ ३४॥ रामस्यास्यमहाघोरंपुनस्ते
षांचरक्षसाम् ॥ तेसमंतादभिक्रुद्धाराघवंपुनरार्दयन् ॥ ३५॥ ततःसर्वादिशोदृष्ट्वाप्रदिशश्चसमावृताः॥ राक्षसैःसर्वतः
प्राप्तैःशरवर्षाभिरावृतः॥ ३६ ॥ सकृत्वाभैरवंनादमस्त्रंपरमभास्वरम् ॥ समयोजयद्गांधर्वंराक्षसेषुमहाबलः॥ ३७ ॥
ततःशरसहस्राणिनिर्ययुश्चापमंडलात् ॥ सर्वादशदिशोबाणैरापूर्यंतसमागतैः ॥ ३८ ॥

शिलाकी वृष्टि प्रारंभ होनेंपर तिस समय महाभयानक और घोर लोमहर्षण संग्राम होनें लगा ॥ ३४ ॥ उधरसे राक्षसगण श्रीरामचंद्रजी पर अस्त्र शस्त्र चलारहेथे इधरसे श्रीरामचंद्रजी राक्षसोंपर बाण वर्षा करतेथे यह देखकर राक्षसोंने फिर अस्त्र शस्त्रोंसे श्रीरामचंद्रजीको पीडित किया ॥ ३५ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें देखा कि सर्व दिशा विदिशा राक्षसोंसे भर गईहैं और हमभी उनके बाणोंसे ढक गयेहैं ॥ ३६ ॥ यह देख श्रीरामचंद्रजीनें बडा शब्दकर भयंकर राक्षसगणोंके ऊपर परम देदीप्यमान गान्धर्वास्त्र चलाया ॥ ३७॥ इस गान्धर्वास्त्रके चलानेके पीछे श्रीरामचंद्रजीके धनुषसे हजार २ बाण निकलनें लगे; उन निकलते हुए बाणोंसे समस्त दिशायें भरगई ॥ ३८ ॥

राक्षसगण इस समय यह नहीं देख सके कि कब श्रीरामचंद्रजी श्रेष्ठ और भयंकर शर ग्रहण करते कब छोडते और कब धनुषको आक
र्षण करतेहैं परन्तु केवल उनके बाणोंसे महा व्यथित होनें लगे॥ ३९ ॥ श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे अन्धकार उत्पन्न होकर दिवाकर सहित आकाश
मंडलको ढक लेता हुआ। परन्तु श्रीरामचंद्रजी बराबर शर धारा छोडते चले जातेथे ॥ ४० ॥ उस बाण धारासे अनेक २ राक्षस महा घायल हुए
कोई २ गिरे हुए कोई२गिरते हुए दिखाई देतेथे ऐसे राक्षसोंसे पृथ्वी पूर्ण होगई ॥ ४१ ॥ रणभूमिमें सर्वत्रही सहस्र २ राक्षस पतित, छिन्न, भिन्न,
विदारित और कंठगत प्राण दृष्टि आने लगे। श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे छिन्न भिन्न पगडी सहित मस्तक बाजू युक्त बाँह व अनेक २ भांतिके

नाददानंशरान्घोरान्विमुंचंतंशरोत्तमान् ॥ विकर्षमाणंपश्यंतिराक्षसास्तेशरार्दिताः ॥ ३९ ॥ शरांधकारमाकाश
मावृणोत्सदिवाकरम् ॥ बभूवावस्थितोरामःप्रक्षिपन्निवताञ्छरान् ॥ ४० ॥ युगपत्पतमानैश्चयुगपच्चहतैर्भृशम् ॥
युगपत्पतितैश्चैवविकीर्णावसुधाभवत् ॥ ४१ ॥ निहताःपतिताःक्षीणाश्छिन्नाभिन्नाविदारिताः ॥ तत्रतत्रस्मदृश्यंतेरा
क्षसास्तेसहस्रशः ॥ ४२ ॥ सोष्णीषैरुत्तमांगैश्चसांगदैर्बाहुभिस्तथा ॥ ऊरुभिर्बाहुभिश्छिन्नैर्नानारूपैर्विभूषणैः ॥४३॥
हयैश्चद्विपमुख्यैश्चरथैर्भिन्नैरनेकशः ॥ चामरव्यजनैश्छत्रैर्ध्वजैर्नानाविधैरपि ॥ ४४ ॥ रामेणबाणाभिहतैर्विच्छिन्नैः
शूलपट्टिशैः ॥ विच्छिन्नैःसमरेभूमिर्विस्तीर्णाभूद्भयंकरा ॥ ४५ ॥ तान्दृष्ट्वानिहतान्सर्वेराक्षसाःपरमातुराः ॥ नत
त्रचलितुंशक्तारामंपरपुरंजयम् ॥ ४६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेपंचविंशः
सर्गः ॥ २५ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ दूषणस्तुस्वकंसैन्यंहन्यमानंविलोक्यच ॥ संदिदेशमहाबाहुर्भीमवेगान्दुरासदान् ॥ १ ॥

गहनें ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ अश्व, हस्ती, चमर, व्यजन, छत्र, व नाना प्रकारकी ध्वजाओंसे ॥ ४४ ॥ व शूल पटादि शस्त्रोंसे जोकि रामचंद्र
जीके बाणोंसे कट २ टूट गयेथे यह पृथ्वी अति भयंकर होगई ॥ ४५ ॥ इस प्रकार बहुतसे राक्षसोंको मारे हुए व पृथ्वीमें पडे देख बचे
बचाये राक्षसगण अतिशय कातर होकर शत्रुओंके जीतनेवाले श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख जानेंको और समर्थ नहीं हुए ॥ ४६ ॥ इत्यार्षे
श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे पंचविंशःसर्गः ॥ २५ ॥ महाबाहु दूषण अपनी सेनाको श्रीरामचंद्रजीसे माराहुआ देख

इन्द्रजीके वज्र चलानेंसे जिस प्रकार पर्वत पंख कटाकर नीचे गिरेथे, वैसेही वानरलोग राक्षसी मायासे मोहित होगये, इनका सब शरीर राक्षसके बाणोंसे फटगया और वह धीरे २ विकट स्वरसे शब्द करके रणभूमिमें गिरनें लगे ॥ ५२ ॥ उस समय वानरगणने सेनामें केवल इन्द्रजीतके छोड़े हुए अत्यन्त तीखे बाणोंको देखपाया; परन्तु मायाके बलसे छिपे हुए उस इन्द्रकेशत्रु मेघनादको न देखा कि कहां खड़ाहुआ बाणोंकी वर्षा करताहै ॥ ५३ ॥ इसके उपरान्त राक्षसपति महाबलवान इन्द्रजीत सूर्यकी समान गांसीलगे हुए बाणोंसे सब दिशाओंको छायलिया; और अत्यन्त पैंने बाणोंसे वानरोंको मारनेंभी लगा ॥ ५४ ॥ और प्रदीप्त अग्निकी समान अंगारे व चिनगारियोंसे युक्त शूल, निस्त्रिंश, और परशु

तेशक्रजिद्बाणविशीर्णदेहामायाहताविस्वरमुन्नदंतः ॥ रणेनिपेतुर्हरयोद्रिकल्पायथेंद्रवज्राभिहतानगेंद्राः ॥ ५२ ॥
तेकेवलंसंददृशुःशिताग्रान्बाणान्रणेवानरवाहिनीषु ॥ मायाविगूढंचसुरेंद्रशत्रुंनचात्रतंराक्षसमप्यपश्यन् ॥ ५३ ॥
ततःसरक्षोधिपतिर्महात्मासर्वादिशोबाणगतैःशिताग्रैः ॥ प्रच्छादयामासरविप्रकाशैर्विदारयामासचवानरेंद्रान् ॥५४॥
सशूलनिस्त्रिंशपरश्वधानिव्याविद्धदीप्तानलसप्रभाणि ॥ सविस्फुलिंगोज्ज्वलपावकानिववर्षतीव्रंप्लवगेंद्रसैन्ये॥५५॥
ततोज्वलनसंकाशैर्बाणैर्वानरयूथपाः ॥ ताडिताःशक्रजिद्बाणैःप्रफुल्लाइवकिंशुकाः ॥ ५६ ॥ उदीक्षमाणागगनंके
चिन्नेत्रेषुताडिताः ॥ शनैर्विविशुरन्योन्यंपेतुश्चजगतीतले ॥ ५७ ॥ हनूमंतंचसुग्रीवमंगदंगंधमादनम् ॥ जांबवं
तंसुषेणंचवेगदर्शिनमेवच ॥ ५८ ॥

इत्यादि सब आयुधोंको ग्रहण करके वानरराज सुग्रीवजीकी सैनाके ऊपर वह मेघनाद वर्षानें लगा ॥ ५५ ॥ इस प्रकार इंद्रके शत्रु मेघनादके बाणोंसे जब वानर गणोंका शरीर छिन्नभिन्न होकर रुधिरसे भीग गया तब वह समस्त वानर खिले हुए टेसूके वृक्षकी समान शोभायमान हुए ॥५६॥ उस समय कोई२वानर ऊपरको नेत्र उठाये आकाशकी ओर देख रहेथे; कि इतनेंमेंही बाण आनकर उनकी आंखोंमें लगा; तब वह परस्पर एक दूसरेका आश्रय लेनेलगे और कोई पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ५७ ॥ इसके उपरान्त हनुमान सुग्रीव अंगद गन्धमादन जाम्बवान सुषेण वेगदर्शी ॥५८॥

समय घाव रहित होगये और वानर वीर गणभी घावरहित हो उठ बैठे॥६९जिसप्रकार रात्रिके आनेसे समस्त जीव सोजातेहैं और रात्रि बीत जाने पर जाग उठते हैं वैसेही एक क्षणमें समस्त वानर रोगरहित होकर उठ बैठे और जो वानर रणमें मृतक हो गयेथे उन वानरोंकी भी देहोंमें प्राण आय गये॥ ७० ॥परन्तु उन महौषधियोंसे, राक्षस कोईभी नहीं जिया। कारण कि जबसे वानर और राक्षसों का युद्ध आरंभ हुआथा उस समयसे ही रावणकी आज्ञाके अनुसार परिमाण जाननेके लिये ॥ ७१ ॥ जो राक्षस रणमें वानरवीरोंसे मारे जातेथे वह समस्त राक्षसोंके द्वारा तुरत ही समुद्रमें फेक दिये जातेथे फिर भला राक्षस कैसे जियें ॥ ७२ ॥ इसके उपरान्त जब सब समस्त वानर जी गये तब अत्यन्त वेग सम्प

सर्वेविशल्याविरुजाःक्षणेनहरिप्रवीराश्चहताश्चयेस्युः ॥ गंधेनतासांप्रवरौषधीनांसुप्तानिशांतेष्विवसंप्रबुद्धाः ॥ ७० ॥ यदाप्रभृतिलंकायांयुध्यंतेहरिराक्षसाः ॥ तदाप्रभृतिमानार्थमाज्ञयारावणस्यच ॥ ७१ ॥ येहन्यंतेरणेतत्रराक्षसाः कपिकुंजरैः ॥ हताहतास्तुक्षिप्यंतेसर्वएवतुसागरे ॥ ७२ ॥ ततोहरिर्गंधवहात्मजस्तुतमोषधीशैलमुदग्रवेगः ॥ निनायवेगाद्धिमवंतमेवपुनश्चरामेणसमाजगाम ॥ ७३ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रा०वा०आ०युद्धकांडेचतुःसप्ततितमःसर्गः ॥७४॥ ततोब्रवीन्महातेजाःसुग्रीवोवानरेश्वरः ॥ अर्थ्यंविज्ञापयंश्चापिहनूमंतमिदंवचः ॥ १ ॥ यतोहतःकुंभकर्णःकुमाराश्चनिषूदिताः ॥ नेदानीमुपनिर्हाररावणोदातुमर्हति ॥ २ ॥ येयेमहाबलाःसंतिलघवश्चप्लवंगमाः ॥ लंकामभिपतंत्वाशुगृह्योल्काःप्लवगर्षभाः ॥ ३ ॥

न्न गन्धवहनंदन [पवनकुमार] वानरश्रेष्ठ हनुमानजी उस औषधि पर्वतको ग्रहणकरके वेगसे हिमालय पर्वतपर जहांका तहां स्थापन करके फिर श्रीरामचंद्रजीके निकट चले आये ॥ ७३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे चतुःसप्ततितमःसर्गः ॥ ७४ ॥ इसके उपरान्त वानरराज सुग्रीवजी किसी एक कार्यको विचार करके हनुमानजीसे यह कहते हुए॥ १ ॥ जब कि कुंभकर्ण मारा गया और रावणके पुत्र भी मारे गये तिस्परभी यह रावण अपनी लंकापुरीकी रक्षा करनेंमें समर्थ होगा ऐसा तौ हमें ज्ञात नहीं होता ॥२॥ इसलिये इन सब वानरोंमें जो महाबलवान् और शीघ्रविक्रमकारी वानरगणहैं वह वानर गण शीघ्रही मसालें हाथमें लेकर लंकापुरीको जलावें ॥ ३ ॥

अठारह बाणोंसे नीलको और नव बाणोंसे नलनाम वानरको दूरसेही खड़े रहकर रणभूमिमें मारा ॥ ४३ ॥ उस महावीर्यवाननें सात मर्म विदारी बाणोंसे नीलको वींधडाला और पांच बाणसे संग्रामभूमिमें गजको विद्ध किया ॥४४॥ इस प्रकारसे दश बाणोंसे जाम्बवानकोव फिर तीस बाणोंसे नलको मर्माहत किया; इसके उपरान्त वानरराज सुग्रीव, ऋषभ अंगद और द्विविदको तीक्ष्ण बाणोंसें मारकर मृतकतुल्य कर दिया ॥ ४५ ॥ इस प्रकारसे उस मेघनादनें अत्यन्त घोर वरदानसे प्राप्त तीक्ष्ण बाणोंसे इन वानरोंको मारा और समस्त वानरोंकोभी असंख्य बाणोंसें मारा ॥ ४६ ॥ क्रोधसें कालाग्निकी समान मूर्छितहों उस महा पराक्रमी मेघनादनें सूर्यकी समान प्रकाशित शीघ्रगामी भली भांतिसे चलाये हुए बाणोंसे ॥ ४७ ॥

सप्तभिस्तुमहावीर्योमैंदंमर्मविदारणैः ॥ पंचभिर्विशिखैश्चैवगजंविव्याधसंयुगे ॥ ४४ ॥ जांबवंतंतुदशभिर्नीलंत्रिंशद्भिरेवच ॥ सुग्रीवमृषभंचैवसोंगदंद्विविदंतथा ॥ ४५ ॥ घोरैर्दत्तवरैस्तीक्ष्णैर्निष्प्राणानकरोत्तदा ॥ अन्यानपितदामुख्यान्वानरान्बहुभिःशरैः ॥ ४६ ॥ अर्दयामाससंक्रुद्धःकालाग्निरिवमूर्छितः ॥ सशरैःसूर्यसंकाशैःसुमुक्तैःशीघ्रगामिभिः ॥ ४७ ॥ वानराणामनीकानिनिर्ममंथमहारणे ॥ आकुलांवानरींसेनांशरजालेनपीडिताम् ॥ ४८ ॥ हृष्टःसपश्यन्परयाप्रीत्याददर्शक्षतजोक्षिताम् ॥ पुनरेवमहातेजाराक्षसेंद्रात्मजोबली ॥ ४९ ॥ संसृज्यबाणवर्षंचशस्त्रवर्षंचदारुणम् ॥ ममर्दवानरानीकंपरितस्त्विद्राजिलद्बली ॥ ५० ॥ स्वसैन्यमुत्सृज्यसमेत्यतूर्णंमहाहवेवानरवाहिनीषु ॥ अदृश्यमानःशरजालमुग्रंववर्षनीलांबुधरोयथांबु ॥ ५१ ॥

वानरोंको एक बारही मर्दित कर डाला बाणोंसे पीड़ित होनेंके कारण व्याकुल और रुधिरसेभीगी हुई वानरोंकी सैनाको ॥ ४८ ॥ देखकर मेघनाद अत्यन्त हर्षित हुआ और फिर महातेजस्वी रावणका पुत्र मेघनाद ॥ ४९ ॥ दारुण शब्द और बाणोंकी वर्षा करके वानरोंकी सैनाको यह इन्द्रजीत सब प्रकारसे मर्दित कर कंपायमान करनें लगा ॥ ५० ॥ मेघनाद सहसा अपनी सैनाको छोड़कर वानरोंकी दृष्टिसे लोप होगया और अदृश्य रहकर नीला बादर जिस प्रकार जलकी वर्षा करताहै वैसेही वानरोंको ताककर उनके ऊपर अनिवारित बाणोंकी वर्षा करनें लगा॥५१॥

यह कह कर हनुमानजीने शृङ्ग प्रस्तर, खण्ड, मातङ्ग और सुवर्ण आदि धातुओंके उस अनेक शिखरवाले और सहस्रों धातुओंसे प्रज्वलित शृङ्ग सानु समन्वित उस पर्वतको सहसा ग्रहण करके अतिवेगसे उखाड़ लिया ॥ ६३ ॥ गरुड़जीकी समान अति उग्र वेगवाले हनुमानजी उस पर्वतशृङ्गको उखाड़ आकाशमें उछल गये और सुरेन्द्र व असुरगणोंके सहित समस्त लोकोंको त्रासित करते२ असंख्य आकाशचारियोंसें स्तुति किये जाते हुए अतिवेगसे गमन करते हुए ॥ ६४ ॥ सूर्यकी समान रूप सम्पन्न वह वीर हनुमानजी सूर्यकी समान पर्वत ग्रहण करके सूर्यके मार्गमें उपस्थित हो दूसरें सूर्यकी समान शोभाधारण करते हुए ॥ ६५ ॥ पर्वताकार हनुमानजी उस पर्वतको ग्रहण करके अग्निकी ज्वालासे युक्त

सतस्यशृंगंसनगंसनागंसकांचनंधातुसहस्रजुष्टम् ॥ विकीर्णकूटंज्वलिताग्रसानुंप्रगृह्यवेगात्सहसोन्ममाथ ॥ ६३ ॥
सतंसमुत्पाट्यखमुत्पपातवित्रास्यलोकान्ससुरान्सुरेंद्रान् ॥ संस्तूयमानःखचरैरनेकैर्जगामवेगाद्गरुडोग्रवेगः ॥ ६४ ॥
सभास्कराध्वानमनुप्रपन्नस्तंभास्कराभंशिखरंप्रगृह्य॥बभौतदाभास्करसन्निकाशोरवेःसमीपेप्रतिभास्कराभः॥६५॥
सतेनशैलेनभृशंरराजशैलोपमोगंधवहात्मजस्तु ॥ सहस्रधारेणसपावकेनचक्रेणखेविष्णुरिवार्पितेन ॥ ६६ ॥ तंवान
राःप्रेक्ष्यतदाविनेदुःसतानपिप्रेक्ष्यमुदाननाद ॥ तेषांसमुत्कृष्टरवंनिशम्यलंकालयाभीमतरंविनेदुः ॥ ६७॥ ततोमहा
त्मानिपपाततस्मिन्शैलोत्तमेवानरसैन्यमध्ये ॥ हर्युत्तमेभ्यःशिरसाभिवाद्यविभीषणंतत्रचसस्वजेसः ॥ ६८ ॥ ताव
प्युभौमानुषराजपुत्रौतंगंधमाघ्रायमहौषधीनाम् ॥ बभूवतुस्तत्रतदाविशल्यावुत्तस्थुरन्येचहरिप्रवीराः ॥ ६९ ॥

हाथमें सहस्र धार चक्र द्वारा शोभित विष्णुजीकी समान शोभायमान होनें लगे॥६६॥ उस कालमें लंकाके मैदान में खड़े हुए वानरगण उनको देखकर सिंहनाद करने लगें और हनुमानजी भी उनको देखकर सिंहनाद कर उठे उस अत्यन्त दारुण शब्दको श्रवणकरकै लंका निवासी निशाचर गणभी भयंकर घोर सिंहनाद करने लगे॥६७॥ इसके उपरान्त महाबलवान हनुमानजी पर्वतश्रेष्ठ त्रिकूटके ऊपर वानरोंकी सेनामें उतरकर मुख्य२ वा नरोंको प्रणाम करकै बिभीषणजीको लिपटायकर मिले॥६८॥इस ओर मनुष्यराजकुमार राम और लक्ष्मणजी सब महौषधियोंकी सुगन्धि सूंघकर उसी

सैना निरुपाय और चेष्टा रहित होकर मोहको प्राप्त हुई ॥ १ ॥ तब बुद्धिमान लोगोंमें आगे गिनेजानेके योग्य विभीषणजी सबको ऐसा विषादित देखकर वानरराज सुग्रीवजीके वीरोंको अनुपम वचनोंसे समझानें बुझानें लगे ॥ २ ॥ हे वीरगण! तुम लोग डरो मत यह शोक करनेंका अवसर नहींहै, तुम जो इन्द्रजीतके बाणजालसे श्रीराम लक्ष्मणजीको व्याकुल और मृतक देखतेहो भगवान स्वयंभू ब्रह्माजीका सन्मानही करनेंके लिये श्रीराम लक्ष्मणजीनें ऐसा कियाहै ॥ ३ ॥ स्वयंभू ब्रह्माजीनें इन्द्रजीतको यह बड़ा भारी अमोघ (अन्यर्थ) वीर्य वाला ब्रह्मास्त्र दान कियाहै, यह दोनों राजकुमार इस अस्त्रकी मर्यादा रक्षा करनेंके लियेही ऐसी अवस्थाको प्राप्त होकर गिरे हैं, जो कुछभी हो

ततोविषण्णंसमवेक्ष्यसर्वंविभीषणोबुद्धिमतांवरिष्ठः ॥ उवाचशाखामृगराजवीरानाश्वासयन्नप्रतिमैर्वचोभिः ॥ २ ॥ माभैष्टनास्त्यत्रविषादकालोयदार्यपुत्रौह्यवशौविषण्णौ ॥ स्वयंभुवोवाक्यमथोद्वहंतौयत्सादिताविंद्रजितास्त्रजालैः ॥ ३ ॥ तस्मैतुदत्तंपरमास्त्रमेतत्स्वयंभुवाब्राह्ममोघवीर्यम् ॥ तन्मानयंतौयुधिराजपुत्रौनिपातितौकोऽत्रविषादकालः ॥ ४ ॥ ब्राह्ममस्त्रंततोधीमान्मानयित्वातुमारुतिः ॥ विभीषणवचःश्रुत्वाहनूमानिदमब्रवीत् ॥ ५ ॥ अस्मिन्नस्त्रहतेसैन्येवानराणांतरस्विनाम् ॥ योयोधारयतेप्राणांस्तंतमाश्वासयावहे ॥ ६ ॥ तावुभौयुगपद्वीरौहनूमद्राक्षसोत्तमौ ॥ उल्काहस्तौतदारात्रौरणशीर्षेविचेरतुः ॥ ७ ॥ भिन्नलांगूलहस्तोरुपादांगुलिशिरोधरैः ॥ स्रवद्भिःक्षतजंगात्रैःप्रस्रवद्भिःसमंततः ॥ ८ ॥

फिर इसमें शोक करनेंका या घबड़ानेंका क्या कारणहै? ॥ ४ ॥ पवन कुमार हनुमानजी विभीषणजीके वचन सुनकर उनकाही कही ब्रह्मास्त्रकी मर्यादाको "यथार्थ है" ऐसा कहतेहुए बोले ॥५॥ हे राक्षसकुलतिलक! राक्षस वीर इन्द्रजीतके चलाये हुए ब्रह्मास्त्रसे लग भग हमारी समस्त सैना मारी गई है; इस समय जो वानर कि जीवितहैं उनको समझाना बुझाना हमारा कर्तव्यहै ॥ ६ ॥ इसके उपरान्त हनुमानजी और विभीषणजी यह दोनों वीर उस रात्रिमें मसाल हाथमें लेकर रणभूमिमें घूमनें लगे ॥७॥ उन्होंने रणभूमिमें घूमते हुए देखा कि हाथ जांघ, पैर, उंगली, मस्तक और पूंछ कटे हुए अनेक वानर रणभूमिमें पड़े हुए हैं; बहुत वानरोंके शरीरसे रुधिरकी धारा बहरहीहै; किसी २ वानरका भयके मारे पयःस्राव

ग्रीष्म कालमें दामिनीसे विराजित घटाकी समान प्रकाश पानेंलगे अग्नि लगनेंसे प्रकाशित समस्त गृह ॥ २२ ॥ दावाग्निसे प्रकाशित महापर्वतके शिखरोंकी समान शोभायमान होंनेलगे, समस्त विमानोमें सोती हुई श्रेष्ठस्त्रियें अग्निसे जलती हुई ॥ २३ ॥ सब अंगोंसे गहना निकाल २ कर ऊंचे शब्दसे हाहाकार करके रोदन करनें लगीं ! अग्निसे जलाये समस्त भवन भी ॥ २४ ॥ इन्द्रके वज्रसे आहत हुए महापर्वतोंके शृङ्गोंकी समान गिरनें लगे वह भस्म हुए समस्त धवरहर दूरसे ऐसे प्रकाशित होतेथे ॥ २५ ॥ कि मानों जलते हुए हिमवान पर्वतके शिखर जल रहेहैं. ज्वालासे प्रज्वलित हर्म्योंदिकोंके भस्म होंनेसे ॥ २६ ॥ फूले हुए पलाशके वृक्षोंसे पूर्ण रात्रिमें वह समस्त लंकानगरी ज्ञात होंने लगी।

विद्युद्भिरिवनद्धानिमेघजालानिधर्मगे ॥ ज्वलनेनपरीतानिगृहाणिप्रचकाशिरे ॥ २२ ॥ दावाग्निदीप्तानियथाशिखराणिमहागिरेः ॥ विमानेषुप्रसुप्ताश्चदह्यमानावरांगनाः ॥ २३ ॥ त्यक्ताभरणसंयोगाहाहेत्युच्चैर्विचुक्रुशुः ॥ तत्रचाग्निपरीतानिनिपेतुर्भवनान्यपि ॥ २४ ॥ वज्रिवज्रहतानीवशिखराणिमहागिरेः ॥ तानिनिर्दह्यमानानिदूरतःप्रचकाशिरे ॥ २५ ॥ हिमवच्छिखराणीवदह्यमानानिसर्वशः ॥ हर्म्याग्रैर्दह्यमानैश्चज्वालाप्रज्वलितैरपि ॥ २६ ॥ रात्रौसादृश्यतेलंकापुष्पितैरिवकिंशुकैः ॥ हस्त्यध्यक्षैर्गजैर्मुक्तैर्मुक्तैश्चतुरगैरपि ॥ बभूवलंकालोकांतेभ्रांतग्राहइवार्णवः ॥ २७ ॥ अश्वंमुक्तंगजोदृष्ट्वाक्वचिद्भीतोपसर्पति ॥ भीतोभीतंगजंदृष्ट्वाक्वचिदश्वोनिवर्तते ॥ २८ ॥ लंकायांदह्यमानायांशुशुभेचमहोदधिः ॥ छायासंसक्तसलिलोलोहितोदइवार्णवे ॥ २९ ॥ साबभूवमुहूर्तेनहरिभिर्दीपितापुरी ॥ लोकस्यास्यक्षयेघोरेप्रदीप्तेववसुंधरा ॥ ३० ॥

उस कालमें अध्यक्ष लोगोंनें अग्निके भयसे भीत होकर हाथी और घोड़ोंको उनके थान परसे खोल दिया, उस समय ऐसा जाना गया मानों लंकापुरी महा प्रलयमें घूमते हुए ग्राह मकरादिसे पूर्ण महा समुद्रकी समान होगई है ॥ २७ ॥ किसी स्थानमें हाथी घोड़ोंको खुला हुआ देखकर भागनें लगा और कहीं डरे हुए हाथियोंको देख घोड़ाही लौट पड़ता था ॥ २८ ॥ जबकि लंका नगरी इस प्रकारसे दग्ध होगई, तब अग्निकी शिखाओंकी परछांई समुद्रके जलमें पड़नेंसे समुद्र लाल समुद्रकी समान जान पड़ताथा ॥ २९ ॥ अधिक क्या कहैं वानर गणों करके दीप्तिमान

होगयाहै ॥ ८ ॥ पर्वताकार प्रधान २ वानरोंके गिरनेंसे रणभूमि परिपूर्ण होरहीहै और बहुतसारे अस्त्र शस्त्रभी टूटेफूटेहुए पड़ेहैं ॥ ९ ॥ सुग्रीव,
अंगद, नील, शरभ, गन्धमादन, जाम्बवन्त सुषेण और वेगदर्शी ॥ १० ॥ मैन्द, नल ज्योतिर्मुख और द्विविद वानरोंकोभी हनुमान और विभीषण
जीनें रणभूमिमें मृतक हुए देखा ॥ ११ ॥ इस संग्रामके मध्यम दिनके पांचमें भागमें अर्थात् छैः घड़ीमें ब्रह्माजीके अस्त्रसे रावणके पुत्र मेघना
दनें सड़सठ करोड वानरोंको मार डालाथा; उन सबको उन दोनों वीरोंनें देखा ॥१२॥ हनुमानजी विभीषणजीके सहित समुद्रके प्रवाहकी समान
विस्तारवाली भयंकर वानर सैनाकी यह दशा देखकर जाम्बवानको खोजनें लगे ॥ १३ ॥ बहुत ढूंढ भाल करनेंके पीछे शीघ्र बुझनेंवाली अग्निके

पतितैःपर्वताकारैर्वानरैरभिसंवृताम् ॥ शस्त्रैश्चपतितैर्दीप्तैर्ददृशातेवसुंधराम् ॥ ९ ॥ सुग्रीवमंगदंनीलंशरभंगंधमा
दनम् ॥ जांबवंतंसुषेणंचवेगदर्शिनमेवच ॥ १० ॥ मैंदंनलंज्योतिमुखंद्विविदंचापिवानरम् ॥ विभीषणोहनूमांश्चद
दृशातेहतान्रणे ॥ ११ ॥ सप्तषष्टिर्हताःकोट्योवानराणांतरस्विनाम् ॥ अह्नःपंचमशेषेणवल्लभेनस्वयंभुवः ॥ १२ ॥
सागरौघनिभंभीमंदृष्ट्वाबाणार्दितंबलम् ॥ मार्गतेजांबवंतंचहनूमान्सविभीषणः ॥ १३ ॥ स्वभावजरयायुक्तंवृद्धंशरशतै
श्चितम् ॥ प्रजापतिसुतंवीरंशाम्यंतमिवपावकम् ॥ १४ ॥ दृष्ट्वासमभिसंक्रम्यपौलस्त्योवाक्यमब्रवीत् ॥ कच्चिदार्य
शरैस्तीक्ष्णैर्नप्राणाध्वंसितास्तव ॥ १५ ॥ विभीषणवचःश्रुत्वाजांबवानृक्षपुंगवः ॥ कृच्छ्रादभ्युद्गिरन्वाक्यमिदंवच
नमब्रवीत् ॥ १६ ॥ नैर्ऋतेंद्रमहावीर्यस्वरेणत्वाभिलक्षये ॥ विद्धगात्रःशितैर्बाणैर्नत्वांपश्यामिचक्षुषा ॥ १७ ॥

समान सेकड़ों हजारों बाणोंसे विंधेहुए जराग्रसित वृद्ध प्रजापतिके पुत्र वीर जाम्बवानको ॥ १४ ॥ देखकर पौलस्त्य विभीषणभी उनके समीप
जायकर बोले कि हे आर्य ! इस दारुण तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षासे आपके कहीं चोट तौ नहीं लगी ॥ १५ ॥ विभीषणजीके वचन सुनकर ऋक्षश्रेष्ठ
जाम्बवानजी अत्यन्त कष्टसे वचन उच्चारण कर कहनेंलगे ॥ १६ ॥ हे महावीर्यवान ! तीखे बाणोंसे हमारा शरीर ऐसा विद्ध हुआहै; कि हम
आपको अपने नेत्रोंसे देखभी नहीं सकतेहैं; केवल आपका बोल सुनकर ही हम आपको राक्षसोंका स्वामी विभीषण मानते हैं ॥ १७ ॥

की हुई वह लंकापुरी एक मुहूर्त भरमें प्रलय कालमें प्रदीप्त हुई पृथ्वीकी समान भस्म होगई ॥ ३० ॥ उस कालमें अग्निसे संतापित धुएंसे व्याप्त और रुदन करती हुई राक्षसोंकी स्त्रियोंका शब्द सौ योजनसे सुनाई आनें लगा ॥ ३१ ॥ उस समय जले अध जले जो राक्षस भागकर लंकाके बाहर को आतेथे युद्ध करनेंके लिये वानर वृन्द उनके सन्मुख जायर कर उनको मारनें लगे॥३२॥उस कालमें वानर लोगोंके उद्योगसे और निशाचरगणोंके शब्दसे दशोंदिशा समुद्र, और समस्त पृथ्वी शब्दायमान होनें लगी ॥३३॥ इस ओर दोनों राज कुमार महात्मा श्रीराम लक्ष्मणजी घाव रहित व सावधान चित्तहो दोनोंनें श्रेष्ठ धनुष धारण किये ॥ ३४ ॥ उसके उपरान्त श्रीरामचंद्रजीनें जब अपनें बड़ेभारी उत्तम धनुषपर टंकोरदी तब राक्षस

नारीजनस्यधूमेनव्याप्तस्योच्चैर्विनेदुषः ॥ स्वनोज्वलनतप्तस्यशुश्रुवेशतयोजनम् ॥ ३१ ॥ प्रदग्धकायानपरान्रा क्षसान्निर्गतान्बहिः ॥ सहसाद्युत्पतंतिस्महरयोथयुयुत्सवः ॥ ३२ ॥ उद्घुष्टंवानराणांचराक्षसानांचनिःस्वनम् ॥ दिशो दशसमुद्रंचपृथिवींचव्यनादयत् ॥ ३३ ॥ विशल्यौचमहात्मानौतावुभौरामलक्ष्मणौ ॥ असंभ्रांतौजगृहतुस्तेउभे धनुषीवरे ॥ ३४ ॥ ततोविस्फारयामासरामश्चधनुरुत्तमम् ॥ बभूवतुमुलःशब्दोराक्षसानांभयावहः ॥ ३५ ॥ अशो भततदारामोधनुर्विस्फारयन्महत् ॥ भगवानिवसंक्रुद्धोभवोवेदमयंधनुः ॥ ३६ ॥ उद्घुष्टंवानराणांचराक्षसानांच निःस्वनम् ॥ ज्याशब्दस्तावुभौशब्दावतिरामस्यशुश्रुवे ॥ ३७ ॥ वानरोद्घुष्टघोषश्चराक्षसानांचनिःस्वनः ॥ ज्याश ब्दश्चापिरामस्यत्रयंव्यापदिशोदश ॥ ३८ ॥

लोगोंका भयावह कठोर शब्द होनें लगा ॥ ३५ ॥ जिस समय श्रीरामचंद्रजीनें बड़ेभारी धनुषपर टंकोरदी; तब उस समय वह संहार कालमें शब्द ब्रह्मात्मक वेदमय धनु विस्फारण कारी भगवान भवानी पतिकी समान जान पड़नें लगे॥ ३६ ॥ वानरोंके गर्जन करनें और राक्षसोंके रोदन करनेंका शब्द और श्रीरामचंद्रजीके धनुषकी टंकारका शब्द यह तीनों शब्द एक दूसरेको मूंद लेते हुएसे सुनाई देतेथे ॥ ३७ ॥ और वानर गणोंका गर्जना, निशाचर गणोंका रोना और श्रीरामचंद्रजीके धनुषके टंकोर यह तीनो शब्द दशों दिशाओंमें व्याप्त होगये॥ ३८ ॥

हे सुव्रत! जिनको पुत्र प्राप्त करके अंजनी सुपुत्रवती हुई है और पवन देव पुत्रवान् हुएहैं वह वानरश्रेष्ठ हनुमान् क्या जीवित हैं? ॥१८॥ जाम्ब्वानके वचन सुनकर बिभीषणजी बोले हे आर्य! आप आर्यपुत्र श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजीको छोड़कर प्रथम किस कारणसे हनुमानजीका वृत्तान्त पूछते हैं? ॥ १९ ॥ आपने रघुनंदन, वानर सुग्रीवजी अथवा अंगदजीके प्रति स्नेहानुराग न दिखाकर हनुमानजीमें जो ऐसा स्नेह प्रकाश किया इसका कारण क्याहै? ॥ २० ॥ बिभीषणजीके वचन सुनकर जाम्बवन्तजीनें कहा; हे राक्षसशार्दूल! हमनें जिस कारणसे और सबको छोड़कर केवल हनुमानजीका वृत्तान्त पूछा, उसका कारण श्रवण करो ॥ २१ ॥ यद्यपि यह वानरोंकी सेना मारी तो गईहै, परन्तु वीर

अंजनासुप्रजायेनमातरिश्वाचसुव्रत ॥ हनूमान्वानरश्रेष्ठःप्राणान्धारयतेक्कचित् ॥ १८ ॥ श्रुत्वाजांबवतोवाक्यमुवाचेदंविभीषणः ॥ आर्यपुत्रावतिक्रम्यकस्मात्पृच्छसिमारुतिम् ॥ १९ ॥ नैवराजनिसुग्रीवेनांगदेनापिराघवे ॥ आर्यसंदर्शितःस्नेहोयथावायुसुतेपरः ॥ २० ॥ विभीषणःवचःश्रुत्वाजांबवान्वाक्यमब्रवीत् ॥ शृणुनैर्ऋतशार्दूलयस्मात्पृच्छामिमारुतिम् ॥ २१ ॥ अस्मिन्जीवतिवीरेतुहतमप्यहतंबलम् ॥ हनूमत्युज्झितप्राणेजीवंतोपिमृतावयम् ॥ २२ ॥ धरतेमारुतिस्तातमारुतप्रतिमोयदि ॥ वैश्वानरसमोवीर्येजीविताशाततोभवेत् ॥ २३ ॥ ततोवृद्धमुपागम्यविनयेनाभ्यवादयत् ॥ गृह्यजांबवतःपादौहनूमान्मारुतात्मजः ॥ २४ ॥ श्रुत्वाहनूमतोवाक्यंतदाविव्यथितेंद्रियः ॥ पुनर्जातमिवात्मानंमन्यतेप्लवगोत्तमः ॥ २५ ॥

श्रेष्ठ वानर हनुमानजीके जीवित रहते, हम किसीको भी मरा हुआ नहीं समझते परन्तु पवनकुमार हनुमानजीके मर जानेंसे हम लोग जीतेहुए भी मरेही हैं॥ २२ ॥ इस्से जो हनुमान जीवितहों तब हमें जीवनकी आशा होगी नहीं तो जीना क्याहै कारणकि वह पवनकी समान, समरमें वेगवान हैं और वीर्यमें अग्निको समान हैं हेतात! हनुमानजीका जीना सुनकर फिर हमें जीनेंकी आशा होगी ॥ २३ ॥ तब महावीर हनुमानजी वृद्ध जाम्बवानके निकट जायकर उनके चरण पकड़ विनीत भावसे प्रणाम करके अपना नाम बतायकर बोले कि हम आपकी कृपासे जीतेहैं॥२४॥ तब हनुमानजीके वचन सुनकर रीछराज अत्यन्त कातर रहनेंपरभी आनन्दके मारे अत्यन्त हर्षित हो अपना दूसरा जन्म समझतेहुए ॥२५॥

श्रीरामचंद्रजीके धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे उस लंका पुरीके कैलास पर्वतके शिखरकी समान फाटक चूर्ण होकर पृथ्वीमें गिर पडे ॥ ३९ ॥
इस ओर विमान और गृहोको गिरता हुआ व श्रीरामचंद्रजीके बाणोंको देख राक्षस श्रेष्ठोमें भी कठोर युद्धकी तैयारियां होनें लगी ॥ ४० ॥
जब राक्षस श्रेष्ठ गण सिंहनाद करके संग्राम करनेंके लिये तैयार होनें लगे तब उस समय यह रात्रि कालरात्रिकी समान जान पड़नें लगी ॥ ४१ ॥
इसी अवसरमें महा बलवान् वानर सुग्रीवजीनें वानर श्रेष्ठोंको यह आज्ञादी कि "हे वानर गण ! तुम लोगोंमेंसे जो वानर जिस द्वारके निकटहो वही उसी द्वारपर युद्ध करै ॥ ४२ ॥ श्रेणी [मोरचा] पर उपस्थित रहकर भी जो हमारी आज्ञाका निरादर करैगा, राजाज्ञाके अनादर करनेंवाले उस

तस्यकार्मुकनिर्मुक्तैःशरैस्तत्पुरगोपुरम् ॥ कैलासशृंगप्रतिमंविकीर्णमभवद्भुवि ॥ ३९ ॥ ततोरामशरान्दृष्ट्वाविमानेषुगृहेषुच ॥ सन्नाहोराक्षसेंद्राणांतुमुलःसमपद्यत ॥ ४० ॥ तेषांसन्नह्यमानानांसिंहनादंचकुर्वताम् ॥ शर्वरीराक्षसेंद्राणांरौद्रीवसमपद्यत॥४१॥ आदिष्टावानरेंद्रास्तेसुग्रीवेणमहात्मना ॥ आसन्नंद्वारमासाद्ययुध्यध्वंचप्लवंगमाः ॥४२॥ यश्चवोवितथंकुर्यात्तत्रतत्राप्युपस्थितः ॥ सहंतव्योभिसंप्लुत्यराजशासनदूषकः ॥ ४३ ॥ तेषुवानरमुख्येषुदीप्तोल्कोज्ज्वलपाणिषु ॥ स्थितेषुद्वारमाश्रित्यरावणंक्रोधआविशत् ॥ ४४ ॥ तस्यजृंभितविक्षेपाद्व्यामिश्रावैदिशोदश ॥ रूपवानिवरुद्रस्य मन्युर्गात्रेष्वदृश्यत ॥ ४५ ॥ सकुंभंचनिकुंभंचकुंभकर्णात्मजावुभौ ॥ प्रेषयामाससंक्रुद्धोराक्षसैर्बहुभिःसह ॥ ४६ ॥ यूपाक्षःशोणिताक्षश्चप्रजंघःकंपनस्तथा ॥ निर्ययुःकौंभकर्णाभ्यांसहरावणशासनात् ॥ ४७॥ शशासचैवतान्सर्वान्राक्षसान्समहाबलान् ॥ राक्षसागच्छताद्यैवसिंहनादंचनादयन् ॥ ४८ ॥

वानरको निःसन्देह मार डालेंगे" ॥ ४३ ॥ इसके उपरान्त जब वह मुखियार वानर लूके हाथमें लिये सब द्वारोंको घेरेहुये खड़े रहे तब निशाचरराज रावणको अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हुआ ॥४४॥ जब रावणनें जंभाई ली तब दशोंदिशा कलुषित होगई और प्रलयकालीन रुद्रके रूपवान् क्रोधके समान रावणके शरीरमें भी क्रोधके चिह्न दिखाई देनें लगे ॥ ४५ ॥ तिसके उपरान्त निशाचरपति रावणनें क्रोधमें भरकर कुंभकर्णके पुत्र कुंभ और निकुंभको बहुत निशाचरोंके साथ युद्ध करनेंके लिये भेजा ॥ ४६ ॥ रावणकी आज्ञाके अनुसार, यूपाक्ष, शोणिताक्ष, प्रजङ्घ और कंपन नामक चार राक्षस इन कुंभकर्णके दो पुत्रोंके साथ चले ॥ ४७ ॥ तब उस समय रावणनें राक्षसोंका भय दूर करनेंके लिये सिंहनाद करके उन महाबल

इसके उपरान्त महातेजमान् जाम्बवानजी हनुमानजीसे बोले कि हेवानरश्रेष्ठ! आओ प्रथम इन सब वानरोंकी रक्षा करना तुम्हारा कर्तव्यहैं ॥ २६॥ हेवीर! इस समय हम और किसीको नहीं देखते केवल तुमही इन लोगोंके परम सखा हो और तुम्हारा पराक्रमही इन लोगोका उद्धार करनेमें यथेष्ट होगा, विशेष करके इस समय तुम्हारे उस पराक्रम प्रकाश करनेंका समय आयाहै ॥ २७ ॥ रीछ और वानरवीरगणोंकी इस समस्त सैनाको हर्षित कराओ और पीड़ित हुए श्रीराम, व लक्ष्मणजीके अंगोंमेंसे वाण निकाल डालो ॥ २८ ॥ हे शत्रुदमनकारी हनुमान्! तुम इस समय महासमुद्रके पार बहुत दूरतक गमन करके पर्वतश्रेष्ठ हिमालयपर पहुँचोगे ॥ २९ ॥ इसके आगे सुवर्णमय ऋषभनाम पर्वतश्रेष्ठहै; हे शत्रु

ततोब्रवीन्महातेजाहनूमंतंसजांबवान् ॥ आगच्छहरिशार्दूलवानरांस्त्रातुमर्हसि ॥ २६ ॥ नान्योविक्रमपर्याप्तस्त्वमेषांपरमःसखा ॥ त्वत्पराक्रमकालोयंनान्यंपश्यामिकंचन ॥ २७ ॥ ऋक्षवानरवीराणामनीकानिप्रहर्षय ॥ विशल्यौकुरुचाप्येतौसादितौरामलक्ष्मणौ ॥ २८ ॥ गत्वापरममध्वानमुपर्युपरिसागरम् ॥ हिमवंतंनगश्रेष्ठंहनूमन्गंतुमर्हसि ॥ २९ ॥ ततःकांचनमत्युग्रमृषभंपार्वतोत्तमम् ॥ कैलासशिखरंचात्रद्रक्ष्यस्यरिनिषूदन ॥ ३० ॥ तयोःशिखरयोर्मध्येप्रदीप्तमतुलप्रभम् ॥ सर्वौषधियुतंवीरद्रक्ष्यस्योषधिपर्वतम् ॥ ३१ ॥ तस्यवानरशार्दूलचतस्रोमूर्ध्निसंभवाः ॥ द्रक्ष्यस्योषधयोदीप्तादीपयंतीर्दिशोदश ॥ ३२ ॥ मृतसंजीवनींचैवविशल्यकरणीमपि ॥ सुवर्णकरणींचैवसंधानींचमहौषधीम् ॥ ३३ ॥ ताःसर्वाहनुमन्गृह्यक्षिप्रमागंतुमर्हसि ॥ आश्वासयहरीन्प्राणैर्योज्यगंधवहात्मज ॥ ३४ ॥

दमनकारी! वहां पर तुम कैलासपर्वतके शिखरभी देखोगे ॥ ३० ॥ वहांपर इन दोनों शिखरोंके मध्यमें समस्त औषधियोंसे युक्त अतुल प्रभा युक्त और प्रदीप्त ओषधि पर्वत तुमको दिखाई देगा ॥ ३१ ॥ हे वानरशार्दूल! तुम उस पर्वतके शिखर पर चार प्रकारकी ओषधि देख पाओगे, तुम देखोगे कि वह अपने प्रभावसे दशों दिशाओंको प्रकाशमान कर रही होंगी ॥ ३२ ॥ उनके मृतसञ्जीवनी [मरे हुएको जिलानें वाली] विशल्यकरणी [अंगोंकी व्यथा दूर करनेंवाली] सुवर्णकरिणी, [घाव आदिकसे हुई विवर्णताको दूरकर अंग सुन्दर करतीहै] और सन्धानकरणी, [लगातेही घावको भर देती है] यह चार नामहैं ॥३३॥ हे गन्धवह [पवन] नन्दन हनुमान्! तुम इन सब औषधियोंको जितनी

वान् राक्षसोंसे कहा "हे निशाचर गण ! तुम सब इस रात्रिमेंही युद्ध करनेंके लिये जाओ" ॥ ४८॥ राक्षसगण राक्षसराज रावण करके इस प्रका
रसे युद्धमें भेजे जाकर आयुध उठाय वारंवार सिंहनाद करते हुए लंकासे निकले ॥ ४९ ॥ तब राक्षसोंके धारण कियेहुए अलंकारोंसे और
शरीरोंके कांतिसें और वानरोने पकडेहुये उल्कासे आकाश प्रकाशित होगया ॥ ५० ॥ ऊपरसे चंद्रमा और तारागण व नीचे वानर राक्षसोंके
भूषणोंकी प्रकाशमय कांतिसे दोनों सैनाओंके बीचमें टिकाहुआ आकाश प्रदीप्तमान होगया ॥ ५१ ॥ चंद्रमाकी चांदनी गहनोंकी कांति

ततस्तुचोदितास्तेनराक्षसाज्वलितायुधाः ॥ लंकायांनिर्ययुर्वीराःप्रणदंतःपुनःपुनः ॥ ४९ ॥ रक्षसांभूषणस्था
भिर्भाभिःस्वाभिश्चसर्वशः ॥ चक्रुस्तेसप्रभंव्योमहरयश्चाग्निभिःसह ॥ ५० ॥ तत्रताराधिपस्याभाताराणांभातथै
वच ॥ तयोराभरणाभाचज्वलिताद्यामभासयत् ॥ ५१ ॥ चंद्राभाभूषणाभाचग्रहाणांज्वलिताचभा ॥ हरिरा
क्षससैन्यानिभ्राजयामाससर्वतः ॥ ५२ ॥ तत्रचार्धप्रदीप्तानांगृहाणांसागरःपुनः ॥ भाभिःसंसक्तसलिलश्चलोर्मिःशुशु
भेध्रुवम् ॥ ५३ ॥ पताकाध्वजसंयुक्तमुत्तमासिपरश्वधम् ॥ भीमाश्वरथमातंगंनानापत्तिसमाकुलम् ॥ ५४ ॥ दीप्तशूल
गदाखड्गप्रासतोमरकार्मुकम् ॥ तद्राक्षसबलंभीमंघोरविक्रमपौरुषम् ॥ ५५ ॥ ददृशेज्वलितप्रासंकिंकिणीशतनादि
तम् ॥ हेमजालाचितभुजंव्यावेष्टितपरश्वधम् ॥ ५६ ॥

और जलतेहुए भवनोंकी अग्नि;यह सब वानर और राक्षसोंको प्रकाशित करनें लगीं ॥ ५२ ॥ अग्निसे जलतेहुए गृहोंकी दीप्तिकी परछांई
जब समुद्रके जलमें पडी तब चंचल तरंग माला शोभित समुद्र और भी अधिक शोभायमान हुआ ॥ ५३ ॥ ध्वजा पताकासंयुक्त, उत्तम खड्ग,
फरसासहित, भयंकर घोड़े व हाथियोंके साथ अनेक प्रकारके पैदलोंके सहित ॥ ५४ ॥ प्रदीप्त शूल, गदा खड्ग, प्राश, तोमर, धनुष ऐसे राक्षसोंकी
घोर विक्रमकारी और पौरुषयुक्त सैनाको ॥ ५५ ॥ प्रकाशमान देखा वह सैना शत २ किङ्किणीनिनादित, प्रज्वलित कुठार और सुवर्ण भूषणसे

जलदी लासकते हो, उतनी जलदी लेआओ, और वानरोंको प्राणदान देकर इन लोगोंको आनंदित करो ॥ ३४ ॥ उस समय पवननंदन हनुमानजी जाम्बवन्तके वचन सुनकर पवनके वेगसे जिस प्रकार समुद्र उफनजाताहै, वैसेही प्रबल वेगसे आपभी उद्धतहो उठे ॥ ३५॥ इसके उपरान्त कूदनेंके लियेही जब यह त्रिकूट पर्वतके आगे खड़े हुए तब दूसरे पर्वतके समान जानपड़तेथे ॥ ३६ ॥ तिस काल वानरश्रेष्ठ हनुमानजीके पांवों द्वारा अत्यन्त पीड़ित होंनेसे वह पर्वत अपने स्थानमें रहनेंको असमर्थ हो टूटकर झुक पड़ा ॥ ३७ ॥ वानर श्रेष्ठ हनुमानजीके वेगसे पीड़ित होनेसे उस पर्वतके समस्त वृक्ष पृथ्वीपर गिर पड़े और उसके समस्त शिखर फटगये कि जिनसे अग्नि निकलनेंलगी और सब शृङ्गभी फट

श्रुत्वाजांबवतोवाक्यंहनूमान्मारुतात्मजः ॥ आपूर्यतबलोद्धर्षैर्वायुवेगैरिवार्णवः ॥३५॥ सपर्वततटाग्रस्थःपीडयन्पर्वतोत्तमम् ॥हनूमान्दृश्यतेवीरोद्वितीयइवपर्वतः ॥३६॥ हरिपादविनिर्भग्नोनिषसादसपर्वतः ॥ नशशाकतदात्मानंवोढुंभृशनिपीडितः॥३७॥तस्यपेतुर्नगाभूमौहरिवेगाच्चजज्वलुः ॥ शृंगाणिचव्यकीर्यंतपीडितस्यहनूमता ॥ ३८ ॥ तस्मिन्संपीड्यमानेतुभग्नद्रुमशिलातले ॥ नशेकुर्वानराःस्थातुंघूर्णमानेनगोत्तमे ॥ ३९ ॥ साघूर्णितमहाद्वाराप्रभग्नगृहगोपुरा ॥ लंकात्रासाकुलारात्रौप्रनृत्येवाभवत्तदा॥४०॥ पृथिवीधरसंकाशोनिपीड्यपृथिवीधरम् ॥ पृथिवींक्षोभयामाससार्णवां मारुतात्मजः ॥ ४१ ॥ पद्भ्यांतुशैलमाविध्यवडवामुखवन्मुखम् ॥ विवृत्योग्रंननादोच्चैस्त्रासयन्रजनीचरान् ॥ ४२ ॥ तस्यनानद्यमानस्यश्रुत्वानिनदमुत्तमम् ॥ लंकास्थाराक्षसव्याघ्रानशेकुःस्पंदितुंकचित् ॥ ४३ ॥

गये ॥ ३८ ॥ इस प्रकार पर्वतश्रेष्ठ त्रिकूटके सब वृक्ष टूट गये शिलाओंका चूरा होगया, और वह पर्वतभी पीड़ित होकर घूमनेंलगा; उस पर्वतके रहनेंवाले वानर लोग उस पर नहीं टिकसके ॥ ३९ ॥ लंकाके गृह और पुरद्वार टूट गये, और कंपायमान होनेलगे सबही शंकायुक्त हुए; उस समय ऐसा ज्ञात हुआ कि मानों राक्षसोंकी पुरी लंका नाच रहीहै ॥ ४० ॥ पर्वताकार वानरवीर पवनकुमार पर्वतको पीड़ित करके समस्त पृथ्वीको समुद्रके सहित चलायमान कर देते हुए ॥ ४१ ॥ हनुमानजी चरणके आघातसे पृथ्वीको विदीर्ण करके घोड़ीके मुखकी समान प्रदीप्त मुख फैलाय राक्षसोंको शंकित करके घोर गर्जन करनेंलगे ॥ ४२ ॥ लंकामें टिकेहुए राक्षसलोग अचानक कठोर गर्जन सुन

भूषित बाहु और प्रज्वलित भालेंसे युक्त ॥ ५६ ॥ महाशस्त्रोंको घुमाते हुए धनुष पर बाण चढ़ाते हुए, गन्धमाला व पवनकी मधुकमोहकेसं मोदित करते ॥ ५७ ॥ शूरगणोंके भरे रहनेसे अतिघोर महा मेघके गर्जनकी समान शब्द करती ऐसी दुर्द्धर्ष राक्षसोंकी सेना आई हुई देखकर ॥ ५८ ॥ वानरोंकी सेनानें विचलित होकर ऊंचे स्वरसे सिंहनाद किया। फिर उस राक्षसोंकी बड़ी भारी सैनाके वीचमें ॥ ५९ ॥ अतिवेगसे कूद पड़े कि जैसे पतंगे अग्निमें कूद पड़तेहैं तिन राक्षस लोगोंके भुजोंके व्यापारसे कंपायमान,किये गये वज्र व अशनिसें युक्त ॥ ६० ॥

व्याघूर्णितमहाशस्त्रंबाणसंसक्तकार्मुकम् ॥ गंधमाल्यमधूत्सेकसंमोदितमहानिलम् ॥ ५७ ॥ घोरंशूरजनाकीर्णमहांबुधरनिःस्वनम् ॥ तद्दृष्ट्वाबलमायातंराक्षसानांदुरासदम् ॥ ५८ ॥ संचचालप्लवंगानांबलमुच्चैर्ननादच ॥ जवेनाप्लुत्यच पुनस्तद्बलंरक्षसांमहत् ॥ ५९ ॥ अभ्ययात्प्रत्यरिबलंपतंगाइवपावकम् ॥ तेषांभुजपरामर्शव्यामृष्टपरिघाशनि ॥ ६० ॥ राक्षसानांबलंश्रेष्ठंभूयःपरमशोभत ॥ तत्रोन्मत्ताइवोत्पेतुर्हरयोथयुयुत्सवः ॥ ६१ ॥ तरुशैलैरभिघ्नंतोमुष्टिभिश्चनिशाचरान् ॥ तथैवापततांतेषांहरीणांनिशितैःशरैः ॥ ६२ ॥ शिरांसिसहसाजहूराक्षसाभीमविक्रमाः ॥ दशनैर्हतकर्णाश्चमुष्टिभिर्भिन्नमस्तकाः ॥ शिलाप्रहारभग्नांगाविचेरुस्तत्रराक्षसाः ॥ ६३ ॥ तथैवाप्यपरेतेषांकपीनामसिभिःशितैः ॥ प्रवरानभितोजघ्नुर्घोररूपानिशाचराः ॥ ६४ ॥

राक्षसोंकी सैना फिर अत्यन्त शोभित हुई। इसके उपरान्त युद्ध करनेंके लिये तैयार वानरलोग उन्मत्तकी समान ॥ ६१ ॥ वृक्ष शैल, मूकोंसे कूद २ कर निशाचरोंको मारनें लगे। तब उन कूद २ कर आते हुए वानरोंके तीक्ष्ण बाणोंसे ॥ ६२ ॥ भयंकरविक्रमकारी राक्षस लोग शिर काटनें लगे निशाचरलोग वानर लोगोंके दांतोंसे काटे जाकर कर्ण रहित मूकोंके मारनेंसे शिर रहित और शिलाओंके प्रहारसे अंग भंगहो उस रण भूमिमें विचरण करनेंलगे ॥६३॥ व दूसरी ओरसे घोर रूप निशाचर गणोंने भी तीक्ष्ण खड्गसे मुख्य२वानरोंका संहार करना आरंभ किया ॥ ६४ ॥

धनु, और वसुन्धराकी नाभि, अर्थात् सब प्राजापत्यस्थानोंको देखा ॥५६॥ [महावीर पवनकुमार हनुमानजीनें उस हिमालय पर विघ्नेश्वर (गणेशजी) नंदिकेश्वर, देवता लोगोंसे वेष्टित कुमार कार्तिकेय और कन्या गणोंके साथमें दीप्तिमती हैमवती (दुर्गाजीको) देखा] इसके उपरान्त हिमवत शिखर कैलास; जाम्बवन्तके बताये हुए वृक्ष पर्वत श्रेष्ठ सुवर्णका पर्वत देखकर सब औषधियोंसे प्रदीप्त औषधि पर्वत हनुमानजीनें देखा ॥५७॥ पवनकुमार हनुमानजी कूदकर अनलकी राशिके समान प्रदीप्त उस औषधिपर्वतपर पहुंचकर जाम्बवानकी बताईहुई सब महौषधियोंको खोजनेंलगे और इन औषधियोंको अग्निके समान प्रकाशमान देख हनुमानजी विस्मितभी हुए ॥ ५८ ॥ इस प्रकारसे महाकपि हनुमा

कैलासमुग्रंहिमवच्छिलांचतंवैवृषंकांचनशैलमग्र्यम् ॥ प्रदीप्तसर्वौषधिसंप्रदीप्तंददर्शसर्वौषधिपर्वतेंद्रम् ॥ ५७ ॥ सतंसमीक्ष्यानलराशिदीप्तंविसिस्मियेवासवदूतसूनुः ॥ आप्लुत्यतंचौषधिपर्वतेंद्रंतत्रौषधीनांविचयंचकार ॥ ५८ ॥ सयोजनसहस्राणिसमतीत्यमहाकपिः ॥ दिव्यौषधिधरंशैलंव्यचरन्मारुतात्मजः ॥ ५९ ॥ महौषध्यस्ततःसर्वास्तस्मिन्पर्वतसत्तमे ॥ विज्ञायार्थिनमायांतंततोजग्मुरदर्शनम् ॥ ६० ॥ सतामहात्माहनुमानपश्यंश्चुकोपरोषाच्चभृशंननाद ॥ अमृष्यमाणोग्निसमानचक्षुर्महीधरेंद्रंतमुवाचवाक्यम् ॥ ६१ ॥ किमेतदेवंसुविनिश्चितंतेयद्राघवेनासिकृतानुकंपः ॥ पश्याद्यमद्बाहुबलाभिभूतोविकीर्णमात्मानमथोनगेंद्र ॥ ६२ ॥

नजी हजार योजन मार्ग चलकर सब ओषधियुक्त उस पर्वतपर पहुंचकर घूमनें लगे॥५९॥परन्तु उस पर्वतश्रेष्ठके ऊपर जो समस्त महौषधिथीं, वह यह समझकरकि हमको ढूंढ़नेंको कोई आयाहै सबही अदृश्य होगईं॥६०॥उन समस्त औषधियोंको न देख पायकर क्रोधके मारे हनुमानजीके दोनों नेत्र अग्निकी समान लाल होगये और वह उन औषधियोंका ऐसा कार्य न सहन करके वारंवार सिंहनाद करतेहुए उस पर्वतसे बोले ॥ ६१ ॥ हे पर्वत! तुम जो श्रीरामचंद्रजीके प्रति दया प्रगट नहीं करते यह कैसा कार्य तुमनें निश्चय कियाहै? यदि तुमनें अपनी सामर्थ्यपर भरोसा रखके कार्यमें ऐसी उदासीनता प्रकाश की तो आज हमारे बाहुबलसे व्याकुल होकर तुम अपनेको रत्ती २ चूर्णहुआ देखोगे ॥ ६२ ॥

जायकर उठगये ॥ १ ॥ वेगवान् कंपननेंभी युद्ध करनेंके लिये अंगदको पुकारकर अपनी गदासे उनको मारा कि जिस्से अत्यन्त घायलहो अंगदजी चलायमान होगये ॥ २ ॥ परन्तु तेजस्वी अंगदजीनें क्षण कालमेंही मूर्छासे जागकर एक पर्वतका शिखर उसके ऊपर चलाया कि उस प्रहारके लगतेही कंपन अर्दित होकर पृथ्वीमें गिर पड़ा ॥ ३ ॥ कंपनको रणमें मराहुआ देखकर शोणिताक्ष अपने रथको चलाता हुआ निर्भयहो शीघ्रतासे अंगदजीके समीप गया ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त अत्यन्त वेगसे अंगदजीके ऊपर तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करनेंलगा; वह कालकी अग्निके समान सायक वीरश्रेष्ठ अंगदजीके शरीरमें विंधगये ॥ ५ ॥ राक्षसवीरनें वानरवीरके प्रति क्रमसे छुरे, क्षुरप्र, नाराच, वत्सदन्त, शिलीमुख, कर्णीशल्य

आहूयसोंगदंकोपात्ताडयामासवेगितः ॥ गदयाकंपनः पूर्वंसचचालभृशाहतः ॥ २ ॥ ससंज्ञांप्राप्यतेजस्वीचिक्षेपशि खरंगिरेः ॥ अर्दितश्चप्रहारेणकंपनःपतितोभुवि ॥ ३ ॥ ततस्तुकंपनंदृष्ट्वाशोणिताक्षोहतंरणे ॥ रथेनाभ्यपतत्क्षिप्रं तत्रांगदमभीतवत् ॥ ४ ॥ सोंगदंनिशितैर्बाणैस्तदाविव्याधवेगितः ॥ शरीरदारणैस्तीक्ष्णैःकालाग्निसमविग्रहैः ॥ ५ ॥ क्षुरक्षुरप्रनाराचैर्वत्सदंतैःशिलीमुखैः ॥ कर्णीशल्यविपाटैश्चबहुभिर्निशितैःशरैः ॥ ६ ॥ अंगदःप्रतिविद्धांगोवालिपुत्रः प्रतापवान् ॥ धनुरुग्रंरथंबाणान्ममर्दतरसाबली ॥ ७ ॥ शोणिताक्षस्ततःक्षिप्रमसिचर्मसमाददे ॥ उत्पपाततदाक्रुद्धो वेगवानविचारयन् ॥ ८ ॥ तंक्षिप्रतरमाप्लुत्यपरामृश्यांगदोबली ॥ करेणतस्यतंखड्गंसमाच्छिद्यननादच ॥ ९ ॥ तस्यां सफलकेखड्गनिजघानततोंगदः ॥ यज्ञोपवीतवच्चैनंचिच्छेदकपिकुंजरः ॥ १० ॥

और विपाट इत्यादिक अनेक प्रकारके बाण छोड़े प्रतापवान् बलशाली वालिकुमार अंगदके शरीरमें जब यह समस्त बाण लगे तब उन्होंनें अत्यन्त वेगसे उस राक्षसका उग्र धनु और समस्त बाणोंको छिन्न भिन्न कर डाला ॥ ६ ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त शोणिताक्ष क्रोधमें भरकर शीघ्रतासे ढाल तरवार ग्रहण कर विना विचारे वेगसे कूद पड़ा ॥ ८ ॥ तब विपुलबलशाली अंगदजीनें शीघ्रतासे छलांग मारकर उस राक्षसको पकड़ा और उसके हाथसे बलपूर्वक ढाल तरवार छीन वारंवार सिंहनाद करनेंलगे ॥ ९ ॥ उसकाही खड्ग उसके वायें हाथपर इस प्रकारसे अंगदजीनें

यह कह कर हनुमानजीने शृङ्ग प्रस्तर, खण्ड, मातङ्ग और सुवर्ण आदि धातुओंके उस अनेक शिखरवाले और सहस्रों धातुओंसे प्रज्वलित शृङ्ग सानु समन्वित उस पर्वतको सहसा ग्रहण करके अतिवेगसे उखाड़ लिया ॥ ६३ ॥ गरुड़जीकी समान अति उग्र वेगवाले हनुमानजी उस पर्वतशृङ्गको उखाड़ आकाशमें उछल गये और सुरेन्द्र व असुरगणोंके सहित समस्त लोकोंको त्रासित करते२ असंख्य आकाशचारियोंसे स्तुति किये जाते हुए अतिवेगसे गमन करते हुए ॥ ६४ ॥ सूर्यकी समान रूप सम्पन्न वह वीर हनुमानजी सूर्यकी समान पर्वत ग्रहण करके सूर्यके मार्गमें उपस्थित हो दूसरें सूर्यकी समान शोभाधारण करते हुए ॥ ६५ ॥ पर्वताकार हनुमानजी उस पर्वतको ग्रहण करके अग्निकी ज्वालासे युक्त

सतस्यशृंगंसनगंसनागंसकांचनंधातुसहस्रजुष्टम् ॥ विकीर्णकूटंज्वलिताग्रसानुंप्रगृह्यवेगात्सहसोन्ममाथ ॥ ६३ ॥
सतंसमुत्पाट्यखमुत्पपातवित्रास्यलोकान्ससुरान्सुरेंद्रान् ॥ संस्तूयमानःखचरैरनेकैर्जगामवेगाद्गरुडोग्रवेगः ॥ ६४ ॥
सभास्कराध्वानमनुप्रपन्नस्तंभास्कराभंशिखरंप्रगृह्य॥बभौतदाभास्करसन्निकाशोरवेःसमीपेप्रतिभास्कराभः॥६५॥
सतेनशैलेनभृशंरराजशैलोपमोगंधवहात्मजस्तु ॥ सहस्रधारेणसपावकेनचक्रेणखेविष्णुरिवार्पितेन ॥ ६६ ॥ तंवान
राःप्रेक्ष्यतदाविनेदुःसतानपिप्रेक्ष्यमुदाननाद ॥ तेषांसमुत्कृष्टरवंनिशम्यलंकालयाभीमतरंविनेदुः ॥ ६७॥ ततोमहा
त्मानिपपाततस्मिन्शैलोत्तमेवानरसैन्यमध्ये ॥ हर्युत्तमेभ्यःशिरसाभिवाद्यविभीषणंतत्रचसस्वजेसः ॥ ६८ ॥ ताव
प्युभौमानुषराजपुत्रौतंगंधमाघ्रायमहौषधीनाम् ॥ बभूवतुस्तत्रतदाविशल्यावुत्तस्थुरन्येचहरिप्रवीराः ॥ ६९ ॥

हाथमें सहस्र धार चक्र द्वारा शोभित विष्णुजीकी समान शोभायमान होनें लगे॥६६॥ उस कालमें लंकाके मैदान में खड़े हुए वानरगण उनको देखकर सिंहनाद करने लगें और हनुमानजी भी उनको देखकर सिंहनाद कर उठे उस अत्यन्त दारुण शब्दको श्रवणकरके लंका निवासी निशाचर गणभी भयंकर घोर सिंहनाद करने लगे॥६७॥ इसके उपरान्त महाबलवान हनुमानजी पर्वतश्रेष्ठ त्रिकूटके ऊपर वानरोंकी सेनामें उतरकर मुख्य२ वानरोंको प्रणाम करके विभीषणजीको लिपटायकर मिले॥६८॥इस ओर मनुष्यराजकुमार राम और लक्ष्मणजी सब महौषधियोंकी सुगन्धि सूंघकर उसी

बलवान वानरवीरोंनेभी प्रबल राक्षसोंका संहार किया, एक २ जनके मारनेंको जैसेही तैयारहुआ कि वैसेही एक दूसरेनें आकर उसको ढकेल दिया कोई किसीको काटरहाथा कि दूसरेनें आनकर उसको काट खाया, कोई एक २ किसीकी निन्दाकररहाथा कि वैसेही एक तीसरेनें आकर उसका निरादर किया; किसीके युद्ध चाहनेंपर दूसरा उस्से युद्ध कर रहाहै कि इतनेहीमें कोई आयकर बोला कि हम युद्ध करेंगे "क्यों क्लेशदेतेहो ! तुम यहां खड़े रहो" रणभूमिमे तिसकाल एक दूसरेसे ऐसा कह रहेथे ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ धीरे २ दोनोंओरका युद्ध अतिभयं कर हो उठा, राक्षस लोगोंके शस्त्र व्यर्थ होनेंलगे, उनके कवच आयुध समस्त छिन्न भिन्न होगये। राक्षसलोग बड़े २ भाले, मुष्टि, शूल, और तलवार उठाय रहगये ॥ ६७ ॥ "प्रावर्तत महारौद्रं युद्धं वानररक्षसाम् ॥ वानरान्दश सप्तेति राक्षसा जघ्नुराहवे" इस प्रकारसे वानर

घ्नंतमन्यंजघानान्यःपातयंतमपातयत् ॥ गर्हमाणंजगर्हान्योदशंतमपरोदशत् ॥ ६५ ॥ देहीत्यन्योददात्यन्यो ददामीत्यपरःपुनः ॥ किंक्लेशयसितिष्ठेतितत्रान्योन्यंबभाषिरे ॥ ६६ ॥ विप्रलंभितशस्त्रंचविमुक्तकवचायुधम् ॥ समु द्यतमहाप्रासंमुष्टिशूलासिकुंतलम् ॥ ६७ ॥ प्रावर्ततमहारौद्रंयुद्धंवानररक्षसाम् ॥ वानरान्दशसप्तेतिराक्षसाजघ्नु राहवे ॥ ६८ ॥ विप्रलंभितवस्त्रंचविमुक्तकवचध्वजम् ॥ बलंराक्षसमालंब्यवानराःपर्यवारयन् ॥ ६९ ॥ इ० श्री मद्रा० वा० आ० यु० पंचसप्ततितमःसर्गः ॥ ७५ ॥ ॥ छ ॥ ॥ प्रवृत्तेसंकुलेतस्मिन्वीरेघोरजनक्षये ॥ अंगदःकंपनंवीरमाससादरणोत्सुकः ॥ १ ॥

और राक्षसोंका महाघोर युद्ध होनेंलगा निशाचर लोग एकही वारमें सहस्र २ वानरोंको संहार करनेंलगे ॥ ६८ ॥ "राक्षसान्दशसप्तेति वानरास्त्वभ्यपातयन् । बलं राक्षसमालंब्य वानराः पर्यवारयन् ॥" और वानर लोगभी इतनेही राक्षसोंको एक २ बाणसे रणभूमिमें मारते हुए और उनके वस्त्र फाड कवच तोड ध्वजा नष्ट करदी, उस युद्धमें वानरगण राक्षस लोगोंकी समान बलका आश्रय करके राक्षस लोगोंको निवारण करनेंलगे ॥ ६९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे भाषानुवादे पंचसप्ततितमः सर्गः ॥ ॥ ७५ ॥ जब इस प्रकारसे लोकक्षयकारी घोर कठोर संग्राम होनेंलगा तब महावीर अंगदजी युद्धका अभिलाप करके राक्षसवीर कंपनके सन्मुख

जब वानरराज सुग्रीवजीनें इस प्रकारसे आज्ञा दी तौ उसी दिन सूर्य छिपनेंकें पीछे घोर रात्रिमें वानरश्रेष्ठगण मसालें हाथमें लेलेकर लंकाके सन्मुख गये ॥ ४ ॥ विरूपाक्ष राक्षसगण जोकि लंकाके द्वारकी रक्षा करतेथे वह सब वानरोंको लूके हाथमें लिये हुए देखकर घवड़ाये और वानरगणोंसे मार खाय कर भागगये ॥ ५ ॥ तब वानर लोगोंनें हर्षित अंतःकरणसे बाहर द्वारोंपर, अटारियोंपर, छज्जोंपर, विविध चर्या और धवरहरोंपर सबही जगह अग्नि लगादी ॥ ६ ॥ उस कालमें अग्निनें उन राक्षसोंके हजारों गृह भस्म कर दिये, और पर्वताकार समस्त धवरहर भस्महो पृथ्वीपर भयराय कर गिरनेंलगे ॥ ७ ॥ लंकाके स्थान २ में अगर, परम सुगन्धि युक्त चंदन, मुक्तामणि, उत्तम २ हीरे प्रवाल भस्म

ततोऽस्तंगतआदित्येरौद्रेतस्मिन्निशामुखे ॥ लंकामभिमुखाःसोल्काजग्मुस्तेप्लवगर्षभाः ॥ ४ ॥ उल्काहस्तैर्हरिगणैः सर्वतःसमभिद्रुताः ॥ आरक्षस्थाविरूपाक्षाःसहसाविप्रदुद्रुवुः ॥ ५ ॥ गोपुराट्टप्रतोलीषुचर्यासुविविधासुच ॥ प्रासादेषुचसंहृष्टाःससृजुस्तेहुताशनम् ॥ ६ ॥ तेषांगृहसहस्राणिददाहहुतभुक्तदा ॥ प्रासादाःपर्वताकाराःपतंतिधरणीतले ॥ ७ ॥ अगुरुर्दह्यतेतत्रपरंचैवसुचंदनम् ॥ मौक्तिकामणयःस्निग्धावज्रंचापिप्रवालकम् ॥ ८ ॥ क्षौमंचदह्यतेतत्रकौशेयंचापिशोभनम्॥ आविकंविविधंचौर्णंकांचनंभांडमायुधम्॥ ९ ॥ नानाविकृतसंस्थानंवाजिभांडपरिच्छदम् ॥ गजग्रैवेयकक्ष्याश्चरथभांडांश्चसंस्कृतान् ॥ १० ॥ तनुत्राणिचयोधानांहस्त्यश्वानांचचर्मच ॥ खड्गाधनूंषिज्याबाणास्तोमरांकुशशक्तयः ॥ ११ ॥ रोमजंवालजंचर्मव्याघ्रजंचांडजंबहु ॥ मुक्तामणिविचित्रांश्चप्रासादांश्चसमंततः ॥ १२ ॥

होंने लगे ॥ ८ ॥ अनेक प्रकारके क्षौम कौशेय, [रेशमीन] राङ्कव और उनके बने हुए वस्त्रादि भस्म होगये, आयुध व सुवर्णके पात्रभी जलकर मट्टीमें मिलगये ॥ ९ ॥ भांति २ अन्नादि धरनेंके स्थान घोड़ोंके व और दूसरेभी बहुत सारे अलंकार, हाथियोंके गलोंमें बांधनेंकी वस्तुयें और कमरमें बांधनेंके रस्से, रथोंके गहने, व भोजनादिके पात्र जो कुछभी बनेठने धरेथे ॥ १० ॥ योद्धागणोंके कवच वर्म इत्यादि, हाथी घोड़ोंके कवच, खड्ग, धनुष, प्रत्यंचा, बाण, भाला, अंकुश, शक्ति ॥ ११ ॥ उनके बनेहुए वस्त्र बालोंके बनेहुए चामरादि असंख्य व्याघ्रचर्म, अण्डजात मृग

भूषित बाहु और प्रज्वलित भालोंसे युक्त ॥ ५६ ॥ महाशस्त्रोंको घुमाते हुए धनुष पर बाण चढ़ाते हुए, गन्धमाला व पवनकी मधुकमोहकेसं
मोदित करते ॥ ५७ ॥ शूरगणोंके भरे रहनेसे अतिघोर महा मेघके गर्जनकी समान शब्द करती ऐसी दुर्द्धर्ष राक्षसोंकी सैना आई
हुई देखकर ॥ ५८ ॥ वानरोंकी सैनानें विचलित होकर ऊंचे स्वरसे सिंहनाद किया। फिर उस राक्षसोंकी बड़ी भारी सैनाके वीचमें ॥ ५९ ॥
अतिवेगसे कूद पड़े कि जैसे पतंगे अग्निमें कूद पड़तेहैं तिन राक्षस लोगोंके भुजोंके व्यापारसे कंपायमान,किये गये वज्र व अशनिसें युक्त ॥ ६० ॥

व्याघूर्णितमहाशस्त्रंबाणसंसक्तकार्मुकम् ॥ गंधमाल्यमधूत्सेकसंमोदितमहानिलम् ॥ ५७ ॥ घोरंशूरजनाकीर्णमहां
बुधरनिःस्वनम् ॥ तद्दृष्ट्वाबलमायातंराक्षसानांदुरासदम् ॥ ५८ ॥ संचचालप्लवंगानांबलमुच्चैर्ननादच ॥ जवेनाप्लुत्यच
पुनस्तद्बलंरक्षसांमहत् ॥ ५९ ॥ अभ्ययात्प्रत्यरिबलंपतंगाइवपावकम् ॥ तेषांभुजपरामर्शव्यामृष्टपरिघाश
नि ॥ ६० ॥ राक्षसानांबलंश्रेष्ठंभूयःपरमशोभत ॥ तत्रोन्मत्ताइवोत्पेतुर्हरयोथयुयुत्सवः ॥ ६१ ॥ तरुशैलैरभिघ्नं
तोमुष्टिभिश्चनिशाचरान् ॥ तथैवापततांतेषांहरीणांनिशितैःशरैः ॥ ६२ ॥ शिरांसिसहसाजह्रूराक्षसाभीमविक्रमाः ॥
दशनैर्हृतकर्णाश्चमुष्टिभिर्भिन्नमस्तकाः ॥ शिलाप्रहारभग्नांगाविचेरुस्तत्रराक्षसाः ॥ ६३ ॥ तथैवाप्यपरेतेषांकपीनाम
सिभिःशितैः ॥ प्रवरानभितोजघ्नुःघोररूपानिशाचराः ॥ ६४ ॥

राक्षसोंकी सैना फिर अत्यन्त शोभित हुई। इसके उपरान्त युद्ध करनेंके लिये तैयार वानरलोग उन्मत्तकी समान ॥ ६१ ॥ वृक्ष शैल, मूकोंसे
कूद २ कर निशाचरोंको मारनें लगे। तब उन कूद २ कर आते हुए वानरोंके तीक्ष्ण बाणोंसे ॥ ६२ ॥ भयंकरविक्रमकारी राक्षस लोग शिर का
टनें लगे निशाचरलोग वानर लोगोंके दांतोंसे काटे जाकर कर्ण रहित मूकोंके मारनेंसे शिर रहित और शिलाओंके प्रहारसे अंग भंगहो उस रण
भूमिमें विचरण करनेंलगे ॥६३॥ व दूसरी ओरसे घोर रूप निशाचर गणोंने भी तीक्ष्ण खड्गसे मुख्य२वानरोंका संहार करना आरंभ किया ॥ ६४ ॥

भयंकर वेषवाले आक्रमण करनेके अयोग्य ॥ १ ॥ पांच हजार राक्षसोंको जो कि समरसे लौटनाही चाहतेथे और महावेगवानथे उनको युद्ध करनेंके लिये आज्ञादी वह सब राक्षस समरमें जाय शूल, पटा, खड्ग, और वृक्षादिक व बाणोंकी वर्षा लगातार श्रीरामचंद्रजीके ऊपर करनें लगे वह वृक्ष और पर्वतोंकी वर्षा प्राणोंकी हरण करनेंवालीथी ॥ २ ॥३॥ धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीनें अपनें तीखे बाणों परही उस वर्षाका ग्रहण किया और उसे ग्रहण करके नेत्र बंद कर लिये ॥ ४ ॥ फिर बडा कोप किया और सब राक्षसोंके संहार करनेंका संकल्प किया उस समय क्रोध और तेजसे प्रकाशमान होते हुए श्रीरामचंद्रजीनें॥५॥दूषण सहित सेनाके ऊपर बाणोंकी वर्षा की । फिर शत्रुदूषण सेनापति दूषण क्रोधित हो

राक्षसान्पंचसाहस्रान्समरेष्वनिवर्तिनः ॥ तेशूलैःपट्टिशैःखड्गैःशिलावर्षैर्द्रुमैरपि ॥ २ ॥ शरवर्षैरविच्छिन्नंववर्षुस्तंसमंततः ॥ तद्द्रुमाणांशिलानांचवर्षंप्राणहरंमहत् ॥ ३ ॥ प्रतिजग्राहधर्मात्माराघवस्तीक्ष्णसायकैः ॥ प्रतिगृह्यचतद्वर्षंनिमीलितइवर्षभः ॥ ४ ॥ रामःक्रोधंपरंलेभेवधार्थंसर्वरक्षसाम् ॥ ततःक्रोधसमाविष्टःप्रदीप्तइवतेजसा ॥ ५ ॥ शरैरभ्यकिरत्सैन्यंसर्वतःसहदूषणम् ॥ ततःसेनापतिःक्रुद्धोदूषणःशत्रुदूषणः ॥६॥शरैरशनिकल्पैस्तंराघवंसमवारयत्॥ततोरामःसुसंक्रुद्धःक्षुरेणास्यमहद्धनुः ॥७॥ चिच्छेदसमरेवीरश्चतुर्भिश्चतुरोहयान्॥हत्वाचाश्वाञ्छरैस्तीक्ष्णैरर्धचंद्रेणसारथेः ॥ ८ ॥ शिरोजहारतद्रक्षस्त्रिभिर्विव्याधवक्षसि ॥ सच्छिन्नधन्वाविरथोहताश्वोहतसारथिः ॥ ९ ॥ जग्राहगिरिशृंगाभंपरिघंलोमहर्षणम् ॥ वेष्टितंकांचनैःपट्टैर्देवसैन्याभिमर्दनम् ॥ १० ॥

कर॥ ६॥ वज्रकी समान बाणोंसे श्रीरामचंद्रजीको निवारण करनें लगा। तब श्रीरामचंद्रजीनें महाक्रोधकर छुरेकी समान तेज बाणोंसे दूषणका धनुष॥७॥ काट कर चार बाणोंसे उसके रथमें जो घोडे नहेथे उनको मार डाला।अश्वोंको तीक्ष्ण बाणोंसे वधकर अर्द्धचंद्र बाणसे उसके सारथिका॥ ८॥ शिर काट डाला। और तीन बाण राक्षस खरकी छातीमें मारे। तब दूषणका धनुषभी टूटा रथभी चूर्ण हुआ और घोडे व सारथि भी उसके मारे गये॥९॥तब उसने जिसके देखनेसे संनाटे रुएं खडे हो जाँय ऐसा पहाडके शृंग समान एक परिघ ग्रहण किया वह सुवर्णके बन्धोंसे

बँधा देवताओंकी सेनाको मर्द्दन करनेवाला ॥ १० ॥ लोहेकी कीलोंसें जडा शत्रुओंकी चरवी जिसमें लगी हुई वज्र के समान कठोर व शत्रुपुरके द्वारका विदारण करनेवाला ॥ ११ ॥ ऐसे महासर्पके समान उस परिघको ले संग्राममें क्रूरकर्मकारी दूषणराक्षस श्रीरामचंद्रजी की ओर धाया॥१२॥श्रीरामचंद्रजीने उस दौडे आतेहुए दूषणके भूषणसहित दोनों कर काटडाले ॥ १३ ॥ हाथोंके कट जानेपर उसका वह बृह दाकार परिघ स्थानभ्रष्ट होकर इन्द्रध्वजाकी समान समरमें गिरा ॥१४॥ हाथ कटजानेंसे मुंहकेवल दूषणभी इसभांति पृथ्वीमें गिरा जैसे दांतटूट

आयसैःशंकुभिस्तीक्ष्णैःकीर्णपरवसोक्षितम्॥वज्राशनिसमस्पर्शंपरगोपुरदारणम्॥११॥तंमहोरगसंकाशंप्रगृह्यपरि घंरणे॥ दूषणोऽभ्यपतद्रामंक्रूरकर्मानिशाचरः ॥ १२ ॥ तस्याभिपतमानस्यदूषणस्यचराघवः ॥ द्वाभ्यांशराभ्यां चिच्छेदसहस्ताभरणौभुजौ ॥१३॥ भ्रष्टस्तस्यमहाकायःपपातरणमूर्धनि ॥ परिघश्छिन्नहस्तस्यशक्रध्वजइवाग्र तः ॥ १४ ॥ कराभ्यांचविकीर्णाभ्यांपपातभुविदूषणः ॥ विषाणाभ्यांविशीर्णाभ्यांमनस्वीवमहागजः ॥ १५ ॥ दृष्ट्वातंपतितंभूमौदूषणंनिहतंरणे ॥ साधुसाध्वितिकाकुत्स्थंसर्वभूतान्यपूजयन् ॥ १६ ॥ एतस्मिन्नंतरेक्रुद्धा स्त्रयःसेनाग्रयायिनः ॥ संहत्याभ्यद्रवन्रामंमृत्युपाशावपाशिताः ॥ १७ ॥ महाकपालःस्थूलाक्षःप्रमाथीचमहा बलः ॥ महाकपालोविपुलंशूलमुद्यम्यराक्षसः ॥ १८ ॥ स्थूलाक्षःपट्टिशंगृह्यप्रमाथीचपरश्वधम्॥ दृष्ट्वैवापततस्तां स्तुराघवःसायकैःशितैः ॥ १९ ॥

जानेंपर महा मनस्वी गजराज पृथ्वीमें गिरताहै ॥ १५ ॥ दूषण को संग्राम में मराहुआ और पृथ्वीमें पडाहुआ देखकर सबही प्राणी साधु २ कह कर श्रीरामचंद्रजीकी प्रशंसा करनेंलगे ॥ १६ ॥ इसीसमय उस खरके तीन सेनापति जो निशाचर सेनाके आगेही चलेथे परस्पर मिलकर मृत्युकी फाँसीसे बँधकर क्रोधमें भरकर श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख धाये ॥ १७ ॥ इन तीनोंके नाम महाकपाल, स्थूलाक्ष और महाबलवान् प्रमाथीथे, इनमें महाकपाल विशाल शूल, उठाय ॥ १८ ॥ स्थूलाक्ष पटालेकर, व प्रमाथी फरशा ग्रहण करके श्रीरामचंद्रजीकी ओर चले,

कपिश्रेष्ठ रथ, घोड़े, वृक्ष लेकर राक्षसोंपर चलाये पर्वतोंके शृङ्ग जो कुछभी पातेथे वहां चलातेथे परन्तु महाबलवान् यूपाक्षने बाण चलाय उन सबको टुकड़े २ कर डाला ॥ २० ॥ इसके उपरान्त वीर द्विविद और मैन्दने वृक्षोंको उखाड़कर राक्षसोंके ऊपर चलाया इन सबको वीर्यवान् प्रतापशाली शोणिताक्षनें अधबीचमें ही तोड़डाला ॥ २१ ॥ इसी समयमें वीरश्रेष्ठ प्रजंघ परमर्मभेदी विपुल खड्ग धारण करके अति वेगसे अंगदजीकी ओर धाया ॥२२॥ तब विपुल बलशाली वानरेन्द्र वालिकुमार अंगदजीनें इस राक्षसको निकट आयाहुआ देखकर एक अश्वकर्णवृक्ष ले बड़े वेगसे उसके मारा ॥२३॥ और उस राक्षसके खड्गयुक्त हाथमें एक मूकाभी अंगदजीने मारा कि उसके चोटसे उस निशाचरके हाथसे खड्ग गिर

रथान्सर्वान्द्रुमाञ्छैलान्प्रतिचिक्षिपुराहवे ॥ शरौघैःप्रतिचिच्छेदतान्यूपाक्षोमहाबलः ॥ २० ॥ सृष्टान्द्विविदमैंदाभ्यां द्रुमानुत्पाट्यवीर्यवान् ॥ बभंजगदयामध्येशोणिताक्षःप्रतापवान् ॥ २१ ॥ उद्यम्यविपुलंखड्गंपरमर्मविदारणम् ॥ प्रजंघोवालिपुत्रायअभिदुद्राववेगितः ॥ २२ ॥ तमभ्याशगतंदृष्ट्वावानरेंद्रोमहाबलः ॥ आजघानश्वकर्णेनद्रुमेणातिबलस्तदा ॥ २३ ॥ बाहुंचास्यसनिस्त्रिंशमाजघानसमुष्टिना ॥ वालिपुत्रस्यघातेनसपपातक्षितावसिः ॥ २४ ॥ तंदृष्ट्वापतितंभूमौखड्गंमुसलसन्निभम् ॥ मुष्टिंसंवर्तयामासवज्रकल्पंमहाबलः ॥ २५ ॥ सललाटेमहावीर्यमंगदंवानरर्षभम् ॥ आजघानमहातेजाःसमुहूर्तंचचालह ॥ २६ ॥ ससंज्ञांप्राप्यतेजस्वीवालिपुत्रःप्रतापवान् ॥ प्रजंघस्यशिरःकायात्पातयामासमुष्टिना ॥ २७ ॥ सयूपाक्षोश्रुपूर्णाक्षःपितृव्येनिहतेरणे ॥ अवरुह्यरथात्क्षिप्रंक्षीणेषुःखड्गमाददे ॥ २८ ॥

पड़ा ॥ २४ ॥ उस मूशलकी समान खड्गको पृथ्वीमें गिराहुआ देखकर महावीर प्रजंघनें वज्रकी समान मूका बांधकर अंगदजीपर उठाया ॥ २५ ॥ और महावीर्यवान् वानरश्रेष्ठ अंगदजीके माथेमें वह मूका मारा उस मूकेके लगनेंसे अंगदजी एक मुहूर्तभरतक चलायमान रहे ॥ २६ ॥ परन्तु प्रतापवान तेजस्वी वालिकुमार अंगदजीनेभी फिर शीघ्र चेतना पाय एक मूका मारकर प्रजंघके धड़से शिरको अलग करदिया ॥ २७ ॥ अपने चचा प्रजंघको संग्राममें मराहुआ देखकर यूपाक्ष आंखोंमें आंसू भर धनुष बाण छोड़ खड्ग धारणकर रथसे उतर पड़ा ॥ २८ ॥

वार्ता सुनकर अत्यंत क्रोधसे अग्निकी समान प्रज्वलित होगया ॥ १ ॥ राक्षसराज रावण, क्रोध और शोकसे व्याकुल होकर विशाल नेत्रवाले खरके पुत्र मकराक्षसे बोला ॥ २ ॥ वत्स ! हम तुमको आज्ञा देतेहैं, तुम बड़ी भारी सैनाको साथ लेकर संग्रामभूमिमें जाय वानरोंके सहित उन रामचंद्र और लक्ष्मणको मार डालो ॥ ३ ॥ रावणके वचन सुनकर अपने को शूर माननेवाले बलशाली ढीठ खरके पुत्र राक्षस मकराक्षनें "बहुत अच्छा" कहकर रावणके वचनको स्वीकार किया ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त वह रावणको प्रणामकर व उसकी प्रदक्षिणा कर रावणकी आज्ञानुसार उजले वर्णके गृहोंसे निकला ॥ ५ ॥ तब खरके पुत्र मकराक्षनें समीपही खड़े हुए सैनाके नायकसे कहाकि तुम जलदीसे रथ तैयार कराओ

नैर्ऋतःक्रोधशोकाभ्यांद्वाभ्यांतुपरिमूर्च्छितः ॥ खरपुत्रंविशालाक्षंमकराक्षमचोदयत् ॥ २ ॥ गच्छपुत्रमयाज्ञप्तोबलेनाभिसमन्वितः ॥ राघवंलक्ष्मणंचैवजहितौसवनौकसौ ॥ ३ ॥ रावणस्यवचःश्रुत्वाशूरमानीखरात्मजः ॥ बाढमित्यब्रवीद्धृष्टोमकराक्षोनिशाचरम् ॥ ४ ॥ सोभिवाद्यदशग्रीवंकृत्वाचापिप्रदक्षिणम् ॥ निर्जगामगृहाच्छुभ्राद्रावणस्याज्ञयाबली ॥५॥ समीपस्थंबलाध्यक्षंखरपुत्रोब्रवीद्वचः ॥ रथमानीयतांतूर्णंसैन्यंत्वानीयतांत्वरात् ॥ ६ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाबलाध्यक्षोनिशाचरः ॥ स्यंदनंचबलंचैवसमीपंप्रत्यपादयत् ॥ ७ ॥ प्रदक्षिणंरथंकृत्वासमाहूयनिशाचरः ॥ सूतंसंचोदयामासशीघ्रंवैरथमावह ॥८॥ अथतान्राक्षसान्सर्वान्मकराक्षोब्रवीदिदम् ॥ यूयंसर्वेप्रयुध्यध्वंपुरस्तान्ममराक्षसाः ॥ ९ ॥ अहंराक्षसराजेनरावणेनमहात्मना ॥ आज्ञप्तःसमरेहंतुंतावुभौरामलक्ष्मणौ ॥ १० ॥

और सब सैनाकोभी सजालाओ ॥ ६ ॥ व सैनाध्यक्षनें मकराक्षकी यह आज्ञा पाय उसका रथ व सब सैनाको वहां सजाकर उपस्थित किया ॥ ७ ॥ निशाचर मकराक्ष रथकी प्रदक्षिणा करकै शीघ्रही उसपर सवारहुआ और सारथिसे कहनेंलगा सूत ! शीघ्रतासे रथको चलाओ ॥ ८ ॥ उसके उपरान्त मकराक्ष उन सब राक्षसोंको पुकार कर कहता हुआ "हे निशाचर गण! तुम हमारे आगे रहकर वानरोंसे युद्ध करना ॥ ९ ॥ और हमको महात्मा राक्षसोंके स्वामी रावणसे संग्राममें उन राम लक्ष्मण दोनोंके मारनेंको आज्ञा मिलीहै" ॥ १० ॥

समीप भागकर आईहुई सैनाको अनेक प्रकारसे समझाया बुझाया, अतिश्रेष्ठ महावीर्यवान् वानरोंसे ॥ ३६ ॥ महावीर राक्षसोंकी सैनाको मराहुआ देखकर महातेजस्वी कुंभनें संग्राममें अत्यन्त दुष्कर कर्म किया ॥ ३७ ॥ वह धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ कुंभ सावधानमनसे धनुप धारणकर विषधर सर्पोंकी समान फुंकारतेहुए देहविदारी बाण छोड़नें लगा ॥ ३८ ॥ उस कालमें कुंभका बाणसहित श्रेष्ठ धनुष, बिजली ऐरावतके सहित दूसरे इन्द्रधनुषकी समान शोभायमान होनेंलगा ॥ ३९ ॥ उस वीर कुंभनें सुवर्णकी फोंकवाले पत्रशोभित बाणोंको कानतक खेंचकर उनसे द्विविदको मारा ॥ ४० ॥ पर्वतके शृङ्गकी समान वानरोंमें श्रेष्ठ द्विविद उन बाणोके लगनेंसे अत्यन्त घायलहो मुंहबाय और दोंनों पैर

निपातितमहावीरांदृष्ट्वारक्षश्चमूंतदा ॥ कुंभःप्रचक्रेतेजस्वीरणेकर्मसुदुष्करम् ॥ ३७ ॥ सधनुर्धन्विनांश्रेष्ठःप्रगृह्य सुसमाहितः ॥ मुमोचाशीविषप्रख्याञ्छरान्देहविदारणान् ॥ ३८ ॥ तस्यतच्छुशुभेभूयःसशरंधनुरुत्तमम् ॥ विद्युदैरावतार्चिष्मद्द्वितीयेंद्रधनुर्यथा ॥ ३९ ॥ आकर्णकृष्टमुक्तेनजघानद्विविदंतदा ॥ तेनहाटकपुंखेनपत्रिणापत्रवाससा ॥ ४० ॥ सहसाभिहतस्तेनविप्रमुक्तपदःस्फुरन् ॥ निपपातत्रिकूटाभोविह्वलन्प्लवगोत्तमः ॥ ४१ ॥ मैंदस्तुभ्रातरंतत्रभग्नंदृष्ट्वामहाहवे ॥ अभिदुद्राववेगेनप्रगृह्यविपुलांशिलाम् ॥ ४२ ॥ तांशिलांतत्रचिक्षेपराक्षसायमहाबलः ॥ बिभेदतांशिलांकुंभःप्रसन्नैःपंचभिःशरैः ॥ ४३ ॥ संधायचान्यंसुमुखंशरमाशीविषोपमम् ॥ आजघानमहातेजावक्षसिद्विविदाग्रजम् ॥ ४४ ॥ सतुतेनप्रहारेणमैंदोवानरयूथपः ॥ मर्मण्यभिहतस्तेनपपातभुविमूर्च्छितः ॥ ४५ ॥ अंगदोमातुलौदृष्ट्वामथितौतुमहाबलौ ॥ अभिदुद्राववेगेनकुंभमुद्यतकार्मुकम् ॥ ४६ ॥

फैलाय विकल हो पृथ्वीपर गिरपड़ा ॥ ४१ ॥ मैन्दनें अपनें भ्राता द्विविदको उस महासंग्राममें व्याकुल होते देख एक बड़ी भारी शिला ग्रहण कर कुंभके ऊपर दौड़ा ॥ ४२ ॥ महाबलवान मैन्दनें राक्षसके ऊपर वह शिला चलाई परन्तु महातेजस्वी कुंभनें हँसते २ पांच बाणोंसे उस शिलाको काट डाला ॥ ४३ ॥ और विषधर सर्पकी समान एक और सुमुख बाण धनुषपर चढ़ायकर द्विविदके बड़े भाई मैन्दकी छातीमें कुंभनें मारा ॥ ४४ ॥ कुंभका चलायाहुआ वह बाण वानरयूथपति मैन्दके मर्मस्थानमें लगा कि जिस्से वह मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ४५ ॥ तब वानरवीर अंगदजी

कुछभी चिन्ता नकरकै जिस स्थानमें श्रीराम लक्ष्मणजी विराजमानथे उसी ओरको चला ॥ २० ॥ युद्धकी अभिलाषा किये राक्षसोंका आकार मेघ मातंग [हाथी] महिष [भैंस] की तुल्यथा उन राक्षसोंकी देहोंमें गदा खड्ग व और दूसरे अस्त्रोंके चिह्न प्रकाशमानथे वह सबही युद्धविद्यामें पंडितथे पहले हम युद्ध करेंगे पहले हम युद्ध करेंगे समस्त इस उत्साहमें सिंहनाद करतेहुए रणभूमिमें विचरनें लगे ॥ २१ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० भाषानुवादे अष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥ वानरश्रेष्ठ गण मकराक्षको युद्धकरनेके लिये निकलाहुआ देखकर अतिबलसे कूदते फांदते युद्धकी अभिलाषासे तैयार हुए ॥ १ ॥ इसके उपरान्त देवता लोगोंके सहित दानव गणोंके समान राक्षसोंके साथ वान

घनगजमहिषांगतुल्यवर्णाःसमरमुखेष्वसकृद्गदासिभिन्नाः ॥ अहमहमितियुद्धकौशलास्तेरजनिचराःपरिबभ्रमुर्मु हुस्ते ॥ २१ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेअष्टसप्ततितमःसर्गः ॥ ७८ ॥ छ ॥ निर्गतंमकरा क्षंतेदृष्ट्वावानरपुंगवाः ॥ आप्लुत्यसहसासर्वेयोद्धुकामाव्यवस्थिताः ॥ १ ॥ ततः प्रवृत्तंसुमहत्तद्युद्धंलोमहर्षणम् ॥ नि शाचरैःप्लवंगानांदेवानांदानवैरिव ॥ २ ॥ वृक्षशूलनिपातैश्चगदापरिघपातनैः ॥ अन्योन्यंमर्दयंतिस्मतदाकपिनिशा चराः ॥ ३ ॥ शक्तिखड्गगदाकुंतैस्तोमरैश्चनिशाचराः ॥ पट्टिशैर्भिंदिपालैश्चबाणपातैःसमंततः ॥ ४ ॥ पाशमुद्गरदंडै श्चनिर्घातैश्चापरैस्तथा॥कदनंकपिसिंहानांचक्रुस्तेरजनीचराः ॥५॥ बाणौघैरर्दिताश्चापिखरपुत्रेणवानराः॥संभ्रांतमन सःसर्वेदुद्रुवुर्भयपीडिताः ॥६॥ तान्दृष्ट्वाराक्षसाःसर्वेद्रवमाणान्वनौकसः ॥ नेदुस्तेसिंहवद्दृप्ताराक्षसाजितकाशिनः ॥७॥

रोंका बडाभारी रोमहर्षणकारी युद्ध आरंभ हुआ ॥ २ ॥ उस समय वानर और राक्षसगण वृक्ष शूल गदा परिघादि चलाय २ कर परस्पर एक दूसरेको मारनें लगे ॥ ३ ॥ राक्षसलोग शक्ति खड्ग गदा भाला सांग पटा भिन्दिपाल और बाणोंसे वानरोंको मारते हुए ॥ ४ ॥ फिर पाश मुद्ग रादि श्रेष्ठ २ आयुधोंसें भी उन राक्षसोंने वानरोंको मारा कि जिस्से बहुतसारे वानर शार्दूल मरगये ॥ ५ ॥ खरके पुत्र मकराक्षके बाणोंसे इस प्रकार पीडित हो वानरगण मारे व्याकुल हो भागनें लगे॥६॥रणविजयी राक्षस लोग वानरोंको चारोंओर भागते हुए देखकर गर्वसहित सिंहनाद करनेलगे ॥७॥

परन्तु महाबलवान वीर द्विविदनें इस राक्षसको आताहुआ देखकर क्रोधसहित इसकी छातीमें एक शिला मारी और अत्यन्तबलसे इस राक्षसको पकड़ लिया ॥ २९ ॥ अपने भाईको पकड़ा हुआ देखकर महातेजस्वी महाबलवान् शोणिताक्षनें द्विविदवीरकी छातीमें एक गदा मारी ॥ ३० ॥ उस अत्यन्त दारुण प्रहारसे वानरवीर द्विविद चलायमान होगया परन्तु थोड़ीही देरमें स्थिरहो उस राक्षसकी दूसरी वार उठी गदाको देख इस वीरने छीन लिया ॥ ३१ ॥ इसी अवसरमें मैन्द अपनें भ्राताकी सहायता करनेंके लिये द्विविदके निकट आय पहुंचा और शोणिताक्ष यूपाक्ष नाम इन दोनों राक्षसोंसे यह दोनों वानरश्रेष्ठ मल्लयुद्ध करनें लगे परस्पर एक दूसरेको खेचते खाचते झटका झोरी करते कठोर युद्धकरने लगे॥३२॥तब द्विविदनें

तमापतंतंसंप्रेक्ष्ययूपाक्षंद्विविदस्त्वरन् ॥ आजघानोरसिक्रुद्धोजग्राहचबलाद्बली ॥ २९ ॥ गृहीतंभ्रातरंदृष्ट्वा शोणिताक्षोमहाबलम् ॥ आजघानमहातेजावक्षसिद्विविदंततः ॥ ३० ॥ सततोभिहतस्तेनचचालचमहाबलः ॥ उद्यतांचपुनस्तस्यजहारद्विविदोगदाम् ॥ ३१ ॥ एतस्मिन्नंतरेमैंदोद्विविदाभ्याशमागमत् ॥ तौशोणिताक्ष यूपाक्षौप्लवंगाभ्यांतरस्विनौ॥ चक्रतुःसमरेतीव्रमाकर्षोत्पाटनंभृशम् ॥ ३२ ॥ द्विविदःशोणिताक्षंतुविददारनखैर्मुखे ॥ निष्पिपेषसवीर्येणक्षितावाविध्यवीर्यवान् ॥ ३३ ॥ यूपाक्षमभिसंक्रुद्धोमैंदोवानरपुंगवः ॥ पीडयामासबाहुभ्यांपपातसहतःक्षितौ ॥ ३४ ॥ हतप्रवीराव्यथिताराक्षसेंद्रचमूस्तथा ॥ जगामाभिमुखीसातुकुंभकर्णात्मजोयतः ॥ ३५ ॥ आपतंतींचवेगेनकुंभस्तांसांत्वयच्चमूम् ॥ अथोत्कृष्टंमहावीर्यैर्लब्धलक्षैःप्लवंगमैः ॥ ३६ ॥

अपने मुखसे नखोंसे शोणिताक्षका मुख चीर फाड़ डाला और वकोटलिया और पकड़कर अत्यन्त बलसे पृथ्वीमें दबायकर पीस डाला ॥ ३३ ॥ तब वानरश्रेष्ठ वीर्यवान् मैन्दने अत्यन्त क्रोधितहो दोनों बांहोंसे यूपाक्षको उठाय पृथ्वीपर पटक दिया कि जिस्से यह राक्षस अत्यन्त पीड़ित और निहत होकर पृथ्वीमें गिरपड़ा ॥ ३४ ॥ मारनेंसे बचीहुई राक्षसोंकी सैना राक्षसवीरोंको संग्राममें मृतक देख अत्यन्त दुःखी हुई और अति शीघ्रतासे वहां गई जहां कुम्भकर्णका पुत्र कुंभ खड़ाथा वहां जाकर इस सैनानें यह अशुभ संवाद कुंभसे निवेदन किया ॥ ३५ ॥ कुंभनेंभी उस

इसलियें हेराक्षसगण! आज हम उत्तम बाणोंसे राम लक्ष्मण सुग्रीव व और दूसरे वानरोंकाभी प्राण संहार करेंगे ॥ ११ ॥ जिस प्रकार अग्नि सूखे हुए काठकों जलाताहै, वैसेही हमभी आज शूल चलायकर बड़ीभारी वानरोंकी सैनाको भस्म कर देंगे ॥ १२ ॥ तब वीरवर मकराक्षके वचनोंके अनुसार बलवान् राक्षसगण युद्धके लिये तैयार हुए उनके हाथोंमें अनेक प्रकारके अस्त्रशस्त्र थे ॥ १३ ॥ वह राक्षस क्रूरस्वभाव पीले २ नेत्रवाले कामरूपी और भयंकरदर्शनथे उनके बाल बिखरेहुएथे आकार भयंकर था यह सब राक्षस मतवाले हाथीकी समान बड़ा भारी शब्द करनें लगे ॥१४॥ ऐसे बडे२ शरीरवाले राक्षस महावीरगण मकराक्षको घेरकर चलनेंलगे उनके पैर धरनेकी धमकसे पृथ्वी कंपायमान होने लगी॥१५॥

अद्यराममंवधिष्यामिलक्ष्मणंचनिशाचराः ॥ शाखामृगंचसुग्रीवंवानरांश्चशरोत्तमैः ॥ ११ ॥ अद्यशूलनिपातैश्चवानराणांमहाचमूम् ॥ प्रदहिष्यामिसंप्राप्तांशुष्कंधनमिवानलः ॥ १२ ॥ मकराक्षस्यतच्छ्रुत्वावचनंतेनिशाचराः ॥ सर्वेनानायुधोपेताबलवंतःसमाहिताः ॥ १३ ॥ तेकामरूपिणःक्रूरादंष्ट्रिणःपिंगलेक्षणाः ॥ मातंगाइवनर्दंतोध्वस्तकेशाभयावहाः ॥ १४ ॥ परिवार्यमहाकायामहाकायंखरात्मजम् ॥ अभिजग्मुस्ततोहृष्टाश्चालयंतोनभस्तलम् ॥ १५ ॥ शंखभेरीसहस्राणामाहतानांसमंततः ॥ क्ष्वेलितास्फोटितानांचतत्रशब्दोमहानभूत् ॥ १६ ॥ प्रभ्रष्टोथकरात्तस्यप्रतोदःसारथेस्तदा ॥ पपातसहसादैवाद्ध्वजस्तस्यतुरक्षसः ॥ १७ ॥ तस्यतेरथसंयुक्ताहयाविक्रमवर्जिताः ॥ चरणैराकुलैर्गत्वादीनाःसास्रमुखाययुः ॥ १८ ॥ प्रवातिपवनस्तस्मिन्सपांसुःखरदारुणः ॥ निर्याणेतस्यरौद्रस्यमकराक्षस्यदुर्मतेः ॥ १९ ॥ तानिदृष्ट्वानिमित्तानिराक्षसावीर्यवत्तमाः ॥ अचिंत्यनिर्गताःसर्वेयत्रतौरामलक्ष्मणौ ॥ २० ॥

उस समय भेरी शंख हजारों नगाड़ोंका और वीर लोगोंकी ताल देनेंका और सिंहनाद करनेंका बड़ाभारी शब्द हुआ॥१६॥रणभूमिमें जानेके समय सहसा मकराक्षके सारथीके हाथसे कोड़ा गिरपड़ा और अचानक रथध्वजभी पृथ्वीपर गिरा ॥ १७ ॥ मकराक्षके रथमें जुतेहुए दीन दशाको प्राप्त हुए घोड़े विक्रमहीन हो व्याकुल पवनकी चालसे आंखोंसे आंसू गिरातेहुए गमन करनें लगे ॥ १८ ॥ उस दुर्मति घोर राक्षस मकराक्षके युद्धमें जानेके समय धूलसे युक्त दारुण कठोर पवन चलनेलगी ॥ १९ ॥ परन्तु अत्यन्त वीर्यवान् वह निशाचर उन दुर्निमित्तोंको देखकरभी उनकी

कपिश्रेष्ठ रथ, घोड़े, वृक्ष लेकर राक्षसोंपर चलाये पर्वतोंके शृङ्ग जो कुछभी पातेथे वहां चलातेथे परन्तु महाबलवान् यूपाक्षने बाण चलाय उन सबको टुकड़े २ कर डाला ॥ २० ॥ इसके उपरान्त वीर द्विविद और मैन्दने वृक्षोंको उखाड़कर राक्षसोंके ऊपर चलाया इन सबको वीर्यवान् प्रतापशाली शोणिताक्षनें अधबीचमें ही तोड़डाला ॥ २१ ॥ इसी समयमें वीरश्रेष्ठ प्रजंघ परमर्मभेदी विपुल खड्ग धारण करके अति वेगसे अंगदजीकी ओर धाया ॥२२॥ तब विपुल बलशाली वानरेन्द्र वालिकुमार अंगदजीनें इस राक्षसको निकट आयाहुआ देखकर एक अश्वकर्णवृक्ष ले बड़े वेगसे उसके मारा ॥२३॥ और उस राक्षसके खड्गयुक्त हाथमें एक मूकाभी अंगदजीने मारा कि उसके चोटसे उस निशाचरके हाथसे खड्ग गिर

रथान्सर्वान्द्रुमाञ्छैलान्प्रतिचिक्षिपुराहवे ॥ शरौघैःप्रतिचिच्छेदतान्यूपाक्षोमहाबलः ॥ २० ॥ सृष्टान्द्विविदमैंदाभ्यां द्रुमानुत्पाट्यवीर्यवान् ॥ बभंजगदयामध्येशोणिताक्षःप्रतापवान् ॥ २१ ॥ उद्यम्यविपुलंखड्गंपरमर्मविदारणम् ॥ प्रजं घोवालिपुत्रायअभिदुद्राववेगितः ॥ २२ ॥ तमभ्याशगतंदृष्ट्वावानरेंद्रोमहाबलः ॥ आजघानश्वकर्णेनद्रुमेणातिबल स्तदा ॥ २३ ॥ बाहुंचास्यसनिस्त्रिंशमाजघानसमुष्टिना ॥ वालिपुत्रस्यघातेनसपपातक्षिताविसिः ॥ २४ ॥ तंदृष्ट्वाप तितंभूमौखड्गंमुसलसन्निभम्॥मुष्टिंसंवर्तयामासवज्रकल्पंमहाबलः॥२५॥सललाटेमहावीर्यमंगदंवानरर्षभम् ॥ आज घानमहातेजाःसमुहूर्तंचचालह ॥२६॥ससंज्ञांप्राप्यतेजस्वीवालिपुत्रःप्रतापवान् ॥ प्रजंघस्यशिरःकायात्पातयामासमु ष्टिना ॥ २७ ॥ सयूपाक्षोऽश्रुपूर्णाक्षःपितृव्येनिहतेरणे ॥ अवरुह्यरथात्क्षिप्रंक्षीणेषुःखड्गमाददे ॥ २८ ॥

पड़ा ॥ २४ ॥ उस मूशलकी समान खड्गको पृथ्वीमें गिराहुआ देखकर महावीर प्रजंघनें वज्रकी समान मूका बांधकर अंगदजीपर उठाया ॥ २५ ॥ और महावीर्यवान् वानरश्रेष्ठ अंगदजीके माथेमें वह मूका मारा उस मूकेके लगनेंसे अंगदजी एक मुहूर्तभरतक चलायमान रहे ॥ २६ ॥ परन्तु प्रतापवान तेजस्वी वालिकुमार अंगदजीनेभी फिर शीघ्र चेतना पाय एक मूका मारकर प्रजंघके धड़से शिरको अलग करदिया ॥ २७ ॥ अपने चचा प्रजंघको संग्राममें मराहुआ देखकर यूपाक्ष आंखोंमें आंसू भर धनुष बाण छोड़ खड्ग धारणकर रथसे उतर पड़ा ॥ २८ ॥

वार्ता सुनकर अत्यंत क्रोधसे अग्निकी समान प्रज्वलित होगया ॥ १ ॥ राक्षसराज रावण, क्रोध और शोकसे व्याकुल होकर विशाल नेत्रवाले खरके पुत्र मकराक्षसे बोला ॥ २ ॥ वत्स ! हम तुमको आज्ञा देतेहैं, तुम बड़ी भारी सैनाको साथ लेकर संग्रामभूमिमें जाय वानरोंके सहित उन रामचंद्र और लक्ष्मणको मार डालो ॥ ३ ॥ रावणके वचन सुनकर अपने को शूर माननेवाले बलशाली ढीठ खरके पुत्र राक्षस मकराक्षनें "बहुत अच्छा" कहकर रावणके वचनको स्वीकार किया ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त वह रावणको प्रणामकर व उसकी प्रदक्षिणा कर रावणकी आज्ञानुसार उजले वर्णके गृहोंसे निकला ॥ ५ ॥ तव खरके पुत्र मकराक्षनें समीपही खड़े हुए सैनाके नायकसे कहाकि तुम जल्दीसे रथ तैयार कराओ

नैर्ऋतःक्रोधशोकाभ्यांद्वाभ्यांतुपरिमूर्च्छितः ॥ खरपुत्रंविशालाक्षंमकराक्षमचोदयत् ॥ २ ॥ गच्छपुत्रमयाज्ञप्तोबलेनाभिसमन्वितः ॥ राघवंलक्ष्मणंचैवजहितौसवनौकसौ ॥ ३ ॥ रावणस्यवचःश्रुत्वाशूरमानीखरात्मजः ॥ बाढमित्यब्रवीद्धृष्टोमकराक्षोनिशाचरम् ॥ ४ ॥ सोभिवाद्यदशग्रीवंकृत्वाचापिप्रदक्षिणम् ॥ निर्जगामगृहाच्छुभ्राद्रावणस्याज्ञयाबली ॥५॥ समीपस्थंबलाध्यक्षंखरपुत्रोब्रवीद्वचः ॥ रथमानीयतांतूर्णंसैन्यंत्वानीयतांत्वरात् ॥ ६ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाबलाध्यक्षोनिशाचरः ॥ स्यंदनंचबलंचैवसमीपंप्रत्यपादयत् ॥ ७ ॥ प्रदक्षिणंरथंकृत्वासमाहूयनिशाचरः ॥ सूतंसंचोदयामासशीघ्रंवैरथमावह ॥८॥ अथतान्राक्षसान्सर्वान्मकराक्षोब्रवीदिदम् ॥ यूयंसर्वेप्रयुध्यध्वंपुरस्तान्ममराक्षसाः ॥ ९ ॥ अहंराक्षसराजेनरावणेनमहात्मना ॥ आज्ञप्तःसमरेहंतुंतावुभौरामलक्ष्मणौ ॥ १० ॥

और सब सैनाकोभी सजालाओ ॥ ६ ॥ व सैनाध्यक्षनें मकराक्षकी यह आज्ञा पाय उसका रथ व सब सैनाको वहां सजाकर उपस्थित किया ॥ ७ ॥ निशाचर मकराक्ष रथकी प्रदक्षिणा करकै शीघ्रही उसपर सवारहुआ और सारथिसे कहनेंलगा सूत ! शीघ्रतासे रथको चलाओ ॥ ८ ॥ उसके उपरान्त मकराक्ष उन सब राक्षसोंको पुकार कर कहता हुआ" हे निशाचर गण! तुम हमारे आगे रहकर वानरोंसे युद्ध करना ॥ ९ ॥ और हमको महात्मा राक्षसोंके स्वामी रावणसे संग्राममें उन राम लक्ष्मण दोनोंके मारनेंको आज्ञा मिलीहै " ॥ १० ॥

मन्दरपर्वतके सदृश और इन्द्रध्वजकी समान उस वृक्षको सब राक्षसोंके सामनें अत्यन्त वेगसे कुंभके ऊपर चलाया ॥५५॥ कुंभकर्णके पुत्र कुंभनें सात देहको भेदनेंवाले तीखे बाणोंसे अंगदके भेजे उस वृक्षको काटडाला व और एक बाण अतिशीघ्रतासे अंगदजीकी छातीमें मारा अंगद जीभी उस बाणसे अत्यन्त पीड़ित और मोहित होकर पृथ्वीमें गिर पड़े ॥५६॥ समुद्रके जलमें डुबेहुएकी समान अंगदजीको उस महारणमें व्याकुल होकर मूर्छित हुआ देख वानरश्रेष्ठोंनें यह वृत्तान्त श्रीरामचंद्रजीके निकट जायकर निवेदन किया ॥ ५७ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें महासंग्राममें वालिके पुत्र महाबलवान अंगदजीको संग्राममें व्याकुलहुआ सुनकर जाम्बवान् इत्यादि मुख्य २ वानरोंको अंगदजोकी सहाय करनेंकी आज्ञादी ॥ ५८ ॥

तमिंद्रकेतुप्रतिमंवृक्षंमंदरसन्निभम् ॥ समुत्सृजतवेगेनमिषतांसर्वरक्षसाम् ॥ ५५ ॥ सचिच्छेदशितैर्बाणैःसप्तभिः कायभेदनैः ॥ अंगदोविव्यथेभीक्ष्णंसपपातमुमोहच ॥ ५६ ॥ अंगदंपतितंदृष्ट्वासीदंतमिवसागरम् ॥ दुरासदंहरिश्रे ष्ठाराघवायन्यवेदयन्॥५७॥रामस्तुव्यथितंश्रुत्वावालिपुत्रंमहाहवे॥व्यादिदेशहरिश्रेष्ठाञ्जांबवत्प्रमुखांस्ततः ॥ ५८॥ तेतुवानरशार्दूलाःश्रुत्वारामस्यशासनम् ॥ अभिपेतुःसुसंक्रुद्धाःकुंभमुद्यतकार्मुकम् ॥ ५९ ॥ ततोद्रुमशिलाहस्ताः कोपसंरक्तलोचनाः ॥ रिरक्षिषंतोभ्यपतन्नंगदंवानरर्षभाः ॥ ६० ॥ जांबवांश्चसुषेणश्चवेगदर्शीचवानरः ॥ कुंभकर्णा त्मजंवीरंक्रुद्धाःसमभिदुद्रुवुः ॥ ६१ ॥ समीक्ष्यापततस्तांस्तुवानरेंद्रान्महाबलान् ॥ आववारशरौघेणनगेनेवजलाश यम् ॥ ६२ ॥ तस्यबाणपथंप्राप्यनशेकुरपिवीक्षितुम् ॥ वानरेंद्रामहात्मानोवेलामिवमहोदधिः ॥ ६३ ॥

यह वानर शार्दूलगण श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञाको सुनकर क्रोधितहो धनुष उठाये कुंभकी ओर दौड़े ॥ ५९ ॥ इन सबके हाथोंमें वृक्ष और पर्वतथे; क्रोधसे इन सबके नेत्र लाल होरहेथे यह सब अंगदजीके जीवनकी रक्षा करनेके लिये आगे बढ़े ॥ ६० ॥ जाम्बवान् सुषेण, और वानर वेगदर्शी यह तीनों महा क्रोधकर कुंभके सन्मुख धावमान हुए ॥ ६१ ॥ जिस प्रकार पत्थरोंके टुकड़ोंसे जलके सोतेको रोकदियाजाताहै वैसेहो कुंभनें उन महाबलवान् वानरश्रेष्ठोंको आताहुआ देखकर बाणोंसे उनकी गतिको रोक दिया ॥ ६२ ॥ जिस प्रकार महासमुद्रका जल वेलाभूमिको

उसीसे तुम हमारे साथ युद्ध करो ॥ १६ ॥ दशरथनंदन श्रीरामचन्द्रजी मकराक्षके यह वचन सुनकर हँसते २ उस वृथा बकवाद करनेंवाले मक राक्षसे बोले ॥ १७ ॥ हे निशाचर! किस कारणसे बहुत सारी बकवादकरके अपनी बड़ाई कररहाहै? तू युद्ध न करके केवल वचनोंहीसे जय प्राप्त करनेंके लिये समर्थ नहीं होगा ॥ १८ ॥ हमनें अकेलेही दंडकारण्यमें तुम्हारे पिता खर, त्रिशिरा, दूषण, और उनके संगी चौदह हजार राक्षसोंका संहार कियाहै ॥ १९ ॥ रे पापी! आज तेराभी प्राण संहारकराजायगा और तेरा मांस तीक्ष्ण चोंच और तीक्ष्ण पंजोंवाले गिद्ध, शृगाल और कौए खायकर तृप्त हो जाँयगे ॥ २० ॥ "रुधिरार्द्रमुखा हृष्टारक्तपक्षाण्डजाश्च ये। खेचरा वसुधाराश्च भविष्यन्ति च सर्वतः ॥ जो

मकराक्षवचःश्रुत्वारामोदशरथात्मजः ॥ अब्रवीत्प्रहसन्वाक्यमुत्तरोत्तरवादिनम् ॥ १७ ॥ कत्थसेकिंवृथारक्षोबहू न्यसदृशानिते ॥ नरणेशक्यतेजेतुंविनायुद्धेनवाग्बलात् ॥ १८ ॥ चतुर्दशसहस्राणिरक्षसांत्वत्पिताचयः ॥ त्रिशिरा दूषणश्चापिदंडकेनिहतोमया ॥ १९ ॥ स्वाशिताश्चापिमांसेनगृध्रगोमायुवायसाः ॥ भविष्यंत्यद्यवैपापतीक्ष्णतुंडन खांकुशाः ॥ २० ॥ राघवेणैवमुक्तस्तुमकराक्षोमहाबलः ॥ बाणौघानमुचत्तस्मैराघवायरणाजिरे ॥ २१ ॥ तान्छरा न्छरवर्षेणरामश्चिच्छेदनैकधा ॥निपेतुर्भुविविच्छिन्नारुक्मपुंखाःसुवाससः ॥ २२ ॥

आकाशके चरनेवाले और लाल पंखयुक्त हैं वह सब पक्षीभी अपनी चोंचसे तेरा रुधिर पान करके हर्षितचित्तहो पृथ्वीके अनेक स्थानोंमें घूमेंगे ❋ ॥ " जब श्रीरामचन्द्रजीनें यह वचन कहे तब महाबलवान् मकराक्षनें समर करनेंके लिये तैयार होकर एकहीवारमें श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर अगणित बाणोंकी वर्षा की ॥ २१ ॥ परन्तु श्रीरामचन्द्रजीनें अपनी बाणवर्षासे उन समस्त बाणोंको काटडाला, वह सुवर्णकी फोंक

❋ यह श्लोक प्राचीन पुस्तकोंमें है यद्यपि टीकाकारोंने एकार्थप्रतिपादक जानकर इस श्लोकको छोड़ दियाहै परन्तु वाल्मीकिजीकी कविताका छोडना उचित नहीं इस कारण यह श्लोक यहांपर लिखागया ॥

नहीं लांघसकता वैसेही वह महाबलवान् वानरश्रेष्ठभी उसके बाणोंको तोड़कर आगे बढ़नेमें समर्थ न हुए ॥ ६३ ॥ वानरश्रेष्ठ उन वानरोंको
संग्राममें बाणोंकी वर्षासे मर्दित देख अपने भतीजे अंगदजीको पीछे छोड़ वानरराज सुग्रीवजी ॥ ६४ ॥ कुंभकर्णके पुत्र कुंभ
पर झपटे जिस प्रकार वेगवान् केसरी सिंह पर्वतके शृङ्गोंपर चरतेहुए हाथीपर दौड़ताहै ॥ ६५ ॥ वह महाकपि सुग्रीवजी अश्वकर्णादि अनेक
प्रकारके वृक्ष उखाड़ २ कर कुंभपर चलानेलगे ॥ ६६ ॥ परन्तु कुंभकर्णके पुत्र कुंभनें आकाशको छालेनेवाली दुर्द्धर्ष वृक्ष वृष्टिको तीखे
बाणोंके समूहसे अति शीघ्र खंड २ कर डाला ॥ ६७ ॥ वह काटेहुए दुर्द्धर्ष सब वृक्ष घोर शतघ्नियोंकी समान दिखाई देनेलगे, बाणोंकी वर्षाको

तांस्तुदृष्ट्वाहरिगणाञ्छरवृष्टिभिरर्दितान्॥ अंगदंपृष्ठतःकृत्वाभ्रातृजंप्लवगेश्वरः ॥ ६४ ॥ अभिदुद्रावसुग्रीवःकुंभकर्णा
त्मजंरणे ॥ शैलसानुचरंनागंवेगवानिवकेसरी ॥६५॥ उत्पाट्यचमहावृक्षानश्वकर्णादिकान्बहून् ॥ अन्यांश्चविविधा
न्वृक्षांश्चिक्षेपसमहाकपिः ॥ ६६ ॥ तांछादयंतीमाकाशंवृक्षवृष्टिंदुरासदाम् ॥ कुंभकर्णात्मजःश्रीमांश्चिच्छेदस्वशरैः
शितैः ॥ ६७ ॥ अर्दितास्तेद्रुमारेजुर्यथाघोराःशतघ्नयः ॥ द्रुमावर्षंतुतद्भिन्नंदृष्ट्वाकुंभेनवीर्यवान् ॥ ६८ ॥ वानराधिप
तिःश्रीमान्महासत्त्वोनविव्यथे ॥ सविध्यमानःसहसासहमानस्तुताञ्छरान् ॥६९॥ कुंभस्यधनुराक्षिप्यबभंजेंद्रधनुः
प्रभम् ॥ अवप्लुत्यधनुःशीघ्रंकृत्वाकर्मसुदुष्करम् ॥ ७० ॥ अब्रवीत्कुपितःकुंभंभग्नशृंगमिवद्विपम् ॥ निकुंभाग्रजवीर्यं
तेबाणवेगंतदद्भुतम् ॥ ७१ ॥ सन्नतिश्चप्रभावश्चतववारावणस्यवा ॥ प्रह्लादबलिवृत्रघ्नकुबेरवरुणोपमम् ॥ ७२ ॥

वीर्यवान् कुंभ करके छिन्न भिन्न देख वानरोंके स्वामी श्रीमान् महासत्वसम्पन्न सुग्रीवजी कुछभी व्यथित न हुए ॥ ६८ ॥ वानरराज राक्ष
सके बाणसे विंधकर अतिसरलतासे उस दारुण आघातको सहलेतेहुए उन सुग्रीवजीनें इसके उपरान्त कुंभके हाथसे बलपूर्वक इन्द्रके धनुषकी
तुल्य ॥ ६९ ॥ उसका धनुष छीन तोड़ डाला वानरराज सुग्रीवजी ऐसा दुष्कर कर्म करके छलांग मार ॥७०॥ कोपकियेहुए दांत टूटेहुए हाथीकी
समान खड़ेहुए कुंभसे जायकर बोले । हे निकुंभके बड़े भाई कुंभ ! तुम्हारे बाणोंका वेग व वीर्य अतिअद्भुतहै, ॥ ७१ ॥ तुममें विनय और प्रताप

॥

लगे, गांसीयुक्त समस्त बाण कटकर पृथ्वीपर गिरपड़े ॥ २२ ॥ इस प्रकारसे राक्षस खर और नरेन्द्र महाराज दशरथजीके पुत्र उन दोनोंके पुत्र मकराक्ष व श्रीरामचन्द्रजीका परस्पर तेज सहित मिलनें पर दोनोंका घोरयुद्ध आरंभ हुआ ॥ २३ ॥ तिस काल उस रणभूमिमें आकाशमें शब्द करतेहुए दो मेघोंकी समान दोनोंके धनुषकी टंकार और हाथसे खेचनें का और धनुषसे बाण छोड़नेंका शब्द सुनाईआनेंलगा ॥ २४ ॥ देव, दानव, गन्धर्व, किन्नर, और बड़े २ सर्पगण युद्ध देखनेंके लिये आकाशमें विराजमान हुए ॥ २५ ॥ उस समय दोनोंके शरीर जितनेंही बाणोंसे विंधे वैसेही वैसे दोनोंकी सामर्थ्य बढ़नेंलगी, जब एक दूसरेको मारताथा, तब दूसराभी उसका उत्तर देनेंके लिये उसके उसी अंगमें घाव लगाताथा॥२६॥

तद्युद्धमभवत्तत्रसमेत्यान्योन्यमोजसा ॥ खरराक्षसपुत्रस्यसूनोर्दशरथस्यच ॥ २३ ॥ जीमूतयोरिवाकाशेशब्दोज्यातलयोरिव ॥ धनुर्मुक्तस्वनोन्योन्यंश्रूयतेचरणाजिरे ॥ २४ ॥ देवदानवगंधर्वाःकिन्नराश्चमहोरगाः ॥ अंतरिक्षगताःसर्वेद्रष्टुकामास्तदद्भुतम्॥२५॥विद्धमन्योन्यगात्रेषुद्विगुणंवर्धतेबलम् ॥ कृतप्रतिकृतान्योन्यंकुरुतांतौरणाजिरे॥२६॥राममुक्तांस्तुबाणौघान्राक्षसस्त्वाच्छिनद्रणे॥ रक्षोमुक्तांस्तुरामोवैनैकधाप्राच्छिनच्छरैः ॥ २७॥ बाणौघवितताःसर्वादिशश्चप्रदिशस्तथा॥ संछन्नावसुधाचैवसमंतान्नप्रकाशते॥२८॥ततःक्रुद्धोमहाबाहुर्धनुश्चिच्छेदसंयुगे॥ अष्टाभिरथनाराचैःसूतंविव्याधराघवः॥२९॥भित्त्वारथंशरैरामोहत्वाअश्वानपातयत् ॥ विरथोवसुधास्थःसमकराक्षोनिशाचरः॥३०॥

श्रीरामचन्द्रजीनें जितनें बाण चलाये मकराक्षनें उन सबको काटडाला और राक्षस मकराक्षके छोड़ेहुए बाणसमूहोंको श्रीरामचन्द्रजीनें काटडाला ॥ २७ ॥ दोनों वीरोंके चलायेहुए बाणोंसे समस्त दिशा विदिशा भरगईं, और पृथ्वी आकाश दोनोंमें अंधकार छाय गया ॥ २८ ॥ इसके उपरान्त महाबाहु श्रीरामचन्द्रजीनें क्रोधित होकर मकराक्षका धनुष काटकर अठारह बाण चलायकर उसके सारथिको बींधा ॥ २९ ॥ व और बहुतसे बाणोंसे रथको भेदकर उसमेंके जुतेहुए घोड़ोंकाभी संहारकिया तब राक्षस मकराक्ष रथहीन होकर पृथ्वीपर

रावणकी नांईहैं; तुम्हारा विक्रम, बल, प्रह्लाद, इन्द्र कुबेर, और वरुणकी समान है ॥ ७२ ॥ तुम सब प्रकारसे अपने पिता कुंभकर्णके अनुरूप पुत्रहो हेमहाबाहो शत्रुदमनकारी! जब तुम अकेले शूल हाथमें लेकर खड़े हो जाओ ॥ ७३ ॥ तब देवता लोगभी भयभीतहो तुम्हारे सन्मुख न आय सकेंगे; कि जिस प्रकारसे मनकी पीड़ा इन्द्रियोंके जीतनेंवाले पुरुषके सन्मुख नहीं खड़ी हो सकती [अर्थात् उसको पीड़ा नहीं देसकती] अच्छा जो हुआ सो हुआ आज तुम इस महासंग्राममें अपना विक्रम प्रकाश करो और हमारा विक्रम देखो ॥ ७४ ॥ तुम्हारे ताऊ रावणनें तौ ब्रह्माजीके वरदानके प्रभावसेही देवता और दानव लोगोंको जीताथा, परन्तु कुंभकर्णनें अपनें वीर्यके प्रभावसे सुर असुर लोगोंको पराजित

एकस्त्वमनुजातोसिपितरंबलवत्तरम्॥त्वामेवैकंमहाबाहुंशूलहस्तमरिंदमम् ॥७३॥ त्रिदशानातिवर्ततेजितेंद्रियमिवा धयः॥ विक्रमस्वमहाबुद्धेकर्माणिममपश्यच॥७४॥वरदानात्पितृव्यस्तेसहतेदेवदानवान्॥कुंभकर्णस्तुवीर्येणसहतेच सुरासुरान् ॥ ७५ ॥ धनुषींद्रजितस्तुल्यःप्रतापेरावणस्यच ॥ त्वमद्यरक्षसांलोकेश्रेष्ठोसिबलवीर्यतः ॥ ७६ ॥ महावि मर्दंसमरेमयासहतवाद्भुतम् ॥ अद्यभूतानिपश्यंतुशक्रशंबरयोरिव ॥ ७७ ॥ कृतमप्रतिमंकर्मदर्शितंचास्त्रकौशलम् ॥ पातिताहरिवीराश्चत्वयैतेभीमविक्रमाः ॥ ७८ ॥ उपालंभभयाच्चैवनासिवीरमयाहतः ॥ कृतकर्मपरिश्रांतो विश्रांतःपश्यमेबलम् ॥ ७९ ॥

कियाथा ॥ ७५ ॥ तुम प्रतापमें रावणकी समान और धनुषविद्यामें इन्द्रजीतकी तुल्य हो, इसलिये अब राक्षसोंके बीचमें एक तुमही हमको बल वीर्यमें श्रेष्ठ जान पड़तेहो ॥ ७६ ॥ जिस प्रकार शत्रु लोगोंके साथ शम्बरासुरका संग्राम हुआथा, वैसेही तुम्हारे साथ आज हमारा कठोर संग्राम होगा; समस्त प्राणी इस भयंकर समरको अपनी आंखोंसे देखेंगे ॥ ७७ ॥ तुमनें असाधारण कर्म कियाहै; तुमनें अपने अस्त्रकी चतुरताभी बाणों को चलाय कर दिखाई है, कि इन भीमविक्रमकारी जाम्बवान् आदि वानरोंको बाणोंसें रोकदियाहै ॥ ७८ ॥ तुम अकेले इन बहुत सारे वान रोंके साथ युद्ध करकै थकगयेहो; अतएव इस समय बल प्रकाश करकै तुम्हारे वध करनेंपर लोग निन्दा करैंगे इसी भयसे हम तुमको नहीं मार

खड़ा रहगया ॥ ३० ॥ पृथ्वीपर खड़ेहुए उस राक्षस मकराक्षनें सर्व प्राणियोंको भय दिलानेंवाला प्रलयकालकी समान प्रकाशित शूल अपने हाथमें ग्रहणकिया ॥ ३१ ॥ यह शूल राक्षस मकराक्षनें महादेवजीकी तपस्या करके प्राप्त कियाथा, यह भयं कर और अतिदुर्द्धर्ष था, यह अपने तेजसे आकाशमें प्रज्वलितहो रहाथा, ॥ ३२ ॥ देखनेंसे यह शूल दूसरे संहारास्त्रकी समान जान पड़ ताथा जिसको देखकर सब देवता भयके मारे आरत हो दशों दिशाओंको भागगये; ॥ ३३ ॥ ऐसा बड़ाभारी प्रज्वलित शूल घुमायकर राक्षसनें क्रोधसहित वह शूल महात्मा श्रीरामचंद्रजीके ऊपर चलाया उस आतेहुए खरपुत्र मकराक्षके हाथसे चलायेहुए प्रज्व

तत्तिष्ठद्वसुधांरक्षःशूलंजग्राहपाणिना ॥ त्रासनंसर्वभूतानांयुगांताग्निसमप्रभम् ॥३१॥ दुरवापंमहच्छूलंरुद्रदत्तंभयंकर
म् ॥ जाज्वल्यमानमाकाशेसंहारास्त्रमिवापरम् ॥३२॥ यंदृष्ट्वादेवताःसर्वाभयार्ताविद्रुतादिशः ॥ विभ्राम्यचमहच्छूलं
प्रज्वलंतंनिशाचरः ॥ ३३ ॥ सक्रोधात्प्राहिणोत्तस्मैराघवायमहात्मने ॥ तमापतंतंज्वलितंखरपुत्रकराच्च्युतम् ॥३४॥
बाणैश्चतुर्भिराकाशेशूलंचिच्छेदराघवः ॥ सभिन्नोनैकधाशूलोदिव्यहाटकमंडितः ॥ व्यशीर्यतमहोल्केवरामबाणार्दि
तोभुवि ॥३५॥ तच्छूलंनिहतंदृष्ट्वारामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ साधुसाध्वितिभूतानिव्याहरंतिनभोगताः ॥३६॥ तंदृष्ट्वानि
हतंशूलंमकराक्षोनिशाचरः ॥ मुष्टिमुद्यम्यकाकुत्स्थंतिष्ठतिष्ठेतिचाब्रवीत् ॥३७॥ सतंदृष्ट्वापतंतंतुप्रहस्यरघुनंदनः ॥ पा
वकास्त्रंततोरामःसंदधेतुशरासने ॥३८॥ तेनास्त्रेणहतंरक्षःकाकुत्स्थेनतदारणे ॥ सच्छिन्नहृदयंतत्रपपातचममारच ॥३९॥

लित ॥ ३४ ॥ शूलको चार बाणोंसे आकाशमेंही श्रीरामचंद्रजीनें काट डाला । तपायेहुए सुवर्णसे शोभित वह दिव्यशूल श्रीरामचंद्रजीके बाणसे मर्दित और अनेक खंड होकर बड़ीभारी उल्काकी समान पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ३५ ॥ उस समय सरलकर्मकारी श्रीरामचंद्रजी करके उस शूलको कटा हुआ देखकर आकाशमें टिके हुए सब प्राणी "धन्यहो, धन्यहो" ऐसा कहनेंलगे ॥ ३६ ॥ निशाचर मकराक्ष शूलको कटा हुआ देख मूका उठाय "खड़े रहो खड़े रहो" ऐसा कहकर श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख धाया ॥ ३७ ॥ ॥ रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीनेंभी उस राक्ष सको आताहुआ देख मंद २ हँसतेहुए धनुपको धारण किया और उसपर अग्निबाण चढ़ाया ॥ ३८ ॥ श्रीरामचंद्रजीके उस आग्नेयास्त्रसे राक्षस

डालते हैं. एक क्षणभर विश्राम करकै तुम हमारा पराक्रम देखो ॥ ७९ ॥सुग्रीवजीके ऐसे सारवान् सन्मानयुक्त वचनोंसे अग्निमें आहुति लगनेंके समान कुंभका तेज औरभी बढ़ा ॥८०॥ इसके उपरान्त वीर्यवान कुंभनें दोनों बाहोंसे सुग्रीवजीको पकड़ लिया, वह दोनों जने उस समय मदचु आते हाथीकी समान वारंवार लंबे २ श्वास लेनें लगे ॥ ८१ ॥ परस्पर एक दूसरेका शरीर गांठनें लगे, दोनोंही एक दूसरेको खेंचतेथे अत्यन्त जोरसे लड़नेंकें कारण दोनोंहीके मुखसे मारे परिश्रमके धुवें सहित अग्निकी शिखा निकल रहीथी ॥८२॥ दोनों वीरोंके चरणोंकी धमकसे पृथ्वी नीचे को धसनेंलगीं समुद्रमें बड़ी तरंगें उठनें लगी और समुद्र कंपायमानभी हुआ ॥८३॥ तिसके उपरान्त सुग्रीवजीनें कुंभको पकड़कर मानों समुद्रकी

तेनसुग्रीववाक्येनसावमानेनमानितः ॥ अग्नेराज्यहुतस्येवतेजस्तस्याभ्यवर्धत ॥ ८० ॥ ततःकुंभस्तुसुग्रीवंबाहुभ्यां जगृहेतदा ॥ गजाविवावीतमदौनिःश्वसंतौमुहुर्मुहुः ॥ ८१ ॥ अन्योन्यगात्रग्रथितौघर्षंतावितरेतरम् ॥ सधूमांमुखतो ज्वालांविसृजंतौपरिश्रमात् ॥ ८२ ॥ तयोःपादाभिघाताच्चनिमग्नाचाभवन्मही ॥ व्याघूर्णिततरंगश्चचुक्षुभेवरुणा लयः ॥ ८३ ॥ ततःकुंभंसमुत्क्षिप्यसुग्रीवोलवणांभसि ॥ पातयामासवेगेनदर्शयन्नुदधेःस्थलम् ॥ ८४ ॥ ततःकुंभनिपाते नजलराशिःसमुत्थितः ॥ विंध्यमंदरसंकाशोविससर्पसमंततः ॥ ८५ ॥ ततःकुंभःसमुत्पत्यसुग्रीवमभिपात्यच ॥ आजघानोरसिक्रुद्धोवज्रकल्पेनमुष्टिना ॥ ८६ ॥ तस्यचर्मचपुस्फोटसंजज्ञेचापिशोणितम् ॥ तस्यमुष्टिर्महावेगःप्रति जघ्नेऽस्थिमंडले ॥ ८७ ॥ तस्यवेगेनतत्रासीत्तेजःप्रज्वलितंमहत् ॥ वज्रनिष्पेषसंजाताज्वालामेरोर्यथागिरेः ॥ ८८ ॥

तली दिखलानेंके लियेही उसको अतिवेगसे लवणसमुद्रमें झोक दिया ॥८४॥ जब कुंभ समुद्रमें झोकागया तब समुद्रके जलकी राशि विन्ध्य और मन्दराचल पर्वतकी समान ऊंचा उठकर चारों ओर उफलाय उठा ॥ ८५ ॥ कुंभ एकक्षणभरके पीछेही समुद्रसे निकलकर सुग्रीवजीके निकट आया और क्रोधमें भरकर उनकी छातीमें एक वज्रकी समान मूका मारा॥८६॥उस भयंकर आघातसे सुग्रीवजीके शरीरकी खाल फट गई, अतिवेगसे रुधिरकी धारा वहनेंलगी और उस महावेगसे चलेहुए मूकेनें सुग्रीवजीकी छातीकी हड्डियें तोड़ डालीं ॥ ८७ ॥ जिस प्रकार वज्रके चलानेसे

मकराक्षका हृदय फट गया और वह संग्राम भूमिमें गिरकर प्राण छोड़ता हुआ ॥ ३९ ॥ उस समय और सब राक्षस मकराक्षको मृतक देख राम
बाणके भयसे अत्यन्त व्याकुलहो लंकाकी ओरको भागे ॥ ४० ॥ इस ओर देवता लोग राजा दशरथजीके पुत्र श्रीरामचंद्रजी करके
खरके पुत्र निशाचर मकराक्षको मृतक और वज्रसे विदारण हुए पर्वतकी समान पड़े देखकर परम प्रसन्न हुए ॥ ४१ ॥ इ०
श्रीम० वा० आ० यु० भाषानुवादे नवसप्ततितमः सर्गः ॥ ७९ ॥ महावीर रावण मकराक्षकी मृत्युका समाचार सुनकर अत्यन्त क्रोध
युक्त हुआ और दांतसे दांत पीसकर "कटकट" शब्द करनेंलगा ॥ १ ॥ इसके उपरान्त क्षणभरतक "अब क्या करना उचितहै" यह चिन्ता

दृष्ट्वातेराक्षसाःसर्वेमकराक्षस्यपातनम् ॥ लंकामेवप्रधावंतरामबाणभयार्दिताः ॥ ४० ॥ दशरथनृपसूनुबाणवेगैरज
निचरंनिहतंखरात्मजंतम् ॥ प्रददृशुरथदेवताःप्रहृष्टागिरिमिववज्रहतंतथाविकीर्णम् ॥ ४१ ॥ इ० श्रीम० वा०आ०
यु०नवसप्ततितमःसर्गः ॥ ७९ ॥ ॥ छ ॥ ॥ मकराक्षंहतंश्रुत्वारावणःसमितिंजयः ॥ रोषेणमहताविष्टोदंतान्कटक
टाय्यच ॥ १ ॥ कुपितश्चतदातत्रकिंकार्यमितिचिंतयन् ॥ आदिदेशाथसंक्रुद्धोरणायेंद्रजितंसुतम् ॥ २ ॥ जहिवी
रमहावीर्यौभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ अदृश्योदृश्यमानोवासर्वथात्वंबलाधिकः ॥ ३ ॥ त्वमप्रतिमकर्माणमिंद्रंजय
सिसंयुगे ॥ किंपुनर्मानुषौदृष्ट्वानवधिष्यसिसंयुगे ॥ ४ ॥ तथोक्तोराक्षसेंद्रेणप्रतिगृह्यपितुर्वचः ॥ यज्ञभूमौसविधि
वत्पावकंजुहवेंद्रजित् ॥५॥ जुह्वतश्चापितत्राग्निंरक्तोष्णीषधराःस्त्रियः ॥ आजग्मुस्तत्रसंभ्रांताराक्षस्योयत्ररावणिः॥६॥

करके महा क्रोधकर पुत्र इन्द्रजीतको संग्राममें जानेंकी आज्ञा देता हुआ ॥ २ ॥ रावणनें कहा, हेवीर! तुम सब प्रकारसे महाबलवानहो इस
लिये प्रगट होकर अथवा अन्तर्ध्यान होकर दोनों भ्राता राम और लक्ष्मणको मार डालो ॥ ३ ॥ तुमनें जो रणभूमिमें अनुपमकर्मकारी इन्द्रको
जीत लियाहै फिर भला "दो मनुष्योंको" तौ देखतेही तुम मार डालोगे इसमें संदेहही क्याहै इन्द्रजीतनें राक्षसोंके स्वामी रावणकी इस प्रकारसे
आज्ञा पाय यज्ञभूमिमें जाय अग्निमें यथाविधिसे होम करना आरंभ किया ॥ ४ ॥ ५ ॥ जिस स्थानमें राक्षसराजका पुत्र मेघनाद यज्ञकार्यमें ॥

सुमेरु पर्वतसें अग्नि निकलतीथी वैसेही उस मूकेके लगनेंसे सुग्रीवजीकी छातीकी हड्डियोंमेंसे तेज निकलनें लगा ॥ ८८ ॥ महाबलशाली वीर्यवान वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजीनें कुंभकरके इस प्रकारसे चोट खाय वज्रकी समान महाबलसे मूका बांधा ॥ ८९ ॥ सहस्रकिरणोंसे समुज्वल रविमंडलकी समान वह घूंसा कुंभकी छातीमें मारा ॥ ९० ॥ तब उस प्रहारसे कुंभ अत्यन्त ताड़ित और विह्वल होकर लपटहीन अग्निके समान पृथ्वीमें गिर पड़ा ॥९१॥ और वह निशाचर मूकेसे मारा जायकर आकाशसे अपनें आपसे गिरेहुए मंगल ग्रहकी समान गिरकर शोभायमान हुआ ॥ ९२ ॥ मूकेके प्रहारसे कुंभकी छाती टूट गई और गिरे हुए कुंभकारूप महादेवजीके मारनेंसे गिरे हुए सूर्यकी समान शोभित हुआ॥९३॥

सतत्राभिहतस्तेनसुग्रीवोवानरर्षभः ॥ मुष्टिंसंवर्तयामासवज्रकल्पंमहाबलः ॥ ८९ ॥ अर्चिःसहस्रविकचरविमंडलवर्चसम् ॥ समुष्टिंपातयामासकुंभस्योरसिवीर्यवान् ॥ ९० ॥ सतुतेनप्रहारेणविह्वलोभृशपीडितः ॥ निपपाततदाकुंभोगतार्चिरिवपावकः ॥ ९१ ॥ मुष्टिनाभिहतस्तेननिपपाताशुराक्षसः ॥ लोहितांगइवाकाशाद्दीप्तरश्मिर्यदृच्छया ॥९२ ॥ कुंभस्यपततोरूपंभग्नस्योरसिमुष्टिना ॥ बभौरुद्राभिपन्नस्ययथारूपंगवांपतेः ॥ ९३ ॥ तस्मिन्हतेभीमपराक्रमेणप्लवंगमानामृषभेणयुद्धे ॥ महीसशैलासवनाचचालभयंचरक्षांस्यधिकंविवेश ॥ ९४ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेषट्सप्ततितमःसर्गः ॥ ७६ ॥छ॥ निकुंभोभ्रातरंदृष्ट्वासुग्रीवेणनिपातितम् ॥ प्रदहन्निवकोपेनवानरेंद्रमुदैक्षत ॥ १ ॥ ततःस्रग्दामसन्नद्धंदत्तपंचांगुलंशुभम् ॥ आददेपरिघंधीरोमहेंद्रशिखरोपमम् ॥ २ ॥

इस प्रकार भयंकर पराक्रमकारी वानरराज करकै रणभूमिमें जब कुंभ मारा गया, तब समस्त वन और पर्वतोंकें साथ पृथ्वी चलायमान होगई व निशाचर गण औरभी अधिक भीत हुए ॥ ९४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ॥ ७६ ॥ वानरराज सुग्रीवजीके हाथसे अपने भ्राता कुंभको निहत देखकर महावीर निकुंभ क्रोधसे लाल २ नेत्रकर जलाताहीहुआसा मानों सुग्रीवजीकी ओर देखने लगा ॥ १ ॥इसके उपरान्त उस वीरनें काले लोहेका बनाहुआ पांच अंगुलके प्रमाणवाला बन्धोंसें बँधा ज्वाला मालासे शोभित

दीक्षित हुआथा वहांपर कईएक लाल वस्त्र धारण किये हुए राक्षसियें अतिसावधानीसे आयकर इस यज्ञकी सेवा करनें लगीं ॥ ६ ॥ उस यज्ञमें शस्त्रही शरपतके तुल्य बिछरहेथे और उसके पूरा करनेंके लिये बहेड़ेकी लकड़ी, लाल वर्णके वस्त्र, और काले लोहेसे बना हुआ स्रुवा लाया गया ॥ ७ ॥ तब इन्द्रजीतनें तोमर स्वरूप शरपत्रोंसे अग्नि प्रज्वलितकी और एक जीते हुए काले छागकी गर्दन पकड़ी ॥ ८ ॥ और उस छागको अग्निमें होम दिया, होम करतेही वह शरपत्रोंपर फैली हुई अग्नि धूम रहित होगई, और उसमें निकली हुई शिखाओंसे विजयकी सूचना देने वाले चिह्न प्रकाशित हुए ॥ ९ ॥ और तपाये हुए कांचनकी समान अग्निने दाहिनी ओरकी धूम लपटोंके सहित उठकर मेघनादकी दी हुई

शस्त्राणिशरपत्राणिसमिधोथबिभीतकाः ॥ लोहितानिचवासांसिस्त्रुवंकार्ष्णायसंतथा ॥ ७ ॥ सर्वतोग्निंसमास्तीर्य शरपत्रैःसतोमरैः ॥ छागस्यसर्वकृष्णस्यगलंजग्राहजीवतः॥ ८ ॥ शरहोमसमिद्धस्यविधूमस्यमहार्चिषः ॥ बभूवु स्तानिलिंगानिविजयंदर्शयंतिच ॥ ९ ॥ प्रदक्षिणावर्तशिखस्तप्तहाटकसन्निभः ॥ हविस्तत्प्रतिजग्राहपावकःस्वयमु त्थितः ॥ १० ॥ हुत्वाग्निंतर्पयित्वाथदेवदानवराक्षसान् ॥ आरुरोहरथश्रेष्ठमंतर्धानगतंशुभम् ॥ ११ ॥ सवाजिभिं श्चतुर्भिस्तुबाणैस्तुनिशितैर्यतः ॥ आरोपितमहाचापःशुशुभेस्यंदनोत्तमे ॥ १२ ॥ जाज्वल्यमानोवपुषातपनीयप रिच्छदः ॥ मृगैश्चंद्रार्धचंद्रैश्चसरथःसमलंकृतः ॥ १३ ॥ जांबूनदमहाकंबुर्दीप्तपावकसन्निभः ॥ बभूवेंद्रजितःकेतु र्वैदूर्यसमलंकृतः ॥ १४ ॥

आहुति ग्रहणकी ॥ १० ॥ रावणका पुत्र मेघनाद इस प्रकार अग्निको आहुतिदे देव, दानव और राक्षसोंकी तृप्ति करताहुआ व किसीको न दीखनें वाले शुभ लक्षणयुक्त रथपर सवारहुआ ॥ ११ ॥ उस कालमें चार घोड़ोंसे चलाये जाते उत्तम रथमें सवार होकर वह वीर बड़ाभारी धनुष और तीखे बाणसमूह ग्रहण करके परम शोभायमान होनें लगा ॥ १२ ॥ महावीर इन्द्रजीतका देह सुवर्णके वस्त्राभूषणसे शोभायमानथा उसका रथभी सुवर्णसे भूषितथा, उस रथमें मृगोंकी तसवीर बनरहीथी और अर्द्धचंद्रोंसेभी वह भली भांति अलंकृतथा ॥ १३ ॥ सोनेके वलयसे युक्त

वीर हनुमानजीको उठाय आकाश मार्गसे लंकाकी ओर जानें लगा, तब राक्षस लोग युद्धके इस वृत्तान्तको देखकर हर्षित मनसे कुलाहल करनें लगे ॥ १८ ॥ उस समय महावीर हनुमानजी अपनेको राक्षसके हाथमें पड़ा हुआ देखकर अत्यन्तही लज्जित हुए और उन्होंनें उस राक्षसकी छातीमें वज्रकी समान एक घूंसा मारा ॥ १९ ॥ हनुमानजी उसी समयै राक्षसके हाथसे अपनेंको छुटाय कूदकर पृथ्वीपर खड़े होगये और निकुंभको पकड़कर उन्होंनें शीघ्रही पृथ्वीपर पटक दिया॥२०॥ वह वेगवान वीर हनुमानजी क्रोधमें भरकर निकुंभको पृथ्वीपर पटक वारंवार पीसकर देंदे मारनें लगे और आपभी कूदकर उसकी छातीपर चढ बैठे ॥ २१ ॥ इसके उपरान्त अपनी दोनों बाहोंसे पकडकर उसका शिर मरोरदिया,

सतथाह्नियमाणोपिहनूमांस्तेनरक्षसा ॥ आजघानानिलसुतोवज्रकल्पेनमुष्टिना ॥ १९ ॥ आत्मानंमोक्षयित्वाथ क्षितावभ्यवपद्यत ॥ हनूमानुन्ममाथाशुनिकुंभंमारुतात्मजः ॥२० ॥ निक्षिप्यपरमायत्तोनिकुंभंनिष्पिपेषच ॥ उत्पत्यचास्यवेगेनपपातोरसिवेगवान् ॥ २१ ॥ परिगृह्यचबाहुभ्यांपरिवृत्यशिरोधराम् ॥ उत्पाटयामासशिरोभैरवंनदतोमहत् ॥ २२॥ अथनिनदतिसादितेनिकुंभेपवनसुतेनरणेबभूवयुद्धम् ॥ दशरथसुतराक्षसेंद्रसूनोर्भृशतरमागतरोषयोःसुभीमम् ॥ २३ ॥ व्यपेतेतुजीवेनिकुंभस्यहृष्टाविनेदुःप्लवंगादिशःसस्वनुश्च ॥ चचालेवचोर्वीपपातेवसाद्यौर्बलं राक्षसानांभयंचाविवेश ॥ २४ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवा०आ०युद्धकांडेसप्तसप्ततितमःसर्गः ॥ ७७ ॥ ॥ ७१ ॥ निकुंभंनिहतंदृष्ट्वाकुंभंचविनिपातितम् ॥ रावणःपरमामर्षीप्रजज्वालानलोयथा ॥ १ ॥

और उस भयंकर शब्द करतेहुएका शिर उखाड़कर फेंक दिया ॥ २२ ॥ इस प्रकार जब पवनकुमार हनुमानजीसे संग्राममें शब्दकरताहुआ निकुंभ मारा गया तब अत्यन्त क्रोध पूर्ण श्रीरामचंद्रजीका और राक्षसोंमें श्रेष्ठ खरके पुत्र मकराक्षका युद्ध आरंभ हुआ ॥ २३ ॥ निकुंभके मारेजानेंपर वानर लोगोंकी आनंदपूर्ण सिंहनादसे दशों दिशा शब्दायमान, पृथ्वी चलायमान और आकाश मानों पृथ्वीपर गिर पड़ा । निकुंभको मराहुआ देखकर वानर लोगोंका भयंकर शब्द सुनकर राक्षसोंकी सैनामें अत्यन्त भयका संचार हुआ ॥ २४ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० भाषानुवादे सप्तसप्ततितमःसर्गः ॥ ७७ ॥ इसके उपरान्त लंकापति दशानन रावण निकुंभ और कुंभके मरनेंकी

और प्रदीप्त अग्निकी समान उसका केतुभी वैदूर्यमणिसे सबप्रकार सजरहाथा ॥ १४ ॥ उस सूर्यकी समान रथ और ब्रह्मास्त्रसे रक्षित होनेके
कारण महाबलवान रावणका पुत्र मेघनाद अत्यन्त अजीत होगया ॥१५॥ समरविजयी इन्द्रजीत इस प्रकारसे अग्निमें होमकरके नगरसे बाहर नि
कला और राक्षसी मंत्रोंसे अन्तर्ध्यान होकर बोला ॥ १६ ॥ मिथ्या वनको निकले हुए राम और लक्ष्मणको संग्राममें मारकर हम रणमें बटोरी हुई
जय अपने पिता रावणको देंगे ॥ १७ ॥ आज हम लक्ष्मणके सहित रामचंद्रका नाशकर पृथ्वीको वानरविहीन और पिताजीको परम प्रसन्न
करेंगे ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त महावीर इन्द्रजीत रावणकी प्रेरणासे प्रेरित होकर क्रोधसहित युद्धभूमिमें आया, मेघनाद हाथमें तीक्ष्ण अस्त्र धारण
तेनचादित्यकल्पेनब्रह्मास्त्रेणचपालितः ॥ सबभूवदुराधर्षोरावणिःसुमहाबलः॥१५॥ सोभिनिर्यायनगरादिंद्रजित्समि
तिंजयः ॥ हुत्वाग्निंराक्षसैर्मंत्रैरंतर्धानगतोब्रवीत् ॥ १६ ॥ अद्यहत्वारणेयौतौमिथ्याप्रव्रजितौवने ॥ जयंपित्रेप्रदास्या
मिरावणायरणेधिकम् ॥१७॥ अद्यनिर्वानरामुर्वींहत्वारामंचलक्ष्मणम्॥ करिष्येपरमांप्रीतिमित्युक्त्वांतरधीयत॥१८॥
आपपाताथसंक्रुद्धोदशग्रीवेणचोदितः॥ तीक्ष्णकार्मुकनाराचैस्तीक्ष्णास्त्विन्द्ररिपूरणे ॥१९॥ सददर्शमहावीर्यौनागौत्रि
शिरसाविव ॥ सृजंताविषुजालानिवीरौवानरमध्यगौ ॥ २० ॥ इमौतावितिसंचिंत्यसज्जंकृत्वाचकार्मुकम् ॥ संतता
निषुधाराभिःपर्जन्यइववृष्टिमान् ॥ २१ ॥ सतुवैहायसरथोयुधितौरामलक्ष्मणौ ॥ अचक्षुर्विषयेतिष्ठन्विव्याधनिशितैः
शरैः ॥ २२ ॥ तौतस्यशरवेगेनपरीतौरामलक्ष्मणौ ॥ धनुषीसशरेकृत्वादिव्यमस्त्रंप्रचक्रतुः ॥ २३ ॥
करके औरभी अधिक तीक्ष्ण होगया ॥ १९ ॥ इन्द्रजीतने देखा कि वानरलोगोंके बीचमें तीन फणवाले सर्पकीसमान श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी
खडेहैं [इनके बन्धनोंमें दो दो तरकस लग रहेथे और मस्तकके साथ तीन २ शिरवाले ज्ञात होतेथे, इस कारण तीन फणवाला सर्प कहा] यह
श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी वानर लोगोंके बीचमें खड़े रहकर बाणोंकी वर्षा कर रहेथे ॥ २० ॥ इन्द्रजीतनें उनको देखतेही पहचानलिया और
मेघ जिसप्रकार जलकी धारा वर्षातेहैं वैसेही मेघनाद धनुषपर बाण चढायकर निरन्तर बाणोंकी वर्षा करनें लगा ॥ २१ ॥ आकाशगामी रथपर
सवार होकर वह वीर दृष्टिके ओझलहोकर टिका हुआ तीखे बाण समूहसे श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीको वींधताहुआ ॥ २२ ॥ महावीर श्रीरामचंद्र ॥

इन तीनोंको अपनें ऊपर आयाहुआ देख श्रीरामचंद्रजीनें तीक्ष्ण बाणों से ॥१९॥ इनकी अगवानीकी। जैसे मनुष्य आयेहुए पाहुनोंकी अगुवानी व उचित पूजा करतेहैं। और महाकपालका तो रघुनंदनजीनें शिर ही उड़ादिया ॥ २० ॥ व अगणित बाणोंसे प्रमाथीका माथा, और स्थूलाक्षकी मोटी आखोंको पूरण करदिया ॥२१॥ यह तीनों कटेहुए वृक्षोंकी नांई पृथ्वीमें गिर पडे। इसके पीछे पांचहजार जो दूषणके अनुयायी राक्षसथे उन सबको अति क्रोधकर एक क्षणभरमें ॥२२॥ संहारकर उन सबको श्रीदशरथकुमारनें यमपुरको पठादिया, तब दूषण, व उसके अनुगामी सैन्यको मरा गयाहुआ सुन ॥ २३ ॥ खरनें क्रोधित होकर महाबलवान् और दूसरे सेनापतियोंको इस प्रकारसे आज्ञा दी, कि, से

तीक्ष्णाग्रैःप्रतिजग्राहसंप्राप्तानतिथीनिव ॥ महाकपालस्यशिरश्चिच्छेदरघुनंदनः ॥ २० ॥असंख्येयैस्तुबाणौघैःप्रममाथप्रमाथिनम् ॥ स्थूलाक्षस्याक्षिणीस्थूलेपूरयामाससायकैः ॥ २१ ॥ सपपातहतोभूमौविटपीवमहाद्रुमः ॥ दूषणस्यानुगान्पंचसाहस्रान्कुपितःक्षणात् ॥२२॥ हत्वातुपंचसाहस्रैरनयद्यमसादनम् ॥ दूषणंनिहतंश्रुत्वातस्यचैवपदानुगान् ॥ २३ ॥ व्यादिदेशखरःक्रुद्धःसेनाध्यक्षान्महाबलान् ॥ अयंविनिहतःसंख्येदूषणःसपदानुगः ॥ २४ ॥ महत्यासेनयासार्धंयुद्धारामंकुमानुषम् ॥ शस्त्रैर्नानाविधाकारैर्हनध्वंसर्वराक्षसाः ॥ २५ ॥ एवमुक्त्वाखरःक्रुद्धोराममेवाभिदुद्रुवे ॥ श्येनगामीपृथुग्रीवोयज्ञशत्रुर्विहंगमः ॥ २६ ॥ दुर्जयःकरवीराक्षःपरुषःकालकार्मुकः ॥ हेममालीमहामालीसर्पास्योरुधिराशनः ॥ २७ ॥ द्वादशैतेमहावीर्याबलाध्यक्षाःससैनिकाः ॥ राममेवाभ्यधावंतविसृजंतःशरोत्तमान् ॥ २८ ॥

नापति लोगो। दूषण तो अपने अनुगामियों समेत मारागया ॥ २४ ॥ बस अब तुम सब राक्षसगण एकत्रहो बडी भारी सेनाको साथ लेकर विविध आकार अस्त्र शस्त्र छोडकर मनुष्याधम रामचंद्रको मारडालो॥२५॥खर सेनापतियोंसे इस प्रकार कहकर क्रोधमें भर आपही श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख दौडा। श्येनगामी, पृथुग्रीव, यज्ञशत्रु, विहङ्गम ॥ २६ ॥ दुर्ज्जय, परवीराक्ष, परुष, कालकार्मुक, हेममाली, महामाली, सर्प्पास्य, रुधिराशन ॥ २७ ॥ यह बारह महावीर सेनापति अपनी सेनाके साथ श्रेष्ठ बाण वर्षातेहुए श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख धाये ॥ २८ ॥

इन सब राक्षसोंको तेजस्वी श्रीरामचंद्रजीने अपने ऊपर आताहुआ देखकर हेमवज्रविभूषित अग्नितुल्य बाणोंसे खरकी इस बची बचाई सेनापर प्रहार करना आरंभकिया ॥ २९ ॥ वज्रपडनेसे जिस प्रकार बडे २ वृक्ष गिर जातेहैं वैसेही श्रीरामचंद्रजीके सुवर्ण पंख सायक सधूम अग्निकी समान राक्षसोंको संहार करनेलगे ॥३०॥ श्रीरामचंद्रजीने एक शत बाण चलाकर एकशत राक्षसोंका संहारकिया, व हजार बाण चलाकर हजार राक्षसोंका प्राण लेलिया ॥ ३१ ॥ राक्षसगण रुधिरमें सनेहुए पृथ्वीमें गिरे, उनके कवच भूषण और धनुष छिन्नभिन्न और विदीर्ण होगये ॥ ३२ ॥ यज्ञकी वेदीपर जिसप्रकार कुश बिछे होतेहैं वैसेही संग्रामकी समस्त पृथ्वी रुधिरसे सराबोर बाल खुलेहुए राक्षसों से छाइ होथी ॥ ३३ ॥ सब राक्षसोंके मारे जानेसे वनभूमि उनके मांस व रुधिरकी कीचसे ढककर क्षणभरमेंही महाभयंकर नरककी समान होगई ॥ ३४ ॥ मनुष्यशरीरधारी रामचंद्रने इकलेही विना रथपर चढे चौदह हजार भयंकरकर्म करनेंवाले राक्षसोंको मारडाला ॥ ३५ ॥ सब सेनाके बीचमें महारथी खर, त्रिशिरा और शत्रुओंके हनन करनेंवाले श्रीरामचंद्रजीके बल यह तीनजन शेषरहे ॥ ३६ ॥ बचेबचाये राक्षस सबही लक्ष्मणजीके बडेभाई श्रीरामचंद्रजीसे मारेगये, यह समस्त राक्षस अतिशय बलवान, भयंकर, व बडेदुःखसे सहनेके योग्यथे ॥ ३७ ॥

ततःपावकसंकाशैर्हेमवज्रविभूषितैः ॥ जघानशेषंतेजस्वीतस्यसैन्यस्यसायकैः ॥ २९ ॥ तेरुक्मपुंखाविशिखाःसधूमाइवपावकाः ॥ निजघ्नुस्तानिरक्षांसिवज्राइवमहाद्रुमान् ॥ ३० ॥ रक्षसांतुशतंरामःशतेनैकेनकर्णिना ॥ सहस्रंतुसहस्रेणजघानरणमूर्धनि ॥३१॥ तैर्भिन्नवर्माभरणाश्छिन्नभिन्नशरासनाः ॥ निपेतुःशोणितादिग्धाधरण्यांरजनीचराः ॥ ३२ ॥ तैर्मुक्तकेशैःसमरेपतितैःशोणितोक्षितैः ॥ विस्तीर्णावसुधाकृत्स्नामहावेदिःकुशैरिव॥३३॥ तत्क्षणेतुमहाघोरंवनंनिहतराक्षसम् ॥ बभूवनिरयप्रख्यंमांसशोणितकर्दमम् ॥ ३४ ॥ चतुर्दशसहस्राणिरक्षसांभीमकर्मणाम् ॥ हतान्येकेनरामेणमानुषेणपदातिना ॥ ३५ ॥ तस्यसैन्यस्यसर्वस्यखरःशेषोमहारथः ॥ राक्षसस्त्रिशिराश्चैवरामश्चारिपुसूदनः ॥३६॥ शेषाहतामहावीर्याराक्षसारणमूर्धनि ॥ घोरादुर्विषहाःसर्वेलक्ष्मणस्याग्रजेनते ॥३७॥

व लक्ष्मणजी राक्षसके वाण लगनेंसे धनुप चढायकर दिव्यास्त्रका प्रयोग करते हुए ॥ २३ ॥ यद्यपि श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीके बाणोंसे आकाश मंडल छाय गया परन्तु वह समस्त वाण इन्द्रजीतके शरीरको स्पर्श नहीं करसके ॥ २४ ॥ राक्षसवीर इन्द्रजीतनें मायाके बलसे धुवें सहित अंधकार विस्तार करके दशों दिशाओंको छाय लिया, और आप उस अंधकार मंडलसे ढका रहकर किसी दूसरेकी दृष्टिमें न आनेंयोग्य हो गया ॥२५॥ उस कालमें उसके रथका घर्घर शब्द धनुपकी टंकार घोडोंके पैर धरनेंका शब्द कुछभी सुनाई नहीं आताथा और मेघनाद स्वयम्भी भली भांतिसे लोप होगया ॥ २६ ॥ उस निबिड़ अंधकारमें सब दिशा विदिशा अंधकारसे छाय गईं, महाबाहु इन्द्रजीत पत्थर वर्षानेंकी समान

प्रच्छादयंतोगगनंशरजालैर्महाबलौ ॥ तमस्त्रैःसूर्यसंकाशैर्नैवपस्पर्शतुःशरैः ॥२४॥ सहिधूमांधकारंचचक्रेप्रच्छादयन्नभः ॥ दिशश्चांतर्दधेश्रीमान्नीहारतमसावृतः ॥२५॥ नैवज्यातलनिर्घोषोनचनेमिखुरस्वनः ॥ शुश्रुवेचरतस्तस्यनचरूपंप्रकाशते ॥२६॥ घनांधकारेतिमिरेशिलावर्षमिवाद्भुतम् ॥ सववर्षमहाबाहुर्नाराचशरवृष्टिभिः ॥२७॥ सरामंसूर्यसंकाशैःशरैर्दत्तवरैर्भृशम् ॥ विव्याधसमरेक्रुद्धःसर्वगात्रेषुरावणिः ॥ २८ ॥ तौहन्यमानौनाराचैर्धाराभिरिवपर्वतौ ॥ हेमपुंखान्नरव्याघ्रौतिग्मान्मुमुचतुःशरान् ॥ २९ ॥ अंतरिक्षेसमासाद्यरावणिंकंकपत्रिणः ॥ निकृत्यपतगाभूमौपेतुस्तेशोणिताप्लुताः ॥ ३० ॥ अतिमात्रंशरौघेणदीप्यमानौनरोत्तमौ ॥ तानिपून्पततोभल्लैरनेकैर्विचकर्ततुः ॥ ३१ ॥ यतोहिददृशातेतौशरान्निपतितान्छितान् ॥ ततस्तुतौदाशरथीससृजातेऽस्त्रमुत्तमम् ॥ ३२ ॥

अद्भुत नाराच और बाणोंकी वर्षा आरंभ करता हुआ ॥ २७ ॥ मेघनाद क्रोधमें भरकर सूर्यकी समान प्रदीप्त बाण समूहसे रणभूमिमें श्रीरामचंद्रजीको मारनें लगा ॥ २८ ॥ पर्वतपर जिसप्रकारसे वृष्टि होती है वैसेही वह दोनों नर शार्दूल श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी मेघनादके बाणोंसे ताडित होकर घोररूप सुवर्णकी फोंक लगे बाणसमूह मेघनादके ऊपर चलानें लगे ॥ २९ ॥ वह समस्त कंकबाण आकाशमें मेघनादके समीप जायकर उसकी देहको भेद रुधिरसे भीग पृथ्वीपर गिरनेंलगे ॥ ३० ॥ इन्द्रजीतके बाण चलानेंसे श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीकी दीप्ति बढ उठी कि उन्होंनेभी राक्षसके चलायेहुए समस्त बाणोंको भाले चलाकर व्यर्थ करदिया ॥ ३१ ॥ यद्यपि श्रीराम लक्ष्मणजी इन्द्रजीतको देख नहीं

परन्तु आपने उस कालमें राज्यको छोड़कर उस अर्थमूल धर्मकी मूल काट डाली ॥ ३१ ॥ जिस प्रकार पर्वतसे नदियें निकलतींहैं वैसेही अनेक देशसे लाये जाकर बढ़े हुए अर्थसेही सब क्रिया प्रवर्तित हुआ करतीहै ॥३२॥ इसके विरुद्ध जिस प्रकार छोटी नदियें ग्रीष्मकालमें सूख जाती हैं वैसेही अल्पबुद्धि अर्थहीन पुरुषकी सब क्रिया नष्ट हो जातींहैं ॥ ३३ ॥ अनेक वार ऐसाभी देखा जाताहै कि पुरुष प्रथम सुख साधन अर्थ छोड़कर पीछेसे सुखका अभिलाषी होताहै, और काल पायकर जब वह अभिलाष बढ़ जाताहै तब वह पापके आचरण करनें आरंभ कर देताहै कि जिस्से दोष होजाताहै ॥ ३४ ॥ इस संसारमें जिसके पास धनहै वही पुरुषहै और मित्र व बन्धु बान्धव गणभी उसीके हैं,धनवानही पुरुषहै धन

अर्थेभ्योथप्रवृद्धेभ्यःसंवृत्तेभ्यस्ततस्ततः ॥ क्रियाःसर्वाःप्रवर्ततेपर्वतेभ्यइवापगाः ॥ ३२ ॥ अर्थेनहिविमुक्तस्यपुरुषस्याल्पचेतसः ॥ विच्छिद्यंतेक्रियाःसर्वाग्रीष्मेकुसरितोयथा ॥ ३३ ॥ सोयमर्थंपरित्यज्यसुखकामःसुखैधितः ॥ पापमांचरतेकर्तुंतदादोषःप्रवर्तते ॥ ३४ ॥ यस्यार्थास्तस्यमित्राणियस्यार्थास्तस्यबांधवाः ॥ यस्यार्थाःसपुमाँल्लोकेयस्यार्थाःसचपंडितः ॥ ३५ ॥ यस्यार्थाःसचविक्रांतोयस्यार्थाःसचबुद्धिमान् ॥ यस्यार्थाःसमहाबाहुर्यस्यार्थाःसगुणाधिकः ॥ ३६ ॥ अर्थस्यैतेपरित्यागेदोषाःप्रव्याहृतामया ॥ राज्यमुत्सृजताधीरयेनबुद्धिस्त्वयाकृता ॥ ३७ ॥ यस्यार्थाधर्मकामार्थास्तस्यसर्वंप्रदक्षिणम् ॥ अधनेनार्थकामेननार्थःशक्यंविचिन्वता ॥ ३८ ॥ हर्षःकामश्चदर्पश्च धर्मःक्रोधःशमोदमः ॥ अर्थादेतानिसर्वाणिप्रवर्ततेनराधिप ॥ ३९ ॥

वानही पंडितहै ॥ ३५ ॥ जिसके पास धनहै उसकाही विक्रमहै, जिसके पास धनहै वही बुद्धिमानहै; जिसके पास धनहै वही महावीर और वही गुणवानहै ॥ ३६ ॥ हेधीर! हमनें जो कुछ कहा धनका त्याग करनेंसे यही दोष होजातेहैं; परन्तु हम नहीं कह सकते कि आपने किस बुद्धिके वश होकर राज्य छोड़ दिया ॥ ३७ ॥ जिसके पास धनहै उसके सबही कुछ वशमे है और वह सहजहीसे धर्म कामादिकोंको सिद्ध कर सकताहै परन्तु निर्धन पुरुष चाहै अनंत उद्योग करै उसका कोई प्रयोजनभी सिद्ध नहींहो सकता ॥ ३८ ॥ हेनरनाथ! हर्ष, काम, गर्व, धर्म, क्रोध,शम,

पातेथे परन्तु जिस ओरसे उसके बाण चले आतेथे उसही ओरको यह दोनोंजन तीखे बाण चलानें लगे ॥ ३२ ॥ अतिरथ इन्द्रजीतनेंभी सर्व दिशाओंमे रथ चलाते २ तीखे बाण समूहसे उन बाण वर्षाते हुए दोनों राजकुमारोंको मारना आरंभ किया ॥ ३३ ॥ उस समय वह वीरश्रेष्ठ दोनों दशरथकुमार सुवर्णकी फोंक लगे मेघनादके बाणोंसे विंधकर फूले हुए दो पलाश वृक्षोंकी समान शोभायमान हुए ॥ ३४ ॥ जिस प्रकार मेघसे ढके हुए सूर्यकी गति नहीं जानीजायसक्ती है; वैसेही कोईभी इन्द्रजीतकी गति, रूप, धनुष, अथवा बाण कुछभी नहीं देख सकता ॥ ३५ ॥ उस युद्धमें सैकड़ों हजारों वानर घायल हुए और मृतक होकर पृथ्वीपर गिरपड़े ॥ ३६ ॥

रावणिस्तुदिशःसर्वारथेनातिरथोपतत् ॥ विव्याधतौदाशरथीलघ्वस्त्रौनिशितैःशरैः ॥३३॥ तेनातिविद्धौत्तौवीरौरुक्मपुंखैसुसंहतैः ॥ बभूवतुर्दाशरथीपुष्पिताविवकिंशुकौ ॥३४॥ नास्यवेगगतिंकश्चिन्नचरूपंधनुःशरान् ॥ नचास्यविदितंकिंचित्सूर्यस्येवाभ्रसंप्लुवे ॥३५॥ तेनविद्धाश्चहरयोनिहताश्चगतासवः ॥ बभूवुःशतशस्तत्रपतिताधरणीतले ॥ ३६ ॥ लक्ष्मणस्तुततःक्रुद्धोभ्रातरंवाक्यमब्रवीत् ॥ ब्राह्ममस्त्रंप्रयोक्ष्यामिवधार्थंसर्वरक्षसाम् ॥ ३७ ॥ तमुवाचततोरामोलक्ष्मणंशुभलक्षणम् ॥ नैकस्यहेतोरक्षांसिपृथिव्यांहंतुमर्हसि ॥ ३८ ॥ अयुध्यमानंप्रच्छन्नंप्रांजलिंशरणागतम् ॥ पलायमानंमत्तंवानहंतुंत्वमिहार्हसि ॥ ३९ ॥ तस्यैवतुवधेयत्नंकरिष्यामिमहाभुज ॥ आदेक्ष्यावोमहावेगानस्त्रानाशीविषोपमान् ॥ ४० ॥ तमेनंमायिनंक्षुद्रमंतर्हितरथंबलात् ॥ राक्षसंनिहनिष्यंतिदृष्ट्वावानरयूथपाः ॥ ४१ ॥

इसी अवसरमें क्रोधित होकर रामचंद्रजीके छोटे भ्राता लक्ष्मणजी श्रीरामचंद्रजीसे यह वचन बोले कि जो आज्ञाहो तो हम राक्षसोंके कुलको निर्मूल करनेंके लिये ब्रह्मास्त्र छोड़ें; हे महाबलवान! हमारी यही इच्छाहै कि इस लोकको राक्षसशून्यकरदें ॥३७॥ यह वचन सुनकर श्रीरामचंद्रजी शुभ लक्षणयुक्त लक्ष्मणजीसे बोलेकि एक राक्षसके लिये पृथ्वीके समस्त राक्षसोंको नहीं मार डालना चाहिये ॥ ३८ ॥ युद्ध न करते हुए छिपेहुए हाथ जोड़कर शरण आये हुए भागे हुए अथवा मतवाले शत्रुका मार डालनाही ठीक नहीं ॥ ३९ ॥ हेमहाभुज! इस कारण आज हम इसके वध करनेंके निमित्तही यत्नवान होकर विषधर सर्पकी समान बाण अति वेगसे छोड़ेंगे ॥ ४० ॥ हेवीर! मायाके बलसे अदृश्य रथ किये यह मायावी

विषयके अभिप्रायको जानतेहैं, वह कभी सीताजीको नहीं मारनें देगा ॥ १० ॥ हमने रावणके हितकीही कामनासे उस्से वारंवार कहाकि "जानकी श्रीरामचन्द्रजीको देदो;" परन्तु उसनें हमारी इस बातपर कानतकभी नहीं दिया ॥ ११ ॥ सीताजीको वध करना तौ दूर रहा; महाराज ! जब कि साम, दान, अथवा भेद इन तीन उपायोंसेभी जब कोई सीताजीका दर्शन नहीं पाय सकता; तब इन्द्रजीत संग्रामस्थलमें किस प्रकारसे उनका दर्शन प्राप्त करनेंमें समर्थ होगा ? ॥ १२ ॥ हे महावीर ! वह मायाकी सीता इन्द्रजीतने मारडाली होगी हम निश्चय जानते हैं कि राक्षस इन्द्रजीत इस उपायसे वानरोंको मोहित करके चला गयाहै ॥ १३ ॥ आज निकुम्भिलामें वह मेघनाद जाकर होम करैगा इन्द्रादि देवताओंके साथ अग्नि

याच्यमानःसुबहुशोमयाहितचिकीर्षुणा ॥ वैदेहीमुत्सृजस्वेतिनचतत्कृतवान्वचः ॥ ११ ॥ नैवसाम्नानदानेननभेदे
नकुतोयुधा ॥ साद्रष्टुमपिशक्येतनैवचान्येनकेनचित् ॥ १२ ॥ वानरान्मोहयित्वातुप्रतियातःसराक्षसः ॥ मा
यामयींमहाबाहोतांविद्धिजनकात्मजाम् ॥ १३ ॥ चैत्यंनिकुंभिलामद्यप्राप्यहोमंकरिष्यति ॥ हुतवानुपयातोहिदे
वैरपिसवासवैः ॥ १४ ॥ दुराधर्षोभवत्येषसंग्रामेरावणात्मजः ॥ तेनमोहयतानूनमेषामायाप्रयोजिता ॥ विघ्नमन्वि
च्छतातत्रवानराणांपराक्रमे ॥ १५ ॥ ससैन्यास्तत्रगच्छामोयावत्तन्नसमाप्यते ॥ त्यजैनंनरशार्दूलमिथ्यासंताप
मागतम् ॥ १६ ॥ सीदतेहिबलंसर्वंदृष्ट्वात्वांशोककर्शितम् ॥ इहत्वंस्वस्थहृदयस्तिष्ठसत्त्वसमुच्छ्रितः ॥ १७ ॥

वहां पहुँचे हैं ॥ १४ ॥ जबकि वह यज्ञमें होम करके अग्निको प्रसन्नकर लेगा तब देवताओंके सहित इन्द्रकोभी संग्राममें रावणका पुत्र मेघनाद दुर्द्धर्षहोजायगा, हम निश्चय कहतेहैं कि अपना अभिलाष सिद्ध करनेंके लिये और वानरोंको पराक्रमहीनही करनेके लिये उसनें ऐसी माया प्रगटकी है ॥ १५ ॥ जबतक उसका यज्ञ समाप्त न होजायगा तबतक हम सैनाके सहित वहां पहुंचजायँगे। हे नरशार्दूल ! आप शोक संतापका त्याग कीजिये ॥ १६ ॥ कारण कि आपको शोकसे पीड़ित देखकर ही समस्त वानरोंकी सैना व्याकुल होरही है; इस कारण अब

राक्षस जो किसी प्रकारसे वानर लोगोंकी दृष्टिमें आजावे तव तौ वानरोंके यूथपही उसको मार डालेंगे ॥ ४१ ॥ अधिक क्या है जो इन्द्रजीत, स्वर्ग लोक, मृत्युलोक, पाताल, अथवा आकाश, चाहे जहां प्रवेशकर छिप जावे तथापि हमारे अस्त्रोंसे यह भस्म और प्राणरहित होकर पृथ्वीपर गिर जायगा ॥ ४२ ॥ महात्मा रघुवीरश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी यह महाअर्थयुक्त वचन कहकर वानरोंकी सैनाके संग खड़ेहुए क्रूरकर्मकारी राक्षस का प्राण संहार करनेंके लिये अनेक प्रकारसे उपाय उठानें लगे ॥ ४३ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० युद्धकांडे अशीतितमःसर्गः ॥ ८० ॥ महावीर इन्द्रजीत महात्मा श्रीरामचंद्रजीका ऐसा अभिप्राय जानकर उसी समय समरसे निवृत्त होकर लंकापुरीमें चलागया ॥ १ ॥ परन्तु वह

यद्येषभूमिंविशतेदिवंवारसातलंवापिनभस्तलंवा ॥ एवंविगूढोपिममास्त्रदग्धःपतिष्यतेभूमितलेगतासुः॥४२॥इत्येवमुक्त्वावचनंमहार्थंरघुप्रवीरःप्लवगर्षभैर्वृतः ॥ वधायरौद्रस्यनृशंसकर्मणस्तदामहात्मात्वरितंनिरीक्षते ॥ ४३ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रा०वा०आ०युद्धकांडेअशीतितमःसर्गः ॥ ८० ॥ ॥ ७ ॥ ॥ विज्ञायतुमनस्तस्यराघवस्यमहात्मनः ॥ सनिवृत्याहवात्तस्मात्प्रविवेशपुरंततः ॥ १ ॥ सोनुस्मृत्यवधंतेषांराक्षसानांतरस्विनाम् ॥ क्रोधताम्रेक्षणःशूरोनिर्जगामाथरावणिः ॥ २ ॥ सपश्चिमेनद्वारेणनिर्ययौराक्षसैर्वृतः ॥ इंद्रजित्सुमहावीर्यःपौलस्त्योदेवकंटकः ॥ ३ ॥ इंद्रजित्तुततोदृष्ट्वाभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ रणायात्युद्यतौवीरौमायांप्रादुष्करोत्तदा ॥ ४ ॥ इंद्रजित्तुरथेस्थाप्यसीतांमायामयींतदा ॥ बलेनमहतावृत्यतस्यावधमरोचयत् ॥ ५ ॥

शूर मेघनाद शूर कुंभकर्ण इत्यादि तेजस्वी निशाचरोंके वधको विचार क्रोधसे लाल २ नेत्रकर फिर लंकापुरीसे निकला ॥ २ ॥ पौलस्त्य कुलमें उत्पन्न हुआ देवकंटक महा वीर्यवान् मेघनाद वहुत सारे राक्षसोंको साथ लेकर लंकाके पश्चिमद्वारसे निकला ॥ ३ ॥ और इन्द्रजीतनें वीर श्रेष्ठ दोनों भाई रामचंद्र और श्रीलक्ष्मणजीको युद्ध करनेंके लिये तैयार देख वैसे उनको अजीत विचार कर मायाका विस्तार किया ॥ ४ ॥ उस समय मायावी निशाचरनें रथके ऊपर मायाकी सीता वनाकर स्थापित की इन्द्रजीतके साथ वड़ी भारी राक्षसोंकी सैनाथी. इन सीताजीको मार

धीरज धर सावधान हो इस स्थानमें आप विराजमान रहैं ॥ १७ ॥ और सब सैनाके सहित लक्ष्मणजीको हमारे साथ भेज दीजिये ॥ १८ ॥ यह महावीर नरशार्दूल ! लक्ष्मणजी तीक्ष्ण बाण चलाय २ कर उसके यज्ञ कार्यमें विघ्न कर देंगे, जब उससे यज्ञ करना छुट जायगा तब हम उसे मार डालेंगे ॥ १९ ॥ इनके गरुडजीकी समान अंगयुक्त वेगशाली तीक्ष्ण रुधिरके पीनें वाले बाण गिद्ध इत्यादि अशुभ पक्षियोंकी समान उस राक्षसका रुधिर पियेंगे॥२०॥ इसलिये हे महावीर ! जिस प्रकार वज्रधर इन्द्रजीत दैत्योंके मारनेंके लिये वज्रको आज्ञा देतेहैं, वैसेही आपभी शुभ लक्षणयुक्त लक्ष्मणजीको हम लोगोंके साथ जानेंकी आज्ञादे दें ॥ २१ ॥ हे मनुजश्रेष्ठ ! शत्रुके मारनेंमें विलम्ब करना उचित नहीं है; इसलिये

लक्ष्मणंप्रेषयास्माभिःसहसैन्यानुकर्षिभिः ॥१८॥ एषतंनरशार्दूलोरावणिंनिशितैःशरैः ॥ त्याजयिष्यतितत्कर्मततोवध्योभविष्यति॥१९॥तस्यैतेनिशितास्तीक्ष्णापत्रिपत्रांगवाजिनः॥ पतत्रिणइवासौम्याःशराःपास्यंतिशोणितम् ॥२०॥ तत्संदिशमहाबाहोलक्ष्मणंशुभलक्षणम् ॥ राक्षसस्यविनाशायवज्रंवज्रधरोयथा ॥ २१ ॥ मनुजवरनकालविप्रकर्षोरिपुनिधनंप्रतियत्क्षमोद्यकर्तुम् ॥ त्वमतिसृजरिपोर्वधायवज्रींदिविजरिपुमथनेयथामहेंद्रः ॥ २२ ॥ समाप्तकर्माहिसराक्षसर्षभोभवत्यदृश्यःसमरेसुरासुरैः ॥ युयुत्सतातेनसमाप्तकर्मणाभवेत्सुराणामपिसंशयोमहान् ॥ २३॥ इत्यार्षेश्रीम० वा०आ०यु०चतुरशीतितमःसर्गः ॥ ८४ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाराघवःशोककर्शितः ॥ नोपधारयतेव्यक्तंयदुक्तंतेनरक्षसा ॥ १ ॥ ततोधैर्यमवष्टभ्यरामःपरपुरंजयः ॥ विभीषणमुपासीनमुवाचकपिसन्निधौ ॥ २ ॥

जिस प्रकार इन्द्रजी दैत्योंका वध करनेंके लिये वज्रको भेजते हैं वैसेही लक्ष्मणजीको आप हमारे संग भेजदें ॥ २२ ॥ हे महाराज ! वह राक्षसश्रेष्ठ जब कार्य अर्थात् होम समाप्त करलेगा,तब सुर और असुर लोगभी उसको नहीं देख सकते; बस जबकि वह होम समाप्त करके युद्ध करनें लगेगा तब देवता लोगोंकोभी बड़ाभारी संशय उपस्थित होगा ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुरशीतितमःसर्गः ॥८४॥ शोकाकुल श्रीरामचन्द्रजी बिभीषणके वचनोंको सुन करके जो वचन कि बिभीषणजीनें स्पष्ट २ कहेथे उनको धारण करनेंमें समर्थ न हुए ॥ १ ॥ इसके उपरान्त परपुर जीतनेंवाले श्रीरामचन्द्रजी धीरज धारण करके वानर लोगाके निकट बैठे हुए बिभीषणजीसे बोले ॥ २ ॥

में गमन करतेहैं अथवा नरघातक चोर जिस स्थानको कलंकित करतेहैं तू उसी स्थानमें प्राणोंको छोड़कर उन्हीं सब लोकोंको जायगा ॥ २२ ॥ हनुमानजी केवल यही वचन कह आयुधधारी वानरोंके साथ क्रोधमें भर राक्षसराजके पुत्र इन्द्रजीतके सन्मुख दौड़े ॥ २३ ॥ उस महावीर्यवान वानरोंकी सैनाको आताहुआ देखकर इन्द्रजीतनें महा कोपकर राक्षसोंकी सैनासे उनको रुकवाया ॥ २४ ॥ उस समय महावीर इन्द्रजीत हजार वाण चलाय वानरोंकी सैनाको चलायमान कर वानर श्रेष्ठ हनुमानजीसे यह वचन बोला ॥ २५ ॥ राम, सुग्रीव, अथवा तुम जिस कारणसे इस स्थानमें आयेहो आज हम तुम्हारे सामनेही उन जानकीजीका वध करेंगे ॥ २६ ॥ अरे वानर ! इसको मारकर तिसके पीछे

इतिब्रुवाणोहनुमान्सायुधैर्हरिभिर्वृतः ॥ अभ्यधावत्सुसंक्रुद्धोराक्षसेंद्रसुतंप्रति ॥ २३ ॥ आपतंतंमहावीर्यंतदनीकंवनौकसाम् ॥ रक्षसांभीमकोपानामनीकेनन्यवारयत् ॥ २४ ॥ सतांबाणसहस्रेणविक्षोभ्यहरिवाहिनीम् ॥ हनूमंतंहरिश्रेष्ठमिंद्रजित्प्रत्युवाचह ॥ २५ ॥ सुग्रीवस्त्वंचरामश्चयन्निमित्तमिहागताः ॥ तांवधिष्यामिवैदेहीमद्यैवतवपश्यतः ॥ २६ ॥ इमांहत्वाततोरामंलक्ष्मणंत्वांचवानर॥सुग्रीवंचवधिष्यामितंचानार्यंविभीषणम् ॥ २७॥ नहंतव्याःस्त्रियश्चेतियद्ब्रवीषिप्लवंगम ॥ पीडाकरममित्राणांयच्चकर्तव्यमेवतत् ॥ २८ ॥ तमेवमुक्त्वारुदतींसीतांमायामयींचताम् ॥ शितधारेणखड्गेननिजघानेंद्रजित्स्वयम् ॥ २९ ॥

हम राम, लक्ष्मण, सुग्रीव अनार्य बिभीषणके सहित तुझकोभी मार डालेंगे ॥ २७ ॥ रे बंदर ! तैंने जो कहा कि "स्त्रीका वध करना कर्त्तव्य नहीं " सो राजनीतिके अनुसार शत्रुओंको जिस २ कार्यके करनेंसे पीड़ा पहुँचे वह कार्य करना उचित है उसके करनेंसे पापनहीं होता ❋ ॥२८॥ इन्द्रजीतनें यह वचन कहतेही तेजधारवाले खड्गसे अपने आप उन रोती हुईमायामयी जानकीजीके ऊपर प्रहार कर दिया ॥ २९ ॥

❋ अनेक रामायणोंमें २९ संख्याका श्लोक नहीं, हम नहीं जानते कि छापनेवालोंनें इसे क्यों छोड़ दियाहै । " ताडकाया वधं रामः किमर्थं कृतवान् पुरा ॥ तदहं हन्मि रामस्य महिषीं जनकात्मजां ॥ २९ ॥ " भला यह न सही परन्तु पहले रामनें किस प्रकारसे ताडकाको मार डालाथा ! उन्हौनें जिस कारण यह कार्य किया हमभी इसी कारणसे इस रामकी भार्या जनककी बेटी सीताको मार डालेंगे ॥२९॥

हो वैसेही जलके भीगे नगाडेकी समान शब्द करनेलगा ॥ ८ ॥ रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीनें त्रिशिरा राक्षसको अपने सन्मुख आते देखकर धनुष उठाय शब्दकर तीखे बाण चढाय ॥ ९ ॥ त्रिशिराके मारे, उस समय अतिबलवान सिंह और हाथीकी समान श्रीरामचंद्रजी और त्रिशिराका तुमुल संग्राम आरंभ हुआ जिसके देखनेंसे रोम खडे हो जातेथे ॥ १० ॥ अनन्तर क्रोध न करनें वाले श्रीरामचंद्रजी त्रिशिराकरके तीन बाणोंके द्वारा ताडित होकर जो उनके माथे में लगेथे; उनके लगनेंसे रोषयुक्तहो गर्वित वचन कहनें लगे ॥ ११ ॥ कि अरे! विक्रम शूर निशाचर ! बस तेरा इतनाही बलहै कि तेरे चलाये हुए बहुत सारे बाण हमारे माथेमें फूलोंकी समान लगे हम तो जानतेथे कि तुममें कुछ

आगच्छंतंत्रिशिरसंराक्षसंप्रेक्ष्यराघवः ॥ धनुषाप्रतिजग्राहविधुन्वन्सायकान्शितान् ॥ ९ ॥ ससंप्रहारस्तुमुलोरामात्रिशिरसोस्तदा ॥ संबभूवातिबलिनोःसिंहकुंजरयोरिव ॥१०॥ ततस्त्रिशिरसाबाणैर्ललाटेताडितस्त्रिभिः ॥ अमर्षीकुपितोरामःसंरब्धइदमब्रवीत् ॥११॥ अहोविक्रमशूरस्यराक्षसस्येदृशंबलम् ॥ पुष्पैरिवशरैर्योहंललाटेऽस्मिपरिक्षितः ॥१२॥ ममापिप्रतिगृह्णीष्वशरांश्चापगुणाच्च्युतान् ॥ एवमुक्तस्तुसंरब्धःशरानाशीविषोपमान् ॥ १३ ॥ त्रिशिरावक्षसिक्रुद्धोनिजघानचतुर्दश ॥ चतुर्भिस्तुरगानस्यशरैःसन्नतपर्वभिः ॥ १४ ॥ न्यपातयततेजस्वीचतुरस्तस्यवाजिनः ॥ अष्टभिःसायकैःसूतंरथोपस्थेन्यपातयत् ॥ १५ ॥ रामश्चिच्छेदबाणेनध्वजंचास्यसमुच्छ्रितम् ॥ ततोहतरथात्तस्मादुत्पतंतंनिशाचरम् ॥ १६ ॥ चिच्छेदरामस्तंबाणैर्हृदयेसोभवज्जडः ॥ सायकैश्चाप्रमेयात्मासामर्षात्तस्यरक्षसः ॥ १७ ॥

विक्रम होगा, सो कुछभी नहीं ॥ १२ ॥ क्या आश्चर्यहै ! अब तू हमारे धनुषके रोदेसे छूटे हुए बाणोंके समूहको ग्रहण कर । यह कह बडा क्रोधकर विषधर सर्पोंकी समान ॥ १३ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें चौदह बाण त्रिशिराके हृदयमें मारे और चार घोडोंको ॥ १४ ॥ महा तेजवान श्रीरामचंद्रजीनें मार डाला और आठ बाणोंसे रथपरही उसके सारथिको मार गिराया ॥ १५ ॥ व एक बाणसे अति ऊंची उसकी ध्वजाको काट डाला जब सारथि और घोडे उसके मारे गये तब त्रिशिरा रथसे कूदनेंको हुआ ॥ १६ ॥ तो उसी बीचमें श्रीरामचंद्रजीनें अनेक

जैसेही मेघनादनें प्रहार किया कि बड़ी नितम्बवाली प्रियदर्शन वह जानकी यज्ञोपवीतके स्थानसे कटकर छिन्न भिन्न हो पृथ्वीपर गिरी ॥ ३० ॥ तब इन्द्रजीतनें हनुमानजीसे कहाकि यह देखो हमने अस्त्रके प्रहारसे रामचन्द्रकी प्यारी वैदेही को मारडाला ॥ ३१ ॥ फिर जब कि जानकी ही मृतक होगई तब फिर तुमलोगोंको और वृथा परिश्रम करनेका क्या फल है! ॥ ३२ ॥ इन्द्रजीत इस प्रकारसे उन मायामयी सीताजीको खड्गसे मारकर हर्षित अंतःकरणसे अपने रथपर सवार हो घोर शब्दसे सिंहनाद करनेलगा ॥ ३३ ॥ वानर लोग निकटही टिककर वज्रसमान कठोर शब्द सुननेलगे और उन्होंनें देखाकि महावीर इन्द्रजीत दुर्गमें प्रवेश करके विकटाकार मुखसे

यज्ञोपवीतमार्गेणाछिन्नातेनतपस्विनी ॥ सापृथिव्यांपृथुश्रोणीपपातप्रियदर्शना ॥३० ॥ तामिंद्रजित्स्त्रियंहत्वाहनुमंतमुवाचह ॥ मयारामस्यपश्येमांप्रियांशस्त्रनिषूदिताम् ॥ ३१ ॥ एषांविशस्तावैदेहीनिष्फलोवःपरिश्रमः ॥ ३२ ॥ ततःखड्गेनमहताहत्वातामिंद्रजित्स्वयम् ॥ हृष्टःसरथमास्थायननादचमहास्वनम् ॥ ३३ ॥ वानराःशुश्रुवुःशब्दमदूरेप्रत्यवस्थिताः ॥ व्यादितास्यस्यनदतस्तद्दुर्गसंश्रितस्यतु ॥ ३४ ॥ तथातुसीतांविनिहत्यदुर्मतिःप्रहृष्टचेताःसबभूवरावणिः ॥ तंहृष्टरूपंसमुदीक्ष्यवानराविषण्णरूपाःसमभिप्रदुद्रुवुः ॥ ३५ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रा० वा०आ० यु० एकाशीतितमःसर्गः॥ ८१ ॥ ॥ ७ ॥ श्रुत्वातंभीमनिह्रादंशक्राशनिसमस्वनम् ॥ वीक्षमाणादिशःसर्वादुद्रुवुर्वानराभृशम् ॥ १ ॥ तानुवाचततःसर्वान्हनूमान्मारुतात्मजः ॥ विषण्णवदनान्दीनांस्त्रस्तान्विद्रवतःपृथक्॥२ ॥

कठोर हर्षकी ध्वनि कररहाहै ॥ ३४ ॥ दुर्मती रावणके पुत्र इन्द्रजीतने जब इस प्रकारसे उस मायाकी सीताका प्राण संहार किया तब वानरलोग उस हर्षित वीरको देखकर शोकाकुल हो चारों ओरको भागनें लगे ॥ ३५ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० एकाशीतितमःसर्गः ॥ ८१ ॥ देवराज इन्द्रजीके वज्रकी शब्दकी समान इन्द्रजीतका वह भयंकर सिंहनाद सुनकर वानरलोग चारों ओरको निहारते हुए भागनें लगे ॥ १ ॥ परन्तु पवनकुमार हनुमानजी उनको भयकेमारे शोकाकुल वदन और दीनभावसे भागाहुआ देखकर सबहीसे अलग २ कहने लगे ॥ २ ॥

फिर वह प्रत्यंचाको वारंवार टंकार देता, अपनी शिक्षा और अस्त्रोंको दिखाता हुआ अनेक भांतिके बाण छोडतेर संग्राम भूमिमें घूमनेंलगा ॥५॥
और सब दिशा विदिशाओंको उस महारथी खरनें बाणोंसे पूर दिया। रामचंद्रजीनें सब दिशाओंको बाणोंसे भरा देख बडा भारी
धनुष हाथमें लिया ॥ ६ ॥ व अग्निके अंगारोंकी समान सहन करनेके अयोग्य सायक समूहसे आकाशको पूर्ण कर दिया जैसे मेघमंडल वृष्टि
करतेहैं ॥ ७ ॥ आकाश खर और श्रीरामचंद्रजीके छुटे हुए बाणोंसे छाकर सब प्रकारसे अवकाशरहित होगया अर्थात् पृथ्वी आकाशके
बीच २ में सबही जगह बाणही बाण भरेथे ॥ ८ ॥ तब परस्पर एक दूसरेकी मार डालनेकी इच्छासे छोडे हुए बाणोंके जाल करके आकाशके

ज्यांविधुन्वन्सुबहुशःशिक्षयास्त्राणिदर्शयन् ॥ चचारसमरेमार्गाञ्छरैरथगतःखरः ॥ ५ ॥ ससर्वाश्चदिशोबाणैःप्रदिश
श्चमहारथः ॥ पूरयामासतंदृष्ट्वारामोपिसुमहद्धनुः ॥ ६ ॥ ससायकैर्दुर्विषहैर्विस्फुलिंगैरिवाग्निभिः ॥ नभश्चकारा
विवरंपर्जन्यइववृष्टिभिः ॥ ७ ॥ तद्बभूवशितैर्बाणैःखररामविसर्जितैः ॥ पर्याकाशमनाकाशंसर्वतःशरसंकुलम् ॥८॥
शरजालावृतःसूर्योनतदास्मप्रकाशते ॥ अन्योन्यवधसंरंभादुभयोःसंप्रयुज्यतोः ॥९ ॥ ततोनालीकनाराचैस्तीक्ष्णा
ग्रैश्चविकर्णिभिः ॥ आजघानरणेरामंतोत्रैरिवमहाद्विपम् ॥ १० ॥ तंरथस्थंधनुष्पाणिंराक्षसंपर्यवस्थितम् ॥ द
दृशुःसर्वभूतानिपाशहस्तमिवांतकम् ॥ ११ ॥ हंतारंसर्वसैन्यस्यपौरुषेपर्यवस्थितम् ॥ परिश्रांतंमहासत्वंमेनेरा
मंखरस्तदा ॥ १२ ॥ तंसिंहमिवविक्रांतंसिंहविक्रांतगामिनम् ॥ दृष्ट्वानोद्विजतेरामःसिंहःक्षुद्रमृगंयथा ॥ १३ ॥

छा जानेसे सूर्य भगवानभी छिप गये ॥ ९ ॥ इसके पीछे महावत महा गजके जिस प्रकार अंकुश मारताहै वैसेही खर तीखे नालीक नाराच
और विकीर्ण अस्त्र शस्त्रोंसे श्रीरामचंद्रजीको घायल करनें लगा ॥ १० ॥ उस समय सबही प्राणी रथमें बैठे धनुष धारी खरको पाश धारी यमरा
जकी समान देखने लगे ॥ ११ ॥ उस काल खरनें अपनी समस्त सेनाके विनाश करनेंवाले पुरुषार्थमें टिके हुए धीर्यवान् रामचंद्रजीको रण
करनेंसे थके समझा ॥ १२ ॥ और सिंहकी समान विक्रम दिखाता हुआ इधर उधर घूमनें लगा सिंह जिस प्रकार मृग छौनाको देखकर

हे वानरगण ! तुम सब किस कारणसे रणका उत्साह छोडकर व्याकुल मुख किये भागे जातेहो? तुम्हारी यह शूरता कहांगई नामवाले शूर लोगोंको भागना उचित नहीं है इसलिये हम आगे २ चलते हैं और तुम सब हमारे पीछे २ चलो ॥ ३ ॥ बुद्धिमान् हनुमानजी करके इस प्रकार कहे जाकर वानरोंको क्रोध उत्पन्न हुआ और वह सबही उत्साहसहित शिला और वृक्षोंको ग्रहण करनेलगे ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त वह सब वानरश्रेष्ठ हनुमानजीको घेरे हुए गर्जते २ महा समरके सन्मुख चले ॥ ५ ॥ वानर वीर हनुमानजी वानरोंकी सैनासे घेरे जाकर चलतेहुए जिसप्रकार अग्नि अपनी शिखाओंके संगमें शोभायमान होतेहैं वैसेही शोभायमान होकर शत्रुओंकी सैनाको भस्म करनें लगे ॥ ६ ॥ कालान्तक यमराज

कस्माद्विषण्णवदनाविद्रवध्वंप्लवंगमाः ॥ त्यक्तयुद्धसमुत्साहाःशूरत्वंक्नुवोगतम् ॥ पृष्ठतोनव्रजध्वंमामग्रतोयांत माहवे ॥ ३ ॥ एवमुक्ताःसुसंक्रुद्धावायुपुत्रेणधीमता ॥ शैलशृंगान्द्रुमांश्चैवजगृहुर्हृष्टमानसाः ॥ ४ ॥ अभिपे तुश्चगर्जंतोराक्षसान्वानरर्षभाः ॥ परिवार्यहनूमंतमन्वयुश्चमहाहवे ॥ ५ ॥ सतैर्वानरमुख्यैस्तुहनूमान्सर्वतोवृतः ॥ हुताशनइवार्चिष्मानदहच्छत्रुवाहिनीम् ॥ ६ ॥ सराक्षसानांकदनंचकारसुमहाकपिः ॥ वृतोवानरसैन्येनकालां तकयमोपमः ॥ ७ ॥ सतुशोकेनचाविष्टःकोपेनमहताकपिः ॥ हनूमान्रावणिरथेमहतींपातयच्छिलाम् ॥ ८ ॥ तामापतंतींदृष्ट्वैवरथंसारथिनातदा ॥ विधेयाश्वसमायुक्तोविदूरमपवाहितः ॥ ९ ॥ तमिंद्रजितमप्राप्यरथस्थंसहसा रथिम् ॥ विवेशधरणीमित्वासाशिलाव्यर्थमुद्यता ॥ १० ॥ पतितायांशिलायांतुव्यथितारक्षसांचमूः ॥ निपतंत्याचशि लयाराक्षसामथिताभृशम् ॥ ११ ॥

की समान महाकपि हनुमानजीनें वानरसैनाकी सहायतासे बहुत सारे राक्षसोंको मार डाला ॥ ७ ॥ हनुमानजीनें शोक और क्रोधसें अधीर होकर एक बड़ीभारी शिलाग्रहण करकै रावणके पुत्र मेघनादके रथपर चलाई ॥ ८ ॥ परन्तु शिलाको रथके ऊपर आता हुआ देख सारथिनें संकेत [इशारा] ही किया कि सीखे सिखाये घोडे रथको दूरले जाय कर रक्षा करतेहुए ॥ ९ ॥ तब वह हनुमानजीकी चलाई हुई शिला सार थिके.सहित रथपर बैठे हुए इन्द्रजीतको न पायकर विफल हो पृथ्वीमें घुसगई ॥ १० ॥ वह शिला इस प्रकारके वेगसे चलाई गईथी कि जिस

खरकी ध्वजा काटडाली ॥ २२ ॥ वह सुन्दर सुवर्णकी ध्वजा सहसा छिन्न होकर गिरनेंके कालमें ऐसी शोभा धारण करतीहुई जैसे कभी देवताओंके नियमसे सूर्यनारायण पृथ्वीमें आयकर शोभितहों ॥ २३ ॥ यह देखकर मर्म जाननेंवाले खरनें क्रोधितहो चार बाण छोडकर; जिस प्रकार लोग भालोंसे मतवाले हाथी को मारतेहैं, वैसेही श्रीरामचंद्रजीके हृदयको व और दूसरे मर्मस्थानोंको घायल किया ॥ २४ ॥ तिस समय वह महा धनुर्द्धारी श्रीरामचंद्रजी, खरके धन्वासे छूटे हुए बहुतसे बाणोंसे विंधे जाकर. और रुधिरमें भीग महा क्रोधित हुए ॥ २५ ॥ और दृढभावसे श्रेष्ठधनुधन्वा ग्रहण करके खरको भली भांति निशाना बनाय उसके ऊपर छेः बाण छोडे ॥२६॥ उनमेंसे एक बाणसे खरका मस्तक

सदर्शनीयोबहुधाविच्छिन्नःकांचनोध्वजः ॥ जगामधरणींसूर्योदेवतानामिवाज्ञया ॥ २३ ॥ तंचतुर्भिःखरःक्रुद्धोरामंगात्रेषुमार्गणैः ॥ विव्याधहृदिमर्मज्ञोमातंगमिवतोयदैः ॥ २४ ॥ सरामोबहुभिर्बाणैःखरकार्मुकनिःसृतैः ॥ विद्धोरुधिरसिक्तांगोबभूवरुषितोभृशम् ॥ २५ ॥ सधनुर्धन्विनांश्रेष्ठःसंगृह्यपरमाहवे ॥ मुमोचपरमेष्वासःषट्शरानभिलक्षितान् ॥ २६ ॥ शिरस्येकेनबाणेनद्वाभ्यांबाह्वोरथापयत ॥ त्रिभिश्चंद्रार्धवक्रैश्चवक्षस्यभिजघान ॥ २७ ॥ ततःपश्चान्महातेजानाराचान्भास्करोपमान् ॥ जघानराक्षसंक्रुद्धस्त्रयोदशशिलाशितान् ॥ २८ ॥ रथस्ययुगमेकेनचतुर्भिःशबलान्हयान् ॥ षष्ठेनचशिरःसंख्येचिच्छेदखरसारथेः॥२९॥त्रिभिस्त्रिवेणून्बलवान्द्वाभ्यामक्षंमहाबलः ॥ द्वादशेनतुबाणेनखरस्यसकरंधनुः ॥ ३० ॥

वींधा दोबाणोंसे दोनों भुजाओंको घायल किया, और अर्द्धचंद्रतुल्य टेढे तीन बाणोंसे खरकी छातीमें प्रहार किया ॥ २७ ॥ उसके पीछे उन इन्द्र समान महाबलवान् तेजवान् श्रीरामचंद्रजीनें बडा क्रोध कर सूर्यकी समान, धार धराये हुए तेरहबाण ग्रहण करके उस खर निशाचरको निशाना बनाकर छोडे ॥ २८ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें एक बाणसे रथका युगकाय चार बाणोंसे चार चित्र विचित्र घोडे, और एक बाणसे उसके सारथिका मस्तक ॥ २९ ॥ तीन बाणोंसे रथके तीनों बांश; और दो बाणोंसे दोनों पहिये, और बारह बाणोंसे खरका बाण

समय वह गिरी असंख्य राक्षसोंकी सैना उससे व्यथित हुई व कुचलगई ॥ ११ ॥ तब उस समय सैंकड़ों हजारों बलशाली बड़े २ शरीर वाले वानरगण पर्वतोंके शिखर और वृक्षोंको उठाये ॥ १२ ॥ अति शीघ्रतासे यह भयंकरविक्रमकारी वानर इन्द्रजीतके सन्मुख दौडे और इन समस्त वानरोंने मेघनादके सैनापर शिलावृक्षादिकी वर्षा करदी ॥ १३ ॥ वानर लोगोंनें राक्षसोंके ऊपर वृक्ष और पर्वतोंकी वर्षा करके उनमेंसे बहुत सारोंका नाश करदिया और विविध भांतिसे सिंहनाद करनेंलगे भयंकर आकारवाले वानरगण घोर रूप वाले निशाचरोंको ॥ १४ ॥ अति वीर्यसे वृक्ष व शिलाके प्रहारसे चूर्ण करके पृथ्वीपर लुटानेलगे तब महावीर इन्द्रजीत वानरोंके हाथसे राक्षसोंको पीडित देखकर ॥ १५ ॥

तमभ्यधावन्शतशोनदंतःकाननौकसः ॥ तेद्रुमांश्चमहाकायागिरिशृंगाणिचोद्यताः ॥ १२ ॥ क्षिपंतींद्रजितंसंख्येवानराभीमविक्रमाः ॥ वृक्षशैलमहावर्षंविसृजंतःप्लवंगमाः ॥ १३ ॥ शत्रूणांकदनंचक्रुर्नेदुश्चविविधैःस्वनैः ॥ वानरैस्तैर्महाभीमैर्घोररूपानिशाचराः ॥ १४ ॥ वीर्यादभिहतावृक्षैर्व्यचेष्टंतरणक्षितौ ॥ ससैन्यमभिवीक्ष्याथवानरार्दितमिंद्रजित् ॥ १५ ॥ प्रगृहीतायुधःक्रुद्धःपरानभिमुखोययौ ॥ सशरौघानवसृजन्स्वसैन्येनाभिसंवृतः ॥ १६ ॥ जघानकपिशार्दूलान्सुबहून्दृढविक्रमः ॥ शूलैरशनिभिःखड्गैःपट्टिशैःशूलमुद्गरैः ॥ १७ ॥ तेचाप्यनुचरांस्तस्यवानराजघ्नुराहवे ॥ १८ ॥ सुस्कंधविटपैःशैलैःशिलाभिश्चमहाबलः ॥ हनूमान्कदनंचक्रेरक्षसांभीमकर्मणाम् ॥ १९ ॥ सन्निवार्यपरानीकमब्रवीत्तान्वनौकसः ॥ हनूमान्सन्निवर्तध्वंननःसाध्यमिदंबलम् ॥ २० ॥

क्रोध सहित हथियार उठाय शत्रुकी सैनामें प्रवेश करता हुआ उसने अपनी सैनाके बीचमें खड़े होकर बाणोंकी झडी लगादी ॥ १६ ॥ कि जिस्सें बहुतसे दृढ विक्रमकारी वानरगण मृतक होगये जोकि शूल वज्र, खड्ग, पटा, कूट व मुद्गरादिकोंसे मारेगये ॥ १७ ॥ उस समयमें वानरगणोंने भी मेघनादकी बहुत सैना मार डाली ॥ १८ ॥ महाबलवान् हनुमानजी स्कन्ध और शाखायुक्त शाल वृक्ष और शिलाओंके प्रहारसे भयंकर कर्मकारी राक्षसोंको मारने लगे ॥१९॥और अपने पराक्रमसे शत्रुओंकी सैनाको निवारित करते हुए अपनी सैनासे बोले कि हे वानरो! लौटच

कर्म करताहै वह निश्चयही उस पापके फलको पाताहै, जैसे अकालवृष्टिके साथ गिरेहुए पत्थरोंको लालचसे ब्राह्मणी (बामनी नामक
कीडा) खाकर मर जातीहै ॥५॥ रेराक्षस! दंडकारण्यवासी धर्माचरण करनेंवाले महातेजवान तपस्वियोंको मारकर तुझको कैसा बुरा फल
प्राप्तहोगा सो हमारी समझमें नहीं आता ॥ ६ ॥ अथवा जो क्रूरस्वभाववाले जन चिरकाल पापकर्म करके लोकोंकी निन्दा पानेंके पात्र हो
जातेहैं, वह जन ऐश्वर्य पाकरभी जड गले हुए वृक्षकी समान बहुत दिनोंतक नहीं रहसकते अर्थात् गिर पडतेहैं ॥ ७ ॥ वृक्ष जिस
प्रकार समय पाय कर फूलताहै, वैसेही समयके आजानें पर पाप कर्मका भयावना फल निश्चयही प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥ हे निशाचर!

वसतोदंडकारण्येतापसान्धर्मचारिणः ॥ किन्नुहत्वामहाभागान्फलंप्रास्यसिराक्षस ॥ ६ ॥ नचिरंपापकर्माणःक्रूरा
लोकजुगुप्सिताः ॥ ऐश्वर्यंप्राप्यतिष्ठंतिशीर्णमूलाइवद्रुमाः॥७॥ अवश्यंलभतेकर्ताफलंपापस्यकर्मणः ॥ घोरंपर्या
गतेकालेद्रुमःपुष्पमिवार्तवम् ॥ ८ ॥ नचिरात्प्राप्यतेलोकेपापानांकर्मणांफलम् ॥ सविषाणामिवान्नानांभुक्तानांक्षण
दाचर ॥ ९ ॥ पापमाचरतांघोरंलोकस्याप्रियमिच्छताम् ॥ अहमासादितोराजाप्राणान्हंतुंनिशाचर ॥ १० ॥ अद्य
भित्त्वामयामुक्ताःशराःकांचनभूषणाः ॥ विदार्यापिपतिष्यंतिवल्मीकमिवपन्नगाः ॥ ११ ॥ येत्वयादंडकारण्येभ
क्षिताधर्मचारिणः ॥ तानद्यनिहतःसंख्येससैन्योनुगमिष्यसि ॥ १२ ॥ अद्यत्वांनिहतंबाणैःपश्यंतुपरमर्षयः ॥ नि
रयस्थंविमानस्थायेत्वयानिहताःपुरा ॥ १३ ॥

जिस प्रकार जहर मिला हुआ अन्न खानेंसे शीघ्रही मृत्यु होतीहै, वैसेही पाप कर्म करनेंका फल थोडेही समयमें फलजाताहै ॥ ९ ॥
रेराक्षस! भयानक पाप कर्म करनेंवाले और लोकोंका बुरा चाहनेंवाले दुष्टोंको मारनेंकेही लिये ऋषिलोगोंनें हमें यहां पठायाहै ॥ १० ॥
सर्प जिस प्रकार बंमईको फोडकर पृथ्वी पर निकल आताहै, वैसेही इस समय हमारे शरासनसे छूटे हुए बाण तेरे शरीरको चीर फाडकर
निकल आमेंगे ॥ ११ ॥ पहले तैनें जिस २ दंडकारण्यवासी धर्मचारी तपस्वीका भक्षण कियाहै सो तू आज हमसे युद्धमें मारे जाकर सेना
सहित उनके पीछे २ जायगा ॥ १२ ॥ पहले जो समस्त तापस तुझ करके मारे गयेहैं, आज वह विमानमें बैठकर तुझको हमारे बाणसे मरा

लो अब इन राक्षसोंके साथ युद्ध करनेकी आवश्यकता नहींहै ॥ २० ॥ तुम सब श्रीरामचंद्रजीका प्रिय कार्य सिद्ध करनेंकी वासनासे प्राण तक देनेको तैयार होकर पराक्रम प्रकाश करतेहो परन्तु जिनके लिये युद्ध किया जाताहै वह जानकीजीही मारडाली गईहैं ॥ २१ ॥ चलो रामचंद्रजी व सुग्रीवजीको यह समाचार सुनादें; वह जैसी आज्ञा दें वैसेही किया जायगा ॥ २२ ॥ वानरश्रेष्ठ हनुमानजी निर्भयहो यह वचन कह समस्त वानरोंको निवारित कर धीरे २ सेनासहित संग्रामसे लौटतेहुए ॥ २३ ॥ हनुमानजीको श्रीरामचंद्रजीके निकट जाता हुआ देखकर दुष्टात्मा राक्षस इन्द्रजीत होम करनेंके लिये प्रथम निकुंभिला देवालयके वृक्षोंके समीप गमन करके अग्निमें होम करताहु

त्यक्त्वाप्राणान्विचेष्टंतोरामप्रियचिकीर्षवः ॥ यन्निमित्तंहियुध्यामोहतासाजनकात्मजा ॥ २१ ॥ इममर्थंहिविज्ञा
प्यरामंसुग्रीवमेवच ॥ तौयत्प्रतिविधास्येतेतत्करिष्यामहेवयम् ॥ २२ ॥ इत्युक्त्वावानरश्रेष्ठोवारयन्सर्ववानरान् ॥
शनैःशनैरसंत्रस्तःसबलःसंन्यवर्तत ॥ २३ ॥ ततःप्रेक्ष्यहनूमंतंव्रजंतंयत्रराघवः ॥ सहोतुकामोदुष्टात्मागतश्चैत्यंनिकुं
भिलाम् ॥ २४ ॥ निकुंभिलामधिष्ठायपावकंजुहवेंद्रजित् ॥ यज्ञभूम्यांततोगत्वापावकस्तेनरक्षसा ॥ २५ ॥ हूयमानः
प्रजज्वालहोमशोणितभुक्तदा ॥ सार्चिःपिनद्धोददृशेहोमशोणिततर्पितः ॥ संध्यागतइवादित्यःसुतीव्रोग्निःसमुत्थि
तः ॥ २६ ॥ अथेंद्रजिद्राक्षसभूतयेतुजुहावहव्यंविधिनाविधानवित् ॥ दृष्ट्वाव्यतिष्ठंतचराक्षसास्तेमहासमूहेषुनयान
यज्ञाः ॥ २७ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकाण्डेद्व्यशीतितमःसर्गः ॥ ८२ ॥ ७ ॥

आ ॥ २४ ॥ इसके उपरान्त यज्ञभूमिमें गमन करके अग्निमें होम आरंभ करनेंसे होममें रुधिरका पान करनेंवाली अग्नि प्रज्वलितहो उठी ॥ २५ ॥ उस कालमें ज्वालासे युक्त और होम तथा रुधिरसे तृप्त कीहुई वह उठीहुई तीव्र अग्नि संध्यासमयके सूर्यकी समान ज्ञात होनें लगी॥२६॥ इस प्रकारसे राक्षसलोगोंकी उन्नतिके हेतुके विधानको जाननेंवाला इन्द्रजीत जब यथाविधिसे होम करनेंलगा तब संग्राम करनेमें कुशल निशाच रगण स्थिरभावसे बैठेहुए इस यज्ञको देखनेंलगे ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥

तुम्हारा वरन त्रिलोकीके सबही प्राणियोंका संहार कर सकतेहैं ॥२२॥ हमको तुमसे औरभी कुछ कहनाथा, परन्तु उसको अब कुछ नहीं कहेंगे
क्योंकि सूर्य अस्त होनेपर आगयेहैं सो विशेष देर लगानेसे युद्धमें विघ्न हो जायगा ॥ २३ ॥ तुमनें जो १४००० चौदह हजार राक्षस मार डालेहैं
सो अब तुझको मारकर उनकी स्त्री पुत्रादिकोंके आंसू पोंछेंगे ॥ २४ ॥ यह कहकर खरनें महाक्रोधितहो अतिश्रेष्ठ सुवर्णके बँद जिसमें बँधे ऐ
सी जो गदा उसके हाथमें थी वह देदीप्यमान इन्द्रके वज्रकी समान उसनें रामचंद्रजीके ऊपर चलाई ॥ २५ ॥ यह प्रज्वलित बडी गदा उसकी
भुजासे छूटकर अगल बगलके वृक्षलता दिकोंको जलातीहुई श्रीरामचंद्रजीके समीप आनें लगी ॥ २६ ॥ तब श्रीरामचंद्रजीने

कामंबह्वपिवक्तव्यंत्वयिवक्ष्यामिनत्वहम् ॥ अस्तंप्राप्नोतिसवितायुद्धविघ्नस्ततोभवेत् ॥ २३ ॥ चतुर्दशसहस्राणिराक्ष
सानांहतानिते ॥ त्वद्विनाशात्करोम्यद्यतेषामश्रुप्रमार्जनम् ॥ २४ ॥ इत्युक्त्वापरमक्रुद्धःसगदांपरमांगदाम् ॥ खर
श्चिक्षेपरामायप्रदीप्तामशनिंयथा ॥ २५ ॥ खरबाहुप्रमुक्तासाप्रदीप्तामहतीगदा ॥ भस्मवृक्षांश्चगुल्मांश्चकृत्वागा
त्तत्समीपतः ॥ २६ ॥ तामापतंतींमहतींमृत्युपाशोपमांगदाम् ॥ अंतरिक्षगतांरामश्चिच्छेदबहुधाशरैः ॥ २७ ॥ सा
विशीर्णाशरैर्भिन्नापपातधरणीतले ॥ गदामंत्रौषधिबलैर्व्यालीवविनिपातिता ॥ २८ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मी
कीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेएकोनत्रिंशःसर्गः ॥ २९ ॥ छ ॥ ॥ भित्त्वातुतांगदांबाणैराघवोधर्मवत्सलः ॥ स्मय
मानइदंवाक्यंसंरब्धमिदमब्रवीत्॥१॥एतत्तेबलसर्वस्वंदर्शितंराक्षसाधम॥शक्तिहीनतरोमत्तोवृथात्वमुपगर्जसि॥२॥

बाण जाल चलाकर साक्षात् मृत्युके फंदकी समान निकट आती हुई, उस बडी गदाके आकाशमें खंड २ कर डाले ॥ २७ ॥
अतीव हिंसा करनेंका स्वभाव जिसका हो ऐसी सांपिनि जिसप्रकार मंत्र और दवाईके प्रभावसे गिर जातीहै, वैसेही यह गदा श्रीरामचंद्रजीके
बाणोंसे टुकडे २ हो पृथ्वीमें गिरपडी ॥ २८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे एकोनत्रिंशःसर्गः ॥ २९ ॥
धर्मवत्सल श्रीरामचंद्रजी अपनें बाणोंसे उस गदाको काटकर मुसकाय क्रोधमें भरे खरसे कहनेंलगे ॥१॥ रे राक्षसाधम! बस तुमनें इतनाही

उसओर रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी वानर राक्षसोंका बड़ा भारी समरका शब्द सुनकर जाम्बवान्से कहनेंलगे ॥ १ ॥ हे सौम्य ! ऐसा जान पड़ताहै कि हनुमाननें अति दुष्कर कार्य कियाहै कारण कि अतिभारी भयंकर आयुध चलानेंका शब्द सुनाईदेताहै ॥ २ ॥ इस कारण हे ऋक्षराज ! इन युद्ध करतेहुए वानरश्रेष्ठकी सहायता करनेंके लिये तुम अतिशीघ्रतासे अपनी सैनाके साथ जाओ ॥ ३ ॥ ऋक्षराज जाम्बवानजी " बहुत अच्छा " कहकर जिस स्थानमें वानरश्रेष्ठ हनुमानजी विराजतेथे अपनी सैनाके सहित उसी पश्चिमद्वारको गये ॥ ४ ॥ वहां जायकर ऋक्षराज जाम्बवानजीनें देखाकि हनुमानजी लौटे हुये आयरहेहैं और उनके साथमें जो वानरोंकी सैनाहै; यु

राघवश्चापिविपुलंतंराक्षसवनौकसाम्॥श्रुत्वासंग्रामनिर्घोषंजांबवंतमुवाचह ॥ १ ॥ सौम्यनूनंहनुमताकृतंकर्मसुदुष्करम् ॥ श्रूयतेचयथाभीमःसुमहानायुधस्वनः ॥२॥ तद्गच्छकुरुसाहाय्यंस्वबलेनाभिसंवृतः ॥ क्षिप्रमृक्षपतेतस्यकपिश्रेष्ठस्ययुध्यतः ॥ ३ ॥ ऋक्षराजस्तथेत्युक्त्वास्वेनानीकेनसंवृतः ॥ आगच्छत्पश्चिमंद्वारंहनूमान्यत्रवानरः ॥ ४ ॥ अथायांतंहनूमंतंददर्शर्क्षपतिस्तदा ॥ वानरैःकृतसंग्रामैःश्वसद्भिरभिसंवृतम् ॥ ५ ॥ दृष्ट्वापथिहनूमांश्चतदृक्षबलमुद्यतम् ॥ नीलमेघनिभंभीमंसन्निवार्यन्यवर्तत ॥ ६ ॥ सतेनसहसैन्येनसन्निकर्षंमहायशाः ॥ शीघ्रमागम्यरामायदुःखितोवाक्यमब्रवीत् ॥ ७ ॥ समरेयुध्यमानानामस्माकंप्रेक्षतांचसः ॥ जघानरुदतींसीतामिंद्रजिद्रावणात्मजः ॥ ८ ॥ उद्भ्रांतचित्तस्तांदृष्ट्वाविषण्णोहमरिंदम ॥ तदहंभवतोवृत्तंविज्ञापयितुमागतः ॥ ९ ॥

द्ध कर थकित शरीरसे हो वारंवार लंबे २ श्वास लेरहीहै ॥ ५ ॥ हनुमानजीनें मार्गमें उस नीले वादलकी समान समर करनेंके लिये तैयार भयंकर रीछोंकी सैनाको देखकर उन सबको लौटाये ॥ ६ ॥ महायशवान् हनुमानजी ऋक्ष और वानरोंकी सब सैनाके साथ दुःखित मनसे श्रीरामचंद्रजीके निकट पहुचे और उनसे यह कहा ॥ ७ ॥ " हम सबनें संग्रामभूमिमें युद्ध करते २ देखा कि रावणक पुत्र इन्द्रजीतनें हम लोगोंके सामनेंही रोतीहुई जानकीजीको मारडाला ॥ ८ ॥ हे शत्रुओंका नाश करनेंवाले! उनकी ऐसी अवस्था देख हमारा चित्त उद्भ्रा

यें होजायँगी ॥ ११ ॥ रे निर्लज्ज! क्षुद्रात्मा! ब्राह्मणकंटक! मुनिगण तुमसे शंका करके अग्निमें आहुति दिया करतेहैं सो आजसे वह भय जाता रहेगा ॥१२॥ जब रघुकुमार श्रीरामचंद्रजीने महा क्रोधके वशहोकर इस प्रकार कहा तब निशाचर खर क्रोधयुक्तहो फिर बड़े ऊंचे स्वरसे रामचंद्र जीको दुर्वादिक कहताहुआ बोला ॥१३॥ कि तुम निश्चयही गर्वितहो और भयहोनेपरभी भय नहीं करते इसीकारण मृत्युके वश होकर क्या कहनें लायक क्या न कहने लायकहै, उसको नहीं समझ सकते॥१४॥ जो पुरुष कि कालको फांसोमें बंध जातेहैं, उनकी अन्तःकरणादि छैः इन्द्रियोंकी वृत्ति विषय जाती रहनेंके कारण उनको कार्याकार्यका ज्ञान नहीं रहता॥१५॥ निशाचर खरनें श्रीरामचंद्रजीसे इस प्रकार कहकर भ्रुकुटी टेढीकर निकटही

नृशंसशीलक्षुद्रात्मन्नित्यंब्राह्मणकंटक ॥ त्वत्कृतेशंकितैरग्नौमुनिभिःपात्यतेहविः ॥ १२ ॥ तमेवमभिसंरब्धंब्रु
वाणंराघवंवने ॥ खरोनिर्भर्त्सयामासरोषात्खरतरस्वरः ॥ १३ ॥ दृढंखल्ववलिप्तोसिभयेष्वपिचनिर्भयः ॥ वा
च्यावाच्यंततोहित्वंमृत्योर्वश्योनबुध्यसे ॥ १४ ॥ कालपाशपरिक्षिप्ताभवंतिपुरुषाहिये ॥ कार्याकार्यंनजानंतिते
निरस्तषडिंद्रियाः ॥ १५ ॥ एवमुक्त्वाततोरामंसंरुध्यभ्रुकुटींततः ॥ सददर्शमहासालमविदूरेनिशाचरः ॥ १६ ॥
रणेप्रहरणस्यार्थेसर्वतोह्यवलोकयन्॥सतमुत्पाटयामाससंदष्टदशनच्छदम् ॥ १७ ॥ तंसमुत्क्षिप्यबाहुभ्यांविनर्द्दि
त्वामहाबलः॥राममुद्दिश्यचिक्षेपहतस्त्वमितिचाब्रवीत्॥१८॥ तमापतंतंबाणौघैश्छित्त्वारामःप्रतापवान्॥रोषमाहा
रयत्तीव्रंनिहंतुंसमरेखरम्॥१९॥जातस्वेदस्ततोरामोरोषरक्तांतलोचनः॥निर्बिभेदसहस्रेणबाणानांसमरेखरम्॥२०॥

बहुत बडा एक शालका वृक्ष देखा ॥ १६ ॥ उस बड़े भारीशालके पेड़को देखकर युद्धमें उसकोही अपना अस्त्ररूप बनानेंके लिये खरनें किच किचाकर उसको उखाड लिया ॥ १७ ॥ और घोर गंभीर शब्द करके दोनों भुजाओंसे इस वृक्षको उठा "लो तुम मारे गये" यह कहकर वह वृक्ष श्रीरामचंद्रजीके ऊपर चलाया ॥ १८ ॥ प्रतापवान् श्रीरामचंद्रजीनें अपनें ऊपर आतेहुए इस शालके वृक्षको अनेक बाणोंसे काट डालकर युद्धमें खरको मारडालनेंके लिये महाकोप किया ॥ १९ ॥ महाक्रोध करनेंके कारण श्रीरामचंद्रजीके नयन लाल २ हो आये, शरीरसे पसीना

मान असत्कल्प अप्रत्यक्षरूप धर्म स्वयं अचेतनहै, इस कारण वह स्वकर्त्तव्य शत्रुप्रतिकारादि कार्यको कुछभी नहीं जानताहै ॥ २४ ॥ हे साधुश्रेष्ठ! यथार्थ विचार करनेपर यदि कुछ धर्म होता तौ आपको किसी प्रकारके दुःख भोग करनेंकी संभावना नहीं होती, फिर जब कि आप ऐसा दुःख भोग कर रहेहैं, तब हमको यह नहीं जान पड़ता कि धर्म कुछ है॥ २५ ॥ हमारे विचारसे धर्म एक क्षुद्र पदार्थहै; उस्से कार्य साधन नहीं होता, न उसमें कोई शक्ति है, हां वह केवल कार्य करनेंके समय बलकी सहायता किया करताहै; वह सुखका साधन करनेवाला नहीं हमारी सम्मतिमें उस दुर्बल मर्यादाहीन धर्मकी उपासना करना उचित नहीं है ॥२६॥ यदि धर्म केवल बलका सहायकही हुआ तब फिर उसकी पूजा करनें का क्या प्रयोजन! आप जो धर्मकी पूजा करतेहैं उस धर्मकी पूजा छोड़ जैसे आप धर्मकी पूजा करतेहैं वैसेही यत्नसहित पौरुषका आश्रय लीजिये॥२७॥

यदिसत्स्यात्सतांमुख्यनासत्स्यात्तवकिंचन ॥ त्वयायदीदृशंप्राप्तंतस्मात्तन्नोपपद्यते ॥ २५ ॥ अथवादुर्बलःक्लीबोबलं धर्मोनुवर्तते ॥ दुर्बलोहृतमर्यादोनसेव्यइतिमेमतिः ॥ २६ ॥ बलस्ययदिचेद्धर्मोगुणभूतःपराक्रमैः ॥ धर्ममुत्सृज्यवर्तस्वयथाधर्मेतथाबले ॥ २७ ॥ अथचेत्सत्यवचनंधर्मःकिलपरंतप ॥ अनृतंत्वय्यकरुणेकिंनबद्धस्त्वयाविना ॥ २८ ॥ यदिधर्मोभवेद्भूतअधर्मोवापरंतप ॥ नस्महत्वामुनिंवज्रीकुर्यादिज्यांशतक्रतुः ॥ २९ ॥ अधर्मसंश्रितोधर्मोविनाशयतिराघव ॥ सर्वमेतद्यथाकामंकाकुत्स्थकुरुतेनरः ॥ ३० ॥ ममचेदंमतंतातधर्मोयमितिराघव ॥ धर्ममूलंत्वयाछिन्नंराज्यमुत्सृजतातदा ॥ ३१ ॥

हेशत्रुओंके तपानेवाले! यदि सत्य वचनहीं आपके विचारमें धर्म माना गयाहो तौ जब पिता दशरथजीनें आपको युवराज देना चाहाथा, तब प्रथम आपनें उस वचनको अंगीकार किया और फिर आपनें उस वचनको नहीं पाला; तब उसके लिये आपको अधर्म क्यों नहीं हुआ! ॥ २८ ॥ हेशत्रुदमनकारी! यदि धर्म अथवा अधर्म इन दोनोंके बीचमें कोई बड़ा होता तौ, इन्द्रजी विश्वरूप मुनिका वधरूप अधर्म और तिसके पीछे यज्ञरूप धर्म इन दोनोंको न करते ॥ २९ ॥ हेश्रीरामचंद्रजी! पौरुषका आश्रय कियाहुआ धर्मही शत्रुके विनाशादिमें समर्थहै इसी कारणसे लोग दोनोंका अनुष्ठान किया करतेहैं ॥ ३० ॥ हेरघुनंदन देश, काल, और पात्रके अनुसार कार्य करनाही परम धर्म ज्ञात होताहै;

होकर गिरेथे खरभी वैसेही श्रीरामचंद्रजीके बाणसे नाशहोकर पृथ्वीमें गिरा ॥ २८ ॥ इससमय देवतागण चारणोंके सहित महाहर्ष और विस्मय युक्तहोकर नगाडे बजातेहुए श्रीरामचंद्रजीके ऊपर चारों ओरसे फूलों की वर्षा करनें लगे ❋ ॥ २९ ॥ और सब देवता चारण गण फूल वरसाकर बडे विस्मित हुए कि डेढही मुहूर्तमें तीखे बाणोसें श्रीरामचंद्रजीनें ॥ ३० ॥ इस महायुद्धमें खर दूषण इत्यादि मुख्य राक्षसोंके सहित कामरूपी चौदह हजार राक्षसोंको मार डाला ॥ ३१ ॥ साक्षात् विष्णुजीकी समान सर्वदर्शी श्रीरामचंद्रजीका क्याही बडा आश्चर्यका कार्यहै अहो! क्या अद्भुत वीर्यहै! और क्या विस्मय उपजानेंवाली दृढता हमनें इनमें देखी! ॥ ३२ ॥ यह बात कहते २ एकत्र हुए सब देवता लोग

एतस्मिन्नंतरेदेवाश्चारणैःसहसंगताः ॥ दुंदुभींश्चाभिनिघ्नंतःपुष्पवर्षंसमंततः ॥ २९ ॥ रामस्योपरिसंहृष्टाववर्षुर्विस्मितास्तदा ॥ अर्धाधिकमुहूर्तेनरामेणनिशितैःशरैः ॥ ३० ॥ चतुर्दशसहस्राणिरक्षसांकामरूपिणाम् ॥ खरदूषणमुख्यानांनिहतानिमहामृधे ॥ ३१ ॥ अहोबतमहत्कर्मरामस्यविदितात्मनः ॥ अहोवीर्यंमहोदार्ढ्यंविष्णोरिवहिदृश्यते ॥३२॥ इत्येवमुक्त्वातेसर्वेययुर्देवायथागतम् ॥ ततोराजर्षयःसर्वेसंगताःपरमर्षयः ॥ ३३ ॥ सभाज्यमुदितारामंसागस्त्याइदमब्रुवन् ॥ एतदर्थंमहातेजामहेंद्रःपाकशासनः॥३४॥ शरभंगाश्रमंपुण्यमाजगामपुरंदरः ॥ आनीतस्त्वमिमंदेशमुपायेनमहर्षिभिः॥३५॥एषांवधार्थंशत्रूणांरक्षसांपापकर्मणाम् ॥ तदिदंनःकृतंकार्यंत्वयादशरथात्मज॥३६॥

अपनें २ स्थानको चलेगये । तिसके पीछे राजर्षि व महर्षिगण एकत्र होकर आये ॥३३॥ अगस्त्यजीके सहित श्रीरामचंद्रजीकी बडाई कर मुदित होकर सब ऋषिश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीसे बोले, कि इसी कारणसे महातेजवान् इन्द्रजी ॥ ३४ ॥ शरभंगजीके पुण्य आश्रममें आपके निकट आयेथे । इसी कारणसे महर्षि गण बडे उपायसे आपको यहां पर लायेहैं ॥ ३५ ॥ बस एक यही कार्य था कि केवल इन पाप कर्म करनेंवाले राक्षसोंको मरवानाथा क्योंकि यह सब हमारे शत्रुथे, सो हे दशरथकुमार! आपनें यह हमारा कार्य सिद्ध किया ॥ ३६ ॥

❋ राम २ कह तन तजहिं, पावहिं पद निर्वान । कर उपाय रिपु मोर, छिनमें कृपानिधान ॥

इसप्रकार महासंग्राममें समस्त भयंकर बलवान राक्षसोंको श्रीरामचंद्रजीसे माराहुआ देखकर खर बडे भारी रथपर सवार होकर वज्र उठाये हुए इन्द्रकी समान रामचंद्रजीके मारनेंको चला॥३८॥ इ० श्री० वा० आ० आर० षड्विंशः सर्गः॥२६॥ इसके पीछे खर जब श्रीरामचन्द्रजीके सन्मुख धाया, तब सेनापति त्रिशिरा राक्षस उसके समीप आकर कहनेंलगा॥१॥ मैं विक्रमवानहूं आप यह साहस त्यागकरके मुझको रामचंद्रको मार डालनेंके लिये नियत करके समरमें महाबाहु रामचंद्रको मुझकरके माराहुआही देखिये ॥ २ ॥ मैं आपके समीप हथियार छूकर सत्यही प्रतिज्ञा करताहूं कि समस्त राक्षसोंके मारनें योग्य रामचंद्रको मैं निश्चयही मार डालूंगा ॥ ३ ॥ या तो संग्राममें मैंही मरूंगा, अथवा उस रामकोही मार

ततस्तुतद्भीमबलंमहाहवेसमीक्ष्यधर्मेणहतंबलीयसा ॥ रथेनरामंमहताखरस्ततःसमाससादेंद्रइवोद्यताशनिः॥३८॥
इ० श्री० वा० आ० अ० षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ खरंतुरामाभिमुखंप्रयांतंवाहिनीपतिः ॥ राक्षस
त्रिशिरानामसन्निपत्येदमब्रवीत् ॥ १ ॥ मांनियोजयविक्रांतंत्वंनिवर्तस्वसाहसात् ॥ पश्यरामंमहाबाहुंसंयुगेविनि
पातितम् ॥ २ ॥ प्रतिजानामितेसत्यमायुधंचाहमालभे ॥ यथारामंवधिष्यामिवधार्हंसर्वरक्षसाम् ॥ ३ ॥ अहंवास्य
रणेमृत्युरेषवासमरेमम ॥ विनिवर्त्यरणोत्साहंमुहूर्तंप्राश्निकोभव ॥ ४ ॥ प्रहृष्टोवाहतेरामेजनस्थानंप्रयास्यसि ॥
मयिवानिहतेरामंसंयुगायप्रयास्यसि ॥ ५ ॥ खरस्त्रिशिरसातेनमृत्युलोभात्प्रसादितः ॥ गच्छयुध्येत्यनुज्ञातोराघ
वाभिमुखोययौ ॥ ६ ॥ त्रिशिरास्तुरथेनैववाजियुक्तेनभास्वता ॥ अभ्यद्रवद्रणेरामंत्रिशृंगइवपर्वतः ॥ ७ ॥ शरधारा
समूहान्समहामेघइवोत्सृजन् ॥ व्यसृजत्सदृशंनादंजलार्द्रस्येवदुंदुभेः ॥ ८ ॥

डालूंगा आप क्षणके लियें रणके उत्साहको छोडकर दोनों ओरका युद्ध देखते रहिये ॥ ४ ॥ राम मारा जायगा तो आप आनन्दित चित्तसे जन स्थानको चले जाइये और जो मेरा संहार होवे तो आप स्वयंही युद्ध करनेंके लिये रामचंद्रके सन्मुख होना ॥ ५ ॥ त्रिशिरा इस प्रकार खरको प्रसन्न करके युद्ध करनेंके लिये उसकी आज्ञा लेकर श्रीरामचंद्रजीके सामनें दौडा ॥ ६ ॥ तीन शृंगवाले पर्वतकी समान वह तीन शिर वाला राक्षस देदीप्यमान घोडे जुते हुए रथमें सवार होकर श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख धाया ॥ ७ ॥ और महा मेघ जिस प्रकार जलधारा वर्षाता हुआ

डाला इसमें रामचंद्रजीकी अनंतशक्ति ईश्वरता सूचन करीहै ॥ २० ॥ अकम्पनकी यह भयानक वार्त्ता सुनकर रावणनें कहाकि हम राम लक्ष्मणको मारनेके कारण अभी जनस्थानको जांयगे ॥ २१ ॥ जब रावणनें इस प्रकार कहा तब अकंपन कहनें लगा कि हे राजन्! राममें जिस प्रकारका बल और पौरुष और चरित्रहै उसको श्रवण करो॥२२॥ कि जब महायशवान श्रीरामचंद्रजी क्रोध करें तो उनको निवारण करनेंकी ब्रह्मादि देवताओंकोभी साध्य नहींहै। वह जलसे पूर्ण नदीका वेगभी अपनें बाणोंसे रोक सकतेहैं ॥ २३ ॥ आकाशमंडलसे ग्रह नक्षत्र और सर्व तारागणोंको रामचंद्रजी गिरा सकतेहैं और वह विपदमें पडी हुई पृथ्वीकोभी उधार सकतेहैं ॥ २४ ॥ समुद्रकी वेला भूमिको तोड

अकंपनवचःश्रुत्वारावणोवाक्यमब्रवीत् ॥ गमिष्यामिजनस्थानंरामंहंतुंसलक्ष्मणम् ॥ २१ ॥ अथैवमुक्तेवचनेप्रोवाचेदमकंपनः ॥ शृणुराजन्यथावृत्तंरामस्यबलपौरुषम् ॥ २२ ॥असाध्यःकुपितोरामोविक्रमेणमहायशाः ॥ आपगायास्तुपूर्णायावेगंपरिहरेच्छरैः ॥ २३ ॥ सताराग्रहनक्षत्रंनभश्चाप्यवसादयेत् ॥ असौरामस्तुसीदंतींश्रीमानभ्युद्धरेन्महीम् ॥ २४ ॥भित्त्वावेलांसमुद्रस्यलोकानाप्लावयेद्विभुः ॥वेगंवापिसमुद्रस्यवायुंवाविधमेच्छरैः ॥ २५ ॥ संहृत्यवापुनर्लोकान्विक्रमेणमहायशाः ॥ शक्तःश्रेष्ठःसपुरुषःस्रष्टुंपुनरपिप्रजाः ॥ २६ ॥ नहिरामोदशग्रीवशक्योजेतुंरणेत्वयारक्षसांवापिलोकेनस्वर्गःपापजनैरिव ॥ २७ ॥ नतंवध्यमहंमन्येसर्वैर्देवासुरैरपि ॥ अयंतस्यवधोपायस्तन्ममैकमनाः शृणुः ॥ २८ ॥ भार्यातस्योत्तमालोकेसीतानामसुमध्यमा ॥ श्यामासमविभक्तांगीस्त्रीरत्नंरत्नभूषिता ॥ २९ ॥

ताडकर रामचंद्र सब लोकोंको जलमें डुबो सकतेहैं वह अपने बाणोंसे सागरका अथवा पवनका वेगभी रोक सकतेहैं ॥ २५ ॥ और वह महायशवान् श्रीरामचंद्रजी श्रेष्ठ पुरुष अपने २ विक्रमसे समस्त लोकोंका संहार करके फिर नई प्रजाको उत्पन्न कर सकतेहैं ॥ २६ ॥ हे दशानन! पापात्मा लोग जिस प्रकार स्वर्गके जीतनेंकी सामर्थ्य नहीं रखते सो आप या आपके राक्षस लोग कोईभी युद्धमें श्रीरामचंद्रजीके जीतनेको समर्थ नहींहैं ॥ २७ ॥ मैं तो यह जानताहूं कि देवासुर सब एकत्र होकरभी उनको नहीं वध कर सकते तौभी उनके मारनेंका एक उपायहै सो चित्त देकर सुनिये ॥ २८ ॥ सीता नामक उनकी स्त्री एक लोकके मध्यमें सर्व श्रेष्ठ श्यामा अवस्थावालीहै वह स्त्रियोंमें रत्नकी नाईंहै वह रत्नोंसे

बाण उसके हृदयमें मारे जिनके लगनेंसे वह फिर हथियार ग्रहण करनेंको समर्थ नहीं हुआ ॥ १७ ॥ फिर अप्रमेयात्मा श्रीरामचंद्रजीनें क्रोधमें भरकर वेगवान् तीन बाणोंकी सहायतासे उसके तीनों शिर काट डाले, तिसके पीछे धुवेंके समान रुधिर गिरता श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे पीडित त्रिशिरा॥१८॥समरमें गिरा, जिसके शिर पहलेही गिर गयेथे। त्रिशिराके मारे जानेंके बाद शेष राक्षस भागकर खरकी शरणमें गये॥ १९॥ और वहांभी खडे न होकर सिंह करके भय पाये हुए मृग यूथकी समान भागेही चले गये तिनको भागे हुए देख खरनें रोषमें भर शीघ्रतासे श्रीरामचंद्रजीकी ओर दौडा जैसे राहु चंद्रमाकी ओर दौडताहै ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ०आरण्यकांडे सप्तविंशःसर्गः॥२७॥

शिरांस्यपातयत्रीणिवेगवद्भिस्त्रिभिःशरैः ॥ सधूमशोणितोद्गारीरामबाणाभिपीडितः ॥ १८ ॥ न्यपतत्पातितैःपूर्वंसमरस्थोनिशाचरः ॥ हतशेषास्ततोभग्नाराक्षसाःखरसंश्रयाः ॥ १९ ॥ द्रवंतिस्मनतिष्ठंतिव्याधत्रस्तामृगाइव ॥ तान्खरोद्रवतोदृष्ट्वानिवर्त्यरुषितस्त्वरन् ॥ राममेवाभिदुद्रावराहुश्चंद्रमसंयथा ॥ २० ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीये आदिकाव्येआरण्यकांडेसप्तविंशःसर्गः ॥ २७ ॥ निहतंदूषणंदृष्ट्वारणेत्रिशिरसासह ॥ खरस्याप्यभवत्त्रासोदृष्ट्वारामस्यविक्रमम् ॥ १ ॥ सदृष्ट्वाराक्षसंसैन्यमविषह्यंमहाबलम् ॥ हतमेकेनरामेणदूषणस्त्रिशिराअपि ॥ २ ॥ तद्बलंहतभूयिष्ठंविमनाःप्रेक्ष्यराक्षसः ॥ आससादखरोरामंनमुचिर्वासवंयथा ॥ ३ ॥ विकृष्यबलवच्चापंनाराचान्रक्तभोजनान् ॥ खरश्चिक्षेपरामायक्रुद्धानाशीविषानिव ॥ ४ ॥

दूषण और त्रिशिरा राक्षसको मरा हुआ देख और संग्राममें श्रीरामचंद्रजीकी शूरता निहार खरके मनमेंभी भयका संचार हुआ ॥ १ ॥ खर विचार करनें लगा कि दूषण और त्रिशिराको, सहनेंके अयोग्य पराक्रम वान महाबलवान् राक्षसी सेनाके सहित अकेले रामचंद्रनें संग्राममें मार डाला ॥ २ ॥ ऐसा विचार करता हुआ वह राक्षस खर उदास होकर श्रीरामचंद्रजीके ऊपर दौडा, जैसे नमुचि दैत्य इन्द्रके ऊपर धाया था ॥ ३ ॥ और बडे जोरसे धनुष खैंचकर श्रीरामचंद्रजीके ऊपर, सर्पके विषकी समान रुधिर पान करनेंवाले बाण छोडे ॥ ४ ॥

त्रिशिराको मारा हुआ देखकर शूर्पणखा मेघकी समान गंभीर शब्दसे गर्जनें लगी ॥ २ ॥ औरके करनेंके अयोग्य श्रीरामचंद्रजीका किया हुआ कर्म देखकर अति उकसाके रावणपालिता लंका नगरीको शूर्पणखा गई ॥ ३ ॥ वहाँ जाकर देखा कि महातेजवान् रावण विमान पर बैठाहै, देवतागण जिस प्रकार इन्द्रके निकट बैठे रहतेहैं। मंत्रीगण वैसेही रावणके घेरे बैठेहैं ॥ ४ ॥ सूर्यकी समान प्रकाशित हुए सुवर्णमय श्रेष्ठ आसनपर बैठनेसे, सुवर्णमय वेदिमध्यगत प्रज्वलित अग्निकी समान उसकी शोभा होरहीहै ॥ ५ ॥ देवता, गन्धर्व, भूत व महात्मा व ऋषि लोगोंके जीतनें अयोग्य अति भयंकर मुँह बाये मानों दूसरा यमराजही बैठाथा ॥ ६ ॥ फिर देवताओं व राक्षसोंके मणियुक्त वज्र कक्ष घाव

साद्दष्ट्वाकर्मरामस्यकृतमन्यैःसुदुष्करम् ॥ जगामपरमोद्विग्नालंकांरावणपालिताम् ॥ ३ ॥ साददर्शविमानाग्रेरावणं दीप्ततेजसम् ॥ उपोपविष्टंसचिवैर्मरुद्भिरिववासवम् ॥ ४ ॥ आसीनंसूर्यसंकाशेकांचनेपरमासने ॥ रुक्मवेदिगतं प्राज्यंज्वलंतमिवपावकम् ॥ ५ ॥ देवगंधर्वभूतानामृषीणांचमहात्मनाम् ॥ अजेयंसमरेघोरंव्यात्ताननमिवांतकम् ॥ ६ ॥ देवासुरविमर्देषुवज्राशनिकृतव्रणम् ॥ ऐरावतविषाणाग्रैरुत्कृष्टकिणवक्षसम् ॥ ७ ॥ विंशद्भुजंदशग्रीवंदर्शनीयपरिच्छदम् ॥ विशालवक्षसंवीरंराजलक्षणलक्षितम् ॥ ८ ॥ नद्धवैदूर्यसंकाशंतप्तकांचनभूषणम् ॥ सुभुजंशुक्लदशनंमहास्यंपर्वतोपमम् ॥ ९ ॥ विष्णुचक्रनिपातैश्चशतशोदेवसंयुगे ॥ अन्यैःशस्त्रैःप्रहारैश्चमहायुद्धेषुताडितम् १० ॥

सहित, और ऐरावताचल हाथीके दातोंसे बडाभारी चिह्न छातीमें विद्यमान ॥ ७ ॥ उसकी वीस भुजा व दशशिर, पोशाक बडी सुहावन मनभावन, चौडी छाती, और शरीर राजलक्षण युक्त ॥ ८ ॥ वह जो वैदूर्य मणि पहर रहाहै, उसकी देहकी कान्तिभी वैदूर्यमणिके सदृश कानोंके कुंडल तपाये हुए सुवर्णके बने, वीसों भुजा परमसुन्दर, दाँतोंकी कतारअति सुन्दर, वदन मंडल अतीव महान्, आकार पर्वतकी समान ॥ ९ ॥ देवताओंके सहित सैकडों संग्रामोंमें विष्णुचक्रके लगनेंसे व और २अनेक महासंग्रामोंमें अस्त्रोंके प्रहारसे बहुत भांति ताडित हुआ ॥ १० ॥

नहीं डरता वैसेही श्रीरामचंद्रजी खरको देख कुछभी नहीं घबडाये॥१३॥अनन्तर खर सूर्यसमान द्युतिशाली महारथ पर चढकर श्रीरामचंद्रजीके निकट पहुंचा जिस प्रकार आगके धोरे पतंग पहुंचतेहैं ॥ १४ ॥ तिसके पीछे महात्मा श्रीरामचंद्रजीको खरने अपने हाथोंकी फुरती दिखाई और रामचंद्रजीका बाण चढाहुआ मुट्ठीके धोरेसे काट डाला ॥ १५ ॥ फिर क्रोधमे भरकर इन्द्रके वज्रकी तुल्य प्रतापशाली तीखे सात बाण ग्रहण करके श्रीरामचंद्रजीके मर्म स्थानमें मारे॥१६॥और फिर सैकडों हजारों बाणोंसे श्रीरामचंद्रजीको पीडितकर समरमें अपना उपमा रहित तेज दिखाताहुआ महाशब्दसे गर्जनेलगा॥१७॥उससमय श्रीरामचंद्रजीका सूर्यकी समान प्रकाशमान कवच, सुन्दर तेज धार वाले बाणोंके समू

ततःसूर्यनिकाशेनरथेनमहताखरः ॥ आससादाथतंरामंपतंगइवपावकम् ॥ १४ ॥ ततोस्यसशरंचापंमुष्टिदेशेमहात्मनः ॥ खरश्चिच्छेदरामस्यदर्शयन्हस्तलाघवम् ॥ १५ ॥ सपुनस्त्वपरान्सप्तशरानादायमर्मणि ॥ निजघानरणेक्रुद्धःशक्राशनिसमप्रभान् ॥ १६ ॥ ततःशरसहस्रेणराममप्रतिमौजसम् ॥ अर्दयित्वामहानादंननादसमरेखरः ॥ १७ ॥ ततस्तत्प्रहतंबाणैःखरमुक्तैःसुपर्वभिः ॥ पपातकवचंभूमौरामस्यादित्यवर्चसम् ॥ १८ ॥ सशरैरर्पितःक्रुद्धःसर्वगात्रेषुराघवः ॥ रराजसमरेरामोविधूमोग्निरिवज्वलन् ॥ १९ ॥ ततोगंभीरनिर्ह्रादंरामःशत्रुनिबर्हणः ॥ चकारांतायसरिपोःसज्जमन्यन्महद्धनुः ॥ २० ॥ सुमहद्वैष्णवंयत्तदतिसृष्टंमहर्षिणा ॥ वरंतद्धनुरुद्यम्यखरंसमभिधावतः ॥ २१ ॥ ततःकनकपुंखैस्तुशरैःसन्नतपर्वभिः ॥ चिच्छेदरामःसंक्रुद्धःखरस्यसमरेध्वजम् ॥ २२ ॥

हसे छिन्न भिन्न होकर पृथ्वीमें गिरपडा ॥ १८ ॥ उस समय रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीका सब शरीर बाणोंसे विंधगया, तब श्रीरामचंद्रजी क्रोधित होकर प्रज्वलित धूमरहित अग्निकी शोभा धारण करतेहुए ॥ १९ ॥ उसके पीछे उन शत्रुओंका नाशकरनेंवाले श्रीरामचंद्रजीनें शत्रुओंका संहार करनेके लिये और एकगंभीर शब्द करनेंवाले धनुषपर रोदा चढाते हुए ॥ २० ॥ श्रीरामचंद्रजी महर्षि अगस्त्यजीका दियाहुआ वह बृहत् वैष्णव धनुष उठाकर खरके ऊपर क्रोधित होकर धाये ॥ २१ ॥ तदनन्तर सुवर्णके पंखलगे तीखे बड़े भारी बाणोंसे समरमें श्रीरामचंद्रजीनें

कर जिसकी स्तुति करनेंलगेथे ॥ १९ ॥ यह महाबलवान् रावण होमशालामें गमन करके पवित्र सोमको नष्टकरदेता और दक्षिणा देनें
के समय यज्ञको ध्वंसकरदेता सर्वदा ब्राह्मणहननादिक क्रूरकार्योंको क्रियाकरता ॥ २० ॥ सदा प्रजागणोंका अहित आचरण करता कर्कशथा
अनेक प्रकारकी पीडा देकर सब लोकोंका भय उपजानेंवाला होनेंकेकारण लोक उसको रावण कहा करतेथे ॥ २१ ॥ राक्षसी शूर्पणखानें
अपनें क्रूर महाबली भ्राताको देखा । वह रावण दिव्यवस्त्र, दिव्य गहनें,और माला पहर रहाथा ॥ २२ ॥ आसनपर भली प्रकारसे बैठाथा, उस
काल कालकी मूर्त्तिसा प्रतीत होताथा । ऐसा राक्षसनाथ महाभाग पौलस्त्यकुलनंदन रिपुओंका नाश करनेंवाला ॥ २३ ॥ इस प्रकारके
हविर्धानेषुयः सोममुपहंतिमहाबलः ॥ प्राप्तयज्ञहरंदुष्टंब्रह्मघ्नंक्रूरकारिणम् ॥ २० ॥ कर्कशंनिरनुक्रोशंप्रजानाम
हितेरतम् ॥ रावणंसर्वभूतानां सर्वलोकभयावहम् ॥ २१ ॥ राक्षसीभ्रातरंक्रूरंसाददर्शमहाबलम् ॥ तंदिव्यवस्त्राभ
रणंदिव्यमाल्योपशोभितम् ॥ २२ ॥आसनेसूपविष्टंतंकालेकालमिवोद्यतम् ॥ राक्षसेंद्रंमहाभागंपौलस्त्यकुलनंदन
म् ॥ २३ ॥ उपगम्याब्रवीद्वाक्यंराक्षसीभयविह्वला ॥ रावणंशत्रुहंतारंमंत्रिभिःपरिवारितम् ॥ २४ ॥ तमब्रवीद्दी
प्तविशाललोचनंप्रदर्शयित्वाभयलोभमोहिता ॥ सुदारुणंवाक्यमभीतचारिणीमहात्मनाशूर्पणखाविरूपिता॥२५॥
इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेद्वात्रिंशःसर्गः ॥३२॥ ७७ ॥ ॥ ततःशूर्पणखादीनारावणंलो
करावणम् ॥ अमात्यमध्येसंक्रुद्धापरुषंवाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥ प्रमत्तःकामभोगेषुस्वैरवृत्तोनिरंकुशः ॥ समुत्पन्नंभयं
घोरंबोद्धव्यंनावबुध्यसे ॥ २ ॥
गुणोंसे युक्त रावणको देख लक्ष्मणजीनें जो नाक कान काट डालेथे इसकारण भयसे विह्वलहो, मंत्रियोंके बीचमे बैठेहुए रावणसे बोली ॥ २४ ॥
इस प्रकारकी निशाचरी जो कि श्रीरामचंद्रजीके द्वारा कुरूपको प्राप्त होगईथी जिसका नाम शूर्पणखा था वह निर्भय दारुण वचन कहती हुई
रावणसे बोली ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥ उस समय दीन हो
रही शूर्पणखा क्रोधयुक्तहो सब लोकोंके रुवानेंवाले रावणसे मंत्रिगणोंके सामनें कडुवे वचन कहनें लगी ॥ १ ॥ कि तुम स्वेच्छाचारी

सहित शरासन युक्त वायां हाथ,॥३०॥काटकर हँसतेहुए वज्र समान एक बाणसे खरको इंद्रसमान श्रीरामचंद्रजीनें मारा ॥३१॥ तब वह खर राक्षस धनुष रहित, रथ रहित, सारथि रहित होकर गदाले रथसे कूद पृथ्वी पर खडा होगया ॥ ३२ ॥ उस काल विमानमें बैठे हुए देवता और महर्षिगण महारथी श्रीरामचंद्रजीका यह कार्य अवलोकन करके परम हर्ष प्राप्त करते हुए और परस्पर एकत्रहो हाथजोड स्तुतिकर श्रीरामचंद्रजीकी पूजा करते हुए॥ ३३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे अष्टाविंशःसर्गः ॥ २८ ॥ इसके पीछे खर रथहीन और हाथमें गदा धारण करके जब पृथ्वीमें खड़ा होगया तब महातेजवान् श्रीरामचंद्रजी बोलनेमें मधुर

छित्त्वावज्ञनिकाशेनराघवःप्रहसन्निव ॥ त्रयोदशेनेंद्रसमोबिभेदसमरेखरम् ॥ ३१ ॥ प्रभग्नधन्वाविरथोहताश्वो हतसारथिः॥ गदापाणिरवप्लुत्यतस्थौभूमौखरस्तदा ॥ ३२ ॥ तत्कर्मरामस्यमहारथस्यसमेत्यदेवाश्चमहर्षयश्च ॥ अपूजयन्प्रांजलयःप्रहृष्टास्तदाविमानाग्रगताःसमेताः ॥ ३३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडेअष्टाविंशःसर्गः ॥ २८ ॥ ॥छ॥ ॥ खरंतुविरथंरामोगदापाणिमवस्थितम् ॥ मृदुपूर्वमहातेजाः परुषंवाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥ गजाश्वरथसंबाधेबलेमहतितिष्ठता ॥ कृतंतेदारुणंकर्मसर्वलोकजुगुप्सितम् ॥ २ ॥ उद्वेजनीयोभूतानांनृशंसःपापकर्मकृत् ॥ त्रयाणामपिलोकानामीश्वरोपिनतिष्ठति ॥ ३ ॥ कर्मलोकविरुद्धंतुकुर्वाणं क्षणदाचर ॥ तीक्ष्णंसर्वजनोहंतिसर्पंदुष्टमिवागतम् ॥ ४ ॥ लोभात्पापानिकुर्वाणःकामाद्वायोनबुध्यते ॥ हृष्टः पश्यतितस्यांतंब्राह्मणीकरकादिव ॥ ५ ॥

परंतु वास्तवमें कठोर वचनसे खरसे बोले ॥ १ ॥ हेखर! तैंने हाथी अश्व और रथादि युक्त सेनाके मध्यमें टिककर सर्व लोकमें निन्दित महा भयंकर कर्म कियाहै ॥ २ ॥ यदि त्रिलोकीका स्वामीभी निर्लज्ज होकर पाप कर्म करे और सर्व प्राणियोंको घबडानेंवाला हो तो वहभी अपने पदसें भ्रष्ट होजाताहै ॥ ३ ॥ अरे निशाचर! सभी पुरुष लोकोंके विरुद्ध कर्म करनेवाले तीक्ष्ण स्वभाववाले पुरुषको, आये हुए काल सर्पकी समान संहार कर डालतेहैं ॥ ४ ॥ जो व्यक्ति फल जान करभी लोभ, या कामदेवके वश होकर हिंसा परस्त्रीगमन इत्यादि पाप

खजाना, दूत, और नीति नहीं होती, ऐसे राजालोग साधारण मनुष्योंके समानहैं ॥ ९ ॥ राजा लोग सबजगह अपने दूतोंको नियुक्त करके सब दूरका वृत्तान्त मानों देखते रहतेहैं इसी कारण वह दीर्घचक्षु, कहे जातेहैं ॥ १० ॥ हम जानतीहैं कि तुमनें कहीं भी दूतादि नहीं नियत कियेहैं और तुम साधारण बुद्धिवाले मंत्रियोंके साथ सदाही बैठे रहतेहो। इसीकारणसे निजजन और जनस्थानका जो नाशहोगयाहै उसको तुम नहीं जानते ॥ ११ ॥ देखो! अति कठिन कर्म करनेंवाले रामचंद्रनें इकलेही भयंकरकर्म करनेंवाले चौदह हजार राक्षस खर दूषणसहित मार डाले॥१२॥उन रामचंद्रनें ऋषिगणोंको अभय करदियाहै समस्त दंडकारण्यको निष्कंटक और जनस्थानको भयभीत कर दियाहै ॥ १३ ॥ पर

यस्मात्पश्यंतिदूरस्थान्सर्वानर्थान्नराधिपाः ॥ चारेणतस्माद्रुच्यंतेराजानोदीर्घचक्षुषः ॥ १० ॥ अयुक्तचारंमन्येत्वां प्राकृतैःसचिवैर्युतः ॥ स्वजनंचयतःस्थानंनिहतंनावबुध्यसे ॥ ११ ॥ चतुर्दशसहस्राणिरक्षसांभीमकर्मणाम् ॥ हतान्येकेनरामेणखरश्चसहदूषणः ॥ १२ ॥ ऋषीणामभयंदत्तंकृतक्षेमाश्चदंडकाः ॥ धर्षितंचजनस्थानंरामेणाक्लिष्टकारिणा ॥ १३ ॥ त्वंतुलुब्धःप्रमत्तश्चपराधीनश्चराक्षस ॥ विषयेस्वेसमुत्पन्नंयद्भयंनावबुध्यसे ॥ १४ ॥ तीक्ष्णमल्पप्रदातारंप्रमत्तंगर्वितंशठम् ॥ व्यसनेसर्वभूतानिनाभिधावंतिपार्थिवम् ॥ १५ ॥ अतिमानिनमग्राह्यमात्मसंभावितंनरम् ॥ क्रोधनंव्यसनेहंतिस्वजनोपिनराधिपम् ॥ १६ ॥ नानुतिष्ठतिकार्याणिभयेषुनबिभेतिच ॥ क्षिप्रंराज्याच्च्युतोदीनस्तृणैस्तुल्योभवेदिह ॥ १७ ॥

न्तु हे रावण! तुम तो लोभी मतवाले और सदाही पराये आधीन रहनेंवालेहो इसीकारण तुम नहीं जानते कि तुम्हारे राज्यपर क्या भय आ पहुंचाहै ॥ १४ ॥ जो राजा अति तीक्ष्णस्वभाववाला, असावधान, गर्वित, शठ, और अल्पदान करनेंवाला होताहै, विपदके समय प्रजाभी उस राजाकी रक्षाकरनेंके लिये कोई यत्न नही करती ॥ १५ ॥ जो राजा अतिशय अभिमानी होता, क्रोध स्वभाववाला होता, और जो अपने आपही अपना गौरव करताहै, कोई जिसकी बातको नहीं सुनते। विपदके समय उसके सगेही उसका नाश कर देतेहैं ॥१६ ॥ जो राजा राजकार्य को अपने हाथसे नहींकरता। और भय होनेपरभी नहींडरता, ऐसे राजाको शीघ्रही राज्यभ्रष्ट होना पडताहै और सबहीकोई उसे तृणकी स

और नरकमें जाता हुआ देखें ॥ १३ ॥ रे नीचकुलमें उत्पन्न हुए! तू भली भांतिसे यत्न करके हमारे ऊपर प्रहार कर, किन्तु आज हम निश्चयही तालफलके समान तेरा शिर काटकर गिरादेंगे ॥ १४ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा तब क्रोधके वश होकर खरके दोनों नेत्र लालहो आये और क्रोधके मारे ज्ञान रहितहो खर हँसते २ श्रीरामचंद्रजीसे बोला ॥ १५ ॥ रेदशरथकुमार! समरमें साधारण राक्षसोंको मार वास्तवमें प्रशंसित न होनेंपरभी तुम आपही किस प्रकारसे अपनीही प्रशंसा करतेहो ॥ १६ ॥ बलवान् पराक्रमशाली नरगण तेजके मारे गर्वित होकर किसी समयभी अपनी प्रशंसा नहीं किया करते ॥ १७ ॥ जिनका चित्त शुद्ध नहींहै, ओछा स्वभावहै ऐसे क्षत्रियोंमें अधम लोगही

प्रहरस्वयथाकामंकुरुयत्नंकुलाधम ॥ अद्यतेपातयिष्यामिशिरस्तालफलंयथा ॥ १४ ॥ एवमुक्तस्तुरामेणक्रुद्धःसंरक्तलोचनः ॥ प्रत्युवाचततोरामंप्रहसन्क्रोधमूर्छितः ॥ १५ ॥ प्राकृतान्राक्षसान्हत्वायुद्धेदशरथात्मज ॥ आत्मनाकथमात्मानमप्रशस्यंप्रशंससि ॥ १६ ॥ विक्रांताबलवंतोवायेभवंतिनरर्षभाः ॥ कथयंतिनतेकिंचित्तेजसाचातिगर्विताः ॥ १७ ॥ प्राकृतास्त्वकृतात्मानोलोकेक्षत्रियपांसनाः ॥ निरर्थंकंविकत्थंतेतथारामविकत्थसे ॥ १८ ॥ कुलंव्यपदिशन्वीरःसमरेकोभिधास्यति ॥ मृत्युकालेतुसंप्राप्तेस्वयमप्रस्तुवेस्तवम् ॥ १९ ॥ सर्वथातुलघुत्वंतेकत्थनेनविदर्शितम् ॥ सुवर्णप्रतिरूपेणतप्तेनेवकुशाग्निना ॥ २० ॥ नतुमामिहतिष्ठंतंपश्यसित्वंगदाधरम् ॥ धराधरमिवाकंप्यंपर्वतंधातुभिश्चितम् ॥ २१ ॥ पर्याप्तोहंगदापाणिर्हंतुंप्राणान्रणेतव ॥ त्रयाणामपिलोकानांपाशहस्तइवांतकः ॥ २२ ॥

तुम्हारी समान निरर्थक गर्व प्रगट किया करते हैं ॥ १८ ॥ मृत्यु समयके निकट आजानेंपर कौन वीर अपनें वंशका परिचय देकर प्रशंसाके अयोग्य विषयमें अपनी प्रशंसा करताहै ॥ १९ ॥ जिस प्रकार आग अपने तापसे सुवर्णकी समान पीतलकी अधमताई प्रगट करतीहै वैसेही तुमनें जो अपनी प्रशंसा की इस्से तुम्हारा ओछापनही प्रगट हुआ ॥ २० ॥ तुम क्या गदा धारण किये हुए समरमें टिके देखकर विविध धातुओंके आकार धराधर पर्वतकी समान हमको अकम्पनीय नहीं समझतेहो ॥ २१ ॥ हम लीलासेही गदा हाथमें लेकर समरमें पाशधारी यमराजकी समान

शूर्पणखा मंत्रियोंकी सभाके बीचमें अनेक प्रकारके कटुवचन कहरहीहै यह देखकर रावणने क्रोधित होकर पूछा ॥ १ ॥ राम कौनहै? उन का वीर्य, रूप और पराक्रम कैसाहै? वह किस कारणसे इस दुस्तर दंडकारण्यमें आयेहैं? ॥ २॥ उन्होंनें जिनसें कि खर दूषण और त्रिशिरा आदि राक्षसोंको युद्धमें मार डाला वह उन रामचंद्रके आयुध कैसेहैं? ॥ ३ ॥हे मनोहर शरीरवाली! तुमको किसनें विरूप कर दिया? सब यथार्थही कहो। जब राक्षसराज रावणनें इस प्रकारसे कहा तब राक्षसी क्रोधसे मूर्च्छितहो ॥ ४ ॥ जैसेका तैसा ठीक २ श्रीरामचंद्रजीका वृत्तान्त कहनें लगी। उसनें कहा रामचंद्र दशरथके पुत्र कामदेवकी समान रूपवान् दीर्घबाहु और विशाल नेत्र, वल्कल व मृगचर्म धारण किये हुए ॥५॥ उनका

ततःशूर्पणखांदृष्ट्वाब्रुवतींपरुषंवचः ॥ अमात्यमध्येसंक्रुद्धःपरिपप्रच्छरावणः ॥ १ ॥ कश्चरामःकथंवीर्यःकिंरूपःकिंपराक्रमः ॥ किमर्थंदंडकारण्यंप्रविष्टश्चसुदुस्तरम् ॥ २ ॥ आयुधंकिंचरामस्ययेनतेराक्षसाहताः ॥ खरश्चनिहतः संख्येदूषणस्त्रिशिरास्तथा ॥ ३ ॥ तत्त्वंब्रूहिमनोज्ञांगिकेनत्वंचविरूपिता ॥ इत्युक्ताराक्षसेंद्रेणराक्षसीक्रोधमूर्च्छिता ॥ ४ ॥ ततोरामंयथान्यायमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ दीर्घबाहुर्विशालाक्षश्चीरकृष्णाजिनांबरः ॥ ५ ॥ कंदर्पसमरूपश्चरामोदशरथात्मजः ॥ शक्रचापनिभंचापंविकृष्यकनकांगदम् ॥ ६ ॥ दीप्तान्क्षिपतिनाराचान्सर्पानिवमहाविषान् ॥ नाददानंशरान्घोरान्विमुंचंतंमहाबलम् ॥ ७ ॥ नकार्मुकंविकर्षंतंरामंपश्यामिसंयुगे ॥ हन्यमानंतुतत्सैन्यंपश्यामिशरवृष्टिभिः ॥ ८ ॥ इंद्रेणेवोत्तमंसस्यमाहतंत्वश्मवृष्टिभिः ॥ रक्षसांभीमवीर्याणांसहस्राणिचतुर्दश ॥ ९ ॥ निहतानिशरैस्तीक्ष्णैस्तेनैकेनपदातिना ॥ अर्धाधिकमुहूर्तेनखरश्चसहदूषणः ॥ १० ॥

धनुष इन्द्रके धनुषकी समानहै उसमें सुवर्णके बंद लगेहैं उस धनुषको खेंचकर ॥ ६ ॥ तेज विषवाले सर्पोंकी समान प्रतीप नाराच रामचंद्र छोडतेहैं यह हमनें नहीं देखा ॥ ७ ॥ और धनुषको किस समयमें खैंचतेहैं यहभी हमनें नहीं देखा केवल इतनाही देखाहै कि बाण वर्षा करके वह संग्राममें राक्षसोंका संहार करतेथे ॥ ८ ॥ जैसे इन्द्र अकालमें ओले वर्षाकर श्रेष्ठ अन्नका नाश कर देतेहैं इसी प्रकार भयंकर वीर्यवान् १४००० हजार राक्षसोंको ॥ ९ ॥ तीक्ष्ण बाणोंके प्रहारसे अकेले पैदल रामचंद्रजीनें मार डाला। केवल आधेही मुहूर्त्तमें खरको दूषणके सहित संहार कर॥१०॥

अपना सब बल दिखाया तुम हम करके हीन बल होकर वृथा क्यों गर्जना करतेहो ॥ २ ॥ तुम केवल निरर्थक बकवाद करनेमें समर्थहो। तुम्हारी गदानें हमारे बाणोंसे टुकडे २ होकर पृथ्वीमें गिरकर तुम्हारे विश्वासको नष्ट किया ॥ ३॥ और तुमने जो कहाथा कि मरे हुए राक्षसोंके स्त्री पुत्रादिकोंके आंसू पोंछेंगे; सो तुम्हारी यह बातभी मिथ्याहुई ॥ ४ ॥ और गरुडजीनें जिस प्रकार अमृत हरण कियाथा इस समय हमभी वैसेही नीच, ओछे स्वभाववाले झूंठी प्रतिज्ञा करनेवाले तुम जो हो सो तुम्हारा प्राण हरण करेंगे ॥ ५ ॥ आज हमारे बाणों करके विदारित होनेसे जब तुम्हारा शिर कट जायगा, तब पृथ्वी तुम्हारे गलेका झाग सहित रुधिर पान करैगी ॥ ६ ॥ आज तुम शिथिलहो गिरेहुए दोनों हाथोंसे सर्वांगमें

एषाबाणविनिर्भिन्नागदाभूमितलंगता ॥ अभिधानप्रगल्भस्यतवप्रत्ययघातिनी ॥ ३ ॥ यत्त्वयोक्तंविनष्टानामिदमश्रुप्रमार्जनम् ॥ राक्षसानांकरोमीतिमिथ्यातदपितेवचः ॥ ४ ॥ नीचस्यक्षुद्रशीलस्यमिथ्यावृत्तस्यरक्षसः ॥ प्राणानपहरिष्यामिगरुत्मानमृतंयथा ॥ ५ ॥ अद्यतेभिन्नकंठस्यफेनबुद्बुदभूषितम् ॥ विदारितस्यमद्बाणैर्मही पास्यतिशोणितम् ॥ ६ ॥ पांसुरूषितसर्वांगःस्रस्तन्यस्तभुजद्वयः ॥ स्वप्स्यसेगांसमाश्लिष्यदुर्लभांप्रमदामिव ॥ ७॥ प्रवृद्धनिद्रेशयितेत्वयिराक्षसपांसने॥भविष्यतिशरण्यानांशरण्यादंडकाइमे ॥८॥जनस्थानेहतस्थानेतवराक्षसमच्छरैः॥ निर्भयाविचरिष्यंतिसर्वतोमुनयोवने ॥ ९॥ अद्यविप्रसरिष्यंतिराक्षस्योहतबांधवाः ॥ बाष्पार्द्रवदनादीनाभयादन्यभयावहाः॥ १०॥अद्यशोकरसज्ञास्ताभविष्यंतिनिरर्थिकाः ॥ अनुरूपकुलाःपत्न्योयासांत्वंपतिरीदृशः ॥ ११ ॥

रुधिर लगाये हुए दुर्लभस्त्रीके समान पृथ्वीको चिपटाकर शयनकरोगे ॥ ७ ॥ रे राक्षसकुलका नाश करनेंवाले! यह दंडकवन सब लोकोंका आश्रय स्वरूप ऋषिगणोंका आश्रय हो जायगा ॥ ८ ॥ रे राक्षस! मेरे बाण समूहकरके जनस्थान राक्षसशून्य होनेंसे मुनिगण निर्भय होकर सब प्रकारसे वनमें निर्भय होकर घूमेंगे ॥ ९ ॥ भयंकरी सब राक्षसीयें आज बन्धु बान्धवोंके मारे जानेसे रुदन करती हुई हमारे भयसे आज जनस्थानसे भाग जांयगी ॥ १० ॥ तुम जिनके पतिहो सो वह तुम्हारेही समान वंशकी पतियें आज शोकरसके मर्मको जानकर हीनवी

हर्षमें भर कर भेंटे वह पुरुष समस्त प्राणी क्या, वरन इन्द्रसेभी अधिकसुखसे जीवन बिताताहै ॥ १९ ॥ सीताके सबही अंग सब लोकोंके प्रशंसा करनेंके योग्यहैं और पृथ्वीमें उसका रूप अतुलनीयहै। वह सुशीला तुम्हारेही लायक भार्याहै, और तुम उसकेही अनुरूप पतिहो ॥ २० ॥ उसके दोनों पयोधर ऊंचेहैं. जंघा अति विशालहैं और मुखमंडल अतिश्रेष्ठहै उसको हम सोच विचार कर तुम्हारी स्त्री होनेंके योग्य जान लैनें गईथीं ॥ २१ ॥ हे महाभुज! सो इस कार्यको करतेही हुए क्रूर लक्ष्मणनें हमारे नाक कान काट डाले उस पूर्णचन्द्रमुखवाली विदेहकुमारीको देखतेही ॥ २२ ॥ तुम फूलबाणधारीके पुष्प बाणोंका निशाना बनोगे, यदि उसको अपनी स्त्री बनानेंका तुम्हारा आशय होतो शीघ्रही

सासुशीलावपुःश्लाघ्यारूपेणाप्रतिमाभुवि ॥ तवानुरूपाभार्यासात्वंचतस्याःपतिर्वरः ॥ २० ॥तांतुविस्तीर्णजघनांपीनोत्तुंगपयोधराम् ॥ भार्यार्थेतुतवानेतुमुद्यताहंवराननाम् ॥ २१ ॥ विरूपितास्मिक्रूरेणलक्ष्मणेनमहाभुज ॥ तांतुदृष्ट्वाद्यवैदेहींपूर्णचंद्रनिभाननाम् ॥ २२ ॥ मन्मथस्यशराणांचत्वंविधेयोभविष्यसि ॥ यदितस्यामभिप्रायोभार्यात्वे तवजायते ॥ शीघ्रमुद्धियतांपादोजयार्थमिहदक्षिणः॥ २३ ॥ रोचतेयदितेवाक्यंममैतद्राक्षसेश्वर ॥ क्रियतांनिर्विशंकेनवचनंममरावण ॥ २४ ॥ विज्ञायैषामशक्तिंचक्रियतांचमहाबल ॥ सीतातवानवद्यांगीभार्यात्वेराक्षसेश्वर॥२५॥ निशम्यरामेणशरैरजिह्मगैर्हतान्जनस्थानगतान्निशाचरान्॥खरंचदृष्ट्वानिहतंचदूषणंत्वमद्यकृत्यंप्रतिपत्तुमर्हसि२६॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेचतुस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३४ ॥ ॥ ७ ॥

रामचंद्रके जीतनेंको दहिना चरण आगे धरकर चलो॥ २३॥ राक्षसराज रावण! हमारा यह वचन यदि तुम्हें रुचाहो, तो जो हमनें कहा उसको चित्तसे शंका त्यागकर करो ॥२४॥ हे महाबल! तुम उनको असमर्थ और अपनेंको समर्थ जानकर इस सर्वाङ्गसुन्दरी सीताको स्त्री बनानें में यत्नवान होवो ॥२५॥ रामचंद्रनें सीधे चलनेंवाले बाणोंसे समस्त उन जनस्थानवासी राक्षसोंको खर व दूषणके सहित मार डालाहै यह सुनकर अब जो कुछ कर्त्तव्यहो सो करो ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे चतुर्स्त्रिशः सर्गः ॥ ३४ ॥

निकलनें लगा, उन्होंनें हजार बाणोंसे खरके अंगको छिन्न भिन्नकर डाला ॥ २० ॥ पर्वतके झरनेंसे जिसप्रकार पानीकी धारा निकलती रह तीहै, वैसेही खरकी देहमें जो बाण लगनेके कारण छिद्र होगयेथे, उनसे रुधिर गिरनें लगा ॥ २१ ॥ खर श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे व्याकुलहो और रुधिर गन्धसे मतवाला होकर श्रीरामचंद्रजीके सामने बहुत शीघ्रतासे धाया ॥ २२ ॥ यह रुधिरसे डुबाहुआ और अतिशय क्रोधाविष्ट होकर इसप्रकारसे दौडा कि कृतास्त्र श्रीरामचंद्रजो शीघ्रतासे दो तीन परग पीछेको हटगये ॥ २३ ॥ इसके पीछे श्रीरामचंद्रजीनें खरके मारडालनेंके लिये दूसरे ब्रह्मदंडकीसमान अग्निसमान बाण ग्रहणकिया ॥ २४ ॥ धीमान् देवराज इन्द्रजीनें यह बाण श्रीरामचंद्रजीको दियाथा धर्मात्मा

तस्यबाणांतराद्रक्तंबहुसुस्रावफेनिलम्॥गिरेःप्रस्रवणस्येवधाराणांचपरिस्रवः २१॥विकलःसकृतोबाणैःखरोरामेणसंयुगे॥मत्तोरुधिरगंधेनतमेवाभ्यद्रवद्द्रुतम्॥२२॥तमापतंतंसंक्रुद्धंकृतास्त्रोरुधिराप्लुतम्॥अपासर्पद्द्वित्रिपदंकिंचित्त्वरितविक्रमः ॥ २३ ॥ ततःपावकसंकाशंवधायसमरेशरम् ॥ खरस्यरामोजग्राहब्रह्मदंडमिवापरम् ॥ २४ ॥ सतद्दत्तंमघवतासुरराजेनधीमता ॥ संदधेचसधर्मात्मामुमोचचखरंप्रति ॥ २५॥ सविमुक्तोमहाबाणोनिर्घातसमनिःस्वनः ॥ रामेणधनुरायम्यखरस्योरसिचापतत् ॥ २६ ॥ सपपातखरोभूमौदह्यमानःशराग्निना ॥ रुद्रेणेवविनिर्दग्धःश्वेतारण्येयथांधकः ॥ २७ ॥ सवृत्रइववज्रेणफेनेननमुचिर्यथा ॥ बलोवेंद्राशनिहतोनिपपातहतःखरः ॥ २८ ॥

श्रीरामचंद्रजीनें वही बाण धनुषपर चढाकर खरके ऊपर छोड़ा ॥२५ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें धनुषको खैंचकर वह महाबाण छोडा, तब वह बाण वज्रकोसमान शब्द करताहुआ खरकी छातीमें लगा ॥ २६ ॥ खर उस बाणकी अग्निसे भस्महोकर, श्वेतारण्यमें[1] रुद्रकरके भस्महुए अंधकासुरकी समान पृथ्वीमें गिरपडा ॥ २७ ॥ वृत्रासुर[2] जिसप्रकार वज्रसे, नमुचि[3] जिसप्रकार फेनसे, और बलासुर जिसप्रकार इन्द्रके वज्रसे हत

१ कावेरीनदीके किनारे श्वेतारण्यमें एक श्वेत नाम राजर्षि तप करतेथे तब अन्धकासुर उन्हे मारनेको धाया उस समय शिवजीनें लात मारकर उस राक्षसका संहार किया ॥ २ बृहस्पतिजीके रूठ जानेपर जब इन्द्रने विश्वरूपको पुरोहित किया तब इन्द्रनें गुप्त रूपसे दैत्योंके निमित्त उसे आहुति देते देख मारडाला विश्वरूपके मरनेपर उसके पिताने यज्ञ कुंडसे वृत्रासुरको उत्पन्न किया बडा युद्ध इंद्रके साथ हुआ तब इन्द्रनें दधीच ऋषिसे उनकी जांघका हाड मांग वज्र बनाय उस्से वृत्रासुरका संहार किया ॥ ३ नमुचि दैत्यको ब्रह्माजीका वरदानथा तुम गीले सूखे किसी प्रकारके आयुधसे न मरोगे तब इन्द्रने वज्रमें फेन लपेटकर मारा जो गीला सूखा नहींथा ॥

योंके हनन करनेंको यह रावण साक्षात् दश कँगूरों करकै युक्त पर्वतराजसा दिखाई देताथा ॥ ९ ॥ वह रावण उस यथेच्छाचारी विमान पर चढकर ऐसा शोभित हुआ मानों सौदामिनीके संग घन श्याम बगलोंकीपांतिके साथ गगन मंडलमें जाताहै ॥ १० ॥ रावण चलते २ समुद्रके तीरपर पहुंचा, बीचमें उसनें बहुतसे पर्वत व समुद्रकी तलैटीकेदेश देखे वह स्थान अनेक प्रकारके पुष्प फल और वृक्षोंसे शोभायमानथे ॥ ११ ॥ शीतल मंगल जल युक्त तलैयां वहांपर थीं. वेदी युक्त और बडे २ आश्रमोंसे वह देश अलंकृतथा ॥ १२ ॥ केलेका वन चारो ओर लगा,नारियलके पेड़ अलगही लह लहा रहेथे,और शाल ताल तमालादि नाना जातिके पुष्पित वृक्ष लगेथे ॥ १३ ॥ वह स्थान, जो सदा

कामगंरथमास्थायशुशुभेराक्षसाधिपः ॥ विद्युन्मंडलवान्मेघःसबलाकइवांबरे ॥ १० ॥ सशैलसागरानूपंवीर्यवानवलोकयन् ॥ नानापुष्पफलैर्वृक्षैरनुकीर्णंसहस्रशः ॥ ११ ॥ शीतमंगलतोयाभिःपद्मिनीभिःसमंततः ॥ विशालैराश्रमपदैर्वेदिमाद्भिरलंकृतम् ॥ १२ ॥ कदल्यटविसंशोभंनालिकेरोपशोभितम् ॥ सालैस्तालैस्तमालैश्चतरुभिश्चसुपुष्पितैः ॥ १३ ॥ अत्यंतनियताहारैःशोभितंपरमर्षिभिः ॥ नागैःसुपर्णैर्गंधर्वैःकिन्नरैश्चसहस्रशः ॥ १४ ॥ जितकामैश्चसिद्धैश्चचारणैश्चोपशोभितम् ॥ आजैर्वैखानसैर्माषैर्वालखिल्यैर्मरीचिपैः ॥ १५ ॥ दिव्याभरणमाल्याभिर्दिव्यरूपाभिरावृतम् ॥ क्रीडारतविधिज्ञाभिरप्सरोभिःसहस्रशः ॥ १६ ॥ सेवितंदेवपत्नीभिःश्रीमतीभिरुपासितम् ॥ देवदानवसंघैश्चचरितंत्वमृताशिभिः ॥ १७ ॥

नियमित भोजनमें मग्न रहते ऐसे परमर्षियोंसे शोभायमानथा, नाग,गरुड, गन्धर्व और सहस्रों किन्नरभी वहांपर थे ॥ १४ ॥ और कामदेवको जिन्होंनें जीत रक्खाहै, ऐसे सिद्ध और चारण गणभी उस स्थानमें शोभित हो रहेथे, आज्य, धूम्र, वैखानस, माख, वालखिल्य, मरीचि आदि ॥ १५ ॥ दिव्य वस्त्राभूपण दिव्य माला, और दिव्य रूप स्त्रियों के संग घूम रहेथे । क्रीडा व रतिकी विधि जाननेंवाली हजारों अप्सराओंके साथ सिद्धगण विहार करतेथे॥१६॥देवोंकी श्रीसम्पन्न स्त्रियांभी घूमरहीथीं.अमृत पीनेंवाले देव दानवोंके समूह भी इधर उधर फिरतेथे१७

अब महर्षिलोग दंडकारण्यमें अपना२ धर्म स्वच्छन्द हो करेंगे । मुनिगण इतना कहही रहेथे कि इतनेमें वीर लक्ष्मणजी सीताजीके सहित ॥ ३७ ॥ गिरिगुहासे सुख सहित बाहर आकर अपनें आश्रममें प्रवेश करते हुए इसके पीछे विजयी श्रीरामचंद्रजी महर्षियों करके पूजित होकर ॥ ३८॥ और लक्ष्मणजीसेभी पूजितहो अपनें आश्रममें आगमन करतेहुए तिन महर्षियोंके आनंद बढानेवाले शत्रुओंके दमन करनेंवाले श्रीरामचंद्रजीको देख ॥ ३९ ॥ श्रीजानकीजी प्रसन्न हुईं; और अपनें पति श्रीरामचंद्रजीसे अति प्रेम पूर्वक मिलीं, और फिर राक्षसोंको मरे हुए देख॥४०॥

स्वधर्मंप्रचरिष्यंतिदंडकेषुमहर्षयः॥ एतस्मिन्नंतरेवीरोलक्ष्मणःसहसीतया॥ ३७ ॥ गिरिदुर्गाद्विनिष्क्रम्यसंविवेशाश्रमेसुखी॥ ततोरामस्तुविजयीपूज्यमानोमहर्षिभिः॥ ३८॥ प्रविवेशाश्रमंवीरोलक्ष्मणेनाभिपूजितः॥ तंदृष्ट्वाशत्रुहंतारंमहर्षीणांसुखावहम्॥ ३९॥ बभूवहृष्टावैदेहीभर्तारंपरिषस्वजे॥ मुदापरमयायुक्तादृष्ट्वारक्षोगणान्हतान्॥ ४०॥ रामंचैवाव्ययंदृष्ट्वातुतोषजनकात्मजा॥ ४१ ॥ ततस्तुतंराक्षससंघमर्दनंसंपूज्यमानंमुदितैर्महात्मभिः ॥ पुनःपरिष्वज्यमुदान्वितानना बभूवहृष्टाजनकात्मजातदा ॥ ४२ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आर० त्रिंशःसर्गः॥ ३० ॥ त्वरमाणस्ततोगत्वाजनस्थानादकंपनः॥ प्रविश्यलंकांवेगेनरावणंवाक्यमब्रवीत्॥ १ ॥ जनस्थानस्थिताराजन्राक्षसाबहवोहताः॥ खरश्चनिहतःसंख्येकथंचिदहमागतः॥ २ ॥

व श्रीरामचंद्रजीको समस्तही निरापद देखकर श्रीजानकीजी अति संतोषको प्राप्त हुईं ॥ ४१ ॥ अनन्तर सुकुमारी जनकदुलारी परम प्रेम और हर्षमें भरकर राक्षसकुलके संहार करनेंवाले श्रीरामचंद्रजीसे फिर मिलीं और महात्मा ऋषिगण प्रफुल्लित होकर अनेक २ प्रकारसे श्रीरामचंद्रजीकी पूजा करनेंलगे॥ ४२॥ इ० श्रीम० वा० आ० आर० त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥खर दूषण त्रिशिरा आदि राक्षसोंके मारेजानेंपर अकम्पन नामक राक्षस शीघ्रतासे जनस्थानसे पलायन कर लंकामें जाकर रावणसे कहनें लगा ॥ १ ॥ हे राजन् ! जनस्थानवासी अनेक राक्षस संग्राममें मारे

सिन्धु राजका अनूप किनारा देखा,वह देखनेमें स्वर्गकेही सम तुल्य था, वहां पर सबओरसे मुनियों करके सेवित मेघ सम श्याम एक वरगदका वृक्ष देखा२७उसकी समस्त शाखा चारों ओर शत योजनके घेरमें फैल रहीथीं जहांपर बडे शरीर वाले हाथी और कछुएको२८गरुडजी भोजन करनेंके लिये, इस पेडकी एक शाखा पर बैठेथे पक्षियोंके स्वामी गरुडजीनें मारे बोझके उसकी एक डाली ॥ २९ ॥ जिसमें बहुत पत्र लगेथे तोड डाली उसी शाखाका आश्रय कर वैखानस, माष,मरीचिपायी,वालखिल्य॥३०॥और धूम्राख्य परमर्षिगण मिलकर तपस्या कर रहेथे। धर्मात्मा गरुडजी

अनूपेसिंधुराजस्यददर्शत्रिदिवोपमम् ॥ तत्रापश्यत्समेघाभंन्यग्रोधंमुनिभिर्वृतम्॥ २७ ॥ समंताद्यस्यताःशाखाः शतयोजनमायताः॥ यस्यहस्तिनमादायमहाकायंचकच्छपम्॥ २८ ॥ भक्षार्थंगरुडःशाखामाजगाममहाबलः॥ तस्यतांसहसाशाखांभारेणपतगोत्तमः ॥ २९ ॥ सुपर्णःपर्णबहुलांबभंजाथमहाबलः ॥ तत्रवैखानसामाषावालखिल्यामरीचिपाः ॥ ३० ॥ आजाबभूवुर्धूम्राश्चसंगताःपरमर्षयः॥ तेषांदयार्थंगरुडस्तांशाखांशतयोजनम्॥ ३१ ॥ भग्नामादायवेगेनतौचोभौगजकच्छपौ॥ एकपादेनधर्मात्माभक्षयित्वातदामिषम् ॥ ३२ ॥ निषादविषयंहत्वाशाखयापतगोत्तमः ॥ प्रहर्षमतुलंलेभेमोक्षयित्वामहामुनीन् ॥ ३३ ॥ सतुतेनप्रहर्षेणद्विगुणीकृतविक्रमः॥ अमृतानयनार्थंवैचकारमतिमान्मतिम् ॥ ३४ ॥ अयोजालानिनिर्मथ्यभित्त्वारत्नगृहंवरम् ॥ महेंद्रभवनाद्गुप्तमाजहारामृतंततः ॥ ३५ ॥ तंमहर्षिगणैर्जुष्टंसुपर्णकृतलक्षणम्॥ नाम्नासुभद्रंन्यग्रोधंददर्शधनदानुजः ॥ ३६ ॥

उन ऋषियोंके प्रति दया करके एक पैरसेही उस शत योजनकी ॥ ३१ ॥टूटी हुई शाखाको पकड दूसरे पैरसे गज कच्छपको दबाय महात्मा गरुडनें उनका मांस खाकर ॥ ३२॥ उस टूटी हुई शाखाकी सहायसे समस्तनिषाद देशको नाश कर दिया इस प्रकार मुनि गणोंको बचाकर गरुडजी परम हर्षित हुएथे ॥ ३३॥ अनन्तर उस हर्षके वशहो गरुडजीका विक्रम दूना बढ गया तौ इस कारण मतिमान गरुडजी अमृतके लानेंका विचार करते हुए ॥ ३४ ॥ और लोहेके जालको तोड ताड रत्नमय श्रेष्ठ गृह फोड फाड महेन्द्र भवनसे अमृतले आये ॥ ३५॥ सो इस समय कुवेरका

भूपितहै युवा अवस्था आरहीहै उसके सब अंग बराबरहैं कोई बड़ा छोटा नहींहै ॥ २९॥ न देवी, न देवता, न गन्धर्वी, न अप्सरा, न पन्नगी कोईभी उसकी तुल्यता नहीं करसकती फिर मनुष्यकी स्त्री किस भांति उनकेसमान होसकतीहैं ॥ ३० ॥ सो अब महावनमें जाकर किसी प्रकार छल बल चतुराईसे उनकी वह स्त्री हर लीजिये जब उनकी स्त्री हरी जायगी तब राम न बचैंगे वरन अवश्यही मर जांयगे ॥ ३१ ॥ यह बात महाबाहु, राक्षसराज रावणके मनको भाई । वह सोच विचार, करके अकम्पनसे बोला ॥ ३२॥ कि अच्छा ! हम अकेले सारथीके साथ वहां जांयगे, और जानकीको हर्ष सहित इस लंकापुरीमें लावैंगे॥ ३३ ॥इस प्रकार कह कर राक्षसराज रावण सूर्यकी समान प्रभावाले रथपर

नैवदेवीनगंधर्वीनाप्सरानचपन्नगी ॥ तुल्यासीभंतिनीतस्यमानुषीतुकुतोभवेत् ॥ ३० ॥ तस्यापहरभार्यात्वंतंप्रमथ्यमहावने ॥ सीतयारहितोरामोनचैवहिभविष्यति ॥ ३१ ॥ अरोचयततद्वाक्यंरावणोराक्षसाधिपः ॥ चिंतयित्वामहाबाहुरकंपनमुवाचह ॥ ३२ ॥ बाढंकल्यंगमिष्यामिएकःसारथिनासह ॥ आनेष्यामिचवैदेहीमिमांहृष्टो महापुरीम् ॥ ३३ ॥ तदेवमुक्त्वाप्रययौखरयुक्तेनरावणः ॥ रथेनादित्यवर्णेनदिशःसर्वाःप्रकाशयन् ॥ ३४ ॥ सरथोराक्षसेंद्रस्यनक्षत्रपथगोमहान् ॥ चंचूर्यमाणःशुशुभेजलदेचंद्रमाइव ॥ ३५ ॥ सदूरेचाश्रमंगत्वाताटकेयमुपागमत ॥ मारीचेनार्चितोराजाभक्ष्यभोज्यैरमानुषैः ॥ ३६ ॥ तंस्वयंपूजयित्वातुआसनेनोदकेनच ॥ अर्थोपहितया वाचामारीचोवाक्यमब्रवीत् ॥ ३७ ॥

जिसमें खचड़ जुतेथे सवारहो समस्त दिशा विदिशाओंको प्रकाशित करताहुआ चला ॥ ३४ ॥ राक्षसेन्द्रका वह रथ तारागणोंके मार्गमें वेगसे भराहुआ चलनेंके कारण मेघमंडलमें चंद्रमाकी समान शोभाविस्तार करता हुआ ॥ ३५ ॥ इसके पीछे रावण बहुत दूर चलकर ताडकाके पुत्र मारीचके स्थानपर पहुंचा मारीचनें विविध प्रकारके खानें पीनेंके पदार्थोंसे रावण राक्षसनाथकी पूजाकी । वह पदार्थ मनुष्योंके भक्षण करनेंके अयोग्यथे ॥ ३६ ॥ जब मारीच इस प्रकार आसन, जल, और खानें पीनेंकी वस्तुओंसे रावणकी पूजा कर चुका

जानतेहीहो ॥ २ ॥ मांसका खानें वाला राक्षस त्रिशिरा व औरभी बहुतनिशाचर गण युद्धमें उत्साही व शूरवीर ॥ ३ ॥ मेरी आज्ञा पालन करते हुए वहां वसा करतेथे। वह सब निशाचर गण महावनमें धर्मचारीऋषियोंके अनुष्ठानमें सदाही बाधा दिया करतेथे ॥ ४ ॥ इन सब राक्षसोंकी संख्या १४००० चौदह हजारथी । वह सबही भयंकर कर्मकरनेंवाले, शूर युद्धमें उत्साही और खरके चित्तके अनुसार कार्य करनें वालेथे ॥ ५ ॥ इस समय जनस्थानके रहनेवाले महाबलवान खरइत्यादि राक्षस युद्धमें रामचंद्रके साथ ॥ ६ ॥ विविध भांतिके अस्त्र शस्त्र धारण करके व दुर्भेद्यकवच बांधकर युद्धमें भिडेथे तब रामचंद्रनें महाक्रोध करके ॥७॥ कुछभी कठोर वचन न कहकर धनुष पर बाण चढाय

त्रिशिराश्चमहाबाहूराक्षसःपिशिताशनः ॥ अन्येचबहवःशूरालब्धलक्षानिशाचराः ॥ ३ ॥ वसंतिमन्नियोगेनअधिवासंचराक्षसाः ॥ बाधमानामहारण्येमुनीन्येधर्मचारिणः ॥ ४ ॥ चतुर्दशसहस्राणिरक्षसांभीमकर्मणाम् ॥ शूराणांलब्धलक्षाणांखरचित्तानुवर्तिनाम् ॥ ५ ॥ तेत्विदानींजनस्थानेवसमानामहाबलाः ॥ संगताःपरमायत्तारामेणसहसंयुगे ॥ ६ ॥ नानाशस्त्रप्रहरणाःखरप्रमुखराक्षसाः ॥ तेनसंजातरोषेणरामेणरणमूर्धनि ॥ ७ ॥ अनुक्त्वापरुषंकिंचिच्छरैर्व्यापारितंधनुः ॥ चतुर्दशसहस्राणिरक्षसामुग्रतेजसाम् ॥ ८ ॥ निहतानिशरैर्दीप्तैर्मानुषेणपदातिना ॥ खरश्चनिहतःसंख्येदूषणश्चनिपातितः ॥ ९ ॥ हत्वात्रिशिरसंचापिनिर्भयादंडकाःकृताः ॥ पित्रानिरस्तःक्रुद्धेनसभार्यःक्षीणजीवितः ॥ १० ॥ सहंतातस्यसैन्यस्यरामःक्षत्रियपांसनः ॥ अशीलःकर्कशस्तीक्ष्णोमूर्खोलुब्धोऽजितेंद्रियः ॥ ११ ॥ त्यक्तधर्मात्वधर्मात्माभूतानामहितेरतः ॥ येनवैरंविनारण्येसत्वमास्थायकेवलम् ॥ १२ ॥

उनको छोड चौदह हजार उग्रतेजवान राक्षसोंको ॥ ८ ॥ मनुष्यका अवतार लिये रामचंद्रनें खर व दूषण सहित सबको संग्राममें तीक्ष्ण दीप्तिवान नाराचोंसें संहार किया ॥ ९ ॥ और त्रिशिराकोभी मार दंडकवनको अभय करदिया। उस रामचंद्रका चाल चलनभी ठीक नहीं मालूम होता क्योंकि उसके पितानें उसको निर्लज्ज जानकर स्त्री सहित घरसे निकाल दियाहै॥ १० ॥वही दुःशील, कर्कश,तीक्ष्ण,मूर्ख,लोभी अविजितेंद्रिय, क्षत्रियकुल कलंक रामचंद्र इस राक्षसोंकी सेनाका मार डालनेवालाहै ॥ ११ ॥ जो धर्मका त्याग और अधर्मका आश्रय करके सदाही

और उसके सब अंगभी देवताओं करके शस्त्रद्वारा घायल हुएहैं किसीसे चलायमान नहींहों ऐसे समुद्रोंकोभी खलबलानेंको जिसमें विशेष सामर्थ्य है, और शीघ्रही सब कार्य करनेंवाला ॥११॥ पर्वतोंके कंगूरोंको उखाडडालनेंवाला देवताओंका मर्दन करनेंवाला सबधर्मोंका जडसे उखाडनेंवाला पराई पतिव्रता स्त्रियोंका सत्य हरणकारी ॥ १२ ॥ दिव्यास्त्रोंका प्रयोजककारी और सर्व यज्ञ विघ्नकारी, भोगवती नगरीमें जाय नागराज वासुकिको जीत ॥ १३ ॥ तक्षक नामक सर्पको पराजयकरता हुआ उसकी प्रियस्त्रीको हरण करनेवाला कैलासपर्वतपर गमन करके नरवाहन कुबेरको जीतनेवाला ॥ १४ ॥ और उसका मनइच्छासे चलनेवाला पुष्पक विमान हरण करनेवाला, चैत्ररथ नामक

अहतांगैःसमस्तैस्तंदेवप्रहरणैस्तदा॥ अक्षोभ्याणांसमुद्राणांक्षोभणंक्षिप्रकारिणम् ॥ ११ ॥ क्षेप्तारंपर्वताग्राणांसुराणांचप्रमर्दनम् ॥ उच्छेत्तारंचधर्माणांपरदाराभिमर्शनम् ॥ १२ ॥ सर्वदिव्यास्त्रयोक्तारंयज्ञविघ्नकरंसदा ॥ पुरींभोगवतींगत्वापराजित्यचवासुकिम् ॥ १३ ॥ तक्षकस्यप्रियांभार्यांपराजित्यजहारयः ॥ कैलासंपर्वतंगत्वाविजित्यनरवाहनम् ॥ १४ ॥ विमानंपुष्पकंतस्यकामगंवैजहारयः ॥ वनंचैत्ररथंदिव्यंनलिनींनंदनंवनम् ॥ १५ ॥ विनाशयतियःक्रोधाद्देवोद्यानानिवीर्यवान् ॥ चंद्रसूर्यौमहाभागावुत्तिष्ठंतौपरंतपौ ॥ १६ ॥ निवारयतिबाहुभ्यांयःशैलशिखरोपमः ॥ दशवर्षसहस्राणितपस्तप्त्वामहावने ॥ १७॥ पुरास्वयंभुवेधीरःशिरांस्युपजहारयः ॥ देवदानवगंधर्वपिशाचपतगोरगैः॥१८॥अभयंयस्यसंग्रामेमृत्युतोमानुषादृते॥मंत्रैरभिष्टुतंपुण्यमध्वरेषुद्विजातिभिः ॥१९॥

दिव्यवन, नलिनी, नन्दन, कानन, ॥ १५ ॥ व औरभी सबदेवताओंके उद्यानोंका विनाश क्रोधसे जिसनें करदिया है; फिर उदय होते हुए महाभाग्य चंद्रमा व सूर्योंको ॥ १६ ॥ दोनोंबाहोंसे निवारण करनेंवाला पर्वतोंके समान ऊंचा व वीर्यवान व दश हजार वर्ष वनमें तपकर ॥ १७ ॥ ब्रह्माजीको अपनें सब शिर काट २कर जिसनें चढादियेथे, देव, दानव, गन्धर्व, पिशाच, पतंग, वा उरग ॥१८॥ किसीके द्वाराभी जिसको मृत्युका भय नहीं जिसने केवल मनुष्योंको कुछ न समझ उनसे अभय नही मांगा, और ब्राह्मण लोग यज्ञोंमें मंत्र पढ२

रामचंद्रको संग्राममें जीतलेंगे ॥ २१ ॥ रावणके ऐसे वचन सुनतेही महात्मा मारीचका मुख सूख गया और वह अतिशय भयभीत हो गया ॥ २२ ॥ और चिन्ताके वश होकर अपने सूखे होठोंको जीभसे चाटनें लगा और उसके नेत्र मानों निमेषहीन होगये। मारीच आरत भावसे मृतकतुल्य होकर रावणकी ओर देखता रहगया ॥ २३ ॥ वह पहलेहीसे महावनमें श्रीरामचंद्रजीके पराक्रमको जानताथा। इसी कारणसे भयभीत और शोकित चित्तसे हाथ जोडकर रावणसे अपनें व उसके हितके करनेंवाले वचन बोला ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥ महातेजवान् राक्षसराजके यह वचन सुन वाक्यविशारद मारीच

तस्यरामकथांश्रुत्वामारीचस्यमहात्मनः॥शुष्कंसमभवद्वक्त्रंपरित्रस्तोबभूवच ॥२२॥ ओष्ठौपरिलिहञ्छुष्कौनेत्रैर
निमिषैरिव ॥ मृतभूतइवार्तस्तुरावणंसमुदैक्षत ॥ २३ ॥ सरावणंत्रस्तविषण्णचेतामहावनेरामपराक्रमज्ञः ॥ कृतां
जलिस्तत्त्वमुवाचवाक्यंहितंचतस्मैहितमात्मनश्च ॥ २४ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०आरण्य०षट्त्रिंशःस
र्गः ॥ ३६ ॥ ॥ ७ ॥ तच्छ्रुत्वाराक्षसेंद्रस्यवाक्यंवाक्यविशारदः ॥ प्रत्युवाचमहातेजामारीचोराक्षसेश्वरम् ॥ १ ॥
सुलभाःपुरुषाराजन्सततंप्रियवादिनः ॥ अप्रियस्यचपथ्यस्यवक्ताभोक्ताचदुर्लभः ॥ २ ॥ ननूनंबुध्यसेरामंमहावी
र्यंगुणोन्नतम्॥अयुक्तचारश्चपलोमहेंद्रवरुणोपमम्॥३॥अपिस्वस्तिभवेत्तातसर्वेषामपिरक्षसाम्॥अपिरामोनसंक्रुद्धः
कुर्याल्लोकानराक्षसान्॥४॥अपितेजीवितांतायनोत्पन्नाजनकात्मजा॥अपिसीतानिमित्तंचनभवेद्व्यसनंमहत् ॥५॥

उससे बोला ॥ १ ॥ हे राजन्! मुंह देखी कहनेंवाले लोग बहुत मिलतेहैं किन्तु सुननें में कुप्यारे और वास्तवमें हितकारीहों ऐसे वचनोंके कहनें सुननेंवाले दोनोंही संसारमें कम मिलतेहैं ॥२॥ एकतौ तुमनें दूतोंको नहीं नियुक्त कर रक्खाहै कि जिससे सब स्थानोंका वृत्तान्त तुमको मिलता रहे दूसरे तुम्हारा स्वभाव चंचलहै। इसी कारणसे रामचंद्र जो साक्षात् महेन्द्र और कुवेरकी समान, महावीर्यवान् और श्रेष्ठ गुणों करके युक्तहैं इस बातको तुमनें नहीं जाना ॥ ३ ॥ हे तात! रामचंद्रसे वैर करनेंमें क्या राक्षसकुलका मंगल होगा? रामचंद्र क्रोधित होनें पर क्या सर्व लोक राक्षसोंसे शून्य नहीं कर सकतेहैं? ॥ ४ ॥ क्या जानकी तुम्हाराही नाश करनेंके लिये उत्पन्न हुईहै? कहीं सीताके ले आनेंका

होकर सदाही कामभोगमें मतवाले रहतेहो और तुम किसी विषयमें किसीकाभी निषेध करना या बाधा देना नहीं मानते । इसी कारण अवश्यही जाननेंके योग्य जो इससमय भयंकर विपद् आ पहुंचीहै, तुम उसको नहीं जानते ॥ २ ॥ परन्तु जो राजा स्त्री इत्यादिक ग्राम्य भोग वस्तुओंमें सदाही आसक्त रहता, स्वेच्छाचारी और लोभी होताहै । प्रजागण मशानकी अग्निकी समान उस राजाका आदर नहीं करते ॥ ३॥ जो राजा यथाकालमें अपनें सब कार्योंको नहींकरताहै । वह राजा और उसके कार्य न करनेंसे अपने राज्य सहित विनाशको प्राप्त होताहै ॥ ४ ॥ जो राजा स्त्रीआदिकोंके आधीन रहकर दूतोंको नियुक्त करके प्रजाका हाल नहीं जानताहै। तौ हाथो जिस प्रकार

सक्तंग्राम्येषुभोगेषुकामवृत्तंमहीपतिम् ॥ लुब्धंनबहुमन्यंतेश्मशानाग्निमिवप्रजाः ॥ ३ ॥ स्वयंकार्याणियःकालेनानुतिष्ठतिपार्थिवः ॥ सतुवैसहराज्येनतैश्चकार्यैर्विनश्यति ॥ ४॥ अयुक्तचारंदुर्दर्शमस्वाधीनंनराधिपम् ॥ वर्जयंतिनरादूरान्नदीपंकमिवद्विपाः ॥ ५ ॥ येनरक्षंतिविषयमस्वाधीनंनराधिपाः ॥ तेनवृद्ध्याप्रकाशंतेगिरयःसागरेयथा ॥ ६॥ आत्मवद्भिर्विगृह्यत्वंदेवगंधर्वदानवैः ॥ अयुक्तचारश्चपलःकथंराजाभविष्यसि ॥७ ॥ त्वंतुबालस्वभावश्चबुद्धिहीनश्च राक्षस ॥ ज्ञातव्यंतंनजानीषेकथंराजाभविष्यसि ॥८॥ येषांचाराश्चकोशश्चनयश्चजयतांवर ॥ अस्वाधीनानरेंद्राणां प्राकृतैस्तेजनैःसमाः ॥ ९ ॥

दूरसेही दल २ वाली नदीको त्याग करके चले जातेहैं, प्रजा लोगभी वैसेही उस राजाको त्याग देतेहैं ॥ ५ ॥ औरभी जो नृपतिलोग अपनें आधीनमें न आये हुए राज्योंको उपाय करकै अपनें वश नहीं करलेते । वह समुद्रमें पडेहुए पर्वतोंकी समान प्रकाश को नहीं प्राप्त होते ॥ ६ ॥ एकतो तुम स्वभावसेहो चंचलहो और दूसरे कुछ तुम आचारभी नहीं करते; भला फिर विशुद्धचित्त देव, दानव और गन्धर्वोंसे वैर करकै तुम किस प्रकार राज कर सकोगे ॥ ७ ॥ हेराक्षस! तुम बुद्धिरहित हो,बालकोंकेसा तुम्हारा स्वभावहै और जिस वातको जानना उचितहै; उसकोभी नहीं जानते भला फिर किस प्रकारसे अपने इस राज्यकी रक्षा कर सकोगे? ॥ ८ ॥ हे विजयी श्रेष्ठ ! जिन राजा लोगोंके आधीन

इन्द्र जिस प्रकार देवता ओंके स्वामीहैं वैसेही वहभी सब लोकोके राजाहैं ॥ १३ ॥ वह अपनें तेजसे जनककुमारी जानकीजीकी रक्षा करतेहैं तुम किस प्रकारसे उनकी जानकीको हरण करनेंकी इच्छा करतेहो ?क्योंकि उनके हरण करनेंकी इच्छा करना मानो सूर्यकी किरणको हाथसे पकड़नाहै ॥ १४ ॥ सब बाणही जिसकी शिखाहैं, धनुष और खड्ग जिसका ईंधनहैं, और जिसकी त्रिसीमामें गमन करना असंभवहै सो उस राम रूप प्रज्वलित अग्निमें सहसा प्रवेश करना तुमको उचितनहींहै ॥ १५ ॥ धनुषका चढानाहीं जिसका प्रकाशित मुखहै, बाणही जिसकी दीप्तिहैं इसीसे असह्य धनुर्बाण धारण किये; इसीसे तीक्ष्ण और शत्रुओंकी सेनाके संहार कर्ता ॥ १६ ॥ कृतान्त समान रामचंद्रजीके

कथंनुतस्यवैदेहींरक्षितांस्वेनतेजसा ॥ इच्छसे प्रसभंहर्तुंप्रभामिवविवस्वतः ॥ १४॥ शरार्चिषमनाधृष्यंचापखड्गेंधनं रणे ॥ रामाग्निंसहसादीप्तंनप्रवेष्टुंत्वमर्हसि ॥ १५॥ धनुर्व्यादितदीप्तास्यंशरार्चिषममर्षणः ॥ चापबाणधरंतीक्ष्णंशत्रु सेनापहारिणम्॥१६॥राज्यंसुखंचसंत्यज्यजीवितंचेष्टमात्मनः ॥ नात्यासादयितुंतातरामांतकमिहार्हसि ॥ १७॥ अ प्रमेयंहितत्तेजोयस्यसाजनकात्मजा॥नत्वंसमर्थस्तांहर्तुंरामचापाश्रयांवने ॥ १८॥ तस्यवैनरसिंहस्यसिंहोरस्कस्य भामिनी॥प्राणेभ्योपिप्रियतराभार्यानित्यमनुव्रता॥१९॥नसाधर्षयितुंशक्यामैथिल्योजस्विनःप्रिया॥दीप्तस्येवहुता शस्यशिखासीतासुमध्यमा ॥२०॥किमुद्यमंव्यर्थमिमंकृत्वातेराक्षसाधिप॥दृष्टश्चेत्त्वंरणेतेनतदंतमुपजीवितम्॥२१॥

सन्मुख राज्य सुख छोडकर तुम जाओ। यदि गयेभी तो जातेही तुम्हारा नाश होजायगा ॥१७ ॥ उनके तेजकी तुलना नहींहै; जानकी उनकीही स्त्री है, और सदाही उनके धनुर्बलका आश्रय करके वनमें वास करतीहै। तुम किसी भांतिभी जानकीको हरण नहीं करसकोगे! ॥ १८ ॥ सिंहकी समान चौडी छातीवाले नरसिंह रामचंद्रजी नित्य अनुगत सीताजीको प्राणसे भी प्यारी समझतेहैं ॥ १९ ॥ प्रज्वलित अग्निकी शिखाके समान तेजस्वी रामचंद्रजीकी प्रिय स्त्री श्यामा अवस्थावाली जानकीको हर लानेंकी किसीकोभी सामर्थ्य नहींहै ॥ २० ॥ हे राक्षस राज! तुम्हारा इस निरर्थक उद्यमसे प्रयोजन क्याहै? जो वनमें रामचंद्र कहीं तुम्हें मिलभी गये तो वहीं तुम्हारे जीवनकी इतिश्री होजायगी॥२१॥

मान जाननें लगतेहैं ॥ १७॥ सूखे काठ ढेले और धूलसेभी बहुत कार्य होसकतेहैं, परन्तु राज्यभ्रष्ट हुए राजासे कोई कार्यभी नहीं होसकता१८॥ पहराहुआ वस्त्र और मलगिजी माला जिसप्रकार किसीकार्यकी नहींहोती। राज्यभ्रष्ट राजाभी वैसेही शांतिसम्पन्न होकरभी निरर्थक कहाताहै ॥ १९ ॥ जो राजा प्रमादहीन, सर्वज्ञ भली भांतिसे जितेन्द्रिय,कृतज्ञ, और धर्ममें रतहोतेहैं वही राजपदपर चिरस्थाई होतेहैं ॥ २० ॥ जो राजा नेत्रोंसे निद्रित होनेपरभी नीतिरूप नेत्र विस्तार करके जागतेरहतेहैं; और जिनका क्रोध, व प्रसन्नता कार्यके समय प्रगटहो, वह राजाही लोकसमाजमें पूजे जातेहैं ॥ २१ ॥ परन्तु हे रावण! तुम कुबुद्धि और इन समस्त गुणोंसे रहितहो, कारण कि राक्षसोंका वह सर्व नाशहुआ

शुष्ककाष्ठैर्भवेत्कार्यंलोष्ठैरपिचपांसुभिः॥नतुस्थानात्परिभ्रष्टैःकार्यंस्याद्वसुधाधिपैः॥१८॥ उपभुक्तंयथावासःस्रजोवामृदितायथा ॥ एवंराज्यात्परिभ्रष्टःसमर्थोपिनिरर्थकः ॥ १९ ॥ अप्रमत्तश्चयोराजासर्वज्ञोविजितेंद्रियः ॥ कृतज्ञोधर्मशीलश्चसराजातिष्ठतेचिरम् ॥ २० ॥ नयनाभ्यांप्रसुप्तोवाजागर्तिनयचक्षुषा ॥ व्यक्तक्रोधप्रसादश्चसराजापूज्यतेजनैः ॥ २१ ॥ त्वंतुरावणदुर्बुद्धिर्गुणैरेतैर्विवर्जितः ॥ यस्यतेऽविदितश्चारैरक्षसांसुमहान्वधः ॥ २२ ॥ परावमंताविषयेषुसंगवान्नदेशकालप्रविभागतत्त्ववित् ॥ अयुक्तबुद्धिर्गुणदोषनिश्चयेविपन्नराज्योनचिराद्विपत्स्यते ॥ २३ ॥ इतिस्वदोषान्परिकीर्तितांस्तयासमीक्ष्यबुद्ध्याक्षणदाचरेश्वरः ॥ धनेनदर्पेणबलेनचान्वितोविचिंतयामासचिरंसरावणः ॥ २४ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेत्रयस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३३ ॥ ॥ ७ ॥

और तुमनें दूतोंके द्वारा उसका कुछ वृत्तान्त न जाना ॥ २२ ॥ तुम केवल पराया अपमान करतेहो, सदाही भोगविलासमें मतवाले बने रहतेहो देशकालका निश्चय करना नहीं जानते,और गुण दोषका विचार करनेका सामर्थ्य तुम्हारी बुद्धि नहीं रखती,इस कारण तुमको शीघ्रही विपदग्रस्त और राज्यभ्रष्ट होना पडेगा ॥ २३ ॥ धन, बल, और गर्वयुक्त राक्षसनाथ रावण शूर्पणखाको इस प्रकारसे अपनें समस्तदोष कहतेहुए देखकर बहुतही देरतक मनही मन विचारकरतारहा ॥ २४ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० आ० त्रयस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३३ ॥

राजा दशरथसे यह बोले कि अमावस्या और पूर्णमासीको जब हम समाधि अवस्थामें रहेंगे उस समय इन रामचंद्रको हमारी रक्षा करनी होगी ॥ ४ ॥ हे राजन्! मारीच राक्षससे हमको घोर भय उत्पन्न हुआहै । जब ऋषिनें इस प्रकार कहा तब धर्मात्मा राजा दशरथ ॥ ५ ॥ उन महर्षि महाभाग विश्वामित्रको प्रत्युत्तर देते हुए कि रामकी अवस्था अभी सोलह वर्षसेभी कमहै और अस्त्रविद्याभी अभी इन्हें नहीं आती ॥ ६ ॥ इस कारण इनको नहीं देसकते । परन्तु तुम्हारा कार्यकरनेंके लिये हम अपनी बडी भारी चतुरंगिनी सेना सहित चलकर वहां उस निशाचरको ॥ ७ ॥ यमलोकमें पठावेंगे जोकि आपका शत्रुहै जिसका संहार करना आपको अभीष्टहै, विश्वामित्रजी राजा

मारीचान्मेभयंघोरंसमुत्पन्नंनरेश्वर ॥ इत्येवमुक्तोधर्मात्माराजादशरथस्तदा ॥ ५ ॥ प्रत्युवाचमहाभागंविश्वामित्रंमहामुनिम् ॥ ऊनद्वादशवर्षोयमकृतास्त्रश्चराघवः ॥ ६ ॥ कामंतुममतत्सैन्यंमयासहागमिष्यति ॥ बलेनचतुरंगेणस्वयमेत्यनिशाचरम् ॥ ७ ॥ वधिष्यामिमुनिश्रेष्ठशत्रुंतवयथेप्सितम् ॥ एवमुक्तःसतुमुनीराजानमिदमब्रवीत् ॥ ८ ॥ रामान्नान्यद्बलंलोकेपर्याप्तंतस्यरक्षसः ॥ देवतानामपिभवान्समरेष्वभिपालकः ॥ ९ ॥ आसीत्तवकृतंकर्मत्रिलोकविदितंनृप ॥ काममस्तिमहत्सैन्यंतिष्ठत्विहपरंतप ॥ १० ॥ बालोप्येषहातेजाःसमर्थस्तस्यनिग्रहे ॥ गमिष्येराममादायस्वस्तितेऽस्तुपरंतप ॥ ११ ॥ इत्येवमुक्त्वासमुनिस्तमादायनृपात्मजम् ॥ जगामपरमप्रीतोविश्वामित्रःस्वमाश्रमम् ॥ १२ ॥

दशरथजीके यह वचन सुन उनसे बोले ॥ ८ ॥ यद्यपि यह सत्यहै कि आप संग्राममें देवताओंकेभी रक्षक हो और तुम्हारा किया कर्मभी तीनों लोकोंमें प्रगटहै परन्तु रामचंद्रके सिवाय और किसीका बलभी इस राक्षसका नाश करनेंमें समर्थ नहीं होगा इस कारण हेपरंतप! तुम्हारी जो बडी भारी चतुरंगिनी सेनाहै वह यहीं रहै ॥ ९ ॥ १० ॥ यह महातेजवान रामचंद्र बालक होनेंपरभी राक्षसका नाश करनेंमें समर्थ होंगे इस्से हम इनको लेजांयगे। हे राजन्! तुम्हारा कल्याणहो ॥ ११ ॥ महर्षि विश्वामित्रजी यह कहकर श्रीरामचंद्रजीको

ऋषिगणोंको अभयदे समस्त दंडकवनको मंगलमयकर दिया ॥ ११ ॥ उन आत्मज्ञानी महात्मा श्रीरामचंद्रजीने स्त्रीके वधकी शंका करके, केवल नाक कानहीं काट कर हमहींको अकेला छोडाहै ॥१२॥ लक्ष्मण नाम रामचंद्रका छोटा भाई महातेजस्वी गुण और विक्रममें अपनें बडे भ्राताकी तुल्यहै, वह उनकाही अनुरागी भक्तहै। वह अतिशयबुद्धिमान् बलवान्, और वीर्यवान्है ॥ १३ ॥ विक्रममानहैं, क्रोधावि ष्टहै, सबहीके जीतनेंवाले, और आप किसीसे जीते जानेंके योग्य नहींहै और श्रीरामचंद्रजीके दहिनेंहाथ, वरन शरीरके बाहर रहनें वाले प्राणहैं ॥ १४ ॥ और रामचंद्रजीकी जो स्त्रीहै उसके नेत्र बडे २ हैं और वदन पूर्णमासीके चंद्रमाकी समानहै, रामचंद्रको बहुत प्यार करतीहैं, और वहभी सदा पतिकी

ऋषीणामभयंदत्तंकृतक्षेमाश्चदंडकाः ॥ ११ ॥ एकाकथंचिन्मुक्ताहंपरिभूयमहात्मना ॥ स्त्रीवधंशंकमानेनरामेण विदितात्मना ॥ १२ ॥ भ्राताचास्यमहातेजागुणतस्तुल्यविक्रमः ॥ अनुरक्तश्चभक्तश्चलक्ष्मणोनामवीर्यवान् ॥ १३ ॥ अमर्षीदुर्जयोजेताविक्रांतोबुद्धिमान्बली ॥ रामस्यदक्षिणोबाहुर्नित्यंप्राणोबहिश्चरः ॥ १४ ॥ रामस्यतुविशालाक्षी पूर्णेंदुसदृशानना ॥ धर्मपत्नीप्रियानित्यंभर्तुःप्रियहितेरता ॥ १५ ॥ सासुकेशीसुनासोरूःसुरूपाचयशस्विनी ॥ देवतेववनस्यास्यराजतेश्रीरिवापरा ॥ १६ ॥ तप्तकांचनवर्णाभारक्ततुंगनखीशुभा ॥ सीतानामवरारोहावैदेहीतनुमध्यमा ॥ १७ ॥ नैवदेवीनगंधर्वीनयक्षीनचाकिन्नरी ॥ तथारूपामयानारीदृष्टपूर्वामहीतले ॥ १८ ॥ यस्यसीताभवेद्भार्यायंचतुष्टापरिष्वजेत् ॥ अभिजीवेत्ससर्वेषुलोकेष्वपिपुरंदरात् ॥ १९ ॥

प्यारी और हितकरनेंवाला कार्य करती रहतीहैं ॥१५॥ उस यशस्विनी रामचंद्रजीकी स्त्रीके केश, नासिका, उरू और रूप अति उत्तमहैं। वह मानों उस बनकी अधिष्ठात्री देवी और दूसरी लक्ष्मीकी समान विराजमान होरहीहैं ॥ १६ ॥ उनके वर्णकी ज्योति तपाये हुए सुवर्णकी समानहै, कमर पतली और नखोंकी पंक्तिका शिर लालहै। वह अतिशय सुन्दरता युक्तहैं और सब स्त्रियोंकी शिरोमणिहैं, उन्होंनें विदेह वंशमें जन्म ग्रहण कियाहै, और वह सीतानामसे संसारमें विख्यातहैं ॥ १७ ॥ न देवी न गन्धर्वी न यक्षिणी, न किन्नरी किसीकीभी सुन्दरताई उनकी शोभाके संगमें नही चलसकती यहांतक कि कभी हमनें इस पृथ्वीपर इस प्रकारकी रूपवानरमणी नहीं देखीथी ॥ १८ ॥ वह सीता जिसकी स्त्रीहों, और वह जिसको

गंभीर समुद्रके जलमें गिरे और बहुत देरके पीछे चैतन्यता प्राप्त कर लंकामें आये ॥ २१ ॥ इस प्रकारसे हमनें तो रक्षा पाई। परन्तु कठिन कर्म करनेंवाले रामचंद्रनें अशिक्षितास्त्र और बालक होनेपरभी हमारे सहाय सब राक्षसोंको मार डाला ॥ २२ ॥ इसी कारणसे निवारण करताहूं कि यदि तुम रामचंद्रजीके साथ युद्ध करोगे तो भयंकर विपदमें पडकर नाशको प्राप्त होजाओगे ॥ २३ ॥ और अपनें आप यत्न करके समाज उत्सवोंके देखनेवाले और क्रीडा रतिकी विधि जाननेवाले राक्षसोंके कारण वृथा संताप बटोरोगे ॥ २४ ॥ बस सीताहीके लिये, अटा, और अटारि, वा धवरहरोंसे पूर्ण नानारत्नभूषिता लंका नगरीको तुम नाशवान देखोगे ॥ २५ ॥ जिस प्रकार किसी तालावमें सर्प

पातितोऽहंतदातेनगंभीरेसागरांभसि ॥ प्राप्यसंज्ञांचिरात्तातलंकांप्रतिगतःपुरीम् ॥२१॥ एवमस्मितदामुक्तःसहाया स्तेनिपातिताः ॥ अकृतास्त्रेणरामेणबालेनाक्लिष्टकर्मणा ॥ २२ ॥ तन्मयावार्यमाणस्तुयदिरामेणविग्रहम् ॥ करिष्य स्यापदंघोरांक्षिप्रंप्राप्यनशिष्यसि॥२३॥ क्रीडारतिविधिज्ञानांसमाजोत्सवदर्शिनाम् ॥ रक्षसांचैवसंतापमनर्थंचाहरि ष्यसि ॥२४॥ हर्म्यप्रासादसंबाधांनानारत्नविभूषिताम् ॥ द्रक्ष्यसित्वंपुरींलंकांविनष्टांमैथिलीकृते ॥२५॥ अकुर्वतोपि पापानिशुचयःपापसंश्रयात् ॥ परपापैर्विनश्यंतिमत्स्यानागह्रदेयथा॥२६॥दिव्यचंदनदिग्धांगान्दिव्याभरणभूषि तान् ॥ द्रक्ष्यस्यभिहतान्भूमौतवदोषात्तुराक्षसान् ॥२७॥ हतदारान्सदारांश्चदशविद्रवतोदिशः॥हतशेषानशरणान्द्र क्ष्यसित्वंनिशाचरान्॥२८॥शरजालपरिक्षिप्तामग्निज्वालासमावृताम्॥प्रदग्धभवनांलंकांद्रक्ष्यसित्वमसंशयम्॥२९॥

होतेहैं तो वहांकी बिचारी मछलियांभी गरुड करके मारडाली जातीहैं;इसी प्रकार जो लोक पाप नहीं करते; ऐसे शुद्धात्मा पुरुषभी, पापा त्माके आश्रयमें रहनेंसे उस पापात्माके पापसे विनाशको प्राप्त होतेहैं॥ २६ ॥ इस कारण तुम देखोगे कि तुम्हारे निजके दोषसे दिव्य चंदन शरीरमें लगाये हुए; दिव्य वस्त्राभूषण पहरे हुए निशाचर गण समूल भूमियोंमें गिरेंगे ॥ २७ ॥ और आश्रयरहित राक्षस गण कोई स्त्री रहित हो कोई स्त्रीके सहित दशों दिशाओंको भागेंगे ॥ २८॥ तुम शर जालसे छाई हुई अग्निकी शिखासे पीडित हुई, ऐसी लंकापुरीके सबही गृह

शूर्पणखाके यह रोम हर्षण वचन सुन कर्तव्य स्थिरकर मंत्रियोंकी सम्मति ले रावण जनस्थानमें जानेंको तैयार हुआ ॥ १ ॥ गमन करनेंके समय उस कार्यको भली भांतिसे छानकर, और उसके सब विषयोंको भली प्रकार सोच विचार दोप गुणभी समझ लेता हुआ, बल, अबल सब जानलिया, उसनें जानकीका हरलाना महात्मा रामचंद्रसे वैर करनाही ठीकजांचा ॥ २ ॥ सब कर्त्तव्योंका मनमें निश्चय कर स्थिर बुद्धिहो प्रथम रमणीक यानशालामें गया ॥ ३ ॥ और यानशालामेंपहुंच कर राक्षसराज रावण गुप्त भावसे सारथिसे बोला कि शीघ्रही रथ तैयार करो ॥ ४ ॥ रावणके ऐसा कहतेही एक क्षणमें जल्दवाज सारथिनें जो रथ रावणकी इच्छानुसार था उस रथको सजाया ॥ ५ ॥

ततःशूर्पणखावाक्यंतच्छ्रुत्वारोमहर्षणम्॥ सचिवानभ्यनुज्ञायकार्यंबुद्ध्वाजगामह ॥ १ ॥ तत्कार्यमनुगम्यांतर्यथावदुपलभ्यच ॥ दोषाणांचगुणानांचसंप्रधार्यबलाबलम् ॥ २ ॥ इतिकर्तव्यमित्येवकृत्वानिश्चयमात्मनः ॥ स्थिरबुद्धिस्ततोरम्यांयानशालांजगामह ॥ ३ ॥ यानशालांततोगत्वाप्रच्छन्नंराक्षसाधिपः ॥ सूतंसंचोदयामासरथःसंयुज्यतामिति ॥ ४ ॥ एवमुक्तःक्षणेनैवसारथिर्लघुविक्रमः ॥ रथंसंयोजयामासतस्याभिमतमुत्तमम् ॥ ५ ॥ कामगंरथमास्थायकांचनंरत्नभूषितम् ॥ पिशाचवदनैर्युक्तंखरैःकनकभूषणैः ॥ ६ ॥ मेघप्रतिमनादेनसनेतधनदानुजः ॥ राक्षसाधिपतिःश्रीमान्ययौनदनदीपतिम् ॥ ७ ॥ सश्वेतवालव्यजनःश्वेतच्छत्रोदशाननः ॥ स्निग्धवैदूर्यसंकाशस्तप्तकांचनभूषणः ॥ ८ ॥ दशग्रीवोविंशतिभुजोदर्शनीयपरिच्छदः ॥ त्रिदशारिर्मुनींद्रघ्नोदशशीर्षइवाद्रिराट् ॥ ९

रावण उस इच्छानुसार कंचनसे बने हुए रत्नभूषित पिशाचवदनवाले गधे जिसमें जुते हुए, ऐसे रथ पर सवार हुआ ॥ ६ ॥ जब वह रथ चला तब उसका शब्द मेघोंके गर्जनेंकी समान होताथा। कुबेरका छोटाभाई राक्षसपति श्रीमान् दशानन उस रथपर चढ, नदनदीपति समुद्रकी ओर चला ॥ ७ ॥ रावणके ऊपर जो चमर और छत्र लगेथे वहदोनों श्रेष्ठथे, रावणके देहकी कांति वैदूर्यमणिके समान नीलीथी, वह सब तपाये हुए सुवर्णके भूषण पहरे हुएथा ॥ ८ ॥ उसके दशमुख, दशमस्तक, दश गर्दन, और बीस भुजा, देवगणोंके शत्रु, और मुनि

अग्निहोत्र होतेथे, वहींपर तपस्वियोंको संहार भक्षण करते हुए हम घूमतेथे ॥ ४ ॥ उस दंडक वनमें धर्मात्मा ऋषिगणोंको संहार २ उनका रुधिर पान करके मांस खा जातेथे ॥५ ॥ और महा कुटिल स्वभाववाले हो जो कोई मिलता उसे भय उपजाते, इस भांति रुधिर पीनेंसे मतवाले हो हम दंडकवनमें घूमतेथे ॥ ६ ॥ जब तपस्वी धर्मका अवलंबनकिये हुए रामचंद्रको हमनें पीडित किया जबकि वह वनमें फिरतेथे ॥ ७ ॥ व महाभाग्यवाली जानकीजीकोभी डरवाया, तब महारथी, तपस्वीरूप सब प्राणियोंका हित करनेंमे तत्पर लक्ष्मणजीकोभी पीडित किया ॥ ८ ॥ फिर महाबलवान् वनमें घूमनेंवाले, रामचंद्रजीको तपस्वी मान पहले वैरका स्मरण कर ॥ ९ ॥ मार डालनेकी इच्छासे

निहत्यदंडकारण्येतापसान्धर्मचारिणः ॥ रुधिराणिपिबंस्तेषांतन्मांसानिचभक्षयन् ॥ ५ ॥ ऋषिमांसाशनः
क्रूरस्त्रासयन्वनगोचरान् ॥ तदारुधिरमत्तोऽहंव्यचरंदंडकावनम् ॥ ६ ॥ तदाहंदंडकारण्येविचरन्धर्मदूषकः ॥
आसादयंतदारामंतापसंधर्ममाश्रितम् ॥ ७ ॥ वैदेहींचमहाभागांलक्ष्मणंचमहारथम् ॥ तापसंनियताहारंसर्वभूत
हितेरतम् ॥ ८ ॥ सोऽहंवनगतंरामंपरिभूयमहाबलम् ॥ तापसोऽयमितिज्ञात्वापूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ९ ॥ अभ्यधावं
सुसंक्रुद्धस्तीक्ष्णशृंगोमृगाकृतिः ॥ जिघांसुरकृतप्रज्ञस्तंप्रहारमनुस्मरन् ॥ १० ॥ तेनत्यक्तास्त्रयोबाणाःशिताःशत्रु
निबर्हणाः ॥ विकृष्यसुमहच्चापंसुपर्णानिलतुल्यगाः॥ ११ ॥ तेबाणावज्रसंकाशाःसुघोरारक्तभोजनाः ॥ आजग्मुःसहि
ताःसर्वेत्रयःसन्नतपर्वणः ॥ १२ ॥ पराक्रमज्ञोरामस्यशठोदृष्टभयःपुरा॥समुत्क्रांतस्ततोमुक्तस्तावुभौराक्षसौहतौ॥ १३ ॥

क्रोधित हो, यद्यपि उनके पराक्रमको जानतेथे तथापि अपने बडे २ सींगआगेको झुकाय उनपर धावित हुए ॥ १० ॥ तब उन्होंनें कानके समीप तक धनुषको खेंचकर तीन नाराच हम तीन मृगोंके ऊपर चलाये, वहबाण गरुड व पवनकी गति समान चले ॥ ११ ॥ वह वज्रसम आकार वाले, अति घोर रक्त पीनेंवाले बाण हम तीनोंके ऊपर आगमन करनेलगे ॥ १२ ॥ हम बडे मूर्ख हैं, इस कारण पहलेही रामचंद्रसे भय देखकर उनका पराक्रम भली भांति जानतेथे तौभी लडे परन्तु हम तो भागकर किसी रीतिसे बचगये! परन्तु वह हमारे सहाई

हंस, क्रौञ्च, मण्डूक, और सारस समूह चारों ओर बोलरहेथे । वैदूर्यमणिके समान नीलवर्णके पत्थर वहां पर विराजतेथे और समुद्र तरंगोंकी हिल्लोल वश वह देश सदाही शीतल और स्निग्ध भावकरके युक्तथा ॥ १८ ॥ इन सब वस्तु ओंके सिवाय, रावण दिव्य माला युक्त, गीत और वाजोंकी ध्वनि जिसमें होरही ऐसे श्वेत वर्ण विशालविमानपर चढा रावण चारों ओर देखनें लगा ॥ १९ ॥ जिन लोगोंनें अपनें तपोबलसे अनेक लोकोंको जीत लियाहै और इच्छाचारीविमानों पर जो बैठेहैं; कुवेरके छोटे भाई रावणनें जानेंके समय मार्गमें उन गन्धर्व गणोंको अप्सराओंके साथ देखा ॥ २० ॥ वहां पर वनमे गोंद रसमूल सहित हजारों सुन्दर, नासिकाको अपनी सुगन्धिसे तृप्त

हंसक्रौंचप्लवाकीर्णसारसैःसंप्रसादितम् ॥ वैदूर्यप्रस्तरंस्निग्धंसांद्रंसागरतेजसा ॥ १८ ॥ पांडुराणिविशाला
निदिव्यमाल्ययुतानिच ॥ तूर्यगीताभिजुष्टानिविमानानिसमंततः ॥ १९ ॥ तपसाजितलोकानांकामगान्यभिसं
पतन् ॥ गंधर्वाप्सरसश्चैवददर्शधनदानुजः ॥ २० ॥ निर्यासरसमूलानांचंदनानांसहस्रशः ॥ वनानिपश्यन्सौम्या
निघ्राणतृप्तिकराणिच ॥ २१ ॥ अगुरूणांचमुख्यानांवनान्युपवनानिच ॥ तक्कोलानांचजात्यानांफलानांचसुगंधि
नाम् ॥ २२ ॥ पुष्पाणिचतमालस्यगुल्मानिमरिचस्यच ॥ मुक्तानांचसमूहानिशुष्यमाणानितीरतः ॥ २३ ॥ शै
लानिप्रवरांश्चैवप्रवालनिचयांस्तथा ॥ कांचनानिचशृंगाणिराजतानितथैवच ॥ २४ ॥ प्रस्रवाणिमनोज्ञानिप्रसन्ना
न्यद्भुतानिच ॥ धनधान्योपपन्नानिस्त्रीरत्नैरावृतानिच ॥ २५ ॥ हस्त्यश्वरथगाढानिनगराणिविलोकयन् ॥ तंस
मंसर्वतःस्निग्धंमृदुसंस्पर्शमारुतम् ॥ २६ ॥

करनेंवाले चंदनके वृक्ष देखे ॥ २१ ॥ अगरके मुख्य वन उपवन अंकोल वृक्षोंके सुगन्धित पुष्पित और जायफलके फलित वन उपवनादि देखे ॥ २२ ॥ तमालनाम यक वृक्षके फूल, और काली मिरच गुल्मसमूह समुद्रके किनारे फूले व मोतियोंके समूहगिरे हुए देखे ॥ २३ ॥ पर्वत व मूगोंकी चटानोंके समूह व चांदी सुवर्णके शृंगभी रावणनें देखे ॥ २४ ॥ सुविमल जल पूर्ण अद्भुत मनोहर सोते धन धान्यके सहित स्त्री रत्न युक्त ॥ २५ ॥ हाथी घोडे सहित अनेक प्रकारके नगर देखताहुआ, रावणनें शीतल मंद सुगन्ध पवन सहित ॥ २६ ॥

अपराध करनेंसे सपरिवार विनाशको प्राप्त हुए हैं ॥ २१ ॥इसी प्रकार तुम्हारे अपराधसे हमको नाश होना पडेगा. हेनिशाचर जो तुम्हारी इच्छाहो सो करो, परंतु हम तुम्हारे साथ नहीं चलेंगे, हमें अपनें प्राण प्यारेहैं ॥ २२ ॥ वह महातेजवान् महाबुद्धिमान्, महा बलवान् रामचंद्रजी वास्तवमेंही निशाचरों के कालहैं ॥ २३॥ यद्यपि पहले जनस्थानका रहनेंवाला अपावन खर, शूर्पणखाके लिये रामचं द्रसे मार डाला गयाहै, परन्तु इस विषयमें रामचंद्रजीका क्या अपराध हैसो तुम्हीं सत्य २ कहो ॥ २४ ॥ तुम हमारे बन्धुहो इस कारणसे हमनें तुम्हारे मंगलकेही लिये यह सत्य वचन कहे, यदि तुम हमारे वचनोंको न मानकर रामचंद्रसे वैर करोगे

सोऽहंपरापराधेनविनशेयंनिशाचर ॥ कुरुयत्तेक्षमंतत्त्वमहंत्वांनानुयामिवै ॥२२ ॥ रामश्चहिमहातेजामहासत्त्वो महाबलः ॥ अपिराक्षसलोकस्यभवेदंतकरोऽपिहि ॥ २३ ॥ यदिशूर्पणखाहेतोर्जनस्थानगतःखरः ॥ अतिवृत्तोहतः पूर्वंरामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ अत्रब्रूहियथातत्त्वंकोरामस्यव्यतिक्रमः ॥ २४ ॥ इदंवचोबंधुहितार्थिनामयायथोच्य मानंयदिनाभिपत्स्यसे ॥ सबांधवस्त्यक्ष्यसिजीवितंरणेहतोऽद्यरामेणशरैरजिह्मगैः ॥ २५ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामा यणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेएकोनचत्वारिंशःसर्गः ॥३९॥ ॥ छ॥ ॥ मारीचस्यतुतद्वाक्यंक्षमंयुक्तं चरावणः ॥ उक्तोनप्रतिजग्राहमर्तुकामइवौषधम् ॥ १ ॥ तंपथ्यहितवक्तारंमारीचंराक्षसाधिपः ॥ अब्रवीत्परुषंवाक्य मयुक्तंकालचोदितः ॥ २ ॥ दुष्कुलैतदयुक्तार्थंमारीचमयिकथ्यते ॥ वाक्यंनिष्फलमत्यर्थंबीजमुप्तमिवोखरे ॥ ३॥ त्वद्वाक्यैर्नतुमांशक्यंभेत्तुंरामस्यसंयुगे ॥ मूर्खस्यपापशीलस्यमानुषस्यविशेषतः ॥ ४ ॥

तो निश्चयही बन्धु बान्धवों सहित रामचंद्रजीके बाणोंसे युद्धमें विनाशको प्राप्तहो तुमको प्राण परित्याग करना पडेगा ॥२५॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे एकोनचत्वारिंशःसर्गः ॥ ३९ ॥ जिस प्रकार मृत्यु जिसकी निकटहै ऐसा रोगी औषधि ग्रहण नहीं करता ऐसेही सहनेंके योग्य व उचित मारीचके वचन रावणनें ग्रहणनहीं किये ॥ १ ॥ उस काल प्रेरित निशाचरपति रावणनें मंगलजनक और युक्तियुक्त संग वचन कहनें वाले मारीचसे अयोग्य व कठोर वचनकहे ॥२॥३॥ हे मारीच ! तुमनें जो यह प्रतिकूल वचन हमसे कहे, यह

अनुज रावण गरुड चिन्हित महर्षिगण सेवित सुभद्र नामक इस वट वृक्षको देखता हुआ॥३६॥ वहांसे नदीपति समुद्रके दूसरीपार जाकर दूसरे वनमें परम पवित्र रमणीक एक निर्जन आश्रम रावणनें देखा ॥ ३७ ॥ रावणनें देखा कि मारीच नामक निशाचर मृगचर्म और जटाजूट धारण करके नियताहार कर वहां वास करताहै ॥ ३८ ॥ राक्षस मारीच रावणको देखतेही मिला और यथा विधानसे विविध भांतिकी अमानुषी भोग्य वस्तुओंसे रावणकी पूजा करता हुआ ॥ ३९ ॥ इस प्रकार भोजनकी सामग्री व जलसे स्वयं रावणकी पूजाकर मारीच अर्थ युक्त वचन

तंतुगत्वापरंपारंसमुद्रस्यनदीपतेः॥ददर्शाश्रममेकांतेपुण्येरम्येवनांतरे ॥ ३७॥ तत्रकृष्णाजिनधरंजटामंडलधारिणम् ॥ ददर्शनियताहारंमारीचंनामराक्षसम् ॥ ३८ ॥ सरावणःसमागम्यविधिवत्तेनरक्षसा ॥ मारीचेनार्चितो राजासर्वकामैरमानुषैः॥३९॥तंस्वयंपूजयित्वाचभोजनेनोदकेनच॥अथोपहितयावाचामारीचोवाक्यमब्रवीत्४०॥ कच्चित्तेकुशलंराजन्लंकायांराक्षसेश्वर ॥ केनार्थेनपुनस्त्वंवैतूर्णमेवइहागतः ॥ ४१ ॥ एवमुक्तोमहातेजामारीचेनस रावणः॥ततःपश्चादिदंवाक्यमब्रवीद्वाक्यकोविदः ॥४२॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्य कांडेपंचत्रिंशःसर्गः ॥ ३५ ॥ मारीचश्रूयतांतातवचनंममभाषतः॥आर्तोस्मिममचार्तस्यभवान्हिपरमागतिः॥१॥ जानीषेत्वंजनस्थानंभ्रातायत्रखरोमम ॥ दूषणश्चमहाबाहुःस्वसाशूर्पणखाचमे ॥ २ ॥

बोला ॥ ४० ॥ राजन्! राक्षसेश्वर! आपकी और लंकाकी कुशलतो है?फिर आप किस कारणसे यहां शीघ्रही पधारे हैं? ॥ ४१ ॥ जब मारीचनें ऐसा कहा तब वचन बोलनेंमें चतुर महातेजस्वी रावणनें इसप्रकार कहना आरंभ किया ॥ ४२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे पंचत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥ तात मारीच! कहताहूं श्रवण करो। हम बडे दुःखीहैं, तुमही विपदके समय हमारी परम गतिहो ॥ १ ॥ जिस स्थानमें हमारा भाई खर और महाबाहु दूषण व बहन शूर्पणखा रहा करतीथी उस जनस्थानको तुम

शीतलताई, यमराजकी समान दंडता, और वरुणके समान प्रसन्नताहोतीहै ॥ १३ ॥ इस कारणसे सबही अवसरमें उनकी पूजा व सन्मान करना योग्यताहै । तुम धर्मका विषय कुछभी न जानकर केवल मायाकेही आधीन हो रहेहो ॥ १४ ॥ इसीसे तुम्हारे ग्रहमें आनें पर भी तुमनें हमारी पूजा न की, वरन दौरात्मके वश होकर ऐसे कठोर वचन कहताहै हे राक्षस ! हमनें तुमसे इस कार्यके गुण दोष नहीं पूछे न यह कि इस कार्यका करना कर्तव्यहै, अथवा नहीं ॥ १५ ॥ हे अमितविक्रम! हमनें तो तुमसे यही कहाथा कि तुम इस कार्यमें हमारी सहायता करो ॥ १६ ॥ यह मोरे वचनानुसार जो कार्य तुमको करनाहोगा हम उसको कहतेहैं तुम श्रवणकरो कि तुम रजतबिन्दु विचित्र सुवर्ण मृग होकर

तस्मात्सर्वास्ववस्थासुमान्याःपूज्याश्चनित्यदा ॥ त्वंतुधर्ममविज्ञायकेवलंमोहमाश्रितः ॥ १४ ॥ अभ्यागतंतुदौरा त्म्यात्परुषंवदसीदृशम्॥गुणदोषौनपृच्छामिक्षयंचात्मनिराक्षस ॥ १५॥ मयोक्तमपिचैतावत्त्वांप्रत्यमितविक्रम ॥ अस्मिंस्तुसभवान्कृत्येसाहाय्यंकर्तुमर्हसि॥१६॥शृणुतत्कर्मसाहाय्येयत्कार्यंवचनान्मम ॥सौवर्णस्त्वंमृगोभूत्वाचि त्रोरजतबिंदुभिः॥१७॥आश्रमेतस्यरामस्यसीतायाःप्रमुखेचर ॥ प्रलोभयित्वावैदेहींयथेष्टंगंतुमर्हसि ॥१८ ॥ त्वांहि मायामयंदृष्ट्वाकांचनंजातविस्मया॥ आनयैनमितिक्षिप्रंरामंवक्ष्यतिमैथिली ॥ १९॥ अपक्रांतेचकाकुत्स्थेदूरंगत्वा प्युदाहर ॥ हासीतेलक्ष्मणेत्येवंरामवाक्यानुरूपकम् ॥ २० ॥ तच्छ्रुत्वारामपदवींसीतयाचप्रचोदितः ॥ अनुगच्छ तिसंभ्रांतंसौमित्रिरपिसौहृदात् ॥ २१ ॥

॥ १७ ॥ उन रामचंद्रके आश्रममें जायकर विदेहराजकुमारी सीताके सामनें विचरण कर उनको लुभा हमारे अभिलषित स्थानमें चले जाओ ॥ १८ ॥ जनककुमारी सीताजी तुमको मायामयको सुवर्णका देखकर विस्मयको प्राप्त हो रामसे शीघ्र मृगके ले आनेंको कहेगी ॥ १९ ॥ तिसके पश्चात् जब काकुत्स्थनंदन राम आश्रमसे बाहर आकर तुम्हारेपीछे धावैं तब तुम उनको बहुत दूर तक ले जाना, और वहां ठीक रामचंद्रजीके बोलसा शब्द बनाकर बड़े जोरसे "हा सीता ! हा लक्ष्मण!" ऐसा वचन उच्चारण करना ॥ २० ॥ तब ऐसा शब्द सुन करके सीता

प्राणियोंका अहित करनेमें रत रहतेहैं जिसनें विना वैरही केवल अपन बलके घमंडमें आय ॥ १२ ॥ नाक कान काटकर हमारी बहन शूर्पणखाको विरूप करदिया । इस कारण जनस्थानसे उसकी स्त्री सीता जोकि देवताओंसेभी चढकर रूपमें है ॥१३॥हम अपने विक्रमसे ले आमेंगे तुमको हमारी सहायता करनी होगी, तुम महाबलवान् सहायके साथ॥१४॥व अपने भाइयोंके संग हम सारे देवताओंकोभी कुछ नहीं गिनते, तिस से हे मारीच! तुम हमारे इस विषयमें सहायक हो क्योंकि तुम समर्थहो ॥ १५ ॥ तुम महाशूरहो और सब प्रकारकी माया जानतेहो, वीर्यमें, युद्धमें, दर्पमें और उपायमें तुम्हारी समान दूसरा कोई नहींहै ॥ १६ ॥ हे निशाचर! इसी कारणसे इस समय हम तुम्हारे समीप

कर्णनासापहारेणभगिनीमेविरूपिता॥ अस्यभार्यांजनस्थानात्सीतांसुरसुतोपमाम्॥१३॥आनयिष्यामिविक्रम्यसहायस्तत्रमेभव॥ त्वयाह्यहंसहायेनपार्श्वस्थेनमहाबल॥ १४॥ भ्रातृभिश्चसुरान्सर्वान्नाहमत्राभिचिंतये॥ तत्सहायोभवत्वंमेसमर्थोह्यसिराक्षस॥१५॥ वीर्येयुद्धेचदर्पेचनह्यस्तिसदृशस्तव॥उपायतोमहाञ्छूरोमहामायाविशारदः॥१६॥ एतदर्थमहंप्राप्तस्त्वत्समीपंनिशाचर॥ शृणुतत्कर्मसाहाय्येयत्कार्यंवचनान्मम ॥१७॥ सौवर्णस्त्वंमृगोभूत्वाचित्रोरजतबिंदुभिः॥ आश्रमेतस्यरामस्यसीतायाःप्रमुखेचर॥१८॥त्वांतुनिःसंशयंसीतादृष्ट्वातुमृगरूपिणम् ॥ गृह्यतामितिभर्तारंलक्ष्मणंचाभिधास्यति ॥ १९ ॥ ततस्तयोरपायेतुशून्येसीतांयथासुखम् ॥ निराबाधोहरिष्यामिराहुश्चंद्रप्रभामिव ॥ २० ॥ ततःपश्चात्सुखंरामेभार्याहरणकर्शिते ॥ विस्रब्धंप्रहरिष्यामिकृतार्थेनांतरात्मना ॥ २१ ॥

आयेहैं, इस समय हमारी सहायता करनेंके लिये जो कुछ तुमको करनाहोगा, सो हम कहतेहैं; तुम श्रवण करो ॥ १७ ॥ तुम चांदीकी विन्दिये युक्त स्वर्णके मृग बनकर रामचंद्रके आश्रममें जा सीताके सामनें इधर उधर फिरना ॥ १८ ॥ सीता मृगरूपी तुमको देखकर निःसन्देहही अपने स्वामी रामचंद्र और लक्ष्मणसे यह कहैगी कि इस मृगको पकडदो ॥ १९ ॥ जब वह रामचंद्र और लक्ष्मण मृगको पकडनेंके लिये आश्रमसे दूर निकल जांयगे तब हम शून्य आश्रम पाकर सुख सहित निर्विघ्नले आवेंगे; जिस प्रकार राहु चंद्रमाकी प्रभाको हरण कर लेता है ॥ २० ॥ जब उनकी स्त्री हर लीजायगी तब रामचंद्र शोकके मारे दुर्बल होजांयगे तब कृतार्थ होकर यथासुख और निःशंक चित्तसे

आज्ञा पाकर शंका रहित चित्तसे यह कठोर वचन बोला ॥ १ ॥ कि हे निशाचरराज! किस पाप कर्म करनेंवाले पुरुषनें तुम्हें राज्य मंत्रिवर्ग, और पुत्रोंके सहित विनाश होनेंका यह उपदेश दियाहै ? ॥ २ ॥ कौन पापात्मा तुम्हारे सुखसे सुखीनहीं हो सकताहै? किस पापीनें उपायके छलसे यह तुम्हारी मृत्युका उपाय तुम्हें बतला दियाहै? ॥ ३ ॥ हे राक्षसनाथ! तुम्हारे हीन वीर्य शत्रु लोग, निश्चयही बलवान् पुरुषके साथ तुम्हारा विरोध कराकर तुम्हारा नाश होता देखनेके अभिलाषी हुएहैं॥४॥हे रावण! किस दुष्ट बुद्धि वालेने तुमको ऐसा उपदेश दियाहै? उस दुष्टका यही अभिलाषहै कि तुम अपने कर्मोंके प्रभावसेही नाशको प्राप्त होओ॥ ५ ॥ हे रावण! मंत्रिगण किसी प्रकारसे मार डालनेंके योग्य नहीं

केनायमुपदिष्टस्तेविनाशःपापकर्मणा ॥ सपुत्रस्यसराज्यस्यसामात्यस्यनिशाचर ॥ २ ॥ कस्त्वयासुखिनाराजन्नाभिनंदतिपापकृत् ॥ केनेदमुपदिष्टंतेमृत्युद्वारमुपायतः ॥ ३ ॥ शत्रवस्तवसुव्यक्तंहीनवीर्यानिशाचर ॥ इच्छंतित्वांविनश्यंतमुपरुद्धंबलीयसा ॥ ४ ॥ केनेदमुपदिष्टंतेक्षुद्रेणाहितबुद्धिना ॥ यस्त्वामिच्छतिनश्यंतंस्वकृतेननिशाचर ॥ ५ ॥ वध्याःखलुनवध्यंतेसचिवास्तवरावण ॥ येत्वामुत्पथमारूढंननिगृह्णंतिसर्वशः ॥ ६ ॥ अमात्यैःकामवृत्तोहिराजाकापथमाश्रितः ॥ निग्राह्यःसर्वथासद्भिःसनिग्राह्योनगृह्यसे ॥ ७ ॥ धर्ममर्थंचकामंचयशश्चजयतांवर ॥ स्वामिप्रसादात्सचिवाःप्राप्नुवंतिनिशाचर ॥ ८ ॥ विपर्ययेतुतत्सर्वंव्यर्थंभवतिरावण ॥ व्यसनंस्वामिवैगुण्यात्प्राप्नुवंतीतरेजनाः ॥ ९ ॥ राजमूलोहिधर्मश्चयशश्चजयतांवर॥ तस्मात्सर्वास्ववस्थासुरक्षितव्यानराधिपाः ॥ १० ॥

होते, परन्तु जो खोटे रस्ते में चलनेंसे तुमको नहीं रोकते, वही मारडालनेंके लायकहैं ॥ ६ ॥ देखो तुम कामके वश होकर खोटे मार्ग में चलना चाहतेहो, और तुम्हारे मंत्री तथापि तुमको सब प्रकारसे नहीं रोकते ॥ ७ ॥ हे निशाचर! हे विजय करनें वालों में उत्तम! मंत्रिगण अपनें स्वामी कीही प्रसन्नतासे, अर्थ, धर्म, काम व यशको प्राप्त होतेहैं ॥ ८ ॥ और जो स्वामीकीही प्रसन्नता नहुई तो सबही व्यर्थ जाताहै और स्वामी के गुणोंमें विकार होनेंके कारण सबही दुःख पातेहैं, और प्रजापर भी महाभय प्राप्त होताहै ॥ ९ ॥ नरपाल प्रजाओंके यश व धर्मकी प्राप्तिके

यह व्यौहार तुम्हारे दुःखका कारण नहो? ॥ ५ ॥ तुम इच्छानुसार चलनेंवाले और निरंकुशहो अर्थात् तुम्हारा कहनें सुन्नेवाला कोई नहींहै । इसकारण तुम्हारे राजा होते समस्त लंका तुम्हारें और सर्व राक्षसोंके साथ क्या विनष्ट नहीं होगी ! अर्थात् अवश्य होगी ॥ ६॥ तुम्हारी समान जो राजा, बुरे शीलवाला, पाप बुद्धि और इच्छानुसार चलनेंवाला होताहै, वह राजा अपनेको, समस्त राज्यको अपने कुटुंबियोको नाश करनेंका कारण होताहै ॥ ७ ॥ रामचंद्र अपनें पिताकरके नहीं त्यागे गयेहैं । वह मर्यादा रहित भी नहींहै, अथवा, लोभी, दुःशील और क्षत्रियवंशके नाशकभी नहीहैं ॥ ८ ॥ कौशल्याकुमार अपनी माताके आनंदको बढानेंवाले धर्मसे वा गुणोंसे हीन नहींहैं; उ

अपित्वामीश्वरंप्राप्यकामवृत्तंनिरंकुशम् ॥ नविनश्येत्पुरीलंकात्वयासहसराक्षसा ॥ ६ ॥ त्वद्विधःकामवृत्तोहिदुःशीलःपापमंत्रितः ॥ आत्मानंस्वजनंराष्ट्रंसराजाहंतिदुर्मतिः ॥ ७ ॥ नचपित्रापरित्यक्तोनामर्यादःकथंचन ॥ नलुब्धोनचदुःशीलोनचक्षत्रियपांसनः ॥ ८ ॥ नचधर्मगुणैर्हीनःकौसल्यानंदवर्धनः ॥ नचतीक्ष्णोहिभूतानांसर्वभूतहितेरतः ॥ ९ ॥ वंचितंपितरंदृष्ट्वाकैकेय्यासत्यवादिनम् ॥ करिष्यामीतिधर्मात्माततःप्रव्रजितोवनम् ॥ १० ॥ कैकेय्याःप्रियकामार्थंपितुर्दशरथस्यच ॥ हित्वाराज्यंचभोगांश्चप्रविष्टोदंडकावनम् ॥ ११ ॥ नरामःकर्कशस्तातनाविद्वान्नाजितेंद्रियः ॥ अनृतंनश्रुतंचैवनैवत्वंवक्तुमर्हसि ॥ १२ ॥ रामोविग्रहवान्धर्मःसाधुःसत्यपराक्रमः ॥ राजासर्वस्यलोकस्यदेवानामिववासवः ॥ १३ ॥

नका तीक्ष्ण स्वभाव नहींहैं । और वह सदा सब प्राणियोंका अहित करनेंमें रतभी नहींहैं वरन सबका हित करनेंमें तत्परहैं ॥ ९ ॥ अपनें सत्यवादी पिताको कैकेयी करके ठगाहुआ देखकर, वह उनके सत्यकी रक्षा करनेके लिये रामचंद्रजी वनको चले आयेहैं ॥ १० ॥ और पिता दशरथ, व रानी केकेयीका प्रिय कार्य करनेंकी वासनासे, राज्यसुखको जलांजलि देकर श्रीरामचंद्रजी दंडकारण्यमें आयेहैं ॥ ११ ॥ हे तात! रामचंद्र कर्कशस्वभाववालेभी नहींहैं, मूर्खभी नहींहैं, अजितेन्द्रियभी नहींहैं, और मिथ्या कहना तो दूरहै, वह इस झुंठाईके प्रसंगमेंभी नहींहैं। सो उनके प्रति ऐसे वचन कहना आपको उचित नहींहै ॥ १२ ॥ अधिक कहांतक कहूं; रामचंद्र धर्ममूर्त्तिहैं, साधूहैं; सत्यपराक्रमवानहै और

तेही मरे धरेहैं और यहभी भली भांति समझ रक्खो कि सीताको हरणकरतेही तुमभी अपने परिवार सहित मारे जाओगे॥१८॥यदि हमारे साथ मिल रामचंद्रजीको धोखादे तुम सीता महारानीको आश्रमसे लेभी आये, तौ हमारी, तुम्हारी, लंकापुरी, व निशाचर गणोंकी किसीकीभी रक्षा न होगी॥१९॥यदि तुम हमारे इनहितकारी वचनोंको न सुनकर ऐसा कार्य करनेंसे नहीं रुकोगे तो तुम्हारा नाश हो जायगा क्योंकि जिस मनुष्यकी आयु क्षीण हो जातीहै वह किसी सुहृदके हतकारी वचनोंको नहींमाना करता॥२०॥इ०श्रीम०वा०आ०आर०एकचत्वारिंशः सर्गः ४१॥ मारीचनें राक्षसराज रावणसे ऐसे कठोर वचन कहकर, फिर उसकेभयसे भीतहो यहभी कह दिया कि अच्छा हम चलतेहैं ॥ १ ॥ वह

आनयिष्यसिचेत्सीतामाश्रमात्सहितोमया ॥ नैवत्वमपिनाहंवैनैवलंकानराक्षसाः ॥ १९ ॥ निवार्यमाणस्तुमया हितैषिणानमृष्यसेवाक्यमिदंनिशाचर ॥ परेतकल्पाहिगतायुषोनराहितंनगृह्णंतिसुहृद्भिरीरितम् ॥२० ॥इ०श्री० वा०आ०आरण्यकांडे एकचत्वारिंशःसर्गः॥४१॥ एवमुक्त्वातुपरुषंमारीचोरावणंततः ॥ गच्छावेत्यब्रवीद्दीनोभयाद्रात्रिंचरप्रभोः ॥ १ ॥ दृष्टश्चाहंपुनस्तेनशरचापासिधारिणा ॥ मद्वधोद्यतशस्त्रेणनिहतंजीवितंचमे ॥ २ ॥ नहिरामंपराक्रम्यजीवन्प्रतिनिवर्तते ॥ वर्ततेप्रतिरूपोऽसौयमदंडहतस्यते ॥ ३ ॥ किंतुकर्तुंमयाशक्यमेवंत्वयिदुरात्मनि ॥ एषगच्छाम्यहंतातस्वास्तितेस्तुनिशाचर ॥ ४ ॥

धनुर्बाणधारी, और खड्ग धारण किये हुए रामचंद्रजी आयुध उठाकर हमारी ओर व तुम्हारी ओर रामचंद्रजीनें देखातो तुम अपनें व हमारे प्राण गएही जानो ॥२॥हे तात! रामचंद्रजीसे कैसाही पराक्रम प्रकाश करकोईभी जीवित नहीं लौट सकता फिर हम तौ तुम्हारे खोटे आचारोंके कारण यमराजरूप रामचंद्रके बाणोंसे मृत्युको प्राप्तहो तुम्हारेही समानहो जायँगे अर्थात् हम तुम दोनों मारे जायँगे ॥ ३ ॥ तुम्हारे ऊपर अपनी सामर्थ्य प्रकाश करके जीता हुआ रहना संभव नहीं क्योंकि तुम अतिदुरात्माहो ! हम तुम्हारा करही क्या सकतेहैं ! हे राक्षसराज तुम्हारा मं

देखो राज्य, सुख प्राण यह इस संसारमें महादुर्लभहैं इससे जो सुखभोग किया चाहो तो रामचंद्रजीसे वैरभाव न करो अब यहांसे जाय सब विभीषणादि मंत्रियोंके साथ ॥ २२ ॥ सलाहकर अपना मतभी स्थिरकर गुण दोषोंको विचार रामचंद्रजीके और अपने बलको जांचक र ॥ २३ ॥ फिर रामचंद्रजीके बलमें अपना बल मिथ्या जान मेरी रायमें तो तुमको चुप रहना उचितहै बस तुम्हारा हित इसीमें होगा हमारे इन कडे वचनोंको जो मैनें आपका हित करनेंके लिये कहेहैं क्षमा करना ॥ २४ ॥हमें कौशल्याधिप दशरथजीके पुत्र श्रीरामचंद्रजीके साथ तुम्हारा युद्धमें समागम करना अच्छा नहीं लगता, इस कारण हे राक्षसनाथ। फिरभी तुम्हारे हितकी युक्तियुक्त वार्ता कहताहूं तुम श्रवण

जीवितंचसुखंचैवराज्यंचैवसुदुर्लभम् ॥ ससर्वैःसचिवैःसार्धंबिभीषणपुरस्कृतैः ॥ २२ ॥ मंत्रयित्वासधर्मिष्ठैःकृत्वानि
श्चयमात्मनः ॥ दोषाणांचगुणानांचसंप्रधार्यबलाबलम् ॥ २३ ॥ आत्मनश्चबलंज्ञात्वाराघवस्यचतत्त्वतः ॥ हितंहि
तवनिश्चित्यक्षमंत्वंकर्तुमर्हसि ॥ २४ ॥ अहंतुमन्येतवनक्षमंरणेसमागमंकोसलराजसूनुना ॥ इदंहिभूयःशृणुवाक्य
मुत्तमंक्षमंचयुक्तंचनिशाचराधिप ॥ २५ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्येकांडेसप्तत्रिंशः
सर्गः ॥ ३७ ॥ ॥ छ ॥ कदाचिदप्यहंवीर्यात्पर्यटन्पृथिवीमिमाम् ॥ बलंनागसहस्रस्यधारयन्पर्वतोपमः ॥ १ ॥
नीलजीमूतसंकाशस्तप्तकांचनकुंडलः ॥ भयंलोकस्यजनयन्किरीटीपरिघायुधः ॥ २ ॥ व्यचरन्दंडकारण्यमृ
षिमांसानिभक्षयन् ॥ विश्वामित्रोथधर्मात्मामाद्वित्रस्तोमहामुनिः ॥ ३ ॥ स्वयंगत्वादशरथंनरेंद्रमिदमब्रवीत् ॥
अयंरक्षतुमांरामःपर्वकालेसमाहितः ॥ ४ ॥

करो॥ २५॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे सप्तत्रिंशःसर्गः ॥ ३७ ॥ मैं एक समय अपने बलवीर्यके घमंडके मारे पृथ्वीपर घूमता हुआ फिरताथा मेरे पर्वतकी समान शरीरमें सहस्र हाथियोंका बलथा ॥१॥ हाथमें परिघ आयुध लिये मस्तक पर किरीट कानमें तपाये हुए सोनेकेबने कुण्डल पहरेथा।मेरे देहकी कान्ति नीले बादरोंकी समानथी इसप्रकारकी अवस्थामें लोकोंको भय उपजाताहुआ॥२॥मैं दंडक वनमें घूम २ कर ऋषिलोगोंका मांस भक्षण करताथा । अनन्तर धर्मात्मा महामुनि विश्वामित्रजी मेरे भयसे भीत होकर ॥ ३ ॥ स्वयं जाकर

रा हुआ यह रामचंद्रका आश्रम दिखाई देताहै ॥ १३ ॥ जिस कारणसे कि हम लोग यहां आयेहैं; इस समय शीघ्रतासे उस कार्यका आरंभ क
रो । निशाचर मारीच रावणके यह वचन सुनकर ॥ १४॥ महा अद्भुत मृग रूप धारण करके रामचंद्रजीके आश्रमके द्वारपर फिरनें लगा॥१५॥
इस मृगके शींगोंका अग्रभाग मणि प्रवर सदृशथा, और मुखकी आकृति श्वेत कृष्ण विविध वर्णोंसे चित्रितथी वदनमंडल कमलके फूलकी स
मान श्रवण युगल इन्द्र नील पद्मकी समानथे ॥ १६ ॥ गरदन कुछ एक ऊंची उदरभी इन्द्र नील मणिकी समता रखताथा पीछेका भागम
हुयेके सुमनकी समान और वर्ण पद्म परागकी तुल्यथा॥ १७ ॥ खुरियें वैडूर्य मणिकी तुल्यथीं, दोनों जाघें पतलीथीं सब सन्धियें एक दूसरीसे गठी

क्रियतांतत्सखेशीघ्रंयदर्थंवयमागताः ॥सरावणवचःश्रुत्वामारीचोराक्षसस्तदा ॥ १४ ॥ मृगोभूत्वाश्रमद्वारिरामस्य
विचचारह ॥ सतुरूपंसमास्थायमहदद्भुतदर्शनम् ॥ १५ ॥ मणिप्रवरशृंगाग्रःसितासितमुखाकृतिः ॥ रक्तपद्मोत्प
लमुखइंद्रनीलोत्पलश्रवाः ॥ १६ ॥ किंचिदत्युन्नतग्रीवइंद्रनीलनिभोदरः ॥ मधूकनिभपार्श्वश्चकंजकिंजल्कसन्नि
भः॥१७॥वैदूर्यसंकाशखुरस्तनुजंघःसुसंहतः ॥ इंद्रायुधसवर्णेनपुच्छेनोर्ध्वंविराजितः ॥ मनोहरस्निग्धवर्णोरत्नैर्नाना
विधैर्वृतः ॥क्षणेनराक्षसोजातोमृगःपरमशोभनः ॥ १९ ॥ वनंप्रज्वलयन्रम्यंरामाश्रमपदंचतत् ॥ मनोहरंदर्शनीयं
रूपंकृत्वासराक्षसः ॥ २० ॥ प्रलोभनार्थंवैदेह्यानानाधातुविचित्रितम्॥विचरन्गच्छतेशष्पंशाद्वलानिसमंततः॥२१॥
रौप्यैर्बिंदुशतैश्चित्रंभूत्वाचप्रियनंदनः ॥ विटपीनांकिसलयान्भक्षयन्विचचारह ॥ २२ ॥

हुईथीं, और पूंछ इन्द्रधनुषकी समान ऊपरको उठी हुई विराजमान होरहीथी ॥ १८ ॥ उसका वर्ण चिकना और मनोहरथा और शरीर उसका
अनेक भांतिके रत्नोंसे विभूषितथा उस मारीच राक्षसनें क्षण भरमें यह परमशोभा युक्त मृग मूर्ति धारणकी ॥१९॥ उस वनको शोभित करता
हुआ और श्रीरामचंद्रजीके आश्रमकोभी अपनें परम मनोहर देखनें योग्यरूपसे वह राक्षस प्रकाश मान करनें लगा ॥ २० ॥ जानकी जीको
ललचानेके लिये अनेक प्रकारकी धातुओंसे चित्र विचित्ररूप धारण किये चारों ओर हरी २ घास चरता हुआ वह मृग रामचंद्रजीके आश्रम
पर विचरनें लगा ॥ २१ ॥उसके शरीरपर सैकडों चांदीके विन्द लगेथे ऐसे कि जिनके देखनेंसे परम प्रीति उपजे वह मृग कभी २ वृक्षोंकी कों

साथले परम प्रीतियुक्त हो अपने सिद्धाश्रममें आये ॥ १२ ॥ तिसके पीछें जब महर्षि विश्वामित्रजी यज्ञ करनेंके लिये दीक्षित हुए तब श्रीरामचंद्रजी विचित्र धनुषकी टंकार करनेंके लिये विश्वामित्रजीके समीप आये ॥ १३ ॥ उनके गलेमें सुवर्णकी माला मस्तकपर अलकें हाथमें धनुष, दोनों नेत्र परम सुन्दर, एक मात्र जांघिया पहरे ब्रह्मचारीशरीर श्यामल वर्ण और अति सुन्दरताईसे शोभायमान, तबतक उनके रेख इत्यादि पुरुषचिह्न नहीं प्रगट हुएथे ॥ १४ ॥ वह अपने तेजसे समस्त दंडकारण्यको सुशोभित करके द्वितीयाके चंद्रमाके समान उदय होते हुए दिखलाई देनें लगे ॥ १५ ॥ उस समय हम तप्तकाञ्चन कुण्डलधारी, मेघका रंग धारण करके ब्रह्माजीके दिये हुए वर

तंतथादंडकारण्येयज्ञमुद्दिश्यदीक्षितम् ॥ बभूवोपस्थितोरामश्चित्रंविस्फारयन्धनुः ॥ १३ ॥ अजातव्यंजनःश्रीमान्बालःश्यामःशुभेक्षणः ॥ एकवस्त्रधरोधन्वीशिखीकनकमालया ॥ १४ ॥ शोभयन्दंडकारण्यंदीप्तेनस्वेनतेजसा॥अदृश्यततदारामोबालचंद्रइवोदितः ॥१५॥ ततोऽहंमेघसंकाशस्तप्तकांचनकुंडलः ॥ बलीदत्तवरोदर्पादाजगामाश्रमांतरम् ॥१६॥ तेनदृष्टःप्रविष्टोऽहंसहसैवोद्यतायुधः ॥ मांतुदृष्ट्वाधनुःसज्यमसंभ्रांतश्चकारह ॥ १७ ॥ अवजानन्नसंमोहाद्बालोऽयमितिराघवम् ॥ विश्वामित्रस्यतांवेदिमभ्यधावंकृतत्वरः॥१८॥तेनमुक्तस्ततोबाणःशितःशत्रुनिबर्हणः॥ तेनाहंताडितःक्षिप्तःसमुद्रेशतयोजने॥१९॥नेच्छतातातमांहंतुंतदावीरेणरक्षितः ॥रामस्यशरवेगेननिरस्तोभ्रांतचेतनः२०

प्रभावसे बल मदसे दर्पित हो विश्वामित्रजीके आश्रममें आये ॥ १६ ॥मैं जैसेही उनसे छिपकर हथियार लेकर आया वैसेही हमको आया हुआ देखतेही श्रीरामचंद्रजीनें तत्क्षणात् आयुध उठाकर हर्षित हो धनुषपर शर चढाया ॥ १७ ॥ बहुतही मोहवश होनेके कारण हमनें बालक समझ उनको ध्यानमें न लाकर बड़ी शीघ्रतासे विश्वामित्रजीकी यज्ञवेदीके ऊपरको दौडे ॥ १८ ॥ यह देखकर श्रीरामचंद्रजीनें शत्रुओंके मारनेवाले तीखे बाणोंको चला हमें घायल कर शत योजन दूर समुद्रको फेंक दिया॥१९॥हे तात! हमारे मारनेंकी इच्छा उस समय उनको नहीं थी इसी कारणसे उन्होंनें उस समय हमको संहार न कर रक्षा की तिसके पीछें हम रामचंद्रजीके बाणवेगसे मूर्छित होकर उतनी दूर चलेगये२०

लोचना वैदेहीजी॥ ३० ॥ फूल चुननेंके लिये, कभी अशोक कभी कर्णिकार और कभी आम वृक्षके निकट जातीथीं ॥ ३१ ॥ वनवास करनेंके अयोग्य उन रुचिर वदना सीताजीनें फूल चुनते हुए, घूमते २ उस रत्नमय मृगको देखा ॥ ३२ ॥ उसके सब अंग मुक्ता मणियोंसे चित्रितथे। ऐसी वराङ्गना और अति सुन्दर दांत व अधर वाली जानकी जीनें भली भांति उस मृगको देखा इस मृगके रुयें चांदी और गेरु धातुके समान थे॥३३॥श्रीजानकीजी विस्मयसेप्रफुल्ल नेत्रोंसे स्नेह सहित उस मृगको देखनेंलगीं माया मय मृगभी राम प्यारी सीताजीकी ओर देखतारहा॥३४॥ अनन्तर वह मृग उस वनको प्रकाशित करता हुआ इधर उधर घूमने लगा। जनक कुमारी श्रीसीताजी अनेक रत्नमय अदृष्टपूर्व (जो

कुसुमापचयेव्यग्रापादपानत्यवर्तत ॥ कर्णिकारानशोकांश्चचूतांश्चमदिरेक्षणा ॥ ३१ ॥ कुसुमान्यपचिन्वंती चचाररुचिरानना ॥ अनर्हांवनवासस्यसातंरत्नमयंमृगम् ॥ ३२ ॥ मुक्तामणिविचित्रांगंददर्शपरमांगना ॥ तंवैरुचिरदंतोष्ठंरूप्यधातुतनूरुहम्॥३३॥विस्मयोत्फुल्लनयनासस्नेहंसमुदैक्षत॥सचतांरामदयितांपश्यन्मायामयो मृगः ॥ ३४ ॥ विचचारततस्तत्रदीपयन्निवतद्वनम् ॥ अदृष्टपूर्वंदृष्ट्वातंनानारत्नमयंमृगम् ॥ विस्मयंपरमंसीताज गामजनकात्मजा ॥ ३५ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वाल्मीकीयेआदिकाव्येआ०कां०द्विचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४२ ॥ ॥छ॥ सातंसंप्रेक्ष्यसुश्रोणिकुसुमानिविचिन्वती ॥ हेमराजतवर्णाभ्यांपार्श्वाभ्यामुपशोभितम् ॥ १ ॥ प्रहृष्टाचानवद्यांगीमृ ष्टहाटकवर्णिनी ॥ भर्तारमपिचक्रंदलक्ष्मणंचैवसायुधम् ॥ २ ॥ आहूयाहूयचपुनस्तंमृगंसाधुवीक्षते ॥ आगच्छा गच्छशीघ्रंवैआर्यपुत्रसहानुज ॥३॥ तावाहूतौनरव्याघ्रौवदह्यारामलक्ष्मणौ॥वीक्षमाणौतुतंदेशंतदाददृशतुर्मृगम्॥४॥

पहले कभी नहीं देखा) मृगको देखकर अति विस्मयको प्राप्त हुईं॥३५॥इत्यार्षे श्रीरामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आ० द्विचत्वारिंशःसर्गः ४२ सुश्रोणी,फूल चुनती हुई सीताजीनें इस मृगके शरीरके मध्य चांदीके बिंदुशोभाय मान देख दोनों बगल उसके सुवर्ण व चांदीके देखे ॥१॥ यह देखकर परम हर्षित हो अनिन्दिताङ्गी,विशुद्ध वर वर्णिनी सीताजीनें आयुध धारणकिये हुए रामचंद्र व लक्ष्मणजीको पुकारा॥२॥हे आर्यपुत्र! लक्ष्मणके स हित शीघ्र आओ इस प्रकारसे कहकर रामचंद्रजीको पुकारते२उस मृगकी ओर देखनें लगीं॥३॥ सीताजीके पुकारनें पर पुरुषोत्तम श्री रामचंद्रजी

एकही कालमें भस्म हुए देखोगे ॥ २९ ॥ क्योंकि पराई स्त्रीके हरनकरनेंकी तुल्य और कोई भारी पाप नहीं है! हे राजन्। तुम्हारे रनवासमें सैकडों हजारों स्त्रियां विराजमान हैं ॥ ३० ॥ तुम अपनी ग्रहणकीहुई उनही समस्त स्त्रियोंमें आसक्त रहकर अपने वंश, अभीष्ट प्राण, राज्य, संपद, मान और राक्षसकुलकी रक्षा करो ॥ ३१ ॥ यदि परमसुन्दरी स्त्रिये और मित्रोंके साथ सदांही सुख भोगनेंकी इच्छा करतेहो तो रामचंद्रका अप्रिय कार्य मत करो ॥ ३२ ॥ हम तुम्हारे सुहृदहैं इसी कारण वारंवार तुमको निवारण करतेहैं यदि इतनेपरभी तुम बलपूर्वक सीताको हर लाओगे तो निश्चयही तुमको रामबाणसे बन्धु बान्धवों सहित, क्षीणबल और क्षीणप्राण होकर यमराजके भवनमें

परदाराभिमर्शात्तुनान्यत्पापतरंमहत् ॥ प्रमदानांसहस्राणितवराजन्परिग्रहे ॥ ३० ॥ भवस्वदारनिरतःस्वकुलंरक्षराक्षसान् ॥ मानंवृद्धिंचराज्यंचजीवितंचेष्टमात्मनः ॥ ३१ ॥ कलत्राणिचसौम्यानिमित्रवर्गंतथैवच ॥ यदीच्छसिचिरंभोक्तुंमाकृथारामविप्रियम् ॥ ३२ ॥ निवार्यमाणःसुहृदामयाभृशंप्रसह्यसीतांयदिधर्षयिष्यसि ॥ गमिष्यसिक्षीणबलःसबांधवोयमक्षयंरामशरास्तजीवितः ॥३३॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०आर०अष्टात्रिंशःसर्गः॥३८॥ध॥ एवमस्मितदामुक्तःकथंचित्तेनसंयुगे ॥ इदानीमपियद्वृत्तंतच्छृणुष्वयदुत्तरम् ॥ १ ॥ राक्षसाभ्यामहंद्वाभ्यामनिर्विण्णस्तथाकृतः ॥ सहितोमृगरूपाभ्यांप्रविष्टोदंडकावने ॥२॥ दीप्तजिह्वोमहादंष्ट्रस्तीक्ष्णशृंगोमहाबलः ॥ व्यचरन्दंडकारण्यंमांसभक्षोमहामृगः ॥३॥ अग्निहोत्रेषुतीर्थेषुचैत्यवृक्षेषुरावण ॥ अत्यंतघोरोव्यचरंस्तापसांस्तान्प्रधर्षयन् ॥४॥

जाना पडेगा ॥ ३३ ॥इत्यार्षे० श्रीम० वा० आ०आ० अष्टत्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥ उस कालमें तो हम किसी प्रकारसे रामचंद्रजीके द्वारा इस भांति युद्धमें छूट गयेथे, इस समय वह कहताहूं जो अब हुआहै, सो तुमश्रवण करो ॥ १ ॥ जब दो मृगरूपी राक्षसोंके साथ हम दंडकारण्यको गये वहांभी इसी प्रकार पराजित हुए ॥ २ ॥ जब हम दंडकारण्यको गयेथे तो हमारी बडी अग्निके समान तो जिह्वाथी, बडे तीखे दांतथे, बडे २ सींगथे महावलवान् भयंकर रूप था, और दंडकारण्यमें मांस खाते हुएं हम विचरण करतेथे ॥ ३ ॥ फिर जहां २ तीर्थरूपी वृक्षथे,

इसका सबही शरीर विविध वर्णोंसे विचित्रहो रहाहै। मध्य २ में रत्नोंके विन्दु वनेहैं। यह मृग चद्रमाकी समान वनभूमिको शान्ति भावसे प्रकाशित करता हुआ हमारे सन्मुख विराजमान हो रहाहै ॥ १४ ॥ अहहह क्या सुन्दरताईहै! अहो क्या श्रीहै! आहा क्या शोभाहै! क्या मधुर इसका बोलहै! यह अपूर्व विचित्र अंगवाला मृग हमारे मनको चुरायेलेताहै ॥ १५ ॥ यदि आप इसको जीता हुआही पकड देंगे तो बडा अपूर्व यह पदार्थ सदा निकट रहकर विस्मय उपजाता रहा करैगा॥१६॥जव हम वनवासके व्रतको पूरा करके फिर अपने राज्यमें चलेंगे तब यह मृग हमारे रन वासका भूषण होगा ॥ १७ ॥ हे प्रभो! भरतजीको आपको, हमारी सासोंको, वरन सबकोही यह दिव्य मृगरूप विस्मय

नानावर्णविचित्रांगोरत्नभूतोममाग्रतः ॥ द्योतयन्वनमव्यग्रंद्योततेशशिसन्निभः ॥ १४ ॥ अहोरूपमहोलक्ष्मीःस्वरसंपच्चशोभना ॥ मृगोऽद्भुतोविचित्रांगोहृदयंहरतीवमे ॥ १५ ॥ यदिग्रहणमभ्येतिजीवन्नेवमृगस्तव ॥ आश्चर्यंभूतंभवतिविस्मयंजनयिष्यति ॥ १६ ॥ समाप्तवनवासानांराज्यस्थानांचनःपुनः ॥ अंतःपुरेविभूषार्थोमृगएषभविष्यति ॥ १७ ॥ भरतस्यार्यपुत्रस्यश्वश्रूणांममचप्रभो ॥ मृगरूपमिदंदिव्यंविस्मयंजनयिष्यति ॥ १८ ॥ जीवन्नयदितेभ्येतिग्रहणंमृगसत्तमः ॥ अजिनंनरशार्दूलरुचिरंतुभविष्यति ॥ १९ ॥ निहतस्यास्यसत्वस्यजांबूनदमयत्वचि ॥ शष्पबृस्यांविनीतायामिच्छाम्यहमुपासितुम् ॥ २० ॥ कामवृत्तमिदंरौद्रंस्त्रीणामसदृशंमतम् ॥ वपुषात्वस्यसत्त्वस्यविस्मयोजनितोमम ॥ २१ ॥ तेनकांचनरोम्णातुमणिप्रवरशृंगिणा ॥ तरुणादित्यवर्णेननक्षत्रपथवर्चसा ॥२२॥

उत्पन्न करावैगा ॥ १८ ॥ हे पुरुषोत्तम! यदि इस मृगको आपजीता न पकड सकें, तो इसका चर्मही परम मनोहर होगा ॥ १९ ॥ इस निहत मृगके सुवर्णमय चर्मको कुशासनपर बिछाकर उसपर बैठ तुम्हारे सहित भगवान्‌की पूजा करनेंको हमारा अभिलाष हुआहै ॥ २० ॥ यद्यपि स्वामीको इस प्रकारकी प्रेरणा करना स्त्रियोंके लिये स्वेच्छा चारिताहै,और भयंकर, व अनुचितभीहै, तथापि इस मृगकी विचित्र देहनें हमको बहुतही विस्मय उपजायाहै ॥ २१ ॥ उसके कंचनके समान रोम भली श्रेष्ठ मणिकी समान शृंग प्रभात कालीन सूर्यकी नांई और आकाशकी

राक्षस रामचंद्रजीके दो बाणोंसे मारे गये ॥ १३ ॥ हे रावण! हम किसीप्रकारसे रामचंद्रजीके बाणसे अपने प्राणोंको बचा तबसे तपस्वीका धर्म ग्रहण कर चित्तको रोके हुए इस स्थानमें योगका अवलंबन करके तपस्याकरतेहैं ॥ १४ ॥ तबसे हम फांसी हाथमें लिये यमराजकी समान उन चीर व मृगचर्म धारण किये धनुषधारी रामचंद्रको मानों प्रत्येक वृक्षके तले देखतेहैं ॥ १५ ॥ हम भयके मारे भीतहो निरन्तर सहस्रों रामको जहां तहां देखतेहैं । इस समस्तही वनमें मानों श्रीरामचंद्रजी हमको दिखाई देरहेहैं ॥ १६ ॥ हे राक्षसेश्वर! हम रामचंद्र करके रहित स्थान मेंभी, बराबर केवल उन्ही रामचंद्रको देखतेहैं! वरन स्वप्नमेंभी उनको देखकर मैं डरके मारे जागतेकी समान इधर उधर दौडने लगताहूं

शरेणमुक्तोरामस्यकथंचित्प्राप्यजीवितम् ॥ इहप्रव्राजितोयुक्तस्तापसोऽहंसमाहितः ॥ १४ ॥ वृक्षेवृक्षेहिपश्यामिचीर कृष्णाजिनांबरम् ॥ गृहीतधनुषंरामंपाशहस्तमिवांतकम् ॥१५॥ अपिरामसहस्राणिभीतःपश्यामिरावण॥रामभूत मिदंसर्वमरण्यंप्रतिभातिमे ॥ १६ ॥ राममेवहिपश्यामिरहितेराक्षसेश्वर ॥ दृष्ट्वास्वप्नगतंराममुद्भ्रमामीवचेतनः॥१७॥ रकारादीनिनामानिरामत्रस्तस्यरावण ॥ रत्नानिचरथाश्चैववित्रासंजनयंतिमे ॥१८॥ अहंतस्यप्रभावज्ञोनयुद्धंतेनते क्षमम् ॥ बलिंवानमुचिंवापिहन्याद्धिरघुनंदनः ॥१९॥रणेरामेणयुद्धचस्वक्षमांवाकुरुरावण ॥ नतेरामकथाकार्यायदि मांद्रष्टुमिच्छसि ॥ २० ॥ बहवःसाधवोलोकेयुक्ताधर्ममनुष्ठिताः ॥ परेषामपराधेनविनष्टाःसपरिच्छदाः ॥ २१ ॥

॥ १७ ॥ हे रावण! हम तुमसे अधिक कहांतक कहैं कि हम रामचंद्रसे यहांतक डर गयेहैं, कि रत्न, रथ, इत्यादि जिन शब्दोंकी आदिमें रकारहै उन शब्दोंके श्रवण करनेंसेभी हमें डर लगताहै *॥ १८ ॥ हम भली भांति उन रघुनंदन रामचंद्रजीके पराक्रमको जानतेहैं । इस कारणसे उनके साथ युद्ध करना तुमको उचित नहीं है।वह राम बलि, अथवा नमुचिको संहार करनेंमेंभी समर्थ हैं ॥ १९ ॥ हे रावण! तुम रामचंद्रके सहित युद्ध करो वा न करो, परन्तु यदि हमको देखनेंका अभिलाष करतेहो तौ हमारे साथ श्रीरामचंद्रजीकी वार्ता मत करो नहीं तौ हम यहाँसे चले जायगे ॥ २० ॥ इस लोकमें धर्मका अनुष्ठान करनेंवाले योगयुक्त होकरभी बहुतसे पुरुष पराया

* "दोहा" रावण राके सुनतही रहत न मोहिं तन प्राण । तिन रघुनंदन सों न छल,करहु वचन मम बान ॥

बहुत मृगोंको मार डालतेहैं ॥ ३१ ॥ अधिक करके वह राजा लोक मृग वधमें उद्यत होकर बड़े २ वनोंमें मणिरत्न सुवर्णादि धातुरूप धनका संग्रहभी करतेहैं ॥ ३२ ॥ हे लक्ष्मण ! इस प्रकार धनधान्यकी राशिसे खजाना बढताहै । इस लिये वनमें सबही पुरुषोंकी ब्रह्मकी नांई मनकी इच्छा सफल होतीहै ॥३३॥ हे लक्ष्मण ! अर्थकी इच्छा करनेंवाला पुरुष अर्थसाधन वस्तुके कारण निःसंशय चित्तसे उस कार्यमें लगै तो अर्थ शास्त्रज्ञ पंडित लोग उसकोही ठीक अर्थ कहते हैं ॥ ३३ ॥ इस कारणसे इस मृगके वध करनेंमें कुछ दुविधा करनेंकी आवश्यकता नहीं है। सुमध्यमा जानकीजी हमारे साथ इस मृग रत्नके श्रेष्ठ व सुवर्ण मय चर्म पर बैठेंगी ॥ ३५ ॥ क्या कदली और प्रियक मृगका चमडा

धनानिव्यवसायेनविचीयंतेमहावने ॥ धातवोविविधाश्चापिमणिरत्नसुवर्णिनः ॥ ३२ ॥ तत्सारमखिलंनृणांधनंनिच यवर्धनम् ॥ मनसाचिंतितंसर्वंयथाशुक्रस्यलक्ष्मण ॥ ३३ ॥ अर्थीयेनार्थकृत्येनसंव्रजत्यविचारयन् ॥ तमर्थमर्थ शास्त्रज्ञाःप्राहुरर्थ्याःसुलक्ष्मण ॥ ३४ ॥ एतस्यमृगरत्नस्यपरार्ध्येकांचनत्वचि ॥ उपवेक्ष्यतिवैदेहिमयासहसुमध्य मा ॥ ३५ ॥ नकादलीनप्रियकीनप्रवेणीनचाविकी ॥ भवेदेतस्यसदृशीस्पर्शेनेनेतिमेमतिः ॥ ३६ ॥ एषचैवमृगःश्रीमा न्यश्चदिव्योनभश्चरः ॥ उभावेतौमृगौदिव्यौतारामृगमहीमृगौ ॥ ३७ ॥ यदिवायंतथायन्मांभवेद्वदसिलक्ष्मण ॥ मा यैषाराक्षसस्येतिकर्तव्योस्यवधोमया ॥ ३८ ॥ एतेनहिनृशंसेनमारीचेनाकृतात्मना ॥ वनेविचरतापूर्वंहिंसितामुनि पुंगवाः ॥ ३९ ॥ उत्थायबहवोयेनमृगयायांजनाधिपाः ॥ निहताःपरमेष्वासास्तस्माद्वध्यस्त्वयंमृगः ॥ ४० ॥

क्या प्रवेणी नामक छागलका चमडा क्या मेषादिकका चमडा । कोई भी चमडा इस मृगके चमडे की समान कोमल, चिकना, व मनोहर हमको नहीं ज्ञात होताहै ॥ ३६ ॥ यह ही मृग श्रीमानहै, और आकाशमें जो मृग विचरण करतेहैं; वही श्रीमानहै । बस इससे वह तारा मृग (मृग शिरा नक्षत्र) और यह महीमृग यही दोनों मृग दिव्यहैं ॥३७॥ हे लक्ष्मण ! तुम कहतेहो कि यह राक्षसकी मायाहै; सो यदि वास्तवमें ऐसाही हो तोभी हमको इसका संहार करना कर्त्तव्यहीहै ॥ ३८ ॥ क्योंकि देखो इस दुरात्मा निर्दय मारीचनें वनमें घूमते २ अनेक मुनिश्रेष्ठोंको मारडालाहै ॥ ३९ ॥ और शिकार खेलनें जब राजालोग इस वनमें आये तो इस राक्षसनें इसी भांति मायामृग बनकर परम धनुर्द्धर अनेक

अयोग्यहैं निष्फलहैं ॥ ४ ॥ जो पुरुष साधारण स्त्रीके कहनेंसे माता,पिता, राज्य, और सुहृदगणोंको छोडकर वनमें चला आयाहै ॥ ५ ॥ सो हम तुम्हारे सामने अवश्यही युद्धमें खरका नाशकरनेंवाले उसरामकी प्राणसे अधिक प्यारी भार्याको हरण करेंगे ॥ ६ ॥ रे मारीच! हमनें अपनी बुद्धिसे अपने हृदयमें ऐसा निश्चय करही लियाहै, सो इन्द्रके सहित सुरासुरगणभी इसके विरुद्ध नहीं कर सकते! अर्थात् हमको इस संकल्पसे नहीं हटा सकते ॥ ७ ॥ यदि हम इस कार्यकेविषय में कर्त्तव्याकर्त्तव्य निश्चय करनेंको तुमसे पूछते, तब तुमको सके दोष, गुण, हानि, लाभ, उपाय, इत्यादि कहने उचितथे ॥ ८ ॥जो ज्ञानवान् मंत्री अपने ऐश्वर्य अभिलाषी होतेहैं वह राजा करके

यस्त्यक्त्वासुहृदोराज्यंमातरंपितरंतथा ॥ स्त्रीवाक्यंप्राकृतंश्रुत्वावनमेकपदेगतः ॥ ५ ॥ अवश्यंतुमयातस्यसंयुगे खरघातिनः ॥ प्राणैःप्रियतरासीताहर्तव्यातवसंनिधौ ॥ ६ ॥ एवंमेनिश्चिताबुद्धिर्हृदिमारीचविद्यते ॥ नव्याव र्तयितुंशक्यासेंद्रैरपिसुरासुरैः ॥ ७ ॥ दोषंगुणंवासंपृष्टस्त्वमेवंवक्तुमर्हसि ॥ अपायंवाउपायंवाकार्यस्यास्यविनि श्चये ॥ ८ ॥ संपृष्टेनतुवक्तव्यंसचिवेनविपश्चिता ॥ उद्यतांजलिनाराज्ञोयइच्छेद्भूतिमात्मनः ॥ ९ ॥ वाक्यमप्रति कूलंतुमृदुपूर्वंशुभंहितम् ॥ उपचारेणवक्तव्योयुक्तंचवसुधाधिपः ॥ १० ॥ सावमर्दंतुयद्वाक्यमथवाहितमुच्यते ॥ ना भिनंदेततद्राजामानार्थीमानवर्जितम् ॥ ११ ॥ पंचरूपाणिराजानोधारयंत्यमितौजसः ॥ अग्नेरिंद्रस्यसोमस्यय मस्यवरुणस्यच ॥ १२ ॥ औष्ण्यंतथाविक्रमंचसौम्यंदंडंप्रसन्नताम् ॥ धारयंतिमहात्मानोराजानःक्षणदाचर ॥ १३ ॥

पूछे जानेंपर हाथ जोड पूछे हुए विषयका उत्तर नम्रतासे निवेदन करतेहैं ॥ ९ ॥ कारण कि राजा ओंके समीप, उपचार युक्त मनोहर, मंगल जनक अप्रतिकूल वचनही कहनें ठीकहै ॥ १० ॥ मंगलजनक वचनसेभी यदि अपमान होताहो तो माननीय राजा लोग उस सन्मान रहित वचनोंको सुन प्रसन्न नहीं होते अथवा ग्रहण नहीं करते ॥ ११ ॥ हे निशाचर! अमिततेजवान् महात्मा भूपतिलोग, अग्नि, इन्द्र, चंद्र, यम और वरुण इन पंच देवताओंका रूप धारण करतेहैं ॥ १२ ॥ इससेही हे मारीच! उनमें, अग्निकी गरमाई, इन्द्रका पराक्रम; चंद्रमाकी

बडी अभिलाषा हुईहै, देखो; अब हम बहुत शीघ्रतासे इस मृगको पकडनेंके लिये जांयगे. ॥ ४८ ॥ इस मृगका चर्म सब मृगोंसे अच्छाहै, आज निश्चयही इसको प्राण त्याग करना पडेगा । लक्ष्मण ! हम जबतक इस मृगको नहीं मारडालें तब तक तुम सीताजीके साथ सावधानतासे आश्रममें टिके रहो ॥ ४९ ॥ हे लक्ष्मण ! हमें एक बाणसे शीघ्रही मृगको मार कर इसका चर्म ले आऊंगा जब तक हम लौट कर न आवें तब तक तुम सावधानीसे यहां पर रहना ॥ ५० ॥ हे लक्ष्मण! तुम जानकीको लेकर अति बलवान् बुद्धिमान, अच्छे कार्योंको करनेंमें चतुर, बली, श्रेष्ठ जटायुके साथ निरंतर शंकित और सावधानीसे यहां पर रहना ॥५१॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० आर० त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥४३॥

त्वचाप्रधानयाह्येषमृगोऽद्यनभविष्यति॥अप्रमत्तेनतेभाव्यमश्रमस्तेनसीतया॥४९॥यावत्पृषतमेकेनसायकेननिहन्म्यहम् ॥ हत्वैतच्चर्मआदायशीघ्रमेष्यामिलक्ष्मण ॥ ५० ॥ प्रदक्षिणेनातिबलेनपक्षिणाजटायुषाबुद्धिमताच लक्ष्मण ॥ भवाप्रमत्तःप्रतिगृह्यमैथिलींप्रतिक्षणंसर्वतएवशंकितः ॥ ५१ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०आर०त्रिचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४३ ॥ ७ ॥ ॥ तथातुतंसमुद्दिश्यभ्रातरंरघुनंदनः॥ दधारासिंमहातेजाजांबूनदमयत्सरुम् ॥१॥ ततस्त्रिविनतंचापमादायात्मविभूषणम्॥ आवध्यचकलापौद्वौजगामोदग्रविक्रमः ॥ २ ॥ तंवन्यराजोराजेंद्रमापतंतंनिरीक्ष्यवै॥ बभूवांतर्हितस्त्रासात्पुनःसंदर्शनेऽभवत् ॥ ३ ॥ बद्धासिर्धनुरादायप्रदुद्रावयतोमृगः ॥ तंस्मपश्यतिरूपेणद्योतयंतमिवाग्रतः॥ ४ ॥

परम तेजस्वी रघुनंदन ! रामचंद्रजी भ्राता लक्ष्मणजीको इस प्रकारसे समझाय बुझाय सुवर्ण निर्मित मुष्टि लगा हुआ खड्ग हाथमें लेते हुए ॥ १ ॥ तिसके पीछे जिसका बिचला भाग तीन जगहसे झुका हुआथा, ऐसा अपना भूषण स्वरूप धनुष ग्रहण करकै और दो तरकश बांध करकै प्रचंड पराक्रमी श्रीरामचंद्रजी गये ॥ २ ॥ वह मृगश्रेष्ठ मृगोंका राजा रामचंद्रजीको अपनें सन्मुख आता हुआ देखकर भयके मारे अन्तरध्यानहो फिर थोडी दूरपै उनको दीख पडा ॥ ३ ॥ श्रीरामचंद्रजीभी खड्ग और धनुष बाण धारण करके जिस ओर मृगथा उस ओर को धाये । और देखते हुए कि मृग अपनें रूपसे चारों ओर को प्रकाश करता हुआ मानों सामनेंही विराजरहाहै ॥ ४ ॥

जीकी प्रेरणासे, व भाईकी सुहृदताके प्रेमसे, लक्ष्मणजीभी सम्भ्रान्तचित्तहो रामके निकट चले जायँगे ॥ २१ ॥ इस प्रकार राम लक्ष्मण दोनोंही जब उस आश्रममें चले जायंगे, तब हम सीताको सुखसे हरणकरेंगे। जिस प्रकार इन्द्रनें शचीका हरण कियाथा ॥ २२ ॥ हे सुव्रत निशाचर! मारीच! तुम इस प्रकार कार्यके पूरा करके जहां इच्छा हो वहां चले जाना। इस कार्यके पूरा होनेंपर हम तुमको आधा राज्य देंगे ॥ २३ ॥ हे शुभदर्शन! तुम इस कार्यको पूर्ण करनेंके लिये दंडकारण्यके मार्गमें मंगल सहित चलो, हमभी रथपर चढकर तुम्हारे पीछे२ चलतेहैं ॥ २४ ॥ हम रामको ठगकर बिना युद्ध किये सीताको प्राप्तकर कृतकार्य हो फिर लंकापुरीको तुम्हारे सहित लौटेंगे ॥ २५ ॥ हे

अपक्रांतेचकाकुत्स्थेलक्ष्मणेचयथासुखम् ॥ आहरिष्यामिवैदेहींसहस्राक्षःशचीमिव ॥ २२ ॥ एवंकृत्वात्विदंकार्यंयथेष्टंगच्छराक्षस ॥ राज्यस्यार्धंप्रदास्यामिमारीचतवसुव्रत ॥ २३ ॥ गच्छसौम्यशिवंमार्गंकार्यस्यास्यविवृद्धये ॥ अहंत्वानुगमिष्यामिसरथोदंडकावनम् ॥ २४ ॥ प्राप्यसीतामयुद्धेनवंचयित्वातुराघवम् ॥ लंकांप्रतिगमिष्यामिकृतकार्यःसहत्वया ॥ २५ ॥ नोचेत्करोषिमारीचहन्मित्वामहमद्यवै ॥ एतत्कार्यमवश्यंमेबलादपिकरिष्यसि ॥ राज्ञोविप्रतिकूलस्थोनजातुसुखमेधते ॥ २६ ॥ आसाद्यतंजीवितसंशयस्तेमृत्युर्ध्रुवोह्यद्यमयाविरुध्यतः ॥ एतद्यथावत्परिगण्यबुद्ध्यायदत्रपथ्यंकुरुतत्तथात्वम् ॥ २७ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० आर० कां० चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥ ॥ ॐ ॥ आज्ञप्तोरावणेनेत्थंप्रतिकूलंचराजवत् ॥ अब्रवीत्परुषंवाक्यंनिःशंकोराक्षसाधिपम् ॥ १ ॥

निशाचर! मारीच! यदि तुम हमारे वचनोंके प्रतिकूल करोगे तो अभी हम तुमको मार डालेंगे, कोई पुरुष राजाके विरुद्ध आचरण करकै सुख संपत्ति नहीं पासकता ॥ २६ ॥ रामचंद्रके निकट जानेंसे तुम्हारे जीवनमें संशय मात्र है, परन्तु हमारे साथ विरुद्धाचरण करनेंसे इसी समय तुम्हारीमृत्यु निश्चय होगी; सो अपनी बुद्धिसे यथोचित विचार कर इस विषयमें जो कर्तव्य हो सोकरो ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥ मारीच राक्षसपति रावण करके राजाकी समान मनोगत विषयमें

और उसको दृढ धनुष्यपर चढा बलसे खेंच जलती अग्निकी समान प्रकाशित तिस मृगपर ॥ १४ ॥ ब्रह्माका बनाया हुआ अतिप्रज्वलित अस्त्र, उस मृगरूपी राक्षस मारीचके लायकही छोडा॥१५॥शर श्रेष्ठ ब्रह्मास्त्रनें छूटतेही वज्रकी समान मृगरूपी मारीचका हृदय विदारण करडाला तब वह मारीच अतिशय आतुर होकर ताडके वृक्ष समान ऊपरको उछल पृथ्वीपर गिर पडा ॥ १६ ॥ और क्षीण प्राण मरनेंके निकट पहुँच पृथ्वी पर गिरकर भयंकर शब्दसे बहुत चिल्लाया । उस राक्षसनें मरनेंके समय वह अपनी बनावटी छलकी देह त्यागन करदी ॥ १७ ॥ अनन्तर मारीच मरनेंके समय उस मायामय देहको त्याग रावणकी आज्ञा स्मरण कर विचारनें लगाकि किस उपायका अवलंबन करनेंसे सीता लक्ष्मणको यहां

संधायसदृढंचापेविकृष्यबलवद्बली ॥ तमेवमृगमुद्दिश्यज्वलंतमिवपन्नगम् ॥ १४ ॥ मुमोचज्वलितंदीप्तमस्त्रंब्रह्म
विनिर्मितम् ॥ सभृशंमृगरूपस्यविनिर्भिद्यशरोत्तमः ॥ १५ ॥ मारीचस्यैवहृदयंबिभेदाशनिसन्निभः॥ तालमात्रम
थोत्प्लुत्यन्यपतत्सभृशातुरः॥१६॥व्यनदद्भैरवंनादंधरण्यामल्पजीवितः॥म्रियमाणस्तुमारीचोजहौतांकृत्रिमांतनुम्॥
॥ १७ ॥ स्मृत्वातद्वचनंरक्षोदध्यौकेनतुलक्ष्मणम् ॥ इहप्रस्थापयेत्सीतातांशून्येरावणोहरेत् ॥ १८ ॥ सप्राप्तकाल
माज्ञायचकारचततःस्वनम् ॥ सदृशंराघवस्येवहासीतेलक्ष्मणेतिच ॥ १९ ॥ तेनकर्मणिनिर्विद्धःशरेणानुपमेनहि ॥
मृगरूपंतुतत्त्यक्त्वाराक्षसंरूपमास्थितः ॥ २० ॥ चक्रेससुमहाकायोमारीचोजीवितंत्यजन् ॥ तंदृष्ट्वापतितंभूमौरा
क्षसंभीमदर्शनम् ॥ २१ ॥ रामोरुधिरसिक्तांगंचेष्टमानंमहीतले ॥ जगाममनसासीतांलक्ष्मणस्यवचःस्मरन् ॥ २२ ॥

भेजें, और रावण शून्य आश्रमको पाकर सीताको हरण करले ॥ १८ ॥ यह विचारकर अपना काल आया हुआ जान रावणकी उपदेश कीहुई सलाहके अनुसार, "हा सीते! हा लक्ष्मण!" कहकर रामचंद्रजीके समान कंठस्वर बनाकर उस राक्षसनें चिल्लाना आरंभ किया ॥ १९ ॥ श्री रामचंद्रजीके अनुपम बाणसे उसको मर्म स्थानमें इतना विंध गयाथा; कि फिर वह मृगरूप धारण नहीं कर सका और राक्षसमूर्ति ग्रहणकी॥ २०॥ मरनेंके समय मारीचकी देह बडी भारी होगई उस भयंकर निशाचर मारीचको भूमिमें ॥ २१ ॥ रुधिरसे लिपटा पृथ्वीमें लोटता हुआ श्रीरा

मूलहोतेहैं ! इस कारण सबही अवस्था में भली भांति राजाकी रक्षाकरनी ठीकहै ॥ १० ॥ हे निशाचर ! अति तीक्ष्ण स्वभाव वाला सबका अनभल चाहनेंवाला महात्मा ओंके आगे नम्रतासे नहीं रहनेवाला राजा राज्यका पालन नहीं कर सकताहै ॥११ ॥ जो मंत्री लोग बडी कठोर आज्ञासें राजासें कहकर प्रकाशित करा देतेहैं; फिर वे लोगभी राजासे दुःख पातेहैं ! जैसे अयोग्य ऊंचे रथ हांकनेंवाले सारथीभी मालिकके साथ झटके सहतेहैं ॥ १२ ॥ इस लोकमें अनेक मनुष्य उचित धर्मानुष्ठान किये अपने पदके योग्य पराये अपराधसे बंधुबांधवोंसहित नाशको प्राप्त हो गयेहैं ॥ १३ ॥ हे दशानन ! प्रजा प्रतिकूलाचारी तीक्ष्णस्वभाव राजा करके रक्षमान होकर, शियारों करके रक्षित ससा

राज्यंपालयितुंशक्यंनतीक्ष्णेनानिशाचर ॥ नचातिप्रतिकूलेननाविनीतेनराक्षस ॥ ११ ॥ येतीक्ष्णमंत्राःसचिवाभुज्यंतेसहतेनवै ॥ विषमेषुरथाःशीघ्रंमंदसारथयोयथा ॥ १२ ॥ बहवःसाधवोलोकयुक्तधर्ममनुष्ठिताः ॥ परेषामपराधेनविनष्टाःसपरिच्छदाः ॥ १३ ॥ स्वामिनाप्रतिकूलेनप्रजास्तीक्ष्णेनरावण ॥ रक्ष्यमाणानवर्धंतेमृगागोमायुनायथा ॥ १४ ॥ अवश्यंविनशिष्यंतिसर्वेरावणराक्षसाः ॥ येषांत्वंकर्कशोराजादुर्बुद्धिरजितेंद्रियः ॥ १५ ॥ तदिदंकाकतालीयंघोरमासादितंमया ॥ अत्रत्वंशोचनीयोसिससैन्योविनशिष्यसि ॥ १६ ॥ मांनिहत्यतुरामोसावचिरात्त्वांवधिष्यति ॥ अनेनकृतकृत्योस्मिम्रियेचाप्यरिणाहतः ॥ १७ ॥ दर्शनादेवरामस्यहतंमामवधारय ॥ आत्मानंचहतंविद्धिहत्वासीतांसबांधवम् ॥ १८ ॥

आदि मृग गणोंकी नांई आगे प्रजा वृद्धिको प्राप्त नहीं होती ॥ १४ ॥अरे रावण ! तुम खोटी बुद्धिवाले हो इन्द्रियोंके वश हुए हो, कैडे स्वभाववाले हो, ऐसे जो तुम जिनके राजा हो वह समस्तही निशाचर अवश्यही मृत्युके ग्रास हो जांयगे ॥ १५ ॥ जिससे कि तुम ससैन्य भावना की हुई मृत्युसे भरे हुए शोचनीय हो, वैसेही तुम्हारा हमारे ऊपरभी यह घोरदुःख आन पडाहै ॥ १६ ॥ रामचंद्रजी हमको मारकर फिर तुम्हारा संहार करेंगे ! युद्ध करके शत्रुके हाथसे मारे जानेंपर हम तो कृतकृतार्थहो जांयगे ॥ १७ ॥ परन्तु तुम निश्चय जानों कि, हम तो रामको देख

कारण तुम वेगही शरणार्थी अपने भ्राताकी रक्षाके लिये दौडो ॥ ३ ॥ गाय बैल जिस प्रकार सिंहके वशमें पडताहै,तुम्हारे भइयाभी वैसेही राक्षसके वशमें पडेहैं। परन्तु लक्ष्मणजीको मृग मारनेको गमन करनेंके समय जो रामचंद्रजी आज्ञा देगयेथे उसको याद करके सीताजीसे इस प्रकार कहे जानें परभी रामचंद्रजीके समीप नहीं गये ॥ ४ ॥ तव सीताजी नितान्त क्षुभित होकर लक्ष्मणजीसे बोलीं कि हे लक्ष्मण ! तुम रामचंद्रजीके मित्र रूपी शत्रुहो ॥ ५ ॥ देखो तुम इस प्रकारकी अवस्थामेंभी उनकी रक्षा करनेंके लिये नहीं जाते। इस्से समझ पडा कि तुम हमको लेलेनेंके लिये रामचंद्रजीके विनाशकी कामना करतेहो ॥ ६ ॥ निश्चयही हमारे प्रति लुभानेंसे तुम उनके समीप नहीं जाते इसी कारणसे रामचन्द्रजीकी

रक्षसांवशमापन्नंसिंहानामिवगोवृषम् ॥ नजगामतथोक्तस्तुभ्रातुराज्ञायशासनम् ॥ ४ ॥ तमुवाचततस्तत्रक्षुभिताजन कात्मजा ॥ सौमित्रेमित्ररूपेणभ्रातुस्त्वमसिशत्रुवत् ॥ ५ ॥ यस्त्वमस्यामवस्थायांभ्रातरंनाभिपद्यसे ॥ इच्छसित्वं विनश्यंतंरामंलक्ष्मणमत्कृते ॥ ६ ॥ लोभात्तुमत्कृतेनूनंनानुगच्छसिराघवम् ॥ व्यसनंतेप्रियंमन्येस्नेहोभ्रातरिना स्तिते ॥ ७ ॥ तेनतिष्ठसिविश्रब्धंतमपश्यन्महाद्युतिम् ॥ किंहिसंशयमापन्नेतस्मिन्निहमयाभवेत् ॥ ८ ॥ कर्तव्य मिहतिष्ठंत्यायत्प्रधानस्त्वमागतः ॥ एवंब्रुवाणांवैदेहींबाष्पशोकसमन्विताम् ॥ ९ ॥ अब्रवील्लक्ष्मणस्त्रस्तांसीतांमृ गवधूमिव ॥ पन्नगासुरगंधर्वदेवदानवराक्षसैः ॥ १० ॥ अशक्यस्तववैदेहिभर्ताजेतुंनसंशयः ॥ देविदेवमनुष्येषुगंध र्वेषुपतत्रिषु ॥ ११ ॥ राक्षसेषुपिशाचेषुकिन्नरेषुमृगेषुच ॥ दानवेषुचघोरेषुनसविद्येतशोभने ॥ १२ ॥

यह विपद तुमको प्रिय लगतीहै । और तुमको उनसे कुछ स्नेह नहीं है ॥ ७ ॥ इसी कारण तुम महाद्युतिमान् रामचन्द्रजीको न देख करभी निश्चिन्त बैठे हो। किन्तु तुम जो रामचन्द्रजीके आधीनमें होकर वनमें आये हो। तो उनके यहां संशयापन्न होनेंसे ॥ ८ ॥ मुझसे यहां रहकर क्या कार्य होगा जब वैदेहीजीनें आँखोंमें आंसू भरकर यह कहा कि तुम्हारी तो यह दशा रही तो अब हम क्या करें ॥ ९ ॥ तव मृगीके समान डरी हुई सीताजीसे लक्ष्मणजी बोले कि हे विदेहकुमारी ! नाग, असुर, गन्धर्व, देव, दानव, राक्षस ॥ १० ॥ कोईभी आपके स्वामीको जीतनेंमें समर्थ नहींहैं; इसमें कुछभी सन्देह नहींहै । हे देवि ! मनुष्य, गन्धर्व, पक्षी ॥ ११ ॥ राक्षस, पिशाच, किन्नर, मृग, व अतिघोर इनमें

गलहो हम चलतेहैं ॥ ४ ॥ राक्षसपति रावण मारीचके यह वचन सुन परम हर्षित हो उस्से भली भांति भेंटा और यह वचन बोला ॥५॥ कि तुमनें हमारे अभिप्रायके अनुसार जब कार्य करनेंको कहा तब यही वचन तुम्हारा वीरोचित हुआ। पहले तुम एक साधारण मारीच राक्षसथे पर अब तुम हमारी समान हुए ॥ ६ ॥ अब तुम हमारे साथ शीघ्रही इस रत्नविभूषित अंतरिक्षमें टिके हुए रथपर जिसमें कि पिशाचोंकी समान गधे जुत रहेहैं बैठो ॥ ७॥ फिर वहां पहुंचकर विदेह राजकुमारी सीता को लुभाकर इच्छानुसार स्थानमें चल देना । तब हम राम लक्ष्मण स

प्रहृष्टस्त्वभवत्तेनवचनेनसराक्षसः ॥ परिष्वज्यसुसंश्लिष्टमिदंवचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥ एतच्छौटीर्ययुक्तंतेमच्छंदवश
वर्तिनः ॥ इदानीमसिमारीचःपूर्वमन्योहिराक्षसः ॥ ६ ॥ आरुह्यतामयंशीघ्रंखगोरत्नविभूषितः ॥ मयासहरथोयु
क्तःपिशाचवदनैःखरैः ॥ ७ ॥ प्रलोभयित्वावैदेहींयथेष्टंगतुमर्हसि ॥ तांशून्येप्रसभंसीतामानयिष्यामिमैथिली
म् ॥ ८ ॥ ततस्तथेत्युवाचैनंरावणंताटकासुतः ॥ ततोरावणमारीचौविमानमिवतंरथम् ॥ ९ ॥ आरुह्याययतुःशी
घ्रंतस्मादाश्रममंडलात् ॥ तथैवतत्रपश्यंतौपत्तनानिवनानिच ॥ १० ॥ गिरींश्चसरितःसर्वाराष्ट्राणिनगराणिच ॥ समे
त्यदंडकारण्यंराघवस्याश्रमंततः ॥ ११ ॥ ददर्शसहमारीचोरावणोराक्षसाधिपः ॥ अवतीर्यरथात्तस्मात्ततःकांच
नभूषणात् ॥ १२ ॥ हस्तेगृहीत्वामारीचंरावणोवाक्यमब्रवीत् ॥ एतद्रामाश्रमपदंदृश्यतेकदलीवृतम् ॥ १३ ॥

हित शून्य आश्रममें प्रवेश करके बल पूर्वक सीताको हर लावेंगे ॥८॥ऐसा सुनकर ताडका तनय मारीचने कहा कि बहुत अच्छा चलिये। तत्पश्चात् रावण व मारीच विमान समान उस रथपर चढ ॥ ९ ॥ जलदी से उस आश्रमसे चले और अनेक भांतिके पत्तन वन ॥ १० ॥ पर्वत नदी राज्य व नगरोंको देखते भालते दंडकारण्यमें आये जहां रामचंद्रजीका आश्रमथा ॥ ११ ॥ और आश्रमको मारीचके सहित रावणनें देखा और दोनों जने उस रत्न भूषित रथसे उतरे ॥ १२ ॥ और मारीचका हाथ पकडकर रावण कहनें लगा कि हे सखे! वनमें केलोंके वृक्षोंसें घि

जानकीजीके नेत्र लाल हो आये ॥ २० ॥ वह कठोर वचन सत्यवादी लक्ष्मणजीसे बोलीं कि रे नृशंस! कुलनाशक ! तुम श्रीरामचंद्र को मरवाकर दया करके हमारी रक्षा करनेंको तैयार हुए हो, इस कारणसे यह ध्यान आर्यजनोचित नहींहै ॥ २१ ॥ हमनें जाना कि रामचन्द्रजीकी यह बडी भारी विपद तुम्हारी परम प्यारी हुईहै इसी कारण तुम उनको विपदमें पडा हुआ देखकर ऐसा कहतेहो॥२२॥ हे लक्ष्मण ! तुम्हारी समान सदा क्रूर स्वभाव व गुप्त पापी शत्रुके मनमें जो ऐसा निन्दनीय पाप रहैगा तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?॥२३॥तुम्हारा स्वभाव बड़ा खोटा है रामचन्द्रजी जो अकेले वनको आनें लगे, तो हमारा लालच करके तुमभी अकेले ही उनके साथ आये । अथवा छिपकर

अब्रवीत्परुषंवाक्यंलक्ष्मणंसत्यवादिनम् ॥ अनार्यकरुणारंभनृशंसकुलपांसन ॥ २१ ॥ अहंतवप्रियंमन्येरामस्य व्यसनंमहत् ॥ रामस्यव्यसनंदृष्ट्वातेनैतानिप्रभाषसे ॥ २२ ॥ नैवचित्रंसपत्नेषुपापंलक्ष्मणयद्भवेत् ॥ त्वद्विधेषु नृशंसेषुनित्यंप्रच्छन्नचारिषु ॥ २३ ॥ सुदुष्टस्त्वंवनेराममेकमेकोनुगच्छसि ॥ ममहेतोःप्रतिच्छन्नःप्रयुक्तोभर तेनवा ॥ २४ ॥ तन्नसिद्ध्यतिसौमित्रेतवापिभरतस्यवा ॥ कथमिंदीवरश्यामंरामंपद्मनिभेक्षणम् ॥ २५ ॥ उपसंश्रित्यभर्तारंकामयेयंपृथग्जनम् ॥ समक्षंतवसौमित्रेप्राणांस्त्यक्ष्याम्यसंशयम् ॥ २६ ॥ रामंविनाक्ष णमपिनैवजीवामिभूतले ॥ इत्युक्तःपरुषंवाक्यंसीतयारोमहर्षणम् ॥ २७ ॥ अब्रवील्लक्ष्मणःसीतांप्रांजलिःसजि तेंद्रियः ॥ उत्तरंनोत्सहेवक्तुंदैवतंभवतीमम ॥ २८ ॥

भरतके भेजे हुए तुम स्वामीके साथ आये हुए हो ॥ २४ ॥ किन्तु हे लक्ष्मण ! तुमनें या भरतनें जो मनमें सोचाहै, वह सिद्ध नहीं होगा। क्योंकि हम पद्मपलाशलोचन, नीलोत्पलश्याम ॥ २५ ॥ श्रीरामचन्द्रजीकी स्त्री होकर किस प्रकारसे अन्यजनकी अभिलाषा करेंगी। इससे हे लक्ष्मण ! हम तुम्हारे सामने निश्चयही प्राण त्याग देंगी ॥ २६ ॥ क्योंकि रामचन्द्रजीके विना क्षण कालभी हम इस लोकमें प्राण धारण नहीं कर सकतीं। सीताजीके इस प्रकार रोमहर्षण कठोर वचन ॥ २७ ॥ सुन जितेन्द्रिय लक्ष्मणजी हाथ जोडकर उनसे बोले कि आप हमारी साक्षात्

पलके नये २ पत्ते खाता हुआ घूमने लगा ॥ २२ ॥ कभी केलोंकी बगियामें और कर्णिकारके वनमें प्रवेश करके और कभी श्रीसीताजीकी दृष्टिके सन्मुख जाकर इस प्रकार आश्रमके इधर उधर वह मृगमन्द गतिसे चलनें लगा ॥ २३ ॥ पीठपर सुवर्णके द्वारा चित्र विचित्र होनेंसे उसकाल इस महामृगकी अतिशय शोभा हुई थी, वह यथा सुखसे रामचंद्रजीके निकट घूमनें लगा ॥ २४ ॥ आश्रममें घूमनेंके समय कभी दौडता, कभी ठिठककर खडा होजाता कभी मुहूर्त भरतक आगेको आश्रममें चलता, कभी फिर झटपट लौट आता ॥ २५ ॥ कभी इधर उधर खेलता, कभी पृथ्वी पर लेट जाता,कभी आश्रमके द्वारपर आकर सुखसे चरते हुए मृग झुंडोंके साथ

कदलीगृहकंगत्वाकर्णिकारानितस्ततः ॥ तमाश्रमंमंदगतिंसीतासंदर्शनंततः ॥ २३ ॥ राजीवचित्रपृष्ठःसविरराज महामृगः ॥ रामाश्रमपदाभ्याशेविचचारयथासुखम्॥ २४ ॥ पुनर्गत्वानिवृत्तश्चविचचारमृगोत्तमः ॥ गत्वामुहूर्तंत्वरयापुनःप्रतिनिवर्तते ॥ २५ ॥ विक्रीडंश्चपुनर्भूमौपुनरेवनिषीदति ॥ आश्रमद्वारमागम्यमृगयूथानिगच्छति॥ २६ ॥ मृगयूथैरनुगतःपुनरेवनिवर्तते॥ सीतादर्शनमाकांक्षन्राक्षसोमृगतांगतः ॥ २७ ॥ परिभ्रमतिचित्राणिमंडलानिविनिष्पतन् ॥ समुद्वीक्ष्यचसर्वेतंमृगायेऽन्येवनेचराः ॥ २८ ॥ उपगम्यसमाघ्रायविद्रवंतिदिशोदश ॥ राक्षसःसोपितान्वन्यान्मृगान्मृगवधेरतः॥२९॥ प्रच्छादनार्थंभावस्यनभक्षयतिसंस्पृशन्॥तास्मिन्नेवततःकालेवैदेहीशुभलोचेन॥ ३० ॥

चरनें लगता ॥ २६ ॥ कभी मृगोंके साथही साथ आकर फिर सीताजीको दिखाई देनेंकी वांछासे फिर आश्रममें चला आता जानकीके दर्शनकी इच्छासे वह राक्षश मृग होगया ॥ २७ ॥ इस प्रकार वह मृगताको प्राप्त होकर विचित्र मंडल देखता कूद फांद करनें लगा इसकी कूद फांद देख और वनके मृग ॥ २८ ॥ उसके निकट आये और उसको सूंघतेही दशोंदिशाओंको भागनें लगे । मारीच यद्यपि सदा मृगोंके मारनें में रतथा ॥ २९ ॥ तथापि उसनें अपना भाव छिपानेंके लिये उनमृगोंको भक्षण नहीं किया केवल स्पर्श करनें लगा । इसी समय शुभ

भीजकर रोते २ लक्ष्मणजीसे बोलीं ॥ ३५ ॥ हे लक्ष्मण! रामके विना हम गोदावरीमें डूब मरेंगी अथवा फांसीसे प्राण त्याग करेंगी अथवा किसी ऊंचे पर्वत इत्यादिक पर चढकर वहांसे अपनी देहको नीचे गिरा देंगी ॥ ३६ ॥ या तीक्ष्ण विष पान करेंगी, अथवा अग्निमें प्रवेश करेंगी। तथापि श्रीरामचन्द्रजीके विना और किसी पुरुषको हम कभी स्पर्श नहीं करेंगी ॥ ३७ ॥ सीताजी इस प्रकार शोक युक्त होकर रोते २ लक्ष्मणजीसे ऐसा कहकर दुःखके मारे अपनीछाती पीटनें लगीं (सर्व राक्षसोंके नाश विना मेरी उदरपूर्ति न होगी यह शास्त्र की ध्वनि है) ॥ ३८ ॥ लक्ष्मणजीनें विशाल नयना जनकदुलारी सीताजीको महा आरत भावसे रोते देखकर बहुत समझाया बुझाया परन्तु फिर जानकी

गोदावरींप्रवेक्ष्यामिहीनारामेणलक्ष्मण ॥ आबंधिष्येऽथवात्यक्ष्येविषमेदेहमात्मनः॥ ३६ ॥पिबामिवाविषंतीक्ष्णंप्रवे
क्ष्यामिहुताशनम् ॥ नत्वहंराघवादन्यंकदापिपुरुषं स्पृशे ॥ ३७ ॥ इतिलक्ष्मणमाश्रुत्यसीताशोकसमन्विता ॥ पा
णिभ्यांरुदतीदुःखादुदरंप्रजघानह ॥ ३८ ॥ तामार्तरूपांविमनारुदंतींसौमित्रिरालोक्यविशालनेत्राम् ॥ आश्वासया
मासनचैवभर्तुस्तंभ्रातरंकिंचिदुवाचसीता ॥ ३९ ॥ ततस्तुसीतामभिवाद्यलक्ष्मणःकृतांजलिःकिंचिदभिप्रणम्य॥ अवे
क्षमाणोबहुशःसमैथिलींजगामरामस्यसमीपमात्मवान् ॥ ४० ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआ
रण्यकांडेपंचचत्वारिंश सर्गः॥४५॥ तयापरुषमुक्तस्तुकुपितोराघवानुजः॥सविकांक्षन्भृशंरामंप्रतस्थेनचिरादिव ॥१॥

जीनें अपने देवर लक्ष्मणजीसे और कुछ न कहा ॥ ३९ ॥ तिसके पिछे जितेन्द्रिय और विशुद्ध चित्त लक्ष्मणजी हाथ जोड प्रणाम कर कुछ एक विनती करते हुए और वारंवार उनकी ओर देखते दुःखित हो रामचन्द्रजीके निकट को चले ॥ ४० ॥ ❃ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि काव्ये पंडितज्वालाप्रसादमिश्र कृत भाषा टीकायांआर० पंचचत्वारिंशः सर्गः॥४५॥लक्ष्मणजी जानकीजीकी कटूक्तिसे पीडित हो क्रोधमें भर श्री

* कूर्म पुराणसे भी सिद्धहै कि जानकीजीकी यही प्रतिज्ञा पूर्णथी कि अन्य पुरुपको स्पर्शन करूंगी अग्निमें प्रवेश कर जाऊंगी इससेभी ध्वनि निकलतीहै कि जानकी अग्निमें प्रवेश कर गईथीं और यह मायाकी जानकीनें लक्ष्मणसे ऐसे वचन कहे क्योंकि मायासेही ऐसा होताहै

और लक्ष्मणजी दोनों जनोंनें इधर उधर देखते वहां आये और इस मृगको देखा ॥ ४ ॥ परन्तु लक्ष्मणजी मृगको देख शंकितहो श्रीरामचंद्र जीसे कहनें लगे कि महाराज ! हमें तो ऐसा समझ पडताहै कि यह मृग रूपी निशाचर मारीचहै ॥ ५ ॥ यह पापात्मा मारीच मृगरूप धारण करके परम हर्ष सहित आखेटको वनमें आये हुए राजा लोगोंको मारडाला करताहै ॥६॥ यह राक्षस मायाका जाननें वालाहै, इसनें मायाके बलसे इस प्रकारका मृगरूप धारण करलियाहै । हे पुरुषसिंह ! यह मृगरूप गन्धर्व नगरकी समान अब रमणीय और परम दीप्ति युक्तहै परन्तु वास्तवमें यह मृग नहींहै ॥ ७ ॥ हे रघुनंदन! इस प्रकार रत्न चित्रित मृगकभी पृथ्वी पर नहीं हो सकता । हे जगत्नाथ ! यह निश्चयही माया है

शंकमानस्तुतंदृष्ट्वालक्ष्मणोवाक्यमब्रवीत् ॥ तमेवैनमहंमन्येमारीचंराक्षसंमृगम् ॥ ५ ॥ चरंतोमृगयांहृष्टाःपापेनोपाधिनावने॥अनेननिहताराजानःपापरूपिणा॥६॥अस्यमायाविदोमायामृगरूपमिदंकृतम् ॥ भानुमत्पुरुषव्याघ्रगंधर्वपुरसन्निभम् ॥ ७ ॥ मृगोह्येवंविधोरत्नविचित्रोनास्तिराघव ॥ जगत्यांजगतीनाथमायैषाहिनसंशयः ॥ ८ ॥ एवंब्रुवाणंकाकुत्स्थंप्रतिवार्यशुचिस्मिता ॥ उवाचसीतासंहृष्टाच्छद्मनाहृतचेतना ॥ ९ ॥ आर्यपुत्राभिरामोसौमृगोहरतिमेमनः ॥ आनयैनंमहाबाहोक्रीडार्थंनोभविष्यति ॥ १० ॥ इहाश्रमपदेऽस्माकंबहवःपुण्यदर्शनाः॥ मृगाश्चरंतिसहिताश्चमराःसृमरास्तथा ॥ ११ ॥ ऋक्षाःपृषतसंघाश्चवानराःकिन्नरास्तथा ॥ विहरंतिमहाबाहोरूपश्रेष्ठामहाबलाः ॥ १२ ॥ नचान्यःसदृशोराजन्दृष्टःपूर्वंमृगोमया ॥ तेजसाक्षमयादीप्त्यायथाऽयंमृगसत्तमः ॥ १३ ॥

इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ८ ॥ जब लक्ष्मणजी इस प्रकार कहनें लगे तब कुछ एक मुस्कोंई हुई सीताजीनें राक्षसके छलसे मोहितहो लक्ष्मणजीको इस कहनेसे रोक दिया और आप परम हर्षितहो बोलीं ॥९ ॥हे आर्यपुत्र! इस अभिराम मृगनें हमारे मनको हरण कियाहै हे महाबाहो! इसको पकड लाओ हम इस मृगके साथ खेला करेंगी ॥ १० ॥ क्योंकिहमारे इस पुण्याश्रममें बहुतसे पुण्यदर्शन मृगगण चमर सृमर घूमा करतेहैं, जिनकी काली और सफेद पूछ होतीहै ॥ ११ ॥ और ऋक्ष, पृषत वानर, व किन्नरादिभी घूमतेहैं यह सब महाबलवान् और रूपवान् हैं ॥ १२ परन्तु हे राजन्! पहले कभी इस प्रकारका मृग हमारी दृष्टिमें नहीं आया, तेज क्षमा कान्तिमें यह मृगोंमें श्रेष्ठ ज्ञात होताहै ॥ १३ ॥

ऐसा टीप टापका संन्यासी वेश बनाया, जिस प्रकार तिनकोसे कोई कुएँको पाटै, और वहां आनें वाला चट उसमें गिरे ॥ १० ॥ ऐसा छद्मवेशी साधुका वेश धारण किये हुए रावण उन यशस्विनी रामदयिता जानकीजीकी ओर देखकर खड़ा हुआ ॥ ११ ॥ सुन्दर स्वरूप, दशनपंक्ति जिनकी मनोहर, वदन पूर्णचन्द्रसमान जो जानकीजी पर्णशालामें बैठी अपने पतिके शोकसे पीडित होरहीथीं ॥ १२ ॥ तिन कमलनेत्रा पीताम्बर धारण किये जानकीजीके निकट वह निशाचर हर्ष सहित पहुंचा ॥ १३ ॥ऐसी जानकीजीको देख रावण मारके बाणसे माराहुआ पीडित हुआ उस समय रावणने वेदका उच्चारण करके जानकीजीकी प्रशंसा करके कहा॥ १४॥तुम तीनों लोकमें उत्तमहो; और पद्मिनीकी समान मनोहर कमल फूलों

अतिष्ठत्प्रेक्ष्यवैदेहींरामपत्नींयशस्विनीम् ॥ तिष्ठन्संप्रेक्ष्यचतदापत्नींरामस्यरावणः ॥ ११ ॥ शुभांरुचिरदंतोष्ठींपूर्णचंद्रनिभाननाम् ॥ आसीनांपर्णशालायांबाष्पशोकाभिपीडिताम् ॥ १२ ॥ सतांपद्मपलाशाक्षींपीतकौशेयवासिनीम् ॥ अभ्यगच्छतवैदेहींहृष्टचेतानिशाचरः ॥ १३ ॥ दृष्ट्वाकामशराविद्धोब्रह्मघोषमुदीरयन् ॥ अब्रवीत्प्रश्रितंवाक्यंरहितेराक्षसाधिपः ॥ १४ ॥ तामुत्तमांत्रिलोकानांपद्महीनामिवश्रियम् ॥ विभ्राजमानांवपुषारावणःप्रशशंसह ॥ १५ ॥ रौप्यकांचनवर्णाभेपीतकौशेयवासिनि ॥ कमलानांशुभांमालांपद्मिनीवचबिभ्रती ॥१६ ह्रीःश्रीःकीर्तिःशुभालक्ष्मीरप्सरावाशुभानने ॥ भूतिर्वात्वंवरारोहेरतिर्वास्वैरचारिणी ॥ १७ ॥ समाःशिखरिणःस्निग्धाःपांडुरादशनास्तव ॥ विशालेविमलेनेत्ररक्तांतेकृष्णतारके ॥ १८ ॥

से समाकुल होरहीहो ऐसी प्रशंसा रावणनें की ॥ १५ ॥ फिर कहा कि हेशुभानने! तुम्हारा वर्ण विशुद्ध कांचनकी सदृशहै तिसपर तुम पीले वर्णके रेशमीन वस्त्र पहरेहो, कमल फूलोंकी माला गलेमें धारण कियेहो ॥ १६॥हेवरारोहे! तुम ह्री, श्री, कीर्ति, लक्ष्मी, अप्सरा, अथवा भूति, या साक्षात् रतिकी समान जो वनमें इच्छानुसार विहार करती हो सो बतलाओ कि तुम कौन हो ॥ १७ ॥ तुम्हारे सब दांत परस्पर समानहैं, उनका अग्रभाग कुन्दकी कोर सदृश मनोहर और श्वेत वर्णहै । तुम्हारे नेत्र युगल विशाल, निर्मल, अरुणाई लिये, और कृष्णताराओंकरके युक्तहैं ॥ १८ ॥

समान प्रकाशमान ॥ २२ ॥ रूपसे रामचंद्रजीके हृदयमेंभी विस्मय इसकी अवाई हुई सीताजीके ऐसे वचन सुनकर और उस अद्भुत मृगको देख ॥ २३ ॥ तिसके शरीरकी सुन्दरताईसे रामचंद्रजी लुभागये, तिस पे सीताजीनें प्रेरणाकी इस कारण हर्षित चित्त हो श्रीरामचंद्रजी भ्राता लक्ष्मणसे बोले ॥ २४ ॥ कि हे लक्ष्मण! अवलोकन करो इस मृगका श्रेष्ठ रूप देखकर जानकीजीकी अभिलाषा उल्लसित हो उठीहै। अतएव इस समय इसका प्राण धारण करना असंभव है ॥ २५ ॥ हे लक्ष्मण! क्या वनमें, क्या नन्दनमें, क्या चैत्ररथकाननमें, अथवा पृथ्वीके किसी स्थानमेंभी इसके समान मृग नहीं है ॥ २६ ॥ देखो इसके रोमोंकी पंक्तियें कुछ सीधी कुछ वंकिमाकार कैसी शोभाको प्राप्त होरही हैं और

बभूवराघवस्यापिमनोविस्मयमागतम् ॥ इतिसीतावचःश्रुत्वादृष्ट्वाचमृगमद्भुतम् ॥ २३ ॥ लोभितस्तेनरूपेणसीतयाचप्रचोदितः ॥ उवाचराघवोहृष्टोभ्रातरंलक्ष्मणंवचः ॥ २४ ॥ पश्यलक्ष्मणवैदेह्यास्पृहामुल्लसितामिमाम् ॥ रूपश्रेष्ठतयाह्येषमृगोऽद्यनभविष्यति ॥ २५ ॥ नवनेनंदनोद्देशेनचैत्ररथसंश्रये ॥ कुतःपृथिव्यांसौमित्रेयोऽस्यकश्चित्समोमृगः ॥ २६ ॥ प्रतिलोमानुलोमाश्चरुचिरारोमराजयः ॥ शोभंतेमृगमाश्रित्यचित्राःकनकबिंदुभिः ॥ २७ ॥ पश्यास्यजृंभमाणस्यदीप्तामग्निशिखोपमाम् ॥ जिह्वांमुखान्निःसरंतींमेघादिवशतह्रदाम् ॥ २८ ॥ मसारगल्वर्कमुखःशंखमुक्तानिभोदरः ॥ कस्यनामानिरूप्योसौनमनोलोभयेन्मृगः ॥२९॥कस्यरूपमिदंदृष्ट्वाजांबूनदमयप्रभम्॥नानारत्नमयंदिव्यंनमनोविस्मयंव्रजेत् ॥३०॥मांसहेतोरपिमृगान्विहारार्थंचधन्विनः॥घ्नंतिलक्ष्मणराजानोमृगयायांमहावने३१

तिसपर उसमें सुवर्ण बिन्दुओंके चित्रित होनेंसे औरभी सुन्दरताई आई है ॥ २७ ॥ देखो भइया! मेघसें बिजली जिस प्रकार चमकती है वैसेही जमुहाई लेनेंके समय उसके मुखसे अग्निकी शिखाके समान प्रदीप्त जीभ निकलती है ॥ २८ ॥ इसका मुखमंडल इन्द्रनीलमणि निर्मित पान पात्रके आकारसाहै। पेट शंख और मोतीकी समानहै, और इसके स्वरूपका निर्णय करना दुःसाध्यहै, इसको देखनेंसे किसका मन मोहित नहीं होता? ॥ २९ ॥ इसका रूप पक्के सुवर्णकी प्रभासे परिपूर्ण है, और नाना प्रकारके रत्नमयहै ऐसा दिव्य स्वरूप दृष्टि आनेंसे किसका मन विस्मयको प्राप्त नहीं होता? ॥ ३० ॥ धनुर्द्धारी नृपतिगण महा वनमें शिकार करनेंके लिये प्रवृत्त हो मांसके लिये अथवा विहारके लिये

मालायें,श्रेष्ठ सुगन्धियें श्रेष्ठ वस्त्रोंके तुम भोगनें योग्यहो॥२६॥हेअसितेक्षणी ! फिर तुम्हारे लिये स्वामीभी तो श्रेष्ठही चाहिये, हेशुचिस्मिते! रुद्र गण अथवा मरुद्गण ॥ २७ ॥ या आठ वसुओंमेंसे किसीकी स्त्री हो, हे वरारोहे! हमको तौ तुम स्पष्टही देवता प्रतीत होतीहो, क्योंकि यहां गन्धर्व, देवता, किन्नर कोई नहीं आने पाते ॥ २८॥ यहां वनमें तो राक्षसगणही वास किया करतेहैं; फिर तुम यहां किस प्रकारसे आईहो; यहां तो वनमें वानर, सिंह, चीता, व्याघ्र, भेड़िया, मृग, ॥२९॥ गेंडे ऋक्षादि जीव रहतेहैं. सो इनको देखकर तुम क्यों नहीं डरतीहो? और मतवाले, कठोर मन शी

भर्तारंचवरंमन्येत्वद्युक्तमसितेक्षणे ॥ कात्वंभवसिरुद्राणांमरुतांवाशुचिस्मिते ॥ २७ ॥ वसूनांवावरारोहेदेवताप्रतिभासिमे ॥ नेहगच्छंतिगंधर्वानदेवानचकिन्नराः ॥ २८ ॥ राक्षसानामयंवासःकथंतुत्वमिहागता ॥ इहशाखामृगाःसिंहाद्वीपिव्याघ्रमृगावृकाः ॥ २९ ॥ ऋक्षास्तरक्षवःकंकाःकथंतेभ्योनबिभ्यसे ॥ मदान्वितानांघोराणांकुंजराणांतरस्विनाम् ॥ ३० ॥ कथमेकामहारण्येनबिभेषिवरानने ॥ कासिकस्यकुतश्चत्वंकिंनिमित्तंचदंडकान् ॥ ३१ ॥ एकाचरसिकल्याणिघोरान्राक्षससेवितान् ॥ इतिप्रशस्तावैदेहीरावणेनमहात्मना ॥ ३२ ॥ द्विजातिवेषेणहितंदृष्ट्वारावणमागतम् ॥ सर्वैरतिथिसत्कारैःपूजयामासमैथिली ॥ ३३ ॥ उपानीयासनंपूर्वंपाद्येनाभिनिमंत्र्यच ॥ अब्रवीत्सिद्धमित्येवतदातंसौम्यदर्शनम् ॥ ३४ ॥

घ्र चलनेंवाले हाथियोंसे ॥ ३० ॥ तुम अकेली कैसे- इस महावनमें नहीं डरतीहो, हे वरानने! तुम कौनहो, किसकी स्त्री हो, कहांसे आईहो, और किस कारण इस दंडकारण्यमें ॥ ३१ ॥अकेली विचरतीहो; क्योंकि यह जगह घोर राक्षसों करके युक्तहै इस प्रकारसे महात्मा रावणने वैदेहीजीकी प्रशंसाकी ॥ ३२ ॥ उसको ब्राह्मण वेष धारण किये आया हुआ देख जानकीजीनें यथाविधि अतिथिसत्कारसे उसकी पूजा की ॥ ३३ ॥ प्रथम बैठनेंके लिये आसन दिया फिर चरण धोनेंको जल, पुनः फलाहारादिक जो रक्खेथे वह सौम्यदर्शन रावणको निवेदन किये ॥ ३४ ॥

राजा ओंको संहार कियाहै। इस कारण इस मृगको वधकरनाही कर्तव्यहै ॥ ४० ॥ पेटमें रहतेही हुए जिस प्रकार खिचडीकी गर्भ अपनी माताको मार डालताहै; वैसेही पूर्व समय इस वनमें राक्षस वातापिनेंभी तपस्वी ब्राह्मणोंके पेटमें प्रवेश करके उनको संहार किया करता था ॥ ४१ ॥ बहुत काल पीछे किसी समय वह वातापि तेजस्वी महामुनि अगस्त्यजीको प्राप्त होकर उनके द्वारा पचाया गयाथा ॥ ४२ ॥ फिर जबकि श्राद्धके पूर्ण होनेउपरान्त वातापिको राक्षस रूप धारण करनेंका इच्छुक देख भगवान् अगस्त्यजी मुसकाय कर बोले ॥ ४३ ॥ वातापि! तूनें अपने तेजसे ज्ञानरहित हो इस जीव लोकमें अनेक श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको मारडालाहै, इसी कारणसे हमनें तुमको पचाडाला ॥ ४४ ॥

पुरस्तादिहवातापिःपरिभूयतपस्विनः ॥ उदरस्थोद्विजान्हंतिस्वगर्भोश्वतरीमिव ॥ ४१ ॥ सकदाचिच्चिराल्लोकेआससादमहामुनिम्॥अगस्त्यंतेजसायुक्तंभक्ष्यस्तस्यबभूवह॥४२॥समुत्थानेचतद्रूपंकर्तुकामंसमीक्ष्यतम् ॥उत्स्मयित्वातुभगवान्वातापिमिदमब्रवीत् ॥ ४३ ॥ त्वयाऽविगण्यवातापेपरिभूताश्चतेजसा ॥जीवलोकेद्विजश्रेष्ठास्तस्मादसिजरांगतः ॥ ४४ ॥ तद्रक्षोपिनभवेदेववातापिरिवलक्ष्मण ॥ मद्विधंयोतिमन्येतधर्मनित्यंजितेंद्रियम् ॥ ४५ ॥ भवेद्धतोयंवातापिरगस्त्येनेवमागतः॥इहत्वंभवसन्नद्धोयंत्रितोरक्षमैथिलीम् ॥ ४६ ॥ अस्यामायत्तमस्माकंयत्कृत्यंरघुनंदन॥ अहमेनंवधिष्यामिग्रहीष्याम्यथवामृगम् ॥ ४७ ॥ यावद्गच्छामिसौमित्रेमृगमानयितुंद्रुतम् ॥ पश्यलक्ष्मणवैदेह्यामृगत्वचिगतांस्पृहाम् ॥ ४८ ॥

हे लक्ष्मण! जो हमारी समान धर्म निरत और जितेन्द्रिय पुरुषका निरादर करताहै; उस राक्षसके प्राण वातापिही समान नष्ट होजाते हैं ॥ ४५ ॥ अतएव मारीच इस आश्रममें आकर अगस्त्यजी करके वातापिकी नांई हमारे द्वारा मारडाला जायगा। इस समय तुम कवच इत्यादि बांधकर यत्न सहित सीताजीकी रक्षा करो ॥ ४६ ॥ हे रघुनंदन! हमारा कर्त्तव्य कार्य जानकीके आधीनहै इसलिये तुम सावधानीसे यहां टिके रहो, हम इस मृगको मारही डालेंगे, अथवा जीता हुआ पकड लावेंगे ॥ ४७ ॥ हे लक्ष्मण! इस मृग चर्म लेनेकी,जानकीको

विवाह होनेंके पीछे इक्ष्वाकुवंशियोंकी राजधानी अयोध्यानगरीमें बारह वर्षतक रहकर पूर्णमनोरथहो अनेक प्रकारके मनुष्योंको दुर्लभ सुख ह
मनें भोगे ॥ ४ ॥ फिर तेरह वर्षमें राजा दशरथजीनें मंत्रिगणोंके साथ सलाह करके रामचंद्रजीके अभिषेक करनेंका उद्योग किया ॥ ५ ॥ उनकी
आज्ञानुसार सब अभिषेककी तइयारियां होनें लगीं उस समय हमारी माननीया सासु कैकेयीनें अपनें स्वामी राजा दशरथजीसे दो वर मांगे ॥ ६॥
कैकेयीजीनें अपनी कृतिके बलसे श्वशुरको धर्मके वशमें करके हमारे स्वामी रामचंद्रजीको बनवास, और भरतजीको अभिषेक, यह दो
वर नृपश्रेष्ठ सत्यप्रतिज्ञ महाराज दशरथजीसे मांगे ॥ ७ ॥ और उन्होंने सत्यप्रतिज्ञ, नृपतिश्रेष्ठ राजा दशरथजी अपनें स्वामीसे

उषित्वाद्वादशसमाइक्ष्वाकूणांनिवेशने ॥ भुंजानामानुषान्भोगान्सर्वकामसमृद्धिनी ॥ ४ ॥ तत्रत्रयोदशेवर्षेराजाऽमं
त्रयतप्रभुः ॥ अभिषेचयितुंरामंसमेतोराजमंत्रिभिः ॥ ५ ॥ तस्मिन्संभ्रियमाणेतुराघवस्याभिषेचने ॥ कैकेयी
नामभर्तारंममार्यायाचतेवरम् ॥६॥ परिगृह्यतुकैकेयीश्वशुरंसुकृतेनमे ॥ ममप्रव्राजनंभर्तुर्भरतस्याभिषेचनम् ॥७॥
द्वावयाचतभर्तारंसत्यसंधंनृपोत्तमम् ॥ नाद्यभोक्ष्येनचस्वप्स्येनपास्येचकदाचन ॥ ८ ॥ एषमेजीवितस्यांतोरामोयद
भिषिच्यते ॥ इतिब्रुवाणांकैकेयींश्वशुरोमेसपार्थिवः ॥ ९ ॥ अयाचतार्थैरन्वर्थैर्नचयाञ्चांचकारसा ॥ ममभर्तामहाते
जावयसापंचविंशकः ॥ १० ॥ अष्टादशहिवर्षाणिममजन्मनिगण्यते ॥ रामेतिप्रथितोलोकेसत्यवाञ्छीलवाञ्छु
चिः ॥ ११ ॥ विशालाक्षोमहाबाहुःसर्वभूतहितेरतः ॥ कामार्तश्चमहाराजःपितादशरथःस्वयम् ॥ १२ ॥

दो वर मांगे और यहभी कहा कि जो रामचंद्रजीका अभिषेक होगा, तो हम किसी प्रकारसे भी भोजन पान वा शयन न करेंगी ॥ ८ ॥ और यही
हमारे जीवनका अंत होजायगा जो रामचंद्रजीका अभिषेक हुआ तो हम न जियेंगी । जब कैकेयीनें इस प्रकार कहा तो हमारे श्वशुर महाराज
दशरथजीने ॥ ९ ॥ उनसे बहुत और धनादि देनेंकी प्रार्थना की परन्तु उन कैकेयीजीनें न मानी उस समय महा तेजवान हमारे स्वामी
पचीस वर्षके ॥ १० ॥ और हमारी आयु जन्मसे गणना करके अठारह वर्षकी थी, हमारे स्वामी रामनामसे विख्यात हैं, वह सत्यवान, सुशील, निर्मल
स्वभाव ॥ ११ ॥ विशालनेत्र, सर्व प्राणियोंके हितकारी महाबाहु हैं परन्तु इनके पिता महाराज दशरथजी बडे कामी थे ॥ १२ ॥

कभी वह मृग शारंगपाणि रामको वारंवार देखकर वनमें दौडता कभी कुलांच मारकर दूर हो रहता॥ ५ ॥ कभी शंकित और भ्रान्त चित्त होकर मानों आकाशको चला जायगा ऐसी छलांग मारता, कभी अदृश्य होजाता, कभी दिखाई पडने लगता ॥ ६ ॥ और कभी छिन्न भिन्न मेघ समूहमें घिरे हुए शारदीय चंद्र मंडलकी समान मुहूर्त भरमें अदृश्य होजाता और मुहूर्तमात्रमेंही दूर दिखाई देता ॥ ७ ॥ इस प्रकारसे मृगरूपी मारीच छल बलकर दीखता छिपता रामचंद्रजीको आश्रमसे बहुत दूर ले गया ॥ ८ ॥ रामचंद्रजी उसकी मायासे मोहित और नितान्त अवश होकर क्रोधसे घिरे और बहुतही थक कर एक पेडकी छायाके नीचे हरी दूबके खेतमें बैठ गये ॥ ९ ॥

अवेक्ष्यावेक्ष्यधावंतंधनुष्पाणिर्महावने ॥ अतिवृत्तमिवोत्पाताल्लोभयानंकदाचन ॥ ५ ॥ शंकितंतुसमुद्भ्रांतमुत्पतंतमिवांबरम् ॥ दृश्यमानमदृश्यंचवनोद्देशेषुकेषुचित् ॥ ६ ॥ छिन्नाभ्रैरिवसंवीतंशारदंचंद्रमंडलम् ॥ मुहूर्तादेवददृशे मुहुर्दूरात्प्रकाशते॥ ७ ॥ दर्शनादर्शनेनैवसोऽपाकर्षतराघवम् ॥ सदूरमाश्रमस्यास्यमारीचोमृगतांगतः ॥८॥ आसीत्क्रुद्धस्तुकाकुत्स्थोविवशस्तेनमोहितः ॥ अथावतस्थेसुश्रांतश्छायामाश्रित्यशाद्वले ॥ ९ ॥ सतमुन्मादयामासमृगरूपोनिशाचरः ॥ मृगैःपरिवृतोऽथान्यैरदूरात्प्रत्यदृश्यत ॥ १० ॥ ग्रहीतुकामंदृष्ट्वातंपुनरेवाभ्यधावत ॥ तत्क्षणादेवसंत्रासात्पुनरंतर्हितोभवत् ॥ ११ ॥ पुनरेवततोदूराद्वृक्षखंडाद्विनिसृतः ॥ दृष्ट्वारामोमहातेजास्तंहंतुंकृतनिश्चयः ॥ १२॥ भूयस्तुशरमुद्धृत्यकुपितस्तत्रराघवः ॥ सूर्यरश्मिप्रतीकाशंज्वलंतमरिमर्दनम् ॥ १३ ॥

मृगरूपी मारीचनें उनको उन्मादित करदियाथा, वह मारीच फिर अन्यमृगोंके साथ बहुत निकटही रामचन्द्रजीको दृष्टि आया ॥ १० ॥ वह मारीच राक्षस श्रीरामचन्द्रजीको अपनें पकडनेका अभिलाषी जानकर दौडा । और मारे भयके उसी समय फिर अन्तर्ध्यान होगया ॥ ११ ॥ और बहुत दूर जाकर फिर वृक्ष समूहोंके नीचे दिखाई दिया, महातेजवान् रामचन्द्रजी यह देखकर अब उस मृगका मार डालनाही निश्चय करते हुए ॥ १२ ॥ उन्होंनें रोषमें भरकर फिर तरकशसे सूर्यकी किरणोंकी समान शत्रुका नाश करनेंवाला प्रज्वलित एक बाण निकाला ॥ १३ ॥

दंडकारण्यमें आये ॥ २१ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ! अब हम तीनजन कैकेयीके कारण राज्यभ्रष्ट होकर अपने तेजके प्रभावसे गंभीर वनमें विचरण करते हैं। हे द्विजश्रेष्ठ! एक मुहूर्त भर विश्रामकरो ॥ २२ ॥ अभी हमारे स्वामी बहुत सारे वनफल, मूल, और, रुरु, वराह व गोधा वध करके बहुत मांस द्रव्य ले यहां आते होंगे जब वह आवेंगे तब आपका भली भांतिसे सत्कार होगा इस्से विराजिये ॥ २३ ॥ इस समय आप अपना नाम. गोत्र और वंश सत्यरही कहिये हे द्विज! किस कारण से आप इस दंडकारण्यमें अकेले घूमतेहैं ॥ २४ ॥ जब रामभार्या सीताने इस प्रकारके वचन कहे तो महा बलवान् राक्षसराज रावण उनको तीखा उत्तर देता हुआ बोला ॥ २५ ॥ हे जानकि! सुर असुर और मनुष्यसहित समस्त

विचरामद्विजश्रेष्ठवनंगंभीरमोजसा ॥ समाश्वसमुहूर्तंतुशक्यंवस्तुमिहत्वया ॥ २२ ॥ आगमिष्यतिमेभर्तावन्यमादा
यपुष्कलम् ॥ रुरून्गोधान्वराहांश्चहत्वादायामिषंबहु ॥ २३ ॥ सत्वंनामचगोत्रंचकुलमाचक्ष्वतत्त्वतः ॥ एकश्चदंडका
रण्येकिमर्थंचरसिद्विज ॥ २४ ॥ एवंब्रुवत्यांसीतायांरामपत्न्यांमहाबलः ॥ प्रत्युवाचोत्तरंतीव्रंरावणोराक्षसाधि
पः ॥ २५ ॥ येनवित्रासितालोकाःसदेवासुरमानुषाः ॥ अहंसरावणोनामसीतेरक्षोगणेश्वरः ॥ २६ ॥ त्वांतुकांचन
वर्णाभांदृष्ट्वाकौशेयवासिनीम् ॥ रतिंस्वकेषुदारेषुनाधिगच्छाम्यनिंदिते ॥ २७ ॥ बह्वीनामुत्तमस्त्रीणामाहृतानामि
तस्ततः ॥ सर्वासामेवभद्रंतेममाग्रमहिषीभव ॥ २८ ॥ लंकानामसमुद्रस्यमध्येमममहापुरी ॥ सागरेणपरिक्षिप्तानि
विष्टागिरिमूर्धनि ॥ २९ ॥ तत्रसीतेमयासार्द्धंवनेषुविचरिष्यसि ॥ नचास्यवनवासस्यस्पृहयिष्यसिभामिनी ॥ ३० ॥

लोक जिसके डरके मारे थर २ कांपतेहैं हम वही राक्षसोंके राजा रावणहैं ॥ २६ ॥ तुम्हारा लावण्य कांचनकी समानहै और तुम रेशमी वस्त्र पहररहीहो हे अनिन्दते! तुमको देखकर अपनी स्त्रियोंमें हमारा अब कुछभी अनुराग नहीं रहा ॥ २७ ॥ हम बहुत सारी उत्तम स्त्रियें अनेक स्थानोंसे हर कर लायेहैं सो तुम उन समस्तके बीचमें पटरानी बनो ॥ २८ ॥ तुम्हारा मंगलहो हे जानकि! चारो तरफ समुद्रसे घिरी हुई पर्वतके शिर त्रिकूट पर लंका नामक जो नगरीहै वह हमारीही है ॥ २९ ॥ तुम वहां हमारे साथ महावनोंमें विचरण किया करोगी. हे

मचंद्रजीनें देखा और मनही मनमें सीता और लक्ष्मणके वचन याद करकै आश्रमकी ओर लौटे ॥ २२ ॥ आश्रमको लौटनेंके समय विचारनें लगे कि लक्ष्मणजीनें पहलेही कहाथा कि यह मारीचकी मायाहै । उनकीही बात इस समय सत्य हुई । यथार्थेही मारीचको हमनें मारडाला ॥२३॥ इस समय मारीचनें " हा सीते ! हा लक्ष्मण " बडे ऊंचे शब्दसे यह कह कर प्राण त्याग कियेहैं; न जाने सीता इस शब्दको सुनकर क्या करैंगी ॥ २४ ॥ अथवा महाबाहु लक्ष्मणजी किस अवस्थाको प्राप्त होंगे? इस प्रकार चिन्ता करते २ धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीके रोम खडे होगये॥२५॥ उस काल मृगरूपी राक्षसको मार डालकर और इसका इस प्रकारचिल्लाना सुनकर विषादके मारे तीव्र भयसे रामचंद्रजी भीत हुए ॥ २६॥

मारीचस्यतुमायैषापूर्वोक्तालक्ष्मणेनतु ॥ तत्तथाह्यभवच्चाद्यमारीचोऽयंमयाहतः ॥ २३ ॥ हासीतेलक्ष्मणेत्येवमाक्रुश्यतुमहास्वनम् ॥ ममारराक्षसःसोऽयंश्रुत्वासीताकथंभवेत् ॥ २४ ॥ लक्ष्मणश्चमहाबाहुःकामवस्थांगमिष्यति ॥ इतिसंचिंत्यधर्मात्मारामोहृष्टतनूरुहः ॥ २५ ॥ तत्ररामंभयंतीव्रमाविशेशविषादजम् ॥ राक्षसंमृगरूपंतंहत्वाश्रुत्वाचतत्स्वनम् ॥ २६ ॥ निहत्यपृषतंचान्यंमांसमादायराघवः ॥ त्वरमाणोजनस्थानंससाराभिमुखंतदा ॥ २७ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआर० चतुश्चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४४ ॥ ॥ छ ॥ आर्तस्वरंतुतंभर्तुर्विज्ञायसदृशंवने ॥ उवाचलक्ष्मणंसीतागच्छजानीहिराघवम् ॥ १ ॥ नहिमेजीवितंस्थानेहृदयंवावतिष्ठते ॥ क्रोशतःपरमार्तस्यश्रुतःशब्दोमयाभृशम्॥२॥आक्रंदमानंतुवनेभ्रातरंत्रातुमर्हसि॥ तंक्षिप्रमभिधावत्वंभ्रातरंशरणैषिणम्३ ॥

तिसके पीछे वह एक और मृगको मारकर और उसका मांस ग्रहण करकै शीघ्रतासे जनस्थानकी ओर चले ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥ यहां आश्रममें वनके मध्य अपने स्वामीकी समान बहु करुणाका शब्द सुनकर सीताजी लक्ष्मणसे बोली जाकर देख आओ रामचंद्रजीको क्या हुआ?॥ १ ॥ वह महाआरत वचनसे चिल्ला रहेहैं यह शब्द सुनकर हमारा मन प्राण अपने२ ठिकाने नहींहै ॥ २ ॥ वनके बीच ऊंचें स्वरसे रोते हुए अपने भ्राताका उद्धार करना तुमको अवश्य कर्तव्यहै । इस

सकता ऐसेही श्रीरामचंद्रजीके तेज रूप अग्निसे घिरी हमको तुम पानेंकी सामर्थ्य नहीं रखते ॥३७॥ अरे अभागे राक्षस! जब कि तैंनें रघुनंदन श्री रामचंद्रजीकी भार्याके हरनेंका अभिलाष कियाहै, तब तू निश्चयही सब वृक्षोंको सुवर्णमय देखता होगा (स्वप्नमें सोनेका वृक्ष देखना मृत्युरूपहै) अर्थात् तुमको हमारा प्राप्त करना ऐसा दुर्लभहै जैसे कोई दरिद्र सुवर्णके सहस्रों पेड अपनें गृहमें देखनेकी इच्छाकरै ॥ ३८ ॥ मृगारि शीघ्रगामी, और बडे क्षुधित सिंहके मुखसे या विषधर सर्पके मुखसे तुम दांत निकालनेंकी इच्छा करतेहो ॥ ३९ ॥ तुम पर्वतवर मन्दराचलको भुजासे उत्पाटन करना चाहतेहो, और कालविष पीकरभी इस शरीर सहित कुशल जाया चाहतेहो ॥ ४० ॥ क्या तुम सूची (सुई) से अपने नेत्रोंके

पादपान्कांचनान्नूनंबहून्पश्यसिमंदभाक् ॥ राघवस्यप्रियांभार्यांयस्त्वमिच्छसिराक्षस ॥ ३८ ॥ क्षुधितस्यचासिं हस्यमृगशत्रोस्तरस्विनः ॥ आशीविषस्यवदनाद्दंष्ट्रामादातुमिच्छसि ॥ ३९ ॥ मंदरंपर्वतश्रेष्ठंपाणिनाहर्तुमिच्छ सि ॥ कालकूटंविषंपीत्वास्वस्तिमान्गंतुमिच्छसि ॥ ४० ॥ अक्षिसूच्याप्रमृजसिजिह्वयालेढिचक्षुरम् ॥ राघवस्यप्रियां भार्यामधिगंतुंत्वमिच्छसि ॥ ४१ ॥ अवसज्ज्यशिलांकंठेसमुद्रंतर्तुमिच्छसि ॥ सूर्यचंद्रमसौचोभौपाणिभ्यांहर्तुमि च्छसि ॥ ४२ ॥ योरामस्यप्रियांभार्यांप्रधर्षयितुमिच्छसि ॥ अग्निंप्रज्वलितंदृष्ट्वावस्त्रेणाहर्तुमिच्छसि ॥ ४३ ॥ कल्याणवृत्तांयोभार्यांरामस्याहर्तुमिच्छसि ॥ अयोमुखानांशूलानांमध्येचरितुमिच्छसि ॥ रामस्यसदृशींभार्यां योऽधिगंतुंत्वमिच्छसि ॥ ४४ ॥

खुजानेंकी इच्छा करतेहो, या छुरेकी धारसे अपनी रसनाको चाटना अच्छा समझतेहो; क्योंकि जो तुम हमें श्रीरामचंद्रजीकी परम प्यारी स्त्री नारी हमको पानेंकी इच्छा करतेहो ॥ ४१ ॥ तुम ग्रीवामें पर्वतका शिखरबांध समुद्र उतरना विचारतेहो, और सूर्य चंद्रमा दोनोंको उभय भुजासे पकडना चाहतेहो ॥ ४२ ॥ जो कि तुमनें श्रीरामचंद्रजीकी प्यारी नारीको बलपूर्वक प्राप्त होनेंकी इच्छाकीहै, सो यह इच्छा ऐसीहै, जैसे कोई जलती हुई अग्नि वस्त्रमें बांधकर लेजाना चाहै ॥ ४३ ॥ तुमने जो रामचंद्रजीकी कल्याणव्रतवाली भार्याको हरनेंकी इच्छा कीहै सो यह

भी ऐसा कोई नहीं है;॥ १२ ॥ जो इन्द्रके समान पौरुषी श्रीरामचन्द्रजीका सामना करसकै फलतः उनको समरमें कोई मारभी नहीं सकता इस लिये तुमको ऐसा अनुचित नहीं कहना चाहिये ॥ १३ ॥ और रामचन्द्रजीके विना इकेली इस वनके वीच त्याग करनेंकोभी किसी प्रकारसे हमारा साहस नहीं होता, इन्द्रादि बलवान् देवगणभी अपनें बलसे रामचन्द्रजीके बलको नहीं रोक सकते॥१४॥अथवा सव त्रिलोकी समस्त देवता गणोंके सहित एकत्र मिलकरभी रामचंद्रजीके पराजय करनेंको सामर्थ्य नहीं रखते इससे आप शोक त्याग करकै स्थिर चित्त हूजिये ॥ १५ ॥ आपके स्वामी रामचंद्रजी मृगोत्तमको हनन करकै शीघ्रही लौटेंगे और हम निश्चय कहतेहैं कि यह शब्द उनका नहींहै और न कोई यह देव

योरामंप्रतियुध्येतसमरेवासवोपमम् ॥ अवध्यःसमरेरामोनैवंत्वंवक्तुमर्हसि ॥ १३ ॥ नत्वामस्मिन्वनेहातुमुत्सहे राघवंविना॥ अनिवार्यबलंतस्यबलैर्बलवतामपि ॥ १४ ॥ त्रिभिर्लोकैःसमुदितैः सेश्वरैःसामरैरपि ॥ हृदयंनिर्वृतंते स्तुसंतापस्त्यज्यतांतव ॥ १५ ॥ आगमिष्यतितेभर्ताशीघ्रंहत्वामृगोत्तमम् ॥ नसतस्यस्वरोव्यक्तंनकश्चिदपिदै वतः॥ १६ ॥ गंधर्वनगरप्रख्यामायातस्यचरक्षसः ॥ न्यासभूतासिवैदेहिन्यस्तामयिमहात्मना ॥ १७ ॥ रामेण त्वंवरारोहेनत्वां त्यक्तुमिहोत्सहे ॥ कृतवैराश्चकल्याणिवयमेतैर्निशाचरैः ॥ १८ ॥ खरस्यनिधनेदेविजनस्थानवधं प्रति ॥ राक्षसाविविधावाचोव्याहरंतिमहावने ॥ १९ ॥ हिंसाविहारावैदेहिनचिंतयितुमर्हसि ॥ लक्ष्मणेनैवमु क्तातुक्रुद्धासरंक्तलोचना ॥ २० ॥

प्रेरित शब्दहै ॥ १६ ॥ निशाचर मारीचही गन्धर्व नगर सदृशी मिथ्या माया विस्तार करकै इस प्रकार शब्द चिल्लाकर कररहाहै । हे जानकि! महात्मा राम करकै आप हमारे निकट सौंपी गईहैं ॥ १७ ॥ इसही कारणसे आपको त्याग करनेंमें हमारा उत्साह नहीं होता । हे कल्याणि ! हे वरारोहे ! इन सब राक्षसोंके सहित हमारी शत्रुता होगई है ॥ १८ ॥ हे देवि ! खरको मार और जनस्थानको विध्वंस करनेंसे राक्षस लोग इस महावनमें हमारे ऊपर अनेक प्रकारके वचन प्रयोग किया करतेहैं ॥१९ ॥ हे जानकि ! साधु लोगोंकी हिंसा करनाही राक्षस लोगोंका एक मात्र खेल है । इस कारण इस विषयमें चिन्ता करना किसी प्रकारसेभी आपको उचित नहीं है । जब लक्ष्मणजीनें इस प्रकार कहा तब क्रोधके मारे

जब सीताजीनें इस प्रकारसे कठोर वचन कहे तब रावणनें महा क्रोधित होकर भ्रुकुटि टेढी करके कहा ॥ १ ॥ हे वरवर्णनि! हम कुबेरके सौतेले भाईहैं। हम परमप्रतापशालीका नाम दशग्रीव रावणहै, तुम्हारा मंगलहो ॥ २ ॥ जिस प्रकार प्रजागण मृत्युसे भय करतेहैं, वैसेही हमारे भयसे भीत होकर, देव, गन्धर्व, पिशाच, पन्नग, और उरग गण समस्तही सदा भागतेहैं ॥ ३ ॥ हमने किसी कारण वशसे क्रोधमें भर द्वन्द्व करके संग्राममें विक्रम प्रकाश करके सौतेले भाई कुबेरको सब प्रकारसे जीत लियाहै ॥ ४ ॥ इस कारण वह हमसे डरकर धन धान्य ऋषि सिद्धिसे भरी पुरी अपनी लंकापुरी त्यागकर पर्वतराज कैलासमें वास करतेहैं॥५॥ हे भद्रे! हमने अपने वीर्यके प्रभावसे उन कुबेरका इच्छानुसार चलनें

एवंब्रुवत्यांसीतायांसंरब्धःपरुषंवचः ॥ ललाटेभ्रुकुटिंकृत्वारावणःप्रत्युवाचह ॥ १ ॥ भ्रातावैश्रवणस्याहंसापत्नो वरवर्णिनि ॥ रावणोनामभद्रंतेदशग्रीवःप्रतापवान् ॥ २ ॥ यस्यदेवाःसगंधर्वाःपिशाचपतगोरगाः ॥ विद्रवंतिसदाभीतामृत्योरिवसदाप्रजाः ॥ ३ ॥ येनवैश्रवणोभ्रातावैमात्रःकारणांतरे ॥ द्वंद्वमासादितःक्रोधाद्रणेविक्रम्यनिर्जितः ॥ ४ ॥ मद्भयार्तःपरित्यज्यस्वमधिष्ठानमृद्धिमत् ॥ कैलासंपर्वतश्रेष्ठमध्यास्तेनरवाहनः ॥५॥ यस्यतत्पुष्पकंनाम विमानंकामगंशुभम् ॥ वीर्यादावर्जितंभद्रेयेनयामिविहायसम् ॥ ६ ॥ ममसंजातरोषस्यमुखंदृष्ट्वैवमैथिलि ॥ विद्रवंतिपरित्रस्ताःसुराःशक्रपुरोगमाः ॥ ७ ॥ यत्रतिष्ठाम्यहंतत्रमारुतोवातिशंकितः ॥ तीव्रांशुःशिशिरांशुश्चभयात्संपद्यतेदिवि ॥ ८ ॥ निष्कंपपत्रास्तरवोनद्यश्चस्तिमितोदकाः ॥ भवंतियत्रतत्राहंतिष्ठामिचचरामिच ॥ ९ ॥

वाला परम सुन्दर पुष्पक नामक विमानभी हरण कर लियाहै तुम उसी विमानमें बैठकर हमारे साथ आकाशमार्गमें चलोगी ॥ ६ ॥ हे मैथिलि! हमें क्रोध उत्पन्न हुआ कि हमारा मुख देखतेही इन्द्रादि मुख्य देवता गण महाभयभीत होकर दशोदिशाओंको भाग जातेहैं ॥ ७ ॥ जहां पर हम रहा करतेहैं, वायु वहांपर शंका सहित चला करतीहै और सूर्यभी हमारे भयसे आकाश मंडलमें चंद्रमाकी समान देख पडताहै ॥ ८ ॥ अधिक क्या कहें? जहां पर हम बैठते उठते व घूमते घामतेहैं वहां पर वृक्षोंके पत्तेभी नहीं हिलते डुलते, नदियोंका जलभी वहनेसे रुक जाताहै॥९॥

प्रकार उत्तर देनेंको हमारा साहस नहीं होता ॥ २८ ॥ परन्तु हे जानकि ! आपनें जो यह अयोग्य वार्ता कही है सो स्त्रियोंके लिये
छ विचित्र बात नहीं है, क्योंकि इस लोकमें स्त्रियोंका स्वभाव ऐसा देखा ही जाता है ॥ २९ ॥ स्त्रियोंकी जाति, स्वभावसेही
न हीन है, यह पिता पुत्र इत्यादिमें परस्पर भेद करा देती हैं। किन्तु हे जानकि ! तुम्हारी यह वार्ता हम पर नहीं सही जाती
तपे हुए बाणोंकी नांई यह तुम्हारे वचन हमारे दोनों कानोंको विद्धकर रहे हैं। अच्छा ! वनवासी देवता गण सबही हमारे
वण करें ॥ ३१ ॥ हमनें यथार्थ वार्ता कही है तथापि तुमनें हमको कठोर वचन कहे तुमको धिक्कार है ! निश्चयही तुम्हारा

तरूपंतुनचित्रंस्त्रीषुमैथिलि ॥ स्वभावस्त्वेषनारीणामेषुलोकेषुदृश्यते ॥ २९ ॥ विमुक्तधर्माश्चपलास्तीक्ष्णा
ःस्त्रियः ॥ नसहेहीदृशंवाक्यंवैदेहिजनकात्मजे ॥ ३० ॥ श्रोत्रयोरुभयोर्मध्येतप्तनाराचसंनिभम् ॥ उपशृण्वं
र्वसाक्षिणोहिवनेचराः ॥ ३१ ॥ न्यायवादीयथावाक्यमुक्तोहंपरुषंत्वया ॥ धिक्त्वामद्यविनश्यंतींयन्मामेवंविशं
कसे ॥ ३२ ॥ स्त्रीत्वाद्दुष्टस्वभावेनगुरुवाक्येव्यवस्थितम् ॥ गच्छामियत्रकाकुत्स्थःस्वस्तितेऽस्तुवरानने ॥ ३३ ॥
रक्षंतुत्वांविशालाक्षिसमग्रावनदेवताः ॥ निमित्तानिहिघोराणियानिप्रादुर्भवंतिमे ॥ अपित्वांसहरामेणपश्येयंपुनरा
गतः ॥ ३४ ॥ लक्ष्मणेनैवमुक्तातुरुदतीजनकात्मजा ॥ प्रत्युवाचततोवाक्यंतीव्रबाष्पपरिप्लुता ॥ ३५ ॥

विनाश काल उपस्थित है (राक्षसकुलकी नाश करानेंवाली तुझको धिक्कार है यह गूढ है) जो हम पर ऐसी शंका करती हो ॥ ३२ ॥ हम
सदाही गुरुजनोंकी आज्ञाका पालन किया करते हैं इस रामचन्द्रजीकी आज्ञा मान तुम्हें छोड नहीं जातेथे। किन्तु तुमनें स्त्रीके स्वभाव और
दुष्ट प्रकृतिके वश होकर हमको दुर्वचन कहे। हे वरानने ! जहां रामचन्द्रजी हैं हमभी वहां जाते हैं; तुम कुशल क्षेमसे रहो ॥ ३३ ॥ और
समस्त वन देवता गण तुम्हारी रक्षा करैं; हे विशालाक्षि ! बडे २ बुरे शकुन हमारे सामने प्रगट हो रहे हैं; इस कारणसे फिर रामचन्द्रजीके
साथ आकर तुमको कुशल सहित देखें ॥ ३४ ॥ जब लक्ष्मणजीनें इस प्रकारसे कहा तब जनकनन्दनी सीताजी अविरलवाहिनी अश्रुधारासे

त हुईथी ॥ १८ ॥ राम मनुष्यहै, वह युद्धमें हमारी एक अंगुलीकी समानभी नहीं होगा । हे वरवर्णिनि! हम तुम्हारे सौभाग्यसेही आप यहां आ येहैं, इस्से तुम हमको अपना पति बनाओ ॥ १९ ॥ जब रावण नें इस प्रकारके वचन कहे, तब सीताजीके नेत्र क्रोधके मारे लाल २ होगये। वह उस निर्जन वनमें रावणसे यह कठोर वचन बोली ॥ २० ॥ सब देवताओंके नमस्कार करनेंके योग्य उन परम पूजनीय, कुवेरजीको अपना भाई बताकर तुम किस प्रकार निन्दनीय कार्य करनेंका अभिलाष करते हो? ॥ २१ ॥ हे रावण! तुम्हारी समान खोटी बुद्धि वाला कर्कश और अजितेन्द्रिय पुरुष जिनका राजाहै, उन सबही राक्षस गणोंको नाशको प्राप्त होना पडेगा ॥ २२ ॥ इन्द्रपत्नी

अंगुल्यानसमोरामोममयुद्धेसमानुषः ॥ तवभाग्येनसंप्राप्तंभजस्ववरवर्णिनि ॥ १९ ॥ एवमुक्तातुवैदेहीक्रुद्धा संरक्तलोचना ॥ अब्रवीत्परुषंवाक्यंरहितेराक्षसाधिपम् ॥ २० ॥ कथंवैश्रवणंदेवंसर्वदेवनमस्कृतम् ॥ भ्रात रंव्यपदिश्यत्वमशुभंकर्तुमिच्छसि ॥ २१ ॥ अवश्यंविनशिष्यंतिसर्वेरावणराक्षसाः ॥ येषांत्वंकर्कशोराजादुर्बु द्धिरजितेंद्रियः ॥ २२ ॥ अपहृत्यशचींभार्यांशक्यमिंद्रस्यजीवितुम् ॥ नहिरामस्यभार्यांमामानीयस्वस्तिमान्भवे त् ॥ २३ ॥ जीवेच्चिरंवज्रधरस्यपश्चाच्छचींप्रधृष्याप्रतिरूपरूपाम् ॥ नमादृशींराक्षसधर्षयित्वापीतामृतस्यापितवा स्तिमोक्षः ॥ २४ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेअष्टचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४८ ॥ ॥ ॥ सीतायावचनंश्रुत्वादशग्रीवःप्रतापवान् ॥ हस्तेहस्तंसमाहन्यचकारसुमहद्वपुः ॥ १ ॥

शचीको हरण करकै; चाहें कोई जीवित रहजाय; परन्तु रामभार्या हमको हरण करकै कौन पुरुष वच कल्याण पासकताहै? ॥ २३ ॥ रे राक्षस! अत्यन्त रूपवती देवराज इन्द्रके पीछे उनकी भार्या को बलपूर्वक हरण करकै चाहे किसीका जीवित रहना संभवभीहो, परन्तु हम समान स्त्रीको रामचन्द्रजीके पीछे अपमानता करकै अमृत पिया हुआ पुरुषभी मृत्युके हाथसे नहीं वच सकैगा ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा मायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे अष्टचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४८ ॥ प्रतापवान् दशग्रीव रावण सीताजीके यह वचन सुनकर, हाथपर हा

रामचन्द्रजीको देखनेंके लिये अतिव्यग्रचित्तसे चले ॥ १ ॥ तिसके पीछे दशानन रावण यह सुअवसर पाकर यतीका रूप धारण कर शीघ्रही श्रीसीताजीके सामनें आया ॥ २ ॥ वह कोमल गेरुआ वस्त्र पहरे, शिर पर वार रखाये छत्री लगाये खडाऊं पहरे, वांये कंधे पर लाठी और कमंडलु हाथमें ॥ ३ ॥ ऐसा त्रिदंडी संन्यासीका रूप बना सीताजीके सन्मुख हुआ जबकि दोनों भाई आश्रममें नहींथे ॥ ४ ॥ जिस प्रकार विना चन्द्र सूर्यके सन्ध्याकालमें महा अंधकार हो आता है। वैसेही विना राम और लक्ष्मणजीके सीताजीके निकट दशानन आकर परम यशस्विनी राजपुत्री जनकनन्दनीजीको देखनें लगा ॥ ५ ॥ जैसे चन्द्रमाकरके हीन रोहिणी नक्षत्रको राहु देखे जनस्थानके समस्त वृक्ष उग्र

तदासाद्यदशग्रीवःक्षिप्रमंतरमास्थितः ॥ अभिचक्रामवैदेहींपरिव्राजकरूपधृक् ॥ २ ॥ श्लक्ष्णकाषायसंवीतःशिखी छत्रीउपानही ॥ वामेचांसेऽवसज्ज्याथशुभेयष्टिकमंडलू ॥ ३ ॥ परिव्राजकरूपेणवैदेहीमन्ववर्तत ॥ तामाससादातिबलोभ्रातृभ्यांरहितांवने ॥ ४ ॥ रहितांसूर्यचंद्राभ्यांसंध्यामिवमहत्तमः ॥ तामपश्यत्ततोबालांराजपुत्रींयशस्विनीम् ॥ ५ ॥ रोहिणींशशिनाहीनांग्रहवद्भृशदारुणः ॥ तमुग्रंपापकर्माणंजनस्थानगताद्रुमाः ॥ ६ ॥ संदृश्यनप्रकंपंतेनप्रवातिचमारुतः ॥ शीघ्रस्रोताश्चतंदृष्ट्वावीक्षंतंरक्तलोचनम् ॥ ७ ॥स्तिमितंगंतुमारेभेभयाद्गोदावरीनदी ॥ रामस्यत्वंतरंप्रेप्सुर्दशग्रीवस्तदंतरे ॥ ८ ॥ उपतस्थेचवैदेहींभिक्षुरूपेणरावणः ॥ अभव्योभव्यरूपेणभर्तारमनुशोचतीम् ॥ ९ ॥ अभ्यवर्ततवैदेहींचित्रामिवशनैश्चरः ॥ सहसाभव्यरूपेणतृणैःकूपइवावृतः ॥ १० ॥

स्वभाव पाप कर्म करनेंवाले रावणको देखकर ॥ ६ ॥ हिलनें झुलनेंसे रहित होगये पवनका चलना वंद हो गया। लाल २ नेत्र किये सीताजीके प्रति उसकी दृष्टिको लगा देख नदीभी शीघ्र गतिको त्याग मंद२वहनें लगी॥ ७ ॥गोदावरी नदीका जलभी शंकाके वश होकर मंद२वहनें लगा। इसी अवसरमें रामचंद्रजीका अन्तर चाहनेंवाला दशग्रीव ॥ ८ ॥ भिक्षुकका वेश बनाकर वैदेहीजीके निकट आन पहुंचा, यह महाकुरूप दशानन, अति रूपवती अपने पतिके लिये शोक करती हुई ॥ ९ ॥जानकीजीको ऐसे प्राप्त हुआ जिस प्रकार चित्रानक्षत्रके निकट शनि आताहै, वहां पहुंच उसनें

हुए जानकीजीसे कहनें लगा ॥ १० ॥ कि त्रिभुवनविख्यात स्वामीके प्राप्त करनेंकी यदि इच्छाहो तौ हे वरारोहे! हमारा आश्रय ग्रहण करो, हम ही तुम्हारे समान पतिहैं ॥ ११ ॥ तुम बहुत कालके लिये हमारी भजना करो.हमहीं तुम्हारे वांछित और बडाई करनें योग्य पतिहैं। हेभद्रे! हम कभी ऐसा आचरण नहीं करेंगे जो तुम्हें प्यारा नहो ॥ १२ ॥ तुम मनुष्यके प्रति प्रीति त्यागकरके हमारी ओर अपना प्रेम लगाओ, राज्यसे भ्रष्ट आयुहीन, अर्थरहित, राममें ॥ १३ ॥ किन गुणोंसे तुम अनुरागिणी हुईहो? हे मूढे पंडित मानिनि मैथिलि! जो रामचंद्र स्त्रीके कहनेंसे राज्य और सुहृद्‌गणोंको छोडकर ॥ १४ ॥ जोकि हम हिंसक जन्तुओंके वास करनें की भूमिमें वनके बीच वह दुर्मति रहताहै । इस प्रकार

त्रिषुलोकेषुविख्यातंयदिभर्तारमिच्छसि॥ मामाश्रयवरारोहेतवाहंसदृशःपति ॥११॥मांभजस्वचिरायत्वमहंश्लाघ्यः पतिस्तव ॥ नैवचाहंक्वचिद्भद्रेकरिष्येतवविप्रियम् ॥ १२ ॥ त्यज्यतांमानुषोभावोमयिभावःप्रणीयताम् ॥ राज्याच्च्युतमसिद्धार्थंरामंपरिमितायुषम्॥१३॥कैर्गुणैरनुरक्तासिमूढेपण्डितमानिनि॥यःस्त्रियोवचनाद्राज्यंविहायससुहृज्जनम् ॥१४॥अस्मिन्व्यालानुचरितेवनेवसतिदुर्मतिः॥इत्युक्त्वामैथिलींवाक्यंप्रियार्हांप्रियवादिनीम्॥१५॥अभिगम्यसुदुष्टात्माराक्षसःकाममोहितः॥ जग्राहरावणःसीतांबुधःखेरोहिणीमिव ॥१६॥ वामेनसीतांपद्माक्षींमूर्धजेषुकरेणसः ॥ ऊर्वोस्तुदक्षिणेनैवपरिजग्राहपाणिना ॥ १७ ॥ तंदृष्ट्वागिरिशृंगाभंतीक्ष्णदंष्ट्रंमहाभुजम् ॥ प्राद्रवन्मृत्युसंकाशंभयार्तावनदेवताः ॥ १८ ॥ सचमायामयोदिव्यःखरयुक्तःखरस्वनः ॥ प्रत्यदृश्यतहेमांगोरावणस्यमहारथः ॥ १९ ॥

प्रिय वचन कहनें के योग्य मैथिलीजीसे ॥ १५ ॥ यह कहकर अति दुष्टात्मा रावण जानकीजीके समीप आया और उनको ग्रहण किया, उस समय ऐसा बोध हुआ मानों आकाशके बीच बुधनें रोहिणीको ग्रहण किया ॥ १६ ॥ उस समय सीता महारानी रावणके कठोर वचन सुन और इसका रूप देखकर कुछ ऐसी मूर्छितसी होगई थीं कि वाम बाहुसे तौ रावणनें उनपद्माक्षीका केशपाश और दाहिनी भुजासे दोनों चरणोंको पकड उठा लिया॥१७॥ वन देवता लोकभी उस समय उस पर्वत शृङ्ग सदृश तीक्ष्ण डाढ वाले महा सर्प तुल्य रावणको देख भयभीत हो कर दशों दिशाओंको भाग गये ॥ १८ ॥ देखतेही देखतेही रावणका वह मायामय स्वर्ण मंडित गर्दभजुता हुआ भयंकर शब्दकारी दिव्यरथ व

तुम्हारा जघन, अति पीन व विशालहैं और जांघें हाथीकी शुण्डके समान चढ़ावतार, बडे२गोलाकर एकमें एक मिले कुछ कम्पायमान ॥१९॥ तुम्हारी दोंनों छातियें पीनहैं और जिनका अग्रभाग उठा हुआहै, परम मनोहरहै और चिकने ताल फलके आकारवालेहैं! और उनपर मणियोंकी माला पडीहैं ॥ २० ॥ फलतः तुम्हारे दांत नेत्र और मुसकुराना सवहीकुछ रमणीयहै । हे रमणीये! नदी जिस प्रकार जलके वेगसे कूलको हरण करतीहै तैसेही तुमभी इन सबसे हमारे चित्तको हरण करतीहो ॥ २१ ॥ तुम्हारे केश परम सुन्दरहैं, दोनों पयोधर अत्यन्त घनेहैं, और तुम्हारा मध्य देश अर्थात् कमर इतनी पतलीहै कि मुट्ठीके वीचमें आजाय । क्या देवी, क्या गन्धर्वी, क्या यक्षी, क्या किन्नरी, ॥ २२ ॥ कोईभी तुम्हारे स

विशालंजघनंपीनमूरूकरिकरोपमौ ॥ एतावुपचितौवृत्तौसंहतौसंप्रगल्भितौ ॥ १९ ॥ पीनोन्नतमुखौकांतौस्निग्धतालफलोपमौ ॥ मणिप्रवेकाभरणौरुचिरौतौपयोधरौ ॥ २० ॥ चारुस्मितेचारुदतिचारुनेत्रेविलासिनि ॥ मनोहरसिमेरामेनदीकूलमिवांभसा ॥ २१ ॥ करांतमितमध्यासिसुकेशेसंहतस्तनि ॥ नैवदेवीनगंधर्वीनयक्षीनचकिन्नरी ॥ २२ ॥ नैवंरूपामयानारीदृष्टपूर्वामहीतले ॥ रूपमग्र्यंचलोकेपुसौकुमार्यंवयश्चते ॥ २३ ॥ इहवासश्चकांतारेचित्तमुन्माथयंतिमे ॥ साप्रतिक्रामभद्रंतेनत्वंवस्तुमिहार्हसि ॥ २४ ॥ राक्षसानामयंवासोघोराणांकामरूपिणाम् ॥ प्रासादाग्राणिरम्याणिनगरोपवनानिच ॥ २५ ॥ संपन्नानिसुगंधीनियुक्तान्याचरितुंत्वया ॥ वरंमाल्यंवरंगंधंवरंवस्त्रंचशोभने ॥ २६ ॥

मान रूपवान नहींहै । हमनें इससे पहले पृथ्वीपर तुम्हारे समान रूपवती राजरानी नहीं देखी, तुम्हारा रूप यौवन, सुकुमारता ॥ २३ ॥ और इस निर्जन वनमें वास यह चारोंही त्रिलोकीमें श्रेष्ठहैं, इस कारण इन वातोंसे हमारा चित्त क्षुभित होताहै । इस कारण वाहर चली आओ । तुम्हारा कल्याणहो; बनवास करना तुम को उचित नहींहै ॥ २४ ॥यहां तौ कामरूपी भयंकर निशाचर गण रहा करतेहैं तुम तौ अति रमणीय प्रासादशिखर, नगर व उपवनोंमें ॥ २५ ॥ जहां सब भोग्य वस्तु प्रस्तुतहैं, और सुगन्धिके पदार्थ धरे रहतेहैं यह स्थान तुम्हारे रहनेंके योग्यहै; श्रेष्ठ

रहित होकर यह जो कर्म किया इसके लिये तुमको रामचंद्रजीसे प्राणान्त करनेंवाली घोर विपद् में पडना होगा ॥ २८॥ हाय! हम धर्म की इच्छा
करनें वाले यशस्वी रामचंद्रजीकी धर्म पत्नी होकर भी हरी जातीहैं । इतनें दिन पीछे सब कुटुम्बियों सहित कैकेयीकी मनो कामना पूर्ण हुई॥२९॥
इन पुष्पित कर्णिकार और जनस्थान, सब सेही हम यह प्रार्थना करतीहैं कि सब रामचंद्रजीसे कहदेना कि रावण सीताजीको हरण कर लेगया
है ॥ ३०॥ हे संसार सेवित तरंगिणि गोदावरी! हम तुम्हारी वंदना करतीहैं; तुमभी शीघ्र रामचंद्रजीसे यह कह देना रावण जानकीको हरण करके
ले गयाहै ॥ ३१ ॥ इस विविध प्रकारके वृक्ष कानन में जो देवता वास करते हैं, हम उन सबको नमस्कार करतीहैं, वहभी हमारे स्वामी श्रीराम

हंतेदानींसकामातुकैकेयीबांधवैःसह ॥ ह्रियेयंधर्मकामस्यधर्मपत्नीयशस्विनः ॥ २९ ॥आमंत्रयेजनस्थानंकर्णिकारां
श्चपुष्पितान् ॥ क्षिप्रंरामायशंसध्वंसीतांहरतिरावणः ॥ ३० ॥ हंससारससंघुष्टांवंदेगोदावरींनदीम् ॥ क्षिप्रंरामा
यशंसध्वंसीतांहरतिरावणः ॥ ३१ ॥ दैवतानिचयान्यस्मिन्वनेविविधपादपे ॥ नमस्करोम्यहंतेभ्योभर्तुःशंसतमांह
ताम् ॥ ३२ ॥ यानिकानिचिदप्यत्रसत्त्वानिविविधानिच ॥ सर्वाणिशरणंयामिमृगपक्षिगणानिवै ॥ ३३ ॥ ह्रियमा
णांप्रियांभर्तुःप्राणेभ्योऽपिगरीयसीम् ॥ विवशातेहृतासीतारावणेनेतिशंसत ॥ ३४ ॥ विदित्वातुमहाबाहुरमुत्रापि
महाबलः ॥ आनेष्यतिपराक्रम्यवैवस्वतहृतामपि ॥ ॥ ३५ ॥ सातदाकरुणावाचोविलपंतीसुदुःखिता ॥ वनस्पति
गतंगृध्रंददर्शायतलोचना ॥ ३६ ॥

चंद्रजीसे हमारे हरणकी वार्ता कहैं॥३२ ॥ इस वनमें. मृग. पक्षी,इत्यादि जो कोई प्राणी भी वसतेहैं, हम उन सबकी ही शरण आतीहैं ॥ ३३ ॥
वह सबही पशु पक्षी हमारे स्वामीसे उनकी प्यारी स्त्रीके हरनेंका वृत्तान्त सुनावैं, और कहैं कि विवश होकर सीता रावण करके हरी गईहैं॥ ३४ ॥
हमको यदि यमराज भी हर कर ले जांय और महाबाहु रामचंद्रजीको समाचार मिल जावैं, तो वह अपना पराक्रम प्रकाश करके वहांसेभी हमको
लेआवेंगे ॥३५ ॥ विशाल नेत्रवाली जानकीजीनें अतिशय दुःखित होकर विलाप करते २ अचानक देखा कि गृध्रराज जटायु पेड पर बैठेहैं ॥३६॥

ब्राह्मणका वेष धारण किये लाल वस्त्र पहरे जानकीजीनें ब्राह्मणकेही समान रावणका निमंत्रण करके कहा॥ ३५ ॥ हे विप्र! आप कुशासनपर सुख सहित वैठ जाइये, और यह पाद्य ग्रहण कीजिये,व यह वनके फल सब आपकेही लियें रखेंहैं, इनको भोजनकीजिये ॥ ३६ ॥ नरेन्द्रभार्या जानकीजीनें जब इस प्रकार निमंत्रण किया तब रावण उनकी ओर देख अपनें वध करानेंको बलपूर्वक उनके हरलेजानेंका निश्चय करताहुआ ॥ ३७ ॥परमप्रिय मूर्ति रामचंद्रजी लक्ष्मणजीके सहित मृगया करनें गयेथे. जानकी उस समय उनकी वाट देखती हुई इधर उधर दृष्टि करनें लगीं तौ केवल चारों ओर बड़े

द्विजातिवेषेणसमीक्ष्यमैथिलीसमागतंपात्रकुसुंभधारिणम् ॥ अशक्यमुद्द्रेष्टुमुपायदर्शनान्यमंत्रयद्ब्राह्मणवत्तथागतम् ॥ ३५ ॥ इयंबृसीब्राह्मणकाममास्यतामिदंचपाद्यंप्रतिगृह्यतामिति ॥ इदंचसिद्धंवनजातमुत्तमंत्वदर्थमव्यग्रमिहोपभुज्यताम् ॥ ३६ ॥ निमंत्र्यमाणःप्रतिपूर्णभाषिणींनरेंद्रपत्नींप्रसमीक्ष्यमैथिलीम् ॥ प्रसह्यतस्याहरणेदृढंमनःसमर्पयामासवधायरावणः ॥ ३७ ॥ ततःसुवेषंमृगयागतंपतिंप्रतीक्षमाणासहलक्ष्मणंतदा ॥ निरीक्षमाणाहरितंददर्शतन्महद्वनंनैवतुरामलक्ष्मणौ ॥ ३८ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेषट्चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४६ ॥ ॥ ७ ॥ रावणेनतुवैदेहीतदापृष्टाजिहीर्षुणा ॥ परिव्राजकरूपेणशशंसात्मानमात्मना ॥ १ ॥ ब्राह्मणश्चातिथिश्चैषअनुक्तोहिशपेतमाम् ॥ इतिध्यात्वामुहूर्ततुसीतावचनमब्रवीत् ॥ २ ॥ दुहिताजनकस्याहंमैथिलस्यमहात्मनः ॥ सीतानामास्मिभद्रंतेरामस्यमहिषीप्रिया ॥ ३ ॥

विस्तारवाली हरे वर्णकी वनभूमिही दृष्टि आई,परन्तु राम लक्ष्मणजी दिखाई नहीं दिये ॥ ३८ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०आर०षट्चत्वारिंशःसर्गः॥४६॥ जब संन्यासीवेशधारी रावणनें हरण करनेंके अभिलाषसे इस भांति पूछा तब सीताजी आपही आप विचार करनें लगीं ॥ १ ॥ कि एक तो यह ब्राह्मणहै दूसरे अतिथिहै जो हम इस्से नहीं बोलतीं, तौ कदाचित् शाप न देदे, एक मुहूर्त भर यह शोच विचार कर जानकीजी उस्से बोलीं ॥ २ ॥ आपका कल्याणहो । हम मिथिलानरेश महात्मा जनकजीकी तौ कन्याहैं और श्रीरामचंद्रजीकी प्रिय भार्याहैं हमारा नाम सीताहै ॥ ३ ॥

नाथ रामचंद्रजीकी धर्मपत्नीहैं ॥ ५ ॥ सीता इनका नामहै जिनको तुम हरण करनेंको उद्यत हो सो तुम प्रजा पालन रूप धर्ममें स्थिर रहकर किस प्रकारसे पराई स्त्रीको हरण करोगे ॥ ६ ॥ हे महाबलवान! विशेष कर राज पत्नियोंका रक्षा करना सब भांतिसे कर्त्तव्य है; अतएव तुम पराई स्त्रीके हरण करने ओछे विषय की नीच बुद्धिको निवारण करो ॥ ७ ॥ जिस कर्मके करनें से लोकमें निन्दाहो, धीर पुरुष कभी ऐसे कार्यको नहीं किया करतेहैं। अपनी स्त्रीके समान पराई स्त्रीको पर पुरुषके स्पर्श से रक्षा करना सबही पुरुषोंको कर्त्तव्यहै॥ ८ ॥ हे पौलस्त्यनंदन! शास्त्रसे निश्चित न होने पर भी शिष्ट जब राजा के अनुवर्ती होकर अनेकानेक धर्म, अर्थ अथवा काम विषयके अनुष्ठानमें रत होतेहैं ॥ ९ ॥ राजाही

सीतानामवरारोहार्यांत्वंहर्तुमिहेच्छसि ॥ कथंराजास्थितोधर्मेपरदारान्परामृशेत् ॥६॥ रक्षणीयाविशेषेणराजदारामहाबल ॥ निवर्तयगतिंनीचांपरदाराभिमर्शनात् ॥ ७॥ नतत्समाचरेद्धीरोयत्परोस्यविगर्हयेत् ॥ यथात्मनस्तथान्येषांदारारक्ष्याविमर्शनात् ॥८॥ अर्थंवायदिवाकामंशिष्टाःशास्त्रेष्वनागतम् ॥ व्यवस्यंत्यनुराजानंधर्मंपौलस्त्यनंदन ॥ ९ ॥ राजाधर्मश्चकामश्चद्रव्याणांचोत्तमोनिधिः ॥ धर्मःशुभंवापापंवाराजमूलंप्रवर्तते ॥ १० ॥ पापस्वभावश्चपलःकथंत्वंरक्षसांवर ॥ ऐश्वर्यमभिसंप्राप्तोविमानमिवदुष्कृती ॥ ११ ॥कामस्वभावोयःसोऽसौनशक्यस्तंप्रमार्जितुम् ॥ नहिदुष्टात्मनामार्यमावसत्यालयेचिरम् ॥ १२ ॥ विषयेवापुरेवातेयदारामोमहाबलः ॥ नापराध्यतिधर्मात्माकथंतस्यापराध्यसि ॥ १३ ॥

धर्म, राजाही काम और राजाही समस्त द्रव्यों में उत्तम रत्न स्वरूपहै; धर्म, काम, वा पाप समस्त ही राजमूलकहैं ॥ १० ॥ हे राक्षसराज! हम नहीं कह सकते कि तुम पाप स्वभाव और चपल होकर किस प्रकार दुष्कर्म करनेवाले जनको देवयोनि प्राप्त होने के समान ऐसे ऐश्वर्य को प्राप्त हुए? ॥ ११ ॥ जो पुरुष स्वेच्छाचारी होताहै वह उस अपने स्वभावको त्यागन नहीं कर सकता, क्यों कर दुरात्माओंके स्थानों में पुण्य कभी टिक नहीं सकताहै ॥ १२ ॥ महाबल धर्मात्मा रामचंद्रजीनें तुम्हारे नगर व अधिकारमें कोई अपराध नहीं कियाहै; फिर तुम किस

इसकारण कैकेयीका प्रिय करनेंके लिये उन्होंने इस प्रकारके गुणसम्पन्न रामचंद्रजीको अभिषेक न किया और जब श्रीरामचंद्रजी अभिषेकार्थ अपने पिताके निकट आये तो ॥ १३॥ कैकेयीने शीघ्रही उनसे यह वचन कहा, कि, हे रघुनंदन! तुम्हारे पिताजीनें तुमको जो आज्ञा दीहै वह हमसे सुनो ॥ १४ ॥ हे काकुत्स्थ! भरतको यह निष्कंटक राज्य देना होगा और तुम्हें चौदह वर्षके लिये वनमें रहना पडेगा ॥ १५ ॥ इसकारण तुम वनमें जाकर पिताके सत्यकी रक्षा करो और मिथ्यावादी न करो पिताको इस ऋणसे छुटाओ, तब दृढव्रत हमारे स्वामी श्रीरामचंद्रजीनें निडरहोकर कैकेयीसे ऐसाही होगा; यह कहा ॥ १६ ॥ हमारे दृढ व्रत धारी स्वामीनें उनके वचन सुनकर उसीके अनुसार कार्य किया हे विप्र! वह के

कैकेय्याःप्रियकामार्थंतंरामंनाभ्यषेचयत् ॥ अभिषेकायतुपितुःसमीपंराममागतम् ॥ १३ ॥ कैकेयीममभर्तारमित्यु
वाचद्रुतंवचः ॥ तवपित्रासमाज्ञप्तंममेदंशृणुराघव ॥ १४ ॥ भरतायप्रदातव्यमिदंराज्यमकंटकम् ॥ त्वयातुखलुवस्त
व्यंनववर्षाणिपंचच॥ १५॥ वनेप्रव्रजकाकुत्स्थपितरंमोचयानृतात् ॥ तथेत्युवाचतांरामःकैकेयीमकुतोभयः ॥ १६ ॥
चकारतद्वचःश्रुत्वाभर्ताममदृढव्रतः ॥ दद्यान्नप्रतिगृह्णीयात्सत्यंब्रूयान्नचानृतम् ॥ १७ ॥ एतद्ब्राह्मणरामस्यव्रतंधृत
मनुत्तमम् ॥ तस्यभ्रातातुवैमात्रोलक्ष्मणोनामवीर्यवान् ॥ १८ ॥ रामस्यपुरुषव्याघ्रःसहायःसमरेऽरिहा ॥ सभ्राता
लक्ष्मणोनामब्रह्मचारीदृढव्रतः ॥ १९ ॥ अन्वगच्छद्धनुष्पाणिःप्रव्रजंतंमयासह ॥ जटीतापसरूपेणमयासहसहानु
जः ॥ २० ॥ प्रविष्टोदंडकारण्यंधर्मनित्योदृढव्रतः ॥ तेवयंप्रच्युताराज्यात्कैकेय्यास्तुकृतेत्रयः ॥ २१ ॥

वल लोकोंको दान किया करतेहैं; परन्तु कभी किसीसे कुछ ग्रहण नहीं करते सदाही सत्य कहतेहैं कभी मिथ्या नहीं कहते ॥ १७ ॥ हे ब्राह्मण! वस यही रामचंद्रजीका श्रेष्ठ व्रतहै। उनके सौतेले भाई लक्ष्मणजी अतिशय वीरहैं ॥ १८ ॥व सदा रामजीके संग रहा करतेहैं पुरुषव्याघ्रहैं समरमें निहारतेही शत्रुका संहार करतेहैं वह ब्रह्मचारी और दृढव्रतधारीहैं ॥ १९ ॥ धनुषवाण हाथमें ले, जटा रखाय तपस्वीका भेष बनाय रामचंद्रजीके साथ२ वनमें चले आये॥२०॥ इस प्रकार दृढव्रतधारी महात्मा रामचंद्रजी भ्राता लक्ष्मण और अपनी स्त्री सहित जटा रखाय तपस्वी वेष धारण कर

यदि तुम शूर हो युद्ध करो। अथवा हे रावण! एक मुहूर्त भर ठहर, पहले खर जिस प्रकार पृथ्वीपर शयन कर चुका तुमभी वैसेही मारे जाकर पृथ्वीपर शयन करोगे॥२२॥ २३ ॥जिन तुमने वारंवार युद्धमें दैत्य और दानवोंको मार डाला है, सो जटावल्कलधारी रामचन्द्रजी शीघ्रही संग्राममें तुमको वध करेंगे ॥ २४ ॥ वह दो राजकुमार, राम लक्ष्मण अभी दूरे हैं हम क्या करैं, रे नीच! तुमको शीघ्रही उनसे भीत होकर विनाशको प्राप्त होना पडेगा इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ २५ ॥ और जबतक कि हम जीते हैं तब तकभी तुम हमारे सामनें रामचन्द्र जीकी प्रिय स्त्री कमलनेत्र सुस्वभावा इन जानकीजीको ले नहीं जा सकोगे ॥ २६ ॥ क्योंकि जबतक हम जीवित हैं तब तक प्राण तलकभी

नशक्तस्त्वंबलाद्धर्तुंवैदेहींममपश्यतः ॥ हेतुभिर्न्यायसंयुक्तैर्ध्रुवांवेदश्रुतीमिव ॥ २२ ॥ युद्धचस्वयदिशूरोसिमुहूर्तंतिष्ठ रावण ॥ शयिष्यसेहतोभूमौयथापूर्वंखरस्तथा ॥२३॥ असकृत्संयुगेयेननिहतादैत्यदानवाः ॥ नचिराच्चीरवासास्त्वां रामोयुधिवधिष्यति ॥ २४ ॥ किंनुशक्यंमयाकर्तुंगतौदूरंनृपात्मजौ ॥ क्षिप्रंत्वंनश्यसेनीचतयोर्भीतोनसंशयः ॥२५॥ नहिमेजीवमानस्यनयिष्यसिशुभामिमाम् ॥ सीतांकमलपत्राक्षींरामस्यमहिषींप्रियाम् ॥२६॥ अवश्यंतुमयाकार्यंप्रि यंतस्यमहात्मनः ॥ जीवितेनापिरामस्यतथादशरथस्यच ॥ २७ ॥ तिष्ठतिष्ठदशग्रीवमुहूर्तंपश्यरावण ॥ वृंतादिवफलं त्वांतुपातयेयंरथोत्तमात् ॥ २८ ॥ युद्धातिथ्यंप्रदास्यामियथाप्राणंनिशाचर ॥ २९ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवा ल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेपंचाशःसर्गः ॥ ५० ॥ ॥ ७ ॥ इत्युक्तःक्रोधताम्राक्षस्तप्तकांचनकुंडलः ॥ रा क्षसेंद्रोऽभिदुद्रावपतगेंद्रममर्षणः ॥ १ ॥

देकर महात्मा रामचन्द्र और दशरथजीका प्रिय कार्य हमको अवश्य करना उचित है ॥ २७ ॥ इस कारण हे रावण! एक मुहूर्त खडा रह खडा रह. तुझको हम देखेंगे जिस प्रकार बौर से फल तोड लिया जाता है वैसेही तुमको हम रथसे नीचे गिरावेंगे ॥२८॥ रे निशाचर! जब तक हमारे प्राण हैं तब तक भली भांति हम तुम्हारी युद्धकी पहुनई करेंगे ॥ २९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० आर० पंचाशः सर्गः ॥ ५० ॥ पक्षीराज जटायुनें जब इस प्रकारसे कहा तब शुद्ध सुवर्णके बने कुंडल पहरे राक्षस राज रावण क्रोधके मारे लाल २ नेत्र कर उनके सामनें

भामिनि! वहां विचरण करनेंपर फिर तुमको इस वनमें वास करनेंकी अभिलाषा नहीं रहेगी ॥ ३० ॥ हे सीते! यदि तुम हमारी भार्या बनोगी तो सर्व वस्त्राभूषणभूषित पांच हजार दासिये तुम्हारी सेवा किया करेंगी ॥ ३१ ॥ रावण यह जान्ताथा कि मैंने ऐसे पाप कियेहैं कि जिससे जप तप करनेंसे कदाचित् मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती इस कारण विरोध करके राम जिनको तत्त्वसे ईश्वर जानताथा उनके हाथसे मरनेंमें मुक्तिकी प्राप्ति विचार कर जानकीसे ऐसे वाक्य कहे कि जो ऐसे निठुर वचन कहूं तो शीघ्र अधिक पाप करनेसे रामचंद्रके हाथसे परम पद पाऊंगा अनन्दिता जनककुमारी जानकीजी राक्षस राज रावण करके इस प्रकार कहीजानेंपर महा क्रोधित हुई, और उसका अनादर करके कहनें

पंचदास्यःसहस्राणिसर्वाभरणभूषिताः ॥ सीतेपरिचरिष्यंतिभार्याभवसिमेयदि ॥ ३१ ॥ रावणेनैवमुक्तातुकुपिताज नकात्मजा ॥ प्रत्युवाचानवद्यांगीतमनादृत्यराक्षसम् ॥ ३२ ॥ महागिरिमिवाकंप्यंमहेंद्रसदृशंपतिम् ॥ महोदधि मिवाक्षोभ्यमहंराममनुव्रता ॥ ३३ ॥ सर्वलक्षणसंपन्नंन्यग्रोधपरिमंडलम् ॥ सत्यसंधंमहाभागमहंराममनुव्रता ॥ ३४ ॥ महाबाहुंमहोरस्कंसिंहविक्रांतगामिनम् ॥ नृसिंहंसिंहसंकाशमहंराममनुव्रता ॥ ३५ ॥ पूर्णचंद्राननंरा मंराजवत्संजितेंद्रियम् ॥ पृथुकीर्तिमहाबाहुमहंराममनुव्रता ॥ ३६ ॥ त्वंपुनर्जंबुकःसिंहींमामिहेच्छसिदुर्लभाम् ॥ नाहंशक्यास्त्वयास्प्रष्टुमादित्यस्यप्रभायथा ॥ ३७ ॥

लगीं ॥ ३२ ॥ जो यहां पर्वत सुमेरुकी समान अकंपनीय, महासागरकी समान क्षोभरहितहैं, ऐसे महेन्द्र तुल्य हम स्वामी रामचंद्रजीकी अनु गताहैं ॥ ३३ ॥ जो शुभलक्षण युक्त वटवृक्षकी समानहैं, हम उनही सत्य प्रतिज्ञ महाभाग रामचंद्रजीकी अनुगताहैं ॥ ३४ ॥ जो आजानुबाहु वालेहैं, विशाल हृदयहैं, और सिंहकी समान विक्रमके साथ चलनेंवालेहैं, हम उनही नृसिंह और सिंह सदृश रामचंद्रजीकी अनुगताहैं ॥ ३५ ॥ उनका मुख पूर्ण चंद्रमाकी समानहै कीर्ति बहुतही विस्तारित होरहीहै; और बांहें जिनकी अति बडीहैं हम उन्हीं राजकुमार जितेन्द्रिय रामचंद्र जीकी अनुगताहैं ॥ ३६ ॥ तुम शृगाल होकर सिंहीका अभिलाष करतेहो, परन्तु तुम हमको नहीं ले सकते, जैसे सूर्यकी प्रभाको कोई नहीं छू

क्रोधयुक्तहो दूसरा धनुष ग्रहण करके शत २ सहस्र २ बाणोंकी वर्षा जटायु पर करनें लगा ॥ ११ ॥ उस समय पक्षिराज जटायु उन शर समू
हसे विधकर घौंसलेमें बैठे हुए पक्षीकी समान शोभित होनें लगे ॥ १२ ॥ तिसके पीछे महा तेजस्वी जटायुजीनें अपने दोनों पंखोंसे उस शर
जालको तोड ताड फिर अपने पंजोंसे रावणके महा धनुषको तोड डाला ॥ १३ ॥ और पंखोंके प्रहारसे महा तेजस्वी जटायुनें रावणका
अग्निकी समान प्रदीप्त कवचभी खण्ड २ कर दिया ॥ १४ ॥ समरमें रावणका सुवर्णमय दिव्य कवच तोडकर जटायुजीने अतिशय शीघ्र चलनें
वाले पिशाचवदन गधोंको जो रावणके रथमें जुतेथे मार डाला ॥ १५ ॥ फिर वेगमें भर कर रावणकी इच्छानुसार चलनेंवाले अग्निकी समान

शरैरावारितस्तस्यसंयुगेपतगेश्वरः ॥ कुलायमभिसंप्राप्तःपक्षिवच्चबभौतदा ॥ १२ ॥ सतानिशरजालानिपक्षाभ्यां
तुविधूयह ॥ चरणाभ्यांमहातेजाबभंजास्यमहद्धनुः ॥ १३ ॥ तच्चाग्निसदृशंदीप्तंरावणस्यशरावरम् ॥ पक्षाभ्यांच
महातेजाव्यधुनोत्पतगेश्वरः ॥ १४ ॥ कांचनोरश्छदान्दिव्यान्पिशाचवदनान्खरान् ॥ तांश्चास्यजवसंपन्नाञ्जघा
नसमरेबली ॥ १५ ॥ अथत्रिवेणुसंपन्नंकामगंपावकार्चिषम् ॥ मणिसोपानचित्रांगंबभंजचमहारथम् ॥ १६ ॥ पूर्ण
चंद्रप्रतीकाशंछत्रंचव्यजनैःसह ॥ पातयामासवेगेनग्राहिभीराक्षसैःसह ॥ १७ ॥ सारथेश्चास्यवेगेनतुंडेनचमह
च्छिरः ॥ पुनर्व्यपहनच्छ्रीमान्पक्षिराजोमहाबलः ॥ १८ ॥ सभग्नधन्वाविरथोहताश्वोहतसारथिः ॥ अंकेनादायवैदे
हींपपातभुविरावणः ॥ १९ ॥

प्रभावाले, मणिरचित सोपान युक्त, तीन वांस जिसमें लगे हुए ऐसे रावणके रथकोभी जटायुनें तोडा ॥ १६ ॥ छत्र आदि धारण करनें
वाले राक्षसोंके सहित पूर्ण चन्द्रमाकी समान छत्र और व्यजनभी जटायुनें नीचे गिराया ॥ १७ ॥ और फिर अपनी चोंचके प्रहारसे
सारथीका बडा भारी शिरभी बडे वेगसे जटायुनें काटा इस प्रकार परम श्रीसम्पन्न महा बलवान पक्षिराज करके ॥ १८ ॥ शरासन
छिन्न रथके टूट जानें पर सारथी और घोडोंके मर जानेंसे जानकीजीको दोनों भुजाओंसे पकडे हुए रावण पृथ्वीपर गिरा ॥ १९ ॥

इच्छा लोहेके त्रिशूलोंके वीचमें चलनेंकी समानहे ॥ ४४ ॥ सिंह और शृगालमें, क्षुद्रनदी व सागरमें अमृत और सिरकेमें जितना भेदहे उतनाही भेद श्रीरामचंद्रजी और तुममें है ॥ ४५ ॥ कांचन, शीशे, और लोहे में, चंदन जल और कीचडमें वनमें, हाथी और विलाव में जितना अंतरहे, उतनाही अंतर श्रीरामचंद्रजी और तुममें है ॥ ४६ ॥ गरुड और काकमें, मोर और जलमुर्गीमें, हंस और गीधमें जितना अंतरहे उतनाही अंतर श्रीरामचंद्रजी और तुममें है ॥ ४७ ॥ महेन्द्रसम प्रभावशाली श्रीरामचंद्रजी जो धनुष बाण धारण किये इस पृथ्वीपर टिकेहें, तो यदि तुम हमको हरभी ले जाओगे तो तुम्हारे यहां हम वृद्धावस्थाको प्राप्त न होंगी अर्थात् वह बहुत शीघ्र तुमको मारकर हमको लेआवेंगे । जिस

यदंतरंसिंहसृगालयोर्वनेयदंतरंस्यंदनिकासमुद्रयोः ॥ सुराग्र्यसौवीरकयोर्यदंतरंतदंतरंदाशरथेस्तवैवच ॥ ४५ ॥ यदंतरंकांचनसीसलोहयोर्यदंतरंचंदनवारिपंकयोः ॥ यदंतरंहस्तिबिडालयोर्वनेतदंतरंदाशरथेस्तवैवच ॥ ४६ ॥ यदंतरंवायसवैनतेययोर्यदंतरंमद्गुमयूरयोरपि ॥ यदंतरंहंसकगृध्रयोर्वनेतदंतरंदाशरथेस्तवैवच ॥ ४७ ॥ तस्मिन्सहस्राक्षसमप्रभावेरामेस्थितेकार्मुकबाणपाणौ ॥ हृतापितेहंनजरांगमिष्येआज्यंयथामक्षिकयाऽवगीर्णम् ॥ ४८ ॥ इतीवतद्वाक्यमदुष्टभावासुदुष्टमुक्त्वारजनीचरंतं ॥ गात्रप्रकंपाद्व्यथिताबभूववातोद्धतासाकदलीवतन्वी ॥ ४९ ॥ तां वेपमानामुपलक्ष्यसीतांसरावणोमृत्युसमप्रभावः ॥ कुलंबलंनामचकर्मचात्मनःसमाचचक्षेभयकारणार्थम् ॥ ५० ॥
॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेसप्तचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४७ ॥ ॥ छ ॥

प्रकार घृतमें मक्खी पडजाय, तो घृत दूषित नहीं होता, वरन मक्खी ही प्राण देतीहै । अर्थात् हमारा कुछ न होगा, तुमही मारे जाओगे ॥ ४८ ॥ जिस प्रकार पवनके चलनेंसे कदलीका वृक्ष कंपायमान होकर हिलनें लगताहै, वैसेही शुद्धस्वभाववाली जानकीजी दुष्ट राक्षससे इस प्रकारके वचन कह थरथर कांपने लगीं ॥ ४९ ॥ तिन जनकात्मजा सीताजीको कंपायमान देखकर मृत्यु सम प्रभावयुक्त रावण उनको डरपानेंके लिये अपना कुल नाम और कर्म कहताहुआ ॥ ५० ॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे सप्तचत्वारिंशः सर्गः॥४७॥

किसी स्थानमें गमन करके भी इस भांतिकी काल फांससि न छूटेगा ॥ २७ ॥ हे रावण! राम लक्ष्मणको कोई नहीं जीत सकता । सो
तू जो इस आश्रमका निरादर कर जानकीजीको लिये चला जाता है इस बातको यह सुनकरभी तुझे किसी भांति क्षमा नहीं करेंगे ॥ २८ ॥ तुझ
डरपोकनें सर्व लोक निन्दित जैसे कर्मका अनुष्ठान किया है सो ऐसे मार्गमें तस्कर लोग चला करते हैं, और वीर लोग इस मार्गमें नहीं चलते॥२९॥
अरे रावण! यदि तुझमें शूरताहो तौ युद्ध कर ! नहीं तौ एक मुहूर्त ठहर बस अपनें भ्राता खरकी समान तूभी पृथ्वीमें शयन करैगा॥३०॥ मृत्युके
समय लोग जिस प्रकारके कार्यको करते हैं, सो तूभी अपना नाश करनें के लिये उसी भांतिके अधर्म कार्य करनेंको तैयार हुआ है॥ ३१ ॥ जिस

नहिजातुदुराधर्षौकाकुत्स्थौतवरावण ॥ धर्षणंचाश्रमस्यास्यक्षमिष्येतेतुराघवौ ॥ २८ ॥ यथात्वयाकृतंकर्मभीरु
णालोकगर्हितम् ॥ तस्कराचरितोमार्गोनैषवीरनिषेवितः ॥ २९ ॥ युद्ध्यस्वयदिशूरोसिमुहूर्तंतिष्ठरावण ॥ शयि
ष्यसिहतोभूमौयथाभ्राताखरस्तथा ॥ ३० ॥ परेतकालेपुरुषोयत्कर्मप्रतिपद्यते ॥ विनाशायात्मनोऽधर्म्यंप्रतिपन्नो
सिकर्मतत् ॥ ३१ ॥ पापानुबंधोवैयस्यकर्मणःकोनुतत्पुमान् ॥ कुर्वीतलोकाधिपतिःस्वयंभूर्भगवानपि ॥ ३२ ॥
एवमुक्त्वाशुभंवाक्यंजटायुस्तस्यरक्षसः ॥ निपपातभृशंपृष्ठेदशग्रीवस्यवीर्यवान् ॥ ३३ ॥ तंगृहीत्वानखैस्तीक्ष्णै
र्विददारसमंततः ॥ अधिरूढोगजारोहोयथास्याद्दुष्टवारणम् ॥ ३४ ॥ विददारनखैरस्यतुंडंपृष्ठेसमर्पयन् ॥ केशां
श्चोत्पाटयामासनखपक्षमुखायुधः ॥ ३५ ॥

अधर्म कार्यके करनेंसे केवल पापही होता है, उस कार्यके करनें में कौन जन हाथ डालता है? इन्द्रादि लोकपाल अथवा स्वयं भगवान्
ब्रह्माजीभी नहीं करते ॥ ३२ ॥ महावलवान् जटायुजी इस प्रकारका नीति युक्त वचन कह कर दशानन रावणकी पीठ पर चिपट गये ॥३३
महावत दुष्ट हाथीपर चढकर जिस प्रकार अंकुश और भाला आदिसे उसके मस्तकको वींधता है, जटायुनेंभी वैसेही रावणको पकड अपने
तीक्ष्ण नखोंकी चोटसे भली भांति रावणको घायल किया ॥ ३४ ॥ और इसी भांतिसे चोंचके आघात और पंजोंके प्रहारसे रावणकी पीठ नोंचकर

समुद्रके पार हमारी लंका नामक परम सुन्दरी नगरीहै वह पुरी देखनेमे इन्द्रकी दूसरी अमरावतीहै भयंकर निशाचर गण उसमें रहा करतेहैं ॥ १० ॥ और वहांपर श्वेत धवरहरे वृक्ष बहुतसे शोभित हो रहेहैं, उस लंकापुरीके सब फाटक वैदूर्य मणिके बनेहैं, और बहारदीवारी सुवर्णकीहै चारों ओर जिसके समुद्र रूपी खाईहै जिस्से यह पुरी परम मनोहारिणी होगईहै ॥ ११ ॥ वहांपर सदाही बाजोंकी ध्वनि गूंजती रहतीहै। उसमें हाथी घोडे और रथ समूह बहुत भर रहेहैं। वहांकी सब फुल वाडियें अभिलाषित फल देनेवाले वृक्षोंसे युक्तहैं जिस्से वाडियोंकी अति शोभा होरहीहै ॥ १२ ॥ हे राजपुत्री सीते! तुम हमारे साथ उस नगरीमें वास करोगी, तब फिर मनुष्योंकी स्त्रियोंको कभी स्मरणभी

ममपारेसमुद्रस्यलंकानापुरीशुभा ॥ संपूर्णाराक्षसैर्घोरैर्यथेंद्रस्यामरावती ॥ १० ॥ प्राकारेणपरिक्षिप्तापांडुरेणविराजिता ॥ हेमकक्ष्यापुरीरम्यावैदूर्यमयतोरणा ॥ ११ ॥ हस्त्यश्वरथसंबाधातूर्यनादविनादिता ॥ सर्वकामफलैर्वृक्षैःसंकुलोद्यानभूषिता ॥ १२ ॥ तत्रत्वंवसहेसीतेराजपुत्रिमयासह ॥ नस्मरिष्यसिनारीणांमानुषीणांमनस्विनि ॥ १३ ॥ भुंजानामानुषान्भोगान्दिव्यांश्चवरवर्णिनि ॥ नस्मरिष्यसिरामस्यमानुषस्यगतायुषः ॥ १४ ॥ स्थापयित्वाप्रियंपुत्रंराज्येदशरथोनृपः ॥ मंदवीर्यस्ततोज्येष्ठःसुतःप्रस्थापितोवनम् ॥ १५ ॥ तेनकिंभ्रष्टराज्येनरामेणगतचेतसा ॥ करिष्यसिविशालाक्षितापसेनतपस्विना ॥ १६ ॥ रक्षराक्षसभर्तारंकामयस्वयमागतम् ॥ नमन्मथशराविष्टंप्रत्याख्यातुंत्वमर्हसि ॥१७॥ प्रत्याख्यायहिमांभीरुपश्चात्तापंगमिष्यसि ॥ चरणेनाभिहत्येवपुरूरवसमुर्वशी ॥१८॥

नहीं किया करैंगे ॥ १३ ॥ हेमनस्विनी वरवर्णिनी! वहां पर तुम वह दिव्य भोग करके जो मनुष्योंको महादुर्लभहैं क्षीणायु रामचंद्रको कभी मनमें याद न करोगी ॥ १४ ॥ और राजा दशरथजीनें भरत जीको राज्याभिषेक करके मन्द वीर्य वाले अपने बड़े पुत्र श्रीरामचंद्रजीको वनमें भेज दिया ॥ १५ ॥ हे बडे २ नेत्रवाली! तुम उन राज्यभ्रष्ट, गतचित्त, तपस्वी रामके साथ रहकर क्या करोगी? ॥ १६ ॥ हम समस्त राक्षसोंके राजा, काम बाणसे वींधे जाकर तुम्हारे पास आपही आयेहैं; सो हमारा निरादर करना तुमको उचित नहींहै ॥१७॥ हेभीरु! हमारा निरादर करनेंसे पीछे तुमको पछताना पडेगा। जिस प्रकार उर्वशी राजा पुरूरवाको लात मार कर संतापि

उनकी ओर दौडीं ॥ ४४ ॥ लंकापति रावणने नीले मेघकी समान विपुल वीर्यवान श्वेत वर्ण युक्त छाती वाले और भूपतित जटायुजीको बुझी हुई दावानलके समान शांत देखा ॥४५॥ अनन्तर चंद्र वदना सीताजी रावणके वेगसे मर्दित व पृथ्वीपर पडे हुए जटायुजीको दोनों वाहोंसे पकडकर वारंवार विलाप करकै रोनें लगीं ॥ ४६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे एकपंचाशःसर्गः ॥ ५१ ॥ रावण करके गृद्धराजका नाश देखकर चंद्रमुखी जानकीजी महादुःखितहो यह कहकर विलाप करनें लगीं ॥१॥ नेत्रोंका फडकना कृष्ण पुरुष दर्शनादि विषयक स्वप्न, पक्षियोंका देखना और पक्षियोंका स्वर श्रवण करना इत्यादि निश्चयही मनुष्योंके होंनहार सुख दुःखकी सूचना करतेहैं ऐसा

तंनीलजीमूतनिकाशकल्पंसपांडुरोरस्कमुदारवीर्यम्॥ददर्शलंकाधिपतिःपृथिव्यांजटायुषंशांतमिवाग्निदावम् ॥४५॥
ततस्तुतंपत्ररथंमहीतलेनिपातितंरावणवेगमर्दितम्॥ पुनश्चसंगृह्यशशिप्रभाननारुरोदसीताजनकात्मजातदा ॥४६॥
इत्यार्षेश्रीम० वा० आ०आर०एकपंचाशःसर्गः ॥ ५१ ॥ सातुताराधिपमुखीरावणेननिरीक्ष्यतम् ॥ गृध्रराजंविनि
हतंविललापसुदुःखिता ॥ १ ॥निमित्तंलक्षणस्वप्नंशकुनिस्वरदर्शनम् ॥ अवश्यंसुखदुःखेषुनराणांपरिदृश्यते ॥ २ ॥
ननूनंरामजानासिमहद्व्यसनमात्मनः ॥ धावंतिनूनंकाकुत्स्थमदर्थंमृगपक्षिणः ॥ ३ ॥ अयंहिकृपयाराममांत्रातु
मिहसंगतः ॥ शेतेविनिहतोभूमौममाभाग्याद्विहंगमः ॥ ४ ॥ त्राहिमामद्यकाकुत्स्थलक्ष्मणेतिवरांगना ॥ सुसंत्र
स्तासमाक्रंदच्छृण्वतांतुयथांतिके ॥ ५ ॥

देखा जाताहै ॥ २ ॥ हे काकुत्स्थ रामचंद्र!, आज निश्चयही मृग और पक्षी गण इस विपदकी सूचना करकै हमारा वियोग जतानेको तुम्हारे सामनें दौडते होंगे; तथापि तुम इस अपनें बडे कष्टको नहीं जानतेहो॥३॥हे काकुत्स्थ! यह विहङ्गम जटायु कृपा करकै हमारा उद्धार करनेंके लिये यहां आकर हमारेही भाग्य दोषसे निहतहो पृथ्वीपर पडेहैं ॥४॥ हे नाथ रामचंद्रजी! लक्ष्मणजी! तुम यहां पर हमारी रक्षा करो यह कहकर स्त्री रत्न सीताजी अतिशय शंकित होकर बडे जोरसे रुदन करनें लगीं। उनके रोनेंको निकट वर्ती प्राणियोंनें सुना ॥५॥

थमार अपनें शरीरको बहुत बढाता हुआ ॥ १ ॥ तिसके पीछे वचन बोलनें में चतुर दशशीश फिर जानकीजीसे बोला; समझपडा कि तुम उन्मत्त सी हो गईहो। क्या हमारा वीर्य और पराक्रम तुम्हारे श्रवण गोचर नहीं हुआ?॥ २ ॥ हम आकाशमें टिके रह कर अपनी दोनों भुजाओं से पृथ्वीको उठा सकतेहैं सब समुद्रके जलकोभी पीसकतेहैं; और युद्धमें यमराजकोभी मार सकतेहैं ॥ ३ ॥ और तीखे बाणजालसे आकाशमें टिके हुए सूर्यकोभी व्यथित कर सकते, और पृथ्वीमें गिरा सकतेहैं ॥ ४ ॥ इस प्रकार कहतेही क्रोध युक्त होनेंके कारण रावणके सांवरे नेत्र समान हो गये और जलती हुई अग्निकी समानताको पहुँचे ॥ ५ ॥ फिर वह कुवेरका छोटा भाई रावण डंडी भेसको त्यागकर शीघ्रही यम

समैथिलींपुनर्वाक्यंबभाषेवाक्यकोविदः ॥ नोन्मत्तयाश्रुतौमध्येममवीर्यपराक्रमौ ॥ २ ॥ उद्वहेयंभुजाभ्यांतुमेदिनीमंबरेस्थितः ॥ आपिबेयंसमुद्रंचमृत्युंहन्यांरणेस्थितः ॥ ३ ॥ अर्कंतुद्यांशरैस्तीक्ष्णैर्विभिंद्यांहिमहीतलम् ॥ कामरूपेणउन्मत्तेपश्यमांकामरूपिणम् ॥४॥ एवमुक्तवतस्तस्यरावणस्यशिखिप्रभे ॥ क्रुद्धस्यहरिपर्यंतेरक्तेनेत्रेबभूवतुः॥ ५ ॥ सद्यःसौम्यंपरित्यज्यतीक्ष्णरूपंसरावणः ॥ स्वंरूपंकालरूपाभंभेजेवैश्रवणानुजः ॥ ६ ॥ संरक्तनयनःश्रीमांस्तप्तकांचनभूषणः ॥ क्रोधेनमहताविष्टोनीलजीमूतसंनिभः ॥ ७ ॥ दशास्योविंशतिभुजोबभूवक्षणदाचरः ॥ सपरिव्राजकच्छद्ममहाकायोविहायतत् ॥ ८ ॥ प्रतिपेदेस्वकंरूपंरावणोराक्षसाधिपः ॥ रक्तांबरधरस्तस्थौस्त्रीरत्नंप्रेक्ष्यमैथिलीम् ॥ ९ ॥ सतामसितकेशांतांभास्करस्यप्रभामिव ॥ वसनाभरणोपेतांमैथिलींरावणोऽब्रवीत् ॥ १० ॥

रूप समान अपना तीक्ष्ण रूप धारण करता हुआ ॥ ६ ॥ और महा क्रोध परायण होकर तपाये सोनेके वनेहुए गहनोंसे सुशोभित होकर नील मेघ सदृश श्रीमान् निशाचर रूप प्रगट हुआ ॥ ७ ॥ उस समय वह दशमुख व वीस भुजा वाला होगया, और छलसे जो दंडीका भेष वनायाथा उसको छोड दिया और बडी कायावाला बनगया ॥ ८ ॥ उस राक्षसपति रावणनें पहला रूप धारण कर लिया, परन्तु वस्त्र लाल रंगकेही पहरे रहा, और रमणीरत्न सीताजीको देखकर ॥ ९ ॥ उन सूर्यकी समान प्रभावाली, काले वालों करके युक्त वस्त्राभूषण धारण किये

कि दैवयोगसे रावणका विनाश आ पहुँचा इसमें कुछभी सन्देह नहींहै॥१२॥इस ओर सीताजी वारम्वार राम और लक्ष्मणजीका नाम लेकर रोनें लगीं राक्षस राज रावण उनको ग्रहण करकै आकाश मार्गमें गमन करनें लगा ॥ १३ ॥ तपे हुए सुवर्णके गहने पहने पीले रेशमीन वस्त्र पहरे राज नंदनी जानकीजी अतीव शोभान्विता सौदामिनी (विजली) की समान दीप्ति धारण करती हुई ॥ १४ ॥ उस कालमें सीताजीके पीत वसन उडनें के कारण रावणभी अग्निद्वारा प्रदीप्त पर्वतकी समान अधिक विराजमान हुआ ॥ १५ ॥ परम कल्याणि सीताजीके शरीरमें जो सुगन्धि युक्त अरुण वर्णके कमल दलथे; वह समस्त दशाननके अंगपर गिरते जातेथे ॥ १६ ॥ इसके सिवाय जानकीजीके विशुद्ध स्वर्ण वर्णके रेशमीन वस्त्र

सतुतांरामरामेतिरुदतींलक्ष्मणेतिच ॥ जगामादायचाकाशंरावणोराक्षसेश्वरः ॥ १३ ॥ तप्ताभरणवर्णांगीपीतकौशेयवासिनी॥रराजराजपुत्रीतुविद्युत्सौदामनीयथा॥१४॥ उद्धूतेनचवस्त्रेणतस्याःपीतेनरावणः॥अधिकंपरिबभ्राजगिरिर्दीप्तइवाग्निना॥१५॥तस्याःपरमकल्याण्यास्ताम्राणिसुरभीणिच ॥ पद्मपत्राणिवैदेह्याअभ्यकीर्यंतरावणम् १६ तस्याःकौशेयमुद्धूतमाकाशेकनकप्रभम् ॥ बभौचादित्यरागेणताम्रमभ्रमिवातपे॥ १७॥ तस्यास्तद्विमलंवक्त्रमाकाशे रावणांकगम्॥ नरराजविनारामंविनालमिवपंकजम् ॥ १८॥ बभूवजलदंनीलंभित्त्वाचंद्रइवोदितः॥ सुललाटंसुकेशांतंपद्मगर्भाभमव्रणम् ॥१९॥ शुक्लैःसुविमलैर्दंतैःप्रभावद्भिरलंकृतम्॥ तस्यासुनयनंवक्त्रमाकाशेरावणांकगम्॥२०॥ रुदितंव्यपमृष्टास्रंचंद्रवत्प्रियदर्शनम् ॥ सुनासंचारुताम्रोष्ठमाकाशेहाटकप्रभम् ॥ २१ ॥

आकाशमें उडकर सन्ध्या कालीन सूर्य किरण शोभान्वित मेघोंकी समान शोभा विस्तार करने लगे ॥ १७ ॥ और सीताका निर्मल मुख मंडल रावणके अंकमें रहनेंके कारण श्री रामचंद्रजीके विना मृणाल रहित कमलकी समान किसी भांति शोभित नहीं हुआ ॥ १८ ॥ नील मेघको भेदनकर उदय होते हुए चंद्रमाकी समान सुन्दर ललाट सहित सुन्दर केश पर्यन्त पद्मगर्भ सम प्रकाशित विस्फोटकका चिह्न रहित॥१९॥ दीप्तमान् श्वेतवर्ण दन्त पंक्तिकी प्रभासे सुशोभित सुन्दर नेत्रयुक्त जानकीजीका वदन रावणके अंगमें स्थित आकाशमें इस प्रकारसे शोभा पाने लगा ॥ २० ॥ अनवरत रोदन युक्त आंसुओंके जलसें मलीन चंद्रमाकी समान प्रियदर्शन सुन्दर नासिका सहित, मनोहर, व लाल अधरों

हां पर आ पहुंचा ॥ १९ ॥ उस रथको देख रावण नें गंभीर स्वर और कठोर वचनों से जानकीजीको डांटा और धमकाया और उनको गोदमें लेकर रथमें डाल दिया ॥ २० ॥ यशस्विनी सीताजी उस करके ग्रही जानेपर और भयसे व्याकुलहो हाराम! हा राम! कहकर पुकार करनें लगीं परन्तु रामचंद्रजी उस समय बहुत दूरथे ॥ २१ ॥ रावणके प्रति जानकीजीका कछुभी अनुराग नहींथा इस कारणसे वह अपने छुटानेंके लिये यथाशक्य चेष्टा करनेंलगीं, परन्तु कामके वशहुआ रावण पन्नग राजकी स्त्रीके समान उनको लेकर आकाशको उडगया ॥ २२ ॥ इस प्रकारसे राक्षसराज रावण आकाशमें जानकी हरण करके लेचला जानकीजी मत्त भ्रान्त चित्त और आतुरकी समान यह कहकर बडे जोरसे विलाप

ततस्तांपरुषैर्वाक्यैरभितर्ज्यमहास्वनः ॥ अंकेनादायवैदेहींरथमारोहयत्तदा ॥२० ॥ सागृहीतातिचुक्रोशरावणेनयशस्विनी ॥ रामेतिसीतादुःखार्तारामंदूरंगतंवने ॥ २१ ॥ तामकामांसकामार्तःपन्नगेंद्रवधूमिव ॥ विष्टेचमानामादायउत्पपाताथरावणः ॥ २२ ॥ ततःसाराक्षसेंद्रेणह्रियमाणाविहायसा ॥ भृशंचुक्रोशमत्तेवभ्रांतचित्तायथातुरा ॥ २३ ॥ हालक्ष्मणमहाबाहोगुरुचित्तप्रसादक ॥ ह्रियमाणांनजानीषेरक्षसाकामरूपिणा ॥ २४ ॥ जीवितंसुखमर्थंचधर्महेतोःपरित्यजन् ॥ ह्रियमाणामधर्मेणमांराघवनपश्यसि ॥ २५ ॥ ननुनामाविनीतानांविनेतासिपरंतप ॥ कथमेवंविधंपापंनत्वंशाधिहिरावणम् ॥ २६ ॥ ननुसद्योऽविनीतस्यदृश्यतेकर्मणःफलम् ॥ कालोप्यंगीभवत्यत्रसस्यानामिवपक्तये ॥ २७ ॥ त्वंकर्मकृतवानेतत्कालोपहतचेतनः ॥ जीवितांतकरंघोरंरामाद्व्यसनमाप्नुहि ॥ २८ ॥

करनेलगीं ॥ २३ ॥ हा गुरुचित्तप्रसादक! महाबाहु लक्ष्मणजी! काम रूपी राक्षस करके मैं हरी जातीहूं सो इसको तुम नहीं जानतेहो ॥ २४ ॥ हाराम! तुम धर्मकी रक्षा करनेंके लिये, प्राण, सुख, संपत्ति सबकाही त्याग करतेहो, इस समय हम अधर्मके द्वारा हरी जातीहैं सो क्योंनहीं हमें आनकर बचाते? ॥ २५ ॥ हे शत्रुओंके तपानेंवाले! जो अविनयी होतेहैं आप उनका सदाही शासन किया करतेहैं, फिर क्योंनहीं ऐसेही पापात्मा रावणका शासन करतेहो? ॥ २६ ॥ अन्यायी पुरुषके कर्मका फल शीघ्रही नहीं मिलता; जिस प्रकार नाजके पकनेंमें कुछ समय का प्रयोजन होताहै इसी प्रकार समय आनेंपर अन्यायका फल मिलताहै ॥ २७ ॥ हे रावण! तुमनें कालके प्रभावसे चेतना

साथ नीले वर्णका रावण कांचनकक्ष्यावेष्टित हस्तीकी समान शोभा पानें लगा इससे जानकीजी हाथीकी सुवर्णकी कौंधनीकी समान शोभा पानें
लगीं ॥ ३० ॥ श्रीसीताजी महाज्वालाकी समान अपनें तेजसे आकाशके वीच देदीप्यमान होने लगीं, कुबेरका भाई रावण उस अवस्थामें उनको
आकाश मार्गमें गमन करके ले जानें लगा ॥ ३१ ॥ उस समय सीताजीके अग्नि वर्णवाले शब्दायमान उनकी देहसे खसककर सब भूषण पृथ्वीमें
गिरने लगे, उस समय ऐसा बोध हुआ मानों पुण्यक्षीण हुए तारागण आकाशसे गिर रहेहैं ॥३२॥ सीताजीका चंद्र सदृश दीप्तिवाला हार उनके
दोनो उरोजोंके मध्यसे भ्रष्ट होकर गगनसे गिरी हुई गंगाजीके समान शोभा विस्तार करता गिरने लगा ॥ ३३ ॥ उत्पातकी वायुके चलनें से शिरः
तांमहोल्कामिवाकाशेदीप्यमानांस्वतेजसा ॥ जहाराकाशमाविश्यसीतांवैश्रवणानुजः ॥ ३१ ॥ तस्यास्तान्यग्नि
वर्णानिभूषणानिमहीतले ॥ सघोषाण्यवशीर्यंतक्षीणास्ताराइवांबरात् ॥ ३२ ॥ तस्याःस्तनांतराद्भ्रष्टोहारस्ताराधि
पद्युतिः ॥ वैदेह्यानिपतन्भातिगंगेवगगनच्युता ॥ ३३ ॥ उत्पातवाताभिरतानानाद्विजगणायुताः ॥ माभैरितिवि
धूताग्राव्याजह्रुरिवपादपाः ॥ ३४ ॥ नलिन्योध्वस्तकमलास्त्रस्तमीनजलेचराः ॥ सखीमिवगतोत्साहांशोचंतीवस्म
मैथिलीम् ॥ ३५ ॥ समंतादभिसंपत्यसिंहव्याघ्रमृगद्विजाः ॥ अन्वधावंस्तदारोषात्सीताच्छायानुगामिनः ॥ ३६ ॥
जलप्रपातास्रमुखाःशृंगैरुच्छ्रितबाहुभिः ॥ सीतायांह्रियमाणायांविक्रोशंतीवपर्वताः ॥ ३७ ॥ह्रियमाणांतुवैदेहींदृष्ट्वादी
नोदिवाकरः ॥ प्रविध्वस्तप्रभःश्रीमानासीत्पांडुरमंडलः ॥ ३८ ॥
समूह कम्पित होनेके कारण विविध विहंगम युक्त वृक्ष मानों जानकीसे "कुछ भय नहींहै!" यह कहने लगे ॥ ३४ ॥ कमलदलोंके विध्वंस हो
जानेंसे, और मत्स्य इत्यादिक जलचरोंके व्याकुल हो जानेपर सब सरोवर सखीकी समान उत्साह रहित जानकीजीके शोकसे विह्वल होरहेथे ॥
॥३५॥सिंह, व्याघ्र, मृग, और पक्षी समूह क्रोधमें भरकर सीताजीकी परछांईके पकडने के लिये चारों ओरसे आकर उनके पीछेर दौडने लगे॥३६॥
जानकीजीके हर जानेसे समस्त पर्वत शृङ्गरूप बाहु परम्परा उठाकर झरने रूप अश्रुधाराकुल वदनसे मानो रुदनही करने लगे ॥ ३७ ॥
श्रीमान् सूर्य नारायणभी उस अवस्थामें जानकीजीको देखकर दीन और तेज हीन होगये और उनका मंडल प्रदेश धूंधला होगया ॥ ३८ ॥

जटायुको देखकर रावणके वशमें पडी हुई सुश्रोणी जानकीजी भयके मारे दुःखित हो रोकर बोलीं ॥ ३७ ॥ आर्य जटायु! अवलोकन करो यह पा
पात्मा राक्षसराज रावण हमको अनाथकी समान निर्दय भावसे हरण करके लिये जाता है ॥ ३८ ॥ आप इस महाबलवान् विजय चिह्न धारी दुर्म
ति क्रूर आयुधधारी निशाचर रावणको निवारण नहीं कर सकेंगे ॥ ३९ ॥ आप इस निशाचरको निवारण करनेंमें समर्थ नहींहैं, इस कारण ही
श्रीरामचंद्रजीसे हमारे हरणकी वार्ता ठीक २ कह देना, और लक्ष्मणजीसे यह सब वृत्तान्त व्यौरेवार कहना ॥ ४० ॥ इत्यार्षे
श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे एकोनपंचाशः सर्गः ॥ ४९ ॥ जटायु भोजन करके गहरी नींदमें सोरहेथे वह यह शब्द सुनतेही

सातमुद्वीक्ष्यसुश्रोणीरावणस्यवशंगता ॥ समाक्रंदद्भयपरादुःखोपहितयागिरा ॥ ३७ ॥ जटायोपश्यमामार्यह्रियमाणामनाथवत् ॥ अनेनराक्षसेंद्रेणकरुणंपापकर्मणा ॥ ३८ ॥ नैषवारयितुंशक्यस्त्वयाक्रूरोनिशाचरः ॥ सत्त्ववान्जितकाशीचसायुधश्चैवदुर्मतिः ॥ ३९ ॥ रामायतुयथातत्त्वंजटायोहरणंमम ॥ लक्ष्मणायचतत्सर्वमाख्यातव्यमशेषतः ॥ ४० ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेएकोनपंचाशःसर्गः ॥ ४९ ॥ ॥

तंशब्दमवसुप्तस्तुजटायुरथशुश्रुवे ॥ निरैक्षद्रावणंक्षिप्रंवैदेहींचददर्शसः ॥ १ ॥ ततःपर्वतशृंगाभस्तीक्ष्णतुंडःखगोत्तमः ॥ वनस्पतिगतःश्रीमान्व्याजहारशुभांगिरम् ॥ २ ॥ दशग्रीवस्थितोधर्मेपुराणेसत्यसंश्रवः ॥ भ्रातस्त्वंनिंदितंकर्मकर्तुंनार्हसिसांप्रतम् ॥ ३ ॥ जटायुर्नामनाम्नाहंगृध्रराजोमहाबलः ॥ राजासर्वस्यलोकस्यमहेंद्रवरुणोपमः ॥ ४ ॥ लोकानांचहितेयुक्तोरामोदशरथात्मजः ॥ तस्यैषालोकनाथस्यधर्मपत्नीयशस्विनी ॥ ५ ॥

जाग पडे और रावण और जानकी दोनों को देखा ॥ १ ॥ फिर पर्वतके शृंगसमान बडी तेज चोंचवाले और वृक्षपर बैठे हुए श्रीमान् पक्षिराज जटायु
मीठे वचन से रावण को पुकारते हुए ॥ २ ॥ भ्रातः दशवदन! हम पुराण धर्म निरत और सत्यप्रतिज्ञहैं; इस कारण तुम हमारे सामने ऐसा
निन्दनीय कार्य करनेंमें प्रवृत्त न होवो ॥ ३ ॥ हम महा बलवान् गृध्रराज जटायु हैं और दशरथकुमार श्रीरामचंद्रजी भी साक्षात् महेन्द्र और
वरुणजीके समान सब लोकोंके राजाहैं ॥ ४ ॥ वह सब लोकोंके हितकारी कार्य करनेंको तैयार रहतेहैं, यह वरारोहा यशस्विनी उन्ही लोक

रेराक्षसाधम रावण! हमको अकेला पाकर चोरी करके तू लिये भागाजाताहै अरे क्या इस नीच कर्मसे तुझे लाज नहीं आती? ॥ ३ ॥ रे दुरा
त्मन्! मैं जान गई कि तू डरपोक स्वभाववालाहै इसी कारणसे हमारे हरण करनेका अभिलाष कर मायामय मृगरूप बना हमारे स्वामी रामचं
द्रजीको छलसे दूरले गया॥४॥और इस समय हमारी रक्षा करनेके लिये जो तैयार हुएथे उन हमारे श्वशुरके सखा गृध्रराज जटायुजीकोभी तैंनेमारडा
ला हे राक्षसाधम! इससेही जाना गया कि तुझमें कुछ वीरता नहींहै तूने केवल हमको अपना नामही सुनाकर हरण किया, कुछ तुझ करके हम जी
ती नहीं गई. हाँ राम लक्ष्मणसे युद्ध कर हमें जीतता तौ एक बातथी॥५॥६॥रेनीच! शून्यमें पराई स्त्रीके हरण करनेंका यह नीच निन्दनीय कार्य कर

नव्यपत्रपसेनीचकर्मणानेनरावण ॥ ज्ञात्वाविरहितांयोमांचोरयित्वापलायसे ॥ ३ ॥ त्वयैवनूनंदुष्टात्मन्भीरुणाह
र्तुमिच्छता ॥ ममापवाहितोभर्तामृगरूपेणमायया॥४॥ योहिमामुद्यतस्त्रातुंसोप्ययंविनिपातितः ॥ गृध्रराजःपुराणोऽ
सौश्वशुरस्यसखामम ॥ ५ ॥ परमंखलुतेवीर्यंदृश्यतेराक्षसाधम ॥ विश्राव्यानामधेयंहियुद्धेनास्मिजितात्वया ॥ ६ ॥
ईदृशंगर्हितंकर्मकथंकृत्वानलज्जसे ॥ स्त्रियाश्चाहरणंनीचरहितेचपरस्यच ॥ ७ ॥ कथयिष्यंतिलोकेषुपुरुषाःकर्मकु
त्सितम् ॥ सुनृशंसमधर्मिष्ठंतवशौटीर्यमानिनः ॥ ८ ॥ धिक्तेशौर्यंचसत्त्वंचयत्त्वयाकथितंतदा ॥ कुलाक्रोश
करंलोकेधिक्तेचारित्रमीदृशम् ॥ ९ ॥ किंशक्यंकर्तुमेवंहियज्जवेनैवधावसि ॥ मुहूर्तमपितिष्ठत्वंनजीवन्प्रतियास्य
सि ॥ १० ॥ नहिचक्षुःपथंप्राप्यतयोःपार्थिवपुत्रयोः ॥ ससैन्योपिसमर्थस्त्वंमुहूर्तमपिजीवितुम् ॥ ११ ॥

के तू लज्जित नहीं होता ॥७॥रेअपनेंको शूर माननेंवाले! तूनें जो यह अति निर्लज्ज और निन्दनीय कार्य कियाहै सो इसकी चरचा सब पुरुष कर२
के तुझे बुरा कहेंगे॥८॥तूनें जो अपनी शूरताईकी और शारीरक बलकी वार्ता कही सो तेरी इस शूरताको धिक्कारहै! तेरेइस बलकोभी धिक्कारहै!
तेरे कुलके कलंक जनक ऐसे चरित्रपरभी धिक्कारहै ॥ ९ ॥ तू इस प्रकारसे हरण करकै शीघ्रताके साथ दौड़ा जाताहै फिर भला हम क्या कर स
कें हां यदि एक मुहूर्तभी तू खड़ा रहै, तौ प्राण लेकर नहीं लौटने पावेगा ॥ १० ॥ राजकुमार रामचंद्र और लक्ष्मणजीकी दृष्टिके आगे आते

कारण से उनका अपराध करतेहो? ॥ १३ ॥ देखो जनस्थानका रहनेंवाला खर अतिशय दुष्टथा तिससे सरलता करनेंवाले रामनें शूर्पणखाके लिये यदि उसको मार डालाहै ॥ १४॥ तौ इस्में रामचंद्रजीका क्या अपराधहै? तुम वही लोकनाथ रामचंद्रजीकी भार्या हरण करके लिये जातेहो॥१५॥ अभी जानकीको छोड दो; इन्द्रने जिस प्रकार वज्रसे वृत्रासुरको जलाडालाथा वैसेही कहीं रामचंद्रजी तुमको अनल कल्प रूप भयंकर दृष्टिसे भस्म न कर दें ॥ १६ ॥ तुमने जो अपने वस्त्रके अंचलमें महा विषदार सर्प बांधाहै सो उसको तुमनें सर्प नहीं जाना है अथवा तुम उस कालपाशको नहीं देखतेहो जो तुम्हारे गलेमें पडीहै ॥ १७ ॥ हे सौम्य! जिस भारको वहन करनेंसें दबजाना न पडे वही बोझा लेकर चलना चाहिये । और जो सहजही से पच जावै, और किसी प्रकार पीडा नकरै उसही अन्नको खाना चाहिये॥१८ ॥ जिसकार्य करनेंसें धर्म, कीर्ति,

यदिशूर्पणखाहेतोर्जनस्थानगतःखरः ॥ अतिवृत्तोहतःपूर्वंरामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ १४॥ अत्रब्रूहियथातत्त्वंकोरामस्य व्यतिक्रमः ॥ यस्यत्वंलोकनाथस्यहृत्वाभार्यांगमिष्यसि ॥ १५ ॥ क्षिप्रंविसृजवैदेहींमात्वाघोरेणचक्षुषा ॥ दहेद्दहनभूतेनवृत्रमिंद्राशनिर्यथा॥१६॥ सर्पमाशीविषंबद्ध्वावस्त्रांतेनावबुध्यसे॥ग्रीवायांप्रतिमुक्तंचकालपाशंनपश्यसि॥१७॥ सभारःसौम्यभर्तव्योयोनरंनावसादयेत् ॥ तदन्नमपिभोक्तव्यंजीर्यतेयदनामयम् ॥ १८॥ यत्कृत्वानभवेद्धर्मोनकीर्तिर्नयशोध्रुवम् ॥ शरीरस्यभवेत्खेदःकस्तत्कर्मसमाचरेत् ॥ १९ ॥ षष्टिवर्षसहस्राणिजातस्यममरावण ॥ पितृपैतामहंराज्यंयथावदनुतिष्ठतः ॥ २० ॥ वृद्धोहंत्वंयुवाधन्वीसरथःकवचीशरी ॥ नचाप्यादायकुशलीवैदेहींमेगमिष्यसि ॥ २१॥

वा चिरस्थाई यश, किसीके मिलनेंकी भी संभावना हो, वरन उलटा उससे शरीर में खेद हो, भला ऐसे कार्यके करनेकी कौन पुरुष इच्छा करैगा? ॥१९॥हे रावण! हमें साठ हजार वर्ष जन्म लिये हुए, तबसे विधि पूर्वक पिता पितामहादिकोंका पक्षियोंका राज्य पालन करते हैं॥ २०॥यद्यपि हम बूढे होगयेहैं और तुम युवा धनुर्बाण धारी कवच सम्पन्न और रथ पर सवारहो, तथापि हमारे सामनें तुम निरापद जानकीको न लेजा सकोगे ❋ ॥ २१ ॥

* भजन–गीधराज सुनि आरत वानी । नैन उठाय विलोकन लागे रघुकुल तिलक नारि पहिचानी॥१॥परीं अधम निश्चरके वशमें जात पुकारत सारंग पानी॥२॥महा क्रोधमें भर अधीरहो रार करन की मनमें ठानी॥३॥पवन समान वेगसों धाये बोले ठहर तनक अभिमानी॥४॥चोर समान लिये सीताको जात कहां बचैके अभिमानी॥५ ॥यह कह चोंच मार रथ तोरचो रथीमार सुमिरे सुख दानी॥पुनि रावणको कियो मूर्छित लई उतार सीय महारानी ॥ ६ ॥ यह बलदेव भक्तके कर्तव युग २ कीरत चली सुहानी ॥ ७ ॥

और भी महद् कंटकाकीर्ण सुतीक्ष्ण शाल्मली वृक्ष यह सब बहुत शीघ्र तुझको दिखाई देंगे! तुम उन महात्मा रामचंद्रजीका ऐसा
अप्रिय कार्य करकै नहीं जी सकोगे ॥ २१ ॥ जिस प्रकार विषका पीनें वाला बहुत देर तक नहीं प्राण रख सकता, रेनिर्घृण! रावण! इन सब
वातोंसे स्पष्टहै कि तू काठिन कालकी फांसीसे बँधाहै ॥ २२ ॥ महात्मा हमारे स्वामीके सन्मुख संग्राममें प्राप्त होकर फिर तुम्हारा कहीं निस्तारा
नहीं, फिर तू कहां जायकर बचेगा; उन्होंने अकेलेही बिना अपनें भ्राताकी सहायताके एक निमेष मात्रमें ॥२३॥ चौदह हजार राक्षस मारडाले,वही
सब अस्त्र शस्त्रोंके जाननेंवाले महाबलवान् वीर्यसम्पन्न श्रीरामचंद्रजी ॥ २४ ॥ सुतीक्ष्ण बाणोंके समूहसे अपनी प्रिय भार्याके

द्रक्ष्यसेशाल्मलींतीक्ष्णामायसैःकंटकैश्चिताम् ॥ नहित्वमीदृशंकृत्वातस्यालीकंमहात्मनः ॥ २१ ॥ धारितुंशक्ष्य
सिचिरंविषंपीत्वेवनिर्घृणं ॥ बद्धस्त्वंकालपाशेनदुर्निवारेणरावण ॥ २२ ॥ क्वगतोलप्स्यसेशर्ममभर्तुर्महात्मनः ॥
निमेषांतरमात्रेणविनाभ्रातरमाहवे ॥ २३ ॥ राक्षसानिहतायेनसहस्राणिचतुर्दश ॥ कथंसराघवोवीरःसर्वास्त्रकुशलो
बली ॥ २४ ॥ नत्वांहन्याच्छरैस्तीक्ष्णैरिष्टभार्यापहारिणम् ॥ एतच्चान्यच्चपरुषंवैदेहीरावणांकगा ॥ भयशोकसमा
विष्टाकरुणंविललापह ॥ २५ ॥ तदाभृशार्तांबहुचैवभाषिणींविलापपूर्वंकरुणंचभामिनीम् ॥ जहारपापस्तरुणींविचे
ष्टतींनृपात्मजामागतगात्रवेपथुः ॥ २६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेत्रिपंचा
शःसर्गः ॥ ५३ ॥ ह्रियमाणातुवैदेहीकंचिन्नाथमपश्यती ॥ ददर्शगिरिशृंगस्थान्पंचवानरपुंगवान् ॥ १ ॥

हरनेंवाले तुझको अवश्यही मार डालेंगे, रावणके हाथोंके बीचमें बैठी वैदेहीजी भय और शोक युक्त होकर इस प्रकारसे व औरभी बहुत
भांतिसे कठोर वचनके साथ करुणास्वरसे विलाप करनें लगीं ॥ २५ ॥ वह महाव्याकुल होकर अपने छुडानेंकी चेष्टा करती हुई करुणा स
हित विलाप करकै अनेक वचन कहनें लगीं, उस समय पापचारी रावण अपनें शरीरको कंपाता हुआ उनको हरण करके ले चला ॥ २६ ॥
इ० श्रीम० वा० आ० आर० त्रिपंचाशः सर्गः ॥ ५३ ॥ जब रावण हरण करकै ले चला तब जानकीजी और किसीको रक्षा करनेंवाला

बडे वेगसे दौडा ॥ १ ॥ फिर गगन मण्डलमें वायु प्रेरित दो मेघोंकी टक्कर जिस प्रकार लडती है वैसेही इन दोनोंका महाघोर संग्राम आरंभ हुआ ॥ २ ॥ पर लगे हुए माला पहरे हुए दो श्रेष्ठ पर्वतोंकी समान गृध्रराज जटायु और राक्षसेन्द्र रावणका अद्भुत संग्राम उपस्थित हुआ ॥ ३ ॥ तिसके पीछे रावणने महाबलवान गृध्रराजके ऊपर अनवरत महाभयंकर तीक्ष्णफलक लगे हुए नालीक और नाराच व विकर्णि समूह बाणोंकी वर्षा की ॥ ४ ॥ पक्षिराज जटायुनें युद्धमें रावणके चलाये हुए अस्त्र और समस्त शर जाल ग्रहण किया ॥ ५ ॥ और अति तीखे नखून लगे हुए अपने दोनों चरणोंसे रावणके शरीरमें सहस्रों घाव कर दिये ॥ ६ ॥ अपने शरीरमें घाव हुए देख महावीर दशवदन रावणनें

ससंप्रहारस्तुमुलस्तयोस्तस्मिन्महामृधे ॥ बभूववातोद्धतयोर्मेघयोर्गगनेयथा ॥ २ ॥ तद्बभूवाद्भुतंयुद्धंगृध्रराक्षसयोस्तदा ॥ सपक्षयोर्माल्यवतोर्महापर्वतयोरिव ॥ ३ ॥ ततोनालीकनाराचैस्तीक्ष्णाग्रैश्चविकर्णिभिः ॥ अभ्यवर्षन्महाघोरैर्गृध्रराजंमहाबलम् ॥ ४ ॥ सतानिशरजालानिगृध्रःपत्ररथेश्वरः ॥ जटायुःप्रतिजग्राहरावणास्त्राणिसंयुगे ॥ ५ ॥ तस्यतीक्ष्णनखाभ्यांतुचरणाभ्यांमहाबलः ॥ चकारबहुधागात्रेव्रणान्पतगसत्तमः ॥ ६ ॥ अथक्रोधाद्दशग्रीवोजग्राहदशमार्गणान् ॥ मृत्युदंडनिभान्घोराञ्छत्रोर्निधनकांक्षया ॥ ७ ॥ सतैर्बाणैर्महावीर्यःपूर्णमुक्तैरजिह्मगैः ॥ बिभेदनिशितैस्तीक्ष्णैर्गृध्रंघोरैःशिलीमुखैः ॥ ८ ॥ सराक्षसरथेपश्यञ्जानकींबाष्पलोचनाम् ॥ अचिंतयित्वाबाणांस्तान्राक्षसंसमभिद्रवत् ॥ ९ ॥ ततोस्यसशरंचापंमुक्तामणिविभूषितम् ॥ चरणाभ्यांमहातेजाबभंजपतगोत्तमः ॥ १० ॥ ततोऽन्यद्धनुरादायरावणःक्रोधमूर्छितः ॥ ववर्षशरवर्षाणिशतशोथसहस्रशः ॥ ११ ॥

क्रोध पूर्ण हो शत्रुओंके मार डालनेकी इच्छासे यमराजके दंडकी समान भयंकर दशबाण ग्रहण किये ॥ ७ ॥ और कानतक धनुषकों खेंचकर उन सीधे चलनें वाले तीखे रुधिरके प्यासे भयंकर शिलीमुख बाणोंको छोडकर जटायुको वध किया ॥ ८ ॥ राक्षस राज रावणके रथमें रुदन करती हुई जानकीको देखकर पक्षीराज जटायु उन समस्त बाणोंको कुछ न गिनते हुए रावणके सन्मुख दौडे ॥ ९ ॥ और अपनें दोनों चरणोंसे तेजमान जटायुनें रावणका मणि मुक्ता भूषित बाण सहित शरासन तोड डाला ॥ १० ॥ अपने धनुष बाणको टूटा हुआ देखकर रावण महा

दशा तो नदीनाथकी हुई और अन्तरिक्षमें विचरण करनें वाले चारण गण कहनें लगे ॥ १० ॥ कि अब रावण किसी प्रकार नहीं बच सकता
यहींतक इसके जीवनका शेष होगया । सिद्ध गणभी ऐसाही कहने लगे इस ओर रावण विचेष्ट माना सीताजीको गोदीमें लिये ॥ ११ ॥ अपनी लं
का पुरीमें लेआया, वह सीताजीको नहींलाया वरन कहींसे अपनी मृत्युको मोल ले आया । उस समय लंका नगरीमें बडे २ चौराहे और मार्ग
सुशोभित हो रहेथे ॥ १२ ॥ वहां पहुंचकर अपनें परम सुन्दर रणवास में रावणने शोक मोहसे युक्त तिन परम सुन्दरीको जाकर बैठा दिया १३
उस समय ऐसा बोध हुआ मानों मय दानव अपने पुरमें आसुरी मायाले आयाहै, दशानन सीताजीको अपने रणवासमें स्थापन करकै घोर दर्शना

एतदंतोदशग्रीवइतिसिद्धास्तदाब्रुवन् ॥ सतुसीतांविचेष्टंतीमंकेनादायरावणः ॥ ११ ॥ प्रविवेशपुरींलंकांरूपिणीं
मृत्युमात्मनः ॥ सोऽभिगम्यपुरींलंकांसुविभक्तमहापथान् ॥ १२ ॥ संरूढकक्ष्यांबहुलांस्वमंतःपुरमाविशत् ॥
तत्रतामसितापांगींशोकमोहसमन्विताम् ॥ १३ ॥ निदधेरावणःसीतांमयोमायामिवासुरीम् ॥ अब्रवीच्चदशग्री
वःपिशाचीर्घोरदर्शनाः ॥ १४ ॥ यथानैनांपुमान्स्त्रीवासीतांपश्यत्यसंमतः ॥ मुक्तामणिसुवर्णानिवस्त्राण्याभरणा
नि च ॥ १५ ॥ यद्यदिच्छेत्तदैवास्यादेयंमच्छंदतोयथा ॥ याचवक्ष्यतिवैदेहींवचनंकिंचिदप्रियम् ॥ १६ ॥ अज्ञा
नाद्यदिवाज्ञानान्नतस्याजीवितंप्रियम् ॥ तथोक्त्वाराक्षसीस्तास्तुराक्षसेंद्रःप्रतापवान् ॥ १७ ॥ निष्क्रम्यांतः
पुरात्तस्मात्किंकृत्यमितिचिंतयन् ॥ ददर्शाष्टौमहावीर्यान्राक्षसान्पिशिताशनान् ॥ १८ ॥

पिशाचनियोंको आज्ञा देताहुआ ॥ १४ ॥ कि तुम भली भांतिसे इनकी रक्षाकरो । कोई स्त्री व पुरुष हमारी विना आज्ञा इन सीताको नहीं
देखनें पावै मुक्ता मणि,सुवर्ण वस्त्र भूषण ॥ १५ ॥ इत्यादि जिस २ वस्तुकी यह इच्छा करैं वह समस्तही इनको दीजाय यह मेरी आज्ञाहै व जोकोई
स्त्री तुममेंसे इन जानकीको अप्रिय वचन ॥ १६ ॥ ज्ञानसे व अज्ञानसे कहेगी वह निज शरीरमें अपने प्राणोंको न समझै इस तरह सब रक्षाकर
नें वालियोंसे कह महा प्रतापवान रावण ॥ १७ ॥ रनवास से वाहर आ विचार करनें लगाकि इससमय हमको क्या करना उचितहै, यह सोच उस

रावणकी सवारीको टूटा फूटा देख; और स्वयं रावणकोभी पृथ्वीपर गिरादेख, समस्त प्राणी वारंवार " साधु साधु! " कह कर गृद्ध्रराजकी बडाई करनें लगे ॥ २० ॥ तिसके पीछे रावण बडी उमर होनेंके कारण बुढापा ग्रस्त पक्षियूथपति जटायुको थका हुआ देख हर्ष सहित मैथिलि सीताजीको ग्रहण कर आकाश मार्गमें गमन करनें लगा ॥ २१ ॥ रावणके समस्तही युद्ध साधन विनष्ट और हत हो गयेथे केवल एक खड्ग बच रहाथा ।वह रावण उस अवस्था में भी नितान्त हृष्टचित्त होकर जानकीजीको गोदीमें बैठाय जानेंको तैयार हुआ॥२२॥महा तेजस्वी गृद्ध्रराज जटायु नें बडे जोरसे कूद रावणके सामनें दौडे और उसको भली भांति रोक कर कहनें लगे ॥ २३ ॥ अरे अल्पज्ञानी रावण! तुम समस्त राक्षस कुलको

दृष्ट्वानिपतितंभूमौरावणंभग्नवाहनम् ॥ साधुसाध्वितिभूतानिगृध्रराजमपूजयन् ॥ २० ॥ परिश्रांतंतुतंदृष्ट्वाजरयापक्षियूथपम् ॥ उत्पपातपुनर्हृष्टोमैथिलींगृह्यरावणः ॥ २१ ॥ तंप्रहृष्टंनिधायांकेरावणंजनकात्मजाम् ॥ गच्छंतंखड्गशेषंचप्रनष्टहतसाधनम् ॥ २२ ॥ गृध्रराजःसमुत्पत्यरावणंसमभिद्रवत् ॥ समावार्यमहातेजाजटायुरिदमब्रवीत् ॥ २३ ॥ वज्रसंस्पर्शबाणस्यभार्यांरामस्यरावण ॥ अल्पबुद्धेहरस्येनांवधायखलुरक्षसाम् ॥ २४ ॥ समित्रबंधुःसामात्यःसबलःसपरिच्छदः ॥ विषपानंपिबस्येतत्पिपासितइवोदकम् ॥ २५ ॥ अनुबंधमजानंतःकर्मणामविचक्षणः ॥ शीघ्रमेवविनश्यंतियथात्वंविनशिष्यसि ॥ २६ ॥ बद्धस्त्वंकालपाशेनक्वगतस्तस्यमोक्ष्यसे ॥ वधायबडिशंगृह्यसामिषंजलजोयथा ॥ २७ ॥

विनाश करनेंके लियेही उन वज्र समान बाण धारण करनें वाले श्रीरामचन्द्रजीकी इन जानकीजीको हरण करता है ॥ २४ ॥ हम समझे, कि प्यासा होकर मनुष्य जिस प्रकार जल पीता है तूभी वैसेही मित्र, बन्धु, मंत्री, चतुरंग सेना और दास दासी इत्यादि समस्त परिजनोंके सहित विष पीनेंको तैयार हुआ है ॥ २५ ॥ मूर्खलोग जिस प्रकार कर्मके फलको न जान कर शीघ्रही विष पीकर शीघ्रही विनाशको प्राप्त होते हैं वैसेही तुम्हारा सब परिवारके साथ सत्यानाश हो जायगा ॥ २६ ॥ तू कालकी फांसीमें बँधा है, मछली जिस प्रकार मांसका टुकडा लगी हुई वंशीको ग्रहण करनेंके अर्थ अपना प्राण खोनेंको उसके सामनें को दौडती है और निश्चयंही उसके प्राण जाते हैं । सो इसी प्रकार तूभी

सावधानीसे वहां पर चले जाओ, और सदा उस रामचंद्रको मार डालनेंके लिये यत्न करते रहना ॥ २७ ॥ हमनें पहले संग्राममें अनेक वार तुम
लोगोंके बलको जान लियाहै, बस इसी कारणसे हमनें तुम लोगोंको जन स्थानमें विठाया ॥ २८ ॥ वह आठ राक्षस इन अर्थ युक्त मीठे वचनोंको
सुन और रावणको प्रणाम कर लंका छोड करकै जनस्थानकी ओर गुप्त भावसे सबके सब चले ॥ २९ ॥ इस प्रकारसे रावण श्रीजानकी
जीको परम हर्षित चित्तसे ग्रहण करकै और उनको अपनें रनवासमें टिका, रामचंद्रजीसे महा शत्रुता करकै मोह युक्तहो परमानंदित हुआ ॥ ३० ॥
इ० श्रीम० वाल्मीकीये आदि काव्ये आर० चतुष्पंचाशःसर्गः ॥ ५४ ॥ रावणकी मतिमें भ्रम होगयाथा इसी कारणसे वह घोर महा बलवान्

युष्माकंतुबलंज्ञातंबहुशोरणमूर्धनि ॥ अतश्चास्मिन्जनस्थानेमयायूयंनिवेशिताः ॥ २८ ॥ ततःप्रियंवाक्यमुपेत्यरा
क्षसामहार्थमष्टावभिवाद्यरावणम् ॥ विहायलंकांसहिताःप्रतस्थिरेयतोजनस्थानमलक्ष्यदर्शनाः ॥ २९ ॥ ततस्तुसी
तामुपलभ्यरावणःसुसंप्रहृष्टःपरिगृह्यमैथिलीम् ॥ प्रसज्ज्यरामेणचवैरमुत्तमंबभूवमोहान्मुदितःसरावणः॥३०॥ इत्या
र्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेचतुष्पंचाशःसर्गः ॥ ५४ ॥ संदिश्यराक्षसान्घोरान्राव
णोऽष्टौमहाबलान् ॥ आत्मानंबुद्धिवैक्लव्यात्कृतकृत्यममन्यत ॥ १ ॥ सचिंतयानोवैदेहींकामबाणैःप्रपीडितः ॥
प्रविवेशगृहंरम्यंसीतांद्रष्टुमभित्वरन् ॥ २ ॥ सप्रविश्यतुतद्वेश्मरावणोराक्षसाधिपः ॥ अपश्यद्राक्षसीमध्येसी
तांदुःखपरायणाम् ॥ ३ ॥ अश्रुपूर्णमुखींदीनांशोकभारावपीडिताम् ॥ वायुवेगैरिवाक्रांतांमज्जंतींनावमर्णवे ॥ ४ ॥

आठ राक्षसोंको जनस्थानमें भेजकर अपनेको कृत कृत्य समझता हुआ कि अब हमें कोई कार्य करनेंको वाकी नहीं रहा ॥ १ ॥ अनन्तर वह बरावर
जानकीजीका स्मरण करते हुए राम बाणसे पीडित होकर उन जानकीजीको देखनेंके लिये शीघ्रतासे अपने रमणीय गृहमें प्रवेश करता
हुआ ॥ २ ॥ राक्षस पति रावणनें उस घरमें प्रवेश करकै दुःखपरायण सीताजीको राक्षसियोंके वीचमें बैठे हुए देखा ॥ ३ ॥ सीताजी शोकके
भारसे महा पीडा पा अतिशय दीन भावको प्राप्तहो नेत्रोंसे आंसू वहातीं हुई बैठीथीं, उस समय ऐसा बोध होताथा मानों नौका वायुके वेगसे कां

फिर उन्होंनें नखून पंख और चोंचरूपी इन हथियारोंकी सहायतासे रावणके सब बाल उखाड डाले ॥ ३५ ॥ गृद्ध्रराजके वारंवार प्रहार करनेंसे रावण महा पीडित होगया, और क्रोधमें भरनेके कारण उसके अधर और सब शरीर कांपने लगे ॥ ३६ ॥ तब रावणने अतिव्याकुल और मूर्च्छित होकर बांई बगलमें भली भांति जानकीजीको दाब जटायुके एक लात मारी ॥३७॥ शत्रु दमन कारी पक्षिराज जटायुजीनें उस लातके प्रहारको सहकर अपनी चोंचसे रावणके दश बायें हाथ उखाड डाले ॥ ३८ ॥ बांहें उखड जानें परभी, रावणके शरीरसे सहसा नये हाथ निकल आये। उस समय ऐसा ज्ञात हुआ मानों विष ज्वाला युक्त सर्प गण बमईसे बाहर निकले ॥ ३९ ॥ इसके बाद वीर्यवान् दशवदन क्रोधमें भर जानकी

सतदागृध्रराजेनक्लिश्यमानोमुहुर्मुहुः॥ अमर्षस्फुरितोष्ठःसन्प्राकंपतचराक्षसः ॥३६॥संपरिष्वज्यवैदेहींवामेनांकेनरा
वणः॥ तलेनाभिजघानार्तोजटायुंक्रोधमूर्छितः ॥ ३७ ॥जटायुस्तमतिक्रम्यतुंडेनास्यखगाधिपः ॥ वामबाहून्दशत
दाव्यपाहरदरिंदमः॥३८॥ संछिन्नबाहोःसद्योवैबाहवःसहसाऽभवन्॥विषज्वालावलीमुक्तावल्मीकादिवपन्नगाः ३९॥
ततःक्रोधाद्दशग्रीवःसीतामुत्सृज्यवीर्यवान् ॥ मुष्टिभ्यांचरणाभ्यांचगृध्रराजमपोथयत् ॥ ४० ॥ ततोमुहूर्तंसंग्रामो
बभूवातुलवीर्ययोः॥ राक्षसानांचमुख्यस्यपक्षिणांप्रवरस्यच ॥ ४१ ॥ तस्यव्यायच्छमानस्यरामस्यार्थेसरावणः ॥
पक्षौपादौचपार्श्वौचखड्गमुद्धृत्यसोच्छिनत्॥४२॥सच्छिन्नपक्षःसहसारक्षसारौद्रकर्मणा ॥ निपपातमहागृध्रोधरण्या
मल्पजीवितः॥ ४३ ॥ तंदृष्ट्वापतितंभूमौक्षतजार्द्रंजटायुषम् ॥ अभ्यधावतवैदेहीस्वबंधुमिवदुःखिता ॥ ४४ ॥

जीको छोड मुक्के और लातोंसे जटायुजीको मारने लगा ॥ ४० ॥ और जटायुजीभी उसें खुरचनें व काटनें लगे तब अनुपम पराक्रम गृद्ध्रराज और राक्षस राजका घोर युद्ध होनें लगा ॥ ४१ ॥ जटायुजी रामचंद्रजीके उपकार करनेंको युद्ध करतेथे तब रावणनें खड्ग उठाकर उनके दोनों पंख दो चरण और दो बगलें काट डालीं ॥ ४२ ॥ जब घोर कर्म करनें वाले निशाचरनें पंख काट डाले तब गृद्ध्रराज जटायु मृत्युके निकट पहुंच कर तत्क्षण पृथ्वीमें गिरे ॥ ४३॥ उनको रुधिर लगी देहसे पृथ्वीमें गिरा हुआ देखकर सीताजी दुःखितहो बन्धुकी समानके समीप शीघ्रतासे

वह समस्त दिव्य गृह दिखलाकर कहनें लगा ॥ १३ ॥ कि हे जानकी! यहां बत्तीस करोड राक्षस बालक और बूढोंको छोडकर हमारे आधी
नहैं ॥१४॥ उन सब भयंकर कर्म करनें वाले राक्षसोंके हम स्वामीहैं। और हमारे इकले केही एक सहस्र दासहैं ॥ १५ ॥ अब हमारा यह समस्त
राज्य तुम्हारेही वशमेंहै हे विशालाक्षि! हमारा जीवन पर्यन्तभी तुम्हारे आधीनहै; अधिक क्या कहैं तुम हमारे प्राणोंसेभी प्यारीहो ॥ १६ ॥ हे
मैथिली! हमारे रनवासमें जो सब उत्तम स्त्रियांहैं, सो तुम हमारी भार्या होकर उन सबके ऊपर पटरानी बनो ॥ १७ ॥ हे जानकी! हमनें जो कुछ
कहा वह तुम्हारे लिये विशेष हितकारीहै; तुम इस बातमें राजी होजाओ, दूसरी भांतिका अभिप्राय करके क्या करोगी; तुम्हारे कारण हम बहुतही

दशराक्षसकोट्यश्चद्वाविंशतिरथापराः ॥ वर्जयित्वाजनान्वृद्धान्बालांश्चरजनीचरान् ॥ १४ ॥ तेषांप्रभुरहंसीतेसर्वेषां
भीमकर्मणाम् ॥ सहस्रमेकमेकस्यममकार्यपुरःसरम् ॥ १५ ॥ यदिदंराज्यतंत्रंमेत्वयिसर्वंप्रतिष्ठितम् ॥ जीवितंच
विशालाक्षित्वंमेप्राणैर्गरीयसी ॥ १६ ॥ बह्वीनामुत्तमस्त्रीणांममयोऽसौपरिग्रहः ॥ तासांत्वमीश्वरीसीतेममभार्याभव
प्रिये ॥ १७ ॥ साधुकिंतेन्यथाबुद्ध्यारोचयस्ववचोमम ॥ भजस्वमाभितप्तस्यप्रसादंकर्तुमर्हसि ॥ १८ ॥ परिक्षिप्तास
मुद्रेणलंकेयंशतयोजना ॥ नेयंधर्षयितुंशक्यासेंद्रैरपिसुरासुरैः ॥ १९ ॥ नदेवेषुनयक्षेषुनगंधर्वेषुनर्षिषु ॥ अहंपश्या
मिलोकेषुयोमेवीर्यसमोभवेत् ॥ २० ॥ राज्यभ्रष्टेनदीनेनतापसेनपदातिना ॥ किंकरिष्यसिरामेणमानुषेणाल्पते
जसा ॥ २१ ॥ भजस्वसीतेमामेवभर्ताहंसदृशस्तव ॥ यौवनंत्वध्रुवंभीरुरमस्वेहमयासह ॥ २२ ॥

संतापित हुएहैं सो तुम प्रसन्न होकर हमको भजो ॥ १८ ॥ चारों ओर समुद्रसे घिरी हुई शतयोजनके विस्तार वाली इस लंकापुरीको इन्द्रके
सहित समस्त देव दानवभी किसी प्रकारका भय नहीं करासकें ॥ १९ ॥ क्या देवता, क्या गन्धर्व, क्या यक्ष, क्या ऋषि इन लोगोंमें हम किसी
कोभी ऐसा नहीं देखते जो वीरतामें हमारी समानहों ॥ २० ॥ तौ फिर भला; दीन, तपस्वी राज्य भ्रष्ट, पादचारी, अल्प प्राण मनुष्य रामको
लेकर तुम क्या करोगी ॥ २१ ॥ इस कारणसे हे सीते! हमही तुम्हारे योग्य पतिहैं; तुम हमारीही भजनाकरो; हेभीरु! यौवन सदा नहीं रहता,

उनके सब गहने और माला इत्यादि मैली होगई और अनाथकी नांई विलाप करनें लगीं तब राक्षस पति रावण उनके सन्मुख दौडा ॥ ६ ॥ और जटायुको पकडे हुए सीताजीको देखकर बारम्बार, इसे छोडो, इसे छोडो, ऐसा रावणनें कहा, जिस प्रकार लता वृक्षोंको घेर लेतीहै, ऐसे जटायुको पकडे जो सीताजी बैठीथीं उनके समीप ऐसी दशामें रावण आया ॥ ७ ॥ इस समय सीताजी रामचंद्रजीके विरहके मारे वनमें वारं वार, राम ! राम ! करके बडे शब्दसे रुदन करती हुई चिल्लानें लगीं तब साक्षात् यमराजकी समान रावणनें अपना नाश करनेंके लिये उनके केश ग्रहण किये ॥ ८ ॥ जब जानकीजीका इस प्रकारसे अपमान हुआ तब सचराचर समस्त जगत् मर्यादा शून्य होकर घोर निबिड़

तांक्लिष्टमाल्याभरणांविलपंतीमनाथवत् ॥ अभ्यधावतवैदेहींरावणोराक्षसाधिपः ॥ ६ ॥ तांलतामिववेष्टंती मालिंगंतींमहाद्रुमान् ॥ मुंचमुंचेतिबहुशःप्रापतांराक्षसाधिपः ॥ ७ ॥ क्रोशंतींरामरामेतिरामेणरहितांवने ॥ जीवितांतायकेशेषुजग्राहांतकसंनिभः ॥ ८ ॥ प्रधर्षितायांवैदेह्यांबभूवसचराचरम् ॥ जगत्सर्वममर्यादंतमसांधेनसंवृतम् ॥ ९ ॥ नवातिमारुतस्तत्रनिष्प्रभोऽभूद्दिवाकरः ॥ दृष्ट्वासीतांपरामृष्टांदेवोदिव्येनचक्षुषा ॥ १० ॥ कृतंकार्यमितिश्रीमान् व्याजहारपितामहः ॥ प्रहृष्टाव्यथिताश्चासन्सर्वेतेपरमर्षयः ॥ ११ ॥ दृष्ट्वासीतांपरामृष्टांदंडकारण्यवासिनः ॥ रावणस्यविनाशंचप्राप्तंबुद्ध्वायदृच्छया ॥ १२ ॥

अंधकारसे छागया ॥ ९ ॥ फिर पवन वहां नहीं चले, प्रभाकर प्रभा शून्य होगये उसी समय दिव्य दृष्टिसे यह केशाकर्षण घटना देखकर ब्रह्माजीनें जानाकि रावण सीताको हर लेगया ❋ ॥ १० ॥ और श्रीमान् देव पितामह ब्रह्माजीनें सब देवताओंसे यह बात कही कि अब कार्य सिद्ध हुआ क्योंकि अब अवश्यही श्रीरामचंद्रजी रावणको मार डालेंगे यह सुनकर कि अब देवताओंको कष्ट न होगा इससे तो सब देवगण हर्षित हुए व जानकीजीका हरण सुन परम दुःखित हुये ॥ ११ ॥ जानकीजीको हरा हुआ देखकर दंडकारण्य वासियोंनेंभी जान लिया

❋रागनी वरुनाताल ॥ रोदन कर शिर धुनत जानकी ॥ हा रघुपति कित गये छोड मुहि रक्षाकीजे आन आनकी ॥कपट भेष धरि दुष्ट हरन कियो सुधि न रही मोहि रेख आनकी॥हा लक्ष्मण तव वचन न माने अपने हित मै आप हानकी॥मम रोदन सुनि सुनत न कोऊ क्या इच्छाहै कृपानिधानकी ॥ नारद काऊ आय नियरानो मति बौरानी यातुधानकी ॥

साथ संग्राम करके उसको हम जीत लायेहैं,वह अति विशाल रमणीयहै उसका वे... समानहै ॥ ३० ॥ सो हे सीते! उस विमानपर चढ
कर तुम हमारे साथ विहार सुखसहित करो। हे वरानने! पद्मकी समान परम सुन्दर और सुविमल कान्ति सम्पन्न तुम्हारा मुख ॥ ३१ ॥ शोकके
मारे मलीन होनेंसे अब शोभित नहीं होता, इसकारण तुम शोक नकरो जब रावणनें इस प्रकार से कहा तब पतिव्रता शिरोमणि सीताजी वस्त्रको
आडमें ॥ ३२ ॥ अपना चंद्रसमान वदन मंडल ढक कर रोनें लगीं चिन्तासे उनकादेह पीला पडगया वह बहुतही अस्वस्थकी समान ध्यानमें मग्न
होगई ॥ ३३ ॥ इसको देखकर वीर्यवान निशाचर रावण उनसे बोला कि हे वैदेही! धर्मलोप होजानेकी शंकासे लज्जित मतहोवो ॥ ३४ ॥ देखो

तत्रसीतेमयासार्धंविहरस्वयथासुखम् ॥ वदनंपद्मसंकाशंविमलंचारुदर्शनम् ॥ ३१ ॥ शोकार्तंतुवरारोहेनभ्राजतिव
रानने ॥ एवंवदतितस्मिन्सावस्त्रांतेनवरांगना ॥ ३२ ॥ पिधायेंदुनिभंसीतामंदमश्रूण्यवर्तयत् ॥ ध्यायंतीतामिवा
स्वस्थांसीतांचिंताहतप्रभाम् ॥ ३३ ॥ उवाचवचनंवीरोरावणोरजनीचरः ॥ अलंव्रीडेनवैदेहिधर्मलोपकृतेनते॥३४॥
आर्षोऽयंदेविनिष्पंदोयस्त्वामभिभविष्यति ॥ एतौपादौमयास्निग्धौशिरोभिःपरिपीडितौ ॥ ३५ ॥ प्रसादंकुरुमेक्षि
प्रंवश्योदासोऽहमस्मिते ॥ इमाःशून्यमयावाचःशुष्यमाणेनभाषिताः ॥ ३६ ॥ नचापिरावणःकांचिन्मूर्ध्नास्त्रींप्रणमे
त ॥ एवमुक्त्वादशग्रीवोमैथिलींजनकात्मजाम् ॥ कृतांतवशमापन्नोममेयमितिमन्यते ॥ ३७ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रा०
वा०आ०आर०पंचपंचाशःसर्गः॥५५॥सातथोक्तातुवैदेहीनिर्भयाशोककर्शिता॥तृणमंतरतःकृत्वारावणंप्रत्यभाषत॥१॥

तुम्हारे प्रति हम ऋषि गणोंकेही उपदेश कियेहुए विधिक्रमसे प्रणय बन्धन बांधने को तैयार हुएँहै यह लो हम अपनें दशों शिरोंसे तुम्हारे मनोहर
चरणोंको दबातेहैं ॥ ३५ ॥ हमारे प्रति प्रसन्नता प्रगटकरने में और विलंब मतकरो हम तुम्हारे वशवर्ती दास होजायँगे, हमनें कामके वशहोकर
यह जो वार्ताकही देखो इसकाकोई अंश निरर्थक नहीं जाय ॥ ३६ ॥ रावणनें कभी इसप्रकारसे किसी स्त्रीके चरणोंमें प्रणाम नहीं कियाथा न
शिरधराथा। दशानन मृत्युके वशहोकर जनक नंदिनी मैथिली जीसे इसप्र कार कहकर मनमें समझा कि यह हमारीही होगई ॥ ३७ ॥ इ० श्रीम०
वा० आ० आरण्य० पंचपंचाशः सर्गः ॥ ५५ ॥ शोकसे तपीहुई जानकीजी यह वचन सुन कुछ भय न करके मनहीमन रावणको

करके युक्त सुवर्णके समान आकार कान्तिवाला ॥ २१ ॥ रावण करके कंपायमान हुआ तिन श्रीजानकीजीका मुख मंडल आकाशमें दिनके चंद्रमाकी समान विना श्री रामचन्द्रजीके शोभाको प्राप्त नहीं हुआ ॥ २२ ॥ सुवर्णकी बनी हुई क्षुद्रघंटिका जिस प्रकार नील वर्णके हाथीके आश्रयमें शोभा पातीहै, स्वर्ण वर्ण जानकीजीभी वैसेही रावणके साथ शोभाको प्राप्त हुई ॥ २३ ॥ सीताजी पद्म केशरवर्ण और सुवर्णकी समान कान्तियुक्तथीं और उनके सब गहने तपे हुये सुवर्णके बनेथे। इस कारण रावणके सामनें वह ऐसी शोभा धारण करती हुई, जिस प्रकार बिजली मेघमें विराजमान रहतीहै ॥ २४ ॥ उस कालमें सीताजीके गहनोंके शब्दसे दशानन शब्द करते हुए सुविमल नील वर्ण मेघकी समा

राक्षसेंद्रसमाधूतंतस्यास्तद्वदनंशुभम् ॥ शुशुभेनविनारामंदिवाचंद्रइवोदितः ॥ २२ ॥ साहेमवर्णानीलांगंमैथिली
राक्षसाधिपम् ॥ शुशुभेकांचनीकांचीनीलंगजमिवाश्रिता ॥ २३ ॥ सापद्मपीताहेमाभारावणंजनकात्मजा ॥ विद्यु
द्घनमिवाविश्यशुशुभेतप्तभूषणा ॥ २४ ॥ तस्याभूषणघोषेणवैदेह्याराक्षसेश्वरः ॥ बभूवविमलोनीलःसघोषइवतोयदः
॥ २५ ॥ उत्तमांगच्युतातस्याःपुष्पवृष्टिःसमंततः ॥ सीतायाह्नियमाणायाःपपातधरणीतले ॥ २६ ॥ सातुरावणवे
गेनपुष्पवृष्टिःसमंततः ॥ समाधूतादशग्रीवंपुनरेवाभ्यवर्तत ॥ २७ ॥ अभ्यवर्ततपुष्पाणांधारावैश्रवणानुजम् ॥ न
क्षत्रमालाविमलामेरुंनगमिवोत्तमम् ॥ २८ ॥ चरणान्नूपुरंभ्रष्टंवैदेह्यारत्नभूषितम्॥विद्युन्मंडलसंकाशंपपातधरणीतले
॥ २९ ॥ तरुप्रवालरक्तासानीलांगंराक्षसेश्वरम् ॥ प्रशोभयतवैदेहीगजंकक्ष्येवकांचनी ॥ ३० ॥

नता धारण करता हुआ॥२५॥जब सीताजीको रावण हरकर ले चला तो उनके मस्तकसे फूलोंकी झडीसी लगकर पृथ्वीपर गिरनें लगी॥२६॥परन्तु वही पुष्पवृष्टि रावणके गमन वेगसे उत्पन्न हुए पवन द्वारा कंपाई जाकर फिर कुवेरके छोटे भाई रावणकेही चारों ओर गिरनें लगी ॥२७॥ वह सीताजीके शिरके फूलोंकी झडी रावणके चारों ओर सुमेरु पर्वतके चारों ओर नक्षत्रोंकी पांतिकी समान शोभित होतीथी ॥२८॥उसी समय जानकीजीके चरणसे रत्न भूषित नूपुर खसकर बिजलीके मंडलकी समान पृथ्वीपर गिर पडा॥२९॥श्रीजानकीजी नवतरु पल्लवकी समान रक्त वर्ण वालीथीं, उनके

तौ हे राक्षस! तू तत्क्षणही भस्म हो जायगा जिस प्रकार महादेवजीकी नेत्राग्निसे कामदेव भस्म हो गयाथा ॥ १० ॥ जो चंद्रमाकोभी आकाशसे पृथ्वीपर
गिरा सकते या नाश कर सकतेहैं वह सीताको भी अवश्यही यहां आकर इस स्थानसे छुडावेंगे ॥ ११ ॥ तेरी उमर बीतचुकी, श्री जाती रही, वीर्य
समाप्त होगया, इन्द्रियांभी अपने २ कार्यसे शिथिल होगईं, इस्से विदित होताहै कि तुम्हारे लिये लंकानगरी निश्चयही विधवा हो जायगी ॥१२॥
तुमनें जो पाप कार्य कियाहै इसका परिणाम कभी सुखकर नहीं होगा, क्योंकि तूनें विना विचारे बलात्कारकर पतिकी सेवासे हमको अलग
कियाहै ॥ १३ ॥ हमारे वह महाद्युतिमान स्वामी अपने भ्राता लक्ष्मणके सहित केवल अपनें वीर्यका आश्रय लेकर निडरहो निर्जन वनमें वास

यश्चंद्रंनभसोभूमौपातयेन्नाशयेतवा ॥ सागरंशोषयेद्वापिससीतांमोचयेदिह ॥ ११ ॥ गतासुस्त्वंगतश्रीकोगतस
त्त्वोगतेंद्रियः ॥ लंकावैधव्यसंयुक्तात्वत्कृतेनभविष्यति ॥ १२ ॥ नतेपापमिदंकर्मसुखोदर्कंभविष्यति ॥ याहं
नीताविनाभावंपतिपार्श्वात्त्वयाबलात् ॥ १३ ॥ सहिदेवरसंयुक्तोममभर्तामहाद्युतिः ॥ निर्भयोवीर्यमाश्रित्यशून्ये
वसतिदंडके ॥ १४ ॥ सतेवीर्यंबलंदर्पमुत्सेकंचयथाविधम् ॥ व्यपनेष्यतिगात्रेभ्यःशरवर्षेणसंयुगे ॥ १५ ॥ यदा
विनाशोभूतानांदृश्यतेकालचोदितः ॥ तदाकार्येप्रमाद्यंतिनराःकालवशंगताः ॥१६॥ मांप्रधृष्यसतेकालःप्राप्तोऽयंराक्ष
साधम॥ आत्मनोराक्षसानांचवधायांतःपुरस्यच ॥१७॥ नशक्यायज्ञमध्यस्थावेदिःस्रुग्भांडमंडिता॥ द्विजातिमंत्रसंपू
ताचंडालेनावमर्दितुम्॥१८॥ तथाहंधर्मनित्यस्यधर्मपत्नीदृढव्रता ॥ त्वयास्प्रष्टुंनशक्याहंराक्षसाधमपापिना ॥ १९ ॥

करतेहैं ॥ १४ ॥ वह संग्राम स्थलमें बाणोंकी वर्षा करकै तेरी देहसे, बल वीर्य, घमंड, व ऐसा अहंकार अलग करदेंगे ॥ १५ ॥ कालके वश होकर
जबकि प्राणियोंका नाश निकट आजाताहै तब वह कालके वशहोकर कार्य अकार्यका विचार करनेंमें ज्ञान रहित हो जातेहैं ॥ १६ ॥ रे राक्षसा
धम! जब कि तैंनें हमारा अपमान कियाहै, तब स्वयं तेरा, समस्त राक्षसोंका और सर्व रनवासोंके नाश होनेंका काल आ पहुँचाहै ॥ १७ ॥
जिस प्रकार ब्राह्मणों करकै मंत्रसे पढी हुई यज्ञको सामग्रीसे विभूषित यज्ञ वेदी चंडालके छूनें योग्य नहीं होती वैसेही हमभी तेरे स्पर्श करनेंके
योग्य नहींहैं ॥ १८ ॥ रेराक्षसाधम ! रेपापात्मा ! हम नित्य धर्मपरायण श्रीरामचन्द्रजीकी धर्मपत्नीहैं, मन वचन कायसे स्वामीहीके प्रति

जब कि रावण सीताजी रामभार्याको हरण करके लिये जाताहै, तब फिर सत्य, दया, धर्म, सरलता और सुशीलता सबही संसारसे लोप होगई यदि ऐसा न होता तो रावण कैसे जानकीजीको हरता? ॥ ३९ ॥ सबही प्राणी झुन्डके झुन्ड मिलकर यह कह विलाप करनें लगे, मृगछौना गण त्रासित होकर वारंवार शोभा रहित नेत्रोंसे दीनमुखहो रोनें लगे ॥ ४० ॥नेत्र खोल२ वार२ यह देख वनदेवताओंका शरीर मारे भयके थरथरा कर कांपने लगा॥४१॥"राम-राम" लक्ष्मण-लक्ष्मण" कह२कर जोरसे रोती व दुःखसे पुकारती जानकीजीको मधुर स्वरसे बोलती हुई ॥ ४२ ॥ और वार२ उनको पृथ्वीपर निहारती हुई देख, जिनका तिलक विसना हुआ और अति व्याकुल हो रहाहै चित्त जिनका ऐसी जानकीजीको अपनासर्वनाश

नास्तिधर्मःकुतःसत्यंनार्जवंनानृशंसता ॥ यत्ररामस्यवैदेहीसीतांहरतिरावणः ॥ ३९ ॥ इतिभूतानिसर्वाणिगणशः पर्यदेवयन् ॥ वित्रस्तकादीनमुखारुरुदुर्मृगपोतकाः ॥ ४० ॥ उद्वीक्ष्योद्वीक्ष्यनयनैर्भयादिवविलक्षणैः ॥ सुप्रवेपितगात्राश्चबभूवुर्वनदेवताः॥४१॥विक्रोशंतींदृढंसीतांदृष्ट्वादुःखंतथागताम् ॥ तांतुलक्ष्मणरामेतिक्रोशंतींमधुरस्वराम् ॥४२॥ अवेक्षमाणांबहुशोवैदेहींधरणीतलम् ॥ सतामाकुलकेशांतांविप्रमृष्टविशेषकाम् ॥ जहारात्मविनाशायदशग्रीवोमनस्विनीम् ॥ ४३ ॥ ततस्तुसाचारुदतीशुचिस्मिताविनाकृताबंधुजनेनमैथिली ॥ अपश्यतीराघवलक्ष्मणावुभौविवर्णवक्त्राभयभारपीडिता ॥ ४४ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेद्विपंचाशः सर्गः ॥ ५२ ॥

खमुत्पतंतंतंदृष्ट्वामैथिलीजनकात्मजा ॥ दुःखितापरमोद्विग्नाभयेमहतिवर्तिनी ॥ १ ॥ रोषरोदनताम्राक्षीभीमाक्षंराक्षसाधिपम् ॥ रुदतीकरुणंसीताह्रियमाणातमब्रवीत् ॥ २ ॥

करानेके कारण रावण हर कर लेगया॥४३॥अनन्तर मनोहर दन्त वाली मन्द२हास्य युक्त, जानकीजी राम और लक्ष्मण दोनोंको नहींदेखनेपर बन्धु जनके विरहसे मलीन मुखी और भयसे बहुतही पीडित हुई॥४४॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे द्विपंचाशः सर्गः ॥५२॥

रावणको आकाशमें उडता हुआ देखकर जनककुमारी, सुकुमारी सीताजी महाभीत होकर घवडाई और बहुतही दुःखित हुई ॥ १ ॥ क्रोध करनेंके कारण और रोते२ उनके दोनों नेत्र लाल हो आये, वह आरत स्वरसे रोकर उस कालमें भयंकर नेत्र कियेहुए राक्षसपतिसे कहने लगीं॥ २॥

जो आज्ञा कहकर रावणके कहनेंके अनुसार सीताजीको घेर लेतीहुई॥२८॥यह देखकर रावण मानों पृथ्वीको कंपित और विदीर्ण करता हुआ कई एक
परग चलकर, उन घोर दर्शनवाली राक्षसियोंको विशेष रूपसे फिर आज्ञा करता हुआ ॥ २९ ॥ तुम जानकीको अशोक वनमें लेकर चली
जाओ और सब मिलकर सदा इनको घेरे रहकर गूढ भावसे इनकी रक्षाकरो ॥३०॥ वनकी हथिनीको जिस प्रकार वशमें किया जाताहै, तुम सबभी
उसीतरहसे घोर तर्जन करके अथवा समझा बुझाकर इनको हमारे वशमें लाओ ॥ ३१ ॥ जब राक्षसेन्द्र रावणनें इस भांति आज्ञाकी तब राक्षसियें

सताःप्रोवाचराजासौरावणोघोरदर्शनाः ॥ प्रचल्यचरणोत्कर्षैर्दारयन्निवमेदिनीम् ॥ २९ ॥ अशोकवनिकामध्ये
मैथिलीनीयतामिति ॥ तत्रेयंरक्ष्यतांगूढंयुष्माभिःपरिवारिता ॥ ३० ॥ तत्रैनांतर्जनैर्घोरैःपुनःसांत्वैश्चमैथिलीम् ॥
आनयध्वंवशंसर्वावन्यांगजवधूमिव॥ ३१ ॥ इतिप्रतिसमादिष्टाराक्षस्योरावणेनताः॥अशोकवनिकांजग्मुर्मैथिलींपरि
गृह्यतु॥ ३२ ॥ सर्वकामफलैर्वृक्षैर्नानापुष्पफलैर्वृताम् ॥ सर्वकालमदैश्चापिद्विजैःसमुपसेविताम् ॥ ३३ ॥ सातुशोकपरी
तांगीमैथिलीजनकात्मजा ॥ राक्षसीवशमापन्नाव्याघ्रीणांहरिणीयथा ॥ ३४ ॥ शोकेनमहतात्रस्तामैथिलीजनका
त्मजा ॥ नशर्मलभतेभीरुःपाशबद्धामृगीयथा ॥ ३५ ॥ नविंदतेतत्रतुशर्ममैथिलीविरूपनेत्राभिरतीवतर्जिता ॥ पतिं
स्मरंतीदयितंचदेवरंविचेतनाभूद्भयशोकपीडिता ॥ ३६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकां
डेषट्पंचाशःसर्गः ॥ ५६ ॥ छ ॥

सीताजीको घेरकर अशोकवनमें ले गईं ॥ ३२ ॥ अनेक जातिके मन वांछित पुष्प फल सम्पन्न वृक्ष समूह और सब काल मतवालेही विविध
भांतिके विहंगम इस अशोक वनको शोभाको बढातेथे ॥ ३३ ॥ शोकके वशमें पड़ी हुई जनक दुलारी मैथिलीजी अशोकवनके मध्य राक्षसोंके
वशमें पड़कर रहीं, जिस प्रकार व्याघ्रनियोंमें हरिणी रहतीहै ॥ ३४ ॥ अशोक वनमें फांसीसे बँधी डरपोक मृगीके समान अतिशय शोकमें सी
ताजी रहीं, वह वहां पर किसी भांतिका सुख न प्राप्त कर सकीं ॥ ३५ ॥ विरूप नेत्रवाली राक्षसियों करके घुडकी डरपाई व धमकाई जाकर; पर

ही तू सेना सहित एक मुहूर्तभरभी प्राण धारण नहीं कर सकेगा॥ ११ ॥पक्षी जिस प्रकार वनमें लगी हुई दावानलको नहीं छू सकता, वैसेही उन राजकु
मारोंके बाणोंका स्पर्श सहन करनेंकी किसी भांति तुझमें सामर्थ्य नहींहै ॥ १२ ॥ इस कारण हेरावण! भली भांति अपना हिताहित विचार
करके सीधी तरहसे हमको छोड़दे। नहीं तौ हमारे स्वामी अपने भ्राताके सहित हमारे इस पकड़े जानें पर महा क्रोधितहो ॥ १३ ॥ यदि तू हम
को न छोड देगा तौ तेरा विनाश करनेंके लिये यत्न करेंगे, तू जिस आशयसे हमको हरण करके लिये जाताहै ॥ १४ ॥ सो हे राक्षस नीच! वह तेरा
आशय कभी सिद्ध नहीं होगा हम उन देव समान अपनें स्वामीको न देखनें पर ॥ १५ ॥ शत्रुके वशमें रहकर बहुत कालतक प्राण धारण करनें

नत्वंतयोःशरस्पर्शंसोढुंशक्तःकथंचन ॥ वनेप्रज्वलितस्येवस्पर्शमग्नेर्विहंगमः ॥ १२ ॥ साधुकृत्वात्मनःपथ्यंसाधुमां
मुंचरावण ॥ मत्प्रधर्षणसंक्रुद्धोभ्रात्रासहपतिर्मम ॥ १३ ॥ विधास्यतिविनाशायत्वंमांयादिनमुंचासि ॥ येनत्वंव्यव
सायेनबलान्मांहर्तुमिच्छसि ॥ १४ ॥ व्यवसायस्तुतेनीचभविष्यतिनिरर्थकः ॥ नह्यहंतमपश्यंतीभर्तारंविबुधो
पमम् ॥ १५ ॥ उत्सहेशत्रुवशगाप्राणान्धारयितुंचिरम्॥ ननूनंचात्मनःश्रेयःपथ्यंवासमवेक्षसे ॥ १६ ॥ मृत्युका
लेयथामर्त्योविपरीतानिसेवते ॥ मुमूर्षूणांतुसर्वेषांयत्पथ्यंतन्नरोचते ॥ १७ ॥ पश्यामीहहिकंठेत्वांकालपाशावपा
शितम् ॥ यथाचास्मिन्भयस्थानेनबिभेषिनिशाचर॥१८॥ व्यक्तंहिरण्मयांस्त्वंहिसंपश्यसिमहीरुहान् ॥ नदींवैतरणीं
घोरांरुधिरौघविवाहिनीम् ॥ १९ ॥ खड्गपत्रवनंचैवभीमंपश्यसिरावण ॥ तप्तकांचनपुष्पांचवैदूर्यप्रवरच्छदाम् ॥ २०॥

को समर्थ न होंगी, हमको समझ पड़ताहै कि तू अपना कल्याण और हित नहीं देखता ॥ १६ ॥ जिस प्रकार मृत्युके समय लोगोंकी बुद्धि विपरी
त हो जातीहै अथवा मरनेके निकट किसीको पथ्य रुचिकर नहीं होता ॥ १७ ॥ रेराक्षस! तू इस समयके कार्यमेंभी भय नहीं करता, इस कारण
हम देखतीहैं कि तेरा गला कालकी फाँसीसे बँध गयाहै ॥१८॥ और साफही समझ पड़ताहै कि तेरी मृत्यु जो निकटहै इस्से सब वृक्ष तुझे सुवर्णके
दृष्टि आते होंगे,कारणकि जिनकी मृत्यु निकट होतीहै, उनको वृक्ष सुवर्णकेही दीखतेहैं, और रक्तवाहिनी भयंकर वैतरणी नदी ॥ १९॥ और महा
भीषण खड्ग रूप पत्र युक्त वृक्षोंका वन तू अति शीघ्र देखेगा।और उत्कृष्ट वैदूर्यमणिमय पत्ते लगे हुए तपाये हुए सुवर्णके बने फूल लगे हुए॥२० ॥

कर परम प्रसन्न हुई ॥ ९ ॥ देवताओंके कार्य सिद्धिके निमित्त राक्षसोंको मोहित करती हुई इसी अवसरमें इन्द्राणीके पति इन्द्रजी ॥ १० ॥ उस स्थानमें प्राप्तहो वनमें स्थित हुई जानकी से बोले कि हे भद्रे! मैं देवताओंका राजा इन्द्रहूं. हे सुन्दर हास्य युक्त जानकी! ॥ ११ ॥ मैं तुम्हारे और रामचंद्रके कार्य सिद्ध करनेंके निमित्त सहाय करनेंको आयाहूं हे जनककुमारी! तुम शोच मत करो ॥ १२ ॥ मेरी कृपासे सैना सहित रामचंद्रजी सागर तर जांयगे, हे कल्याणी! मेरीही मायाने इन राक्षसियों को मोहित कियाहै॥१३॥ इसी कारण हे जानकी! मैं यह हवि अन्न तुम्हें

देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थंप्रामोहयतराक्षसान् ॥ एतस्मिन्नंतरेदेवःसहस्राक्षःशचीपतिः ॥ १० ॥ आससादवनस्थांतांवचनंचे दमब्रवीत् ॥ देवराजोस्मिभद्रंतेइहचास्मिशुचिस्मिते ॥ ११ ॥ अहंत्वंकार्यसिद्ध्यर्थंराघवस्यमहात्मनः ॥ साहाय्यं कल्पयिष्यामिमाशुचोजनकात्मजे ॥ १२ ॥ मत्प्रसादात्समुद्रंसतरिष्यतिबलैःसह ॥ मयैवेहचराक्षस्योमाययामो हिताःशुभे ॥ १३ ॥ तस्मादन्नमिदंसीतेहविष्यान्नमहंस्वयम् ॥ सत्वांसंगृह्यवैदेहिआगतःसहनिद्रया ॥ १४ ॥ एत दत्स्यसिमद्धस्तान्नत्वांबाधिष्यतेशुभे ॥ क्षुधातृषाचरंभोरुवर्षाणामयुतैरपि ॥ १५ ॥ एवमुक्तातुदेवेंद्रमुवाचपरिशं किता ॥ कथंजानामिदेवेंद्रंत्वामिहस्थंशचीपतिम् ॥ १६ ॥ देवलिंगानिदृष्टानिरामलक्ष्मणसन्निधौ ॥ तानिदर्शय देवेंद्रयदित्वंदेवराट्स्वयम् ॥ १७ ॥ सीतायावचनंश्रुत्वातथाचक्रेशचीपतिः ॥ पृथिवींनास्पृशत्पद्भ्यामनिमेषे क्षणानिच ॥ १८ ॥

देनेको निद्राके साथ आयाहूं सो हे जानकी! तुम इसे लो ॥ १४ ॥ हे जानकी! मेरे हाथसे यें हवि भक्षण करनेंसे तुमको क्षुधा दश हजार वर्ष तक भी न व्यापेगी ॥ १५ ॥ जब इन्द्रने ऐसा कहा तौ डरती हुई जानकी बोलीं कि मैं यह कैसे जानूं कि तुम शचीके पति इन्द्रहो ॥ १६ ॥ जो चिह्न राम लक्ष्मणके साथ मैंने आपके देखेथे यदि तुम देवता ओंके राजा इन्द्र हो तौ उन चिह्नोंको दिखाओ ॥ १७ ॥ इन्द्रजी जानकीजी के वचन सुन पैरोंसे पृथ्वी न स्पर्श करते हुए और नेत्रोंको पलक लगना बंदहोगया देवताओंकी यही पहचानहै कि पैरोंसे

न पाकर चली जानें लगीं। और जाते २ उन्होंनें पर्वतके शृंग पर बैठे हुए प्रधान पांच वंदरोंको देखा॥ १ ॥ तव उन बडे २ नेत्र वाली जानकीजीनें सुवर्णके रंगका अपना एक वस्त्र व कुछ गहनें उतार उन वन्दरोंके बीचमें ॥ २ ॥ इस विचारसे डाल दिये कि यह कदाचित् रामचंद्रजीसे यह सब वृत्तान्त कहभी सकतेहैं। वह जानकीजी का छोडा हुआ वस्त्र व भूषण बन्दरोंके बीचमें गिरा ॥ ३ ॥ जानकी जीके वस्त्र और भूषण डालनें का यह कर्म घवडाहटके मारे रावणनें नहीं जाना, उस कालमें सीताजी बहुतही रुदन कर रही थीं उनको अनिमेष लोचनसे ॥४॥ पीली आंखों वाले वानर श्रेष्ठोंनें सीताजोको अपनें नेत्रोंसे वारंवार देखलिया व रावण पम्पापुरीको नांघ लंकापुरीकी ओर ॥ ५ ॥ रोती हुई

तेषांमध्येविशालाक्षीकौशेयंकनकप्रभम् ॥ उत्तरीयंवरारोहाशुभान्याभरणानिच ॥ २ ॥ मुमोचयदिरामायशंसेयुरिति भामिनी ॥ वस्त्रमुत्सृज्यतन्मध्येनिक्षिप्तंसहभूषणम् ॥ ३ ॥ संभ्रमात्तुदशग्रीवस्तत्कर्मचनबुद्धवान् ॥ पिंगाक्षास्तांविशालाक्षींनेत्रैरनिमिषैरिव ॥ ४ ॥ विक्रोशंतींतदासीतांददृशुर्वानरोत्तमाः ॥ सचपंपामतिक्रम्यलंकामभिमुखःपुरीम् ॥ ५ ॥ जगाममैथिलींगृह्यरुदतींराक्षसेश्वरः ॥ तांजहारसुसंहृष्टोरावणोमृत्युमात्मनः ॥ ६ ॥ उत्संगेनैवभुजगींतीक्ष्णदंष्ट्रांमहाविषाम् ॥ वनानिसरितःशैलान्सरांसिचविहायसा ॥ ७ ॥ सक्षिप्रंसमतीयायशरश्चापादिवच्युतः ॥ तिमिनक्रनिकेतंतुवरुणालयमक्षयम् ॥ ८ ॥ सरितांशरणंगत्वासमतीयायसागरम् ॥ संभ्रमात्परिवृत्तोर्मीरुद्धमीनमहोरगः ॥ ९ ॥ वैदेह्यांह्रियमाणायांबभूववरुणालयः ॥ अंतरिक्षागतावाचःससृजुश्चारणास्तथा ॥ १० ॥

सीताजीको लेकर चला गया, अपनी मूर्तिमान मृत्युस्वरूप सीताजीको हरण करके रावणके हर्षकी सीमा न रही ॥ ६ ॥ वह तेज डाढ वाली और तेज विष वाली सर्पिणीकी समान सीताजीको अंकमें भरकर आकाश मार्गमें होकर बहुतसे पर्वत वन नदियां व तडागादि देखता हुआ ॥ ७ ॥ बडी शीघ्रताके साथ रावण मत्स्य कच्छप मगर नाके इत्यादिकों के स्थान समुद्रको उतर गया, जिसप्रकार कि कमानसे छूटा हुआ बाण अति शीघ्रतासे सीधा चलताहै ॥ ८ ॥ जब रावणनें जानकीजीको हरण किया, तब जगमाताका हरण होनेंके कारण क्षुभित होकर वरुणालय समुद्र तरंगविहीन होगया, और उसमेंके मीन और बडे २ सब सर्प व्याकुल होगये ॥ ९ ॥ इस प्रकार जानकीजीके हरण करनेंके समय यह

उस ओर श्रीरामचंद्रजी मृग रूपसे विचरण करनें वाले काम रूपी निशाचर मारीचको संहार करकै शीघ्रही आश्रमके मार्गको लौटे ॥ १ ॥
और श्रीजानकीजीको देखनेंके लिये अति वेगसे चले। इसी समयमें एक शियार उनकी पीठके पीछे महा कठोर शब्द करनेलगा ॥ २ ॥
श्रीरामचंद्रजी शियारके इस रोमाञ्चकर दारुण बोलको सुन अति भयभीतहो मनही मनमें शंका करनें लगे ॥ ३ ॥ जिस प्रकारका शब्द यह
शियार कर रहाहै, इससे तो ऐसा जान पडताहै, कि कोई अशुभ होगा। इस समय राक्षसोंनें जानकीको भक्षण न कर लियाहो, और सीताजी
कुशलसेहों तभी मंगलहै ॥ ४ ॥ मृग रूपी मारीचनें जान बूझकर हमारे बोलकी समान जो चिल्लाहटकीहै यदि लक्ष्मणनें उस बोलको सुना

राक्षसंमृगरूपेणचरंतंकामरूपिणम् ॥ निहत्यरामोमारीचंतूर्णंपथिन्यवर्तत ॥ १ ॥ तस्यसंत्वरमाणस्यद्रष्टुकामस्यमै
थिलीम् ॥ क्रूरस्वनोथगोमायुर्विननादास्यपृष्ठतः ॥२॥ सतस्यस्वरमाज्ञायदारुणंरोमहर्षणम् ॥ शंकयामासगोमायोः
स्वरेणपरिशंकितः ॥ ३ ॥अशुभंबतमन्येहंगोमायुर्वाशतेयथा ॥ स्वस्तिस्यादपिवैदेह्याराक्षसैर्भक्षणंविना ॥ ४ ॥ मारी
चेनतुविज्ञायस्वरमालक्ष्यमामकम् ॥ विक्रुष्टंमृगरूपेणलक्ष्मणःशृणुयाद्यदि ॥ ५ ॥ ससौमित्रिःस्वरंश्रुत्वातांचहि
त्वाथमैथलीम् ॥ तयैवप्रहितःक्षिप्रंमत्सकाशमिहैष्यति ॥ ६ ॥ राक्षसैःसहितैर्नूनंसीतायाईप्सितोवधः ॥ कांचनश्चमृ
गोभूत्वाव्यपनीयाश्रमात्तुमाम् ॥ ७ ॥ दूरंनीत्वाथमारीचोराक्षसोभूच्छराहतः ॥ हालक्ष्मणहतोस्मीतियद्वाक्यं
व्याजहारह ॥ ८ ॥ अपिस्वस्तिभवेदाभ्यांरहिताभ्यांमयावने ॥ जनस्थाननिमित्तंहिकृतवैरोस्मिराक्षसैः ॥ ९ ॥

हो ॥ ५ ॥ वस लक्ष्मणजी उस स्वरके सुन्तेही तुरत सीताजी करके भेजे जाकर सीताको छोडकर वह शीघ्रही हमारे निकट आवेंगे ॥ ६ ॥ निश्च
यही राक्षसोंनें मिलकर जानकीके वध करनेंकी अभिलाषकीहै और इसी कारणसे राक्षस मारीचने सुवर्ण मृग रूप धारण करकै हमको आश्रमसे
बहुत दूर किया ॥ ७ ॥ और हमको दूर लाकर फिर हमारे वाणसे घायल होकर लक्ष्मणकोभी यहां लानेंके लिये, हाय लक्ष्मण ! हम मारे गये !
यह कहकर उस राक्षसनें प्राण छोडे ॥ ८ ॥ इस शब्दको सुन लक्ष्मणभी तो चलेही आये होंगे फिर जब वनमें आश्रम पर हम दोनों भाई नरहें तो

नें इधर उधर देखा तो आगेही मांसके खानेंवाले आठ राक्षस बैठेथे॥ १८॥ उन राक्षसों को देखकर ब्रह्माजीके वरदानसे मोहित हुआ रावण उन राक्षसोंके बल वीर्यकी प्रशंसा करनें लगा ॥ १९ ॥ तुम लोग अनेक भांतिके अस्त्र शस्त्र धारण करके शीघ्र इस स्थानसे जहां पर खर रहा करताथा उस जन शून्य जनस्थानको जाओ ॥ २० ॥ और तुम लोग वहां बल और पौरुषका आश्रय लेकर किसीकाभी डर न करके जन शून्य जनस्थानमें जाय टिके रहो ॥ २१ ॥ वहां पर खर और दूषणके सहित हमारी जो महावीर्य वान बहुत सारी सेना रहतीथी, वह समस्त रामचंद्रके बाणसे खर दूषण सहित मारी गई ॥ २२ ॥ इस कारणसे हमको बडा क्रोध हुआहे, और इससेही हम बडे धीर्यवानका धीरज

सतान्दृष्ट्वामहावीर्योवरदानेनमोहितः॥ उवाचतानिदंवाक्यंप्रशस्यबलवीर्यतः ॥ १९ ॥नानाप्रहरणाःक्षिप्रमितोगच्छ तसत्वराः॥ जनस्थानंहतस्थानंभूतपूर्वंखरालयम् ॥ २० ॥ तत्रास्यतांजनस्थानेशून्येनिहतराक्षसे ॥ पौरुषंबलमाश्रि त्यत्रासमुत्सृज्यदूरतः ॥२१॥ बहुसैन्यंमहावीर्यंजनस्थानेनिवेशितम् ॥ सदूषणखरंयुद्धेनिहतंरामसायकैः ॥ २२ ॥ त तःक्रोधोममापूर्वोधैर्यस्योपरिवर्धते ॥ वैरंचसुमहज्जातंरामंप्रतिसुदारुणम् ॥ २३ ॥ निर्यातयितुमिच्छामितच्चवैरं महारिपोः ॥ नहिलप्स्याम्यहंनिद्रामहत्वासंयुगेरिपुम् ॥ २४ ॥ तंत्विदानीमहंहत्वाखरदूषणघातिनम् ॥ रामंशर्मो पलप्स्यामिधनंलब्ध्वेवनिर्धनः ॥ २५ ॥ जनस्थानेवसद्भिस्तुभवद्भीराममाश्रिता ॥ प्रवृत्तिरुपनेतव्याकिंकरोती तितत्त्वतः ॥ २६ ॥ अप्रमादाच्चगंतव्यंसर्वैरेवनिशाचरैः ॥ कर्तव्यश्चसदायत्नोराघवस्यवधंप्रति ॥ २७ ॥

भी लोप होगया। इस समय रामचंद्रके प्रति हमारा महा वैरभाव उपस्थित हुआहे ॥ २३ ॥ सो इस समय परम शत्रु रामके प्रति वह अपना क्रोध हम प्रगट करना चाहतेहैं, जब तक हम युद्धमें उस महा शत्रुका वध नहीं करलेते, तब तक हमको सुखकी नींद न आवेगी ॥ २४ ॥ जिस प्रकार निर्धन पुरुष धन प्राप्त करके सुखी होताहे, वैसेही खर दूषणके मारनें वाले रामचंद्रजीका नाश करके हमभी सुखी होंगे ॥ २५ ॥ तुम लोग जनस्थानमें रहकर राम किस समय क्या करतेहैं, सदाही इस विषयकी यथा तथा खोज खबर लेते रहो ॥ २६ ॥ तुम सब लोग बडी

का कार्य किया है ॥१७॥ हे शुभदर्शन! तुमनें जो अकेला छोडा इस्से क्या सीताका भला होगा? कभी नहीं! हे वीर! जनककुमारी अब आश्रममें नहीं हैं इस बातमें हमको अब कुछ संशय नहीं होता ॥ १८ ॥ परग परग पर जिस प्रकारके अशकुन होरहे हैं इस्से यह ज्ञात होता है कि यातौ सीताको कोई वनचारी राक्षस चुराकर ले गया या मारकर खा गया होगा ॥ १९ ॥ हे लक्ष्मण! जनककुमारीजी सब प्रकारसे कुशल हैं, क्या हम ऐसा देख पावेंगे? हे पुरुषसिंह! क्या जानकी सब प्रकार कुशलसे जीती हैं ॥ २० ॥ हे महाबलवान्! यह मृग गण, शियार, और पक्षी गण सूर्यकी ओरको मुख करके महा भयंकर शब्द कर दशोंदिशाओंको देखते हैं मानों इनमें आग लगी है। ऐसे अपशकुन देखकर किस प्रकार

सीतामिहागतःसौम्यकच्चित्स्वस्तिभवेदिति ॥ नमेऽस्तिसंशयोवीरसर्वथाजनकात्मजा ॥ १८ ॥ विनष्टाभ
क्षितावापिराक्षसैर्वनचारिभिः ॥ अशुभान्येवभूयिष्ठंयथाप्रादुर्भवंतिमे ॥ १९ ॥ अपिलक्ष्मणसीतायाःसामग्र्यं
प्राप्नुयामहे ॥ जीवंत्याःपुरुषव्याघ्रसुतायाजनकस्यवै ॥ २० ॥ यथावैमृगसंघाश्चगोमायुश्चैवभैरवम् ॥ वाशंते
शकुनाश्चापिप्रदीप्तामभितोदिशम् ॥ अपिस्वस्तिभवेत्तस्याराजपुत्र्यामहाबल ॥ २१ ॥ इदंहिरक्षोमृगसंनिकाशंप्र
लोभ्यमांदूरमनुप्रयातम् ॥ हतंकथंचिन्महताश्रमेणसराक्षसोभून्म्रियमाणएव ॥ २२ ॥ मनश्चमेदीनमिहाप्रहृष्टं
चक्षुश्चसव्यंकुरुतेविकारम् ॥ असंशयंलक्ष्मणनास्तिसीताहृतामृतावापथिवर्ततेवा ॥ २३ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०
आर०सप्तपंचाशःसर्गः ॥ ५७ ॥

कह दें कि राजपुत्री सीताजी कुशलसे हैं? ॥ २१ ॥ यह मृग रूपी राक्षसभी हमको ललचाकर दूर ले आया, जिसको फिर हमनें बहुतही परीश्रम करके किसी भांति मार पाया मरनेंके समय उसनें निज राक्षस मूर्ति धारण की ॥ २२ ॥ हमारा मनभी बहुतही दीन और घबडाया हुआ है; और वांई आंखभी फडक रही है! हे लक्ष्मण! निःसन्देह सीता आश्रममें नहीं, यातौ उनको कोई हरण करके ले गया, या मार्गमें मरी पडी होंगी ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आर०" पं०ज्वालाप्रसाद मिश्र "कृत भाषानुवादे सप्तपंचाशःसर्गः ॥ ५७ ॥

पकर जलमें डूबी हुईहै ॥ ४ ॥ अथवा जैसे मृगी यूथसे विछुड कर कुत्तोंसे घिरीहो सीताजी शोकके वश पडनेंसे विवश और व्याकुलहो शिर झुकाये बैठीथीं ॥ ५ ॥ राक्षसपति रावण सन्मुख होकर उन शोकसे दीन हुई सीताजीकी इच्छा न रहनें पर भी बलात्कारसे उनको उस देव गृह सदृश दिव्य भवनको दिखाने लगा ॥ ६ ॥ यह घर अनेक प्रकार अटा अटारी और धवहरोंसे परिपूर्णहै, सहस्रों स्त्रियां इसमेंहैं व अनेक प्रकारके पक्षी और विविध भांतिके रत्नभी इस गृहमेंहैं ॥ ७ ॥ उसके सब थंभ हाथीदांतके बनेथे, सुवर्ण, स्फटिक, रजत, और वैदूर्य निर्मित परम चित्रित और देखनेमें मनके हरण करनें वालेथे ॥ ८ ॥ वहां पर समस्त वंदनवारें तपाये हुए सुवर्णकी बनी हुईथीं, और वहां पर निर

मृगयूथपरिभ्रष्टांमृगींश्वभिरिवावृताम् ॥ अधोगतमुखींसीतांतामभ्येत्यनिशाचरः ॥ ५ ॥ तांतुशोकवशांदीनामवशां राक्षसाधिपः॥सबलाद्दर्शयामासगृहंदेवगृहोपमम्॥६॥हर्म्यप्रासादसंबाधंस्त्रीसहस्रनिषेवितम्॥नानापक्षिगणैर्जुष्टंनाना रत्नसमन्वितम् ॥ ७ ॥ दांतकैस्तापनीयैश्चस्फाटिकैराजतैस्तथा ॥ वज्रवैदूर्यचित्रैश्चस्तंभैर्दृष्टिमनोरमैः ॥ ८ ॥ दिव्यदुंदुभिनिर्घोषंतप्तकांचनभूषणम् ॥ सोपानंकांचनंचित्रमारुरोहतयासह ॥ ९ ॥ दांतकाराजताश्चैवगवाक्षाःप्रियदर्शनाः ॥ हेमजालावृताश्चासंस्तत्रप्रासादपंक्तयः॥ १० ॥ सुधामणिविचित्राणिभूमिभागानिसर्वशः ॥ दशग्रीवः स्वभवनेप्रादर्शयतमैथिलीम् ॥ ११ ॥ दीर्घिकाःपुष्करिण्यश्चनानापुष्पसमावृताः ॥ रावणोदर्शयामाससीतांशोकपरायणाम् ॥ १२ ॥ दर्शयित्वातुवैदेहींकृत्स्नंतद्भवनोत्तमम् ॥ उवाचवाक्यंपापात्मासीतांलोभितुमिच्छया ॥ १३ ॥

न्तर दिव्य दुन्दुभी आठ पहर बजती रहतीथीं, रावण सीताजीके सहित इस गृहकी सुवर्ण से बनी हुई विचित्र सीढियोंपर चढा ॥ ९ ॥ वह घर हाथी दांत और चांदी निर्मित होनेंके कारण अति सुन्दर हजारों जालियें वहां लगी हुईथीं जिनको देखतेही मन हर जाय औरभी बहुतसे घर वहां बनेथे जिनमें सुवर्णके जंगले लगेथे ॥ १० ॥ सब भूमि भाग सुधा धवलित और मणि समूह चित्रित रहनेंके कारण विचित्र शोभा दे रहाथा, इस प्रकारका भवन रावणनें सीताजीको दिखाया ॥ ११ ॥ उस मन्दिरमें जगह२ बावली और छोटी २ तलैयेंभी बनीथीं जिनमें अनेक प्रकारके पुष्प खिल रहेथे दशग्रीव रावणनें जानकीजीको यह सब कुछ दिखाया ॥१२॥ इस प्रकारसे पापात्मा रावण जानकीजीको लुभानेंकी इच्छासे अपना

यदि परलोकमें चलीं गईहैं तो हमभी प्राण त्यागन करैंगे ॥ ९ ॥ जब हम आश्रममें पहुंचेंगे और सीता सन्मुख हँसकर यदि हमसे न बोलेंगी
तबभी हम प्राण त्यागेंगे ॥ १० ॥ इस कारणसे हे लक्ष्मण ! तुम बताओ कि जानकी जीवितहैं ? अथवा तुम्हारी असावधानतासे उन तपस्विनी
जानकीजीको राक्षसोंने तौ नहीं भक्षण कर लिया ॥ ११ ॥ वैदेहीजी सुकुमारीहैं, बालिकाहैं, और दुःख भोग करनेंके अयोग्यहैं, वह इस समय
हमारे दुःखसे निश्चयही दुःखीहो सोच करकै शोक करती होंगी ॥ १२ ॥ अतिशय दुरात्मा क्रूर निशाचर मारीचनें ऊंचे शब्दसे (हा लक्ष्मण!)
कहकर सब प्रकारसे तुमको भय उत्पन्न करा दियाहै ॥ १३ ॥ हमजानतेहैं कि हमारे बोलकी समान वह बोल जानकीजीनें सुनकर तुमको

यदिमामाश्रमगतंवैदेहीनाभिभाषते ॥ पुरःप्रहसितासीताविनशिष्यामिलक्ष्मण ॥ १० ॥ ब्रूहिलक्ष्मणवैदेहीयदिजी
वतिवानवा ॥ त्वयिप्रमत्तेरक्षोभिर्भक्षितावातपस्विनी ॥ ११ ॥ सुकुमारीचबालाचनित्यंचादुःखभागिनी ॥ मद्वियो
गेनवैदेहीव्यक्तंशोचतिदुर्मनाः ॥ १२ ॥ सर्वथारक्षसातेनाजिह्मेनसुदुरात्मना ॥ वदतालक्ष्मणेत्युच्चैस्तवापिजनितंभ
यम् ॥ १३ ॥ श्रुतश्चमन्येवैदेह्यासस्वरःसदृशोमम ॥ त्रस्तयाप्रेषितस्त्वंचद्रष्टुंमांशीघ्रमागतः ॥ १४ ॥ सर्वथातुकृतं
कष्टंसीतामुत्सृजतावने ॥ प्रतिकर्तुंनृशंसानांरक्षसांदत्तमंतरम् ॥ १५ ॥ दुःखिताःखरघातेनराक्षसाःपिशिताशनाः ॥
तैःसीतानिहताघोरैर्भविष्यतिनसंशयः ॥ १६ ॥ अहोऽस्मिव्यसनेमग्नःसर्वथारिपुनाशन ॥ किंत्विदानींकरिष्यामिशं
केप्राप्तव्यमीदृशम् ॥ १७ ॥ इतिसीतांवरारोहांचिंतयन्नेवराघवः ॥ आजगामजनस्थानंत्वरयासहलक्ष्मणः ॥ १८ ॥

यहांपर भेजाहै और तुमभी हमारे देखनेंके लिये शीघ्रही यहांपर आयेहो ॥ १४ ॥ तुमनें सीताजीको अकेला वनमें छोड यहां आकर बडा
कष्टकर कार्य कियाहै । इस्से निर्दयी राक्षसोंको हमारे किये हुए अपकारका प्रतिकार करनेंको तुमनें अवसर दे दिया ॥ १५ ॥ खरको मार
डालनेंसे मांसभोजी राक्षस गण बहुतही दुःखित होगयेहैं । उन घोरनिशाचरोंने निश्चयही जानकीको मार डाला होगा इस्में सन्देह नहीं
है ॥ १६ ॥ हाय ! शत्रुसूदन लक्ष्मण ! हम सब भांतिसे विपदमें डूबे अब हम क्या करैं ? हमको शंका होतीहै कि यह विपद अवश्य होन
हारहै ॥ १७ ॥ श्रीरामचन्द्रजी सुमुखी जानकीके लिये इस प्रकार चिंताकरकै लक्ष्मणजीके सहित शीघ्रतासे जनस्थानमें आये ॥ १८ ॥

इस्से हमारे साथ इस लंका नगरीमें विहार करो ॥ २२ ॥ हे वराननें! अब तुम रामचंद्रके देखनेंकी आशा छोडो! उनमें क्या शक्तिहै जो वह मनो
रथ सेभी यहां पर आसकें? ॥ २३ ॥ जिस प्रकार कोई वहां प्रचंड पवन आकाशमें चलते हुये बांधाचाहै, परन्तु नहीं बांध सकता, या प्रदीप्त
अग्निकी शिखाको कोई हाथसे पकडनाचाहै तौ नहीं पकड सकता, ऐसेही रामभी यहां नहीं आ सकता ॥ २४ ॥ हे शोभने! समस्त भुवनोंमें हम
ऐसा किसीको नहीं देखते कि जो पराक्रम प्रकाश करके हमारी भुजाओंसे रक्षित तुमको लेजासकै ॥ २५ ॥ अतएव तुम इस विशाल लं
काके राज्यका पालन करो, हमारी समान सब पुरुष तुम्हारे आज्ञाकारी दास हो जांयगे । और हमकोभी यदि सेवक समझकर ग्रहण करो तो

नशक्योवायुराकाशेपाशै
र्बद्धुंमहाजवः ॥ दीप्यमानस्यवाप्यग्नेर्ग्रहीतुंविमलाःशिखाः ॥ २४ ॥ त्रयाणामपिलोकानांनतंपश्यामिशोभने ॥
विक्रमेणनयेद्यस्त्वांमद्बाहुपरिपालिताम् ॥ २५ ॥ लंकायाःसुमहद्राज्यमिदंत्वमनुपालय ॥ त्वत्प्रेष्यामद्विधाश्चैवप्रे
ष्याश्चापिचराचरम् ॥ २६ ॥ अभिषेकजलक्लिन्नातुष्टाचरमयस्वच ॥ दुष्कृतंयत्पुराकर्मवनवासेनतद्गतम् ॥ २७ ॥
यच्चतेसुकृतंकर्मतस्येहफलमाप्नुहि ॥ इहसर्वाणिमाल्यानिदिव्यगंधानिमैथिलि ॥ २८ ॥ भूषणानिचमुख्यानि
तानिसेवमयासह ॥ पुष्पकंनामसुश्रोणिभ्रातुर्वैश्रवणस्यमे ॥ २९ ॥ विमानंसूर्यसंकाशंतरसानिर्जितंरणे ॥ वि
शालंरमणीयंचतद्विमानंमनोजवम् ॥ ३० ॥

दर्शनेमाकृथाबुद्धिंराघवस्यवरानने ॥ कास्यशक्तिरिहागंतुमपिसीतेमनोरथैः ॥ २३ ॥

अब तुम
हमभी तुम्हारी आज्ञाके आधीन हो जांयगे। सब देवता गण वरन स्थावर जंगमादि समस्त जगत् तुम्हाराही दास हो जायगा ॥ २६ ॥ अब तुम
अभिषेकके जलसे धौतदेहहोकर सन्तुष्ट चित्तसे हमको तृप्तकरो पहले जन्मके तुम्हारे जो कुछ पापथे वह सब वनवास करनेंसे क्षयको प्राप्त होगये २७
अब तुम लंकामें रहकर अपने पहले कियेहुए पुण्योंके फलको प्राप्तहो । हे मैथिलि! यहांपर जो दिव्य मालायें दिव्यगन्ध और दिव्यभूषण रक्खेहैं
तुम उन सबको हमारे साथ भोगकरो। हे सुमध्यमें! भाई कुबेरका पुष्पक नाम ॥२८॥२९॥ विमान सूर्यके समान प्रकाश मान हमारे यहांहै कुबेरके

श्रीरामचन्द्रजीसे बोले॥५॥हम आप अपनी इच्छानुसार सीताजीको त्यागकरकै यहां नहीं आये वरन उनके पठाये हुयेही आपके निकट आयेहैं॥६॥ आपके बोलकी समान बोल बनाकर जो किसीनें (हमें बचाओ) कहकर भय और व्याकुलताके स्वरसे जो चीत्कार कियाथा, सो वही चिल्लाहट जानकीजीके श्रवण गोचर हुई ॥ ७ ॥ उन्होनें लक्ष्मण हमें बचाओ वह करुणाका बोल सुनकर भयसे विकलहो आपके स्नेहके वशके मारे रोतेर हमसे यह कहना आरंभ किया कि शीघ्र जाओ ॥ ८ ॥ वह वारंवार हमसेजानेको कहनें लगीं, तब हमनें उनको विश्वास दिलानेंके लिये यह वार्ता कही ॥ ९ ॥ हम ऐसा किसी राक्षसको नहीं देखते जो श्रीरामचंद्रजीको भय उपजासके, इस्से यह करुणाका वचन रामचंद्रजीका नहीं, वरन यह

नस्वयंकामकारेणतांत्यक्त्वाहमिहागतः ॥ प्रचोदितस्तयैवोग्रैस्त्वत्सकाशमिहागतः ॥ ६ ॥ आर्येणेवपराक्रुष्टंलक्ष्मणेतिसुविस्वरम् ॥ परित्राहीतियद्वाक्यंमैथिल्यास्तच्छ्रुतिंगतम् ॥ ७ ॥ सातमार्तस्वरंश्रुत्वातवस्नेहेनमैथिली ॥ गच्छगच्छेतिमामाहरुदतीभयविक्लवा ॥ ८ ॥ प्रचोद्यमानेनमयागच्छेतिबहुशस्तया ॥ प्रत्युक्तामैथिलीवाक्यमिदंतत्प्रत्ययान्वितम् ॥ ९ ॥ नतत्पश्याम्यहंरक्षोयदस्यभयमावहेत् ॥ निर्वृताभवनास्त्येतत्केनाप्येतदुदाहृतम् ॥ १० ॥ विगर्हितंचनीचंचकथमार्योभिधास्यति ॥ त्राहीतिवचनंसीतेयस्त्रायेत्रिदशानपि ॥ ११ ॥ किन्निमित्तंतुकेनापिभ्रातुरालंब्यमेस्वरम् ॥ विस्वरंव्याहृतंवाक्यंलक्ष्मणत्राहिमामिति ॥ १२ ॥ राक्षसेनेरितंवाक्यंत्रासात्राहीतिशोभने ॥ नभवत्याव्यथाकार्याकुनारीजनसेविता ॥ १३ ॥ अलंविक्लवतांगंतुंस्वस्थाभवनिरुत्सुका ॥ नचास्तित्रिषुलोकेषुपुमान्योराघवंरणे ॥ १४ ॥

वचन किसी राक्षसनें वा और किसीनें कहा होगा इस कारण आप वेखटके रहैं ॥ १० ॥ हे सीते! जो देवताओंकीभी रक्षा कर सकतेहैं, वह श्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी "हमको बचाओ" यह नीचजनोचित वार्ता किस प्रकारसे कह सकतेहैं ॥ ११ ॥ इस कारणसे किसीने किसी कारण वश रामचंद्रजीके बोलसा बोल बनाकर "लक्ष्मण हमको बचाओ" यह कह व्याकुल स्वरसे चिल्लाहट कीहै इसमें कुछभी सन्देह नहींहै ॥ १२ ॥ हे शोभने किसी राक्षसनें त्रासके मारे "बचाओ" यह शब्द कियाहै। इस्से आप नीचस्त्रीजनोचित मनो वेदना त्याग कर दीजिये ॥ १३ ॥ व्याकुल होनेंकी

तृणसमान समझतीहुई उत्तर देतीहुई कि ॥ १ ॥ राजा दशरथ साक्षात् धर्मके पर्वत सदृश अभेद्यसेतु और सत्य प्रतिज्ञतासे सर्व संसारमें विख्यातथे श्रीरामचंद्रजी उनकेही पुत्रहैं ॥ २ ॥ यहभी धर्मात्माके नामसे तीनों भुवनमें विख्यातहैं,वही दीर्घवाहु विशाल लोचन श्रीरामचंद्रजी हमारे स्वामी और साक्षात् देवताहैं ॥ ३ ॥ उनके कंधे सिंहकी समानहैं, वह महाद्युतिमान और इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुयेहैं वे भ्राता लक्ष्मणके सहित हो अवश्यही तेरे प्राणोंका वध करनें यहां आवेंगे॥४॥ यदि हम उनके सन्मुख बलपूर्वक इसप्रकारसे खेंचीजाती तबतो युद्धमें खरकी समान निहतहो कर तुमको भी रणभूमिमें शयन करना पडता ॥ ५ ॥ तुमनें जिन सब घोरतर महा बलवान राक्षसोंकी वार्ताकही सो गरुडके निकट सर्पसमूह

राजादशरथोनामधर्मसेतुरिवाचलः ॥ सत्यसंधःपरिज्ञातोयस्यपुत्रःसराघवः ॥ २ ॥ रामोनामसधर्मात्मात्रिषुलोकेषुविश्रुतः ॥ दीर्घबाहुर्विशालाक्षोदैवतंसपतिर्मम ॥ ३ ॥ इक्ष्वाकूणांकुलेजातःसिंहस्कंधोमहाद्युतिः ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्रायस्तेप्राणान्वधिष्यति ॥ ४ ॥ प्रत्यक्षंयद्यहंतस्यत्वयावैधर्षिताबलात् ॥ शयितात्वंहतःसंख्येजनस्थानेयथाखरः ॥ ५ ॥ यएतेराक्षसाःप्रोक्ताघोररूपामहाबलाः ॥ राघवेनिर्विषाःसर्वेसुपर्णेपन्नगायथा ॥ ६ ॥ तस्यज्याविप्रमुक्तास्तेशराःकांचनभूषणाः ॥ शरीरंविधमिष्यंतिगंगाकूलमिवोर्मयः ॥ ७ ॥ असुरैर्वासुरैर्वात्वंयद्यवध्योसिरावण ॥ उत्पाद्यसमुहद्वैरंजीवंस्तस्यनमोक्ष्यसे ॥ ८ ॥ सतेजीवितशेषस्यराघवोंतकरोबली ॥ पशोर्यूपगतस्येवजीवितंतवदुर्लभम् ॥ ९ ॥ यदिपश्येत्सरामस्त्वांरोषदीप्तेनचक्षुषा ॥ रक्षस्त्वमद्यनिर्दग्धोयथारुद्रेणमन्मथः ॥ १० ॥

की समान रामचंद्रजीके निकट यह सब राक्षस हीनबल विहीनतेज होजायँगे ॥ ६ ॥ तरंग जिसप्रकार गंगाजीके किनारेको तोडतीहै वैसेही श्रीरामचंद्रजी अपने धनुषसे छूटेहुए उन स्वर्णभूषित बाणोंके समूहसे राक्षसोंके शरीरका भेदनकरेंगे ॥ ७ ॥ रावण! यद्यपि तू देव दानवोंसे अवध्यहै,परन्तु रामचंद्रकेसाथ यह बडाभारी वैर करकै किसीप्रकार तेरे प्राण न बचेंगे ॥८॥ वह बलवान श्रीरामचंद्रजीही तुम्हारे बचेहुए जीवनका समय पूरा कर देंगे। इससे यज्ञस्तम्भसे बँधेहुए पशुकी समान अब तुम्हारा जीना दुर्लभहै ॥ ९ ॥ यदि श्रीरामचन्द्रजी क्रोध भरे नेत्रोंके दृष्टिसे एक वारही तुझको देखें

जानकीके यह क्रोध वचन सुन आश्रमसे बाहर चले आये ॥ २२ ॥ एक तौ स्त्री, दूसरे क्रोधित, ऐसी जानकीके कठोर वचनोंसे तुमभी उनको छोडकर यहां पर चले आये इससे हम तुम्हारे ऊपर प्रसन्न नहीं हुए॥ २३ ॥तुमनें सीताके वचन सुन क्रोधके वशहो हमारी आज्ञाका उल्लंघन किया इस्से तुम्हारा यह कार्य बहुतही निन्दनीय हुआहै ॥ २४ ॥ देखो! यह राक्षस जो मृग बनकर हमको आश्रमसे दूरतक लायाहै वह हमारे बाणसे मरा हुआ पडाहै॥ २५ ॥ हमनें धनुष चढा खेंच उस पर बाण चढा लीलासेही एक बाणका इसके ऊपर प्रहार किया जिस बाणके लगनेसे इस राक्ष

नहितेपरितुष्यामित्यक्त्वायदसिमैथिलीम् ॥ क्रुद्धायाःपरुषंश्रुत्वास्त्रियायत्त्वमिहागतः ॥ २३ ॥ सर्वथात्वपनीतं तेसीतयायत्प्रचोदितः ॥ क्रोधस्यवशमागम्यनाकरोःशासनंमम ॥ २४ ॥ असौहिराक्षसःशेतेशरेणाभिहतोमया ॥ मृगरूपेणयेनाहमाश्रमादपवाहितः ॥ २५ ॥ विकृष्यचापंपरिधायसायकंसलीलबाणेनचताडितोमया ॥ मार्गींतनुं त्यज्यचविक्लवस्वरोबभूवकेयूरधरःसराक्षसः ॥ २६ ॥ शराहतेनैवतदार्तयागिरास्वरंममालंब्यसुदूरसुश्रवम् ॥ उ पाहृतंतद्वचनंसुदारुणंत्वमागतोयेनविहायमैथिलीम् ॥ २७ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआर ण्यकांडेएकोनषष्टितमःसर्गः ॥ ५९ ॥ ॥ छ ॥ भृशमाव्रजमानस्यतस्याधोवामलोचनम् ॥ प्रास्फुरच्चास्ख लद्रामोवेपथुश्चास्यजायते ॥ १ ॥

सने मृग तनु छोड विकल स्वर कर बाजू पहरे हुये निशाचरका शरीरधारण कियाहै॥२६॥उसकाल हमारे बाणसे घायल होकर दूरसेही श्रवण गोचरहो इस प्रकारका हमारा बोल बनाकर इस राक्षसके दारुण आर्त्तनाद करनेसे तुम उसको सुन इस समय जानकीको छोडकर यहां आयेहो॥२७॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे एकोनषष्टितमःसर्गः ५९ आश्रममें आनेके समय श्रीरामचंद्रजीके वामनेत्रके नीचेका भाग अत्य न्तही फडकनेंलगा, परग २ पर चरण फिसलता, और शरीर कांपरहाथा इन अपशकुनोंका यह प्रभावहै कि जिस कार्यके लिये जाओ उसकी सि

दृढव्रताहैं; इस कारण हम किसी प्रकारसेभी तेरे छूनेंके योग्य नहींहैं ॥ १९ ॥ जो हंसिनी कमल पुष्पोंके मध्यमें राज हंसके साथ नित्य क्रीडा करतीहैं वह किस प्रकारसे तृणोंके बीच बैठे हुए मद्गुर (जलकाकविशेष) के प्रति दृष्टि डालेगी ॥ २० ॥ रेराक्षस! यह देहस्वभावसेही संज्ञाहीनहै, इसको बांध, या इसपर आघातदे, जो तेरी इच्छाहो सो कर हम किसी प्रकारसे इस शरीरकी रक्षा नहीं करेंगी ॥ हमें प्राणोंसे कुछ प्रयोजन नहींहै ॥ २१ ॥ और अधिक तू जो हमारे शरीरको स्पर्श करे तौ हम अपने जातेजी यह कलंक पृथ्वीपर विस्तार नहीं कर सकेंगी ! वैदेही जी इस प्रकारसे कठोर वचन कह ॥ २२ ॥ फिर रावणसे और कुछ न बोलीं तब रावण सीताजीके कठोर और रोम हर्षण वचन सुनकर ॥२३॥

क्रीडंतिराजहंसेनपद्मखंडेषुनित्यशः ॥ हंसीसातृणमध्यस्थंकथंद्रक्ष्येतमद्गुकम् ॥ २० ॥ इदंशरीरंनिःसंज्ञंबंधवाघातयस्ववा ॥ नेदंशरीरंरक्ष्यंमेजीवितंवापिराक्षस ॥ २१ ॥ नतुशक्यमपक्रोशंपृथिव्यांदातुमात्मनः ॥ एवमुक्त्वातुवैदेहीक्रोधात्सुपरुषंवचः ॥ २२ ॥ रावणंजानकीतत्रपुनर्नोवाचकिंचन ॥ सीतायावचनंश्रुत्वापरुषंरोमहर्षणम् ॥२३॥ प्रत्युवाचततःसीतांभयसंदर्शनंवचः ॥ शृणुमैथिलिमद्वाक्यंमासान्द्वादशभामिनि ॥ २४ ॥ कालेनानेननाभ्येषियदिमांचारुहासिनि ॥ ततस्त्वांप्रातराशार्थंसूदाश्छेत्स्यंतिलेशशः ॥ २५ ॥ इत्युक्त्वापरुषंवाक्यंरावणःशत्रुरावणः ॥ राक्षसीश्चततःक्रुद्धइदंवचनमब्रवीत् ॥ २६ ॥ शीघ्रमेवहिराक्षस्योविरूपाघोरदर्शनाः ॥ दर्पमस्यापनेष्यंतुमांसशोणितभोजनाः ॥ २७ ॥ वचनादेवतास्तस्यसुघोराघोरदर्शनाः ॥ कृतप्रांजलयोभूत्वामैथिलींपर्यवारयन् ॥ २८ ॥

सीताजीको डर पानेंके लिये कहनें लगा। कि हे मैथिली ! बारह महीनें तक कुछ न कहूंगा ॥ २४ ॥ हे चारुहासिनी ! इस समयके मध्यम यदि तुम हमको न प्राप्त होगी तौ रसोई करनें वाले हमारे प्रातःकलेवेके लिये तुमको टुकडे २ कर काट डालेंगे ॥ २५ ॥ शत्रुओंको रुवानें वाला रावण इस प्रकारसे कठोर वचन कहकर फिर क्रोधितहो राक्षसियोंको आज्ञा देता हुआ ॥ २६ ॥ हे विकटरूपा, घोर दर्शना, रक्त मांसभोजी राक्षसिगण ! तुम सब शीघ्रही जानकीका समस्त गर्व तोड डालो ॥ २७ ॥ वह घोर दर्शना निशाचरी गण यह सुन तत्क्षणही हाथ जोड

शोकके मारे उनके नेत्र लाल रहोगये उससमय वह उन्मत्तोंकी समान फिरनेलगे ॥ १० ॥ श्रीरामचंद्रजी शोकके समुद्रमें डूबकर एक वृक्षसे दूसरे वृक्षके नीचे दौडकर जानेलगे और विलाप करते २ नद नदी और पर्वतोंपर घूमनेलगे ॥ ११ ॥ अनन्तर श्रीरामचंद्रजी उन्मत्तकी समान कदम्बादि वृक्षोंसे सीताजीको पूछनें लगे कि हे कदम्ब! तुमने उन कदम्बप्रिया हमारी प्राणप्यारी जानकीको देखाहै? यदि देखाहो तौ उन शुभानना की वार्त्ता हमसे कहो॥ १२ ॥ हे बिल्व! वह बिल्वसदृश स्तनवाली पल्लव समान कान्तियुक्त पीले रेशमीन वस्त्र धारणकिये सीताको यदि तुमने देखाहो तो बताओ ॥ १३ ॥ अथवा हे अर्ज्जुन! प्रिया तुमको अतिशयचाहतीथी,सो वह क्षीणाङ्गी जनककुमारी जीवितहैं या नहीं सो बताओ १४॥ अथवा यह ककुभवृक्ष ककुभके समान जांघवाली सीताको निश्चयही जानताहोगा. क्योंकि इस वृक्षपर लता पुष्पफल सबही लगेहैं ॥ १५ ॥

वृक्षाद्वृक्षंप्रधावन्सगिरींश्चापिनदीनदम् ॥ बभ्रामविलपन्रामःशोकपंकार्णवप्लुतः ॥ ११ ॥ अस्तिकच्चित्त्वयादृष्टासाकदंबप्रियाप्रिया ॥ कदंबयदिजानीषेशंससीतांशुभाननाम् ॥ १२ ॥ स्निग्धपल्लवसंकाशांपीतकौशेयवासिनीम् ॥ शंसस्वयदिसादृष्टाबिल्वबिल्वोपमस्तनी ॥ १३ ॥ अथवार्जुनशंसत्वंप्रियांतामर्जुनप्रियाम् ॥ जनकस्यसुतातन्वीयादजीवतिवानवा ॥ १४ ॥ ककुभःककुभोरूंतांव्यक्तंजानातिमैथिलीम् ॥ लतापल्लवपुष्पाढ्योभातिह्येषवनस्पतिः ॥ १५ ॥ भ्रमरैरुपगीतश्चयथाद्रुमवरोह्यसि ॥ एषव्यक्तंविजानातितिलकस्तिलकप्रियाम् ॥ १६ ॥

और भ्रमरगणोंके संगीत रवसे परिपूर्ण शोभा पारहाहै। हे वनस्पति! तुम सब वृक्षोंमें प्रधानहो। और जानकीभी सब रमणीयोंमें श्रेष्ठहैं अतएव वह कहांहैं सो बताओ, ❋ अथवा प्रिया तिलक पुष्पको बहुत प्यारकरतीथी इससे यह तिलक वृक्ष निश्चयही उनके वृत्तान्तको जानता होगा ॥ १६ ॥

❋रागनी झंझौटी ताल एकताला।सीता विनु देख कुटी सोचत रघुराई॥आस्ताई॥लक्ष्मण तुमकहा कीन इकली सिय छांडदीन निश्चर कोइ दाओ चीन्ह लेगयो उडाई ॥ १ ॥ सियविन व्याकुल शरीर मनना तनक धरतधीर पीर कौन हरै नीर द्रगचले वहाई ॥ २ ॥ प्रेमविवस रामभये द्रुमलतासों पूछनगये सोकविबस बोलत नाहिं सबरहे मुरझाई ॥ ३ ॥ आगे गृद्ध भेटभई ताने सकल बातकही तेहि का प्रभु मोक्षदई नारद बलिजाई ॥ ४ ॥

मप्रिय स्वामी और देवरको सदा याद करकै और शोकसे सतानेंके कारण चेतना रहित होकर जानकीजीनें वहां किसी प्रकार शान्ति नहीं पाई॥२६॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे षट्पंचाशः सर्गः॥५६॥जिस समय जानकीजीको लंकामें रावण लेगया उस समय ब्रह्माजी
नें देवताओकें राजा इन्द्रसे इस प्रकारके वचन कहे ॥ १ ॥ त्रिलोकीके हित करनेंके वास्ते और राक्षसोंके नाशके निमित्त दुरात्मा रावण जानकीजी
को लंकामें ले गयाहै॥२॥वहां महाभाग्यवाली पतिव्रत धर्म युक्त जो सदा सुखहीसे इतनी बड़ी हुईहै अपने स्वामीको न देखकर और राक्षसोंको दे
खकर ॥ ३ ॥ राक्षसियोंसे घिरी हुई पतिव्रत धर्म वाली जानकी समुद्रके बीचमें जो लंका पुरीहै उसमें स्थित हैं ॥ ४ ॥ रामचंद्रजी किस प्रकार जा

प्रवेशितायांसीतायांलंकांप्रतिपितामहः ॥ तदाप्रोवाचदेवेंद्रंपरितुष्टंशतक्रतुम् ॥ १ ॥ त्रैलोक्यस्यहितार्थायरक्षसाम
हितायच ॥ लंकांप्रवेशितासीतारावणेनदुरात्मना ॥ २ ॥ पतिव्रतामहाभागानित्यंचैवसुखैधिता ॥ अपश्यंतीचभर्ता
रंपश्यंतीराक्षसीजनम् ॥ ३ ॥ राक्षसीभिःपरिवृताभर्तृदर्शनलालसा ॥ निविष्टाहिपुरीलंकातीरेनदनदीपतेः ॥ ४ ॥
कथंज्ञास्यतितांरामस्तत्रस्थांतामनिंदिताम् ॥ दुःखंसंचिंतयंतीसाबहुशःपरिदुर्लभा ॥५॥ प्राणयात्रामकुर्वाणाप्राणां
स्त्यक्ष्यत्यसंशयम् ॥ सभूयःसंशयोजातःसीतायाःप्राणसंक्षये ॥ ६ ॥ सत्वंशीघ्रमितोगत्वासीतांपश्यशुभाननाम् ॥
प्रविश्यनगरींलंकांप्रयच्छहविरुत्तमम् ॥ ७ ॥ एवमुक्तोथदेवेंद्रःपुरींरावणपालिताम् ॥ आगच्छन्निद्रयासार्धं
भगवान्पाकशासनः ॥ ८ ॥ निद्रांचोवाचगच्छत्वंराक्षसान्संप्रमोहय ॥ सा तथोक्तामघवतादेवीपरमहर्षिता ॥ ९ ॥

नेगें कि वहां निन्दा रहित जानकीजीहैं बड़े कष्ट और दुःखसे रामचंद्रको स्मरण करती हुई जानकी ॥ ५ ॥ भोजनादिके न करनेंसे निश्चय प्राणोंको
त्यागन करदेंगी, सो जानकीजीके प्राण रक्षा करनेंमें हमको बड़ा सन्देहहै ॥ ६ ॥ सो तुम शीघ्र यहांसे जाकर सुन्दर मुख वाली जानकीका दर्श
नकर लंका पुरीमें प्रवेशकर यह हवि ले जाकर जानकीजीको देदो ॥७॥ जब यह वचन ब्रह्माजीनें कहा तब रावणकी लंकापुरीमें इन्द्रजी आये
और निद्राको अपनें साथ लेते आये ॥ ८ ॥ तब इन्द्रनें निद्रा देवीसे कहा, कि तू जाकर राक्षसों को मोहित कर निद्रा देवी इन्द्रके यह वचन सुन

हे शार्दूल ! उन चंद्र वदना हमारी प्यारी मैथिलीको यदि देखाहो तो हमाराविश्वास करकै हमें बतादो ! तुमको कुछ भय नहींहै अर्थात् तुम इस बातसे नडरो, कि हम तुम्हें मार डालेंगे ॥ २५ ॥ हे प्रिये ! हे कमलेक्षणे ! तुम अब क्यों दौडी जातीहो ? हमने अब निश्चयही तुमको देख लियाहै तुम किस कारणसे इन वृक्षोंके मध्यमें छिप कर हमसे नहीं बोलतीहो ? ॥ २६ ॥ हे वरारोहे ! हम वारंवार कहतेहैं कि तुम खडी रहो, व इधर उधर दौडती न फिरो, क्या हमारे ऊपर तुमको दया नहीं आती ? तुमतो कभो हमारे साथ इतना उपहास नहीं करती थी ॥ २७ ॥ हे वरवर्णिनी ! हमने तुम्हारे पीले रेशमीन वस्त्र देखकर तुमको पहचानलिया है, और यहभी हम देख रहेहैं कि तुम भागही रहीहो इस्से यदि

शार्दूलयदिसादृष्टाप्रियाचंद्रनिभानना ॥ मैथिलीममविस्रब्धःकथयस्वनतेभयम् ॥ २५ ॥ किंधावसिप्रिये नूनंदृष्टासिकमलेक्षणे ॥ वृक्षैराच्छाद्यचात्मानंकिंमांनप्रतिभाषसे ॥ २६ ॥ तिष्ठतिष्ठवरारोहेनतेस्तिकरुणाम यि ॥ नात्यर्थंहास्यशीलासिकिमर्थंमामुपेक्षसे ॥ २७ ॥ पीतकौशेयकेनासिसूचितावरवर्णिनि ॥ धावंत्य पिमयादृष्टातिष्ठयद्यस्तिसौहृदम् ॥ २८ ॥ नैवसानूनमथवाहिंसिताचारुहासिनि ॥ कृच्छ्रंप्राप्तंहिमांनूनंयथापेक्षि तुमर्हति ॥ २९ ॥ व्यक्तंसाभक्षिताबालाराक्षसैःपिशिताशनैः ॥ विभज्यांगानिसर्वाणिमयाविरहिताप्रिया ॥ ३० ॥ नूनंतच्छुभदंतोष्ठंसुनासंशुभकुंडलम् ॥ पूर्णचंद्रनिभंग्रस्तंमुखंनिष्प्रभतांगतम् ॥ ३१ ॥ साहिचंदनवर्णाभाग्रीवाग्रै वेयकोचिता ॥ कोमलाविलपंत्यास्तुकांतायाभक्षिताशुभा ॥ ३२ ॥

तुम कुछ प्रेम हमारे साथ रखतीहो तौ लौट आओ और भागती नफिरो ॥ २८ ॥ अथवा हे चारुहासिनी ! हमनें जिसको देखाहै वह तुम नहींहो, तुमको तो निश्चयही किसीनें मारडाला, यदि ऐसा नहोता तो इस दारुण क्लेशके समयभी क्या तुमभी हमको छोड सकतीहो ॥ २९ ॥ साफ मालूम होताहै कि मांस खानें वाले राक्षसोंनें हमारा वियोग पाईहुई हमारी प्रियाके अंगोंको खंड २ करके खा लिया ॥ ३० ॥ अहो ! इनका वह मनोहर दांत वाला, श्रेष्ठ नासिका युक्त, शुभकुंडलसमन्वित, पूर्ण चंद्रमाकी समान वदन राक्षसों करकै ग्रस्त होजानें पर निश्चयही प्रभाही न होगया होगा ॥ ३१ ॥ उनकी कोमल गरदन हार आदि भूपणोंसे भूपित जिसके वर्णकी ज्योति चंदनकी समान चिकनी और विशदहै

पृथ्वी नहीं स्पर्श करते उनके नेत्रोंके पलक नहीं लगते ॥ १८ ॥ धूलि रहित वस्त्र धारण किये हुए जो फूल मलीन नहों ऐसे फूलोंकी माला धारण किये इन लक्षणोंसे जानकीजी इन्द्रको पहचान परम हर्षित हुई ॥ १९ ॥ और फिर रोती हुई बोलीं, हे भगवन् ! भाग्यसे महाबाहु रामचंद्रका नाम उनके भाई सहित आज मैंनें सुना ॥ २० ॥ जैसे मेरे श्वशुर दशरथजी, पिता जनकजी हैं तैसेही आज मैं तुम्हें देखतीहूं तुमसे मेरे पति सनाथ हुए ॥ २१ ॥ हे देवेन्द्र ! तुम्हारी आज्ञासे यह दूधकी बनी खीर रघु कुलके बढानें हारे तुम्हारे हाथकी दी हुई मैं खाऊंगी॥२२॥ सुहासिनी जानकीजीनें वह हवि इन्द्रके हाथसे लेकर प्रथम अपने स्वामी रामचंद्र और देवर लक्ष्मणजीको निवेदितकी ॥ २३ ॥ और कहा कि

अरजोंबरधारीचनम्लानकुसुमस्तथा ॥ तंज्ञात्वालक्षणैःसीतावासवंपरिहर्षिता ॥ १९ ॥ उवाचवाक्यंरुदतीभगवद्रा
घवंप्रति ॥ सहभ्रात्रामहाबाहुर्दिष्ट्यामेश्रुतिमागतः ॥ २० ॥ यथामेश्वशुरोराजायथाचमिथिलाधिपः ॥ तथात्वा
मद्यपश्यामिसनाथोमेपतिस्त्वया ॥ २१ ॥ तवाज्ञयाचदेवेंद्रपयोभूतामिदंहविः ॥ अशिष्यामित्वयादत्तंरघूणांकुलव
र्धनम् ॥ २२ ॥ इंद्रहस्तादृगृहीत्वातत्पायसंसाशुचिस्मिता॥ न्यवेदयतभर्त्रेसालक्ष्मणायचमैथिली ॥ २३ ॥ यदिजी
वतिमेभर्तासहभ्रात्रामहाबलः ॥ इदमस्तुतयोर्भक्त्यातदाश्नात्पायसंस्वयम् ॥ २४ ॥ इतीवतत्प्राश्यहविर्वराननाज
हौक्षुधादुःखसमुद्भवंचतम् ॥ इंद्रात्प्रवृत्तिमुपलभ्यजानकीकाकुत्स्थयोःप्रीतमनाबभूव ॥ २५ ॥ सचापिशक्रस्त्रिदि
वालयंतदाप्रीतोययौराघवकार्यसिद्धये ॥ आमंत्र्यसीतांसततोमहात्माजगामनिद्रासहितःस्वमालयम् ॥ २६ ॥
इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेसर्गः ॥ १ ॥

यदि मेरे महावली भर्ता लक्ष्मण भाई सहित जीवितहैं तो यह जो मैं प्रेमसे देतीहूं यह वह पायस ग्रहण करे ॥ २४ ॥ वह सुमुखी इस प्रकार खीरको निवेदन कर पीछे आप भक्षण करती हुई. जिसके खातेही भूंख प्यासका दुःख जाता रहा, इन्द्रसे यह कथा सुनकर कि रामचंद्र शीघ्र आवेंगे रामचंद्रमें मन लगाती हुई ॥ २५ ॥ वह इन्द्रभी उस समय रामचंद्र की कार्य सिद्धिके निमित्त प्रसन्न होकर स्वर्गको गये, और वह महात्मा चलते समय जानकीको समझाकर निद्रा सहित स्वर्गको पधारे॥२६॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे क्षेपकः सर्गः॥५६॥

कि शून्य पडा है, पर्णशालामें कोई नहीं है आसन भी सब इधर उधर पडे हैं ॥ १ ॥ सब ओर वहां पर देख और वैदेहीजीको न पाकर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके दोनों हाथ पकड रोकर बोले ॥ २ ॥ हे लक्ष्मण! सीता कहां हैं? इस आश्रमसे किस स्थानको चली गई हैं? हे सौमित्र! प्रिया को किसनें हरण किया, वा भक्षण किया? ॥ ३ ॥ हे सीते! यदि वृक्षकी आडमें छिपी रहकर तुम्हें उपहास करनेंकी इच्छा हुई हो, तब तो जितना चाहियेथा उतना उपहास होगया, अब अधिक न सताओ। देखो! हम महादुःखके पडनेंसे व्याकुल होरहे हैं सो इस समय आनकर तुम शीघ्र हमको धीरजदो, और समझाओ ॥ ४ ॥ हे सौम्य! तुम जो इन सब विश्वासी मृगछौनोंके सहित खेल करतीथीं सो इस समय यह सब

अदृष्ट्वातत्रवैदेहींसन्निरीक्ष्यचसर्वशः ॥ उवाचरामःप्राक्रुश्यप्रगृह्यरुचिरौभुजौ ॥ २ ॥ क्वनुलक्ष्मणवैदेहीकंवादेशमितोगता ॥ केनाहृतावासौमित्रेभक्षिताकेनवाप्रिया ॥ ३ ॥ वृक्षेणावार्ययदिमांसीतेहसितुमिच्छसि ॥ अलंतेहसितेनाद्यमांभजस्वसुदुःखितम् ॥ ४ ॥ यैःपरिक्रीडसेसीतेविश्वस्तैर्मृगपोतकैः ॥ एतेहीनास्त्वयासौम्येध्यायंत्यस्राविलेक्षणाः ॥ ५ ॥ सीतयारहितोऽहंवैनहिजीवामिलक्ष्मण ॥ वृतंशोकेनमहतासीताहरणजेनमाम् ॥ ६ ॥ परलोकेमहाराजोनूनंद्रक्ष्यतिमेपिता ॥ कथंप्रतिज्ञांसंश्रुत्यमयात्वमभियोजितः ॥ ७ ॥ अपूरयित्वातंकालंमत्सकाशमिहागतः ॥ कामवृत्तमनार्यंवामृषावादिनमेवच ॥ ८ ॥ धिक्त्वामितिपरेलोकेव्यक्तंवक्ष्यतिमेपिता ॥ विवशंशोकसंतप्तंदीनंभग्नमनोरथम् ॥ ९ ॥ मामिहोत्सृज्यकरुणंकीर्तिर्नरमिवानृजुम् ॥ क्वगच्छसिवरारोहेमामोत्सृजसुमध्यमे ॥ १० ॥

तुम्हारे विना नेत्रोंसे अश्रुजल भरे चिंता कर रहे हैं ॥ ५ ॥ हे लक्ष्मण! सीताके विरहमें हम कभी जीवन धारण नहीं कर सकते, उनके हर जानेंसे उत्पन्न हुए घोरतर शोकनें हमको ढक लिया है ॥ ६ ॥ पितृदेव महाराज दशरथजीको निश्चयही हम परलोकमें मिलेंगे, और वह निश्चय ही हमसे यह कहेंगे कि हे राम! हमनें तो तुमको प्रतिज्ञा पूर्ण करनेंको कहाथा, और तुमनेभी स्वीकार कियाथा, कि हम चौदह वर्ष वनमें वसेंगे॥ ७ ॥ सो तुम उस प्रतिज्ञाको पूर्ण विना कियेही इस समय कैसे यहां पर आये? तुम स्वेच्छाचारी, मिथ्यावादी, और नीचता युक्त तुमको ॥ ८ ॥ धिक्कार है! सो निश्चयही इस प्रकारके वचन पिताजी हमें कहेंगे, विवश शोकसे व्याकुल, दीन और मनोरथ टूटे हुए ॥ ९ ॥ व दया करनेंके योग्य

कैसे कहैं कि मंगल होगा। कारण कि जनस्थानका नाश करनेंके कारण हमसे और राक्षसोंसे भारी वैरहै ॥ ९ ॥ और तिसपर यहां हमको घोर दुर्निमित्त दिखाई देतेहैं, आत्मवान श्रीरामचंद्रजीनें शृगालका शब्द सुनकर इस प्रकार चिन्ता करते २ ॥ १० ॥ लौटकर बडी शीघ्रतासे आश्रमकी ओर गमन करने लगे। मृग रूपी मारीच जो उनको आश्रमसे दूर ले आयाथा, इस कारण रामचंद्रजी जल्दीसे आश्रमको चले॥ ११ ॥ और शंकित चित्त होकर श्रीरामचन्द्रजी आश्रममें पहुँचे तब सब मृग पक्षी गण इनके मनको उदास देखकर सब इनके निकट आये ॥ १२ ॥ वह सब मृग पक्षीगण उस कालमें रामचन्द्रजीकी बांई तरफ होकर कठोर स्वरसे शब्द करनें लगे उन महा घोर सब दुर्निमित्तोंको देखकर

निमितानिचघोराणिदृश्यंतेऽद्यबहूनिच ॥ इत्येवंचिंतयन्रामःश्रुत्वागोमायुनिःस्वनम् ॥ १० ॥ निवर्तमानस्त्वरितोजगामाश्रममात्मवान् ॥ आत्मनश्चापनयनंमृगरूपेणरक्षसा ॥ ११ ॥ आजगामजनस्थानंराघवःपरिशंकितः ॥ तंदीनमानसंदीनमासेदुर्मृगपक्षिणः ॥ १२ ॥ सव्यंकृत्वामहात्मानंघोरांश्चससृजुःस्वरान् ॥ तानिदृष्ट्वानिमित्तानिमहाघोराणिराघवः ॥ १३ ॥ ततोलक्ष्मणमायांतंददर्शविगतप्रभम् ॥ ततोविदूरेरामेणसमीयायसलक्ष्मणः ॥ १४ ॥ विषण्णःसन्विषण्णेनदुःखितोदुःखभागिना ॥ सजगर्हेऽथतंभ्राताद्दृष्ट्वालक्ष्मणमागतम् ॥ १५ ॥ विहायसीतांविजनेवनेराक्षससेविते ॥ गृहीत्वाचकरंसव्यंलक्ष्मणंरघुनंदनः ॥ १६ ॥ उवाचमधुरोदर्कमिदंपरुषमार्तवत् ॥ अहोलक्ष्मणगर्ह्यंतेकृतंयत्त्वंविहायताम् ॥ १७ ॥

श्रीरामचन्द्रजीनें देखातो॥१३॥प्रभा हीन हुए लक्ष्मणजी चले आतेहैं देखते ही देखते लक्ष्मणजी रामचन्द्रजीके निकट आ पहुँचे॥१४॥रामचन्द्रजीको विषादित व दुःखित देखकर लक्ष्मणजीभी विषादित और दुःखित हुए। तब श्रीरामचन्द्रजी अपनें भ्राता लक्ष्मणजीकी निन्दा करनें लगे॥१५॥क्योंकि लक्ष्मणजी सीताजीको राक्षस सेवित सूने वनमें अकेली छोडकर आयेथे लक्ष्मणजीका वांयां हाथ पकडकर श्रीरामचन्द्रजी ॥ १६ ॥ आरतकी समान श्रवण कठोर परिणाम मधुर वचन कहने लगे कि–हे लक्ष्मण! तुम सीताजीको त्याग कर जो यहां चले आये हो, यह तुमनें अतीव निन्दा

हे काकुत्स्थ! आपतोभी यह मानते हों कि जानकी इसी वनमें हैं तब तौ इस वनके सबही आश्रमोंमें खोजेंगे,अब शोक न कीजिये॥१८॥जब सौहार्दके वश होकर लक्ष्मणजीनें इस प्रकार कहा तब रामचन्द्रजी सावधान चित्त होकर लक्ष्मणजीको संग ले ढूंढनें लगे ॥१९॥ वन,गिरि,तलाव, एक२करके दोनों भाइयोंनें सीताको ढूंढनेंके लिये छाने ॥ २० ॥ फिर उन पर्वतोंके कंगूरों,चटान,व शिखर, सब रत्ती२खोजे पर जानकीजीके दर्शन न हुए॥२१॥ उस कालमें समस्त पर्वतको ढूंढ भालकर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीसे बोले कि हे भाई! इस पर्वत पर प्यारी जनकदुलारी तो दृष्टि नहीं आतीं ॥२२॥

वनंसर्वंविचिनुवोयत्रसाजनकात्मजा ॥ मन्यसेयदिकाकुत्स्थमास्मशोकेमनःकृथाः ॥ १८ ॥ एवमुक्तःससौहार्दा लक्ष्मणेनसमाहितः ॥ सहसौमित्रिणारामोविचेतुमुपचक्रमे ॥ १९ ॥ तौवनानिगिरींश्चैवसरितश्चसरांसिच ॥ निखिलेनविचिन्वंतौसीतांदशरथात्मजौ ॥ २० ॥ तस्यशैलस्यसानूनिशिलाश्चशिखराणिच ॥ निखिलेनविचिन्वंतौनैवतामभिजग्मतुः ॥ २१ ॥ विचित्यसर्वतःशैलंरामोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ नेहपश्यामिसौमित्रेवैदेहींपर्वते शुभाम् ॥ २२ ॥ ततोदुःखाभिसंतप्तोलक्ष्मणोवाक्यमब्रवीत् ॥ विचरन्दंडकारण्यंभ्रातरंदीप्ततेजसम् ॥ २३ ॥ प्राप्स्यसेत्वंमहाप्राज्ञमैथिलींजनकात्मजाम् ॥ यथाविष्णुर्महाबाहुर्बलिंबद्ध्वा महीमिमाम् ॥ २४ ॥ एवमुक्तस्तुवीरेणलक्ष्मणेनसराघवः ॥ उवाचदीनयावाचादुःखाभिहतचेतनः ॥ २५ ॥ वनंसुविचितंसर्वंपद्मिन्यःफुल्लपंकजाः ॥ गिरिश्चायंमहाप्राज्ञबहुकंदरनिर्झरः ॥ नहिपश्यामिवैदेहींप्राणेभ्योऽपिगरीयसीम् ॥ २६ ॥

लक्ष्मणजी समस्त दंडकारण्य में विचरण करते हुए भी जानकीजीको न पाकर दुःखसे संतप्त हो प्रदीप्त तेजवाले अपने भ्राता रामचंद्रजी से बोले ॥ २३ ॥ कि महाबलवान् विष्णु जीने जिसप्रकार बलियोंको बांधकर इस पृथ्वीको प्राप्त कियाथा हे बुद्धिमान् ! आपभी वैसेंही जनक कुमारी सीताजीको पावेंगे ॥ २४ ॥ वीर लक्ष्मणजीके यह वचन सुन दुःखसे चित्त हरे हुये श्रीरामचंद्रजी अतिदीनतासे बोले ॥ २५ ॥ हे महा बुद्धिमान्! सारा वन खिले हुये कमल कमलाकरसरोवर बहुत सारी कन्दराओंसे युक्त बहुत झरनोंसे सुशोभित यह पर्वत जरा २ करके देखा

लक्ष्मणजी महादीन और उदास मन हो रहेथे । उनको सीताके विना आता हुआ देखकर धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी पूछनें लगे ॥ १ ॥ हे लक्ष्मण! जब हम वनको आये और उस समय जो हमारे साथही वनको आईथीं; और तुम जिनको छोडकर यहां आये हो; वह सीता कहां हैं? ॥२ ॥ जब हम राज्यसे भ्रष्ट होकर दीनभावसे दंडकारण्यको आये, और उस समय जो हमारे दुःखमें सहाय हुई, वह तनुमध्यमा जानकीजी कहां हैं? ॥३॥ जिसके बिना हम एक मुहूर्त भरभी प्राण धारण करनेको उत्साही नहीं, वह देवकन्याकी समान प्राण सहाय जानकीजी कहां हैं? ॥ ४ ॥ हे लक्ष्मण! हम उन तपाये हुए सुवर्णकी समान प्रभावाली जनकात्मजाके बिना देवताओंकी प्रभुताई अथवा पृथ्वीकी रजाई लेनेंकीभी अभिलाषा नहीं करते ॥ ५॥

सदृष्ट्वालक्ष्मणंदीनंशून्यंदशरथात्मजः ॥ पर्यपृच्छतधर्मात्मावैदेहीमागतंविना ॥१ ॥ प्रस्थितंदंडकारण्यंयामामनुजगामह ॥ क्वसालक्ष्मणवैदेहीयांहित्वात्वमिहागतः ॥ २ ॥ राज्यभ्रष्टस्यदीनस्यदंडकान्परिधावतः ॥ क्वसादुःखसहायामेवैदेहीतनुमध्यमा ॥ ३ ॥ यांविनानोत्सहेवीरमुहूर्तमपिजीवितुम् ॥ क्वसाप्राणसहायामेसीतासुरसुतोपमा ॥ ४ ॥ पतित्वममराणांहिपृथिव्याश्चापिलक्ष्मण ॥ विनातांतपनीयाभांनेच्छेयंजनकात्मजाम् ॥ ५ ॥ कच्चिज्जीवतिवैदेहीप्राणैःप्रियतरामम ॥ कच्चित्प्रव्राजनंवीरनमेमिथ्याभविष्यति ॥ ६ ॥ सीतानिमित्तंसौमित्रेमृतेमयिगतेत्वयि ॥ कच्चित्सकामाकैकेयीसुखितासाभविष्यति ॥ ७ ॥ सपुत्रराज्यांसिद्धार्थांमृतपुत्रातपस्विनी ॥ उपस्थास्यतिकौसल्याकच्चित्सौम्येनकैकयीम् ॥ ८ ॥ यदिजीवतिवैदेहीगमिष्याम्याश्रमंपुनः ॥ संवृत्तायदिवृत्तासाप्राणांस्त्यक्ष्यामिलक्ष्मण ॥ ९ ॥

हे वीर! हमारी प्राणोंसेभी प्यारी जानकी क्या अभीतक जीतीहैं, क्या हमने जो चौदह वर्ष तक वनमे रहनेकी प्रतिज्ञा की है यह मिथ्या तो नहोजाय ॥ ६ ॥ लक्ष्मण! सीताके लिये हमारे प्राण त्यागने पर और तुम्हारे अयोध्यामें लौट जानेपर कैकेयी क्या सफल मनोरथ और सुखी होगी॥७॥ कैकेयी इस प्रकार अपनें पुत्रकी राज्य प्राप्तिसे जब सिद्ध काम होगी, तब क्या मृतपुत्रा, दीना, तपस्विनी, हमारी माता कौशल्याजीको विनयके साथ उसकी सेवा करनी होगी ॥ ८ ॥ हे लक्ष्मण! वैदेही यदि जीवितहैं, तब तो हम फिर आश्रमको चलतेहैं, और वह शुद्धचारिणी

अशोक शाखा समूह द्वारा अपना शरीर ढक कर हमारे शोकको अतिशय बढाती हो ॥ ३ ॥ हे देवि! तुम्हारी दोनों जांघें केलेके खंभकी सदृश हैं तुमनें उनको कदलीसे छिपा रक्खाहै सो हम उनको देख रहेहैं तुम अब उनको नहीं छिपा सकतीहो ॥ ४ ॥ हे भद्रे! तुम हँसते २ कर्णिकारके वनमें प्रवेश करतीहो, परन्तु हमको पीडन करकै और अधिक उपहास करनेंका प्रयोजन नहींहै ॥ ५ ॥ विशेष करकै आश्रमके स्थानमें परिहास करना अच्छा नहीं होता, हे प्रिये! यह तौ हम जानतेहैं कि स्वभावसे ही तुम परिहासप्रियहो ॥ ६ ॥ परन्तु हे विशालाक्षी! यह पर्णशाला शूनी पडीहै इस कारण आओ। हे लक्ष्मण! निश्चय होताहै कि. सीताको राक्षसोंनें भक्षण कर लिया. अथवा वह उनको हरण करकै

कदलीकांडसदृशौकदल्यासंवृतावुभौ ॥ ऊरूपश्यामितेदेविनासिशक्तानिगूहितुम् ॥ ४ ॥ कर्णिकारवनंभद्रेहसंती देविसेवसे ॥ अलंतेपरिहासेनममबाधावहेनवै ॥ ५ ॥ विशेषेणाश्रमस्थानेहासोयंनप्रशस्यते ॥ अवगच्छामितेशीलंपरिहासप्रियंप्रिये ॥ ६ ॥ आगच्छत्वंविशालाक्षिशून्योयमुटजस्तव ॥ सुव्यक्तंराक्षसैःसीताभक्षितावाहृतापिवा॥७॥ नहिसाविलपंतंमामुपसंप्रतिलक्ष्मण ॥ एतानिमृगयूथानिसाश्रुनेत्राणिलक्ष्मण ॥ ८ ॥ शंसंतीवहिमेदेवींभक्षितांरजनीचरैः ॥ हाममार्येक्कयातासिहासाध्विवरवर्णिनि ॥ ९ ॥ हासकामाद्यकैकेयीदेविमेद्यभविष्यति ॥ सीतयासहनिर्यातोविनासीतामुपागतः ॥ १० ॥ कथंनामप्रवेक्ष्यामिशून्यमंतःपुरंमम ॥ निर्वीर्यइतिलोकोमांनिर्दयश्चेतिवक्ष्यति ॥ ११ ॥ कातरत्वंप्रकाशंहिसीतापनयनेनमे ॥ निवृत्तवनवासश्चजनकंमिथिलाधिपम् ॥ १२ ॥

लेगये ॥ ७ ॥ इसी कारण वह हमको विलाप करते हुए देख कर भी हमारे निकट नहीं आतीं; हे लक्ष्मण! इस पर ये मृग यूथ गण रोदन करते हैं ॥८॥ यह भी मानों यही कह रहे हैं कि राक्षसोंनें सीताका भक्षण कर लिया। हा अच्छेशीलवाली साधवि! हा वरवर्णिनी सुमुखि! हा आर्या! तुम कहां गई हो ॥ ९ ॥ अब सीताकरकै रहित देशको गमन करना पडेगा, इतने दिनोंके पीछे कैकेयीदेवी सफल मनोरथ हुई क्योंकि अब वह देखेंगी कि सीता सहित गयेथे। और आये सीता रहित! ॥ १० ॥ किस प्रकारसे हम सीता रहित अपनें रनवासमें प्रवेश करेंगे? सब लोग हमको वीर्य रहित और निर्दयी कह कर निन्दा करेंगे॥११॥सीताजीके विना संग होनेंसे निश्चय ही हमको कातरता प्राप्त हो जायगी, कारण कि जब

क्षुधा,श्रम, और प्यासके मारे रामचन्द्रजीका मुख सूख गयाथा, वह शोकितचित्तसे दीर्घ निश्वास त्याग करते लक्ष्मणजीकी आर्य भावसे निन्दा करते २ इस प्रकारसे आश्रममें आयकर देखा तो वहां सीता नहींहै वह आश्रम शून्य पडाहै॥ १९ ॥ जब सीताजीको न देखा तब श्रीरामचन्द्रजी आश्रममें प्रवेश करके सीताजीके खेलनेंके सब स्थान और वनवासके उठनें बैठनेंके स्थानमें ढूंढनें लगे, परन्तु वहांभी जनकनंदिनीको न पाया, तब श्रीरामचन्द्रजीनें जानकीजीके उठनें बैठनें और खेलनेंके स्थानोंको बिसूर२याद किया, याद करतेही उनके रोम खडे होगये और बहुत घबडाये ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आर० अष्टपंचाशः सर्गः ॥ ५८ ॥ जब इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीनें आश्रमके मार्गमें वचन कहे और वह

विगर्हमाणोऽनुजमार्तरूपंक्षुधाश्रमेणैवपिपासयाच ॥ विनिःश्वसन्शुष्कमुखोविषण्णःप्रतिश्रयंप्राप्यसमीक्ष्यशून्यम्॥ १९ ॥ स्वमाश्रमंसप्रविगाह्यवीरोविहारदेशाननुसृत्यकांश्चित् ॥ एतत्तदित्येवनवासभूमौप्रहृष्टरोमाव्यथितोबभूव ॥ २० ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेअष्टपंचाशःसर्गः ॥ ५८ ॥ छ ॥ ॥

अथाश्रमादुपावृत्तमंतरारघुनंदनः॥ परिपप्रच्छसौमित्रिंरामोदुःखादिदंवचः॥ १ ॥ तमुवाचकिंमर्थंत्वमागतोऽपास्यमैथिलीम् ॥ यदासातवविश्वासाद्वनेविरहितामया ॥ २ ॥ दृष्ट्वैवाभ्यागतंत्वांमेमैथिलींत्यज्यलक्ष्मण ॥ शंकमानंमहत्पापंयत्सत्यंव्यथितंमनः॥ ३ ॥ स्फुरतेनयनंसव्यंबाहुश्चहृदयंचमे ॥ दृष्ट्वालक्ष्मणदूरेत्वांसीताविरहितंपथि ॥ ४॥ एवमुक्तस्तुसौमित्रिर्लक्ष्मणःशुभलक्षणः ॥ भूयोदुःखसमाविष्टोदुःखितंराममब्रवीत् ॥ ५ ॥

लक्ष्मण कुछ न बोले तब फिर महादुःखीहो रामचन्द्रजी सुमित्राकुमारसेबोले ॥ १ ॥ भाई तुम कैसे सीताको छोडकर यहां चले आये ? जबकि हम तुम्हारेही विश्वासपर सीताको वनके बीच छोड आयेहैं ॥ २ ॥ यहदेखतेही कि तुम सीताजीको त्याग कर यहां आयेहो, हमारा मन जो महा अनिष्टकी शंका करके व्यथित होताथा वह हमारी शंका सत्यही सत्यहुई ॥ ३ ॥ तुमको मार्गमें दूरसेही जानकीके विन अकेला आता देखकर हमारा, वामकर, वामनेत्र और हृदयका वायांभाग फड़कने लगा ॥ ४ ॥शुभलक्षण युक्त लक्ष्मणजी रामचन्द्रजीकी यह वार्ता सुन महा दुःखित हो

श्रीरामचंद्रजी सुकेशी सीताके विरहमें महा व्याकुल होकर इस प्रकारसे विलाप करने लगे। तब भयके मारे लक्ष्मणजीका मुख पीला पड गया मन व्यथित हुआ और वह बहुतही आतुर होगये ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्य कांडे द्विषष्टितमःसर्गः ६२॥ राजकुमार श्रीरामचंद्रजी प्रियाविहीनहो शोक मोहसे आतुर होनेंके कारण लक्ष्मणजीको विषाद उत्पन्न कराते हुए आपभी बडे तीव्र विषादको प्राप्त हुए ॥ १ ॥ तिसके पीछे वह विपुल शोकमें डूबकर लंबे २ श्वास लेते हुये, रोते२ शोकसे घिरे हुए लक्ष्मणजीको उपस्थित विपदके अनुरूप वचन कहने लगे. ॥ २ ॥ हम समझतेहैं कि हमारी समान बुरे कर्म करनेवाला दूसरा पुरुष पृथ्वीपर और नहींहै, देखो एकके पीछे एक

इतिविलपतिराघवेतुदीनेवनमुपगम्यतयाविनासुकेश्या ॥ भयविकलमुखस्तुलक्ष्मणोऽपिव्यथितमनाभृशमातुरो बभूव ॥ २० ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवा०आ०आर०द्विषष्टितमःसर्गः ॥ ६२ ॥ ७ ॥ ॥ सराजपुत्रःप्रिययाविहीनःशोकेनमोहेनचपीड्यमानः ॥ विषादयन्भ्रातरमार्तरूपोभूयोविषादंप्रविवेशतीव्रम् ॥ १ ॥ सलक्ष्मणंशोकवशाभिपन्नंशोकेनिमग्नोविपुलेतुरामः ॥ उवाचवाक्यंव्यसनानुरूपमुष्णंविनिःश्वस्यरुदन्सशोकम् ॥ २ ॥ नमद्विधोदुष्कृतकर्मकारीमन्येद्वितीयोऽस्तिवसुंधरायाम् ॥ शोकानुशोकोहिपरंपरायामामेतिभिंदन्हृदयंमनश्च ॥ ३ ॥ पूर्वमयानूनमभीप्सितानिपापानिकर्माण्यसकृत्कृतानि ॥ तत्रायमद्यापतितोविपाकोदुःखेनदुःखंयदहंविशामि ॥ ४ ॥ राज्यप्रणाशःस्वजनैर्वियोगःपितुर्विनाशोजननीवियोगः॥सर्वाणिमेलक्ष्मणशोकवेगमापूरयंतिप्रविचिंतितानि॥ ५॥ सर्वंतुदुःखंममलक्ष्मणेदंशांतंशरीरेवनमेत्यक्लेशम् ॥ सीतावियोगात्पुनरभ्युदीर्णंकाष्ठैरिवाग्निःसहसोपदीप्तः॥ ६ ॥

इस प्रकार लगा तार शोक इकट्ठे होकर हमारे मन और हृदयको वेधे डालतेहैं ॥ ३ ॥ पहले जन्ममें हमनें इच्छानुसार वारंवार बहुत सारे पाप कर्म कियेहैं आज उनका फल मिलरहाहै। इसीकारण हमारे ऊपर दुःखके ऊपर दुःख पड रहेहैं ॥४॥ राज्यका नाश होना, पिताजीका मरना, माताजीका वियोग होना, और वन्धु बान्धवोंसे छूटना, यह सब बातें जब याद आतीहैं तो हमारे शोकके वेगको परिपूर्ण कर देतीहैं ॥ ५ ॥ हे लक्ष्मण! वनमें आकर सीताके साथ रहनेंसे वह सब दुःखही छूट गयेथे वरन शरीरको क्लेशका नाम नहीं जान पडताथा, परन्तु आज जानकीके वियो

कोई आवश्यकता नहीं, नघवडानेका कुछ प्रयोजन, इस बातका विचार आप छोडें, क्योंकि लोकमें ऐसा कोई पुरुष नहींहै जो संग्राममें श्रीरघुनंदन रामचंद्रजीको ॥ १४ ॥ जीतसकै आजके समयही क्या वरन कभी ऐसा नहीं हुआ और न आगेको होगा, श्रीरामचंद्रजीको तो संग्राममें इन्द्रादि देवताभी नहीं जीत सकते ॥ १५ ॥ मोहितचित्त वैदेहीजीने हमारे यह बचन सुन आँसू त्यागकर रोतेर हमको यह दारुण वचन कहे ॥ १६ ॥ कि हमारे प्रति तुम्हारा अत्यन्त पाप भाव स्थापित हुआहै, परन्तु भ्राताके विनष्ट होनेपर तुम किसी भाँतिसे हमको प्राप्त नहीं कर सकोगे ॥ १७ ॥ हम समझीं कि तुम भरतके गुप्त भावसे पठाये श्रीरामचंद्रजीके साथ आयेहो इसीसे रामचंद्रजीका आरत नाद करना सुन करभी तुम उनकी सहा

जातोवाजायमानोवासंयुगेयःपराजयेत् ॥ अजेयोराघवोयुद्धेदेवैःशक्रपुरोगमैः ॥ १५ ॥ एवमुक्तातुवैदेहीपरिमोहितचेतना ॥ उवाचाऽश्रूणिमुंचंतीदारुणंमामिदंवचः ॥ १६ ॥ भावोमयितवात्यर्थंपापएवनिवेशितः ॥ विनष्टेभ्रातरिप्राप्तुंनचत्वंमामवाप्स्यसे ॥ १७ ॥ संकेताद्भरतेनत्वंरामंसमनुगच्छसि ॥ क्रोशंतंहियथात्यर्थंनैनमभ्यवपद्यसे ॥ १८ ॥ रिपुःप्रच्छन्नचारीत्वंमदर्थमनुगच्छसि ॥ राघवस्यांतरंप्रेप्सुस्तथैनंनाभिपद्यसे ॥ १९ ॥ एवमुक्तस्तुवैदेह्यासंरब्धोरक्तलोचनः ॥ क्रोधात्प्रस्फुरमाणोष्ठआश्रमादभिनिर्गतः ॥ २० ॥ एवंब्रुवाणंसौमित्रिंरामःसंतापमोहितः ॥ अब्रवीद्दुष्कृतंसौम्यतांविनात्वमिहागतः ॥ २१ ॥ जानन्नपिसमर्थंमांरक्षसामपवारणे ॥ अनेनक्रोधवाक्येनमैथिल्यानिर्गतोभवान् ॥ २२ ॥

यतार्थ नहीं जाते ॥ १८ ॥ अथवा तुम हमारे गुप्त शत्रुहो, हमारेही लेलेनेके लिये रामचंद्रजीके पीछेर वनमें फिरतेहो और सर्वदा अवसर ढूंढतेहो कि कब रामचंद्र कहींको जॉय, और हम इनको ग्रहण करें इस कारणसे तुम उनकी सहायता करनेके लिये नहीं जाते ॥ १९ ॥ जब वैदेहीजीनें इस प्रकार कहा, तब अति क्रोधके मारे हमारे नेत्र लाल हो आये, रोपमें भरकर अधर फडकने लगे और हम तैसेही आश्रमसे चल खडे हुए ॥२०॥ जब लक्ष्मणजीनें इस प्रकारसे कहना आरंभ किया, तब रामचंद्रजी शोकसे मोहित होकर उनसे बोले कि हे सौम्य! तुम जो जानकीको छोडकर यहां चले आये यह अतिशय दुष्कर कर्म हुआ ॥ २१ ॥ देखो, राक्षसोंका बल निवारण करनेकी हममें विलक्षण सामर्थ्य है उसको जानबूझ करभी तुम

प्रथम हमारे साथ इस शिलातल पर तुम्हारे निकट बैठकर हँसते २ तुमसे कितनी बातें कहतीथीं ॥ १२ ॥ यह नदियोंमें श्रेष्ठ गोदावरीहै, जो हमारी प्रियाको सर्वदाही बहुत प्यारीथी, सो हमारे मनमें यह बातभी आतीहै कि कदाचित् वह इस नदीके तीरपर चली गईहो। परन्तु नहीं वह अकेली यहांपर कभी नहीं आतीथीं ॥ १३ ॥ तब क्या वह कमल दलके समान नेत्रवाली कमलमुखी जानकी कमल लेनेंको चली गई हैं यहभी किसी प्रकार ठीक नहीं हो सकता; क्योंकि वह कभी हमारे विना कमल लेनें नहीं जातीथीं ॥ १४ ॥ अथवा वह इस पुष्पित वृक्ष समूह शोभित अनेक जातिके विहंगमोंसे पूर्ण यह वन अपनी इच्छानुसार देखनेंको गई हैं यहभी बात किसी भांति संभव नहीं हो सकती, क्यों

गोदावरीयंसरितांवरिष्ठाप्रियाप्रियायाममनित्यकालम्॥अप्यत्रगच्छेदितिचिंतयामिनैकाकिनीयातिहिसाकदाचि
त्॥ १३ ॥ पद्माननापद्मपलाशनेत्रापद्मानिवानेतुमभिप्रयाता ॥ तदप्ययुक्तंनहिसाकदाचिन्मयाविनागच्छतिपंकजा
नि ॥ १४ ॥ कामंत्विदंपुष्पितवृक्षषंडंनानाविधैःपक्षिगणैरुपेतम् ॥ वनंप्रयातानुतदप्ययुक्तमेकाकिनीसातिबिभेति
भीरुः ॥ १५ ॥ आदित्यभोलोककृताकृतज्ञलोकस्यसत्यानृतकर्मसाक्षिन् ॥ ममप्रियासाक्वगताहृतावाशंसस्वमेशो
कहतस्यसर्वम् ॥ १६ ॥ लोकेषुसर्वेषुननास्तिकिंचिद्यत्तेननित्यंविदितंभवेत्तव ॥ शंसस्ववायोकुलपालिनींतांमृता
हृतावापथिवर्ततेवा ॥ १७ ॥ इतीवतंशोकविधेयदेहंरामंविसंज्ञंविलपंतमेव ॥ उवाचसौमित्रिरदीनसत्त्वोन्याय्ये
स्थितःकालयुतंचवाक्यम् ॥ १८ ॥

कि उनका डरपोक स्वभावहै अकेली वनके मध्य प्रवेश करनेंसे वह बहुत डरतींथीं ॥ १५ ॥ हे भगवन् ! सूर्य ! आप सबके कृता कृतको जानतेहैं, और सत्य मिथ्या सबके साक्षीभी आपहैं. इस कारणसे शोक हत हमको बतला दीजिये कि हमारी प्रिया कहां चलीगई अथवा कौंन उनको हरकर लेगया ॥ १६ ॥ हे पवन ! समस्त लोकोंमें ऐसा कुछ नहींहै जो नित्यहीतुम्हारे ज्ञान मार्गमें उदित न होताहो, इससे बतला दीजिये कि हमारी उन कुलमर्य्यादारक्षनी सीतानें प्राण दियेहैं या वह किसीसे हरी गईहैं,अथवा कहीं मार्गमें टिक रहींहैं ॥ १७ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीनें शोक

द्धि नहींहोती ॥ १ ॥ श्रीरामचंद्रजी वारंवार अपशकुन होते देखकर आपही कहनेंलगे कि जनें सीता कुशलसेहैं अथवा नहीं॥ २ ॥ यह सोचते वि चारते सीताके दर्शनकरनेंकी लालसासे शीघ्र २ चलकर देखतेहुए किआश्रम सूनापडाहै यह देखकर श्रीरामचंद्रजी बहुत उकसाये॥ ३॥ वह वेग सहित इधर उधर भुजायें चला और घूमकर समस्त पर्ण शालाके स्थान २ करके खोजनेलगे ॥ ४ ॥ रामचंद्रजीनें पर्णशालामें गमन करके देखाकि वहां सीता नहींहैं जानकी बिन हेमंतऋतुके समागम से ध्वस्तपद्मिनीकी समान हो पर्णशाला अत्यन्त श्री विहीन अवस्थामें पडीथी ॥ ५ ॥ वन देवतागण आश्रमको श्रीभ्रष्ट और विध्वस्त देखकर एकवारही छोडकर चलेगये आश्रमके मृग पक्षी और समस्त पुष्पभी मलीन

उपालक्ष्यनिमित्तानिसोशुभानिमुहुर्मुहुः ॥ अपिक्षेमंतुसीतायाइतिवैव्याजहारह ॥ २ ॥ त्वरमाणोजगामाथसी तादर्शनलालसः ॥ शून्यमावसथंदृष्ट्वाबभूवोद्विग्नमानसः ॥ ३ ॥ उद्भ्रमन्निववेगेनविक्षिपन्रघुनंदनः ॥ तत्रतत्रो टजस्थानमभिवीक्ष्यसमंततः ॥ ४ ॥ ददर्शपर्णशालांचसीतयारहितांतदा ॥ श्रियाविरहितांध्वस्तांहेमंतेपद्मिनी मिव ॥ ५ ॥ रुदंतमिववृक्षैश्चग्लानपुष्पमृगद्विजम् ॥ श्रियाविहीनंविध्वस्तंसंत्यक्तंवनदैवतैः ॥ ६ ॥ विप्रकीर्णा जिनकुशंविप्रविद्धबृसीकटम्॥ दृष्ट्वाशून्योटजस्थानंविललापपुनःपुनः ॥७॥ हतामृतावानष्टावाभक्षितावाभविष्यति॥ निलीनाप्यथवाभीरुरथवावनमाश्रिता ॥ ८ ॥ गताविचेतुंपुष्पाणिफलान्यपिचवापुनः ॥ अथवापद्मिनींयाताज लार्थंवानदींगता ॥९॥ यत्नान्मृगयमाणस्तुनाससादवनेप्रियाम् ॥ शोकरक्तेक्षणःश्रीमानुन्मत्तइवलक्ष्यते ॥ १० ॥

होगयेथे, वहांपरके वृक्ष मानों रोरहेथे ॥ ६ ॥ मृगचर्म और कुश इधर उधर पडे और कुशासन छिन्नभिन्न और गिरे पडेथे, पर्णशालाकी ऐसी अवस्था देखकर श्रीरामचंद्रजी वारंवार यह कहकर विलाप करनेंलगे ॥ ७ ॥ कि निश्चय जानकी हरीगई वा मृतक होगई, अथवा किसी करके भक्षण करडालीगई, या वह डरपोक स्वभाववाली छिप रहींहैं या वनमें चली गईहैं ॥८॥ अथवा वह फूल फल चुननेंके लिये कहीं वनमेंगईहैं वा जल लानेकेलिये सरोवर वा नदीपर गई होंगी ॥ ९ ॥ श्रीरामचंद्रजीने यत्नपूर्वक ढूंढने भालने परभी वनके बीच प्रियाको कहीं नपाया, तब

श्रीरामचंद्रजी आपही गोदावरी नदीके तटपर गये. और वहां खडे होकर बूझने लगे कि सीता कहां है ? ॥ ६ ॥ समस्त प्राणियोंनें तथा गोदावरी नदी किसीनें भी श्रीरामचंद्रजीको यह न बतायाकि मारे जानेंके योग्य राक्षस रावण सीताको हरकर लेगयाहै ॥ ७ ॥ तब पृथ्वी जल, वायु, अग्नि, आकाश इन पांच महाभूतोंनें व प्राणियोंनें गोदावरी नदीसे कहा कि रामचंद्रजीसे सीताजीको बताओ, और सोच करते हुये रामचंद्रजीनें भी पूछा परन्तु गोदावरीनें न बताया ॥ ८ ॥ न बतानेंका कारण यह हुआ कि रावणका रूप और उस दुष्टात्माके कार्योंका स्मरण करनेंके मारे भयसे गोदावरीनदीनें श्रीरामचंद्रजीसे सीताको न बताया ॥ ९ ॥ इस प्रकार जब गोदावरीनें सीताजीके दर्शनसे निराश किया

समरामःभिचक्रामस्वयंगोदावरींनदीम् ॥ सतामुपस्थितोरामःक्वसीतेत्येवमब्रवीत् ॥ ६ ॥ भूतानिराक्षसेंद्रेणवधार्हेणहृतामपि ॥ नतांशशंसूरामायतथागोदावरीनदी ॥ ७ ॥ ततःप्रचोदिताभूतैःशंसचास्मैप्रियामिति ॥ नचसह्यावदत्सीतांपृष्टारामेणशोचता ॥ ८ ॥ रावणस्यचतद्रूपंकर्माणिचदुरात्मनः ॥ ध्यात्वाभयात्तुवैदेहसिंानदीनशशंसहा ॥ ९ ॥ निराशस्तुतयानद्यासीतायादर्शनेकृतः ॥ उवाचरामःसौमित्रिंसीतादर्शनकर्षितः ॥ १० ॥ एषागोदावरीसौम्यकिंचिन्नप्रतिभाषते ॥ किंतुलक्ष्मणवक्ष्यामिसमेत्यजनकंवचः ॥ ११ ॥ मातरंचैववैदेह्याविनातामहमप्रियम् ॥ यामेराज्यविहीनस्यवनेवन्येनजीवतः ॥ १२ ॥ सर्वंव्यपानयच्छोकंवैदेहीक्वनुसागता ॥ ज्ञातिवर्गविहीनस्यवैदेहीमप्यपश्यतः ॥ १३ ॥ मन्येदीर्घाभविष्यंतिरात्रयोममजाग्रतः ॥ मंदाकिनींजनस्थानमिमंप्रस्रवणंगिरिम् ॥ १४ ॥

तब श्रीरामचंद्रजी सीताके विरहसे व्यथित होकर लक्ष्मणजीसे बोले ॥ १० ॥ हे शुभदर्शन! यह गोदावरी तो कुछभी उत्तर नहीं देती परन्तु हम सीताके विना अपने देशमें जाकर पिता जनकजीसे क्या कहेंगे ॥ ११ ॥ और वैदेहीजीकी मातासे विना जानकीके कैसे अप्रिय वचन कहेंगे, जो जानकीजी राज्यविहीन वनमें कंद मूलादि भोजन कर जीतेहुये हमारे ॥ १२ ॥ सब शोक अपनयन करतींथीं वह वैदेहीजी कहां गई? हम जातिके लोगोंसे सहायक विहीन होनेंके कारण और सीताजीका दर्शन न पानेंके कारण ॥ १३ ॥ जागरित रहनेंसे रात्रि हमको बडी जान पडेंगी

हे अशोक ! तुम शोकको दूर किया करतेहो, इससे शोकसे हतचित्त मुझको प्रियाके साथ मिलाकर अपनें नाम वाला हमको करदो ॥ १७ ॥ हे ताल ! यदि तुमने उन पक्वतालकी समान स्तनवाली जानकीको देखाहै और हमारे ऊपर कुछभी दया करतेहो तव वह वरारोहा सीता कहांहै ? सो हमको वतादो ॥ १८ ॥ हे जामुन ! यदि जाम्बूनद सुवर्ण सम प्रभावाली हमारी प्रियाको तुमनें देखाहै तौ निःशंक चित्तसे बताओ ॥ १९ ॥ हे कर्णिकार ! आज तुम पुष्पित होकर अत्यन्तशोभा पारहे हो और हमारी प्रियाभी तुमसे बहुतही स्नेह करतींथीं सो यदि कहीं उन साध्वीको देखाहो तौ कहो ॥ २० ॥ इसी प्रकार आम,नीम, महाशाल, कटहल, व अनारको देख २ कर श्रीरामचंद्रजी उनसे

अशोकशोकापनुदशोकोपहतचेतनम् ॥ त्वन्नामानंकुरुक्षिप्रंप्रियासंदर्शनेनमाम् ॥ १७ ॥ यदितालत्वयादृष्टापक्वतालोपमस्तनी ॥ कथयस्ववरारोहांकारुण्यंयदितेमयि ॥ १८ ॥ यदिदृष्टात्वयाजंबोजांबूनदसमप्रभा ॥ प्रियांयदिविजानासिनिःशंकंकथयस्वमे ॥ १९ ॥ अहोत्वंकर्णिकाराद्यपुष्पितःशोभसेभृशम् ॥ कर्णिकारप्रियांसाध्वींशंसदृष्टायदिप्रिया ॥ २० ॥ चूतनीपमहासालान्पनसान्कुररांस्तथा ॥ दाडिमानपितान्गत्वादृष्ट्वारामोमहायशाः ॥ २१ ॥ बकुलानथपुन्नागांश्चंदनान्केतकांस्तथा ॥ पृच्छन्रामोवनेभ्रांतउन्मत्तइवलक्ष्यते ॥ २२ ॥ अथवामृगशावाक्षींमृगजानासिमैथिलीम् ॥ मृगविप्रेक्षणीकांतामृगीभिःसहिताभवेत् ॥ २३ ॥ गजसागजनासोरूर्यदिदृष्टात्वयाभवेत् ॥ तांमन्येविदितांतुभ्यमाख्याहिवरवारण ॥ २४ ॥

कहतेथे ॥ २१ ॥ और बकुल, पुन्नाग, चन्दन, केतकी आदि और वृक्षोंकेनीचे २ जाकर भ्रान्त चित्तहो उन्मत्तकी समान श्रीरामचंद्रजी वनमें विचरने लगे ॥ २२ ॥ तिसके पीछे श्रीरामचंद्रजी मृग इत्यादि पशुओंसेपूछते हुए बोले कि, हे मृग ! तुम क्या उन मृगछौनाकीसी आंखोंवाली सीताका कुछ वृत्तान्त जान्तेहो ? अथवा वह मृगलोचना मृगीगणोंके साथ मिलकर घूमती होंगी ॥ २३ ॥ हे गज ! तुम्हारीही शूंड समान आकार वाली उनकी जांघेंहै, यदि तुमनें उनको देखाहो तौकहो ? इस्से हे गजराज ! हमें बतादो कि वह कहांहै ? ॥ २४ ॥

उपाय मिलजावे, तव श्रीरामचन्द्रजी ऐसाहीहो कहकर दक्षिण दिशाकी ओर चले ॥ २३ ॥ इसके पश्चात् २ लक्ष्मणजी आगे २ आप चले दोनों भाईजन इधर उधर देखते भालते व आपसमें वात चीत करते २ चले॥२४॥आगे चलकर देखा तो कहींपर फूल पडेहैं । पृथ्वीपर फूलोंकी वृष्टि पडी देखकर श्रीरामचन्द्रजी ॥ २५ ॥ वह बडे दुःखित हो दुःखित लक्ष्मणजीसे बोले, कि हे लक्ष्मण हम जानतेहैं कि यह वही पुष्पहैं ॥ २६ ॥ जो हमनें वैदेहीजीको दियेथे और उन्होंने यह सब अपनें अंगोंमें धारण कियेथे, यह अभी कुम्हलाये नहीं, ऐसा बोध होताहै कि हमारा प्रिय करनेंके लिये सूर्य, पवन, तपस्विनी पृथ्वीनें ॥ २७ ॥ इन पुष्पोंकी रक्षाकीहै, महाबाहु धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी पुरुषश्रेष्ठ लक्ष्मणजीसे ऐसा कहा ॥ २८ ॥

लक्ष्मणानुगतःश्रीमान्वीक्षमाणोवसुंधराम्॥एवंसंभाषमाणौतावन्योन्यंभ्रातरावुभौ॥२४॥ वसुंधरायांपतितपुष्पमार्गमपश्यताम् ॥ पुष्पवृष्टिंनिपतितांदृष्ट्वारामोमहीतले ॥ २५ ॥ उवाचलक्ष्मणंवीरोदुःखितोदुःखितंवचः ॥ अभिजानामिपुष्पाणितानीमानीहलक्ष्मण ॥ २६ ॥ अपिनद्धानिवैदेह्यामयादत्तानिकानने ॥ मन्येसूर्यश्चवायुश्चमेदिनीचयशस्विनी ॥ २७ ॥ अभिरक्षंतिपुष्पाणिप्रकुर्वंतोममप्रियम् ॥ एवमुक्त्वामहाबाहुर्लक्ष्मणंपुरुषर्षभम् ॥ २८ ॥ उवाचरामोधर्मात्मागिरिंप्रस्रवणाकुलम्॥कच्चित्क्षितिभृतांनाथदृष्टासर्वांगसुंदरी ॥ २९ ॥ रामारम्येवनोद्देशेमयाविरहितात्वया ॥ क्रुद्धोब्रवीद्गिरिंतत्रसिंहःक्षुद्रमृगंयथा ॥ ३० ॥ तांहेमवर्णांहेमांगींसीतांदर्शयपर्वत ॥ यावत्सानूनिसर्वाणिनतेविध्वंसयाम्यहम् ॥ ३१ ॥ एवमुक्तस्तुरामेणपर्वतोमैथिलींप्रति ॥ दर्शयन्निवतांसीतांनादर्शयतराघवे ॥ ३२ ॥

बहुत सारे झरनें जिसमें झररहे ऐसे सामनेंवाले पर्वतसे पुकारकर बोले. हे पर्वतश्रेष्ठ ! तुमनें क्या उन सर्वांगसुन्दरीको देखाहै? ॥ २९ ॥ हमारी प्रिया हमारे विना रमणीय इस वनमें देखीहै ? जब उस पर्वतनें इनकी वातका कुछ उत्तर न दिया तव यह क्रुद्ध होकर उस पर्वतसे बोले जिस प्रकार सिंह छोटे मृगोंसे कडककर बोलताहै ॥ ३० ॥ हे पर्वत! जब तक हम तुम्हारे शृङ्ग तोड न डालें, तवतक तुम सोनेकी समान वर्णवाली हमारी सीताजीको हमें दिखादो ॥ ३१ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीनें ऐसा कहा तौ मानों वह पर्वत जानकीजीको जानता हुआ श्रीरामचं-

सो राक्षसोंनें ऐसी मनोहर गरदनकोभी खा डाला, राक्षसोंनें जब हमारी प्रियाको भक्षण किया होगा, तौ न जानें उन्होंनें कितना विलाप किया होगा ॥ ३२ ॥ उनकी दोनों बाँहैं पल्लवकी समान कोमल और हाथोंके गहनोंसे सुशोभितहैं निश्चयही राक्षसोंनें इधर उधर फेंक फांक कर उनको खालिया उस कालमें उन दोनों बाहोंका अग्रभाग अवश्य कंपित हुआ होगा ॥ ३३ ॥ हाय ! हम क्या राक्षसोंके भोजनार्थ ही उनको आश्रममें अकेला छोडकर यहां आयेथे इस्सेही वह बन्धु बान्धव युक्त होकरभी राक्षसोंके पेटमें पड गई और कोई बन्धु बान्धव काम न आया॥३४॥ हे लक्ष्मण ! क्या तुमनें प्राणप्यारीको कहीं देखाहै ? हा प्रिया ! हासीते! हा भद्रे! तुम कहां गई इन शब्दोंको रामचंद्रजी वार २ कहतेथे ॥३५॥ इस

नूनंविक्षिप्यमाणौतौबाहूपल्लवकोमलौ ॥ भक्षितौवेपमानाग्रौसहस्ताभरणांगदौ ॥ ३३ ॥ मयाविरहिताबालारक्षसां भक्षणायवै ॥ सार्थेनैवपरित्यक्ताभक्षिताबहुबांधवा ॥ ३४ ॥ हालक्ष्मणमहाबाहोपश्यसेत्वंप्रियांकचित् ॥ हाप्रियेक्कगताभद्रेहासीतेतिपुनःपुनः ॥ ३५ ॥इत्येवंविलपन्रामःपरिधावन्वनाद्वनम् ॥ कचिदुद्भ्रमतेयोगात्कचिद्विभ्रमतेबलात् ॥ ३६ ॥ क्वचिन्मत्तइवाभातिकांतान्वेषणतत्परः ॥ सवनानिनदीःशैलान्गिरिप्रस्रवणानिच ॥ काननानिच वेगेनभ्रमत्यपरिसंस्थितः ॥ ३७ ॥ तदासगत्वाविपुलंमहद्वनंपरीत्यसर्वंत्वथमैथिलींप्रति ॥ अनिष्ठिताशःसचकार मार्गणेपुनःप्रियायाःपरमंपरिश्रमम् ॥ ३८ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेपष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥ दृष्ट्वाश्रमपदंशून्यंरामोदशरथात्मजः ॥ रहितांपर्णशालांचप्रविद्धान्यासनानिच ॥ १ ॥

प्रकार वारंवार विलाप करते२रामचंद्रजी वन२में वेग सहित घूमनें लगे कहीं ठोकर खाकर गिर पडते और कभी२ दिशा विदिशाओंमें घूमनें लगते॥३६॥ कभी रामचंद्रजी उन्मत्तकी समान दृष्टि आते कभी२प्रियाके ढूंढनें में तत्पर होकर वेग सहित नदी पर्वत झरनें और समस्त वनोंमें भ्रमण करने लगे ३७॥ उस समय श्रीरामचन्द्रजी स्थिर होकर कहीं भी न रह सकते।और एक महा वनमें प्रवेश करके उसमें चारों ओर जानकीजीको एक २ वृक्ष और एक२ स्थल ढूंढने परभी रामचन्द्रजीका अभिलाप पूर्ण नहीं हुआ । परन्तु वह फिरभी प्यारी सुकुमारी जनकदुलारीकी खोज करनेमें परिश्रम करने लगे ॥ ३८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० आर० पष्टितमः सर्गः॥६० ॥ इस प्रकार ढूंढते भालते श्रीरामचन्द्रजी फिर आश्रममें आये तो देखा

हे भइया, लक्ष्मण! हमको जान पडताहै कि कामरूपी राक्षसोंने जानकीजीके खंड २ कर आपसमें बांट चूंट उनको खाडाला ॥ ४१ ॥ हे लक्ष्मण!
ऐसा समझमें आताहै कि सीताके लिये झगडा होंनेंसे यहां दो राक्षसोंका घोर युद्ध हुआथा इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ४२ ॥ हे सौम्य ! किसीका
यह मुक्ता मणिसे बना हुआ रमणीय विभूषित धनुष पृथ्वी पर टूटा हुआ पडाहै ॥ ४३ ॥ हे वत्स! या तौ यह धनुष राक्षसोंका है । वा देवता
ओंका है । प्रातःकालके सूर्यकी समान अरुण (लाल) वैदूर्य मणिकी मूठ इसमें लगीहै ॥ ४४ ॥ किसीका यह सुवर्णका कवचभी रत्ती २

मन्येलक्ष्मणवैदेहीराक्षसैःकामरूपिभिः ॥ भित्त्वाभित्त्वाविभक्तावाभक्षितावाभविष्यति ॥ ४१ ॥ तस्यानिमित्तं
सीतायाद्वयोर्विवदमानयोः ॥ बभूवयुद्धंसौमित्रेघोरंराक्षसयोरिह ॥ ४२ ॥ मुक्तामणिचितंचेदंरमणीयंविभूषितम् ॥
धरण्यांपतितंसौम्यकस्यभग्नंमहद्धनुः ॥ ४३ ॥ राक्षसानामिदंवत्ससुराणामथवापिवा ॥ तरुणादित्यसंकाशंवैदूर्यगु
लिकाचितम् ॥ ४४ ॥ विशीर्णंपतितंभूमौकवचंकस्यकांचनम् ॥ छत्रंशतशलाकंचदिव्यमाल्योपशोभितम् ॥४५॥
भग्नदंडमिदंसौम्यभूमौकस्यनिपातितम् ॥ कांचनोरच्छदाश्चेमेपिशाचवदनाःखराः ॥ ४६ ॥ भीमरूपामहाकायाः
कस्यवानिहतारणे ॥ दीप्तपावकसंकाशोद्युतिमान्समरध्वजः ॥ ४७ ॥ अपविद्धश्चभग्नश्चकस्यसांग्रामिकोरथः ॥
रथाक्षमात्राविशिखास्तपनीयविभूषणाः ॥ ४८ ॥ कस्येमेनिहताबाणाःप्रकीर्णाघोरदर्शनाः ॥ शरावरौशरैःपूर्णौ
विध्वस्तौपश्यलक्ष्मण ॥ ४९ ॥

टूटा फूटा हुआ पृथ्वीपर पडाहै और यह शत २ शलाका समन्वित दिव्य माला शोभित छत्र किसका भूमिपर पडाहै ॥ ४५ ॥ हे सौम्य!
इसका दंडा टूट गयाहै किसने तोडाहै व सोनेंकी गर्दनी पडी पिशाचों समान मुख वाले गधे भी ॥ ४६ ॥ महा भयंकर व बडे आकारवाले किसीके
रणमें मरे पडे हैं । फिर दीप्तिमान अग्निके समान अति देदीप्यमान किसीका युद्ध में काम देनेवाला रथभी पडाहै ॥ ४७ ॥
जो जगह२ पटकने व दे मारनेंसे टूट गयाहै ! वह किसीके रथके लम्बे२ बांसभी सुवर्णके विभूषणोंसे भूषित ॥ ४८ ॥ हे लक्ष्मण! टूटे फूटे पडेहैं

हमको यहां छोड कहां जातीहो? जिस प्रकार कुटिल मनुष्यको कीर्त्ति छोड देती है। हे वरारोहे! हे सुमध्यमे! तुम हमको न छोडो ॥ १० ॥ हम तुम्हारे विरहमें अपना जीवन परित्याग करेगे श्रीरामचन्द्रजी सीता के दर्शनाभिलाषी होकर इस प्रकार विलाप करनें लगे ॥ ११ ॥ परन्तु दुःखसे आरत हुए उन्होंने जानकीजीको न देखा; इस कारण वह जानकीके शोकमें निमग्न होकर ॥ १२ ॥ अतीव दलदलमें फँसे हुए महा गजकी समान बहुतही व्याकुल होगये । रामचन्द्रजीकी यह दशा देख लक्ष्मणजी उनके हितकी कामनासे कहनें लगे ॥ १३ ॥ हे महाद्युतिमान्! आप विषाद न कीजिये। हमारे साथ यत्न कीजिये तब अवश्यही सीताका दर्शन मिलैगा। हे वीर! यह बहुत कन्दराओंसे शोभित गिरिवर जो है और

त्वयाविरहितश्चाहंत्यक्ष्येजीवितमात्मनः ॥ इतीवविलपन्रामःसीतादर्शनलालसः ॥ ११ ॥ नददर्शसुदुःखार्तोराघवो जनकात्मजाम् ॥ अनासादयमानंतंसीतांशोकपरायणम् ॥ १२ ॥ पंकमासाद्यविपुलंसीदंतमिवकुंजरम् ॥ लक्ष्मणो राममत्यर्थमुवाचहितकाम्यया ॥ १३ ॥ माविषादंमहाबुद्धेकुरुयत्नंमयासह ॥ इदंगिरिवरंवीरबहुकंदरशोभितम् ॥ १४ ॥ प्रियकाननसंचारावनोन्मत्ताचमैथिली ॥ सावनंवाप्रविष्टास्यान्नलिनींवासुपुष्पिताम् ॥ १५ ॥ सरितंवापिसंप्राप्तामीनवंजुलसेविताम् ॥ वित्रासयितुकामावालीनास्यात्काननेक्वचित् ॥ १६ ॥ जिज्ञासमानावैदेहीत्वांमांचपुरुषर्षभ ॥ तस्याह्यन्वेषणेश्रीमन्क्षिप्रमेवयतावहे ॥ १७ ॥

इस वनमें घूमना जानकीजीको बहुत प्यारा है, क्योंकि वनको देख वह सदा मत्त हो जातीथीं सो क्या अचरजहै कि वह वन देखनें न चली गईहों अथवा कोई पुष्प शोभित कमल युक्त तलैयां देखनें गई हों ॥ १४ ॥ १५ ॥ अथवा मत्स्ययुक्त वेतसनामक विहंगसेवित नदीपर तो न चली गई हों! अथवा हम तुमको त्रासित करनेंकी कामनासे इस वनके किसी स्थानमें तो न छिप रहीं हों ॥ १६ ॥ हे पुरुषसिंह! वह यह जाननेंके लिये वनमें लुकाई हैं कि, हम वा आप किस प्रकारसे उनको खोजकर पालेंगे, सो हमको चाहिये कि उनके खोजनेंका अवश्य यत्न करें ॥ १७ ॥

चंद्रमाकी चांदनीको मिटाय, महा सूर्यके समान उदयवत् हमारा प्रकाश देखो, जो कि सुशीलता इत्यादि गुणोंको छोड अब सबको ठीककर
तेहैं॥ ५७ ॥ हे लक्ष्मण! तुम देखते रहो कि अब यक्ष, गन्धर्व,पिशाच, राक्षस, किन्नर, वा मनुष्य कोईभी सुख प्राप्त करनेंको समर्थ नहीं
होगा ॥ ५८ ॥ हे लक्ष्मण आज हमारे बाण समूहसे समस्त आकाशव्याप्त हो जायगा, देखो आज हम त्रिलोक वासी प्राणियोंके गमनागमन
रोके देतेहैं आज हम त्रिलोकीको कालके कवरमें निक्षेप करैंगे ॥ ५९ ॥जब हम सबका गमनागमन रोक देंगे तौ इस्से ग्रहोंकी चाल रुक जायगी
चंद्रमा अन्तर्हित हो जांयगे, वायु,अग्नि, और सूर्य इत्यादिकी द्युतिके नाशहोनेंसे, सब जगह गाढा अंधकार छा जायगा ॥ ६० ॥ सबही शैल शिखर

संहृत्यैवशशिज्योत्स्नांमहान्सूर्यइवोदितः ॥ संहृत्यैवगुणान्सर्वान्ममतेजःप्रकाशते ॥ ५७ ॥ नैवयक्षानगंधर्वानपि
शाचानराक्षसाः॥ किंन्नरावामनुष्यावासुखंप्राप्स्यंतिलक्ष्मण ॥ ५८ ॥ ममास्त्रबाणसंपूर्णमाकाशंपश्यलक्ष्मण ॥
असंपातंकरिष्यामिह्यद्यत्रैलोक्यचारिणाम् ॥ ५९ ॥ सन्निरुद्धग्रहगणमावारितनिशाकरम् ॥ विप्रनष्टानलमरु
द्भास्करद्युतिसंवृतम्॥६०॥विनिर्मथितशैलाग्रंशुष्यमाणजलाशयम्॥ध्वस्तद्रुमलतागुल्मंविप्रणाशितसागरम्॥ ६१ ॥
त्रैलोक्यंतुकरिष्यामिसंयुक्तंकालकर्मणा ॥ नतेकुशलिनींसीतांप्रदास्यंतिममेश्वराः ॥ ६२ ॥ अस्मिन्मुहूर्तेसौमित्रे
ममद्रक्ष्यंतिविक्रमम् ॥ नाकाशमुत्पतिष्यंतिसर्वभूतानिलक्ष्मण ॥ ६३ ॥ समाकुलममर्यादंजगत्पश्याद्यलक्ष्मण ॥
आकर्णपूर्णैरिषुभिर्जीवलोकदुरावरैः ॥ ६४ ॥ करिष्येमैथिलीहेतोरपिशाचमराक्षसम् ॥ ममरोषप्रयुक्तानांविशि
खानांबलंसुराः ॥ ६५ ॥

मथित हो जांयगे, समुद्र सूख जांयगे, वृक्षलता, और गुल्म विध्वंस होजांयगे, और वन एक साथही उजड जांयगे ॥ ६१ ॥ हम तीनों लोकोंका
नाश करदेंगे यदि इन्द्रादि देवगण मंगलमय जानकीजीको नदेदेंगे ॥६२॥तौ हमारा पराक्रम देखना हे लक्ष्मण! उस समय आकाशमेंभी कूदकर
कोई न बच सकेगा ॥ ६३ ॥ हे लक्ष्मण! आज हमारे चापके मुखसे छूटेहुये शर जालसे निरन्तर मर्दित होकर सब जगत् महा व्याकुल मर्यादा शू
न्य हो जायगा, और मृग व पक्षीगण सबही सब भांतिसे भ्रान्त और विनष्टहोजांयगे ॥ ६४ ॥ आज हम सीताके लिये कानतक प्रत्यंचा खेंच छोडे

व ढूंढा तथापि प्राणोंसे भी बहुत भारी प्यारी जानकीजीके दर्शन हमने न पाये ॥ २६ ॥ सीताजीके हरणसे संतापितहो श्रीरामचंद्रजी शोकसे दुःखी और व्याकुल होकर इस प्रकार विलाप करते २एक मुहूर्त्त भर तक रामचंद्रजी विह्वल होरहे ॥ २७ ॥ वह बुद्धिहीन और चैतन्य रहित हो गये और सर्व शरीर विह्वल होगया इस प्रकार श्रीरामचंद्रजी अतिशय व्याकुल और स्पन्दनाहीन होकर गरम लंबे २ श्वासलेकर विलाप करनेंलगे॥२८॥ इसके पश्चात् राजीवलोचन श्रीरामचंद्रजीनें वारंवार श्वास ले हाप्रिये! ऐसा कह गद्गद हो आंसूभर बडे शब्दसे रोदन करना आरंभ किया ॥ २९ ॥ रामचंद्रजीको देखकर उनके प्रिय भ्राता लक्ष्मणजी शोकसे आरत हो विनय सहित हाथ जोड उनको समझाने बुझाने लगे। परन्तु श्रीराम

एवंसविलपन्रामःसीताहरणकर्शितः ॥ दीनःशोकसमाविष्टोमुहूर्तंविह्वलोभवत् ॥ २७ ॥ सविह्वलितसर्वांगोगतबुद्धिर्विचेतनः ॥ विषसादातुरोदीनोनिःश्वस्याशीतमायतम् ॥ २८ ॥ बहुशःसतुनिःश्वस्यरामोराजीवलोचनः ॥ हाप्रियेतिविचुक्रोशबहुशोबाष्पगद्गदः ॥ २९ ॥ तंसांत्वयामासततोलक्ष्मणःप्रियबांधवम् ॥ बहुप्रकारंशोकार्तःप्रश्रितःप्रश्रितांजली ॥ ३० ॥ अनादृत्यतुतद्वाक्यंलक्ष्मणोष्ठपुटच्युतम् ॥ अपश्यंस्तांप्रियांसीतांप्राक्रोशत्सपुनःपुनः ॥ ३१ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेएकषष्टितमःसर्गः ॥ ६१ ॥ सीतामपश्यन्धर्मात्माशोकोपहतचेतनः ॥ विललापमहाबाहूरामःकमललोचनः ॥ १ ॥ पश्यन्निवचतांसीतामपश्यन्मन्मथार्दितः ॥ उवाचराघवोवाक्यंविलापाश्रयदुर्वचम् ॥ २ ॥ त्वमशोकस्यशाखाभिःपुष्पप्रियतराप्रिये ॥ आवृणोषिशरीरंतेममशोकविवर्धनी ॥ ३ ॥

चंद्रजी उनके मुखसे निकले हुए वचनोंका अनादर करकै प्रियतमा सीताजीके अदर्शनसे वारंवार रोदन करनें लगे ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥ महाबाहु धर्मात्मा कमललोचन श्रीरामचंद्रजी सीताजीके दर्शन ना पाकरके शोकके मारे चेतना रहित हो विलाप करने लगे ॥ १ ॥ वह सीताजीके दर्शन ना पाकरभी, मानों उनको देखही रहे हैं इस भाव करकै कामबाणसे पीडितहो विलाप युक्त दुःखके साने वचन कहने लगे ॥ २ ॥ हे प्रिये! तुम पुष्पोंको अतिशय प्यार करती हो सो इस समय

घोर प्रदीप्त सायक ॥ ७३ ॥ श्रीरामचन्द्रजीनें उस धनुष पर चढाया। और प्रलयकालकी अग्निके समान क्रोधमें भरकर कहने लगे ॥ ७४ ॥ हे लक्ष्मण! जरा, मृत्यु, काल, और विधि यह सब जिस प्रकारसे प्राणिमात्रके रोकनेंसे नहीं रुक सकते, वैसेही हम क्रोधित हुए हैं। निःसन्देह कोई हमको निवारण नहीं कर सकैगा ॥ ७५ ॥ सुदन्तयुक्त निन्दा रहित मिथिलाराजनंदिनी सीताको बिना प्राप्त हुए हम देव, गन्धर्व, मनुष्य, पन्नग और पर्वत सहित समस्त जगत् मर्दित करडालेंगे ॥ ७६ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आर० चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

संदधेधनुषिश्रीमान्रामःपरपुरंजयः ॥ युगांताग्निरिवक्रुद्धइदंवचनमब्रवीत् ॥ ७४ ॥ यथाजरायथामृत्युर्यथा कालोयथोविधः॥ नित्यंनप्रतिहन्यंतेसर्वभूतेषुलक्ष्मण ॥ तथाहंक्रोधसंयुक्तोननिवार्योस्म्यसंशयम् ॥७५॥ पुरेवमेचा रुदतीमनिंदितांदिशंतिसीतांयदिवाद्यमैथिलीम् ॥ सदेवगंधर्वमनुष्यपन्नगंजगत्सशैलंपरिवर्तयाम्यहम् ॥ ७६ ॥ इत्या र्षेश्रीम०वा०आ०आर०चतुःषष्टितमःसर्गः॥६४॥तप्यमानंतदारामंसीताहरणकर्शितम्॥लोकानामभवेयुक्तंसांवर्तक मिवानलम् ॥ १ ॥ वीक्षमाणंधनुःसज्यंनिःश्वसंतंपुनःपुनः ॥ दग्धुकामंजगत्सर्वंयुगांतेचयथाहरम् ॥ २ ॥ अदृष्ट पूर्वंसंक्रुद्धंदृष्ट्वारामंसलक्ष्मणः ॥ अब्रवीत्प्रांजलिर्वाक्यंमुखेनपरिशुष्यता ॥ ३ ॥ पुराभूत्वामृदुर्दांतःसर्वभूतहितेरतः ॥ नक्रोधवशमापन्नःप्रकृतिंहातुमर्हसि ॥ ४ ॥

सीताजीके हरणसे कातर हुये श्रीरामचन्द्रजी सन्तापित हो संवर्तकप्रलयकालकी अग्निके समान लोकोंका नाश करनेंको तैयार हुए ॥ १ ॥ और प्रलयकालमें समस्त जगत् दग्ध करनेंके अभिलाषी महादेवजीके समान वारंवार श्वास त्याग करतेहुए प्रत्यंचायुक्त शरासनको श्रीराम चन्द्रजी देखनें लगे ॥ २ ॥ लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीका अदृष्ट पूर्व जो पहले कभी नहीं देखाथा, ऐसा क्रोध देखकर शुष्क मुख बना हाथ जोड उनसे बोले ॥ ३ ॥ आप पहलेसे मृदु, सर्व इन्द्रियोंके जीतनेंवाले और सर्वभूतोंके हितकारी कार्य करनेंमें तैयार हैं सो इस समय क्रोधके

हम वनवास करके घरको लौटेंगे और उस समय मिथिलानाथ जनकजी॥१२॥कुशल पूछेंगे तो किस प्रकार हम उनको अवलोकन करनेमें समर्थ होंगे? विदेहराज निश्चय हमको विना सीताके देखकर ॥ १३ ॥ अपनी पुत्री जानकीके विनाशसे संतप्तहो मोहके वश हो जांयगे ॥ पिता दशरथजीही धन्यहैं।क्योंकि वे स्वर्गमें वास करतेहैं।अथवा अब हम भरतकी पालित अयोध्यापुरीको न जांयगे॥१४॥अयोध्याकी बात तो एक ओर रही सीताके विना तो हम स्वर्गकोभी शून्य समझतेहैं; इस कारण हे लक्ष्मण! तुम अब हमको इस वनमें छोडकर अयोध्याको चले जाओ ॥ १५ ॥ हम

कुशलंपरिपृच्छंतंकथंशक्ष्येनिरीक्षितुम् ॥ विदेहराजोनूनंमांदृष्ट्वाविरहितंतया ॥ १३ ॥ सुताविनाशसंतप्तो मोहस्यवशमेष्यति ॥ "तातएवकृतार्थःसतत्रैववसतादिति"॥ अथवानगमिष्यामिपुरींभरतपालिताम् ॥ १४ ॥ स्वर्गोऽपिहितयाहीनःशून्यएवमतोमम ॥ तन्मामुत्सृज्यहिवनेगच्छायोध्यापुरींशुभाम् ॥ १५ ॥ नत्वहं तांविनासीतांजीवेयंहिकथंचन ॥ गाढमाश्लिष्यभरतोवाच्योमद्वचनात्त्वया ॥ १६ ॥ अनुज्ञातोऽसिरामे णपालयेतिवसुंधराम् ॥ अंबाचममकैकेयीसुमित्राचत्वयाविभो ॥ १७ ॥ कौसल्याचयथान्यायमभिवाद्या ममाज्ञया ॥ रक्षणीयाप्रयत्नेनभवतासूक्तचारिणा ॥ १८ ॥ सीतायाश्चविनाशोऽयंममचामित्रसूदन ॥ विस्तरेणज नन्यामेविनिवेद्यस्त्वयाभवेत् ॥ १९ ॥

जानकीके विना किसी प्रकारभी जीवन धारण करनेंको समर्थ नहींहैं। तुम हमारी ओरसे भली भांति भरतजीको गाढ आलिंगन कर कहना ॥ १६॥ कि रामचंद्रजीने यह आज्ञाकीहै कि तुमही इस राज्यका पालन करो ॥ हेविभो! माता कैकेयी व सुमित्रा अपनी मातासे ॥ १७ ॥ और कौश ल्याजीसे इनमेसे प्रत्येकको हमारी आज्ञानुसार यथायोग्य तुम प्रणाम कह देना। और सदा नीके वचनोंसे समझा बुझाकर यत्न सहित उनकी रक्षाभी करते रहना ॥ १८ ॥ हेशत्रुके मारनेवाले! और सब माताओंसे सीताजीके व हमारे विनाशका वृत्तान्तभी विस्तार सहित तुम निवेदन कर देना॥१९॥

आप हमारे साथ धनुष हाथमें लेकर चलिये, और परमर्षि गणोंको सहायक बनाय समुद्र वन पर्वत ढूंढेंगे ॥ १३ ॥ विविध प्रकारकी ताल
तलैयां व गुफायें और देवता गन्धर्वोंके लोक समस्तही यत्न सहित आप ढूंढिये ॥ १४ ॥ जब तक कि आपकी स्त्रीके हरनेंवालेको न पावेंगे, और इस
प्रकार शान्त भावसे ढूंढनेंपरभी इन्द्रादि देव गण यदि आपकी भार्याको न दें तब हे कौशलेन्द्र! पीछेसे आप उनको यथायोग्य दंड दीजियेगा॥१५॥
हे नरेन्द्र! शीलतासे सामसे और विनय अवलंबन करकेभी यदि आप सीताको न पावें, तब आप इन्द्रके वज्र सदृश सुवर्णपंखवाले शरजालसे
समस्त संसारको संहार कर डालियेगा ॥ १६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

मद्वितीयोधनुष्पाणिःसहायैःपरमर्षिभिः ॥ समुद्रंवाविचेष्यामःपर्वतांश्चवनानिच ॥ १३ ॥ गुहाश्चविविधाघोराःप
द्मिन्योविविधास्तथा ॥ देवगंधर्वलोकाश्चविचेष्यामःसमाहिताः ॥ १४ ॥ यावन्नाधिगमिष्यामस्तवभार्यापहारिणम् ॥
नचेत्साम्नाप्रदास्यंतिपत्नींतेत्रिदशेश्वराः ॥ कोशलेंद्रततःपश्चात्प्राप्तकालंकरिष्यसि ॥ १५ ॥ शीलेनसाम्नाविनये
नसीतांनयेननप्राप्स्यसिचेन्नरेंद्र ॥ ततःसमुत्सादयहेमपुंखैर्महेंद्रवज्रप्रतिमैःशरौघैः ॥ १६ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीम०
वा०आ०आरण्यकांडेपंचषष्टितमःसर्गः ॥ ६५ ॥ ॥ तंतथाशोकसंतप्तंविलपंतमनाथवत् ॥ मोहेनमहतायुक्तंपरिद्यू
नमचेतसम् ॥ १ ॥ ततःसौमित्रिराश्वास्यमुहूर्तादिवलक्ष्मणः ॥ रामंसंबोधयामासचरणौचाभिपीडयन् ॥ २ ॥
महतातपसाचापिमहताचापिकर्मणा ॥ राज्ञादशरथेनासील्लब्धोमृतमिवामरैः ॥ ३ ॥ तवचैवगुणैर्बद्धस्त्वद्वियोगा
न्महीपतिः ॥ राजादेवत्वमापन्नोभरतस्ययथाश्रुतम् ॥ ४ ॥

श्रीरामचंद्रजीनें लक्ष्मणके वाक्यसे क्रोध त्यागकर इस प्रकार शोक संतप्त और महा मोहसे युक्त चेतना रहित होकर अनाथोंकी समान विलाप
करना आरंभ किया ॥ १ ॥ लक्ष्मणजी उनके चरण छूकर एक मुहूर्त भरतक उनको समझाते बुझाते हुए कहनें लगे ॥ २ ॥ कि राजा दशरथजीनें
अनेक तपस्या और बहु विधि धर्मानुष्ठान करके आपको प्राप्त कियाथा जिस प्रकार देवता लोगोंनें अमृतको बडे२ उपायोंसे प्राप्त कियाथा ॥ ३ ॥
भरतजीसे जैसा जैसा सुनाथा उससे तौ यही ज्ञात होताहै कि राजा दशरथ आपहीके गुणोंमें बंधकर, व आपकेही वियोगमें देवलोकको प्राप्त हुयेहैं॥४॥

गसे, काष्ठके संयोगसे सहसा प्रदीप्त हुई अग्निकी समान वही दुःख फिर प्रबल होगयेहैं ॥ ६ ॥ निश्चयही कोई राक्षस उन भीरुस्वभाववाली आर्या सीताको आकाशमार्गसे आय हरण करकै लेगयाहै! हाय! इसमें कोई सन्देह नहीं है । कि उस समय उन सुन्दर बोलनेंवालीनें भयके विवशहो विकृतस्वरसे वारंवार रोदन किया होगा ॥ ७ ॥ सुंदर सदाही लाल चंदन लगानेंके योग्य हमारी प्रियाके दोनों सुन्दर कुच निश्चयही राक्षसोंनें भक्षण करनेंके समय उनमें रुधिर लगादिया होगा जिस्से वह शोभित नहीं होतेहोंगे हाय इतने परभी हमारे प्राण नहीं जाते ॥ ८ ॥ अब हम इस शरीरसे उनको न भेट सकेंगे । उनका मुखमंडल घूंघरवाले वालोंके वीचमें शोभित, और सुन्दर,सुमधुर सुकोमल, और साफ चिकना सँवा

सानूनमार्याममराक्षसेनह्यभ्याहृताखंसमुपेत्यभीरुः ॥ अप्यस्वरंसुस्वरविप्रलापाभयेनविक्रंदितवत्यभीक्ष्णम् ॥ ७॥
तौलोहितस्यप्रियदर्शनस्यसदोचितावुत्तमचंदनस्य ॥ वृत्तौस्तनौशोणितपंकदिग्धौनूनंप्रियायाममनाभिपातः ॥८॥
तच्छ्लक्ष्णसुव्यक्तमृदुप्रलापंतस्यामुखंकुंचितकेशभारम् ॥ रक्षोवशंनूनमुपागतायानभ्राजतेराहुमुखेयथेंदुः ॥ ९ ॥
तांहारपाशस्यसदोचितांतांग्रीवांप्रियायाममसुव्रतायाः ॥ रक्षांसिनूनंपरिपीतवंतिशून्येहिभित्त्वारुधिराशनानि ॥ १० ॥ मयाविहीनाविजनेवनेसारक्षोभिराहृत्यविकृष्यमाणा ॥ नूनंविनादंकुररीवदीनासामुक्तवत्यायतकांतनेत्रा ॥ ११॥ अस्मिन्मयासार्धमुदारशीलाशिलातलेपूर्वमुपोपविष्टा॥कांतस्मितालक्ष्मणजातहासात्वामाहसीताबहुवाक्यजातम् ॥ १२ ॥

रा हुआहै, सो जानकीको राक्षसके वश होनेसे राहुमुखमें ग्रसेहुये चंद्रमाकी समान. निश्चय उस मुखकी अब सब सुंदरताई अलगहोगई होगी ॥ ९ ॥ पतिव्रतप्रियाकी वह सुन्दर गरदन सदाही हारके गुच्छोंसे भूषित रहतीथी. सो रुधिरपान करनेंवाले राक्षसोंने शूनेमें पाकर निश्चयही उसको भेदकर रुधिरपान कियाहोगा ॥ १० ॥ हमारे न होनेपर निर्जन वनमें राक्षसोंने चारों ओरसे घेरकर जब उनको खेंचना आरंभ कियाहोगा; तौ उससमय वह रुधिर और बडे नेत्रवाली सीतानें निश्चयही हरिणीकी समान विलाप कियाहोगा ॥ ११ ॥ हे लक्ष्मण! हम व हँसमुख उदारस्वभाववाली सीता

हे वीर! आप की समान सर्वदर्शी और हितदर्शी मनुष्य गण सचराचर बडीभारी विपद पडनें परभी शोक नहीं करते ॥ १४ ॥ हे नरश्रेष्ठ! आप भली भांति विचार करकै यथार्थतासे शुभाशुभका विचार कीजिये। आपकी समान महाप्राज्ञ पुरुषगण बुद्धिसे विचार करकै शुभाशुभ भली भांतिसे जान लेते हैं ॥१५॥ जिनके गुण और दोष जबतक प्रगटदृष्टिमें नहीं आते, तबतक उन सब अध्रुव अर्थात् अस्थिर कर्मोंके अनुष्ठानसे कभी इष्ट फलकी प्राप्तिकी आशा नहीं होसकती और उनका जानना बिना क्रिया योगके नहीं होता ॥ १६ ॥ हे वीर! आपनें ही प्रथम हमको अनेक वार इस प्रकारका उपदेश दिया है और आपको उपदेश देने में तो साक्षात् बृहस्पतिजीभी समर्थ नहीं हैं ॥ १७ ॥ हे महाप्राज्ञ! आपकी

त्वद्विधानहिशोचंतिसततंसर्वदर्शनाः ॥ सुमहत्स्वपिकृच्छ्रेषुरामानिर्विण्णदर्शनाः ॥ १४ ॥ तत्त्वतोहिनरश्रेष्ठबुद्ध्यास मनुचिंतय ॥ बुद्ध्यायुक्तामहाप्राज्ञाविजानंतिशुभाशुभे ॥१५ ॥ अदृष्टगुणदोषाणामध्रुवाणांतुकर्मणाम् ॥ नांतरेण क्रियांतेषांफलमिष्टंचवर्तते ॥ १६ ॥ मामेवंहिपुरावीरत्वमेवबहुशोक्तवान् ॥ अनुशिष्याद्धिकोनुत्वामपिसाक्षाद्बृह स्पतिः ॥ १७ ॥ बुद्धिश्चतेमहाप्राज्ञदेवैरपिदुरन्वया ॥ शोकेनाभिप्रसुप्तंतेज्ञानंसंबोधयाम्यहम् ॥ १८ ॥ दिव्यं चमानुषंचैवमात्मनश्चपराक्रमम् ॥ इक्ष्वाकुवृषभावेक्ष्ययतस्वद्विषतांवधे ॥ १९ ॥ किंतेसर्वविनाशेनकृतेनपुरुषर्ष भ ॥ तमेवतुरिपुंपापंविज्ञायोद्धर्तुमर्हसि ॥ २० ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेषट्षष्टि तमःसर्गः ॥ ६६ ॥ ॥ पूर्वजोऽप्युक्तवाक्यस्तुलक्ष्मणेनसुभाषितम् ॥ सारग्राहीमहासारंप्रतिजग्राहराघवः ॥ १ ॥

बुद्धिको देवता लोगभी नहीं पहुँच सकते अब आपकी वह बुद्धि शोकसे इस प्रकार ढक रही है, कि इस समय हम उसको जगा रहे हैं ॥ १८ ॥ हे इक्ष्वाकुप्रवर! आप अपना दिव्य और मानवी पराक्रम विचार शत्रुसंहार करनेंमें यत्न कीजिये ॥ १९ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ! आपको समस्त लोकोंके संहार करनेंका क्या प्रयोजनहै? आप उसी अपने शत्रुको जानकर उसे विध्वंसकर सीताको बचाइये॥२०॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकिये आदि काव्ये आरण्यकांडे "पंडितज्वालाप्रसाद" मिश्रकृतभाषानुवादे षट्षष्टितमःसर्गः ॥६६ ॥लक्ष्मणजीके इस प्रकार अतिशय सार गर्भ सुन्दर वचन

युक्त शरीरसे अचेतन अवस्थामें विलाप करना आरंभ किया तब न्यायशास्त्रमें स्थितहो अदीन हुये सौमित्र लक्ष्मण उनसे समयानुसार वचन बोले ॥ १८ ॥ हे आर्य! शोक छोडकर धीरज धारण करकै उत्साहयुक्तहो जानकीजीको ढूंढिये। उत्साही पुरुष संसारी दुष्कर कार्य करनें मेंभी कभी नहीं घबडाते॥१९॥बडे पौरुषी लक्ष्मणजीनें जब ऐसा कहा तब रघुवंशियोंमें उत्तम श्रीरामचन्द्रजीनें उस वचनको चिन्तनीय समझकर न गिना वरन वह एकवारही धीरजको छोडकर फिर महा दुःखमें डूबगये ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आर०त्रिपष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥ दीनभावापन्न श्रीरामचन्द्रजी दीन वचन कह लक्ष्मणजीसे बोले कि हे लक्ष्मण! शीघ्र गोदावरी नदीपर जाकर जान आओ ॥ १ ॥

शोकंविसृज्याद्यधृतिंभजस्वसोत्साहताचास्तुविमार्गणेस्याः ॥ उत्साहवंतोहिनरानलोकेसीदंतिकर्मस्वतिदुष्करेषु ॥ १९ ॥ इतीवसौमित्रिमुदग्रपौरुषंब्रुवंतमार्तरघुवंशसत्तमः ॥ नचिंतयामासधृतिंविमुक्तवान्पुनश्चदुःखंमहदप्युपागमत्॥२०॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेत्रिषष्टितमःसर्गः॥६३॥ सदीनोदीनयावाचालक्ष्मणंवाक्यमब्रवीत्॥शीघ्रंलक्ष्मणजानीहिगत्वागोदावरींनदीम् ॥ १ ॥ अपिगोदावरींसीतापद्मान्यानयितुंगता ॥ एवमुक्तस्तुरामेणलक्ष्मणःपुनरेवहि ॥ २ ॥ नदींगोदावरींरम्यांजगामलघुविक्रमः ॥ तांलक्ष्मणस्तीर्थवतींविचित्वाराममब्रवीत् ॥ ३ ॥ नैनांपश्यामितीर्थेषुक्रोशतोनशृणोतिमे ॥ कंनुसादेशमापन्नावैदेहीक्लेशनाशिनी ॥ ४ ॥ नहितंवेद्मिवैरामयत्रसातनुमध्यमा ॥ लक्ष्मणस्यवचःश्रुत्वादीनःसंतापमोहितः ॥ ५ ॥

कि सीता कमल फूल लेनेंको तौ वहां नहीं चली गईहैं? जब श्रीरामचंद्रजी नें ऐसा कहा तौ लक्ष्मणजी फिर ॥ २ ॥ शीघ्र २ पग धरकै गोदावरी नदीपर गये, और उस रमणीय घाटवाली गोदावरीके चारों ओर जरा २ करकै ढूंढ भाल रामचंद्रजीसे शीघ्रही आकर कहा ॥ ३ ॥ कि हमनें सबही घाटोंपर ढूंढा परन्तु कहींपर उनको न पाया पुकारा भी परन्तु उन्होंनें न सुना। हे आर्य! जनें कौन देशमें क्लेशहारिणी जानकीजी चली गईहै॥४॥सो उनका जिनका मध्यमस्थान सूक्ष्महै पता हम नहीं जानते लक्ष्मणजीके वचन सुनकर रामचंद्र और भी दीन व संतापसे मोहितहो ॥५॥

इसमें कुछ संशय नहीं है कि इस गृध्ररूपी वनचर निशाचरनेंही जानकीको भक्षण कर लियाहै, बस यह ठीकही ठीक जान पड ता है यह गृध्र बना वनमें घूमताहै॥ ११ ॥यह राक्षस उन विशालाक्षी सीताजीको भक्षण करकै यथा सुखसे विश्राम कर रहाहै ।इस कारण हम सीधे चलनेवाले अग्निकी समान प्रकाशमान भयंकर बाणोंसे इसका संहारकरेंगे ॥ १२ ॥ श्रीरामचंद्रजी यह कहकर क्रोधित हो समुद्र पर्यन्त पृथ्वीको कँपाते हुये धनुष पर तीक्ष्ण बाण चढाय उसके देखनेंको चले ॥ १३ ॥ तिसके पीछे पक्षिराज जटायु सफेन रुधिर उगलता हुआ अतिशय कातर वचनोंसे उन दशरथकुमार श्रीरामचंद्रजीसे बोला ॥१४॥आयुष्मान्! तुम औषधिकी समान जिनको इस महा वनमें खोजते हो, वह

अनेनसीतावैदेहीभक्षितानात्रसंशयः ॥ गृध्ररूपमिदंव्यक्तंरक्षोभ्रमतिकाननम् ॥ ११ ॥ भक्षयित्वाविशालाक्षीमा स्तेसीतांयथासुखम् ॥ एनंवधिष्येदीप्ताग्रैःशरैर्घोरैरजिह्मगैः ॥ १२ ॥ इत्युक्त्वाऽभ्यपतद्द्रष्टुंसंधायधनुषिक्षुरम् ॥ क्रु द्धोरामःसमुद्रांतांचालयन्निवमेदिनीम् ॥ १३ ॥ तंदीनदीनयावाचासफेनंरुधिरंवमन् ॥ अभ्यभाषतपक्षीसरामंदश रथात्मजम् ॥ १४ ॥ यामोषधीमिवायुष्मन्नन्वेषसिमहावने ॥ सादेवीममचप्राणारावणेनोभयंहृतम् ॥ १५ ॥ त्व याविरहितादेवीलक्ष्मणेनचराघव ॥ ह्रियमाणामयादृष्टारावणेनबलीयसा ॥ १६ ॥ सीतामभ्यवपन्नोऽहंरावणश्चरणे प्रभो ॥ विध्वंसितरथच्छत्रःपतितोधरणीतले ॥ १७ ॥ एतदस्यधनुर्भग्नमेतेचास्यशरास्तथा ॥ अयमस्यरणेराम भग्नःसांग्रामिकोरथः॥ १८॥ अयंतुसारथिस्तस्यमत्पक्षनिहतोभुवि ॥ परिश्रांतस्यमेपक्षौछित्त्वाखड्गेनरावणः ॥१९॥

देवी जानकी और हमारे प्राण दोनोंही रावणनें हर लियेहैं ॥ १५॥ हे रघुनंदन! महाबलवान् दशानन आपके और लक्ष्मणजीके आश्रममें नरहनें पर सूनेसे जानकीको हर ले जाता हुआ हमनें देखाहै ॥ १६॥ उस समय हमनें सीताजीको छुटानेंके लिये सन्मुख हो युद्ध करकै उसके रथ और छत्रको तोड डाला तब रावण पृथ्वीमें गिरा ॥ १७ ॥ यह जो धनुष और बाण टूटे हुये पडे हैं यह उसकेही हैं और रामचंद्रजी! यह उसकाही संग्राममें काम देनेंवाला रथहै । जो टूटा हुआ पडाहै ॥ १८ ॥ और यह सारथी भी उसीका है जो हमारे पंखोंके प्रहारसे मरकर पृथ्वीपर पडाहै

अब हम मन्दाकिनी नदी जटा स्थान और झरना झरता हुआ यह पर्वत ॥ १४ ॥ इन सबही स्थानोंमें विचरण किया करेंगे। जिस्से कि सीताजीको देखें। हे वीर! यह मृगगण हमको वार २ देखतेहैं ॥ १५ ॥ इनके इशारेसे जान पडताहै कि मानों यह हमसे कुछ कहा चाहतेहैं, लक्ष्मणजीसे ऐसा कह उन मृगोंको देख पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी उन मृगोंसे बोले ॥ १६ ॥ हे मृगो! सीता कहांहैं? यह कहतेही आंसू निकल आये वाणी गद्गद होगई, जब महाराज श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा तो वह सब मृग सहसा उठ खडे हुए ॥१७॥ और जिस दिशाको रावण जानकीजीको हरण कर लेगयाथा? उसी दक्षिण दिशाको मुखकर आकाशकी ओर निहार २ देखनें लगे ॥ १८ ॥ वह सब मृगगण वारंवार उसी दक्षिण

सर्वाण्यनुचरिष्यामियदिसीताहिलभ्यते ॥ एतेमहामृगावीरामामीक्षंतेपुनःपुनः ॥ १५ ॥ वक्तुकामाइवहिमेइंगितान्युपलक्षये ॥ तांस्तुदृष्ट्वानरव्याघ्रोराघवःप्रत्युवाचह ॥ १६ ॥ क्वसीतेतिनिरीक्षन्वैबाष्पसंरुद्धयागिरा ॥ एवमुक्तानरेंद्रेणतेमृगाःसहसोत्थिताः ॥ १७ ॥ दक्षिणाभिमुखाःसर्वेदर्शयंतोनभःस्थलम् ॥ मैथिलीह्रियमाणासादिशंयामभ्यपद्यत ॥ १८ ॥ तेनमार्गेणगच्छंतोनिरीक्षंतेनराधिपम् ॥ येनमार्गंचभूमिंचनिरीक्षंतेस्मतेमृगाः ॥ १९ ॥ पुनर्नदंतोगच्छंतिलक्ष्मणेनोपलक्षिताः ॥ तेषांवचनसर्वस्वंलक्षयामासचेंगितम् ॥ २० ॥ उवाचलक्ष्मणोधीमान्ज्येष्ठंभ्रातरमार्तवत् क्वसीतेतित्वयापृष्टायदिमेसहसोत्थिताः ॥ २१ ॥ दर्शयंतिक्षितिंचैवदक्षिणांचदिशंमृगाः ॥ साधुगच्छावहेदेवदिशमेतांचनैर्ऋतीम् ॥ २२ ॥यदितस्यागमःकश्चिदार्यावासाथलक्ष्यते ॥ बढिमत्येवकाकुत्स्थःप्रथितोदक्षिणांदिशम् ॥२३॥

दिशाकी ओर मुखकर, चिंघडते, और फिर श्रीरामचंद्रजीकी ओर देख दक्षिणको दौडते ॥१९॥ मृग गणोंकी यह दशा देख लक्ष्मणजीनें उनके हृदयका वृत्तान्त जान लिया ॥ २० ॥ अत्यन्त धीमान् लक्ष्मणजी अपनें बडे भ्राता रामचंद्रजीसे आरतकी समान बोले कि हे देव! जब आपनें इन मृगोंसे पूछा कि सीता कहां हैं? तब यह सब एक एक उठ खडे होकर ॥ २१ ॥ दक्षिण दिशा और पृथ्वीको दिखाने लगे। इस कारण चलिये हम लोगभी इसी दक्षिण दिशाको चले चलें ॥ २२ ॥ क्योंकि कदाचित् आपी सीता वहां मिलजांय, अथवा उनकी प्राप्तिका कोई

भाग्यके फेरसे घायल होकर पृथ्वीपर शयन कररहेहैं * ॥ २७ ॥ रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी इस प्रकारके अनेक वचन कहते लक्ष्मणजीके पिताकी समान स्नेह दिखातेहुये जटायुको स्पर्श करते हुये ॥ २८ ॥ फिर श्रीरामचंद्रजी पंख कटे रुधिर में डूबे गृध्रराज जटायुको चिपट कर "हमारी प्राणप्रिया मैथिली कहांगई हैं" यह कह कर पृथ्वीमें गिर पडे ॥ २९ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० आ० सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥ श्रीरामचंद्रजी भयंकर राक्षसके प्रहारसे पृथ्वीपर पडे हुये जटायुको देखकर परमबंधु सुमित्रापुत्रसे कहते हुये ॥ १ ॥ निश्चयही यह पक्षी हमारे लिये यत्न करके हमारे ही लिये राक्षससे मारा जाकर अब प्राणत्याग करताहै॥२॥हेलक्ष्मण! इसका बोल धीमा पडगया, और दृष्टि हीन हो आईहै

इत्येवमुक्त्वाबहुशोराघवःसहलक्ष्मणः ॥ जटायुषंचपस्पर्शपितृस्नेहंनिदर्शयन् ॥ २८ ॥ निकृत्तपक्षंरुधिरावसिक्तंतंगृध्रराजंपरिगृह्यराघवः ॥ क्वमैथिलीप्राणसमागतेतिविमुच्यवाचंनिपपातभूमौ ॥ २९ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआ०आरकां०सप्तषष्टितमःसर्गः ॥ ६७ ॥ रामःप्रेक्ष्यतुतंगृध्रंभुविरौद्रेणपातितम् ॥ सौमित्रिंमित्रसंपन्नमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १ ॥ ममायंनूनमर्थेषुयतमानोविहंगमः ॥ राक्षसेनहतःसंख्येप्राणांस्त्यजतिमत्कृते ॥ २ ॥ अतिखिन्नःशरीरेऽस्मिन्प्राणोलक्ष्मणविद्यते ॥ तथास्वरविहीनोऽयंविक्लवंसमुदीक्षते ॥ ३ ॥ जटायोयदिशक्नोषिवाक्यंव्याहरितुंपुनः ॥ सीतामाख्याहिभद्रंतेवधमाख्याहिचात्मनः ॥ ४ ॥ किंनिमित्तोजहारार्यांरावणस्तस्यकिंमया ॥ अपराधंतुयंदृष्ट्वारावणेनहृताप्रिया ॥ ५ ॥

और प्राणभी अति मात्र व्याकुल होकर कुछेक इसकी देहमें टिक रहेहैं ॥३॥ हे जटायु ! तुम्हारा कल्याणहो, यदि फिर तुममें कुछ बोलनेंकी शक्तिहो तो सीताहरणका वृत्तान्त, और तुम कैसे मारे गये, यह सब कह दीजिये ॥ ४ ॥ और रावणनें किस निमित्त आर्या जानकीको हरण किया?

*कवित्त॥ दीन मलीन अधीन है अंग विहंग परयो क्षिति खिन्न दुखारी॥ राघव दीन दयालुकृपालु को देख दुखी करुणा भयभारी ॥ गीधको गोदमें राख कृपानिधि नैन सरोजनमें भरिवारी ॥वार हि बार सुधारत पंख जटायुकी धूरि जटान सों झारी ॥ १ ॥ गीधको गोदमें राख कृपानिधि निहारैं और नैननसों जलढारैं ॥ टूक हो जातहैं सीता विथाके जो याकी स्नेह कथाको विचारैं ॥ छोड चले केहि हेतु हमें हमें सौंह तिहारीहै संग सिधारैं ॥ यों कहि राम भरे जल नैन जटायुकी धूरि जटानसों झारैं ॥ २ ॥

जीको बताना चाहताथा परन्तु रावणके भयसे नहीं बताया ॥ ३२ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजी उस पर्वतसे फिर बोले, कि तुम हमारे बाणानलकी अनन्त अग्निसे भस्म हो जाओगे ॥ ३३ ॥ फिर तृण वृक्ष व पल्लवादि जल जानेंसे फिर कोई तुम्हारा आश्रय न लेगा हे लक्ष्मण ! आज इस गोदावरी नदीकोभी शुष्क करदेंगे ॥ ३४ ॥ यदि यह सब हमारी चंद्रमुखी सीताको नहीं बताते तौ हम ऐसाही करेंगे, इस प्रकारसे श्रीरामचन्द्रजी क्रोधान्वित होकर मानों उनको नेत्रोंसे भस्महो किये देतेथे ॥३५॥ इधर उधर देखते २ श्रीरामचन्द्रजीनें पृथ्वीपर देखा जहांकि राक्षसके चरण चिह्न बनेथे, व उसी स्थानपर भयभीत और रामचन्द्रजीके दर्शनकी इच्छा किये इधर उधर दौडती हुई ॥ ३६ ॥ राक्षसके अनुसरण करनेंसे

ततोदाशरथीरामउवाचचशिलोच्चयम् ॥ ममबाणाग्निनिर्दग्धोभस्मीभूतोभविष्यसि ॥ ३३ ॥ असेव्यःसर्वतश्चैव निस्तृणद्रुमपल्लवः ॥ इमांवासरितंचाद्यशोषयिष्यामिलक्ष्मण ॥ ३४ ॥ यदिनाख्यातिमेसीतामद्यचंद्रनिभाननाम् ॥ एवंप्ररुषितोरामोदिधक्षन्निवचक्षुषा ॥ ३५ ॥ ददर्शभूमौनिष्क्रांतंराक्षसस्यपदंमहत् ॥ त्रस्तायारामकांक्षिण्याःप्रधावंत्याइतस्ततः ॥ ३६ ॥ राक्षसेनानुसृतायावैदेह्याश्चपदानितु ॥ ससमीक्ष्यपरिक्रांतंसीतायाराक्षसस्यच ॥ ३७ ॥ भग्नंधनुश्चतूणीचविकीर्णबहुधारथम् ॥ संभ्रांतहृदयोरामःशशंसभ्रातरंप्रियम् ॥ ३८ ॥ पश्यलक्ष्मणवैदेह्याःकीर्णाःकनकबिंदवः ॥ भूषणानांहिसौमित्रेमाल्यानिविविधानिच ॥ ३९ ॥ तप्तबिंदुनिकाशैश्चचित्रैःक्षतजबिंदुभिः ॥ आवृतंपश्यसौमित्रेसर्वतोधरणीतलम् ॥ ४० ॥

जानकीजीकेभी पैरोंके चिह्न उन चिह्नोंके बीचमें बनें देखे, सीताजीके व राक्षसके पद एकमें मिले देख श्रीरामचन्द्रजीनें बडा क्रोध किया ॥३७॥ धनुष व तूणीर (तरकस) कोभी टूटा फूटा पृथ्वीपर पडा देख रथकोभी रत्ती २ चूर्ण देख व्याकुलहो चकित होते हुये श्रीरामचन्द्रजी अपने प्यारे भ्रातासे बोले ॥ ३८ ॥ हे लक्ष्मण! देखो! जानकीजीके गहनोंके सुवर्णबिन्दु और बहुत सारी मालायें यहांपर टूटी पडीहैं ॥ ३९ ॥ हे भइया! इस ओर देखो भूमिमें चारों ओर सुवर्ण बिन्दु सम विचित्रित रक्तबिन्दु समूह छिटक रहेहैं यह सीताका तो रुधिर नहींहै ॥ ४० ॥

इसको नहीं जानताहै, इस कारण वंशीका मांस ग्रहण करनेंसे काली मछलीके समान शीघ्र उसका विनाश होगा ॥ १३ ॥ इस मुहूर्तमें खोई हुई वस्तुही नहीं मिलती किन्तु शत्रुका नाशभी होताहै; तुमभी श्रीजानकीजीके प्राप्त होनेके विषयमें और कुछ संदेह न करो। रावणको संग्राममें मारकर शीघ्रही सीताके सहित विहार करनेंको तुम समर्थ होगे॥ १४ ॥ तिसके पीछे रामचन्द्रजीके साथ संभाषण करनेंवाले सावधान चित्त मरनेंके निकट गिद्धराज जटायुके मुखसे मांस युक्त रुधिर वहनें लगा ॥ १५ ॥ उस समय जटायुनें रावण विश्रवाका पुत्र, और कुवेरका भाईहै केवल इतनाही कहकर दुर्लभ प्राण त्याग करदिये ॥१६॥ श्रीरामचन्द्रजी हाथ जोडे बोलिये! बोलिये! इस प्रकारसे कहनेंलगे,

नचत्वयाव्यथाकार्याजनकस्यसुतांप्रति॥ वैदेह्यारंस्यसेक्षिप्रंहत्वातंरणमूर्धनि ॥ १४ ॥ असंमूढस्यगृध्रस्यरामंप्रत्यनुभाषतः॥आस्यात्सुस्रावरुधिरंम्रियमाणस्यसामिषम्॥ १५ ॥ पुत्रोविश्रवसःसाक्षाद्भ्रातावैश्रवणस्यच॥ इत्युक्त्वादुर्लभान्प्राणान्मुमोचपतगेश्वरः॥ १६ ॥ ब्रूहिब्रूहीतिरामस्यब्रुवाणस्यकृतांजलेः॥ त्यक्त्वाशरीरंगृध्रस्यप्राणाजग्मुर्विहायसम्॥ १७ ॥ सनिक्षिप्यशिरोभूमौप्रसार्यचरणौतथा ॥ विक्षिप्यचशरीरंस्वंपपातधरणीतले॥ १८॥ तंगृध्रंप्रेक्ष्यताम्राक्षंगतासुमचलोपमम्॥ रामःसुबहुभिर्दुःखैर्दीनःसौमित्रिमब्रवीत्॥ १९ ॥ बहूनिरक्षसांवासेवर्षाणिवसतासुखम्॥ अनेनदंडकारण्येविशीर्णमिहपक्षिणा ॥ २० ॥ अनेकवार्षिकोयस्तुचिरकालसमुत्थितः ॥ सोऽयमद्यहतः शेते कालोहिदुरतिक्रमः॥ २१ ॥ पश्यलक्ष्मणगृध्रोऽयमुपकारीहतश्चमे ॥ सीतामभ्यवपन्नोहिरावणेनबलीयसा ॥ २२ ॥

उसी समय उनके सामनेही जटायुके प्राण शरीरको त्याग करके आकाशको चलेगये ॥ १७ ॥ उस समय गिद्धराज चरण युगल फैलाय अपना शरीर फटफटाय भूमिमें शिर गिराय पृथ्वीमें गिरपडे ॥ १८ ॥ श्रीरामचन्द्रजी पर्वत समान वडे आकारवाले ताम्रवत् रक्तनेत्र गृध्रको मरा हुआ देखकर दुःखितहो लक्ष्मणजीसे बोले॥१९॥राक्षसोंके वसनें योग्य दंडकारण्यमें वहुत वर्षोंसे यह जटायुजी रहतेथे, सो आज उन्होंने देह त्याग करदिया ॥२०॥ इस प्रकार यह अनेक वर्षतक जीवितथे; वह आज निहत होकर पृथ्वीमें शयन कररहेहैं; हम समझे कि कालको उल्लंघन करना सहज नहींहै,लक्ष्मण! देखो ये गृध्र हमारा कैसा उपकारीहै, सीताजीको उद्धार करनेंमें तैयार होकर रावण दुरात्मा करके यह मारे गयेहैं ॥२१॥ २२॥

जिनको देखनेसे भय उत्पन्न होताहै। बाणोंसे पूर्ण किसीके तूणीरभी पृथ्वीमें पडेहैं ॥ ४९॥ देखो! चाबुक और बाग हाथमें लिये किसीका सारथिभी मृतक पडाहै। देखो यह किसी पुरुष राक्षसके जानेका प्रगट मार्ग बनाहै ॥ ५० ॥ हे शुभदर्शन ! किस कारणसे अतीव कठिन हृदय कामरूप निशाचर गणोंके सहित हमारा पहलेसे शत गुण अधिक वैर होगया! तुम देखलेना कि इस्से उनके जीवनका अंत होगा ॥ ५१ ॥ या तो राक्षसोंनें सीताको हर लिया वा भक्षण कर लिया, अथवा उन तपस्विनीनें प्राणत्याग करदिया होगा, किन्तु जब इस महा अरण्यमें जानकीजी मरणके निकट पहुँची तब पतिव्रत धर्मनेभी उनकी रक्षा न की! ॥ ५२ ॥ हे लक्ष्मण! इस प्रकारसे जब कि जानकी हरी गई और उस समय धर्मनेंभी

प्रतोदाभीषुहस्तोऽयंकस्यवासारथिर्हतः॥पदवीपुरुषस्यैषाव्यक्तंकस्यापिरक्षसः॥५०॥वैरंशतगुणंपश्यममतैर्जीवितांतकम्॥सुघोरहृदयैःसौम्यराक्षसैःकामरूपिभिः॥५१ ॥ हतामृतावावैदेहीभक्षितावातपस्विनी॥नधर्मस्त्रायतेसीतांह्रियमाणांमहावने ॥ ५२ ॥ भक्षितायांहिवैदेह्यांहृतायामपिलक्ष्मण ॥ केहिलोकेप्रियंकर्तुंशक्ताःसौम्यममेश्वराः ॥ ॥ ५३ ॥ कर्तारमपिलोकानांशूरंकरुणवेदिनम् ॥ अज्ञानादवमन्येरन्सर्वभूतानिलक्ष्मण ॥ ५४ ॥ मृदुंलोकहितेयुक्तंदांतंकरुणवेदिनम् ॥ निर्वीर्यइतिमन्यंतेनूनंमांत्रिदशेश्वराः॥ ५५॥ मांप्राप्यहिगुणोदोषःसंवृत्तःपश्यलक्ष्मण॥ अद्यैवसर्वभूतानांरक्षसामभवायच ॥ ५६ ॥

उनकी रक्षा न की तब संसारमें ईश्वरीय शक्ति सम्पन्न और कौन पुरुष हमारा प्रिय करनेंमें समर्थ होगा? ॥ ५३ ॥ प्राणीगण इनही सब कारणोंसे अज्ञान प्रयुक्त समस्त लोकोंके कर्त्ता परम दयालु सुरवर परमेश्वरको नहीं मानतेहैं ॥ ५४ ॥ हमारा स्वभाव अतिशय कोमलहै, और सर्वदाही हम सब लोकोंका हित कार्य करतेहैं और करुणा सहित उनका शुभाशुभ विधान करतेहैं परन्तु हम सीताका उद्धार नकरसके, इस कारण इन्द्रादि देवता गण निश्चयही हमको वीर्य रहित समझेंगे ॥ ५५ ॥ हे लक्ष्मण! विचार करके देखो! कि हमको प्राप्त होकर दया दाक्षिण्यादि समस्त गुण दोष रूपमें बदल गये इन दोषोंसे हम छिप गये, अब कोई हमको पराक्रमवान् नहीं समझता इस्से अभी सब प्राणी व राक्षसोंका नाश करनेंके लिये॥५६॥

रामचन्द्रजी सुमित्रानन्दन लक्ष्मणजीके साथ वनमें गये और बडे आकारवाले मृगोंका वधकर उनका मांसले फिर वहां आये जहां जटायुको दाह कियाथा । वहां आ जटायुको पिंड देनेंके लिये तृण फैलाये ॥ ३२ ॥और उस समस्त मांसके टुकडे २ कर डाले और उनके पिंड बना उनको हरी घासपर रख जटायुके अर्थ प्रदान किये ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणलोग प्रेत पुरुषकी स्वर्ग प्राप्ति होनेंके लिये जिन मंत्रोंका जप किया करते हैं, श्रीरामचन्द्रजी जटायुको शीघ्र स्वर्ग प्राप्त करानेंके लिये उन्हीं समस्त मंत्रोंका जप करनेंलगे ॥ ३४ ॥ तिसके पीछे राजकुमार श्रीरामचन्द्र व लक्ष्मणजी दोनों जन गोदावरी नदीपर जाकर जटायुके लियें तर्पण करते हुए ॥ ३५ ॥ वह दोनों जन स्नान करकै शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार जटायुको

रोहिमांसानिचोद्धृत्यपेशीकृत्वामहायशाः ॥ शकुनायददौरामोरम्येहरितशाद्वले ॥ ३२ ॥ यत्तत्प्रेतस्यमर्त्यस्यकथयंतिद्विजातयः ॥ तत्स्वर्गगमनंक्षिप्रंतस्यरामोजजापह ॥ ३४ ॥ ततोगोदावरींगत्वानदींनरवरात्मजौ ॥ उदकंचक्रतुस्तस्मैगृध्रराजायताबुभौ ॥ ३५ ॥ शास्त्रदृष्टेनविधिनाजलंगृध्रायराघवौ ॥ स्नात्वातौगृध्रराजायउदकंचक्रतुस्तदा ॥ ३६ ॥ सगृध्रराजःकृतवान्यशस्करंसुदुष्करंकर्मरणेनिपातितः ॥ महर्षिकल्पेनचसंस्कृतस्तदाजगामपुण्यांगतिमात्मनःशुभाम् ॥ ३७॥ कृतोदकौतावपिपक्षिसत्तमेस्थिरांचबुद्धिंप्रणिधायजग्मतुः ॥ प्रवेश्यसीताधिगमेततोमनोवनंसुरेंद्राविवविष्णुवासवौ ॥ ३८ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० आर० अष्टषष्टितमःसर्गः ॥ ६८ ॥ कृत्वैवमुदकंतस्मैप्रस्थितौराघवौतदा ॥ अवेक्षंतौवनेसीतांजग्मतुःपश्चिमांदिशम् ॥ १ ॥

जल देकर पिंड व तिलाञ्जलि देते हुए ॥ ३६ ॥ गृध्रराज जटायु दुष्करकार्य करते हुए युद्धमें मारे जाकर, और महर्षिसदृश श्रीरामचन्द्रजीके संस्कारित हो परम पवित्र पुण्य गतिको प्राप्त हुए ॥ ३७ ॥ तब राम और लक्ष्मण दोनों जन जलादि क्रिया समाप्त करकै पक्षिश्रेष्ठ जटायुके प्रति पितृबुद्धि स्थापित कर वहांसे प्रस्थान करते हुए, और सीताजीके खोजनेंमें मन लगाकर सुरश्रेष्ठ विष्णु और इन्द्रजीकी समान वनमें प्रवेश करतेहुए॥ ३८॥इ० श्रीम०वा०आ०आ०अष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥ जब पक्षिराज जटायुकी जलक्रिया होचुकी तब श्रीरामचन्द्र व लक्ष्म

हुए बाणोंसे सब संसार पिशाच और राक्षसोंसे रहित कर देंगे ॥ ६५ ॥ इस संसारमें कोईभी हमारे इन बाणोंको निवारण नहीं करसकैगा, आज देवता लोग देखेंगे कि समूहके समूह बाण हम करके रोष और क्रोधमें भरकर चलाये हुए कितनी २ दूरपर जाकर गिरते हैं न देवता न दैत्य न पिशाच न राक्षस ॥ ६६ ॥ जब हमारे क्रोधसे तीनों लोकोंका नाश हुआ तब कोईभी रक्षा न पावैगा ॥ ६७ ॥ अधिक क्या कहैं, सुर, असुर, यक्ष और राक्षसोंके समस्तही लोक हमारे बाण जालसे खंड २ होकर गिरेंगे आज हम बाणोंको छोडकर समस्त लोकको मर्यादा शून्य करेंगे॥ ६८॥ प्रिया वैदेहीजी मरही गईहों अथवा हरही गईहों सो किसी अवस्थामें हों यदि ब्रह्मादि देव गण उने हमको न देदें ॥ ६९ ॥ हम चराचर सहित इस

द्रक्ष्यंत्यद्यविमुक्तानाममर्षाद्दूरगामिनाम् ॥ नैवदेवानदैतेयानपिशाचानराक्षसाः ॥ ६६ ॥ भविष्यंतिममक्रोधात्रैलो क्येऽपिप्रणाशिते ॥ देवदानवयक्षाणांलोकायेरक्षसामपि ॥ ६७ ॥ बहुधानिपतिष्यंतिबाणौघैःशकलीकृताः ॥ निर्मर्या दानिमान्लोकान्करिष्याम्यद्यसायकैः ॥६८॥ हृतांमृतांवासौमित्रेनदास्यंतिममेश्वराः ॥ तथारूपांहिवैदेहींनदास्यं तियदिप्रियाम् ॥ ६९॥ नाशयामिजगत्सर्वंत्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ यावद्दर्शनमस्यावैतापयामिचसायकैः ॥ ७० ॥ इत्युक्त्वाक्रोधताम्राक्षःस्फुरमाणोष्ठसंपुटः ॥ वल्कलाजिनमाबध्यजटाभारमबंधयत् ॥ ७१ ॥ तस्यक्रुद्धस्यरामस्यत थाभूतस्यधीमतः ॥ त्रिपुरंजघ्नुषःपूर्वंरुद्रस्येवबभौ तनुः ॥ ७२ ॥ लक्ष्मणादथचादायरामोनिष्पीड्यकार्मुकम् ॥ शरमादायसंदीप्तंघोरमाशीविषोपमम् ॥ ७३ ॥

सब जगत्का विनाश कर डालेंगे और जबतक हम सीताको न देख पावेंगे तबतक बाणोंसे चराचरको संतापित करेंगे ॥ ७० ॥ यह कह कर क्रोधसे श्रीरामचन्द्रजीकी आंखें लाल २ हो आईं, होठ फडकने लगे, श्रीरामचन्द्रजीनें चीर वल्कल मृगचर्म और जटाजूट कस कर बांधा ॥ ७१ ॥ उस कालमें धीमान् रामचन्द्रजीनें क्रोधित होकर जब ऐसे कार्यका अनुष्ठान किया, तब उनका देह ऐसा प्रतिभात होनें लगा कि जैसे पूर्व कालमें रुद्र जी त्रिपुर वध करनेंको तैयार हुएथे ॥ ७२ ॥ अनन्तर उन्होंनें लक्ष्मणजीके निकटसे धनुष ग्रहण कर और दृढ रूपसे धारण करके सर्प विष सदृश

गुफामें नित्यही अंधकार रहताथा ॥ १० ॥ श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीनें उसके निकट पहुँचकर उसम भयंकर आकारवाली और विकृत वदन
एक राक्षसीको देखा ॥ ११ ॥ राक्षसी देखनेंमें अति भयंकरीथी, खाल अति कडीथी ॥ १२ ॥ स्वभाव अति भयंकरथा बडे२ मृगोंको वह भ
क्षण करती, रूप बडा भयावना शिरके बाल खुले, ऐसी उस राक्षसीको दोनों भाइयोंनें देखा ॥ १३ ॥ तिसके पीछे वह निशाचरी रामचंद्रजीके
आगे खडे हुये लक्ष्मणजीके निकट आकर कहनें लगी कि "आओ हम तुमसे विहार करें" ऐसा कहकर उसनें लक्ष्मणजीको ग्रहण किया ॥१४॥
और वह राक्षसी उनको चिपटायकर कहनेंलगी कि हे नाथ! हमारा अयोमुखी नामहै, अब तुमको परम लाभ हुआ और तुमही हमारे प्यारे

आसाद्यचनरव्याघ्रौदर्यास्तस्याविदूरतः ॥ ददर्शतुर्महारूपांराक्षसींविकृताननाम् ॥ ११ ॥ भयदामल्पसत्त्वा
नांबीभत्सांरौद्रदर्शनाम् ॥ लंबोदरींतीक्ष्णदंष्ट्रांकरालींपरुषत्वचम् ॥ १२ ॥ भक्षयंतींमृगान्भीमान्विकटांमुक्त
मूर्धजाम् ॥ अवैक्षतांतुतौतत्रभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ १३ ॥ सासमासाद्यतौवीरौव्रजंतंभ्रातुरग्रतः ॥ एहिरंस्यावहे
त्युक्त्वासमालंभतलक्ष्मणम् ॥ १४ ॥ उवाचचैनंवचनंसौमित्रिमुपगृह्यच ॥ अहंत्वयोमुखीनामलाभस्तेत्वमसिप्रि
यः ॥ १५ ॥ नाथपर्वतदुर्गेषुनदीनांपुलिनेषुच ॥ आयुश्चिरमिदंवीरत्वंमयासहरंस्यसे ॥ १६ ॥ एवमुक्तस्तुकुपितःखड्ग
मुद्धृत्यलक्ष्मणः ॥ कर्णनासस्तनंतस्यानिचकर्तारिसूदनः ॥ १७ ॥ कर्णनासेनिकृत्तेतुविस्वरंविननादसा ॥ यथागतं
प्रदुद्रावराक्षसीघोरदर्शना ॥१८॥ तस्यांगतायांगहनंव्रजंतौवनमोजसा॥आसेदतुरमित्रघ्नौभ्रातरौरामलक्ष्मणौ॥१९॥

हुये ॥ १५ ॥ हे नाथ! हमारे सहित सब जीवनतक नदियोंके किनारों पर और नाना प्रकारके पर्वतोंपर तुम विहार किया करना ॥१६॥ शत्रुओंका
नाश करनेंवाले लक्ष्मणजीनें इस बातसे क्रोधित होकर खड्ग उठाकर उस राक्षसीके नाक कान व स्तन काट डाले ॥ १७ ॥ जब उसके कान नाक
व स्तन काट डाले गये तब वह घोरदर्शनवाली राक्षसी विकट शब्दसे चिल्लाकर शब्द करतीहुई जहांसे आईथी वहांको दौडी ॥ १८ ॥ जब वह
वहांसे भाग गई तो महातेजमान शत्रुओंके मारनेंवाले श्रीराम लक्ष्मण दोनों भाई वेग सहित चलतेहुए एक गहन वनमें पहुँचे ॥ १९ ॥

वश होकर अपना स्वभाव छोडना आपको योग्य नहीं है ॥ ४ ॥ चन्द्रमामें श्री, वायुमें गति, पृथ्वीमें क्षमा, सूर्यमें दीप्ति, इन चारोंमें यह चार पदार्थ नित्य हैं और आपमें यश सहित यह चारों पदार्थ विद्यमान हैं ॥ ५ ॥ एक जनके अपराधसे समस्त लोकको हनन करना आपको उचित नहीं है, निश्चयही हम जानते हैं कि यह जो रथ टूटा पडा है यह एकही जनका है बहुतोंका नहीं ॥ ६ ॥ किन्तु यह जुआ युक्त और परिच्छेद सहित रथ किसका है, और क्योंकर टूटा है इसको हम नहीं जानते, देखिये यह स्थान खुरियोंसे खुद खुदाय रहा है और रुधिरसे भीगनेके कारण अतिशय भयंकर हो रहाहै ॥ ७ ॥ निश्चयही यहांपर संग्राम हुआहै ॥ और इन सब कारणोंसे यहभी बोध होताहै कि एक रथीके सहित और किसी पशुका युद्ध

चंद्रेलक्ष्मीःप्रभासूर्येगतिर्वायौभुविक्षमा ॥ एतच्चनियतंनित्यंत्वयिचानुत्तमंयशः ॥ ५ ॥ एकस्यानापराधेनलोका न्हंतुंत्वमर्हसि ॥ ननुजानामिकस्यायंभग्नःसांग्रामिकोरथः ॥ ६ ॥ केनवाकस्यवाहेतोःसंयुगःसपरिच्छदः ॥ खुर नेमिक्षतश्चायंसिक्तोरुधिरबिंदुभिः ॥ ७ ॥ देशोनिर्वृत्तसंग्रामःसुघोरःपार्थिवात्मज ॥ एकस्यतुविमर्दोऽयंनद्वयोर्वदतां वर ॥ ८ ॥ नहिवृत्तंहिपश्यामिबलस्यमहतःपदम् ॥ नैकस्यतुकृतेलोकान्विनाशयितुमर्हसि ॥ ९ ॥ युक्तदंडाहिमृदवः प्रशांतावसुधाधिपाः ॥ सदात्वंसर्वभूतानांशरण्यःपरमागतिः ॥ १० ॥ कोनुदारप्रणाशंतेसाधुमन्येतराघव ॥ सरितः सागराःशैलादेवगंधर्वदानवाः ॥ ११ ॥ नालंतेविप्रियंकर्तुंदीक्षितस्येवसाधवः ॥ येनराजन्हृतासीतातमन्वेषितुमर्हसि ॥ १२ ॥

हुआहै दोजनोंका युद्ध नहीं हुआहै ॥ ८ ॥ बडी भारी सेनाके चरण चिह्न यहां पर नहीं दृष्टि आते इसलिये एक जनके अपराधसे समस्त लोकोंको विनाश करना आपको उचित नहींहै ॥ ९ ॥ राजा लोग सचराचरपर अतिशय शान्त और मृदु स्वभाववाले होतेहैं, और अपराधानुसार दंड दिया करतेहैं आपभी सर्वदा सब भूतोंके शरण्य और परम गतिहैं ॥ १० ॥ हे रघुनंदन! संसारमें कौन पुरुष आपकी भार्याका वियोग आपसे अच्छा समझताहै कारण कि नदी, समुद्र, पर्वत, देवता, गन्धर्व, दानव, सरित सागर ॥ ११ ॥ और शैल कोईभी आपका अप्रिय नहीं करसकते, जैसे यजमानका अप्रिय साधुलोग नहीं कर सकते। हे राजन्! जिसनें सीताको हरण कियाहै इस समय उस जनकी खोज करना आपका कर्त्तव्य हुआहै ॥ १२ ॥

द्रजीके आगे आनकर खडा होगया,उसका मस्तक और गर्दन नहींथी शरीर बहुत बडाथा,मुख पेट में था ॥२७॥ रुवें भालेके समान तीखे और सीधे थे
आकार उसका महा पर्वतकी समान ऊंचाथा स्वर मेघके गर्जनेकी तुल्य, रंग नीले मेघकी समान, व स्वभाव और आकार उसका बडा भयंकरथा [illegible]टा॥
और उसका नेत्र यह अग्निकी ज्वालाके समान प्रदीप्त और बडी२ धूमिली पलकें इस पर थीं और यह नेत्र बडाभी बहुत था ॥ २९ ॥ और उस
दूसरा नेत्र छातीमें था यह नेत्र अतिशय भयंकर और तीक्ष्ण दिखावका था, उसका मुखभी बडा भारीथा और उसके मुखमें बडे २ दांतोंकी पंक्ति
यांथीं, वह उस मुखसे मानो लीलेही लेताथा ॥ ३० ॥ और वह अपनी चार २ कोशकी लंबी दोनों बांहोंसे पकड २ ऋक्ष, सिंह, मृगादिकोंको

रोमभिर्निशितैस्तीक्ष्णैर्महागिरिमिवोच्छ्रितम् ॥ नीलमेघनिभंरौद्रंमेघस्तनितनिःस्वनम् ॥ २८ ॥ अग्निज्वाला
निकाशेनललाटस्थेनदीप्यता ॥ महापक्ष्मेणपिंगेनविपुलेनायतेनच ॥ २९ ॥ एकेनोरसिघोरेणनयनेनसुदर्शि
ना ॥ महादंष्ट्रोपपन्नंतंलेलिहानंमहामुखम् ॥ ३० ॥ भक्षयंतंमहाघोरानृक्षसिंहमृगद्विजान् ॥ घोरौभुजौविकु
र्वाणमुभौयोजनमायतौ ॥ ३१ ॥ कराभ्यांविविधान्गृह्यऋक्षान्पक्षिगणान्मृगान् ॥ आकर्षंतंविकर्षंतमनेकान्मृगयू
थपान् ॥ ३२ ॥ स्थितमावृत्यपंथानंतयोर्भ्रात्रोःप्रपन्नयोः ॥ अथतंसमतिक्रम्यक्रोशमात्रंददर्शतुः ॥ ३३ ॥ महांतंदा
रुणंभीमंकबंधंभुजसंवृतम् ॥ कबंधमिवसंस्थानादतिघोरप्रदर्शनम् ॥ ३४ ॥ समहाबाहुरत्यर्थंप्रसार्यविपुलौभुजौ ॥
जग्राहसहितावेषराघवौपीडयन्बलात् ॥ ३५ ॥

भक्षण करता चला आताथा ॥ ३१ ॥ वह अपनी दोनों बांहोंसे विविध प्रकारके मृग पक्षी, ऋक्ष और मृगयूथोंको पकडता और अपने मुखमें
छोडताथा ॥ ३२ ॥ जिस मार्गसे होकर राम लक्ष्मणजीको जानाथा, वह उसीको रोंके हुये पडाथा, तब राम लक्ष्मणजीनें घूमकर एक कोश
पर जाकर देखा तो ॥ ३३ ॥ अति घोर दर्शन दारुण भयंकराकार बडे शरीरवाला कवन्ध दिखलाई पडा वह अपनी दोनों भुजाओंसे जीव
जन्तुओंको सब प्रकारसे पकडताथा और उसके शरीरकी गठन देखनेंसे ठीकही वह कवंध ज्ञात होताथा ॥ ३४ ॥ फिर महाबलवान कवन्धने

हे काकुत्स्थ ! यदि आपही इस आई हुई विपदको न झेलेंगे तौ अल्प प्राण मनुष्य कौन सह सकेगा ? ॥ ५ ॥ हे नरश्रेष्ठ! आप अपनें चित्तको सँभालिये। विपद अग्निकी समान सबही प्राणियोंको स्पर्श करतीहै किन्तु क्षण कालमेंही दूर चली जातीहै ॥ ६ ॥ लोकका स्वभावही यहहै। देखिये नहुषपुत्र ययाति, इन्द्रपदवी प्राप्त करकेभी अनीतिसे स्वर्गसे च्युत हुआथा ॥ ७ ॥ जो हमारे पिताजीके पुरोहितहैं, उन महर्षि वशिष्ठजीनें एक दिनमें शतपुत्र उत्पन्न किये, और एकदिनमेंही वह सब नष्ट होगये ॥ ८ ॥ हे कौशलेश्वर। जगन्माता, सर्व लोकके नमस्कार करनें योग्य इस पृथ्वीकाभी चलायमानहोना पाया जाताहै अर्थात् भूकंपादि दुःख इसको हुआ करतेहैं ॥ ९ ॥

यदिदुःखमिदंप्राप्तंकाकुत्स्थंनसहिष्यसे ॥ प्राकृतश्चाल्पसत्त्वश्चइतरःकःसहिष्यति ॥ ५ ॥ आश्वसिहिनरश्रेष्ठप्राणिनःकस्यनापदः ॥ संस्पृशंत्यग्निवद्राजन्क्षणेनव्यपयांतिच ॥ ६ ॥ लोकस्वभावएवैषययातिर्नहुषात्मजः ॥ गतःशक्रेणसालोक्यमनयस्तंसमस्पृशत् ॥ ७ ॥ महर्षियोंवसिष्ठस्तुयःपितुर्नःपुरोहितः ॥ अह्नापुत्रशतंजज्ञेतथैवास्य पुनर्हतम् ॥८॥ याचेयंजगतोमातासर्वलोकनमस्कृता ॥ अस्याश्चचलनंभूमेर्दृश्यतेकोशलेश्वर ॥ ९ ॥ यौधर्मौ जगतोनेत्रौयत्रसर्वंप्रतिष्ठितम् ॥ आदित्यचंद्रौग्रहणमभ्युपेतौमहाबलौ ॥ १० ॥ सुमहांत्यपिभूतानिदेवाश्चपुरुषर्षभ ॥ नदैवस्यप्रमुंचंतिसर्वभूतानिदेहिनः ॥ ११ ॥ शक्रादिष्वपिदेवेषुवर्तमानौनयानयौ ॥ श्रूयेतेनरशार्दूलनत्वं व्यथितुमर्हसि ॥ १२ ॥ मृतायामपिवैदेह्यांनष्टायामपिराघव ॥ शोचितुंनार्हसेवीरयथान्यःप्राकृतस्तथा ॥ १३ ॥

जो सूर्य चन्द्रमा कि जगत्के नेत्र और साक्षात् धर्मस्वरूप हैं,और जिनमें समस्त संसार टिका हुआ है उन महाबलवान् सूर्य चन्द्रमाकाभी ग्रहण हो जाता है ॥ १० ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ! इस प्रकारसे अति महत् भूत और देवतालोगभी जब दैवके वश हैं तब साधारण शरीर धारी प्राणियोंकी क्या गिनती है? ॥ ११ ॥ अधिक क्या कहैं इन्द्रादि देवताओंमेंभी नीति और अनीति सुख दुःख सुना जाया करता है, इस्से हे नरसिंह! आप अब व्यथित न हूजिये॥१२॥हे रघुनंदन!यदि जानकीजी हरी गई हों, वा मृतक होगईहों तौभी साधारण पुरुषोंकी समान आपको शोक करना योग्य नहीं है१३॥

यहांपर क्या कार्यहै, और तुम किस कारणसे यहांपर आयेहो सो कहो॥४४॥ हम भूखे होकर यहांपर टिकरहेहैं सो तुम धनुष बाण और खड्ग धारण किये हुये तेज सींगवाले बैलकी समान यहांपर हमारे मुखमें आय पडेहो ॥ ४५ ॥ परन्तु अब हमारे मुखमें पड तुम्हारा जीवित रहना दुर्लभहै दुरात्मा कवंधके यह वचन सुनकर ॥ ४६ ॥ श्रीरामचंद्रजी वदन सुखाकर लक्ष्मणजीसे बोले कि यह सत्यविक्रम ! प्रिया सीताजीके हरणसे विषम विपद आपडी है, सो इस्से निश्चयही प्राण संहार होनेंकी संभावनाहै तिसके ऊपर फिर वारंवार यह कष्टके ऊपर कष्ट पड रहे हैं ॥ ४७ ॥ अब तौ यह महा दुःख हमको प्राप्त हुआ है, अब प्रियाके पानेकीभी आश त्याग करैं। हे लक्ष्मण! सब प्राणियोंमें कालका वडा वीर्य दिखलाई देता

इमंदेशमनुप्राप्तौक्षुधार्तस्येहतिष्ठतः ॥ सबाणचापखड्गौचतीक्ष्णशृंगाविवर्षभौ ॥ ४५ ॥ मांतूर्णमनुसंप्राप्तौदुर्लभंजीवितंहिवाम् ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाकबंधस्यदुरात्मनः ॥ ४६ ॥ उवाचलक्ष्मणंरामोमुखेनपरिशुष्यता॥कृच्छ्रात्कृच्छ्रतरंप्राप्यदारुणंसत्यविक्रम ॥ ४७ ॥ व्यसनंजीवितांतायप्राप्तमप्राप्यतांप्रियाम् ॥ कालस्यसुमहद्वीर्यंसर्वभूतेषुलक्ष्मण ॥ ४८ ॥ त्वांचमांचनरव्याघ्रव्यसनैःपश्यमोहितौ ॥ नहिभारोऽस्तिदैवस्यसर्वभूतेषुलक्ष्मण ॥ ४९ ॥ शूराश्वबलवंतश्चकृतास्त्राश्चरणाजिरे ॥ कालाभिपन्नाःसीदंतियथावालुकसेतवः ॥ ५० इतिब्रुवाणोदृढसत्यविक्रमोमहायशा दाशरथिःप्रतापवान् ॥ अवेक्ष्यसौमित्रिमुदग्रविक्रमःस्थिरांतदास्वांमतिमात्मनाकरोत् ॥ ५१ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा०आ० आर०एकोनसप्ततितमःसर्गः ॥ ६९ ॥ ॥ ७॥ ॥

है ॥४८॥हे नरश्रेष्ठ लक्ष्मण! देखो हम तुम दोनों कालकेही प्रभावसे कैसे दुःखमें पडे हैं, प्राणियोंको दुःख देनेंमें कालको कुछभी डर नहीं है ॥४९॥ कालके वश हो वडे शूरवीर अस्त्र शस्त्रोंके जाननेंवाले पुरुषभी रेतेसे वनाये हुये पुलकी समान संग्राममें खस जाते हैं ॥ ५० ॥ सत्य और अनतिक्रमणीय दृढविक्रमसम्पन्न, प्रतापवान महायशस्वी दशरथनंदन बुद्धिमान श्रीरामचन्द्रजीनें लक्ष्मणजीको देख ऐसा कहते २ ज्ञानके प्रभावसे अपने चित्तको स्थिर किया ॥ ५१ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आदिकाव्ये आरण्यकांडे एकोनसप्ततितमः सर्गः॥ ६९ ॥

कहनें पर सारके ग्रहण करनेंवाले महाबाहु रामचन्द्रजीनें उनको ग्रहण किया॥१॥ तिसके पीछे वह अपना बढा हुआ क्रोध शान्तकर विचित्र धनुष धारण करके लक्ष्मणजीसे कहनें लगे ॥ २ ॥ हे वत्स! हम इस समय कहां जांय क्या करें, और किस उपायसे जानकीको प्राप्त होवैं? सो तुम इसका विचार करो॥३॥तब लक्ष्मणजी अति संतापित रामचन्द्रजीसे बोले कि इस जनस्थानकोही ढूंढना और खोज करना आपको उचित है ॥ ४ ॥ बहुत सारे राक्षसों करके समाकीर्ण और विविध भांतिके लता वृक्षोंसे युक्त इस जनस्थानमें अनेक गिरि गुहा कंदरा ॥ ५ ॥ पत्थरोंकी चटानें और अनेक जाति वाले मृग गणोंसे पूर्ण गुफायें किन्नर व गन्धर्व गणोंके फिरनेंके स्थान और भवन जहां बहुत सारे हैं ॥ ६ ॥ सो आप हमारे सहित साव

सनिगृह्यमहाबाहुःप्रवृद्धंरोषमात्मनः ॥ अवष्टभ्यधनुश्चित्रंरामोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ २ ॥ किंकरिष्यावहेवत्स क्ववागच्छावलक्ष्मण ॥ केनोपायेनपश्यावःसीतामिहविचिंतय ॥ ३ ॥ तंतथापरितापार्तंलक्ष्मणोवाक्यमब्रवीत् ॥ इदमेवजनस्थानंत्वमन्वेषितुमर्हसि ॥ ४ ॥ राक्षसैर्बहुभिःकीर्णंनानाद्रुमलतायुतम् ॥ संतीहगिरिदुर्गाणिनिर्दराः कंदराणिच ॥ ५ ॥ गुहाश्चविविधाघोरानानामृगगणाकुलाः ॥ आवासाःकिन्नराणांचगंधर्वभवनानिच ॥ ६ ॥ तानियुक्तोमयासार्धंसमन्वेषितुमर्हसि ॥ त्वद्विधाबुद्धिसंपन्नामहात्मानोनरर्षभाः ॥ ७ ॥ आपत्सुनप्रकंपंतेवायुवेगैरिवाचलाः ॥ इत्युक्तस्तद्वनंसर्वंविचचारसलक्ष्मणः ॥ ८ ॥ क्रुद्धोरामःशरंघोरंसंधायधनुषिक्षुरम् ॥ ततःपर्वतकूटाभं महाभागंद्विजोत्तमम् ॥ ९ ॥ ददर्शपतितंभूमौक्षतजार्द्रंजटायुषम् ॥ तंदृष्ट्वागिरिशृंगाभंरामोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ १० ॥

धान होकर इन सब जगहको ढूंढ लीजिये, आपकी समान बुद्धिसम्पन्न महात्मा पुरुषोत्तम ॥७॥ आपदके समय कभी नहीं विचलते, जैसे वायुके वेगसे पर्वत नहीं कांपते यह सुन श्रीरामचन्द्रजीनें लक्ष्मणजीके साथ समस्त बन खोजा ॥ ८ ॥ उस समय श्रीरामचन्द्रजीनें बडा कोप करके पैनी धारवाला भयंकर बाणभी धनुषपर चढायाथा, वहां जाते २ पर्वतकी समान आकारवाला बडा भाग्यवान् पक्षी श्रेष्ठ ॥ ९ ॥ जटायुको पृथ्वीपर पडा और रुधिरसे लिपटा हुआ देखा उसको पर्वतके शृंगकी समान आकारवाला देख श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीसे बोले ॥१०॥

जब बाहें काट डालीं गई तब भयंकर शब्द करता हुआ महाबाहु कबन्ध मेघकी समान घोर शब्द करके गगनमण्डल और दशोंदिशाओं को अपने शब्दसे भर देता हुआ गिर पडा ॥ १० ॥ फिर अपनी दोनों भुजा ओंको कटा हुआ देखकर दानव कबंध रुधिरसे डूबा हुआ दोनों भाइयोंसे बोला कि तुम कौनहो? ॥ ११ ॥ जब कबन्धनें इस प्रकारसे पूछा तब महाबलवान् शुभ लक्षण युक्त काकुत्स्थ लक्ष्मणजी कबंधसे बोले ॥१२॥ यह इक्ष्वाकु वंशमें उत्पन्न हुए हैं और श्रीराम नामसे यह लोकमें विख्यात हैं और हम इनके छोटे भाई हमारा नाम लक्ष्मण है ॥१३॥ सौतेली जननी कैकेयी करके इनकी राज्य प्राप्ति रोकी जाकर सर्व त्यागी करा यह वनको पठाये गये सो यह हमारे और अपनी भार्याके साथ वनमें विचरण करतेथे

सपपातमहाबाहुश्छिन्नबाहुर्महास्वनः ॥ खंचगांचदिशश्चैवनादयन्जलदोयथा ॥ १० ॥ सनिकृत्तौभुजौदृष्ट्वा शोणितौघपरिप्लुतः ॥ दीनःपप्रच्छतीवीरौकौयुवामितिदानवः ॥ ११ ॥ इतितस्यब्रुवाणस्यलक्ष्मणःशुभलक्षणः ॥ शशंसतस्यकाकुत्स्थंकबंधस्यमहाबलः ॥ १२ ॥ अयमिक्ष्वाकुदायादोरामोनामजनैःश्रुतः ॥ तस्यैवावरजंविद्धिभ्रातरंमांचलक्ष्मणम् ॥ १३ ॥ मात्राप्रतिहतेराज्येरामःप्रव्राजितोवनम् ॥ मयासहचरत्येषभार्ययाचमहद्वनम् ॥ १४ ॥ अस्यदेवप्रभावस्यवसतोविजनेवने ॥ रक्षसापहृताभार्यायामिच्छंताविहागतौ ॥ १५ ॥ त्वंतुकोवाकिमर्थंवाकबंधसदृशोवने ॥ आस्येनोरसिदीप्तेनभग्नजंघोविचेष्टसे ॥ १६ ॥ एवमुक्तःकबंधस्तुलक्ष्मणेनोत्तरंवचः ॥ उवाचवचनंप्रीतस्तादिंद्रवचनंस्मरन् ॥ १७ ॥ स्वागतंवांनरव्याघ्रौदिष्ट्यापश्यामिवामहम् ॥ दिष्ट्याचेमौनिकृत्तौमेयुवाभ्यांबाहुबंधनौ ॥ १८ ॥

॥ १४ ॥ कि वनमें वास करनेंके समय इन देव तुल्य प्रतापशाली श्रीरामचन्द्रजीकी भार्या हरी गई हैं सो उनको ही ढूँढतेर हम लोग यहां पर आये हैं॥१५॥और तुम कौन हो? जो कवन्धकी समान वनमें घूमते हो! तुम्हारी जांघ टूटी हुई हैं, और अतिशय दीप्तयुक्त वदन मंडल छातीमें लगा हुआ है ॥ १६ ॥ जब लक्ष्मणजीनें ऐसा कहा तब इन्द्रके वचनका स्मरण करता हुआ कवन्ध प्रसन्न होकर बोला ॥ १७ ॥ कि आप लोग दोनों ही पुरुषोंमें श्रेष्ठहैं। आप अच्छी तरहसे तो आये आज भाग्यसे ही हमनें आप लोगोंको देखाहै और आपनें जो हमारे बंधन रूप हाथ काट डाले

जब हम बूढे होनेंके कारण लडते २ थक गये तब राक्षसनाथ रावणनें खड्ग से हमारे पंख काट डाले ॥ १९ ॥ और सीताजीको लेकर आकाश मार्गमें चला गया, प्रथम तो हम रावण करकै मारेही गये हैं, सो इस समय हमारा वध करना आपको उचित नहीं है ॥ २० ॥ श्रीरामचंद्रजी गिद्धके मुखसे सीताजीके विषयक प्रिय वचन सुनतेही महा धनुष को त्याग करके आलिंगन करलेते हुये ॥ २१ ॥ और शोकसे अवश हो पृथ्वी में गिर कर लक्ष्मणजीके सहित रोदन करनें लगे । यद्यपि श्रीरामचंद्रजी महावीरथे तथापि दूना संताप पाकर बहुत व्याकुल होगये ॥ २२ ॥ उसकाल जटायुको एकान्त में पडे वारंवार ऊंची श्वास लेते हुये देख शोकसे आतुर हो श्रीरामचंद्रजीने लक्ष्मणजीसे कहा ॥ २३ ॥ हम राज्यसे भ्रष्ट हुये

सीतामादायवैदेहीमुत्पपातविहायसम् ॥ रक्षसानिहतंपूर्वंमांनहंतुंत्वमर्हसि ॥ २० ॥ रामस्तस्यतुविज्ञायसीतासक्तांप्रियांकथाम्॥गृध्रराजंपरिष्वज्यपरित्यज्यमहद्धनुः॥२१॥निपपातावशोभूमौरुरोदसहलक्ष्मणः॥द्विगुणीकृततापार्तोरामोधीरतरोऽपिसन् ॥ २२ ॥ एकमेकायनेकृच्छ्रेनिःश्वसंतंमुहुर्मुहुः ॥ समीक्ष्यदुःखितोरामःसौमित्रिमिदमब्रवीत् ॥ २३ ॥ राज्यंभ्रष्टंवनेवासःसीतानष्टामृतोद्विजः ॥ ईदृशीयंममालक्ष्मीर्दहेदपिहिपावकम् ॥ २४ ॥ संपूर्णमपिचेदद्यप्रतरेयंमहोदधिम् ॥ सोपिनूनंममालक्ष्म्याविशुष्येत्सरितांपतिः ॥ २५ ॥ नास्त्यभाग्यतरोलोकेमत्तोऽस्मिन्सचराचरे ॥ येनेयंमहतीप्राप्तामयाव्यसनवागुरा ॥ २६ ॥ अयंपितुर्वयस्योमेगृध्रराजोमहाबलः ॥ शेतेविनिहतोभूमौममभाग्यविपर्ययात् ॥ २७ ॥

वनमें वास हुआ, सीताजी हरी गई और जटायुकी मृत्यु होगई हमारे खोटे कर्मसे उपस्थित हुई यह विपत्ति अग्निकोभी भस्म कर सकतीहै ॥ २४॥ हम अपने भाग्यकी क्या बात कहैं! हम इस दुःखके संतापसे शान्ति पानेंके लिये तलहीन तटहीन महासागरको भी उतरें! तो वह सरित स्वामी समुद्र भी निश्चयही हमारे दुर्भाग्यके प्रभावसे एक वारही सूख जायगा ॥ २५ ॥ सचराचर लोकोंमें हमसा अधिक मन्दभाग्य और कोई नहीं है क्योंकि हमनें इतनीवडी दुःखकी फांसी पाई है ॥ २६ ॥ यह महाबली गिद्धराज हमारे पिताके प्रिय सखाहैं, सो यह भी हमारे

कर लोगे सो हे लक्ष्मण ! हम दनुके श्रीमान् पुत्रहैं ॥७॥संग्राममें इन्द्रजीके शापसे यह कबंधकासा रूप हमने पायाहै उसका ठीक २ वृत्तान्त यह है कि आगे हमनें अत्युग्र तप करके ब्रह्माजी को प्रसन्न किया ॥ ८ ॥ तब उन्होंने हमको दीर्घायु प्रदान की तिसके पीछे हमारे चित्तमें भ्रम हुआ और जिस्से हमनें गर्वित होकर विचारा कि । इन्द्र हमारा क्या कर सकते हैं क्योंकि अब तौ हमनें दीर्घायु पालीहै ॥ ९ ॥ ऐसी बुद्धिमें स्थिर हो संग्राममें हमनें इन्द्रको ललकारा तब उन्होंनें अपना सौधारका वज्र हमारे ऊपर छोडा जिसके लगनेंसे ॥ १० ॥ मस्तक कनपटी आदि सब अंग हमारे शरीरके भीतर पैठ गये । तिसके पीछे हमने अपनी मौत चाही भी परन्तु उन्होनें हमें यमपुरको न भेजा ॥ ११ ॥ वरन केवल उन्होंनें

इंद्रशापादिदंरूपंप्राप्तमेवंरणाजिरे ॥ अहंहितपसोग्रेणपितामहमतोषयम् ॥ ८ ॥ दीर्घमायुःसमेप्रादात्ततोमांवि भ्रमोऽस्पृशत् ॥ दीर्घमायुर्मयाप्राप्तंकिंमांशक्रःकरिष्यति ॥ ९ ॥ इत्येवंबुद्धिमास्थायरणेशक्रमधर्षयम् ॥ तस्य बाहुप्रमुक्तेनवज्रेणशतपर्वणा ॥ १० ॥ सक्थिनीचशिरश्चैवशरीरेसंप्रवेशितम् ॥ समयायाच्यमानःसन्नानयद्यम सादनम् ॥ ११ ॥ पितामहवचःसत्यंतदस्त्वितिममाब्रवीत् ॥ अनाहारःकथंशक्तोभग्नसक्थिशिरोमुखः ॥ वज्रिणाभिहतःकालंसुदीर्घमपिजीवितुम् ॥ सएवमुक्तःशक्रोमेबाहूयोजनमायतौ ॥ १२ ॥ तदाचास्यंचमेकुक्षौ तीक्ष्णदंष्ट्रमकल्पयत् ॥ १३ ॥ सोऽहंभुजाभ्यांदीर्घाभ्यांसंक्षिप्यास्मिन्वनेचरान् ॥ १४ ॥ सिंहद्वीपिमृगव्याघ्रान्भक्षया मिसमंततः ॥ सतुमामब्रवीदिंद्रोयदारामःसलक्ष्मणः ॥ १५ ॥

इतनाही कहा कि जाओ पितामह ब्रह्माजीका वचन सत्य होवे और तुम बहुत दिनोंतक जीवित रहो तब हमनें उनसे कहाकि आपका वज्र लगनेसे हम शिर कनपटीमुख आदि अंगोंसें रहित होगये फिर भला हम किस प्रकारसे विना कुछ खाये पिये दीर्घकालतक जीवन धारण करनें में समर्थ होंगे ॥ १२ ॥ इस बातको सुनकर इन्द्रजीनें कहाकि बहुत अच्छा अब तेरी बाहें एक योजन लंबी हो जायँगी ॥ १३ ॥ यह कह कर उन्होंनें हमारे पेटमें बडे २ दांत सहित मुख भी बना दिया तबसे हम अपनें बडे हाथ फैलाकर वनचरोंको पकड२मुखमें डाललेते हैं॥१४॥ उनमें सिंह व्याघ्र ऋक्ष आदि जो मिलते उनको पकड २ कर हम भक्षण किया करतेथे, इन्द्रजीनें फिर यहभी कहाथा कि जब श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजी॥१५॥

और हमनें उसका क्या अपराध कियाथा, जो वह हमारी प्राणप्यारीको हरण करके लेगया ॥ ५ ॥ हे विहंगवर ! हरणके समय जानकीका वह पूर्ण शशि सदृश मनोहर मुखमंडल कैसा हो गयाथा ? और उन्होंने उस समय क्या कहाथा ॥ ६ ॥ उस राक्षसराज रावणका वीर्य, रूप, और कर्म किस प्रकारकाहै । हे तात ! उसका निवास कहांपरहै ? जो हम पूछतेहैं सो सब बता दीजिये ॥ ७ ॥ तब धर्मात्मा जटायु लड खडाती वाणीसे विलाप करते व पूछते हुये श्रीरामचन्द्रजीसे यह वचन बोला ॥ ८ ॥ राक्षसोंके राजा दुरात्मा रावणनें वायु और दुर्दिन (जबकि आकाशमें बादल आजातेहैं) कारिणी महामायाका आश्रय करके सीताका हरण कियाहै ॥ ९ ॥ हे तात ! जब हम लडते २ बहुत थकगये, तब निशाचर

कथंतच्चंद्रसंकाशंमुखमासीन्मनोहरम् ॥ सीतयाकानिचोक्तानितस्मिन्कालेद्विजोत्तम ॥ ६ ॥ कथंवीर्यःकथंरूपः किंकर्मासचराक्षसः ॥ क्वचास्यभवनंतातब्रूहिमेपरिपृच्छतः ॥ ७ ॥ तमुद्वीक्ष्यसधर्मात्माविलपंतमनाथवत् ॥ वाचाविक्लवयारामामिदंवचनमब्रवीत् ॥ ८ ॥ साहृताराक्षसेंद्रेणरावणेनदुरात्मना ॥ मायामास्थायविपुलांवातदुर्दिनसंकुलाम् ॥ ९ ॥ परिक्लांतस्यमेतातपक्षौछित्त्वानिशाचरः ॥ सीतामादायवैदेहींप्रयातोदक्षिणामुखः ॥ १० ॥ उपरुध्यंतिमेप्राणादृष्टिर्भ्रमतिराघव ॥ पश्यामिवृक्षान्सौवर्णानुशीरकृतमूर्धजान् ॥ ११ ॥ येनयातिमुहूर्तेनसीतामादायरावणः ॥ विप्रनष्टंधनंक्षिप्रंतत्स्वामीप्रतिपद्यते ॥ १२ ॥ विंदोनाममुहूर्तोऽसौनचकाकुत्स्थसोऽबुधत् ॥ झषवद्बडिशंगृह्यक्षिप्रमेवविनश्यति ॥ १३ ॥

हमारे दोनों पंख काट सीताको ग्रहण करके दक्षिण दिशाको चला गया ॥ १० ॥ हे रघुनंदन ! अब हमारे प्राण रुकतेहैं, और दृष्टिभी भ्रमित होतीहै और हमको सब वृक्ष सुवर्णके दिखाई देतेहैं, मानों सब वृक्ष अपनें शिरके केशोंमें खश और फूलोंकी माला पहर रहेहैं ॥ ११ ॥ रावण जिस मुहूर्तमें सीताको हर लेगयाहै, उस मुहूर्तमें धनका स्वामी अपनाबहुत दिनका नष्ट (खोया हुआ) धनभी शीघ्रही प्राप्त करलेताहै, अर्थात् इस मुहूर्तकी खोई चीज शीघ्र मिलजातीहै ॥ १२ ॥ इस मुहूर्तका नाम विंदहै, इस मुहूर्तकी खोई हुई वस्तु शीघ्र मिलजातीहै, सो रावण

सो तुम हमारेऊपर उपकार करके हमारे ऊपर दया करो उसको बताओ और हाथियोंके दातोंसे टूटे हुये सूखे काठ बटोरकर तुमको ॥ २४ ॥
गढा खोद एक उसमें हे वीर ! हम तुमको जलादेंगे अब जो पुरुष सीताको हरण करके जिस जगह लेगयाहै. सो समस्त हमसे कहो ॥ २५ ॥ यदि
यथार्थही तुम इस बातको जानतेहो तौ इस्से हमारा बडा मंगल हो जायगा, जब श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा तो वह दानवश्रेष्ठ ॥ २६॥ अच्छा बोल
नेंवाला श्रीरामचंद्रजीसे बडी कुशलताके साथ कहनें लगा हमको अभी दिव्यज्ञान नहींहै इस कारण यह नहीं जानते कि जानकी कहांहैं ॥ २७ ॥
परन्तु जो तुमको उन्हें बतावेगा, उसको हम तुम्हें बतामेंगे, आप हमें भस्म कीजिये फिर हम अपना पहला रूप प्राप्त करके जोकि रावणको

कारुण्यंसदृशंकर्तुमुपकारेणवर्तताम् ॥ काष्ठान्यानीयभग्नानिकालेशुष्काणिकुंजरैः ॥२४॥धक्ष्यामस्त्वांवयंवीरश्वभ्रे
महतिकल्पिते ॥ सत्वंसीतांसमाचक्ष्वयेनवायत्रवाहृता ॥ २५ ॥ कुरुकल्याणमत्यर्थंयदिजानासितत्त्वतः ॥ एवमु
क्तस्तुरामेणवाक्यंदनुरनुत्तमम् ॥ २६ ॥ प्रोवाचकुशलोवक्तावक्तारमपिराघवम् ॥ दिव्यमस्तिनमेज्ञानंनाभिजाना
मिमैथिलीम् ॥ २७ ॥ यस्तांवक्ष्यतितंवक्ष्येदग्धःस्वंरूपमास्थितः ॥ योभिजानातितद्रक्षस्तद्वक्ष्येरामतत्परम् ॥ २८॥
अदग्धस्यहिविज्ञातुंशक्तिरस्तिनमेप्रभो ॥ राक्षसंतुमहावीर्यंसीतायेनहृतातव ॥ २९ ॥ विज्ञानंहिमहद्भ्रष्टंशापदोषेण
राघव ॥ स्वकृतेनमयाप्राप्तंरूपंलोकविगर्हितम् ॥ ३० ॥ किंतुयावन्नयात्यस्तंसविताश्रांतवाहनः ॥ तावन्मामवटेक्षि
प्त्वादहरामयथाविधि ॥ ३१ ॥

जानताहै उसको आपसे बतादेंगे ॥ २८ ॥ हे प्रभो ! जिस महावीर्य राक्षसनें आपकी सीताजीको हरण कियाहै सो बिना भस्म हुये हम किसी
प्रकारसेभी उनको न जान सकेंगे ॥ २९ ॥ पहले हममें बडा विज्ञानथासो इस शापके प्रभावसे हमारा वह दिव्यज्ञान नष्ट होगया, और हम
अपनेही कर्मके दोषसे ऐसे संसारमें निन्दित रूपको प्राप्त हुयेहैं ॥ ३० ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! जबतक सूर्य भगवानके घोडे थककर अस्ता
चलको न चले जांय क्योंकि अब अस्ताचलको जानाही चाहतेहैं तिससे पहलेही आप हमको गढेमें डालकर यथा विधिसे भस्म कर दीजिये ॥३१॥

और हमारे निमित्त पितृपितामहप्राप्त महत् राज्य परित्याग करके इनगृध्रराजने प्राण छोडेहै ॥ २३ ॥ हम जानतेहै कि सभी जातियोंमें शूरता युक्त शरण देनेवाले धर्माचरण करनेंवाले साधु देखे जातेहैं,सो मनुष्यादिके सिवाय पक्षिआदि तिर्यग्योनिमेंभी ऐसे लोग देखे जातेहैं॥ २४॥ हे सौम्य ! हमारेहीलिये इस गृध्रनें प्राण छोडेहैं इसलिये इसकी मृत्युसे सीताके हरणसेभी अधिक हमको दुःख हुआहे ॥२५॥महा यशमान श्रीमान् राजा दशरथजी जिस प्रकारसे हमारे पूजनीय और माननीयहैं परोपकार करनें और पिताजीका सखा होनेंसे यह विहंगमश्रेष्ठभी हमको वैसाही है ॥ २६ ॥ हे सुमित्रानंदन ! तुम काठ ले आओ हम अग्नि उत्पन्न करके हमारे लिये प्राण दिये हुए इन गृध्रराजका दाह करेंगे ॥ २७ ॥ हे लक्ष्मण! यह

गृध्रराज्यंपरित्यज्यपितृपैतामहंमहत् ॥ ममहेतोरयंप्राणान्मुमोचपतगेश्वरः ॥२३॥ सर्वत्रखलुदृश्यंतेसाधवोधर्मचारिणः ॥ शूराःशरण्याःसौमित्रेतिर्यग्योनिगतेष्वपि॥२४॥सीताहरणजंदुःखंनमेसौम्यतथागतम् ॥यथाविनाशोगृध्रस्य मत्कृतेचपरंतप ॥ २५ ॥ राजादशरथःश्रीमान्यथाममममहायशाः ॥ पूजनीयश्चमान्यश्चतथायंपतगेश्वरः॥ २६॥ सौमित्रेहरकाष्ठानिनिर्मथिष्यामिपावकम् ॥ गृध्रराजंदिधक्ष्यामिमत्कृतेनिधनंगतम् ॥ २७ ॥ नाथंपतगलोकस्यचितिमारोपयाम्यहम् ॥ इमंधक्ष्यामिसौमित्रेहतंरौद्रेणरक्षसा ॥ २८ ॥ यागतिर्यज्ञशीलानामाहिताग्नेश्चयागतिः ॥ अपरावर्तिनांयाचयाचभूमिप्रदायिनाम् ॥ २९ ॥ मयात्वंसमनुज्ञातोगच्छलोकाननुत्तमान् ॥ गृध्रराजमहासत्त्वसंस्कृतश्चमयाव्रज ॥ ३० ॥ एवमुक्त्वाचितांदीप्तामारोप्यपतगेश्वरम् ॥ ददाहरामोधर्मात्मास्वबंधुमिवदुःखितः ॥३१॥ रामोऽपिसहसौमित्रिर्वनंयात्वासवीर्यवान् ॥ स्थूलान्हत्वामहारोहीननुतस्तारतंद्विजम् ॥ ३२ ॥

जटायु पक्षियोंका राजा, और घोर कर्म करनेंवाले राक्षसके हाथसे मारेगये हैं, हम इनका चितापर रखकर दाह करेंगे ॥ २८॥ यज्ञशील और आहिताग्नियोंकी जो गति होती है, समरसे पराङ्मुख न होनेंवाले; और भूमि दान करनें वाले पुरुषोंकी जो गति होती है॥ २९ ॥ हे महाबलवान् गृध्रराज! तुम हम करके संस्कृत और हमारीही आज्ञासे उन सब श्रेष्ठगतियोंको प्राप्त होवो ॥३०॥ धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकारसे यह कहकर दुःखित हो अपने बंधुकी समान पक्षिराज जटायुको जलती हुई चिता में चढाकर दाह करते हुए ॥ ३१ ॥ फिर वह महायशवान् वीर्यवान् श्री

शरीरका प्रभासे दशों दिशाओंको प्रकाशता हुआ ॥ ६ ॥ आकाशमें उठ श्रीरामचंद्रजीकी ओर दृष्टि करके कहनें लगा कि हे रघुनंदन ! जिस उ
पायसे आप सीताको प्राप्त कर सकेंगे वह रीति ठीकर सुनो ॥ ७ ॥ सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय, यह जो छैः युक्ति व उपा
यहैं, सो राजा लोग इनकी सहायतासेही सब वार्तोंका विचार करतेहैं और विना इनका आश्रय लिये किसी कार्यकीभी सिद्धि नहीं होती ॥ ८ ॥ सो
इसमें दुर्दशाके समय समाश्रय नामक जो उपायहै, उसका आश्रय करना कहाहै सो जब बहुतही दुर्दशा होजाय तब लोग उसका आश्रय करतेहैं
सो इस समय आपकोभी इसी समाश्रयके आश्रय लेनेंका प्रयोजन हुआहै क्योंकि इस समय आप लक्ष्मणजीके सहित वैसेही दुर्दशासे ग्रसे जाकर

सोंतरिक्षगतोवाक्यंकबंधोराममब्रवीत् ॥ शृणुराघवतत्त्वेनयथासीतामवाप्स्यसि ॥ ७ ॥ रामषड्युक्तयोलो
केयाभिःसर्वंविमृश्यते ॥ परिमृष्टोदशांतेनदशाभागेनसेव्यते ॥ ८ ॥ दशाभागगतोहीनस्त्वंहिरामसलक्ष्मणः ॥
यत्कृतेव्यसनंप्राप्तंत्वयादारप्रधर्षणम् ॥ ९ ॥ तदवश्यंत्वयाकार्यःससुहृत्सुहृदांवर ॥ अकृत्वानहितेसिद्धिमहंपश्या
मिचिंतयन् ॥ १० ॥ श्रूयतांरामवक्ष्यामिसुग्रीवोनामवानरः ॥ भ्रात्रानिरस्तःक्रुद्धेनवालिनाशक्रसूनुना ॥ ११ ॥
ऋष्यमूकेगिरिवरेपंपापर्यंतशोभिते ॥ निवसत्यात्मवान्वीरश्चतुर्भिःसहवानरैः ॥ १२ ॥ वानरेंद्रोमहावीर्यस्तेजोवा
नमितप्रभः ॥ सत्यसंधोविनीतश्चधृतिमान्मतिमान्महान् ॥ १३ ॥

राज्यादिसे भ्रष्ट हुएहैं ॥ ९ ॥ और इसी कारणसे आपके ऊपर तुम्हारी स्त्रीका हरण स्वरूप महा दुःखभी आनकर पडाहै । इस कारणसे हे राज
वर! आपको दूसरेके सहित जिसका परिवारभी बहुत हो; उस्से अवश्यही मित्रता करनी होगी, हमनें भली भांतिसे सोच विचारकर देख
लियाहै कि ऐसे उपायका अवलंबन न करनेंसे आपके कार्यकी सिद्धि नहीं होगी ॥ १० ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! सुनिये एक सुग्रीव नामक वानरहै
उसके भाईका नाम जो कि इन्द्रका पुत्रहै वालि है; उस वालिनें क्रोधकर सुग्रीवको घरसे निकाल दियाहै ॥ ११ ॥ अब वह सुग्रीव ऋष्यमूक पर्व
तपर अपनें चार वानरोंके सहित रहताहै । यह ऋष्यमूक पर्वतके चारों ओर पंपानदीतक शोभित हो रहीहै ॥ १२ ॥ वह वानरेन्द्र सुग्रीव महा

णजी दोनों वहांसे चलकर वनमें सीताजीको ढूंढते भालते हुए पश्चिमदिशाकी ओर चले ॥ १ ॥ और धनुष बाण खड्ग हाथमें लेकर दोनों भ्राता जिस मार्गमें तबतक कोई मनुष्य नहीं गयाथा, उसी पश्चिम दक्षिण कोणवाले मार्गको चले ॥ २ ॥ उस मार्गमें अनेक प्रकारके झाड वृक्ष वल्ली लता आदि लगनेंके कारण वह चारोंओरसे घिर रहाथा, इसी कारणसे वह अतिभयानक वा दुर्गम बोध होताथा॥३॥उस मार्गमें होकर फिर वह महाबलवान् दोनों रघुवीर दक्षिणदिशाकी ओर बडी वेगसे महावनमें हो करके चले ॥४॥इस प्रकारसे जाते२जनस्थानसे तीन कोश दूर क्रौञ्च नामक घनें वनमें पहुँचे॥५॥यह वन अतिशय दुर्गम देखनेंमें बहुत सारे मेघोंकी समान महाघनाथा, अनेक प्रकारके सुन्दर फूलोंके खिले रहनेंसे मानों वह सब भांतिसे

तांदिशंदक्षिणांगत्वाशरचापासिधारिणौ ॥ अविप्रहतमैक्ष्वाकौपंथानंप्रतिपेदतुः ॥ २ ॥ गुल्मैर्वृक्षैश्चबहुभिर्लताभिश्चप्रवेष्टितम् ॥ आवृतंसर्वतोदुर्गंगहनंघोरदर्शनम् ॥ ३ ॥ व्यतिक्रम्यतुवेगेनगृहीत्वादक्षिणांदिशम् ॥ सुभीमंतन्महारण्यंव्यतियातौमहाबलौ ॥ ४ ॥ ततःपरंजनस्थानात्त्रिक्रोशंगम्यराघवौ ॥ क्रौंचारण्यंविविशतुर्गहनंतौमहौजसौ ॥५॥ नानामेघघनप्रख्यंप्रहृष्टमिवसर्वतः ॥ नानावर्णैःशुभैःपुष्पैर्मृगपक्षिगणैर्युतम् ॥ ६ ॥ दिदृक्षमाणौवैदेहींतद्वनंतौविचिन्वतुः ॥ तत्रतत्रावतिष्ठंतौसीताहरणदुःखितौ ॥ ७ ॥ ततःपूर्वेणतौगत्वात्रिक्रोशंभ्रातरौतदा ॥ क्रौंचारण्यमतिक्रम्यमतंगाश्रमममंतरे ॥ ८ ॥ दृष्ट्वातुतद्वनंघोरंबहुभीममृगद्विजम् ॥ नानावृक्षसमाकीर्णंसर्वंगहनपादपम् ॥ ९ ॥ ददृशातेगिरौतत्रदरींदशरथात्मजौ ॥ पातालसमगंभीरांतमसानित्यसंवृताम् ॥ १० ॥

हर्षपूरितथा, और मृग व पक्षीभी उसमें बहुतथे ॥६॥दोनों भ्राता सीताजीके हरणसे दुःखितहो और उनके दर्शनकी कामनासे वह वन ढूंढते२ शान्तिके वश स्थान२ पर खडे हो जानें लगे ॥७॥ फिर वह पूर्वकी ओर तीन कोश चलकर क्रौंचारण्यको नांघकर मातंग मुनिके आश्रमको देखते हुए ॥ ८ ॥ उस आश्रमका वन महा भयंकरथा, और भयंकर स्वभाववाले अनेक जातिके मृग और पक्षीभी वहां बहुतथे, और अनेक प्रकारके वृक्षोंसे घिरे रहनेंके कारण वह वन बडा घनाथा ॥ ९ ॥ फिर उस वनमें श्रीरामचंद्र व लक्ष्मणजीनें पातालकी समान गहरी एक गिरी गुफा देखी, इस

शरीरकी प्रभासे दशो दिशाओंको प्रकाशता हुआ ॥ ६ ॥ आकाशमें उठ श्रीरामचंद्रजीकी ओर दृष्टि करके कहनें लगा कि हे रघुनंदन ! जिस उपायसे आप सीताको प्राप्त कर सकेंगे वह रीति ठीकरसुनो ॥ ७ ॥ सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय, यह जो छैः युक्ति व उपायहैं, सो राजा लोग इनकी सहायतासेही सब बातोंका विचार करतेहैं और विना इनका आश्रय लिये किसी कार्यकीभी सिद्धि नहीं होती ॥ ८ ॥ सो इसमें दुर्दशाके समग्र समाश्रय नामक जो उपायहै, उसका आश्रय करना कहाहै सो जब बहुतही दुर्दशा होजाय तब लोग उसका आश्रय करतेहैं सो इस समय आपकोभी इसी समाश्रयके आश्रय लेनेंका प्रयोजन हुआहै क्योंकि इस समय आप लक्ष्मणजीके सहित वैसेही दुर्दशासे ग्रसे जाकर

सोंतरिक्षगतोवाक्यंकबंधोराममब्रवीत् ॥ शृणुराघवतत्त्वेनयथासीतामवाप्स्यसि ॥ ७ ॥ रामषड्युक्तयोलोकेयाभिःसर्वंविमृश्यते ॥ परिमृष्टोदशांतेनदशाभागेनसेव्यते ॥ ८ ॥ दशाभागगतोहीनस्त्वंहिरामसलक्ष्मणः ॥ यत्कृतेव्यसनंप्राप्तंत्वयादारप्रधर्षणम् ॥ ९ ॥ तदवश्यंत्वयाकार्यःससुहृत्सुहृदांवर ॥ अकृत्वानहितेसिद्धिमहंपश्यामिचिंतयन् ॥ १० ॥ श्रूयतांरामवक्ष्यामिसुग्रीवोनामवानरः ॥ भ्रात्रानिरस्तःक्रुद्धेनवालिनाशक्रसूनुना ॥ ११ ॥ ऋष्यमूकेगिरिवरेपंपापर्यंतशोभिते ॥ निवसत्यात्मवान्वीरश्चतुर्भिःसहवानरैः ॥ १२ ॥ वानरेंद्रोमहावीर्यस्तेजोवानमितप्रभः ॥ सत्यसंधोविनीतश्चधृतिमान्मतिमान्महान् ॥ १३ ॥

राज्यादिसे भ्रष्ट हुएहैं ॥ ९ ॥ और इसी कारणसे आपके ऊपर तुम्हारी स्त्रीका हरण स्वरूप महा दुःखभी आनकर पडाहै । इस कारणसे हे राजवर! आपको दूसरेके सहित जिसका परिवारभी बहुत हो; उस्से अवश्यही मित्रता करनी होगी, हमनें भली भांतिसे सोच विचारकर देखलियाहै कि ऐसे उपायका अवलंबन न करनेंसे आपके कार्यकी सिद्धि नहीं होगी ॥ १० ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! सुनिये एक सुग्रीव नामक वानरहै उसके भाईका नाम जो कि इन्द्रका पुत्रहै वालि है; उस वालिनें क्रोधकर सुग्रीवको घरसे निकाल दियाहै ॥ ११ ॥ अब वह सुग्रीव ऋष्यमूक पर्वतपर अपनें चार वानरोंके सहित रहताहै । यह ऋष्यमूक पर्वतके चारों ओर पंपानदीतक शोभित हो रहीहै ॥ १२ ॥ वह वानरेन्द्र सुग्रीव महा

वहां पहुँचकर सत्यवक्ता, शीलवान् पवित्र स्वभाव और परम तेजस्वी लक्ष्मणजी हाथ जोड कर तेजसे प्रदीप्तमान श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥२० ॥ हे भ्रातः! हमारा बांया हाथ जल्दी२ फडकताहै और मन मानो बहुत उकसाताहै, और प्रायः दुर्लक्षणभी बहुत दृष्टि आतेहैं ॥ २१ ॥ इस्से हे आर्य! आप सज करके तैयार होरहैं; और हमारी बात सुनें यह सब अपशकुन स्पष्टही कहे देतेहैं कि भय आयाही चाहताहै ॥ २२ ॥ परन्तु विजय हमारी अवश्य होगी। क्योंकि यह अति भयानक वञ्चुलक पक्षी मानों हमारी युद्ध विजय कहता हुआ शब्द कर रहाहै ॥ २३ ॥ फिर जब महा

लक्ष्मणस्तुमहातेजाःसत्यवाञ्छीलवाञ्छुचिः ॥ अब्रवीत्प्रांजलिर्वाक्यंभ्रातरंदीप्ततेजसम् ॥ २० ॥ स्पंदतेमेदृढं बाहुरुद्विग्नमिवमेमनः ॥ प्रायशश्चाप्यनिष्टानिनिमित्तान्युपलक्षये ॥ २१ ॥ तस्मात्सज्जीभवार्यत्वंकुरुष्ववचनं मम ॥ ममैवहिनिमित्तानिसद्यःशंसंतिसंभ्रमम् ॥ २२ ॥ एषवंचुलकोनामपक्षीपरमदारुणः ॥ आवयोर्विजयं युद्धेशंसन्निवविनर्दति ॥ २३ ॥ तयोरन्वेषतोरेवंसर्वतद्वनमोजसा ॥ संजज्ञेविपुलःशब्दःप्रभंजन्निवतद्वनम् ॥ २४ ॥ संवेष्टितमिवात्यर्थंगहनंमातरिश्वना ॥ वनस्यतस्यशब्दोऽभूद्वनमापूरयन्निव ॥ २५ ॥ तंशब्दंकांक्षमाणस्तुरामःखड्गी सहानुजः ॥ ददर्शसुमहाकायंराक्षसंविपुलोरसम् ॥ २६ ॥ आसेदतुश्चतद्रक्षस्तावुभौप्रमुखेस्थितम् ॥ विवृद्धमशिरो ग्रीवंकबंधमुदरेमुखम् ॥ २७ ॥

तेजस्वी श्रीराम लक्ष्मणजी उस समस्त वनको ढूंढ रहेथे कि इतनेमेंही एक विपुल शब्द मानों उस वनको विध्वंस करता हुआ होनें लगा ॥२४॥ उस वनमें एकाएकी प्रचंड पवन चलनें लगा, और इस वायुके चलनेंसे वृक्ष आपसमें टकरानें लगे। तब उसमेंसे एक शब्द समस्त वनको शब्दाय मान करता उत्पन्न हुआ ॥२५॥ श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके सहित खड्ग धारण करके "यह शब्द कहांसे हुआ" यह जाननेंके लिये अभिलाषी हो इधर उधर देखतेथे कि चौंडी छातीवाला बृहदाकार एक राक्षस सहसा देख पडा॥२६॥उसका पेट बहुत बडा व नाम उसका कबन्धथा, वह श्रीरामचं

वानरनाथसे ॥ २१ ॥ सत्यताके साथ मित्रताई कीजिये हे राघव! वह वानरश्रेष्ठ सब स्थानोंमें कपि कुंजरोंके साथ जाजाकर ॥ २२ ॥ फिर भली भांतिसे नरमांसके खानेंवाले राक्षसोंकेभी लोकमें चला जायगा हे राघव! लोकमें ऐसा कोई स्थान नहीं जिसे सुग्रीव न जानता हो ॥ २३ ॥ हे शत्रुओंके तपानेंवाले रघुनन्दनजी ! सहस्रकिरण सूर्य भगवानकी किरणें जहांतक पडती हैं, उतनें बीचमें जितनी २ नदियां और बडे २ पर्वत व पर्वतोंकी गुफा हैं ॥ २४ ॥समस्त जगत्में जहां कहीं आपकी भार्या जानकीजी होंगी सो हे रघुनन्दन! यह सुग्रीव ढुंढवायकर आपसे मिला देगा कारणकि वह तुरंत सब दिशाओंमें बडे शरीरवाले वानरोंको पठावेगा ॥ २५ ॥ व तुम्हारे वियोगसे शोच करती हुई श्रीजानकीजीको वह

कुरुराघवसत्येनवयस्यंवनचारिणम् ॥ सहिस्थानानिकात्स्न्येंनसर्वाणिकपिकुंजरः ॥ २२ ॥ नरमांसाशिनांलोकेनैपुण्यादधिगच्छति ॥ नतस्याविदितंलोकेकिंचिदस्तिहिराघव ॥ २३ ॥ यावत्सूर्यःप्रतपतिसहस्रांशुःपरंतप ॥ सनदीविंपुलाञ्छैलान्गिरिदुर्गाणिकंदरान् ॥२४॥ अन्विष्यवानरैःसार्धंपत्नींतेधिगमिष्यति ॥वानरांश्चमहाकायान्प्रेषयिष्यतिराघव ॥ २५ ॥ दिशोविचेतुंतांसीतांत्वद्वियोगेनशोचतीम् ॥ अन्वेष्यतिवरारोहांमैथिलींरावणालये ॥ २६ ॥ समेरुशृंगाग्रगतामनिंदितांप्रविश्यपातालतलेपिवाश्रिताम् ॥ प्लवंगमानामृषभस्तवप्रियांनिहत्यरक्षांसिपुनःप्रदास्यति ॥ २७ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेद्विसप्ततितमःसर्गः ॥ ७२ ॥ दर्शयित्वातुरामायसीतायाःपरिमार्गणे ॥ वाक्यमन्वर्थमर्थज्ञःकवंधःपुनरब्रवीत् ॥ १ ॥ एषरामशिवःपंथायत्रैतेपुष्पिताद्रुमाः ॥ प्रतीचींदिशमाश्रित्यप्रकाशंतेमनोरमाः ॥ २ ॥

रावणके घरमें हुई तौ वहांसेभी ढूंढ लाकर आपको मिला देंगे ॥ २६ ॥ अनाथा निंदारहित सीताजी मेरु पर्वतके शिखरके अग्रभागमें हों अथवा पातालमें निवास करतीं हों कपिराज सुग्रीवजी वहीं जाकर राक्षसोंका नाश करकै आपकी भार्या सीताको ले आवेंगे और आपसे मिला देंगे ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आर० द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥ कवन्ध इस प्रकारसे सीताजीके शोधका उपाय वताकर फिरभी श्रीरामचन्द्रजीसे यह अर्थयुक्त वचन बोला ॥ १ ॥ कि हे श्रीरामचन्द्रजी यही वहांका कल्याणदायक मार्ग है जिधर यह फूले हुए मनोहर

दोनों बडी २ बाहें फैलाकर राम और लक्ष्मण दोनोंकोही बलसे पीडन करके दोंनोंको एक साथही ग्रहण करलिया ॥ ३५ ॥ दृढ धनुष और खड्ग धारण किये हुए तीव्र तेजमान्! महाबलवान्, महाबाहु, वह दोनों भ्राता कवन्धसे खेंचे जाकर अवश होगये ॥ ३६ ॥ श्रीरामचन्द्रजी तो स्वभावसेही धीर्यवान् और शूरतासंपन्नथे, वह तो कुछभी व्याकुल न हुये, परन्तु लक्ष्मणजी बालक और अनाथ होनेंके कारण एकवारही महा व्याकुल होगये ॥ ३७ ॥ और शोक करके राघवनंदन श्रीरामचन्द्रजीसे बोले कि हे वीर! देखो हम विवश होकर राक्षसके वश हुयेहैं ॥ ३८ ॥ इस कारण एक मात्र हमकोही देकर आप छूट जाइये। और हमें इस राक्षसके आगे बलिकी भांति देकर यथा सुखसे आप भाग जाइये ॥ ३९॥

खड्गिनौदृढधन्वानौतिग्मतेजौमहाभुजौ ॥ भ्रातरौविवशंप्राप्तौकृष्यमाणौमहाबलौ ॥ ३६ ॥ तत्रधैर्याच्चशूरस्तुराघवो नैवविव्यथे॥ बाल्यादनाश्रयाच्चैवलक्ष्मणस्त्वभिविव्यथे ॥ ३७ ॥उवाचचविषण्णःसन्राघवंराघवानुजः ॥ पश्यमां विवशंवीरराक्षसस्यवशंगतम् ॥ ३८ ॥ मयैकेनतुनिर्युक्तःपरिमुच्यस्वराघव ॥ मांहिभूतबलिंदत्वापलायस्वयथासु खम् ॥ ३९ ॥ अधिगंतासिवैदेहीमचिरेणेतिमेमतिः ॥ प्रतिलभ्यचकाकुत्स्थपितृपैतामहींमहीम् ॥ ४०॥ तत्रमांरामरा ज्यस्थःस्मर्तुमर्हसिसर्वदा ॥ लक्ष्मणेनैवमुक्तस्तुरामःसौमित्रिमब्रवीत् ॥ ४१ ॥ मास्मत्रासंवृथावीरनहित्वादृग्वि षीदति ॥ एतस्मिन्नंतरेक्रूरोभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ ४२ ॥ तावुवाचमहाबाहुःकबंधोदानवोत्तमः ॥ कौयुवांवृषभस्कंधौ महाखड्गधनुर्धरौ ॥ ४३ ॥ घोरंदेशमिमंप्राप्तौदैवेनममचाक्षुषौ ॥ वदतंकार्यमिहवांकिमर्थंचागतौयुवाम् ॥ ४४ ॥

हे काकुत्स्थ राम! हम निश्चयही समझतेहैं कि आप शीघ्रही वैदेहीको प्राप्त होंगे, और पिता पितामहका राज्यभी शीघ्रही आप करेंगे ॥ ४० ॥ अब इस समय यही प्रार्थनाहै कि आप राज्य पदपर प्रतिष्ठित होकर आप सदाही हमको याद करते रहा कीजिये जब लक्ष्मणजीनें इस प्रकार कहा तब श्रीरामचंद्रजी उनसे बोले ॥ ४१ ॥ कि हे वीर! वृथाभीत न हूजिये तुम सरीखे पुरुष कभी व्यथित नहीं होतेहैं दोनों भाइयोंसे इसी समय वह क्रूर ॥ ४२ ॥ महाबाहु, दानवश्रेष्ठ कवन्ध कहनें लगा कि तुम्हारे कंधे बैलोंकी समान ऊँचेहैं और हाथमें तुमने बडे २ धनुष और खड्ग धारण कियेहैं, सो बताओ कि तुम कौनहो? ॥ ४३ ॥ तुम लोग भाग्यसेही इस भयंकर देशमें आकर हमारे नेत्रोंके सन्मुख पडेहो तुम्हारा

आदि पक्षी ॥१२॥ पम्पाके जलमें पैरते हुए मनोहर शब्द बोलते हैं, वह मनुष्योंको देखकरभी नहीं डरते, क्योंकि पहले उन्हैं किसीनें कभी नहीं मारा है ॥१३॥ हे श्रीरघुनंदन ! आप बडे शरीरवाले घीके पिंडकी समान इन सव पक्षियोंको, और रोहित, चक्रतुंड व नल नामक मछलियोंको वहां पर भक्षणकीजिये ॥ १४ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! जिनके पंख नहीं होते, और वडेशरीर जिनके होतेहैं, त्वक्, और वहुत कांटौ करके युक्त ऐसी श्रेष्ठ मछलियोंको वाणोंसे मारकर और अग्निमें भूंनकर आप पंपासर पर भक्षण कीजिये ॥ १५ ॥ इसके सिवाय लक्ष्मणजी आपके प्रति भक्तिके वश होकर वहांके कमल पुष्पोंमें विचरती हुई उक्त मछलियोंके समूह आपको देंगे ॥ १६ ॥ पंपाका जल कमल पुष्पोंकी सुगंधिसे युक्त रोग

वल्गुस्वराणिकूजंतिपंपासलिलगोचराः ॥ नोद्विजंतेनरान्दृष्ट्वावधस्याकोविदाःपुरा ॥ १३ ॥ घृतपिंडोपमान्स्थूलांस्तान्द्विजान्भक्षयिष्यथ ॥ रोहितांश्चक्रतुंडांश्चनलमीनांश्चराघव ॥ १४ ॥ पंपायामिषुभिर्मत्स्यांस्तत्रामवरान्हतान् ॥ निस्त्वक्पक्षानयस्तप्तानकृशानेककंटकान् ॥ १५ ॥ तवभक्त्यासमायुक्तोलक्ष्मणःसंप्रदास्यति ॥ भृशंतान्खादतोमत्स्यान्पंपायाःपुष्पसंचये ॥ १६ ॥ पद्मगंधिशिवंवारिसुखशीतमनामयम् ॥ उद्धृत्यसतदाक्लिष्टंरूप्यस्फटिकसंनिभम् ॥ १७ ॥ अथपुष्करपर्णेनलक्ष्मणःपाययिष्यति ॥ स्थूलान्गिरिगुहाशय्यान्वानरान्वनचारिणः ॥ १८ ॥ सायाह्नेविचरन्रामदर्शयिष्यतिलक्ष्मणः ॥ अपांलोभादुपावृत्तान्वृषभानिवनर्दतः ॥ १९ ॥ स्थूलान्पीतांश्चपंपायांद्रक्ष्यसित्वंनरोत्तम ॥ सायाह्नेविचरन्रामविटपीमाल्यधारिणः ॥ २० ॥

विहीन स्वास्थकर सुशीतल, चांदी और स्फ़टिक मणिके समान निर्मल जिसके पीनेंसे कोईभी क्लेश नहीं होता ॥ १७ ॥ उस समयमें लक्ष्मणजी पुरैनके पत्तोंका दोना वना वह जल लाकर आपको पिलावेंगे और वडे२ वन्दर पर्वतोंकी कन्दराओं और वृक्षोंके रहनेंवाले ॥ १८ ॥ सन्ध्याके समय घूमनेके कालमें लक्ष्मणजी आपको दिखावेंगे, वह वडे २ वानर जल पीनेंके अर्थ वैलोंके समान शब्द करते हुये आतेहैं ॥ १९ ॥ हेनरश्रेष्ठ ! फिर पंपापर वडे हृष्ट पुष्ट नीले पीलेभी वहुतसें वन्दर वृक्षोंकी शाखा हाथमें लिये हुये आप देखेंगे ॥ २० ॥

श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मण इन दोनों भाइयोंको अपनी बाहोंकी फांसीमें बँधा हुआ वहां खडा देख कबन्ध उनसे बोला ॥ १ ॥ अरे क्षत्रिय श्रेष्ठ! दोनों जन! हम भूखे हुए हैं, विधातानें तुम दोनोंको चेतना रहित करके हमारे खानेंको भेज दिया है। इसलिये हमको देख अब तुम क्या राह देख रहे हो तैयार होवो॥ २ ॥ उसके ऐसे वचन सुनकर लक्ष्मणजी दुःखित व विक्रम प्रकाश करनेंमें कृत निश्चय होकर उस कालके अनुसार वाक्य श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ ३ ॥ कि यह राक्षसाधम हम दोनोंही जनको पकडे हुए है इस कारण आइये हम अभी दो खड्गोंसे इसके बडे भारी दोनों हाथ काट डालें ॥ ४॥ यह बडे आकारवाला भयंकर राक्षस केवल अपनी भुजाओंकी ही सहायतासे सब लोकोंको सर्व प्रकारसे जीत अब

तौतुतत्रस्थितौदृष्ट्वाभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ बाहुपाशपरिक्षिप्तौकबंधोवाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥ तिष्ठतःकिंनुमांदृष्ट्वाक्षुधार्तंक्षत्रियर्षभौ ॥ आहारार्थंतुसंदिष्टौदैवेनहतचेतनौ ॥ २ ॥ तच्छ्रुत्वालक्ष्मणोवाक्यंप्राप्तकालंहितंतदा ॥ उवाचार्तिंसमापन्नोविक्रमेकृतनिश्चयः ॥ ३ ॥ त्वांचमांचपुरातूर्णमादत्तेराक्षसाधमः ॥ तस्मादसिभ्यामस्याशुबाहूछिंदावहेगुरू ॥ ४ ॥ भीषणोऽयंमहाकायोराक्षसोभुजविक्रमः ॥ लोकंह्यतिजितंकृत्वाह्यावांहंतुमिहेच्छति ॥ ५ ॥ निश्चेष्टानांवधोराजन्कुत्सितोजगतीपतेः ॥ क्रतुमध्योपनीतानांपशूनामिवराघव ॥ ६ ॥ एतत्संजल्पितंश्रुत्वातयोःक्रुद्धस्तुराक्षसः ॥ विदार्यास्यंततोरौद्रंतौभक्षयितुमारभत् ॥ ७ ॥ ततस्तौदेशकालज्ञौखड्गाभ्यामेवराघवौ॥अच्छिंदतांसुसंहृष्टौबाहूतस्यांसदेशयोः ॥८॥ दक्षिणोदक्षिणंबाहुमसक्तमसिनाततः ॥ चिच्छेदरामोवेगेनसव्यंवीरस्तुलक्ष्मणः ॥९॥

हम तुमको मारनेंके लिये तैयार हुआ है ॥ ५ ॥ परन्तु हे राजन्! यज्ञमें आये हुए छागोंकी समान चेष्टा रहित होकर मरना क्षत्रियोंके लिये बहुत ही निंदाकी बात है ॥ ६ ॥ श्रीराम लक्ष्मणजीकी ऐसी वार्ता सुन निशाचर कबंध क्रोधित होकर मुँहवाय उनको भक्षण करनेंके लिये तैयार हुआ ॥ ७ ॥ तब देश और कालके जाननेंवाले श्रीराम और लक्ष्मण दोनों भ्राताओंनें खड्ग ग्रहण करके उसकी दोनों भुजायें खंभे परसे काट डालीं ॥ ८ ॥ चतुर श्रीरामचन्द्रजीनें उसकी दाहिनी भुजा और वीर्यवान् लक्ष्मणजीनें उसकी बांई भुजा शीघ्रतासे काट डाली ॥ ९ ॥

श्रम काननको नहीं खल बला सकते ॥२९॥ इसी कारणसे वह वन मतंग वनके नामसे प्रसिद्ध हुआ है. हे रघुनंदन! वह वन देवताओंके नंदन वनकी समानहै रमणीय है ॥ ३० ॥ उसमें अनेक प्रकारके पक्षी सुहावनी बोली बोलते हैं वहां प्रवेश करके आप अच्छी तरहसे विहारकर सकेंगे और पंपाके सामनेही वृक्ष समूहसे सुशोभित ऋष्यमूक पर्वतहै ॥ ३१ ॥ इस कठिन से आरोहण करनेंके योग्य पर्वतकी रक्षा छोटे सर्प किया करते हैं और यह पर्वत उदार ब्रह्माजी करके पहले समयमें बनायागयाथा ॥३२॥ इस उदार पर्वतके शृंगपर जो पुरुष शयन करके स्वप्नमें जो धन प्राप्त करैं तो जागनेंपरभी उसको वही धन मिलताहै ॥ ३३ ॥ अधर्म कार्य करनेमें रत पापकर्म करनेवाले पुरुषके उस पर्वतपर चढनेपर राक्षस लोग उसके

मतंगवनमित्येवविश्रुतंरघुनंदन ॥ तस्मिन्नंदनसंकाशेदेवारण्योपमेवने ॥ ३० ॥ नानाविहगसंकीर्णेरंस्यसेरामनि
र्वृतः ॥ ऋष्यमूकस्तुपंपायाःपुरस्तात्पुष्पितद्रुमः ॥ ३१ ॥ सुदुःखारोहणश्चैवशिशुनागाभिरक्षितः ॥ उदारोब्रह्मणा
चैवपूर्वकालेभिनिर्मितः ॥३२ ॥ शयानःपुरुषोरामतस्यशैलस्यमूर्धनि ॥ यःस्वप्नेलभतेवित्तंतत्प्रबुद्धोधिगच्छति॥३३॥
यस्त्वेनंविषमाचारःपापकर्माधिरोहति ॥ तत्रैवप्रहरंत्येनंसुप्तमादायराक्षसाः ॥ ३४ ॥ ततोपिशिशुनागानामाक्रंदः
श्रूयतेमहान् ॥ क्रीडतांरामपंपायांमतंगाश्रमवासिनाम् ॥ ३५ ॥ सक्तारुधिरधाराभिःसंहत्यपरमद्विपाः ॥ प्रचरंति
पृथक्कीर्णामेघवर्णास्तरस्विनः ॥ ३६ ॥ तेतत्रपीत्वापानीयंविमलंचारुशोभनम् ॥ अत्यंतसुखसंस्पर्शंसर्वगंधसमन्वि
तम् ॥ ३७ ॥ निवृत्ताःसंविगाहंतेवनानिवनगोचराः ॥ ऋक्षांश्चद्वीपिनश्चैवनीलकोमलकप्रभान् ॥ ३८ ॥

शयन करनेंके समय उसको पकड कर वहीं संहार करदेतेहैं ॥ ३४ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! तिसके पीछे आप मतंगाश्रम निवासी पंपातटविहारी हाथियोंके बच्चोंका घोर शब्द श्रवण करोगे ॥ ३५ ॥ उन सबके सिवाय आप कुछ एक लाल वर्णकी मदधारा चुआतेहुए मेघवर्ण वेग युक्त हाथियोंके दलके दल इधर उधर घूमते हुए देखोगे॥३६॥ वह हाथी पंपाका निर्मल सुन्दर और अत्यन्त सुखकारी सुवासित नीर पीकरके ॥ ३७॥ पंपा सरोवरमें विहारसे निवृत्तहो वनमें विहार किया करतेहैं! हे श्रीरामचंद्रजी! वहांपर आप रीछ,गैंडे,व्याघ्र,और नील मणिवत कोमल कान्तिवाले॥३८॥

सो यह भी हमारे बडे सौभाग्यकी बात है; इसमें कुछ संदेह नहींहै ॥ १८ ॥ जिसभांतिसे हमारा इस विरूपताका रूपथा, व जिस ऊधमसे हम इस कुरूपताको प्राप्त हुये सो सब ज्योंका त्यों कहतेहैं आप श्रवण करें ॥ १९ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० आ० सप्ततितमःसर्गः ॥ ७० ॥ हे महाबाहु श्रीरामचंद्रजी! पूर्वकालमें हमारा रूप अत्यन्त सुन्दर अचिन्तनीय ऐश्वर्य महाबल व पराक्रम युक्त और तीनों लोकोंमें विख्या तथा ॥ १ ॥और सूर्य चंद्रमा व इन्द्रके शरीरकी समान हमारा भी रूपथा, सो ऐसा रूप धारण कर हम तीनो लोकोंको डरपाने लगे ॥ २ ॥ हम घूम २ कर वनवासी ऋषि लोगोंको भयभीत करतेथे एक समय जाते २ हमनें स्थूलशिरा नामक महर्षिको कोपित कराया ॥ ३ ॥ वे

विरूपंयच्चमेरूपंप्राप्तंह्यविनयाद्यथा ॥ तन्मेशृणुनरव्याघ्रतत्त्वतःशंसतस्तव ॥ १९ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेसप्ततितमःसर्गः ॥७०॥ ॥ पुरराममहाबाहोमहाबलपराक्रमम् ॥ रूपमासीन्ममाचिंत्यंत्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥१॥ यथासूर्यस्यसोमस्यशक्रस्यचयथावपुः ॥ सोऽहंरूपमिदंकृत्वालोकवित्रासनंमहत् ॥२॥ ऋषीन्वनगतान्रामत्रासयामिततस्ततः ॥ ततःस्थूलशिरानाममहर्षिःकोपितोमया ॥ ३ ॥ सचिन्वन्विविधंवन्यंरूपेणानेनधर्षितः ॥ तेनाहमुक्तःप्रेक्ष्यैवंघोरशापाभिधायिना ॥ ४ ॥ एतदेवंनृशंसंतेरूपमस्तुविगर्हितम् ॥ समयायाचितःक्रुद्धःशापस्यांतोभवेदिति ॥ ५ ॥ अभिशापकृतस्येतितेनेदंभाषितंवचः ॥ यदाछित्त्वाभुजौरामस्त्वांदहेद्विजनेवने ॥ ६ ॥ तदात्वंप्राप्स्यसेरूपंस्वमेवविपुलंशुभम् ॥ श्रियाविराजितंपुत्रदनोस्त्वंविद्धिलक्ष्मण ॥ ७ ॥

महर्षि जी विविध भांतिके वनके फूल फलादि इकट्ठे कर रहेथे कि हमने अपने रूपके गर्वसे उनको धिक्कारा और क्रोधित कराया तब उन्होंनें हमारी ओर देख अति घोर शाप दिया ॥ ४ ॥ कि जाओ मूर्ख! तुम्हारा रूप भी हमारे ही सा कुरूप होजायगा जब हमनें क्रोध युक्तहो उनको शापदेते हुये देखा तो शापके उद्धारके लिये प्रार्थना की, कि इसका निवारण कब होगा ॥ ५ ॥ तब शापके अन्त होनेंके लिये उन्होंने कहाकि जिस समय श्रीरामचंद्रजी तुम्हारे हाथ काट डालेंगे और विजन वनमें तुमको फूँक देंगे ॥ ६ ॥ बस उसी समय तुम अपना सुविपुल और मनोहर रूप प्राप्त

णजी कवंधका बताया हुआ मार्ग लेकर पंपानदीकी ओर पश्चिम दिशाको चले ॥ १ ॥ जिस समय श्रीराम लक्ष्मणजी सुग्रीवके देखनेंको जा रहेथे उस समय पर्वतोंके शिखरोंपर मधु समान स्वाद युक्त फल व फूलवाले अनेक २ वृक्ष उनके नयन गोचर होनें लगे ॥ २ ॥ वह दोनों भ्राता मार्ग में एक रात्रि एक पर्वतके ऊपर रहकर प्रभात होतेही पंपाके पश्चिम किनारे पर जा पहुँचे ॥ ३ ॥ पंपाके पश्चिम किनारे पर पहुँचकर शबरीका रम णीय आश्रम श्रीराम लक्ष्मणजीनें देखा ॥ ४ ॥और उस विविध वृक्षसमूह से समाकीर्ण रमणीय आश्रमको देखते हुये उसमें प्रवेश करकें शबरीके निकट आये ॥ ५ ॥ तब सिद्ध शबरी श्रीराम लक्ष्मणजीको देखतेही हाथ जोडे हुये बुद्धिमान् दोनों भाइयोंके चरणोंमें प्रणाम करती हुई ॥ ६ ॥

तौशैलेष्वाचितानेकान्क्षौद्रपुष्पफलद्रुमान् ॥ वीक्षंतौजग्मतुर्द्रष्टुंसुग्रीवंरामलक्ष्मणौ ॥ २ ॥ कृत्वातुशैलपृष्ठेतुतौवा संरघुनंदनौ ॥ पंपायाःपश्चिमंतीरंराघवावुपतस्थतुः ॥ ३ ॥तौपुष्करिण्याःपंपायास्तीरमासाद्यपश्चिमम् ॥ अपश्य तांततस्तत्रशबर्यारम्यमाश्रमम् ॥ ४ ॥ तौतमाश्रममासाद्यद्रुमैर्बहुभिरावृतम् ॥ सुरम्यमभिवीक्षंतौशबरीमभ्युपे यतुः ॥ ५ ॥ तौदृष्ट्वातुतदासिद्धासमुत्थायकृतांजलिः ॥ पादौजग्राहरामस्यलक्ष्मणस्यचधीमतः ॥ ६ ॥ पाद्यमाचम नीयंचसर्वंप्रादाद्यथाविधि ॥ तामुवाचततोरामःश्रमणींधर्मसंस्थिताम् ॥ ७ ॥ कच्चित्तेनिर्जितांविघ्नाःकच्चित्तेवर्धते तपः ॥ कच्चित्तेनियतःकोपआहारश्चतपोधने ॥ ८ ॥ कच्चित्तेनियमाःप्राप्ताःकच्चित्तेमनसःसुखम् ॥ कच्चित्तेगुरुशुश्रू षासफलाचारुभाषिणि ॥ ९ ॥ रामेणतापसीपृष्टासासिद्धासिद्धसंमता ॥शशंसशबरीवृद्धारामायप्रत्यवस्थिता॥१०॥

और यथाविधिसे पाद्य आचमनीयभी शबरीने किया, तिसके पीछे श्रीरामचन्द्रजी धर्मनिरता शबरीसे बोले ॥ ७ ॥ कि तुमनें सुख व विघ्नों को तौ जीत लिया है, तुम्हारा तप बढता तो है और क्रोध तौ तुम्हारे वशमें है, हे तपोधने! ॥ ८ ॥ तुम्हारे सब नियम तौ भली भांतिसे चले आते हैं, तुम्हारे मनको तौ सदा सुख रहता है? हे चारुभाषिणी! तुम्हारे गुरुकी सेवा करनी तौ तुम्हें फलवती हुई है ॥ ९ ॥ जब श्रीरामच न्द्रजीनें इस प्रकार पूछा तौ सिद्ध लोगोंकी अभिमता और तप सिद्धा शबरी सामने निकल कर उनसे निवेदन करती हुई ॥ १० ॥

समरमें तुम्हारे दोनों हाथ काटेंगे तब तुम स्वर्गको जाओगे । तबसे हे राजसत्तम ! हम इसी शरीरसे इस वनमें ॥ १६ ॥ जिस २ को देख लेतेहैं उसको ग्रहण कर लेतेहैं, व यहभी हमको निश्चयथा कि इन्द्रके वचनानुसार कोई न कोई अवश्य हमको मिलता रहेगा ॥ १७ ॥ सदा अपना ऐसाही विचार रखतेहैं कुछ विशेष श्रमभी नहीं करतेथे सो इस समय हमनें सत्य २ जाना कि श्रीरामचंद्रजी आपही हैं क्योंकि और कोई हमको नहीं मार सकता ॥ १८ ॥ क्योंकि महर्षिजीनें जो कुछ कहा सो सत्यही हुआहै, इस कारण हे श्रीरामचंद्रजी और तो हमसे कुछ नहीं हो सकता । परन्तु हे नरश्रेष्ठ! बुद्धिद्वारा आपकी कुछ सहायता कर सकेंगे ॥ १९ ॥ अर्थात् जब आप हमको अग्निमें जलादेंगे तब हम

यद्यत्पश्यामिसर्वस्यग्रहणं
॥ १६ ॥ अनेनवपुषातातवनेऽस्मिन्राजसत्तम
छेत्स्यतेसमरेबाहूतदास्वर्गंगमिष्यसि ॥ सत्वं
॥ १७ ॥ इमांबुद्धिंपुरस्कृत्यदेहन्यासकृतश्रमः
अवश्यंग्रहणंरामोमन्येऽहंसमुपैष्यति अहंहिमतिसाचिव्यंकरिष्या
साधुरोचये ॥ ॥ शक्योहंतुंयथातत्त्वमेवमुक्तंमहर्षिणा ॥ १८ ॥ २० ॥
रामोऽसिभद्रंतेनाहमन्येनराघव ॥ एवमुक्तस्तुधर्मात्मादनुनातेनराघवः ॥ निष्क्रांतस्यजनस्थानात्स
मिनरर्षभ ॥ १९ ॥ मित्रंचैवोपदेक्ष्यामियुवाभ्यांसंस्कृतोग्निना ॥ २१ ॥ रावणेनहृताभार्यासीताममयशस्विनी
इदंजगादवचनंलक्ष्मणस्यचपश्यतः ॥ ॥ निवासंवाप्रभावंवावयंतस्यनविद्महे ॥ शो
हभ्रात्रायथासुखम् ॥ नाममात्रंतुजानामिनरूपंतस्यरक्षसः ॥ २२ ॥
कार्तानामनाथानामेवंविपरिधावताम् ॥ २३ ॥

॥ २० ॥ लक्ष्मणजीके सामनें आपको एक मित्र बतावेंगे, जब इस प्रकारसे उस दनुके पुत्रनें महात्मा धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीसे कहा तो ॥ २१ ॥ हम उस समय भ्राताके सहित जन उस्से श्रीरामचंद्रजी बोले कि रावण करके हमारी यशस्विनी भार्या सीताजी हरी गईहैं ॥ २२ ॥ परन्तु उसका सुख स्थानसे पूर्वक कहींपर चले गयेथे तब वह उनको हरण करके ले गयाथा हम उसराक्षस रावणका केवल नाम मात्र जानतेहैं, रूप ॥ २२ ॥ निवास व प्रभाव कुछभी नहीं जानते । केवल शोकसे आरत हुये अनाथकी समान इसी भांतिसे वन २ में घूमते फिरतेहैं ॥ २३ ॥

लिया कि यह परमात्माकोभी भली भांति जानती है यह समझ उससे कहाकि हमनें कवंधसे तुम्हारा प्रभाव और आचारका माहात्म्य श्रवण कियाथा सो तुम यदि उचित समझो तौ हम उसको प्रत्यक्ष उनका वृत्तान्त देखनेंकी इच्छा करते हैं, श्रीरामचन्द्रजीके मुखसे निकला हुआ ऐसा वचन सुन ॥ २० ॥ शवरी उन दोनों भ्राताओंको वह वडा वन दिखाकर कहनें लगी कि मृग और पक्षियोंसे परिपूर्ण काले बादरकी समान श्यामरंगका यह वन देखिये ॥ २१ ॥ हे रघुनन्दन! इस वनका नाम मतंग वन प्रसिद्ध है, हे महाद्युतिमान् ! इस वनमें विशुद्धात्मा हमारे गुरु लोग मंत्र पूजित यज्ञ करनेंके लिये वेदके मंत्रोंसे काल हरण करतेथे ॥ २२ ॥ यह वही प्रत्यक्स्थल नामक वेदी है; जिस वेदीपर बैठकर हमारे परम

श्रुतंप्रत्यक्षमिच्छामिसंद्रष्टुंयदिमन्यसे ॥ एतत्तुवचनंश्रुत्वारामवक्त्रविनिःसृतम् ॥ २० ॥ शवरीदर्शयामासतावुभौतद्व नंमहत् ॥ पश्यमेघघनप्रख्यंमृगपक्षिसमाकुलम् ॥ २१ ॥ मतंगवनमित्येवविश्रुतंरघुनंदन ॥ इहतेभावितात्मानो गुरवोमेमहाद्युते ॥ जुहवांचक्रिरेनीडंमंत्रवन्मंत्रपूजितम् ॥ २२ ॥ इयंप्रत्यक्स्थलीवेदीयत्रतेमेसुसत्कृताः ॥ पुष्पोप हारंकुर्वंतिश्रमादुद्वेपिभिःकरैः ॥ २३ ॥ तेषांतपःप्रभावेणपश्याद्यापिरघूत्तम ॥ द्योतयंतीदिशःसर्वाःश्रियावेद्यतुलप्र भा ॥ २४ ॥ अशक्नुवद्भिस्तैर्गंतुमुपवासश्रमालसैः ॥ चिंतितेनागतान्पश्यसमेतान्सप्तसागरान् ॥ २५ ॥ कृताभिषे कैस्तैर्न्यस्तावल्कलाःपादपेष्विह ॥ अद्यापिनविशुष्यंतिप्रदेशेरघुनंदन ॥ २६ ॥ देवकार्याणिकुर्वद्भिर्यानीमानिकृ तानिवै ॥ पुष्पैःकुवलयैःसार्धम्लानत्वंनतुयांतिवै ॥ २७ ॥

पूजनाय गुरु लोग पुष्पांजलि सहित श्रम युक्त हाथोंसे देवताओंकी पूजा करतेथे ॥ २३ ॥ हे रघुवर! देखिये यह वही अनुपम प्रभायुक्त वेदी उनके तपोवलसे आजभी अपनी दीप्तिसे दशों दिशाओंको दिपा रही है ॥ २४ ॥ जब वह ऋषि लोग उपवासोंके परिश्रमसे आलस्यीहोकर स्नान करनें को जानेंमें समर्थ हीन होगये, तब उनके चिंता करतेही यह सात समुद्र यहां आगये सो आप देखिये ॥ २५ ॥ हे रघुनन्दन! ऋषि लोगोंनें स्नान करकै यहां वृक्षोंपर जो अपने गीले वस्त्र टांग दिये हैं सो वह अवतक नहीं सूखे हैं ॥ २६ ॥ उन्होनें देवताओंका कार्य साधन करनेके लिये जो नीले कमलके सहित

हे महावीर! रघुनंदन! जब यथा विधिसे आप हमको गढेमें रखकर फूंक देंगे तब हम बतलावेंगे कि कौन रावणको जानताहै ॥ ३२ ॥ हे राघव! आप उस अच्छी वृत्तिवाले पुरुषके साथ मित्रता करलेना वह पराक्रमी वीर आपकी बडी भारी सहायता करेगा ॥ ३३ ॥ हे महाराज! त्रिलोकीमें ऐसा कुछभी नहींहै जिसको यह पुरुष न जानता हो वह प्रथम किसी बडेही कारणके वश होकर त्रिलोकीमें घूमा है ॥ ३४ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० आर० एकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥ जब कवन्धनें उन दोनों वीरशिरोमणियोंसे ऐसा कहा तब नर श्रेष्ठ श्रीरामचंद्र व लक्ष्मणजीने पर्वतकी गुफामें लेजाकर उसको अग्नि देदी ॥ १ ॥ लक्ष्मणने बडी २ उल्काओंको प्रज्वलित करके

दग्धस्त्वयाहमवटेन्यायेनरघुनंदन॥ वक्ष्यामितंमहावीरयस्तंवत्स्येतिराक्षसम् ॥ ३२ ॥ तेनसख्यंचकर्तव्यंन्याय्य वृत्तेनराघव ॥ कल्पयिष्यतितेवीरसाहाय्यंलघुविक्रम ॥ ३३ ॥ नहितस्यास्त्यविज्ञातंत्रिषुलोकेषुराघव ॥ सर्वान्प रिवृतोलोकान्पुरावैकारणांतरे ॥ ३४ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० आरण्यकांडेएकसप्ततितमःसर्गः ॥ ७१ ॥ ॥ ७ ॥ एवमुक्तौतुतौवीरौकबंधेननरेश्वरौ ॥ गिरिप्रदरमासाद्यपावकंविससर्जतुः ॥ १ ॥ लक्ष्मणस्तुमहोल्काभिर्ज्वलिता भिःसमंततः ॥ चितामादीपयामाससाप्रजज्वालसर्वतः ॥ २ ॥ तच्छरीरंकबंधस्यघृतपिंडोपमंमहत् ॥ मेदसा पच्यमानस्यमंदंदहतपावकः ॥ ३ ॥ सविधूयचितामाशुविधूमोऽग्निरिवोत्थितः ॥ अरजेवाससीबिभ्रन्माल्यंदिव्यं महाबलः ॥ ४ ॥ ततश्चितायावेगेनभास्वरोविरजांबरः ॥ उत्पपाताशुसंहृष्टःसर्वप्रत्यंगभूषणः ॥ ५ ॥ विमाने भास्वरेतिष्ठन्हंसयुक्तेयशस्करे ॥ प्रभयाचमहातेजादिशोदशविराजयन् ॥ ६ ॥

चारों ओर अग्नि लगादी तब चिता भली भांतिसे जलनें लगी ॥ २ ॥ तब कवन्धका घीके पिंडेकी समान चरबीसे परिपूर्ण बडा भारी शरीर धीरे२ जलनें लगा ॥ ३ ॥ जब चिता जल कर रहगई तब महा बलवान कवंध उसी समय चिताको कंपायमान करता हुआ निर्मल वस्त्र और दिव्य माला धारण करके धुआं रहित अग्निकी समान उसमेंसे निकला ॥ ४ ॥ और दिव्य कांति युक्त शरीरसे वेगमें भर आनंद सहित उसी समय आ काशको गया उसके समस्त अंग प्रत्यंग गहनोंसे भूषितथे ॥ ५ ॥ तिसके पीछे वह अतिशय उजले हंस युक्त यशस्कर विमानमें बैठकर अपनी

उसस्थानको प्रकाशित करनेंलगी ॥ ३४ ॥ उसके गुरु वह विशुद्धात्मा महर्षि गण जिस स्थानोंमें विराजमानथे श्रमणी भी आत्मसमाधिके प्रभावसे परम पवित्र उस पुण्य लोकको चली गई ॥ ३५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आर० चतुःसप्तति तमः सर्गः ॥ ७४ ॥ जब शबरी अपनी तपस्याके प्रभावसे स्वर्गको चलीगई तब धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मण जीके सहित चिन्तनाकरनें लगे ॥ १ ॥ वह उन धर्मात्मा महर्षि गणोंका अद्भुत प्रभाव विचार एकही परम हितकारी अपने भ्राता श्री लक्ष्मणजीसे वोले ॥ २ ॥ हे सौम्य! हमने उन विशुद्धात्मा महर्षियोंके आश्चर्य युक्त यह आश्रम देखे यहांपर मृग और व्याघ्र लोग वैर भाव छोडकर विचरण करते हैं और अनेक प्रकारके पक्षी भी वास

यत्रतेसुकृतात्मानोविहरंतिमहर्षयः ॥ तत्पुण्यंशबरीस्थानंजगामात्मसमाधिना ॥ ३५ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणे वाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेचतुःसप्ततितमःसर्गः ॥ ७४ ॥ ॥ छ ॥ ॥ दिवंतुतस्यांयातायांशबर्यांस्वे नतेजसा ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्राचिंतयामासराघवः ॥ १ ॥ चिंतयित्वातुधर्मात्माप्रभावंतंमहात्मनाम् ॥ हितका रिणमेकाग्रंलक्ष्मणंराघवोऽब्रवीत् ॥ २ ॥ दृष्टोमयाश्रमःसौम्यवह्वाश्चर्यःकृतात्मनाम् ॥ विश्वस्तमृगशार्दूलोनाना विहगसेवितः ॥ ३ ॥ सप्तानांचसमुद्राणांतेषांतीर्थेषुलक्ष्मण ॥ उपस्पृष्टंचविधिवत्पितरश्चापितर्पिताः ॥ ४ ॥ प्रन ष्टमशुभंयन्नःकल्याणंसमुपस्थितम् ॥ तेनत्वेतत्प्रहृष्टंमेमनोलक्ष्मणसंप्रति ॥ ५ ॥ हृदयेमेनरव्याघ्रशुभमाविर्भवि ष्यति ॥ तदागच्छगमिष्यावःपंपांतांप्रियदर्शनाम् ॥ ६ ॥ ऋष्यमूकोगिरिर्यत्रनातिदूरेप्रकाशते ॥ यस्मिन्वसति धर्मात्मासुग्रीवोंशुमतःसुतः ॥ ७ ॥ नित्यंवालिभयात्त्रस्तश्चतुर्भिःसहवानरैः ॥ अहंत्वरेचतंद्रष्टुंसुग्रीवंवानरर्षभम् ॥ ८ ॥

करतेहैं ॥ ३ ॥ उनके स्थापन किये हुये इन सप्त सागर तीर्थोंमें हमनें यथा विधान से स्नान और पितृ लोगोंको तर्पण भी किया ॥ ४ ॥ इससे हमारे अशुभ भी नष्ट होगये और कल्याण भी प्राप्त होगया हे लक्ष्मण इस्से हमारा मन इस समय वहुत ही प्रफुल्ल हो रहाहै ॥ ५ ॥ और हे नर व्याघ्र! इस समय हमारा हृदय भी शुभ भावसे पूरितहै सो अब अच्छाही होगा इस कारण हम उस मनोहर पंपासर पर चलें ॥ ६ ॥ जिस पंपाके निकट ही ऋष्यमूक पर्वत प्रकाशित होरहाहै जहांपर धर्मात्मा सूर्यके पुत्र सुग्रीवजी वसतेहैं ॥ ७ ॥ नित्य वालिके भयसेभीत चारों वानरों

वीर्यवान्, महातेजस्वी, महादीतिमान्, सत्यप्रतिज्ञ, नीतिशास्त्रका जाननेंवाला, धारण शक्ति युक्त महान् ॥ १३ ॥ दक्ष प्रगल्भ प्रकाशमान और महाबल पराक्रमयुक्तहै। परन्तु उस महात्माको राज्यके कारण वालिनें घरसे निकाल दियाहै ॥ १४ ॥ वह निश्चयही सीताके ढूंढनें भालनेंमें आपका सहायक और मित्र होगा। सो आप अब शोक करनेंमें अपने मनको न लगाइये वहां जाइये ॥ १५ ॥ कोईभी होनहारको नहीं मेट सकता, जो होनहारहै वह अवश्यही होगी, हे इक्ष्वाकुश्रेष्ठ! कालकी गति बडी दुर्गमहै ॥ १६ ॥ इस कारणसे हेवीर! आप शीघ्रही इस स्थानसे महापराक्रमवान सुग्रीवके पास जाकर उस्से मित्रता कर लीजिये हे रघुनंदन! इसी समय आप चले जाइये ॥ १७ ॥ प्रज्वलित अग्निके

दक्षःप्रगल्भोद्युतिमान्महाबलपराक्रमः ॥ भ्रात्राविवासितोवीरराज्यहेतोर्महात्मना ॥ १४ ॥ सतेसहायोमित्रंच सीतायाःपरिमार्गणे ॥ भविष्यतिहितेराममाचशोकेमनःकृथाः ॥ १५ ॥ भवितव्यंहितच्चापिनतच्छक्यमिहान्यथा ॥ कर्तुमिक्ष्वाकुशार्दूलकालोहिदुरतिक्रमः ॥ १६ ॥ गच्छशीघ्रमितोवीरसुग्रीवंतंमहाबलम् ॥ वयस्यंतंकुरुक्षिप्रमितोगत्वाद्यराघव ॥ १७ ॥ अद्रोहायसमागम्यदीप्यमानेविभावसौ ॥ नचतेसोऽवमंतव्यःसुग्रीवोवानराधिपः ॥ १८ ॥ कृतज्ञःकामरूपीचसहायार्थीचवीर्यवान् ॥ शक्तौह्यद्ययुवांकर्तुकार्यंयस्यचिकीर्षितम् ॥ १९ ॥ कृतार्थोवाऽकृतार्थोवातवकृत्यंकरिष्यति ॥ सऋक्षरजसःपुत्रःपंपामटतिशंकितः ॥ २० ॥ भास्करस्यौरसःपुत्रोवालिनाकृतकिल्बिषः ॥ संनिधायायुधंक्षिप्रमृष्यमूकालयंकपिम् ॥ २१ ॥

सन्मुख उसको साक्षीकर सुग्रीवसे मित्रता कीजिये, परन्तु उस वानरनाथका अपमान आप कभी न कीजिये ॥ १८ ॥ क्योंकि कृतज्ञहै कामरूपी इच्छानुसार रूप धारण करलेनेंवालाहै वीर्यवान्भीहै, और विशेष करके इस समय स्वयंभी किसीकी चाहताहै सो आपभी उसके कार्यको कर देंगे ॥ १९ ॥ फिर वह कार्यका चाहनेंवाला सुग्रीव सफल मनोरथ हो आपका कार्य कर देगा वह ऋक्षराजकी स्त्रीमें सूर्य भगवानसे उत्पन्न हुआ है, और इस समय भाईकी शंकासे पंपाके किनारे २ फिरा करता है॥२०॥ सूर्यनारायणका औरसपुत्र वालिके संग वैर होनेंके कारण दुःखित है इस्से आप अस्त्र शस्त्र दूर धरकर ऋष्यमूक पर्वत पर बैठे हुए उस

रेतीसे घिरा हुआ है ॥१७॥वह पंपासर मछलियें और कछुओंसे शोभित फैली फली बेलें जिसको सखियोंके समान घेरे हुये हैं जिसके किनारे२ बहुतसे वृक्ष लगे हुये हैं, गन्धर्व, किन्नर, सर्प, यक्ष, और राक्षसगण ॥ १८ ॥ उसकेइधर उधर घूमते हैं और वह अनेक जातिके वृक्ष और लताओंसे घिरा हुआ है उसका जल शीतल और महाशोभायमान है ॥ १९ ॥ वह कहीं लाल कमल और कल्हारसे छारहाहै इस्से लाल वर्ण,और कहीं नीलेकमल फूलोंके खिलनेंसे नीला और कहीं बबूलोंसे छायाजानेके कारण श्वेत वर्णहो गया है और अनेक वर्णोंसे चित्रित होनेके कारण रंग बिरंगी हाथीकी झूलकी समान शोभायमान है ॥२०॥वह अरविन्द, उत्पल और पुष्पित आम वनके समूह पूरित और मयूरोंके शब्दसे शब्दायमान ॥ २१ ॥ पंपा

मत्स्यकच्छपसंबाधांतीरस्थद्रुमशोभिताम् ॥ सखीभिरेवसंयुक्तांलताभिरनुवेष्टिताम् ॥ १८ ॥ किन्नरोरगगंधर्वयक्ष राक्षससेविताम् ॥ नानाद्रुमलताकीर्णांशीतवारिनिधिंशुभाम् ॥१९ ॥ पद्मसौगंधिकैस्ताम्रांशुक्लांकुमुदमंडलैः ॥ नीलां कुवलयोद्घाटैर्बहुवर्णांकुथामिव॥ २० ॥ अरविंदोत्पलवतींपद्मसौगंधिकायुताम् ॥ पुष्पिताम्रवणोपेतांबर्हिणोद्घुष्टनादिताम् ॥ २१ ॥ सतांदृष्ट्वाततःपंपांरामःसौमित्रिणासह ॥ विललापचतेजस्वीरामोदशरथात्मजः ॥ २२ ॥ तिलकैर्बीजपूरैश्चवटैःशुक्लद्रुमैस्तथा ॥ पुष्पितैःकरवीरैश्चपुन्नागैश्चसुपुष्पितैः ॥ २३ ॥ मालतीकुंदगुल्मैश्चभंडीरैर्निचुलैस्तथा ॥ अशोकैःसप्तपर्णैश्चकेतकैरतिमुक्तकैः ॥ २४ ॥ अन्यैश्चविविधैर्वृक्षैःप्रमदेवोपशोभिताम् ॥ अस्यास्तीरेतुपूर्वोक्तःपर्वतोधातुमंडितः ॥ २५ ॥ ऋष्यमूकइतिख्यातश्चित्रपुष्पितपादपः ॥ हरिर्ऋक्षरजोनाम्नःपुत्रस्तस्यमहात्मनः ॥ २६ ॥

सरोवरको रामचन्द्रजीनें लक्ष्मणजीके सहित देखा उसको देखकर, तेजस्वी दशरथ कुमार श्रीरामचन्द्रजी विलाप करनें लगे ॥ २२ ॥ श्रीरामचंद्रजीने फिर देखाकी तिलक बीज पूरक, वट लोध, द्रुम पुष्पित करवीर फूला हुआ,पुन्नाग ॥२३॥ मालती,कुंद,गुल्म,भांडीर, निचुल, अशोक सप्तवर्ण केतकी, चमेली अतिमुक्तक॥२४॥ इत्यादि औरभी अनेकप्रकारके वृक्षवहां शोभित होरहेहैं श्रीरामचंद्रजी बोले, इसके ही किनारे पहले कहा हुआ धातुओंसे सजा हुआ पर्वत ॥ २५ ॥ विख्यात ऋष्यमूक विचित्र पुष्प युक्त वृक्षोंसे युक्तहै महात्मा हरि ऋक्षरजके पुत्र ॥ २६ ॥ महावीर

वीर्यवान्, महातेजस्वी, महादीप्तिमान्, सत्यप्रतिज्ञ, नीतिशास्त्रका जाननेंवाला, धारण शक्ति युक्त महान् ॥ १३ ॥ दक्ष प्रगल्भ प्रकाशमान और महाबल पराक्रमयुक्तहै। परन्तु उस महात्माको राज्यके कारण वालिनें घरसे निकाल दियाहै ॥ १४ ॥ वह निश्चयही सीताके ढूंढनें भालनेंमें आपका सहायक और मित्र होगा। सो आप अब शोक करनेंमें अपने मनको न लगाइये वहां जाइये ॥ १५ ॥ कोईभी होनहारको नहीं मेट सकता, जो होनहारहै वह अवश्यही होगी, हे इक्ष्वाकुश्रेष्ठ! कालकी गति बडी दुर्गमहै ॥ १६ ॥ इस कारणसे हेवीर! आप शीघ्रही इस स्थानसे महापराक्रमवान सुग्रीवके पास जाकर उस्से मित्रता कर लीजिये हे रघुनंदन! इसी समय आप चले जाइये ॥ १७ ॥ प्रज्वलित अग्निके

दक्षःप्रगल्भोद्युतिमान्महाबलपराक्रमः ॥ भ्रात्राविवासितोवीरराज्यहेतोर्महात्मना ॥ १४ ॥ सतेसहायोमित्रंच सीतायाःपरिमार्गणे ॥ भविष्यतिहितेराममाचशोकेमनःकृथाः ॥ १५ ॥ भवितव्यंहितच्चापिनतच्छक्यमिहान्यथा ॥ कर्तुमिक्ष्वाकुशार्दूलकालोहिदुरतिक्रमः ॥ १६ ॥ गच्छशीघ्रमितोवीरसुग्रीवंतंमहाबलम् ॥ वयस्यंतंकुरुक्षिप्रमितोगत्वाद्यराघव ॥ १७ ॥ अद्रोहायसमागम्यदीप्यमानेविभावसौ ॥ नचतेसोऽवमंतव्यःसुग्रीवोवानराधिपः ॥ १८ ॥ कृतज्ञःकामरूपीचसहायार्थीचवीर्यवान् ॥ शक्तौह्यद्ययुवांकर्तुंकार्यंयस्यचिकीर्षितम् ॥ १९ ॥ कृतार्थोवाऽकृतार्थोवातवकृत्यंकरिष्यति ॥ सऋक्षरजसःपुत्रःपंपामटतिशंकितः ॥ २० ॥ भास्करस्यौरसःपुत्रोवालिनाकृतकिल्बिषः ॥ संनिधायायुधंक्षिप्रमृष्यमूकालयंकपिम् ॥ २१ ॥

सन्मुख उसको साक्षीकर सुग्रीवसे मित्रता कीजिये, परन्तु उस वानरनाथका अपमान आप कभी न कीजिये ॥ १८ ॥ क्योंकि वह कृतज्ञहै कामरूपी इच्छानुसार रूप धारण करलेनेंवालाहै वीर्यवान्भीहै, और विशेष करके इस समय स्वयंभी किसीकी सहायता चाहताहै सो आपभी उसके कार्यको कर देंगे ॥ १९ ॥ फिर वह कार्यका चाहनेंवाला सुग्रीव सफल मनोरथ हो आपका कार्य भी अवश्य कर देगा वह ऋक्षराजकी स्त्रीमें सूर्य भगवानसे उत्पन्न हुआ है, और इस समय भाईकी शंकासे पंपाके किनारे २ फिरा करता है॥२०॥ वह सूर्य नारायणका औरसपुत्र वालिके संग वैर होनेंके कारण दुःखित है इस्से आप अस्त्र शस्त्र दूर धरकर ऋष्यमूक पर्वत पर बैठे हुए उस

-हुआ है ॥१७॥ ...न हित कारण धरो, प्रभुनें मनुज शरीर । ऋषि मुनियनकी दासकी, दूर करी सवपीर ॥
गन्धर्व, कि... अनुग्रह अस करो, रहे तुम्हारे ध्यान । प्रभु ज्वालापरसादको, यह वरदान न आन ॥
जिमि ... ऋषियनसों भयो, प्रभुको शुभ संवाद । सो सव भाषामें कियो, लख ज्वालापरसाद ॥
पढहिं स... नकृपा करि,सुमिरहिंलक्ष्मणराम । यामें कुछ संशय नहीं, सिद्ध होत सव काम ॥

इदं वा... ीकीयरामायणारण्यकाण्डं भाषाटीकासहितं श्रीकृष्णदासात्मजखेमराजेन
मुम्बय्यां स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वराख्य" यंत्रालये मुद्रितम् शके १८१४

पुस्तकमिलनेका ठिकाना.

खेमराज श्रीकृष्णदास

"श्रीवेङ्कटेश्वर"छापाखाना बम्बई.

वृक्ष लगरहे हैं, जो यहांसे पश्चिमकी ओर दृष्टि आते हैं॥२॥ उन वृक्षोंमें जामन, चिरोंजी, कटहर, वट, पाकर, तेंदू, पीपल, कठचंपा, आम आदि अनेक प्रकारके है ॥ ३ ॥और धवई, नागकेशर, अगेथू, तिलक, किलवार, श्याम, अशोक, कदम्ब, कंदैल, यह सब पुष्पित वृक्ष लगे हैं॥४॥ हरे २ अशोक, नींबके वृक्ष सब प्रकारके औरभी उत्तम२वृक्ष हैं सो आप उनपर चढके अथवा बलसे हिलाकर फल भूमिमें गिराकर ॥५॥ अमृत समान फल खाते पीतें हुए दोनो जने चले जाओ हे काकुत्स्थ! उस फूले वृक्ष द्वारा परिपूर्ण वनसे आप निकल जांयगे ॥ ६ ॥ तब और एक नन्दन और उत्तर कुरुदेशके समान वन मिलेगा; जिसमें सब कालमें फले ऐसे मीठे फलवाले वृक्षभी लग रहे हैं॥ ७ ॥उस वनमें सब समयमें सब ऋतु चैत्र रथ बनकी समान विद्य

जंबूप्रियालपनसान्यग्रोधप्लक्षतिंदुकाः ॥ अश्वत्थाःकर्णिकाराश्चचूताश्चान्येचपादपाः ॥ ३ ॥ धन्वनानागवृक्षाश्च तिलकानक्तमालकाः ॥ नीलाशोकाःकदंबाश्चकरवीराश्चपुष्पिताः ॥ ४ ॥ अग्निमुख्याअशोकाश्चसुरक्ताःपारिभद्रकाः ॥ तानारुह्याथवाभूमौपातयित्वाचतान्बलात् ॥ ५ ॥ फलान्यमृतकल्पानिभक्षयित्वागमिष्यथ ॥ तदतिक्रम्यकाकुत्स्थवनंपुष्पितपादपम् ॥ ६ ॥ नंदनप्रतिमंत्वन्यत्कुरवस्तूत्तराइव ॥ सर्वकालफलायत्रपादपामधुरस्रवाः ॥ ७ ॥ सर्वेचऋतवस्तत्रवनेचैत्ररथेयथा ॥ फलभारनतास्तत्रमहाविटपधारिणः ॥ ८ ॥ शोभंतेसर्वतस्तत्रमेघपर्वतसंनिभाः ॥ तानारुह्याथवाभूमौपातयित्वाथवासुखम् ॥ ९ ॥ फलान्यमृतकल्पानिलक्ष्मणस्तेप्रदास्यति ॥ चंक्रमंतौवरान्शैलान्शैलाच्छैलंवनाद्वनम् ॥ १० ॥ ततःपुष्करिणींवीरौपंपांनामगमिष्यथ ॥ अशर्करामविभ्रंशांसमतीर्थामशेवलाम् ॥ ११ ॥ रामसंजातवालूकांकमलोत्पलशोभिताम् ॥ तत्रहंसाःप्लवाःक्रौंचाःकुरराश्चैवराघव ॥ १२ ॥

मान रहती हैं, वहां सब वृक्ष फल भारसे झुके हुए देख पडते हैं ॥ ८ ॥वह सब मेघों और पर्वतोंकी समान शोभायमान होते हैं । वहां परभी उनपर चढकर अथवा जोरसे हिला झुला भूमिमें गिराकर जैसा ठीक समझा जाय ॥ ९ ॥ अमृतकी समान फल वह वृक्ष आपको देंगे, इस भांतिसे दोनों भ्राता पर्वतों पर होते हुए इस बनसें उस बनमें जाय ॥ १० ॥ फिर पंपा नामक सरोवर पर पहुँचोगे, यह सरोवरमें शिवार, शर्करा, कंकर और फिसलनी भूमि नहीं है सब घाट बराबर बने हैं ॥११॥ हे राम! उसमें रेती बहुत श्रेष्ठ है विविध भांतिके कमल उसमें फूलते हैं, हंस, राजहंस, क्रौंच, कुरर

गयेहैं राक्षसके हाथसे मार डाले गये ॥ ३५ ॥ हेजानकी ! इस प्रकार हमारी सैनागण करके तुम्हारे स्वामी सर्व सैनागणके साथ मार डाले गयेहैं
तुम्हें विश्वाश दिलानेंके लिये हम उनका रुधिर से सना व कटाहुआ मस्तकभी यहां लेआयेहैं ॥ ३६ ॥ तिसके पीछे परम दुर्जय राक्षसेश्वर
रावण सीताजीको सुनानेंके लिये उनके निकट बैठीहुई राक्षसीसे बोला॥३७॥कि हेनिशाचरी! जो राक्षस रण भूमिसे स्वयं रामचंद्रका शिर काटकर ले
आयाहै, उस क्रूरकर्मकारी विद्युज्जिह्व राक्षसको शीघ्र यहां बुला लाओ ॥ ३८ ॥ तिसके पीछे रावणके ऐसा कहतेही यह मायावी विद्यु
ज्जिह्व धनुष बाणके सहित मायामय रामचंद्रजीका कटाहुआ शिर ग्रहणकर रावणके आगे आय प्रणाम करता हुआ ॥ ३९ ॥ रावण मंत्री श्रेष्ठ

एवंतवहतोभर्तासससैन्योममसेनया ॥ क्षतजार्द्ररजोध्वस्तमिदंचास्याहृतंशिरः ॥ ३६ ॥ ततःपरमदुर्धर्षोरावणोराक्षसेश्व
रः ॥ सीतायामुपशृण्वंत्यांराक्षसीमिदमब्रवीत् ॥३७॥ राक्षसंक्रूरकर्माणंविद्युज्जिह्वंसमानय ॥ येनतद्राघवशिरःसंग्रामा
त्स्वयमाहृतम् ॥ ३८ ॥ विद्युज्जिह्वस्तदागृह्यशिरस्तत्सशरासनम् ॥ प्रणामंशिरसाकृत्वारावणस्याग्रतःस्थितः ॥ ३९ ॥
तमब्रवीत्ततोराजारावणोराक्षसंस्थितम् ॥ विद्युज्जिह्वंमहाजिह्वंसमीपपरिवर्तिनम् ॥ ४० ॥ अग्रतःकुरुसीतायाःशीघ्रं
दाशरथेःशिरः ॥ अवस्थांपश्चिमांभर्तुःकृपणांसाधुपश्यतु ॥ ४१ ॥ एवमुक्तंतुतद्रक्षःशिरस्तत्प्रियदर्शनम् ॥ उपनि
क्षिप्यसीतायाःक्षिप्रमंतरधीयत ॥ ४२ ॥ रावणश्चापिचिक्षेपभास्वरंकार्मुकंमहत् ॥ त्रिषुलोकेषुविख्यातंरामस्यैतदि
तिब्रुवन् ॥ ४३ ॥ इदंतत्तवरामस्यकार्मुकंज्यासमावृतम् ॥ इहप्रहस्तेनानीतंतंहत्वानिशिमानुषम् ॥ ४४ ॥

महाजीभवाले विद्युज्जिह्वको आगे आया हुआ देखकर बोला ॥४०॥ रामचंद्रका कटा हुआ मस्तक तुम इन जानकीको दिखाओ, कारणकि इस समय
यह कृपणा सीता अपने स्वामीकी अंतिमा अवस्था देखें ॥ ४१ ॥ जब राक्षस विद्युज्जिह्वसे रावणनें ऐसा कहा तब वह प्रियदर्शन
शिर सीताजीको दिखायकर शीघ्रही अन्तर्ध्यान होगया ॥ ४२ ॥ तिसके पीछे रावण बोला, हेसीते! देखो यह उन्ही रामचंद्रका त्रिलोकवि
ख्यात दीप्तिशील और बडा भारी धनुषबाण है यह कहकर रावणने वह भयंकर धनुष फेंकदिया॥ ४३ ॥ हे सीते! पहँचान लो यह वही रोदा चढ़ा

पंपाका शीतल जल देखकर व पीकर आप शोक भूल जांयगे, और वहां फूले हुये तिलक, नक्तमालक आदिक वृक्षहैं ॥२१॥और हे रघुनंदन ! वहां पर भांति२के कमलभी फूल रहेहैं, परन्तु उन पुष्पोंकी माला बनाकर पहरनेंवाला वहां पर कोई पुरुष नहीं रहता॥२२॥वह फूल न कभी मुरझातेहैं, न अपने आपसे गिरतेहैं कारणकि वहां पर मतंग ऋषिके चेले जो ऋषि लोगहैं, वह एकाग्र चित्त होकर वहां रहतेथे॥२३॥वह सब शिष्य ऋषि लोग अपनें गुरूजीके लिये वनके फल फूल लेनें जाते हुये, वोझके मारे थक जानें पर उनके शरीरसे जो पसीनें की बूंदें पृथ्वीपर गिर पडतीथीं॥२४॥ वहीं २ स्वेद विन्दु उस कालमें उनके तपके प्रभावसे फूल होगये हैं हे रघुनंदन! ऋषिलोगोंके पसीनेंकी बूंदोंसे उत्पन्न होनेंके कारण यह सब

शिवोदकंचपंपायांदृष्ट्वाशोकंविहास्यसि ॥ सुमनोभिश्चितास्तत्रतिलकानक्तमालकाः ॥ २१ ॥ उत्पलानिचफुल्लानि पंकजानिचराघव ॥ नतानिकश्चिन्माल्यानितत्रारोपयितानरः ॥ २२ ॥ नचवैग्लानतांयांतिनचशीर्यंतिराघव ॥ मतंग शिष्यास्तत्रासन्नृषयःसुसमाहिताः॥२३॥तेषांभाराभितप्तानांवन्यमाहरतांगुरोः ॥ येप्रपेतुर्महींतूर्णंशरीरात्स्वेदबिंदवः ॥२४॥तानिमाल्यानिजातानिमुनीनांतपसातदा ॥ स्वेदबिंदुसमुत्थानिनविनश्यंतिराघव॥२५॥तेषांगतानामद्यापिदृश्यतेपरिचारिणी ॥ श्रमणीशबरीनामकाकुत्स्थचिरजीविनी ॥ २६ ॥ त्वांतुधर्मेस्थितानित्यंसर्वभूतनमस्कृतम् ॥ दृष्ट्वादेवोपमंरामस्वर्गलोकंगमिष्यति ॥ २७ ॥ ततस्तद्रामपंपायास्तीरमाश्रित्यपश्चिमम् ॥ आश्रमस्थानमतुलंगुह्यं काकुत्स्थपश्यसि॥ २८ ॥ नतत्राक्रमितुंनागाःशक्नुवंतितदाश्रमे ॥ ऋषेस्तस्यमतंगस्यविधानात्तच्चकाननम् ॥ २९ ॥

पुष्प अविनासी होगयेहैं ॥ २५ ॥ यद्यपि सब ऋषि लोग वहांसे अन्तर्ध्यान होगयेहैं परन्तु अवतक उनकी परिचारिका श्रमणी नामक शबरी वहांपर दृष्टि आतीहै ॥ २६ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! आप साक्षात् देवताओंकी समान सब लोकोंके नमस्कार करनें योग्य हैं नित्य धर्म परायण श्रमणी आपको अवलोकन करकै स्वर्गको चली जायगी ॥ २७ ॥ हे काकुत्स्थनंदन! जब आप पंपाके पश्चिम तीरपर जांयगे तब महर्षि मतंग का अनेक आश्रमोंमें गुप्तआश्रम दृष्टि आवैगा ॥ २८ ॥ पृथ्वीमें यह आश्रम अतुलनीय है मतंग मुनिजीके प्रभावके वशसे हाथीभी इस आ

समान पृथ्वीपर गिर पड़ीं ॥ ६ ॥ तिसके पीछे बड़े नेत्रोंवाली सीताजी सावधान होकर बहुत देरके पीछे चैतन्यता प्राप्त कर... निकट उस मस्तकको रखकर विलाप करनें लगी॥ ७॥ हा महाबाहो! हम जीवित हुईभी मारी गईं!, तुमनें वीर श्रेष्ठकी समान अपने पिताका सत्य प्रतिपालन किया, परन्तु हमनें विधवा होकर तुम्हारी यह सबसे पीछे अवस्था देखी ॥ ८ ॥ हा नाथ! पहले स्वामीका मरण होनेंसे वह स्त्रीके दोषसेही मरण कहलाताहै परन्तु हमको साध्वी (पतिव्रता) जानकरभी तुम किस कारणसे साधुकी समान पहलेही मृतक होगये ॥ ९ ॥ हाय! हम महादुःखके समुद्रमें डूबती हुई बड़े कष्टसे दिन विताय रहीहैं, हमें भरोसा था कि तुम हमे इस विपदसे छुड़ाओगे, परन्तु! हमारे जले भाग्यसे

सामुहूर्तात्समाश्वस्यपरिलभ्याथचेतनाम् ॥ तच्छिरःसमुपास्थायविललापायतेक्षणा ॥ ७ ॥ हाहतास्मिमहाबाहो वीरव्रतमनुव्रत ॥ इमांतेपश्चिमावस्थांगतास्मिविधवाकृता ॥ ८ ॥ प्रथमंमरणंनार्याभर्तुर्वैगुण्यमुच्यते ॥ सुवृत्तः साधुवृत्तायाःसंवृत्तस्त्वंममाग्रतः ॥ ९ ॥ महद्दुःखंप्रपन्नायामग्नायाःशोकसागरे ॥ योहिमामुद्यतस्त्रातुंसोपित्वंविनिपा तितः ॥ १० ॥ साश्वश्रूर्ममकौसल्यात्वयापुत्रेणराघव ॥ वत्सलातेयथाधेनुर्विवत्सावत्सलाकृता ॥ ११ ॥ उद्दि ष्टंदीर्घमायुस्तेदैवज्ञैरपिराघव ॥ अनृतंवचनंतेषामल्पायुरसिराघव ॥ १२ ॥ अथवानश्यतिप्रज्ञाप्राज्ञस्यापिसत स्तव ॥ पचत्येनंतथाकालोभूतानांप्रभवोह्ययम् ॥ १३ ॥ अदृष्टंमृत्युमापन्नाःकस्मात्त्वंनयशास्त्रवित् ॥ व्यसना नामुपायज्ञःकुशलोह्यसिवर्जने ॥ १४ ॥

आज तुमही मृतक होगये ॥ १० ॥ हानाथ! तुम सरीखा पुत्र पायकरभी हमारी वह सास कौशल्याजी किस कारणसे विना बच्चेकी गायके समान वत्सरहित होगई? ॥ ११ ॥ हे रामचंद्रजी! वशिष्ठ आदि दैवके जाननेंवाले महर्षियोंनें तुमको बड़ी आयुवाला कहाथा, परन्तु हमारे कुभाग्यसे तुम अल्पायु होकरही मृतक होगये, हा! अब उन महर्षियोंके वचन मिथ्या हुए ॥ १२ ॥ तुम पंडित होकरभी जो सावधानताका नाश होनेंके कारण शत्रुके वशमें पड़े, सो यह सब बात कालसे ही हुईहै, कारण कि कालही सर्व भूतोंका ईश्वरहै ॥ १३ ॥ हा नीतिशास्त्रविशारद! तुम तो सब विपदोंसे बचनेंका उपाय जानतेथे, और इन विपदोंके निवारण करनेंमें समर्थ होकरभी तुम

कोमल और सुन्दर वनैले पशु रुरु मृग देख शोक परित्याग करदेंगे, हे श्रीरामचंद्रजी ! उस पर्वतकी कंदराभी अति शोभायमान हैं ॥ ३९ ॥ उस कंदराके द्वारपर सदाही भारी शिला लगी रहतीहै, इस कारण सरलतासे उसमें प्रवेश करना नहीं हो सकता, उस गुफाके पूर्व द्वार पर एक बडा भारी अचल जलका कुंडहै ॥ ४० ॥ उस कुंडके किनारे पर बहुत सारे फूल व फलोंसे युक्त अनेकर भांतिके रमणीक वृक्ष लगेहैं, और वहींपर धर्मात्मा सुग्रीवजी वानरोंके सहित वास करतेहैं ॥ ४१ ॥ और वह सुग्रीवजी कभी२ उस पर्वतके शिखर परभी बैठे रहतेहैं, इस प्रकारसे वह कबंध श्रीराम लक्ष्मणजीसे बताय ॥ ४२ ॥ फूलोंकी माला पहरे, सूर्यके समान प्रकाशित आकाशमें टिका हुआ शोभित होनें लगा,

रुरूनपेतानजयान्दृष्ट्वाशोकंप्रहास्यसि ॥ रामतस्यतुशैलस्यमहतीशोभतेगुहा ॥३९॥शिलापिधानाकाकुत्स्थदुःखंचास्याःप्रवेशनम्॥ तस्यागुहायाःप्राग्द्वारेमहान्शीतोदकोह्रदः ॥४० ॥ बहुमूलफलोरम्योनानानगसमाकुलः॥तस्यांवसतिधर्मात्मासुग्रीवःसहवानरैः ॥ ४१ ॥ कदाचिच्छिखरेतस्यपर्वतस्यापितिष्ठति ॥ कबंधस्त्वनुशास्यैवंतावुभौरामलक्ष्मणौ ॥ ४२ ॥ स्रग्वीभास्करवर्णाभःखेव्यरोचतवीर्यवान् ॥ तंतुखस्थंमहाभागंतावुभौरामलक्ष्मणौ ॥ ४३ ॥ प्रस्थितौत्वंव्रजस्वेतिवाक्यमूचतुरंतिके॥गम्यतांकार्यसिद्ध्यर्थमितितावब्रवीत्सच ॥४४॥सुप्रीतौतावनुज्ञाप्यकबंधःप्रस्थितस्तदा ॥ ४५ ॥ सतत्कबंधःप्रतिपद्यरूपंवृतःश्रियाभास्वरसर्वदेहः ॥ निदर्शयन्राममवेक्ष्यखस्थःसख्यंकुरुष्वेतितदाभ्युवाच ॥ ४६ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०आर०त्रिसप्ततितमःसर्गः ॥७३॥ ॥ तौकबंधेनतंमार्गंपंपायादर्शितंवने॥ आतस्थतुर्दिशंगृह्यप्रतीचींनृवरात्मजौ ॥ १ ॥

उस बडे भाग्यवालेको श्रीराम लक्ष्मणजीनें देखकर ॥ ४३ ॥ उस कबंधसे कहा कि अच्छा इस समय हम सुग्रीवके निकट जाते हैं, और तुमभी स्वर्गको जाओ ॥ ४४ ॥ तव कबंध श्रीराम लक्ष्मणजीकी आज्ञा लेकर प्रसन्न होकर स्वर्गको चला ॥४५॥ उस कालमें कबंध अपना पहला रूपप्राप्त करके शोभा समन्वित और प्रदीप्त शरीर होकर श्रीरामचन्द्रजीकी ओर दृष्टि करके कहने लगा कि आप सुग्रीवके साथ मित्रता स्थापन कीजिये ॥ ४६॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आदिकाव्ये आरण्यकांडे त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥७३॥जब कबंध इस प्रकारसे कहकर स्वर्गको चला गया तब श्रीराम लक्ष्म

अपने साथ लेते चलो ॥२१॥ हे भली गतिको पहुंचे हुए! हमको दुःख भोग करनेंके लिये इस लोकको छोडकर तुम किस वास्ते परलोक... मार डाले गयेहैं
॥२२॥हाय !!! तुम्हारा-यह मंगलमय मनोहर शरीर केवल हमही भेंटतीथीं अब वही शरीर राक्षस लोगों करकै इधर उधर खेंचा जाता होगा! ॥२३॥
तुमनें बहुत दक्षिणाके साथ अग्निष्टोमादि यज्ञ करकै जो संस्कार कियेथे, इस समय अग्निहोत्रद्वारा तुम वह संस्कार क्यों नहीं ग्रहण करते ॥२४॥
हाय ! हम तीन जने अयोध्या पुरीसे वनवास करनेंको आयेथे; परन्तु अब कौशिल्याजी इकले लक्ष्मणजीकोही लौटा आये देखकर शोकके
समुद्रमें डूब जांयगी ॥ २५ ॥ तिसके पीछे जब वह लक्ष्मणजीसे तुम्हारा वृत्तान्त पूछेंगी. तब लक्ष्मणजीभी निश्चयही वानरोंकी सैनाका वध,

कस्मान्मामपहायत्वंगतोगतिमतांवर ॥ अस्माल्लोकादमुंलोकंत्यक्त्वामामपिदुःखिताम् ॥ २२ ॥ कल्याणैरुचिरंगात्रं
परिष्वक्तंमयैवतु ॥ क्रव्यादैस्तच्छरीरंतेनूनंविपरिकृष्यते ॥ २३ ॥ अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्टवानाप्तदक्षिणैः ॥ अग्नि
होत्रेणसंस्कारंकेनत्वंनतुलप्स्यसे ॥ २४ ॥ प्रव्रज्यामुपपन्नानांत्रयाणामेकमागतम् ॥ परिप्रेक्ष्यतिकौसल्यालक्ष्मणं
शोकलालसा ॥ २५ ॥ सतस्याःपरिपृच्छंत्यावधंमित्रबलस्यते ॥ तवचाख्यास्यतेनूनंनिशायांराक्षसैर्वधम् ॥ २६ ॥
सात्वांसुप्तंहतंज्ञात्वामांचरक्षोगृहंगताम् ॥ हृदयेनावदीर्णेननभविष्यतिराघव॥२७॥ ममहेतोरनार्यायाअनघःपार्थिवा
त्मजः ॥ रामःसागरमुत्तीर्यवीर्यवान्गोष्पदेहतः ॥ २८ ॥ अहंदाशरथेनोढामोहात्स्वकुलपांसनी ॥ आर्यपुत्रस्यरामस्य
भार्यामृत्युरजायत ॥२९॥ नूनमन्यांमयाजातिंवारितंदानमुत्तमम् ॥ याहमद्यैवशोचामिभार्यासर्वातिथेरिह ॥ ३० ॥

और जिस राक्षसोंसे तुम मार डाले गये वह सर्व वार्ता कहेंगे ॥ २६ ॥ हा राघव ! उस समय तुमको सोते हुए नाशको प्राप्त और हमको राक्षसके
घरमें घिरी हुई सुनैगी, तब क्या उनका हृदय शतखंड नही हो जायगा? ॥ २७ ॥ हाय ! मुझ खोटे शीलवालीकेही लिये पापरहित राजकुमार
श्रीरामचंद्रजीके समुद्रके पार होकर एक गौके खुरभर पानीमें डूब गये ॥ २८ ॥ हाय! आर्यपुत्र श्रीरामचंद्रजीनें अज्ञानकेही वश इस कुल
नाशिनीके साथ विवाह कियाथा, कारण कि मुझ भार्याकेही परिणाममें श्रीरामचंद्रजीकी मृत्यु हुई ॥२९॥ हे आर्य ! जब कि हम अतिथि लोगोंके

आज आपके दर्शनोंसे मेरे तपकी सिद्धि हुई, जन्म सफल हुआ, गुरु गणोंकी पूजा भली भांतिसे होगई ॥११॥ और तपस्याभी सार्थक होगई, हे पुरुषोत्तम! आप देवताओंमें श्रेष्ठ हैं सो इस समय आपकी पूजा करनेसे हमें ब्रह्मलोक प्राप्त होगया ॥ १२ ॥ हे सौम्य! हे मान देनें वाले हे शत्रुघाती! आपके शुभकारी नेत्रोंकी दृष्टि पडनेंसे हम पवित्र होगई, अब आपके प्रसादसे हमको सब अक्षय लोकोंकी प्राप्ति हो जायगी ॥१३॥ जिनकी हम सेवा करतीथीं वह ऋषि आपके चित्रकूट पर्वतपर पधारतेही अनुपम देदीप्यमान देव विमानोंमें सवार होकर इस आश्रमसें स्वर्गको चले गये हैं ॥ १४ ॥ वह सब महा भाग्यवान धर्मात्मा महर्षि लोक स्वर्ग जानेंके समय हमसे कह गये कि श्रीरामचन्द्रजी तुम्हारे इस पुण्य जनक

अद्यप्राप्तातपःसिद्धिस्तवसंदर्शनान्मया ॥ अद्यमेसफलंजन्मगुरवश्चसुपूजिताः ॥ ११ ॥ अद्यमेसफलंतप्तंस्वर्गश्चैवभ विष्यति ॥ त्वयिदेववरेरामपूजितेपुरुषर्षभ ॥ १२ ॥ तवाहंचक्षुषासौम्यपूतासौम्येनमानद ॥ गमिष्याम्यक्षयान् लोकांस्त्वत्प्रसादादरिंदम ॥ १३ ॥ चित्रकूटंत्वयिप्राप्तेविमानैरतुलप्रभैः ॥ इतस्तेदिवमारूढायानहंपर्यचारिषम् ॥१४॥ तैश्चाहमुक्ताधर्मज्ञैर्महाभागैर्महर्षिभिः ॥ आगमिष्यतितेरामःसुपुण्यमिममाश्रमम् ॥ १५ ॥ सतेप्रतिग्रहीतव्यःसौमित्रिसहितोऽतिथिः ॥ तंचदृष्ट्वावराँल्लोकानक्षयांस्त्वंगमिष्यसि ॥ १६ ॥ एवमुक्तामहाभागैस्तदाहंपुरुषर्षभ ॥ म यातुसंचितंवन्यंविविधंपुरुषर्षभ ॥ १७ ॥ तवार्थेपुरुषव्याघ्रपंपायास्तीरसंभवम् ॥ एवमुक्तःसधर्मात्माशबर्याशबरी मिदम् ॥ १८ ॥ राघवःप्राहविज्ञानेतांनित्यमबहिष्कृताम् ॥ दनोःसकाशात्तत्त्वेनप्रभावंतेमहात्मनाम् ॥ १९ ॥

आश्रममें आमेंगे ॥ १५ ॥ सो तुम लक्ष्मणजीकी और उन श्रीरामचन्द्रजीकी अतिथिकी समान आदरसत्कारसे पूजा करना, उनके दर्शन करनेसे ही तुमको सर्व अक्षय लोकोंकी प्राप्ति हो जायगी ॥ १६ ॥ हे पुरुषोत्तम! उस समय वह महाभाग्यशाली महर्षिलोग हमसे इस प्रकार कह गयेथे हे पुरुषश्रेष्ठ! तभीसे हमनें विविध भांतिके भले २ फल ढूंढकर॥ १७ ॥आपकी सेवाके लिये धररक्खे हैं यह सब फल इसी पंपाके तीरवाले वृक्षोंके हैं धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी शबरी करके इस प्रकार कहे जाकर उससे यह वचन बोले ॥ १८ ॥ कारण कि श्रीरामचन्द्रजीनें अपनें मनमें विचरा

कर्त्तव्याकर्त्तव्यका विचार और
देखनेंको जाता हुआ ॥ ३८ ॥ और उन मंत्रियोंके मुखसे श्रीरामचंद्रजीके पराक्रमको जान उसके विषयमें कर्त्तव्याकर्त्तव्यका विचार और
उस लायक कार्यके अनुष्ठान करनेंके निमित्त सभामें आया ॥ ३९ ॥ इस ओर जैसेही कि रावण यहांसे चला गया, कि वैसेही उसके संगरमें
वह मायाकल्पित रामचंद्रजीका शिर और विचित्र धनुषभी अन्तर्ध्यान होगया ॥ ४० ॥ इस समयमें राजा रावण भयंकर विक्रमकारी मंत्रियोंके
सहित रामचंद्रजीके संबंधमें इस समय क्या कर्त्तव्यहै यह मंत्रणा करनें लगा ॥ ४१ ॥ तब रावण अपने समीप बैठे हुए हितकारी अपने सैना
पति लोगोंसे समयानुसार वचन बोला ॥ ४२ ॥ किं बहुत शीघ्र भेरी (बिगुल) बजवाकर तुम लोग शीघ्रही हमारी सैनाको यहां बुला लाओ;

सतुसर्वसमर्थ्यैवमंत्रिभिःकृत्यमात्मनः ॥ सभांप्रविश्यविदधेविदित्वारामविक्रमम् ॥ ३९ ॥ अंतर्धानंतुतच्छीर्षं
तच्चकार्मुकमुत्तमम् ॥ जगामरावणस्यैवनिर्याणसमनंतरम् ॥ ४० ॥ राक्षसेंद्रस्तुतैःसार्धंमंत्रिभिर्भीमविक्रमैः ॥
समर्थयामासतदारामकार्यविनिश्चयम् ॥ ४१ ॥ अविदूरस्थितान्सर्वान्बलाध्यक्षान्हितैषिणः ॥ अब्रवीत्कालसदृशो
रावणोराक्षसाधिपः ॥ ४२ ॥ शीघ्रंभेरीनिनादेनस्फुटंकोणाहतेनमे ॥ समानयध्वंसैन्यानिवक्तव्यंचनकारणम् ॥ ४३ ॥
ततस्तथेतिप्रतिगृह्यतद्वचस्तदैवदूताःसहसामहद्बलम् ॥ समानयंश्चैवसमागतंचन्यवेदयन्भर्तरियुद्धकांक्षिणि ॥ ४४ ॥
इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०युद्धकांडेद्वात्रिंशःसर्गः ॥ ३२ ॥ ॥छ॥ सीतांतुमोहितांदृष्ट्वासरमानामराक्षसी ॥ आससादाथवै
देहींप्रियांप्रणयिनीसखी ॥१॥ मोहितांराक्षसेंद्रेणसीतांपरमदुःखिताम् ॥ आश्वासयामासतदासरमामृदुभाषिणी ॥२॥

परन्तु किसीसेभी बुलानेंका कारण न कहना ॥ ४३ ॥ तिसके पीछे वह युद्धाभिलाषी दूतगण "तथास्तु" कहकर राक्षसराज रावणके वचन
कहकर वचन मान, उस बड़ी भारी राक्षसी सैनाको वहां लायकर रावणके निकट उनके आगमनकी वार्ता रावणसे निवेदन की ॥ ४४ ॥ इत्यार्षे
श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे द्वात्रिंशःसर्गः ॥ ३२ ॥ इधर सीताजीको मोहित निहार अत्यन्त हितकारिणी सीताजीकी
सरमा नाम राक्षसी सखी जानकीजीके निकट आई ॥ १ ॥ और मीठे वचनोंकरके उस रावणके संताप देनेंसे मोहित हुई परम दुःखित

यह जो समस्त पुष्प देवता ओंको चढायेथे, सो वह अवतक नहीं मुर झायेहैं ॥ २७ ॥ आप सब वन देख चुके, और जो बात श्रवण करनेंके योग्यथी वह श्रवणभी कर चुके अव हमनें इस देहके छोडनेंका अभिलाप कियाहै सो आप आज्ञा दीजिये ॥ २८ ॥ जिनका यह आश्रमहै और जिनकी हम परिचारिका हैं उन विशुद्धात्मा महर्षियोंके निकट जानेंका हमारा अभिलाप हुआहै ॥ २९ ॥ श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके सहित शवरीकी यह धर्म युक्त वार्त्ता सुनकर अतिशय हर्षित हुये और बोले कि यह वडे आश्चर्य की बातहै ॥ ३० ॥ तिसके पीछे श्रीरामचंद्रजी दृढव्रत वाली शवरीसे बोले कि हे भद्रे! तुमने हमारी पूजा भली भांतिसे की अव तुम सुख सहित जहां जाना चाहती हो वहां पर चली जा

कृत्स्नंवनमिदंदृष्टंश्रोतव्यंचश्रुतंत्वया ॥ तदिच्छाम्यभ्यनुज्ञातात्यक्ष्याम्येतत्कलेवरम् ॥ २८ ॥ तेषामिच्छाम्यहं गंतुंसमीपंभावितात्मनाम् ॥ मुनीनामाश्रमोयेषामहंचपरिचारिणी ॥ २९ ॥ धर्मिष्ठंतुवचःश्रुत्वाराघवःसहलक्ष्मणः ॥ प्रहर्षमतुलंलेभेआश्चर्यमितिचाब्रवीत् ॥ ३० ॥ तामुवाचततोरामःशवरींसंशितव्रताम् ॥ अर्चितोऽहंत्वयाभद्रेगच्छ कामंयथासुखम् ॥ ३१ ॥ इत्येवमुक्ताजटिलाचीरकृष्णाजिनांबरा ॥ अनुज्ञातातुरामेणहुत्वात्मानंहुताशने ॥ ३२ ॥ ज्वलत्पावकसंकाशास्वर्गमेवजगामह ॥ दिव्याभरणसंयुक्तादिव्यमाल्यानुलेपना ॥ ३३ ॥ दिव्यांबरधरातत्रब भूवप्रियदर्शना ॥ विराजयंतीतंदेशंविद्युत्सौदामनीयथा ॥ ३४ ॥

ओ ❋ ॥ ३१ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें इस प्रकारसे आज्ञादी तब जटा, चीर और काले वसन पहरे हुये शवरीनें अपने शरीरको अनलमें आहुतिदे ३२॥ प्रज्वलित अग्निके समान स्वर्गको चली गई स्वर्ग में गमन करनेंके समय उसके आभरण मालायें व चंदनादि सुगन्धित लगानेंके सब पदार्थ दिव्य होगये ॥ ३३ ॥ उसकालमें वह दिव्यही वस्त्र पहरनेके कारण परम मनोहारिणी दृष्टि आतीथी और वह दीप्तिमान विद्युतकी समान

भामिनि जो तै नेहलगायो ॥ मुक्त भई सब आस पासते ब्रह्मलोक फलपायो॥ युगयुग कीरति चलिहै तेरी कियो कृपिन मन भायो ॥ प्रातकाल तेरो सुमिरन करिकै रैनको पापन शायो ॥ यों वलदेव प्रसाद कहैं प्रभु, वेद विरद अस गायो ॥
२९

वह अत्यन्त घोर पराक्रम करनेंवाले, और नित्यकाल अपने परायेकी रक्षाकरनें वाले, नीति शास्त्रके असाधारण जाननेंवाले परम कुलीनहैं, भ्राता लक्ष्मणभी उनके साथही साथ रहतेंहैं ॥ ११ ॥ हेसीते! शत्रुकी सैनाके नाश करनें वाले, अचिन्त्य बल पौरुषयुक्त, शत्रुके संहारकारी अपने लघु भ्राता लक्ष्मणके सहित श्रीरामचंद्रजी नहीं मारे गये ॥ १२ ॥ अन्याय बुद्धियुक्त क्रूरकर्म करनेंवाले सर्व प्राणियोंका विरोध करनेंवाले भयंकर रावणनें तुम्हारे निकट माया फैलाय यह धनुष बाण और शिर दिखलानेंका कार्य कियाहे ॥ १३ ॥ हेसीते! शोक बीतकर अब तुम्हारे बड़े भारी कल्याणका समय आयाहे। हेमान्ये! तुम बहुतही थोड़े समयमें बड़ी भारी सम्पत्ति प्राप्त करोगी, कारणकि तुम्हारे लिये जिस मंगल

विक्रांतोरक्षितानित्यमात्मनश्चपरस्यच ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्राकुलीनोनयशास्त्रवित् ॥११॥ हंतापरबलौघानामचिंत्यबलपौरुषः ॥ नहतोराघवःश्रीमान्सीतेशत्रुनिबर्हणः ॥१२॥ अयुक्तबुद्धिकृत्येनसर्वभूतविरोधिना ॥ इयंप्रयुक्तारौद्रेणमायामायाविनात्वयि ॥१३॥ शोकस्तेविगतःसर्वकल्याणंत्वामुपस्थितम् ॥ध्रुवंत्वाभजतेलक्ष्मीःप्रियंतेभवतिशृणु ॥१४॥ उत्तीर्यसागरंरामःसहवानरसेनया ॥ सन्निविष्टःसमुद्रस्यतीरमासाद्यदक्षिणम् ॥ १५ ॥ दृष्टोमेपरिपूर्णार्थःकाकुत्स्थःसहलक्ष्मणः ॥ सहितैःसागरांतस्थैर्बलैस्तिष्ठतिरक्षितः ॥ १६ ॥ अनेनप्रेषितायेचराक्षसालघुविक्रमाः ॥ राघवस्तीर्णइत्येवंप्रवृत्तिस्तैरिहाहृता ॥१७॥ सतांश्रुत्वाविशालाक्षिप्रवृत्तिंराक्षसाधिपः ॥ एषमंत्रयतेसर्वैःसचिवैःसहरावणः ॥१८॥

मय कार्यका प्रारंभ हमनें कियाहे, वह तुम सुनों ॥ १४ ॥ हम देख आई हैं कि श्रीरामचंद्रजी वानरसैनाके सहित समुद्रके पार होकर महा समुद्रके दक्षिण किनारे पर टिके हुएहे॥१५॥ हमनें अंतरीक्षमें टिक कर स्वयं देखाहे कि परिपूर्णार्थ रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी समुद्रके तीर टिकी वानरोंकी सैनासे रक्षित होकर अपने भ्राता लक्ष्मणजीके साथ विराजमानहो रहेहैं ॥ १६ ॥ और राक्षसोंके स्वामी रावणनें जिन लघु विक्रमी दूतोंको भेजाथा उन लोगोंनेंभी लौटकर रावणके निकट "रामचंद्रजी समुद्रको उतर आये" यह समाचार दियाहे ॥ १७ ॥ हेविशालनेत्रवाली! राक्षस

सहित वहांपर रहतेहैं हम चारों वानरों के सहित शीघ्रही उन वानरश्रेष्ठ सुग्रीव जीको वहांपर देखने चलेंगे ॥८॥कारण कि सीताजीको खोजना हमारा कार्य है,वह उन्हीं सुग्रीवके हाथमें है जब श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा तब लक्ष्मणजी उनसे बोले॥ ९॥ कि हमारा मन भी शीघ्रता करताहै इसकारण जलदी चलिये । यह सुन पृथ्वीश्वर दोनों भाई उस मतंगाश्रमसे चले॥१०॥और वहांसे चलकर पंपा नदीके तीर पर पहुंचे वहांपर देखा तो उसके चारों ओर अनेक प्रकारके पुष्पित वृक्ष लगेथे ॥ ११ ॥ वहांपर पहुंचने के समय कोयल अर्जुन तोता मेना आदि पक्षी गण वहांपर शब्द कर रहेथे ऐसा शब्दाय मान होता हुआ इस महावन ॥१२॥ ऐसे जात२के वृक्ष और समस्त सरोवरोंको देखते कामसे संतप्त हो श्रीरामचंद्रजी उस

तदधीनंहिमेकार्यंसीतायाःपरिमार्गणम् ॥ इतिब्रुवाणंतंवीरंसौमित्रिरिदमब्रवीत् ॥ ९ ॥ गच्छावस्त्वरितंतत्रममापि त्वरतेमनः ॥ आश्रमात्तुततस्तस्मान्निष्क्रम्यसविशांपतिः ॥ १० ॥ आजगामततःपंपांलक्ष्मणेनसहप्रभुः ॥ समीक्षमाणःपुष्पाढ्यंसर्वतोविपुलद्रुमम् ॥ ११ ॥ कोयष्टिभिश्चार्जुनकैःशतपत्रैश्चकीचकैः ॥ एतैश्चान्यैश्चबहुभिर्नादितंतद्वनंमहत् ॥ १२ ॥ सरामोविविधान्वृक्षान्सरांसिविविधानिच ॥ पश्यन्कामाभिसंतप्तोजगामपरमंह्रदम् ॥ १३ ॥ सतामासाद्यवैरामोदूरात्पानीयवाहिनीम् ॥ मतंगसरसंनामह्रदंसमवगाहत ॥ १४ ॥ तत्रजग्मतुरव्यग्रौराघवौहिसमाहितौ ॥ सतुशोकसमाविष्टोरामोदशरथात्मजः ॥ १५ ॥ विवेशनलिनींरम्यांपंकजैश्चसमावृताम् ॥ तिलकाशोकपुन्नागबकुलोद्दालकाशिनीम् ॥ १६ ॥ रम्योवपनसंबाधांरम्यसंपीडितोदकाम् ॥ स्फटिकोपमतोयांतांश्लक्ष्णवालुकसंतताम् ॥ १७ ॥

श्रेष्ठ ह्रदके तीर पहुंच गये ॥ १३ ॥ उस ह्रदका जल अति मीठा शीतल है और यह मतंग सरनामसे विख्यातथा ऐसे उस उत्तम जल वहते हुये मतंग सरमे श्रीरामचन्द्रजीनें स्नान किया॥१४॥तब वहां पर अव्याकुलतासे और मोहित चित्तसे श्रीरामचन्द्रजी गये फिर दशरथ कुमार श्रीरामचन्द्रजी शोकसे व्याकुल हो ॥ १५ ॥ पुरैनके पत्तोंसे छाये और कमल फूलोंसे छाया पंपा सरोवर पर तिलक,अशोक, पुन्नाग वकुल,उद्दाल इत्यादि वहुत लग रहे हैं ॥ १६ ॥ मनोहर वन उसके किनारे पर लगा हुआ है पद्मों करकै आवृत और स्फटिककी समान निर्मल जल और सुख स्पर्श चिकना

हिनहिनानेंका शब्द तुम श्रवण करो रावणके अनुयायी राक्षसगण हथियार उठाये गमन कर रहेहैं; देखते २ भयंकर रुओंको खड़ा करनेंवाली तेयारीयें होंने लगी, देखो! शोकका नाश करनेंवाली लक्ष्मी तुम्हारे अंगोंमें शोभायमान होरहीहै; राक्षसलोगोंको श्रीरामचंद्रजीसें भय उत्पन्न हुआ है ॥२७॥ कि जिस प्रकार इन्द्रजीसे दैत्योंको भय उत्पन्न होताहै। हे कमलदलसम नेत्रवाली जितेन्द्रिय अचिंत्य विक्रमकारी तुम्हारे पति श्रीरामचंद्रजी समरमें रावणको संहार करके तुमको प्राप्त करेंगे ॥२८॥ इन्द्रजीनें जिस प्रकार विष्णुजीकी सहायतासे शत्रु लोगोंपर विशेष पराक्रम प्रकाश कियाथा, वैसेही तुम्हारे स्वामी श्रीरामचंद्रजी अपने भ्राता लक्ष्मणजीके साथ संग्राममें राक्षसोंके ऊपर विचित्र विक्रम प्रगट करेंगे ॥ २९ ॥ जब

रामःकमलपत्रक्षोदैत्यानामिववासवः ॥ अवजित्यजितक्रोधस्तमचिंत्यपराक्रमः ॥रावणंसमरेहत्वाभर्तात्वाऽधिगमिष्यति ॥ २८ ॥ विक्रमिष्यतिरक्षस्सुभर्तातेसहलक्ष्मणः ॥ यथाशत्रुषुशत्रुघ्नोविष्णुनासहवासवः ॥ २९ ॥ आगतस्यहिरामस्यक्षिप्रमंकगतांसतीम् ॥ अहंद्रक्ष्यामिसिद्धार्थात्वांशत्रौविनिपातेते ॥ ३० ॥ अस्राण्यानंदजानित्वंवर्तयिष्यसिजानकि ॥ समागम्यपरिष्वक्तातस्योरसिमहोरसः ॥ ३१ ॥ अचिरान्मोक्ष्यतेसीतेदेवितेजघनंगताम् ॥ धृतामेकांबहून्मासान्वेणींरामोमहाबलः ॥ ३२ ॥ तस्यदृष्ट्वामुखंदेविपूर्णचंद्रमिवोदितम् ॥ मोक्ष्यसेशोकजंवारिनिर्मोकमिवपन्नगी ॥ ३३ ॥ रावणंसमरेहत्वानचिरादेवमैथिलि ॥ त्वयासमग्रःप्रिययासुखार्होलप्स्यतेसुखम् ॥ ३४ ॥

शत्रुका नाश होजायगा, तब तुम्हारा मनोरथभी पूर्ण होगा और हम तुम्हें यहां आये हुए तुम्हारे स्वामीके अंगमें विराजमान देखेंगी ॥ ३० ॥ हेजानकी! उन चौंड़ी छातीवाले अपने स्वामी श्रीरामचंद्रजीको भेंटकर तुम उनकी छातीपर बहुतही शीघ्र आनंदके आंसू बहाओगी ॥ ३१ ॥ हेदेवी! तुम कई महीनोंसे जो जांघोंतक लम्बायमान एक मात्र वेणी धारण किये हुएहो सो महाबलवान श्रीरामचंद्रजी शीघ्रही इस चोटीको बहुत शीघ्र अपने करपंकजोंसे सुधारदेंगे और तुम बहुतही शीघ्र इस विपदसे छूटोगी ॥३२॥ हेदेवी! जिस प्रकार सांपनि पुरानी केंचलीको छोड़ देतीहै; वैसेही तुम उदय हुए चंद्रमाकी समान अपने स्वामीका वह मुख देखकर आनंदके आंसू छोड़ोगी ॥ ३३ ॥ हेरामप्यारी जानकी! सुखके योग्य श्रीराम

नाथ सुग्रीवके पास चलें ॥ २७ ॥ सत्य विक्रमवान् श्रीरामचंद्रजी फिर लक्ष्मणजीसे
सुग्रीव नाम करके वहां वसते हैं सो हे नरश्रेष्ठ! उस व होकर किस भांतिसे सीताके विरह में जीवन धारण करें? ॥२८॥ श्रीरामचंद्रजी सीताजीमें
बोले कि हे लक्ष्मण! हम राज्यभ्रष्ट दीन और सीतागत महाशोक प्रकाश करते हुये उस कमल पुष्पोंसे युक्त मनोहर पंपाके तीरमें पैठते हुये॥२९॥
चित्त लगाये और मदनसे पीडितहो लक्ष्मणजीसे ऐ जाते हुये धीरे २ अनेक प्रकारके पक्षियोंके समूहसे आकुल सुन्दर वन शोभित पंपासरमें
और चारों ओरका विविध भांति वन देखते भा आदिकाव्ये पंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृत टीकायां आरण्यकांडे पंचसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥
पैठे ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मी ॥सुग्रीवमभिगच्छत्वंवानरेंद्रंनरर्षभ ॥२७ ॥ इत्युवाचपुनर्वाक्यंलक्ष्मणंसत्य
अध्यास्तेतुमहावीर्यःसुग्रीवइतिवि क्ष्मणजीवितुम् ॥ २८ ॥ इत्येवमुक्त्वामदनाभिपीडितःसलक्ष्मणंवाक्यमनन्यचे
विक्रमः ॥ कथंमयाविनासीताशक् युत्तमंशोकमुदीरयाणः ॥ २९ ॥ क्रमेणगत्वाप्रविलोकयन्वनंददर्शपंपांशुभद
तनः ॥ विवेशपंपांनलिनीमनोरम संकुलांविवेशरामःसहलक्ष्मणेन ॥ ३० ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआ
शंकाननाम् ॥ अनेकनानाविध सर्गः ॥ ७५ ॥ ॥ अतःपरंकिष्किंधाकांडंभविष्यति तस्यायमाद्यःश्लोकः ॥
दिकाव्येआरण्यकांडेपंचसप्ता कुलाम् ॥ रामःसौमित्रिसहितोविललापाकुलेंद्रियः ॥ १ ॥
सतांपुष्करिणींगत्वापद्मोत्पल
यह श्लोक है ॥ कमल, लाल कमल मछलियोंसे युक्त पंपासरोवरके किनारे लक्ष्मण सहित जाकर
इसके आगे किष्किंधाकांड है जिसके करनें लगे ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ७ ॥
महात्मा रामचन्द्र व्याकुलेन्द्रियहो

संकट हरन, विघ्न विनाशन आप ॥ ब्रह्म सच्चिदानंदघन, दूर करो संताप ॥
दोहा—सागर परम, नरतनु धारि खरार । लीला विस्तारी जगत, नित मंगल दातार ॥
गुणनंत सुमिरन करैं, गुणगण प्रभुके गाय । ते विनु श्रम संसारके, पारभये सुख पाय ॥

कोमल वाणीसे सरमासे बोली ॥ ५ ॥ निःसन्देह तुम आकाश पातालमें जायसकती हो; और वहभी हम जानती हैं कि ऐसा कोई कार्य नहीं जिसको कि हमारे लिये तुम न कर सको ॥ ६ ॥ जो कुछ भी हो यदि हमारा प्रियकार्य सिद्धकरना तुम चाहती हो और यदि इस कार्यमे तुम्हारी स्थिर मति हुई हो तौ रावण इस स्थानसे जायकर इस समय हमारे संबंधमें क्या विचार कर रहाहै; यह जान आओ कारण कि यही बात जाननेंकी हमारी इच्छा हुई है ॥ ७ ॥ जिसप्रकार लोग मदिरा पान करके मोहित होजाते हैं वैसेही मायाके बलसे क्रूर शत्रु रावण हमको मोहित करनेकी चेष्टा कर रहा है॥८॥ सरमे! रावण सदा घोर राक्षसियोंसे हमारी रक्षा करताहै; और उनसे हमको डरवा धमकायकर हमारी निन्दाभी कराता

समर्थागगनंगंतुमपिचत्वंरसातलम् ॥ अवगच्छाद्यकर्तव्यंकर्तव्यंतेमदंतरे ॥ ६ ॥ मत्प्रियंयदिकर्तव्यंयदिबुद्धिः स्थिरातव ॥ ज्ञातुमिच्छामितंगत्वाकिंकरोतीतिरावणः ॥ ७ ॥ सहिमायाबलःक्रूरोरावणःशत्रुरावणः ॥ मांमोहयतिदुष्टात्मापीतमात्रेववारुणी ॥ ८ ॥ तर्जापयतिमांनित्यंभर्त्सापयतिचासकृत् ॥ राक्षसीभिःसुघोराभिर्योमांरक्षतिनित्यशः ॥ ९ ॥ उद्विग्नाशंकिताचास्मिनस्वस्थंचमनोमम ॥ तद्भयाच्चाहमुद्विग्नाअशोकवनिकांगता ॥ १० ॥ यदिनामकथातस्यनिश्चितंवापियद्भवेत् ॥ निवेदयेथाःसर्वंतद्वरोमेस्यादनुग्रहः ॥ ११ ॥ साप्येवंब्रुवतींसीतांसरमा मृदुभाषिणी ॥ उवाचवचनंतस्याःस्पृशंतीबाष्पविक्लवम् ॥ १२ ॥

है॥९॥हमारा मन हमारे वशमें न रहकर सदा रुवा हुआ शंकायुक्त रहताहै;सखि! अधिक क्या कहैं, हम रावणके भयसेही अशोक वनमें वास करती हैं, परन्तु क्षणभरके लियेभी हमारे मनकी व्याकुलता दूर नहीं होती ॥ १० ॥ हे सरमे! रावणकी सभामें हमारे छोड देंनेके सम्बंधमें अथवा और कोई दूसरी परामर्श हो; वह यदि तुम हमारे निकट समस्त प्रकाश करके कहो; तौ तुम्हारी हमारे ऊपर बडीही दया होगी; बस यही वरदान हम तुमसे मांगतीहैं ॥ ११ ॥ मृदु वचन बोलनेंवाली सरमानें सीताजीके ऐसे वचन सुनकर अपने डुपट्टेके अंचलसे उनका

भयके मारे उठनें लगा तब राक्षस लोगोंनें बहुतसे पटे मार २ कर उनकी जांघें तोडदीं; ऐसी चोट खाय वहभी मर गया, और जड़ कटे पेड़की समान वहांपर पड़ाहै ॥ २७ ॥ वानरश्रेष्ठ मैन्द और द्विविद नामक दोनों जनें लंबे २ श्वास लेते रुदन करते २ लोहू लुहान शरीर हो मर गये ॥ २८ ॥ प्रथमही अस्त्र प्रहार करके (ऊ) शत्रुओंके मारनेवाले लोगोंके हाथ काट डाले गयेथे, पनस फल जिस प्रकार पृथ्वीपर गिरताहै, वैसेही वानर पनस पृथ्वीपर शरीरको फैलाये हुए पड़ाहै ॥ २९ ॥ वानर दधिमुख अनेक प्रकारके बाण चलाये जानेंसे मस्तक हीन होकर पर्वतकी कन्दरामें सदाके लिये सोय गयाहै । और महातेजस्वी कुमुद नाम वानरभी चुप चाप शब्दरहित हो पृथ्वीपर पड़ाहै ॥ ३० ॥ अंग

मैंदश्चद्विविदश्चोभौतौवानरवरर्षभौ ॥ निःश्वसंतौरुदंतौचरुधिरेणपरिवृतौ ॥२८॥ असिनाव्यायतौछिन्नौमध्येह्यरिनि
षूदनौ ॥ अनुप्वनतिमेदिन्यांपनसःपनसोयथा ॥ २९ ॥ नाराचैर्बहुभिश्छिन्नःशेतेदर्यांदरीमुखः ॥ कुमुदस्तुमहातेजा
निष्कूजन्सायकैर्हतः ॥ ३० ॥ अंगदोबहुभिश्छिन्नःशरैरासाद्यराक्षसैः ॥ परितोरुधिरोद्गारीक्षितौनिपतितोंऽगदः ॥३१॥
हरयोमथितानागैरथजालैस्तथापरे ॥ शयानामृदितास्तत्रवायुवेगैरिवांबुदाः ॥ ३२ ॥ प्रसृताश्चपरेत्रस्ताहन्यमाना
जघन्यतः ॥ अनुद्रुतास्तुरक्षोभिःसिंहैरिवमहाद्विपाः ॥ ३३ ॥ सागरेपतिताःकेचित्केचिद्गगनमाश्रिताः ॥ ऋक्षावृ
क्षानुपारूढावानरैर्व्यतिमिश्रिताः ॥३४॥ सागरस्यचतीरेषुशैलेषुचवनेषुच ॥ पिंगलास्तेविरूपाक्षैराक्षसैर्बहवोहताः ॥३५॥

दभी बहुतसे बाणोंसे छिन्न होकर मारागया, उसका अंगभी भूमिपर पड़ा हुआहै, और उसके सब अंगोंसे रुधिरकी धारा निकल रहीहैं ॥ ३१ ॥ और वायु वेगके प्रभावसे चलायमान मेघ मालाकी समान हाथी व रथोंके टकरानें और पिचनेंसे जितनी वानरसैना मारी गईहै उसकी कुछ गिनतीही नहीं हो सकती ॥ ३२ ॥ सिंह जिस प्रकार महागजोंके पीछे दौड़ताहै, वैसेही राक्षस लोगोंके हाथसे असंख्य वानर सैना भागती हुईभी गिरगई ॥ ३३ ॥ रीछ लोग वानर दलके साथ मिल व छिपकर वृक्षोंपर चढ़ गयेहैं, और कोई २ समुद्रमें गिर गयेहैं, और कोई २ आकाशका आश्रय ग्रहण किये हुएहैं ॥ ३४ ॥ समुद्रके किनारों पर पर्वत और बनोंमें जिन पीले अंगवाले वानरोंने आश्रय लियाथा; यह समस्त विरूपाक्ष

"कि हे रावण! शीघ्र श्रीरामचंद्रजीको आदर सहित तुम सीताजीको लौटादो; हे राजन्! उनका पराक्रम तौ तुम जानतेही हो, कि जनस्थानमें उन्होंनें कैसा अद्भुत कर्म कियाथा बस पराक्रमका तौ प्रमाण तौ इतनाही बहुत है॥२१॥ हे राजन्! समुद्रके पार आकर हनुमानजी सीताको देख कर गया यह क्या कुछ थोडी बात है? हे राक्षसराज! श्रीरामचंद्रजी साधारण मनुष्य नहीं है; कारण कि ऐसा कौन मनुष्यहै जो रणभूमिमें राक्षसोंको मार सकताहै" ॥२२॥ हे जानकि! इस प्रकारसे वृद्धमंत्री और रावणकी मातानें तुम्हें छोड देनेंके लिये रावणको बहुत समझाया बुझाया; परन्तु लालची पुरुष जिस प्रकार धनको किसी भांति नहीं छोड़ता वैसेही रावणकी इच्छा तुम्हें छोड़नेंकी नहीं है ॥ २३ ॥ हे

दीयतामभिसत्कृत्यमनुजेंद्रायमैथिली ॥ निदर्शनंतेपर्याप्तंजनस्थानेयदद्भुतम् ॥ २१ ॥ लंघनंचसमुद्रस्यदर्शनंच हनूमतः ॥ वधंचरक्षसांयुद्धेकःकुर्यान्मानुषोयुधि ॥ २२ ॥ एवंसमंत्रिवृद्धैश्चमात्राचबहुबोधितः ॥ नत्वामुत्सहतेमोक्तुमर्थमर्थपरोयथा ॥ २३ ॥ नोत्सहत्यमृतोमोक्तुंयुद्धेवामितिमैथिलि ॥ सामात्यस्यनृशंसस्यनिश्चयोह्येषवर्तते॥२४॥ तदेषांसुस्थिराबुद्धिर्मृत्युलोभादुपस्थिता ॥ भयान्नशक्तस्त्वांमोक्तुमनिरस्तःससंयुगे ॥ २५॥ राक्षसानांचसर्वेषामात्मनश्चवधेनहि ॥ निहत्यरावणंसंख्येसर्वथानिशितैःशरैः ॥ प्रतिनेष्यतिरामस्त्वामयोध्यामसितेक्षणे ॥ २६ ॥ एतस्मिन्नंतरेशब्दोभेरीशंखसमाकुलः ॥ श्रुतोवैसर्वसैन्यानांकंपयन्धरणीतलम् ॥ २७ ॥

सीते! रावणनें अपने सब मंत्रियोंके साथ यह निश्चय कियाहै कि हम प्राण रहते रामचंद्रकी सीता रामचंद्रको कभी नही देंगे ॥ २४ ॥ राक्षसोंके साथ स्वयं रावणभी जबतक न मरजायगा तबतक केवल मृत्युका भयंकर युद्ध न करनेंमें मति नहीं करेगा और न तुमको त्यागही करेगा ऐसा उस रावणनें निश्चय सिद्धान्तकर लियाहै ॥ २५ ॥ हे श्यामनेत्रवाली! तुम कुछभी चिन्ता न करो, श्रीरामचंद्रजी संग्राममें चलाये तीक्ष्ण बाणोंकी सहायतासे रावणका गर्व्व खर्व्व करकै तुमको अपनी राजधानी अयोध्यापुरीमें लेजांयगे ॥२६॥ सरमा इस प्रकारसे कह रहीथी कि इतनेमें

हुआ रामचंद्रजीका धनुषहै, जिसको रात्रि कालमें रामचंद्रजीका प्राण संहार करके प्रहस्त लायाहै ॥ ४४ ॥ तिसके पीछे रावण विद्युज्जिह्वका लाया हुआ वह मस्तक और यशस्विनी सीताजीके सामनें रखकर उनसे बोला"जो होंना था सो तौ होगया,अब तुम्हारा कर्तव्य यहीहै कि तुम हमारे वशमें होजाओ ॥ ४५ ॥ इ०श्रीमवा० आ०यु०एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥ तब सीताजी रामचंद्रजीका शरासन और उनका मस्तक देख और वह सुधिकर जो कि हनुमानजीनें कहाथा कि वानरराज सुग्रीवकी रामचंद्रजीसे मित्रता हुईहै बहुत देरतक रोंई ॥ १ ॥ जानकीजीने देखा कि कटे हुए मस्तकके दोनों नेत्र रामचंद्रजीकेही समानहैं, वैसाही मुखका रंग, केश, और ठोडी, व चूडामणिके सहितभी इसका कुछ अन

सविद्युजिह्वेनसहैवतच्छिरोधनुश्चभूमौविनिकीर्यमाणः ॥ विदेहराजस्यसुतांयशस्विनींततोऽब्रवीत्तांभवमेवशानुगा ॥ ४५ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेएकत्रिंशःसर्गः ॥ ३१ ॥ ॥ छ ॥ सासीतातच्छिरोदृष्ट्वातच्चकार्मुकमुत्तमम् ॥ सुग्रीवप्रतिसंसर्गमाख्यातंचहनूमता ॥ १ ॥ नयनेमुखवर्णंचभर्तुस्तत्सदृशंमुखम् ॥ केशान्केशांतदेशंचतंचचूडामणिंशुभम् ॥ २ ॥ एतैःसर्वैरभिज्ञानैरभिज्ञायसुदुःखिता ॥ विजगर्हेऽत्रकैकेयींक्रोशंतीकुररीयथा ॥ ३ ॥ सकामाभवकैकेयिहतोयंकुलनंदनः ॥ कुलमुत्सादितंसर्वंत्वयाकलहशीलया ॥ ४ ॥ आर्येणकिंनुकैकेय्याःकृतंरामेणविप्रियम् ॥ यन्मयाचीरवसनंदत्त्वाप्रव्राजितोवनम् ॥ ५ ॥ एवमुक्त्वातुवैदेहीवेपमानातपस्विनी ॥ जगामजगतींबालाछिन्नातुकदलीयथा ॥ ६ ॥

मेल नहींहै ॥ २ ॥ जनकनंदिनी सीताजी औरभी अनेक प्रकारके चिह्न देख निश्चय अपने स्वामीकी मृत्युका होना जान अत्यन्त दुःखित हुईं; और कुररी जिसप्रकार शोकसे व्याकुल होकर विलाप करतीहै, वैसेही विलापसे कैकेयीकी निन्दा कर कहनें लगी ॥ ३ ॥ हे कैकेयी! तुम्हारी मनोकामना पूरी हुई, हे क्लेशको प्यार करनेंवाली तुमसेही रघुकुलनंदन श्रीरामचंद्रजी निहत हुए, तुझकोही प्राप्त होकर बड़े भारी रघुकुलका नाश होगया ॥ ४ ॥ हाय!!! आर्यपुत्र श्रीरामचंद्रजीनें तेरा ऐसा क्या बुरा कियाथा, कि जो तैंनें चीरवसन पहरायकर हमारे सहित उनको बनोवास दिया!!! ॥ ५ ॥ इतनाही कहकर तपस्विनी छोटी अवस्थावाली जानकीजीकी देह कम्पायमान होंनेलगी, और वह जड़ कटे हु[illegible]

पंडित माल्यवान नामक रावणका नाना रावणके वचन सुनकर बोला ॥ ६ ॥ हेमहाराज! जो राजा चौदहविद्यानिधान होकर नीतिशास्त्रके अनुसार कार्य करताहै, वही शत्रुलोगोंको वश करके अपने ऐश्वर्यको सदा भोगते रहतेहैं ॥ ७ ॥ जो राजा समयके अनुसार शत्रुके साथ संधि और विग्रह (लड़ाई) करके अपने पक्षको बढाताहै, वही बड़ेभारी ऐश्वर्यको प्राप्त करताहै ॥ ८ ॥ राजा किसी समयभी शत्रुको तुच्छ समझकर छोड़ नहींदे जो आप शत्रुसे कम बलवानहो, या समान बलवालाहो, तब तौ संधि करले; परन्तु जो शत्रुसे अधिक बलवालाहो तब तौ शत्रुसे विग्रहही करना उचितहै ॥ ९ ॥ हेरावण! हमारी सम्मतिमें तौ जिसके लिये श्रीरामचंद्रजीसे युद्ध करतेहो उसी सीताको

विद्यास्वभिविनीतोयोराजाराजन्नयानुगः ॥ सशास्तिचिरमैश्वर्यमरींश्चकुरुतेवशे ॥ ७ ॥ संदधानोहिकालेनविगृह्णंश्चारिभिःसह ॥ स्वपक्षेवर्धनंकुर्वन्महदैश्वर्यमश्नुते ॥ ८ ॥ हीयमानेनकर्तव्योराज्ञासंधिःसमेनच ॥ नशत्रुमवमन्येत ज्यायान्कुर्वीतविग्रहम् ॥ ९ ॥ तन्मह्यंरोचतेसंधिःसहरामेणरावण ॥ यदर्थमभियुक्तोसिसीतातस्मैप्रदीयताम् ॥१०॥ तस्यदेवर्षयःसर्वेगंधर्वाश्चजयैषिणः ॥ विरोधंमागमस्तेनसंधिस्तेतेनरोचताम् ॥ ११ ॥ असृजद्भगवान्पक्षौद्वावेवहिपितामहः ॥ सुराणामसुराणांचधर्माधर्मौतदाश्रयौ ॥ १२ ॥ धर्मोहिश्रूयतेपक्षअमराणांमहात्मनाम् ॥ अधर्मोरक्षसांपक्षोह्यसुराणांचराक्षस ॥ १३ ॥ धर्मोवैग्रसतेऽधर्मंयदाकृतमभूद्युगम् ॥ अधर्मोग्रसतेधर्मंतदातिष्यःप्रवर्तते ॥ १४ ॥

लौटायकर उन रामचंद्रजीके साथ संधि करनाही तुमको उचितहै ॥ १० ॥ देवता गन्धर्व, व ऋषि लोग सबही की यह कामनाहै कि रामचंद्रजीकी जीतहो; इस कारण उनके साथ विरोध न करके आपके संधि करलैनी उचितहै ॥११॥ भगवान पितामह ब्रह्माजीनें सुर व असुर लोगोंके आश्रय वाले धर्म अधर्मरूप दो पक्ष बनायेहैं ॥ १२ ॥ हेनिशाचर! हमनें सुना है कि उसमें धर्म महात्मा देवताओंका, और अधर्म राक्षस लोगोंका पक्ष कह लाया जाताहै ॥ १३ ॥ जिस समय सतयुग लगताहै; उस समय धर्म अधर्मको ग्रास करलेताहै परन्तु जब अधर्म धर्मको लील

किस कारणसे इस अदृष्टकी मृत्युके वश हुए ॥ १४ ॥ हा कमललोचन! हमहीनें क्या क्रूर घोर रूपवाली कालरात्रि स्वरूप हो तुम्हें चिपटाय, तुम्हारी प्राणवायुको हरण कर लियाहै ? ॥ १५ ॥ हा महाबाहो! पुरुषश्रेष्ठ! तपस्विनीकी समान हमको परित्याग कर प्रियतमा स्त्रीकी समान पृथ्वीको छातीसे लगाये तुम कहां पड़ेहो? ॥१६॥ तुम हमारे साथ सुगन्धित द्रव्य और हारोंसे सदा जिसकी पूजा किया करतेथे और जो हमको भी बहुतही प्याराथा उसी तुम्हारे इस सुवर्णमय धनुषकी यह क्या अवस्था हुई है? ॥ १७ ॥ हा पापरहित! तुम निश्चयही स्वर्गधाममें हमारे श्वशुर पिताकी समान महाराज दशरथजीके व और दूसरे पितृलोगोंके साथमें मिल गयेहो ॥ १८ ॥ जो आ

यथात्वंसंपरिष्वज्यरौद्रयाऽतिनृशंसया ॥ कालरात्र्यामयाच्छिद्यहृतःकमललोचनः ॥ १५ ॥ इहशेषेमहाबाहोमांवि
हायतपस्विनीम् ॥ प्रियामिवयथानारींपृथिवींपुरुषर्षभ ॥१६॥ अर्चितंसततंयत्नाद्गंधमाल्यैर्मयातव ॥ इदंतेमत्प्रियं
वीरधनुःकांचनभूषितम् ॥ १७ ॥ पित्रादशरथेनत्वंश्वशुरेणममानघ ॥ सर्वैश्चपितृभिःसार्धंनूनंस्वर्गेसमागतः ॥ १८ ॥
दिविनक्षत्रभूतंचमहत्कर्मकृतंतथा ॥ पुण्यंराजर्षिवंशंत्वमात्मनःसमुपेक्षसे ॥ १९ ॥ किंमांनप्रेक्षसेराजन्किंवानप्र
तिभाषसे ॥ बालांबालेनसंप्राप्तांभार्यांमांसहचारिणीम् ॥ २० ॥ संश्रुतंगृह्णतापाणिंचरिष्यामीतियत्त्वया ॥ स्मर
तन्नामकाकुत्स्थनयमामपिदुःखिताम् ॥ २१ ॥

काशमें नक्षत्रके स्वरूपमें टिक रहेहैं उन राजर्षि त्रिशंकुके पवित्र वंशमें जन्म ग्रहण करके, तुमनें अपने पिताके वचनोंका पालनरूप बड़ा भारी कार्य किया, परन्तु ऐसा पुण्य प्राप्त करके भी जो ऐसे पवित्र वंशको त्याग आप स्वर्गको चले गये यह बहुतही अनुचित हुआ ॥ १९ ॥ हा राजन्! तुमनें बालकपनमें हीं जिस बालिकाको अपनी सम सुख दुःख भोग करनेंवाली, स्त्री कहकर स्वीकार कियाथा, अब तुम किस कारणसे उसकी बातका उत्तर नहीं देते? प्यारे! अब हमारी ओरको दृष्टि उठायकर भी नही देखते ॥ २० ॥ हे काकुत्स्थ! तुमनें विवाहमें पाणिग्रहण करनेके समय "तुम्हारेसहित धर्म कर्मका आचरण करेंगे" ऐसी जो प्रतिज्ञाकीथी, इस समय उसको याद करके [illegible]

ऋषि लोग जिस २ पुण्यवान स्थानमें ॥ २१ ॥ तपस्या करतेहैं; वह वहींसे राक्षस लोगोंको संतापित किया करतेहैं और तुमको कदाचित् यह गर्वहो कि वरदान पानेके प्रभावसे हमारा मरणहोभी नहीं सकता सो हे महाराज! यही वर तौ तुमनें ब्रह्माजीसे मांगाथा कि हम, देव, दानव पक्षसे न मरें; मनुष्य और वानरोंको तौ कुछ गिनकर इनसे तौ अवध्य मांगाही नहीं ॥ २२ ॥ परन्तु महाबलवान दृढ़ विक्रमकारी अजेय मनुष्य और गोपुच्छ वानर यहां आयकर गर्जन कर रहेहैं; इनसे कैसे निवटोगे; कारणकि इनके रोकनेंका पहलेसे आपनें कोई उपाय नहीं कियाहै ॥ २३ ॥ इस समय अनेक प्रकारके घोर उत्पात और विविध भांतिके घोर दुर्निमित्त दिखलाई देतेहैं; कि जिस्से हमको यह ज्ञात

चर्यमाणंतपस्तीव्रंसंतापयतिराक्षसान्॥देवदानवयक्षेभ्योगृहीतश्चवरस्त्वया ॥२२॥ मनुष्यावानराऋक्षागोलांगूलाम हाबलाः ॥ बलवंतइहागम्यगर्जंतिदृढविक्रमाः॥२३॥उत्पातान्विविधान्दृष्ट्वाघोरान्बहुविधान्बहून् ॥ विनाशमनुपश्या मिसर्वेषांरक्षसामहम् ॥ २४॥ खराभिस्तनिताघोरामेघाःप्रतिभयंकराः ॥ शोणितेनाभिवर्षंतिलंकामुष्णेनसर्वतः॥२५॥ रुदतांवाहनानांचप्रपतंत्यश्रुबिंदवः ॥ रजोध्वस्ताविवर्णाश्चनप्रभांतियथापुरम् ॥ २६ ॥ व्यालागोमायवोगृध्रावा श्यंतिचसुभैरवम् ॥ प्रविश्यलंकामारामेसमवायांश्चकुर्वते ॥ २७ ॥ कालिकाःपांडुरैर्दंतैःप्रहसंत्यग्रतःस्थिताः ॥ स्त्रि यःस्वप्नेषुमुष्णंत्योगृहाणिप्रतिभाष्यच ॥ २८ ॥

होताहै कि समस्त राक्षसोंका नाश होजायगा ॥ २४ ॥ हे रावण! हम गधोंको भयंकर शब्दसें रेंकताहुआ देखतेहैं; और बादल घोर शब्दसे गर्ज २ कर गरम रुधिरकी वर्षा करतेहैं. कि जिसको देखकर अत्यन्त डर लगताहै ॥ २५ ॥ सवारीके समस्त पशुगण रोतेहैं, कि जिस्से बराबर उनकी आंखोंसे आसुओंको बूंदे गिरती रहतीहैं; और समस्त दिशा विदिशा धूरिसे छाये रहनेंके कारण पहलेकी समान प्रकाशित नहीं होती ॥ २६ ॥ गीध, गीदड, सर्प इत्यादि मांस खानेंवाले पशु पक्षीगण लंकानगरको फुलवाड़ियोंमें प्रवेश करकै झुन्ड़ बांध २ भयंकर शब्द करतेहैं ॥२७॥ शृगालियें पीले २ दांत निकाल कर आगे२ हँसती हुई चलतीहैं, सब स्त्रियां स्वप्नमेंही बात करते२ उठकर अपने घरोंको

प्रिय तुम्हारी भार्याहो इस थोड़ी उमरमेंही यहां शोक करनेंको रहगई, तब निश्चयही जान पड़ताहै, कि पहले जन्ममें, हमनें, गौदान, सुवर्ण दान व पृथ्वीदानादि कुछभी नहीं किया ॥ ३० ॥ हे रावण! तुम शीघ्रही यह पति स्त्रीका मिलनरूप भलाईका देनेंवाला कार्य पूरा करो, कि श्रीरामचंद्रजीके पीछे अब हमकोभी मार डालो ॥ ३१ ॥ हे दशशीश! तुम हमारे स्वामीके मस्तकके साथ हमारा मस्तक और उनके शरके साथ हमारा शरीर मिलादो । रावण! महानुभाव पतिके साथही जाना हमको अच्छा लगताहै ॥ ३२ ॥ बडे२नेत्रवाली जनककुमारी जानकीजी अपने स्वामीका मस्तक और वह बड़ा भारी धनुष देखते २ अत्यन्त दुःखसे संतापित होकर विलाप करनें लगी ॥ ३३ ॥ इधर जानकीजो तो

साधुघातयमांक्षिप्रंरामस्योपरिरावण ॥ समानयपतिंपत्न्याकुरुकल्याणमुत्तमम् ॥ ३१ ॥ शिरसामेशिरश्चास्यकायं कायेनयोजय ॥ रावणानुगमिष्यामिगतिंभर्तुर्महात्मनः॥३२॥इतीवदुःखसंतप्ताविललापायतेक्षणा ॥ भर्तुःशिरोधनुश्चै वददर्शजनकात्मजा॥३३ ॥एवंलालप्यमानायांसीतायांतत्रराक्षसः॥अभिचक्रामभर्तारमनीकस्थःकृतांजलिः॥ ३४ ॥ विजयस्वार्यपुत्रेतिसोभिवाद्यप्रसाद्यच॥न्यवेदयदनुप्राप्तंप्रहस्तंवाहिनीपतिम् ॥३५॥अमात्यैःसहितःसर्वैःप्रहस्तस्त्वा मुपस्थितः ॥ तेनदर्शनकामेनअहंप्रस्थापितःप्रभो ॥३६ ॥ नूनमस्तिमहाराजराजभावात्क्षमान्वित ॥ किंचिदात्ययिकं कार्यंतेषांत्वंदर्शनंकुरु॥३७॥एतच्छ्रुत्वादशग्रीवोराक्षसप्रतिवेदितम् ॥ अशोकवनिकांत्यक्त्वामंत्रिणांदर्शनंययौ ॥३८॥

इस प्रकार रोदन कर रहींथी, कि इतनेंमें सैनाका एक निशाचर राक्षस रावणके सन्मुख आन पहुंचा ॥ ३४ ॥ और उसनें "आर्य पुत्र! आपकी जयहो" यह कह रावणको प्रसन्नकर हाथ जोड प्रणाम किया और कहा कि प्रहस्तनाम सैनापति आयाहै ॥ ३५ ॥ वह फिर विशेष करके बोलाकि हे प्रभो! महावीर प्रहस्तनें सर्व मंत्रियोंके साथ मिलकर आपके दर्शन पानेंकी आशासे हमको यहां भेज दियाहै ॥ ३६ ॥ हे राजन्! ऐसा जान पड़ताहै कि निश्चय कोई राजकार्य आनकर पड़ाहै जो कि अति आवश्यकीयहै, इसी कारणसे वह लोग यहांपर आये हैं इस कारण आप उनको दर्शन दीजिये ॥ ३७ ॥ राक्षसके मुखसे राक्षस रावण ऐसी घबड़ा हटका समाचार पाय अशोक वनको छोड़ मंत्रियोंको

लिये हे रावण! तुम श्रीरामचंद्रजीसे मेल मिलाप करलो॥२॥" औरश्रीरामचंद्रजीकोही इन सब दुर्निमित्तोंका कारण जान परिणाममें जिस कार्यको सुखकारी समझो उसीको करो ॥ ३५ ॥ शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ उत्तम पौरुषवाला बलवान माल्यवान यह वचन कहकर राक्षसराज रावणके मनकी परीक्षा करता हुआ उसके मुखका भाव देखकर चुप होगया ॥ ३६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे पंचत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥ दुष्ट बुद्धिवाला रावण माल्यवानके कहे हुए वह हितकारी वचन सुनकर, कालके वश होनेंसे उसके वचनोंको सहन नहीं करसका ॥ १ ॥ वरन क्रोधके मारे उसके दौनों नेत्र घूमनें लगे, फिर क्रोधके वश हो और मुंह टेढ़ा करकै रावण माल्यवानसे बोला ॥ २ ॥ तुमने शत्रुपक्षको प्रबल

ज्ञात्वाऽवधार्यकर्माणिक्रियतामायतिक्षमम्॥३५॥इदंवचस्तस्यनिगद्यमाल्यवान्परीक्ष्यरक्षोधिपतेर्मनःपुनः ॥ अनुत्तमेषूत्तमपौरुषोबलीबभूवतूष्णींसमवेक्ष्यरावणम् ॥ ३६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेपंचत्रिंशःसर्गः ॥ ३५ ॥ ॥ ७ ॥ तत्तुमाल्यवतोवाक्यंहितमुक्तंदशाननः ॥ नमर्षयतिदुष्टात्माकालस्यवशमागतः ॥ १ ॥ सबद्ध्वाभ्रुकुटिंवक्रेक्रोधस्यवशमागतः ॥ अमर्षात्परिवृत्ताक्षोमाल्यवंतमथाब्रवीत् ॥ २ ॥ हितबुद्ध्यायदहितंवचःपुरुषमुच्यते ॥ परपक्षंप्रविश्यैवनैतच्छ्रोत्रगतंमम ॥ ३ ॥ मानुषंकृपणंराममेकंशाखामृगाश्रयम् ॥ समर्थंमन्यसेकेनत्यक्तंपित्रावनाश्रयम् ॥ ४ ॥ रक्षसामीश्वरंमांचदेवानांचभयंकरम् ॥ हीनंमांमन्यसेकेनअहीनंसर्वविक्रमैः ॥ ५ ॥ वीरद्वेषेणवाशंकेपक्षपातेनवारिपोः ॥ त्वयाहंपरुषाण्युक्तोममप्रोत्साहनेनवा ॥ ६ ॥

विचार करकै हमारा हित साधनेंकी कामनासे जो कठोर वचन कहे उनको हमनें ग्रहण नहीं किया ॥ ३ ॥ रामचंद्र मनुष्य होनेंके कारण स्वभावसेही दुर्बलहैं, और केवल वानरलोगही उनकी सहायता करनेंवालेहैं; यदि उसमें कुछ सामर्थही होती तौ वह अपने बापदादोंका राज्य छोड़कर बनकोही क्यों आता ॥ ४ ॥ और जिन हमनें देवता लोगोंकोभी भय उत्पन्न करादियाहै, और सर्व विक्रमवान राक्षसोंके हम राजाहैं, फिर हमको जो तुम असमर्थ समझते हो इसका कारण क्याहै ॥ ५ ॥ हमको जान पड़ताहै कि वीर लोगोंसे वैर या शत्रुकी पक्षपातता तरफ़दारी अ

जानकीजीको वह समझानें बुझानें लगीं ॥ २ ॥ यद्यपि सरमा सीताजीकी रक्षा करनेंमें नियुक्त तो थी, परन्तु वह सीताजीकी अनुरागिनी और पक्षपातिनीथी, इस लिये सीताजीके साथ उनकी घनी मित्रता हो गईथी ॥ ३ ॥ उसनें अपनी प्रियसखी जानकीजीको लगभग चेतना रहित देखा घोड़ी जिस प्रकार पृथ्वीपर लोटा करतीहै, वैसेही पृथ्वीकुमारी पृथ्वीपर लोट रहीथी, सरमा उनको उठाकर सखीके स्नेहसे समझानें बुझानें लगी ॥ ४ ॥ हेसखी! रावणनें तुमसे जो कुछ कहाथा, और तुमनें उसको जिस प्रकारसे उत्तर दियाथा, इसलिये तुह्मारेप्रति अधिक स्नेह होंनेके कारण उन बातोंके श्रवण करनेंमें हममें कसर नहींकी ॥५॥ हम रावणके भयसे तुमको छोड़कर अवतक निबिड़ वनमें टिक रहीथीं। परन्तु हेबड़ेनेत्रोंवाली जो कुछ कार्यहो तो हम तुम्हारे लिये रावणसेभी कुछ शंका नहीं करतीं ॥ ६ ॥ हे मैथिलि! वह राक्षसोंका, स्वामी

साहितत्रकृतामित्रंसीतयारक्ष्यमाणया ॥ रक्षंतीरावणादिष्टासानुक्रोशादृढव्रता॥३ ॥सादर्शसखीसीतांसरमानष्टचेतनाम् ॥ उपावृत्योत्थितांध्वस्तांवडवामिवपांसुषु ॥ ४ ॥ तांसमाश्वासयामाससखीस्नेहेनसुव्रताम् ॥ उक्तायद्रावणेनत्वंप्रत्युक्तश्चस्वयंत्वया॥५॥लीनयागहनेशून्येभयमुत्सृज्यरावणात् ॥ तवहेतोर्विशालाक्षिनहिमेरावणाद्भयम् ॥६॥ ससंभ्रांतश्चनिष्क्रांतोयत्कृतेराक्षसेश्वरः॥तत्रमेविदितंसर्वमभिनिष्क्रम्यमैथिलि ॥ ७ ॥ नशक्यंसौप्तिकंकर्तुंरामस्यविदितात्मनः॥ वधश्चपुरुषव्याघ्रेतस्मिन्नैवोपपद्यते ॥८॥ नत्वेवंवानराहंतुंशक्याःपादपयोधिनः॥ सुरादेवर्षभेणेवरामेणहिसुरक्षिताः ॥ ९ ॥दीर्घवृत्तभुजःश्रीमान्महोरस्कःप्रतापवान् ॥ धन्वीसन्नहनोपेतोधर्मात्माभुविविश्रुतः ॥ १० ॥

रावण जिस कारणसे इस स्थानको घबड़ाहटके साथ छोड़ चला गयाथा, वह समस्तही कारण उसके पीछे२ जायकर हम जान आई हैं॥७॥ उन सर्वान्तर्यामी श्रीरामचंद्रजीके सोते रहते उनके सैनाके साथ कोई भी युद्ध नहीं कर सकता और उस अवस्थामें उन पुरुषसिंह श्रीरामचंजीका वध करना भी युक्तियुक्त नहीं हो सकता ॥८॥ श्रीरामचंद्रजीकी बात तो दूर रही; इन्द्र करके रक्षित देवता लोगोंकी नाईं श्रीरामचंद्रजीसे रक्षित, वह वृक्ष हाथोंमें लेकर लड़नेंवाले वानरोंको भी कोई नहीं मार सकता॥ ९ ॥ उन श्रीरामचंद्रजीकी सुगोल दोनों भुजा जंघातक लम्बीहै, उनके सब शरीर पुष्टहैं; प्रतापवान धनुष धारण करनेंवाले कवच वख्तर धारण किये वह धर्मात्मा तीन लोकमें विख्यातहैं ॥ १० ॥

शपथके साथ प्रतिज्ञा कहतेहैं. कि वह जीता हुआ लौटकर किसी प्रकारसे यहांसे जानेंको समर्थ न होगा ॥ १३ ॥ यह कहकर रावण वहुतही क्रोध करता हुआ, तव निशाचर माल्यवान लज्जाके मारे नीचेको मुख करके बैठ गया, और किसी बातका उत्तर न देता हुआ ॥ १४ ॥ परन्तु रावणकी यथोचित जयसूचक आशिर्वादसे बढती मनाय उसकी आज्ञा लेकर अपने गृह चला गया ॥ १५ ॥ तव लंकापति रावण सब मंत्रियोंके साथ परामर्श करके भलीभांति शोच विचार लंकापुरीकी रक्षा करनेंके लिये पहरे दारोंको नियत किया ॥ १६ ॥ राक्षस प्रहस्तको पूर्व द्वारपर और महावीर महापार्श्व, और महोदरको दक्षिणके द्वारपर रावणनें रहनेंकी आज्ञादी, ॥ १७ ॥ और पश्चिमके द्वारपर रहनेंके लिये

एवंब्रुवाणंसंरब्धंरुष्टंविज्ञायरावणम् ॥ व्रीडितोमाल्यवान्वाक्यंनोत्तरंप्रत्यपद्यत ॥ १४ ॥ जयाशिषातुराजानंवर्धयित्वायथोचितम् ॥ माल्यवानभ्यनुज्ञातोजगामस्वंनिवेशनम् ॥ १५ ॥ रावणस्तुमहामात्यैर्मंत्रयित्वाविमृश्यच ॥ लंकायास्तुतदागुप्तिंकारयामासराक्षसः ॥ १६ ॥ व्यादिदेशचपूर्वस्यांप्रहस्तंद्वारिराक्षसं ॥ दक्षिणस्यांमहावीर्यौमहापार्श्वमहोदरौ ॥ १७ ॥ पश्चिमायामथद्वारिपुत्रमिंद्रजितंतदा ॥ व्यादिदेशमहामायंराक्षसैर्बहुभिर्वृतम् ॥ १८ ॥ उत्तरस्यांपुरद्वारिव्यादिश्यशुकसारणौ ॥ स्वयंचात्रगमिष्यामिमंत्रिणस्तानुवाचह ॥ १९ ॥ राक्षसंतुविरूपाक्षंमहावीर्यपराक्रमम् ॥ मध्यमेऽस्थापयद्गुल्मेबहुभिःसहराक्षसैः ॥ २० ॥ एवंविधानंलंकायांकृत्वाराक्षसपुंगवः ॥ कृतकृत्यमिवात्मानंमन्यतेकालचोदितः ॥ २१ ॥

इन्द्रका जीतनेंवाला मेघनाद अत्यन्तही मायावी और बहुत सैनाको संग लिये हुएथा ॥ १८ ॥ और शुक सारण नामक ,मंत्रियोंको उत्तरके द्वारसे हटाकर जहांकि श्रीरामचंद्रजीकी सैना पड़ी हुईथी, रावणनें आज्ञा दीकि उत्तरके द्वारपर हम स्वयंही ठडे रहेंगे ॥ १९ ॥ महा पराक्रमवान महावीर्ययुक्त राक्षस विरूपाक्षको रावणनें बहुत सारे राक्षसोंके साथ लंकाके वीचों वीचमें जहां सैनाकी छावनी थी रहनेंके लिये आज्ञादी ॥ २० ॥ राक्षसोंमें श्रेष्ठ रावण लंकामें इस प्रकारसे सब ओर राक्षसोंको रक्षाके लिये नियुक्त करके, कालप्रेरित होनेसे अपनेंको कृतार्थ मानता हुआ

नाथ रावण यह वार्ता सुन करकेही मंत्रि लोगोंके साथ परामर्श करताहै ॥१८॥ सरमा यह बात कह रहीथी कि इतनेमें जानकीजी और सरमा दोनोंनें रावणकी सेनाका समरमें तैयार होंनेके लिये भयंकर सिंहनादको सुना ॥ १९ ॥ मधुर वचन बोलनेंवाली सरमा सेनाकी तैयारीकी चरचा देंनेवाली भेरीका महाशब्द सुनकर सीताजीसे बोली ॥ २० ॥ हेभीरु! जिस भेरीके शब्दको सुनकर सेना बख्तर धारण व समरकी तैयारी करतीहै; अतएव मेघके गर्जनेंकी समान यह उसकी भेरीका शब्द तुम सुनो ॥ २१ ॥ मदमाते हाथी समस्तही सजगये, रथोंमें घोड़े जुतगये कवच बख्तर पहरे हुए असंख्य वीरगण भाला हाथमें लिये घोड़ों पर सवारहो रहेहैं ॥ २२ ॥ और अस्त्रधारी अगणित वीरगण आगे बढ़रहेहैं,

इतिब्रुवाणासरमाराक्षसीसीतयासह ॥ सर्वोद्योगेनसैन्यानांशब्दंशुश्रावभैरवम् ॥ १९ ॥ दंडनिर्घातवादिन्याःश्रुत्वा भेर्यामहास्वनम् ॥ उवाचसरमासीतामिदंमधुरभाषिणी ॥ २० ॥ सन्नाहजननीह्येषाभैरवाभीरुभेरिका ॥ भेरीनादंचगंभीरंशृणुतोयदनिस्वनम् ॥२१॥ कल्प्यंतेमत्तमातंगायुज्यंतेरथवाजिनः ॥ दृश्यंतेतुरगारूढाःप्रासहस्ताःसहस्रशः ॥ २२ ॥ तत्रतत्रचसन्नद्धाःसंपतंतिसहस्रशः ॥ आपूर्यंतेराजमार्गाःसैन्यैरद्भुतदर्शनैः ॥ २३ ॥ वेगवद्भिर्नदद्भिश्च तोयौघैरिवसागरः॥शस्त्राणांचप्रसन्नानांचर्मणांवर्मणांतथा॥२४॥रथवाजिगजानांचराक्षसेंद्रानुयायिनाम्॥संभ्रमोरक्षसामेषहृषितानांतरस्विनाम् ॥ २५ ॥ प्रभांविसृजतांपश्यनानावर्णसमुत्थिताम् ॥ २६ ॥ "वनंनिर्दहतोघर्मेयथारूपंविभावसोः ॥ घंटानांशृणुनिर्घोषंरथानांनेमिनिःस्वनम्॥१॥हयानांह्रेषमाणानांशृणुतूर्यध्वनिंतथा॥उद्यतायुधहस्तानांराक्षसेंद्रानुयायिनाम् ॥२॥ "संभ्रमोरक्षसामेषतुमुलंलोमहर्षणम् ॥ श्रीस्त्वांभजतिशोकघ्नीरक्षसांभयमागतम् ॥ २७ ॥

और राजमार्ग अद्भुत रूप धारण किये सेनासे इस प्रकार छाय रहाहै ॥ २३ ॥ कि जिस प्रकार वेगयुक्त शब्दायमान समुद्र तरंगोंसे परिपूर्ण होताहै। सिपाहियोंके अस्त्र शस्त्र ढाल बख्तर ॥२४॥ रथ घोड़े हाथी, और रावणके अनुगमनकारी राक्षसोंका शब्द होरहाहै योधा लोग हर्षितमन और अति वेगसे युद्धके लिये तैयार होरहेहैं ॥ २५ ॥ यह देखो! ध्वजा पताका इत्यादिको अनेक वर्णवाली प्रभा प्रकाशमान होरहीहैं जैसे ग्रीष्मकालमें वनके जलानेंवाले सूर्यकी अनेक वर्णवाली प्रभा निकलतीहैं ॥ २६ ॥ हेसीते! यह घंटोंकी ध्वनि रथोंका स्वर २ शब्द और तुरंही निनाद, और घोड़ोंके

वनायकर शत्रुके दलमें प्रवेश करके, रावणनें जो लंकापुरीकी रक्षा करनेंका उपाय किया, उसको भली भांतिसे जानकर यह हमारे निकट आये
हैं ॥ ८ ॥ हेश्रीरामचंद्रजी दुरात्मा रावणके पुररक्षा करनेंके विषयमें, हमनें अपने मंत्रियोंसे जो कुछ जानाहै, वह समस्तही कहतेहैं ॥ ९ ॥ कि
प्रहस्त बहुत सारी सैनाके साथ पूर्व द्वारपर टिकाहै. और महावीर्यवान महापार्श्व व महोदर लंकाके दक्षिणद्वारकी रक्षा करतेहैं ॥ १० ॥ पटा खड्ग
इत्यादि विविध अस्त्र शस्त्रधारी और शूल मुद्गर हाथमें लिये असंख्य शूर राक्षस गणोंके साथ रावण पुत्र इन्द्रजित लंकाके पश्चिम द्वारकी रक्षा करता
है ॥ ११ ॥ अनेक प्रकारके और दूसरे हथियार धारण किये शूरवीर रावणके पुत्रभी संगहैं, और स ;स्रों लक्षों शस्त्रपाणि राक्षसोंको संग लि

संविधानंयथाहुस्तेरावणस्यदुरात्मनः ॥ रामतद्ब्रुवतःसर्वंयाथातथ्येनमेशृणु ॥ ९ ॥ पूर्वंप्रहस्तःसबलोद्वारमासाद्य
तिष्ठति ॥ दक्षिणंचमहावीर्यौमहापार्श्वमहोदरौ ॥ १० ॥ इंद्रजित्पश्चिमंद्वारंराक्षसैर्बहुभिर्वृतः ॥ पट्टिशासिधनुष्मद्भिः
शूलमुद्गरपाणिभिः॥ ११ ॥नानाप्रहरणैःशूरैरावृतोरावणात्मजः॥ राक्षसानांसहस्रैस्तुबहुभिःशस्त्रपाणिभिः ॥१२॥ युक्तः
परमसंविग्नोराक्षसैःसहमंत्रवित्॥ उत्तरंनगरद्वारंरावणःस्वयमास्थितः ॥१३॥ विरूपाक्षस्तुमहताशूलखड्गधनुष्मता ॥
बलेनराक्षसैःसार्धंमध्यमंगुल्ममाश्रितः ॥ १४ ॥ एतानेवंविधान्गुल्माँल्लंकायाःसमुदीक्ष्यते ॥ मामकामंत्रिणः
सर्वेशीघ्रंपुनरिहागताः ॥१५ ॥ गजानांदशसाहस्रंरथानामयुतंतथा ॥ हयानामयुतेद्वेचसाग्रांकोटिंचरक्षसाम् ॥ १६ ॥
विक्रांतबलवंतश्चसंयुगेष्वाततायिनः ॥ इष्टाराक्षसराजस्यनित्यमेतेनिशाचराः ॥ १७ ॥

ये ॥ १२ ॥ मंत्रका जाननेंवाला रावण उद्विग्नचित्त होकर लंकाके उत्तर फाटक पर स्वयं स्थित हुआहै॥१३॥राक्षस विरूपाक्ष शूल, खड्ग, व धनुष
धारी बड़ी भारो सैनाके साथ लंकाके बोचों बोचमें जहां छावनीहै टिका हुआ है ॥ १४ ॥ हमारे मंत्रिलोग लंकाको समस्त घाटियोंको
इस प्रकारसे देखकर शीघ्रही हमारे पास लौट आयेहैं ॥ १५ ॥ दश हजार ही रथ वीसहजार घोड़े, व करोड़ों राक्षस ॥ १६ ॥ जो कि
अति बलवान और अति विक्रमकारी, समर करनेंमें अत्यन्तही आततायी है, और राक्षसराज रावणका कार्य सिद्ध करनेंको यत्न किये

चंद्रजी बहुतही शीघ्र रणभूमिमें रावणका संहार करके तुम्हारे साथ सुख प्राप्त करेंगे ॥ ३४ ॥ जिस प्रकार यथोचित वर्षा होनेंसे धान्ययुक्त पृथ्वीकी अपूर्व शोभा होतीहै वैसेही तुम श्रीरामचंद्रजीके प्रेम व्यवहारसे सन्मानित होकर अत्यन्तही सन्तोप भोग करोगी ॥ ३५ ॥ हेदेवी जानकि! जो पर्वतश्रेष्ठ सुमेरुके चारोंओर अश्वकी समान गोलाकार गतिसे घुमा करतेहैं; अब तुम उन्हीं प्रजा लोगोंका मंगल करनें वाले अपने कुलदेवता सूर्य भगवानकी शरणमें जाओ ❋ ॥ ३६ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० यु० त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥ ॥ छ ॥ ग्रीष्म ऋतुके तापसे संतापित हुई पृथ्वीको जलसे सींचनेकी समान सरमानें इस प्रकारके वचन कह कर, उस रावणके वचनोंकरके मोहित जानकी

सभाजितात्वंरामेणमोदिष्यसिमहात्मना ॥ सुवर्षेणसमायुक्तायथासस्येनमेदिनी ॥ ३५ ॥ गिरिवरमभितोवि वर्तमानोहयइवमंडलमाशुयःकरोति ॥ तमिहशरणमभ्युपैहिदेविदिवसकरंप्रभवोह्ययंप्रजानाम् ॥ ३६ ॥ इत्यार्षेश्री म०वा०आ०युद्धकांडेत्रयस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३३ ॥ अथतांजातसंतापांतेनवाक्येनमोदिताम् ॥ सरमाह्लादयामासमहींद ग्धामिवांभसा ॥ १ ॥ ततस्तस्याहितंसख्याचिकीर्षंतीसखीवचः ॥ उवाचकालेकालज्ञास्मितपूर्वाभिभाषिणी ॥ २ ॥ उत्सहेयमहंगत्वात्वद्वाक्यमसितेक्षणे ॥ निवेद्यकुशलंरामेप्रतिच्छन्नानिवर्तितुम् ॥ ३ ॥ नहिमेक्रममाणायानिरालं बेविहायसि ॥ समर्थोगतिमन्वेतुंपवनोगरुडोपिवा ॥ ४ ॥ एवंब्रुवाणांतांसीतासरमामिदमब्रवीत् ॥ मधुरंश्लक्ष्णया वाचापूर्वशोकाभिपन्नया ॥ ५ ॥

जीका संतापित हृदय शीतल किया ॥ १ ॥ तिसके पीछे समयको जाननेंवाली सरमाने प्रिय सखी जानकीजीको हितकी कामनासे हँसकर उस समय जानकीजीसे कहा ॥ २ ॥ हेअसितलोचने! जानकी! हमनें गुप्त भावसे जायकर श्रीरामचंद्रजीका संवाद जान तुम्हारे निकट आयकर कहेंगी ॥ ३ ॥ हमारे आश्रय रहित आकाशमे गमन करनें पर पवन या विनताके पुत्र गरुडजी भी हमारी गतिको नहीं रोक सकते हैं ॥ ४ ॥ यद्यपि सीताजी शोक संतापसे क्षीण शरीर होगईथीं परन्तु सरमाके धीरजयुक्त वचनोंसे उनको कुछेक धीरज आया, और फिर वह मधुर

❋ सूर्य कुलके रामचंद्रकी तुम वधू हो सो दयानिधान सूर्य भगवान तुम्हारी विपत दूरकरैंगे यह आशय है

संहार करनेंके लिये यह वचन बोले ॥ २५ ॥ वानरश्रेष्ठ नील बहुत सारे वानरोंको साथ लेकर लंकाके पूर्वद्वारपर टिके हुए प्रहस्तके साथ
युद्ध करेंगे ॥ २६ ॥ और वालिपुत्र अंगदजीभी बड़ी भारी सैनाके साथ दक्षिण द्वारपर महापार्श्व और महोदरसे लड़कर उनका विध्वंस
करें ॥ २७ ॥ अतुलबलशाली पवनकुमार हनुमानजी बहुत सैनाको साथ लेकर पश्चिम द्वार पर जावें, और वहां मेघनादसे युद्ध करे ॥ २८ ॥
दैत्य दानवोंके समूहोंके संग और महात्मा ऋषि लोगोंके साथ जो सदाही अपकार करताहै, महा नीचस्वभावयुक्त वरदान पानेके मदसे मदा
न्ध ॥ २९ ॥ जो कि सब लोकोंकी प्रजाओंको संतापित करताहै, और सब लोकोंको कुछ नहीं गिनता, उस राक्षसोंके स्वामी रावणका वध

पूर्वद्वारंतुलंकायानीलोवानरपुंगवः ॥ प्रहस्तंप्रतियोद्धास्याद्वानरैर्बहुभिर्वृतः ॥ २६ ॥ अंगदोवालिपुत्रस्तुबलेनमह
ताावृतः॥दक्षिणेबाधतांद्वारेमहापार्श्वमहोदरौ ॥२७॥ हनूमान्पश्चिमद्वारंनिष्पीड्यपवनात्मजः ॥ प्रविशत्वप्रमेयात्मा
बहुभिःकपिभिर्वृतः ॥ २८ ॥दैत्यदानवसंघानामृषीणांचमहात्मनाम् ॥ विप्रकारप्रियःक्षुद्रोवरदानबलान्वितः ॥ २९ ॥
परिक्रमतियःसर्वांल्लोँकान्संतापयन्प्रजाः ॥ तस्याहंराक्षसेंद्रस्यस्वयमेववधेधृतः ॥ ३० ॥ उत्तरंनगरद्वारमहंसौमि
त्रिणासह ॥ निपीड्याभिप्रवेक्ष्यामिसबलोयत्ररावणः ॥ ३१ ॥ वानरेंद्रश्चबलवानृक्षराजश्चवीर्यवान् ॥ राक्षसेंद्रानुज
श्चैवगुल्मेभवतुमध्यमे ॥ ३२ ॥ नचैवमानुषंरूपंकार्यंहरिभिराहवे ॥ एषाभवतुनःसंज्ञायुद्धेस्मिन्वानरेबले ॥ ३३ ॥

हम स्वयंही जायकर करेंगे ॥ ३० ॥ जहां कि रावण अपनी सैनाके साथ टिका हुआहै, हम लक्ष्मणजीके सहित लंकापुरीके उस उत्तर द्वारको
पीड़ित करनेंके समय प्रवेश करेंगे ॥ ३१ ॥ बलवान वानरेन्द्र सुग्रीवजी, वीर्यवान ऋक्षराज जाम्बवान और राक्षसराज रावणके
छोटे भाई विभीषणजी यह सब मिलकर मध्यम गुल्ममें अर्थात् सैनासमूहके बीचमें रहकर उसकी रक्षा करें ॥ ३२ ॥ रण
स्थलमें कोईभी वानर मनुष्यका रूप धारण नहीं करे, कारण कि इस संग्राममें मनुष्यका चिह्न केवल हमही लोग धारण किये रहेंगे ॥३३॥

आंसूयुक्त मुखमंडल पोंछकर कहा ॥ १२ ॥ कि हे जानकी! यदि तुम्हारी यही इच्छाहै तौ हम सत्य करके कहती हैं कि तुम्हारे शत्रु रावणका सब वृत्तान्त जानकर हम शीघ्रही यहांपर लौटेंगी ॥ १३ ॥ सरमा जानकीजीसे ऐसे वचन कहकर रावणकी सभामें चलीगई; और मंत्रिलोगोके साथ रावणकी जो सलाह हो रहीथी वह समस्तही उसनें सुनी ॥ १४ ॥ तिसके पीछे सरमा वनाय निश्चय करके दुरात्मा रावणकी सलाहके समस्त समाचार जान शीघ्रही मनोहर अशोकवनमें चली आई ॥ १५ ॥ उस सरमानें अशोक वाटिकामें आय जानकीजीको इस प्रकारसे अपने राह परखते हुए देखाकि जिस प्रकार कमलफूलोंसे भ्रष्ट होकर लक्ष्मीजी बैठी हैं ॥ १६ ॥ तब सीताजीनें मधुर वचन कहनें

एषतेयद्यभिप्रायस्तस्माद्गच्छामिजानकि ॥ गृह्यशत्रोरभिप्रायमुपावर्तामिमैथिली ॥ १३ ॥ एवमुक्त्वाततोगत्वासमीपंतस्यरक्षसः ॥ शुश्रावकथितंतस्यरावणस्यसमंत्रिणः ॥ १४ ॥ साश्रुत्वानिश्चयंतस्यनिश्चयज्ञादुरात्मनः ॥ पुनरेवागमत्क्षिप्रमशोकवनिकांशुभाम् ॥ १५ ॥ साप्रविष्टाततस्तत्रददर्शजनकात्मजाम् ॥ प्रतीक्षमाणांस्वामेवभ्रष्टपद्मामिवाश्रियम् ॥ १६ ॥ तांतुसीतापुनःप्राप्तांसरमांप्रियभाषिणीम् ॥ परिष्वज्यचसुस्निग्धंददौचस्वयमासनम् ॥ १७ ॥ इहासीनासुखंसर्वमाख्याहिममतत्त्वतः ॥ क्रूरस्यनिश्चयंतस्यरावणस्यदुरात्मनः ॥ १८ ॥ एवमुक्तातुसरमासीतयावेपमानया ॥ कथितंसर्वमाचष्टरावणस्यसमंत्रिणः ॥ १९ ॥ जनन्याराक्षसेंद्रोवैत्वन्मोक्षार्थंबृहद्वचः ॥ अतिस्निग्धेनवैदेहिमंत्रिवृद्धेनचोचितः ॥ २० ॥

वाली सरमाको फिर आयाहुआ देखकर, प्रेमसहित भली भांति उनसे भेंटी और स्वयं उसके बैठनेंको आज्ञा देकर कहा ॥ १७ ॥ कि हे सखि! इस आसनपर बैठकर उस क्रूरकर्मकारी रावणकी समस्त सलाह तुम हमसे कहो ॥ १८ ॥ जब सीताजीनें सरमासे इस प्रकार कहा तब सरमा मंत्रिलोगोंके सहित रावणकी जो परामर्श हुईथी उसका समस्त भेद जानकीजीसे कहनें लगीं ॥ १९ ॥ सरमा बोली कि हे जानकी! वृद्ध लोगोंनें और रावणकी मातानें तुमको श्रीरामचंद्रजीके निकट लौटा देनेके लिये मधुर वाणीसे यह अत्युत्तम वचन रावणसे कहे ॥ २० ॥

और सुवेल पर्वतपरसे जो मृत्युके समयतक दुःख भोग करनेके लिये हमारी भार्याको हरण करके ले आया है, उस दुरात्मा रावणके गृह दीख पड़ेंगे ॥ ४ ॥ जिस क्रूर राक्षसने राक्षसी बुद्धिके वश होकर, धर्म सदाचार और कुलकी ओर दृष्टि न करके यह निन्दनीय कार्य कियाहै उस राक्षसोंमें नीच रावणका नाम लेनेंपरभी हमको क्रोध उत्पन्न होताहै, हे सुग्रीव! हम इस रावणके ही अपराधसे समस्त राक्षसोंका नाश देखते हैं; देखो एक जन कालकी फांसीमें पड़कर पापाचार करताहै; परन्तु इकले उस दुष्टात्माके अपराधसे उसका समस्त कुलभी नष्ट होताहै ॥ ५ ॥ श्रीरामचंद्रजी रावणके प्रति क्रोधमें भरकर यह वचन कहते सुवेल पर्वतपर वास करनेंके लिये उसके शृङ्गोंपर चढ़ते हुए ॥ ६ ॥ विक्रमवान लक्ष्म

लंकांचालोकयिष्यामोनिलयंतस्यरक्षसः ॥ येनमेमरणांतायहृताभार्यादुरात्मना ॥ ४ ॥ येनधर्मोनविज्ञातोनवृत्तं नकुलंतथा ॥ राक्षस्यानीचयाबुद्ध्यायेनतद्गर्हितंकृतम् ॥ ५ ॥ एवंसंमंत्रयन्नेवसक्रोधोरावणंप्रति ॥ रामःसुवेलमासाद्यचित्रसानुमुपारुहत् ॥ ६ ॥ पृष्ठतोलक्ष्मणश्चैनमन्वगच्छत्समाहितः ॥ सशरंचापमुद्यम्यसुमहद्विक्रमेरतः ॥ ७ ॥ तमन्वारोहत्सुग्रीवःसामात्यःसविभीषणः ॥ तेवायुवेगप्रवणास्तांगिरिंगिरिचारिणः ॥ ८ ॥ अध्यारोहंतशतशःसुवेलंयत्रराघवः ॥ तेत्वदीर्घेणकालेनगिरिमारुह्यसर्वतः ॥ ९ ॥ ददृशुःशिखरेतस्यविषक्तामिवखेपुरीम् ॥ तांशुभां प्रवरद्वारांप्राकारवरशोभिताम् ॥ १० ॥

णजीभी बाण सहित धनुष हाथमें लिये एकाग्र मनसे श्रीरामचंद्रजीके पीछे २ चले ॥ ७ ॥ तिनके पीछे अपने मंत्रियोंके साथ सुग्रीवजी चले, और सुग्रीवजीके पीछे २ विभीषणजी, तत्पश्चात् हनुमान, अंगद, नील, द्विविद, गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, पनस, कुमुद, रंभ, जाम्बवान्, सुषेण, शतबलि, वानरश्रेष्ठ दुर्मुख, इत्यादि पर्वतोंके चरनेंवाले वानर वायु वेगसे उस पर्वतपर ॥ ८ ॥ चढ़े और सुवेल पर्वत पर श्रीरामचंद्रजीके निकट पहुंचे; पर्वतपर चढ़नेके समय उन समस्त वानरोंको कुछभी समय न लगा; वहांपर सबनें चढकर ॥ ९ ॥ उस पर्वतके रमणीय शिखरोंपर आरोहण कर त्रिकूट पर्वतके शिखरपर बसी हुई सुन्दर तोरण छहरदिवारी युक्त आकाशको [illegible] करती ॥ [illegible]०

सैनाकी तैयारीके और शंखका भेरीयुक्त बड़ा भारी शब्द उठा कि जिस्से समस्त पृथ्वी कांपगई ॥ २७ ॥ तब लंकामें टिके हुए रावणके भृत्य राक्षसलोग वानरोंकी सैनाका यह कठोर सिंहनाद सुनकर अपनेंको अत्यन्त हीन कार्य और दीनभाव युक्त समझाते हुए और रावणकी दुर्बुद्धि होनेंके कारण वह लोग उस समय किसी प्रकारके कल्याणका सुख न देखसके॥२८॥इ० श्रीम० वा०आ०यु० चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥३४॥ पराये पुरको जीतनेंवाले महाबलवान श्रीरामचंद्रजी, भेरी शंख मिश्रित शब्दके साथ संग्राम करनेंके लिये तैयार हुए ॥ १ ॥ राक्षसपति रावण वह बड़ाभारी शब्द सुनकर मुहूर्त्तभरतक अपने मनमें सोच विचार करकै समस्त मंत्री गणोंकी ओर देखनें लगा ॥ २ ॥ महाबल

श्रुत्वातुतंवानरसैन्यनादंलंकागताराक्षसराजभृत्या ॥ हतौजसोदैन्यपरीतचेष्टाःश्रेयोनपश्यंतिनृपस्यदोषात् ॥२८॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेचतुस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३४ ॥ ॥ ७॥ ॥ तेनशंखविमिश्रेणभेरीशब्देननादिना ॥ उपायतिमहाबाहूरामःपरपुरंजयः ॥ १ ॥ तंनिनादंनिशम्याथरावणोराक्षसेश्वरः ॥ मुहूर्तंध्यानमास्थायसचिवानभ्युदैक्षत ॥ २ ॥ अथतान्सचिवांस्तत्रसर्वानाभाष्यरावणः ॥ सभांसन्नादयन्सर्वानित्युवाचमहाबलः ॥ ३ ॥ जगत्संतापनःक्रूरोगर्हयन्राक्षसेश्वरः ॥ तरणंसागरस्यास्यविक्रमंबलपौरुषम् ॥४॥ यदुक्तवंतोरामस्यभवंतस्तन्मयाश्रुतम् ॥ भवतश्चाप्यहंवेद्मियुद्धेसत्यपराक्रमान् ॥ तूष्णीकानीक्षतोन्योऽन्यंविदित्वारामविक्रमम् ॥ ५ ॥ ततस्तुसुमहाप्राज्ञोमाल्यवान्नामराक्षसः ॥ रावणस्यवचःश्रुत्वाइतिमातामहोब्रवीत् ॥ ६ ॥

वान रावण मंत्रीयोंको अपने सन्मुख कर सब सभाको अपने शब्दसे गुंजाताहुआ मंत्रीयोंसे बोला ॥ ३ ॥ जगतको संताप देनेंवाला क्रूर स्वभाव राक्षस रावण रामचंद्रजीके पराक्रमकी व उनके समुद्र उतरनेंकी निन्दा करनें लगा॥४॥रावण मंत्रीयोंसे बोला कि तुम लोगोंनें जो रामचंद्रके समुद्रके उतर आने और उनके बलविक्रम पौरुषके विषयमें जो कुछ कहा वह समस्तही हमनें सुना, और तुम लोग सफल पराक्रम होकरभी जो रामचंद्रके पराक्रमको जानकर उत्साहहीनहो परस्पर एक दूसरेका मुख देख रहेहो यहभी समस्त हमनें जानाहै ॥५॥ रावणनें ऐसा कहा तौ महा

विमानोंसे लंकानगरी अत्यन्त शोभायमान हो रहीथी ॥२१॥ जिस लंकामें राजमंदिर जिसमें कि सहस्रों खम्भ लगे हुएथे; जो देखनेंमें कैलास पर्व तकी समान इतना ऊंचाथा कि मानों वह आकाशमें कोई बात लिख रहाथा ॥२२॥और असंख्य राक्षस गण सदा जिसकी रक्षा करतेथे, ऐसा राक्ष सराज रावणका वह चैत्य नामक राज मंदिर समस्त लंका नगरीका भूषण रूप हुआथा ॥ २३ ॥ पुरीके स्थान २ में मनोहर कानन दृष्टि आतेथे अनेक प्रकारके धातु उत्पन्न करनेंवाले पर्वतोंकी असीम शोभा होरहीथी, और बीच २ में रमणीय उद्यान शोभा विस्तार कर रहेथे ॥ २४॥ विविध भांतिके विहारोंसे युक्त मृग गण निषेवित कुसुमोंसे शोभायमान अगणित राक्षसोंसे रक्षित वह लंकापुरीथी ॥२५॥ तिसके पीछे लक्ष्मीवान लक्ष्म

यस्यांस्तंभसहस्रेणप्रासादःसमलंकृतः ॥ कैलासशिखराकारोदृश्यतेखमिवोल्लिखन् ॥ २२ ॥ चैत्यःसराक्षसेंद्रस्यबभू वपुरभूषणम् ॥ शतेनरक्षसांनित्यंयःसमग्रेणरक्ष्यते॥ २३ ॥ मनोज्ञांकांचनवतींपर्वतैरुपशोभिताम् ॥ नानाधातुविचित्रै श्चउद्यानैरुपशोभिताम्॥२४॥नानाविहगसंघुष्टांनानामृगनिषेविताम् ॥ नानाकुसुमसंपन्नांनानाराक्षससेविताम्॥२५॥ तांसमृद्धांसमृद्धार्थांलक्ष्मीवाँल्लक्ष्मणाग्रजः ॥ नगरींत्रिदिवप्रख्यांविस्मयंप्रापवीर्यवान् ॥ २६ ॥ तांरत्नपूर्णांबहुसंविधा नांप्रसादमालाभिरलंकृतांच ॥ पुरींमहायंत्रकवाटमुख्यांददर्शरामोमहताबलेन ॥ २७ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणे वाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेएकोनचत्वारिंशःसर्गः ॥ ३९ ॥ ७ ॥ ॥ ततोरामःसुवेलाग्रंयोजनद्वयमंडलम् ॥ उपारोहत्ससुग्रीवोहरियूथैःसमन्वितः ॥ १ ॥

णजीके बड़े भाई श्रीरामचंद्रजी अमरावतीकी समान समृद्धार्थ धन अन्न जनसे परिपूर्ण लंकानगरीको देखकर अत्यन्त विस्मयको प्राप्त हुए ॥ २६॥ इस प्रकारसे श्रीरामचंद्रजी बड़ी भारी वानरी सैनाके साथ वहां पर विराजमान होकर उस राज्य पूर्ण धवरहरोंकी श्रेणीसे शोभायमान अनेक बड़े२ यंत्र और किवाड़ोंसे युक्त लंका नगरीको देखते हुए ॥२७॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥३९ ॥ इसके पीछे श्रीरामचंद्रजी वानरोंकी सैनाके साथ सुग्रीवजीको संग लेकर दो योजनके विस्तारवाले सुवेल पर्वतके शिखरपर चढ़ते हुए ॥ १ ॥

लेताहै तब कलिराजकी अवाई होतीहै ॥ १४ ॥ परन्तु तुमने दिग्विजयके समय महाऐश्वर्य सिद्ध करनेंवाले धर्मको छोड़ देव ब्राह्मणोंको पीड़ा पहुंचाय अधर्मका आचरण कियाहै, इसी कारणसे तुम्हारे शत्रु लोग ऐसे प्रबल होगयेहैं ॥ १५ ॥ तुम्हारे चित्तके दोषसे उत्पन्न वह हुआ अधर्महो इस समय हमको ग्रासकिये लेताहै, परन्तु देवता लोगोंके नित्य किये हुए धर्मकार्य उनके पक्षको बढा रहेहैं ॥ १६ ॥ तुमनें स्वतंत्र होकर चलनें और भोग विलासमें आसक्त होकर सदांही अग्निकी समान तेजस्वी ऋषिलोगोंको अत्यन्त क्रोध उपजायाहै ॥ १७ ॥ हे रावण! उन ऋषिलोगोंका प्रभाव प्रदीप्त अग्निकी समान अत्यन्तही दुर्द्धर्ष है उनके अंतःकरण तपोबलसे शुद्ध होगयेहैं; वह लोग धर्मके अ

तत्त्वयाचरतालोकान्धर्मोपिनिहतोमहान् ॥ अधर्मःप्रगृहीतश्चतेनास्मद्बलिनःपरे ॥ १५ ॥ सप्रमादात्प्रवृद्धस्तेऽधर्मो हिर्ग्रसतेहिनः ॥ विवर्धयतिपक्षंचसुराणांसुरभावनः ॥ १६ ॥ विषयेषुप्रसक्तेनयत्किंचित्कारिणात्वया ॥ ऋषीणा मग्निकल्पानामुद्वेगोजनितोमहान् ॥ १७ ॥ तेषांप्रभावोदुर्धर्षःप्रदीप्तइवपावकः ॥ तपसाभावितात्मानोधर्मस्यानुग्र हेरताः ॥ १८ ॥ मुख्यैर्यज्ञैर्यजंत्येतेतैस्तैर्यत्तेद्विजातयः ॥ जुह्वत्यग्नींश्चविधिवद्वेदांश्चोच्चैरधीयते ॥ अभिभूयचरक्षांसि ब्रह्मघोषानुदीरयन् ॥ १९ ॥ दिशोविप्रद्रुताःसर्वेस्तनयित्नुरिवोष्णगे ॥ ऋषीणामग्निकल्पानामग्निहोत्रसमुत्थि तः ॥ २० ॥ आवृत्यरक्षसांतेजोधूमोव्याप्यदिशोदश ॥ तेषुतेषुचदेशेषुपुण्येष्टच्चवधृतव्रतैः ॥ २१ ॥

नुग्रहमें टिके हुएहैं ॥ १८ ॥ हे रावण! वह द्विजातीगण! वेदका उच्चारण करते हुए राक्षस लोगोंको रोकते वेदाध्ययन ध्यानरूप मुख्य यज्ञसे ब्रह्मकी पूजा करके विधिपूर्वक अग्निमें आहुति दिया करतेहैं ॥ १९ ॥ जिसप्रकार ग्रीष्मकालमें अत्यन्त तेजवान सूर्य भगवानके उदय होनेंपर बादल इधर उधरको भाग जातेहैं; वैसेही राक्षस लोग उन ब्राह्मणकी वेद ध्वनी सुनकर चारों ओरको भाग जातेहैं; सो अग्नितुल्य तेजस्वी ऋषि लोगोंके अग्निहोत्रसे उठा हुआ ॥ २० ॥ धुआ राक्षस लोगोंके घरमे उनके तेजको ढककर दशों दिशाओंमें फैला हुआहैं; वह व्रत धारण किये

प्रकार हमसे छुटकारा पानेंको समर्थ न होगा ॥ १० ॥ वानरराज सुग्रीवजी यह कह छलांग मार सहसा उसके मस्तक पर चढ़गये और रावणके शिरपरसे विचित्र मुकुट उतार पृथ्वीपर फेंकदिये, और फिर पृथ्वीपर उतर दुवारा उसके ऊपर झपटे ॥ ११ ॥ निशाचर रावण सुग्रीवको अति वेग सहित दूसरी वार आते हुए देखकर बोलाकि, हेसुग्रीव! जवतक तुम हमें दृष्टि नहीं आये तवहीतक तुम सुग्रीवथे, परन्तु अब हीनग्रीव हो जाओगे ॥ १२ ॥ रावणनें यह कहकर सुग्रीवजीके दोनों हाथ पकड़ उनको पटक दिया, परन्तु सुग्रीवजीनेंभी जलसे लुढ़कती गेंदकी समान शीघ्रतासे उठ रावणकी दोनों वाहें पकड़ उसको पृथ्वीपर पटक डाला ॥ १३ ॥ जब वह परस्पर इस प्रकारसे

इत्युक्त्वासहसोत्पत्यपुप्लुवेतस्यचोपरि ॥ आकृष्यमुकुटंचित्रंपातयामासतद्भुवि ॥११॥ समीक्ष्यतूर्णमायांतंबभाषेतंनिशाचरः ॥ सुग्रीवस्त्वंपरोक्षंमेहीनग्रीवोभविष्यसि ॥ १२ ॥ इत्युक्त्वोत्थायतंक्षिप्रंबाहुभ्यामाक्षिपत्तले ॥ कंदुवत्ससमुत्थायबाहुभ्यामाक्षिपद्धरिः ॥ १३ ॥ परस्परंस्वेदविदिग्धगात्रौपरस्परंशोणितरक्तदेहौ ॥ परस्परंश्लिष्टनिरुद्धचेष्टौपरस्परंशाल्मलिकिंशुकाविव ॥ १४ ॥ मुष्टिप्रहारैश्चतलप्रहारैररत्निघातैश्चकराग्रघातैः ॥ तौचक्रतुर्युद्धमसह्यरूपंमहाबलौराक्षसवानरेंद्रौ ॥ १५ ॥ कृत्वानियुद्धंभृशमुग्रवेगौकालंचिरंगोपुरवेदिमध्ये ॥ उत्क्षिप्यचोत्क्षिप्यविनम्यदेहौपादक्रमाद्गोपुरवेदिलग्नौ ॥ १६ ॥

युद्ध करनें लगे, तब दौनोंके शरीरसे पसीना वहनें लगा, रुधिरकी धारा बहनेंके कारण दौनोंके देह लाल होगये, परस्पर लिपटनेंके कारण दोनोंके शारीरिक व्यापार वंद होगये, और दोनोंही एक दूसरेसे मिले हुए सेमल और ढाकके वृक्षोंकी समान शोभित होनें लगे ॥ १४ ॥ महाबलवान राक्षसराज रावण और वानरनाथ सुग्रीवजी इस प्रकारसे परस्पर मुक्का, लात, जांव, चनकटा आदिके आघातोंसे एक दूसरेको पीडित करनें लगे ॥ १५ ॥ इस प्रकार बहुत समयतक लंकाके सामनेवाले फाटककी वेदीपर इन दोनोंका बाहुयुद्ध होता रहा तिसके पीछे यहांतक युद्ध हुआ कि कभी २ दोनो लात चलायकर कभी २ वह रावण इनके शरीरको ऊपर उछालताथा और कभी यह

छोड़ चली जातीहैं। अथवा यह कि स्वप्नमें पीले दांतवाली काली स्त्रियां घरोंमें धरी हुई चीज वस्तुसे हँस २ बाते करतीहैं ॥ २८ ॥ कौओंके अर्थ जो बलिकी सामग्री दीजातीहै, उसे कुत्ते खाजातेहैं । गायोंसे गधे, और न्योलोंसे चूहोंकी उत्पति होतीहै ॥ २९ ॥ व्याघ्रोंके साथ बिलाव, कुत्तोंके साथ शुअर, राक्षसोंके साथ किन्नर, और मनुष्योंके साथ राक्षस मैथुन करतेहैं ॥ ३० ॥ पीले वरणके लालचरणवाले बहुत सारे कबूतर राक्षस लोगोंके विनाशार्थही मानों कालके भेजे हुए घरोंमें घूमतेहैं ॥ ३१ ॥ और घरके भीतर पाली हुई सारिका परस्पर क्लेश करती चीची कूची शब्द करतीहैं, व लड़नेंके लिये दूसरे जंगली पक्षीभी उनके पास आते उनसे लडते २ वह सारिका एक दूसरेसे गुथकर अपने अड्डो

गृहाणांबलिकर्माणिश्वानःपर्युपसेवते ॥ स्वरागोपुप्रजायंतेमूषकानकुलेषुच ॥ २९ ॥ मार्जाराद्वीपिभिःसार्धंसूकराःशुनकैःसह ॥ किन्नराराक्षसैश्चापिलभेयुर्मानुषैःसह ॥ ३० ॥ पांडुरारक्तपादाश्चविहगाःकालचोदिताः ॥ राक्षसानांविनाशायकपोताविचरंतिच ॥ ३१ ॥ चीचीकूचीतिवाशंतःशारिकावेश्मसुस्थिताः ॥ पतंतिग्रथिताश्चापिनिजिताःकलहैषिभिः ॥ ३२ ॥ पक्षिणश्चमृगाःसर्वेप्रत्यादित्यंरुदंतिते ॥ करालोविकलोमुंडःपुरुषःकृष्णपिंगलः ॥ ३३ ॥ कालोगृहाणिसर्वेषांकालेकालेऽन्ववेक्षते ॥ एतान्यन्यानिदुष्टानिनिमित्तान्युत्पतंतिच ॥ ३४ ॥ "रामंमन्यामहेविष्णुंमानुषंरूपमास्थितम् ॥ नहिमानुषमात्रोसौराघवोदृढविक्रमः ॥ १ ॥ येनबद्धःसमुद्रेचसेतुःसमरमाद्भुतः ॥ कुरुष्वनरराजेनसंधिंरामेणरावण ॥ २ ॥"

परसे गिर पड़तीहैं ॥ ३२ ॥ पशु और पक्षीगण सूर्यकी ओरको मुख कर २ रोतेहें विकराल रूप और शिर मुड़ाये काले पीले वर्णका कालपुरुष ॥ ३३ ॥ सन्ध्याके समय हम लोगोंके घरोंमें प्रवेश करके घूमता फिरताहै । इसी प्रकारके और दुष्ट निमित्त हम लोगोंको दिखाई देते है ॥ ३४ ॥ "नराकार धारण किये श्रीरामचंद्रजीको हम तो पुराण पुरुषोत्तम विष्णुही जानतेहैं कारण कि मनुष्यमें दृढ़ पराक्रम होंना कदापि संभव नही ॥ १ ॥ जिन्होंनें समुद्रमें महाअद्भुत सेतु बांध लिया, वह नारायण विष्णुजी न होकर मनुष्य किस प्रकारसे होसकतेहैं ? इस

मंडलानिविचित्राणिस्थानानिविविधानिच ॥ गोमूत्रकाणिचित्राणिगतप्रत्यागतानिच ॥ २३ ॥ तिरश्चीनगतान्ये
वतथावक्रगतानिच ॥ परिमोक्षंप्रहाराणांवर्जनंपरिधावनम् ॥ २४ ॥ अभिद्रवणमाप्लावमवस्थानंसविग्रहम् ॥ परा
वृत्तमपावृत्तमपद्रुतमवप्लुतम् ॥ २५ ॥ उपन्यस्तमपन्यस्तंयुद्धमार्गविशारदौ ॥ तौविचेरतुरन्योन्यंवानरेंद्रश्चराव
णः ॥ २६ ॥ एतस्मिन्नंतरेरक्षोमायाबलमथात्मनः ॥ आरब्धुमुपसंपेदेज्ञात्वातंवानराधिपः ॥ २७ ॥ उत्पपाततदाका
शंजितकाशीजितक्लमः ॥ रावणःस्थितएवात्रहरिराजेनवंचितः ॥ २८ ॥ अथहरिवरनाथःप्राप्तसंग्रामकीर्तिर्निशिचरप
तिमाजौयोजयित्वाश्रमेण ॥ गगनमतिविशालंलंघयित्वार्कसूनुर्हरिगणबलमध्येरामपार्श्वंजगाम ॥ २९ ॥

इस प्रकारसे युद्धविशारद राक्षसेन्द्र और वानरेन्द्र कभी विचित्र मंडल[1] कभी विविध स्थान गोमूत्रोंकार गति कभी विचित्रगत प्रत्यागत ॥ २३ ॥ कभी टेढ़ी और चक्राकार गति, कभी परस्परका प्रहार बचाय कुटिलतासे चलना, औरस्फोटके प्रहारको युक्तिसे बचाना व कौशल पूर्वक मुष्टिक आदिसे बचना, दूसरेके प्रहार करनेपर आगे को कूद जाना ॥ २४ ॥ शीघ्रतासे सन्मुखको दौड़ना, ऊपरको कूद जाना सविग्रह अवस्थिति अर्थात् विग्रह दिखा एक स्थानमें टिके रहना कभी पराङ्मुख गति कभी पीछेको हटकर शीघ्रतासे कूद जाना, बगलमें होकर अपद्रुत (जांघ पकड़नेके लिये झुक जाना) अवप्लुत ॥ २५ ॥ उपन्यास कभी अपन्यास इस प्रकारसे युद्धविशारद पारदर्शी दोनोंही वानरेन्द्र सुग्रीव और राक्षसनाथ रावण चतुरता दिखलायकर घूमने लगे ॥ २६ ॥ इतनेहीमें राक्षस रावण वानर सुग्रीवजीसे अपने छुटकारेका उपाय न देखकर अपनी माया दिखलानेपर तैयार हुआ, इसे जानकर वानरराज सुग्रीव ॥ २७ ॥ रावणको छोडकर आकाशमें कूद गये, वानरराज सुग्रीवजीको न देखकर रावण धोखा खाय वहांपर खड़ाही रहगया ॥ २८ ॥ तिसके पीछे सूर्यके पुत्र वानरराज सुग्रीव अत्यन्त परिश्रमसे निशाचर

१ मंडलक चार भागके हैं चारिमंडल, करणमडल, खंडमंडल और महामंडल, जिस मंडलमें एक चरण चलानेका कार्य पडताहै, उसे चारि, जिसमें दोनों चरण चलायें जाते हैं उसे करण, जहां कहीं एक करणमंडलोंका संयोग होताहै, उसे खण्ड, और तीन या इस्से अधिक जहां खण्डमंडल होते उसे महामंडल कहते हैं ॥ २ दोनों चरणोंका तिरछा चलाना—वैष्णवादि छ स्थान है ॥ वैष्णव, संपाद, वैशाख, मंडल, प्रत्यालीढ, अनालीढ, ३ गोमूत्र गति कुटिल भावसे चलना अर्थात् टेढे मेढे होकर चलना ॥ ४ युद्धका आरंभ करके सन्मुख खडे रहना ॥ ५ शत्रुको मारनेके लिये पांव उठाकर दौडना शत्रुबाहोंको न पकड ले इस कारण बाहोंको ऊंची किये रहना ॥ ६ शत्रुकी बांहे पकडनेके लिये अपनी बांहे बढाना ॥

थवा हमारे उत्साहसे उत्साहित होकर हमको औरभी उत्साह दिलानेंको तुमनें ऐसे कठोर वचन कहे ॥ ६ ॥ कारण कि उत्साह करनेंका आशय न होनेंसे कौंन शास्त्रके तत्वका जाननेंवाला पंडित युद्धमैं सामर्थवान राज्यपर विराजमान अपने स्वामीको ऐसे कठोर वचन कह सकताहै ॥ ७ ॥ कमलहीन लक्ष्मीकी सुन्दरताई जिस प्रकारसे होतीहै, वैसेही हम जनस्थानसे जानकीको हरण करके ले आये, इस समय क्या रामचंद्रसे डरकर हम उनको सीता देदें? ॥ ८ ॥ यह बात सत्यहै कि कोटि २ वानरोंकी सैनाके सहित व सुग्रीव और लक्ष्मणके साथ रामचंद्र लंकामें आयेहैं; परन्तु हम तुमसे कहतेहैं, कि थोड़ेही दिनोंमें तुम उनको हमारे हाथसे सेनासहित नाशको प्राप्त हुआ देखोगे ॥ ९ ॥ जिसके

प्रभवंतंपरस्थंहिपरुषंकोऽभिभाषते ॥ पंडितःशास्त्रतत्त्वज्ञोविनाप्रोत्साहनेनवा ॥ ७ ॥ आनीयचवनात्सीतांपद्महीनामिवश्रियम् ॥ किमर्थंप्रतिदास्यामिराघवस्यभयादहम् ॥ ८ ॥ वृतंवानरकोटीभिःससुग्रीवंसलक्ष्मणम् ॥ पश्यकैश्चिदहोभिश्चराघवंनिहतंमया ॥ ९ ॥ द्वंद्वेयस्यनतिष्ठंतिदैवतान्यपिसंयुगे ॥ सकस्माद्रावणोयुद्धेभयमाहारयिष्यति ॥ १० ॥ द्विधाभज्येयमप्येवंननमेयंतुकस्यचित् ॥ एषमेसहजोदोषःस्वभावोदुरतिक्रमः॥ ११ ॥ यदितावत्समुद्रेतुसेतुर्बद्धोयदृच्छया ॥ रामेणविस्मयःकोत्रयेनतेभयमागतम् ॥ १२ ॥ सतुतीर्त्वार्णवंरामःसहवानरसेनया ॥ प्रतिजानामितेसत्यंनजीवन्प्रतियास्यति ॥ १३ ॥

साथ युद्धमें देवता लोगभी खड़े नहीं होसकते, वह दिग्विजयी रावण क्या कभी युद्ध करनेंसे डरेगा? ॥ १० ॥ चाहें हमारे दोखंड होजांय, परन्तु तौभी हम किसीसे नहीं दबेंगे; यद्यपि यह हमारे स्वभावका दोषहै तौ सही, तथापि स्वभाव अलंघनीय है, इस कारण हम उसको त्याग नहीं सकते ॥ ११ ॥ रामचंद्रका समुद्रमें सेतु बांधना देखकर जो तुम डरगये, भला बतलाओ तौ कि इसमें विस्मयकी क्या बातहै, यह सेतुतो बड़ी सरलतासे बंधा है हम चाहें तौ ऐसे २ हजारों सेतु बँधवादें ॥ १२ ॥ रामचंद्र वानरोंकी सैनाके साथ समुद्रके पार उतरकर यहां आये तौ हैं, परन्तु हम तुमसे

परन्तु तथापि तुम्हारे अवतक न आनेसे हमनें अपनें मनमें इस प्रकारसे स्थित कियाथा ॥ ६ ॥ कि रणभूमिमें, पुत्र सैना, और वाहनोंके सहित रावणका संहार करके बिभीषणको लंकापुरीका राज्य दे देंगे ॥ ७ ॥ हे महाबल ! फिर अयोध्यामें जाय भरतजीको राज्यभार सोंप अपने शरीरकोभी त्याग करदेंगे जब श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा तब सुग्रीवजी उनसे बोले॥८॥हे वीर रघुनंदन! हम अपने पराक्रमको जानकर आपकी भार्याके हरण करनेंवाले रावणको देखकरभी हम किस प्रकार उसे विना दंड दिये रह सकतेहैं ॥ ९ ॥ रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीके यह वचन सुनकर सुग्रीवजीकी बड़ाई करते हुए लक्ष्मी सम्पन्न लक्ष्मणजीसे बोले ॥१०॥ कि आओ हम सबजन सुशीतल जल और फल मूल शोभित वनस्थलीका आश्रय

हत्वाहंरावणंयुद्धेसपुत्रबलवाहनम् ॥ अभिषिच्यचलंकायांविभीषणमथापिच ॥ ७ ॥ भरतेराज्यमारोप्यत्यक्ष्ये देहंमहाबल ॥ तमेवंवादिनंरामंसुग्रीवःप्रत्यभाषत ॥ ८ ॥ तवभार्यापहर्तारंदृष्ट्वाराघवरावणम् ॥ मर्षयामिकथं वीरजानन्विक्रममात्मनः ॥ ९ ॥इत्येवंवादिनंवीरमभिनंद्यचराघवः ॥ लक्ष्मणंलक्ष्मिसंपन्नमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १० ॥ परिगृह्योदकंशीतंवनानिफलवंतिच ॥ बलौघंसंविभज्येमंव्यूह्यतिष्ठामलक्ष्मण ॥ ११ ॥ लोकक्षयकरंभीमंभयंपश्याम्युपस्थितम् ॥ निबर्हणंप्रवीराणामृक्षवानररक्षसाम् ॥ १२ ॥ वाताहिपरुषंवांतिकंपतेचवसुंधरा ॥ पर्वताग्राणिवेपंतेनदंतिधरणीधराः ॥ १३ ॥मेघाःक्रव्यादसंकाशाःपुरुषाःपरुषस्वराः ॥ क्रूराःक्रूरंप्रवर्षंतेमिश्रंशोणितबिंदुभिः ॥ १४ ॥ रक्तचंदनसंकाशासंध्यापरमदारुणा ॥ ज्वलच्चनिपतत्येतदादित्यादग्निमंडलम् ॥ १५ ॥

ले सैनाको विभाग कर व्यूहकी रचना करके उसमें टिकें ॥११॥ इस समय हम लोकोंका क्षय करनेंवाले भयंकर भय चिह्न देखतेहैं इस युद्धमें जोकि होनेंवालाहै, अनेक २ वीर्यवान ऋक्ष, राक्षस और वानर गणोंका विनाश होगा ॥ १२ ॥ यह देखो भयंकर पवन चल रहीहै पृथ्वी और पर्वतोंके शिखर तरु कंपायमान होरहेहैं; और समस्त पर्वतभी शब्दायमान होरहे हैं ॥ १३ ॥ व्याघ्र सिंहादि हिंसक जन्तुओंकी समान भयंकर क्रूर जलद जाल (बादल) रुधिरकी बूंदोंसे मिला हुआ अशुभ जल वर्षातेहैं ॥ १४ ॥सन्ध्यामें लाल चन्दनकी समान लाल ललाई रंगसे दारुण मूर्ति धारण

कि बस सब होगया अब किसी प्रकारका खटका नहीं ॥ २१ ॥ रावण इस प्रकारसे लंकाकी चौकसीके लिये राक्षसोंको नियत करके मंत्रिगणको विदा देकर और आपभी जयसूचक आशीर्वादसे पूजित होकर, धनजन पूर्ण अपने बडे भारी रनवासमें प्रवेश करता हुआ ॥२२॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आदिकाव्ये युद्धकांडे षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥ इधर मनुष्योंके राजा श्रीरामचंद्रजी वानरराज सुग्रीव, कपिश्रेष्ठ पवनकुमार हनुमानजी, ऋक्षराज जाम्बवान राक्षसराज विभीषण ॥ १ ॥ वालिके पुत्र अंगदजी सुमित्राके पुत्र लक्ष्मणजी वानरश्रेष्ठ शरभ, अपने परिवार सहित सुषेण, मैन्द और द्विविद ॥ २ ॥ गज, गवाक्ष, कुमुद, नल और पनस अपने दुश्मनके राज्य लंकामें आय एकत्रहो बैठकर

विसर्जयामासततःसमंत्रिणोविधानमाज्ञाप्यपुरस्यपुष्कलम् ॥ जयाशिषामंत्रिगणेनपूजितोविवेशसोंतःपुरमृद्धिमन्महत् ॥ २२ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०युद्धकांडेषट्त्रिंशःसर्गः ॥ ३६ ॥ ॥ छ ॥ नरवानरराजानौसतुवायुसुतःकपिः ॥ जांबवानृक्षराजश्चराक्षसश्चविभीषणः ॥ १ ॥ अंगदोवालिपुत्रश्चसौमित्रिःशरभःकपिः ॥ सुषेणःसहदायादोमैंदोद्विविदएवच ॥ २ ॥ गजोगवाक्षःकुमुदोनलोथपनसस्तथा ॥ अमित्रविषयंप्राप्ताःसमवेताःसमर्थयन् ॥ ३ ॥ इयंसालक्ष्यते लंकापुरीरावणपालिता ॥ सासुरोरगगंधर्वैःसर्वैरपिसुदुर्जया ॥ ४ ॥ कार्यसिद्धिंपुरस्कृत्यमंत्रयध्वंविनिर्णये ॥ नित्यंसन्निहितोयत्ररावणोराक्षसाधिपः ॥ ५ ॥ अथतेषुब्रुवाणेषुरावणावरजोब्रवीत् ॥ वाक्यमग्राम्यपदवत्पुष्कलार्थंविभीषणः ॥ ६ ॥ अनलःपनसश्चैवसंपातिःप्रमतिस्तथा ॥ गत्वालंकांममामात्याःपुरींपुनरिहागताः ॥ ७ ॥ भूत्वाशकुनयःसर्वेप्रविष्टाश्चरिपोर्बलम् ॥ विधानंविहितंयच्चतदृष्ट्वासमुपस्थिताः ॥ ८ ॥

कहनें लगे ॥ ३ ॥ असुर, उरग, और गन्धर्वगणोंकोभी जो अजेयहै, ऐसी रावणसे पाली जाती हुई लंकापुरीमें हम आगयेहैं ॥ ४ ॥ लंकेश्वर रावण यहांपर सदांही बड़ी सावधानीसे रहताहै; अब जिस प्रकारसे कार्यकी सिद्धि होवे ऐसी परामर्श हम सबको करना उचितहै ॥५ ॥ जब सबनें यही कहा तब रावणके छोटे भाई बिभीषण उनके वचन सुनकर, ग्रामीणादिदोष रहित अर्थयुक्त यह उदार वचन बोले ॥ ६ ॥ कि अनल पनस सम्पाति और प्रमति नामक हमारे यह चारों मंत्री लंकामें जायकर इसी समय वहांसे लौटकर यहां आयेहैं ॥ ७ ॥ यह चारों पक्षियोंका रूप

कहकर पर्वतके शृङ्गसे नीचे उतरनेंकी इच्छा करते हुए ॥ २३ ॥ धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीनें उस पर्वतपरसे उत्तर शत्रुओं करकै बड़े दुःख
सेभी भयभीत न होनेंवाली अपनी वानरी सैनाको देखा ॥ २४ ॥ सुग्रीवजीके साथ श्रीरामचंद्रजीनें, कवच वख्तरादिकी सामग्री धारण कर
सुग्रीवजीको व्यूह बनानेंके लिये कहा और युद्ध करनेंके लिये वानरों को आज्ञादी ॥ २५ ॥ तिसके पीछे महा बलवान श्रीरामचंद्रजी विजय
मुहूर्त्तमें बड़ी भारी सैनाके साथ धनुष धारण करकै लंकापुरीकी ओर मुख कर संग्राम करनेंको चले ॥ २६ ॥ जब श्रीरामचंद्रजी चले तो वा
नरराज सुग्रीव, हनुमान ऋक्षराज, जाम्ववान् नल नील और लक्ष्मण उनके पीछे २ चले ॥ २७ ॥ रीछ और वानरोंकी बड़ी भारी सैना वि

अवतीर्यतुधर्मात्मातस्माच्छैलात्सराघवः ॥ परैःपरमदुर्धर्षंददर्शबलमात्मनः ॥ २४ ॥ सन्नह्यतुससुग्रीवःकपिराजबलंम
हत्॥कालज्ञोराघवःकालेसंयुगायाभ्यचोदयत् ॥२५॥ ततःकालेमहाबाहुर्बलेनमहतावृतः ॥ प्रविष्टःपुरतोधन्वीलंकाम
भिमुखःपुरीम् ॥२६॥ तौविभीषणसुग्रीवौहनूमान्जांबवान्नलः॥ऋक्षराजस्तथानीलोलक्ष्मणश्चान्वयुस्तदा ॥२७॥ ततः
पश्चात्सुमहतीपृतनर्क्षवनौकसाम् ॥ प्रच्छाद्यमहतींभूमिमनुयातिस्मराघवम् ॥ २८ ॥ शैलशृंगाणिशतशःप्रवृद्धां
श्चमहीरुहान् ॥ जगृहुःकुंजरप्रख्यावानराःपरवारणाः ॥ २९ ॥ तौत्वदीर्घेणकालेनभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ रावणस्य
पुरींलंकामासेदतुररिंदमौ ॥ ३० ॥ पताकामालिनींरम्यामुद्यानवनशोभिताम् ॥ चित्रवप्रांसुदुष्प्रापामुच्चैःप्राकार
तोरणाम् ॥ ३१ ॥ तांसुरैरपिदुर्धर्षांरामवाक्यप्रचोदिताः ॥ यथानिदेशंसंपीड्यन्यविशंतवनौकसः ॥ ३२ ॥

स्तारित पृथ्वीके एक बड़े भागको ढक कर रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीके पीछे २ गमन करनें लगी ॥ २८ ॥ शत्रुओंका विनाश करनेंमें समर्थ
हाथियोंके समान आकारवाले वानरोंनें गमन करनेंके समय असंख्य पर्वतोंके शिखर और बड़े २ वृक्ष ग्रहण कर लिये ॥ २९ ॥ इस प्रकारसे
शत्रुओंके मारनेंवाले श्रीरामचंद्रजी बहुतही शीघ्रतासे राक्षस रावणकी लंकापुरीके द्वारपर पहुंचे ॥ ३० ॥ यह लंकापुरी बहुत सारी पताका
ओंके लगनेंसे शोभायमान होरहीथी, रमणीक फुलवाडियोंसे शोभितथी; उसकी दुर्ग प्राचीर अति विचित्रथी, परिखा (खंदे) व द्वारोंपरके स्थान
अति विशाल थे; इस कारण बड़े दुःखसेभी वहां कोई नहीं पहुंच सकताथा ॥ ३१ ॥ देवताओंकोभी अति दुःखसे प्रवेश करनेंके योग्य लंकापुरी

हुएहैं ॥ १७ ॥ हेपृथ्वीनाथ! इन करोड़ २ सैनाके एक २ राक्षसके साथ उसका असंख्य परिवारभी मिल जाकर युद्धके समय इकट्ठाहो जाता है ॥ १८ ॥ महाबलवान् विभीषणजीनें मंत्रियोंसे सुना हुआ यह लंकाका वृत्तान्त निवेदन करके अपने चारों मंत्री श्रीरामचंद्रजीको दिखा दिये ॥ १९ ॥ व उन चारों मंत्रियोंनें कमलदलकी समान नेत्रवाले श्रीरामचंद्रजीसे यह सब वृत्तान्त निवेदन किया ॥ २० ॥ तिसके पीछे रावणके छोटे भाई श्रीमान् विभीषणजी रामचंद्रजीका हित साधन करनेंकी वासनासे उनसे बोले, कि रावणके बलकी क्या बातहै, जब यह रावण कुबेरके साथ युद्ध करताथा ॥ २१ ॥ उस समय साठ लाख राक्षस इसके साथ युद्ध करनेंको गयेथे । हेराजन् ! वह दुरात्मा राक्षसगण

एकैकस्यात्रयुद्धार्थेराक्षसस्यविशांपते ॥ परीवारःसहस्राणांसहस्रमुपतिष्ठति ॥ १८ ॥ एतांप्रवृत्तिंलंकायांमंत्रिप्रोक्तां विभीषणः ॥ एवमुक्त्वामहाबाहूराक्षसांस्तानदर्शयत् ॥ १९ ॥ लंकायांसचिवैःसर्वैरामायप्रत्यवेदयत् ॥ रामंकमलपत्राक्षमिदमुत्तरमब्रवीत् ॥ २० ॥ रावणावरजःश्रीमान्रामप्रियचिकीर्षया ॥ कुबेरंतुयदारामरावणःप्रतियुद्ध्यति ॥ २१ ॥ षष्टिःशतसहस्राणितदानिर्यांतिराक्षसाः ॥ पराक्रमेणवीर्येणतेजसासत्वगौरवात् ॥ सदृशाह्यत्रदर्पेणरावणस्यदुरात्मनः ॥२२॥ अत्रमन्युर्नकर्तव्यःकोपयेत्वांनभीषये ॥ समर्थोह्यसिवीर्येणसुराणामपिनिग्रहे ॥ २३ ॥ तद्भवांश्चतुरंगेणबलेनमहतावृतम् ॥ व्यूह्येदंवानरानीकंनिर्मथिष्यासिरावणम् ॥ २४ ॥ रावणावरजेवाक्यमेवंब्रुवतिराघवः ॥ शत्रूणांप्रतिघातार्थमिदंवचनमब्रवीत् ॥ २५ ॥

पराक्रम, वीर्य, तेज, बल, धीरता, और दर्प किसी बातमें किसी प्रकार रावणसे कम नहीं ॥ २२ ॥ हेराजन्! आप क्रोध न कीजिये, हमनें; भय दिखानेके लिये, ऐसा नहीं कहा, वरन केवल आपका क्रोध प्रदीप्त करनेंहीके लिये ऐसा कहाहै; कारणकि आप क्रोधित होकर अपने वीर्यके बलसे देवता इन्द्रादिकोंकोभी दंड देसकते हैं ॥ २३ ॥ हम निश्चयही कहतेहैं कि आप इस बड़ी भारी चतुरंगिनी सैनाको व्यूहाकारमें स्थापन करके रावणको भलीभांति मर्दन करेंगे ॥ २४ ॥ रावणके छोटे भाई विभीषणजीनें जब ऐसा कहा तब रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी शत्रुगणोंका

साथ दक्षिण द्वार परगये, और मध्यके गुल्म पर स्वयं सुग्रीवजी जाउठे ॥ ४१ ॥ कि जिनके साथ सर्व वानरश्रेष्ठ थे, कि जिनमें गरुड़ और पवनकी समान बल था, इस वानरोंकी सैनामें छत्तीस करोड़ विख्यात वानरोंके यूथपथे ॥ ४२ ॥ यह सब वानर वहां पर मिलकर आये कि जहां सुग्रीवजीथे, रामचंद्रजीकी आज्ञासे लक्ष्मण ओर विभीषणजीनें ॥ ४३ ॥ लंकाके प्रत्येक द्वार पर करोड़ २ वानरोंको नियुक्त करते हुए सुषेण जाम्बवान् बहुतसी वानरोंकी सैनाको संगलेकर श्रीरामचंद्रजीके पीछे ॥ ४४ ॥ अत्यन्त निकटवाले मध्य गुल्म पर बहुतसी सैनाके साथ जाय टिके इस प्रकार वानर शार्दूलगण कि जिनके दांतभी सिंहकी समान तीक्ष्ण थे, वृक्ष और पर्वतोंको धारण करके हर्षित मनसे

सहस्रैर्हरिश्रेष्ठैःसुपर्णपवनोपमैः ॥ वानराणांतुषट्त्रिंशत्कोट्यःप्रख्यातयूथपाः ॥ ४२ ॥ निपीड्योपनिविष्टाश्चसुग्रीवोयत्रवानरः ॥ शासनेनतुरामस्यलक्ष्मणःसविभीषणः ॥ ४३ ॥ द्वारेद्वारेहरीणांतुकोटिंकोटीन्र्यवेशयत् ॥ पश्चिमेनतुरामस्यसुषेणःसहजांबवान् ॥ ४४ ॥ अदूरान्मध्यमेगुल्मेतस्थौबहुबलानुगः ॥ तेतुवानरशार्दूलाःशार्दूलाइव दंष्ट्रिणः ॥ गृहीत्वाद्रुमशैलाग्रान्हृष्टायुद्धायतस्थिरे ॥ ४५ ॥ सर्वेविकृतलांगूलाःसर्वेदंष्ट्रानखायुधाः ॥ सर्वेविकृतिचित्रांगाःसर्वेचविकृताननाः ॥ ४६ ॥ दशनागबलाःकेचित्केचिद्दशगुणोत्तराः ॥ केचिन्नागसहस्रस्यबभूवुस्तुल्यविक्रमाः ॥ ४७ ॥ संतिचौघबलाःकेचित्केचिच्छतगुणोत्तराः ॥ अप्रमेयबलाश्चान्येतत्रासन्हरियूथपाः ॥ ४८ ॥ अद्भुतश्च विचित्रश्चतेषामासीत्समागमः ॥ तत्रवानरसैन्यानांशलभानामिवोद्गमः ॥ ४९ ॥

युद्धकी राह परखनें लगे ॥ ४५ ॥ नख और दांतोंको आयुध बनाये विचित्र देहवाले वह वानरगण क्रोधमें भरकर अपनी पूंछको फटकारने अंग चलानें और मुख विरानेंके आकार करनें लगे ॥ ४६ ॥ इन वानरोंमें किसी२के दश हाथियोंका बल था, किसी २ के शत हाथियोंका बलथा, और किन्हीं २ में हजार हाथियोंकी समान बल विक्रम था ॥ ४७ ॥ उन वानरोंमें कोई २ अमोघ सङ्घ औरकोई २ के शत अमोघ सङ्घ हाथियोंकी समान बलशाली थे, और कोई २ यूथपतिसे ऐसे बलशाली थे, कि उनकी तुलना किसीके साथ नहीं हो सकती ॥ ४८ ॥ टीढ़ियोंकी समान उस वानरोंकी

हे वानरगण! तुम लोगोंका चिन्ह वानरहीहै, इस कारण तुम सब यही रूप धारण किये रहना, केवल हम सात जन मनुष्यका रूप धारण करके शत्रुसे युद्ध करेंगे ॥३४॥ उनमें हम महा तेजस्वी लक्ष्मणजी सखा बिभीषणजी, और इनके सचिव चारों राक्षस बस यह सात जन मनुष्यका रूप धारण करके युद्ध करेंगे, इनके सिवाय मनुष्यका रूप धारण किये और जिसकोभी देखेंगे मार डालेंगे ॥ ३५ ॥ सब कार्योंके करनेमें समर्थ बुद्धिमान स्वामी श्रीरामचंद्रजी धार्मिक बिभीषणजीसे यह कहकर सुवेल पर्वतपर चढ़नेंकी अपनी बुद्धि करते हुए ॥ ३६ ॥ क्योंकि, वह सुवेल पर्वतका तट श्रीरामचंद्रजीको बहुत रमणीयतर दिखायी दिया ॥ ३७ ॥ इस प्रकारसे महाबलवान श्रीरामचंद्रजी शत्रुका वध करनेके लिये

वानराएववश्चिह्नंस्वजनेऽस्मिन्भविष्यति॥वयंतुमानुषेणैवसप्तयोत्स्यामहेपरान्॥३४॥ अहमेवसहभ्रात्रालक्ष्मणेनमहौजसा॥आत्मनापंचमश्चायंसखाममविभीषणः॥३५॥ सरामःकृत्यसिद्ध्यर्थमेवमुक्त्वाविभीषणम् ॥ सुवेलारोहणेबुद्धिंचकारमतिमान्प्रभुः॥ ३६ ॥ रमणीयतरंदृष्ट्वासुवेलस्यगिरेस्तटम्॥ ३७ ॥ ततस्तुरामोमहताबलेनप्रच्छाद्यसर्वांपृथिवींमहात्मा॥ प्रहृष्टरूपोभिजगामलंकांकृत्वामतिंसोरिवधेमहात्मा ॥ ३८ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेसप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥ ॥ छ ॥ ॥ सतुकृत्वासुवेलस्यमतिमारोहणंप्रति ॥ लक्ष्मणानुगतोरामः सुग्रीवमिदमब्रवीत्॥ १ ॥ बिभीषणंचधर्मज्ञमनुरक्तंनिशाचरम् ॥ मंत्रज्ञंचविधिज्ञंचश्लक्ष्णयापरयागिरा ॥ २ ॥ सुवेलंसाधुशैलेंद्रमिमंधातुशतैश्चितम् ॥ अध्यारोहामहेसर्वेवत्स्यामोत्रनिशामिमाम् ॥ ३ ॥

कृतनिश्चय होकर अपनी बड़ी भारी वानर सैनासे पृथ्वीको ढककर हर्षित अंतःकरणसे लंकाके जंगलमें विराजमान होनें लगे ॥ ३८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥ श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके साथ सुवेल पर्वत पर चढनेंकी अभिलाषा करके वानरराज सुग्रीवजीसे बोले ॥ १ ॥ मंत्र जाननेंवाले, धर्मके जानकर अनुरागी चित्त और समस्त विधान समझानेंवाले बिभीषणजीसे भी श्रीरामचंद्रजीने कहा ॥ २ ॥ कि चलो हम सब जन द्रुम (वृक्ष) और धातु युक्त सुवेल पर्वतपर चढकर आज वहांपर रात्रि वितामेंगे ॥ ३ ॥

उस बड़े भारी शब्दसे पर्वत, वन कानन प्राकार और फाटकोंके सहित समस्त लंकाद्वीप वारंवार कम्पायमान होनें लगा ॥ ५६ ॥ अधिक क्याकहैं उस समयमें वह वानरोंकी सैना श्रीरामचंद्र लक्ष्मण व सुग्रीवजी करकै रक्षित होनेंके कारण देवता व राक्षसोंसे भी जीतनेंके अयोग्य जान पड़तीथी ॥ ५७ ॥ श्रीरामचंद्रजी इस प्रकारसे राक्षसोंका वध करनेंके लिये सैना स्थापनकर कर्त्तव्याकर्त्तव्यका निश्चय करनेंके लिये मंत्रियोंके साथ सलाह करनेंमें लगे और वारंवार कार्यका निर्णय करनेंमें आगे बढ़े ॥ ५८ ॥ श्रीरामचंद्रजी साम दाम भेद दंड इन चारों उपायोंको जानतेथे, परन्तु उपस्थित कार्यमें शेष उपाय अर्थात् दंड देनाही श्रेष्ठ विचार करकै राजधर्ममें

तेनशब्देनमहतासप्राकारासतोरणा ॥ लंकाप्रचलितासर्वासशैलवनकानना ॥ ५६ ॥ रामलक्ष्मणगुप्तासासुग्रीवेणच वाहिनी॥बभूवदुर्धर्षतरासर्वैरपिसुरासुरैः ॥५७॥राघवःसन्निवेश्यैवस्वसैन्यंरक्षसांवधे ॥ संमंत्र्यमंत्रिभिःसार्धंनिश्चित्य चपुनःपुनः ॥५८॥आनंतर्यमभिप्रेप्सुःक्रमयोगार्थतत्त्ववित् ॥ विभीषणस्यानुमतेराजधर्ममनुस्मरन् ॥ ५९ ॥ अंगदंवा लितनयंसमाहूयेदमब्रवीत्॥ गत्वासौम्यदशग्रीवंब्रूहिमद्वचनात्कपे ॥६०॥ लंघयित्वापुरीलंकांभयंत्यक्त्वागतव्यथः ॥ भ्रष्टश्रीकंगतैश्वर्यंमुमूर्षानष्टचेतनम् ॥ ६१ ॥ ऋषीणांदेवतानांचगंधर्वाप्सरसांतथा ॥ नागानामथयक्षाणांराज्ञांचर जनीचर ॥ ६२ ॥ यच्चपापंकृतंमोहादवलिप्तेनराक्षस ॥ नूनंतेविगतोदर्पःस्वयंभूवरदानजः ॥ ६३ ॥ यस्यदंडधरस्ते हंदाराहरणकर्शितः ॥ दंडंधारयमाणस्तुलंकाद्वारेव्यवस्थितः ॥ ६४ ॥

मन लगाते हुए और विभीषणजीकी परामर्शके अनुसार यही कर्त्तव्य स्थिर करकै ॥ ५९ ॥ वालिके पुत्र अंगदजीको बुलायकर उनसे बोले, कि हेसौम्य! तुम हमारे वचनोंको जायकर रावणसे कहना; ॥ ६० ॥ तुम निर्भय होकर समस्त लंका पुरीको लांघते हुए चले जाना, और राक्षसोंका भय छोड़ उनसे कहनाकि हेलक्ष्मीरहित, ऐश्वर्यहीन मृत्युके निकट पहुंचे चेतना रहित राक्षस ॥ ६१ ॥ ऋषि, देवता, गन्धर्व, अप्सरा, सर्प, यक्ष और राजाओंका ॥ ६२ ॥ जो पाप विनाविचारे व गर्वसे तुमनें कियाहै, उस पापके भोगनेंका समय अव आगयाहै; अब उन पापोंका दारुण परिणाम फलनाही चाहताहै, ब्रह्माके वरदानसे ये गर्व तुमको हुआहै, आज वह चूर्ण कर देंगे ॥ ६३ ॥ तुमनें जो हमारी भार्या

राक्षसोंसें पूर्ण लंकापुरीको वानर यूथपोंने देखा कोटकी भीत और खंबोंपर चढे राक्षसोंसे घिरी हुई उस लंकापुरीमें व नील वर्ण
वाली राक्षसी सैनाकी श्रेणीको मानों दूसरी दुर्ग प्राचीर (शहर पनाह) तुल्य वानर श्रेष्ठोंनें देखी ॥ ११ ॥ युद्धकी अभिलाषा किये वानर गण उन
समस्त राक्षसोंकी सैनाको देख रामचंद्रके सामनेही सिंहनाद करनें लगे ॥ १२ ॥ तिसके पीछे सन्ध्या राग रंजित दिवाकर सूर्य भगवान अस्ता
चलको गमन करते हुए, और रात्री हो आई, उस समय पूर्ण चंद्रमाके उदय होनेंसे रात्रिभी प्रदीप्त तुल्य बोध होनें लगी ॥ १३ ॥
तिसके पीछे श्रीरामचंद्रजी अपने सैनापती वानरयूथप व विभीषणजीसे पूजित और सन्मानित होकर लक्ष्मणजीके साथ यूथपति

लंकांराक्षससंपूर्णांददृशुर्हरियूथपाः ॥ प्राकारवरसंस्थैश्चतथानीलैश्चराक्षसैः ॥ ददृशुस्तेहरिश्रेष्ठाःप्राकारमपरं
कृतम् ॥ ११ ॥ तंदृष्ट्वावानराःसर्वेराक्षसान्युद्धकांक्षिणः ॥ मुमुचुर्विविधान्नादांस्तस्यरामस्यपश्यतः ॥ १२ ॥
ततोस्तमगमत्सूर्यःसंध्ययाप्रतिरंजितः ॥ पूर्णचंद्रप्रदीप्ताचक्षपासमतिवर्तत ॥ १३ ॥ ततःसरामोहरिवाहिनीपतिर्वि
भीषणेनप्रतिनंद्यसत्कृतः ॥ सलक्ष्मणोयूथपयूथसंयुतःसुवेलपृष्ठेन्यवसद्यथासुखम् ॥ १४ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ०
युद्धकांडेअष्टत्रिंशःसर्गः ॥ ३८ ॥ ॥ छ ॥ तांरात्रिमुषितास्तत्रसुवेलेहरियूथपाः ॥ लंकायांददृशुर्वीरावनान्युपवना
निच ॥ १ ॥ समसौम्यानिरम्याणिविशालान्यायतानिच ॥ दृष्टिरम्याणितेदृष्ट्वाबभूवुर्जातविस्मयाः ॥ २ ॥ चंपका
शोकबकुलशालतालसमाकुला ॥ तमालपनसच्छन्नानागमालासमावृता ॥ ३ ॥

और यूथ गणोंके सहित यथा सुखसे सुवेल पर्वतके शृंगोंपर वास करनें लगे ॥ १४ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० अष्टत्रिंशःसर्गः ॥ ३८ ॥
तिसके पीछे वानरोंकी सैनाके यूथप सुवेल पर्वतके शिखर पर वह रात्रि विताय लंकापुरीके समस्त वन व उपवनोंको देखते हुए ॥ १ ॥ यह
समस्त उपवन, विशाल समान सुखदाई, लम्बे चौड़े और देखतेही मन मोहतेथे, जिनको देखकर वानरगण अत्यन्त विस्मित हुए ॥ २ ॥ वानरोंनें
देखाकि इन वन उपवनोंमें,चम्पा, वकुल, शाकुल, शाल, ताल छायरहे हैं, और तमाल कटहरसे छायकर यह वन नागवेलिसे युक्त हैं ॥ ३ ॥

हे निशाचर! तुम यदि पक्षीकी देह धारण करके त्रिलोकीके मध्यमें भी घूमोगे,तथापि हमारी दृष्टिसे अलग हो जानेंको अथवा अपने जीवनके रक्षा
करनेंको तुम समर्थ न होगे॥७१॥अबतुम्हारा जीवन हमारे ही हाथमें है; इस कारण तुम्हारे हितके निमित्त ही कहते हैं, कि तुम पर लोक सद्गति
प्राप्त करनेंके लिये दानपुण्य जो कुछ करनें हैं वह कर लो, और तुम्हारा मरण देखकर लंकानगरी प्रमुदित होवै ॥ ७२ ॥ दुष्करकर्म करनें वाले
श्रीरामचंद्रजी करके इस प्रकारसे कहे जाकर ताराकुमार अंगदजी मूर्तिमान अग्निकी समान आकाश मार्ग में गमन करने ॥ ७३ ॥
इसके पीछे एक मुहूर्त भरके बीचमें रावणके मंदिर पर पहुंचकर मंत्रि लोगोंके साथ बैठे अविचालित हृदय रावणको अंगदजी देखते हुए ॥ ७४ ॥

यद्याविशसिलोकांस्त्रीन्पक्षीभूतोनिशाचर ॥ ममचक्षुःपथंप्राप्यनजीवन्प्रतियास्यसि ॥ ७१ ॥ ब्रवीमित्वांहितंवाक्यं
क्रियतामौर्ध्वदेहिकम् ॥ सुदृष्टाक्रियतांलंकाजीवितंतेमयिस्थितम् ॥ ७२ ॥ इत्युक्तःसतुतारेयोरामेणाक्लिष्टकर्म
णा ॥ जगामाकाशमाविश्यमूर्तिमानिवहव्यवाट् ॥ ७३ ॥ सोतिपत्यमुहूर्तेनश्रीमान्रावणमंदिरम् ॥ ददर्शासी
नमव्यग्रंरावणंसचिवैःसह ॥ ७४ ॥ ततस्तस्याविदूरेणनिपत्यहरिपुंगवः ॥ दीप्ताग्निसदृशस्तस्थावंगदःकनकांग
दः॥ ७५ ॥ तद्रामवचनंसर्वमन्यूनाधिकमुत्तमम् ॥ सामात्यंश्रावयामासनिवेद्यात्मानमात्मना ॥ ७६ ॥ दूतोहंको
शलेंद्रस्यरामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ वालिपुत्रोंगदोनामयदितेश्रोत्रमागतः ॥ ७७ ॥ आहत्वांराघवोरामःकौसल्यानं
दवर्धनः ॥ निष्पत्यप्रतियुध्यस्वनृशंसपुरुषोभव ॥ ७८ ॥

तिसके पीछे सुवर्णके बाजूसे भूषित प्रदीप्त अग्निकी समान वानरश्रेष्ठ अंगदजी रावणके निकट ही आकाशसे उतर स्वयं अपना नाम सबको
सुनाय मंत्रियोंके सहित रावणसे वह श्रीरामचंद्रजीके कहे हुए वचन यथार्थ २ कहनें लगे ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ अंगदजी बोले कदाचित्त तुमने हमारा
नाम सुनाही होगा, जो न सुना हो तौ अब सुनों कि हम वालिके पुत्र हैं और अंगद हमारा नामहै । इस समय दुष्कर कर्म करनेंवाले
श्रीरामचंद्रजीके दूत होकर यहां आये हैं ॥ ७७ ॥ कौशल्याजीको आनंद बढ़ानेवाले श्रीरामचंद्रजीनें तुमसे कह दियाहै कि-रे पुरुषोंमें

वहांपर चढ़कर एक मुहूर्त्तभरतक टिक दशों दिशाओंको श्रीरामचंद्रजीनें निहारा, तब विश्वकर्माजीकी बनाई त्रिकूटपर्वतके शिखरपर वसी हुई लंका नगरी ॥ २ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें देखी, यह पुरी अच्छे नियमद्वारा क्रम २ से बनाई गईथी, और रमणीकवनभी इसमें चारों ओर शोभायमान थे, उस लंकामें बने हुए ऊंचे द्वारके (गोपुरके) ऊपर राक्षसोंके राजा अति दुर्द्धर्ष रावणको मस्तक पर ॥ ३ ॥ विजय छत्र लगाये;अगल बगल दो श्वेत चँवर ढुलते लाल चंदन लगाये, लाल कपड़े व लालही गहनोंसे भूषित ॥ ४ ॥ और नीले बादरके रंगका सुवर्ण जड़ित उत्तरीय वस्त्र धारण किये, छातीमें ऐरावत हाथीके दांत लगजानेंसे घावयुक्त होनेंके कारण उसके चिह्नसे युक्त ॥ ५ ॥ खरगोशके

स्थित्वामुहूर्ततत्रैवदिशोदशविलोकयन् ॥ त्रिकूटशिखरेरम्येनिर्मितांविश्वकर्मणा ॥ २ ॥ ददर्शलंकांसुन्यस्तांरम्यकाननशोभिताम् ॥ तस्यगोपुरशृंगस्थंराक्षसेंद्रंदुरासदम् ॥ ३ ॥ श्वेतचामरपर्यंतंविजयच्छत्रशोभितम् ॥ रक्तचंदनसंलिप्तंरक्ताभरणभूषितम् ॥ ४ ॥ नीलजीमूतसंकाशंहेमसंछादितांबरम् ॥ ऐरावतविषाणाग्रैरुत्कृष्टकिणवक्षसम् ॥ ५ ॥ शशलोहितरागेणसंवीतंरक्तवाससा ॥ संध्यातपेनसंछन्नंमेघराशिमिवांबरे ॥ ६ ॥ पश्यतांवानरेंद्राणांराघवस्यापिपश्यतः ॥ दर्शनाद्राक्षसेंद्रस्यसुग्रीवःसहसोत्थितः ॥ ७ ॥ क्रोधवेगेनसंयुक्तःसत्वेनचबलेनच ॥ अचलाग्रादथोत्थायपुप्लुवेगोपुरस्थले ॥ ८ ॥ स्थित्वामुहूर्तंसंप्रेक्ष्यनिर्भयेनांतरात्मना ॥ तृणीकृत्यचतद्रक्षःसोब्रवीत्परुषंवचः ॥ ९ ॥ लोकनाथस्यरामस्यसखादासोस्मिराक्षस ॥ नमयामोक्ष्यसेऽद्यत्वंपार्थिवेंद्रस्यतेजसा ॥ १० ॥

रुधिरकी समान रंगवाला लाल वस्त्र पहरे सन्ध्याकी धूपसे ढके हुए बादलके समूहकी समान आकाशमें विराजमान ॥ ६ ॥ वानरोंनें और श्रीरामचंद्रजीनें देखा, ऐसे राक्षसराजको देखतेही सुग्रीवजी सहसा उठ खड़ेहुए ॥ ७ ॥ वह सुग्रीव क्रोधके वेगसे परिपूर्ण और अपनें बल विक्रमसे उत्साहित होकर पर्वतके ऊपरसे छलांग मारकर उसी गोपुरके स्थानमें पहुंच गये जहांकि रावण खड़ाथा ॥ ८ ॥ तिसके पीछे वहां पर भयरहित मनसे कुछ देरतक खड़ेहो रावणके प्रति एक दृष्टिसे देख उसको तृणकी समान समझ कठोर वचन कहनेंलगे ॥ ९ ॥ कि हे निशाचर! हम सर्व लोकके स्वामी श्रीरामचंद्रजीके दासहैं; हम उन पृथ्वीनाथके अनुग्रहसे जिस प्रकारके तेजस्वी हुएहैं, तिस्से तौ आज किसी

राक्षस रावणके सामनेही पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ८७ ॥ तिसके पीछे महाप्रतापी अंगदजीनें पर्वतके शिखरकी समान ऊंचे रावणके राजमंदिर पर चढ़कर उस पर वलसे एक पद प्रहार किया ॥ ८८ ॥ वज्रधारी इन्द्रजीके वज्र मारनेंसे जिस प्रकार पूर्व कालमें हिमाचलका शृङ्ग चूर्ण होगयाथा वैसेही रावणके सन्मुख उसके देखते २ राजमंदिर फटकर गिर पड़ा ॥८९॥ इस प्रकारसे अंगदजी राज मंदिरके शिखरको तोडकर वारंवार अपना नाम सबको सुनाय अत्यन्त घोर सिंहनाद करते हुए आकाशको उछल गये ॥ ९० ॥ वीर अंगदजी इस प्रकारसे राक्षसोंको दुःखी और वानर गणोको हर्ष उपजाते हुए वानर गणोंके बीचमें बैठे श्रीरामचंद्रजी के निकट पहुंच गये ॥ ९१॥ राजमंदिरके टूटनेंपर रावणको अत्यन्तही क्रोध उत्पन्न

ततःप्रासादशिखरंशैलशृंगमिवोन्नतम् ॥ चक्रामराक्षसेंद्रस्यवालिपुत्रःप्रतापवान् ॥ ८८ ॥ पफालचतदाक्रांतंदशग्रीवस्यपश्यतः ॥पुराहिमवतःशृंगंवज्रेणेवविदारितम्॥८९॥ भंक्त्वाप्रासादशिखरंनामविश्राव्यचात्मनः ॥ विनद्यसुमहानादमुत्पपातविहायसा ॥९०॥व्यथयन्राक्षसान्सर्वान्हर्षयंश्चापिवानरान् ॥ सवानराणांमध्येतुरामपार्श्वमुपागतः॥९१॥ रावणस्तुपरंचक्रेक्रोधंप्रासादधर्षणात् ॥ विनाशंचात्मनःपश्यन्निःश्वासपरमोभवत् ॥ ९२ ॥ रामस्तुबहुभिर्हृष्टैर्विनदद्भिःप्लवंगमैः ॥ वृतोरिपुवधाकांक्षीयुद्धायैवाभिवर्तत ॥ ९३ ॥ सुषेणस्तुमहावीर्योगिरिकूटोपमोहरिः ॥ बहुभिःसंवृतस्तत्रवानरैःकामरूपिभिः ॥ ९४ ॥ सतुद्वाराणिसंयम्यसुग्रीववचनात्कपिः ॥ पर्यक्रामतदुर्धर्षोनक्षत्राणीवचंद्रमाः ॥ ९५ ॥ तेषामक्षौहिणिशतंसमवेक्ष्यवनौकसाम् ॥ लंकामुपनिविष्टानांसागरंचाभिवर्तताम् ॥ ९६ ॥

हुआ और वह श्रीरामचंद्रजीके दूतका बल और अपने होंनेवाले विनाशको निश्चय जानकर चिन्ता सहित वारंवार लंबे २ श्वास लेने लगा ॥ ९२ ॥ इस ओर महाबलवान श्रीरामचंद्रजीभी हर्षित किलकिलात वानर गणोंसे वेष्टित होकर शत्रुका नाश करनेंके लिये युद्धमेंही अपने मनको लगाते हुए ॥९३॥ पर्वताकार महाबलशाली सुषेणभी कामरूपधारी बहुत सारे वानरोंकी सैना संगलेकर आगे बढ शोभायमान हुआ ॥ ९४ ॥ वह अजेय सुषेण नाम वानर कपिराज सुग्रीवजीकी आज्ञासे तारागणोंसे घिरे हुए चंद्रमंडलकी समान बहुत सारी सैनाको साथ लेकर लंकाके समस्त द्वारोंपर घूमनें लगा ॥ ९५ ॥ लंकाके मयदानमें समुद्रकी सीमातक उठी हुई असंख्य अक्षौहिणीके प्रमाणवाली वानरोंकी सैना देखकर ॥९६॥

सुग्रीव इसके शरीरको ऊपर उछालकर गिरा देतेथे ॥ १६ ॥ तिसके पीछे दोनों दोनोंको दबाय एक दूसरेसे लिपट दुर्ग प्राचीरकी खाई में गिरे, वहां थोडी देर दोनोही चेष्टा रहित होकर निर्जीवसे पडे रहे और फिर अतिकठिनतासे पृथ्वी पकड़ वहांसे निकले उसकाल दोनों ही वारंवार लंबी श्वासें ले रहेथे ॥ १७ ॥ क्रोध शिक्षा और बलके सहित यह मार्गमें घूमते हुए दोनों दोनोंको वारंवार लिपटते हुए ऐसे जान पड़ने लगे कि मानों दोनों २ को वारंवार रस्सीसे बांध रहेहैं ॥ १८ ॥ इस प्रकारसे दांत निकले सिंह व शार्दूलशिशुके सहित समरमें आसक्त हो हाथीके पाठोंकी समान दोनों दोनों बाहोंसे आघात प्रतिघात करते हुए दोनोंही एक साथ पृथ्वीपर गिरनें लगे ॥ १९ ॥ इस प्रकारसे वह दोनों वीर परस्पर एक

अन्योन्यमापीड्यविलग्नदेहौतौपेततुःसालनिखातमध्ये ॥ उत्पेततुर्भूमितलंस्पृशंतौस्थित्वामुहूर्तंत्वभिनिःश्वसंतौ
॥ १७ ॥ आलिंग्यचालिंग्यचबाहुयोक्त्रैःसंयोजयामासतुराहवेतौ ॥ संरंभशिक्षाबलसंप्रयुक्तौसुचेरतुःसंप्रतियुद्धमा
र्गे ॥ १८ ॥ शार्दूलसिंहाविवजातदंष्ट्रौगजेंद्रपोताविवसंप्रयुक्तौ ॥ संहत्यसंवेद्यचतौकराभ्यांतौपेततुर्वैयुगपद्धराया
म् ॥ १९ ॥ उद्यम्यचान्योन्यमधिक्षिपंतौसंचक्रमातेबहुयुद्धमार्गे ॥ व्यायामशिक्षाबलसंप्रयुक्तौक्लमंनतौजग्मतुरा
शुवीरौ ॥ २० ॥ बाहूत्तमैर्वारणवारणाभैर्निवारयंतौपरवारणाभौ ॥ चिरेणकालेनभृशंप्रयुद्धौसंचेरतुर्मंडलमार्गमा
शु ॥ २१ ॥ तौपरस्परमासाद्ययत्तावन्योन्यसूदने ॥ मार्जाराविवभक्षार्थेऽवतस्थातेमुहुर्मुहुः ॥ २२ ॥

दूसरे को वारंवार मारते और उछाल देतेथे, और, उत्साह शिक्षा व बल सहित अनेक प्रकारकी चतुरताभी दिखातेथे, परन्तु तथापि उन दोनों वीरोंमे से शीघ्र कोई भी न थका ॥ २० ॥ मतवाले हाथियोंकी समान वह दोनों वीर हाथीकी शुण्डके समान आकार वाली अपनी दोनों भुजाओंसे एक दोनोंको निवारण करते हुए बहुत विलम्बतक युद्ध करके मंडलाकार होकर लड़ने लगे ॥ २१ ॥ किसी भोजन करनेंकी वस्तु को भोजन करनेके लिये लड़ते हुए दो बिलावोंकी समान यह दोनों वीरभी एक दूसरेका प्राण संहार करनेंमे यत्न करनेंलगे ॥ २२ ॥

चिन्ता होनें लगी कि किस प्रकारसे वानरोंका नाश किया जाय ॥ ४ ॥ बहुत देरतक यह चिन्ता करके वह धीर धारणकरके नेत्र फैलाय २ राम लक्ष्मण और उनकी सैनाके समूहको देखनें लगा ॥ ५ ॥ वहांपर श्रीरामचंद्रजीनें हर्षित अंतःकरणसे सैनाके सहित लंकापुरीके प्राकारके निकट पहुँच गुप्त राक्षसोंकी पुरी लंकाको सब जगह राक्षसोंसे पूरित होकर रक्षा की जाती हुई देखा ॥ ६ ॥ ध्वजा पताकाओंसे शोभायमान लंकापुरीको देखतेही सीतापति रघुनाथजीके विरहसे उत्पन्न हुए दुःखकी अवाई हुई और इसी समय श्रीरामचंद्रजी मनही मनमें कहनें लगे ॥ ७ ॥ हाय! इसी स्थानमें वह मृग छौनाकेसे नेत्रवाली कृशाङ्गी जनककुमारी जानकी हमारे लिये पीडित और शोकसे संतापित होकर

सचिंतयित्वासुचिरंधैर्यमालंब्यरावणः ॥ राघवंहरियूथांश्चददर्शायतलोचनः ॥ ५ ॥ राघवःसहसैन्येनमुदितोनामपुप्लुवे ॥ लंकांददर्शगुप्तांवैसर्वतोराक्षसैर्वृताम् ॥६॥ दृष्ट्वादाशरथिर्लंकांचित्रध्वजपताकिनीम् ॥ जगाममनसासीतांदूयमानेनचेतसा ॥७॥ अत्रसामृगशावाक्षीमत्कृतेजनकात्मजा ॥ पीडयतेशोकसंतप्ताकृशास्थंडिलशायिनी ॥ ८॥ निपीडयमानांधर्मात्मावैदेहीमनुचिंतयन्॥क्षिप्रमाज्ञापयद्रामोवानरान्द्विषतांवधे ॥ ९॥ एवमुक्तेतुवचसिरामेणाक्लिष्टकर्मणा॥ संघर्षमाणाःप्लवगाःसिंहनादैरपूरयन् ॥ १० ॥ शिखरैर्विकिरामैतांलंकांमुष्टिभिरेववा ॥ इतिस्मदधिरेसर्वेमनांसिहरियूथपाः ॥ ११ ॥ उद्यम्यगिरिशृंगाणिमहांतिशिखराणिच ॥ तरूंश्चोत्पाटयविविधांस्तिष्ठंतिहरियूथपाः ॥१२॥

पृथ्वीमें शयन करती हैं॥ ८ ॥ श्रीरामचंद्रजी इस प्रकार वैदेहीजीके दुःखको विचारकर अत्यन्तही कातर हुए; और शीघ्रही युद्ध करनेके लिये उन्होंने वानर लोगोंको आज्ञादी ॥ ९ ॥ वानर लोग सरलतासे कर्म करनें वाले श्रीरामचंद्रजीकी इस प्रकारसे आज्ञा पाय समस्तही वानर एक साथ आगे बढनेंके लिये सिंहनाद कर२ के चारों दिशाओंको परिपूरित करते हुए ॥ १० ॥ उस कालमें वह वानरयूथपतिगण समस्तही "हम लोग पर्वतोंके शिखरसे इस लंका नगरीको तितर वितर करेंगे अथवा घुमाकर उसको चूर्ण कर डालेंगे," इस प्रकारसे सबही मनमें कहनें लगे ॥ ११ ॥ वह वानरोंके समस्त यूथप पर्वत शृङ्ग बड़े २ शिखर और अनेक प्रकारके वृक्षोंको उखाड़कर हाथमें ले लड़नेंको तैयार हुए ॥ १२ ॥

पति रावणको पराजित और स्वयंभी विजय रूप कीर्ति पाय अतिविशाल आकाशको लांघकर वानरोंकी सैनाके मध्यमें टिके हुए श्रीरामचंद्रजीके निकट पहुंचनेंकी इच्छा करते हुए ॥ २९ ॥ तिसके पीछे हर्षित अन्तःकरण और पवनवेग तुल्यसे वानरोंकी सैनाके बीचमें प्रवेशकर उन वानरोंसे पूजितहो युद्धका वृत्तान्त निवेदन करतेहुए श्रीरामचंद्रजीके आनंदको बढानेंलगे ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥ इसके पीछे दशरथ कुमार श्रीरामचंद्रजी सुग्रीवजीके शरीरमें युद्धके चिह्न देख उनको भेंटकर कहनें लगे ॥ १ ॥ हे सखे तुमनें हमारे साथ विना सलाह कियेही साहस प्रकाश कियाहै, सो राजालोग कभीभी ऐसा

सइतिसवितृसूनुस्तत्रतत्कर्मकृत्वापवनगतिरनीकंप्राविशत्संप्रहृष्टः ॥रघुवरनृपसूनोर्वर्धयन्युद्धहर्षंतरुमृगगणमुख्यैः पूज्यमानोहरींद्रः ॥ ३० ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०यु०चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४० ॥ ७१ ॥ ॥ अथतस्मिन्निमित्तानिदृष्ट्वा लक्ष्मणपूर्वजः ॥ सुग्रीवंसंपरिष्वज्यरामोवचनमब्रवीत् ॥ १ ॥ असंमंत्र्यमयासार्धंतदिदंसाहसंकृतम् ॥ एवंसाहसयुक्तानिनकुर्वंतिजनेश्वराः ॥२॥ संशयेस्थाप्यमांचेदंबलंचेमंविभीषणम् ॥ कष्टंकृतमिदंवीरसाहसंसाहसप्रिय॥ ३॥इदानींमाकृथावीरएवंविधमरिंदम॥त्वयिकिंचित्समापन्नेकिंकार्यंसीतयामम ॥४॥भरतेनमहाबाहोलक्ष्मणेनयवीयसा ॥ शत्रुघ्नेनचशत्रुघ्नस्वशरीरेणवापुनः ॥५॥त्वयिचानागतेपूर्वमितिमेनिश्चितामतिः ॥ जानतश्चापितेवीर्यंमहेंद्रवरुणोपम ॥ ६ ॥

साहसका कार्य करनेंमें नही लगतेहैं अर्थात् राजाओंका ऐसा साहस करना अनुचितहै ॥ २ ॥ हे साहसप्रिय वीर ! तुमनें जिस प्रकारके महा साहसका कार्य कियाहै, इस्से हमें वानरोंकी सहायताको और विभीषणजीकीभी तुम्हारे यहांपर लौटनेंमें संदेह हुआथा ॥ ३ ॥ हे शत्रुदमनकारी ! जो करना था सो कर चुके, परन्तु अब आगेको ऐसा साहस कभी न करना, कारण कि तुम्हारा जो किसी प्रकारसेभी कुछ अनभल होगया तो हम सीताको लेकर क्या करेंगे ? ॥ ४ ॥ हे महाबलवान् शत्रुओंके मारनेंवाले ! तुम्हारा कुछभी अपमान होनेंपर, हम भरत, उनसे छोटे लक्ष्मण शत्रुघ्न अथवा इस अपने शरीरहीको लेकर क्या करेंगे ? ॥५ ॥ यद्यपि महेन्द्र और वरुणजीकी तुल्य हम तुम्हारे बल विक्रमको जानतेहैं

प्राकारपर घूमनें लगे ॥ २१ ॥ यूथपति वीर सुबाहु, वीरबाहु, नल और पनस यह यूथपतिगण सैनाको नगरीमें प्रवेश करानेके लिये लंकाकी छहरदिवारीको तोड़ते पुरमें प्रवेश करते हुए, इसी समय इन वानर वीरोंनें लंकाके निवास स्थानको पीड़ित किया ॥ २२ ॥ कुमुद नाम रण विजयी महा बलवान् वानर दश करोड़ वानरोंको संग लेकर पूर्वके द्वारको घेर लेता हुआ ॥ २३ ॥ व उसी कुमुदकी सहायता करनेंके लिये बहुतसे वानरोंको साथ लिये वानरश्रेष्ठ प्रसभ, और महाबाहु पनस नाम वानरभी तैयार हो खड़ा होगया ॥ २४ ॥ वीरश्रेष्ठ बलवान वानर शतबलि वीस करोड़ वानरोंकी सैनाके सहित लंकाके दक्षिणद्वारको घेर लेता हुआ ॥ २५ ॥ ताराका पिता बलवान सुषेण करोड़ २ वानरोंकी सैना

वीरबाहुःसुबाहुश्चनलश्चपनसस्तथा॥निपीडचोपनिविष्टास्तेप्राकारंहरियूथपाः ॥एतस्मिन्नंतरेचक्रुःस्कंधावारनिवेशनम्॥२२॥पूर्वद्वारंतुकुमुदःकोटिभिर्दशभिर्वृतः॥ आवृत्यबलवांस्तस्थौहरिभिर्जितकाशिभिः॥२३॥सहायार्थंतुतस्यैवनिविष्टःप्रसभोहरिः ॥ पनसश्चमहाबाहुर्वानरैरभिसंवृतः॥ २४ ॥ दक्षिणद्वारमासाद्यवीरःशतबलिःकपिः॥ आवृत्यबलवांस्तस्थौविंशत्याकोटिभिर्वृतः॥२५॥सुषेणःपश्चिमद्वारंगत्वातारापिताबली॥आवृत्यबलवांस्तस्थौकोटिकोटिभिरावृतः ॥ २६ ॥ उत्तरद्वारमागम्यरामःसौमित्रिणासह॥आवृत्यबलवांस्तस्थौसुग्रीवश्चहरीश्वरः ॥ २७ ॥ गोलांगूलोमहाकायोगवाक्षोभीमदर्शनः ॥ वृतःकोटयामहावीर्यस्तस्थौरामस्यपार्श्वतः ॥ २८ ॥ ऋक्षाणांभीमकोपानांधूम्रःशत्रुनिबर्हणः ॥ वृतःकोटयामहावीर्यस्तस्थौरामस्यपार्श्वतः ॥ २९ ॥ सन्नद्धस्तुमहावीर्योगदापाणिर्विभीषणः ॥ वृतोयत्तैस्तुसचिवैस्तस्थौयत्रमहाबलः ॥ ३० ॥

को संग लेकर लंकाके पश्चिमद्वारपर विराजमान हुआ ॥ २६ ॥ उत्तर द्वारको घेरकर महाबलवान श्रीरामचंद्र लक्ष्मणजीके साथ खड़े हुए, और सुग्रीवजी श्रीरामचंद्रजीकी सहायता करनेंके लिये तैयार होगये ॥ २७॥ भयंकराकार महावीर्यवान, महाकाय गोपुच्छ गवाक्ष नामक वानर एक करोड़ वानरोंको साथ लेकर श्रीरामचंद्रजीकी पार्श्वमें रक्षा करनें लगा ॥ २८ ॥ व श्रीरामचंद्रजीकी दूसरी बगलमें शत्रुओंका तपानेंवाला महा बलवान् धूम्र करोड़ रीछोंके साथ विराजमान होनें लगा ॥ २९ ॥ कवच बख्तर पहरे गदा हाथमें लिये महावीर्य विभीषणजी अपने चारों

कीहै, सूर्य मंडलसे अग्निके अंगारे जलते हुए गिरतेहैं ॥ १५ ॥ दीन स्वभाव क्रूर बुरे पशु और पक्षीगण सूर्यके सन्मुख होकर बड़ी दीनतासे रोतेहैं; कि जिनको सुनकर अत्यन्त भय उत्पन्न होताहै ॥ १६ ॥ रात्रिमें चंद्रमा उदय होकर लोकोंको संताप किया करताहै; और प्रलय कालकी समान उसके चारों ओर काली और लाल किरणें दिखलाई देतीहैं हे लक्ष्मण! चंद्रमाका ऐसा विपरीत भाव बहुतही बुराहै ॥ १७ ॥ हे लक्ष्मण देखो! सूर्यके मंडलमें नीले दाग दिखलाई देतेहैं; चंद्रमाकी भांति सूर्य मंडलभी रूखा, छोटा, बुरा और लाल वर्णका होगयाहै ॥ १८ ॥ हे ल

आदित्यमभिवाश्यंतिजनयंतोमहद्भयम् ॥ दीनादीनस्वराःक्रूराअप्रशस्तामृगद्विजाः ॥ १६ ॥ रजन्यामप्रशस्तश्चसं तापयतिचंद्रमाः ॥ कृष्णरक्तांशुपर्यंतोयथालोकस्यसंक्षये ॥ १७ ॥ ह्रस्वोरूक्षोप्रशस्तश्चपरिवेषःसुलोहितः ॥ आदि त्यमंडलेनीलंलक्ष्मलक्ष्मणदृश्यते ॥ १८ ॥ दृश्यतेनयथावच्चनक्षत्राण्यभिवर्तते ॥ युगांतमिवलोकस्यपश्यलक्ष्मणशं सति ॥ १९ ॥ काकाःश्येनास्तथागृध्रानीचैःपरिपतंतिच ॥ शिवाश्चाप्यशुभावाचःप्रवदंतिमहास्वनाः ॥ २० ॥ शैलैः शूलैश्चखड्गैश्चविमुक्तैःकपिराक्षसैः ॥ भविष्यत्यावृताभूमिर्मांसशोणितकर्दमा ॥ २१ ॥ क्षिप्रमद्यदुराधर्षांपुरींराव णपालिताम् ॥ अभियामजवेनैवसर्वतोहरिभिर्वृताः ॥ २२ ॥ इत्येवंतुवदन्वीरोलक्ष्मणंलक्ष्मणाग्रजः ॥ तस्मादवा तरच्छीघ्रंपर्वताग्रान्महाबलः ॥ २३ ॥

क्ष्मण! चंद्रमाके प्रति नक्षत्रमें यथावत न टिकनेंसे निश्चय ज्ञात होताहै कि मानो शीघ्रही प्रलय काल आया चाहताहै ॥ १९ ॥ गिद्ध, बाज, और कौये ऊपरसे सहसा गिरतेहैं, और शृगालियां मानों ऊंचे स्वरसे अशुभ समाचारको ही प्रगट कर रहीहैं ॥ २० ॥ वानरराक्षसोंके छोड़े हुए वृक्ष शूल और खड्गादिकोंसे मरी हुई सैनाके मांस व रक्तसे यहांकी, पृथ्वी परिपूर्ण होजायगी ॥ २१ ॥ हे लक्ष्मण! जो कुछभी हो वानर गणोंके साथ बल पूर्वक आज हम रावणसे पाली जाती हुई दुर्द्धर्ष लंकापुरीमें प्रवेश करेंगे ॥ २२ ॥ वीर श्रेष्ठ महाबलवान श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीसे यह

सिंहनाद करनेंसे पृथ्वी आकास और समुद्रभी पूर्ण होगया ॥ ३९ ॥ हाथियोंकी चिंघाड घो
शंख नगाडोंके बजनें, और वानर गणोंके सिंहनाद करनेंसे पृथ्वी पूर्ण होगई, ॥ ४० ॥ इसके पीछे फिर वानर और
ड़ोंकी हिनहिनाहट रथोंके खरखर शब्द व राक्षस लोगोंके चरण धरनेके शब्दसे पृथ्वी पूर्ण हुआथा ॥ ४१ ॥ राक्षस लोग वारंवार अपने २
राक्षसोंके घोर संग्रामका प्रारंभ हुआ; कि जैसा पूर्वकालमें देवताओंके साथ असुरोंका संग्राम हुआथा ॥ ४१ ॥ वेगवान बड़े शरीरवाले वानर
विक्रमका प्रकाश करके; प्रदीप्त, शक्ति, शूल, फरसे और गदा चलाय२कर वानरोंका प्रहार करने लगे ॥ ४२ ॥

पृथिवींचांतरिक्षंचसागरंचाभ्यनादयत् ॥ ३९ ॥ गजानांबृंहितैःसार्धंहया
शंखदुदुंभिनिर्घोषःसिंहनादस्तरस्विनाम् ॥ पृथिवींचांतरिक्षंचसागरंचाभ्यनादयत् ॥ ३९ ॥ एतस्मिन्नंतरेघोरःसंग्रामःसमपद्यत ॥ रक्षसांवानराणां
नांहेषितैरपि ॥ रथानांनेमिनिर्घोषैरक्षसांपदनिःस्वनैः ॥ ४० ॥ निजघ्नुर्वानरान्सर्वान्कथयंतःस्वविक्रमान् ॥ ४२ ॥
चयथादेवासुरेपुरा ॥४१॥ तेगदाभिःप्रदीप्ताभिःशक्तिशूलपरश्वधैः ॥ निजघ्नुस्तानिरक्षांसिनखैर्दन्तैश्चवेगिनः ॥ ४३ ॥ राजाजयतिसुग्रीवइतिशब्दो
तथावृक्षैर्महाकायाःपर्वताग्रैश्चवानराः ॥ निजघ्नुस्तानिरक्षांसिनखैर्दन्तैश्चवेगिनः ॥ ४४ ॥ राक्षसास्त्वपरेभीमाःप्राकारस्थामहींगतान् ॥ वान
महानभूत् ॥ राजन्जयजयेत्युक्त्वास्वस्वनामकथांततः ॥ ४४ ॥ राक्षसास्त्वपरेभीमाःप्राकारस्थान्महींगताः ॥ राक्षसान्पातयामासुः
रान्भिदिपालैश्चशूलैश्चैवव्यदारयन् ॥ ४५ ॥ वानराश्चापिसंक्रुद्धाःप्राकारस्थान्महींगताः ॥ राक्षसान्पातयामासुः
खमाप्लुत्यस्वबाहुभिः ॥ ४६ ॥

गणभी, नख, दांत, वृक्ष और पर्वतके शिखर चलाय २ कर राक्षसोंको मारनें लगे ॥ ४३ ॥ तिस समय उस वानरोंकी सैनामेंसे " वानर राज
गणभी, नख, दांत, वृक्ष और पर्वतके शिखर चलाय २ कर राक्षसोंको मारनें लगे ॥ ४३ ॥ तिस समय उस वानरोंकी सैनामेंसे " वानर राज
सुग्रीवजीकी जयहो " ऐसा बड़ा भारी शब्द हुआ और इधर " राक्षस रावणकी जयहो " ऐसा शब्द सुनाय अपने २ नामको बताय परस्पर
दोनों दल लड़नें लगे ॥ ४४ ॥ भयंकर आकारवाले राक्षसगण लंकाकी दुर्ग प्राचीरपर चढ़कर वानरोंको भिन्दिपाल, और शूलादि अस्त्रोंसे
मारनें लगे ॥ ४५ ॥ यह देखकर पृथ्वीपर टिके हुए वानर लोगभी क्रोधसे आकाशमें कूद और भुजाओंके प्रहारसे कोटकी

पर श्रीरामचंद्रजीके बचनोंसे प्रेरित वानर गण यथायोग्य स्थानोंको दबाय २ बैठगये ॥ ३२ ॥ इस प्रकारसे श्रीरामचंद्रजी धनुष धारण करके अनुज लक्ष्मणजीके साथ पर्वतके शिखर समान ऊंचे उत्तर द्वारको रोककर अपनी सैनाकी रक्षा करनें लगे ॥ ३३ ॥ महाराजाधिराज दशरथजीके पुत्र श्रीरामचंद्रजी वीर लक्ष्मणजीको साथ लेकर रावणसे रक्षित लंकापुरीमें प्रवेश करते हुए ॥ ३४ ॥ जहां पर रावण स्वयं विराजमान था रामचंद्रजीके सिवाय और कोईभी उसकी रक्षा करनेंको समर्थ नहीं होगा यही विचार कर वीरदशरथकुमार श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके सहित स्वयं उस रावणपालित लंका पुरीके उत्तर द्वारको घेर लेते हुए ॥ ३५ ॥ वरुणजीसे रक्षित महासागर और

लंकायास्तूत्तरद्वारंशैलशृंगैमिवोन्नतम्॥ रामःसहानुजोधन्वीजुगोपचरुरोधच॥३३॥लंकामुपनिविष्टस्तुरामोदशरथात्मजः ॥ लक्ष्मणानुचरोवीरःपुरींरावणपालिताम् ॥३४॥ उत्तरंद्वारमासाद्ययत्रतिष्ठतिरावणः ॥ नान्योरामाद्धितद्द्वारंसमर्थःपरिरक्षितुम् ॥ ३५ ॥ रावणाधिष्ठितंभीमंवरुणेनेवसागरम् ॥ सायुधैराक्षसैर्भीमैरभिगुप्तंसमंततः ॥ ३६ ॥ लघूनांत्रासजननंपातालमिवदानवैः ॥ विन्यस्तानिचयोधानांबहूनिविविधानिच॥ ३७ ॥ ददर्शायुधजालानितथैवकवचानिच ॥ पूर्वंतुद्वारमासाद्यनीलोहरिचमूपतिः ॥ ३८ ॥ अतिष्ठत्सहमैंदेनद्विविदेनचवीर्यवान् ॥ अंगदोदक्षिणद्वारंजग्राहसुमहाबलः ॥ ३९ ॥ ऋषभेणगवाक्षेणगजेनगवयेनच ॥ हनूमान्पश्चिमद्वाररंरक्षबलवान्कपिः ॥ ४० ॥ प्रजंघतरसाभ्यांचवीरैरन्यैश्चसंगतः ॥ मध्यमेचस्वयंगुल्मेसुग्रीवःसमतिष्ठत ॥ ४१ ॥

दानवोंके दलसे रक्षित पाताल पुरीकी समान शस्त्रलिये भयंकर रूप राक्षसों करके सर्व प्रकारसे व रावणसेभी रक्षा किया जाताहुआ, उत्तर द्वारके देखनेंसे अल्पवीर्य वालोंको अत्यन्त भय लगताथा ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ और वहां पर वानर लोगोंने राक्षस वीरोंके अनेक अस्त्र और कवच देखे सेनापति नील वानरोंकी सैनाके साथ पूर्व द्वार पर पहुंचा ॥ ३८ ॥ इन नीलके साथ वीर्यवान मैन्द और द्विविद यह दोनों वानरभीथे महा बली वालिके पुत्र अंगदजी दक्षिणके द्वार पर गये ॥ ३९ ॥ अंगदजीके साथ ऋषभ, गज, गवय और गवाक्ष, यह चार वानरभी दक्षिण द्वार परगये महावीर हनुमानजीनें पश्चिम द्वारको जायकर घेर लिया ॥ ४० ॥ प्रजङ्घ, तरस, व और दूसरे वीर सेनापति उन हनुमानजीके

प्रजङ्घके साथ युद्ध करनें लगा और वानरश्रेष्ठ हनुमानजी, जम्बुमाली राक्षससे जायकर भिड़े ॥ ७ ॥ उस संग्राम भूमिमें रावणके छोटे भाई विभीषणजी अत्यन्त क्रोध युक्तहो शत्रुघ्न नामक राक्षसके साथ युद्ध करते हुए ॥ ८ ॥ महा बलवान गजनाम वानर तपन राक्षसके साथ आति पराक्रमसे युद्ध करनें लगा, और महा तेजस्वी नील नाम सैनापाति निकुम्भ नाम राक्षससे जाय भिड़ा ॥ ९ ॥ वानरोंके राजा सुग्रीवजी राक्षस प्रघसके साथ द्वन्द्व युद्ध करनें लगे और विरूपाक्ष नामक राक्षसके साथ श्रीमान् लक्ष्मणजीका युद्ध होनें लगा ॥ १० ॥ दुर्द्धर्ष, अग्निकेतु, रश्मिकेतु, मित्रघ्न, और यज्ञकोप यह चार राक्षस श्रीरामचंद्रजीके साथ युद्ध करने लगे ॥ ११ ॥ घोर रूपवान वज्रमुष्टि और अशनिप्रभ नामक यह

संगतस्तुमहाक्रोधोराक्षसोरावणानुजः ॥ समरेतीक्ष्णवेगेनशत्रुघ्नेनविभीषणः ॥ ८ ॥ तपनेनगजःसार्धंराक्षसेनमहाबलः ॥ निकुंभेनमहातेजानीलोपिसमयुध्यत ॥ ९ ॥ वानरेंद्रस्तुसुग्रीवःप्रघसेनसुसंगतः ॥ संगतःसमरेश्रीमान्विरूपाक्षेणलक्ष्मणः ॥ १० ॥ अग्निकेतुःसुदुर्धर्षोरश्मिकेतुश्चराक्षसः ॥ मित्रघ्नोयज्ञकोपश्चरामेणसहसंगताः ॥ ११ ॥ वज्रमुष्टिश्चमैंदेनद्विविदेनाशनिप्रभः ॥ राक्षसाभ्यांसुघोराभ्यांकपिमुख्यौसमागतौ ॥ १२ ॥ वीरःप्रतपनोघोरोराक्षसोरणदुर्धरः॥समरेतीक्ष्णवेगेननलेनसमयुध्यत ॥१३॥ धर्मस्यपुत्रोबलवान्सुषेणइतिविश्रुतः ॥ सविद्युन्मालिनासार्धमयुध्यतमहाकपिः ॥ १४ ॥ वानराश्चापरेघोराराक्षसैरपरैःसह ॥ द्वंद्वंसमीयुःसहसायुद्धाचबहुभिःसह ॥ १५ ॥ तत्रासीत्सुमहद्युद्धंतुमुलंरोमहर्षणम् ॥ रक्षसांवानराणांचवीराणांजयमिच्छताम् ॥ १६ ॥

दो राक्षस मैन्द व द्विविद नामक दो वानरोंके साथ युद्ध करनें लगे ॥ १२॥ भयंकराकार रणमें दुर्जय वीर प्रतपन नामक राक्षस, तीक्ष्ण वेगवान नल नामक वानरके साथ संग्राम करनें लगा ॥ १३ ॥ त्रिलोक विख्यात बलवान धर्मका पुत्र महाकपि सुषेण विद्युन्माली राक्षसके साथ युद्ध करनेंको जाय उठा ॥ १४ ॥ व और दूसरे भयंकर पराक्रम करनेंवाले वानर गणभी अगणित राक्षसोंके साथ घोर द्वन्द्व युद्ध करनें लगे, ॥ १५ ॥ इस प्रकारसे उस रणभूमिमें अपने २ जयको अभिलाषा किये वीर राक्षस और वानर गणोंका तुमुल रोमहर्षण कारी युद्ध प्रारंभ हुआ ॥ १६ ॥

सैनाका ऐसा विचित्र समागम हुआथा कि पहले कभी भी ऐसा समागम नहीं हुआथा ॥ ४९ ॥ लंका पर पहुंचे हुए वानरगणों करके वहांकी पृथ्वी और कूदते फांदते हुए वानरोंसे आकाश परिपूर्ण हो रहाथा ॥ ५० ॥ इनके सिवाय युद्धकी अभिलाषा करके असंख्य वानर और रीछगण चारों ओरसे लंकाके द्वारों पर आय २ जुटनें लगे ॥ ५१ ॥ उस समय समस्त पर्वतश्रेष्ठ गिरि चित्रकूट समस्त वानरोंसे छाया हुआ जान पड़नें लगा, अति द्वार पर सन्निवेशित सैनाका वृत्तान्त जाननेके लिये एक कोटि वानरगण लंकापुरीके चारों ओर घूमनें लगे ॥ ५२ ॥ लंका नगरी, वृक्ष हाथोंमें लिये वानरों करके इस प्रकार सर्व भावसे घेरी गई कि वहां पवनका प्रवेश करनाभी कठिन ज्ञात होंनें लगा ॥ ५३ ॥ मेघाकार और इन्द्र तुल्य पराक्रमकारी वानर गणोंसे पीड़ित होकर राक्षसगण अत्यन्त विस्मित हुए ॥ ५४ ॥ समुद्रकें ऊपर सेतु

प्रतिपूर्णमिवाकाशंसंपूर्णेवचमेदिनी ॥ लंकामुपनिविष्टैश्चसंपतद्भिश्चवानरैः ॥ ५० ॥ शतंशतसहस्राणांप्टतनर्क्षवनौकसाम् ॥ लंकाद्वाराण्युपाजग्मुरन्येयोद्धुंसमंततः ॥ ५१ ॥ आवृतःसगिरिःसर्वैस्तैःसमंतात्प्लवंगमैः ॥ अयुतानांसहस्रंचपुरींतामभ्यवर्तत ॥ ५२ ॥ वानरैर्बलवद्भिश्चबभूवद्रुमपाणिभिः ॥ सर्वतःसंवृतालंकादुष्प्रवेशापिवायुना ॥ ५३ ॥ राक्षसाविस्मयंजग्मुःसहसाभिनिपीडिताः॥ वानरैर्मेघसंकाशैःशक्रतुल्यपराक्रमैः ॥ ५४ ॥ महाञ्छब्दोभवत्तत्रबलौघस्याभिवर्ततः ॥ सागरस्येवभिन्नस्ययथास्यात्सलिलस्वनः ॥ ५५ ॥

बँधनेंसे जिस प्रकार उसके जलका अत्यन्त भयंकर शब्द होताहै, वैसेही अतिभारी वानरोंकी सैनाका तुमुल शब्द प्रगट होंनें लगा ❀ ॥ ५५ ॥

❀ कवित्त ॥ चढ़त कटक महाराज रामचंद्रजीके गरद गगन रवि झंपिगो झडाकदै ॥ फूटिगो जलधवन्ध लूटिकै दुवनपुर, छूटिगोमवीस वन हटिगो हडाकदै ॥ श्रीपति सुजान भने चिरिगो बराह रद फिरिगो सुमेरगिरिश्गो धड़ाकदै ॥ धुंधरकी धरनिमें फलक्यो फनिन्द फन दरकी कमठ पीठ कड़की कड़ाकदै ॥ १ ॥ उज्वल अमल आभा अधिक विराजमान गंगाकी तरंग सुर लोककी निसैनीहै ॥ रसरौद्र पूरन सरस्वती सहित जहां स्यामता साहित रविसुता सुखदैनी है ॥ भट अवतंश महाराज रघुवंश मणि कहै रसरूप जाकी धारा अति पैनी है । महामदमत्त बलवन्त बड़े बैरिनको तारिवेको थारी तरवार यौं त्रिवेनी है ॥ २ ॥ जानदैहौं भरत अवध सब जान दैहौं जान दैहौं कौशिला हमारी मात प्रानकी ॥ जानदैहौं सकल जहानको सुकौनकाम कहै रघुनाथ ऐसो वचन प्रमानकी ॥ जानदैहौं लखन सुकंठमें विचार कहौं जान दैहौं खेल पेल अपने सवानकी । जानदैहौं धनुष कमान वान जान दैहौं; जानदैहौं जान पै न जान दैहौं जानकी ॥

वेगसे सप्तपर्णका वृक्ष उखाड़ उसके प्रहारसे प्रघस नाम राक्षसको मारडाला,भयंकराकार राक्षसको बाण वर्षासे व्याकुल कर ॥ २५ ॥ फिर एक बाणसे लक्ष्मणजीनें उस अपने शत्रु विरूपाक्ष नामक राक्षसको संहार किया। दुर्द्धर्ष अग्निकेतु व रश्मिकेतु मित्रघ्न व यज्ञकोप इन चार राक्षसोंनें श्रीरामचंद्रजीके ऊपर बाणोंकी वर्षाकी ॥ २६ ॥ तब रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीनें अत्यन्त क्रोध करके अग्निकी शिखाकी समान लप लपाते चार भयंकर बाणोंसे उन चारों राक्षसोंका शिर काट डाला ॥२७॥मैन्द नामक वानरनें घूंसा मारकर रणमें वज्रमुष्टिका संहार किया, तब यह राक्षस रथ और घोड़ोंके सहित पृथ्वीपर गिर पड़ा कि जैसे कोई नगरकी ऊंची अटारी फयराय पड़े ॥ २८ ॥ सूर्य नारायण जिस प्रकार

निजघानविरूपाक्षंशरेणैकेनलक्ष्मणः॥ अग्निकेतुश्चदुर्धर्षोरश्मिकेतुश्चराक्षसः ॥ मित्रघ्नोयज्ञकोपश्चराममादीपयच्छरैः ॥ २६ ॥ तेषांचतुर्णांरामस्तुशिरांसिसमरेशरैः॥ क्रुद्धश्चतुर्भिश्चिच्छेदघोरैरग्निशिखोपमैः ॥ २७ ॥ वज्रमुष्टिस्तुमैंदेनमुष्टिनानिहतोरणे ॥ पपातसरथःसाश्वःसुराट्टइवभूतले ॥ २८ ॥ निकुंभस्तुरणेनीलंनीलांजनचयप्रभम् ॥ निर्बिभेदशरैस्तीक्ष्णैःकरैर्मेघमिवांशुमान् ॥ २९ ॥ पुनःशरशतेनाथक्षिप्रहस्तोनिशाचरः ॥ बिभेदसमरेनीलंनिकुंभःप्रजहासच ॥ ३० ॥ तस्यैवरथचक्रेणनीलोविष्णुरिवाहवे ॥ शिरश्चिच्छेदसमरेनिकुंभस्यचसारथेः॥ ३१ ॥ वज्राशनिसमस्पर्शोद्विविदश्चसमप्रभम् ॥ जघानगिरिशृंगेणमिषतांसर्वरक्षसाम् ॥ ३२ ॥ द्विविदंवानरेंद्रंतुद्रुमयोधिनमाहवे ॥ शरैरशनिसंकाशैःसविव्याधाशनिप्रभः ॥ ३३ ॥

अपनी किरणोंसे बादलोंको अलग २ करके उड़ाय देतेहैं वैसेही वीर निकुम्भ राक्षसनें तीक्ष्ण बाणोंको चलायकर नील अंजनकी समान प्रभावाले सैनापति नीलके शरीरको बींध डाला, और तिसके पीछे दूसरी बार फिर शतबाण छोड़ नीलका शरीर भेद यह निकुम्भ राक्षस अति ऊंचेस्वरसे ठट्टा करके हँसनें लगा ॥ २९ ॥ ३० ॥ परन्तु सैनापति नीलनें राक्षसनिकुम्भके रथका पहिया ग्रहण कर, चक्र धारण किये हुए विष्णुजीकी समान निकुम्भ और उसके सारथिका मस्तक काट डाला ॥ ३१ ॥ वज्रकी समान कठिन प्रहार करनें वाले द्विविद नाम वानरनें सर्व राक्षसोंके सामनेंहो पर्वतके शिखरका प्रहार करके राक्षस अशनिप्रभके ऊपर चोट चलाई ॥ ३२ ॥ राक्षस अशनिप्रभनेंभी

का हरणरूप अपराध कियाहै; हम उसका उचित दंड देनेंके लिये साक्षात् कालकी समान लंकाके द्वारपर टिक रहेहैं ॥ ६४ ॥ यदि हमारे साथ युद्ध करनेंही की तेरी इच्छाहै, तौ युद्धमें हमारे हाथसे तेरी मृत्यु होनेंपर तेरे भाग्यमें देवता महर्षि राजाओंकी गति प्राप्त होगी॥६५॥ रे राक्षसाधम! तैनें जो बल और मायाका आश्रय करके हमारी कुटीसे दूरकरके सीताको हरण कियाहै, अब वही बल और वही माया तुमको दिखानी चाहिये ॥ ६६ ॥ यदि तुम सीताको समर्पण करके हमारे शरणागत नहोगे; तौ जान लेनाकि अत्यन्त तीखे बाणोंसे हम समस्त लोक राक्षसशून्य करेंगे; इस्से जानकीको देदे क्योंकि जानकी किसी प्रकारसे हम नहीं छोड़ सकते * ॥ ६७ ॥ धर्मात्मा राक्षसश्रेष्ठ विभीषण हमारी शरणमें आयेहैं; हमभी इनकोही निष्कंटक लंकाका राज्य व तुम्हारा सब ऐश्वर्य दान कर देंगे ॥ ६८ ॥ तुम जिस प्रकारके पापा

पदवींदेवतानांचमहर्षीणांचराक्षस ॥ राजर्षीणांचसर्वेषांगमिष्यसियुधिस्थिरः ॥ ६५ ॥ बलेनयेनवैसीतांमाययाराक्षसाधम ॥ मामतिक्रमयित्वात्वंहृतवांस्तन्निदर्शय ॥ ६६ ॥ अराक्षसमिमंलोकंकर्तास्मिनिशितैःशरैः ॥ नचेच्छरणमभ्येषितामादायतुमैथिलीम् ॥ ६७ ॥ धर्मात्माराक्षसश्रेष्ठःसंप्राप्तोयंविभीषणः ॥ लंकैश्वर्यमिदंश्रीमान्ध्रुवंप्राप्नोत्यकंटकम् ॥ ६८ ॥ नहिराज्यमधर्मेणभोक्तुंक्षणमपित्वया ॥ शक्यंमूर्खसहायेनपापेनाविदितात्मना ॥ ६९ ॥ युध्यस्वमाधृतिंकृत्वाशौर्यमालंब्यराक्षस ॥ मच्छरैस्त्वंरणेशांतस्ततःशांतोभविष्यसि ॥ ७० ॥

चारी और सज्ञानहीनहो,और तिसपर ऐसा अधर्म्माचरण करके इन मूर्ख मंत्रियोंकी सहायतासे अब अधिक कालतक राज्य नहीं कर सकोगे ॥६९॥ हेराक्षस! यदि शरणमें आना तुम्हारा मन माना न होवे तौ धीरता और शूरताका आश्रय लेकर युद्ध करो कारणकि युद्ध करनें पर हमारे चलाये हुए बाणोंसे तुम्हारा देह पवित्रहो जायगा, और तुमनें जन्मसे लेकर अबतक जो पापकार्य कियेहैं उनसे तुम्हारा छुटकाराहो जायगा ॥७० ॥

* खर भर भये लंक संकित सब रजनीचर अकुलाते है ।सहि न जात वह तेज वदनकी मूंदि नयन रह जाते है॥ दाह कलंक कीस सोइ आयउ श्रवननिलागि सुनाते हैं ॥कौन विधाता अबकी राखै यह कहते बिलखाते हैं ॥ कहि लंकेशहि पोच शोच सब पुरवासी घवडाते हैं । विन पूछे मग लंका गढकी कर जोरे बतलाते हैं । मुकुट शीशकर गदा विराजै सूर्य तेजमन भाते है । दशग्रीव मानके मथन हेतु बलशीव वालिसुत आते हैं ॥

चरोंके समूह वीरश्रेष्ठ वानरों करकै मर्दित होनें लगे ॥ ४२ ॥ भाले, गदा, शक्ति, तोमर और बाणोंके प्रहार लगनेंसे रथ और समरके घोड़े समस्तही पृथ्वीपर गिरनें लगे ॥ ४३ ॥ मरेहुए मतवाले, हाथियोंसे, वानर, राक्षसोंसे, रथके टूटे पहियोंसे, जुआ व धुरे आदिकोंसे ॥ ४४ ॥ संग्राम भूमि परिपूर्ण होगई, इसी कारणसे उस घोर रूप संग्राममें सहस्रों शृगाल घूमनेंलगे; अनेक भांतिसे राक्षस और वानरोंके कवन्ध नृत्य करनें लगे ॥४५॥ अधिक क्या कहैं यह संग्रामभी वैसाही हुआ जैसा कि देवासुरसंग्राम पूर्वकालमें हुआथा ॥ ४६ ॥ परन्तु उस कालमें रक्त गन्धसे मूर्छित निशाचरोंनें वानर वीरों करकै अत्यन्त पीड़ित हो करकैभी फिर अत्यन्त बलके साथ युद्ध करना प्रारंभकिया, और वह राक्षस लोग सूर्य

भल्लैश्चान्यैर्गदाभिश्चशक्तितोमरसायकैः ॥ अपविद्धैश्चापिरथैस्तथासांग्रामिकैर्हयैः ॥ ४३ ॥ निहतैःकुंजरैर्मत्तैस्तथा वानरराक्षसैः ॥ चक्राक्षयुगदंडैश्चभग्नैर्धरणिसंश्रितैः ॥ ४४ ॥ बभूवायोधनंघोरंगोमायुगणसेवितम् ॥ कबंधानि समुत्पेतुर्दिक्षुवानररक्षसाम् ॥ ४५ ॥ विमर्देतुमुलेतस्मिन्देवासुररणोपमे ॥ ४६ ॥ निहन्यमानाहरिपुंगवैस्तदानि शाचराःशोणितगंधमूर्च्छिताः ॥ पुनःसुयुद्धंतरसासमाश्रितादिवाकरस्यास्तमयाभिकांक्षिणः ॥ ४७ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा०आदिकाव्येयुद्धकांडेत्रिचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४३ ॥ ॥छ॥ ॥ युध्यतामेवतेषांतुतदावानररक्षसाम् ॥ रविरस्तंगतोरा त्रिःप्रवृत्ताप्राणहारिणी ॥१॥ अन्योन्यंबद्धवैराणांघोराणांजयमिच्छताम् ॥ संप्रवृत्तंनिशायुद्धंतदावानररक्षसाम् ॥२॥ राक्षसोसीतिहरयोवानरोसीतितिराक्षसाः ॥ अन्योन्यंसमरेजघ्नुस्तस्मिंस्तमसिदारुणे ॥ ३ ॥

भगवानके छिपनें और रात्रिके आनेंकी वाट देखने लगे ॥४७ ॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥४३॥ जब राक्षस और वानर गणोंमें सहज २ करकै घोर युद्ध होनें लगा तब सूर्य भगवान अस्ताचलका आश्रय ग्रहण करते हुए; और देखतेही देखते जीव जीवन नाशिनी रात्रि आय पहुँची ॥१॥ तिस समय परस्पर वैर बांधे हुए जयके अभिलाषी घोररूपी उन वानर व राक्षसोंका रात्रि युद्ध आरंभ हुआ ॥ २॥ उस दारुण अंधकारको वानर लोग "तू राक्षसहै" और राक्षस " तू वानरहै " यह कहकर परस्पर परस्परको आघात करनेंलगे ॥३॥

नीच क्रूर! तुम लंकापुरीसे निकल हमसे युद्धकरो ॥ ७८ ॥ हम पुत्र जाति बांधव और मंत्रियोंके सहित तेरा संहार करेंगे रावण! तुम्हारे मर जानेंपर त्रिभुवनकी व्याकुलता और घवडाहट जाती रहेगी ॥ ७९ ॥ हम तुम्हारा संहार करके देव,दानव, यक्ष, गन्धर्व,सर्प, राक्षस और ऋषि लोगोंके कण्टकका उद्धार करेंगे ॥ ८० ॥ तुम हमारे चरणोंमें झुककर आदर सहित यदि हमको जानकी न देदोगे तौ निश्चयही तुम नाशको प्राप्त होगे; और तुम्हारा समस्त ऐश्वर्य बिभीषणका होजायगा ॥ ८१ ॥ जब वानरवीर अंगदजीनें इस प्रकारके कठोर वचन कहे तब राक्षसोंका राजा रावण क्रोधके वश हुआ ॥ ८२ ॥ वह रावण अत्यन्त ही क्रोधके वशहोकर अपने मंत्रियोंसे बोला कि तुम अभी इस वानरको पकडकर

हंतास्मित्वांसहामात्यंसपुत्रज्ञातिबांधवम् ॥ निरुद्विग्नास्त्रयोलोकाभविष्यंतिहतेत्वयि ॥ ७९॥ देवदानवयक्षाणांगंधर्वोरगरक्षसाम्॥शत्रुमद्योद्धरिष्यामित्वामृषीणांचकंटकम्॥८०॥ विभीषणस्यचैश्वर्यंभविष्यतिहतेत्वयि॥नचेत्सत्कृत्य वैदेहींप्रणिपत्यप्रदास्यसि ॥ ८१ ॥ इत्येवंपरुषंवाक्यंब्रुवाणेहरिपुंगवे ॥ अमर्षवशमापन्नोनिशाचरगणेश्वरः ॥ ८२ ॥ ततःसरोषमापन्नःशशाससचिवांस्तदा ॥ गृह्यतामितिदुर्मेधावध्यतामितिचासकृत् ॥ ८३ ॥ रावणस्यवचःश्रुत्वादीप्ताग्निमिवतेजसा ॥ जगृहुस्तंततोघोराश्चत्वारोरजनीचराः ॥ ८४ ॥ ग्राहयामासतारेयःस्वयमात्मानमात्मवान् ॥ बलं दर्शयितुंवीरोयातुधानगणेतदा ॥ ८५ ॥ सतान्बाहुद्वयासक्तानादायपतगानिव ॥ प्रासादंशैलसंकाशमुत्पपातांगदस्तदा ॥ ८६ ॥ तस्योत्पतनवेगेननिर्धूतास्तत्रराक्षसाः ॥ भूमौनिपतिताःसर्वेराक्षसेंद्रस्यपश्यतः ॥ ८७ ॥

इसका प्राण संहार कर डालो ॥ ८३ ॥ रावणके ऐसे वचन सुनकर घोर रूपवाले चार निशाचर उन प्रदीप्त अग्निकी तुल्य अंगदजीको पकडनेके लिये तैयार हुये ॥ ८४ ॥ वीरश्रेष्ठ बुद्धिमान ताराकुमार अंगदजीने समर्थ होकर भी अपना बल राक्षसोंको दिखलानेके लिये स्वयं ही अपनेंको पकड़वा दिया ॥ ८५ ॥ जब राक्षस लोग अंगदजीकी बाँहें बांध रहेथे, तब अंगदजी सहसा उन राक्षसोंके सहित पर्वतके शृङ्गकी समान ऊंचे बडे भारी राजमंदिरपर कूदकर चढ गये ॥ ८६ ॥ अंगदजीके कूदनेंके समय राक्षस लोग ऐसे त्रासित हो उठे कि वह समस्त

मृदंग और ढोलोंको अद्भुत अनुपम शब्द होनें लगा ॥ १२ ॥ घायल हुए व ताडित हुए राक्षसोंकी आरत वाणी और अस्त्र शस्त्र चलानेके शब्दसे व वानर गणोंके दारुण शब्दसे संग्रामभूमि परिपूर्ण होगई ॥ १३ ॥ शक्ति, शूल, और परशु इत्यादि अस्त्र शस्त्रोंसे मरे हुए वानर और पर्वताकार कामरूपी राक्षस लोगोंके गिरनेसे ॥ १४ ॥ वह रणभूमि शस्त्ररूप पुष्पोंसे शोभायमान उद्यान (फुलवाड़ी) की समान जानपड़ने लगी।सब जगह ही रुधिरके वहनेंसे कीचड़ हो जानेंसे वह संग्राम भूमि सबके न देखनें योग्य और न प्रवेश करने योग्य होगई ॥१५॥ वास्तवमें राक्षस और वानर गणोंकी प्राण हरण करने वाली वह रात्रि कालरात्रिकी समान सबही प्राणियोंको अत्यन्त भयंकर हुई ॥ १६ ॥ तिसके पीछे उस दारुण

हयानांस्तनमानानांराक्षसानांचनिःस्वनः॥शस्तानांवानराणांचसंबभूवात्रदारुणः॥१३॥हतैर्वानरमुख्यैश्चशक्तिशूलपरश्वधैः॥निहतैःपर्वताकारैराक्षसैःकामरूपिभिः॥१४॥शस्त्रपुष्पोपहाराचतत्रासीद्युद्धमेदिनी॥दुर्ज्ञेयादुर्निवेशाचशोणितास्रावकर्दमा ॥ १५ ॥ साबभूवनिशाघोराहरिराक्षसहारिणी ॥ कालरात्रीवभूतानांसर्वेषांदुरतिक्रमा ॥ १६ ॥ ततस्ते राक्षसास्तत्रतस्मिंस्तमसिदारुणे ॥ राममेवाभ्यवर्ततसंहृष्टाःशरवृष्टिभिः॥ १७॥ तेषामापततांशब्दःक्रुद्धानामपिगर्जताम्॥ उद्वर्तइवसत्वानांसमुद्राणामभूत्स्वनः ॥ १८ ॥ तेषांरामःशरैःषड्भिःषड्जघाननिशाचरान् ॥ निमेषांतरमात्रेण शरैरग्निशिखोपमैः ॥ १९ ॥ यज्ञशत्रुश्चदुर्धर्षोमहापार्श्वमहोदरौ॥ वज्रदंष्ट्रोमहाकायस्तौचोभौशुकसारणौ॥ २० ॥ तेतुरामेणबाणौघैःसर्वमर्मसुताडिताः ॥ युद्धादपसृतास्तत्रसावशेषायुषोभवन् ॥ २१ ॥

अंधकारमें समस्त ही राक्षस श्रीरामचंद्रजीके ऊपर बाण वर्षाते हुए आगे बढ़े ॥ १७॥ उस समय जब भयंकर क्रोधकिये हुये राक्षस सिंहनाद करते जब श्रीरामचंद्रजीके सन्मुखको दौडे; तब प्रलयकालके समयमें सात समुद्रकी समान कोलाहलरूप बड़ाभारी शब्द हुआ ॥ १८ ॥ परन्तु श्रीरामचंद्रजीनें एक पलक मारनेंके समय इनमेंसे छे राक्षसोंको अग्निकी लपटके समान तीखे बाणोंसे मारा ॥ १९ ॥ अजेय, यज्ञशत्रु, महापार्श्व, महोदर, बड़े शरीरवाला वज्रदंष्ट्र, शुक और सारण॥ २० ॥ यह छे राक्षस श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे मर्ममें चोट खायकर अपनें २

राक्षस लोगोंमेंसे कोई २ विस्मित हुए कोई २ भीत हुए और कोई २ रणके उत्साहसे मत्त होकर अतिशय आनंदको प्राप्त हुए ॥ ९७ ॥ वानरोंकी सैनानें लंकाके दुर्गकी भीतको छाय लियाथा; जिस्से ऐसा ज्ञात हुआ कि वानर गणोंके घेरनेंसे प्राकार (दुर्गकी भीत) गिरकर पृथ्वीमें मिल गया, ऐसा दीन भावयुक्त राक्षसोंने देखा ॥ ९८ ॥ यह देखकर राक्षस लोग भयके मारे हा! हा! कार करनें लगे ॥ ९९ ॥ इस प्रकारसे राक्षसोंकी राजधानी लंकापुरीमें कठोर कुलाहल होनें लगा, तब वीर राक्षस गण प्रचंड अस्त्र शस्त्र ग्रहण करके युगान्त कालके राहुकी समान इधर उधर घूमनें लगे ॥ १०० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

राक्षसाविस्मयंजग्मुस्त्रासंजग्मुस्तथापरे ॥ अपरेसमरेहर्षाद्धर्षमेवोपपेदिरे ॥ ९७ ॥ कृत्स्नंहिकपिभिर्व्याप्तंप्राकारपरिखांतरम् ॥ ॥ ददृशूराक्षसादीनाःप्राकारंवानरीकृतम् ॥ ९८ ॥ हाहाकारमकुर्वंतराक्षसाभयमागताः ॥ ९९ ॥ तस्मिन्महाभीषणकेप्रवृत्तेकोलाहलेराक्षसराजयोधाः ॥ प्रगृह्यरक्षांसिमहायुधानियुगांतवाताइवसंविचेरुः ॥ १०० ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०युद्धकांडेएकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥ ६७ ॥ ॥ ततस्तेराक्षसास्तत्रगत्वारावणमंदिरम् ॥ न्यवेदयन्पुरींरुद्धांरामेणसहवानरैः ॥ १ ॥ रुद्धांतुनगरींश्रुत्वाजातक्रोधोनिशाचरः ॥ विधानंद्विगुणंश्रुत्वाप्रासादंचाप्यरोहत ॥ २ ॥ सददर्शावृतांलंकांसशैलवनकाननाम् ॥ असंख्येयैर्हरिगणैःसर्वतोयुद्धकांक्षिभिः ॥ ३ ॥ सदृष्ट्वावानरैःसर्वैर्वसुधांकपिलीकृताम् ॥ कथंक्षपयितव्याःस्युरितिचिंतापरोभवत् ॥ ४ ॥

इसके पीछे राक्षस लोगोंने रावणके गृहमें प्रवेश करके निवेदन किया कि श्रीरामचंद्रजीनें सैनाके समेत लंकापुरीको चारों ओरसे घेर लिया ॥ १ ॥ पुरीके रोके जानेंका समाचार सुनतेही राक्षस रावण क्रोधके मारे अधीर होगया, और प्रति द्वार पहलेसे दूनी सैना नियतकर स्वयं बडे ऊंचे धवरहर पर चढ़ा ॥ २ ॥ और देखा कि शैल, वन, और कानन सहित समस्त लंका असंख्य युद्धकी अभिलाषी वानरगणोंसे घिर रही है ॥ ३ ॥ उन सब वानरोंके बडे भारी जमाओंसे मानों लंकापुरीका वर्ण पीलासा हो रहाथा इनको देखकर रावणके मनमें यह

लक्ष्मण इन दोनोंकीभी अनेक प्रशंसा करनें लगे ॥ २९ ॥ इन्द्रजीतके रणका पराक्रम सबही जानतेथे इसीलिये उसको अंगदजी करके परा
जित देखकर सबही आनंद करनें लगे ॥ ३० ॥ सुग्रीव, विभीषण, व और दूसरे वानरगणभी शत्रुको पराजित देखकर सिंहनाद करनें लगे, और
साधु साधु कहकर अंगदजीकी अनेक प्रकारसे बड़ाई करते हुए ॥ ३१ ॥ भयंकर कर्मकारी अंगदजीसे संग्रामभूमिमें पराजित होकर इन्द्रजीत
बड़ा लज्जित हुआ, और उसको अत्यन्त क्रोध हो आया ॥ ३२ ॥ तब वह दुष्ट ब्रह्माजीके वरदान पानेंसे गर्वितहो अत्यन्त क्रोधकर अन्तर्ध्यान

प्रभावंसर्वभूतानिविदुरिंद्रजितोयुधि ॥ ततस्तेनमहात्मानंदृष्ट्वातुष्टाःप्रधर्षितम् ॥ ३० ॥ ततःप्रहृष्टाःकपयःससुग्री
वविभीषणाः ॥ साधुसाध्वितिनेदुश्चदृष्ट्वाशत्रुंपराजितम् ॥ ३१ ॥ इंद्रजित्तुतदानेननिर्जितोभीमकर्मणा ॥ संयुगे
वालिपुत्रेणक्रोधंचक्रेसुदारुणम् ॥ ३२ ॥ सोंतर्धानगतःपापोरावणीरणकर्शितः ॥ ब्रह्मदत्तवरोवीरोरावणिःक्रो
धमूर्च्छितः ॥ ३३ ॥ अदृश्योनिशितान्बाणान्मुमोचाशनिवर्चसः ॥ रामंचलक्ष्मणंचैवघोरैर्नागमयैःशरैः ॥ ३४ ॥
बिभेदसमरेक्रुद्धःसर्वगात्रेषुराघवौ ॥ माययासंवृतस्तत्रमोहयन्राघवौयुधि ॥ ३५ ॥ अदृश्यःसर्वभूतानांकूटयोधी
निशाचरः ॥ बबंधशरबंधेनभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ ३६ ॥ तौतेनपुरुषव्याघ्रौक्रुद्धेनाशीविषैःशरैः ॥ सहसाभिहतौ
वीरौतदाप्रैक्षंतवानराः ॥ ३७ ॥

होगया ॥ ३३॥ और किसीको दिखाई न देता हुआ आकाशमें टिककर वज्रकी समान बाण चलानें लगा और रामचंद्रजी व लक्ष्मणजीके सबही
अंग उसनें वींध डाले ॥ ३४ ॥ उस मेघनादनें क्रोधित होकर संग्राममें श्रीरामचंद्रजीके सब अंगोंको बाणोंसे भेदा, उसनें अपनी मायासे समरमें
दोनों भ्राताओंको मोहित किया ॥ ३५ ॥ वह छलसे युद्ध करनेंवाला निशाचर इन्द्रजीत अन्तर्ध्यान रह सब प्राणियोंको न दीखकर मायाके बलसे
रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजीको बाणोंके बन्धनोंसे बांधलेता हुआ ॥ ३६ ॥ उन पुरुषसिंह श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजीको क्रोधित

राक्षसोंके नाथ रावणनें देखा कि असंख्य वानरोंकी सैना श्रीरामचंद्रजीका प्रिय कार्य सिद्ध करनेंके लिये लंकापर चढ़ी ॥ १३ ॥ इस प्रकारसे वह शिला और वृक्षोंको लेकर युद्ध करनेंवाले अरुण मुख स्वर्णकी समान प्रभावान वानरगण श्रीरामचंद्रजीके लिये जीवतक छोड़नेंको तैयार होकर सबही लंकाकी ओरको धाये ॥ १४ ॥ वह वानरगण लंका नगरीके निकट आयकर वृक्ष और पर्वतों शिखर व मुष्टि प्रहारसे लंकाके पुरीके प्राचीर (भीत) और असंख्य फाटक तोड़नें फोड़नें लगे ॥१५॥ वह वानरगण अति बड़े २ पर्वतके टुकड़ोंसे, तिनकोंसे, काठसे व धूल डाल २ कर निर्मल जलसे शोभायमान लंकाके खांयेको पूर्ण करनें लगे ॥ १६ ॥ और जो समस्त वीर कि लंकापुरीकी प्राचीरपर चढ़गये, उनमें

प्रेक्षतोराक्षसेंद्रस्यतान्यनीकानिभागशः ॥ राघवप्रियकामार्थंलंकामारुरुहुस्तदा ॥ १३ ॥ तेताम्रवक्राहेमाभारामार्थेत्यक्तजीविताः ॥ लंकामेवाभ्यवर्ततसालभूधरयोधिनः ॥१४॥ तेद्रुमैःपर्वताग्रैश्चमुष्टिभिश्चप्लवंगमाः ॥ प्राकाराग्राण्यसंख्यानिममंथुस्तोरणानिच ॥ १५ ॥ परिखान्पूरयंतश्चप्रसन्नसलिलाशयान् ॥ पांसुभिःपर्वताग्रैश्चतृणैःकाष्ठैश्चवानराः ॥ १६ ॥ ततःसहस्रयूथाश्चकोटियूथाश्चयूथपाः ॥ कोटियूथशताश्चान्येलंकामारुरुहुस्तदा ॥ १७॥ कांचनानिप्रमर्दंतस्तोरणानिप्लवंगमाः ॥ कैलासशिखराग्राणिगोपुराणिप्रमथ्यच ॥ १८ ॥ आप्लवंतःप्लवंतश्चगर्जंतश्चप्लवंगमाः ॥ लंकांतामभिधावंतिमहावारणसन्निभाः ॥ १९ ॥ जयत्युरुबलोरामोलक्ष्मणश्चमहाबलः ॥ राजाजयतिसुग्रीवोराघवेणाभिपालितः ॥ २० ॥ इत्येवंघोषयंतश्चगर्जतश्चप्लवंगमाः ॥ अभ्यधावंतलंकायाःप्राकारंकामरूपिणः ॥ २१ ॥

कोई २ वानर सहस्र यूथका आधिपति था कोई करोड़ यूथका और कोई२शत करोड़ यूथका स्वामी था, वह वानरगण लंकामें प्रवेश करके कांचन निर्मित तोरण और कैलाश पर्वतकी समान उन तोरणोंके ऊपर बने हुए बड़े स्थानोंको तोड़नें फोड़नें लगे ॥ १७॥ १८ ॥ महा गजकी समान अगणित वानरगण ऊपरको छलांगें भरते तड़कते, व गर्जते हुए लंकाके चारों ओर घूमनें लगे ॥ १९ ॥ दोहा ॥ जयति जयति भ्राता सहित, महा बली रघुराज ॥ राघव पालित सूर्य सुत, जीतहिं सहित समाज ॥ २० ॥ इस प्रकारसे पुकारते व गर्जन करते हुए कामरूपी वानर गण लंकाके

करता हुआ॥७॥वह दोनों भाई क्रोधित मेघनादके चलाये सर्पमय बाणोंसे ऐसे विद्ध हुए कि उनके शरीरका कोई स्थानभी विना घावके न रहा॥८॥ उनके घावोंसे बहुत सारा रुधिर बहनेंके कारण वह दोनों भाई फूले हुए दो टेशूके वृक्षोंकी समान शोभायमान होनेलगे॥९॥ तिसके पीछे लाल२नेत्र किये अंजनवाले पर्वतकी समान काला रावणका बेटा मेघनाद अदृश्यही रहकर उन दोनों भ्राताओंसे यह वचन बोला॥१०॥ अरे बाण जालसे बंधे हुए दो राजकुमारो! तुम्हारी बात तौ दूर रहे हम जिस समय अदृश्य होकर युद्ध करतेहैं, उस समय स्वर्गके पति इन्द्रभी हमारा दर्शन नहीं कर सकते, या हमको प्राप्त नहीं होसकतेहैं ॥ ११॥ जो कुछभी हो अब हम बहुतही शीघ्र कंकपत्र लगे बाणोंसे भली प्रकार तुमको बींधकर यम

निरंतरशरीरौतुतावुभौरामलक्ष्मणौ ॥ क्रुद्धेनेंद्रजितावीरौपन्नगैःशरतांगतैः ॥ ८ ॥ तयोःक्षतजमार्गेणसुस्रावरुधिरं बहु ॥ तावुभौचप्रकाशेतेपुष्पिताविवकिंशुकौ ॥ ९ ॥ ततःपर्यंतरक्ताक्षोभिन्नांजनचयोपमः ॥ रावणिर्भ्रातरौवाक्यमंतर्धानगतोब्रवीत् ॥ १०॥ युध्यमानमनालक्ष्यंशक्रोपित्रिदशेश्वरः ॥ द्रष्टुमासादितुंवापिनशक्तःकिंपुनर्युवाम् ॥ ११ ॥ प्रापिताविषुजालेनराघवौकंकपत्रिणा ॥ एषरोषपरीतात्मानयामियमसादनम् ॥ १२ ॥ एवमुक्त्वातुधर्मज्ञौभ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ निर्बिभेदशितैर्बाणैःप्रजहर्षननादच ॥ १३ ॥ भिन्नांजनचयश्यामोविस्फार्यविपुलंधनुः ॥ भूयएव शरान्घोरान्विससर्जमहामृधे ॥१४॥ ततोमर्मसुमर्मज्ञोमज्जयन्निशिताञ्छरान् ॥ रामलक्ष्मणयोर्वीरोननादचमुहुर्मुहुः ॥ १५ ॥ बद्धौतुशरबंधनतावुभौरणमूर्धनि ॥ निमेषांतरमात्रेणनशेकतुरवेक्षितुम् ॥ १६ ॥

राजके गृहमें भेजे देतेहैं ॥ १२ ॥ धर्मात्मा श्रीरामचंद्र और लक्ष्मणजी दोनों भाइयोंसे ऐसा कह मेघनाद अत्यन्त तीक्ष्ण बाणोंसे उनको घायल कर वारंवार हर्षसे सिंहनाद करनें लगा ॥ १३ ॥ उस घोर रूप संग्राममें काले अंजनकी समान श्याम रंगवाला मेघनाद अपने धनुषपर टंकार दे वारंवार अत्यन्त घोर बाणजाल वर्षानें लगा ॥ १४ ॥ इसके पीछे वह मेघनाद धर्मात्मा श्रीरामचंद्र और लक्ष्मणजीके मर्म स्थानमें तीखे बाण मारकर हर्ष सहित वारंवार सिंहनाद करता हुआ ॥ १५ ॥ उस समय वह दोनों वीर रणभूमिमें बाणोंके बंधनसे बंधकर एक पल

मंत्रियोंके साथ महा बलवान श्रीरामचंद्रजीके निकट पहुंचे ॥ ३० ॥ गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, और गंधमादन यह कई एक वानरगण समस्त वानर सैनाकी रक्षा करनेंके लिये चारों ओर घूमनें लगे ॥ ३१ ॥ निशाचर पति रावण यह समस्त वृत्तान्त जानकर अत्यन्तही क्रोधके वश हुआ, और शीघ्रही अपनी सैनाको युद्ध करनेंके अर्थ बाहर निकलनेकी आज्ञा देता हुआ ॥ ३२ ॥ राक्षस लोगोंनेंभी रावणके मुखसे यह वचन सुनकर भेरी बजाकर उसके शब्दके साथ इस आज्ञाका सब कहीं प्रचार कर दिया ॥ ३३ ॥ तिसके पीछे चारों ओरसे राक्षस लोगोंकी सुवर्णकोणाभिहत सोनेंके दंडे से ताडित और चंद्रमाकी समान उजले मुखवाले ढकनोंसे युक्त भेरियें

गजोगवाक्षोगवयःशरभोगंधमादनः ॥ समंतात्परिधावंतोररक्षुर्हरिवाहिनीम् ॥३१॥ ततःकोपपरीतात्मारावणोराक्षसेश्वरः ॥ निर्याणंसर्वसैन्यानांद्रुतमाज्ञापयत्तदा ॥ ३२ ॥ एतच्छ्रुत्वातदावाक्यंरावणस्यमुखेरितम् ॥ सहसाभीमनिर्घोषमुद्घुष्टरजनीचरैः ॥३३॥ ततःप्रबोधिताभेर्यश्चंद्रपांडुरपुष्कराः ॥ हेमकोणैरभिहताराक्षसानांसमंततः ॥ ३४ ॥ विनेदुश्चमहाघोषाःशंखाःशतसहस्रशः ॥ राक्षसानांसुघोराणांमुखमारुतपूरिताः ॥३५॥ तेबभुःशुकनीलांगाःसशंखारजनीचराः ॥ विद्युन्मंडलसन्नद्धाःसबलाकाइवांबुदाः ॥ ३६ ॥ निष्पतंतिततःसैन्याहृष्टारावणचोदिताः ॥ समयेपूर्यमाणस्यवेगाइवमहोदधेः ॥ ३७ ॥ ततोवानरसैन्येनमुक्तोनादःसमंततः ॥ मलयःपूरितोयेनससानुप्रस्थकंदरः ॥ ३८ ॥

बजनें लगीं ॥ ३४ ॥ घोर रूपवाले राक्षस लोगोंकी मुख पवनसे परिपूर्ण हो घोर शब्दसे युक्त सैकडों हजारों शंख एक समयमेंही बजनें लगे ॥ ३५ ॥ मेघमाल्यके साथ बिजलीके मिलनें और बगलोकी लंगारके सम्मित होनेंसे जिस प्रकार शोभा होतीहै वैसेही शुकपक्षीकी समान नीले देहवाले राक्षस लोगोंके मुखमें लगे हुए शंख शोभायमान हुए ॥ ३६ ॥ इसके पीछे राक्षस लोग रावणकी आज्ञा पाय प्रलयकालके समय उछलते हुए समुद्रकी तरंगोंकी समान महावेगसे बाहर निकल कर चले ॥ ३७ ॥ इन राक्षसलोगोंको आते देखकर वानरोंकी सैना चारों ओरसे सिंहनाद करनें लगी. कि जिस्से बहुत दूर पर टिका हुआ मलयपर्वतभी शृङ्ग शिखर और कन्दराओंके साथ गूंजनें लगा ॥ ३८ ॥

भूषित और मुष्टिस्थानोंसे अलग शरासनको त्यागकर श्रीरामचंद्रजी वीरोचित सेजपर शयन करते हुए; उस समय उनमें कवच बख्तर धारण करनेंकीभी कुछ सामर्थ्य न रही ॥ २४ ॥ पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीको बाणोंकी सेजपर सोया हुआ देखकर लक्ष्मणजी जीवनकी आशा त्याग करते हुए॥२५॥ और उन कमलदललोचन रणतोषण शरण देनेंवाले अपने भ्राताको पृथ्वीमें गिरा हुआ देखकर विलाप करनें लगे ॥२६॥ वानरगणभी श्रीरामचंद्रजीकी ऐसी अवस्था देखकर अत्यन्त सन्तापित हुए और शोकके मारे नेत्रोंमें आंसू भरकर बड़े शब्दसे रोनें लगे ॥ २७ ॥ हनुमान इत्यादि मुखियार वानर लोग राम लक्ष्मण दोनों भाइयोंको नाग फाँससे बँधा हुआ और वीरोचित सेजपर शयन किये हुए देखकर चारों ओरसे घेर

बाणपातांतरेरामंपातितंपुरुषर्षभम् ॥ सतत्रलक्ष्मणोदृष्ट्वानिराशोजीवितेऽभवत् ॥ २५ ॥ रामंकमलपत्राक्षंशरण्यं रणतोषिणम् ॥ शुशोचभ्रातरंदृष्ट्वापतितंधरणीतले ॥ २६ ॥ हरयश्चापितंदृष्ट्वासंतापंपरमंगताः ॥ शोकार्ताश्चुक्रुशुर्घोरमश्रुपूरितलोचनाः ॥ २७ ॥ बद्धौतुतौवीरशयेशयानौतेवानराःसंपरिवार्यतस्थुः ॥ समागतावायुसुतप्रमुख्याविषादमार्ताःपरमंचजग्मुः ॥ २८ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा० आ०युद्धकांडेपंचचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४५ ॥ ७॥ ततोद्यांपृथिवींचैववीक्षमाणावनौकसः ॥ ददृशुःसंततौबाणैर्भ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ १ ॥ वृष्ट्वेवोपरतेदेवेकृतकर्मणिराक्षसे ॥ आजगामाथतंदेशंससुग्रीवोविभीषणः ॥ २ ॥ नीलश्चद्विविदोमैंदःसुषेणःकुमुदोंगदः ॥ तूर्णंहनुमतासार्धमन्वशोचंतराघवौ ॥ ३ ॥

कर अत्यन्त विलाप करनें लगे ॥ २८ ॥ इ० श्रीम०वा०आ०यु० पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥ इसके पीछे वानर लोगोंनें भयके मारे आकाश और पृथ्वीको खोज करके देखा कि राम लक्ष्मण दोनों भाई नागफाँससे बँधेहुए पड़े हैं ॥१॥ तिसके पीछे इन्द्र जिस प्रकार जलधारा वर्षाय कर थँम जाते हैं, वैसेही इन्द्रजीत इन दोनों वीरोंको बाणजालसे घायल और बाँध करके थमगया, तब सुग्रीव विभीषणके सहित उस स्थानमें आये ॥२॥ तिसके पीछे नील, द्विविद, मैन्द, सुषेण, कुमुद, और अंगद हनुमानजीके साथ वहांपर आय श्रीरामचंद्रजीके निमित्त शोक करनें लगे ॥ ३ ॥

भीत पर चढ़े हुए राक्षसोंको नीचे पृथ्वीमें गिरानें लगे ॥ ४६ ॥ उस समय वानर और राक्षस लोगोंका ऐसा भारी घोर संग्राम हुआकि दोनों ओर वाले वीरोंके शरीरसे निकले हुए मांस और रुधिरसे रण भूमि कीचड़से परिपूर्ण होगई; और वह समर ऐसा हुआ; कि जैसा पहले कभी नहीं हुआथा ॥ ४७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्ध कांडे द्विचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४२ ॥ इस प्रकारसे महाबलवान वानर और राक्षसगण जब युद्ध करनें लगे, तब उनमें परस्पर जय लाभ करनेंकी कामनासे अत्यन्त दारुण क्रोध हुआ ॥ १ ॥ वह समस्त वीर राक्षसगण सुवर्णके आभूषण पहरे, घोड़े व अग्निकी शिखाके समान आकारवाले चमकते दमकते हाथियोंपर

ससंप्रहारस्तुमुलोमांसशोणितकर्दमः ॥ रक्षसांवानराणांचसंबभूवाद्भुतोपमः ॥ ४७ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेद्विचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४२ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ॥ युध्यतांतुततस्तेषांवानराणांमहात्मनाम् ॥ रक्षसांसंबभूवाथबलरोषःसुदारुणः ॥ १ ॥ तेहयैःकांचनापीडैर्गजैश्चाग्निशिखोपमैः ॥ रथैश्चादित्यसंकाशैःकवचैश्चमनोरमैः ॥ २ ॥ निर्ययूराक्षसावीरानादयंतोदिशोदश ॥ राक्षसाभीमकर्माणोरावणस्यजयैषिणः ॥ ३ ॥ वानराणामपिचमूर्बृहतीजयमिच्छताम् ॥ अभ्यधावततांसेनांरक्षसांघोरकर्मणाम् ॥ ४ ॥ एतस्मिन्नंतरेतेषामन्योन्यमभिधावताम् ॥ रक्षसांवानराणांचद्वंद्वयुद्धमवर्तत ॥ ५ ॥ अंगदेनेंद्रजित्सार्धंवालिपुत्रेणराक्षसः ॥ अयुध्यतमहातेजास्त्र्यंबकेणयथांधकः ॥ ६ ॥ प्रजंघेनचसंपातिर्नित्यंदुर्धर्षणोरणे ॥ जंबुमालिनमारब्धोहनुमानपिवानरः ॥ ७ ॥

और सूर्यकी समान प्रभावान रथोंपर चढ़ मनोहर कवच वख्तर धारण कर ॥ २ ॥ दशों दिशाओंमें निहारते भयंकर कर्म करनेंवाले राक्षस रावणके जयकी कामना किये संग्राम करनेंको आये ॥ ३ ॥ इन राक्षसोंकी सैनाको आता हुआ देखकर जयकी इच्छा किये बड़ी भारी वानर सैनाभी राक्षस लोगोंकी सैनाके सन्मुख धाई ॥ ४ ॥ जब इस प्रकार वानरोंकी सैना राक्षसोंपर धाई, व राक्षसी सैना वानरों पर धाई तब राक्षस वीर वानरगणोंका द्वंद्व युद्ध होंनें लगा ॥ ५ ॥ जिस प्रकार अन्धकासुरके साथ युद्ध करते हुए महादेवजीका संग्राम हुआथा, वैसेही महा तेजस्वी वालिकुमार अंगदजीके साथ इन्द्रजीतका युद्ध होंनें लगा ॥ ६ ॥ रणमें अति अजेय सम्पाती नाम वानर राक्षस

सब राक्षसोंको सन्तोष दिलाता कहनें लगा ॥ ११ ॥ कि जो सब जगत्‌में बड़े बलवान विख्यात हैं. जिनके हाथसे खर दूषण मारे गये, उन्हीं
राम लक्ष्मण दोनों भाइयोंका आज हमनें अपनें बाणोंसे संहार कर डाला ॥ १२ ॥ यदि सुर असुर, और समस्त ऋषिलोगभी यहां आन
कर इकट्ठे हो इनको नागफाँससे छुटानेंका यत्न करैं, परन्तु किसी प्रकारसेभी यह नागफाँस टूटनेंवाली नहीं ॥ १३ ॥ जिनके लिये हमारे पिता
भय और शोकसे अत्यन्तही व्याकुल थे, जिनके कारण वह हमारे पिता सेजपर विना अंगके लगायेही तीन पहर रात्रि बितादेते हैं ॥ १४ ॥
जिनके लिये लंकाके रहनेंवाले समस्तही लोग वर्षाके समयवाली नदीकी समान व्याकुलथे,उस अनर्थके मूलकोही आज हमनें उखाड़ डाला॥१५॥

दूषणस्यचहंतारौखरस्यचमहाबलौ ॥ सादितौमामकैर्बाणैर्भ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ १२ ॥ नेमौमोक्षयितुंशक्यावेतस्मा
दिषुबंधनात् ॥ सर्वैरपिसमागम्यसर्षिसंघैःसुरासुरैः ॥ १३ ॥ यत्कृतेचिंतयानस्यशोकार्तस्यपितुर्मम ॥ अस्पृष्ट्वाश
यनंगात्रैस्त्रियामायातिशर्वरी ॥ १४ ॥ कृत्स्नेयंयत्कृतेलंकानदीवर्षास्विवाकुला ॥ सोयंमूलहरोनर्थःसर्वेषांशमितोमया
॥ १५ ॥ रामस्यलक्ष्मणस्यैवसर्वेषांचवनौकसाम् ॥ विक्रमानिष्फलाःसर्वेयथाशरदितोयदाः ॥ १६ ॥ एवमुक्त्वातुतान्स
र्वान्राक्षसान्परिपश्यतः ॥ यूथपानपितान्सर्वांस्ताडयत्सचरावणिः ॥ १७ ॥ नीलंनवभिराहत्यमैंदंसद्विविदंतथा ॥ त्रि
भिस्त्रिभिरमित्रघ्नस्ततापपरमेषुभिः ॥ १८ ॥ जांबवंतंमहेष्वासोविद्ध्वाबाणेनवक्षसि ॥ हनूमतोवेगवतोविससर्जशरा
न्दश ॥ १९ ॥ गवाक्षंशरभंचैवतावप्यमितविक्रमौ ॥ द्वाभ्यांद्वाभ्यांमहावेगोविव्याधयुधिरावणिः ॥ २० ॥

शरदकालके मेघ जिस प्रकार निष्फल होते हैं; वैसेही राम-लक्ष्मण व और समस्त वानरोंका विक्रम निष्फल हो गया ॥ १६ ॥ राक्षस लोगोंसे
यह वचन कहकर उनके सन्मुखही वानरोंके यूथनाथोंकोभी ताड़ना करनें लगा ॥ १७ ॥ उस अमित्र घाती अति धनुर्द्धर मेघनादनें वीर नील
पर नल और मैन्द व द्विविद वानरपर तीन२ अति तीखे बाण चलायकर उनको वींध डाला ॥ १८ ॥ तिसके पीछे जाम्बवानकी छातीमें एक बाण
मारकर उसनें हनुमानजीके ऊपर दश बाण चलाये ॥ १९ ॥ गवाक्ष और शरभके ऊपर महा पराक्रमी वेगवान मेघनादनें दो दो बाण चलाये और

राक्षस और वानर गणोंकी पर्वताकार देहसे प्रहारोंके लगनेंसे जो रक्तकी धार निकलतीथी, वही नदीकी समान और उनके शरीरके रोमसमूहथे वही शैवाल की समान जान पड़नें लगे ॥ १७ ॥ वज्रधारी इन्द्रजी जिसप्रकार वज्र चलातेहैं, वैसेही इन्द्रजीत मेघनादनें क्रोधमें मूर्छित होकर शत्रु ओंकी सैनाको विदारण करनेंवाले अंगदजीको ताककर एक गदा इनके ऊपर चलाई ॥ १८ ॥ वानरश्रेष्ठ वेगवान अंगदजीनें मेघनादकी चलाई गदा पकड़ करके उसके अश्व, सारथी और सुवर्णसे चित्रित रथको कीर्चेरकर डाला ॥ १९ ॥ प्रजङ्घ राक्षसनें तीन बाणद्वारा संपाति नाम वानर पर प्रहार किया, तदनन्तर संपातिनें एक अश्वकर्णके वृक्षको उखाड़कर प्रजङ्घके मस्तकपर चलाया ॥ २० ॥ रथोंमें बैठेहुए महाबलवान

हरिराक्षसदेहेभ्यःप्रसृताःकेशशाद्वलाः॥शरीरसंघाटवहाःप्रसुस्नुःशोणितापगाः ॥१७॥ आजघानेंद्रजित्क्रुद्धोवज्रेणेवश तक्रतुः ॥ अंगदंगदयावीरंशत्रुसैन्यविदारणम् ॥ १८॥ तस्यकांचनचित्रांगंरथंसाश्वंससारथिम् ॥ जघानगदयाश्री मानंगदोवेगवान्हरिः ॥ १९ ॥ संपातिस्तुप्रजंघेनत्रिभिर्बाणैःसमाहतः ॥ निजघानाश्वकर्णेनप्रजंघंरणमूर्धनि ॥ २० ॥ जंबुमालीरथस्थस्तुरथशक्त्यामहाबलः ॥ बिभेदसमरेक्रुद्धोहनुमंतंस्तनांतरे ॥ २१ ॥ तस्यतंरथमास्थायहनूमान्मारु तात्मजः ॥ प्रममाथतलेनाशुसहतेनैवरक्षसा ॥ २२ ॥ नदन्प्रतपनोघोरोनलंसोभ्यनुधावत ॥ नलःप्रतपनस्याशुपात यामासचक्षुषी ॥ २३ ॥ भिन्नगात्रःशरैस्तीक्ष्णैःक्षिप्रहस्तेनरक्षसा ॥ ग्रसंतमिवसैन्यानिप्रघसंवानराधिपः ॥ २४ ॥ सुग्रीवःसप्तपर्णेननिजघानजवेनच ॥ प्रपीड्यशरवर्षेणराक्षसंभीमदर्शनम् ॥ २५ ॥

जम्बुमाली नाम राक्षसनें क्रोधमें भरकर हनुमानजीके बीच छातीमें एक शक्ति मारी ॥ २१ ॥ शक्ति लगनेंपर हनुमानजीनें अति शीघ्रताके साथ उसके रथपर कूद उसमें एक लात मारी कि जिस्से वह रथ चूर्ण होगया; और उसके सहित उस राक्षसकाभी नाश कर दिया ॥ २२ ॥ भयंकराकार प्रतपन नामक राक्षस शब्द करता हुआ नल नाम वानरकी ओर दौड़ा, वीर नलनेंभी विक्रम प्रकाश करके उस राक्षसकी दोनों आंखें निकालली ॥ २३ ॥ बाण चलानेंमें चतुर उस राक्षसके बाण चलानेंसे यद्यपि नलका शरीर छिन्न भिन्न होरहाथा, परन्तु तौभी उन्हों नें उसकी आंखें निकालली, इधर प्रघस नामक राक्षसनें समस्त सैनाको निकल जाना विचारा परन्तु वानरोंके राजा ॥ २४ ॥ सुग्रीवजीनें महा

उस समय बड़े चतुर विभीषणजी नेत्रोंमें आंसूभरे हुए दीनभावसे युक्त और क्रोधाकुल नेत्र वानरराज सुग्रीवजीसे बोले कि हे सुग्रीव! त्रासको छोड़ो और रोनेंकाभी कुछ काम नहीं ॥ ३० ॥ युद्धका फल इसी प्रकारसे हुआ करताहै, कारण कि कभी किसीको सदा जय नहीं प्राप्त हुआ करतीहै, हे वीर! यदि हम लोगोंका भाग्य प्रसन्न होजायगा ॥ ३१ ॥ तौ महावलवान महात्मा इन दोनों भाइयोंका मोह बहुतही शीघ्र छुट जायगा; हेवानरपति! तुम निश्चय जानना कि जो लोग सत्य और धर्मके अनुरागी होतेहैं; उन लोगोंको कभी मृत्यु उपस्थित नहीं होती, इसलिये तुम अनाथकी समान शोक न करके अपनेको और हमको सावधान करो ॥३२॥ विभीषणजीनें यह कहकर प्रथम अपने हाथमें लिये हुए जलसे

तमुवाचपरित्रस्तंवानरेंद्रंविभीषणः ॥ सबाष्पवदनंदीनंक्रोधव्याकुललोचनम् ॥ अलंत्रासेनसुग्रीवबाष्पवेगोनिगृह्य
ताम् ॥ ३० ॥ एवंप्रायाणियुद्धानिविजयोनास्तिनैष्ठिकः ॥ सभाग्यशेषतास्माकंयदिवीरभविष्यति ॥ ३१ ॥ मो
हमेतौप्रहास्येतेमहात्मानौमहाबलौ ॥ पर्यवस्थापयात्मानमनाथंमांचवानर ॥ सत्यधर्माभिरक्तानांनास्तिमृत्युकृतं
भयम् ॥ ३२ ॥ एवमुक्त्वाततस्तस्यजलक्लिन्नेनपाणिना ॥ सुग्रीवस्यशुभेनेत्रेप्रममार्जविभीषणः ॥ ३३ ॥ ततःस
लिलमादायविद्ययापरिजप्यच ॥ सुग्रीवनेत्रेधर्मात्माप्रममार्जविभीषणः ॥ ३४ ॥ विमृज्यवदनंतस्यकपिराजस्यधी
मतः ॥ अब्रवीत्कालसंप्राप्तमसंभ्रांतमिदंवचः ॥३५॥ नकालःकपिराजेंद्रवैक्लव्यमवलंबितुम् ॥ अतिस्नेहोपिकालेऽस्मि
न्मरणायोपकल्पते ॥३६॥ तस्मादुत्सृज्यवैक्लव्यंसर्वकार्यविनाशनम् ॥ हितंरामपुरागाणांसैन्यानामनुचिंतय ॥३७॥

सुग्रीवजीके दोनों नेत्र धोय दिये ॥३३॥ तिसके पीछे फिर जल हाथमें लेकर उसको शोकनिवारण विद्यासे अभिमंत्रितकर उस्से फिर सुग्रीवके दोनोंनेत्र धोदिये ॥३४॥ तब बुद्धिमान् वानरराज सुग्रीवजीके नेत्र जलसे पोंछ समयके अनुसार व्याकुलताके निवारण करनेंवाले वचन विभीषणजी बोले ॥३५॥ हेसखे! यह व्याकुल होनेंके योग्य समय नहींहै जान लो कि ऐसे कठिन समयमें स्नेहभी मृत्युका कारण होजाताहै ॥३६॥ इस कारण इन सब कार्योंकी विनाश करनेंवाली विकलताको छोड़कर जिस्से श्रीरामचंद्रजीकी अनुगामी सैनाका मंगल होवे ऐसा तुमको करना उचितहै ॥ ३७ ॥

वज्रकी समान बाणोंसे वृक्ष ग्रहण करके युद्ध करते हुए वानरोंमें श्रेष्ठ द्विविदको विद्ध किया ॥ ३३ ॥ परन्तु बाणोंके लगनेंसे द्विविदको अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हुआ और इन्होंनें एक शालका वृक्ष उखाड़ कर अश्व और रथके सहित राक्षसका संहार किया ॥ ३४ ॥ रथमें बैठा हुआ राक्षस विद्युन्माली स्वर्णभूषित अनेक बाणोंको चलाय सुषेणजीको पीड़ित करके वारंवार सिंहनाद करनेंलगा ॥ ३५ ॥ तब वानरोंमें श्रेष्ठ सुषेण जीनें उसको रथमें बैठा हुआ देखकर एक पर्वताकार शिला चलाय उसके रथका चूर्ण करदिया ॥ ३६ ॥ तब निशाचर विद्युन्माली अत्यन्त शीघ्र चतुरता सहित रथपरसे उतरकर अजेय गदा लेकर पृथ्वीमें खड़ा होगया ॥ ३७ ॥ तब वानर सुषेण, राक्षसको खड़ा हुआ देखकर क्रोधि

सशरैरभिविद्धांगोद्विविदःक्रोधमूर्छितः ॥ सालेनसरथंसाश्वंनिजघानाशनिप्रभम् ॥ ३४ ॥ विद्युन्मालीरथस्थस्तुशरैः कांचनभूषणैः ॥ सुषेणंताडयामासननादचमुहुर्मुहुः ॥ ३५ ॥ तंरथस्थमथोदृष्ट्वासुषेणोवानरोत्तमः ॥ गिरिशृंगेणमहतारथमाशुन्यपातयत् ॥ ३६ ॥ लाघवेनतुसंयुक्तोविद्युन्मालीनिशाचरः ॥ अपक्रम्यरथात्तूर्णंगदापाणिःक्षितौस्थितः ॥ ३७ ॥ ततःक्रोधसमाविष्टःसुषेणोहरिपुंगवः ॥ शिलांसुमहतींगृह्यनिशाचरमभिद्रवत् ॥ ३८ ॥ तमापतंतंगदयाविद्युन्मालीनिशाचरः ॥ वक्षस्यभिजघानाशुसुषेणंहरिपुंगवम् ॥ ३९ ॥ गदाप्रहारंतंघोरमचिंत्यप्लवगोत्तमः ॥ तांतूष्णींपातयामासतस्योरसिमहामृधे ॥ ४० ॥ शिलाप्रहाराभिहतोविद्युन्मालीनिशाचरः ॥ निष्पिष्टहृदयोभूमौगतासुर्निपपातह ॥ ४१ ॥ एवंतैर्वानरैःशूरैःशूरास्तेरजनीचराः ॥ द्वंद्वेविमथितास्तत्रदैत्याइवदिवौकसः ॥ ४२ ॥

त हो शिला ग्रहण करके इसकी ओरको दौड़े ॥ ३८ ॥ निशाचर विद्युन्माली इनको शिला ग्रहण किये आता हुआ देखकर शीघ्रतासे वानर श्रेष्ठ सुषेणजीकी छातीमें गदाका प्रहार करता हुआ ॥ ३९ ॥ वानरश्रेष्ठ सुषेणजीनें उस गदाको कुछभी न समझ कर उस राक्षस विद्युन्मालीकी छातीमें प्रथमही ग्रहणकीहुई अपनी शिलाको चलाया ॥ ४० ॥ निशाचर विद्युन्माली उस शिलाके प्रहार लगनेंसे पीड़ित और चूर्णित हृदय होकर पृथ्वी पर गिरा कि जिस्से उसके प्राणतक निकल गये ॥ ४१ ॥ इस प्रकारसे उस द्वन्द्व युद्धमें सुर गणसे असुर गणोंकी समान शूर निशा

बैठा हुआ रावण अपने दोनों शत्रुओंका मारा जाना सुनकर खड़ाहो हर्षित अंतःकरणसे पुत्रको हृदयसे लगाताहुआ ॥ ४६ ॥ तब रावणनें अति प्रसन्नता सहित पुत्रका मस्तक सूंघकर पुत्रसे युद्धका समस्त वृत्तान्त पूछा, पुत्र इन्द्रजीतनेंभी सब चरित्र पितासे निवेदन किया ॥ ४७ ॥ जिस प्रकारसे राम और लक्ष्मणको संग्राममें नागपाशसे बांधकर चेष्टाहीन और प्रभाहीन किया,वह सब वृत्तान्त रावणसे इन्द्रजीतनें कहा ॥ ४८ ॥ महाबलवान महारथ इन्द्रजीतके मुखसे संग्राममें जीतनेका समाचार पाय अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ, और उस समय उसके अंतःकरणसें श्रीरामचंद्रजीका भय दूर होगया, तब वह हर्षित वचनोंसे पुत्रकी बड़ाई करनेंलगा ॥ ४९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्ध

उपाघ्रायचतंमूर्ध्निपप्रच्छप्रीतमानसः ॥ पृच्छतेचयथावृत्तंपित्रेतस्मैन्यवेदयत् ॥ ४७॥ यथातौशरबंधेननिश्चेष्टौनिष्प्रभौकृतौ ॥४८॥ सहर्षवेगानुगतांतरात्माश्रुत्वागिरंतस्यमहारथस्य ॥ जहौत्वरंदाशरथेःसमुत्थंप्रहृष्टवाचाभिननंदपुत्रम् ॥ ४९ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेषट्चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४६ ॥ ७ ॥ तस्मिन्प्रविष्टेलंकायांकृतार्थेरावणात्मजे ॥ राघवंपरिवार्याथररक्षुर्वानरर्षभाः ॥ १ ॥ हनुमानंगदोनीलःसुषेणःकुमुदोनलः ॥ गजोगवाक्षःपनसःसानुप्रस्थोमहाहरिः ॥ २ ॥ जांबवानृषभःसुंदोरंभःशतबलिःपृथुः ॥ व्यूढानीकाश्चयत्ताश्चद्रुमानादायसर्वतः ॥ ३ ॥ वीक्षमाणादिशःसर्वास्तिर्यगूर्ध्वंचवानराः ॥ तृणेष्वपिचचेष्टत्सुराक्षसाइतिमेनिरे ॥ ४ ॥

काण्डे षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥ ॥ ७ ॥ तिसके पीछे जब रावणका पुत्र मेघनाद रणविजयी होकर लंकाको चलागया, तब वानरश्रेष्ठगण श्रीरामचंद्रजीको चारों ओरसे घेरकर उनकी रक्षा करनें लगे ॥ १ ॥ हनुमान, अंगद, नील, सुषेण, कुमुद, नल, गज, गवाक्ष, पनस, महावानर सानुप्रस्थ ॥ २ ॥ जाम्बवान, ऋषभ, सुन्द, रम्भ, शतबलि और पृथु इत्यादि यह सबही वानर यूथपगण वृक्षोंको हाथमें ग्रहणकर सैनाका व्यूह बनाय श्रीरामचंद्रजीकी रक्षा करनें लगे ॥ ३ ॥ उस कालमें रक्षामें नियुक्त हुए वानर गण इस प्रकारकी

उसकाल उस सैनाके बीचमें मारडालो फाड़डालो भागता क्यों है लौट करआ इस प्रकारसे कठोर शब्द सुनाई आने लगे ॥ ४ ॥ उस अं
धकारमें काले वर्णवाले राक्षस लोग सुवर्णका बना कवच धारण करनेंसे प्रदीप्त औषधिवन भूषित पर्वतराजोंकी समान जान पड़नें लगे ॥ ५ ॥
उस अपार अन्धकारमें क्रोधसे भरे हुए राक्षस लोग वानरोंकी सैनामें अति वेगसे प्रवेश करकै उनको भक्षण करनें लगे ॥ ६ ॥ भयंकर क्रोध
किये हुए वानरगणभी छलांग मार २ कर अपने तीक्ष्ण दांतोंसे काट कर राक्षस लोगोंके सुवर्णसे मंडित घोड़े और सर्पाकार ध्वजाओंके डंडे
खंड २ करने लगे ॥ ७ ॥ उस संग्रामभूमिमें बलवान वानरगणोंनेंभी राक्षसोंकी सैनाको खल बलाय दिया, हाथी और हाथियोंके सवार

हतदारयचैहीतिकथंविद्रवसीतिच ॥ एवंसुतुमुलःशब्दस्तस्मिन्सैन्येतुशुश्रुवे ॥ ४ ॥ कालाःकांचनसन्नाहास्तस्मिंस्त
मसिराक्षसाः ॥ संप्रदृश्यंतशैलेंद्रादीप्तौषधिवनाइव ॥ ५ ॥ तस्मिंस्तमसिदुष्पारेराक्षसाःक्रोधमूर्च्छिताः ॥ परिपेतुर्म
हावेगाभक्षयंतःप्लवंगमान् ॥ ६ ॥ तेहयान्कांचनापीडान्ध्वजांश्चाशीविषोपमान् ॥ आप्लुत्यदशनैस्तीक्ष्णैर्भीमको
पाव्यदारयन् ॥ ७ ॥ वानराबलिनोयुद्धेऽक्षोभयन्राक्षसींचमूम् ॥ कुंजरान्कुंजरारोहान्पताकाध्वजिनोरथान् ॥ ८ ॥
चकर्षुश्चददंशुश्चदशनैःक्रोधमूर्च्छिताः ॥ लक्ष्मणश्चापिरामश्चशरैराशीविषोपमैः ॥ ९ ॥ दृश्यादृश्यानिरक्षांसिप्रवरा
णिनिजघ्नतुः ॥ तुरंगखुरविध्वस्तंरथनेमिसमुत्थितम् ॥ १० ॥ रुरोधकर्णनेत्राणियुध्यतांधरणीरजः ॥ वर्तमानेतथाघो
रेसंग्रामेलोमहर्षणे ॥ रुधिरौघामहाघोरानद्यस्तत्रविसुस्रुवुः ॥ ११ ॥ ततोभेरीमृदंगानांपणवानांचनिःस्वनः ॥ शं
खनेमिस्वनोन्मिश्रःसंबभूवाद्भुतोपमः ॥ १२ ॥

पताका और ध्वजा शोभित रथ ॥ ८ ॥ सबको यह वानरगण क्रोधमें मूर्छित होकर खेंचनें व दांतोंसे काटनें लगे । लक्ष्मण और श्रीरामचं
द्रजीभी विषकी समान बाणधारा वर्षायकर ॥ ९ ॥ दीखते अन दीखते बडे २ राक्षसोंका संहार करनें लगे । उस कालमें घोडोंके खुरोंसे
रथके पहियोंसे उठी हुई धूरिने ॥ १० ॥ युद्ध करती हुई सैनाके कान और नेत्र पृथ्वीपरसे उड़कर मूंदलिये, इस प्रकारसे कठोर और रोमहर्षण
कारी संग्राम आरंभ हुआ; तब उस संग्राममें घोर रुधिरकी नदी वहनें लगी ॥ ११ ॥ तिसके पीछे शंखका शब्द, रथचक्रकी खर २ ध्वनि भेरी

और पतिके शोकसे दुर्बल हुई सीताको उन राक्षसियोंनें अपनें हाथसे पकड़कर पुष्पकविमानपर चढ़ाया ॥ १३ ॥ रावण
त्रिजटाके साथ सीताजीको पुष्पक विमानमें सवार कराकर ध्वजा पताकोंओंसे शोभायमान लंकापुरीमें घुमानें लगा ॥ १४ ॥ उस राक्षसपति
रावणनें घुमानेंके कालमें चारों ओर यह पुकारवाया कि "संग्रामभूमिमें इन्द्रजीतके हाथसे राम लक्ष्मण दोनों भाई मारे गये" ॥ १५ ॥
इस पीछे जनककुमारी सीताजी त्रिजटाके सहित रणभूमिमें जाय कर देखती हुई कि लगभग समस्त वानर सैनाही मरी पड़ीहै ॥ १६ ॥ मांसके
खानेंवाले राक्षस लोग हर्षित अंतःकरणसे चारों ओर घूमरहेहैं; और वानर गण दुःखित मनसे श्रीराम लक्ष्मणजीके निकट खड़े हुएहैं ॥ १७ ॥

तामादायतुराक्षस्योभर्तृशोकपराजिताम् ॥ सीतामारोपयामासुर्विमानंपुष्पकंतदा ॥ १३ ॥ ततःपुष्पकमारोप्यसी
तांत्रिजटयासह ॥ रावणश्चारयामासपताकाध्वजमालिनीम् ॥ १४ ॥ प्राघोषयतहृष्टश्चलंकायांराक्षसेश्वरः ॥ राघ
वोलक्ष्मणश्चैवहताविंद्रजितारणे ॥ १५ ॥ विमानेनापिगत्वातुसीतात्रिजटयासह ॥ ददर्शवानराणांतुसर्वंसैन्यंनि
पातितम् ॥ १६ ॥ प्रहृष्टमनसश्चापिददर्शपिशिताशनान् ॥ वानरांश्चातिदुःखार्तान्रामलक्ष्मणपार्श्वतः ॥ १७ ॥ ततः
सीताददर्शोभौशयानौशरतल्पगौ ॥ लक्ष्मणंचैवरामंचविसंज्ञौशरपीडितौ ॥ १८ ॥ विध्वस्तकवचौवीरौविप्रविद्धश
रासनौ ॥ सायकैश्छिन्नसर्वांगौशरस्तंबमयौक्षितौ ॥ १९ ॥ तौदृष्ट्वाभ्रातरौतत्रप्रवीरौपुरुषर्षभौ ॥ शयानौपुंडरी
काक्षौकुमाराविवपावकी ॥२०॥ शरतल्पगतौवीरौतथाभूतौनरर्षभौ ॥ दुःखार्ताकरुणंसीतासुभृशंविललापह॥ २१॥

तिसके पीछे जनककुमारी जानकीजीनें देखा कि राम और लक्ष्मणजी बाणोंसे पीड़ित होंनेंके कारण चेतनारहितहो बाणोंकी शेजपर पड़े
हुए हैं ॥ १८ ॥ वह दोवीरश्रेष्ठ दोनों भाई राम और लक्ष्मणजी कवचहीन धनुष त्याग किये सब अंगोंमें बाण विंधवाये पृथ्वीपर पड़े हुएहैं
॥ १९ ॥ जानकीजीनें देखा—वह वीराग्रगण्य पुरुषश्रेष्ठ पुण्डरीकाक्ष दोनों भ्राता, दो अग्निकुमारोंकी समान बाणोंकी शेज पर शयन किये
हुएथे ॥ २० ॥ उन पुरुषश्रेष्ठ दोनों वीरोंको ऐसी अवस्थामें बाणोंकी शेजपर शयन किये हुए देख जनककुमारी सीताजी दुःखकी अधिकाईके

जीवको ले रणभूमिसे भागगये ॥ २१ ॥ उस कालमें महारथी श्रीरामचंद्रजी इस प्रकार अग्निकी लपटके समान बाण चलानेंलगे कि जिस्से पलभरमें दशोंदिशा व विदिशाओंमें अंधकार छायगया ॥ २२ ॥ जिस प्रकार अग्निके मुखमें गिरकर पतंगे जल जाते हैं; वैसेही जो राक्षस श्रीरामचंद्रजीकी ओर धायेथे उनका उसी समय नाश होगया ॥ २३ ॥ सबही कहीं सुवर्ण लगे बाणोंके गिरनेंसे, वह रात्रि पटबीजनों करके युक्त शरदृऋतुकी रात्रिके समान विचित्र ज्ञात होनें लगी ॥ २४ ॥ राक्षस लोगोंके सिंहनाद और भेरीके शब्दसे शब्दायमान होनेंके कारण वह रात्रि औरभी घोर भयंकर होगई ॥ २५ ॥ सर्व प्रकारसे बढ़ा हुआ बड़ा भारी शब्द त्रिकूट पर्वतकी कन्दराओंमें प्रवेश करके गुंजार करनें

निमेषांतरमात्रेणघोरैरग्निशिखोपमैः ॥ दिशश्चकारविमलाःप्रदिशश्चमहारथः ॥ २२ ॥ येत्वन्येराक्षसावीरारामस्या भिमुखेस्थिताः॥ तेपिनष्टाःसमासाद्यपतंगाइवपावकम् ॥ २३ ॥ सुवर्णपुंखैर्विशिखैःसंपतद्भिःसमंततः ॥ बभूवरजनी चित्राखद्योतैरिवशारदी ॥ २४ ॥ राक्षसानांचनिनदैर्भेरीणांचैवनिःस्वनैः ॥ सावभूवनिशाघोराभूयोघोरतराभव त् ॥ २५ ॥ तेनशब्देनमहताप्रवृद्धेनसमंततः ॥ त्रिकूटःकंदराकीर्णःप्रव्याहरदिवाचलः ॥ २६ ॥ गोलांगूलामहाकाया स्तमसातुल्यवर्चसः ॥ संपरिष्वज्यबाहुभ्यांभक्षयन्रजनीचरान् ॥ २७ ॥ अंगदस्तुरणेशत्रून्निहंतुंसमुपस्थितः ॥ इं द्रजित्तुरथंत्यक्त्वाहताश्वोहतसारथिः ॥ अंगदेनमहायस्तस्तत्रैवांतरधीयत ॥ २८ ॥ तत्कर्मवालिपुत्रस्यसर्वेदेवाः सहर्षिभिः॥ तुष्टुवुःपूजनार्हस्यतौचोभौरामलक्ष्मणौ ॥ २९ ॥

लगा ॥ २६ ॥ श्याम रंगवाले महाशरीरधारी गोपुच्छ वानरगण अपनी बांहोंसे राक्षसोंको पकड़ फिर भक्षण करनेंलगे ॥ २७ ॥ अंगदजीभी शत्रुका विनाश करनेंकी वासनासे रणमें प्रवेश करके रावणके पुत्र इन्द्रजीतके ऊपर प्रहार करते हुए, और उसके सारथि व घोड़ोंको मार डाला, परन्तु मायाविशारद इन्द्रजीत अंगदजी करके घोड़े और सारथिके मारे जानें परभी रथको छोड़कर उसी स्थानमें अन्तर्ध्यान होजाताहुआ ॥ २८ ॥ देवता, और ऋषिलोगोंके प्रशंसा करनेंके योग्य वालिकुमार अंगदजीका ऐसा कठिन कार्य देखकर उनकी व राम

प्रतिज्ञा करके हमारे अभिषेकके सम्बन्धमें जो शुभकारी वार्त्ता कहीथी,सो आज श्रीरामचंद्रजीके मृतक हो जानेसे उनके वचनभी विफल हो गये ॥ ५ ॥ दोनों चरणोंमें पद्म चिह्न रहनेसे जो कुलकी स्त्रियां नरेन्द्रपतियोंके साथ अधिराजस्थानपर अभिषेचित होतीहैं, वे पद्माकार रेखा रूप हमारे चरणोंमें हैं ॥ ६ ॥ क्या आश्चर्य है कि जिन सब कुलक्षणोंके रहनेसे दुर्भाग्यवती स्त्रियें विधवा अवस्थाको प्राप्त होतीहैं; हम विशेष रूपसे देख भालकरभी अपने शरीरमें वैसा कोई कुलक्षण नहीं देखती वरन जबकि हम ऐसे सुलक्षण युक्त होकरभी विधवा हुई; इस्से निश्चयही बोध होताहै कि यह पद्म चिह्न इत्यादि हमसे हत होगये ॥ ७ ॥ हा!लक्षण जाननेंवाले पंडित लोग जिस पद्मचिह्नका "अमोघ" फल कहा

इमानिखलुपद्मानिपादयोर्वैकुलस्त्रियः ॥ आधिराज्येऽभिषिच्यंतेनरेंद्रैःपतिभिःसह ॥ ६ ॥ वैधव्यंयांतियैर्नार्योऽलक्षणैर्भाग्यदुर्लभाः ॥ नात्मनस्तानिपश्यामिपश्यंतीहतलक्षणा ॥७॥ सत्यनामानिपद्मानिस्त्रीणामुक्तानिलक्षणैः ॥ तान्यद्यनिहतेरामेवितथानिभवंतिमे ॥ ८ ॥ केशाःसूक्ष्माःसमानीलाभ्रुवौचासंहतेमम ॥ वृत्तेचारोमकेजंघेदंताश्चाविरलामम ॥ ९ ॥ शंखेनेत्रेकरौपादौगुल्फावूरूसमौचितौ ॥ अनुवृत्तनखाःस्निग्धाःसमाश्चांगुलयोमम ॥ १० ॥ स्तनौचाविरलौपीनौमामकौमग्नचूचुकौ ॥ मग्नाचोत्सेधनीनाभिःपार्श्वोरस्कंचमेचितम् ॥ ११ ॥ ममवर्णोमणिनिभोमृदून्यंगरुहाणिच ॥ प्रतिष्ठितांद्वादशभिर्मामूचुःशुभलक्षणाम् ॥ १२ ॥

करतेहैं श्रीरामचंद्रजीके निहत होंनेसे आज हमारे जान तौ यह सबमिथ्या होगये ॥ ८ ॥ देखो स्त्रियोंके समस्त सुलक्षण हममें हैं, नील, पतले, और बराबर हमारे केशहैं, दोनों भौंयें परस्पर मिली हुईनहीं हैं दोनो जांघें गोल और रोम रहितहैं, दांतोंकी पंक्ति विरल है ॥ ९ ॥ नेत्रोंके कोये, नेत्र, हाथ, पांव, घुटने, उरू, यह सब हमारे मोटेहैं, चढा उतार, चिकने लाल नखहैं, उंगलिये, समस्त बराबर हैं ॥ १० ॥ हमारे परस्पर मिले हुए स्तन ऐसे मोटे और ऊंचेहैं मानो दोनो स्तनकोरक उनमें पैठेही जातेहैं, हमारे स्तनोके निकटवाली बगल व उरू विशालहै नाभि ऊंची पार्श्ववाली और सुगंभीरहै ॥ ११ ॥ हमारा वर्ण शान पर चढ़ी मणिकी समान उजलाहै, रोम समस्त कोमल

इन्द्रजीत करके नागमय बाणसमूहोंसे बँधनें पर वानर लोग विस्मित होकर देखनें लगे ॥ ३७ ॥ राक्षसराज रावणके पुत्र इन्द्रजीतनें जिस समय देखाकि राम लक्ष्मणको सन्मुख संग्राममें जीत लेना कुछ सहज बात नहीं है; तब उस समय दुरात्मा निशाचर मायाके बलका आश्रय करके सबके सन्मुख अन्तर्ध्यान होकर उन दोनों राजकुमारोंको बांधलेता हुआ ॥ ३८ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०यु०चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥ तब उस दुष्टात्मा मेघनादके खोजनेंके लिये महा प्रतापी राजकुमारजीनें दश बलवान वानर यूथपोंको आज्ञादी ॥ १ ॥ उनमें दो तौ सुषेणके भाईथे और वानरोंमें श्रेष्ठ नील, वालिकुमार अंगद, अतिवेगवान शरभ ॥ २ ॥ द्विविद हनुमान महाबलवान, प्रस्थ, ऋषभ, और ऋषभस्कन्ध

प्रकाशरूपस्तुयदानशक्तस्तौबाधितुंराक्षसराजपुत्रः ॥ मायांप्रयोक्तुंसमुपाजगामबबंधतौराजसुतौदुरात्मा ॥ ३८ ॥
इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० युद्धकांडेचतुश्चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४४ ॥ ७ ॥ ॥ सतस्यगतिमन्विच्छन्राजपुत्रःप्रतापवान् ॥ दिदेशातिबलोरामोदशवानरयूथपान् ॥ १ ॥ द्वौसुषेणस्यदायादौनीलंचप्लवगाधिपम् ॥ अंगदंवालिपुत्रंचशरभंचतरस्विनम् ॥ २ ॥ द्विविदंचहनूमंतंसानुप्रस्थंमहाबलम् ॥ ऋषभंचर्षभस्कंधमादिदेशपरंतपः ॥ ३ ॥ तेसंप्रहृष्टाहरयोभीमानुद्यम्यपादपान् ॥ आकाशंविविशुःसर्वेमार्गमाणादिशोदश ॥ ४ ॥ तेषांवेगवतांवेगमिषुभिर्वेगवत्तरैः ॥ अस्त्रवित्परमास्त्रेणवारयामासरावणिः ॥ ५ ॥ तंभीमवेगाहरयोनाराचैःक्षतविक्षताः ॥ अंधकारेनदद्दशुर्मेघैःसूर्यमिवावृतम् ॥ ६ ॥ रामलक्ष्मणयोरेवसर्वदेहभिदःशरान् ॥ भृशमावेशयामासरावणिःसमितिंजयः ॥ ७ ॥

इन्हीं दश शत्रुओंके तपानेवाले वानरोंको श्रीरामचंद्रजीने आज्ञादी ॥ ३ ॥ यह सुनकर वह वानरगण अत्यन्त आनंदित होकर बड़े २ वृक्षोंको उठाय दशों दिशाओंको खोजते हुए आकाशमें प्रवेश करते हुए ॥ ४ ॥ अस्त्रके जाननें वाले इन्द्रजीतनें ब्रह्मास्त्र मंत्र पढ़ हुए बाणोंसे उन वेगवान वानरोंकी गति रोकदी ॥ ५ ॥ वह वेगवान वानरगण बाण जालसे छिन्नभिन्न होकर बादलसे ढके हुए सूर्यकी समान अंधकारमें छिपे हुए इन्द्रजीतको नहीं देखसके ॥ ६ ॥ इतनेही अवसरमें रणदुर्जेय रावणका पुत्र मेघनाद सर्व देहके भेद करनेंवाले बाणोंसे राम लक्ष्मणजीको विद्ध

में क्यों मारे जाते? ॥ १९ ॥ श्रीरामचंद्रजी, महारथी लक्ष्मणजी जननी अथवा अपने लियेभी हमें ऐसा शोक नहीं; परन्तु तपस्विनी सास कौशल्याजीके परिणामकी चिन्ता करके हमारी छाती फटी जाती है ॥ २० ॥वह सदा यही चिंता किया करती हैं कि--कब राम लक्ष्मण वधूके सहित व्रत समाप्त करके आवेंगे? कब हम उनको देखनें पावेंगी? ॥ २१ ॥ जब जनक कुमारी सीताजी इस प्रकारसे विलापकर रहीथीं तब त्रिजटा नाम राक्षसीनें कहा कि--हे देवि! तुम अब विलाप न करो, कारण कि तुम्हारे स्वामी अभी जीवितहैं ॥ २२ ॥ हे देवि! भ्राता राम और लक्ष्मण जिस प्रकारसे जीवितहैं, इसका बड़ा भारी कारण हम कहती हैं; तुम उसको श्रवण करो ॥ २३ ॥ यह वानरगण क्रोध प्रकाश कररहे हैं और उनके मु

नशोचामितथाराममंलक्ष्मणंचमहारथम् ॥ नात्मानंजननींचापियथाश्वश्रूंतपस्विनीम् ॥ २० ॥ सातुचिंतयतेनित्यं समाप्तव्रतमागतम् ॥ कदाद्रक्ष्यामिसीतांचलक्ष्मणंचसराघवम् ॥ २१ ॥ परिदेवयमानांतांराक्षसीत्रिजटाब्रवीत् ॥ माविषादंकृथादेविभर्ताऽयंतवजीवति ॥ २२ ॥ कारणानिचवक्ष्यामिमहांतिसदृशानिच ॥ यथेमौजीवतोदेविभ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ २३ ॥ नहिकोपपरीतानिहर्षपर्युत्सुकानिच ॥ भवंतियुधियोधानांमुखानिनिहतेपतौ ॥ २४ ॥ इदं विमानंवैदेहिपुष्पकंनामनामतः ॥ दिव्यंत्वांधारयेन्नेदंयद्येतौगतजीवितौ ॥ २५ ॥ हतवीरप्रधानाहिगतोत्साहानिरुद्यमा ॥ सेनाभ्रमतिसंख्येषुहतकर्णेवनौर्जले ॥ २६ ॥ इयंपुनरसंभ्रांतानिरुद्विग्नातपस्विनी ॥ सेनारक्षतिकाकुत्स्थौ मयाप्रीत्यानिवेदितौ ॥ २७ ॥

खों पर हर्षके चिह्नभी दिखाई देते हैं; परन्तु रणस्थलमें राजाके मरजानें पर उसकी सैनाके मुखपर कभी इस प्रकारके चिह्न प्रकाशित नहीं होते ॥ २४ ॥ हे वैदेही! औरभी सुनो; यदि श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजी जीवित न होते. तौ यह पुष्पक विमान किसी प्रकारसे भी तुमको धारण न करता, क्योंकि यह अपने ऊपर विधवा स्त्रियोंको नहीं चढ़ाता है ॥ २५ ॥ हम जानती हैं कि युद्धमें सेनापति या प्रधानकी मृत्यु हो जानें पर सैनाके लोगोंमें उत्साह और उद्यम नहीं रहता; परन्तु इन वानरोंमें हम यह सब बातें पातीहैं, यदि श्रीरामचंद्रजीका कोई अंग नष्ट हुआ होता तौ निश्चयही विनामांझी की नौकाके समान यह सैना संग्राम भूमिमें इधर उधर फिरती ॥ २६ ॥ परन्तु हे तपस्विनी! यह वानरोंकी

भरभी किसी ओर देखनेंको समर्थ न हुए ॥ १६ ॥ परन्तु इस समय वह बाणोंके फलकोंसे पीड़ित हो गयेथे, व उनके अंगभी कट गयेथे, इस्से वह दोनों जन रस्सीसे रहित कम्पायमान महेन्द्रके ध्वज युगलकी समान शोभित हुए ॥ १७ ॥ इस प्रकारसे महा बलवान जगतपति श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी मर्ममें घाव लग जानेंसें पीड़ित होकर पृथ्वीपर गिरपड़े ॥ १८ ॥ वह दोनों वीर सब अंगोंमें बाण लगनेंके कारण अत्यन्त पीड़ित होकर वीरोचित सेजपर शयन करते हुए, व उनके सब अंगोंसे रुधिरकी धारा निकलनें लगी ॥ १९ ॥ उनके अंगमें एक उंगलभी ऐसा स्थान नहींथा कि जहां बाण न लगाहो, और उंगलियोंके पौरुवोंसे लेकर कोईभी उनके अंगका स्थान नागमय बाण समूहसे अविचलित या

ततोविभिन्नसर्वांगौशरशल्याचितौकृतौ ॥ ध्वजाविवमहेंद्रस्यरज्जुमुक्तौप्रकंपितौ ॥ १७ ॥ तौसंप्रबलितौवीरौमर्मभेदेनकर्षितौ ॥ निपेततुर्महेष्वासौजगत्यांजगतीपती ॥ १८ ॥ तौवीरशयनेवीरौशयानौरुधिरोक्षितौ ॥ शरवेष्टितसर्वांगावार्तौपरमपीडितौ ॥ १९ ॥ नह्यविद्धंतयोर्गात्रेबभूवांगुलमंतरम् ॥ नानिर्विण्णंनचाध्वस्तमाकराग्रादजिह्मगैः ॥ २० ॥ तौतुक्रूरेणनिहतौरक्षसाकामरूपिणा ॥ असृक्सुस्रुवतुस्तीव्रंजलंप्रस्रवणाविव ॥ २१ ॥ पपातप्रथमंरामोविद्धोमर्मसुमार्गणैः ॥ क्रोधादिंद्रजितायेनपुराशक्रोविनिर्जितः ॥ २२ ॥ ॥ रुक्मपुंखैःप्रसन्नाग्रैरजोगतिभिराशुगैः ॥ नाराचैरर्धनाराचैर्भल्लैरंजलिकैरपि ॥ विव्याधवत्सदंतैश्चसिंहदंष्ट्रैःक्षुरैस्तथा ॥ २३ ॥ सवीरशयनेशिश्येविज्यमाविध्यकार्मुकम् ॥ भिन्नमुष्टिपरीणाहंत्रिणतंरुक्मभूषितम् ॥ २४ ॥

साबित नहीं रहा, सबही अंग कटेथे ॥ २० ॥ वह दोनोंजन कामरूपी क्रूर राक्षस करके बाणोंसे ऐसे घायल हुए कि जिस प्रकार झरनेंसे जलकी धार निकलतीहै; वैसेही इनके सब अंगोंसे रुधिरकी धारा निकलनें लगी ॥ २१ ॥ पहले श्रीरामचंद्रजी राक्षस इन्द्रजीतके दारुण बाणसे विद्ध होकर पृथ्वीमें गिरपड़े; जिस प्रकार इन्द्रजीतनें पहले इन्द्रको युद्धमें हरायाथा वैसेही श्रीरामचंद्रजीकी पराजयभी उसको आनंदकी देनेंवाली हुई ॥ २२ ॥ फिरभी इस दुष्ट मेघनादनें सुवर्णके फोंके लगे हुए रजकी समान सब कहीं पहुंचनेंवाले बाणोंसे, व अनेक प्रकारके भालोंसे, बछडेके दांतोंके समान वह सिंह दशनके समान आकारवाले बाणोंसे श्रीरामचंद्रजीको मारा ॥ २३ ॥ तब शरसहित तीन स्थानोंपर झुकेहुए रुक्म

मिथिलाराजनन्दिनी, देवकन्याओंकी समान सीता यह समस्त वचन श्रवण कर हाथ जोड़कर बोलीं कि तुमनें जो कुछ कहा वही समस्त
वचन तुम्हारे सत्यहैं ॥ ३४ ॥ तिसके पीछे त्रिजटा उस मनके वेगकी अनुसार शीघ्र चलनेंवाले पुष्पक विमानको लौटाय कर दीन सीता
जीको फिर लंकापुरीमें प्रवेश कराती हुई ॥ ३५ ॥ तदनन्तर जनकपुत्री सीताजी त्रिजटाके सहित अशोक वनके समीपमें उपस्थित हो
समस्त राक्षसियोंके सहित फिर उसमें प्रवेश करती हुई ॥ ३६ ॥ इस प्रकारसे जानकीजीनें राक्षसोंमें इन्द्र रावणकी विहारभूमि अनेक
वृक्षोंसे युक्त अशोक वाटिकामें प्रवेश किया; परन्तु इन्होंनें दो राजकुमारोंको जिस अवस्थामें पड़ा देखाथा, अशोकवनमें आनेंके समय

श्रुत्वातुवचनंतस्याःसीतासुरसुतोपमा ॥ कृतांजलिरुवाचेमामेवमस्त्वितिमैथिली ॥ ३४ ॥ विमानंपुष्पकंतत्तुसन्निव
र्त्यमनोजवम् ॥ दीनात्रिजटयासीतालंकामेवप्रवेशिता ॥ ३५ ॥ ततस्त्रिजटयासार्धंपुष्पकादवरुह्यसा ॥ अशोकव
निकामेवराक्षसीभिःप्रवेशिता ॥ ३६ ॥ प्रविश्यसीताबहुवृक्षखंडांतांराक्षसेंद्रस्यविहारभूमिम् ॥ संप्रेक्ष्यसंचिंत्यचरा
जपुत्रौपरंविषादंसमुपाजगाम ॥ ३७ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेअष्टचत्वारिंशः स
र्गः ॥ ४८ ॥ ॥छ॥ ॥ घोरेणशरबंधेनबद्धौदशरथात्मजौ ॥ निःश्वसंतौयथानागौशयानौरुधिरोक्षितौ ॥ १ ॥ सर्वेतेवा
नरश्रेष्ठाःससुग्रीवमहाबलाः ॥ परिवार्यमहात्मानौतस्थुःशोकपरिप्लुताः ॥ २ ॥ एतस्मिन्नंतरेरामःप्रत्यबुध्यतवीर्य
वान् ॥ स्थिरत्वात्सत्त्वयोगाच्चशरैःसंदानितोपिसन् ॥ ३ ॥

वही चिन्ता आयकर इनके मनको अत्यन्त व्याकुल और हृदयको मथनें लगी ॥ ३७ ॥ इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०लं०अष्टचत्वारिंशःसर्गः ४८ ॥
दशरथकुमार श्रीरामचंद्र व लक्ष्मणजी नागफाँसमें बँधे हुए वाणोंकी सेजपर पड़ेथे, व उनके सब अंगोंसे रुधिर निकल रहाथा; हाथी जिस
प्रकार गर्जन किया करताहै; उस समय यह दो भ्राताभी इसी भांति लंबेर श्वास लेनें लगे॥ १ ॥ सुग्रीवादि मुख्यर बलवान वानर श्रेष्ठ गण शोकसे
अत्यन्त पीड़ित होकर उनको चारों ओरसे घेर कर खड़े होगये ॥ २ ॥ यद्यपि श्रीरामचंद्रजी दृढ़ नाग फांसमें बँधे हुएथे; परन्तु अपनी दृढ़ता

उन समस्त वानरोंनें देखा कि राम लक्ष्मण शरविद्ध होनेंके कारण चेष्टारहित हैं, उनके सब शरीरमें रुधिर वह रहा है, श्वास मन्द२चल रहा है, और वह बाणोंकी सेजपर बाणोंसे विंधेहुए पड़े हैं ॥ ४ ॥ तेजहीन सर्पकी जो अवस्था होती है, दशरथकुमार श्रीरामचंद्रजीकीभी वही अवस्था होरहीथी वह धीरे २ लंबे २ श्वास ले रहे थे, वह सर्वाङ्गमें रुधिर लगाये सुवर्णसे ध्वजाओंके डंडेकी समान पृथ्वीपर पड़ेहुए शोभायमान हो रहे हैं ॥ ५ ॥ वह वीरशय्यापर शयन करनेंके कारण हाथ पांव आदि न हिलाते डुलाते अपने उन यूथपोंके बीचमें लोटे हुएथे जो कि उनके चारों ओर खड़े रोतेथे ॥ ६ ॥ बाणजालसे विंधेहुए श्रीरामचंद्रजीको पृथ्वीपर गिरा हुआ देखकर विभीषणके सहित सबही वानर अत्यन्त व्यथित होते

अचेष्टौमंदनिःश्वासौशोणितेनपरिप्लुतौ॥शरजालचितौस्तब्धौशयानौशरतल्पगौ ॥४॥ निःश्वसंतौयथासर्पौनिश्चेष्टौदीनविक्रमौ ॥ रुधिरस्रावदिग्धांगौतपनीयाविवध्वजौ ॥ ५ ॥ तौवीरशयनेवीरौशयानौमंदचेष्टितौ ॥ यूथपैःस्वैःपरिवृतौबाष्पव्याकुललोचनैः॥ ६ ॥ राघवौपतितौदृष्ट्वाशरजालसमन्वितौ ॥ बभूवुर्व्यथिताःसर्वेवानराःसविभीषणाः ॥ ७ ॥ अंतरिक्षंनिरीक्षंतोदिशःसर्वाश्चवानराः ॥ नचैनंमाययाछन्नंददृशूरावणिंरणे ॥ ८ ॥ तंतुमायाप्रतिच्छन्नंमाययैवविभीषणः ॥ वीक्ष्यमाणोददर्शाग्रेभ्रातुःपुत्रमवस्थितम् ॥ तमप्रतिमकर्माणमप्रतिद्वंद्वमाहवे ॥ ९ ॥ ददर्शांतर्हितंवीरंवरदानाद्विभीषणः ॥ तेजसायशसाचैवविक्रमेणचसंयुतः ॥ १० ॥ इंद्रजित्त्वात्मनःकर्मतौशयानौसमीक्ष्यच ॥ उवाचपरमप्रीतोहर्षयन्सर्वराक्षसान् ॥ ११ ॥

हुए ॥ ७ ॥ यद्यपि इस समय वानरगण रावणके पुत्र मेघनादको आकाशमें ढूंढ़ रहेथे, परन्तु मायासे अदृश्य होनेंके कारण उसको कोईभी न देख सका ॥ ८ ॥ परन्तु विभीषण इस मायाको जानते थे, इस कारण जैसेही कि उन्होंनें दृष्टि की, वैसेही मायाके बलसे ढके हुए, उस अपने भाईके पुत्र- (भतीजे) मेघनादको इन्होंनें देखा कि वह अनुपम कर्म करनेंवाला, संग्रामभूमिमें अप्रतिद्वन्द्व ॥ ९ ॥ वरदान पानेंसे गर्वित वीर अन्तर्ध्यान होकर सन्मुखही आकाशमें टिका हुआ है, ऐसे मेघनादको तेज, यश, विक्रमसंयुक्त विभीषणजीनें देखा ॥ १० ॥ इसके पीछे इन्द्रजीत मेघनाद इन श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी दोनों वीरोंको वीरशेजपर पड़ाहुआ देखकर अत्यन्त सन्तुष्ट हो अपना कर्म सबको सुनाता हुआ

जब कि अपने पुत्र लक्ष्मणजीके लिये सुमित्राजी हमारी निन्दा करेंगी; तब वह वचन हमसे किस प्रकार सहे जांयगे;इसकारण यहींपर जीवन त्याग देना हमारा कर्तव्य है ॥ ११॥ हा! हम बड़े ही दुष्कार्यके करनेंवाले और अतिशय अनार्य हैं, इसलिये हमको धिक्कारहै; अहो ! हमारेही कारण हमारे छोटे भाई लक्ष्मण बाणोंकी सेजपर लेटे हुए मृतककी समान पड़ेहैं ॥१२॥ भैया लक्ष्मण! जब हम कुछ शोक करते तब तुम सदाही हमको समझाते परन्तु आज हम इस प्रकारके पीड़ित होरहे हैं,तथापि तुम मृतककी समान हमसे कुछभी वार्तालाप नहीं करते और न हमें समझाते हो॥१३॥हाय! आज इस रणभूमिमें जिन करके असंख्य राक्षस वशको प्राप्त होकर पृथ्वीमें शयन कररहे हैं; वही शूर श्रेष्ठ लक्ष्मणजीभी बाणोंसे घायल होकर आज

उपालंभंनशक्ष्यामिसोढुमंबासुमित्रया ॥ इहैवदेहंत्यक्ष्यामिनहिजीवितुमुत्सहे ॥ ११ ॥ धिङ्मांदुष्कृतकर्माणमनार्यंमत्कृतेह्यसौ ॥ लक्ष्मणःपातितःशेतेशरतल्पेगतासुवत् ॥ १२ ॥ त्वंनित्यंसुविषण्णंमामाश्वासयसिलक्ष्मण ॥ गतासुर्नाद्यशक्तोसिमामार्तमभिभाषितुम् ॥ १३ ॥ येनाद्यबहवोयुद्धेनिहताराक्षसाःक्षितौ ॥ तस्यामेवाद्यशूरस्त्वंशेषेविनिहतःशरैः ॥१४॥ शयानःशरतल्पेऽस्मिन्सशोणितपरिप्लुतः ॥ शरभूतस्ततोभासिभास्करोऽस्तमिवव्रजन् ॥ १५॥ बाणाभिहतमर्मत्वान्नशक्नोषीहभाषितुम् ॥ रुजाचाब्रुवतोयस्यदृष्टिरागेणसूच्यते ॥ १६ ॥ यथैवमांवनंयांतमनुयातोमहाद्युतिः ॥ अहमप्यनुयास्यामितथैवैनंयमक्षयम् ॥ १७ ॥ इष्टबंधुजनोनित्यंमांचनित्यमनुव्रतः ॥ इमामद्यगतोऽवस्थांममानार्यस्यदुर्नयैः ॥ १८॥

बाणोंकी सेज पर शयन कररहे हैं ॥१४॥ हा लक्ष्मण! तुम रुधिरसे भीगे हुए होकर बाणोंकी सेजपर शयनकरके शर रूप प्राप्त अस्तगामी सूर्यकी समान शोभा धारण किये हुएहो ॥ १५ ॥ हाय! तुम्हारे सब मर्मस्थानोंमें बाणोंके लगनेंसे तुम कुछ कहनेंको समर्थ नहीं हो; परन्तु कुछ न कहनेंपरभी तुम्हारे नेत्रोंके ललेपनसे तुम्हारे मनकी समस्तही व्यथा प्रगट होरही है ॥ १६ ॥ हाय! जिस प्रकार हमारे वनमें आनेंके समय तुम महाद्युतिमान हमारे पीछे२ आयेथे, वैसेही हमभी तुम्हारे पीछे२आज यमलोकमें गमन करेंगे ॥ १७॥ हाय! जो सदाही अपने बन्धुजनोंके प्रति

उनकोभी वींध डाला ॥ २० ॥ और बड़ी शीघ्रताके साथ उसने गोपुच्छ वानरोंके स्वामी ऋक्षराज धूम्र और वालिकुमार अंगदजीके ऊपर बहुत असंख्य बाण चलाये ॥ २१ ॥ महा सत्वयुक्त बलवान रावणकुमार उन अग्निकी शिखाके समान लपलपाते बाण समूहसे वानरोंको मारकर सिंह नाद करनें लगा ॥ २२ ॥ वह महाबाहु मेघनाद बाणोंकी चोटसे वानरोंको शंकित और पीड़ित करके विकट हँसनें लगा और राक्षस लोगोंको पुकारकर बोला ॥ २३ ॥ हे निशाचर गण ! श्रवण करो; हमनें बराबर बाणोंकी वर्षा करके अंतमें राम लक्ष्मणको नागफाँससे बांधही लिया॥२४॥ छलसे युद्ध करनेंवाले राक्षस लोग मेघनादकी बात सुनकर उसके कार्यसे अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और उसकी उपमारहित वीरताको देखकर अत्य

गोलांगूलेश्वरंचैववालिपुत्रमथांगदम् ॥ विव्याधबहुभिर्बाणैस्त्वरमाणोथरावणिः ॥ २१ ॥ तान्वानरवरान्भित्त्वाशरै रग्निशिखोपमैः ॥ ननादबलवांस्तत्रमहासत्त्वःसरावणिः ॥ २२ ॥ तानर्दयित्वाबाणौघैस्त्रासयित्वाचवानरान् ॥ प्रजहा समहाबाहुर्वचनंचेदमब्रवीत् ॥२३॥ शरबंधनघोरेणमयाबद्धौचमूमुखे ॥ सहितौभ्रातरावेतौनिशामयतराक्षसाः॥२४॥ एवमुक्तास्तुतेसर्वेराक्षसाःकूटयोधिनः ॥ परंविस्मयमापन्नाःकर्मणातेनहर्षिताः ॥ २५ ॥ विनेदुश्चमहानादान्सर्वेते जलदोपमाः ॥ हतोरामइतिज्ञात्वारावणिंसमपूजयन् ॥ २६ ॥ निष्पंदौतुतदादृष्ट्वाभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ वसुधायां निरुच्छ्वासौहतावित्यन्वमन्यत ॥ २७ ॥ हर्षेणतुसमाविष्टइंद्रजित्समितिंजयः ॥ प्रविवेशपुरींलंकांहर्षयन्सर्वनैर्ऋ तान् ॥ २८ ॥ रामलक्ष्मणयोर्दृष्ट्वाशरीरेसायकैश्चिते ॥ सर्वाणिचांगोपांगानिसुग्रीवंभयमाविशत् ॥ २९ ॥

न्त विस्मित होरहे ॥ २५ ॥ तब मेघाकार राक्षस लोग " राम मारे गये " यह मनमें निश्चय करके सबही सिंहनाद करते हुए इन्द्रजीतमेघनादकी बड़ाई करनेंलगे ॥ २६ ॥ और उन दोनों भ्राता श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीको विना हाथ पैर हिलाते डुलाते और श्वास रहित पृथ्वीमें पड़े देख तब राक्षसोंनें निश्चय जान लिया कि यह मृतक होगये ॥ २७ ॥ तिसके पीछे रणमें विजय करनेवाला इन्द्रजीत रणमें विजय पाय कर राक्षसोंको आनंदित कराता हुआ लंकामें प्रवेश करता हुआ ॥ २८ ॥ इसी समयमें कपिराज सुग्री वजी राक्षसराज रावणके पुत्र मेघनादके बाणोंसे श्रीराम लक्ष्मणके समस्तअंग विद्ध और रुधिरसे भीगे देखकर अत्यन्त भयको प्राप्त हुए ॥ २९ ॥

गोपुच्छके राजानें जो कठिन कर्म हमारे लिये किये तिस्से हम परम प्रसन्न हैं ॥ २५ ॥ और अंगदनेंभी बड़ेभारी कर्म किये, व मैन्द, द्विवि
द, केशरी और सम्पातिनाम वानरनेंभी युद्धमें हमारे लिये बड़े घोर कर्म किये ॥ २६ ॥ गवय, गवाक्ष, शरभ, गज, व औरभी दूसरे वा
नरोंनें अपने प्राणतककी बाजी लगाकर युद्ध करनेंके लिये तैयार होकर संग्राम कियाहै ॥ २७ ॥ हे सुग्रीव! मनुष्य भाग्यको कभी उल्लंघन न
हीं करसकता जो मित्रको मित्रके साथ और सुहृदको सुहृदके साथ करना उचित है; वह मेरे लिये ॥ २८ ॥ हे सुग्रीव ! तुमने धर्म और श
क्तिके अनुसार सबही कुछ किया; हेवानरश्रेष्ठो! तुमनेभी हमारा मित्रकार्य भली भांतिसे किया ॥ २९ ॥ इसलिये अब हम तुमको आज्ञा दे

अंगदेनकृतंकर्ममैंदेनाद्विविदेनच ॥ युद्धंकेसरिणासंख्येघोरंसंपातिनाकृतम् ॥ २६ ॥ गवयेनगवाक्षेणशरभेणगजे
नच ॥ अन्यैश्चहरिभिर्युद्धंदुर्धरंत्यक्तजीवितैः ॥ २७ ॥ नचातिक्रमितुंशक्यंदैवंसुग्रीवमानुषैः ॥ यत्तुशक्यंवयस्ये
नसुहृदावापरंमम ॥ २८ ॥ कृतंसुग्रीवतत्सर्वंभवताधर्मभीरुणा ॥ मित्रकार्यंकृतमिदंभवद्भिर्वानरर्षभाः ॥ २९ ॥
अनुज्ञातामयासर्वेयथेष्टंगंतुमर्हथ ॥ शुश्रुवुस्तस्ययेसर्वेवानराःपरिदेवितुम् ॥ वर्तयांचक्रिरेऽश्रूणिनेत्रैःकृष्णेतरे
क्षणाः ॥ ३० ॥ ततःसर्वाण्यनीकानिस्थापयित्वाविभीषणः ॥ आजगामगदापाणिस्त्वरितंयत्रराघवः ॥ ३१ ॥ तं
दृष्ट्वात्वरितंयांतंनीलांजनचयोपमम् ॥ वानराद्रुद्रुवुःसर्वेमन्यमानास्तुरावणिम् ॥ ३२ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ०
युद्धकांडेएकोनपंचाशःसर्गः ॥ ४९ ॥ छ ॥

ते हैं कि तुम्हारी सबकी जहां पर इच्छा हो वहांपर चले जाओ; जब रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी इस प्रकारसे विलाप करते रहे, तब उसकाल जितनें वानरोंनें
उनका वह विलाप सुना; उन सबके नेत्रोंसेही आंसुओंकी धारा गिरनेलगीं ॥ ३० ॥ इतनेंमेंही विभीषणजी सब सैनाको धीरज बँधाते
जहांके तहां सब को टिकाते गदा ग्रहणकर अति शीघ्रतासे श्रीरामचंद्रजीके पास आये ॥ ३१ ॥ परन्तु नील अंजनके ढेरकी समान उस
वीर विभीषणको शीघ्रतासे श्रीरामचंद्रजीके समीप आते देखकर वानर उनको इन्द्रजीत समझकर चारों ओर भागनें लगे ॥ ३२ ॥ इत्यार्षे
श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे भाषानुवादे कात्यायनकुमारपं० ज्वालाप्रसादमिश्रकृते एकोनपंचाशः सर्गः ॥ ४९ ॥

अथवा जबतक श्रीरामचंद्रजीका मोह छूटकर उनको संज्ञा प्राप्तहो तब तक तुम उनकी रक्षा करते रहो; जान लो कि जब काकुत्स्थ श्रीरामचंद्रजीनें चैतन्यता प्राप्त करली तब फिर हमको कोईभी भय न रहैगा॥३८॥श्रीरामचंद्रजीकी मोहकी अवस्था जो तुम देखतेहो यह सब कुछभी नहीं है,लक्षणसे अनुमान होताहै कि किसी प्रकारसेभी श्रीरामचंद्रजीकी मृत्यु होनेंवाली नहीं; जीवका जीवन नष्ट होनें पर जो श्री दुर्लभहै,इन श्रीरामचंद्रजीके शरीरमें वही श्री स्पष्ट दिखलाई देतीहै॥३९॥ हेसुग्रीव! जो हुआ सो हुआ तुम सावधान होवो; और अपनी सैनाकोभी ढांढस बँधाओ,और हमभी अपनी सैनाको फिर स्थिर करतेहैं ॥ ४० ॥ हे वानरश्रेष्ठ! यह देखो, वानर गण नेत्र फैलाय २ भीत और शंकित होकर परस्पर एक

अथवारक्ष्यतांरामोयावत्संज्ञाविपर्ययः॥ लब्धसंज्ञौहिकाकुत्स्थौभयंनौव्यपनेष्यतः॥ ३८ ॥ नैतत्किंचनरामस्यनच रामोमुमूर्षति॥ नह्येनंहास्यतेलक्ष्मीर्दुर्लभायागतायुषाम् ॥ ३९ ॥ तस्मादाश्वासयात्मानंबलंचाश्वासयस्वकम् ॥ यावत्सैन्यानिसर्वाणिपुनःसंस्थापयाम्यहम् ॥ ४० ॥ एतेहिफुल्लनयनास्त्रासादागतसाध्वसाः ॥ कर्णेकर्णेप्रकथिताहरयो हरिसत्तम ॥ ४१ ॥ मांतुदृष्ट्वाप्रधावंतमनीकंसंप्रहर्षितम् ॥ त्यजंतुहरयस्त्रासंभुक्तपूर्वामिवस्रजम् ॥ ४२ ॥ समाश्वास्य तुसुग्रीवंराक्षसेंद्रोविभीषणः ॥ विद्रुतंवानरानीकंतत्समाश्वासयत्पुनः ॥४३ ॥ इंद्रजित्तुमहामायःसर्वसैन्यसमावृतः ॥ विवेशनगरींलंकांपितरंचाभ्युपागमत् ॥ ४४ ॥ तत्ररावणमासाद्यअभिवाद्यकृतांजलिः ॥ आचचक्षेप्रियंपित्रेनिहतौरामलक्ष्मणौ ॥ ४५ ॥ उत्पपाततततोहृष्टःपुत्रंचपरिषस्वजे ॥ रावणोरक्षसांमध्येश्रुत्वाशत्रूनिपातितौ ॥ ४६ ॥

दूसरेके कानही कानमें श्रीरामचंद्रजीकी वार्ता कर रहे हैं॥ ४१ ॥ हमको इधर उधर घूमते हुए देखकर व समस्त वानरवाहिनीकोभी हर्षित देख पहरनेंसे मलगिजी व कुंभलाई हुई मालाके त्याग करनेंके समान सब वानर अपनी व्याकुलताको छोडेंगे॥ ४२ ॥ तिसके पीछे वह राक्षसोंके इन्द्र बिभीषणजी वानरराज सुग्रीवजीको यह कह समझाय बुझाय फिर भागीहुई सैनाको धीरज बँधाने लगे ॥ ४३ ॥ इस ओर माया विशारद इन्द्रजीत सब सैनाको साथ लेकर लंका नगरीमें प्रवेशित हो अपने पिता रावणके निकट जायकर पहुंचा ॥ ४४ ॥ फिर रावणके निकट जाय हाथ जोड़ प्रणामकर रामचंद्र व लक्ष्मणके मारे जानेकी प्रिय वार्त्ता वह मेघनाद निवेदन करताहुआ॥ ४५ ॥ राक्षसमंडलके बीचमे

णजीकोही वानरगणोंके भयका कारण जानकर समीपमें बैठे हुए ऋक्षराज जाम्बवान्से यह वचन बोले ॥ ८ ॥ यह विभीषण यहांपर आये हैं; इनकोही देख और रावणका पुत्र मेघनाद समझकर भयके मारे चकितनेत्र होकर वानरगण यह शंका करके कि फिर वह भय आया भागे जाते हैं ॥ ९ ॥ इस कारण आप शीघ्रही त्रासित और चारों ओरको भागी जाती हुई इस वाहिनीको पुकारकर सावधान करो, कि यह इन्द्रजीत नहीं वरन विभीषणजी आये हैं ॥ १० ॥ तब ऋक्षराज जाम्बवानजी सुग्रीवजीके ऐसे वचन सुनकर भागते हुए वानरोंको लौटनेको पुकारनें लगे ॥ ११ ॥ तिसके पीछे समस्त वानर गणभी जो कि भागे जाते थे ऋक्षराज जाम्बवान्जीके वचन सुन और विभीषणको आयाहुआ देख

विभीषणोऽयंसंप्राप्तोयंदृष्ट्वावानरर्षभाः ॥ द्रवंत्यागतसंत्रासारावणात्मजशंकया ॥ ९ ॥ शीघ्रमेतान्सुसंत्रस्तान्बहुधाविप्रधावितान् ॥ पर्यवस्थापयाख्याहिविभीषणमुपस्थितम् ॥ १० ॥ सुग्रीवेणैवमुक्तस्तुजांबवानृक्षपार्थिवः ॥ वानरान्सांत्वयामाससान्निवर्त्यप्रधावतः ॥ ११ ॥ तेनिवृत्ताःपुनःसर्वेवानरास्त्यक्तसाध्वसाः ॥ ऋक्षराजवचःश्रुत्वातंचदृष्ट्वाविभीषणम् ॥ १२ ॥ विभीषणस्तुरामस्यदृष्ट्वागात्रंशरैश्चितम् ॥ लक्ष्मणस्यतुधर्मात्माबभूवव्यथितस्तदा ॥ १३ ॥ जलक्लिन्नेनहस्तेनतयोर्नेत्रेविमृज्यच ॥ शोकसंपीडितमनारुरोदविललापच ॥ १४ ॥ इमौतौसत्वसंपन्नौविक्रांतौप्रियसंयुगौ ॥ इमामवस्थांगमितौराक्षसैःकूटयोधिभिः ॥ १५ ॥ भ्रातृपुत्रेणचैतेनदुष्पुत्रेणदुरात्मना ॥ राक्षस्याजिह्मयाबुद्ध्यावंचितावृजुविक्रमौ ॥ १६ ॥

भय त्यागकर लौट आये ॥ १२ ॥ तत्पश्चात् धर्मात्मा विभीषणजी श्रीराम लक्ष्मणजी दोनोंहीके शरीर बाणोंसे छाये और रुधिरसे नहाये देख मनमें बहुतही दुःखी हुए ॥ १३ ॥ विभीषणजीनें अपनें हाथमें जल लेकर स्वयं महात्मा श्रीरामचंद्रजीके और लक्ष्मणजीके नेत्र धोये और फिर शोकित मनसे नेत्रोंमें आंसू भरा देख और विलाप करनें लगे ॥ १४ ॥ हाय! यह दोनों सत्वसम्पन्न समरप्रिय भयंकरविक्रमकारी दोनों भाई कपटयुद्ध करनेंवाले निशाचरोंसे ऐसी दुरवस्थाको प्राप्त हुएहैं ॥ १५ ॥ हाय! रावणके पुत्र और हमारे भतीजे दुरात्मा मेघनादकी राक्षसी कु

सावधानतासे चारों ओर देखने लगे कि जो कहीं तनक शब्दभी हुआ तौ वह लोग "राक्षस आगया" ऐसा जान करके उसही ओरको दौड़ने लगे ॥ ४ ॥ इस ओर रावण हर्षित मनसे प्रियपुत्र इन्द्रजीतको विदा देकर सीताजीके रक्षाकार्यमें नियत हुई राक्षसियोंको बुलाता हुआ ॥ ५ ॥ त्रिजटा व और भी सब राक्षसियें रावणकी आज्ञा जानकर वहां पर आई, तब राक्षसोंका स्वामी रावण हर्ष भरे मनसे यह कहता हुआ ॥६॥ कि तुम सब सीताको समाचार दो कि इन्द्रजीतके हाथसे राम लक्ष्मण दोनों भाई मारे गये उनसे यह कह व फिर उन्हें पुष्पकविमानपर चढ़ायकर रण भूमिमें मरे हुए दोनों भाइयोंको दिखालाओ ॥ ७ ॥ उस जानकीसे तुम कहना कि जिनके आश्रयके गर्वके मारे तुम इतनें दिनोंतक हमसे विरु

रावणश्चापिसंहृष्टोविसृज्येंद्रजितंसुतम् ॥ आजुहावततःसीतारक्षणीराक्षसीस्तदा ॥५॥ राक्षस्यस्त्रिजटाचापिशासनात्तमुपस्थिताः॥ ताउवाचततोहृष्टोराक्षसीराक्षसाधिपः ॥६॥ हताविंद्रजिताख्यातवैदेह्यारामलक्ष्मणौ ॥ पुष्पकंतत्समारोप्यदर्शयध्वंरणेहतौ ॥ ७ ॥ यदाश्रयादवष्टब्धानेयंमामुपतिष्ठते ॥ सोस्याभर्तासहभ्रात्रानिहतोरणमूर्धनि ॥ ८ ॥ निर्विशंकानिरुद्विग्नानिरपेक्षाचमैथिली ॥ मामुपस्थास्यतेसीतासर्वाभरणभूषिता ॥ ९ ॥ अद्यकालवशंप्राप्तंरणेरामंसलक्ष्मणम् ॥ अवेक्ष्यविनिवृत्तासाचान्यांगतिमपश्यती ॥ अनपेक्षाविशालाक्षीमामुपस्थास्यतेस्वयम् ॥ १० ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वारावणस्यदुरात्मनः ॥ राक्षस्यस्तास्तथेत्युक्त्वाजग्मुर्वैयत्रपुष्पकम् ॥ ११ ॥ ततःपुष्पकमादायराक्षस्योरावणाज्ञया ॥ अशोकवनिकास्थांतांमैथिलींसमुपानयन् ॥ १२ ॥

द्धथीं, इस समय वही तुम्हारे स्वामी अपने भाईके सहित मार डाले गये हैं ॥ ८ ॥ अब सीता रामके सहित मिलनेंकी आशाको भली भांतिसे त्यागकर और शोक व शंकाको छोड़ सर्व गहनोंसे भूषितहो हमारे वशमें हो जाय ॥ ९ ॥ जान पड़ताहै कि आज वह बड़े नेत्रोंवाली जानकी संग्रामभूमिमें लक्ष्मणजीके सहित रामचंद्रको प्राण रहित और अपनी कोई और गति न देखकर जब वहांसे लौटेगी; तब आपही हमारे वशमें पड़ेगी ॥ १० ॥ तब यह सब राक्षसी दुरात्मा रावणके यह वचन सुनकर और "ऐसेही होगा" कहकर जहां पुष्पक विमान रक्खाथा वहांपर गई ॥११॥ तिसके पीछे वह राक्षसी गण रावणकी आज्ञासे वह पुष्पक विमान लेकर अशोकवनमें वास करती हुई सीताजीके निकट पहुंचीं ॥ १२ ॥

राम और लक्ष्मण व और दूसरे शूर वानर वीरोंको किष्किन्धापुरीमें लेजाओ, और जबतक इन शत्रुओंके मारनेंवालोंको चैतन्यता न प्राप्त होवे, तब तक उसी स्थानमें इनकी रक्षा करते रहना॥ २४ ॥ और इस ओर हमभी, इस रावणको पुत्र पौत्र और बान्धवोंके साथ संहार करके, रावणसे हरी हुई जानकीजीका उद्धार करके लेआवेंगे, कि जैसे नष्ट हुई राज्यलक्ष्मीको इन्द्रजीनें फिर प्राप्त कियाथा ॥ २५ ॥ सुग्रीवजीके ऐसे वचन सुनकर सुपेण बोलेकि ॥ – "पहले हमनें देवता व असुरोंका बड़ाभारी संग्राम देखाथा" ॥ २६ ॥ उस संग्राममें बाण चलानेंमें अति चतुर और शस्त्रास्त्रके कर्ममें अति कुशल राक्षसोंनें जब रण करनेंमें चतुर देवता लोगोंको बाणोंके समूहसे वारंवार ढक लियाथा ॥ २७ ॥ तब देवतागुरु

अहंतुरावणंहत्वासपुत्रंसहबांधवम् ॥ मैथिलीमानयिष्यामिशक्रोनष्टामिवश्रियम् ॥ २५ ॥ श्रुत्वैतद्वानरें द्रस्यसुपेणोवाक्यमब्रवीत् ॥ देवासुरंमहायुद्धमनुभूतंपुरातनम् ॥ २६ ॥ तदास्मदानवादेवान्शरसंस्पर्शको विदान् ॥ निजघ्नुःशस्त्रविदुषश्छादयंतोमुहुर्मुहुः ॥ २७ ॥ तानार्तान्नष्टसंज्ञांश्चगतासूंश्चबृहस्पतिः ॥ विद्याभिर्मंत्र युक्ताभिरोषधीभिश्चिकित्सति ॥ २८ ॥ तान्यौषधान्यानयितुंक्षीरोदंयांतुसागरम् ॥ जवेनवानराःशीघ्रंसंपातिपनसा दयः ॥ २९ ॥ हरयस्तुविजानंतिपार्वतीतेमहौषधी ॥ संजीवकरणींदिव्यांविशल्यांदेवनिर्मिताम् ॥ ३० ॥ चंद्रश्च नामद्रोणश्चक्षीरोदेसागरोत्तमे ॥ अमृतंयत्रमथितंतत्रतेपरमौषधी ॥ ३१ ॥

बृहस्पतिजी उन देवताओंको पीड़ित चेतना रहित और विनाशको प्राप्त देखकर, मंत्रविद्याके प्रभावसे व यथायोग्य औषधियोंसे उनकी चिकित्सा करते रहे कि जिस्से वह समस्त देवता फिर जीवित होगये ॥ २८ ॥ हेराजन्! तिन औषधियोंको लानेंके अर्थ सम्पाति पनसादि वानर बहुतही शीघ्र क्षीर समुद्रके निकट जांय ॥ २९ ॥ कारणकि यह वानर उन दो पहाड़ी बूंटियोंको भली भांति जानतेहैं उन दोनों बूटियोंमें एकका नाम (संजीवनी) और एकका नाम (विशल्यकरणी) अर्थात् घावकी पीड़ाको दूर करनेंवालीहै ॥ ३० ॥ जिस स्थानपर देवता लोगोंनें समुद्रको मथन

मारे वारं वार विलाप करनें लगी ॥ २१ ॥ कृष्णलोचन वाली व कोमल अंगवाली जानकीजी अपने स्वामी और लक्ष्मणजीको धूरिमें लोटता हुआ देखकर रोदन करनें लगीं ॥ २२ ॥ इस प्रकारसे जनक कुमारी जानकीजी सुर सुत समान दोनों भाइयोंको ऐसी अवस्थामें देख " यह मृतक होगये " ऐसा मनमें स्थिर करती हुई और शोकके मारे उनका वदन मंडल आंसुओंकरके पूर्णहो जानेसे वह अत्यंत दुःखके मारे कहनें लगीं ॥ २३ ॥ इ० श्रीम० आ०यु०सप्तचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४७ ॥ अपने स्वामी और महावलवान लक्ष्मणजीको मृतक देखकर मारे शोक के दुर्बल सीताजी अत्यन्त करुणा भरी वाणीसे इस प्रकार विलाप करनेंलगीं ॥ १ ॥ हाय; सामुद्रिकके जाननेंवाले पुरुष हमको देखकर कहतेहैं

भर्तारमनवद्यांगीलक्ष्मणंचासितेक्षणा ॥ प्रेक्ष्यपांसुषुचेष्टंतौरुरोदजनकात्मजा ॥ २२ ॥ सबाष्पशोकाभिहतासमीक्ष्यतौभ्रातरौदेवसुतप्रभावौ ॥ वितर्कयंतीनिधनंतयोःसाडुःखान्वितावाक्यमिदंजगाद ॥ २३ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेसप्तचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४७ ॥ भर्तारंनिहतंदृष्ट्वालक्ष्मणंचमहाबलम् ॥ विललापभृशंसीताकरुणंशोककर्शिता ॥ १ ॥ ऊचुर्लाक्षणिकायेमांपुत्रिण्यविधवेतिच ॥ तेऽद्यसर्वेहतेरामेऽज्ञानिनोऽनृतवादिनः ॥ २ ॥ यज्वनोमहिषींयेमामूचुःपत्नींचसत्रिणः ॥ तेऽद्यसर्वेहतेरामेज्ञानिनोऽनृतवादिनः ॥ ३ ॥ वीरपार्थिवपत्नीनांयेविदुर्भर्तृपूजिताम् ॥ तेऽद्यसर्वेहतेरामेज्ञानिनोऽनृतवादिनः ॥ ४ ॥ ऊचुःसंश्रवणेयेमांद्विजाःकार्तांतिकाःशुभाम् ॥ तेऽद्यसर्वेहतेरामेज्ञानिनोऽनृतवादिनः ॥ ५ ॥

कि तुम पुत्रवती होकर सदा सुहागन रहोगी, परन्तु आज श्रीरामचंद्रजीके मृतक हो जानेंसे उनके वह वचन मिथ्या हुए ॥ २ ॥ और जो लोग हमको देखकर कहते हैं कि तुम यज्ञ करनें वाले राजाकी स्त्री होगी; हाय;आज श्रीरामचंद्रजीके मृतक हो जानेसे वह ज्ञानी लोगभी मिथ्यावादी हुए ॥ ३ ॥ हाय! और उन ज्ञानी लोगोंने हमको देखकर यहभी कहाथा कि तुम वीरराजाकी सब रानियोंमें वडी होगी, परन्तु बड़े शोककी वात है कि आज श्रीरामचंद्रजीके मरजानेंसे उन ज्ञानी लोगोंकी वातभी मिथ्या हुई ॥ ४ ॥ ज्योतिष शास्त्रके जाननेंवाले ब्राह्मणोंने हमको देख

शरीरमें जितने घाव थे वह सब भर गये, और वह दोनों ज   की समान चिकना शरीर और प्रथमहीकी समान शोभा धारण करते हुए ॥३९॥ इनका तेज, पराक्रम, शरीरका बल, महागुण, उत्साह, दर्शन शक्ति, बुद्धि और स्मरण शक्ति यह सब बातें पहलेसे दुगनी हो गईं ॥ ४० ॥ तिस समय महा तेजस्वी गरुडजीनें इन्द्र तुल्य भाइयोंको उठाकर अति हर्षसे अपने हृदयसे लगा लिया; तब श्रीरामचंद्रजी हर्षित अंतःकरण युक्त गरुड़जीसे बोले ॥ ४१ ॥ कि तुम्हारेही प्रसादसे हम इन्द्रजित कृत घोर विपदसे शीघ्र छूट गये, और अब हमारे शरीरोंमें भी प्रथम हीकी समान बल आगयाहै ॥ ४२ ॥ अधिक क्याकहैं पितामह अज और पिता दशरथजीको देख हमें जिस प्रकारका आनंद होता,

तेजोवीर्यंबलंचौजउत्साहश्चमहागुणाः॥प्रदर्शनंचबुद्धिश्चस्मृतिश्चद्विगुणातयोः॥४०॥तावुत्थाप्यमहातेजागरुडोवासवोपमौ ॥ उभौचसस्वजेहृष्टोरामश्चैनमुवाचह ॥ ४१ ॥ भवत्प्रसादाद्व्यसनंरावणिप्रभवंमहत् ॥ उपायेनव्यतिक्रांतौशीघ्रंचबलिनौकृतौ ॥ ४२ ॥ यथातातंदशरथंयथाऽजंचपितामहम् ॥ तथाभवंतमासाद्यहृदयंमेप्रसीदति ॥ ४३ ॥ कोभवान्रूपंसपन्नोदिव्यस्रगनुलेपनः ॥ वसानोविरजेवस्त्रेदिव्याभरणभूषितः ॥ ४४ ॥ तमुवाचमहातेजावैनतेयोमहाबलः ॥ पतत्रिराजःप्रीतात्माहर्षपर्याकुलेक्षणम् ॥ ४५ ॥ अहंसखातेकाकुत्स्थप्रियःप्राणोबहिश्चरः ॥ गरुत्मानिहसंप्राप्तोयुवयोःसाह्यकारणात् ॥ ४६ ॥

आपका दर्शन करनेंसे भी हमारे हृदयनें वैसीही प्रसन्नता प्राप्तकीहै॥४३॥आपनें स्वर्गीय हार और दिव्य अनुलेपन धारण कियाहै; दिव्य अलंकारसे अलंकृत होकर आपने विमल वस्त्र युगल धारण कियेहैं; इस कारण सत्यही सत्य बताइये कि आप कोनहैं? ॥ ४४ ॥ तब ऐसा सुनकर महा तेजस्वी विनताके पुत्र महाबल पक्षिराज गरुड़जी आनंदसे उत्फुल्लनेत्रहो प्रीति सहित श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ ४५ ॥ कि हे श्रीरामचंद्रजी ! हम आपके प्राणके समान प्रिय बाहर घूमनेंवाले सखाहैं; हमारा नाम गरुड़है; आपकी सहायता करनेंके अर्थही यहांपर आयेहैं ॥ ४६ ॥

हैं, इस प्रकार दश इन्द्रियें और मन बुद्धिसे हमको सब शुभ लक्षणवालीही कहते हैं ॥ १२ ॥ हमारे उंगलियोंके पोरुवोंपर सब यव पूरे हैं. कोई रेखासे खंडित नहीं और हाथ पैरकी सब उंगलियें घनीहैं, और समस्त अंग शोभासे युक्त हैं; इन सब लक्षणोंसे लक्षण जाननेंवाले लोग हमको मन्दस्मिता कहा करतेथे ॥ १३ ॥ हा! ज्योतिष शास्त्रके जाननें वाले ब्राह्मण लोगोंनें कहाथा कि "पतिके साथ तुम अधिराज्यपर अभिषिक्त होगी" परन्तु यह सबही आज मिथ्या होगया ॥ १४ ॥ हा! यह दोनों भ्राता जनस्थानके कंटकको दूर करके हमारा पता लगाय लांघनें के अयोग्य समुद्रके पार होकर अंतमें हमारे भाग्यसे गायके खुरके गढ़ेमें भरेहुए जलमें डूबगये ॥१५॥ हाय! इन दोनों वीरोंने वरुण आग्नेय इन्द्र वायव्य

समग्रयवमच्छिद्रंपाणिपादंचवर्णवत ॥ मंदस्मितेत्येवचमांकन्यालाक्षणिकाविदुः ॥ १३ ॥ आधिराज्येभिषेकोमे ब्राह्मणैः पतिनासह ॥ कृतांतकुशलैरुक्तंतत्सर्वंवितथीकृतम् ॥ १४ ॥ शोधयित्वाजनस्थानंप्रवृत्तिमुपलभ्यच ॥ तीर्त्वासागरमक्षोभ्यंभ्रातरौगोष्पदेहतौ ॥ १५ ॥ ननुवारुणमाग्नेयमैंद्रंवायव्यमेवच ॥ अस्त्रंब्रह्मशिरश्चैवराघवौप्रत्यपद्यत ॥ १६ ॥ अदृश्यमानेनरणेमाययावासवोपमौ ॥ ममनाथावनाथायानिहतौरामलक्ष्मणौ ॥ १७ ॥ नहिदृष्टिपथंप्राप्यराघवस्यरणेरिपुः ॥ जीवन्प्रतिनिवर्ततयद्यपिस्यान्मनोजवः ॥ १८ ॥ नकालस्यातिभारोस्तिकृतांतश्चसुदुर्जयः ॥ यत्ररामःसहभ्रात्राशेतेयुधिनिपातितः ॥ १९ ॥

और ब्रह्मशिर नामक जिन अस्त्रोंको प्राप्त कियाथा. किस कारणसे यह सब अस्त्र इन्होंनें इस कुसमयमें स्मरण नहीं किये * ॥१६॥ हाय! हाय! मुझ अनाथिनीके नाथ इन्द्रकी समान पराक्रमकारी राम और लक्ष्मणजी मायाके बलसे अन्तर्ध्यान हुए इन्द्रजीतके हाथसे संग्राम भूमिमें मारे गये हैं ॥ १७ ॥ इन्द्रजीतनें अदृश्य रह करही ऐसा किया है; परन्तु संग्राममें वह किसी प्रकारसेभी ऐसा नहीं कर सकता कारण कि रणभूमिमें रघुनंदनकी दृष्टिके सामनें पड़कर मनकी समान वेगवान् शत्रुभी जीता हुआ लौटकर नहीं जाय सकता ॥ १८ ॥ जो कुछभी हो कालके लिये कोईभी कार्य दुष्कर नहीं है. और को तौ जीतभी लियाजाय सकता है, परन्तु कालको कोई जीतनेंवाला नहीं, यदि ऐसा न होता तौ यह दोनों भ्राता रण

* "किस कारणसे उन्होंनें यह सब अस्त्र इस कुसमयमें स्मरण नहीं किये।" यह कथा मूलमें नहीं है; परन्तु टीकाकारका अभिप्रायहै.

दृष्टान्तसे जान गये कि राक्षस लोग कैसे कुटिल होतेहैं ॥ ५४ ॥ महा बलवान विनताके पुत्र गरुड़जी यह कहकर दशरथ कुमार श्रीरामचंद्रजीको भेंट स्नेह सहित यह वचन बोले ॥ ५५ ॥ हे मित्रश्रीरामचंद्रजी! हे धर्मज्ञ! शत्रुके प्रतिभी आप बहुतही अनुग्रह किया करतेहैं। इस समय हम आपकी आज्ञा लेकर अपने स्थानमें जानेंकी इच्छा करतेहैं ॥ ५६ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी हमारे प्रति तुम्हारा सखा संबन्ध किस प्रकारसे हुआ इसके जाननेंको आप कौतूहल प्रकाश नकीजिये, युद्धमें विजय प्राप्त करके जिस समय आप अपने देशको लौटेंगे उसी समय यह सम्बन्ध आपको ज्ञात हो जायगा ॥ ५७ ॥ हे वीर श्रीरामचंद्रजी! आपके बाणोंकी तरंगोंके वेगसे लंकापुरी विध्वंस होकर केवल बालक और बूढे

एवमुक्त्वातदारामंसुपर्णःसमहाबलः ॥ परिष्वज्यचसुस्निग्धमाप्रष्टुमुपचक्रमे ॥ ५५ ॥ सखेराघवधर्मज्ञरिपूणामपिवत्सल ॥ अभ्यनुज्ञातुमिच्छामिगमिष्यामियथासुखम् ॥५६॥ नचकौतूहलंकार्यंसखित्वंप्रतिराघव ॥ कृतकर्मारणेवीरसखित्वंप्रतिवेत्स्यसि ॥५७॥ बालवृद्धावशेषांतुलंकांकृत्वाशरोर्मिभिः ॥ रावणंतुरिपुंहत्वासीतांत्वमुपलप्स्यसे॥५८॥ इत्येवमुक्त्वावचनंसुपर्णःशीघ्रविक्रमः ॥ रामंचनीरुजंकृत्वामध्येतेषांवनौकसाम् ॥५९॥ प्रदक्षिणंततःकृत्वापरिष्वज्यचवीर्यवान् ॥ जगामाकाशमाविश्यसुपर्णःपवनोयथा ॥ ६० ॥ नीरुजौराघवौदृष्ट्वाततोवानरयूथपाः ॥ सिंहनादंतदानेदुर्लांगूलंदुधुवुश्चते ॥६१॥ ततोभेरीःसमाजघ्नुर्मृदंगांश्चाप्यवादयन् ॥ दध्मुःशंखान्संप्रहृष्टाःक्ष्वेलंत्यपियथापुरम्॥६२॥

लोगोंकी रहनेंकी भूमि हो जायगी हम निश्चय कहते हैं कि आप बहुतही शीघ्र संग्राममें रावणका संहार करके सीताजीको प्राप्त कर सकेंगे ॥ ५८ ॥ शीघ्र विक्रम वीर्यवान सुपर्ण (गरुड) जी श्रीरामचन्द्रजी व लक्ष्मणजो दोनोंको रोगरहित करते यह कहकर वानरोंके बीचमें बैठे श्रीरामचन्द्रजीकी ॥ ५९ ॥ प्रदक्षिणा कर पवनकी समान वेग धारण कर आकाशमार्गको गरुडजी चलेगये ॥ ६० ॥ तिसके उपरान्त दोनो रघुवीरोंको रोग रहित देखकर वानर यूथपगण मनमें आनंद मनाय सिंहनादकर अपनी पूंछको कम्पायमान करने लगे ॥ ६१ ॥ इसके पीछे भेरियोंका शब्द उठा मृदंगोंकी नाद होनें लगी इतने शंख बजेकि उनकी ध्वनि आकाशमें गुंजारती रही और सब वानर लोग हर्षित

सैना बड़ी सावधानतासे उद्वेग रहितहो दोनों भ्राता राम लक्ष्मणजीकी रक्षा करती हैं; इस कारण हमें ज्ञात होताहै, कि यह मृतक न होकर मूर्छित होगये हैं यह बात हमने प्रीतिके कारण तुमसे कहीहै. ॥ २७ ॥ हेजानकी! तुम इस समय सावधान होवो, हमको स्पष्ट अनुमान करनेंसे जान पड़ताहैकि राम लक्ष्मणजीका कुछ अमंगल नहीं हुआ, तुम्हारे प्रति हमारा स्नेह जोहै इसी कारण तौ हम तुमसे यह बात कहती हैं ॥ २८ ॥ हेमैथिलि! हमनें पहले कभी तुमसे कोई मिथ्या वार्त्ता न कही, न अब कहैं, हे देवि! अधिक क्या कहैं तुमने अपने निर्मल चरित्रके प्रभावसे हमारे अंतःकरणको अपने वशमें कर लियाहै ॥ २९ ॥ हमनें श्रीरामचंद्र व लक्ष्मणजीकी जो सौम्यमूर्त्ति देखीहै; तिसको देखकर

सात्वंभवसुविस्रब्धाअनुमानैःसुखोदयैः॥ अहतौपश्यकाकुत्स्थौस्नेहादेतद्ब्रवीमिते ॥२८॥ अनृतंनोक्तपूर्वंमेनचवक्ष्यामिमैथिलि ॥ चारित्रसुखशीलत्वात्प्रविष्टासिमनोमम ॥ २९ ॥ नेमौशक्यौरणेजेतुंसेंद्रैरपिसुरासुरैः ॥ तादृशंदर्शनंदृष्ट्वामयाचोदीरितंतव ॥ ३० ॥ इदंतुसुमहच्चित्रंशरैःपश्यस्वमैथिलि ॥ विसंज्ञौपतितावेतौनैवलक्ष्मीर्विमुंचति ॥ ३१ ॥ प्रायेणगतसत्वानांपुरुषाणांगतायुषाम् ॥ दृश्यमानेषुवक्रेषुपरंभवतिवैकृतम् ॥ ३२ ॥ त्यजशोकंचदुःखंचमोहंचजनकात्मजे ॥ रामलक्ष्मणयोरर्थेनाद्यशक्यमजीवितुम् ॥ ३३ ॥

हम निश्चयही. कह सकतीहैं कि इनको पराजित करनेकी सुर व असुरोंके सहित इन्द्रमेंभी सामर्थ्य नहीं है, फिर यह राक्षस बिचारे तौ हैं ही क्या वस्तु? ॥ ३० ॥ हेरामप्राणवल्लभे! और एक बात आश्चर्यकी यहभी है कि यह दोनों बाणोंसे विद्ध और संज्ञाहीन होकर पृथ्वी पर गिर पड़े हैं; परन्तु जिस परभी इनकी सुन्दरताईमें कुछ अन्तर नहीं आयाहै ॥ ३१ ॥ बहुधा देखनेंमें आताहै कि प्राणियोंका जीवन नष्ट या शक्तिहीन होनेपर उनके मुखकी शोभा नहीं रहती वरन मुखकी आकृति बिगड़ जातीहै हेजनककुमारी! हम इसीलिये कहतीहैं कि तुम शोक दुःख और मोहको छोड़ो; कारणकि यदि राम लक्ष्मण जीवरहित होते तौ इनके शरीरोंपर ऐसा लावण्य किसी प्रकारसेभी नहीं रहता ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

समय उन वानरवृन्दोंका यह बड़ा भारी शब्द उठनेंसे हमको अत्यन्तही शंका होतीहै ॥ ५ ॥ राक्षसोंका स्वामी रावण निज मंत्रियोंसे ऐसा कह अपने निकट बैठे हुए राक्षसोंसे बोला ॥ ६ ॥ कि इन वनवासी वानर लोगोंका ऐसे शोकके समय एकाएकी आनंदित होंनेका कारण तुम लोग जानकर शीघ्र आओ ॥ ७ ॥ राक्षसगण इस प्रकारसे रावणकी आज्ञा पाय सावधानहो एक धवरहरे पर जोकि अति ऊंचाथा चढ़े और तब उन्होंने देखा कि महात्मा सुग्रीवजी उस वानर वाहिनीकी रक्षा करते हैं ॥ ८ ॥ श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी यह दोनों भ्राता भी नाग फांससे छुटकर उठ बैठेहैं, यह देखकर यह राक्षस अत्यन्तही विषादित हुए ॥९॥ उस समय यह राक्षस त्रासित मनसे कोटकी अति ऊंची भीतसे नीचे

एवंचवचनंचोक्त्वामंत्रिणोराक्षसेश्वरः ॥ उवाचनैर्ऋतांस्तत्रसमीपपरिवर्तिनां ॥ ६ ॥ ज्ञायतांतूर्णमेतेषांसर्वेषांचवनौकसाम् ॥ शोककालेसमुत्पन्नेहर्षकारणमुत्थितम् ॥ ७ ॥ तथोक्तास्तेसुसंभ्राताःप्राकारमधिरुह्यच ॥ ददृशुःपालितांसेनांसुग्रीवेणमहात्मना ॥८॥ तौचमुक्तौसुघोरेणशरबंधेनराघवौ ॥ समुत्थितौमहाभागौविषेदुःसर्वराक्षसाः ॥९॥ संत्रस्तहृदयाःसर्वेप्राकारादवरुह्यते ॥ विवर्णाराक्षसाघोराराक्षसेंद्रमुपस्थिताः ॥१०॥ तदप्रियंदीनमुखारावणस्यचराक्षसाः ॥ कृत्स्नंनिवेदयामासुर्यथावद्वाक्यकोविदाः ॥ ११ ॥ यौताविंद्रजितायुद्धेभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ निबद्धौशरबंधेननिष्प्रकंपभुजौकृतौ ॥ १२ ॥ विमुक्तौशरबंधेनदृश्येतेतौरणाजिरे ॥ पाशानिवगजौछित्त्वागजेंद्रसमविक्रमौ ॥ १३ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतेषांराक्षसेंद्रोमहाबलः ॥ चिंतारोपसमाक्रांतोविवर्णवदनोऽभवत् ॥ १४ ॥

उतरनें लगे, उनके मुखकी कान्ति मलीन होगई और वह सब अत्यन्त दीन भावसे रावणके निकट आये ॥ १० ॥ उन दीन मुख वचन बोलनेंमें चतुर राक्षसोंनें रावणके अप्रिय वचन यथार्थ २ निवेदन किये ॥ ११ ॥ कि जो राम लक्ष्मण संग्राम भूमिमें इन्द्रजीतके द्वारा वाणोंसे विंध गयेथे और तिसके वाद जिनकी दोनो भुजायें कुछ भी हिलडुल नहीं सकती थीं ॥ १२ ॥ इस समय हमनें देखाकि गजेन्द्रविक्रमकारी वह दोनों भ्राता दो गजोंकी समान नागफांशको तोडकर वाणवन्धनसे छूट रणभूमिमें विराजमान होरहेहैं ॥ १३ ॥ महावलवान राक्षसोंका स्वामी राक्षसोंके मुखसे यह समाचार सुनकर चिन्ताके वशमें हुआ, और शोचके मारे उस समय उसका मुखमंडलभी प्रभाहीन होगया ॥ १४ ॥

और बलकी अधिकाईके अनुसार वह इस समय सचेत हुए ॥ ३ ॥ जाग कर श्रीरामचंद्रजी अपने छोटे भइया लक्ष्मणजीको दीन वदन किये शरीरसे रक्त बहाते पृथ्वीपर शयन करते हुए देखकर आतुर पुरुषकी समान रोदन करनें लगे ॥ ४ ॥ कि जब हमनें प्राणोंसेभी अधिक अपने प्रिय भ्राता लक्ष्मणजीको युद्धमें पराजित और पृथ्वी पर पड़े हुए देखा, फिर भला अब हम सीताका उद्धार करके क्या करेंगे, और हमारे इस जीवन धारण करनेंकाभी क्या प्रयोजनहै? ॥ ५ ॥ हाय ! पृथ्वीपर ढूंढ़नेंसे सीताकी समान अनेक स्त्रियां पाई जासकतीहैं; परन्तु त्रिलोकीमें ढूंढ़ नेंसेंभी लक्ष्मणकी समान संग्रामका मंत्री भाई हम नहीं पाय सकेंगे "मिलहिं न जगत सहोदर भ्राता" ॥ ६ ॥ जो यह सुमित्राजीके आनंद बढ़ानें

ततोदृष्ट्वासरुधिरंनिषण्णंगाढमर्पितम् ॥ भ्रातरंदीनवदनंपर्यदेवयदातुरः ॥ ४ ॥ किंनुमेसीतयाकार्यंलब्धयाजीविते नवा ॥ शयानंयोद्यपश्यामिभ्रातरंयुधिनिर्जितम् ॥ ५ ॥ शक्यासीतासमानारीमर्त्यलोकेविचिन्वता ॥ नलक्ष्मण समोभ्रातासचिवःसांपरायिकः ॥ ६ ॥ परित्यक्ष्याम्यहंप्राणान्वानराणांतुपश्यताम् ॥ यदिपंचत्वमापन्नःसुमित्रानं दवर्धनः ॥७॥ किंनुवक्ष्यामिकौसल्यांमातरंकिंनुकैकयीम् ॥ कथमंबांसुमित्रांचपुत्रदर्शनलालसाम् ॥ ८ ॥ विवत्सां वेपमानांचवेपंतींकुररीमिव ॥ कथमाश्वासयिष्यामियदियास्यामितंविना ॥ ९ ॥ कथंवक्ष्यामिशत्रुघ्नंभरतंचयश स्विनम् ॥ मयासहवनंयातोविनातेनाहमागतः ॥ १० ॥

वाले लक्ष्मणजी मृतक होगयेहों तव हम इसी मुहूर्त्तमें समस्त वानरोंके सन्मुखही प्राण त्याग करेंगे ॥ ७ ॥ क्या कष्टहै ? जबकि हम अयोध्या जीमें लौटकर जांयगे तव माता, कौशल्या, कैकेयी, और पुत्रके दर्शनकी लालसा किये माता सुमित्राजीसे क्या कहेंगे ॥ ८ ॥ हादैव! जो हम अयोध्यापुरीको विना लक्ष्मणकेही चलेजांय; तौ कुररीकी समान कम्पायमान उन वत्सरहित सुमित्राजीको हम क्या कहकर समझावेंगे ॥ ९ ॥ हा! हम जिनके साथ वनमें आयेथे, उन लक्ष्मणजीके विना अयोध्यामें लौट कर हम यशस्वी भरत और शत्रुघ्नसे क्या कहेंगे कुछ समझमें नहीं आता ॥ १० ॥

नाद करते हुए हर्षित मनसे धूम्राक्षके चारों ओर खड़े होगये, वह समस्त राक्षस अतिशय बलवानथे उनकी कमरमें घंटे लगे हुए बज रहेथे ॥२३॥ विविध भांतिके अस्त्र शस्त्र ग्रहणकर, शूल, मुद्गर, गदा, पटा, दंड, मूसल आदि धारण किये ॥ २४ ॥ बड़े २ मुद्गर, धनवासी, भाले, फांसी, फरसे आदि अस्त्र शस्त्र लिये समस्त राक्षसगण मेघकी समान गर्जन करते हुए चले ॥ २५ ॥ उन राक्षसोंमें कोई २ कवच धारण करके ध्वजा पताकासे शोभायमान विचित्र चित्रित रथोंमें सवार हुए और कोई २ सुवर्ण जाल मंडित विविध भांतिके मुखवाले गधोंपर चढ़े ॥२६॥ और कोई २ राक्षस अति शीघ्रतासे चलनेंवाले घोडों पर चढ़ चले और कोई २ मदान्ध हाथियोंकी पीठपर सवार हुए; इस प्रकारसे वह राक्षसव्याघ्र लोग अजेय व्या

विविधायुधहस्ताश्चशूलमुद्गरपाणयः ॥ गदाभिःपट्टिशैर्दंडैरायसैर्मुसलैरपि ॥ २४ ॥ परिघैर्भिंदिपालैश्चभल्लैः पाशैःपरश्वधैः ॥ निर्ययूराक्षसाघोरानर्दंतोजलदायथा ॥ २५ ॥ रथैःकवचिनस्त्वन्येध्वजैश्चसमलंकृतैः ॥ सुवर्ण जालविहितैःखरैश्चविविधाननैः ॥ २६ ॥ हयैःपरमशीघ्रैश्चगजैश्चैवमदोत्कटैः ॥ निर्ययुर्नैर्ऋतव्याघ्राव्याघ्राइवदुरा सदाः ॥ २७ ॥ मृगसिंहमुखैर्युक्तंखरैःकनकभूषितैः ॥ आरुरोहरथंदिव्यंधूम्राक्षःखरनिःस्वनः ॥ २८ ॥ सनिर्या तोमहावीर्योधूम्राक्षोराक्षसैर्वृतः ॥ हसन्वैपश्चिमद्वाराद्धनूमान्यत्रातिष्ठति ॥ २९ ॥ रथप्रवरमास्थायखरयुक्तंखर स्वनम् ॥ प्रयांतंतुमहाघोरंराक्षसंभीमदर्शनम् ॥ ३० ॥ अंतरिक्षगताःक्रूराःशकुनाःप्रत्यषेधयन् ॥ रथशीर्षेम हाभीमोगृध्रश्चनिपपातह ॥ ३१ ॥

घ्रकी समान गमन करनें लगे ॥ २७ ॥ महावीर धूम्राक्ष कनकभूषित भेडियां सिंह और व्याघ्र मुखवाले गधे जुते हुए रथमें बैठकर रणमें जानें लगा ॥ २८ ॥ इस प्रकार महावीर धूम्राक्ष बड़ीभारी राक्षसोंकी सैनाके साथ जहां पर हँसते हुए मुखसे हनुमानजी डट रहेथे लंकाके उस पश्चिम द्वारपर आया ॥ २९ ॥ कठोर शब्द करनेंवाले गधे जुते, श्रेष्ठ रथपर सवार हो, महाघोर, भयंकर विक्रमकारी राक्षसको जाताहुआ देख ॥ ३० ॥ आकाशमें प्राप्त हुए क्रूर शकुन विविध अमंगलकारी चिह्नोंसे उस राक्षस को निवारण करते हुए कि पहले तो धूम्राक्षके रथकी छत्रीपर एक बड़ा

प्रीति दिखलातेथे और हमारीभी आज्ञामें सदाही रहतेथे; आज इस कुभागी मुझ दशरथके पुत्रकी कुनीतिसेही उन लक्ष्मणजीकी ऐसी दशा हुई॥१८॥ हाय! यह वीर लक्ष्मणजी भी जब कि महा कोपके वश होजाते; तबभी कभी इन्होंनें हमको कोई कठोर वचन न सुनायाथा. ऐसा तो हमको स्मरणनहीं होता अर्थात् इन्होंनें कभी हमको कठोर वचन नहीं कहा॥१९॥हाय! जो लक्ष्मण दोवांहोंवाले होकरभी जबकि एक वेगमेंही पांच २ शत बाण छोडतेथे. तब अस्त्र चलानेमें यह सहस्र बाहोंवाले कार्त्तवीर्यसेभी अधिकथे; कारणकि वह तो हजार बाहें होंनेपर एक कालमें पांचशत बाण चलाताथा; परन्तु यह दोवांहोंसेंही एक कालमें पांच शत बाण छोड़तेथे ॥ २० ॥ हा! जो वीर अपने अस्त्रोंके बलसे इन्द्रके वज्रादि अस्त्रोंको भी निवारणकरसकतेथे;और पहले जिनको बड़े मोलकी शय्या पर शयन करनेंसेभी निद्रा न आतीथी; आज वही लक्ष्मणजी मेघनादके बाणोंसे मृतक

सुरुष्टेनापिवीरेणलक्ष्मणेननसंस्मरे ॥ परुषंविप्रियंचापिश्रावितंतुकदाचन ॥ १९ ॥ विससर्जैकवेगेनपंचबाणशतानि यः ॥ इष्वस्त्रेष्वधिकस्तस्मात्कार्तवीर्याच्चलक्ष्मणः ॥ २० ॥ अस्त्रैरस्त्राणियोहन्याच्छक्रस्यापिमहात्मनः ॥ सोयमुर्व्यां हतःशेतेमहार्हशयनोचितः ॥ २१ ॥ तत्तुमिथ्याप्रलप्तंमांप्रधक्ष्यतिनसंशयः ॥ यन्मयानकृतोराजाराक्षसानांविभीषणः ॥ २२ ॥ अस्मिन्मुहूर्तेसुग्रीवप्रतियातुमिहार्हसि ॥ सत्त्वहीनंमयाराजन्रावणोभिभविष्यति ॥ २३ ॥ अंगदंतुपुरस्कृत्यससैन्यंसपरिच्छदम् ॥ सागरंतरसुग्रीवनीलेनचनलेनच ॥ २४ ॥ कृतंहिसुमहत्कर्मयदन्यैर्दुष्करंरणे ॥ ऋक्षराजेनतुष्यामिगोलांगूलाधिपेनच ॥ २५ ॥

होकर पृथ्वीपर शयन कररहे हैं ॥ २१ ॥ हाय! हमनें जो " विभीषणको लंकाका राजा बनावेंगे " ऐसी प्रतिज्ञा कीथी, और अब इस प्रतिज्ञाको पूरा न करसके बस इस समय वही मिथ्या प्रलाप हमारी आत्माको दग्ध किये डालताहै ॥ २२ ॥ हे सुग्रीव ! जबकि हम प्राणत्याग करेंगे; तब रावण तुमको बलहीन समझकर अवश्यही कोई न कोई उपद्रव करेगा, इस कारण तुम इसी मुहूर्त यहां परसे अपनें देश किष्किन्धाको चले जाओ ॥ २३ ॥ हे सुग्रीव! तुम अंगद व सब सैनाकोभी आगे२ करकै नील नल और भी सैनाके सब सामान सहित समुद्रके पार होकर शीघ्रता करकै यहांसे चले जाओ ॥ २४ ॥ हनुमाननें हमारे लिये रणभूमिमें औरसे न होनेके योग्य जो कठिन कर्म किये, और ऋक्षराज जाम्बवान व

युद्ध प्रारंभ हुआ उस समय वह बड़े २ वृक्ष, शूल, मुद्गर चलाय २ कर परस्पर परस्परके ऊपर प्रहार करनें लगे ॥ २ ॥ निशाचरोंनें वानर लोगोंको सब भांतिसे घेर लिया, और, वानर गणभी वृक्षोंको चलाय २ राक्षसोंको पृथ्वीपर शयन करानें लगे ॥ ३ ॥ राक्षसभी क्रोधमें भरकर तीखे बाण समूह और सीधे चलनेंवाले घोर रूप कंकपत्रयुक्त बाणोंसे वानरोंका नाश करनें लगे ॥ ४ ॥ उस समय महाबलवान वानरगण भयं कर गदा, शूल, पटा, मुद्गर घोर परिघ और चित्र विचित्र शूलोंके द्वारा॥५॥राक्षसोंसे विदारितहो क्रोधमें भरकर और उत्साहसे भरपूरहो भयरहि तकी समान युद्धके कर्म करनें लगे॥ ६॥ वानरोंके शरीर बाणोंसे घायल होनें लगे; उनकी देहमें स्थान २ पर घाव होगये, वह वानर यूथप राक्ष

राक्षसैर्वानराघोराविनिकृत्ताःसमंततः ॥ वानरैराक्षसाश्चापिद्रुमैर्भूमिसमीकृताः ॥ ३ ॥ राक्षसास्त्वभिसंक्रुद्धावा नरान्निशितैःशरैः ॥ विव्यधुर्घोरसंकाशैःकंकपत्रैरजिह्मगैः ॥ ४ ॥ तेगदाभिश्चभीमाभिःपट्टिशैःकूटमुद्गरैः ॥ घोरैश्चप रिघैश्चित्रैस्त्रिशूलैश्चापिसंश्रितैः ॥ ५ ॥ विदार्यमाणारक्षोभिर्वानरास्तेमहाबलाः ॥ अमर्षजनितोद्धर्षाश्चक्रुःकर्माण्यभी तवत् ॥ ६ ॥ शरनिर्भिन्नगात्रास्तेशूलनिर्भिन्नदेहिनः ॥ जगृहुस्तेद्रुमांस्तत्रशिलाश्चहरियूथपाः ॥ ७ ॥ तेभीमवेगाहर योनर्दमानास्ततस्ततः ॥ ममंथूराक्षसान्वीरान्नामानिचबभाषिरे ॥ ८ ॥ तद्बभूवाद्भुतंघोरंयुद्धंवानररक्षसाम् ॥ शिला भिर्विविधाभिश्चबहुशाखैश्चपादपैः ॥ ९ ॥ राक्षसामथिताःकेचिद्वानरैर्जितकाशिभिः ॥ प्रवेमूरुधिरंकेचिन्मुखैरुधिरभो जनाः ॥ १० ॥ पार्श्वेषुदारिताःकेचित्केचिद्राशीकृताद्रुमैः ॥ शिलाभिश्चूर्णिताःकेचित्केचिद्दंतैर्विदारिताः ॥ ११ ॥

सोंके निकटसे अपनी पराजय सहन न करके बड़े २ वृक्षोंको ग्रहणकर उनकी ओर दौड़े ॥ ७ ॥ भयंकर वेगवान वानर लोग सिंहनाद करके वीर राक्षसोंका संहार करनें लगे ; चोट चलानेंके समय सबही एक दूसरेको अपना २ नाम बतानें लगे ॥ ८ ॥ उस कालमें अनेक शाखा ओंसे युक्त वृक्ष और विविध भांतिकी शिलाओंके चलाये जानेंसे वह वानर और राक्षसोंका घोर युद्ध अद्भुत जान पड़नें लगा ॥ ९ ॥ उस समय कितनेंही रुधिर पान करनेंवाले निशाचरगण जीतेजानेंसे प्रसन्न वानरोंसे मारखाय रुधिर उगलनें लगे ॥ १० ॥ इसी प्रकारसे किसी २ की देह छिन्न होगई , कोई २ वृक्षोंकी चोटसे मरगये, कोई २ शिलाओंकी चोटसे पिसकर चूर्णकी समान होगये, और कोई २ तीक्ष्ण दातोंके

इसके पीछे महाबलवान् महातेजवान् वानरराज सुग्रीवजी बोले कि जलके बीचमें प्रचंड पवनके लगनेंसे नौकाकी समान किस प्रकारसे यह वानरोंकी सैना ऐसी चलायमान हुई ॥ १ ॥ सुग्रीवजीके ऐसे वचन सुन वालिके पुत्र अंगद बोले क्या तुम महारथी श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी को नहीं देखते ! ॥ २ ॥ जो दशरथकुमार बड़े वीर होनेपरभी बाणजालसे विंधे हैं, इनके सब अंगोंसे रुधिर निकल रहा है, और बाणोंकी शय्या पर सोय रहे हैं जबकि यही ऐसी अवस्थामें पड़कर दुःख पाय रहे हैं तब सैनाके इस प्रकारसे चलायमान होनेंका कारण इसके अतिरिक्त और क्या हो सकता है? तिसके पीछे वानरोंके स्वामी सुग्रीवजी अपने भतीजे अंगदसे बोले कि वत्स! वानरगण जो ऐसे चलायमान हुए हैं,इसका कोई बड़ा भारी

अथोवाचमहातेजाहरिराजोमहाबलः ॥ किमियंव्यथितासेनामूढवातेवनौर्जले ॥ १ ॥ सुग्रीवस्यवचःश्रुत्वावालिपुत्रों गदोब्रवीत् ॥ नत्वंपश्यसिरामंचलक्ष्मणंचमहारथम् ॥ २ ॥ शरशालाचितौवीरावुभौदशरथात्मजौ ॥ शरतल्पेमहा त्मानौशयानौरुधिरोक्षितौ ॥३॥ अथाब्रवीद्वानरेंद्रःसुग्रीवःपुत्रमंगदम् ॥ नानिमित्तमिदंमन्येभवितव्यंभयेनतु ॥ ४ ॥ विषण्णवदनाह्येतेत्यक्तप्रहरणादिशः ॥ पलायंतेत्रहरयस्त्रासादुत्फुल्ललोचनाः ॥ ५ ॥ अन्योन्यस्यनलज्जंतेनानिरीक्षं तिपृष्ठतः ॥ विप्रकर्षंतिचान्योन्यंपतितंलंघयंतिच ॥ ६ ॥ एतस्मिन्नंतरेवीरोगदापाणिर्विभीषणः ॥ सुग्रीवंवर्धया मासराघवंचजयाशिषा ॥ ७ ॥ विभीषणंचसुग्रीवोदृष्ट्वावानरभीषणम् ॥ ऋक्षराजंमहात्मानंसमीपस्थमुवाचह ॥ ८ ॥

कारण है ऐसा समझ पड़ताहै कि कोई भय आया होगा॥ ३ ॥४॥ यह देखो वानर गण व्याकुल मुख किये समस्त अस्त्र शस्त्रोंको त्याग चारों ओरको भागे जाते हैं; और भयके मारे उन सबके नेत्र लाल और चंचल हो रहे हैं ॥ ५ ॥ देखो ! यह सब ऐसे डरगये हैं कि भागनेंमें कुछभी लाज नहीं करते, कोई सन्मुख पड़कर गतिको रोकै तो उसको खैंचकर पीछे ढकेल देते; और कोई गिरजाय तो उसको लांघते हुए सब भागे जाते हैं; और कोई पीछेकी ओरको दृष्टि नहीं करता ॥ ६ ॥ सुग्रीवजी ऐसा कहरहे थे कि इतनेमें वीर विभीषणजी गदा हाथमें लिये वहां आय पहुंचे और विजयसूचक आशीर्वाद देकै वचनोंसे रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी और वानरराज सुग्रीवजीको प्रणाम करते हुए ॥ ७ ॥ तब सुग्रीवजी विभीष

विह्वलहो जीव गँवाय संग्रामभूमिमें गिरपड़े ॥ २० ॥ और बहुतसे वानर क्रोधित राक्षसों करके रणभूमिमें मारे जायकर रुधिर वहतीहुई देहसे
पृथ्वीपर गिर पड़े और कोई २ लोहू लुहान होकर भागनें लगे ॥ २१ ॥ इस दारुण संग्राममें राक्षस गण क्रोधके मारे यमराजकी समान मूर्त्ति धार
णकर वानरोंके हृदय चीरनें फाड़नें लगे, कि जिस्से कोई २ वानर एक ओर को गिर पड़े; और कोई २ त्रिशूलसे घायल हुए और बहुतसे अस्त्रके
प्रभावसे भाग निकले ॥२२ ॥ इस प्रकारसे वानर और राक्षसोंका भयंकर युद्ध होने लगा, दोनो ओरसे अनेक अस्त्र शस्त्र चले, और बहुतसे अस्त्रके
वृक्षोंकी वृष्टि होनें लगी ॥ २३ ॥ धीरे २ रणभूमि गीत विद्याका रूप धारण करती हुई, राक्षसोंके धनुषोंके रोदोंका शब्द वीनाके तारका कार्य

केचिद्विनिहताभूमौरुधिरार्द्रावनौकसः ॥ केचिद्विद्राविता नष्टाःसंक्रुद्धैराक्षसैर्युधि ॥ २१ ॥ विभिन्नहृदयाःकेचिदेकपा
श्वेनशायिताः ॥ विदारितास्त्रिशूलैश्चकेचिदांत्रैर्विनिःसृताः ॥ २२ ॥ तत्सुभीमंमहद्युद्धंहरिराक्षससंकुलम् ॥ प्रबभौ
शस्त्रबहुलंशिलापादपसंकुलम् ॥ २३ ॥ धनुर्ज्यातंत्रिमधुरंहिक्कातालसमन्वितम् ॥ मंदस्तनितगीतंतद्युद्धगांधर्वमा
बभौ ॥ २४ ॥ धूम्राक्षस्तुधनुष्पाणिर्वानरान्रणमूर्धनि ॥ हसन्विद्रावयामासदिशस्ताञ्छरवृष्टिभिः ॥ २५ ॥ धू
म्राक्षेणार्दितंसैन्यंव्यथितंप्रेक्ष्यमारुतिः ॥ अभ्यवर्ततसंक्रुद्धःप्रगृह्यविपुलांशिलाम् ॥ २६ ॥ क्रोधाद्द्विगुणताम्राक्षः
पितुस्तुल्यपराक्रमः ॥ शिलांतांपातयामासधूम्राक्षस्यरथंप्रति ॥ २७ ॥ आपतंतींशिलांदृष्ट्वागदामुद्यम्यसंभ्रमात् ॥
रथादाप्लुत्यवेगेनवसुधायांव्यतिष्ठत ॥ २८ ॥

करनें लगा और वीरोंको गिरनेंके समय जो हिचकियें आनें लगीं, वही ताल गिनीगई, और हाथियोंका गर्जनाही उस समय गीतकी समान जान पड़
ताथा, इस प्रकार यह द्वन्द्वयुद्ध गन्धर्वविद्याकी तुल्य शोभाको प्राप्त हुआ ॥ २४ ॥ राक्षस धूम्राक्ष इस प्रकारसे संग्राम भूमिमें धनुष धार बा
वर्षाय सर्व दिशा छाय हँसते २ सब वानरोंको मार भगाय देता हुआ॥२५॥धूम्राक्षके हाथसे वानरोंकी सैनाको अत्यन्त पीड़ित देखकर हनुमान्
क्रोधके मारे घुमाते बड़ी भारी शिला ग्रहण करके उससे युद्ध करनेंके लिये आगे बढ़े ॥ २६ ॥ पिता पवनकी त
क्रोधके मारे अरुणनयन हो उस बडी भारी शिलाको धूम्राक्षके रथपर अति जोरसे मारते हुए

टिल बुद्धिसे यह सरल बुद्धिवाले दोनों राजकुमार धोखा खाय गये हैं ॥ १६ ॥ यह बाणोंसे युक्त और शरीरमें रुधिर निकलनेंके कारण पृथ्वीमें पड़े रहनेंसे कांटोंसे युक्त सैंजनेके वृक्षकी समान जान पड़ते हैं ॥ १७ ॥ हाय! जिनके वीर्यके ऊपर भरोसा करकेही हमनें लंकाकी राज्यगद्दीपर बैठनेंकी अभिलाषा की थी, इस समय वही पुरुषश्रेष्ठ दोनों राजकुमार अपनी देहका नाश करनेके लियेही पृथ्वीपर पड़े हैं ॥ १८ ॥ हाय! इनकी ऐसी अवस्था होनेपर हम तो जीते हुए मर गये; और मनमें जो राज्यप्राप्त करनेंकी बलवती आशा हुईथी, वहभी नाशको प्राप्त हुई, परन्तु शत्रु रावणकी प्रतिज्ञाभी पूरी हुई और इसके मनोरथभी पूरे हुए ॥ १९ ॥ जब कि विभीषणजी इस

शरैरिमावलंविद्धौरुधिरेणसमुक्षितौ ॥ वसुधायामिमौसुप्तौदृश्येतेशल्यकाविव ॥ १७ ॥ ययोर्वीर्यमुपाश्रित्यप्रतिष्ठा
कांक्षितामया ॥ ताविमौदेहनाशायप्रसुप्तौपुरुषर्षभौ ॥ १८॥ जीवन्नद्यविपन्नोस्मिनष्टराज्यमनोरथः ॥ प्राप्तप्रतिज्ञश्च
रिपुःसकामोरावणःकृतः॥१९॥एवंविलपमानंतंपरिष्वज्यविभीषणम् ॥ सुग्रीवःसत्वसंपन्नोहरिराजोऽब्रवीदिदम् ॥२०॥
राज्यंप्राप्स्यसिधर्मज्ञलंकायांनेहसंशयः ॥ रावणःसहपुत्रेणस्वकामंनेहलप्स्यते ॥ २१ ॥ गरुडाधिष्ठितावेतावुभौरा
घवलक्ष्मणौ ॥ त्यक्त्वामोहंवधिष्येतेसगणंरावणंरणे ॥ २२ ॥ तमेवंसांत्वयित्वातुसमाश्वास्यतुराक्षसम् ॥ सुषेणंश्वशु
रंपार्श्वेसुग्रीवस्तमुवाचह॥२३॥सहशूरैर्हरिगणैर्लब्धसंज्ञावरिंदमौ ॥ गच्छत्वंभ्रातरौगृह्यकिष्किंधांरामलक्ष्मणौ ॥२४॥

प्रकारसे विलाप कररहेथे, तब बलवान सत्वसंयुक्त वानरराज सुग्रीवजी उनको हृदयसे लगाय भलीभांति भेंटकर बोले ॥ २० ॥ हे धर्मज्ञ! आप निश्चय जानलें कि रावण अथवा इन्द्रजीतका मनोरथ किसी प्रकारसे पूर्ण नहीं होगा । और निश्चयही लंकापुरीका राज्य आपको मिलेगा, इसमें कुछभी संशय नहीं ॥ २१ ॥ यह दोनों भ्राता गरुड़जीके उपासकहैं, बस गरुड़जीके आतेही राम लक्ष्मण दोनों भाई संज्ञा प्राप्त करेंगे, और इनका मोह दूर होजायगा, और फिर यह बहुतही शीघ्र संग्रामभूमिमें रावणको वंश सहित विध्वंस करेंगे ॥ २२ ॥ सुग्रीवजी राक्षसश्रेष्ठ विभीषणजीको इस प्रकारसे समझा बुझाकर निकट बैठे हुए अपने श्वशुर सुषेणनामक यूथपसे बोले ॥ २३ ॥ कि तुम इन दोनों भ्राता

बड़ी भारी शिला धूम्राक्षके ऊपर चलाई,कि जिस गिरिशृङ्गके प्रहारसे उस राक्षसके अंग फटकर फैलगये ॥३६॥पर्वत जिस प्रकार फटकर गिर जाता
है, वैसेही धूम्राक्षके अंग फट जानेंके कारण पृथ्वीपर गिर पड़ा और उसके प्राण निकल गये;और मरनेंसे बचे बचाये राक्षस गण सैनापति धूम्राक्षको
मरा हुआ देखकर अत्यन्तही त्रासित हुए;और वानर गणोंकी मार खाय मरनेके निकट पहुंच भयके मारे शीघ्रही लंकापुरीको भागगये॥३७॥महाबलवा
न् पवनकुमार हनुमानजी इस प्रकारसे शत्रुओंका संहार करते हुए रणभूमिमें रुधिर की नदी बहाय शत्रुके मारनेंके श्रमसे अत्यन्त थकित होंनेपरभी
वानर गणों करके पूजितहो अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त करते हुए ॥३८॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे द्विपंचाशःसर्गः ॥ ५२ ॥

पपातसहसाभूमौविकीर्णइवपर्वतः ॥ धूम्राक्षंनिहतंदृष्ट्वाहतशेषानिशाचराः ॥ त्रस्ताःप्रविविशुर्लंकांवध्यमानाःप्लवंग
मैः ॥ ३७ ॥ सतुपवनसुतोनिहत्यशत्रून्क्षतजवहाःसरितश्चसंविकीर्य ॥ रिपुवधजनितश्रमोमहात्मामुदमगमत्क
पिभिःसुपूज्यमानः ॥ ३८ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआ०युद्धकांडेद्विपंचाशःसर्गः ॥ ५२ ॥ ॥छ॥ धूम्राक्षं
निहतंश्रुत्वारावणोराक्षसेश्वरः ॥ क्रोधेनमहताविष्टोनिःश्वसन्नुरगोयथा ॥ १ ॥ दीर्घमुष्णंविनिःश्वस्यक्रोधेनकलुषी
कृतः ॥ अब्रवीद्राक्षसंक्रूरंवज्रदंष्ट्रंमहाबलम् ॥ २ ॥ गच्छत्वंवीरनिर्याहिराक्षसैःपरिवारितः ॥ जहिदाशरथिंरामंसुग्री
वंवानरैःसह ॥ ३ ॥ तथेत्युक्त्वाद्रुततरंमायावीराक्षसेश्वरः ॥ निर्जगामबलैःसार्धंबहुभिःपरिवारितः ॥ ४ ॥ नागैरश्वैः
खरैरुष्ट्रैःसंयुक्तःसुसमाहितः ॥ पताकाध्वजचित्रैश्चबहुभिःसमलंकृतः ॥ ५ ॥

राक्षसोंका स्वामी रावण धूम्राक्षका संग्राममें मरना सुन अत्यन्त क्रोधयुक्तहो सर्पकी समान लंबे २ श्वास त्याग करनें लगा ॥ १ ॥ तिसके
पीछे क्रोधसे अधीरहो लंबे २ और गरम २ श्वास छोड़ताहुआ रावण क्रूरस्वभावी महाबलवान वज्रदंष्ट्र नामक राक्षससे बोला ॥ २ ॥ हेवीर!
तुम राक्षसोंकी सैनाके साथ रणभूमिमें जायकर दशरथकुमार रामचंद्र और वानरगणोंके साथ सुग्रीवका नाश कर आओ ॥ ३ ॥ रावणकी
ऐसी आज्ञा पाय अति शीघ्रतासे मायावी राक्षसोंका ईश्वर वज्रदंष्ट्र बहुतसे राक्षसोंको संग लेकर चला ॥ ४ ॥ और उसके साथमें, हाथी, घोड़े, गधे

कियाथा वहांपर चन्द्र और द्रोण नामक दो पर्वतहैं उन्हीं पर्वतपर यह दोनों बूटियें हैं ॥ ३१ ॥ इन दोनों बूटियोंको देवताओंनें क्षीर समुद्रके बीचमें स्थापित कर दियाहै; इस कारण, हेराजन्! और किसी वानरको वहाँ जानेंकी आवश्यकता नहीं; यह पवनके पुत्र वेगवान हनुमानही वहाँ पर जांय; सुषेण यह वचन कहही रहेथेकि इतनेमें दामिनीमाला शोभित मेघ, और प्रबल आंधी उठकर समुद्रके जल और पर्वतोंको कम्पायमान करनें लगी ॥ ३२ ॥ ३३ ॥प्रबल पंखोंकी पवनके लगनेंसे द्वीपोंमें लगे हुए जो बड़े २ वृक्षथे उनकी शाखायें टूट गईं, और वह वृक्ष सब महासमुद्रके जलमें उड़कर जायगिरे ॥ ३४ ॥ देखते २ समुद्रके निवासी बड़े शरीरवाले सर्पगण भयंकराकारसे व्याकुल होंने लगे, । और जलजन्तु गण

तौतत्रविहितौदेवैःपर्वतौतौमहोदधौ ॥ अयंवायुसुतोराजन्हनूमांस्तत्रगच्छतु ॥ ३२ ॥ एतस्मिन्नंतरेवायुर्मेघाश्चापिस विद्युतः ॥ पर्यस्यसागरेतोयंकंपयन्निवपर्वतान् ॥ ३३ ॥ महतापक्षवातेनसर्वद्वीपमहाद्रुमाः ॥ निपेतुर्भग्नविटपाःसलि लेलवणांभसि ॥ ३४ ॥ अभवन्पन्नगास्त्रस्ताभोगिनस्तत्रवासिनः ॥ शीघ्रंसर्वाणियादांसिजग्मुश्चलवणार्णवम् ॥ ३५ ॥ ततोमुहूर्ताद्गरुडंवैनतेयंमहाबलम् ॥ वानरादद्दृशुःसर्वेज्वलंतमिवपावकम् ॥ ३६ ॥ तमागतमभिप्रेक्ष्यनागास्तेवि प्रदुद्रुवुः ॥ यैस्तुतौपुरुषौबद्धौशरभूतैर्महाबलैः ॥ ३७ ॥ ततःसुपर्णःकाकुत्स्थौस्पृष्ट्वाप्रत्यभिनंद्यच ॥ विममर्शचपाणि भ्यांमुखेचंद्रसमप्रभे ॥ ३८ ॥ वैनतेयेनसंस्पृष्टास्तयोसंरुरुहुर्व्रणाः ॥ सुवर्णेचतनूस्निग्धेतयोराशुबभूवतुः ॥ ३९ ॥

बड़ी शीघ्रतासे लवण समुद्रके जलमें प्रवेश कर गये ॥ ३५ ॥ तिसके पीछे समस्त वानरलोगोंनें एक मुहूर्त्त भरके बीचमें प्रदीप्त अग्निकी समान प्रकाशित विनताके पुत्र गरुड़जीको आते हुए देखा ॥ ३६ ॥ उन गरुड़जीके आतेही, जिन्होंने बाण रूपसे श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीको बांध रक्खाथा, और जो अतिशय बलवान्थे, ऐसे वह समस्त नाग डरके मारे अतिशीघ्रतासे भाग गये ॥ ३७ ॥ तिसके पीछे विनतानन्दन गरुड़जी रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजीको प्रणाम करके उनके अंगको अपने हाथोंसे स्पर्श करते हुए इन दोनों भ्राताओंको चंद्रमाकी समान द्युतिवाले मुख मंडल अपने हाथसे सुहरानें लगे ॥ ३८ ॥ गरुड़जीके करस्पर्शसे इन दोनों भ्राताओंके

शृगालियें अग्निकी लपटें उगालती हुईं अशुभ शब्द करनें लगीं ॥ १४ ॥ और मृगादि पशुगण चिल्लाय २ कर राक्षसोंके संहारको बतानें लगे, चलते २ वीर योद्धा लोग एकाएक पैर फिसलनेंसे भयंकर भांतिसे गिरनें लगे ॥ १५ ॥ परन्तु महा बलवान वज्रदंष्ट्र राक्षस यह समस्त उत्पात उठानेंवाले लक्षण देखकर भी धीरज धारण कर समरका अभिलाषी हो लंकागढ़से बाहर निकला ॥ १६ ॥ इस ओर विजयी वानर समूह राक्षसोंको आया हुआ देखकर ऐसा सिंहनाद करनें लगे, कि उसकी गुंजारसे दशों दिशायें पूर्ण होगईं ॥ १७ ॥ तिसके पीछे परस्पर एक दूसरेको मार डालनेंकी आशा किये भयंकर रूप महाबलवान वानर और राक्षसोंका घोर संग्राम आरंभ हुआ ॥ १८ ॥ उस समय उन अति उत्साह

व्याहरंतमृगाघोरारक्षसांनिधनंतदा ॥ समापतंतोयोधास्तुप्रास्खलंस्तत्रदारुणम् ॥ १५ ॥ एतानौत्पातिकान्दृष्ट्वा वज्रदंष्ट्रोमहाबलः ॥ धैर्यमालंब्यतेजस्वीनिर्जगामरणोत्सुकः ॥ १६ ॥ तांस्तुविद्रवतोदृष्ट्वावानराजितकाशिनः ॥ प्रणेदुःसुमहानादान्दिशःशब्देनपूरयन् ॥ १७ ॥ ततःप्रवृत्तंतुमुलंहरीणांराक्षसैःसह ॥ घोराणांभीमरूपाणामन्योन्यवधकांक्षिणाम् ॥ १८ ॥ निष्पतंतोमहोत्साहाभिन्नदेहशिरोधराः ॥ रुधिरोक्षितसर्वांगान्यपतन्धरणीतले ॥ १९ ॥ केचिदन्योन्यमासाद्यशूराःपरिघबाहवः ॥ चिक्षिपुर्विविधाञ्छस्त्रान्समरेष्वनिवर्तिनः ॥ २० ॥ द्रुमाणांचशिलानांचशस्त्राणांचापिनिःस्वनः ॥ श्रूयतेसुमहांस्तत्रघोरोहृदयभेदनः ॥ २१ ॥ रथनेमिस्वनस्तत्रधनुषश्चापिघोरवत् ॥ शंखभेरीमृदंगानांबभूवतुमुलःस्वनः ॥ २२ ॥ केचिदस्त्राणिसंत्यज्यबाहुयुद्धमकुर्वत ॥ तलैश्चचरणैश्चापिमुष्टिभिश्चद्रुमैरपि ॥ २३ ॥

वाले वीरोंकी देह, मस्तक, अधर, इत्यादि अंग कटजानेंसे व रुधिरमें शरीर डूबजानेंसे वह पृथ्वीपर गिर जानें लगे ॥ १९ ॥ समरसे न लौटनेवाले और परिघकी समान लंबी २ बांहवाले वीरगण लड़ते २ परस्पर पर लिपट जाते, और तिसके पीछे विविध भांतिके अस्त्र शस्त्र चलानें लगते ॥ २० ॥ उस घोर संग्राम भूमिमें वृक्ष पर्वत और अस्त्र शस्त्रोंका भयंकर हृदयको फाड़नेंवाला शब्द सुनाई आनें लगा ॥ २१ ॥ संग्राममें रथके चक्रोंका घर घर शब्द धनुषकी टंकार शंख भेरी और मृदंगोंका बड़ा कठोर शब्द हुआ ॥ २२ ॥ अनन्तर कोई राक्षस वानर वीर

कारणकि महा पराक्रमकारी दैत्य महाबलवान वानर गण और गन्धर्वादिकोंके सहित देवतालोग या स्वयं इन्द्रभी ॥४७॥ मायाके बलसे क्रूर कर्म कारी मेघनादका रचा हुआ यह अति दारुण नागरूपी बाण बन्धन नहीं छुड़ा सकतेथे, इसी कारण आपको इस संकटसे छुटानेंके लिये हम आये॥४८॥ तीक्ष्ण दन्त युक्त महा विषधर यह कद्रूके पुत्र नाग गण राक्षसी मायाके प्रभावसेही बाण रूप होकर आपका आश्रय किये हुएथे ॥ ४९ ॥ हे धर्मज्ञ! सत्य पराक्रमकारी श्रीरामचंद्रजी! समरमें रिपुघाती इन भ्राता लक्ष्मणजीके सहित आप अपनेको बड़ाही भाग्यवान समझें; कारणकि भाग्यहीसे आप इस घोर बन्धनसे मुक्त हुएहैं ॥ ५० ॥ आपकी यह अत्यन्त शोचनीय दशा सुनकर हम बड़ीही शीघ्रतासे इस स्थानमें आये

असुरावामहावीर्यावानरावामहाबलाः ॥ सुराश्चापिसगंधर्वाःपुरस्कृत्यशतक्रतुम् ॥ ४७ ॥ नेमंमोक्षयितुंशक्ताःशरबं
धंसुदारुणम् ॥ मायाबलादिंद्रजितानिर्मितंक्रूरकर्मणा ॥ ४८ ॥ एतेनागाःकाद्रवेयास्तीक्ष्णदंष्ट्राविषोल्बणाः ॥ रक्षो
मायाप्रभावेणशरभूतास्त्वदाश्रयाः ॥ ४९ ॥ सभाग्यश्चासिधर्मज्ञरामसत्यपराक्रम ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्रासमरे
रिपुघातिना ॥ ५० ॥ इमंश्रुत्वातुविक्रांतस्त्वरमाणोहमागतः ॥ सहसैवावयोःस्नेहात्सखित्वमनुपालयन् ॥ ५१ ॥
मोक्षितौचमहाघोरादस्मात्सायकबंधनात् ॥ अप्रमादश्चकर्तव्योयुवाभ्यांनित्यमेवहि ॥ ५२ ॥ प्रकृत्याराक्षसाः
सर्वेसंग्रामेकूटयोधिनः ॥ शूराणांशुद्धभावानांभवतामार्जवंबलम् ॥ ५३ ॥ तन्नविश्वसनीयंवोराक्षसानांरणाजिरे ॥
एतेनैवोपमानेननित्यंजिह्माहिराक्षसाः ॥ ५४ ॥

हैं, हमारा यह आना केवल आपसे स्नेह करनेंहीके कारण हुआ ॥ ५१ ॥ इस समय अनायासमें यह कार्य हुआ कि हमनें आपको इस महाघोर सर्प रूपी बाण बन्धनसे छुटा दिया, अब आगेको आप सदाही सावधान रहाकरें ॥ ५२ ॥ आपकी समान शुद्ध स्वभाववाले शूर लोग रण भूमिमें सदा सरलतासेही युद्ध किया करतेहैं; परन्तु राक्षसगण सदाही संग्राममें छलते युद्ध किया करतेहैं ॥ ५३ ॥ इस कारण आप रणभूमिमें इन राक्षस लोगोंका किसी प्रकारसे भी विश्वास न कीजिये, कारण कि यह लोग सदाहीसे क्रूर बुद्धिवाले होतेहैं; अब तो आप एक इन्द्रजीतहीके

ढकनेंके कारण वह रणभूमि अत्यन्त भयंकरी होगई । हार, बाजू वस्त्रऔर कटे हुए शस्त्रोंसे सजनेंके कारण ॥ ३१ ॥ वह रणभूमि शरद ऋतुकी रात्रिके समान शोभा धारण करती हुई जिस प्रकार पवनके वेगसे मेघोंका जाल तितर वितर होकर पड़जाता है, वैसेही अंगदजीकी वीरता और उन करकै मर्दित होनेंसे राक्षसोंकी सैना कम्पायमान हुई ॥३२॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे त्रिपंचाशः सर्गः ॥५३॥ तब महाबलवान वज्रदंष्ट्र राक्षस अपनी सेनाका नाश और अंगदजीके बलका प्रकाश देखकर अत्यन्तही क्रोध करता हुआ ॥ १ ॥ उस समय वह वज्रदंष्ट्र वज्रकी समान प्रभावाला भयंकर धनुष बाण शब्दितकर और उसे चढ़ाय वानरोंकी सैनापर बाणोंकी वर्षा करनें लगा ॥ २ ॥ रथपर चढ़े हुए

भूमिर्भातिरणेतत्रशारदीवयथानिशा॥ अंगदस्यचवेगेनतद्राक्षसबलंमहत् ॥ प्राकंपततदातत्रपवनेनांबुदोयथा॥२२॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवा० आदिकाव्येयुद्धकांडेत्रिपंचाशःसर्गः ॥ ५३ ॥ ⁂ ॥ स्वबलस्यचघातेनअंगदस्यबलेन च ॥ राक्षसःक्रोधमाविष्टोवज्रदंष्ट्रोमहाबलः ॥ १ ॥ विस्फार्यचधनुर्घोरंशक्राशनिसमप्रभम् ॥ वानराणामनीकानि प्राकिरच्छरवृष्टिभिः ॥ २ ॥ राक्षसाश्चापिमुख्यास्तेरथैश्चसमवस्थिताः ॥ नानाप्रहरणाःशूराःप्रायुध्यंततदारणे ॥३॥ वानराणांचशूरास्तुतेसर्वेप्लवगर्षभाः ॥ अयुध्यंताशिलाहस्ताःसमवेताःसमंततः ॥ ४ ॥ तत्रायुधसहस्राणितस्मिन्न्नायोधनेभृशम् ॥ राक्षसाःकपिमुख्येषुपातयांचक्रिरेतदा ॥ ५ ॥ वानराश्चैवरक्षःसुगिरिवृक्षान्महाशिलाः ॥ प्रवीराः पातयामासुर्मत्तवारणसन्निभाः ॥ ६ ॥ शूराणांयुध्यमानानांसमरेष्वनिवर्तिनाम् ॥ तद्राक्षसगणानांचसुयुद्धंसमवर्तत ॥ ७ ॥अभग्नशिरसःकेचिच्छिन्नैःपादैश्चबाहुभिः ॥ शस्त्रैरर्दितदेहास्तुरुधिरेणसमुक्षिताः ॥ ८ ॥

विविध भांतिके अस्त्र शस्त्र धारण किये बड़े २ शूर निशाचरभी युद्ध करनेंलगे ॥३॥ कूदनें फादनेंमे चतुर शूर वानर गणभी एकत्र हो शिला हाथमें लेकर सर्व प्रकारसे युद्ध करनें लगे ॥ ४ ॥ उस रणभूमिमें राक्षसोंने वानरश्रेष्ठोंके ऊपर सहस्र २ घोर कठोर बाण चलाये ॥ ५ ॥ मतवाले हाथियोंकी समान वानर वीर गणभी राक्षसोंको ताक २ कर बडे २ वृक्ष और बडी २शिलायें चलाने लगे ॥ ६ ॥ इस प्रकार संग्राममें न लौटने वाले और समराभिलाषी उन राक्षस और वानरोंका महाघोर युद्ध आरंभहुआ ॥७॥ उनमें से किसी २ के शिर कट गये और किसी किसीके चरण

होकर प्रथमहीकी समान क्रीडा करने लगे ॥ ६२ ॥ व औरभी शत सहस्र पर्वतोंसे युद्ध करनेवाले विकराल वानरगण विविध भांतिके वृक्षों को उखाडते फांदते कूदते दलके दल खडेहो ॥ ६३ ॥ राक्षसोंको त्रासित करते हुए बड़ाभारी नादकरने लगे और वह सब वानर युद्धकी कामनासे आगे बढकर लंकापुरीके द्वारपर जाय पहुंचे ॥ ६४ ॥ ग्रीष्म कालके अंत समय रात्रिके समय शब्दायमान घनघटा समूहके भयंकर गर्जनकी समान उन वानर यूथनाथोंका भयंकर कठोर सिंहनाद श्रवण गोचर होने लगा ॥ ६५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे पंचाशः सर्गः ॥ ५० ॥ ॥ ७ ॥ इस ओर विभीषण इत्यादि राक्षस गणोंके सहित शब्दायमान उन महातेजस्वी

अपरेस्फोट्यविक्रांतावानरानगयोधिनः ॥ द्रुमानुत्पाट्यविविधांस्तस्थुःशतसहस्रशः ॥ ६३ ॥ विसृजंतोमहानादां स्त्रासयंतोनिशाचरान् ॥ लंकाद्वाराण्युपाजग्मुर्युद्धकामाःप्लवंगमाः ॥ ६४ ॥ तेषांसुभीमस्तुमुलोनिनादोबभूवशाखा मृगयूथपानाम् ॥ क्षयेनिदाघस्ययथाघनानांनादःसुभीमोनदतांनिशीथे ॥ ६५ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०युद्धकांडेपं चाशःसर्गः ॥ ५० ॥७॥ तेषांतुतुमुलंशब्दंवानराणांमहौजसाम् ॥ नर्दतांराक्षसैःसार्धंतदाशुश्रावरावणः ॥ १ ॥ स्नि ग्धगंभीरनिर्घोषंश्रुत्वातंनिनदंभृशम् ॥ सचिवानांततस्तेषांमध्येवचनमब्रवीत् ॥ २ ॥ यथाऽसौसंप्रहृष्टानांवानरा णामुपस्थितः ॥ बहूनांसुमहान्नादोमेघानामिवगर्जताम् ॥ ३ ॥ सुव्यक्तंमहतीप्रीतिरेतेषांनात्रसंशयः ॥ तथाहिविपुलै र्नादैश्चुक्षुभेलवणार्णवः ॥ ४ ॥ तौतुबद्धौशरैस्तीक्ष्णैर्भ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ अयंचसुमहान्नादःशंकांजनयतीवमे ॥ ५ ॥

वानरवृन्दोंका तुमुल कठोर सिंहनाद राक्षसोंके स्वामी रावणने सुना ॥ १ ॥ वह रावण स्पष्ट गंभीर और कठोर सिंहनाद वार २ श्रव ण करके अपने मंत्रियोंसे जोकि वहां बैठेथे यह कहने लगा ॥ २ ॥ जब कि हर्षितचित्त हुए उन वानरोंका यह घोर सिंहनाद सुनाई आता है, जब कि वादलकी समान वह वानर गंभीर गर्जन कर रहे हैं ॥ ३ ॥ तब इसमे कोईभी सन्देह नहीं है कि उनको कोई बड़ी प्रसन्नता प्राप्त हुईहै यह देखो उनके बड़े भारी शब्दसे क्षार समुद्रभी खल बलाय रहाहै ॥ ४ ॥ वह दोनों भाई राम और लक्ष्मण तीक्ष्ण बाणोंसे बंध गयेथे; परन्तु इस

वज्रदंष्ट्रभी अंगदजीको वार २ क्रोधकी दृष्टिसे देखनें लगा ॥ १६ ॥ तब वज्रदंष्ट्र और अंगदजी दोनोही अत्यन्त क्रोधमें भरकर युद्ध करनें लगे
उस समय वह दोनो मतवाले हाथी और केशरी (सिंह) की समान जान पड़तेथे ॥ १७ ॥ तिसके पीछे राक्षसोंकी सैनाके पति वज्रदंष्ट्रने
अग्निकी शिखाके समान हजार बाण चलायकर वानर सैनापति अंगदजी के मर्म स्थानमें प्रहार किया ॥ १८ ॥ उस अत्यन्त हजार बाणका प्रहा
र लगनेंसे वालिकुमार अंगदजीके सब शरीरसे रुधिर निकलने लगा और इन्होनें भयंकर शब्दसे गर्जकर उस राक्षस वज्रदंष्ट्रके ऊपर एक
बडा भारी वृक्ष चलाया ॥ १९ ॥ राक्षस वज्रदंष्ट्रने उस बडे भारी वृक्षको अपने ऊपर गिरता हुआ देखकर अति सावधानीसे बाण चलाय उसके

वज्रदंष्ट्रोंऽगदश्चोभौयोयुध्येतेपरस्परम् ॥ चेरतुःपरमक्रुद्धौहरिमत्तगजाविव ॥ १७ ॥ ततःशरसहस्रेणहरिपुत्रं
महाबलम् ॥ जघानमर्मदेशेषुशरैरग्निशिखोपमैः ॥ १८ ॥ रुधिरोक्षितसर्वांगोवालिसूनुर्महाबलः ॥ चिक्षेपव
ज्रदंष्ट्रायवृक्षंभीमपराक्रमः ॥ १९ ॥ दृष्ट्वापतंतंतंवृक्षमसंभ्रांतश्चराक्षसः ॥ चिच्छेदबहुधासोपिमथितःप्रापतद्भुवि
॥ २० ॥ तंदृष्ट्वावज्रदंष्ट्रस्यविक्रमंप्लवगर्षभः ॥ प्रगृह्यविपुलंशैलंचिक्षेपचननादच ॥ २१ ॥ तमापतंतंदृष्ट्वासरथादा
प्लुत्यवीर्यवान् ॥ गदापाणिरसंभ्रांतःपृथिव्यांसमतिष्ठत ॥ २२ ॥ अंगदेनशिलाक्षिप्तागत्वातुरणमूर्धनि ॥ सचक्रकू
बरंसाश्वप्रममाथरथंतदा ॥ २३ ॥ ततोऽन्यच्छिखरंगृह्यविपुलंद्रुमभूषितम् ॥ वज्रदंष्ट्रस्यशिरसिपातयामासवान
रः॥२४॥अभवच्छोणितोद्गारीवज्रदंष्ट्रःसुमूर्च्छितः ॥ मुहूर्तमभवन्मूढोगदामालिंग्यनिःश्वसन् ॥ २५ ॥

टुकडेकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ २० ॥ वानरश्रेष्ठ अंगदजीनें वज्रदंष्ट्रका ऐसा विक्रम देखकर एक अत्यन्त बडी शिला ग्रहण करके उसके ऊपर
चलाय सिंह नादकरने लगे ॥ २१ ॥ परन्तु वीर्यवान राक्षस वज्रदंष्ट्र उस शिलाको गिरता हुआ देख रथसे छलांग मार भ्रमरहितहो गदा हाथमें ले
पृथ्वीपर खड़ा होगया ॥ २२ ॥ तिसकाल अंगदजीकी चलाई हुई शिलाने अत्यन्त जोरसे गिरकर रणभूमिके बीचमें टिका हुआ, चक्र और कूबरके
सहित वज्रदंष्ट्रके रथको चूर्ण कर डाला ॥ २३ ॥ तब वानरोंके सैनापति अंगदजीनें वृक्षोंसे शोभायमान एक पर्वतका शिखर उखाड़कर उस राक्षस
वज्रदंष्ट्रके शिरपर देमारा ॥ २४ ॥ उस घोर शैलशृङ्गकी चोट लगनेंसे रुधिर वमन करता हुआ वज्रदंष्ट्र मूर्च्छित होगया, और एक मुहूर्त भर

तव रावण कुछ एक रुष्ट होकर कहनें लगा कि मेघनादनें संग्राम स्थलमें भलीभांति मान मर्दनकर अति घोर वर प्राप्त किये हुए विषधर सर्पोंकी समान सफल और सूर्यवत्प्रकाशित बाणोंसे जिनको बंधन कियाथा॥१५॥जब कि वह शत्रु ऐसे बाण बन्धनसेभी छुटगये तब हमको ऐसा नहीं जान पड़ता कि हम इस राक्षसोंकी सैनासे विजयको प्राप्त करेंगे ॥ १६ ॥ आश्चर्यहै कि जिन सब अस्त्रोंने संग्राम भूमिमें वारंवार शत्रुगणोके प्राण हरण कियेथे, आज वही अग्निकी समान तेजस्वी अस्त्र हमारे कुभाग्यहीसे निष्फल होगये ॥ १७ ॥ यह कहकर रावण अत्यन्त क्रोधमें भरकर सर्प की समान लंबे २ श्वासलेने लगा; और कुछ देर पीछे रावण राक्षसोंके बीचमें बैठे हुए धूम्राक्षसे कहता हुआ ॥ १८ ॥ कि हे भयंकर विक्रमका

घोरैर्दत्तवरैर्बद्धौशरैराशीविषोपमैः ॥ अमोघैःसूर्यसंकाशैःप्रमथ्येंद्रजितायुधि ॥ १५ ॥ तदस्त्रबंधमासाद्ययदिमुक्तौ रिपूमम ॥ संशयस्थमिदंसर्वमनुपश्याम्यहंबलम् ॥ १६ ॥ निष्फलाःखलुसंवृत्ताःशराःपावकतेजसः॥ आदत्तंयैस्तुसं ग्रामेरिपूणांजीवितंमम ॥१७॥एवमुक्त्वातुसंक्रुद्धोनिःश्वसन्नुरगोयथा ॥अब्रवीद्रक्षसांमध्येधूम्राक्षंनामराक्षसम्॥१८॥ बलेनमहतायुक्तोराक्षसैर्भीमविक्रमैः ॥ त्वंवधायाशुनिर्याहिरामस्यसहवानरैः ॥ १९ ॥ एवमुक्तस्तुधूम्राक्षोराक्षसेंद्रे णधीमता ॥ परिक्रम्यततःशीघ्रंनिर्जगामनृपालयात् ॥ २० ॥ अभिनिष्क्रम्यतद्द्वारंबलाध्यक्षमुवाचह ॥ त्वरयस्व बलंशीघ्रंकिंचिरेणयुयुत्सतः ॥ २१ ॥ धूम्राक्षवचनंश्रुत्वाबलाध्यक्षोबलानुगः ॥ बलमुद्योजयामासरावणस्याज्ञया भृशम् ॥ २२ ॥ तेबद्धघंटाबलिनोघोररूपानिशाचराः ॥ विनद्यमानाःसंहृष्टाधूम्राक्षंपर्यवारयन् ॥ २३ ॥

री ! वानर गणोंके और रामचंद्रका संहार करनेंके लिये तुम बड़ीभारी सैनाको संग लेकर शीघ्र युद्ध करनेंको जाओ ॥ १९ ॥ राक्षस धूम्राक्ष, बुद्धिमान राक्षसोंके स्वामी रावणकी ऐसी आज्ञा पाय उसकी प्रदक्षिणा करता हुआ अतिशीघ्र राजभवनसे बाहर निकला ॥ २० ॥ राक्षस धूम्राक्षनें राजद्वारके बाहर आयकर सैनाध्यक्षसे कहा कि,—हम युद्धमें जाना चाहते हैं, इस कारण कुछभी विलंब न लगायकर झटपट सैनाको सजाओ ॥ २१ ॥ धूम्राक्षके वचन सुन सैनाध्यक्षनें रावणकी आज्ञानुसार समस्त सैनाको बहुतही शीघ्र सजाया ॥ २२ ॥ घोररूपी राक्षसगण सिंह

तब महाबलवान अंगदजीने अत्यन्त तीक्ष्ण और विमल चमकते दमकते खड्गकी चोटसे वज्रदंष्ट्रका शिर काटकर पृथ्वीपर गिरादिया ॥ ३४ ॥ राक्षस वीर वज्रदंष्ट्रकी देह दोखंड होकर गिर पड़ी; सर्व शरीरसे रुधिर निकलनें लगा, उसकी दोनों आंखें उलट गईं और रुण्डपरसे पृथक् होकर शिर नीचे गिरपड़ा ॥३५॥ राक्षसगण वज्रदंष्ट्रको माराहुआ देखकर भयके मारे विह्वलहो लंकापुरीको भागगये। भागनेंके समय वानरवीरोंनें उनके ऊपर ऐसी मार धाड़ मचाईकि राक्षसोंके मरनेंमें कुछ कसर न रही। यह समस्त राक्षस इस अवस्थामें व्याकुलवदन और दीनभावयुक्तहो लज्जा से मुखको नीचा करके लंकामें प्रवेश करते हुए ॥ ३६ ॥ इस प्रकारसे इन्द्रकी समान प्रतापवान वह महाबलशाली वालिकुमार अंगदजी वानरोंकी

निर्मलेनसुधौतेनखड्गेनास्यमहच्छिरः ॥ जघानवज्रदंष्ट्रस्यवालिसूनुर्महाबलः ॥ ३४ ॥ रुधिरोक्षितगात्रस्यबभूवप तितंद्विधा ॥ तच्चतस्यपरीताक्षंशुभंखड्गहतंशिरः ॥ ३५ ॥ वज्रदंष्ट्रंहतंदृष्ट्वाराक्षसाभयमोहिताः ॥ त्रस्ताह्यभ्यद्रवँल्लं कांवध्यमानाःप्लवंगमैः ॥ विषण्णवदनादीनाह्रियाकिंचिदवाङ्मुखाः ॥ ३६ ॥ निहत्यतंवज्रधरःप्रतापवान्सवालिसूनुः कपिसैन्यमध्ये ॥ जगामहर्षंमहितोमहाबलःसहस्रनेत्रस्त्रिदशैरिवावृतः ॥ ३७ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०युद्धकांडेच तुष्पंचाशःसर्गः ॥ ५४ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ वज्रदंष्ट्रंहतंश्रुत्वावालिपुत्रेणरावणः ॥ बलाध्यक्षमुवाचेदंकृतांजलिमुपस्थित म् ॥ १ ॥ शीघ्रंनिर्यांतुदुर्धर्षाराक्षसाभीमविक्रमाः ॥ अकंपनंपुरस्कृत्यसर्वशस्त्रास्त्रकोविदम् ॥ २ ॥

सैनाके वीचमें उस राक्षस वज्रदंष्ट्रको मार परम प्रसन्नता प्राप्त करतेहुए, और देवतालोगोंके वीचमें बैठे सहस्रलोचन इन्द्रकी नाईं वानरगणोंसे पूजित हुए ॥ ३७ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० चतुष्पंचाशः सर्गः ॥ ५४ ॥ तिसके पीछे लंकापति रावण वालिके पुत्र अंगदजीके हाथसे वज्रदंष्ट्र राक्षसको माराहुआ सुन निकटही हाथ जोड़कर खड़ेहुए सैनापति प्रहस्तसे बोला ॥ १ ॥ कि भयंकर विक्रम करनेंवाले दुर्द्धर्ष निशाचर लोक समस्त अस्त्र शस्त्रोंके जाननेंमें पंडित राक्षस अकम्पनको अपना

भयंकर गिद्ध आकाशसे गिरा ॥ ३१ ॥ मांसके खानेंवाले, पक्षिगण गुँथी हुई मालाकी समान लंगार (श्रेणी) से उसके रथकी ध्वजापर गिरनें लगे और रुधिरमें सना हुआ अत्यंत श्वेत कबंध धूम्राक्षके निकट पृथ्वी पर गिरा ॥ ३२ ॥ अत्यन्त भयंकर शब्द करता हुआ कबंध धूम्राक्षके सन्मुख गिरा । बादलोंसे रुधिरकी वर्षा होनें लगी, और पृथ्वी कंपायमान हुई ॥ ३३ ॥ और वज्रकी समान शब्द करताहुआ पवन चलनें लगा, घोर अंधकारसे ढकजानेंके कारण दशोंदिशा अप्रकाशित होगईं ॥ ३४ ॥ राक्षस धूम्राक्ष राक्षस लोगोंके यह अमंगल भयजनक घोर उत्पात देखकर हृदयमें अत्यन्त भय करता हुआ;और उसके साथ चलनेंवाली राक्षसोंकी सैनाभी यह अचानक अमंगल शकुन देखकर मूर्च्छित

ध्वजाग्रेग्रथिताश्चैवनिपेतुःकुणपाशनाः ॥ रुधिरार्द्रोमहान्श्वेतःकबंधःपतितोभुवि ॥ ३२ ॥ विस्वरंचोत्सृजन्नादा न्धूम्राक्षस्यनिपातितः ॥ ववर्षरुधिरंदेवःसंचचालचमेदिनी ॥३३॥ प्रतिलोमंववौवायुर्निर्घातसमनिःस्वनः ॥ तिमिरौ घावृतास्तत्रदिशश्चनचकाशिरे ॥ ३४ ॥ सतूत्पातांस्ततोदृष्ट्वाराक्षसानांभयावहान् ॥ प्रादुर्भूतान्सुघोरांश्चधूम्राक्षो व्यथितोभवत् ॥ मुमुहूराक्षसाःसर्वेधूम्राक्षस्यपुरःसराः ॥ ३५ ॥ ततःसुभीमोबहुभिर्निशाचरैर्वृतोभिनिष्क्रम्यरणोत्सु कोबली ॥ ददर्शतांराघवबाहुपालितांमहौघकल्पांबहुवानरींचमूम् ॥ ३६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआ दिकाव्येयुद्धकांडेएकपंचाशःसर्गः ॥ ५१ ॥ ॥ ७॥ धूम्राक्षंप्रेक्ष्यनिर्यांतंराक्षसंभीमविक्रमम् ॥ विनेदुर्वानराःसर्वेप्र हृष्टायुद्धकांक्षिणः ॥ १ ॥ तेषांसुतुमुलंयुद्धंसंजज्ञेकपिरक्षसाम् ॥ अन्योन्यंपादपैर्घोरैर्निघ्नतांशूलमुद्गरैः ॥ २ ॥

होगई ॥ ३५ ॥ तिसके पीछे रण करनेंकी इच्छा किये महाबलवान भयंकररूप राक्षस धूम्राक्ष असंख्य निशाचरगणोंके सहित, लंकापुरीसे बाहर आय श्रीरामचंद्रजीकी बाहुसे रक्षित प्रलयके समुद्रकी समान उन वानरोंकी सैनाको देखता हुआ कि जिसका कुछ ओर छोर नथा ॥ ३६ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० एकपंचाशः सर्गः ॥ ५१ ॥ युद्धकी अभिलाषा किये वानरगण भयंकर विक्रमकारी राक्षस धूम्राक्षको युद्ध करनेंके लिये आये हुए देखकर हर्षित मनसे सिंहनाद करनें लगे ॥ १ ॥ तिसके पीछे धीरे २ उन वानर और राक्षसोंका घोर कठोर

अचानक दीनभाव प्राप्त हुआ,युद्ध करनेंको प्रसन्नतासे चलेजाते हुए अकम्पनका वांया नेत्रभी फडकनें लगा ॥ १० ॥ इसका मुखमंडल मलीन
होगया, और कंठस्वर विरूपताको प्राप्त हुआ, उस दिनके समय दुर्दिन आय पहुंचा पवन रूखेपनसे वहनें लगी ॥ ११ ॥ और मृग पक्षीगण सबहीके
भयका उपजानेंवाला क्रूर शब्द करना आरंभ करनें लगे; परन्तु सिंहकी समान ऊँचे कंधोंवाला और शार्दूलकी समान विक्रमकारी ॥ १२ ॥ वह
अकम्पनवीर; इन उत्पातोंको कुछभी नहीं समझताहुआ रणभूमिको चला; वह निशाचर राक्षसोंकी सैनाके साथ लंकापुरीसे निकला ॥ १३ ॥
इस सैनाका इस प्रकारका वड़ाभारी शब्द हुआ कि जिस्से समुद्रमेंभी खलबली पडगई, और वानरोंकी सैनाभी उस शब्दसे त्रासित होकर ॥१४॥
विवर्णोमुखवर्णश्चगद्गदश्चाभवत्स्वनः ॥ अभवत्सुदिनेकालेदुर्दिनंरूक्षमारुतम् ॥ ११ ॥ ऊचुःखगमृगाःसर्वेवाचःक्रू
राभयावहाः ॥ ससिंहोपचितस्कंधःशार्दूलसमविक्रमः ॥ १२ ॥ तानुत्पातानचिंत्यैवनिर्जगामरणाजिरम् ॥ तथानि
र्गच्छतस्तस्यरक्षसःसहराक्षसैः ॥ १३ ॥ बभूवसुमहान्नादःक्षोभयन्निवसागरम् ॥ तेनशब्देनवित्रस्तावानराणांमहा
चमूः ॥ १४ ॥ द्रुमशैलप्रहाराणांयोद्धुंसमुपतिष्ठताम् ॥ तेषांयुद्धंमहारौद्रंसंजज्ञेकपिरक्षसाम् ॥ १५ ॥ रामरावण
योरर्थेसमभित्यक्तदेहिनः ॥ सर्वेह्यतिबलाःशूराःसर्वेपर्वतसन्निभाः ॥ १६ ॥ हरयोराक्षसाश्चैवपरस्परजिघांसया ॥
तेषांविनर्दतांशब्दःसंयुगेऽतितरस्विनाम् ॥ १७ ॥ शुश्रावसुमहान्कोपादन्योन्यमभिगर्जताम् ॥ रजश्चारुणवर्णाभ
सुभीममभवद्भृशम् ॥ १८ ॥ उद्धूतंहरिरक्षोभिःसंरुरोधदिशोदश ॥ अन्योन्यंरजसातेनकौशेयोद्धतपांडुना ॥ १९ ॥
उसी समय वृक्ष और पर्वतोंको उठाय २ युद्ध करनेंके लिये आगे बढ़ी। तब उन वानर और राक्षसोंका महा घोरयुद्ध आरंभ हुआ ॥ १५ ॥
अनन्तर श्रीरामचंद्रजी और रावणके लिये प्राणतक त्यागना दोनो ओरके वीरोंनें विचारा दोनोंही बलवान विक्रमशाली और पर्वताकारथे ॥ १६ ॥
राक्षस और वानरगण परस्पर एक दूसरेको मार डालनेंके लिये तैयारथे । अतिवेगवान तिन वानर और राक्षसोंका शब्द समरमें ॥ १७ ॥ श्रवण
गोचर होंनें लगा, दोनो दलोंकेही क्रोधसहित गर्जनेंका महाभयानक शब्द उठा, दोनो दलोंमें धूम पड़नेसे वड़ी भारी लाल २ धूल उड़ी ॥१८॥
वानर और राक्षसोंके चरणोंकी उडीहुई धूलसे दशोंदिशा पूर्ण होगई, यह धूल धूसर वर्णकी कुछ २ लालपन लिये हुएथी ॥ १९ ॥

ही प्रहारसे चीर फाड़कर काटे गये ॥ ११ ॥ कोई २ ध्वजाओंसे मल डाले गये कोई खड्ग पृथ्वीपर खड़ा होगया ॥ २८ ॥ हनुमानजीकी चलाई
कितनेही राक्षस अत्यन्त व्यथित हुए ॥ १२ ॥ पर्वतोंके शिखरकी समान पर्वताकार हाथी वानर गण और वह शिला पृथ्वीमें गिरी ॥ २९ ॥
वह समर भूमि पूर्ण होगई ॥ १३ ॥ भयंकर विक्रमकारी वेगवान वानरगण वारंवार छलांग मारते हुए अपने नखोंसे निशाचरोंके मुंह लगे ॥ ३० ॥
फाड़नें लगे ॥ १४ ॥ तब राक्षस इस अवस्थाको पाय अत्यन्त विषादित हुए, उनके बाल खुलगये, और वह बराबर वहते हुए रुधिर गन्
मूर्च्छितहो पृथ्वीपर गिरनें लगे ॥ १५ ॥ इसी समयमें बहुत सारे राक्षस गण क्रोधसे प्रदीप्त हो वेगवान वानरोंको, वज्रकी समान लात मारनेंके

ध्वजैर्विमथितैर्भग्नैःखड्गैश्चविनिपातितैः ॥ रथैर्विध्वंसिताःकेचिद्व्यथितारजनीचराः ॥ १२ ॥ गजेंद्रैःपर्वताकारैःपर्व
ताग्रैर्वनौकसाम् ॥ मथितैर्वाजिभिःकीर्णंसारोहैर्वसुधातलम् ॥ १३ ॥ वानरैर्भीमविक्रांतैराप्लुत्योत्प्लुत्यवेगितैः ॥ राक्ष
साःकरजैस्तीक्ष्णैर्मुखेषुविनिदारिताः ॥ १४ ॥ विषण्णव भूयोविप्रकीर्णशिरोरुहाः ॥ मूढाःशोणितगंधेननिपेतुर्धर
णीतले ॥ १५ ॥ अन्येतुपरमक्रुद्धाराक्षसाभीमविक्र । तलैरेवाभिधावंतिवज्रस्पर्शसमैर्हरीन् ॥ १६ ॥ वानरैः
पातयंतस्तेवेगितावेगवत्तरैः ॥ मुष्टिभिश्चरणैर्दंतैःपादपैश्चावपोथिताः ॥१७ ॥ सैन्यंतुविद्रुतंदृष्ट्वाधूम्राक्षोराक्षसर्षभः॥
रोषेणकदनंचक्रेवानराणांयुयुत्सताम् ॥ १८॥ प्रासैःप्रमथिताःकेचिद्वानराःशोणितस्रवाः ॥ मुद्गरैराहताःकेचित्पति
ताधरणीतले ॥ १९ ॥ परिघैर्मथिताःकेचिद्भिंदिपालैश्चदारिताः ॥ पट्टिशैर्मथिताःकेचिद्विह्वलंतोगतासवः ॥ २० ॥

लिये उनकी ओर दौड़े ॥ १६ ॥ परन्तु वेगवान वानरगण;—घूंसा, लात, दांत, और वृक्षोंसे उनको इस प्रकारकि मार देनें लगे, कि वह राक्षस उन
के सामने स्थिर न रहकर भाग निकले ॥ १७ ॥ तिसके पीछे राक्षसश्रेष्ठ धूम्राक्ष अपनी सैनाको चलायमान देखकर क्रोधमें भर वानरोंके ऊपर
प्रहार करनें लगा ॥ १८ ॥ तब कोई २ वानर तो बाण लगनेंसे मर्दित होगये और उनके शरीरसे रुधिर वहनें लगा, और अनेक वानर मुद्गरोंसे घा
यल होकर पृथ्वीपर गिरते हुए ॥ १९ ॥ कोई २ वानर परिघसे, और कोई पटेसे कुचल डाले गये,और कोई धनवासी लगनेंके कारण घायल होनेंसे

हर्षित करानें लगा;वानर लोगभी राक्षसोंको बड़े २ वृक्ष और बड़ीशिलायें ग्रहण कर ॥ २९ ॥ बलपूर्वक राक्षसोंके अस्त्र शस्त्र उनको विदारण करनें लगे, कि उसी अवसरमें वानर वीर, कुमुद, नल, ॥३०॥ मैन्दादि सब महाक्रोध कर बड़ावेग करनेंलगे। यह महावीर वानर गण बड़े २ वृक्षोंको लेकर सैनाके मुखमें टिके हुए ॥३१॥ लीलासेही खेलसा करते हुए राक्षसोंकी बड़ीभारी दुर्दशा करनें लगे; इन वानरश्रेष्ठोंनें यहां तक वृक्ष चलाये, कि बहुतसे राक्षस मृतक होगये। इन वानरोंनें औरभी अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंसे राक्षसोंका मान मथडाला ॥ ३२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पंचपंचाशः सर्गः ॥ ५५ ॥ तब वानर वीरगणोंका अद्भुत विक्रम देखकर और उनके बड़ेभारी

विदारयंत्यभिक्रम्यशस्त्राण्याच्छिद्यवीर्यतः ॥ एतस्मिन्नंतरेवीराहरयःकुमुदोनलः ॥ ३० ॥ मैंदश्चपरमक्रुद्धश्चक्रुर्वेगमनुत्तमम् ॥ तेतुवृक्षैर्महावीराराक्षसानांचमूमुखे ॥ ३१ ॥ कदनंसुमहच्चक्रुर्लीलयाहरिपुंगवाः ॥ ममंथूराक्षसान्सर्वेनानाप्रहरणैर्भृशम् ॥ ३२ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० युद्ध० पंचपंचाशः सर्गः ॥५५॥ ॥छ॥ ॥ तद्दृष्ट्वासुमहत्कर्मकृतंवानरसत्तमैः ॥ क्रोधमाहारयामासयुधितीव्रमकंपनः ॥ १ ॥ क्रोधमूर्छितरूपस्तुधुन्वन्परमकार्मुकम् ॥ दृष्ट्वातुकर्मशत्रूणांसारथिंवाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥ तत्रैवतावत्त्वरितोरथंप्रापयसारथे ॥ एतेचबलिनोघ्नंतिसुबहून्राक्षसान्रणे ॥ ३ ॥ एतेचबलवंतोवाभीमकोपाश्चवानराः ॥ द्रुमशैलप्रहरणास्तिष्ठंतिप्रमुखेमम ॥ ४ ॥ एतान्निहंतुमिच्छामिसमरश्लाघिनोह्यहम् ॥ एतैःप्रमथितंसर्वंरक्षसांदृश्यतेबलम् ॥ ५ ॥

कार्यको विचारकर राक्षस सैनापति अकंपननें अत्यन्त क्रोधकिया ॥ १ ॥वह वीर अकंपन शत्रुलोगोंका ऐसा कर्म देखकर बड़ा भारी विचित्र शरासन ग्रहण कर उसपर टंकारदे क्रोधसे मूर्छितहो अपने सारथिसे बोला ॥ २ ॥ हेसारथे! यह बलवान वानर गण संग्राममें अगणित राक्षसोंको संहार कर रहेहैं, इस कारण जहांपर यह वानरहैं, वहीं पर हमारा रथ ले चलो ॥३॥ जो वानर लोग कि वृक्ष और शिलारूप हथियार धारण किये हुए हमारे सामने टिकेहैं; यह समरकी अभिलाषा किये भयंकर कोप करनेंवाले वानर अतिशय बलवानहैं ॥ ४ ॥ इस कारण हम पहले इन

शिलाको अपने ऊपर आती देख बडी शीघ्रताके साथ रथसे छलांगमार गदा ग्रहण कर पृथ्वीपर खड़ा होगया ॥ २८ ॥ हनुमानजीकी चलाई गदाके प्रहारसे केवल धूम्राक्षका रथही चूर्ण नहीं हुआ, वरन, चक्र, कूवर, ध्वजा और धनुष बाणतक नष्ट करके वह शिला पृथ्वीमें गिरी ॥ २९ ॥ तिसके पीछे हनुमानजी धूम्राक्षके रथको छोड़ कर शाखा और पत्तोंके सहित वृक्षोंसे राक्षसोंका विध्वंस करनें और उनको भगानें लगे ॥ ३० ॥ तब वृक्षोंके द्वारा पीड़ित होनेंसे राक्षसोंके शिर फूट गये और इस कारण रुधिरकी धारा निकलनेंसे वह पृथ्वी पर गिरनें लगे कुछेक राक्षस मार डालेगये और कितनोंनें अपने प्राणोंकी आशा छोड़दी ॥ ३१ ॥ पवनकुमार हनुमानजी इस प्रकारसे राक्षसोंकी सैनाको तितर वितर कर भगाय

साप्रमथ्यरथंतस्यनिपपाताशिलाभुवि ॥ सचक्रकूबरमुखंसध्वजंसशरासनम् ॥ २९ ॥ सत्यक्त्वातुरथंतस्यहनूमान्मारुतात्मजः ॥ रक्षसांकदनंचक्रेसस्कंधविटपैर्द्रुमैः ॥ ३० ॥ विभिन्नशिरसोभूत्वाराक्षसारुधिरोक्षिताः ॥ द्रुमैः प्रमथिताश्चान्येनिपेतुर्धरणीतले ॥ ३१ ॥ विद्राव्यराक्षससैन्यंहनूमान्मारुतात्मजः ॥ गिरेःशिखरमादायधूम्राक्षमभिदुद्रुवे ॥ ३२ ॥ तमापतंतंधूम्राक्षोगदामुद्यम्यवीर्यवान् ॥ विनर्दमानःसहसाहनूमंतमभिद्रवत् ॥ ३३ ॥ तस्य क्रुद्धस्यरोषेणगदांतांबहुकंटकाम् ॥ पातयामासधूम्राक्षोमस्तकेऽथहनूमतः ॥ ३४ ॥ ताडितःसतयातत्रगदयाभीमवेगया ॥ सकपिर्मारुतबलस्तंप्रहारमचिंतयत् ॥ ३५ ॥ धूम्राक्षस्यशिरोमध्येगिरिशृंगमपातयत् ॥ सविस्फारितसर्वांगोगिरिशृंगेणताडितः ॥ ३६ ॥

एक पर्वतका शृङ्ग ग्रहण करके धूम्राक्षके सामनें दौड़े ॥ ३२ ॥ वीर्यवान राक्षस धूम्राक्षभी हनुमानजीको अपनी ओर आता हुआ देख सिंहनादकर एक गदा उठाय उनके सन्मुख हुआ ॥ ३३ ॥ तिसके पीछे धूम्राक्षनें क्रोधमे भरकर वह अपनी बहुत कांटोंसे युक्त गदा क्रोधित हनुमानजीके शिरपर मारी ॥ ३४ ॥ परन्तु पवनकी समान बलवान हनुमानजी उस भयंकर वेगवाली गदाका प्रहार अपनें शिरमें लगनेंसेभी उस प्रहारको कुछभी नहीं समझते हुए कि जानें कहां लगा ॥ ३५ ॥ तिसके पीछे अञ्जनीहृदयनंदन पवनकुमार हनुमानजीनें अपनी वह पहली ग्रहणकीहुई

घोर सिंहनाद करतेहुए उनका रूप अत्यन्त असह होगया और वह प्रदीप्त अग्निकी समान अपने तेजसे आपही प्रकाशित हुए ॥ १४ ॥ वानर श्रेष्ठ क्रोधयुक्त हनुमानजीनें अपने आपको जब आयुधसे हीन जाना तब अतिवेगसे इन्होंनें एक पर्वत उखाड लिया ॥ १५ ॥ और एक हाथसे उस महापर्वतको ग्रहण कर पवननंदन हनुमानजी वारंवार सिंहनादकरके उस पर्वतको घुमानेंलगे ॥ १६ ॥ पहले देवराज इन्द्रजी संग्राममें जिस प्रकार नमुचि दैत्यपर दौड़ेथे, वैसेही श्रीहनुमानजी राक्षसश्रेष्ठ अकंपनकी ओर दौड़े ॥ १७ ॥ परन्तु अकम्पननें हनुमानजीको गिरि शृंग लिये आता हुआ देखकर दूरसेही बड़े भारी अर्द्धचन्द्र बाण चलाय इस पर्वतको खंड २ कर डाला ॥ १८ ॥ हनुमानजी उस पर्वतको राक्ष

आत्मानंत्वप्रहरणंज्ञात्वाक्रोधसमन्वितः ॥ शैलमुत्पाटयामासवेगेनहरिपुंगवः ॥ १५ ॥ गृहीत्वासुमहाशैलंपाणिनैकेनमारुतिः ॥ सविनद्यमहानादंभ्रामयामासवीर्यवान् ॥ १६ ॥ ततस्तमभिदुद्रावराक्षसेंद्रमकंपनम् ॥ पुराहिनमुचिंसंख्येवज्रेणेवपुरंदरः ॥ १७ ॥ अकंपनस्तुतद्दृष्ट्वागिरिशृंगंसमुद्यतम् ॥ दूरादेवमहाबाणैरर्धचंद्रैरदारयत् ॥ १८ ॥ तंपर्वताग्रमाकाशेरक्षोबाणविदारितम् ॥ विकीर्णपतितंदृष्ट्वाहनूमान्क्रोधमूर्छितः ॥ १९ ॥ सोश्वकर्णसमासाद्यरोषदर्पान्वितोहरिः ॥ तूर्णमुत्पाटयामासमहागिरिमिवोच्छ्रितम् ॥ २० ॥ तंगृहीत्वामहास्कंधंसोश्वकर्णमहाद्युतिः ॥ प्रगृह्यपरयाप्रीत्याभ्रामयामासभूतले ॥ २१ ॥ प्रधावन्नुरुवेगेनबभंजतरसाद्रुमान् ॥ हनूमान्परमक्रुद्धश्चारणैर्दारयन्महीम् ॥ २२ ॥ गजांश्चसगजारोहान्सरथान्रथिनस्तथा ॥ जघानहनुमान्भीमान्राक्षसांश्चपदातिगान् ॥ २३ ॥

सके बाणोंसे आकाशमार्गमेंही कटा और इधर उधर छितराया देखकर क्रोधके मारे अधीर होगये ॥ १९ ॥ तब क्रोध और गर्व किये हुए उन वानरश्रेष्ठ हनुमानजीनें महापर्वतकी समान ऊंचे एक अश्वकर्ण वृक्षके नीचे जाय अति शीघ्रताके सहित उसको उखाड़ लिया ॥ २० ॥ तिसके पीछे महाद्युतिमान हनुमानजीनें शाखा फुलंची युक्त उस अति ऊंचे अश्वकर्णके वृक्षको ग्रहण करके परम प्रसन्नता सहित उसको रणस्थलमें घुमाय कर एक वार पृथ्वीपर देमारा ॥ २१ ॥ उस कालमें क्रोधपूर्ण हनुमानजी करके उस वृक्षके घुमानेंसे अनेक वृक्ष टूट गये, और उनके चरणोंके वेगसे वसुमती पृथ्वी घूमनें लगी ॥ २२ ॥ महावीर हनुमानजी उस वृक्षको घुमाय २ हाथी, हाथियोंके साथ, रथी, रथ और भयंकर परा

ऊंट, इत्यादि जीवगणभी चलनेंलगे, और चित्र विचित्र ध्वजा पताकाओंसे यह सब विशेष सुशोभितथे ॥ ५ ॥ वीर वज्रदंष्ट्र विचित्र बाजू बांधे शोभायमान मुकुट शिर पर धारे युद्ध करनेंको चला, उसका शरीर बख्तरसे ढकाहुआथा, और हाथोंमें धनुष बाणथा ॥ ६ ॥ उसका रथ ध्वजा पताकाओंके लगनेसे शोभायमानथा, तपायाहुआ सुवर्णभी उसमें बहुत स्थानोंपर लगा हुआथा, ऐसे रथकी प्रदक्षिणा करके वज्रदंष्ट्र उस पर सवार हुआ ॥ ७ ॥ तेगा, तोमर, मूसल, तीक्ष्ण फरसे, भिण्डिपाल, धनुष, शक्ति पटा ॥ ८ ॥ खड्ग, चक्र, गदा; इत्यादि और अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र लिये पैदल सैना वज्रदंष्ट्र नामक राक्षसके साथ २ चली ॥ ९ ॥ वह राक्षसश्रेष्ठ सबही उजले और दीप्त चित्रित वस्त्र पहर रहेथे, उस

ततोविचित्रकेयूरमुकुटेनविभूषितः ॥ तनुत्रंचसमावृत्यसधनुर्निर्ययौद्रुतम् ॥ ६ ॥ पताकालंकृतंदीप्तंतप्तकांचनभूषितम् ॥ रथंप्रदक्षिणंकृत्वासमारोहच्चमूपतिः ॥ ७॥ ऋष्टिभिस्तोमरैश्चित्रैःश्लक्ष्णैश्चमुसलैरपि ॥ भिंदिपालैश्चचापैश्चशक्तिभिःपट्टिशैरपि ॥ ८ ॥ खड्गैश्चक्रैर्गदाभिश्चनिशितैश्चपरश्वधैः ॥ पदातयश्चनिर्यांतिविविधाःशस्त्रपाणयः ॥ ९ ॥ विचित्रवाससःसर्वेदीप्ताराक्षसपुंगवाः ॥ गजामदोत्कटाःशूराश्चलंतइवपर्वताः ॥ तेयुद्धकुशलारूढास्तोमरांकुशपाणिभिः ॥ अन्येलक्षणसंयुक्ताःशूरारूढामहाबलाः ॥ ११ ॥ तद्राक्षसबलंसर्वंविप्रस्थितमशोभत ॥ प्रावृट्कालेयथामेघानर्दमानाःसविद्युतः ॥ १२ ॥ निःसृतादक्षिणद्वारादंगदोयत्रयूथपः ॥ तेषांनिष्क्रममाणानामशुभंसमजायत ॥ १३ ॥ आकाशाद्विघनात्तीव्रादुल्मुकान्यपतंस्तदा ॥ वमंतःपावकज्वालाःशिवाघोरावाशिरे ॥ १४ ॥

सैनाके पीछे २ मदमाते हाथी, गमन करनेंके समय चलते हुए पर्वतोंकी समान ज्ञात होतेथे ॥ १० ॥ वह समस्त हाथी युद्ध करनेंमें बड़े कुशलथे, उन पर भाला अंकुशादि धारण किये वीर लोग चढ़ेथे व औरभी महाबली सर्व लक्षण सम्पन्न वीर गण उन पर चढ रहेथे ॥ ११ ॥ उस समय वह चलती हुई राक्षस सैना वर्षा समयकी श्रेणीसे शोभित गर्जती हुई मेघ मालाकी समान शोभायमान होनें लगी ॥ १२ ॥ उस समय वह सैना निकलकर वहां पर जहां कि यूथपति अंगदजी लंकाके दक्षिणद्वारपर टिके हुएथे राक्षसोंकी सैना जैसेही निकलीकि उसके अशुभकी सूचना करनें वाले अमंगल दृष्टि आनें लगे ॥ १३ ॥ आकाशसे विनाही मेघके तीव्र विजलीके सहित उल्का गिरनें लगीं । घोर रूपवाली

भागनें लगे ॥ ३२ ॥ उन राक्षसोंके वाल छूट रहेथे उन्होंने पराजित होकर मान मर्यादाको जल दे दिया, भयके मारे उनके सब अंगोंमें पसीना आ रहाथा, और प्राणोंका डर करके उनके चित्त स्थिर नहींथे ॥ ३३ ॥ उस समय उनको इस प्रकारका भय हुआथा कि वह राक्षस भागनेंके समय वारंवार पीछे को देखनें लगे, और आपही परस्पर एक दूसरेको मारते हुए नगरमें प्रवेश करते हुए ॥ ३४ ॥ जब वह महावल राक्षस लंकापुरीको चले गये तब समस्त वानर एकत्रहो हनुमानजीकी पूजा करनें लगे और उन नीतिविशारद सत्वसम्पन्न हनुमानजीनेभी भेंटकरके, व संभाषण करके उन सब वानरोंकी यथायोग्य रूपसे बडाईकर प्रतिपूजित किया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ तिसके पीछे वह विजयी वानर गण मृतक

तेमुक्तकेशाःसंभ्रांताभग्नमानाःपराजिताः॥भयाच्छ्रमजलैरंगैःप्रस्रवद्भिर्विदुद्रुवुः ॥३३॥ अन्योन्यंतेप्रमथ्नंतोविविशुर्नगरंभयात् ॥ पृष्ठतस्तेतुसंमूढाःप्रेक्षमाणामुहुर्मुहुः ॥३४॥ तेषुलंकांप्रविष्टेषुराक्षसेषुमहाबलाः ॥ समेत्यहरयःसर्वेहनूमंतमपूजयन् ॥३५॥ सोपिप्रवृद्धस्तान्सर्वान्हरीन्संप्रत्यपूजयत् ॥ हनूमान्सत्त्वसंपन्नोयथार्हमनुकूलतः ॥ ३६ ॥ विनेदुश्चयथाप्राणंहरयोजितकाशिनः ॥ चकृषुश्चपुनस्तत्रसप्राणानेवराक्षसान् ॥ ३७ ॥ सवीरशोभामभजन्महाकपिःसमेत्यरक्षांसिनिहत्यमारुतिः ॥ महासुरंभीमममित्रनाशनंविष्णुर्यथैवोरुबलंचमूमुखे ॥३८॥ अपूजयन्देवगणास्तदाकपिंस्वयंचरामोतिबलश्चलक्ष्मणः॥तथैवसुग्रीवमुखाःप्लवंगमाविभीषणश्चैवमहाबलस्तदा ॥ ३९ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वाल्मीकीयेआ० युद्धकांडेषट्पंचाशःसर्गः ॥५६॥अकंपनवधंश्रुत्वाक्रुद्धोवैराक्षसेश्वरः॥किंचिद्दीनमुखश्चापिसचिवांस्तानुदैक्षत ॥ १ ॥

राक्षसोंको ऐसा समझकर कि कदाचित् यह जीवित न हों फिर इधर उधर खेंचने लगे ॥ ३७ ॥ जिस प्रकार शत्रुओंके मारनेंवाले विष्णुजीने संग्रामभूमिमें भयंकर रूप महा वलवान मधुकैटभादि महा असुरोंको मारकर वडी भारी शोभा धारण कीथी वैसेही यह महाकपि पवनकुमार हनुमानजी राक्षसोंको ऐसा संहारकरके वीरोंकी शोभासे शोभित हुए ॥ ३८ ॥ उस समय आकाशमें टिके हुए देवतागण सुग्रीवादि मुख्य २ वानर गण, महावलवान विभीषण अति वलवान लक्ष्मण और स्वयं श्रीरामचंद्रजीभी उन महाकपि हनुमानजीकी वारंवार प्रशंसा करने लगे ॥ ३९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे षट्पंचाशःसर्गः ॥ ५६ ॥ अकम्पनके मारे जानेका वृत्तान्त सुनकर निशाचरपति रावण अ

सब अस्त्र शस्त्रोंको त्याग करके, तल, चरण और घूमनेंसे मल्ल युद्ध और कोई वृक्षोंको लेकर युद्ध करनें लगे ॥ २३ ॥ उस समय कोई २ राक्षस युद्धमें मतवाले वानर गणोंसे जांघसे मारे जाकर अपने शरीरको तुडवाते हुए, और कोई राक्षस वानरोंकी चलाई हुई शिलाओंके प्रहारसे पिसकर चूर्ण होगये ॥ २४ ॥ तिसके पीछे वज्रदंष्ट्र यह समस्त व्यापारदेख वानरोंको त्रासित करता हुआ लोक संहार करनेंके लिये तैयार फांसी हाथमें लिये हुए यमराजकी समान रणभूमिमें घूमनें लगा ॥ २५ ॥उस समय विविध अस्त्र शस्त्र धारी अस्त्रावित् बलवान निशाचर गण क्रोधसे मूर्छित होकर वानरोंकी सैनाका संहार करनें लगे ॥ २६ ॥ परन्तु महा वीरजी रणभूमिमें राक्षसों करके वानर लोगोंको मरते देखकर प्रलय

जानुभिश्चहताःकेचिद्भग्नदेहाश्चराक्षसाः ॥ शिलाभिश्चूर्णिताःकेचिद्वानरैर्युद्धदुर्मदैः ॥ २४ ॥ वज्रदंष्ट्रोथतंदृष्ट्वारणेवि
त्रासयन्हरीन् ॥ चचारलोकसंहारेपाशहस्तइवांतकः ॥ २५ ॥ बलवंतोऽस्त्रविदुषोनानाप्रहरणारणे ॥ जघ्नुर्वानरसैन्यानि
राक्षसाःक्रोधमूर्छिताः ॥ २६ ॥ जघ्नेतान्राक्षसान्सर्वान्दृष्टोवायुसुतोरणे ॥ क्रोधेनद्विगुणाविष्टःसंवर्तकइवानलः ॥ २७॥
तान्राक्षसगणान्सर्वान्वृक्षमुद्यम्यवीर्यवान् ॥ अंगदःक्रोधताम्राक्षःसिंहःक्षुद्रमृगानिव ॥ २८ ॥ चकारकदनंघोरंशक्रतु
ल्यपराक्रमः ॥ अंगदाभिहतास्तत्रराक्षसाभीमविक्रमाः ॥ २९ ॥विभिन्नशिरसःपेतुर्निकृत्ताइवपादपाः ॥ रथैश्चित्रैर्ध्वजै
रश्वैःशरीरैहरिरक्षसाम् ॥ ३० ॥ रुधिरौघेणसंछन्नाभूमिर्भयकरीतदा ॥ हारकेयूरवस्त्रैश्चछत्रैश्चसमलंकृता॥ ३१ ॥

कालके अग्निकी समान द्विगुण कोप करते हुए ॥ २७ ॥ इन्द्रतुल्य पराक्रम शाली अंगदजी भी क्रोधके मारे लाल २ नेत्रकर सिंह जिस प्रकार छोटे २ मृगोंका नाश करताहै वैसेही वृक्षोंको उठाय २ यह राक्षसोंकाघोर विनाश करनें लगे ॥ २८ ॥ यद्यपि यह राक्षस लोग भी बड़े विक्रमीथे परन्तु इन्द्रकी समान घोर विक्रम कारी अंगदजीके द्वारा मारे जानेंसे ॥ २९ ॥ इन राक्षसोंके शिर कट गये, कि जिस्से यह राक्षस कटे हुए वृक्षकी समान पृथ्वीपर गिरनें लगे । रथ चित्र विचित्र ध्वजा पताका अश्व और वानर राक्षसोंके मृतक शरीरोंसे ॥ ३० ॥ और रुधिरके सोतेसे

सिंहकी सिंहनादको नहीं सहसकतेहैं; वैसेही वह नीतिरहित चपल और चंचलचित्त वानरोंकी सैना तुम्हारा भयंकर गर्जना नहीं सहसकेगी हे प्रहस्त! सब वानरोंकी सैनाके इधर उधर भाग जानेंसे वह स्वामी शक्तिहीन सहायरहित रामचंद्र और सुमित्राके पुत्र लक्ष्मणके सहित तुम्हारे वशमें होजांयगे ॥९॥ १० ॥ हे वीर! यद्यपि आपत् अर्थात् युद्धमें मरण संशय युक्तहै; कारण कि यह नहीं जाने कि कौन मारा जायगा. और निःसंशयमें अमंगलहै, इस कारण इसका प्रतिलोम और अनुलोम, जिसमें प्रवृत्तिहो वही तुम करो ❋ ॥ ११ ॥ जब रावणनें यह कहा तब सैनापति प्रहस्त शुक्राचार्य जिस प्रकार दैत्येन्द्रसे कहा करते हैं वैसेही राक्षसोंके स्वामी रावणसे यह बोला ॥ १२ ॥ हे महाराज! पहले हम

विद्रुतेचबलेतस्मिन्रामःसौमित्रिणासह ॥ अवशस्तुनिरालंबः प्रहस्तवशमेष्यति ॥ १० ॥ आपत्संशयिताश्रेयोनात्रनिःसंशयीकृता ॥ प्रतिलोमानुलोमंवायत्तुनोमन्यसेहितम् ॥ ११ ॥ रावणेनैवमुक्तस्तुप्रहस्तोवाहिनीपतिः ॥ राक्षसेंद्रमुवाचेदमसुरेंद्रमिवोशना ॥ १२ ॥ राजन्मंत्रितपूर्वंनःकुशलैःसहमंत्रिभिः ॥ विवादश्चापिनोवृत्तःसमवेक्ष्यपरस्परम् ॥१३॥ प्रदानेनतुसीतायाःश्रेयोव्यवसितंमया ॥ अप्रदानेपुनर्युद्धंदृष्टमेवतथैवनः ॥१४॥ सोहंदानैश्चमानैश्चसततंपूजितस्त्वया ॥ सांत्वैश्चविविधैःकालेकिंनकुर्यांहितंतव ॥ १५ ॥

लोगोंनें नीतिके जाननेंवाले मंत्रियोंके सहित इस सम्बन्धमें परामर्श कियाथा. परन्तु उसकालमें परस्पर एकमत न होनेसे हम लोगोंमें विवाद भी हुआ ॥ १३ ॥ उस समय हमनें जानकीका दे देनाही निश्चय कियाथा; और यह भी हमनें कहाथा कि सीता न देनेंसे युद्धभी होगा सो हे महाराज! इस समय हमें वही युद्ध प्राप्त हुआहै ॥ १४ ॥ हे राक्षसनाथ! जो कुछभी हो आप दान, सन्मान और मीठे वचनोंसे सदाही हमारा सन्मान किया करतेहैं; इस कारण इस समय हम आपके लिये किसी प्रकार हितकारी कार्य करनेंमें कोई कसर न रक्खेंगे ॥ १५ ॥

* तात्पर्य;—युद्ध क्षेत्रमें तुम्हारीभी मृत्यु होगी इसकी क्या स्थिरता है? परन्तु इसमे जयलाभ करना एक प्रकारसे स्थिर सिद्धान्त है इसकारण युद्धमें तुम्हारे लिये जानाही अच्छा हैं युद्धसे विमुख होना तुम्हारा कर्त्तव्य नहींहैं ॥

और हाथ कटगये और शस्त्रोंसे कट जानेके कारण उनके सब अंगोंमें रुधिर वहने लगा ॥ ८ ॥ असंख्य वानर और राक्षसगण मर २ कर पृथ्वीपर गिर पडे, तब उनके मृतक शरीरोंपर सहस्रों काक, गिद्ध, व गीदड बैठ मांस खाय २ नाचनें लगे ॥ ९ ॥ डरपोकोंको डरावने वाले कबंध उडनें लगे रणभूमिमें असंख्य सैनाके हाथ पैर शिर कटकर शरीरसे अलग होने लगे ॥ १० ॥ तिसके पीछे वानरोंकी सैनाकरके मारीहुई निशाचरोंकी वह सैना राक्षस वज्रदंष्ट्रके सन्मुखही रणभूमि छोड कर भागनेका आरंभ करनेंलगी ॥ ११ ॥ वानरोंकी सैनाके हाथसे राक्षसोंको मारा जाता हुआ और भयसे भीत देखकर ॥ १२ ॥ प्रतापशाली राक्षसोंका सैनापति वज्रदंष्ट्र कोपसे परिपूर्ण हो गया उसके दोनोंनेत्र

हरयोराक्षसाश्चैवशेरतेगांसमाश्रिताः ॥ कंकगृध्रबलाढ्याश्चगोमायुकुलसंकुलाः ॥९ ॥ कबंधानिसमुत्पेतुर्भीरूणांभीषणानिवै ॥ भुजपाणिशिरश्छिन्नाश्छिन्नकायाश्चभूतले ॥ १० ॥ वानराराक्षसाश्चापिनिपेतुस्तत्रभूतले ॥ ततोवानरसैन्येनहन्यमानंनिशाचरम् ॥ ११ ॥ प्राभज्यतबलंसर्ववज्रदंष्ट्रस्यपश्यतः ॥ राक्षसान्भयवित्रस्तान्हन्यमानान्प्लवंगमैः ॥१२॥ दृष्ट्वासरोषताम्राक्षोवज्रदंष्ट्रःप्रतापवान् ॥ प्रविवेशधनुष्पाणिस्त्रासयन्हरिवाहिनीम् ॥१३॥ शरैर्विदारयामासकंकपत्रैरजिह्मगैः ॥ बिभेदवानरांस्तत्रसप्ताष्टौनवपंचच ॥ विव्याधपरमक्रुद्धोवज्रदंष्ट्रःप्रतापवान् ॥ १४ ॥ त्रस्ताःसर्वेहरिगणाःशरैःसंकृत्तदेहिनः ॥ अंगदंसंप्रधावंतिप्रजापतिमिवप्रजाः ॥ १५ ॥ ततोहरिगणान्भग्नान्दृष्ट्वावालिसुतस्तदा ॥ क्रोधेनवज्रदंष्ट्रंतमुदीक्षंतमुदैक्षत ॥ १६ ॥

क्रोधके मारे लाल हो आये वह धनुष करकै वानरोंकी सैनामें प्रवेश करकै उसको ताडित करने लगा ॥ १३ ॥ और अपनी कुटिल गतिसे कंक पत्र लगे हुए अगणित बाण चलाय २ वानर सैनाको घायल करने लगा, उस महाप्रतापी वज्रदंष्ट्रने अत्यन्त कोपमें भरकर वानर गणोंको यथा क्रमसे सात, आठ; नौ और पांच २ बाण चलाय उन वानरोंके शरीरको भेदा ॥ १४ ॥ तब भयके मारे सब वानर गण भागने लगे उनके शरीर बाणोंके लगनेंसे छिन्नभिन्न होगये सताई हुई प्रजा जिस प्रकार ब्रह्माजीके निकट जाया करतीहै वैसेही वानर गण अंगदजीके निकट दौडकर आने लगे ॥ १५ ॥ तब महा बलवान अंगदजी वज्रदंष्ट्रके द्वारा वानरोंको भागा हुआ देखकर उसकी ओर क्रोधसें दृष्टि करते हुए। राक्षस सैनापति

सर्व अस्त्र शस्त्रोंसे पूर्ण और तैयार रथपर सजा सजाया प्रहस्त नाम सैनापति सवार हुआ इस रथमें अत्यन्त वेगवान् घोड़े जुतेथे और सर्व भांतिसे चतुर सारथीभी इसपर चढ़ा हुआथा॥२५॥ इस रथका शब्द बड़े भारी मेघगर्जनकी समानथा चन्द्र सूर्यकी समान इसमें प्रकाशथा, सर्पाकार ध्वजा इसपर लटक रहीथीं। सुन्दर गुम्मजदार ॥ २६ ॥ सुवर्णके जालसे युक्त अपनी सुन्दरताईकी शोभाको मानो आपही हँसरही है, ऐसे रथपर रावणकी आज्ञासे सैनापति प्रहस्त सवार होकर ॥ २७ ॥ बड़ी भारी राक्षसोंकी सैना संगले लंकासे बहुतही शीघ्र निकला। उस समय मेघकी गर्जनेंकी समान नगाडोंका शब्द होनें लगा व और दूसरे बाजोंके शब्दसेभी पृथ्वी और दशोंदिशा पूर्ण होगई ॥ २८ ॥ जब वह सैनापति प्रहस्त

आरुरोहरथंयुक्तःप्रहस्तःसज्जकल्पितम् ॥ हयैर्महाजवैर्युक्तंसम्यक्सूतंसुसंयतम् ॥ २५॥ महाजलदनिर्घोषंसाक्षाच्चंद्रार्कभास्वरम् ॥ उरगध्वजदुर्धर्षंसुवरूथंस्वपस्करम् ॥२६॥ सुवर्णजालसंयुक्तंप्रहसंतमिवश्रिया ॥ ततस्तंरथमास्थाय रावणार्पितशासनः ॥ २७॥ लंकायानिर्ययौतूर्णंबलेनमहतावृतः ॥ ततोदुंदुभिनिर्घोषःपर्जन्यनिनदोपमः ॥ वादित्राणांचनिनदःपूरयन्निवमेदिनीम् ॥ २८ ॥ शुश्रुवेशंखशब्दश्चप्रयातेवाहिनीपतौ ॥ निनदंतःस्वरान्घोरान्राक्षसाजग्मुरग्रतः ॥ २९ ॥ भीमरूपामहाकायाःप्रहस्तस्यपुरःसराः ॥ नरांतकःकुंभहनुर्महानादःसमुन्नतः ॥ प्रहस्तसचिवाह्येते निर्ययुःपरिवार्यतम् ॥ ३० ॥ व्यूढेनैवसुघोरेणपूर्वद्वारात्सनिर्ययौ ॥ गजयूथनिकाशेनबलेनमहतावृतः ॥ ३१ ॥ सागरप्रतिमौघेनवृतस्तेनबलेनसः ॥ प्रहस्तोनिर्ययौक्रुद्धःकालांतकयमोपमः ॥ ३२ ॥

चला, तब बहुत सारे शंखभी बजनेंलगे और बड़े उच्च शब्दसे घोर गर्जन करते हुए राक्षस गणभी आगे २ चले ॥२९॥ प्रहस्तके साथ इस प्रकारसे महाकाय और भयंकर रूपवाले यह राक्षस आगे बढ़े।नारान्तक, कुम्भहनु,महानाद, समुन्नत, प्रहस्तके यह चार मंत्री प्रहस्तको घेरकर लंकासे निकले ॥ ३० ॥ हाथियोंके यूथकी समान बडीभारी राक्षसोंकी सैनाके साथ वह प्रहस्त घोर व्यूहकी रचना करता हुआ लंकाके पूर्वद्वारसे निकला ॥३१॥ प्रहस्तकी सैना बड़े भारी विस्तारवाले समुद्रकी समानथी। वह प्रहस्त कराल कालकी समान भयंकर मूर्ति धारण कर सेनाको संगले समरभूमिके

तक चेतना रहित हो अपनी गदाको पकड़े हुए लंबे श्वास चलानें लगा ॥२५॥ फिर कुछ देरमें चेतना पाय राक्षस वज्रदंष्ट्रनें क्रोधमें भर सन्मुख खडे हुए वालिकुमार अंगदजीको छातीमें एक गदा मारी॥ २६ ॥ तिसके पीछे गदा युद्ध छोड वह वानर और राक्षस दोनों मूका,लात,चनकटा इत्यादि मार२बाहु युद्धकर परस्पर एक दूसरे पर चोट चलानें लगे॥२७॥दोनोंकेही शरीरसे रुधिर निकलनें लगा.घोर कठोर प्रहारोंके लगनेंसे दोनों वीरही थक गये; उस समय वह ऐसे ज्ञात होतेथे मानों रणभूमिमें मंगल और बुध ग्रह घूम रहेहैं ॥२८॥ तब परम तेजस्वी वानर श्रेष्ठ अंगदजी पुष्प और फलोंसे शोभायमान एक बडा भारी वृक्ष उखाडकर रणभूमिमें खडे होगये ॥२९ ॥ परन्तु निशाचर वज्रदंष्ट्रने किंकिणीजालसे युक्त विमल ऋषभके चर्मसे

सलब्धसंज्ञोगदयावालिपुत्रमवस्थितम् ॥ जघानपरमक्रुद्धोवक्षोदेशेनिशाचरः ॥ २६ ॥ गदांत्यक्त्वाततस्तत्रमुष्टियुद्धमकुर्वत ॥ अन्योन्यंजघ्नतुस्तत्रतावुभौहरिराक्षसौ ॥२७॥ रुधिरोद्गारिणौतौतुप्रहारैर्जनितश्रमौ ॥ बभूवतुःसुविक्रांतावंगारकबुधाविव ॥ २८ ॥ ततःपरमतेजस्वीअंगदःप्लवगर्षभः ॥ उत्पाट्यवृक्षंस्थितवानासीत्पुष्पफलैर्युतः ॥ २९ ॥ जग्राहचार्षभंचर्मखड्गंचविपुलंशुभम् ॥ किंकिणीजालसंछन्नंचर्मणाचपरिष्कृतम् ॥३०॥ चित्रांश्चरुचिरान्मार्गांश्चेरतुःकपिराक्षसौ ॥ जघ्नतुश्चतदान्योन्यंनर्दंतौजयकांक्षिणौ ॥३१॥ व्रणैःसमुत्थैःशोभेतांपुष्पिताविवकिंशुकौ ॥ युध्यमानौपरिश्रांतौजानुभ्यामवनींगतौ ॥ ३२॥ निमेषांतरमात्रेणअंगदःकपिकुंजरः ॥ उदतिष्ठतदीप्ताक्षोदंडाहतइवोरगः॥३३॥

बनी ढाल और चमड़ेके म्यानसे ढकी हुई तलवार निकाली तब वालिकुमार अंगदजीनेंभी मृगचर्मसे बनी हुई जयकी सूचना करनेंवाली बडी ढाल और खड्ग ग्रहण किया ॥ ३० ॥ उस समय विजयकी अभिलाषा किये वह दोनों वानर और राक्षस विचित्रमार्गेमें घूमतेहुए परस्परमें एक दूसरेके ऊपर चोट चलानें लगे ॥ ३१ ॥ परस्पर युद्ध करते हुए उन दोनों वीरोंके सर्वाङ्गोंमें रुधिर निकलनेंके कारण वह दोनों फूले हुए दो टेसू वृक्षोंकी समान शोभायमान हो रहेथे, परस्पर जांघोंको सकोड़ कर यह दोनों वीर थककर पृथ्वीमें बैठतेहुए ॥ ३२ ॥ कपि कुंजर अंगदजी एक निमेष मात्रमें दंडसे आहत हुए सर्पकी समान तड़ककर उठे, उनके दोनों नेत्रोंनें दीप्तिमान अग्निके समान प्रभाव धारण किया ॥ ३३ ॥

और बड़ी शिलायें ग्रहण करके पर्वतोंके शृङ्गोंको तोड़ते हुए धीरे २ आगे बढ़े ॥ ४१ ॥ तिसके पीछे वानर और निशाचरोंकी सैना ऐसा गर्जन और सिंहनाद करनें लगी ! दोनोंही ओरकी सैना युद्धकी वासनासे हर्षितचित्त होरहीथी ॥ ४२ ॥ यह दोनों वानर और राक्षसगण एक दूसरेका नाश करना चाहतेथे, उस कालमें दोनों सैनाके वीर दोनों ओरके वीरोंको लड़नेंके लिये पुकारतेथे, वस यही शब्द उस काल श्रवण होताथा ॥ ४३ ॥ तिसके पीछे राक्षसोंकी सैनाका पति खोटीमतिवाला प्रहस्त युद्धमें जय पानेंकी वासनासे; पतंग जिस प्रकार मृत्युके निकट पहुंचकर प्रदीप्त अग्निकी शिखामें गिरजाताहै, वैसेही अत्यन्त वेगसे वानरोंकी सैनामें प्रवेश करता हुआ ॥ ४४ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०यु०सप्तपंचाशःसर्गः ॥ ५७ ॥

नदतांराक्षसानांचवानराणांचगर्जताम् ॥ उभेप्रमुदितेसैन्येरक्षोगणवनौकसाम् ॥ ४२ ॥ वेगितानांसमर्थानामन्योन्य वधकांक्षिणाम् ॥ परस्परंचाह्वयतांनिनादःश्रूयतेमहान् ॥ ४३ ॥ ततःप्रहस्तःकपिराजवाहिनीमभिप्रतस्थेविजया यदुर्मतिः ॥ विवृद्धवेगश्चविवेशितांचमूंयथामुमूर्षुःशलभोविभावसुम् ॥ ४४ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मी कीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेसप्तपंचाशःसर्गः ॥ ५७ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ततःप्रहस्तंनिर्यांतंदृष्ट्वारणकृतोद्यमम् ॥ उवाच सस्मितंरामोविभीषणमरिंदमः ॥ १ ॥ कएषसुमहाकायोबलेनमहतावृतः ॥ आगच्छतिमहावेगःकिंरूपबलपौरु षः ॥ २ ॥ आचक्ष्वमेमहाबाहोवीर्यवंतंनिशाचरम् ॥ राघवस्यवचःश्रुत्वाप्रत्युवाचबिभीषणः ॥ ३ ॥ एषसेनापति स्तस्यप्रहस्तोनामराक्षसः ॥ लंकायांराक्षसेंद्रस्यत्रिभागबलसंवृतः ॥ वीर्यवानस्त्रविच्छूरःसुप्रख्यातपराक्रमः ॥ ४ ॥

तिसके पीछे शत्रुदमनकारी श्रीरामचंद्रजी प्रहस्तको संग्राम करनेंके लिये तैयार देख हँसकर विभीषणजीसे पूछनेंलगे ॥ १ ॥ यह महाकाय वीर्यवान् निशाचर जो बड़ी भारी सैनाके साथ अतिवेगसे यहांपर आय रहाहै; इसका बल और पौरुष कैसा है ॥ २ ॥ हेमहाबाहो ! हमको इस वीर्यवान् निशाचरका यह समस्त वृत्तान्त सुनाओ, तव श्रीरामचंद्रजीके ऐसे वचन सुनकर विभीषणजी उत्तर देतेहुए ॥ ३ ॥ कि यह प्रहस्तनामक निशाचर राक्षसराज रावणका सैनापतिहै; लंकापुरीमें जितनीभर रावणकी सैनाहै यह विख्यातपराक्रम अस्त्रोंका जाननेंवाला

सेनापति बनायकर युद्ध करनेके लिये जाँय ॥ २ ॥ यह अकम्पन वीर शत्रु लोगोंको दमन करनेमें बड़ा चतुरहै,यह अपनी सेनाकी रक्षा करने वाला और युद्ध कार्यका प्रेरकहै; विशेष करके यह हमारा एक हितकारी बन्धुहै युद्ध कार्यमें इसका बड़ा अनुरागहै ॥ ३ ॥ यही महाबल वान् सुग्रीवके सहित रामचंद्र और लक्ष्मणको युद्धमे पराजित करेंगे; और इसमेंभी कोई सन्देह नहीं कि इनके हाथसे युद्धमें और वानरवीर गणभी मारे जायँगे ॥ ४ ॥ शीघ्र पराक्रम करनेवाला महाबलवान् प्रहस्त रावणकी ऐसी आज्ञाको पायकर सब सैनाको युद्ध करनेके लिये चलनेंकी आज्ञा देताहुआ ॥ ५ ॥ तब वह अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र धारी भयंकर नेत्र और भयंकराकार प्रधान २ राक्षसगण सैनापतिकी यह

एषशास्ताचगोप्ताचनेताचयुधिसत्तमः ॥ भूतिकामश्चमेनित्यंनित्यंचसमरप्रियः॥३॥ एषजेष्यतिकाकुत्स्थौसुग्रीवंच महाबलम्॥वानरांश्चापरान्घोरान्हनिष्यतिनसंशयः ॥४॥परिगृह्यसतामाज्ञांरावणस्यमहाबलः॥स्वबलंप्रेरयामासतदा लघुपराक्रमः॥५॥ततोनानाप्रहरणाभीमाक्षाभीमदर्शनाः ॥ निष्पेतूराक्षसामुख्याबलाध्यक्षप्रचोदिताः ॥६॥ रथमास्था यविपुलंतप्तकांचनभूषणम् ॥ मेघाभोमेघवर्णश्चमेघस्वनमहास्वनः ॥ ७ ॥ राक्षसैःसंवृतोघोरैस्तदानिर्यात्यकंपनः ॥ नहिकंपयितुंशक्यःसुरैरपिमहामृधे ॥ ८ ॥ अकंपनस्ततस्तेषामादित्यइवतेजसा ॥ तस्यनिर्धावमानस्यसंरब्धस्य युयुत्सया ॥ ९ ॥ अकस्माद्दैन्यमागच्छद्धयानांरथवाहिनाम् ॥ विस्फुरन्नयनंचास्यसव्यंयुद्धाभिनंदिनः ॥ १० ॥

आज्ञा पायकर युद्ध करनेंके लिये निकले ॥ ६ ॥ राक्षसोंके सेनापतिका वर्ण मेघतुल्य और शब्द मेघके गर्जन करनेंकी समान था; वह तपाये हुए सुवर्णसे विभूषित रथपर सवार होता हुआ ॥ ७ ॥ उसके साथ २ भयंकराकार अगणित राक्षसोंकी सैना युद्ध करनेंके लिये निकली इस वीर अकंपनको संग्रामस्थानमें देवतालोगभी कंपायमान करनेंको समर्थ नहीं थे ॥ ८ ॥ यह तेजस्वी अकंपन अपनी सेनाके बीचमें साक्षात् सूर्य भग वान् की समान शोभायमान होंनेलगा जब यह युद्ध करनेंकी इच्छासे चला, तब क्रोधकर दौडतेहुए अकम्पनके ॥ ९ ॥ रथमें जुतेहुए घोडोंको

खड्गमें दो टुकडे कर डाले गये; किसी २ वानरकी बगलही कटगईथी; इस्से वहभी पृथ्वीपर पड़ेथे ॥ १४ ॥ इसी
प्रकारसे बड़ा क्रोध करके वानरोंनें राक्षसोंके ऊपर पर्वतोंके शिखर और वृक्षोंका प्रहार किया, कि जिस्से वह पिसकर पृथ्वीपर गिर
पडे ॥ १५ ॥ कोई २ राक्षस वानरोंके चनकटे खाय और कोई २ घूंसे खाय २ कर मारे गये, कोई २ रुधिर उगलनेंलगे, और किसी २ राक्षसके
मुख सूखकर फैल गयेथे ॥ १६ ॥ इस प्रकारसे राक्षस और वानरोंकी सैनाके बीचमें आरत वाणी सिंहनाद और गर्जन करनेंका कठोर शब्द
उत्पन्न हुआ ॥ १७ ॥ इस प्रकारसे वह विकराल वदन क्रूर निशाचर और वानर गण वीर मार्गमें टिके हुए क्रोधमें भर भय छोड़ युद्ध करते हुए

वानरैश्चापिसंक्रुद्धैराक्षसौघाःसमंततः ॥ पादपैर्गिरिशृंगैश्चसंपिष्टावसुधातले ॥ १५ ॥ वज्रस्पर्शतलैर्हस्तैर्मुष्टिभिश्च
हताभृशम् ॥ वमन्च्छोणितमास्येभ्योविशीर्णवदनेक्षणाः ॥ १६ ॥ आर्तस्वनंचस्वनतांसिंहनादंचनर्दताम् ॥ बभूवतु
मुलःशब्दोहरीणांरक्षसामपि ॥ १७ ॥ वानरराक्षसाःक्रुद्धावीरमार्गमनुव्रताः ॥ विवृत्तवदनाःक्रूराश्चक्रुःकर्माण्यभी
तवत् ॥ १८ ॥ नरांतकःकुंभहनुर्महानादःसमुन्नतः ॥ एतेप्रहस्तसचिवाःसर्वेजघ्नुर्वनौकसः ॥ १९ ॥ तेषांनिपततां
शीघ्रंनिघ्नतांचापिवानरान् ॥ द्विविदोगिरिशृंगेणजघानैकंनरांतकम् ॥२०॥ दुर्मुखःपुनरुत्थायकपिःसविपुलद्रुमम् ॥
राक्षसंक्षिप्रहस्तंतुसमुन्नतमपोथयत् ॥ २१ ॥ जांबवांस्तुसुसंक्रुद्धःप्रगृह्यमहतींशिलाम् ॥ पातयामासतेजस्वीमहा
नादस्यवक्षसि ॥ २२ ॥ अथकुंभहनुस्तत्रतारेणासाद्यवीर्यवान् ॥ वृक्षेणमहतासद्यःप्राणान्संत्याजयद्रणे ॥ २३ ॥

अद्भुत कर्म करनें लगे ॥ १८ ॥ प्रहस्तके मंत्री नरान्तक, कुम्भहनु, महानाद, और समुन्नत, नामक यह चारों राक्षस भी अनेक वानरोंका संहार
करनें लगे ॥ १९॥ परन्तु द्विविद नाम वानरनें इनको इस प्रकारसे कूद२ कर वानरोंको मारते देख पर्वतका शृङ्ग उठाय उस्से राक्षस नरान्तकका
प्राण संहार किया ॥ २० ॥ कपिश्रेष्ठ दुर्मुखनें एक बड़ा भारी वृक्ष उठाय उस्से शीघ्र कर्मकारी निशाचर समुन्नतको मार डाला ॥२१ ॥ महावीर
तेजस्वी जाम्बवानजीनें अत्यन्त क्रोधमें भरकर महानादकी छातीमें एक बड़ी भारी शिलामार उसको पृथ्वीपर गिरा दिया ॥२२॥ कपिवर वीर्यवान

इस धूरनें सब दिशाओंको ढक लिया, न राक्षस, न वानर,न ध्वजा, न पताका, न ढाल, न अश्व,न गज॥२०॥न हथियार, न रथ,कुछभी उस धूलके उड़नेंसे नहीं दीख पड़तेथे। संग्राममें गर्जन करके धावमान होते हुए वानर और राक्षसोंका बड़ा भारी शब्दही ॥२१॥ केवल कठोर युद्धमें सुनाई देताथा, परन्तु किसीका कोई रूप दिखाई नहीं देताथा। अधिक क्या कहैं यहांतक हुआकि रूप न दिखाई देनेके कारण वानरगण वानरोंकोही मारनें लगे, और राक्षस लोग अंधकारके मारे राक्षसोंहीको संहार करनें लगे, वानर और राक्षस दोनोंही अपनी २ ओरवालोंको; और अपने २ शत्रुओंकोभी मारतेथे ॥ २२ ॥ २३ ॥ वानर और राक्षसगण यहांतक लड़े कि पृथ्वी रुधिरसे गीली होगई और इनके शरीरोंमें रुधिरकी कीच लिपट

संवृतानिचभूतानिददृशुर्नरणाजिरे ॥ नध्वजोनपताकावाचर्मवातुरगोपिवा ॥ २० ॥ आयुधंस्यंदनोवापिदृशेते नरेणुना ॥ शब्दश्चसुमहांस्तेषांनर्दतामभिधावताम् ॥२१॥ श्रूयतेतुमुलेयुद्धेनरूपाणिचकाशिरे ॥ हरीनेवसुसंरुष्टाहरयोजघ्नुराहवे ॥ २२॥ राक्षसाराक्षसांश्चापिनिजघ्नुस्तिमिरेतदा ॥ तेपरांश्चविनिघ्नंतःस्वांश्चवानरराक्षसाः ॥ २३ ॥ रुधिरार्द्रांतदाचक्रुर्महींपंकानुलेपनाम् ॥ ततस्तुरुधिरौघेणसिक्तंह्यपगतंरजः ॥ २४ ॥ शरीरशवसंकीर्णाबभूवचवसुंधरा ॥ द्रुमशक्तिगदाप्रासैःशिलापरिघतोमरैः ॥ २५ ॥ राक्षसाहरयस्तूर्णंजघ्नुरन्योन्यमोजसा ॥ बाहुभिःपरिघाकारैर्युध्यंतःपर्वतोपमान् ॥ २६ ॥ हरयोभीमकर्माणोराक्षसान्जघ्नुराहवे ॥ राक्षसास्त्वभिसंक्रुद्धाःप्रासतोमरपाणयः ॥२७॥ कपीन्निजघ्निरेतत्रशस्त्रैःपरमदारुणैः ॥ अकंपनःसुसंक्रुद्धोराक्षसानांचमूपतिः ॥२८॥ संहर्षयतितान्सर्वान्राक्षसान्भीमविक्रमान् ॥ हरयस्त्वपिरक्षांसिमहाद्रुममहाश्मभिः ॥ २९ ॥

गई, जब रुधिरसे कीच उठी तब धूल जातीरही ॥२४॥तिसके पीछे देखते२ पृथ्वी मृतक शरीरोंसे पूर्ण होगई । वृक्ष,शक्ति, गदा, फांसी, शिला, परिघ, तोमर, आदि अस्त्र शस्त्रोंसे ॥ २५ ॥ वानर और राक्षसगण परस्पर एक दूसरेपर चोट चलानें लगे। परिघाकारवाली बाहोंसे युद्ध करते हुए पर्वतकी समान ॥ २६ ॥ भयंकर कर्मकारी वानरगण राक्षसोंका संहार करनें लगे; और राक्षसोंनेंभी प्रास तोमर हाथोंमें ले ॥ २७ ॥ व औरभी परम दारुण अस्त्र शस्त्रोंसे वानरोंको मारा तिसके पीछे राक्षसोंका सैनापति अकंपन क्रोध करता हुआ ॥ २८ ॥ भयंकर कर्मकारी सब राक्षसोंको

कायर पुरुषोंके लिये यह युद्धमय नदी अतिदुःखसे पार होनेके योग्यहै, शरदकालमें जैसे श्रेष्ठ नदी हंस सारस पक्षियोंसे सेवित होतीहै ऐसी ॥ ३२ ॥ नदीमें गजयूथपतिगण जिस प्रकारसे पद्मरजशालिनी नलिनीके पार उतर जातेहैं; वैसेही वह राक्षस और वानर मुख्य २ गण अति सरलतासे इस नदीके पार उतरनें लगे ॥ ३३ ॥ तिसके पीछे प्रहस्तको रथपर सवार हुआ बाणोंकी वर्षा करते हुए वानर गणोंको विदारित करते देख सैनापति नील अत्यन्त वेगसे धाये ॥ ३४॥ सैनापति प्रहस्त बड़े भारी मेघकी समान बलशाली और आकाशमें टिके हुए पवनकी समान नीलको रणभूमिमें अपनी ओर झपटकर आता हुआ देख ॥ ३५ ॥ अपने सूर्यकी समान रथको चलायकर नीलके सन्मुख आया तिसके पीछे

तांकापुरुषदुस्तारांयुद्धभूमिमयींनदीम् ॥ नदीमिवघनापायेहंससारससेविताम् ॥ ३२ ॥ राक्षसाःकपिमुख्यास्ते तेरुस्तांदुस्तरांनदीम् ॥ यथापद्मरजोध्वस्तांनलिनींगजयूथपाः ॥ ३३ ॥ ततःसृजंतंबाणौघान्प्रहस्तंस्यंदनेस्थितम् ॥ ददर्शतरसानीलोविधमंतंप्लवंगमान् ॥ ३४ ॥ उद्धूतइववायुःखेमहदभ्रबलंबलात् ॥ समीक्ष्याभिद्रुतंयुद्धेप्रहस्तोवाहिनीपतिः ॥ ३५ ॥ रथेनादित्यवर्णेननीलमेवाभिदुद्रुवे ॥ सधनुर्धन्विनांश्रेष्ठोविकृष्यपरमाहवे॥ ३६ ॥ नीलायव्यसृजद्बाणान्प्रहस्तोवाहिनीपतिः ॥ तेप्रेत्यविशिखानीलंविनिर्भिद्यसमाहिताः ॥ ३७ ॥ महींजग्मुर्महावेगारोषिताइवपन्नगाः ॥ नीलःशरैरभिहतोनिशितैर्ज्वलनोपमैः ॥ ३८ ॥ सतंपरमदुर्धर्षमापतंतंमहाकपिः ॥ प्रहस्तंताडयामासवृक्षमुत्पाट्यवीर्यवान् ॥ ३९ ॥ सतेनाभिहतःक्रुद्धोनर्दन्राक्षसपुंगवः ॥ ववर्षशरवर्षाणिप्लवंगानांचमूपतौ ॥ ४० ॥

धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ सैनापति प्रहस्त अपने बड़े भारी धनुषको खेंचकर ॥ ३६ ॥ सैनापति नीलके ऊपर बाणोंकी वर्षा करनेंलगा; वह समस्त महावेगवान बाण नीलके शरीरपर गिर और नीलकी देहको फोड़ उसमें प्रवेश करते हुए ॥ ३७ ॥ मानो क्रोधित सर्प पृथ्वीमें प्रवेश कर रहेहैं, सैनापति नील अग्निकी समान बाणोंसे घायल होकर ॥ ३८ ॥ वह परम दुर्द्धर्ष वीर्यवान् महाकपि एक वृक्ष उखाड़कर प्रहस्तके ऊपर प्रहार करतेहुए ॥ ३९ ॥ राक्षसश्रेष्ठ प्रहस्त इस घोर प्रहारसे अत्यन्त दुःखित और व्यथित होकर अत्यन्त क्रोधयुक्त हो वारंवार सिंहनादकर

केही संहार करनेंकी इच्छा करतेहैं, कारण कि हम देखते हैं कि कईएक वानरोंसेही समस्त राक्षसोंकी सैना मथी जा रहीहै॥५॥ ऐसा सुनकर जब सारथिनें घोड़े हाँके तब राक्षसश्रेष्ठ अकंपन, वानर गणोंके सामने जाय दूरसेही उन वानरोंके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे॥ ६ ॥ तिस समय उस अकम्पनके साथ युद्ध करना तौ दूर रहै वानर गण रणमें उसके सामनेभी नहीं टिकसके, वरन उसके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित और छिन्नभिन्न होकर सबही इधर उधरसे भागनें लगे॥ ७ ॥ परन्तु महाबलवान हनुमानजी अपनी जातिवाले वानरोंको अकम्पनके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित और मृत्युके मुखमें धरे हुए देखकर उसके सामनेंको बढ़े॥ ८ ॥ तिस समय उन महाकपिको देखकर सब महावीर वानरगण फिर रण

ततःप्रचलिताश्वेनरथेनरथिनांवरः ॥ हरीनभ्यपतद्दूराच्छरजालैरकंपनः ॥६॥ नस्थातुंवानराःशेकुःकिंपुनर्योद्धुमाहवे॥ अकंपनशरैर्भग्नाःसर्वएवाभिदुद्रुवुः ॥७॥ तान्मृत्युवशमापन्नानकंपनशरानुगान्॥ समीक्ष्यहनुमान्ज्ञातीनुपतस्थेमहाबलः ॥ ८ ॥ तंमहाप्लवगंदृष्ट्वासर्वेतेप्लवगर्षभाः ॥ समेत्यसमरेवीराःसहिताःपर्यवारयन् ॥ ९ ॥ व्यवस्थितंहनूमंतंतेदृष्ट्वाप्लवगर्षभाः॥ बभूवुर्बलवंतोहिबलवंतमुपाश्रिताः ॥ १० ॥ अकंपनस्तुशैलाभंहनूमंतमवस्थितम् ॥ महेंद्रइववर्धाभिःशरैरभिववर्षह ॥११॥ अचिंतयित्वाबाणौघान्शरीरेपातितान्कपिः॥ अकंपनवधार्थायमनोदध्रेमहाबलः ॥१२॥ सप्रहस्यमहातेजाहनूमान्मारुतात्मजः ॥ अभिदुद्रावतद्रक्षःकंपयन्निवमेदिनीम् ॥ १३ ॥ तस्याथनर्दमानस्यदीप्यमानस्यतेजसा ॥ बभूवरूपंदुर्धर्षंदीप्तस्येवविभावसोः ॥ १४ ॥

भूमिमें आ करके हनुमानजीको घेरकर खड़े होगये॥ ९ ॥ हनुमानजीको युद्ध करनेंके लिये पहुंचाहुआ देखकर वह भागे हुए वानरश्रेष्ठगणभी, बल प्राप्त करते हुए कारण कि बलवानसे सहाय पायकर दुर्बल भी बलवान होजातेहैं॥ १० ॥ पर्वताकार हनुमानजीको आगे खड़ाहुआ देखकर राक्षस अकम्पन उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करनेंलगा, कि जिस प्रकार इन्द्रजी पृथ्वीपर जलकी धारा वर्षातेहैं॥ ११ ॥ परन्तु महाबलवान वानर हनुमानजी अपने शरीर पर गिरते उन बाणोंकी कुछभी चिन्ता न करते हुए अकम्पनके संहार करनेंका विचार करते हुए॥ १२ ॥ वह महातेजस्वी पवनकुमार हनुमानजी पृथ्वीको कंपायमान करते हँसते २ उस राक्षस अकम्पनके सन्मुख धाये॥ १३ ॥ इस समय यह हनुमानजी

वासनासे युद्धकरने लगे दोनो ही परस्पर एक दूसरेको विना जीते हुए समरसे लौटनेंवाले नहीं थे ॥ ४८ ॥ तिसके पीछे विपुलबलशाली सैनापति प्रहस्तनें नीलके माथेपर मूसलका प्रहार किया; जिसके प्रहारसे नीलके माथेसे रुधिर बहनेंलगा ॥ ४९ ॥ जब अंगोंसे रुधिर निकलने लगा, तब महाकपि सैनापति नीलनें अत्यन्त क्रोधित हो एक बड़ा भारी वृक्ष ग्रहणकर प्रहस्तकी छातीमें प्रहार किया ॥ ५० ॥ परन्तु सैनापति वीर प्रहस्त उस प्रहारको कुछभी न समझता हुआ वही बड़ाभारी मूसल ग्रहण कर अत्यन्त जोरसे बलवान् वानरश्रेष्ठ नीलके सन्मुख धाया। महाकपि नील उस उग्र वेगवान् राक्षसको सन्मुख दौड़े आते हुए ॥५१॥ देख एक महाशिला ग्रहण करके उस समरकी अभिलाषा करनेंवाले

अजघानतदानीलंललाटेमुसलेनसः ॥ प्रहस्तःपरमायत्तस्ततःसुस्रावशोणितम् ॥ ४९ ॥ ततःशोणितदिग्धांगःप्रगृह्यचमहातरुम् ॥ प्रहस्तस्योरसिक्रुद्धोविससर्जमहाकपिः ॥ ५० ॥ तमाचिंत्यप्रहारंसप्रगृह्यमुसलंमहत् ॥ अभिदुद्रावबलिनंबलान्नीलंप्लवंगमम् ॥ तमुग्रवेगंसंरब्धमापतंतंमहाकपिः ॥ ५१ ॥ ततःसंप्रेक्ष्यजग्राहमहावेगोमहाशिलाम् ॥ तस्ययुद्धाभिकामस्यमृधेमुसलयोधिनः ॥ ५२ ॥ प्रहस्तस्यशिलांनीलोमूर्ध्नितूर्णमपातयत् ॥ नीलेनकपिमुख्येन विमुक्तामहतीशिला ॥ बिभेदबहुधाघोराप्रहस्तस्याशिरस्तदा ॥ ५३ ॥ सगतासुर्गतश्रीकोगतसत्त्वोगतेंद्रियः ॥ पपातसहसाभूमौछिन्नमूलइवद्रुमः ॥ ५४ ॥ विभिन्नशिरसस्तस्यबहुसुस्रावशोणितम् ॥ शरीरादपिसुस्रावगिरेःप्रस्रवणो यथा ॥ ५५ ॥ हतेप्रहस्तेनीलेनतदकंप्यंमहाबलम् ॥ राक्षसानामहृष्टानांलंकामभिजगामह ॥ ५६ ॥

मूसलसे युद्ध करते हुए ॥ ५२ ॥ प्रहस्तके मूसल प्रहार करनेंसे पहलेही उसके मस्तकपर वह शिला मारी कपिश्रेष्ठ नीलकी चलाई हुई उस घोर और महाशिलानें प्रहस्तके मस्तकको खंड २ कर डाला; उस समय उस प्रहस्तकी इन्द्रियें लोप होगईं, बल जाता रहा, देहकी श्री नष्ट होगई; और वह प्राण रहित होकर जड़ कटे हुए वृक्षकी समान पृथ्वीमें गिर पडा ॥५३॥॥५४॥ तिस काल प्रहस्तका मस्तक धड़से अलग हो जानेंपर उससे और उसके शरीरसे इस प्रकारसे रुधिरकी धारें गिरनें लगी, कि जिस प्रकार पर्वतसे झरना झरते हैं ॥ ५५ ॥ इस प्रकार सैनापति नीलके हाथसे

क्रम करनेंवाले राक्षसोंको संहार करनें लगे ॥ २३ ॥ तब राक्षस गण वृक्षका प्रहार करते हुए प्राणहरण करनेंवाले यमराजकी समान उन क्रोधित अंजनीके पुत्र हनुमानजीको देखकर भागनें लगे ॥ २४ ॥ राक्षस सैनापति महावीर अकम्पन उन महावीर्य क्रोधित हनुमानजीको राक्षसोंके लिये भय उत्पन्न कराते देखकर अत्यन्तही क्रोध करताहुआ और उस समय उस अकम्पननें घोरनादसे गर्जन करना आरंभ किया ॥ २५ ॥ और शरीरको विदारण करनेंवाले अत्यन्त तीखे चौदह बाण उसनें हनुमानजीके देहमें मारे ॥ २६ ॥ उस कालमें तीखे नाराच और शक्तियोंके लग नेंसे हनुमानजीका शरीर ऐसा विद्ध हो रहाथा कि उस समय वह वृक्ष युक्त गिरिवरकी समान शोभित होतेथे ॥ २७ ॥ महाबलवान् महाकाय

तमंतकमिवक्रुद्धंसद्रुमंप्राणहारिणम् ॥ हनूमंतमभिप्रेक्ष्यराक्षसाविप्रदुद्रुवुः ॥ २४ ॥ तमापतंतंसंक्रुद्धंराक्षसानांभयाव हम् ॥ ददर्शाकंपनोवीरश्चुक्षोभचननादच ॥ २५ ॥ सचतुर्दशभिर्बाणैर्निशितैर्देहदारणैः ॥ निर्बिभेदमहावीर्यंहनूमं तमकंपनः ॥ २६ ॥ सतथाविप्रकीर्णस्तुनाराचैःशितशक्तिभिः ॥ हनूमान्ददृशेवीरःप्ररूढइवसानुमान् ॥ २७ ॥ विररा जमहावीर्योमहाकायोमहाबलः ॥ पुष्पिताशोकसंकाशोविधूमइवपावकः ॥ २८ ॥ ततोन्यंवृक्षमुत्पाट्यकृत्वावेगम नुत्तमम् ॥ शिरस्यभिजघानाशुराक्षसेंद्रमकंपनम् ॥ २९ ॥ सवृक्षेणहतस्तेनसक्रोधेनमहात्मना ॥ राक्षसोवानरेंद्रे णपपातचममारच ॥ ३० ॥ तंदृष्ट्वानिहतंभूमौराक्षसेंद्रमकंपनम् ॥ व्यथिताराक्षसाःसर्वेक्षितिकंपइवद्रुमाः ॥ ३१ ॥ त्यक्तप्रहरणाःसर्वेराक्षसास्तेपराजिताः ॥ लंकामभिययुस्त्रासाद्वानरैस्तैरभिद्रुताः ॥ ३२ ॥

और महावीर्यवान हनुमानजी फूलेहुए अशोक और धूमरहित अग्निकी समान शोभायमान होनेंलगे ॥ २८ ॥ तिसके पीछे पवनकुमार हनुमानजीनें अति शीघ्रतासे एक वृक्ष उखाड़ कर अत्यन्त वेगसे राक्षसोंके सैनापति अकंपनके शिरपर मारा ॥ २९ ॥ क्रोधसे पूर्ण महाबल वान् वानरोंमें इन्द्र हनुमानजी करके इस प्रकारसे वृक्षद्वारा घायलहो वह राक्षस तत्क्षणही पृथ्वीमें गिरकर मृतक होगया ॥ ३० ॥ समस्त राक्षस राक्षसोंके स्वामी अकम्पनको मृतक और पृथ्वीमें पड़ा हुआ देखकर अत्यन्त दुःखित हुए, और भूडोलके समय जिस प्रकार वृक्ष काँपतेहैं, ऐसेही कम्पायमान होनें लगे ॥ ३१ ॥ उस समय वह हारे हुए राक्षस वानरलोगोंसे खेदे जाकर अपने अस्त्र शस्त्र त्यागकर लंकाके सन्मुख

चित्त होकर देवराज इन्द्रजी जिसप्रकार देवसैनाके अधिनायकोंसे कहतेहैं इसीभांति रावण राक्षस दलके यूथनाथोंसे बोला ॥ ३ ॥ कि जिनकरके इन्द्रके बलका मथनकारी हमारा वह सैनापति अपने अनुयायी वर्ग और हाथी घोडेके सहित मार डालागया ऐसे शत्रुको अब तुच्छ नहीं समझना चाहिये ॥ ४ ॥ इसकारण शत्रुओंका विनाशकरनें और विजय प्राप्त करनेंके लिये हम स्वयंही अद्भुत रणभूमिमें जायँगे अब शोच विचार करनें कीभी कुछ आवश्यकता नहीं ॥५॥ प्रदीप्त अग्निसे वनके जलनेंकी समान आज हम बाणसमूहोंसे रामचंद्र व लक्ष्मणके सहित उस वानरोंकी सैनाको मार डालेंगे ॥ ६ ॥ अपने प्रकाशित शरीरसे प्रकाशमान होता हुआ अमरराज इन्द्रजीका शत्रु रावण यह कह कर दामिनीकी समान

नावज्ञारिपवेकार्यायैरिंद्रबलसादनः ॥ सूदितःसैन्यपालोमेसानुयात्रःसकुंजरः ॥ ४ ॥ सोहंरिपुविनाशायविजयायाविचारयन् ॥ स्वयमेवगमिष्यामिरणशीर्षंतदद्भुतम् ॥ ५ ॥ अद्यतद्वानरानीकंरामंचसहलक्ष्मणम् ॥ निर्दहिष्यामिबाणौघैर्वनंदीप्तैरिवाग्निभिः ॥ ६ ॥ सएवमुक्त्वाज्वलनप्रकाशंरथंतुरंगोत्तमराजियुक्तम् ॥ प्रकाशमानंवपुषाज्वलंतंसमारुरोहामरराजशत्रुः ॥ ७ ॥ सशंखभेरीपणवप्रणादैरास्फोटितक्ष्वेडितसिंहनादैः ॥ पुण्यैःस्तवैश्चापिसुपूज्यमानस्तदाययौराक्षसराजमुख्यः ॥ ८ ॥ सशैलजीमूतनिकाशरूपैर्मांसाशनैःपावकदीप्तनेत्रैः ॥ बभौवृतोराक्षसराजमुख्योभूतैर्वृतोरुद्रइवामरेशः ॥ ९ ॥ ततोनगर्याःसहसामहौजानिष्क्रम्यतद्वानरसैन्यमुग्रम् ॥ महार्णवाभ्रस्तनितंददर्शसमुद्यतंपादपशैलहस्तम् ॥ १० ॥

दमकते हुए उत्तम घोडे जोते हुए रथपर सवार हुआ ॥ ७ ॥ उस समय शंख, भेरी, और ढोल बजनें लगे; वीरगण कोई बांहोंको थपकनें लगे कोई २ किल किलानें लगे और कोई २ सिंहनाद करनें लगे! इस प्रकारसे राक्षस रावण पवित्र स्तोत्रसे पूजित होकर शीघ्रही युद्ध करनेंको चलता हुआ ॥ ८ ॥ उस कालमें पर्वत व बादलकी समान आकारवाले और अग्निकी समान दीप्त नेत्र युक्त मांस खानेवाले राक्षसोंके संगमें वह राक्षसपति रावण भूतोंके संग अमरनाथ रुद्रकी समान शोभायमान होनेलगा ॥ ९ ॥ तिसके पीछे उस महातेजस्वी रावणनें सैनाके

त्यन्त क्रोधयुक्त हुआ और दीन मलीन मुखहो मंत्रीलोगोंके मुखकी ओर देखनें लगा॥ १ ॥ रावण एक मुहूर्त्तभरतक चिन्ता करके मंत्रीलोगोंके सहित सलाहकर समस्त लंकाकी मोरचेबंदी देखनेके लिये दशघडी दिन चढे लंकाके तीर घूमने को चला॥ २ ॥ रावणने नगर मे घूमकर देखाकि ध्वजा पताका युक्त और बहु व्यूह समन्वित वह लंकानगरी राक्षस लोगों करके सब भांतिसे रक्षित हो रहीहै॥ ३ ॥ तब राक्षसोंका स्वामी रावण उस लंका नगरीको सब भांतिसे वानरोंके द्वारा रूंधीहुई देखकर यथा समयमें युद्धविशारद प्रहस्तसे अपने हितकारी यह वचन बोला॥ ४ ॥ रावण बोला कि हे युद्धविशारद शत्रुकी सैना चारो ओरसे रूंधकर पुरीको जिस प्रकारसे संताप देरहीहै इस्से तो युद्ध करनेके सिवाय छुट्कारा पानेंका हम

सतुध्यात्वामुहूर्त्ततुमंत्रिभिःसंविचार्यच॥ ततस्तुरावणःपूर्वदिवसेराक्षसाधिपः॥ पुरींपरियर्योलंकांसर्वान्गुल्मानवेक्षि
तुम्॥ २ ॥ तांराक्षसगणैर्गुप्तांगुल्मैर्बहुभिरावृताम्॥ ददर्शनगरींराजापताकाध्वजमालिनीम्॥ ३ ॥ रुद्धांतुनगरींदृष्ट्वा
रावणोराक्षसेश्वरः॥ उवाचात्महितंकालेप्रहस्तंयुद्धकोविदम्॥४॥पुरस्योपनिविष्टस्यसहसापीडितस्यह॥ नान्यंयुद्धा
त्प्रपश्यामिमोक्षंयुद्धविशारदाः ॥ ५ ॥ अहंवाकुंभकर्णोवात्वंवासेनापतिर्मम ॥ इंद्रजिद्वानिकुंभोवावहेयुर्भारमीदृ
शम्॥ ६॥ सत्वंबलमतःशीघ्रमादायपरिगृह्यच ॥ विजयायाभिनिर्याहियत्रसर्वेवनौकसः॥ ७ ॥ निर्याणादेवतूर्णंच
चलिताहरिवाहिनी ॥ नर्दतांराक्षसेंद्राणांश्रुत्वानादंद्रविष्यति ॥ ८॥ चपलाह्यविनीताश्चचलचित्ताश्चवानराः॥ नस
हिष्यंतितेनादंसिंहनादमिवद्विपाः ॥ ९ ॥

दूसरा उपाय नहीं देखते ॥ ५ ॥ परन्तु इस समय हमारे इन्द्रजितके कुम्भकर्णके निकुम्भके अथवा हमारे सैनापति तुम्हारे सिवाय, और कौन इस बड़े भारी भारको उठासकताहै॥ ६ ॥ इस कारण तुम शीघ्रही रथ पर सवारहो सैनाको साथले जिस स्थानपर वानरगण टिके हुएहैं, वहां पर युद्ध करनेंके लिये जाओ॥ ७॥ ऐसा हम जानतेहैं कि "तुम लड़नेंके लिये आयेहो" यह बात सुनतेही वह वानरोंकी सैना चलायमान होजा यगी; हम निश्चय कहतेहैं कि राक्षसोंका सिंहनाद सुनकर यह वानर भयके मारे इधर उधर भाग जांयगे॥ ८॥ हे वीर! जिस प्रकारसे हाथी

समान लाल २ नेत्र किये जो महाबलवान् राक्षस घंटेके नादकी समान नादकरते हुए क्रूर स्वभाववाले हाथीके ऊपर चढकर गर्जन कर रहाहै यही महात्मा महोदर नाम वीर है ॥ १७ ॥ जो सन्ध्या कालके मेघ और पर्वतकी समान आकार वालाहै और सुवर्णके गहनोंसे भूषित घोडों पर चढकर मरीच्याकार झालर लगा प्रास उठाये हुएहै इस वज्रकी समान वेगवान वीरका नाम पिशाचहै ॥१८॥ जो तीक्ष्ण शूल ग्रहण करके वज्रसे भी अधिक वेगवान चंद्रमाकी समान प्रकाशमान और बिजलीकी समान श्रेष्ठ बैलपर चढ़कर चला आताहै वह बडा यशस्वी त्रिशिरानामक राक्षसहै ॥ १९ ॥ विशाल और चौडी छातीवाला और सौदामिनीकी समान रूपवान जो वीर स्थिरभावसे अपने धनुषको टंकारता और

योसौहयंकांचनचित्रभांडमारुह्यसंध्याभ्रगिरिप्रकाशः ॥ प्रासंसमुद्यम्यमरीचिनद्धंपिशाचएषोशनितुल्यवेगः ॥ १८॥
यश्चैषशूलंनिशितंप्रगृह्यविद्युत्प्रभंकिंकरवज्रवेगम् ॥ वृषेंद्रमास्थायशशिप्रकाशमायातियोसौत्रिशिरायशस्वी ॥१९॥
असौचजीमूतनिकाशरूपःकुंभःपृथुव्यूढसुजातवक्षाः ॥ समाहितःपन्नगराजकेतुर्विस्फारयन्यातिधनुर्विधुन्वन् ॥ २० ॥
यश्चैषजांबूनदवज्रजुष्टंदीप्तंसधूमंपरिघंप्रगृह्य ॥ आयातिरक्षोबलकेतुभूतोयोसौनिकुंभोऽद्भुतवीरकर्मा ॥ २१ ॥
यश्चैषचापासिशरौघजुष्टंपताकिनंपावकदीप्तरूपम् ॥ रथंसमास्थायविभात्युदग्रोनरांतकोसौनगशृंगयोधी ॥ २२ ॥
यश्चैषनानाविधघोररूपैर्व्याघ्रोष्ट्रनागेंद्रमृगाश्ववक्रैः ॥ भूतैर्वृतोभातिविवृत्तनेत्रैर्योसौसुराणामपिदर्पहंता ॥ २३ ॥

कंपायमान करता चला आताहै और जिसके रथकी ध्वजापर शेषजीका चिह्न दिखाई देताहै उसका नाम कुम्भहै ॥ २० ॥ निशाचरोंकी सैनाका पताकारूप जो अद्भुत कर्म करनेंवाला वीर सुवर्ण और हीरोंसे खचित प्रकाशमान धूम सहित परिघलिये हुए आग मन करताहै इसका नाम निकुम्भहै ॥ २१ ॥ जो बड़े शरीरवाला वीर अग्निकी समान तेज युक्त पताका शोभित, चाप खड्ग बाण समूहसे परिपूर्ण रथपर चढ़ा हुआ शोभायमान होरहाहै इसकाही नाम नरान्तक कहतेहैं ॥ महाराज ! यह वीर अपनी समान योद्धा न पायकर अपनी बांहोंकी चुलबुलाहट मिटानेंको पर्वतके शृङ्गोंसेही युद्ध किया करताहै ॥ २२ ॥ जिसनें देवतालोगोंकाभी गर्व नाश कियाहै, और विविध

अपना प्राण पुत्र परिवार और धन कुछभी हम रखना नहीं चाहते;इस कारण हम कहते हैं कि इस समय आपके अर्थही युद्धमें इस जीवनको भी हमदेंगे ॥ १६ ॥ सैनापति प्रहस्तनें राक्षसपति रावणसे यह कहकर सामने आकर खडे हुए सैनाध्यक्षसे कहा ॥ १७ ॥ कि जलदीसे बडीभारी राक्षसोंकी सैनाको सजायकर लेआओ;हमारे बाणोंके वेगसे रणमें मृतक हुए॥१८॥ वानरोंके मांससे आज वनके रहनेंवाले पशुपक्षी भलीभांति तृप्तहोंगे । प्रहस्तके यह वचन सुनकर महाबलवान् सैनाध्यक्ष लोगोंनें ॥ १९ ॥ तिस राक्षसराजके गृहमें लायकर सैनाको इकट्ठा कर दिया, एक मुहूर्तमें अनेक

नहिमेजीवितंरक्ष्यंपुत्रदारधनानिच ॥ त्वंपश्यमांजुहूषंतंत्वदर्थेजीवितंयुधि ॥ १६ ॥ एवमुक्त्वातुभर्तारंरावणंवाहिनीपतिः ॥ उवाचेदंबलाध्यक्षान्प्रहस्तःपुरतःस्थितान् ॥ १७ ॥ समानयतमेशीघ्रंराक्षसानांमहाबलम् ॥ मद्बाणानांतुवेगेनहतानांतुरणाजिरे ॥ १८ ॥ अद्यतृप्यंतुमांसादाःपक्षिणःकाननौकसः ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाबलाध्यक्षामहाबलाः ॥ १९ ॥ बलमुद्योजयामासुस्तस्मिन्राक्षसमंदिरे ॥ साबभूवमुहूर्तेनभीमैर्नानाविधायुधैः ॥ २० ॥ लंकाराक्षसवीरैस्तैर्गजैरिवसमाकुला ॥ हुताशनंतर्पयतांब्राह्मणांश्चनमस्यताम् ॥ २१ ॥ आज्यगंधप्रतिवहःसुरभिर्मारुतोववौ ॥ स्रजश्चविविधाकाराजगृहुस्त्वभिमंत्रिताः ॥ २२ ॥ संग्रामसज्जाःसंहृष्टाधारयन्राक्षसास्तदा ॥ सधनुष्काःकवचिनोवेगादुत्सृज्यराक्षसाः ॥ २३ ॥ रावणंप्रेक्ष्यराजानंप्रहस्तंपर्यवारयन् ॥ अथामंत्र्यतुराजानंभेरीमाहत्यभैरवाम् ॥ २४ ॥

प्रकारके अस्त्र शस्त्र धारण किये॥२०॥राक्षस वीरोंसे लंकापुरी ऐसी पूर्ण हुई मानो हाथियोसे पूर्ण होगई । कोई राक्षस अग्निको तृप्त करते हुए कोई ब्राह्मणोंको प्रणाम करते हुए ॥२१॥ ऐसे राक्षसोंके घृतकी सुगन्धिसे युक्त होकर सुगन्धित पवन चलनें लगा और विविध प्रकारकी मालायें जो मंत्रोंसे पढ़ी हुईथीं राक्षसोंने ग्रहणकी ॥२२॥ और संग्राममें जानेंके लिये वह राक्षस रणके आयुधोंसे सजनें लगे, तिसके पीछे कवच और धनुषधारी वह राक्षसगण अतिवेगसे राक्षसराज रावणको देखकर प्रहस्तनाम सैनापतिको घेर खड़े होगये । फिर राजाकी आज्ञा ले अतिघोर भेरी बजवाय ॥ २३ ॥ २४ ॥

कि आज यह पापात्मा हमारे दृष्टि गोचर हुआहै इस लिये सीता हरण होंनेसे जो क्रोध हमारे मनमें उत्पन्न हुआहै, वह क्रोध
आज हम इसके ऊपर छोडेंगे ॥ ३१ ॥ वीर्यवान् श्रीरामचन्द्रजी यह कहकर धनुषपर रोदा चढ़ाय आगे बढे, और लक्ष्मणजीभी इनके पीछे २
चले ॥ ३२ ॥ तिसके पीछे महात्मा राक्षसपति रावण उन महा बलवान राक्षसोंसे बोला कि तुम लोग हमारी आज्ञासे इस समय जाय लंकाके चार
पुर द्वार राजमार्ग और घरोंमें शंका रहित मनके सुख सहित टिके रहो ॥ ३३ ॥ कारण कि एकत्र हुए महाबलवान वनवासी वानरगण तुम लोगोंके
सहित हमारी पुरीसे बाहर आनेका यह छिद्र पाय, प्रवेश करनेंके अयोग्य वीर शून्य लंका पुरीको मर्दन करके विध्वंश कर डालेंगे ॥ ३४ ॥ जब

एवमुक्त्वाततोरामोधनुरादायवीर्यवान् ॥ लक्ष्मणानुचरस्तस्थौसमुद्धृत्यशरोत्तमम् ॥ ३२ ॥ ततःसरक्षोधिपतिर्महा
त्मारक्षांसितान्याहमहाबलानि ॥ द्वारेषुचर्यागृहगोपुरेषुसुनिर्वृतास्तिष्ठतनिर्विशंकाः ॥ ३३ ॥ इहागतंमांसहितंभव
द्भिर्वनौकसश्छिद्रमिदंविदित्वा ॥ शून्यांपुरींदुष्प्रसहांप्रमथ्यप्रधर्षयेयुःसहसासमेताः ॥ ३४ ॥ विसर्जयित्वासचि
वांस्ततस्तान्गतेषुरक्षःसुयथानियोगम् ॥ व्यदारयद्वानरसागरौघंमहाझषःपूर्णमिवार्णवौघम् ॥ ३५ ॥ तमापतंतं
सहसासमीक्ष्यदीप्तेषुचापंयुधिराक्षसेंद्रम् ॥ महत्समुत्पाट्यमहीधराग्रंदुद्रावरक्षोधिपतिंहरीशः ॥ ३६ ॥ तच्छैलशृं
गंबहुवृक्षसानुंप्रगृह्यचिक्षेपनिशाचराय ॥ तमापतंतंसहसासमीक्ष्यचिच्छेदबाणैस्तपनीयपुंखैः ॥ ३७ ॥

राक्षस लोग रावणकी आज्ञाके अनुसार पुरीकी रक्षा करनेको उसमें प्रवेश करते हुए; तब निशाचर पति रावणभी अपने मंत्रियोंको विदा
देकर स्वयं बडे २ मत्स्य आदि जीवोंसे परिपूर्ण महा समुद्रकी समान उस बडी भारी वानरोंकी सैनाको विदारण करने लगा ॥ ३५ ॥ तब
वानरराज सुग्रीवजी, प्रदीप्त बाण सहित धनुष धारण किये राक्षसोंके स्वामी रावणको अचानक आया हुआ देख एक बडा भारी पर्वतका
शिखर उखाडकर निशाचर पतिकी ओर दौडे ॥ ३६ ॥ तिसके पीछे बहुत वृक्ष और कंगूरोंसे शोभित वह पर्वतका शृङ्ग इन्होंने राक्षस
रावणके ऊपर चलाया परन्तु रावणनें अपने ऊपर गिरते २ उस पर्वतके शृङ्गको सुवर्णकी फोंका लगे हुए बाणोंसे सहसा खंड २ कर डाला ॥ ३७ ॥

सन्मुख गमन करनें लगा ॥ ३२ ॥ जब प्रहस्त निकला तब उसके साथवाले शब्द करते हुए. राक्षसोंके निकलनेसे ऐसा बड़ा भारी नाद उत्पन्न हुआ कि लंका नगरीके समस्त प्राणी पुञ्जविकट स्वरसे चिल्लानें लगे॥३३॥मांस रुधिरके खानें पीनेंवाले गिद्ध आदि, विना मेघके आकाशमें मंडलाकारसे रथके ऊपर घूमने लगे ॥ ३४ ॥ भयंकर रूपवाली शृगालियें भयंकर शब्दसे बोलकर मुखसे अग्निकी लपटें छोडती चिल्लाने लगीं अन्तरिक्षसे वार २ उलूका गिरनें लगीं,पवनभी रूखेपनसे चलनें लगा ॥३५॥ परस्पर एक दूसरेके क्रोधितहो युद्ध करनेंसे सब ग्रहोंकी प्रभा हीन होगई राक्षस सैनापतिके रथपर मेघमाला गंभीर शब्दसे गर्जन करके ॥३६॥ रुधिरकी वर्षा करनें लगी और उसके आगे चलती हुई सैनापरभी रुधिर वर्षा रथ

तस्यनिर्याणघोषेणराक्षसानांचनर्दताम् ॥ लंकायांसर्वभूतानिनिनेदुर्विकृतैःस्वरैः ॥ ३३ ॥ व्यभ्रमाकाशमाविश्यमांसशोणितभोजनाः ॥ मंडलान्यपसव्यानिखगाश्चक्रूरथंप्रति ॥ ३४ ॥ वमंतिपावकज्वालाःशिवाघोरावबाशिरे॥अंतरिक्षात्पपातोल्कावायुश्चपरुषंववौ ॥ ३५ ॥ अन्योन्यमभिसंरब्धाग्रहाश्चनचकाशिरे ॥ मेघाश्चखरनिर्घोषारथस्योपरिरक्षसः ॥ ३६ ॥ ववर्षूरुधिरंचास्यसिषिचुश्चपुरःसरान् ॥ केतुमूर्धनिगृध्रस्तुविलीनोदक्षिणामुखः ॥ ३७॥ नदन्नुभयतःपार्श्वंसमग्रांश्रियमाहरत् ॥ सारथेर्बहुशश्चात्रसंग्राममनिवर्तिनः ॥ ३८ ॥ प्रतोदोन्यपतद्धस्तात्सूतस्यहयसादिनः ॥ निर्याणश्रीश्चयाचस्याद्भास्वराचसुदुर्लभा ॥ ३९ ॥ साननाशमुहूर्तेनसमेचस्खलिताहयाः ॥ प्रहस्तंतंहिनिर्यांतंप्रख्यातगुणपौरुषम् ॥ युधिनानाप्रहरणाकपिसेनाऽभ्यवर्तत ॥ ४० ॥ अथघोषःसुतुमुलोहरीणांसमजायत ॥ वृक्षानारुजतांचैवगुर्वीर्वैगृह्णतांशिलाः ॥ ४१ ॥

की ध्वजापर गिद्ध बैठ गया; और दक्षिण मुख होकर शब्द करने लगा ॥३७॥ और अपनें दोनों पंखोंको फैलायकर सैनापति प्रहस्तकी समस्त प्रभा और श्रीको हरण कर लेता हुआ । समरसे विमुख नहोनेवाले सारथिकीभी श्री जाती रही ॥ ३८ ॥ और घोड़ोंके सिखानेंवालेके हाथसे, व सारथिके हाथसे वारंवार चाबुक गिर पड़नें लगा जो युद्धमें जानेंके समयकी शोभा और दीप्तिथी वह एक मुहूर्तभरमें नाशको प्राप्त हुई, घोड़ोंका पैर फिसलनें लगा इस प्रकारसे विख्यात बलपौरुषवाला प्रहस्त जब लंकासे युद्ध करनेंको निकला, तब रणभूमिमें वानरगण, वृक्ष शिला इत्यादि अनेक प्रकारके आयुध धारण किये हुए उसके सन्मुख दौड़े ॥ ३९ ॥ ४० ॥ इस समय वानरगण कटकटाय कर गर्जनेंलगे और वह बड़े २ वृक्ष

तब वह भयंकर शरीरवाले वानर गणभी राक्षसनाथ रावणके बाणोंकेलगनेसे छिन्न भिन्न शरीरहो पृथ्वीपर गिरनें लगे ॥४३॥ तब राक्षस रावण बाणोंके ढेरके ढेर चलायकर उग्र स्वभाववाली उस वानरोंकी सैनाको बाण जालसे छानें लगा इस प्रकार रावणके बाणोंसे मर्ममें चोट खाय वानरोंमेसे अनेक मर गये और अनेक गिर पड़े, अनेक छिन्न भिन्न होगये और उनमेंसे अनेक भयके मारे विह्वल होकर शरणागत प्रतिपालक अनाथ नाथ श्रीरामचंद्रजीकी शरणमें गये ॥ ४४ ॥वानरोंको शरणमें आया हुआदेखकर धनुष धारियोंमें श्रेष्ठ महात्मा श्रीरामचंद्रजी सहसा आगे बढ़नेंको तैयार हुए कि इतने हीमें लक्ष्मणजीनें हाथ जोड़कर उनसे यह परमार्थ युक्त वचन कहे॥४५॥हे आर्य ! हम अकेलेही इस दुरात्मा रावणका संहार

ततस्तुतद्वानरसैन्यमुग्रंप्रच्छादयामाससबाणजालैः ॥ तेवध्यमानाःपतिताश्चवीरानानद्यमानाभयशल्यविद्धाः ॥ शाखामृगारावणसायकार्ताजग्मुःशरण्यंशरणंस्मरामम् ॥ ४४ ॥ ततोमहात्मासधनुर्धनुष्मानादायरामःसहसाजगाम ॥ तंलक्ष्मणःप्रांजलिरभ्युपेत्यउवाचरामंपरमार्थयुक्तम् ॥ ४५ ॥ काममार्यसुपर्याप्तोवधायास्यदुरात्मनः ॥ विधमिष्याम्यहंचैतमनुजानीहिमांविभो ॥ ४६ ॥ तमब्रवीन्महातेजारामःसत्यपराक्रमः ॥ गच्छयत्नपरश्चापि भवलक्ष्मणसंयुगे ॥ ४७ ॥ रावणोहिमहावीर्योरणेऽद्भुतपराक्रमः ॥ त्रैलोक्येनापिसंक्रुद्धोदुष्प्रसह्योनसंशयः ॥ ४८॥ तस्यच्छिद्राणिमार्गस्वस्वच्छिद्राणिचलक्षय ॥ चक्षुषाधनुषात्मानंगोपायस्वसमाहितः ॥ ४९ ॥ राघवस्यवचःश्रुत्वासंपरिष्वज्यपूज्यच ॥ अभिवाद्यचरामायययौसौमित्रिराहवे ॥ ५० ॥

कर सकतेहैं, इस कारण हे विभो! आप निश्चय जानें कि इस निशाचरको हमहीं मार डालेंगे ॥ ४६ ॥ यह वचन सुनकर सत्य पराक्रम महा तेजवान श्रीरामचंद्रजीनें कहा कि हे लक्ष्मण ! जाओ परन्तु रणमें भली भांति सावधान रहना ॥ ४७ ॥ तुमसे इतना कहनेंका यही अभिप्रायहै, कि रावण अत्यन्त वीर और महाबलवानहै, उसका पराक्रम अद्भुतहै, जब उसको क्रोध उत्पन्न होजाताहै. तब त्रिलोकवासी समस्त जनभी इसके पराक्रमको नही सह सकते इसमें कोईभी सन्देह नहीं ॥ ४८ ॥ तुम उस रावणके प्रहार करनेंका अवसर खोजते रहना और सावधान चित्तसे अपनी रक्षा करते रहकर अपने प्रहारके समय शत्रुपर दृष्टि रक्खो. व धनुष परबाण चलाय संभालकर रिपुपर चलाओ ॥४९॥ श्रीरामचंद्रजीके यह वचन

वीर्यवान और शूर निशाचर उस तीन भागवाली सैनामेंसे एक भाग सैना अपने साथ लेकर यहां आयाहै ॥ ४ ॥ और इस ओर सैनापति प्रहस्त भयंकर पराक्रम दिखाता, गर्जता हुआ बहुत सारे राक्षसोंकी सैनाके साथ निकला ॥ ५ ॥ महाबलवान वानरगण बड़ी भारी प्रहस्तकी सैनाको देखकर अत्यन्त क्रोध युक्त होकर गर्जन करनें लगे ॥ ६ ॥ खड्ग, शक्ति, छंड, ऋष्टि, शूल, बाण, मूसल, गदा, परिघ, प्रास, विविध भांतिके फरसे, ॥ ७ ॥ चित्र विचित्र, धनुष लिये, जीतनेंकी इच्छा किये वानरोंके ऊपर धावमानहोते हुए राक्षसोंके अस्त्र शस्त्र शोभायमान होतेथे, यह देखकर समरके अभिलाषी वानरगणभी पुष्पित वृक्ष, और पर्वतोंके शिखर, और बड़ी २ शिलायें ग्रहण करते हुए ॥ ८ ॥ ९ ॥ दोनों ओरकी

ततःप्रहस्तंनिर्यातंभीमंभीमपराक्रमम्॥ गर्जंतंसुमहाकायंराक्षसैरभिसंवृतम्॥५॥ददर्शमहतीसेनावानराणांबलीयसाम् ॥ अभिसंजातघोषाणांप्रहस्तमभिगर्जताम् ॥ ६ ॥ खड्गशक्त्यृष्टिशूलाश्चबाणानिमुसलानिच ॥ गदाश्चपरिघाःप्रासाविविधाश्चपरश्वधाः॥७॥धनूंषिचविचित्राणिराक्षसानांजयैषिणाम् ॥ प्रगृहीतान्यराजंतवानरानभिधावताम्॥८॥ जगृहुःपादपांश्चापिपुष्पितांस्तुगिरींस्तथा ॥ शिलाश्चविपुलादीर्घायोद्धुकामाःप्लवंगमाः ॥ ९ ॥ तेषामन्योन्यमासाद्यसंग्रामःसुमहानभूत् ॥ बहूनामश्मवृष्टिंचशरवर्षंचवर्षताम् ॥ १० ॥ बहवोराक्षसायुद्धेबहून्वानरपुंगवान् ॥ वानरराक्षसांश्चापिनिजघ्नुर्बहवोबहून् ॥ ११ ॥ शूलैःप्रमथिताःकेचित्केचित्तुपरमायुधैः ॥ परिघैराहताःकेचित्केचिच्छिन्नाःपरश्वधैः॥ १२ ॥ निरुच्छ्वासाःपुनःकेचित्पतिताजगतीतले ॥ विभिन्नहृदयाःकेचिदिषुसंधानसादिताः ॥ १३ ॥ केचिद्द्विधाकृताःखड्गैःस्फुरंतःपतिताभुवि ॥ वानराराक्षसैःशूरैःपार्श्वतश्चविदारिताः ॥ १४ ॥

सैनामें भयंकर संग्राम आरंभ हुआ; दोनोंही ओरके वीर शिला और बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ १० ॥ राक्षसगणोंनें संग्राममें अगणित वानरोंको मार डाला और वानरोंनेभी असंख्य राक्षसोंका प्राण संहार किया॥ ११॥वानरोंमेंसे कोई२ राक्षसोंके शूलप्रहारसे मारे गये और कोई२ दूसरे अस्त्र शस्त्रोंसे मृतक हुए; कोई परिघकी चोटसे रणभूमिमें गिरे और फरसेके प्रहारसे किसी २ का शिर कटगया ॥ १२ ॥ किसीनें पृथ्वीपर गिरकर प्राणत्याग, दिया किसी २ का हृदय छिन्नभिन्न होगया किसी२ के शरीरमें बाणही लगे,कि जिस्से वह गिरे ॥ १३ ॥ कोई २ वानर शूरराक्षसों करके

हमारा पराक्रम जानही लेना चाहतेहो तौ हमसे विनाशको प्राप्त हुए अपनेपुत्र अक्षकुमारकी याद करलो ॥ ५८ ॥ महातेजस्वी वीर्यवान राक्षसोंके स्वामी रावणने हनुमानजीसे ऐसा सुन उन पवनकुमारकी छातीमें एक लातमारी; उस लातके लगनेसे हनुमानजी वारंवार विचलित भी हुए॥५९॥ परन्तु उन महातेजस्वी हनुमानजीनेंभी एक मुहूर्तमें स्थिरहो अत्यन्त क्रोध सहित एक लात रावणके ऊपर चलाई ॥ ६० ॥ तब दशमुख रावण उन महाबलवान हनुमानजीके चरणकी चोट खाय भूडोलके समय कांपते हुए पर्वतकी समान कम्पायमान होंनेलगा ॥ ६१ ॥ उस कालमें सिद्ध चारण ऋषि देवता और असुरगण रावणको संग्राम भूमिमें इस प्रकारसे लातके प्रहारसे चेतना रहित होते देखकर आनंदके

एवमुक्तोमहातेजारावणोराक्षसेश्वरः ॥ आजघानानिलसुतंतलेनोरसिवीर्यमान् ॥ सतलाभिहतस्तेनचचालचमुहु
र्मुहुः ॥ ५९ ॥ स्थितोमुहूर्ततेजस्वीस्थैर्यंकृत्वामहामतिः ॥ आजघानचसंक्रुद्धस्तलेनैवामरद्विषम् ॥ ६० ॥ ततःस
तेनाभिहतोवानरेणमहात्मना ॥ दशग्रीवःसमाधूतोयथाभूमिचलेऽचलः ॥ ६१ ॥ संग्रामेतंतथाद्दष्ट्वारावणंतलताडि
तम् ॥ ऋषयोवानराःसिद्धानेदुर्देवाःसुरासुरैः ॥ ६२ ॥ अथाश्वास्यमहातेजारावणोवाक्यमब्रवीत् ॥ साधुवानरवी
र्येणश्लाघनीयोसिमेरिपुः ॥ ६३ ॥ रावणेनैवमुक्तस्तुमारुतिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ धिगस्तुममवीर्यस्ययत्त्वंजीवसिराव
ण ॥ ६४ ॥ सकृत्तुप्रहरेदानींदुर्बुद्धेकिंविकत्थसे ॥ ततस्त्वांमामकोमुष्टिर्नयिष्यतियमक्षयम् ॥ ६५ ॥ ततोमारुति
वाक्येनकोपस्तस्यप्रजज्वले ॥ संरक्तनयनोयत्नान्मुष्टिमावृत्यदक्षिणम् ॥ पातयामासवेगेनवानरोरसिवीर्यवान्॥६६॥

मारे सिंहनाद करनें लगे ॥ ६२ ॥ तिसके पीछे रावण कुछ देरमें चेतना पायकर स्थिर हो हनुमानजीसे बोला कि हे वानर! तुम अपने वीर्यके प्रभावसे बड़ाई करनेंके योग्य हुए हो और इस बातसे हमभी बड़ाई करनेंके योग्य हुए हैं कि तुम समान बलवान हमारे शत्रु हुए हैं ॥ ६३ ॥ जब रावणनें इस प्रकारसे कहा तब हनुमानजी बोले हे रावण! मेरे वीर्यको धिक्कारहै, कारणकि मेरी लातके प्रहारको खायकर भी तू अबतक जीवितहै ॥ ६४ ॥ रेनिर्बोध तू वृथा क्यों गर्व करताहै! और एक वार प्रहार कर देख; तिसके पीछे हमारा यह घूंसा तुझको यमराजके भवनमें पहुंचावेगा ॥ ६५ ॥ पवनकुमार हनुमानजीके ऐसे वचन सुनकर वीर्यवान रावणके क्रोधकी अग्नि भड़क उठी, और दोनों नेत्र लाल हो आये, और

तारनें बड़े भारी वृक्षके प्रहारसे कुम्भहनुके ऊपर चोट चलाई कि जिस्से उसका प्राण निकल गया ॥ २३ ॥ परन्तु रथपर चढ़ा हुआ प्रहस्त उन वानर लोगोंके इस कर्मको न सहकर धनुष धारण करके वानरोंका घोर नाश करनें लगा ॥ २४ ॥ उस कालमें दोनों ओरकी सैनाके वेगसे इधर उधर भ्रमण करनेंसे उनकी वह विचित्र गति आवर्तके समान जान पड़नें लगी, और उससे खलबलायमान अप्रमेय समुद्रकी समान शब्द होनें लगा ॥ २५ ॥ उस रणभूमिमें दुर्मद निशाचर प्रहस्तनें अत्यन्त क्रोधित होकर बाणोंका झड लगाकर वानरोंको मारने लगा ॥२६ ॥ उस समय वह रणभूमि वानर और राक्षसगणोंके मृतक देहोंसे परिपूर्ण होगई कि जिस्से वह ऐसी ज्ञात होनें लगी मानों यह भयंकर पर्वतोंसे घिररही

अमृष्यमाणस्तत्कर्मप्रहस्तोरथमाश्रितः ॥ चकारकदनंघोरंधनुष्पाणिर्वनौकसाम् ॥ २४ ॥ आवर्तइवसंजज्ञेसेनयोरुभयोस्तदा ॥ क्षुभितस्याप्रमेयस्यसागरस्येवनिःस्वनः ॥ २५ ॥ महताहिशरौघेणराक्षसोरणदुर्मदः ॥ अर्दयामास संक्रुद्धोवानरान्परमाहवे ॥२६॥ वानराणांशरीरैस्तुराक्षसानांचमेदिनी ॥ बभूवातिचिताघोरैःपर्वतैरिवसंवृता ॥२७॥ सामहीरुधिरौघेणप्रच्छन्नासंप्रकाशते ॥ संछन्नामाधवेमासिपलाशैरिवपुष्पितैः ॥ २८॥ हतवीरौघवप्रांतुभग्नायुधमहाद्रुमाम् ॥ शोणितौघमहातोयांयमसागरगामिनीम् ॥ २९ ॥ यकृत्प्लीहमहापंकांविनिकीर्णांत्रशैवलाम् ॥ भिन्नकायशिरोमीनामंगावयवशाद्वलाम् ॥ ३० ॥ गृध्रहंसवराकीर्णांकंकसारससेविताम् ॥ मेदःफेनसमाकीर्णामावर्तस्वननिःस्वनाम् ॥ ३१ ॥

है॥२७॥ वसन्तऋतुके आगमनसे खिले हुए पलाशके फूलोंसे जिस प्रकार पृथ्वी शोभायमान होतीहै, वैसेही रणभूमिमें रुधिरकी नदीनें प्रवाहित होकर अत्यन्त शोभा धारणकी ॥ २८ ॥ मरे हुए वानर राक्षस इसके तट टूटे हुए अस्त्र शस्त्रही किनारे वाले बड़े २ वृक्ष रुधिरका वहनाही जल राशि ऐसी यह रणभूमि उस कालमें यमसागरगामिनी नदीसी ज्ञात हुई ॥ २९ ॥ प्लीहा और यकृत जिसकी घनी कीचड इधर उधर पडे हुए इसके शिवार वीरोंकें कटे हुए रुण्डही इस नदीके बड़े मच्छ व काटे हुए अंग जलकी घासके समान ॥३०॥ रक्त मांसकी चाहना करनेंवाले गृध्रही इस नदीके हंस,कंक रूप सारसही जिसमें बैठेहैं,और चरबीही जिसका फेनरूपहै;और आरत वाणीही जिसका वादलोंका गर्जना रूपशब्दहै॥ ३१ ॥

खंड २ होकर पृथ्वीपर गिरा हुआ देख कोपके मारे प्रलयकी अग्निके समान जल उठे ॥ ७४ ॥ उस समय वह सैनापति नील अश्वकर्ण, धव,
शाल और वौरे हुए आम इत्यादि वृक्ष उखाड़ २ समरमें रावणके ऊपर चलानें लगे ॥ ७५ ॥ राक्षसोंके राजा रावणने इन समस्त चलाये हुए
वृक्षोंको देखते २ खंड २ कर डाला और नीलके ऊपर बाणोंकी घोर वर्षाकरने लगा ॥ ७६ ॥ मेघ जिस प्रकार जल वर्षातेहैं वैसेही लंकेश्वर राव
णके बाण वर्षासे घवड़ाय वानर सैनापति नील अपनी देहको छोटा बनाय कूदकर रावणकी ध्वजापर कूद गये ॥ ७७ ॥ तब दशानन रावण अग्नि
पुत्र नीलको अपनी ध्वजापर बैठा हुआ देखकर क्रोधके मारे जल उठा यह देखकर वानर सैनापति नीलनें घोर सिंहनाद किया ॥ ७८ ॥ इस

सोश्वकर्णद्रुमान्शालांश्चूतांश्चापिसुपुष्पितान् ॥ अन्यांश्चविविधान्वृक्षान्नीलश्चिक्षेपसंयुगे ॥ ७५ ॥ सतान्वृक्षान्समासा
द्यप्रतिचिच्छेदरावणः ॥ अभ्यवर्षच्चघोरेणशरवर्षेणपावकिम् ॥ ७६ ॥ अभिवृष्टःशरौघेणमेघेनेवमहाबलः ॥ ह्रस्वं
कृत्वाततोरूपंध्वजाग्रेनिपपातह ॥ ७७ ॥ पावकात्मजमालोक्यध्वजाग्रेसमवस्थितम् ॥ जज्वालरावणःक्रोधात्ततो
नीलोननादच ॥ ७८ ॥ ध्वजाग्रेधनुषश्चाग्रेकिरीटाग्रेचतंहरिम् ॥ लक्ष्मणोथहनूमांश्चरामश्चापिसुविस्मिताः ॥ ७९ ॥
रावणोपिमहातेजाःकपिलाघवविस्मितः ॥ अस्त्रमाहारयामासदीप्तमाग्नेयमद्भुतम् ॥ ८० ॥ ततस्तेचुक्रुशुर्हृष्टालब्ध
लक्षाःप्लवंगमाः ॥ नीललाघवसंभ्रांतंदृष्ट्वारावणमाहवे ॥ ८१ ॥ वानराणांचनादेनसंरब्धोरावणस्तदा ॥ संभ्रमावि
ष्टहृदयोनकिंचित्प्रत्यपद्यत ॥ ८२ ॥

प्रकारसे वानरोंके सैनापति नील कभी रावणकी ध्वजाके डंडेपर, कभी धनुषपर, और कभी २ रावणके मुखके आगे विराजमान होनें लगे, से
नापति नीलकी यह अनुपम वीरता देखकर श्रीरामचंद्र, लक्ष्मण हनुमानजी अत्यन्त विस्मित हुए ॥ ७९ ॥ रावणनें भी सैनापति नीलकी यह
अद्भुत रणकी चतुरता देख अत्यन्त विस्मितहो एक अद्भुत प्रदीप्त अग्नि बाण ग्रहण किया ॥ ८० ॥ इस ओर वानरगण रावणको नीलकी शीघ्रता
और चंचलतासे रावणको सम्भ्रान्त चित्त देख आनंदसे कुलाहल करनें लगे ॥ ८१ ॥ रावणभी वानर दलका ऐसा शब्द सुनकर इस प्रकारका

एकही वानरोंके सैनापति नीलके ऊपर बाणोंकी वर्षा करनें लगा ॥४०॥ वानरोंके सैनापति नील इन दुरात्मा प्रहस्तके बाणोंको न रोक सके और नेत्र मूंदकर उन समस्त बाणोंको सहन कर लिया। जैसे कि शरद ऋतुकी शीघ्र वर्षाको वृषभ सहन कर लेताहै ॥ ४१ ॥ इसी प्रकार बडे दुःखसे सहनेके अयोग्यभी प्रहस्तके बाण सैनापति नीलनें नेत्र मूंद करके सहन कर लिये ॥४२॥ तिसके पीछे वह महाबलवान् सैनापति नील प्रहस्तके बाणोंकी वर्षा देख क्रोधित हो एक बडाभारी शालका वृक्ष ग्रहण करते हुए, और उसको चलाय कर प्रहस्तके रथमें जुते हुए चार घोडोंका संहार किया ॥ ४३ ॥ और क्रोधमें भरकर उस दुरात्मा राक्षस प्रहस्तका धनुषभी नीलनें बल पूर्वक ग्रहण करके तोड डाला; धनुष तोडकर वानर

तस्यबाणगणानेवराक्षसस्यदुरात्मनः ॥ अपारयन्वारयितुंप्रत्यगृह्णान्निमीलितः ॥ यथैवगोवृषोवर्षंशारदंशीघ्रमागतम् ॥ ४१ ॥ एवमेवप्रहस्तस्यशरवर्षान्दुरासदान् ॥ निमीलिताक्षःसहसानीलःसेहेदुरासदान् ॥ ४२ ॥ रोषितःशरवर्षेणसालेनमहतामहान् ॥ प्रजघानहयान्नीलःप्रहस्तस्यमहाबलः ॥ ४३ ॥ ततोरोषपरीतात्माधनुस्तस्यदुरात्मनः ॥ बभंजतरसानीलोननादचपुनःपुनः ॥ ४४ ॥ विधनुःसकृतस्तेनप्रहस्तोवाहिनीपतिः ॥ प्रगृह्यमुसलंघोरंस्यंदनादवपुप्लुवे ॥ ४५ ॥ तावुभौवाहिनीमुख्यौजातवैरौतरस्विनौ ॥ स्थितौक्षतजसिक्तांगौप्रभिन्नाविवकुंजरौ ॥४६॥ उल्लिखंतौसुतीक्ष्णाभिर्दंष्ट्राभिरितरेतरम् ॥ सिंहशार्दूलसदृशौसिंहशार्दूलचेष्टितौ ॥ ४७ ॥ विक्रांतविजयौवीरौसमरेष्वनिवर्तिनौ ॥ कांक्षमाणौयशःप्राप्तुंवृत्रवासवयोरिव ॥ ४८ ॥

सैनापति नील वारंवार सिंहनाद करनें लगे ॥ ४४ ॥ धनुषहीन होनेपर सैनापति प्रहस्त घोर मूसल ग्रहण करके रथसे छलांग मारकर पृथ्वीपर कूद पडा ॥ ४५ ॥ दोनों घोर युद्ध करनें लगे; दोनों जिस प्रकार वैर बांधे हुएथे; वैसेही बलवानभीथे। युद्ध करते २ दोनोंका शरीर कट गया; और दोनोंहीके शरीरसे रुधिर बहनें लगा ॥४६॥ दोनोंही तीक्ष्ण दाँतोंके प्रहारसे परस्पर एक दूसरेको काटनें लगे, दोनोंका विक्रम और चेष्टा सिंह शार्दूल की समानथी॥४७॥वृत्रासुर और वृत्रासुरके मारनेंवाले इन्द्रमें जिस प्रकारसे युद्धहुआथा; इसही प्रकारसे यह दोनों वीर समरमें यश प्राप्त करनेकी

चेतना रहित देख मेघके समान शब्द करते हुए अपने रथको चलायकर सुमित्रा कुमार लक्ष्मणजीकी ओर चला ॥ ९० ॥ प्रतापवान रावण लक्ष्मणजीको प्राप्त होकर वानरोंको निवारण कर अपने तेजसे विराज मान हो वारंवार अपने धनुषको टंकारनें लगा ॥ ९१ ॥ तब प्रबल बल शाली सुमित्रानंदन लक्ष्मणजी रावणको इस प्रकारसे धनुषपर टंकार देते देखकर बोले; हे राक्षस नाथ ! वानरोंके साथ युद्ध करना तुमको उचित नहीं है, क्योंकि वह तुम्हारी समानके नहीं हैं, इस कारण उनसे युद्ध न करके हमारे साथ युद्ध करो हम तुमसे युद्ध करनेंके लिये तैयार हैं ॥ ९२ ॥ यह कहकर लक्ष्मणजी धनुषपर टंकार देंने लगे; तब राक्षस राज दशानन उनके प्रति शब्द पूर्ण वचन और धनुषकी टंकारका उग्र

आसाद्यरणमध्येतुवारयित्वास्थितोज्वलन् ॥ धनुर्विस्फारयामासराक्षसेंद्रःप्रतापवान् ॥ ९१ ॥ तमाहसौमित्रिरदीनसत्त्वोविस्फारयंतंधनुरप्रमेयम् ॥ अवेहिमामद्यनिशाचरेंद्रनवानरांस्त्वंप्रतियोद्धुमर्हसि ॥ ९२ ॥ सतस्यवाक्यंप्रतिपूर्णघोषंज्याशब्दमुग्रंचनिशम्यराजा ॥ आसाद्यसौमित्रिमुपस्थितंतंरोषान्वितंवाचमुवाचरक्षः ॥ ९३ ॥ दिष्ट्यासिमेराघवदृष्टिमार्गंप्राप्तोंतगामीविपरीतबुद्धिः ॥ अस्मिन्क्षणेयास्यसिमृत्युलोकंसंसाद्यमानोममबाणजालैः ॥ ९४ ॥ तमाहसौमित्रिरविस्मयानोगर्जंतमुद्वृत्तशिताग्रदंष्ट्रम् ॥ राजन्नगर्जंतिमहाप्रभावाविकत्थसेपापकृतांवरिष्ठ ॥ ९५ ॥ जानामिवीर्यंतवराक्षसेंद्रबलंप्रतापंचपराक्रमंच ॥ अवस्थितोहंशरचापपाणिरागच्छकिंमोघविकत्थनेन ॥ ९६ ॥

शब्द श्रवण करके और सुमित्राके पुत्र लक्ष्मणजीको इस प्रकारसे आगे खड़ा देखकर क्रोधसे पूर्ण यह वचन बोला ॥ ९३ ॥ हे लक्ष्मण ! तुम्हारा समय पूर्ण होगया इस कारणसे तुम्हारी बुद्धिमेंभी विपरीतता आगई है; इसही कारणसे हो या हमारे सौभाग्य हीसेही जबकि तुम आज हमारी दृष्टिके मार्गमें पड़ेहो तब निश्चयही हमारे बाणोंसे छिन्न भिन्न इसी मुहूर्तमें तुम यमलोककी यात्रा करोगे ॥ ९४ ॥ रावणके यह वचन सुनकर महावीर लक्ष्मणजी विस्मय रहितहो बोले; हे रावण ! तुम पापी लोगोंके अगुएहो, इसीसे निर्लज्जहो, गर्ज २ कर अपने उज्ज्वल दांत बाहर निकाल ऐसी बकवादकर रहेहो परन्तु महा प्रभाव लोग कभी ऐसा नहीं कहते ॥९५॥ हे राक्षसेन्द्र ! हम तुम्हारे वीर्य बल प्रताप और पराक्रमको भली भांति

जब प्रहस्त मारा गया, तब निशाचरोंकी बची हुई वह कंपायमान करनेंके अयोग्य बड़ी भारी सैना शिर झुकायकर लंकाको चली गई ॥५६॥ जिस प्रकार पुल पांव देके टूट जानें पर सब जल निकल जाताहे और नहीं रुक सकताहे, वैसेही सेनापति प्रहस्तके मारे जानेंपर वह निशाचरगण वहां टिकनेंको समर्थ न हुये ॥ ५७ ॥ उस सैनापति प्रहस्तके मारे जानेंपर वह निशाचर गण शोकके समुद्रमें डूबकर चेतना रहित होगये, और पीछे सब उद्यम छोड़ राक्षसपति रावणके मन्दिरमें आय ध्यान करते हुए पुरुषकी समान मौन धारण किये रहे ॥ ५८ ॥ इस ओर महावीर सैनापति नील युद्धमें जय प्राप्त करके श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजीके निकट आये, तत्काल सबही उनकी इस

नशेकुःसमवस्थातुंनिहतेवाहिनीपतौ ॥ सेतुबंधंसमासाद्यविशीर्णंसलिलंयथा ॥ ५७॥ हतेतस्मिंश्चमूमुख्येराक्षसास्ते निरुद्यमाः ॥ रक्षःपतिगृहंगत्वाध्यानमूकत्वमागताः ॥ प्राप्ताःशोकार्णवंतीव्रंविसंज्ञाइवतेभवन् ॥ ५८ ॥ ततस्तुनीलो विजयीमहाबलःप्रशस्यमानःसुकृतेनकर्मणा ॥ समेत्यरामेणसलक्ष्मणेनप्रहृष्टरूपस्तुबभूवयूथपः ॥ ५९ ॥ इत्यार्षे श्री० वा० आ० यु०अष्टपंचाशःसर्गः ॥ ५८ ॥ ॥ ७ ॥ तस्मिन्हतेराक्षससैन्यपालेप्लवंगमानामृषभेणयुद्धे ॥ भीमायुधंसागरवेगतुल्यंविदुद्रुवेराक्षसराजसैन्यम् ॥ १ ॥ गत्वातुरक्षोधिपतेःशशंसुःसेनापतिंपावकसूनुशस्तम् ॥ तच्चापितेषांवचनंनिशम्यरक्षोधिपःक्रोधवशंजगाम ॥ २ ॥ संख्येप्रहस्तंनिहतंनिशम्यक्रोधार्दितःशोकपरीतचेताः ॥ उवाचतान्राक्षसयूथमुख्यानिंद्रोयथानिजरयूथमुख्यान् ॥ ३ ॥

वीरताकी बहुतसी बडाई करनें लगे ॥ ५९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे अष्टपंचाशः सर्गः ॥ ५८ ॥ वानर श्रेष्ठ नीलके हाथसे जब सैनापति प्रहस्त संग्रामभूमिमें मारा गया तब भयंकर अस्त्र शस्त्रधारी समुद्रके वेगकी समान राक्षस रावणकी भागी हुई ॥ १ ॥ उस सैनानें लंका नगरीमें रावणके निकट जाय "अग्निके पुत्र नीलके हाथसे प्रहस्त मारा गया" उसको यह सम्वाद सुनाया। राक्षस रावण सैनाके मुखसे प्रहस्तका मरना सुनकर अत्यन्त क्रोधित हुआ ॥२॥ रणभूमिसें प्रहस्तको मराहुआ सुनकर रोषके परवश और शोकसे विकल

किया ॥ १०२ ॥ लक्ष्मणजीनें रावणके बाणसे अत्यन्त पीडित आरत होकर क्षण भरको चलायमान हुए, परन्तु अनेक कष्ट करके क्षणभरमेंही चेतना पाय अपने गिरे हुए धनुषको उठायकर उसपर बाण चढ़ाय इन्द्रके शत्रु रावणका धनुष काट डाला ॥ १०३ ॥ दशरथ कुमार लक्ष्मणजीनें इस प्रकारसे रावणका धनुष काटकर अत्यन्त तीखे तीन बाण उस राक्षस राजके मारे रावण उन बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर मोहित होगया और फिर अत्यन्त कष्टसे मूर्छासे जागा ॥ १०४ ॥ लक्ष्मणजीसे धनुष कट जानें और उनके बाणोंसे ताडित होनेंके कारण उग्र सामर्थ्यवान देव शत्रु रावणके अंगोंमें चरबीसे मिला हुआ रुधिर निकलनेसे और दूसरा उपाय नदेखकर उसने ब्रह्माजीकी दीहुई अमोघ(अव्यर्थ)शक्ति ग्रहणकी॥१०५॥

सलक्ष्मणोरावणसायकार्तश्चचालचापंशिथिलंप्रगृह्य ॥ पुनश्चसंज्ञांप्रतिलभ्यकृच्छ्राच्चिच्छेदचापंत्रिदशेंद्रशत्रोः ॥ ३॥
निकृत्तचापंत्रिभिराजघानबाणैस्तदादाशरथिःशिताग्रैः ॥ ससायकार्तोविचचालराजाकृच्छ्राच्चसंज्ञांपुनराससाद ॥४॥
सुकृत्तचापःशरताडितश्चमेदार्द्रगात्रोरुधिरावसिक्तः ॥ जग्राहशक्तिंस्वयमुग्रशक्तिःस्वयंभुदत्तांयुधिदेवशत्रुः॥१०५॥
सतांसधूमानलसन्निकाशांवित्रासनींसंयतिवानराणाम् ॥ चिक्षेपशक्तिंतरसाज्वलंतींसौमित्रयेराक्षसराष्ट्रनाथः॥ ६ ॥
तामापतंतींभरतानुजोस्त्रैर्जघानबाणैश्चहुताग्निकल्पैः ॥ तथापिसातस्यविवेशशक्तिर्भुजांतरंदाशरथेर्विशालम् ॥ ७॥ स
शक्तिमाञ्छक्तिसमाहतःसञ्जज्वालभूमौसरघुप्रवीरः ॥ तंविह्वलंतंसहसाभ्युपेत्यजग्राहराजातरसाभुजाभ्याम् ॥ ८॥

राक्षसोंके राजा रावणनें सुमित्राकुमार लक्ष्मणजीको ताककर संग्राम भूमिमें वानरोंको त्रास उपजानेंवाली और धुरों सहित अग्निकी समान जलती हुई वह शक्ति छोड़दी ॥ १०६ ॥ भरतजीके छोटे भाई लक्ष्मणजीनें उस शक्तिको अपने ऊपर गिरता हुआ देखकर उसको ताक असंख्य अग्निकी समान बाण छोड़े तथापि वह शक्ति किसी प्रकारसे व्यर्थ न होकर लक्ष्मणजीकी विशाल भुजामें आनकर प्रवेश करती हुई ॥ १०७ ॥ तब वह शक्तिमान रघुवीर लक्ष्मणजी शक्तिसे घायल होकर पृथ्वीमें गिर पडे; उनको इस प्रकारसे पृथ्वीमें गिरते हुए देखकर राक्षसराज रावण सहसा

सहित नगरसे बाहर आय महासमुद्र और महामेघकी समान शब्दायमान पर्वत, वृक्ष, हाथमें लिये रण करनेंको तैयार और उग्ररूप वाली बलशाली निराली वानरोंकी सैनाको देखा ॥ १० ॥ इस ओर भुजगेन्द्र सदृश बाहुयुगल शाली अपनी सैनामें टिके हुए सुन्दरदर्शन रघुनन्दन श्रीरामचंद्रजी उस परम प्रचंड राक्षसकी सैनाको देखकर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ विभीषणजीसे बोले ॥ ११ ॥ रंगबिरंगी ध्वजा पताकाओंसे शोभित महेन्द्राचलकी समान हाथी घोड़ोंसे युक्त और प्रास खड्ग शूल इत्यादि भांति २ के अस्त्र शस्त्रोंसे परिपूर्ण यह किस वीरकी सैना है ॥ ॥ १२ ॥ श्रीरामचंद्रजीके यह वचन सुनकर इन्द्र तुल्य वीर्यवान विभीषणजी उन महाबलवान राक्षसश्रेष्ठोंकी सैनाका परिचय श्रीरामचंद्रजीके

तद्राक्षसानीकमतिप्रचंडमालोक्यरामोभुजगेंद्रबाहुः ॥ विभीषणंशस्त्रभृतांवरिष्ठमुवाचसेनानुगतःपृथुश्रीः ॥ ११ ॥
नानापताकाध्वजछत्रजुष्टंप्रासासिशूलायुधशस्त्रजुष्टम् ॥ कस्येदमक्षोभ्यमभीरुजुष्टंसैन्यंमहेंद्रोपमनागजुष्टम् ॥ १२ ॥
ततस्तुरामस्यनिशम्यवाक्यंविभीषणःशक्रसमानवीर्यः ॥ शशंसरामस्यबलप्रवेकंमहात्मनांराक्षसपुंगवानाम् ॥ १३ ॥
योसौगजस्कंधगतोमहात्मानवोदितार्कोपमताम्रवक्त्रः ॥ संकंपयन्नागशिरोभ्युपैतिह्यकंपनंत्वेनमवेहिराजन् ॥ १४ ॥
योसौरथस्थोमृगराजकेतुर्धुन्वन्धनुःशक्रधनुःप्रकाशम् ॥ करीवभात्युग्रविवृत्तदंष्ट्रःसइंद्रजिन्नामवरप्रधानः ॥ १५ ॥
यश्चैषविंध्यास्तमहेंद्रकल्पोधन्वीरथस्थोऽतिरथोतिवीरः ॥ विस्फारयंश्चापमतुल्यमानंनाम्नातिकायोतिविवृद्धका
यः॥१६॥योसौनवार्कोदितताम्रचक्षुरारुह्यघंटानिनदप्रणादम् ॥ गजंखरंगर्जतिवैमहात्मामहोदरोनामसएषवीरः ॥१७॥

समीप निवेदन करने लगे ॥ १३ ॥ विभीषणजी बोले हे राजन्! प्रभात कालके उदय होते हुए सूर्यकी समान जो महाबलवान राक्षस हाथीपर चढकर उसके मस्तकको कम्पायमान करता हुआ आता है उसका नाम अकम्पन है (यह दूसरा अकम्पन था) ॥ १४ ॥ जो रथपर चढ़कर वारंवार इन्द्रके धनुषकी तुल्य अपने धनुषको कंपायमान करता है जिसके रथपर सिंह ध्वज लगाहै,जो तिरछे दांतवाले हाथीकी समान शोभायमान होरहाहै वही वरदान पाया हुआ राक्षसोंमें श्रेष्ठ इन्द्रजीतहै ॥१५॥ विन्ध्याचल अस्ताचल और महेन्द्र पर्वतकी समान अप्रमेय देहवालाहै जो धनुषधारी अतिरथहै और अपने धनुषपर टंकार देता हुआ आय रहा है इसही बडे आकारवाले वीरका नाम अतिकायहै ॥ १६ ॥ प्रभातकालके सूर्यकी

वानर ऋषि सिद्ध और इन्द्रादि देवगण सिंहनाद करनें लगे तिसके पीछे तेजस्वी हनुमानजी रावणसें पीडित लक्ष्मणजीको ॥ ११६ ॥ अपनी दोनों बाहोंसे ग्रहण करके श्रीरामचंद्रजीके पास लाये सुमित्रानंदन लक्ष्मणजी शत्रु लोगोंसे कंपायमान होनेके योग्य नहीं इसकारण रावणके उठाने से न उठे परन्तु हनुमानजीका सौहार्दता और परम भक्तिसे प्रसन्न होकर वह उनके लिये बहुतही हलके होगये ॥ ११७ ॥ तिसके पीछे वह शक्ति संग्रामभूमिको छोड़े हुए लक्ष्मणजीको त्याग कर रावणके रथमें आय अपने स्थानपर विराजमान हुई ॥ ११८ ॥ अतुल तेजस्वी रावणनेभी उस बड़े भारी संग्राममें चैतन्यताको पाय फिर अपना बड़ा भारी धनुष और तीक्ष्ण बाण ग्रहणकिये ॥ ११९ ॥ इस ओर

ऋषयोवानराश्चैवनेदुर्देवाश्चसासुराः ॥ हनुमानथतेजस्वीलक्ष्मणंरावणार्दितम् ॥ १६ ॥ आनयद्राघवाभ्याशंबाहु
भ्यांपरिगृह्यतम् ॥ वायुसूनोःसुहृत्त्वेनभक्त्यापरमयाचसः ॥ शत्रूणामप्यकंप्योपिलघुत्वमगमत्कपेः ॥ ११७ ॥
तंसमुत्सृज्यसाशक्तिःसौमित्रिंयुधिनिर्जितम् ॥ रावणस्यरथेतस्मिन्स्थानंपुनरुपागमत् ॥ १८ ॥ रावणोपिमहाते
जाःप्राप्यसंज्ञांमहाहवे ॥ आददेनिशितान्बाणान्जग्राहचमहद्धनुः ॥ १९ ॥ आश्वस्तश्चविशल्यश्चलक्ष्मणःशत्रुसूद
नः ॥ विष्णोर्भागममीमांस्यमात्मानंप्रत्यनुस्मरन् ॥ २० ॥ निपातितमहावीरांवानराणांमहाचमूम् ॥ राघवस्तुर
णेदृष्ट्वारावणंसमभिद्रवत् ॥ २१ ॥ अथैनमनुसंक्रम्यहनूमान्वाक्यमब्रवीत् ॥ ममपृष्ठंसमारुह्यराक्षसंशास्तुमर्ह
सि ॥ २२ ॥ विष्णुर्यथागरुत्मंतमारुह्यामरवैरिणाम् ॥ तच्छ्रुत्वाराघवोवाक्यंवायुपुत्रेणभाषितम् ॥ २३ ॥

शत्रुओंके मारनेंवाले लक्ष्मणजीभी अपने अचिन्तनीय वैष्णव अंशको स्मरणकर व्यथित और सावधानचित्त हुए ॥ १२० ॥ तब रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी वानरोंकी सैनाके अनेक वीरोंको रावणके हाथसे मृतक होते देखकर शीघ्रतासे उसकी ओर चले॥१२१॥ श्रीरामचंद्रजीको संग्राम करनेंके लिये तैयार देखकर वीर हनुमानजी उनसे हाथ जोड़कर बोलेकि हमारी पीठपर सवार होकर आप रावणका वध कीजिये॥१२२॥विष्णुजीने जिस प्रकार गरुड़जी पर सवार होकर देवताओंके वैरी दैत्योंका संहार कियाथा, श्रीरामचंद्रजी हनुमानजीके कहे हुए ऐसे वचन सुनकर॥१२३॥

प्रकारके घोर रूप वाले विकट नेत्र युक्त व्याघ्र, ऊंट हाथी, मृग, घोड़ेके समान मुखवाले भूतोंके सँग जो शोभितहैं ॥ २३ ॥ और भूतोंसे घिरे हुए शिवजीकी समान शोभायमान हो रहाहै, और जहांपर महीन सौ कमानियोंका बना हुआ चंद्रमाकी समान उज्ज्वल व श्रेष्ठ छत्र लगा दिखाई देताहै, इसी स्थानमें राक्षसोंका स्वामी विराजमानहै ॥ २४ ॥ हेमहाराज ! जिसने इन्द्र और यमराजके गर्वकाभी नाश कियाहै,और जिसके मुखपर हलते हुए कुण्डल दीख पडतेहैं, यह वही हिमालय और विन्ध्याचल पर्वतकी समान भयंकराकार निशाचर पति सूर्यकी समान प्रकाशमान हो रहाहै ॥ २५ ॥ तिसके पीछे शत्रुनाशी श्रीरामचंद्रजी विभीषणसे कहने लगे कि अहो ! राक्षसराज रावणका तेज कैसा प्रदीप्तहै ! और बडाही

यत्रैतदिंदुप्रतिमंविभातिच्छत्रंसितंसूक्ष्मशलाकमग्र्यम् ॥ अत्रैवरक्षोधिपतिर्महात्माभूतैर्वृतोरुद्रइवावभाति ॥ २४ ॥ असौकिरीटीचलकुंडलास्योनगेंद्रविंध्योपमभीमकायः ॥ महेंद्रवैवस्वतदर्पहंतारक्षोधिपःसूर्यइवावभाति ॥ २५ ॥ प्रत्युवाचततोरामोविभीषणमरिंदमः ॥ अहोदीप्तमहातेजारावणोराक्षसेश्वरः ॥ २६ ॥ आदित्यइवदुष्प्रेक्ष्योरश्मिभिर्भातिरावणः ॥ नव्यक्तंलक्षयेह्यस्यरूपंतेजःसमावृतम् ॥२७॥ देवदानववीराणांवपुर्नैवंविधंभवेत् ॥ यादृशंराक्षसेंद्रस्यवपुरेतद्विराजते ॥ २८ ॥ सर्वेपर्वतसंकाशाःसर्वेपर्वतयोधिनः ॥ सर्वेदीप्तायुधधरायोधास्तस्यमहात्मनः ॥ २९ ॥ विभातिरक्षोराजोसौप्रदीप्तैर्भीमदर्शनैः ॥ भूतैःपरिवृतैस्तीक्ष्णैर्देहवद्भिरिवांतकः ॥ ३० ॥ दिष्ट्यायमद्यपापात्माममदृष्टिपथंगतः ॥ अद्यक्रोधंविमोक्ष्यामिसीताहरणसंभवम् ॥ ३१ ॥

तेजस्वीहै ॥ २६ ॥ इसके देहकी किरणें चारों ओर ऐसी फैल रहीहैं, और यह सूर्यकी समान ऐसा दुष्प्रेक्ष्य हुआहै कि इसका तेजसे ढका हुआ रूप हमको नहीं दीख पाताहै ॥२७॥इस राक्षसोंके स्वामी रावणका शरीर जिस प्रकारसे प्रकाशित हो रहाहै, देवता और दानव वीर गणोंका शरीरभी ऐसा प्रकाशित नहीं हुआ करताहै ॥ २८ ॥ महाबलवान राक्षस जो कि रावणके अनुगामी वर्ग हैं वह सबही पर्वतोंके समान बड़े आकारवाले दीप्तायुधधारीहैं; और देहकी चुलबुलाहट निवारण करनेके लिये सबही पर्वतोंके सहित युद्ध किया करतेहैं ॥ २९ ॥ यह राक्षस रावण प्रदीप्त भयंकर दर्शन और तीक्ष्ण देह वाले राक्षसोंके संग होनेसे भूत गणोंके साथ यमराजकी समान जान पडताहै ॥ ३० ॥ बडेही भाग्यकी बातहै

जोकि श्रीरामचंद्रजीको अपने ऊपर चढ़ा रहेथे॥ १३१ ॥ अत्यन्त क्रोध युक्तहो पहला वैर संभाल, कालाग्निकी समान प्रकाशित अत्यन्त तीखे
बाण मारे ॥ १३२ ॥ जोकि,हनुमानजीके लगे, परन्तु संग्राममें रावणके बाणोंसे ताड़ित हुए स्वभावसेही महातेजस्वी हनुमानजीका तेज औरभी
अधिक चढ़ा ॥ १३३ ॥ तिसके पीछे महा तेजस्वी श्रीरामचंद्रजी हनुमानजीकी पीठमें रावणके बाणोंसे घाव हुआ देख अत्यन्त क्रोध करते
हुए ॥ १३४ ॥ उन श्रीरामचंद्रजीनें तीक्ष्ण बाणोंको चलायकर पहिये, घोड़े, छत्र, पताका, सारथि, शूल और खड्गके सहित रावणका रथ चूर्ण
और छिन्नभिन्न करके रत्ती २ काट डाला ॥ १३५ ॥ जिस प्रकार भगवान इन्द्रजीनें सुमेरु पर्वतको चूर्ण कियाथा, वैसेही वज्र और अशनि समान

रोषेण महताविष्टः पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ आजघानशरैर्दीप्तैःकालानलशिखोपमैः ॥३२॥ राक्षसेनाहतेतस्यताडितस्यापि सायकैः ॥ स्वभावतेजोयुक्तस्यभूयस्तेजोभ्यवर्धत ॥ ३३ ॥ ततोरामोमहातेजारावणेनकृतव्रणम् ॥ दृष्ट्वाप्लवगशार्दूलंक्रोधस्यवशमेयिवान् ॥ ३४ ॥ तस्याभिसंक्रम्यरथंसचक्रंसाश्वध्वजच्छत्रमहापताकम् ॥ ससारथिंसाशनिशूलखड्गंरामःप्रचिच्छेदशितैःशराग्रैः ॥ ३५ ॥ अथेंद्रशत्रुंतरसाजघानबाणेनवज्राशनिसन्निभेन ॥ भुजांतरेव्यूढसुजातरूपेवज्रेणमेरुंभगवानिवेंद्रः ॥ ३६ ॥ योवज्रपाताशनिसन्निपातान्नचुक्षुभेनापिचचालराजा ॥ सरामबाणाभिहतो भृशार्तश्चचालचापंचमुमोचवीरः ॥ ३७ ॥ तंविह्वलंतंप्रसमीक्ष्यरामःसमाददेदीप्तमथार्धचंद्रम् ॥ तेनार्कवर्णसहसा किरीटंचिच्छेदरक्षोधिपतेर्महात्मा ॥ ३८ ॥ तंनिर्विषाशीविषसन्निकाशंशांतार्चिषंसूर्यमिवाप्रकाशम् ॥ गतश्रियंकृत्तकिरीटकूटमुवाचरामोयुधिराक्षसेंद्रम् ॥ ३९ ॥

बाणोंसे उन्होंनें इन्द्रके शत्रु रावणकी छातीमें चोटदी,और विविध भांतिके गहनोंसे युक्त भुजामेंभी प्रहार किया ॥ १३६ ॥ पहले वज्र अथवा अश
निके आघातसेभी क्षुभित या चलायमान नहीं हुआ; वही वीरश्रेष्ठ रावण श्रीरामचंद्रजीके बाणसे घायल होकर ऐसा आरत और
चलायमान हुआकि उसका धनुष उसके हाथसे गिर पड़ा ॥ १३७ ॥ महाबलवान श्रीरामचंद्रजीनें रावणको ऐसा व्याकुल देख एक अर्द्ध
चंद्र दीप्तबाण ग्रहण कर उससे राक्षसपतिका सूर्यकी समान प्रकाशित मुकुट काट डाला ॥ १३८ ॥ इस समयमें राक्षस

वह बड़े भारी और उत्तम कपूर व तरु श्रेणी विराजित पर्वतका शृङ्ग जब पृथ्वीमें गिर पड़ा तब निशाचर नाथ रावणने क्रोधित होकर महा सर्पकी तुल्य यमराजकी समान एक बाण ग्रहण करता हुआ ॥ ३८ ॥ इस कुमति वाले रावणनें सुग्रीवजीके मार डालनेंकी वासनासे यह महा वेगवान बाण उनके ऊपर चलाया यह बाण चिनगार निकलते अग्निकी समान प्रदीप्तथा उसकी गति वज्र और पवनके समान थी ॥ ३९ ॥ षड़ानन स्वामी कार्त्तिक जीकी चलाई हुई उस शक्तिनें जिस प्रकार क्रौञ्च पर्वतको भेद डालाथा, वैसेही रावणकी बाहोंसे छूटे हुए उस बाणनें इन्द्रजीके वज्रकी समान प्रकाशित देह वानर राज सुग्रीवजीके ऊपर गिरकर उनके हृदयको भेद डाला ॥ ४० ॥ वीर

तस्मिन्प्रवृद्धोत्तमसानुवृक्षेशृंगेविदीर्णेपतितेपृथिव्याम् ॥ महाहिकल्पंशरमंतकाभंसमादधेराक्षसलोकनाथः ॥ ३८॥
सतंगृहीत्वाऽनिलतुल्यवेगंसविस्फुलिंगज्वलनप्रकाशम् ॥ बाणंमहेंद्राशनितुल्यवेगंचिक्षेपसुग्रीववधायरुष्टः ॥ ३९ ॥
ससायकोरावणबाहुमुक्तःशक्राशनिस्पर्शवपुःप्रकाशम् ॥ सुग्रीवमासाद्यबिभेदवेगाद्गुहेरिताक्रौंचमिवोग्रशक्तिः ॥ ४०॥
ससायकार्तोविपरीतचेताःकूजन्पृथिव्यांनिपपातवीरः ॥ तंवीक्ष्यभूमौपतितंविसंज्ञंनेदुःप्रहृष्टायुधियातुधानाः ॥ ४१ ॥
ततोगवाक्षोगवयःसुषेणस्त्वथर्षभोज्योतिमुखोनलश्च ॥ शैलान्समुत्पाट्यविवृद्धकायाःप्रदुद्रुवुस्तंप्रतिराक्षसेंद्रम् ॥ ४२ ॥ तेषांप्रहारान्सचकारमोघान्रक्षोधिपोबाणशतैःशिताग्रैः ॥ तान्वानरेंद्रानपिबाणजालैर्बिभेदजांबूनदचित्रपुंखैः ॥ तेवानरेंद्रास्त्रिदशारिबाणैर्भिन्नानिपेतुर्भुविभीमकायाः ॥ ४३ ॥

श्रेष्ठ वानरराज सुग्रीवजी उस बाणके प्रहारसे अत्यन्त आरत और चेतना रहित हो घोर शब्द करते हुए पृथ्वीपर गिरपड़े राक्षसगण उनको रणभूमिके मध्य मूर्छित होकर पृथ्वीमें पड़ा हुआ देखकर आनंद के मारे सिंहनाद करनें लगे ॥ ४१ ॥ फिर गवाक्ष गवय सुषेण ऋषभ ज्योतिर्मुख नल इत्यादि वानरगण अपनी २ देहको बढाय उठाय २ राक्षसराज रावणके सन्मुख दौड़े ॥ ४२ ॥ परन्तु राक्षसोंके पर्वतोंको स्वामी रावणनें अत्यन्त तीखे शत बाण चलाय उनके प्रहारको व्यर्थकर सुवर्णकी फोंक लगे हुए बाणोंसे उन वानरश्रेष्ठोंके ऊपर प्रहारकिया

इसके पीछे लंकेश्वर दशानन श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे व्यथित हृदय होकर लंकापुरीमें प्रवेश करता हुआ, उसके हृदयमें श्रीरामचंद्रजीका भय
तबतक प्रबलथा दिग्विजयी होनेंका इतने दिनोंतक जो अभिमान था आज वह अभिमान चूर्ण होगया ॥ १ ॥ सिंहके निकट हाथी और पन्नग
राज गरुड़जीके निकट सर्पकी अवस्था जिस प्रकार होजातीहै, श्रीरामचंद्रजीके निकट रावणकी भी आज वही अवस्था हुई थी ॥ २ ॥ रावण
घरमें बैठकर विकसित सौदामिनीकी समान तेजशाली और ब्रह्मदंडकी समान बाणोंको याद करके अत्यन्त दुःखी हुआ ॥ ३ ॥ तिसके पीछे
सुवर्णके बने सिंहासन पर बैठ राक्षसोंकी ओर निहार रावण बोला ॥ ४ ॥ हा ! हमनें जो कठोर तप कियाथा; हम जानतेहैं कि आज वह तप वृथा

सप्रविश्यपुरींलंकांरामबाणभयार्दितः ॥ भग्नदर्पस्तदाराजाबभूवव्यथितेंद्रियः ॥ १ ॥ मातंगइवसिंहे
नगरुडेनेवपन्नगः ॥ अभिभूतोभवद्राजाराघवेणमहात्मना ॥ २ ॥ ब्रह्मदंडप्रतीकानांविद्युच्चलितवर्चसाम् ॥
स्मरन्राघवबाणानांविव्यथेराक्षसेश्वरः ॥ ३ ॥ सकांचनमयंदिव्यमाश्रित्यपरमासनम् ॥ विप्रेक्षमाणोरक्षांसिरा
वणोवाक्यमब्रवीत् ॥ ४ ॥ सर्वंतत्खलुमेमोघंयत्तप्तंपरमंतपः ॥ यत्समानोमहेंद्रेणमानुषेणविनिर्जितः ॥५॥ इदंत
द्ब्रह्मणोघोरंवाक्यंमामभ्युपस्थितम् ॥ मानुषेभ्योविजानीहिभयंत्वमितितत्तथा ॥ ६ ॥ देवदानवगंधर्वैर्यक्षराक्षसप
न्नगैः ॥ अवध्यत्वंमयाप्रोक्तंमानुषेभ्योनयाचितम् ॥ ७ ॥ तमिमंमानुषंमन्येरामंदशरथात्मजम् ॥ इक्ष्वाकुकुल
जातेनअनरण्येनयत्पुरा ॥ ८ ॥

होगया; हम इन्द्र तुल्य प्रतापी होकर जब कि एक साधारण मनुष्यसे रणभूमिमें हार गये; तब हमारी वीरताही क्या हुई ॥५॥ पूर्व कालमें प्रजापति
ब्रह्माजीनें हमसे कहाथा कि हे राक्षसराज ! मनुष्यके हाथसेही तुमको भयहै, इस समय उनकी वही बात हमको याद आतीहै; देखतेहैं कि अब
सत्य सत्यही मनुष्यसे हमको घोर भय आ पहुँचा; कि जिसका ठिकाना नहीं ॥ ६ ॥ हमनें वरदान पानेंके समय ब्रह्माजीसे, देवता, गन्धर्व, दानव
यक्ष, राक्षस, और सर्प इन सब जातियोंसे न मारे जांय, यह वर मांगा था मनुष्यकी जातिको अपदार्थ समझकर "मनुष्य जातिसे भी हम न
मारे जाँय" ऐसा वरदान हमनें नहीं मांगा ॥ ७ ॥ पूर्व समय इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न हुए महाराजाधिराज अनरण्यनें जो शाप हमको दियाथा

सुनकर सुमित्राके पुत्र लक्ष्मणजी उनको प्रणाम करते हुए, और उनकी पूजाकी, व श्रीरामचंद्रजीनेंभी इनको गलेसे लगाय कर भेंटा जब लक्ष्मणजी युद्ध करनेंको गये ॥ ५० ॥ तब युद्धमें आगे बढ़कर लक्ष्मणजीनें देखा कि हाथीकी शुण्डके समान चढ़ा उतार बाहोंवाला राक्षस रावण भयंकर धनुष उठाय अनिवार बाणोंकी वर्षा करता हुआ वानरोंको ढक रहाहै, और वानर लोगभी छिन्नभिन्न शरीरहो पृथ्वीपर गिर रहेहैं ॥ ५१ ॥ इतने हीमें पवनकुमार हनुमानजी लक्ष्मणजीको आगे बढ़ा हुआ देखकर उनको रोक आप रावणके बाणजालको चीरते फाड़ते उसके सन्मुख धाये ॥ ५२ ॥ तिसके पीछे बुद्धिमान हनुमानजी रावणके रथपर चढ़ दहिनी भुजाका तमाचा उठाय उसको भय दिखाते हुए बोले ॥ ५३ ॥ कि

सरावणंवारणहस्तबाहुंददर्शभीमोद्यतदीप्तचापम् ॥ प्रच्छादयंतंशरवृष्टिजालैस्तान्वानरान्भिन्नविकीर्णदेहान् ॥ ५१ ॥ तमालोक्यमहातेजाहनूमान्मारुतात्मजः ॥ निवार्यशरजालानिविदुद्रावसरावणम् ॥ ५२ ॥ रथंतस्यसमासाद्यबाहुमुद्यम्यदक्षिणम् ॥ त्रासयन्रावणंधीमान्हनूमान्वाक्यमब्रवीत् ॥ ५३ ॥ देवदानवगंधर्वैर्यक्षैश्चसहराक्षसैः ॥ अवध्यत्वंत्वयाप्राप्तंवानरेभ्यस्तुतेभयम् ॥ ५४ ॥ एषमेदक्षिणोबाहुःपंचशाखःसमुद्यतः ॥ विधमिष्यतितेदेहेभूतात्मानंचिरोषितम् ॥ ५५ ॥ श्रुत्वाहनूमतोवाक्यंरावणोभीमविक्रमः ॥ संरक्तनयनःक्रोधादिदंवचनमब्रवीत् ॥ ५६ ॥ क्षिप्रंप्रहरनिःशंकंस्थिरांकीर्तिमवाप्नुहि ॥ ततस्त्वांज्ञातविक्रांतंनाशयिष्यामिवानर ॥ ५७ ॥ रावणस्यवचःश्रुत्वावायुसूनुर्वचोब्रवीत् ॥ प्रहतंहिमयापूर्वमक्षंतवसुतंस्मर ॥ ५८ ॥

तुम वरदानके प्रभावसे देवता, दानव, गन्धर्व और राक्षस लोगोंसेही अवध्य हुएहो, परन्तु वानर लोगोंसे तुमको सम्पूर्ण भयकी सम्भावनाहै ॥ ५४ ॥ इससमय पांच उँगलियोंके सहित हमारा दहना हाथ जो उठा हुआ देखते हो यही तेरी देहमें बहुत कालके वसे हुए प्राणोंको सदाके लिये निकाल कर अलग करेगा ॥ ५५ ॥ भयंकर पराक्रमकारी रावण हनुमानजीके वचन सुन क्रोधके मारे लाल २ नेत्रकर उनसे कहता हुआ ॥ ५६ ॥ कि हे वानर! तुम शंकारहित होकर शीघ्र हमारे ऊपर प्रहार करके अचल कीर्त्ति को प्राप्त करो; तिसके पीछे तुम्हारे पराक्रमकी परीक्षा करके फिर हमभी तुम्हारा संहार करेंगे ॥ ५७ ॥ रावणके वचन सुनकर हनुमानजी बोले कि हमारे पराक्रमको और अधिक जाननेंकी क्या आवश्यकताहै, यदि तुम

आज्ञादी, कि सब द्वारोंपर प्रथम यत्न करो, और फिर सब प्राकार पर चढकर उसको रखाओ ॥ १५ ॥ और नींदके वश हुए कुंभकर्णकोभी जगाओ, कारण कि वह कामके मारे हमारे विचले भाई सदा सोयेही रहतेहैं ॥१६॥ पितामह ब्रह्माजीसे वर पानेके अनुसार निशाचर कुंभकर्ण छैमहीनेतक सोया हुआ रहकर केवल एक दिनको जागताहै परन्तु इससमय उसको सोये हुए केवल नौही दिन * हुएहैं,इसकारण उसको यत्न सहित इससमय जगाना ही कर्तव्यहै ॥ १७ ॥ एक वही महाबाहु इस भयंकर युद्धमें बड़ा चतुर है;वही सब वीरोंका शिरोमणिहै, वही राम लक्ष्मण और समस्त वानरोंका बहुत शीघ्र विनाश करैगा ॥ १८ ॥ सम्पूर्ण राक्षसोंमें श्रेष्ठ कुंभकर्ण ऐसा महाबल शाली होकरभी ग्राम्यसुखमें (स्त्रीपुत्रादिकोंके सुख) अनुरा

निद्रावशसमाविष्टःकुंभकर्णोविबोध्यताम् ॥ सुखंस्वपितिनिश्चिंतःकामोपहतचेतनः ॥ १६ ॥ नवसप्तदशाष्टौचमासान्स्वपितिराक्षसः ॥ मंत्रंकृत्वाप्रसुप्तोयमितस्तुनवमेहनि ॥ १७॥ सहिसंख्येमहाबाहुःककुदंसर्वरक्षसाम् ॥ वानरान्राजपुत्रौचक्षिप्रमेवहनिष्यति ॥ १८ ॥ एषकेतुःपरंसंख्येमुख्योवैसर्वरक्षसाम् ॥ कुंभकर्णःसदाशेतेमूढोग्राम्यसुखेरतः ॥ १९ ॥ रामेणाभिनिरस्तस्यसंग्रामेस्मिन्सुदारुणे ॥ भविष्यतिनमेशोकःकुंभकर्णेविबोधिते ॥ २० ॥ किंकरिष्याम्यहंतेनशक्रतुल्यबलेनहि ॥ ईदृशेव्यसनेघोरेयोनसाह्यायकल्पते ॥ २१ ॥ तेतुतद्वचनंश्रुत्वाराक्षसेंद्रस्यराक्षसाः ॥ जग्मुःपरमसंभ्रांताःकुंभकर्णनिवेशनम् ॥ २२ ॥

गी रहकर मूढ सोयाही रहताहै ॥ १९ ॥ हम उस दारुण संग्राम भूमिमें रामचंद्रसे यद्यपि हारगयेहैं परन्तु कुंभकर्णके जागनेंपर हमको यह शोक नहीं दुःखित करैगा ॥ २० ॥ हमपर ऐसी घोर विपद पड़नेंके समयभी यदि इन्द्रकी समान पराक्रम करनेंवाला कुम्भकर्ण हमारी किसी प्रकारकी सहायताके कामोंमें न आवैगा.तब फिर हम उसको लेकर क्या करेंगे॥२१॥राक्षसोंके राजा रावणके ऐसे वचन सुनकर सब राक्षसगण अति शीघ्रतासे कुम्भकर्णके स्थानको गये ॥२२ ॥ रक्त मांस प्रिय वे राक्षस लोग रावणकी आज्ञाके अनुसार कुंभकर्णके लिये सुगन्धितमाला और श्रेष्ठ २

* कुंभकर्णके जागनेका नियम नहींथा वर्षों सोताही रहताथा क्योंकि "नव सप्तदशाष्टौचमासानिति" इस्से महीनों और अगस्त्यके वाक्यसे वर्षोंका सोना पाया जाताहै ॥

उसनें अपने दहिने हाथकी मुट्ठी बांधकर वानर श्रेष्ठ हनुमानजीकी छातीमें एक घूंसा मारा ॥ ६६ ॥ हनुमानजी भी बड़ी छातीमें घूंसेका प्रहार लगनेंसे वारंवार चलायमानहो चेतना रहित हुए महा बलवान हनुमानजीको विह्वल देखकर ॥ ६७ ॥ अतिरथ रावण रथपर चढ़ा हुआ शीघ्र नीलके सन्मुख आया, राक्षसोंके राजा दशग्रीव प्रतापशाली रावणनें ॥ ६८ ॥ पराये मर्मको भेदनेंवाले भयंकर सर्पके विषकी समान बाणोंके समूहसे वानरोंके सैनापति नीलको मारा॥ ६९ ॥ परन्तु वानरोंके सैनापति नीलनें बाणोंसे घायल होकर भी एक हाथसे एक पर्वतका शृङ्ग ग्रहण कर राक्षसपति रावणके ऊपर चलाया॥ ७० ॥ इतनेही में इस ओर महा तेजस्वी हनुमानजी चेतना प्राप्तकर सावधान हो समर करनेंकी वास

हनूमान्वक्षसिव्यूढेसंचचालपुनःपुनः ॥ विह्वलंतंतदादृष्ट्वाहनूमंतंमहाबलम् ॥ ६७ ॥ रथेनातिरथःशीघ्रंनीलंप्रति समभ्यगात् ॥ राक्षसानामधिपतिर्दशग्रीवःप्रतापवान् ॥ ६८ ॥ पन्नगप्रतिमैर्भीमैःपरमर्माभिभेदनैः ॥ शरैरादीपयामासनीलंहरिचमूपतिम् ॥ ६९ ॥ सशरौघसमायस्तोनीलोहरिचमूपतिः ॥ करेणैकेनशैलाग्रंरक्षोधिपतयेसृजत् ॥ ७० ॥ हनूमानपितेजस्वीसमाश्वस्तोमहामनाः ॥ विप्रेक्षमाणोयुद्धेप्सुःसरोषमिदमब्रवीत् ॥ ७१ ॥ नीलेनसहसंयुक्तंरावणंराक्षसेश्वरम् ॥ अन्येनयुद्ध्यमानस्यनयुक्तमभिधावनम् ॥ ७२ ॥ रावणोथमहातेजास्तंशृंगंसप्तभिःशरैः ॥ आजघानसुतीक्ष्णाग्रैस्तद्विशीर्णंपपातह ॥ ७३ ॥ तद्विशीर्णंगिरेःशृंगंदृष्ट्वाहरिचमूपतिः ॥ कालाग्निरिवजज्वालकोपेनपरवीरहा ॥ ७४ ॥

नासे चारों ओर निहार राक्षस रावणको नीलके साथ युद्ध करते हुए देख क्रोधमें भरकर बोले ॥ ७१ ॥ कि हे रावण ! इस समय तुम नीलके साथ युद्ध कर रहेहो, इस कारण इस समय तुम्हारे ऊपर धावमान होना हमेंउचित नहींहै;नहीं तो अभी तुम्हें हम भलीभांति सिखावन देते ॥ ७२ ॥ परन्तु अतुल तेजस्वी बलशाली राक्षसेन्द्र रावणनें हनुमानजीके वचनोंका निरादर करके, उस नीलके छोड़े हुए पर्वतके शिखरको ताककर, ऐसे सात बाण छोड़े कि जिस्से वह शृङ्ग खंड२ होकर पृथ्वीमें गिर पड़ा॥७३॥तब परवीरघाती वानर सैनापति नील संग्राम भूमिमें उस पर्वतके शृङ्गको

नाश करनेंवाले कुम्भकर्णको राक्षसोंने देखा ॥ ३० ॥ तिसके पीछे राक्षसोंने कुम्भकर्णके निकट पर्वताकार तृप्तिकर जीवजन्तुओंकी राशि उसके खानेंको खडी करदी ॥ ३१ ॥ असंख्य मृग महिष और शूकर इकट्ठे किये गये इसके पीछे अद्भुत ढेरका ढेर अन्नभी राक्षसव्याघ्रोंने वहांपर संग्रह किया ॥ ३२ ॥ तिसके पीछे राक्षस लोगोंनें रुधिरके भरे हुए घड़े और विविध भांतिके माँस भी इकट्ठे करके कुम्भकर्णके निकट रखदिये ॥ ३३ ॥ तिसके पीछे उसकी देहमें सुगन्धित उत्तम चंदन लगाया और वह सब राक्षस उसको श्रेष्ठ २ हार और श्रेष्ठ चन्दनकी सुगन्धिको सुँघानें लगे ॥ ३४ ॥ निशाचर गण उस शत्रुनाशी कुम्भकर्णके सन्मुख तीव्रगंधवाली धूप इत्यादि सुगन्धियें रखकर बादलके समान गंभीर

ततश्चक्रुर्महात्मानःकुंभकर्णस्यचाग्रतः ॥ भूतानांमेरुसंकाशंराशिंपरमतर्पणम् ॥ ३१ ॥ मृगाणांमहिषाणां
चवराहाणांचसंचयान् ॥ चक्रुर्नैर्ऋतशार्दूलाराशिमन्नस्यचाद्भुतम् ॥ ३२ ॥ ततःशोणितकुंभांश्चमांसानिविवि
धानिच ॥ पुरस्तात्कुंभकर्णस्यचक्रुस्त्रिदशशत्रवः ॥ ३३ ॥ लिलिपुश्चपराध्यैंनचंदनेनपरंतपम् ॥ दिव्यैराश्वास
यामासुर्माल्यैर्गंधैश्चगंधिभिः ॥ ३४ ॥ धूपंगंधांश्चससृजुस्तुष्टुवुश्चपरंतपम् ॥ जलदाइवचानेदुर्यातुधानास्ततस्त
तः ॥ ३५ ॥ शंखांश्चपूरयामासुःशशांकसदृशप्रभान् ॥ तुमुलंयुगपच्चापिविनेदुश्चाप्यमर्षिताः ॥ ३६ ॥ नेदुरास्फो
टयामासुश्चिक्षिपुस्तेनिशाचराः ॥ कुंभकर्णविबोधार्थंचक्रुस्तेविपुलंस्वरम् ॥ ३७ ॥ सशंखभेरीपणवप्रणादंसास्फो
टितक्ष्वेलितसिंहनादम् ॥ दिशोद्रवंतस्त्रिदिवंकिरंतःश्रुत्वाविहंगाःसहसानिपेतुः ॥ ३८ ॥

शब्दसे गर्ज कर उसकी स्तुति करनें लगे ॥ ३५ ॥ चन्द्रमाकी समान श्वेत शंखोंको वायु पूरित कर बजाने लगे जब कुम्भकर्ण न जागा तौ क्रोधमें भरकर सिंहनादभी करनें लगे ॥ ३६ ॥ कोई २ राक्षस बडे शब्दसे चिल्लानें लगे; कोई २ बाजे आदि अंग बजाय २ ताल देते, कोई उसके चरण उठाय पृथ्वीपर पटक देते; और कोई २ कुम्भकर्णके जागनें के लिये विविध भांतिसे शब्दही करनें लगे ॥ ३७ ॥ उस समय शंख, भेरी और ढोलकी नादके सहित बाहु स्फोटन और सिंहनादका शब्द श्रवण करके पक्षीगण चारों ओरको उड़े परन्तु उडते हुए पृथ्वीपर गिरपड़े ॥ ३८ ॥

क्रोधयुक्त और सम्भ्रान्त चित्त हुआ कि अपने कर्तव्यको वह निश्चय न कर सका कि अब क्या करना चाहिये ॥ ८२ ॥ तिसके पीछे उस महा तेजस्वी राक्षसोंके पति रावणनें आग्नेयास्त्रसे युक्त बाण ग्रहण करके ध्वजापर बैठे हुए नीलकी ओर दृष्टि करके कहा ॥ ८३ ॥ तब महातेज वान राक्षसोंके स्वामी रावणनें नीलसे कहाकि हे वानर ! तुमने वारंवार मायासे अपना छोटारूप बनायकर हमको धोखा दिया ॥ ८४ ॥ परन्तु अब जो समर्थ हो तौ अपने जीवनकी रक्षा कर कारणकि हमनें देखा कि तैंने मायाके प्रभावसे वारंवार अपने रूपको छोटा बनायाहै सो अबभी वही छोटा रूप बनाकर अपने जीवनकी रक्षाकर ॥ ८५ ॥ परन्तु तुम्हारे अनंत चेष्टाओं करके जीवनकी रक्षामें यत्नवान होने पर

आग्नेयेनापिसंयुक्तंगृहीत्वारावणःशरम् ॥ ध्वजशीर्षस्थितंनीलमुदैक्षतनिशाचरः ॥ ८३ ॥ ततोऽब्रवीन्महातेजारावणोराक्षसेश्वरः ॥ कपेलाघवयुक्तोसिमाययापरयासह ॥ ८४ ॥ जीवितंखलुरक्षस्वयदिशक्तोसिवानर ॥ तानितान्यात्मरूपाणिसृजसित्वमनेकशः ॥ ८५ ॥ तथापित्वांमयामुक्तःसायकोस्त्रमयोजितः ॥ जीवितंपरिरक्षंतंजीविताद्भ्रंशयिष्यति ॥ ८६ ॥ एवमुक्त्वामहाबाहूरावणोराक्षसेश्वरः ॥ संधायबाणमस्त्रेणचमूपतिमताडयत् ॥ ८७ ॥ सोस्त्रमुक्तेनबाणेननीलोवक्षसिताडितः ॥ निर्दह्यमानःसहसासपपातमहीतले ॥ ८८ ॥ पितृमाहात्म्यसंयोगादात्मनश्चापितेजसा ॥ जानुभ्यामपतद्भूमौनतुप्राणैर्वियुज्यत ॥ ८९ ॥ विसंज्ञंवानरंदृष्ट्वादशग्रीवोरणोत्सुकः ॥ रथेनांबुदनादेनसौमित्रिमभिदुद्रुवे ॥ ९० ॥

भी आग्नेयास्त्र युक्त हमारा यह बाण प्राण रक्षा करते हुए तुम्हारे प्राणोंका नाश कर देगा ॥ ८६ ॥ महाबाहु राक्षसराज रावणनें यह कहकर आग्नेयास्त्रसे शर सन्धानकर सैनापति नीलके ऊपर वह बाणचलाया ॥ ८७ ॥ तब सैनापति नीलकी छातीमें वह अग्निबाण लगा, कि जिसके लगनेंसे वह जलते हुए सहसा गिर पडे ॥ ८८ ॥ परन्तु अपने तेज और पिता अग्निके माहात्म्यसे इस आग्नेयास्त्रसे उनके प्राणोंका नाश नहीं हुआ वह केवल दोनों जांघोंको पकडे हुए पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ८९ ॥ इस ओर समरका अभिलाषी रावण वानरश्रेष्ठ नीलको

और मुद्गर व मूसलसेभी कुंभकर्णको यह राक्षस अति जोरसे मारनें लगे,तिस कालमें उस तुमुलनिनादसे पर्वत और समस्त वनोंके सहित लंका पूर्ण होगई, परन्तु कुम्भकर्णकी नींद न टूटी ॥ ४७ ॥ तिसके पीछे सुवर्णके बने हुए सहस्रों नगाड़े एकही संग बजाये गये और चारों ओर उनकी ध्वनि गूंज उठी परन्तु कुम्भकर्ण न जागा ॥ ४८ ॥ जबकि कुंभकर्ण शापसे ग्रसित रहनेंके कारण ऐसी घोर निद्रामें सोया रहकर किसी प्रकारसे न जागा तब यह सब राक्षस अत्यन्त क्रोधित हुए ॥ ४९ ॥ तिसके पीछे उन कोप युक्त भयंकर कर्मकारी राक्षस कुम्भकर्णको जगानेंके लिये अपना २ पराक्रम दिखानें लगे ॥ ५० ॥ कोई २ नगाड़े और भेरी बजानें लगे, कोई २ सिंहनादही करते हुए किसी २ नें उसके बाल पकड़

मुद्गरैर्मुसलैश्चापिसर्वप्राणसमुद्यतैः ॥ तेननादेनमहतालंकासर्वाप्रपूरिता ॥ सपर्वतवनासर्वासोपिनैवप्रबुध्यते ॥ ४७ ॥
ततोभेरीसहस्रंतुयुगपत्समहन्यत ॥ मृष्टकांचनकोणानामसक्तानांसमंततः ॥ ४८ ॥ एवमप्यतिनिद्रस्तुयदानैवप्रबु
ध्यत ॥ शापस्यवशमापन्नस्ततःक्रुद्धानिशाचराः ॥ ४९ ॥ ततःकोपसमाविष्टाःसर्वेभीमपराक्रमाः ॥ तद्रक्षोबोधयिष्यं
तश्चक्रुरन्येपराक्रमम् ॥५० ॥ अन्येभेरीःसमाजघ्नुरन्येचक्रुर्महास्वनम् ॥ केशानन्येप्रलुलुपुःकर्णानन्येदशंतिच ॥ ५१ ॥
उदकुंभशतानन्येसमसिंचंतकर्णयोः ॥ नकुंभकर्णःपस्पंदेमहानिद्रावशंगतः ॥ ५२ ॥ अन्येचबलिनस्तस्यकूटमुद्गर
पाणयः ॥ मूर्ध्निवक्षसिगात्रेषुपातयन्कूटमुद्गरान् ॥ ५३ ॥ रज्जुबंधनबद्धाभिःशतघ्नीभिश्चसर्वशः ॥ वध्यमानोमहाका
योनप्राबुध्यतराक्षसः ॥ ५४ ॥ वारणानांसहस्रंचशरीरेस्यप्रधावितम् ॥ कुंभकर्णस्तदाबुद्धास्पर्शंपरमबुध्यत ॥ ५५ ॥

कर खेंचे और कोई२ उसके कानोंको काटनें लगे ॥ ५१ ॥ और बहुतसे राक्षस सैकड़ों जलके भरे हुए घड़े लेकर कुम्भकर्णके कानोंको जलसे भरनें लगे, तथापि नींदमें मस्त कुम्भकर्ण कुछभी चलायमान न हुआ ॥ ५२ ॥ और दूसरे कूट, मुद्गरादि हाथसें लिये बलवान निशाचर गण मुद्गरोंसे उसके मस्तक, छाती, और सब अंगोंमें चोट देनें लगे॥५३॥ बहुत सारे राक्षस रस्सियोंके बन्धनसे बांधकर उसके शरीरमें शतघ्नियोंका प्रहार करनें लगे; इस प्रकारसेभी मार खाय कर कुम्भकर्णनें निद्राके सुखको नहीं त्यागा ॥ ५४ ॥ तब राक्षसोंनें उसके ऊपर अति वेग सहित

जानतेहैं (अर्थात् सूने आश्रमको पायकर जानकीको हर लायेहो इस्से यह ध्वनि निकलतीहै) इसलिये अव ऐसे वकवाद करनेंका कुछ प्रयोजन
नहीं है,हम धनुष वाण धारण करके टिके हुए हैं, तुमभी आगेको वढ़ो ॥ ९६ ॥ जव लक्ष्मणजीनें ऐसा कहा तव रावणनें लक्ष्मणजीके ऊपर श्रेष्ठ फोंक
लगे हुए सात वाण चलाये सुमित्राके पुत्र लक्ष्मणजीनें तीखे धार युक्त सुपुंख वाणोंसे उन रावणके चलाये वाणोंको काट डाला ॥ ९७ ॥ तव
लंकापति रावण शरीर कटे सर्पोंकी समान उन वाणोंको सहसा खंड २ देखकर अत्यन्त क्रोधित हुआ, व और दूसरे तीखे वाण लक्ष्मणजीके ऊपर
चलानें लगा ॥ ९८ ॥ परन्तु श्रीरामचन्द्रजीके छोटे भाई वीर लक्ष्मणजीनें उन वाणासे चलायमान होकर अपने धनुपको चढ़ाकर वाणोंकी

सएवमुक्तःकुपितःससर्जरक्षोधिपःसप्तशरान्सुपुंखान्॥ताँल्लक्ष्मणःकांचनचित्रपुंखैश्चिच्छेदवाणैर्निशिताग्रधारैः॥९७॥
तान्प्रेक्षमाणःसहसानिकृत्तान्निकृत्तभोगानिवपन्नगेंद्रान् ॥ लंकेश्वरःक्रोधवशंजगामससर्जचान्यान्निशितान्पृषत्का
न् ॥ ९८ ॥ सबाणवर्षंतुववर्षतीव्रंरामानुजःकार्मुकसंप्रयुक्तम् ॥ क्षुरार्धचंद्रोत्तमकर्णभल्लैःशरांश्चचिच्छेदनचुक्षुभे
च ॥ ९९ ॥ सबाणजालान्यपितानितानिमोघानिपश्यंस्त्रिदशारिराजः ॥ विसिस्मियेलक्ष्मणलाघवेनपुनश्चबाणान्नि
शितान्मुमोच ॥१००॥ सलक्ष्मणश्चापिशितान्शिताग्रान्महेंद्रतुल्योशनिभीमवेगान् ॥ संधायचापेज्वलनप्रकाशान्स
सर्जरक्षोधिपतेर्वधाय ॥ १ ॥ सतान्प्रचिच्छेदहिराक्षसेंद्रःशितान्छराँल्लक्ष्मणमाजघान ॥ शरेनकालाग्निसमप्रभेण
स्वयंभुदत्तेनललाटदेशे ॥ २ ॥

वर्षा करनें लगे; और छुरे, अर्द्धचन्द्र, व तीखे फलके लगे हुए भालोंसे रावणके चलाये हुए वाणोंको खंड २ कर डाला ॥ ९९ ॥ उन अमोघ
वाणोंके जालको निष्फल देख और लक्ष्मणजीकीभी शीघ्रतासे विस्मित हो रावणनें फिर तीक्ष्ण वाण चलाये ॥ १०० ॥ तव लक्ष्मणजीनेंभी
अपने धनुषको चढ़ाय इन्द्रके वज्रकी समान वेगवान अग्निकी समान तीक्ष्ण धारवाले वाण राक्षसपति रावणके वध करनेंके लिये छोड़े ॥ १०१ ॥
परन्तु राक्षसोंके स्वामी रावणनें उन समस्त वाणोंको काटकर ब्रह्माजीके दिये हुए प्रलयकी अग्निके प्रचंड वाणसे लक्ष्मणजीके माथेमें प्रहार

बढ़ते गये और शिर झुकायकर प्रणाम कर उसके चारों ओर खड़े होगये ॥ ६४ ॥ उसकी
राक्षसगण उसको तृप्त जानकर धीरे २ उसके आगे बढ़ते गये और शिर झुकायकर प्रणाम कर उसके चारों ओर दृष्टि डालकर राक्षसोंको देखा ॥ ६५ ॥ राक्षस
आंखें नींदके वश होनेसे कुछ एक खुली, और लाल २ हो रहींथीं; उस कुम्भकर्णनें चारों ओर दृष्टि डालकर राक्षसोंको देखा ॥ ६५ ॥ राक्षस
श्रेष्ठ कुम्भकर्ण इन सब राक्षसोंको समझाय बुझाय फिर अकालमें जगानेंके कारण विस्मितहो इन सबसे बोला ॥ ६६ ॥ हेराक्षस गण! तुमनें
आदर सहित अति यत्नसे किस कारण हमको जगाया! महाराज निशाचर नाथ कुशलसे तौहैं? इस समय भयका तौ कोई कारण नहीं है?॥ ६७ ॥

ततस्तृप्तइतिज्ञात्वासमुत्पेतुर्निशाचराः ॥ शिरोभिश्चप्रणम्यैनंसर्वतःपर्यवारयन् ॥ ६४ ॥ निद्राविशदनेत्रस्तुकलुषी
कृतलोचनः ॥ चारयन्सर्वतोदृष्टिंतानुवाचनिशाचरान् ॥ ६५ ॥ ससर्वान्सांत्वयामासनैर्ऋतान्नैर्ऋतर्षभः ॥ बोधना
द्विस्मितश्चापिराक्षसानिदमब्रवीत् ॥ ६६ ॥ किमर्थमहमादृत्यभवद्भिःप्रतिबोधितः ॥ कच्चित्सुकुशलंराज्ञोभयंवाने
हकिंचन ॥ ६७ ॥ अथवाध्रुवमन्येभ्योभयंपरमुपस्थितम् ॥ यदर्थमेवत्वरितैर्भवद्भिःप्रतिबोधितः ॥ ६८ ॥ अद्य
राक्षसराजस्यभयमुत्पाटयाम्यहम् ॥ दारयिष्येमहेंद्रंवाशीतयिष्येतथानलम् ॥ ६९ ॥ नह्यल्पकारणेसुप्तंबोधयिष्य
तिमादृशम् ॥ तदाख्यातार्थतत्त्वेनमत्प्रबोधनकारणम् ॥ ७० ॥ एवंब्रुवाणंसंरब्धंकुंभकर्णमरिंदमम् ॥ यूपाक्षः
सचिवोराज्ञःकृतांजलिरभाषत ॥ ७१ ॥

अथवा इस पूछनेंका क्या प्रयोजनहै जबकि तुमनें हमको ऐसी शीघ्रतासे जगायाहै तब तौ कोई बड़ा भारी भय आ पहुंचाहै इसमें कोईभी संदेह
नहीं ॥ ६८ ॥ जो कुछभीहो आज हम राक्षस राजका भय दूर कर देंगे; महेन्द्र पर्वतको उखाड़ और तोड़ फोड़कर फेंक देंगे अथवा अग्निके तेजको
खर्वकर देंगे ॥ ६९ ॥ जब कि हमारी समान सोते हुए वीरको जगाया गयाहै; तब इस्का साधारण कारण नहीं जान पड़ता; इससे हमारे जगानेंका क्या
कारण है वह तुम यथार्थ२ कहो ॥ ७० ॥ शत्रुओंके नाश करनें वाले कुम्भकर्ण के ऐसा कहनें पर रावणका यूपाक्ष मंत्री हाथ जोड़कर बोला ॥ ७१ ॥

उनके निकट चला गया, और उनको उठानेंके अभिप्रायसे भुजाओंसे बल सहित ग्रहण करता हुआ ॥ १०८ ॥ परन्तु आश्चर्य! जो महावीरनें हिमालय, मन्दर, सुमेरु; वरन सब प्राणियोंके सहित त्रिलोकके उठानेंको समर्थ हैं, परन्तु वही वीर रावण आज लक्ष्मणजीके उठानेंको किसी प्रकारसे समर्थ नहीं हुआ ॥ १०९ ॥ ब्रह्माजीकी शक्तिके छातीमें लगनेंसे यद्यपि लक्ष्मणजी मूर्च्छितभी हुए तथापि विष्णुजीभी जिन श्रीरामचन्द्रजीको यथार्थतासे नहीं जानते कि इनमें कितनी सामर्थ्य है; ऐसे ऐश्वर्य युक्त सबके प्रेरणा करनेंवाले श्रीरामचन्द्रजीका इन लक्ष्मणजीनें स्मरण किया, इस कारण चौदह भुवनोंसे कोटि गुणी अधिक गरुआई लक्ष्मणजीमें आगई कि जिससे रावण इनको उठा नहीं सका ॥ ११० ॥ देवताओंका कण्टक रावण इस बातको जानकरही देव दानवोंका गर्व हरनें वाले लक्ष्मणजीको उठानेके लिये अपनी वीसों भुजा ओंसे बहुतेरी चेष्टा करता

हिमवान्मंदरोमेरुस्त्रैलोक्यंवासहामरैः ॥ शक्यंभुजाभ्यामुद्धर्तुंनशक्योभरतानुजः ॥ ९ ॥ शक्त्याब्राह्म्यातुसौमित्रिस्ताडितोपिस्तनांतरे ॥ विष्णोरमीमांस्यभागमात्मानंप्रत्यनुस्मरत् ॥ ११० ॥ ततोदानवदर्पघ्नंसौमित्रिंदेवकंटकः॥ तंपीडयित्वाबाहुभ्यांनप्रभुर्लंघनेभवत् ॥ ११ ॥ ततःक्रुद्धोवायुसुतोरावणंसमभिद्रवत् ॥ आजघानोरसिक्रुद्धोवज्रकल्पेनमुष्टिना ॥ १२ ॥ तेनमुष्टिप्रहारेणरावणोराक्षसेश्वरः ॥ जानुभ्यामगमद्भूमौचचालचपपातच ॥ १३ ॥ आस्यैश्चनेत्रैःश्रवणैःपपातरुधिरंबहु ॥ विघूर्णमानोनिश्चेष्टोरथोपस्थउपाविशत् ॥ १४ ॥ विसंज्ञोमूर्छितश्चासीन्नचस्थानंसमालभत् ॥ विसंज्ञंरावणंदृष्ट्वासमरेभीमविक्रमम् ॥ ११५ ॥

हुआ परन्तु इस्से किसी प्रकारसे लक्ष्मणजीकी मर्यादा उल्लंघन नहीं हो सकी ॥ १११ ॥ इतनेहीमें पवनकुमार हनुमानजी लक्ष्मणजीको मूर्छित हुआ देख क्रोधित हो रावणके सन्मुख धाये और वज्रकी समान मूका बांधकर अति वेगसे उसकी छातीमें मारा ॥ ११२ ॥ राक्षसोंका स्वामी रावण उस मूकेके प्रहारसे चेतना रहित और रथसे गिरकर अपनी दोनों जांघों के बल कांपता थर थराता पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥११३॥ इस समय रावणके मुख नेत्र और कानोंसे बहुतही रुधिर बहनें लगा और वह ज्ञानरहित हो घूमता २ फिर अपने रथपर जाकर गिरा ॥११४॥ ऐसा मूर्छित यह रावण हुआ कि हाथ पैर कुछभी इसके नहीं चलतेथे, तब भयंकर विक्रमकारी रावणको मूर्छित हुआ देखकर ॥ ११६ ॥

राक्षस सैनापति वीरोंमें मुख्य महोदर कुम्भकर्णके ऐसे गर्वित और रोषके मारे दोष युक्त वचन सुनकर हाथ जोड़कर बोला ॥ ८१ ॥ कि हे महा बाहो ! रावणके वचन सुनकर और उनके गुण दोष विचार पीछेसे शत्रु लोगोंको आप जीतें ॥ ८२ ॥ विपुल बलशाली महा तेजस्वी कुम्भकर्ण महोदरके ऐसे वचन सुनकर राक्षसोंके साथ २ उस स्थानसे चलनेंका अभिलाषी हुआ ॥ ८३ ॥ उस कालमें कुछ एक निशाचर भयंकर नेत्र वाले भीमरूप और भयंकर पराक्रम कुम्भकर्णको जागा हुआ देखकर पहले हीसे रावणके निकट चले गयेथे ॥ ८४ ॥ उन्होंनें वहां जाकर देखा कि रावण दिव्य सिंहासन पर बैठाहै; तब उन राक्षसोंने यह देखतेही हाथ जोड़कर रावणसे कहा ॥ ८५ ॥ हे राक्षसेश्वर ! आपके भ्राता कुम्भकर्ण

तत्तस्यवाक्यंब्रुवतोनिशम्यसगर्वितंरोषविवृद्धदोषम् ॥ महोदरोनैर्ऋतयोधमुख्यःकृतांजलिर्वाक्यमिदंबभाषे ॥८१॥ रावणस्यवचःश्रुत्वागुणदोषौविमृश्यच ॥ पश्चादपिमहाबाहोशत्रून्युधिविजेष्यसि ॥ ८२ ॥ महोदरवचःश्रुत्वाराक्षसैःपरिवारितः ॥ कुंभकर्णोमहातेजाःसंप्रतस्थेमहाबलः ॥ ८३ ॥ सुप्तमुत्थाप्यभीमाक्षंभीमरूपपराक्रमम् ॥ राक्षसास्त्वरिताजग्मुर्दशग्रीवनिवेशनम् ॥ ८४ ॥ तेभिगम्यदशग्रीवमासीनंपरमासने ॥ ऊचुर्बद्धांजलिपुटासर्वएवनिशाचराः ॥ ८५ ॥ कुंभकर्णःप्रबुद्धोसौभ्रातातेराक्षसेश्वर ॥ कथंतत्रैवनिर्यातुद्रक्ष्यसेतमिहागतम् ॥ ८६ ॥ रावणस्त्वब्रवीद्धृष्टोराक्षसांस्तानुपस्थितान् ॥ द्रष्टुमेनमिहेच्छामियथान्यायंचपूज्यताम् ॥ ८७ ॥ तथेत्युक्त्वातुतेसर्वेपुनरागम्यराक्षसाः ॥ कुंभकर्णमिदंवाक्यमूचूरावणचोदिताः ॥ ८८ ॥ द्रष्टुंत्वांकांक्षतेराजासर्वराक्षसपुंगवः ॥ गमनेक्रियतांबुद्धिर्भ्रातरंसंप्रहर्षय ॥ ८९ ॥

जाग गये हैं अब वह सीधेही वहांसे रणभूमिको चले जाँय या आप इस स्थानमें उनके साथ साक्षात् करनेंकी इच्छा करतेहैं ॥ ८६ ॥ तब लंका पति रावणनें हर्षित होकर उनसे कहाकि हम एकवार कुम्भकर्णको देखनेंकी इच्छा करते हैं; तुम परम आदर मानके साथ उसको संग लेकर यहांपर चले आओ ॥८७॥ वे राक्षस रावणकी आज्ञाके अनुसार उसके वचनोंको स्वीकारकर कुम्भकर्णके निकट आनकर निवेदन करते हुए ॥८८॥ राक्षस राज रावण आपके देखनेंकी इच्छा करतेहैं; इस कारण आप गमन करनेंमें स्थिर निश्चय कीजिये; हम लोगोंके निवेदन करनेंसे आप अपनें

महाबाहु हनुमानजीकी पीठपर चढ़े और श्रीरामचंद्रजीनें रावणकोभी रथपर चढ़ेहुए देखा ॥ १२४ ॥ महातेजस्वी श्रीरामचंद्रजी उस रावणको देखकर विष्णुजीनें जिस प्रकार क्रोधितहो अस्त्र धारण कर राजा बलिपर दौड़ेथे वैसेही रावणके सन्मुख धाये ॥ १२५ ॥ तब श्रीरामचंद्रजी अपने धनुष पर वज्रके शब्दकी समान कठोर टंकारदे रावणसे यह गंभीर वचन बोले ॥१२६॥ रेराक्षसशार्दूल खड़ा रह खडारह! तू हमारे ऐसे कुप्यारे कार्यको करके क्या स्थानमें भागकर छुटकारा पायसकताहै? ॥१२७॥ तुम यदि भागकर इन्द्र, यम, सूर्य, ब्रह्मा, अग्नि अथवा श्रीशंकरजीकेभी शरणमें

अथारुरोहसहसाहनूमंतंमहाकपिम् ॥ रथस्थंरावणंसंख्येददर्शमनुजाधिपः ॥ २४ ॥ तमालोक्यमहातेजाःप्रदुद्राव सरावणम् ॥ वैरोचनमिवक्रुद्धोविष्णुरभ्युद्यतायुधः ॥ २५ ॥ ज्याशब्दमकरोत्तीव्रंवज्रनिष्पेषनिष्ठुरम् ॥ गिरागंभीरया रामोराक्षसेंद्रमुवाचह ॥ २६ ॥ तिष्ठतिष्ठममत्वंहिकृत्वाविप्रियमीदृशम् ॥ क्वनुराक्षसशार्दूलगत्वामोक्षमवाप्स्यसि ॥ २७ ॥ यदींद्रवैवस्वतभास्करान्वास्वयंभुवैश्वानरशंकरान्वा ॥ गमिष्यसित्वंदशधादिशोवातथापिमेनाद्यगतोवि मोक्ष्यसे ॥ २८ ॥ यश्चैषशक्त्यानिहतस्त्वयाद्यगच्छन्विषादंसहसाभ्युपेत्य ॥ सएषरक्षोगणराजमृत्युःसपुत्रपौत्र स्यतवाद्ययुद्धे ॥ २९ ॥ एतेनचात्यद्भुतदर्शनानिशरैर्जनस्थानकृतालयानि ॥ चतुर्दशान्यात्तवरायुधानिरक्षःसहस्रा णिनिषूदितानि ॥ १३० ॥ राघवस्यवचःश्रुत्वाराक्षसेंद्रोमहाबलः ॥ वायुपुत्रंमहावेगंवहंतंराघवंरणे ॥ ३१ ॥

जाओ, या दशों दिशाओंमें कहीं जाकर छिपो तथापि आज हमारे हाथसे तुम किसी प्रकारसे निस्तार नपासकोगे ॥ १२८ ॥ राक्षसराज! तेरे द्वारा घायल होकर लक्ष्मण विषादित हुएहैं, हम इसी दुःखसे आज प्रतिज्ञा करके तुम्हारे पुत्रोंके सहित तुम्हारी मृत्युके स्वरूप हो रणभूमिमें आयेहैं ॥ १२९ ॥ विचारकर याद कर ले कि जनस्थानके रहनेंवाले श्रेष्ठ अस्त्र शस्त्र धारण किये अद्भुत दर्शन चौदह हजार (१४०००) राक्षसोंका हमनेही प्राण संहार कियाहै ॥ १३० ॥ महाबलवान रावणनें श्रीरामचंद्रजीके ऐसे वचन सुन महावेगवान पवनकुमार हनुमानजीकी पीठमें

उन वानरोंमेसे कोई२ सबके शरण देनेंवाले श्रीरामचंद्रजीकी शरणमें गये और कोई २ दुःखी होकर पृथ्वीपर गिर पड़े, कोई २ दशों दिशा ओंमें
भागगये; और कोई २ मारे भयके पृथ्वीपर गिरकर सोयरहे ॥ ९७ ॥ अधिक क्या कहैं? जिसनें अपने तेजसे सूर्यको भी उल्लंघन कर दियाहै;
उस पर्वतके शृङ्गकी समान किरीट धारी बड़े ऊंचे और अद्भुत दर्शन वीर कुम्भकर्णको देखतेही,वानरोंमें जिसनें जहां सुभीता पाया वह भयके मारे
उसी स्थानमें भाग गया ॥ ९८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥
तिसके पीछे महा तेजस्वी वीर्यवान् धनुष धारण करनें वाले श्रीरामचंद्रजीनें उस किरीट धारी महाकाय कुम्भकर्णको देखा ॥ १ ॥ पहले

केचिच्छरण्यंशरणंस्मरामंव्रजंतिकेचिद्व्यथिताःपतंति ॥केचिद्दिशश्चव्यथिताःपतंतिकेचिद्भयार्ताभुविशेरतेस्म९७॥
तमद्रिशृंगप्रतिमंकिरीटिनंस्पृशंतमादित्यमिवात्मतेजसा ॥ वनौकसःप्रेक्ष्यविवृद्धमद्भुतंभयार्दितादुद्रुविरेयतस्त
तः ॥ ९८ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० षष्टितमःसर्गः ॥ ६० ॥ ॥ छ ॥ ततोरामोमहातेजाधनुरादाय
वीर्यवान् ॥ किरीटिनंमहाकायंकुंभकर्णंददर्शह ॥ १ ॥ तंदृष्ट्वाराक्षसश्रेष्ठंपर्वताकारदर्शनम् ॥ क्रममाणमि
वाकाशंपुरानारायणंयथा ॥ २ ॥ सतोयांबुदसंकाशंकांचनांगदभूषणम् ॥ दृष्ट्वापुनःप्रदुद्राववानराणांमहाचमूः ॥
॥ ३ ॥ विद्रुतांवाहिनींदृष्ट्वावर्धमानंचराक्षसम् ॥ सविस्मितमिदंरामोविभीषणमुवाचह ॥ ४ ॥ कोसौपर्वतसंकाशः
किरीटीहरिलोचनः ॥ लंकायांदृश्यतेवीरःसविद्युदिवतोयदः ॥ ५ ॥

समयमें आकाश मापते समय वामनजीके समान उस पर्वताकार राक्षस श्रेष्ठ कुम्भकर्णको देखकर श्रीरामचंद्रजी सतर्क हुए ॥ २ ॥ परन्तु सजल
जलद, (पानी सहित वादल) की समान आकार वाले सुवर्णके बाजू पहरे उस वीरको धीरे २ बढ़ता हुआ देखकर वानरोंकी बड़ी सैना
फिर भाग खड़ी हुई ॥ ३ ॥ तब रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी वानरोंकी सैनाको त्रासित और राक्षस कुम्भकर्णको बढ़ा हुआ देखकर विस्मय युक्तहो
विभीषणजीसे बोले ॥ ४ ॥ लंकाके बीचमें पर्वतकी समान मस्तक पर किरीट धारण किये, वानरोंकेसे नेत्र वाला दामिनी युक्त मेघकी समान

राज रावणकी अवस्था विषहीन सर्प और तेजहीन सूर्यकी समान हुई । मुकुटके कट जानेंसे रावणकी समस्त सुन्दरता जाती रही
तब श्रीरामचंद्रजी उस्से बोले ॥ १३९ ॥ हेराक्षस! तुमनें घोर युद्ध कियाहै तुम्हारे हाथसे हमारी सेनाके अनेक वीर मारे गयेहैं इस समय हम
तुमको इसी कारणसे बहुत थका हुआ देखतेहैं; यही विचारकर हमनें आज अपने बाणोंसे तुमको यमराजके गृहमें नहीं पठाया ॥ १४० ॥
हेराक्षसराज! तुम संग्राम करके श्रमके मारे अत्यन्त कातर हुएहो इस लिये हम सलाह देतेहैं कि तुम इस समय लंकामें जायकर सावधान होवो।
सावधान होनेंके पीछे धनुष धारण कर जबकि फिर संग्राम भूमिमें आगमन करोगे उसी समय तुम हमारा पराक्रम जान सकोगे ॥ १४१ ॥ जब
श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा तो लंकानाथ रावण लंका पुरीको झटपट चला गया, उसका वीर गर्व और उत्साह जातारहा, धनुष कट कुट गया घोड़े

कृतंत्वयाकर्ममहत्सुभीमंहतप्रवीरश्चकृतस्त्वयाहम्॥तस्मात्परिश्रांतइतिव्यवस्यनत्वांशरैर्मृत्युवशंनयामि॥ ४०॥ प्र
याहिजानामिरणार्दितस्त्वंप्रविश्यरात्रिंचरराजलंकाम्॥आश्वस्यनिर्याहिरथीसधन्वीतदाबलंप्रेक्ष्यसिमेरथस्थः ४१॥
सएवमुक्तोहतदर्पहर्षोनिकृत्तचापःसहताश्वसूतः ॥ शरार्दितोभग्नमहाकिरीटोविवेशलंकांसहसास्मराजा ॥ ४२ ॥ त
स्मिन्प्रविष्टेरजनीचरेंद्रेमहाबलेदानवदेवशत्रौ ॥ हरीन्विशल्यान्सहलक्ष्मणेनचकाररामःपरमाहवाग्रे ॥ ४३ ॥ तस्मि
न्प्रभग्नेत्रिदशेंद्रशत्रौसुरासुराभूतगणादिशश्च ॥ ससागराः सर्वमहोरगाश्चतथैवभूम्यंबुचराःप्रहृष्टाः ॥ १४४॥ इत्या
र्षेश्रीम०वा०आ०यु०एकोनषष्टितमःसर्गः ॥५९॥ ॥ छ॥ ॥छ॥ ॥छ॥ ॥

और सारथीभी नष्ट हुए रावणका शरीर बाणोंके लगनेंसे घायल होरहा उसकी चूडामणि लुप्त होगई ऐसी अवस्थाको पाय मनमें अति दुःखित
रावण लंकापुरीमें प्रवेश करता हुआ ॥ १४२ ॥ देवता और दानव गणोंका शत्रु महाबलवान निशाचरपति रावण जब इस प्रकारसे
लंकाको चलगया तब श्रीरामचंद्रजीनें लक्ष्मणजीके सहित रणभूमिमें जो वानर पड़ेथे; और उनके अंगोंमें जो बाण गड़ेथे उनको
निकलवा डाला और सबकी व्यथा निवारणकी ॥ १४३ ॥ इस ओर इन्द्रके शत्रु रावणको रणसे भागा इस प्रकारसे लंकामें प्रवेश
करते देखकर, सुर, असुर, महर्षि, उरग, भूतगणादिक और समस्त सागर व भूचर जलचरादि सबही प्राणी प्रसन्न हुए ॥ १४४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा
मायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये कात्यायनकुमार पंडित ज्वालाप्रसादमिश्रकृते भाषानुवादे युद्धकांडे एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥ ॥ छ ॥

इन्द्रकी शरणमें जायकर उनसे अपनी इस दुर्गतिको निवेदन किया॥१४॥यह सुनकर इन्द्रनें क्रोधितहो इनके ऊपर वज्र चलाया यह महात्मा कुम्भ
कर्ण वज्रसे कुछ चोट खाय और विचलित होकर भी वारंवार सिंहनाद करनेंलगा ॥ १५ ॥ उस कालमें सिंहनाद करते हुए राक्षसश्रेष्ठ कुम्भकर्णका
वह घोर शब्द सुनकर प्रजा फिर बहुतही भयभीत हुई ॥ १६ ॥ तिसके पीछे महावलवान कुम्भकर्णनें ऐरावत हाथीके दांत खेंचकर उखाड़
उस्से इन्द्रकी छातीमें प्रहार किया ॥ १७ ॥ अत्यन्त दारुण प्रहारसे वज्रधर इन्द्रजी बहुत व्याकुल हुए उनके सव शरीरसे रुधिर वहनें
लगा; ब्रह्मर्षि और दानवगण यह अवस्था देखकर अत्यन्त विषाद करनें लगे ॥ १८ ॥ और सवही इन्द्र और प्रजाके साथ मिलकर सहसा

सकुंभकर्णंकुपितोमहेंद्रोजघानवज्रेणशितेनवज्री ॥ सशक्रवज्राभिहतोमहात्माचचालकोपाच्चभृशंननाद ॥ १५ ॥
तस्यनानद्यमानस्यकुंभकर्णस्यरक्षसः ॥ श्रुत्वानिनादंवित्रस्ताःप्रजाभूयोवितत्रसुः ॥ १६ ॥ ततःक्रुद्धोमहेंद्रस्य
कुंभकर्णोमहाबलः ॥ निष्कृष्यैरावतादंतंजघानोरसिवासवम् ॥ १७ ॥ कुंभकर्णप्रहारार्तोविजज्वालसवासवः ॥
ततोविषेदुःसहसादेवाब्रह्मर्षिदानवाः ॥ प्रजाभिःसहशक्रश्चययौस्थानंस्वयंभुवः ॥ १८ ॥ कुंभकर्णस्यदौरात्म्यंशशं
सुस्तेप्रजापतेः ॥ प्रजानांभक्षणंचापिशशंसुस्तेदिवौकसाम् ॥ आश्रमध्वंसनंचापिपरस्त्रीहरणंतथा ॥ १९ ॥ एवं
प्रजायदित्वेषभक्षयिष्यतिनित्यशः ॥ अचिरेणैवकालेनशून्योलोकोभविष्यति ॥ २० ॥ वासवस्यवचःश्रुत्वासर्वलो
कपितामहः ॥ रक्षांस्यावाहयामासकुंभकर्णंददर्शह ॥ २१ ॥ कुंभकर्णंसमीक्ष्यैववितत्रासप्रजापतिः ॥ कुंभकर्ण
मथाश्वस्तःस्वयंभूरिदमब्रवीत् ॥ २२ ॥

प्रजापति ब्रह्माजीके निकट गये; और वहां उन्होंनें प्रजागणोंको भक्षण करना देवता लोगोंको सताना, आश्रमोंका विध्वंसित होना और पराई
स्त्रीका हरण, रूपी कुम्भकर्णकी यह सव दुष्टता ब्रह्माजीसे निवेदनकी ॥ १९ ॥ तव इन्द्रजीनें कहाकि यह यदि नित्य प्रति प्रजाको भक्षण
किया करैगा; तो बहुतही शीघ्रतासे सब लोग उजाड़ होजांयगे ॥ २० ॥ सर्व लोगोंके पितामह ब्रह्माजीने इन्द्रजीके वचन सुनकर गायत्र्यादि
मंत्रोंसे राक्षसोंको आह्वानकरकै उनमें कुम्भकर्णकोभी देखा ॥ २१ ॥ परन्तु कुम्भकर्णको देखतेही ब्रह्माजीको अत्यन्त भय उपस्थित हुआ

सो जान पड़ताहै कि उसही शापका फल फलनेंके लिये उनके वंशमें दशरथ कुमार रामचंद्रका जन्म हुआ होगा ॥ ८ ॥ महाराज अनरण्यनें कहाथा कि हे राक्षसोंमें नीच! हमारे वंशमेंसे एक ऐसे वीर पुरुष जन्म ग्रहण करेंगे कि जिसके हाथसे तुम, तुम्हारे पुत्र, मंत्री, समस्त सैना, अश्व, सारथि, ॥ ९ ॥ इन सबके साथ हे दुर्मति नराधम! तुम संग्राममें मारे जाओगे; हमनें पूर्वकालमें एक वार वेदवतीके प्रति बल प्रकाश करके उसके सतीपनका अपमान कियाथा ॥ १० ॥ सो अब जान पड़ताहै कि उन वेदवती हीनें इन महाभागा जनकनंदिनीके रूपसें जन्म ग्रहण कियाहै, इनसेही हमारा नाश होगा, इनके अतिरिक्त देवी उमा, नन्दीश्वर, रम्भा, और वरुणजीकी कन्या पुञ्जिकस्थलीनें ॥ ११ ॥ जो

उत्पत्स्यतिहिमद्वंशपुरुषोराक्षसाधम ॥ यस्त्वांसपुत्रंसामात्यंसबलंसाश्वसारथिम् ॥ ९ ॥ निहनिष्यतिसंग्रामेत्वां कुलाधमदुर्मते ॥ शप्तोहंवेदवत्याचयथासाधर्षितापुरा ॥ १० ॥ सेयंसीतामहाभागाजाताजनकनंदिनी ॥ उमानंदीश्वरश्चापिरंभावरुणकन्यका ॥ ११ ॥ यथोक्तास्तन्मयाप्राप्तंनमिथ्याऋषिभाषितम् ॥ एतदेवसमागम्ययत्नंकर्तुमिहार्हथ ॥ १२ ॥ राक्षसाश्चापितिष्ठंतुचर्यागोपुरमूर्धसु ॥ सचाप्रतिमगांभीर्योदेवदानवदर्पहा ॥ १३ ॥ ब्रह्मशापाभिभूतस्तुकुंभकर्णोविबोध्यताम् ॥ समरेजितमात्मानंप्रहस्तंचनिषूदितम् ॥ १४ ॥ ज्ञात्वारक्षोभीमबलमादिदेशमहाबलः ॥ द्वारेषुयत्नःक्रियतांप्राकारश्चाधिरुह्यताम् ॥ १५ ॥

शाप हमको दियेहैं, ❋ इससमय हमको वही शापकी दशा उपस्थित हुईहै; ऋषिलोगोंके वचन कभी मिथ्या होंनेवाले नहीं, हे राक्षसगण! यह समस्त जान बूझकर अब जो कुछ कर्तव्यहो सो तुम करो ॥ १२ ॥ इससमय राजमार्ग और कोटकी भीतके किनारे २ राक्षसलोग रक्षाकरनेंको टिक रहेंहैं अति गंभीरता युक्त देव दानव गर्व खर्व कारी ॥ १३ ॥ पितामह ब्रह्माजीके शापसे सोतेहुए कुम्भकर्णको भी अब जगाना उचितहै । अपने आपको समरमें श्रीरामचंद्रजीसे हारा और प्रहस्तको मारा हुआ जान ॥ १४ ॥ और कुम्भकर्णको महाबलवान् जाना तब महाबली रावणनें राक्षसोंको

❋ जब रावणने कैलाश उठाया तब पार्वतीने शाप दिया कि स्त्रीके निमित्त तेरा मरण होगा नंदीश्वरकी वानराकार मूर्त्ति देखकर हँसा तब उन्हीने शाप दिया कि वानरही तेरा नाश करैंगे रंभा निमित्त नल कूबरके शापकी कथा लिख चुकेहैं । वरुणकी कन्या पुंजिकस्थालीको रावणने पकडा तौ ब्रह्माने शाप दिया कि स्त्रीहरणसे मरण होगा ॥

तैयार होगा ॥ ३० ॥ इस कुम्भकर्णको देखते ही वानरगण भाग रहे हैं परन्तु जब यह क्रोधित होकर रणभूमिमें खड़ा होगा उस काल वानरोंमेंसे कौन इसको निवारणकर सकैगा ॥३१॥ इस कारणसे सब वानरोंके सैनाके मध्यमें इस वातका प्रचारित कर दियाजाय कि यह मूर्ति सजीव नहीं है वरन रावणनें तुम लोगोंको डरवानेके लिये यह कल बनाई है बस इस वातको सुन सब वानर भयरहित होजांयगे ॥ ३२ ॥ वानर लोगोंके हितकारी और युक्ति युक्त विभीषणजीके कहे हुए वचन सुनकर रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी सेनापति नीलसे बोले ॥ ३३ ॥ हे अग्निकुमार! तुम जायकर सब वानरों

कुंभकर्णप्रतीक्ष्यैवहरयोद्यप्रदुद्रुवुः ॥ कथमेनंरणेक्रुद्धंवारयिष्यंतिवानराः ॥ ३१ ॥ उच्यंतांवानराःसर्वेयंत्रमेतत्समुच्छ्रितम् ॥ इतिविज्ञायहरयोभविष्यंतीहनिर्भयाः ॥ ३२ ॥ विभीषणवचःश्रुत्वाहेतुमत्सुमुखोद्गतम् ॥ उवाचराघवोवाक्यंनीलंसेनापतिंतदा ॥ ३३ ॥ गच्छसैन्यानिसर्वाणिव्यूह्यातिष्ठस्वपावके ॥ द्वाराण्यादायलंकायाश्चर्याश्चास्याथसंक्रमान् ॥ ३४ ॥ शैलशृंगाणिवृक्षांश्चशिलाश्चाप्युपसंहरन् ॥ भवंतःसायुधाःसर्वेवानराःशैलपाणयः ॥ ३५ ॥ राघवेणसमादिष्टोनीलोहरिचमूपतिः ॥ शशासवानरानीकंयथावत्कपिकुंजरः ॥ ३६ ॥ ततोगवाक्षःशरभोहनूमानंगदस्तथा ॥ शैलशृंगाणिशैलाभागृहीत्वाद्वारमभ्ययुः ॥ ३७ ॥ रामवाक्यमुपश्रुत्यहरयोजितकाशिनः ॥ पादपैरर्दयन्वीरावानराःपरवाहिनीम् ॥ ३८ ॥

का व्यूह बनाओ और सावधान होकर लंकाके पुरद्वार राजमार्ग व और भी सब मोर्चे घेरलो ॥ ३४ ॥ हमारी आज्ञानुसार तुम सब शैल शृंग वृक्ष और शिला इकट्ठी कर रक्खो तुम लोग अस्त्र और पर्वतादि धारण करकै सावधानतासे टिके रहो॥३५॥वानर सैनापति कपिकुंजर नीलनें श्रीरामचंद्रजीकी ऐसी आज्ञा पाय समस्त वानरोंमें उस आज्ञाका प्रचार करादिया॥३६॥तिसके पीछे गवाक्ष, शरभ, हनुमान, और अंगद, यह समस्त वानर पर्वतों के शृङ्ग ग्रहण करकै लंकाके द्वारपर उपस्थित हुए ॥ ३७ ॥ इस प्रकारसे वह जययुक्त वानरगण श्रीरामचंद्रजीके वचनोंसे सावधानहो शत्रुकी

भोजन करनेंकी सामग्री इकट्ठी करके लेजानें लगे ॥ २३ ॥ तिसके पीछे वह राक्षस कुम्भकर्णकी गुहामें प्रवेश करते हुए, यह गुफा अतिरमणीक थी, यहांपर फूलोंकी सुगन्धि आय रहीथी, इस गुहाका द्वार अति विस्तार वालाथा; यह गुफा चार कोशकी लंबी चौड़ी थी ॥ २४ ॥ वह महाबली राक्षस कुम्भकर्णके श्वासोंकी पवन लगनेके कारण बहुतही कंपायमान हुए और बड़े कष्टसे स्थिर हो अति यत्न सहित उस गुफामें पैठे ॥ २५ ॥ तिसके पीछे राक्षसोंनें रत्नकांचन बनें हुए फर्संसे युक्त उस रमणीक गुफामें प्रवेश करके सोते हुए भयंकर विक्रम कारी कुम्भकर्णको देखा ॥ २६ ॥ सब राक्षस लोग मिलकर कुम्भकर्णकी निद्रा तोड़नेका उपाय करने लगे इन राक्षसोंनें देखा कि महावीर्य

तेरावणसमादिष्टामांसशोणितभोजनाः ॥ गंधंमाल्यंमहद्भक्ष्यमादायसहसाययुः ॥ २३ ॥ तांप्रविश्यमहाद्वारां सर्वतोयोजनायताम् ॥ कुंभकर्णगुहांरम्यांपुष्पगंधप्रवाहिनीम् ॥२४॥ कुंभकर्णस्यनिःश्वासादवधूतामहाबलाः ॥ प्रतिष्ठमानाःकृच्छ्रेणयत्नात्प्रविविशुर्गुहाम् ॥ २५ ॥ तांप्रविश्यगुहांरम्यांरत्नकांचनकुट्टिमाम् ॥ ददृशुर्नैर्ऋतव्याघ्राः शयानंभीमविक्रमम् ॥ २६ ॥ तेतुतंविकृतंसुप्तंविकीर्णमिवपर्वतम् ॥ कुंभकर्णमहानिद्रंसमेताःप्रत्यबोधयन् ॥ २७ ॥ उर्ध्वलोमांचिततनुंश्वसंतमिवपन्नगम् ॥ भ्रामयंतंविनिःश्वासैःशयानंभीमविक्रमम् ॥ २८ ॥ भीमनासापुटंतंतुपातालविपुलाननम् ॥ शयनेन्यस्तसर्वांगंमेदोरुधिरगंधिनम् ॥ २९ ॥ कांचनांगदनद्धांगंकिरीटेनार्कवर्चसम् ॥ ददृशुर्नैर्ऋतव्याघ्रंकुंभकर्णमरिंदमम् ॥ ३० ॥

कुम्भकर्ण सोता हुआ विकराल हो रहा है और पर्वतकी समान पड़ा है ॥ २७ ॥ कुम्भकर्णके सब रुँये ऊपरको खड़ेथे वह सर्पकी समान लंबे २ श्वासोंकी पवनसे मानों राक्षसोंको घूमाय रहाथा ऐसा भयंकर कर्मकारी कुम्भकर्णको राक्षसोंने देखा ॥ २८ ॥ इसका मुख पातालकी समान बड़ाथा नाक के स्वरभी बहुतही लंबे चौडेथे उसके सब शरीरमें (जोकि शेजपर पड़ाथा) चरबी और रुधिरकी दुर्गन्ध आय रहीथी ॥२९॥ वह सुवर्णका बाजू पहरे हुएथा उसके शिरपर मुकुट सूर्य भगवानकी किरणोंकी समान प्रकाशित हो रहाथा ऐसे राक्षसव्याघ्र शत्रुओंका

पातेही शीघ्रता सहित हर्षित अंतःकरणसे उठकर कुंभकर्णको अपने समीप लाया ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त रावणके आसनपर बैठनेंके पीछे महा वलवान कुंभकर्ण अपने भ्राताके चरणयुगल वंदन करके बोलाकि "हमें क्या करना होगा?"॥८॥ रावण कुम्भकर्णको प्रणाम करता हुआ देखकर हर्षित अंतःकरणसे फिर उठकर उसे भलीभांति अपने हृदयसे लगाता हुआ ॥ ९ ॥ महा वलवान् कुम्भकर्णभी अपने भ्राता करकै भेंटे जाकर और यथायोग्य रूपसे आदर पाय श्रेष्ठ व देवताओंके बैठनेंके योग्य आसनपर बैठा ॥ १० ॥ तव कुम्भकर्ण क्रोधके मारे लाल २ नेत्र करके रावण से बोला कि हे महाराज! किसकारणसे आपने ऐसे यत्नसे हमको जगवायाहै? ॥ ११ ॥ किससे आपको भय पहुंचाहै? और किसको आज हम

अथासीनस्यपर्यंकेकुंभकर्णोमहाबलः ॥ भ्रातुर्ववंदेचरणौकिंकृत्यमितिचाब्रवीत् ॥८॥ पुनःसमुदितोत्पत्यरावणःपरि षस्वजे ॥ सभ्रात्रासंपरिष्वक्तोयथावच्चाभिनंदितः ॥ ९ ॥ कुंभकर्णःशुभंदिव्यंप्रतिपेदेवरासनम् ॥ सतदासनमा श्रित्यकुंभकर्णोमहाबलः ॥ १० ॥ संरक्तनयनःक्रोधाद्रावणंवाक्यमब्रवीत् ॥ किमर्थमहमादृत्यत्वयाराजन्प्रबोधि तः ॥ ११ ॥ शंसकस्माद्भयंतेत्रकोवाप्रेतोभविष्यति ॥ भ्रातरंरावणःक्रुद्धंकुंभकर्णमवस्थितम् ॥ रोषेणपरिवृत्ताभ्यां नेत्राभ्यांवाक्यमब्रवीत् ॥ १२ ॥ अयंतेसुमहान्कालःशयानस्यमहाबल ॥ सुषुप्तस्त्वंनजानीषेममरामकृतंभय म् ॥ १३ ॥ एषदाशरथिःश्रीमान्सुग्रीवसहितोबली ॥ समुद्रंलंघयित्वातुकुलंनःपरिकृंतति ॥ १४ ॥ हंतपश्यस्वलं कायांवनान्युपवनानिच ॥ सेतुनासुखमागत्यवानरैकार्णवंकृतम् ॥ १५ ॥

यमराजके भवनोंमें भेजें? यह समस्त वृत्तान्त आप हमारे निकट प्रकाश करकै कहिये; कुम्भकर्ण क्रोधसे यह वचन कह मौनरहा, और अपने लघुभ्राताके वचन सुनकर रावणभी क्रोधके मारे अपनी दोनों आँखोंको घुमानें लगा ॥ १२ ॥ हेमहावलवान्! तुम वरावर शयन करकै सुखसे सो रहेथे इसलिये रामचंद्रसे जो भय हमको उपस्थित हुआहै वह तुम कुछभी नहीं जानतेहो? ॥ १३ ॥ महावलशाली श्रीमान् दशरथके पुत्र रामचंद्र सुग्रीव सहित समुद्रके पार आयकर हमारे जाति कुलका नाश कररहेहैं ॥ १४ ॥ लंकाके वन उपवनोंकी ओर एकवार

परन्तु जब नीदसे अचेत हुआ महाबलवान महात्मा कुम्भकर्ण निशाचर गणोंके घोर सिंहनाद करनेंसेभी न जागा, तब राक्षसोंनें क्रोधित होकर भुशुण्डी, मूशल, और गदा इत्यादि अस्त्र शस्त्र ग्रहण किये ॥ ३९ ॥ तिसके पीछे प्रचंड निशाचर गण पर्वतोंके शिखर, मूसल गदा और मूकोंसे पृथ्वीपर सुखसे सोये हुए कुम्भकर्ण की छातीमें अत्यन्त बलसे प्रहार करनें लगे, परन्तु किसीसेभी कुछ न हुआ ॥ ४० ॥ यह राक्षसगण महाबलवान होकरभी कुम्भकर्णके प्रबल श्वासोंकी पवनके आगे किसी प्रकार ठहरनेंको समर्थ नहीं हुए ॥ ४१ ॥ तिसके पीछे भयंकर विक्रमकारी वह राक्षस गण धोती जांघिये आदि अपने वस्त्रोंको संभालकर मृदंग, ढोल, भेरी शंख और कुम्भ नामक बाजोंको बजानें

यदाभृशार्तैर्निनदैर्महात्मानकुंभकर्णोबुबुधेप्रसुप्तः ॥ ततोभुशुंडीर्मुसलानिसर्वेरक्षोगणास्तेजगृहुर्गदाश्च ॥ ३९ ॥ तंशैलशृंगैर्मुसलैर्गदाभिर्वक्षस्थलेमुद्गरमुष्टिभिश्च ॥ सुखप्रसुप्तंभुविकुंभकर्णंरक्षांस्युदग्राणितदानिजघ्नुः ॥ ४० ॥ तस्यनिःश्वासवातेनकुंभकर्णस्यरक्षसः ॥ राक्षसाःकुंभकर्णस्यस्थातुंशेकुर्नचाग्रतः ॥ ४१ ॥ ततःपरिहितागाढंराक्षसाभीमविक्रमाः ॥ मृदंगपणवान्भेरीःशंखकुंभगणांस्तथा ॥ ४२ ॥ दशराक्षससाहस्रंयुगपत्पर्यवारयत् ॥ नीलांजनचयाकारंतेतुतंप्रत्यबोधयन् ॥ ४३ ॥ अभिघ्नंतोनदंतश्चनचसंबुबुधेतदा ॥ यदाचैनंनशेकुस्तेप्रतिबोधयितुंतदा ॥ ४४ ॥ ततोगुरुतरंयत्नंदारुणंसमुपाक्रमत् ॥ अश्वानुष्ट्रान्खरान्नागाञ्जघ्नुर्दंडकशांकुशैः ॥ ४५ ॥ भेरीशंखमृदंगांश्चसर्वप्राणैरवादयन् ॥ निजघ्नुश्चास्यगात्राणिमहाकाष्ठकटंकरैः ॥ ४६ ॥

लगे ॥ ४२ ॥ इस प्रकारसे दश हजार नीले अंजनकी ढेरकी समान उस कुम्भकर्णको जगानेके लिये बड़ेही यत्न करनें लगे ॥ ४३ ॥ वह राक्षस अनेक प्रकारके प्रहार, गर्जन और भांति २ के बाजे बजाकरभी उस कुम्भकर्णको नहीं जगाय सके ॥ ४४ ॥ जब वह राक्षस इन सब कार्योंके करनेंका कुछ फल न पाते हुए, तब उन राक्षसोंकी मति इस्सेभी भारी उपाय करनें की हुई, वह राक्षसगण उन्हींके अनुसार ऊंट गधे और हाथियोंको, बारंबार दंडोंसे चाबकोंसे और अंकुशोंसे मार कर कुम्भकर्णके ऊपर चलानें लगे ॥ ४५ ॥ सब इकट्ठे होकर भेरी शंख, और अति जोरसे मृदंग बजानें लगे और कुम्भकर्णके शरीरमें बड़े भारी कांटे लगे काठोंसे ठोकनें लगे ॥ ४६ ॥

कोभी तुम्हारी समान बलवान नहीं देखते; कारण तुमही हमारे लिये अधिक वीर्य प्रकाश करो ॥ २१ ॥ प्रचंड पवन जिस प्रकारसे शरद समयके मेघको उड़ा देतीहै; वैसेही तुम अपने तेजके प्रभावसे शत्रुकी सेनाके धुर्रें उड़ादो हे बान्धवप्रिय ! हे समराभिलाषी! तुम हमारे हितार्थ यह उत्तम कार्य पूराकरो ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥ राक्षसराज रावणके ऐसे विलापके वचन सुनकर कुम्भकर्ण हँसता हुआ बोला ॥ १ ॥ हमनें परामर्श होनेके समयमें जिस दोषकी शंका कीथी, आपने उन हितकारी वचनोंपर श्रद्धा नहीं की, इसी कारणसे अब आपको वही दोष आय प्राप्त हुआहै ॥ २ ॥ कुकर्म करनेंवाले जन जिस

स्वतेजसाव्यथयसपत्नवाहिनींशरद्घनंपवनइवोद्यतोमहा कुरुष्वमेप्रियहितमेतदुत्तमंयथाप्रियंप्रियरणबांधवप्रिय ॥ ॥६२॥ ॥७॥ तस्यराक्षसराजस्यनिशम्यपरिदेवितम् ॥ न्॥२२॥इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०युद्धकांडेद्विषष्टितमःसर्गः ॥६२॥ हितेष्वनभियुक्तेनसोयमासा कुंभकर्णोबभाषेदंवचनंप्रजहासच ॥ १ ॥ दृष्टोदोषोहियोस्माभिःपुरामंत्रविनिर्णये ॥ प्रथमंवै दितस्त्वया ॥ २ ॥ शीघ्रंखल्वभ्युपेतंत्वांफलंपापस्यकर्मणः ॥ निरयेष्वेवपतनंयथादुष्कृतकर्मणः ॥ ३ ॥ महाराजकृत्यमेतदचिंतितम् ॥ केवलंवीर्यदर्पेणनानुबंधोविचारितः ॥ ४ ॥ यःपश्चात्पूर्वकार्याणिकुर्यादैश्वर्यमास्थि तः ॥ पूर्वंचोत्तरकार्याणिनसवेदनयानयौ ॥ ५ ॥ देशकालविहीनानिकर्माणिविपरीतवत् ॥ क्रियमाणानिदुष्यंति हवींष्यप्रयतेष्विव ॥ ६ ॥ त्रयाणांपंचधायोगंकर्मणांयःप्रपद्यते ॥ सचिवैःसमयंकृत्वाससम्यग्वर्ततेपथि ॥ ७ ॥

प्रकार शीघ्रही नरकमें पड़ा करतेहैं; ऐसेही तुमको अपने पापकर्म करनेंका फल बहुत शीघ्र मिलगया ॥ ३ ॥ हेमहाराज ! आपनें केवल वीर्यके घमंडके वशमें हो पहले इस सम्बन्धमें कुछ चिन्ता नहींकी; और ऐसे निन्दनीय कार्यके विषयमें कुछ सुविचारभी नहीं किया ॥ ४ ॥ जो ऐश्वर्यके मदसे मदवाले होकर पहले करनें योग्य कार्य पीछे, और पीछे करनें योग्य कार्योंको पहले किया करतेहैं; उन्होंनें नीति अनीतिको कुछभी नहीं जाना ॥ ५ ॥ जिस प्रकार संस्कारके अयोग्य अग्निमें दीहुई आहुति विफल होजातीहै वैसेही देशकालको विना विचारे जो कार्य किये जातेहैं; वह समस्तही विपरीत और दूषित होजातेहैं ॥ ६ ॥ जो राजा विचार करनेंके पीछे, कर्त्तव्य, क्षय, वृद्धि स्थान और सभादिके विषयमें चिन्ता

हजारों हाथियोंकी दांय चलाई, तब हाथियोंके पैरोंसे दबनेंका सुख पाय कुम्भकर्ण जाग उठा ॥ ५५ ॥ कुम्भकर्ण उन गिराये हुए पर्वतोंके शिखर और वृक्षोंसे मार खाय करभी निद्रा नाशके वश, भूंखसे व्याकुलहो वारंवार जंभाई लेता सहसा उठ कर बैठ गया ॥ ५६ ॥ तिसके पीछे राक्षसेन्द्र कुम्भकर्ण वज्रसेभी अधिक सारवान और अचल शृङ्ग व नाग भोगकी समान दोनों बांहोंको फैलाय घोड़ीके समान अपने विकट मुखको खोल ॥ ५७ ॥ जँभाई लेंनेके समय उसका वदन पातालकी समान गंभीर और मुख मंडल सुमेरु गिरिपर उदय हुए सूर्यकी समान दृष्टि आया ॥ ५८ ॥ जब जँभाई लेता हुआ वह निशाचर जागा तब जिस प्रकार पर्वत परसे निकल कर पवन वहतीहै उसही भांति कुम्भकर्णकी

सापत्यमानैर्गिरिशृंगवृक्षैरचिंतयंस्तान्विपुलान्प्रहारान्॥ निद्राक्षयात्क्षुद्भयपीडितश्चविजृंभमाणःसहसोत्पपात॥५६॥
सनागभोगाचलशृंगकल्पौविक्षिप्यबाहूजितवज्रसारौ ॥ विवृत्यवक्त्रंवडवामुखाभंनिशाचरोसौविकृतंजजृंभे ॥ ५७॥
तस्यजाजृंभमाणस्यवक्त्रंपातालसन्निभम् ॥ ददृशेमेरुशृंगाग्रेदिवाकरइवोदितः ॥ ५८॥ सजृंभमाणोतिबलःप्रबुद्ध
स्तुनिशाचरः ॥ निःश्वासश्चास्यसंजज्ञेपर्वतादिवमारुतः ॥ ५९ ॥ रूपमुत्तिष्ठतस्तस्यकुंभकर्णस्यतद्बभौ ॥ युगां
तेसर्वभूतानिकालस्येवदिधक्षतः ॥ ६० ॥ तस्याग्निदीप्तसदृशेविद्युत्सदृशवर्चसी ॥ ददृशातेमहानेत्रेदीप्ताविवमहाग्र
हौ ॥ ६१ ॥ ततस्त्वदर्शयन्सर्वान्भक्ष्यांश्चविविधान्बहून् ॥ वराहान्महिषांश्चैवबभक्षसमहाबलः ॥ ६२ ॥ आदद्बुभुक्षि
तोमांसंशोणितंतृषितोपिबत् ॥ मेदःकुंभांश्चमद्यांश्चपपौशक्ररिपुस्तदा ॥ ६३ ॥

श्वासका पवन वहनें लगा ॥ ५९ ॥ जब कुम्भकर्ण जागा तब उसका रूप संसारको जलानेंके लिये तैयार प्रलय कालीन कालकी समान जान पड़नें लगा ॥ ६० ॥ उसकी दोनों आंखें प्रकाशमान अग्निकी समान थीं, उनसे विजलीसी निकल रहीथी; मानों वह कुम्भकर्ण प्रकाशमान महा ग्रह था ॥ ६१ ॥ तिसके पीछे उसके भोजन करनेंको जो महिष शूकरादि विविध प्रकारकी सामग्री गईथी वह इकट्ठी कीगई; वह सब उन राक्षसोंनें कुम्भकर्णको दिखाये, तब महाबलवान कुम्भकर्ण उन सबको भक्षण करनेंमें लगा ॥ ६२ ॥ बहुत दिनोंसे भूंखा प्यासा वह इन्द्रका शत्रु राक्षस कुम्भकर्ण ढेरके ढेर विविध भांतिके मांस खाय और असंख्य चरबी; व मदिराके घड़ोंको पान करके अपनी प्यास बुझाता हुआ ॥ ६३ ॥

जो शास्त्रको न जानतेहों; उनका वचन राजा कभी ग्रहण नहीं करे; कारण कि वह अहितकाही करनेंवाला होताहै, कारण कि वे लोग अर्थशास्त्रके
न जाननेंसे धनकी बड़ी आशा रखते, और ठकुर सुहाती बात कह देतेहैं इससे उनकी बातका क्या ठीकहै ? ॥ १५ ॥ जो पुरुष अहित बातको
ऐसा नोन मिर्च लगायकर कहते, कि मानों यह बड़ाही हित कर रहेहैं,ऐसे धूर्तोंको मंत्रणा कार्यसे बाहर निकालदेना चाहिये, कारण कि उनसे सब
कार्य भ्रष्ट होजाते हैं ॥ १६ ॥ हे महाराज ! ऐसेभी अनेक मंत्री होतेहैं, जो सब कुछ जाननेंवाले शत्रुओंके साथ सलाह करके विपरीत कार्य करके
स्वामीका विनाश कर देतेहैं ॥ १७ ॥ राजाको उचितहै कि उन मंत्रियोंको जो मित्र बने हुए वैरी हैं व्यवहारसे जानले और जान बूझकर उनका त्याग

अहितंचहिताका
अशास्त्रविषदांतेषांकार्यंनाभिहितंवचः ॥ अथशास्त्रानभिज्ञानांविपुलांश्रियमिच्छताम् ॥ १५ ॥ अहितंचहिताका
रंधाष्टर्याज्जल्पंतियेनराः ॥ अवश्यंमंत्रबाह्यास्तेकर्तव्याःकृत्यदूषकाः ॥ १६ ॥ विनाशयंतोभर्त्तारंसहिताःशत्रु
भिर्बुधैः ॥ विपरीतानिकृत्यानिकारयंतीहमंत्रिणः ॥ १७ ॥ तान्भर्तामित्रसंकाशानमित्रान्मंत्रनिर्णये ॥ व्यवहारे
णजानीयात्सचिवानुपसंहितान् ॥ १८ ॥ चपलस्येहकृत्यानिसहसानुप्रधावतः ॥ क्षिप्रमन्येप्रपद्यंतेक्रौंचस्यखमिव
द्विजाः ॥ १९ ॥ योहिशत्रुमवज्ञायआत्मानंनाभिरक्षति ॥ अवाप्नोतिहिसोऽनर्थान्स्थानाच्चव्यवरोप्यते ॥ २० ॥
यदुक्तमिहतेपूर्वंप्रिययामेनुजेनच ॥ तदेवनोहितंवाक्यंयथेच्छसितथाकुरु ॥ २१ ॥ तत्तुश्रुत्वादशग्रीवःकुंभकर्ण
स्यभाषितम् ॥ भ्रुकुटिंचैवसंचक्रेक्रुद्धश्चैनमभाषत ॥ २२ ॥

करदे ॥ १८ ॥ जिस प्रकार पक्षीगण स्वामिकार्तिकजीसे विदारित किये हुए क्रौञ्च पर्वतके छिद्रमें प्रवेश करतेहैं, वैसेही शत्रु लोगभी चपल और इधर
उधर दौड़कर धानेंवाले राजामें छिद्र पायकर प्रवेश किया करतेहैं ॥१९॥ जो शत्रुको तुच्छ समझकर अपनी रक्षा नहीं करतेहैं; वह बड़े भारी अन
र्थको प्राप्त होकर स्थानसे भी भ्रष्ट होजातेहैं ॥ २० ॥ रानी मन्दोदरी और हमारे छोटे प्रिय भ्राता विभीषणजीनें जो कुछ कहाथा, वही कहना
हमारे हितका करनें वालाहै; तिसके पीछे जो आपकी इच्छा हो सो कीजिये ॥ २१ ॥ तब दशमुख रावण कुम्भकर्णके ऐसे वचन सुनकर भ्रुकुटि

हेमहाराज ! हम लोगोंको देवकृत कोई भय नहीं पड़ाहै परन्तु इस समय मनुष्योंसे हमको तुमुल भय आन पहुंचाहै ॥ ७२ ॥ हे राजन् ! मनुष्योंसे इस समय जैसा भय हमको पहुंचाहै दैत्य अथवा दानवोसेभी ऐसा भय हमको कभी नहीं हुआ ॥ ७३ ॥ सीताके हरणसे संतापित हुए श्रीरामचन्द्रही हमारे इस बड़े भारी भयके कारण हैं, उनकीही पर्वताकार वानरोंकी सैनासे लंकापुरी घिरी हुईहै ॥ ७४ ॥ पहले केवल एकही वानर करके लंका जलाई गई, और कुंजर वा अपने साथियोंके सहित हितकुमार अक्षभी मारा गयाहै ॥७५॥ और की वात तो क्याकहैं देवता लोगोंका कण्टक स्वयं पुलस्त्यनंदन राक्षस राज रावणभी सूर्यकी समान तेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीके सामनेंसे भागकर चले आये हैं, सोभी

ननोदेवकृतंकिंचिद्भयमस्तिकदाचन ॥ मानुषान्नोभयंराजंस्तुमुलंसंप्रबाधते ॥ ७२ ॥ नदैत्यदानवेभ्योवाभयमस्तिननःक्वचित् ॥ यादृशंमानुषंराजन्भयमस्मानुपस्थितम् ॥ ७३ ॥ वानरैःपर्वताकारैर्लंकेयंपरिवारिता ॥ सीताहरणसंतप्ताद्रामान्नस्तुमुलंभयम् ॥ ७४ ॥ एकेनवानरेणेयंपूर्वंदग्धामहापुरी ॥ कुमारोनिहतश्चाक्षःसानुयात्रःसकुंजरः ॥ ७५ ॥ स्वयंरक्षोधिपश्चापिपौलस्त्योदेवकंटकः ॥ व्रजेतिसंयुगेमुक्तोरामेणादित्यवर्चसा॥७६॥यन्नदेवैःकृतोराजानापिदैत्यैर्नदानवैः ॥ कृतःसइहरामेणविमुक्तःप्राणसंशयात् ॥ ७७॥ सयूपाक्षवचःश्रुत्वाभ्रातुर्युधिपराभवम् ॥ कुंभकर्णोविवृत्ताक्षोयूपाक्षमिदमब्रवीत् ॥ ७८॥ सर्वमद्यैवयूपाक्षहरिसैन्यंसलक्ष्मणम् ॥ राघवंचरणेजित्वाततोद्रक्ष्यामिरावणम् ॥ ७९ ॥ राक्षसांस्तर्पयिष्यामिहरीणांमांसशोणितैः ॥ रामलक्ष्मणयोश्चापिस्वयंपास्यामिशोणितम् ॥ ८० ॥

जब श्रीरामचन्द्रजीनें दया करके उनसे कहाकि " जाओ भागजाओ " इस समय हमनें तुम्हें छोड़ दिया ॥७६॥ देव, दैत्य, और दानवोंसेभी जिन महाराजकी कभी पहले दुरवस्था नहीं हुई, आज रामचन्द्र करके ऐसी प्राण संशयकारिणी दशा उनको आई, उन रामचन्द्रनें दया करके राजाको प्राणोंसे नहीं मारा ॥ ७७ ॥ उस समय कुम्भकर्ण यूपाक्षके वचन सुनकर और संग्राम भूमिमें अपने भ्राता रावणका पराजय होना जानकर नेत्र घुमाय उससे बोला ॥ ७८ ॥ हे यूपाक्ष ! हम प्रथम सवसे पहले वानरोंकी सैनाके सहित राम और लक्ष्मणका नाश करके पीछेसे अपने बड़े भाईके चरणोंको देखेंगे ॥ ७९ ॥ हम वानर लोगोंके मांस और रुधिरसे राक्षसोंको तृप्त करेंगे; और हम स्वयं राम और लक्ष्मणका रुधिर पियेंगे॥८०॥

छोड़कर सावधानचित्त होजाइये ॥ ३० ॥ हे पृथ्वीनाथ ! हमारे जीवित रहतेहुए आप मनमें कभी ऐसे सन्तापको स्थान न दीजिये । हम
निश्चय कहतेहैं कि जिनके लिये आपको इतना संतापित होना पड़ाहै; हम उनका नाश कर डालेंगे ॥ ३१ ॥ हे महाराज ! आप चाहें जिस अव
स्थामें हों वही समय हमको हितके वचन कहने चाहिये, इस कारणही बन्धुभाव और भ्राताके स्नेहके वश होकर हमने आपसे ऐसा कहा॥३२॥
संकट पड़नेके समयमें स्नेहके आधीन हुए बन्धुके लिये जो कुछ करना उचितहै, हम उससे विमुख नहीं हैं. आज युद्धमें जाकर हम शत्रुओंकी
सैनाका नाश करतेहैं सो आप देखें ॥ ३३ ॥ हे महाबाहो ! आज हमसे संग्रामभूमिमें भ्राताके सहित रामचंद्रके मारनेपर आप वानरोंकी सैनाको

नैतन्मनसिकर्तव्यंमयिजीवतिपार्थिव ॥ तमहंनाशयिष्यामियत्कृतेपरितप्यते ॥३१॥ अवश्यंचहितंवाच्यंसर्वावस्थां
गतंमया ॥ बंधुभावादभिहितंभ्रातृस्नेहाच्चपार्थिव ॥ ३२ ॥ सदृशंयच्चकालेस्मिन्कर्तुंस्नेहेनबंधुना ॥ शत्रूणांकदनं
पश्यक्रियमाणंमयारणे ॥ ३३ ॥ अद्यपश्यमहाबाहोमयासमरमूर्धनि ॥ हतेरामेसहभ्रात्राद्रवंतींहरिवाहिनीम् ॥३४॥
अद्यरामस्यतद्दृष्ट्वामयानीतंरणाच्छिरः ॥ सुखीभवमहाबाहोसीताभवतुदुःखिता ॥ ३५ ॥ अद्यरामस्यपश्यंतुनि
धनंसुमहत्प्रियम् ॥ लंकायांराक्षसाःसर्वेयेतेनिहतबांधवाः ॥ ३६ ॥ अद्यशोकपरीतानांस्वबंधुवधशोचिनाम् ॥
शत्रोर्युधिविनाशेनकरोम्यश्रुप्रमार्जनम् ॥ ३७ ॥ अद्यपर्वतसंकाशंससूर्यमिवतोयदम् ॥ विकीर्णंपश्यसमरे
सुग्रीवंप्लवगेश्वरम् ॥ ३८ ॥

भागता हुआ देखेंगे ॥ ३४॥ हे महाभुज ! आज मुझ करके रणभूमिसे लायेहुए रामचंद्रके मस्तकको देखकर आप सुखी और जानकी दुःखी
होंगी ॥३५॥ युद्धमें जिनके बन्धु बान्धव मारे गयेहैं आज लंकावासी वह निशाचरगण बड़े भारी सुखका मूल रामचंद्रका मारा जाना देखेंगे ॥ ३६ ॥
युद्धमें बान्धव लोगोंका विनाश होनेके कारण जो लोग शोकाकुल होकर अश्रु छोड़ रहेहैं आज रणभूमिमें शत्रुओंको विनाश करके उनके आंसु
ओंको पोंछेंगे ॥३७॥ आज पर्वताकार वानरराज सुग्रीव रणभूमिमें सूर्यके सहित बादलके समान फैलाहुआ, और रुधिरसे भीगा हुआ देखोगे ॥३८॥

बड़े भ्राताका आनंद बढ़ावें ॥ ८९ ॥ महावीर दुर्द्धर्ष कुम्भकर्ण अपने भ्राताकी आज्ञाको जान और उसे माथे पर चढ़ाकर (बहुत अच्छा) कह से जपरसे उठा ॥ ९० ॥ और हर्षित मनसे मुखधो स्नानकर परम सुखपाय बलको बढ़ानेंवाली मदिराके पीनेंका अभिलाष करता हुआ ॥ ९१ ॥ तब राक्षस लोग रावणकी आज्ञाके अनुसार विविध भांति मदिरा और विविध प्रकारके भोजन पदार्थ लेआये ॥ ९२ ॥ तेज बल युक्त कुम्भकर्ण मदिराको पीकर कुछ एक मतवाला और तीव्र स्वभाव होकर चलनेंके लिये तैयार हुआ ॥ ९३ ॥ कुम्भकर्ण हर्षित होकर कालान्तक यम राजकी समान शोभायमान होनें लगा उस कालमें कुम्भकर्ण जब राक्षसोंके साथ २ अपने भ्राता रावणके भवनमें गमन करनें लगा; तब उसके

कुंभकर्णस्तुदुर्धर्षोभ्रातुराज्ञायशासनम् ॥ तथेत्युक्त्वामहावीर्यःशयनादुत्पपातह ॥ ९० ॥ प्रक्षाल्यवदनंहृष्टःस्नातः परमहर्षितः ॥ पिपासुस्त्वरयामासपानंबलसमीरणम् ॥ ९१ ॥ ततस्तेत्वरितास्तत्रराक्षसारावणाज्ञया ॥ मद्यंभक्ष्यांश्चविविधान्क्षिप्रमेवोपहारयन् ॥ ९२ ॥ पीत्वाघटसहस्रेद्वेगमनायोपचक्रमे ॥ ईषत्समुत्कटोमत्तस्तेजोबलसमन्वितः ॥ ९३ ॥ कुंभकर्णोबभौरुष्टःकालांतकयमोपमः ॥ भ्रातुःसभवनंगच्छन्रक्षोबलसमन्वितः ॥ कुंभकर्णः पदन्यासैरकंपयतमेदिनीम् ॥ ९४ ॥ सराजमार्गंवपुषाप्रकाशयन्सहस्ररश्मिर्धरणीमिवांशुभिः ॥ जगामतत्रांजलिमालयावृतःशतक्रतुर्गेहमिवस्वयंभुवः ॥ ९५ ॥ तंराजमार्गस्थममित्रघातिनंवनौकसस्तेसहसाबहिःस्थिताः ॥ दृष्ट्वाप्रमेयंगिरिशृंगकल्पंवितत्रसुस्तेसहयूथपालैः ॥ ९६ ॥

वारंवार चरण धरनें उठानेंसे पृथ्वी कंपायमान होनें लगी ॥ ९४ ॥ जिस प्रकार सूर्य भगवान् अपनी किरणोंके जालसे पृथ्वीको प्रकाशित करतेहैं,वैसेही कुम्भकर्ण भी अपनी कान्तिसे राज मार्गको प्रकाशित करता हुआ चला । इन्द्रजीके ब्रह्माजीके भवनमें जानेंकी समान हाथ जोड़े हुए राक्षस रूपी मालासे घिरकर कुम्भकर्ण अपने भ्राताके स्थानको जानें लगा ॥ ९५ ॥ वह पर्वतके शृङ्गकी समान शत्रु ओंका नाश करनें वाला अप्रमेय वीर जब राजमार्गमें चला जाताथा तब बाहर खड़े हुए वनवासी वानर अपने यूथपतियोंके साथ इसको देखतेही त्रासित हुए ॥ ९६ ॥

राम हमारे मूकेके वेगको सहकर जीवित रहैं ॥ ४६ ॥ तो हमारे बाण उस रामचन्द्रके रुधिरको पान करेंगे। इसलिये हे महाराज! आप हमारे जीवित रहते हुए आप किस कारणसे संतापकरतेहैं ॥ ४७ ॥ लीजिये हम आपके शत्रुका प्राण संहार करनेंके लिये जातेहैं आप रामचंद्रका भय छोड़ दीजिये, क्योंकि हम घोर युद्धमें उनको मार डालेंगे ॥ ४८ ॥ हम राम लक्ष्मण सुग्रीवको और जिस वानरनें राक्षसोंका नाश करके लंकापुरी जलाईथी उस हनुमानकोभी संहार करैंगे ॥ ४९ ॥ और वहांपर जो वानरगण युद्ध करनेंके लिये आयेहैं उनकोभी हम खाडालेंगे! हे महाराज! हमनें आपके बड़े भारी यशकी कामना करके इस असाधारण कामके करनेंकी अभिलाषा कीहै ॥ ५० ॥ हेराजन्! यदि इन्द्र अथवा

ततःपास्यंतिबाणौघारुधिरंराघवस्यमे ॥ चिंतयातप्यसेराजन्किमर्थंमयितिष्ठति ॥ ४७ ॥ सोहंशत्रुविनाशायतव निर्यातुमुद्यतः ॥ मुंचरामाद्भयंघोरंनिहनिष्यामिसंयुगे ॥ ४८ ॥ राघवंलक्ष्मणंचैवसुग्रीवंचमहाबलम् ॥ हनूमंतं चरक्षोघ्नंयेनलंकाप्रदीपिता ॥ ४९ ॥ हरींश्चभक्षयिष्यामिसंयुगेसमुपस्थिते ॥ असाधारणमिच्छामितवदातुंमहद्य शः ॥ ५० ॥ यदिचेंद्राद्भयंराजन्यदिचापिस्वयंभुवः ॥ अपिदेवाःशयिष्यंतेमयिक्रुद्धेमहीतले ॥ ५१ ॥ यमंचशम यिष्यामिभक्षयिष्यामिपावकम् ॥ आदित्यंपातयिष्यामिसनक्षत्रंमहीतले ॥ ५२ ॥ शतक्रतुंवधिष्यामिपास्यामि वरुणालयम् ॥ पर्वतांश्चूर्णयिष्यामिदारयिष्यामिमेदिनीम् ॥ ५३ ॥ दीर्घकालंप्रसुप्तस्यकुंभकर्णस्यविक्रमम् ॥ अद्यपश्यंतुभूतानिभक्ष्यमाणानिसर्वशः ॥ नत्विदंत्रिदिवंसर्वमाहारोममपूर्यते ॥ ५४ ॥

ब्रह्मासेभी आपको भय पहुंचाहो तौ हम उनकोभी मारडालेंगे। हमारे क्रोधित होनेंपर देवता लोग पृथ्वीपर सोते हुए दीखेंगे ॥ ५१ ॥ हम यम राजकाभी नाश करदेंगे अग्निको भक्षण कर डालेंगे; और हम सूर्यकोभी आकाशसे तारागणोंके सहित पृथ्वीपर गिरादेंगे ॥ ५२ ॥ इन्द्रको मार डालेंगे, समुद्रको पान कर जायँगे, पर्वतोंको चूर्ण २ करदेंगे और पृथ्वीको भी हम विदीर्ण करैंगे ॥ ५३ ॥ हम बहुत समयसे सोय रहेथे, परन्तु आज समस्त जीव इस कुम्भकर्णसे भक्षित होकर इसका विक्रम देखें अधिक क्या कहैं यह त्रिलोकभी हमारे पेटको भरनेंके लिये पूरी न होगी॥ ५४ ॥

यह कौन वीरहै ? ॥ ५ ॥ यह तौ पृथ्वीका एक बड़ा पताकारूप अकेलाही जान पड़ताहै; कारणकि इसके केवल देखनेहीसे समस्त वानरोंकी सैना भागी जातीहै ॥ ६ ॥ हमनें पहले कभी इस प्रकारका अद्भुत प्राणी नहीं देखा; इसलिये यह महाप्राणी राक्षसहै या असुरहै; यह हमको ठीक २ बताओ ॥ ७ ॥ सरलतासे कठिन कर्म करनेवाले रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीसे इस भांति कहे जाकर महाप्राज्ञ विभीपणजी बोले ॥ ८ ॥ जिसनें संग्राम भूमिमें यमराज और इन्द्रकोभी हरा दियाथा यह वही विश्रवाका पुत्र प्रतापवान् कुम्भकर्ण है, इसके प्रमाण की समान और कोई राक्षस नहीं है ॥ ९ ॥ हे रामचंद्रजी ! इस करकै ही संग्रामभूमिमें दानव, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, विद्याधर और पन्नगगण हजारों वार हारकर इसके

पृथिव्यांकेतुभूतोसौमहानेकोत्रदृश्यत ॥ यंदृष्ट्वावानराःसर्वेविद्रवंतियतस्ततः ॥ ६ ॥ आचक्ष्वसुमहान्कोसौरक्षोवा यदिवासुरः ॥ नमयैवंविधंभूतंदृष्टपूर्वंकदाचन ॥ ७ ॥ संपृष्टोराजपुत्रेणरामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ विभीषणोमहाप्रज्ञः काकुत्स्थमिदमब्रवीत् ॥ ८ ॥ येनवैवस्वतोयुद्धेवासवश्चपराजितः ॥ सैषविश्रवसःपुत्रःकुंभकर्णःप्रतापवान् ॥ अस्यप्रमाणसदृशोराक्षसोन्योनविद्यते ॥ ९ ॥ एतेनदेवायुधिदानवाश्चयक्षाभुजंगाःपिशिताशनाश्च ॥ गंधर्वविद्याधरपन्नगाश्चसहस्रशोराघवसंप्रभग्नाः ॥ १० ॥ शूलपाणिंविरूपाक्षंकुंभकर्णंमहाबलम् ॥ हंतुंनशेकुस्त्रिदशाःकालोऽयमितिमोहिताः ॥ ११ ॥ प्रकृत्याह्येषतेजस्वीकुंभकर्णोमहाबलः ॥ अन्येषांराक्षसेंद्राणांवरदानकृतंबलम् ॥ १२ ॥ बालेनजातमात्रेणक्षुधार्तेनमहात्मना ॥ भक्षितानिसहस्राणिप्रजानांसुबहून्यपि ॥ १३ ॥ तेषुसंभक्ष्यमाणेषुप्रजाभयनिपीडिताः ॥ यांतिस्मशरणंशक्रंतमप्यर्थंन्यवेदयन् ॥ १४ ॥

सामनेसे भागे हैं ॥ १० ॥ हे राजन् ! इस महाबलवान् टेढे नेत्रवाले कुम्भकर्णको मारना तौ दूर रहे; जब यह शूल हाथमें लेकर खड़ा होताहै; तब देवतागणभी इसको काल समान समझकर मोहित होजाते हैं ॥ ११ ॥ और दूसरे राक्षसश्रेष्ठ तो वरदान पाय उसकेही बलसे बलवान् हुएहैं, परन्तु यह महाबलवान् कुम्भकर्ण स्वभावसेही तेजस्वीहै ॥ १२ ॥ इस महाबलवान् महात्मा कुम्भकर्णने जन्म ग्रहण करतेही जब यह बहुत बालक था हजारों प्रजापुञ्जोंको भक्षण कर लिया ॥ १३ ॥ तब प्रजागण ऐसी अवस्था देखकर प्राणके भयसे अत्यन्त भीत हुए, और देवराज

तुमने जो धर्म अर्थ और कामको पृथक् २ समयमें सेवन करनेंका वर्णन किया, इन सबका उपदेश औरोंको देना तो दूररहा; तुम स्वयंही स्वभावसे इन सबको नहीं जानते ॥६॥ देखो, कर्महीं, धर्म, अर्थ, और काम इन तीनोंका कारणहै, क्रियाहीन पुरुषका किसी प्रकारसेभी पुरुषार्थ नहीं है;इसकारण अनुष्ठाताको शुभाशुभ कर्मोंका फल भोगना पड़ताहै॥७॥ धर्म, अर्थ, यह दोनों मोक्षकोभी देतेहैं; और इन करके स्वर्गकी प्राप्ति व महाराज्यादिक लोगभी मिल सकतेहैं, जो अधर्म और अनर्थकी प्राप्तिहो तौभी कभी २ अपराधीको सुख प्राप्त होजाताहै ॥ ८ ॥ पुरुष इस लोक और परलोकके लियेभी कर्म करतेहैं और कामपर आरूढ हुआ पुरुषभी सामर्थ कर्मोंके फलोंको प्राप्त कर लेताहै ॥ ९ ॥

यांस्तुधर्मार्थकामांस्त्वंब्रवीषिपृथगाश्रयान् ॥ अवबोद्धुंस्वभावेननहिलक्षणमस्तितान् ॥ ६ ॥ कर्मचैवहिसर्वेषां कारणानांप्रयोजनम् ॥ श्रेयःपापीयसांचात्रफलंभवतिकर्मणाम् ॥ ७ ॥ निःश्रेयसफलावेवधर्मार्थावितरावपि ॥ अध र्मानर्थयोःप्राप्तंफलंचप्रात्यवायिकम् ॥ ८ ॥ ऐहलौकिकपारक्यंकर्मपुंभिर्निषेव्यते ॥ कर्माण्यपितुकल्पानिलभते काममास्थितः ॥ ९ ॥ तत्रक्लृप्तमिदंराज्ञाहृदिकार्यंमतंचनः ॥ शत्रौहिसाहसंयत्तत्किमिवात्रापनीयते ॥ १० ॥ एक स्यैवाभियानेतुहेतुर्यःप्रहृतस्त्वया ॥ तत्राप्यनुपपन्नंतेवक्ष्यामियदसाधुच ॥ ११ ॥ येनपूर्वंजनस्थानेबहवोतिबला स्तदा ॥ राक्षसाराघवंध्वस्ताःकथमेकोजयिष्यसि ॥ १२ ॥ येपूर्वंनिर्जितास्तेनजनस्थानेमहौजसः ॥ राक्षसांस्तान्पुरे सर्वान्भीतानद्यनपश्यसि ॥ १३ ॥

हमनें महाराजके इस विषयको अपने अन्तरके साथ भला कहाहै, इस लिये राक्षसराजके मनमें जोकि निश्चय होगया है उस कार्यकाही अनुष्ठान करना ठीक है कारण कि शत्रुगणोंके प्रति साहस प्रगट करनेंमें कुछ भी अनीति दृष्टि नहीं आती ॥ १० ॥ और तुमने जो अभिमानके वश होकर विना दूसरेकी सहायताके अकेलेही शत्रुओंको जीतनेकी बात कही यहभी हमारे विचारमें असंगत और असाधुपन है श्रवणकरो ॥११॥ कि जिन रामचंद्रने पहले जनस्थानमें असंख्य महाबलवान राक्षसोंका संहार किया है विना किसीकी सहायता लिये तुम उनको अकेले किस प्रकारसे विनाश करोगे ॥ १२ ॥ उस समय जनस्थानमें जो महातेजस्वी राक्षसगण रामचंद्रजीसे हारकर संग्रामसे भाग आयेथे वे रामचंद्रके

तब क्षणभरके पीछे घबडाये हुएसे ब्रह्माजी कुम्भकर्णसे बोले ॥ २२ ॥ हम निश्चयही जानते हैं कि विश्रवाने तुमको लोकका विनाश ही करनेंके लिये उत्पन्न किया है; हम इसीलिये तुमको यह शाप देतेहैं कि तुम आजसे मृतक की समान होकर बराबर शयन करते रहो ॥ २३ ॥ जब पितामह ब्रह्माजीनें ऐसा शापदिया तब कुम्भकर्ण उनके आगेही नींदसे ग्रसित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा यह देख रावण अत्यन्त व्याकुल होकर बोला॥२४॥ भगवन् यह कांचन वृक्ष बढाहै सो फल आनेंके समय आप क्यों इसको काटते हैं हे प्रजापते! विशेष करके अपने नातीको ऐसा शापदेना आपको किसी प्रकारसे उचित नहीं है ॥ २५ ॥ आपके वचन किसी प्रकारसे मिथ्या होनेवाले नहींहै निश्चयही कुम्भकर्णको निद्रा घेरेगी परन्तु आपके

ध्रुवंलोकविनाशायपौलस्त्येनासिनिर्मितः ॥ तस्मात्त्वमद्यप्रभृतिमृतकल्पःशयिष्यसे ॥ २३ ॥ ब्रह्मशापाभिभूतो थनिपपाताग्रतःप्रभोः ॥ ततःपरमसंभ्रांतोरावणोवाक्यमब्रवीत् ॥ २४ ॥ प्रवृद्धःकांचनोवृक्षःफलकालेनिकृंत्यते ॥ ननप्तारंस्वकंन्याय्यंशप्तुमेवंप्रजापते ॥ २५ ॥ नमिथ्यावचनश्चत्वंस्वप्स्यत्येवनसंशयः ॥ कालस्तुक्रियतामस्यशयने जाग्रणेतथा ॥ २६ ॥ रावणस्यवचःश्रुत्वास्वयंभूरिदमब्रवीत् ॥ शयिताह्येषषण्मासमेकाहंजागरिष्यति ॥ २७ ॥ एकेनाह्नात्वसौवीरश्चरन्भूमिंबुभुक्षितः ॥ व्यात्तास्योभक्षयेल्लोकान्संवृद्धइवपावकः ॥ २८ ॥ सोसौव्यसनमापन्नः कुंभकर्णमबोधयत् ॥ त्वत्पराक्रमभीतश्चराजासंप्रतिरावणः ॥ २९ ॥ सएषनिर्गतोवीरःशिबिराद्भीमविक्रमः ॥ वानरान्भृशसंक्रुद्धोभक्षयन्परिधावति ॥ ३० ॥

निकट यह प्रार्थना है कि आप इसके जागनें और सोनेका उपयुक्त समय नियत कर दीजिये ॥ २६ ॥ राक्षसपतिके यह वचन सुनकर प्रजापति ब्रह्माजी बोले कि यह छःमहीनेतक सोता रहकर केवल एक दिनके लिये जागा करैगा और फिर दूसरे दिन छैः महीनेके लिये सो जाया करेगा ॥ २७ ॥ जागनेके दिन यह क्षुधासे व्याकुलहो पृथ्वीपर घूमा करैगा और प्रदीप्त अग्निकी समान मुख फैलायकर सब लोकोंको भक्षण करेगा ॥२८॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! इस समय तुम्हारे प्रतापसे भीत और विपदमें पड़कर लंकापति रावणनें कुम्भकर्णको जगवायाहै ॥ २९ ॥ हे रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी ! हम निश्चय कहते हैं कि यह भयंकरविक्रमकारी वीर कुम्भकर्ण अपनी गुफासे निकलकर क्रोधमें भर वानरोके भक्षण करनेंको

आप सब कहीं ऐसा ढंढोरा पिटवादीजिये कि द्विजिह्व, संहारी, कुम्भकर्ण वितर्दन, और मैं (महोदर) यह पांच राक्षस रामचन्द्रका विनाश करनेंके लिये गमन करेंगे ॥ २२ ॥ इस ओर हम रणभूमिमें गमन करके यत्न सहित युद्ध करके यदि आपके शत्रुको जीतसकें तव तो हमको और किसी उपायके करनेकी आवश्यकता न पड़ैगी ॥ २३ ॥ परन्तु यदि हम लोगोंके बड़ाभारी युद्धकरनेंपर भी आपका शत्रु जीवित रह जाय तव हमनें मनमें जो उपाय स्थिर कियाहै उसको ही किया जाय ॥ २४ ॥ वह उपाय यहहै कि हम लोग रामनामाङ्कित तीक्ष्ण बाणोंसे अपनी देहको कटाय अंगोंसे रुधिर वहाय समरभूमिसे यहां आमेंगे ॥ २५ ॥ हमलोग आप पर प्रगट करैंगे कि हम राम लक्ष्मणको भक्षण करके

ततोगत्वावयंयुद्धंदास्यामस्तस्ययत्नतः ॥ जेष्यामोयदितेशत्रून्नोपायैःकार्यमस्तिनः ॥ २३ ॥ अथजीवतिनः शत्रुर्वयंचकृतसंयुगाः ॥ ततःसमभिपत्स्यामोमनसायत्समीक्षितम् ॥ २४ ॥ वयंयुद्धादिहैष्यामोरुधिरेणसमुक्षिताः ॥ विदार्यस्वतनुंबाणैरामनामांकितैःशरैः ॥ २५ ॥ भक्षितोराघवोस्माभिर्लक्ष्मणश्चेतिवादिनः ॥ ततःपादौग्रहीष्यामस्त्वन्नःकामंप्रपूरय ॥ २६ ॥ ततोऽवघोषयपुरेगजस्कंधेनपार्थिव ॥ हतोरामःसहभ्रात्रासमैन्यइतिसर्वतः ॥ २७ ॥ प्रीतोनामततोभूत्वाभृत्यानांत्वमरिंदम ॥ भोगांश्चपरिवारांश्चकामान्वसुचदापय ॥ २८ ॥ ततोमाल्यानिवासांसिवीराणामनुलेपनम् ॥ देयंचबहुयोधेभ्यःस्वयंचमुदितःपिब ॥ २९ ॥ ततोस्मिन्बहुलीभूतेकौलीनेसर्वतोगते ॥ भक्षितःससुहृद्रामोराक्षसैरितिविश्रुते ॥ ३० ॥

चले आये तिसके पीछे इस कार्यका पुरस्कार पानेंको हम आपके चरणोंमें प्रार्थना करेंगे ॥ २६ ॥ हे महीपाल, तिसके पीछे नगरमें आय सबकहीं हाथीपर एक राक्षसको चढवाय इस प्रकारसे पुकारवादेना कि भ्राता और अपनी सब सैनाके सहित रामचन्द्र मारा गयाहै ॥ २७ ॥ आप मानों ऐसा होनेसे वड़ेही प्रसन्न हुएहैं; इस प्रकारसे दास दासियोंको और नौकरों चाकरोंको भोजनके पदार्थ धन धान्य रत्नादि देना ॥ २८ ॥ तिसके उपरान्त वस्त्र, भूषण, और गन्ध प्रदान कीजियेगा और उनके सन्तोष करानेंको उन्हें सुरादेना; और आपभी मन सहित आनंदमें मग्नहो सुरा पान करना ॥ २९ ॥ तिसके पीछे सुहृद गणोंके सहित राम लक्ष्मण सब राक्षसोंके सहित भक्षण कर लिये गये;इस प्रकारकी जनश्रुति (अफवाह)

ओरके राक्षसोंको वृक्षोंसे मारनेंलगे ॥ ३८ ॥ वानरगण जब कि वृक्ष और पर्वतोंके शृङ्ग ग्रहण करकै लंकाके द्वारपर जाय डटे; तब पर्वतके निकटवाली मेघमाला जिस प्रकार प्रकाशित होतीहै, वैसेही यह वानर प्रकाशित हुए ॥ ३९ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०यु० एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥ इस ओर निद्राके मदसे आकुल विपुल विक्रमकारी राक्षसशार्दूल कुम्भकर्ण शोभायमान राजमार्गमें गमन करनें लगा ॥ १ ॥ वह परम दुर्जय वीर कुम्भकर्ण सहस्र राक्षसोंके साथ जिस समय राजमार्गमें जाय रहाथा, उस समय दोनों ओर जो धवरहरोंकी श्रेणी थीं उनके ऊपरसे कुम्भकर्णके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा होनें लगी ॥ २ ॥ कुम्भकर्णनें इसप्रकारसे गमन करते हुए अति निकट अपने भाई रावणके सुवर्णकी जालियोंसे युक्त, सूर्यकी

ततोहरीणांतदनीकमुग्रंरराजशैलोद्यतवृक्षहस्तम् ॥ गिरेःसमीपानुगतंयथैवमहन्महांभोधरजालमुग्रम् ॥ ३९ ॥
इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेएकषष्टितमःसर्गः ॥ ६१ ॥ ॥ ७ ॥ सतुराक्षसशार्दूलोनि
द्रामदसमाकुलः ॥ राजमार्गंश्रियाजुष्टंययौविपुलविक्रमः ॥ १ ॥ राक्षसानांसहस्रैश्चवृतःपरमदुर्जयः ॥ गृहेभ्यः
पुष्पवर्षेणकीर्यमाणस्तदाययौ ॥ २ ॥ सहेमजालविततंभानुभास्वरदर्शनम् ॥ ददर्शविपुलंरम्यंराक्षसेंद्रनिवेशन
म् ॥ ३ ॥ सतत्तदासूर्यइवाभ्रजालंप्रविश्यरक्षोधिपतेर्निवेशनम् ॥ ददर्शदूरेग्रजमासनस्थंस्वयंभुवंशक्रइवासन
स्थम् ॥ ४ ॥ भ्रातुःसभवनंगत्वारक्षोगणसमन्वितः ॥ कुंभकर्णःपदन्यासैरकंपयतमेदिनीम् ॥ ५ ॥ सोभिगम्यगृहं
भ्रातुःकक्ष्यामभिविगाह्यच ॥ ददर्शोद्विग्नमासीनंविमानेपुष्पकेगुरुम् ॥ ६ ॥ अथदृष्ट्वादशग्रीवःकुंभकर्णमुपस्थित
म् ॥ तूर्णमुत्थायसंहृष्टःसन्निकर्षमुपानयत् ॥ ७ ॥

समान प्रकाशमान विपुल और रमणीक गृहको देखा ॥ ३ ॥ जिस प्रकार सूर्य भगवान् वादलके मध्यमें प्रवेश करतेहैं वैसेही उस वीरनें राक्षसपति रावणके स्थानमें प्रवेश करकै, देवराजके हंसासनसमासीन ब्रह्माजीके दर्शनकीनाई सिंहासनपर बैठे हुए अपने बड़े भाई रावणको देखा ॥ ४ ॥ वीरश्रेष्ठ कुम्भकर्ण राक्षसगणोंके साथ जिस समयकि रावणके भवनमें जारहाथा, उससमय उसके प्रति पगके धरनेंसे पृथ्वी कंपायमान होरहीथी ॥ ५ ॥ वीर कुंभकर्णनें गमन कर भवनमें जाय उदासमनसे पुष्पक विमानमें बैठे हुए अपने भ्राताको देखा ॥ ६ ॥ रावणभी आयेहुए कुंभकर्णके दर्शन

जब महोदरने यह कहा तब महाबलवान् कुम्भकर्ण उसकी निन्दा करता हुआ राक्षसराज रावणसे यह वचन बोला ॥ १ ॥ हेमहाराज! आप यथा सुखसे विचरण करें हम उस दुरात्मा रामचंद्रको वध करके आपका घोर भय दूर करके आपको शत्रुरहित कर देंगे ॥ २ ॥ शूर लोग कालमेंभी विना जलके बादलकी समान कभी गर्जन नहीं करते हमनें जो गर्जन कियाहै;आप संग्रामभूमिमेंभी हमको वही कार्य करते हुए देखेंगे ॥ ३ ॥ अधिक क्या कहैं वीर लोग अपनी बड़ाई करके कभी अपनेको छोटा नहीं बनाते; और वह लोग जो कार्य किया करतेहैं; उसको वह अद्भुत और दूसरेसे न होनेंयोग्य न होनें पर कभी नहीं करते ॥ ४ ॥ हेमहोदर! तुमनें जो वृथा ऐसे वचन कहे यह कायर बुद्धि रहित अपने

सतथोक्तस्तुनिर्भर्त्स्यकुंभकर्णोमहोदरम्॥अब्रवीद्राक्षसश्रेष्ठंभ्रातरंरावणंततः ॥१॥ सोहंतवभयंघोरंवधात्तस्यदुरात्म
नः॥ रामस्याद्यप्रमार्जामिनिर्वैरोहिसुखीभव ॥ २ ॥ गर्जंतिनवृथाशूरानिर्जलाइवतोयदाः ॥ पश्यसंपद्यमानंतुगर्जितं
युधिकर्मणा ॥ ३ ॥ नमर्षयंतिचात्मानंसंभावयितुमात्मना ॥ अदर्शयित्वाशूरास्तुकर्मकुर्वंतिदुष्करम् ॥ ४ ॥ विक्लवा
नांह्यबुद्धीनांराज्ञांपंडितमानिनाम् ॥ रोचतेत्वद्वचोनित्यंकथ्यमानंमहोदर ॥ ५ ॥ युद्धेकापुरुषैर्नित्यंभवद्भिःप्रियवा
दिभिः ॥ राजानमनुगच्छद्भिःसर्वंकृत्यंविनाशितम् ॥ ६ ॥ राजशेषाकृतालंकाक्षीणःकोशोबलंहतम् ॥ राजानमिम
मासाद्यसुहृच्चिह्नममित्रकम् ॥ ७ ॥ एषनिर्याम्यहंयुद्धमुद्यतःशत्रुनिर्णये ॥ दुर्नयंभवतामद्यसमीकर्तुंमहाहवे ॥ ८ ॥
एवमुक्तवतोवाक्यंकुंभकर्णस्यधीमतः ॥ प्रत्युवाचततोवाक्यंप्रहसन्राक्षसाधिपः ॥ ९ ॥

आपको पंडित माननेंवाले, और उजड्ड राजाहीको रुचिकर हो सकतेहैं ॥ ५ ॥ तुम लोग डरपोक और कायर पुरुष हो प्यारे वचनोंसे राजाके मनको सन्तुष्ट रखनाही तुम्हारा कार्यहै। तुम लोगोंसे राजाके कर्त्तव्यकर्मोंकी भली भांति अंगहीनता होतीहै ॥ ६ ॥ हा! लंकापुरीकी कैसी दुर्दशाहै? केवल एक राजाही बचगयेहैं, कोषागार (खजाना) शून्य होगया,सैना मारी गई, और मित्रोंका चिह्न धारण किये शत्रुलोगोंसे महाराज घिररहेहैं ॥ ७॥ हम तुम्हारी इस दुर्नीतको युद्धसे भगानेंके लिये शत्रुके जीतनेंको कृतनिश्चय होकर संग्राममें जातेहैं ॥ ८ ॥ बुद्धिमान् कुम्भ

निहार कर देखो कि वानरोंनें सेतुबांध उसकी सहायतासे सुखपूर्वक समुद्रके पारहो इन सबको वानर सागरकी समान कर दिया ॥ १५ ॥ जो राक्षस बड़े २ प्रधान कहकर प्रसिद्धथे; वही सब रणभूमिमें वानरगणोंसे मारे गयेहैं, परन्तु हमनें वानरोंका मरना एक दिनभी नहीं श्रवण किया, और न कभी पहले हमनें वानरोंको युद्धमें जीता ॥१६॥ इनसेही हमको भय उत्पन्न हुआहै, और इस समय तुम इस शंकटसे हमारा त्राण उद्धार करो तुमहीसे यह विपद् नाशको प्राप्त होगी, इसी कारणसे तुमको जगाया गयाहै ॥ १७ ॥ हमारा समस्त खजाना खाली होगयाहै; इसलिये

येराक्षसामुख्यतमाहतास्तेवानरैर्युधि ॥ वानराणांक्षयंयुद्धेनपश्यामिकथंचन ॥ नचापिवानरायुद्धेजितपूर्वाःकदाचन ॥ १६ ॥ तदेतद्भयमुत्पन्नंत्रायस्वेहमहाबल ॥ नाशयत्वमिमानद्यतदर्थंबोधितोभवान् ॥ १७ ॥ सर्वक्षपितकोशंचसत्वमभ्युपपद्यमाम् ॥ त्रायस्वेमांपुरींलंकांबालवृद्धावशेषिताम् ॥ १८ ॥ भ्रातुरर्थेमहाबाहोकुरुकर्मसुदुष्करम् ॥ मयैवंनोक्तपूर्वोहिभ्राताकश्चित्परंतप ॥ १९ ॥ त्वय्यस्तिममचस्नेहःपरासंभावनाचमे ॥ देवासुरेषुयुद्धेषुबहुशोराक्षसर्षभ ॥ त्वयादेवाःप्रतिव्यूह्यनिर्जिताश्चामरायुधि ॥ २० ॥ तदेतत्सर्वमातिष्ठवीर्यंभीमपराक्रम ॥ नहितेसर्वभूतेषुदृश्यतेसदृशोबली ॥ २१ ॥

तुम हमारा उद्धार करो, और बालक बूढ़ेही जिस पुरीमें रहेहैं, ऐसी लंका पुरीकी तुम रक्षा करो ॥ १८ ॥ हेशत्रुओंके नाश करनेवाले ! हे महाबाहो ! हमनें पहले कभी किसी भ्रातासे ऐसे दीन वचन नहीं कहे परन्तु आज तुम हमारा कहना मान अपने भ्राताके लिये अति कठिन कर्म करनेंके लिये तैयार होवो ! ॥ १९ ॥ हेराक्षसश्रेष्ठ ! तुमनें देवासुरसंग्रामके समयमें व्यूह बनाकरके अनेक वार देवताओंको रणभूमिमें पराजित कियाथा; इस कारण तुम्हारा तो हमें बड़ा भारी भरोसा है और हम तुमसे स्नेहभी अधिक करतेहैं ॥ २० ॥ हेभयंकरपराक्रमकारी ! हम त्रिलोकीमें किसी

शत्रुओंको मारनेंवाला वीर कुंभकर्णनें अतिवेगसे काले लोहेका बनाहुआ अति तीक्ष्ण शूल लिया। यह शूल प्रदीप्त, तपाये हुए सुवर्णसे भूषि
तथा ॥ १८ ॥ यह शूल इन्द्रके वज्रकी समान और अशनिके समान भारीथा, देव, दानव, गंधर्व, यक्ष, और पन्नगोंके मारनेंको यह समर्थथा ॥ १९ ॥
बड़ी भारी रत्नमालासे शोभित होनेंके कारण उस शूलसे अग्नि निकल रहीथी ऐसे शत्रुओंके रुधिरसे रँगे हुए शूलको ग्रहण करके ॥ २० ॥ महा
तेजस्वी कुम्भकर्णनें रावणसे कहा; हम अकेलेही रणमें जाते हैं, तुम्हारी सैना यहीं पर रहे ॥ २१ ॥ आज हम क्षुधित होनेंके कारण क्रोधित होकर

आददेनिशितंशूलंवेगाच्छत्रुनिबर्हणः ॥ सर्वकालायसंदीप्तंतप्तकांचनभूषणम् ॥ १८ ॥ इंद्राशनिसमप्रख्यं
वज्रप्रतिमगौरवम् ॥ देवदानवगंधर्वयक्षपन्नगसूदनम् ॥ १९ ॥ रक्तमाल्यमहादामंस्वतश्चोद्गतपावकम् ॥ आदाय
विपुलंशूलंशत्रुशोणितरंजितम् ॥ २० ॥ कुंभकर्णोमहातेजारावणंवाक्यमब्रवीत् ॥ गमिष्याम्यहमेकाकीतिष्ठत्विहब
लंमहत् ॥ २१ ॥ अद्यतान्क्षुधितःक्रुद्धोभक्षयिष्यामिवानरान् ॥ कुंभकर्णवचःश्रुत्वारावणोवाक्यमब्रवीत् ॥ २२ ॥
सैन्यैःपरिवृतोगच्छशूलमुद्गरपाणिभिः ॥ वानराहिमहात्मानःशूराःसुव्यवसायिनः ॥ २३ ॥ एकाकिनंप्रमत्तंवानये
युर्दशनैःक्षयम् ॥ तस्मात्परमदुर्धर्षैःसैन्यैःपरिवृतोव्रज ॥ रक्षसामहितंसर्वंशत्रुपक्षंनिषूदय ॥ २४ ॥ अथासनात्स
मुत्पत्यस्रजंमणिकृतांतराम् ॥ आबबंधमहातेजाःकुंभकर्णस्यरावणः ॥ २५ ॥

वानर गणोंको भक्षण करेंगे, कुंभकर्णके वचन सुनकर रावणनें कहा ॥२२॥ कि हे कुंभकर्ण! तुम शूल, मुद्गर ग्रहण किये सैनाको साथ लेकर यहांसे
जाओ, कारण कि वह वानर गण महाबलवान शूर और रण करनेंमें बड़े निपुणहैं ॥ २३ ॥ तुम सदाही मतवाले रहतेहो; इसलिये तुमको अकेला
देखकर वह उसी समय विनाश कर डालेंगे; हम इसी कारणसे कहते हैं कि तुम परम दुर्द्धर्ष सैनाको साथ लेकर राक्षस लोगोंके अहितकारी शत्रु
गणोंका विनाश कर आओ ॥ २४ ॥ यह कह महा तेजस्वी रावणनें आसनपरसे उठ मणिकी माला कुंभकर्णके गलेमें पहरायदी ॥ २५ ॥

करके मंत्रियोंके साथ सब कार्योंका आरम्भोपाय पुरुष, द्रव्य, सम्मत, देशकाल विभाग, विपरीतप्रतिकार और कार्यसिद्धि, इन पांचोको विचार करता हुआ कार्य करताहै;वह नीतिमार्गसे कभी चलायमान नहीं होता ॥ ७ ॥जो राजा मंत्रिलोगोंके सहित सभादिके कार्याकार्यका विचार करते हैं, वह बुद्धिबलसे मंत्रिलोगोंके मनका भाव और उनमें कोन यथार्थ सुहृद् और कोन केवल खुशामद करके मनको वहलाया करताहै, यह सब वह जानतेहैं ॥ ८ ॥ हे राक्षसनाथ ! सब लोगोंमें कोई प्रभातकाल, कोई मध्याह्नकाल और कोई रात्रिकाल इन तीनों कालमें यथाक्रमसे धर्म और कामकी सेवा करते हैं, कोई २ एकही समयमें धर्म कामादि रूप दंडका सेवन करतेहैं; और कोई २ एक कालमेंही तीनोंकी सेवा किया करते हैं ॥ ९ ॥ इन तीनोंमेसे कौन श्रेष्ठहै, इसको जो सुनकरभी नहीं जान सकतेहैं; वह राजाही हो अथवा राजकुमारहीहो, सबके सबही विफल हो

यथागमंचयोराजासमयंचचिकीर्षति ॥ बुध्यतेसचिवैर्बुद्ध्यासुहृदश्चानुपश्यति ॥ ८ ॥ धर्ममर्थंहिकामंवासर्वान्वा रक्षसांपते ॥ भजतेपुरुषःकालेत्रीणिद्वंद्वानिवापुनः ॥ ९ ॥ त्रिषुचैतेषुयच्छ्रेष्ठंश्रुत्वातन्नावबुध्यते ॥ राजावाराजमात्रोवाव्यर्थंतस्यबहुश्रुतम् ॥१०॥ उपप्रदानंसांत्वंचभेदंकालेचविक्रमम् ॥ योगंचरक्षसांश्रेष्ठतावुभौचनयानयौ ॥११॥ कालेधर्मार्थकामान्यःसंमंत्र्यसचिवैःसह ॥ निषेवेतात्मवाँल्लोकेनसव्यसनमाप्नुयात् ॥ १२ ॥ हितानुबंधमालोक्यकुर्यात्कार्यमिहात्मनः ॥ राजासहार्थतत्त्वज्ञैःसचिवैर्बुद्धिजीविभिः ॥ १३ ॥ अनभिज्ञायशास्त्रार्थान्पुरुषाःपशुबुद्धयः॥ प्रागल्भ्याद्वक्तुमिच्छंतिमंत्रिष्वभ्यंतरीकृताः ॥ १४ ॥

जातेहैं और वह बहुश्रुत कहकर नहीं मानाजाता अर्थात् उसका शास्त्रज्ञान व्यर्थ है ॥ १० ॥ हे राक्षसश्रेष्ठ ! साम, दान, भेद, विक्रम पहले कहे हुए पांच योग नीति और अनीति ॥ ११ ॥ और अर्थ धर्म काम सम्बन्धी मंत्रणा मंत्रीलोगोंके साथ उचित समय पर जो बुद्धिमान राजा किया करते हैं उनको कभी दुःख प्राप्त नहीं होता ॥ १२ ॥ बुद्धिमान अर्थके तत्त्वोंको जाननेंवाले मंत्रिलोगोंके सहित अपने शुभ परिणामका विचार करके जो राजा कार्य किया करताहै; उसकी भाग्यलक्ष्मी अचल होकर टिकी रहती है ॥ १३ ॥ परन्तु कोई २ पुरुष किसी प्रकारसे जो परामर्श करनेंमें बुलाये गये, तौ वे पशुबुद्धिलोग मारे ढिठाईके शास्त्रका अर्थ न जाननें वाले पुरुषसे कुछ औरका औरही अर्थ कह देतेहैं; ॥ १४॥

मेघकी समान शब्दायमान रथ, हाथी, घोड़े और रथी लोग उस सैनाके पीछे २ चलनें लगे ॥ ३४ ॥ सर्प, ऊंट, गधे, सिंह, हाथी मृगादि पक्षियोंके ऊपर सवार होहोकर राक्षस लोग महा बलवान कुंभकर्णके पीछे २ गमन करनें लगे ॥ ३५ ॥ इस प्रकारसे वह महोत्कट रुधिरकी गन्धसे मतवाला और तीक्ष्ण शूल धारण किये हुए देव दानवोंका शत्रु कुंभकर्ण चला; उस कालमें उसके मस्तकपर छत्रलग रहाथा, और चारों ओरसे उसके ऊपर फूलोंकी वर्षा हो रहीथी ॥ ३६ ॥ कुंभकर्णके पीछे २ बहुतसे पैदल सारवान महाबलवान भयंकर पराक्रमकारी और भयंकर नेत्रवाले राक्षस हाथोंमें शस्त्र लिये चले ॥३७॥ राक्षसोंकी आँखें लाल होरहीथीं मूर्त्तिनीले अंजनके ढेरकी समान थी; वह राक्षसगण शूल, खड्ग फरसोंको और

सर्पैरुष्ट्रैःखरैश्चैवसिंहद्विपमृगद्विजैः ॥ अनुजग्मुश्चतंघोरंकुंभकर्णंमहाबलम् ॥ ३५ ॥ सपुष्पवर्षैरवकीर्यमाणो
धृतातपत्रःशितशूलपाणिः ॥ महोत्कटःशोणितगंधमत्तोविनिर्ययौदानवदेवशत्रुः ॥ ३६ ॥ पदातयश्चबहवोमहा
सारामहाबलाः ॥ अन्वयूराक्षसाभीमाभीमाक्षाःशस्त्रपाणयः ॥ ३७ ॥ रक्ताक्षाःसुबहुव्यामानीलांजनचयोपमाः ॥
शूलानुद्यम्यखड्गांश्चनिशितांश्चपरश्वधान् ॥ ३८ ॥ भिंदिपालांश्चपरिघान्गदाश्चमुसलानिच ॥ तालस्कंधांश्चविपु
लान्क्षेपणीयान्दुरासदान् ॥ ३९ ॥ अथान्यद्वपुरादायदारुणंघोरदर्शनम् ॥ निष्पपातमहातेजाःकुंभकर्णोमहाबलः ॥
॥ ४० ॥ धनुःशतपरीणाहःसषट्शतसमुच्छ्रितः ॥ रौद्रःशकटचक्राक्षोमहापर्वतसंनिभः ॥ ४१ ॥ सन्निपत्यचरक्षांसि
दग्धशैलोपमोमहान् ॥ कुंभकर्णोमहावक्त्रःप्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ४२ ॥

दूसरे अस्त्र शस्त्र धारण करके गमन करनें लगे ॥ ३८ ॥ और भिन्दिपाल, परिघ, गदा, मूसल, तालस्कन्ध बड़े २ क्षेपणीय शस्त्रादि लिये वह दुष्ट राक्षस चले ॥ ३९ ॥ इसके उपरान्त महावीर कुम्भकर्णनें इस समस्त सैनाको साथ ले भयंकर मूर्त्ति धारण कर युद्ध करनेंके लिये यात्रा की॥४०॥उस समय कुंभकर्णका देह शत धनुष अर्थात् तीन शत हाथही चौडाईमें था, और एक शत छैः धनुष अर्थात् ११८ हाथका लंबाथा छकड़ेके पहियोंकी समान नेत्र थे; और पर्वतकी समान दिखाई देताथा ॥ ४१ ॥ भस्म हुए पर्वतकी समान बड़े भारी मुखवाला कुंभकर्ण व्यूहकी रचना

चढ़ाय क्रोध प्रगटकर यह कहनेंलगा ॥ २२ ॥ हे कुम्भकर्ण ! हम तुम्हारे गुरु और आचार्यकी समान पूजनीयहैं सो तुम हमको उलटा उपदेश देतेहो ! जो कुछभीहो इस वार्त्तालापसे क्या प्रयोजनहै ? जो कुछ हमनें कहा उसको तुम पूरा करो ॥ २३ ॥ और हमने, विभ्रमसे चित्तके मोहसे और बल वीर्यके घमंडके मोहसे वशमें होकर पहले जो तुम सबका उपदेश नहीं सुना; सो उसही उपदेशको अब फिरसे कहनेंकी क्या आवश्यकताहै ? ॥ २४ ॥ वीत गये हुए कार्यके लिये सोच करना कर्तव्य नहीं है,कारणकि जो वीतगया वह तो वीतही गया, इसलिये हे वीर! इस समय जो करना उचितहो; उसकीही चिन्ता तुम करो; हमको अन्याय करनेंसे जो दुःख उत्पन्न हुआहै वह तुम अपने विक्रमसे दूर करो ॥ २५ ॥ यदि

मान्योगुरुरिवाचार्यःकिंमांत्वमनुशाससि ॥ किमेवंवाक्छ्रमंकृत्वायद्युक्तंतद्विधीयताम् ॥ २३ ॥ विभ्रमाच्चित्तमोहाद्वाबलवीर्याश्रयेणवा ॥ नाभिपन्नमिदानींयद्व्यर्थातस्यपुनःकथा ॥ २४ ॥ अस्मिन्कालेतुयद्युक्तंतदिदानींविचिंत्यताम् ॥ ममापनयजंदुःखंविक्रमेणसमीकुरु ॥ २५ ॥ यदिखल्वस्तिमेस्नेहोविक्रमंवाधिगच्छसि ॥ यदिकार्यममैतत्तेहृदिकार्यतमंमतम् ॥२६॥ ससुहृद्योविपन्नार्थंदीनमभ्युपपद्यते ॥ सबंधुर्योपनीतेषुसाहाय्यायोपकल्पते॥ २७ ॥ तमथैवंब्रुवाणंसवचनंधीरदारुणम् ॥ रुष्टोऽयमितिविज्ञायशनैःश्लक्ष्णमुवाचह ॥ २८ ॥ अतीवहिसमालक्ष्यभ्रातरंक्षुभितेंद्रियम् ॥ कुंभकर्णःशनैर्वाक्यंबभाषेपरिसांत्वयन् ॥ २९ ॥ शृणुराजन्नवहितोममवाक्यमरिंदम ॥ अलंराक्षसराजेंद्रसंतापमुपपद्यते ॥ रोषंचसंपरित्यज्यस्वस्थोभवितुमर्हसि ॥ ३० ॥

हमारे प्रति तुम्हारा स्नेहहो, यदि तुम्हारे शरीरमें बल विक्रमहो; यदि हमारा यह कार्य तुम्हारे मनमें बड़ा भारी कार्यहो तौ हमको इस दुःखसे छुटा ओ ॥२६॥ जोविपदमें पड़े हुए और दीनभावापन्न लोगोंके ऊपर दया कियाकरतेहैं वह सुहृदहै परन्तु नीतिके मार्गसे चलायमान होनेपरभी जो सहायता कियाकरतेहैं बन्धु उनकोही कहतेहैं ॥२७॥ रावणके इस प्रकार धीर और करुणा वचन कहनेपर कुंभकर्णनें (भाई साहब क्रोधित होगये) यह जानकर धीरे २ मधुर वाणीसे कहनेका अभिलाष किया॥२८॥ महावीर कुम्भकर्ण अपने भ्राताको महाविकलेन्द्रिय देखकर समझाता बुझाताहुआ कुंभकर्ण बोला ॥ २९ ॥ हे राजन् ! एकाग्रचित्त होकर हमारे वचन सुनो ऐसे संतापित होनेंकी कुछ आवश्यकता नहीं है; क्रोध

परन्तु कालवशसे प्रेरित हुआ कुंभकर्ण उन रोमहर्षण बडे २ उत्पातोंको कुछभी न समझता हुआ चला ही गया ॥ ५२ ॥ पर्वताकार कुंभकर्ण पैदल ही चलकर कोटकी भीतके वाहर आया कि उसमें मेघमाला की समान अद्भुत वानरोंकी सैनाको देखा ॥५३॥ पर्वताकार राक्षस वीर कुंभकर्णको निहारकर पवनसे उडाये हुए मेघकी समान सब वानर लोग इधर उधर भागने लगे ॥ ५४ ॥ वीर कुंभकर्ण प्रचंड वानरोंकी सैनाको मेघ जालकी समान इधर उधर भागता हुआ देखकर हर्षके मारे मेघकी समान गंभीर शब्दसे सिंहनाद करनें लगा ॥ ५५ ॥ जिस प्रकार आकाशमें मेघोंका

अचिंतयन्महोत्पातानुदितान्रोमहर्षणान् ॥ निर्ययौकुंभकर्णस्तुकृतांतबलचोदितः ॥ ५२ ॥ सलंघयित्वाप्राकारंप द्भ्यांपर्वतसन्निभः ॥ सददर्शघनप्रख्यंवानरानीकमद्भुतम् ॥ ५३ ॥ तेदृष्ट्वाराक्षसश्रेष्ठंवानराःपर्वतोपमम्॥ वायुनुन्नाइव घनाययुःसर्वदिशस्तदा ॥ ५४ ॥ तद्वानरानीकमतिप्रचंडंदिशोद्रवद्भिन्नमिवाभ्रजालम् ॥ सकुंभकर्णःसमवेक्ष्यहर्षान्न नादभूयोघनवद्घनाभः ॥ ५५ ॥ तेतस्यघोरंनिनदंनिशम्ययथानिनादंदिविवारिदस्य ॥ पेतुर्धरण्यांबहवःप्लवंगानि कृत्तमूलाइवशालवृक्षाः ॥ ५६ ॥ विपुलपरिघवान्सकुंभकर्णोरिपुनिधनायविनिःसृतोमहात्मा ॥ कपिगणभयमाददत्सु भीमंप्रभुरिवकिंकरदंडवान्युगांते ॥ ५७ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०युद्धकांडेपंचषष्टितमःसर्गः ॥ ६५ ॥ ॥ छ ॥ सलंघयित्वाप्राकारंगिरिकूटोपमोमहान् ॥ निर्ययौनगरात्तूर्णंकुंभकर्णोमहाबलः ॥ १ ॥

गर्जना शब्द हुआ करता है ऐसेही कुंभकर्ण की घोर सिंहनाद सुनकर वानरोंमेंसें बहुतसे जड़कटे शाल वृक्षकी समान पृथ्वीपर गिर पडे ॥ ५६ ॥ इस प्रकारसे शत्रुका विनाश करनेंके लिये आया हुआ बड़ाभारी शूल हाथमें लिये हुए महा बलवान कुंभकर्ण किंकर गणोंके साथ प्रलयकालीन दंड हाथमें लिये शंकरजीकी समान वानर लोगोंको भयंकर भय उत्पन्न करानें लगा ॥ ५७ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०यु० पंचषष्टितमःसर्गः ॥ ६५ ॥ इसके उपरान्त पर्वताकार महावीर कुंभकर्ण लंकाके प्राकार (कोटकीभीत) को लांघ अति शीघ्रता पूर्वक नगरके वाहर निकला ॥ १ ॥

हे अनघ! कैसा आश्चर्यहै कि रामचंद्रके विनाशकी अभिलाष किये यह समस्त राक्षसगण व हम यह सबही आपको अनेक प्रकारसें समझा रहेहैं, तथापि आप क्यों ऐसे व्यथित होतेहैं ॥ ३९ ॥ हेराक्षसोंके नाथ! रामचंद्रके लिये आपको भय अच्छा! वह पहले हमारा नाश करे पीछे आपका अधिक क्या कहैं यदि हम पहले मारे जांय तौ हमको इसकेलिये कुछ संतापित न होंना चाहिये ॥ ४० ॥ हे शत्रुओंके तपानेंवाले! हे अतुल विक्रम! इस समय जैसी इच्छाहो वैसीही आज्ञा हमको दीजिये। शत्रुओंके साथ युद्ध करनेंके लिये आपके जानेंका क्या प्रयोजनहै अब और किसीको युद्धमें भेजनेंके लिये न देखिये ॥ ४१ ॥ हमही अकेले आपके महाबलवान शत्रुका प्राण संहार कर डालेंगे यदि इन्द्र, यम, अग्नि, वायु ॥ ४२॥ कु

कथंचराक्षसैरेभिर्मयाचपरिसांत्वितः ॥ जिघांसुर्भिर्दाशरथिंव्यथसेवंसदानघ ॥ ३९ ॥ मांनिहत्यकिलत्वांहिनिह निष्यतिराघवः ॥ नाहमात्मनिसंतापंगच्छेयंराक्षसाधिप ॥ ४० ॥ कामंत्विदानीमपिमांव्यादिशत्वंपरंतप ॥ नपरःप्रे क्षणीयस्तेयुद्धायातुलविक्रम ॥ ४१ ॥ अहमुत्सादयिष्यामिशत्रूंस्तवमहाबलान् ॥ यदिशक्रोयदियमोयदिपावकमा रुतौ ॥ ४२ ॥ तानहंयोधयिष्यामिकुबेरवरुणावपि ॥ गिरिमात्रशरीरस्यशितशूलधरस्यमे ॥ ४३ ॥ नर्दतस्तीक्ष्णदंष्ट्र स्यबिभीयाद्वैपुरंदरः॥अथवात्यक्तशस्त्रस्यमृद्नतस्तरसारिपून् ॥ ४४ ॥ नमेप्रतिमुखःकश्चित्स्थातुंशक्तोजिजीविषुः ॥ नैवशक्त्यानगदयानासिनानिशितैःशरैः ॥ ४५ ॥ हस्ताभ्यामेवसंरभ्यहनिष्यामिसवज्रिणम् ॥ यदिमेमु ष्टिवेगंसराघवोद्यसहिष्यति ॥ ४६ ॥

बेर और वरुण यह समस्तभी हमारे विमुख युद्धमें खड़े होजांय तौ हम उनकोभी संहार करेंगे युद्ध करनेंकी कथा तौ दूर रहे जिस समय हम तीक्ष्ण शूल धारण करके खड़े होजांयगे तौ उस कालमें हमारा यह पर्वताकार शरीर ॥ ४३ ॥ और तीक्ष्ण दंत देख व सिंहनाद श्रवण करके इन्द्र भी डरकर भाग जायगा ; अथवा अधिक कहनेंकी क्या आवश्यकताहै, जबकि हम अस्त्र शस्त्रोंको चलाय २ कर शत्रुओंको मलते होंगे ॥ ४४ ॥ उस कालमें अपने जीवन बचानेंकी आशा किये कोई जन हमारे सन्मुख टिकनेंके लिये समर्थ न होगा; न शक्ति, न गदा, न असि, न तीखे बाण, इनमेंसे किसीकोभी हम नहीं चाहते ॥ ४५ ॥ हम क्रोधित होकर केवल अपनी बाहोंके बलहीसे जो इन्द्रभी हो तौ उसकोभी मार डालेंगे, यदि वह

परन्तु महाबलवान् कुम्भकर्ण बड़े २ पर्वतोंके शृङ्ग, शिला, और फूले फले हुए वृक्षोंसे ताड़ित होकरभी क्षणभरके लियेभी चलायमान नहीं हुआ ॥ १० ॥ अधिक करके शिला और वृक्ष फूले हुए उसके शरीर पर गिर खंड २ हो पृथ्वीपर गिरनें लगे ॥ ११ ॥ अग्निके बनको जलानेंकी समान क्रोधमें भरकर महा तेजस्वी कुंभकर्णभी वानरोंकी उस सैनाको अति यत्नके साथ मथनें लगा ॥ १२ ॥ उस कालमें बहुतसे वानरगण अरुण रंगके पुष्पोंसे शोभित वृक्षोंकी समान लाल २ रुधिरसे देह भिगाये पृथ्वीपर गिर २ कर शयन करनें लगे ॥ १३ ॥ उनमेंसे कोई २ वानर किसी ओरको न देखकर भागते हुए लांघनेंके अभिप्रायसे समुद्रमें गिरनें लगे; और कोई २ सघन वनोंमें छिप गये ॥ १४ ॥ अधिक

प्रांशुभिर्गिरिशृंगैश्चशिलाभिश्चमहाबलाः ॥ पादपैःपुष्पिताग्रैश्चहन्यमानोनकंपते ॥ १० ॥ तस्यागात्रेषुपतिताभिद्यंतेबहवःशिलाः ॥ पादपाःपुष्पिताग्राश्चभग्नाःपेतुर्महीतले ॥ ११ ॥ सोपिसैन्यानिसंक्रुद्धोवानराणांमहौजसाम् ॥ ममंथपरमायत्तोवनान्यग्निरिवोत्थितः ॥ १२ ॥ लोहितार्द्रास्तुबहवःशेरतेवानरर्षभाः ॥ निरस्ताःपतिताभूमौताम्रपुष्पाइवद्रुमाः ॥ १३ ॥ लंघयंतःप्रधावंतोवानरानावलोकयन् ॥ केचित्समुद्रेपतिताःकेचिद्गगनमास्थिताः ॥ १४ ॥ वध्यमानास्तुतेवीराराक्षसेनचलीलया ॥ सागरंयेनतेतीर्णाःपथातेनैवदुद्रुवुः ॥ १५ ॥ तेस्थलानितदानिम्नंविवर्णवदनाभयात् ॥ ऋक्षावृक्षान्समारूढाःकेचित्पर्वतमाश्रिताः ॥ १६ ॥ निपेतुःकेचिदपरेकेचिन्नैवावतस्थिरे ॥ केचिद्भूमौनिपतिताःकेचित्सुप्तामृताइव ॥ १७ ॥ तान्समीक्ष्यांगदोभग्नान्वानरानिदमब्रवीत् ॥ अवतिष्ठतयुध्यामोनिवर्तध्वंप्लवंगमाः ॥ १८ ॥

क्या कहैं उसकालमें अनेक वानर वीर उस राक्षस कुंभकर्णसे लीला सहित मारे जाकर मरनेके निकट पहुंच जिस मार्गसे समुद्रके पार हुएथे उसी मार्गसे भागनें लगे ॥ १५ ॥ रीछ गणभी भयके मारे विवर्ण मुखहो कोई २ गुफामें प्रवेश करगये, कोई २ वृक्षोंपर चढ़े, और कोई २ पर्वतोंपर आरोहण करते हुए ॥ १६ ॥ कोई २ पर्वतों परसे नीचे उतर आये और कोई २ नीचे नहीं उतरे वही पर रहे; कोई २ मृतक होगये, और कोई २ मृतक तुल्य होकर पृथ्वीपर सोरहे ॥ १७ ॥ तब अंगदजी वानरोंकी यह अवस्था देखकर उनसे बोले तुम लोग लौटो, हम फिर युद्ध करेंगे ॥ १८ ॥

हेराजन् ! हम दशरथकुमार रामचंद्रको वध करके आपको असीम सुख प्राप्त करनेंके लिये चले लक्ष्मणके सहित रामचंद्रका विनाश करके हम समस्त वानरोंके यूथपोंको खालेंगे ॥ ५५ ॥ इस समय आप मनके सुखसे मदिरा पानकर स्त्रियोंके सहित विहार करते रहें, और जितनाभर मनका दुःखहै वह आप छोड़दें । आप निश्चय रक्खें कि यमराजके भवनमें रामचन्द्रके पहुंच जानेंपर सीता सदाके लिये आपके वशमें होजायगी ॥ ५६ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥ विशालबाहु बड़े भारी देहवाले महाबलवान् कुम्भकर्णके ऐसे वचन सुन कर राक्षस महोदर कहने लगा॥१॥हे कुंभकर्ण! तुम बड़े भारी कुलमें जन्मे तो हो परन्तु ढिठाई और गर्वके मारे तुम यथार्थ अवस्थाको नहीं जान सकते,

वधेनतेदाशरथेःसुखावहंसुखंसमाहर्तुमहंव्रजामि ॥ निहत्यरामंसहलक्ष्मणेनखादामिसर्वान्हरियूथमुख्यान् ॥ ५५ ॥ रमस्वराजन्पिबचाद्यवारुणींकुरुष्वकृत्यानिविनीयदुःखम् ॥ मयाद्यरामेगमितेयमक्षयंचिरायसीतावशगाभविष्यति ॥ ५६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेत्रिषष्टितमःसर्गः ॥ ६३ ॥ ॥ ७ ॥ तदुक्तमतिकायस्यबलिनोबाहुशालिनः ॥ कुंभकर्णस्यवचनंश्रुत्वोवाचमहोदरः ॥ १ ॥ कुंभकर्णकुलेजातोधृष्टप्राकृतदर्शनः ॥ अवलिप्तोनशक्नोषिकृत्यंसर्वत्रवेदितुम् ॥ २ ॥ नहिराजानजानीतेकुंभकर्णनयानयौ ॥ त्वंतुकैशोरकाद्धृष्टःकेवलंवक्तुमिच्छसि ॥ ३ ॥ स्थानंवृद्धिंचहानिंचदेशकालविधानवित् ॥ आत्मनश्चपरेषांचबुध्यतेराक्षसर्षभः ॥ ४ ॥ यत्त्वशक्यंबलवतावक्तुंप्राकृतबुद्धिना ॥ अनुपासितवृद्धेनकःकुर्यात्तादृशंनरः ॥ ५ ॥

इसी कारणसे कौन समय क्या करना चाहिये यहभी तुम नहीं जानते॥ २ ॥हमारे राजा क्या नीति अनीतिको नहीं जानतेहैं;तुम बालक पनसेही ढीठहो, इसी कारणसे ऐसे अनर्थक वचनोंका जाल फैलाया करतेहो ॥३॥राक्षसराज देश और कालके विभागको जानतेहैं;इनसे अपने ओरकी और शत्रुके ओरकी उन्नति छिपी नहीं है,और अपने पक्षके क्षय वृद्धिके अभावमें किसप्रकारसे रहना होताहै,इन सब बातोंकोही यह जानतेहैं ॥ ४ ॥ जिसनें कभी बड़े बूढेकी पूजानहीं की ऐसी प्राकृत बुद्धिवाले और बलसे गर्वित लोग जो कार्य किया करतेहैं,क्या नीति जाननेंवाले लोग वैसे कार्योंको कर सकतेहैं॥५॥

लोगोंका नाश करसके तौ इस लोकमें अतुल कीर्त्तिको प्राप्त करेंगे ॥२५॥ जिस प्रकार पतंग दीप्तिमान अग्निके निकट होकर अपने जीवनकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं होता, वैसेही कुंभकर्णभी रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीके निकट आयकर फिर जीता हुआ लंकाको लौटकर नहीं जासकैगा॥२६॥ विशेष करके हम लोग महावीर और बहुत सारे होकरभी यदि एक राक्षससे भय पायकर भाग जांयगे और इस प्रकार अपने प्राणोंकी रक्षाकरेंगे तौ इस्से हमारा यश नष्ट होजायगा ॥ २७ ॥ कनकका बाजू पहरे शूर श्रेष्ठ अंगदजीके यह वचन सुन भागकर चले जाते हुए वानर लोग शूर गणोंके आगे निन्दा पानेके योग्य वचन बोले ॥ २८ ॥ हे वीरश्रेष्ठ! महाबलवान् कुम्भकर्ण अति घोर संग्राम कर रहाहै, इस समय हम लोग उसके सन्मुख किसी प्रकारसे खड़े नहीं हो सकते हैं, जो कुछभीहो हमें अपना प्राण अत्यन्त प्याराहै;इस कारण भाग जानेमेंही हमारी भलाई है ॥ २९ ॥

नकुंभकर्णःकाकुत्स्थंदृष्ट्वाजीवन्गमिष्यति ॥ दीप्यमानमिवासाद्यपतंगोज्वलनंयथा ॥ २६ ॥ पलायनेनचोद्दिष्टाः प्राणान्रक्षामहेवयम् ॥ एकेनबहवोभग्नायशोनाशंगमिष्यति ॥ २७ ॥ एवंब्रुवाणंतंशूरमंगदंकनकांगदम् ॥ द्रवमाणास्ततोवाक्यमूचुःशरविगर्हितम् ॥ २८ ॥ कृतंनःकदनंघोरंकुंभकर्णेनरक्षसा ॥ नस्थानकालोगच्छामोदयितंजीवितंहिनः ॥ २९ ॥ एतावदुक्त्वावचनंसर्वेतेभेजिरेदिशः ॥ भीमंभीमाक्षमायांतंदृष्ट्वावानरयूथपाः॥ ३० ॥ द्रवमाणास्तुतेवीराअंगदेनवलीमुखाः ॥ सांत्वनैश्चानुमानैश्चततःसर्वेनिवर्तिताः ॥ ३१ ॥ प्रहर्षमुपनीताश्चवालिपुत्रेणधीमता ॥ आज्ञाप्रतीक्षास्तस्थुश्चसर्वेवानरयूथपाः ॥ ३२ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेषट्षष्टितमःसर्गः॥ ६६ ॥ ७ ॥ तेनिवृत्तामहाकायाःश्रुत्वांगदवचस्तदा॥ नैष्ठिकींबुद्धिमास्थायसर्वेसंग्रामकांक्षिणः॥ १॥

वानरोंके यूथपति भयंकर नेत्रवाले भयंकर रूपवान कुम्भकर्णको आया हुआ देखकर केवल इतनाही कहकर चारों ओरको भागनें लगे ॥ ३० ॥ परन्तु अंगदजीनें समझाय बुझाय लालच दिवाय, उन भागते हुए वानर गणोंके यूथनाथोंको किसी प्रकारसे फिर लौटारा ॥ ३१ ॥ तब बुद्धिमान अंगदजीने उन सब वानरोंको उत्साहित किया, और यूथपति लोगभी युद्ध करनेंके लिये वाट जोहनें लगे ॥ ३२ ॥ (इसके उपरान्त शरभ, मैन्द धूम्र, नील, कुमुद, सुषेण, गवाक्ष, रम्भ, तार, द्विविद और पवनकुमार हनुमानादि मुख्य २ वानर अतिशीघ्रतासे समरभूमिकी ओर चले) इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि० युद्धकांडे षट्षष्टितमः सर्गः॥६६॥अंगदजीके वचन सुनकर समस्त वानर लौटपडे; और अपनी मृत्युका

भयसे भीत होकर ऐसे छिपे हुएहैं कि तुम अबभी उनको युद्धमें आया हुआ नहीं देखोगे ॥ १३ ॥ आहा! कैसे आश्चर्यकी बातहै कि तुम जान बूझकर भी क्रोधित होकर सोये हुए केसरी और श्रेष्ठ सर्पकी समान दशरथकुमार रामचंद्रको जगानेकी इच्छा करते हो ॥ १४ ॥ जो रामचंद्र अपने तेजसे प्रदीप्त हैं और क्रोधवश होनेके कारण अत्यन्त दुर्द्धर्ष हैं सो कौन पुरुष मृत्युकी समान सहन करनेके अयोग्य उन वीरश्रेष्ठके निकट बढ़नेंकी इच्छा करताहै॥ १५॥ हे तात! यह समस्त राक्षस गण इकट्ठे होकर रामचंद्रके सन्मुख टिक कर जीते हुए नहीं रह सकते हैं हमेंतो इसमें भी सन्देहहै इसलिये रामचंद्रसें युद्ध करनेके लिये अकेले तुम्हारा जाना हमारी सम्मतिमें नहीं आता॥ १६॥ स्वयं हीनबल होकरभी कौन पुरुष अपना जीवही देनेंके लिये

तंसिंहमिवसंक्रुद्धंरामंदशरथात्मजम् ॥ सर्पंसुप्तमहोबुद्ध्वाप्रबोधयितुमिच्छसि ॥ १४ ॥ ज्वलंतंतेजसानित्यंक्रोधेनच दुरासदम् ॥ कस्तंमृत्युमिवासह्यमासादयितुमर्हति ॥ १५ ॥ संशयस्थमिदंसर्वंशत्रोःप्रतिसमासने ॥ एकस्यगमनं तातनहिमेरोचतेभृशम् ॥ १६ ॥ हीनार्थस्तुसमृद्धार्थंकोरिपुंप्राकृतंयथा ॥ निश्चितंजीवितत्यागेवशमानेतुमिच्छति ॥ १७ ॥ यस्यनास्तिमनुष्येषुसदृशोराक्षसोत्तम ॥ कथमाशंससेयोद्धुंतुल्येनेंद्रविवस्वतोः ॥ १८ ॥ एवमुक्त्वातुसंरब्धंकुंभकर्णंमहोदरः ॥ उवाचरक्षसांमध्येरावणंलोकरावणम् ॥ १९ ॥ लब्ध्वापुरस्ताद्वैदेहींकिमर्थंत्वंविलंबसे ॥ यदीच्छसि तदासीतावशगातेभविष्यति ॥ २० ॥ दृष्टःकश्चिदुपायोमेसीतोपस्थानकारकः ॥ रुचितश्चेत्स्वयाबुद्ध्याराक्षसेंद्रततः शृणु ॥ २१ ॥ अहंद्विजिह्वःसंह्रादीकुंभकर्णोवितर्दनः ॥ पंचरामवधायैतेनिर्यांतीत्यवघोषय ॥ २२ ॥

दूसरे प्राकृत शत्रुकी समान बलवान शत्रुको अपने वशमे लानेंकी इच्छा कर सकताहै ? ॥ १७ ॥ हे राक्षसोंमें श्रेष्ठ ! त्रिलोकीमें जिनकी समान कोईभी नहीं है तुम किसलिये सूर्य और इन्द्रकी समान इन इक्ष्वाकुवंशावतंस श्रीरामचन्द्रजीके साथ अकेलेही युद्ध करनेंका अभिलाष करतेहो ॥ १८ ॥ राक्षस महोदरनें क्रोधित होकर कुम्भकर्णसे ऐसा कह राक्षसोंके बीचमें बैठे हुए फिर लोगोंके रुवानें वाले रावणसे कहा ॥ १९ ॥ आप सीताको प्राप्त करनेंमें किसलिये देर कर रहे हैं, यदि आपकी इच्छाहो तौ सीता इसी समय आपके वशमें होसकतीहै ॥ २० ॥ हमनें सीताको वशमें करनेंका एक उपाय स्थिर कियाहै; यदि आपकी बुद्धिमेंभी वह भला ज्ञातहो तौ उसको सुनकर आप कीजिये ॥ २१ ॥ वह उपाय यहहै कि

कार कुम्भकर्णकी ओर दौड़ा ॥ ९ ॥ उस वानर श्रेष्ठनें पर्वतका शिखर उखाड़तेही कुम्भकर्ण पर चलाया, परन्तु वह पर्वतका शिखर कुम्भकर्णके ऊपर न गिरके उसकी सैनापर गिरा ॥ १० ॥ उस पर्वत शृङ्गके गिरनेंसे उस सैनाके अश्व, गज, और रथ समस्त चूर्ण होगये । तब वानर द्विविद और एक पर्वतका शृङ्ग चलायकर और राक्षसोंका नाश करनें लगे ॥ ११ ॥ वानर श्रेष्ठ द्विविदके चलाये शैल शृङ्गनें अत्यन्त वेगसे गिरकर राक्षसोंके रथ सारथियोंके सहित चूर्णकर डाले ॥ क्षण भरमें रण भूमि राक्षसोंके रुधिरसे गीली होगई ॥१२॥ तब रणमें बैठे हुए महावीर राक्षस लोग भयंकर सिंहनाद करके कालाग्निकी समान बाण चलाय २ वानरोंका नाश करनें लगे ॥ १३ ॥ इस ओर महा बलवान वानर गणभी बड़े वृक्षोंको

तंसमुत्पाट्यचिक्षेपकुंभकर्णायवानरः ॥ तमप्राप्यमहाकायंतस्यसैन्येपतत्ततः ॥ १० ॥ ममर्दाश्वान्गजांश्चापिरथां श्चापिगजोत्तमान् ॥ तानिचान्यानिरक्षांसिएवंचान्यद्गिरेःशिरः ॥ ११ ॥ तच्छैलवेगाभिहतंहताश्वंहतसारथिम् ॥ रक्षसांरुधिरक्लिन्नंबभूवायोधनंमहत् ॥ १२ ॥ रथिनोवानरेंद्राणांशरैःकालांतकोपमैः ॥ शिरांसिनदतांजह्रुःसहसाभी मनिःस्वनाः ॥१३॥ वानराश्चमहात्मानःसमुत्पाट्यमहाद्रुमान् ॥ रथानश्वान्गजानुष्ट्रान्राक्षसानभ्यसूदयन् ॥१४॥ हनूमाञ्छैलशृंगाणिशिलाश्चविविधान्द्रुमान् ॥ ववर्षकुंभकर्णस्यशिरस्यंबरमास्थितः ॥ १५ ॥ तानिपर्वतशृंगाणिशूले नसबिभेदह ॥ बभंजवृक्षवर्षंचकुंभकर्णोमहाबलः ॥ १६ ॥ ततोहरीणांतदनीकमुग्रंदुद्रावशूलंनिशितंप्रगृह्य ॥ तस्थौसतस्यापततःपुरस्तान्महीधराग्रंहनुमान्प्रगृह्य ॥ १७ ॥ सकुंभकर्णंकुपितोजघानवेगेनशैलोत्तमभीमकायम् ॥ संचुक्षुभेतेनतदाभिभूतोमेदार्द्रगात्रोरुधिरावसिक्तः ॥ १८ ॥

उखाड़कर रथ, अश्व, हाथी, ऊंट, और राक्षसोंको विध्वंश करनें लगे ॥१४॥ महावीर हनुमानजीनें आकाश मार्गमें टिककर पर्वतोंके शृङ्ग विविध शिलाखंड और अनेक वृक्ष कुम्भकर्णके मस्तकपर चलाये ॥ १५ ॥ राक्षसवीर महाबलवान कुंभकर्णने देखते २ इन सब शैल शृंगादिकोंको शूलसे खंड २ कर डाला और पलक मारतेमे वृक्षादिकोंको चूर्ण करदिया ॥ १६ ॥ इसके उपरान्त कुंभकर्ण तीक्ष्ण शूल हाथमें लेकर वानर सैनाकी ओर दौड़ा, यह देखकर हनुमानजी एक बड़ा भारी पर्वतका शृङ्ग ग्रहण करके उसके सन्मुख खडे रहे॥१७॥ तब हनुमानजीनें अत्यन्त क्रोधमें

जब सब ओर फैलेगी,तब इसको सीताभी सुनेंगी,॥३०॥तब आप अशोक वनमें प्रवेश करके एकान्तमें सीताको समझाना बुझाना और धन धान्य रत्न
और कामना करने लायक वस्तुओंसे लुभाना ॥ ३१ ॥ हे राजन्! नाथ हीन सीताका अभिलाष होनेपरभी ऐसे शोकके उत्पन्न करानें वालेसे
धोखाखाय आपके वशमें होजायगी ॥ ३२ ॥ जानकी अपने प्यारे पतिको नाश हुआ देख सब भांतिकी आशा छोड़ स्त्रीस्वभावकी लघु
ताईसे आपके वशमें पड़कर आपहीका आश्रय ग्रहण करेंगी ॥ ३३ ॥उन सीतानें पहले अनेक प्रकारके भोग सुख भोगेथे, कभी दुःखका मुखभी
नहीं देखा, इस समय वह महादुःख भोग रही हैं; बस वह यह समझकर कि आपके निकट रहनेंसे बड़ा सुख मिलेगा; आपके वशमें होनेंके लिये

प्रविश्याश्वास्यचापित्वंसीतांरहसिसांत्वयन् ॥ धनधान्यैश्चकामैश्चरत्नैश्चैनांप्रलोभय ॥ ३१ ॥ अनयोपधयारा
जन्भूयःशोकानुबंधया ॥ अकामात्वद्वशंसीतानष्टनाथागमिष्यति ॥ ३२ ॥ रमणीयंहिभर्तारंविनष्टमधिगम्यसा ॥
नैराश्यात्स्त्रीलघुत्वाच्चत्वद्वशंप्रतिपत्स्यते ॥ ३३ ॥ सापुरासुखसंवृद्धासुखार्हादुःखकर्षिता ॥ त्वय्यधीनंसुखंज्ञात्वा
सर्वथैवागमिष्यति ॥ ३४ ॥ एतत्सुनीतंममदर्शनेनरामंहिदृष्ट्वैवभवेदनर्थः ॥ इहैवतेसेत्स्यतिमोत्सुकोभूर्महानयुद्धे
नसुखस्यलाभः ॥ ३५ ॥ अनष्टसैन्योह्यनवाप्तसंशयोरिपुंत्वयुद्धेनजयञ्जनाधिप ॥ यशश्चपुण्यंचमहान्महीपतिःश्रियं
चकीर्तिंचचिरंसमश्नुते॥ ३६ ॥इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेचतुःषष्टितमःसर्गः ॥ ६४ ॥

असम्मत नहीं होगी ॥ ३४ ॥ हे महाराज! हमारे विचारमें तो यही बात उचित जान पड़ताहै और इससेही आपका अभिलाष पूर्ण होगा; इस
कारण आप संग्रामभूमिमें रामचन्द्रके सहित युद्ध करनेंका अभिलाष न कीजिये, क्योंकि उस्से सुख प्राप्त न होकर वरन बड़े भारी अनर्थके होनेकी सं
भावनाहै ॥३५॥हेजनाधिप! जो महान् महीपति अपने आप संशयमें न पड़कर और सैनाको नाश न करके विना युद्ध किये शत्रुलोगोंको जीतलेतेहैं;
वह विपुल यश,सुख,सम्पत्ति और कीर्त्तिको प्राप्त करतेंहैं ॥ ३६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे चतुःषष्टितमःसर्गः॥६४॥

वह वालिकी छातीमें जाकर महावेगसे लगा ॥ ३५ ॥ तब महातेजमान् वीर्यवान् वानरराज वालि बाणसे घायल होकर पृथ्वीपर गिर पडा ॥ ३६॥
जिस प्रकार आश्विन मासमें पूर्णमासीके अंतमें इन्द्रध्वज गिर पडताहै, वैसेही वालिके प्राण निकलनें लगे, और वह वनाथ मूर्च्छित होगया॥३७॥
कफके मारे उसका कंठ रुकगया और सहज २ आरत स्वर उसनें प्रगट किया ॥ ३८॥ जिस प्रकार श्रीशंकरजी मुखसे धूम अग्नि छोडतेहैं वैसेही
कालकी समान नरोत्तम श्रीरामचंद्रजीनें सुवर्णविभूषित शत्रुओंका नाश करनेंवाला बाण वालिपर छोडा ॥ ३९ ॥ फिर शरीरसे रुधिर निकलता
हुआ पर्वत परसे उत्पन्न हुए अशोक वृक्षकी समान इन्द्रसुत वालि चेतनारहित, पवनवेगसे टूटे हुए इन्द्रध्वजकी समान पृथ्वीपर गिरपडा ॥ ४० ॥

ततस्तेनमहातेजावीर्ययुक्तःकपीश्वरः ॥ वेगेनाभिहतोवालीनिपपातमहीतले ॥ ३६ ॥ इंद्रध्वजइवोद्धूतःपौर्णमास्यां
महीतले ॥ आश्वयुक्समयेमासिगतसत्त्वोविचेतनः ॥ ३७ ॥ बाष्पसंरुद्धकंठस्तुवालीचार्तस्वरःशनैः ॥ ३८ ॥
नरोत्तमःकालइवांतकोपमंशरोत्तमंकांचनरूपभासितम्॥ससर्जदीप्तंतममित्रमर्दनंसधूममग्निंमुखतोयथाहरः ॥ ३९॥
अथोक्षितःशोणिततोयविस्रवैःप्रपुष्पिताशोकइवाचलोद्गतः ॥ विचेतनोवासवसूनुराहवेप्रभ्रंशितेंद्रध्वजवत्क्षितिंग
तः ॥ ४० ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेषोडशः सर्गः ॥ १६ ॥ ॥ छ ॥
ततःशरेणाभिहतोरामेणरणकर्कशः ॥ पपातसहसावालीनिकृत्तइवपादपः ॥ १ ॥ सभूमौन्यस्तसर्वांगस्तप्तकांचनभूष
णः ॥ अपतद्देवराजस्यमुक्तरश्मिरिवध्वजः ॥ २ ॥ अस्मिन्निपतितेभूमौहर्यृक्षाणांगणेश्वरे ॥ नष्टचंद्रमिवव्योमनव्य
राजतमेदिनी ॥ ३ ॥ भूमौनिपतितस्यापितस्यदेहंमहात्मनः ॥ नश्रीर्जहातिनप्राणानतेजोनपराक्रमः ॥ ४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीयेआदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे षोडशःसर्गः॥१६॥जब श्रीरामचन्द्रजीनें बाण मारा,तब वह रणशूर वालि उस बाणसे घा
यल हो कटे हुये वृक्षकी समान पृथ्वीपर गिर पडा ॥ १ ॥ उज्ज्वल सुवर्णके भूषण धारण किये हुये वालि डोरी छोड दिये हुये इंद्रध्वजकी समान गि
रकर अपने सब अंग पृथ्वीपर लुटाता हुआ ॥ २ ॥ जब वानर गणोंका राजा वालि पृथ्वीपर गिर पडा तब उसके राज्यकी भूमि चंद्रमा रहित आ
काशकी समान शोभाहीन होगई ॥ ३ ॥ यद्यपि वालि पृथ्वीपर गिर पडा, परन्तु उस महात्माके लक्ष्मी, तेज, प्राण और पराक्रम कुछ न गये॥४॥

कर्णनें जब यह कहा तब राक्षस रावण उस्से हँसकर बोला ॥ ९ ॥ हेवत्स ! युद्धविशारद ! हम निश्चय कहतेहैं कि महोदर रामचंद्रको देखकर डर गया होगा इसी कारणसे इसका युद्ध करनेंका अभिलाष नहींहोता ॥ १० ॥ हेकुम्भकर्ण ! क्या सुहृदतामें, क्या बलके प्रभावमें तुम्हारी समान अपना पुरुष हमारा कोईभी नहींहै, इस कारण तुम शत्रुलोगोंका वध साधन करनेंके लिये और विजय पानेंके अर्थ शीघ्र लंकापुरीसे बाहर चलो ॥ ११ ॥ हेशत्रुनाशी ! तुम घोर नींदमें मग्नथे, हमनें शत्रुको जीत लेनेहीके अर्थ तुमको जगवायाहै; इस समय राक्षस लोगोंपर घोर संकट पड़ा देखकर ॥ १२ ॥ फांसी हाथमें लिये यमराज जिस प्रकारसे दौड़तेहैं; उनकीही समान तुमभी शूल हाथमें धारण कर युद्धकी यात्रा करो । और

महोदरोयंरामात्तुपवित्रस्तौनसंशयः ॥ नहिरोचयतेतातयुद्धंयुद्धविशारद ॥ १० ॥ कश्चिन्मेत्वत्समोनास्तिसौहृदेनबलेनच ॥ गच्छशत्रुवधायत्वंकुंभकर्णजयायच ॥ ११ ॥ शयानःशत्रुनाशार्थंभवान्संबोधितोमया ॥ अयंहिकालःसुमहान्राक्षसानामरिंदम ॥ १२ ॥ संगच्छशूलमादायपाशहस्तइवांतकः ॥ वानरान्राजपुत्रौचभक्षयादित्यतेजसौ ॥ १३ ॥ समालोक्यतुतेरूपंविद्रविष्यंतिवानराः ॥ रामलक्ष्मणयोश्चापिहृदयेप्रस्फुटिष्यतः ॥ १४ ॥ एवमुक्त्वामहातेजाःकुंभकर्णंमहाबलम् ॥ पुनर्जातमिवात्मानंमेनेराक्षसपुंगवः ॥ १५ ॥ कुंभकर्णबलाभिज्ञोजानंस्तस्यपराक्रमम् ॥ बभूवमुदितोराजाशशांकइवनिर्मलः ॥ १६ ॥ इत्येवमुक्तःसंहृष्टोनिर्जगाममहाबलः ॥ राज्ञस्तुवचनंश्रुत्वायोद्धुमुद्युक्तवांस्तदा ॥ १७ ॥

सूर्यकी समान प्रभावाले राम लक्ष्मणको मार कर पीछेसे वानरोंकोभी भक्षण कर लेना ॥ १३ ॥ हम जानतेहैं कि तुम्हारी भयंकर मूर्त्ति देखनें पर वानर लोग प्राणोंके डरसे भाग जायँगे, और राम लक्ष्मणकाभी हृदय विदीर्ण होजायगा ॥ १४ ॥ राक्षसश्रेष्ठ रावण महाबलवान् कुम्भकर्णसे यह कहकर जयकी आशासे यह समझाकि, मानो दूसरा जन्म हुआ ॥ १५ ॥ उस समय रावणका अंतःकरण पूर्णमासीके चंद्रमाकी समान निर्मल होगया, रावण कुम्भकर्णके बल विक्रमको जानताथा; इसलिये उसको युद्धके लिये तैयार देख इसके आनंदकी सीमा न रही ॥ १६ ॥ कुम्भकर्णभी राक्षसराज रावणके कहे हुए ऐसे वचन सुनकर परम सन्तुष्ट हुआ, और युद्धमें जानेंकी तैयारियें करनें लगा ॥ १७ ॥

जाय युद्धके लिये समयको देखनें लगा ॥ १७ ॥ सुग्रीवजीभी दृढ मुक्का बाँधकर दर्पमें भर हेमशाली वालिकी ओर गमन करनें लगे ॥१८॥ वालि रणपण्डित क्रोधसे लाल२ नेत्र किये सुग्रीवको महावेगसे आता हुआ देखकर बोला ॥ १९ ॥ यह देखो सब उंगलियोंको सकोड कर हमनें दृढ रूपसे जो यह महामुष्टिका बाँधीहै हम इसको महा वेगसे तुम्हारे ऊपर चलामेंगे इसमें कोई संदेह नहींकि इसके लगतेही तुम्हारा प्राण निकल जायगा जब वालिनें ऐसा कहा तब सुग्रीवजीभी उस्से क्रोधित होकर बोले कि देखा यह हमनें जो मुक्का बांधाहै यहभी तुम्हारे मस्तकपर पडकर प्राण लेहीलेगा ॥२०॥२१॥तब वालिनें अत्यन्त क्रोधित होकर वेगसे जाकर सुग्रीवजीके मुक्का मारा।उस मुक्केके लगनेंसे सुग्रीवजी झरनें सहित पर्वतकी समान रुधिर

श्लिष्टंमुष्टिंसमुद्यम्यसंरब्धतरमागतः ॥ सुग्रीवोपिसमुद्दिश्यवालिनंहेममालिनम् ॥ १८ ॥ तंवालीक्रोधताम्राक्षंसुग्रीवंरणकोविदम् ॥ आपतंतंमहावेगमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १९ ॥ एषमुष्टिर्महान्बद्धोगाढःसुनियतांगुलिः ॥ मयावेगविमुक्तस्तेप्राणानादाययास्यति ॥ २० ॥ एवमुक्तस्तुसुग्रीवःक्रुद्धोवालिनमब्रवीत् ॥ तवचैषहरन्प्राणान्मुष्टिःपततुमूर्धनि ॥ २१ ॥ ताडितस्तेनतंक्रुद्धःसमभिक्रम्यवेगतः ॥ अभवच्छोणितोद्गारीसापीडइवपर्वतः ॥ २२ ॥ सुग्रीवेणतुनिःशंकंसालमुत्पाट्यतेजसा ॥ गात्रेष्वभिहतोवालीवज्रेणेवमहागिरिः ॥ २३ ॥ सतुवृक्षेणनिर्भग्नःसालताडनविह्वलः ॥ गुरुभारभराक्रांतानौःससार्थैवसागरे ॥ २४ ॥ तौभीमबलविक्रांतौसुपर्णसमवेगितौ ॥ प्रयुद्धौघोरवपुषौचंद्रसूर्याविवांबरे ॥ २५ ॥ परस्परममित्रघ्नौछिद्रान्वेषणतत्परौ ॥ ततोऽवर्धतवालीतुबलवीर्यसमन्वितः ॥ २६ ॥

उगलते २पृथ्वीपर गिरे॥२२॥फिर सुग्रीवजीनें झटपट उठकर अति तेजीसे निःशंकहो एक शालका वृक्ष उखाड वालिके मारा, जैसे इन्द्रजीनें वज्रसे पर्वतोंको माराथा ॥ २३ ॥ उस वृक्षके लगनेंसे विह्वलहो वालि समुद्रके मध्य चलती बहुत बोझसे लदीहुई नावके समान चल विचल होनें लगा ॥ २४ ॥वह भयंकर बल वीर्यशाली चन्द्रमा सूर्यकी समान, गरुडतुल्य वेगवान् घोरतरदेहधारी वालि और सुग्रीव महाघोर युद्ध करनें लगे ॥ २५ ॥ परस्पर एक दूसरेका दोष ढूंढनेंमें तैयारहुये दोनों वीर परस्पर चोट चलानें लगे। लड़ते २ बलवीर्य युक्त वालि समरमें जय

फिर बाजू अंगूठी आदि श्रेष्ठ २ भूषण और चंद्रमाकी समान उज्ज्वल हार महात्मा कुंभकर्णको रावणने पहराया ॥ २६ ॥ कुंभकर्णके कानोंमें मनो हर दो कुंडल शोभायमान हुए, और उसके गलेमें अतिसुगन्धित शोभायमान माला रावणनें पहराई ॥ २७ ॥ बड़े कानवाला कुम्भकर्ण सुवर्णके बाजू, केयूर और वह दूसरे आभूषणोंसे भूषित होकर प्रदीप्त अग्निकी समान शोभायमान होने लगा ॥ २८ ॥ उसकी कमरमें काला तगड़ीका डोरा देखनेसे ऐसा जान पड़ताथा, मानो समुद्रसे अमृत मथन करनेंके समय सर्पद्वारा मन्दर पर्वत दृढरूपसे बँधा हुआहै ॥ २९ ॥ कुम्भकर्णनें सुवर्ण का बना हुआ बिजलीकी प्रभाके समान वर्म (बख्तर) धारण किया, वह तेजके प्रभावसे दमकरहाथा, बड़ा भारी था, अभेद्य था, इस बख्तरसे,

अंगदान्यंगुलीवेष्टान्वराण्याभरणानिच ॥ हारंचशशिसंकाशमाबबंधमहात्मनः ॥ २६ ॥ दिव्यानिचसुगंधीनिमाल्यदामानिरावणः ॥ गात्रेषुसज्जयामासश्रोत्रयोश्चास्यकुंडले ॥ २७ ॥ कांचनांगदकेयूरनिष्काभरणभूषितः ॥ कुंभकर्णोबृहत्कर्णःसुहुतोग्निरिवाबभौ ॥ २८ ॥ श्रोणीसूत्रेणमहतामेचकेनविराजता ॥ अमृतोत्पादनेनद्धोभुजंगेनेवमंदरः ॥ २९ ॥ सकांचनंभारसहंनिवातंविद्युत्प्रभंदीप्तमिवात्मभासा ॥ आबध्यमानःकवचंरराजसंध्याभ्रसंवीतइवाद्रिराजः ॥ ३० ॥ सर्वाभरणसर्वांगःशूलपाणिःसराक्षसः ॥ त्रिविक्रमकृतोत्साहोनारायणइवाबभौ ॥ ३१ ॥ भ्रातरं संपरिष्वज्यकृत्वाचापिप्रदक्षिणम् ॥ प्रणम्यशिरसातस्मैप्रतस्थेसमहाबलः ॥ ३२ ॥ तमाशीर्भिःप्रशस्ताभिःप्रेषयामासरावणः ॥ शंखदुंदुभिनिर्घोषैःसैन्यैश्चापिवरायुधैः ॥ ३३ ॥ तंगजैश्चतुरंगैश्चस्यंदनैश्चांबुदस्वनैः ॥ अनुजग्मुर्महात्मानोरथिनोरथिनांवरम् ॥ ३४ ॥

सन्ध्या समयके मेघसे रँगे हुए हिमालय पर्वतकी समान कुम्भकर्णनें अपूर्व शोभा धारणकी ॥ ३० ॥ कुंभकर्ण समस्त भूषणोंसे भूषित और हाथमें बड़ा भारी शूल लेकर ऐसा ज्ञात हुआ, कि मानों त्रिविक्रमसे विष्णुजी, स्वर्ग मृत्यु, और पाताल लोकके तापनेंको तैयार हुएहैं ॥ ३१ ॥ महा बली कुम्भकर्ण रावणसे भलीभांति मिल भेंटकर उसकी प्रदक्षिणा कर प्रणाम करकै युद्ध करनेंके लिये चला ॥ ३२ ॥ राक्षसराज रावणनें उस समय उसको मंगलसूचक आशीर्वाद दिया, उस कालमें शंख व नगाड़ोंका कठोर शब्द उत्पन्न हुआ ॥ ३३ ॥ श्रेष्ठ हथियार लगाये हुए सैना चली

जाय युद्धके लिये समयको देखनें लगा ॥ १७ ॥ सुग्रीवजीभी दृढ मुक्का बाँधकर दर्पमें भर हेमशाली वालिकी ओर गमन करनें लगे ॥१८॥ वालि रणपण्डित क्रोधसे लाल२ नेत्र किये सुग्रीवको महावेगसे आता हुआ देखकर बोला ॥ १९ ॥ यह देखो सब उंगलियोंको सकोड कर हमनें दृढ रूपसे जो यह महामुष्टिका बाँधीहै हम इसको महा वेगसे तुम्हारे ऊपर चलामेंगे इसमें कोई संदेह नहींकि इसके लगतेही तुम्हारा प्राण निकल जायगा जब वालिनें ऐसा कहा तब सुग्रीवजीभी उस्से क्रोधित होकर बोले कि देखो यह हमनें जो मुक्का बांधाहै यहभी तुम्हारे मस्तकपर पडकर प्राण लेहीलेगा ॥२०॥२१॥तब वालिनें अत्यन्त क्रोधित होकर वेगसे जाकर सुग्रीवजीके मुक्का मारा।उस मुक्केके लगनेंसे सुग्रीवजी झरनें सहित पर्वतकी समान रुधिर

श्लिष्टंमुष्टिंसमुद्यम्यसंरब्धतरमागतः ॥ सुग्रीवोपिसमुद्दिश्यवालिनंहेममालिनम् ॥ १८ ॥ तंवालीक्रोधताम्राक्षंसुग्रीवंरणकोविदम् ॥ आपतंतंमहावेगमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १९ ॥ एषमुष्टिर्महान्बद्धोगाढःसुनियतांगुलिः ॥ मयावेगविमुक्तस्तेप्राणानादाययास्यति ॥ २० ॥ एवमुक्तस्तुसुग्रीवःक्रुद्धोवालिनमब्रवीत् ॥ तवचैषहरन्प्राणान्मुष्टिःपततुमूर्धनि ॥ २१ ॥ ताडितस्तेनतंक्रुद्धःसमभिक्रम्यवेगतः ॥ अभवच्छोणितोद्गारीसापीडइवपर्वत· ॥ २२ ॥ सुग्रीवेणतुनिःशंकंसालमुत्पाट्यतेजसा ॥ गात्रेष्वभिहतोवालीवज्रेणेवमहागिरिः ॥ २३ ॥ सतुवृक्षेणनिर्भग्नःसालताडनविह्वलः ॥ गुरुभारभराक्रांतानौःससार्थेवसागरे ॥ २४ ॥ तौभीमबलविक्रांतौसुपर्णसमवेगितौ ॥ प्रयुद्धौघोरवपुषौचंद्रसूर्याविवांबरे ॥ २५ ॥ परस्परममित्रघ्नौछिद्रान्वेषणतत्परौ ॥ ततोऽवर्धतवालीतुबलवीर्यसमन्वितः ॥ २६ ॥

उगलते २पृथ्वीपर गिरे॥२२॥फिर सुग्रीवजीनें झटपट उठकर अति तेजीसे निःशंकहो एक शालका वृक्ष उखाड वालिके मारा, जैसे इन्द्रजीनें वज्रसे पर्वतोंको माराथा ॥ २३ ॥ उस वृक्षके लगनेंसे विह्वलहो वालि समुद्रके मध्य चलती बहुत बोझसे लदीहुई नावके समान चल विचल होनें लगा ॥ २४ ॥वह भयंकर बल वीर्यशाली चन्द्रमा सूर्यकी समान, गरुडतुल्य वेगवान् घोरतरदेहधारी वालि और सुग्रीव महाघोर युद्ध करनें लगे ॥ २५ ॥ परस्पर एक दूसरेका दोष ढूंढनेंमें तैयारहुये दोनों वीर परस्पर चोट चलानें लगे। लड़ते २ बलवीर्य युक्त वालि समरमें जय

करके अपनी सैनासे मृदु हँसकर बोला ॥ ४२ ॥ हे राक्षसगण! तुम लोग वानरोंके यूथ पतियोंको देखते हो हम इनकों इस प्रकारसे भस्म कर डालेंगे कि जैसे अग्नि पतंगको भस्म कर देतींहै ॥ ४३ ॥ अथवा वनचारी वानरलोगोंका अपराध ही क्या है वह तौ हम समान पुरुषोंकी पुरी और फुलवाडियोंके ही भूषणहैं ॥ ४४ ॥ हमारे विचारमें रामचंद्र ही लंका घेरनेकी मूल हैं इसलिये आज रामचंद्र व लक्ष्मणको मारडालनेसे और सब अपने आपही से मर जांयगे ॥ ४५ ॥ कुंभकर्ण यह बात कह ही रहाथा कि इतनेंमें ही महाबलवान योद्धा लोग समुद्रको कंपायमान ही करने से मानो घोर सिंहनाद करने लगे ॥ ४६ ॥ महा बुद्धिमान कुंभकर्ण युद्धके लिये निकल रहाथा कि इतनेहीमे चारों ओर अति घोर दुर्नि

अद्यवानरमुख्यानांतानियूथानिभागशः ॥ निर्दहिष्यामिसंक्रुद्धःपतंगानिवपावकः ॥ ४३ ॥ नापराध्यंतिमेकामंवा
नरावनचारिणः ॥ जातिरस्मद्विधानांसापुरोद्यानविभूषणम् ॥ ४४ ॥ पुररोधस्यमूलंतुराघवःसहलक्ष्मणः ॥ ह
तेतस्मिन्हतंसर्वंतंवधिष्यामिसंयुगे ॥ ४५ ॥ एवंतस्यब्रुवाणस्यकुंभकर्णस्यरक्षसः ॥ नादंचक्रुर्महाघोरंकंपयंतइवार्णव
म् ॥ ४६ ॥ तस्यनिष्पततस्तूर्णंकुंभकर्णस्यधीमतः ॥ बभूवुर्घोररूपाणिनिमित्तानिसमंततः ॥ ४७ ॥ उल्काशनियुतामेघाब
भूवुर्गर्दभारुणाः ॥ ससागरवनाचैववसुधासमकंपत ॥ ४८ ॥ घोररूपाःशिवानेदुःसज्वालकवलैर्मुखैः ॥ मंडलान्यपसव्या
निबबंधुश्चविहंगमाः ॥ ४९ ॥ निष्पपातचगृध्रोस्यशूलेवैपथिगच्छतः ॥ प्रास्फुरन्नयनंचास्यसव्योबाहुरकंपत ॥
॥ ५० ॥ निष्पपाततदाचोल्काज्वलंतीभीमनिःस्वना ॥ आदित्योनिष्प्रभश्चासीन्नवातिचसुखोनिलः ॥ ५१ ॥

मित्त होनें लगे ॥ ४७ ॥ उल्का व वज्रसे युक्त मेघ गण गर्द्दभकी समान अरुण रंग होगये और समुद्र वनके सहित पृथ्वी कंपायमान होने लगी ॥ ४८ ॥ घोर रूप शृगालियें अँगारोंको मुखमें दिये शब्द करने लगीं और पक्षी गण अशुभ मंडल बांधकर दहिनी ओर चलने लगे ॥ ४९ ॥ जबकि कुंभकर्ण मार्ग चल रहाथा तब उस समय उसके शूल पर गिद्ध बैठगया और उसका बांया नेत्र फड़ककर बांया हाथभी कंपायमान होने लगा ॥ ५० ॥ सन्मुख बडी भारी भयंकर जलती हुई उल्का गिर पडी सूर्य भगवान प्रभाहीन होगये और जिस्से सुख प्राप्त हो सकै ऐसी वायु भी नहीं चली ॥ ५१ ॥

राजा महा तेजमान जाम्बवान॥२६॥दशकोटि ऋक्षोंकी सेनाले सुग्रीवजीके वशमें आया रुमण नामक तेजस्वी पराक्रमी वानर पति बहुतसे वानरोंके साथ ॥ २७ ॥ और महाबलवान् सौ करोड वानर सेना संग लिये आया तिसके पीछे लक्ष २ करोड २ वानर संग लिये ॥ २८ ॥ महा पराक्रम करने वाला गन्धमादन नामक यूथप आया तिसके पीछे हजार पद्म और हजार शंख कपियोंकी सेनाको साथ लिये ॥ २९ ॥ अपने पिता वालिके तुल्य पराक्रम करनेवाले अतिबुद्धिमान वानरसेनापतियोंके शिरमौर युवराज अंगदजी आये फिर तारागणोंके समान प्रकाशमान अतिभयं कर पराक्रम करनेवाले वानरोंको संग लिये तार नाम यूथनाथ आया ॥ ३० ॥ उस तारके साथ अति प्रचंड पांच कोटि वानर सेना थी

कोटिभिर्दशभिर्व्याप्तःसुग्रीवस्यवशेस्थितः ॥ रुमणोनामतेजस्वीविक्रांतैर्वानरैर्वृतः ॥ २७ ॥ आगतोबलवांस्तूर्णं कोटीशतसमावृतः ॥ ततःकोटिसहस्राणांसहस्रेणशतेनच ॥ २८ ॥ पृष्ठतोऽनुगतःप्राप्तोहरिभिर्गंधमादनः ॥ ततः पद्मसहस्रेणवृतःशंखशतेनच ॥ २९ ॥ युवराजोंगदःप्राप्तःपितुस्तुल्यपराक्रमः ॥ ततस्ताराद्युतिस्तारोहरिभिर्भीम विक्रमैः ॥ ३० ॥ पंचभिर्हरिकोटीभिर्दूरतःपर्यदृश्यत ॥ इंद्रजानुःकविर्वीरोयूथपःप्रत्यदृश्यत ॥ ३१ ॥ एकादशा नांकोटीनामीश्वरस्तैश्चसंवृतः ॥ ततोरंभस्त्वनुप्राप्तस्तरुणादित्यसन्निभः ॥ ३२ ॥ अयुतेनवृतश्चैवसहस्रेणशतेनच ॥ ततोयूथपतिर्वीरोदुर्मुखोनामवानरः ॥ ३३ ॥ प्रत्यदृश्यतकोटीभ्यांद्वाभ्यांपरिवृतोबली ॥ कैलासशिखराकारैर्वानरै र्भीमविक्रमैः॥ ३४ ॥ वृतःकोटिसहस्रेणहनुमान्प्रत्यदृश्यत ॥ नलश्चापिमहावीर्यःसंवृतोद्रुमवासिभिः ॥ ३५ ॥ को टीशतेनसंप्राप्तःसहस्रेणशतेनच ॥ ततोदरीमुखःश्रीमान्कोटिभिर्दशभिर्वृतः ॥ ३६ ॥

तदनन्तर इन्द्रजानु नामक महावीर यूथनाथ ॥ ३१ ॥ ग्यारह कोटि वानरोंको संगलिये हुये दिखाई दिया फिर प्रभातकालके बालसूर्यके वर्णकी समान रंभ नामक वानर यूथपति ॥३२॥ दशहजार एक शत वानरोंकी सेनाको संग लिये हुये सुग्रीवजीके निकट उपस्थित हुआ; इसके पीछे महावीर यूथपति दुर्मुख नामक वानर ॥३३ ॥ महाबली दोकरोड वानरोंकी सेनाको संग लिये हुये दिखाई दिया ॥ फिर कैलास पर्वतके शिखरकी तुल्य आकार वाले भयंकर पराक्रमकारी वानरों की ॥ ३४ ॥ हजार करोड सेना संग लिये आते हुये हनुमानजी दिखाई दिये ॥ फिर महा वीर्यवान् नल नामक यूथनाथ वृक्षोंपर रहनेवाले ॥ ३५ ॥ शत कोटि एक सहस्र येक वानरों की सेना संग लिये हुये आया फिर श्रीमान दधि

वह कुंभकर्ण समुद्रको कंपायमान पर्वतोंको चलायमान, और वज्रको पराजित करके घोर सिंहनाद करनें लगा ॥ २ ॥ वानर गण, इन्द्र, यम और वरुणसेभी न मारे जानें योग्य भयंकर नेत्रवाले उस राक्षसको देखकर डरके मारे भागनें लगे ॥३॥तब वालिके पुत्र अंगदजी वानरोंको भागते हुए देखकर नल नील गवाक्ष और कुमुदसे बोले॥ ४ ॥यह क्या! और साधारण वानर लोगोंकी समान तुम लोगभी भयके मारे विह्वलहो कहांको भागे जाते हो? क्या तुम अपने२ परिवार और अपने २ बड़े भारी वीर्यकों भूलगये॥५॥ हेसौम्यस्वभाव वालो! भाग करके प्राणरक्षा करनेंकी क्या आवश्य

ननादचमहानादंसमुद्रमभिनादयन् ॥ विजयन्निवनिर्घातान्विधमन्निवपर्वतान् ॥ २ ॥ तमवध्यंमघवतायमेनवरुणेनवा ॥ प्रेक्ष्यभीमाक्षमायांतंवानराविप्रदुद्रुवुः ॥ ३ ॥ तांस्तुविप्रद्रुतान्दृष्ट्वाराजपुत्रोंगदोब्रवीत् ॥ नलंनीलंगवाक्षंचकुमुदंचमहाबलम् ॥ ४ ॥ आत्मनस्तानिविस्मृत्यवीर्याण्यभिजनानिच ॥ क्वगच्छतभयत्रस्ताःप्राकृताहरयोयथा ॥ ५ ॥ साधुसौम्यानिवर्तध्वंकिंप्राणान्परिरक्षथ ॥ नालंयुद्धायवैरक्षोमहतीयंविभीषिका ॥ ६ ॥ महतीमुत्थितामेनांराक्षसानांविभीषिकाम् ॥ विक्रमाद्विधमिष्यामोनिवर्तध्वंप्लवंगमाः ॥ ७ ॥ कृच्छ्रेणतुसमाश्वस्यसंगम्यचततस्ततः ॥ वृक्षान्गृहीत्वाहरयःसंप्रतस्थूरणाजिरे ॥ ८ ॥ तेनिवर्त्यतुसरंब्धाःकुंभकर्णवनौकसः ॥ निर्जघ्नुःपरमक्रुद्धाःसमदाइवकुंजराः ॥ ९ ॥

कताहै? जो कुछभीहो इस समय तुम लौट आओ,जिसको देखकर तुम लोग भय करतेहो यह तो केवल धोखाही धोखाहै, इसमें युद्ध करनेकी सामर्थ्य नहींहै ॥ ६ ॥ हेवानर लोगो! तुम सबके लौट आनेंपर हम सब एकत्रहो मिलकर विक्रम प्रकाश करके राक्षसोंके उठाये हुए बड़े भारी धोखेको नाश कर देंगे ॥ ७ ॥ अंगदजीके ऐसे वचन सुनकर वानरगण धीरज बांध बड़ी कठिनाईसे लौटे और वृक्ष पर्वतादि ग्रहण करके युद्ध करनेंके लिये तैयार हुए ॥ ८ ॥ मदमाते हाथियोंकी समान वह वानर गणोंनें उत्साह सहित लौटतेही क्रोधमें भरकर कुंभकर्णके ऊपर प्रहार करनें लगे ॥ ९ ॥

फिर कपिराज सुग्रीवजी; नरश्रेष्ठ परबलविनाशी श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ १ ॥ कि हमारे राज्यमें रहनेंवाले इन्द्रकी समान बलवान् कामचारी वानरयूथप लोग यहां पहुंचकर अपनी२ सेनाओंमें टिके हुयेहैं॥२॥ यह सब बहुत स्थानोंमें अपना पराक्रम प्रगट कियेहैं; ऐसे भयंकर विक्रमकारी, दैत्य दानवोंकी तुल्य घोररूप बलवान् समस्त वानरोंकी सेना आय पहुँचीहै ॥ ३॥ यह सब कर्म करनेंमें विख्यात, अपने वीर्यमें विख्यात बडे बलवान् युद्धमें कभी थकतेही नहीं,पराक्रम करनेंमें विख्यात अर्थका निश्चय करनेमें स्थिर प्रतिज्ञावान॥४॥बडे श्रेष्ठ, समुद्रके तीरपर बसनें वाले, और अनेक पर्वतोंके वासी,आपके दास यह करोड २ वानर गण यहां पर आगयेहैं ॥ ५ ॥ हे शत्रुनाशी ! वह सब वानर देशोंके पालनेंवाले स्वामीके

अथराजासमृद्धार्थःसुग्रीवःप्लवगेश्वरः॥उवाचनरशार्दूलंरामंपरबलार्दनम्॥१ ॥आगताविनिविष्टाश्चबलिनःकामचारिणः॥वानरेंद्रामहेंद्राभायेमद्विषयवासिनः॥२॥तइमेबहुविक्रांतैर्बलिभिर्भीमविक्रमैः॥आगतावानराघोरादैत्यदानवसन्निभाः ॥ ३ ॥ ख्यातकर्मापदानाश्चबलवंतोजितक्लमाः ॥ पराक्रमेषुविख्याताव्यवसायेषुचोत्तमाः ॥ ४ ॥ पृथिव्यंबुचरारामनानानगनिवासिनः ॥ कोटयोघाश्चइमेप्राप्तावानरास्तवकिंकराः ॥ ५ ॥ निदेशवर्तिनःसर्वेसर्वेगुरुहितेस्थिताः ॥ अभिप्रेतमनुष्ठातुंतवशक्ष्यंत्यरिंदम ॥ ६ ॥ तइमेबहुसाहस्रैरनेकैर्बहुविक्रमैः ॥ आगतावानराघोरादैत्यदानवसन्निभाः ॥ ७ ॥ यन्मन्यसेनरव्याघ्रप्राप्तकालंतदुच्यताम् ॥ त्वत्सैन्यंत्वद्वशेयुक्तमाज्ञापयितुमर्हसि ॥ ८ ॥ काममेवमिदंकार्यंविदितंममतत्त्वतः ॥ तथापितुयथायुक्तमाज्ञापयितुमर्हसि ॥ ९ ॥ तथाब्रुवाणंसुग्रीवंरामोदशरथात्मजः ॥ बाहुभ्यांसंपरिष्वज्यइदंवचनमब्रवीत् ॥ १० ॥

हित कार्यमें रत आपके इच्छानुसार कार्यको साधन करनेंमें निःसन्देह समर्थ होंगे ॥ ६ ॥ वही यह हजार २ कोटि २ बहुत स्थानोंमें अपने पराक्रमको प्रकाश किये घोररूपी, दैत्य दानवोंकी समान वानरगण यहां पर आगयेहैं॥७ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! अब समय उपस्थितहै; अब जैसा आपका विचारहो वह कहिये, यह सब आपकी सेना आपके वशमेंहै; इस समय जो ठीक और उचित आज्ञाहो वह इनको दीजिये ॥ ८ ॥ हम इन लोगोंका ठीक बल जानतेहैं; तथापि आप इन सबकों युक्तिसे युक्तहो वही आज्ञा दीजिये ॥ ९ ॥ जब सुग्रीवजीनें इस प्रकार कहा तब दशरथ कुमारश्रीरा

हे वानर गण ! तुम रणभूमिको छोड़कर भागे जातेहो परन्तु हम सारी पृथ्वीपर भी तुम्हारे कहीं रहनेंका स्थान नहीं देखते कि तुम वहां भयरहित होकर बच जाओ और अपने २ प्राणोंकी रक्षा कर सको, इसलिये शीघ्र लौट आओ; इस प्रकारकी प्राण रक्षा करनेंसे क्या होगा; क्योंकि जहां रहोगे वहां सुग्रीव तुम्हें मरवा डालेंगे ॥ १९ ॥ हे अतुल गतिवान् पौरुषयुक्त वानरो! तुम यदि अपने आयुधोंका त्याग करके इस प्रकारसे भाग अपने प्राणोंकी रक्षा करोगे; तब तुम्हारी स्त्रियें जो तुम्हारा उपहास करेंगी; वह उनका हँसना ही मृत्युकी समान होजायगा ॥ २० ॥ आश्चर्य! तुम सबने बडे २ कुलोंमें जन्म ग्रहण कियाहै सो तुम साधारण वानरोंकी समान भयभीत होकर कहां भागे जातेहो ? तुम लोग जबकि अपना

भग्नानांवोनपश्यामिपरिक्रम्यमहीमिमाम् ॥ स्थानंसर्वेनिवर्तध्वंकिंप्राणान्परिरक्षथ ॥ १९ ॥ निरायुधानां क्रमतामसंगगतिपौरुषाः ॥ दाराह्युपहसिष्यंतिसवैघातःसुजीवताम् ॥ २० ॥ कुलेषुजाताःसर्वेस्मिन्विस्तीर्णेषुमहत्सुच ॥ क्वगच्छतभयत्रस्ताःप्राकृताहरयोयथा ॥ अनार्याःखलुयद्भीतास्त्यक्त्वावीर्यंप्रधावत ॥ २१ ॥ विकत्थनानिवायानिभवद्भिर्जनसंसदि ॥ तानिवःक्वनुयातानिसोदग्राणिहतानिच ॥ २२ ॥ भीरोःप्रवादाःश्रूयंतेयस्तुजीवतिधिक्कृतः ॥ मार्गःसत्पुरुषैर्जुष्टःसेव्यतांत्यज्यतांभयम् ॥ २३ ॥ शयामहेवानिहताःपृथिव्यामल्पजीविताः ॥ प्राप्नुयामोब्रह्मलोकंदुष्प्रापंचकुयोधिभिः ॥ २४ ॥ अवाप्नुयामःकीर्तिंवानिहत्वाशत्रुमाहवे ॥ निहतावीरलोकस्यभोक्ष्यामोवसुवानराः ॥ २५ ॥

विपुल विक्रम भूलकर भीत हुए हो तब तुम अति नीच और राजद्रोही हो ॥ २१ ॥ अपनी २ उग्रता दिखलानें, और वानर राज सुग्रीवका हित साधन करनेंके लिये तुमनें उस समय जो बड़ी २ बातें मारी थीं वह समस्त बातें कहां अन्तर्ध्यान होगईं ॥ २२ ॥ जिसको सत्पुरुष लोग धिक्कार दिया करते हैं, उस भीरुके नरकमें गिरने आदिके प्रवाद सुनाई देतेहैं इस कारण सत्पुरुषोंके सेवन करनें योग्य मार्गमें चलकर भयको त्यागदो; क्यों भय खातेहो? ॥ २३ ॥ यदि आयुके पूरा होजानेसे हम सब शत्रुओंसे नाशको प्राप्त होकर रणभूमिमें दैवात् पृथ्वीपर गिरें तो अवीर गणोंको प्राप्त होंनेके अयोग्य ब्रह्म लोकको हम प्राप्त करेंगे ॥ २४ ॥ और वीर गणोंके सुखसे भोग करनेंके धनको प्राप्त करेंगे, और जो समरमें शत्रु

ढूँडनेकेसमय सब पर्वतोंकी कन्दरा ओंमें दुर्गम स्थानोंमें, सब बनोंमें और नदियोंमें; रमणीय गंगा सरयू कौशिकी ॥ २० ॥ कालिन्दी, मनोहर यमुनाओर यमुनाके समीप वाले सब पर्वतोंको, और सरस्वती,सिन्धु, मणि तुल्यस्वच्छ जल वाला शोणभद्र॥ २१ ॥मही और शैल कानन सहित काल मही औरभी समस्त नदियोंमें और ब्रह्ममाल विदेह, मालव, काशिराज, और कौशलदेश ॥ २२॥ मागध, महाग्राम. पुण्ड्र, अंग, इन समस्त देशोंमें और कोषाकार रेशमकेकीडे जहां होतेहैं, व चांदीकी खानि वालीभूमिमें जहाँ खानोंसे चांदी निकलतीहै ॥ २३ ॥ उन सब स्थानोंमें तुम लोग सीताजी और रावणका स्थान खोजते हुये, जहां कहींभी स्त्री रामचंद्रजीकी भार्या और दशरथजीकी पुत्र वधू जानकीजीहों देखना ॥ २४ ॥

मार्गध्वंगिरिदुर्गेषुवनेषुचनदीषुच ॥ नदींभागीरथींरम्यांसरयूंकौशिकींतथा॥२०॥कालिंदींयमुनांरम्यांयामुनंचमहा गिरिम्॥ सरस्वतींचसिंधुंचशोणंमणिनिभोदकम्॥ २१ ॥ महींकालमहींचापिशैलकाननशोभिताम् ॥ ब्रह्ममाला न्विदेहांश्चमालवान्काशिकोसलान् ॥ २२ ॥ मागधांश्चमहाग्रामान्पुंड्रांस्त्वंगांस्तथैवच ॥ भूमिंचकोशकाराणांभूमिं चरजताकराम् ॥ २३ ॥ सर्वंचतद्विचेतव्यंमृगयद्भिस्ततस्ततः ॥ रामस्यदयितांभार्यांसीतांदशरथस्नुषाम् ॥ २४ ॥ समुद्रमवगाढांश्चपर्वतान्पत्तनानिच॥मंदरस्यचयेकोटिंसंश्रिताःकेचिदालयाः ॥ २५॥ कर्णप्रावरणाश्चैवतथाचाप्यो ष्ठकर्णकाः॥घोरलोहमुखाश्चैवजवनाश्चैकपादकाः॥२६॥अक्षयाबलवंतश्चतथैवपुरुषादकाः॥किरातास्तीक्ष्णचूडाश्चहे माभाःप्रियदर्शनाः॥२७॥ आममीनाशनाश्चापिकिराताद्वीपवासिनः॥अंतर्जलचराघोरानरव्याघ्राइतिस्मृताः॥२८॥

और जो जो पर्वत और नगर समुद्रके टापुओंमें हों, और मन्दराचल पर्वतके किनारोंपर जो देश वसते हों, उन सबमें तुम भली प्रकार ढूँडना भालना ॥ २५ ॥ जो कानों तक वस्त्र लपेटेहों और जिनके कान अधरपर्यन्तहों, । और जिनका घोर लोह सम मुखहो, बडे वेगसे चलनें वाले व एक पादक लोग जो टापुओंमेंहैं ॥ २६ ॥ और अक्ष संतान बलवान्राक्षस, किरात तीक्षण चूडा वाले बडे बाल वाले सुवर्ण समान दीप्तिमान्, प्रियदर्शन ॥ २७ ॥ और जिन किरात देशोंमें कच्ची मछलियें भक्षणकी जातीहैं, ऐसे किरात गण; नीचेके भागमें मनुष्योंकी समान आकार

होना मनमें ठान युद्ध करनेंका अभिलाष करते हुए ॥ १ ॥ तिसके पीछे बलवान अंगदजीके वचनोंसे वह सब प्रकारसे युद्ध करनेंको आरूढ हुए और उन लोगोंका वीर्य प्रदीप्त होनेसे वह सब फिर पराक्रम प्रकाश करनें लगे ॥ २ ॥ वह समस्त वानरगण अपने प्राणोंकी आशा छोड़कर मरणमें कृत निश्चयहो कठोर युद्धका आरंभ करतेहुए ॥ ३ ॥ तिसके उपरान्त वह बड़े शरीर वाले वानर गण, वृक्ष और पर्वतोंके शृङ्ग उठायकर कुम्भ कर्णके सन्मुख धाये ॥ ४ ॥ परन्तु वीर्यवान महाकाय कुम्भकर्ण क्रोधमें भर गदा उठाय शत्रुओंको धर्षित करके चारों ओरसे उनके

समुदीरितवीर्यास्तेसमारोपितविक्रमाः ॥ पर्यवस्थापितावाक्यैरंगदेनबलीयसा ॥ २ ॥ प्रयाताश्चगताहर्षंमरणेकृत निश्चयाः ॥ चक्रुःसुतुमुलंयुद्धंवानरास्त्यक्तजीविताः ॥ ३ ॥ अथवृक्षान्महाकायाःसानूनिसुमहांतिच ॥ वानरास्तूर्ण मुद्यम्यकुंभकर्णमभिद्रवन् ॥ ४ ॥ कुंभकर्णःसुसंक्रुद्धोगदामुद्यम्यवीर्यवान् ॥ धर्षयन्समहाकायःसमंताद्व्यक्षिपाद्रिपू न् ॥ ५ ॥ शतानिसप्तचाष्टौचसहस्राणिचवानराः ॥ प्रकीर्णाःशेरतेभूमौकुंभकर्णेनताडिताः ॥ ६ ॥ षोडशाष्टौचदश चविंशत्त्रिंशत्तथैवच ॥ परिक्षिप्यचबाहुभ्यांखादन्सपरिधावति ॥ भक्षयन्भृशसंक्रुद्धोगरुडःपन्नगानिव ॥ ७ ॥ कृच्छ्रे णचसमाश्वस्ताःसंगम्यचततस्ततः ॥ वृक्षाद्रिहस्ताहरयस्तस्थुःसंग्राममूर्धनि ॥८॥ ततःपर्वतमुत्पाट्यद्विविदःप्लवग र्षभः ॥ दुद्रावगिरिशृंगाभंविलंबइवतोयदः ॥ ९ ॥

ऊपर प्रहार करनें लगा ॥ ५ ॥ उस समय असंख्य वानरवीर कुम्भकर्णके प्रहारसे ताडितहो अपनी देह पृथ्वीपर पसारकर सोगये ॥ ६ ॥ जिस प्रकार गरुडजी सर्पोंको भक्षण करतेहैं वैसेही अत्यन्त क्रोधित हुआ कुम्भकर्ण, एक २ वारमें सोलह अठारह, और बीस तीसतक वानरोंको अपनी बांहोंसे पकडकर मुखमें डालकर खाय जाताथा ॥ ७ ॥ वानर लोगभी बड़े कष्टसे सावधान चित्तहो इकट्ठे हुए और वृक्ष व पर्वतोंको हाथमें ग्रहणकर रणभूमिमें विराजमान होंने लगे ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त लंबमान बादलकी समान वानरश्रेष्ठ द्विविद एक पर्वत उखाड़के पर्वता

इसलिये तिस समयमें मेघोंके समान गर्जते और बडे २ सर्पोंसे सेवितहोनेंके कारण पार जानेंके अयोग्य उस समुद्रमें सुघाट पर उतरना ॥ ३८ ॥
जब इसके पार होजाओगे, तब लाल रंगके जलसे भरे भयंकर लोहित नामकसागर पर जाकर वहां एक बडा भारी शाल्मलीका वृक्ष देखोगे ❋ ॥ ३९ ॥
वहांपर पक्षीनाथ गरुडजीका, कैलाश पर्वतकी समान अनेक रत्नोंसे भूषित विश्वकर्मीका बनाया हुआ गृह विराजमानहै ॥ ४० ॥ वहांपर सुरा समुद्रके
पर्वतोंके शृंगोंपर पर्वत तुल्य भयंकर देह धारी, नाना रूपी, भयावह, मंदेह नाम वाले राक्षस गण नीचे मुख किये लटके रहते हैं ॥ ४१ ॥
यह राक्षस सूर्यके उदय होनेंपर उनसे युद्ध करनेंको आकर सूर्यके तेजसे तीनों वर्णोंके दिये हुये सन्ध्या समयके जलसे घायल होकर समुद्रके

तंकालमेघप्रतिमंमहोरगनिषेवितम् ॥ अभिगम्यमहानादंतीर्थेनैवमहोदधिम् ॥ ३८ ॥ ततोरक्तजलंभीमंलोहितं
नामसागरम् ॥ गत्वाप्रेक्ष्यथतांचैवबृहतींकूटशाल्मलीम् ॥ ३९ ॥ गृहंचवैनतेयस्यनानारत्नविभूषितम् ॥ तत्रकैलाससं
काशंविहितंविश्वकर्मणा ॥ ४० ॥ तत्रशैलनिभाभीमामंदेहानामराक्षसाः ॥ शैलशृंगेषुलंबंतेनानारूपाभयावहाः ॥ ४१ ॥
तेपतंतिजलेनित्यंसूर्यस्योदयनंप्रति ॥ अभितप्ताःस्मसूर्येणलंबंतेस्मपुनःपुनः ॥ ४२ ॥ निहताब्रह्मतेजोभिरहन्यहनि
राक्षसाः ॥ ततःपांडुरमेघाभंक्षीरोदंनामसागरम् ॥ ४३ ॥ गत्वाद्रक्ष्यथदुर्धर्षामुक्ताहारमिवोर्मिभिः ॥ तस्यमध्ये
महाञ्छ्वेतोऋषभोनामपर्वतः ॥ ४४ ॥ दिव्यगंधैःकुसुमितैराचितैश्चनगैर्वृतः ॥ सरश्चराजतैःपद्मैर्ज्वलितैर्हैमकेसरैः ॥ ४५ ॥

जलमें गिर पडते हैं; और फिर जीवित होकर इन पर्वतके कँगूरोंपर लटकनें लगते हैं ॥ ४२ ॥ इन राक्षसोंको सन्ध्याके समय प्रतिदिन ब्राह्मण
लोग मारते हैं; उनके मारनेंसे सूर्य रूपी भगवान प्रसन्न हो जाते हैं,इससे आगे बढकर उजले बादरकी समान क्षीर सागर देखोगे ॥ ४३ ॥ यह क्षीर
सागर अपनी लहरोंसे ऐसा शोभायमान हो रहा है; मानों मोतियोंका हार पहर रहा हो;उस क्षीर सागरके मध्य में तुम अति श्वेत ऋषभ नामक प
र्वत देखोगे ॥ ४४ ॥ इस पर्वतके ऊपर सुवासित पुष्प युक्त अनेक प्रकारके वृक्ष लगे हैं और वहीं पर एक तलावभी बडा उत्तम है जिसमें अनेक

❋ इस्से शाल्मली द्वीपका अनुमान होताहै ।

इन्द्रकी दी हुई अति उत्तम रत्नभूषित सुवर्णकी माला, उस वानरश्रेष्ठके प्राण, तेज, और देह लक्ष्मीको धारण किये रही ॥ ५ ॥ वानरराज उस सुवर्णकी मालासे संध्याकालीन जलधरकी समान शोभा धारण करता हुआ ॥६॥ यद्यपि वालि गिर पडा, परंतु उस समयभी ऐसा शोभित होताथा कि मानों लक्ष्मी, माला, देह,और मर्म घाती शर इन तीन रूपोंमें प्रगटहो शोभायमान होरहा हैं॥७॥श्रीरामचंद्रजीके धनुषसे छूटा हुआ स्वर्गका साधक वह बाण उस वीर वालिको परम गतिका देनेंवाला हुआ ॥८॥ युद्धस्थलमें शिखारहित अग्निकी समान गिरे पुण्य क्षय होनेंपर देवलोकसे खसे ययाति

शक्रदत्तावरामालाकांचनीरत्नभूषिता ॥ दधारहरिमुख्यस्यप्राणांस्तेजःश्रियंचसा ॥ ५ ॥ सतयामालयावीरोहैमयाहरियूथपः ॥ संध्यानुगतपर्यंतःपयोधरइवाभवत् ॥ ६ ॥ तस्यमालाचदेहश्चमर्मघातीचयःशरः ॥ त्रिधेवरचितालक्ष्मीःपतितस्यापिशोभते ॥ ७ ॥ तदस्त्रंतस्यवीरस्यस्वर्गमार्गप्रभावनम् ॥ रामबाणासनक्षिप्तमावहत्परमांगतिम् ॥ ८ ॥ तंतथापतितंसंख्येगतार्चिषमिवानलम् ॥ ययातिमिवपुण्यांतेदेवलोकादिहच्युतम् ॥ ९ ॥ आदित्यमिवकालेनयुगांतेभुविपातितम् ॥ महेंद्रमिवदुर्धर्षमुपेंद्रमिवदुःसहाम् ॥ १० ॥ महेंद्रपुत्रंपतितंवालिनंहेममालिनम् ॥ व्यूढोरस्कंमहाबाहुंदीप्तास्यंहरिलोचनम् ॥ ११ ॥ लक्ष्मणानुचरोरामोददर्शोपससर्पच ॥ तंतथापतितंवीरंगतार्चिषमिवानलम् ॥ १२ ॥ बहुमान्यचतंवीरंवीक्षमाणंशनैरिव ॥ उपयातौमहावीर्यौभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ १३ ॥ तंदृष्ट्वाराघवंवालीलक्ष्मणंचमहाबलम् ॥ अब्रवीत्परुषंवाक्यंप्रश्रितंधर्मसंहितम् ॥ १४ ॥

तिकी तुल्य ॥ ९ ॥ युगान्तके समय पृथ्वीमें गिरे हुये सूर्यकी समान इन्द्रकी समान दुर्द्धर्ष उपेन्द्रकी समान दुस्सह ॥ १० ॥ चौडी छातीवाले महाबाहु प्रदीप्तवदन सिंहलोचन इन्द्रके पुत्र हेममाली वालिको ॥ ११ ॥ रणस्थलमें देख श्रीरामचंद्र लक्ष्मणजीके सहित उसके निकट गये जहां वह वीर बुझी हुई अग्निके समान पृथ्वीपर गिरा पडाथा ॥ १२ ॥ वह मानके करने योग्य श्रीराम लक्ष्मणजी उस वीरश्रेष्ठ वालिके निकट उसको देखते २ गये ॥ १३ ॥ वालि महाबलवान् श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीको देखकर धर्मयुक्त

चिह्न स्वरूप सीमाके अंतमें बिन्दुकी समान निर्माण कर रक्खा है उसके आगे परम हेममय देवता ओंका होता श्रीमान् उदय पर्वत है ॥ ५४ ॥ इस पर्वतकी एक कोटि सौ योजन चौडीहै, और उसके कँगूरे ऐसे ऊंचे हैं कि आकाशको स्पर्शही किये लेते हैं। वह सुवर्णकी बनी वेदी आधार पर्वतके सहित विराजमान है ॥ ५५ ॥ इस पर्वतपर फूले हुये सुवर्ण मय सूर्यकी समान ताल, तमाल, और कर्णिकारके वृक्ष शोभायमान हो रहे हैं ॥ ५६ ॥ वहांपर एक योजन विस्तार वाला और दश योजन ऊंचा सुवर्ण मय सौमनस शृङ्ग है ॥ ५७ ॥ पूर्वकालमें पुरुषोत्तम विष्णुजीनें राजा बलिको छलकर जब सब लोक नापेथे तब पहला चरण उन्होंने वहां रखकर दूसरा चरण मेरुके शिखर पर रक्खाथा ॥ ५८ ॥ सूर्य

तस्यकोटिर्दिवंस्पृष्ट्वाशतयोजनमायता ॥ जातरूपमयीदिव्याविराजतिसवेदिका ॥ ५५ ॥ सालैस्तालैस्तमालैश्चक र्णिकारैश्चपुष्पितैः ॥ जातरूपमयैर्दिव्यैःशोभतेसूर्यसन्निभैः ॥ ५६ ॥ तत्रयोजनविस्तारमुच्छ्रितंदशयोजनम् ॥ शृंगंसौमनसंनामजातरूपमयंध्रुवम् ॥ ५७ ॥ तत्रपूर्वपदंकृत्वापुराविष्णुस्त्रिविक्रमे ॥ द्वितीयंशिखरेमेरोश्चकारपुरुषो त्तमः ॥ ५८ ॥ उत्तरेणपरिक्रम्यजंबूद्वीपंदिवाकरः ॥ दृश्योभवतिभूयिष्ठंशिखरंतन्महोच्छ्रयम् ॥ ५९ ॥ तत्रवै खानसानामवालखिल्यामहर्षयः ॥ प्रकाशमानादृश्यंतेसूर्यवर्णास्तपस्विनः ॥ ६० ॥ अयंसुदर्शनोद्वीपःपुरोय स्यप्रकाशते ॥ तस्मिंस्तेजश्चचक्षुश्चसर्वप्राणभृतामपि ॥ ६१ ॥ शैलस्यतस्यपृष्ठेषुकंदरेषुवनेषुच ॥ रावणःसहवैदे ह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥ ६२ ॥

नारायण उत्तर दिशामें घूम जम्बूद्वीपकी परिक्रमा करके फिर उसी ऊंचे शिखर वाले पहले कहे सौमनस शिखर पर टिके हुए फिर जम्बूद्वीपमें रहनेवाले मनुष्योंको दृष्टि आतेहैं॥५९॥और इसी शिखर पर, सूर्य समान प्रकाशमान तपस्वी, दीप्ति प्रयुक्त वैखानस वाल्यखिल्य महर्षि गण प्रकाशित होतेहैं ॥६०॥ जिसके समीप सुदर्शन द्वीप प्रकाशित होताहै, और जब इस सौमनस शिखर पर सूर्य उदय होतेहैं; तभी सब प्राणियोंके नेत्रों में उजाला आताहै, इसका प्रकाश सबको ज्ञातहै ॥६१॥ उस पर्वतकी पीठ कन्दरा, और वनमें तुम लोग रावण सहित जानकीजीका अनुसन्धा

शाली हो बढा ॥ २६ ॥ और सूर्यपुत्र महा बलवान् सुग्रीवजी हीनबल होने लगे, वालिनें इनका गर्व खर्वकर डाला; और इनका विक्रमभी कम होनें पर आया ॥ २७ ॥ परन्तु सुग्रीवजी श्रीरामचन्द्रजीके दिखानेंके अर्थ वालिके ऊपर बडा कोपकर, जड़ व शाखा सहित वृक्ष उखाड, पर्वत शिखर, और वज्र सम धार वाले नखोंसे ॥ २८ ॥ और मुष्टिका, जांघ, चरण, और बाहोंसे फिर लडनें लगे और वालिभी इन्हीं आयुधोंसे लड ताथा; इस कारण इन दोनों जनोंका संग्राम ऐसा हुआकि जैसा इन्द्रजीके साथ वृत्रासुरका हुआथा ॥ २९ ॥ वह वनचारी दोनों वानर रुधिरसे न हाय महामेघकी समान घोर शब्दसे परस्पर तर्जन गर्जन करनें लगे॥३०॥तब श्रीरामचन्द्रजीनें देखा कि सुग्रीव अब बहुतही हीनबल होगयेहैं; इस

सूर्यपुत्रोमहावीर्यःसुग्रीवःपरिहीयत ॥ वालिनाभग्नदर्पस्तुसुग्रीवोमंदविक्रमः ॥२७॥ वालिनंप्रतिसामर्षोदर्शयामासरा
घवम् ॥ वृक्षैःसशाखैःशिखरैर्वज्रकोटिनिभैर्नखैः ॥ २८ ॥ मुष्टिभिर्जानुभिःपद्भिर्बाहुभिश्चपुनःपुनः ॥ तयोर्युद्धमभू
द्घोरंवृत्रवासवयोरिव॥२९॥तौशोणिताक्तौयुध्येतांवानरौवनचारिणौ॥मेघाविवमहाशब्दैस्तर्जमानौपरस्परम्॥३०॥
हीयमानमथापश्यत्सुग्रीवंवानरेश्वरम् ॥ प्रेक्षमाणंदिशश्चैवराघवःसमुहुर्मुहुः ॥ ३१ ॥ ततोरामोमहातेजाआर्तंदृष्ट्वा
हरीश्वरम् ॥ सशरंवीक्षतेवीरोवालिनोवधकांक्षया ॥ ३२ ॥ ततोधनुषिसंधायशरमाशीविषोपमं ॥ पूरयामासतच्चा
पंकालचक्रमिवांतकः ॥ ३३ ॥ तस्यज्यातलघोषेणत्रस्ताःपत्ररथेश्वराः ॥ प्रदुद्रुवुर्मृगाश्चैवयुगांतइवमोहिताः ॥ ३४ ॥
मुक्तस्तुवज्रनिर्घोषःप्रदीप्ताशनिसन्निभः ॥ राघवेणमहाबाणोवालिवक्षसिपातितः ॥ ३५ ॥

कारणसेही वारंवार सब दिशाओंकी ओर निहारतेहैं ॥ ३१ ॥ महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजी सुग्रीवको भयातुर देखकर वालिके संहार करनेंकी इच्छासे वारंवार बाणोंकी ओर दृष्टि पात करनें लगे ॥ ३२ ॥ फिर विषधर सर्पकी समान बाण धनुषपर चढाकर यमराजके काल चक्रकी समान धनुषको टंकारनें लगे ॥ ३३ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीनें धनुपको टंकारा तो उस शब्दसे मृग व पक्षीगण युगान्त होनेंके दुकालकी समान मोहको प्राप्तहो वेग सहित भागने लगे ॥ ३४ ॥ फिर श्रीरामचन्द्रजीनें प्रदीप्त अग्निकी समान वज्रतुल्य शब्द करताहुआ वह महाबाण छोडा

डालेंगे, जाओ जनककुमारी जानकीजी को ढूंढभाल और उनका पतालगाकर आओ ॥ ७०॥इन्द्रकी स्त्री, वनादिकोंसे सुशोभित पूर्व दिशाकी तुम चतुर वानर उत्तम रीतिसे खोज करके राघव प्रिया सीताजीको पायकर फिर सब जन सुखी होना॥ ७१ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०कि० चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४० ॥वानर राज वीर वर सुग्रीवजीनें उस वानरोंकी सेनाको पूर्व दिशाकीओर भेजकर कार्यके साधनका निर्णय करनेंमें चतुर वानरोंको दक्षिण दिशामें भेजा ॥ १ ॥ उनमें अग्नि पुत्र नील महावलवान् हनुमानजी ब्रह्माका पुत्र महा बलवान् जाम्बवान् ॥ २ ॥ सुहोत्र, शरारि, शर गुल्म, गज, गवाक्ष, गवय, सुषेण, वृषभ ॥ ३ ॥ मैन्द, द्विविद,गन्धमादन, ताराके पिता सुषेण, उल्कामुख, अनंग, यह दोनों अग्निके

महेंद्रकांतांवनषंडमंडितांदिशंचरित्वानिपुणेनवानराः ॥अवाप्यसीतांरघुवंशजप्रियांततोनिवृत्ताःसुखिनोभविष्यथ॥ ॥ ७१ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेचत्वारिंशःसर्गः॥ ४० ॥ ॥ ७१ ॥

ततःप्रस्थाप्यसुग्रीवस्तन्महद्वानरंबलम् ॥ दक्षिणांप्रेषयामासवानरानभिलक्षितान् ॥ १ ॥ नीलमग्निसुतंचैवहनूमंतंचवानरम् ॥ पितामहसुतंचैवजांबवंतंमहौजसम् ॥ २ ॥ सुहोत्रंचशरारिंचशरगुल्मंतथैवच ॥ गजंगवाक्षंगवयंसुषेणंवृषभंतथा ॥ ३ ॥ मैंदंचद्विविदंचैवसुषेणंगंधमादनम् ॥ उल्कामुखमनंगंचहुताशनसुतावुभौ ॥ ४ ॥ अंगदप्रमुखान्वीरान्वीरःकपिगणेश्वरः ॥ वेगविक्रमसंपन्नान्संदिदेशविशेषवित् ॥ ५ ॥ तेषामग्रेसरंचैवबृहद्बलमथांगदम् ॥ विधायहरिवीराणामादिशद्दक्षिणांदिशम्॥६॥येकेचनसमुद्देशास्तस्यांदिशिसुदुर्गमाः॥ सतेषांकपिमुख्यानांकपीशः समुदाहरत् ॥ ७॥ सहस्रशिरसंविंध्यंनानाद्रुमलतायुतम् ॥ नर्मदांचनदींरम्यांमहोरगनिषेविताम् ॥ ८॥

पुत्र ॥ ४ ॥ व अंगद इत्यादि वेगसे चलनेंवाले महा महापराक्रमी वानरोंको सब देशोंके जाननें वाले सुग्रीवजीनें दक्षिण दिशामें पठाया ॥ ५ ॥ जितनें वानर दक्षिणदिशाको भेजे गये उन समस्त वानरोंका मुखिया बडे बली अंगदजीको करके सुग्रीवजीनें दक्षिण दिशाको भेजा ॥ ६ ॥ कपीश्वर सुग्रीवजी, उस दिशामें जो जो देश दुर्गमथे, वह समस्तही उन वानर यूथपोंको बताने लगें ॥ ७ ॥ कि तुम लोग, सहस्र शिखरवाले विविध वृक्ष लताओंसे विराजमान, विन्ध्याचलपर्वतको प्रथम देखोगे फिर महाभुजंग गण सेवित रमणीक नर्मदा नदी मिलैगी ॥ ८ ॥

अत्याचार नहीं करेंगे केवल वृक्षोंके प्रहारसे और घूसोंसे उन्हैं मारेंगे जिस्से वह पीडित हो अपनी गुफाको चला जायगा ॥ ८ ॥ हे तारे! वह दुरात्मा हमारा हंकार और प्रहारादि नहीं सह सकैगा इसमें कुछ संदेह नहीं, कि तुमनें हमारी बुद्धिकी सहायता करकै सुहृदता दिखाई॥९॥ तुमको हमारे प्राणोंकी शपथ है कि तुम इन सब स्त्रियोंके साथ लौट जाओ, हम रणस्थलमें भ्राताको केवल जीतही कर लौट आमेंगे, और उसे प्राणोंसे नहीं मारेंगे ॥ १० ॥ प्रियवादिनी दक्षिणा नायका तारा वालिको भेंटकर उसकी प्रदक्षिणाकर रोते २ वहांसे लौटी ॥ ११ ॥ शोकसे मोहित हुई, स्वस्तिके मंत्र जाननेंवाली तारा विजयकी इच्छा किये स्वस्त्ययन करके सब स्त्रियोंके साथ अन्तःपुरमें चली गई ॥ १२ ॥ जब सब स्त्रियोंके

नमेगर्वितमायस्तंसहिष्यतिदुरात्मवान् ॥ कृतंतारेसहायत्वंदर्शितंसौहृदंमयि ॥ ९ ॥ शापितासिममप्राणैर्निवर्त
स्वजनेनच ॥ अलंजित्वानिवर्तिष्येतमहंभ्रातररंरणे ॥ १० ॥ तंतुतारापरिष्वज्यवालिनंप्रियवादिनी ॥ चकाररुदती
मंदंदक्षिणासाप्रदक्षिणम् ॥ ११ ॥ ततःस्वस्त्ययनंकृत्वामंत्रविद्विजयैषिणी ॥ अंतःपुरंसहस्त्रीभिःप्रविष्टाशोकमोहिता
॥ १२ ॥ प्रविष्टायांतुतारायांसहस्त्रीभिःस्वमालयम् ॥ नगर्यान्निर्ययौक्रुद्धोमहासर्पइवश्वसन् ॥ १३ ॥ सनिःश्वस्यम
हारोषोवालीपरमवेगवान् ॥ सर्वतश्चारयन्दृष्टिंशत्रुदर्शनकांक्षया ॥ १४ ॥ सददर्शततःश्रीमान्सुग्रीवंहेमपिंगलम् ॥
सुसंवीतमवष्टब्धंदीप्यमानमिवानलम् ॥ १५ ॥ तंसदृष्ट्वामहाबाहुःसुग्रीवंपर्यवस्थितम् ॥ गाढंपरिदधेवासोवाली
परमकोपनः ॥ १६ ॥ सवालीगाढसंवीतोमुष्टिमुद्यम्यवीर्यवान् ॥ सुग्रीवमेवाभिमुखोययौयोद्धुंकृतक्षणः ॥ १७ ॥

साथ तारा अपने घरमें चली गई, तब वालि क्रोधित हुये महासर्पकी समान श्वास लेता हुआ नगरीसे बाहर निकला ॥ १३ ॥ वानरराज वालिनें लंबे २ श्वास लेकर बडे वेगसे आय रोषमें भर शत्रुको देखनेंकी वासनासे चारों ओरको दृष्टि डाली ॥ १४ ॥ तिसके पीछे श्रीमान् वालिनें सुवर्णसम पिंगलनेत्र, कच्छ, कसकर बाँधे हुये, पृथ्वीपर दृढरूपसे खडे देदीप्यमान अनलतुल्य सुग्रीवजीको देखा ॥ १५ ॥ महाबलवान् परम क्रोधित वालि सुग्रीवजीको इस प्रकारसे खडा देख आपभी वस्त्रोंको कसकर पहन लेता हुआ ॥ १६ ॥ वीर्यवान् वालि कच्छ बाँध मुक्का उठाय सुग्रीवजीके सन्मुख

स्त्रीकी समान अपनें पतिरूप समुद्रमें जा मिलती है। फिर हेममय दिव्य मुक्ता मणि विभूषित ॥ १८ ॥ कपाट युक्त पाण्ड्य वंशियोंका फाटक देखोगे। हे वानरो! फिर तुम निश्चय समुद्रके निकट पहुंचोगे, उस समुद्र पार होनेंके विषयमें समर्थ और असमर्थ विचारकर उसके पार होना ॥ १९ ॥ उस समुद्रके पार होनेंका उपाय कहते हैं सो तुम श्रवण करो कि इसका उपाय अगस्त्यजी तुमको बतावेंगे उनसे सब समाचार जान महेन्द्र पर्वतपर जाय चित्र विचित्र शृङ्गोंपर चढ ॥ २० ॥ समुद्रके पार होजाना, यह पर्वत सुवर्णमय और समुद्रके एक पार्श्वमें डूबा हुआ है और नाना प्रकारके फूले फले वृक्षोंसे शोभायमान है॥ २१ ॥ यह पर्वत देव, यक्ष, अप्सरा, सिद्ध और चारण गणोंसे सेवित होनेंके कारण

युक्तंकवाटपांड्यानांगताद्रक्ष्यथवानराः ॥ ततःसमुद्रमासाद्यसंप्रधार्यार्थनिश्चयम् ॥ १९ ॥ अगस्त्येनांतरेतत्रसागरे
विनिवेशितः॥चित्रसानुनगःश्रीमान्महेंद्रःपर्वतोत्तमः ॥२०॥ जातरूपमयःश्रीमानवगाढोमहार्णवम्॥नानाविधैर्नगैःफु
ल्लैर्लताभिश्चोपशोभितम् ॥ २१ ॥ देवर्षियक्षप्रवरैरप्सरोभिश्चशोभितम् ॥ सिद्धचारणसंघैश्चप्रकीर्णंसुमनोरमम् ॥ २२
तमुपैतिसहस्राक्षःसदापर्वसुपर्वसु ॥ द्वीपस्तस्यापरेपारेशतयोजनविस्तृतः ॥ २३ ॥ अगम्योमानुषैर्दीप्तस्तंमार्गध्वं
समंततः ॥ तत्रसर्वात्मनासीतामार्गितव्याविशेषतः ॥ २४ ॥ सहिदेशस्तुवध्यस्यरावणस्यदुरात्मनः ॥ राक्षसाधि
पतेर्वासःसहस्राक्षसमद्युतेः ॥ २५ ॥ दक्षिणस्यसमुद्रस्यमध्येतस्यतुराक्षसी ॥ अंगारकेतिविख्याताछायामाक्षि
प्यभोजनी ॥ २६ ॥

परम मनोहर है ॥ २२ ॥ देवराज इन्द्रजी प्रत्येक अमावास्या और पूर्णमासीको इस पर्वतपर आगमन किया करते हैं। इसी समुद्रकी दूसरीपार सौ योजन विस्तारवाला एक द्वीप है ॥२३॥ वहांपर कोई मनुष्य नहीं जा सकता वहांपर चारोंओर विशेष करके द्वीपमें सीताजीको ढूंढना ॥२४॥ हम जानते हैं कि वही स्थान इन्द्रतुल्य दीप्तिमान राक्षसपति दुरात्मा और वध करनेंके योग्य रावणका वासस्थल है ॥ २५ ॥ इस दक्षिण समुद्रके बीचमें अङ्गारिका नाम विख्यात परछांई पकडकर जीवोंको खेंचकर भक्षण करनेंवाली राक्षसी वास किया करती हैं ॥ २६ ॥

नामक वानर यूथप, हजार करोड वानरोंकी सेनाके सहित आया ॥ १६ ॥ फिर, पद्मपरागकी समान वर्णवाला. और घोर प्रभात कालीन सूर्यके रंगकी समान मुख वाला महा बुद्धिमान वानर श्रेष्ठ. और सब वानरोंमें अति उत्तम ॥ १७ ॥ बहुत सहस्र वानरोंकी सेनाके सहित. हनुमानजी का पिता श्रीमान केशरी नामक वानर आया ॥ १८ ॥ गोपुच्छ वानरोंका राजा भयंकर विक्रमकारी गवाक्ष, करोड सहस्र वानरोंको साथ लेकर आ पहुँचा ॥ १९ ॥ भयंकर वेगवान रीछोंका राजा शत्रुओंका मारनेवाला धूम्र नामक ऋक्ष दो सहस्र किरोड ऋक्षोंकी सेना लिये हुये आया ॥ २० ॥ पनस नामक वीर्यवान यूथपति वानर महाबलवान घोर रूप तीन करोड वानर संग लिये वहां आगमन करता हुआ ॥२१॥

पद्मकेसरसंकाशस्तरुणार्कनिभाननः ॥ बुद्धिमान्वानरश्रेष्ठःसर्ववानरसत्तमः ॥ १७ ॥ अनेकैर्बहुसाहस्रैर्वानराणां समन्वितः ॥ पिताहनुमतःश्रीमान्केसरीप्रत्यदृश्यत ॥ १८ ॥ गोलांगूलमहाराजोगवाक्षोभीमविक्रमः ॥ वृतःकोटिसहस्रेणवानराणामदृश्यत ॥ १९ ॥ ऋक्षाणांभीमवेगानांधूम्रःशत्रुनिबर्हणः ॥ वृतःकोटिसहस्राभ्यांद्वाभ्यांसमभिवर्तत ॥२०॥ महाबलनिभैर्घोरैःपनसोनामयूथपः ॥ आजगाममहावीर्यस्तिसृभिःकोटिभिर्वृतः ॥२१॥ नीलांजनचयाकारोनीलोनामैषयूथपः ॥ अदृश्यतमहाकायःकोटिभिर्दशभिर्वृतः ॥ २२ ॥ ततःकांचनशैलाभोगवयोनामयूथपः ॥ आजगाममहावीर्यःकोटिभिःपंचभिर्वृतः ॥ २३ ॥ दरीमुखश्चबलवान्यूथपोभ्याययौतदा ॥ वृतःकोटिसहस्रेणसुग्रीवंसमवस्थितः ॥ २४ ॥ मैंदश्चद्विविदश्चोभावाश्विपुत्रौमहाबलौ ॥ कोटिकोटिसहस्रेणवानराणामदृश्यताम् ॥ २५ ॥ गजश्चबलवान्वीरस्तिसृभिःकोटिभिर्वृतः ॥ ऋक्षराजोमहातेजाजांबवान्नामनामतः २६ ॥

नील वर्णी अंजन पुंजकी समान द्युतिमान महा काय नील नामक यूथपति दशकोटि वानरोंको संग लिये हुये आया ॥२२॥ सुवर्ण पर्वतके तुल्य द्युतिवाला महा वीर्यवान गवय नामक यूथपति पांच करोड सेनाके संग उपस्थित हुआ ॥ २३ ॥ दरी मुख नामक बलवान यूथपति हजार कोटि वानरोंकी सेना संग लिये हुये सुग्रीवजीके निकट आय पहुँचा॥२४॥मैन्द और द्विविद नामक महा बलवान वानर अश्विनीके पुत्र दोनों कोटि २ सहस्र वानरोंकी सेना संग लिये हुये आये ॥ २५ ॥ गज नामक बलवान वीर तीनकरोड वानरोंकी सैनाको ले आया और ऋक्षोंका

रहनेंका स्थान भोगवती नाम पुरीहै ॥ ३६ ॥ यह पुरी बडे मार्गवाली, दुर्द्धर्षहै, और सब ओरसे रक्षितहै, और महा विषैले तेज दांत वाले घोर
सर्पभी इसकी रक्षा करतेहैं ॥ ३७ ॥ जहांपर महा घोर सर्पराज वासुकीजी वसतेहैं, ऐसी भोगवती पुरीमें जाय सबलोग ॥ ३८ ॥ वहांपरके
ढके ढकाये सब गुप्त देशोंको भली भांतिसे ढूंडना; उस देशको नांघ आगे बढ़कर बैलके आकारवाला बडा भारी ॥ ३९ ॥ सर्व रत्नमय परम
सुन्दर ऋषभ नामक पर्वत मिलैगा । इसपर गोशीर्षक, पद्मक; हरिश्यामा, ॥ ४० ॥ दिव्य विशेष२ चंदन अग्निसम प्रभाशाली उत्पन्न होतेहैं
उन चंदनोंको देखकर तुम कुछ बात न करना और उनको छूनाभी मत ॥ ४१॥ कारणकि उस बनकी रक्षा रोहित नामक घोर गन्धर्व किया

विशालरथ्यादुर्धर्षासर्वतःपरिरक्षिता ॥ रक्षितापन्नगैर्घोरैस्तीक्ष्णदंष्ट्रैर्महाविषैः ॥ ३७ ॥ सर्पराजोमहाघोरोयस्यां
वसतिवासुकिः ॥ निर्यायमार्गितव्याचसाचभोगवतीपुरी ॥ ३८ ॥ तत्रचानंतरोद्देशायेकेचनसमावृताः ॥ तंचदेशम
तिक्रम्यमहानृषभसंस्थितिः ॥ ३९ ॥ सर्वरत्नमयःश्रीमानृषभोनामपर्वतः ॥ गोशीर्षकंपद्मकंचहरिश्यामंचचंदनम् ॥
॥ ४० ॥दिव्यमुत्पद्यतेयत्रतच्चैवाग्निसमप्रभम् ॥ नतुतच्चंदनंदृष्ट्वास्प्रष्टव्यंतुकदाचन ॥ ४१ ॥ रोहितानामगंधर्वाघोरंर
क्षंतितद्वनम् ॥ तत्रगंधर्वपतयःपंचसूर्यसमप्रभाः ॥ ४२ ॥ शैलूषोग्रामणीःशिक्षःशुकोबभ्रुस्तथैवच ॥ रविसोमाग्निवपुषां
निवासःपुण्यकर्मणाम्॥४३॥अंतेपृथिव्यादुर्धर्षास्ततःस्वर्गजितःस्थिताः॥ततःपरंनवःसेव्यःपितृलोकःसुदारुणः॥४४॥
राजधानीयमस्यैषाकष्टेनतमसावृता॥एतावदेवयुष्माभिर्वीरवानरपुंगवाः॥शक्यंविचेतुंगंतुंवानातोगतिमतांगतिः४५

करतेहैं वहांपर पांच गन्धर्वोंके पति सूर्यकी समान प्रभावाले ॥ ४२ ॥ शैलूष, ग्रामणी, शिक्ष, शुक, और बभ्रु रहतेहैं उसपर सूर्य चंद्र और अग्नि
के समान प्रकाशित देह पुण्यात्मा लोगोंके रहनेंके स्थान बनेहैं ॥ ४३ ॥ ऐसे पृथ्वीके अंतमें दुर्द्धर्ष तथा स्वर्गके सुख जीतनेंवाले लोग रहतेहैं
इसके आगे दारुण पितृलोकहै, जहांपर मनुष्य नहीं जा सकते ॥ ४४ ॥ यहां अंधकारसे ढकीहुई यमराजकी राजधानी संयमिनी नाम पुरीहै
वहांपर तुम क्षण मात्रभी नहीं ठहर सकतेहो, हे वानर श्रेष्ठगण ! तुमलोग यहींतक ढूंडनेंको समर्थहो इस्से और फिर मनुष्यादिक किसीकीभी

मुख नामक वानर पति नदीप्रदेशसे दशकोटि वानरोंकी अनी संगालिये हुये ॥ ३६ ॥ महात्मा सुग्रीवजीके निकट प्राप्त हुआ शरभ कुमुद व ह्नि और रंभ ॥ ३७ ॥ व और भी बहुतसे इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले वानरोंके यूथप सब पृथ्वी वन और पर्वत आदिकोंको ढकते हुये आये ॥ ३८ ॥ व अनेक प्रकारके नामधारी यूथप आये कि जिनकी संख्या नहीं है इन सब वानरदलोंके मध्यमें कोई कोई २ दल आता जाताथा, और कोई आय २ करके बैठता जाताथा ॥ ३९ ॥ उन दलोंमें के कोई २ वानर उन्हें घेरते छलांग मारते कोई २ गर्जते सुग्रीवजीके निकट पहुँचने लगे, जिस प्रकार मेघ सूर्यके निकट गमन करते हैं॥४०॥ और सबही वानर बहुत शब्द कर रहे थे वह सब महाबली सुग्रीवजीके

संप्राप्तोभिनदंतस्यसुग्रीवस्यमहात्मनः ॥ शरभःकुमुदोवह्निर्वानरोरंभएवच ॥ ३७ ॥ एतेचान्येचबहवोवानराः कामरूपिणः ॥ आवृत्यपृथिवींसर्वांपर्वतांश्चवनानिच ॥ ३८ ॥ यूथपाःसमनुप्राप्तायेषांसंख्यानविद्यते ॥ आगताश्चानिविष्टाश्चपृथिव्यांसर्ववानराः ॥ ३९ ॥ आप्लुवंतःप्लवंतश्चगर्जंतश्चप्लवंगमाः ॥ अभ्यवर्ततसुग्रीवंसूर्यमभ्रगणाइव ॥ ४० ॥ कुर्वाणाबहुशब्दांश्चप्रकृष्टाबाहुशालिनः ॥ शिरोभिर्वानरेंद्रायसुग्रीवायन्यवेदयन् ॥ ४१ ॥ अपरेवानरश्रेष्ठाःसंगम्यचयथोचितम् ॥ सुग्रीवेणसमागम्यस्थिताःप्रांजलयस्तदा ॥ ४२ ॥ सुग्रीवस्त्वरितोरामेसर्वांस्तांस्त्वरितास्तदा ॥ निवेदयित्वाधर्मज्ञःस्थितःप्रांजलिरब्रवीत् ॥ ४३ ॥ यथासुखंपर्वतनिर्झरेषुवनेषुवर्षेषुचवानरेंद्राः ॥ निवेशयित्वाविधिवद्बलानिबलंबलज्ञःप्रतिपत्तुमीष्टे॥४४॥इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०किष्किंधाकांडेएकोनचत्वारिंशःसर्गः ॥ ३९॥

निकट पहुँच कर मस्तक झुकाय २ अपना २ आना निवेदन कर रहे थे ॥ ४१ ॥ और कोई २ सुग्रीवजीके निकट पहुँचकर, उनका यथोचित आदर सन्मान कर हाथ जोड कर खडे होनेंलगे ॥ ४२ ॥ तिसके पीछे धर्मात्मा सुग्रीवजीने शीघ्रताके सहित श्रीरामचंद्रजीके निकट जाय हाथ जोड उनसे समस्त वानर और वानरयूथपतियोंका आगमन निवेदन किया फिर वानर यूथपोंसे बोले ॥ ४३ ॥ हे समस्तवानरेन्द्रगण! पर्वत, झरने, और वनके समूहोंमें उस सैनाको टिकाकर कि जिसका बल अच्छी तरहसे तुम सब जानते हो । विधिपूर्वक इस बातका निर्णय करो कि कौन वानर आया और कौन नहीं आया ॥ ४४ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० कि० एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥३९॥

कार वाला और प्रकाश मानथा॥३॥और बुद्धिमें खगपति तुल्य द्युतिमान और मरीचिके सुन्दर माला धारण किये मारीच नाम अति गुण धाम और
महाबलवान ॥ ४ ॥ ऋषिपुत्रथे उन सबको पश्चिम दिशामें जानेके लिये सुग्रीवजीनें आज्ञादी, इनके साथ दो लक्ष यूथपथे व और वानरोंकी तो
कुछ गिन्तीही नहीं ॥ ५ ॥ हे वानरो ! सुषेण सहित तुम लोग वैदेहीजीको जाय कर ढूंडो, प्रथम सौराष्ट्र देश फिर बाह्लीक, तिसके आगे चंद्र
चित्र ॥ ६ ॥ इत्यादि मनोहर विभवशाली जनपद, और बहुतसे पुर और पुन्नाग, गहन, बकुल, उद्दालक ॥ ७ ॥ तथा केतक आदिके वृक्षोंसे

बुद्धिविक्रमसंपन्नंवैनतेयसमद्युतिम् ॥ मरीचिपुत्रान्मारीचानर्चिर्माल्यान्महाबलान् ॥ ४॥ ऋषिपुत्रांश्चतान्सर्वान्प्रती
चीमादिशद्दिशम् ॥ द्वाभ्यांशतसहस्राभ्यांकपीनांकपिसत्तमाः ॥ ५ ॥ सुषेणप्रमुखायूयंवैदेहींपरिमार्गथ ॥ सौरा
ष्ट्रान्सहबाल्हीकांश्चंद्रचित्रांस्तथैवच ॥ ६ ॥ स्फीताञ्जनपदान्रम्यान्विपुलानिपुराणिच ॥ पुन्नागगहनंकुक्षिंबकु
लोद्दालकाकुलम् ॥ ७॥ तथाकेतकखंडांश्चमार्गध्वंहरिपुंगवाः ॥ प्रत्यक्स्रोतोवहाश्चैवनद्यःशीतजलाःशिवाः ॥ ८ ॥
तापसानामरण्यानिकांतारगिरयश्चये ॥ तत्रस्थलीर्मरुप्रायाअत्युच्चाशिशिराःशिलाः ॥ ९ ॥ गिरिजालावृतांदुर्गांमा
र्गित्वापश्चिमांदिशम् ॥ ततःपश्चिममागम्यसमुद्रंद्रष्टुमर्हथ ॥ १० ॥ तिमिनक्राकुलजलंगत्वाद्रक्ष्यथवानराः ॥ ततः
केतकखंडेषुतमालगहनेषुच॥११॥कपयोविहरिष्यंतिनारिकेलवनेषुच॥तत्रसीतांचमार्गध्वंनिलयंरावणस्यच ॥१२॥

व्याप्त कुक्षि देशको ढूंडना; हे वानरश्रेष्ठो ! पश्चिमकी ओरको वहनें वाली शीतल जल युक्त पवित्र नदियेंभी ढूंडना ॥ ८ ॥ तपस्वियोंके वन बडे
दुर्गम पर्वत, अति ऊँची वनस्थलियें, जल रहित देश, शीतल शिलायें ॥ ९ ॥ और जालके भांतिके पर्वत समूहसे युक्त पश्चिम दिशाको खोज
ना फिर पश्चिम दिशाको आकर पश्चिम समुद्र देखोगे ॥ १० ॥ इस समुद्रमें बडे २ नाके मगर आदि जल जीव भरे हैं इसके आगे केतक खंड
और गहन तमाल वनके मध्य ॥ ११ ॥ और नारियलके काननमें वानरगण विहरेंगे; इन सब स्थानोंमें दुष्ट रावणके स्थान सहित सीताजीको

मचंद्रजी दोनों बाहें पसार उनसे भेंटकर बोले ॥ १० ॥ हे सौम्य ! हेमहा पंडित ! जनककुमारी सीताजी जीवितहैं; अथवा नहीं; और रावण किस देशमें रहताहै इस बातका पता लगाना उचितहै ॥ ११ ॥ जब यह बात जानली जायगी तब रावणके स्थानपर और वैदेहीजीके निकट पहुंचकर तुम्हारे साथ परामर्श करके समयानुसार उचित्त कार्यकाविधान किया जायगा ॥ १२ ॥ हे वानरनाथ! हम या लक्ष्मण इस कार्यके साधन करनेंमें समर्थ नहींहैं ! तुमही इस कार्यके कारणहो और तुम्ही इसकेसिद्ध करनेंमें समर्थहो ॥ १३ ॥ हेवीर! तुम निःसन्देह हमारे कार्यको जान तेहो इसलिये तुमही इस विषयमें निश्चित कार्यको सोच विचार करआज्ञादेदो ॥ १४ ॥ तुम हमारे अनुपम सुहृद, बलवान् पंडित, समयको

ज्ञायतांसौम्यवैदेहीयदिजीवतिवानवा ॥ सचदेशोमहाप्राज्ञयस्मिन्वसतिरावणः ॥ ११ ॥ अभिगम्यतुवैदेहींनिलय
रावणस्यच ॥ प्राप्तकालंविधास्यामितस्मिन्कालेसहत्वया ॥ १२ ॥ नाहमस्मिन्प्रभुःकार्येवानरेंद्रनलक्ष्मणः ॥ त्वम
स्यहेतुःकार्यस्यप्रभुश्चप्लवगेश्वर ॥ १३ ॥ त्वमेवाज्ञापयविभोममकार्यविनिश्चयम् ॥ त्वंहिजानासिमेकार्यममवीरनसं
शयः ॥ १४ ॥ सुहृद्द्वितीयोविक्रांतःप्राज्ञःकालविशेषवित् ॥ भवानस्मद्धितेयुक्तःसुहृदाप्तोर्थवित्तमः ॥ १५ ॥ एवमुक्त
स्तुसुग्रीवोविनतंनामयूथपम् ॥ अब्रवीद्रामसान्निध्येलक्ष्मणस्यचधीमतः ॥ १६ ॥ शैलाभंमेघनिर्घोषमूर्जितंप्लवगेश्वरम् ॥
सोमसूर्यनिभैःसार्धवानरैर्वानरोत्तम ॥ १७ ॥ देशकालनयैर्युक्तोविज्ञःकार्यविनिश्चये ॥ वृतःशतसहस्रेणवानराणांतर
स्विनाम् ॥ १८ ॥ अधिगच्छदिशंपूर्वांसशैलवनकाननाम् ॥ तत्रसीतांचवैदेहींनिलयंरावणस्यच ॥ १९ ॥

भली प्रकारसे जाननें वाले अर्थ विचारनें वालोंमें अग्रगण्यहो और हमाराहितकारी कार्य करनेंमें लगे हुयेहो ॥ १५ ॥ जब सुग्रीवजीसे श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा तब सुग्रीवजी बुद्धिमान श्रीराम लक्ष्मणजीके आगेही वानर श्रेष्ठ ॥ १६ ॥ पर्वत सम आकार वाले मेघकी समान शब्दकारी विनत नाम यूथपसे बोलेकि हे वानरोत्तम ! चंद्रमा व सूर्यकी समान वर्णवाले वानर संगले ॥ १७ ॥ जो देश काल और नीति शास्त्रके जाननें वालेहों उनको साथले, कार्य करनेंमें निश्चय किये औरभी सैकडों सहस्रों वानरोंको साथ लिये ॥ १८ ॥ पूर्वदिशाको चलेजाओ. वहांपर पर्वत, वन इत्यादि स्थलोंमें जनककुमारी सीताजी और रावणके बसनेंके स्थानकोढूंडो (चारों दिशा ओंमें रावणके रहनेंके स्थानथे) ॥ १९ ॥

को पावककी शिखाके तुल्य प्रकाशित चारों ओर घूमा करतेहैं ॥ २१ ॥ भयंकर कर्मकारी वानर गण ऐसे चले जांय कि मानो उनको देखाही नहीं और उनके साथ कोई छेड छाडभी न कीजाय और वहांका कोई फल भी न तोडा जाय ॥ २२ ॥ क्योंकि वह धीर्य वीर्य शाली महाबलवान दुर्द्धर्प वीर गण उन फलोंकी रक्षा किया करते हैं ॥ २३ ॥वहां पर जानकीजीके ढूँडनेमें यत्न करना कर्त्तव्यहै यद्यपि उन गन्धर्वोंका प्रभाव बडाहै तथापि विना अपराध किये उन लोगोंसे किसीको भयका कारण नहींहोता॥२४ ॥ वहीं पर वैदूर्य मणिके रंगका और हीरेकी चमककी समान अनेक भांतिके वृक्षोंसे शोभित ॥ २५ ॥ शत योजनका चौडा और शोभायमान वज्रनाम महा पर्वत है उस पर्वतकी समस्त बडी २ कन्दरायें देखना॥२६॥

नात्यासादयितव्यास्तेवानरैर्भीमविक्रमैः ॥ नादेयंचफलंतस्माद्देशात्किंचित्प्लवंगमैः ॥ २२ ॥ दुरासदाहितेवीराःसत्ववंतामहाबलाः ॥ फलमूलानितेतत्ररक्षंतेभीमविक्रमाः ॥ २३ ॥ तत्रयत्नश्चकर्तव्योमार्गितव्याचजानकी ॥ नहितेभ्योभयंकिंचित्कपित्वमनुवर्ततताम् ॥ २४ ॥ तत्रवैदूर्यवर्णाभोवज्रसंस्थानसंस्थितः ॥ नानाद्रुमलताकीर्णोवज्रोनाममहागिरिः ॥ २५ ॥ श्रीमान्समुदितस्तत्रयोजनानांशतंसमम् ॥ गुहास्तत्रविचेतव्याःप्रयत्नेनप्लवंगमाः ॥ २६ ॥ चतुर्भागेसमुद्रस्यचक्रवान्नामपर्वतः ॥ तत्रचक्रंसहस्रारंनिर्मितंविश्वकर्मणा ॥ २७ ॥ तत्रपंचजनंहत्वाहयग्रीवंचदानवम् ॥ आजहारततश्चक्रंशंखंचपुरुषोत्तमः ॥ २८ ॥ तत्रसानुषुरम्येषुविशालासुगुहासुच ॥ रावणःसहवैदेह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥ २९ ॥ योजनानिचतुःषष्टिर्वराहोनामपर्वतः ॥ सुवर्णशृंगःसुमहानगाधेवरुणालये ॥ ३० ॥ तत्रप्राग्ज्योतिषंनामजातरूपमयंपुरम् ॥ तस्मिन्वसतिदुष्टात्मानरकोनामदानवः ॥ ३१ ॥

उसके आगे समुद्रके चतुर्थ भागमें टिका हुआ चक्र वान नाम पर्वतहै; वहीं पर विश्वकर्माजीने सहस्र आरागजका चक्र बनायाथा ॥२७॥ वहींपर पुरुषोत्तम विष्णु भगवानजीने पञ्चजन और हयग्रीव नामक दो दानवोंका संहार करके शंख और चक्र ग्रहण कियाथा ॥ २८ ॥ उस पर्वतके मनोहर शृङ्गों पर और समस्त विशाल गुफाओंमें वैदेहीजी और रावणको ढूंडना तुम्हारा कर्त्तव्य है ॥ २९ ॥ इसके आगे अगाध समुद्रमें चौंसठ योजनकी ऊँचाई वाला सुवर्णशृङ्ग युक्त वराहनामक पर्वत है ॥ ३० ॥ उस पर्वत पर प्राग्ज्योतिष नामक सुवर्ण मय पुरहै

वाले और ऊपरके भागमें व्याघ्रकी समान आकार वाले नर व्याघ्र लोग जोकि जलके मध्यमें रहतेहैं ॥ २८ ॥ इन सब राक्षसोंके स्थानोंमें भली भांति देखना भालना पर्वतोंको देखते भालते, जिन देशोंमें अथवा द्वीपोंमें उछल कूदकर जाना होसके, ऐसे सब देशोंमें ढूंडना तुम्हारा परम कर्त्तव्यहै ॥ २९ ॥ और तुम बडे यत्नके साथ सप्त राज्य सुशोभित यव द्वीपमें जाना; और सुवर्ण कारी पुष्पोंसे शोभित रूपक द्वीपमें ढूँडना तुम्हारा कर्त्तव्यहै ॥ ३० ॥ जब सुवर्ण द्वीपको ढूंडकर आगे चलोगे, तब देव दानव गण करके सेवित शिशिर नामक पर्वत मिलैगा, उसके कँगूरे आकाशको भेद करके मानों स्वर्गको छू रहेहैं ॥ ३१ ॥ इन सब द्वीपादिकोंकेपर्वतोंके दुर्गोंमें वनोंमें, और नदियोंके अप्रगट होनेंके स्थानोंमें, तुम यशस्विनी राम भार्या जानकीजीको ढूंढना ॥ ३२ ॥ फिर समुद्रके उस पारजाकर, सिद्ध चारण सेवित लाल जल वाला शोण नामक नद मिलेगा ॥ ३३ ॥ वहां उसके रमणीक तीर्थमें, विचित्र वनोंमें, और कन्दरायुक्त सब पर्वतोंमें और वनोंमें खोज करना ॥ ३४ ॥ भयंकर अनेक उपवनोंसे युक्त पर्वतोंसे निकली हुई समस्त नदियोंमें, और कन्दरा युक्त सबपर्वतोंमें और वनोंमें खोज करना तुम्हारा अवश्य कर्त्तव्यहै ॥ ३५ ॥ फिर भयंकर पवनके सन्नाटेसे भयंकर शब्द करता हुआ, अति उग्र तरंग युक्तसमुद्रके द्वीप तुम लोग देखोगे॥३६॥इस इक्षु समुद्रमें ब्रह्माजीकी आज्ञा पाये हुये, भूंखसे सताये असुर गण नित्य २ परछांयी ग्रहण करके प्राणियोंको भक्षण किया करतेहैं, सो यहां पर बडी सावधानीसे जाना॥३७॥

एतेषामाश्रयाःसर्वेविचेयाःकाननौकसः ॥ गिरिभिर्येचगम्यंतेप्लवनेनप्लवेनच ॥ २९ ॥ यत्नवंतोयवद्वीपंसप्तराज्योपशोभितम् ॥ सुवर्णरूप्यकद्वीपंसुवर्णकरमंडितम् ॥ ३० ॥ यवद्वीपमतिक्रम्यशिशिरोनामपर्वतः ॥ दिवंस्पृशतिशृंगेणदेवदानवसेवितः ॥ ३१ ॥ एतेषांगिरिदुर्गेषुप्रपातेषुवनेषुच ॥ मार्गध्वंसहिताःसर्वेरामपत्नींयशस्विनीम् ॥ ३२ ॥ ततोरक्तजलंप्राप्यशोणाख्यंशीघ्रवाहिनम् ॥ गत्वापारंसमुद्रस्यसिद्धचारणसेवितम् ॥ ३३ ॥ तस्यतीर्थेषुरम्येषुविचित्रेषुवनेषुच ॥ रावणःसहवैदेह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥ ३४ ॥ पर्वतप्रभवानद्यःसुभीमबहुनिष्कुटाः ॥ मार्गितव्यादरीमंतःपर्वताश्चवनानिच ॥ ३५ ॥ ततःसमुद्रद्वीपांश्चसुभीमान्द्रष्टुमर्हथ ॥ ऊर्मिमंतंमहारौद्रंक्रोशंतमनिलोद्धतम् ॥ ३६ ॥ तत्रासुरामहाकायाश्छायांगृह्णंतिनित्यशः ॥ ब्रह्मणासमनुज्ञातादीर्घकालंबुभुक्षिताः ॥ ३७ ॥

गण, वसुगण, मरुद्गण, और सुरलोकके रहनेंवाले देवता लोग आगमन करकै पश्चिमसन्ध्यामें ॥ ४१ ॥ सूर्यदेवकी उपासना करते हैं सूर्य
देव उनसे पूजित और सर्व जीवोंकी दृष्टिसे अदृश्य हो अस्ताचलको प्राप्तहोजातेहैं ॥ ४२ ॥ इसके आगे दशहजार योजनके विस्तार वाले अस्ता
चल पर्वत पर सूर्य नारायण आधे मुहूर्तमें मेरु पर्वतसे पहुँचते हैं ॥ ४३ ॥ उसी पर्वतके शिखरपर बडे २ दिव्य, सूर्यकी समान प्रभावाला बहुत ध
वरहरेवाला भवन विश्वकर्माका बनाया हुआ है ॥ ४४ ॥ वह अनेक प्रकारके पक्षी और वृक्ष समूहके चित्रित होनेंसे शोभायमान है; यहीं पाश
हस्त वरुण देवजी का स्थान है ॥ ४५ ॥ आगे मेरुकी चोटीमें दश शाखा वाला सुवर्ण मय परम सुन्दर एक ताल वृक्ष शोभायमान हो रहाहै, उस

आदित्यमुपतिष्ठंतितैश्वसूर्योभिपूजितः ॥ अदृश्यःसर्वभूतानामस्तंगच्छतिपर्वतम् ॥ ४२ ॥ योजनानांसहस्राणि
दशतानिदिवाकरः ॥ मुहूर्तार्धेनतंशीघ्रमभियातिशिलोच्चयम् ॥ ४३ ॥ शृंगेतस्यमहद्दिव्यंभवनंसूर्यसन्निभम् ॥ प्रासा
दगणसंबाधंविहितंविश्वकर्मणा ॥ ४४ ॥ शोभितंतरुभिश्चित्रैर्नानापक्षिसमाकुलैः ॥ निकेतंपाशहस्तस्यवरुणस्य
महात्मनः ॥ ४५ ॥ अंतरामेरुमस्तंचतालोदशशिरामहान् ॥ जातरूपमयःश्रीमान्भ्राजतेचित्रवेदिकः ॥ ४६ ॥ ते
षुसर्वेषुदुर्गेषुसरस्सुचसरित्सुच ॥ रावणःसहवैदेह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥ ४७ ॥ यत्रतिष्ठतिधर्मज्ञस्तपसास्वेनभा
वितः ॥ मेरुसावर्णिरित्येषख्यातोवैब्रह्मणासमः ॥ ४८ ॥ प्रष्टव्योमेरुसावर्णिर्महर्षिःसूर्यसन्निभः ॥ प्रणम्यशिरसा
भूमौप्रवृत्तिंमैथिलींप्रति ॥ ४९ ॥ एतावज्जीवलोकस्यभास्करोरजनीक्षये ॥ कृत्वावितिमिरंसर्वमस्तंगच्छतिपर्व
तम् ॥ ५० ॥ एतावद्वानरैःशक्यंगंतुंवानरपुंगवाः ॥ अभास्करममर्यादंनजानीमस्ततःपरम् ॥ ५१ ॥

पर्वतके मूलमें विचित्र वेदी बनी हैं ॥ ४६ ॥ उस पर्वत के समस्त दुर्गम स्थानोंमें, सरोवरोंमें, और नदियोंमें, तुम सब जनोंको जानकी जी और रा
वणका ढूंडना उचित है ॥ ४७ ॥ इसी मेरु पर्वतपर ब्रह्माजी के तुल्य देदीप्यमान अपने तेजसे प्रकाशित धर्मात्मा मेरु सावर्णि नाम विख्यात तप
स्वी वास करते हैं ॥ ४८ ॥ उन सूर्यकी समान प्रकाशित महर्षि मेरु सावर्णिजी को शिर झुका प्रणाम करकै जानकीजीका समाचार पूछना॥४९॥
रात्रिके वीत जानेपर सूर्य नारायण उदयाचलपर्वतसे मेरु सावर्णितकप्रकाश करकै अस्त हो जातेहैं ॥ ५० ॥ हे कपिवरगण! वानर गण यहीं

भांतिके पुष्प खिल रहे हैं ॥ ४५ ॥ इसका नाम सुदर्शनसर है, यह राजहंसोंसे व्याप्त है और इसके किनारे २ देव,चारण, यक्ष, किन्नर, अप्सरा गण ॥ ४६ ॥ हर्षित हो विहार करनेंके लिये उसी सरमें घूमा करते हैं । क्षीर सागर उतरनेके बाद हे वानरगण! ॥ ४७ ॥ जलोद सागरको शीघ्रही देखोगे, यह समुद्र सब प्राणियोंको भय उपजानें वाला है । कारणकि वहां पर और्व ऋषिके क्रोधसे उत्पन्न तेजसे महा हय मुख तेज उत्पन्न हुआ है ॥ ४८ ॥ उस अद्भुत महा वेग हय मुख तेजका प्रलयकालमें सचराचर जगत् अन्न स्वरूप कहाता है । उस स्थानमें असमर्थ विनाशकी शंकासे डरे हुये प्राणियोंका महा आरत शब्द श्रवण आया करता है; यह प्राणी उस हय मुखके देखनेंसे डरकर रोया करते हैं ॥ ४९ ॥ स्वादु समुद्रके

नाम्नासुदर्शनंनामराजहंसैःसमाकुलम् ॥ विबुधाश्चारणायक्षाःकिन्नराश्चाप्सरोगणाः ॥ ४६ ॥ हृष्टाःसमधिगच्छंतिनलिनींतांरिरंसवः ॥ क्षीरोदंसमतिक्रम्यतदाद्रक्ष्यथवानराः ॥ ४७ ॥ जलोदंसागरंशीघ्रंसर्वभूतभयापहम् ॥ तत्रतत्कोपजंतेजःकृतंहयमुखंमहत् ॥ ४८ ॥ अस्याद्भुतंमहावेगमोदनंसचराचरम् ॥ तत्रविक्रोशतांनादोभूतानांसागरौकसाम् ॥ श्रूयतेचासमर्थानांदृष्ट्वाभूद्वडवामुखम् ॥ ४९ ॥ स्वादूदस्योत्तरेतीरेयोजनानित्रयोदश ॥ जातरूपशिलोनाममहान्कनकप्रभः ॥ ५० ॥ तत्रचंद्रप्रतीकाशंपन्नगंधरणीधरम् ॥ पद्मपत्रविशालाक्षंततोद्रक्ष्यथवानराः ॥ ५१ ॥ आसीनंपर्वतस्याग्रेसर्वदेवनमस्कृतम् ॥ सहस्रशिरसंदेवमनंतंनीलवाससम् ॥ ५२ ॥ त्रिशिराःकांचनःकेतुस्तालस्तस्यमहात्मनः ॥ स्थापितःपर्वतस्याग्रेविराजतिसवेदिकः ॥ ५३ ॥ पूर्वस्यांदिशिनिर्माणंकृतंतत्रिदशेश्वरैः ॥ ततःपरंहेममयःश्रीमानुदयपर्वतः ॥ ५४ ॥

उत्तर तीरमें तेरह योजन विस्तार वाला कनक तुल्य प्रभाशाली सुवर्णकी चट्टानोंसे युक्त एक महान पर्वत है ॥ ५० ॥ वहांपर हे वानरो ! तुम चन्द्रमाकी तुल्य श्वेत वर्णवाले कमल दलकी समान विशाल नेत्र वाले धरणी धर भुजंगोंको देखोगे ॥ ५१ ॥ वहीं सहस्र शिरवाले नीलाम्बर धारण किये सब देवताओंके नमस्कार करनेंके योग्य अनन्तजी पर्वतके शिखरपर बैठे रहते हैं ॥ ५२ ॥ इनके शिरके निकट तीन स्कंध वाली सुवर्णकी केतु-स्वरूप ताल वृक्षके आधारसे बनी हुई वेदी विराजित है उस पर अनंतजी प्रतिष्ठित हैं ॥ ५३ ॥ इन्द्रजीनें उस तरुवरको पूर्व दिशाके

वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजी; अपने श्वशुरको पश्चिम दिशामें भेजते हुये और शतवलनामक वानरनाथसे सुग्रीवजी ॥ १ ॥ बोले; सर्वज्ञ कपिराजनें जो वचन कहे वह सबही अपने और श्रीरामचन्द्रजीके हितके लियेथे ॥२॥ सुग्रीवजी बोले कि हे विक्रमशालिन्! तुम अपने मेलके शतसहस्र वनवासी वानरोंके साथ समस्त यमसुत मंत्रि गणोंके सहित यात्रा करो ॥३॥ और हिमालय पर्वतको कर्णफूल बनाये उत्तर दिशामें जायकर यशस्विनी श्रीरामचन्द्रजीकी भार्याको ढूंडो ॥ ४ ॥ हे कृतार्थोंके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ! श्रीरामचन्द्रजीका यह प्रियकार्य पूरा हो जानेंपर हम उनके ऋणसे छूट

ततःसंदिश्यसुग्रीवःश्वशुरंपश्चिमांदिशम् ॥ वीरंशतबलंनामवानरंवानरेश्वरः ॥ १ ॥ उवाचराजासर्वज्ञःसर्ववानरसत्तमः ॥ वाक्यमात्महितंचैवरामस्यचहितंतदा ॥ २ ॥ वृतःशतसहस्रेणत्वद्विधानांवनौकसाम् ॥ वैवस्वतसुतैःसार्धं प्रविष्टःसर्वमंत्रिभिः ॥ ३ ॥ दिशंह्युदीचींविक्रांतहिमशैलावतंसिकाम् ॥ सर्वतःपरिमार्गध्वंरामपत्नींयशस्विनीम् ॥ ४ ॥ अस्मिन्कार्येविनिर्वृत्तेकृतेदाशरथेःप्रिये ॥ ऋणान्मुक्ताभविष्यामःकृतार्थार्थविदांवर ॥ ५ ॥ कृतंहिप्रियमस्माकंराघवेणमहात्मना ॥ तस्यचेत्प्रतिकारोऽस्तिसफलंजीवितंभवेत् ॥ ६ ॥ अर्थिनःकार्यनिर्वृत्तिमकर्तुरपियश्चरेत् ॥ तस्यस्यात्सफलंजन्मकिंपुनःपूर्वकारिणः ॥ ७ ॥ एतांबुद्धिंसमास्थायदृश्यतेजानकीयथा ॥ तथाभवद्भिःकर्तव्यमस्मत्प्रियहितैषिभिः ॥ ८ ॥ अयंहिसर्वभूतानांमान्यस्तुनरसत्तमः ॥ अस्मासुचगतःप्रीतिंरामःपरपुरंजयः ॥ ९ ॥

जाँयगे॥५॥महात्मा श्रीरामचन्द्रजीनें हमारा प्रियकार्य सिद्ध कियाहै सो यदि हम उनका कुछभी प्रत्युपकार करसकें तो हमारा जीवन सफल होजाय ६॥ जिसने अपने साथमें कोई उपकार नहीं कियाहो, यदि उसके साथभी कोई उपकार कर दिया जाय तोभी जीवन सफल होजाता है फिर जोकि पहले ही उपकार कर चुका हो उसका कार्य सिद्ध करनेंमें और कहना ही क्या है ॥ ७॥ तुम लोग हमारे हितकी कामना करते हुए जिससे जानकीजी मिलजाँय या उनका पता लगजाय, इस प्रकारकी बुद्धि धारण करो, ऐसा करना सब भांतिसे तुमको उचित है ॥ ८ ॥ शत्रुओंके पुर जीतनें वाले

न करना ॥ ६२ ॥ सुवर्ण शैलके और महात्मा सूर्यके तेजसे युक्त हो अरुण वर्णकी पूर्व संध्या प्रकाशित होतीहै ॥ ६३ ॥ जिस्से कि समस्त भुवनोंमें प्रकाश करनेंके लिये सूर्यके उदयकी आवश्यकता देख प्रथमही ऊपरमें टिके हुए सब जनोंका प्रवेश द्वार स्वरूप उदयगिरिको ब्रह्माजीनें बनायाथा इससेही इसको पूर्व दिशा कहतेंहैं ॥ ६४ ॥ उस पर्वतकी पीठ पर झरनोंमें, और गुफाओंमें, तुम लोग रावण और जानकीजीका खोज करना ॥ ६५ ॥ उदयाचलके आगे इस पूर्व दिशामें जिसके अधिष्ठाता इन्द्रादि देवताहैं वहां सूर्य चंद्रमाका प्रकाश नहींहै इस कारणसे अंधेराही

कांचनस्यचशैलस्यसूर्यस्यचमहात्मनः ॥ आविष्टातेजसासंध्यापूर्वारक्ताप्रकाशते ॥ ६३ ॥ पूर्वमेतत्कृतंद्वारंपृथिव्याभुवनस्यच ॥ सूर्यस्योदयनंचैवपूर्वाह्येषादिगुच्यते ॥ ६४ ॥ तस्यशैलस्यपृष्ठेषुनिर्झरेषुगुहासुच ॥ रावणःसहवैदेह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥ ६५ ॥ ततःपरमगम्यास्याद्दिक्पूर्वात्रिदशावृता ॥ रहिताचंद्रसूर्याभ्यामदृश्यातमसावृता ॥ ६६ ॥ शैलेषुतेषुसर्वेषुकंदरेषुनदीषुच ॥ येचनोक्तामयोद्देशाविचेयातेषुजानकी ॥ ६७ ॥ एतावद्वानरैःशक्यंगंतुंवानरपुंगवाः ॥ अभास्करममर्यादंनजानीमस्ततःपरम् ॥ ६८ ॥ अभिगम्यतुवैदेहींनिलयंरावणस्यच ॥ मासेपूर्णेनिवर्तध्वमुदयंप्राप्यपर्वतम् ॥ ६९ ॥ ऊर्ध्वंमासान्नवस्तव्यंवसन्वध्योभवेन्मम ॥ सिद्धार्थाःसन्निवर्तध्वमधिगम्यचमैथिलीम् ॥ ७० ॥

अंधेराहै, इसलिये यहांसे आगे कोई नहीं देख सकता ॥ ६६ ॥ इन सबपर्वतोंमें, कन्दराओंमें, नदियोंमें, जितने कि समस्त स्थान हमनें कहे इन सब स्थानोंमें तुम लोग जानकीजीका पता लगाना ॥ ६७ ॥ हे कपि श्रेष्ठगण! बस यहीं तक तुमलोग जानेंको समर्थ हो; इसके आगे सूर्य भगवान रहित और सीमा रहित जो स्थान हैं उन सबको हम नहीं जानते ॥६८॥ जहां जानकीजी हों, और रावणके स्थान में उदयाचल पर्वत तक जाकर एक मासके पूर्ण होते २ तुम लोग फिर आना ॥ ६९ ॥ एक मासके ऊपर वहां पर न रहना यदि कोई एक मासके ऊपर रहेगा तो उसको हम मार

जनका लंबा चौडा एक मयदानहै, जिसमें पर्वत, नदी, वृक्ष, और कोई जन्तुभी नहीं है ॥ १९ ॥ तुम सब इस रोमहर्षण मयदानको नांघकर श्वेत वर्णवाले कैलासपर्वतको पाकर हर्षित चित्त होगे ॥ २० ॥ उस कैलास पर्वतपर श्वेतवर्ण मेघकी प्रभाके समान सुवर्णसे सजाया हुआ मनोहर कुबेरजीका भवन विश्वकर्माजीनें बनायाहै ॥ २१ ॥ उस भवनमें बहुत सारे कमल फूलोंके सहित हंस और कारंडवादि जल पक्षियोंसे परिपूर्ण अप्सरा झुन्डोंसे सेवित एक तलैया विद्यमानहै ॥ २२ ॥ उस भवनमें धनद यक्षराज सर्व लोकोंके नमस्कार किये जानेंके योग्य विश्रवाके पुत्र श्री मान् कुबेरजी गुह्यक गणोंके साथ आनंद सहित वास किया करतेहैं ॥२३॥ उस कैलासपर्वतकी चन्द्र तुल्य प्रकाशित, पर्वतश्रेणीमें और गुफाओंमें

तश्वशीघ्रमतिक्रम्यकांताररोमहर्षणम् ॥ कैलासंपांडुरंप्राप्यहृष्टायूयंभविष्यथ ॥ २० ॥ तत्रपांडुरमेघाभंजांबूनद
परिष्कृतम् ॥ कुबेरभवनंरम्यंनिर्मितंविश्वकर्मणा ॥ २१ ॥ विशालानलिनीयत्रप्रभूतकमलोत्पला ॥ हंसकारंडवा
कीर्णाअप्सरोगणसेविता॥२२॥तत्रवैश्रवणोराजासर्वलोकनमस्कृतः ॥ धनदोरमतेश्रीमान्गुह्यकैःसहयक्षराट् ॥२३॥
तस्यचंद्रनिकाशेषुपर्वतेषुगुहासुच ॥ रावणःसहवैदेह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥ २४ ॥ क्रौंचंतुगिरिमासाद्यबिलंतस्यसु
दुर्गमम् ॥ अप्रमत्तैःप्रवेष्टव्यंदुष्प्रवेशंहितत्स्मृतम् ॥ २५ ॥ वसंतिहिमहात्मानस्तत्रसूर्यसमप्रभाः ॥ देवैरभ्यर्थिताः
सम्यग्देवरूपामहर्षयः ॥ २६ ॥ क्रौंचस्यतुगुहाश्चान्याःसानूनिशिखराणिच ॥ दर्दराश्चनितंबाश्चविचेतव्यास्ततस्त
तः ॥२७॥अवृक्षंकामशैलंचमानसंविहगालयम् ॥ नगतिस्तत्रभूतानांदेवानांनचरक्षसाम् ॥ २८ ॥

जरा जरा करके रावण और जानकीजीको तुम लोग ढूंडना ॥ २४ ॥ वहांसे चलकर तुम लोग क्रौंचगिरि देखोगे; उस पर्वतके दुर्गम विलोंमें बडी सावधानीसे प्रवेश करना, क्योंकि उसके ऊपरके बिल बडी कठिनाईसे प्रवेश करनेके योग्यहैं ॥ २५ ॥ और उस पर्वतपर सूर्यकी समान प्रभा वाले महात्मा देवरूप, महर्षि गण देवता लोगोंसे प्रार्थना किये जानेपर वहां वास करतेहैं ॥ २६ ॥ क्रौञ्च पर्वतकी और दूसरी गुफायें, और कंगूरे, दर्रे व नितम्बोंको भली प्रकार ढूंडना ॥ २७ ॥ इसी पर्वतका एक शिखर वृक्षोंसे रहित कामतप शैल और पक्षी गणोंका आश्रय स्थान मा

फिर गोदावरी और रमणीक कृष्णवेणी नदी मिलैगी; तदनन्तर मेकल,उत्कल, दशार्ण आदि देश मिलेंगे ॥ ९ ॥ फिर आत्रवन्ती, अवन्ती पुरी दिखलाई देगी । पश्चात् विदर्भ, ऋष्टिक, माहीषक ॥ १० ॥ इत्यादि सबदेश दृष्टि आवेंगे, फिर मत्स्य, कुलिंग, कौशिकादि देशोंको भली भांति खोजना; और नदी गुफा सहित दंडकारण्यमेंभी ढूंडना ॥ ११ ॥ तिसके पीछे तुम सबोंको दूसरी गोदावरी नदी दिखाई देगी इसके आगे, अन्ध्र, पुन्ड्र, चोल, पाण्डच, केरल ॥ १२ ॥ आदि देश और अयोमुख नामक अनेक धातुओंसे युक्त पर्वत जिसपर बडे विचित्र शिखरहैं, मिलेगा; इसका

ततोगोदावरींरम्यांकृष्णवेणींमहानदीम् ॥ मेकलानुत्कलांश्चैवदशार्णनगराण्यपि ॥ ९ ॥ आब्रवंतीमवंतींचसर्वमेवानुपश्यत ॥ विदर्भानृष्टिकांश्चैवरम्यान्माहिषकानपि ॥ १० ॥ तथामत्स्यकलिंगांश्चकौशिकांश्चसमंततः ॥ अन्वीक्ष्यदंडकारण्यंसपर्वतनदीगुहम् ॥ ११ ॥ नदींगोदावरींचैवसर्वमेवानुपश्यत ॥ तथैवांध्रांश्चपुंड्रांश्चचोलान्पांड्यांश्च केरलान् ॥ १२ ॥ अयोमुखश्चगंतव्यःपर्वतोधातुमंडितः ॥ विचित्रशिखरःश्रीमांश्चित्रपुष्पितकाननः ॥ १३ ॥ सुचंददनवनोद्देशोमार्गितव्योमहागिरिः ॥ ततस्तामापगांदिव्यांप्रसन्नसलिलाशयाम् ॥ १४ ॥ तत्रद्रक्ष्यथकावेरींविहृतामप्सरोगणैः ॥ तस्यासीनंनगस्याग्रेमलयस्यमहौजसः ॥ १५ ॥ द्रक्ष्यथादित्यसंकाशमगस्त्यमृषिसत्तमम् ॥ ततस्तेनाभ्यनुज्ञाताःप्रसन्नेनमहात्मना ॥ १६ ॥ ताम्रपर्णींग्राहजुष्टांतरिष्यथमहानदीम् ॥ साचंदनवनैश्चित्रैःप्रच्छन्नद्वीपवारिणी ॥ १७ ॥ कांतेवयुवतीकांतंसमुद्रमवगाहते ॥ ततोहेममयंदिव्यंमुक्तामणिविभूषितम् ॥ १८ ॥

वनभी सदा फूला फलाही रहताहै ॥ १३ ॥ चन्दनका वनभी इस पर लगा हुआहै; इस मलयाचलको भली भांति अनुसन्धान करना फिर स्वच्छ जलवाली दिव्य ॥ १४ ॥ अप्सराओंके झुन्डोंसे सेवित कावेरी नदी देखोगे, तिसके पीछे मलय पर्वतके अग्रभागमें बैठे हुए ॥ १५ ॥ महातेज सम्पन्न आदित्य तुल्य ऋषि श्रेष्ठ अगस्त्यजी को देखोगे. फिर प्रणामादि द्वारा उनको प्रसन्न करकै उनकी आज्ञासे चल ॥१६॥ विविध ग्राह युक्त महानदी ताम्रपर्णीके पार होगे । चंदनके वनके द्वारा विचित्र ढकी हुई द्वीपोंसे युक्त, स्वच्छजलवाली वह नदी ॥ १७ ॥ सर्व शृंगार किये

नदी वहतीहै, उसके दोनों किनारोंपर कीचक नामक वांस उत्पन्न होतेहैं ॥ ३७ ॥ वही वांस सिद्ध लोगोंको शैलोदके पार लेजातेहैं और फिर वही इस पारको लेआतेहैं । इसी नदीके दूसरी पार पुण्यात्मा जनोंके निवासका स्थान उत्तर कुरु देशहै ॥ ३८ ॥ उस उत्तरकुरुके रहनेवाले जन, सुवर्ण, पद्मसमन्वित पुष्करणियोंके जलसे तर्पण किया करतेहैं॥ ३९ ॥ वहांपर नीलवर्णके जिनमें वैदूर्य मणियोंके पत्ते लगरहे ऐसे सुवर्णमय लाल कमल फूलोंसे विभूपित सहस्र २ नदियां विराजमानहैं ॥ ४० ॥ प्रभात कालके सूर्यकी समान प्रकाशित समस्त जलाशय, महामणि, महारत्न, और विचित्र सुवर्णकी केशरवाले ॥ ४१ ॥ नील वर्णके कमल फलोंसे व वनोंके समूहसे वडे २ मोलके मुक्तामणियोंसे और धनसे यह

तेनयंतिपरंतीरंसिद्धान्प्रत्यानयंतिच ॥ उत्तराःकुरवस्तत्रकृतपुण्यप्रतिश्रयाः ॥ ३८ ॥ ततःकांचनपद्माभिःपद्मिनीभिःकृतोदकाः॥ ३९ ॥ नीलवैदूर्यपत्राढ्यानद्यस्तत्रसहस्रशः ॥ रक्तोत्पलवनैश्चात्रमंडिताश्चहिरण्मयैः ॥ ४० ॥ तरुणादित्यसंकाशाभांतितत्रजलाशयाः ॥ महार्हमणिरत्नैश्चकांचनप्रभकेसरैः॥४१॥ नीलोत्पलवनैश्चित्रैःसदेशःसर्वतोवृतः॥ निस्तुलाभिश्चमुक्ताभिर्मणिभिश्चमहाधनैः ॥ ४२ ॥ उद्भूतपुलिनास्तत्रजातरूपैश्चनिम्नगाः ॥ सर्वरत्नमयैश्चित्रैरवगाढानगोत्तमैः ॥४३॥ जातरूपमयैश्चापिहुताशनसमप्रभैः॥नित्यपुष्पफलास्तत्रनगाःपत्ररथाकुलाः ॥४४॥दिव्यगंधरसस्पर्शाःसर्वकामान्स्रवंतिच॥ नानाकाराणिवासांसिफलंत्यन्येनगोत्तमाः ॥४५॥मुक्तावैदूर्यचित्राणिभूषणानितथैवच॥ स्त्रीणांयान्यनुरूपाणिपुरुषाणांतथैवच ॥ ४६ ॥

देश पूर्णहै ॥ ४२ ॥ वहांपर सव नदियोंके किनारे सुवर्णमय होरहेहैं जिस्सेकि वडी शोभा होतीहै, और उनके किनारोंपर रत्नोंके तरुवर लग रहे हैं ॥ ४३ ॥ उन सव अग्निसमान प्रकाशित वृक्षोंमें सुवर्णके फूल लगे हैं;उन वृक्षोंमें नित्य फल फूल लगे रहते और पक्षीगण मीठी वाणीसे वोला करतेहैं ॥ ४४ ॥ किसी २ वृक्षमें दिव्य रसकी सुगन्धि और समस्त कमनीय पदार्थ उत्पन्न हुआ करतेहैं व और जितने उत्तम २ वृक्षहैं वह अनेक प्रकारके वसन उत्पन्न किया करतेहैं ॥ ४५ ॥ किसी २ श्रेष्ठ वृक्षमें स्त्रीऔर पुरुषोंके पहरनें योग्य उत्तम गहनें उत्पन्न होतेहैं जो मुक्ता और

इस प्रकारके संशय युक्त देशोंमें विशेष ढूँढ भाल संशय रहित होकर अमित तेजवान नरेन्द्र श्रीरामचंद्रजीकी भार्याका पता लगाओ ॥ २७ ॥ उस लंकाद्वीपको नांघकर शत योजन वाले समुद्रके बीचमें परम सुन्दरपुष्पितक नाम पर्वत सिद्ध चारण गणोंसे सेवित ॥ २८ ॥ चंद्र सूर्यकी किरणोंसे प्रभाशाली सागरके जलका आश्रय लेकर अपने विपुलकंगूरोंसे मानों स्वर्गको छूलेता टिका हुआहै ॥ २९ ॥ उसके कांचनमय एक शृङ्गकी सेवा सूर्य भगवान् किया करतेहैं, कृतघ्न, नास्तिक औरनिर्लज्ज मनुष्य गण इन शृङ्गोंको नहीं देख सकते ॥ ३० ॥ हे वानरगण ! तुम लोग इस पर्वत श्रेष्ठको प्रणाम करके सीताजीको खोजना उस दुर्द्धर्षपर्वतको नांघकर आगे सूर्यवान नाम पर्वत॥ ३१ ॥ पर पहुँचोगे । इसका

एवंनिःसंशयान्कृत्वासंशयानष्टसंशयाः ॥ मृगयध्वंनरेंद्रस्यपत्नीममिततेजसः॥२७॥तमतिक्रम्यलक्ष्मीवान्समुद्रेशत योजने ॥ गिरिःपुष्पितकोनामसिद्धचारणसेवितः ॥२८॥ चंद्रसूर्यांशुसंकाशःसागराम्बुसमाश्रयः ॥ भ्राजतेविपुलैःशृंगै रंबरंविलिखन्निव ॥ २९ ॥ तस्यैकंकांचनंशृंगंसेवतेऽयंदिवाकरः ॥ नतंकृतघ्नाःपश्यंतिननृशंसाननास्तिकाः ॥३० ॥ प्रणम्यशिरसाशैलंतंविमार्गथवानराः ॥ तमतिक्रम्यदुर्धर्षसूर्यवान्नामपर्वतः ॥ ३१ ॥ अध्वनादुर्विगाहेनयोजनानि चतुर्दश ॥ ततस्तमप्यतिक्रम्यवैद्युतोनामपर्वतः ॥ ३२ ॥ सर्वकामफलैर्वृक्षैःसर्वकालमनोहरैः ॥ तत्रभुक्त्वावरार्हाणि मूलानिचफलानिच ॥ ३३ ॥ मधूनिपीत्वाजुष्टानिपरंगच्छतवानराः ॥ तत्रनेत्रमनःकांतःकुंजरोनामपर्वतः ॥ ३४ ॥ अगस्त्यभवनंयत्रनिर्मितंविश्वकर्मणा ॥ तत्रयोजनविस्तारमुच्छ्रितंदशयोजनम् ॥ ३५ ॥ शरणंकांचनंदिव्यंनाना रत्नविभूषितम् ॥ तत्रभोगवतीनामसर्पाणामालयःपुरी ॥ ३६ ॥

विस्तार चौदह योजनहै और यह अति दुर्गमहै, फिर इस्से आगे चलकर वैद्युत नाम पर्वतहै ॥ ३२॥ यह सर्वकालमेंही मनोहरहै और सब कामना युक्त फलोंको देनेंवाले वृक्ष इसपर लगे हुयेहैं। वहांपर उत्तम भोजन फल मूल खाय ॥ ३३॥ और मधु पीकर तृप्तहो तुम सब लोग आगे बढना तहां नेत्र और मनको आराम देने वाला कुंजर नामक पर्वतहै॥ ३४॥ वहांपर पहले विश्वकर्म्माजीनें अगस्त्यजीका भवन बनायाथा। यह भवन विस्ता रमें एक योजन और ऊंचाईमें दश योजनहै॥ ३५॥ इस सुवर्ण मय गृहमें अनेक प्रकारके दिव्य रत्न भूषितहोरहेहैं। इसी कुंजर पर्वत पर सर्पोंके

साथ वास करते हैं ॥ ५६ ॥ कुरुके उत्तर देशमें तुम लोग कदापि मतजाना, क्योंकि वहांपर और कोई जीवधारी नहीं जा सकता ॥ ५७ ॥
वह सोमगिरि नामक पर्वत देवता लोगोंकेभी जानेंके योग्य नहीं है तुम लोग केवल उसका दर्शनही करके लौट आना ॥ ५८ ॥ हे वानर श्रेष्ठगण!
वानर लोग यहींतक जा सकते हैं; इसके आगे सीमा रहित और सूर्य रहित स्थानोंको हम नहीं जानते॥ ५९॥ हमनें जो स्थान बताये, उन सबही
स्थानोंको तुम लोग ढूंढना; और जो स्थान कि हमारे बतलानेंसे रह गये हों; उन सबको अपनी बुद्धिके अनुसार तुम लोग खोजना ॥६०॥ऐसा कर
नेंसे श्रीरामचन्द्रजीका और हमारा अति प्रियकार्य हो जायगा। हे अनिलतुल्य! और अनल तुल्य वानरगण! उन जनककुमारीका पता लगानेंसे,

नकथंचनगंतव्यंकुरूणामुत्तरेणवः ॥ अन्येषामपिभूतानांनानुक्रामतिवैगतिः ॥ ५७ ॥ सहिसोमगिरिर्नामदेवानामपि
दुर्गमः ॥ तमालोक्यततःक्षिप्रमुपावर्तितुमर्हथ ॥ ५८ ॥ एतावद्वानरैःशक्यंगंतुंवानरपुंगवाः ॥ अभास्करममर्यादंनजा
नीमस्ततःपरम् ॥५९॥ सर्वमेतद्विचेतव्यंयन्मयापरिकीर्तितम् ॥ यदन्यदपिनोक्तंचतत्रापिक्रियतांमतिः ॥ ६० ॥ ततः
कृतंदाशरथेर्महत्प्रियंमहत्प्रियंचापिततोममप्रियम् ॥ कृतंभविष्यत्यनिलानलोपमाविदेहजादर्शनजेनकर्मणा॥६१॥
ततःकृतार्थाःसहिताःसबांधवामयार्चिताःसर्वगुणैर्मनोरमैः॥चरिष्यथोर्वींप्रतिशांतशात्रवाःसहप्रियाभूतधराःप्लवंगमाः
॥६२॥इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेत्रिचत्वारिंशःसर्गः ॥४३ ॥ विशेषेणतुसुग्रीवोहनू
मत्यर्थमुक्तवान् ॥ सहितस्मिन्हरिश्रेष्ठेनिश्चितार्थोऽर्थसाधने ॥ १ ॥ अब्रवीच्चहनूमंतंविक्रांतमनिलात्मजम् ॥ सुग्रीवः
परमप्रीतःप्रभुःसर्ववनौकसाम् ॥२॥ नभूमौनांतरिक्षेवानांबरेनामरालये ॥ नाप्सुवागतिसंगंतेपश्यामिहरिपुंगव॥३॥

हम तुम सबही निःसन्देह कृत कृत्य हो जांयगे ॥ ६१ ॥ फिर कृतार्थ हो हमसे पूजित और शत्रुरहित हो सब मनोहर गुणोंसे विभूषित
और भूत गणोंसें आश्रय स्वरूप हो अपनी प्रियाके सहित सुख स्वच्छन्दतासे तुम लोग घूमना ॥ ६२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मी
कीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥ यद्यपि सब वानरोंको सुग्रीवजीनें सब ओरको जानेंके लिये आज्ञादी
तथापि सुग्रीवजीनें निश्चय कियाथा कि कार्यकी सिद्धि हनुमानजीसेही होगी इस कारण कपि श्रेष्ठ हनुमानजीसे ॥ १ ॥ वानर नाथ सुग्रीवजी परम
प्रीतिसे बोले; क्योंकि यह हनुमानजी पवनके पुत्र और बडे पराक्रमीथे ॥ २ ॥ हे वानर श्रेष्ठ! भूमिमें, वा पक्षियोंके उडनेंके स्थान अन्तरिक्षमें

गति नहींहै ॥ ४५ ॥ जो जो स्थान हमनें बताये तुम सब इनमें व और स्थानभीजो कि दिखाईदें इन सबको देखभाल सीताजीकी गतिजान कर फिर आओ ॥ ४६ ॥ जो वानर एक मासके भीतर लौटकर "हमनें सीताजीको देखाहै" यह वचन कहैगा वह हमारी समान विभवशाली होकर सुखसे विहार करैगा ॥ ४७ ॥ उस्से अधिक और कोईभी हमारा प्रिय न होगा, व अनेक वार अपराध करने परभी हमारा बन्धु रहैगा ॥४८॥ हे वानर गण ! तुम लोग अमित बल विक्रम शाली और विपुल गुण सम्पन्न कुलमें उतपन्न हुये हो, इस समय तुम सब, कि जिस्से जनककुमारी

सर्वमेतत्समालोक्ययच्चान्यदपिदृश्यते ॥ गतिंविदित्वावैदेह्याःसन्निवर्तितुमर्हथ ॥ ४६ ॥ यश्चमासान्निवृत्तोग्रेदृष्टासीतेतिवक्ष्यति ॥ मत्तुल्यविभवोभोगैःसुखंसविहरिष्यति ॥ ४७ ॥ ततःप्रियतरोनास्तिममप्राणाद्विशेषतः ॥ कृतापराधो बहुशोममबंधुर्भविष्यति ॥ ४८ ॥ अमितबलपराक्रमाभवंतोविपुलगुणेषुकुलेषुचप्रसूताः ॥ मनुजपतिसुतांयथालभध्वं तदधिगुणंपुरुषार्थमारभध्वम् ॥ ४९ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०किष्किंधाकांडेएकचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४१ ॥ ७ ॥ अथप्रस्थाप्यसहरीन्सुग्रीवोदक्षिणांदिशम् ॥ अब्रवीन्मेघसंकाशंसुषेणंनामवानरम् ॥ १ ॥ तारायाःपितरंराजाश्वशुरं भीमविक्रमम् ॥ अब्रवीत्प्रांजलिर्वाक्यमभिगम्यप्रणम्यच ॥ २ ॥ महर्षिपुत्रंमारीचमर्चिष्मंतंमहाकपिम् ॥ वृतंकपिवरैःशूरैर्महेंद्रसदृशद्युतिम् ॥ ३ ॥

सीताजी प्राप्त होजाँय इस विषयमें अनुकूल पुरुषार्थ प्रकाशकर विशेषभांतिसे यत्न करते रहो ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि काव्ये किष्किन्धाकांडे एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥ अनन्तर सुग्रीवजी उन समस्त वानरवृन्दोंको दक्षिणदिशामें भेजकर सुषेण नाम वानरसे बोले ॥ १ ॥ यह सुषेण ताराके पिता, और वालि सुग्रीवके श्वशुर, भयंकर विक्रम करने वालेथे, इस्से उनके हाथ जोड प्रणाम कर सुग्रीवजी बोले ॥ २ ॥ और महर्षि मरीचिके पुत्र अर्चिष्मान् नामक महावानरसे जो कि अति शूरवीर कपिगणोंसे सेवित, महेन्द्राचल सम आ

देनेंके लिये हनुमानजीको अर्पण करदी ॥ १२ ॥ हे वानर श्रेष्ठ! इसनिशानीसे जानकीजी तुमको निश्चित हमारे निकटसे आया हुआ झट पट जान जांयगी ॥ १३ ॥ हे वीरेन्द्र! तुम्हारीं दृढ चित्तता और अनुपम विक्रम और सुग्रीवजीका आदेश इन सबसेही हमको अपने कार्यकी सिद्धि जान पडतीहै ॥ १४ ॥ यह कपि श्रेष्ठ हनुमानजी उस अँगूठीको माथे चढा हाथ जोडकर श्रीरामचंद्रजीके दोनों चरणोंकी वन्दना करके गमन करनेको तैयार हुये ॥ १५ ॥ पवनपुत्र कपिवीर; वह बडीभारी सेना संगलेकर मेघ रहित विमल आकाशमें तारा गणोंसे शोभित

अनेनत्वांहरिश्रेष्ठचिह्नेनजनकात्मजा ॥ मत्सकाशादनुप्राप्तमनुद्विग्नाऽनुपश्यति ॥ १३ ॥ व्यवसायश्चतेवीरसत्त्व युक्तश्चविक्रमः ॥ सुग्रीवस्यचसंदेशःसिद्धिंकथयतीवमे ॥ १४ ॥ सतद्गृह्यहरिश्रेष्ठःकृत्वामूर्ध्निकृतांजलिः ॥ वंदित्वा चरणौचैवप्रस्थितःप्लवगर्षभः ॥ १५ ॥ सतत्प्रकर्षन्हरिणांमहद्बलंबभूववीरःपवनात्मजःकपिः ॥ गतांबुदेव्योम्नि विशुद्धमंडलःशशीवनक्षत्रगणोपशोभितः ॥ १७ ॥ अतिबलबलमाश्रितस्तवाहंहरिवरविक्रमविक्रमैरनल्पैः ॥ पव नसुतयथाऽधिगम्यतेसाजनकसुताहनुमंस्तथाकुरुष्व ॥ १७ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०किष्किंधाकांडेचतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥ ॥ छ ॥ ॥ सर्वांश्चाहूयसुग्रीवःप्लवगान्प्लवगर्षभः ॥ समस्तांश्चाब्रवीद्राजारामकार्यार्थसिद्धये ॥ १ ॥ एवमेतद्विचेतव्यंभवद्भिर्वानरोत्तमैः ॥ तदुग्रशासनंभर्तुर्विज्ञायहरिपुंगवाः ॥२॥ शलभाइवसंछाद्यमेदिनींसंप्रतस्थिरे ॥ रामःप्रस्रवणेतस्मिन्न्यवसत्सहलक्ष्मणः ॥ ३ ॥

विशुद्ध मंडल चंद्रमाकी समान शोभापाने लगे ॥ १६ ॥ हेसिंह विक्रम! अति बल शालीन! पवन पुत्र! हमनें तुम्हारेही बलका आश्रय कियाहै; तुम इस समय ऐसा विधान विपुल विक्रमसे करोकिजिस्से जानकीजी प्राप्त हो जांय ॥ १७ ॥ इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०कि०चतुश्चत्वारिंशःसर्गः॥४४॥ अनन्तर कपिराज सुग्रीवजी सब वानरोंको पुकारकर उनसे श्रीरामचंद्रजीके कार्यकी सिद्धि करनेंके लिये कहने लगे ॥ १ ॥ हे वानर श्रेष्ठ गण! तुम सबही हमारी अति उग्र आज्ञाको जानकर रावण और जानकीजीको खोजो ॥ २ ॥ टीडीकी समान पृथ्वीको छायकर समस्त वानर

ढूँडना ॥ १२ ॥ और समुद्रके किनारे की भूमिवाले सब पर्वत, वन, और मुरची पत्तन, और रमणीक जटापुर ॥ १३ ॥ अवंती, और दो पुरी, अंग
लेपा व आलक्षित नामक समस्त वन विशाल राज्य और विशाल वाणिज्यके स्थान देखना ॥ १४ ॥ वहांपर सिन्धुनद और सगर संगमके स्थल
में महा तरु समूह समन्वित शत शिखरवाला, सोमगिरि नामक एक महान पर्वतहै ॥ १५ ॥ उस पर्वतके रमणीक प्रस्थ देशमें सिंह नामक पक्षी
वास करतेहैं; वह पक्षी तिमि, मत्स्य, और हाथियोंको पंजेसे पकडकर अपने घोंसलेमें लेजाय भक्षण कर लेतेहैं ॥ १६ ॥ उन सिंह पक्षियोंमें गये
और गिरिशृङ्गोपर संतापित व उद्दीप्त हाथी मेघोंके गर्जनकी समान शब्द किया करतेहैं ॥ १७ ॥ यह हाथियोंके झुन्ड उस पर्वतके किनारे जो स

वेलातलनिविष्टेषुपर्वतेषुवनेषुच ॥ मुरचीपत्तनंचैवरम्यंचैवजटापुरम् ॥ १३ ॥ अवंतीमंगलेपांचतथाचालक्षितंवनम् ॥
राष्ट्राणिचविशालानिपत्तनानिततस्ततः ॥ १४ ॥ सिंधुसागरयोश्चैवसंगमेतत्रपर्वतः ॥ महान्सोमगिरिर्नामशतशृंगो
महाद्रुमः ॥ १५ ॥ तत्रप्रस्थेषुरम्येषुसिंहाःपक्षगमास्थिताः ॥ तिमिमत्स्यगजांश्चैवनीडान्यारोपयंतिते ॥ १६ ॥ ता
निनीडानिसिंहानांगिरिशृंगगताश्चये ॥ दृप्तास्तृप्ताश्चमातंगास्तोयदस्वननिःस्वनाः ॥ १७ ॥ विचरंतिविशालेस्मिंस्तो
यपूर्णेसमंततः ॥ तस्यशृंगंदिवस्पर्शंकांचनंचित्रपादपम् ॥ १८ ॥ सर्वमाशुविचेतव्यंकपिभिःकामरूपिभिः ॥ को
टिंतत्रसमुद्रस्यकांचनींशतयोजनाम् ॥ १९ ॥ दुर्दर्शांपारियात्रस्यगत्वाद्रक्ष्यथवानराः ॥ कोटयस्तत्रचतुर्विंशद्गंध
र्वाणांतपस्विनाम् ॥ २० ॥ वसंत्यग्निनिकाशानांघोराणांपापकर्मणाम् ॥ पावकार्चिःप्रतीकाशाःसमवेताःसमंततः ॥ २१ ॥

मुद्रहै उस परभी विचरा करतेहैं उस पर्वतका एक सुवर्ण मय शृंग इतनाऊँचाहै मानों स्वर्गको चला गयाहै, और उसपर भांति २ के चित्र विचित्र
वृक्ष लगेहैं; वहांपर तुम सब वानर लोग काम रूप धारण करके शीघ्रतासहित सब स्थानोंको ढूंडना। उसी समुद्रमें पारियात्र नाम पर्वतकी कोटि
शत योजन विस्तारकीहै ॥ १८ ॥ १९ ॥ हे वानर गणो! उस कोटिका देखना दुर्गम होनें परभी तुम लोग उसे देखोगे। जहांपर चौवीस
कोटि२४०००००० गन्धर्व और तपस्वी गण मिलकर तपस्या करतेहैं ॥ २० ॥ यह सब अग्निकी तुल्य दीप्तमान घोर पापकारियोंके जलानें

हम वृक्षोंको उखाड डालेंगे, हम पर्वतोंको तोड फोड डालेंगे, हम पृथ्वीको विदीर्णकर डालेंगे, हम समुद्रको खल बला डालेंगे ॥१४॥ हम एक छलांगमें येक योजन, हम येक शतसे भी अधिक योजन येक छलांगमें कूदजांयगे ॥ १५ ॥ हमारी गति पृथ्वीमें, समुद्रमें, पर्वतोंमें व वनोंमें पातालमें कहीं भी नहीं रुक सकती, हम सबही स्थानोंमें जा सकतेहैं ॥ १६ ॥ उन वानरराज सुग्रीवजीके निकट येक २ वानर अपने बलके दर्प से ऐठते अकडते ऐसा कहनें लगे ॥ १७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे पंच चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

विधमिष्याम्यहंवृक्षान्दारयिष्याम्यहंगिरीन् ॥ धरणींदारयिष्यामिक्षोभयिष्यामिसागरान् ॥ १४ ॥ अहंयोजन संख्यायाःप्लवेयंनात्रसंशयः ॥ शतयोजनसंख्यायाःशतंसमधिकंह्यहम् ॥ १५ ॥ भूतलेसागरेवापिशैलेषुचवनेषुच ॥ पातालस्यापिवामध्येनममाच्छिद्यतेगतिः ॥ १६ ॥ इत्येकैकस्तदातत्रवानराबलदर्पिताः ॥ ऊचुश्चवचनंतस्यहरिरा जस्यसन्निधौ ॥ १७ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०किष्किंधाकांडेपंचचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४५ ॥ ॥ छ ॥ ॥ गतेषु वानरेंद्रेषुरामःसुग्रीवमब्रवीत् ॥ कथंभवान्विजानीतेसर्वंवैमंडलंभुवः ॥ १ ॥ सुग्रीवश्चततोराममुवाचप्रणतात्मवान् ॥ श्रूयतांसर्वमाख्यास्येविस्तरेणवचोमम ॥ २ ॥ यदातुदुंदुभिंनामदानवंमहिषाकृतिम् ॥ प्रतिकालयतेवालीमलयंप्र तिपर्वतम् ॥ ३ ॥ तदाविवेशमहिषोमलयस्यगुहांप्रति ॥ विवेशवालीतत्रापिमलयंतज्जिघांसया ॥ ४ ॥ ततोहंतत्र निक्षिप्तोगुहाद्वारिविनीतवत् ॥ नचनिष्क्रामतेवालीतदासंवत्सरेगते ॥ ५ ॥

जब चारों ओरको सब वानरोंके झुन्ड चले गये तब श्रीरामचंद्रजीने सुग्रीवसे कहाकि तुमनें समस्त पृथ्वी मण्डलका समाचार किसप्रकारसे जाना? ॥ १ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीने ऐसा कहा तो सुग्रीवजी शिरनवायश्रीरामचंद्रजीसे बोले कि आप श्रवण करें हम सब विस्तार सहित कहते हैं ॥ २ ॥ जब भैंसे की समान आकार वाले दुन्दुभी नामक दानवके पीछेधावमान होकर वालि मलयाचल पर्यंत तक चलागया॥३॥जब वह महि ष मलयाचलकी गुफामें प्रवेश करगया तब वालि भी उसके वध करनेकी वासना से उस पर्वतकी गुफामें बैठा ॥ ४ ॥ हम उस गुफाकेद्वार

उसमें नरक नामक दुष्टात्मा दानव वास करता है ॥ ३१ ॥ उस पर्वतके रमणीक कँगूरों और गुफाओंमें रावणके सहित जानकीजीको ढूंडना तुम्हारा कर्त्तव्य है ॥ ३२ ॥ उस कांचन गर्भ शैलराजको नांघकर धारा और झरनो करके सहित सर्व सौवर्ण नाम पर्वत दिखाई देगा ॥ ३३ ॥ उस पर्वत पर वराह सिंह व्याघ्रादि जन्तु गण सर्वदाही अपने शब्दकी प्रति ध्वनि श्रवण कर दर्पित हो शीघ्रतासे फिर गर्जन करनें लगते हैं ॥३४॥ इसके आगे मेघ नामक पर्वत है इस पर्वतपर पाकशासन श्रीमान इन्द्रजीका देवता ओंनें सुरराज्यपर अभिषेक कियाथा॥ ३५ ॥ इस महेन्द्र परिपालित अचल राजको नांघकर तुम सुवर्णके साठ हजार पर्वत देखोगे ॥३६॥ यह सब पर्वत प्रभात कालके सूर्यकी समान प्रकाशित

तत्रसानुषुरम्येषुविशालासुगुहासुच॥ रावणःसहवैदेह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥ ३२ ॥ तमतिक्रम्यशैलेंद्रंकांचनांतरदर्शनम् ॥ पर्वतःसर्वसौवर्णोधाराप्रस्रवणायुतः ॥ ३३ ॥ तंगजाश्चवराहाश्चसिंहाव्याघ्राश्चसर्वतः ॥ अभिगर्जंति सततंतेनशब्देनदर्पिताः॥३४॥यस्मिन्हरिहयःश्रीमान्महेंद्रःपाकशासनः॥अभिषिक्तःसुरैराजामेघोनामसपर्वतः॥३५॥ तमतिक्रम्यशैलेंद्रंमहेंद्रपरिपालितम् ॥ षष्टिंगिरिसहस्राणिकांचनानिगमिष्यथ ॥ ३६ ॥ तरुणादित्यवर्णानिभ्राजमानानिसर्वशः॥जातरूपमयैर्वृक्षैःशोभितानिसुपुष्पितैः ॥३७॥ तेषांमध्येस्थितोराजामेरुरुत्तमपर्वतः ॥ आदित्येनप्रसन्नेनशैलोदत्तवरःपुरा ॥ ३८ ॥ तेनैवमुक्तःशैलेंद्रःसर्वएवत्वदाश्रयाः ॥ मत्प्रसादाद्भविष्यंतिदिवारात्रौचकांचनाः ॥३९॥ त्वयियेचापिवत्स्यंतिदेवगंधर्वदानवाः ॥तेभविष्यंतिभक्ताश्चप्रभयाकांचनप्रभाः ॥ ४० ॥ विश्वेदेवाश्चवसवोमरुतश्चदिवौकसः ॥ आगत्यपश्चिमांसंध्यांमेरुमुत्तमपर्वतम् ॥ ४१ ॥

हैं और फूले फले हुये सुवर्ण मय वृक्षोंके समूहसे शोभायमान हैं॥ ३७ ॥ उन साठ हजार पर्वतोंके मध्यमें येक अति उत्तम राजाकी समान सुवर्ण मय मेरुपर्वत है; पहले सूर्यनारायणने प्रसन्न होकर इसको वरदान दियाथा ॥ ३८ ॥ वह वरदान इस प्रकार दियाथा कि येक समय सूर्य नारायणने उस अचलसे कहाकि हमारे प्रसादसे तुम्हारे आश्रित समस्त पर्वत दिन रात्रिमें सुवर्ण मय हो जांयगे ॥ ३९ ॥ और तुम्हारे ऊपर जो देव दानव और गन्धर्व गण वास करेंगे वह हमारे भक्त गण सुवर्णकी समान प्रभावान हो जायँगे ॥ ४० ॥ इस सावर्णि-मेरु पर्वत पर विश्वदेव

प्रकारके विविध रमणीक सरोवर देखे ॥ १४ ॥ वहांपर धातुमंडित उदय पर्वत और अप्सराओंके रहनेंका स्थान क्षीरसमुद्रभी देखा॥ १५ ॥ वहां भी हमारे पोछे२ वालि आया तब वहांसे हम भागते२फिर उदयाचलपर्वतपर आये ॥ १६ ॥ पूर्व दिशासे हम विन्ध्याचल और विविध वृक्षोंसे युक्त चन्दन वृक्ष परिशोभित दक्षिणदिशाको भागे ॥ १७ ॥ वहां परभी दूसरे पर्वत पर हमनें अपने पोछे वालिको भागते हुए देखा तब हम वहांसेभी भागे और फिर पश्चिम दिशाको आये ॥ १८ ॥ पश्चिम दिशामें विविध देश अनेक पर्वत, और गिरिश्रेष्ठ अस्ताचलको

उदयंतत्रपश्यामिपर्वतंधातुमंडितम् ॥ क्षीरोदंसागरंचैवनित्यमप्सरसालयम् ॥ १५ ॥ परिकाल्यमानस्तुतदावालिनाभिद्रुतोह्यहम् ॥ पुनरावृत्यसहसाप्रस्थितोऽहंतदाविभो ॥ १६ ॥ दिशस्तस्यास्ततोभूयःप्रस्थितोदक्षिणांदिशम् ॥ विंध्यपादपसंकीर्णांचंदनद्रुमशोभिताम् ॥ १७ ॥ द्रुमशैलांतरेपश्यन्भूयोदक्षिणतोपराम् ॥ अपरांचदिशंप्राप्तोवालिनासमभिद्रुतः ॥ १८ ॥ सपश्यन्विविधान्देशानस्तंचगिरिसत्तमम् ॥ प्राप्यचास्तंगिरिश्रेष्ठमुत्तरंसंप्रधावितः ॥ १९ ॥ हिमवंतंचमेरुंचसमुद्रंचतथोत्तरम् ॥ यदानविंदेशरणंवालिनासमभिद्रुतः ॥ २० ॥ ततोमांबुद्धिसंपन्नोहनुमान्वाक्यमब्रवीत् ॥ इदानींमेस्मृतंराजन्यथावालीहरीश्वरः ॥ २१ ॥ मतंगेनतदाशप्तोह्यस्मिन्नाश्रममंडले ॥ प्रविशेद्यदिवावालीमूर्धास्यशतधाभवेत् ॥ २२ ॥ तत्रवासःसुखोऽस्माकंनिरुद्विग्नोभविष्यति ॥ तत्रपर्वतमासाद्यऋष्यमूकंनृपात्मज ॥ २३ ॥

देख, वहांभी वालिके आनेंका समाचार पाय फिर उत्तर दिशाको भागे ॥ १९ ॥ उत्तर दिशामें पहुँच हिमवान्, मेरु और उत्तर समुद्रतक हम चले गये, परन्तु वालिके भयसे हमको कहीं शरण नहीं मिली ॥२० ॥तब बुद्धिमान् हनुमानजीनें हमसे कहा कि हे राजन् ! इस समय हमको याद आया कि यह वानरराज वालि ॥ २१ ॥ मतंग मुनिके शापसे शापित जब उस आश्रममंडलमें प्रवेश करेगा तब उसके मस्तकके शत खंड हो जाँयगे ॥ २२ ॥वहांपर वास करनेंसे हम सब वेखटके सुखसे वास कर सकेंगे; जब हनुमानजीनें ऐसा कहा तो हम ऋष्यमूक पर्वत पर आये॥२३॥

तक जासकतेहैं कि जहांतक सूर्यका प्रकाश और मर्यादा है ; और इसके आगे हम कुछभी नहीं जानते हैं ॥ ५१ ॥ रावणका स्थान और जानकी जीके निकट गमन करनेंके लिये अस्ताचलतक चले जाकर एक मास पूर्ण होते २ लौट आओ ॥ ५२ ॥ एक माससे ऊपर वहांपर मत लगाना और जो एक माससे पीछे आवेगा उसको हम मार डालेंगे, हमारे श्वशुर महावीर्य सुपेण तुम लोगोंके साथ जाँयगे ॥ ५३ ॥ तुम सब उनकी आज्ञामें रहना; और जो कुछ यह कहैं वह श्रवण करना क्योंकि यह हमारे श्वशुर महाबलवान् और महाबलशाली हैं इस्से गुरू हैं ॥ ५४ ॥ और

अवगम्यतुवैदेहींनिलयंरावणस्यच ॥ अस्तंपर्वतमासाद्यपूर्णेमासेनिवर्तत ॥ ५२ ॥ ऊर्ध्वंमासान्नवस्तव्यंवसन्वध्यो भवेन्मम ॥ सहैवशूरोयुष्माभिःश्वशुरोमेगमिष्यति ॥ ५३ ॥ श्रोतव्यंसर्वमेतस्यभवद्भिर्दिष्टकारिभिः ॥ गुरुरेषम हाबाहुःश्वशुरोमेमहाबलः ॥ ५४ ॥ भवंतश्चापिविक्रांताःप्रमाणंसर्वएवहि ॥ प्रमाणमेनंसंस्थाप्यपश्यध्वंपश्चिमांदिशम् ॥ ५५ ॥ कृतकृत्याभविष्यामःकृतस्यप्रतिकर्मणा ॥ अतोन्यदपियत्कार्यंकार्यस्यास्यप्रियंभवेत् ॥ संप्रधार्य भवद्भिश्चदेशकालार्थसंहितम् ॥ ५६ ॥ ततःसुषेणप्रमुखाःप्लवंगमाःसुग्रीववाक्यंनिपुणंनिशम्य ॥ आमंत्र्यसर्वेप्लवगाधि पास्तेजग्मुर्दिशंतांवरुणाभिगुप्ताम् ॥ ५७ ॥ ॥ इतिश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेद्वि चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४२ ॥

पश्चिम दिशाको खोजो ॥ ५५ ॥ तुम सबभी पराक्रमी और कर्त्तव्य कार्यका निश्चय करनेंवाले हो; तथापि इनको नियम बतलानेंवाला जानकर जब उपकारका बदला प्रत्युपकार देदेंगे तब हम लोग कृतकार्य हो जांयगे इसके सिवाय रावणका वध होनेंतक जो समस्त प्रिय कार्य हैं उन सबको तुम लोग देश काल और अर्थके अनुसार विचार लेना ॥ ५६ ॥ तब सुषेणादि निपुण वानरगण सुग्रीवजीके विनीत वचन सुन उनसे बिदाले प्रीति सहित पश्चिम दिशाको चले गये ॥ ५७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

सब वानरोंके सहित सीताजीको ढूंडकर सुग्रीवजीके निकट उपस्थित हुआ ॥ ९ ॥ उस प्रस्रवणगिरिपर लक्ष्मण सहित रामचन्द्रको प्रणाम कर सुग्रीवजीसे बोला ॥ १० ॥ हमनें समस्त पर्वत, गहन, वन, सागर, नदी, जनपद, ग्राम, पुरादि ढूंडे ॥ ११ ॥ आपके बताये हुए सब गुहादि स्थान ढूंडे और अनेक भांतिके कुंजभी बार २ खोजे ॥ १२ ॥ उनमें जो गहन देशथे उनको वारंवार ढूँढा जो दुर्ग गहन विषम स्थानथे बडे २ जीवोंके रहनेंके स्थानमें ढूंड और उन्हें मार जो रुरु देशहैं उन्हें बार २ देखा ॥ १३ ॥ हे वानरेन्द्र ! महावीर्यवान् और महाकुलमें उत्पन्न

तंप्रस्रवणपृष्ठस्थंसमासाद्याभिवाद्यच ॥ आसीनंसहरामेणसुग्रीवमिदमब्रुवन् ॥१०॥ विचिताःपर्वताःसर्वेवनानिगहनानिच ॥ निम्नगाःसागरांताश्चसर्वेजनपदाश्चये ॥ ११ ॥ गृहाश्चविचिताःसर्वायाश्चतेपरिकीर्तिताः ॥ विचिताश्चमहागुल्मालताविततसंतताः ॥ १२ ॥ गहनेषुचदेशेषुदुर्गेषुविषमेषुच ॥ सत्त्वान्यतिप्रमाणानिविचितानिहतानिच ॥ येचैवगहनादेशाविचितास्तेपुनःपुनः ॥ १३ ॥ उदारसत्त्वाभिजनोहनूमान्समैथिलींज्ञास्यतिवानरेंद्र ॥ दिशंतुयामेवगतातुसीतातामास्थितोवायुसुतोहनूमान् ॥ १४ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेसप्तचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४७ ॥ सहतारांगदाभ्यांतुसहसाहनुमान्कपिः ॥ सुग्रीवेणयथोद्दिष्टंगंतुंदेशंप्रचक्रमे ॥ १ ॥ सतुदूरमुपागम्यसर्वैस्तैःकपिसत्तमैः ॥ ततोविचित्यविंध्यस्यगुहाश्चगहनानिच ॥ २ ॥ पर्वताग्रनदीदुर्गान्सरांसिविपुलद्रुमान् ॥ वृक्षखंडांश्चविविधान्पर्वतान्वनपादपान् ॥ ३ ॥ अन्वेषमाणास्तेसर्वेवानराःसर्वतोदिशम् ॥ नसीतांददृशुर्वीरामैथिलींजनकात्मजाम् ॥ ४ ॥

हुए हनुमानजी सीताको अवश्यही जानसकेंगे क्योंकि सीताजी जिस दिशाको गईहैं; पवनकुमार हनुमान्जी उसी दक्षिण दिशामें गयेहैं॥१४॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० किष्किन्धाकांडे सप्तचत्वारिंशःसर्गः॥ ४७ ॥ इधर कपिवर हनुमानजी तार और अंगदजीके सहित सुग्रीवजीकी बताई हुई दिशामें गमन करने लगे ॥ १ ॥ वह समस्त कपिगणोंके सहित दूर गमन करके विन्ध्याचलकी सघन गुहादि खोजनें लगे ॥ २ ॥ पर्वत और उनके आगे बहती हुई नदी दुर्गम स्थान सरोवर अनेक तरुवर सघनवृक्षोंसे युक्त विविध पर्वत ॥ ३ ॥भली भांति सब वानरोंनें दक्षिण दिशामें

श्रीरामचन्द्रजी सर्व प्राणियोंके मान्य और प्रियहैं; सो यह हमारे ऊपर परम प्रसन्न होरहेहैं; तुम लोग अपनी बुद्धि और विक्रमसे जैसे होसके वैसे ब हुतसे दुर्गम स्थान, नदी और पर्वत सबमें जानकीजीको ढूंडो॥९॥१०॥ उस उत्तर दिशाकी ओर जानेमें म्लेक्ष, पुलिन्द, शूरसेन, प्रस्थल, भरत, कुरु, मद्रक, ॥ ११ ॥ कम्बोज, वरद, यवन, और शकोंके नगर देखकर हिमालय पर्वतको खोजना ॥ १२ ॥ लोध्र और पद्मक वनमें और देव दारुके वनमें जानकीजी और रावण का अनुसन्धान करना तुम्हारा कर्तव्यहै ॥ १३ ॥ फिर सोमाश्रमपर जाय देवता और गन्धर्वगणोंसे सेवित

इमानिबहुदुर्गाणिनद्यःशैलांतराणिच ॥ भवंतःपरिमार्गंतुबुद्धिविक्रमसंपदा ॥ १० ॥ तत्रम्लेछान्पुलिंदांश्चशूरसेनांस्त थैवच ॥ प्रस्थलान्भरतांश्चैवकुरूंश्चसहमद्रकैः ॥ ११ ॥ कांबोजयवनांश्चैवशकानांपत्तनानिच ॥ अन्वीक्ष्यवरदांश्चै वहिमवंतंविचिन्वथ ॥ १२ ॥ लोध्रपद्मकखंडेषुदेवदारुवनेषुच ॥ रावणःसहवैदेह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥ १३ ॥ ततः सोमाश्रमंगत्वादेवगंधर्वसेवितम् ॥ कालंनाममहासानुंपर्वतंतंगमिष्यथ ॥ १४ ॥ महत्सुतस्यशैलेषुपर्वतेषुगुहासुच ॥ विचिन्वतमहाभागांरामपत्नीमनिंदिताम् ॥ १५ ॥ तमतिक्रम्यशैलेंद्रंहेमगर्भंमहागिरिम् ॥ ततःसुदर्शनंनामपर्वतंगं तुमर्हथ ॥ १६ ॥ ततोदेवसखानामपर्वतःपतगालयः ॥ नानापक्षिसमाकीर्णोविविधद्रुमभूषितः ॥ १७ ॥ तस्यकां चनखंडेषुनिर्दरेषुगुहासुच ॥ रावणःसहवैदेह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥ १८ ॥ तमतिक्रम्यचाकाशंसर्वतःशतयो जनम् ॥ अपर्वतनदीवृक्षंसर्वसत्त्वविवर्जितम् ॥ १९ ॥

बडे २ कँगूरोंसे युक्त काल नामक पर्वतको तुम लोग देखोगे ॥ १४ ॥ उस पर्वतकी बडी कन्दराओंमें और सब दुर्गम स्थानोंमें उन निन्दा रहि त श्रीरामचन्द्रजीकी भार्याको तुम लोग ढूंडना ॥ १५ ॥ उस काल पर्वतको नाँघकर हेमगर्भ महापर्वत सुदर्शनपर तुम लोग जाओगे ॥ १६ ॥ फिर अनेक भांतिके पक्षियोंसे परिपूर्ण और विविध प्रकारके वृक्षोंसे शोभायमान पक्षि लोगोंका वासस्थान देवसखा नाम महा पर्वतहै ॥ १७ ॥ उसकी सुवर्णमय कन्दराओंमें, और समस्त निर्झरोंमें रावण और जानकीजीको तुम लोग ढूंडना ॥ १८ ॥ उस देवसखा पर्वतके आगे शत यो

तोंकी कन्दरायें ॥ १४ ॥ व नदियें आदि सबही खोजे पर उन महात्माओंनें वहांभी जनककुमारी सीताजीको न पाया ॥ १५ ॥ अथवा सुग्रीवजीके प्रियकारी श्रीरामचंद्रजीकी वनिता हरण करनेंवाले रावणकोभी नहीं देखा वह सब वानर लता और झाडियोंसे ढके उस भयंकर ॥ १६ ॥ वनमें प्रवेश करके देवताओंसे निर्भय हुए भयंकर कर्म करनेवाले एक राक्षसको देखते हुए वानरोंनें उस पर्वताकार घोर असुरको देख कर ॥ १७ ॥ दृढ रूपसे जांघिया आदि वस्त्र पहरे वह बली राक्षसभी उनसमस्त पर्वताकार वानरोंको देखकर उनसे बोला कि देखो मैं अभी तुम

प्रभवानिनदीनांचविचिन्वंतिसमाहिताः ॥ तत्रचापिमहात्मानोनापश्यन्जनकात्मजाम् ॥ १५ ॥ हर्तारंरावणं वापिसुग्रीवप्रियकारिणः ॥ तेप्रविश्यतुतंभीमंलतागुल्मसमावृतम् ॥ १६ ॥ ददृशुर्भीमकर्माणमसुरंसुरनिर्भयम् ॥ तंदृष्ट्वावानराघोरंस्थितंशैलमिवासुरम् ॥ १७ ॥ गाढंपरिहिताःसर्वेदृष्ट्वातंपर्वतोपमम् ॥ सोपितान्वानरान्सर्वान्नष्टाःस्थेत्यब्रवीद्बली ॥ १८ ॥ अभ्यधावतसंक्रुद्धोमुष्टिमुद्यम्यसंगतम् ॥ तमापतंतंसहसावालिपुत्रोंगदस्तदा ॥ १९ ॥ रावणोऽयमितिज्ञात्वातलेनाभिजघानह ॥ सवालिपुत्राभिहतोवक्त्राच्छोणितमुद्वमन् ॥ २० ॥ असुरोन्यपतद्भूमौपर्यस्तइवपर्वतः ॥ तेतुतस्मिन्निरुच्छ्वासेवानराजितकाशिनः ॥ २१ ॥ विचिन्वन्प्रायशस्तत्रसर्वंतेगिरिगह्वरम् ॥ विचितंतुततःसर्वंसर्वेतेकाननौकसः ॥ २२ ॥

सबको मारे डालताहूं ॥ १८ ॥ यह कहकर घूसातान क्रोधकर वह उनसब वानरोंपै धाया उसको इस भांतिसे आता हुआ देखकर सहसा वालिकुमार अंगदजीने ॥ १९ ॥ यही रावणहै यह समझकर उसके एक चपेटलगाई वह वालिपुत्र अंगदजीके चपटाघातसे व्याकुल हो मुखमें रुधिर वमन करता ॥ २० ॥ उखडेहुए पर्वतकी समान वह राक्षस पृथ्वीपर गिरा, उस असुरके मृतक हो जानेंसे वानरगण विजयलक्ष्मी पाय परमानंदको प्राप्त हुए ॥ २१ ॥फिर उन समस्त वानरोंनें पर्वतकी समस्त कंदराओंको और बनको ढूंढा

नस सरोवरहै, वहांपर देवता, राक्षस और मनुष्यादि जीव गणोंके पहुँचनेंकी गति नहींहे ॥ २८ ॥ इसकारणसे युक्ति पूर्वक तुम सब उस पर्वतके छोटे और बडे शृंगोंको देखना, क्रौञ्च पर्वतसे आगे चलनें पर मेनाक नामपर्वत दिखाई देगा ॥ २९ ॥ उस पर मयदानवने आपही अपनें रहनेंके स्थानको बनायाहै। उस मेनाकके शृंग; प्रस्थ; और कन्दराओंमें सीताजीको ढूंडना ॥ ३० ॥ यह मेनाक पर्वत अश्वमुखी (किन्नरी) स्त्रियोंका भवनहै, इस देशको नांघकर सिद्धसेवित आश्रमोंपर पहुँचोगे ॥ ३१ ॥ वहांपर सिद्ध, वैखानस, वालखिल्य, आदि तपस्वी गण वास करतेहैं; वह पाप रहित सिद्ध व तपस्वियों गणोंके वन्दन करनेके योग्यहैं ॥ ३२ ॥ इस कारण विनय सहित उन सब लोगोंसे सीताजीका समाचार पूछना

सचसर्वैर्विचेतव्यःससानुप्रस्थभूधरः ॥ क्रौंचंगिरिमतिक्रम्यमेनाकोनामपर्वतः ॥ २९ ॥ मयस्यभवनंतत्रदानवस्यस्वयंकृतम् ॥ मैनाकस्तुविचेतव्यःससानुप्रस्थकंदरः ॥ ३० ॥ स्त्रीणामश्वमुखीनांतुनिकेतस्तत्रतत्रतु ॥ तंदेशंसमतिक्रम्यआश्रमंसिद्धसेवितम् ॥ ३१ ॥ सिद्धावैखानसायत्रवालखिल्याश्चतापसाः ॥ वंदितव्यास्ततःसिद्धास्तपसावीतकल्मषाः ॥ ३२ ॥ प्रष्टव्याचापिसीतायाःप्रवृत्तिर्विनयान्वितैः ॥ हिमपुष्करसंछन्नंतत्रवैखानसंसरः ॥ ३३ ॥ तरुणादित्यसंकाशैर्हंसैर्विचरितंशुभैः ॥ औपवाह्यःकुवेरस्यसार्वभौमइतिस्मृतः ॥ ३४ ॥ गजःपर्येतितंदेशंसदासहकरेणुभिः ॥ तत्सरःसमतिक्रम्यनष्टचंद्रदिवाकरम् ॥ अनक्षत्रगणंव्योमनिष्पयोदमनादितम् ॥ ३५ ॥ गभस्तिभिरिवार्कस्यसतुदेशःप्रकाश्यते ॥ विश्राम्यद्भिस्तपःसिद्धैर्देवकल्पैःस्वयंप्रभैः ॥ ३६ ॥ तंतुदेशमतिक्रम्यशैलोदानामनिम्नगा ॥ उभयोस्तीरयोस्तस्याःकीचकानामवेणवः ३७ ॥

उचितहै। वहांपर एक वैखानस नाम सरोवरहै। जिसमें सुवर्णके कमल खिल रहेहैं ॥ ३३ ॥ उस सरोवरपर प्रभात कालके सूर्यकी समान रंग वाले शुभ हंसगण भ्रमण किया करतेहैं और कुवेरजीको सवारीका सार्वभौम नामक ॥ ३४ ॥ गज अपनी हथनियोंके साथ वहां विचरा करताहै; इस सरोवरके नांघनेपर सूर्य चंद्र विहीन और नक्षत्र व मेघोंसे रहित नित्य आकाश स्थलहै ॥ ३५ ॥ वहांपर तो केवल सूर्य नारायणकी किरणोंसे प्रकाश होता रहताहै; वहांपर अपनेही तेजकी प्रभासे दीप्तिमान देव समान सिद्ध लोग तप किया करतेहैं ॥ ३६ ॥ उस देशके आगे शैलोदा नामक

सबको जरा २ करके खोजो ॥ ७ ॥ जो लोग कार्यको करते हैं उनको उस कार्यका फल अवश्यही मिलता है परन्तु एक बार खेदयुक्त होनेसे फिर उत्साह आना अत्यन्त कठिन हो जाता है ॥ ८ ॥ हे वानरगण! सुग्रीवजी बडे क्रोधी राजा हैं; वह बडा कडा दंड दिया करते हैं; इसलिये उन से और महात्मा श्रीरामचन्द्रजीसे भय करना उचित है ॥ ९ ॥ तुम्हारे सबके हित करनेंहीके लिये हमनें ऐसा कहा है; यदि रुचि हो तो इस कार्य को करो; जिस्से जितना कार्य होसके उतनाही कार्य करे; और तुमनें जो कुछ हितकारी बात विचारी हो वहभी कहो ॥ १० ॥ अंगदजीके वचन सुनकर गन्धमादन नामक वानर प्यासके मारे और परिश्रमसे व्याकुल हो कहने लगा ॥ ११ ॥ अंगदजीने जो कुछ कहा वह हितकारी और अनुकू

अवश्यंकुर्वतांतस्यदृश्यतेकर्मणःफलम् ॥ परंनिर्वेदमागम्यनहिनोन्मीलनंक्षमम् ॥ ८ ॥ सुग्रीवःक्रोधनोराजाती क्ष्णदंडश्चवानराः ॥ भेतव्यंतस्यसततंरामस्यचमहात्मनः ॥ ९ ॥ हितार्थमेतदुक्तंवःक्रियतांयदिरोचते ॥ उच्यतां हिक्षमंयत्तत्सर्वेषामेववानराः ॥ १० ॥ अंगदस्यवचःश्रुत्वावचनंगंधमादनः ॥ उवाचव्यक्तयावाचापिपासाश्रमखिन्न या ॥ ११ ॥ सदृशंखलुवोवाक्यमंगदोयदुवाचह ॥ हितंचैवानुकूलंचक्रियतामस्यभाषितम् ॥ १२ ॥ पुनर्मार्गाम हेशैलान्कंदरांश्चशिलास्तथा ॥ काननानिचशून्यानिगिरिप्रस्रवणानिच ॥ १३ ॥ यथोद्दिष्टानिसर्वाणिसुग्रीवेणमहा त्मना ॥ विचिन्वंतुवनंसर्वेगिरिदुर्गाणिसंगताः ॥ १४ ॥ ततःसमुत्थायपुनर्वानरास्तेमहाबलाः ॥ विंध्यकाननसंकी र्णांविचेरुर्दक्षिणांदिशम् ॥ १५ ॥ तेशारदाभ्रप्रतिमंश्रीमद्रजतपर्वतम् ॥ शृंगवंतंदरीवंतमधिरुह्यचवानराः ॥ १६ ॥ तत्रलोध्रवनंरम्यंसप्तपर्णवनानिच ॥ विचिन्वंतोहरिवराःसीतादर्शनकांक्षिणः ॥ १७ ॥

ल है इसलिये इनके कहनेंके अनुसार कार्य करो ॥ १२ ॥ हम सब जन पर्वत कन्दरायें, शिला, वन और पर्वतोंके शूने स्थान ढूंडे ॥ १३ ॥ जिस प्रकार सुग्रीवजीनें बताया है उसी प्रकारसे गिरिदुर्ग और पर्वतोंके झरनें सब फिरकर ढूंडो ॥ १४ ॥ यह सुनकर समस्तही बलवान वानरगण फिर उठे और विन्ध्याचलकी कानन पूर्ण दक्षिण दिशामें घूमने लगे ॥ १५ ॥ घूमते २ उन्होंनें एक शरदकालकी मेघकी तुल्य रंगवाला शिखर और गुफादि युक्त चांदीका एक पर्वत देखा उसपर चढ ॥ १६ ॥ और उसी गिरिपर सीताजीके देखनेंकी इच्छा किये समस्त वानरोंनें सातपत्तेवाले

हुये मणियोंसे चित्रित होतेहैं ॥ ४६ ॥ किसी २ वृक्षोंमें सब ऋतुओंमेंपहरनेके योग्य वस्त्रही फला करतेहैं; और तरुवरमें बडे मोलके खिलौनें फला करतेहैं ॥ ४७ ॥ बहुतसे वृक्षोंमें चित्र विचित्र विस्तरे फले करतेहैं किसी २ वृक्षोंमें मनोहर हार ॥ ४८ ॥ और बहुतसे वृक्षोंमें बडे मोलकी सवारियां और खानें पीनेंकी वस्तुयें उत्पन्न होतीहैं; उस स्थानमें रूपयौवन सम्पन्न गुण युक्त स्त्रियांभी फलतीहैं ॥ ४९ ॥ दीप्यमान गन्धर्वगण किन्नरगण, सिद्धगण, नागगण, विद्याधरगण, अपनी २ स्त्रियोंके सहित वहां विहार करतेहैं ॥ ५० ॥ वह सबही पुण्यवान्, सबही रति परायण सबही कामभोग युक्त होते और अपनी २ स्त्रियोंके सहित वास करतेहैं ॥ ५१ ॥ वहांपर समस्त जीव गणोंके रमणीक हास्य स्वरके सहित

सर्वर्तुसुखसेव्यानिफलंत्यन्येनगोत्तमाः॥ महार्हमणिचित्राणिफलंत्यन्येनगोत्तमाः ॥ ४७ ॥शयनानिप्रसूयंतेचित्रास्त रणवंतिच ॥ मनःकांतानिमाल्यानिफलंत्यत्रापरेद्रुमाः॥ ४८ ॥पानानिचमहार्हाणिभक्ष्याणिविविधानिच ॥ स्त्रियश्चगु णसंपन्नारूपयौवनलक्षिताः ॥ ४९ ॥ गंधर्वाःकिन्नराःसिद्धानागाविद्याधरास्तथा ॥ रमंतेसततंतत्रनारीभिर्भास्वरप्रभाः ॥ ५० ॥सर्वेसुकृतकर्माणःसर्वेरतिपरायणाः॥ सर्वेकामार्थसहितावसंतिसहयोषितः ॥ ५१ ॥ गीतवादित्रनिर्घोषःसोत्कृ ष्टहसितस्वरैः ॥ श्रूयतेसततंतत्रसर्वभूतमनोरमः ॥ ५२ ॥ तत्रनामुदितःकश्चिन्नात्रकश्चिदसत्प्रियः ॥ अहन्यहनिवर्धते गुणास्तत्रमनोरमाः ॥ ५३ ॥ तमतिक्रम्यशैलेंद्रमुत्तरःपयसांनिधिः ॥ तत्रसोमगिरिर्नाममध्येहेममयोमहान् ॥ ५४ ॥ सतुदेशोविसूर्योपितस्यभासाप्रकाशते॥सूर्यलक्ष्म्याभिविज्ञेयस्तपतेवविवस्वता ॥ ५५ ॥ भगवांस्तत्रविश्वात्माशंभुरे कादशात्मकः ॥ ब्रह्मावसतिदेवेशोब्रह्मर्षिपरिवारितः ॥ ५६ ॥

गीत, और वाजोंकी ध्वनि सदाही सुनाई आया करतीहै ॥ ५२ ॥ वहांपर कोईभी असन्तुष्ट नहीं, किसीको किसी प्यारी वस्तुका वियोग नहीं वहांपर दिन २ मनोहर गुणोंकी भरती हुआ करतीहै ॥ ५३ ॥ जब उस पर्वतसे तुम आगे चलोगे तो उत्तर समुद्र आवेगा वहांपर सुवर्ण मय सोमनामक एक महा पर्वत विद्यमान है ॥ ५४ ॥ यद्यपि वहांपर सूर्यका प्रकाश नहीं है तथापि सोम पर्वतकी प्रभासे ही वहां ऐसा प्रकाश रहता है कि जैसा सूर्य युक्त देशमें रहता है ॥ ५५ ॥ वहांपर विश्वात्मा एकादश रुद्रात्मक महादेवजी और देवेश्वर ब्रह्माजी सब ब्रह्मर्षि गणोंके

कि अनेक प्रकारकी गुफा व सघन विस्तारित वन विद्यमानथे; हनुमानजीनें उन समस्त पर्वतोंको ढूंडा ॥ ४ ॥ परस्पर एक दूसरेके निकट रह कर एक २ करके गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गंधमादन, ॥ ५ ॥ मैन्द, द्विविद, हनुमान, जाम्बवान्, युवराज अंगद, तार, इन सबने वनमें फिरते हुये ॥ ६ ॥ पर्वतके समूहसे युक्त दक्षिणदिशाको ढूंडते भालते हुये एक अति ऐंडी गुफा देखी ॥७॥ उस का ऋक्षविल नामथा, वह अति दुर्गम और दानवोंसे रक्षित बेल पत्तोंसे ढक रहीथी. क्षुधा, और प्यास लगनेंके कारण थके जलपान करनेंकी इच्छा किये ॥८॥ लता पातादिकों से छाये उस महाविलको देखते हुये, उसमें से क्रौञ्च, हंस, सारस आदि पक्षी निकल रहेथे ॥ ९ ॥ जलसे भीगे कमल परागसे रँगीले अरुण चकवा चकवीभी

परस्परेणरहिताअन्योन्यस्याविदूरतः ॥ गजोगवाक्षोगवयःशरभोगंधमादनः ॥५॥ मैंदश्चद्विविदश्चैवहनूमान्जांबवानपि॥अंगदोयुवराजश्चतारश्चवनगोचरः॥६॥ गिरिजालावृतान्देशान्मार्गित्वादक्षिणांदिशम्॥विचिन्वंतस्ततस्तत्रदद्दशुर्विवृतंबिलं॥७॥दुर्गमृक्षबिलंनामदानवेनाभिरक्षितं॥ क्षुत्पिपासापरीतास्तुश्रांतास्तुसलिलार्थिनः॥८॥अवकीर्णंलतावृक्षैर्दद्दशुस्तेमहाबिलम् ॥ तत्रक्रौंचाश्चहंसाश्चसारसाश्चापिनिष्क्रमन् ॥ ९ ॥ जलार्द्राश्चक्रवाकाश्चरक्तांगाःपद्मरेणुभिः॥ ततस्तद्बिलमासाद्यसुगंधिदुरतिक्रमम् ॥ १० ॥ विस्मयव्यग्रमनसोबभूवुर्वानरर्षभाः॥ संजातपरिशंकास्तेतद्बिलंप्लवगोत्तमाः ॥ ११ ॥ अभ्यपद्यंतसंहृष्टास्तेजोवंतोमहाबलाः ॥ नानासत्त्वसमाकीर्णंदैत्येंद्रनिलयोपमम् ॥ ॥ १२ ॥ दुर्दर्शमिवघोरंचदुर्विगाह्यंचसर्वशः ॥ ततःपर्वतकूटाभोहनूमान्मारुतात्मजः ॥ १३ ॥ अब्रवीद्वानरान्घोरान्कांतारवनकोविदः ॥ गिरिजालावृतान्देशान्मार्गित्वादक्षिणांदिशम् ॥ १४ ॥

दृष्टि आये, उस सुगन्धिवान, वडे कठिनसे प्रवेश करने योग्य बिलको प्राप्त होकर ॥ १० ॥ सब वानरयूथपोंका मन विस्मयसे व्याकुल होगया उन सब वानर श्रेष्ठोंको उस बिलके विषयमें बडी शंका उत्पन्न हुई ॥ ११ ॥ वह तेजस्वी महा बलवान् वानर गण अनेक प्रकार के जीवोंसे परिपूर्ण राजा बलिके स्थानके तुल्य उस बिलके द्वारपर आये ॥ १२ ॥ वह बिल बडे कष्टसे दर्शन करनेंके योग्य अतिघोर सब स्थानोंमें दुर्गम थी, तब पर्वतकी समान पवनकुमार हनुमानजी ॥ १३ ॥ जोकि वनपर्वतोंका विषय भली भांति जानतेथे घोरदर्शन वानरोंसे बोले कि हम सबनें दक्षिणदिशामें

॥ ३ ॥ असुर, गन्धर्व, नाग, नर, और
था मेघोंके चलनेंके स्थान अम्बरमें; अथवा स्वर्गमें किम्वा सलिलमें,कहींभी तुम्हारी गति नहीं रुक सकती ॥ ३ ॥ असुर, गन्धर्व, नाग, नर, और
देवता ओंके लोक व समुद्र पृथ्वी और पातालादि समस्त लोकोंको तुमजानते हो ॥ ४ ॥ हे महावीर! क्या गतिमें, क्या तेजमें, क्या शीघ्रतामें,
सबमें तुम अपने पिता तेजस्वी पवनकीही समान हो ॥ ५ ॥ और तुम्हारी समान तेजशाली जीव तीनों लोकमें नहीं है; इस कारण जिस्से
सीताजीका पता लगजाय ऐसा यत्न करनेंमें तुमको विशेष यत्न करनाउचित है ॥ ६ ॥ हे नीति पंडित हनुमन्! तुममेंही बल बुद्धि, पराक्रम दे
श और कालज्ञान और नीति यह समस्तही विद्यमान हैं ॥ ७ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजी हनुमान्‌जीसेही कार्यकी सिद्धि विचार करकै, और हनुमानजीके

गतिर्वेगश्चतेजश्चलाघवंचमहाकपे॥
सासुराःसहगंधर्वाःसनागनरदेवताः॥विदिताःसर्वलोकास्तेससागरधराधराः॥४॥ गतिर्वेगश्चतेजश्चलाघवंचमहाकपे॥
पितुस्तेसदृशंवीरमारुतस्यमहौजसः ॥ ५ ॥ तेजसावापितेभूतंनसमंभुविविद्यते ॥ तद्यथालभ्यतेसीतातत्त्वमेवानु
चिंतय ॥ ६ ॥ त्वय्येवहनुमन्नस्तिबलंबुद्धिःपराक्रमः ॥ देशकालानुवृत्तिश्चनयश्चनयपंडित ॥ ७ ॥ ततःकार्यसमा
संगमवगम्यहनूमति ॥ विदित्वाहनुमंतंचचिंतयामासराघवः ॥ ८ ॥ सर्वथानिश्चितार्थोयंहनूमतिहरीश्वरः॥ निश्चि
तार्थतरश्चापिहनूमान्कार्यसाधने ॥ ९ ॥ तदेवप्रस्थितस्यास्यपरिज्ञातस्यकर्मभिः ॥ भर्त्रापरिगृहीतस्यध्रुवःकार्यफ
लोदयः ॥ १० ॥ तंसमीक्ष्यमहातेजाव्यवसायोत्तरंहरिम् ॥ कृतार्थइवसंहृष्टःप्रहृष्टेंद्रियमानसः ॥ ११ ॥ ददौतस्य
ततःप्रीतःस्वनामांकोपशोभितम् ॥ अंगुलीयमभिज्ञानंराजपुत्र्याःपरंतपः ॥ १२ ॥

सिद्धि विचार करकै, और हनुमानजीके
बल विक्रमकी ओर सीताजीके उद्धार करनेंकी गुरुताको मनहीमनमें विचारकरनेलगें ८ श्रीरामचंद्रजीनें विचाराकि,कपिराजसुग्रीवजी यहसमझेहुयेहैं कि
हनुमानजीसेही कार्यकी सिद्धि होगी और हमाराभी अधिक तर यही विचारहै कि इनसेही कार्यकी सिद्धिहोगी ॥ ९ ॥ यह हनुमानजी अपने कर्मोंसे
प्रसिद्ध हुयेहैं और राजाभी इनके ऊपर कृपा करताहै, यदि यह वीरकेशरी सीताजीके ढूँडनेंको जांयगे तो अवश्यही कार्यकी सिद्धिहोगी ॥१०॥
महा तेजवान रामचंद्रजी हनुमानजीको कार्यके साधन करनेंमें श्रेष्ठ विचारकरके कृतार्थकी समान सन्तुष्ट होगये हर्षके कारण उनकी सब इन्द्रियां
प्रफुल्लित होगई ॥ ११ ॥ तिसके पीछे पर वीर घाती श्रीरामचंद्रजीनें प्रसन्नहोकर एक अंगूठी जिसपर उनका नाम खुदा हुआथा सीताजीको निशानी

पडे रहे क्योंकि वह बहुत दुर्बलहोरहेथे ॥ २३ ॥ उन वानरोंनें इधर उधर देखकर समझा कि बस अब यहींपर हमारा मरण होगा फिर बडे कष्ट और यत्नसे चले तौ आगे एक बहुत प्रकाशमय वन दृष्टि आया ॥ २४ ॥ उस वनके सुवर्ण मय वृक्षोंकी प्रभा अग्निकी प्रभाके तुल्यथी, उन वृक्षोंमें ताल, तमाल, पुन्नाग, वंजुल, धव, ॥ २५ ॥ चंपक, नाग, कर्णिकार यह सब वृक्ष फूलरहेथे और विचित्र लाल वर्णके गुच्छे और कोंपल इन वृक्षोंमें लगेथे ॥ २६ ॥ उन वृक्षोंपर जो बेलें छाईहुईथीं, वही उनके गहनेंकी समान शोभायमान हो रहीथीं, उन सबके थांवले वैदूर्य्यमणिके बनाये गयेथे ॥ २७ ॥ यह सब वृक्ष कांचन मय होनेंसे प्रकाशमानथे और सरोवरोंमें नील वैदूर्यमणिके सजीव पक्षी गुंजार कर

आलोकंददृशुर्वीरानिराशाजीवितेयदा ॥ ततस्तंदेशमागम्यसौम्यावितिमिरंवनम्॥ २४॥ददृशुःकांचनान्वृक्षान्दीप्तवैश्वानरप्रभान् ॥ सालांस्तालांस्तमालांश्चपुन्नागान्वंजुलान्धवान् ॥ २५ ॥ चंपकान्नागवृक्षांश्चकर्णिकारांश्चपुष्पितान् ॥ स्तवकैःकांचनैश्चित्रैरक्तैःकिसलयैस्तथा ॥ २६ ॥ आपीडैश्चलताभिश्चहेमाभरणभूषितान् ॥ तरुणादित्यसंकाशान्वैदूर्यमयवेदिकान् ॥ २७ ॥ विभ्राजमानान्वपुषापादपांश्चहिरण्मयान् ॥ नीलवैदूर्यवर्णाश्चपद्मिनीः पतगैर्वृताः ॥२८॥ महद्भिःकांचनैर्वृक्षैर्वृतंबालार्कसन्निभैः ॥ जातरूपमयैर्मत्स्यैर्महद्भिश्चाथपंकजैः॥२९॥नलिनीस्तत्रददृशुःप्रसन्नसलिलायुताः ॥ कांचनानिविमानानिराजतानितथैवच ॥ ३० ॥ तपनीयगवाक्षाणिमुक्ताजालावृतानिच ॥ हैमराजतभौमानिवैदूर्यमणिमंतिच ॥ ३१ ॥ ददृशुस्तत्रहरयोगृहमुख्यानिसर्वशः ॥ पुष्पितान्फलिनोवृक्षान्प्रवालमणिसन्निभान् ॥ ३२ ॥ कांचनभ्रमरांश्चैवमधूनिचसमंततः ॥ मणिकांचनचित्राणिशयनान्यासनानिच ॥ ३३ ॥

रहेथे ॥ २८ ॥ बालसूर्यके समान रंगवाले बडे २ वृक्ष सुवर्णके ही लग रहेथे,और सरोवरोंमें मीनभी सुवर्णके हीथे, कमलभी सब हेममयथे ॥२९॥ इस प्रकारकी स्वच्छ जल वाली पुष्करिणियोंके देखनेंके अतिरिक्त शत २ विमान वहांथे जिनमें अनेक चांदीके बनेथे अनेक सोनेके थे ॥३०॥ सब सुवर्णमय झरोखोंमें मोतियोंकी झालर लगीथीं, सुवर्ण व चांदोके बने वैदूर्यमणियुक्त ॥ ३१ ॥ वहां अनेक प्रकारके गृह वानरोंने देखे और फल पुष्प युक्त मूंगे मणियोंके वृक्षभी देखते हुए॥ ३२ ॥ सुवर्णमय भ्रमर और मधु और मणि काञ्चन सेवित सुवर्णके शयन करनें उठनें बैठनेंके

गण गमन करने लगे; श्रीरामचंद्रजी, लक्ष्मणजीके सहित उस प्रस्रवणपर्वतपर बसे ॥ ३ ॥ सीताजीका समाचार जाननेंमें एक महीनेंकी अवधि निश्चय कर रामचंद्रजी वहां बसे फिर हिमाचलसे युक्त रमणीक उत्तरदिशाको ॥ ४ ॥ कपिश्रेष्ठ शतवलि अपनी सेनाको लेकर गया और विनत नामक यूथनाथ उत्तर दिशाको चला ॥ ५ ॥ और तार अंगदादिसहित पवनपुत्र हनुमानजी अगस्त्यजीसे सेवित दक्षिण दिशाको गये ॥ ६ ॥ और वानर शार्दूल सुषेण वरुणजीसे पाली जातीहुई घोर पश्चिम दिशाकी ओर सिधारा, ॥ ७ ॥ तब सब ओरको यथानुरूप वानरोंकी सेनाको भेजकर कपिनाथ राजा सुग्रीवजी हर्षित चित्त हुये ॥ ८ ॥इस प्रकार भेजे जाकर सकल वानर यूथप अपनी २ बताई हुई दिशा

प्रतीक्षमाणस्तंमासंसीताधिगमनेकृतः ॥ उत्तरांतुदिशंरम्यांगिरिराजसमावृताम् ॥ ४ ॥ प्रतस्थेसहसावीरोहरिः शतबलिस्तदा ॥ पूर्वांदिशंप्रतिययौविनतोहरियूथपः ॥ ५ ॥ तारांगदादिसहितःप्लवगःपवनात्मजः ॥ अगस्त्याचरितामाशांदक्षिणांहरियूथपः ॥ ६ ॥ पश्चिमांचदिशंघोरांसुषेणःप्लवगेश्वरः ॥ प्रतस्थेहरिशार्दूलोदिशंवरुणपालिताम् ॥ ७ ॥ ततःसर्वादिशोराजाचोदयित्वायथातथम् ॥ कपिसेनापतिर्वीरोमुमोदसुखितःसुखम्ः ॥ ८ ॥ एवंसंचोदिताः सर्वेराज्ञावानरयूथपाः ॥ स्वांस्वां दिशमभिप्रेत्यत्वरिताःसंप्रतस्थिरे ॥ ९ ॥ नदंतश्चोन्नदंतश्चगर्जंतश्चप्लवंगमाः ॥ क्ष्वेडंतो धावमानाश्चविनदंतोमहाबलाः ॥ १० ॥ एवंसंचोदिताःसर्वेराज्ञावानरयूथपाः ॥ आनयिष्यामहेसीतांहनिष्यामश्चरावणम् ॥ ११ ॥ अहमेकोवधिष्यामिप्राप्तंरावणमाहवे ॥ ततश्चोन्मथ्यसहसाहरिष्येजनकात्मजाम् ॥ १२ ॥ वेपमानांश्रमेणाद्यभवद्भिःस्थीयतामिति ॥ एकएवाहरिष्यामिपातालादपिजानकीम् ॥ १३ ॥

ओंको शीघ्रतासे गमन करते हुये ॥ ९ ॥ महा बलवान् वानर दल, नाद,उच्चनाद, गर्जन और क्रोध पूर्वक अनेक प्रकारके शब्द करते हुये दौडे॥ १० ॥ वानरराज सुग्रीवजी करके भेजे हुये सब वानर हाथ जोडकर "हमरावणको मार डालेंगे" हम जानकीजीको ले आवेंगे ॥ ११ ॥ कोई २ बोलेकि हम इकलेही रणस्थलमें रावणको पाय सहित सहाय उसको मार जानकीजीको ले आवेंगे ॥ १२ ॥ कोई बोलेकि यदि जानकीजी पातालमें भीहों तो उन श्रमसे कम्पमान होती हुई कामनीको "स्थिर होओ" इस प्रकारसेसमझा दृढ सहित हम अकेलेही उनको वहांसे ले आवेंगे ॥ १३ ॥

धर्मचारिणी महाभागा तपस्विनीसे बोले॥१॥हम लोग सब भांतिसे थकित प्यासे और खिन्न होकर सहसा इस अंधकारसे ढके हुए बिलमें चले आयेहैं॥२॥ हम लोग अधिक करकै प्यासे होनेंके कारणही इस बडे भारी बिलमें प्रवेश कर आये हैं। परन्तु यहांपर आय यह विविध भांतिके अद्भुत पदार्थ देखे ॥ ३ ॥ जिनके देखतेही हम सब व्यथित, सम्भ्रान्त चित्त और हतबुद्धि होगये हैं, यह प्रभात कालीन सूर्यकी समान प्रभावाले सुवर्ण मय वृक्ष किसके हैं? ॥ ४ ॥ यह पवित्र भोजन करनेंके पदार्थ फल मूलादि किसके हैं? सुवर्णमय विमान चांदीके बने गृह ॥ ५ ॥

इदंप्रविष्टाःसहसाबिलंतिमिरसंवृतम् ॥ क्षुत्पिपासापरिश्रांताःपरिखिन्नाश्चसर्वशः ॥ २ ॥ महद्धरण्याविवरंप्रविष्टाःस्म पिपासिताः ॥ इमांस्त्वेवंविधान्भावान्विविधानद्भुतोपमान् ॥ ३ ॥ दृष्ट्वावयंप्रव्यथिताःसंभ्रांतानष्टचेतसः ॥ कस्यैते कांचनावृक्षास्तरुणादित्यसन्निभाः ॥ ४ ॥ शुचीन्यभ्यवहाराणिमूलानिचफलानिच ॥ कांचनानिविमानानिराजता निगृहाणिच ॥ ५ ॥ तपनीयगवाक्षाणिमणिजालावृतानिच ॥ पुष्पिताःफलवंतश्चपुण्याःसुरभिगंधयः ॥ ६ ॥ इमेजां बूनदमयाःपादपाःकस्यतेजसा ॥ कांचनानिचपद्मानिजातानिविमलेजले ॥ ७ ॥ कथंमत्स्याश्चसौवर्णादृश्यंतेस हकच्छपैः ॥ आत्मनस्त्वनुभावाद्वाकस्यवैतत्तपोबलम् ॥ ८ ॥ अजानतांनःसर्वेषांसर्वमाख्यातुमर्हसि ॥ एवमुक्ता हनुमतातापसीधर्मचारिणी ॥ ९ ॥ प्रत्युवाचहनूमंतंसर्वभूतहितेरता ॥ मयोनाममहातेजामायावीवानरर्षभ ॥ १० ॥

सुवर्णमय मणियोंके जाल लगे यह झरोखे पुष्पित फलवान् पुण्य दायक सुगन्धिसे महकते ॥ ६ ॥ जाम्बूनदके सुवर्णमय वृक्ष किसके तेजसे उत्पन्न हुये हैं सुवर्णमय कमल फूलसे विमल जलमें कैसे बने ॥ ७ ॥ मछलियां और कछुये किसके तेजसे सुवर्णमय हुये?यह सब आपके प्रभा वसे अथवा और किसी तपस्याके बलसे बनेहैं? ॥ ८ ॥ हम सब इस बातको कुछ भी नहीं जानते आप अनुग्रह करकै यह सब वृत्तान्त हमसें कहदी जिये, जब हनुमानजीनें उस धर्मचारिणी तपस्विनीसे ऐसा कहा ॥९॥ तब सब प्राणियोंके ऊपर दया करनेवाली वह तपस्विनी हनुमानजीको उत्तर

पर विनीत हो टिके रहे और येक संवत वीत गया तौभी वालि नहीं लौटा ॥ ५ ॥फिर रुधिरकी धारासे वह बिल परिपूर्ण होगया तिसको देख
हम विस्मित और भाईके शोकसे जर्जरित हो गये ॥ ६ ॥ फिर हमने बुद्धि रहित होकर स्थिर किया कि बडा भाई वालि मारागया ऐसा
समझ कर पर्वतकी समान येक शिला खंड बिलके द्वारपर लगाय उसको बंद किया ॥ ७ ॥ हमने विचाराकि महिष इसमेंसे निकलनेंका उद्योग करेगा
तो आपही इस्से दबकर मर जायगा ऐसा विचार, और भ्राता वालिके जीवनसे निराशहो हम किष्किन्धाको चले आये ॥ ८ ॥ नगरमें आय ता
रा और रुमा व बडे राज्यको पाय बन्धु बान्धवोंके सहित हम सुखसे वास करने लगे ॥ ९ ॥ फिर वानरश्रेष्ठ वालि उस दानवको मारकर

ततःक्षतजवेगेनआपुपूरेतदाबिलम् ॥ तदहंविस्मितोदृष्ट्वाभ्रातुःशोकविषार्दितः ॥ ६ ॥ अथाहंगतबुद्धिस्तुसुव्यक्तं
निहतोगुरुः ॥ शिलापर्वतसंकाशाबिलद्वारिमयाकृता ॥ ७ ॥ अशक्नुवन्निष्क्रमितुंमहिषोविनशिष्यति ॥ ततोहमागां
किष्किंधांनिराशस्तस्यजीविते ॥ ८ ॥ राज्यंचसुमहत्प्राप्यतारांचरुमयासह ॥ मित्रैश्चसहितस्तस्यवसामिविगत
ज्वरः ॥ ९ ॥ आजगामततोवालीहत्वातंवानरर्षभः ॥ ततोहमददांराज्यंगौरवाद्भययंत्रितः ॥ १० ॥समांजिघांसुर्दुष्टा
त्मावालीप्रव्यथितेंद्रियः ॥ परिकालयतेवालीधावंतंसचिवैःसह ॥ ११ ॥ ततोहंवालिनातेनसोनुबद्धःप्रधावितः ॥ न
दीश्चविविधाःपश्यन्वनानिनगराणिच ॥१२॥ आदर्शतलसंकाशाततोवैपृथिवीमया ॥ अलातचक्रप्रतिमादृष्टागोष्प
दवत्कृता ॥ १३ ॥ पूर्वांदिशंततोगत्वापश्यामिविविधान्द्रुमान् ॥ पर्वतान्सदरीन्रम्यान्सरांसिविविधानिच ॥ १४ ॥

नगरमें आया तब हमनें भयसे भीतहो और गौरवके हेतु फिर उसको राज्य देदिया ॥ १० ॥ दुष्टात्मा वालि व्यथित हो हमारे मार डालनेंकी
इच्छा करता हुआ हमारे पीछे दौडा तब हमभी अपने मंत्रियोंके सहित भागने लगे ॥ ११ ॥ वरन हमारे सबही साथी वालिके भयसें भागे
हमनें भागते २ मार्गमें अनेक भांतिकी नदियें वन नगर इत्यादि देखे ॥ १२ ॥ इसी प्रकारसे सब भूमि जिसका आकार अलातचक्रकी
समानहै, हमने गोपदके गढेकी समान अवलोकन करली ॥ १३ ॥ फिर पूर्व दिशामें जायकर विविध भांतिके वृक्ष गुफा सहित पर्वत और अनेक

और किस प्रकारसे तुमनें यह दुर्गम वन देखा तुम सबही इस व्यवहारके द्रव्योंको भोगकर फल मूल जल आदि भोजनकर पानी पीकरके अपने आनेका समस्त वृत्तान्त हमसे कहो ॥ १९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडेएकपंचाशः सर्गः ॥ ५१ ॥
ऐसा श्रवण करके सब वानरोंनें विश्रामकर भोजन पान किया तब वह धर्मचारिणी तपस्विनी एकाग्र चित्तहो उन वानरोंसे इस प्रकार बोली ॥ १ ॥
हे वानरो! यदि फल खायकर तुम्हारी थकावट मिट गईहो, और यदि हमारे श्रवण करनेंके अयोग्य नहो तो तुम्हारे आनेंकी कथाके श्रवण करनेंकी हम वासना करतीहैं ॥ २ ॥ पवनकुमार हनुमानजीनें उस तपस्विनीके यह वचन सुनकर सरल भावसे यथार्थ वृत्तान्त कहना आरंभ किया ॥ ३ ॥ इन्द्र और वरुण तुल्य सर्व लोकोंके राजा दशरथजीके पुत्र श्रीरामचंद्रजी दंडकवनमें आये ॥ ४ ॥ वह अपने भ्राता लक्ष्मण और अपनी भार्याके सहित वनमें आये; उनकी भार्याको जनस्थानसे बलात्कार रावण हरण करके ले गया ॥ ५ ॥ उनके सखा वीर सुग्रीवजी वानरोंके राजाहैं उन्होंनेंही हमको यहांपर भेजाहै ॥ ६ ॥ हम लोग अंगदादिप्रधान २ वानरोंके सहित अगस्त्यजीसे सेवित दक्षिण दिशामें आयेहैं॥७॥

कथंचेदंवनंदुर्गंयुष्माभिरुपलक्षितम् ॥ शुचीन्यभ्यवहाराणिमूलानिचफलानिच ॥ भुक्त्वापीत्वाचपानीयंसर्वंमेवक्तुमर्हसि ॥ १९ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेएकपंचाशःसर्गः ॥ ५१ ॥ ॥ ७॥अथ तानब्रवीत्सर्वान्विश्रांतान्हरियूथपान् ॥ इदंवचनमेकाग्रातापसीधर्मचारिणी ॥ १ ॥ वानरायदिवःखेदःप्रनष्टःफलभक्षणात् ॥ यदिचैतन्मयाश्राव्यंश्रोतुमिच्छामितांकथाम् ॥ २ ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वाहनूमान्मारुतात्मजः ॥ आर्जवेनयथातत्त्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ ३ ॥ राजासर्वस्यलोकस्यमहेंद्रवरुणोपमः ॥ रामोदाशरथिःश्रीमान्प्रविष्टोदंडकावनम् ॥ ४ ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्रावैदेह्यासहभार्यया ॥ तस्यभार्याजनस्थानाद्रावणेनहृताबलात् ॥ ५ ॥ वीरस्तस्यसखाराज्ञःसुग्रीवोनामवानरः ॥ राजावानरमुख्यानांयेनप्रस्थापितावयम् ॥ ६ ॥ अगस्त्यचरितामाशांदक्षिणांयमरक्षिताम् ॥ सहैभिर्वानरैर्मुख्यैरंगदप्रमुखैर्वयम् ॥ ७ ॥

वहांपर वालि मतंगजीके शाप भयसे भीत हो नहीं आया। हे राजन् इस प्रकारसे हम समस्त पृथ्वी मंडल दर्शन करके इस गुफामें आयेथे॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मी० आदि० कि० षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥ जानकीजीके ढूंडनेंके निमित्त आज्ञा पायकर सब कपिश्रेष्ठ अपने लिये नियत की हुई दिशाको गये ॥ १ ॥ वह लोग, सरोवर, नदियें, तृणस्थान (काछा)आकाश,नगर,सरित,दुर्गम स्थान और सब देश खोजनेंलगे॥२॥स मस्त वानर गण सुग्रीवजीके बताये हुए पर्वत वन और कानन सहित सब देशोंको ढूंडनें लगे॥३॥वह दिनके समय सीताजीके ढूंडनेंको आकाशमार्गमें

नविवेशतदावालीमतंगस्यभयात्तदा ॥ एवंमयातदाराजन्प्रत्यक्षमुपलक्षितम् ॥ पृथिवीमंडलंसर्वंगुहामस्म्यागत स्ततः ॥ २४ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०किष्किंधाकांडेषट्चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४६ ॥ ॥ ७॥ ॥ दर्शनार्थंतुवैदे ह्याःसर्वतःकपिकुंजराः ॥ व्यादिष्टाःकपिराजेनयथोक्तंजग्मुरंजसा ॥ १ ॥ तेसरांसिसरित्कक्षानाकाशंनगराणिच ॥ नदीदुर्गांस्तथादेशान्विचिन्वंतिसमंततः ॥ २ ॥ सुग्रीवेणसमाख्याताःसर्वेवानरयूथपाः ॥ तत्रदेशान्विचिन्वंतिसशै लवनकाननान् ॥ ३ ॥ विचित्यदिवसंसर्वेसीताधिगमनेधृताः ॥ समायांतिस्ममेदिन्यांनिशाकालेषुवानराः ॥ ४ ॥ सर्वर्तुकांश्चदेशेषुवानराःसफलान्द्रुमान् ॥ आसाद्यरजनींशय्यांचक्रुःसर्वेष्वहस्सुते ॥ ५ ॥ तदहःप्रथमंकृत्वामासेप्रस्रवणं गताः ॥ कपिराजेनसंगम्यनिराशाःकपिकुंजराः ॥ ६ ॥ विचित्यतुदिशंपूर्वांयथोक्तांसचिवैःसह ॥ अदृष्ट्वाविनतः सीतामाजगाममहाबलः ॥ ७ ॥ दिशमप्युत्तरांसर्वांविविच्यसमहाकपिः ॥ आगतःसहसैन्येनभीतःशतबलिस्तदा ॥ ८ ॥ सुषेणःपश्चिमामाशांविविच्यसहवानरैः ॥ समेत्यमासेपूर्णेतुसुग्रीवमुपचक्रमे ॥ ९ ॥

रह कर रात्रिके समय पृथ्वीपर आजातेथे ॥ ४ ॥ वह सब वानर दिनके समय देशोंमें समस्त ऋतुओं फलपुष्पशाली वृक्षोंको प्राप्त होकर रात्रिमें फलादि खाते और सोते ॥ ५ ॥ जिस दिवससे गमन कियाथा उस दिवस को प्रथम लगा कर एक मास वीतनेपर प्रथम दिनही आय २ कर सुग्री वजीके निकट एकत्र होने लगे ॥ ६ ॥ महावीर विनत अपनें मंत्रियोंके सहित पूर्वकी ओर सीताजीको ढूंड उनको न देख पाकर लौट आया ॥७॥ महाकपि शतबलि समस्त उत्तरदिशाको छान वीन कर अपनी सब सेनाके सहित लौट आया ॥ ८ ॥ सुषेण एक मास बीतजानेपर अपनें

पर हुए और आपनें हम लोगोंको बचाया ॥ १७ ॥ इसकारणसे यह वानरगण आपका क्या उपकार करें सो आप बताइये जब सब वानरोंनें सर्वज्ञा स्वयम्प्रभा तापसीसे ऐसा कहा तो ॥ १८ ॥ वह समस्त वानरयूथपोंसे बोली कि हम समस्त कार्य करनेंमें चतुर वानरोंके प्रति अत्यन्त सन्तुष्ट हुई ॥ १९ ॥ अपने धर्मानुसार चलती हुई हमारा किसी बातसे कुछ प्रयोजन नहींहै जब इस प्रकार उस तपस्विनीनें धर्म संगत शुभ वचन कहे ॥ २० ॥ तब हनुमानजी उस अनिन्दिता शुभनेत्र वाली तपस्विनीसे बोले कि आप धर्मचारिणीहैं इसलिये हम सबनेंही

ब्रूहिप्रत्युपकारार्थंकिंतेकुर्वंतुवानराः ॥ एवमुक्तातुसर्वज्ञावानरैस्तैःस्वयंप्रभा ॥ १८ ॥ प्रत्युवाचततःसर्वानिदंवानरयूथपान् ॥ सर्वेषांपरितुष्टास्मिवानराणांतरस्विनाम् ॥ १९ ॥ चरंत्याममधर्मेणनकार्यमिहकेनचित् ॥ इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०किष्किंधाकांडेद्विपंचाशःसर्गः ॥ ५२ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ एवमुक्तःशुभंवाक्यंतापस्याधर्मसंहितम्॥ २० ॥ उवाचहनुमान्वाक्यंतामनिंदितलोचनाम् ॥ शरणंत्वांप्रपन्नाःस्मःसर्वेवैधर्मचारिणीम् ॥ २१ ॥ यःकृतःसमयोस्मासुसुग्रीवेणमहात्मना ॥ सतुकालोव्यतिक्रांतोबिलेचपरिवर्तताम् ॥ २२ ॥ सात्वमस्माद्बिलादस्मादुत्तारयितुमर्हसि ॥ तस्मात्सुग्रीववचनादतिक्रांतान्गतायुषः ॥ २३ ॥ त्रातुमर्हसिनःसर्वान्सुग्रीवभयशंकितान् ॥ महच्चकार्यमस्माभिः कर्तव्यंधर्मचारिणि ॥ २४ ॥ तच्चापिनकृतंकार्यमस्माभिरिहवासिभिः ॥ एवमुक्ताहनुमतातापसीवाक्यमब्रवीत्॥२५॥ जीवताद्दुष्करंमन्येप्रविष्टेनविवर्तितुम् ॥ तपसःसुप्रभावेणनियमोपार्जितेनच ॥ २६ ॥

आपकी शरण ग्रहणकी ॥ २१ ॥ जो महात्मा सुग्रीवजीनें एक मासका समय हमें दियाथा वह समय तो इस बिलमेंही रहते २ बीत गया॥२२॥ इसलिये आप शीघ्रता सहित हमको इस बिलसे बाहर निकालिये क्योंकि उन सुग्रीवका वचन उल्लंघन करनेसे हमको आयुहीन होना पडैगा २३॥ इसलिये आप सुग्रीवके भयसे हम लोगोंका उद्धार कीजिये हे धर्मचारिणी! हमको बडाभारी कार्य करना है ॥ २४ ॥ जो हम इस बिलमेंही बंद रहेंगे तो हमारा वह कार्य सिद्ध नहीं होगा जब हनुमानजीनें यह कहा तो यह तपस्विनी बोली ॥ २५ ॥ कि जो यहांपर प्रवेश करता है, वह

ढूँडा परन्तु कहीं जनककुमारी सीताजीको न पाया ॥ ४ ॥ वह वानर कंद मूल फलादि भक्षग करते जहां तहां उछल कर निर्जल, निर्जन शून्य गहन भयंकरदर्शन॥५॥गहन वन व औरभी वैसेही दूसरे अनेक स्थान ढूँडकर बहुत पोडित हुये क्योंकि गुहा और सघन वह देश खोज करना अत्यन्त दुष्कर है ॥ ६ ॥ निडर वानरवीर यूथपोंने वह देश परित्यागपूर्वक और एक बडे देशमें प्रवेश किया जहां कोई जा नहीं सकताथा वहां यह निडर ढूँडनें लगे ॥ ७ ॥ उस स्थानके वृक्षोंमें फल फूल या पत्ते कुछभी नहींथे नदियोंमें जल नहींथा, और कंदभी नहीं पाया जाता ॥ ८ ॥ वहां पर भैंसे नहीं फिरतेथे, मृग नहीं चरतेथे, वरन हाथी, सिंह, पक्षी इत्यादि औरभी कोई बनैले जीव नहींथे ॥ ९ ॥ वहांपर वृक्ष, औषधि, वेलें, वीरुध

तेभक्षयंतोमूलानिफलानिविविधान्यपि ॥ निर्जलंनिर्जनंशून्यंगहनंघोरदर्शनम् ॥ ५ ॥ तादृशान्यप्यरण्यानिविचित्यभृशपीडिताः ॥ सदेशश्चदुरन्वेष्योगुहागहनवान्महान् ॥ ६ ॥ त्यक्त्वातुतंततोदेशंसर्वेवैहरियूथपाः ॥ देशमन्यंदुराधर्षंविविशुश्चाकुतोभयाः ॥ ७ ॥ यत्रवंध्यफलावृक्षाविपुष्पाःपर्णवर्जिताः ॥ निस्तोयाःसरितोयत्रमूलंयत्रसुदुर्लभम् ॥ ८ ॥ नसंतिमहिषायत्रनमृगानचहस्तिनः ॥ शार्दूलाःपक्षिणोवापियेचान्येवनगोचराः ॥ ९ ॥ नचात्रवृक्षानौषध्योनवल्ल्योनापिवीरुधः ॥ स्निग्धपत्राःस्थलेयत्रपद्मिन्यःफुल्लपंकजाः ॥ १० ॥ प्रेक्षणीयाःसुगंधाश्चभ्रमरैश्चविवर्जिताः ॥ कंडुर्नाममहाभागःसत्यवादीतपोधनः ॥ ११ ॥ महर्षिःपरमामर्षीनियमैर्दुष्प्रधर्षणः ॥ तस्यतस्मिन्वनेपुत्रोबालकोदशवार्षिकः ॥ १२॥ प्रनष्टोजीवितांतायक्रुद्धस्तेनमहामुनिः ॥ तेनधर्मात्मनाशप्तंकृत्स्नंतत्रमहद्वनम् ॥ १३ ॥ अशरण्यंदुराधर्षंमृगपक्षिविवर्जितम् ॥ तस्यतेकाननांतांस्तुगिरीणांकंदराणिच ॥ १४ ॥

वहांपर स्थलोंमें दर्शनीय स्निग्ध पत्रवाले खिले कमल फूल ॥ १० ॥सुगन्धि युक्त भ्रमर गणोंसे शोभित तडागभी नहीं दिखलाई देतेथे । उस स्थानमें कन्दु नामक महाभाग सत्यवादी तपोधन ॥ ११ ॥ क्रोधको जीतेहुए, दुर्द्धर्ष, नियमावलम्वी महर्षि रहतेथे । उनका इस वनमें एक दश वर्षका बालक पुत्र ॥ १२ ॥ मरणको प्राप्त होगया, तब धर्मात्मा उनमुनिनें क्रोधित होकर उस महावनको शाप दिया ॥ १३ ॥ कि यह बडा वन कठिनसे प्रवेश करनेंके योग्य मृग पक्षी इत्यादि और सब जीवोंको आश्रय देनेके अयोग्य हो जायगा उन सब वानरोंनें उस वनके सब पर्व

बनाये हुये गिरिदुर्गको ढूंडतेही ढूंडते उन वानरोंका वह समय बीतगया जो सुग्रीवजीनें नियम कर दियाथा ॥ २ ॥ तब महात्मा वानरवृन्द, वि
न्ध्याचलके पुष्पित तरु शोभित एक पर्वतपर बैठ चिंता करनेलगे ॥ ३ ॥ फिर वह वानरगण फूलोंके बोझसे परिपूर्ण शत २ लता मंडित वसंतका
लके वृक्षोंको देखकर बहुतही शंकित हुये ॥ ४ ॥ वह यह विचारकरकि सुग्रीवजीका नियत किया समय बीतगया और वसंतकाल आगया, पृथ्वी
पर गिर पडे॥५॥तब उन अति श्रेष्ठ वृद्ध वानरोंका बडा आदर मान करते हुये यथावत् अनुमान करकै अति मधुर वाणीसे॥ ६ ॥ सिंह वृषभके कंधे
वाले मोटी और बडी भुजा वाले युवराज अंगदजी बोले ॥ ७ ॥ कि हम कपिराज सुग्रीवजीकी आज्ञा पाय किष्किन्धासे निकले हैं सो तुमको

विंध्यस्यतुगिरेःपादेसंप्रपुष्पितपादपे ॥ उपविश्यमहात्मानश्चिंतामापेदिरेतदा ॥ ३ ॥ ततःपुष्पातिभाराग्राल्लँताश
तसमावृतान् ॥ द्रुमान्वासंतिकान्दृष्ट्वाबभूवुर्भयशंकिताः ॥ ४ ॥ तेवसंतमनुप्राप्तंप्रतिवेद्यपरस्परम् ॥ नष्टसंदेशका
लार्थानिपेतुर्धरणीतले ॥ ५ ॥ ततस्तान्कपिवृद्धांश्चशिष्टांश्चैववनौकसः ॥ वाचामधुरयाभाष्ययथावदनुमान्यच
॥ ६ ॥ सतुसिंहवृषस्कंधःपीनायतभुजःकपिः ॥ युवराजोमहाप्राज्ञअंगदोवाक्यमब्रवीत् ॥ ७ ॥ शासनात्कपिराज
स्यवयंसर्वेविनिर्गताः ॥ मासःपूर्णोबिलस्थानांहरयःकिंनबुध्यत ॥ ८ ॥ वयमाश्वयुजेमासिकालसंख्याव्यवस्थिताः ॥
प्रस्थिताःसोपिचातीतःकिमतःकार्यमुत्तरम् ॥ ९ ॥ भवंतःप्रत्ययंप्राप्तानीतिमार्गविशारदाः ॥ हितेष्वभिरताभर्तुर्नि
सृष्टाःसर्वकर्मसु ॥ १० ॥ कर्मस्वप्रतिमाःसर्वेदिक्षुविश्रुतपौरुषाः ॥ मांपुरस्कृत्यनिर्याताःपिंगाक्षप्रतिचोदिताः ॥ ११ ॥
इदानीमकृतार्थानांमर्तव्यंनात्रसंशयः ॥ हरिराजस्यसंदेशमकृत्वाकःसुखीभवेत् ॥ १२ ॥

यह नहीं जान पडता कि बिलमेंही पडे २ एक महीना होगया ॥ ८ ॥ हमनें कारमासके प्रारंभसे नियमित समयको निरूपण कियाहै, सो
कारमास वीततेही वह समय वीतगया अब क्या कियाजाय॥ ९ ॥ तुमसे इस कारण पूछतेहैं कि आप सब विनीत मार्गमें पंडित अपने स्वामीके
हितमें निरत और समस्त कार्योंके करनेमें निपुण ॥ १० ॥ कार्य साधन करनेमें अनुपम सर्व दिशा विदिशाओंमें अपनें पौरुषसे प्रसिद्ध हुये इसो
कारणसे राजाज्ञाको प्राप्तकिये हमको आगेकर यहां आयेहो ॥ ११ ॥ जिस कार्यके लिये हम भेजेगये अभीतक वह कुछभी सिद्ध नहीं हुआ इस

पर वहांभी सीताजीको न पायकर एक दूसरे बनमें प्रवेश करते हुये ॥ २२ ॥ वहांपर उन्होंनें बडी घोर भयानक कई एक पर्वतकी कन्दरायेंभी देखीं उन सब वानरोंनें वहांभी जरा २ करके ढूंढा और सीताजीको नदेख वहांसे निकल श्रमसे कातरहो दीन भावसे एक वृक्षकी जडमें बैठ गये ॥ २३ ॥ इ० श्री० वा० आ० कि० अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥ फिर महा पंडित अंगदजी थककर समस्त वानरोंको क्रम २ से समझाकर कहने लगे ॥ १ ॥ वन, पर्वत, दुर्गमस्थान, गहन, दरें, पर्वतोंकी गुफा, यह सब स्थान रत्ती २ करकै ढूंडे गये ॥ २॥ परन्तु इन सब जगह

अन्यदेवापरंघोरंविविशुर्गिरिगह्वरम् ॥ तेविचित्यपुनःखिन्नाविनिष्पत्यसमागताः ॥ एकांतेवृक्षमूलेतुनिपेदुर्दीनमानसाः ॥ २३ ॥ इत्यार्षेश्री०वा०आ०किष्किंधाकांडेअष्टचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४८ ॥ ॥ छ ॥ ॥ अथांगदस्तदा सर्वान्वानरानिदमब्रवीत् ॥ परिश्रांतोमहाप्राज्ञःसमाश्वास्यशनैर्वचः ॥ १ ॥ वनानिगिरयोनद्योदुर्गाणिगहनानिच ॥ दरीगिरिगुहाश्चैवविचिताःसर्वमंततः ॥ २ ॥ तत्रतत्रसहास्माभिर्जानकीनचदृश्यते ॥ तथारक्षोपहर्ताचसीतायाश्चैवदुष्कृती ॥ ३ ॥ कालश्चनोमहान्यातःसुग्रीवश्चोग्रशासनः ॥ तस्माद्भवंतःसहिताविचिन्वंतुसमंततः ॥ ४ ॥ विहायतंद्रींशोकंचनिद्रांचैवसमुत्थिताम् ॥ विचिनुध्वंतथासीतांपश्यामोजनकात्मजाम् ॥ ५ ॥ अनिर्वेदंचदाक्ष्यंच मनसश्चापराजयम् ॥ कार्यसिद्धिकराण्याहुस्तस्मादेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ ६ ॥ अद्यापीदंवनंदुर्गंविचिन्वंतुवनौकसः ॥ खेदंत्यक्त्वापुनःसर्वंवनमेवविचिन्वताम् ॥ ७ ॥

श्रीजानकीजी या दुष्कर्म करनेवाले जानकीजीके हरणकारी राक्षस रावणको न पाया ॥ ३ ॥ हम लोगोंको दिया हुआ एक मासका समयभी कबका बीतगया सुग्रीवजीकी आज्ञा बडी कडी है, इस कारण तुम लोग फिर खोजो ॥ ४ ॥ इसलिये सबकोही आलस्य, शोक, निद्रा, परित्याग करकै इस प्रकार ढूंढना चाहिये जिस्से जानकीजी मिल जांय ॥ ५ ॥ खेदित न रहना, चतुरता, और मनको जीतना, यह सबही कार्य सिद्धिके कारण हैं, इसी कारण हम तुमसे ऐसा कहते हैं ॥ ६ ॥ हे वानरो इस कारण इस समय तुम सब आलस्यको छोडकर वन और जितनें दुर्गम स्थान हैं

युवराज कुमार अंगदजीके यह वचन सुनकर प्रधान २ वानरगण करुणासहित वचन कहने लगे ॥ २० ॥ कि सुग्रीवजी तो ती
खे स्वभाववाले, और रामचंद्रजीका प्रिय कार्य करनेंमें अनुरक्त हैं यदि काम हो जाय और समयके वीत जानें पर भी ॥ २१ ॥
वह सुग्रीव नियत किये समयको वीता हुआ देख जानकी को देखनें और विना देखनेंपरभी रामचंद्रजीका प्रिय करनेंको, निश्चय
ही हम सबको मार डालेगा इसमें कुछ संदेह नहीं ॥ २२ ॥ अपराधी जन अपने स्वामीके समीप गमन करनेंको समर्थ नहीं होते और तिसपै
हम सुग्रीवजीके प्रधान पुरुष होकर आये हैं ॥ २३ ॥ हम विनाही सीताजीके देखे और उनका वृत्तान्त न पाय कदापि सुग्रीवके निकट न जांयगे;

एतच्छ्रुत्वाकुमारेणयुवराजेनभाषितं॥ सर्वेतेवानरश्रेष्ठाःकरुणंवाक्यमब्रुवन्॥२०॥तीक्ष्णःप्रकृत्यासुग्रीवःप्रियारक्तश्च
राघवः॥समीक्ष्याकृतकार्यांस्तुतस्मिंश्चसमयेगते॥२१॥अदृष्टायांचवैदेह्यांदृष्ट्वाचैवसमागतान्॥राघवप्रियकामायघा
तयिष्यत्यसंशयम्॥२२॥ नक्षमंचापराद्धानांगमनंस्वामिपार्श्वतः॥ प्रधानभूताश्चवयंसुग्रीवस्यसमागताः॥२३॥ इहै
वसीतामन्वीक्ष्यप्रवृत्तिमुपलभ्यवा॥ नोचेद्गच्छामतंवीरंगमिष्यामोयमक्षयम्॥२४॥प्लवंगमानांतुभयार्दितानांश्रुत्वा
वचस्तारइदंबभाषे॥ अलंविषादेनबिलंप्रविश्यवसामसर्वेयदिरोचतेवः॥२५॥ इदंहिमायाविहितंसुदुर्गमंप्रभूतपुष्पोद
कभोज्यपेयम्॥ इहास्तिनोनैवभयंपुरंदरान्नराघवाद्वानरराजतोपिवा॥२६॥ श्रुत्वांगदस्यापिवचोनुकूलमूचुश्चसर्वेह
रयःप्रतीताः॥यथानहन्येमतथाविधानमसक्तमद्यैवविधीयतांनः॥२७॥इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०कि०त्रिपंचाशःसर्गः॥५३॥

चाहे यमपुरको चले जाँय ॥ २४ ॥ भयसे पीडित वानर गणोंके यह वचन श्रवण करके तार बोला कि तुम लोग विषाद न करो यदि तुम्हारी
इच्छा हो तौ सबही इस बिलमें प्रवेश करेंगे और यहां रहैंगे ॥ २५ ॥ यह बिल मायासें बना हुआ होनेंके कारण अत्यन्त दुर्गम है इसमें बहुतेरे पुष्प
भोजन करनेंकी सामग्री, पीनेंके पदार्थ जल इत्यादि हैं; यहांपर इन्द्रसे भी हम लोगोंको भय नहीं है फिर भला वानरराज और रामचंद्रजीसे हम
लोगोंको क्या भय हो सकताहै ॥ २६ ॥ अंगदजीके अनुकूल वचन श्रवण कर सब वानर उन वचनोंकी प्रतीत करके बोले कि युवराज जिसमें हमारे
प्राण न जांय आपको शीघ्रही उस कार्यका विधान करना चाहिये॥२७॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये कि० त्रिपंचाशः सर्गः॥५३॥

वृक्षोंका वन और लोध्र रमणीक वन देखा, उस सबमेंभी उन्होंने जानकीजीको न देखा ॥ १७ ॥ विपुलविक्रमकारी वानरलोग थककर उस पर्वत की चोटीपर चढे, परन्तु वहांपरभो श्रीरामचन्द्रजीकी प्राणप्यारी जानकीजीको उन्होंने न देखा॥१८॥ वह वानरगण उस पर्वतकी बहुत सारी कन्दराओंको देखते भालते इधर उधर चढनें लगे ॥ १९ ॥ जब बहुत देरतक परिश्रम करनेंपरभी कुछ फल न पाया तब भूमिपर आय थककर व्याकुलचित्त हो एक वृक्षकी जडका आश्रयकर बैठे रहे ॥ २० ॥ जब उन लोगोंकी कुछ एक थकावट दूर होगई और विश्रामभी मिलगया तब फिर उत्साहित हो दक्षिण दिशाको ढूँडने लगे ॥ २१ ॥ हनुमानादि कपिगण प्रथम भली प्रकारसे विन्ध्याचल ढूँडकर फिर सुग्रीवजीकी बताई

तस्याग्रमधिरूढास्तेश्रांताविपुलविक्रमाः ॥ नपश्यंतिस्मवैदेहींरामस्यमहिषींप्रियाम् ॥ १८ ॥ तेतुदृष्टिगतंदृष्ट्वातंशैलंबहुकंदरम् ॥ अध्यारोहंतहरयोवीक्षमाणाःसमंततः ॥ १९ ॥ अवरुह्यततोभूमिंश्रांताविगतचेतसः ॥ स्थितामुहूर्ततत्राथवृक्षमूलमुपाश्रिताः ॥ २० ॥ तेमुहूर्तसमाश्वस्ताःकिंचिद्भग्नपरिश्रमाः ॥ पुनरेवोद्यताःकृत्स्नांमार्गितुंदक्षिणांदिशम् ॥ २१ ॥ हनुमत्प्रमुखास्तावत्प्रस्थिताःप्लवगर्षभाः ॥ विंध्यमेवादितःकृत्वाविचेरुश्चसमंततः ॥ २२ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेएकोनपंचाशःसर्गः ॥ ४९ ॥ ॥ ७ ॥ सहतारांगदाभ्यांतुसंगम्यहनुमान्कपिः ॥ विचिनोतिचविंध्यस्यगुहाश्चगहनानिच ॥ १ ॥ सिंहशार्दूलजुष्टाश्चगुहाश्चपरितस्तदा ॥ विषमेषुनगेंद्रस्यमहाप्रस्रवणेषुच ॥ २ ॥ आसेदुस्तस्यशैलस्यकोटिंदक्षिणपश्चिमाम् ॥ तेषांतत्रैववसतांसकालोव्यत्यवर्तत ॥ ३ ॥ सहिदेशोदुरन्वेष्योगुहागहनवान्महान् ॥ तत्रवायुसुतःसर्वंविचिनोतिस्मपर्वतम् ॥ ४ ॥

हुई समस्त दक्षिण दिशा ढूंडने लगे ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे एकोनपंचाशःसर्गः ॥ ४९ ॥ कपिश्रेष्ठ हनुमान् तार और अंगदजीके सहित विन्ध्याचल पर्वतकी गुफा और समस्त सघन वन ढूंडनें लगे ॥ १ ॥ वह वानर सिंह शार्दूल युक्त गुफा विषम स्थान और पर्वती बडे २ झरने जिनमें विमल जल वहताथा ॥ २ ॥ और उस पर्वतके दक्षिण औ पश्चिमवाले कोनोंपर खोज करनें लगे, तबतक सुग्रीवजीनें जो समय उनके लिये नियत कियाथा वह वीतगया ॥ ३॥ वह पर्वत बडी कठिनाईसे खोजनेंके योग्यथा कारण

सामनेही कहतेहैं कि यह लोग पुत्र स्त्रीको छोडकर तुम्हारे पर अनुराग न करेंगे यह जाम्बवान्, नील महाकपि सुहोत्र, ॥ १०॥ और हम व समस्त ही वानर गणको, साम, दान, भेद व दंड द्वारा सुग्रीवजीके निकट से तुम नहीं खेंच सकते ॥ ११ ॥ बलवान पुरुष दुर्बल को जीतकर आसन पाय सकताहै, इसलिये दुर्बलको अपनी रक्षा करते हुए बलवानसे वैर न करना चाहिये ॥ १२ ॥ और जो तुम इस गुफाको अपना रक्षण करनें वाला सम झो सो यहभी वृथाहै, क्योंकि इस बिलका विदारण करना लक्ष्मणजीके बाणोंका एक अति लघु कामहै ॥ १३ ॥ जब इन्द्रनें मयपर क्रोध करके इसमें वज्र माराथा तो इस्में एक छोटासा छेदही होगयाथा, परन्तु जब लक्ष्मणजी क्रोध करेंगे तो तीक्ष्ण बाणोंकी धारासे इसको पत्तोंके पुरकी स

नह्यहंतेइमेसर्वेसामदानादिभिर्गुणैः ॥ दंडेननत्वयाशक्याःसुग्रीवादपकर्षितुम् ॥ ११ ॥ विगृह्यासनमप्याहुर्दुर्ब
लेनबलीयसा ॥ आत्मरक्षाकरस्तस्मान्नविगृह्णीतदुर्बलः ॥ १२ ॥ यांचेमांमन्यसेधात्रीमेतद्बलमितिश्रुतम् ॥ एत
ल्लक्ष्मणबाणानामीषत्कार्यंविदारणम् ॥ १३ ॥ स्वल्पंहिकृतमिंद्रेणक्षिपताह्यशनिंपुरा ॥ लक्ष्मणोनिशितैर्बाणैर्भि
द्यात्पत्रपुटंयथा ॥ १४ ॥ लक्ष्मणस्यचनाराचाबहवःसंतितद्विधाः ॥ वज्राशनिसमस्पर्शागिरीणामपिदारकाः ॥
॥ १५ ॥ अवस्थानंयदैवत्वमासिष्यसिपरंतप ॥ तदैवहरयःसर्वेत्यक्ष्यंतिकृतनिश्चयाः ॥ १६ ॥ स्मरंतःपुत्रदाराणां
नित्योद्विग्नाबुभुक्षिताः॥खेदितादुःखशय्याभिस्त्वांकरिष्यंतिपृष्ठतः ॥ १७ ॥ सत्वंहीनःसुहृद्भिश्चहितकामैश्चबंधुभिः॥
तृणादपिभृशोद्विग्नःस्पंदमानाद्भविष्यसि ॥ १८ ॥

मान छिन्न भिन्न कर डालेंगे इसमें कुछभी संदेह नहीं ॥ १४ ॥ कारण कि लक्ष्मणके पास ऐसे पर्वतोंके तोडनेंवाले वज्र तुल्य बाण बहुत सारे वि द्यमानहैं ॥ १५ ॥ हे परवीरघाती ! जैसेही कि इस बिलमें तुम अपना वास स्थान बनाओगे तबही यह सब वानरगण कृत निश्चय होकर निःसं देह तुमको छोडकर चले जायँगे ॥ १६ ॥ यह सब वानर अपने२ स्त्री पुत्रोंकी याद करकै व्याकुल हो भूखों मरेंगे । इस प्रकार दुःखके पानेसे खेद युक्त हो तुमको पीछे छोड चले जायँगे ॥ १७ ॥ तुम हित चाहनेंवाले बन्धुऔर सुहृदजनोंसे रहित सदा चंचल चित्तहो एक तिनकेसेभी घबडा

पर्वतोंसे घिरे हुये सब देश ढूंडडाले ॥ १४ ॥ और हम अब बहुतही थक गये, परन्तु जानकीजीको अबतक नहीं पाया; इस बिलसे हंस, क्रौञ्च, सारस॥१५॥ और जलसे भीगे चकवा चकवीभी इस स्थानसे निकल रहेहैं इस्से निश्चय होताहै, कि यह कूपहीहो; वा ऱ्हदहीहो, परन्तु जल इसमें अवश्यहै ॥ १६ ॥ और देखो इस बिलके द्वारे पर हरे और चिकने पौधे उत्पन्न होरहेहै इतना कहकर सबही उस महा अँधियारे बिलमें प्रवेश करते हुये ॥ १७ ॥ वहां पर सूर्य चंद्रमाका प्रकाश नहीं था इस कारण उस बिलमें पैठतेही वानरोंके रोम खडे होगये उन वानरोंको उसमें सिंह, व्याघ्र, मृग, पक्षी, इत्यादि निकलते दिखाई पडे ॥ १८ ॥ परन्तु वह सब वानर निडरहो उस अँधियारे बिलमें प्रवेश करते चलेही गये परन्तु

वयंसर्वेपरिश्रांतानचपश्यामसैथिलीम् ॥ अस्माच्चापिबिलाद्धंसाःक्रौंचाश्चसहसारसैः ॥ १५ ॥ जलार्द्राश्चक्रवाकाश्च निष्पतंतिस्मसर्वशः ॥ नूनंसलिलवानत्रकूपोवायदिवाऱ्हदः ॥ १६ ॥ तथाचेमेबिलद्वारेस्निग्धास्तिष्ठंतिपादपाः ॥ इत्युक्तास्तद्बिलंसर्वेविविशुस्तिमिरावृतम् ॥ १७ ॥ अचंद्रसूर्यंहरयोददृशूरोमहर्षणम् ॥ निशाम्यतस्मात्सिंहांश्चतां स्तांश्चमृगपक्षिणः ॥ १८ ॥प्रविष्टाहरिशार्दूलाबिलंतिमिरसंवृतम् ॥ नतेषांसज्जतेदृष्टिर्नतेजोनपराक्रमः ॥ १९ ॥ वायो रिवगतिस्तेषांदृष्टिस्तमसिवर्तते ॥ तेप्रविष्टास्तुवेगेनतद्बिलंकपिकुंजराः ॥२०॥ प्रकाशंचाभिरामंचददृशुर्देशमुत्तमम् ॥ ततस्तस्मिन्बिलेभीमेनानापादपसंकुले ॥ २१ ॥ अन्योन्यंसंपरिष्वज्यजग्मुर्योजनमंतरम् ॥ तेनष्टसंज्ञास्तृषिताःसं भ्रांताःसलिलार्थिनः ॥ २२ ॥ परिपेतुर्बिलेतस्मिन्कंचित्कालमतंद्रिताः ॥ तेकृशादीनवदनाःपरिश्रांताःप्लवंगमाः ॥२३॥

वानरगण अपनी दृष्टि या पराक्रम वहां प्रगट नहीं करसके ॥ १९ ॥ उन वानरोंकी गति वायुकी गतिके समान दृष्टि नहीं आतीथी, वरन अंधकारमें डूबीजातीथी; वह कपिकुंजर वेगसे उस बिलमें प्रवेश करते हुये ॥२०॥ जब उस बिलके भीतर पहुंचे तो उन्होंनें मनोहर प्रकाशित उजाले सहित स्थान देखा उस भयंकर अनेक प्रकारके वृक्ष लगे बिलमें॥ २१ ॥एक दूसरेको पकडे चारकोशतक चले आये तिसके पीछें प्याससे आ तुरजलके लिये वह भ्रान्त चित्त होगये ॥ २२ ॥ और थकावटके मारे उस बिलमें गिरपडे, मार्ग चलनेंके कारण थकितहो कुछ समयतक वैसेही

यकर रोक दे; वह किस प्रकारसे धर्मका जाननें वाला हो सकताहै॥ ४ ॥महायशवान कृतकार्य श्रीरामचन्द्रजीको जो सत्यसे ग्रहण करकै भूलगया वह किसकी सुकृति व उपकार याद रख सकता है॥ ५ ॥ जो अधर्मकाभय नहीं करते जिसनें केवल लक्ष्मणजीके भयसेही सीताजीके खोजनेंकी आज्ञादी है, उसको धर्मका भय किस प्रकारसे संभव है?॥ ६ ॥ वह पापरूप, कृतघ्न, स्मृतिमार्गके कहे हुये धर्मसे भ्रष्ट हुआ है चंचल चित्त सुग्रीवके प्रति विशेषतः उसकेही कुलमें जन्म लेकर कौन उत्तम पुरुष विश्वास कर सकता है॥ ७ ॥ सुग्रीव गुणवान हो, अथवा गुणरहित हो, परन्तु वह शत्रुकुल पुत्र हमको राज्यमें प्रतिष्ठित करकै किस प्रकारसे जीवित रखसकैगा ॥ ८ ॥ हमारी बिलमें प्रवेश करनेंकी मंत्रणा भेद हो गई है इस

सत्यात्पाणिगृहीतश्चकृतकर्मामहायशाः ॥ विस्मृतोराघवोयेनसकस्यसुकृतंस्मरेत् ॥ ५ ॥ लक्ष्मणस्यभयेनेहनाधर्मभयभीरुणा ॥ आदिष्टामार्गितुंसीताधर्मस्तस्मिन्कथंभवेत् ॥ ६ ॥ तस्मिन्पापेकृतघ्नेतुस्मृतिभिन्नेचलात्मनि ॥ आर्यःकोविश्वसेज्जातुतत्कुलीनोविशेषतः॥ ७ ॥ राज्येपुत्रंप्रतिष्ठाप्यसगुणोविगुणोपिवा॥ कथंशत्रुकुलीनंमांसुग्रीवोजीवयिष्यति ॥ ८ ॥ भिन्नमंत्रोपराद्धश्चभिन्नशक्तिःकथंह्यहम् ॥ किष्किंधांप्राप्यजीवेयमनाथइवदुर्बलः ॥ ९ ॥ उपांशुदंडेनहिमांबंधनेनोपपादयेत् ॥ शठःक्रूरोनृशंसश्चसुग्रीवोराज्यकारणात् ॥ १० ॥ बंधनाच्चाववसादान्मेश्रेयःप्रायोपवेशनम् ॥ अनुजानंतुमांसर्वेगृहंगच्छंतुवानराः ॥ ११ ॥ अहंवःप्रतिजानामिनगमिष्याम्यहंपुरीम् ॥ इहैवप्रायमासिष्येश्रेयोमरणमेवमे ॥ १२ ॥ अभिवादनपूर्वंतुराजाकुशलमेवच ॥ अभिवादनपूर्वंतुराघवौबलशालिनौ ॥ १३ ॥

लिये अपराधी, हीन, दुर्बल, और अनाथकी समान हम किष्किन्धामें गमन करकै किस प्रकार जीवित रह सकेंगे॥ ९ ॥ शठ क्रूर निठुर, सुग्रीव, राज्यके लिये यदि हमको प्राणोंसे न मारें, तोभी हमें बन्धुआ तो अवश्यही करलेंगे॥१०॥हे वानरगण! वन्धन और अपवादसे किसी पुण्यस्थानमें जाकर मरना हमारे लिये अच्छाहै; इसलिये हमें आज्ञा देकर आप सब जनें अपने२घरोंको चले जाइये ॥ ११ ॥ हम आप लोगोंसे प्रतिज्ञा करतेहैं कि हम किष्किन्धामें न जाँयगे इस स्थानमेंही हम मरण व्रत ग्रहण करेंगे क्योंकि हमारा मरणही श्रेष्ठ होगा॥१२॥ प्रथम हमारी ओरसे राजाजीको प्रणाम

आसन विराजमानथे ॥ ३३ ॥ अनेक भांतिकी और अति विशाल यह सब वस्तुयें वानरोंनें देखीं और भोजन करनेंके सोने चांदी व कांसीके व तैनोंके ढेरके ढेर देखे ॥ ३४ ॥ अगर और दिव्य चन्दनोंकी बड़ी २ राशियें देखीं । और अति पवित्र भोजन करनेंके लायक मूल और फल॥३५॥ बडे २ मूल्यवान् शिबिकादियान और रसवान बहुत सारा मधु देखा बडे मोलके वस्त्र समूहभी इकट्ठे देखे ॥ ३६ ॥ और विचित्र शाल दुशाले और मृगचर्मोंके पुंजके पुंज इधर उधर उस बिलमें पडे हुए उन महा कांतिवाले ॥ ३७ ॥ शूरवीर वानरोंनें देखे; जब वह बहुत आगे बढे तब उन्होंनें दूरसे एक स्त्री देखी, उन वानरोंनें उस स्त्रीको कृष्णमृग चर्मके वस्त्र धारणकिये देखी ॥ ३८ ॥ वह नियमित आहार करनेंवाली

विविधानिविशालानिददृशुस्तेसमंततः ॥ हैमराजतकांस्यानांभाजनानांचराशयः ॥३४॥ अगुरूणांचदिव्यानांचंदनानांचसंचयान् ॥ शुचीन्यभ्यवहाराणिमूलानिचफलानिच ॥३५॥ महार्हाणिचयानानिमधूनिरसवंतिच ॥ दिव्यानामंबराणांचमहार्हाणांचसंचयान् ॥३६॥ कंबलानांचचित्राणामजिनानांचसंचयान् ॥ तत्रतत्रविचिन्वंतोबिलेतत्रमहाप्रभाः ॥ ३७ ॥ ददृशुर्वानराःशूराःस्त्रियंकांचिददूरतः ॥ तांचतेददृशुस्तत्रचीरकृष्णाजिनांबराम् ॥ ३८ ॥ तापसींनियताहारांज्वलंतीमिवतेजसा ॥ विस्मिताहरयस्तत्रव्यवतिष्ठंतसर्वशः ॥ पप्रच्छहनुमांस्तत्रकासित्वंकस्यवाबिलम् ॥ ॥ ३९ ॥ ततोहनूमान्गिरिसन्निकाशःकृतांजलिस्तामभिवाद्यवृद्धाम् ॥ पप्रच्छकात्वंभवनंबिलंचरत्नानिचेमानि वदस्वकस्य ॥ ४० ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवा० आ० किष्किंधाकांडेपंचाशःसर्गः ॥ ५० ॥ ॥ ७ ॥ ॥

इत्युक्काहनुमांस्तत्रचीरकृष्णाजिनांबराम् ॥ अब्रवीत्तांमहाभागांतापसींधर्मचारिणीम् ॥ १ ॥

तपस्विनी मानोंके अपने तेजसे प्रज्वलित होरहीहै उसे देख सब वानर विस्मय युक्त हो उसको चारों ओरसे घेरकर खडे होगये । तब हनुमानजीनें उस्से पूँछाकि तुम कौनहो ? और यह बिल किसकाहै ? ॥ ३९ ॥ वह पर्वत तुल्य देहधारी हनुमानजी हाथ जोडकर उस वृद्ध तपस्विनीसें बूझनें लगे कि तुम कौनहो? और बिल भवन व यह समस्त रत्न किसकेहैं ? सो तुम बताओ ॥ ४० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे पंचाशः सर्गः ॥ ५० ॥ हनुमानजी यह कहकर फिर उस चीर और मृगचर्म धारण करनेंवाले

बडी विपत्ति आई॥२२॥पर्वतकी समान बहुत बलवाले वानरोंके प्रवेश करनें और उस पर्वतके शिखरपर कूदकर चढनेंसे वह पर्वत झरनें सहित श
ब्दायमान हुआ जैसे आकाशमें मेघ शब्द करतेहों॥२३॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे पंचपंचाशः सर्गः॥५५॥
जिस पर्वतपर सब वानर लोग चढ गयेथे, उस पर्वतपर एक गृद्ध्रराज आनकर उपस्थित हुआ, यही बडी भारी विपत्ति वानरोंके लिये आई ॥१॥
उस संपाति नामक चिरंजीवी विहंगम श्रेष्ठका बल पौरुष विख्यातथा,और यह जटायुका बडा भाईथा कि जिसनें श्रीरामचंद्रजीके कार्यमें अपने
प्राण देदियेथे ॥ २ ॥ वह उन वानरोंका बोल सुन विन्ध्याचल पर्वतकी कन्दरामेंसे निकल सब वानरोंको वहां बैठे देख हर्षित होकर कहनें

ससंविशद्भिर्बहुभिर्महीधरोमहाद्रिकूटप्रतिमैःप्लवंगमैः॥बभूवसन्नादितनिर्झरांतरोभृशंनदद्भिर्जलदैरिवांबरम्॥ २३ ॥इ
त्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेपंचपंचाशःसर्गः॥५५॥छ॥ उपविष्टास्तुतेसर्वेयस्मिन्प्रा
यंगिरिस्थले॥ हरयोगृध्रराजश्चतंदेशमुपचक्रमे॥ १ ॥ संपातिर्नामनाम्नातुचिरजीवीविहंगमः ॥ भ्राताजटायुषःश्रीमा
न्विख्यातबलपौरुषः ॥ २ ॥ कंदरादभिनिष्क्रम्यसविंध्यस्यमहागिरेः ॥ उपविष्टान्हरीन्दृष्ट्वाहृष्टात्मागिरमब्रवी
त् ॥ ३ ॥ विधिःकिलनरंलोकेविधानेनानुवर्तते ॥ यथायंविहितोभक्ष्यश्चिरान्मह्यमुपागतः ॥ ४ ॥ परंपराणांभक्षिष्ये
वानराणांमृतंमृतम् ॥ उवाचैतद्वचःपक्षीतान्निरीक्ष्यप्लवंगमान्॥५॥तस्यतद्वचनंश्रुत्वाभक्ष्यलुब्धस्यपक्षिणः॥ अंगदः
परमायस्तोहनूमंतमथाब्रवीत्॥६॥पश्यसीतापदेशेनसाक्षाद्वैवस्वतोयमः ॥ इमंदेशमनुप्राप्तोवानराणांविपत्तये ॥७॥

लगा ॥ ३ ॥ कर्मके फलसे प्राणियोंके भाग्य अदलते बदलते रहतेहैं उसके अनुसारही यह सब भोजनकी सामग्री बहुत दिनोंके पीछे
आज मेरे सामने आईहै ॥ ४ ॥ हम बराबर २ लंगारसे बैठे हुए इन वानरोंको क्रम २ से मारकर भोग लगाते जाँयगे, पक्षी श्रेष्ठ सम्पातिनें वान
रोंसे इस प्रकार कहा ॥ ५ ॥ वानरोंको भक्षण करनेंके लिये लोभी हुए उस पक्षीके ऐसे वचन सुनकर अंगदजी दुःखित होकर हनुमानजीसे
बोले ॥ ६ ॥ देखो ! सीताजीके भाग्यसे वानर लोगोंकी विपत्तिके लिये साक्षात् यमराजकी समान यह पक्षी इस स्थानमें आयाहै ॥ ७ ॥

देती हुई हेवानरश्रेष्ठ! महा तेजवान मय*नामक एक मायावी दानवथा ॥१०॥ उसने ही यह सब सुवर्ण मय वन मायासे बनाया पहले यह दानव मुख्य दानवोंका विश्वकर्मा अर्थात् शिल्पीथा ॥ ११ ॥ यह काञ्चनमय दिव्य भवन उसकाही बनाया हुआ है उसने हजार वर्ष तपस्या करके इस बडे वनको ॥ १२ ॥ ब्रह्माजीसे वर पायकर बनाया और शुक्राचार्यजीके समस्त शिल्पविद्यारूप धनको प्राप्त करता हुआ अर्थात् उसको सब प्रकारका काम बनाना आगया वह यह समस्त बनाय समस्त भोग वस्तुओंका ईश्वर हो ॥ १३ ॥ कुछ काल तक सुखसे इस महावनमें वास

तेनेदंनिर्मितंसर्वंमाययाकांचनंवनम् ॥ पुरादानवमुख्यानांविश्वकर्माबभूवह ॥ ११ ॥ येनेदंकांचनंदिव्यंनिर्मितं भवनोत्तमम् ॥ सतुवर्षसहस्राणितपस्तप्त्वामहद्वने ॥ १२ ॥ पितामहाद्वरंलेभेसर्वमौशनसंधनम् ॥ विधायसर्वंबलवा न्सर्वकामेश्वरस्तदा ॥ १३ ॥ उवाससुखितःकालंकंचिदस्मिन्महावने ॥ तमप्सरसिहेमायांसक्तंदानवपुंगवम् ॥ १४ ॥ विक्रम्यैवाशनिंगृह्यजघानेशःपुरंदरः ॥ इदंचब्रह्मणादत्तंहेमायैवनमुत्तमम् ॥१५॥ शाश्वतःकामभोगश्चगृहंचेदंहिरण्म यम् ॥ दुहितामेरुसावर्णेरहंतस्याःस्वयंप्रभा ॥ १६ ॥ इदंरक्षामिभवनंहेमायावानरोत्तम ॥ ममप्रियसखीहेमानृत्तगी तविशारदा ॥ १७ ॥ तयादत्तवराचास्मिरक्षामिभवनंमहत् ॥ किंकार्यंकस्यवाहेतोःकांताराणिप्रपद्यथ ॥ १८ ॥

कियाथा, तिसके पीछे वह दानवश्रेष्ठ हेमानामवाली अप्सरामें आसक्त हुआ ॥ १४ ॥ तब पुरन्दर इन्द्रजीने यह सब वृत्तान्त जानकर युद्धकर उसको अपने वज्रसे नाश कर दिया फिर ब्रह्माजीनें यह उत्तम वन हेमाको देदिया ॥१५॥ यथेच्छा भोग, और यह सुवर्ण मय गृहभी हेमाको देदिया। हम मेरुसावर्णिकी स्वयंप्रभा कन्याहैं ॥१६॥ हे वानरश्रेष्ठो! हम इस हेमाके भवनकी रक्षा किया करतीहैं। हमारी प्रिय सखी नृत्य और गीतमें विशारद हेमाहै॥१७॥हम उसके दिये हुए वरसे इस बडेवनकी रक्षा करतीहैं तुम्हारा क्या कार्यहै और किस कारणसे तुम सब इस जंगलके मार्गमें आयेहो?॥१८॥

* दैत्योंमें जो कारीगर होताहै उसे मयकी पदवी प्राप्तहोतीहै ॥

बाणसे वालिका वध ॥ १५ ॥ फिर श्रीरामचंद्रजीके क्रोधसे राक्षसोंका वध, और अब हमारा मरण यह सब बातें एक कैकेयीके वरदान मांगनें हीके कारण हुईहैं ॥ १६ ॥ गृद्ध्र राज महामति सम्पाति उन वानरोंके कहे हुये अपनें अनुजके विषयमें अकीर्तित कृपण वचन सुनकर अत्यन्त चकितहो बोले ॥ १७ ॥ गंभीर स्वरवाले तीक्ष्ण चोंच धारी गृद्ध्र अंगदजीके मुखसे निकले हुये वह वचन सुनकर बोला ॥ १८ ॥ भाई कौन हमारे प्राणोंकी समान प्यारे भ्राता जटायुके वधका समाचार प्रचार करताहै? कि जिसको सुनकर हमारा मन कंपायमान होताहै ॥ १९ ॥ जनस्थानमें रावण और जटायुका युद्ध किस प्रकारसे हुआ? हाय! बहुत दिनके पीछे हमने अपने प्यारे भ्राताका नाम सुना ॥ २० ॥ परन्तु हम

रामकोपादशेषाणांरक्षसांचतथावधम् ॥ कैकेय्यावरदानेनइदंचविकृतंकृतम् ॥ १६ ॥ तदसुखमनुकीर्तितं
वचोभुविपतितांश्चनिरीक्ष्यवानरान् ॥ भृशचकितमतिर्महामतिःकृपणमुदाहृतवान्सगृध्रराजः ॥ १७ ॥ तत्तुश्रु
त्वातथावाक्यमंगदस्यमुखोद्गतम् ॥ अब्रवीद्वचनंगृध्रस्तीक्ष्णतुंडोमहास्वनः ॥ १८ ॥ कोयंगिराघोषयतिप्रा
णैःप्रियतरस्यमे ॥ जटायुषोवधंभ्रातुःकंपयन्निवमेमनः ॥ १९ ॥ कथमासीज्जनस्थानेयुद्धंराक्षसगृध्रयोः ॥ नामधे
यमिदंभ्रातुश्चिरस्याद्यमयाश्रुतम् ॥ २० ॥ इच्छेयंगिरिदुर्गाच्चभवद्भिरवतारितुम् ॥ यवीयसोगुणज्ञस्यश्लाघनीय
स्यविक्रमैः ॥ २१ ॥ अतिदीर्घस्यकालस्यपरितुष्टोस्मिकीर्तनात् ॥ तदिच्छेयमहंश्रोतुंविनाशंवानरर्षभाः ॥ २२ ॥
भ्रातुर्जटायुषस्तस्यजनस्थाननिवासिनः ॥ तस्यैवचममभ्रातुःसखादशरथःकथम् ॥ २३ ॥

इच्छानुसार इस पर्वत परसे उतर नहीं सकते इसलिये यह इच्छाहैकि तुमलोग उतारलो, हम तुम सब पर गुणज्ञ, विक्रमोंसें प्रशंसनीय अपने लघुभ्राताके ॥ २१ ॥ नामका कीर्तन बहुत दिनोंके पीछे श्रवण करनेंके कारण अत्यन्त प्रसन्न हुये ॥ हे वानरश्रेष्ठो! मैं उसका विनाश सुना चाहताहूं ॥ २२ ॥ कि जन स्थानका रहनें वाला हमारा भाई कैसे मारागया। और वही हमारा भाई दशरथजीका सखा कैसे हुआ ॥ २३ ॥

उन सुग्रीवजीनें आज्ञादीहै कि तुम सब वानर मिलकर सीता और कामरूपी राक्षस रावणको ढूँडो ॥ ८ ॥ उनकी आज्ञासे हम दक्षिण दिशाको समस्त वन और समुद्र खोज क्षुधितहो थककर वृक्षोंके नीचे बैठ गये॥९॥हम सब वानर पीले वदन ध्यान परायणहो, चिन्ताके महासागरमें डूब गये और किसी प्रकार उसके पार न जाय सके ॥ १० ॥ तब चारों ओर निहार २ कर देख रहेथे कि इतनेमें लता पत्रकादिकोंसे ढका छाया यह बडा बिल दृष्टि आया ॥ ११ ॥ उस समय इस बिलसे जलके भीगे जल और कमलकी रेणु जिनके पंखोंमें लगी, ऐसे हंस कुरर और सारस पक्षी

रावणंसहिताःसर्वेराक्षसंकामरूपिणम् ॥ सीतयासहवैदेह्यामार्गध्वमितिचोदिताः ॥ ८ ॥ विचित्यतुवनंसर्वंसमुद्रं
दक्षिणांदिशम् ॥ वयंबुभुक्षिताःसर्वेवृक्षमूलमुपाश्रिताः ॥ ९ ॥ विवर्णवदनाःसर्वेसर्वेध्यानपरायणाः ॥ नाधिगच्छा
महेपारंमग्नाश्चिंतामहार्णवे ॥१०॥ चारयंतस्ततश्चक्षुर्दृष्टवंतोमहद्बिलम् ॥ लतापादपसंपन्नंतिमिरेणसमावृतम् ॥ ११ ॥
अस्माद्धंसाजलक्लिन्नाःपक्षैःसलिलरेणुभिः ॥ कुरराःसारसाश्चैवनिष्पतंतिपतत्रिणः ॥ १२ ॥ साध्वत्रप्रविशामेतिम
यातूक्ताःप्लवंगमाः ॥ तेषामपिहिसर्वेषामनुमानमुपागतम् ॥ १३ ॥ अस्मिन्निपतिताःसर्वेप्यथकार्यत्वरान्विताः ॥ त
तोगाढंनिपतितागृह्यहस्तैःपरस्परम् ॥ १४ ॥ इदंप्रविष्टाःसहसाबिलंतिमिरसंवृतम् ॥ एतन्नःकार्यमेतेनकृत्येनव
यमागताः ॥ १५ ॥ त्वांचैवोपगताःसर्वेपरिद्यूनाबुभुक्षिताः ॥ आतिथ्यधर्मदत्तानिमूलानिचफलानिच ॥ १६ ॥ अ
स्माभिरुपयुक्तानिबुभुक्षापरिपीडितैः ॥ यत्त्वयारक्षिताःसर्वेम्रियमाणाबुभुक्षया ॥ १७ ॥

निकल रहेथे ॥ १२ ॥ उनको देखकर हमनें कहाकि हम इस बिलमें प्रवेशकरेंगे और सब वानरगणभी अनुमान करके इस बिलमें प्रवेश करनेंको सम्मत हुए ॥१३॥ फिर कार्य करनेंमें शीघ्रता युक्त वानरगण एक दूसरेका हाथ पकड बिलमें प्रवेश करनें लगे ॥ १४ ॥ इस प्रकारसे हम इस अंधकारसे ढके हुए बिलमें पैठेहैं हमारा यही कार्यहै इसी कार्यके हेतु हम यहां आयेहैं ॥ १५ ॥ हम सबही थकित और क्षुधित होकर आपके निकट आये और आपनें अतिशय धर्मानुसार हमें फल मूल खानेंको दिये ॥ १६ ॥ जिसको भक्षण करके हमनें जीवधारण किया हम मरनें

वनमें आये ॥ ७ ॥ वह श्रीरामचंद्रजी पिताकी आज्ञासे धर्ममार्गमें टिककर भ्राता लक्ष्मण और अपनी भार्या वैदेहीजीके सहित वनमें आये ॥८॥ जबकि रामचंद्रजी आश्रममें नहींथे तब रावण बलसे उन रामचंद्रजीकी स्त्री सीताजीको हरण करके लेगया उनके पिता दशरथजीके मित्र जटायु नाम गृध्रराजने॥ ९ ॥ देखा कि आकाशमार्गमें होकर रावण जानकीको हरण किये लिये जाताहै, तो उन्होंने रावणको विरथ कर दिया और उस्से सीताजीको छीनलिया परन्तु वृद्ध होनेंके कारण जब वह लडते २ थकगये तब रावणनें संग्राममें उनको संहार कर दिया ॥ १० ॥ जब इस प्रकार गृध्र जटायु बलवान रावणके हाथसे मारागया तब श्रीरामचंद्रजीनें अपने हाथोंसे जटायुकी दाहक्रियाकर उसे उत्तम गतिको

लक्ष्मणेनसहभ्रात्रावैदेह्यासहभार्यया ॥ पितुर्निदेशनिरतोधर्मपंथानमाश्रितः ॥ ८ ॥ तस्यभार्याजनस्थानाद्रा
वणेनहृताबलात् ॥ रामस्यतुपितुर्मित्रंजटायुर्नामगृध्रराट् ॥ ९ ॥ ददर्शसीतांवैदेहींह्रियमाणांविहायसा ॥ रा
वणंविरथंकृत्वास्थापयित्वाचमैथिलीम् ॥ परिश्रांतश्चवृद्धश्चरावणेनहतोरणे ॥ १० ॥ एवंगृध्रोहतस्तेनरावणे
नबलीयसा ॥ संस्कृतश्चापिरामेणजगामगतिमुत्तमाम् ॥ ११ ॥ ततोममपितृव्येणसुग्रीवेणमहात्मना ॥ च
कारराघवःसख्यंसोऽवधीत्पितरंमम ॥ १२ ॥ ममपित्रानिरुद्धोहिसुग्रीवःसचिवैःसह ॥ निहत्यवालिनंरामस्ततस्तम
भिषेचयत् ॥ १३ ॥ सराज्येस्थापितस्तेनसुग्रीवोवानरेश्वरः ॥ राजावानरमुख्यानांतेनप्रस्थापितावयम् ॥१४॥ एवं
रामप्रयुक्तास्तुमार्गमाणास्ततस्ततः ॥ वैदेहींनाधिगच्छामोरात्रौसूर्यप्रभामिव ॥ १५ ॥

पहुंचाया॥ ११ ॥फिर श्रीरामचंद्रजीनें हमारे चचा सुग्रीवजीसे मित्रता की जिस्से उन्होंनें हमारे पिता वालिको मारडाला ॥ १२ ॥ हमारे पिताजीनें सुग्रीवको उनके मंत्रियों सहित राज्यसे निकाल दियाथा जिस्से वह ऋष्यमूक पर्वत पर रहतेथे इसीलिये श्रीरामचंद्रजीनें हमारे पिताको मार सुग्रीवको राजा बनाया ॥ १३ ॥ उन वानरनाथ सुग्रीवजीनें अपने राज्य पर स्थापित होकर सब वानर यूथपोंको आज्ञादी जिस्सेकि हम यहांपर आयेहैं ॥ १४ ॥ और रामचंद्रजीके कहनेसे हमनें इस कार्यमें लगे हुये अनेक स्थानोंमें जानकीजीको खोजा, परन्तु रात्रिकालमें सूर्यकी प्रभाके

फिर जीवितही यहांसे निकलनेंको समर्थ नहीं होता परन्तु हम अपने नियमकी उपार्जन कीहुई तपस्याके प्रभावसे ॥ २६ ॥ समस्त वानरों को इस बिलसे उद्धार करैंगे हे वानरश्रेष्ठो! तुम सब अपने २ नेत्र बंद करो ॥ २७ ॥ क्योंकि बिना नेत्र बंद किये इस स्थानसे निकलनेंमें समर्थ नहीं हुआ जाता यह सुन सब वानरोंनें अपने सुकुमार हाथोंकी अंगुलियोंसे ॥ २८ ॥ अपने नेत्र झटपट बंद किये क्योंकि उनको उस बिलसे निकलनेंकी बासनाथी, जब सब महात्मा वानरोंनें अपने २ नेत्र अपने २ हाथोंसे बंद किये ॥ २९ ॥ तब उस तपस्विनीनें एक पलमें उन सब वानरोंका बिलसे उद्धार किया, जब वह सब बाहर आगये तब वह धर्मचारिणी तपस्विनी उन सबसे बोली ॥ ३० ॥ वह उस विषमस्थानसे वानरों

सर्वानेवबिलादस्मात्तारयिष्यामिवानरान् ॥ निमीलयतचक्षूंषिसर्वेवानरपुंगवाः ॥ २७ ॥ नहिनिष्क्रमितुंशक्यमनिमीलितलोचनैः ॥ ततोनिमीलिताःसर्वेसुकुमारांगुलैःकरैः ॥ २८ ॥ सहसापिदधुर्दृष्टिंदृष्टागमनकांक्षया ॥ वानरास्तुमहात्मानोहस्तरुद्धमुखास्तदा ॥ २९ ॥ निमेषांतरमात्रेणबिलादुत्तारितास्तया ॥ उवाचसर्वांस्तांस्तत्रतापसीधर्मचारिणी ॥ ३० ॥ निसृतान्विषमात्तस्मात्समाश्वस्येदमब्रवीत् ॥ एषविंध्योगिरिःश्रीमान्नानाद्रुमलतायुतः ॥ ३१ ॥ एषप्रस्रवणःशैलःसागरोयंमहोदधिः ॥ स्वस्तिवोस्तुगमिष्यामिभवनंवानरर्षभाः ॥ इत्युक्त्वा तद्बिलंश्रीमत्प्रविवेशस्वयंप्रभा ॥ ३२ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेद्विपंचाशः सर्गः ॥ ५२ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ततस्तेददृशुर्घोरंसागरंवरुणालयम् ॥ अपारमभिगर्जंतंघोरैरूर्मिभिराकुलम् ॥ १ ॥ मयस्यमायाविहितंगिरिदुर्गंविचिन्वताम् ॥ तेषांमासोव्यतिक्रांतोयोराज्ञासमयःकृतः ॥ २ ॥

को निकाल उनको समझा बुझाकर कहनें लगी कि अनेक प्रकारके वृक्षलता आदिसे पूर्ण श्रीमान् विन्ध्याचल यही है ॥ ३१ ॥ यह दूसरा प्रस्रवण पर्वत है, यह महासागर दृष्टि आता है हे वानरगणो! तुम्हारा मंगल हो अब हम अपने स्थानको जांयगी यह कहकर स्वयम्प्रभा तपस्विनी उस परम सुन्दर बिलमें प्रवेश कर गई ॥ ३२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडेद्विपंचाशःसर्गः॥ ५२ ॥ जब सब वानर बिलके बाहर आये तब उन्होंने अपार घोर भयंकर तरंग उठताहुआ, गर्जता, वरुणालय सागर देखा ॥ १ ॥ भय करके मायासे

स्थलमें पहुँचकर जटायु सूर्यकी किरणोंसे बहुत व्याकुल हुआ ॥५॥ हमनें सूर्यकी किरणोंसे भ्राताको दुःखित देख स्नेहके मारे अतिशय कातर हो उस भ्राताको अपने दोनों पंखोंसे ढक लिया ॥ ६ ॥ हे वानरश्रेष्ठो ! तब सूर्य नारायणकी किरणोंसे पंख जल गये, और हम इस विन्ध्याचल पर्वत पर गिरे तबसे इस स्थानमें रहते हुए हमनें भ्राता जटायुका कुछ समाचार नहीं जाना ॥ ७ ॥ जटायुके बडे भ्राता संपातीसे इस प्रकार कहे जाकर महाप्राज्ञ युवराज अंगदजी कहनें लगे ॥ ८ ॥ जो आपही जटायुके भ्राताहैं, तो हमारे वचन आपनें सुनेहीहैं, इस समय यदि ज्ञात होतो आप उस राक्षस रावणका स्थान बता दीजिये ॥ ९ ॥ यदि आप उस विचार रहित राक्षसोंमें नीच रावणको जानते हों तो दूरहो या निकट हो उसका

तमहंभ्रातरंदृष्ट्वासूर्यरश्मिभिरर्दितम् ॥ पक्षाभ्यांछादयामासस्नेहात्परमविह्वलम् ॥ ६ ॥ निर्दग्धपक्षःपतितोविंध्येऽहं वानरर्षभाः ॥ अहमस्मिन्वसन्भ्रातुःप्रवृत्तिंनोपलक्षये ॥ ७ ॥ जटायुषस्त्वेवमुक्तोभ्रात्रासंपातिनातदा ॥ युवराजो महाप्राज्ञःप्रत्युवाचांगदस्तदा ॥ ८ ॥ जटायुषोयदिभ्राताश्रुतंतेगदितंमया ॥ आख्याहियदिजानासिनिलयंतस्यर क्षसः ॥ ९ ॥ अदीर्घदर्शिनंतंवैरावणंराक्षसाधमम् ॥ अंतिकेयदिवादूरेयदिजानासिशंसनः ॥ १० ॥ ततोऽब्रवी न्महातेजाभ्राताज्येष्ठोजटायुषः ॥ आत्मानुरूपंवचनंवानरान्संप्रहर्षयन् ॥ ११ ॥ निर्दग्धपक्षोगृध्रोहंगतवीर्यःप्लवं गमाः ॥ वाङ्मात्रेणापिरामस्यकरिष्येसाह्यमुत्तमम् ॥ १२ ॥ जानामिवारुणाँल्लोकान्विष्णोस्त्रैविक्रमानपि ॥ देवासुरविमर्दांश्चह्यमृतस्यविमंथनम् ॥ १३ ॥ रामस्ययदिदंकार्यंकर्तव्यंप्रथमंमया ॥ जरयाचहृतंतेजः प्राणाश्चशिथिलाමम ॥ १४ ॥

स्थान हमें बता दीजिये ॥ १० ॥ जब अंगदजीनें ऐसा कहा तब जटायुका भ्राता महातेजवान सम्पाति वानरोंको हर्षित कराता हुआ अपने अनुरूप वचन बोला ॥ ११ ॥ हे वानरश्रेष्ठो ! हमारे पंख जल गयेहैं, इस समय बल वीर्य कुछभी नहींहै तथापि हम केवल वचनकेही सहारे श्रीरामचन्द्र जीकी उत्तम सहाय करेंगे ॥ १२ ॥ हम वरुण लोक और जहांतक लोक त्रिविक्रम वामनजीनें नापेहैं, वह भूरादि लोक सबको जानतेहैं और देवासु रोंका संग्राम, और समुद्रसे अमृतका मन्थन इत्यादि सब कुछ हमनें देखा है ॥ १३ ॥ जरा अवस्थाके आजानेंसे हमारा तेज हत होगया; और प्राण

लिये विना संशय सबका मरण हुआ क्योंकि वानरराज सुग्रीवजीका कार्य न किये कौन पुरुष सुखी होसकताहै ॥ १२ ॥ सुग्रीवजीका नियत किया हुआ समय तों वीतहीगया; इस समय हम सबको प्रायोपवेशन करके प्राण त्यागन करना सब भांतिसे ठीकहै ॥ १३ ॥ सुग्रीवजीका स्वभाव अति तीक्ष्णहै; तिसपर वह इस समय सब वानरोंके राजाहैं, सो उनका अपराध होनेंपर किसी भांति क्षमा न करेंगें ॥ १४ ॥ सीताजीका पता न लगनेंसे वह अवश्यही हम सबको मार डालेंगे, सो उस मरनेंसे इस समय कहीं पुण्यस्थानमें प्राण दे देना हमारे लिये भलाहै ॥ १५ ॥ जो हम लोग यहांसे किष्किन्धाको चले जांयगे तो सुग्रीवजी निश्चयही हम सबको मार डालेंगे इस कारण इस समय यही पुत्र, स्त्री, धन, और गृहादि सम

अस्मिन्नतीतेकालेतुसुग्रीवेणकृतेस्वयम् ॥ प्रायोपवेशनंयुक्तंसर्वेषांचवनौकसाम् ॥ १३ ॥ तीक्ष्णःप्रकृत्यासुग्रीवः
स्वामिभावेव्यवस्थितः ॥ नक्षमिष्यतिनःसर्वानपराधकृतोगतान् ॥ १४ ॥ अप्रवृत्तौचसीतायाःपापमेवकरिष्यति ॥
तस्मात्क्षममिहाद्यैवगंतुंप्रायोपवेशनम् ॥ १५ ॥ त्यक्त्वापुत्रांश्चदारांश्चधनानिचगृहाणिच ॥ ध्रुवंनोहिंसतेराजासर्वा
न्प्रतिगतानितः ॥ १६ ॥ वधेनाप्रतिरूपेणश्रेयान्मृत्युरिहैवनः ॥ नचाहंयौवराज्येनसुग्रीवेणाभिषेचितः ॥ १७ ॥
नरेंद्रेणाभिषिक्तोस्मिरामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ सपूर्वंबद्धवैरोमांराजादृष्ट्वाव्यतिक्रमम् ॥ १८ ॥ घातयिष्यतिदंडेनती
क्ष्णेनकृतनिश्चयः ॥ किंमेसुहृद्भिर्व्यसनंपश्यद्भिर्जीवितांतरे ॥ इहैवप्रायमासिष्येपुण्येसागररोधसि ॥ १९ ॥

स्तको छोड, प्राण त्याग करना हमें बहुत अच्छाहै इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ १६ ॥ जो तुम कहोकि सुग्रीवनें तुमको युवराज कियाहै; वह तुम्हें नहीं मारेंगे, सो अबतक उन्होंनें हमको युवराजपदवी नहीं दीहै; इसलिये उस नीचपनकी मृत्यु होनेंसे इसी स्थान पर मृत्यु पाना हम अच्छा समझतेहैं ॥ १७ ॥ सर्व कार्य करनेंमें चतुर श्रीरामचंद्रजीनें हमको युवराजपदवीपर अभिषेक किया, सुग्रीव तौ प्रथमहीसे हमसे वैराचरण करतेहैं; फिर वह जिस समय जानेंगे कि इन्होंनें कार्य पूरा नहीं किया ॥ १८ ॥ तौ उसी समय हमको वह तीक्ष्ण दंड देकर मार डालेंगे; अपनें सुहृदगणोंके निकट उस निन्दनीय मृत्युकी अपेक्षा, इस पवित्र समुद्रके तीरपर प्राणत्याग करना हमारे अर्थ बहुत श्रेष्ठ होगा इसमें संशयही क्याहै? ॥ १९ ॥

वह रावणके अंतःपुरमें रोकी हुई राक्षसियोंसे रक्षा की जाती हैं, तुम उस नगरीमें जनककुमारी सीताजीको देखोगे ॥ २३ ॥ दुर्ग और प्रचारादिसे रहित लंका पुरीके चारों ओर सागर है, उन शतयोजन समुद्रके पार होकर उस दक्षिण किनारेपर जाय फिर रावणको देख पाओगे, इस्से हे वानरश्रेष्ठो! तुम शीघ्र वहां जाओ और अपना २ विक्रम दिखाओ! हम अपनें ज्ञानसे निश्चय देखते हैं, कि तुम लोग जानकीजीको देखकर लौट आओगे। कबूतर आदि धान्य जीवी पक्षी जो आकाश मार्गमें उडतेहैं इसलिये प्रथम पंथ इनका ॥ २४ ॥ दूसरा मार्ग जो इस्से कुछही ऊँचा है वह फलादि खानेवाले काकोंकाहै, और बटेर क्रौञ्च कुरर आदि इनसेभी कुछ ऊंचे तीसरे मार्गमें उडते हैं ॥२५॥ उनसे ऊंचे चतुर्थ मार्गमें बाज उडतेहैं;

रावणांतःपुरेरुद्धाराक्षसीभिःसुरक्षिता॥जनकस्यात्मजांराज्ञस्तस्यांद्रक्ष्यथमैथिलीम्॥२३॥"लंकायामभिगुप्तायांसागरेणसमंततः॥ संप्राप्यसागरस्यांतेसंपूर्णेशतयोजने॥आसाद्यदक्षिणंकूलंततोद्रक्ष्यथरावणम्॥तत्रैवत्वरिताःक्षिप्रंविक्रमध्वंप्लवंगमाः"॥ ज्ञानेनखलुपश्यामिदृष्ट्वाप्रत्यागमिष्यथ॥ आद्यःपंथाःकुलिंगानांयेचान्येधान्यजीविनः ॥ २४ ॥ द्वितीयोबलिभोजानांयेचवृक्षफलाशनाः ॥ भासास्तृतीयंगच्छंतिक्रौंचाश्चकुररैःसह ॥ २५ ॥ श्येनाश्चतुर्थंगच्छंति गृध्रागच्छंतिपंचमम् ॥ बलवीर्योपपन्नानांरूपयौवनशालिनाम् ॥ २६ ॥ षष्ठस्तुपंथाहंसानांवैनतेयगतिःपरा ॥ वैनतेयाच्चनोजन्मसर्वेषांवानरर्षभाः ॥ २७ ॥ गर्हितंतुकृतंकर्मयेनस्मपिशिताशिनः ॥ प्रतिकार्यंचमेतस्यवैरंभ्रातृकृतंभवेत् ॥ २८ ॥ इहस्थोऽहंप्रपश्यामिरावणंजानकींतथा ॥ अस्माकमपिसौपर्णंदिव्यंचक्षुर्बलंतथा ॥ २९ ॥

इनसे ऊर्ध्व पांचवें मार्गमें गृध्रजातेहैं बल वीर्य युक्त रूपयौवनसम्पन्न ॥२६॥ हंसोंका छठा मार्ग है, जो गृध्रकेभी मार्गसे ऊंचा है और गरुडोंकी गति सबसे श्रेष्ठ है, उनकी समान ऊपर आकाशमें और कोईभी जानेंको समर्थ नहीं होता,हे कपिवरो! हम लोगोंका जन्म वैनतेय अरुणसे हुआ है॥२७॥ जिस राक्षसनें पराई स्त्रीको हरण करके दुष्कार्य किया और हमारे भ्राता जटायुको मार डाला है, सो उसका पता बतानेंसेही मानों हमनें उस्से अपने भाईका वैर लेलिया ॥ २८॥ हम यहां रहकरभी रावण और जानकीजीको देख रहे हैं क्योंकि हम लोगोंकी आंखोंका बल गरुडकी दिव्य आं

चंद्रमाकी समान प्रभाशाली तारने जब इस प्रकारसे कहा तो हनुमानजीनें अनुमानकिया कि बस अब अंगद करके सुग्रीवका राज्य गया। ॥ १ ॥ हनुमानजीनें अंगदजीको शुश्रूषादि अष्टविध गुण बुद्धि चतुरंग सेना और देश कालज्ञतादि चौदह गुण निधान विचारा ॥ २ ॥ हनुमानजीनें विचारा कि अंगद सदाही तेज बल और पराक्रम से शुक्ल पक्षकी आदि से लेकर प्रभा लक्ष्मी युक्त चंद्रमाकी समान वर्त्तमान होरहाहै ॥ ३ ॥ यह युवराज बुद्धिमें बृहस्पतिकी समान और विक्रममें अपने पिताकी समानहै, तार वानरसे सेवित है जैसे इन्द्रजी शुक्रके वचनोंसे सेवित होते हैं ॥ ४ ॥ ऐसे अंगदजीको अपने स्वामीका प्रयोजन सिद्ध करनेमें थकित देख सर्व शास्त्रविशारद हनुमानजी उनसे बोले॥५॥ वह हनुमानजी चार

तथाब्रुवतितारेतुताराधिपतिवर्चसि ॥ अथमेनेहृतंराज्यंहनूमानंगदेनतत् ॥ १ ॥ बुद्ध्याह्यष्टांगयायुक्तंचतुर्बलसमन्वितम् ॥ चतुर्दशगुणंमेनेहनूमान्वालिनःसुतम् ॥ २ ॥ आपूर्यमाणंशश्वच्चतेजोबलपराक्रमैः ॥ शशिनंशुक्लपक्षादौवर्धमानमिवश्रिया ॥ ३ ॥ बृहस्पतिसमंबुद्ध्याविक्रमेसदृशंपितुः॥शुश्रूषमाणंतारस्यशुक्रस्येवपुरंदरम् ॥४ ॥ भर्तुरर्थेपरिश्रांतंसर्वशास्त्रविशारदः ॥ अभिसंधातुमारेभेहनूमानंगदंततः ॥ ५ ॥ सचतुर्णामुपायानांद्वितीयमुपवर्णयन् ॥ भेदयामासतान्सर्वान्वानरान्वाक्यसंपदा ॥ ६ ॥ तेषुसर्वेषुभिन्नेषुततोऽभीषयदंगदम् ॥ भीषणैर्विविधैर्वाक्यैःकोपोपायसमन्वितैः ॥ ७ ॥ त्वंसमर्थतरःपित्रायुद्धेतारेयवैध्रुवम् ॥ दृढंधारयितुंशक्तःकपिराज्यंयथापिता ॥ ८ ॥ नित्यमस्थिरचित्ताहिकपयोहरिपुंगव ॥ नाज्ञाप्यंविपहिष्यंतिपुत्रदारंविनात्वया ॥ ९ ॥ त्वांनैतेह्यनुरंजेयुःप्रत्यक्षंप्रवदामिते ॥ यथायंजांबवान्नीलःसुहोत्रश्चमहाकपिः ॥ १० ॥

प्रकारोंके उपायोंमेंसे दूसरा उपाय भेद वर्णन करके सार युक्त वचनोंसे उन समस्त वानरोंको भेद करते हुये॥६॥जब सब वानरोंमें भेद पडगया तब हनुमानजीने दंड सहित भयंकर वचनोंसे अंगदको भय दिखाकर कहा ॥ ७ ॥ हे ताराकुमार! तुम युद्ध करनेमें पिताको तुल्य सामर्थ्य रखतेहो, यदि कपिगण तुमको राज्यमें अभिषेकित करें तो तुम पिताजीकी ही समान दृढतासे राज्य धारण करनेमें समर्थ होगे ॥ ८ ॥ हे वानरश्रेष्ठ ! चंचलचित्त वानर लोग अपने स्त्री पुत्रोंको सुग्रीवके वशमें पडा देख तुम्हारी आज्ञाका विना पुत्र दाराके यहांपर बैठे हुए मान्य न करेंगे ॥ ९ ॥ हम तुमसे इन सबके

कियाहै,यह सब कहकर वनवासी वानरोंका विशेष उपकार साधन कीजिये॥३॥वह कौनहै कि जिस पुरुषनें दशरथकुमार श्रीराम और लक्ष्मणजीके धनुषसे छूटे हुए वाण समूहके विक्रमकी चिन्ता नहीं की ॥ ४ ॥ सम्पाति उन प्रायोपवेशन त्यागे हुए सीताजीका वृत्तान्त श्रवण करनेंकी इच्छा किये वानरोंको समझा बुझाकर फिर इस प्रकार वचन बोला ॥ ५ ॥ हे वानरो ! सीताजीके हरणका वृत्तान्त जैसे हमनें सुनाहै और वह बडे २ नेत्र वाली इस समय कहांपर रहतीहैं सो तुम श्रवण करो जिसनें हमसे कहा वहभी सुनो ॥ ६ ॥ हम क्षीणप्राण क्षीणपराक्रम और वृद्ध अवस्था युक्त इस पर्वतकी अनेक योजनकी चौडी गुफामें वहुत दिनोंसे गिरकर रहतेहैं ॥ ७ ॥ हमारा पुत्र सुपार्श्वनामक पक्षिश्रेष्ठ हमारी इस अव

कोदाशरथिबाणानांवज्रवेगनिपातिनाम् ॥ स्वयंलक्ष्मणमुक्तानांनचिंतयतिविक्रमम् ॥ ४ ॥ सहरीन्प्रतिसंमुक्तान् सीताश्रुतिसमाहितान् ॥ पुनराश्वासयन्प्रीतइदंवचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥ श्रूयतामिहवैदेह्यायथामेहरणंश्रुतम् ॥ येन चापिममाख्यातंयत्रचायतलोचना ॥ ६ ॥ अहमस्मिन्गिरौदुर्गेबहुयोजनमायते ॥ चिरान्निपतितोवृद्धःक्षीणप्रा णपराक्रमः ॥ ७ ॥ तंमामेवंगतंपुत्रःसुपार्श्वोनामनामतः ॥ आहारेणयथाकालंबिभर्तिपततांवरः ॥ ८ ॥ तीक्ष्णकामा स्तुगंधर्वास्तीक्ष्णकोपाभुजंगमाः ॥ मृगाणांतुभयंतीक्ष्णंततस्तीक्ष्णक्षुधावयम् ॥ ९ ॥ सकदाचित्क्षुधार्तस्यममा हाराभिकांक्षिणः ॥ गतःसूर्येहनिप्राप्तोममपुत्रोह्यनामिषः ॥ १० ॥ समयाहारसंरोधात्पीडितःप्रीतिवर्धनः ॥ अनुमान्ययथातत्त्वमिदंवचनमब्रवीत् ॥ ११ ॥ अहंतातयथाकालमामिषार्थीखमाप्लुतः ॥ महेंद्रस्यगिरे र्द्वारमावृत्यसुसमाश्रितः ॥ १२ ॥

स्थाको जानकर यथा समयमें आहार देकर हमारा प्रतिपालन करता ॥८॥गन्धर्व गणोंका काममें वडा अभिलाष, सर्प गणोंमें वडा क्रोध मृग गणोंमें वडा भय, और हमारी क्षुधा अत्यन्त तीक्ष्ण जाननी ॥ ९ ॥ एक समयमेंहमारा पुत्र सूर्योदयके समयसे गयार सन्ध्याको विनाही आहारके हमारे पास आया उस समय हम भूंखके मारे व्याकुल हो आहारकी वाट देख रहेथे ॥१०॥ भोजन न पानेके कारण हमनें अपने पुत्रको दुर्वचनोंसे परिपीडित किया तब प्रीतिका वढानेवाला पुत्र हमारा सन्मान करता हुआ हमसे बोला ॥ ११ ॥ हम यथा समयमें मांसकी खोज करनेंके लिये आकाशमें

जाया करोगे ॥ १८ ॥ जो तुम विग्रह करोगे तो लक्ष्मणजीके महा भयंकरतेज, उग्र वेगवान दुर्द्धर्ष बाणोंका समूह तुमको संहार करैगा * ॥ १९ ॥
तुम हमारे संग जो विनीत भावसे सुग्रीवजीके पास चलोगे, तो सुग्रीवजी आदिसे अंततक समस्त वृत्तान्त श्रवण करके तुमको अवश्य राज्यमें
अभिषेकित करेंगे ॥ २० ॥ तुम्हारे पितृव्य सुग्रीवजी, धर्मराज, प्रीतिमान, दृढव्रत, पवित्र और सत्य प्रतिज्ञहैं वह कदापि तुम्हारा विनाश नहींकरैंगे २१ ॥
वह सुग्रीवजी तुम्हारी माताका प्रियकार्य करनें वाले हैं, उसकेही निमित्त उनका जीवन है और सुग्रीवके और कोई पुत्रभी नहीं है कि वह उसे
राज्य देदेंगे इसलिये अंगद! तुम अवश्य किष्किन्धाको चलो ॥ २२ ॥ इ० श्रीम० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे चतुष्पंचाशः सर्गः ॥ ५४ ॥

अत्युग्रवेगानिशिताघोरालक्ष्मणसायकाः ॥ अपावृत्तंजिघांसंतोमहावेगादुरासदाः ॥ १९ ॥ अस्माभिस्तुगतंसार्धं
विनीतवदुपस्थितम्॥आनुपूर्व्यात्तुसुग्रीवोराज्येत्वांस्थापयिष्यति॥२०॥ धर्मराजःपितृव्यस्तेप्रीतिकामोदृढव्रतः॥ शु
चिःसत्यप्रतिज्ञश्चसत्वांजातुननाशयेत्॥ २१ ॥ प्रियकामश्चतेमातुस्तदर्थंचास्यजीवितम् ॥ तस्यापत्यंचनास्त्यन्यं
तस्मादंगदगम्यताम् ॥ २२ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ० किष्किंधाकांडेचतुष्पंचाशःसर्गः ॥५४॥ श्रुत्वाहनुमतोवाक्यं
प्रश्रितंधर्मसंहितम् ॥ स्वामिसत्कारसंयुक्तमंगदोवाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥ स्थैर्यमात्ममनःशौचमानृशंस्यमथार्जवम् ॥
विक्रमश्चैवधैर्यंचसुग्रीवेनोपपद्यते ॥ २ ॥ भ्रातुर्ज्येष्ठस्ययोभार्याजीवतोमहिषींप्रियाम् ॥ धर्मेणमातरंयस्तुस्वीकरो
तिजुगुप्सितः ॥ ३ ॥ कथंसधर्मंजानीतेयेनभ्रात्रादुरात्मना ॥ युद्धायाभिनियुक्तेनबिलस्यापिहितंमुखम् ॥ ४ ॥

हनुमान्‌जीके धर्म संगत स्वामीका सत्कार करनेंके योग्य विनय समन्वित वचन सुनकर अंगदजी बोले ॥ १ ॥ हे हनुमन्! स्थिरता, मनकी
पवित्रता, सलज्जता, सरलता, विक्रम, और धीरता सुग्रीवजीमें यह कुछभीदृष्टि नहीं आता ॥ २ ॥ जो पुरुष माताकी तुल्य धर्ममें वर्तमान बडे
भ्राताकी प्यारी रानी स्त्रीको, उसके पुत्र हमारे जीवित रहते स्वीकारकरले अर्थात् अपनी स्त्री बनाले, वह अत्यन्त घृणितहै और धर्मके विषय
को कुछ नहीं जानता इसलिये वह अत्यन्त अधार्मिक है ॥ ३ ॥ जो दुरात्मा भ्राता युद्धमें लगे हुये अपने भ्राताके मार्गको बिलमें शिला लगा

* दोहा—तासों मनमें शान्तिकर, ढूंढौ वन चित लाय । जनकसुता निज भाग्य वश जो कदापि मिलजाय ॥

बोलनेंवालेनें कहा॥२१॥जब सुपार्श्वनें हमसे यह समस्त निवेदन किया, तबउसको सुनकर हमारी बुद्धि कुछभी फिर पराक्रम करनेंको न हुई *॥२२॥ हम पक्षी होकर भी पक्षहीन हैं, इसलिये किस प्रकारसे युद्धादिके लियेउद्योग करें परन्तु हां जो कुछ वचन बुद्धिके गुणानुसार हम कर सकते हैं ॥ २३ ॥ सो तुम सुनो, वह कार्य तुम लोगोंके बल वीर्यसे पूरा होगा वचन और बुद्धिसे हम तुम्हारा सबका प्रिय और हितका कार्य करैंगे॥२४॥ इसमें कुछ सन्देह नहीं कि जो श्रीरामचंद्रजीका कार्यहै वह हमाराहीहै तिसपर तुमभी तो बुद्धिमान,बलवान मनस्वी॥२५॥देवतालोगोंको भीबडे कष्टसे प्राप्त होनेंके योग्य हो क्योंकि तुम्हें कपिराज सुग्रीवजीने भेजाहै कंकपत्र युक्त श्रीराम लक्ष्मणजीके वाण ॥ २६ ॥ तीन लोकोंकाउद्धार और उनका

एतदर्थंसमग्रंमेसुपार्श्वःप्रत्यवेदयत् ॥ तच्छ्रुत्वापिहिमेबुद्धिर्नासीत्काचित्पराक्रमे ॥ २२ ॥ अपक्षोहिकथंपक्षी कर्मकिंचित्समारभेत् ॥ यत्तुशक्यंमयाकर्तुंवाग्बुद्धिगुणवर्तिना ॥ २३ ॥ श्रूयतांतत्रवक्ष्यामिभवतांपौरुषाश्र यम् ॥ वाङ्मतिभ्यांहिसर्वेषांकरिष्यामिप्रियंहिवः ॥ २४ ॥ यद्धिदाशरथेःकार्यंममतन्नात्रसंशयः ॥ तद्भवंतो मतिश्रेष्ठाबलवंतोमनस्विनः ॥ २५ ॥ प्रहिताःकपिराजेनदेवैरपिदुरासदाः ॥ रामलक्ष्मणबाणाश्चविहिताःकंकप त्रिणः ॥ २६ ॥ त्रयाणामपिलोकानांपर्याप्तास्त्राणनिग्रहे ॥ कामंखलुदशग्रीवस्तेजोबलसमन्वितः ॥ भवतांतुसम र्थानांनकिंचिदपिदुष्करम् ॥ २७ ॥ तदलंकालसंगेनक्रियतांबुद्धिनिश्चयः ॥ नहिकर्मसुसज्जंतेबुद्धिमंतोभवद्विधाः ॥ ॥ २८ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेएकोनषष्टितमःसर्गः ॥ ५९ ॥ ॥ छ ॥

नाश करनेमें समर्थ हैं दशानन रावण तेज युक्त बलवान होनेपर भी सर्व कार्योंको करनेंकी सामर्थ्य रखनेंवाले तुम लोगोंको कुछ अजीत नहीं होगा ॥ २७ ॥ अब कुछभी विलम्ब लगानेंका प्रयोजन नहीं है इस समय बुद्धिका निश्चय करो क्योंकि तुम्हारी समान बुद्धिमान् लोग कार्य सिद्ध करनें में कुछभी आलस्य नहीं करते॥ २८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

* दोहा—पंखहीन अवसर गये,सुत बल कीन्ह धिकार॥गहि मम निकट न लायऊ,हती रामकीनार ॥

करके कुशल पूछना और श्रीराम लक्ष्मणजीसेभी प्रणाम करके कुशलपूछना ॥ १३ ॥ और उन राजा व छोटे हमारे तात सुग्रीवजीसे प्रणाम करके कुशल पूछना और हमारी माता रुमासेभी आरोग्य पूर्वक कुशलपूछना ॥ १४ ॥ और हमारी माता ताराकोभी आप भली भांति समझा देना क्योंकि वह करुणावती तपस्विनी स्वभावसेही हमको बहुत प्यारकरतीहैं ॥ १५ ॥ क्योंकि वह वहांपर हमारा मरण सुनकर निश्चयही अपने प्राणोंको परित्याग करदेंगी प्रणाम सहित यह सब वृद्धोंसे कह ॥ १६ ॥कर अंगदजी रोदन करते हुए भूमिपर कुश विछाय मरनेंके लिये उदासी नहो बैठगये उनको इस प्रकार मरनेंपर उतारू देख सब वानर श्रेष्ठ रोनेलगे ॥ १७ ॥ वह सबके सब रोदन कर नेत्रोंसे जल धारा गिराने और

वाच्यस्तातोयवीयान्मेसुग्रीवोवानरेश्वरः ॥ आरोग्यपूर्वंकुशलंवाच्यामातारुमाचमे ॥ १४ ॥ मातरंचैवमेतारामाश्वासयितुमर्हथ ॥ प्रकृत्याप्रियपुत्रासासानुक्रोशातपस्विनी ॥ १५ ॥ विनष्टमिहमांश्रुत्वाव्यक्तंहास्यतिजीवितम् ॥एतावदुक्त्वावचनंवृद्धांस्तानभिवाद्यच ॥ १६ ॥ विवेशचांगदोभूमौरुदन्दर्भेषुदुर्मुखः ॥ तस्यसंविशतस्तत्ररुदंतोवानरर्षभाः ॥ १७ ॥ नयनेभ्यःप्रमुमुचुरुष्णंवैवारिदुःखिताः ॥ सुग्रीवंचैवनिंदंतःप्रशंसंतश्चवालिनम् ॥१८॥ परिवार्यांगदंसर्वेव्यवसन्प्रायमासितुम् ॥ तद्वाक्यंवालिपुत्रस्यविज्ञायप्लवगर्षभाः॥१९॥ उपस्पृश्योदकंसर्वेप्राङ्मुखाःसमुपाविशन्॥ दक्षिणाग्रेषुदर्भेषुउदक्तीरंसमाश्रिताः॥२०॥मुमूर्षवोहरिश्रेष्ठाएतत्क्षममितिस्मह॥ रामस्यवनवासंचक्षयंदशरथस्यचं ॥२१॥जनस्थानवधंचैववधंचैवजटायुषः॥हरणंचैववैदेह्यावालिनश्चवधंतथा॥रामकोपंचवदतांहरीणांभयमागतम्२२॥

सुग्रीवकी निन्दा और वालिकी बडाई करने लगे ॥ १८ ॥ और अंगदजीके ऐसे वचन सुनकर सब वानर मरनेंके लिये निश्चय तैयारहो उनको घेरकर बैठ गये ॥ १९ ॥ और सबही समुद्रके जलमें आचमन कर पूर्वमुखहो समुद्रके दक्षिण किनारेकी ओर कुशोंकी चोटीकर उनपर मरनेंको बैठ गये ॥ २० ॥ मरनेंकी इच्छा किये वानर अपने मरणको श्रेष्ठही मानतेहुए श्रीरामचंद्रजीका वनवास, राजा दशरथका मरण ॥ २१ ॥ जन स्थान का विध्वंस, जटायुका मरण, जानकीका हरण, वालिका वध और श्रीरामचंद्रजीका क्रोध कहतेर वानर गणोंको भय प्राप्त हुआ अर्थात् उनपर एक

जब इस स्थान पर रहतेथे तब हम विन्ध्याचल के भयंकर अग्रभागसे अति कष्ट सहित तीक्ष्ण कुशवाली पृथ्वी पर आये ॥ १० ॥ उन ऋषिका दर्शन करनेंकी लालसासे जटायुके सहित पहले भी हम बहुत वार उनसेमिलेथे तब बडे कष्टसे उनके पास पहुँचे ॥ ११ ॥ उनके आश्रमके निकट सदा सुगन्धि युक्त पवन चलाकरता वहांपर फूल हीन या फलहीन कोईवृक्ष दृष्टि नहीं आताथा॥ १२ ॥ उस आश्रममें आयकर एक पेडकी जडमें बैठे भगवान निशाकर मुनिके दर्शनका अभिलाष हम कर रहेथे ॥ १३॥तिसके पीछे अपनें तेजसे दीप्तिमान दुर्द्धर्ष, स्नानकर उत्तरको मुखकर मह र्षिजी आ रहेहैं ऐसा हमने दूरसे देखा ॥ १४ ॥ दरिद्र प्राणी जिस प्रकार दाताको घेरकर पीछे २ आतेहैं वैसेही शूकर, रीछ, सिंह, व्याघ्र और

तमृषिंद्रष्टुकामोऽस्मिदुःखेनाभ्यागतोभृशम् ॥ जटायुषामयाचैवबहुशोऽधिगतोहिसः ॥ ११ ॥ तस्याश्रमपदाभ्याशे ववुर्वाताःसुगंधिनः ॥ वृक्षोनापुष्पितःकश्चिदफलोवानदृश्यते ॥ १२ ॥ उपेत्यचाश्रमंपुण्यंवृक्षमूलमुपाश्रितः ॥ द्रष्टुकामःप्रतीक्षेचभगवंतंनिशाकरम् ॥ १३ ॥ अथपश्यामिदूरस्थमृषिंज्वलिततेजसम् ॥ कृताभिषेकंदुर्धर्षमुपावृत्तमुदङ्मुखम् ॥ १४ ॥ तमृक्षाःसृमराव्याघ्राःसिंहानानासरीसृपाः ॥ परिवार्योपगच्छंतिदातारंप्राणिनोयथा ॥ १५ ॥ ततःप्राप्तमृषिंज्ञात्वातानिसत्त्वानिवैययुः ॥ प्रविष्टेराजनियथासर्वंसामात्यकंबलम् ॥ १६ ॥ ऋषिस्तुदृष्ट्वामांतुष्टःप्रविष्टश्चाश्रमंपुनः ॥ मुहूर्तमात्रान्निर्गम्यततःकार्यमपृच्छत ॥ १७ ॥ सौम्यवैकल्यतांदृष्ट्वारोम्णांतेनावगम्यते ॥ अग्निदग्धाविमौपक्षौप्राणाश्चापिशरीरके ॥ १८ ॥ गृध्रौद्वौदृष्टपूर्वौमेमातरिश्वसमौजवे ॥ गृध्राणांचैवराजानौभ्रातरौकामरूपिणौ ॥ १९ ॥

अनेक प्रकारके सर्प उनको घेरे हुये चले आतेहैं ॥ १५ ॥ राजाको रनवासमें पैठा जानकर मंत्री आदि जिस भांति अपनें २ स्थानको चले जातेहैं वैसेही ऋषि श्रेष्ठको आश्रममें आया हुआ जानकर सब प्राणी अपने २स्थानको चलेगये ॥ १६ ॥ ऋषिजी हमको देख प्रसन्नहो आश्रममें चले गये और एक मुहूर्त्ततक आश्रमसे फिर बाहर आय हमसे अनेक कार्य पूछने लगे ॥ १७ ॥ कि हे सौम्य ! तुम्हारे पंखोंका विकार देखकर हम तुमको पहँचान नहीं सकतेहैं; तुम्हारे यह पंख अग्निसे जल गये और शरीर व प्राणभी जलेहीकी तुल्य होगयाहै ॥ १८ ॥ हमनें पहले पवनकी

श्रीरामचंद्रजीके कार्यकी सिद्धि न हुई, न राजाहीकी आज्ञाके अनुसार कार्य हुआ। यह देखो! इस समय वानरोंके लिये यह अज्ञात विपद आय पहुँची ॥ ८ ॥ देखो एक जटायु पक्षीनें श्रीजानकीजीकाहित करनेको जो कार्य कियाथा वह समस्त हमने श्रवणकर रक्खाहै॥९॥ इस प्रकार तिर्यक् योनिमें जन्म ग्रहण करके हम वानरोंकी समान सबहोप्राणी प्राणत्याग करकेभी श्रीरामचंद्रजीके हित करनेंका यत्न कर तेहैं ॥ १० ॥ वह श्रीरामचंद्रजीके प्रति स्नेह और करुणाके वशहो उनकाउपकार करतेहैं, इसलिये उनका उपकार करनेंके लिये तुम लोगभी अपना जीव दे डालो ॥ ११ ॥ धर्मज्ञ जटायुनें श्रीरामचंद्रजीका कैसाकार्य कियाथा हम सबभीतो श्रीरामचंद्रजीके कार्यके लिये थके थकाये

रामस्यनकृतंकार्यंनकृतंराजशासनम् ॥ हरीणामियमज्ञाताविपत्तिःसहसागता ॥ ८ ॥ वैदेह्याःप्रियकामेनकृतंकर्म जटायुषा ॥ गृध्रराजेनयत्तत्रश्रुतंवस्तदशेषतः ॥ ९ ॥ तथासर्वाणिभूतानितिर्यग्योनिगतान्यपि ॥ प्रियंकुर्वंतिरामस्य त्यक्त्वाप्राणान्यथावयम् ॥ १० ॥ अन्योन्यमुपकुर्वंतिस्नेहकारुण्ययंत्रिताः ॥ ततस्तस्योपकारार्थंत्यजतात्मानमा त्मना ॥ ११ ॥ प्रियंकृतंहिरामस्यधर्मज्ञेनजटायुषा ॥ राघवार्थेपरिश्रांतावयंसंत्यक्तजीविताः ॥ १२ ॥ कांताराणि प्रपन्नाःस्मनचपश्याममैथिलीम्॥ससुखीगृध्रराजस्तुरावणेनहतोरणे॥मुक्तश्चसुग्रीवभयाद्गतश्चपरमांगतिम् ॥ १३ ॥ जटायुषोविनाशेनराज्ञोदशरथस्यच ॥ हरणेनचवैदेह्याःसंशयंहरयोगताः ॥ १४ ॥ रामलक्ष्मणयोर्वासमरण्ये सहसीतया ॥ राघवस्यचबाणेनवालिनश्चतथावधम् ॥ १५ ॥

जीव देनेको तैयार बैठेहैं ॥ १२ ॥ और हम गिरि दुर्गतक चले आये* परन्तु श्रीजानकीजीको कहीं न देख पाया! वह गृध्रराज जटायु रावणकेहाथसे मरकर सुग्रीवके भयसे छूट परम गतिको प्राप्त हुआ ॥ १३ ॥ जटायुके और राजा दशरथजीके मरणसे, फिर जानकीजीके हरणकी इन सब घटना ओंसे वानर गणोंको इस समय प्राण संशय आपहुंचाहै ॥ १४ ॥ श्रीराम लक्ष्मणजीका सीताजीके सहित वनमें वास, और श्रीरामचंद्रजीके

* सब पक्षी आदि जीव मात्रके सुग्रीव राजाथे सबको आज्ञा माननी पडतीथी.

आकाशमें उडकर शीघ्रतासे हम दोनों भाई सूर्य भगवानके निकट जानेंको परिश्रम करते हुये और वहांपर हमने ११ में क अतिविस्तारवाला दूवका
वन देखा ॥ ७ ॥ पृथ्वीको देखा तो वह पर्वतोंसे घिरी हुईथी और नदीरूप डोरोंसे मानों गुंथ रहीथी ॥ ८ ॥ माचल विन्ध्याचल और सु
मेरु पर्वत आकाशसे जल आकारवाली पृथ्वीमें सरोवरोंमें गजकी समानदृष्टि आतेथे ॥ ९ ॥ तब ऐसा देखकर हम सू दोनोंकोही अति तीव्र स्वेद
खेद, भय, मोह, और दारुण मूर्च्छा आनें लगी ॥ १० ॥ हम दोनों दक्षिण आग्नेय और पश्चिम दिशा कुछभी नहीं समझसके केवल प्रलय कालमें
जले हुए पुरुषकी समान बुद्धिरहित होगये ॥ ११ ॥ हमारा मन नेत्रोंके सहित सूर्याग्निसे भस्म होनेंकी तुल्य होगया फिर हमनें

तूर्णमुत्पत्यचाकाशमादित्यपदमास्थितौ ॥ आवामालोकयावस्तद्वनंशाद्वलसंस्थितम् ॥ ७ ॥ उपलैरिवसंछन्नादृ
श्यतेभूःशिलोच्चयैः ॥ आपगाभिश्चसंवीतासूत्रैरिववसुंधरा ॥ ८ ॥ हिमवांश्चैवविंध्यश्चमेरुश्चसुमहागिरिः ॥ भूतले
संप्रकाशंतेनागाइवजलाशये ॥ ९ ॥ तीव्रःस्वेदश्चखेदश्चभयंचासीत्तदावयोः ॥ समाविशतमोहश्चततोमूर्च्छाचदारु
णा ॥ १० ॥ नचदिग्ज्ञायतेयाम्यानचाग्नेयीनवारुणी ॥ युगांतेनियतोलोकोहतोदग्धइवाग्निना ॥ ११ ॥ मनश्चमेहतं
भूयश्चक्षुःप्राप्यतुसंश्रयम् ॥ यत्नेनमहताह्यस्मिन्मनःसंधायचक्षुषी ॥ १२ ॥ यत्नेनमहताभूयोभास्करःप्रतिलोकितः
॥ तुल्यपृथ्वीप्रमाणेनभास्करःप्रतिभातिनौ ॥ १३ ॥ जटायुर्मामनापृच्छ्यनिपपातमहींततः ॥ तंदृष्ट्वातूर्णमाकाशा
दात्मानंमुक्तवानहम् ॥ १४ ॥ पक्षाभ्यांचमयागुप्तोजटायुर्नप्रदह्यत ॥ प्रमादात्तत्रनिर्दग्धःपतन्वायुपथादहम् ॥ १५ ॥
आशंकेतंनिपतितंजनस्थानेजटायुपम् ॥ अहंतुपतितोविंध्येदग्धपक्षोजडीकृतः ॥ १६ ॥

अति कष्टसे मनके साथ नेत्रोंको मिलाय ॥ १२ ॥ अनेक यत्नकरके सूर्यनारायणको देखा तो उस समय वह सूर्य पृथ्वीकी तुल्य प्रमाण वाले
दिखाई दिये॥ १३ ॥जटायु तो हमसे विनाही पूछे पाछे पृथ्वीपर गिर पडा उसको गिरते देख हमनेंभी आकाशसे अपनेको छुडाया॥ १४ ॥हमनें अपने
दोनों पंखोंसे जटायुको ढका इसलिये जटायुके पंख न जलकर हमारे पंख प्रमादके मारे जल गये और हम वायुमार्गसे गिरनेंलगे ॥ १५ ॥ उस
समय हमको ऐसा ज्ञात हुआ कि मानों जटायु तो जनस्थानमें गिरा और हम दग्धपंख और जड होकर इस विन्ध्याचल पर्वतपर गिरे ॥ १६ ॥

कि जिन दशरथजीके बडे प्यारे ज्येष्ठ पुत्र गुरुजनके प्रिय श्रीरामचंद्रजीहैं! सूर्यकी किरणोंसे अपने पर जल जानेके कारण हम उड नहीं सकते ॥ २४ ॥ इसलिये हे शत्रुओंके मारनेंवाले वानरो! हम इस पर्वत से उतरना चाहतेहैं ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे षट्पंचाशःसर्गः ॥ ५६ ॥ वानरयूथपतियोंने शोकके हेतु उस गृध्रके टूटे फूटे वचन सुनकर भी उसका विश्वास न माना क्योंकि वह वानर उसके वध वचन रूप कर्मसे शंकित हो रहेथे ॥ १ ॥ उन मरनेंके लिये व्रत धारण किये हुये वानरों ने गृध्रको देखकर मनमें समझा कि यह भयंकर पक्षी हम सबोंको ही भक्षण करैगा ॥ २ ॥ हमतो प्राणत्याग करनेके लिये प्रायोपवेशन

यस्यरामःप्रियःपुत्रोज्येष्ठोगुरुजनप्रियः ॥ सूर्यांशुदग्धपक्षत्वान्नशक्नोमिविसर्पितुम् ॥२४॥ इच्छयापर्वतादस्मादवतर्तुमरिंदमाः ॥२५॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०किष्किंधाकांडेषट्पंचाशःसर्गः ॥५६॥ ॥ ७॥ शोकाद्भ्रष्टस्वरमपिश्रुत्वावानरयूथपाः ॥ श्रद्दधुर्नैवतद्वाक्यंकर्मणातस्यशंकिताः ॥ १ ॥ तेप्रायमुपविष्टास्तुदृष्ट्वागृध्रंप्लवंगमाः ॥ चक्रुर्बुद्धिंतदारौद्रांसर्वान्नोभक्षयिष्यति ॥ २ ॥ सर्वथाप्रायमासीनान्यदिनोभक्षयिष्यति ॥ कृतकृत्याभविष्यामःक्षिप्रंसिद्धिमितोगताः ॥ ३ ॥ एतांबुद्धिंततश्चक्रुःसर्वेतेहरियूथपाः ॥ अवतार्यगिरेःशृंगाद्गृध्रमाहांगदस्तदा ॥ ४ ॥ बभूवर्क्षराजोनामवानरेंद्रःप्रतापवान् ॥ ममार्यःपार्थिवःपक्षिन्धार्मिकौतस्यचात्मजौ ॥ ५ ॥ सुग्रीवश्चैववालीचपुत्रौघनबलावुभौ ॥ लोकेविश्रुतकर्माभूद्राजावालीपितामम ॥ ६ ॥ राजाकृत्स्नस्यजगतइक्ष्वाकूणांमहारथः ॥ रामोदाशरथिःश्रीमान्प्रविष्टोदंडकावनम् ॥ ७ ॥

किये ही हैं, सो यदि यह गृध्र जो हमको भक्षण करले तो हमने जो मरण वासना की है वह सिद्ध हो जायगी और हम कृतार्थ हो जांयगे ॥ ३ ॥ समस्त कपि यूथपोंने इस प्रकार बुद्धि करके संपातीको पर्वतसे नीचे उतारा तब फिर अंगदजी उस्से बोले ॥ ४ ॥ हे पक्षिन्! ऋक्षराज नामक पृथ्वीपति प्रतापवान वानरोंके राजा हमारे पितामहथे उनके दो पुत्र अति धार्मिक हुये ॥ ५ ॥ वह सुग्रीव और वालि अति विक्रमशाली हुये उनमें विख्यातकीर्ति हमारे पिता वालि वानरोंके राजा हुये ॥ ६ ॥ जब सब जगत्के राजा इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न हुये दशरथजीके पुत्र रामचंद्रजी

तुल्य देवतालोगोंकोभी दुर्लभ परमान्न देआवेंगे ॥ ८ ॥ सीताजी वह अन्न निश्चय इन्द्रजीका दिया हुआ जानकर उसका अग्रभाग उठाय मंत्र पाठकर पृथ्वीमें श्रीराम लक्ष्मणजोके लिये छोडदेगी ॥ ९ ॥ उस मंत्रका अर्थ यह थाकि यदि हमारे स्वामी और देवर लक्ष्मण जीवितहों अथवा देवलोकको चले गयेहों, यह अन्न उनके निमित्त दिया गया ॥ १० ॥हे विहंगम संपाते ! रामदूत वानरगण सीताजीके ढूंडनेंको भेजे जाकर जब यहां आवेंगे, उस समय तुम उनसे सीताजीके समाचार बताओगे ॥ ११ ॥ तुम और कहीं न जाओ, ऐसी अवस्थामें कहां जाओगे; इस लिये यहीं देश कालकी बाट परख, तुम अपने दोनों पंख फिर प्राप्तकरोगे ॥ १२ ॥ हम अभी तुमको पंख देसकतेहैं; परन्तु तुम इस अवस्थामें

तदन्नंमैथिलीप्राप्यविज्ञायेंद्रादिदंत्विति ॥ अग्रमुद्धृत्यरामायभूतलेनिर्वपिष्यति ॥ ९ ॥ यदिजीवतिमेभर्तालक्ष्मणो वापिदेवरः ॥ देवत्वंगच्छतोर्वापितयोरन्नमिदंत्विति ॥ १० ॥ एष्यंतिप्रेषितास्तत्ररामदूताःप्लवंगमाः ॥ आख्येयारा ममहिषीत्वयातेभ्योविहंगम ॥ ११ ॥ सर्वथातुनगंतव्यमीदृशःक्वगमिष्यसि ॥ देशकालौप्रतीक्षस्वपक्षौत्वंप्रति पत्स्यसे ॥ १२ ॥ उत्सहेयमहंकर्तुमद्यैवत्वांसपक्षकम् ॥ इहस्थस्त्वंहिलोकानांहितंकार्यंकरिष्यसि ॥ १३ ॥ त्वया पिखलुतत्कार्यंतयोश्चनृपपुत्रयोः ॥ ब्राह्मणानांगुरूणांचमुनीनांवासवस्यच ॥ १४ ॥ इच्छाम्यहमपिद्रष्टुंभ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ नेच्छेचिरंधारयितुंप्राणांस्त्यक्ष्येकलेवरम् ॥ महर्षिस्त्वब्रवीदेवंदृष्टतत्त्वार्थदर्शनः ॥ १५ ॥ इतिश्रीम० वा०आ०कि०द्विषष्टितमःसर्गः ॥ ६२ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ एतैरन्यैश्चबहुभिर्वाक्यैर्वाक्यविशारदः ॥ मांप्रशस्याभ्यनु ज्ञाप्यप्रविष्टःसस्वमालयम् ॥ १ ॥

लोकोंका हित साधन करोगे, इस कारण हम तुमको पंख नहीं दिये ॥१३॥तुम दोनों रघुवीर श्रीराम, लक्ष्मणका, ब्राह्मणोंका, गुरुजनोंका, मुनि समूहोंका और इन्द्रका कार्य कर सकोगे ॥ १४ ॥ श्रीराम, लक्ष्मण दोनों भाइयोंका दर्शन करनेकी तो हमारीभी इच्छाथी परन्तु अब आगे हम इस शरीरके धारण करनेंको समर्थ नहींहैं इसलिये तनु त्याग करेंगे ! तत्त्वदर्शी मुनिजीनें हमसे ऐसा कहाथा ॥ १६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० किष्किन्धाकांडे द्विषष्टितमःसर्गः ॥ ६२ ॥ वाक्यविशारद मुनिवर इस प्रकार व औरभी बहुत वचनोंसे हमारी

समान हमनें उनको कहीं न पाया ॥ १५ ॥ हम सब बडी सावधानीसे दंडकारण्यको ढूंड रहेथे कि अज्ञानके वश होकर एक बिलमें प्रवेश कर
गये १६ ॥ वह मय दानवका बनाया हुआहै, उस बिलकोही ढूंडते २सुग्रीवजीका नियत किया हुआ एक मासका समय वीतगया ॥ १७ ॥
हम लोग वानर राज सुग्रीवजीकी आज्ञाके प्रतिपालक,उनके नियत किये समयके वीत जानेंसे मरनेंके लिये प्रायोपवेशन व्रत धारण किये हुयेहैं॥१८॥
क्योंकि लक्ष्मण सुग्रीव और रामचंद्रजीके क्रोध करनेंसे हमें मरना पडेगा, इसलिये हम वहां न जाकर यहांही प्राण त्यागनेंको तयार हुये
हैं ॥ १९ ॥ इ० श्रीम०वा० आ० कि० सप्तपंचाशःसर्गः ॥ ५७ ॥ जब जीवनको त्याग करनेंके लिये निश्चय किये वानरोंनें इस प्रकार करु

तेवयंदंडकारण्यंविचित्यसुसमाहिताः ॥ अज्ञानात्तुप्रविष्टाःस्मधरण्याविवृतंबिलम् ॥ १६ ॥ मयस्यमायाविहितंत
द्बिलंचविचिन्वताम् ॥ व्यतीतस्तत्रनोमासोयोराज्ञासमयःकृतः ॥ १७ ॥ तेवयंकपिराजस्यसर्वेवचनकारिणः ॥
कृतांसंस्थामतिक्रांताभयात्प्रायमुपासिताः ॥ १८॥ क्रुद्धेतस्मिंस्तुकाकुत्स्थेसुग्रीवेचसलक्ष्मणे ॥ गतानामपिसर्वे
षांतत्रनोनास्तिजीवितम् ॥ १९ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आदिकाव्येकिष्किंधाकांडेसप्तपंचाशःसर्गः ॥५७॥ ॥ छ ॥
इत्युक्तःकरुणंवाक्यंवानरैस्त्यक्तजीवितैः ॥ सबाष्पोवानरान्गृध्रःप्रत्युवाचमहास्वनः ॥ १ ॥ यवीयान्सममभ्राता
जटायुर्नामवानराः ॥ यमाख्यातहतंयुद्धेरावणेनबलीयसा ॥ २ ॥ वृद्धभावादपक्षत्वाच्छृण्वंस्तदपिमर्षये ॥ नहिमेश
क्तिरस्त्यद्यभ्रातुर्वैरविमोक्षणे ॥ ३ ॥ पुरावृत्रवधेवृत्तेसचाहंचजयैषिणौ ॥ आदित्यमुपयातौस्वोज्वलंतंरश्मिमा
लिनम् ॥ ४ ॥ आवृत्त्याकाशमार्गेणजवेनस्वर्गतौभृशम् ॥ मध्यंप्राप्तेतुसूर्येतुजटायुरवसीदति ॥ ५ ॥

णाके भरे वचन कहे तब गृध्रराज सम्पाति नेत्रोंमें जल भरकर गंभीर स्वरसे उन वानरोंसे बोले ॥१॥ हे वानर यूथपो ! बलवान् रावणसें जिसको
वध किया हुआ तुम कहतेहो वही हमारा छोटा भाई जटायु था॥२॥यह कठोर वार्त्ता हमनें बुढापे और पंखोंके न रहनेंसे सुनकर सहन करली क्योंकि
इस समय रावणसे अपने छोटे भाईका वैर लेनेंके लिये हममें सामर्थ्य नहींहै ॥३॥पूर्वकालमें वृत्रासुरके वधके समय जयके अभिलाषी होकर हम दोनों
भ्राता, जलती हुई किरणोंवाले सूर्य नारायणके निकट पहुँच गये ॥ ४ ॥ जब हम आकाशमार्गमें अति वेगसे गमन कर रहेथे, तब सूर्यके मध्य

ण वर्णके पंख उवे हुये देखकर ॥९॥ अतुलनीय हर्ष प्राप्त करके वानरों से बोलाकि अमिततेजमान महर्षि निशाकरजीके प्रसादसे ॥ १० ॥
हमारे सूर्यकी किरणोंसे जले हुये दोनों पंख फिर जम आये हम जिस समय युवा अवस्थाको प्राप्त थे उस समय जिसप्रकारका पराक्रम हम
में था ॥ ११ ॥इस समय भी वैसाही बल पौरुष हमनें प्राप्त किया तुम सर्व प्रकारसे यत्न करो अवश्यही सीताजीको पाओगे ॥ १२ ॥ जब कि ह
मारे पंख जम आये, तब विश्वास होताहै कि तुम्हारा कार्यभी अवश्य सिद्ध होगा इस प्रकार पक्षिश्रेष्ठ सम्पाति उन समस्त वानरोंसे ऐसा
कह ॥ १३ ॥ अपने जमे हुए पंखोंसे पहलेही की समान पक्षियोंकी गति जाननेंकी इच्छासे उस पर्वतके शिखरसे उडा उसके यह वचन सुन अ

निशाकरस्यराजर्षेःप्रसादादमितौजसः ॥ १० ॥ आदित्यरश्मिनिर्दग्धौपक्षौ
प्रहर्षमतुलंलेभेवानरांश्चेदमब्रवीत् ॥
पुनरुपस्थितौ॥यौवनेवर्तमानस्यममासीद्यःपराक्रमः ॥ ११ ॥ तमेवाद्यावगच्छामिबलंपौरुषमेवच॥ सर्वथाक्रियतां
यत्नःसीतामधिगमिष्यथ ॥ १२ ॥ पक्षलाभोममायंवःसिद्धिप्रत्ययकारकः ॥ इत्युक्त्वातान्हरीन्सर्वान्संपातिःपतगो
त्तमः ॥ १३ ॥ उत्पपातगिरेःशृंगाज्जिज्ञासुःखगमोगतिम् ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाप्रतिसंहृष्टमानसाः ॥ बभूवुर्हरिशार्दू
लाविक्रमाभ्युदयोन्मुखाः ॥ १४ ॥ अथपवनसमानविक्रमाःप्लवगवराःप्रतिलब्धपौरुषाः ॥ अभिजिदभिमुखांदिशं
ययुर्जनकसुतापरिमार्गणोन्मुखाः ॥ १५ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०कि०त्रिषष्टितमःसर्गः ॥ ६३ ॥ ॥ ७ ॥ आ
ख्यातागृध्रराजेनसमुत्प्लुत्यप्लवंगमाः ॥ संगताःप्रीतिसंयुक्ताविनेदुःसिंहविक्रमाः ॥ १ ॥ संपातेर्वचनंश्रुत्वाहरयो
रावणक्षयम् ॥ हृष्टाःसागरमाजग्मुःसीतादर्शनकांक्षिणः॥ २ ॥

फिर पर्वत तुल्य विक्रमवान अति पौरुषी वानर गण
त्यन्त हर्षित मनसे वानरश्रेष्ठगण सीताजीके ढूंडनेंमें अपना २ विक्रमदिखानेंको तैयार हुए॥१४॥
जनककुमारी जानकीजीको खोजनेके लिये अभिजित् मुहूर्तमें दक्षिण दिशाको चले॥ १५ ॥ इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०कि०त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥
गृध्रराजसे इस प्रकार कहे हुए सिंहतुल्य विक्रमवान वानर गण प्रीतिसे प्रफुल्लित चित्तहो इधर उधर कूद फांद परस्पर मिलकर हर्षध्वनि क
रनें लगे ॥ १ ॥ रावणके नाशकारी सम्पातिके वचन सुनकर हर्ष युक्त वानर गण सीताजीका दर्शन करनेंके निमित्त समुद्रके तीरपर आये ॥ २ ॥

॥१३५॥

शिथिल होजाये नहीं तौ श्रीरामचन्द्रजीका प्रथम कार्य हमकोही अवश्य करना चाहियेथा ॥ १४ ॥ सर्व गहनोंसे भूषित, रूपयौवन सम्पन्न श्रीरामचन्द्रजीकी भार्या सीताजीको रावण हरण किये लेजा रहाथा, तव हमनें उसको देखाहै ॥ १५ ॥ वह सीताजी, राम २ लक्ष्मण २ शब्द कह चिल्लाय २ अपने अंगोंके गहने निकाल २ पृथ्वीपर फेंकतीथी ॥ १६ ॥ उनका उत्तम रेशमीन वस्त्र पर्वतके आगेमें सूर्यकी प्रभाके समान शोभा पारहाथा, और वहभी स्वयं काले वर्ण वाले राक्षसोंके निकट आकाशमें रहती हुई बिजलीकी समान शोभा विस्तार करतीथीं ॥ १७ ॥ उन्होंनें जो राम २ अपनें मुखसे कहाथा सो अव हमनें जानाकि वह श्रीरामचन्द्रजीकी भार्या सीताजीथीं अव उस राक्षसके रहनेंका स्थान हम कहतेहैं तुम श्र

तरुणीरूपसंपन्नासर्वाभरणभूषिता ॥ ह्रियमाणामयादृष्टारावणेनदुरात्मना ॥ १५ ॥ क्रोशंतीरामरामेतिलक्ष्मणेति चभामिनी ॥ भूषणान्यपविध्यंतीगात्राणिचविधुन्वती ॥ १६ ॥ सूर्यप्रभेवशैलाग्रेतस्याःकौशेयमुत्तमम् ॥ असिते राक्षसेभातियथाविद्युदिवांबरे ॥ १७ ॥ तांतुसीतामहंमन्येरामस्यपरिकीर्तनात् ॥ श्रूयतांमेकथयतोनिलयंतस्यर क्षसः ॥ १८ ॥ पुत्रोविश्रवसःसाक्षाद्भ्रातावैश्रवणस्यच ॥ अध्यास्तेनगरींलंकांरावणोनामराक्षसः ॥ १९ ॥ इतोद्वीपे समुद्रस्यसंपूर्णेशतयोजने ॥ तस्मिँल्लङ्कापुरीरम्यानिर्मिताविश्वकर्मणा ॥ २० ॥ जांबूनदमयैर्द्वारैश्चित्रैःकांचनवे दिकैः ॥ प्रासादैर्हैमवर्णैश्चमहद्भिःसुसमाकृता ॥ २१ ॥ प्राकारेणार्कवर्णेनमहताचसमन्विता ॥ तस्यांवसति वैदेहीदीनाकौशेयवासिनी ॥ २२ ॥

वण करो ॥ १८ ॥ विश्वश्रवाका पुत्र; और कुवेरका साक्षात् भ्राता रावण नामक वह राक्षस लंका नगरीमें वास करताहै ॥ १९ ॥ वह लंका यहांसे चारसौ कोशकी दूरीपर एक समुद्रके द्वीपमें वसीहै, उस मनोहर लंका पुरीको विश्वकर्मानें बनायाहै ॥ २० ॥ उस पुरीमें सव सुवर्णमय द्वार सुवर्णहीकी चित्र विचित्र वेदियां और बडे सुवर्णहीके राजमंदिर बने हैं, और उस पुरीकी भूमि सव जगहही समान है ॥ २१ ॥ उसकी वाहर दिवारीभी सुवर्णमय सूर्यकी प्रभाके समान झलकतीहै उस लंकानगरी में अतिदीना जानकीजो रेशमीन वस्त्र पहरे हुए वसतीहैं ❀ ॥ २२ ॥

हां वसत सिय जनकदुलारी। रामचन्द्र विन निपट दुखारी ॥

न्द्रजीके चारों ओर बैठतीहै वैसेही वानरोंकी सेना अंगदजीको घेरकर बैठी ॥ १२ ॥ वालिकुमार अंगदजी और हनुमानजीके सिवाय और कोई उस वानरी सैनाके स्थिर करनेंमें समर्थ नहीं होसकताथा ॥ १३ ॥फिर शत्रुओंका नाश करनेंवाले श्रीमान् अंगदजी वृद्ध वानरोंका और सब सैनाका सन्मान करके सार वचन बोले ॥ १४ ॥ कौन महातेजवान् इस समय समुद्रको लांघेगा ? कौन वानर इस समय शत्रुओं के मारनेंवाले सुग्रीवजीकी प्रतिज्ञाको सत्य करैगा ? ॥ १५ ॥ कौनवीर चार शत कोशका मार्ग एक छलांगमें पार करैगा ? कौन वानर इन समस्त यूथप वानरोंको महाभयसे उद्धार करैगा ॥ १६ ॥ किसके प्रसादसे हम सब वानर गण कार्य सिद्धकर यहांसे घरको लौट अपने वर जाय

ततस्तान्हरिवृद्धांश्चतच्च
कोऽन्यस्तांवानरीसेनांशक्तःस्तंभयितुंभवेत् ॥ अन्यत्रवालितनयादन्यत्रचहनूमतः ॥ १३ ॥
सैन्यमरिंदमः ॥ अनुमान्यांगदःश्रीमान्वाक्यमर्थवदब्रवीत् ॥ १४ ॥ कइदानींमहातेजालंघयिष्यतिसागरम् ॥ कः
करिष्यतिसुग्रीवंसत्यसंधमरिंदमम् ॥ १५ ॥ कोवीरोयोजनशतंलंघयेतप्लवंगमः ॥ इमांश्चयूथपान्सर्वान्मोचये
त्कोमहाभयात् ॥ १६ ॥ कस्यप्रसादाद्दारांश्चपुत्रांश्चैवगृहाणिच ॥ इतोनिवृत्ताःपश्येमसिद्धार्थाःसुखिनोवयम् ॥१७॥
कस्यप्रसादाद्रामंचलक्ष्मणंचमहाबलम् ॥ अभिगच्छेमसंहृष्टाःसुग्रीवंचवनौकसम् ॥ १८ ॥ यदिकश्चित्समर्थो
वःसागरप्लवनेहरिः ॥ सददातिवहनःशीघ्रंपुण्यामभयदक्षिणाम् ॥ १९ ॥ अंगदस्यवचःश्रुत्वानकश्चित्किंचिदब्र
वीत् ॥ स्तिमितेवाभवत्सर्वासातत्रहरिवाहिनी ॥ २० ॥ पुनरेवांगदःप्राहतान्हरीन्हरिसत्तमः ॥ सर्वेबलवतांश्रेष्ठा
भवंतोदृढविक्रमाः ॥ व्यपदेशकुलेजाताःपूजिताश्चाप्यभीक्ष्णशः ॥ २१ ॥

स्त्री पुत्र और गृहको देखकर सुखी होंगे ॥ १७ ॥ किसके प्रसादसे यह समस्त वनवासी वानर गण हर्षित होकर, राम लक्ष्मण और वनच रोंके राजा सुग्रीवजीके निकट जायँगे ॥ १८ ॥ यदि कोई वानरश्रेष्ठ इससागरके लाँघनेंको समर्थहो वह शीघ्रही हमको पुण्यकारी अभय दक्षिणा देवे ॥ १९ ॥ अंगदजीके वचन सुनकर किसी वानरनें कुछभी उत्तर नदिया, समस्त वानरसैना मौनभावको धारणकर चुपचाप होगई ॥ २० ॥ वानरश्रेष्ठ अंगदजी फिर उन सब वानरोंसे बोले, कि तुम सबही दृढ विक्रम करनेंवाले हो; और तुम कलंकरहित कुलमें

खोंसे उत्पन्न है इसलिये यह दृष्टि वहुत दूरतक जाती है॥२९॥हे वानरो; इस कारण और मांसादि भक्षण करनेंके वलसे हम शतयोजनको वरन इ स्ससेभी कुछ अधिक दूरकी वस्तु देख सकते हैं ॥ ३० ॥ स्वभावसेही हम गृध्रोंकी वृत्ति दूरतक स्थित भोजनादि देखनेंकी बनी है और मुरगे आ दिकी दृष्टि उस पेडकी जडही तक पहुँचतीहै जिसपर वह रहाकरते हैं॥३१॥तुम लोग क्षार समुद्रको नांघनेंके लिये कोई उपाय खोज करो, इस्से जानकी जीके निकट पहुँचकर कार्य सिद्ध कर किष्किन्धाको लौट आना ॥३२॥ तुम हमको समुद्रके किनारे पर लेचलो हम वहांपर उस स्वर्गको गये हुये अपने महात्मा छोटे भाईको जलांजली देंगे ॥३३॥ जब सम्पातिने ऐसा कहा तो महात्मा वानरवृन्दोंने उस पंख जले हुये सम्पातिको नदनदी पति

तस्मादाहारवीर्येणनिसर्गेणचवानराः ॥ आयोजनशतात्साग्राद्वयंपश्यामनित्यशः ॥ ३० ॥ अस्माकंविहितावृत्तिर्निसर्गेणचदूरतः ॥ विहितावृक्षमूलेतुवृत्तिश्चरणयोधिनाम् ॥ ३१ ॥ उपायोदृश्यतांकश्चिल्लंघनेलवणांभसः ॥ अभिगम्यतुवैदेहींसमृद्धार्थागमिष्यथ ॥ ३२ ॥ समुद्रंनेतुमिच्छामिभवद्भिर्वरुणालयम् ॥ प्रदास्याम्युदकंभ्रातुःस्वर्गतस्य महात्मनः ॥ ३३ ॥ ततोनीत्वातुतंदेशंतीरेनदनदीपतेः ॥ निर्दग्धपक्षंसंपातिंवानराःसुमहौजसः ॥ ३४ ॥ तंपुनःप्रापयित्वाचतंदेशंपतगेश्वरम् ॥ बभूवुर्वानराहृष्टाःप्रवृत्तिमुपलभ्यते ॥ ३५ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०किष्किंधाकांडेअष्टपंचाशःसर्गः ॥ ५८ ॥ ॥ ७ ॥ ततस्तदमृतास्वादंगृध्रराजेनभाषितम् ॥ निशम्यवदतोहृष्टास्तेवचःप्लवगर्षभाः ॥ १ ॥ जांबवान्वानरश्रेष्ठःसहसर्वैःप्लवंगमैः ॥ भूतलात्सहसोत्थायगृध्रराजानमब्रवीत् ॥ २ ॥ क्वसीताकेनवादृष्टाकोवाहरतिमैथिलीम् ॥ तदाख्यातुभवान्सर्वंगतिर्भववनौकसाम् ॥ ३ ॥

समुद्रके तीरपर ले आये ॥ ३४ ॥ वानरगण उस पक्षिनाथको जब समुद्रके तीरपर ले गये और सीताजीका वृत्तान्त प्राप्तकर आनंदित हुये ॥३५॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे अष्टपंचाशः सर्गः ॥५८॥ फिर गृध्रराज सम्पाति करके कहे हुये अमृतमय वचन सुन कर वानर गण अत्यन्त हर्षित होनेंकी कथा बार२कहनें लगे॥१॥इसके पीछे वानरपति जाम्बवानजी समस्त वानरगणोंके सहित सहसा उठे और गृध्रराजसे कहनें लगे॥२॥कि यद्यपि आप सब बताय चुके तथापि फिर एकवार सीताजी इस समय कहां है?किस पुरुषनें उनको देखा है?और किसनें उनको हरण

तक जा सकते हैं इसमें कुछभी संशय नहीं है ॥ ८ ॥ अतिधीर वीरबलवान् कपिश्रेष्ठ सुषेणनें कहाकि हम प्रतिज्ञा करके कह सकते हैं कि हम अस्सी योजन तक चले जायँगे ॥ ९ ॥ जब सब वानरोंने ऐसा कहा, तब उनका सन्मान कर वृद्धकपि जाम्बवान् उनसें कहनेंलगा ॥ १० ॥ पूर्वकालमें हम अपनी गतिके विषयमें विशेष पराक्रमी थे परन्तु इस समय हमारी आयु बहुत होगई है ॥ ११ ॥ इस समय जो कार्य आ पडाहै उसको हम त्याग नहीं सकते कि जिस कार्यके लिये श्रीरामचंद्रजी और कपिराज सुग्रीवजी कृतनिश्चय हुये हैं वह कार्य अवश्यही साधन करना पडैगा ॥ १२ ॥ इस समय जहांतक हमारे जानेकी गतिहै वह सुनो कि इस समय येक छलांगमें हम नव्वे योजनतक

सुषेणस्तुमहातेजाःसत्ववान्कपिसत्तमः॥अशीतिंप्रतिजानेऽहंयोजनानांपराक्रमे ॥ ९ ॥ तेषांकथयतांतत्रसर्वांस्ता
ननुमान्यच ॥ ततोवृद्धतमस्तेषांजांबवान्प्रत्यभाषत ॥ १० ॥ पूर्वमस्माकमप्यासीत्कश्चिद्गतिपराक्रमः ॥ तेवयं
वयसःपारमनुप्राप्ताःस्मसांप्रतम् ॥ ११ ॥ किंतुनैवंगतेशक्यमिदंकार्यमुपेक्षितुम् ॥ यदर्थंकपिराजश्चरामश्चकृतनि
श्चयौ ॥ १२ ॥ सांप्रतंकालमस्माकंयागतिस्तांनिबोधत ॥ नवतिंयोजनानांतुगमिष्यामिनसंशयः ॥ १३ ॥ तांश्चसर्वा
न्हरिश्रेष्ठान्जांबवानिदमब्रवीत् ॥ नखल्वेतावदेवासीद्गमनेमेपराक्रमः ॥ १४ ॥ मयावैरोचनेयज्ञेप्रभविष्णुःसनातनः॥
प्रदक्षिणीकृतःपूर्वंक्रममाणस्त्रिविक्रमः ॥ १५ ॥ सइदानीमहंवृद्धःप्लवनेमंदविक्रमः ॥ यौवनेचतदासीन्मेबलमप्रतिमं
परम् ॥ १६ ॥ संप्रत्येतावदेवाद्यशक्यंमेगमनेस्वतः ॥ नैतावताचसंसिद्धिःकार्यस्यास्यभविष्यति ॥ १७ ॥

जा सकते हैं इसमें कोई सन्देह नहीं॥ १३॥जाम्बवान्ने फिर उन वानरश्रेष्ठोंसे कहा कि पहले हमारा गमन करनेमें इतनाही पराक्रमनहीं था॥१४॥ वरन उस समय ऐसा पराक्रम था कि जब सनातन त्रिविक्रम वामन रूपी विष्णुजीनें राजा बलिके यज्ञमें तीन पदसे तीनों लोक नाप लिये तब हमनें उनकी प्रदक्षिणाकी थी ॥ १५ ॥ पहले हम ऐसे पराक्रमी थे परन्तु अब वृद्ध होगये इस समय हम पहलीसी छलांग नहीं मार सकते युवावस्थाके समय हमारी समान किसीमें बल नहीं था ॥ १६ ॥ हम इस समय नव्वे योजन लांघ सकतेहैं अधिक नहीं, परन्तु इतनेमें इस

उडकर महेन्द्र गिरिका द्वार रोककर खडेथे ॥ १२ ॥ हम नीचेको मुखकरके समुद्रके अंतरमें चरनेंवाले सहस्र जीव गणोंका मार्ग रोककर टिके रहे ॥ १३ ॥ वहां पर देखा कि अंजनकी समान काले वर्णवाला कोई जीव उदित सूर्यकी समान प्रभायुक्त एक स्त्रीको संग लेकर जाय रहा है ॥ १४ ॥ तब हमने उसको देखकर विचार कियाकि यह स्त्री पुरुषही आज हमारे पिताके भोजन वनेंगे परन्तु उस जीवनें वहुत गिड़गिड़ाकर हमसे रास्ता मांगा ॥ १५ ॥ नीच पुरुषोंके निकट शान्ति भाव दिखानेंसे वहभी विनाशनहीं कर सकते फिर हमारी समान जीव भला कैसे इस वातको न करें १६॥ जब हमनें उस जीवको छोड दिया तब मानों वह आकाश मार्गको पीछेछोडता हुआही अति वेगसे चला । तब समस्त आकाशचारियोंनें हमारी

तत्रसत्त्वसहस्राणांसागरांतरचारिणाम् ॥ पंथानमेकोऽध्यवसंसन्निरोद्धुमवाङ्मुखः॥ १३ ॥ तत्रकश्चिन्मयादृष्टःसूर्योदयसमप्रभाम् ॥ स्त्रियमादायगच्छन्वैभिन्नांजनचयोपमः ॥ १४॥ सोऽहमभ्यवहारार्थंतौदृष्ट्वाकृतनिश्चयः ॥ तेनसाम्नाविनीतेनपंथानमनुयाचितः ॥ १५ ॥ नाहिसामोपपन्नानांप्रहर्ताविद्यतेभुवि ॥ नीचेष्वपिजनःकश्चित्किमंगबतमद्विधः ॥ १६ ॥ सयातस्तेजसाव्योमसंक्षिपन्निववेगितः ॥ अथाहंखेचरैर्भूतैरभिगम्यसभाजितः ॥ १७ ॥ दिष्ट्याजीवतिसीतेतिअब्रुवन्मांमहर्षयः ॥ कथंचित्सकलत्रोऽसौगतस्तेस्वस्त्यसंशयम् ॥ १८ ॥ एवमुक्तस्ततोहंतैःसिद्धैःपरमशोभनैः ॥ सचमेरावणोराजारक्षसांप्रतिवेदितः॥ १९ ॥ पश्यन्दाशरथेर्भार्यांरामस्यजनकात्मजाम् ॥ भ्रष्टाभरणकौशेयांशोकवेगपराजिताम्॥२०॥रामलक्ष्मणयोर्नामक्रोशंतींमुक्तमूर्धजाम् ॥ एषकालात्ययस्तातइतिवाक्यविदांवरः ॥ २१ ॥

पूजा व प्रशंसाकी ॥ १७ ॥ तब महर्षियोंनें हमसे कहा कि भाग्यके वशसेही सीताजी जीवित रहीहैं यह पुरुष इस स्त्रीके सहित भाग्यसेही तुमसे छूट गया तुम्हारा मंगलहो॥ १८ ॥ जब परम शोभायमान महर्षियोंने यह कहा तब हमनें जानाकि यह पुरुष राक्षसपति रावण ॥ १९ ॥ और यह स्त्री सीता रामचन्द्रजीकी भार्या हैं इस समय हमनें देखा कि मारे शोकके उनके सब आभरण गिरे पडतेहैं और उनका रेशमीन वस्त्रभी शिथिल हुआ जाताहै॥२०॥उनके शिरके बाल छूटे हुएथे राम लक्ष्मणजीका नाम लेले रोती चली जातीथीं।हे तात! इसलिये आज मुझको देरहुई ऐसा उस श्रेष्ठ वचन

छभी सन्देह नहींहै ॥ २६॥ हे कपिश्रेष्ठ ! तुम हम लोगोंके गुरुपुत्र और गुरुहो तुमको आश्रय करके हम लोग कार्यके साधन करनेमें समर्थ हो सकतेहैं ॥ २७ ॥ महाप्राज्ञ जाम्बवान्नें जब इस प्रकारसे कहा तब महाकपि वालिके पुत्र अंगदजी जाम्बवान्को उत्तर देते हुए ॥ २८ ॥ यदि हमभी न जांय व औरभी कोई वानर न जाय तौ फिर प्रायोपवेशन करके प्राणोंका छोड़नाही हमारे लिये अच्छाहै ॥ २९ ॥ उन बुद्धिमान कपिपति सुग्रीवजीकी आज्ञाका प्रतिपालन न करके यदि किष्किंधाको चले जांय तो वहांभी प्राणरक्षाका कोई उपाय नहीं दृष्टि आता ॥३०॥ वह सुग्रीव निग्रह और अनुग्रहके ईश्वरहैं उनकी आज्ञाका पालन बिना किये किष्किंधामें चले जानेंसे निश्चयही प्राणका विनाश होगा इसमें कुछभी

गुरुश्चगुरुपुत्रश्चत्वंहिनःकपिसत्तम ॥ भवंतमाश्रित्यवयंसमर्थाह्यर्थसाधने ॥ २७ ॥ उक्तवाक्यंमहाप्राज्ञंजांबवंतंमहाकपिः ॥ प्रत्युवाचोत्तरंवाक्यंवालिसूनुरथांगदः ॥२८॥ यदिनाहंगमिष्यामिनान्योवानरपुंगवः ॥ पुनःखल्विदमस्माभिः कार्यंप्रायोपवेशनम् ॥ २९ ॥ नह्यकृत्वाहरिपतेःसंदेशंतस्यधीमतः ॥ तत्रापिगत्वाप्राणानांनपश्येपरिरक्षणम् ॥ ३० ॥ सहिप्रसादेचात्यर्थंकोपेचहरिरीश्वरः ॥ अतीत्यतस्यसंदेशंविनाशोगमनेभवेत् ॥ ३१ ॥ तत्तथाह्यस्यकार्यस्यनभवत्यन्यथागतिः ॥ तद्भवानेवदृष्टार्थःसंचिंतयितुमर्हति ॥ ३२ ॥ सोंगदेनतदावीरःप्रत्युक्तःप्लवगर्षभः ॥ जांबवानुत्तमंवाक्यंप्रोवाचेदंततोंगदम् ॥ ३३ ॥ तस्यतेवीरकार्यस्यनकिंचित्परिहास्यते ॥ एषसंचोदयाम्येनंयःकार्यंसाधयिष्यति ॥ ३४ ॥ ततःप्रतीतंप्लवतांवरिष्ठमेकांतमाश्रित्यसुखोपविष्टम् ॥ संचोदयामासहरिप्रवीरोहरिप्रवीरंहनुमंतमेव ॥ ३५ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवा०आ०किष्किंधाकांडेपंचषष्टितमःसर्गः ॥६५॥ ॥ ॥ ७ ॥

सन्देह नहींहै ॥ ३१ ॥ इसलिये आप तत्त्वदर्शी समस्त वानर लोग ऐसा कुछ विचार कीजिये कि जिस्से सुग्रीवजीका कहा जानकीजीका दर्शन रूप कार्य अवश्यही होजाय ॥३२॥ तब कपिवीर जाम्बवान्जी अंगदजी करके इस प्रकार कहे जाकर उनको उत्तर देते हुये ॥ ३३ ॥ हे वीर! उस कार्यके अनुष्ठानमें कुछ भी कसर नहीं होगी जो कि इस कार्यको पूरा करेगा सो यह देखो हम उसको भेजतेहैं॥३४॥तिसके पीछे कपिवर जाम्बवान् वानरगणोंमें श्रेष्ठ एकान्त -स्थानमें चुपचाप सुखसे बैठे हुए हनुमानजीसे बोले॥ ३५ ॥ इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०कि०पंचषष्टितमःसर्गः ॥ ६५ ॥

जब सम्पाति स्नान और अपने भाईकी जलक्रिया करके बैठ गया तब वानर लोग भी रमणीक पर्वत पर उसको घेरकर बैठ गये ॥ १ ॥ समस्त वानरोंके साथ अंगदजी के समीप बैठा हुआ सम्पाति पंखोंके उपजने का हेतु निशाकर मुनिजीके वचनोंका विश्वास कर फिर हर्षित हो कहने लगा ॥ २ ॥ हे समस्त वानरो! तुम लोग चुपचाप रहकर ध्यान देकर सुनो हमनें उन जानकीजीको जिस प्रकारसे जाना है उसका सब वृत्तान्त ठीक २ कहते हैं ॥ ३ ॥ हे वानरो! पहले जब सूर्य नारायणकी किरणोंसे हमारे पंख जलगये और जब हम अति तापितअंग होकर इस विन्ध्याचल पर्वतकी चोटी पर गिरे ॥ ४ ॥ छे रात्रि तक विह्वल और अचेत पडेरहकर फिर कहीं हमें चेतना आई तब हम दशो दिशा ओंकी ओरको

ततःकृतोदकंस्नातंतंगृध्रंहरियूथपाः ॥ उपविष्टागिरौरम्येपरिवार्यसमंततः ॥ १ ॥ तमंगदमुपासीनंतैःसर्वैर्हरिभिर्वृतम् ॥ जनितप्रत्ययोहर्षात्संपातिःपुनरब्रवीत् ॥ २ ॥ कृत्वानिःशब्दमेकाग्राःशृण्वंतुहरयोमम ॥ तथ्यंसंकीर्तयिष्यामियथाजानामिमैथिलीम् ॥ ३ ॥ अस्यविंध्यस्यशिखरेपतितोऽस्मिपुरानघ ॥ सूर्यतापपरीतांगोनिर्दग्धःसूर्यरश्मिभिः ॥ ४ ॥ लब्धसंज्ञस्तुषड्रात्राद्विवशोविह्वलन्निव ॥ वीक्षमाणोदिशः सर्वानाभिजानामिकिंचन ॥ ५ ॥ ततस्तुसागरान्शैलान्नदीःसर्वाःसरांसिच ॥ वनानिचप्रदेशांश्चनिरीक्ष्यमतिरागता ॥ ६ ॥ हृष्टपक्षिगणाकीर्णःकंदरोदरकूटवान् ॥ दक्षिणस्योदधेस्तीरेविंध्योऽयमितिनिश्चितः ॥ ७ ॥ आसीच्चात्राश्रमंपुण्यंसुरैरपिसुपूजितम् ॥ ऋषिर्निशाकरोनामयस्मिन्नुग्रतपाभवत् ॥ ८ ॥ अष्टौवर्षसहस्राणितेनास्मिन्नृषिणागिरौ ॥ वसतोममधर्मज्ञेस्वर्गतेतुनिशाकरे ॥ ९ ॥ अवतीर्यचविंध्याग्रात्कृच्छ्रेणविषमाच्छनैः ॥ तीक्ष्णदर्भावसुमतींदुःखेनपुनरागतः ॥ १० ॥

देखने लगे परन्तु कहीं भी कुछ दृष्टि न आया ॥ ५ ॥ फिर सागर, नदी पर्वत,सरोवर और वनादिकोंका दर्शन करते २हमारे बुद्धि आई और स्थिर हुई ॥ ६ ॥ तब कहीं हमने जानाकि शिखर युक्त और अनेक कन्दरावाले हृष्ट पुष्ट पक्षियोंसे परिपूर्ण विन्ध्याचल पर्वतके दक्षिण समुद्रके किनारे हम पडे हैं ॥७॥ उस स्थानमें देवताओंसे पूजित येक आश्रमथा उस आश्रममें निशाकर नामक उग्र तप करनें वाले येक ऋषि वास करतेथे ॥८॥ उन ऋषिके साथ आठ हजार वर्ष हमने इस पर्वतपर वास किया फिर वह धर्मात्मा निशाकरमुनिजी स्वर्गको चले गये ॥ ९ ॥ वह धर्मात्मा ऋषि

रूप यौवनसम्पन्न हुई ॥ १० ॥ रेशमीन वस्त्र पहरे विचित्र माला और गहने पहने हुये एक दिन वह कामनी वर्षाकालके मेघकी समान पर्वतके
शिखर पर विहार करतीथी ॥ ११ ॥ पवन देवतानें उस पर्वतके अग्रभागमें बैठी हुई विशालाक्षीका अरुण अंचलका सूक्ष्म मनोहर वस्त्र
उठा लिया ॥ १२ ॥ फिर पवनदेवतानें उसकी सुगोल चढा उतारवाली दोनों ऊरु, ऊंचे २ दोनों पयोधर और सुशोभित मनोहर मुख
देखा ॥ १३ ॥ तिस वृत्तनितम्बिनी, पतली कमर वाली शुभ सर्वाङ्गी परमयशस्विनीको देखतेही पवनदेव कामसे मोहित होगये ॥ १४ ॥ काम
देवसे सब अंग मथित होनेंके कारण उस निन्दा रहित स्त्रीमें लीनहो पवनदेवजीनें उसको अपनी लंबी भुजाओंसे पकड़ भली भांतिसे

विचित्रमाल्याभरणाकदाचित्क्षौमधारिणी ॥ अचरत्पर्वतस्याग्रेप्रावृडंबुदसंनिभे ॥ ११ ॥ तस्यावस्त्रंविशालाक्ष्याः
पीतंरक्तदशंशुभम् ॥ स्थितायाःपर्वतस्याग्रेमारुतोपहरच्छनैः ॥ १२ ॥ सददर्शततस्तस्यावृत्तावूरूसुसंहतौ ॥ स्तनौ
चपीनौसहितौसुजातंचारुचाननम् ॥ १३ ॥ तांबलादायतश्रोणींतनुमध्यांयशस्विनीम् ॥ दृष्ट्वैवशुभसर्वांगींपवनः
काममोहितः ॥ १४ ॥ सतांभुजाभ्यांदीर्घाभ्यांपर्यष्वजतमारुतः ॥ मन्मथाविष्टसर्वांगोगतात्मातामनिंदिताम्
॥ १५ ॥सातुतत्रैवसंभ्रांतासुव्रतावाक्यमब्रवीत् ॥ एकपत्नीव्रतमिदंकोनाशयितुमिच्छति ॥ १६ ॥ अंजनायावचः
श्रुत्वामारुतःप्रत्यभाषत ॥ नत्वांहिंसामिसुश्रोणिमाभूत्तेमनसोभयम् ॥ १७ ॥ मनसाऽस्मिगतोयत्त्वांपरिष्वज्ययश
स्विनि ॥ वीर्यवान्बुद्धिसंपन्नस्तवपुत्रोभविष्यति ॥ १८ ॥ महासत्त्वोमहातेजामहाबलपराक्रमः ॥ लंघनेप्लवनेचैवभ
विष्यतिमयासमः ॥ १९ ॥ एवमुक्ताततस्तुष्टाजननीतेमहाकपे ॥ गुहायांत्वांमहाबाहोप्रजज्ञेप्लवगर्षभ ॥ २० ॥

भेंटा ॥ १५ ॥ तब उस साधु चरित्रवाली स्त्रीनें सावधान होकर कहाकि कौन हमारा पातिव्रत्य भंग करताहै १६ ॥ तब अंजनाके वचन
सुनकर पवनदेव बोले कि हेश्रेष्ठनितम्बो वाली ! हमनें तुम्हारा व्रत भंग नहीं कियाहै; तुम कुछ भय न करो ॥ १७ ॥ हे यशस्विनी ! हम तुमको
आलिंगन करके मनहीसे तुम्हारे पर अनुरागी हुयेहैं; इसलिये व्रत भंग नहोकर तुम्हारे वीर्यवान बुद्धि सम्पन्न पुत्र उत्पन्न होगा॥१८॥वह पुत्र महास
त्त्व,महातेजवान, महाबलवान,पराक्रमी होगा और लांघनें कूदनेमेंभी हमारेही समान होगा॥ १९ ॥ हे कपीन्द्र! पवनजीके यह वचन सुनकर तुम्हारी

समान वेगवाले गृध्रोंके राजा कामरूपी दो भ्राता गृध्रोंको देखाथा॥१९॥ हेसम्पाते! उनमें तुम बडे और जटायु तुम्हारा छोटा भाई है; तुम लोगोंनें प्रथम मनुष्यका शरीर धारण करके कई वार हमारे चरण पकड लियेथे यह हमें सबही ज्ञातहै॥२०॥तुम्हें कौनसे रोगनें आकर घेर लिया? दोनों पंख कैसे गिर पडे? अथवा किसीनें तुमको यह दंड दियाहै, सो हम पूछतेहैं यह सब वृत्तान्त ठीक२हमको बतलाओ ॥ २१॥ इत्यार्षे श्रीम०वा० आ०कि०षष्टितमः सर्गः ॥६०॥मुनिजीके पूछे जानेंपर सम्पातिनें जो सूर्य भगवानके निकट पहुँचनेंका दारुण कठिन कर्म किया, वह उस समस्त वृत्तान्तको कहनें लगा॥१॥हे भगवन्! हमारे शरीरमें बडे२घाव होजानेंके कारण लज्जाके मारे व्याकुलेन्द्रिय और थकित होनेंसे बोलनेंकी शक्ति हम

ज्येष्ठोऽवितस्त्वंसंपातेजटायुरनुजस्तव ॥ मानुषंरूपमास्थायगृह्णीतांचरणौमम ॥ २० ॥किंतेव्याधिसमुत्थानंपक्षयोः पतनंकथम् ॥ दंडोवाऽयंधृतःकेनसर्वमाख्याहिपृच्छतः ॥ २१ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०कि०षष्टितमःसर्गः ॥६०॥ ततस्तद्दारुणंकर्मदुष्करंसहसाकृतम् ॥ आचचक्षेमुनेःसर्वंसूर्यानुगमनंतथा॥ १ ॥ भगवन्व्रणयुक्तत्वाल्लज्जयाचाकुलेंद्रियः ॥ परिश्रांतोनशक्नोमिवचनंपरिभाषितुम् ॥ २ ॥ अहंचैवजटायुश्चसंघर्षाद्गर्वमोहितौ ॥ आकाशंपतितौदूराज्जिज्ञासंतौपराक्रमम् ॥ ३ ॥ कैलासशिखरेबद्धामुनीनामग्रतःपणम् ॥ रविःस्यादनुयातव्योयावदस्तंमहागिरिम् ॥ ४ ॥ अप्यावांयुगपत्प्राप्तावपश्यावमहीतले ॥ रथचक्रप्रमाणानिनगराणिपृथक्पृथक् ॥ ५ ॥ क्वचिद्वादित्रघोषश्चक्वचिद्भूषणनिःस्वनः ॥ गायंतीःस्मांगनाबह्वीःपश्यावोरक्तवाससः ॥ ६ ॥

में नहीं रहीहै॥२॥हम और जटायु दोनों उडानके विषयमें गर्वकर और इन्द्रियोंके जय गर्वसे मोहित हो परस्पर पराक्रम दिखा जयकी कामना कर आकाश मार्गमें उडे॥३॥ कैलासपर्वतके शिखरपर मुनिजनोंके सामने हम यह दावँ लगाकर उडे कि जबतक सूर्य अस्त होंय तब तक उनको छूकर फिर पृथ्वीमें चले आना चाहिये ॥ ४ ॥ हम उस समय ऊपर उडकर पृथ्वीमें नगरोंको इस प्रकारसे देखनें लगे मानों [illegible] लग २ रथके पहियेहैं ॥ ५ ॥ कहीं बाजोंका शब्द कहीं गहनोंकी झनकारका शब्द सुनते हुए कहीं अनेक गानेंवाली लाल वस्त्र धारण कि[illegible] हुए स्त्रियोंको देखनें लगे ॥ ६ ॥

करैगा तबही इसकी मृत्यु होगी; इस प्रकारसे तुम केशरी वानरके भयंकर विक्रमकारी क्षेत्रज पुत्र हुएहो ॥ २९ ॥ तुम मारुतके औरस पुत्रहो तेजमेंभी उनके समान और कूदनें फांदनेंमेंभी उनके ही समान हो ॥३०॥हम इस समय हीन बल और हीन वीर्य होगयेहैं, सो इस समय चतुर और विक्रम युक्त तुम हमारे निकट दूसरे कपिराज सुग्रीवजीकी समान विद्यमान हो ॥ ३१ ॥ हे वत्स! जब वामनजीनें राजा बलिको छलकर तीन चरणसे तीनों लोक नाप लियेथे, तौ उस समय हमनें शैल, वन, काननसहित इस पृथ्वीकी इक्कीसवार प्रदक्षिणा कीथी ॥३२॥ जब देवताओंकी आज्ञासे हमनें जिनको मथनेसे अमृत निकलताहै, उन सब औषधियोंकासंग्रह कियाथा उस समय हमारे शरीरमें बड़ाबलथा ॥३३॥ सो वही इस

मारुतस्यौरसःपुत्रस्तेजसाचापितत्समः ॥ त्वंहिवायुसुतोवत्सप्लवेनचापितत्समः ॥ ३० ॥ वयमद्यगतप्राणाभवा
नस्मासुसांप्रतम् ॥ दाक्ष्यविक्रमसंपन्नःकपिराजइवापरः ॥ ३१ ॥ त्रिविक्रमेमयातातसशैलवनकानना ॥ त्रिः
सप्तकृत्वःपृथिवीपरिक्रांताप्रदक्षिणम् ॥ ३२ ॥ तदाचौषधयोऽस्माभिःसंचितादेवशासनात् ॥ निर्मथ्यममृतं
याभिस्तदानींनोमहद्बलम् ॥ ३३ ॥ सइदानीमहंवृद्धःपरिहीनपराक्रमः ॥ सांप्रतंकालमस्माकंभवान्सर्वगुणान्वि
तः ॥ ३४ ॥ तद्विजृंभस्वविक्रांतप्लवतामुत्तमोह्यसि ॥ त्वद्वीर्यंद्रष्टुकामाहिसर्वावानरवाहिनी ॥ ३५ ॥ उत्तिष्ठह
रिशार्दूललंघयस्वमहार्णवम् ॥ पराहिसर्वभूतानांहनुमन्यागतिस्तव ॥ ३६ ॥ विषण्णाहरयःसर्वेहनुमन्किमुपेक्षसे ॥
विक्रमस्वमहावेगविष्णुस्त्रीन्विक्रमानिव ॥ ३७ ॥

समय हम अतिशय वृद्धहैं; इसलिये अत्यन्त हीनबल और विक्रमरहित होगयेहैं; इस समय तुमही हम सबके मध्यमें सर्व गुणवान् ॥ ३४ ॥ विक्रम करने, और उछलनें कूदनेंमें सर्वश्रेष्ठहो, इसलिये तुम तैयार होवो; यह वानरोंकी सैना तुम्हारे बल वीर्य देखनेंका अभिलाष करतीहै ॥ ३५ ॥ इसलिये हे वानरश्रेष्ठ! उठकर महा समुद्रको नांघ जाओ हनुमन्! तुम्हारा लंकामें जाना सर्व जीवोंका भी हितकारीहै इसमें कुछ संदेह नहीं ॥ ३६ ॥ हे वानरश्रेष्ठ! हनुमन् सब वानर गण शोकाकुल होगये हैं अब क्यों देर करते हो जैसे विष्णुजीनें त्रिविक्रमरूप धराथा

हम राज्यहीन, भ्राताहीन, पंखहीन और विक्रमहीन हो गये हैं, सो अब इस पर्वतके शिखरपरसे गिरकर अपने प्राण त्याग करेंगे यह हमारी इच्छा है॥१७॥ इ० श्री० वाल्मीकीये आदिकाव्ये कि०एकषष्टितमः सर्गः॥ ६१ ॥ हम अत्यन्त दुःखित हो मुनिश्रेष्ठ निशाकरजीसे इस प्रकार कह रोनें लगे तब महर्षिजी एक मुहूर्त्ततक ध्यान धरकर बोले॥१॥तुम्हारे दोनों पंख व दूसरे पंख दो चक्र फिर जम आवेंगे और प्राण, विक्रम, बलभी तुममें वैसाही होजायगा ॥ २ ॥ हमनें पुराणोंमें सुनाहै, और तपके बलसे जानाभीहै कि आगेको एक बडी भारी घटना होगी ॥ ३ ॥ इक्ष्वाकुकुलके

राज्याच्चहीनोभ्रात्राचपक्षाभ्यांविक्रमेणच ॥ सर्वथामर्तुमेवेच्छन्पतिष्येशिखराद्गिरेः ॥ १७ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा० आ०कि०एकषष्टितमःसर्गः ॥ ६१ ॥ ॥ ७॥ ॥एवमुक्त्वामुनिश्रेष्ठमरुदंभृशदुःखितः ॥ अथध्यात्वामुहूर्तंचभगवानिदमब्रवीत् ॥ १ ॥ पक्षौचतेप्रपक्षौचपुनरन्यौभविष्यतः ॥ चक्षुषीचैवप्राणाश्चविक्रमश्चबलंचते ॥ २ ॥ पुराणेसुमहत्कार्यंभविष्यंहिमयाश्रुतम् ॥ दृष्टंमेतपसाचैवश्रुत्वाचविदितंमम ॥ ३ ॥ राजादशरथोनामकश्चिदिक्ष्वाकुवर्धनः ॥ तस्यपुत्रोमहातेजारामोनामभविष्यति ॥ ४॥ अरण्यंचसहभ्रात्रालक्ष्मणेनगमिष्यति ॥ तस्मिन्नर्थेनियुक्तःसन्पित्रासत्यपराक्रमः ॥ ५ ॥ नैर्ऋतोरावणोनामतस्यभार्यांहरिष्यति ॥ राक्षसेंद्रोजनस्थानेअवध्यःसुरदानवैः॥६ ॥ साचकामैःप्रलोभ्यंतीभक्ष्यैर्भोज्यैश्चमैथिली ॥ नभोक्ष्यतिमहाभागादुःखमग्नायशस्विनी ॥ ७ ॥ परमान्नंचवैदेह्याज्ञात्वादास्यतिवासवः ॥ यदन्नममृतप्रख्यंसुराणामपिदुर्लभम् ॥ ८ ॥

बढानेंवाले एक दशरथ राजा और राम नामक उनके एक महा तेजवान पुत्र होंगे ॥ ४ ॥ वह सत्यपराक्रम श्रीरामचंद्रजी अपने पिताकी आज्ञासे अपने छोटे भाई सहित बनको जांयगे ॥ ५ ॥ रावण नामक राक्षस उनकी भार्याको हरण करैगा, वह रावण जनस्थानवासी समस्त देव और दानवोंसे अवध्य होगा ॥ ६ ॥ उन सीताजीको रावण अनेक प्रकारकी भोज्य, भक्ष्य और भोग वस्तुओंसे ललचावैगा परन्तु वह महाभागा दृढव्रत धारण करनेंवाली दुःखसे ग्रसीहुई सीताजी किसीको ग्रहण या कार्यमें नहीं लावेंगी ॥ ७ ॥ देवराज इन्द्रजी यह वृत्तान्त जानकर उनको अमृत

रहित अग्निकी समान शोभा पानें लगे ॥ ७ ॥ उनके रोम फूल गये तब हनुमान्जी वानरोंके बीचमेंसे उठे और वृद्ध कपियोंको प्रणाम करकै कहनें
लगे ॥ ८ ॥ आकाशमें टिके हुये बलवान अनुपम अग्निके सखा पवनजी पर्वतोंके अग्रभागको तोड डालते हैं ॥ ९ ॥ हम उन्हीं महात्मा शीघ्रगा
मी पवनजीके औरस पुत्र हैं और कूदनें फांदनेंमें उनकी ही समान हैं ॥ १० ॥ हम विस्तारित आकाशको छूनें वाले, मेरु पर्वतकी विना
विश्रामकिये हुये सहस्र परिक्रमाकर सकते हैं॥ ११ ॥और हम अपनी वाहोंके वेगसे चलायमान किये हुये समुद्रके द्वारा, पर्वत, कुण्ड और नदी स
हित समस्त लोकोंके डुबानेंको समर्थ हैं॥ १२ ॥हमारी ऊरु और जांघोंके वेगसे वरुणालय समुद्र उफन जायगा और उसमेंके टिके हुये ग्राहादि

हरीणामुत्थितोमध्यात्संप्रहृष्टतनूरुहः ॥ अभिवाद्यहरीन्वृद्धान्हनूमानिदमब्रवीत् ॥ ८ ॥आरुजन्पर्वताग्राणिहुताशन
सखोऽनिलः॥बलवानप्रमेयश्चवायुराकाशगोचरः ॥ ९ ॥ तस्याहंशीघ्रवेगस्यशीघ्रगस्यमहात्मनः॥मारुतस्यौरसःपुत्रः
प्लवनेनास्मितत्समः ॥ १० ॥ उत्सहेयंहिविस्तीर्णमालिखंतमिवांबरम् ॥ मेरुंगिरिमसंगेनपरिगंतुंसहस्रशः ॥ ११ ॥
बाहुवेगप्रणुन्नेनसागरेणाहमुत्सहे ॥ समाप्लावयितुंलोकंसपर्वतनदीह्रदम् ॥ १२ ॥ ममोरुजंघावेगेनभविष्यतिसमु
त्थितः ॥ समुत्थितमहाग्राहःसमुद्रोवरुणालयः ॥ १३ ॥ पन्नगाशनमाकाशेतपंतंपक्षिसेवितम् ॥ वैनतेयमहंशक्तः
परिगंतुंसहस्रशः ॥ १४ ॥ उदयात्प्रस्थितंवापिज्वलंतंरश्मिमालिनम् ॥ अनस्तमितमादित्यमहंगंतुंसमुत्सहे ॥ १५ ॥
ततोभूमिमसंस्पृष्ट्वापुनरागंतुमुत्सहे ॥ प्रवेगेनैवमहताभीमेनप्लवगर्षभाः ॥ १६ ॥ उत्सहेयमतिक्रांतुंसर्वानाकाश
गोचरान् ॥ सागरान्शोषयिष्यामिदारयिष्यामिमेदिनीम् ॥ १७ ॥

जन्तु गण ऊपर तैर आवेंगे॥ १३ ॥पक्षियोंके कुलसे सेवित सर्पोंको भोजन करनेंवाले गरुडजी जिस समयमें जितनी दूर जाय सकते हैं हम उतनी
ही देरमें उनसे हजार गुण मार्ग चल सकतेहैं॥ १४ ॥और उदयाचल पर्वतसे चले हुये प्रज्वलित किरणवाले सूर्य नारायणके निकट गमन करनेंको
हम समर्थ हैं और अस्त होनेंसे प्रथम हम उनके आगे जा सकतेहैं ॥ १५ ॥ फिर पृथ्वीतक आकर उसकों विनाही छुये अति भीम वेगसे सूर्य
के निकट जासकते हैं फिर सौ योजनका जाना क्या बडी बातहै? ॥ १६ ॥ हम समस्त आकाशचारी ग्रह- नक्षत्रादिकोंको लांघजांय समुद्रको

प्रशंसाकर और हमको आज्ञादे अपने आश्रममें चलेगये ॥ १ ॥ हम उस पर्वतकी कन्दरासे धीरे २ सरककर विन्ध्याचल पर्वतपर आयकर तुम्हारे आनेंकी राह परख रहेथे ॥ २ ॥ जब उन मुनिजीनें हमसे ऐसा कहाथा तबसे लेकर समय धरनेंसे इस समय शत * वर्षसेभी कुछ अधिक बीत गयेहैं हम उन मुनिका वचन हृदयमें धारण कर देशकालको परख रहेहैं ॥ ३ ॥ महायात्राको प्राप्तकर महर्षि निशाकर जब स्वर्गको चले गये तब हम बहुत तर्क करके अत्यन्त संतापित हुये ॥ ४ ॥ हमारी रक्षा करनेंके लिये मुनिवरनें जो बुद्धि हमको दीथी, उसके अनुसार मरण बुद्धि हमनें छोड़दी॥ ५॥जैसे अग्निकी शिखा अन्धकारका नाश कर देतीहै ऐसेही उस बुद्धिनें हमारे संतापका नाश करदिया दुरात्मा रावणके बलको

कंदरात्तुविसर्पित्वापर्वतस्यशनैःशनैः ॥ अहंविंध्यंसमारुह्यभवतःप्रतिपालये ॥ २ ॥ अद्यत्वेतस्यकालस्यवर्षसाग्रश
तंगतम् ॥ देशकालप्रतीक्षोऽस्मिहृदिकृत्वामुनेर्वचः ॥ ३ ॥ महाप्रस्थानमासाद्यस्वर्गतेतुनिशाकरे ॥ मांनिर्दहतिसं
तापोवितर्कैर्बहुभिर्वृतम् ॥ ४ ॥ उदितांमरणेबुद्धिंमुनिवाक्यैर्निवर्तये ॥ बुद्धिर्यातेनमेदत्ताप्राणानांरक्षणेमम ॥ ५ ॥
सामेपनयतेदुःखंदीप्तेवाग्निशिखातमः ॥ बुध्यताचमयावीर्यंरावणस्यदुरात्मनः ॥ ६ ॥ पुत्रःसंतर्जितोवाग्भिर्नत्रातामै
थिलीकथम् ॥ तस्याविलपितंश्रुत्वातौचसीतावियोजितौ ॥ ७ ॥ नमेदशरथस्नेहात्पुत्रेणोत्पादितंप्रियम् ॥ तस्यत्वे
वंब्रुवाणस्यसंहतैर्वानरैःसह ॥ ८ ॥ उत्पेततुस्तदापक्षौसमक्षंवनचारिणाम् ॥ सदृष्ट्वास्वांतनुंपक्षैरुद्गतैररुणच्छदैः ॥९ ॥

अपने पुत्रके बलसे थोडाजान ॥ ६ ॥ हमनें अपनें पुत्रको फटकारा और कहाकि तैंनें सीताका विलाप सुन; और राम लक्ष्मणको सीतासे वियोगित सुन क्योंनहीं उनका उद्धार किया? तब उसनें कहा कि प्रथम हमनें उनको जानकी यह जानाही नहीं, जब वह चली गई तब सिद्ध लोगोंक मुखसे सुनाकि यह सीताजीथीं ॥ ७ ॥ इसीलिये दशरथजीके पुत्रका प्रिय कार्य मुझसे नहीं होसका, क्योंकि पुत्रनें वह श्रम न किया, जबकि सम्पाति वानरोंके साथ इस प्रकार वार्त्ता कह रहाथा ॥ ८ ॥कि वानरोंके सामनेही उसके दोनों पंख जम आये वह अपनी देहमें अरु

* यह शतशब्द बहुवाचीहै प्राचीनोनें कहाहै आठ हजारसे कुछ अधिक वर्ष वीतगये.

लोक नांघेंगे, हमारी गति और हमारा रूप वैसाही हो जायगा ॥ २५ ॥ हम अपनी बुद्धिसे देख रहेहैं, कि हमारी चेष्टा ऐसी होतीहै कि हम जानकीको देखेंगे। इसलिये हे वानरगण! तुमलोग इस समय आनंद मचाओ॥२६॥हमारे मनमें ऐसा विचार होताहै कि इस समय वेगमें पवन और गरुडजीके तुल्य होकर दशहजार योजन निराधारकोभी हम सरलतासे फलांगजांयगे ॥ २७ ॥ हम वज्रधारी इन्द्रजी, और स्वयंभू ब्रह्माजीके हाथसेभी एकाएकी विक्रम सहित छलांग मारकर अमृत लाय सकतेहैं ॥ २८ ॥ हम समझते हैं कि यदि हम चाहें तो लंकापुरीको उखाडकरभी यहां ले आसकते हैं, अमित प्रभावाले वानरश्रेष्ठ हनुमानजी ऐसा कहकर बहुत गर्जे ॥ २९ ॥ तब सब वानर गण हर्षित और विस्मितहो उनको

बुद्ध्याचाहंप्रपश्यामिमनश्चेष्टाचमेतथा ॥ अहंद्रक्ष्यामिवैदेहींप्रमोदध्वंपवंगमाः ॥ २६ ॥ मारुतस्यसमोवेगेगरुडस्यसमोजवे ॥ अयुतंयोजनानांतुगमिष्यामीतिमेमतिः ॥ २७॥ वासवस्यसवज्रस्यब्रह्मणोवास्वयंभुवः ॥ विक्रम्यसहसाहस्तादमृतंतदिहानये ॥२८॥ लंकांवापिसमुत्क्षिप्यगच्छेयमितिमेमतिः ॥ तमेवंवानरश्रेष्ठंगर्जंतममितप्रभम् ॥२९॥ प्रहृष्टाहरयस्तत्रसमुदैक्षंतविस्मिताः ॥ तच्चास्यवचनंश्रुत्वाज्ञातीनांशोकनाशनम् ॥ ३० ॥ उवाचपरिसंहृष्टोजांबवान्प्लवगेश्वरः ॥ वीरकेसरिणःपुत्रवेगवान्मारुतात्मज ॥ ३१ ॥ ज्ञातीनांविपुलःशोकस्त्वयातातप्रणाशितः ॥ तवकल्याणरुचयःकपिमुख्याःसमागताः ॥ ३२ ॥ मंगलान्यर्थसिद्ध्यर्थंकरिष्यंतिसमाहिताः ॥ ऋषीणांचप्रसादेनकपिवृद्धमतेनच ॥ ३३ ॥ गुरूणांचप्रसादेनसंप्लवत्वंमहार्णवम् ॥ स्थास्यामश्चैकपादेनयावदागमनंतव ॥ ३४ ॥

देखनें लगे। जातिके शोकका नाश करनेंवाले हनुमानजीके ऐसे वचन सुनकर ॥ ३० ॥ कपीश्वर जाम्बवान वेगवान उन पवनात्मज केशरी पुत्र वीर हनुमानजीसे बोले ॥ ३१ ॥ हेतात! तुमनें अपनी जाति वालोंका विपुल शोक नाश कर दियाहै, तुम्हारी कल्याणकी इच्छासे यह सब वानर यहां आयकर ॥ ३२ ॥ समस्त तुम्हारी यात्राके समय अर्थ सिद्ध होनेंके लिये मंगल कीर्त्तन करेंगे अब तुम वृद्ध कपि गणोंके मतसे और ऋषियोंकी प्रसन्नतासे॥३३॥और गुरुगणोंके प्रसादसे महा समुद्रके पार जाओ हम सब वानर तुम्हारे आनेंके समयतक एक चरणसे खडे रहकर

भयंकर विक्रमकारी वानरलोग समुद्रके किनारे आये, वहां उन्होंने चन्द्र सूर्य समन्वित जिसमें सब लोकोंका प्रतिबिम्ब पडताथा ऐसा समुद्र देखा ॥ ३ ॥ महा बलवान् वानरवीरोंने दक्षिण समुद्रके उत्तर किनारे पर प्राप्त होकर उस स्थानमेंही सेनाको टिकाया ॥ ४ ॥ यह समुद्र किसी स्थानमें निद्रितकी नांई स्थितथा, कहीं बालकोंकी समान अपनी बडी तरंगोंसे खेल रहाथा, कहीं २ पर्वताकार जलराशिसे घिरा हुआथा ॥ ५ ॥ कपिवीरगण, पातालवासी दानवेन्द्रोंसे व्याप्त रोमहर्षणकारी समुद्र देखकर बडे विषादको प्राप्त हुए ॥ ६ ॥ वानरगण आकाशकी समान पार जानेंके अयोग्य समुद्रको देखकर 'किस प्रकार कार्यकी सिद्धि होगी किस प्रकार इसके पार जाँयग' आपसमें यह कहकर बडे व्याकुल हुए ॥ ७ ॥

अभिगम्यतुतंदेशंददृशुर्भीमविक्रमाः ॥ कृत्स्नंलोकस्यमहतःप्रतिबिंबमवस्थितम् ॥ ३ ॥ दक्षिणस्यसमुद्रस्य समासाद्योत्तरांदिशम् ॥ सन्निवेशंततश्चक्रुर्हरिवीरामहाबलाः ॥ ४ ॥ प्रसुप्तमिवचान्यत्रक्रीडंतमिवचान्यतः ॥ क्वचित्पर्वतमात्रैश्चजलराशिभिरावृतम् ॥ ५ ॥ संकुलंदानवेंद्रैश्चपातालतलवासिभिः ॥ रोमहर्षकरंदृष्ट्वाविषेदुः कपिकुंजराः ॥ ६ ॥ आकाशमिवदुष्पारंसागरंप्रेक्ष्यवानराः ॥ विषेदुःसहिताःसर्वेकथंकार्यमितिब्रुवन् ॥ ७ ॥ विषण्णांवाहिनींदृष्ट्वासागरस्यनिरीक्षणात् ॥ आश्वासयामासहरीन्भयार्तान्हरिसत्तमः ॥ ८ ॥ नविषादेमनःकार्यं विषादोदोषवत्तरः ॥ विषादोहंतिपुरुषंबालंक्रुद्धइवोरगः ॥ ९ ॥ योविषादंप्रसहतेविक्रमेसमुपस्थिते ॥ तेजसातस्यहीनस्यपुरुषार्थोनसिध्यति ॥ १० ॥ तस्यांरात्र्यांव्यतीतायामंगदोवानरैःसह ॥ हरिवृद्धैःसमागम्यपुनर्मंत्रममंत्रयत् ॥ ११ ॥ सावानराणांध्वजिनीपरिवार्यांगदंबभौ ॥ वासवंपरिवार्येवमरुतांवाहिनीस्थितम् ॥ १२ ॥

वानरश्रेष्ठ अंगदजी सब वानरोंको समुद्रके देखनेंसे भयभीत समझ समझा बुझाकर कहनें लगे ॥ ८ ॥ तुम लोग विषाद न करो क्योंकि शोकमें मग्न होना अत्यन्त दोषका विषयहै क्रोधित विषैला सांप जिस प्रकार बालकोंको मार डालताहै इसी प्रकार शोकभी पुरुषको संहार करताहै ॥ ९ ॥ विक्रम प्रगट करनेंका अवसर आनेंपर जो पुरुष शोक किया करतेहैं, वह तेजहीन होजाते और उनका कार्य कभी सिद्ध नहीं होता ॥ १० ॥ इस प्रकार कहते २ रात्रि वीतगई, तब युवराज अंगदजी वृद्ध वानरोंके साथमिलकर सलाह करनें लगे ॥ ११ ॥ देवताओंकी सैना जिस प्रकार इ

जब हनुमानजीनें कूदनेंके लिये उस पर्वतको अजमाया तब उस पर्वतकी शिलाओंके टूट २ कर गिरनेंसे सब झरनें नष्ट होनेंलगे । उस पर्वतके मृग और हाथी त्रासित होगये और बडे २ वृक्ष कांपनें लगे ॥४४॥ मदिरा पीनेंके संसर्गसे रतिमें अत्यन्त आसक्त बहुत सारे गन्धर्वोंके जोडे, और विद्याधर और उडनेवाले पक्षियोंने इस पर्वतके कँगूरोंका त्याग किया॥४५॥वहांके सर्पभी उस महागिरिको छोड२भागकर चले, और उस महेंद्र पर्वतके बहुत सारे शृङ्गभी गिरपडे॥ ४६ ॥ उस समय सर्पगण आधे निकले हुए अपने २ फणोंसे वार २ फुफकार करनें लगे, तब ऐसा ज्ञात हुआ मा

मुमोचसलिलोत्पीडान्विप्रकीर्णशिलोच्चयः ॥ वित्रस्तमृगमातंगःप्रकंपितमहाद्रुमः ॥४४॥ नानागंधर्वमिथुनैःपानसंसर्गकर्कशैः ॥ उत्पतद्भिर्विहंगैश्चविद्याधरगणैरपि ॥ ४५ ॥ त्यज्यमानमहासानुःसन्निलीनमहोरगः ॥ शैलशृंगशिलोत्पातस्तदाभूत्समहागिरिः ॥४६॥ निःश्वसद्भिस्तदातैस्तुभुजगैरर्धनिःसृतैः ॥ सपताकइवाभातिसतदाधरणीधरः ॥ ४७ ॥ ऋषिभिस्त्राससंभ्रांतैस्त्यज्यमानःशिलोच्चयः ॥ सीदन्महतिकांतारेसार्थहीनइवाध्वगः ॥ ४८ ॥ सवेगवान्वेगसमाहितात्माहरिप्रवीरःपरवीरहंता॥मनःसमाधायमहानुभावोजगाममलंकांमनसामनस्वी ॥४९॥इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेसप्तषष्टितमःसर्गः ॥६७॥छ॥ ॥ इतिकिष्किंधाकांडंसमाप्तम्॥४॥

नों महेन्द्र महीधर पताकाओंसे शोभायमान होरहाहै ॥४७॥ सब ऋषि लोग, अपने झुन्डसे बिछुडे यात्रीको समान घबडाय और व्याकुल चित्त हो उस पर्वतकी बडी कन्दराओंका दुःखीहो त्याग करनें लगे ॥ ४८ ॥ वह शत्रुसंहारकारी, वेगवान, मनस्वी, महानुभाव, महात्मा हनुमानजी सागर कूदनेंके लिये वेगयुक्त होनेंके लिये सावधान चित्तहो मनही मनमें लंकापुरीका स्मरण कर मनसेही वहां पहुंचे ॥ ४९ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा०आ०कि०पं०ज्वालाप्रसादमि०भाषानुवादे सप्तषष्टितमःसर्गः ॥ ६७ ॥ ॥छ॥ ॥छ॥ ॥छ॥ ॥छ॥ ॥छ॥

इति किष्किन्धाकाण्डं समाप्तम् ।

जन्म ग्रहण करकै सदाही लोकोंमें पूजे जाते हो ॥ २१ ॥ यदि तुम लोगोंमेंसे कदाचित् कोई शत योजनका समुद्र न लांघ सकताहो,
तब जो जितनी दूर जानेंमें समर्थहै वह हमसे कहो ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीम०वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥
तब मुखिया २ वानरगण अंगदजीके यह वचन सुनकर उत्साहके सहित गतिके विषयमें अपनी २ सामर्थ्य कहने लगे ॥ १ ॥ गज, गवाक्ष, गवय
शरभ, गन्धमादन, मैन्द, द्विविद, अंगद और जाम्बवान् इन वानरोंनें प्रथम कहना आरंभ किया ॥ २ ॥ उनमेंसे प्रथम गजनें कहा कि हम

नहिवोगमनेसंगःकदाचित्कस्यचिद्भवेत् ॥ ब्रुवध्वंयस्ययाशक्तिःप्लवनेप्लवगर्षभाः ॥ २२ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीम०
वा०आ०कि०कां०चतुःषष्टितमःसर्गः ॥ ६४ ॥ ॥छ॥ ॥ अथांगदवचःश्रुत्वातेसर्वेवानरर्षभाः ॥ स्वंस्वंगतःसमु
त्साहमूचुस्तत्रयथाक्रमम् ॥ १ ॥ गजोगवाक्षोगवयःशरभोगंधमादनः ॥ मैंदश्चद्विविदश्चैवअंगदोजांबवांस्तथा ॥ २ ॥
आबभाषेगजस्तत्रप्लवेयंदशयोजनम् ॥ गवाक्षोयोजनान्याहगमिष्यामीतिविंशतिम् ॥ ३ ॥ शरभोवानरस्तत्रवान
रांस्तानुवाचह ॥ त्रिंशतंतुगमिष्यामियोजनानांप्लवंगमाः ॥ ४ ॥ ऋषभोवानरस्तत्रवानरांस्तानुवाचह ॥ चत्वारिं
शद्गमिष्यामियोजनानांनसंशयः ॥ ५ ॥ वानरांस्तुमहातेजाअब्रवीद्गंधमादनः ॥ योजनानांगमिष्यामिपंचाशत्तुन
संशयः ॥ ६ ॥ मैंदस्तुवानरस्तत्रवानरांस्तानुवाचह ॥ योजनानांपरंषष्टिमहंप्लवितुमुत्सहे ॥ ७ ॥ ततस्तत्रमहाते
जाद्विविदःप्रत्यभाषत ॥ गमिष्यामिनसंदेहःसप्ततिंयोजनान्यहम् ॥ ८ ॥

दशयोजन लांघ जानेंमें समर्थ हैं गवाक्षने कहा हम वीस योजन चलेजायँगे॥३॥तहां शरभ नाम वानर उन वानरोंसे बोला कि हम एक छलांग
में तीस योजन जा सकते हैं ॥ ४ ॥ ऋषभ वानरनें वानरोंसे कहा कि हम येक कुदक्कमें चालीस योजनतक चले जांयगे इसमें कुछभी संदेह
नहीं है ॥ ५ ॥ उनमें महातेजवान गन्धमादन वानरनें कहाकि हम कूदकर येक छलांगमें निःसंशय पचाश योजन तक जायँगे ॥ ६ ॥ मैन्द
नामक वानरनें समस्त वानरोंसे कहाकि हम साठ योजन लाँघनेंको समर्थ हैं ॥ ७ ॥ तब महातेजवान् द्विविदने कहाकि हम सत्तर योजन

इति श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणे भाषाटीकासमेते किष्किन्धाकाण्डं संपूर्णम् ।

कार्यकी सिद्धि नहीं होती ॥ १७ ॥ इसके पीछे महाप्राज्ञ अंगदजी महाकपि जाम्बवानका आदर करते हुए महा अर्थयुक्त वचन बोले॥ १८ ॥ हम शतयोजन एक छलांगमें जासकतेहैं,परन्तु इसमें संदेहहै कि लौट सकेंगे अथवा नहीं॥ १९ ॥ वाक्य विशारद जाम्बवान् उन कपिश्रेष्ठ अंगदजीसे बोला,–कपिवर ! तुम्हारी गतिकी शक्तिको हम जानतेहैं, कि तुम जाभी सकतेहो और लौटभी आ सकतेहो ॥ २० ॥ सो इतनीही दूर नहीं वरन सैकड़ों हजारों योजन कूदकर तुम जा सकते और लौटकर आसकतेहो ॥ २१ ॥ परन्तु हे तात ! स्वामी कभी भेजनेंके योग्य नहीं हो सकता, क्योंकि वह सबको प्रिय होताहै आप सबको भेज सकतेहैं । तुम हमारे स्वामीहो, इसलिये अपनी स्त्रीके समान प्रतिपालन करनेंके योग्य

अथोत्तरमुदारार्थमब्रवीदंगदस्तदा ॥ अनुमान्यतदाप्राज्ञोजांबवंतंमहाकपिम् ॥ १८ ॥ अहमेतद्गमिष्यामियोजनानांशतंमहत् ॥ निवर्तनेतुमेशक्तिःस्यान्नवेतिननिश्चितम् ॥ १९ ॥ तमुवाचहरिश्रेष्ठंजांबवान्वाक्यकोविदः ॥ ज्ञायतेगमनेशक्तिस्तवहर्यृक्षसत्तम ॥ २० ॥ कामंशतसहस्रंवानह्येषविधिरुच्यते ॥ योजनानांभवान्शक्तोगंतुंप्रतिनिवर्तितुम् ॥ २१ ॥ नहिप्रेषयितातातस्वामीप्रेष्यःकथंचन ॥ भवतायंजनःसर्वःप्रेष्यःप्लवगसत्तम ॥ २२ ॥ भवान्कलत्रमस्माकंस्वामिभावेव्यवस्थितः ॥ स्वामीकलत्रंसैन्यस्यगतिरेषापरंतप ॥ २३ ॥ अपिवैतस्यकार्यस्यभवान्मूलमरिंदम ॥ तस्मात्कलत्रवत्तातप्रतिपाल्यःसदाभवान् ॥ २४ ॥ मूलमर्थस्यसंरक्ष्यमेषकार्यविदांनयः ॥ मूलेहिसतिसिध्यंतिगुणाःसर्वेफलोदयाः ॥२५॥ तद्भवानस्यकार्यस्यसाधनंसत्यविक्रम ॥ बुद्धिविक्रमसंपन्नोहेतुरत्रपरंतप॥२६॥

हो, अर्थात् तुम्हारे प्राण और बलकी रक्षा करना हम लोगोंका अवश्य कर्त्तव्यहै, तुमको स्वामीभावमें टिककर सैनाको आज्ञा देनीं चाहिये यही लौकिक विधिहै ॥२२॥२३॥ हे शत्रुनाशी ! तुम इस कार्यके मूलहो, इसलिये सबकोही अपनी स्त्रीकी समान तुम्हारी रक्षा करनी उचित है ॥ २४ ॥ कार्यके मूलकी रक्षा करनी चाहिये. यही कार्यवेत्ता लोगोंकी नीतिहै, यदि प्रधान मूल बना रहेगा तो प्रधान फलोदय रूप गुण सिद्ध हो सकताहै ॥ २५ ॥ हे शत्रुओंके तपानेंवाले ! इसलिये सत्य विक्रम और बुद्धिसम्पन्न तुमही इस कार्यके साधन करनेंमें हेतु हो; इसमें कु

बड़ाभारी भृत्यकार्य पूरा कियाहै ॥ ६ ॥ जो सेवक स्वामी करके अति कठिन कार्यमें लगाये जानें परभी उसे मनलगाय कर अनुराग सहित सिद्धकरताहै. पंडित लोग उसको पुरुषोत्तम कहते हैं ॥ ७ ॥ जो सेवक एक कार्यमें नियुक्त होकर प्रभुके हितकारी और दूसरे कार्योंके आजानें पर उन्हें समर्थ होकरभी नहीं करता वह मध्यम पुरुषहै ॥८॥ जो सेवक समर्थ होकर बतलाया हुआ कार्य अतियत्नसे पूरा नहीं करता, वह अधम पुरुष कहा जाताहै ॥ ९ ॥ परन्तु हनुमानजीनें राजाज्ञामें नियुक्तहोकर अपना कर्तव्य कार्य यथावत् पूरा कियाहै. और अधिक करके इन्होंनें अपनी लघुताई न दिखाकर सुग्रीवजीको अत्यन्त सन्तुष्ट कियाहै ॥१०॥ हनुमानजी जानकीजीको देख आये, इस्सेहम और महा बलवान् लक्ष्मण

योहिभृत्योनियुक्तःसन्भर्त्राकर्मणिदुष्करे ॥ कुर्यात्तदनुरागेणतमाहुःपुरुषोत्तमम् ॥ ७ ॥ योनियुक्तःपरंकार्यंनकुर्यान्नृपतेःप्रियम् ॥ भृत्योयुक्तःसमर्थश्चतमाहुर्मध्यमंनरम् ॥ ८ ॥ नियुक्तोनृपतेःकार्यंनकुर्याद्यःसमाहितः ॥ भृत्योयुक्तःसमर्थश्चतमाहुःपुरुषाधमम् ॥ ९ ॥ तन्नियोगेनियुक्तेनकृतकृत्यंहनूमता ॥ नचात्मालघुतांनीतःसुग्रीवश्चापितोषितः ॥ १० ॥ अहंचरघुवंशश्चलक्ष्मणश्चमहाबलः ॥ वैदेह्यादर्शनेनाद्यधर्मतःपरिरक्षिताः ॥ ११ ॥ इदंतुममदीनस्यमनोभूयःप्रकर्षति ॥ यदिहास्यप्रियाख्यातुर्नकुर्मिसदृशंप्रियम् ॥ १२ ॥ एषसर्वस्वभूतस्तुपरिष्वंगोहनूमतः ॥ मयाकालमिमंप्राप्यदत्तस्तस्यमहात्मनः ॥ १३ ॥ इत्युक्त्वाप्रीतिहृष्टांगोरामस्तंपरिषस्वजे ॥ हनूमंतंकृतात्मानंकृतवाक्यमुपागतम् ॥ १४ ॥

व दूसरे रघुवंशियोंनें आत्मघात रूप घोर अधर्मसे रक्षा पाई है, क्योंकि जानकीका समाचार नपानेंसे हम निश्चयही प्राणत्याग न करते, फिर हमारे विना लक्ष्मण इत्यादि कोईभी प्राण धारण करनेंमें समर्थ नहीं होते ॥ ११ ॥ किन्तु दीन अवस्थामें ऐसे प्यारे संवाद देनेवाले हनुमानका इस कार्यके योग्य हम कुछभी प्रिय नहीं करसकते. यही बात हमारे अंतःकरणको अत्यन्त खेद करा रही है ॥ १२ ॥ जो हो. इस समय हमारा यह लिपटाय कर मिलनाही सर्वस्वदान स्वरूप महात्मा हनुमानका कार्यके योग्य पुरस्कार होवै ॥ १३ ॥ सर्व कार्योंके करनेंमें समर्थ हनुमानजी सीताजीकी सुधि लेकर जो लंकासे आये तब रघुसत्तम श्रीरामचंद्रजीसे पहले कहे हुए वचन कहकर प्रीति पुलकित शरीरसे उनको

जाम्बवानूजी अनेक शत सहस्र वानर सेनाको शोकाकुल देखकर हनुमानजीसे इस प्रकार कहनें लगे ॥ १ ॥ हे समस्त वानरकुलमें श्रेष्ठ हनुमन्! हे सर्वशास्त्र विशारद! तुम इकले और चुप क्यों बैठेहो? इस लोकके कृत्यको देखकर तुम किस कारणसे कुछभी नहीं कहते ॥ २ ॥ हे हनुमन्! तुम तेज और बलमें वानरराज सुग्रीव और श्रीराम लक्ष्मणजीकी तुल्यहो ॥ ३ ॥ भगवान कश्यपजीके पुत्र महाबलवान् विनता नंदन गरुडजी सर्व पक्षियोंमें श्रेष्ठहैं ॥ ४ ॥ हे महाबल! हमनें बहुत वार देखाहैकि उस महाबलवान महाबाहु पक्षीनें सागरसे बडे २ सर्पोंको पक

अनेकशतसाहस्रींविषण्णांहरिवाहिनीम् ॥ जांबवान्समुदीक्ष्यैवंहनुमंतमथाब्रवीत् ॥ १ ॥ वीरवानरलोकस्यसर्वशा
स्त्रविदांवर ॥ तूष्णीमेकांतमाश्रित्यहनूमन्किंनजल्पसि ॥ २ ॥ हनूमन्हरिराजस्यसुग्रीवस्यसमोह्यसि ॥ रामलक्ष्म
णयोश्चापितेजसाचबलेनच॥३॥अरिष्टनेमिनःपुत्रोवैनतेयोमहाबलः॥ गरुत्मानिवविख्यातउत्तमःसर्वपक्षिणाम् ॥४॥
बहुशोहिमयादृष्टःसागरेसमहाबलः ॥ भुजंगानुद्धरन्पक्षीमहाबाहुर्महाबलः ॥५॥ पक्षयोर्यद्बलंतस्यभुजवीर्यबलंतव॥
विक्रमश्चापितेजश्चनतेतेनापहीयते ॥६॥ बलंबुद्धिश्चतेजश्चसत्त्वंचहरिपुंगव ॥ विशिष्टंसर्वभूतेषुकिमात्मानंनसज्जसे॥
॥ ७ ॥ अप्सराप्सरसांश्रेष्ठाविख्यातापुंजिकस्थला ॥ अंजनेतिपरिख्यातापत्नीकेसरिणोहरेः ॥ ८ ॥ विख्यातात्रि
षुलोकेषुरूपेणाप्रतिमाभुवि ॥ अभिशापादभूत्तातकपित्वेकामरूपिणी ॥ ९ ॥ दुहितावानरेंद्रस्यकुंजरस्यमहात्म
नः ॥ मानुषंविग्रहंकृत्वारूपयौवनशालिनी ॥ १० ॥

ड़ाहे ॥ ५ ॥ उन गरुडजीके दोनों पंखोंमें जितना बलहै; तुम्हारी दोनोंबाहोंमेंभी वैसाही बलहै, तुम्हारा विक्रम और तेज किसी भांतिभी उनसे कम नहीं है ॥ ६ ॥ तुम समस्त जीवोंके मध्यमें एक विशेष पदार्थहो फिर तुम समुद्रको लांघनेंके लिये क्यों नहीं तैयार होते॥७॥ अप्सरागणोंमें श्रेष्ठ पुञ्जिकस्थला नामक अप्सरा विशेष करके अंजना नामसे विख्यात, केशरनाम वानरकी स्त्री हुई ॥ ८ ॥ उस स्त्रीकी तीनों लोकोंमें उपमा नहींथी, उसनें शापके हेतु काम रूप धारण करनेंवाली वानरीहो जन्मलिया ॥९॥ वह अंजना, वानरश्रेष्ठ महात्मा कुञ्जरकी कन्या मनुष्य देह धारण किये

नहीं देखतेहैं ॥ ३ ॥ आप मतिमान शास्त्रोंके जाननेंवाले. दीर्घदर्शी और पंडितहैं, इसलिये योगी पुरुष जिस प्रकार अपनेको दूषण लगानें वाली बुद्धिका त्याग करदेतेहैं, वैसेही आपभी इस प्रयोजन नाशकरनेंवाली. अशुभदायिनी बुद्धिको छोड़ दीजिये ॥ ४ ॥ हम लोग सबही मछली व नाके आदि जीवोंसे पूर्ण इस महा समुद्रको लांघकर लंकापर चढ़ आपके शत्रुका नाश करैंगे ॥ ५ ॥ हेवीर ! उत्साह रहित, दीन स्वभाव और शोकाकुल पुरुषके सबही प्रयोजन नष्ट होजातेहैं; और ऐसाही पुरुष विपदोंमें पड़ा करताहै ॥ ६ ॥ यह रण करनेंमें चतुर समस्त वानर यूथपति गण आपका प्रियकार्य सिद्ध करनेंकी वासनासे अग्निमेंभी प्रवेश करनेंका उत्साह करतेहैं, फिर समुद्रका पार जाना क्या बड़ी बात

मतिमाञ्छास्त्रवित्प्राज्ञःपंडितश्चासिराघव ॥ त्यजेमांप्राकृतांबुद्धिंकृतात्मेवार्थदूषिणीम् ॥ ४ ॥ समुद्रंलंघयित्वातु महानक्रसमाकुलम् ॥ लंकामारोहयिष्यामोहनिष्यामश्चतेरिपुम् ॥ ५ ॥ निरुत्साहस्यदीनस्यशोकपर्याकुलात्मनः ॥ सर्वार्थाव्यवसीदंतिव्यसनंचाधिगच्छति ॥ ६ ॥ इमेशूराःसमर्थाश्चसर्वतोहरियूथपाः ॥ त्वत्प्रियार्थंकृतोत्साहाःप्रवेष्टुमपिपावकम् ॥ ७ ॥ एषांहर्षेणजानामितर्कश्चापिदृढोमम ॥ ८ ॥ विक्रमेनसमानेष्येसीतांहत्वायथारिपुम् ॥ रावणंपापकर्माणंतथात्वंकर्तुमर्हसि ॥ ९ ॥ सेतुरत्रयथाबध्येद्यथापश्येमतांपुरीम् ॥ तस्यराक्षसराजस्यतथात्वंकुरुराघव ॥ १० ॥ दृष्ट्वातांहिपुरींलंकांत्रिकूटशिखरेस्थिताम् ॥ हतंचरावणंयुद्धेदर्शनादवधारय ॥ ११ ॥ अबद्ध्वासागरेसेतुंघोरेचवरुणालये ॥ लंकानमर्दितुंशक्यासेंद्रैरपिसुरासुरैः ॥ १२ ॥

है ॥ ७ ॥ हमनें इन लोगोंके हर्षित वदनका भाव देख कर इसप्रकारका, दृढ़ निश्चय कियाहै ॥ ८ ॥ इस समय जिसप्रकारसे हम विक्रम प्रकाश करके आपके शत्रु उस पाप कर्म करनेंवाले रावणका विनाश करकै जानकीजीको लासकें ऐसा उपाय आप कीजिये ॥ ९ ॥ हे राघव! इस समुद्रके ऊपर जिसप्रकार सेतु बँधजाय और हम सब जिसप्रकारसे उस राक्षसराजकी लंकापुरीको देख सकें इस समय आप वैसाही उपाय कीजिये ॥ १० ॥ आपनें त्रिकूट पर्वतके शिखरपर बसी हुई लंकापुरीको जैसेही देखा कि वैसेही आप मनमें निश्चय समझ लीजिये कि रावणका विनाश होगया ॥ ११ ॥मकरालय समुद्रके ऊपर बिना सेतु बांधे इन्द्रादि देवगण अथवा असुरगण कोईभी

माता सन्तुष्ट हुई, और उन्होंने गुहामें जायकर तुमको उत्पन्न किया ॥२०॥ तुम बालकपनसेही महावनमें रहतेथे, एक दिन प्रभात कालके समय सूर्य भगवानको उदय हुआ देख उनको फल विचार ग्रहण करनेंकी इच्छाकिये तुम छलांग मार आकाशको चले ॥ २१ ॥ तीन शत योजन चले जानेंपर और सूर्यकी किरणोंके तेजसे संतापित होकर भी तुमविषादको नहीं प्राप्त हुए ॥ २२ ॥ हे कपिवर ! तुमको आकाशमें जाता हुआ देख इन्द्रनें क्रोधकर तुम्हारे ऊपर वज्र चलाया ॥ २३ ॥ तब उसशिखरके अग्र भागपर तुम्हारी बाईं हनु टूट गई, इसी कारणसे तुम्हारा

अभ्युत्थितंततःसूर्यंबालोदृष्ट्वामहावने ॥फलंचेतिजिघृक्षुस्त्वमुत्पत्याभ्युत्पतोदिवम् ॥२१॥ शतानित्रीणिगत्वाथयोजनानांमहाकपे॥तेजसातस्यनिर्धूतोनविषादंगतस्ततः ॥२२॥ त्वामप्युपगतंतूर्णमंतरिक्षंमहाकपे॥क्षिप्तमिंद्रेणतेवज्रंकोपाविष्टेनतेजसा॥२३॥तदाशैलाग्रशिखरेवामोहनुरभज्यत॥ततोभिनामधेयंतेहनुमानितिकीर्तितम्॥ २४॥ततस्त्वांनिहतंदृष्ट्वावायुर्गंधवहःस्वयम् ॥ त्रैलोक्यंभृशसंक्रुद्धोनववौवैप्रभंजनः ॥ २५ ॥ संभ्रांताश्चसुराःसर्वेत्रैलोक्येक्षुभितेसति प्रसादयंतिसंक्रुद्धंमारुतंभुवनेश्वराः ॥ २६ ॥ प्रसादितेचपवनेब्रह्मातुभ्यंवरंददौ ॥ अशस्त्रवध्यतांतातसमरेसत्यविक्रम ॥ २७ ॥ वज्रस्यचनिपातेनविरुजंत्वांसमीक्ष्यच ॥ सहस्रनेत्रःप्रीतात्माददौतेवरमुत्तमम् ॥ २८ ॥ स्वच्छंदतश्चमरणंतवस्यादितिवैप्रभो ॥ सत्वंकेसरिणःपुत्रःक्षेत्रजोभीमविक्रमः ॥ २९ ॥

हनुमान नाम हुआ ॥ २४ ॥ गन्धवह पवनजो तुमको वज्रसे घायल देखकर अत्यन्त कोपित हुए और उन्होंनें तीनों लोकका वहना बंद किया ॥२५॥ पवनको न पायकर त्रिलोक मंडल क्षुभित होगया, भुवनेश्वर देवता लोग त्रासितहो घबडायकर चंचल चित्तसे पवन देवको प्रसन्न करनें लगे ॥ २६ ॥ जब पवनजी प्रसन्न हुए तब ब्रह्माजीनें वर दिया कि तुम्हारा यह सत्य विक्रम पुत्र किसी शस्त्रसे नहीं मरैगा ॥ २७॥ और तुमको वज्राघातसे भी व्यथाहीन देखकर सहस्रनेत्र देवपति इन्द्रजीनें प्रसन्न होकर उत्तम वरदान दिया ॥ २८ ॥ कि जब यह तुम्हारा पुत्र इच्छा

इसकारणसे आप शोकको छोड़कर क्रोधका ग्रहण कीजिये, क्योंकि उद्यम रहित होकर क्षत्रिय सौभाग्यवान नहीं होसकता, जो क्षत्रिय अत्यन्त क्रोधी होताहै; तौ सबही उससे भय माना करतेहैं॥२०॥हम तौ सबही कुछ यत्नकिये तैयार बैठेहैं, इस कारण आप इस समय इस भयंकर नदीपति समुद्रके पार होनेका कोई सूक्ष्म (बारीक) उपाय विचारिये ॥ २१ ॥ हमारी इस सैनाके समुद्र पार होतेही निश्चय आप विजयको प्राप्त करैंगे और मनमें आप समुद्रका लांघा जाना और विजयका होनाभी समझही लीजिये ॥ २२ ॥ यह रणवीर कामरूपी वानरगण शिला और वृक्षोंकी वर्षा करकै समरमें शत्रु गणोंको मारडालेंगे ॥ २३ ॥ हे रणप्रिय! हमारे मनमें तौ यह आताहै. कि किसीप्रकार समुद्रके पारहुए और रावणका

तदलंशोकमालंब्यक्रोधमालंबभूपते ॥ निश्चेष्टाःक्षत्रियामंदाःसर्वेचंडस्यबिभ्यति ॥ २० ॥ लंघनार्थंचघोरस्यसमुद्रस्यनदीपतेः ॥ सहास्माभिरिहोपेतःसूक्ष्मबुद्धिर्विचारय ॥ २१ ॥ लंघितेतत्रतैःसैन्यैर्जितमित्येवनिश्चिनु ॥ सर्वंतीर्णंचमेसैन्यंजितमित्यवधार्यताम् ॥ २२ ॥ इमेहिहरयःशूराःसमरेकामरूपिणः ॥ तानरीन्विधमिष्यंतिशिलापादपवृष्टिभिः ॥ २३ ॥ कथंचित्परिपश्यामिलंघितंवरुणालयम् ॥ हतमित्येवतंमन्येयुद्धेशत्रुनिबर्हण ॥ २४ ॥ किमुक्त्वाबहुधाचापिसर्वथापिजयीभवान् ॥ निमित्तानिचपश्यामिमनोमेसंप्रहृष्यति ॥ २५ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०युद्धकांडे द्वितीयःसर्गः ॥ २ ॥ ॥ ७ ॥ सुग्रीवस्यवचःश्रुत्वाहेतुमत्परमार्थवत् ॥ प्रतिजग्राहकाकुत्स्थोहनूमंतमथाब्रवीत् ॥१॥ तपसासेतुबंधेनसागरोच्छोषणेनच ॥ सर्वथापिसमर्थोस्मिसागरस्यास्यलंघने ॥ २ ॥

युद्धमें नाश हुआ ॥ २४ ॥ हे राजन् अधिक कहनेंकी क्या आवश्यकताहै; आप सबही प्रकारसे विजयको प्राप्त करेंगे कारण कि इधर उधर शुभ निमत्तोंको हम देखतेहैं, और हमारे मनमें हर्षभी अत्यन्त होरहाहै ॥ २५ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥ तिसके पीछे परमार्थके जाननेवाले काकुत्स्थ श्रीरामचंद्रजी सुग्रीवके यह युक्ति युक्त वचन सुनकर उन सबको अंगीकार करते हनुमानजीसे बोले ॥ १ ॥ हेहनुमन्! तपस्याके बलसे इस समुद्रका पुल बांधदेना, इसका समस्त जल शोखदेना अथवा जिस प्रकारसे कहो हम

वैसेही तुमभी महा वेगसे इस समय समुद्रको लांघ जाओ ॥ ३७ ॥ तब ऋक्षश्रेष्ठ जाम्बवान् करकै प्रेरित होकर महावीर पवनपुत्र हनुमानजी वानर सैनाको हर्षित करकै उत्साह युक्तहो समुद्रके लांघने योग्य देहको धारण करते हुये॥३८॥इत्यार्पे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे भाषानुवादे पं० ज्वालाप्रसादकृते षट् षष्टितमः सर्गः ॥६६॥ फिर शतयोजन समुद्रको लांघनेंके लिये बढे हुये वानरोत्तम हनुमानजीको सहसा वेगसे परिपूर्ण देख ॥ १ ॥ एका एकी सब वानर गण शोकको छोड हर्षयुक्तहो महा बलवान हनुमानजीकी स्तुति करने लगे ॥२॥ बलिको छलने और त्रिलोकी को नांपने के लिये नारायणजीको उत्साहित देखकर सब प्रजा जिस प्रकार हर्षित और उत्साहित हुईथी

ततःकपीनामृषभेणचोदितःप्रतीतवेगःपवनात्मजःकपिः ॥ प्रहर्षयस्तांहरिवीरवाहिनींचकाररूपंपवनात्मजस्तदा ॥ ३८ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०कि०षट्षष्टितमःसर्गः ॥ ६६ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ तंदृष्ट्वाजृंभमाणंतेक्रमितुंशतयोजनम् ॥ वेगेनापूर्यमाणंचसहसावानरोत्तमम् ॥ १ ॥ सहसाशोकमुत्सृज्यप्रहर्षेणसमान्विताः ॥ विनेदुस्तुष्टुवुश्चापि हनूमंतमहाबलम् ॥ २ ॥ प्रहृष्टाविस्मिताश्चापितेवीक्ष्यंतेसमंततः ॥ त्रिविक्रमंकृतोत्साहंनारायणमिवप्रजाः ॥ ३ ॥ संस्तूयमानोहनुमान्व्यवर्धतमहाबलः ॥ समाविद्ध्यचलांगूलंहर्षाद्बलमुपेयिवान् ॥ ४ ॥ तस्यसंस्तूयमानस्यवृद्धैर्वानरपुंगवैः ॥ तेजसापूर्यमाणस्यरूपमासीदनुत्तमम् ॥ ५ ॥ यथाविजृंभतेसिंहोविवृतेगिरिगह्वरे ॥ मारुतस्यौरसःपुत्रस्तथासंप्रतिजृंभते ॥ ६ ॥ अशोभतमुखंतस्यजृंभमाणस्यधीमतः ॥ अंबरीषोपमंदीप्तंविधूमइवपावकः ॥ ७ ॥

सब वानर लोगभी हनुमानजीको देखकर वैसेही हर्षित और विस्मयको प्राप्त हुये ॥३॥ जब वानरोंने स्तुतिकी तब महा बलवान वानर हनुमानजी बढने लगे और पूंछको घुमाकर हर्षके हेतु बलको प्राप्त होने लगे ॥ ४ ॥ जब वृद्ध वानर श्रेष्ठोंनें इस प्रकारसे प्रशंसाकी तब हनुमानजी तेजसे परिपूर्ण, और बडी अनुपम देह युक्त हो गये ॥५॥ जिसप्रकार महासिंह भारी पर्वतकी गुहामें जंभाई लेताहै वैसेही वायुके औरस पुत्र हनुमानजी भी जंभाई लेनें और बढनें लगे ॥ ६ ॥ जब बुद्धिमान हनुमानजी बढे तो उनका मुख प्रदीप्त और टूटे हुये पात्रकी समान होगया और वह धुंआ

लोग सदा इस पुरीकी रक्षा किया करते हैं यह पुरी घोडोंसे भरी हुई है और धर्षण करनेंके अयोग्यहै ॥ १० ॥ उस पुरीके महा अर्गला (मूसला) युक्त बड़े दृढ किवाड़ लगे हुए बड़े भारी चार द्वारहैं ॥ ११ ॥ उन चार द्वारोंमें भीतरेसे बाण और शिलादि फेंकनेके लिये दृढ और बड़े भारी इषुउपल यंत्र (कल) लगे हुये हैं । कि जिस्से आतीहुई शत्रुकी सैना बाहरहीसे रोक दी जातीहै ॥ १२ ॥ राक्षस रावणनें वहां पर लोहेके सारसे बनी हुई शिला और सैकडों हजारों *पैनी शतघ्नियें सजाय रक्खीं हैं. जोकि साफकीहुई रक्खी और महा भयंकर जान पड़तीहैं, लाखों शत्रु जिनके द्वारा दूरसेही मार डाले जांय ॥ १३ ॥ मूंगा. मणि. वैदूर्य. और मुक्तादिसे जड़ित उसकी वह सुवर्णसे बनीहुई छहर दिवारी पर बड़े दुःखसेभी कोई नहीं जायसकता ॥ १४ ॥ उस छहर दिवारीके चारों ओर परिखा युक्त, मीन सेवित, भंयकर

दृढबद्धकपाटानिमहापरिघवंतिच॥चत्वारिविपुलान्यस्याद्वाराणिसुमहांतिच ॥ ११ ॥ तत्रेषूपलयंत्राणिबलवंतिमहांतिच॥आगतंप्रतिसैन्यंतैस्तत्रप्रतिनिवार्यते ॥१२॥द्वारेषुसंस्कृताभीमाःकालायसमयाःशिताः॥शतशोरचितावीरैःशतघ्न्योरक्षसांगणैः ॥१३॥ सौवर्णस्तुमहांस्तस्याःप्राकारोदुष्प्रधर्षणः॥ मणिविद्रुमवैदूर्यमुक्ताविरचितांतरः ॥ १४ ॥ सर्वतश्चमहाभीमाःशीततोयामहाशुभाः ॥ अगाधाग्राहवत्यश्चपरिखामीनसेविताः ॥ १५ ॥ द्वारेषुतासांचत्वारःसंक्रमःपरमायताः॥ यंत्रैरुपेताबहुभिर्महद्भिर्गृहपंक्तिभिः ॥ १६ ॥ त्रायंतेसंक्रमास्तत्रपरसैन्यागतेसति ॥ यंत्रैस्तैरवकीर्यंतेपरिखाःसुमंततः ॥ १७ ॥ एकस्त्वकंप्योबलवान्संक्रमःसुमहादृढः ॥ कांचनैर्बहुभिःस्तंभैर्वेदिकाभिश्चशोभितः॥१८॥

नाकोंसे व्याप्त और बहुत सारे शीतल जलसे परिपूर्ण अगाध जलाशयहै ॥ १५ ॥ उस पुरीके चारों द्वारोंपर खांवेके पार होनेके लिये चार संक्रमहैं, और उनके निकटमें बहुतसे शतघ्नी इत्यादि यंत्र रक्खे और बहुतसे संग्राम करनेंके स्थानभी बने हुएहैं ॥ १६ ॥ शत्रुकी सैनाके आजानें पर वह चारों संक्रमहीं उनकी चढाईसे पुरीकी रक्षा करतेहैं, और वहां पर जो यंत्र लगे हुएहैं उनको घुमातेही खांवेका जल चारों ओरको उफन उठताहै कि जिस्में शत्रुकी सेना डूब जातीहै ॥ १७ ॥ उन चार संक्रममें एक संक्रम सबसे अधिक दृढ बलवान् अकम्पा और

* शतघ्नी नाम तोपकाहै ॥

सोखलें और पृथ्वीको चीडफाड डालें ॥ १७ ॥ हे वानरगण ! छलांग मारकर पर्वतसमूहको चूर्ण कर सकतेहैं; और अतिवेगसे समुद्रकोभी सुखाय सकतेहैं ॥ १८ ॥ हम जब आकाशमें छलांग मारकर वेगसे गमनकरेंगे, तब वेगके वशसे विविध लता और वृक्षोंके पुष्प समूह हमारे पीछे २ उडकर चलेंगे ॥ १९ ॥ जबकि हम घोरतर आकाशमें उठकर गमन करेंगे तब हमारा मार्ग उन पहले कहे पुष्पादिकोंसे, वहुतसारे नक्षत्रोंसे शोभित छायापथकी समान शोभा धारण करेगा॥२०॥ हे वानरगण ! उस समयभी हमें सब प्राणी वरावर देखेंगे, देखो ! इस समय हमनें महामेरुकी तुल्य देह धारणकीहै ॥ २१ ॥ हम आकाशस्थलको ढकते हुये और अम्बरस्थलको ग्रास करतेही हुयेसे गमन करेंगे, तुमलोग देखते

पर्वतांश्चूर्णयिष्यामिप्लुवमानःप्लवंगमाः ॥ हरिष्याम्युरुवेगेनप्लवमानोमहार्णवम् ॥ १८ ॥ लतानांविविधंपुष्पंपादपानांचसर्वशः ॥ अनुयास्यतिमामद्यप्लवमानंविहायसा ॥ १९ ॥ भविष्यतिहिमेपंथाःस्वातेःपंथाइवांबरे ॥ चरंतंघोरमाकाशमुत्पतिष्यंतमेवच ॥ २० ॥ द्रक्ष्यंतिनिपतंतंचसर्वभूतानिवानराः ॥ महामेरुप्रतीकाशंमांद्रक्ष्यध्वंप्लवंगमाः ॥ २१ ॥ दिवमावृत्यगच्छंतंग्रसमानमिवांबरम् ॥ विधमिष्यामिजीमूतान्कंपयिष्यामिपर्वतान् ॥ सागरंशोषयिष्यामिप्लवमानःसमाहितः ॥ २२ ॥ वैनतेयस्यवाशक्तिर्ममवामारुतस्यवा ॥ ऋतेसुपर्णराजानंमारुतंवामहाबलम् ॥ नतद्भूतंप्रपश्यामियन्मांप्लुतमनुव्रजेत् ॥ २३ ॥ निमेषांतरमात्रेणनिरालंबनमंबरम् ॥ सहसानिपतिष्यामिघनाद्विद्युदिवोत्थिता ॥ २४ ॥ भविष्यतिहिमेरूपंप्लवमानस्यसागरम् ॥ विष्णोःप्रक्रममाणस्यतदात्रीन्विक्रमानिव ॥२५॥

रहो ! हम गायन करनेंके समय मेघसमूहको छिन्नभिन्न, पर्वतोंको कम्पायमान, और समुद्रको शोषण करलेंगे तुम लोग देखते रहो ॥ २२ ॥ गरुडजीकी, हमारी, और पवनजीकी शक्ति समस्त जीवगणोंसे बढकरहै, जबकि हम आकाशमें गमन करेंगे, तब सुपर्ण राज गरुडजी और पवनजीके सिवाय हमारे साथ चलनेंमें कोई प्राणीभी समर्थ नहीं होगा ॥ २३ ॥ हम बादलसे निकली हुई बिजलीकी समान एक निमेषमेंही अवलम्ब रहित अम्बर स्थलमें एकाएकी प्राप्तहो जांयगे ॥ २४ ॥ हम जब कि समुद्रको लांघेंगे तब वामनजीनें तीन चरणकी गतिसे जिस प्रकार तीनों

चतुरंगिणी सैनाके सहित और भी अनेक श्रेष्ठ वीर रहते हैं ॥ २५ ॥ पश्चिमके फाटकपर ढाल तरवार लिये सब अस्त्र शस्त्रोंके चलानेमें कुशल
दशलाख राक्षस रहते हैं ॥ २६ ॥ रथी और अश्वारोही दश करोड श्रेष्ठकुलमें उत्पन्न हुए राक्षस रावणकरके अत्यन्त पूजित हो उत्तरके
द्वारपर टिके रहते हैं ॥ २७ ॥ और लंका पुरीके मध्य स्कन्धावारमें बीचवाले पडावपर एक करोड छब्बीस लाख राक्षस रहते हैं जो कि युद्ध
करनेमें वडे कुशलहैं व और भी इतने राक्षस वहां रहते हैं कि उनकी करनमें गिनती ही नहीं हो सकती॥२८॥हम उस महाबल राक्षसोंकी सैनाका चौ
थाई भाग नष्ट कर आये;पुरीमें आने जानेके लिये जो चार संक्रम बनेथे उनकोतोड़ फोड डाला और लंकाको जलातेमें हमनें छहर दिवारीको तोड़ २

प्रयुतंरक्षसामत्रपश्चिमद्वारमाश्रितम् ॥ चर्मखड्गधराःसर्वेतथासर्वास्त्रकोविदाः ॥ २६ ॥ न्यर्बुदंरक्षसामत्रउत्तरद्वारमा
श्रितम् ॥ रथिनश्चाश्ववाहाश्चकुलपुत्राःसुपूजिताः ॥ २७ ॥ शतशोथसहस्राणिमध्यमंस्कंधमाश्रिताः ॥ यातुधाना
दुराधर्षाःसाग्रकोटिश्चरक्षसाम् ॥ २८ ॥ तेमयासंक्रमाभग्नाःपरिखाश्चावपूरिताः ॥ दग्धाचनगरीलंकाप्राकाराश्चाव
सादिताः ॥ २९ ॥ येनकेनतुमार्गेणतरामवरुणालयम् ॥ हतेतिनगरीलंकावानरैरुपधार्यताम् ॥ ३० ॥ अंगदोद्विवि
दोमैंदोजांबवान्पनसोनलः ॥ नीलःसेनापतिश्चैवबलशेषेणकिंतव ॥ ३१ ॥ प्लवमानाहिगत्वातांरावणस्यमहापुरीम् ॥
सपर्वतवनांभित्त्वासखातांचसतोरणाम् ॥ ३२ ॥ सप्राकारांसभवनामानयिष्यंतिराघव ॥ ३३ ॥

उस्से खांवेको पाटदिया ॥ २९ ॥ आप यह निश्चय जान लें कि हमकिसी न किसी प्रकारसे समुद्रके पार जांयगे, और लंका नगरी भी वानरों
से नाशको प्राप्त होगी ॥ ३० ॥ आपको अधिक सैनाका प्रयोजन क्याहै? हे राघव ! केवल अंगद. द्विविद, मैन्द, जाम्बवान, पनस, नल, और से
नापति नील इन कई एक जनोंसे ही कार्य सिद्ध हो जायगा ॥ ३१ ॥ वस हम इतने वानर समुद्रके पार होकर रावणकी महापुरीमें जायकर
पर्वत, वन परिखा तोरण सहित ॥ ३२ ॥ धवरहरे व प्राकारोंके सहित लंकापुरीका नाश कर सीता देवीको आपके निकट ले आवेंगे ॥ ३३ ॥

करते रहेंगे॥३४॥ हे हनुमन्! समस्त वनवासियोंका जीवन इस समय तुम्हारे आनेंहीपरहै । तब वानरोंमें श्रेष्ठ हनुमानजी सब वानरोंसे बोले ॥ ३५ ॥
इस समुद्रको लांघनेंके विषयमें इस लोकमें कोईभी हमारा वेग धारण करनेंको समर्थ नहींहै. परन्तु इस शिलायुक्त बडे और स्थिर महेन्द्र पर्वतके
शिखर दृढ होनेंके कारण हमारे वेगको धारण करनेंमें समर्थ है इसीपरसे हम कूदेंगे ॥३६॥३७॥ अनेक प्रकारके वृक्षोंसे व्याप्त और धातुओंसे परि
शोभित यह बडे शिखर अवश्य हमारे गमन वेगको धारण करलेंगे॥३८॥यह बडे शिखर यहांसे शतयोजनके लांघनेका वेग धारण करलेंगे यह कह
शत्रुनाशी पवनतुल्य पवनकुमार हनुमानजी पर्वतोंमें श्रेष्ठ महेन्द्र पर्वत पर चढे ॥ ३९ ॥ इस पर्वतपर भांति २ के पुष्प लगरहेथे, इस पर्वतके

त्वद्गतानिचसर्वेषांजीवनानिवनौकसाम् ॥ ततश्चहरिशार्दूलस्तानुवाचवनौकसः ॥ ३५ ॥ कोपिलोकेनमेवेगं
प्लवनेधारयिष्यति ॥ एतानीहनगस्यास्यशिलासंकटशालिनः ॥ ३६ ॥ शिखराणिमहेंद्रस्यस्थिराणिचम
हांतिच ॥ येषुवेगंगमिष्यामिमहेंद्रशिखरेष्वहम् ॥ ३७॥ नानाद्रुमविकीर्णेषुधातुनिष्पंदशोभिषु ॥ एतानिममवे
गंहिशिखराणिमहांतिच ॥ ३८ ॥ प्लवतोधारयिष्यंतियोजनानामितःशतम् ॥ ततस्तुमारुतप्रख्यःसहरिर्मारुता
त्मजः ॥ आरुरोहनगश्रेष्ठंमहेंद्रमरिमर्दनः ॥ ३९ ॥ वृतंनानाविधैःपुष्पैर्मृगसेवितशाद्वलम् ॥ लताकुसुमसंबाधंनि
त्यपुष्पफलद्रुमम् ॥ ४० ॥ सिंहशार्दूलसहितंमत्तमातंगसेवितम् ॥ मत्तद्विजगणोद्घुष्टंसलिलोत्पीडसंकुलम् ॥ ४१ ॥
महद्भिरुच्छ्रितःशृंगैर्महेंद्रस्यमहाबलः ॥ विचचारहरिश्रेष्ठोमहेंद्रसमविक्रमः ॥ ४२ ॥ बाहुभ्यांपीडितस्तेनमहाशै
लोमहात्मना ॥ ररासिंहाभिहतोमहान्मत्तइवद्विपः ॥ ४३ ॥

दूब संयुक्त श्याम वर्णके क्षेत्रोंमें मृगगण चररहेथे, इस पर्वतपर सबही ऋतुओंमें पुष्पफल लगेरहते और अनेक प्रकारकी लतायें फूल रहीथीं ॥४०॥
इसपर सिंह शार्दूल और मतवाले हाथी सुखसे विहार करके घूम रहेथे, यह पर्वत मतवाले पक्षियोंसे पूर्णथा और इसपर झरनेभी बहुतथे ॥ ४१ ॥
महा बलवान महेन्द्रकी तुल्य विक्रमकारी कपिश्रेष्ठ हनुमानजी महेन्द्रपर्वतके एक २ शिखरपर घूमने लगे ॥ ४२ ॥ महात्मा हनुमानजीनें दोनों
भुजाओसें पीडित किया तब वह शैल अपनें ऊपर चरनेंवाले प्राणियोंके साथ सिंहसे डरते हुये हाथीकी समान मानों चिल्लानें लगा ॥ ४३ ॥

आगे जो शुभ लक्षण हमको होरहेहैं इसको देख कर हमको बोध होताहै, कि हम सब रणभूमिमें रावणका नाश करके जानकीजीको लेआवेंगे ॥ ६ ॥ हमारे दाहिने नेत्रके ऊपरका भाग वारंवार फड़ककर मानो रामचंद्र तुमनें विजय पाई, यही प्रभास करताहै ॥ ७ ॥ तिसके पीछे अर्थविशारद धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी वानरराज सुग्रीव और लक्ष्मणजीसे पूजे जाकर फिर यह बोले ॥ ८ ॥ सैनापति नील. वेगवान शत २ सहस्र २ वानरोंकी सैना साथ लेकर मार्ग देखनेंके लिये इस सैनाके आगे २ चलें ॥ ९ ॥ हे सैनापति सुग्रीव! जहां उत्तम फल. मूल और मीठा शीतल जल वहताहै, तुम नीलको ऐसे मार्गसे सैनाको लेजानेंकी आज्ञादो ॥ १० ॥ दुरात्मा राक्षस गण मार्गमेंके फल और जल इत्यादि

निमित्तानिचपश्यामियानिप्रादुर्भवंतिवै ॥ निहत्यरावणंसीतामानयिष्यामिजानकीम्॥६॥उपरिष्टाद्धिनयनंस्फुरमाणमिमंमम ॥ विजयंसमनुप्राप्तंशंसतीवमनोरथम् ॥ ७ ॥ ततोवानरराजेनलक्ष्मणेनसुपूजितः ॥ उवाचरामोधर्मात्मा पुनरप्यर्थकोविदः ॥ ८ ॥ अग्रेयातुबलस्यास्यनीलोमार्गमवेक्षितुम् ॥ वृतःशतसहस्रेणवानराणांतरस्विनाम् ॥ ९ ॥ फलमूलवतानीलशीतकाननवारिणा ॥ पथामधुमताचाशुसेनांसेनापतेनय ॥ १० ॥ दूषयेयुर्दुरात्मानःपथिमूलफलोदकम् ॥ राक्षसाःपथिरक्षेथास्तेभ्यस्त्वंनित्यमुद्यतः ॥ ११ ॥निम्नेषुवनदुर्गेषुवनेषुचवनौकसः ॥ अभिप्लुत्याभिपश्येयुःपरेषांनिहितंबलम् ॥ १२ ॥यत्तुफल्गुबलंकिंचित्तदत्रैवोपपद्यताम्॥एतद्धिकृत्यंघोरंनोविक्रमेणप्रयुज्यताम् ॥ १३ ॥

सब वस्तुओंमें विषादि मिलाकर कहीं उनको दूषित नकरदें, इस कारण सदा तुम उनकी रक्षा करते रहना ❋ ॥ ११ ॥ वानर लोग छलांग मारकर टीकरी और वृक्षादि ऊंचे स्थलोंमें चढ़ २ कर पृथ्वीके नीचे टिके वनके किले और वनोंमेंभी भली भांति देखेंकि कहीं शत्रुकी सैना तौ घात लगाये नहीं बैठीहै ॥ १२ ॥ हमारी इस सैनामें बालक या वृद्ध होनेंके कारण जो कोईभी साररहित ज्ञातहो उसको किष्किन्धा पुरीमेंही छोड़ चलो; कारणकि हमारा यह. लंकाका. समरकार्य अत्यन्तही घोर होता हुआ जान पड़ताहै, इस लिये विक्रम सम्पन्न सैनाकेही सहित वहां

❋ मूलमें विष मिलानेंकी कथा नहीं है. यह टीकाकारका अभिप्राय है ॥

इसके उपरान्त सुन्दर काण्डहैं जिसकी आदिमें यह श्लोकहै इसके उपरान्त शत्रुओंके मारनेंवाले महावीरजी चारणोंके चलनेंके मार्गमें रावणसे हरी हुई जानकीजीको ढूंडनेंकी इच्छा करते हुये ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥

दोहा—श्रीरघुपतिके दास शुभ, जे श्रीमारुतवीर ॥ कृपा अनुग्रह कर हरो, महा कठिन मम पीर ॥ १ ॥
जिमि सीता सुधि लैनको, छिनमें चले सुजान ॥ तिमि ज्वालाप्रसादकी पीर मिटाओ आन ॥ २ ॥
प्रभु तुम सब जानत सदा, नित प्रति अगम अगाध ॥ कृपा अनुग्रह कीजिये, दूर करो अपराध ॥ ३ ॥

अतःपरंसुंदरकांडंतस्यायमाद्यःश्लोकः ॥ ततोरावणनीतायाःसीतायाःशत्रुकर्षणः ॥ इयेषपदमन्वेष्टुंचारणाचरितेपथि ॥ १ ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥ छ ॥

हौं सेवक तव चरणको, नित अनन्य हनुमान ॥ क्यों नहि टारत कष्ट अति, तुम्हैं रामकी आन ॥ ४ ॥
आवहु दुःख मिटायकर, सुखी करहु निज दास ॥ तव गुण गावहुं मैं सदा, कीजिय नित्य हुलास ॥ ५ ॥
महावीर शंकट हरन, करन सकल आनंद ॥ तुम्हैं रामकी आन मम, काटहु सब दुख फंद ॥ ६ ॥
दास जानकर कृपा कर, अपनी ओर निहार ॥ प्रभु ज्वालाप्रसादके दीजे शंकट टार ॥ ७ ॥

इति किष्किन्धाकाण्ड समाप्त।

इदं भाषानुवादसमेतं रामायणकिष्किंधाकाण्डं 'खेमराज–श्रीकृष्णदास' इत्यनेन मुम्बय्यां स्वकीयश्रीवेङ्कटेश्वर मुद्रायन्त्रालयेङ्कित्वा प्रसिद्धिं प्रापितम् शालिवाहन शके १८१५ संवत् १९५०

अपने आश्रमके स्थान गुफा और पर्वतके शिखरोंमेंसे बाहर आये॥ २२ ॥ तिसके पीछे धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी वानरराज सुग्रीव और लक्ष्मणजीसे सुपूजितहो दक्षिण दिशाको यात्रा करते हुए ॥ २३ ॥ शत २ सहस्र २ कोटि २ अरब २ वानरोंकी सैना श्रीरामचंद्रजीके साथ चली ॥ २४ ॥ उस कालमें हर्षित, कौतुक युक्त और सुग्रीव पालित वह बड़ी भारी वानरी सैना श्रीरामचंद्रजीके पीछे २ चली ॥२५॥ कोई २ वानर सैनाकी रक्षा करनेंके लिये चारों ओर कूदते फांदते व गर्जन करते हुए आगे लगे हुए फल मूलादिकी शुद्धाशुद्ध परीक्षा करनेके लिये आगे बढे,कोई सिंहनाद कोई सामान्य नाद करके दक्षिण दिशाकी ओर चले ॥ २६ ॥ वह वानरगमन करनेंके समय सुगंधि युक्त मधुर फल भक्षण करते, और मंजरी

ततोवानरराजेनलक्ष्मणेनचपूजितः ॥ जगामरामोधर्मात्माससैन्योदक्षिणांदिशम् ॥ २३ ॥ शतैःशतसहस्रैश्चकोटि
भिश्चायुतैरपि ॥ वारणाभैश्चहरिभिर्ययौपरिवृतस्तदा॥ २४ ॥ तंयांतमनुयांतीसामहतीहरिवाहिनी ॥ हृष्टाःप्रमुदिताः
सर्वेसुग्रीवेणाभिपालिताः॥२५॥ आप्लवंतःप्लवंतश्चगर्जंतश्चप्लवंगमाः ॥ क्ष्वेलंतोनिनदंतश्चजग्मुर्वैदक्षिणांदिशम्॥२६॥
भक्षयंतःसुगंधीनिमधूनिचफलानिच ॥ उद्वहंतोमहावृक्षान्मंजरीपुंजधारिणः ॥ २७ ॥ अन्योन्यंसहसादृप्तानिर्वहं
तिक्षिपंतिच ॥ पतंतश्चोत्पतंत्यन्येपातयंत्यपरेपरान् ॥ २८ ॥ रावणोनोनिहंतव्यःसर्वेचरजनीचराः ॥ इतिगर्जंति
हरयोराघवस्यसमीपतः॥ २९ ॥ पुरस्तादृषभोनीलोवीरःकुमुदएवच ॥ पंथानंशोधयंतिस्मवानरैर्बहुभिःसह॥ ३० ॥
मध्येतुराजासुग्रीवोरामोलक्ष्मणएवच ॥ बलिभिर्बहुभिर्भीमैर्वृतःशत्रुनिबर्हणः ॥ ३१ ॥

पुष्प शोभित महा वृक्षोंको उखाड २ अपने ऊपर लादकर ले चले॥२७॥कोई२गर्व्वित होकर एक दूसरेको उठाकर ले चलते. और कंधेसे पृथ्वीपर गिराने लगे। कोई २ क्रम २ से चलनें लगे, और कोई ऊंचेमें गमन करते हुए दूसरोंको पृथ्वीपर गिराने लगे ॥ २८॥ रावण व और दूसरे समस्त राक्षसोंको हम मार डालेंगे, वानरलोग श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख वारंवार यह कहकर गर्जन करनें लगे ॥ २९ ॥ महावीर ऋषभ गन्धमादन, और नील बहुत सारे वानरोंके साथ मार्गोंको शोध करते हुए सैनाके आगे २ चलनें लगे ॥ ३० ॥ शत्रुओंके संहार करनेंवाले श्रीरामचंद्र लक्ष्मण

दोहा—भक्तन मन आनंद करन, दुष्टन मारनहार ॥ तपनि वंश अवतंश प्रभु, सुख शोभा आगार ॥ १ ॥
जनकसुताके टारि दुःख, रावण करि संहार ॥ सबकी सत संग पुष्प कहि, चढ़ि श्रीराजकुमार ॥ २ ॥
अवधपुरीमें आयकर, ग्रहणकियो जिमिराज ॥ सो सब भाषामें कहब, वंदि राम रघुराज ॥ ३ ॥
सेठ शिरोमणि गुणसदन, सज्जन जन आनंद ॥ खेमराज गृह श्री सदा, वास करै निर्द्वन्द ॥ ४ ॥
शिव शक्ति सुर शेष शशि, सहित वाणि गणराज ॥ जन ज्वालाप्रसाद मन, वास करहु सब आज ॥ ५ ॥

हनुमाननें समस्त श्रीरामचंद्रजी हनुमानजीके यथावत कहे हुए इन वचनोंको श्रवणकर अतिशय प्रसन्नहो इस प्रकारसे उत्तरदेते हुए ॥ १ ॥

श्रीरघुवीरायनमोनमः॥ ॥ श्रुत्वाहनूमतोवाक्यंयथावदभिभाषितम् ॥रामःप्रीतिसमायुक्तोवाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥१॥ कृतंहनूमताकार्यंसुमहद्भुविदुर्लभम् ॥ मनसापियदन्येननशक्यंधरणीतले॥ २ ॥नहितंपरिपश्यामियस्तरेतमहोदधिम् ॥ अन्यत्रगरुडाद्वायोरन्यत्रचहनूमतः॥ ३ ॥ देवदानवयक्षाणांगंधर्वोरगरक्षसाम् ॥ अप्रधृष्यांपुरींलंकांरावणेनसुरक्षिताम्॥४॥प्रविष्टःसत्वमाश्रित्यजीवन्कोनामनिष्क्रमेत् ॥ कोविशेत्सुदुराधर्षांराक्षसैश्चसुरक्षिताम् ॥ ५ ॥ योवीर्यबलसंपन्नोनसमःस्याद्धनूमतः ॥ भृत्यकार्यंहनुमतासुग्रीवस्यकृतंमहत् ॥ एवंविधायस्वबलंसदृशंविक्रमस्यच ॥ ६ ॥

लोकोंसे न होनेंके योग्य जो बड़ा भारी कार्य कियाहै; ऐसा कार्य पृथ्वीपर दूसरेसे होना तो दूर रहै, कोई मनसेभी नहीं कर सकता ॥ २ ॥ गरुड़, वायु, और हनुमान, इन तीन जनोंके सिवाय और किसी दूसरेकी गति हम ऐसी नहीं देखते जो महा सागरको लांघ जाय ॥ ३ ॥ देव, दानव, यक्ष, गन्धर्व, उरग, व राक्षस लोगोंसेभी अजेय उस रावणसे पाली जातीहुई लंका पुरीमें ॥ ४ ॥ बल सहित प्रवेश करकै. कौन जीवित रह कर वहांसे चला आ सकताहै लंकापुरी राक्षस लोगोंसे रक्षित होनेके कारण जैसीकि प्रवेशकरनेंके योग्य होगई है ॥ ५ ॥ सो वीर्यवान हनुमानजीके अतिरिक्त और किसमें सामर्थ है कि जो वहां प्रवेश करसकै ? इस प्रकारसे अपने विक्रमके योग्य बल प्रकाश करकै हनुमानने सुग्रीवजीका

भयंकर शब्द करते हुए महा सागरकी नांई शब्द करती क्रमसे सह्य पर्वतकी प्रथम सीमापर आय पहुंची; श्रीरामचंद्रजीके पार्श्वमें वह कपि कुंजर
वानर गण॥४०॥श्रेष्ठ सारथिसे चलाये जाकर श्रेष्ठ घोड़ोंकी समान छलांग मारकर शीघ्रतासे गमन करनेंलगे। उस काल अंगद व हनुमानके ऊपर
चढे हुए वह पुरुषश्रेष्ठ श्रीराम लक्ष्मण ॥ ४१ ॥ राहु और केतुसे छुए हुए सूर्य चंद्रमाकी समान शोभा धारण करते हुए। फिर वानरराज
सुग्रीव, और लक्ष्मणजीसे सुपूजित होकर ॥ ४२ ॥ धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी इस प्रकारसे सेना सहित दक्षिण दिशाको चले फिर भविष्यत् कर्मका
तत्त्व जाननेंवाले अंगदजीके कंधेपर सवार लक्ष्मणजी शुभ वाणीसे ॥ ४३ ॥ परिपूर्ण अर्थयुक्त वचन श्रीरामचंद्रजीसे बोले हे रघुनाथ! हरीहुई वैदेही

निःससर्पमहाघोरंभीमघोषमिवार्णवम् ॥ तस्यदाशरथेःपार्श्वेशूरास्तेकपिकुंजराः॥४०॥तूर्णमापुप्लुवुःसर्वेसदश्वाइवचो
दिताः ॥ कपिभ्यामुह्यमानौतौशुशुभातेनरर्षभौ ॥ ४१ ॥ महद्भ्यामिवसंस्पृष्टौग्रहाभ्यांचंद्रभास्करौ ॥ ततोवानर
राजेनलक्ष्मणेनसुपूजितः ॥ ४२ ॥ जगामरामोधर्मात्माससैन्योदक्षिणांदिशम् ॥ तमंगदगतोरामंलक्ष्मणःशुभया
गिरा ॥ ४३ ॥ उवाचपरिपूर्णार्थंपूर्णार्थंप्रतिभानवान् ॥ हृतामवाप्यवैदेहींक्षिप्रंहत्वाचरावणम् ॥ ४४ ॥ समृद्धार्थः
समृद्धार्थामयोध्यांप्रतियास्यसि ॥ महांतिचनिमित्तानिदिविभूमौचराघव ॥ ४५ ॥ शुभानितवपश्यामिसर्वाण्ये
वार्थसिद्धये ॥ अनुवातिशिवोवायुःसेनांमृदुहितःसुखः ॥ ४६ ॥ पूर्णवल्गुस्वराश्चेमेप्रवदंतिमृगद्विजाः ॥ प्रसन्नाश्च
दिशःसर्वाविमलश्चदिवाकरः ॥ ४७ ॥ उशनाचप्रसन्नार्चिरनुत्वांभार्गवोगतः ॥ ब्रह्मराशिर्विशुद्धश्चशुद्धाश्चपरम
र्षयः ॥ अर्चिष्मंतःप्रकाशंतेध्रुवंसर्वेप्रदक्षिणम् ॥ ४८ ॥

जीको पाय शीघ्रतासे रावणको मार॥४४॥आप पूर्णमनोरथ हो धन जनसे पूर्ण अयोध्याको लौट जांयगे, हे राघव! पृथ्वी और आकाशमें हम बड़े
भारी निमित्त ॥ ४५ ॥ शुभ करनेंवाले और आपके कार्यको सिद्धि बतानेवाले देखतेहैं। यह देखिये मन्द, शीतल, सुगन्धित अनुकूल पवन, से
नाकी सुख देनेके लिये चलरहाहै ॥ ४६ ॥ समस्त मृग पक्षी गण वियोग रहित श्रवण सुखदायी स्वरसे शब्द कर रहेहैं। सब दिशायें प्रसन्नहैं
दिवाकर विमल किरणोंसें प्रकाश कर रहेहैं ॥ ४७ ॥ प्रसन्न किरणवाले भृगुनंदन शुक्रजीभी आपके पीछेहैं! देखिये आकाश, मेघ इत्यादिकी मली

भेंटते हुए ॥ १४ ॥ रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ और फिर क्षणभरतक चिन्ता करके कपिराज सुग्रीवजीके सन्मुखही फिर यह वचन बोले ॥ १५ ॥ कि हम सर्व प्रकारसे सीताजीके ढूंढ़नेमें यत्नकरके यद्यपि कार्य सिद्धिकरचुकेहैं परन्तु इस समुद्रको देखकर फिर हमारे मनका उत्साह टूटा जाताहै ॥ १६ ॥ यह आयेहुए वानरगण किस प्रकारसे दुष्पार अतिजलवाले समुद्रके दक्षिणपार पहुंचेंगे ॥ १७ ॥ यद्यपि, सीताजी लंकापुरीमें हैं, ऐसा वृत्तान्त हमारे निकट कहा गयाहै! परन्तु वानर लोगोंकें समुद्र पार जानेंका, क्या उपायहै, इस पूछनेंका क्या उत्तर होगा?॥ १८ ॥ शत्रुओंके मारनेंवाले शोकसे संतापित श्रीरामचंद्रजी महात्मा हनुमानजीसे ऐसा कह फिरकुछ चिन्ता करनेंलगे ॥ १९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा

ध्यात्वापुनरुवाचेदंवचनंरघुसत्तमः॥ हरीणामीश्वरस्यापिसुग्रीवस्योपशृण्वतः ॥ १५ ॥ सर्वथासुकृतंतावत्सीतायाः परिमार्गणम् ॥ सागरंतुसमासाद्यपुनर्नष्टंमनोमम ॥ १६ ॥ कथंनामसमुद्रस्यदुष्पारस्यमहांभसः ॥ हरयोदक्षिणंपारंगमिष्यंतिसमागताः ॥ १७ ॥ यद्यप्येषतुवृत्तांतोवैदेह्यागदितोमम ॥ समुद्रपारगमनेहरीणांकिमिवोत्तरम् ॥ १८ ॥ इत्युक्त्वाशोकसंभ्रांतोरामःशत्रुनिबर्हणः ॥ हनूमंतंमहाबाहुस्ततोध्यानमुपागमत् ॥ १९ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आदि०युद्धकांडेप्रथमःसर्गः ॥ १ ॥ ॥ तंतुशोकपरिद्यूनंरामंदशरथात्मजम् ॥ उवाचवचनंश्रीमान्सुग्रीवःशोकनाशनम् ॥ १ ॥ किंत्वयातप्यतेवीरयथान्यःप्राकृतस्तथा ॥ मैवंभूस्त्यजसंतापंकृतघ्नइवसौहृदम् ॥ २ ॥ संतापस्यचतेस्थानंनहिपश्यामिराघव ॥ प्रवृत्तावुपलब्धायांज्ञातेचनिलयेरिपोः ॥ ३ ॥

मायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥ तिसके पीछे हनुमानजी शोकसे संतापित हुए दशरथजीके पुत्र श्रीरामचंद्रजीसे इस प्रकारके शोकनाश करनेंवाले वचन कहनें लगे ॥ १ ॥ हेवीर! आप किस कारणसे साधारण मनुष्योंकी समान ऐसा संताप करतेहैं? अब आप ऐसा संताप न कीजिये;जिसप्रकार उपकार न माननेंवाला पुरुष दूसरेके साथ सौहृद छोड़ देताहै. वैसेही आप इस वृथा संतापको त्याग कीजिये ॥ २ ॥ हे रघुनंदन! जबकि शत्रुका समस्त वृत्तान्त और वासस्थान जानागयाहै तब तौ फिर हम आपके संतापका कोईभी कारण

ऋक्ष. वानर और गोपुच्छ वानरोंके कर चरणसे उठी हुई धूलकी राशिनें ॥ ५६ ॥ सूर्यकी शोभाको ढककर समस्त दक्षिण दिशाको भयंकर अंधकारसे छाय लिया ॥ पर्वत वन आकाश सहित वह वानर वाहिनीं ॥ ५७ ॥ दक्षिणदिशाको गमन करनेंलगीं. जैसे मेघमाला आकाशको छाय लेतीहै, जब बहुत योजनोंतक व निरन्तर वानरोंकी सेना उतरनें लगी ॥ ५८ ॥ तब उनके खलभलानेंसे नदियां स्वभाविक गतिको छोड़ विपरीत गतिको वहतीथीं । इस प्रकारसे यह वड़ी भारी सेना विमल वारि पूर्ण सरोवर, वृक्षपूर्ण पर्वत, ॥ ५९ ॥ समान भूमि प्रदेश और फल फूल युक्त वनोंके वीचमें प्रवेश करती हुई, ऊंचीनीची, तिर्छी, सीधी सव ओरको सव प्रकारसे जातीथी ॥ ६० ॥ वड़े भारी

भीममंतर्दधेलोकंनिवार्यसवितुःप्रभाम् ॥ सपर्वतवनाकाशंदक्षिणांहरिवाहिनी ॥ ५७ ॥ छादयंतीययौभीमाद्यामिवांबुदसंततिः ॥ उत्तरंत्याश्चसेनायाःसततंबहुयोजनम् ॥ ५८ ॥ नदीस्रोतांसिसर्वाणिसस्यंदुर्विपरीतवत् ॥ सरांसिविमलांभांसिद्रुमाकीर्णांश्चपर्वतान् ॥ ५९ ॥ समान्भूमिप्रदेशांश्चवनानिफलवंतिच ॥ मध्येनचसमंताच्चतिर्यक्चाधश्चसाविशत् ॥ ६० ॥ समावृत्यमहींकृत्स्नांजगाममहतीचमूः ॥ तेहृष्टवदनाःसर्वेजग्मुर्मारुतरंहसः ॥ ६१ ॥ हरयोराघवस्यार्थेसमारोपितविक्रमाः ॥ हर्षवीर्यबलोद्रेकान्दर्शयंतःपरस्परम् ॥ ६२ ॥ यौवनोच्छेकजाद्दर्पाद्विविधांश्चक्रुरध्वनि ॥ तत्रकेचिद्द्रुतंजग्मुरुत्पेतुश्चतथापरे ॥ ६३ ॥ केचित्किलकिलांचक्रुर्वानरावनगोचराः ॥ प्रास्फोटयंश्चपुच्छानिसन्निजघ्नुःपदान्यपि ॥ ६४ ॥

पृथ्वीके भागको ढककर वह वड़ी भारी सैना गमन करनें लगी उस कालमें वायुकी समान वेगवान उन वानरोंके मुखसे हर्षका लक्षण प्रगट हो रहाथा ॥ ६१ ॥ और वह सव वानर "श्रीरामचंद्रजीके अर्थ संग्राम करेंगे" कहकर विक्रम और मार्गमें परस्पर हर्ष वीर्य और वलको दिखातेथे ॥ ६२ ॥ और यौवनोचित अनेक प्रकारके दर्प चिह्न दिखायकर क्रूर ध्वनि करते व क्रीड़ा करतेथे, उन गजकी समान वानरोंमें कोई २ वड़ी शीघ्रतासे चलते, और कोई २ आकाशमार्गमें गमन करनेंलगे ॥ ६३ ॥ और कोई २ हर्ष सहित रावणको सुनानेंके लिये किल

उस लंकापुरीके रूंधनेंको समर्थ नहीं होसकते ॥ १२ ॥ आप यह निश्चयही जानलीजिये कि लंकातक समुद्रके ऊपर पुल बंध जातेही उसपरसे होकर समस्त सैना पार उतर जायगी; और फिर विजयकी प्राप्ति होनेमेंभी कुछ सन्देह नहीं कारण कि यह समस्त काम रूपी वानर संग्राम करनेंमे बड़े चतुरहैं ॥ १३ ॥ हे महाराज! आप इस सर्व विनाशिनी विकल बुद्धिको छोड़ दीजिये, कारण कि पृथ्वीपर शोकहीहै जो मनुष्यके वीर्यको नष्ट किया करताहै ॥ १४ ॥ जो कार्य शूरताका अवलम्बन करके कियाजाताहै वह तुरंत शूरताका किया कार्य करनेवालेको भूषण होजाताहै ॥ १५ ॥ कारण कि नष्ट होंने या सोयजानेंपर आप सरीखे महात्मा शूर पुरुष गणोंकाभी नाश करनेंको शोकही कारणहै । इस कारण

सेतुबंधःसमुद्रेचयावल्लंकासमीपतः॥ सर्वंतीर्णंचमेसैन्यंजितमित्युपधारय॥तथाहिसमरेवीराहरयःकामरूपिणः१३॥
तदलंविक्लवांबुद्धिंराजन्सर्वार्थनाशनीम्॥ पुरुषस्यहिलोकेस्मिन्शोकःशौर्यापकर्षणः॥१४॥यत्तुकार्यंमनुष्येणशौटीर्यमवलंब्यताम् ॥ तदलंकरणायैवकर्तुर्भवतिसत्वरम् ॥ १५ ॥ अस्मिन्कालेमहाप्राज्ञसत्त्वमातिष्ठतेजसा ॥ शूराणांहि मनुष्याणांत्वद्विधानांमहात्मनाम् ॥ विनष्टेवाप्रणष्टेवाशोकःसर्वार्थनाशनः ॥ १६ ॥ तत्त्वंबुद्धिमतांश्रेष्ठःसर्वशास्त्रार्थकोविदः ॥ मद्विधैःसचिवैःसार्धमरिंजेतुंसमर्हसि ॥ १७ ॥ नहिपश्याम्यहंकंचित्त्रिषुलोकेषुराघव ॥ गृहीतधनुषो यस्तेतिष्ठेदभिमुखोरणे ॥१८॥ वानरेषुसमासक्तंनतेकार्यंविपत्स्यते॥अचिराद्द्रक्ष्यसेसीतांतीर्त्वासागरमक्षयम्॥१९॥

हे महाप्राज्ञ! ऐसे समय आप महात्मा अपने तेज बलसे शूरता और धीरताका ग्रहण करके वही कीजिये कि जो ऐसे समयमें मनुष्य किया करतेहैं ॥ १६ ॥ आप बुद्धिमान लोगोंमें श्रेष्ठहैं और सब शास्त्रोंके अर्थभी भली भांतिसे जानतेहैं, फिर हमैं और अधिक कहनेंकी क्या आवश्यकताहै; हम समान मंत्री लोगोंके साथ रहनेंपर आप अवश्यही शत्रुको जीतलेंगे ॥ १७ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! हम तीनोंलोकोंके मध्यमें ऐसा किसीको नहीं देखते कि जो आपके धनुष धारण कर संग्राममें खड़े होनेंपर आपके सामने खड़ा हो सके ॥ १८ ॥ आप वानर गणोंको जिस कार्यका भार देंगे, उस कार्यका किसीप्रकार नाश नहीं होगा, हम समस्तही इस अक्षय समुद्रके पार होकर देवी जानकीजीको ले आवेंगे ॥ १९ ॥

तिलक, आम, अशोक, सिन्धुवार, तिमिष, करवीरादि वृक्ष वानर गण चलते हुए तोड़ते जातेथे ॥ ७२ ॥ कोई २ अशोक, करञ्ज, प्लक्ष, न्यग्रोध, जामन, आमला, और पुन्नागादि वृक्षोंको तोडते उखाड़ते चलतेथे ॥ ७३ ॥ पत्थरोंपर लगे हुए अनेक जातिके वन वृक्ष वायुके वेगसे चलायमान होकर अपने पुष्पोंको पृथ्वीके ऊपर बखेर रहेथे ॥ ७४ ॥ स्पर्श करनेंसे सुखका देनें वाला सुशीतल चन्दन सुगन्धि युक्त वन वायु वहनें लगा, और भ्रमरगण उस सुरभि सुगन्धिसे मोहित होकर मधुके प्राप्त करनेंकी लालसा किये आकाशमेंही अपनी चेष्टा प्रकाशित करनेंलगे ॥७५॥ परन्तु यह पर्वतराज सह्य अनेक धातुओंकेही द्वारा विशेष करकै शोभायमान होरहाथा. उस कालमें उन समस्त धातुओंकी रेणुनें पवनसे चला

अशोकांश्चकरंजांश्चप्लक्षन्यग्रोधपादपान् ॥ जंबुकामलकान्नागान्भंजंतिस्मप्लवंगमाः ॥ ७३ ॥ प्रस्तरेषुचरम्येषुविविधाःकाननद्रुमाः ॥ वायुवेगप्रचलिताःपुष्पैरवकिरंतितान् ॥ ७४ ॥ मारुतःसुखसंस्पर्शोवातिचंदनशीतलः ॥ षट्पदैरनुकूजद्भिर्वनेषुमधुगंधिषु ॥ ७५ ॥ अधिकंशैलराजस्तुधातुभिस्तुविभूषितः ॥ धातुभ्यःप्रसृतोरेणुर्वायुवेगेनघट्टितः ॥ ७६ ॥ सुमहद्वानरानीकंछादयामाससर्वतः ॥ गिरिप्रस्थेषुरम्येषुसर्वतःसंप्रपुष्पिताः ॥ ७७ ॥ केतक्यःसिंदुवाराश्चवासंत्यश्चमनोरमाः ॥ माधव्योगंधपूर्णाश्चकुंदगुल्माश्चपुष्पिताः ॥ ७८ ॥ चिरिबिल्वामधूकाश्चवंजुलाबकुलास्तथा ॥ रंजकास्तिलकाश्चैवनागवृक्षाश्चपुष्पिताः ॥ ७९ ॥ चूताःपाटलिकाश्चैवकोविदाराश्चपुष्पिताः ॥ मुचुलिंदार्जुनाश्चैवशिंशपाःकुटजास्तथा ॥ ८० ॥ हिंतालास्तिनिशाश्चैवचूर्णकानीपकास्तथा ॥ नीलाशोकाश्चसरलाअंकोलाःपद्मकास्तथा ॥ ८१ ॥ प्रीयमाणैःप्लवंगैस्तुसर्वेपर्याकुलीकृताः ॥ वाप्यस्तस्मिन्गिरौरम्याःपल्वलानितथैवच ॥ ८२ ॥

यमान होकर ॥ ७६ ॥ उस बड़ीभारी वानर सैनाको ढकलिया. कारणकि उस पर्वतपर सब ओरसे रमणीक और फूली हुई ॥ ७७ ॥ केतकी, सिन्धुवार, वासन्ती, सुगन्धिपूर्ण माधवी कुन्द जोकि फूल रहाथा ॥ ७८ ॥ चिरंबिल्व, मधुक, वञ्जुल, अर्थात् स्थलपद्म, बकुल, रंजक, तिलक, पुष्पित नागकेशर ॥ ७९ ॥ आम, पाटली, अर्थात् गुलाब कोविदार फूले हुएथे. मुचुलिन्द, अर्ज्जुन, शिंशपा, कुटज आदि वृक्ष फूले हुए महक रहेथे ॥ ८० ॥ हिन्ताल, तिनिश, चूर्णक, कदम्ब, नील, अशोक, सालू, अंकोल, पद्मक ॥ ८१ ॥ आदि सब वृक्षोंको देखकर वानरोंनें छिन्न भिन्न

सबही भांति इस समुद्रके पार जाय सकतेहैं ॥ २ ॥ जबसे तुमको वहांसे आये हमनें देखाहै तबसे कई एक बातोंको जाननेंके लिये हमारी इच्छा हुईहै. सो तुम हमारे निकट वह सब वर्णन करोकि; उस गमन करनेंके अयोग्य लंकापुरीमें कितने किलेहैं? ॥ ३ ॥ राक्षस रावणके यहां सेना कितनीहै? द्वारोंपरके दुर्ग किस प्रकारकेहैं? वहां पर खुदीहुई परिखा परिघ, और पृथ्वीके भीतर अटारियें हैं या नहीं? राक्षस लोगोंके रहनेंके स्थान कैसेहैं॥ ४ ॥ तुम दर्शन करने, वर्णन करने दोनों बातोंमेंही अत्यन्त चतुरहो, इस कारण लंकामें जो कुछ तुमनें देखाहो वह निःशंक चित्तसे हमारे निकट यथार्थ वर्णन करो ॥५॥ तब वचन बोलनेंमें चतुर पवनकुमार हनुमानजी श्रीरामचंद्रजीके यह वचन सुनकर फिर उनसे बोले ॥ ६ ॥

कतिदुर्गाणिदुर्गायालंकायास्तद्ब्रवीष्वमे ॥ ज्ञातुमिच्छामितत्सर्वंदर्शनादिववानर ॥ ३ ॥ बलस्यपरिमाणंचद्वारदुर्गक्रियामपि ॥ गुप्तिकर्मचलंकायारक्षसांसदनानिच ॥ ४ ॥ यथासुखंयथावच्चलंकायामसिदृष्टवान् ॥ सर्वमाचक्ष्वतत्त्वेनसर्वथाकुशलोह्यसि ॥ ५ ॥ श्रुत्वारामस्यवचनंहनुमान्मारुतात्मजः ॥ वाक्यंवाक्यविदांश्रेष्ठोरामंपुनरथाब्रवीत् ॥ ६ ॥ श्रूयतांसर्वमाख्यास्येदुर्गकर्मविधानतः ॥ गुप्तापुरीयथालंकारक्षिताचयथाबलैः ॥ ७ ॥ राक्षसाश्चयथास्निग्धारावणस्यचतेजसा ॥ परांसमृद्धिंलंकायाःसागरस्यचभीमताम् ॥ ८ ॥ विभागंचबलौघस्यनिर्देशंवाहनस्यच ॥ एवमुक्त्वाकपिश्रेष्ठःकथयामासतत्त्ववित् ॥ ९ ॥ हृष्टप्रमुदितालंकामत्तद्वीपसमाकुला ॥ महतीरथसंपूर्णारक्षोगणनिषेविता ॥ १० ॥

हेराजन्! वह लंकापुरी गुप्त भावसे राक्षसों करके जिस प्रकारसे रक्षित होतीहै वह हम सब कहतेहैं आप श्रवण करें ॥ ७ ॥ राक्षस लोग रावणके तेजसे सावधानहो परम समृद्धि पायकर स्नेह सहित जिस प्रकार लंकाकेमध्यमें वास करतेहैं वह समुद्रकी भयानकता ॥ ८ ॥ सैना समूहका विभाग. उनके वाहनोंकी गिनती. और कर्मादिका यथावत् वर्णन करतेहैं, आप श्रवण करें । वानरश्रेष्ठ हनुमानजी यह कहकर वहांके रत्ती २ जाने समाचारोंको कहनें लगे ॥ ९ ॥ लंकापुरी सदाही हर्षसे परिपूर्ण, मतवाले हाथियोंसे विराजमान अनेक स्थानोंमें रथोंसे सुशोभित, राक्षस

महेंद्रमथसंप्राप्यरामोराजीवलोचनः॥ आरुरोहमहाबाहुःशिखरंद्रुमभूषितम्॥९२॥ततःशिखरमारुह्यरामोदशरथात्मजः ॥ कूर्ममीनसमाकीर्णमपश्यत्सलिलाकुलम् ॥ ९३ ॥ तेसह्यंसमतिक्रम्यमलयंचमहागिरिम् ॥ आसेदुरानुपूर्व्येणसमुद्रंभीमनिःस्वनम् ॥ ९४ ॥ अवरुह्यजगामाशुवेलावनमनुत्तमम् ॥ रामोरमयतांश्रेष्ठःससुग्रीवःसलक्ष्मणः ॥९५॥ अथधौतोपलतलांतोयौघैस्सरसोत्थितैः॥ वेलामासाद्यविपुलांरामोवचनमब्रवीत्॥९६॥एतेवयमनुप्राप्ताःसुग्रीववरुणालयम् ॥ इहेदानींविचिंतासायानःपूर्वमुपस्थिता ॥ ९७ ॥ अतःपरमतीरोयंसागरःसरितांपतिः ॥ नचायमनुपायेनशक्यस्तरितुमर्णवः ॥ ९८ ॥ तदिहैवनिवेशोस्तुमंत्रःप्रस्तूयतामिह ॥ यथेदंवानरबलंपरंपारमवाप्नुयात् ॥ ९९ ॥

वानरश्रेष्ठोंसे परिपूर्ण होकर जड़हन धान्यसे पूर्ण खेतकी समान शोभायमान होनें लगे ❀ ॥ ९१ ॥ तिसके पीछे कमललोचन श्रीरामचंद्रजी सह्य और मलय गिरिको नांघकर महेन्द्राचलपर आये। अनेक प्रकारके वृक्षोंसे भूषित उसके शिखर पर चढ़े ॥ ९२ ॥ दशरथ कुमार श्रीरामचंद्रजी उसके शिखर पर चढ़ कच्छप मीनों इत्यादिजीवोंसे पूर्ण जलनिधि (समुद्र) को देखते हुए ॥ ९३ ॥ तब श्रीरामचंद्रजी व और सबनें सह्य और मलय महापर्वतोंको लांघकर भयंकर शब्दयुक्त समुद्र देखा ॥ ९४ ॥ तब रमण करनेंवालोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी पर्वतश्रेष्ठसे नीचे उतरकर सुग्रीव और लक्ष्मणजीके साथ अति शीघ्रतासे समुद्रके उत्तम वेला वनमें आये ॥ ९५ ॥ वहां पर आयकर श्रीरामचंद्रजीनें देखाकि समुद्रके किनारेवाले पहाड़ोंकी तली सदा समुद्रके प्रवाहसे धौत होतीहै, श्रीरामचंद्रजी जनरहित तीरभूमि देखकर कहने लगे ॥ ९६ ॥ हे बन्धु सुग्रीव! देखते २ हम सब समुद्रके किनारेपर आय पहुंचे; इस समय समुद्र पार जानेके विषयमें वह चिन्ता हमारे मनमें इस समुद्रको देखकर उदित हुईहै कि जो पहलेभी उदय नहीं हुईथी ॥९७॥इस विशाल समुद्रका दूसरा किनारा दृष्टि नहीं आता; विना किसी श्रेष्ठ उपायके किये इस समुद्रका उतरना कुछ सहज बात नहीं है ॥ ९८ ॥ हमारे विचारमें तो यह आताहै कि यहीं पर वानरोंकी सैनाका ठहरजाना उचित

- सजेउ जब प्रभुको कटक अपार ॥ चौंकि सिद्ध मुनि जगेउ डगेउ महि अहि सहिसक्यो नभार ॥ फरकेउ वाम अंग भुज सियके रावणहूंके धाम ॥ इत भये मंगल शकुन हरष उत हरष शोक पर नाम ॥ चूमतिजात विजय पद पगपग सुर डर हुलसन घोर ॥ रह्योपूरि धुनि सूर्य जयति जय कोशलराजकिशोर ॥

अति बड़े २ कंचनके अनेक खंभों और वेदिकाओंसे शोभायमानहै॥१८॥हे श्रीरामचंद्रजी ! रावण युद्धाभिलापी होकर बल देखनेके लिये प्रमाद रहित और सावधान व अक्षुभित होकर इस संक्रमके निकट शत्रुसे लडनेको तैयार हो जाता है ॥ १९ ॥ राक्षसराज रावणकी राजधानी लंकापुरी पर्वतके शिखरपर बसीहुई है, विना किसीका अवलम्बन किये उस पर चढना होताहै। वह देवता लोगोंके दुर्गकी समान अतिशय दुर्गमहैं । उसमें नदीदुर्ग, गिरि दुर्ग और प्रकारके कृत्रिम दुर्ग विराजमानहैं वहांपर देवता लोगभी तो जानेंका साहस नहीं करते ॥ २० ॥ हेराघव ! यह लंका पुरी पार जानेंके अयोग्य समुद्रके उस पार बसी हुई हैजलका दुर्ग रहनेंसे वहांपर नांवमें आने जानेको भी मार्ग नहीं है. इस

स्वयंप्रकृतिमापन्नोयुयुत्सूरामरावणः ॥ उत्थितश्चाप्रमत्तश्चबलानामनुदर्शने ॥ १९ ॥ लंकापुनर्निरालंबादेवदुर्गाभयावहा ॥ नादेयंपार्वतंचान्यंकृत्रिमंचचतुर्विधम् ॥ २० ॥ स्थितापारेसमुद्रस्यदूरपारस्यराघव ॥ नौपथश्चापिनास्त्यत्रनिरुद्देशश्चसर्वशः ॥ २१ ॥ शैलाग्रेरचितादुर्गासापूर्देवपुरोपमा ॥ वाजिवारणसंपूर्णालंकापरमदुर्जया ॥ २२ ॥ परिखाश्चशतघ्न्यश्चयंत्राणिविविधानिच ॥ शोभयंतिपुरींलंकांरावणस्यदुरात्मनः ॥ २३ ॥ अयुतंरक्षसामत्रपूर्वद्वारंसमाश्रितम् ॥ शूलहस्तादुराधर्षाःसर्वेखड्गाग्रयोधिनः ॥ २४ ॥ नियुतंरक्षसामत्रदक्षिणद्वारमाश्रितम् ॥ चतुरंगेणसैन्येनयोधास्तत्राप्यनुत्तमाः ॥ २५ ॥

कारण आजतक उस पुरीकी कोई भी विशेष वार्त्ता नहीं जानता ॥ २१ ॥पर्वतके शिखर अनेक दुर्गोंके बने रहनेसे अश्व गजसे परिपूर्ण अमरावतीकी समान यह लंका नगरी शत्रुओंकरके बडे दुःखसे जीतनेके योग्यहै ॥ २२ ॥ महाराज! परिघा. शतघ्नी (तोप) व और बहुत सारे यंत्र उस दुरात्मा रावणकी लंकापुरीको शोभायमान किये हुए हैं ॥ २३ ॥उस पुरीके पूरववाले फाटकपर शूल हाथमें लिये बडे दुर्जय दशहजार राक्षस रात्रि दिन युद्ध करनेंके लिये तैयार रहते हैं, वह खड्ग युद्ध करनेंमें बडे चतुरहैं ॥ २४ ॥ दक्षिणके द्वारपर लाख राक्षस रहतेहैं; और वहांपर

समुद्रको देखनेलगी ॥८॥ आति कठिनसे पार जानेके अयोग्य राक्षस सेवित समुद्रको देखते हुए, वानरयूथपगण वहां बैठेथे ॥ ९ ॥ जो उदधि समुद्र बडे २ नाके और घडियालोंकें रहनेके कारण भयंकर हो रहाथा प्रदोष कालके समय जब उसमें फेन आजाताहै, तब ऐसा जान पडताहै मानो हँसरहाहै; और जब यह अपनी तरंगोंका विस्तार करताहै, तब यही उसका नृत्यभाव जाना जाया करताहै ॥ १० ॥ इस समय चंद्रमाके उदय होनेसे समुद्रका जल बढ़नें लगा और चंद्रमाका प्रतिबिम्ब उसके वक्षस्थलमें शोभायमान होनेंलगा । यह समुद्र पातालकी समान भयंकर उसके इधर उधर तिमिङ्गिल मत्स्य शोभा देरहेथे ॥ ११ ॥ उस कालमें महासागर तरंगोंके अग्रभागसे मानो फेन रूप चन्दनको पीस रहाथा और चंद्रमा अपनी किरण समूहोंसे उसको ग्रहण करके दिगङ्गनाओंके अंगोंमें लेपनकर रहाथा। यह सागर प्रकाशित फण

दूरपारमसंबाधंरक्षोगणनिषेवितम् ॥ पश्यंतोवरुणावासंनिषेदुर्हरियूथपाः ॥ ९ ॥ चंडनक्रग्राहघोरंक्षपादौदिवसक्षये ॥ हसंतमिवफेनौघैर्नृत्यंतमिवचोर्मिभिः॥ १० ॥ चंद्रोदयेसमुद्धूतंप्रतिचंद्रसमाकुलम् ॥ चंडानिलमहाग्राहैः कीर्णंतिमितिमिंगिलैः ॥ ११ ॥ दीप्तभोगैरिवाकीर्णंभुजंगैर्वरुणालयम् ॥ अवगाढंमहासत्त्वैर्नानाशैलसमाकुलम् ॥ १२ ॥ सुदुर्गंदुर्गमार्गंतमगाधमसुरालयम्॥ मकरैर्नागभोगैश्चविगाढावातलोलिताः॥१३॥ उत्पेतुश्चनिपेतुश्चप्रहृष्टाजलराशयः ॥ अग्निचूर्णमिवाविद्धंभास्वरांबुमहोरगम् ॥ सुरारिनिलयंघोरंपातालविषयंसदा ॥ १४ ॥ सागरंचांबरप्रख्यमंबरंसागरोपमम् ॥ सागरंचांबरंचेतिनिर्विशेषमदृश्यत ॥ १५ ॥

वाले सर्पोंसे युक्त व और जलचर जीवोंसे भरे अनेक पर्वतोंसे व्याप्त ॥ १२ ॥ होनेके कारण मार्गरहित सब किसीके जानेके अयोग्य, और असुर लोगोंके वास करनेकी भूमिहै, मत्स्य नाके और नागादिके भोगका स्थान उन्हीं जीवोंके पवनके संयोगसे चलायमान होनेके कारण॥१३॥ जलराशि कभी ऊपरको उठताथा कभी फिर नीचेको चलाजाताथा, समुद्रमें भयंकराकार जलसर्प जो रहतेथे उनके फणोंकी मणिकी किरण जो जलपर छिटकती उससे ऐसा जान पडताथा कि मानो किसीने जलके ऊपर अग्निकी चिनगारियें वखेर दीहैं, ऐसा समुद्र घोर असुरोंके रहनेका पाताल तो स्थानही था ॥ १४ ॥ समुद्र आकाशकी समान और आकाश समुद्रकी समान होनेंसे सागर और आकाश विशेष रहित होनेंसे

हे महाराज! इस समय आप बडे २ सैनापतियोंको ऐसी आज्ञा देकरशीघ्रही शुभ मुहूर्तमें युद्ध यात्रा करनेंके लिये तैयारियें कीजिये ॥ ३४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे तृतीयःसर्गः ॥ ३ ॥ सत्य पराक्रम श्रीमहातेजमान् श्रीरामचंद्रजी हनुमानजी करकै यथावत कहे इन समस्त वाक्योंको आदिसे अंततक सुनकर इस प्रकारसे बोले ॥ १ ॥ हे हनुमान्! हम उस भयंकर स्वरूप राक्षसकी लंका पुरी शीघ्रही विध्वंस कर डालेंगे, यह जो तुमनें कहा, यह समस्तही हमको सत्य जान पड़ताहै ॥ २ ॥ हे सुग्रीव! तुम इसी मुहूर्तमें युद्धकी यात्रा करनेंके लिये तैयारहो जाओ, कारणकि सूर्य भगवान इस समय, मध्य आकाशमें टिकेहैं; और ऐसे विजय देंनेवाले अभिजित मुहूर्तमें. यात्रा

एवमाज्ञापयक्षिप्रंबलानांसर्वसंग्रहम् ॥ मुहूर्तेनतुयुक्तेनप्रस्थानमभिरोचय ॥ ३४ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेतृतीयःसर्गः ॥ ३ ॥ ॥४॥ ॥ श्रुत्वाहनूमतोवाक्यंयथावदनुपूर्वशः ॥ ततोऽब्रवीन्महातेजारामःसत्यपराक्रमः ॥ १ ॥ यन्निवेदयसेलंकांपुरींभीमस्यरक्षसः ॥ क्षिप्रमेनांवधिष्यामिसत्यमेतद्ब्रवीमिते ॥ २ ॥ अस्मिन्मुहूर्तेसुग्रीवप्रयाणमभिरोचय ॥ युक्तोमुहूर्तोविजयेप्राप्तोमध्यंदिवाकरः ॥ ३ ॥ सीतांहृत्वातुतद्यातुक्वासौयास्यतिजीवितः ॥ सीताश्रुत्वाभियानंमेआशामेष्यतिजीविते ॥ जीवितांतेऽमृतंस्पृष्ट्वापीत्वामृतमिवातुरः ॥ ४ ॥ उत्तराफाल्गुनीह्यद्यश्वस्तुहस्तेनयोक्ष्यते ॥ अभिप्रयामसुग्रीवसर्वानीकसमावृताः ॥ ५ ॥

करना बहुत ही ठीकहै ॥ ३ ॥ तौ हम इस विजय मुहूर्तमें यात्राकरेंगे. तौ रावण किसी प्रकारसेभी अपने जीवनकी रक्षा करनेंमें समर्थ न होगा जिसप्रकार विष पानकरकै आतुर मनुष्य, मृत्युके समयमें अमृतकी समान औषधीके स्पर्श करनेंसेभी अपने जीवनकी आशा करताहै, वैसेही, हम युद्ध यात्रा करनेंके लिये चलदिये, जानकीजीभी यह समाचार पाय जीवनकी आशा न छोड़ देंगी ॥ ४ ॥ चंद्रमाके इस समय उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें टिकनेंसे हमारा सिद्ध देंनें वाला यह ग्रह हुआहै, परन्तु कलको इसका हस्तके सहित योग होंनेसे यह हमारा निधन नक्षत्र हो जायगा कारणकि पुनर्वसु नक्षत्रमें हमारा जन्म हुआथा। इसलिये हे सुग्रीव! हम समस्त सैनाको साथलेकर, आजही युद्धके लिये यात्रा करेंगे ॥ ५ ॥

वानर पुङ्गव मैन्द और द्विविद उस सैनाकी रक्षा करनेंके लिये उसके चारों ओर घूमनें लगे॥२॥जब सब सैना नद नदीपति समुद्रके तीर पर इस प्रकार
टिकगई तब श्रीरामचंद्रजी अपनी बगलमें बैठे हुए लक्ष्मणजीसे बोले ॥३॥वत्स लक्ष्मण! ज्यों ज्यों काल चला जाताहै, त्यों त्यों शोकभी बीतता जा
ताहै, परन्तु हमारे लिये तौ यहबात विपरीतसी जान पड़तीहै, क्योंकि सीताजीके न देखनेंसे हमारा शोक दिन २ बढ रहाहै घटता नहीं ॥ ४ ॥
इस कारण हमें दुःख नहीं है, कि हमारी प्यारी दूरहैं, और इस कारणभी हमको दुःख नहीं होता कि उनको रावण हरण कर ले गयाहै;परन्तु धीरे २
उनका जीवन, जो क्षीण होता जाताहै; बस दुःख एक इसी कारणसे है ॥ ५ ॥ हे पवन! हे समीर! जहांपर जानकीजी हैं तुमभी वहीं पर
जाओ, वरन उनका शरीर स्पर्श करके फिर आनकर तुम हमारा अंग छूना। जो तुम ऐसा करो तौ जिस प्रकार गरमीके तापसे नेत्रोंकी ज्योति
मैंदश्चद्विविदश्चोभौतत्रवानरपुंगवौ॥ विचेरतुश्चतांसेनांरक्षार्थंसर्वतोदिशम्॥२॥निविष्टायांतुसेनायांतीरेनदनदीपते॥
पार्श्वस्थंलक्ष्मणंदृष्ट्वारामोवचनमब्रवीत् ॥ ३ ॥ शोकश्चकिलकालेनगच्छताह्यपगच्छति ॥ ममचापश्यतःकांतामह
न्यहनिवर्धते ॥ ४ ॥ नमेदुःखंप्रियादूरेनमेदुःखंहृतेतिच ॥ एतदेवानुशोचामिवयोस्याह्यतिवर्तते ॥ ५ ॥ वाहिवात
यतःकांतांतांस्पृष्ट्वामामपिस्पृश ॥ त्वयिमेगात्रसंस्पर्शश्चंद्रेदृष्टिसमागमः ॥ ६ ॥ तन्मेदहतिगात्राणिविषंपीतमिवा
शये ॥ हानाथेतिप्रियासामांह्रियमाणायदब्रवीत् ॥ ७ ॥ तद्वियोगेंधनवताताच्चिंताविमलार्चिषा ॥ रात्रिंदिवंशरीरंमे
दह्यतेमदनाग्निना ॥ ८ ॥ अवगाह्यार्णवंस्वप्स्येसौमित्रेभवताविना ॥ एवंचप्रज्वलन्कामोनमांसुप्तंजलेदहेत् ॥ ९ ॥
खोये हुए मनुष्यको चंद्रमाके देखनेंसे फिर दृष्टि मिल जातीहै, प्यारीको स्पर्श करके जो तुम हमको स्पर्श करोगे, तौ सीताजीके शोकसे संता
पित हुआ जो हमारा शरीरहै वह शीतल हो जायगा ॥ ६ ॥ जिस समय कि उनको रावणनें हरण कियाथा, उस समय जो उन्होंनें 'हानाथ!' यह
कहकर जो हमको पुकाराथा; सो वही शब्द हमारे मनमें इस समय विषवत् टिका हुआ हमारे शरीरको दग्ध कर रहाहै ॥ ७ ॥ हे लक्ष्मण
हमारा शरीर दिन रात कामानलमें भस्म होरहाहै; प्यारीका जो विरहहै; वही तौ उस अग्निमें मानों काठ पड रहाहै और उनके विरहकी जो
चिन्ताहै वही मानों इस अग्निकी निर्मल शिखाहै ॥ ८ ॥ हे लक्ष्मण! तुम यहींपर रहो; हम इकलेही समुद्रमें प्रवेश करके सोये रहतेहैं, कारणकि

पर जाना उचितहै ॥ १३ ॥ शत सहस्र महाबलवान वानर सिंह इस महासागरकी समान वानर सैनाको लेकर चलें ॥ १४ ॥ पर्वताकार गज महाबलवान गवय और गवाक्ष मदगर्वित गो वृषभकी समान सैनाके आगे २ चलें ॥ १५ ॥ कूदनेवालोंमें अग्रगण्य वानरश्रेष्ठ ऋषभ दक्षिण दिशाकी रक्षा करते हुए वानर सैनाके साथ चलें ॥ १६ ॥ मतवाले हाथीकी समान दुर्जेय वेगवान गन्धमादन नाम वानर सैनाके सहित बांईओरकी रक्षा करताहुआ गमन करै ॥ १७ ॥ जिस प्रकार देवराज इन्द्रजी ऐरावत हाथीपर सवार होकर चलतेहैं वैसेही हम हनुमानजीके कंधेपर चढ़कर समस्त सैनाको हर्ष उत्पन्न कराते सैनाके बीचमें चलेंगे ॥ १८ ॥ और सार्वभौम नामक हाथीपर चढ धनाधिपति यक्ष

सागरौघनिभंभीममग्रानीकंमहाबलाः ॥ कपिसिंहाःप्रकर्षंतुशतशोथसहस्रशः ॥ १४ ॥ गजश्चगिरिसंकाशोगवयश्चमहाबलः ॥ गवाक्षश्चाग्रतोयातुगवांदृप्तइवर्षभः ॥ १५ ॥ यातुवानरवाहिन्यावानरःप्लवतांपतिः ॥ पालयन्दक्षिणंपार्श्वमृषभोवानरर्षभः ॥ १६ ॥ गंधहस्तीवदुर्धर्षस्तरस्वीगंधमादनः ॥ यातुवानरवाहिन्याःसव्यंपार्श्वमधिष्ठितः ॥ १७ ॥ यास्यामिबलमध्येहंबलौघमभिहर्षयन् ॥ अधिरुह्यहनूमंतमैरावतमिवेश्वरः ॥ १८ ॥ अंगदेनैषसंयातुलक्ष्मणश्चांतकोपमः ॥ सार्वभौमेनभूतेशोद्रविणाधिपतिर्यथा ॥ १९ ॥ जांबवांश्चसुषेणश्चवेगदर्शीचवानरः ॥ ऋक्षराजोमहाबाहुःकुक्षिंरक्षंतुतेत्रयः ॥ २० ॥ राघवस्यवचःश्रुत्वासुग्रीवोवाहिनीपतिः ॥ व्यादिदेशमहावीर्योवानरान्वानरर्षभः ॥ २१ ॥ तेवानरगणाःसर्वेसमुत्पत्यमहौजसः ॥ गुहाभ्यःशिखरेभ्यश्चआशुपुप्लुविरेतदा ॥ २२ ॥

राज कुबेरजीकी समान यमराजकी समान कोप किये अंगदजीकी पीठपर चढकर लक्ष्मणजी हमारे साथ २ चलें ॥ १९ ॥ ऋक्षराज जाम्बवान्, महाबाहु सुषेण और वेगदर्शी यह तीन सैनाके पीठकी रक्षा करते चलें ॥ २० ॥ जिस प्रकार तेजस्वी वरुणजी सब लोकके पश्चार्द्धकी रक्षा करतेहैं, वैसेही कपिराज सुग्रीव सैनाके जघन देशकी रक्षा करें, वानर श्रेष्ठ महाबलवान् सैनापति सुग्रीवजी श्रीरामचंद्रजीके यह वचन सुनकर वानर लोगोंको श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञानुसार कार्य करनेको आज्ञा देतेहुए ॥ २१ ॥ आज्ञा पातेही वह महाबलवान् वानरगण उछल २ कूद २

चन्द्रकला जिस प्रकार शरत्कालमें सुनील मेघ मालाको भेदन करकै उदित होतीहै, वैसेही जानकीजी हमारे भुजबलसे दुर्द्धर्ष राक्षसोंको दलन
करके प्रकाशित होंगी ॥ १७ ॥ हेलक्ष्मणजी! एक तौ प्राणप्यारी जानकीजी स्वभावसेही दुर्बलहैं; तिसके ऊपर देश कालके शोक व उपास
को पाय कर औरभी अधिक दुर्बल होगई होंगी॥१८॥ या कितनें दिनोंमें हम उस दुरात्मा राक्षस रावणके वक्षस्थलमें वाण मारकर जानकीजीको प्राप्त
कर सकेंगे और अपना शोक दूर करैंगे ॥ १९ ॥ सुरसुन्दरी समान पतिव्रता जानकीजी कब उत्कंठित हो हमारे गलेसे लगकर आनंदके आंसू
वहामेंगी? ॥ २० ॥ नहीं जानते कि सीताजीके वियोगसे उत्पन्न हुआ यह घोर शोक मलीन वस्त्रकी नांई कब हम छोड़ेंगे? ॥२१॥ बुद्धिमान् रामचं
अविक्षोभ्याणिरक्षांसिसाविधूयोत्पतिष्यति ॥ विधूयजलदान्नीलान्शशिलेखाशरत्स्विव ॥ १७ ॥ स्वभावतनुकान्
नंशोकेनानशनेनच ॥ भूयस्तनुतरासीतादेशकालविपर्ययात् ॥ १८ ॥ कदानुराक्षसेंद्रस्यनिधायोरसिसायकान्॥
शोकंप्रत्याहरिष्यामिशोकमुत्सृज्यमानसम् ॥ १९ ॥ कदानुखलुमेसाध्वीसीताऽमरसुतोपमा ॥ सोत्कंठाकंठमा
लंब्यमोक्ष्यत्यानंदजंजलम् ॥ २० ॥ कदाशोकमिमंघोरंमैथिलीविप्रयोगजम् ॥ सहसाविप्रमोक्ष्यामिवासःशुक्लेतरं
यथा ॥ २१ ॥ एवंविलपतस्तस्यतत्ररामस्यधीमतः ॥ दिनक्षयान्मंदवपुर्भास्करोस्तमुपागतः ॥ २२ ॥ आश्वासि
तोलक्ष्मणेनरामःसंध्यामुपासत ॥ स्मरन्कमलपत्राक्षींसीतांशोकाकुलीकृतः ॥२३॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०युद्धकांडे
पंचमःसर्गः ॥ ५ ॥ ॥ लंकायांतुकृतंकर्मघोरंदृष्ट्वाभयावहम् ॥ राक्षसेंद्रोहनुमताशक्रेणेवमहात्मना ॥ अब्रवीद्राक्षसा
न्सर्वान्ह्रियाकिंचिदवाङ्मुखः ॥१॥ धर्षिताचप्रविष्टाचलंकादुष्प्रसहापुरी ॥ तेनवानरमात्रेणदृष्टासीताचजानकी॥२॥
द्रजी सीताजीके शोकमें अधीर होकर इस प्रकारसे विलाप करनें लगे। इस ओर दिनका अंत जान भगवान भास्कर हीनकांतिहो अस्ताचलको गमन
करते हुए ॥२२॥ यद्यपि रामचंद्रजी सीताजीके शोकसे अति संतापित होरहेथे, परन्तु लक्ष्मणजीके समझानें बुझानेंसे सावधानहो सन्ध्या वन्दनादिमें
अपना मन लगाते हुए ॥ २३ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०यु०पंचमः सर्गः॥५॥इस ओर राक्षसोंका स्वामी रावण लंकाके मध्यमें महाबलवान इन्द्रजीकी
समान हनुमानजीका किया वह घोर भयानक कार्य देख लाजके मारे कुछेक शिर झुकाकर राक्षसोंसे कहनें लगा ॥१॥ कि देखो केवल एकही वानरनें

और वानरराज सुग्रीवजी बलशाली और भयंकरमूर्त्ति वानर गणोंके साथ उनके मध्य भागमें गमन करनें लगे ॥ ३१ ॥ महावलवान् शतवलि दशकिरोड वानरसैनाको संगलिये अकेलाही उस समस्त वानर सैनाकी रक्षा करनें लगा ॥ ३२ ॥ एक अरव वानरोंकी सैना संगलिये महावल वान् केशरी, पनस, गज, और अर्क उस सैनाके एक पार्श्वकी रक्षा करते हुए चले ॥ ३३ ॥ सुषेण और जाम्ववान्, असंख्यरीछोंकी सैनाको संग लिये सैनाके मध्यमें टिके सुग्रीवजीको आगे करके सैनाके पश्चात् भागकी रक्षा करते जातेथे ॥ ३४ ॥ पीछे वानरकी सैना चलते २ चारों ओरके नगरोंमें पीडा करके वहां उपद्रव न मचावै,इसकारण कूदनें फांदनेंवालोंमें श्रेष्ठ वानर पुङ्गव महावल सैनापति नील सर्व प्रकारसे उनको रोकता

हरिःशतबलिर्वीरःकोटिभिर्दशभिर्वृतः ॥ सर्वामेकोह्यवष्टभ्यररक्षहरिवाहिनीम् ॥ ३२ ॥ कोटीशतपरीवारःकेसरीपन
सोगजः ॥ अर्कश्चबहुभिःपार्श्वमेकंतस्याभिरक्षति ॥ ३३ ॥ सुषेणोजांबवांश्चैवऋक्षैर्बहुभिरावृतौ ॥ सुग्रीवंपुरतःकृत्वा
जघनंसंररक्षतुः ॥ ३४ ॥ तेषांसेनापतिर्वीरोनीलोवानरपुंगवः ॥ संयतश्चरतांश्रेष्ठस्तद्बलंपर्यवारयत् ॥ ३५ ॥बलीमुखः
प्रजंघश्चजंभोथरभसःकपिः ॥ सर्वतश्चययुर्वीरास्त्वरयंतःप्लवंगमान् ॥ ३६ ॥ एवंतेहरिशार्दूलागच्छंतिबलदर्पिताः ॥
अपश्यंतगिरिश्रेष्ठंसह्यंगिरिशतायुतम् ॥ ३७ ॥ सरांसिचसुफुल्लानितटाकानिवराणिच ॥ रामस्यशासनंज्ञात्वाभी
मकोपस्यभीतवत् ॥ ३८ ॥ वर्जयन्नगराभ्याशांस्तथाजनपदानपि ॥ सागरौघनिभंभीमंतद्वानरबलंमहत् ॥ ३९ ॥

हुआ चला ॥ ३५ ॥ बलीमुख*प्रजङ्घ, जम्भ रभस+ यह शीघ्रतासे चलनेके लिये सब सैनाको उत्साहित करनें लगे ॥ ३६ ॥ इस प्रकारसे वीर्यवान वानरोंकी सैनाने जाते २ अनेक प्रकारके वृक्षोंसे शोभित पर्वतश्रेष्ठ सह्य पर्वत देखा (यहां प्रथम विश्राम) और खिले हुए कमल फूलोंसे शोभायमान सरोवर और श्रेष्ठ तडागभी इस सैनाने देखे परन्तु भयंकर कोप करनेंवाले श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञा जान डरकेमारे ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ वानर लोग नगर और जनपदके निकटभी न जाते । महा सागरकी समान भयानक वह वानरोंकी बड़ी भारी सेना ॥ ३९ ॥

* किसी २ मूल ग्रन्थमें "बलीमुख" के बदले "दरीमुख" यह पाठ दृष्टि आताहै ॥+दो एक मूल ग्रंथोमें "रभस"के बदले " सरभ" यह नामान्तर देखा जाताहै ॥

रताहै उसकोही मध्यम पुरुष कहतेहैं॥९॥ गुण दोषका विचार या देवताकाआश्रय ग्रहण न करके 'मैं अकेलाही इस कार्यको कर लूंगा यह निश्चय करता हुआ कार्य करनें लगताहै वह अधम पुरुष कहा जाताहै ॥१०॥जिस प्रकार पुरुषोंके मध्यमें उत्तम मध्यम और अधम यह तीन विभागहैं मंत्री लोगोंके मंत्र निर्णय करनेंके विषयमेंभी वैसेही, उत्तम, मध्यम, और अधम यह तीन विभागहैं ॥ ११ ॥ जिस सलाहमें सब एकमत होकर नीति शास्त्रके अनुसार सब सम्मति किया करते हैं; उसे उत्तम मंत्र कहतेहैं ॥ १२ ॥ जहां पर प्रथम मंत्रियोंकी अलग २ माति होकर विचार किया जाताहै और फिर पीछेसे कार्यके समय फिर सबकी सम्मति एक होजातीहै वही मध्यम मंत्र कहलाताहै ॥ १३ ॥ और जिसमंत्रणामें सबका

गुणदोषौननिश्चित्यत्यक्त्वादेवव्यपाश्रयम् ॥ करिष्यामीतियःकार्यमुपेक्षेत्सनराधमः ॥ १० ॥ यथेमेपुरुषानि
त्यमुत्तमाधममध्यमाः ॥ एवंमंत्रोपिविज्ञेयउत्तमाधममध्यमाः॥ ॥ ११ ॥ ऐकमत्यमुपागम्यशास्त्रदृष्टेनचक्षुषा॥
मंत्रिणोयत्रनिरतास्तमाहुर्मंत्रमुत्तमम् ॥ १२ ॥ बह्वीरपिमतीर्गत्वामंत्रिणामर्थनिर्णयः ॥ पुनर्यत्रैकतांप्राप्तःसमंत्रो
मध्यमःस्मृतः॥ १३ ॥ अन्योन्यमतिमास्थाययत्रसंप्रतिभाष्यते॥ नचैकमत्येश्रेयोस्तिमंत्रःसोऽधमउच्यते॥ १४ ॥
तस्मात्सुमंत्रितंसाधुभवंतोमतिसत्तमाः ॥ कार्यंसंप्रतिपद्यंतामेतत्कृत्यंमतंमम॥ १५ ॥ वानराणांहिधीराणांसहस्रैः
परिवारितः ॥ रामोऽभ्येतिपुरींलंकामस्माकमुपरोधकः ॥ १६ ॥ तरिष्यतिचसुव्यक्तंराघवःसागरंसुखम् ॥
तरसायुक्तरूपेणसानुजःसबलानुजः ॥ १७ ॥

अलग २ मत होनेंसे मंत्रिगण विरुद्धभाषीहो, और कभी एकमतिहोजाँय, तोभी उसका परिणाम मंगलदाई नहीं होता, ऐसी परामर्श अधम मंत्र कहलातीहै ॥ १४ ॥ हे मंत्रिगण! तुम सब मंत्रणा कार्यमें पंडितहो; जो कर्तव्य और श्रेष्ठहो उसको एक मतावलम्बी होकर स्थिर करो; बस वही हमारा कर्तव्य होगा ॥ १५ ॥ विचार करके देखो, कि रामचंद्र असंख्य वानरोंकी सेना साथ लेकर लंकाके ऊपर चढ़ाई करनें आयरहे हैं ॥ १६ ॥ वह रघुनंदन रामचंद्र सगरके वंशमें उत्पन्न हुएहैं इस्से निश्चयही जान पड़ताहै कि वह तपोबल अथवा दिव्य अस्त्र

नतासे रहित होकर विमल होगयाहै,इस कारण ब्रह्मर्षि और परमर्षि गण ध्रुवकी प्रदक्षिणा करतें विमल किरणोंका प्रकाश प्रगटाते उदय हुएहैं॥४८॥ महात्मा इक्ष्वाकु गणोंके पितामह राजर्षि त्रिशंकुजी, विश्वामित्रजीके बनाये सप्तर्षि मंडलके बीचमें पुरोहित वशिष्ठजीके साथ विमल दीप्ति प्रकाशित कर रहेहैं ॥ ४९ ॥ और इक्ष्वाकुलोगोंका परमहितकारी विमल व उपद्रव रहित विशाखा नक्षत्रभी वैसेही प्रकाशित होरहा है ॥ ५० ॥ यह देखिये राक्षस लोगोंके हितका करनेंवाला निर्ऋतिदैवत मूलनक्षत्रभी झुके हुए दंडाकार उदय हुए धूमकेतु ग्रहसे स्पर्शित हो पीड़ा और संताप पाय रहाहै ॥ ५१ ॥ महाराज! इन सब बातोंको देख भालकर जान पड़ताहै कि राक्षसोंको विनाश करनेहींके लिये यह सब निमि

त्रिशंकुर्विमलोभातिराजर्षिःसपुरोहितः ॥ पितामहःपुरोस्माकमिक्ष्वाकूणांमहात्मनाम् ॥ ४९ ॥ विमलेचप्रकाशेतेविशाखेनिरुपद्रवे ॥ नक्षत्रंपरमस्माकमिक्ष्वाकूणांमहात्मनाम् ॥ ५० ॥ नैर्ऋतंनैर्ऋतानांचनक्षत्रमतिपीड्यते ॥ मूलोमूलवतास्पृष्टोधूप्यतेधूमकेतुना ॥ ५१ ॥ सर्वंचैतद्विनाशायराक्षसानामुपस्थितम् ॥ कालेकालगृहीतानांनक्षत्रंग्रहपीडितम् ॥ ५२ ॥ प्रसन्नाःसुरसाश्चापोवनानिफलवंतिच ॥ प्रवांतिनाधिकागंधायथर्तुकुसुमाद्रुमाः ॥ ५३ ॥ व्यूढानिकपिसैन्यानिप्रकाशंतेधिकंप्रभो ॥ देवानामिवसैन्यानिसंग्रामेतारकामये ॥ एवमार्यसमीक्ष्यैतत्प्रीतोभवितुमर्हसि ॥ ५४ ॥ इतिभ्रातरमाश्वास्यहृष्टःसौमित्रिरब्रवीत् ॥ अथावृत्यमहींकृत्स्नांजगामहरिवाहिनी ॥ ५५ ॥ ऋक्षवानरशार्दूलैर्नखदंष्ट्रायुधैरपि ॥ कराग्रैश्चरणाग्रैश्चवानरैरुद्धतंरजः ॥ ५६ ॥

त्त उदय हुएहैं; कारण कि जिसकी मृत्यु निकट आजातीहै, उसकोही नक्षत्र और गृहोंकी पीड़ा होती है॥ ५२ ॥ सरोवरोंका जल मधुर और विमलहै, समस्त वृक्ष अकालमें फल उठेहैं; समस्त वृक्षोंके अकालमें फूलनेंसे उनकी सुगन्धि उनकी ऋतुसेभी अधिक हुईहै ॥ ५३ ॥ हे प्रभो! इस व्यूहाकारसे सजी हुई वानरोंकी सैनानें तारकासुरसे संग्राम करनेंमें रत देवसैनाके समान अधिक शोभा धारणकीहै। हे आर्य! आप यह समस्त शुभ निमित्त देखकर प्रसन्नताको प्राप्त होवें ॥५४॥ सुमित्रानंदन लक्ष्मणजीनें इस प्रकारसे कहकर श्रीरामचंद्रजीको समझाया तिसके पीछे वह वानरोंकी सेना, पृथ्वीके बड़ेभारी भागको ढककर गमन करनेंलगी ॥ ५५ ॥ उस कालमें नख दाँतोंको आयुध बनाये उन

दरी आपको स्त्री बनानेंके लियेदी ॥ ७ ॥ कुम्भीनसीके प्यारे स्वामी वीर्यवान अजीत दानवोंके स्वामी मधुके सहित युद्ध करके आपनें उसको अपनें वशमें किया ॥ ८ ॥ हे महाबाहो! आपनें पातालमें गमन करके नागोंको जीत लियाहै। और वासुकि, तक्षक, शंख और जटी इत्यादि सब नाग गण आपके वशमें आय गयेहैं ॥ ९ ॥ फिर अक्षय बलवान शूर और वरदान पाये कालकेय दानवोंसे आपने वर्ष भरतक युद्धकर उनको परास्त कियाहै ॥ १० ॥ हेशत्रुदमनकारी! हेराक्षसनाथ! फिर आपनें उनको अपने वशमें करके उनके निकटसे अनेक मायाकी विद्या ग्रहणकी ॥ ११ ॥ हेमहाभाग! आपनें रणभूमिमें चतुरंगिणी सेनाके सहित शूर और महाबलवान् जलनाथ वरुणके पुत्रोंको

दानवेंद्रोमहाबाहोवीर्योत्सिक्तोदुरासदः ॥ विगृह्यवशमानीतःकुंभीनस्याःसुखावहः ॥ ८ ॥ निर्जितास्तेमहाबाहोना
गागत्वारसातलम् ॥ वासुकिस्तक्षकःशंखोजटीचवशमाहृताः ॥ ९ ॥ अक्षयाबलवंतश्चशूरालब्धवराःपुनः ॥ त्वयासं
वत्सरंयुद्ध्वासमरेदानवाविभो ॥ १० ॥ स्वबलंसमुपाश्रित्यनीतावशमरिंदम ॥ मायाश्चाधिगतास्तत्रबह्व्योवैराक्षसा
धिप ॥ ११ ॥ शूराश्चबलवंतश्चवरुणस्यसुतारणे ॥ निर्जितास्तेमहाभागचतुर्विधबलानुगाः ॥ १२ ॥ मृत्युदंडमहा
ग्राहंशाल्मलीद्रुममंडितम् ॥ कालपाशमहावीचिंयमकिंकरपन्नगम् ॥ १३ ॥ महाज्वरेणदुर्धर्षंयमलोकमहार्णवम् ॥
अवगाह्यत्वयाराजन्यमस्यबलसागरम् ॥ १४ ॥ जयश्चविपुलःप्राप्तोमृत्युश्चप्रतिषेधितः ॥ सुयुद्धेनचतेसर्वेलो
कास्तत्रसुतोषिताः ॥ १५ ॥ क्षत्रियैर्बहुभिर्वीरैःशक्रतुल्यपराक्रमैः ॥ आसीद्वसुमतीपूर्णामहद्भिरिवपादपैः ॥ १६ ॥

पराजित कियाहै ॥ १२ ॥ हेराजन्! आपने मृत्यु दंड रूप महानाकोंसे युक्त. यातना रूप शाल्मली द्रुम मंडित काल पाश रूप महातरंगसे पूर्ण यम किंकर रूप पन्नग परिपूर्ण ॥ १३ ॥ महाज्वरके होनेंसे किसीके न सहनें योग्य यम बलके सागर यमलोक रूप महा सागरमें स्नान करके ॥ १४ ॥ विपुल जयको प्राप्त हुएहैं, और आपनें मृत्युकोभी रोकदिया; हेमहाराज! वहांपर आपका उत्तम युद्ध देखकर समस्त लोक सन्तुष्ट हुएथे ॥ १५ ॥ जिस प्रकार वृक्षोंकी राशिसे पृथ्वी परिपूर्ण होजातीहै, वैसेही पूर्व समयमें देवेन्द्रकी समान पराक्रमवाले बहुत सारे

किला शब्द करते, कोई २ पूंछ फटकारनें लगे, कोई २ पृथ्वीपर चरण मारनें लगे ॥ ६४ ॥ और कोई २ बाहें फैलायकर वृक्ष और पर्वतोंको उखाड़नें व तोडनें लगे, पर्वताकार कुछेक वानरगण पर्वतोंके शृङ्गोंपर चढकर ॥ ६५ ॥ महानाद करके हँसते क्रीड़ा करनें लगे, कोई २ हँसते हुए विक्रम प्रकाश करके प्रबल वेगसे बहुत सारी कोमल वेलोंको तोड़ पृथ्वीपर गिराते ॥ ६६ ॥ जँभाई लेते विक्रमसे वृक्षादिकोंको उखाड़ २ फेंक २ उनसे क्रीड़ा करनेंलगे । उन अनेक स्थानसे आये हुए, सहस्रों, लक्षों, करोड़ों, अर्बों, खर्बों ॥ ६७ ॥ घोररूपी वानरोंसे पृथ्वी पूर्णहोगई । वह वानरोंकी बडी भारी सैना दिन रात चली जातीथी * ॥ ६८ ॥ हर्ष प्रमुदित. युद्धाभिलाषी और सुग्रीवजीसे पालित सर्व वानरगण

भुजान्विक्षिप्यशैलांश्चद्रुमानन्येबभंजिरे ॥ आरोहंतश्चशृंगाणिगिरीणांगिरिगोचराः ॥ ६५ ॥ महानादान्प्रमुंचंतिक्ष्वे डामन्येप्रचक्रिरे ॥ ऊरुवेगैश्चममृदुर्लताजालान्यनेकशः ॥ ६६ ॥ जृंभमाणाश्चविक्रांताविचिक्रीडुःशिलाद्रुमैः ॥ ततः शतसहस्रैश्चकोटिभिश्चसहस्रशः ॥ ६७ ॥ वानराणांसुघोराणांश्रीमत्परिवृतामही ॥ सास्मयातिदिवारात्रंमहती हरिवाहिनी ॥ ६८ ॥ प्रहृष्टमुदिताःसर्वेसुग्रीवेणाभिपालिताः ॥ वानरास्त्वरितायांतिसर्वेयुद्धाभिनंदिनः ॥ प्रमो क्षयिषवःसीतांमुहूर्तंकापिनावसन् ॥ ६९ ॥ ततःपादपसंबाधंनानावनसमायुतम् ॥ सह्यपर्वतमासाद्यवानरास्तेस मारुहन् ॥ ७० ॥ काननानिविचित्राणिनदीप्रस्रवणानिच ॥ पश्यन्नपिययौरामःसह्यस्यमलयस्यच ॥ ७१ ॥ चंपकां स्तिलकांश्चूतान्प्रसेकान्सिद्धुवारकान् ॥ तिनिशान्करवीरांश्चभंजंतिस्मप्लवंगमाः ॥ ७२ ॥

शीघ्रतासे चले जातेथे । सीताजीके छुड़ानेंकी उनको इतनी शीघ्रताथी कि एक मुहूर्त्तभी इन लोगोंनें कहीं विश्राम न लिया ॥ ६९ ॥ अनन्तर उन वानर लोगोंनें सन्मुखही विविधवन शोभित अनेक प्रकारके वृक्षोंसे युक्त सह्यपर्वत देखा और उस पर चढगये ॥ ७० ॥ और श्रीरामचंद्रजी भी विचित्रकानन युक्त सह्य व मलय दोनों पर्वतोंकी नदियां व झरनें देखते भालते चले जातेथे ॥ ७१ ॥ उन पर्वतोंपर लगेहुए चम्पक,

* यह दूसरा निवास हुआ ॥ दिन रातमें एक पहर विश्राम यह तीसरा निवास हुआ ॥

हेमहाराज! आप नर वानर रूप साधारण जनसे जो विपदकी शंका करतेहैं यह नितान्त अनुचित बातहै क्योंकि आप निश्चयही रामका
संहार कर डालेंगे ॥ २९ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० सप्तमःसर्गः ॥ ७ ॥ तिसके पीछे नीले मेघकी समान कान्तिवाला वीर सेनापति प्रहस्त
नामक राक्षस हाथ जोड़कर रावणसे बोला ॥ १ ॥ कि महाराज! दो मनुष्य और वानरोंकी तौ बातही क्याहै हम तौ रण भूमिमें देवता, दानव,
गन्धर्व, पिशाच, और सर्प गणोंकोभी पराजित कर सकते हैं ॥ २ ॥ हम लोग भोगके वश होकर जिस समय मतवाले होरहेथे; और विप
दके आजानेंकीभी उस समय कोई शंका नहींथी; इस कारणसेही हनुमान हम लोगोंको धोखा देगया; जो ऐसा नहोता; तौ हम लोगोंके जीवित
रहते वह वनचारी वानर किसी प्रकारसे जीता हुआ यहांसे नहीं जायसकता ॥ ३ ॥ जो हो आप आज्ञा कीजिये हम अभी आपकी आज्ञासे, शैल

राजन्नापद्युक्तेयमागताप्राकृताज्जनात् ॥ हृदिनैवत्वयाकार्यात्वंवधिष्यसिराघवम् ॥ २९ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०
आ०युद्धकांडेसप्तमःसर्गः ॥ ७ ॥ ॥ ७॥ ॥ ततोनीलांबुदप्रख्यःप्रहस्तोनामराक्षसः ॥ अब्रवीत्प्रांजलिर्वाक्यं
शूरःसेनापतिस्तदा ॥ १ ॥ देवदानवगंधर्वाःपिशाचपतगोरगाः ॥ सर्वेधर्षयितुंशक्याःकिंपुनर्मानवौरणे ॥ २ ॥
सर्वेप्रमत्ताविश्वस्तावंचितास्महनूमता ॥ नहिमेजीवतोगच्छेज्जीवन्सवनगोचरः ॥ ३ ॥ सर्वांसागरपर्यंतांसशैलव
नकाननाम् ॥ करोम्यवानरांभूमिमाज्ञापयतुमांभवान् ॥ ४ ॥ रक्षांचैवविधास्यामिवानराद्रजनीचर ॥ नागमि
ष्यतितेदुःखंकिंचिदात्मापराधजम् ॥ ५ ॥ अब्रवीत्तमसंक्रुद्धोदुर्मुखोनामराक्षसः ॥ इदंनक्षमणीयंहिसर्वेषांनःप्रधर्ष
णम् ॥ ६ ॥ अयंपरिभवोभूयःपुरस्यांतःपुरस्यच ॥ श्रीमतोराक्षसेंद्रस्यवानरेंद्रप्रधर्षणम् ॥ ७ ॥

कानन युक्त इस पृथ्वीको वानर रहित कर देंगे ॥ ४॥ हमही सब राक्षसोंकी रक्षा वानरोंके भयसे करेंगे आप निश्चिन्त रहैं; सीताजीका हरण करनेसें
आपके ऊपर कोई विपद न पड़ैगी ॥ ५ ॥ तिसके पीछे दुर्मुख नामक राक्षस बड़ा क्रोधकरके रावणसे बोला, हेमहाराज! केवल एकही वानर
आकर हमारा सबका अपमान कर गयाहै; सो इसको हम किसी प्रकारसे नहीं सह सकते ॥ ६ ॥ हम लोग अपना अपमान होना किसी प्रकारसे
सहनकरभी लेते, परन्तु नगरी और अंतःपुरका दाहन करकै उस वानरनें राक्षसराजाका जो अपमान कियाहै, वह नितान्तही असह्यहै उसको

कर डाला उस रमणीक पर्वतपर रमणीक सरोवर और छोटी २ तलैयां ॥ ८२ ॥ चक्रवाकोंसे युक्त कारण्डवनिषेवित प्लव अर्थात् जल मुरगावी, व क्रौञ्चयुक्त वराह मृगोंसे सेवित ॥ ८३ ॥ स्थान २ में भयानक व्याघ्र, रीछ, और सिंह क्रीडा कर रहेहैं और भयंकराकार बहुत सारे सर्पोंसे युक्त वहांकी वापियें थीं ॥ ८४ ॥ वहाँके समस्त सरोवर सुगन्धि पूर्ण, फूले कमल, कुमुद, व और दूसरे जलवाले फूलोंसे शोभित थे ॥ ८५ ॥ पर्वतोंके शिखरपर अनेक प्रकारके पक्षी बैठेहुए बराबर मधुर स्वरसे गान कर रहेथे, वानरगण इन समस्त सरोवरोंमें नहाय और जल पीकर फिर खेल करनेंलगे ॥ ८६ ॥ समस्त वानर पर्वतोंके शिखर एक दूसरेको ढकेलनें और वृक्षोंके अमृत समान मीठे फल व सुगन्धित

चक्रवाकानुचरिताःकारंडवनिषेविताः ॥ प्लवैःक्रौंचैश्चसंकीर्णावराहमृगसेविताः ॥ ८३ ॥ ऋक्षैस्तरक्षुभिःसिंहैःशार्दूलैश्चभयावहैः ॥ व्यालैश्चबहुभिर्भीमैःसेव्यमानाःसमंततः ॥ ८४ ॥ पद्मैःसौगंधिकैःफुल्लैःकुमुदैश्चोत्पलैस्तथा ॥ वारिजैर्विविधैःपुष्पैरम्यास्तत्रजलाशयाः ॥ ८५ ॥ तस्यसानुषुकूजंतिनानाद्विजगणास्तथा ॥ स्नात्वापीत्वोदकान्यत्रजलेक्रीडंतिवानराः ॥ ८६ ॥ अन्योन्यंप्लावयंतिस्मशैलमारुह्यवानराः ॥ फलान्यमृतगंधीनिमूलानिकुसुमानिच ॥ ८७ ॥ बभंजुर्वानरास्तत्रपादपानांमदोत्कटाः ॥ द्रोणमात्रप्रमाणानिलंबमानानिवानराः ॥ ८८ ॥ ययुःपिबंतःस्वस्थास्तेमधूनिमधुपिंगलाः ॥ पादपानवभंजंतोविकर्षतस्तथालताः ॥ ८९ ॥ विधमंतोगिरिवरान्प्रययुःप्लवगर्षभाः ॥ वृक्षेभ्योन्येतुकपयोनंदंतोमधुदर्पिताः ॥ ९० ॥ अन्येवृक्षान्प्रपद्यंतेप्रपिबंत्यपिचापरे ॥ बभूववसुधातैस्तुसंपूर्णाहरिपुंगवैः ॥ यथाकलमकेदारैःपक्वैरिववसुंधरा ॥ ९१ ॥

पुष्प तोड़कर खाय २ फेंकनें लगे ❋ ॥ ८७ ॥ वानर लोग मदोन्मत्त होकर अनेक प्रकारके वृक्षोंको तोड़नें लगे, और बहुत सारे द्रोण, प्रमाण लटकते हुए मधुफल खानें लगे ॥ ८८ ॥ मधुकी समान पिङ्गल वह वानरश्रेष्ठगण मधुपान करतेहुए वृक्षोंको तोड़ते; लताओंको घसीटनें लगे ॥ ८९ ॥ और पर्वतके सम्पूर्ण शिखरोंको कम्पायमान करते हुए वह वानरश्रेष्ठ गमन करनें लगे। कोई २ वानर मधुपान करनेंसे तृप्त होकर वृक्षोंपर चढ २ गर्जने लगे ॥ ९० ॥ उनमें कोई २ वानरगण वृक्षोंपरसे उतर रहेथे और कोई वृक्षोंपर चढ़ रहेथे उस कालमें वह देश

❋यह चौथा विश्रामहुआ ॥

दा, धनु, बाण और खड्ग इत्यादि अस्त्र शस्त्र ले सज सजायकर उनके निकट जांयगे ॥ १६ ॥ और अलग २ दल बांध आकाशमें टिककर शिला शस्त्रादि वर्षांय २ उस वानर सैनाको घायलकर मृत्युके वशमें कर देंगे ॥ १७ ॥ हेमहाराज! इस प्रकारका कार्य करनेंसे राम लक्ष्मण अवश्यही हमारी इस अनीतिके चक्करमें पड़ जांयगे; तिसके पीछे जब वानर सैनाका नाश होजायगा,तब यह दोनोंजन अपने आपही मरजांयगे ॥१८॥ जब इस राक्षसने ऐसा कहा तो प्रतापशाली वीर्यवान कुम्भकर्णका बेटा निकुम्भ क्रोधित हो सब लोकोंके रुवानेंवाले रावणसे बोला ॥ १९ ॥ कि आप सब जन यहीं पर महाराज रावणके साथ निश्चिन्त मनसे रहैं हम अकेलेही जाकर रामचंद्रके सहित लक्ष्मणको मारडालेंगे ॥ २० ॥

आकाशेगणशःस्थित्वाहत्वातांहरिवाहिनीम् ॥ अश्मशस्त्रमहावृष्ट्याप्रापयामयमक्षयम् ॥ १७ ॥ एवंचेदुपसर्पेतामनयंरामलक्ष्मणौ ॥ अवश्यमपनीतेनजहतामेवजीवितम् ॥ १८ ॥ कौंभकर्णिस्ततोवीरोनिकुंभोनामवीर्यवान् ॥ अब्रवीत्परमक्रुद्धोरावणंलोकरावणम् ॥ १९ ॥ सर्वेभवंतस्तिष्ठंतुमहाराजेनसंगताः ॥ अहमेकोहनिष्यामिराघवंसहलक्ष्मणम् ॥ २० ॥ सुग्रीवंसहनूमंतंसर्वांश्चैवात्रवानरान् ॥ ततोवज्रहनुर्नामराक्षसःपर्वतोपमः ॥ २१ ॥ क्रुद्धः परिलिहन्सृक्कांजिह्वयावाक्यमब्रवीत् ॥ स्वैरंकुर्वंतुकार्याणिभवंतोविगतज्वराः ॥ २२ ॥ एकोहंभक्षयिष्यामितांसर्वांहरिवाहिनीम् ॥ स्वस्थाःक्रीडंतुनिश्चिंताःपिबंतुमधुवारुणम् ॥ २३ ॥ अहमेकोवधिष्यामिसुग्रीवंसहलक्ष्मणम् ॥ सांगदंचहनूमंतंसर्वांश्चैवात्रवानरान् ॥ २४ ॥ ॥इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० युद्धकांडेअष्टमःसर्गः॥ ८ ॥ छ॥

और सुग्रीव हनुमानके साथ उस वानरोंकी सैनाका भी संहार कर डालेंगे तिसके पीछे पर्वताकार वज्रहनु नाम राक्षस ॥२१॥ क्रोधके मारे जीभसे अधरोंको चाटता हुआ बोला, कि तुमलोग आलस्य छोड अपना२कार्य सिद्ध करनेंके लिये शीघ्रताकरो॥२२॥और कहीं न जाओ; लो हम अकेलेही उन वानरोंकी सैनाको भक्षण किये आतेहैं । आप सब लोग सावधान और निश्चिन्त होकर वारुणी और मधुपान करकै विहार कीजिये ॥ २३ ॥ हम अकेलेही राम लक्ष्मण और सुग्रीव अंगद हनुमानादि समस्त वानरोंका संहार कर डालेंगे ॥२४॥ इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०यु०अष्टमःसर्गः॥८॥

है, और यह वानरोंकी सैना जिस प्रकारसे समुद्रके पार होजाय, ऐसी मंत्रणा तुमलोग स्थिरकरो ॥ ९९ ॥ सीताजीके हरणसे पीड़ित महाबाहु
सीतापति महासागरके निकट पहुँच कर सुग्रीवको इस प्रकारसे सैनाके टिकनेंकी आज्ञा देतेहुए ॥ १०० ॥ उन्होंनें सुग्रीवसे कहा हेकपि
श्रेष्ठ! इस वेला भूमिमेंही सैनाको टिकादो कारणकि समुद्रके पार होंनेके विषयमें परामर्श करनेंका समय आन पहुँचाहै ॥ १०१ ॥ अपनी सैनाको
छोडकर कहीं कोई नहीं जाय; कारणकि यहांपर राक्षसोंकी नियत कीहुई अनेक गुप्त सेना है, शूर वानर लोग सैनाके निवास स्थानके बाह
र घूमते हुए ऐसे भयसे इस सेनाकी रक्षा करें ॥ २ ॥ सुग्रीवजी श्रीलक्ष्मणजीनें श्रीरामचंद्रजीके यह वचन सुनकर, उस वृक्षपूर्ण समुद्रके किना

इतीवसमहाबाहुःसीताहरणकर्शितः ॥ रामःसागरमासाद्यवासमाज्ञापयत्तदा ॥ १०० ॥ सर्वाःसेनानिवेश्यंतांवेलायां
हरिपुंगव॥संप्राप्तोमंत्रकालोनःसागरस्येहलंघने ॥ १॥ स्वांस्वांसेनांसमुत्सृज्यमाचकश्चित्कुतोव्रजेत्॥गच्छंतुवानराः
शूराज्ञेयंछन्नंभयंचनः ॥ २ ॥ रामस्यवचनंश्रुत्वासुग्रीवःसहलक्ष्मणः ॥ सेनांनिवेशयत्तीरेसागरस्यद्रुमायुते ॥ ३ ॥ वि
रराजसमीपस्थंसागरस्यचतद्बलम् ॥ मधुपांडुजलःश्रीमान्द्वितीयइवसागरः ॥ ४ ॥ वेलावनमुपागम्यततस्तेहरिपुं
गवाः ॥ निविष्टाश्चपरंपारंकांक्षमाणामहोदधेः ॥ ५ ॥ तेषांनिविशमानानांसैन्यसन्नाहनिःस्वनः॥अंतर्धायमहानादमर्ण
वस्यप्रशुश्रुवे ॥ ६ ॥ सावानराणांध्वजिनीसुग्रीवेणाभिपालिता ॥ त्रिधानिविष्टामहतीरामस्यार्थपराऽभवत् ॥ ७ ॥
सामहार्णवमासाद्यहृष्टावानरवाहिनी ॥ वायुवेगसमाधूतंपश्यमानामहार्णवम् ॥ ८ ॥

रे पर समस्त सेनाको टिकाया ॥ ३ ॥ उस समय महासागरके समीप टिकीहुई वह वानरसैना मधु पिङ्गलवर्ण जलसें पूर्ण दूसरे महासागर
की समान शोभायमान होनेंलगी ॥ ४ ॥ तिसके पीछे वह वानरश्रेष्ठ गण वेलावनको प्राप्त हो उसी स्थानमें टिककर समुद्रके दूसरी पार जानें
की अभिलाषा करनेंलगे ॥ ५ ॥ उस समय वानरसैनासमूहकी चिल्लाहटका शब्द समुद्रके महानादके शब्दको लोप करके श्रवणगोच
र होनें लगा ॥ ६ ॥ सुग्रीवजीसे पालित वह वानरवाहिनी ऋक्ष वानर और गोपुच्छ इन तीन भागोंमें बँटकर श्रीरामचंद्रजीका कार्य सिद्ध
करनेको यत्नवतीहुई ॥ ७ ॥ समुद्रके किनारे पर टिकी वह वानर अनी सैना पवनवेगसे चलायमान होनेके कारण अति तरंगे उठते हुए

किस प्रकार जीतनेका साहस करते हों ॥ १० ॥ पहले किसने जान पायाथा कि हनुमान नदनदीपति घोर समुद्रको लांघकर दो मुहूर्त्तके मध्य इस लंकामें चला आवेगा क्या तुम लोगोंमेंसे पहले किसीनें इस बातका अनुभव कियाथा? ॥ ११ ॥ हे निशाचरगण! शत्रुलोगोंकी वीर्यशाली अगणित भयंकर सैनाहै, सो ऐसे शत्रुओंकी सहसा अवज्ञा [वेपरवाही] करना उचित नहींहै ॥ १२ ॥ उन यशस्वी रामचंद्रनेही पहले राक्षस राजका कौन भारी अपकार कियाथा कि जिस्से यह जनस्थानसे उनकी भार्याको हरण करके लेआये! ॥ १३ ॥ यदि कहोकि "रामचंद्रने खरको मारडालाहै" परन्तु खरनें तो प्रथमही श्रीरामचंद्रजीका अपकार किया कि जिस्से वह मारागया; इसी

समुद्रंलंघयित्वातुघोरंनदनदीपतिम् ॥ गतिंहनूमतोलोकेकोविद्यात्तर्कयेतवा ॥११॥ बलान्यपरिमेयानिवीर्याणिचनिशाचराः ॥ परेषांसहसावज्ञानकर्तव्याकथंचन ॥ १२ ॥ किंचराक्षसराज्यस्यरामेणापकृतंपुरा ॥ आजहारजनस्थानाद्यस्यभार्यांयशस्विनः ॥ १३ ॥ खरोयद्यतिवृत्तस्तुसरामेणहतोरणे ॥ अवश्यंप्राणिनांप्राणारक्षितव्यायथाबलम् ॥ १४ ॥ एतन्निमित्तंवैदेहीभयंनःसुमहद्भवेत् ॥ आहृतासापरित्याज्याकलहार्थेकृतेनुकिम् ॥ १५ ॥ नतुक्षमंवीर्यवतातेनधर्मानुवर्तिना ॥ वैरंनिरर्थकंकर्तुंदीयतामस्यमैथिली ॥ १६ ॥ यावन्नसगजांसाश्वांबहुरत्नसमाकुलाम् ॥ पुरींदारयतेबाणैर्दीयतामस्यमैथिली ॥ १७ ॥

कारणसे हम खरके मारनेमें रामचंद्रजीका कोई दोष नहीं देखते कारणकि सामर्थ्यके अनुसार अपनी रक्षा करना सब प्राणियोंका कर्त्तव्यहै ॥१४॥ सो खर दूषणादिके वधका बदला लेनेके लियेही सीताजीका हरण कियागयाहै, परन्तु हम लोगोंपर अब बहुतही शीघ्र सीताके हरणसे उत्पन्न हुई विपद आनकर पड़ेगी, इस कारण इस आनेंवाली विपदका हेतुविना झगड़ेके जानकीको त्यागही देना उचितहै। क्योंकि जिसके परिणाममें क्लेश उपस्थित हो उस कार्यको करनेंकी आवश्यकताही क्याहै ॥१५॥ रामचंद्रजी अतिशय वीर्यवान और धार्मिकहैं, विनाकारण उनके साथ वैरभाव करनेंकी आवश्यकता क्याहै? हे राजन्! हमारी यह विनतीहै कि श्रीरामचंद्रजीको सीता देदीजिये ॥ १६ ॥ रामचंद्र जबतक हाथी घोड़ोंसे परिपू

एकहीसे जान पडतेथे ॥ १५ ॥ समुद्रमें आकाशका प्रतिबिम्ब और आकाशमें समुद्रकी ऊंची लहरोंका जल मिलजानेसे और दोनों ही तुल्य
रूप नक्षत्र दीप्त और रत्नज्योतिके रहनेसे दोनोंही एक से जान पडते थे ॥ १६ ॥ आकाशमें मेघमाला समुद्रमें तरंग माला, इसलिये आका
शमें समुद्र और समुद्रमें आकाश मिला हुआथा ॥ १७ ॥ प्रबल तरंगोंके उठनेसे महाकाशमें महाभेरीको बराबर भयंकर शब्द होरहाथा
क्योंकि समुद्र लहरोंके उठनेसे शब्द करताथा और फिर वह लहरें आकाशमें एक दूसरीसे टकराकर शब्द करतीथीं इस्से भी समुद्र और आ
काशकी समता पाई गई ॥ १८ ॥ जलजीवसमाकुल जलनिधिका जल पवनके द्वारा चलायमान होकर सब रत्न अपनी लहरोंके द्वारा ऊपरको

संपृक्तंनभसाप्यंभःसंपृक्तंचनभोंऽभसा ॥ताद्दग्रूपेस्मदृश्येतेतारारत्नसमाकुले॥१६॥समुत्पतितमेघस्यवीचिमालाकुल
स्यच ॥ विशेषोनद्वयोरासीत्सागरस्यांबरस्यच ॥१७॥ अन्योन्यैराहताःसक्ताःसस्वनुर्भीमनिःस्वनाः ॥ ऊर्मयःसिंधु
राजस्यमहाभेर्यइवांबरे ॥ १८ ॥ रत्नौघजलसन्नादंविषक्तमिववायुना ॥ उत्पतंतमिवक्रुद्धंयादोगणसमाकुलम् ॥१९॥
दद्दशुस्तेमहात्मानोवाताहतजलाशयम् ॥ अनिलोद्धूतमाकाशेप्रलपंतमिवोर्मिभिः ॥ १२० ॥ ततोविस्मयमापन्नाह
रयोदद्दशुःस्थिताः ॥ भ्रांतोर्मिजालसन्नादंप्रलोलमिवसागरम् ॥ १२१ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० युद्धकांडेचतुर्थः
सर्गः ॥ ४ ॥ ॥७॥ सातुनीलेनविधिवत्स्वारक्षासुसमाहिता ॥ सागरस्योत्तरेतीरेसाधुसाविनिवेशिता ॥ १ ॥

उछाल रहाथा कि जिस्से ऐसा जान पड़ताथा कि महासागर क्रोधित होकर मानो इन रत्नोंको फेंक रहाथा ॥ १९ ॥ वह महात्मा पवनसे
चलायमान समुद्रके जलको पवनके संयोगसे आकाशमें उठता देखते हुए कि जैसे समुद्र कुछ प्रलाप वचन कह रहाहै ॥ १२० ॥
इस प्रकारसे वह महाबलवान वानरगण चिन्तायुक्त होकर वारि विक्रम और जल शब्दसे परिपूर्ण महासागर और पवन कंपित
तरंग, विहँसित आकाशको देखनेलगे ॥ १२१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥ ॥
वह वानरोंकी समस्त सैना सेनापति नील करके समुद्रके तीरपर टिकाई जाकर विधि विधानसे रक्षित होने लगी ॥ १ ॥

कर्मकारी और श्रेष्ठ महाद्युतिमान् विभीषणजी ॥ १ ॥ शैल, शृङ्ग, समूहसदृश पर्वत शिखरकी समान ऊंचे सुविभक्त, बड़े, दर, दिवार
दालानसे युक्त, महाजनोंसे पूर्ण ॥ २ ॥ बुद्धिमान बड़े २ शरीरवाले अनुरागी हितकारी और कार्य साधनमें समर्थ राक्षसोंसे घेरे जाकर सब
भांतिसे रक्षित ॥ ३ ॥ मतवाले हाथियोंके श्वास लेनेसे व्याकुल पवन, शंख शब्दकी समान वाजे आदिके बड़े भारी शब्दसे परिपूर्ण तुरईहीके बजनेसे
निनादित ॥ ४ ॥ स्त्रीजनोंसे पूर्ण, रात्रिके शेष होनेंसे प्रकाशित राजमार्ग, उत्तमभूषणभूषित, तपाये हुए सुवर्णके बनें द्वारोंसे शोभित ॥ ५ ॥
गन्धर्व औ देवगणोंके स्थानोंकी समान, नाग भवनकी समान रत्न समूहसे परिपूर्ण मन्दिरमें ॥ ६ ॥ महा मेघमें सूर्यका प्रवेश करनेसे जैसी शोभा

शैलाग्रचयसंकाशंशैलशृंगमिवोन्नतम् ॥ सुविभक्तमहाकक्षंमहाजनपरिग्रहम् ॥ २ ॥ मतिमद्भिर्महामात्रैरनुरक्तैर
धिष्ठितम् ॥ राक्षसैराप्तपर्याप्तैःसर्वतःपरिरक्षितम् ॥ ३ ॥ मत्तमातंगनिःश्वासैर्व्याकुलीकृतमारुतम् ॥ शंखघोषमहा
घोषंतूर्यसंबाधनादितम् ॥ ४ ॥ प्रमदाजनसंबाधंप्रजल्पितमहापथम् ॥ तप्तकांचननिर्यूहंभूषणोत्तमभूषितम् ॥ ५ ॥
गंधर्वाणामिवावासमालयंमरुतामिव ॥ रत्नसंचयसंबाधंभवनंभोगिनामिव ॥ ६ ॥ तंमहाभ्रमिवादित्यस्तेजोविस्तृ
तरश्मिवान् ॥ अग्रजस्यालयंवीरःप्रविवेशमहाद्युतिः ॥ ७ ॥ पुण्यान्पुण्याहघोषांश्चवेदविद्भिरुदाहृतान् ॥ शुश्रावसु
महातेजाभ्रातुर्विजयसंश्रितान् ॥८॥ पूजितान्दधिपात्रैश्चसर्पिभिःसुमनोक्षतैः॥ मंत्रवेदविदोविप्रान्ददर्शसमहाबलः ॥९॥
सपूज्यमानोरक्षोभिर्दीप्यमानंस्वतेजसा ॥ आसनस्थंमहाबाहुर्ववंदेधनदानुजम् ॥ १० ॥

होतीहै वैसेही शोभाको धारण करते हुए अपनें बड़े भाई रावणके द्युतिमान भवनमें वीरश्रेष्ठ विभीषणजी प्रवेश करते हुए ॥ ७ ॥ वहांपर
प्रवेश करते हुए विभीषणजीनें वेदवादी राक्षस विप्रोंसे उच्चारित पुण्य रूप पवित्र पुण्याहशब्द अपने भ्राताकी विजय सूच
कतामें सुना ॥ ८ ॥ विभीषणजीनें देखा, वेद मंत्र जाननेंवाले महाबलवान ब्राह्मण लोग, पुष्प, अक्षत, घृत और दधिसे पूजे गयेहैं ॥ ९ ॥
तिसके पीछे अपने तेजसे प्रदीप्त राक्षस लोगोंसे पूजित महाबाहु विभीषणजीनें सिंहासनपर बैठे हुए कुबेरके छोटे भाई रावणको प्रणाम किया॥ १० ॥

जब हम जलमें प्रवेशकर शयन करेंगे, तौ प्रज्वलित कामानल वहां हमें दग्ध नहीं करसकेगा ॥ ९ ॥ वह वामोरू सीताजी और हम यह दोनोंही एक पृथ्वीपरहैं हेलक्ष्मण! बस अवतक हम इसी आशासेही जीवन धारण कियेहैं ॥ १० ॥ जिस प्रकार जलसे पूर्ण खेत जब सूख जाताहै; तब उसमेंके जमे हुए धान, उस खेतकी जल पूर्ण अवस्थाके वशहो कदाचित् जीवितभी रहतेहैं, वैसेही " सीता जीवन धारण कियेहैं।" यही सुनकर हम जीवन धारण किये हुएहैं ॥ ११ ॥ हाय ! कितने दिनमें शत्रुको जीतकर कमल नेत्रवाली धन धान्य युक्त राज्यलक्ष्मीकी समान श्रीमती उन जानकीजीका दर्शन हम पावेंगे ॥ १२ ॥ हाय! रोगीपुरुषके रसायन पीनेंकी समान कब उन सुन्दर दर्शनवाली जानकीजीका

बह्वेतत्कामयानस्यशक्यमेतेनजीवितुम् ॥ यदहंसानवामोरूरेकांधरणिमाश्रितौ ॥ १० ॥ केदारस्येवकेदारःसोदकस्यनिरूदकः ॥ उपस्नेहेनजीवामिजीवंतींयच्छृणोमिताम् ॥ ११ ॥ कदानुखलुसुश्रोणींशतपत्रायतेक्षणाम् ॥ विजित्यशत्रून्द्रक्ष्यामिसीतांस्फीतामिवश्रियम् ॥ १२ ॥ कदासुचारुदंतोष्ठंतस्याःपद्ममिवाननम् ॥ ईषदुन्नाम्यपास्यामिरसायनमिवातुरः ॥ १३ ॥ तौतस्याःसहितौपीनौस्तनौतालफलोपमौ ॥ कदानुखलुसोत्कंपौहसंत्यामांभजिष्यतः ॥ १४ ॥ सानूनमसितापांगीरक्षोमध्यगतासती ॥ मन्नाथानाथहीनेवत्रातारंनाधिगच्छति ॥ १५ ॥ कथंजनकराजस्यदुहिताममचप्रिया ॥ राक्षसीमध्यगाशेतेस्नुषादशरथस्यच ॥ १६ ॥

मुखकमल झुकाकर हम अधरसुधा पियेंगे? ॥ १३ ॥ कितनें दिनोंमें वह जानकीजी हँसती हुई ताल फलके समान पीन व ऊंचे स्तनयुगल कम्पायमान करके हमको भली भांति भेंटकर तृप्त करेंगी ॥ १४ ॥ वह श्याम नयनवाली जनककुमारी जानकीजी हम समान स्वामीके रहते राक्षसोंके वशमेंहो अनाथकी समान किसीकोभी अपना छुटानेंवाला नहीं पातीहैं॥१५॥हाय! कैसे दुःखकी बातहै, राजर्षि जनककी लड़ैती पुत्री महाराजाधिराज दशरथजीकी पुत्रवधू और हमारी प्राणसम प्यारी भार्या होकरभी जानकीजी किस प्रकारसे राक्षसोंके बीचमें शयन करती होंगी॥१६॥

चारों ओर शोर करतेहैं, और कभी २ उनके झुन्डके झुन्ड विमानोंके ऊपर बैठ "काँय काँय" शब्द करते दिखाई देते हैं ॥ १९ ॥ गृध्र पीडित होकर पुरीके ऊपरी भागमें गिरा करतेहैं, और शृगालियां सन्ध्याके समय पुरीके निकट आनकर चिल्लाया करती हैं ॥ २० ॥ पुरीके द्वारपर व्याघ्रादि मांस खानेवालोंका चौपायोंके गिरनेके शब्दकी समान बडा भारी घोर शब्द सुनाई आया करताहै ॥ २१ ॥ हे वीर! आये हुए रामचंद्रको सीताजीका दे देनाही इन दुर्निमित्तोंकी शांतिका यथार्थ उपाय (प्रायश्चित्त) जान पडताहै ॥ २२ ॥ हे राजन्! लोभ अथवा मोहसे यदि कोई विरुद्ध बात हमारे मुखसे उच्चारण कीगई हो तौ आप हमारा दोष क्षमाकर दीजिये ॥ २३ ॥ सीताजीके हरणसे दुर्निमित्त आजकल दिखाई देते

गृध्राश्चपरिलीयंतेपुरीमुपरिपीडिताः ॥ उपपन्नाश्चसंध्येद्रेव्याहरंत्यशिवंशिवाः ॥ २० ॥ क्रव्यादानांमृगाणांचपुरी
द्वारेषुसंघशः ॥ श्रूयतेविपुलाघोषाःसविस्फूर्जितनिःस्वनाः ॥ २१ ॥तदेवंप्रस्तुतेकार्येप्रायश्चित्तमिदंक्षमम् ॥ रोचयेवी
रवैदेहीराघवायप्रदीयताम् ॥ २२ ॥ इदंचयदिवामोहाल्लोभाद्वाव्याहृतंमया ॥ तत्रापिचमहाराजनदोषंकर्तुमर्हसि
॥ २३ ॥ अयंहिदोषःसर्वस्यजनस्यास्योपलक्ष्यते ॥ रक्षसांराक्षसीनांचपुरस्यांतःपुरस्यच ॥ २४ ॥ प्रापणेचास्यमं
त्रस्यनिवृत्ताःसर्वमंत्रिणः॥अवश्यंचमयावाच्यंयदृष्टमथवाश्रुतम् ॥ संविधाययथान्यायंतद्भवान्कर्तुमर्हति ॥ २५ ॥
इतिस्वमंत्रिणांमध्येभ्राताभ्रातरमूचिवान् ॥ रावणंरक्षसांश्रेष्ठंपथ्यमेतद्विभीषणः ॥ २६ ॥ हितंमहार्थंमृदुहेतु
संहितंव्यतीतकालायतिसंप्रतिक्षमम् ॥ निशम्यतद्वाक्यमुपस्थितज्वरःप्रसंगवानुत्तरमेतदब्रवीत् ॥ २७ ॥

हैं; यह इन सब जनोंके और राक्षस, राक्षसी, अन्तःपुर व समस्त लंकापुरीकेही लिये बुरे जान पडतेहैं ॥ २४ ॥ यद्यपि भयके मारे कोई मंत्री आपके निकट इस सलाहको न उठासके, तथापि हमनें जो कुछदेखा या सुनाहै वह अवश्यही आपके निकट प्रगट करदेना कर्तव्यहै अब जैसा कुछ उचित जान पडै वैसा आप कीजिये ॥ २५ ॥ भ्राता विभीषण राक्षसोंके वीचमें बडे भ्राता राक्षस श्रेष्ठ रावणसे उसके व अपने मंत्रियोंके सामने इस प्रकारसे शुभदायक वचन कहकर चुप होरहे ॥ २६ ॥तव सीताकामी लंकापति रावण विभीपणजीके इस प्रकार न्याय युक्त

आकर इस अजेय लंकापुरीको व्याकुल कर दिया और वह इस पुरीमें प्रवेश करके जनककुमारी जानकीजीकोभी देख गया, और ह माराभी अपमान करनेंमें उसनें कुछ कसर नहीं की ॥ २ ॥ हनुमाननें अकेलेही देवीका बड़ा भारी मन्दिर तोड़ ताड़ डाला, और उसनें बड़ेर राक्षसोंका संहार करके इस लंकापुरीको फूंक फांक कर मलीन करदिया ॥ ३ ॥ जो हो, अब तुम सब बताओ कि हम तुम्हारे लिये किस कार्यका प्रारंभ करें? और यहभी कहोकि इस समय तुम सबकोभी कौनकर्म करना उचितहै तिस कर्मका परिणाम वाञ्छनीयहो ऐसा कोई उपा य इस समय तुम लोग बताओ ॥ ४ ॥ इस समय रामचंद्रके विरुद्धाचरणमें सलाह करना ठीकहै, कारण कि पंडित लोग मंत्रणा करनेंहीको विजय

प्रासादोधर्षितश्चैत्यःप्रवराराक्षसाहताः ॥ आविलाचपुरीलंकासर्वाहनुमताकृता ॥ ३ ॥ किंकरिष्यामिभद्रंवः किंवोयुक्तमनंतरम् ॥ उच्यतांनःसमर्थंयत्कृतंचसुकृतंभवेत् ॥ ४ ॥ मंत्रमूलंचविजयंप्रवदंतिमनस्विनः ॥ तस्माद्वैरोचयेमंत्रंरामप्रतिमहाबलाः ॥ ५ ॥ त्रिविधाःपुरुषालोकेउत्तमाधममध्यमाः ॥ तेषांतुसमवेतानांगुण दोषौवदाम्यहम् ॥ ६ ॥ मंत्रस्त्रिभिर्हिसंयुक्तःसमर्थैर्मंत्रनिर्णये ॥ मित्रैर्वापिसमानार्थैर्बांधवैरपिवाधिकैः ॥ ७ ॥ स हितोमंत्रयित्वायःकर्मारंभान्प्रवर्तयेत् ॥ दैवेचकुरुतेयत्नंतमाहुःपुरुषोत्तमम् ॥ ८ ॥ एकोर्थंविमृशेदेकोधर्मेप्रकुरुते मनः ॥ एकःकार्याणिकुरुतेतमाहुर्मध्यमंनरम् ॥ ९ ॥

प्राप्तिका मूल बतलातेहैं ॥ ५ ॥ पृथ्वीमें, उत्तम, मध्यम अधम, यह तीन प्रकारके पुरुष दृष्टि आया करतेहैं, सो इस समय हम उन समस्त समवेत पुरुषोंके गुण दोष वर्णन करतेहैं तुम लोग सुनो॥६॥ जो पुरुष हितकारी और मंत्रके निर्णय करनेंमें समर्थ मंत्रिलोगोंके साथ कार्यके विषयमें परामर्श करताहै; अथवा बराबर अपना दुःख सुख भोगनेंवाले मित्र और बन्धु बान्धवोंके साथ॥७॥ परामर्श करके, देवताकी सहायता पानेंका यत्न कर कार्यका आरंभ करताहै; पंडितलोग ऐसे पुरुषको उत्तम पुरुष कहा करतेहैं॥८॥ जोपुरुष इकलाही धर्म और अर्थका विचार करके अकेलाही कार्यका आरंभ क

रावणके आगे २ चले ॥ ५ ॥ बहुत सारे विकट वेशधारी अनेक भूषण पहरे राक्षसलोग रावणके अगल बगल पश्चाद्भागकी रक्षा करते हुए चले ॥ ६ ॥ महारथी गण रथपर सवार होकर व और दूसरे राक्षस शस्त्रसहित कोई हाथीपर कोई दिव्य घोडोंपर सवार होकर रावणके साथ २ जानें लगे ॥ ७ ॥ व कोई २ राक्षस गदा, परिघ, शक्ति, तोमर, फरशा, नालादि, अस्त्र लेकर रावणके साथ चले उस समय हजारों तुरेही बजने लगीं ॥ ८ ॥ जब राक्षस रावण सभामें जानेंके लिये निकला उस समय चारों ओरसे हजार २ तुरेही, और शंखोंके शब्दका बड़ाभारी घोर शब्द होंने लगा, रथका शब्द होने लगा ॥ ९ ॥ महारथी रावण अपने रथका शब्द चारों ओरको सुनाता अनेक प्रकारकी शोभा युक्त राज

नानाविकृतवेषाश्चनानाभूषणभूषिताः ॥ पार्श्वतःपृष्ठतश्चैनंपरिवार्यययुस्तदा ॥ ६ ॥ अनूत्पेतुर्दशग्रीवमाक्रीडद्भिश्चवाजिभिः ॥ ७ ॥ गदापरिघहस्ताश्चशक्तितोमरपाणयः ॥ ततस्तूर्यसहस्राणांसंजज्ञेनिःस्वनोमहान् ॥ ८ ॥ तुमुलःशंखशब्दश्चसभांगच्छतिरावणे ॥ सनेमिघोषेणमहान्सहसाभिनिनादयन् ॥ ९ ॥ राजमार्गंश्रियाजुष्टंप्रतिपेदेमहारथः ॥ विमलंचातपत्रंचप्रगृहीतमशोभत ॥ १० ॥ पांडुरंराक्षसेंद्रस्यपूर्णस्ताराधिपोयथा ॥ हेममंजरिगर्भेचशुद्धस्फटिकविग्रहे ॥ ११ ॥ चामरव्यजनेतस्यरेजतुःसव्यदक्षिणे ॥ तेकृतांजलयःसर्वेरथस्थंपृथिवीस्थिताः ॥ १२ ॥ राक्षसाराक्षसश्रेष्ठंशिरोभिस्तंववंदिरे ॥ राक्षसैःस्तूयमानःसन्जयाशीर्भिररिंदमः ॥ १३ ॥ आससादमहातेजाःसभांविरचितांतदा ॥ सुवर्णरजतास्तीर्णांविशुद्धस्फटिकांतराम् ॥ १४ ॥

मार्गमें जाय पहुंचा राक्षसराज रावणके मस्तक पर श्वेत वर्णका प्रकाशमान छत्र ॥ १० ॥ विमल पौर्णमासीके चंद्रमाकी समान शोभा धारण करता हुआ सुवर्णसे बने तथा युक्तिसे शुद्ध स्फटिकमणिकी समान ॥ ११ ॥ दो चमर पंखे उजले उसकी बांई और दाहिनी बगलमें शोभित होरहेथे मार्गमें बहुत सारे राक्षस गण रथके समीप हाथ जोडे खड़े हुएथे ॥ १२ ॥ वह सब राक्षसश्रेष्ठ रावणको झुक २ कर शिर नवाय २ प्रणाम करते इस प्रकार राक्षसोंसे स्तुति किया जाता हुआ, और विजयके लिये आशीर्वाद सुनता हुआ शत्रुदमनकारी रावण ॥ १३ ॥ विश्वकर्मांकी बनाई हुई सभामें पहुंचा; यह सभा सुनहरी रूपहरी विस्तरोंसे शोभित थी, और विशुद्ध स्फटिकमणियोंसे शोभायमान ॥ १४ ॥

बलसे, किसी प्रकारसेभीहो अनुज लक्ष्मण और समस्त वानरोंकी सेनाके सहित समुद्रके पार आजांयगे ॥ १७ ॥ जबकि उनके दलवाले एकही वानरनें यहां आयकर ऐसा कार्य निर्वाह किया परन्तु रामचंद्र या तौ बाणोंसे समुद्रको सुखाय देंगे, या उसके ऊपर पुल बनावेंगे अथवा और कोई उपाय ग्रहणकर समुद्रके पार आय वानरोंके साथ जब लंकामें आवें उस काल हमारी पुरी और सैनाका जिस्से मंगलहो, सो ऐसे उपायको तुम लोग विचारकर स्थिर करो॥१८॥इ० श्रीम० वा० आ०यु० षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥वह महाबलवान् राक्षसगण राक्षसोंके स्वामी रावणसे इस प्रकार कहे जाकर सबही हाथ जोड़कर कहनें लगे ॥ १ ॥ महाराज शत्रुकी ओरका बलाबल विनाजानें सलाह करना निर्बोधका कार्यहै । राजन् ! आपके

समुद्रमुच्छोषयतिवीर्येणान्यत्करोतिवा ॥ तस्मिन्नेवंविधेकार्येविरुद्धोवानरैःसह ॥ हितंपुरेचसैन्येचसर्वंसंमंत्र्यतांम म ॥ १८ ॥ ॥इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०युद्धकांडेषष्ठःसर्गः ॥ ६ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ इत्युक्ताराक्षसेंद्रेणराक्षसास्तेमहाबलाः ॥ ऊचुःप्रांजलयःसर्वेरावणंराक्षसेश्वरम् ॥ १ ॥ द्विषत्पक्षमविज्ञायनीतिबाह्यास्त्वबुद्धयः ॥ राजन्परिघशक्त्यृष्टिशूलपट्टिशकुंतलम् ॥ २ ॥ सुमहन्नोबलंकस्माद्विषादंभजतेभवान् ॥ त्वयाभोगवतींगत्वानिर्जिताःपन्नगायुधि ॥ ३ ॥ कैलासशिखरावासीयक्षैर्बहुभिरावृतः ॥ सुमहत्कदनंकृत्वावश्यस्तेधनदःकृतः ॥ ४ ॥ समहेश्वरसख्येनश्लाघमानस्त्वयाविभो ॥ निर्जितःसमरेरोषाल्लोकपालोमहाबलः ॥ ५ ॥ विनिपात्यचयक्षौघान्विक्षोभ्यविनिगृह्यच ॥ त्वयाकैलासशिखराद्विमानमिदमाहृतम् ॥ ६ ॥ मयेनदानवेंद्रेणत्वद्भयात्सख्यमिच्छता ॥ दुहितातवभार्यार्थेदत्ताराक्षसपुंगव ॥ ७ ॥

पास मुद्गर, शूल शक्ति ऋष्टि पटाधारी ॥ २ ॥ बडी भारी सैना है फिर आप किस कारणसे विषाद करते हैं? आपनें पातालमें जायकर सर्पोंको युद्धमें जीत लियाहै ॥ ३ ॥ कैलाशके शिर पर रहनेंवाले बहुत सारे यक्षोंके सहित कुबेरसे बड़ाभारी संग्राम करके उसको आपनें अपने वशमें कियाहै ॥ ४ ॥ हे महाराज! जो अपनेको महेश्वरका सखा कहकर अपनी बड़ाई किया करते हैं आपनें रोषमें भरकर रणभूमिमें इन लोकपालोंकोभी जीता ॥ ५ ॥ और पराजित कर यक्षोंको जीत दंडदे, उनमेंसे अनेकोंको मार डालकर कैलाश वनसे आप यह पुष्पक विमान ले आये ॥ ६ ॥ हे राक्षसोंके स्वामी! दानवनाथ मयनें आपके भयकी शंकाकर आपके सहित मित्रता करनेंकी वासनासे अपनी कन्या मन्दो

है; इसी प्रकार पैदलही सभामें प्रवेश करते हुए ॥ २२ ॥ वहां पहुंचकर उन्होंने राजाके चरणोंका वंदन किया, तब रावणनेभी जन राक्षसोंका अत्यन्त सन्मान किया, फिर रावणकी आज्ञा पाकर कोई कुरसीपर कोई विछौनोंपर व कोई ऐसेही भूमिपर बैठ गये ॥ २३ ॥ राक्षस गण राजाकी आज्ञाके अनुसार सभाके बीचमें पहुंचकर यथायोग्य रावणकी स्तुति करनेंलगे ॥ २४ ॥ मंत्रके जाननेंमें चतुर मंत्रीलोग और गुण वान सर्व शास्त्रोंके जाननेंवाले बुद्धि लोचन शत २ सहकारी मंत्रीगण व प्रधानादि यथाक्रमसे उस सभामें आये ॥ २५ ॥ इस प्रकार उस सुवर्ण मय रमणीक राक्षसोंके स्वामी रावणकी सभामें मंत्र स्थिर करनेंके लिये क्रम २ से अनेक वीरगणभी झुण्डके झुण्ड, उस सभामें आन पहुंचे ॥ २६॥

राज्ञःपादौगृहीत्वातुराज्ञातेप्रतिपूजिताः॥पीठेष्वन्येबृसीष्वन्येभूमौकेचिदुपाविशन् ॥२३॥तेसमेत्यसभायांवैराक्षसारा जशासनात्॥यथार्हमुपतस्थुस्तेरावणंराक्षसाधिपम्॥२४॥मंत्रिणश्चयथामुख्यानिश्चितार्थेषुपंडिताः॥अमात्याश्चगुणो पेताःसर्वज्ञाबुद्धिदर्शनाः ॥२५॥ समीयुस्तत्रशतशःशूराश्चबहवस्तथा ॥ सभायांहेमवर्णायांसर्वार्थस्यसुखायवै ॥ २६॥ ततोमहात्माविपुलंसुयुग्यंरथंवरंहेमविचित्रितांगम् ॥ शुभंसमास्थाययययौयशस्वीविभीषणःसंसदमग्रजस्य ॥ २७ ॥ सपूर्वजायावरजःशशंसनामाथपश्चाच्चरणौववंदे ॥ शुकःप्रहस्तश्चतथैवतेभ्योददौयथार्हंपृथगासनानि ॥ २८ ॥ सुव र्णनानामणिभूषणानांसुवाससांसंसदिराक्षसानाम् ॥ तेषांपरार्ध्यागुरुचंदनानांस्रजांचगंधाःप्रववुःसमंतात् ॥ २९ ॥ नचुक्रुशुर्नानृतमाहकश्चित्सभासदोनापिजजल्पुरुच्चैः ॥ संसिद्धार्थाःसर्वएवोग्रवीर्याभर्तुःसर्वेददृशुश्चाननंते ॥ ३० ॥

तिसके पीछे यशस्वी महात्मा विभीषणजी शोभायमान घोड़ोंसे युक्त सुवर्णसे चित्रित मंगल चिह्नोंसे शोभित अति बड़े रथपर चढ़कर अपने बड़ेभाईकी सभामें आये ॥ २७ ॥ विभीषणनें सभामें प्रवेश करकै निज नाम सबको सुनाय अपने बड़े भाईके चरणोंमें प्रणाम किया । शुक और प्रहस्त यह दौनों सभामें आये हुए सभासदोंको अलग २ आसन देने लगे ॥ २८ ॥ उसकालमें सुनहरी और विविध मणि भूषण धारी, श्रेष्ठ भूषण पहरे सभामें विराजमान उन सब राक्षसोंके शरीरोंमें लगे श्रेष्ठ अगर चंदनकी गंध व फूलमालाओंकी सुगन्धि सभामें चारों ओर महकनेंलगी ॥ २९ ॥ सभामें बैठे हुए सबही चुपचापथे, किसीके मुखसे कोई बात या मिथ्या बात नहीं उच्चारण होती, और ऊंचे स्वरसे किसी

वीर क्षत्रियोंसे यह पृथ्वी परिपूर्ण होगईथी ॥ १६ ॥ अधिक क्या कहैं,यह रामचंद्र, बल वीर्य,उत्साह या गुणमें उन क्षत्रियोंकी समान नहीं है कि जिन अजेय क्षत्रियोंको आपने पहले सरलतासे रणमें संहार करडालाथा फिर रामके लिये क्या सोच विचार ॥१७॥हेमहाराज! आपको कष्ट करनेंकी कुछ आवश्यकता नहीं आप स्थिर रहिये;आप जान लीजिये कि अकेला इन्द्रजीतही समस्त वानरोंकी सैनाका विनाश कर देगा॥१८॥विशेष करके इन मेघनादनें दिव्य यज्ञका आरंभ करके आशुतोष श्री शिवजीका संतोष साधन करके उनसे दुर्लभ वर लाभ कियाहै ॥ १९ ॥ यह वीरही शक्ति तोमर रूप मीन सेवित विकीर्ण अस्त्ररूप शैवाल पूर्ण गजरूप कच्छप और अश्वरूप भेक संकुल ॥ २० ॥ रुद्र और आदित्य रूप महाग्राह

तेषांवीर्यगुणोत्साहैर्नसमोराघवोरणे ॥ प्रसह्यतेत्वयाराजन्हताःसमरदुर्जयाः ॥ १७ ॥ तिष्ठवाकिंमहाराजश्रमेणतव वानरान् ॥ अयमेकोमहाराजइंद्रजित्क्षपयिष्यति ॥ १८ ॥ अनेनचमहाराजमाहेश्वरमनुत्तमम् ॥ इष्ट्वायज्ञंवरोलब्धो लोकेपरमदुर्लभः ॥ १९ ॥ शक्तितोमरमीनंचविनिकीर्णास्त्रशैवलम् ॥ गजकच्छपसंबाधमश्वमंडूकसंकुलम् ॥ २० ॥ रुद्रादित्यमहाग्राहंमरुद्वसुमहोरगम् ॥ रथाश्वगजतोयौघंपदातिपुलिनंमहत् ॥ २१ ॥ अनेनहिसमासाद्यदेवानां बलसागरम् ॥ गृहीतोदैवतपतिर्लंकांचापिप्रवेशितः ॥ २२ ॥ पितामहनियोगाच्चमुक्तःशंबरवृत्रहा ॥ गतस्त्रिविष्टपं राजन्सर्वदेवनमस्कृतः ॥२३॥ तमेवत्वंमहाराजविसृजेन्द्रजितंसुतम् ॥ यावद्वानरसेनांतांसरामांनयतिक्षयम् ॥ २४ ॥

समाकुल, वायु. और वसुगण रूप महासर्प युक्त. रथ, अश्व. और गजरूप जलराशि पूर्ण और पदाति रूप बड़ी भारी पुलिनसे युक्त ॥२१॥ यही देव सैनारूप महासागरको प्राप्तहो देवराज इन्द्रको बांधकर लंकामें लेआयाथा॥२२॥हेराजन्! फिर मेघनादनें पितामह ब्रह्माजीके कहनेंसे उन सर्वदेवके नमस्कार करनें योग्य शम्बर और वृत्रासुरके मारनेंवाले इन्द्रको छोड़ दिया, और देवताओंका राजा इन्द्रभी छूटकर स्वर्गको चला गयाथा ॥२३॥ हेमहाराज आप इन्द्रजीतको इस कार्यका भार देदीजिये वस निश्चय रखिये कि यह इन्द्रजीतही राम और समस्त वानरोंकी सैनाका नाश कर देगा॥२४॥

हित अहित इन सब बातोंको भलीभांतिसे जान लेना तुमको उचितहै ॥७॥ हम भलीभांति जानते हैं कि तुम परस्पर सलाह करकै जो कार्य किया करते हो वह कदापि निष्फल नहीं होताहै क्योंकि पहले बहुत कार्य हमनें तुम्हारी सम्मत्तिसे सिद्ध किये हैं ॥ ८ ॥ अधिक क्या कहैं इन्द्र जिस प्रकार चन्द्रमा ग्रह, नक्षत्र और मरुद्गणसे सेवित होकर स्वर्गके सुखका भोग किया करते हैं, वैसेही तुम्हारी अनुकूलतासे हम लंकापुरीका राज्य करतेहैं ॥ ९ ॥ इस संकटके समय हम तुम लोगोंसे सहायताकी प्रार्थना करते हैं हमारे पिछले भाई कुंभकर्ण सोय रहेथे, इस लिये विना उनके जागे हमने तुम सबसे भी कुछ नहीं कहा ॥ १० ॥ शस्त्र धारियोंमें श्रेष्ठ वह कुम्भकर्ण छै माससे सोय रहेथे सो यह आज जागकर सभामें

सर्वकृत्यानियुष्माभिःसमारब्धानिसर्वदा ॥ मंत्रकर्मनियुक्ताननिजातुविफलानिमे ॥८॥ ससोमग्रहनक्षत्रैर्मरुद्भिरिववा
सवः ॥ भवद्भिरहमत्यर्थंवृतश्रियमवाप्नुयाम् ॥ ९ ॥ अहंतुखलुसर्वान्वःसमर्थयितुमुद्यतः ॥ कुंभकर्णस्यतुस्वप्नान्ने
ममर्थमचोदयम् ॥ १० ॥ अयंहिसुप्तःषण्मासान्कुंभकर्णोमहाबलः ॥ सर्वशस्त्रभृतांमुख्यःसहेदानींसमुत्थितः ॥११॥
इयंचदंडकारण्याद्रामस्यमहिषीप्रिया ॥ रक्षोभिश्चरितोद्देशादानीताजनकात्मजा ॥ १२ ॥ सामेनशय्यामारो
ढुमिच्छत्यलसगामिनी ॥ त्रिषुलोकेषुचान्यामेनसीतासदृशीतथा ॥ १३ ॥ तनुमध्यापृथुश्रोणीशरदिंदुनिभा
नना ॥ हेमबिंबनिभासौम्यामायेवमयनिर्मिता ॥ १४ ॥ सुलोहिततलौश्लक्ष्णौचरणौसुप्रतिष्ठितौ ॥ दृष्ट्वाताम्रनखौ
तस्यादीप्यतेमेशरीरजः ॥ १५ ॥

आये हैं, इसलिये हमने जिसकार्यको कियाहै; आज वह समस्त तुमलोगोंसे कहते हैं ॥ ११ ॥ कि हम राक्षस गणोंके घूमनेके स्थान दंडक वनसे रामचंद्रकी प्यारी नारी जनककुमारी सीताको हरण करकैले आये हैं ॥ १२ ॥ वह अलसगामिनी हमारी शेज पर नहीं आना चाहती। इस त्रिलोकीमें सीताके समान हमारा मन हरण करनें वाली और कोई नहीं है ॥ १३ ॥ उसकी कमर पतलीहै पश्चात्भाग मोटाहै वदन मंडल शरद ऋतुके चंद्रमाकी समान है, वह देखनेमें सुवर्णसे बनीहुई भूमि और मयकी बनाई हुई मायाके समान जान पड़ती हैं ॥ १४ ॥ उनके चरणतल लाल वर्ण और कोमल हैं, उनके नखोंकी अरुण दीप्ति हैकि जिसके देखनेहीसे हमारे अंगमें अनंगके बाण लगेहैं ॥ १५ ॥

हम नहीं सह सकते ॥ ७ ॥ महाराज ! आप अभी आज्ञा दीजिये; हम इसी मुहूर्तमें गमन करके अकेलेही उन वानरोंकी इतिश्री करदें । वह वानरगण भयानक समुद्र, आकाश और पातालमें प्रवेश करकैभी अपनी रक्षा करनेंको समर्थ नहोंगे ॥ ८ ॥ तिसके पीछे महा बलवान राक्षस वज्रदंष्ट्र अत्यन्त क्रोधातुर होकर मांस व रुधिरसे सनाहुआ बड़ाभारी परिघ ग्रहण करके बोला ॥ ९ ॥ कि राम लक्ष्मणके जीवित रहते उस तपस्वी दीनस्वभाव हनुमानका प्राण विनाश करनेंसे हमको क्या फल होगा? ॥ १० ॥ हेमहाराज! अब हम अकेलेही उस वानरी सैनाको खल बलायकर इस परिघसे राम लक्ष्मण और सुग्रीवका नाश करके लौट आमेंगे ॥ ११ ॥ हेराजन्! आपसे विनतीहै; कि इस समय आप हमारी

अस्मिन्मुहूर्तेगत्वैकोनिवर्तिष्यामिवानरान् ॥ प्रविष्टान्सागरंभीममंबरंवारसातलम् ॥ ८ ॥ ततोब्रवीत्सुसंक्रुद्धोवज्रदंष्ट्रोमहाबलः ॥ प्रगृह्यपरिघंघोरंमांसशोणितदूषितम् ॥ ९ ॥ किंनोहनूमताकार्यंकृपणेनतपस्विना ॥ रामेतिष्ठतिदुर्धर्षेसुग्रीवेपिसलक्ष्मणे ॥ १० ॥ अद्यरामंससुग्रीवंपरिघेणसलक्ष्मणम् ॥ आगमिष्यामिहत्वैकोविक्षोभ्यहरिवाहिनीम् ॥ ११ ॥ इदंममापरंवाक्यंशृणुराजन्यदीच्छसि ॥ उपायकुशलोह्येवजयेच्छत्रूनतंद्रितः ॥ १२ ॥ कामरूपधराःशूराःसुभीमाभीमदर्शनाः ॥ राक्षसानांसहस्राणिराक्षसाधिपनिश्चिताः ॥ १३ ॥ काकुत्स्थमुपसंगम्यविवृतंमानुषंवपुः ॥ सर्वेह्यसंभ्रमाभूत्वाब्रुवंतुरघुसत्तमम् ॥ १४ ॥ प्रेषिताभरतेनैवभ्रात्रातवयवीयसा ॥ सहिसेनांसमुत्थाप्यक्षिप्रमेवोपयास्यति ॥ १५ ॥ ततोवयमितस्तूर्णंशूलशक्तिगदाधराः ॥ चापबाणासिहस्ताश्चत्वरितास्तत्रयामहे ॥ १६ ॥

एक और बात सुनें; आप जान रक्खें कि जो उपाय करनेंमें चतुर और उद्योगीहै विजय लक्ष्मी उनकेही हाथमें रहतीहै, अर्थात्वही लोग शत्रुको जीतलेतेहैं ॥ १२ ॥ कामरूपधारी भयंकराकार शूर बहुत राक्षस लग भग तीन सहस्रके एक निश्चयकर ॥ १३ ॥ मनुष्य रूप धार रघुवंश कुलमणि श्रीरामचंद्रजीके निकट पहुंचकर बड़ी सावधानीके साथ कहें कि ॥ १४ ॥ “ हम सबको तुम्हारे पास तुम्हारे छोटे भाई भरतजीनें भेजाहै ” यह श्रवणकर श्रीरामचंद्र सेनाको छोड़ वहीं बहुतही शीघ्र हमारी सेनाके साथ मिल जॉयगे ॥ १५ ॥ तिसके पीछे हमभी शूल, शक्ति, ग

पहुंचे ॥ २४ ॥ जिस्से कि इस समय सीताको नलौटाना पड़े, और रामलक्ष्मणका विनाशभी होजाय, ऐसी उचित मंत्रणा इस समय तुम लोग विचारो ॥ २५ ॥ विशेषतः इतनी बाततौ निःसन्देहही याद रक्खो कि युद्ध होंनेपर उसमें जयतौ हमारीही होगी कारणकि वानर लोग समुद्रके पार आय हमको जीतनेंमें समर्थ नहीं हैं; व और किसी दूसरेकी सामर्थ्यभी जगत्में हम नहीं देखते कि जो समुद्र उतरकर यहां लड़नें आवे॥ २६ ॥ तब कामी बड़े भाईके करुणा सहित ऐसे वचन सुनकर मध्यम भ्राता कुम्भकर्ण अतिशय क्रोधितहो कहनें लगा ॥ २७ ॥ हेबड़े भाईसाहब! आप जबकि राम लक्ष्मणके निकटसे बलपूर्वक जानकीको हरण कर लाये, तब हम लोगोंके सहित विचार न करके स्वयंही आपनें एक क्षण भरमें इस बातका विचारकर लिया होगा। अतएव यमुनानें पृथ्वीमें उतरनेंके समय जिसप्रकार पहले अपने कुण्डोंको पूर्णकर फिर समुद्रको

अदेयाचयथासीतावध्यौदशरथात्मजौ ॥ भवद्भिर्मंत्र्यतांमंत्रःसुनीतंचाभिधीयताम् ॥ २५ ॥ नहिशक्तिंप्रपश्यामिजगत्यन्यस्यकस्यचित् ॥ सागरंवानरैस्तीर्त्वानिश्चयेनजयोमम ॥ २६ ॥ तस्यकामपरीतस्यनिशम्यपरिदेवितम् ॥ कुंभकर्णःप्रचुक्रोधवचनंचेदमब्रवीत् ॥ २७ ॥ यदातुरामस्यसलक्ष्मणस्यप्रसह्यसीताखलुसाइहाहृता ॥ सकृत्समीक्ष्यैवसुनिश्चितंतदाभजेतचित्तंयमुनेवयामुनम् ॥ २८ ॥ सर्वमेतन्महाराजकृतमप्रतिमंतव ॥ विधीयेतसहास्माभिरादावेवास्यकर्मणः ॥ २९ ॥ न्यायेनराजकार्याणियःकरोतिदशानन ॥ नससंतप्यतेपश्चान्निश्चितार्थमतिर्नृपः ॥ ३० ॥ अनुपायेनकर्माणिविपरीतानियानिच ॥ क्रियमाणानिदुष्यंतिहवींष्यप्रयतेष्विव ॥ ३१ ॥

परिपूर्णकर समुद्रके जलसे अपनी उन्नतिको नहीं प्राप्त किया, वैसेही आपनें जो चलायमान चित्तका कार्य कियाहै, सो उसके परिणामके समय हम लोगोंकी सलाहसे अब क्या कल्याण होगा? ॥ २८ ॥ हेराजन्! ऐसे कार्यको करनेंके पहले हम सब लोगोंसे आपको सलाह लेना ठीकथा, परन्तु आपनें ऐसा न करके राम लक्ष्मणके विनाजाने उनको धोखा देकर जानकीको हरणकर ले आये;यह कार्य आपनें अत्यन्त अनुचित कियाहै॥२९॥ हेदशानन!जो राजा कर्त्तव्य कार्यके विषयमें परामर्श स्थिर करके न्यायानुसार कार्य करतेहैं; उनको पीछेसे कभी संताप नहीं भोगना पड़ता॥३०॥ यदि सलाह विनास्थिर किये जो कार्य किये जातेहैं,वह कार्य पशु हिंसादि यज्ञ प्रयुक्त हव्य पदार्थकी समान वह कष्टके कारण होजाते हैं ॥ ३१ ॥

तिसके पीछे कुम्भकर्णका बेटा निकुम्भ, रभस, महाबलवान् सूर्यशत्रु, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, महापार्श्व, महोदर, ॥१॥ अग्निकेतु, अजेय, रश्मिकेतु राक्षस इन्द्रशत्रु, तेजस्वी महाबलवान रावणका बेटा इन्द्रजीत ॥ २ ॥ प्रहस्त, विरूपाक्ष, महाबलवान वज्रदंष्ट्र, धूम्राक्ष, निकुंभ, दुर्मुख नाम राक्षस॥३॥ परिघ, पटा, शूल, कांशी, शक्ति, परशा, धनुष, सुवर्णके फलके लगे हुए बाण; अत्यन्त द्युतिमान खड्ग ॥ ४ ॥ इत्यादि अस्त्र शस्त्र धारण कर परम क्रोध युक्त खड़े होकर महातेजस्वी अग्निकी समान प्रज्वलितहो यह सब राक्षस रावणसे बोले ॥५॥ कि हम आजही रामचन्द्र लक्ष्मण सुग्रीव, और उस लंकाके जलानेवाले दीन स्वभाव हनुमानका प्राणभी संहार कर डालेंगे ॥ ६ ॥ तब विभीषण अस्त्रधारी उन वीर पुरुषोंको

ततोनिकुंभोरभसःसूर्यशत्रुर्महाबलः ॥ सुप्तघ्नोयज्ञकोपश्चमहापार्श्वमहोदरौ ॥ १ ॥ अग्निकेतुश्चदुर्धर्षोरश्मिकेतुश्चराक्षसाः ॥ इंद्रशत्रुश्चबलवांस्ततोवैरावणात्मजः ॥ २ ॥ प्रहस्तोथविरूपाक्षोवज्रदंष्ट्रोमहाबलः ॥ धूम्राक्षोथनिकुंभश्चदुर्मुखश्चैवराक्षसाः ॥ ३ ॥ परिघान्पट्टिशाञ्छूलान्प्रासान्शक्तिपरश्वधान् ॥ चापानिचसुबाणानिखड्गांश्चविपुलांबुभान् ॥ ४ ॥ प्रगृह्यपरमक्रुद्धाःसमुत्पत्यचराक्षसाः ॥ अब्रुवन्रावणंसर्वेप्रदीप्ताइवतेजसा ॥ ५ ॥ अद्यरामंवधिष्यामःसुग्रीवंचसलक्ष्मणम् ॥ कृपणंचहनूमंतंलंकायेनप्रधर्षिता ॥ ६ ॥ तान्गृहीतायुधान्सर्वान्वारयित्वाबिभीषणः ॥ अब्रवीत्प्रांजलिर्वाक्यंपुनःप्रत्युपवेश्यतान् ॥ ७ ॥ अप्युपायैस्त्रिभिस्तातयोर्थःप्राप्तुंनशक्यते ॥ तस्यविक्रमकालांस्तान्युक्तानाहुर्मनीषिणः ॥ ८ ॥ प्रमत्तेष्वभियुक्तेषुदैवेनप्रहतेषुच ॥ विक्रमास्तातसिध्यंतिपरीक्ष्याविधिनाकृताः ॥ ९ ॥ अप्रमत्तंकथंतंतुविजिगीषुंबलेस्थितम् ॥ जितरोषंदुराधर्षंतंधर्षयितुमिच्छथ ॥ १० ॥

रोककर उन सबको अपने २ आसनोपर बैठनेके लिये कह, विज्ञ विभीषण हाथ जोडकर रावणसे बोले ॥ ७ ॥ हे प्रभो! साम, दान, व भेद इन तीन उपायोंसे जो कार्य सिद्ध नहीं किया जाय सके, तब नीति शास्त्रके जाननेवालोंने उस कार्यके सिद्ध करनेके लिये विक्रम प्रगट करना अर्थात् दंड देना लिखाहै ॥ ८ ॥ शत्रुओंकी अवस्थाको देख असावधान, आलस्यी और रोगादिकसे पीडित शत्रुके प्रति विधिवत् दंड प्रकाश करनेसे वह शत्रुवशमें होजाताहै ॥ ९ ॥ परन्तु तुम लोग उन प्रमाद विहीन जयाभिलाषी देवसहाय क्रोधको जीते हुए और अजेय रामचंद्रको

को संहार, हम वानर दलके यूथप लोगोंकोभी भक्षणकर जांयगे॥३९॥इससमय आप सावधान चित्त होकर सुख सहित अपने हित कार्यको साधन करनें में रत होजाइये, और वारुणी पान करके इच्छानुसार विहार कीजिये; जब हम रामचंद्रका संहार कर डालेंगे तब सीता सदाके लिये आपके वश होजाय गी ॥४०॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे द्वादशः सर्गः ॥१२॥ तिसके पीछे महाबलवान् महापार्श्व रावणको क्रोधायमान देखकर एक मुहूर्त्त भरतक चिन्ताकर हाथ जोड़ रावणसे बोला ॥१॥ कि हे महाराज! आप जो रामचंद्रके आश्रममें प्रवेश करके उनकी स्त्रीको हरण करके ले आयेहैं, यह कार्य तौ आपके योग्यही हुआहै परन्तु जो पुरुष मृग और सर्पोंसे सेवित वनमें प्रवेश करके मधुको प्राप्त हो

रमस्वकामंपिबचाग्र्यवारुणींकुरुष्वकार्याणिहितानिविज्वरः ॥ मयातुरामेगमितेयमक्षयंचिरायसीतावशगाभविष्यति ॥ ४० ॥ इत्यार्षेश्री० वा० आ० यु० द्वादशःसर्गः ॥ १२ ॥ ॥ छ ॥ रावणंक्रुद्धमाज्ञायमहापार्श्वोमहाबलः ॥ मुहूर्तमनुसंचिंत्यप्रांजलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥ यःखल्वपिवनंप्राप्यमृगव्यालनिषेवितम् ॥ नपिबेन्मधुसंप्राप्यसनरोबालिशोभवेत् ॥ २ ॥ ईश्वरस्येश्वरःकोस्तितवशत्रुनिबर्हण ॥ रमस्वसहवैदेह्याशत्रूनाक्रम्यमूर्धसु ॥ ३ ॥ बलात्कुक्कुटवृत्तेनप्रवर्तस्वमहाबल ॥ आक्रम्याक्रम्यसीतांवैतांभुंक्ष्वचरमस्वच ॥ ४ ॥ लब्धकामस्यतेपश्चादागमिष्यतिकिंभयम् ॥ प्राप्तमप्राप्तकालंवासर्वंप्रतिविधास्यते ॥ ५ ॥

करभी उसको न पिये वह, बड़ा मूर्ख है ॥ २ ॥ यदि आप कहें कि परनारीके भोग करनेंसे ईश्वरकी आज्ञाके विपरीत कार्य करना होताहै और इस्से अधिकभी होताहै, परन्तु आपको भय क्याहै ? क्योंकि आप धर्मके प्रवर्तक यमादि ईश्वर गणोंकेभी ईश्वरहैं;इस कारण इस समय शत्रुलोगोंके मस्तकपर पांव धरकर आप सीताके साथ विहार कीजिये ॥ ३ ॥ हे महाबलवान्! यदि विहार करनेंके समय सीता आपके अनुकूल नहो तौ आप मुर्गेकी प्रवृत्ति धारण करके वारंवार बल प्रकाशकर उसको भोगकर विहार कीजिये ॥ ४ ॥ हे महाराज! जहां सीता आपके वशमें हुई, फिर पीछेसे किसी भयके आपपर आनेंकी कोई संभावना नहीं; यदि समयानुसार कोई भय आवेभी तौ उसको रोक दिया जायगा ॥ ५ ॥

र्ण अनेक रत्नोंसे युक्त इस लंकापुरीको बाणोंसे छिन्न भिन्न न करैं आप उस्से पहलेही जानकीको रामचंद्रके हाथमें सौंपदो ॥ १७ ॥ जबतककि वह घोर बड़ी भारी अजेय वानरोंकी सैना हमारी लंकापुरीको छिन्न भिन्नन करै, तिस्से पहलेही रामचंद्रजीको आप सीताजी लौटादें ॥ १८ ॥ हे महाराज! जो आप अपनी राजीसे उन रामचंद्रकी स्त्री सीताजीको उन्हें नलौटा देंगे, तौ यह लंकापुरी नष्ट हो जायगी, और महावीर्यवान यह राक्षसभी मारे जांयगे ॥ १९ ॥ हम तौ बंधु होनेसे आपके हितकीही कहतेहैं, सो आप हमारे वचन मानकर सीताको रामचंद्रके हाथमें समर्पण कर दीजिये॥ २० ॥ हे महाराज! वह राजकुमार रामचंद्र जबतक आपका वधकरनेंके लिये सूर्यकी किरणोंके समान प्रकाशित व चमकते फलके, पंख

यावत्सुघोरामहतीदुर्धर्षाहरिवाहिनी ॥ नावस्कन्दतिनोलंकांतावत्सीताप्रदीयताम् ॥१८॥ विनश्येद्धिपुरीलंकाशूराः सर्वेचराक्षसाः ॥ रामस्यदीयतांपत्नीनस्वयंयदिदीयते ॥ १९ ॥ प्रसादयेत्वांबंधुत्वात्कुरुष्ववचनंमम ॥ हितंतथ्यंत्वहंब्रूमिदीयतामस्यमैथिली ॥ २० ॥ पुराशरत्सूर्यमरीचिसन्निभान्नवाग्रपुंखान्सुदृढान्नृपात्मजः ॥ सृजत्यमोघान्विशिखान्वधायतेप्रदीयतांदाशरथायमैथिली ॥ २१ ॥ त्यजाशुकोपंसुखधर्मनाशनंभजस्वधर्मंरतिकीर्तिवर्धनम् ॥ प्रसीदजीवेमसपुत्रबांधवाःप्रदीयतांदाशरथायमैथिली ॥ २२ ॥ बिभीषणवचःश्रुत्वारावणोराक्षसेश्वरः ॥ विसर्जयित्वातान्सर्वान्प्रविवेशस्वकंगृहम् ॥ २३ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० युद्ध० नवमःसर्गः ॥ ९ ॥ ७॥ ततःप्रत्युषसिप्राप्तेप्राप्तधर्मार्थनिश्चयः ॥ राक्षसाधिपतेर्वेश्मभीमकर्माबिभीषणः ॥ १ ॥

लगे, अमोघ बाण न छोड़े;तिसके पहलेही जानकी आप उन्हें देदें ॥ २१ ॥ हे महाराज ! सुख और धर्मके नाश करनेवालें क्रोधका आप परित्याग कर दीजिये ! जिसकी सेवा करनेंसे लोकानुराग और कीर्तिकी वृद्धि होती है, आप उसकाही आश्रय ग्रहण करें; आप प्रसन्न होकर समझलें कि जानकीको आप उन्हें देदेंगे तौ हम सब अपने स्त्री पुत्रादिकोंके संग सुखसे समय विताय सकेंगे ॥ २२ ॥ राक्षसोंका स्वामी रावण विभीषणके ऐसे वचन श्रवण कर सबको विदादे अपने रनवासवाके भवनमें चलागया ॥ २३ ॥ इ० श्रीम०वा०आ०यु०नवमः सर्गः ॥ ९ ॥ महा तेजस्वी किरण युक्त सूर्य जिसप्रकार आकाशमें प्रकाशित होतेहैं, वैसेही दूसरे दिन प्रभात कालको धर्मार्थके तत्त्व जाननेवाले भयंकर

स्त्रीके ऊपर बलकर उस्से भोग करेगा, तौ तेरा मस्तक निश्चयही शतखंड होजायगा ॥ १४ ॥ हम उसी ब्रह्म शापसे भीत होकर उन विदेहराज नंदिनी सीताको अपनी शुभ शेजपर चढानेंकी चेष्टा नहीं करते ॥ १५ ॥हमारा वेग समुद्र तुल्य और गति वायुकी समानहै, सो हमारे विक्रमको न जान करही राम लंकाकी ओरको चढ़नेंकी चेष्टा करते हैं ॥ १६ ॥ हमारे पर्वतकी गुहामें सोते हुए सिंह और क्रोधित यमराजकी समान विराजमान रहनेसे ऐसा कौनहै जो हमारा विश्राम तोडनेंका साहस कर सकताहै ? ॥ १७ ॥ रामचंद्रनें संग्राममें दो जीभवाले सर्पोंकी समान हमारे धनुषसे छूटे हुए बाण नहीं देखेहैं, इसी कारणसे वह हमारे निकट आय रहेहैं ॥ १८ ॥ जिस प्रकार उल्कासमूहसे गतिवाले हाथीको दग्ध

इत्यहंतस्यशापस्यभीतःप्रसभमेवताम् ॥ नारोहयेबलात्सीतांवैदेहींशयनेशुभे ॥ १५ ॥ सागरस्येवमेवेगोमारुतस्ये
वमेगतिः ॥ नैतद्दाशरथिर्वेदह्यासादयातितेनमाम्॥१६॥ कोहिसिंहमिवासीनंसुप्तंगिरिगुहाशये ॥क्रुद्धंमृत्युमिवासीनंसं
बोधयितुमिच्छति॥१७॥नमत्तोनिर्गतान्बाणान्द्विजिह्वान्पन्नगानिव ॥ रामःपश्यतिसंग्रामेतेनमामभिगच्छति ॥१८॥
क्षिप्रंवज्रसमैर्बाणैःशतधाकार्मुकच्युतैः ॥ राममादीपयिष्यामिउल्काभिरिवकुंजरम् ॥१९॥ तच्चास्यबलमादास्येबले
नमहतावृतः॥ उदितःसविताकालेनक्षत्राणांप्रभामिव॥२०॥नवासवेनापिसहस्रचक्षुषामुधास्मिशक्योवरुणेनवापुनः॥
मयात्वियंबाहुबलेननिर्जितापुरापुरीवैश्रवणेनपालिता ॥२१॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०यु०त्रयोदशःसर्गः ॥१३॥ छ ॥
निशाचरेंद्रस्यनिशम्यवाक्यंसकुंभकर्णस्यचगर्जितानि ॥ विभीषणोराक्षसराजमुख्यमुवाचवाक्यंहितमर्थयुक्तम् ॥१॥

किया जाताहै, वैसेही हम वज्रतुल्य बाण धनुषसे वर्षाकर रामचंद्रको भस्म कर डालेंगे ॥ १९ ॥ जिस प्रकार सूर्यके उदय होनेसे समस्त तारा गणोंकी ज्योति जाती रहतीहै, वैसेही हम अपनी सेनाके सहित जायकर रामचंद्रकी सेनाका नाश कर डालेंगे ॥ २० ॥ अधिक क्या कहैं सहस्रलोचन बलवान् इन्द्र और वरुणभी हमको परास्त नहीं करसकते, और अधिक करके पहलेही हमनें इस कुवेरपालित लंकापुरीको अपने बाहुबलसे अपने वश कियाथा ॥ २१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे त्रयोदशःसर्गः ॥ १३ ॥

राक्षसराज रावणके वचन और कुम्भकर्णके गर्जनायुक्त वचन सुनकर महात्मा बिभीषणजी रावणके ऐसे हितकारी और अर्थयुक्त वचन

और रावणनेंभी विभीषणजीको सदाचारानुरूप, आशीर्वाद देकर आसन ग्रहण करनेको कहा, राजाज्ञा पातेही विभीपणजी सुवर्णके आसनपर बैठ गये ॥ ११ ॥ महात्मा विभीषणजी, एकान्त जन रहित, केवल मंत्रियोंकेही जानें योग्य स्थानमें बैठे अपने बडे भाई रावणको हितकारी व अर्थयुक्त वचन कहनेंलगे ॥ १२ ॥ प्रथम यथा क्रमसे बडे भाईकी आदर मर्यादाकर देशकाल ऊंच नीच जाननेंमें कुशल विभीषणजी यह बोले ॥ १३ ॥ हे शत्रुओंके तपानेंवाले! जबसे सीताजी इस लंकापुरीमें आई हैं, तबसेही अनेक प्रकारके अशुभ सूचक दुर्निमित्त दिखाई देतेंहैं ॥ १४ ॥ इस समय मंत्र पूर्वक अग्नि आहुति पायकरभी अपने तेजसे नहीं वढता । अधिक क्या कहैं, कि प्रदीप्त करनेंके

सराजदृष्टिसंपन्नमासनंहेमभूषितम् ॥ जगामसमुदाचारंप्रयुज्याचारकोविदः॥११॥ सरावणंमहात्मानंविजनेमंत्रिसन्निधौ ॥ उवाचहितमत्यर्थंवचनंहेतुनिश्चितम् ॥१२॥ प्रसाद्यभ्रातरंज्येष्ठंसांत्वेनोपस्थितक्रमः ॥ देशकालार्थसंवादिदृष्टलोकपरावरः॥१३॥यदाप्रभृतिवैदेहीसंप्राप्तेहपरंतप ॥ तदाप्रभृतिदृश्यंतेनिमित्तान्यशुभानिनः ॥ १४ ॥ सस्फुलिंगः सधूमार्चिःसधूमकलुषोदयः ॥ मंत्रसंधुक्षितोप्यग्निर्नसम्यगभिवर्धते ॥ १५ ॥ अग्निष्टेष्वग्निशालासुतथाब्रह्मस्थलीषुच ॥ सरीसृपाणिदृश्यंतेहव्येषुचपिपीलिकाः ॥ १६ ॥ गवांपयांसिस्कन्नानिविमदावरकुंजराः ॥ दीनमश्वाःप्रहेषंतेनवग्रासाभिनंदिनः ॥ १७॥ खरोष्ट्राश्वतराराजन्भिन्नरोमाःस्रवंतिच ॥ नस्वभावेवतिष्ठंतेविधानैरपिचिंतिताः ॥ १८ ॥ वायसाः संघशःक्रूराव्याहरंतिसमंततः ॥ समवेताश्चदृश्यंतेविमानाग्रेषुसंघशः ॥ १९ ॥

समय उसमेंसे धुआं निकलताहै. चिनगारियें उडती हैं, और शिखामें बराबर धूम निकलताही रहताहै ॥ १५ ॥ हे महाराज! अग्नि होमशाला और वेद पढनेके स्थानोंमें सर्पादि दिखाई देते, और हवन करनेंके लिये जो खीरादि बनाई जातीहैं; उनमें चैंटियें चढी हुई दिखाई देती हैं ॥ १६ ॥ गौओंका दूध सूखगयाहै, श्रेष्ठ गज मदविहीन होगयेहैं; और घोडे यथेष्ट आहार पाकरभी भूखेकी समान और चारा पानेंकी आशामें दीनभावसे शब्द करते हैं ॥ १७ ॥ हेराजन्! गधे, ऊंट, खच्चड, रोम ऊंचे कर २ के आंसू डाल २ रोय रहेहैं; चिकित्सा शास्त्रके द्वारा यद्यपि उनकी औषधीभी भली भांति की जाती है,परन्तु तथापि वे अपनें स्वभाव पर नहीं आते ॥ १८ ॥ क्रूर स्वभाववाले कौवे दल बांध २ कर

तत्त्वको भली भांति जाननेंवाले विभीषणभी प्रहस्तके अमंगलकारी वचन सुनकर यह अर्थयुक्त वचन बोले ॥ ९ ॥ हेप्रहस्त ! राक्षसराज
महोदर कुंभकर्ण और तुम यह जो वृथा गाल बजातेहो कि हम रामचंद्रको जीत लेंगे, परन्तु अधार्मिकके स्वर्ग गमन करनेंकी समान तुम
लोग कोईभी इस कार्यके करनेंको समर्थ नहीं होगे ॥ १० ॥ प्रहस्त ! जिसको जहाजकी सहायता नहीं ऐसे पुरुषके समुद्र पार जानेंकी समान
तुम हम अथवा समस्त राक्षस गणोंसे किस प्रकारसे उन अर्थविशारद श्रीरामचंद्रजीका वध हो सकताहै ? ॥ ११ ॥ अधिक करके यह इक्ष्वाकु
कुलनंदन महारथी श्रीरामचंद्रजी अतिशय धार्मिकहैं ! प्रहस्त ! हमारी बात तौ दूर रहै ! ऐसे सब कार्यमें सामर्थवान पुरुषके संग्राममें देवता

प्रहस्तराजाचमहोदरश्चत्वंकुंभकर्णश्चयथार्थजातम् ॥ ब्रवीतरामंप्रतितन्नशक्यंयथागतिस्वर्गमधर्मबुद्धेः ॥ १० ॥
वधस्तुरामस्यमयात्वयाचप्रहस्तसर्वैरपिराक्षसैर्वा ॥ कथंभवेदर्थविशारदस्यमहार्णवंतर्तुमिवाप्लवस्य ॥ ११ ॥ धर्म
प्रधानस्यमहारथस्यइक्ष्वाकुवंशप्रवरस्यराज्ञः ॥ पुरोस्यदेवाश्चतथाविधस्यकृत्येषुशक्तस्यभवंतिमूढाः ॥१२॥ तीक्ष्णा
नतावत्तवकंकपत्रादुरासदाराघवविप्रमुक्ताः ॥ भित्त्वाशरीरंप्रविशंतिबाणाःप्रहस्ततेनैवविकत्थसेत्वम् ॥१३॥ भित्त्वा
नतावत्प्रविशंतिकायंप्राणांतिकास्तेशनितुल्यवेगाः ॥ शिताःशराराघवविप्रमुक्ताःप्रहस्ततेनैवविकत्थसेत्वम् ॥ १४ ॥
नरावणोनातिबलस्त्रिशीर्षोनकुंभकर्णस्यसुतोनिकुंभः ॥ नचेंद्रजिद्दाशरथिंप्रवोढुंत्वंवारणेशक्रसमंसमर्थाः ॥ १५ ॥
देवांतकोवापिनरांतकोवातथातिकायोतिरथोमहात्मा ॥ अकंपनश्चापिसमानसारःस्थातुंनशक्तायुधिराघवस्य ॥१६॥

लोगभी मूढ़की समान हो जातेहैं ॥१२ ॥ प्रहस्त ! जबतक रामचंद्रजीके छोड़े हुए तेज और अमोघ बाणोंने तुम्हारे शरीरको भेदकर उसमें
प्रवेश नहीं कियाहै, तबतक तुम राक्षसराजके सन्मुख वृथा बकवाद करतेहो ॥ १३ ॥ अबतकभी श्रीरामचंद्रजीकी बांहोंसे छूटे हुए प्राण हरण
कारी वज्रतुल्य वेगशाली तीखे बाण तुम्हारे शरीरको भेदकर फिर उनके तरकसमें जायकर नहीं प्रवेशे हैं; प्रहस्त ! इसी कारणसे तुम इसी
भांति अपनी बडाई मारतेहो ॥ १४ ॥ प्रहस्त ! बलवान राक्षसराज रावण, त्रिशीर्ष, मेघनाद, तुम, कुम्भकर्ण, अथवा उसका पुत्र निकुम्भ
तुम लोग कोईभी रणभूमिमें इन इन्द्रकी समान विक्रमी रामचंद्रजीका विक्रम सहन करनेंको समर्थ नहीं होगे ॥ १५ ॥ देवान्तक, नरान्तक,

महा अर्थ समन्वित, हेतुगर्भ, वर्त्तमान व भविष्यकालमें शुभकारी यह वचन सुन क्रोध करके उत्तर देता हुआ ॥ २७ ॥ हम किसीके निकट सेभी भयका कारण नहीं देखतेहैं, रामचंद्र किसी प्रकार जानकीजीको प्राप्त नहीं होसकेंगे कारणकि वह लक्ष्मणके बड़े भाई रामचंद्र इन्द्रादि देव गणोंके साथ मिलकरभी रणभूमिमें हमारे सामनें नहीं टिक सकेंगे ॥ २८ ॥ रणभूमिमें प्रचंड पराक्रम करनेंवाला सुरसैनाका नाशकारी महाबलवान रावण हितकी कहनेंवाले भ्राता विभीषणको यह कहकर विदा करता हुआ ॥ २९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे दशमः सर्गः ॥ १० ॥ पापचारी राक्षसराज रावण भार्याहरणका पाप कर्म करनेवाला

भयंनपश्यामिकुतश्चिदप्यहंनराघवःप्राप्स्यतिजातुमैथिलीम् ॥ सुरैःसहेंद्रैरपिसंगरेकथंममाग्रतःस्थास्यतिलक्ष्मणाग्रजः ॥ २८ ॥ इत्येवमुक्त्वासुरसैन्यनाशनोमहाबलःसंयतिचंडविक्रमः ॥ दशाननोभ्रातरमाप्तवादिनंविसर्जयामासतदाविभीषणम् ॥ २९ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आदि०युद्धकांडेदशमःसर्गः ॥ १० ॥ ॥ छ ॥ ॥ सबभूवकृशोराजामैथिलीकाममोहितः ॥ असन्मानाच्चसुहृदांपापःपापेनकर्मणा ॥ १ ॥ अतीवकामसंपन्नोवैदेहीमनुचिंतयन् ॥ अतीतसमयेकालेतस्मिन्वैयुधिरावणः ॥ अमात्यैश्चसुहृद्भिश्चप्राप्तकालममन्यत ॥ २ ॥ सहेमजालविततंमणिविद्रुमभूषितम् ॥ उपगम्यविनीताश्वमारुरोहमहारथम् ॥ ३ ॥ तमास्थायरथश्रेष्ठंमहामेघसमस्वनम् ॥ प्रययौरक्षसांश्रेष्ठोदशग्रीवःसभांप्रति ॥ ४ ॥ असिचर्मधरायोधाःसर्वायुधधरास्ततः ॥ राक्षसाराक्षसेंद्रस्यपुरस्तात्संप्रतस्थिरे ॥ ५ ॥

विभीषणादि सुहृदगणोंका निरादर करके जानकीजीकी कामनासे अत्यन्त मोहितहो दुर्बल होनें लगा ॥ १ ॥ काममोहित और निरन्तर जानकीजीका स्मरण करता हुआ समयको बीत जाता हुआ देखकर उस काल बिभीषणके सिवाय और सब सुहृद व मंत्रियोंके सहित मन लगाय; उसके विषयमें सलाह करनेंका अवसर आया जान ॥ २ ॥ सुवर्णकी जालियोंसे विभूषित, मूंगे मणिसे शोभायमान अच्छे सीखे सिखाये घोड़े जिसमें जुतरहे ऐसे महा रथमें सवार होता हुआ ॥ ३ ॥ और उसमेघकी समान शब्द करते हुए श्रेष्ठ रथपर चढ़कर वह दशवदन राक्षस श्रेष्ठ रावण सभाकी ओर गमन करनें लगा ॥ ४ ॥ उस समय सर्व अस्त्रशस्त्रोंको धारण किये बहुत सारे राक्षस ढाल तलवार ग्रहण करके राक्षस

बृहस्पतिजीके तुल्य बुद्धिमान विभीषणजीके यह उदार वचन सुनकर राक्षसश्रेष्ठ महाबलवान मेघनाद कहने लगा ॥ १ ॥ हे कनिष्ठ तात! आप डरेहुएकी समान किस कारणसे ऐसे अनर्थ कारी वचन, कह रहे हैं पौलस्त्य कुलमें जन्म लेनेंवालेकी बात तौ दूररहै, सहज दुर्बल मनुष्य कुलमें जन्मा हुआ मनुष्यभी ऐसा नहींकरैगा, और नऐसा कार्य करैगा ॥२॥ इस कुलमें एक केवल छोटे चचा बिभीषणही, बलवीर्य पराक्रम धीरता शूरता और तेजहीन पुरुष उत्पन्न हुएहैं॥३॥ हे डरपोक!आप यह क्या मर्यादा दिखातेहैं? हमारा तौ केवल एकही साधारण राक्षस उन दो राजकुमारोंको मारडालेगा ॥ ४ ॥ आप जानतेहीहैं कि देवराज इन्द्र त्रिलोकका राजाहै; परन्तु हम उसको बांधकर पृथ्वी पर ले आये

बृहस्पतेस्तुल्यमतेर्वचस्तन्निशम्य्यत्नेनबिभीषणस्य॥ततोमहात्मावचनंबभाषेतत्रेंद्रजिन्नैर्ऋतयूथमुख्यः॥१॥किंनाम
तेतातकनिष्ठवाक्यमनर्थकंवैबहुभीतवच्च ॥ अस्मिन्कुलेयोपिभवेन्नजातःसोपीदृशंनैववदेन्नकुर्यात् ॥२॥ सत्त्वेनवीर्येण
पराक्रमेणधैर्येणशौर्येणचतेजसाच ॥ एकःकुलेस्मिन्पुरुषोविमुक्तोविभीषणस्तातकनिष्ठएषः ॥ ३ ॥ किंनामतौमा
नुषराजपुत्रावस्माकमेकेनहिराक्षसेन ॥ सुप्राकृतेनापिनिहंतुमेतौशक्यौकुतोभीषयसेस्मभीरो ॥ ४ ॥ त्रिलोकना
थोननुदेवराजःशक्तोमयाभूमितलेनिविष्टः ॥ भयार्पिताश्चापिदिशःप्रपन्नाःसर्वेतदादेवगणाःसमग्राः ॥ ५ ॥ ऐरावतो
निःस्वनमुन्नदन्सनिपातितोभूमितलेमयातु ॥ विकृष्यदंतौतुमयाप्रसह्यवित्रासितादेवगणासमग्राः ॥ ६ ॥ सोहंसुराणा
मपिदर्पहंतादैत्योत्तमानामपिशोकहर्ता ॥ कथंनरेंद्रात्मजयोर्नशक्तोमनुष्ययोःप्राकृतयोःसुवीर्यः ॥ ७ ॥

व देवता लोग इस भयंकर वृत्तान्तको देख भयभीत हो दशों दिशाओंको भागगये ॥ ५ ॥ फिर हमने बलपूर्वक ऐरावत हाथीके दोनों दांत उखाड़ लिये; उस समयमें वह इन्द्रका हाथी आर्त नाद करता हुआ पृथ्वीपर गिरा तिस समय हमारा यह पराक्रम देखकर समस्त देवता लोगोंनें भय पाया ॥ ६ ॥ हमनें देवता लोगोंका गर्व हरण कियाहै, और रणभूमिमें दैत्योंका नाश करके उनकी स्त्रियोंको शोक उत्पन्न करायाहै; इस कारण ऐसे वीर्यशाली होकरभी किस कारण हम इन साधारण मनुष्य राजपुत्र राम लक्ष्मणसे युद्ध करनेंको समर्थ न होंगे ? ॥ ७ ॥

उजला व सुनहरी चँदोवा ऊपर तनरहाथा, और छःसो पिशाच उस प्रभावाली सभाकी सदां सुप्तभावसे रक्षा कर रहेथे ॥ १५ ॥ ऐसी विश्व कर्माकी बनाई सभामें महातेजस्वी रावण प्रवेश करता हुआ । तिसमें वैदूर्य मणिसे प्रियका नाम मृगका अतिकोमल चर्म लग रहाथा ॥ १६ ॥ ऐसे सीढ़ी लगेहुए परमासन पर रावण बैठा । तिसके पीछे रावण बहुतसे पराक्रमवान दूतोंको आज्ञा देनें लगा ॥ १७ ॥ कि तुमलोग लंकाके रहनेंवाले राक्षसोंको बहुतही शीघ्र हमारे पास ले आओ; कारणकि शत्रु लोगोंके साथ बड़े भारी कार्यमें हमको अड़ना पड़ैगा ॥ १८ ॥ दूतलोग राक्षसोंके स्वामी रावणकी ऐसी आज्ञा पाय कर लंकावासी राक्षसोंके स्थानोंमें प्रवेश करतेहुए विहारमें रत, शयन

विराजमानोवपुषारुक्मपट्टोत्तरच्छदाम् ॥ तांपिशाचशतैःषड्भिरभिगुप्तांसदाप्रभाम् ॥ १५ ॥ प्रविवेशमहाते
जाःसुकृतांविश्वकर्मणा ॥ तस्याःसवैदूर्यमयंप्रियकाजिनसंवृतम् ॥ १६ ॥ महत्सोपाश्रयंभेजेरावणःपरमास
नम् ॥ ततःशशासेश्वरवद्दूतांल्लघुपराक्रमान् ॥ १७ ॥ समानयतमेक्षिप्रमिहैतान्राक्षसानिति ॥ कृत्यमस्ति
महज्जानेकर्तव्यमितिशत्रुभिः ॥ १८ ॥ राक्षसास्तद्वचःश्रुत्वालंकायांपरिचक्रमुः ॥ अनुगेहमवस्थायविहारशयने
षुच ॥ १९ ॥ उद्यानेषुचरक्षांसिचोदयंतोह्यभीतवत् ॥ तेरथांतचराएकेदृप्तानेकेदृढान्हयान् ॥ नागानेकेऽधिरुरुहुर्ज
ग्मुश्चैकेपदातयः ॥ २० ॥ सापुरीपरमाकीर्णारथकुंजरवाजिभिः ॥ संपतद्भिर्विरुरुचेगरुत्मद्भिरिवांबरम् ॥ २१ ॥
तेवाहनान्यवस्थाययानानिविविधानिच ॥ सभांपद्भिःप्रविविशुःसिंहागिरिगुहामिव ॥ २२ ॥

किये हुए ॥ १९ ॥ उद्यानमें क्रीड़ाकरते हुए राक्षस लोगोंके निकट राक्षसेश्वर रावणकी आज्ञाका प्रचार करते हुए निडर होकर लंकामें घू मनें लगे, राक्षस लोग राक्षसनाथ रावणकी आज्ञाको जानकर कोई मनोहर रथपर चढ कोई अलग घोड़ेपर सवारहो, कोई हाथीपर चढ़ और कोई पैदलही चलनें लगे ॥ २० ॥ उसकालमें लंकापुरी, रथ, कुंजर और अश्व गणोंसे समाकीर्णहो गिरते हुए पक्षियोंसे व्याप्त आकाशमंडलकी समान शोभायमान हुई ॥ २१ ॥ तिसके पीछे समस्त सभाके द्वार पर पहुंच अपनी २ सवारियें छोड़. सिंह जिस प्रकार पर्वतकी गुफामें प्रवेश करता

जाना चाहतेहैं॥१३॥हे वडे भाई साहव! आपसे अधिक और क्या कहैं. धन, रत्न, वसन, भूषण, और मणिके सहित रामचंद्रजीको तुम सीता दे डालो, ऐसा होजाय तौ तुम स्वच्छन्द होकर अपनी इस लंकापुरीमें वसे रहौ॥ १४॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० यु० पंचदशः सर्गः॥ १५॥ जब धर्मात्मा विभीषणजीनें इस प्रकार अर्थ युक्त हितकारी वचन कहे तब रावणनें कालप्रेरितकी समान उनको यह कठोर वचन कहे॥ १॥ शत्रु अथवा क्रोधित सर्पके साथ एकत्र वास करले, परन्तु नाम मात्रके मित्र और शत्रुकी सेवा करनेंवाले इस प्रकारके मित्रके साथ कभी वास नहीं करना योग्यहै॥ २॥ हे बिभीषण त्रिलोकमें कौनसी वातको हमनहीं जानतेहैं, हम जातिवालोंका यह स्वभाव भली भांति जानतेहैं, कि

धनानिरत्नानिसुभूषणानिवासांसिदिव्यानिमणींश्चचित्रान् ॥ सीतांचरामायनिवेद्यदेवींवसेमराजन्निहवीतशोकाः ॥ १४ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेपंचदशःसर्गः ॥ १५ ॥ ॥ ७॥ सुनिविष्टंहितं वाक्यमुक्तवंतंबिभीषणम् ॥ अब्रवीत्परुषंवाक्यंरावणःकालचोदितः ॥ १ ॥ वसेत्सहसपत्नेनक्रुद्धेनाशीविषेणच ॥ नतुमित्रप्रवादेनसंवसेच्छत्रुसेविना २ ॥ जानामिशीलंज्ञातीनांसर्वलोकेषुराक्षस ॥ हृष्यंतिव्यसनेष्वेतेज्ञातीनांज्ञातयःसदा ॥ ३ ॥ प्रधानंसाधकंवैद्यंधर्मशीलंचराक्षस ॥ ज्ञातयोप्यवमन्यंतेशूरंपरिभवंतिच ॥ ४ ॥ नित्यमन्योन्यसंहृष्टाव्यसनेष्वाततायिनः ॥ प्रच्छन्नहृदयाघोराज्ञातयस्तुभयावहाः ॥ ५ ॥ श्रूयंतेहस्तिभिर्गीताःश्लोकाःपद्मवनेपुरा॥ पाशहस्तान्नरान्दृष्ट्वाशृणुष्वगदतोमम ॥ ६ ॥

बिरादरीमें एक आदमी पर विपद पडनेसे दूसरे आनंदित होतेहैं॥ ३॥ बिभीषण! जातिवाले लोग,—इसमेंभी प्रधान पंचगण, विद्वान धार्मिक और वीर पुरुषोंका निरादर करतेहैं और उनको परास्त करनेंके लिये वह लोग सदाही छिद्र ढूंड़ा करतेहैं॥ ४॥ जातिसे अधिक भयानक और कौनहै! इन बिरादरीके मनका भाव जानना अतिकठिनहै यह जातिरूपी आततायीगण परस्परमें विपद आई हुई देखकर परस्पर हर्ष प्रकाश किया करतेहैं ॥ ५ ॥ बहुत दिन हुए कुछ हाथी पद्मवनमें भ्रमण कर रहेथे उस कालमें उन्होंनें कई एक हाथी सवार देखे कि

के मुखसे कोई बात नहीं निकलतीथी। कारणकि वह उग्रवीर्यवाले राक्षस लोग पूर्ण मनोरथ होकरही मानों अपने स्वामी रावणका मुखदेख रहेथे॥२०॥ तिस कालमें उस सभामें विराजमान शस्त्रधारी सुन्दर चित्त राक्षस गणोंके बीचमें बैठा हुआ चिन्ता शील रावण सभाके मध्य वसु गणोंके बीचमें बैठे हुए इन्द्रकी समान शोभा धारण करता हुआ ॥ २१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥ तिसके पीछे संग्राममें जीतनेंवाला रावण समस्त सभाको देखकर सेनापति प्रहस्तको इस प्रकारसे आज्ञादेता हुआ ॥ १ ॥ हे सेनापते! अस्त्र शास्त्रके जाननेंवाले रथ. अश्व. गज. और पैदल. यह चार प्रकारके योधालोग जिस्से कि अति सावधानीसे नगरकी रक्षाकरें तुम उनको वैसाही

सरावणःशस्त्रभृतांमनस्विनांमहाबलानांसमितौमनस्वी ॥ तस्यांसभायांप्रभयाचकाशेमध्येवसूनामिववज्रहस्तः ॥
॥ २१ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०यु०एकादशःसर्गः ॥ ११ ॥ ॥ ७ ॥ ॥सतांपरिषदंकृत्स्नांसमीक्ष्यसमितिंजयः ॥
प्रबोधयामासतदाप्रहस्तंवाहिनीपतिम् ॥ १ ॥ सेनापतेयथातेस्युःकृतविद्याश्चतुर्विधाः ॥ योधानगररक्षायांतथाव्या
देष्टुमर्हसि ॥ २ ॥ सप्रहस्तःप्रणीतात्माचिकीर्षन्राजशासनम् ॥ विनिक्षिप्यबलंसर्वंबहिरंतश्चमंदिरे ॥ ३ ॥ ततोवि
निक्षिप्यबलंसर्वंनगरगुप्तये ॥ प्रहस्तःप्रमुखेराज्ञोनिषसादजगादच ॥ ४ ॥ विहितंबहिरंतश्चबलंबलवतस्तव ॥ कुरु
ष्वाविमनाःक्षिप्रंयदभिप्रेतमस्तिते ॥ ५ ॥ प्रहस्तस्यवचःश्रुत्वाराजाराज्यहितैषिणः ॥ सुखेप्सुःसुहृदांमध्येव्याज
हारसरावणः ॥ ६ ॥ प्रियाप्रियेसुखेदुःखेलाभालाभेहिताहिते ॥ धर्मकामार्थकृच्छ्रेषुयूयमर्हथवेदितुम् ॥ ७ ॥

उपदेश दो, कारणकि हमने दूतोंके मुखसे सुनाहै कि रामचंद्र समुद्रके तीर पर आगये ॥२॥ सावधान चित्त प्रहस्त राजाकी आज्ञा पालन करनें के लिये. राजपुरीके भीतर और बाहर यथा विधानसे सैनाको स्थापित करता हुआ॥ ३ ॥ तिसके पीछे नगरकी रक्षाके लिये अलग २ सैना नियत करकै फिर सन्मुख आयकर प्रहस्त यह बोला ॥ ४॥ हे राजन्! आपकी आज्ञानुसार हमने सब कार्य किया बलवान राक्षसोंकी सेना नगरीके भीतर बाहर रक्षा करनेंको स्थापित कर दीगई, इस समय मनकी घबडाहट छोडकरकर्त्तव्य कार्य जो कुछ हो उसको शीघ्र कीजिये॥ ५ ॥ सुखका चाहने वाला राजा रावण हित चाहने वाले प्रहस्तके वचन सुन सब सुहृद गणोंको पुकारकर यह बोला ॥ ६ ॥ कि विपदके समय प्रिय अप्रिय सुख दुःख हानि लाभ

उसके अन्तःकरणमें नहीं जमती ॥ ११ ॥ शरदकालका मेघ जिस प्रकार गर्जता और वर्षताहै, परन्तु उससे किसी प्रकारभी पृथ्वी नहीं भीजती वैसेही दुर्जनके साथ कितनीही मित्रता प्रगट की जाय वह वास्तवमें किसीफलकी न देनेवाली होकर केवल वृथा गर्जनें और वर्षनेंकी तुल्य होतीहै ॥ १२ ॥ जिसप्रकार भौंरा प्यासा होकर पुष्पोंसे इच्छानुसार मधु पानकर परितृप्त होनें पर फिर उन पुष्पोंपर क्षण भरके लियेभी नहीं बैठता इसीप्रकार दुर्जनके साथ मित्रता करनेंसे वह केवल अपनाही कार्य निकाल लेताहै. विभीषण! तुमभी ऐसेहीहो ॥१३॥ जिसप्रकार मधु लोभी भौंरा कांशफूल पर आप विशेष यत्नकरनेंपरभी मधुको नहीं प्राप्तहोता, वैसेही दुर्जनके साथ मित्रता करनेंसे उसके पाससे कोई फल

यथाशरदिमेघानांसिंचतामपिगर्जताम्॥ नभवत्यंबुसंक्लेदस्तथानार्येषुसौहृदम् ॥ १२ ॥ यथामधुकरस्तर्षाद्रसंविंदन्न तिष्ठति॥ तथात्वमपितत्रैवतथानार्येषुसौहृदम्॥ १३ ॥यथामधुकरस्तर्षात्काशपुष्पंपिबन्नपि॥ रसमत्रनविंदेततथाना र्येषुसौहृदम् ॥ १४ ॥ यथापूर्वंगजःस्नात्वागृह्यहस्तेनवैरजः ॥ दूषयत्यात्मनोदेहंतथानार्येषुसौहृदम् ॥ १५ ॥ योऽन्यस्त्वेवंविधंब्रूयाद्वाक्यमेतन्निशाचर ॥ अस्मिन्मुहूर्तेनभवेत्त्वांतुधिक्कुलपांसन ॥ १६ ॥ इत्युक्तःपरुषंवाक्यं न्यायवादीबिभीषणः ॥ उत्पपातगदापाणिश्चतुर्भिःसहराक्षसैः ॥ १७ ॥ अब्रवीच्चतदावाक्यंजातक्रोधोबिभीषणः ॥ अंतरिक्षगतःश्रीमान्भ्रातावैराक्षसाधिपम् ॥ १८ ॥

नहीं प्राप्त होता ॥ १४ ॥जिसप्रकार हाथी प्रथम जलमें स्नान करके फिर शुन्डसे धूरि फेंककर स्नानकृत निर्मलताका नाश करके अपने गातको मलीन करताहै, वैसेही दुर्ज्जनके साथ मित्रता करनेंसे वह अपना कार्यसिद्ध करलेनेपर स्वयंही पहले स्नेहको भूलकर मित्रताका नाश करले ताहै ॥ १५ ॥ हे कुलकलंक! तुझसे और अधिक क्या कहैं? तेरे जीवनको धिक्कारहै तू हमारा सगाभाई होंनेहीके कारण ऐसी बात कह कर अबतक जीवितहै,नहीं तो और कोई ऐसा कहता तो अबतक उसका हमनेंनाश कर दियाहोता॥१६॥न्याय वचन कहनें वाले विभीषणजी रावण करके इस प्रकार घोर वचनोंसे निन्दित होंनें पर गदा ग्रहण करके अपने चारमंत्रियोंके सहित आकाशमें उछल गये ॥ १७ ॥ और अत्यन्त क्रोधित होकर

वह प्रकाशमान अग्निकी समान दीप्तिमान और सूर्य किरणके समान प्रभायुक्तहैं उनकी आंख ऊंचीहैं, दोनो नेत्र सुन्दर और वदन रमणीकहैं॥१६॥ जिसके देखते ही हम उसके वशहो कामके पाले पडे हैं । इस विषयमें क्रोध व हर्ष बराबर होनेसे कुवर्ण हो जाते ॥ १७ ॥ व शोक संताप सदा होनेसे कामने हमको बहुत सतायाहै । उस स्त्री सीतानें हमसे एक वर्षकासमय माँगाहै ॥१८॥ वह विशाल नेत्र वाली जानकी अपने स्वामी रामचंद्र की राह परख रही है वह सुन्दर नेत्रवाली उस सीताकी प्रतिज्ञा हमने मानलीहै ॥ १९ ॥ इस समय हम मार्ग चलनेसे थके हुए घोडेकी समान कामकी ताडनासे अत्यन्त चलायमान हो गयेहैं । और वनवासी वानर गण किस प्रकारसे इस अक्षोभ्य समुद्रको तरेंगे ॥ २० ॥

हुताग्निरर्चिःसंकाशामेनांसौरीमिवप्रभाम् ॥ उन्नसंविमलंवल्गुवदनंचारुलोचनम् ॥ १६ ॥ पश्यंस्तदवशस्तस्याः कामस्यवशमेयिवान् ॥ क्रोधहर्षसमानेनदुर्वर्णकरणेनच ॥ १७ ॥ शोकसंतापनित्येनकामेनकलुषीकृतः ॥ सातुसं वत्सरंकालंमामयाचतभामिनी॥१८॥प्रतीक्षमाणाभर्तारंराममायतलोचना ॥ तन्मयाचारुनेत्रायाःप्रतिज्ञातंवचःशुभ म् ॥ १९ ॥ श्रांतोहंसततंकामाद्यातोहयइवाध्वनि ॥ कथंसागरमक्षोभ्यंतरिष्यंतिवनौकसः ॥ २० ॥ बहुसत्वझषा कीर्णंतौवादशरथात्मजौ ॥ अथवाकपिनैकेनकृतंनःकदनंमहत् ॥ २१ ॥ दुर्ज्ञेयाःकार्यगतयोब्रूतयस्ययथामति ॥ मानुषान्नोभयंनास्तितथापितुविमृश्यताम् ॥ २२ ॥ तदादेवासुरेयुद्धेयुष्माभिःसहितोऽजयम् ॥ तेमेभवंतश्चतथासु ग्रीवप्रमुखान्हरीन् ॥ २३ ॥ परेपारेसमुद्रस्यपुरस्कृत्यनृपात्मजौ ॥ सीतायाःपदवींप्राप्यसंप्राप्तौवरुणालयम् ॥ २४ ॥

और दशरथके पुत्र राम लक्ष्मणही बहुत मत्स्य व्यालोंसे युक्त किस प्रकारसे इसके पारहोंगे । अथवा जबकि एकही वानरनें इतना बड़ा हमारा अपमान किया ॥ २१ ॥ तब किस प्रकारसे उनके कार्यकी शांतिजानी जासकतीहै सो तुम लोग कहो; यद्यपि मनुष्योंसे हमको किसी प्रकारसे भयकी संभावना नहीं है, तथापि इस विषयमें जो कुछ कर्तव्यहै वह तुम लोग स्थिर करो ॥ २२ ॥ हमनें पहले देवासुर संग्राममें तुम लोगोंकी जय लक्ष्मी पाईथी, इस कारण आय पहुंचे हुए कार्यमें तुमलोग सहायता करो । कारणकि हमनें जानलियाहै कि सुग्रीवादि वानरोंको संग लिये ॥ २३ ॥ वह नृपकुमार राम लक्ष्मण समुद्रके उत्तर किनारेपर वह सीताका समाचार अपने दूतके मुखसे पाय समुद्रके उस पार आय

तौं उसको क्षमाकरदीजिये ॥ २५ ॥ लीजिये हम जाते हैं, आप हमको विदा देकर सुख प्राप्त कीजिये और राक्षसोंके सहित यह लंकापुरीभी सर्व प्रकारसे आपकी रक्षाकरै॥२६॥ हम तौ मंगलकी कामनासे आपको रोकते थे, परन्तु आपनें हमारे कहनेको न माना,महाराज! आयु वीत जानें पर लोग जिस प्रकार कालके वश होकर अपने इष्ट मित्रोंके कहे हुए वचनोंको किसी प्रकारसे नहीं मानते; हे राक्षसनाथ! अब तुम्हारीभी वही दशा आय पहुँची है, जो ऐसा न होता तौ हम सरीखे सुहृद् लोगोंके वचनोंका ऐसा अनादर क्यों कियाजाता? ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥ विभीषण राक्षसराज रावणको इस प्रकार घोर वचन कहकर

निवार्यमाणस्यमयाहितैषिणानरोचतेतेवचनंनिशाचर ॥ परांतकालेहिगतायुषोनराहितंनगृह्णंतिसुहृद्भिरीरितम् ॥ २६ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०युद्धकाण्डेषोडशःसर्गः ॥ १६ ॥ इत्युक्त्वापरुषंवाक्यंरावणंरावणानुजः ॥ आजगामसुहूर्तेनयत्ररामःसलक्ष्मणः ॥ १ ॥ तंमेरुशिखराकारंदीप्तामिवशतह्रदाम् ॥ गगनस्थंमहीस्थास्तेददृशुर्वानराधिपाः ॥ २ ॥ तेचाप्यनुचरास्तस्यचत्वारोभीमविक्रमाः ॥ तेपिवर्मायुधोपेताभूषणोत्तमभूषिताः ॥ ३ ॥ सचमेघाचलप्रख्योवज्रायुधसमप्रभः ॥ वरायुधधरोवीरोदिव्याभरणभूषितः॥४॥ तमात्मपंचमंदृष्ट्वासुग्रीवोवानराधिपः ॥ वानरैःसहदुर्धर्षश्चिंतयामासबुद्धिमान् ॥ ५ ॥ चिंतयित्वामुहूर्तंतुवानरांस्तानुवाचह ॥ हनूमत्प्रमुखान्सर्वानिदंवचनमुत्तमम् ॥ ६ ॥ एषसर्वायुधोपेतश्चतुर्भिःसहराक्षसैः ॥ राक्षसोऽभ्येतिपश्यध्वमस्मान्हंतुंनसंशयः ॥ ७ ॥

जिस स्थानमें श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके सहित विराजमानथे एक मुहूर्त्तभरमें वहां पहुँच गये ॥ १ ॥ वानरयूथपोंने पृथ्वीपरसे आकाशमें टिके हुए तेजसे प्रकाशमान सुमेरु पर्वतके शिखरकी समान उन विभीषणजीको देखा ॥ २ ॥ कवच वख्तर और शस्त्रधारी उत्तम भूषण भूषित पराक्रमशाली चार मंत्रियोंके सहित ॥ ३ ॥ उन मेघ और पर्वतकी समान, वज्रकी समान जिनके अंग प्रकाशमान श्रेष्ठ आयुध धारण किये दिव्य भूषण वस्त्रधारी॥४॥बुद्धिमान वानरराज सुग्रीवजी इन पांचजनोंको देख कर समस्त वानर गणोंके सहित चिन्ता करनें लगे॥५॥सुग्रीवजी इस प्रकार एक मुहूर्त्त भरतक चिन्ता करकै हनुमानादि वानरोंसे यह उत्तम वचन वोले॥६॥यह देखो हमको निश्चय जान पड़ताहै कि यह सब अस्त्र शस्त्रधारी

जो प्रथम करनें लायक कार्योंको पीछे और पीछे करनें लायक कार्योंको पहले कर डालतेहैं, वह राजा नीति और अनीतिको कुछभी नहीं जानता है॥३२॥हेमहाराज! राजाके पास अधिक सैना रहनेंहीसे विजय होतीहै,ऐसा नहींहै,परन्तु पक्षियोंनें जिसप्रकार स्वामिकार्तिकके किये रन्ध्रसे क्रौञ्च पर्वतको उलंघन कियाथा, वैसेही शत्रु राजा लोगभी अपने शत्रुके कार्ममें छिद्र देखतेही उसको कुछ नहीं समझतेहैं ॥ ३३ ॥ आपने परिणामका फल न विचार कर प्रबलकी स्त्रीके हरनेंका यह जो महा पापका कार्य कियाहै, तिससे विषका मिला हुआ मांस भोजन करतेही भोजन करनेंवालेके प्राणोंका विनाश कर डालताहै, वैसेही श्रीरामचंद्रजीनें उस समय जो आपके प्राणोंका संहार नहीं किया, यही आपके परम भाग्यकी बात

यःपश्चात्पूर्वकार्याणिकर्माण्यभिचिकीर्षति ॥ पूर्वंचापरकार्याणिसनवेदनयानयौ ॥ ३२ ॥ चपलस्यतुकृत्येषुप्रसमीक्ष्याधिकंबलम् ॥ छिद्रमन्येप्रपद्यंतेक्रौंचस्यखमिवद्विजाः ॥ ३३ ॥ त्वयेदंमहदारब्धंकार्यमप्रतिचिंतितम् ॥ दिष्ट्यात्वांनावधीद्रामोविषमिश्रमिवामिषम् ॥ ३४ ॥ तस्मात्त्वयासमारब्धंकर्मह्यप्रतिमंपरैः ॥ अहंसमीकरिष्यामिहत्वाशत्रूंस्तवानघ ॥ ३५ ॥ अहमुत्सादयिष्यामिशत्रूंस्तवनिशाचर ॥ यदिशक्रविवस्वंतौयदिपावकमारुतौ ॥ तावहंयोधयिष्यामिकुबेरवरुणावपि ॥ ३६ ॥ गिरिमात्रशरीरस्यमहापरिघयोधिनः ॥ नर्दतस्तीक्ष्णदंष्ट्रस्यबिभीयाद्वैपुरंदरः ॥ ३७ ॥ पुनर्मांसद्वितीयेनशरेणनहनिष्यति ॥ ततोहंतस्यपास्यामिरुधिरंकाममाश्वस ॥ ३८ ॥ वधेनवैदाशरथेःसुखावहंजयंतवाहर्तुमहंयतिष्ये ॥ हत्वाचरामंसहलक्ष्मणेनखादामिसर्वान्हरियूथमुख्यान् ॥ ३९ ॥

है ॥ ३४ ॥ परन्तु जबकि तुमनें इस अनुचित कार्यको करहीडाला, और शत्रुओंके सहित समर करनेंका विचार कर लिया, तब हमी उन शत्रुओंका संहार करके इस कार्यकी शान्ति करेंगे ॥ ३५ ॥ यदि इन्द्र, सूर्य,अग्नि, पवन, कुबेर, और वरुण तुम्हारे साथ शत्रुताई करें,तौभी हम उनके सहित संग्राम करनेंमें विमुख न होकर उन तुम्हारे शत्रुओंको मारही डालेंगे ॥ ३६ ॥तब वह हमारा यह पर्वताकार शरीर और तीक्ष्ण डाढें देखकर गर्जना सुनकर इन्द्रभी भयको प्राप्त होजायगा ॥ ३७॥ आप निश्चिन्त रहिये,रामचंद्र एक बाण छोडकर दूसरा बाण न छोड़नें पावेंगे;कि हम उनका रुधिर पान करलेंगे॥३८॥हम दशरथ कुमार राम लक्ष्मणका नाश करकै आपके प्रीति उपजानेंवाली विजयके लिये यत्न करेंगे और लक्ष्मणके सहित रामचंद्र

तिरस्कार कियाहै हम इसी कारणसे पुत्र परिवारको त्यागकर श्रीरामचंद्रजीकी शरणमें आयेहैं ॥ १६ ॥ महात्मा श्रीरामचंद्रजी सर्व लोकोंके शरण देनें वालेहैं; इस कारण आप महात्मा श्रीरामचंद्रजीसे निवेदनकरें कि विभीषण आयेहैं ॥ १७ ॥ तब वानरराज सुग्रीवजी विभीषणके वचन सुनकर शीघ्रही श्रीराम लक्ष्मणजीके निकट गये और क्रोधसहित कहनें लगे ॥ १८ ॥ हमको जान पड़ताहै, कि शत्रुकी ओरका कोई भेदिया असावधानीसे हमारी सेनामें प्रवेशकर आयाहै; इस कारण अवसर पानेंसे उल्लू जिस प्रकार कौओंको मार डालताहै, ऐसेही यह हम लोगोंको मारडालेगा ॥ १९ ॥ हे शत्रुतापन! जिस्से वानरलोगोंका मंगल हो ?आप इसी प्रकारसे कार्य अकार्यका विचार सेना सन्निवेश, उनको शिक्षा

निवेदयतमांक्षिप्रंराघवायमहात्मने ॥ सर्वलोकशरण्यायविभीषणमुपस्थितम् ॥ १७ ॥ एतत्तुवचनंश्रुत्वासुग्रीवोलघुविक्रमः ॥ लक्ष्मणस्याग्रतोरामंसंरब्धमिदमब्रवीत् ॥ १८ ॥ प्रविष्टःशत्रुसैन्यंहिप्राप्तःशत्रुरतर्कितः ॥ निहन्यादंतरंलब्ध्वाउलूकोवायसानिव ॥ १९ ॥ मंत्रेव्यूहेनयेचारेयुक्तोभवितुमर्हसि ॥ वानराणांचभद्रंतेपरेषांचपरंतप ॥ २० ॥ अंतर्धानगताह्येतेराक्षसाःकामरूपिणः ॥ शूराश्चनिकृतिज्ञाश्चतेषांजातुनविश्वसेत् ॥ २१ ॥ प्रणिधीराक्षसेंद्रस्यरावणस्यभवेदयम् ॥ अनुप्रविश्यसोस्मासुभेदंकुर्यान्नसंशयः ॥ २२ ॥ अथवास्वयमेवैषच्छिद्रमासाद्यबुद्धिमान् ॥ अनुप्रविश्यविश्वस्तेकदाचित्प्रहरेदपि ॥ २३ ॥ मित्राटविबलंचैवमौलभृत्यबलंतथा ॥ सर्वमेतद्बलंग्राह्यंवर्जयित्वाद्विषद्बलम् ॥ २४ ॥

देना. और शत्रु लोगोंकी सैनाका वृत्तान्त जाननेंके लिये दूत नियत कीजिये, इस्से अवश्य आपका मंगल होगा ॥ २० ॥ राक्षस लोग कामरूपी और अतिशय बलवान होते हैं, वह लोग गुप्तभावसे टिककर कूट उपायसे दूसरेका बुरा किया करतेहैं, इसलिये उन लोगोंके ऊपर विश्वास करना हम ठीक नहीं समझते ॥ २१ ॥ हमको तो यह विश्वास होताहै कि यह राक्षसराज रावणका गुप्त भेदिया है; यह हम लोगोंके बीचमें प्रवेश करकै निःसन्देह हम लोगोंमें परस्पर भेद डलवा देंगे ॥ २२ ॥ अथवा जबकि हम इसका विश्वास करकै जैसेही कि असावधान होंगे वैसेही यह बुद्धिमान हम लोगोंको मार डालेंगे ॥ २३ ॥ यदि कहो कि आया हुआ राक्षस जो कोईभी हो सेनाके बीचमें आनेहीसे हमारे बलकी वृद्धि करेगा

फिर आपके पास तो बलकीभी कमती नहींहै कारण कि महाबलवान कुम्भकर्ण और इन्द्रजीत हमारे सहायक हैं, तब तो हम वज्र हाथमें लिये इन्द्रकोभी पराजित कर सकतेहैं ॥ ६ ॥ हे राजन्! नीतिशास्त्रके जाननेंवाले पंडित लोगोंनें कार्यकी सिद्धिके लिये साम, दान, भेद, दंड यह चार प्रकारके उपाय स्थिर कियेहैं, तिसमें पिछले उपाय अर्थात् दंडको हम श्रेष्ठ मानतेहैं ॥ ७ ॥ हे महाबलवान! आपके शत्रुलोग जब इस लंकापुरीमें आजाँयगे तो इसमें कोई संशय न समझिये कि हम शस्त्रके प्रतापसे उनको अपनें वशमें करलेंगे ॥ ८ ॥ तब राक्षसराज रावण महापार्श्वके गर्व सहित यह वचन सुनकर उसकी प्रशंसा करताहुआ बोला ॥ ९ ॥ हे महापार्श्व ! तुमनें जो कुछ कहा ,वह सबही सत्य २ है,

कुंभकर्णःसहास्माभिरिंद्रजिच्चमहाबलः ॥ प्रतिषेधयितुंशक्तौसवज्रमपिवज्रिणम् ॥६॥ उपप्रदानंसांत्वंवाभेदंवाकुशलैः कृतम् ॥ समतिक्रम्यदंडेनसिद्धिमर्थेषुरोचये ॥७॥ इहप्राप्तान्वयंसर्वाञ्छत्रूंस्तवमहाबल ॥ वशंशस्त्रप्रतापेनकरिष्यामोनसंशयः ॥ ८ ॥ एवमुक्तस्तदाराजामहापार्श्वेनरावणः ॥ तस्यसंपूजयन्वाक्यमिदंवचनमब्रवीत् ॥९ ॥ महापार्श्वप्रवदतोरहस्यंकिंचिदात्मनः ॥ चिरवृत्तंतदाख्यास्येयदवाप्तंपुरामया ॥ १० ॥ पितामहस्यभवनंगच्छंतींपुंजिकस्थलीम् ॥ चंचूर्यमाणामद्राक्षमाकाशेग्निशिखामिव ॥ ११ ॥ साप्रसह्यमयाभुक्ताकृताविवसनाततः ॥ स्वयंभूभवनंप्राप्तालोलितानलिनीयथा ॥ १२ ॥ तच्चतस्यतथामन्येज्ञानमासीन्महात्मनः ॥ अथसंकुपितोवेधामामिदं वाक्यमब्रवीत् ॥ १३ ॥ अद्यप्रभृतियामन्यांबलान्नारींगमिष्यसि ॥ तदातेशतधामूर्धाफलिष्यतिनसंशयः ॥ १४ ॥

परन्तु जिस लिये जानकीको हमनें अबतक बलसे नहीं भोगा; उसका कोई गुप्त कारणहै; सो इसमें जो कुछ रहस्यहै, वह हम अभी तुमसे कहते हैं॥ १० ॥ हमनें एक दिन पुञ्जिकस्थली नाम एक अप्सराको ब्रह्माजीके निकट जाते देखा, इस अप्सराका शरीर अग्निकी शिखाके समान चमक ताथा ॥ ११ ॥ वह हमको देखतेही मानों आकाशमें मिलती हुईसी जानें लगी, तब हमनें बल पूर्वक उसे उसी समय नंगी करके भोगा, तब वह अप्सरा कमलनीकी समान कांपती हुई ब्रह्माजीके निकट पहुंची ॥ १२ ॥और ऐसा जान पड़ताहै, कि उसने ब्रह्माजीके निकट अपनी इस दुरअवस्थाकाभी सब वृत्तान्त कहाही होगा; तब ब्रह्माजीनें अत्यन्त क्रोधित होकर हमको यह शाप दिया ॥ १३ ॥ हे अधम ! यदि आजसे तू किसी

तिसके पश्चात् सर्व शास्त्रोंके जाननेंवाले मंत्री श्रेष्ठ हनुमानजी यह अर्थयुक्त मिताक्षर मधुर सन्दर्भ व श्रवण सुखकारी वचन कहनें लगे ॥ ५० ॥ कि हे वचन बोलनें वालोंमें श्रेष्ठ! आप अत्यन्त बुद्धि शक्ति सम्पन्न और समस्त शास्त्रोंके अर्थको निरूपण करनेंमें समर्थ हैं, हमको जान पडताहै कि यदि सुर सचिव बृहस्पतिजीभी परामर्श देनेंवाले हों तो वहभी आपको परामर्श नहीं दे सकते; वही क्या वरन कोई भी आपके वचनोंका अनादर नहीं कर सकता ॥ ५१ ॥ हे राजन्! हम तर्क करनेमें कुशल, मंत्रि पद वाच्य, अतिशय बुद्धिमान् या इच्छानुसार ऐसा नहीं करतेहैं, परन्तु इस बडे भारी कार्यके उपस्थित होनेंसे जब आपने सन्मान देकर पूछा तब हम आपके गौरवसे यह वचन कहते हैं ॥ ५२ ॥ हे महाराज! आपके अंगदादि मंत्री लोगोंनें विभीषणके दोष गुणकी परीक्षा करनेंके विषयमें, जो कुछ कहा इसमें दोषभी अनेकहैं।

अथसंस्कारसंपन्नोहनूमान्सचिवोत्तमः ॥ उवाचवचनंश्लक्ष्णमर्थवन्मधुरंलघु ॥ ५० ॥ नभवंतंमतिश्रेष्ठंसमर्थं वदतांवरम् ॥ अतिशाययितुंशक्तोबृहस्पतिरपिब्रुवन् ॥ ५१ ॥ नवादान्नापिसंघर्षान्नाधिक्यान्नचकामतः ॥ वक्ष्यामिवचनंराजन्यथार्थंरामगौरवात् ॥ ५२ ॥ अर्थानर्थनिमित्तंहियदुक्तंसचिवैस्तव ॥ तत्रदोषंप्रपश्यामिक्रियानह्युपपद्यते ॥ ५३ ॥ ऋतेनियोगात्सामर्थ्यमवबोद्धुंनशक्यते ॥ सहसाविनियोगोपिदोषवान्प्रतिभाति मे ॥ ५४ ॥ चारप्रणिहितंयुक्तंयदुक्तंसचिवैस्तव ॥ अर्थस्यासंभवात्तत्रकारणंनोपपद्यते ॥ ५५ ॥ अदेशकालेसंप्राप्त इत्ययंयद्विभीषणः ॥ विवक्षातत्रमेऽस्तीयंतांनिबोधयथामति ॥ ५६ ॥

विशेषता इस समय विभीषणके चरित्रादिकी परीक्षा करना ठीक नहीं हो सकेगा ॥ ५३ ॥ विभीषणको यहांपर बुलाकर उसका वृत्तान्त पूछनेकें अतिरिक्त उसके मनका भाव और बल व वीर्यादिका विषय कुछभी नहीं जाना जाय सकता, परन्तु सहसा आपके समीपभी उसको लाना अनुचित है ॥ ५४ ॥ दूत भेजनेंके संबंधमें आपके मंत्रियोंनें जो कुछ कहाहै, सो विना प्रयोजन हुए इसकीभी हम कुछ आवश्यकता नहीं देखते ॥ ५५ ॥ और जाम्बवान्‌जीनें जो " विभीषण राक्षस राजको शंकटमें पतित देखकरभी जबकि कुछ अवसरमें उसके अधिकारसे हमारे अधिकारमें आयाहै।" इत्यादि कहाहै; परन्तु विभीषण अनवसरमें जो रावणको परित्याग करके जिस कारणसे यहां आयाहै, उसके संबंधमें हम कुछ कहना

कहनें लगे ॥ १ ॥ हेमहाराज! आप किसलिये यह वक्षस्थल रूप फण, चिन्ता रूप विष, हास्य रूप तीक्ष्ण दंत, पंचाङ्गुलि रूप पांच शिर वाले बडे भारी सीता रूप सर्पको यहां पर लेआयेहैं? ॥ २ ॥ हेराजन्! जबतक पर्वतके शिखरकी समान और नख दांतको आयुध बनाये वानर गण लंकापुरीको न घेरलें,तिस्से प्रथमही आप श्रीरामचंद्रजीको सीता समर्पणकरदें॥३॥जबतक श्रीरामचंद्रजीके छोडे हुए वज्र समान और वायुकी समान वेगवान बाण राक्षस श्रेष्ठोंके मस्तकोंको न काट डालें तिससे प्रथमही आप रामचंद्रजीको जानकी देदें ॥४ ॥हे महाराज! जिस समय रामचंद्रजी युद्ध करेंगे, उस समय कुम्भकर्ण महापार्श, महोदर, अथवा अतिशय यह लोग कोईभी उनके सामनें खड़े नहोसकेंगे ॥ ५ ॥ यदि रामचंद्रजी

वृतोहिबाह्वंतरभोगराशिश्चिंताविषःसुस्मिततीक्ष्णदंष्ट्रः॥ पंचांगुलीपंचशिरोऽतिकायःसीतामहाहिस्तवकेनराजन्॥२॥
यावन्नलंकांसमभिद्रवंतिवलीमुखाःपर्वतकूटमात्राः ॥ दंष्ट्रायुधाश्चैवनखायुधाश्चप्रदीयतांदाशरथायमैथिली ॥ ३ ॥
यावन्नगृह्णंतिशिरांसिबाणारामेरिताराक्षसपुंगवानाम् ॥ वज्रोपमावायुसमानवेगाःप्रदीयतांदाशरथायमैथिली ॥४ ॥
नकुंभकर्णेंद्रजितौचराजंस्तथामहापार्श्वमहोदरौवा ॥ निकुंभकुंभौचतथातिकायःस्थातुंसमर्थायुधिराघवस्य ॥ ५ ॥
जीवंस्तुरामस्यनमोक्ष्यसेत्वंगुप्तःसवित्राप्यथवामरुद्भिः ॥ नवासवस्यांकगतोनमृत्योर्नभोनपातालमनुप्रविष्टः ॥ ६ ॥
निशम्यवाक्यंतुविभीषणस्यततःप्रहस्तोवचनंबभाषे ॥ ननोभयंविद्मनदैवतेभ्योनदानवेभ्योप्यथवाकदाचित्॥ ७॥
नयक्षगंधर्वमहोरगेभ्योभयंनसंख्येपतगोरगेभ्यः ॥ कथंनुरामाद्भविताभयंनोनरेंद्रपुत्रात्समरेकदाचित ॥ ८ ॥
प्रहस्तवाक्यंत्वहितंनिशम्यविभीषणोराजहितानुकांक्षी ॥ ततोमहार्थंवचनंबभाषेधर्मार्थकामेषुनिविष्टबुद्धिः ॥ ९ ॥

लंकामें आय पहुंचें तब चाहे आपकी रक्षा सूर्य और समस्त देवगणभी करें अथवा इन्द्र व यमका आश्रय ग्रहण करनें या आकाश पातालमें प्रवेश करनें परभी यहांसे तुम जीते हुए नहीं निकल सकोगे॥ ६ ॥ तिसके पीछे प्रहस्त विभीषणके ऐसे वचन सुनकर बोला कि "संग्रामके होनें पर हम कदाचित् न देव दानवोंसे भय करतेहैं ॥ ७ ॥ अधिक क्या कहैं जब कि, यक्ष गन्धर्व, उरग, अथवा पतंग श्रेष्ठ गणसेभी हमको भयकी संभावना नहीं, तब भला मनुष्य रामचंद्रसे हमको कौन भय होसकताहै "॥ ८ ॥ राजाके हित चाहनेंवाले, व धर्म, अर्थ, काम, इस त्रिवर्गके

का कोई लक्षण नहीं दिखाई देता; इस कारण उसके चरित्र संबंधमें हमको तो कोईभी संदेह नहीं है ॥ ६२ ॥ जिसके अंतःकरणमें कपट भरा होताहै, वह सावधान और अशंक होकर किसीप्रकारसे वचन नहीं कह सकता। सो हेमहाराज! जो विभीषण शठ होता तो कभी शंकारहित और सावधानीसे आपके निकट नहीं आय सकता,और उसके वचनोंमेंभी कोई दोष नहीं पायाजाता अत एव हमको तो उसके प्रति कोई सन्देह नहीं है॥६३॥ मनका भाव छिपानेंको कितनीही चेष्टा की जावे, परन्तु वह किसी प्रकारसे नहीं छिपसकती, कारणकि अंतःकरण शठतासे पूर्णहो या श्रेष्ठहो, वह सहसा प्रकाशित होहीजाताहै ॥ ६४ ॥ हेकार्य जाननेवालोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी! देशकालके संबंधमें विचार करके जो कार्य कियाहै, उसका परिणाम अवश्यही सफल होताहै, इस कारण, इन विभीषणका आना सफलहै ॥ ६५ ॥ कारणकि यह विभीषण आपको रावणके वधमें उद्यो

अशंकितमतिःस्वस्थोनशठःपरिसर्पति ॥ नचास्यदुष्टवागस्तितस्मान्मेनास्तिसंशयः ॥ ६३ ॥ आकारश्छाद्यमानोपि नशक्योविनिगूहितुम् ॥ बलाद्धिविवृणोत्येवभावमंतर्गतंनृणाम् ॥ ६४ ॥ देशकालोपपन्नंचकार्यंकार्यविदांवर ॥ सफलं कुरुतेक्षिप्रंप्रयोगेणाभिसंहितम् ॥ ६५ ॥ उद्योगंतवसंप्रेक्ष्यमिथ्यावृत्तंचरावणम् ॥ वालिनंचहतंश्रुत्वासुग्रीवंचाभिषेचितम् ॥ ६६ ॥ राज्यंप्रार्थयमानस्तुबुद्धिपूर्वमिहागतः ॥ एतावत्तुपुरस्कृत्यविद्यतेतस्यसंग्रहः ॥ ६७ ॥ यथाशक्ति मयोक्तंतुराक्षसस्यार्जवंप्रति ॥ प्रमाणंत्वंविशेषस्यश्रुत्वाबुद्धिमतांवर ॥ ६८॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० युद्धकाण्डे सप्तदशःसर्गः ॥ १७॥ ॥छ॥ अथरामःप्रसन्नात्माश्रुत्वावायुसुतस्यह ॥ प्रत्यभाषतदुर्धर्षः श्रुतवानात्मनिस्थितम् ॥ १ ॥

गी देख, रावणको बलगर्वित और पापकार्यमें लगा हुआ देख, वालिका नाश और सुग्रीवको राज्य पाये जान ॥ ६६ ॥ जिस प्रकारका वालिको मारकर आपने सुग्रीवको राज्य दियाहै वैसेही रावणका विनाश करके आप उसकोही लंकाका राज्यदेदेंगे, यही आशा करके विभीषण आपकी शरणमें आयेहैं; अतएव आदर मानसहित इनका ग्रहण करनाही कर्तव्यहै ॥६७॥हे बुद्धिमान्! हमनें विभीषणके चरित्रकी सरलताके संबंधमें अपनी शक्तिके अनुसार जो कुछ कहा, वह समस्तही आपनें श्रवण किया,अब जो कुछ कहना कर्तव्यहो वह आप लोग कीजिये ॥ ६८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये यु० सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥ तिसके पीछे सर्व शास्त्रोंके जाननेंवाले अजीत श्रीरामचंद्रजी यत्न

अतिकाय, अतिरथ, और अकम्पन, इनमेंसे कोईभी श्रीरामचंद्रजीके संग युद्ध करनेंका साहस न करेंगे ॥ १६ ॥ अधिक क्या कहैं हमारे राजाही कुबुद्धिके वश हुएहैं, और तुमही लोग इनके मित्ररूपी अमित्रहो,और तुम लोगों कीही सलाहसे राक्षस कुलका नाशहो जायगा ॥१७॥ हमारा तुम सबसे यही कहनाहै कि अनन्तबलयुक्त शरीरधारी हजार शिरवाले महा बलवान सर्पोंके मुखमें फँसे हुए रावणको किसीप्रकार मुख से निकलना बताओ अर्थात् रामचंद्रजी इन्हें माराही चाहते हैं, तुम लोग बचाओ ॥ १८ ॥ जिसप्रकार किसी पुरुषको भूत लगनेंपर उसके सुहृद लोग केश ग्रहणादिरूप दंड देकर उसकी रक्षा करतेहैं ऐसेही तुम सब लोगोंको मिलकर रावणकी रक्षा करनी चाहिये ॥ १९ ॥ प्रहस्त! सुचरित्र

अयंचराजाव्यसनाभिभूतोमित्रैरमित्रप्रतिमैर्भवद्भिः॥अन्वास्यतेराक्षसनाशनार्थैतीक्ष्णःप्रकृत्याह्यसमीक्ष्यकारी १७॥ अनंतभोगेनसहस्रमूर्ध्नानागेनभीमेनमहाबलेन ॥ बलात्परिक्षिप्तमिमंभवंतोराजानमुत्क्षिप्यविमोचयंतु ॥ १८॥ यावद्धिकेशग्रहणात्सुहृद्भिःसमेत्यसर्वैःपरिपूर्णकामैः ॥ निगृह्यराजापरिरक्षितव्योभूतैर्यथाभीमबलैर्गृहीतः ॥ १९॥ सुवारिणाराघवसागरेणप्रच्छाद्यमानस्तरसाभवद्भिः ॥ युक्तस्त्वयंतारयितुंसमेत्यकाकुत्स्थपातालमुखेपतन्सः ॥ २० ॥ इदंपुरस्यास्यसराक्षसस्यराज्ञश्चपथ्यंससुहृज्जनस्य ॥ सम्यग्घिवाक्यंस्वमतंब्रवीमिनरेंद्रपुत्रायददातुमैथिलीम् ॥ ॥ २१ ॥ परस्यवीर्यंस्वबलंचबुद्ध्वास्थानंक्षयंचैवतथैववृद्धिम् ॥ तथास्वपक्षेप्यनुमृश्यबुद्ध्यावदेत्क्षमंस्वामिहितंस मंत्री ॥ २२ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेचतुर्दशःसर्गः ॥ १४ ॥ छ ॥

रूप जलपूर्ण रामचंद्ररूप समुद्रकी तरंगसे ढका हुआ, काकुत्स्थ रूप पातालमें यह रावण गिराही चाहताहै, सो इस राक्षसकी यत्नसे तुमलोग रक्षाकरलो ॥ २० ॥ हम इस लंका पुरीके राक्षस राजके व इनके सुहृद और सबही राक्षसोंके हितार्थ कहते हैं कि—राक्षसराज श्रीरामचंद्रजीको सीताजी देडालें ॥ २१ ॥ जो मंत्री विचार करके, शत्रुकी औरका अपनी ओरका वीर्य.और बल क्षय, इन बातोंके विषयमें भलीभांति शोच विचार और परामर्श करके अपने स्वामीको हितकी बात कहतेहैं वही यथार्थ मंत्रीहैं॥२२॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा०आ०यु०चतुर्दशःसर्गः ॥१४॥

कालतक वृद्धजनोंकी सेवा किये, और शास्त्रोंके विना पढ़े सुने कोईभी ऐसे वचन कहनेंको समर्थ नहीं हो सकता ॥ ८ ॥ सुग्रीवजीनें विभीषणका एक दोष जो बताया कि इसनें अपने भाईको छोड़ दियाहै,तिसका संबंधभी सर्वभूपसाधारण प्रत्यक्ष सर्वलोकप्रसिद्ध और प्रथमसे सूक्ष्मतर औरभी कुछ कहनाहै ॥ ९ ॥ पंडित लोग–जाति और निकटरहनेंवाले दूसरे राजाकोही शत्रु बतायकर कीर्तन किया करते हैं, कारण कि संकट पड़नेंसे, यही लोग राजाका नाश करनेंकी चेष्टा किया करतेहैं,हे लक्ष्मण! रावणका भ्राता विभीषणभी राक्षसोंके स्वामी रावणको संकटमें पड़ा हुआ देखकर उसका नाश करानेंके लियेही यहां पर आयाहै। जबकि यह विभीषण अपनी जातिके शत्रु रावणके भयसे यहां पर आया है, यदि यह अपनेभाईसे प्रीतिकर उसके प्रेरणाकिये यहां पर आते तौकोई विश्वासघातकता दोषोंकी सम्भावना होसकती, यह तौ पापचारी

अस्तिसूक्ष्मतरंकिंचिद्यथात्रप्रतिभातिमा ॥ प्रत्यक्षंलौकिकंचापिवर्ततेसर्वराजसु ॥ ९ ॥ अमित्रास्तत्कुलीनाश्चप्रातिदेश्याश्चकीर्तिताः ॥ व्यसनेषुप्रहर्तारस्तस्मादयमिहागतः ॥ १० ॥ अपापास्तत्कुलीनाश्चमानयंतिस्वकान्हितान् ॥ एषप्रायोनरेंद्राणांशंकनीयस्तुशोभनः॥११॥ यस्तुदोषस्त्वयाप्रोक्तोह्यादानेरिबलस्यच॥तत्रतेकीर्तयिष्यामियथाशास्त्रमिदंशृणु ॥१२॥नवयंतत्कुलीनाश्चराज्यकांक्षीचराक्षसः ॥ पंडिताहिभविष्यंतितस्माद्ग्राह्योविभीषणः॥१३॥

अपने भ्राताके आचरणसे विरुद्ध होंनेके कारण उससे निकाले जाकर यहां आये हैं इस कारण हम इनमें किसी प्रकारकाभी दोष नहीं देखते ॥ १० ॥ जातिवाले लोग चाहै कितनेही निष्पाप हों परन्तु अपना हितसाधनेंकी सदाही चेष्टा किया करते हैं; इस कारण जातिवाले लोग हितकारी होंने परभी राजाके शंका दिलानेंवाले होते ही हैं॥ ११ ॥ हे सुग्रीव! तुमनें शत्रुकी सैना साथ रखनेंमें जो दोष बतायेहैं, हम उसके संबंधमेंभी यह नीतिशास्त्र सम्मत उत्तर देतेहैं, तुम सुनो ॥ १२ ॥ हम विभीषणके जातिवाले नहीं हैं, इस कारण वह हमारा नाश करके हमारा राज्य अधिकार करनेंको यहां नहीं आयेहैं; वरन अपने भ्राताका विनाश कराय उसका राज्य पानेंकी आशासे हमारे पास आये हैं हमको ज्ञात होताहै कि विभीषण कार्य अकार्यके विचार करनेंमें समर्थहैं इस कारण इनका ग्रहण करनाही योग्यहै ॥ १३ ॥

धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ विभीषणजी इन्द्रके समान अजेय महातेजस्वी इन्द्रजीतके यह वचन सुनकर महाअर्थयुक्त वचन कहनेंलगे ॥८॥ हे पुत्र ! तुम कार्य अकार्यका विचार करनेंमें अत्यन्त अज्ञानीहो कारण कि अबतक तुम्हारी बुद्धि बालककी समान पकी नहींहैं; इस कारण तुम अपना नाश करनेंके अर्थही ऐसे प्रलाप वचन कह रहेहो॥ ९ ॥ मेघनाद ! तुम नाममात्रको रावणके पुत्र और अत्यन्त सुहृदहो, परन्तु वास्तवमें तुम इनके परमशत्रुहो कारण कि राक्षसराजको घोर विपदमें पडे हुए देखकरभी तुम उनको निवारण नहीं करते॥ १० ॥ इन्द्रजीत ! तुमने जो खोटे मंत्रके

अथेंद्रकल्पस्यदुरासदस्यमहौजसस्तद्वचनंनिशम्य ॥ ततोमहार्थंवचनंबभाषेविभीषणःशस्त्रभृतांवरिष्ठः ॥ ८ ॥
नतातमंत्रेतवनिश्चयोस्तिबालस्त्वमद्याप्यविपक्वबुद्धिः ॥ तस्मात्त्वयाप्यात्मविनाशनायवचोऽर्थहीनंबहुविप्रलप्त
म् ॥ ९ ॥ पुत्रप्रवादेनतुरावणस्यत्वमिंद्रजिन्मित्रमुखोसिशत्रुः ॥ यस्येदृशंराघवतोविनाशंनिशम्यमोहादनुमन्यसेत्व
म् ॥ १० ॥ त्वमेववध्यश्चसुदुर्मतिश्चसचापिवध्योयइहानयत्त्वाम् ॥ बालंदृढंसाहसिकंचयोऽद्यप्रावेशयन्मंत्रकृतां
समीपम् ॥ ११ ॥ मूढोऽप्रगल्भोऽविनयोपपन्नस्तीक्ष्णस्वभावोल्पमतिर्दुरात्मा॥ मूर्खस्त्वमत्यंतसुदुर्मतिश्चत्वमिंद्रजि
द्बालतयाब्रवीषि ॥ १२ ॥ कोब्रह्मदंडप्रतिमप्रकाशानर्चिष्मतःकालनिकाशरूपान् ॥ सहेतबाणान्यमदंडकल्पान्सम
क्षमुक्तान्युधिराघवेण ॥ १३ ॥

यह वचन कहे, तिससे हमारे मतसे तुम मार डालनेके योग्यहो और जिसनें ऐसे चपल चित्त बालकको यहां लाकर मंत्रियोंके बीचमें परामर्श करनेंको बुलाया, उसकोभी मार डालना उचितहै ॥ ११ ॥ हे मेघनाद ! तुम कार्य अकार्यका विचार नहीं जानते, बडे बोलनेंवाले विनय रहित तीक्ष्ण स्वभाव अदीर्घदर्शी, मूर्ख, दुर्मति और दुरात्माहो; इसी कारणसे बालककी समान ऐसा कहतेहो ॥ १२ ॥ जब श्रीरामचंद्रजी रण भूमिमें खडे होकर ब्रह्मदंडकी समान, व कालाग्निकी समान प्रकाशित तीखे बाण छोडेंगे, तब उन बाणोंको कौन सहनेंमें समर्थ होगा यह हम

विशारद श्रीरामचंद्रजीसे ऐसा कहकर मौन हुए ॥ २० ॥ श्रीरामचंद्रजी वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजीके यह वचन सुन एक क्षणभर चिन्ताकरकै वानर राज सुग्रीवजीसे यह शुभ वचन बोले ॥२१॥ हे सुग्रीव! राक्षस विभीषण दुष्टहो अथवा भलाहो, परन्तु यह हमारा कुछभी बुरा नहींकर सकता ॥२२॥ हे वानरराज! एक साधारण राक्षस विभीषणकी क्या चलाई, यदि हम इच्छा करें तौ क्षणभरमेंही पृथ्वीके समस्त पिशाच, दानव, यक्ष, और राक्षसोंके उंगलीके पोरू ऐसेही संहार कर सकतेहैं ॥ २३ ॥ और तुमनें शत्रुसेनाके ग्रहण करनेंमें जो दोष बतायाहै, इसके संबंधमें हमनें एक इतिहास सुनाहै; वह तुम्हें सुनातेहैं, कि एक समय कोई व्याधा अपनी स्त्रीको घरसे निकालकर कबूतरके घोसलेसे युक्त एक पेड़के नीचे आया और उस समय वर्षा होरहीथी महाशीत पड़ रहाथा उस कबूतरकी कबूतरीको उसने पहले जंगलमें पकड़ लियाथा भूख प्यास और जाड़ेसे

ससुग्रीवस्यतद्वाक्यंरामःश्रुत्वाविमृश्यच ॥ ततःशुभतरंवाक्यमुवाचहरिपुंगवम् ॥ २१ ॥ सदुष्टोवाप्यदुष्टोवाकिमेषरजनीचरः ॥ सूक्ष्ममप्यहितंकर्तुंममशक्तःकथंचन ॥२२॥ पिशाचान्दानवान्यक्षान्पृथिव्यांचैवराक्षसान् ॥ अंगुल्यग्रेणतान्हन्यामिच्छन्हरिगणेश्वर ॥ २३ ॥ श्रूयतेहिकपोतेनशत्रुःशरणमागतः ॥ अर्चितश्चयथान्यायंस्वैश्चमांसैर्निमंत्रितः ॥ २४ ॥ सहितंप्रतिजग्राहभार्याहर्तारमागतं ॥ कपोतोवानरश्रेष्ठकिंपुनर्मद्विधोजनः ॥ २५ ॥ ऋषेःकण्वस्यपुत्रेणकंडुनापरमर्षिणा ॥ शृणुगाथापुरागीताधर्मिष्ठासत्यवादिना ॥ २६ ॥

व्याधा व्याकुलथा कबूतरनें आश्रममें आये हुए उस शत्रुको शीतसे आरत देख अग्नि लाय शीत निवारण कर साध्यानुसार उसकी सेवा करकै पीछे उसकी क्षुधा निवारण करनेंको अपना मांसतक देदेताहुआ अर्थात् उस अग्निमें कूद पड़ा और शरणागत वत्सलताके कारण विमानमें बैठ स्वर्गको गया यह देख व्याधेको ज्ञान हुआ तब वह कबूतरीको छोड़ तप करने गया और कबूतरीभी उसी अग्निमें प्राण त्याग स्वर्गको गई ॥ २४ ॥ हेवानरश्रेष्ठ सुग्रीव! जबकि जड़जीवनेंभी भार्याके मार डालनेंवाले शरणमें आये शत्रुका निरादर न करके यथा विधिसे उसका सन्मानही किया, फिर भला हम क्षत्रिय होकर किस प्रकारसे शरणमें आये शत्रुका अनादर करैं ॥ २५ ॥ प्रथम महर्षि कण्वजीके पुत्र सत्यवादी महर्षि

जिनके हाथमें फंदेभीथे उन हाथियोंने इनको देखकर विरादरी वालोंके संबंधमें कुछ श्लोक कहेथे जो कि तुमसे वर्णन करते हैं * ॥ ६ ॥ उन्होंने कहाथा कि हम अग्नि, पाश, अथवा और शस्त्रोंके देखनेंसे नहीं डरते, परन्तु इन स्वार्थपर जातिवाले लोगोंको देखकर हमें अत्यन्त भय लगताहै ॥ ७ ॥ कारण कि यह जातिवालेही हाथी पकड़नेंवालोंको बताय देतेहैं; इसही कारणसे कहते हैं समस्त भय और समस्त कष्टोंके जातिवाले कारणहैं ॥ ८ ॥ हमनें सैकड़ों वार देखाहै कि जगत्में जितनेप्रकारके भयहैं, उनमें जातिवालोंसे भय होताहै, उसकाही परिणाम विशेष कष्टभारी होताहै, जैसे गायोंमें हव्य कव्यादिके लिये दुग्ध, स्त्रियोंमें चंचलता. और ब्राह्मण लोगोंमें तपस्या होतीहै, इसी प्रकार निःसन्देह जाति वाले लोगोंसे सदा भय रहताही है ॥ ९ ॥ हे बिभीषण! हमनें जो शत्रु गणोंको पराजित करके अतुलनीय ऐश्वर्य प्राप्तकिया है, व तीनों लोक हमारा

नाग्निर्नान्यानिशस्त्राणिननःपाशाभयावहाः ॥ घोराःस्वार्थप्रयुक्तास्तुज्ञातयोनोभयावहाः ॥ ७ ॥ उपायमेतेवक्ष्यंतिग्र हणेनात्रसंशयः ॥ कृत्स्नाद्भयाज्ज्ञातिभयंसुकृष्टंविदितंचनः ॥ ८ ॥ विद्यतेगोषुसंपन्नंविद्यतेज्ञातितोभयम् ॥ विद्यते स्त्रीषुचापल्यंविद्यतेब्राह्मणेतपः ॥ ९ ॥ ततोनेष्टमिदंसौम्ययदहंलोकसत्कृतः ॥ ऐश्वर्यमभिजातश्चरिपूणांमूर्ध्निचस्थि तः ॥ १० ॥ यथापुष्करपत्रेषुपतितास्तोयबिंदवः ॥ नश्लेषमभिगच्छंतितथानार्येषुसौहृदम् ॥ ११ ॥

आदर करतेहैं. सो हे सौम्य! हम जानतेहैं कि हमारा यह सौभाग्य तुम्हारे असंतोषका अत्यन्तही कारण हुआहै ॥ १० ॥ जैसे कमलके पत्तेपर जलकी बूंदें गिरनें पर वह किसी प्रकार उसपत्रपर नहीं ठहर सकती हैं, वैसेही क्रूर स्वभाववाले पुरुषके साथ मित्रता करनेंसे वह मित्रता किसी प्रकार

---

* जाति वालोंके सम्बन्धमें एक औरभी किंवदन्ती प्रसिद्धहै कि एक समय एक सघनवनमें होकर कई एक गाडियें जाय रहीथीं इन सब गाडियोंमें केवल कुल्हाडियें भरी हुईथीं। जिनको देखकर वनके वृक्ष अतिघबडाये और बोले कि अब एक वृक्षभी इस वनका न बचेगा हा! हमारे भाग्यही ऐसे हैं, उस समय किसी दूसरे वृक्षनें कहा कि भाई जबतक हमारे जातिवाले इन कुल्हाडियोंकी सहायता नहीं करते, तब तक कुछ यह हमारा नहीं कर सकतीं। अर्थात् जब हमारी जातिवाले वृक्षोंके बेटे इन कुल्हाडियोंमें पड़ेंगे तब यह हमको काटनेंमें समर्थ होंगी। बस जातिवालेही समस्त अनर्थके मूलहैं।

आपकी शरण आया" यह वचन कहकर हमारी शरणमें आवैगा, वह कोईभी क्यों नहो; हम उसी समय उसको अभय दानं देदेंगे ❋॥३३॥ हे वानरश्रेष्ठ सुग्रीव! आया हुआ पुरुष विभीषणहो, अथवा स्वयं रावणहीहो, तथापि हम अभयप्रदान करतेहैं कि तुम शीघ्र उसको हमारे निकट लेआओ ॥ ३४ ॥ वानरराज सुग्रीवजी श्रीरामचंद्रजीके ऐसे वचन सुनकर सौहार्दभावसे परिपूरितहो इस प्रकार श्रीराघवजीको उत्तर देते हुए ॥ ३५ ॥ हे धर्मज्ञ! आप वीर्यवान और राजसमूहोंके शिरोमणि स्वरूपहैं, इस कारण साधुसेवित मार्गका आश्रय लेकर आप इस प्रकारकी कल्याणजनक आज्ञा देंगे; इसमें विचित्रताही क्याहै? ॥ ३६ ॥ एकतो परम चतुर हनुमानजीनें भावरूप और अनुमानसे विभीषणके

आनयैनंहरिश्रेष्ठदत्तमस्याभयंमया ॥ विभीषणोवासुग्रीवयदिवारावणःस्वयम् ॥ ३४ ॥ रामस्यतुवचःश्रुत्वासुग्रीवः प्लवगेश्वरः ॥ प्रत्यभाषतकाकुत्स्थंसौहार्देनाभिपूरितः ॥ ३५ ॥ किमत्रचित्रंधर्मज्ञलोकनाथशिखामणे ॥ यत्त्वमार्यं प्रभाषेथाःसत्ववान्सत्पथेस्थितः ॥ ३६ ॥ ममचाप्यंतरात्मायंशुद्धंवेत्तिविभीषणम् ॥ अनुमानाच्चभावाच्चसर्वतःसुपरीक्षितः॥३७॥तस्मात्क्षिप्रंसहास्माभिस्तुल्योभवतुराघव॥विभीषणोमहाप्राज्ञःसखित्वंचाभ्युपैतुनः॥३८॥ ततस्तुसुग्रीववचोनिशम्यतद्धरीश्वरेणाभिहितंनरेश्वरः ॥ विभीषणेनाशुजगामसंगमंपतत्रिराजेनयथापुरंदरः ॥ ३९ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० यु० अष्टादशःसर्गः ॥ १८ ॥ ॥ छ ॥

चरित्रकी परिक्षाकी दूसरे आपके वचन सुनकर अब हमारा अंतःकरणभी विभीषणको शुद्ध स्वभाव समझताहै ॥ ३७ ॥ इस कारण हेश्रीरामचंद्रजी! महाप्राज्ञ विभीषणजी हमारे तुल्य होवें, और हम लोगोंके साथ उनकी मित्रताई स्थापित कराई जावे ॥ ३८ ॥ तब नरेन्द्रजीभी सुग्रीवजीके यह पुनीत वचन सुनकर इन्द्र जिसप्रकार पक्षिराज गरुडजीके साथ शोभायमान हुएथे, वैसेही राक्षसराज विभीषणके साथ मिलकर शोभायमान हुए ॥ ३९ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० युद्धकांडे अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

॥ ३९ ॥

*दोहा-शरणागतको जे तजहिं, निज अनहित अनुमान । ते नर पामर पापमय, तिनहि विलोकत हान ॥ चौपाई-कोटि विप्र वध लागहिं जाहू । आये शरण तजौं नहिं ताहूं ॥

आकाशमें टिककर अपनें भ्राता राक्षसराज रावणसे कहनें लगे ॥१८॥ हेमहाराज! आप बड़े भ्राता होनेंके कारण पिताकी समान माननें लायकहैं,इस लिये आप जो कुछभी कहैं वह समस्तही हमको सहन करलेना चाहिये, परन्तु आप धर्मका मार्ग परित्याग करके परदारहरणादि रूप घोर अधर्मके आचरण करनेलगेहैं इसी कारणसे बडे भाई होंनेपरभी आज हम आपके यह घोर वचन न सह सके ॥ १९ ॥ हेवीर! हमनें हितक कामनासे तुमको हितकी वार्त्ता कहीथी परन्तु कालके वशको प्राप्त होकर तुमनें हमारे वचन नहीं सुने,यथार्थमें जिस पुरुषकी मृत्यु निकट आतीहै, उसकी यही दशा होतीहै जो तुम्हारीहै ॥ २० ॥ हे महाराज! सदा मीठी बात कहनेंवाले अनेकहैं, परन्तु श्रवण करनेंको अप्रिय और परिणाम में शुभदायक वचनोंके कहनें वाले और श्रवण करनेंवाले दोनोंही दुर्लभ हैं ॥ २१ ॥ जिस प्रकार घरमें आग लग जानें पर फिर उसकी आग

सत्वंभ्रांतोसिमेराजन्ब्रूहिमांयद्यदिच्छसि ॥ ज्येष्ठोमान्यःपितृसमोनचधर्मपथेस्थितः ॥ इदंहिपरुषंवाक्यंनक्षमाम्य ग्रजस्यते ॥ १९ ॥ सुनीतंहितकामेनवाक्यमुक्तंदशानन ॥ नगृह्णंत्यकृतात्मानःकालस्यवशमागताः ॥ २० ॥ सुलभाःपु रुषाराजन्सततंप्रियवादिनः॥अप्रियस्यचपथ्यस्यवक्ताश्रोताचदुर्लभः ॥ २१ ॥ बद्धंकालस्यपाशेनसर्वभूतापहारिणः ॥ ननश्यंतमुपेक्षेत्वांप्रदीप्तंशरणंयथा ॥२२॥ दीप्तपावकसंकाशैःशितैःकांचनभूषणैः॥नत्वामिच्छाम्यहंद्रष्टुंरामेणनिहतं शरैः ॥ २३ ॥ शूराश्चबलवंतश्चकृतास्त्राश्चनरारणे ॥ कालाभिपन्नाःसीदंतियथावालुकसेतवः ॥ २४ ॥ तन्मर्षयतुयच्चोक्तं गुरुत्वाद्धितमिच्छता ॥ आत्मानंसर्वथारक्षपुरींचेमांसराक्षसाम्॥स्वस्तितेऽस्तुगमिष्यामिसुखीभवमयाविना॥ २५ ॥

बुझानेंमें आलस्य नहीं करना चाहिये, वैसेही आपको सब प्राणियोंके नाशकरनें वाले कालकी फांसीमें बँधकर नष्ट होते देखकरही हमनें ऐसे हितकारी वचन कहेथे ॥ २२ ॥ महाराज! हम तुम्हें रामचंद्र करके प्रदीप्त अग्निकी समान सुवर्णभूषित तीखे बाणोंसे मरा हुआ देखनेकी इच्छा नहीं करते इसी कारणसे हमनें इस प्रकारके हित वचन कहेथे ॥ २३ ॥ रेतेका पुल चाहे कितनाही दृढ़ क्यों न होवे, वर्षा कालके आतेही वह टूट जाताहै, वैसेही पुरुष कितनाही बलवान अस्त्रका जाननेंवाला और शूर क्यों नहो कालके आनेही पर उसका विनाश होजाताहै ॥ २४ ॥ हे महाराज! जो कुछभी हो तुम स्वामी हो गुरुहो हमने आपके हितकी कामनासे जो कुछभी कहाहै यदि उसमें कोई अपराध आपने पायाहो

श्रीरामचंद्रजीनें जब ऐसा कहा तब राजा बिभीषण रावणका बल विस्तारसहित वर्णन करनें लगे ॥ ८ ॥ हे राजकुमार! ब्रह्माजीके वरदानके प्रभावसे रावण,—गन्धर्व, उरग और पक्षी इत्यादिक सबसेही अवध्यहै ॥ ९ ॥ रावणसे छोटा वीर्यवान महा तेजस्वी और युद्धमें देवराज इन्द्रजीके समान पराक्रमी कुम्भकर्ण नामक हमारा एक और बडा सहोदरहै ॥ १० ॥ हे रघुनंदन! कैलास पर्वतपर मणिभद्रनामक महादेवजीके गणको युद्ध करके हरायाथा, वही प्रहस्त नामक राक्षस रावणका सैनापतिहै; कदाचित् इसका नाम आपने सुनाही होगा ॥ ११ ॥ गोधारूप अंगुलीत्राण धारी इन्द्रजीत मेघनाद कवचविहीन होकरभी धनुष बाण हाथमें ले रणभूमिमें टिका रहकर इच्छानुसार अदृश्यभी होसकताहै ॥ १२ ॥

अवध्यःसर्वभूतानांगंधर्वोरगपक्षिणाम् ॥ राजपुत्रदशग्रीवोवरदानात्स्वयंभुवः ॥ ९ ॥ रावणानंतरोभ्राताममज्ये
ष्ठश्चवीर्यवान् ॥ कुंभकर्णोमहातेजाःशक्रप्रतिबलोयुधि ॥ १० ॥ रामसेनापतिस्तस्यप्रहस्तोयदितेश्रुतः ॥ कैलासेये
नसमरेमणिभद्रःपराजितः ॥ ११ ॥ बद्धगोधांगुलित्रश्चअवध्यकवचोयुधि ॥ धनुरादाययस्तिष्ठन्नदृश्योभवतींद्र
जित् ॥ १२॥ संग्रामेसुमहद्व्यूहेतर्पयित्वाहुताशनम् ॥ अंतर्धानगतःश्रीमानिंद्रजिद्धंतिराघव ॥ १३॥ महोदरमहापार्श्वौ
राक्षसश्चाप्यकंपनः ॥ अनीकपास्तुतस्यैतेलोकपालसमायुधि ॥ १४ ॥ दशकोटिसहस्राणिरक्षसांकामरूपिणाम् ॥
मांसशोणितभक्ष्याणांलंकापुरनिवासिनाम् ॥ १५ ॥ सतैस्तुसहितोराजालोकपालानयोधयत् ॥ सहदेवैस्तुते
भग्नारावणेनदुरात्मना ॥ १६ ॥

हे राघव! इन्द्रजित् यज्ञद्वारा हुताशनको तृप्त करताहुआ अत्यन्त बड़ी व्यूहयुक्त रण भूमिसे अन्तर्ध्यान होकर अन्तरिक्षमें अदृश्य भावसे शत्रुओंके ऊपर प्रहार किया करता है ॥१३॥ जो कि युद्धमें बल लोकपालोंकी समान प्रगट किया करते हैं ऐसे महोदर, महापार्श्व, और अकम्पन इत्यादि राक्षसगण रावणके सैनापति हैं ॥ १४ ॥ हे महाराज! राक्षसराजा रावण; मांस रुधिर भक्षण करनेंवाले इच्छानुसार रूप धारण करनेंवाले एक अरब महाबलवान राक्षसोंके साथ लंकापुरीमें रहताहै ॥१५॥ इन राक्षसोंको साथ लेकर दुरात्मा रावणनें देवता लोगोंके साथ युद्ध

राक्षस हम लोगोंका प्राणनाश करनेंही के लिये चारराक्षसोंके साथ यहांपर आया है॥७॥सुग्रीवजीके ऐसे वचन सुनकर यह समस्त वानर श्रेष्ठ वृक्ष और पर्वतादि ग्रहण करके यह बोले८॥किहे महाराज! आप शीघ्रही इन दुरात्मा लोगोंका वध करनेके लिये हमको आज्ञा दीजिये हम बहुतही शीघ्र इन पांचों का नाश करके पृथ्वीपर गिरा देंगे॥९॥जब वानर लोगोंनें परस्पर इस प्रकारसे कहा तब विभीषणजीनें समुद्रके उत्तरतीर पर पहुँच क्षण भरतक विश्राम ले आकाशमें ही टिके॥१०॥ उन दीर्घदर्शी सुग्रीव और दूसरे वानर गणोंको पुकारकर दीर्घ व गंभीर स्वरसे कहा ॥११॥राक्षसगणोंका स्वामी रावण नामक दुराचारी एकराक्षसहै,हम उसके छोटे भाईहैं और हमारा नाम विभीषणहै ॥ १२ ॥ वही दुरात्मा जटायुको मारकर जन स्थानसे जनक लड़ैती

सुग्रीवस्यवचःश्रुत्वासर्वेतेवानरोत्तमाः ॥ शालानुद्यम्यशैलांश्चइदंवचनमब्रुवन् ॥ ८ ॥ शीघ्रंव्यादिशनोराजन्वधायैषां दुरात्मनाम् ॥ निपतंतिहतायावद्धरण्यामल्पचेतनाः ॥ ९ ॥ तेषांसंभाषमाणानामन्योन्यंसविभीषणः ॥ उत्तरंतीरमासाद्यखस्थएवव्यतिष्ठत ॥ १० ॥ सउवाचमहाप्राज्ञःस्वरेणमहतामहान् ॥ सुग्रीवंतांश्चसंप्रेक्ष्यखस्थएवविभीषणः॥ ११ ॥ रावणोनामदुर्वृत्तोराक्षसोराक्षसेश्वरः ॥ तस्याहमनुजोभ्राताविभीषणइतिश्रुतः ॥ १२ ॥ तेनसीताजनस्थानाद्धृताहत्वाजटायुषम्॥रुद्धाचविवशादीनाराक्षसीभिःसुरक्षिता॥ १३ ॥ तमहंहेतुभिर्वाक्यैर्विविधैश्चन्यदर्शयम् ॥ साधुनिर्यात्यतांसीतारामायेतिपुनःपुनः ॥ १४ ॥ सचनप्रतिजग्राहरावणःकालचोदितः ॥ उच्यमानंहितंवाक्यंविपरीतइवौषधम् ॥ १५ ॥सोहंपरुषितस्तेनदासवच्चावमानितः ॥ त्यक्त्वापुत्रांश्चदारांश्चराघवंशरणंगतः ॥ १६ ॥

सीताजीको हरण करके लेगयाहै । क्रूर स्वभाववाली राक्षसियोंसे रक्षित होकर जानकीजी उसके अधिकारमें दीनभावसे वास करतीहैं ॥ १३ ॥ हमनें "श्रीरामचंद्रजीको जानकी दे डालिये, इत्यादि बहुतसे नीतियुक्त वचन कह २ कर रावणसे वारंवार विनयकीथी ॥ १४ ॥ परन्तु मृत्यु जिसकी निकट आईहै ऐसा पुरुष जिस प्रकार औषधिका सेवन नहीं करता, ऐसेही, मृत्युकाल निकट आनेंसे उसने हमारे हितकारी वचनोंको ग्रहण नहीं किया ॥१५॥ वचन मानलेना तो दूर रहा, हमको उसनें अनेक प्रकारके कटुवचन कहकर दासकी समान उसनें हमारे साथ वर्ताव कियाहै

अधिक क्या कहैं; हम इनके व्यवहारसे अत्यन्त सन्तुष्ट हुएहैं ॥ २५ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें इस प्रकारसे आज्ञादी तब सुमित्रको पुत्र लक्ष्मण जीनें उस आज्ञाके अनुसार वानरयूथप गणोंके बीचमें विभीषणको राज्य पदपर अभिषिक्त किया ॥ २६ ॥ विभीषणके ऊपर श्रीरामचंद्रजी की ऐसी प्रसन्नता देखकर वानरगण किल किला शब्द करके महात्मा विभीषणजीकी बड़ाई करनेंलगे ॥ २७ ॥ तब हनुमान और सुग्रीवजी विभीषणजीसे बोले कि हम लोग किस प्रकारसे अपनी सर्व वानरोंकी सैनाके सहित इस अक्षोभ्य वरुणालय महासमुद्रके पार उतरेंगे ॥ २८ ॥ तुम इसका कोई उपाय बताओ कि जिस्से हम सर्व सेनाके सहित नद नदीके पति वरुणजीके स्थान समुद्रके पार उतर जांय ॥ २९ ॥ जब

एवमुक्तस्तुसौमित्रिरभ्यषिंचद्विभीषणम् ॥ मध्येवानरमुख्यानांराजानंराजशासनात्॥२६॥ तंप्रसादंतुरामस्यदृष्ट्वास द्यःप्लवंगमाः ॥ प्रचुक्रुशुर्महात्मानंसाधुसाध्वितिचाब्रुवन् ॥ २७ ॥ अब्रवीच्चहनूमांश्चसुग्रीवश्चविभीषणम् ॥ कथंसा गरमक्षोभ्यंतरामवरुणालयम् ॥ सैन्यैःपरिवृताःसर्वेवानराणांमहौजसाम् ॥ २८ ॥ उपायैरभिगच्छामयथानदनदी पतिम् ॥ तरामतरसासर्वेससैन्यावरुणालयम् ॥ २९ ॥ एवमुक्तस्तुधर्मात्माप्रत्युवाचविभीषणः ॥ समुद्रंराघवो राजाशरणंगंतुमर्हति ॥ ३० ॥ खानितःसगरेणायमप्रमेयोमहोदधिः ॥ कर्तुमर्हतिरामस्यज्ञातेःकार्यंमहोदधिः॥३१॥ एवंविभीषणेनोक्तंराक्षसेनविपश्चिता ॥ आजगामाथसुग्रीवोयत्ररामःसलक्ष्मणः ॥ ३२ ॥ ततश्चाख्यातुमारेभेविभी षणवचःशुभम् ॥ सुग्रीवोविपुलग्रीवःसागरस्योपवेशनम् ॥ ३३ ॥

इस प्रकार महात्मा विभीपणजीसे कहागया तब वह बोले कि महाराजाधिराज रामचंद्रजी समुद्रकी शरणमें जांय यही हमें उचित जान पड़ता है ॥ ३० ॥ कारणकि शरण जानेसे यह अप्रमाण जलवाला महामति समुद्र सगर वंशमें अपनी उत्पत्तिमान श्रीरामचंद्रजीको अपने पार जाने का अवश्यही इनका कार्य सिद्ध कर देगा ॥ ३१ ॥ इसके पीछे पंडितश्रेष्ठ राक्षसनाथ विभीषणकरके इस प्रकार कहे जाकर वानर सुग्रीवजी लक्ष्मण जीके सहित रामचंद्रजीके निकट गये ॥३२॥ फिर बड़ी गरदनवाले सुग्रीवजी श्रीरामचंद्रजीके निकट पहुँचकर विभीषणजीके कहे वह शुभवचन जोकि

परन्तु यह बात नीति विरुद्ध है, कारण कि पंडित लोगोंनें कहाहै कि युद्धके समय "अपने मित्र प्रेरित और वर्षाकालमें भूतिद्वारा संग्रहीत और अपने बंधुओंका बल यह त्रिविध बल ग्रहण करले" परन्तु शत्रुकी सेनाको कभी ग्रहण न करे ॥ २४ ॥ यह आया हुआ पुरुष आपके शत्रु राक्षसराज रावणका भाई है; जातिमें राक्षसहै । और शत्रुपक्षसेही इसनें आगमन कियाहै फिर भला यह किस प्रकार विश्वास करनें योग्यहै ॥ २५ ॥ राक्षसोंके स्वामीका छोटा भाई यह बिभीषण चार राक्षसोंके साथ आपकी शरणागतमें आयाहै॥ २६॥ परन्तु आप निश्चयही जानेंकि यह बिभीषण रावणका पठाया आयाहै हे क्षमाशील ! जो कुछभीहो, हमारी, सम्मतिमें तो इस रावणके पठाये हुए

प्रकृत्याराक्षसोह्येषभ्राताामित्रस्यवैप्रभो ॥ आगतश्चरिपुःसाक्षात्कथमस्मिंश्चविश्वसेत् ॥ २५ ॥ रावणस्यानुजोभ्राता विभीषणइतिश्रुतः ॥ चतुर्भिःसहरक्षोभिर्भवंतंशरणंगतः ॥ २६ ॥ रावणेनप्रणीतंहितमवेहिविभीषणम् ॥ तस्याहंनिग्रहं मन्येक्षमंक्षमवतांवर॥२७॥राक्षसोजिह्मयाबुद्ध्यासंदिष्टोऽयमिहागतः॥प्रहर्तुमाययाछन्नोविश्वस्तेत्वयिचानघ॥२८॥ वध्यतामेषतीव्रेणदंडेनसचिवैःसह ॥ रावणस्यनृशंसस्यभ्राताह्येषविभीषणः ॥ २९ ॥ एवमुक्त्वातुतंरामंसंरब्धोवाहिनी पतिः ॥ वाक्यज्ञोवाक्यकुशलंततोमौनमुपागमत् ॥३०॥सुग्रीवस्यतुतद्वाक्यंश्रुत्वारामोमहाबलः ॥ समीपस्थानुवाचे दंहनुमत्प्रमुखान्कपीन् ॥ ३१ ॥ यदुक्तंकपिराजेनरावणावरजंप्रति ॥ वाक्यंहेतुमदत्यर्थंभवद्भिरपिचश्रुतम् ॥ ३२ ॥

बिभीषणको आप दंडही दीजिये ॥ २७ ॥ यह कुटिलबुद्धि मायावी राक्षस प्रथम आपको अपना विश्वास कराय, यहांपर विराजमान रह फिर समय पाय आपपर प्रहार करनेंके निमित्तही रावणका भेजा हुआ यहां पर आयाहै ॥ २८ ॥ हेमहाराज ! यह क्रूर बिभीषण रावणका भाई है; इस कारण शीघ्रही तीक्ष्ण दंड विधान करके इसके चारों मंत्रियोंके साथ इसको मरवाडालिये ॥ २९ ॥ वाक्य विशारद सैनापति सुग्रीवजी क्रोधमें भर वाक्यकुशल श्रीरामचंद्रजीसे यह कहकर मौन धारण करते हुए ॥ ३० ॥ महाबलवान श्रीरामचंद्रजी सुग्रीवजीके ऐसे वचन सुनकर समीपमें बैठे हुए हनुमानादि वानरगणोंसे यह वचन बोले ॥ ३१ ॥ वानरराज सुग्रीवजीनें रावणके छोटे भाई बिभीषणके विषयमें जो युक्ति युक्त

तिसके पीछे शार्दूल नामक कोई बलवान राक्षस समुद्रके तीर टिकी हुई सुग्रीव पालित इस वानरोंकी सैनाके निकट आय सबसेना भली भांतिसे देखता हुआ ॥ १ ॥ यह दुरात्मा राक्षसराज रावणका दूत सब सेनाको भली भांति देख बड़ी शीघ्रतासे लंकाको गया, ॥ २ ॥ और वहां पहुंचकर राजा रावणसे कहता हुआ; कि वानर और रीछोंकी सैनाका समूह लंकापर आगया ॥ ३ ॥ महाराज! यह सैना अप्रमाण और अगाध दूसरे समुद्रहीकी समान उमड़ आईहै और महाराज दशरथजीके पुत्र राम लक्ष्मण दोनों भाई ॥ ४ ॥ उत्तम रूपसम्पन्न सीताजीके लिये यहांपर आये हैं। यह दोनों महातेजस्वी समुद्रके तीर सेनाके सहित टिके हुए हैं ॥ ५ ॥ महाराज! उनकी समस्त सैना दशयोजनकी लंबाई,

ततोनिविष्टांध्वजिनींसुग्रीवेणाभिपालिताम् ॥ ददर्शराक्षसोऽभ्येत्यशार्दूलोनामवीर्यवान् ॥१॥ चारोराक्षसराजस्यरावणस्यदुरात्मनः ॥ तांदृष्ट्वासर्वतोव्यग्रांप्रतिगम्यसराक्षसः ॥२॥ आविश्यलंकांवेगेनराजानमिदमब्रवीत् ॥ एषवैवानरर्क्षौघोलंकांसमभिवर्तते ॥ ३ ॥ अगाधश्चाप्रमेयश्चद्वितीयइवसागरः ॥ पुत्रोदशरथस्यैमौभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ ४ ॥ उत्तमौरूपसंपन्नौसीतायाःपदमागतौ ॥ एतौसागरमासाद्यसन्निविष्टौमहाद्युते ॥५॥ बलंचाकाशमावृत्यसर्वतोदशयोजनम् ॥ तत्त्वभूतंमहाराजाक्षिप्रंवेदितुमर्हसि॥६॥तवदूतामहाराजाक्षिप्रमर्हंतिवेदितुम्॥उपप्रदानंसांत्वंवाभेदोवात्रप्रयुज्यताम् ॥ ७ ॥ शार्दूलस्यवचःश्रुत्वारावणोराक्षसेश्वरः ॥ उवाचसहसाव्यग्रःसंप्रधार्यार्थमात्मनः ॥ शुकंसाधुतदारक्षोवाक्यमर्थविदांवरम् ॥ ८ ॥ सुग्रीवंब्रूहिगत्वाशुराजानंवचनान्मम ॥ यथासंदेशमक्लीबंश्लक्ष्णयापरयागिरा ॥९॥

दशयोजनकी चौडाई; व १२९ योजनकी ऊँचाई में पड़ी हुई है। आप हमारे वचनोंको सत्य विचारकर शीघ्रही उसका वृत्तान्त जानलें ॥ ६ ॥ हे राजन्! शीघ्र दूत लोगोंको भेजियेकि वह लोग इस बातको जान आवें किशत्रुको पराजित करनेंके लिये साम या भेद कौनसा उपाय ग्रहण करना चाहिये ॥ ७ ॥ शार्दूलके वचन सुनकर राक्षसोंका स्वामी रावण, अपना उस कालके लिये उचितकार्य स्थिर करता शुकनामक एक कार्यके जाननेंवाले राक्षससे यह अर्थयुक्त वचन बोला ॥ ८ ॥ हे शुक! तुम बहुत शीघ्र सुग्रीवके निकट जाओ, और हमारे वचनानुसार हम जिस प्रकारसे

चाहतेहैं, आप लोग स्थिरचित्तसे उसको श्रवण करें ॥ ५६ ॥ आपके व रावणके दोष गुण विचार, अधार्म्मिक रावणके समीपसे जो अत्यन्त धर्मात्मा आपके निकट बिभीषण आये तौ आपके निकटका यह देश सुदेशहै,और ऐसेही धर्मात्मा पुरुषके निकट पहुँचानेंवाला कालभी श्रेष्ठ कालहै, यह कुछभी कुदेश व कुकाल नहीं है ॥ ५७ ॥ कारण कि रावणमें दौरात्म और आपको गुणवान और अधिकविक्रमसम्पन्न देख जो बिभीषण आपके निकट आयाहै,इस्से तौ उसका अधिक बुद्धिमानीहीका कार्य हुआहै ॥ ५८ ॥ अज्ञात कुलशील दूतके द्वारा बिभीषणका वृत्तान्त जाननेंके विषयमें जो कुछ मैन्दनें कहाहै,हमनें इसके संबंधमें भी जो कुछ विचार करके सिद्धान्त कियाहै,वहभी आपलोग सुनें ॥ ५९॥ हे महाराज! बिभीषण बुद्धिमानहै, इसकारण अज्ञात कुल शील किसी पुरुषके सहसा उनसे कुछ पूछनेंपर,उसके मनमें कोई शंका अवश्य होगी। फिर सुख

एषदेशश्चकालश्चभवतीहयथातथा ॥ पुरुषात्पुरुषंप्राप्यतथादोषगुणावपि ॥ ५७ ॥ दौरात्म्यंरावणेदृष्ट्वाविक्रमंचत थात्वयि ॥ युक्तमागमनंह्यत्रसदृशंतस्यबुद्धितः ॥ ५८ ॥ अज्ञातरूपैःपुरुषैःसराजन्पृच्छ्यतामिति ॥ यदुक्तमत्रमेप्रे क्षाकाचिदस्तिसमीक्षिता ॥ ५९ ॥ पृच्छ्यमानोविशंकेतसहसाबुद्धिमान्वचः ॥ तत्रमित्रंप्रदुष्येतमिथ्यापृष्टंसुखा गतम् ॥ ६० ॥ अशक्यंसहसाराजन्भावोबोद्धुंपरस्यवै ॥ अंतरेणस्वरैर्भिन्नैर्नैपुण्यंपश्यतांभृशम् ॥ ६१ ॥ नत्वस्य ब्रुवतोजातुलक्ष्यतेदुष्टभावता ॥ प्रसन्नंवदनंचापितस्मान्मेनास्तिसंशयः ॥ ६२ ॥

पानेंकी लालसासे जो आपके साथ वह मित्रता करने आयाहै वह दूषित होजायगी, कारणकि बुद्धिमान पुरुषसे कोई बात पूछनेंपर सहसा उसके मनमें शंका होजातीहै, वास्तवमें आयाहुआ पुरुष मित्रहो तौ मिथ्या अनुसन्धान करनेंसे उसके मनमें अन्तर पड़नेंकी संभावनाहै। और यहभी कुछ बात नहीं कि प्रश्न करतेही किसीकी भाव गति जानलीजावे ॥ ६०॥ हे राजन्! शत्रुके मनका भाव सरलतासे एक साथही जान लेना अत्यन्त कठिनहै; इस कारण कुछ दिन बिभीषणको यहां रखकर उसका व्यवहार देखिये; बस उसकी बातोंसेही उसका अभिप्राय प्रगट होजा यगा; चलाये हुए बाण समूहसे जिसप्रकार वीरोंकी वीरता जानली जातीहै,वैसेही व्यवहार करनेंसे पुरुषकी प्रकृति(आदत)जानली जाती है॥६१॥जो कुछभीहो हमनें तौ जहांतक परीक्षा कीहै, तिस्से तौ बिभीषणके वाक्यादिमें कोई खोटा आशय जाना नहीं गया, और उसके मुखपरभी अप्रसन्नता

को घूंसोंसे मारना प्रारंभ किया। वानरगण शुककी इस प्रकारसे दुरवस्था करनें लगे, कारणकि वह इनके वशमें पड़गयाथा ॥ १६ ॥ फिर वानरोंनें बलसे आकाशमेंसे पृथ्वीपर उसको उतारा, और मार धाड़करनें लगे, तब शुक अत्यन्त पीड़ित होकर बोला ॥ १७ ॥ किहे श्रीरामचंद्रजी! आप निवारण कीजिये, कहीं ऐसा नहो कि यह वानरगण मुझ दूतको प्राणोंसे मारडालें, विशेषकरके जो दूत शत्रुके वशमें पड़कर अपना छुटकारा करनेंके लिये स्वामीका सन्देश छिपाया और कालोचित अपने गढ़े हुए अनुरागयुक्त वचन कहे, हेमहाराज! ऐसाही दूत मारडालनेंके योग्यहै ॥ १८ ॥ तब करुणामय श्रीरामचंद्रजी शुकके वचन और विलाप सुनकर, शुकको मार डालनें पर उतारु वानर यूथ गणोंसे

गगनाद्भूतलेचाशुप्रतिगृह्यावतारित ः॥ वानरैःपीड्यमानस्तुशुकोवचनमब्रवीत् ॥१७॥ नदूतान्घ्नंतिकाकुत्स्थवार्यतां
साधुवानराः॥यस्तुहित्वामतंभर्तुःस्वमतंसंप्रधारयेत्॥अनुक्तवादीदूतःसन्सदूतोवधमर्हति॥१८॥शुकस्यवचनंरामःश्रु
त्वातुपरिदेवितम् ॥उवाचमावधिष्टेतिघ्नतःशाखामृगर्षभान्॥१९॥ सचपत्रलघुर्भूत्वाहरिभिर्दर्शितेऽभये॥अंतरिक्षेस्थि
तोभूत्वापुनर्वचनमब्रवीत्॥ २० ॥ सुग्रीवसत्त्वसंपन्नमहाबलपराक्रम॥ किंमयाखलुवक्तव्योरावणोलोकरावणः॥२१॥
सएवमुक्तःप्लवगाधिपस्तदाप्लवंगमानामृषभोमहाबलः॥ उवाचवाक्यंरजनीचरस्यचारंशुकंशुद्धमदीनसत्त्वः ॥२२॥
नमेऽसिमित्रंनतथानुकंप्योनचोपकर्तासिनमेप्रियोसि॥ अरिश्चरामस्यसहानुबंधस्ततोसिवालीववधार्हवध्यः॥२३॥

बोले कि तुम लोग दूतके प्राण मतलो ॥ १९ ॥ तब दूत शुक राक्षस वानरोंके भयसे भीतहो छोटा आकार बनाय आकाशमें टिक वहींसे फिर यह कहनें लगा ॥ २० ॥ हेमहाबलवान—पराक्रम—सत्वसम्पन्न सुग्रीवजी! हम लौटकर लोकोंके रुवानेंवाले रावणसे क्याकहें? वह आप हमसे कह दीजिये ॥ २१ ॥ वानरगणोंके स्वामी महाबलवान सतोगुणी हरीश्वर सुग्रीवजी इस प्रकारसे पूछे जाकर राक्षसराज रावणसे कहनेंके लिये अदीनभावयुक्त राक्षस दूत शुकसे यह बोले ॥ २२ ॥ कि हे शुक! तुम रावणसे यह कहनाकि, हेरावण! तुम हमारे मित्र, उपकारी प्रिय, अथवा दयाके पात्र नहींहो, वरन परिवारके सहित श्रीरामचंद्रजींसे शत्रुता करनेंके कारण तुमकोभी वालिकी समान मारडालना उचितहै ॥ २३ ॥

सहित पवनकुमार हनुमानजीके वचन सुनकर अतिशय प्रसन्नता प्राप्त करतेहुए यह उत्तर देते हुएकि ॥ १ ॥ हे वानरगण! तुम लोग हमारा हित सिद्ध करनेंके लिये यत्न करतेहो, इस कारण विभीषणके संबंधमें हमको जो कुछ कहनाहै, वह समस्तही तुम्हारे समीप वर्णन करतेहैं; श्रवणकरो ॥ २ ॥ जबकि बिभीषण मित्रता करनेंके लिये, हमारी शरणमें आयाहै, तव तौ चाहे उसमें अत्यन्त दोषभीहों तथापि हम उसको नहीं त्याग सकते; अधिक करके ऐसा आचरण करने अर्थात् शरणागतको शरण न देनेंसे साधुलोगोंके निकट निन्दनीयहोना पड़ताहै❁ ॥ ३ ॥ तिसके पीछे वानर राज सुग्रीवजी, श्रीरामचंद्रजीके वचन सुनकर मनमें अनेक भांतिके तर्क और परामर्श करते विभीषणजीके चरित्रमें दोष दिखलानेंवाले यह हितकारी वचन बोले ॥ ४ ॥ यह निशाचर अच्छे चरित्रवालाहो, या बुरे चरित्र वालाहो, जबकि यह

ममापिचविवक्षास्तिकाचित्प्रतिविभीषणम् ॥ श्रोतुमिच्छामितत्सर्वंभवद्भिःश्रेयसिस्थितैः ॥ २ ॥ मित्रभावेनसंप्राप्तं नत्यजेयंकथंचन ॥ दोषोयद्यपितस्यस्यात्सतामेतदगर्हितम् ॥ ३ ॥ सुग्रीवस्त्वथतद्वाक्यमाभाष्यचविमृश्यच ॥ ततःशुभतरंवाक्यमुवाचहरिपुंगवः ॥ ४ ॥ सदुष्टोवाप्यदुष्टोवाकिमेषरजनीचरः ॥ ईदृशंव्यसनंप्राप्तंभ्रातरंयःपरित्यजेत् ॥ ५ ॥ कोनामसभवेत्तस्ययमेषनपरित्यजेत् ॥ वानराधिपतेर्वाक्यंश्रुत्वासर्वानुदीक्ष्यतु ॥ ६ ॥ ईषदुत्स्मयमानस्तुलक्ष्मणंपुण्यलक्षणम् ॥ इतिहोवाचकाकुत्स्थोवाक्यंसत्यपराक्रमः ॥ ७ ॥ अनधीत्यचशास्त्राणिवृद्धाननुपसेव्यच ॥ नशक्यमीदृशंवक्तुंयदुवाचहरीश्वरः ॥ ८ ॥

अपने भ्राताको ऐसे संकटमें पड़ा देखकर उसे छोड़ यहां चलाआया ॥ ५ ॥ तब विपदमें पड़ा हुआ देखकर बिभीषण जिसका त्यागन करे ऐसा हम उसका कोई अन्तरंग मित्र नहीं देखते हे महाराज! विभीषण इस समय आपकी शरणमें आताहै, परन्तु किसी विपदमें हम लोगों के पड़तेही यह उसी समय हमको त्यागकर यहांसे चला जायगा वानरनाथ सुग्रीवजीका वचन सुन सबकी ओर निहार ॥ ६ ॥ सत्यपराक्रम काकुत्स्थ श्रीरामचंद्रजी मुस्कुराकर पुण्यलक्षण लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ७ ॥ हे लक्ष्मण! वानरराज सुग्रीवजीनें जो कुछ कहाहै, वह विना बहुत

❁ शिबिराजानें अपना प्राण देकर कबूतरको बचाया, और दधीचिनें देवतालोगोंको शरणदी जान अपने शरीरकी अस्थि देदी ॥

वहांपर न जाना चाहिये, इस कारण इसका बांधलेना उचितहै, हमें तो यही अच्छा लगताहै ॥ ३० ॥ जब अंगदजीनें ऐसा कहा तब वानरराज सुग्रीवजीकी आज्ञासें वानर लोगोंनें कूद उसको पकड़कर बांधलिया जब वानरोंनें पकड़ा तब वह अनाथकी समान रोदन करने लगा ॥ ३१ ॥ उस समय वह राक्षस प्रचंड वानरवीरोंकरके इस प्रकार मार खाय बड़ेशब्दसे दशरथकुमार महात्मा श्रीरामचंद्रजीको पुकारता हुआ रोनें लगा " कि हेरघुनंदन! वानर लोगोंनें बल पूर्वक मेरे पंख उखाड़ डाले; औरनेत्र फोड़नेंके लिये तैयार हुएहैं ॥ ३२ ॥ आप इन लोगोंको रोकिये; नहीं तो ऐसा करनेंसेमैं मर जाऊंगा, तो मैंने अपने जन्मके समयसे मृत्युके समयतक जितनें पाप कियेहैं, आपही उन समस्त पापके फलको पावेंगे ॥ ३३॥

ततोराज्ञासमादिष्टाःसमुत्पत्यवलीमुखाः ॥ जगृहुश्चबबंधुश्चविलपंतमनाथवत् ॥ ३१ ॥ शुकस्तुवानरैश्चंडैस्तत्रतैः संप्रपीडितः ॥ व्याचुक्रोशमहात्मानंरामंदशरथात्मजम् ॥ लुप्येतेमेबलात्पक्षौभिद्येतेमेतथाक्षिणी ॥ ३२ ॥ यांचरात्रिंमरिष्यामिजायेरात्रिंचयामहम् ॥ एतस्मिन्नंतरेकालेयन्मयाह्यशुभंकृतम् ॥ सर्वंतदुपपद्येथाजह्यांचेद्यदिजीवितम् ॥ ३३ ॥ नाघातयत्तदारामःश्रुत्वातत्परिदेवितम् ॥ वानरानब्रवीद्रामोमुच्यतांदूतआगतः ॥ ३४ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०यु०विंशःसर्गः ॥ २० ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ततःसागरवेलायांदर्भानास्तीर्यराघवः ॥ अंजलिंप्राङ्मुखःकृत्वाप्रतिशिश्येमहोदधेः ॥ १ ॥ बाहुंभुजंगभोगाभमुपधायारिसूदनः ॥ जातरूपमयैश्चैवभूषणैर्भूषितंसदा ॥ २ ॥ मणिकांचनकेयूरमुक्ताप्रवरभूषणैः ॥ भुजैःपरमनारीणामभिमृष्टमनेकधा ॥ ३ ॥

उस समय परम दयालु श्रीरामचंद्रजीनें ऐसी व्यथा सुनकर उसके जीवनकी रक्षाकी और वानर लोगोंको उसके मारनेंका निषेध करके आये हुए दूतको छोड देनेकी आज्ञादी ॥ ३४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि काव्ये युद्धकांडे विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥ तदनन्तर दशरथकुमार श्रीरामचंद्रजी समुद्रके तीर कुशा बिछायकर उनके ऊपर समुद्रसे वर प्रार्थना करनेंकी अभिलाषसे हाथ जोड़कर पूर्वमुख हो बैठे ॥ १ ॥ हाय! शत्रुओंके नाश करनेंवाले श्रीरामचंद्रजीकी जो भुजायें सुवर्णके गहनोंसे विभूषित होती, वही भुजंग, भोग, सदृश भुजा श्रीरामचंद्रजीके शिरके नीचे तकियेका कार्य कर रहीं है॥२॥ जिनकी मणिकाञ्चनमय केयूर मुक्ता व और दूसरे भूषणोंसे युक्त

यह बात प्रसिद्धहै कि भाई लोग परस्पर मिलकर अव्याकुल चित्त और सन्तुष्ट मनसे वास करतेहैं; परन्तु कालक्रमसे सबकी राज्यलाभलालसा ब लवती होनेंपर परस्पर भेद पड़जाताहै। तिसके पीछे जातिवालोंकी रीति जिसप्रकारसे चली आईहै, उसके अनुसारही युद्ध कुलाहल और परस्पर भेद पड़जाताहै, इस कारण बोध होताहै कि बिभीषण अबतक रावणकेसाथ सुहृदतासे वास करताथा, अब किसी कारण वश शत्रुता होनेंपर उस का विनाश करके उसका राज्य पानेंकी आशासे हमारी शरणागत हुआहै इस कारण विभीषणका ग्रहण करनाही उचितहै ॥ १४ ॥ हे वत्स! जो तु म ऐसी शंका करो, कि भरतनें राज्य पायकरभी किस कारणसे उसे ग्रहण न किया; परन्तु हे लक्ष्मण! पृथ्वीपर भरतकी समान निर्लोभी भ्राता और हमारी समान पिताके वचन माननेंवाला पुत्र, और तुम्हारी समान सर्व यत्नसे सब प्रकारका सुख छोड़ छाड़कर, मित्रकार्यको साधन

अव्यग्राश्चप्रहृष्टाश्चतेभविष्यंतिसंगताः ॥ प्रणादश्चमहानेषोऽन्योन्यस्यभयमागतम् ॥ इतिभेदंगमिष्यंतितस्मात्प्रा
प्तोविभीषणः ॥ १४ ॥ नसर्वेभ्रातरस्तातभवंतिभरतोपमाः ॥ मद्विधावापितुःपुत्राःसुहृदोवाभवद्विधाः ॥ १५॥ एव
मुक्तस्तुरामेणसुग्रीवःसहलक्ष्मणः ॥ उत्थायेदंमहाप्राज्ञःप्रणतोवाक्यमब्रवीत् ॥ १६ ॥ रावणेनप्रणिहितंतमवेहिनि
शाचरम् ॥ तस्याहंनिग्रहंमन्येक्षमंक्षमवतांवर ॥ १७ ॥ राक्षसोजिह्मयाबुद्ध्यासंदिष्टोयमिहागतः ॥ प्रहर्तुंत्वयिवि
श्वस्तेविश्वस्तेमयिवानघ ॥ १८ ॥ लक्ष्मणेवामहाबाहोसवध्यःसचिवैःसह ॥ रावणस्यनृशंसस्यभ्राताह्येषविभीष
णः ॥ १९ ॥ एवमुक्त्वारघुश्रेष्ठंसुग्रीवोवाहिनीपतिः ॥ वाक्यज्ञोवाक्यकुशलंततोमौनमुपागमत् ॥ २० ॥

करनेंवाले सुहृद अत्यन्त दुर्लभहैं ॥ १५ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें सुग्रीव व लक्ष्मणजीसे यह वार्ता कही तब बुद्धिमान सुग्रीवजी खड़ेहो प्रणाम कर यह बोले ॥ १६ ॥ हे क्षमाशीला ऐसा समझमें आताहै कि रावणनेंही इस राक्षसको यहांपर भेजाहै। इस कारण हमारी सम्मतिसे तौ इसका मा रडालनाही उचितहै ॥ १७ ॥ हे पापरहित! यह कुटिल बुद्धिवाला राक्षस रावणके द्वारा पठाया जाकर आपके हमारे, व सैनाका विनाश करनेंही के लिये यहांपर आयाहै। यह विश्वासमें डालकर हमारे ऊपर प्रहारकरैगा ॥ १८ ॥ यह लक्ष्मणजीकेही ऊपर चोट चलावेगा; इस कारण रा वणका भ्राता यह क्रूर बिभीषण मंत्रिलोगोंके साथ वध करडालनेंहीके योग्यहै ॥ १९ ॥ वचन बोलनेंमें चतुर सैनापति वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजी, वाक्य

करभी उनका दर्शन न दिया ॥ १२ ॥ तब श्रीरामचंद्रजीनें समुद्रकेऊपर बड़ा क्रोध किया; उनके नेत्र लाल हो आये, और तब वह निकट बैठे हुए अपने छोटे भाई सुलक्षणयुक्त लक्ष्मणजीसे यह बोले ॥ १३ ॥ जबकि समुद्रनें तीन दिनतक इस प्रकार विनती करने परभी हमको दर्शन नदिया, तब इस्सेतो उसका गर्व करनाही पाया जाताहै हम भलीभांति जानतेहैं कि शान्ति,क्षमा सरलवृत्ति और प्रियवचन बोलना ॥१४॥ इत्यादि जो साधु लोगोंके गुणहैं; यह गुणरहित दोष युक्त दुर्जनोंकेसन्मुख प्रयोग करनेंसे उसकी असामर्थताको जताते हैं । अर्थात् गुण रहित पुरुषोंके प्रति इन गुणोंका प्रकाश करना निष्फलहै । जोकोई गुण न होंने परभी लोगोंके निकट अपनी शूरता इत्यादिकी, प्रशंसा

समुद्रस्यततःक्रुद्धोरामोरक्तांतलोचनः ॥ समीपस्थमुवाचेदंलक्ष्मणंशुभलक्षणम् ॥ १३ ॥ अवलेपःसमुद्रस्य नदर्शयतियःस्वयम् ॥ प्रशमश्चक्षमाचैवआर्जवंप्रियवादिता ॥ १४ ॥ असामर्थ्यफलाह्येतेनिर्गुणेषुसतांगुणाः ॥ आत्मप्रशंसिनंदुष्टंधृष्टंविपरिधावकम् ॥ १५ ॥ सर्वत्रोत्सृष्टदंडंचलोकःसत्कुरुतेनरम् ॥ नसाम्नाशक्यतेकीर्तिर्नसाम्नाशक्यतेयशः ॥१६॥ प्राप्तंलक्ष्मणलोकेस्मिन्जयोवारणमूर्धनि ॥ अद्यमद्बाणनिर्भग्नैर्मकरैर्मकरालयम् ॥१७॥ निरुद्धतोयंसौमित्रेप्लवद्भिःपश्यसर्वतः ॥ भोगिनांपश्यभोगानिमयाभिन्नानिलक्ष्मण ॥ १८ ॥ महाभोगानिमत्स्यानां करिणांचकरानिह ॥ सशंखशुक्तिकाजालंसमीनमकरंतथा ॥ १९ ॥

करे और अपना गुण सबसे कहनेके लिये इधर उधर दौडता फिरै ॥१५॥ और दंड देनेका प्रयोजन नहोंने परभी जो लोगोंको तीक्ष्ण दंड दियाकरै ऐसे पुरुषका बुरे चरित्रवाले और अहंकारी लोगही सत्कार कियाकरतेहैं । प्रथम उपाय समझानें बुझानेंसे न कीर्ति मिलती, न सब ओर यश फलताहै ॥ १६ ॥ हे लक्ष्मण अधिक कहांतक कहैं कि शान्त स्वभावहोनेंसे रणभूमिमें जयकी प्राप्तिभी नहीं होसकती हे लक्ष्मण ! इस्से आज ही हमारे चलाये हुए बाणोंसे मरे कटे मत्स्योंसे युक्त मकरालय ॥ १७ ॥ समुद्रकी जलराशिको सब जगह ढकाहुआ देखोगे हेसुमित्रानंदन लक्ष्मण! मेरे बाणोंसे विदीर्ण अनेक सर्पोंके शरीरभी तुम देखोगे ॥ १८ ॥ सर्प और मत्स्यगणोंके बड़े २ भारी शरीर व जलके हाथियोंकी कटी

कण्डुजीनें जो कुछ धर्मयुक्त गाथा गाईथीं; हम उन्हें कहतेहैं तुम सुनो ॥ २६ ॥ हे शत्रुओंके तपानेंवाले सुग्रीवजी ! " चाहे शत्रु क्यों नहो, परन्तु हाथ जोड़ दीनभावसे अपने घरमें आयकर प्रार्थना करे तौ धर्मरक्षाके लिये उसको नहीं मारना चाहिये ॥ २७ ॥ शत्रु आतुरहो, या अहंकार युक्तहो, परन्तु कातरभावसे उसके शरण आनेंपर प्राण देकरभी उसकी रक्षा करना उचितहै, ऐसा करनेंहीसे यथार्थ धार्मिकपनका कार्य होताहै ॥ २८ ॥ परन्तु, यदि, भय, मोह अथवा इच्छानुसारही हो, अपनी शक्तिके अनुसार जो शरणागतकी रक्षा नहीं करता, तौ पाप ग्रसित होकर उसको सब लोकमें निंदाका पात्र बनना पड़ताहै ॥ २९ ॥इस प्रकारसे शरणागतकी रक्षा न करनेंपर यदि वह शरणागत किसी

बद्धांजलिपुटंदीनंयाचंतंशरणागतम् ॥ नहन्यादानृशंस्यार्थमपिशत्रुंपरंतप ॥ २७ ॥ आर्तोवायदिवादृप्तःपरेषांशरणं गतः ॥ अरिःप्राणान्परित्यज्यरक्षितव्यःकृतात्मना ॥ २८ ॥ सचेद्भयाद्वामोहाद्वाकमाद्वापिनरक्षति ॥ स्वयाशक्त्या यथान्यायंतत्पापंलोकगर्हितम् ॥ २९ ॥ विनष्टःपश्यतस्तस्यरक्षिणःशरणंगतः ॥ आदायसुकृतंतस्यसर्वंगच्छेदरक्षि तः ॥ ३० ॥ एवंदोषोमहानत्रप्रपन्नानामरक्षणे ॥ अस्वर्ग्यंचायशस्यंचबलवीर्यविनाशनम् ॥ ३१ ॥ करिष्यामियथार्थंतुकण्डोर्वचनमुत्तमम् ॥ धर्मिष्ठंचयशस्यंचस्वर्ग्यंस्यात्तुफलोदये ॥ ३२ ॥ सकृदेवप्रपन्नायतवास्मीतिचयाचते ॥ अभयंसर्वभूतेभ्योददाम्येतद्व्रतंमम ॥ ३३ ॥

प्रकारसे नाशको प्राप्त होजाय, तौ वह नाशको प्राप्त हुआ पुरुष उस रक्षा न करनेंवालेके पुण्यका भागी होकर स्वर्गमें चला जाताहै । " ॥ ३० ॥ हेसुग्रीव ! शरणागतकी रक्षा न करनेंसे अवश्यही वीर्यहीनकी समान खोटे यशको प्राप्तकर पवित्र स्वर्गसें भ्रष्ट होना पड़ताहै ॥ ३१ ॥ इस कारण हम उन महर्षि कण्डुके धर्मयुक्त यशके बढ़ानें और स्वर्गके प्राप्त करानेंवाले श्रेष्ठ उपदेश वचन यथावत् प्रतिपालन करेंगे, जिस्सेकि हमको विशेष फल प्राप्त होगा ॥ ३२ ॥ हेसुग्रीव! हमारा सबसे बड़ा संकल्प यहीहै कि जो केवल एकही वार "मैं

समस्त बाणश्रेष्ठ महावेगसे समुद्रके जलमें पैठ गये, जिस्से समुद्रके रहनें वाले सर्पगण त्रासित होगये ॥ २७ ॥ उस काल मछली मकरादि प्राणियोंसे युक्त समुद्रका वड़ा भारी वेग, प्रचंड पवनके लगनेंसे अत्यन्त भयंकर शब्द करनें लगा ॥ २८ ॥ समुद्रमें सब ओरसे तरंगोंके बडे २ समूह उठे, व स्थान २ पर सर्पोंके ढेरके ढेर छितरानें लगे, सब ओरसे धूम उठकर लहर आनें लगी इस भांति अतिशीघ्र ऐसा समुद्रका रूप होगया ॥ २९ ॥ ऐसी अवस्थामें सर्पगण व्यथित होगये और उनके नेत्र व मुखमंडल प्रदीप्त हो आये व उस समय पातालके रहनें वाले नाग लोगों तकके त्रासकी सीमा न रही ॥ ३० ॥ समुद्रमें विन्ध्य और मन्दराचल पर्वतकी समान हजार २ तरंगे उठनें लगीं व उनमें नाके व

तोयवेगःसमुद्रस्यसमीनमकरोमहान् ॥ सबभूवमहाघोरःसमारुतरवस्तथा ॥ २८ ॥ महोर्मिजालचलितःशंखजालस
मावृतः ॥ सधूमःपरिवृत्तोर्मिःसहसासीन्महोदधिः ॥ २९ ॥ व्यथिताःपन्नगाश्चासन्दीप्तास्यादीप्तलोचनाः ॥
दानवाश्चमहावीर्याःपातालतलवासिनः ॥ ३० ॥ ऊर्मयःसिंधुराजस्यसनक्रमकरास्तथा ॥ विंध्यमंदरसंकाशाःसमुत्पे
तुःसहस्रशः ॥ ३१ ॥ आघूर्णिततरंगौघःसंभ्रांतोरगराक्षसः ॥ उद्वर्तितमहाग्राहःसघोषोवरुणालयः ॥ ३२ ॥ ततस्तुतं
राघवमुग्रवेगंप्रकर्षमाणंधनुरप्रमेयम् ॥ सौमित्रिरुत्पत्यविनिःश्वसंतंमामेतिचोक्त्वाधनुराललंबे ॥ ३३ ॥ एतद्विना
पिह्युदधेस्तवाद्यसंपत्स्यतेवीरतमस्यकार्यं ॥ भवद्विधाःक्रोधवशंनयांतिदीर्घंभवान्पश्यतुसाधुवृत्तम् ॥ ३४ ॥

मत्स्य आदि बहुतसे जल जन्तुभी उछलनें लगे ॥ ३१ ॥ क्रमसे समुद्रकीतरंगें बराबर उछलनें लगीं नाग राक्षसादिके घवड़ानेंसें घड़ियालोंकें उफन जानेंसे समुद्रमें महाघोर शब्द होंने लगा ॥ ३२ ॥ तिसके पीछे रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी लंबी श्वास लेकर जिस समय बड़े भारी धनुषको खेंचनें लगे उस समय लक्ष्मणजीनें झट पट आगे बढ़कर यह धनुष हमें दीजि यह कह निवारण कर इस रामचंद्रजीके धनुषको ग्रहण किया ॥ ३३ ॥ उस समय लक्ष्मणजी बोले कि हे प्रभो! जबकि समुद्रके प्रति बाण न चलाकर और प्रकारसे आपका कार्य सिद्ध हो सकताहै; तब फिर ऐसे कठिन कार्यका क्या प्रयोजनहै? हम आपसे कहतेहैं कि आपसरीखे महात्मा पुरुष क्रोधके वश होना कदापि कर्तव्य नहीं है। आप अपनी

रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीनें जब इस प्रकारसे अभय दान दिया, तब महापंडित रावणके लघु भ्राता विभीषणजी पृथ्वीकी ओर देखतेहुए ॥ १ ॥ आकाशसे अपने चार मंत्रियोंके साथ हर्षितहो भूमिपर उतरे, और अपने चारों मंत्रियोंके साथ भक्तिभावसे श्रीरामचंद्रजीके निकट आये ॥ २ ॥ फिर अपने चारों राक्षसोंके साथ उनके चरणोंमें गिरकर विभीषणजी श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ ३ ॥ विभीषणजीनें युक्तियुक्त धर्म संगत, व प्रसन्नता उपजानेंवाले वचन श्रीरामचंद्रजीसे कहे, कि हम रावणके सगे छोटे भाई उस्से अपमानित होकर ॥ ४ ॥ लंका, मित्र और धनादि समस्त परित्याग करके आपको सर्व प्राणियोंका शरण देनेंवाला देखकर आपकी शरणमें आयाहूं * ॥ ५ ॥ अब हमारा जीवन,

राघवेणाभयेदत्तेसन्नतोरावणानुजः ॥ विभीषणोमहाप्राज्ञोभूमिंसमवलोकयत् ॥ १ ॥ खात्पपातावनिंहृष्टोभक्तैरनुचरैःसह ॥ सतुरामस्यधर्मात्मानिपपातविभीषणः ॥ २ ॥ पादयोर्निपपाताथचतुर्भिःसहराक्षसैः ॥ अब्रवीच्चतदावाक्यंरामंप्रतिविभीषणः ॥ ३ ॥ धर्मयुक्तंचयुक्तंचसांप्रतंसंप्रहर्षणम् ॥ अनुजोरावणस्याहंतेनचास्त्यवमानितः ॥ ४ ॥ भवंतंसर्वभूतानांशरण्यंशरणंगतः ॥ परित्यक्तामयालंकामित्राणिचधनानिच ॥ ५ ॥ भवद्गतंहिमेराज्यंजीवितंचसुखानिच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वारामोवचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥ वचसासांत्वयित्वैनंलोचनाभ्यांपिबन्निव ॥ आख्याहिममतत्त्वेनराक्षसानांबलाबलम् ॥ ७ ॥ एवमुक्तंतदारक्षोरामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ रावणस्यबलंसर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ ८ ॥

सुख, और राज्यलाभ समस्त आपकेही आधीनहे । विभीषणके यह वचन सुनकर श्रीरामचंद्रजी बोले ॥ ६ ॥ मानों समझातेहुए व नेत्रोंसे पानही करतेसे बोले कि हे विभीषण! प्रथम तुम राक्षसोंका बलाबल सब यथार्थ २ हमारे निकट वर्णन करो ॥ ७ ॥ अक्लिष्ट कर्म करनेंवाले

---

* शरण हरण भय जस उदार श्रवणनि सुनि आयो इतै । मै कृपालु दशभाल बंधुलघु निपट निरादरधार ॥ श्र० ॥ निशिचर कुल कर तूति अधम अघ जानु न सपनेहुं शुभाचार ॥ श्र० ॥ भव रुज ग्रसित त्रासित छिन पल पल दीन हीन मति सब प्रकार ॥ श्र० ॥ गदर प्रेम खस्यो महि टेरत पाहि २ करुणाअगार ॥ श्र० ॥ सूरज दीन दयालुहि भायउ मेटि सब विपति भार ॥ श्र० ॥

दशों दिशाओंको अंधकारने छाय लिया लोक इत्यादिक कुछभी नहीं देखने लगे, सरोवरोंके सहित समस्त नदियें खल बलाय
उठीं ॥ ७ ॥ नक्षत्र गणोंके साथ सूर्य चंद्रमाकी तिरछी गति होगई। आकाश मंडल सूर्य नारायणकी किरणोंसे युक्त होनेपरभी अंधकारसे छा
यगया ॥ ८ ॥ अन्तरिक्षमें वडे शब्दसे युक्त होकर वारंवार वज्रपात होनें लगा और आकाश मंडल शत २ उल्कापातोंसे प्रकाशमान हो
गया ॥ ९ ॥ भयानक पवनके वेगसे वृक्ष टूटकर गिरने लगे, व वारंवार अति शीघ्रतासे वादल इधर उधर उड़कर जाने लगे ॥ १० ॥
वडे २ पर्वतोंको टकराता हुआ पवन उनके कंगूरोंको गिरानें लगा चारों ओर दामिनीकी आग प्रगट होनेसे ॥ ११ ॥ वारंवार वज्र गिरनें
तमश्चलोकमावव्रेदिशश्चनचकाशिरे ॥ प्रतिचुक्षुभिरेचाशुसरांसिसरितस्तदा ॥७॥ तिर्यक्चसहनक्षत्रैःसंगतौचंद्रभा
स्करौ ॥ भास्करांशुभिरादीप्तंतमसाचसमावृतम् ॥ ८ ॥ प्रचकाशेतदाकाशमुल्काशतविदीपितम् ॥ अंतरि
क्षाच्चनिर्घातानिर्जग्मुरतुलस्वनाः ॥ ९ ॥ वपुःप्रकर्षेणववुर्दिव्यमारुतपंक्तयः ॥ बभंजचतदावृक्षान्जलदानुद्वहन्मु
हुः ॥ १० ॥ आरुजंश्चैवशैलाग्राञ्छिखराणिबभंजच ॥ दिविचस्पममहावेगाःसंहताःसमहास्वनाः ॥ ११ ॥ मुमुचुर्वै
द्युतानग्नींस्तेमहाशनयस्तदा॥ यानिभूतानिदृश्यानिचुक्रुशुश्चाशनेःसमम् ॥ १२॥ अदृश्यानिचभूतानिमुमुचुर्भैरवस्व
नम् ॥ शिश्यिरेचाभिभूतानिसंत्रस्तान्युद्विजंतिच ॥ १३ ॥ संप्रविव्यथिरेचापिनचपस्पंदिरेभयात् ॥ सहभूतैःसतोयो
र्मिःसनागःसहराक्षसः ॥१४॥ सहसाभूत्ततोवेगाद्भीमवेगोमहोदधिः॥योजनंव्यतिचक्रामवेलामन्यत्रसंप्लवात् ॥ १५ ॥
लगा उसके साथही साथ जितनें प्राणी दिखलाई देतेथे वह समस्तवज्रसे उत्पन्न हुए शब्दके साथ चिंघाडकर उठे ॥ १२ ॥ और जो प्राणी
अदृश्यथे वहभी सब इस भयंकर वज्रके शब्दको सुन भयके मारे कंपितशरीर होकर भयंकर शब्द करतेहुये ऐसे व्याकुलकी नांई जहां तहां लेट
रहे ॥ १३ ॥ व्यथित हृदय होनेंके कारण उनमें चलनें फिरनेंकी कुछभी सामर्थ्य नहीं रही; सब जहांके तहां स्पन्दनविहीनहो पडे रहे फिर समस्त
प्राणियोंके साथ, व तरंग, नाग, और राक्षसोंके सहित ॥ १४ ॥ समुद्रोंकी तरंगोंनें विकटाकार रूप धारण किया, सहसा समुद्रका वेग इतना भयानक
होगया कि जहां सदा वेलाभूमितक जलजायाकरताथा उस सीमाको उल्लंघनकर विनाही प्रलयकालके आये चारकोसतक दूर चला गया ॥१५॥

कियाथा लोकपालगण राक्षस लोगोंका असह्य तेज न सहन करके भागगयेथे ॥ १६ ॥ रामचंद्रजी विभीषणके मुखसे इस वचनको सुनकर और रावणके बलाबलको जान मनही मन चिन्ताकर बोले ॥ १७ ॥ हे विभीषण! तुमने रावणकी जितनी सेनाहै उसको बताया वह हमनें तत्त्वसे सब जाना ॥ १८ ॥ जो कुछभी हो तुम निश्चय जानो कि हम प्रहस्त और इन्द्रजीतके सहित रावणका संहार करके तुमको लंकाका राज्य देदेंगे ॥ १९ ॥ यद्यपि रावण पाताल अथवा ब्रह्मलोकमेंभी चलाजाय तथापि वह जीवित रहते हमसे छुटकारा पानेंको समर्थ नहींहोगा ॥ २० ॥ हम लक्ष्मण आदि तीन भ्राताओंकी शपथ करके कहते हैं कि पुत्र और बंधुबान्धवगणोंके सहित रावणका विनाश किये विना हम

विभीषणस्यतुवचस्तच्छ्रुत्वारघुसत्तमः ॥ अन्वीक्ष्यमनसासर्वमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १७ ॥ यानिकर्मापदाना निरावणस्यविभीषण ॥ आख्यातानिचतत्त्वेनह्यवगच्छामितान्यहम् ॥ १८ ॥ अहंहत्वादशग्रीवंसप्रहस्तंसहात्मजम् ॥ राजानंत्वांकरिष्यामिसत्यमेतच्छृणोतुमे ॥१९॥ रसातलंवाप्रविशेत्पातालंवापिरावणः ॥ पितामहसकाशंवानमेजीवन्विमोक्ष्यते॥२०॥अहत्वारावणंसंख्येसपुत्रजनबांधवम् ॥ अयोध्यांनप्रवेक्ष्यामित्रिभिस्तैर्भ्रातृभिःशपे॥२१॥ श्रुत्वातुवचनंतस्यरामस्याक्लिष्टकर्मणः॥ शिरसावंद्यधर्मात्मावक्तुमेवप्रचक्रमे॥२२॥राक्षसानांवधेसाह्यंलंकायाश्चप्रधर्षणे॥ करिष्यामियथाप्राणंप्रवेक्ष्यामिचवाहिनीम् ॥ २३ ॥ इतिब्रुवाणंरामस्तुपरिष्वज्यविभीषणम् ॥ अब्रवील्लक्ष्मणंप्रीतःसमुद्राज्जलमानय ॥ २४ ॥ तेनचेमंमहाप्राज्ञमभिषिंचविभीषणम् ॥ राजानंरक्षसांक्षिप्रंप्रसन्नेमयिमानद ॥ २५ ॥

अयोध्यापुरीको न जांयगे ॥ २१ ॥ अमानुषकर्मकारी श्रीरामचंद्रजीके वचन सुनकर धर्मात्मा विभीषणजी शिर झुकाय रामचंद्रजीके दोनो चरणोंकी वंदना करके कहने लगे॥२२॥ रावणकी सेनाके आतेही सबसे प्रथम हम उसमें प्रवेश करके राक्षसगणोंका वध और सबसे लंकाके विध्वंस करनेमें यथा साध्य आपकी सहायता करेंगे॥ २३ ॥ जब विभीषणजीनें इस प्रकारसे कहा तब श्रीरामचंद्रजी प्रसन्नता प्राप्त करके उनको भेंटकर लक्ष्मणजीको समुद्रके जल लानेंकी आज्ञा देकर कहा॥२४॥हे महानद! समुद्रके जलसे अभिषेक करके महाप्राज्ञ विभीषणको राजा बनानाही हमारा अभिप्राय है

पवन, आकाश, जल और अग्नि, यह समस्तही अपने २ स्वभावके वश होकर रहतेहैं ॥ २३ ॥ हे शुद्धस्वभाव! हम स्वभावसेही अगाध और लांघनेंके अयोग्यहैं, यदि लोग सहजसेही हमारे पार चले जायसकें, अथवा हममें थोड़ा जल होजाय तो आपही बतलाइये, कि ऐसा होनेंसे हमारे स्वभावमें अंतर पाया या नहीं? ॥ २४ ॥ हे राजकुमार! हम कामनाके हेतु लोभके अर्थ अथवा भयसे युक्तहो कभीभी नाके और मत्स्योंसे युक्त अपनी जलराशिको नहीं रोक सकते ॥ २५ ॥ हे प्रभो! आपकी जैसी इच्छाहै हम भी वही करनेंको तैयार हैं और जो आप करेंगे उसको भलीभांतिसे सहन करनेंकोभी हम राजीहैं, आपकी सैना जिस समय पार जायगी, उस समय जलके जीव उस सैनाको भक्षण न

तत्स्वभावोममाप्येषयदगाधोहमप्लवः ॥ विकारस्तुभवेद्गाधएतत्तेप्रवदाम्यहम् ॥ २४ ॥ नकामान्नचलोभाद्वान भयात्पार्थिवात्मज ॥ रागान्नक्राकुलजलंस्तंभयेयंकथंचन ॥ २५ ॥ विधास्येयेनगंतासिविषहिष्येप्यहंतथा ॥ नग्राहाविधमिष्यंतियावत्सेनातरिष्यति ॥ हरीणांतरणेरामकरिष्यामियथास्थलम् ॥ २६ ॥ तमब्रवीत्तदारामः शृणुमेवरुणालय ॥ अमोघोयंमहाबाणःकस्मिन्देशेनिपात्यताम् ॥ २७ ॥ रामस्यवचनंश्रुत्वातंचदृष्ट्वामहाशरम् ॥ महोदधिर्महातेजाराघववाक्यमब्रवीत् ॥ २८ ॥ उत्तरेणावकाशोस्तिकश्चित्पुण्यतरोमम ॥ द्रुमकुल्यइतिख्यातो लोकेख्यातोयथाभवान् ॥ २९ ॥ उग्रदर्शनकर्माणोबहवस्तत्रदस्यवः ॥ आभीरप्रमुखाःपापाःपिबंतिसलिलंमम ॥ ३० ॥

करेंगे; अधिक कहांतक कहैं आपकी वानरी सैनाके पार होनेंके समय यह जलराशि बीच २ में उनको उत्तम स्थल दिखलावेगी ॥ २६ ॥ तब श्रीरामचंद्रजी बोले कि, हे समुद्र! हमारा यह बाण अमोघहै, निरर्थक नहीं होता इस कारण किस स्थानमें इसको चलावें सो तुम बताओ ॥ २७ ॥ श्रीरामचंद्रजीके यह वचन सुनकर और उनके हाथमें महाभयंकर बाण देखकर समुद्र महातेजस्वी श्रीरामचंद्रजीसे बोला ॥ २८ ॥ कि जिसप्रकारसे आप, लोगोंमें विख्यातहैं, वैसेही यहां से उत्तर दिशामें द्रुमकुल्य नामक हमारा कोई सुविख्यात पुण्य स्थान है ॥ २९ ॥ वहांपर उग्रस्वभावयुक्त क्रूर कर्म करनेंवाले पापचारी बहुतसे आभीर चोर वास करते हुए हमारा जलपान कि

समुद्र पार जानेके संबंधमें थे यथावत श्रीरामचंद्रजीसे निवेदन किये ॥ ३३ ॥ इन वचनोंको श्रवण करते ही स्वभावसेही धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीनें भी मान्यकिया और महातेजस्वी श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी वानरराज सुग्रीवजीसे बोले ॥ ३४ ॥ कारण कि इन दोनों जनोंको सत्क्रिया करनेंके योग्य समझाहै, हे लक्ष्मण! विभीषणकी परामर्श हमकोभी अच्छी लगतीहै ॥ ३५ ॥ हे सुग्रीव! तुम पंडितहो और सलाह देनेंमें चतुर हो इस कारण तुम दोनों जन सलाह करकै जोकुछ तुम्हारा मतहो वह हमसे प्रकाशकरो ॥ ३६ ॥ तब वीरश्रेष्ठ लक्ष्मण और सुग्रीवजी इस प्रकारसे कहे जाकर उस समयके अनुसार उचित वचन बोले ॥ ३७ ॥ कि हेनरव्याघ्र! विभीषणजीनें इस समय जो सारवान सुन्दर परामर्श दियाहै, वह

प्रकृत्याधर्मशीलस्यरामस्यास्यप्यरोचत ॥ सलक्ष्मणंमहातेजाःसुग्रीवंचहरीश्वरम् ॥ ३४ ॥ सत्क्रियार्थंक्रियादक्षं स्मितपूर्वमभाषत ॥ विभीषणस्यमंत्रोयंममलक्ष्मणरोचते ॥ ३५ ॥ सुग्रीवःपंडितोनित्यंभवान्मंत्रविचक्षणः ॥ उभाभ्यांसंप्रधार्यार्थंरोचतेयत्तदुच्यताम् ॥ ३६ ॥ एवमुक्तौततोवीरावुभौसुग्रीवलक्ष्मणौ ॥ समुदाचारसंयुक्तमिदंवचनमूचतुः ॥ ३७ ॥ किमर्थंनौनरव्याघ्रनरोचिष्यतिराघव ॥ विभीषणेनयत्तूक्तमस्मिन्कालेसुखावहम् ॥ ३८ ॥ अबद्ध्वा सागरेसेतुंघोरेऽस्मिन्वरुणालये ॥ लंकानासादितुंशक्यासेंद्रैरपिसुरासुरैः ॥ ३९ ॥ विभीषणस्यशूरस्ययथार्थंक्रियतां वचः ॥ अलंकालात्ययंकृत्वासागरायनियुज्यताम् ॥ यथासैन्येनगच्छामपुरींरावणपालिताम् ॥४०॥ एवमुक्तःकुशास्तीर्णेतीरेनदनदीपतेः ॥ संविवेशतदारामोवेद्यामिवहुताशनः॥४१॥ इत्याश्रीम०वा०आ०यु०एकोनविंशःसर्गः ॥१९॥

भला किसकारणसे हमें अप्रीति कर होगा ॥ ३८ ॥ हम लोगोंको विश्वासहै कि इस महासमुद्र पर विना सेतु बांधे देवता लोगोंके साथ सुरपति इन्द्रजीभी लंकामें प्रवेश करनेकी सामर्थ्य नहीं रखते हैं ॥ ३९ ॥ इस कारण अब कुछभी विलम्ब करनेंकी आवश्यकता नहीं है, शीघ्र महात्मा विभीषणजीके वचन पालनमें तैयार होकर आप समुद्रकी शरण जाइये, और जिस्से हम लोग सब सेनाके सहित रावण पालित लंकापुरीमें उपस्थित होसकें इसकी चेष्टा कीजिये ॥ ४० ॥ जब श्रीरामचंद्रजीसे ऐसा कहा गया तो वह श्रीरामचंद्रजी वेदीके बीचमें स्थापित हुई अग्निके समान नदनदीपति समुद्रके तीर कुश बिछायकर समुद्रके तीर पर बैठ गये ॥ ४१ ॥ इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०युद्धकाण्डे एकोनविंशःसर्गः ॥ १९ ॥

औषधि युक्त स्नेहपूर्ण क्षीर सहित सुगन्धित वृक्षोंसे यह स्थान परिपूर्ण होगा ॥ ३८ ॥ श्रीरामचंद्रजीसे वरदान पायकर यह स्थान अनेक
गुणोंका आधार हुआ, और उसके समस्त मार्गभी यात्रियोंके लिये सुखदायक हुए ॥ ३९ ॥ जब उन चोरोंका देश इस प्रकारसे जलबल शुष्क
होगया, तब उस स्थानपर नद नदियोंके पति समुद्रनें सर्व शास्त्रोंका मर्म जाननेंवाले श्रीरामचंद्रजीसे यह वचन कहे ॥ ४० ॥ हेसौम्य ! यह
नल नाम वानर श्रीमान् विश्वकर्माका प्यारा पुत्रहै; इसनें अपने पितासे सर्ववस्तुओंके जाननेंकी सामर्थका वर पायाहै ॥ ४१ ॥ इस कारण अपने
पिताकी समान सामर्थ्ययुक्त अतिउत्साही यह वानर हमारे ऊपर सेतु (पुल) बनावै हम उसको धारण किये रहेंगे * ॥ ४२ ॥ यह कहकर

एवमेतैश्चसंयुक्तोबहुभिःसंयुतोमरुः ॥ रामस्यवरदानाच्चशिवःपंथाबभूवह ॥ ३९ ॥ तस्मिन्दग्धेतदाकुक्षौसमुद्रःसरि
तांपतिः ॥ राघवंसर्वशास्त्रज्ञमिदंवचनमब्रवीत् ॥ ४० ॥ अयंसोम्यनलोनामतनयोविश्वकर्मणः ॥ पित्रादत्तवरःश्री
मान्प्रीतिमान्विश्वकर्मणः ॥४१॥ एषसेतुंमहोत्साहःकरोतुमयिवानरः ॥ तमहंधारयिष्यामियथाह्येषपितातथा॥४२॥
एवमुक्त्वोदधिर्नष्टःसमुत्थायनलस्ततः ॥ अब्रवीद्वानरश्रेष्ठोवाक्यंरामंमहाबलम् ॥ ४३ ॥ अहंसेतुंकरिष्यामिविस्तीर्णे
मकरालये ॥ पितुःसामर्थ्यमासाद्यतत्त्वमाहमहोदधिः ॥ ४४ ॥ दंडएवपरोलोकेपुरुषस्येतिमेमतिः ॥ धिक्क्षमामकृ
तज्ञेषुसांत्वंदानमथापिवा॥४५॥अयंहिसागरोभीमःसेतुकर्मदिदृक्षया ॥ ददौदंडभयाद्गाधंराघवायमहोदधिः ॥४६॥

समुद्र अन्तर्ध्यान होगया, तिसके पीछे वानरश्रेष्ठ नलनें खड़े होकर महाबलवान श्रीरामचंद्रजीसे यह वचन कहे ॥ ४३ ॥ कि हेमहाराज !
समुद्रनें जो कुछ कहा वह समस्तही सत्यहै, हम पिताके वरदानके प्रभावसे इस बड़े भारी विस्तारवाले मत्स्योंके स्थान समुद्रके ऊपर सेतु बना
वेंगे ॥ ४४ ॥ हमारी तौ यह संभावनाहै कि संसारमें और दूसरे उपायोंकी बराबरीसे एक दंडही सबसे बड़ा उपायहै । उपकार न माननेंवाले पुरु
षके प्रति क्षमा, शान्त वचन, या दान किसीसेभी काम नहीं निकलता; इस कारणसे जो उपकार न माननेंवाले पुरुषको क्षमा, अथवा दान
देताहै; उसको धिक्कारहै ॥ ४५ ॥ अतएव ऐसे पुरुषको तौ दंडही देना उचितहै । देखिये कि इस भयंकर रूपवाले सागरनेही दंडके भयहीसे

* नलको वरदानथा कि जो वस्तु छूकर पानीमें डालैंगे वह जहांकी तहां तैसेही जलके ऊपर स्थित रहैगी ॥

कहतेहैं; उसमें किसी प्रकारका अंतर नपडे और अकातर चित्तसे मधुर और पुरुषोचित वचनोंसे उन वानरराज सुग्रीवसे यह हमारा कहा हुआ सन्देश कह आओ ॥ ९ ॥ उनसे कहनाकि हे वानरनाथ ! रामचंद्रकी सहायता करनें पर कुछ तुम्हारी धन संपत्ति बढनेंकी संभावना नहीं. और जो उनकी सहायता न करोगे तौ कुछ हानि नहीं होगी; विशेष करके तुम महाराजकुलमें उत्पन्न हुए ऋक्षरजस वानरराजके पुत्रहो; और तुम स्वयंभी महाबलवानहो इसलिये हमारे भाईकी समानहो । इसलिये रामचंद्रजीके सहायक होकर हमारे विरुद्ध अस्त्र शस्त्र धारण करना तुमको उचित नहीं है ॥ १० ॥ हे सुग्रीव! हम बुद्धिमान् दशरथके पुत्र रामचंद्रजीकी स्त्री हरणकर लाये इसमें तुम्हारी क्या हानिहै जो कुछभी हो अब तुम किष्किन्धाको लौट जाओ ॥११॥तुम निश्चय जान रक्खो कि तुम्हारे वानरगण किसी प्रकारसे लंकाके

त्वंवैमहाराजकुलप्रसूतोमहाबलश्चर्क्षरजःसुतश्च ॥ नकश्चनाथस्तवनास्त्यनर्थस्तथापिमेभ्रातृसमोहरीश ॥ १० ॥
अहंयद्यहरंभार्यांराजपुत्रस्यधीमतः ॥ किंतत्रतवसुग्रीवकिष्किंधांप्रतिगम्यताम् ॥ ११ ॥ नहीयंहरिभिर्लंकाप्राप्तुंश
क्याकथंचन ॥ देवैरपिसगंधर्वैःकिंपुनर्नरवानरैः ॥१२॥ सतदाराक्षसेंद्रेणसंदिष्टोरजनीचरः ॥ शुकोविहंगमोभूत्वातूर्ण
माप्लुत्यचांबरम् ॥ १३ ॥ सगत्वादूरमध्वानमुपर्युपरिसागरम् ॥ संस्थितोह्यंबरेवाक्यंसुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥ १४ ॥
सर्वमुक्तंयथादिष्टंरावणेनदुरात्मना ॥ तत्प्रापयंतंवचनंतूर्णमाप्लुत्यवानराः ॥ १५ ॥ प्रापद्यंततदाक्षिप्रंलोप्तुंहंतुंचमु
ष्टिभिः ॥ सर्वैःप्लवंगैःप्रसभंनिगृहीतोनिशाचरः ॥ १६ ॥

अधिकार कर लेनेमें समर्थ नहीं होंगे । सुग्रीव! नर वानरोंकी बाततो जानेंही दो? देवगण या गन्धर्वगणभी परस्पर मिलकर लंकामें प्रवेश नहीं कर सकतेहैं ॥ १२ ॥ राक्षसराज रावणकी यह आज्ञा सुनकर राक्षस शुक पक्षीका रूप धारण करके शीघ्रतासे आकाशको उड़गया ॥ १३ ॥ इसके पीछे समुद्रके ऊपर आकाश मार्गमें बहुत दूर चलकर वानरोंकी सैनाके निकट पहुंच आकाशमें टिकेही टिके वह वचन सुग्रीवजीसे कहे ॥ १४॥ दुरात्मा रावणनें जो वचन कहेथे वैसेही समस्त वचन उसनें सुग्रीवजीसे कहे; राक्षस शुक इस प्रकारसे कह रहाथा कि वानरोंनें ताक और आकाशमें कूदकर उसको पकड़ लिया ॥ १५ ॥ कोई २ उस राक्षसको काटनेंफाड़नेंके लिये तैयार हुए और किसी २नें प्राण संहार करनेंके लिये उस

चारों ओरसे लानें लगे ॥ ५४ ॥ वह वानर अनेक स्थानोंसे ताल दाड़िम (दारमी)नारियल वहेड़ा करील बकुल और नींब आदि समस्त वृक्षोंको सब ओरसे तोड़ उखाड़ कर ले आये ॥ ५५ ॥ हाथियोंके समान आकारवाले बड़े २ पर्वतखंड और पर्वतोंको उखाड़कर कलोंके द्वारा उनको समुद्रके तीरपर लेआये ॥ ५६ ॥ जब वानरगण वार २पर्वतोंको समुद्रमें फेंकतेथे तब समुद्रका जल उफन कर बराबर आकाशको चला जाता और फिर नीचे गिर जाताथा ॥ ५७ ॥ इसप्रकार चारों ओरसे पत्थरोंके पड़नेंसे समुद्रका जल खलबलाय गया। और बहुतसे वानरोंनें १०० शत योजनका लंबा सूत समुद्रके इस पारसे उस पारतक सिधाई टेढ़ाई की परीक्षा करनेंके लिये थामा ॥ ५८ ॥ जो कुछहो इस प्रकारसे महा

तालान्दाडिमगुल्मांश्चनारिकेलविभीतकान्॥करीरान्बकुलान्निंबान्समाजह्रुरितस्ततः ॥५५॥ हस्तिमात्रान्महाकायाः पाषाणांश्चमहाबलाः ॥ पर्वतांश्चसमुत्पाट्ययंत्रैःपरिवहंतिच॥५६॥प्रक्षिप्यमाणैरचलैःसहसाजलमुद्धतम् ॥ समुत्ससर्प चाकाशमवासर्पत्ततः पुनः ॥५७॥ समुद्रंक्षोभयामासुर्निपतंतःसमंततः ॥ सूत्राण्यन्येप्रगृह्णंतिह्यायतंशतयोजनम्॥५८॥ नलश्चक्रेमहासेतुंमध्येनदनदीपतेः ॥ सतदाक्रियतेसेतुर्वानरैर्घोरकर्मभिः ॥ ५९ ॥ दंडानन्येप्रगृह्णंतिविचिन्वंतितथापरे ॥ वानरैःशतशस्तत्ररामस्याज्ञापुरःसरैः ॥ ६० ॥ मेघाभैःपर्वताभैश्चतृणैःकाष्ठैर्बबंधिरे ॥ पुष्पिताग्रैश्चतरुभिःसेतुंबध्नंतिवानराः॥६१॥ पाषाणांश्चगिरीप्रख्यान्गिरिणांशिखराणिच॥ दृश्यंतेपरिधावंतोगृह्यदानवसन्निभाः ॥६२॥

वीर नल विचित्र कर्म करनेंवाले वानरोंके साथ समुद्रपर पुल बांधनेलगे ॥ ५९ ॥ कोई २ वानर दंड ग्रहण करके अपने आधीन हुए वानरोंसे कार्य करानें लगे; और कोई इधर उधर वृक्षादिकोंको ढूंढ़नें लगे, इस प्रकार श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञासे सैकड़ों हजारों वानर ॥ ६० ॥ जितना आकार मेघ और पर्वतोंकी समानथा तृण काठ और फूले हुए वृक्ष व पत्थरोंसे सेतु बांधनेंका प्रारंभ करनें लगे ॥ ६१ ॥ हाथीकी समान आकारवाले बहुत सारे वानरगण पर्वतकी समान बड़े पत्थरोंके खंड और पर्वतोंके शिखर ग्रहण करते हुए पुलके सन्मुखको दौड़नें लगे ॥ ६२ ॥

हे राक्षसेश्वर! हम बहुतही शीघ्र बडी भारी सैनाके साथ भ्राता और बन्धु बांधओंके साथ तुम्हारा नाश करकै तुम्हारी लंकापुरीको भस्म करडा लेंगे ॥ २४ ॥ हे रावण! जो इन्द्रादि देवगणभी तुम्हारी रक्षा करैं, अथवा तुम सूर्यके मार्गमें चले जाओ; या पातालमें प्रवेश कर जाओ, वा महादेवजीके चरणोंका आश्रयलो तथापि श्रीरामचंद्रजीसे तुम्हारा छुटकारा नहीं होसकता, तुम अपनेंको अपने छोटे भ्राता सहित मृतकही समझो ॥२५॥ जो तुम्हें बचानेंमें समर्थहो, हम त्रिलोकी में ढूंढ़भाल करकैभी किसी राक्षस, पिशाच, गन्धर्व या असुर लोगोंमेंभी ऐसा किसीको नहीं देख पाते ॥ २६॥ तुम जरायुक्त वृद्धगृध्रराज जटायुको मार करकै अपनेको बलवान समझकर गर्व न करो, जो तुममें बल होता तौ तुम श्रीरामचंद्रजीके आश्रममें न रहनेंपर चोरके समान जानकीको हरण करकै न लाते, वरन उनके सन्मुखसे हरण करते ॥ २७ ॥ हे रावण! जो तुम्हारे प्राणोंको हरण करेंगे तुम उन देवता लोगोंसेभी अजीत महात्मा महाबलवान रघुश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीको नहीं जानतेहो इसी कारणसे तुमनें ऐसा कार्य कियाहै ॥ २८॥ इसके पीछे कपिश्रेष्ठ वालिके पुत्र अंगदजी बोलेकि हेमहाप्राज्ञ! यह निशाचर रावणका दूत नहीं है, वरन हमको तौ यह गुप्त भेदिया मालूम होताहै ॥२९॥ इस राक्षसनें यहां पर आकर हमारी सब सेना और व्यूहको भली भांतिसे जांचलिया, इस कारण लंकाके वृत्तान्त जनानेंके लिये यह

निहन्म्यहंत्वांससुतंसबंधुंसज्ञातिवर्गंरजनीचरेश ॥ लंकांचसर्वांमहताबलेनसर्वैःकरिष्यामिसमेत्यभस्म ॥ २४ ॥ न मोक्ष्यसेरावणराघवस्यसर्वैःसहेंद्रैरपिमूढगुप्तः ॥ अंतर्हितःसूर्यपथंगतोपितथैवपातालमनुप्रविष्टः ॥ गिरीशपादांबुजसंगतोवाहतोसिरामेणसहानुजस्त्वम्॥ २५ ॥ तस्यतेत्रिषुलोकेषुनपिशाचंनराक्षसम् ॥ त्रातारंनानुपश्यामिनगंधर्वंनचासुरम् ॥ २६ ॥ अवधीस्त्वंजरावृद्धंगृध्रराजंजटायुषम् ॥ किंनुतेरामसान्निध्येसकाशेलक्ष्मणस्यच ॥ हृतासीताविशालाक्षीयांत्वंगृह्यनबुध्यसे ॥२७॥ महाबलंमहात्मानंदुराधर्षंसुरैरपि ॥ नबुध्यसेरघुश्रेष्ठंयस्तेप्राणान्हरिष्यति ॥२८॥ ततोब्रवीद्वालिसुतोप्यंगदोहरिसत्तम ॥ नायंदूतोमहाप्राज्ञचारकःप्रतिभातिमे ॥ २९ ॥ तुलितंहिबलंसर्वमनेनतवतिष्ठता ॥ गृह्यतांमागमल्लंकामेतद्धिममरोचते ॥ ३० ॥

गण आकाशमें टिके रहकर यह अद्भुत व्यापार सेतुका देखकर परम सन्तुष्ट हुए ॥ ७१ ॥ नलके बनाये चालीस कोश चौड़े, व चारसौ कोशके
लंबे, इस दुष्कर पुलको देखकर देवता और गन्धर्वगण अतिविस्मित हुए ॥ ७२ ॥ कार्यसिद्धिकी सूचना जानकर वानरगण आनंदके मा
रे कूदनें लगे, व कोई २ अति जोरसे कूदकर गर्जनें लगे अचिन्तनीय अद्भुत व रोमहर्षण ॥ ७३ ॥ इस सेतुके बंधनेंको देखकर, सब प्राणी मोहि
त होगये महाबलवान लाखों करोडों वानरगण इस प्रकारसे ॥ ७४ ॥ सेतु बांधकर समुद्रकी दूसरी पार चले गये। अतिविशाल अच्छी तर
हसे बनायाहुआ शोभायमान सुन्दर समानभूमियुक्त अच्छा चिकना सेतु ॥ ७५ ॥ समुद्रके केशविन्यास करनेंकी समान शोभा प्राप्त करनें

दशयोजनविस्तीर्णंशतयोजनमायतम् ॥ ददृशुर्देवगंधर्वानलसेतुंसुदुष्करम् ॥ ७२ ॥ आप्लवंतःप्लवंतश्चगर्जंतश्चप्लवंग
माः ॥ तमचिंत्यमसह्यंचह्यद्भुतंलोमहर्षणम् ॥ ७३ ॥ ददृशुःसर्वभूतानिसागरेसेतुबंधनम् ॥ तानिकोटिसहस्राणिवान
राणांमहौजसाम् ॥७४॥ बध्नंतःसागरेसेतुंजग्मुःपारंमहोदधेः ॥ विशालःसुकृतःश्रीमान्सुभूमिःसुसमाहितः ॥७५॥ अशो
भतमहान्सेतुःसीमंतइवसागरे ॥ ततःपारेसमुद्रस्यगदापाणिर्बिभीषणः ॥ ७६ ॥ परेषामभियानार्थमतिष्ठत्सचिवैः
सह ॥ सुग्रीवस्तुततःप्राहरामंसत्यपराक्रमम् ॥ ७७ ॥ हनूमंतंत्वमारोहअंगदंत्वथलक्ष्मणः ॥ अयंहिविपुलोवीरसागरो
मकरालयः ॥ ७८ ॥ वैहायसौयुवामेतौवानरौधारयिष्यतः ॥ अग्रतस्तस्यसैन्यस्यश्रीमान्रामःसलक्ष्मणः ॥ ७९ ॥
जगामधन्वीधर्मात्मासुग्रीवेणसमन्वितः ॥ अन्येमध्येनगच्छंतिपार्श्वतोन्येप्लवंगमाः ॥ ८० ॥

लगा, तिसके पीछे गदा हाथमें लिये समुद्रके दूसरी पार विभीषणजी ॥ ७६ ॥ अपने मंत्रियोंके साथ शत्रुलोगोंका संवाद और उनका
माया कार्य जाननेंके लिये घूमनें लगे। इस ओर वानरराज सुग्रीवजी सत्यपराक्रमवान् श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ ७७ ॥ कि हे वीर! यह मध्य
वर्ती समुद्रका मार्ग वहुत दूरतक है, इस कारण आप हनुमानजीकी, और लक्ष्मणजी अंगदजीकी पीठपर चढलें ॥ ७८ ॥ आकाशमें चलनेंवाले
यह दोनों वीर आप दोनों जनोंको सवार कराकर ले जांयगे। इस प्रकार इस सेनाके आगे २ श्रीरामचंद्र व लक्ष्मणजी अंगद हनुमानकी पीठपर
चढे ॥ ७९ ॥ धनुष धारण किये धर्मात्मा सुग्रीवजीके साथ चलनेंलगे वानरोंमेंसे कोई २ बीचमें, और कोई२पीछे२इधर उधर जानें लगे ॥८०॥

बाहोंको अनेकवार परम रूपवती स्त्रियोंनें वारंवार दबाया, व सहेलीयाथा ॥ ३ ॥ जिनके अंग चंदन और अगर इत्यादि सुगन्धित । द्रव्यसे लिप्त रहते, जो प्रभात कालीन सूर्यकी समान अरुण वर्णके कुंकुमसे चर्चित रहते ॥ ४ ॥ जो सीताजीके साथ सुन्दर सेजपर शयन करते, उनको इस समय तक्षकके गंगाजल सेवित सम्भोगकी समान भोग करनापड़ताहै ॥ ५ ॥ जो युद्धके समय यमराजकी समान भयंकर, जो शत्रुओंका शोक बढ़ानें वाले, और इष्ट मित्रोंके आनंद अत्यन्तको उछलानें वालेहैं आज वही समुद्रके तीर पर पड़ेहैं ॥ ६ ॥ जिनका दहना हाथ परिघकी तुल्य, वांया हाथ बाण छोड़नेंसे प्रत्यंचाके आघात चिह्नसे युक्त ॥ ७ ॥ व जिन भुजाओंसे हजारों गोदान किये गयेहैं आज वही

चंदनागुरुभिश्चैवपुरस्तादभिसेवितम् ॥ बालसूर्यप्रकाशैश्चचंदनैरुपशोभितम् ॥ ४ ॥ शयनेचोत्तमांगेनसीतायाः शोभितंपुरा ॥ तक्षकस्येवसंभोगंगंगाजलनिषेवितम् ॥ ५ ॥ संयुगेयुगसंकाशंशत्रूणांशोकवर्धनम् ॥ सुहृदांनंदनंदीर्घसागरांतव्यपाश्रयम् ॥ ६ ॥ अस्यताचपुनःसव्यंज्याघातविहतत्वचम् ॥ दक्षिणोदक्षिणंबाहुंमहापरिघसन्निभम् ॥ ७ ॥ गोसहस्रप्रदातारंत्युपधायभुजंमहत् ॥ अद्यमेतरणंवाथमरणंसागरस्यवा ॥ ८ ॥ इतिरामोधृतिंकृत्वामहाबाहुर्महोदधिम् ॥ अधिशिश्येचविधिवत्प्रयतोऽत्रस्थितोमुनिः ॥ ९ ॥ तस्यरामस्यसुप्तस्यकुशास्तीर्णेमहीतले ॥ नियमादप्रमत्तस्यनिशास्तिस्रोऽभिजग्मतुः ॥१०॥ सत्रिरात्रोषितस्तत्रनयज्ञोधर्मवत्सलः ॥ उपासततदारामः सागरंसरितांपतिम् ॥ ११ ॥ नचदर्शयतेरूपंमंदोरामस्यसागरः ॥ प्रयतेनापिरामेणयथार्हमभिपूजितः ॥ १२ ॥

दोनों कर तकियेका कार्य कर रहेहैं ! यातो । तीन दिनतक निरशनव्रत करके समुद्रको उतरहीं जांयगे जो समुद्र न उतरनें देगा तो इसका मरणही होगा ॥ ८ ॥ यह विचार कर महाबाहु श्रीरामचंद्रजी समुद्र उतरने पर दृढ़ विश्वास बांध मौनव्रत धारणकर तीर्थोंपवासकी रीतिसे विना कुछ खाये पिये मौनावलम्बन करके लेटरहे ॥ ९ ॥ कुशकी शेजपर शयन करके नियम धारण पूर्वक पृथ्वीपर लेटे २ श्रीरामचंद्रजीनें तीन रात्रि बिताई ॥ १० ॥ नीति विशारद धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीनें इस प्रकारसे तीन रात्रि वास करके नदीपति समुद्रकी उपासनाकी ॥ ११ ॥ यद्यपि इस प्रकार परम पवित्रतासे श्रीरामचंद्रजीनें समुद्रकी पूजाकी, परन्तुमहामन्दमति नदीपति समुद्रनें इस भांति श्रीरामचंद्रजीसे पूजा पाय

अशुभ निमित्त देखतेहैं,
सैना विभागसे व्यूह रचना करके टिके ॥ २ ॥ रीछ, वानर, और राक्षस गणोंके विनाश रूप अतिघोर लोकक्षयकारी अशुभ निमित्त देखतेहैं,
कि जिस्से बड़ा भारी नाश राक्षसोंकी सैनाका होगा ॥ ३ ॥ यह देखो पवन विरुद्धभावयुक्तहो धूलके सहित चल रहीहै; पृथ्वी कम्पायमान हो
रहीहै, पर्वताग्र चलायमानहैं, वृक्ष अचानक टूटरकर गिर रहेहैं ॥ ४ ॥ गिद्ध, गीदड़, वाज आदि मांसभक्षी जीवोंके वर्ण समान धौले रंगवाले मेघ
अत्यन्त कठोर शब्दसे गर्जन करके रुधिरकी बूंदोंके मिले हुए जलकी वर्षा करतेहैं ॥ ५ ॥ संध्या समय लाल चंदनकी समान अत्यन्त घोर
लाल वर्ण होगयाहै. और सूर्य मंडलसे प्रकाशमान अंगारे गिरतेहैं ॥ ६ ॥ जिनको देखकर क्रूर स्वभाववाले पशु पक्षीगण सूर्यके सामनेको मुखकर

लोकक्षयकरंभीमंभयंपश्याम्युपस्थितम् ॥ प्रबर्हणंप्रवीराणामृक्षवानररक्षसाम् ॥ ३ ॥ वाताश्चकलुषावांतिकंपतेचव
सुंधरा ॥ पर्वताग्राणिवेपंतेपतंतिचमहीरुहाः ॥ ४ ॥ मेघाःक्रव्यादसंकाशाःपरुषाःपरुषस्वनाः ॥क्रूराःक्रूरंप्रवर्षंतिमिश्रं
शोणितबिंदुभिः ॥ ५ ॥ रक्तचंदनसंकाशासंध्यापरमदारुणा ॥ ज्वलतःप्रपतत्येतदादित्यादग्निमंडलम् ॥ ६ ॥ दीना
दीनस्वराःक्रूराःसर्वतोमृगपक्षिणः ॥ प्रत्यादित्यंविनर्दंतिजनयंतोमहद्भयम् ॥ ७ ॥ रजन्यामप्रकाशस्तुसंतापयति
चंद्रमाः ॥ कृष्णरक्तांशुपर्यंतोलोकक्षयइवोदितः ॥ ८ ॥ ह्रस्वोरूक्षोऽप्रशस्तश्चपरिवेषस्तुलोहितः ॥ आदित्येविमले
नीलंलक्ष्मलक्ष्मणदृश्यते ॥९॥ रजसामहताचापिनक्षत्राणिहतानिच॥ युगांतमिवलोकानांपश्यशंसंतिलक्ष्मण ॥१०॥
काकाःश्येनास्तथानीचागृध्राःपरिपतंतिच ॥ शिवाश्चाप्यशुभान्नादान्नदंतिसुमहाभयान् ॥ ११ ॥

दीनभाव और करुणाभरी वाणीसे वारंवार शब्दकर रहेहैं. हे लक्ष्मण !हमारे अंतःकरणमें अत्यन्त भय उत्पन्न होताहै ॥ ७ ॥ रात्रिमें पहलेकी
समान चंद्रमाका उदय नहीं होता, वरन वह लाल और काली किरणोंसे युक्त और पोषके सहित उदित होताहै ॥ ८ ॥ निर्मल सूर्यमंडलमें
नीले वर्णके दाग दिखाई देतेहैं, हे लक्ष्मण! सूर्यके वाहरी भागमें छोटा शुष्क लाल घेरा बन गया ॥ ९ ॥ हे लक्ष्मण ! प्रबल धूरिके
उड़नेसे नक्षत्रगण ढककर दृष्टि नहीं आते इन सबको देखकर बोध होताहै कि युगान्तका समय आगयाहै ॥ १० ॥ कौए, बाज,
और गिद्धगण सहसा ऊपरसे गिरते हैं; शृगाल इत्यादि जलजन्तुगण भय उत्पन्न करानेवाला बड़ाभारी भयंकर शब्द कर रहे हैं ॥ ११ ॥

हुई शुन्डें देखोगे, शंख सहित, सीपी जालसे युक्त मछली, व मकरोंकेसाथ ॥ १९ ॥ इस समुद्रको आजही महायुद्ध करके हम शोष लेंगे हमको क्षमा गुणका आधार देखकर मकरालय समुद्र ॥ २० ॥ हमको मनमें अतिशय कापुरुष समझताहै; इस कारण क्षमाका अवलंबन कर नेंसे समुद्र हमारे पर अपना गर्व प्रकाश करताहै। इससे इस क्षमाको व हमको भी धिक्कारहै ! सामकाही अवलंबन करनेंसे समुद्र अवतक हमारे निकट न आया ॥ २१ ॥ हे लक्ष्मण ! अब तुम हमारा धनुष व विषधर सर्पोंकी समान विषवत बाण शीघ्र यहां पर ले आओ, कि हम समु द्रको सुखा डालें कि जिस्से वानरगण पैदलही समुद्रके पार उतरजावें ॥ २२ ॥ जो समुद्र किसीके लांघनें योग्य नहींहै, जो समुद्र बड़ीर

अद्ययुद्धेनमहतासमुद्रंपरिशोषये ॥ क्षमयाहिसमायुक्तंमामयंमकरालयः॥२०॥ असमर्थंविजानातिधिक्क्षमामीदृशे जने ॥ नदर्शयतिसाम्नामेसागरोरूपमात्मनः॥२१॥चापमानयसौमित्रेशरांश्चाशीविषोपमान्॥समुद्रंशोषयिष्यामिप द्भ्यांयांतुप्लवंगमाः॥२२॥अद्याक्षोभ्यमपिक्रुद्धःक्षोभयिष्यामिसागरम् ॥ वेलासुकृतमर्यादंसहस्रोर्मिसमाकुलम्॥२३॥ निर्मर्यादंकरिष्यामिसायकैर्वरुणालयम् ॥ महार्णवंक्षोभयिष्येमहादानवसंकुलम्॥२४॥ एवमुक्त्वाधनुष्पाणिःक्रोधवि स्फारितेक्षणः ॥ बभूवरामोदुर्धर्षोयुगांताग्निरिवज्वलन्॥२५॥संपीड्यचधनुर्घोरंकंपयित्वाशनैर्जगत्॥मुमोचविशिखा नुग्रान्वज्रानिवशतक्रतुः॥२६॥तेज्वलंतोमहावेगास्तेजसासायकोत्तमाः॥प्रविशंतिसमुद्रस्यजलंवित्रस्तपन्नगम्॥२७॥

तरंगोंसे युक्तहै, और जिसकी सीमा किनारेकी भूमितक नियतहै हम आज क्रोधित होकर उसी समुद्रको खलबलादेंगे ॥ २३॥ हम बाणोंको चलाय कर महा समुद्रकी सीमाको स्थिर नहीं रक्खेंगे, महादानवोंके रहनेंके स्थान इस समुद्रको हम अवश्य शुष्ककर डालेंगे ॥ २४ ॥ रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीनें यह कहकर धनुष धारण किया, व क्रोधके मारे उनके नेत्र फड़कनें लगे; और उस काल श्रीरामचंद्रजी प्रज्वलित प्रलयकी अ ग्निके समान दुर्द्धर्ष होगये ॥ २५ ॥ तिसके पीछे श्रीरामचंद्रजी बडेभारी धनुषपर रोदा चढायकर उसकी फटकारसे समस्त जगत्को कम्पित करके इन्द्रजी जिस प्रकार वज्र चलातेहैं, वैसेही प्रचंड बाणोंकोछोड़नें लगे ॥ २६ ॥ श्रीरामचंद्रजीके धनुषसे छूटे हुए तेज प्रदीप्त वह

वेगसे अत्यन्त पीडित होकर वारंवार कंपायमान होने लगी ॥ २ ॥ लंकामें टिके हुए भयंकर राक्षसोंके भयंकर कुलाहलका शब्द और भेरी मृदंगोंका
शब्द इन समस्त वानरोंने सुन ॥ ३ ॥ और इसको सुनकर वह यहांतक हर्षित हुए कि वह किसी प्रकारसे उन राक्षसोंके शब्दको न सहनकर
सके और वड़ाभारी उत्कंठ शब्द करनें लगे ॥ ४ ॥ तिस समय राक्षस लोगोंने आकाशमे मेघ गर्जनेकी समान वानर लोगोंका उत्कट गर्जना
सुना, और कांप उठे ॥ ५ ॥ इसी समय दशरथ कुमार श्रीरामचंद्रजी ध्वजा पताकाओंसे शोभित लंकापुरीको देखकर सीताजीके लिये मनही
मन अतिदुःखित हुए ॥ ६ ॥ कि इस समय वह मृगनयनी सीताजी रावणके घरमें रोकी हुई हैं; मंगल ग्रहसे ग्रसी हुई रोहिणी नक्षत्रके समान

ततःशुश्रुवुराकृष्टंलंकायांकाननौकसः ॥ भेरीमृदंगसंघुष्टंतुमुलंलोमहर्षणम् ॥३॥ बभूवुस्तेनघोषेणसंहृष्टाहरियूथपाः ॥
अमृष्यमाणास्तद्घोषंविनेदुर्घोषवत्तरम् ॥४॥ राक्षसास्तत्प्लवंगानांशुश्रुवुस्तेपिगर्जितम् ॥ नर्दतामिवदृप्तानांमेघानाम्
बरेस्वनम् ॥ ५ ॥ दृष्ट्वादाशरथिर्लंकांचित्रध्वजपताकिनीम् ॥ जगाममनसासीतांदूयमानेनचेतसा ॥ ६ ॥ अत्रसा
मृगशावाक्षीरावणेनोपरुध्यते ॥ अभिभूताग्रहेणेवलोहितांगेनरोहिणी ॥ ७ ॥ दीर्घमुष्णंचनिःश्वस्यसमुद्वीक्ष्यचलक्ष्म
णम् ॥ उवाचवचनंवीरस्तत्कालहितमात्मनः ॥ ८ ॥ आलिखंतीमिवाकाशमुत्थितांपश्यलक्ष्मण ॥ मनसेवकृतांलं
कांनगाग्रेविश्वकर्मणा ॥ ९ ॥ विमानैर्बहुभिर्लंकासंकीर्णारचितापुरा ॥ विष्णोःपदमिवाकाशंछादितंपांडुभिर्घ
नैः ॥ १० ॥ पुष्पितैःशोभितालंकावनैश्चित्ररथोपमैः ॥ नानापतगसंघुष्टफलपुष्पोपगैःशुभैः ॥ ११ ॥

जानकीजीकी शोचनीय अवस्था होगी ॥ ७ ॥ तब महावीर श्रीरामचंद्रजी लंबे २ श्वास लेकर लक्ष्मणजीके सन्मुख दृष्टि करकै, उस कालके
हितकर वचन उनसे बोले ॥ ८ ॥ हे लक्ष्मण! निहारकर देखो कि विश्वकर्माजीनें पर्वत त्रिकूटके ऊपर इस लंकापुरीको बनायाहै, कि
जिस्से ऐसा जान पडताहै, कि विश्वकर्माजीनें इस पुरीको मानों अपने मनहींसे बनायाहै, इसकी शोभा देखकर यह समझमें आताहै कि मानों
आकाशमें कुछ तसवीरसे खिंची हुई हैं ॥ ९ ॥ देखो लंकानगरी सप्त भूमिक महलोंसे युक्त विमानोंसे युक्त होकर श्वेतवर्णके मेघसे ढके
विष्णुजीके पद आकाशकी समान शोभायमान होरही है ॥ १० ॥ इस लंका नगरीमें अनेक प्रकारके चित्ररथवनकी समान, अनेक पुष्पवन

सदाकी साधुकी वृत्तिकी ओर एकवार दृष्टि कीजिये ॥ ३४ ॥ यह देखिये अंतारिक्षमें अन्तर्हित हुए ब्रह्मर्षि और सुरर्षि गण "हा कष्ट!" इस दारुण शब्दसे कष्ट प्रकाश करते हुए (मा) (मा) अर्थात् ऐसा मतकरो ऐसा मतकरो यह शब्द कह कहकर आपको निवारण कर रहे हैं ॥ ३५ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥ तब रघुश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी समुद्रको लक्ष बनाय यह अति दारुण वचन बोले कि "हम आज पातालके सहित इस समुद्रको सुखा डालेंगे" ॥ १ ॥ फिर श्रीरामचंद्रजी समुद्रसे बोले कि हमारे बाणोंके द्वारा तुम्हारा जलजन्तुओंके साथ सूख जायगा, व तुम्हारे भंडारमें बडीभारी धूरि उडैगी ॥ २ ॥ हे समुद्र! हमारे धनुपसे बराबर बाण छूटनेपर

अंतर्हितैश्चापितथांऽतरिक्षेब्रह्मर्षिभिश्चैवसुरर्षिभिश्च ॥ शब्दःकृतःकष्टमितिब्रुवद्भिर्मामेतिचोक्त्वामहतास्वरेण ॥ ३५॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०यु०एकविंशःसर्गः ॥२१ ॥ अथोवाचरघुश्रेष्ठःसागरंदारुणंवचः ॥ अद्याहंशोषयिष्यामिसपातालंमहार्णवम् ॥ १ ॥ शरनिर्दग्धतोयस्यपरिशुष्कस्यसागर ॥ मयानिहतसत्वस्यपांसुरुत्पद्यतेमहान् ॥ २ ॥ मत्कार्मुकनिसृष्टेनशरवर्षेणसागर ॥ परंतीरंगमिष्यंतिपद्भिरेवप्लवंगमाः ॥ ३ ॥ विचिन्वन्नाभिजानासिपौरुषंनापिविक्रमम् ॥ दानवालयसंतापंमत्तोनामगमिष्यसि ॥ ४ ॥ ब्राह्मेणास्त्रेणसंयोज्यब्रह्मदंडनिभंशरम् ॥ संयोज्यधनुषिश्रेष्ठेविचकर्षमहाबलः ॥ ५ ॥ तस्मिन्विकृष्टेसहसाराघवेणशरासने ॥ रोदसीसंपफालेवपर्वताश्चचकंपिरे ॥ ६ ॥

जब तुम्हारा जल सूख जायगा, तब वानरगण पैदलही तुम्हारे पार उतर जांयगे ॥ ३ ॥ हे दानवोंके स्थान समुद्र! तुम हमारे पौरुष और विक्रमको नहीं जानतेहो! जो कुछभीहो, परन्तु अब हमारे प्रभावके मर्मको तुम समझ सकोगे ॥ ४ ॥ महाबलवान् श्रीरामचंद्रजीनें इस प्रकारसे कहकर ब्रह्मदंड नामक बाणको ब्राह्ममंत्रसे अभिमंत्रित किया, और उसको बडे भारी धनुषपर चढाकर खेंचनेलगे ॥ ५ ॥ जिस समय महाबलवान् श्रीरामचंद्रजीनें बाणको खेंचा उस समय पृथ्वी मानों फटनें लगी, और स्वर्ग विदीर्णसा होंने लगा, सब पर्वत कंपायमान होनेलगे ॥ ६ ॥

वानरगण पर्वतोंके शिखर और बड़े २ वृक्षोंको ग्रहण करके मानों लंका नगरीको विध्वंश करनेंको अभिलाषासेही उस पर चढ़ाई करते हुए ॥२०॥ उस समय वह वानरगण ऐसे उत्साहित हुए कि उन लोगोंनें मनमें विचारा कि यातो पर्वतोंके शिखर चलायकर लंकाको चूर्ण कर देंगे, अथवा घूंसे मार २ कर उसके धवरहरोंको तोड़ ताड़ डालेंगे, यह विचार कर वानरगण आनंदमें आधीर होगये ॥ २१ ॥ इसके पीछे महातेजस्वी श्रीरामचंद्रजी, वानरराज सुग्रीवजीसे यह बोलेकि हे सखे ! अवतौ सव सैना यथा स्थानमें टिक गई इस कारण अब इस रावणके दूत शुकको छोड़ देना चाहिये ॥ २२ ॥ महाबलवान वानरोंके राजा सुग्रीवजीनें श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञानुसार राक्षसराज रावणके दूत शुकको छोड़

प्रगृह्यगिरिशृंगाणिमहतश्चमहीरुहान् ॥ आसेदुर्वानरालंकांमिमर्दयिषवोरणे ॥ २० ॥ शिखरैर्विकिरामैनांलंकांमुष्टिभिरेववा ॥ इतिस्मदधिरेसर्वेमनांसिहरिपुंगवाः ॥ २१ ॥ ततोरामोमहातेजाःसुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥ सुविभक्तानिसैन्यानिशुकएषविमुच्यताम् ॥ २२ ॥ रामस्यतुवचःश्रुत्वावानरेंद्रोमहाबलः ॥ मोचयामासतंदूतंशुकंरामस्यशासनात् ॥ २३ ॥ मोचितोरामवाक्येनवानरैश्चनिपीडितः ॥ शुकःपरमसंत्रस्तोरक्षोधिपमुपागमत् ॥ २४ ॥ रावणःप्रहसन्नेवशुकंवाक्यमुवाचह ॥ किमिमौतेसितौपक्षौलूनपक्षश्चदृश्यसे ॥ २५ ॥ कच्चिन्नानेकचित्तानांतेषांत्वंवशमागतः ॥ ततःसभयसंविग्नस्तेनराज्ञाभिचोदितः ॥ वचनंप्रत्युवाचेदंराक्षसाधिपमुत्तमम् ॥ २६ ॥ सागरस्योत्तरेतीरेऽब्रुवंतेवचनंतथा ॥ यथासंदेशमक्लिष्टंसांत्वयन्श्लक्ष्णयागिरा ॥ २७ ॥

देते हुए ॥ २३ ॥ श्रीरामचंद्रजीके कहनेंसे छुटकारा पाय वानरोंसे सताया हुआ शुक अतित्रासितहो राक्षसराज रावणके निकट उपस्थित हुआ ॥ २४ ॥ राक्षसोंका स्वामी रावण शुकको आया हुआ देख कुछेक हँसकर उस्से बोला कि यह क्या ? तुम्हारे श्वेत पंख उखड़ गये इनकी यह दशा कैसे हुई ? ॥ २५ ॥ कहीं तुम उन चंचलचित्त वानर लोगोंके वशमें तो नहीं पड़ गयेथे ? इस प्रकार पूछे जाने पर, राजकुमार श्रीरामचंद्रजीके कहनेंसे छूटा भयभीत शुक राक्षसपति रावणको यह उत्तर देता हुआ ॥ २६ ॥ शुक बोलाकि. महाराज ! हम समुद्रके उत्तर तीर जायकर प्रथम मधुर वचनोंसे वानर गणोंको समझानेंके लिये जिस प्रकारसे आपनें कहा था, वैसेही आपके आज्ञा किये वह वीरोचित वचन

शत्रुओंके मारनेंवाले रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी नदनदीपति समुद्रको चलायमान होते देखकरभी, आप चलायमान न हुए और अस्त्रका न लौटाते हुए अथवा, अपना अपना अस्त्र परित्याग नहीं करते हुए ॥ १६ ॥ फिर सूर्य भगवान जिसप्रकार उदयाचल सुमेरुके बीचों बीचमें उदय होकर शोभायमान होतेहैं, वैसेही समुद्रके बीचों बीचसे समुद्र उठकर शोभाको प्राप्त हुआ ॥ १७ ॥ इसके साथहीसाथ प्रदीप्तवदन सर्पगण मुख फैलाये दृष्टि आये समुद्रका आकार चिकनी वैदूर्य मणिकी समानथा, व उसका शरीर तपाये हुए सुवर्णके भूषणोंसे शोभितथा ॥ १८ ॥ समुद्रके गलेमें रत्नोंकी माला विचित्र वस्त्र पहरे हुए, उसके नेत्र फूले हुए कमल दलको तुल्य और शिरपर अनेक प्रकारके फूलोंकी माला शोभायमान होर

तंतथासमतिक्रांतंनातिचक्रामराघवः ॥ तमुद्धतममित्रघ्नोरामोनदनदीपतिम्॥१६॥ ततोमध्यात्समुद्रस्यसागरःस्वय मुत्थितः ॥ उदयाद्रिमहाशैलान्मेरोरिवदिवाकरः॥१७॥ पन्नगैःसहदीप्तास्यैःसमुद्रःप्रत्यदृश्यत ॥ स्निग्धवैदूर्यसंकाशो जांबूनदविभूषणः ॥१८॥ रत्नमाल्यांबरधरःपद्मपत्रनिभेक्षणः ॥ सर्वपुष्पमयींदिव्यांशिरसाधारयन्स्रजम् ॥ १९ ॥ जा तरूपमयैश्चैवतपनीयविभूषणैः ॥ आत्मजानांचरत्नानांभूषितोभूषणोत्तमैः ॥ २० ॥ धातुभिर्मंडितःशैलोविविधैर्हि मवानिव ॥ आघूर्णिततरंगौघःकालिकानिलसंकुलः ॥ २१ ॥ गंगासिंधुप्रधानाभिरापगाभिःसमावृतः ॥ सागरःसमु पक्रम्यपूर्वमामंत्र्यवीर्यवान् ॥ अब्रवीत्प्रांजलिर्वाक्यंराघवंशरपाणिनम् ॥ २२ ॥ पृथिवीवायुराकाशमापोज्योतिश्च राघव ॥ स्वभावेसौम्यतिष्ठंतिशाश्वतंमार्गमाश्रिताः ॥ २३ ॥

हीथीं ॥ १९ ॥ उसके सब भूषण उत्तम सुवर्णके थे, उन गहनोंमें वही रत्न जड़ेथे जो कि समुद्रके गर्भसे उत्पन्न हुएथे ॥ २० ॥ उसकाल सर्व धातु करके भूषित हिमवान पर्वतकी समान समुद्र शोभायमान हुआ, और उसकी तरंगोंके समूह इधर उधर उठकर व गिरकर वादलोंको स्प र्शते और हवाके झोके उसमें लगते ॥ २१ ॥ गंगासिन्धु इत्यादि समस्त नदियें समुद्रको चारों ओरसे घेरे हुईथी, देखते २ सागर श्रीरामचंद्र जीके निकट आनेंको आगे बढ़ा और धनुष धारण किये हुए रावणके शत्रु श्रीरामचंद्रजीसे हाथ जोड़कर बोला ॥२२॥ हे श्रीरामचंद्रजी! पृथ्वी,

कि यदि देव दानव और गन्धर्वगण एक साथ मिलकर हमारे साथ युद्ध करैं, अथवा त्रिलोकीके सब रहनेंवाले भी विरुद्ध होजांय तथापि हम भय पायकर कभी जानकीको रामके समर्पण न करेंगे ॥ ३६ ॥ * अहो! ऐसा शुभ समय कब आय पहुँचेगा कि जिस समय मतवाले भ्रमरगण जिसप्रकार फूले हुए वृक्षके सामनेंको दौडतेहैं, वैसेही हमारे बाण उन रामचंद्रके सन्मुख दौड़ेंगे ॥ ३७ ॥ कब हमारे धनुषसे छूटे हुए प्रदीप्त बाणोंसे अंगमें रुधिर लगे हुए उन रामको हम अपने बाणोंसे जला डालेंगे, कि जिसप्रकार उल्का हाथीको जलातीहै ॥ ३८ ॥ हे शुक! हम निश्चय कहतेहैं कि जिसप्रकार सूर्य उदय होकर छोटे २ तारा गणोंका तेज हरण कर लेतेहैं; वैसेही हमभी बड़ीभारी सैना साथ लेकर

यदिमांप्रतियुद्ध्येरन्देवगंधर्वदानवाः ॥ नैवसीतांप्रदास्यामिसर्वलोकभयादपि ॥ ३६ ॥ कदासमभिधावंतिमामकाराघवंशराः ॥ वसंतेपुष्पितंमत्ताभ्रमराइवपादपम् ॥ ३७ ॥ कदाशोणितदिग्धांगंदीप्तैःकार्मुकविच्युतैः ॥ शरैरादीपयिष्यामिउल्काभिरिवकुंजरम् ॥ ३८ ॥ तच्चास्यबलमादास्येबलेनमहतावृतः ॥ ज्योतिषामिवसर्वेषांप्रभामुद्यन्दिवाकरः ॥ ३९ ॥ सागरस्येवमेवेगोमारुतस्येवमेबलम् ॥ नचदाशरथिर्वेदतेनमांयोद्धुमिच्छति ॥ ४० ॥ नमेतूणीशयान्बाणान्सविषानिवपन्नगान् ॥ रामःपश्यतिसंग्रामेतेनमांयोद्धुमिच्छति ॥ ४१ ॥ नजानातिपुरावीर्यंममयुद्धेसराघवः ॥ ममचापमयींवीणांशरकोणैःप्रवादिताम् ॥ ४२ ॥

रामचंद्रकी अल्प साधारण सैनाका नाश कर डालेंगे ॥ ३९ ॥ अधिक क्या कहैं; हमारा वेग समुद्रकी तुल्य और बल पवनकी समानहै; हमको तौ ऐसा जान पड़ताहै कि राम हमारे बलाबलको कुछभी नहीं जानते, इसी कारणसे वह हमारे साथ युद्ध करनेंका साहस करतेहैं ॥ ४० ॥ रामचंद्रनें हमारे विषधर सर्पकी समान चलाये हुए बाणोंकी विकट मूर्ति नहीं देखीहै इसी कारणसे वह हमारे साथ युद्ध करनेंका साहस करतेहैं ॥ ४१ ॥ रामचंद्रनें कभी हमारे साथ युद्ध नहीं कियाहै, इस कारण वह हमारे वीर्यको नहीं जानते; जबकि युद्धके समय हमारी चापमई

* कवित्त ॥ जान देहौं लंक निरशंक सब जान देहौं जान देहौं वसन कुबेर बेगवानकी ॥ जान देहौं सुभट विकटकट जान देहौं, जान देहौं सकल समाज रज धानक ॥ कुंभ औ निकुंभ रघुनाथकों न जान देहौं जान देहौं हाथी रथ प्यारीतू समानकी। जान देहौं सकल शरीर पीर जान देहौं जान देहौं जान पै न जान देहौं जानकी ॥ १ ॥

याकरतेहैं ॥ ३० ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! उन पापकर्म करने वालोंके जल छूनेसे जो पाप होताहै उसको हम नहीं सहन कर सकतेहैं, इस कारण यह श्रेष्ठ बाण उस स्थानमें छोड़कर आप सफल करैं ॥ ३१ ॥ तब दयानिधि रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीनें महात्मा जलनिधिके वचन सुन उसके बताये हुए स्थानमें वही प्रदीप्त बाण वहांपर छोड़ा ॥ ३२ ॥ वह वज्रकी अग्निके समान प्रदीप्त बाण जिस स्थानमें गिराथा वह स्थान तबसे पृथ्वीपर मरु कान्तार नामसे विख्यात हुआहै ॥ ३३ ॥ जिस समय वह बाण गिरा तब उस बाणकी चोटसे पृथ्वी पीड़ित होकर घोरशब्द करनें लगी उस समय शतधार होकर पातालसे पृथ्वीपर जल निकलनें लगा ॥ ३४ ॥ यह जल कुएके आकारमें बदलकर "व्रण" नामसे विख्यात

तैर्नतत्स्पर्शनंपापंसहेयंपापकर्मभिः ॥ अमोघःक्रियतांरामअयंतत्रशरोत्तमः ॥ ३१ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वासागरस्य महात्मनः ॥मुमोचतंशरंदीप्तंपरंसागरदर्शनात् ॥ ३२ ॥ तेनतन्मरुकांतारंपृथिव्यांकिलविश्रुतम् ॥ निपातितःशरोयत्र वज्राशनिसमप्रभः ॥ ३३ ॥ ननादचतदातत्रवसुधाशल्यपीडिता ॥ तस्माद्व्रणमुखात्तोयमुत्पपातरसातलात् ॥३४ ॥ सबभूवतदाकूपोव्रणइत्येवविश्रुतः ॥ सततंचोत्थितंतोयंसमुद्रस्येवदृश्यते ॥ ३५ ॥ अवदारणशब्दश्चदारुणःसमपद्यत ॥ तस्मात्तद्बाणपातेनअपःकुक्षिष्वशोषयत् ॥ ३६ ॥ विख्यातंत्रिषुलोकेषुमरुकांतारमेवच ॥ शोषयित्वातुतंकुक्षिंरामोदशरथात्मजः ॥ वरंतस्मैददौविद्वान्मरवेऽमरविक्रमः ॥ ३७ ॥ पशव्यश्चाल्परोगश्चफलमूलरसायुतः ॥ बहुस्नेहोबहुक्षीरःसुगंधिर्विविधौषधिः ॥ ३८ ॥

हुआ । यह निकलती हुई जलराशि समुद्रके समान दिखाई देने लगी ॥ ३५ ॥ उस बाणके घोर शब्दसे पृथ्वीमें प्रवेश करनेंपर रहनें वालोंकी जिसपर जीविकाथी उन सरोवर व तड़ागादिका समस्त जल सूखगया ॥ ३६ ॥ उस समयसे वह स्थान (मरु कान्तार) नामसे प्रसिद्ध हुआ कमललोचन श्रीअमरविक्रम दशरथसुत श्रीरामचंद्रजीनें इस स्थानको सुखायकर पीछे उस मरुभूमिको वर दियाकि ॥ ३७ ॥ इस स्थानमें विशेष करके रोग नहीं हुआ करेंगे यह पशुगणोंके चरनेंको अनुकूल होगा अधिक करके फल मूल व रसपूर्ण अनेक भांतिके

सखाहैं, और जो वानरलोग सैनाके आगे चलनेवालेहैं, और जो वानरगण शूर होंनेके कारण विख्यातहैं ॥ ५ ॥ और जिसप्रकार उस महार्णव समुद्रके ऊपर पुल बँध गयाहै, वह महाबलवान वानरगण जिसप्रकारसे टिके हुएहैं ॥ ६ ॥ और महा बलवान रामचंद्र लक्ष्मणका उद्योग वीर्य बल आदिका वृत्तान्त भली भांतिसे तुम दोनों जान आओ ॥ ७ ॥ और उन महातेजस्वी वानरोंका सेनापति कौनहै, यहभी तुम दोनों भली भांति जानकर शीघ्रही यहांपर चले आओ ॥ ८ ॥ मंत्री शुक और शारण इस प्रकार रावणकी आज्ञा पाय वानररूप धारण कर बलवान वानरोंकी सैनामें प्रवेश करते हुए ॥ ९ ॥ वह दोनों अचिन्त्यनीय रूयें खड़े करनेंवाली वानरोंकी सैना देखकर उसंकी गिनती नहीं करसके ॥ १० ॥ कारण

सचसेतुर्यथाबद्धःसागरेसलिलार्णवे ॥ निवेशंचयथातेषांवानराणांमहात्मनाम् ॥ ६ ॥ रामस्यव्यवसायंचवीर्यंप्रहरणानिच ॥ लक्ष्मणस्यचवीरस्यतत्त्वतोज्ञातुमर्हथः ॥ ७ ॥ कश्चसेनापतिस्तेषांवानराणांमहात्मनाम् ॥ तच्चज्ञात्वा यथातत्त्वंशीघ्रमागंतुमर्हथः ॥ ८ ॥ इतिप्रतिसमादिष्टौराक्षसौशुकसारणौ ॥ हरिरूपधरौवीरौप्रविष्टौवानरंबलम् ॥ ९ ॥ ततस्तद्वानरंसैन्यमचिंत्यंलोमहर्षणम् ॥ संख्यातुंनाध्यगच्छेतांतदातौशुकसारणौ ॥ १० ॥ तत्स्थितं पर्वताग्रेषुनिर्झरेषुगुहासुच ॥ तरमाणंचतीर्णंचतर्तुकामंचसवशः ॥ ११ ॥ निविष्टंनिविशच्चैवभीमनादंमहाबलम् ॥ तद्बलार्णवमक्षोभ्यंददृशातेनिशाचरौ ॥ १२ ॥ तौददर्शमहातेजाःप्रतिच्छन्नौविभीषणः ॥ आचचक्षेसरामायगृहीत्वाशुकसारणौ ॥ १३ ॥ तस्यैतौराक्षसेंद्रस्यमंत्रिणौशुकसारणौ ॥ लंकायाःसमनुप्राप्तौचारौपरपुरंजय ॥ १४ ॥

कि इस समय वह असंख्य वानर सैना समुद्रके पार होकर कुछ पर्वतोंके शिखरपर कुछ झरनोंमें कुछ पर्वतोंकी गुफाओंमें और कुछ समुद्रके किनारे वन उपवनोंमें पड़ीथी, कुछ सैना समुद्रके पार हो रहीथी, कुछ पार होगईथी और कुछ पार होनेंकी तैयारी कर रहीथी ॥ ११ ॥ कुछ सैना व्यूहमें चली आईथी कुछ आय रहीथी, इस प्रकारसे घोर शब्दकर गरजती हुई वह सैना सब जगह छाय रहीथी। दोनों राक्षसोंनें इस अक्षोभ्य वानरी सैनाको समुद्रके समान देखा ॥ १२ ॥ वह दोनोंजने वानरोंकी सैना देखते हुए इधर उधर घूम रहेथे कि इतनेमें महा तेजमान विभीषणजीनें उन लोगोंको देखा और उनको पकड़कर श्रीरामचंद्रजीके पास लेजाय कर कहा ॥ १३ ॥ विभीषणजी बोले कि

अपने ऊपर पुल बंधवानेंके लिये आप रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीको स्थान देदिया ॥ ४६ ॥ जो कुछभी हो समुद्रनें ठीकही कहाहै कारणकि उसके कहनेंसे हमको याद आताहै, कि पहले मन्दर पर्वतपर विश्वकर्माजीनें हमारी माताको हेदेवि! तुम्हारा पुत्र हमारेही समान उत्पन्न होगा, यह वरदान दियाथा ॥ ४७ ॥ सो हम उनही महात्मा विश्वकर्माजीके औरसपुत्र उनकीही समान सब कुछ बनानेमें चतुरहैं। आप लोगोंके न पूछनें पर हमनें आपसे अपने गुण नहीं कथन कियेथे, कारणकि अपने मुखसे अपनी बड़ाई करना महालाजकी बातहै ॥ ४८ ॥ हम निश्चयही समुद्रके ऊपर पुल बनाय सकेंगे इस कारण आजही वानर लोगोंको इस पुलकी तैयारी करनेंकी आज्ञा दीजिये ॥ ४९ ॥ तिसके

ममामातुर्वरोदत्तोमंदरेविश्वकर्मणा ॥ मयातुसदृशःपुत्रस्तवदेविभविष्यति ॥ ४७ ॥ औरसस्तस्यपुत्रोहंसदृशोविश्वकर्मणा ॥ नचाप्याहमनुक्तोवःप्रब्रूयामात्मनोगुणान् ॥ ४८ ॥ समर्थश्चाप्यहंसेतुंकर्तुंवैवरुणालये ॥ तस्मादद्यैवबध्नंतुसेतुंवानरपुंगवाः ॥ ४९ ॥ ततोविसृष्टारामेणसर्वतोहरिपुंगवाः ॥ उत्पेततुर्महारण्यंहृष्टाःशतसहस्रशः॥५० ॥ तेनगान्नगसंकाशाःशाखामृगगणर्षभाः ॥ बभंजुःपादपांस्तत्रप्रचकर्षुश्चसागरम् ॥ ५१ ॥ तेसालैश्चाश्वकर्णैश्चधवैर्वंशैश्चवानराः ॥ कुटजैरर्जुनैस्तालैस्तिलकैस्तिनिशैरपि॥५२॥बिल्वकैःसप्तपर्णैश्चकर्णिकारैश्चपुष्पितैः ॥ चूतैश्चाशोकवृक्षैश्चसागरंसमपूरयन् ॥ ५३ ॥ समूलांश्चविमूलांश्चपादपान्हरिसत्तमाः ॥ इंद्रकेतूनिवोद्यम्यप्रजह्रुर्वानरास्तरून् ॥५४ ॥

पीछे श्रीरामचंद्रजी करके प्रेरित असंख्य वानरश्रेष्ठगण हर्षित मन कूदते फांदते महावनमें प्रवेश करते हुए ॥ ५० ॥ फिर वह पर्वतोंकी समान आकारवाले वानर यूथपतिगण पर्वतोंके शिखर और वृक्षोंको उखाड २ समुद्रके किनारेपर लानेंलगे ॥ ५१ ॥ उन वानरगणोंनें, शाल अश्वकर्ण धव कुटज अर्ज्जुन ताल तिलक तिनिश ॥ ५२ ॥ बेल सतपत्री फूलाहुआ कठचम्पा आम अशोक इत्यादि वृक्षोंसे समुद्रके किनारेकी भूमि परिपूर्ण कर डाली ॥ ५३ ॥ इस प्रकारसे वह वानर गण जड़ सहित और जड़ रहित वृक्षोंको ग्रहण करके इन्द्रध्वजकी समान

करनेंके कारण सुग्रीवादिकोंसे मार पानेंके योग्यहैं, तथापि इन लोगोंपर अत्याचार न करके इन्हें छोड़ही देना उचितहै ॥२१॥ श्रीरामचंद्रजी विभीषणसे यह कहकर फिर शुक और सारणसे कहने लगे। तुम दोनों जने लंकामें जायकर कुबेरके छोटे भाई रावणसे जैसा हम कहैं वह समस्तह यथार्थ २ कह देना ॥ २२ ॥ कि तुम जिस बलका आश्रय लेकर हमारी प्राणप्यारी स्त्री सीताको हरण करके लेगये हो इस समय सेना और बन्धुं वान्धवोंके सहित तुम अपना वही बल दिखाओ ॥ २३ ॥ तुम कल प्रातःकालही फाटक शोभित और प्राचीर वेष्टित लंका नगरी और समस्त राक्षसोंकी सेनाको हमारे बाण समूह द्वारा विध्वंशित होते देखोगे ॥२४॥वज्र हाथमें लिये देवताओंके स्वामी इन्द्रजी जिस प्रकार दानव लोगोंके

प्रविश्यमहतींलंकांभवद्भ्यांधनदानुजः ॥ वक्तव्योरक्षसांराजायथोक्तंवचनंमम ॥ २२ ॥ यद्बलंत्वंसमाश्रित्यसीतांमेहृतवानसि ॥ तद्दर्शययथाकामंससैन्यैश्चसबांधवः ॥ २३ ॥ श्वःकाल्येनगरींलंकांसप्राकारांसतोरणाम् ॥ रक्षसांचबलंपश्यशरैर्विध्वंसितंमया ॥ २४ ॥ क्रोधंभीममहंमोक्ष्येससैन्येत्वयिरावण ॥ श्वःकाल्येवज्रवान्वज्रंदानवेष्विववासवः ॥ २५ ॥ इतिप्रतिसमादिष्टौराक्षसौशुकसारणौ ॥ जयेतिप्रतिनंद्यैनंराघवंधर्मवत्सलम् ॥ २६ ॥ आगम्यनगरींलंकामब्रूतांराक्षसाधिपम् ॥ विभीषणगृहीतौतुवधार्थंराक्षसेश्वर ॥ २७ ॥ दृष्ट्वाधर्मात्मनामुक्तौरामेणामिततेजसा ॥ एकस्थानगतायत्रचत्वारःपुरुषर्षभाः ॥ २८ ॥ लोकपालसमाःशूराःकृतास्त्रादृढविक्रमाः ॥ रामोदारशथिःश्रीमाँल्लक्ष्मणश्चविभीषणः ॥ २९ ॥

ऊपर वज्र छोड़तेहैं; वैसेही हम कल प्रभातको तुम्हारे ऊपर अपना क्रोध छोड़ेंगे ॥ २५ ॥ राक्षस शुक और सारणको जब इस प्रकारसे आज्ञादी; तब वह धर्मवत्सल रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीसे "आपकी जयहो" कहकर ॥ २६ ॥ लंकानगरीमें आये और राक्षसराज रावणसे कहनें लगे हेराक्षसेश्वर! जैसेही हमनें वानरोंकी सैनामें प्रवेश किया। वैसेही हमको विभीषणनें वध करनेंके लिये पकडा ॥ २७ ॥ तब हमको पकडे हुए देखकर अमित तेजस्वी धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीनें हमको छुड़ादिया कि जहां एकही स्थानपर चार पुरुष श्रेष्ठ ॥ २८ ॥ सर्व अस्त्र शस्त्रोंके जाननें वाले, शूर. दृढ विक्रमवान लोकपालोंकी समान शूर, दशरथ कुमार श्रीरामचंद्रजी श्रीमान् लक्ष्मण, और विभीषण ॥ २९ ॥

उस कालमें पर्वतोंके शिखर और पर्वतोंके खंड बराबर पड़नेंसे समुद्रमें घोर शब्द होंनें लगा ॥ ६३ ॥ पवननंदन हनुमानजी सरलतासे, जो शै
ल उठायकर लाते और पुलके ऊपर डालदेते, विश्वकर्माके पुत्र नल लीलापूर्वक बाँये हाथसे उस पुलका समस्त कार्य आरंभ करनें लगे,
इस प्रकारसे पर्वताकार शीघ्र कर्मकारी वानरोंनें अत्यन्त आनंदके सहित पहले दिन चौदह योजन लंबा पुल बनायाथा ॥ ६४ ॥ भयंकराकार
महाबल वानरोंनें दूसरे दिन इस प्रकार शीघ्रता प्रगट करके उन वानरोंनें और नया वीस योजन सेतु निर्माण किया ॥ ६५ ॥ तीसरे दिवस
शीघ्र कर्मकारी पर्वताकार वानर लोगोंने इक्कीस योजन और अधिक बनाया ॥ ६६ ॥ उन महा वेगवाले वानरोंने चौथे दिन बाईस योजन से

शिलानांक्षिप्यमाणानांशैलानांतत्रपात्यताम् ॥ बभूवतुमुलःशब्दस्तदातस्मिन्महोदधौ ॥ ६३ ॥ कृतानिप्र
थमेनाह्नायोजनानिचतुर्दश ॥ प्रहृष्टैर्गजसंकाशैस्त्वरमाणैःप्लवंगमैः ॥ ६४ ॥ द्वितीयेनतथैवाह्नायोजनानितुविंश
तिः ॥ कृतानिप्लवगैस्तूर्णंभीमकायैर्महाबलैः ॥ ६५ ॥ अह्नातृतीयेनतथायोजनानितुसागरे ॥ त्वरमाणैर्महाकायैरेक
विंशतिरेवच॥६६॥चतुर्थेनतथाचाह्नाद्वाविंशतिरथापिवा ॥ योजनानिमहावेगैःकृतानित्वरितैस्ततः॥६७॥पंचमेनतथा
चाह्नाप्लवगैःक्षिप्रकारिभिः ॥ योजनानित्रयोविंशत्सुवेलमधिकृत्यवै ॥ ६८ ॥ सवानरवरःश्रीमान्विश्वकर्मात्मजोब
ली ॥ बबंधसागरेसेतुंयथाचास्यपितातथा ॥६९॥ सनलेनकृतःसेतुःसागरेमकरालये ॥ शुशुभेसुभगःश्रीमान्स्वातीप
थइवांबरे ॥ ७० ॥ ततोदेवाःसगंधर्वाःसिद्धाश्चपरमर्षयः ॥ आगम्यगगनेतस्थुर्द्रष्टुकामास्तदद्भुतम् ॥ ७१ ॥

तु और अधिक बनाया ॥ ६७ ॥ पांचमें दिन उन शीघ्र कर्मकारी वानरोंने तेईस योजन पुलको और बनाया, कि जिस्से चार शत कोशका
लंबा पुल बनगया, और लंकाके नीचे वेला भूमिमें वह पुल उन वानरोंनें मिलादिया ॥ ६८ ॥ इस प्रकारसे विश्वकर्माके पुत्र बलशाली वानरश्रेष्ठ
नलनें अपने पिताकी समान चतुरता दिखायकर समुद्रके ऊपर सेतु बांधा ॥ ६९ ॥ मत्स्यादि जीवोंके स्थान समुद्रके ऊपर नलका बनाया,
वह अच्छी बनावटका पुल आकाशवाले देव मार्गकी समान शोभायमान होनेंलगा ॥ ७० ॥ उसी समय, देवता, गन्धर्व, सिद्ध. और महर्षि

याहै तुम इसी कारणसे अत्यन्त पीड़ित होकर सीताको लौटानेंकी अभीसे परामर्श देतेहो ॥ ३ ॥ विशेष करके हमारे शत्रु लोगोंमें ऐसी किसकी सामर्थ्य है कि जो रणभूमिमें हमको जीतसकै यह कठोर वचन कहकर राक्षसोंका स्वामी रावण ॥ ४ ॥ हिमवानकी समान ऊंचे श्वेत श्रीमान् धवरहरके शिखर पर चढ़गया। यह धवरहर कई तालके वृक्षोंको ऊपर नीचे करनेंसेभी बहुत ऊंचाथा ॥ ५ ॥ क्रोधमूर्छित रावण उन दोनों दूतोंके साथ उस धवरहरे पर चढ़कर, समुद्र, पर्वत, और वनतक ॥ ६ ॥समस्त पृथ्वीको वानरोंसे पूर्ण देखता हुआ। उन अपार सहन करनेंके अयोग्य महाबलवान वानरोंकी सेनाको विश्राम करते हुए ॥ ७ ॥ देखकर राक्षसोंका स्वामी राजा रावण सारणसे पूछता हुआ कि इन वानर

कोहिनामसपत्नोमांसमरेजेतुमर्हति ॥ इत्युक्त्वापरुषंवाक्यंरावणोराक्षसाधिपः ॥ ४ ॥ आरुरोहततःश्रीमान्प्रासादं हिमपांडुरम् ॥ बहुतालसमुत्सेधंरावणोथदिदृक्षया ॥५॥ ताभ्यांचराभ्यांसहितोरावणःक्रोधमूर्च्छितः ॥ पश्यमानःस मुद्रंतंपर्वतांश्चवनानिच ॥ ६ ॥ ददर्शपृथिवीदेशंसुसंपूर्णंप्लवंगमैः ॥ तदपारमसह्यंचवानराणांमहाबलम् ॥ ७ ॥ आलो क्यरावणोराजापरिपप्रच्छसारणम् ॥ एषांकेवानरामुख्याःकेशूराःकेमहाबलाः ॥ ८ ॥ केपूर्वमभिवर्तंतेमहोत्साहाः समंततः ॥ केषांशृणोतिसुग्रीवःकेवायूथपयूथपाः ॥९॥ सारणाचक्ष्वमेसर्वंकिंप्रभावाःप्लवंगमाः ॥ सारणोराक्षसेंद्रस्य वचनंपरिपृच्छतः ॥ १० ॥ आबभाषेऽथमुख्यज्ञोमुख्यांस्तत्रवनौकसः ॥ एषयोऽभिमुखोलंकांनर्दंस्तिष्ठतिवानरः ॥ ११ ॥ यूथपानांसहस्रेणशतेनपरिवारितः ॥ यस्यघोषेणमहतासप्राकारासतोरणा ॥ १२ ॥

लोगोंमें कौन २ प्रधानहै? कौन वीरहैं? और कौन २ महा बलवानहैं? ॥८॥और कौन २ वानरगण अत्यन्त उत्साहयुक्त होकर सर्व प्रकारसे वानर सैना अग्रभागमेंकी रक्षा करतेहैं? और सुग्रीवके मंत्री कौन वानरहैं ? और वह कौन २ वानर गणहैं, जो यूथनाथोंकेभी यूथपतिहैं? ॥ ९ ॥ और उन लोगोंका पराक्रम कैसाहै, हेसारण! तुम यह समस्त वृत्तान्त हमारे निकट ठीक २ वर्णन करो, जब राक्षसोंके स्वामी रावणनें ऐसा पूछा तब सारण ॥ १० ॥ जो कि समस्त मुख्य अमुख्य वानरोंको जानताथा मुखिया २ वानरोंके नाम धाम और बल विक्रमको बतानें लगा कि जो वानर लंकाके सन्मुखको गर्जन करता हुआ खड़ाहै ॥ ११ ॥ यह शतसहस्र वानरोंका यूथपति है; इसके गर्जनेंसे बड़ी भारी चाहर दिवारी

बहुतसे वानर जलमें पैरते हुए बहुतसे पुलके ऊपर होकर चले, और कोई २ गरुड़जीकी समान चतुरता प्रगट करके, आकाश मार्गमेंही गमन करनें लगे ॥ ८१ ॥ वानरोंकी सैनामें पुलके ऊपर गमन करनेंके समय इस प्रकारका बडा भारी शब्द कियाकि; जिस्से उन्होंनें इस अपने शब्दसे समुद्रके भयंकर उछलनेंके शब्दकोभी मूंद लिया ॥ ८२ ॥ इस प्रकारसे वानरगण नलके बनाये सेतुकी सहायतासे समुद्रके पार हुए, और वहां पहुंचकर सुग्रीवजीनें उनको अधिक फल मूल पूर्ण समुद्रके किनारेपर टिकाया ॥ ८३ ॥ सिद्ध देवता लोग रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीका यह अद्भुत दुष्कर कर्म देखकर सहसा आकाश मार्गमें प्रगट हो, मंदाकिनीके पवित्रजलको वर्षायकर अलगर श्रीरामचंद्रजीका अभिषेक करनेंलगे ॥ ८४ ॥

सलिलंप्रपतंत्यन्येमार्गमन्येप्रपेदिरे ॥ केचिद्वैहायसगताःसुपर्णाइवपुप्लुवुः ॥ ८१ ॥घोषेणमहताघोषंसागरस्यसमुच्छ्रितम् ॥ भीममंतर्दधेभीमातरंतीहरिवाहिनी ॥ ८२ ॥ वानराणांहिसातीर्णावाहिनीनलसेतुना ॥ तीरेनिविविशेराज्ञाबहुमूलफलोदके ॥८३॥ तदद्भुतंराघवकर्मदुष्करंसमीक्ष्यदेवासहसिद्धचारणैः ॥ उपेत्यरामंसहसामहर्षिभिस्तमभ्यपिंचन्सुशुभैर्जलैःपृथक् ॥ ८४ ॥ जयस्वशत्रून्नरदेवमेदिनींससागरांपालयशाश्वतीःसमाः ॥ इतीवरामंनरदेवसत्कृतंशुभैर्वचोभिर्विविधैरपूजयन् ॥ ८५ ॥ इत्यार्षेश्री०वा०आ०यु०द्वाविंशःसर्गः॥२२॥ ॥ छ ॥ ॥ निमित्तानिनिमित्तज्ञोदृष्ट्वालक्ष्मणपूर्वजः ॥ सौमित्रिंसंपरिष्वज्यइदंवचनमब्रवीत् ॥ १ ॥ परिगृह्योदकंशीतंवनानिफलवंतिच ॥ बलौघंसंविभज्येमंव्यूह्यतिष्ठेमलक्ष्मण ॥ २ ॥

और बोले, "हे नरदेव! आप शत्रु लोगोंको पराजित करके बहुत कालतक इस सागर सहित पृथ्वीका पालन करो" इस प्रकार अनेक शुभ वचन कह २ कर उन राजश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीको आशीर्वाद देनें लगे॥८५॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे द्वाविंशः सर्गः॥ २२ ॥ सर्व कारणोंके जाननेंवाले लक्ष्मणजीके बड़े भाई श्रीरामचंद्रजी अनेक भांतिके बहुविध अघोर सगुन देखकर सुमित्राजीके पुत्र लक्ष्मणजीको हृदयसे लगाय यह बोले ॥ १ ॥ कि हे लक्ष्मण! जिस स्थानमें शीतलजल और फलवाले वृक्ष हों उसी स्थानमें ऋक्ष, गोपुच्छ और सब वानरोंकी

अभिलाष किये, बड़ी भारी सेनाके साथ वालिसुत अंगदजीके पीछे टिका हुआहै ॥ २१॥ हे महाराज! यह चन्दनवन निवासी जो कि अपने अंगोंको थाम २ हर्षित होकर नाद करतेहैं। यह समस्त वानर इसी वीर नलके पीछे २ चलतेहैं ॥ २२॥ यह समस्त वानर अपने यूथप नलके साथ इकले़ही लंकाको मसलना चाहतेहैं; वह वानर नल कहताहै कि मैंही लंकाको विध्वंश करूंगा, और यह चांदीके रंगका चपल, भयंकर विक्रमकारी॥२३॥ बुद्धिमान, व शूर श्वेत, वानर त्रिलोकीमें विख्यात है देखिये कि यह कैसी शीघ्रतासे सुग्रीवजीके पास जाताहै और फिर लौट आताहै ॥ २४ ॥ जिसको युद्धमें आगे बढ़ते हुए देखकर वानरोंकी सैनाके आनंदकी सीमा नहीं रहती। यह वानर पूर्वकालमें गोमती नदीके तीर रमणीक पर्वतपर

येतुविष्टभ्यगात्राणिक्ष्वेडयंतिनदंतिच ॥ यएनमनुगच्छंतिवीराश्चंदनवासिनः ॥ २२ ॥ एषैवाशंसतेलंकांस्वेनानीकेनमर्दितुम् ॥ श्वेतोरजतसंकाशश्चपलोभीमविक्रमः ॥ २३ ॥ बुद्धिमान्वानरःशूरस्त्रिषुलोकेषुविश्रुतः ॥ तूर्णंसुग्रीवमागम्यपुनर्गच्छतिवानरः ॥ २४ ॥ विभजन्वानरींसेनामनीकानिप्रहर्षयन् ॥ यःपुरागोमतीतीरेरम्यंपर्येतिपर्वतम् ॥ २५ ॥ नाम्नासंरोचनोनामनानानगयुतोगिरिः ॥ तत्रराज्यंप्रशास्त्येषकुमुदोनामयूथपः ॥ २६ ॥ योसौशतसहस्राणिसहर्षंपरिकर्षति ॥ यस्यवालाबहुव्यामादीर्घलांगूलमाश्रिताः ॥ २७ ॥ ताम्राःपीताःसिताःश्वेताःप्रकीर्णाघोरदर्शनाः ॥ अदीनोवानरश्चंडःसंग्राममभिकांक्षति ॥ एषैवाशंसतेलंकांस्वेनानीकेनमर्दितुम् ॥ २८ ॥ यस्त्वेषसिंहसंकाशःकपिलोदीर्घकेसरः ॥ निभृतःप्रेक्षतेलंकांदिधक्षन्निवचक्षुषा ॥ २९ ॥

वास करताथा ॥ २५॥ अब संयोजन नाम पर्वतपर जोकि बहुत पर्वतोंसे घिरा हुआहै यह कुमुद नामक वानर यूथप राज्य करताहै ॥ २६ ॥ और यह सहस्र कोटि आठ लाख वानरोंको हर्षसहित खेंचता हुआ चला आताहै, व जिसके बाल बहुत लंबे हैं, और बड़ीभारी पूंछके इधर उधर लटकते हैं ॥ २७॥ उनमें कुछ ताम्ररंगवाले, कुछ पीले कुछ बहुतही श्वेत इस्से अत्यन्तही भयंकर लगतेहैं, इस वानरका चंड नामहै, यह सदा प्रसन्नचित्त रहकर युद्ध करनेंकी अभिलाष किया करताहै, हे महाराज! यह वीर भी केवल अपनीही सैनाकी सहायतासे लंकाको मर्दन करना चाहताहै ॥ २८ ॥ और यह जोसिंह समान पिंगल वर्ण बड़े केशरवाले वानरको आप देखतेहैं, इसके नेत्र मानों लंकाको दग्ध करनेंहीकेलिये तैयार

हे लक्ष्मण ! इन सब उत्पाती चिह्नोंको देखकर हमको निश्चय भान पड़ता है कि यहांकी पृथ्वी बहुतही शीघ्र वानर और राक्षस गणोंके छोडे हुए पर्वत शूल और अस्त्र इत्यादि खड्गोंसे ढककर और मरे हुए वीरोंकी मांस व रुधिर गिरनेसे धूल रहित हो कीचमें पूर्ण हो जायगी ॥ १२ ॥ इस कारण हम आजही वानर गणोंके साथ अतिशीघ्र रावणसे पाली जाती हुई अजीत लंका पुरीमें चले जांयगे ॥ १३ ॥ संग्राममें शत्रुओंका निरादर करनेवाले लोकोंको आनंद देनेवाले विभु श्रीरामचंद्रजी यह कहकर हाथमें धनुष धारण करके सबसे आगे लंकाकी ओरको चले ॥ १४ ॥ विभीषण, सुग्रीव और दूसरे वानरगणभी अतिभारी शब्द करते हुए श्रीरामचंद्रजीके पीछे २ शत्रुका कुल

शैलैःशूलैश्चखड्गैश्चविमुक्तैःकपिराक्षसैः ॥ भविष्यत्यावृताभूमिर्मांसशोणितकर्दमा ॥१२॥ क्षिप्रमद्यैवदुर्धर्षांपुरींरावण पालिताम् ॥ अभियामजवेनैवसर्वैर्हरिभिरावृताः ॥ १३॥ इत्येवमुक्त्वाधन्वीसरामःसंग्रामधर्षणः ॥ प्रतस्थेपुरतोरामो लंकामभिमुखोविभुः ॥ १४ ॥ सविभीषणसुग्रीवाःसर्वेतेवानरर्षभाः ॥ प्रतस्थिरेविनर्दंतोधृतानांद्विषतांवधे ॥ १५ ॥ राघवस्यप्रियार्थंतुसुतरांवीर्यशालिनाम् ॥ हरीणांकर्मचेष्टाभिस्तुतोषरघुनंदनः ॥ १६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणे वाल्मीकीयेआ०यु०त्रयोविंशःसर्गः ॥२३॥ ॥छ॥ ॥ सावीरसमितीराज्ञाविरराजव्यवस्थिता ॥ शशिनाशुभनक्षत्रापौर्णमासीवशारदी ॥ १ ॥ प्रचचालचवेगेनत्रस्ताचैववसुंधरा ॥ पीड्यमानाबलौघेनतेनसागरवर्चसा ॥ २ ॥

निर्मूल करनेंको चले ॥ १५ ॥ रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी श्रीजानकीजीके उद्धारके लिये वीर्यवान वानरगणोंका ऐसा कार्य और यत्न देखकर अतिशय सन्तुष्ट करते हुए ॥ १६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥ इस प्रकारसे वह आये हुए समस्त वानर वीरलोग राजकुमार श्रीरामचंद्रजी करके व्यूहमें स्थापित होकर शोभित नक्षत्रराजि विराजित शरद कालीन पूर्णमासीकी रात्रिके समान शोभा धारण करते हुए ॥ १ ॥ वहांकी पृथ्वी समुद्रकी समान प्रकाशित उस रामचंद्रजीकी सैनाके

नाम वानर यूथपहै ॥ ३९ ॥ एक लक्ष पचास हजार यूथप इस वानरकी पूजाकिया करते हैं, कि जिन वानरोंके यूथ पृथक् पृथक् हैं ॥ ४० ॥ जो
वीर बड़ी भारी भयंकर पराक्रमकारी वानरोंकी सैनाके बीचमें रहकर समुद्रके तीर टिके दूसरे सूर्यकी समान शोभा विस्तार कर रहा है ॥ ४१ ॥
यह मेघकी समान विनत नामक यूथपति घूमता हुआ सदा नदियोंमें श्रेष्ठ वेणा नदीका जल पिया करताहै ॥ ४२ ॥ साठ लाख वानर इस वी
रके आधीनमें सैनापतिका कार्य करते हैं। यह देखिये क्रथन नामक यूथपति आपको युद्ध करनेंके लिये पुकार रहाहै ॥ ४३ ॥ हे महाराज ! इस
वीरके आधीनमें जो समस्त बल विक्रम शाली यूथपति हैं; उनमेंसे प्रत्येकके आधीनमें वैसेही वानरोंकी बलवान सेनाहै, व जिसके शरीरका गेरु

एनंशतसहस्राणांशतार्धंपर्युपासते॥यूथपायूथपश्रेष्ठंयेषांयूथानिभागशः॥४०॥यस्तुभीमांप्रवल्गंतींचमूंतिष्ठतिशोभय
न्॥स्थितांतीरेसमुद्रस्यद्वितीयइवसागरः॥४१॥ एषदर्दुरसंकाशोविनतोनामयूथपः॥पिबंश्चरतियोवेणांनदीनामुत्तमां
नदीम्॥४२॥ षष्टिःशतसहस्राणिबलमस्यप्लवंगमाः॥त्वामाह्वयतियुद्धायक्रथनोनामवानरः॥४३॥ विक्रांताबलवंतश्चय
थायूथानिभागशः॥ यस्तुगैरिकवर्णाभंवपुःपुष्यतिवानरः॥४४॥अवमत्यसदासर्वान्वानरान्बलदर्पितः॥गवयोनामते
जस्वीत्वांक्रोधादभिवर्तते॥४५॥ एनंशतसहस्राणिसप्ततिःपर्युपासते॥ एषैवाशंसतेलंकांस्वेनानीकेनमर्दितुम्॥४६॥
एतेदुष्प्रसहावीरायेषांसंख्यानविद्यते॥ यूथपायूथपश्रेष्ठास्तेषांयूथानिभागशः॥४७॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०यु०ष
ड्विंशःसर्गः॥२६॥ ॥७॥ तांस्तुतेसंप्रवक्ष्यामिप्रेक्षमाणस्ययूथपान्॥ राघवार्थेपराक्रांतायेनरक्षंतिजीवितम्॥१॥

आवर्ण है; और अपनी देहको पुष्ट कर रहाहै ॥ ४४ ॥ यह तेजस्वी गवय नामक वानर क्रोधमें भर आपके सहित युद्धकरनेंको तैयार हुआहै, हे
महाराज ! यह गवय ऐसा बलके घमंडमें है कि और किसी वानरको वीरही नही समझता ॥ ४५ ॥इसके आधीनमें जो सत्रह लाख वानरोंके यूथपहैं;
यह उनकी ही सहायतासे लंकाको विध्वंश करनेकी इच्छा करतेहैं ॥ ४६ ॥ हे महाराज! इन सहनेंके अयोग्य वानर वीरोंकी गिनती नहीं करीजा
सकती कारण कि इनमें जो बडे२यूथपति हैं फिर उनमे भी प्रत्येकके आधीनमे अनेक यूथनाथ हैं; और फिर उन यूथ पतियोंके आधीनमे भी अलग
सैना है॥४७॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे षड्विंशः सर्गः॥ २६ ॥ सारण फिर बोला कि हेराजन् आप जो यह समस्त

हैं, इन पुष्पवनोंके समस्त वृक्ष अनेक भांतिके फल पुष्प और पक्षियोंसे युक्तहैं ॥ ११ ॥ हे लक्ष्मण! यह देखो! सुशीतल मन्द पवनके झोंके वृक्षोंकी डालियोंको हिलाय रहेहैं, पक्षीगण मतवाले होकर उनपर बैठे हुएहैं सुंदर वायु वेगकरके चलायमान होनेंके डरसे मानों भौंरे घवडा कर फूलोंमें घुसे बैठतेहैं; कोकिलगण मानो वसन्तकोही मनमें आया हुआ समझकर अपनी " कुऊ !! " कुऊ !! का प्रचार कररहीहैं ॥ १२ ॥ इस प्रकार दशरथ कुमार श्रीरामचंद्रजीनें लक्ष्मणजीसे कहकर शास्त्रमें कहे हुए कर्मके अनुसार, वानर सैनाको यथायोग्य स्थानमें टिका दिया ॥ १३ ॥ फिर श्रीरामचंद्रजीनें सब सैनाको आज्ञादी कि पुरुष व्यूहके मध्यमें नील सहित अंगदजी अपनी सेनाके साथ अव

पश्यमत्तविहंगानिप्रलीनभ्रमराणिच ॥ कोकिलाकुलखंडानिदोधवीतिशिवोऽनिलः ॥१२॥ इतिदाशरथीरामोलक्ष्मणं समभाषत ॥ बलंचतत्रविभजच्छास्त्रदृष्टेनकर्मणा ॥ १३ ॥ शशासकपिसेनांतांबलादादायवीर्यवान् ॥ अंगदः सहनीलेनतिष्ठेदुरसिदुर्जयः ॥ १४ ॥ तिष्ठेद्वानरवाहिन्यावानरौघसमावृतः ॥ आश्रितोदक्षिणंपार्श्वमृषभोनामवानरः ॥ १५ ॥ गंधहस्तीवदुर्धर्षस्तरस्वीगंधमादनः ॥ तिष्ठेद्वानरवाहिन्याःसव्यंपक्षमधिष्ठित ॥ १६ ॥ मूर्ध्निस्थास्याम्यहंयत्तोलक्ष्मणेनसमन्वितः ॥ जांबवांश्चसुषेणश्चवेगदर्शीचवानरः ॥ १७ ॥ ऋक्षमुख्यामहात्मानःकुक्षिंरक्षंतुतेत्रयः ॥ जघनंकपिसेनायाःकपिराजाऽभिरक्षतु ॥ पश्चार्धमिवलोकस्यप्रचेतास्तेजसावृतः ॥ १८ ॥ सुविभक्तमहाव्यूहामहावानररक्षिता ॥ अनीकिनीसाविबभौयथाद्यौःसाभ्रसंप्लवा ॥ १९ ॥

स्थान करैं ॥ १४ ॥ और इस वानर सैनाके दाहिनी ओर वानरश्रेष्ठ ऋषभ नामक वानर अवस्थान करै ॥ १५ ॥ तथा मदोन्मत्त हाथीके समान दुर्धर्ष गन्धमादन वानर सैना गणोंके साथ इस सैनाके बांई ओर ठहरैं ॥ १६ ॥ और हम लक्ष्मणजीके सहित सावधान होकर सबसे आगे रहेंगे, वानर श्रेष्ठ महावलवान जाम्बवान,सुषेण और वेगदर्शी ॥ १७ ॥ यह ऋक्षोंमें मुख्य तीन जने कुक्षिकी रक्षा करेंगे। वरुणजी जिस प्रकार अपने तेजसे पृथ्वीके पिछले अर्द्ध भागकी रक्षा करतेहैं; वैसेही वानरराज सुग्रीवजी इस सैना समूहके जघन देशकी रक्षा करें ॥ १८ ॥ वीरश्रेष्ठ वानरगणोंसे रक्षित यह वानरवाहिनी इस प्रकारसे व्यूह मध्यमें स्थापित, और बँटकर घन घोर घटासे घिरे हुए आकाशकी समान शोभायमान हुई ॥१९॥

पीनेंका उसका अभ्यास है, समस्त रीछोंके अधिपति इसका नाम धूम्र है ॥ ९ ॥ पर्वतकी समान आकारवाले इसके छोटे भ्राताकी ओर आप निहारिये यह भी रूप और पराक्रममें अपने भ्राताकी समानही है ॥ १० ॥ इसका नाम जाम्बवान् है यह महायूथपतियोंका यूथपति सद्गुरुका उपासक है इसका स्वभाव यद्यपि शान्त है और यह अपने बडे भाईकी आज्ञामें रहता भी है परन्तु इसके प्रति शस्त्र चलानेहींसे यह उसको सहन नहीं कर सकता है॥११॥इस जाम्बवान्के साथ बुद्धिमान देवराज इन्द्रजीनें मित्रता स्थापनकी है, जब देवासुर संग्राम हुआथा; तब जाम्बवान्नें। इन्द्रकी भारी सहायताकर उनसे अनेक वर पाये हैं ॥ १२ ॥ उन्होंनें उस युद्धमें पर्वतके अग्र भागपर चढ महामेघकी समान बहुतही शिलाओंकी

यवीयानस्यतुभ्रातापश्यैनंपर्वतोपमम् ॥ भ्रात्रासमानोरूपेणविशिष्टश्चपराक्रमे ॥ १० ॥ सएषजांबवान्नाममहायूथप
यूथपः ॥ प्रशांतोगुरुवर्तीचसंप्रहारेष्वमर्षणः ॥ ११ ॥ एतेनसाह्यंतुमहत्कृतंशक्रस्यधीमता ॥ देवासुरेजांबवतालब्धा
श्चबहवोवराः ॥ १२ ॥ आरुह्यपर्वताग्रेभ्योमहाभ्रविपुलाःशिलाः ॥ मुंचंतिविपुलाकारानमृत्योरुद्विजंतिच ॥ १३॥ राक्ष
सानांचसदृशाःपिशाचानांचरोमशाः ॥ एतस्यसैन्याबहवोविचरंत्यमितोजसः ॥ १४ ॥ यएनमभिसंरब्धंप्लवमान
मवस्थितम् ॥ प्रेक्षंतेवानराःसर्वेस्थितंयूथपयूथपम् ॥ १५ ॥ एषराजन्सहस्राक्षंपर्युपास्तेहरीश्वरः ॥ बलेनबलसंयुक्तो
रंभोनामैषयूथपः ॥ १६ ॥ यःस्थितंयोजनेशैलंगच्छन्पार्श्वेनसेवते ॥ ऊर्ध्वंतथैवकायेनगतःप्राप्नोतियोजनम् ॥ १७ ॥
यस्मात्तुपरमंरूपंचतुष्पात्सुनविद्यते ॥ श्रुतःसन्नादनोनामवानराणांपितामहः ॥ १८ ॥

वर्षा करके घोर गर्जन कियाथा और मृत्युसें कुछ भय नहीं खाया ॥ १३ ॥ इनकी सेनाके शरीर राक्षस और पिशाचोंकी तुल्य रोमवाले हैं, उस सेनाकी कुछ गिनती नहीं हो सकती और इनका बल भी अमितहै॥१४॥देखिये इन जाम्बवानको यह क्रोध किये व तड़कते हुए निहार रहे हैं ॥हे राजन्! यह कि जिसको सब वानर देखते हैं ॥ १५ ॥ हे राजन् यह वानरन,थ इन्द्रकी पूजा करने वालाहै। यह देखिये बड़ीभारी सेनाको साथ लिये हुए यही रंभ नामक यूथप वानर है ॥ १६ ॥ महाराज जो वानर पर्वतपर रहनेके समय एक योजन चलनेके समय बगलसे एक योजन आगे चरणोंसें एक योजन व ऊपरको अपने शरीरसे एक योजन बढ़कर चलता है॥१७॥चौपायोंमें इसकी समान भयंकर मूर्त्ति और किसी

आरंभ करता हुआ ॥ २७ ॥ परन्तु वानर लोगोंने हमको देखतेही क्रोधायमानहो ऊपर आकाशमें छलांग मारकर हमको पकड़ लिया; और वह हमारे सब पंख उखाड़नें और घूंसोंसे हमारे प्राण तक निकालनेंको तैयार हुए ॥ २८ ॥ उन वानरोंनें न तौ हमसे कोई बात पूछी; न हमें कोई प्रश्नही करनें दिया; कारण कि वह वनचारी वानर स्वभावसे क्रोधी होतेहैं. और विना कुछ सोचे विचारे शीघ्रतासे कार्य किया करते हैं; इस कारणसे प्रथमही वह हमको मार लगानें लगे ॥ २९ ॥ तिसके पीछे जिनके हाथमें विराध कबन्ध और खरका प्राण संहार कियाहै और जो सुग्रीवके साथ सीताजीको ढूंढ़नेंको निकलेहैं, उनको हमनें देखा ॥ ३० ॥ वह समुद्रमें पुल बांध उसके द्वारा खारी सिन्धुके पार

क्रुद्धैस्तैरहमुत्प्लुत्यदृष्टमात्रःप्लवंगमैः ॥ गृहीतोस्म्यपिचारब्धोहंतुंलोष्टुंचमुष्टिभिः॥ २८॥ नतेसंभाषितुंशक्याःसंप्रश्नो त्रनविद्यते ॥ प्रकृत्याकोपनास्तीक्ष्णावानराराक्षसाधिप ॥ २९ ॥ सचहंताविराधस्यकबंधस्यखरस्यच ॥ सुग्रीवसहितोरामःसीतायाःपदमागतः ॥ ३० ॥ सकृत्वासागरेसेतुंतीर्त्वाचलवणोदधिम् ॥ एषरक्षांसिनिर्धूयधन्वीतिष्ठतिराघवः ॥ ३१ ॥ ऋक्षवानरसंघानामनीकानिसहस्रशः ॥ गिरिमेघनिकाशानांछादयंतिवसुंधराम् ॥ ३२ ॥ राक्षसानांबलौघस्यवानरेंद्रबलस्यच ॥ नैतयोर्विद्यतेसंधिर्देवदानवयोरिव ॥ ३३ ॥ पुराप्राकारमायांतिक्षिप्रमेकतरंकुरु॥सीतांचास्मैप्रयच्छाशुयुद्धंवापिप्रदीयताम् ॥ ३४ ॥ शुकस्यवचनंश्रुत्वारावणोवाक्यमब्रवीत् ॥ रोषसंरक्तनयनोनिर्दहन्निवचक्षुषा ॥ ३५ ॥

आये हैं । मानों वह राक्षस कुल निर्मूल करनेंकी वासनासेही धनुष धारण करके लंकामें आय पहुँचेहैं ॥ ३१ ॥ पहाड़ी मेघोंकी समान उनकी वानर और रीछोंकी इतनी सैनाहै कि जिसके देखनेंसे ज्ञात होताहै कि इसने सब पृथ्वीको ढक रक्खाहै ॥ ३२ ॥ हे महाराज ! आपकी और वानरराजसुग्रीवजीकी सैनाके बीचमें देव गणोंके साथ दानव लोगोंकी समान परस्पर सन्धि होनेंकी कोई संभावना नहीं ॥ ३३ ॥ इसकारण यातौ आप बहुत शीघ्र श्रीरामचंद्रजीको सीता समर्पण करदें अथवा उनके साथ युद्ध करें अतएव इन दो कार्योंमेंसे आप एक करें॥ ३४॥ शुकके ऐसे वचन सुनकर रावणके दोनों नेत्र अत्यन्त लाल होगये, और उन नेत्रोंसे रावण शुकको जलाता हुआसा शुकसे बोला ॥ ३५ ॥

यह वानर बडी भारी वानरी सैनाका सैनापतिहै यह गंगाके पीछेके भागवाले उशीर बीज, और पर्वत श्रेष्ठ मन्दरपर रहकर यह परम प्रसन्नता प्राप्त किया करताहै ॥ २७ ॥ देवराज इन्द्रजी जिस प्रकार अमरावतीमें वास किया करतेहैं, वैसेही यह वानरश्रेष्ठ वहां रमण किया करताहै ॥ २८ ॥ जो कि वीर्य विक्रमसे गर्वित और अमित बलशाली है; यह वानर उन्हीं सब महात्मा वानरोंका प्रेरकहै ॥ २९ ॥ हे राजन्! यह दुर्द्धर्ष प्रमाथी नामक यूथपहै, जिसको कि पवनसे उठे हुए मेघकी समान आप चलते हुए देखतेहैं ॥ ३० ॥ और जिसके साथ वानरोंकी सैना, क्रोध करती वेगसे चलती पवनसे कम्पायमान अरुण रंगकी आप देखतेहैं ॥ ३१॥ जिस सैनाके चारों ओर आप वानरोंकी उडाई हुई लाल

हरीणांवाहिनीमुख्योनदींहैमवतीमनु ॥ उशीरबीजमाश्रित्यमंदरंपर्वतोत्तमम् ॥ २७ ॥ रमतेवानरश्रेष्ठोदिविशक्र इवस्वयम् ॥ एनंशतसहस्राणांसहस्रमभिवर्तते ॥ २८ ॥ वीर्यविक्रमदृप्तानांनर्दतांबाहुशालिनाम् ॥ सएषनेताचैतेषां वानराणांमहात्मनाम् ॥ २९ ॥ सएषदुर्धरोराजन्प्रमाथीनामयूथपः ॥ वातेनेवोद्धतंमेघंयमेनमनुपश्यसि ॥ ३० ॥ अनीकमपिसंरब्धंवानराणांतरस्विनाम् ॥ उद्धूतमरुणाभासंपवनेनसमंततः ॥ ३१ ॥ विवर्तमानंबहुशोयत्रैतद्बहुलं रजः ॥ एतेसितमुखाघोरागोलांगूलामहाबलाः ॥ ३२ ॥ शतंशतसहस्राणिदृष्ट्वावैसेतुबंधनम् ॥ गोलांगूलंमहाराज गवाक्षंनामयूथपम् ॥ ३३ ॥ परिवार्याभिनर्दंतेलंकांमर्दितुमोजसा ॥ भ्रमराचरितायत्रसर्वकालफलद्रुमाः ॥ ३४ ॥ यंसूर्यस्तुल्यवर्णाभमनुपर्येतिपर्वतम् ॥ यस्यभासासदाभांतितद्वर्णामृगपक्षिणः ॥ ३५ ॥

रज देखतेहैं, और हे महाराज! यह उजले मुखके महाबली गोपुच्छ नाम महाबलवान ॥ ३२ ॥ वानर जो कि अब्बों सेतु बंधपर दिखाई देते हैं; हे महाराज! बस इन्हीं गोपुच्छ वानरोंका महाराज यह गवाक्ष नामक यूथपहै ॥ ३३ ॥ देखिये इसी गवाक्ष यूथपको घेरे हुए सब गोपुच्छ वानर लंकाको मर्दन करना चाहतेहैं; और गर्ज रहेहैं। जहांपर भौंरे सदा जाया करते और जहां वृक्षोंमें सदा फल लगे रहतेहैं ॥३४॥ सूर्य जिसको अपनी स्थान वर्णवाला समझकर. प्रतिदिन जिस पर्वतकी प्रदक्षिणा किया करतेहैं; और जिस पर्वतकी अरुण कांतिसे जहांके सब पक्षी

वीणा बाणसे बजेगी, तब फिर हमको पहचाननेंके लिये रामचंद्रको चिन्तानहीं करनी पड़ैगी ॥ ४२ ॥ ॥ अतएव उस धनुप रूपी वीणाको हम, प्रत्यञ्चा शब्दरूप रण शंकुल शब्दयुक्त दुःखी लोगोंके गान सहित बाणोंके शब्दकी सन्नाहट होती हुई शत्रु सैनारूपी नदीमें स्नान कर समरमें बजामेंगे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ हे शुक! अब अधिक कहनेंकी कुछ आवश्यकता नहीं है हजार आंखवाला इन्द्र अथवा वरुण हमको कोईभी युद्धमें नहीं जीत सकता; यमअथवा स्वयं कुबेरभी हमारे बाणकी अग्निके सामनें समरमें खड़े नहीं होसकते॥ ४५ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०यु०चतुर्विंशः सर्गः॥२४॥दशरथजीके पुत्र श्रीरामचंद्रजी अपनी सैनाके सहित महासमुद्रके पार होकर लंकामें आयेहैं; इस वृत्तान्तको सुनकर रावण शुक शारण

ज्याशब्दतुमुलांघोरामार्तगीतमहास्वनाम् ॥ नाराचतलसन्नादांनदीमहितवाहिनीम् ॥ ४३ ॥ अवगाह्यमहारंगं वादयिष्याम्यहंरणे ॥ ४४ ॥ नवासवेनापिसहस्रचक्षुषायुद्धेस्मिशक्योवरुणेनवास्वयम् ॥ यमेनवाधर्षयितुंशरा ग्निनामहाहवेवैश्रवणेनवास्वयम् ॥ ४५ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकाण्डेचतुर्विं शःसर्गः ॥ २४ ॥ ॥ ७ ॥ सबलेसागरंतीर्णेरामेदशरथात्मजे ॥ अमात्यौरावणःश्रीमानब्रवीच्छुकसारणौ ॥ १ ॥ समग्रंसागरंतीर्णंदुस्तरंवानरंबलम् ॥ अभूतपूर्वंरामेणसागरेसेतुबंधनम् ॥ २ ॥ सागरेसेतुबंधंतंनश्रद्दध्यांकथंचन ॥ अवश्यंचापिसंख्येयंतन्मयावानरंबलम् ॥ ३ ॥ भवंतौवानरंसैन्यंप्रविश्यानुपलक्षितौ ॥ परिमाणंचवीर्यंचयेचमुख्याः प्लवंगमाः ॥ ४ ॥ मंत्रिणोयेचरामस्यसुग्रीवस्यचसंगताः ॥ येपूर्वमभिवर्ततेयेचशूराःप्लवंगमाः ॥ ५ ॥

नामक अपने दो मंत्रियोंको बुलायकर कहनें लगा ॥ १॥ कि रामचंद्रनें समुद्रके ऊपर पुल बांध लिया कि जिसके ऊपर होकर समस्त वानर सैना बड़ी कठिनसे पार होनेंके योग्य समुद्रके पार चली आई; हमनें कभी ऐसा काम किसीको करते हुए नहीं देखा ॥ २ ॥ रामनें साधारण मनुष्य होकर सेतु बांध लियाहै; यह बात किसी प्रकारसे विश्वाश करनेंके योग्य नहींहै, जो कुछभी हो अब हमको यह जान लेना बहुतही आवश्यकीय बातहै; कि रामचंद्रके साथ कितनी सैना आईहै ॥ ३ ॥ इस कारण तुम दोनों जन गुप्त रूपसे वानरोंकी सैनामें प्रवेश करके उस वानर सैनाकी संख्या, और उसके बल वीर्यका पता लगालाओ ॥ ४ ॥ जो समस्त वानरोंके यूथपहैं और जो रामचंद्रके मंत्रीहैं, और जो वानरगण सुग्रीवके

करताहै, हेराजन्! यह समस्त पृथ्वीपर विख्यात हुआ शतबलिनाम वानर यूथपहै ॥ ४४ ॥ हेमहाराज! यह वीर शतबली, ऐसा विक्रमी बलवान और पौरुष युक्तहै, कि इसनें अपनी सैनाहीसे लंका मर्दन करनेंका विचार स्थिर कर रक्खाहै ॥ ४५ ॥ गज, गवाक्ष, गवय, नल, और नील इत्यादि वानरगण समस्तही प्राणोंका मोह छोड़कर श्रीरामचंद्रजीका प्रिय करनेंके लिये ॥ ४६ ॥ एक २ योधा शत २ करोड़ वानरोंकी सैना संग लिये आयेहैं, सब विन्ध्याचलके रहनेंवाले और दूसरे वानर गणभी जो लघु विक्रमीहैं; और बहुत होंनेके कारण जिनकी गिनती नहीं हो सकती ॥ ४७ ॥ हे महाराज! इन सबही वीर गणोंकी देह महापर्वतकी समान है, सबही महाप्रभाववाले, और सबही शिला वर्षाय कर क्षण कालमें सारी पृथ्वीको ढक सकतेहैं ॥ ४८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्ध० सप्तविंशःसर्गः ॥ २७ ॥

एषैवाशंसतेलंकांस्वेनानीकेनमर्दितुम् ॥ विक्रांतोबलवाञ्छूरःपौरुषेस्वेव्यवस्थितः ॥ ४५ ॥ रामप्रियार्थंप्राणानांदयां नकुरुतेहरिः ॥ गजोगवाक्षोगवयोनलोनीलश्चवानरः ॥ ४६ ॥ एकैकमेवयोधानांकोटिभिर्दशभिर्वृतः ॥ तथान्येवानरश्रे ष्ठाविंध्यपर्वतवासिनः ॥ नशक्यंतेबहुत्वात्तुसंख्यातुंलघुविक्रमाः ॥ ४७ ॥ सर्वेमहाराजमहाप्रभावाःसर्वेमहाशैलनि काशकायाः ॥ सर्वेसमर्थाःपृथिवींक्षणेनकर्तुंप्रविध्वस्तविकीर्णशैलाम् ॥ ४८ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीये आ०युद्धकांडेसप्तविंशःसर्गः ॥ २७ ॥ सारणस्यवचःश्रुत्वारावणंराक्षसाधिपम् ॥ बलमादिश्यतत्सर्वंशुकोवाक्यम थाब्रवीत् ॥ १ ॥ स्थितान्पश्यसियानेतान्मत्तानिवमहाद्विपान् ॥ न्यग्रोधानिवगांगेयान्सालान्हैमवतानिव ॥ २ ॥ एतेदुष्प्रसहाराजन्बलिनःकामरूपिणः ॥ दैत्यदानवसंकाशायुद्धेदेवपराक्रमाः ॥ ३ ॥

सारणके वचन सुनकर राक्षसपति रावण शुकसे श्रीरामचंद्रजीकी सेनाका समाचार पूछता हुआ; तब शुक बोला ॥ १ ॥ हेराजन्! आप जिनको मतवाले महागजोंकी समान गंगाके तीरवाले वट वृक्षोंकी समान, और हिमवान पर्वतपर उपजे हुए शाल वृक्षकी समान देख तेहैं॥२॥यह समस्तही सहनेंके अयोग्य बलवान और कामरूप धारण करनेंवाले हैं; यह युद्धमें देवगणोंकी समान पराक्रम प्रगट करनेंवाले हैं ॥ ३ ॥

हेशत्रुओंके तपानें वाले! यह दो निशाचर राक्षसराज रावणके मंत्री, शुक सारण नामक लंकामें, वास करतेहैं; यह दोनों दूत बनकर यहां आयेहैं ॥ १४ ॥ यह दोनों राक्षस श्रीरामचंद्रजीको देखतेही अत्यन्त भयभीत हुए, और अपने जीवनकी आशाको जलांजलि देते हुए; व हाथ जोड़कर श्रीरामचंद्रजीसे यह वचन बोले ॥ १५ ॥ हे सौम्य राक्षसोंके राजा रावण करके प्रेरितहो आपकी सेना संख्या जाननेंके लिये यहां पर आयेहैं ॥ १६ ॥ प्राणियोंके हितकारी शूर दशरथकुमार श्रीरामचंद्रजी. इन दोनों राक्षसोंके करुणासहित वचन सुन मन्द २ हँस कर यह बोले कि ॥ १७ ॥ जो तुम लोगोंनें हमारी समस्त सेना देख लीहो, मंत्रियोंके सहित सुग्रीवजीका व हमारा बलवीर्यभी यदि तुम

तौदृष्ट्वाव्यथितौरामंनिराशौजीवितेतथा ॥ कृतांजलिपुटोभीतौवचनंचेदमूचतुः ॥ १५ ॥ आवामिहागतौसौम्यरा
वणप्रहितावुभौ ॥ परिज्ञातुंबलंसर्वंतदिदंरघुनंदन ॥ १६ ॥ तयोस्तद्वचनंश्रुत्वारामोदशरथात्मजः ॥ अब्रवी
त्प्रहसन्वाक्यंसर्वभूतहितेरतः ॥ १७ ॥ यदिदृष्टंबलंसर्वंवयंवासुसमाहिताः ॥ यथोक्तंवाकृतंकार्यंछंदतःप्रतिगम्यता
म् ॥ १८ ॥ अथकिंचिददृष्टंवाभूयस्तद्द्रष्टुमर्हथः ॥ विभीषणोवाकात्स्न्येंनपुनःसंदर्शयिष्यति ॥ १९ ॥ नचेदंग्रहणं
प्राप्यभेतव्यंजीवितंप्रति ॥ न्यस्तशस्त्रौगृहीतौचनदूतौवधमर्हतः ॥ २० ॥ प्रच्छन्नौचविमुंचेमौचारौरात्रिंचरावुभौ ॥
शत्रुपक्षस्यसततंविभीषणविकर्षिणौ ॥ २१ ॥

जान चुकेहो, अथवा रावणनें जिस प्रकार कह दियाथा उस्सेभी सिवाय यदि तुम लोगोंनें कुछ काम कियाहो, तौ हम उन सबको क्षमा करतेहैं, तुम निर्विघ्न यहांसे चले जाओ ॥ १८ ॥ यदि कोई बात देखनेंको बाकी रह गईहो उसकोभी देख जाओ; अथवा यह बिभीषण फिरसे तुमको समस्त दिखादेंगे ॥ १९ ॥ तुम दोनों हमारे वशमें पड़नेंके कारण अपने जीवनकी आशा नछोड़ो; कारणकि तुम लोग दूत शस्त्रविहीन और शरणमें आनेंके कारण किसी भांतिसे मार डालनेंके योग्य नहींहो ॥२०॥ जो कुछ भी हो. विभीषण! यद्यपि शुक सारण कपटरूपसे हमारी सैनामें प्रवेश

यह जाय सकताहै॥ ११॥बालकपनमें एकदिन यह वीर उदय होते हुए सूर्य भगवानको देखकर विना सूर्यको हरण किये पृथ्वीपरके किसी फलसे हमारी भूंख न मिटैगी" मनही मन यह विचारकर बलसे दर्पितहो तीन हजार योजन ऊपरको कूद गया, यह सूर्य मंडल पर पहुंच गया था ॥ १२ ॥ १३ ॥ परन्तु देव ऋषि और राक्षसोंसे धर्षित न होनेंके योग्य उन सूर्य भगवानको न प्राप्त होकर इन्द्रजीके वज्र मारनेंसे यह उदयाचलपर गिर पड़ा ॥ १४ ॥ हेमहाराज ! पहले इस वीरकी हनु (ठोड़ी) अत्यन्त दृढ़थी परन्तु शिलापर गिरनेंसे इनकी एक हनु कुछ एक टूट जानेंसे, इसी कारणसे यह वीर्य पहले वृत्तान्तके अनुसार हनुमान नामसे विख्यात हुआहै ॥ १५ ॥ वानरोंका संग होनेंसे यद्यपि हमनें इस वानरको

उद्यंतंभास्करंदृष्ट्वाबालःकिलबुभुक्षितः ॥ त्रियोजनसहस्रंतुअध्वानमवतीर्यहि ॥१२॥ आदित्यमाहरिष्यामिनमेक्षुत्प्रतियास्यति ॥ इतिनिश्चित्यमनसापुप्लुवेबलदर्पितः ॥ १३ ॥ अनाधृष्यतमंदेवमपिदेवर्षिराक्षसैः ॥ अनासाद्यैवपतितोभास्करोदयनेंगिरौ ॥ १४ ॥ पतितस्यकपेरस्यहनुरेकाशिलातले ॥ किंचिद्भिन्नादृढहनुर्हनूमानेषतेनवै ॥ १५ ॥ सत्यमागमयोगेनममैषविदितोहरिः ॥ नास्यशक्यंबलंरूपंप्रभावोवानुभाषितुम् ॥ १६ ॥ एषआशंसतेलंकामेकोमथितुमोजसा ॥ येनजाज्वल्यतेसौवैधूमकेस्तुस्तवाद्यवै ॥ लंकायांनिहितश्चापिकथंविस्मरसेकपिम् ॥१७॥ यस्यैषोनंतरःशूरःश्यामःपद्मनिभेक्षणः ॥ इक्ष्वाकूणामतिरथोलोकेविश्रुतपौरुषः ॥ १८ ॥

जानलियाहै, परन्तु इसका बलरूप और प्रभाव वर्णन करनेंकी मुझमें सामर्थ्य नहीं है, हमको तौ यह जान पड़ताहै, कि यही वीर अकेला लंकापुरीका नाश करनेंकी शक्ति रखताहै ॥ १६ ॥ हे राजन् ! पहले जिस वीरनें आपके प्रतापसे रोकी हुई अग्निको प्रज्वलित करके उसको लंकामेंही छोड़ाथा, भला फिर आप किस कारणसे अब उस हनुमान वीरको भूलतेहैं ? यह वीर अकेलाही लंका मथ्यहै ॥ १७ ॥ [illegible] श्यामवर्ण कमललोचन वीर बैठे हुएहैं, यह सबही [illegible]

व महा तेजमान महेन्द्र समान विक्रम शाली सुग्रीवजी केवल यही चारों फाटक और चाहर दिवारीसे युक्त लंकापुरीको ॥ ३० ॥ विना और दूसरे वानरोंकी सहायता लिये त्रिकूट पर्वतसे उखाड़ सकतेहैं, व दूसरे स्थानपर स्थापित कर सकतेहैं, जिस प्रकारका हमनें श्रीरामचंद्रजीका रूप देखा, और उनके बाण समूहका परिचय लिया तिस्से और तीन जनोंका प्रयोजन नहीं; ॥ ३१ ॥ केवल इकले श्रीरामचंद्रजीही लंकापुरीको छिन्न भिन्न कर सकते हैं। हेमहाराज! जैसा मैंनें देखा;उस्से तो यही जान पड़ाकि राम लक्ष्मण और सुग्रीव करकै रक्षित उस वानरोंकी सैनाको समस्त देवता व असुर लोगभी नहीं जीत सकते ॥ ३२ ॥ हेराजन्! वह महाबलवान वानरोंकी समस्त सैना रण करनेंमें चतुरहैं; उसके समस्त वानर यह

सुग्रीवश्चमहातेजामहेंद्रसमविक्रमः ॥ एतेशक्ताःपुरींलंकांसप्राकारांसतोरणाम् ॥ ३० ॥ उत्पाट्यसंक्रामयितुंसर्वे तिष्ठंतुवानराः ॥ यादृशंतद्धिरामस्यरूपंप्रहरणानिच ॥ ३१ ॥ वधिष्यतिपुरींलंकामेकस्तिष्ठंतुतेत्रयः ॥ रामलक्ष्मणगुप्तासासुग्रीवेणचवाहिनी ॥ बभूवदुर्धर्षतरासर्वैरपिसुरासुरैः ॥ ३२ ॥ प्रहृष्टयोधाध्वजिनीमहात्मनांवनौकसां संप्रतियोद्धुमिच्छताम् ॥ अलंविरोधेनशमोविधीयतांप्रदीयतांदाशरथायमैथिली ॥ ३३ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणे वाल्मी०आदिकाव्येयुद्धकांडेपंचविंशःसर्गः ॥ २५ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ तद्वचःसत्यमक्लीबंसारणेनाभिभाषितम् ॥ निशम्यरावणोराजापर्यभाषतसारणम् ॥ १ ॥ यदिमामभियुंजीरन्देवगंधर्वदानवाः ॥ नैवसितामहंदद्यांसर्वलोकभयादपि ॥ २ ॥ त्वंतुसौम्यपरित्रस्तोहरिभिःपीडितोभृशम् ॥ प्रतिप्रदानमद्यैवसीतायाःसाधुमन्यसे ॥ ३ ॥

राह परख रहेहैं कि कब युद्धहो, इस कारण उनसे विरोध करनेंकी कुछ आवश्यकता नहींहै, आप दशरथके पुत्र श्रीरामचंद्रजीको जानकी देकर उनके साथ संधि कर लीजिये॥ ३३ ॥ इ० श्रीम०वा०आ०यु०पंचविंशःसर्गः॥ २५ ॥ राक्षसराज रावण शारण भाषित यह सत्य और वीरोचित वचन सुनकर उससे बोला ॥ १ ॥ कि यदि देव दानव और गन्धर्वगण एकसाथ मिलकर हमारे साथ युद्धकरें अथवा त्रिलोकीके रहनें वालेभी समस्त हमसे विरुद्ध होजांय तथापि हम भय पायकर कभी जानकीको रामचंद्रके समर्पण न करेंगे ॥ २ ॥ हे सौम्य! वानर लोगोंनें तुमको बहुतही सता

श्रीमताराजराजेनलंकायामभिषेचितः ॥ त्वामसौप्रतिसंरब्धोयुद्धायैषोभिवर्तते ॥ २७ ॥ यंतुपश्यसितिष्ठंतंमध्येगिरिमिवाचलम् ॥ सर्वशाखामृगेंद्राणांभर्तारममितौजसम् ॥ २८ ॥ तेजसायशसाबुध्याबलेनाभिजनेनच ॥ यःकपीनतिबभ्राजहिमवानिवपर्वतः ॥ २९ ॥ किष्किंधांयःसमध्यास्तेदुर्गांसगहनद्रुमाम् ॥ दुर्गांपर्वतदुर्गम्यांप्रधानैःसहयूथपैः ॥ ३० ॥ यस्यैषाकांचनीमालाशोभतेशतपुष्करा ॥ कांतादेवमनुष्याणांयस्यांलक्ष्मीःप्रतिष्ठिता ॥ ३१ ॥ एतांमालांचतारांचकपिराज्यंचशाश्वतम् ॥ सुग्रीवोवालिनंहत्वारामेणप्रतिपादितः ॥ ३२ ॥ शतंशतसहस्राणांकोटिमाहुर्मनीषिणः ॥ शतंकोटिसहस्राणांशंकुरित्यभिधीयते ॥ ३३ ॥ शतंशंकुसहस्राणांमहाशंकुरितिस्मृतः ॥ महाशंकुसहस्राणांशतंवृंदमिहोच्यते ॥ ३४ ॥ शतंवृंदसहस्राणांमहावृंदमितिस्मृतम् ॥ महावृंदसहस्राणांशतंपद्ममिहोच्यते ॥ ३५ ॥

सोंके साथ वीर रामचंद्रजीकी बांई बगलमें इनके पक्षमें होकर बैठेहैं; वही राजा विभीषणहैं ॥ २६ ॥ हे राजन्! विभीषण राजराजेश्वर श्रीरामचंद्रजी करकै लंकाके राज्यमें अभिषेकित होकर आपके साथ युद्ध करनेंकी कामनासे क्रोधमें भरे हुए बैठेहैं ॥ २७ ॥ जिनको आप अटल पर्वतकी समान बीचमें बैठे हुए देखतेहैं यह सब वानरोंके राजाहैं; इनके बलका कुछ परिणामही नहीं ॥ २८ ॥ यह तेज यश बुद्धि और बलके प्रभावसे, पर्वतोंके मध्यमे हिमवान पर्वतकी समान समस्त वानरोंसे अधिक शोभायमान होतेहैं ॥ २९ ॥ हे राजन्! यह प्रधानवीर यूथपति लोगोंके साथ किष्किन्धामें पर्वतके दुर्गवाली वृक्षयुक्त व कोई और जहां न पहुंचसकै, ऐसी गुहामें वानर यूथपोंके साथ रहतेहैं ॥ ३० ॥ और देवता व मनुष्य लोगोंकी प्रार्थनीया लक्ष्मी जिसमें सदा टिकी रहती है, वह शतपुष्पीके पुष्पवाली कांचनमयी माला जिनके गलेमें शोभायमान हो रहीहै ॥ ३१ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें वीरश्रेष्ठ वालिका प्राण संहार करकै, यह माला वालिकी स्त्री तारा, और किष्किन्धाका राज्य यह समस्तही इन सुग्रीवको दियाहै ॥ ३२ ॥ हे महाराज! संख्या के जाननेंवाले पंडित लोग शत गुणीत शत सहस्रसे एक कोटि सहस्र कोटिसे शंक कहतेहैं ॥ ३३ ॥ ... महा शंक सहस्रसे एक वृन्द ॥ ३४ ॥ सहस्र वृन्दक ...

और फाटकोंसे युक्त ॥ १२ ॥ व सर्व शैल, वन कानन सहित लंका पुरी कंपायमान होरहीहै, और जो वानर शाखामृगोंका अधिपति महात्मा सुग्रीवजीकी ॥ १३ ॥ सेनाके आगे खड़ा हुआहै, यह नील नाम वीर यूथपोंका स्वामीहै। और यह जो वीर्यवान वानर दोनों बाहें उठाये मनुष्योंकी समान पृथ्वीपर चरण धरता हुआ चला आताहै ॥ १४ ॥ जो वारंवार लंकाकी ओर देखकर जँभाई लेताहै, और कोपके मारे जिसकी दृष्टि कुटिल, होगई है, व जो वानर आकाशमें पर्वतके शृंगकी समान ऊंचा और कमलरजकी समान पीत जिसकी देहका रंगहै ॥ १५ ॥ और जोकि क्रोधमें भरनेके कारण वारंवार अपनी पूंछको फटकार रहाहै जिसकी पूंछके शब्दसे दशों दिशाएं गूंज रहीहैं ॥ १६ ॥ हेमहाराज?

लंकाप्रतिहतासर्वासशैलवनकानना॥सर्वशाखामृगेंद्रस्यसुग्रीवस्यमहात्मनः ॥ १३ ॥ बलाग्रेतिष्ठतेवीरोनीलोनामै षयूथपः॥बाहूप्रगृह्ययःपद्भ्यांमहींगच्छतिवीर्यवान् ॥ १४ ॥ लंकामभिमुखःकोपादभीक्ष्णंचविजृंभते ॥ गिरिशृं गप्रतीकाशःपद्मकिंजल्कसन्निभः ॥ १५ ॥ स्फोटयत्यतिसंरब्धोलांगूलंचपुनःपुनः॥ यस्यलांगूलशब्देनस्वनंतिप्रतिशो दश ॥ १६ ॥ एषवानरराजेनसुग्रीवेणाभिषेचितः ॥ युवराजोंगदोनामत्वामाह्वयतिसंयुगे ॥ १७ ॥ वालिनःसदृशः पुत्रःसुग्रीवस्यसदाप्रियः ॥ राघवार्थेपराक्रांतःशक्रार्थेवरुणोयथा ॥ १८ ॥ एतस्यसामतिःसर्वायद्दृष्टाजनकात्मजा ॥ हनूमतावेगवताराघवस्यहितैषिणा ॥ १९ ॥ बहूनिवानरेंद्राणामेषयूथानिवीर्यवान् ॥ परिगृह्याभियातित्वांस्वे नानीकेनमर्दितुम् ॥ २० ॥ अनुवालिसुतस्यापिवलेनमहतावृतः ॥ वीरस्तिष्ठतिसंग्रामेसेतुहेतुरयंनलः ॥ २१ ॥

वानरराज सुग्रीव करके युवराज पदपर अभिषेकित यह युवराज अंगद आपको युद्ध करनेंके लिये पुकार रहेहैं ॥ १७ ॥ हेमहाराज! वरुणजी जिस प्रकार इन्द्रके लिये पराक्रम प्रकाश करतेहैं; ऐसेही सुग्रीवके प्रिय और अपने पिताकी समान पराक्रमवान यह वालिकुमार अंगदभी श्रीरामचंद्रजीके लिये पराक्रम प्रगट करनेको तैयार हुआहै॥ १८ ॥ श्रीरामचंद्रजीके हितकारी वेगवान हनुमानजी जो यहां पर आय लंकामें जो जानकीजीको देख गयेथे; उन्होंने सब कार्य इन अंगदजीही की सलाहसे कियेथे ॥ १९ ॥ यह वीर्यवान अंगद असंख्य वानर यूथप गणोंके साथ आपका संहार करनेंहीके लिये सैना समेत आगे बढ़ा आताहै॥ २० ॥ जिस वीरनें समुद्रके ऊपर सेतु बांधाहै, यह वही नलनाम वानर संग्रामका

लक्ष्मणजीको ॥ १ ॥ और श्रीरामचंद्रजीके समीप बैठेहुए अपने भ्राता विभीपणको व भयंकर पराक्रमकारी वानरराज सुग्रीवजीको बैठे देख ॥ २ ॥ व उनके निकट इन्द्रके औरसपुत्र बालिकुमार महावीर अंगद, हनुमान, और अजीत जाम्बवान् ॥ ३ ॥ व उनकी बगलमें सुषेण कुमुद, नील, नल, गज, गवाक्ष, शरभ, मैन्द और द्विविद ॥ ४ ॥ इत्यादि वानर गणोंको देखतेही रावण कुछ उदासभी हुआ; और फिर उदासीन ताके आकारको छिपानेको यथार्थ वचन कहनें वाले, शुक, सारण दोनों निशाचरोंको बहुतही धिक्कारता हुआ निन्दा करनें लगा ॥ ५ ॥ राक्षस राज रावण सामनें बैठे प्रणाम करते हुए उन दोनौं राक्षसोंसे रोष सहित गदगद वाणीसे यह वचन बोला ॥ ६ ॥ तुम लोगोंने जो वचन हमसे

समीपस्थंचरामस्यभ्रातरंचविभीषणम् ॥ सर्ववानरराजंचसुग्रीवंभीमविक्रमम् ॥ २ ॥ अंगदंचापिबलिनंवज्रहस्तात्मजात्मजम् ॥ हनूमंतंचविक्रांतंजांबवंतंचदुर्जयम्॥३॥सुषेणंकुमुदंनीलंनलंचप्लवगर्षभम् ॥ गजंगवाक्षंशरभंमैंदंचद्विविदंतथा ॥ ४ ॥ किंचिदाविग्नहृदयोजातक्रोधश्चरावणः ॥ भर्त्सयामासतौवीरौकथांतेशुकसारणौ ॥ ५ ॥ अधोमुखौतौप्रणतावब्रवीच्छुकसारणौ ॥ रोषगद्गदयावाचासंरब्धंपरुषंतथा ॥ ६ ॥ नतावत्सदृशंनामसचिवैरुपजीविभिः ॥ विप्रियंनृपतेर्वक्तुंनिग्रहेप्रग्रहेप्रभोः ॥ ७ ॥ रिपूणांप्रतिकूलानांयुद्धार्थमभिवर्तताम् ॥ उभाभ्यांसदृशंनामवक्तुमप्रस्तवेस्तवम् ॥ ८ ॥ आचार्यागुरवोवृद्धावृथावांपर्युपासिताः ॥ सारंयद्राजशास्त्राणामनुजीव्यंनगृह्यते ॥ ९ ॥ गृहीतोवानविज्ञातोभारोज्ञानस्यवाह्यते ॥ ईदृशैःसचिवैर्युक्तोमूर्खैर्दिष्ट्याधराम्यहम् ॥ १० ॥

कहे, यह उपजीवी मंत्रियोंको किसी प्रकारसे कहनें कर्त्तव्य नहीं हैं, और अपनें स्वामीके प्रति निग्रह या अनुग्रह करनाभी योग्य मंत्रीका कार्य नहीं है ॥ ७ ॥ तुम लोगोंनें विना पूछेजानें परभी जोकि युद्धकरनेंके लिये आये श्रेष्ठशत्रुके बलकी श्रेष्ठताका वर्णन किया, क्या यह राक्षस राजके मंत्रीका उचित कार्य हुआहै? ॥ ८ ॥ हम समझ गये कि तुम दोनों जनोंनें; आचार्य, गुरु, और वृद्ध लोगोंकी वृथा पूजा कीहै, कारणाकि तुम लोगोंको जो सीखनी चाहियेथी वैसी सार राजनीति तुमनें अभीतक नहीं सीखीहै ॥ ९ ॥ यदि कुछ राजनीतिका मर्म समझभी गयेहो परन्तु तुम लोगोंनें उसको ग्रहण नहीं कियाहे मूर्ख पुरुषके समान तुम केवल शास्त्रके भारको धारण कियेहो हमारा कैसा भाग्यहै कि हम ऐसे अयोग्य

होकर एकाग्र चित्तसे इधरको देख रहेहैं ॥ २९ ॥हे राजन्! यह रंभनामे यूथपहै विन्ध्याचल, कृष्णाचल और सह्य इन तीन मनोहर पर्वतोंमें इसके रहनेका स्थानहै॥ ३० ॥ इस वानर श्रेष्ठके संग २ में दशलाख तीस असंख्य अतिभयंकर रूपवाली ॥ ३१ ॥ घोर विक्रमकारी वानरोंकी सैना चला करती है यहभी अपने ही वानरोंके तेज प्रभावसे लंकाको मर्दन किया चाहता है ॥३२॥और यह जो अपने कानोंको सकोड़ता और वारंवार जंभाई लेरहाहै जिसको अपनी मृत्युका भय नहीं है; और यह अपनी सेनाकी सहायताभी नहीं प्रार्थना करताहै ॥ ३३ ॥ क्रोधके मारे जिसका सर्व शरीर कांप रहाहै, और जो बलवान अपनी पूंछको नचाय २ तिरछाहोकर देख २ सिंह नाद कररहाहै ॥ ३४ ॥ जोकि अपनी वीरताईके गर्व

विंध्यंकृष्णगिरिंसह्यंपर्वतंचसुदर्शनम् ॥ राजन्सततमध्यास्तेसरंभोनामयूथपः ॥ ३० ॥ शतंशतसहस्राणांत्रिंशच्चहरिपुंगवाः ॥ ३१ ॥ यंयांतंवानराघोराश्चंडाश्चंडपराक्रमाः ॥ परिवार्यानुगच्छंतिलंकांमर्दितुमोजसा ॥३२॥ यस्तुकर्णौविवृणुतेजृंभतेचपुनःपुनः ॥ नतुसंविजतेमृत्योर्नचसेनांप्रधावति ॥ ३३ ॥ प्रकंपतेचरोषेणतिर्यक्चपुनरीक्षते ॥ पश्यलांगूलविक्षेपंक्ष्वेडत्येषमहाबलः ॥ ३४ ॥ महौजसावीतभयोरम्यंसाल्वेयपर्वतम् ॥ राजन्सततमध्यास्तेशरभोनामयूथपः ॥ ३५ ॥ एतस्यबलिनःसर्वेविहारानामयूथपाः ॥ राजञ्छतसहस्राणिचत्वारिंशत्तथैवच ॥ ३६ ॥ यस्तुमेघइवाकाशंमहानावृत्यतिष्ठति ॥ मध्येवानरवीराणांसुराणामिववासवः ॥ ३७ ॥ भेरीणामिवसन्नादोयस्यैषश्रूयतेमहान् ॥ घोषःशाखामृगेंद्राणांसंग्राममभिकांक्षताम् ॥ ३८ ॥ एषपर्वतमध्यास्तेपारियात्रमनुत्तमम् ॥ युद्धेदुष्प्रसहोनित्यंपनसोनामयूथपः ॥ ३९ ॥

से सदा निडर रहताहै; और रमणीक साल्वेयनाम पर्वतपर जो रहताहै हे राजन्! इस बडे भारी यूथपका नाम शरभ है॥ ३५ ॥ हे राजन्! इस शरभके एक लक्ष चालीस विहार यूथप हैं ॥ ३६ ॥ मेघ जिस प्रकारआकाशको ढंककर स्थित होते हैं उन मेघोंकीही समान जो वानर देवताओंके बीचमें इन्द्रजीकी समान आकाशको ढककर वैठता है ॥ ३७ ॥ भेरी बजनेंके शब्दकी समान जिसके पीछे चलनेंवाले युद्धकी आशा लगाये वानरोंका गर्जन बराबर सुनाई आताहै ॥ ३८ ॥ यह परिपात्र पर्वतश्रेष्ठ पर सदा रहा करताहै, और युद्धमें सहनें योग्य नहीं है। यह पनस

कर रावणकी बन्दना हाथजोड करते हुए ॥ १७ ॥ फिर राक्षसराज रावण उन भयविहीन, शूर विश्वासी दूतोंसे बोला ॥ १८ ॥ कि तुम लोग रामचंद्र और परम प्रसन्नता सहित जो मंत्री लोग उनके संग आयेहैं,उनके कार्य व मनकी बात जाननेंके लिये यहांसे शीघ्र ही वहां पर जाओ ॥ १९ ॥ हमारे शत्रु लोग किस प्रकारसें सोतेहैं? और जागते रहकर क्याकरते हैं? और अब आगेको क्या करेंगे? यह बातें तुम लोग बड़ी सावधानीके साथ भलीभांती जान बूझकर यहां चले आओ ॥ २० ॥ कारणकि चतुर राजा लोग दूतोंकी सहायतासे शत्रु लोगोंकी अवस्था जानकर रणभूमिमें सरलतासे उनको भगाय देतेहैं ॥ २१ ॥ दूत गण "जो आज्ञा" कह और शार्दूलको आगे कर हर्षित अंतःकरणसे राक्षसराज रावणकी प्रदक्षिणा

तानब्रवीत्ततोवाक्यंरावणोराक्षसाधिपः ॥ चरान्प्रत्यायिकाञ्छूरान्धीरान्विगतसाध्वसान् ॥१८॥ इतोगच्छतरामस्य व्यवसायंपरीक्षितुम् ॥ मंत्रिष्वभ्यंतरायेऽस्यप्रीत्यातेनसमागताः ॥ १९ ॥ कथंस्वपितिजागर्तिकिमद्यचकरिष्यति ॥ विज्ञायनिपुणंसर्वमागंतव्यमशेषतः ॥ २० ॥ चारेणविदितःशत्रुःपंडितैर्वसुधाधिपैः ॥ युद्धेस्वल्पेनयत्नेनसमासाद्यनिरस्यते ॥२१॥ चारास्तुतेतथेत्युक्त्वाप्रहृष्टाराक्षसेश्वरम् ॥शार्दूलमग्रतःकृत्वाततश्चक्रुःप्रदक्षिणम् ॥ २२ ॥ततस्तंतुमहात्मानंचाराराक्षससत्तमम् ॥ कृत्वाप्रदक्षिणंजग्मुर्यत्ररामःसलक्ष्मणः॥२३॥ तेसुवेलस्यशैलस्यसमीपेरामलक्ष्मणौ ॥ प्रच्छन्नाददृशुर्गत्वाससुग्रीवविभीषणौ ॥ २४ ॥ प्रेक्ष्यमाणाश्चमूंतांचबभूवुर्भयविह्वलाः ॥ तेतुधर्मात्मनादृष्टाराक्षसेंद्रेणराक्षसाः ॥ २५ ॥ विभीषणेनतत्रस्थानिगृहीतायदृच्छया ॥ शार्दूलोग्राहितस्त्वेकःपापोयमितिराक्षसः ॥ २६ ॥

करनें लगे ॥ २२ ॥ फिर वह राक्षसश्रेष्ठ महोदरकी प्रदक्षिणा करके जहां पर श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके सहित विराजमानथे उस स्थानमें गमन करतेहुए ॥ २३ ॥ दूत लोगोंनें गमन कर सुवेल पर्वतके समीपमें गुप्तभावसे टिककर श्रीरामचंद्रजीके सहित लक्ष्मण सुग्रीव, और विभीषणको देखा ॥ २४ ॥ और इस बड़ी भारी वानरोंकी सैनाको देखतेही यह दूतगण भयके मारे अत्यन्त विह्वल होगये; परन्तु उन राक्षसोंको देखकर धर्मात्मा राक्षसोंके राजा ॥ २५ ॥ विभीषणजीनें बन्दरोंसे उनको इच्छा पूर्वक पकड़वाय लिया, और "पापाशय" कहकर, उनमेंसे

पराक्रम वाले यूथप देखते हैं; उनको अपने जीवनका कुछ भी माया मोह नहीं है;वह श्रीरामचंद्रजीके लिये पराक्रम प्रकाश करके अपना जीवन देदेनेको तैयार हुए हैं;अब हम इन सबका समाचार आपसे कहते हैं ॥ १ ॥ जिसकी पूंछके अत्यन्त चिकने, लम्बे लाल पीले उजले और अत्यन्त श्वेत वाल इधर उधर छिटके हुए हैं ॥२॥ और इधर उधर छिटकनेके कारण सूर्य किरणकी समान प्रकाशित होरहे हैं; और भूमि स्पर्श करते चलतेहैं जिसके बलका कुछ परिणाम नहीं यह वानर हरनामसे विख्यात है॥३॥ इसके ही पीछे सैकडों हजारों वानरसैना वृक्षोंको धारण किये चलती है इन सबकी कामना लंकापर चढ़ाई करनेकी है ॥ ४ ॥ यह सबही यूथपति वानरराज सुग्रीवजीके किङ्कर युद्ध करनेके लिये आये हैं । महा

स्निग्धायस्यबहुव्यामादीर्घलांगूलमाश्रिताः ॥ ताम्राःपीताःसिताःश्वेताःप्रकीर्णाघोरकर्मणः ॥ २ ॥ प्रगृहीताः प्रकाशंतेसूर्यस्येवमरीचयः ॥ पृथिव्यांचानुकृष्यंतेहरोनामैषवानरः ॥ ३ ॥ यंपृष्ठतोऽनुगच्छंतिशतशोथसहस्रशः ॥ वृक्षानुद्यम्यसहसालंकारोहणतत्पराः ॥ ४ ॥ यूथपाहरिराज्यस्यकिंकराःसमुपस्थिताः ॥ नीलानिवमहामेघांस्तिष्ठंतोयांस्तुपश्यसि ॥ ५ ॥ असितांजनसंकाशान्युद्धेसत्यपराक्रमान् ॥ असंख्येयाननिर्देशान्परंपारमिवोदधेः ॥ ६ ॥ पर्वतेषुचयेकेचिद्विषयेषुनदीषुच ॥ एतेत्वामभिवर्ततेराजनृक्षाःसुदारुणाः ॥ ७ ॥ एषांमध्येस्थितोराजाभीमाक्षोभीमदर्शनः ॥ पर्जन्यइवजीमूतैःसमंतात्परिवारितः ॥ ८ ॥ ऋक्षवंतंगिरिश्रेष्ठमध्यास्तेनर्मदांपिबन् ॥ सर्वर्क्षाणामधिपतिर्धूम्रोनामैषयूथपः ॥ ९ ॥

मेघकी समान नील वर्णके खडे हुए जिन वानरोंको आप देखते हैं ॥ ५ ॥ उनका रंग अंजनकी समान है और युद्धमें यह सत्य पराक्रमके करने वालेहैं, और समुद्रके तीरवाली वालूके कणोंकी समान इनकी संख्याका पार नहीं पाया जाता ॥ ६ ॥ यह पर्वत नद नदी इत्यादिमें वास किया करते हैं हे राजन्! देखिये, यह जो दारुण रीछ सब आपकी ओरको देख रहे हैं ॥ ७ ॥ हे राजन्! इनके बीचमें ही इनका यूथप बैठा हुआ है; वह देखनेमे भयंकर आकार है; और उसके दोनों नेत्र भी भयंकर हैं; आकाश जिस प्रकार सबभांति मेघमालासे ढककर शोभायमान होताहै; वैसेही यह यूथपति अपूर्व शोभासे सुशोभित है ॥ ८ ॥ पर्वतोंमें श्रेष्ठ ऋक्षवान पर्वतपर इसका वास और सदा नर्मदा नदीके निर्मल जल

उन बलवान वानरश्रेष्ठोंके बलाबलका विचार करना दूत लोगोंको साध्य नहीं ॥ ५ ॥ हे राजन्! पर्वताकार वानरगण चारों ओरसे मार्गोंकी इस प्रकारसे रक्षा करतेहैं, कि उन वानर श्रेष्ठोंके बलाबलका विचार करनातो दूर रहै, हम उनसे कोई प्रश्न या बात चीत कुछभी न करसके ॥ ६ ॥ हम लोग घूमते२ जब रामचंद्रजीकी सैनामें पहुंच गये,तब विभीषणजीके साथ रहनेंवाले चार मंत्री राक्षसोंनें हमको पहँचान लिया, और पहँचान कर उन्होंनें हमें पकड़ बांधकर सेनामें इधर उधर घुमाया ॥ ७ ॥ बांधकर लेजानें व घुमानेंके समय वानरोंकी सैनाने हमको जांघ, मूका, दन्त, लातसे भली भांति मार कूटकर काटा व डराया ॥ ८ ॥ इस प्रकारसे सब कहीं घुमाय २ फिर वह हमको रामचंद्रजीके पास लेगये; उस समय

नापिसंभाषितंशक्याःसंप्रश्नोत्रनलभ्यते ॥ सर्वतोरक्ष्यतेपंथावानरैःपर्वतोपमैः ॥ ६ ॥ प्रविष्टमात्रेज्ञातोहंबलेतस्मिन्विचारिते ॥ बलाद्गृहीतोरक्षोभिर्बहुधाऽस्मिविचारितः ॥ ७ ॥ जानुभिर्मुष्टिभिर्दंतैस्तलैश्चाभिहतोभृशम् ॥ परिणीतोस्मिहरिभिर्बलमध्येअमर्षणैः ॥ ८ ॥ परिणीयचसर्वत्रनीतोहंरामसंसदि ॥ रुधिरस्राविदीनांगोविह्वलश्चलितेंद्रियः॥ ९ ॥ हरिभिर्वध्यमानश्चयाचमानःकृतांजलिः ॥ राघवेणपरित्रातोमामेतिचयदृच्छया ॥ १० ॥ एषशैलशिलाभिस्तुपूरयित्वामहार्णवम् ॥ द्वारमाश्रित्यलंकायारामस्तिष्ठतिसायुधः ॥ ११ ॥ गरुडव्यूहमास्थायसर्वतोहरिभिर्वृतः ॥ मांविसृज्यमहातेजालंकामेवातिवर्तते ॥ १२ ॥ पुरप्राकारमायातिंक्षिप्रमेकतरंकुरु ॥ सीतांवापिप्रयच्छाशुयुद्धंवापिप्रदीयताम् ॥ १३ ॥

अत्यन्त मार पड़नेंके कारण हमारा शरीर लोहू लुहान होरहाथा, व इन्द्रियें विचलित होंनेके कारण हम विह्वल होरहेथे ॥ ९ ॥ जब कि वानरगण हमारे प्राण लेनेंको तैयार हुए उस समय हम सबनें हाथ जोड़कर रामचंद्रजीसे प्राणोंकी भीख मांगी,तब उन्होंने दया करकै हमें छुड़ाय दिया और कहा॥ १० ॥"हे दूतगण! तुम राक्षस राजके निकट पहुंचकर उस्से कहना कि रामचंद्र पर्वत और शिलाओंके द्वारा समुद्रमें सेतु बांधकर लंकाके द्वारपर शस्त्र सहित टिके हुएहैं ॥ ११ ॥ वह गरुड़ व्यूह बनाये और वानरोंसे वेष्टित होकर युद्धकी राह परख रहेहैं; उन्होंनें हमको तौ छोड़ दिया, परन्तु लंकाको वह घेरेही पड़ेहैं ॥ १२ ॥ अब या तौ उन रामचंद्रके साथ युद्ध कीजिये, अथवा उन्हें सीता लौटा दीजिये, कारण

की नहीं देखी जाती यह वानरोंका पितामह सन्नादन नामक यूथपति है, कदाचित् इसका नाम तौ आपने सुनाही होगा ॥ १८ ॥ इसने बुद्धिमान इन्द्रजीसे संग्राम करके जय प्राप्तिकी थी,यह वही सन्नादन नाम यूथपोंका भी यूथपहै ॥१९॥ और यह जो वानर युद्धके समय इन्द्रके समान पराक्रमी दिखाई देताहै यह गन्धर्वकी कन्यामें अग्निसे उत्पन्न हुआहै ॥२०॥ जब कि देवासुर संग्राम हुआ तब यह वानर देवता लोगोंकी ओरसे लड़नको खड़ा हुआथा, और जहांपर कुबेरजीकी राजधानी अलकापुरीहै वही स्थान इसका विहार स्थानहै ॥ २१ ॥ तुम्हारे भ्राता कुबेरजी जिस प्रकार बहु किन्नरसेवित पर्वतोंपर विहार किया करतेहैं; यह वानर उनके विहार करनेमें बड़ा सुख देताहै ॥ २२ ॥ और वनमें श्रेष्ठ बलवान

येनयुद्धंतदादत्तंरणेशक्रस्यधीमता ॥ पराजयश्चनप्राप्तःसोयंयूथपयूथपः ॥ १९ ॥ यस्यविक्रममाणस्यशक्रस्येवपराक्रमः ॥ एषगंधर्वकन्यायामुत्पन्नःकृष्णवर्त्मना ॥ २० ॥ तदादेवासुरेयुद्धेसाह्यार्थंत्रिदिवौकसाम् ॥ यत्रवैश्रवणोराजाजंबूमुपनिषेवते ॥ २१ ॥ योराजापर्वतेन्द्राणांबहुकिन्नरसेविनाम् ॥ विहारसुखदोनित्यंभ्रातुस्तेराक्षसाधिप ॥२२॥ तत्रैषरमतेश्रीमान्बलवान्वानरोत्तमः ॥ युद्धेष्वकत्थनोनित्यंक्रथनोनामयूथपः ॥ २३ ॥ वृतःकोटिसहस्रेणहरिणांसमवस्थितः ॥ एषैवाशंसतेलंकांस्वेनानीकेनमर्दितुम् ॥ २४ ॥ योगंगामनुपर्यैतित्रासयन्गजयूथपान् ॥ हस्तिनांवानराणांचपूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ २५ ॥ एषयूथपतिर्नेतागर्जन्गिरिगुहाशयः ॥ गजान्रोधयतेवन्यानारुजंश्चमहीरुहान् ॥२६॥

वहींपर। वैसेही विहार किया करताहै, युद्ध करनेमें इसकी समान और कोई वीर दिखाई नहीं देता, इस यूथपति वानरका नाम क्रथन है ॥ २३ ॥ इसके आधीनमें करोड हजार वानरोंकी सैना रहतीहै; यह वीरभी केवल अपनी सेनासेही लंका नगरीको मर्दन करनेकी इच्छा करताहै ॥ २४ ॥ जो वानर राजरूपी शम्बसादन असुरके साथ वानर श्रेष्ठ केशरीका संग्राम हुआ जान, और वही वैर याद करके गंगाके समीप टिके हुए गजयूथोंको त्रासित किया करताहै इस सैनापतिको आप देखिये ॥ २५ ॥ हे महाराज! यहां यूथपति जब तक पर्वतकी गुहामें शयन करके गर्जन किया करताहै, उस समय गजयूथप गण दूरसे इसके उस भयंकर शब्दको सुनकर खडे हो जातेहैं; और पेड़भी टूट जाते हैं ॥ २६ ॥

के दूसरे पुत्र हनुमान वानरनें अकेलेही सब राक्षसोंका अनादर कर डालाथा ॥२१॥ वीर्यवान सुषेण जो कि धर्मात्मा धर्मका पुत्रहै, वहभी यहां आयाहै, और सरल स्वभाव युक्त चंद्रमाका पुत्र दधिमुख वानरभी इस सैनामें हैं ॥ २२ ॥ यहांपर सुमुख, दुर्मुख और वेगदर्शी नामक यह तीन वानरभी आयेहैं उनको देखनेंसेही ज्ञात होताहै कि मानो विधाताने वानर रूपसें साक्षात् मृत्युकोही रचडालाहै ॥ २३ ॥ अग्निका पुत्र नील स्वयं इस सैनाका सेनापति होकर आयाहै। और पवनपुत्र विख्यात हनुमानभी इस सैनामें टिका हुआहै ॥ २४ ॥ इन्द्रका नाती वालिका पुत्र अंगदभी अश्विनी कुमारके पुत्र महाबली मैन्द व द्विविदभी इस वाहिनीमें हैं ॥ २५ ॥ और कालान्तक यम सदृश वैवस्वतादि यमके पांच पु

सुषेणश्चात्रधर्मात्मापुत्रोधर्मस्यवीर्यवान् ॥ सौम्यःसोमात्मजश्चात्रराजन्दधिमुखःकपिः ॥ २२ ॥ सुमुखोदुर्मुख श्चात्रवेगदर्शीचवानरः ॥ मृत्युर्वानररूपेणनूनंसृष्टःस्वयंभुवा ॥ २३ ॥ पुत्रोहुतवहस्यात्रनीलःसेनापतिःस्वय म् ॥ अनिलस्यतुपुत्रोत्रहनूमानितिविश्रुतः ॥ २४ ॥ नप्ताशक्रस्यदुर्धर्षोबलवानंगदोयुवा ॥ मैंदश्चद्विविदश्चो भौबलिनावश्विसंभवौ ॥ २५ ॥ पुत्रावैवस्वतस्याथपंचकालांतकोपमाः ॥ गजोगवाक्षोगवयःशरभोगंधमादनः ॥ ॥ २६ ॥ दशवानरकोट्यश्चशूराणांयुद्धकांक्षिणाम् ॥ श्रीमतांदेवपुत्राणांशेषंनाख्यातुमुत्सहे ॥ २७ ॥ पुत्रोदशरथ स्यैषसिंहसंहननोयुवा ॥ दूषणोनिहतोयेनखरश्चत्रिशिरास्तथा ॥ २८ ॥ नास्तिरामस्यसदृशोविक्रमेभुविकश्चन॥ विराधोनिहतोयेनकबंधश्चांतकोपमः ॥ २९ ॥

त्र, गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, और गन्धमादन यह सबही वीर यहांपर टिके हुएहैं ॥ २६ ॥ देवताओंके पुत्र और जो दशकोटि शूर श्रीमान् वानरगण जो युद्धकी कामना करके लंकामें आयेहैं, उनके विषयको हमसे कहकर पूरा नहीं किया जायगा ॥ २७ ॥ जो युवा अवस्थाके हैं, वीरकुलमें प्रथम गिनेंजानेंके योग्य वे दशरथमहाराजके पुत्रहैं, इनकेही हाथसे खर दूषण और त्रिशिराका संहार हुआहै ॥ २८ ॥ अधिक क्या कहैं! उन श्रीरामचंद्रजीकी समान [illegible] ॥ अब या तौ किसीका पराक्रम नहीं देखा जाताहै, उन्होंनें युद्धमें अजीत विराध

अरुण वर्णकेही दृष्टि आते ॥ ३५ ॥ हे महाराज ! जिस रमणीक पर्वतपर सदा महर्षि लोग रहा करतेहैं, और उसको नहीं त्याग करते; और जहां सर्व कामनावाले वृक्ष सर्व फलोंसे युक्त ॥ ३६ ॥ व जिस पर्वत श्रेष्ठपर बडे मोलके मधु आदि मीठे २ पदार्थ उत्पन्न होते, हे राजन् तिसही सुवर्णके पर्वत ॥ ३७ ॥ मुख्यपर वानरोंमें मुख्य केशरी नाम यूथप रहताहै ॥ साठ हजार रमणीक काञ्चन पर्वतोंके मध्यमें॥३८॥ सौवर्णि मेरू नामक जो सबसे बड़ा पर्वतहै, पाप रहित जैसे राक्षसोंमें आपहैं पीले रंगके और बहुत श्वेत व बहुत ताम्रवत अरुणमुख वाले, और मधुकी समान पीले रंगवाले ॥ ३९ ॥ वानर इस पर्वत पर वसतेहैं, इन सबके बडे तीक्ष्ण दंत, और नख आयुधहैं; सिंहकी

यस्यप्रस्थंमहात्मानोनत्यजंतिमहर्षयः ॥ सर्वकामफलावृक्षाःसर्वेफलसमन्विताः ॥ ३६ ॥ मधूनिचमहार्हाणियस्मि न्पर्वतसत्तमे ॥ तत्रैषरमतेराजन्रम्येकांचनपर्वते ॥३७॥ मुख्योवानरमुख्यानांकेसरीनामयूथपः ॥ षष्टिर्गिरिसहस्रा णिरम्याःकांचनपर्वताः ॥३८॥ तेषांमध्येगिरिवरस्त्वमिवानघरक्षसाम् ॥ तत्रैकेकपिलाःश्वेतास्ताम्रास्यामधुपिंगलाः ॥ ३९ ॥निवसंत्यंतिमगिरौतीक्ष्णदंष्ट्रानखायुधाः ॥ सिंहाइवचतुर्दंष्ट्राव्याघ्राइवदुरासदाः ॥४०॥ सर्वेवैश्वानरसमाज्व लदाशीविषोपमाः॥सुदीर्घांचितलांगूलामत्तमातंगसन्निभाः ॥४१॥ महापर्वतसंकाशामहाजीमूतनिःस्वनाः ॥ वृत्तपिंग लनेत्राहिमहाभीमगतिस्वनाः ॥ ४२ ॥ मर्दयंतीवतेसर्वेतस्थुर्लंकासमीक्ष्यते ॥ एषचैषामधिपतिर्मध्येतिष्ठतिवीर्य वान् ॥ ४३ ॥ जयार्थीनित्यमादित्यमुपतिष्ठतिवीर्यवान् ॥ नाम्नापृथिव्यांविख्यातोराजन्शतबलीतियः ॥ ४४ ॥

समान चौदन्ते, व्याघ्रकी समान बडे स्वभाव युक्त ॥ ४० ॥ सब अग्निकी समान देदीप्यमान तीक्ष्ण विषवाले विषधर सर्पोंकी समान बडी भारी और चौडी पूछवाले ॥ ४१ ॥ मतवाले हाथी महापर्वत और महामेघकी समान पिंगल वर्ण गोल नेत्रयुक्त महाभयं कर गतिवाले और भयंकर शब्द करनेवाले जो वानर वास करतेहैं ॥ ४२ ॥ देखिये; मानो वही सब वानरगण यह लंकाको मर्दन करनेके लिये आय रहेहैं । इनके बीचमें इनका वीर्यवान यूथप टिका हुआहै ॥ ४३ ॥ और वह नित्य राज्यकी कामना करके सूर्य भगवानकी पूजा किया

रावणनें मंत्रियोंसे कहला भेजा कि हे मंत्रिगण! अब हमारे मंत्रणा करनेंका समय आय पहुंचाहै; इसलिये शीघ्रही सावधान होकर तुम यहांपर आओ॥३॥राक्षसराज रावणकी आज्ञा जानकर मंत्रिलोग शीघ्रही वहांपर आय पहुंचे तव लंकापति रावण उन राक्षस मंत्रिलोगोंके सहित मंत्रणा करनें लगा ॥ ४ ॥ और जब मंत्रणाका कार्य पूरा होगया, तब मंत्रिलोगोंको विदा देकर दुर्द्धर्ष रावण अपने स्थानको चलागया ॥ ५ ॥ तिसके पीछे राक्षसनाथ मायावी रावण महावलवान महादुष्ट विद्युज्जिह्वनाम राक्षसको साथ ले जहां रामप्यारी श्रीजानकीजी थीं वहांपर जानेंकी इच्छा

मंत्रिणःशीघ्रमायांतुसर्वेवैसुसमाहिताः ॥ अयंनोमंत्रकालोहिसंप्राप्तइतिराक्षसाः ॥३॥ तस्यतच्छासनंश्रुत्वामंत्रिणोऽभ्यागमन्द्रुतम् ॥ ततःसमंत्रयामासराक्षसैःसचिवैःसह ॥ ४ ॥ मंत्रयित्वातुदुर्धर्षःक्षमंयत्तदनंतरम् ॥ विसर्जयित्वासचिवान्प्रविवेशस्वमालयम् ॥ ५॥ ततोराक्षसमादायविद्युज्जिह्वंमहाबलम् ॥ मायाविनंमहामायंप्राविशद्यत्रमैथिली ॥ ६ ॥ विद्युज्जिह्वंचमायाज्ञमब्रवीद्राक्षसाधिपः ॥ मोहयिष्यावहेसीतांमाययाजनकात्मजाम् ॥ ७ ॥ शिरोमायामयंगृह्यराघवस्यनिशाचर ॥ मांत्वंसमुपतिष्ठस्वमहच्चसशरंधनुः ॥ ८ ॥ एवमुक्तस्तथेत्याहविद्युज्जिह्वोनिशाचरः ॥ दर्शयामासतांमायांसुप्रयुक्तांसरावणे ॥ ९ ॥ तस्यतुष्टोऽभवद्राजाप्रददौचविभूषणम् ॥ अशोकवनिकायांचसीतादर्शनलालसः ॥ १० ॥

करता हुआ ॥ ६ ॥ जानेंके समय रावण भली भांति मायाके जाननेंवाले विद्युज्जिह्व नामक राक्षससे बोला कि हे निशाचर! आओ हम दोनों जनें मायाके बलसे जनककुमारी सीताजीको मोहित करैं ॥ ७ ॥ इसलिये तुम मायाविरचित श्रीरामचंद्रजीका मस्तक और एक बाण सहित धनुष ग्रहण करके सीताके समीप हमारे पास आना ॥ ८ ॥ तब [illegible] विद्युज्जिह्व राक्षसनें रावणके वचनोंको मान माया विस्तार करके उसको रामचंद्रका मायामय कटा हुआ शिर दिखाया ॥ ९ ॥ [illegible] और [illegible] । रावण बहुत सन्तुष्ट हुआ और पारितोषिक स्वरूप [illegible]

इन समरत ... तब ... खरोड़ हजार, शंकु सहस्र, और शत वृन्द ॥ ४ ॥ और ... या जाय तौ
न्धाके रहने वाले सुग्रीवके मंत्री यह वानरगण देवता और गन्धर्वके वार्यसे वानरोंकी जातिमें उत्पन्न हुएहैं; और यह इच्छानुसार ... समुद्र
करनें वालेहैं ॥ ५ ॥ देवताओंकी समान दोनों एकहीसे रूपवाले मैन्द और द्विविद नामक जो वानर आप देखतेहैं इसकी समान पुरुष लंघन
वाला और कोई नहींहै ॥ ६ ॥ कारणकि ब्रह्माजीकी आज्ञासे इन दोनों वानरोंने अमृतपान कियाहै; इस समय यह दोनोंभी अपने प्रतापसे
लंकाके उखाड़नेंका यत्न कर रहेहैं ॥७॥ मदान्ध हाथीकी समान जिस वानरको तुम खड़े देखतेहो, इस वीरने क्रोधित होकर बल पूर्वक समुद्र

एषांकोटिसहस्राणिनवपंचचसप्तच ॥ तथाशंकुसहस्राणितथावृंदशतानिच ॥ ४ ॥ एतेसुग्रीवसचिवाःकिष्किंधानि
लयाःसदा ॥ हरयोदेवगंधर्वैरुत्पन्नाःकामरूपिणः ॥ ५ ॥ यौतौपश्यसितिष्ठंतौसमानौदेवरूपिणौ ॥ मैंदश्चद्विविद
श्चैवताभ्यांनास्तिसमोयुधि ॥६॥ ब्रह्मणासमनुज्ञाताअमृतप्राशिनावुभौ ॥ आशंसेतेयथालंकामेतौमर्दितुमोजसा ॥७॥
यंतुपश्यसितिष्ठंतंप्रभिन्नमिवकुंजरम् ॥ योबलात्क्षोभयेत्क्रुद्धःसमुद्रमपिवानरः ॥ ८ ॥ एषोऽभिगंतालंकायांवैदेह्या
स्तवचप्रभो ॥ एनंपश्यपुराहष्टंवानरंपुनरागतम् ॥ ९ ॥ ज्येष्ठःकेसरिणःपुत्रोवातात्मजइतिश्रुतः ॥ हनूमानितिविख्या
तोलंघितोयेनसागरः ॥ १० ॥ कामरूपोहरिश्रेष्ठोबलरूपसमन्वितः ॥ अनिवार्यगतिश्चैवयथासततगःप्रभुः ॥ ११ ॥

कोभी खलबलाय डालताहै ॥ ८ ॥ हेराजन् जो लंकामें प्रवेश करके जानकीजीका और आपका पता लगा गयाथा, आपनें इसको पहलेभी
देखाहै, परन्तु देखिये ! अब यह फिर आयाहै ॥ ९ ॥ यह केशरीका बड़ा बेटा पवनकुमारके नामसे विख्यातहै, इसका दूसरा नाम हनुमानहै;
यही समुद्रको लांघकर जानकीके देखनेको यहां आयाथा ॥ १० ॥ हे प्रभो! यह इच्छानुसार रूप धारण करनेंवाला वानरोंमें श्रेष्ठ और रूप
बल सम्पन्नहै, जिस प्रकार पवनकी गति कोई नहीं रोक सकता, वैसेही उनकी गति नहीं रुकसकती इस कारण जहां इच्छाहो वहां पर

और जिस समय सूर्य अस्ताचलको चले, उसी समय उन्होंने

इति श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणे भाषाटीकासमेते आरण्यकाण्डं संपूर्णम्

...या जाय तो

अंतरयह, और ... [illegible] हे महाराज! धर्म जिस्से कभी चलायमान नहीं होता, एक समुद्र

धर्मका उल्लंघन नहीं करते, वेदविदगणोंके अग्रणीय जो वीर ब्रह्मअस्त्र और समस्त वेद जाने हुएहैं ॥ १९ ॥ जो अपने बाणोंको छो... [illegible]

काश मंडलको भिन्न और पृथ्वीको विदारण कर सकतेहैं; जिनका पराक्रम इन्द्रकी समान, और क्रोध मृत्युकी समान भयानकहै ॥ २० ॥

और जनस्थानसे आप इनकीही भार्या सीताको हरण करके ले आयेहैं, यह वही रामचंद्रजी आपसे युद्ध करनेंके लिये यहां पर आयेहैं ॥ २१ ॥

श्रीरामचंद्रजीकी दाहिनी और यह जो विशुद्ध कांचन वर्ण चौडी छाती वाले अरुणनयन आकुञ्चित, नील, केश दाम, भूषित (काले घुंघरारे

यस्मिन्नचलतेधर्मोयोधर्मंनातिवर्तते॥योब्राह्ममस्त्रंवेदांश्चवेदवेदविदांवरः ॥१९॥ योभिंद्याद्गगनंबाणैर्मेदिनींवापिदारये
त् ॥ यस्यमृत्योरिवक्रोधःशक्रस्येवपराक्रमः॥२०॥ यस्यभार्याजनस्थानात्सीताचापिहृतात्वया॥सएषरामस्त्वांराज
न्योद्धुंसमभिवर्तते ॥ २१ ॥ यस्यैषदक्षिणेपार्श्वेशुद्धजांबूनदप्रभः ॥ विशालवक्षास्ताम्राक्षोनीलकुंचितमूर्धजः ॥ २२ ॥
एषोहिलक्ष्मणोनामभ्रातुःप्रियहितेरतः ॥ नयेयुद्धेचकुशलःसर्वशस्त्रभृतांवरः॥ २३ ॥ अमर्षीदुर्जयोजेताविक्रांतश्चज
यीबली ॥ रामस्यदक्षिणोबाहुर्नित्यंप्राणोबहिश्चरः ॥ २४ ॥ नह्येषराघवस्यार्थेजीवितंपरिरक्षति ॥ एषैवाशंसतेयुद्धे
निहंतुंसर्वराक्षसान् ॥ २५ ॥ यस्यसव्यमसौपक्षंरामस्याश्रित्यतिष्ठति ॥ रक्षोगणपरिक्षिप्तोराजाह्येषविभीषणः॥२६॥

वालोंसे शोभायमान) वीरको जो आप देखते हैं ॥ २२ ॥ यही श्रीरामचंद्रजीका हित करनेंमें रत उनके छोटे भाई लक्ष्मणनामकहैं । नीति शास्त्र और युद्धविद्या इन दोनों बातोंमें यह बडे चतुरहैं शस्त्र धारियोंमें श्रेष्ठहैं ॥ २३ ॥ इनको रणमें कोई नहीं जीत सकता, श्रीरामचंद्रजीका अपकार करनेंवालेके ऊपर यह क्षमा नहीं करते; सबको जीतनेंवाले, विक्रमवान, महाबली, श्रीरामचंद्रजीके मानों दहिनें हाथ व बाहर के प्राण समानहैं ॥ २४ ॥ यह लक्ष्मण अपने भ्राता श्रीरामचंद्रजीके हितकारी कार्यमें ऐसे अनुरागीहैं, कि इनके लिये अपने प्राणोंका भी त्यागनेंका मोह भी नही करते हे महाराज! यह वीरभी इकलेही सर्व राक्षसोंका संहार करनेंके लिये कहतेहैं ॥ २५ ॥ चर आपने मंत्री राक्ष

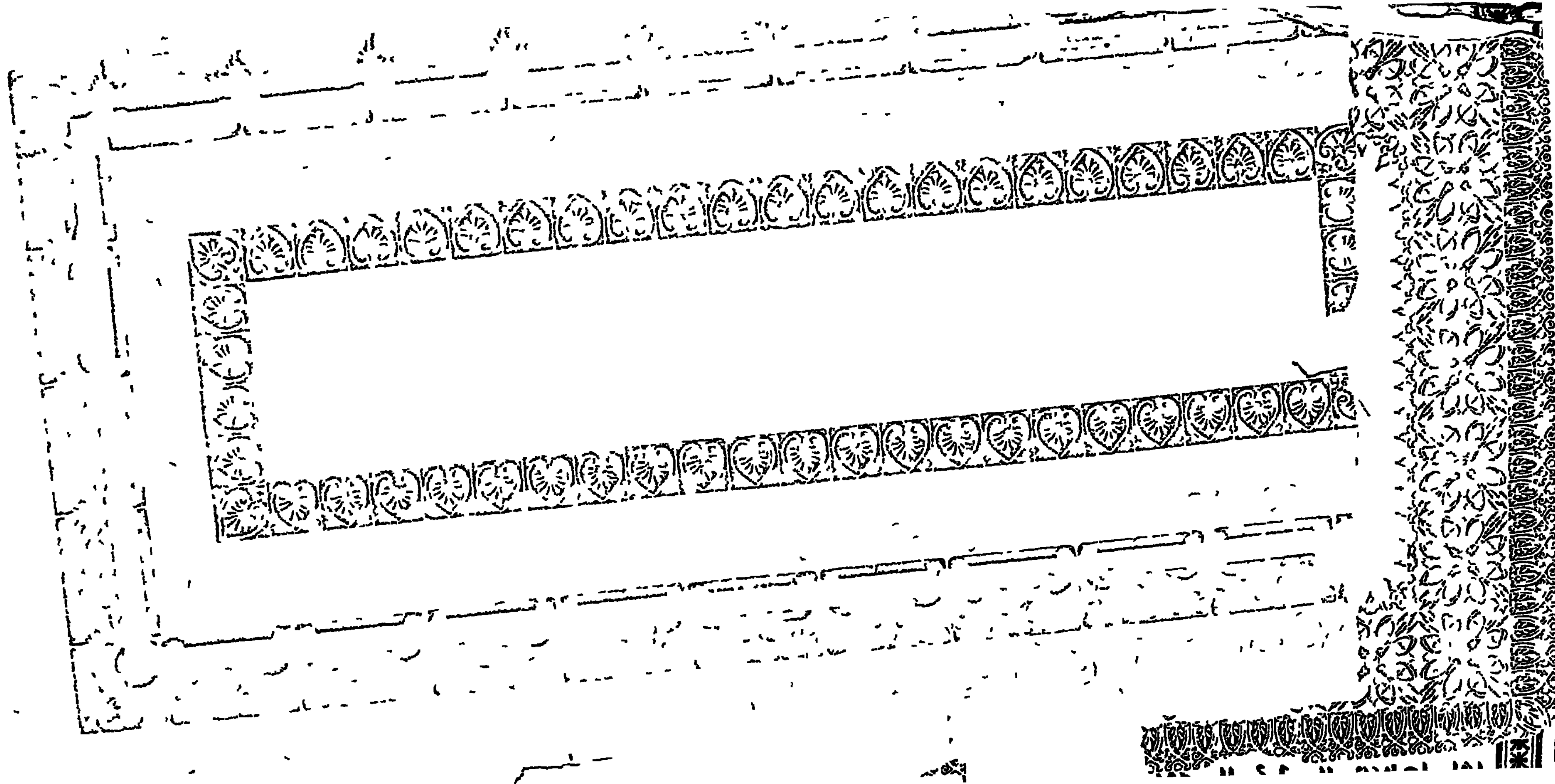

नेंसे एक महावृन्द, और हजार महावृन्दको सौसे गुणा करनेंसे पद्म कहलाताहै ॥ ३५ ॥ जो हजार पद्मको शतसे गुणा किया जाय तौ एक महापद्म होताहै, हजार महापद्मको शतसे गुणाकरनेंसे एक खर्व होताहै ॥ ३६ ॥ सहस्र खर्वको शतद्वारा गुणन करनेंसे एक समुद्र होताहै, और हजार समुद्रको शतसे गुणा करनेंसे एक महोघ कहलाता है ॥ ३७ ॥ इस गणितसे सहस्र महाकरोड सौशंकु हजार महाशंकु सहस्र कोटि, शत २ शंकु व हजार महापद्म, शत वृन्द, ॥ ३८ ॥ हजार महावृन्द, और शत वृन्द व हजार महापद्म, और शत खर्व ॥ ३९ ॥ और शत समुद्र, शत महोघ, करोड महोघ, और करोड समुद्र ॥ ४० ॥ इतनी तो सैना विभीषण वीरके साथ लिये, और अपनें मंत्रियोंको साथ

शतंपद्मसहस्राणांमहापद्ममितिस्मृतम् ॥ महापद्मसहस्राणांशतंखर्वमिहोच्यते ॥ ३६ ॥ शतंखर्वसहस्राणांसमुद्रमभिधीयते ॥ शतंसमुद्रसाहस्रंमहौघमितिविश्रुतम् ॥ ३७ ॥ एवंकोटिसहस्रेणशंकूनांचशतेनच ॥ महाशंकुसहस्रेणतथावृंदशतेनच ॥ ३८ ॥ महावृंदसहस्रेणतथापद्मशतेनच ॥ महापद्मसहस्रेणतथाखर्वशतेनच ॥ ३९ ॥ समुद्रेणचतेनैवमहौघेनतथैवच ॥ एषकोटीमहौघेनसमुद्रसदृशेनच ॥ ४० ॥ विभीषणेनवीरेणसचिवैःपरिवारितः ॥ सुग्रीवोवानरेंद्रस्त्वांयुद्धार्थमनुवर्तते ॥ महाबलवृतोनित्यंमहाबलपराक्रमः ॥ ४१ ॥ इमांमहाराजसमीक्ष्यवाहिनीमुपस्थितांप्रज्वलितग्रहोपमाम् ॥ ततःप्रयत्नःपरमोविधीयतांयथाजयःस्यान्नपरैःपराभवः ॥ ४२ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेअष्टाविंशःसर्गः ॥ २८ ॥ ॥ ७ ॥ शुकेनतुसमादिष्टान्दृष्ट्वासहरियूथपान् ॥ लक्ष्मणंचमहावीर्यंभुजंरामस्यदक्षिणम् ॥ १ ॥

लिये वानरेन्द्र सुग्रीवजी आपको युद्ध करनेंके लियें पुकारते हैं, यह बड़ी शक्तियुक्त महाबलवान् और महा पराक्रमी हैं ॥ ४१ ॥ हेमहाराज! प्रज्वलित ग्रहकी समान इस आई हुई वानरोंकी सैनाको देखकर जिस्से उसका उपायहो, और शत्रुलोग कहीं हमको जीतकर विजयी न होजांय इस बातका आप विशेष यत्न करें ॥ ४२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीयें आदिकाव्ये युद्धकांडे अष्टविंशः सर्गः ॥ २८ ॥ तिसके पीछे दशानन शुकके मुखसे सैना गणोंके भुजवीर्यका समाचार पाय और श्रीरामचंद्रजीके दक्षिण बाहुस्वरूप महाबलवान

किष्किंधाकांड ५

मूर्ख मंत्रियोंसेयुक्त होकरभी इस राज्यका भार बराबर उठाये हुएहैं ॥ १० ॥ जो कुछभीहो हमको कठोर वचन कहते हुए तुमको प्राणोंकी शंका नहीं हुई । कारणकि शुभ और अशुभ हमारी आज्ञाको पाय जीभ सबही कुछ कह जातीहै फिर ऐसे राजाको अशुभ वचन कहनें क्या उचितहैं? ॥ ११ ॥ वनमें आग लग जानेंपर चाहें वृक्ष किसीप्रकारसे कुछ जीवित भी रह जांय परन्तु राजाका द्रोह करनेवाले (वागी) अपराधी लोग किसीप्रकारसे जीवित नहीं रह सकते ॥ १२ ॥ यदि तुम्हारे पहले किये हुए उपकारोंको स्मरण करके हमारा क्रोध कुछेक कोमल न होजाता तो इसही घडी शत्रुके ओरकी प्रशंसा करनेंवाले तुम दोनों पापचारियोंको हम मारडालते ॥ १३ ॥ तुम लोग जैसे

किंनुमृत्योर्भयंनास्तिमांवक्तुंपरुषंवचः ॥ यस्यमेशासतोजिह्वाप्रयच्छतिशुभाशुभम् ॥ ११॥ अप्येवदहनंस्पृष्ट्वावनेति
ष्ठंतिपादपाः ॥ राजदंडपरामृष्टास्तिष्ठंतेनापराधिनः ॥१२॥ हन्यामहंत्विमौपापौशत्रुपक्षप्रशंसिनौ ॥ यदिपूर्वोपकारैर्मे
क्रोधोनमृदुतांव्रजेत् ॥ १३ ॥ अपध्वंसतनश्यध्वंसन्निकर्षादितोमम ॥ नहिवांहंतुमिच्छामिस्मराम्युपकृतानिवाम् ॥
हतावेवकृतघ्नौद्वौमयिस्नेहपराङ्मुखौ ॥१४॥ एवमुक्तातुसव्रीडौतौदृष्ट्वाशुकसारणौ॥ रावणंजयशब्देनप्रतिनंद्याभिनिः
सृतौ ॥१५॥ अब्रवीच्चदशग्रीवःसमीपस्थंमहोदरम् ॥ उपस्थापयमेशीघ्रंचारान्नितिनिशाचरः ॥ महोदरस्तथोक्तस्तुशी
घ्रमाज्ञापयच्चरान् ॥१६॥ ततश्चाराःसंत्वरिताःप्राप्ताःपार्थिवशासनात् ॥ उपस्थिताःप्रांजलयोवर्धयित्वाजयाशिषः॥१७॥

कृतघ्नहो और हमारे प्रति स्नेहहीन होगये हो, तिस्से तुम निश्चय ही मार डालनेंके योग्य हो परन्तु तुम्हारे पहले किये हुए उपकारोंका स्मरण करके हमने तुम्हें नहीं मारा अच्छा जो हुआ सो हुआ अब तुम दोनों हमारे निकटसे दूरहो जाओ और फिर कभी हमारी सभामें प्रवेश न करना ॥ १४ ॥ जब रावणनें शुक सारणसे ऐसा कहा, तब वह दोनों जन जय शब्द द्वारा रावणको प्रणाम करके लज्जित भावसे सभासे उठकर बाहर निकल गये ॥ १५ ॥ इनदोनोंके चले जानें पर रावणनें "दूत लोगोंको शीघ्र हमारे निकट ले आओ" समीप बैठे हुए महोदरको यह आज्ञादी । महोद रभी दूत लोगोंको शीघ्रही रावणके पास जानेंका आदेश देता हुआ ॥ १६॥ तब दूतगण राजाकी आज्ञा सुन शीघ्र वहां आय "जयहो" ऐसा आशीर्वाद

पुष्प भारसे शोभित सब तरु शिखर पुष्पिताग्र लता वेलोंसे घिरनेके हरित काला वृक्षोंसे ढेरके ढेर फूलोंके गिरनेंसे अधिक तर शोभा पा रहा है॥८॥ पुष्प भारसे शोभित सब तरु शिखर पुष्पिताग्र लता वेलोंसे घिरनेके कारण परम शोभा धारण कर रहे हैं ॥ ९ ॥ हे सुमित्रासुवन! इस समय इस स्थानमें पंच बाणका जगानेंवाला वसंत काल वर्त्तमान है, सुखदायक समीर सन सन करके मन्द २ चल रही है, मनोहर मधु मास (चैत्र) मधुर सुगंधिके सहित आया हुआ है, वृक्षोंके शिखर फूल फलसे शोभित होरहे हैं, इसकारणसे यह स्थान कैसा मनोहर हो गया है ॥ १० ॥लक्ष्मण! देखो जिस प्रकारसे जलधर गण जलकी वर्षा करते हैं, वैसेही मनोहर पत्थरोंके ऊपर उगे हुये वृक्ष पवनके वेगसे कंपायमान पुष्प वर्षण कारी बनोंका कैसा अपूर्व मनोहर रूप प्रकाशित हो रहाहै ॥ ११ ॥

पुष्पभारसमृद्धानिशिखराणिसमंततः ॥ लताभिःपुष्पिताग्राभिरुपगूढानिसर्वतः ॥ ९ ॥ सुखानिलोऽयंसौमित्रेकालः प्रचुरमन्मथः ॥ गंधवान्सुरभिर्मासोजातपुष्पफलद्रुमः ॥ १० ॥ पश्यरूपाणिसौमित्रेवनानांपुष्पशालिनाम् ॥सृजतां पुष्पवर्षाणिवर्षंतोयमुचामिव ॥ ११ ॥ प्रस्तरेषुचरम्येषुविविधाःकाननद्रुमाः ॥ वायुवेगप्रचलिताःपुष्पैरवकिरंति गाम् ॥ १२ ॥ पतितैःपतमानैश्चपादपस्थैश्चमारुतः ॥ कुसुमैःपश्यसौमित्रेक्रीडतीवसमंततः ॥ १३ ॥ विक्षिपन्विविधाःशाखानगानांकुसुमोत्कटाः ॥ मारुतश्चलितःस्थानैःषट्पदैरनुगीयते ॥ १४ ॥ मत्तकोकिलसन्नादैर्नर्तयन्निव पादपान् ॥ शैलकंदरनिष्क्रांतःप्रगीतइवचानिलः ॥ १५ ॥

हे भइया! देखो वृक्षोके ऊपरसे बहुतसे फूल गिर पडे हैं और बहुत फल हो पृथ्वीके ऊपर फूलोंके ढेरके ढेर छोड उसको ढके लेते हैं ॥ १२ ॥ और पवन बहु कुसुम शाली वृक्षोंकी चारोंओर गिर रहे हैं इससे ऐसा जान पडता है मानों पवन उन फूलोंकी राशिसे विहार कर रहा है ॥ १३ ॥ और पवन बहु कुसुम शाली वृक्षोंकी शाखाओंको इधर उधर कंपायमान कर रहा है, इसलिये मधुपानमत्त भ्रमरगण अपनें २ स्थानसे खसक कर पवनका पीछा करते हैं ॥ १४ ॥ और पवन, मतवाले कोकिल कुलके कलरव रूप मृदंगकी ध्वनिसे नृत्य सीखकर पर्वतकी कंदराओंसे निकलनेंके समय मानों गान कर रहा है॥१५॥

दूतोंके सरदार शार्दूलको बंधवाया ॥ २६ ॥ परन्तु वानर लोगोंसे मारडाले जाते हुए देखकर उस दूतको श्रीरामचंद्रजीनें छुटाय दिया, व इसी प्रकार और दूसरे राक्षस दूतोंकोभी सौम्य स्वभाव श्रीरामचंद्रजीनें छुटायदिया ॥ २७ ॥ इस प्रकारसे वह राक्षसदूत विपुल विक्रमकारी वानरोंके हाथसे भलीभांति पीट कुटकर. लंबी २ श्वास लेते हुए चेतना रहित की समान फिर लंका पुरीमें आये ॥ २८ ॥ तिसके पीछे महा बलवान नित्य बाहर घूमनेंवाले निशाचर वह दूतगण रावणके समीप पहुंच कर, सुवेल शैलके निकट टिकी हुई श्रीरामचंद्रजीकी सेनाके समाचार कहनें लगे ॥ २९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे एकोनत्रिंशःसर्गः ॥ २९ ॥ तिसके पीछे दूत लोगोंनें सुवेल पर्वतके

मोक्षितःसोपिरामेणवध्यमानःप्लवंगमैः ॥ अनृशंसेनरामेणमोक्षिताराक्षसाःपरे ॥ २७ ॥ वानरैरर्दितास्तेतुविक्रांतैर्लघुविक्रमैः॥पुनर्लंकामनुप्राप्ताःश्वसंतोनष्टचेतसः॥२८॥ततोदशग्रीवमुपास्थितास्तेचाराबहिर्नित्यचरानिशाचराः ॥ गिरेःसुवेलस्यसमीपवासिनंन्यवेदयन्रामबलंमहाबलाः॥२९॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०युद्धकाण्डेएकोनत्रिंशःसर्गः ॥२९॥ ततस्तमक्षोभ्यबलंलंकाधिपतयेचराः ॥ सुवेलेराघवंशैलेनिविष्टंप्रत्यवेदयन् ॥ १ ॥ चाराणांरावणःश्रुत्वाप्राप्तंरामंमहाबलम् ॥ जातोद्वेगोभवत्किंचिच्छार्दूलंवाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥ अयथावच्चतेवर्णोदीनश्चासिनिशाचर ॥ नासिकच्चिदमित्राणांक्रुद्धानांवशमागतः ॥ ३ ॥ इतितेनानुशिष्टस्तुवाचंमंदमुदीरयन् ॥ तदाराक्षसशार्दूलंशार्दूलोभयविक्लवः ॥ ॥ ४ ॥ नतेचारयितुंशक्याराजन्वानरपुंगवाः ॥ विक्रांताबलवंतश्चराघवेणचरक्षिताः ॥ ५ ॥

निकट पहुंचकर श्रीरामचंद्रजीकी अचल सैनाका जो समाचार पायाथा वह समस्त रावणसे निवेदन किया ॥ १ ॥ राक्षसराज रावण दूतोंके मुखसे श्रीरामचंद्रजीकी सैनाका लंकामें आना सुन भीतरेसे बहुतही उदास हुआ और उसी समय शार्दूलनाम दूतसे बोला ॥ २ ॥ अरे निशाचर ! तू विवर्ण और दीनकी समान हो रहाहै, इसका कारण क्या ! शत्रुओंनें बलसहित क्रोधित होकर कहीं तुझे अपने वशमें तो नहीं कर लियाथा ? जो कुछभी हुआ वह समस्तही हमसे ठीक २ वर्णन कर ॥ ३ ॥ भयके मारे व्याकुल शार्दूल इस प्रकारसे पूछे जानेंपर राक्षस शार्दूल रावणको मन्द २ वचनोंसे उत्तर देता हुआ ॥ ४ ॥ हे महाराज ! रामचंद्रसे रक्षित उन अमित विक्रमकारी

कुक्कुट हर्षित होकर कल निनाद करके हमको शोचनीय और शोकातुर कर देताहै ॥ २४ ॥ पहले जब हम प्रियाके सहित एक आश्रममें रहतेथे, उस समय यह कोकिल कलनादसे हमको पुकार कर अत्यानंद देताथा ॥ २५ ॥ यह देखो! चित्र विचित्र अनेक प्रकारके पक्षी विविध भांतिके शब्दोंसे ध्वनि करते हुये चारों ओर वृक्ष लता और पौधोंपर उड २ कर बैठते हैं ॥ २६ ॥ भइया यह देखो! अनेक जातिके पक्षी और भ्रमर अपने २ जोडेके साथ मिल और हर्षित होकर झुंडके झुंड घूम रहेहैं॥२७॥इस पम्पाके किनारे पर पक्षियोंके झुंडके झुंड जलमुरगी व कोकिला की बोलीके समान बोल आनंदित होते हैं ॥२८॥ यह सब वृक्ष भ्रमरगणोंके गुंजार करनेंसे मानों बोल रहेहैं व इसी कारणसे हमको कामोदीत

श्रुत्वैतस्यपुराशब्दमाश्रमस्थाममप्रिया ॥ मामाहूयप्रमुदितापरमंप्रत्यनंदत ॥२५॥एवंविचित्राःपतगानानारावविराविणः ॥ वृक्षगुल्मलताःपश्यसंपतंतिसमंततः ॥ २६ ॥ विमिश्राविहगाःपुंभिरात्मव्यूहाभिनंदिताः ॥ भृंगराजप्रमुदिताःसौमित्रेमधुरस्वराः ॥ २७ ॥ अस्याःकूलेप्रमुदिताःसंघशःशकुनास्त्विह ॥ दात्यूहरतिविक्रंदैःपुंस्कोकिलरुतैरपि ॥ २८ ॥ स्वनंतिपादपाश्चेमेममानंगप्रदीपकाः ॥ अशोकस्तबकांगारःषट्पदस्वननिःस्वनः ॥ २९ ॥ मांहि पल्लवताम्रार्चिर्वसंताग्निःप्रधक्ष्यति ॥ नहितांसूक्ष्मपक्ष्माक्षींसुकेशींमृदुभाषिणीम् ॥ ३० ॥ अपश्यतोमेसौमित्रे जीवितेऽस्तिप्रयोजनम् ॥ अयंहिरुचिरस्तस्याःकालोरुचिरकाननः ॥ ३१ ॥ कोकिलाकुलसीमांतोदयितायाममानघ ॥ मन्मथायाससंभूतोवसंतगुणवर्धितः ॥ ३२ ॥ अयंमांधक्ष्यतिक्षिप्रंशोकाग्निर्नचिरादिव ॥ अपश्यतस्तांवनितांपश्यतोरुचिरान्द्रुमान् ॥ ३३ ॥

कराते हैं अशोकके पत्ते अंगारोंकी समान, भ्रमर गुंजार बडे शब्दकी समान ॥ २९ ॥ नये २ पत्ते अरुण रंगकी ज्वालाके समान हो वसंत ऋतु अग्निवन मानों हमको भस्म करेगा । अब सूक्ष्म पलक नेत्रा,सुकेशी,व मीठे वचन बोलनें वाली ॥ ३० ॥ जानकीजीके विना देखे हमारे जीवित रहनेंका क्या प्रयोजन है कारण कि यह सुन्दर वन युक्त वसंत समय ॥ ३१ ॥ कोकिलका शब्द जिसका डांड है वह हमें और जानकीजीको एक संगसाथ रहनेंसे सुखदायी होता फिर कामके प्रयासों समेत वसंतके गणोंसे बढा॥३२॥यह शोकानल अति शीघ्र हमको भस्म कर देगा

कि अब वह कोटकी भीतके पास आयाही चौहत[illegible] इन्द्रके जीवन [illegible]क्षसोंका स्वामी रावण शार्दूलके मुखसे यह वचन सुनकर मनमें एक क्षण भरकी चिन्ता करके यह महत् वचन बोला ॥ १४ ॥ कि जा[illegible] दानव, या गंधर्वगण हमारे विरुद्ध युद्ध करनेंको खड़े होजांय, या त्रिलोकीके रहनेवालेभी हमारे विरुद्ध होजायँ, तथापि हम भीत होकर सीता रामचंद्रको नहीं देंगे ॥ १५ ॥ यह कहकर महातेजस्वी रावण फिर कहनें लगा कि तुम लोग हमारी आज्ञा पाय दूतभावसे सब कहीं घूमेंहो; इसकारण बताओ तो वानरोंमें कौन २ वीरहैं! ॥ १६ ॥ और यहभी बताओकि न सहनें योग्य वह वानर गण किसके पुत्रहैं! किसके पोते हैं! उनके शरीरकी कांति कैसीहै! और उनमें कौन २ शूर विख्यातहैं ॥ १७ ॥

मनसातत्तदाप्रेक्ष्यतच्छ्रुत्वाराक्षसाधिपः ॥ शार्दूलंसुमहद्वाक्यमथोवाचसरावणः ॥ १४ ॥ यदिमांप्रतियुद्ध्येयुर्देवगंधर्वदानवाः ॥ नैवसीतांप्रदास्यामिसर्वलोकभयादपि ॥ १५ ॥ एवमुक्त्वामहातेजारावणःपुनरब्रवीत् ॥ चरिताभवतासेनाकेत्रशूराःप्लवंगमाः ॥ १६ ॥ किंप्रभाःकीदृशाःसौम्यवानरायेदुरासदाः ॥ कस्यपुत्राश्चपौत्राश्चतत्त्वमाख्याहिसुव्रत ॥ १७ ॥ तथात्रप्रतिपत्स्यामिज्ञात्वातेषांबलाबलम् ॥ अवश्यंखलुसंख्यानंकर्तव्यंयुद्धमिच्छता ॥ १८ ॥ अथैवमुक्तःशार्दूलोरावणेनोत्तमश्चरः ॥ इदंवचनमारेभेवक्तुंरावणसन्निधौ ॥१९॥ अथर्क्षरजसःपुत्रोयुधिराजन्सुदुर्जयः ॥ गद्गदस्याथपुत्रोत्रजांबवानितिविश्रुतः ॥ २० ॥ गद्गदस्याथपुत्रोऽन्योगुरुपुत्रःशतक्रतोः ॥ कदनंयस्यपुत्रेणकृतमेकेनरक्षसाम् ॥ २१ ॥

क्योंकि यह सुनकर हम उनका बलाबल जान पीछेसे उनके प्रति विधानका यत्न करेंगे, कारण कि जयकी इच्छा करनेंवाले राजाको प्रथम शत्रु सैनाकी संख्या जान लेनी, और इनका बलाबल जान लेना अवश्य कर्तव्यहै ॥ १८ ॥ दूतश्रेष्ठ शार्दूलसें रावणनें पूछा तब रावणके निकट उसनें यह वचन कहनें आरंभ किये ॥ १९ ॥ हे महाराज! उस सैनामें ऋक्षराजका पुत्र अजीत गदगद उसका पुत्र जाम्बवान्, जोकि समरमें अति अजेयहै ॥ २० ॥ गदगदका दूसरा पुत्र केशरीनाम, वानरभी यहांहै, और इन्द्रजीके गुरु बृहस्पतिजीका पुत्र धूम्रनामभी इस सैनामें है, जिसके शरीर

नकीजीके यह चैत्रमास हमको तो बडाही दुष्कर जान पडताहै ॥ ४१ ॥ क्योंकि इस समयमें पशु पक्षियोंकी योनियेंभी प्रियानुराग प्रगट करतीहैं; देखो लक्ष्मण ! यह मोरनियें कामसे पीडितहो मोरोंके पास दौडी जाती हैं ॥ ४२ ॥ हाय ! यदि वह विशालनेत्रवाली देवी जानकीजी इस समय न हरी जातीं, तो वहभी मदनसे चंचलायमान मन होकर हमारे निकट प्राप्त होनेंकी वासना करतीं ॥ ४३ ॥ इस वसंतके समयमें पुष्प भारसे छाये वन समूहोंके सब पुष्प हमारे जान तो अतिशय निष्फल होरहेहैं॥ ४४ ॥ वृक्षोंके अति सुन्दर मनोहर पुष्प भ्रमर गणोंके सहित पृथ्वीपर गिर रहेहैं पर विना सीताके हमारे लेखे व्यर्थहैं ॥ ४५ ॥ हमारे चित्तको मतवाला करनेंवाले पक्षी गण हर्षित होकर झुंड २ कलरव करके कल ध्वनि कर

पश्यलक्ष्मणसंरागस्तिर्यग्योनिगतेष्वपि ॥ अधुनाशिखिनीकामाद्भर्तारमभिवर्तते ॥ ४२ ॥ ममाप्येवंविशालाक्षी जानकीजातसंभ्रमा ॥ मदनेनाभिवर्तेतयदिनापहृताभवेत् ॥ ४३ ॥ पश्यलक्ष्मणपुष्पाणिनिष्फलानिभवंतिमे ॥ पुष्पभारसमृद्धानांवनानांशिशिरात्यये ॥ ४४ ॥ रुचिराण्यपिपुष्पाणिपादपानामतिश्रिया ॥ निष्फलानिमहींयांतिसमंमधुकरोत्करैः ॥ ४५ ॥ नदंतिकामंशकुनामुदिताःसंघशःकलम् ॥ आह्वयंतइवान्योन्यंकामोन्मादकराम म ॥ ४६ ॥ वसंतोयदितत्रापियत्रमेवसतिप्रिया ॥ नूनंपरवशासीतासापिशोचत्यहंयथा ॥ ४७ ॥ नूनंनतुवसंतस्तंदेशंस्पृशतियत्रसा ॥ कथंह्यसितपद्माक्षीवर्तयेत्सामयाविना ॥ ४८ ॥ अथवावर्ततेतत्रवसंतोयत्रमेप्रिया ॥ किंकरिष्यतिसुश्रोणीसातुनिर्भर्त्सितापरैः ॥ ४९ ॥ श्यामापद्मपलाशाक्षीमृदुभाषाचमेप्रिया ॥ नूनंवसंतमासाद्यपरित्यक्ष्यतिजीवितम् ॥ ५० ॥

रहेहैं ॥ ४६ ॥ हाय! जबकि यहां वसंतहै, तबतो उन प्राणप्यारीके निकट भी वसंतका उदय हुआ होगा । इस कारण हम विना, हमारी समान वहभी निःसन्देह कातर और शोकसे व्याकुल हुई होंगी ॥ ४७ ॥ यदि वहां वसंतका उदय नभीहुआहो तथापि वह नलिनीनयनी हमारे विना वहां किस प्रकारसे रहती होंगी ॥ ४८ ॥ अथवा यदि उस स्थानमें वसंत विद्यमानभी हो तथापि वह सुश्रोणी सीता शत्रुओंसे भयभीता होकर क्या करेंगी? सो कुछ हमारी समझमें नहीं आता ॥ ४९ ॥ हाय! वह श्यामा, कमल दलकी समान नेत्रयुक्त मृदुभाषण करनेंवाली जनकनंदिनीजी,

और यमराजकी समान कवन्धका [illegible] ॥ १२ ॥ तब [illegible] कोईभी पुरुष श्रीरामचंद्रजीके गुणग्राम वर्णन करनेंको समर्थ नहीं है;
उन्होंनें जनस्थानमें आगमन करके अन [illegible] देवता [illegible] हैं, वैसेही यह वीर पुरुष लक्ष्मणजी रामचंद्रजीके एक ओर बैठे शोभाको
प्राप्त हुएहैं, हमारा विश्वासहै कि इनके बाण चलानेंपर इन्द्रके जीवन रक्षा होनेंमेंभी सन्देहहै फिर और दूसरोंकी तो गिनती क्या है ॥ ३० ॥ ३१ ॥
सूर्यके दो पुत्र श्वेत व ज्योतिर्मुख नामक यहां हैं, और वरुणका पुत्र हेमकूट नाम वानरभी इस वाहिनीमें आयाहै ॥ ३२ ॥ विश्वकर्माका पुत्र
वानरश्रेष्ठ नल और अति विक्रमयुक्त वेगवान वसुका पुत्र दुर्धरभी यहांपरहै ॥ ३३ ॥ श्रीरामचंद्रजीसे लंकाका राज्य पायकर उसका हित साधन

वक्तुंनशक्तोरामस्यगुणान्कश्चिन्नरःक्षितौ ॥ जनस्थानगतायेनतावंतोराक्षसाहताः ॥ ३० ॥ लक्ष्मणश्चात्रधर्मात्मामा
तंगानामिवर्षभः ॥ यस्यबाणपथंप्राप्यनजीवेदपिवासवः ॥ ३१ ॥ श्वेतोज्योतिर्मुखश्चात्रभास्करस्यात्मसंभवौ ॥ व
रुणस्याथपुत्रोथहेमकूटःप्लवंगमः ॥ ३२ ॥ विश्वकर्मसुतोवीरोनलःप्लवगसत्तमः ॥ विक्रांतोवेगवानत्रवसुपुत्रःसदुर्धरः ॥ ३३ ॥
राक्षसानांवरिष्ठश्चतवभ्राताविभीषणः ॥ प्रतिगृह्यपुरींलंकांराघवस्यहितेरतः ॥ ३४ ॥ इतिसर्वसमाख्यातंतथावैवान
रंबलम् ॥ सुवेलेधिष्ठितंशैलेशेषकार्येभवान्गतिः ॥ ३५ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आदिकाव्येयुद्धकांडेत्रिंशःसर्गः ॥ ३० ॥
ततस्तमक्षोभ्यबलंलंकायांनृपतेश्चराः ॥ सुवेलेराघवंशैलेनिविष्टंप्रत्यवेदयन् ॥ १ ॥ चाराणांरावणःश्रुत्वाप्राप्तंरामं
महाबलम् ॥ जातोद्वेगोऽभवार्त्किंचित्सचिवानिदमब्रवीत् ॥ २ ॥

करनेंकी वासनासे आपके भ्राता राक्षसशार्दूल बिभीषणजी वहांपर विराजमान हैं ॥ ३४ ॥ हमनें सुवेल शैलपर टिककर वानर सैनाके समाचार
जो कुछ जानेहैं, वह आपसे कह सुनाये; इसके पीछे अब जो कुछ कर्त्तव्यहो वह आप कीजिये ॥ ३५ ॥ इ० श्रीम० वा० यु० त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥
इस प्रकार सुवेल पर्वतपर लंकाके मध्यमें टिके हुए श्रीरामचंद्रजी और उनकी सैनाको राक्षसनाथ रावणको उसके दूतोंने बताया ॥ १ ॥
राक्षसोंका स्वामी रावणने दूतोंके मुखसे श्रीरामचंद्रजीका समाचार पाय अत्यन्त व्याकुल होकर मंत्री लोगोंको बुलाया ॥ २ ॥

यह अशोक वृक्ष कामी जनोंको अत्यन्तही शोकका बढानेवाला होता है देखो मानों यह पवनसे कंपित अपने पत्रोंद्वारा हमको डरपाताहुआ खडा है ॥ ५९ ॥ हे लक्ष्मण! यह फूला हुआ आमका वृक्ष मानों कामके रससे आसक्त, व अंगराग लगाये हुये मनुष्य की समान ही खडा है सो तुम देखो॥६०॥हे पुरुष सिंह लक्ष्मण! यह देखो! इस पंपाके तीर वाले विचित्र बनमें किन्नर लोग जिधर तिधर विचरण करते हुये घूम रहे हैं ॥ ६१ ॥ फिर यहां पर यह सुगन्धित कमल जलमें तरुण सूर्यकी समान शोभा विस्तार कर रहे हैं॥६२॥यह प्रसन्नसलिला पंपा सुगन्धि युक्त नील अरुण कमलसे और हंस कारण्डव इत्यादि जलचर पक्षियोंसे व्याप्त होकर शोभा पारहा है ॥ ६३ ॥ जलमें जो कमल फूल तरुण सूर्यकी समान शोभा विस्तार

कामिनामयमत्यंतमशोकःशोकवर्धनः ॥ स्तबकैःपवनोत्क्षिप्तैस्तर्जयन्निवमांस्थितः ॥ ५९ ॥ अमीलक्ष्मण दृश्यंतेचूताःकुसुमशालिनः ॥ विभ्रमोत्सिक्तमनसःसांगरागानराइव ॥ ६० ॥ सौमित्रेपश्यपंपायाश्चित्रासुवनराजिषु ॥ किन्नरानरशार्दूलविचरंतियतस्ततः ॥ ६१ ॥ इमानिशुभगंधीनिपश्यलक्ष्मणसर्वशः ॥ नलिनानिप्रकाशंतेजलेतरुणसूर्यवत् ॥ ६२ ॥ एषाप्रसन्नसलिलापद्मनीलोत्पलायुता ॥ हंसकारंडवाकीर्णापंपासौगंधिकायुता ॥ ६३ ॥जलेतरुणसूर्याभैःषट्पदाहतकेसरैः ॥ पंकजैःशोभतेपंपासमंतादभिसंवृता ॥ ६४ ॥ चक्रवाकयुतानित्यंचित्रप्रस्थवनांतरा ॥ मातंगमृगयूथैश्चशोभतेसलिलार्थिभिः ॥ ६५ ॥ पवनाहतवेगाभिरूर्मिभिर्विमलेंभसि ॥ पंकजानिविराजंतेताड्यमानानिलक्ष्मण ॥ ६६ ॥ पद्मपत्रविशालाक्षींसततंप्रियपंकजाम् ॥ अपश्यतोमेवैदेहींजीवितंनाभिरोचते ॥ ६७ ॥

कर रहे हैं, सो भ्रमरोंके समूह उनकी पँगोंलों पर बैठे हैं, यह पंपा सरोवर चारों ओर कमल फूलोंके छा जानेंसे अपूर्व शोभा प्रगट कर रहा है ॥ ६४ ॥ इस पंपाकी बगलवाले विचित्र वन, बराबर चक्रवाकोंके झुण्डोंसे, और पानी पीनेंके अभिलाषी हाथियोंके दलसे युक्त होकर शोभा पाते हैं॥६५॥ देखो लक्ष्मण! इसके विमल जलमें पवनसे उत्पन्न हुई लहरोंके द्वारा ताडित होकर यह कमल फूल नर्तकीके समान विराजमान हैं ॥ ६६ ॥ हे लक्ष्मण! इस समय पद्म पलाश नेत्र वाली प्रियपंकजा जनकसुताके विना देखे हम अब जीवन धारण करनेंका अभिलाष नहीं करते ॥ ६७ ॥

गहने इत्यादि देकर सीताजीके दर्शनकी लालसा [illegible] को गया ॥ १० ॥ कुबरके छोटे भाई बली रावणने अशोक वनमें [illegible] बहुतसे [illegible] करके दूरसेही शोकसे कर्षित अपने स्वामी श्रीरामचंद्रजीको [illegible] करती हुई, और अदीनताके योग्य होकरभी दीनकी समान नीचेको मुख किये पृथ्वीपर बैठी हुई जनकनंदिनी जानकीजीको देखा ॥ ११ ॥ १२ ॥ कि जिनको चारों ओरसे राक्षसियें घेरे हुएथीं, तिसके पीछे कुछ एक आगे बढकर रावण हर्षसहित अपना नाम कहताहुआ ॥ १३ ॥ बडी ढीठता पूर्वक जानकीजीसे यह वचन बोला, हे भद्रे ! हमारे बहुत विधि समझानें बुझानेंपरभी तुम जिसका आश्रयकर हमारे वचनोंका अनादर करती हौ ॥ १४ ॥ तुम्हारे वही खरके मार डालनेंवाले स्वामी

नैर्ऋतानामधिपतिःसंविवेशमहाबलः ॥ ततोदीनामदीनार्हांददर्शधनदानुजः ॥ ११ ॥ अधोमुखींशोकपरामुपविष्टांमही
तले ॥ भर्तारंसमनुध्यांतीमशोकवनिकांगताम् ॥ १२ ॥ उपास्यमानांघोराभीराक्षसीभिरदूरतः ॥ उपसृत्यततःसीतां
प्रहर्षनामकीर्तयन् ॥ १३ ॥ इदंचवचनंधृष्टमुवाचजनकात्मजाम् ॥ सांत्व्यमानामयाभद्रेयमाश्रित्यविमन्यसे ॥१४॥
खरहंतासतेभर्ताराघवःसमरेहतः ॥ छिन्नंतेसर्वथामूलंदर्पश्चनिहतोमया ॥ १५ ॥ व्यसनेनात्मनःसीतेममभार्याभवि
ष्यसि ॥ विसृजैतांमतिंमूढेकिंमृतेनकरिष्यसि ॥ १६ ॥ भवस्वभद्रेभार्याणांसर्वासामीश्वरीमम ॥ अल्पपुण्येनिवृत्ता
र्थेमूढेपंडितमानिनि ॥ शृणुभर्तृवधंसीतेघोरंवृत्रवधंयथा ॥ १७ ॥ समायातःसमुद्रांतंहंतुंमांकिलराघवः ॥ वानरें
द्रप्रणीतेनबलेनमहतावृतः ॥ १८ ॥

रामचंद्र समरमें मारे गये, इस कारण अब तुम्हारी जड़ही कटगई, और गर्वभी मैंने तुम्हारा तोडा ॥ १५ ॥ हे मूढे जनकनंदिनी ! अब इस समय उस मरे हुए पतिको लेकर क्या करोगी ? इस कारण इस आये हुए विपदकालमें इस दुर्बुद्धिको छोडकर तुम हमारी भार्या बनो ॥ १६ ॥ हेअल्पपुण्यवाली पंडितमानिनि मूढ़े जानकी ! तुम इतनें दिनसे जिन रामचंद्रकी आशामें दिन बिताय रहीथीं अब तुम्हारी उस आशाका अंत होगया, इस कारण हेभद्रे ! अब तुम सब स्त्रियोंके बीचमें पटरानी होकर दिन बिताओ ॥१७॥ हेसीते ! दारुण वृत्रासुरके वधकी समान तुम अपने स्वामीके वधका वृत्तान्त सुनो, रामचंद्र हमको मार डालनेंके लिये समुद्र पार वानरोंके स्वामी सुग्रीवकी बड़ी भारी सैनाके संग आये ॥१८॥

पंपाके किनारे पर कुसुमित मालती, मल्लिका, कँवल, कंदेला ॥७६॥ केतकी, सिन्दुवार, चमेली, विजोरा, नींबू, पुरैन, कुन्द, ॥ ७७ ॥ चिलोलु, महुआ, अशोक, वकुल, चम्पा, तिलक, नाग वृक्ष ॥ ७८ ॥ नीलकमल, फूलाहुआ अनिल, शोक, लोध्र, सिंहकेशर, पिंजर, गिरिपृष्ठ ॥ ७९ ॥ अंकोल, कुरंट, चूर्णक, नींब, आम, पाटलि, फूलाहुआकोविदार ॥ ८० ॥ मुचकुन्द, अर्जुन, केतकी, दूसरी जातिकी शतावरी, शिरस, खैर, शीसम, यहभी पहाडके शृंगोंपर दिखलाई देतेहैं ॥ ८१ ॥ शाल, टेसू, लाल कुरबक, तिनिश, नक्तमाल, चन्दन, स्यन्दन, ॥ ८२ ॥

केतक्यः सिंदुवाराश्च वासंत्यश्च सुपुष्पिताः ॥ मातुलिंगाश्च पूर्णाश्च कुंदगुल्माश्च सर्वशः ॥ ७७ ॥ चिरिबिल्वा मधूकाश्च वंजुला बकुलास्तथा ॥ चंपकास्तिलकाश्चैव नागवृक्षाश्च पुष्पिताः ॥ ७८ ॥ पद्मकाश्चैव शोभंते नीलाशोकाश्च पुष्पिताः ॥ लोध्राश्च गिरिपृष्ठेषु सिंहकेसरपिंजराः ॥ ७९ ॥ अंकोलाश्च कुरंटाश्च चूर्णकाः पारिभद्रकाः ॥ चूताः पाटलयश्चापि कोविदाराश्च पुष्पिताः ॥ ८० ॥ मुचुकुंदार्जुनाश्चैव दृश्यंते गिरिसानुषु ॥ केतकोद्दालकाश्चैव शिरीषाः शिंशपा धवाः ॥ ८१ ॥ शाल्मल्यः किंशुकाश्चैव रक्ताः कुरबकास्तथा ॥ तिनिशा नक्तमालाश्च चंदनाः स्यंदनास्तथा ॥ ८२ ॥ हिंतालास्तिलकाश्चैव नागवृक्षाश्च पुष्पिताः ॥ पुष्पितान्पुष्पिताग्राभिर्लताभिः परिवेष्टितान् ॥ ८३ ॥ द्रुमान्पश्येह सौमित्रे पंपायां रुचिरान्बहून् ॥ वातविक्षिप्तविटपान्यथासन्नान्द्रुमानिमान् ॥ ८४ ॥ लताः समनुवर्तंते मत्ता इव वरस्त्रियः ॥ पादपात्पादपं गच्छञ्छैलाच्छैलं वनाद्वनम् ॥ ८५ ॥ वातिनैकरसास्वादसंमोदित इवानिलः ॥ केचित्पर्याप्तकुसुमाः पादपा मधुगंधिनः ॥ ८६ ॥

दूसरी जातिके तिलक, फूले हुये नाग वृक्ष, यह सब वृक्ष फूलरहेहैं व इनके अग्र भागमें फूलीहुई वेलें लिपट रहीहैं. इस्से यह अति शोभित होरहे हैं ॥ ८३ ॥ हे लक्ष्मण! देखो पंपाके किनारे यह अति चित्र विचित्र, विविध भांतिके वृक्ष देखो, कि इनकी डालियां पवनके लगनें से कैसी हिल रही हैं, और उनसे कैसी शोभा होतीहै ॥ ८४ ॥ वृक्षोंमें वेलें लिपट रहीहैं, जैसे कामसे उत्पन्न हो श्रेष्ठ स्त्रियें अपने २ पतिको चिपट जातीहैं, और देखो कि पवन इस वृक्षसे उस वृक्षको इस पर्वतसे उस पर्वतको एक बनसे दूसरेबनको जाकर ॥ ८५ ॥ बहुत सारा रस चख आनन्दित होकर महक

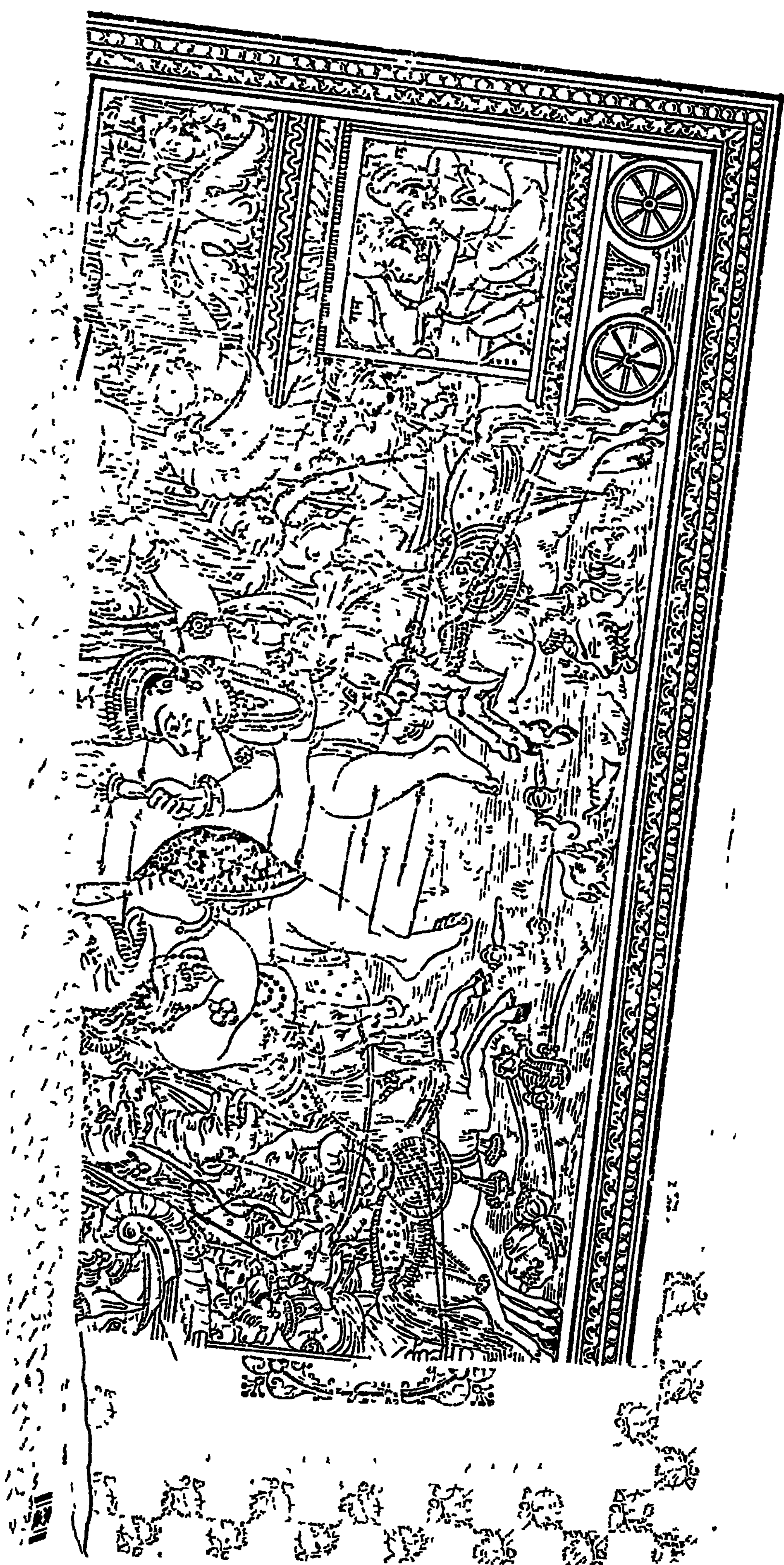

वाले इसके गुणोंका समूह, जो पृथ्वीपर विख्यातहै सो यह ठीक ही ठीकहै ॥ ९४ ॥ हे लक्ष्मण! हम यदि इस स्थानमें उन पतिव्रता सीताजीके दर्शन पाते तो इन्द्रपुरी व अयोध्याका लालच न करके इस स्थानमेंही वास करते ॥ ९५ ॥ हे लक्ष्मण! जो हम तुम्हारे साथ इन रमणीक हरे भरे क्षेत्रोंमें वासकरें तो हमारी और जगह वास करनेंकी वासना नरहै ॥ ९६ ॥ विविध भांतिके पुष्प समूह और विविध वर्णके यह वृक्ष, इस वनमें विना प्राणप्यारीके हमको विविध भांतिकी चिन्ता उत्पन्न करातेहैं ॥ ९७ ॥ हे लक्ष्मण! शीतल जल युक्त, कमल सहित, चकई चकवा, जल मुरगी और बत्तक आदि सेवित इस पंपाको देखो ॥ ९८ ॥ करांकुल, जलकुड्डी, आदि जलचर पक्षियोंसे सेवित व किनारे २ और दूसरे पक्षियोंके

यदिदृश्येतसासाध्वीयदिचेहवसेमहि ॥ स्पृहयेयंनशक्रायनायोध्यायैरघूत्तम ॥ ९५ ॥ नह्येवंरमणीयेषुशा द्वलेषुतयासह ॥ रमतोमेभवेच्चिंतानस्पृहान्येषुवाभवेत् ॥ ९६ ॥ अमीहिविविधैःपुष्पैस्तरवोविविधच्छदाः ॥ का ननेऽस्मिन्विनाकांतांचितामुत्पादयंतिमे ॥ ९७ ॥ पश्यशीतजलांचेमांसौमित्रेपुष्करायुताम् ॥ चक्रवाकानुचरितां कारंडवनिषेविताम् ॥ ९८ ॥ प्लवैःक्रौंचैश्चसंपूर्णांमहामृगनिषेविताम् ॥ अधिकंशोभतेपंपाविकूजद्भिर्विहंगमैः ॥ ९९ ॥ दीपयंतीवमेकामंविविधामुदिताद्विजाः ॥ श्यामांचंद्रमुखींस्मृत्वाप्रियांपद्मनिभेक्षणाम् ॥ पश्यसानुषुचित्रेषुमृगीभिः सहितान्मृगान् ॥ १०० ॥ मांपुनर्मृगशावाक्ष्यावैदेह्याविरहीकृतम् ॥ व्यथयंतीवमेचित्तंसंचरंतस्ततस्ततः ॥ १ ॥ अस्मि न्सानुनिरम्येहिमत्तद्विजगणाकुले ॥ पश्येयंयदितांकांतांततःस्वस्तिभवेन्मम ॥ २ ॥

बोलनेंसे यह पंपा अधिक शोभायमान होरहीहै ॥ ९९ ॥ यह प्रमुदित विविध भांतिके पक्षी हमें उन पंकजनयनी, चंद्रमुखी श्यामा* जनकनंदिनी, प्रिया जानकीजीकी याद दिलातेहैं। और देखो! इन विचित्र पर्वतके कंगूरों पर मृग गण हरणियोंके साथ ॥ १०० ॥ इधर उधर विहार करके मृगशावक नयनी वैदेहीके विरहमें हमको व्यथित कर रहेहैं ॥ १०१ ॥ यदि हम मतवाले पक्षियोंसे पूर्ण इस मनोहर कंगूरे पर उन प्राणप्यारीका

* जो नारी शीतकालमें ऊष्ण और ऊष्ण कालमें शीतल होती है और जिसके सर्वाङ्ग निन्दारहित हों उसको श्यामाकहतेहैं ॥

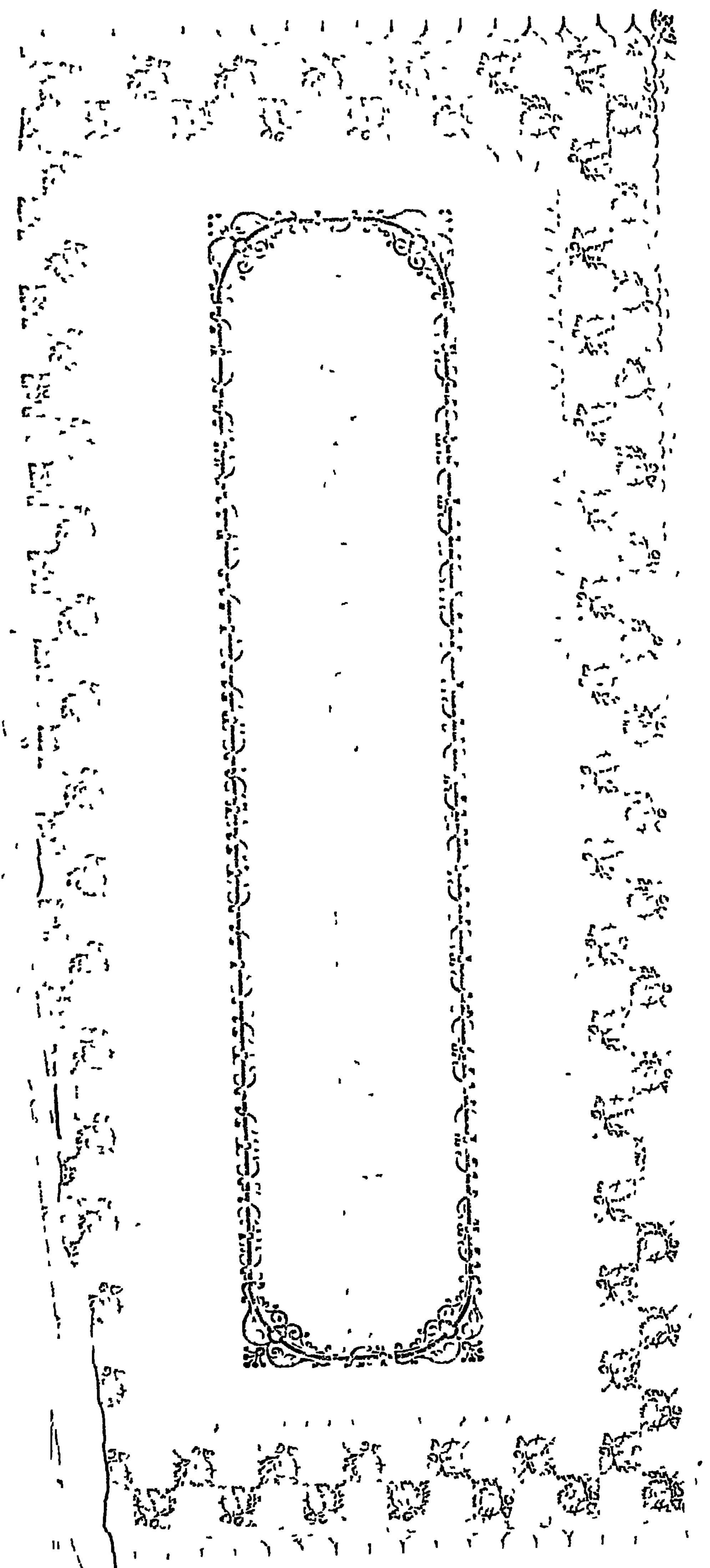

होकर वचनामृत वर्षाकर हमको सुखी करतीं ॥ १११ ॥ हे राजकुमार लक्ष्मणजी ! जबकि हम अयोध्याको लौटेंगे तब मनस्विनी कौश
ल्याजी " सीता कहांहैं ? " यह पूछेंगी तब हम उनसे क्या कहेंगे? ॥११२॥ हे लक्ष्मण ! इस समय तुम निश्चय जानो कि हम सीताके विना कभी
जीवन धारण करनेंको समर्थ नहीं होंगे, इसलिये हमारा मरण निश्चयजान तुम अयोध्याजीको चले जाकर, भरतजीके साथ मिलो ॥ ११३ ॥ महा
त्मा श्रीरामचंद्रजीनें इस प्रकार अनाथकी समान जब विलाप करना आरंभ किया, तब लक्ष्मणजीनें उनसे अर्थ युक्त वचन कहने आरंभ
किये ॥ ११४ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! आप शोकका त्याग कीजिये आप पुरुषोत्तमहैं इसलिये आपको शोक करना उचितनहीं हैं. आपसरीखे

किंनुवक्ष्याम्ययोध्यायांकौसल्यांहिनृपात्मज ॥ क्वसास्नुषेतिपृच्छंतींकथंचापिमनस्विनीम् ॥ १२ ॥ गच्छलक्ष्म
णपश्यत्वंभरतंभ्रातृवत्सलम् ॥ नह्यहंजीवितुंशक्तस्तामृतेजनकात्मजाम् ॥ १३ ॥ इतिरामंमहात्मानंविलपंतमनाथ
वत् ॥ उवाचलक्ष्मणोभ्रातावचनंयुक्तमव्ययम् ॥ १४ ॥ संस्तंभरामभद्रंतेमाशुचःपुरुषोत्तम ॥ नेदृशानांमतिर्मं
दाभवत्यकलुषात्मनाम् ॥ १५ ॥ स्मृत्वावियोगजंदुःखंत्यजस्नेहंप्रियेजने ॥ अतिस्नेहपरिष्वंगाद्वर्तिरार्द्रापिदह्य
ते ॥ १६ ॥ यदिगच्छतिपातालंततोऽभ्यधिकमेववा ॥ सर्वथारावणस्तातनभविष्यतिराघव ॥ १७ ॥ प्रवृत्तिर्लभ्यतां
तावत्तस्यपापस्यरक्षसः ॥ ततोहास्यतिवासीतांनिधनंवागमिष्यति ॥ १८ ॥ यदियातिदितेर्गर्भंरावणःसहसीतया ॥
तत्राप्येनंहनिष्यामिनचेद्दास्यतिमैथिलीम् ॥ १९ ॥

न्यायवान, धीरवान, निष्पाप पुरुषोंमें ऐसी शोक बुद्धिका होना सब भांतिसे असंभवहै ॥ ११५ ॥ विरहसे उत्पन्न हुआ दुःख और प्रियजनके
प्रति स्नेहको छोड दीजिये देखिये अतिशय स्नेह युक्त अर्थात् तेलमें पडनेंसे गीली बत्तीभी जल जाती है ॥११६॥ यदि रावण पातालमें वा उस्सेभी
अधिक गुप्तदेशमें भागजाय, तथापि कदापि वह जीवित नहीं रहसकता ॥ ११७ ॥ वह पापमतिवाला राक्षस कहां रहताहै? और उसकी क्या
इच्छाहै? पहले इस बातको आप जान लीजिये, तब इसके पीछे यातो वह सीताको छोडही देगा अथवा मारा जायगा ॥ ११८ ॥ यदि
रावण जानकीजीको न देगा तब वह सीताजीके सहित चाहें दैत्य माता दितिके गर्भमें चला जाय तोभी हम उसको निःसन्देह मारडालेंगे ॥ ११९ ॥

दोहा—सीता ढूंढन चित दिये , बाण विराजत हाथ ॥ श्यामवरणदुखहरणभव, वंदौं श्रीरघुनाथ ॥ १ ॥

श्रीरामचंद्राभ्यां मनः जब इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके सहित पद्म, उत्पल, और मछलियोंसे परिपूर्ण उस परम मनोहर पुष्करिणी पर गये तब उनकी इंद्रियें व्याकुल होगईं, उस समय वह बहु भांतिसे विलाप करनें लगे ॥ १ ॥ और फिर जब उस पंपासरोवरको भली भांति देखा, तब हर्षमें भरनेंके कारण उनकी इन्द्रियां कांपनें लगीं, और वह कामदेवके वशहो लक्ष्मणजीसे बोले ॥ २ ॥ हे सुमित्राकुमार! देखो, देखो, वैदूर्यमणिकी समान स्वच्छ जलवाली पंपा, खिले हुये कमल और कमल पत्र व विविध भांति वृक्षोंके विराजित होनें पर कैसी शोभित होती है ॥ ३ ॥ देखो लक्ष्मण!

श्रीसीतारामचंद्राभ्यांनमः ॥ ॥ सतांपुष्करिणींगत्वापद्मोत्पलझषाकुलाम् ॥ रामःसौमित्रिसहितोविललापाकुलेंद्रियः ॥ १ ॥ तत्रदृष्ट्वैवतांहर्षादिंद्रियाणिचकंपिरे ॥ सकामवशमापन्नःसौमित्रिमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥ सौमित्रेशोभते पंपावैदूर्यविमलोदका ॥ फुल्लपद्मोत्पलवतीशोभिताविविधैर्द्रुमैः ॥ ३ ॥ सौमित्रेपश्यपंपायाःकाननंशुभदर्शनम् ॥ यत्रराजंतिशैलावाद्रुमाःसशिखराइव ॥ ४ ॥ मांतुशोकाभिसंतप्तमाधयःपीडयंतिवै ॥ भरतस्यचदुःखेनवैदेह्याहरणे नच ॥ ५ ॥ शोकार्तस्यापिमेपंपाशोभतेचित्रकानना ॥ व्यवकीर्णाबहुविधैःपुष्पैःशीतोदकाशिवा ॥ ६ ॥ नलिनैरपि संछन्नाह्यत्यर्थशुभदर्शना ॥ सर्पव्यालानुचरितामृगद्विजसमाकुला ॥ ७ ॥ अधिकंप्रविभात्येतन्नीलपीतंतुशाद्वलम् ॥ द्रुमाणांविविधैःपुष्पैःपरिस्तोमैरिवार्पितम् ॥ ८ ॥

पंपाके निकट वाले वन कैसे मनोहर दिखलाई देते हैं, और वहां ऊंचेशिखरवाले शैल और वृक्ष कैसे मनोहर रूपसे विराज रहे हैं ॥ ४ ॥ तुम विचार करके देखोकि हमारा हृदय राज्य भ्रष्ट होनेंसे, भरतजीके जटावल्कलादि धारण करनेंसे, व सीताजीका हरण हो जानेंके शोकसे बहुत ही सन्तापित है और इससे मनको पीडाभी होती है, और माता पिताके छूटनेंकाभी महा दुःख है॥ ५ ॥ तथापि शीतल जल वाली अनेक प्रकारके पुष्पोंसे शोभित, विचित्र कानन युक्त यह पंपा हमारे मनको हरणकरके सुख और शांति देरही है ॥ ६ ॥ यह पंपा सरोवर कमल फूलोंसे व उनके पत्रोंसे छा रहा है इसका दर्शन बडाही मनोहर है, इस पर सर्प, व्याल, मृग, व पक्षीगण सदाही घूमा करते हैं ॥ ७ ॥ इसका नीला पीला व

अद्भुत दर्शन श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मण दोनोंजनें ऋष्यमूक पर्वतके निकट विचरण कर रहेथे, कि उसी समय वानर गणोंके राजा सुग्रीवजीनें ऋष्यमूकको ओर घूमते २ इन दोनों जनोंको देखा, वह उनको देख त्रास युक्त हो भोजनादिकी चेष्टासे विरत हुए ॥ १२८ ॥ श्रीराम लक्ष्मणजीभी उसी स्थानमें घूमनें लगे गज तुल्य मंद चाल चलनेंवाले महात्मा वह शाखामृग उस स्थानमें घूमकर चिन्तायुक्त और भयसे अति भीतहो उन राम लक्ष्मणजीको देख अति विषादको प्राप्त हुए ॥ १२९ ॥ उस वानरगणोंकरके सेवनीय मतंगमुनिके शापसे वालि जिसमें प्रवेश नहीं कर सकताथा,ऐसे पुण्याश्रममें वानर सुग्रीवादि वहां सदा रहाकरतेथे । इस समय महावीर्यवान् श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीको वहां आता

तावृष्यमूकस्यसमीपचारीचरन्ददर्शाद्भुतदर्शनीयौ ॥ शाखामृगाणामधिपस्तरस्वीवितत्रसेनैवविचेष्टचेष्टम् ॥ २८ ॥
सतौमहात्मागजमंदगामीशाखामृगस्तत्रचरंश्चरंतौ ॥ दृष्ट्वाविषादंपरमंजगामचिंतापरीतोभयभारभग्नः ॥ २९ ॥
तमाश्रमंपुण्यसुखंशरण्यंसदैवशाखामृगसेवितांतम् ॥ त्रस्ताश्चदृष्ट्वाहरयोविजग्मुर्महौजसौराघवलक्ष्मणौतौ ॥ १३० ॥
इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेप्रथमःसर्गः ॥ १ ॥ ॥ छ ॥ ॥ तौतुदृष्ट्वामहात्मानौ भ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ वरायुधधरौवीरौसुग्रीवःशंकितोऽभवत् ॥ १ ॥ उद्विग्नहृदयःसर्वादिशःसमवलोकयन् ॥ नव्यतिष्ठतकस्मिंश्चिद्देशेवानरपुंगवः ॥ २ ॥ नैवचक्रेमनःस्थातुंवीक्ष्यमाणौमहाबलौ ॥ कपेःपरमभीतस्यचित्तंव्यवससादह ॥ ३ ॥ चिंतयित्वासधर्मात्माविमृश्यगुरुलाघवम् ॥ सुग्रीवःपरमोद्विग्नःसर्वैस्तैर्वानरैःसह ॥ ४ ॥

हुआ देखकर वह शाखामृग अतिशय भीत और त्रासित हुए ॥ १३० ॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० किष्किन्धाकांडे प्रथमःसर्गः ॥१॥ उन अति श्रेष्ठ आयुध धारण किये हुए महात्मा श्रीराम लक्ष्मण दोनोंभाइयोंको देखकर वानरराज सुग्रीव अत्यन्त भय पाय गये ॥ १ ॥ वह वानरवर व्याकुलचित्तहो दशों दिशाओंमें देखते किसी एक स्थानमें स्थिर होकर न टिक सके ॥ २ ॥ उन महाबलवान दोनों वीरोंको देखकर सुग्रीवजीनें वहां ठहरनेंकी इच्छा नकी उनअति डरे हुए कपि श्रेष्ठका चित्त अत्यन्त विषादको प्राप्त हुआ ॥ ३ ॥वह धर्मात्मा सुग्रीवजी परम

हे लक्ष्मण। और देखो यह पवन सब शाखाओंको कंपायमान करके मानों सब वृक्षोंको बांध देता है ॥ १६ ॥ यह पवन चन्दनकी समान शीतल और सुख स्पर्श व महकताहुआ पुण्य रूप होकर प्राणियोंका आश्रयधारण करता है ॥ १७ ॥ यह देखो मधुगंध युक्त वनमें पवन करके हिलनेंसे सब वृक्ष, गुंजार करते हुये भौंरोंके द्वारा मनोहर शब्द कर रहे हैं ॥ १८ ॥ फिर पर्वत अपनें ऊपर उत्पन्न मनोरम महा वृक्षोंके द्वारा मानों शिखर युक्त होकर विराजमान हो रहे हैं ॥ १९ ॥ वृक्षोंकी फुनगियां फूलोंके द्वारा ढक जानेंसे और उनके ऊपर भौंरोंके गुंजार करनें, व पवन वेगके कारण उनके चलायमान होनेंसे ऐसा जानपडता है मानों सब वृक्षोंने एक वारही नृत्य गीत आरंभ कर दियाहै॥२०॥

तेनविक्षिपतात्यर्थंपवनेनसमंततः॥अमीसंसक्तशाखाग्राग्रथिताइवपादपाः॥ १६ ॥ सएवसुखसंस्पर्शोवातिचंदनशीतलः॥गंधमभ्यवहन्पुण्यंश्रमापनयनोऽनिलः॥१७॥अमीपवनविक्षिप्ताविनदंतीवपादपाः॥ षट्पदैरनुकूजद्भिर्वनेषुमधुगंधिषु ॥ १८ ॥ गिरिप्रस्थेषुरम्येषुपुष्पवद्भिर्मनोरमैः ॥ संसक्तशिखराःशैलाविराजंतिमहाद्रुमैः ॥ १९ ॥ पुष्पसंछन्नशिखरामारुतोत्क्षेपचंचलाः ॥ अमीमधुकरोत्तंसाःप्रगीताइवपादपाः ॥ २० ॥ सुपुष्पितांस्तुपश्यैतान्कर्णिकारान्समंततः ॥ हाटकप्रतिसंछन्नान्नरान्पीतांबरानिव ॥ २१ ॥ अयंवसंतःसौमित्रेनानाविहगनादितः ॥ सीतयाविप्रहीणस्यशोकसंदीपनोमम ॥ २२ ॥ मांहिशोकसमाक्रांतंसंतापयतिमन्मथः ॥ हृष्टंप्रवदमानश्चसमाह्वयतिकोकिलः ॥ २३ ॥ एषदात्यूहकोहृष्टोरम्येमांवननिर्झरे ॥ प्रणदन्मन्मथाविष्टंशोचयिष्यातिलक्ष्मण ॥ २४ ॥

देखो लक्ष्मण। कठचम्पेके वृक्ष पीत फूलोंसे छाये रहनेके कारण ऐसे जान पडते हैं मानों वह सुवर्णके गहने पहने पीताम्बरधारी वृक्षोंकी समान शोभा पारहेहैं ॥ २१ ॥ हे लक्ष्मण! इस वसंतकालमें अनेक भांतिके पक्षी गण मनोहर ध्वनि कर रहे हैं तिससे हमारा सीताजीका विरह दुःख एक वारही उकसा आताहै॥ २२ ॥ इस समय हम जानकी की विरहानलमें महा संतप्त होरहेहैं तिसके ऊपर यह पंचवाण अतिशय पीडा दे रहाहै और कोकिल कलकंठसे ध्वनि करके मानों हमारे प्रति अपना साहस दिखारहेहीहैं ॥ २३ ॥ यह देखो मनोरम वनके झरनोंमें सब जल

सब वानर गण भयका त्याग करें कारण कि यह मलयाचल पर्वत है यहांपर वालिके भयकी कोई संभावना नहीं ॥१४॥हेवानरश्रेष्ठ! आप जिसके भयकी शंका करके व्याकुल चित्त होते हैं उस दुर्दर्शन क्रूर स्वभाववाले वालिको हम यहां नहीं देखते हैं ॥ १५ हे सौम्य! जिस पापकर्म करनें वाले अपने बडे भाईसे आपको डर है वह दुष्टात्मावालि यहां पर नहीं है इसलिये उस करके कोई भयका कारणभी हम नहीं देखते हैं ॥ १६ ॥ हे कपीश्वर! आप वानर जातिहैं उसी लघुचित्तताके कारण आप अपनीबुद्धिको स्थिर नहीं कर सकतेहैं ॥ १७ ॥ बुद्धि और विज्ञान युक्तहो संकेतमात्रसे आपको सब काम करलेने चाहिये राजा कुबुद्धिका आश्रयकरकै सर्व जीवकी रक्षा नहीं कर सकता ॥ १८ ॥ सुग्रीवजी हनुमान्‌जीके यह

संभ्रमस्त्यज्यतामेषसर्वैर्वालिकृतेमहान् ॥ मलयोऽयंगिरिवरोभयंनेहास्तिवालिनः ॥ १४ ॥ यस्मादुद्विग्नचेतास्त्वं
विद्रुतोहरिपुंगव ॥ तंक्रूरदर्शनंक्रूरंनेहपश्यामिवालिनम् ॥ १५ ॥ यस्मात्तवभयंसौम्यपूर्वजात्पापकर्मणः ॥ सनेहवा
लीदुष्टात्मानतेपश्याम्यहंभयम् ॥ १६ ॥ अहोशाखामृगत्वंतेव्यक्तमेवप्लवंगम ॥ लघुचित्ततयात्मानंनस्थापयसियो
मतौ ॥ १७ ॥ बुद्धिविज्ञानसंपन्नइंगितैःसर्वमाचर ॥ नह्यबुद्धिंगतोराजासर्वभूतानिशास्तिहि ॥ १८ ॥ सुग्रीवस्तुशुभं
वाक्यंश्रुत्वासर्वंहनूमतः ॥ ततःशुभतरंवाक्यंहनूमंतमुवाचह ॥ १९ ॥ दीर्घबाहूविशालाक्षौशरचापासिधारिणौ ॥
कस्यनस्याद्भयंदृष्ट्वाह्येतौसुरसुतोपमौ ॥ २० ॥ वालिप्रणिहितावेवशंकेऽहंपुरुषोत्तमौ ॥ राजानोबहुमित्राश्चविश्वा
सोनात्रहिक्षमः ॥ २१ ॥ अरयश्चमनुष्येणविज्ञेयाश्छन्नचारिणः ॥ विश्वस्तानामविश्वस्ताश्छिद्रेषुप्रहरंत्यपि ॥ २२ ॥

शुभकारी वचन सुनकर उनसे अति हितकारी वचन कहते हुये॥१९॥हनुमन्! दीर्घबाहु युक्त बडी२आंखोंवाले शर चाप खड्ग धारण किये हुये शूर पुत्र सम इन दोनों वीरोंको देखकर किसको भय उपस्थित नहीं होगा॥२०॥हम जानते हैं कि यह दो पुरुषश्रेष्ठ वालिके ही भेजे हुये यहां आये हैं क्योंकि राजा लोगोंके बहुत सारे मित्र हुआ करते हैं इस कारण इसविषयमें विश्वास न करना चाहिये॥२१॥मनुष्योंको अवश्य जानना कर्तव्य है, कि शत्रु लोग गुप्त भेदसे घूमा करतेहैं अविश्वासी वह शत्रुगण विश्वासी पुरुषोंको समय पातेही मार डालतेहैं ॥ २२ ॥

प्राणप्यारी जानकीको विना देखे इन सुन्दर वृक्षोंकें देखनेंसे ॥ ३३ ॥ यह काम बढताही जायगा, तिसपर विना देखे जानकीके यह हमको शोक ही उपजाता है ॥ ३४ ॥ यह वसंतकाल देखते ही देखते ठंडी पवन चलाय स्वेदको बंद करताहै और मृग शावकनयनी श्रीजानकीजीकी चिन्ता और शोकके मारे व्याकुल कराय हमको ॥ ३५ ॥ बहुत ही संतापित करता है और ऐसेही चित्ररथ नामक वनका यह महा क्रूर पवन भी हमको तपाता है । और यह मोर नाचते हुये इधर उधर शोभायमान होरहे हैं ॥ ३६ ॥ मानों स्फटिक मणियोंके झरोखोंमें बैठे हुये अपने पंख पवनसे हिला झुला रहेहैं यह सब अपनी २ मोरनियोंके साथ उन्मत्त हो रहेहैं ॥ ३७ ॥ यह सब मोर कामदेवसे व्याकुल हुए हमको अधिक

ममायमात्मप्रभवोभूयस्त्वमुपयास्यति ॥ अदृश्यमानावैदेहीशोकंवर्धयतीहमे ॥ ३४ ॥ दृश्यमानोवसंतश्चस्वेदसंसर्गदूषकः ॥ मांहिसामृगशावाक्षीचिंताशोकबलात्कृतम् ॥ ३५ ॥ संतापयतिसौमित्रेक्रूरश्चैत्रवनानिलः ॥ अमीमयूराःशोभंतेप्रनृत्यंतस्ततस्ततः ॥ ३६ ॥ स्वैःपक्षैःपवनोद्धूतैर्गवाक्षैःस्फाटिकैरिव ॥ शिखिनीभिःपरिवृतास्तएतेमदमूर्छिताः ॥ ३७ ॥ मन्मथाभिपरीतस्यममन्मथवर्धनाः ॥ पश्यलक्ष्मणनृत्यंतंमयूरमुपनृत्यति ॥ ३८ ॥ शिखिनीमन्मथार्तैषाभर्तारंगिरिसानुनि ॥ तामेवमनसारामांमयूरोप्यनुधावति ॥ ३९ ॥ वितत्यरुचिरौपक्षौरुतैरुपहसन्निव ॥ मयूरस्यवनेनूनंरक्षसानहृताप्रिया ॥ ४० ॥ तस्मान्नृत्यतिरम्येषुवनेषुसहकांतया ॥ ममत्वयंविनावासःपुष्पमासेसुदुःसहः ॥ ४१ ॥

काम बढाते हैं हे लक्ष्मण! देखो इस नृत्य करते हुये मोरके पास ॥ ३८ ॥ कामसे व्याकुल हुई मुरैलिया कैसी पर्वतों परके कंगूरों पर नाच रहीहैं । उन्हीं मोरनियोंके निकट मनसे मोरभी दौडताहै ॥ ३९ ॥ फिर पंख फैलाय खडा होजाताहै. कुछ विलम्बमें अपनी बोली बोल मानों उस मोरनीको हँसाताहै । हम जानते हैं कि जिस वनमें हमारी प्राणजीवनी हरीगई हैं, उस वनमें मोर नहींथे ॥ ४० ॥ इसीकारण यह मोर अपनी स्त्रीके साथ इस रमणीक वनमें नाचताहै, यदि इसके सन्मुख जानकीजी हरी जातीं तौ शोकके कारण इसको नाचनेंकी याद नरहती । हेलक्ष्मण ! विनाजा

शठ बुद्धिका आश्रय करके कपिरूप छोड भिक्षुकका रूप धारण किया ॥ २ ॥ तिसके पीछे हनुमानजी मनोहर और विनीत होकर उनके निकट जा प्रणाम करके उन दोनों भ्राताओंसे बोले ॥ ३ ॥ प्रथमतो उन दोनों वीरोंकी बडी प्रशंसाकी, और फिर वानरोत्तम हनुमानजीनें विधि विधानसे उनकी पूजा भी की ॥ ४ ॥ फिर मृदुभावसे उन सत्य पराक्रम दोनो वीरोंसे कहनें लगे कि आप राजर्षि सदृश, और देव तुल्य व्रतधारी तपस्वी और ब्रह्मचारियोंमें अग्रणीय ॥ ५ ॥ इन सब मृग और दूसरे बनचारियोंको भयभीत करते हुये किस कारणसे यहां पर आये हैं ॥ ६ ॥ आप लोग पंपाके तीर वाले वृक्षोंको चारों ओरसे देखकर इस पुण्य जल वाली नदीकी शोभाको बढा रहे हो॥ ७ ॥ आप लोग कृतकार्य, धैर्यवान्

ततः सहनुमान्वाचाश्लक्ष्णयासुमनोज्ञया ॥ विनीतवदुपागम्यराघवौप्रणिपत्यच ॥ ३ ॥ आबभाषेचतौवीरौयथाव
त्प्रशशंसच ॥ संपूज्यविधिवद्वीरौहनुमान्वानरोत्तमः ॥ ४ ॥ उवाचकामतोवाक्यंमृदुसत्यपराक्रमौ ॥ राजर्षिदेवप्र
तिमौतापसौसंशितव्रतौ ॥ ५ ॥ देशंकथमिमंप्राप्तौभवंतौवरवर्णिनौ ॥ त्रासयंतौमृगगणानन्यांश्चवनचारिणः ॥ ६ ॥
पंपातीररुहान्वृक्षान्वीक्षमाणौसमंततः ॥ इमांनदींशुभजलांशोभयंतौतरस्विनौ ॥ ७ ॥ धैर्यवंतौसुवर्णाभौकौयुवांची
रवाससौ ॥ निःश्वसंतौवरभुजौपीडयंताविमाः प्रजाः ॥ ८ ॥ सिंहविप्रेक्षितौवीरौमहाबलपराक्रमौ ॥ चक्रचापनिभेचा
पेगृहीत्वाशत्रुनाशनौ ॥ ९ ॥ श्रीमंतौरूपसंपन्नौवृषभश्रेष्ठविक्रमौ ॥ हस्तिहस्तोपमभुजौद्युतिमंतौनरर्षभौ ॥ १० ॥
प्रभयापर्वतेंद्रोऽसौयुवयोरवभासितः ॥ राज्यार्हावमरप्रख्यौकथंदेशमिहागतौ ॥ ११ ॥

सुवर्ण कांति चीर पहरे बडी बाहों वाले और ऊंधी श्वासें लेते हुये कौन हैं जो अपना अपूर्व रूप दिखा इन वनवासिनि प्रजा ओंको पीडा देते हो॥८॥ आपका देखना सिंहकी समान है आप महाबलवान् और महापराक्रम युक्त हैं; और आप दोनों जनोंके इन्द्र धनुषकी समान धनुष देखकर ज्ञात होता है कि आप देखतेही शत्रुओंका नाश करेंदेंगे॥ ९ ॥हम देखते हैं कि आप श्रीमान् रूपसम्पन्न वृषभ तुल्य पराक्रम करनेंवाले हाथीकी शुंड समान चढा उतारवाली लंबी भुजायें धारण किये द्युतिमान् नरश्रेष्ठ ॥१०॥ आपदोनों जनोंकी प्रभासे यह पर्वत प्रकाशित हो रहाहै और दोनोंही

वसंत कालको प्राप्त होकर हमारे विरहमें निश्चयही प्राण त्यागदेंगी इसमें कोई संदेह नहींहै ॥५०॥हमनें बुद्धिसे, हृदयसे निश्चय कियाहै कि हमारे विरहमें वह साध्वी पतिव्रता सीताजी कभी जीवित नहीं रहसकैंगी॥५१॥जानकीजीके हृदयका भाव निश्चयही हमारे प्रति स्थापितहै,और हमारा भावभी निश्चयही सीताजीके प्रति लगाहुआहै ॥ ५२ ॥ यह पुष्प गंध वहन करनेवाला सुशीतल व स्पर्शसे सुख उपजानेंवाला वायु स्त्रीकी चिन्ता करते हुये हमारे वास्ते अग्निकी समान उष्ण लगताहै ॥ ५३ ॥ पहले सीताजीके साथ रहते जिसको सदाही हम परम मित्र समझतेथे, इस समय सीताजीके विना वही समीर हमको शोक उत्पन्न करानेंवाला होरहाहै ॥ ५४ ॥ सीताजीके संयोग समयमें इस काक पक्षीनें आकाशमें

दृढंहिहृदयेबुद्धिर्ममसंपरिवर्तते ॥ नालंवर्तयितुंसीतासाध्वीमद्विरहंगता ॥ ५१ ॥ मयिभावोहिवैदेह्यास्तत्त्वतोविनिवे
शितः ॥ ममापिभावःसीतायांसर्वथाविनिवेशितः ॥ ५२ ॥ एषपुष्पवहोवायुःसुखस्पर्शोहिमावहः ॥ तांविचिंतयतःकां
तांपावकप्रतिमोमम ॥ ५३ ॥ सदासुखमहंमन्येयंपुरासहसीतया ॥ मारुतःसविनासीतांशोकसंजननोमम ॥ ५४ ॥
तांविनाथविहंगोऽसौपक्षीप्रणदितस्तदा ॥ वायसःपादपगतःप्रहृष्टमभिकूजति ॥ ५५ ॥ एषवैतत्रवैदेह्याविहगःप्रति
हारकः ॥ पक्षीमांतुविशालाक्ष्याःसमीपमुपनेष्यति॥५६॥पश्यलक्ष्मणसंनादंवनेमदविवर्धनम् ॥ पुष्पिताग्रेषुवृक्षेषुद्वि
जानामवकूजताम् ॥ ५७॥ विक्षिप्तांपवनेनैतामसौतिलकमंजरीम् ॥ षट्पदःसहसाभ्येतिमदोद्धूतामिवप्रियाम् ॥५८॥

उडकर अपनी कठोर बोली बोल जानकीजीके वियोगकी सूचना दीथी अब इस समय जबकि उनका वियोग होरहाहै, तब यह पक्षी प्रसन्नतासे वृक्ष पर बैठा फिर उनके मिलनेंको जतारहाहै ॥ ५५॥ इसलिये इस विहंगमनेंही सीताजीको हरण कर लियाहै, और फिर यही पक्षी हमारे साथ उन विशालनयना जानकीजीका मिलन करादेगा ॥ ५६ ॥ हे लक्ष्मण! यह सुनो, फूले हुये वृक्षकी फुलगीपर बैठे कूजन करके यह पक्षिगण मदनानंद बढानेंवाला मधुर शब्द कर रहे हैं ॥ ५७ ॥ देखो यह सब भ्रमर तिलक मंजरीके ऊपर बैठ परम सुखसे मधु पीरहेथे, सो अचानक पवनसे ताडित होकर फिर वेग सहित तिलक मंजरीके निकट जा रहेहैं जैसे कोई मदसे कंपायमान अपनी प्रियाके निकट पहुँचता है ॥ ५८ ॥

रहेहैं, परन्तु आपलोग हमसे क्यों नहीं भाषण करते? ॥ १९ ॥ हे वीरो ! इस समय हमारा आप परिचय श्रवण करें; सुग्रीव नामक एक धर्मात्मा श्रेष्ठ वानरहै वह अपने बडे भाईसे निकाले जाकर त्रासित व दुःखितहोकर इस समस्त पृथ्वीपर भ्रमण किया करतेहैं ॥ २० ॥हम हनुमान नाम वानर उन वानरराज महात्मा सुग्रीवजीके भेजे हुए आपके पासआये हैं॥ २१ ॥ उन धर्मात्मा सुग्रीवजीनें आपके सहित मित्रता करनेंकी इच्छाकीहै, हम पवनके पुत्र उन सुग्रीवजीके मंत्री और साथीहैं ॥ २२ ॥ हम कामचारी और इच्छानुसार चलनेंवाले सुग्रीवजीकी प्रियका मनासे भिक्षुकके रूपसे गुप्त वेषमें आपके निकट आयेहैं ॥ २३ ॥ वचनकेजाननेंवाले और बोलनेमें चतुर हनुमानजी श्रीराम लक्ष्मणजी दोनों

सुग्रीवोनामधर्मात्माकश्चिद्वानरपुंगवः ॥वीरोविनिकृतोभ्रात्राजगद्भ्रमतिदुःखितः॥२०॥प्राप्तोऽहंप्रेपितस्तेनसुग्रीवेणमहात्मना ॥ राज्ञावानरमुख्यानांहनुमान्नामवानरः ॥ २१ ॥ युवाभ्यांसहिधर्मात्मासुग्रीवःसख्यमिच्छति ॥ तस्यमांसचिवंवित्तंवानरंपवनात्मजम् ॥ २२ ॥ भिक्षुरूपप्रतिच्छन्नंसुग्रीवप्रियकारणात् ॥ ऋष्यमूकादिहप्राप्तंकामदंकामचारिणम् ॥ २३ ॥ एवमुक्त्वातुहनुमांस्तौवीरौरामलक्ष्मणौ ॥ वाक्यज्ञोवाक्यकुशलःपुनर्नोवाचकिंचन ॥ २४ ॥ एतच्छ्रुत्वावचस्तस्यरामोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ प्रहृष्टवदनःश्रीमान्भ्रातरंपार्श्वतःस्थितम् ॥ २५ ॥ सचिवोऽयंकपींद्रस्यसुग्रीवस्यमहात्मनः ॥ तमेवकांक्षमाणस्यममांतिकमिहागतः ॥ २६ ॥ तमभ्यभाषसौमित्रेसुग्रीवसचिवंकपिम् ॥ वाक्यज्ञंमधुरैर्वाक्यैःस्नेहयुक्तमरिंदमम् ॥ २७ ॥ नानृग्वेदविनीतस्यनायजुर्वेदधारिणः ॥ नासामवेदविदुषःशक्यमेवंविभाषितुम् ॥ २८ ॥

वीरोंसे ऐसा कहकर फिर कुछ न बोले ॥ २४ ॥ श्रीमान् रामचंद्रजी उनकेयह वचन सुन प्रफुल्ल वदन हुये और बगलमें खडेहुये अपने भ्राता लक्ष्मणजीसे बोले ॥ २५ ॥ कि यह हनुमान महात्मा कपिराज सुग्रीवजीकेमंत्रीहैं, व उन्हींका प्रिय करनेंकी कामनासे यह हमारे पास आयेहैं ॥२६॥ हे लक्ष्मण! सुग्रीवजीके सचिव वाक्यविशारद शत्रुओंका नाश करनें वाले इन कपिश्रेष्ठसे तुम मधुर वचनोंके साथ वार्त्ताकरो ॥ २७ ॥ तुम यह भी जानलो कि जिस पुरुषनें ऋग्वेद नहीं पढा यजुर्वेद अथवा सामवेद नहींपढा वह पुरुष कभी ऐसे वचन कहनेंमें समर्थ नहीं होसकता कि जैसे वचन

अहो! कामकी कैसी कुटिलता है! देखो जिनके साथ वियोग होगया और जिनका मिलना अति दुर्लभ है सो यह कुटिलता, उनही कल्याणके वचन कहनेंवाली कल्याणी प्रियाकी बार२याद दिलाती है॥६८॥अहो! हम इस कठिन मदनकोभी धारण करसक्ते! किन्तु यह फूले हुये वृक्ष और वसंत बहुत पीडित करता है, इसलिये हम बहुतही सामर्थहीन हो गये हैं ॥ ६९ ॥ उन जानकीजीके साथ रहकर जिनको हम परम रमणीय समझतेथे, उस समय सीताके विरहमें वही हमको अत्यन्त अप्रिय लगते हैं ॥ ७० ॥ यह कमल दल यद्यपि कामके जगानेंवालेभी हैं तथापि सीताजीके नेत्रोंकी समता, धारण करते हैं, यह समझ कर हमारे नेत्र उनके दर्शनमें मन लगाये हैं ॥ ७१ ॥ दूसरे वृक्षोंके मध्यमें हो बाहर निकलकर कमलकेश

अहोकामस्यवामत्वंयोगतामपिदुर्लभाम् ॥ स्मारयिष्यतिकल्याणींकल्याणतरवादिनीम् ॥ ६८ ॥ शक्योधारयितुंकामोभवेदभ्यागतोमया ॥ यदिभूयोवसंतोमांनहन्यात्पुष्पितद्रुमः ॥ ६९ ॥ यानिस्मरमणीयानितयासहभवंतिमे ॥ तान्येवारमणीयानिजायंतेमेतयाविना ॥ ७० ॥ पद्मकोशपलाशानिद्रष्टुंदृष्टिर्हिमन्यते ॥ सीतायानेत्रकोशाभ्यांसदृशानीतिलक्ष्मण॥७१॥पद्मकेसरसंसृष्टोवृक्षांतरविनिःसृतः ॥ निःश्वासइवसीतायावातिवायुर्मनोहरः॥७२॥ सौमित्रेपश्यपंपायादक्षिणेगिरिसानुषु ॥ पुष्पितांकर्णिकारस्ययष्टिंपरमशोभिताम् ॥ ७३ ॥ अधिकंशैलराजोऽयंधातुभिस्तुविभूषितः ॥ विचित्रंसृजतेरेणुंवायुवेगविघट्टितम् ॥ ७४ ॥ गिरिप्रस्थास्तुसौमित्रेसर्वतःसंप्रपुष्पितैः ॥ निष्पत्रैःसर्वतोरम्यैःप्रदीप्ताइवकिंशुकैः ॥ ७५ ॥ पंपातीररुहाश्चेमेसंसिक्तामधुगंधिनः ॥ मालतीमल्लिकापद्मकरवीराश्चपुष्पिताः ॥ ७६ ॥

रको छू करके सीताजीके श्वास पवनके समान यह मनोरम समीर वह रही है ॥ ७२ ॥ हे लक्ष्मण! पंपाकी दक्षिण तरफको देखोकि गिरिशृङ्गोंके ऊपर कठ चंपाके वृक्षोंकी फूली हुई शोभायमान शाखायें कैसी मनोहर दीख रहीं हैं ॥ ७३ ॥ यह पर्वतराज विविध भांतिकी गेरू आदि धातुओं से विभूषित होकर वायु वेगसे उठाहुआ विचित्र रेणुजाल विस्तार कर रहा है ॥ ७४ ॥ गिरिकी सब स्थलियां पल्लवहीन सब भांतिसे खिले हुये टेसूके वृक्षोंसे प्रदीप्त अग्निकी समान शोभित होरही हैं ॥ ७५ ॥ पंपाके तीर वाले मधुगन्धि वृक्ष इसके जलसे सींचे जाकर सदा बढते रहते हैं. इस

हम लोग जानते हैं और उन्ही कपिश्रेष्ठ सुग्रीवजीको हम खोजते हैं ॥ ३७ ॥ हे वानरश्रेष्ठ! सुग्रीवजी जो कुछ कहैंगे हम तुम्हारे वचनोंका गौरव करके वैसेही करैंगे इसमें कुछभी सन्देह नहीं है ॥ ३८ ॥ इसके पीछे कपिश्रेष्ठ पवनपुत्र हनुमानजी लक्ष्मणजीके यह वचन सुन करके अत्यन्त हार्षित हुये, और जयकी सिद्धिके विपयमें मनको समाधानकर सुग्रीव और श्रीरामचन्द्रजीमें मित्रता करानेंकी इच्छा करते हुये ॥ ३९ ॥ इत्यार्षे श्री० वा० आ० किष्किन्धाकांडे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥ हनुमान्जी श्रीलक्ष्मणजीके वह मधुर भावभरे वचन श्रवण करकै अत्यन्त हर्षित चित्त हुये और मनही मनमें इन्होंने सुग्रीवजीके कार्यकीसिद्धि जानी ॥ १ ॥ और विचारा कि महात्मा सुग्रीवजीको राज्य प्राप्त

यथाब्रवीषिहनुमन्सुग्रीववचनादिह ॥ तत्तथाहिकरिष्यावोवचनात्तवसत्तम ॥ ३८ ॥ तत्तस्यवाक्यंनिपुणंनिशम्य प्रहृष्टरूपःपवनात्मजःकपिः ॥ मनःसमाधायजयोपपत्तौसख्यंतदाकर्तुमियेषताभ्याम् ॥ ३९ ॥ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेतृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ततःप्रहृष्टोहनुमान्कृत्य वानितितद्वचः ॥ श्रुत्वामधुरभावंचसुग्रीवंमनसागतः ॥ १ ॥ भाव्योराज्यागमस्तस्यसुग्रीवस्यमहात्मनः ॥ यदयं कृत्यवान्प्राप्तःकृत्यंचैतदुपागतम् ॥ २ ॥ ततःपरमसंहृष्टोहनूमान्प्लवगोत्तमः ॥ प्रत्युवाचततोवाक्यंरामंवाक्यवि शारदम् ॥ ३ ॥ किमर्थंचवनंघोरंपंपाकाननमंडितम् ॥ आगतःसानुजोदुर्गंनानाव्यालमृगायुतम् ॥ ४ ॥ तस्य तद्वचनंश्रुत्वालक्ष्मणोरामचोदितः ॥ आचचक्षेमहात्मानंरामंदशरथात्मजम् ॥ ५ ॥ राजादशरथोनामद्युतिमान्ध र्मवत्सलः ॥ चातुर्वर्ण्यंस्वधर्मेणनित्यमेवाभिपालयन् ॥ ६ ॥

होनेंकी विलक्षण संभावना है क्योंकि यह कृतकार्य दोनों वीर अचानकयहां पर आय पहुंचे हैं, और इनके साथ मित्रताई होनेंकीभी पूरीरआशा है अनन्तर वानरोंमें श्रेष्ठ हनुमानजी अत्यन्त हृष्ट होकर वचन बोलनेंमें कुशल श्रीरामचन्द्रजीसे कहनें लगे॥२॥ ३ ॥ कि आप अपनें छोटे भाईके साथ पंपाके कानन शोभित, दुर्गम अनेक प्रकारके हिंसक जन्तु ओंसे परिपूर्ण घोर वनमें किस कारणसे आये हैं? ॥ ४ ॥ हनुमान्जीके यह वच न श्रवण करकै, श्रीलक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीके आदेशसे पवनपुत्रको सब बतानेंलगे॥५॥कि अयोध्यानगरमें दशरथजीनामक धर्मवत्सल द्युतिमान ए

ताहै, पंपाके किनारेवाले किसी २ वृक्षकी शाखा अधिक पुष्पयुक्त होनेंके कारण सुशोभित हो सुगन्धित होरही हैं ॥ ८६ ॥ और कोई कुछे क निकली हुई कलियोंकी मंजरीसे श्याम वर्णकी समान शोभा पारहे हैं यह फूल मीठेहैं, यह स्वाद युक्त हैं, यह फूल खिलाहुआहै ॥ ८७ ॥ इस प्रकार समझ और अनुरागी होकर भ्रमर गण उड २ कर पुष्पों पर बैठते हैं और रसलेकर उडके और फूलों पर बैठ जातेहैं, इसप्रकारसे मधुके लोभी मधुकर पंपाके तीर वाले वृक्षोंपर बैठते उठतेहैं ॥ ८८ ॥ देखो तो इस भूमिपर कैसे फूल बिछेहैं, इस कारण यह सुख सहित शयन करनेंके योग्यहै यह पुष्प अपने आप गिरेहैं, किसीनें तोडकर नहीं गिराये, परन्तु ऐसे गिरेहैं, मानों शयन करनेंके लिये सेज बिछाई गई है ॥ ८९ ॥ इस

केचिन्मुकुलसंवीताःश्यामवर्णाइवाबभुः ॥इदंमृष्टमिदंस्वादुप्रफुल्लमिदमित्यपि ॥ ८७ ॥ रागरक्तोमधुकरःकुसुमेष्वेवलीयते ॥ निलीयपुनरुत्पत्यसहसान्यत्रगच्छति ॥ मधुलुब्धोमधुकरःपंपातीरद्रुमेष्वसौ ॥ ८८ ॥ इयंकुसुमसंघातैरुपस्तीर्णासुखाकृता ॥ स्वयंनिपतितैर्भूमिःशयनप्रस्तरैरिव ॥ ८९ ॥ विविधाविविधैःपुष्पैस्तैरेवनगसानुषु ॥ विस्तीर्णाःपीतरक्ताभाःसौमित्रेप्रस्तराःकृताः ॥ ९० ॥ हिमांतेपश्यसौमित्रेवृक्षाणांपुष्पसंभवम् ॥ पुष्पमासेहितरवःसंघर्षादिवपुष्पिताः ॥ ९१ ॥ आह्वयंतइवान्योन्यंनगाःषट्पदनादिताः ॥ कुसुमोत्तंसविटपाःशोभंतेबहुलक्ष्मण ॥९२॥ एषकारंडवःपक्षीविगाह्यसलिलंशुभम् ॥ रमतेकांतयासार्धकाममुद्दीपयन्निव ॥ ९३ ॥ मंदाकिन्यास्तुयदिदंरूपमेतन्मनोहरम् ॥ स्थानेजगतिविख्याताग्गुणास्तस्यामनोरमाः ॥ ९४ ॥

पर्वतके सब कँगूरोंपर पीले लाल इत्यादि विविध भांतिके पुष्प समूह द्वारा विविध भांतिकी चादरसी बिछरही हैं ॥ ९० ॥ हे लक्ष्मण! हिम के अंत वसंतकालमें वृक्ष गणोंकी पुष्पोत्पत्ति देखो! मानों सब वृक्ष एक दूसरेको पुकार २ पुष्प उत्पन्न कररहे हैं ॥ ९१ ॥ वृक्ष समूहोंकी फूलभरी शाखायें भौंरोंकी गुंजारसे परस्पर पुकार २ मानों शोभा विस्तार कररही हैं ॥ ९२ ॥ देखो लक्ष्मण! यह कारण्डव पक्षी इस विमल जलमें डुबकी मार कामदेवको जगाताही हुआ मानों अपनी स्त्रीके सहित रमण कररहाहै ॥ ९३ ॥ मन्दाकिनीकी समान पम्पाका यह रूप और मनको रमानें

जीका और उनकी सामर्थ्यका वर्णनकर हमसे कहा कि ॥ १५ ॥ वह वानरनाथ महावीर्यवान सुग्रीवजीही तुम्हारी भार्याके हरण करनेंवालेको जानते होंगे वह कवन्ध राक्षस दनु हमसे ऐसा कह दिव्य रूपसे दीप्तिमानहो स्वर्गको चला गया ॥ १६॥ हे हनुमन्! इस प्रकार तुम्हारे पूछनेंसे जो कुछ वृत्तान्तथा सो सब यथार्थही कहदिया, अब हमनें व श्रीरामचंद्रजीनें सुग्रीवजीकी शरण ग्रहणकी ॥ १७ ॥ जो श्रीरामचंद्रजी पहले बहुतसा धनादि दान करके बहुतसे यशको प्राप्त हुएहैं जो पहले लोकोंके नाथथे वही इस समय सुग्रीवजीका आश्रय ग्रहण करतेहैं ॥ १८ ॥ सीता जिनकी पुत्रवधू और जोकि लोकोंके शरण देनेंवाले और धर्मवत्सलथे उन्हीं लोक गणोंका आश्रय देनेवाले दशरथजीके पुत्र श्रीरामचंद्रजी सुग्रीवजीकी

सज्ञास्यतिमहावीर्यस्तवभार्यापहारिणम् ॥ एवमुक्त्वादनुःस्वर्गंभ्राजमानोदिवंगतः ॥ १६ ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातंयाथातथ्येनपृच्छतः ॥ अहंचैवचरामश्चसुग्रीवंशरणंगतौ ॥ १७ ॥ एषदत्वाचवित्तानिप्राप्यचानुत्तमंयशः ॥ लोकनाथःपुराभूत्वासुग्रीवंनाथमिच्छति ॥ १८ ॥ सीतायस्यस्नुषाचासीच्छरण्योधर्मवत्सलः ॥ तस्यपुत्रःशरण्यस्यसुग्रीवंशरणंगतः ॥ १९ ॥ सर्वलोकस्यधर्मात्माशरण्यःशरणंपुरा ॥ गुरुर्मेराघवःसोऽयंसुग्रीवंशरणंगतः ॥ २० ॥ यस्यप्रसादेसततंप्रसीदेयुरिमाःप्रजाः॥सरामोवानरेंद्रस्यप्रसादमभिकांक्षते॥२१॥येनसर्वगुणोपेताःपृथिव्यांसर्वपार्थिवाः ॥ मानिताःसततंराज्ञासदादशरथेन वै ॥ २२ ॥ तस्यायंपूर्वजःपुत्रस्त्रिषुलोकेषुविश्रुतः ॥ सुग्रीवंवानरेंद्रंतुरामःशरणमागतः ॥ २३ ॥ शोकाभिभूतेरामेतुशोकार्तेशरणंगते ॥ कर्तुमर्हतिसुग्रीवःप्रसादंसहयूथपैः ॥ २४ ॥

शरण लेतेहैं ॥ १९ ॥ जो धर्मात्मा पहले लोकोंके आश्रय देनेंवाले और शरण देनेंवालेथे सो वही श्रीरामचंद्रजी अब सुग्रीवजीकी शरण लेतेहैं ॥ २० ॥ जिनकी प्रसन्नतासे समस्त लोक प्रसन्न होजातेथे, वही श्रीरामचंद्रजी अब वानरराज सुग्रीवजीकी शरण ग्रहण करतेहैं ॥ २१ ॥ पूर्व समयमें राजा दशरथजीनें जिन गुण युक्त पृथ्वीनाथोंका सन्मान कियाथा ॥ २२ ॥ उनकेही सर्व लोकमें विख्यात ज्येष्ठ पुत्र श्रीरामचंद्रजी वानरेन्द्र सुग्रीवजीकी शरण लेतेहैं ॥ २३ ॥ यह श्रीरामचंद्रजी इस समय अपनी प्रियाके शोकसे व्याकुल होकर सुग्रीवजीकी शरणमें आयेहैं; इस

दर्शन पावें तवही हमको शान्ति और सुखकी प्राप्तिहोसकतीहै ॥ १०२ ॥ हे लक्ष्मण ! यदि वह सुमध्यमा पतिव्रता जानकीजी हमारे साथ इस पंपाकी पवन सेवन करें तवही हम जीवन धारण करनेंको समर्थ होवें ॥ १०३ ॥ हे लक्ष्मण ! कमलकी सुगन्धि वहन करनेंवाले, शोक विनाशन इसपंपाके पुण्यवान पवनकू धन्य पुरुषही सेवाकरते है ॥ १०४ ॥ वह श्यामा, कमलनयनी जनककुमारी सीताजी हमारे विरहमें अवश होकर प्राण धारण करनेंमें कभी समर्थ नहींहोंगी ॥ १०५ ॥ हाय! वह धर्मशील, सत्यवादी, महाराज जनकजी जव सभाके वीचमें हमसे सीताजीकी कुशल पूछेंगे तव हम उनसे क्या कहेंगे ॥ १०६ ॥ हम अतिशय मंदभागीहैं, पिताजीने हमको वनमें पठाया तव सीताजी

जीवेयंखलुसौमित्रेमयासहसुमध्यमा ॥ सेवेतयदिवैदेहीपंपायाःपवनंशुभम् ॥ ३ ॥ पद्मसौगंधिकवहंशिवंशोकविनाशनम् ॥ धन्यालक्ष्मणसेवंतेपंपायावनमारुतम् ॥ ४ ॥ श्यामापद्मपलाशाक्षीप्रियाविरहितामया ॥ कथंधारयति प्राणान्विवशाजनकात्मजा ॥५॥ किंनुवक्ष्यामिधर्मज्ञंराजानंसत्यवादिनम् ॥ जनकंपृष्टसीतंतंकुशलंजनसंसदि॥६॥ यामामनुगतामंदंपित्राप्रस्थापितंवनम् ॥ सीताधर्मसमास्थायक्वनुसावर्ततेप्रिया ॥ ७ ॥ तयाविहीनःकृपणःकथंलक्ष्मणधारये ॥ यामामनुगताराज्याद्भ्रष्टंविहतचेतसम् ॥ ८ ॥ तच्चार्वंचितपद्माक्षंसुगंधिशुभमव्रणम् ॥ अपश्यतोमुखंतस्याःसीदतीवमतिर्मम ॥ ९ ॥ स्मितहास्यांतरयुतंगुणवन्मधुरंहितम् ॥ वैदेह्यावाक्यमतुलंकदाश्रोष्यामिलक्ष्मण ॥ ११० ॥ प्राप्यदुःखंवनेश्याममांमन्मथविकर्शितम् ॥ नष्टदुःखेवहृष्टेवसाध्वीसाध्वभ्यभाषत ॥ ११ ॥

हमारे साथ २ आई । हा! इस प्रकारके पतिव्रत धर्ममें टिकी हुई सीताजी इस समय कहांहै ॥ १०७ ॥ हाय लक्ष्मण ! हम राज्यभ्रष्ट और हतबुद्धि होकर वनको आये, सो उस समय जो जानकीजी हमारे साथ२ आईंथीं उन सीताजीके विना इस समय दीन होकर हम किस प्रकारसे प्राण धारण करनेको समर्थ हों ॥ १०८ ॥ उन सीताजीका कमल समान मनोहर सीतला आदिके दागोंसे रहित सुगन्धि मुख कमल न देख पाकर हमारा मन मोहके वशहो व्याकुल हुआ जाताहै ॥ १०९ ॥ हे लक्ष्मण ! उन सीताजीका मुसकान सहित गुण युक्त सुमधुर हितकारी अतुल वचनामृत कभी हम फिरभी श्रवण कर सकेंगे? ॥ ११० ॥ वह सर्व सुलक्षणवाली श्यामा साध्वी वनमें हमको प्राप्त होकर दुःखके समयभी सुखिनी

तिसके पीछे महापंडित पवनपुत्र हनुमानूजी उन दोनों रघुवीरोंको लेकर सुग्रीवजीके पास चले॥३३॥ भिक्षुकका रूप छोड़ वानर रूप धारण कर अपनी पीठपर दोनों वीरोंको चढाय सुग्रीवजीके निकट गमन करनेंलगे ॥ ३४ ॥ वह विपुल यशस्वी कार्य वीर अमित पराक्रम और विमल चित्त पवन पुत्र कृतकृत्य की समान हर्षित हो श्रीराम लक्ष्मण सहित उस गिरिवर पर जापहुँचे॥३५॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० किष्किन्धाकांडे चतुर्थःसर्गः॥४॥ हनुमानजी ऋष्यमूक पर्वतपरसे मलयाचलपर जाय सुग्रीवजीसे श्रीराम लक्ष्मणजीकी आगमन वार्ता निवेदन करके कहनें लगे ॥ १ ॥

ततःससुमहाप्राज्ञोहनूमान्मारुतात्मजः ॥ जगामादायतौवीरौहरिराजायराघवौ ॥ ३३ ॥ भिक्षुरूपंपरित्यज्यवानरं रूपमास्थितः ॥ पृष्ठमारोप्यतौवीरौजगामकपिकुंजरः ॥ ३४ ॥ सतुविपुलयशाःकपिप्रवीरःपवनसुतःकृतकृत्य वत्प्रहृष्टः ॥ गिरिवरमुरुविक्रमःप्रयातःसशुभमतिःसहरामलक्ष्मणाभ्याम् ॥ ३५ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रा०वाल्मीकीये आदि० किष्किंधाकांडेचतुर्थःसर्गः ॥ ४ ॥ ऋष्यमूकात्तुहनुमान्गत्वातंमलयंगिरिम् ॥ आचचक्षेतदावीरौकपि राजायराघवौ ॥ १ ॥ अयंरामोमहाप्राज्ञसंप्राप्तोदृढविक्रम ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्रारामोऽयंसत्यविक्रमः ॥ २ ॥ इक्ष्वा कूणांकुलेजातोरामोदशरथात्मजः ॥ धर्मेनिगदितश्चैवपितुर्निर्देशकारकः॥३॥राजसूयाश्वमेधैश्चवह्निर्येनाभितर्पितः॥ दक्षिणाश्चतथोत्सृष्टागावःशतसहस्रशः ॥ ४ ॥ तपसासत्यवाक्येनवसुधातेनपालिता ॥ स्त्रीहेतोस्तस्यपुत्रोऽयंरा मोऽरण्यंसमागतः ॥ ५ ॥

कि यही महापंडित सत्य पराक्रम विपुल वीर्य शाली श्रीरामचंद्रजी हैं यह भ्राता लक्ष्मणजीके साथ इस स्थानमें आये हैं ॥ २ ॥ इन श्रीरामचं द्रजी ने इक्ष्वाकुओंके विशुद्ध वंशमें दशरथजीके औरससे जन्म ग्रहण कियाहै, यह अपनें धर्मको पालनेके लिये आज्ञा पाकर उसके पालन करनेंमें यत्नवान हुये हैं ॥ ३ ॥ उन नृपतिश्रेष्ठ दशरथजीनें राजसूय और अश्वमेधादि यज्ञोंमें अग्निको तृप्त किया, और उन यज्ञोंमें सैकडों हजारों गायें और मणियें दक्षिणादीं॥४॥उन्होंने तपस्या और सत्यवचनद्वारा पृथ्वीका पालन किया उनकी स्त्रीके लिये उनके पुत्र यह श्रीरामचं

हे आर्य! आप मनकी दीनताको छोडकर स्वस्थ हूजिये आप तो जानते ही हैं कि नष्ट कार्य विना यत्न किये कभी सिद्ध नहीं होता ॥ १२० ॥ हे आर्य! उत्साहही बलवान् है उत्साहसे अधिक श्रेष्ठबल और कुछभी नहीं है इससंसारमें उत्साहको कुछभी दुर्लभ नहीं है इसलिये उत्साहका अवश्य ही आसरा लेना चाहिये ॥ १२१ ॥ उत्साह युक्त पुरुषगण कभी नहीं घवडाते, इसलिये हम केवल उत्साहकाही अवलंबन करके जानकीजीको फिर प्राप्त करलेंगे। इसमें कुछभी संदेह नहींहै ॥ १२२ ॥ आप महात्मा और कृत्यविद्यहैं सो आप अपनें आत्म स्वरूप को क्यों नहीं जानते इसलिये शोकको त्याग करके यह कामी पुरुषोंकीसी वृत्ति छोड दीजिये ॥ १२३ ॥ जब श्रीलक्ष्मणजीनें इस प्रकारसे समझाया बुझाया तब

स्वास्थ्यंभद्रभजस्वार्यत्यज्यतांकृपणामतिः ॥ अर्थोहिनष्टकार्यार्थैरयत्नेनाधिगम्यते ॥ १२० ॥ उत्साहोबलवाना
र्यनास्त्युत्साहात्परंबलम् ॥ सोत्साहस्यहिलोकेषुनकिंचिदपिदुर्लभम् ॥ २१ ॥ उत्साहवंतःपुरुषानावसीदंतिकर्मसु ॥
उत्साहमात्रमाश्रित्यप्रतिलप्स्यामजानकीम् ॥ २२ ॥ त्यज्यतांकामवृत्तत्वंशोकंसंन्यस्यपृष्ठतः ॥ महात्मानंकृता
त्मानमात्मानंनावबुध्यसे ॥ २३ ॥ एवंसंबोधितस्तेनशोकोपहतचेतनः ॥ त्यज्यशोकंचमोहंचरामोधैर्यमुपागमत् ॥ २४ ॥
सोऽभ्यतिक्रामदव्यग्रस्तामचिंत्यपराक्रमः ॥ रामःपंपांसुरुचिरांरम्यांपारिप्लवद्रुमाम् ॥ २५ ॥ निरीक्षमाणःसह
सामहात्मासर्वंवनंनिर्झरकंदरंच ॥ उद्विग्नचेताःसहलक्ष्मणेनविचार्यदुःखोपहतःप्रतस्थे ॥ २६ ॥ तंमत्तमातंगविला
सगामीगच्छंतमव्यग्रमनामहात्मा ॥ सलक्ष्मणोराघवमिष्टचेष्टोररक्षधर्मेणबलेनचैव ॥ २७ ॥

शोकसे हतचित्त हुए श्रीरामचंद्रजीनें शोक और मोहको छोडकर धीर्य धारण किया ॥१२४॥ तब अचिन्त्य पराक्रम श्रीरामचंद्रजी अव्यग्र चित्तसे उस वृक्ष समूहसे परिपूर्ण मनोरम पंपासरको घूम २ देखने लगे ॥१२५॥ तिसके पीछे महात्मा श्रीरामचंद्रजी वनस्थली, झरने,व कंदराओंको अवलोकन करते२ लक्ष्मणजीके सहित उद्विग्नचित्तहो उन सबका विचार करते सीताजीके दुःखसे उपहत चित्तहो आगे चले ॥ १२६ ॥ सुस्थिर चित्त महात्मा मत्त मातंगकी समान चाल चलनेंवाले लक्ष्मणजी श्रीरामचंद्रजीका इष्ट विचार करते हुए धर्मके बलसे उनकी रक्षा करनेंलगे ॥१२७॥

पुष्पादि द्वारा उस दीप्तिमान अग्निकी पूजा कर॥१४॥श्रीरामचन्द्रजी और सुग्रीवजीके बीचमें उस अग्निको धर दिया तब वह दोनों जन दीप्तिमान अ ग्निकी प्रदक्षिणा करने लगे॥१५॥ तिसके पीछे श्रीरामचंद्रजी और सुग्रीवजी दोनों परम प्रसन्नतासे मित्र होगये फिर वानरेन्द्र व नरेन्द्र दोनों ॥ १६ ॥ परस्पर एक दूसरेको देखकर तृप्त नहीं होतेथे । "आप हमारे प्रियसखा व हृदयनिवासीहैं. हमारा व आपका सुख दुःख एकहै" सुग्रीवजीनें हर्षित होकर यह वचन श्रीरामचंद्रजीसे कह एक साखूकी शाखा जो अनेक पुष्प पत्रोंसे भूषितथी अपने हाथोंसें तोड॥१७॥१८॥भूमिपर बिछादी तब सुग्री वजी स्वयं श्रीरामचंद्रजीके साथ उसी शाखापर बैठे और लक्ष्मणजीके लिये हर्षित होकर पवनपुत्र हनुमान्जीनें ॥ १९ ॥ परम पुष्पित चंदन

तयोर्मध्येतुसुप्रीतोनिदधौसुसमाहितः॥ततोऽग्निंदीप्यमानंतौचक्रतुश्चप्रदक्षिणं॥१५॥सुग्रीवोराघवश्चैववयस्यत्वमुपाग
तौ ॥ ततःसुप्रीतमनसौतावुभौहरिराघवौ ॥ १६ ॥ अन्योन्यमभिवीक्षंतौनतृप्तिमभिजग्मतुः ॥ त्वंवयस्योसिहृद्योमे
एकंदुःखंसुखंचनौ॥ १७ ॥ सुग्रीवोराघवंवाक्यमित्युवाचप्रहृष्टवत् ॥ ततःसुपर्णबहुलांभङ्क्त्वाशाखांसुपुष्पिताम्॥१८॥
सालस्यास्तीर्यसुग्रीवोनिषसादसराघवः ॥ लक्ष्मणायाथसंहृष्टोहनुमान्मारुतात्मजः ॥ १९ ॥ शाखांचंदनवृक्षस्यददौ
परमपुष्पिताम् ॥ ततःप्रहृष्टःसुग्रीवःश्लक्ष्णंमधुरयागिरा ॥ २० ॥ प्रत्युवाचतदारामंहर्षव्याकुललोचनः ॥ अहंविनि
कृतोरामचरामीहभयार्दितः॥ २१ ॥हृतभार्योवनेत्रस्तोदुर्गमेतदुपाश्रितः ॥ सोहंत्रस्तोवनेभीतोवसाम्युद्भ्रांतचेतनः ॥
॥ २२ ॥ वालिनानिकृतोभ्रात्राकृतवैरश्चराघव ॥ वालिनोमेमहाभागभयार्तस्याभयंकुरु ॥ २३ ॥

वृक्षकी शाखा बैठनेंको दी तत्पश्चात् प्रसन्न हर्षितहो सुग्रीवजी मधुर वाणीसे ॥ २० ॥ प्रफुल्ललोचन श्रीरामचंद्रजीसे बोले. कि हे श्रीरामचंद्रजी! हम घरसे खदेडे जाकर भयभीतहो भ्रमणकिया करतेहैं ॥ २१ ॥ हमारी स्त्रीभी हरलीगईहै, इसी कारण हम त्रासित होकर इस दुर्गम वनमें वास करतेहैं, हमारा चित्त क्षणमात्रको अविचलित नहींहोता, रातदिन डरके मारे व्याकुल रहा करतेहैं ॥ २२ ॥ हे राघव ! वालिनें हमारे साथ वैर

व्यग्र चित्तसे ऊंच नीचका विचार कर सब वानरोंके साथ ॥ ४ ॥श्रीरामलक्ष्मण दोनों भाईयोंको देख बडी ऊबके साथ अपने मंत्रियोंसे कह नेलगे ॥ ५ ॥ यह दोनों वीर निश्चयही वालिके भेजे हुये चीर वसन पहर,वह रूप बना यहांपर आकर घूमरहेहैं ॥ ६ ॥ इसके पीछे सुग्रीवजीके साथी उन धनुषधारी श्रीराम लक्ष्मणजीको देखकर उस गिरिके तटसे और दूसरे पर्वतके शिखरपर चले गये ॥७॥ उन्मेंसे बडे२ वानरगण यूथ पतिके निकट जाकर उनको घेरकर खडे हुये ॥ ८ ॥ एक दूसरे का सुख दुःख भोग करने वाले वह वानर गण पर्वतके कँगूरोंको कंपित करते

ततःससचिवेभ्यस्तुसुग्रीवःप्लवगाधिपः ॥ शशंसपरमोद्विग्नःपश्यंस्तौरामलक्ष्मणौ ॥ ५ ॥ एतौवनमिदंदुर्गंवालिप्राणिहितौध्रुवम् ॥ छद्मनाचीरवसनौप्रचरंताविहागतौ ॥ ६ ॥ ततःसुग्रीवसचिवादृष्ट्वापरमधन्विनौ ॥ जग्मुर्गिरितटात्तस्मादन्यच्छिखरमुत्तमम् ॥ ७ ॥ तेक्षिप्रमभिगम्याथयूथपायूथपर्षभम् ॥ हरयोवानरश्रेष्ठंपरिवार्योपतस्थिरे ॥ ८ ॥ एवमेकायनगताःप्लवमानागिरेर्गिरिम् ॥ प्रकंपयंतोवेगेनगिरीणांशिखराणिच ॥ ९ ॥ ततःशाखामृगाःसर्वेप्लवमानामहाबलाः ॥ बभंजुश्चनगांस्तत्रपुष्पितान्दुर्गमाश्रितान् ॥ १० ॥ आप्लवंतोहरिवराःसर्वतस्तंमहागिरिम् ॥ मृगमार्जारशार्दूलांस्त्रासयंतोययुस्तदा ॥ ११ ॥ ततःसुग्रीवसचिवाःपर्वतेंद्रेसमाहिताः ॥ संगम्यकपिमुख्येनसर्वेप्रांजलयःस्थिताः ॥ १२ ॥ ततस्तुभयसंत्रस्तंवालिकिल्बिषशंकितम् ॥ उवाचहनुमान्वाक्यंसुग्रीवंवाक्यकोविदः ॥ १३ ॥

हुये येक शिखरसे दूसरे शिखर पर कूद फांद करनें लगे ॥ ९ ॥ तिसके पीछे वह महाबलवान छलाँग मार २ कर उस पर्वत परके जमे हुये फूले फले वृक्षोंको उखाडने लगे॥ १०॥अनन्तर वह बडे २ महाबलवानकपि गण उस महापर्वतके सब स्थानोंमें मृग, बिलाव,वाघादिकोंको त्रास उपजाकर कूद फांद कर चलनें लगे ॥ ११ ॥ फिर सुग्रीवजीके मुख्य २साथी जोकि मंत्रीथे वह कपिश्रेष्ठ सुग्रीवके सन्मुख जा हाथ जोडकर खडे होगये ॥ १२ ॥ तब वचन बोलनेमें चतुर हनुमान्जी वालिके डरसे अनिष्ट की शंका करते हुये भयभीत सुग्रीवजीसे बोले ॥ १३ ॥

हमारा शत्रु बडाभाई वालि जिस्से हमको मारनहींसके आप ऐसाउपाय कर दीजिये ॥ ३० ॥ इन श्रीरामचंद्र और सुग्रीवजीकी मित्रताई होनेंके समयमें जानकीके वालिके और राक्षसोंके, कमल, सुवर्ण और अग्निकी समान वांये नेत्र एक वारही फडकनें लगे ॥ ३१ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे पंचमःसर्गः ॥ ५ ॥ तिसके पीछे सुग्रीवजी प्रसन्न होकर फिर श्रीरामचंद्रजीसे कहनेंलगे कि हे श्रीरामचंद्रजी हम आपका वृत्तान्त जानतेहैं हमारे श्रेष्ठमंत्री और तुम्हारे सेवक ॥ १ ॥ हनुमान्जीनें हमें यह सब बतलादियाहे कि जिस निमित्त आप भ्राता लक्ष्मणजीके सहित वनमें आकर वास करतेहैं ॥ २ ॥आपकी भार्या मिथलेशकुमारी जानकीजीको राक्षस हरणकर

सीताकपींद्रक्षणदाचराणांराजीवहेमज्वलनोपमानि ॥ सुग्रीवरामप्रणयप्रसंगेवामानिनेत्राणिसमंस्फुरंति ॥ ३१ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेपंचमःसर्गः ॥ ५ ॥ ॥ छ ॥ ॥ पुनरेवाब्रवीत्प्रीतो राघवंरघुनंदनम् ॥ अयमाख्यातितेरामसेवकोमंत्रिसत्तमः ॥ १ ॥ हनूमान्यन्निमित्तंत्वंनिर्जनंवनमागतः ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्रावसतश्चवनेतव ॥ २ ॥ रक्षसापहृताभार्यामैथिलीजनकात्मजा ॥ त्वयावियुक्तारुदतीलक्ष्मणेनचधीमता ॥ ३ ॥ अंतरंप्रेप्सुनातेनहत्वागृध्रंजटायुषम् ॥ भार्यावियोगजंदुःखंप्रापितस्तेनरक्षसा ॥ ४ ॥ भार्यावियोगजंदुःखंनचिरात्त्वंविमोक्ष्यसे ॥ अहंतामानयिष्यामिनष्टांदेवश्रुतीमिव ॥ ५ ॥ रसातलेवावर्ततींवर्ततींवानभस्तले ॥ अहमानीयदास्यामितवभार्यामरिंदम ॥ ६ ॥

लेगया आप और धीमान् लक्ष्मणजीके न रहनेपर रुदन करतीहुई सीताजीको वह लेगया ॥ ३ ॥ वह तो अवसर देखही रहाथा जैसेही आप दोनों जन दूरगये वैसेही वह उनको लेगया, कुछ दूर ले जानेंके पीछे उसे गृध्रराज जटायु मिले. और उन्होंने सीता हरणका विरोध किया, तब राक्षस उनको संहार सीताजीको लेगया, और आपको भार्यावियोगदुःख देदिया ॥ ४ ॥ जो हुआ सो हुआ परन्तु अब हम थोडेही कालमें यह आपका भार्यावियोग दुःख दूरकरेंगे, हम नष्ट हुई देवश्रुतिके समान सीताजीको उद्धार करके आपके निकट लेआमेंगे इसमें कुछ संदेह नहींहै ॥५॥६॥

वालि कार्य करनेंमें बडा कुशल है, वह इस बातको भली प्रकार करसकताहै, अर्थात् हमें मार डालनें सकता है, क्योंकि राजालोग बहुदर्शी और उपायोंके जाननें वाले होतें हैं; इसलिये मनुष्योंको चाहिये कि प्राकृत वेशमें उनके आशय को जानें॥ २३ ॥ कपिवर! स्वाभाविक वेशसे जाकर उन दोनों जनोंके समाचार रूप और बोल चालसे भली भांति जानकर आओ ॥ २४ ॥ तुम हर्षित मनसे जाकर प्रशंसा व इङ्गितसे उनको विश्वासमें लाकर उनके मनका भाव जान लेना ॥ २५ ॥ हे वानरवर! तुम हमारी ओरको मुखकर, उनके धनुष धारण करके यहां आनेंका कारण और प्रयोजन जान आओ ॥ २६ ॥ ऐसा करनेंसे यदि यह लोग विशुद्धभाव युक्त होंगे तोभी तुमको अवश्य ज्ञात हो जायगा, और भाषणव

कृत्येषुवालीमेधावीराजानोबहुदर्शिनः ॥ भवंतिपरहंतारस्तेज्ञेयाः प्राकृतैर्नरैः ॥ २३ ॥ तौत्वयाप्राकृतेनेवगत्वाज्ञेयौप्लवंगम ॥ इंगितानांप्रकारैश्चरूपव्याभाषणेनच ॥ २४ ॥ लक्षयस्वतयोर्भावंप्रहृष्टमनसौयदि ॥ विश्वासयन्प्रशंसाभिरिंगितैश्चपुनःपुनः ॥ २५ ॥ ममैवाभिमुखंस्थित्वापृच्छत्वंहरिपुंगव ॥ प्रयोजनंप्रवेशस्यवनस्यास्यधनुर्धरौ ॥ २६ ॥ शुद्धात्मानौयदित्वेतौजानीहित्वंप्लवंगम ॥ व्याभाषितैर्वारूपैर्वाविज्ञेयादुष्टताऽनयोः ॥ २७ ॥ इत्येवंकपिराजेनसंदिष्टोमारुतात्मजः ॥ चचारगमनेबुद्धिंयत्रतौरामलक्ष्मणौ ॥ २८ ॥ तथेतिसंपूज्यवचस्तुतस्यकपेः सुभीतस्यदुरासदस्य ॥ महानुभावौहनुमान्ययौतदासयत्ररामोतिबलीसलक्ष्मणः ॥ २९ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेद्वितीयःसर्गः ॥ २ ॥ ॥ ७ ॥ वचोविज्ञायहनुमान्सुग्रीवस्यमहात्मनः ॥ पर्वतादृष्यमूकात्तुपुप्लुवेयत्रराघवौ ॥ १ ॥ कपिरूपंपरित्यज्यहनुमान्मारुतात्मजः ॥ भिक्षुरूपंततोभेजेशठबुद्धितयाकपिः ॥ २ ॥

रूपादि द्वारा यदि वह दुष्ट भाव रखते होंगे तो वहभी सब समझ पडेगा२७कपिराज सुग्रीवजीसे इस प्रकार आज्ञा पाकर पवन पुत्र हनुमान्जी श्रीराम लक्ष्मणजीके निकट जानेंको मन करते हुये ॥ २८ ॥ महानुभव कपिवर हनुमानजी उन अतिभीत दुर्द्धर्ष सुग्रीवजीके वचन मान जहां श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके सहित विचरतेथे उस स्थानमें गमन करते हुये॥ २९ ॥इ० श्री० वा० आ० किष्किन्धाकांडे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥ हनुमान्जी महात्मा सुग्रीवजीके वचन सुनकर ऋष्यमूक पर्वतसे राम लक्ष्मणजीके निकट गमन करते हुये ॥ १ ॥ जब हनुमान्जी चले तो इन्होंनें

श्रीरामचंद्रजी वस्त्र और गहने देख व ग्रहण कर कुहरसे ढके चंद्रमाकी समान अश्रुयुक्तहो रुद्धकंठहुये॥१६॥ सीताजीके स्नेहसे उत्पन्न आंसुओंसे दूषित हो हा प्रिये! कहकर धीरज छोड पृथ्वीपर गिर पडे ॥ १७॥श्रीरामचन्द्रजी उन उत्तम गहनोंको वार २ हृदयमें लगा बिलमें बैठे क्रोधित सर्पकी समान ऊंधे २ श्वास छोडनें लगे ॥ १८ ॥ तिसके पीछे जब आंसुओंका वेग कम हुआ तो बगलमें बैठे हुये लक्ष्मणजीको देख शोकके वेगसे श्रीरामचन्द्रजी औरभी विलाप करनें लगे ॥ १९ ॥ वह बोले देखो लक्ष्मण! जब जानकीजी हरणकी जातीथीं तब उन्होंनें यह उत्तरीय और यह भूषण पृथ्वीपर फेंक दियेथे ॥ २० ॥ हरणके समय सीताजीनें हरी घासवाली भूमिपर यह भूषण अपनें अंगोंसे निकालकर डाल दिये हैं।देखो

ततोगृहीत्वावासस्तुशुभान्याभरणानिच ॥ अभवद्बाष्पसंरुद्धोनीहारेणेवचंद्रमाः ॥१६॥ सीतास्नेहप्रवृत्तेनसतुबाष्पे
णदूषितः ॥ हाप्रियेतिरुदन्धैर्यमुत्सृज्यन्यपतत्क्षितौ ॥ १७ ॥ हृदिकृत्वासबहुशस्तमलंकारमुत्तमम् ॥ निःश्वा
सभृशंसर्पोबिलस्थइवरोषितः ॥ १८ ॥ अविच्छिन्नाश्रुवेगस्तुसौमित्रिंप्रेक्ष्यपार्श्वतः ॥ परिदेवयितुंदीनंरामःसमुपच
क्रमे ॥ १९ ॥ पश्यलक्ष्मणवैदेह्यासंत्यक्तंह्रियमाणया ॥ उत्तरीयमिदंभूमौशरीराद्भूषणानिच ॥ २० ॥ शाद्व
लिन्यांध्रुवंभूम्यांसीतयाह्रियमाणया ॥ उत्सृष्टंभूषणमिदंतथारूपंहिदृश्यते ॥ २१ ॥ एवमुक्तस्तुरामेणलक्ष्मणोवा
क्यमब्रवीत् ॥ नाहंजानामिकेयूरेनाहंजानामिकुंडले ॥ २२॥नूपुरेत्वभिजानामिनित्यंपादाभिवंदनात् ॥ ततस्तुरा
घवोवाक्यंसुग्रीवमिदमब्रवीत्॥२३॥ब्रूहिसुग्रीवकंदेशंह्रियंतीलक्षितात्वया॥रक्षसारौद्ररूपेणममप्राणप्रियाहृता॥२४॥

यह सब वैसेके वैसेही हैं, कुछ मलीन नहीं हुये ॥ २१ ॥ इस रीतिसें रामचंद्रनें लक्ष्मणजीसें कहा, तब लक्ष्मणजी कहने लगे कि, मैं जानकीजीके बाहु भूषण जानता नहीं हूं और कर्णकुंडलभी नहीं जानताहूं ॥ २२ ॥ परंतु नित्य प्रति श्रीजानकीजीके चरणोंका नमस्कार करनेंसे उन्होंके पाद भूषण नूपुरको मात्र जानताहूं तब श्रीरामचन्द्रजी सुग्रीवजीसे बोले ॥ २३ ॥ कि हे सुग्रीवजी! तुमने उन हरण की जाती हुई को कहां देखा? और किस स्थानमें उग्ररूपी राक्षस हमारीप्राण प्रिया सीताजीको हरण करके ले गया सो तुम बताओ ॥ २४ ॥

जन आप राज्य करनेंके समान यहां पर कैसे आये? ॥ ११ ॥आप दोनों जनोंके नयन कमल दलको समानहैं और आप दोनों वीर जटा मंडल धारण कियेहैं; परस्पर एक दूसरेसे मिलता हुआ रूप धारण किये हमारो समझमें देवता ओंकी समान आप यहां पर आयेहो ॥ १२ ॥ अथवा आपलोग चंद्रमा सूर्यतो नहींहैं? जो देवलोकसे अपनी इच्छानुसार मनुष्य लोकमें आयेहैं आपलोग विशाल वक्षस्थल सहित मनुष्यों का रूप धारण किये कोई देवहीहो ॥ १३ ॥ आपदोनों वीरोंके कंधे सिंहकी समानहैं, मानों वीररसही दोरूप धारण कर आयाहै? आपमानों मद युक्त वृषभहीहो वाहें आपकी लंबी, गोल, और परिघाकारहैं ॥ १४॥आप सब भूषण धारण करनेंके योग्य किस कारणसे भूषण धारण नहीं

पद्मपत्रेक्षणौवीरौजटामंडलधारिणौ ॥ अन्योन्यसदृशौवीरौदेवलोकादिहागतौ ॥ १२ ॥ यदृच्छयेवसंप्राप्तौचंद्र सूर्यौवसुंधराम् ॥ विशालवक्षसौवीरौमानुषौदेवरूपिणौ ॥ १३ ॥ सिंहस्कंधौमहोत्साहौसमदाविवगोवृषौ ॥ आ यताश्चसुवृत्ताश्चबाहवःपरिघोपमाः ॥ १४ ॥ सर्वभूषणभूषार्हाः किमर्थंनविभूषिताः ॥ उभौयोग्यावहंमन्येरक्षितुं पृथिवीमिमाम् ॥ १५ ॥ ससागरवनांकृत्स्नांविंध्यमेरुविभूषिताम् ॥ इमेचधनुषीचित्रेश्लक्ष्णेचित्रानुलेपने ॥ १६ ॥ प्रकाशेतेयथेंद्रस्यवज्रेहेमविभूषिते ॥ संपूर्णाश्चशितैर्बाणैस्तूणाश्चशुभदर्शनाः ॥ १७ ॥ जीवितांतकरैर्घोरैर्ज्वलद्भि रिवपन्नगैः ॥ महाप्रमाणौविपुलौतप्तहाटकभूषणौ ॥ १८ ॥ खड्गावेतौविराजेतेनिर्मुक्तभुजगाविव ॥ एवंमां परिभाषंतंकस्माद्वैनाभिभाषथः ॥ १९ ॥

कर रहेहैं? हम आप दोनों जनोंको ऐसा समझतेहैं कि आप इस पृथ्वीकी रक्षा करनेंके योग्यहैं ॥ १५ ॥ वन, सागर, विन्ध्यहिमालयादि पर्वत सहित भूमिका पालन करनेंके योग्य आपहैं, यह जो दो धनुष आपधारण कियेहैं, यह भी चित्र विचित्र, सचिक्कण और चित्र विचित्र चन्दना धनुलेपनयुक्तहैं ॥ १६ ॥ यह आपके धनुष वज्रधारी इन्द्रके धनुषकी समान प्रकाशित होतेहैं, और आप दोनों जनोंके तरकशभी तीखे नारा चोंसे भरपूरहैं ॥ १७ ॥ जितने इनमें बाणहैं, यह शत्रुको स्पर्श करतेही प्राण लेनें वालेहैं और प्रज्वलित सर्पकी समान दीप्ति वाले बडे लंबे चौडे तपाये हुये सुवर्णसे भूषित जिनमें कब्जे लगे ॥ १८ ॥ यह खड्ग विराजमानहैं मानों केचली छोडे हुए सर्प हैं । फिर हम आपसे इस प्रकार कह

लेना उचित नहीं है ॥ ५ ॥हमकोभी स्त्रीके हर जानेंसे उत्पन्न महाःदुख प्राप्त हुआहै, तथापि हमनें धीर्यका परित्याग करके शोकका आश्रय नहीं लिया ॥ ६ ॥ हमनें अतिनीच वानरजाति होकरभी शोक नहीं किया, फिर आप तो महात्मा विनीत, और धीरजवान पुरुषहैं, सो आप तो कभीभी शोक नहीं करेंगे, इसमें अधिक कहनाही क्या ॥ ७ ॥ आप शोकसे निकला हुआ अश्रुजल, अपनें धीरज और बलसे रोकिये, कारण कि पराक्रमी पुरुषोंकी मर्यादा और धारणा शक्ति आप त्याग करनेंके योग्य नहीं हैं ॥ ८ ॥ धीरजवान पुरुष, विपदके समयमें धनकी कमताईमें, भयके समय वा प्राणशंका उपस्थित होनेंपरभी अपनी बुद्धिसे विचारकर कार्य करनेंसे कभी व्याकुल नहीं होते ॥ ९ ॥ जो मूढ पुरुष नित्य

मयापिव्यसनंप्राप्तंभार्याविरहजंमहत् ॥ नाहमेवंहिशोचामिधैर्यंनचपरित्यजे ॥ ६ ॥ नाहंतामनुशोचामिप्राकृतो वानरोपिसन् ॥ महात्माचविनीतश्चकिंपुनर्धृतिमान्महान् ॥ ७ ॥ बाष्पमापतितंधैर्यान्निगृहीतुंत्वमर्हसि ॥ मर्यादा सत्त्वयुक्तानांधृतिंनोत्स्रष्टुमर्हसि ॥ ८ ॥ व्यसनेवार्थकृच्छ्रेवाभयेवाजीवितांतगे ॥ विमृशंश्चस्वयाबुद्ध्याधृतिमान्नाव सीदति ॥ ९ ॥ बालिशस्तुनरोनित्यंवैक्लव्यंयोनुवर्तते ॥ समज्जत्यवशःशोकेभाराक्रांतेवनौर्जले ॥ १० ॥ एषोंऽज लिर्मयाबद्धःप्रणयात्त्वांप्रसादये ॥ पौरुषंश्रयशोकस्यनांतरंदातुमर्हसि ॥ ११ ॥ येशोकमनुवर्ततेनतेषांविद्यतेसुखम् ॥ तेजश्चक्षयतेतेषांनत्वंशोचितुमर्हसि ॥ १२ ॥ शोकेनाभिप्रपन्नस्यजीवितेचापिसंशयः ॥ सशोकंत्यजराजेंद्रधैर्यमा श्रयकेवलम् ॥ १३ ॥ हितंवयस्यभावेनब्रूमिनोपदिशामिते ॥ वयस्यतांपूजयन्मेनत्वंशोचितुमर्हसि ॥ १४ ॥

ही विकलाईका आश्रय लेता है, वह पुरुष बोझसे लदी नौकाकी समान अवश्यही शोकके जलमें डूबजाताहै ॥ १० ॥ यह हम आपके निकट हाथ जोड़कर कहते हैं कि आप प्रसन्न होवें, और पौरुषका आश्रय करके अपने अंतरमें शोकको बैठनेंका अवकाश नदें ॥ ११ ॥ जो पुरुष शोक किया करतेहैं उनको सुख नहीं होता वरन उनका तेजभी क्षीण हो जाताहै, इसलिये आप शोकका परित्याग कीजिये ॥ १२ ॥ हे राजेन्द्र ! अत्यन्त शोक करनेंवाले मनुष्योंके जीवनमेंभी संशय होजाताहै इसलिये आप शोकको छोड करके धीरज धारण कीजिये ॥ १३ ॥ हम मित्रभावसेही हितकी बात कहतेहैं कुछ आपको उपदेश नहीं देते. सो आप हमारी मित्रताईका आदर करके केवल धीरजका आश्रय ग्रहण

इन्होंने कहे ॥ २८ ॥ हम समझतेहैं कि इन वानर श्रेष्ठनें निश्चय समस्त व्याकरण शास्त्र पढाहै, क्योंकि यह हमारे साथ बहुत देरसे गीर्वाण भाषा बोल रहेहैं, परन्तु उसमें इन्होंनें एकभी दूषित शब्द प्रयोग नहीं किया ॥ २९ ॥ उनके मुख, नेत्र, ललाट अथवा भौंह आदि और अंगोंमें बोलनेंके समय कोई दोष नहीं पाया जाता ॥ ३० ॥ इनके वचन विस्तारसे होते हैं, सन्देह युक्तनहीं होते इन्होंने साफ २ मध्यम स्वरमें बिना देर लगाये हुये अन्तरमें टिके हुये कंठ गत सब वचन कहे हैं ॥ ३१ ॥ इन्होंनें संस्कार युक्त अविलम्बित अद्भुत कल्याणदायिनी हृदय हरणकरनेंवाली मनोहर वाणी

नूनंव्याकरणंकृत्स्नमनेनबहुधाश्रुतम् ॥ बहुव्याहरताऽनेननकिंचिदपशब्दितम् ॥ २९ ॥ नमुखेनेत्रयोश्चा
पिललाटेचभ्रुवोस्तथा ॥ अन्येष्वपिसर्वेषुदोषःसंविदितःक्वचित् ॥ ३० ॥ अविस्तरमसंदिग्धमविलंबि
तमव्यथम् ॥ उरस्थंकंठगंवाक्यंवर्ततेमध्यमस्वरम् ॥ ३१ ॥ संस्कारक्रमसंपन्नामद्भुतामविलंबिताम् ॥ उच्चा
रयतिकल्याणींवाचंहृदयहर्षिणीम् ॥ ३२ ॥ अनयाचित्रयावाचात्रिस्थानव्यंजनस्थया ॥ कस्यनाराध्यतेचित्तमु
द्यतासेररेरपि ॥ ३३ ॥ एवंविधोयस्यदूतोनभवेत्पार्थिवस्यतु ॥ सिध्यंतिहिकथंतस्यकार्याणांगतयोऽनघ ॥ ३४ ॥
एवंगुणगणैर्युक्तायस्यस्युःकार्यसाधकाः ॥ तस्यसिध्यंतिसर्वेऽर्थादूतवाक्यप्रचोदिताः ॥ ३५ ॥ एवमुक्तस्तुसौमि
त्रिःसुग्रीवसचिवंकपिम् ॥ अभ्यभाषतवाक्यज्ञोवाक्यज्ञंपवनात्मजम् ॥ ३६ ॥ विदितानोगुणाविद्वन्सुग्रीवस्यम
हात्मनः ॥ तमेवचावांमार्गावःसुग्रीवंप्लवगेश्वरम् ॥ ३७ ॥

उच्चारण की है ॥ ३२ ॥ छाती, कंठ, शिर इन तीन स्थानोंसे निकली हुई इनकी विचित्र वाणी हाथसे खड्ग उठाये हुये शत्रुका चित्तभी श्रवण करतेही प्रसन्न करदे ॥ ३३ ॥ हे लक्ष्मण! जिस राजाके ऐसे श्रेष्ठ दूत हैं उन राजाके सब कार्य क्यों न सिद्ध होंगे ॥ ३४ ॥ जिनके इस प्रकारके गुण वान् कार्यका साधन करनेंवाले दूत विद्यमान हों, उनके सब कार्य निःसन्देह सिद्ध होजाते हैं ॥ ३५ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीनें इस प्रकारसे कहा तो वचन बोलनेंमें चतुर लक्ष्मणजी पवनपुत्र सुग्रीवजीके मंत्री हनुमानजीसे कहने लगे ॥ ३६ ॥ हे बुधवर! महात्मा सुग्रीवजीके गुण

चंद्रजीने जो प्रतिज्ञाकी है वह अब पूरी हुई ॥ २३ ॥ इस प्रकारसे एकान्त में मिलकर नर और वानर दोनों अपने सुख दुःख प्रगट करते हुये ॥२४॥
नृप गणोंके अधीश्वर महानुभाव श्रीरामचन्द्रजीके वचन सुनकर वानरप्रधान सुग्रीवजी मनही मनमें विचार करनेंलगे कि अब निः
संदेह हमारा कार्य सिद्ध होगया ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥
जब श्रीरामचंद्रजीनें प्रसन्न होकर ऐसे वचन कहे तो सुग्रीवजी हर्षित होकर वीर वर लक्ष्मणजीके बडेभ्राता श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥१॥ कि अब हम निः
सन्देह सर्व प्रकारसे देवतागणोंके अनुगृहीत हुये,क्योंकि आप समान गुणवान पुरुष के साथ हमारी मित्रता हुई ॥२॥ हे शुद्धात्मा! प्रभो! जब आप

एवमेकांतसंपृक्तौततस्तौनरवानरौ ॥ उभावन्योन्यसदृशंसुखंदुःखमभाषताम् ॥ २४ ॥ महानुभावस्यवचोनिशम्य
हरिर्नृपाणामधिपस्यतस्य ॥ कृतंसमेनेहरिवीरमुख्यस्तदाचकार्यंहृदयेनविद्वान् ॥ २५ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणे
वाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेसप्तमःसर्गः ॥ ७ ॥ परितुष्टस्यसुग्रीवस्तेनवाक्येनहर्षितः ॥ लक्ष्मणस्याग्रजं
शूरमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १ ॥ सर्वथाहमनुग्राह्योदेवतानांनसंशयः ॥ उपपन्नोगुणोपेतःसखायस्यभवान्मम ॥ २ ॥
शक्यंखलुभवेद्रामसहायेनत्वयानघ ॥ सुरराज्यमभिप्राप्तुंस्वराज्यंकिमुतप्रभो ॥ ३ ॥ सोहंसभाज्योबंधूनांसुहृदांचै
वराघव ॥ यस्याग्निसाक्षिकंमित्रंलब्धंराघववंशजम् ॥ ४ ॥ अहमप्यनुरूपस्तेवयस्योज्ञास्यसेशनैः ॥ नतुवक्तुंसमर्थो
हंत्वयिआत्मगतान्गुणान् ॥५॥ महात्मनांतुभूयिष्ठंत्वद्विधानांकृतात्मनाम् ॥ निश्चलाभवतिप्रीतिर्धैर्यमात्मवतांवर ॥६॥

सहाय हैं तब तो देवताओंका राज्य लेनेंमेंभी समर्थ हैं, हमारा अपना राज्य लेना तो एक अति साधारण वात है ॥३॥ हे राघव! जब कि हमनें रघुवंशमें
उत्पन्न हुये पुरुषसे अग्निके सन्मुख मित्रता प्राप्त की तब अवश्य ही हम अपने बन्धु बान्धव और सुहृदगणोंके प्रीतिपात्र और माननीय हुये,
इसमें कुछ संदेह नहीं है ॥ ४ ॥ और हमकोभी आप अपना योग्य ही मित्र समझिये, हमारे अंतःकरणमें आपके प्रति जिस प्रकारका स्नेह भाव
उदय हुआहै उसको हम कहने और प्रगट करनेंमें समर्थ नहीं हैं ॥ ५ ॥ हे इन्द्रिय जीतनेंवालोंमें प्रथम गिनेजानेंके योग्य! आप सरीखे कृत विद्य म

क राजा हुये, वह अपनें धर्मके अनुसार नित्यही चारों वर्णकी प्रजाका पालन करते रहते॥६॥उनका द्वेष करनेंवाला कोई नहीं हुआ,उनके प्रति किसीनें वैरभाव नहीं प्रकाश किया वह दूसरे ब्रह्माजीकी समान समस्त जीवोंका पालन और रक्षा करते॥७॥उन्होंने बहुतर दक्षिणा सहित अनेक अग्निष्टोमादि यज्ञ किये। यह रामचंद्रजी लोकमें विख्यात उनके प्रथम पुत्रहैं ॥ ८ ॥यह समस्त प्राणियोंको शरण देनेंवाले और पिताकी आज्ञाका पालन करनेंवालेहैं, दशरथजीके यह सबमें बडे पुत्र व गुणवानहैं॥ ९ ॥ सब राजलक्षणों करके युक्त और समस्त राज्य सम्पद् विशिष्टहैं । यह राज्यभ्रष्ट होकर हमारे साथ वनमें वास करनेंके लिये यहांपर आयेहैं॥ १० ॥ जिस प्रकार महातेजमान सूर्य नारायण प्रभाके सहित अस्ताचलचूडावलंबी

नद्वेष्टाविद्यतेतस्यसतुद्वेष्टिनकंचन॥सतुसर्वेषुभूतेषुपितामहइवापरः॥७॥अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्टवानाप्तदक्षिणैः ॥त
स्यायंपूर्वजःपुत्रोरामोनामजनैःश्रुतः ॥ ८॥ शरण्यःसर्वभूतानांपितुर्निर्देशपारगः॥ज्येष्ठोदशरथस्यायंपुत्राणांगुण
वत्तरः ॥ ९ ॥ राजलक्षणसंयुक्तःसंयुक्तोराज्यसंपदा॥राज्याद्भ्रष्टोमयावस्तुंवनेसार्धमिहागतः॥१०॥ भार्ययाचमहा
भागसीतयाऽनुगतोवशी ॥ दिनक्षयेमहातेजाःप्रभयेवदिवाकरः ॥ ११ ॥ अहमस्यावरोभ्राताग्रुणैर्दास्यमुपागतः ॥
कृतज्ञस्यबहुज्ञस्यलक्ष्मणोनामनामतः ॥ १२ ॥ सुखार्हस्यमहार्हस्यसर्वभूतहितात्मनः॥ ऐश्वर्येणविहीनस्यवनवा
सेरतस्यच ॥ १३ ॥ रक्षसाऽपहृताभार्यारहितेकामरूपिणा ॥ तच्चनज्ञायतेरक्षःपत्नीयेनास्यवाहृता ॥ १४ ॥ दनु
र्नामदितेःपुत्रःशापाद्राक्षसतांगतः ॥ आख्यातस्तेनसुग्रीवःसमर्थोवानराधिपः ॥ १५॥

होतेहैं वैसेही यह प्रिया भार्या सीताके सहित इस स्थानमें आयेथे ॥ ११ ॥हम इनके छोटे भाई हैं यह कृतज्ञ और बहुज्ञहैं इनके गुणगणोंसे वश हो कर इनकी सेवा किया करतेहैं और लक्ष्मण हमारा नामहै ॥ १२ ॥ यह सुख भोगनेंके योग्य,राज्य पानेंके लायक,सर्व जीवोंके हितकारी ऐश्वर्यसे विहीन वनवासमें निरत ॥ १३ ॥ इन श्रीरामचंद्रजीकी भार्या कामरूपी राक्षस करके हरीगई हैं जिस राक्षसनें सीताको हरण कियाहै उसको अ भीतक हमनें नहीं जान पायाहै ॥ १४ ॥ दनु नामक दितिका एक पुत्र शापके वशसे कबन्धराक्षस हुआथा, उस राक्षसनेंही वानरपति सुग्रीव

जब सुप्रसन्नमन सागरकी समान गंभीर स्वभाव युक्त, श्रीरामचन्द्रजीको शाल पुष्प परिपूर्ण उस गिरिवरपर बैठा हुआ देखकर॥१५॥सुग्रीवजी हर्षित हो मधुर हितकारी वचनोंसे प्रेम और हर्षमें भरनेके कारण व्याकुल होकर श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ १६ ॥ कि हम अपने भ्रातासे अपकारको प्राप्तहो भार्याको खोय और भयसे कातर होकर ऋष्यमूक पर्वतपर विचरतेहैं ॥ १७ ॥ सो यहांपरभी हम उस वालिके भयसे त्रासित और भयसे चेतना रहित रहा करतेहैं, कारण कि हमारे भ्राता वालिनें गृहसे हमको निकाल अबतकभी हमसे वैर नहीं छोडा ॥ १८ ॥ हे सर्व लोकोंको अभय देनेवाले ! हम वालिके भयसे महा आरत और अनाथ होगयेहैं सो हमारे ऊपर आप प्रसन्न हूजिये॥१९॥

सुखोपविष्टंरामंतुप्रसन्नमुदधिंयथा ॥ सालपुष्पावसंकीर्णेतस्मिन्गिरिवरोत्तमे ॥ १५ ॥ ततःप्रहृष्टःसुग्रीवःश्लक्ष्णया शुभयागिरा ॥ उवाचप्रणयाद्रामंहर्षव्याकुलिताक्षरम् ॥ १६ ॥ अहंविनिकृतोभ्रात्राचराम्येषभयार्दितः ॥ ऋष्यमूकंगिरिवरंहृतभार्यःसुदुःखितः ॥ १७॥ सोऽहंत्रस्तोभयेमग्नोवनेसंभ्रांतचेतनः॥ वालिनानिकृतोभ्रात्राकृतवैरश्चराघव॥ १८ ॥ वालिनोमेभयार्तस्यसर्वलोकाभयंकर ॥ ममापित्वमनाथस्यप्रसादंकर्तुमर्हसि ॥ १९ ॥ एवमुक्तस्तुतेजस्वीधर्मज्ञोधर्मवत्सलः ॥ प्रत्युवाचसकाकुत्स्थःसुग्रीवंप्रहसन्निव ॥ २० ॥ उपकारफलंमित्रमपकारोरिलक्षणम् ॥ अद्यैवतंवधिष्यामितवभार्यापहारिणम् ॥ २१ ॥ इमेहिमेमहाभागपत्रिणस्तिग्मतेजसः ॥ कार्तिकेयवनोद्भूताःशराहेमविभूषिताः ॥ २२ ॥ कंकपत्रपरिच्छन्नामहेंद्राशनिसंनिभाः॥ सुपर्वाणःसुतीक्ष्णाग्राःसरोषाभुजगाइव ॥ २३ ॥ वालिसंज्ञममित्रंतेभ्रातरंकृतकिल्बिषम् ॥ शरैर्विनिहतंपश्यविकीर्णमिवपर्वतम् ॥ २४ ॥

जब सुग्रीवजीनें ऐसा कहा तो धर्मज्ञ धर्मवत्सल तेजस्वी श्रीरामचंद्र हँसते हुए उनसे बोले ॥ २० ॥ उपकार करनेंहीसे मित्र और अपकार करनेंहीसे शत्रु होताहै तुमसे फिर कहतेहैं कि हम आजही तुम्हारी भार्याके हरण करनेंवाले उस वालिको मार डालेंगे ॥ २१ ॥ हे महाभाग! हमारे यह कार्त्तिकेय वनसे उत्पन्न सुवर्ण भूषित तीखे बाण देखो ॥ २२ ॥कि जिनकी शिखा व नली चीलहके पंखोंकी समान बनीहैं ऐसे इन्द्रके वज्रकी समान सुपर्वा तीखे फलक युक्त और क्रोध सहित सर्पकी समान यह बाणहैं ॥ २३ ॥ हम तुम्हारी भार्याके हरनेंवाले पापी शत्रु भ्राता

लिये सब यूथोंके सहित सुग्रीवजीको रामचंद्रजीके प्रति प्रसन्न होकर इनके सब कार्य अवश्यही करना चाहिये॥ २४ ॥ वाक्यविशारद हनुमानजी लक्ष्मणजीके वह रोरो करकै कहेहुये वचन सुनकर यह उत्तर देते हुये ॥ २५ ॥ कि जितेन्द्रिय, बुद्धिमान् ऐसे महात्मा पुरुषके साथ सुग्रीव जीको अवश्य मिलना चाहिये, क्योंकि ऐसे लोग निःसंदेह भाग्यसेही निकट आतेहैं ॥ २६ ॥ वह सुग्रीवजीभी राज्यभ्रष्टहैं, और वालिके साथ वैर वँधनेंसे उस करकै सताये और भयभीत रह वनमें वास करतेहैं इसी कारणसे वालिनें उनकी स्त्रीकोभी हरण कर लियाहै ॥ २७ ॥ वह सूर्यपुत्र सुग्रीवजी हम लोगोंके साथ मिलकर सीताजीके ढूँढनेंमें अवश्यही आपकी सहायता करैंगे ॥ २८ ॥ हनुमानजी सुमधुर और कोमल वचनोंसे

एवंब्रुवाणंसौमित्रिंकरुणंसाश्रुपातनम् ॥ हनूमान्प्रत्युवाचेदंवाक्यंवाक्यविशारदः ॥ २५ ॥ ईदृशाबुद्धिसं पन्नाजितक्रोधाजितेंद्रियाः ॥ द्रष्टव्यावानरेंद्रेणदिष्ट्यादर्शनमागताः ॥ २६ ॥ सहिराज्याच्चविभ्रष्टः कृतवैरश्चवा लिना ॥ हृतदारोवनेत्रस्तोभ्रात्राविनिकृतोभृशम् ॥ २७ ॥ करिष्यतिससाहाय्यंयुवयोर्भास्करात्मजः ॥ सुग्रीवः सहचास्माभिःसीतायाःपरिमार्गणे ॥ २८ ॥ इत्येवमुक्त्वाहनुमान्श्लक्ष्णंमधुरयागिरा ॥ बभाषेसाधुगच्छामःसुग्रीव मितिराघवम् ॥ २९ ॥ एवंब्रुवंतंधर्मात्माहनूमंतंसलक्ष्मणः ॥ प्रतिपूज्ययथान्यायमिदंप्रोवाचराघवम् ॥ ३० ॥ कपिःकथयतेहृष्टोयथायंमारुतात्मजः ॥ कृत्यवान्सोपिसंप्राप्तःकृतकृत्योऽसिराघव ॥ ३१ ॥ प्रसन्नमुखवर्णश्चव्यक्तं हृष्टश्चभाषते ॥ नानृतंवक्ष्यतेवीरोहनूमान्मारुतात्मजः ॥ ३२ ॥

यह सब वार्त्ता कह श्रीरामचंद्रजीसे बोले कि हे वीर ! अब हम सुग्रीवजीके पासको चलेंगे ॥ २९ ॥ जब हनुमानजीनें ऐसा कहा तब धर्मात्मा लक्ष्मणजी हनुमानजीकी यथायोग्य प्रशंसा कर श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ ३० ॥ हे राघव ! यह वानर पवनपुत्र जिस प्रकारसे हर्षित होकर बात कहतेहैं इस्से ज्ञात होताहै कि सुग्रीवजीभी कुछ कार्य आपसे करावेंगे इसलिये समझ पडताहै कि आपकाभी सब कार्य सिद्ध होजायगा ॥ ३१ ॥ पवनकुमार हनुमानजी जिस प्रकारसे हर्षित होकर प्रसन्न वदनसे वार्त्ता कर रहेहैं इससे ज्ञात होताहै कि इन्होंनें कभी झूंठ नहीं बोला ॥ ३२ ॥

उसने हमारी प्राणसेभी अधिक प्यारी स्त्रीको हरण करकेहमारे सब इष्ट मित्रोंको बांध रक्खाहै ॥ ३३ ॥ हे राघव! वह दुष्टात्मा हमारा नाश करनेंके लिये अनेकवार यत्न कर चुकाहै परन्तु हमको मारनेंके लिये उसके भेजे हुए सब वानरोंको हमने मार डालाहै ॥ ३४ ॥ हम उसी हेतुसे आपको देखकर शंका करके आपके निकट आनेंमें डरेथे क्योंकि भयसे सब पुरुष डरा करतेहैं ॥ ३५ ॥ केवल हनुमानादि वानर गण हमारी सहायता करतेहैं इसही कारणसे हम अतिशय कष्टमें पडकरभी प्राण धारण किये हुयेहैं ॥ ३६ ॥ यह हमारे स्नेही मित्र वानरगण हमारी सब प्रकारसे रक्षा करतेहैं यह लोग हमारे बैठनें पर बैठते और हमारे कहींको चलनें पर चलते हैं ॥ ३७ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! बहुत

हृताभार्याचमेतेनप्राणेभ्योऽपिगरीयसी ॥ सुहृदश्चमदीयायेसंयताबंधनेषुते ॥ ३३ ॥ यत्नवांश्चसदुष्टात्मामद्विना
शायराघव ॥ बहुशस्तत्प्रयुक्तश्चवानराहिहतामया ॥ ३४ ॥ शंकयात्वेतयाहंचदृष्ट्वात्वामपिराघव ॥ नोपसर्पाम्य
हंभीतोभयेसर्वेहिबिभ्यति ॥ ३५ ॥ केवलंहिसहायामेहनुमत्प्रमुखास्त्विमे ॥ अतोहंधारयाम्यद्यप्राणान्कृच्छ्रगतो
पिसन् ॥ ३६ ॥ एतेहिकपयःस्निग्धामांरक्षंतिसमंततः ॥ सहगच्छंतिगंतव्येनित्यंतिष्ठंतिचास्थिते ॥ ३७ ॥ संक्षे
पस्त्वेषमेरामकिमुक्त्वाविस्तरंहिते ॥ समेज्येष्ठोरिपुर्भ्रातावालीविश्रुतपौरुषः ॥ ३८ ॥ तद्विनाशेपिमेदुःखंप्रमृष्टंस्या
दनंतरम् ॥ सुखंमेजीवितंचैवतद्विनाशनिबंधनम्॥३९॥एषमेरामशोकांतःशोकार्तेननिवेदितः ॥ दुःखितःसुखितोवापि
सख्युर्नित्यंसखागतिः॥४०॥श्रुत्वैतच्चवचोरामःसुग्रीवमिदमब्रवीत्॥ किंनिमित्तमभूद्वैरंश्रोतुमिच्छामितत्त्वतः॥४१॥

कहनेंसे क्याहै। हमनें अपना सबही वृत्तान्त संक्षेपसे कहदिया, हमारे शत्रु और बडे भाई वालिका पौरुष अत्यन्त विख्यातहै ॥ ३८ ॥ उसका नाश होनेंसे हमारा दुःखभी नाशको प्राप्तहोगा, उसका वध होनेंहीमें सुख और जीवन संचारकी आशा हो सकती है ॥ ३९ ॥ हमनें शोक से पीडित होकर जो अपने शोकके नाश करनेंका उपाय बताया है,बस इस्से हमारा दुःख जा सकताहै, दुःखितही हो, वा सुखितही हो, मित्र ही मित्रकी गति होजाताहै ॥ ४० ॥ सुग्रीवजीके ऐसे वचन सुनकर श्रीरामचंद्रजी बोले कि. तुम्हारा वैर वालिसे किस कारण हुआ सो उस

द्रजी वनमें आयेहैं ॥ ५ ॥ तबसे यह महात्मा बराबर वनमें वास करतेथे कि किसी समय रावण आकर इनकी भार्याको हरण कर लेगया ॥६॥ यह श्रीराम लक्ष्मणजी पूजनीय जनोंमें अग्रणीय हैं यह दोनों जनें आपके सहित मित्रता करनेंकी वासनासे यहां आये हैं ॥ ७ ॥ कपिराज सुग्रीवजी हनुमानजीके वचन सुनकर प्रीति पूर्वक प्रफुल्ल देहसे श्रीरामचंद्रजीसें बोले ॥ ८ ॥कि आप धर्मशील विनीत सबके वत्सल और महा तपस्वी हैं महात्मा हनुमान्‌जीने आपके समस्त गुण हमको बतायेहैं ॥ ९ ॥ हे राघव! हम वानर हैं हमारे साथ आपनें जो मित्रता करनेंकी वासनाकी है यह हमारा सत्कार और परम लाभ ही है ॥१०॥ यदि हमारे सहित मित्रताई करनेंकी आप वासना करते हों तो हम अपनें दोनों हाथ पसारते हैं

तस्यास्यवसतोऽरण्येनियतस्यमहात्मनः॥रावणेनहृताभार्यासत्वांशरणमागतः॥६॥ भवतासख्यकामौतौभ्रातरौरा
मलक्ष्मणौ॥ प्रगृह्यचार्चयस्वैतौपूजनीयतमावुभौ ॥७॥ श्रुत्वाहनूमतोवाक्यंसुग्रीवोवानराधिपः ॥ दर्शनीयतमोभू
त्वाप्रीत्योवाचचराघवम् ॥ ८ ॥ भवान्धर्मविनीतश्चसुतपाःसर्ववत्सलः ॥ आख्यातावायुपुत्रेणतत्त्वतोमेभवद्गु
णाः ॥ ९ ॥ तन्ममैवैषसत्कारोलाभश्चैवोत्तमःप्रभो ॥ यत्त्वमिच्छसिसौहार्दंवानरेणमयासह ॥ १० ॥ रोचतेयदिमे
सख्यंबाहुरेषप्रसारितः ॥ गृह्यतांपाणिनापाणिर्मर्यादाबध्यतांध्रुवा ॥ ११ ॥ एतत्तुवचनंश्रुत्वासुग्रीवस्यसुभाषितम् ॥
संप्रहृष्टमनाहस्तंपीडयामासपाणिना ॥ १२ ॥ हृष्टःसौहृदमालंब्यपर्यष्वजतपीडितम् ॥ ततोहनूमान्संत्यज्यभिक्षुरू
पमरिंदमः ॥ १३ ॥ काष्ठयोःस्वेनरूपेणजनयामासपावकं ॥ दीप्यमानंततोवह्निंपुष्पैरभ्यर्च्यसत्कृतम् ॥ १४ ॥

आप हमको अपनें कर कमलसे ग्रहण करके निश्चिन्त हो मित्रतारूपकी मर्यादा स्थापित कीजिये ॥ ११ ॥ श्रीरामचंद्रजी सुग्रीवके यह सुखकर वचन सुनकर अत्यन्त हर्षित हुये और अपनें हाथसे सुग्रीवजीका हाथ पकडा ॥ १२ ॥ तब सुग्रीवजीभी सीताजीके वियोगसे पीडित श्रीरामचंद्रजीसे भलीभांति मिले भेंटे तिसके पीछे शत्रुओंके दमन करनेंवाले हनुमान्‌जीनें भिक्षुकका रूप त्याग दिया जोकि उन्होंने सुग्रीवको विश्वास दिलानेंके लिये फिर धारण कियाथा ॥ १३ ॥ भिक्षुकका रूप त्याग हनुमान्‌जी दो काष्ठको ले आये और घिसकर उनमेंसे अग्नि निकाली फिर

तेजस्वी दनुपुत्रके साथ स्त्रीके निमित्त वालिका वैर हुआथा, यह दानव पहले मयका पुत्रथा, फिर दुन्दुभीका पुत्र हुआ ॥ ४ ॥ एक समय जब
कि रात्रिके कालमें सब सोरहेथे कि वही मायावी किष्किन्धापुरीके द्वारपर आकर वालिको रण करनेके लिये पुकारनें लगा ॥ ५ ॥ हमा
रे भ्राता वालि उस समय सोतेथे, उसका भयंकर शब्द सुन और उसके न सह सकनेंपर वेग सहित बाहरको चले ॥ ६ ॥ वह वहांसे झपट
क्रोधके वशमें हो उस असुरश्रेष्ठको मारनेंके लिये तैयार हुये, तिसके पीछे समस्त स्त्रियोंने और हमनें उनको निवारण किया ॥ ७ ॥ परन्तु
महाबलि वालिनें किसीकी एक बात न सुनी, और संग्राम करनेंके लिये चल दिये, और महा बलवान होनेंके कारण सुहृदता के स्नेहसे हमभी उन

प्रसुप्तस्तुममभ्रातानर्दतोभैरव
सतुसुप्तेजनेरात्रौकिष्किंधाद्वारमागतः ॥ नर्दतिस्मसुसंरब्धोवालिनंचाह्वयद्रणे ॥ ५ ॥
स्वनम् ॥ श्रुत्वानममृषेवालीनिष्पपातजवात्तदा ॥ ६ ॥ सतुवैनिःसृतःक्रोधात्तंहंतुमसुरोत्तमम् ॥ वार्यमाणस्ततःस्त्री
भिर्मयाचप्रणतात्मना ॥ ७ ॥ सतुनिर्धूयताःसर्वानिर्जगाममहाबलः ॥ ततोऽहमपिसौहार्दान्निःसृतोवालिनासह ॥ ८ ॥
सतुमेभ्रातरंदृष्ट्वामांचदूरादवस्थितम् ॥ ९ ॥ तस्मिन्द्रवतिसंत्रस्तेह्यावांद्रुततरंगतौ ॥ प्रकाशोऽपिकृतोमार्गश्चंद्रेणो
द्गच्छतातदा ॥ १० ॥ सतृणैरावृतंदुर्गंधरण्याविवरंमहत् ॥ प्रविवेशासुरोवेगादावामासाद्यविष्ठितौ ॥ ११ ॥ तंप्र
विष्टंरिपुंदृष्ट्वाबिलंरोषवशंगतः ॥ मामुवाचततोवालीवचनंक्षुभितेंद्रियः ॥ १२ ॥ इहतिष्ठाद्यसुग्रीवबिलद्वारिसमाहि
तः ॥ यावदत्रप्रविश्याहंनिहन्मिसमरेरिपुम् ॥ १३ ॥

के पीछे २ चलेगये ॥ ८ ॥ वह असुर हमारे भ्राता वालिको व हमको उनके पीछे २ दूरसे आता हुआ देखकर ॥ ९ ॥ भयभीतहो वेग सहि
त भागनेलगा, जब वह त्रासितहोकर वेग सहित दौडा तब हम दोनोंजनेभी उसके पीछे २ वेगयुक्तहो दौडे, क्योंकि निशानाथके उदय
होनेंसे उस समय चांदनी खिल रहीथी ॥ १० ॥ वह राक्षस भागते २ पृथ्वीके तृणोंकरकै छायेहुये येक दुर्गम और बडे खोहमें प्रवेश
करगया, तब हम दोनों भाई उस गुफाके आगे खडे रहे, ॥ ११ ॥ उस शत्रुको गुफामें बैठाहुआ देख हमारे भ्राता वालि क्रोधसे मूर्च्छित
हो हमसे बोले ॥ १२ ॥ कि हे सुग्रीव! जबतक हम इस शत्रुका संहार करके न फिरैं तबतक तुम यहींपर खडे रहना ॥ १३ ॥

कियाहै, वह हमारा बडा भाईहै, हे महाभाग! हम वालिके भयसे भीतहुयेहैं, सो आप हमारा उस भयसे उद्धार कीजिये ॥ २३ ॥ हे काकुत्स्थ! जिस्से वालिकरके हमको कुछभी भय न रहै वैसाही उपाय करना आपको सबभांति उचितहै, जब सुग्रीवजीने यह कहा, तब धर्मज्ञ, तेजस्वी, धर्मवत्सल, ॥ २४ ॥ काकुत्स्थकुलतिलक श्रीरामचंद्रजी हँसकर सुग्रीवजीसे बोले, कि हे कपिवर! हमारे साथ मित्रता करनेमें तुम्हारा विशेष उपकार होगा यह हम भलीभांति जानतेहैं ॥ २५ ॥इस्में कुछ संदेह नहींहै कि तुम्हारी भार्याके हरण करनेवाले वालिको

कर्तुमर्हसिकाकुत्स्थभयंमेनभवेद्यथा ॥ एवमुक्तस्तुतेजस्वीधर्मज्ञोधर्मवत्सलः ॥ २४ ॥ प्रत्यभाषतकाकुत्स्थःसुग्रीवंप्रहसन्निव ॥ उपकारफलंमित्रंविदितंमेमहाकपे ॥ २५ ॥ वालिनंतंवधिष्यामितवभार्यापहारिणम् ॥ अमोघाः सूर्यसंकाशाममेमेनिशिताःशराः ॥ तस्मिन्वालिनिदुर्वृत्तेनिपतिष्यंतिवेगिताः ॥ कंकपत्रप्रतिच्छन्नामहेंद्राशनिसंनिभाः ॥ २७ ॥ तीक्ष्णाग्राऋजुपर्वाणःसरोषाभुजगाइव ॥ तमद्यवालिनंपश्यतीक्ष्णैराशीविषोपमैः ॥ २८ ॥ शरैर्विनिहतंभूमौप्रकीर्णमिवपर्वतम् ॥ सतुतद्वचनंश्रुत्वाराघवस्यात्मनोहितम् ॥ सुग्रीवःपरमप्रीतःपरमंवाक्यमब्रवीत् ॥ २९ ॥ तवप्रसादेननृसिंहवीरप्रियांचराज्यंचसमाप्नुयामहम् ॥ तथाकुरुत्वंनरदेववैरिणंयथानहिंस्यात्सपुनर्ममाग्रजम् ॥ ३० ॥

हम मार डालेंगे, देखो,हमारे, यह सूर्यकी प्रभाके तुल्य तीक्ष्ण फलकयुक्त अमोघ बाण ॥ २६ ॥ उस दुष्ट वालिके ऊपर वेगसहित गिरेंगे और वह शायक कंकपत्रलगे, इन्द्रके वज्रकी समान ॥ २७ ॥ अति तेज सीधे क्रोधायमान भुजंगके समान वालिको डसैंगे, तुम अब वालिको तीक्ष्ण और विष समान ॥२८॥ बाणोंसे मरकर दूसरे पर्वतकी समान पृथ्वीपर गिरा हुआ देखोगे, अपना हित करनेंवाले श्रीरामचंद्रजीके वचन सुन सुग्रीवजी परम प्रसन्न होकर उनसे कहनें लगे॥ २९ ॥ कि हे नरसिंहवीर! हम आपके प्रसादसे राज्य और भार्याको प्राप्त करेंगे, हे नरदेव!

कि इतनेंमें वालि उस रिपुदानवको संहार करके घर आगये,और हमको राज्यसिंहासन पर बैठे देखकर क्रोधसे लाल २ नेत्र कर लिये॥२२॥तब उस समय उसनें हमारे मंत्रियोंको बँधुआकर उनका कठोर वचनोंसे तिरस्कारकरनें लगा हे राघव! यद्यपि हममें इतना बल था कि उस पापाचारी वालिको बांधलें ॥ २३॥ परन्तु भ्राताकी प्रतिष्ठा मान हमारी बुद्धि ऐसी न हुई कि हम उन्हें बँधुआकरें जब वह अपने शत्रुको मारकर पुरमें प्रवेश करते हुए ॥२४॥तब हमनें सन्मान करके उन महात्माके चरण ग्रहण कर प्रणाम किया,परन्तु न तो वह प्रसन्नही हुये और न हमको आशिर्वादही दिया॥२५॥ हमनें वार २ उनके चरणोंमें अपना मुकुट सहित मस्तक धर कर प्रणाम किया परन्तु वालि क्रोधके वश हो किसी प्रकारसेभी हमारे ऊपर

आजगामरिपुंहत्वादानवंसतुवानरः ॥ अभिषिक्तंतुमांदृष्ट्वाक्रोधात्संरक्तलोचनः ॥ २२ ॥ मदीयान्मंत्रिणोबद्ध्वा परुषंवाक्यमब्रवीत् ॥ निग्रहेचसमर्थस्यतंपापंप्रतिराघव ॥ २३ ॥ नप्रावर्ततमेबुद्धिर्भ्रातृगौरवयंत्रिता ॥ हत्वाशत्रुं समेभ्राताप्रविवेशपुरंतदा ॥ २४ ॥ मानयंस्तंमहात्मानंयथावच्चाभिवादयम् ॥ उक्ताश्चनाशिषस्तेनप्रहृष्टेनांतरात्मना ॥ २५ ॥ नत्वापादावहंतस्यमुकुटेनास्पृशंप्रभो ॥ अपिवालीममक्रोधान्नप्रसादंचकारसः ॥ २६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेनवमःसर्गः ॥९॥ ॥७॥ ॥ ततःक्रोधसमाविष्टंसंरब्धंतमुपागतम् ॥ अहंप्रसादयांचक्रेभ्रातरंहितकाम्यया ॥ १ ॥ दिष्ट्यासिकुशलीप्राप्तोनिहतश्चत्वयारिपुः॥ अनाथस्यहिमेनाथस्त्वमेकोनाथनंदन ॥ २ ॥ इदंबहुशलाकंतेपूर्णचंद्रमिवोदितम् ॥ छत्रंसवालव्यजनंप्रतीच्छस्वमयाधृतम् ॥ ३ ॥ आर्तस्तस्यबिलद्वारिस्थितःसंवत्सरंनृप ॥ दृष्ट्वाचशोणितंद्वारिबिलाच्चापिसमुत्थितम् ॥ ४ ॥

प्रसन्न न हुआ ॥ २६ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०कि० नवमःसर्गः ॥ ९ ॥ तब हम उनके व अपने हितकी कामनासे, वेगसे आये हुए क्रोधसे भरकर बैठे अपने भ्राताको प्रसन्न करनें लगे ॥ १ ॥ हे अनाथोंकी रक्षाकरनेंवाले ! बडे भाग्यकी बातहै कि आप शत्रुका संहार करके कुशल सहित फिर अपने गृहको आयेहैं। हम अनाथहैं, हमारे तो एक आपही नाथहैं ॥ २ ॥ यह पूर्ण चंद्रमाकी समान दीप्तिमान बहुशलाका युक्त छत्र और चँवर जो कि इतने दिनों हम धारण करतेथे. सो अब इनको आप धारण कीजिये ॥ ३ ॥ हे नृपवर ! हम उस बिलके द्वारपर एक

हे श्रीरामचंद्रजी! हमारा यह वचन आप सत्यही जानें इन्द्रके सहित सुरगण व समस्त असुरगण कोईभी जानकीजीको नहीं छिपासकेगा ॥ ७ ॥ हे महाबाहु! आपकी भार्याको विषकी समान पचानें को कोईभी समर्थ नहीं होगा, हम निश्चय ही उनको ले आवेंगे, इसलिये आप शोक छोड दीजिये॥८॥हम अनुमानसे समझते हैं कि वह दुष्टाचारी रावण जब उनको हरण करके लिये जा रहाथा, तब हमनें उनको देखाथा,कदाचित् वही जनककुमारी होंगी ॥ ९ ॥ उस समय वह राम!राम! और लक्ष्मण! यह कहकर बडे शब्दसे रो रहीथीं उस समय वह रावणके वशमें पडी पन्नगराज वधूकी समान प्रगटहोरहींथी ॥ १० ॥ उस समय हम और हमारे चार मंत्रियोंको पर्वत पर बैठे देख उन्होंनें अपना उत्तरीय वस्त्र और उत्तम २

इदंतथ्यंममवचस्त्वमवेहिचराघव ॥ नशक्यासाजरयितुमपिसेंद्रैःसुरासुरैः ॥ ७ ॥ तवभार्यामहाबाहोभक्ष्यंविषकृतंयथा ॥ त्यजशोकंमहाबाहोतांकांतामानयामिते ॥ ८ ॥ अनुमानात्तुजानामिमैथिलीसानसंशयः ॥ ह्रियमाणामयादृष्टारक्षसारौद्रकर्मणा॥९॥ क्रोशंतीरामरामेतिलक्ष्मणेतिचविस्वरम् ॥ स्फुरंतीरावणस्यांकेपन्नगेंद्रवधूर्यथा ॥१०॥ आत्मनापंचमंमांहिदृष्ट्वाशैलतलेस्थितम् ॥ उत्तरीयंतयात्यक्तंशुभान्याभरणानिच ॥ ११ ॥ तान्यस्माभिर्गृहीतानिनिहितानिचराघव ॥ आनयिष्याम्यहंतानिप्रत्यभिज्ञातुमर्हसि ॥ १२ ॥ तमब्रवीत्ततोरामःसुग्रीवंप्रियवादिनम् ॥ आनयस्वसखेशीघ्रंकिमर्थंप्रविलंबसे ॥ १३ ॥ एवमुक्तस्तुसुग्रीवःशैलस्यगहनांगुहाम् ॥ प्रविवेशततःशीघ्रंराघवप्रियकाम्यया ॥ १४ ॥ उत्तरीयंगृहीत्वातुसतान्याभरणानिच ॥ इदंपश्येतिरामायदर्शयामासवानरः ॥ १५ ॥

कुछ गहने छोडे ॥ ११ ॥ हमनें उन सब आभूषणादिकोंको उठाकर धर रक्खाहै! हम उन सबको लातेहैं आप उन सबको पहँचान लीजिये ॥ १२ ॥ जब सुग्रीवजीनें ऐसा कहा तो प्रियबोलनेंवाले श्रीरामचंद्रजी सुग्रीवजीसे बोले कि हेसखे! विलम्ब क्यों करतेहो? उनको शीघ्रले आओ ॥ १३ ॥ श्रीरामचंद्रजीसे इस प्रकार कहे जाकर सुग्रीवजी उनका प्रिय करनेंकी कामनासे शैलकाननसे शीघ्र पर्वतकी कंदरामें प्रवेश करते हुये ॥ १४ ॥ वानरनाथनें शीघ्र उत्तरीय वस्त्र और वह सब गहने ले यह देखिये! यह कहकर शीघ्र रामचंद्रजीको दिखाये ॥ १५ ॥

श्चात् सब प्रजा और मंत्रि व और नौकर चाकरोंको बुलाकर ॥ १२ ॥ सब सुहृदगणोंके मध्यमें हमको अत्यन्त दुर्वचन कहने लगे कि तुम
सब लोग जानते हो कि पहले मायावी नामक महा असुर रात्रिमें यहां आयाथा ॥ १३ ॥ उसने क्रोधित और युद्धकांक्षी होकर हमको पुकारा
उसका पुकारना सुनकर हम राजगृहसे बाहर निकले ॥ १४ ॥ और हमारे पीछे २ यह दारुण हमारे भाई भी चले उस रात्रिमें हमदोनों जनों
को वह महाबलवान असुर देखकर ॥ १५॥ भयके मारे त्रासित हो भाग चला तब हम भी बराबर उसके पीछे२दौडे गये, तब वह बड़े वेगसे भागते २
एक बिलमें प्रवेश कर गया ॥१६॥ तब उस दुष्ट व कठोर चित्तको एडी गुफामें घुसा हुआ देखकर हमनें इस अति क्रूर दर्शन अपने भाईसे कहा ॥ १७॥

मांसमाह्वयतक्रुद्धोयुद्धाकां
मामाहसुहृदांमध्येवाक्यंपरमगर्हितम् ॥ विदितंवोमयारात्रौमायावीसमहासुरः ॥ १३ ॥
क्षीतदापुरा ॥ तस्यतद्भाषितंश्रुत्वानिःसृतोऽहंनृपालयात् ॥ १४ ॥ अनुयातश्चमांतूर्णमयंभ्रातासुदारुणः ॥ सतुदृष्ट्वैव
मांरात्रौसद्वितीयंमहाबलः ॥ १५ ॥ प्राद्रवद्भयसंत्रस्तोवीक्ष्यावांसमुपागतौ ॥ अभिद्रुतस्तुवेगेनविवेशसमहाबिल
म् ॥ १६ ॥ तंप्रविष्टंविदित्वातुसुघोरंसुमहद्बिलम् ॥ अयमुक्तोथमेभ्रातामयातुक्रूरदर्शनः ॥ १७ ॥ अहत्वानास्तिमेश
क्तिःप्रतिगंतुमितःपुरीम् ॥ बिलद्वारिप्रतीक्षत्वंयावदेनंनिहन्म्यहम् ॥ १८ ॥ स्थितोऽयमितिमत्वाहंप्रविष्टस्तुदुरासदम्
तंमेमार्गयतस्तत्रगतःसंवत्सरस्तदा ॥ १९ ॥ सतुदृष्टोमयाशत्रुरनिर्वेदाद्भयावहः ॥ निहतश्चमयासद्यःससर्वैःसहबं
धुभिः ॥ २० ॥ तस्यैवचप्रवृत्तेनरुधिरौघेणतद्बिलम् ॥ पूर्णमासीद्दुराक्रामंस्तनतस्तस्यभूतले ॥ २१ ॥ सूदयित्वा
तुतंशत्रुंविक्रांतंतमहंसुखम् ॥ निष्क्रामंनेहपश्यामिबिलस्यपिहितंमुखम् ॥ २२ ॥

इस असुरको विनामारे हम नहीं जायँगे, सो जबतक हम इसको मार कर आवैं तबतक तुम इस गुफाके द्वार पर हमारी राह देखते रहना ॥ १८ ॥
हम यह जानकर कि सुग्रीव तो द्वारपर खडेही हैं उस दुर्गम बिलमें घुसे सो वहांपर उसे ढूंढते ढूंढते ही हमें एक वर्ष लगगया ॥ १९ ॥ संवत्सर
वीतनेंके पीछे मारे डरके व्याकुल वह हमें मिला, बस हमनें देखतेही उसको बन्धु बान्धवों सहित मार डाला ॥ २० ॥ संहार करनें के समय वह
ऐसा चिल्लाया कि उस्से और उसके मुखसे निर्गत रुधिर धारसे वह गुफा पूर्ण होगई ॥ २१ ॥ उस महाबलवान् शत्रुको संहार करके जब हम सुख

और वह राक्षस कहां वास करता है कि जिसके करनेंसे हम पर बडी विपद पडी है, और उसकेही निमित्त हम सब राक्षसोंका संहार करेंगे ॥ २५ ॥ उसनें जनकसुताको हरण कर हमको क्रोध उपजाया, मानो अपनी मृत्युका वंद द्वार आपही खोल लिया ॥ २६ ॥ हे कपिपते! जिस राक्षसनें हमारी प्यारी भार्याका अपमान कर उनको वनसे हरण कर लिया है, तुम उस राक्षसका नाम बताओ, हम उस शत्रुका आज संहार कर यमपुरीमें पठामेंगे ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥ वानरराज सुग्रीवजी श्रीरामचन्द्रजीके यह आरत वचन श्रवण कर हाथ जोड आंसू भर गद्गद स्वरसे उनसे कहनें लगे ॥ १ ॥

क्ववावसतितद्रक्षोमहद्व्यसनदंमम ॥ यन्निमित्तमहंसर्वान्नाशयिष्यामिराक्षसान् ॥ २५ ॥ हरतामैथिलींयेनमां चरोषयताध्रुवम् ॥ आत्मनोजीवितांतायमृत्युद्वारमपावृतम् ॥ २६ ॥ ममदयिततमाहृतावनाद्रजनिचरेणविमथ्ययेनसा ॥ कथयममरिपुंतमद्यवैप्लवगपतेयमसंनिधिंनयामि ॥ २७ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीये आदिकाव्येकिष्किंधाकांडेषष्ठःसर्गः ॥ ६ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ एवमुक्तस्तुसुग्रीवोरामेणार्तेनवानरः ॥ अब्रवीत्प्रांजलिर्वाक्यंसबाष्पंबाष्पगद्गदः ॥ १ ॥ नजानेनिलयंतस्यसर्वथापापरक्षसः ॥ सामर्थ्यंविक्रमंवापिदौष्कुलेयस्यवाकुलम् ॥ २ ॥ सत्यंतुप्रतिजानामित्यजशोकमरिंदम ॥ करिष्यामितथायत्नंयथाप्राप्स्यसिमैथिलीम् ॥ ३ ॥ रावणंसगणंहत्वापरितोष्यात्मपौरुषम् ॥ तथास्मिकर्तानचिराद्यथाप्रीतोभविष्यासि ॥ ४ ॥ अलंवैक्लव्यमालंब्यधैर्यमात्मगतंस्मर ॥ त्वद्विधानांनसदृशमीदृशंबुद्धिलाघवम् ॥ ५ ॥

कि हे श्रीरामचंद्रजी! हम उस पापमति, और बुरे कुलमें उत्पन्न उस राक्षसका स्थान, कुल, विक्रम, या उसकी सामर्थ्यको कुछभी नहीं जानते हैं ॥ २ ॥ परन्तु हे अरिन्दम! हम सत्य करके प्रतिज्ञा करते हैं कि जिससे जानकीजी प्राप्त होजावें, हम वैसा करनेंमें सब भांति यत्न करेंगे, इस लिये आप शोक छोड़दीजिये ॥ ३ ॥ रावणको वंश सहित संहारकर आपके पौरुषका विस्तार कर आप जिस्से शीघ्र प्रसन्न और संतुष्ट होवें, हम वही कार्य करेंगे ॥ ४ ॥ आप इतने विकल न हूजिये अपने धीरजका आश्रय लीजिये आप समान पुरुषोंको हम इस प्रकारकी लघुताका आश्रय

चारी वालिके ऊपर क्रोधमें भरकर गिरेंगे ॥ ३२ ॥ हम जबतक तुम्हारी भार्याको हरण करनेवाले उस वालिको नहीं देख पातेहैं, तभीतक वह कुचरित्र पापाचारी जीवित रहैगा ॥ ३३ ॥ हम अनुमानसे देखतेहैं कि तुम शोक सागरमें डूब रहेहो, हम तुमको इस शोक सागरसे उद्धार करेंगे और तुमको फिर तुम्हारा राज्य प्राप्त होजायगा ॥ ३४ ॥ श्रीरामचंद्रजीके हर्ष और पौरुषके बढानेवाले वचन सुनकर सुग्रीव जी परम प्रसन्नहो बडे अर्थ युक्त वचन बोले ॥ ३५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किंधाकांडे दशमःसर्गः ॥ १० ॥ श्रीरामचंद्रजीके हर्ष और पौरुषार्थके बढानें वाले वचन सुनकर सुग्रीव जी उनकी पूजाकर प्रशंसा करतेहुये ॥ १ ॥ कि आप क्रोधितहोकर रुधिरके प्यासे प्रज्वलित सुतीक्ष्ण मर्मभेदी बाणोंसे निश्चयही प्रलयकालीन सूर्य भगवानकी समान सम्पूर्ण लोकोंको भस्मकर सकतेहैं ॥ २ ॥ प्रथम आप वालिका पौरुष धीरता और वीर्य हमसे सावधान चित्त होकर श्रवण करलीजिये, फिर जैसा उचित हो समझ बूझकर कीजिये ॥ ३ ॥ वालि सूर्योदयके प्रथमही पश्चिम समुद्रसे पूर्व और दक्षिण समुद्र और उत्तर समुद्रके किनारे तक घूमआताहै, परन्तु इतना चलनेंसेभी वह कुछ नहीं थकता॥४॥वह महावीर्यवान् वालि पर्वतोंके अग्रभाग पर चढकर शिखरोंकोउखाडकर ऊपरको उछालदेताहै और फिर उनको हाथसे पकड लेताहै५॥

यावत्तंनहिपश्येयंतवभार्यापहारिणम् ॥ तावत्सजीवेत्पापात्मावालीचारित्रदूषकः ॥ ३३ ॥ आत्मानुमानात्पश्यामिमग्नस्त्वंशोकसागरे ॥ त्वामहंतारयिष्यामिबाढंप्राप्स्यसिपुष्कलम् ॥ ३४ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाहर्षपौरुषवर्धनम् ॥ सुग्रीवःपरमप्रीतःसुमहद्वाक्यमब्रवीत् ॥ ३५ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०कि०कां०दशम० सर्गः ॥ १० ॥ रामस्यवचनंश्रुत्वाहर्षपौरुषवर्धनम् ॥ सुग्रीवःपूजयांचक्रेराघवंप्रशशंसच ॥ १ ॥ असंशयंप्रज्वलितैस्तीक्ष्णैर्मर्मातिगैःशरैः ॥ त्वंदहेःकुपितोलोकान्युगांतइवभास्करः ॥ २ ॥ वालिनःपौरुषंयत्तद्यच्चवीर्यंधृतिश्चया ॥ तन्ममैकमनाःश्रुत्वाविधत्स्वयदनंतरम् ॥ ३ ॥ समुद्रात्पश्चिमात्पूर्वंदक्षिणादपिचोत्तरम् ॥ क्रामत्यनुदितेसूर्येवालीव्यपगतक्लमः ॥ ४ ॥ अग्राण्यारुह्यशैलानांशिखराणिमहांत्यपि ॥ ऊर्ध्वमुत्पात्यतरसाप्रतिगृह्णातिवीर्यवान् ॥ ५ ॥

कीजिये ॥ १४ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें सुग्रीवके इस प्रकार सुमधुर समझानें वाले वचन सुनकर वस्त्रके सिरेसे अपना अश्रु परिपूर्ण वदन पोंछडा ला ॥ १५ ॥ लोकनाथ काकुत्स्थकुलतिलक श्रीसुग्रीवजीके वचनोंसे अपनी प्रकृतिमें टिक धीरज धारण करते हुये और वानर वा सुग्रीवजीको हृदयसे लगाय मिले और कहनें लगे ॥ १६ ॥ हे सुग्रीव ! स्नेह युक्त हितकारी चतुर सखाको जो कर्तव्य और उचितहै, वह समस्तही तुमनें किया ॥ १७ ॥ तुम्हारे समझानेंने हमें स्वस्थ और अपनी प्रकृतिपर स्थिर किया विशेष करके ऐसे समयमें तुम्हारी समान बन्धु मिलनें महादुर्लभहैं ॥ १८ ॥ परन्तु तुम घोर दुरात्मा रावणके संहार करनें और जनककुमारीका खोज करनेंके लिये विशेष यत्नकरो ॥ १९ ॥ और

मधुरंसांत्वितस्तेनसुग्रीवेणसराघवः ॥ मुखमश्रुपरिक्लिन्नंवस्त्रांतेनप्रमार्जयत् ॥ १५ ॥ प्रकृतिस्थस्तुकाकुत्स्थःसुग्रीववचनात्प्रभुः ॥ संपरिष्वज्यसुग्रीवमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १६ ॥ कर्तव्यंयद्वयस्येनस्निग्धेनचहितेनच ॥ अनुरूपंचयुक्तंचकृतंसुग्रीवतत्त्वया ॥ १७ ॥ एषचप्रकृतिस्थोऽहमनुनीतस्त्वयासखे ॥ दुर्लभोहीदृशोबंधुरस्मिन्कालेविशेषतः ॥ १८ ॥ किन्तुयत्नस्त्वयाकार्योमैथिल्याःपरिमार्गणे ॥ राक्षसस्यचरौद्रस्यरावणस्यदुरात्मनः ॥ १९ ॥ मयाचयदनुष्ठेयंविस्रब्धेनतदुच्यताम् ॥ वर्षास्विवचसुक्षेत्रेसर्वसंपद्यतेतव ॥ २० ॥ मयाचयदिदंवाक्यमभिमानात्समीरितम् ॥ तत्त्वयाहरिशार्दूलतत्त्वमित्युपधार्यताम् ॥ २१ ॥ अनृतंनोक्तपूर्वंमेनचवक्ष्येकदाचन ॥ एतत्तेप्रतिजानामिसत्येनैवशपाम्यहम् ॥ २२ ॥ ततःप्रहृष्टःसुग्रीवोवानरैःसचिवैःसह ॥ राघवस्यवचःश्रुत्वाप्रतिज्ञातंविशेषतः ॥ २३ ॥

हमभी विश्वासी चित्तसे जिस कार्यको करें वहभी तुम हमसे कहो, क्योंकि वर्षाकालके समय अच्छेखेतमें बीज बोये हुयेकी समान तुम्हारेभी सब विचार सफलहैं ॥ २० ॥ हे वानरशार्दूल ! हमनें जो अभिमानसे तुमसे कहाकि हम वालिको मारही डालेंगे,इस वाक्यको भी तुम सत्यही सत्य जानो ॥ २१ ॥ हमनें पहले कभी मिथ्या वचन नहीं बोला,और न कभी आगेको बोलेंगे हमनें अब सत्यही सत्य तुमसे प्रतिज्ञा और शपथकी ॥ २२ ॥ तिसके पीछे सुग्रीवजीनें हर्षित हो श्रीरामचंद्रजीके वचन सुनकर अपनें बडे २ मंत्रियोंके साथ भली भांति अपनें मनमें समझ लिया कि श्रीराम

४

शिलायें पृथ्वीपर फेंक २ कर सिंहनाद करनें लगा ॥ १५ ॥ तब श्वेत जलधर तुल्य सौम्य, प्रीतिका उपजानेंवाला आकार धारणकर हिमवानजी अपने एक शिखरापर खडे होकर दुन्दुभिसे बोले ॥ १६ ॥ हे धर्मवत्सल दुन्दुभे ! तुम हमको क्लेश नदो जो लोग रण कार्यको कुछभी नहीं जानते हमतो उन तपस्वियोंके आश्रयदाताहैं ॥ १७ ॥ बुद्धिमान् गिरिराज हिमवानके ऐसे वचन सुनकर दुन्दुभीक्रोधसे लाल २ नेत्रकर उनसे बोला ॥ ॥ १८ ॥ यदि तुम हमारे साथ युद्ध करनेंमें असमर्थहो, और हमारे भयसे उद्यम विहीन हो तो हम युद्ध करनेकी इच्छा किये हुयेसे कौन पुरुष युद्ध कर सकताहै, तुम उसको हमें बतादो ॥ १९ ॥ वचन बोलनेंमें चतुर धर्मात्मा हिमाचलजी, उसके ऐसे वचन सुनकर उस

ततःश्वेतांबुदाकारःसौम्यःप्रीतिकराकृतिः॥हिमवानब्रवीद्वाक्यंस्वएवशिखरेस्थितः॥१६॥क्लेष्टुमर्हसिमांनत्वंदुंदुभेधर्म
वत्सल॥रणकर्मस्वकुशलस्तपस्विशरणोह्यहम् ॥ १७॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वागिरिराजस्यधीमतः ॥ उवाचदुंदुभिर्वाक्यं
क्रोधात्संरक्तलोचनः ॥ १८॥यदियुद्धेऽसमर्थस्त्वंमद्भयाद्वानिरुद्यमः॥ तमाचक्ष्वप्रदद्यान्मेयोहियुद्धंयुयुत्सतः ॥१९॥
हिमवानब्रवीद्वाक्यंश्रुत्वावाक्यविशारदः ॥ अनुक्तपूर्वंधर्मात्माक्रोधात्तमसुरोत्तमम् ॥ २० ॥ वालीनाममहाप्राज्ञ
शक्रपुत्रःप्रतापवान् ॥ अध्यास्तेवानरःश्रीमान्किष्किंधामतुलप्रभाम् ॥ २१॥ ससमर्थोमहाप्राज्ञस्तवयुद्धविशारदः॥
द्वंद्वयुद्धंसदातुंतेनमुचेरिववासवः ॥ २२ ॥ तंशीघ्रमभिगच्छत्वंयदियुद्धमिहेच्छसि ॥ सहिदुर्मर्षणोनित्यंशूरःसमर
कर्मणि ॥ २३ ॥ श्रुत्वाहिमवतोवाक्यंकोपाविष्टःसदुंदुभिः ॥ जगामतांपुरींतस्यकिष्किंधांवालिनस्तदा ॥ २४ ॥

क्रोधसे मतवाले असुरश्रेष्ठसे बोले ॥ २० ॥ हे महाप्राज्ञ! वालि नामक इन्द्रका पुत्र बडा प्रतापी वानर है, वह अतुल प्रभावाली किष्किन्धा नाम नगरीमें वास करता है वह महा प्राज्ञ वालि तुम्हारे साथ युद्ध करनेकी सामर्थ्य रखता है जिस प्रकार नमुचि दैत्यके साथ इन्द्रनें युद्ध कियाथा, ऐसेही वालि तुम्हारे साथ द्वंद्व युद्ध करेगा ॥२१॥ २२ ॥ यदि तुमको युद्ध करनेंकी इच्छा हो तो तुम शीघ्रही उसके निकट चले जाओ वह समर कर्ममें कुशल, शूर, और अतिशय तेजस्वी है ॥ २३ ॥ जब हिमाचलजीनें ऐसा कहा तो दुन्दुभी क्रोध युक्त हो अतिशीघ्रताके सहित वालिकी

हात्मा गणोंमें सखा ओंकी निश्चल प्रीति होगी, इसमें संदेहही क्याहै? ॥ ६ ॥ साधु मित्र लोग, साधुसखाओंके, सुवर्ण, चांदी व और दूसरे उत्तम २ गहने आदिको अपना देखकर अलग नहीं देखते, वरन भेदरहित होकर परस्परही समझते हैं, कि यह अपना है सो उनका, और उनका है सो हमारा ॥ ७ ॥ धनवान्ही हों; वा निर्धनहों; दुःखीहो वा सुखीहो अथवा दोष रहितहो, परन्तु मित्र मित्रहीको परमगति समझते हैं ॥ ८ ॥ हे पाप रहित! जो परस्पर एक स्नेहहीको देखते हैं वह परस्पर मित्रके लिये धनको छोड सुखसे मुँह मोड, और देशतकसे रिश्ता तोड मित्रके अनुसार वर्तावकरते हैं, और उसे कभी नहीं छोडते हैं ॥ ९ ॥ सुग्रीवजीके यह वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी, उत्फुल्लकान्ति धारण किये हुये, इन्द्र समान

रजतंवासुवर्णवाशुभान्याभरणानिच ॥ अविभक्तानिसाधूनामवगच्छंतिसाधवः ॥ ७ ॥ आढ्योवापिदरिद्रोवादुःखितः सुखितोपिवा ॥ निर्दोषश्चसदोषश्चवयस्यःपरमागतिः ॥ ८ ॥ धनत्यागःसुखत्यागोदेशत्यागोपिवाऽनघ ॥ वयस्यार्थेप्रवर्ततेस्नेहंदृष्ट्वातथाविधम् ॥ ९ ॥ तत्तथेत्यब्रवीद्रामःसुग्रीवंप्रियदर्शनम् ॥ लक्ष्मणस्याग्रतोलक्ष्म्यावासवस्येवधीमतः ॥ १० ॥ ततोरामंस्थितंदृष्ट्वालक्ष्मणंचमहाबलम् ॥ सुग्रीवःसर्वतश्चक्षुर्वनेलोलमपातयत् ॥ ११ ॥ सददर्शततः सालमविदूरेहरीश्वरः ॥ सुपुष्पमीषत्पत्राढ्यंभ्रमरैरुपशोभितम् ॥ १२ ॥ तस्यैकांपर्णबहुलांशाखांभंक्त्वासुशोभिताम् ॥ रामस्यास्तीर्यसुग्रीवोनिषसादसराघवः ॥ १३ ॥ तावासीनौततोदृष्ट्वाहनूमानपिलक्ष्मणम् ॥ शालशाखांसमुत्पाट्यविनीतमुपवेशयत् ॥ १४ ॥

धीमान् लक्ष्मणजीके सन्मुख उन प्रिय दर्शन वानरराजसे बोले कि हे सखे निःसंदेह यह जो आपनें कहा सबही यथार्थ है ॥ १० ॥ तिसके पीछे सुग्रीवजीनें, श्रीरामचन्द्रजी और महाबलवान् लक्ष्मणजीको पृथ्वीपर बैठा हुआ देख चंचलभावसे चारों ओर दृष्टि डाली ॥ ११ ॥ तब वानर श्रेष्ठनें देखा कि उत्तम पुष्प, और कुछेक पत्तोंसे युक्त भ्रमर गणोंसे सुशोभित समीपही एक शालका वृक्ष लगा है ॥ १२ ॥ उस वृक्षकी बहुत पत्तोंवाली एक शाखा तोड श्रीरामचन्द्रजीके लिये आसन बना उनके सहित उसपर आपभी बैठे ॥ १३ ॥ सुग्रीव और श्रीरामचन्द्रजीको बैठा हुआ देखकर हनुमान्जीनेंभी लक्ष्मणजीके लिये एक शाल शाखा तोड आसन बना दिया और उसपर विनीत भावसे लक्ष्मणजीको बैठाया॥ १४॥

तुमसे युद्ध कर लेंगे। और तुम सब वानर गणोंसे मिल भेंटलो और सब सुहृदोंकोभी आदर मानसे प्रसन्न कर आओ॥ ३४ ॥ किष्किन्धा पुरीको चारों ओरसे देखभाल लो और अपनें पुत्रोंमेंसे किसीको राज्य सिंहासनभी देदो, क्योंकि हम तुम्हारा सब अहंकार तोड तुमको मार डालेंगे॥३५॥ जो पुरुष, मत्त, प्रमत्त, भागेहुये, आयुधरहित, दुबले और तुम्हारी समानमदसे मोहित पुरुषको मारता है वह गर्भहत्याके पापको प्राप्त होता है इस कारण इस समय हम तुमको नहीं मारते हैं ॥ ३६ ॥ यह श्रवण कर हँसता हुआ वालि उस क्रोधमें भरे मन्दमति असुरसे बोला कि यहलो हमनें तारा आदि स्त्रियोंको त्याग किया ॥ ३७ ॥ यदि तुम संग्राम करनेंमेंनिडरहो, तब तो हमको मतवाला मत समझो, कारण कि यह स्त्रियों

सुहृष्टांकुरुकिंष्किधांकुरुष्वात्मसमंपुरे ॥ क्रीडस्वचसमंस्त्रीभिरहंतेदर्पशासनः ॥ ३५ ॥ योहिमत्तंप्रमत्तंवाभग्नंवारहितं कृशम् ॥ हन्यात्सभ्रूणहालोकेत्वद्विधंमदमोहितम् ॥ ३६ ॥ सप्रहस्याब्रवीन्मंदंक्रोधात्तमसुरेश्वरम् ॥ विसृज्यताः स्त्रियःसर्वास्ताराप्रभृतिकास्तदा ॥ ३७ ॥ मत्तोऽयमितिमामंस्थायद्यभीतोसिसंयुगे ॥ मदोयंसंप्रहारेस्मिन्वीरपानंसमर्थ्यताम् ॥ ३८ ॥ तमेवमुक्त्वासंक्रुद्धोमालामुत्क्षिप्यकांचनीम् ॥ पित्रादत्तांमहेंद्रेणयुद्धायव्यवतिष्ठत ॥ ३९ ॥ विषाणयोर्गृहीत्वातंदुंदुभिंगिरिसंनिभम् ॥ अविध्यततदावालीविनदन्कपिकुंजरः ॥ ४० ॥ वालीव्यापादयांचक्रे ननर्दचमहास्वनम् ॥ श्रोत्राभ्यामथरक्तंतुतस्यसुस्त्रावपात्यतः ॥ ४१ ॥ तयोस्तुक्रोधसरंभात्परस्परजयैषिणोः ॥ युद्धंसमभवद्घोरंदुंदुभेर्वालिनस्तदा ॥ ४२ ॥

करकै उपजा हुआ मद युद्धमें बल होनेके अर्थ वीरोंके मदपानकी समानजानो ॥ ३८ ॥ उस असुरसे इस प्रकार कह कर, वालि अपने पिता इंद्र की दी हुई जय देनेंवाली काञ्चनमय माल गलेमें पहर कर युद्ध करनेंकेलिये तैयार होगया ॥ ३९ ॥ कपिश्रेष्ठ वालिनें उस पर्वत समान दुन्दुभी के दोनों सींग पकड घोर शब्द कर उसको ढकेल कर गिरा दिया॥ ४० ॥वालि दुन्दुभीको गिराकर सिंहनाद करकै गर्जनेंलगा। वालिनें दुन्दुभीको इतनें बलसे गिराया कि उसके कानोंसे रुधिर वहनें लगा ॥ ४१ ॥ फिर परस्पर जीतनेकी इच्छा किये वालि और दुन्दुभीका क्रोधमें भरनेके

वालिको इन्हीं अपनें बाणोंसे पर्वतकी समान गिराकर मार डालेंगे सोतुम देखोहीगे ॥२४॥ वाहिनी सेनाके पति सुग्रीवजी श्रीरामचंद्रजीके ऐसे वचन सुन अतुल हर्ष प्राप्तकर साधु ! साधु ! कह श्रीरामचंद्रजीकी वडाईकरनेंलगे ॥ २५ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! हम शोकके मारे व्याकुलहैं और आप शोकसे पीडित पुरुषोंकी गतिहैं, सो आपको हम अपना मित्र जानकर अपना दुःख प्रगट करतेहैं ॥ २६ ॥ आपनें अपना हाथदे अग्निको शाखी करकै हमको अपना मित्र बनायाहै सो हम सत्यही सत्य कहतेहैं कि आप हमारे प्राणोंसेभी अधिक प्यारे माननीयहैं ॥ २७ ॥ हम अपना विश्वासी मित्र समझकर आपसे अपना सब वृत्तान्त कहतेहैं, क्योंकि अपना वृत्तान्त आपके निकट कहनेंसे हमारे मनका दुःख बहुत हलका

राघवस्यवचःश्रुत्वासुग्रीवोवाहिनीपतिः ॥ प्रहर्षमतुलंलेभेसाधुसाध्वितिचाब्रवीत् ॥ २५ ॥ रामशोकाभिभूतोऽहं शोकार्तानांभवान्गतिः ॥ वयस्यइतिकृत्वाहित्वय्यहंपरिदेवये ॥ २५ ॥ त्वंहिपाणिप्रदानेनवयस्योमेऽग्निसाक्षिक म् ॥ कृतःप्राणैर्बहुमतःसत्येनचशपाम्यहम् ॥ २७ ॥ वयस्यइतिकृत्वाचविस्रब्धःप्रवदाम्यहम् ॥ दुःखमंतर्गतंतन्मे मनोहरतिनित्यशः ॥ २८ ॥ एतावदुक्त्वावचनंबाष्पदूषितलोचनः ॥ बाष्पदूषितयावाचानोच्चैःशक्नोतिभाषितु म् ॥ २९ ॥ बाष्पवेगंतुसहसानदीवेगमिवागतम् ॥ धारयामासधैर्येणसुग्रीवोरामसंनिधौ ॥ ३० ॥ सनिगृह्यतुतं बाष्पंप्रमृज्यनयनेशुभे ॥ विनिःश्वस्यचतेजस्वीराघवःपुनरूचिवान् ॥ ३१ ॥ पुराहंवालिनारामराज्यात्स्वादवरो पितः ॥ परुषाणिचसंश्राव्यनिर्धूतोऽस्मिबलीयसा ॥ ३२ ॥

होजाताहै ॥ २८ ॥ इस प्रकारसे कहते २ सुग्रीवजीके नेत्रोंमें आंसू आगये और उनकी वाणी कफसे दूषित होगई जिस्से कि फिर वह ऊंचे स्वरसे कुछ न बोलसके ॥ २९ ॥ वानरराज सुग्रीवजीनें नदीके वेगकी समान आये हुए आंसुओंके वेगको सहसा अपने धीरजसे धारण कर लिया क्योंकि उन्होंने श्रीरामचंद्रजीके निकट बैठकर रोना उचित न जाना॥३०॥तेजस्वी वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजी आंसुओंका वेग रोक दोनों नेत्रोंको पोछ श्री रामचंद्रजीसे बोले ॥३१॥ हे श्रीरामचंद्रजी! पहले बलवान् वालिनें हमको हमारे राज्यसे भ्रष्टकर कठोर वचन सुनाकर घरसे निकाल दिया॥३२॥

पृथ्वी पर पडाहै ॥ ५१ ॥ उन्होंनें तपोवलसे जान लिया कि यह कार्य वालि वानरका किया हुआहै। तब उन्होंनें उसकें फेंकनेवाले वानरको
महाघोर शापदिया॥ ५२ ॥ कि जिस वानरनें हमारा आश्रित यह वन रुधिर वहानेंसे दूषित कियाहै, वह यहां पर नहीं आसकैगा और जो
आवैगा तो तत्क्षण मर जायगा ॥ ५३ ॥ असुरकी देह फेंककर जिसनें हमारे आश्रमके वहुतसे वृक्ष तोड डालेहैं, वह यदि हमारे आश्रममें
प्रवेश करैगा। वरन इस आश्रमके चारों ओर किनारे २ चार कोशकेघेरमें ॥ ५४ ॥ भी वह दुर्बुद्धि आजायगा तो भी निश्चयही प्राणत्या
ग करैगा। उसका सखा या मंत्री जो कोईभी हमारे वनमें वास करेगा॥ ५५ ॥ उनके प्राणकाभी नाश हो जायगा! वह लोग यहांपर वास

सतुविज्ञायतपसावानरेणकृतंहितत् ॥ उत्ससर्जमहाशापंक्षेप्तारंवानरंप्रति ॥ ५२ ॥ इहतेनाप्रवेष्टव्यंप्रविष्टस्यवधो
भवेत् ॥ वनंमत्संश्रयंयेनदूषितंरुधिरस्रवैः ॥ ५३ ॥ क्षिपतापादपाश्चेमेसंभग्नाश्चासुरींतनुम् ॥ समंतादाश्रमंपूर्णयो
जनंमामकंयदि ॥ ५४ ॥ आक्रमिष्यतिदुर्बुद्धिर्व्यक्तंसनभविष्यति ॥ येचास्यसचिवाःकेचित्संश्रितामामकंवनम् ॥
॥ ५५ ॥ नचतैरिहवस्तव्यंश्रुत्वायांतुयथासुखम् ॥ तेपिवायदितिष्ठंतिशपिष्येतानपिध्रुवम् ॥ ५६ ॥ वनेस्मिन्माम
केनित्यंपुत्रवत्परिरक्षिते ॥ पत्रांकुरविनाशायफलमूलाभवायच ॥ ५७ ॥ दिवसश्चाद्यमर्यादायंद्रष्टाश्वोस्मिवान
रम् ॥ बहुवर्षसहस्राणिसवैशैलोभविष्यति ॥ ५८ ॥ ततस्तेवानराःश्रुत्वागिरंमुनिसमीरिताम् ॥ निश्चक्रमुर्वनात्त
स्मात्तान्दृष्ट्वावालिरब्रवीत् ॥५९॥

नहीं करनें पावेंगे। सो वह हमारे वचन सुनकर कहीं और वसनेंकोचले जांय, यदि वह लोग यहां वास करैंगे तो हम उनकोभी यही शाप
देवेंगे ॥ ५६ ॥ कारणकि इस वनकी रक्षा हम नित्यही पुत्रवत् करते हैं,और जो कोई वालिकी ओरका वानर यहांपर रहेगा, तो उसके रहनेंसे
पत्र अंकुरका विनाश होगा, और फल मूलादिभी नहीं रहैंगे ॥ ५७ ॥आजके दिनतक हमारे शापकी मर्यादाहै; प्रभात होतेही वालिकी ओरके
जिस किसी वानरकोभी यहांपर हम देखेंगे; तो वह बन्दर हजारों वर्षतक यहां पर पर्वत होकर रहैगा ॥ ५८ ॥ तिसके पीछे उस वनके रहनें
वाले सब वानर गण मुनिजीके यह वचन सुनकर वहांसे चलेगये; तब उनकों वहांसे निकल आये हुये देखकर वालि वोला ॥ ५९ ॥

को हम यथार्थ रूपसे श्रवण करनेंकी इच्छा करते हैं ॥ ४१ ॥ हे वानरवर! तुम्हारे बीचमें वैर होनेंका कारण सुन बलाबल विचारकर फिर तुम्हारा कार्य करेंगे ॥ ४२ ॥ तुम्हारा अपमान सुनकर हमारा कोप बलवानहो हृदयकम्पनकारी वर्षाकालीन वारिवेगकी समान बढता जाताहै ॥ ४३ ॥ हम जबतक धनुष नहीं चढाते हैं तबतक तुम हर्षित चित्तसे सब वृत्तान्त कहदो जैसेही किं हम बाण छोड़ेंगे वैसेही तुम्हारा रिपु मर जायगा, इस बातको निःसंदेह ठीक २ कर जानो ॥ ४४ ॥ महात्मा श्रीरामचंद्रजीसे इस प्रकार कहे जाकर सुग्रीवजी अपने चार मंत्रियों सहित अतुलित हर्ष प्राप्त करतेहुये ॥ ४५ ॥ तिसके पीछे सुग्रीवजीनें प्रसन्न वदन हो रामचंद्रजीसे वालिसे वैर होनेंका

सुखंहिकारणंश्रुत्वावैरस्यतववानर॥ आनंतर्याद्विधास्यामिसंप्रधार्यबलाबलम् ॥ ४२ ॥ बलवान्हिममामर्षःश्रुत्वा त्वामवमानितम्॥ वर्धतेहृदयोत्कंपीप्रावृड्वेगइवांभसः ॥ ४३ ॥ हृष्टःकथयविस्रब्धोयावदारोप्यतेधनुः ॥ सृष्टश्चहि मयाबाणोनिरस्तश्चरिपुस्तव ॥ ४४ ॥ एवमुक्तस्तुसुग्रीवःकाकुत्स्थेनमहात्मना ॥ प्रहर्षमतुलंलेभेचतुर्भिःसहवा नरैः ॥ ४५ ॥ ततःप्रहृष्टवदनःसुग्रीवोलक्ष्मणाग्रजे ॥ वैरस्यकारणंतत्त्वमाख्यातुमुपचक्रमे॥ ४६ ॥ इत्यार्षेश्री मद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेऽष्टमःसर्गः ॥ ८ ॥ वालीनाममममभ्राताज्येष्ठःशत्रुनिषूदनः ॥ पितुर्बहुमतोनित्यंममचापितथापुरा ॥ १ ॥ पितर्युपरतेतस्मिञ्ज्येष्ठोऽयमितिमंत्रिभिः ॥ कपीनामीश्वरोराज्ये कृतःपरमसंमतः ॥ २ ॥ राज्यंप्रशासतस्तस्यपितृपैतामहंमहत्॥ अहंसर्वेषुकालेषुप्रणतःप्रेष्यवत्स्थितः ॥ ३ ॥ माया वीनामतेजस्वीपूर्वजोदुंदुभेःसुतः ॥ तेनतस्यमहद्वैरंवालिनःस्त्रीकृतंपुरा ॥ ४ ॥

कारण वर्णन करना आरंभ किया ॥ ४६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडेऽष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥ वालिनामक शत्रुओंका विनाशक हमारा बड़ाभाई पिताका और जबतक वैर न हुआथा तबतक हमाराभी अत्यन्त प्रियथा ॥ १ ॥ जब पिताजीकी मृत्यु हुई तब वालिको बडा पुत्र समझ मंत्रियोंने परस्पर सम्मतिकर उसको वानरोंका राजा बनाया ॥ २ ॥ वह पिता पितामहादिकोंका राज्य पालन करनें लगे, हमें उनके निकट दासकी समान विनीत भावसे रहनें लगें ॥ ३ ॥ पहले किसी समयमें मायावी नामक

हे नृपवर ! यह हमनें आपसे वालिके अद्भुत महावीर्यका वर्णन किया सो आप उस वालिको संग्रामके मध्य किस प्रकारसे संहार करनेंमें समर्थ होंगे?॥ ६८॥ सुग्रीवजीनें जब ऐसा कहा तो लक्ष्मणजी हँसकर सुग्रीवजीसे बोले कि। श्रीरामचंद्रजी कौनसे कर्मको कर डालें कि जिस्से तुमको वालिके वधका विश्वास होजाय? ॥ ६९ ॥ सुग्रीवजी बोले कि पहले वालि इन शालके वृक्षोंमेंसे एकको पकड जब चाहताथा तब एकही वारमें वार म्बार सब वृक्षोंको हिला देताथा ॥ ७० ॥ सो रामचंद्रजी यदि एक बाणसे इनमेंका कोई वृक्षभी तोड डालें तबही हम इनका विक्रम देखकर वालि को मरा हुआ समझें ॥ ७१ ॥ और यदि उस मरे हुए भैंसेकी इन सब अस्थियोंको एक चरणसे उठाकर शीघ्रता सहित श्रीरामचंद्रजी दोशत

एतदस्यासमंवीर्यंमयारामप्रकाशितम् ॥ कथंतंवालिनंहंतुंसमरेशक्ष्यसेनृप ॥ ६८॥ तथाब्रुवाणंसुग्रीवंप्रहसँल्लक्ष्मणो ऽब्रवीत् ॥ कस्मिन्कर्मणिनिर्वृत्तेश्रद्दध्यावालिनोवधम्॥६९॥तमुवाचाथसुग्रीवःसप्तसालानिमान्पुरा॥ एवमेकैकशोवा लीविव्याधाथसचासकृत्॥७०॥रामोनिर्दारयेदेषांबाणेनैकेनचद्रुमम्॥वालिनंनिहतंमन्येदृष्ट्वारामस्यविक्रमम् ॥७१॥ हतस्यमहिषस्यास्थिपादेनैकेनलक्ष्मण ॥ उद्यम्यप्रक्षिपेच्चापितरसाद्वेधनुःशते ॥ ७२ ॥ एवमुक्त्वातुसुग्रीवोरामंरक्तांत लोचनः॥ ध्यात्वामुहूर्तंकाकुत्स्थंपुनरेववचोऽब्रवीत् ॥ ७३ ॥ शूरश्चशूरमानीचप्रख्यातबलपौरुषः ॥ बलवान्वानरो वालीसंयुगेष्वपराजितः ॥ ७४ ॥ दृश्यंतेचास्यकर्माणिदुष्कराणिसुरैरपि ॥ यानिसंचिंत्यभीतोऽहंऋष्यमूकमुपा श्रितः ॥ ७५ ॥ तमजय्यमधृष्यंचवानरेंद्रममर्षणम् ॥ विचिंतयन्नमुंचामिऋष्यमूकममुंत्वहम् ॥ ७६ ॥

धनुषकी दूरी परभी फेंकदे तोभी हम वालिको मरा हुआ समझें ॥ ७२ ॥ रक्तवर्ण लोचनवाले सुग्रीवजी लक्ष्मणजीसे ऐसा कह, श्रीरामचंद्रजी वालिको मारसकेंगे या नहीं ऐसी चिन्ता करकै फिर श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ ७३ ॥ शूरश्रेष्ठ वालि, वीरश्रेष्ठ पुरुषकेही साथ युद्ध करनेंका अभिलाप किया करताहै, उसका वीर्य बल लोकमें प्रसिद्धहै, वह अत्यन्त बलवान् और युद्धमें जीतनेंके अयोग्यहै॥ ७४ ॥ उसके सब कार्य देवता ओंकोभी दुष्कर दृष्टि आतेहैं। उन्हीं सब कार्योंकी चिन्तना करते हुए हम ऋष्यमूकपर्वत परभी अत्यन्त भीत और चिन्तना युक्त रहतेहैं॥ ७५ ॥ उस अजेय, ढिठाई करनेंसे बाहर और सहन करनेंके अयोग्य वालिकी चिन्तना करते हुये हम ऋष्यमूक पर्वतको नहीं छोड सकतेहैं ॥ ७६ ॥

हमनें उनके साथ बिलमें जानेके लिये प्रार्थना की परन्तु उन्होंनें अपना चरण भूमिमें मार (अर्थात् चरणकी सौगन्धदिला,) हमको साथले चलनेंसे रोका, और आप उस बिलमें प्रवेश कर गये ॥ १४ ॥ जब वह बिलमें प्रवेश करगये तब हमको बिलके द्वारे पर खडे २ एक वर्षसेभी अधिक काल बीतगया ॥ १५ ॥ जब इस प्रकार एक वर्ष बीतगया तब हमनें जाना कि हमारे भाई विनाशको प्राप्तहुये हमारा चित्तभी स्नेहके मारे अत्यन्त चंचल होगया और हम अनिष्टकी शंका करनेंलगे ॥ १६ ॥ तथापि हम वहां खडेही रहे तब कुछदिन पीछे उस बिलसे, फेन सहित रुधिर निकलते हुये देखकर हम अत्यन्त दुःखित हुये ॥१७॥तब गर्जना करनेवाले असुरगणोंका घोर शब्द हमको सुनाई आया

मयात्वेतद्वचःश्रुत्वायाचितःसपरंतपः ॥ शापयित्वासमांपद्भ्यांप्रविवेशबिलंततः ॥ १४ ॥ तस्यप्रविष्टस्यबिलं साग्रःसंवत्सरोगतः ॥ स्थितस्यचबिलद्वारिसकालोव्यत्यवर्तत ॥ १५ ॥ अहंतुनष्टंतंज्ञात्वास्नेहादागतसंभ्रमः ॥ भ्रातरंनप्रपश्यामिपापशंकिचमेमनः ॥ १६ ॥ अथदीर्घस्यकालस्यबिलात्तस्माद्विनिःसृतम् ॥ सफेनंरुधिरंदृष्ट्वाततोऽहंभृशदुःखितः ॥ १७ ॥ नर्दतामसुराणांचध्वनिर्मेश्रोत्रमागतः ॥ नरतस्यचसंग्रामेक्रोशतोपिस्वनोगुरोः ॥ १८ ॥ अहंत्ववगतोबुद्ध्याचिह्नैस्तैर्भ्रातरंहतम् ॥ पिधायचबिलद्वारंशिलयागिरिमात्रया ॥ १९ ॥ शोकार्तश्चोदकंकृत्वा किष्किंधामागतःसखे ॥ गूहमानस्यमेतत्त्वंयत्नतोमंत्रिभिःश्रुतम् ॥ २० ॥ ततोऽहंतैःसमागम्यसमेतैरभिषेचितः ॥ राज्यंप्रशासतस्तस्यन्यायतोममराघव ॥ २१ ॥

परन्तु संग्राममें गयेहुये अपने बडे भाई साहब वालिका हमको कोई शब्द न सुनपडा ॥ १८ ॥ हमनें इन चिह्नोंसे जानाकि हमारे भाई साहब मारे गये, तब इस कारणसे एक पर्वताकार शिला उस गुफाके द्वारपर अडादी ॥ १९ ॥ और शोकार्त्त चित्तसे उनकी जलक्रिया करके हम किष्किन्धामें आये यद्यपि हमनें वालिके वधकी वार्त्ता बहुतही छिपाई, परन्तु मंत्री लोगोंनें उसको किसी प्रकारसे जानलिया ॥ २० ॥ तिसके पीछे उन सब मंत्रियोंनें मिलकर हमारी इच्छा न रहतेभी हमको राज्यपर बैठाल दिया, हम यथान्यायसे राज्यका पालन करतेथे ॥ २१ ॥

तनुको पैरके अंगूठेसे वीर्यवान् श्रीरामचंद्रजीनें उठाय कर फेंका ॥ ८५ ॥ तो इसको देखकर सुग्रीवजी फिर बोले ! वानर गणोंके और लक्ष्मण जीके आगे दीप्तिमान सूर्य नारायणकी समान श्रीरामचंद्रजीसे सुग्रीवजी फिर यह अर्थ युक्त वचन बोले ॥ ८६ ॥ हे सखे ! पहले यह देह गीला और मांस सहितथा, तव उस समय हमारे भाई वालिनें बडे परिश्रमसे यह देह उठाकर फेंकाथा ८७ ॥ हे रघुनंदन ! यह देह इस समय मांसहीन, लघु और तृण तुल्यहै, सो उसको आपने हर्ष युक्तहो विना परिश्रमके उठाकर फेंक दिया ॥ ८८ ॥ हे राघव ! सो इस फेंकनेंसे आपका बल

क्षिप्तंदृष्ट्वाततःकायंसुग्रीवःपुनरब्रवीत् ॥ लक्ष्मणस्याग्रतोरामंतपंतमिवभास्करम् ॥ हरीणामग्रतोवीरमिदंवचनमर्थव
त् ॥ ८६ ॥ आर्द्रःसमांसप्रत्यग्रःक्षिप्तःकायःपुरासखे ॥ परिश्रांतेनमत्तेनभ्रात्रामेवालिनातदा ॥ ८७ ॥ लघुःसंप्रतिनिर्मांसस्तृ
णभूतश्चराघव ॥ क्षिप्तएवंप्रहर्षेणभवतारघुनंदन ॥ ८८ ॥ नात्रशक्यंबलंज्ञातुंतववातस्यवाधिकम् ॥ आर्द्रंशुष्कमितिह्येत
त्सुमहद्राघवांतरम् ॥ ८९ ॥ सएवसंशयस्तातत्तवतस्यचयद्बलम् ॥ सालमेकंविनिर्भिद्यभवेद्व्यक्तिर्बलाबले ॥ ९० ॥
कृत्वैतत्कार्मुकंसज्यंहस्तिहस्तमिवापरम् ॥ आकर्णपूर्णमायम्यविसृजस्वमहाशरम् ॥ ९१ ॥ इमंहिसालंप्रहितस्त्व
याशरोनसंशयोऽत्रास्तिविदारयिष्यति ॥ अलंविमर्शेनममप्रियंध्रुवंकुरुष्वराजन्प्रतिशापितोमया ॥ ९२ ॥

अधिक या वालिका बल अधिकहै यह नहीं जानागया । क्योंकि गीली और सूखी वस्तुके वोझमें बडा भारी अंतर होताहै ॥ ८९ ॥ अभी आपके और वालिके बल जाननेंके विषयमें संशय रही । जोहो, जिस समयकि आप इनमेंसे एकभी शालके वृक्षको तोड डालेंगे, तो बलाबल सव जाना जायगा ॥ ९० ॥ आप इस हाथीकी शूंडके समान धनुषपर रोदा चढा कर कानतक खींच महाशर छोडिये ॥ ९१ ॥ आपका छोडा हुआ वाण निश्चयही इस शालके वृक्षको तोड डालेगा इसमें कुछ संदेह नहींहै । और इसविषयमें कुछ विचार करनेंकाभी प्रयोजन नहीं, क्योंकि आप

वर्षतक खडे रहे इस्से बहुत कातर होगये, फिर बिलसे उत्पन्न हुई शोणितकी धार अवलोकन करके ॥ ४ ॥ शोक और घवडाहटसे हमारा हृदय अत्यन्त चंचल हुआ और सब इन्द्रियेंभी अत्यन्त व्याकुल होआई तब हम पर्वतके शिखरसे गुफाका द्वार रोककर ॥ ५ ॥ उस स्थानसे फिर आकर किष्किन्धामें चले आये मंत्रियोंनें और पुरके लोगोंनें हमको अत्यन्त विषादित देखकर ॥ ६ ॥ राज्यसिंहासनपर बैठालदिया, परन्तु राज्यसिंहासनपर बैठनेंकी हमारी इच्छा नहींथी । जोहो आप हमारे इस अपराधको क्षमा कीजिये, आप अबभी पहलेहीकी समान राजाहैं और जैसे प्रथम हम आपके सेवकथे वैसेही अबभीहैं ॥ ७ ॥ और हम जो राज्य सिंहासन पर बैठाये गये, यह बात तो आपके न होनें

शोकसंविग्नहृदयोभृशंव्याकुलितेंद्रियः ॥ अपिधायबिलद्वारंशैलशृंगेणतत्तदा ॥ ५ ॥ तस्माद्देशादपाक्रम्यकिष्किंधां प्राविशंपुनः ॥ विषादात्त्विहमांदृष्ट्वापौरैर्मंत्रिभिरेवच ॥ ६ ॥ अभिषिक्तोनकामेनतन्मेक्षंतुंत्वमर्हसि ॥ त्वमेवराजा मानार्हःसदाचाहंयथापुरा ॥ ७ ॥ राजभावेनियोगोऽयंममत्वद्विरहात्कृतः ॥ सामात्यपौरनगरंस्थितंनिहतकंटकम् ॥ ८ ॥ न्यासभूतमिदंराज्यंतवनिर्यातयाम्यहम् ॥ माचरोषंकृथाःसौम्यममशत्रुनिषूदन ॥ ९ ॥ याचेत्वां शिरसाराजन्मयाबद्धोऽयमंजलिः ॥ बलादस्मिन्समागम्यमंत्रिभिःपुरवासिभिः ॥ १० ॥ राज्यभावेनियुक्तोऽहं शून्यदेशजिगीषया ॥ स्निग्धमेवंब्रुवाणंमांसविनिर्भर्त्स्यवानरः ॥ ११ ॥ धिक्त्वामितिचमामुक्त्वाबहुतत्तदुवाचह ॥ प्रकृतीश्चसमानीयमंत्रिणश्चैवसंमतान् ॥ १२ ॥

पर थी, जैसे आप मंत्रियोंको छोड गयेथे वैसेही सब मंत्रीभी अबतक हैं, और राज्यमें शत्रुभी कोई नहीं है ॥ ८ ॥ हमारे पास तो आपका यह राज्य मानो थातीकी भांति रक्खारहा अब आप इसको लेलें । हे शत्रुनिषूदन सौम्य! हमारे ऊपर अब आप रोष न करैं ॥ ९ ॥ हे राजन्! हम आपके आगे हाथ जोड शिर झुकाकर यह प्रार्थना करते हैं, कि मंत्रि और पुरवासियोंनें बलात्कार ॥ १० ॥ हमको राज्य करनेंमें लगा दियाथा, इस कारण से कि आपके न रहनेंपर शूने देशमें कोई शत्रु चढ न आवे और इसे जीत न ले, हे श्रीरामचंद्रजी! हमनें विनीतभावसे ऐसे ऐसे मधुर वचन कहे पर उन हमारे बडे भ्राताने हमारा बडा अपमान कर ॥ ११ ॥ तुझको धिक्कार है, तुझको धिक्कार है; वारंवार ऐसे कठोर वचन कहे तत्प

द्रजीसे बोले ॥ ७ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ! आप वालिको मार डालेंगे, इसमें संदेहही क्याहै, क्योंकि आप इन्द्रके सहित सब देवताओंकाभी संहार संग्राममें कर सकतेहैं। फिर वालि विचारा तो है ही क्या? ॥ ८ ॥ आपनें एकही बाणसे सप्तताल तोडे और पर्वतकी भूमि फोड डाली; इसलिये रणमें आपके आगे कौन पुरुष ठहर सकताहै? ॥ ९ ॥ इन्द्र और वरुणकेतुल्य आपको सुहृद पाय आज हमारा शोक बीता; और उत्तम प्रीति उत्पन्न हुई ॥ १० ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! यह हम आपके हाथ जोडतेहैं कि आप हमारी प्रसन्नताके लिये वैरीरूप हमारे भ्राताको मार डालिये ॥ ११ ॥ महाप्राज्ञ श्रीरामचंद्रजी, लक्ष्मणजीकी समान प्रियतम, प्रियदर्शन सुग्रीवजीको भेंटकर कहनें लगे॥ १२॥ हे सुग्रीव! अब यहांसे शीघ्रही

सेंद्रानपिसुरान्सर्वांस्त्वंबाणैःपुरुषर्षभ ॥ समर्थःसमरेहंतुंकिंपुनर्वालिनंप्रभो ॥ ८ ॥ येनसप्तमहातालागिरिर्भूमिश्चदारि
ता ॥ बाणेनैकेनकाकुत्स्थस्थातातेकोरणाग्रतः॥९॥अद्यमेविगतःशोकःप्रीतिरद्यपरामम॥ सुहृदंत्वांसमासाद्यमहेंद्रवरु
णोपमम् ॥ १० ॥ तमद्यैवप्रियार्थंमेवैरिणंभ्रातृरूपिणम् ॥ वालिनंजहिकाकुत्स्थमयाबद्धोऽयमंजलिः ॥ ११ ॥ ततो
रामःपरिष्वज्यसुग्रीवंप्रियदर्शनम्॥प्रत्युवाचमहाप्राज्ञोलक्ष्मणानुगतंवचः॥१२॥अस्माद्गच्छामिकिष्किंधांक्षिप्रंगच्छ
त्वमग्रतः ॥ गत्वाचाह्वयसुग्रीववालिनंभ्रातृगंधिनम् ॥ १३ ॥ सर्वेतेत्वरितंगत्वाकिष्किंधांवालिनःपुरीं ॥ वृक्षैरात्मान
मावृत्यह्यतिष्ठन्गहनेवने ॥ १४ ॥ सुग्रीवोऽप्यनदद्घोरंवालिनोह्वानकारणात् ॥ गाढंपरिहितोवेगान्नादैर्भिदन्निवां
बरम् ॥ १५ ॥ तंश्रुत्वानिनदंभ्रातुःक्रुद्धोवालीमहाबलः ॥ निष्पपातसुसंरब्धोभास्करोऽस्ततटादिव ॥ १६ ॥ ततः
सुतुमुलंयुद्धंवालिसुग्रीवयोरभूत् ॥ गगनेग्रहयोर्घोरंबुधांगारकयोरिव ॥ १७ ॥

किष्किन्धा पुरीको चलो और तुम आगे २ गमन करके उस अपने भाई वालिको पुकारो॥१३॥यह कहकर श्रीरामचंद्रजी व और भी सब वानर किष्किन्धा पुरीमें जाय वृक्षोंसे देह छिपाय सघन वनमें खडे हो गये ॥१४॥सुग्रीवजी अपने वस्त्रोंको कस कर पहर वालिके पुकारनेंके लिये घोर शब्द करनें लगे मानों आकाशको भेदन करतेही हुये घोर शब्दकर रहेथे॥१५॥अपने भाई सुग्रीवका वह गर्जना सुन महा बलवान वालि क्रोधसे अधीरहो अस्ताचलके समीप से निकलते हुये सूर्यनारायणकी समान बडे वेगसहित अपने पुरसे निकला ॥१६॥ तिसके पीछे आकाशतलमें बुध और मंगल ग्र

पूर्वक गुफाके बाहेर को आरहेथे तब उस समय देखाकि गुफाका द्वार बंद पडा है ॥२२॥ तब हम "भइया सुग्रीव! सुग्रीव" कह कर जोरसे पुकारने लगे परन्तु उस समय कुछ उत्तर न पाकर हम बडे दुःखी हुये॥२३॥फिर हम बहुत सारे चरण प्रहारोंके द्वारा उस शिलाको ढकेल उस गुफासे निकल नगरमें आये हैं॥२४॥यह सुग्रीव भायपन का स्नेह भुलाकर राज्यके लोभ से हमको गुफामें बंदकर आया इससे हमको अत्यन्त क्रोध हुआ है ॥ २५॥ वानर राज निर्भय वालिने ऐसा कहकर एक मात्र धोती पहराकर हमको घरसे निकालदिया ॥२६॥ हे श्रीरामचंद्रजी! हमारी स्त्रीको हरण करके उस वालिने हमको बहुत ही मारदी उस वालिके ही भयसे समुद्र वन युक्त यह समस्त पृथ्वी हम घूमते थे ॥ २७ ॥ हम अपनी स्त्रीके हरण होजानेंके

विक्रोशमानस्यतुमेसुग्रीवेतिपुनपुनः ॥ यतःप्रतिवचोनास्तिततोऽहंभृशदुःखितः ॥ २३ ॥ पादप्रहारैस्तुमयाबहुभिः परिपातितम् ॥ ततोऽहंतेननिष्क्रम्यपथापुरमुपागतः ॥ २४ ॥ तत्रानेनास्मिसंरुद्धोराज्यंमृगयतात्मनः ॥ सुग्रीवेणनृशंसेनविस्मृत्यभ्रातृसौहृदम् ॥ २५ ॥ एवमुक्त्वातुमांतत्रवस्त्रेणैकेनवानरः ॥ तदानिर्वासयामासवालीविगतसाध्वसः ॥ २६ ॥ तेनाहमपविद्धश्चहृतदारश्चराघव ॥ तद्भयाच्चमहींसर्वांक्रांतवान्सवनार्णवाम् ॥ २७ ॥ ऋष्यमूकंगिरिवरंभार्याहरणदुःखितः ॥ प्रविष्टोऽस्मिदुराधर्षवालिनःकारणांतरे ॥ २८ ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातंवैरानुकथनंमहत् ॥ अनागसामयाप्राप्तंव्यसनंपश्यराघव ॥ २९ ॥ वालिनश्चभयात्तस्यसर्वलोकभयापह ॥ कर्तुमर्हसिमेवीरप्रसादंतस्यनिग्रहात् ॥ ३० ॥ एवमुक्तःसतेजस्वीधर्मज्ञोधर्मसंहितम् ॥ वचनंवक्तुमारेभेसुग्रीवंप्रहसन्निव ॥ ३१ ॥ अमोघाःसूर्यसंकाशानिशितामेशराइमे ॥ तस्मिन्वालिनिदुर्वृत्तेपतिष्यंतिरुषान्विताः ॥ ३२ ॥

दुःखसे महा दुःखित इस ऋष्यमूक पर्वतपर चले आये! क्योंकि यहां पर मतंगजीके शापसे वालि नहीं आसकता ॥ २८ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! हमनें आपसे वालिसे वैरभाव होनेंका समस्त ही कारण कह सुनाया; देखिये इस्में हमारा कुछभी अपराध नहीं है वरन हम विना अपराधही यह महा दुःख पारहेहैं॥२९॥हे सर्व लोकको अभय देनेंवाले! वालिको मार कर उसके भयसे भीत और व्याकुल हमारे ऊपर आप प्रसन्न हूजिये॥३०॥वह तेजस्वी धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी वह धर्म साने वचन सुन हँसकर बोले ॥३१॥ हे सुग्रीव ! हमारे यह तीखे सूर्यसमान प्रकाशित अमोघ बाण उस दुरा

आपका क्या कार्य हुआ? ॥ २६ ॥ हे राघव! जो उसी समय आप कह देतेकि हम वालिको न मारेंगे, तोही अच्छाथा कारण कि फिर हम यहांसे वहां क्यों जाते ॥ २७ ॥ जब महात्मा सुग्रीवजीने इस प्रकार दीनवचन कहे तब श्रीरामचंद्रजी करुणा कर उनसे बोले ॥ २८ ॥ हे सुग्रीव ! तुम क्रोधको त्यागन करो, जिसकारणसे हमनें बाण न चलाया उस कारणको तुम सुनो ॥ २९ ॥ वस्त्राभूषण, वेष, प्रमाण और चालसे तुम दोनोंमें परस्पर एकहोनेंके कारण कुछभी अंतर नहीं देख पडताथा ॥ ३० ॥ स्वर, वचन, कान्ति और विक्रममेंभी तुम दोनों जन समान थे इससे हमने उस समय न जाना कि कौन वालि और कौन सुग्रीवहैं ॥ ३१ ॥ हेवानरश्रेष्ठ ! इसी कारणसे हम रूप और समानता के दिखावसे

तामेववेलांवक्तव्यंत्वयाराघवतत्त्वतः ॥ वालिनंननिहन्मीतिततोनाहमितोव्रजे ॥ २७॥ तस्यचैवंब्रुवाणस्यसुग्रीवस्य महात्मनः ॥ करुणंदीनयावाचाराघवःपुनरब्रवीत् ॥ २८ ॥ सुग्रीवश्रूयतांतातक्रोधश्चव्यपनीयताम् ॥ कारणंयेन बाणोऽयंसमयानाविसर्जितः॥२९॥अलंकारेणवेषेणप्रमाणेनगतेनच ॥ त्वंचसुग्रीववालीचसदृशौस्थःपरस्परम् ॥ ३० ॥ स्वरेणवर्चसाचैवप्रेक्षितेनचवानर ॥ विक्रमेणचवाक्यैश्चव्यक्तिंवांनोपलक्षये ॥ ३१ ॥ ततोऽहंरूपसादृश्यान्मोहितो वानरोत्तम ॥ नोत्सृजामिमहावेगंशरंशत्रुनिबर्हणम् ॥ ३२ ॥ जीवितांतकरंघोरंसादृश्यात्तुविशंकितः ॥ मूलघातो ननौस्याद्धिद्वयोरितिकृतोमया ॥ ३३ ॥ त्वयिवीरविपन्नेहिअज्ञानाल्लाघवान्मया ॥ मौढ्यंचममबाल्यंचख्यापितंस्या त्कपीश्वर ॥ ३४ ॥ दत्ताभयवधोनामपातकंमहदद्भुतम् ॥ अहंचलक्ष्मणश्चैवसीताचवरवर्णिनी ॥ ३५ ॥

मोहितहो महावेगवान् शत्रुविनाशकारी बाण न चलासके ॥ ३२ ॥ तुम दोनोंका एकसारूपही देखनेके कारण शंकितहो, प्राणोंका अंत करनें वाला घोर बाण छोडनेको हम असमर्थ हुये । यदि तुम दोनोंकी सदृश्यताके हेतुसे तुम्हारेही बाण लगजाय, तो बस मूलकाही विनाश होजाय, अर्थात् न हमें सीता मिलें न तुम्हें राज्य, बस यही बात हमारी शंकामें मूलकारण हुई ॥ ३३ ॥ हे कपीश्वर ! अज्ञानता और बडी शीघ्रतासे यदि कहीं तुम्हारेही बाण लग जाता, तब हमारी मूर्खता, और बालकताका निःसन्देह सब जगह प्रचार होजाता ॥ ३४ ॥ हे वानर ! अभयदान देकर यदि फिर उसकाही वध कियाजाय तो बडा भारी अद्भुत पातक होताहै ।यहभी तुम मानलो कि, हम, लक्ष्मण, और श्रेष्ठ वर्णवाली सीताजी ॥३५॥

वालिनें अपना बल प्रकाश करनेंके लिये, वनमें लगे हुए बहुतेरे सारवान् वृक्षोंको उखाडकर चूर्णकरदिया॥६॥कैलास पर्वतके शिखरकी समान दुन्दुभी नामक वीर्यवान् महिष हजार हाथियोंका बल अपने शरीरमें धारण करताथा॥७॥ वीर्यके मदसे मतवाला वन, और वरदान पानेके कारण मोहितहो वह महाकाय दुन्दुभी समुद्रके निकटगया, ॥ ८॥ वह रत्नाकर समुद्रकी तरंगोंको रोक समुद्रसे बोला कि तुम हमको युद्धदानदो ॥ ९ ॥ तब धर्मात्मा महा बलवान् समुद्रनें उठकर, उस बलसे मतवाले दुष्टकालप्रेरित असुरसे कहा ॥ १० ॥ हे युद्धविशारद ! तुम्हारे साथ युद्ध करनेंकी हममें

बहवःसारवंतश्चवनेषुविविधाद्रुमाः ॥ वालिनातरसाभग्नाबलंप्रथयतात्मनः ॥ ६ ॥ महिषोदुंदुभिर्नामकैलासशिखरप्रभः ॥ बलंनागसहस्रस्यधारयामासवीर्यवान् ॥ ७ ॥ सवीर्योत्सेकदुष्टात्मावरदानेनमोहितः ॥ जगामसमहाकायःसमुद्रंसरितांपतिम् ॥ ८ ॥ उर्मिमंतमतिक्रम्यसागरंरत्नसंचयम् ॥ ममयुद्धंप्रयच्छेतितमुवाचमहार्णवम् ॥ ९ ॥ ततःसमुद्रोधर्मात्मासमुत्थायमहाबलः ॥ अब्रवीद्वचनंराजन्नसुरंकालचोदितम् ॥ १० ॥ समर्थोनास्मितेदातुंयुद्धंयुद्धविशारद ॥ श्रूयतांत्वभिधास्यामियस्तेयुद्धंप्रदास्यति ॥ ११ ॥ शैलराजोमहारण्येतपस्विशरणंपरम् ॥ शंकरश्वशुरोनाम्नाहिमवानितिविश्रुतः॥१२॥महाप्रस्रवणोपेतोबहुकंदरनिर्झरः॥ससमर्थस्तवप्रीतिमतुलांकर्तुमर्हति ॥ १३ ॥ तंभीतमितिविज्ञायसमुद्रमसुरोत्तमः ॥ हिमवद्वनमागम्यशरश्चापादिवच्युतः ॥ १४ ॥ ततस्तस्यगिरेःश्वेतागजेंद्रप्रतिमाःशिलाः ॥ चिक्षेपबहुधाभूमौदुंदुभिर्विननादच ॥ १५ ॥

सामर्थ्य नहींहै, हां जो पुरुष तुम्हारे साथ युद्ध करैगा, उसको बतलातेहैं श्रवणकरो ॥ ११ ॥ महा अरण्यमें हिमवान नामसे विख्यात तपस्वियोंको आश्रय देनेवाले, शिवजीके श्वशुर एक पर्वत राजहैं ॥ १२ ॥ उसगिरिमें बहुतसे झरने, कन्दरा, और सोते विद्यमानहैं। सो वह गिरिराज तुमको प्रसन्न करनें में समर्थ होंगे, अर्थात् तुमसे युद्ध करसकैंगे ॥ १३ ॥वह असुर श्रेष्ठ समुद्रको अपनेंसे डरा हुआ जानकर धनुषसे छूटेहुये बाणकी समान शीघ्रताके सहित सीधा हिमालयकें वनमे पहुँचा ॥ १४ ॥ और उन पर्वतराजपर पहुँच उनकी ऐरावत हस्तीके तुल्य सफेद

दृढ गरदनवाले सुग्रीवजीभी महाकालमहात्मा श्रीराम लक्ष्मणजीके आगे २ चलनें लगे ॥ ३ ॥ फिर पीछे वीर हनुमान और वीर्यवान् नल नील, और महातेजस्वी तार यह चार वानर सुग्रीवजीके सेनापति और मंत्रीभी चले ॥ ४ ॥ यह सब मार्गमें फूलोंके भारसे झुके पेड, स्वच्छ जल वहनेंवाली नदियां और तडाग देखते जातेथे ॥ ५ ॥ कंदरायें, पर्वत,झरने,और गुफा बडे२शिखर और प्रिय दर्शन दरें देखते हुये ॥ ६ ॥ वैदूर्य मणिके समान विमल जल बहते, फूले हुये कमल फूलोंसे युक्त, शोभायमान तड़ाग मार्गमें देखते जातेथे ॥ ७ ॥ कारंडव, सारस, हंस, वंजुल

अग्रतस्तुययौतस्यराघवस्यमहात्मनः॥सुग्रीवःसंहतग्रीवोलक्ष्मणस्यमहाबलः॥३॥पृष्ठतोहनुमान्वीरोनलोनीलश्चवी र्यवान्॥ तारश्चैवमहातेजाहरियूथपयूथपः॥४॥तेवीक्षमाणावृक्षांश्चपुष्पभारावलंबिनः ॥ प्रसन्नांबुवहाश्चैवसरितःसाग रंगमाः ॥५॥ कंदराणिचशैलांश्चनिर्दराणिगुहास्तथा ॥ शिखराणिचमुख्यानिदरीश्चप्रियदर्शनाः ॥ ६ ॥ वैदूर्यविम लैस्तोयैःपद्मैश्चाकोशकुड्मलैः ॥ शोभितान्सजलान्मार्गेतटाकांश्चावलोकयन् ॥ ७ ॥ कारंडैःसारसैर्हंसैर्वंजुलैर्जलकु क्कुटैः ॥ चक्रवाकैस्तथाचान्यैःशकुनैःप्रतिनादितान् ॥ ८ ॥ मृदुशष्पांकुराहारान्निर्भयान्वनचारिणाम् ॥ चरतांसर्व तःपश्यन्स्थलीषुहरिणान्स्थितान् ॥ ९ ॥ तटाकवैरिणश्चापिशुक्लदंतविभूषितान् ॥ घोरानेकचरान्वन्यान्द्विरदा न्कूलघातिनः ॥ १० ॥ मत्तान्गिरितटोद्घुष्टान्पर्वतानिवजंगमान् ॥ वानरान्द्विरदप्रख्यान्महीरेणुसमुक्षितान् ॥११॥ वनेवनचरांश्चान्यान्खेचरांश्चविहंगमान् ॥ पश्यंतस्त्वरिताजग्मुःसुग्रीववशवर्तिनः ॥ १२ ॥ तेषांतुगच्छतांतत्रत्व रितंरघुनंदनः ॥ द्रुमषंडवनंदृष्ट्वारामःसुग्रीवमब्रवीत् ॥ १३ ॥

जलकुक्कुट, चक्रवाक इत्यादि पक्षी मधुर बोल रहेथे ॥ ८ ॥ कोमल घास व अंकुर चरकर निर्भयहो वनमें फिरनेवाले, वनस्थलियोंमें बहुत सारे हरिण इन्होंने बैठे हुये देखे ॥९॥ तडागोंके शत्रु और श्वेत दातोंसे भूषित, घोररूप, नदियोंके करारे गिरानेंवाले बनैले हाथीभी जाते२देखे ॥ १०॥ जल वमनवाले पर्वतोंके तीर किलकिलाते चर पर्वताकार हाथियोंकी नांई रेणु उडाते प्राकृत वानरभी जाते २ देखे ॥११॥ और दूसरे वनमें च रनेवाले जीवगणोंको, व आकाशमें चरनेंवाले पक्षियोंको देखते सुग्रीवजीके वशवर्त्ती सब वानर चलेजातेथे ॥१२॥ वह वानर जबकि बडे वेगसे चल

किष्किन्धा नाम नगरीमें आया ॥ २४ ॥ उस असुरनें वर्षाकालके समय आकाशमें जलपूर्ण महा मेघकी समान तेज सींग युक्त अपना महाभयानक रूप धारण किया ॥ २५ ॥ फिर महाबलवान् दुन्दुभी किष्किन्धाके द्वार पर आ भूमिको कंपाता हुआ नगाडेके शब्द समान सिंह नाद करनें लगा ॥ २६ ॥ वह दर्पमें भरे मतवाले हाथीकी समान किष्किन्धाके द्वार वाले वृक्ष तोड और अपनें खुरोंसे भूमिको विदीर्ण कर सींगोंसे खोदनें लगा ॥ २७ ॥ उस समयमें वालि रनवासमें स्त्रियोंके निकट बैठाथा, वह उस शब्दको न सहन कर तारागणोंके सहित चन्द्रमाकी समान सब स्त्रियोंके साथ बाहर चला आया ॥ २८ ॥ समस्त वनचारियोंका, और वानर गणोंका राजा वालि दुन्दुभीसे स्पष्ट २ बोला ॥ २९ ॥ हे महाबल

धारयन्माहिषंवेषंतीक्ष्णशृंगोभयावहः ॥ प्रावृषीवमहामेघस्तोयपूर्णोनभस्तले ॥ २५ ॥ ततस्तुद्वारमागम्यकिष्किंधायामहाबलः ॥ ननर्दकंपयन्भूमिंदुंदुभिर्दुंदुभिर्यथा ॥ २६ ॥ समीपजान्द्रुमान्भंजन्वसुधांदारयन्खुरैः ॥ विषाणेनोल्लिखन्दर्पात्तद्वारंद्विरदोयथा ॥ २७ ॥ अंतःपुरगतोवालीश्रुत्वाशब्दममर्षणः ॥ निष्पपातसहस्त्रीभिस्ताराभिरिवचंद्रमाः ॥ २८ ॥ मितंव्यक्ताक्षरपदंतमुवाचसदुंदुभिम् ॥ हरीणामीश्वरोवालीसर्वेषांवनचारिणाम् ॥ २९ ॥ किमर्थंनगरद्वारमिदंरुद्धाविनर्दसे ॥ दुंदुभेविदितोमेऽसिरक्षप्राणान्महाबल ॥ ३० ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वावानरेंद्रस्यधीमतः ॥ उवाचदुंदुभिर्वाक्यंक्रोधात्संरक्तलोचनः ॥ ३१ ॥ नत्वंस्त्रीसंनिधौवीरवचनंवक्तुमर्हसि ॥ ममयुद्धंप्रयच्छाद्यततोज्ञास्यामितेबलम् ॥ ३२ ॥ अथवाधारयिष्यामिक्रोधमद्यनिशामिमाम् ॥ गृह्यतामुदयःस्वैरंकामभोगेषुवानर ॥ ३३ ॥ दीयतांसंप्रदानंचपरिष्वज्यचवानरान् ॥ सर्वशाखामृगेंद्रस्त्वंसंसाधयसुहृज्जनम् ॥ ३४ ॥

वान् दुन्दुभे! तुम किस कारणसे इन नगरके द्वारको रोके हुये गर्जना कर रहे हो? तुम हमारा बल भली भांति जानते हो, इस कारणसे इस समय अपनें प्राणोंकी रक्षा करो ॥ ३० ॥ वानरश्रेष्ठ बुद्धिमान वालिके ऐसे वचन सुनकर लाल २ नेत्र कर दुन्दुभी वालिसे बोला॥ ३१ ॥ हे वीर! तुम अपनी स्त्रियोंके निकटही अपनी बडाईके वचन कह रहे हो; आज हमारे साथ युद्ध करो;तब तुम्हारा बल जाना जायगा ॥३२॥ अथवा अब हम रात्रि कालमें अपनें क्रोधको रोके रहते हैं, तबतक तुम सूर्यके उदय होनेंतक काम भोगमें आसक्त हो इन स्त्रियोंके सहित रात्रि बिताओ॥३३॥प्रभात हम

व वाजोंकी आया करती है और दिव्य गन्धभी यहांसे आती रहती है ॥ २२ ॥ इस आश्रममें तीन अग्निभी दीप्तिमानरहते हैं इ
धर निहारियेकि कपोतके रंगका धूसरवर्णवाला धुआं इन सबवृक्षोंमें छाय रहाहै ॥ २३ ॥ मेघोंसे घिरे हुये वैदूर्यमणिके पर्वतोंकी समान धूम
युक्त होनेके कारण यह वृक्ष प्रकाशमान हो रहे हैं ॥ २४ ॥ हेधर्मात्मन् ! आप लक्ष्मणजीके सहित सावधान चित्तसे हाथ जोडकर इन मुनि
जनोंके लिये प्रणाम कीजिये ॥ २५ ॥ हेश्रीरामचंद्रजी ! जो पुरुष इन सिद्धात्मा ऋषिलोगोंको प्रणाम करता है, उसके शरीरमें किंचित्मात्र
पाप नहीं ठहर सकता ॥ २६ ॥ जब सुग्रीवजीने ऐसा कहा, तब श्रीरामचंद्रजीनें लक्ष्मणजीके सहित हाथ जोडकर उन महात्मा मुनिजनोंके

त्रेताग्नयोऽपिदीप्यंतेधूमोह्येषप्रदृश्यते ॥ वेष्टयन्निववृक्षाग्रान्कपोतांगारुणोघनः ॥ २३ ॥ एतेवृक्षाःप्रकाशंते
धूमसंसक्तमस्तकाः ॥ मेघजालप्रतिच्छन्नावैदूर्यगिरयोयथा ॥ २४ ॥ कुरुप्रणामंधर्मात्मंस्तेषामुद्दिश्यरा
घव॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्राप्रयतःसंहतांजलिः ॥२५॥ प्रणमंतिहियेतेषामृषीणाभावितात्मनाम्॥नतेषामशुभंकिंचिच्छ
रीरेरामविद्यते ॥ २६ ॥ ततोरामःसहभ्रात्रालक्ष्मणेनकृतांजलिः ॥ समुद्दिश्यमहात्मानस्तानृषीनभ्यवादयत् ॥ २७ ॥
अभिवाद्यचधर्मात्मारामोभ्राताचलक्ष्मणः ॥ सुग्रीवोवानराश्चैवजग्मुःसंहृष्टमानसाः ॥ २८ ॥ तेगत्वादूरमध्वानंत
स्मात्सप्तजनाश्रमात् ॥ ददृशुस्तांदुराधर्षांकिष्किंधांवालिपालिताम् ॥ ततस्तुरामानुजरामवानराःप्रगृह्यशस्त्राण्यु
दितोग्रतेजसः ॥ पुरींसुरेशात्मजवीर्यपालितांवधायशत्रोःपुनरागतास्त्विह ॥३०॥ इ०श्रीम०वा०आ०किष्किंधाकांडे
त्रयोदशःसर्गः ॥ १३ ॥ ॥ ७ ॥ ॥

लिये प्रणाम किया ॥ २७ ॥ उनको प्रणाम कर धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी भ्राता लक्ष्मण, सुग्रीव व औरभी सब वानर हर्षित होकर गमन
करनें लगे ॥ २८ ॥ वह सब जन सप्तजन आश्रमसे दूर आकर वालिकी पाली हुई उस दुर्द्धर्ष किष्किन्धा नगरीमें पहुँचे ॥ २९ ॥
फिर श्रीराम, लक्ष्मण, और वानरगण अपने २ उग्र तेजवाले अस्त्र शस्त्रोंको धारण कर शत्रुको मार डालनेंके लिये इंद्र पुत्रकी प्रतिपालित
किष्किन्धा नगरीमें दूसरी बार आये ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

कारण महाघोर संग्राम आरंभ हुआ ॥ ४२ ॥ इंद्रतुल्य पराक्रमशालीवालि, लात, घूंसा, जांघ, शिला, और वृक्षोंके द्वारा युद्ध करनें लगा॥४३॥ इस प्रकारसे वानर और असुरका युद्ध होने लगा। युद्ध होते २ असुरका बल क्षीण होता और वालिका बल बढता जाताथा ॥ ४४ ॥ तब वालिनें दुन्दुभीको पकडकर पृथ्वीपर पटक दिया, उस प्राण विनाशक युद्धमें दुन्दुभी वालि करके चूर्ण करडाला गया ॥ ४५ ॥ दुन्दुभी के नाक कान आदिसे बहुतसा रुधिर निकलने लगा. वह महाबाहु असुर पृथ्वीपर गिरकर प्राण त्यागन करदेता हुआ ॥ ४६ ॥ वालिनें

अयुध्यततदावालीशक्रतुल्यपराक्रमः ॥ मुष्टिभिर्जानुभिःपद्भिःशिलाभिःपादपैस्तथा ॥ ४३ ॥ परस्परंघ्नतोस्तत्र वानरासुरयोस्तदा ॥ आसीद्धीनोऽसुरोयुद्धेशक्रसूनुर्व्यवर्धत ॥ ४४ ॥ तंतुदुंदुभिमुद्यम्यधरण्यामभ्यपातयत् ॥ युद्धेप्राणहरेतस्मिन्निष्पिष्टोदुंदुभिस्तदा ॥ ४५ ॥ स्रोतोभ्योबहुरक्तंतुतस्यसुस्रावपात्यतः ॥ पपातचमहाबाहुः क्षितौपंचत्वमागतः ॥ ४६ ॥ तंतोलयित्वाबाहुभ्यांगतसत्त्वमचेतनम् ॥ चिक्षेपवेगवान्वालीवेगेनैकेनयोजनम् ॥ ४७॥ तस्यवेगप्रविद्धस्यवक्त्रात्क्षतजबिंदवः ॥ प्रपेतुर्मारुतोत्क्षिप्तामतंगस्याश्रमंप्रति॥४८॥तान्दृष्ट्वापतितांस्तत्रमुनिःशोणितविप्रुषः ॥ क्रुद्धस्तस्यमहाभागचिंतयामासकोन्वयम्॥४९॥येनाहंसहसास्पृष्टःशोणितेनदुरात्मना॥कोऽयंदुरात्मादुर्बुद्धिरकृतात्माचबालिशः ॥ ५० ॥ इत्युक्त्वासविनिष्क्रम्यददर्शमुनिसत्तमः ॥ महिषंपर्वताकारंगतासुंपतितंभुवि ॥ ५१॥

उस विगत प्राण और चेतना रहित असुरको अपनी बाहोंसे पकड औरघुमाकर एकवारही एक योजनके अंतर पर फेंक दिया॥ ४७॥वह जब वेग सहित फेंका जारहाथा, तब उसके मुखसे रुधिरकी बूंदें पवनके सहारेसेछिटक कर मतंग मुनिके आश्रमपर गिरीं ॥ ४८ ॥ हे महाभाग! मुनिश्रेष्ठ मतंगजी अपनें आश्रम पर रुधिरकी बूंदे गिरी हुई देख विचारनें लगेकि यह कौनहै? ॥४९॥ कि जिसने हमको रुधिरसे भिगो दिया! वह दुर्बुद्धि मूढ, और अज्ञान पुरुष कौनहै? ॥ ५० ॥ यह कहकर मुनिवरजीनें बाहर निकल कर देखा तो एक पर्वताकार भैंसा विगत प्राण होकर

परन्तु आज एकही वाण द्वारा रण स्थलमें वह विनाश करदेंगे, हे सुग्रीव! आज तुम भ्राताऋपी शत्रुको शीघ्र हमें दिखादो ॥११॥ वह आज हमारे वाणसे घायल होकर वनमें धूलके ऊपर गिरकर छटपटावेगा, यदि इतने परभी उसके प्राण रहजांय, अर्थात् वह जीता हुआ वचकर फिर तुम्हें दीख पडे ॥ १२ ॥ तब तुम इस स्थानसे चले जाना, और हमारी निन्दा करना या हमको धिक्कारदेना, हमने केवल एकही वाणसे तुम्हारे सन्मुख सात ताल वृक्ष तोड डाले ॥ १३ ॥ तिससे तुम जानलो कि वालि हमारे वाणसे मराहुआ धराहै, हमनें प्रथम कष्टमें पडनेंसेभी कभी मिथ्या वचन नहीं वोला ॥ १४ ॥ कारणकि धर्मका लोभ हमको वहुतहीहै । इस्से मिथ्या नहीं कहते, हम निःसंदेह अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करेंगे तुम भ्रम व शोकको

एकेनाहंप्रमोक्ष्यामिबाणमोक्षेणसंयुगे ॥ ममदर्शयसुग्रीववैरिणंभ्रातृरूपिणम् ॥ ११ ॥ वालीविनिहतोयावद्धनेपांसुषुचेष्टते ॥ यदिदृष्टिपथंप्राप्तोजीवन्सविनिवर्तते ॥ १२ ॥ ततोदोषेणमागच्छेत्सद्योगर्हेच्चमांभवान् ॥ प्रत्यक्षंसप्ततेतालामयाबाणेनदारिताः ॥ १३ ॥ ततोवेत्सिबलेनाद्यवालिनंनिहतंरणे ॥ अनृतंनोक्तपूर्वंमेचिरंकृच्छ्रेपितिष्ठता ॥ १४ ॥ धर्मलोभपरीतेननचवक्ष्येकथंचन ॥ सफलांचकरिष्यामिप्रतिज्ञांजहिसंभ्रमम् ॥ १५ ॥ प्रसूतंकलमक्षेत्रंवर्षेणेवशतक्रतुः ॥ तदाह्वाननिमित्तंचवालिनोहेममालिनः ॥ १६ ॥ सुग्रीवकुरुतंशब्दंनिष्पतेद्येनवानरः ॥ जितकाशीजयश्लाघीत्वयाचाधर्षितःपुरात् ॥ १७ ॥ निष्पतिष्यत्यसंगेनवालीसप्रियसंयुगः ॥ रिपूणांधर्षितंश्रुत्वामर्षयंतिनसंयुगे ॥ १८ ॥ जानंतस्तुस्वकंवीर्यंस्त्रीसमक्षांविशेषतः ॥ सतुरामवचःश्रुत्वासुग्रीवोहेमपिंगलः ॥ १९ ॥

छोडो ॥१५॥ जैसे इन्द्रजी वर्षा करके धान्यके खेतोंको फलवान् करतेहैं ऐसेही हम पराक्रम करेंगे। इसलिये हे सुग्रीव! उस सुवर्ण माला धारण किये हुए वालिको पुकारो ॥ २६ ॥ और तुम ऐसा शब्द करोकि जिस्से वालि क्रोधयुक्त होकर शीघ्रही वाहर चला आवे । क्योंकि वालि विजयको सदाही चाहताहै, और वडाईके पानेंको इच्छाकिये सदाही घूमा करताहै और पहले कभी तुम उसको पराजितभी नहीं कर सकेहो इस कारणसे वह शब्द सुन शीघ्रही आवैगा इसमें कोई संदेह नहीं ॥ १७ ॥ इस्से तुम्हारा पुकारना श्रवण करतेही वालि तुरंत आवैगा, क्योंकि वह अत्यन्तही रणप्रियहै इसके अतिरिक्त समरमें शत्रुका गर्जना सुनकर वाली नहीं सहसकेगा॥१८॥जो अपने वीर्यको जानते हैं । वह शत्रुका गर्जन विशेष करके स्त्रियोंके

मातंग वनके रहनेंवाले तुम सब लोग किस निमित्तसे हमारे निकट आयेहो सब वनवासी कुशलसहित तो हैं? ॥ ६० ॥ उन सब वानरोंनें सुवर्ण मालाधारी वालिसे वह समस्त कारण कह सुनाया और यहभी बतादिया कि आपको मुनिजीनें शाप दियाहै ॥ ६१ ॥ वालि वानर गणोंके वचन सुनकर महर्षि मतंगजीके निकटजा हाथ जोड उनको प्रसन्न करनें लगा ॥ ६२ ॥ परन्तु महर्षिजी उसकी बातोंको एक न सुनकर अपने आश्रममें चलेगये, और वालि शापके भयसे अत्यन्त विह्वलहोगया ॥ ६३ ॥ हे नरनाथ श्रीरामचंद्रजी! फिर वालि शापके भयसे भीत होकर कभी महागिरि ऋष्यमूक पर्वतपर प्रवेश करनेंकी इच्छा नहीं करता, वरन इस पर्वतको कभी देखनेंभी नहीं आता ॥ ६४ ॥ हे श्रीरा

किंभवंतःसमस्ताश्चमतंगवनवासिनः ॥ मत्समीपमनुप्राप्ताअपिस्वस्तिवनौकसाम् ॥ ६० ॥ ततस्तेकारणंसर्वंतथाशा
पंचवालिनः ॥ शशंसुर्वानराःसर्वेवालिनेहेममालिने ॥ ६१ ॥ एतच्छ्रुत्वातदावालीवचनंवानरेरितम् ॥ समहर्षिंस
मासाद्ययाचतेस्मकृतांजलिः ॥ ६२ ॥ महर्षिस्तमनादृत्यप्रविवेशाश्रमंप्रति ॥ शापधारणभीतस्तुवालीविह्वलतांग
तः ॥ ६३ ॥ ततःशापभयाद्भीतोऋष्यमूकंमहागिरिम् ॥ प्रवेष्टुंनेच्छतिहरिर्द्रष्टुंवापिनरेश्वर ॥ ६४ ॥ तस्याप्रवेशंज्ञा
त्वाहमिदंराममहावनम् ॥ विचरामिसहामात्योविषादेनविवर्जितः ॥ ६५ ॥ एषोऽस्थिनिचयस्तस्यदुंदुभेःसंप्रकाश
ते ॥ वीर्योत्सेकान्निरस्तस्यगिरिकूटनिभोमहान् ॥ ६६ ॥ इमेचविपुलाःसालाःसप्तशाखावलंबिनः ॥ यत्रैकं
घटतेवालीनिष्पत्रयितुमोजसा ॥ ६७ ॥

मचंद्रजी! इस वनमें उसका आना नहीं हो सकता यह जानकर हम विषादरहितहो मंत्रियोंके साथ इस वनमें वास करते हैं ॥ ६५ ॥ यह देखिये! उस मदोन्मत्त, गत प्राण महा असुर दुन्दुभिकी बडी २ हड्डियोंका ढेर गिरि शिखर की तुल्य यहां प्रकाशित हो रहाहै जिसको वालिनें अपनेवीर्यकी वृद्धिसे यहां उठाकर फेंक दियाथा ॥ ६६ ॥ यह जो सात शालके वृक्ष बहुत शाखाओं करके युक्त एकही जगह छता बाँधकर जमेंहें, सो कभी २ वालि अपने बलवीर्यको प्रगट करनेंके लिये एक वृक्षकी जड पकड हिलाता तो यह सातों वृक्ष हिल जातेथे ॥ ६७ ॥

होताथा कि जिस प्रकार किसी कुंडसे कमल फूल तोड लिये जांय, और कमलकी डंडियें ऊपर चमकनें लगें ॥ ४ ॥ वह सहनेके अयोग्य शब्द श्रवण करवालि पैर धरनेंसे मानों पृथ्वीको फाडताही हुआसा बडे वेगसे बाहेरको चला ॥ ५ ॥ तव तारा वालिको लिपटकर, सौहार्द दिखाती भयके मारे व्याकुलहो आगेकी भलाईके लिये यह वचन बोली ॥६॥ हे वीरवर ! नदीके वेगकी समान आये हुये इस क्रोधको आप त्यागकर दीजिये जिस प्रकार शयनसे प्रातःकाल उठकर रात्रिकी धारणकी हुई फूलमाला लोग त्याग करदेते हैं ॥ ७ ॥ हे वीरेन्द्र ! आप कल प्रातःकालही संग्राम करलीजियें, क्योंकि आपका शत्रु अत्यन्त लघुहै, और इस समय युद्ध न करनेंसे किसी प्रकारकी तुम्हारी छुटाई भी तो नहीं

शब्दंदुमर्षणंश्रुत्वानिष्पपाततततोहरिः ॥ वेगेनचपदन्यासैर्दारयन्निवमेदिनीम् ॥ ५ ॥ तंतुतारापरिष्वज्यस्नेहाद्दर्शितसौहृदा ॥ उवाचत्रस्तसंभ्रांताहितोदर्कमिदंवचः ॥ ६ ॥ साधुक्रोधमिमंवीरनदीवेगमिवागतम् ॥ शयनादुत्थितःकाल्यंत्यजभुक्तामिवस्रजम् ॥ ७॥ काल्यमेतेनसंग्रामंकरिष्यसिचवानर ॥ वीरतेशत्रुबाहुल्यंफल्गुतावानविद्यते ॥ ८ ॥ सहसातवनिष्क्रामोममतावन्नरोचते ॥ श्रूयतामभिधास्यामियन्निमित्तंनिवार्यते ॥ ९॥ पूर्वमापतितःक्रोधात्सत्वामाह्वयतेयुधि ॥ निष्पत्यचनिरस्तस्तेहन्यमानोदिशोगतः॥ १० ॥ त्वयातस्यनिरस्तस्यपीडितस्यविशेषतः ॥ इहैत्यपुनराह्वानंशंकांजनयतीवमे ॥ ११ ॥ दर्पश्चव्यवसायश्चयादृशस्तस्यनर्दतः ॥ निनादस्यचसंरंभोनैतदल्पंहिकारणम् ॥ १२ ॥

होतीहै ॥ ८ ॥ आप जो सहसाही बाहेर युद्ध करनेंके लिये जाते हैं सो हमारी सम्मतिमें यह ठीक नहीं और जिस कारणसे हम रोकती हैं वह भी श्रवण कीजिये ॥ ९ ॥ यही सुग्रीव पहले महा क्रोधकर तुम्हें युद्धके लिये पुकारकर तुम्हारे आघातसे समरमें विमुख किस अवस्थाको प्राप्त हो भागाथा ॥ १० ॥ वह ऐसा समरविमुख और बहुत मार पाकरभी यहां आकर फिर तुम्हें पुकारताहै इस्से हमको शंका होतीहै ॥ ११ ॥ इस समय उसका जिस प्रकारका अहंकार, वर्ताव और घोर गर्जन श्रवण करनेंसे ज्ञात होताहै कि अल्प कारणसे कदापि वह यहां

हम हनुमानादि पांच मंत्रियोंके साथ जोकि हममें प्रीति रखतेहैं उद्विग्न और शंकितहो इस महावनमें विचरण करतेहैं ॥ ७७ ॥ हे मित्रवत्सल पुरुषश्रेष्ठ ! आप वांछनीय उत्तम मित्रहैं, हिमालयको समान सार युक्त जानकर हमने आपका आश्रय लियाहै ॥ ७८ ॥ हे राघव ! हम उस बल शाली दुष्ट अपने भ्राता वालिका बल जानतेहैं परन्तु समरमें आपका वीर्य कैसाहै? इसको हम अभी नहीं जानते,इस कारणसे वालिके मारनेमें दुबधा समझतेहैं ॥ ७९ ॥ न हम आपकी तुलना वालिकी बराबर करतेहैं न आपका निरादर करतेहैं, न भय दिखातेहैं, परन्तु उस वालिके भयंकर कर्मोंको विचार हम अत्यन्त कातर होतेहैं ॥ ८० ॥ परन्तु हे श्रीरामचंद्रजी ! आपकी वाणी, धीरता और आकृतिहीसे आपकी वीरशालिताका

उद्विग्नःशंकितश्चाहंविचरामिमहावने ॥ अनुरक्तैःसहामात्यैर्हनुमत्प्रमुखैर्वरैः ॥ ७७ ॥ उपालब्धंचमेश्लाघ्यंसन्मित्रंमित्रवत्सल ॥ त्वामहंपुरुषव्याघ्रहिमवंतमिवाश्रितः॥७८॥किंतुतस्यबलज्ञोऽहंदुर्भ्रातुर्बलशालिनः ॥ अप्रत्यक्षंतुमेवीर्यंसमरेतवराघव ॥ ७९ ॥ नखल्वहंत्वांतुलयेनावमन्येनभीषये ॥ कर्मभिस्तस्यभीमैश्चकातर्यंजनितंमम ॥ ८० ॥ कामंराघवतेवाणीप्रमाणंधैर्यमाकृतिः ॥ सूचयंतिपरंतेजोभस्मच्छन्नमिवानलं ॥ ८१ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वासुग्रीवस्यमहात्मनः ॥ स्मितपूर्वमतोरामःप्रत्युवाचहरिंप्रति ॥ ८२ ॥ यदिनप्रत्ययोऽस्मासुविक्रमेतववानर ॥ प्रत्ययंसमरेश्लाघ्यमहमुत्पादयामिते ॥ ८३ ॥ एवमुक्त्वातुसुग्रीवंसांत्वयँल्लक्ष्मणाग्रजः ॥ राघवोदुंदुभेःकायंपादांगुष्ठेनलीलया ॥ ८४ ॥ तोलयित्वामहाबाहुश्चिक्षेपदशयोजनम् ॥ असुरस्यतनुंशुष्कांपादांगुष्ठेनवीर्यवान् ॥ ८५ ॥

प्रमाण मिलताहै, यह सबही गुण राखसे ढकी हुई अग्निकी समान आपके तेजकी सूचना करतेहैं ॥ ८१ ॥ श्रीरामचंद्रजी महात्मा सुग्रीवजीके यह वचन सुन मंद मुसकाय उनसे कहनें लगे ॥ ८२ ॥ हे वानर नाथ ! यदि हमारे पराक्रममें तुम्हारा विश्वास नहींहै तो हम शीघ्रही समरके विषय उत्तम विश्वास उत्पन्न कराये देतेहैं ॥ ८३ ॥ लक्ष्मणजीके बडे भाई श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कह सुग्रीवजीको समझाय और अपने पैरके अँगूठेसे दुन्दुभीका देह लीला पूर्वक ॥ ८४ ॥ महाबाहु रामचंद्रजीनें उठाकर दशयोजन अर्थात् चालीस कोसपर फेंक दिया इस प्रकार उस सूखे हुये असुरके

यहैं तुम उनके साथ विरोध कर मंगल न पाओगे । हे वीर ! हम कुछ तुम्हारी निन्दा नहीं करतीहैं ॥ २२ ॥ वरन हितकारी वचन कहतीहैं सो तुम श्रवण करके वैसाही करो वह यह कि तुम शीघ्रतासे सुग्रीवको युवराजपदवी देदो ॥ २३ ॥ हे वीरेन्द्र ! तुम छोटे भाईके साथ विरोध न करो हमारी तो यह इच्छाहै कि तुम्हारी और श्रीरामचंद्रजीकी प्रीति होजाय ॥ २४ ॥ और दूसरे हमारी यहभी इच्छाहै कि वैरभाव त्यागकर सुग्रीवके ऊपर तुम प्रसन्न होजाओ,क्योंकि यह सुग्रीव तुम्हारा छोटा भाईहै, इस्से तुम्हें अवश्यही इसका लालन पालन करना चाहिये; सो ऐसा करनेंसे तुम्हारा मंगल होगा ॥ २५ ॥ सुग्रीव ऋष्यमूकपे रहै, अथवा यहांपे रहै, वह आपका बन्धुहीहै,इस समस्त पृथ्वीपर उसकी समान

श्रूयतांक्रियतांचैवतववक्ष्यामियद्धितम् ॥ यौवराज्येनसुग्रीवंतूर्णंसाध्वभिषेचय ॥२३॥ विग्रहंमाकृथावीरभ्रात्राराजन्यवीयसा ॥ अहंहितेक्षमंमन्येतेनरामेणसौहृदम् ॥२४॥सुग्रीवेणचसंप्रीतिंवैरमुत्सृज्यदूरतः ॥लालनीयोहितेभ्रातायवीयानेषवानरः ॥ २५ ॥ तत्रवासन्निहस्थोवासर्वथाबंधुरेवते ॥ नहितेनसमंबंधुंभुविपश्यामिकंचन ॥ २६ ॥ दानमानादिसत्कारैःकुरुष्वप्रत्यनंतरम् ॥ वैरमेतत्समुत्सृज्यतवपार्श्वेसतिष्ठतु ॥ २७ ॥ सुग्रीवोविपुलग्रीवोमहाबंधुर्मतस्तव ॥ भ्रातृसौहृदमालंब्यनान्यागतिरिहास्तिते ॥ २८ ॥ यदितेमत्प्रियंकार्यंयदिचावैषिमांहिताम् ॥ याच्यमानःप्रियत्वेनसाधुवाक्यंकुरुष्वमे ॥ २९ ॥ प्रसीदपथ्यंशृणुजल्पितंहिमेनरोषमेवानुविधातुमर्हसि ॥ क्षमोहितेकोशलराजसूनुनानविग्रहःशक्रसमानतेजसा ॥ ३० ॥

आपका बन्धु हम दूसरा नहीं देखतीहैं ॥ २६ ॥ इस कारण वैरभाव छोडकर दान मानादि द्वारा सत्कार कर उसको ग्रहण कीजिये, फिर वह स्वयंही वैर छोड तुम्हारे निकट रहने लगेगा॥ २७ ॥ बडी गरदनवाला सुग्रीव तुम्हारा परम बन्धुहै; सो आप उसके साथ सुहृदता स्थापन कर लीजिये; इसके सिवाय तुम्हारी दूसरी गति हम नहीं देखतीं ॥२८॥ यदि तुम हमको अपना हित करनेंवाली जानतेहो, यदि हमारा प्रिय कार्य करना तुम चाहतेहो; तो हम अपना प्रिय कार्य समझकर जो कुछ तुमसे प्रार्थना करतीहैं उन हमारे वचनोंको आप क्षमाकरें ॥ २९ ॥ हे वीरेन्द्र ! तुम हमारे हितकारी वचन श्रवणकर और क्रोधके वशमें न पडो; व इन्द्रतुल्य तेजसम्पन्न उन कौशलराजपुत्रोंके साथ विरोध करनेंसे तुम्हारा कल्याण नहीं होगा ॥३०॥

सौगन्ध करके हमसे मित्रता करनेमें नियुक्त हुएहैं ॥ १२ ॥ जिस प्रकारसे तेजसमूहके मध्यमें दिवाकर, पर्वतके समूहके मध्यमें हिमवान्; और चौपायोंके मध्यमें केशरी सिंहहै. वैसेही आप मनुष्योंमें विक्रम करनेंके विषयमें श्रेष्ठहैं। इसमें कुछभी संदेह नहींहैं ॥ १३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे एकादशःसर्गः ॥११॥ सुग्रीवजीके कहे हुए ऐसे वचन सुनकर महा तेजमान श्रीरामचंद्रजीनें उनको विश्वास दिलानेंके लिये धनुष ग्रहण किया ॥ १ ॥ मानप्रद श्रीरामचंद्रजीनें उस घोरतर धनुषपर एक बाण चढा उसके शब्दसे दशों दिशाओंको पूर्ण करके शालके वृक्षके ऊपर वह बाण छोडा॥२॥ सुवर्णकी समान चमकता हुआ वह बाण बलवान् श्रीरामचंद्रजीके द्वारा चलाया जाक

यथाहितेजस्सुवरःसदारविर्यथाहिशैलोहिमवान्महाद्रिषु ॥ यथाचतुष्पत्सुचकेसरीवरस्तथानराणामसिविक्रमेवरः ॥१३॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०किष्किंधाकांडे एकादशःसर्गः ॥ ११ ॥ ॥ छ ॥ ॥ एतच्चवचनंश्रुत्वासुग्रीवस्यसुभाषितम् ॥ प्रत्ययार्थंमहातेजारामोजग्राहकार्मुकम् ॥ १ ॥ सगृहीत्वाधनुर्घोरंशरमेकंचमानदः ॥ सालमुद्दिश्यचिक्षेपपूरयन्सरवैर्दिशः ॥ २ ॥ सविसृष्टोबलवताबाणःस्वर्णपरिष्कृतः ॥ भित्त्वातालान्गिरिप्रस्थंसप्तभूमिंविवेशह ॥ ३ ॥ सायकस्तुमुहूर्तेनतालान्भित्त्वामहाजवः ॥ निष्पत्यचपुनस्तूर्णंतमेवप्रविवेशह ॥ ४ ॥ तान्दृष्ट्वासप्तनिर्भिन्नान्सालान्वानरपुंगवः ॥ रामस्यशरवेगेनविस्मयंपरमंगतः ॥ ५ ॥ समूर्ध्नान्यपतद्भूमौप्रलंबीकृतभूषणः ॥ सुग्रीवःपरमप्रीतोराघवायकृतांजलिः ॥ ६ ॥ इदंचोवाचधर्मज्ञंकर्मणातेनहर्षितः ॥ रामंसर्वास्त्रविदुषांश्रेष्ठंशूरमवस्थितम् ॥ ७ ॥

र सात तालके वृक्षोंको तोडता, पर्वतको फोड़ता भूमिमें प्रवेश करगया॥३॥ वह सायक महावेगसे सातो वृक्षोंको तोडकर घूमघाम फिर तरकसमें आन कर प्राप्तहुआ ॥ ४ ॥ वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजी श्रीरामचंद्रजीके बाण वेगसे सात तालके वृक्षोंको टूटा हुआ देखकर परम विस्मयको प्राप्तहुए ॥ ५ ॥ तब सुग्रीवजीके मालादि सब भूषण खसक पडे, उन्होंनें पृथ्वीपर गिर शिर झुका श्रीरामचंद्रजीको प्रणाम किया, और श्रीरामचंद्रजीके ऊपर प्रीति प्रगटाय हाथ जोड कर खडे होगये ॥६॥ सुग्रीवजी श्रीरामचंद्रजीका यह कर्म देखकर प्रसन्नहो, सर्वशास्त्र विशारद वीरवर धर्मज्ञ श्रीरामचं

अत्याचार नहीं करेंगे केवल वृक्षोंके प्रहारसे और घूसोंसे उन्हें मारेंगे जिस्से वह पीडित हो अपनी गुफाको चला जायगा ॥ ८ ॥ हे तारे! वह दुरात्मा हमारा हंकार और प्रहारादि नहीं सह सकेगा इसमें कुछ संदेह नहीं, कि तुमनें हमारी बुद्धिकी सहायता करके सुहृदता दिखाई॥९॥ तुमको हमारे प्राणोंकी शपथ है कि तुम इन सब स्त्रियोंके साथ लौट जाओ, हम रणस्थलमें भ्राताको केवल जीतही कर लौट आमेंगे, और उसे प्राणोंसे नहीं मारेंगे ॥ १० ॥ प्रियवादिनी दक्षिणा नायका तारा वालिको भेंटकर उसकी प्रदक्षिणाकर रोते २ वहांसे लौटी ॥ ११ ॥ शोकसे मोहित हुई, स्वस्तिके मंत्र जाननेंवाली तारा विजयकी इच्छा किये स्वस्त्ययन करके सब स्त्रियोंके साथ अन्तःपुरमें चली गई ॥ १२ ॥ जब सब स्त्रियोंके

नमेगर्वितमायस्तंसहिष्यतिदुरात्मवान् ॥ कृतंतारेसहायत्वंदर्शितंसौहृदंमयि ॥ ९ ॥ शापितासिममप्राणैर्निवर्त स्वजनेनच ॥ अलंजित्वानिवर्तिष्येतमहंभ्रातररंणे ॥ १० ॥ तंतुतारापरिष्वज्यवालिनंप्रियवादिनी ॥ चकाररुदती मंदंदक्षिणासाप्रदक्षिणम् ॥ ११ ॥ ततःस्वस्त्ययनंकृत्वामंत्रविद्विजयैषिणी ॥ अंतःपुरंसहस्त्रीभिःप्रविष्टाशोकमोहिता ॥ १२ ॥ प्रविष्टायांतुतारायांसहस्त्रीभिःस्वमालयम् ॥ नगर्यानिर्ययौक्रुद्धोमहासर्पइवश्वसन् ॥ १३ ॥ सनिःश्वस्यम हारोषोवालीपरमवेगवान् ॥ सर्वतश्चारयन्दृष्टिंशत्रुदर्शनकांक्षया ॥ १४ ॥ सददर्शततःश्रीमान्सुग्रीवंहेमपिंगलम् ॥ सुसंवीतमवष्टब्धंदीप्यमानमिवानलम् ॥ १५ ॥ तंसदृष्ट्वामहाबाहुःसुग्रीवंपर्यवस्थितम् ॥ गाढंपरिदधेवासोवाली परमकोपनः ॥ १६ ॥ सवालीगाढसंवीतोमुष्टिमुद्यम्यवीर्यवान् ॥ सुग्रीवमेवाभिमुखोययौयोद्धुंकृतक्षणः ॥ १७ ॥

साथ तारा अपने घरमें चली गई, तब वालि क्रोधित हुये महासर्पकी समान श्वास लेता हुआ नगरीसे बाहर निकला ॥ १३ ॥ वानरराज वालिनें लंबे २ श्वास लेकर बडे वेगसे आय रोषमें भर शत्रुको देखनेंकी वासनासे चारों ओरको दृष्टि डाली ॥ १४ ॥ तिसके पीछे श्रीमान् वालिनें सुवर्णसम पिंगलनेत्र, कच्छ, कसकर बाँधे हुये, पृथ्वीपर दृढरूपसे खडे देदीप्यमान अनलतुल्य सुग्रीवजीको देखा ॥ १५ ॥ महाबलवान् परम क्रोधित वालि सुग्रीवजीको इस प्रकारसे खडा देख आपभी वस्त्रोंको कसकर पहन लेता हुआ ॥ १६ ॥ वीर्यवान् वालि कच्छ बाँध मुक्का उठाय सुग्रीवजीके सन्मुख

हकी समान वालि और सुग्रीवका घोर तुमुल युद्ध होने लगा ॥१७॥ दोनोंभाई क्रोधसे अधीरहो वज्र तुल्य चपेट और वज्रतुल्य घूसोंके प्रहारसे परस्पर चोट चलानेलगे ॥१८॥ तब श्रीरामचंद्रजी धनुष धारण कर एकही प्रकारका रूप धारण किये हुये दो अश्विनी कुमारोंकी समान दोनों भाइयोंको अवलोकन करनें लगे ॥१९॥ जबतक श्रीरामचंद्रजीनें भली भांति यह नपहचाना कि इनमें कौन वालि और कौन सुग्रीवहै तब तक वह प्राणनाश कारी बाण न चलाया॥२०॥रामचंद्रजी तो इस विचारमें थे कि इतनेंहीमें सुग्रीवजी वालिसे हारकर भागे वह श्रीरामचंद्रजीको न देख पाकर ऋष्यमूक पर्वतकी ओर दौडनें लगे ॥ २१ ॥ वालिभी क्रोधमें भरकर पीछे ही पीछेदौडा तब थके हुये सुग्रीवजी उसके प्रहारसे जर्जर और रुधिरमें डूबकर

तलैरशनिकल्पैश्चवज्रकल्पैश्चमुष्टिभिः ॥ जघ्नतुःसमरेऽन्योन्यंभ्रातरौक्रोधमूर्छितौ ॥ १८ ॥ ततोरामोधनुष्पाणिस्ता वुभौसमुदैक्षत ॥ अन्योन्यसदृशौवीरावुभौदेवाविवाश्विनौ ॥ १९ ॥ यन्नावगच्छत्सुग्रीवंवालिनंवापिराघवः ॥ ततो नकृतवान्बुद्धिंमोक्तुमंतकरंशरम् ॥ २० ॥ एतास्मिन्नंतरेभग्नःसुग्रीवस्तेनवालिना ॥ अपश्यन्राघवंनाथमृष्यमूकंप्र दुद्रुवे ॥ २१ ॥ क्लांतोरुधिरसिक्तांगःप्रहारैर्जर्जरीकृतः ॥ वालिनाभिद्रुतःक्रोधात्प्रविवेशमहावनम् ॥ २२ ॥ तंप्रविष्टंव नंदृष्ट्वावालीशापभयात्ततः ॥ मुक्तोह्यसित्वमित्युक्त्वासनिवृत्तोमहाबलः ॥ २३ ॥ राघवोपिसहभ्रात्रासहचैवहनूमता॥ तदेववनमागच्छत्सुग्रीवोयत्रवानरः ॥ २४ ॥ तंसमीक्ष्यागतंरामंसुग्रीवःसहलक्ष्मणम् ॥ ह्रीमान्दीनमुवाचेदंवसुधा मवलोकयन् ॥ २५॥ आह्वयस्वेतिमामुक्त्वादर्शयित्वाचविक्रमम् ॥ वैरिणाघातयित्वाचकिमिदानींत्वयाकृतम् ॥२६॥

महावनमें प्रवेश करते हुये ॥ २२ ॥ महाबलवान् वालि उसवनमें सुग्रीवको पैठा हुआ देख शापके भयसे वहां नहीं जासका और बोला; जावो अब तुम बच गये । यह कह वहांसे लौट आया ॥ २३ ॥ श्रीरामचंद्रजी भी लक्ष्मण और हनुमानजीके सहित जहांपर सुग्रीवथे उसी वनमें प्रवेश करते हुये ॥ २४ ॥ सुग्रीवजी, लक्ष्मणके सहित श्रीरामचंद्रजीको आगमन करते हुये देखकर लज्जित हो नीचा मस्तक किये दीन वचनसे बोले ॥ २५॥ आपनें विक्रम दिखा और "वालिको युद्धके लिये पुकारो"ऐसा कहकर कुछभी न किया शत्रुसे हमको बडी मार दिलवाई, इस्से

तब राजपुत्र वीर्यवान् श्रीरामचंद्रजी अपनो आज्ञामें टिके हुये कपिराजका भलीभांति उद्योग देख हर्षके हेतु खिले हुये नील कमलकी समान प्रफुल्लित होगये ॥ ३४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे अष्टत्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥ सुग्रीवजीनें हाथ जोडकर जब इस प्रकारसे कहा तब धार्मिक श्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी; दोनों भुजा पसार उनसे मिलकर बोले ॥ १ ॥ कि यदि देवराज इन्द्रजी जल वर्षातेहैं तो कुछ आश्चर्य नहीं, सहस्रकिरणवाले सूर्य भगवान जो अपनी किरणोंसे आकाशके अंधकारको दूरकर उसे प्रकाशित करतेहैं, इसमें कुछ आश्चर्य नहीं ॥ २ ॥ और इसमेंभी कुछ आश्चर्य नहीं कि चंद्रमा जो अपनी विमल किरणोंसे आकाशको निर्मल

ततःसमुद्योगमवेक्ष्यवीर्यवान्हरिप्रवीरस्यनिदेशवर्तिनः॥बभूवहर्षाद्वसुधाधिपात्मजःप्रबुद्धनीलोत्पलतुल्यदर्शनः॥३४॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०किष्किंधाकांडेअष्टत्रिंशःसर्गः ॥ ३८ ॥ ॥ ७ ॥ ॥इतिब्रुवाणंसुग्रीवंरामोधर्मभृतांवरः॥ बाहुभ्यांसंपरिष्वज्यप्रत्युवाचकृतांजलिम् ॥ १ ॥ यदिंद्रोवर्षतेवर्षनतच्चित्रंभविष्यति ॥ आदित्योसौसहस्रांशुःकुर्याद्वितिमिरंनभः ॥ २ ॥ चंद्रमारजनींकुर्यात्प्रभयासौम्यनिर्मलाम् ॥ त्वद्विधोवापिमित्राणांप्रीतिंकुर्यात्परंतप ॥ ३ ॥ एवंत्वयिनतच्चित्रंभवेद्यत्सौम्यशोभनम् ॥ जानाम्यहंत्वांसुग्रीवसततंप्रियवादिनम् ॥ ४ ॥ त्वत्सनाथःसखेसंख्येजेतास्मिसकलानरीन् ॥ त्वमेवमेसुहृन्मित्रंसाहाय्यंकर्तुमर्हसि ॥ ५ ॥ जहारात्मविनाशायमैथिलींराक्षसाधमः ॥ वंचयित्वातुपौलोमीमनुह्लादोयथाशचीम् ॥ ६ ॥

करतेहैं। ऐसेही तुम्हारी समान सात्विक पुरुष जो मित्रगणोंकी प्रीति साधन करेंगे इसमें विचित्रताही क्याहै ? ॥ ३ ॥ हे सुग्रीव! तुमसे जो शुभकारी कार्य होगा तो इसमें कुछ आश्चर्य नहींहै । हे सुग्रीव ! हम जानतेहैं कि तुम सदाही प्रिय बोलनेवालेहो ॥ ४ ॥ हम तुम्हारे साथ मिलकर समरमें समस्त शत्रुगणोंके जीतनेंको समर्थ होंगे, तुम हमारे सुहृद और मित्रहो; इसलिये हमारी सहाय करना तुम्हारा सबसे बडा कर्तव्यहै ॥५॥ इस राक्षसने अपना नाश करनेंके लिये जानकीको हरण कियाहै अनुह्लाद पहले जिस प्रकार छलसे पौलोमी शचीको हरण करके नाशको प्राप्त

सबही तुम्हारेहैं; और तुम्हारेही आधीनहैं, क्योंकि इस वनमें तुमहीं हमारे एक मात्र रक्षाके करनेंवालेहो, इसलिये तुम फिर युद्ध करनेंको जाओ और कुछ शंका न करो ॥३६॥ तुम इसही मुहूर्त देखोगे कि वालि हमारे बाणसे घायल होकर पृथ्वीमें गिरकर छटपटाताहै ॥ ३७ ॥ हे वानर श्रेष्ठ ! तुम कोई चिह्न धारण किये जाओ कि जिस्से द्वन्द्व युद्ध करनेंके समय हम तुमको पहचानलें ॥ ३८ ॥ हे लक्ष्मण ! तुम यह सुन्दर खिली हुई गजपुष्पी उखाड़कर इन महात्मा सुग्रीवजीके गलेमें पहरादो ॥ ३९ ॥ तिसके पीछे महात्मा लक्ष्मणजीनें पर्वतके तटपर उत्पन्न हुई कुसुमराशि युक्त गजपुष्पलता लाकर सुग्रीवजीके गलेमें डालदी॥ ४०॥तब सुग्रीवजी उन कंठलता द्वारा, बगलोंकी मालासे सुशोभित संध्याकालके

त्वदधीनावयंसर्वेवनेऽस्मिन्शरणंभवान् ॥ तस्माद्युध्यस्वभूयस्त्वंमामाशंकीश्ववानर॥३६॥ एतन्मुहूर्तेतुमयापश्यवालिनमाहवे ॥ निरस्तमिषुणैकेनचेष्टमानंमहीतले ॥ ३७॥ अभिज्ञानंकुरुष्वत्वमात्मनोवानरेश्वर ॥ येनत्वामभिजानीयांद्वंद्वयुद्धमुपागतम् ॥ ३८ ॥ गजपुष्पीमिमांफुल्लामुत्पाट्यशुभलक्षणाम् ॥ कुरुलक्ष्मणकंठेऽस्यसुग्रीवस्यमहात्मनः ॥ ३९ ॥ ततोगिरितटेजातामुत्पाट्यकुसुमायुताम् ॥ लक्ष्मणोगजपुष्पींतांतस्यकंठेव्यसर्जयत् ॥ ४० ॥ सतयाशुशुभेश्रीमाल्लँतयाकंठसक्तया ॥ मालयेवबलाकानांससंध्यइवतोयदः ॥ ४१ ॥ विभ्राजमानोवपुषारामवाक्यसमाहितः ॥ जगामसहरामेणकिष्किंधांपुनरापसः ॥ ४२ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० किष्किंधाकांडेद्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥ छ ॥ ऋष्यमूकात्सधर्मात्माकिष्किंधांलक्ष्मणाग्रजः ॥ जगामसहसुग्रीवोवालीविक्रमपालिताम् ॥ १ ॥ समुद्यम्यमहच्चापंरामःकांचनभूषितम् ॥ शरांश्चादित्यसंकाशान्गृहीत्वारणसाधकान् ॥ २ ॥

जलधरकी समान शोभायमान होनें लगे ॥ ४१ ॥ सुग्रीवजी, श्रीरामचंद्रजीके वचनोंपर ध्यान देकर अपनी देहसे दिपनें लगे और श्रीरामचन्द्रजीके साथ किष्किन्धापुरीको चले ॥ ४२ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे द्वादशःसर्गः ॥ १२ ॥ वह धर्मात्मा लक्ष्मणके बडे भ्राता श्रीरामचंद्रजी सुग्रीवके सहित वालिके विक्रमसे पाली जातीहुई किष्किन्धा पुरीको गमन करते हुये ॥ १ ॥ श्रीरामचन्द्रजी सुवर्ण भूषित बडा धनुष उठाकर आदित्यतुल्य रणमें कार्यको सिद्ध करनेंवाले बाण ग्रहण करके गमन करनेंलगे ॥ २ ॥

जाय हाथ जोडकर खडे होगये ॥ १६ ॥ सुग्रीवजीको हाथ जोडे हुये देख कर सब वानरगणभी श्रीरामचन्द्रजीको हाथ जोडकर खडे हुये तब सब वानर और सुग्रीवजीको हाथ जोड खडे हुये देख श्रीरामचन्द्रजी पंकज कलियोंसे युक्त तडागकी समान ॥ १७ ॥ वानरराजकी वडी सेनाको देख सुग्रीवजीके प्राति प्रसन्न हुये । और चरणपर खडे हुये वानरनाथ सुग्रीवको श्रीरामचंद्रजीने उठाया ॥ १८ ॥ और अति आदरमान करके प्रेम सहित उनसे मिले, धर्मात्मा रामचंद्रजीनें सुग्रीवसे भेंटकर बैठनेको कहा ॥ १९ ॥ और जब सुग्रीवभी बैठगये तब श्रीरामचन्द्रजी, उनसे बोले कि धर्म, अर्थ, और कामका जो समय २ पर सेवन ॥ २० ॥ विभाग करकै किया करता है, हे वीर! वानरश्रेष्ठ! वही राजा कहाता है । और जो ध

कृतांजलौस्थितेतस्मिन्वानराश्चाभवंस्तथा ॥ तटाकमिवतंदृष्ट्वारामःकुड्मलपंकजम् ॥१७॥ वानराणांमहत्सैन्यंसुग्रीवेप्रीतिमानभूत् ॥ पादयोःपतितंमूर्ध्नातमुत्थाप्यहरीश्वरम् ॥ १८ ॥ प्रेम्णाचबहुमानाच्चराघवःपरिषस्वजे ॥ परिष्वज्यचधर्मात्मानिषीदेतिततोऽब्रवीत् ॥१९॥ निपण्णंतंततोदृष्ट्वाक्षितौरामोब्रवीत्ततः ॥धर्ममर्थंचकामंचकालेयस्तुनिषेवते॥२०॥विभज्यसततंवीरसराजाहरिसत्तम ॥ हित्वाधर्मंतथार्थंचकामंयस्तुनिषेवते ॥ २१ ॥ सवृक्षाग्रेयथासुप्तःपतितःप्रतिबुध्यते ॥ अमित्राणांवधेयुक्तोमित्राणांसंग्रहेरतः ॥ २२॥ त्रिवर्गफलभोक्ताचराजाधर्मेणयुज्यते ॥ उद्योगसमयस्त्वेषप्राप्तःशत्रुनिषुदन॥२३॥ संचिंत्यतांहिपिंगेशहरिभिःसहमंत्रिभिः ॥ एवमुक्तस्तुसुग्रीवोरामंवचनमब्रवीत् ॥२४॥ प्रनष्टाश्रीश्चकीर्तिश्चकपिराज्यंचशाश्वतम् ॥ त्वत्प्रसादान्महाबाहोपुनःप्राप्तमिदंमया ॥ २५ ॥

र्मको त्याग करकै अर्थ और कामकी सेवा करता है ॥ २१ ॥ वह इस तरहसे जागता है; कि जिस प्रकार वृक्षकी फुलंचीपर सोता हुआ जब गिरता है तभी जागता है; अमित्रोंके वधमें युक्त, मित्रोंके संग्रह करनेंमें रत॥२२॥राजा त्रिवर्गकी अर्थात् धर्म अर्थ और कामकी सेवा करता है वही धर्मसे संयुक्त होता है । हे शत्रुदमनकारी! सीताके ढूँढनेंके लिये उद्योग करनेका यह समय आ गया है ॥ २३ ॥ सो तुम सब मंत्रिगणोंके सहित इस विपयमें सलाह करो सुग्रीवजी इस प्रकार कहे जाकर श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ २४ ॥ हे महाबाहो! आपके प्रसादसे हमनें नष्ट हुई, राज्यलक्ष्मी

रहेथे तब श्रीरामचंद्रजी वृक्षोंसे परिपूर्ण एक वृक्ष झुंडको देखकर सुग्रीवजीसे बोले ॥ १३ ॥ इस वृक्ष झुंडके चारों ओर वृक्षोंका समूह लगाहै सो यह मिलेहुये बादलोंकी समूहोंके तुल्य प्रकाशमान होताहै ॥ १४ ॥ हे सखे ! यह सब क्याहै ? इसके जाननेंके लिये हमें बडा कौतूहल उत्पन्न हुआ है, सो तुम हमारे इस कौतूहलको दूरकरो ॥१५॥ महात्मा श्रीरामचंद्रजीका यह वचन सुनकर सुग्रीवजी मार्गमें ही चलते २ उस बडे व नका वृत्तान्त वर्णन करनें लगे ॥ १६ ॥ हे राघव ! श्रमका विनाश करनेंहारा बडे विस्तारवाला उद्यान और वन युक्त, स्वादुफल और जलयुक्त यह आश्रम ॥ १७ ॥ जो दृष्टि आताहै, इसमें सप्तजन नामक दृढव्रत धारण करनेंवाले सात मुनि रहा करतेथे; यह सातों ऋषि नीचेको शिर किये

एषमेघइवाकाशेवृक्षषंडःप्रकाशते ॥ मेघसंघातविपुलंपर्यंतकदलीवृतम् ॥ १४ ॥ किमेतज्ज्ञातुमिच्छामिसखेकौतूहलं मम ॥ कौतूहलापनयनंकर्तुमिच्छाम्यहंत्वया ॥ १५ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाराघवस्यमहात्मनः ॥ गच्छन्नेवाचचक्षे थसुग्रीवस्तन्महद्वनम् ॥ १६ ॥ एतद्राघवविस्तीर्णमाश्रमंश्रमनाशनम्॥उद्यानवनसंपन्नंस्वादुमूलफलोदकम् ॥ १७॥ अत्रसप्तजनानाममुनयःशंसितव्रताः ॥ सप्तैवासन्नधःशीर्षानियतंजलशायिनः ॥ १८ ॥ सप्तरात्रेकृताहारावायुना चलवासिनः ॥ दिवंवर्षशतैर्याताःसप्तभिःसकलेवराः ॥ १९ ॥ तेषामेतत्प्रभावेणद्रुमप्राकारसंवृतम् ॥ आश्रमंसुदु राधर्षमपिसेंद्रैःसुरासुरैः ॥ २० ॥ पक्षिणोवर्जयंत्येतत्तथान्येवनचारिणः ॥ विशंतिमोहाद्येप्यत्रननिवर्ततितेपुनः ॥ ॥ २१ ॥ विभूषणरवाश्चात्रश्रूयंतेसकलाक्षराः ॥ तूर्यगीतस्वनश्चापिगंधोदिव्यश्चराघव ॥ २२ ॥

रात्रि दिन जलमें रहते ॥ १८ ॥ यह मुनिलोग सातवें रोज केवल पवनका आहार करतेथे, और अचल वास करते, इस प्रकारसे वह मुनिगण सा तसौ वर्षतक तपस्या कर अपने २ शरीर सहित स्वर्गको चलेगये ॥१९॥ उन मुनिलोगोकेही प्रभावसे यह आश्रम वृक्षोंके कोटसे घिराहुआहै इस आश्रममें इन्द्रके सहित सुर और असुर गणभी कुछ उपद्रव नहीं करसकते ॥ २० ॥ पक्षी या दूसरे वनचारी जीवगण इस आश्रमके भीतर नहीं जाते और जोकोई मोहके वशहो इसमें चलाभी जाय सो वह वहांसे लौट नहीं सकता॥२१॥यहांसे अप्सराओंके मधुरगीत और गहनोंके शब्द,

उन्होंनें वह समस्त ओषधियें और मूल फल जोकि यज्ञ भूमिसे तोड लायेथे, सुग्रीवको देकर कहा ॥ ३५ ॥ महाराज ! आपकी आज्ञा पालन करनेंके हेतु पृथ्वी भरके समस्त वानरगण, पर्वत, वन, और नदियोंको नांघते हुए यहांपर चले आतेहैं ॥ ३६ ॥ जब उन वानरोंने ऐसा कहा, तो वानरनाथ सुग्रीवजीनें हर्षित और प्रसन्न होकर उनके दिये हुए सब उपहारके पदार्थ ग्रहण किये ॥ ३७ ॥ इ० श्रीम० वाल्मीकिये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडेसप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥ वानरनाथ सुग्रीवजीनें उन सबके दिये समस्त उपहार ग्रहण करके,

तेगृहीत्वौषधीःसर्वाःफलमूलंचवानराः ॥ तंप्रतिग्राहयामासुर्वचनंचेदमब्रुवन् ॥ ३५ ॥ सर्वेपरिसृताःशैलाःसरितश्चव नानिच ॥ पृथिव्यांवानराःसर्वेशासनादुपयांतिते ॥ ३६ ॥ एवंश्रुत्वाततोहृष्टःसुग्रीवःप्लवगाधिपः ॥ प्रतिजग्राहचप्रीतस्तेषांसर्वमुपायनम् ॥ ३७ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० कि० कां० सप्तत्रिंशःसर्गः ॥ ३७ ॥ ॥ प्रतिगृह्यचतत्सर्वमुपायनमुपाहृतम् ॥ वानरान्सांत्वयित्वाचसर्वानेवव्यसर्जयत् ॥ १ ॥ विसर्जयित्वासहरीन्सहस्रान्कृतकर्मणः ॥ मेनेकृतार्थमात्मानंराघवंचमहाबलम् ॥ २ ॥ सलक्ष्मणोभीमबलंसर्ववानरसत्तमम् ॥ अब्रवीत्प्रश्रितंवाक्यंसुग्रीवंसंप्रहर्षयन् ॥ ३ ॥ किष्किंधायाविनिष्क्रामयदितेसौम्यरोचते ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वालक्ष्मणस्यसुभाषितम् ॥ ४ ॥ सुग्रीवःपरमप्रीतोवाक्यमेतदुवाचह ॥ एवंभवतुगच्छामस्थेयंत्वच्छासनेमया ॥ ५ ॥ तमेवमुक्त्वासुग्रीवोलक्ष्मणंशुभलक्षणम् ॥ विसर्जयामासतदातारोद्याश्चैवयोषितः ॥ ६ ॥

व प्रशंसाकर उन सबको बिदा किया ॥ १ ॥ उन हजार २ कार्य किये हुए वानरगणोंको विदा देकर अपनेंको और महाबलवान श्रीरामचन्द्रजीको सुग्रीवजी कृतार्थ समझते हुए ॥ २ ॥ अनन्तर लक्ष्मणजी सुग्रीवको हर्षित देखकर; उन महाबलवान वानरोंके पति सुग्रीवजीसे मधुर वचन बोले ॥ ३ ॥ हे सौम्य ! यदि तुम्हारी इच्छा हो तो हम इस समयकिष्किन्धासे चले जाँय । लक्ष्मणजीके ऐसे सुवचन सुनकर ॥ ४ ॥ सुग्रीवजी परम प्रसन्न होकर उनसे बोले कि आप चलिये हम सबभी आपकी आज्ञाके आधीन हैं ॥ ५ ॥ शुभ लक्षण सम्पन्न लक्ष्मणजीसे ऐसा

वह सब जन वालिकी किष्किन्धा पुरीमें शीघ्रतासे पहुँच अपने २ शरीरोंको वृक्षोंसे छिपाकर सघन वनमें खडे होगये ॥१॥ बडी गर्दनवाले और वनको देख प्रसन्नहोनहार सुग्रीवजी चारों ओर दृष्टि डाल बडाकोपकर ॥ २ ॥ सहायसे स्थितहो अत्यन्त घोर गर्जनकर वालिको संग्राम करनेंके लिये पुकारनें लगे, उनकी नादसे आकाश मंडल मानों फटा जाताथा ॥ ३ ॥ वायुके वेगसे चलायमान महा मेघकी समान गर्जकर बाल सूर्य सदृश सिंहसम गतिवाले सुग्रीवजी ॥ ४ ॥ श्रीरामचंद्रजीको कार्य करनेंमें चतुर देखकर बोले कि हे महाराज! वानरोंके बन्धनसे घिरी, तपाये हुये सुवर्णसे भूषित ॥ ५ ॥ और मंत्रादि युक्त वालिकी किष्किन्धा पुरीमें हम लोग पहुँच गये हेवीर! आपनें पहले वालिका वध करनेंके

सर्वेतेत्वरितंगत्वाकिष्किंधांवालिनःपुरीम् ॥ वृक्षैरात्मानमावृत्यव्यतिष्ठन्गहनेवने ॥ १ ॥ विसार्यसर्वतोदृष्टिंका ननेकाननप्रियः ॥ सुग्रीवोविपुलग्रीवःक्रोधमाहारयद्भृशम् ॥ २ ॥ ततस्तुनिनदंघोरंकृत्वायुद्धायचाह्वयत् ॥ परिवारैः परिवृतोनादैर्भिंदन्निवांबरम् ॥ ३ ॥ गर्जन्निवमहामेघोवायुवेगपुरःसरः ॥ अथबालार्कसदृशोदृप्तसिंहगतिस्ततः ॥ ॥ ४ ॥ दृष्ट्वारामंक्रियादक्षंसुग्रीवोवाक्यमब्रवीत् ॥ हरिवागुरयाव्याप्तांतदाकांचनभूषणाम् ॥ ५ ॥ प्राप्ताःस्मध्वजयंत्राढ्यांकिष्किंधांवालिनःपुरीम् ॥ प्रतिज्ञायाकृतावीरत्वयावालिवधेपुरा ॥ ६ ॥ सफलांकुरुतांक्षिप्रंलतांकालइवागतः ॥ एवमुक्तस्तुधर्मात्मासुग्रीवेणसराघवः ॥ ७ ॥ तमेवोवाचवचनंसुग्रीवंशत्रुसूदनः ॥ कृताभिज्ञानचिह्नस्त्वमनयागजसाह्वया ॥ ८ ॥ लक्ष्मणेनसमुत्पाट्यएषाकंठेकृतातव ॥ शोभसेप्यधिकंवीरलतयाकंठसक्तया ॥ ९ ॥ विपरीतइवाकाशेसूर्योनक्षत्रमालया ॥ अद्यवालिसमुत्थंतेभयंवैरंचवानर ॥ १० ॥

लिये जो प्रतिज्ञा कीहै ॥६॥उसको आप शीघ्र पूर्ण कीजिये जिस प्रकार फलनें फूलनेंका समय आकर वृक्षलताओंको पुष्प फलसे पूर्ण कर देता है। जब धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीसे सुग्रीवजीनें ऐसा कहा ॥७॥ तब शत्रुओंका संहार करनें वाले श्रीरामचंद्रजी उनसे बोलेकि गजवेल धारण कराय तुम्हारी देहमें जो पहँचान ॥ ८ ॥ लक्ष्मणजीने बनाईहै, उस गजलताके धारण करनेंसे तुम्हारी ग्रीवा औरभी शोभित होतीहै ॥ ९ ॥ जैसे कभी आकाशमें नक्षत्रोंकी मालाके निकट आजानेंसे सूर्य भगवान् शोभायमान होतेहैं आज इस समयतकतो वालिके द्वारा की हुई शत्रुता और भय तुमको प्राप्तहै॥१०॥

प्रतिपालन करनेंके लिये समस्त वानरगण शीघ्रतासे वेगभरी चाल चलकर समस्त वानरोंको लेआवें ॥ १५ ॥ पवनकुमार हनुमानजीनें सुग्रीवजीके यह वचन सुनकर सब दिशाओंमें विक्राल वानर भेजदिये ॥ १६ ॥कपिनाथके भेजे हुये वानरगण पक्षी और नक्षत्रोंके मार्गका अवलंबन करके आकाशस्थलमें उसी क्षण गमन करनें लगे ॥ १७ ॥ बडे२मुख्य वानर लोग समस्त वानरोंको श्रीरामचंद्रजीका कार्य साधन करनेंके हेतु समुद्र, वन, और सरोवरोंपर भेजनें लगे ॥ १८ ॥ दंडआदि देनेमें मृत्युपतितुल्य वानरराज सुग्रीवकी आज्ञा श्रवण कर

तस्यवानरराजस्यश्रुत्वावायुसुतोवचः॥दिक्षुसर्वासुविक्रांतान्प्रेषयामासवानरान्॥ १६ ॥तेपदंविष्णुविक्रांतंपतत्रिज्योतिरध्वगाः॥ प्रयाताःप्रहिताराज्ञाहरयस्तुक्षणेनवै ॥ १७ ॥ तेसमुद्रेषुगिरिषुवनेषुचसरस्सुच ॥ वानरावानरान्सर्वान्रामहेतोरचोदयन्॥ १८ ॥मृत्युकालोपमस्याज्ञांराजराजस्यवानराः ॥ सुग्रीवस्याययुःश्रुत्वासुग्रीवभयशंकिताः॥१९॥ ततस्तेंजनसंकाशागिरेस्तस्मान्महाबलाः ॥ तिस्रःकोट्यःप्लवंगानांनिर्ययुर्यत्रराघवः ॥ २० ॥ अस्तंगच्छतियत्रार्कस्तस्मिन्गिरिवेररताः ॥ संतप्तहेमवर्णाभास्तस्मात्कोट्योदशच्युताः ॥ २१ ॥ कैलासशिखरेभ्यश्चसिंहकेसरवर्चसाम् ॥ ततःकोटिसहस्राणिवानराणांसमागमन् ॥२२॥फलमूलेनजीवंतोहिमवंतमुपाश्रिताः॥तेषांकोटिसहस्राणांसहस्रंसमवर्तत ॥ २३ ॥ अंगारकसमानानांभीमानांभीमकर्मणाम् ॥ विंध्याद्वानरकोटीनांसहस्राण्यपतन्द्रुतम् ॥ २४ ॥

सब वानर शंकितहो प्रस्थान करते हुए ॥ १९ ॥ तिसके पीछे उस अंजनगिरिसे तीन करोड महा बलवान् वानर आयकर श्रीरामचंद्रजीके निकट गये ॥ २० ॥ और जिस पर्वत पर सूर्य नारायण अस्त होजातेहैं; उसस्थानके रहनेवाले तपाये हुए सुवर्ण की समान वर्ण युक्त दश करोड वानर आये ॥ २१ ॥ कैलास पर्वतके शिखरोंपरसे, सिंह केशर तुल्यवर्ण वाले हजार करोड वानर आपहुँचे ॥ २२ ॥ हिमालय पर्वत पर रहनें वाले,फल मूल भक्षण कारी करोड हजार वानर किष्किन्धामें आये॥२३॥ अंगार तुल्य वर्ण युक्त विकटाकार भयंकर कर्मकारी कोटि सहस्र वानर

सामने सुनकर कभी चुप चाप नहीं बैठे रहते । ऐसे श्रीरामचंद्रजीके वचन सुनकर सुवर्णके समान वर्णवाले सुग्रीवजी ॥ १९ ॥ भयंकर शब्दसे आकाशमंडलको मानों भेदन करतेही हुये गर्जन करनें लगे । उस शब्दसे त्रासित और प्रभाहीन होकर गाय बैल इधर उधर भागनें लगे ॥ २० ॥ जैसे राजाकी ओरसे कुछ दोप होनेंपर कुलकी स्त्रियें तित्तर वित्तर हो फिरती हैं । संग्राम भूमिसे भागे हुये घोडोंकी समान सब मृग गण भागनें लगे ॥ २१ ॥ और क्षीण पुण्य गृहगणोंकी समान आकाशमें उडते हुये पक्षी पृथ्वीमें गिरनें लगे ॥ २२ ॥ तिसके पीछे पवनसे चलायमान होनेंके कारण चंचल तरंगै जिसमें उठती हों ऐसे नदियोंके पति समुद्रकी तुल्य, सूर्यपुत्र सुग्रीवजी, श्रीरा

ननर्दक्रूरनादेनविनिर्भिदन्निवांबरम् ॥ तत्रशब्देनवित्रस्तागावोयांतिहतप्रभाः ॥ २० ॥ राजदोषपरामृष्टाःकुलस्त्रिय इवाकुलाः ॥ द्रवंतिचमृगाःशीघ्रंभग्नाइवरणेहयाः ॥ २१ ॥ पतंतिचखगाभूमौक्षीणपुण्याइवग्रहाः ॥ २२ ॥ ततः सजीमूतकृतप्रणादोनादंह्यमुंचत्त्वरयाप्रतीतः ॥ सूर्यात्मजःशौर्यविवृद्धतेजाःसरित्पतिर्वानिलचंचलोर्मिः ॥ २३ ॥ इत्यार्षेश्री०वा०आदिकाव्येकिष्किंधाकांडेचतुर्दशःसर्गः ॥ १४ ॥ ७ ॥ ॥ अथतस्यनिनादंतंसुग्रीवस्यमहात्मनः ॥ शुश्रावांतःपुरगतोवालीभ्रातुरमर्षणः ॥ १ ॥ श्रुत्वातुतस्यनिनदंसर्वभूतप्रकंपनम् ॥ मदश्चैकपदेनष्टःक्रोधश्चापादितोमहान् ॥ २ ॥ ततोरोषपरीतांगोवालीसकनकप्रभः ॥ उपरक्तइवादित्यःसद्योनिष्प्रभतांगतः ॥ ३ ॥ वालीदंष्ट्राकरालस्तुक्रोधाद्दीप्ताग्निलोचनः ॥ भात्युत्पतितपद्माभःसमृणालइवह्रदः ॥ ४ ॥

मचंद्रजीके वचनोंका विश्वास कर अपनी शूरतासे वर्द्धित तेज होकर मेघकी समान गर्ज २ घोर शब्द करनें लगे ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे चतुर्दशःसर्गः ॥ १४ ॥ उस समय वालि रनवासमें अपनी स्त्रियोंके बीचमें बैठाथा । उससे महात्मा सुग्रीवजीका घोर गर्जना सुनकर न सहागया ॥ १ ॥ सर्व प्राणियोंका कंपायमान करनेंवाला वह नाद सुनकर एकवारही वालिका सब मद नष्ट होगया और महा क्रोधितहुआ ॥ २ ॥ सुवर्णकी समान दीप्तिशाली वालि क्रोधसे परिपूर्ण होकर राहुसे ग्रसे हुये सूर्यकी समान प्रभाहीन होगया ॥ ३ ॥ क्रोधके मारे दांत बाहर निकल आनेंसे कराल आकारवाले वालिके नेत्र जलती हुई अग्निके समान होगये, उस समय वह ऐसा ज्ञात

ऐसे वचन कहनेको समर्थ होसकताहै? ॥ १७ ॥ हे कपिवर ! क्या विक्रममें, क्या बलमें, सब भांतिसे रामचंद्रजीको समानहीं सहाय भाग्यसेही प्राप्त हुईहै॥१८॥परन्तु हेवीर!तुम हमारे साथ शीघ्रही इस स्थानसे चलकर;स्त्री हर जानेके दुःखसे महाकातर श्रीरामचंद्रजीको सन्तोष प्राप्त कराओ१९ हे सखे ! शोकसे व्याकुल श्रीरामचंद्रजीके वचन सुनकर, हमनें जोकुछ कठोर वचन कहेहैं वह तुम क्षमा करो ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे षट्त्रिंशःसर्गः ॥ ३६ ॥ सुग्रीव महात्मा लक्ष्मणजीसे इस प्रकार कहे जाकर एक ओर खडे

सदृशश्चासिरामेणविक्रमेणबलेनच ॥ सहायोदैवतैर्दत्तश्चिरायहरिपुंगव ॥ १८ ॥ किंतुशीघ्रमितोवीरनिष्क्रमत्वंमया सह ॥ सांत्वयस्ववयस्यंचभार्याहरणदुःखितम् ॥१९॥ यच्चशोकाभिभूतस्यश्रुत्वारामस्यभाषितम् ॥ मयात्वंपरुषाण्युक्तस्तत्क्षमस्वसखेमम ॥ २० ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० कि० कां० षट्त्रिंशःसर्गः ॥३६॥ ॥ ७ ॥ एवमुक्तस्तु सुग्रीवोलक्ष्मणेनमहात्मना ॥ हनूमंतंस्थितंपार्श्वेवचनंचेदमब्रवीत् ॥ १ ॥ महेंद्रहिमवद्विंध्यकैलासशिखरेषुच ॥ मंदरेपांडुशिखरेपंचशैलेषुयेस्थिताः ॥ २ ॥ तरुणादित्यवर्णेषुभ्राजमानेषुनित्यशः ॥ पर्वतेषुसमुद्रांतेपश्चिमस्यांतुये दिशि ॥ ३ ॥ आदित्यभवनेचैवगिरौसंध्याभ्रसन्निभे ॥ पद्माचलवनंभीमाःसंश्रिताहरिपुंगवाः ॥ ४ ॥ अंजनांबुदसंकाशाःकुंजरेंद्रमहौजसः ॥ अंजनेपर्वतेचैवयेवसंतिप्लवंगमाः ॥ ५ ॥ महाशैलगुहावासावानराःकनकप्रभाः ॥ मेरुपार्श्वगताश्चैवयेचधूम्रगिरिंश्रिताः ॥ ६ ॥

हुये हनुमानजीसे बोले ॥ १ ॥ महेन्द्राचल, हिमालय और कैलास पर्वतके शिखर पर और मन्दराचल पाण्डु शिखर; व पंच शैलपर जो वानर रहतेहों ॥ २ ॥ पश्चिमकी ओर तरुण सूर्य तुल्य वर्ण वाले नित्य दीप्यमान समुद्रके अन्तवाले पर्वतों पर जो टिक रहेहों ॥ ३ ॥ सन्ध्याकालमें उदय हुये मेघकी समान उदयाचल और अस्ताचल और पद्माचल पर जो भयंकर आकारवाले वानर गण वास करतेहैं ॥ ४ ॥ और अंजन पर्वत परके रहने वाले अंजन वर्णके मेघकी तुल्य गजेन्द्र तुल्य बलशाली जोवानर रहतेहैं ॥ ५ ॥ और महाशैलकी गुहामें रहने वाले कनक समान

परनहीं आया॥१२॥हम विचार करती हैं कि सुग्रीव विनासहायके इससमय यहां नहीं आया,वरन वह एक बडाभारी सहायकपाय यहां आकर गर्जरहाहै और सुग्रीव स्वभावसेही बुद्धिमान् और चतुर वानरहै; उसनें विना बलवीर्यकी परीक्षा किये कभी किसीसे मित्रता नकी होगी॥१३॥१४॥हे वीरवर! हमनें पहलेही कुमार अंगदसे जो वृत्तान्त सुनाहै; वही हितकर वचन कहतीहैं, तुम श्रवण करो ॥ १५ ॥ कि कुमार अंगद कहीं वनको घूमनेंके लिये चला गयाथा, वहांपर दूतोंनें उस्से आकर निवेदन किया ॥ १६ ॥ उन्होंनें कहा कि अयोध्याके राजा इक्ष्वाकु कुल उत्पन्न महाराज दशरथ जीके पुत्र श्रीराम लक्ष्मणजी वनको आयेहैं ॥ १७ ॥ सुग्रीवजीका प्रिय कार्य साधन करनेंके लिये वह दोनों दुर्द्धर्ष वीर तैयार हुएहैं, वही संग्राम

नासहायमहंमन्येसुग्रीवंतमिहागतम् ॥ अवष्टब्धसहायश्चयमाश्रित्यैषगर्जति ॥ १३ ॥ प्रकृत्यानिपुणश्चैवबुद्धिमां श्चैववानरः ॥ नापरीक्षितवीर्येणसुग्रीवःसख्यमेष्यति ॥ १४ ॥ पूर्वमेवमयावीरश्रुतंकथयतोवचः ॥ अंगदस्यकु मारस्यवक्ष्याम्यद्यहितंवचः ॥ १५ ॥ अंगदस्तुकुमारोऽयंवनांतमुपनिर्गतः ॥ प्रवृत्तिस्तेनकथिताचारैरासीन्निवेदि ता ॥ १६ ॥ अयोध्याधिपतेःपुत्रौशूरौसमरदुर्जयौ ॥ इक्ष्वाकूणांकुलेजातौप्रस्थितौरामलक्ष्मणौ ॥ १७ ॥ सुग्रीव प्रियकामार्थंप्राप्तौतत्रदुरासदौ ॥ सतेभ्रातुर्हिविख्यातःसहायोरणकर्मणि ॥ १८ ॥ रामःपरबलामर्दीयुगांताग्निरिवो त्थितः ॥ निवासवृक्षःसाधूनामापन्नानांपरागतिः ॥ १९ ॥ आर्तानांसंश्रयश्चैवयशसश्चैकभाजनम् ॥ ज्ञानविज्ञानसंप न्नोनिदेशेनिरतःपितुः ॥ २० ॥ धातूनामिवशैलेंद्रोगुणानामाकरोमहान् ॥ तत्क्षमोनविरोधस्तेसहतेनमहात्म ना ॥ २१ ॥ दुर्जयेनाप्रमेयेणरामेणरणकर्मसु ॥ शूरवक्ष्यामितेकिंचिन्नचेच्छाम्यभ्यसूयितुम् ॥ २२ ॥

स्थलमें सुग्रीवके बडे सहाय बनेंहैं ॥ १८ ॥ वही रामचंद्रजी प्रलयकालकी अग्निके समान शत्रुओंके विनाश करनेंके लिये उठेहैं; वह साधु ओंके आश्रयदाता वृक्ष, और दुःखी जनोंके परम गतिहैं ॥ १९ ॥ वह आरत जनोंको अभय देनेंवाले, यशके भाजन, ज्ञान और विज्ञान युक्त पिताकी आज्ञामें रतहैं ॥ २० ॥ जिस प्रकार शैलराज हिमवान् धातुसमूहोंके आकारहैं, वैसेही श्रीरामचंद्रजीको गुण समूहकी महाखान जानों सो उन महात्मा श्रीरामचंद्रजीसे विरोध करके तुम्हारा भला नहीं होगा ॥ २१ ॥ हे शूर ! श्रीरामचंद्रजी रणकालमें अजीत और अप्रमे

७

और सैकडों करोड़ वानरों की सेना आवैगी ॥ २२ ॥ हे लक्ष्मण ! आपका क्रोधसे दीप्तिमान मुख और अरुणारे दोनों नेत्र देखकर वानरराजकी सब स्त्रियां शान्तिको नहीं प्राप्त कर सकतीं और सबही शंकित होरहीहैं ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० किष्किन्धाकांडे पंचत्रिंशः सर्गः॥३५॥जब तारानें विनीत भावसे इस प्रकारके धर्म संगत वचन कहे तब लक्ष्मणजी मृदुभावको धारणकर उनके वचन ग्रहण करते हुए॥ १ ॥ जब लक्ष्मणजीनें ताराके वचन मान क्रोध त्याग करदिया तब सुग्रीवजीनेंभी गीले वस्त्रकी समान बडा भारी भय त्याग दिया, जोकि उन्हें लक्ष्मण जीसे प्राप्त हुआथा ॥ २ ॥ फिर वानरराज सुग्रीवजीनें कंठमें पडी मादक गुणवाली अपनी विचित्रमाला तोड डाली; कि जिसके तोडतेही मद

तवहिमुखमिदंनिरीक्ष्यकोपात्क्षतजसमेनयनेनिरीक्षमाणाः ॥ हरिवरवनितानयांतिशांतिंप्रथमभयस्यहिशंकिताः स्मसर्वाः ॥ २३ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणे०वा०आ०किष्किंधाकांडेपंचत्रिंशःसर्गः ॥ ३५ ॥ ॥ ७॥ ॥इत्युक्तस्तारया वाक्यंप्रश्रितंधर्मसंहितम् ॥ मृदुस्वभावःसौमित्रिःप्रतिजग्राहतद्वचः ॥ १ ॥ तस्मिन्प्रतिगृहीतेतुवाक्येहरिगणेश्वरः ॥ल क्ष्मणात्सुमहत्त्रासंवस्त्रंक्लिन्नमिवात्यजत् ॥ २ ॥ ततःकंठगतंमाल्यंचित्रंबहुगुणंमहत् ॥ चिच्छेदविमदश्चासीत्सुग्रीवो वानरेश्वरः॥ ३ ॥ सलक्ष्मणंभीमबलंसर्ववानरसत्तमः ॥ अब्रवीत्प्रश्रितंवाक्यंसुग्रीवःसंप्रहर्षयन् ॥ ४ ॥ प्रनष्टाश्रीश्चकी र्तिश्चकपिराज्यंचशाश्वतम्॥रामप्रसादात्सौमित्रेपुनश्चाप्तमिदंमया ॥५॥कःशक्तस्तस्यदेवस्यख्यातस्यस्वेनकर्मणा ॥तादृशंप्रतिकुर्वीतअंशेनापिनृपात्मज॥ ६ ॥सीतांप्राप्स्यतिधर्मात्मावधिष्यतिचरावणम् ॥ सहायमात्रेणमयाराघवः स्वेनतेजसा ॥ ७ ॥ सहायकृत्यंकिंतस्ययेनसप्तमहाद्रुमाः ॥ गिरिश्चवसुधाचैवबाणेनैकेनदारिताः ॥ ८ ॥

रहित होगये ॥ ३ ॥ तदनन्तर वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजी महाबलवान् लक्ष्मणजीको हर्षित कराते हुए विनीत वाणीसे कहनें लगे ॥ ४ ॥ हे सुमित्रा नंदन ! हमनें, स्त्री,कीर्ति, वानरोंका राज्य जोकि छुटगयाथा, श्रीरामचन्द्रजीके प्रसादसे इन सबको फिर प्राप्त किया ॥ ५ ॥ हे राजकुमार! कौन पुरुप सुकर्म द्वारा विख्यात देव स्वरूप उन श्रीरामचंद्रजीके उपकारके किसी अंशकाभी बदला देनेंमें समर्थ होगा? ॥ ६ ॥ धर्मात्मा श्रीरामचं द्रजी हमारी सहायता केवल नाममात्रसे प्राप्तकर अपने तेजसेही रावणको संहार सीताजीको प्राप्त होवेंगे ॥ ७ ॥ जिन्होनें केवल एक वाणसेही सात

उस समय तारानें वालिसे इस प्रकारके हितकर वचन कहे परन्तु विनाशके समय कालसे ग्रसेहुए वालिको वह वचन कुछभी नभाये॥३१॥ सच कहाहै, कि "विनाशकाले विपरीतबुद्धिः" इ०श्रीम० वा० कि० पंचदशःसर्गः॥ १५ ॥चन्द्रवदनी तारानें जब वालिसे इस प्रकार कहा,तो वह ताराको धिक्कारता हुआ ऐसे वचन बोला॥१॥हे श्रेष्ठ मुख वाली!हमारा भ्राता हमारा बडा शत्रुहै और फिर इस समय गर्वसहित गर्जन कर रहाहै तब भला हम किस प्रकारसे इसके गर्जनको सहलें ॥२॥ जो लोग शत्रुकरके कभी नहीं जीते गये और जो शूर रणस्थलसे विना शत्रुके जीते कभी नहीं लौटे हे भीरु! उनके लिये अपमानका सहन करना मरनेंसेभी अधिक जानो ॥ ३ ॥ रणस्थलमें युद्धाभिलाषी हीनग्रीव सुग्रीव का गर्व सहित गर्जना हम किसी

तदाहितारहितमेववाक्यंतंवालिनंपथ्यमिदंबभाषे ॥ नरोचतेतद्वचनंहितस्यकालाभिपन्नस्यविनाशकाले ॥ ३१ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेपंचदशःसर्गः ॥ १५ ॥ तामेवंब्रुवतींतारांताराधिपनिभाननाम् ॥ वालीनिर्भर्त्सयामासवचनंचेदमब्रवीत् ॥ १ ॥ गर्जतोस्यसुसंरब्धंभ्रातुःशत्रोर्विशेषतः ॥ मर्षयिष्यामिकेनापिकारणेनवरानने ॥ २ ॥ अधर्षितानांशूराणांसमरेष्वनिवर्तिनाम् ॥ धर्षणामर्षणंभीरुमरणादतिरिच्यते ॥ ३ ॥ सोढुंनचसमर्थोहंयुद्धकामस्यसंयुगे ॥ सुग्रीवस्यचसंरंभंहीनग्रीवस्यगर्जितम् ॥ ४ ॥ नचकार्योविषादस्तेराघवंप्रतिमत्कृते ॥ धर्मज्ञश्चकृतज्ञश्चकथंपापंकरिष्यति ॥ ५ ॥ निवर्तस्वसहस्त्रीभिःकथंभूयोनुगच्छसि ॥ सौहृदंदर्शितंतावन्मयिभक्तिस्त्वयाकृता ॥ ६ ॥ प्रतियोत्स्याम्यहंगत्वासुग्रीवंजहिसंभ्रमम् ॥ दर्पंचास्यविनेष्यामिनचप्राणैर्वियोक्ष्यते ॥ ७ ॥ अहंह्याजिस्थितस्यास्यकरिष्यामियदीप्सितम् ॥ वृक्षैर्मुष्टिप्रहारैश्चपीडितःप्रतियास्यति ॥ ८ ॥

प्रकार नहीं सहसकते ॥ ४ ॥ हे प्रिये! श्रीरामचंद्रजीके कार्य्योंको विचार कर हमारे लिये विषाद करना तुमको उचित नहीं है क्योंकि वह धर्मके जाननेवाले और कृतज्ञ हैं वह कभी पापका कार्य नहीं करेंगे ॥ ५ ॥ तुम और सब स्त्रियोंके सहित लौट जाओ हमारे पीछे २ न आओ हमारे प्रति तुम्हारी सुहृदता और भक्ति जितनी चाहिये उतनी दिखाई जाचुकी ॥ ६ ॥ हम संग्राममें जा सुग्रीवके सहित युद्ध कर उसका दर्प चूर्ण करेंगे परन्तु उसको प्राणोंसे नहीं मारेंगे सो तुम उसके मरनेंकी शंका छोड दो ॥ ७ ॥ हम रणमें खडे हुये सुग्रीवके प्रति विशेष

सो यह वानर, उसको भूले नहीं हैं ॥ ४ ॥ हे परवीरनाशी ! रामचंद्रजीके प्रसादसे सुग्रीवजीनें कीर्ति, स्थिर राज्य, रुमा और हमको प्राप्त किया है ॥ ५ ॥ बहुत दिन दुःख भोगनेंके उपरान्त, अति उत्तम सुख पाकर विश्वामित्रजीकी समान इन्होंनें आये हुए समयको न जाना ॥ ६ ॥ इन माननीय धर्मात्मा महर्षि विश्वामित्रजीनें घृताची अप्सरापर अनुरागीहोकर दशवर्ष बीतते हुए नहीं जानेथे ॥ ७ ॥ जबकि कालके जाननेवा लोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी धर्मात्मा विश्वामित्रजीनें प्राप्त कालको नहीं जाना तब स्वभावसेही नीच जातिकी तो बातही क्याहै ? ॥ ८ ॥ हे लक्ष्मण जी ! देहधर्ममें टिके हुए, थके हुए कामभोगसे अतृप्त जनका अपराध आप श्रीरामचंद्रजीसे क्षमा कराइये ॥ ९ ॥ हे लक्ष्मण! आप नीच

रामप्रसादात्कीर्तिंचकपिराज्यंचशाश्वतम् ॥ प्राप्तवानिहसुग्रीवोरुमांमांचपरंतप ॥ ५ ॥ सुदुःखशयितःपूर्वंप्राप्येदंसुख सुत्तमम् ॥ प्राप्तकालंनजानीतेविश्वामित्रोयथामुनिः ॥ ६ ॥ घृताच्यांकिलसंसक्तोदशवर्षाणिलक्ष्मण ॥ अहोमन्य तधर्मात्माविश्वामित्रोमहामुनिः ॥ ७ ॥ सहिप्राप्तंनजानीतेकालंकालविदांवरः ॥ विश्वामित्रोमहातेजाःकिंपुनर्यः पृथग्जनः ॥ ८ ॥ देहधर्मंगतस्यास्यपरिश्रांतस्यलक्ष्मण ॥ अवितृप्तस्यकामेषुरामःक्षंतुमिहार्हति ॥ ९ ॥ नचरोष वशंतातगंतुमर्हसिलक्ष्मण ॥ निश्चयार्थमविज्ञायसहसाप्राकृतोयथा ॥ १० ॥ सत्त्वयुक्ताहिपुरुषास्त्वद्विधाःपुरुषर्ष भ ॥ अविमृश्यनरोषस्यसहसायांतिवश्यताम् ॥ ११ ॥ प्रसादयेत्वांधर्मज्ञसुग्रीवार्थंसमाहिता ॥ महान्रोषससुत्प न्नःसंरंभस्त्यज्यतामयम् ॥ १२ ॥ रुमांमांचांगदंराज्यंधनधान्यपशूनिच ॥ रामप्रियार्थंसुग्रीवस्त्यजेदितिमति र्मम ॥ १३ ॥ समानेष्यतिसुग्रीवःसीतयासहराघवम् ॥ शशांकमिवरोहिण्याहत्वातंराक्षसाधमम् ॥ १४ ॥

पुरुषकी समान विना निश्चित अर्थ जाने हुए सहसा क्रोधके वश न होवें ॥ १० ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ! आपकी समान सतोगुणविशिष्ट पुरुष विना विचारे क्रोधके वश नहीं होजाते ॥ ११ ॥ हे धर्मके जाननेंवाले! हम नम्रता सहित सुग्रीवके लिये आपको प्रसन्न कराती हैं; सो आप इस उत्पन्न हुए महा क्रोधको छोड दीजिये ॥ १२ ॥ हमको जान पडताहै कि यह सुग्रीव श्रीरामचंद्रजीके लिये रुमाको, हमको, अंगदको,राज्य, धन, धान्य, और पशु इत्यादि समस्तकोही परित्याग करदेंगे ॥ १३ ॥ सुग्रीव उस अधम राक्षसको मारकर रोहिणीके सहित चन्द्रमाकी समान सीताजीके

हुए सुग्रीवसे बोले ॥ ६ ॥ श्रेष्ठकुलमें उत्पन्न, अगाध बुद्धि सम्पन्न जितेन्द्रिय, दयावान्, कृतज्ञ और सत्यवादी राजाही लोकमें पूजे जाते हैं ॥ ७ ॥ जो राजा अधर्ममें टिका हुआ उपकारी मित्रकी प्रतिज्ञा पूरण नहीं करताहै उससे अधिक निठुर पुरुष और कौनहै ॥ ८ ॥ पुरुष गण एक अश्वके लिये मिथ्या कहनेंसे; सौ घोडोंके मारनेंका दोष प्राप्त करतेहैं; और एक गौके मिथ्या कहनेंसे सहस्र गोवधके दोषी, और पुरुषके विषयमें मिथ्या कहनेसे अपने और स्वजनोंके विनाशका दोष प्राप्त करतेहैं ॥ ९ ॥ हे वानरश्रेष्ठ! प्रथम मित्रसे उपकार प्राप्त होकर जो पुरुष मित्रगणोंका प्रत्युपकार नहीं करते, वह पुरुष कृतघ्न और सर्वजीवोंसे मार डालनेंके योग्य होतेहैं ॥ १० ॥ हे वानर! सर्वलोकनमस्कृत

सत्वाभिजनसंपन्नःसानुक्रोशोजितेंद्रियः ॥ कृतज्ञःसत्यवादीचराजालोकेमहीयते ॥ ७॥ यस्तुराजास्थितोऽधर्मेमित्राणामुपकारिणां ॥ मिथ्याप्रतिज्ञांकुरुतेकोनृशंसतरस्ततः ॥ ८ ॥ शतमश्वानृतेहंतिसहस्रंतुगवानृते ॥ आत्मानंस्वजनंहंतिपुरुषःपुरुषानृते ॥९॥ पूर्वंकृतार्थोमित्राणांनतत्प्रतिकरोतियः ॥ कृतघ्नःसर्वभूतानांसवध्यःप्लवगेश्वरः॥१०॥ गीतोऽयंब्रह्मणाश्लोकःसर्वलोकनमस्कृता॥दृष्ट्वाकृतघ्नंक्रुद्धेनतन्निबोधप्लवंगमः ११॥गोघ्नेचैवसुरापेचचौरेभग्नव्रतेतथा॥ निष्कृतिर्विहितासद्भिःकृतघ्नेनास्तिनिष्कृतिः ॥ १२ ॥ अनार्यस्त्वंकृतघ्नश्चमिथ्यावादीचवानर ॥ पूर्वंकृतार्थोरामस्यनतत्प्रतिकरोषियत् ॥ १३ ॥ ननुनामकृतार्थेनत्वयारामस्यवानर ॥ सीतायामार्गणेयत्नःकर्तव्यःकृतमिच्छता ॥१४॥ सत्वंग्राम्येषुभोगेषुसक्तोमिथ्याप्रतिश्रवः ॥ नत्वांरामोविजानीतेसर्पंमंडूकराविणम् ॥ १५ ॥

ब्रह्माजीनें कृतघ्न पुरुषको देख क्रोधित होकर पहले यह श्लोक गायाथा कि ॥ ११ ॥ गौके मारनेंवाले, मदिरा पान करनेवाले, चोर, व्रतको तोडनें वाले इन सबका उद्धार सज्जनोंने कहाहै, परन्तु कृतघ्न पुरुषका उद्धार किसी प्रकारसे नहीं हो सकता ॥ १२ ॥ हे वानर! तुम अनार्य, कृतघ्न और मिथ्यावादी बने जातेहो क्योंकि तुमनें पहले कृतार्थ होकर उसका प्रतिकार नहीं किया ॥ १३ ॥ जिस्से कि तुम्हारा कार्य सिद्ध होगयाहै इस कारणसे अब तुमको सीताजीके ढूँढनेंमें यत्न करना अवश्यकीयहै ॥ १४ ॥ तुम इस समय मिथ्यावादी होकर ग्रामीण भोग सुखमें

कीर्ति, और कुलके क्रमसे चले आये हुये कपिराजकोभी प्राप्त कियाहै ॥२५॥ हे देव! जीतनेंवालोंमें श्रेष्ठ! तुम्हारे प्रसादसे प्रसन्न आपके लक्ष्मणजीके किये उपकारका जो प्रत्युपकार न करे वह पुरुषोंके मध्यमें दूषित गिना जाता है ॥ २६ ॥ हे परवीरनाशी! यह सैकडों हजारों बडे २ वानर पृथ्वीपर रहनेंवाले समस्त महाबलवान् वानरोंको लेकर यहां उपस्थित हुये हैं ॥ २७ ॥ शूरश्रेष्ठ घोर दर्शन वानर ऋक्ष और गोपुच्छ स वही वन और पर्वतों परके दुर्गम मार्ग जाननेवाले हैं ॥ २८ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी! देव और गन्धर्वोंके पुत्र कामरूपी वानरगण अपनी सेना गणोंके साथ मार्गमें टिक रहे हैं ॥ २९ ॥ हे शत्रुविनाशन! इन सेनापति वानरोंके साथ, शत २,सहस्र२, कोटि२,अयुत २, शंकु२ (सौहजारका लाख

तवदेवप्रसादाच्चभ्रातुश्चजयतांवर ॥ कृतंनप्रतिकुर्याद्यःपुरुषाणांहिदूषकः॥ २६॥ एतेवानरमुख्याश्चशतशःशत्रुसूदन॥ प्राप्ताश्चादायबलिनःपृथिव्यांसर्ववानरान् ॥ २७॥ ऋक्षाश्चवानराःशूरागोलांगूलाश्चराघव॥ कांतारवनदुर्गाणामभि ज्ञाघोरदर्शनाः ॥ २८ ॥ देवगंधर्वपुत्राश्चवानराःकामरूपिणः ॥ स्वैःस्वैःपरिवृताःसैन्यैर्वर्ततेपथिराघव ॥ २९ ॥ शतैः शतसहस्रैश्चवर्ततेकोटिभिस्तथा ॥ अयुतैश्चावृतावीरशंकुभिश्चपरंतप ॥ ३० ॥ अर्बुदैरर्बुदशतैर्मध्यैश्चांत्यैश्चवानराः॥ समुद्राश्चपरार्धाश्चहरयोहरियूथपाः ॥ ३१ ॥ आगमिष्यंतितेराजन्महेंद्रसमविक्रमाः ॥ मेघपर्वतसंकाशामेरुविं ध्यकृतालयाः ॥ ३२ ॥ तेत्वामभिगमिष्यंतिराक्षसंयोद्धुमाहवे ॥ निहत्यरावणंयुद्धेह्यानयिष्यंतिमैथिलीम् ॥ ३३ ॥

सौलाखका करोड,दश हजारका अयुत,करोड लाखका शंकुहोताहै) ॥३०॥अर्बुद, सौ अर्बुद, मध्य मध्य और अन्त्य २ समुद्र २ परार्द्ध २ संख्या वाले वानर गणोंसे परिवृत (हजार शंकुका एक अरब, दश अरबका एक मध्य दश मध्यका एक अन्त्य वीस अन्त्यका एक समुद्र तीस समुद्रका एक परार्द्ध होताहै) ॥ ३१ ॥ वानरगण मेघ और पर्वतकी समान मेरु और विन्ध्याचलके रहनेवाले, इन्द्रकी समान विक्रमकारी, यहांपर जीके खोजनें जांयगे, व राक्षसोंके साथ युद्ध करके रावणको मार जानकीको आपके निकट ले आवेंगे ॥ ३३ ॥

आपकी बुद्धि अबतक कामतंत्रके रसको नहीं जानती क्योंकि " दिनादशके अलवेले ललाहो " इसी कारणसे आप क्रोधके
वश हुये हैं कामनें आसक्त हुये मनुष्य गण देश काल और अर्थ किसीकी परवाह नहीं करते ॥ ५५ ॥ सो आपके भ्राता हमारे
निकट तुम्हारे डरसे छिपे हुयेहैं इसलिये कामसे आसक्त और काम के वश होनेसें लज्जाहीन वानर वंशोंके नाथका अपराध आप क्षमा
करदें ॥ ५६ ॥ जिनका चित्त धर्म और तपस्या करनेमें ही केवल लगा रहता है; ऐसे महर्षि गणभी मोहित होकर कामके वश हो जाते हैं। फिर
सुग्रीव तो वानर जाति तिसपर स्वभावसे ही चंचल चित्त और राजा इस लिये इसका काम भोगमें आसक्त होना कुछ आश्चर्यकी बात नहींहै ॥ ५७ ॥

नकामतंत्रेतवबुद्धिरस्तित्वंवैयथामन्युवशंप्रपन्नः ॥ नदेशकालौहियथार्थधर्मावेक्षतेकामरतिर्मनुष्यः ॥ ५५ ॥ तं
कामवृत्तंममसन्निकृष्टंकामाभियोगाच्चविमुक्तलज्जम् ॥ क्षमस्वतावत्परवीरहंतस्त्वद्भ्रातरंवानरवंशनाथम् ॥ ५६ ॥
महर्षयोधर्मतपोभिरामाःकामानुकामाःप्रतिबद्धमोहाः ॥ अयंप्रकृत्याचपलःकपिस्तुकथंनसज्येतसुखेषुराजा ॥ ५७ ॥
इत्येवमुक्त्वावचनंमहार्थंसावानरीलक्ष्मणमप्रमेयम् ॥ पुनःसखेदंमदविह्वलाक्षीभर्तुर्हितंवाक्यमिदंबभाषे ॥ ५८ ॥ उद्यो
गस्तुचिराज्ञप्तःसुग्रीवेणनरोत्तम ॥ कामस्यापिविधेयेनतवार्थप्रतिसाधने ॥ ५९ ॥ आगताहिमहावीर्याहरयःकामरू
पिणः ॥ कोटीशतसहस्राणिनानानगनिवासिनः ॥ ६० ॥ तदागच्छमहाबाहोचारित्रंरक्षितंत्वया ॥ अच्छलंमित्रभावे
नसतांदारावलोकनम् ॥ ६१ ॥ तारयाचाप्यनुज्ञातस्त्वरयावापिचोदितः ॥ प्रविवेशमहाबाहुरभ्यंतरमरिंदम ॥ ६२ ॥

मद भरनेके कारण आलस्ययुक्त हुई आँखवाली वानरी तारा अतुल बुद्धिमान लक्ष्मणजीसे ऐसा कह कर फिर अपने पतिका हित करनेवाले यह
वचन बोली ॥ ५८ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! यद्यपि सुग्रीव कामासक्त हो रहाहै तौभी उसने आपका कार्य साधन करनेके लिये पहलेहीसे आज्ञा
देदीहै ॥ ५९ ॥ विविध पर्वत वासी कामरूपी सहस्र २ करोड़ २ महावीर्यवान वानरगण यहांपर आय चुके हैं ॥ ६० ॥ हे महाबाहो ! आपनें अंतः
पुरमें प्रवेश न करके सदाचारकी रक्षाको है अब आप इस समय रनवासमें प्रवेश करिये क्योंकि छल रहित मित्रभावसे मित्रकी स्त्री
देखने में कभी अधर्म नहीं होता ॥ ६१ ॥ शत्रुनाशक लक्ष्मणजी ताराकी अनुमति व शीघ्रता पाकर अंतःपुरमें प्रवेश करते हुये ॥ ६२ ॥

कह सुग्रीवजीनें तारा आदि स्त्रियोंको गृहमें जानेंके लिये विदा किया॥६॥तव सुग्रीवनें " यहां आओर" यह कहकर ऊंचे स्वरसे वानरोंको पुकारा, उनके वचन सुनकर वानरगण शीघ्र वहांपर आ पहुंचे ॥ ७ ॥ तारादि स्त्रियोंको देखनेके योग्य वे वानरगण हाथ जोड खडे होगये तव सूर्य स मान प्रभावाले सुग्रीवजीनें उनसे कहा ॥ ८ ॥ तुम शीघ्रतासे हमारी परम मनोहर पालकी ले आओ । सुग्रीवजीके वचन सुन शीघ्र विक्रम क रनें वाले वानर ॥ ९ ॥ उनकी परम मनोहर शिविका ले आये, तव वानरनाथ सुग्रीवजीनें शिविकाको आयाहुआ देखकर ॥ १० ॥ लक्ष्मणजीसे कहा कि आप इसपर सवार हो जाइये ॥ यह कहकर उस सूर्यकी समानप्रभावाली सुवर्णकी शिविकापर सुग्रीवजी ॥ ११ ॥ लक्ष्मणजीके सहित

एहीत्युच्चैर्हरिवरान्सुग्रीवःसमुदाहरत् ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाहरयःशीघ्रमाययुः ॥ ७ ॥ बद्धांजलिपुटाःसर्वेयेस्युःस्त्रीदर्श नक्षमाः॥तानुवाचततःप्राप्तान्राजार्कसदृशप्रभः ॥ ८ ॥ उपस्थापयतक्षिप्रंशिविकांममवानराः॥ श्रुत्वातुवचनंतस्य हरयःशीघ्रविक्रमाः ॥ ९ ॥ समुपस्थापयामासुःशिविकांप्रियदर्शनाम् ॥ तामुपस्थापितांदृष्ट्वाशिबिकांवानराधि पः ॥१०॥ लक्ष्मणारुह्यतांशीघ्रमितिसौमित्रिमब्रवीत् ॥इत्युक्त्वाकांचनंयानंसुग्रीवःसूर्यसन्निभम्॥११॥बहुभिर्हरिभिर्यु क्तमारुरोहसलक्ष्मणः॥ पांडुरेणातपत्रेणध्रियमाणेनमूर्धनि ॥ १२ ॥ शुक्लैश्चवालव्यजनैर्धूयमानैःसमंततः ॥ शंखभेरी निनादैश्चवंदिभिश्चाभिनंदितः ॥ १३ ॥ निर्ययौप्राप्यसुग्रीवोराज्यश्रियमनुत्तमाम् ॥ सवानरशतैस्तीक्ष्णैर्बहुभिःशस्त्र पाणिभिः ॥ १४ ॥ परिकीर्णोययौतत्रयत्ररामोव्यवस्थितः ॥ सतंदेशमनुप्राप्यश्रेष्ठंरामनिषेवितम् ॥ १५ ॥ अवा तरन्महातेजाःशिविकायाःसलक्ष्मणः॥ आसाद्यचततोरामंकृतांजलिपुटोऽभवत् ॥ १६ ॥

सवार हुये; वहुतसे वानर उस पालकीको उठाये हुयेथे । सुग्रीवजीके ऊपर श्वेत वर्णका छत्र लगाया गया ॥ १२ ॥ और शुक्ल वालोंका चमरभी चारों ओरसे होताथा । शंख भेरियोंके नादका शब्द होताथा वंदीगण स्तुति करतेथे ॥ १३ ॥ सुग्रीवजी अत्युत्तम राजलक्ष्मीको प्राप्त होकर शत शत महावलवान् वानरगण कि जिनके हाथमें वडे पैने २ शस्त्रथे ॥ १४ ॥ घेरे जाकर श्रीरामचन्द्रजीके निकट गमन करनेलगे । राम करके सेवित उत्तम स्थानमें गमन करके ॥ १५ ॥ महातेजवान सुग्रीवजी लक्ष्मणजीके सहित शिविकापरसे उतर श्रीरामचन्द्रजीके निकट

जपुत्रकी प्रसन्नताकी दृष्टिके हेतु महाअर्थयुक्त समझानें बुझानेंके वचन प्रेम सहित ढिठाईसे कहनें लगी ॥ ४० ॥ हे राजकुमार! आपके क्रोधका
क्या कारण है? कौन पुरुष आपकी आज्ञामें नहीं टिका हुआ है? कौन जन सूखे वृक्षोंको जलानेंवाली अग्निमें शंका रहित चित्त होकर गिराहै॥४१॥
लक्ष्मणजी ताराके प्रेम सहित सान्त्वना वाक्य सुनकर प्रणयके दिखानेंवाले निःशंक भावसे बोले ॥ ४२ ॥ तुम्हारा पति धर्म और अर्थका लोप
करके वेगही कामासक्त होरहा है; सो तुम उसके हितकारी कार्यमें लगी रहकर क्या इस बातको नहीं जानती हो ॥ ४३ ॥ वह राज्यकी रक्षा क
रनेंके लिये चिंता नहीं करता; और हम लोग जो शोकसे व्याकुल हो रहे हैं इसकोभी नहीं विचारता उसनें राज्यकी रक्षा करनेंके लिये एक साधारण

किंकोपमूलंमनुजेंद्रपुत्रकस्तेनसंतिष्ठतिवाङ्निदेशे ॥ कःशुष्कवृक्षंवनमापतंतंदवाग्निमासीदतिनिर्विशंकः ॥ ४१ ॥ सत
स्यावचनंश्रुत्वासांत्वपूर्वमशंकितः॥भूयःप्रणयदृष्टार्थंलक्ष्मणोवाक्यमब्रवीत् ॥४२॥किमयंकामवृत्तस्तेलुप्तधर्मार्थसंग्र
हः ॥ भर्ताभर्तृहितेयुक्तेनचैवमवबुध्यसे ॥ ४३ ॥ नचिंतयतिराज्यार्थंसोस्माञ्छोकपरायणान् ॥ सामान्यपरिषत्तारेका
ममेवोपसेवते ॥ ४४ ॥ समासांश्चतुरःकृत्वाप्रमाणंप्लवगेश्वरः ॥ व्यतीतांस्तान्मदोदग्रोविहरन्नावबुध्यते ॥ ४५ ॥
नहिधर्मार्थसिद्ध्यर्थंपानमेवप्रशस्यते ॥ पानादर्थश्चकामश्चधर्मश्चपरिहीयते ॥ ४६ ॥ धर्मलोपोमहांस्तावत्कृते
ह्यप्रतिकुर्वतः ॥ अर्थलोपश्चमित्रस्यनाशेगुणवतोमहान् ॥ ४७ ॥ मित्रंह्यर्थगुणश्रेष्ठंसत्यधर्मपरायणम् ॥ तदयं
तुपरित्यक्तंनतुधर्मेव्यवस्थितम् ॥ ४८ ॥

सभा बनारक्खी है और आप केवल काम भोगमेंही लगा रहता है ॥ ४४॥ कपीश्वरनें हमारे कार्य करनेंके लिये चारमासको अवधि बांधकर प्रति
ज्ञाकी; सो वह उस प्रतिज्ञाको तोड व इस अवधिको नांघकरभी कामके विहारमें ऐसा आसक्त हो रहा है;कि अपनी प्रतिज्ञा व हमारे कार्यको कु
छभी नहीं जानता ॥ ४५ ॥ धर्म और अर्थकी सिद्धके लिये मधुमदादि पानकरना ठीक नहीं है क्योंकि इसको पानकरनेंके हेतु धर्म और अर्थ
दोनोंका नाश होजाता है ॥ ४६ ॥ उपकार करनेंवालेके साथ प्रत्युपकार न करनेंसे धर्म लोप होजाता है; और जब गुणवान मित्रका कार्य ना
शको प्राप्त हो जाता है तब कृतज्ञके अर्थकाभी लोप होजाता है ॥ ४७ ॥ मित्रका कार्य साधन करना और सत्य धर्म परायणता इन दोनोंको छोड

विन्ध्याचल पर्वतसे शीघ्र २ आगमन करनेंलगे ॥ २४ ॥ क्षीर समुद्रकी वेला भूमिमें टिके तमाल वनवासी नारियल खानेंवाले असंख्य वानर गण आनें लगे ॥ २५ ॥ वन, गुफा, और नदियोंके समूहसे महा बलवान् वानरी सेना, मानों सूर्य नारायणको पानही करती हुई सी आनें लगी॥२६॥ हनुमानजीके भेजे हुए जो समस्त वानर गण कपिसेनाको शीघ्रता करानेंके लिये गयेथे, उन्होंनें हिमालय पर्वत पर महेश्वर यज्ञवाट स्थित भगवद्धाम महा वृक्षके दर्शन किये ॥ २७ ॥ पहले उस महा पर्वत पर समस्त देवताओंका मन संतुष्ट करनें वाला महेश्वर दैवत मनोहर, अश्वमेध यज्ञ हुआथा ॥ २८॥ तिस यज्ञमें बहुत सारे अन्नादिकके पडनेंसे उत्पन्न हुए अमृत तुल्य स्वादु युक्त फल मूल वानर गणोंने उस स्थानपर देखे॥२९॥

क्षीरोदवेलानिलयास्तमालवनवासिनः ॥ नारिकेलाशनाश्चैवतेषांसंख्यानविद्यते ॥ २५ ॥ वनेभ्योगह्वरेभ्यश्चसरिद्भ्यश्चमहाबलाः ॥ आगच्छद्वानरीसेनापिबंतीवदिवाकरम् ॥ २६ ॥ येतुत्वरयितुंयातावानराःसर्ववानरान् ॥ तेवीराहिमवच्छैलेदद्दशुस्तंमहाद्रुमम्॥२७॥तस्मिन्गिरिवरेपुण्येयज्ञोमाहेश्वरःपुरा॥सर्वदेवमनस्तोषोबभूवसुमनोरमः॥२८॥ अन्ननिस्यंदयातानिमूलानिचफलानिच॥अमृतस्वादुकल्पानिदद्दशुस्तत्रवानराः॥२९॥तदन्नसंभवंदिव्यंफलमूलंमनोहरम् ॥ यःकश्चित्सकृदश्नातिमासंभवतितर्पितः ॥३०॥ तानिमूलानिदिव्यानिफलानिचफलाशनाः ॥ औषधानिचदिव्यानिजगृहुर्हरिपुंगवाः ॥३१॥ तस्माच्चयज्ञायतनात्पुष्पाणिसुरभीणिच ॥ आनिन्युर्वानरागत्वासुग्रीवप्रियकारणात् ॥ ३२ ॥ तेतुसर्वेहरिवराःपृथिव्यांसर्ववानरान् ॥ संचोदयित्वात्वरितंयूथानांजग्मुरग्रतः ॥ ३३ ॥ तेतुतेनमुहूर्तेनकपयःशीघ्रचारिणः ॥ किष्किंधांत्वरयाप्राप्ताःसुग्रीवोयत्रवानरः ॥ ३४ ॥

जो पुरुष उस अन्नसे उत्पन्न हुए उन फल मूलोंको भक्षण करे तो वहएक मासतक आहार न करके भी तृप्तही रहताहै ॥ ३० ॥ फल मूल भक्षण करनेंवाले उन प्रधान २ वानरोंनें वह सब दिव्य फल मूल लिये और अनेक प्रकारकी ओषधियें भी जो वहांपर लगी हुईथी ग्रहणकी ॥ ३१ ॥ कपिगण सुग्रीवको संतोषित करनेंके लिये उस यज्ञस्थानसे सुगन्धिवान और मनोहर फूलभी लेते आये॥३२॥ वह समस्त कपिश्रेष्ठ पृथ्वीके समस्त वानरोंको लेकर सब यूथोंके आगे आने लगे ॥ ३३ ॥ वह शीघ्रगामीवानरोंके झुन्ड मुहूर्त मध्यमें किष्किन्धामें जहां सुग्रीवजीथे आय पहुँचे ॥३४॥

वाले बहुत स्त्रीरत्न देखते हुये ॥ २२॥ उनमें कोई २ उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई, उत्तम माला, व उत्तम भूषण वसन धारण किये हुये, माला गूंथनेमें लग रहींथी ॥ २३ ॥ श्रीरामचंद्रजीके छोटे भाई लक्ष्मणजीनें सुग्रीवजीके सुख भोगमें परितृप्त, व्यग्रतारहित और अत्युत्तम भूषणधारी नौकर चाकरोंको देखा ॥ २४ ॥ फिर श्रीमान् सुमित्राकुमार लक्ष्मणजी नूपुरधुन सुनकर व औरभी गहनें आदिकोंके शब्द सुन लज्जित हुये ॥ २५ ॥ वह गहनोंका शब्द श्रवण करके रोषके वेगसे अत्यन्त कुपित हुये और शब्दसे दशोंदिशा पूरित करते हुये प्रत्यंचाकी टंकार करनें लगे जिस्से कि स्त्रियोंके भूषणोंका शब्द बंदहो ॥ २६ ॥ उस रनवासमें प्रवेश करनेंके हेतु आचारको आगे किये हुये लक्ष्मणजी, श्रीरामचंद्रजीके कार्यमें सुग्री

दृष्ट्वाभिजनसंपन्नास्तत्रमाल्यकृतस्रजः ॥ वरमाल्यकृतव्यग्राभूषणोत्तमभूषिताः ॥ २३ ॥ नातृप्तान्नातिचव्यग्रान्नानुदात्तपरिच्छदान् ॥ सुग्रीवानुचरांश्चापिलक्षयामासलक्ष्मणः ॥ २४ ॥ कूजितंनूपुराणांचकांचीनांनिःस्वनंतथा ॥ सनिशम्यततःश्रीमान्सौमित्रिर्लज्जितोऽभवत् ॥ २५ ॥ रोषवेगप्रकुपितःश्रुत्वाचाभरणस्वनम् ॥ चकारज्यास्वनंवीरोदिशःशब्देनपूरयन् ॥ २६ ॥ चारित्रेणमहाबाहुरपकृष्टःसलक्ष्मणः ॥ तस्थावेकांतमाश्रित्यरामकोपसमन्वितः ॥ २७ ॥ तेनचापस्वनेनाथसुग्रीवःप्लवगाधिपः ॥ विज्ञायागमनंत्रस्तःसचचालवरासनात् ॥ २८ ॥ अंगदेनयथामह्यंपुरस्तात्प्रतिवेदितम् ॥ सुव्यक्तमेषसंप्राप्तःसौमित्रिर्भ्रातृवत्सलः ॥ २९ ॥ अंगदेनसमाख्यातोज्यास्वनेनचवानरः ॥ बुबुधेलक्ष्मणंप्राप्तंमुखंचास्योपशुष्यत ॥ ३० ॥ ततस्तारांहरिश्रेष्ठःसुग्रीवःप्रियदर्शनाम् ॥ उवाचहितमव्यग्रस्त्रासर्संभ्रांतमानसः ॥ ३१ ॥

वकी अप्रवृत्तिके हेतु कोप युक्त होकर आगे रनवासमें न बढकर एकान्तस्थानमें खडे रहे ॥ २७ ॥ कपिराज सुग्रीवजी उस धनुपकी टंकारको श्रवणकर त्रासितहो लक्ष्मणजीका आगमन जान अपने श्रेष्ठ आसनसे उठ खडे हुये ॥ २८ ॥ उन्होंनें विचाराकि अंगदजीनें जैसे पहले हमें इनके आगमनको बतायाथा सो इस समय भ्रातावत्सल लक्ष्मणजीका आगमन हमनें भली भांति जाना ॥ २९ ॥ अंगदजी करके कहे हुये सुग्रीवजी, धनुषकी टंकारके शब्दसे लक्ष्मणजीका आगमन जान विवर्णमुख होगये ॥ ३० ॥ फिर वानरश्रेष्ठ व्यग्रता रहित सुग्रीवजी त्रासके

वर्णवाले वानर समूह और मेरुपर्वतके पार्श्वमें रहनें वाले;और धूमा गिरिपररहने वाले कपि वृन्द ॥ ६ ॥ और महारुण पर्वतके रहनेवाले, तरुण सूर्यकी समान प्रभावाले मधुपान कारी; भयंकर विक्रम करनेवाले वानर समूह ॥ ७ ॥ और सुगन्धि युक्त सुरम्य वनमें और तपस्वी गणोंके आश्रम वाले मनोहर वडे २ सव ओरके, बनोंमें जो वानर वसतेहों ॥ ८ ॥ अधिक क्या कहैं; वरन पृथ्वीपर जितने वानर वसतेहों तुम उन सबको, शीघ्र चलनेवाले, सामदानादिकी विधि जाननेवाले, वानरोंके द्वारा शीघ्रही इस स्थानपर बुलालो ॥ ९ ॥ यद्यपि हम जानतेहैं कि प्रथम वानरोंको बुलानेके लिये महावेगवान वानरगण भेजे गयेहैं; तथापिउनको शीघ्रता करानेके लिये और २ मुख्य २ वानरोंको भेजो ॥ १० ॥

तरुणादित्यवर्णाश्चपर्वतेयेमहारुणे ॥ पिबंतोमधुमैरेयंभीमवेगाःप्लवंगमाः ॥ ७ ॥ वनेषुचसुरम्येषुसुगंधिषुमहत्सुच ॥
तापसाश्रमरम्येषुवनांतेषुसमंततः ॥ ८ ॥ तांस्तांस्त्वमानयक्षिप्रंपृथिव्यांसर्ववानरान् ॥ सामदानादिभिःकल्पैर्वानरै
र्वेगवत्तरैः ॥ प्रेषिताःप्रथमंयेचमयाज्ञातामहाजवाः ॥ त्वरणार्थंतुभूयस्त्वंसंप्रेषयहरीश्वरान् ॥ १० ॥ येप्रसक्ताश्चका
मेषुदीर्घसूत्राश्चवानराः ॥ इहानयस्वतान्शीघ्रंसर्वानेवकपीश्वरान् ॥ ११ ॥ अहोभिर्दशभिर्येचनागच्छंतिममाज्ञया॥
हंतव्यास्तेदुरात्मानोराजशासनदूषकाः॥ १२ ॥ शतान्यथसहस्राणिकोट्यश्चममशासनात् ॥ प्रयांतुकपिसिंहानांनि
देशेममयेस्थिताः ॥ १३ ॥ मेघपर्वतसंकाशाश्छादयंतइवांबरम् ॥ घोररूपाःकपिश्रेष्ठायांतुमच्छासनादितः ॥ १४ ॥
तेगतिज्ञागतिंगत्वापृथिव्यांसर्ववानराः ॥ आनयंतुहरीन्सर्वांस्त्वरिताःशासनान्मम ॥ १५ ॥

जो २ वानर काम भोगमें आसक्त और वडे आलसीहैं उन सवकोही शीघ्रहीयहांपर लेआओ ॥ ११ ॥ हमारी आज्ञासे जो वानर लोग दशदिनके वीचमें यहांपर नहीं आजॉयगे; हम उन राजाज्ञाके न माननेंवाले दुरात्मावानरोंको मारडालेंगे ॥ १२ ॥ जो कपिश्रेष्ठ हमारी आज्ञामें टिके हुयेहैं वह सव सहस्र २ कोटि २ वानर हमारी आज्ञासे अभी चले जांय विलंवन करें ॥ १३ ॥ हमारी आज्ञाका प्रतिपालन करनेंके हेतु घोररूप मेघ और पर्वतोंकी समान वानरश्रेष्ठगण मानों आकाश मंडलको छायलेते हुयेउन वानरोंको शीघ्रता करानेंके लिये यहांसे जांय ॥ १४ ॥ हमारी आज्ञा

दशरथकुमार लक्ष्मणजीको क्रोधसे लम्बे २ श्वास लेते हुए देखकर कपिगण त्रासित होगये और इनको रोक न सके ॥ ३॥ श्रीमान् लक्ष्मणजीनें
वह दिव्यरत्नमयी दिव्य रत्नसे बनी; फूले हुए वनवाली रमणीक गुफा देखी, ॥ ४ ॥ वह बडे २ धवरहरे और अटा अटारियोंसे अनेक विधिके
रत्नोंसे, और सर्वदा उत्पन्न होते हुए वृक्षोंके समूहसे परिशोभित होतीथी ॥ ५ ॥ और इच्छानुसार रूप धारण करनेंवाले, वस्त्राभूषण पहरे,
माला व अम्बरधारी प्रियदर्शन देव और गन्धर्वपुत्र वानर गणोंसे शोभायमानथी ॥ ६ ॥ चन्दन अगर और कमल आदि फूलोंकी सुगन्धिसे सुग

निःश्वसंतंतुतंदृष्ट्वाक्रुद्धंदशरथात्मजम् ॥ बभूवुर्हरयस्त्रस्तानचैनंपर्यवारयन् ॥ ३ ॥ सतांरत्नमयींदिव्यांश्रीमान्पु
ष्पितकाननाम् ॥ रम्यांरत्नसमाकीर्णांददर्शमहतींगुहाम् ॥ ४ ॥ हर्म्यप्रासादसंबाधांनानारत्नोपशोभिताम् ॥ स
र्वकामफलैर्वृक्षैःपुष्पितैरुपशोभिताम् ॥ ५ ॥ देवगंधर्वपुत्रैश्चवानरैःकामरूपिभिः ॥ दिव्यमाल्यांबरधरैःशोभितां
प्रियदर्शनैः ॥ ६ ॥ चंदनागुरुपद्मानांगंधैःसुरभिगंधिताम् ॥ मैरेयाणांमधूनांचसंमोदितमहापथाम् ॥ ७ ॥ विंध्य
मेरुगिरिप्रख्यैःप्रासादैर्नैकभूमिभिः ॥ ददर्शगिरिनद्यश्चविमलास्तत्रराघवः ॥ ८ ॥ अंगदस्यगृहंरम्यंमैंदस्यद्वि
विदस्यच ॥ गवयस्यगवाक्षस्यगजस्यशरभस्यच ॥ ९ ॥ विद्युन्मालेश्चसंपातेःसूर्याक्षस्यहनूमतः ॥ वीरबाहोःसु
बाहोश्चनलस्यचमहात्मनः॥१०॥कुमुदस्यसुषेणस्यतारजांबवतोस्तथा॥दधिवक्त्रस्यनीलस्यसुपाटलसुनेत्रयोः॥११॥
एतेषांकपिमुख्यानांराजमार्गेमहात्मनाम् ॥ ददर्शगृहमुख्यानिमहासाराणिलक्ष्मणः ॥ १२ ॥ पांडुराभ्रप्रकाशा
निगंधमाल्ययुतानिच ॥ प्रभूतधनधान्यानिस्त्रीरत्नैः शोभितानिच ॥ १३ ॥

न्धित; उसके मार्गोंमें मदिरा और मधु पीनेवाले लोग घूम रहेथे ॥ ७ ॥ लक्ष्मणजीनें उस स्थानमें विन्ध्याचल और मेरु पर्वतकी तुल्य बहुत सारे
भूमि धवरहरे और विमल जलवाली नदियोंके समूह देखे॥ ८॥ आगे चले तो अंगदजीका रमणीक गृह देख और मैन्द,द्विविद,गवय, गवाक्ष,गज,शर
भ ॥९॥ विन्दुमाली, सम्पाति, सूर्याक्ष,हनुमान, वीरबाहु, सुबाहु,महात्मा नल ॥१०॥कुमुद, सुषेण, तार, जाम्बवान, दधिवक्र, नील, सुपाटल, सुने
त्र, ॥ ११ ॥इन सब मुख्य २वानरोंके अति विचित्र गृह महात्मा लक्ष्मणजीनें राजमार्गपर चलते हुये देखे ॥ १२ ॥ यह सब गृह श्वेतवर्णके बाद

तालके वृक्ष व पर्वत और पृथ्वीको विदीर्ण करदिया; उनको किसी की सहायताका क्या प्रयोजनहै? ॥ ८ ॥ हे लक्ष्मण ! जिनके धनुषकी टंकारके शब्दसे सशैल पृथ्वी कम्पितहोजातीहै; उनको किसीकी सहायका क्याप्रयोजनहै? ॥ ९ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! नरवर रामचन्द्रजी जब अपने वैरी रावण का वध करनेंके लिये गमन करेंगे तब हमभी उनके पीछे २ चले जाँयगे ॥ १० ॥ हम उनके दासहैं; सो विश्वास और प्रेमके हेतु यदि कोई अपराध कियाभी हो तब इस आज्ञामें रहनेवालेका अपराध क्षमा करनाचाहिये क्योंकि जिस दाससे अपराध नहीं होता ऐसा दास तो कहीं मिलताही नहीं ॥ ११ ॥ महात्मा सुग्रीवजीनें जब यह वचन कहे; तब उनको सुनकर लक्ष्मणजी प्रसन्न हुये; और स्नेह सहित उनसे बोले ॥ १२ ॥

धनुर्विस्फारयाणस्ययस्यशब्देनलक्ष्मण ॥ सशैलाकंपिताभूमिःसहायैःकिंनुतस्यवै ॥ ९ ॥ अनुयात्रांनरेंद्रस्यकरिष्येऽहंनरर्षभ ॥ गच्छतोरावणंहंतुंवैरिणंसपुरःसरम्॥ १० ॥यदिकिंचिदतिक्रांतंविश्वासात्प्रणयेनवा॥ प्रेष्यस्यक्षमितव्यंमेनकश्चिन्नापराध्यति॥ ११ ॥इतितस्यब्रुवाणस्यसुग्रीवस्यमहात्मनः ॥ अभवल्लक्ष्मणःप्रीतःप्रेम्णाचेदमुवाचह॥ १२ ॥ सर्वथाहिममभ्रातासनाथोवानरेश्वर ॥ त्वयानाथेनसुग्रीवप्रश्रितेनविशेषतः ॥ १३ ॥ यस्तेप्रभावःसुग्रीवयच्चतेशौचमीदृशम् ॥ अर्हस्त्वंकपिराज्यस्यश्रियंभोक्तुमनुत्तमाम् ॥ १४ ॥ सहायेनतुसुग्रीवत्वयारामःप्रतापवान् ॥ वधिष्यतिरणेशत्रूनचिरान्नात्रसंशयः॥ १५ ॥धर्मज्ञस्यकृतज्ञस्यसंग्रामेष्वनिवर्तिनः॥उपपन्नंचयुक्तंचसुग्रीवतवभाषितम्॥ १६ ॥ दोषज्ञःप्रतिसामर्थ्येकोन्योभाषितुमर्हति ॥ वर्जयित्वाममज्येष्ठंत्वांचवानरसत्तम ॥ १७ ॥

वानरनाथ ! हमारे भ्राता तुमको विनीत और सहाय प्राप्त होकर सर्वथा सनाथ हुएहैं ॥ १३ ॥ हे सुग्रीव ! जिस प्रकारका तुम्हारा प्रभाव और सरल भावहै; इस्से तुम कपिराज लक्ष्मीको भोगनेंके लिये बहुतही योग्यहो इसमें कुछ संदेह नहीं ॥ १४ ॥ श्रीरामचन्द्रजी तुमको सहाय पाकर प्रतापवान हुएहैं इस्से वह निःसंदेह शीघ्रही शत्रुका नाश करनें मेंसमर्थ होंगे ॥ १५ ॥ हे सुग्रीव ! तुम धर्मज्ञ, कृतज्ञ हो और संग्राममें विमुख होनेवाले नहींहो, सो इस प्रकारके तुम्हारे वचन ठीकहीहैं ॥ १६ ॥ हमारे बडे भाई श्रीरामचंद्रजीके और तुम्हारे सिवाय कौन विद्वान् पुरुष

पूरा नहीं किया ॥ ८ ॥ जब सुग्रीवजीनें इस प्रकार कहा, तो मंत्रिगणोंमें श्रेष्ठ हनुमानजी अपने तर्कसे बोले हुये मंत्रियोंके बीचमें बोले ॥ ९ ॥ हे कपिगणेश्वर ! आप जो उत्तम उपकारको नहीं भूलते यह कुछ आश्चर्यकी बात नहींहै क्योंकि महात्मा लोगोंका स्वभावही ऐसा होताहै॥१०॥ श्रीरामचन्द्रजीनें भयको छोड करके दूरसेही आपका प्रिय कार्य करनेंके लिये इन्द्र तुल्य पराक्रमशाली वालिको मारडाला ॥ ११ ॥ इसलिये श्रीरामचन्द्रजी प्रेमके हेतुसेही आपके प्रति क्रोधित हुएहैं, इसमें कुछभी संदेह नहींहै; उस प्रेमके कोपके हेतुही उन्होंने इन लक्ष्मीवान लक्ष्मणजी को आपके पास भेजाहै॥१२॥हे कालके जाननेंवालोंमें श्रेष्ठ! आपने भोगके समय मतवाले होकर समयको नहीं जाना, इस समय आप देखिये कि

सुग्रीवेणैवमुक्तेतुहनूमान्हरिपुंगवः ॥ उवाचस्वेनतर्केणमध्येवानरमंत्रिणाम् ॥ ९ ॥ सर्वथानैतदाश्चर्ययत्त्वंहरिगणेश्वर ॥ नविस्मरस्यविस्रब्धमुपकारंकृतंशुभम् ॥ १० ॥ राघवेणतुवीरेणभयमुत्सृज्यदूरतः ॥ त्वत्प्रियार्थंहतोवालीशक्रतुल्यपराक्रमः ॥ ११ ॥ सर्वथाप्रणयात्क्रुद्धोराघवोनात्रसंशयः ॥ भ्रातरंसंप्रहितवाँल्लक्ष्मणंलक्ष्मिवर्धनम् ॥ १२ ॥ त्वंप्रमत्तोनजानीषेकालंकालविदांवर ॥ फुल्लसप्तच्छदश्यामाप्रवृत्तातुशरच्छुभा ॥ १३ ॥ निर्मलग्रहनक्षत्राद्यौःप्रनष्टबलाहका ॥ प्रसन्नाश्चदिशःसर्वाःसरितश्चसरांसिच ॥ १४ ॥ प्राप्तमुद्योगकालंतुनावैषिहरिपुंगव ॥ त्वंप्रमत्तइतिव्यक्तंलक्ष्मणोऽयमिहागतः ॥ १५ ॥ आर्तस्यहृतदारस्यपरुषंपुरुषांतरात् ॥ वचनंमर्षणीयंतेराघवस्यमहात्मनः ॥ १६ ॥ कृतापराधस्यहितेनान्यत्पश्याम्यहंक्षमम् ॥ अंतरेणांजलिंबद्ध्वालक्ष्मणस्यप्रसादनात् ॥ १७ ॥

सीताजीके ढूंढनेंका काल सुशोभित शरदऋतु आईहै; इसलिये खिलेहुए शतावरीके वृक्षोंसे पृथ्वी शोभायमान होरहीहै ॥ १३ ॥ आकाशमंडलमें ग्रह नक्षत्र सब निर्मल होगये; मेघ जहांके तहां विलाय गये, दिक् सरित, और समस्त सरोवर प्रसन्न होगयेहैं ॥ १४ ॥ हे कपिश्रेष्ठ ! सीताजीके ढूंढनेंके निमित्त उद्योग करनेंका समय आगया; और उसको आपने अबतक नहीं जाना; आपतो भोगसुखमेंही मतवालेहैं बस इसी कारणसे लक्ष्मणजी यहां पर आयेहैं ॥ १५ ॥ हृतभार्या, इसलिये अत्यन्त कातर महात्मा श्रीरामचंद्रजीके पुरुषान्तर (लक्ष्मणजी) से सुने हुये कठोर वचन आप सहन करें ॥ १६ ॥ आपनें अपराध कियाहै; इसलिये हाथ जोडकर लक्ष्मणजीकी प्रसन्नताके सिवाय और किसी कार्यसे हम

सहित श्रीरामचन्द्रजीको ले आवेंगे ॥ १४ ॥ लंकामें रावणके पास इस समय एक अरब नव्वे सहस्र राक्षसोंकी सेना है ॥ १५ ॥ उन समस्त दुर्द्धर्ष कामरूपी सेनाको विना मार डाले सीताके हरण करनेंवाले रावणका वध न होसकैगा ॥ १६ ॥ हे लक्ष्मणजी! सुग्रीव विना सहायके प्राप्त हुये उस सेना और विशेष करके उस क्रूर कर्म करनेंवाले रावणको मारनेंमें समर्थ न होंगे ॥ १७ ॥ उन देश कालके जाननेंवाले वालिनें हमसे यह सब वार्ता कहीथी, सो हमनें जैसी उनसे सुनी तैसेही कहती हैं; और उसके बलको हम जानती नहीं हैं ॥ १८ ॥ आपकी सहाय करनेंके वास्ते सेना

शतकोटिसहस्राणिलंकायांकिलरक्षसाम् ॥ अयुतानिचषट्त्रिंशत्सहस्राणिशतानिच ॥ १५ ॥ अहत्वातांश्चदुर्धर्षान्राक्षसान्कामरूपिणः ॥ अशक्यंरावणंहंतुंयेनसामैथिलीहृता ॥ १६ ॥ तेनशक्यारणेहंतुमसहायेनलक्ष्मण ॥ रावणः क्रूरकर्माचसुग्रीवेणविशेषतः ॥ १७ ॥ एवमाख्यातवान्वालीसह्यभिज्ञोहरीश्वरः ॥ आगमस्तुनमेव्यक्तःश्रवात्तस्य ब्रवीम्यहम् ॥ १८ ॥ त्वत्सहायनिमित्तंहिप्रेषिताहरिपुंगवाः ॥ आनेतुंवानरान्युद्धेसुबहून्हरिपुंगवान् ॥ १९ ॥ तांश्च प्रतीक्षमाणोयंविक्रांतान्सुमहाबलान् ॥ राघवस्यार्थसिद्ध्यर्थंननिर्यातिहरीश्वरः ॥२०॥ कृतासुसंस्थासौमित्रेसुग्रीवेणपुरायथा ॥ अद्यतैर्वानरैःसर्वैरागंतव्यंमहाबलैः ॥ २१ ॥ ऋक्षकोटिसहस्राणिगोलांगूलशतानिच ॥ अद्यत्वामुपयास्यंतिजहिकोपमरिंदम ॥ कोट्योनेकास्तुकाकुत्स्थकपीनांदीप्ततेजसाम् ॥ २२ ॥

बुलानेंके लिये प्रधान २ वानरगण भेजे गये हैं; वह लोग युद्धमें कुशल बहुतसे वीर्यवान वानरगणोंको दिशा विदिशाओंसे लेआवेंगे ॥ १९ ॥ यह कपीश्वर उन सब महाबलवान वानर गणोंकी राह देखरहेहैं; उन सबके विनाआये श्रीरामचन्द्रजीकी कार्य सिद्धिके लिये यह नहीं निकलतेथे ॥ २० ॥ सुग्रीवजीनें पहले जिस प्रकारकी सुव्यवस्था कीहै "कि एक पक्षमें जो वानर न आया वह मारडाला जायगा" सो इस्से अब समस्त महाबलवान् वानर सैना आयाही चाहतीहै ॥२१॥ हे शत्रुनाशी! आप क्रोध परित्यागकरें; अतिशीघ्र आज ही हजार २ करोड़ २ ऋक्ष, सौ करोड़ गौपुच्छ,

जब सुग्रीव जागरित होगये तब अंगदजीके मुखसे समस्त वचन सुनकर परामर्श देनेमें चतुर व प्रियदर्शन दो मंत्री सुग्रीवजीके पास आये ॥ ४२ ॥ वह प्रभाव शाली चतुर, धर्म, और अर्थके विषयमें ऊंच नीच कहनेंके निमित्त आये हुये दोनों मंत्री लक्ष्मणजीके आनेंके विषयमें कहनें लगे ॥ ४३ ॥ वह दोनों मंत्री अर्थयुक्त वचनोंसे सुग्रीवको प्रसन्न करके बोले, कि जिसप्रकार सुरपतिको देवतागण प्रसन्न करते हैं॥४४॥हे राजन्! आपको राज्य दिलानेवाले वह त्रिलोकीका राज्य करने योग्य महाभाग सत्यप्रतिज्ञ, दोनों भाई श्रीराम लक्ष्मणजी मनुष्यभावको प्राप्त हुये हैं (अर्थात् मनुष्य नहीं ईश्वर हैं) ॥ ४५ ॥ उन दोनोंमेंसे एक जन लक्ष्मणजी धनुष धारण करके पुरीके द्वारपर खडे हुये हैं, उनकेही निमित्त वानरगण भात

अथांगदवचःश्रुत्वातेनैवचसमागतौ ॥ मंत्रिणौवानरेंद्रस्यसंमतोदारदर्शनौ ॥ ४२ ॥ यक्षश्चैवप्रभावश्चमंत्रिणावथधर्मयोः ॥ वक्तुमुच्चावचंप्राप्तंलक्ष्मणंतौशशंसतुः ॥ ४३ ॥ प्रसादयित्वासुग्रीवंवचनैःसार्थनिश्चितैः ॥ आसीनंपर्युपासीनौयथाशक्रंमरुत्पतिम् ॥ ४४ ॥ सत्यसंधौमहाभागौभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ मनुष्यभावंसंप्राप्तौराज्यार्हौराज्यदायिनौ ॥ ४५ ॥ तयोरेकोधनुष्पाणिर्द्वारितिष्ठतिलक्ष्मणः ॥ यस्यभीताःप्रवेपंतोनादान्मुंचंतिवानराः ॥ ४६ ॥ सएषराघवभ्रातालक्ष्मणोवाक्यसारथिः ॥ व्यवसायरथःप्राप्तस्तस्यरामस्यशासनात् ॥ ४७ ॥ अयंचतनयोराजंस्तारायादयितोंगदः ॥ लक्ष्मणेनसकाशंतेप्रेषितस्त्वरयानघ ॥४८॥ सोयंरोषपरीताक्षोद्वारितिष्ठतिवीर्यवान् ॥ वानरान्वानरपतेचक्षुषानिर्दहन्निव॥४९॥तस्यमूर्ध्नाप्रणामंत्वंसपुत्रःसहबांधवः॥गच्छशीघ्रंमहाराजरोषोह्यद्योपशाम्यताम् ॥५०॥

और कम्पित होकर शब्द कर रहे हैं ॥ ४६ ॥ वह यह श्रीरामचन्द्रजीके भ्राता लक्ष्मणजी कि जो अपने बडे भाईके वचनकोही सारथि बना और कर्त्तव्य अर्थके निश्चय रूप रथपर श्रीरामचन्द्रजीके वचन मान यहांपर आये हैं ॥ ४७॥ हे राजन्! यह ताराके पुत्र अंगदजी उन्ही लक्ष्मणजीके भेजे हुये तुम्हारे पास अति शीघ्र आये हैं॥४८॥वह लक्ष्मणजीही क्रोधसे लाल नेत्र किये मानों अपनी लोचनाग्निसे वानरगणको जलातेही हुये द्वारपर खडे हैं॥४९॥हे राजन्! आप इस समय पुत्र और बान्धव गणोंके सहित शीघ्र जाकर मस्तक झुकाकर प्रणाम करके उनके रोषको शान्त कीजिये॥५०॥

आसक्त हो रहेहो; महाराज श्रीरामचंद्रजी तुम दुष्ट स्वभाववाले मेंडककी बोली बोलते सर्पकी समानको नहीं जानतेथे ॥ १५ ॥ करुणामयमहाभाग महात्मा रामचंद्रजीनें वानरोंमें नीच, पाप करनेंवाले तुमको वानरोंका राज्य दियाहै ॥ १६ ॥ यदि तुम महात्मा श्रीरामचंद्रजीका किया हुआ उपकार न मानोंगे तो शीघ्रही उनके बाणसे मारे जाकर वालिको देखोगे ॥ १७ ॥ हे सुग्रीव ! जिस बाणसे वालि मारागयाहै, वही बाण अब श्रीरामचंद्रजीके हाथमेंहै; इसलिये तुम प्रतिज्ञाका पालन करके वालिके मार्गका अनुसरण न करो ॥ १८ ॥ तुम श्रीरामचंद्रजीके धनुषसे छूटे हुये वज्र तुल्य बाणोंको न देखो, क्योंकि उन बाणोंका दर्शन करनेंसे सुखी होकर भोग सुख अनुभव करसकोगे; इसलिये श्रीरामचं

महाभागेनरामेणपापःकरुणवेदिना ॥ हरीणांप्रापितोराज्यंत्वंदुरात्मामहात्मना ॥ १६ ॥ कृतंचेन्नातिजानीषेराघवस्यमहात्मनः ॥ सद्यस्त्वंनिशितैर्बाणैर्हतोद्रक्ष्यसिवालिनम् ॥ १७ ॥ नससंकुचितःपंथायेनवालीहतोगतः ॥ समये तिष्ठसुग्रीवमावालिपथमन्वगाः ॥ १८ ॥ ननूनमिक्ष्वाकुवरस्यकार्मुकाच्छरांश्चतान्पश्यसिवज्रसन्निभान् ॥ ततःसुखं नामनिषेवसेसुखीनरामकार्यंमनसाप्यवेक्षसे ॥ १९ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडे चतुस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३४ ॥ तथाब्रुवाणंसौमित्रिंप्रदीप्तमिवतेजसा ॥ अब्रवील्लक्ष्मणंताराताराधिपनिभानना ॥ १ ॥ नैवंलक्ष्मण वक्तव्योनायंपरुषमर्हति ॥ हरीणामीश्वरःश्रोतुंतववक्त्राद्विशेषतः ॥ २ ॥ नैवाकृतज्ञःसुग्रीवोनशठोनापिदारुणः ॥ नैवानृत कथोवीरनजिह्मश्चकपीश्वर ॥ ३ ॥ उपकारंकृतंवीरोनाप्ययंविस्मृतःकपिः ॥ रामेणवीरसुग्रीवोयदन्यैर्दुष्करंरणे ॥ ४ ॥

द्रजीका कार्य तुम अग्रहण न करो ॥ १९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे चतुस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३४ ॥ तेजसे देदीप्यमान लक्ष्मणजीनें जब इस प्रकारसे कहा तब चंद्रमुखीतारा लक्ष्मणजीसे बोली ॥ १ ॥ हेलक्ष्मण ! इन सुग्रीवसे कर्कश वचन कहना आपको उचित नहीं है यह कपीश्वर आपके मुखसे इस प्रकारके वचन श्रवण करनेंके योग्य नहीं हैं ॥ २ ॥ हे वीर ! यह सुग्रीव, अकृतज्ञ, शठ, दारुण मिथ्यावादी और छलकारी नहीं हैं ॥ ३ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें रणस्थलमें जो उपकार किया है; वह औरसे होनेंके अयोग्यहै;

कार और सबही सिंहकी समान भयंकर डाढवाले दृष्टि आतेथे ॥ २४ ॥ किसीमें दश हाथीका किसीमें शत हस्तीका और किसीमें हजार हस्तियोंका बलथा इन सब वानरोंकी एकसीही कान्तिथी ॥ २५ ॥ जब यह बाहर आये तो क्रोधित हुये लक्ष्मणजी उन वृक्षधारी महाबलवान वानरोंसे व्याप्त किष्किन्धा नगरीको देखते हुये ॥ २६ ॥ तब महावीर्यवान समस्त वानर दुर्ग कोटकी बाहर दिवारी से बाहर परिखाके पार आकर प्रकाशित भावसे लडनेको खडे होगये ॥ २७ ॥ जितेन्द्रिय वीरवर लक्ष्मणजी सुग्रीवका प्रमाद और अपने भ्राता श्रीरामचंद्रजीके कार्यको विचार कर बहुत क्रोध करते हुये ॥ २८ ॥ लंबे २ और गर्म २ श्वास ले क्रोधके मारे लाल २ नेत्र होनेसे नर

दशनागबलाःकेचित्केचिद्दशगुणोत्तराः॥ केचिन्नागसहस्रस्यबभूवुस्तुल्यवर्चसः॥२५॥ततस्तैःकपिभिर्व्याप्तांद्रुमहस्तैर्महाबलैः॥ अपश्यल्लक्ष्मणःक्रुद्धःकिष्किंधांतांदुरासदां॥२६॥ ततस्तेहरयःसर्वेप्राकारपरिखांतरात् ॥ निष्क्रम्योदग्रसत्त्वास्तुतस्थुराविष्कृतंतदा ॥ २७ ॥ सुग्रीवस्यप्रमादंचपूर्वजस्यार्थमात्मवान् ॥ दृष्ट्वाक्रोधवशंवीरःपुनरेवजगाम सः ॥ २८ ॥ सदीर्घोष्णमहोच्छ्वासःकोपसंरक्तलोचनः ॥ बभूवनरशार्दूलःसधूमइवपावकः ॥ २९ ॥ बाणशल्यस्फुरज्जिह्वःसायकासनभोगवान् ॥ स्वतेजोविषसंभूतःपंचास्यइवपन्नगः ॥ ३० ॥ तंदीप्तमिवकालाग्निंनागेंद्रमिवकोपितम् ॥ समासाद्यांगदस्त्रासाद्विषादमगमत्परम् ॥ ३१ ॥ सोंगदंरोषताम्राक्षःसंदिदेशमहायशाः ॥ सुग्रीवःकथ्यतांवत्सममागमनमित्युत॥३२॥एषरामानुजःप्राप्तस्त्वत्सकाशमरिंदम॥ भ्रातुर्व्यसनसंतप्तोद्वारितिष्ठतिलक्ष्मणः॥३३॥

श्रेष्ठ लक्ष्मणजी धूमसहित अग्निकी समान प्रकाशित होनेलगे ॥ २९ ॥ फल लगे हुये बाण और लप लपाती हुई प्रज्वलित जीभ धारण किये विषभरे पांचशिरवाले भुजंगकी समान वह प्रकाशमान हुये ॥ ३० ॥ कालाग्निकी समान प्रदीप्त, और क्रोध किये हाथीके समान प्रकाशमान, लक्ष्मणजीको देखकर अंगदजी अत्यंत शोकातुर हुये ॥ ३१ ॥ महा यशस्वी लक्ष्मणजीने क्रोधके मारे लाल २ नेत्र कर अंगदजीको आज्ञादी कि हे वत्स! हमारे आनेकी वार्ता सुग्रीवसे निवेदन करो ॥ ३२ ॥ उनसे कहना कि हे शत्रुनाशक!

लक्ष्मणजीनें वहां प्रवेश करके महामूल्यका विछौना विछेहुये कांचनके बने आसनपर सुग्रीवको बैठे देखा ॥ ६३ ॥ दिव्य भूषण पहरे अति दिव्य रूपवान अति यशस्वी दिव्य माला और दिव्य वस्त्र धारण किये इन्द्रकीसमान दुर्जय ॥ ६४ ॥ दिव्यमाला व दिव्याभरण इत्यादि पहरे स्त्रियों करके चारोंओरसे सेवित, कपिराज सुग्रीवको लक्ष्मणजीनें देखा तो वह लाल नेत्र अन्तककी समान हो गये ॥६५॥ श्रेष्ठ हेम वर्ण, विशाल नेत्र, आसन पर बैठे वीरवर सुग्रीवनें रुमाको चिपटाये महावीर्यवान विशाल नेत्र वाले लक्ष्मणजीको देखा ॥ ६६॥ इ० श्री० वा० आ० कि० त्रयस्त्रिंशः सर्गः॥३३॥ उन अवारित क्रोध किये पुरुषश्रेष्ठ लक्ष्मणजीको अन्तःपुरमें आये हुये देख सुग्रीवजी अत्यन्त व्यथित हुये ॥ १ ॥ तेजसे देदीप्यमान क्रोधान्वि

ततःसुग्रीवमासीनंकांचनेपरमासने॥महार्हास्तरणोपेतेददर्शादित्यसन्निभम्॥६३॥दिव्याभरणचित्रांगंदिव्यरूपंयशस्विनम् ॥ दिव्यमाल्यांबरधरंमहेंद्रमिवदुर्जयम् ॥ ६४॥दिव्याभरणमालाभिःप्रमदाभिःसमंततः॥संरब्धतररक्ताक्षोबभूवांतकसन्निभः ॥६५॥ रुमांतुवीरःपरिरभ्यगाढंवरासनस्थोवरहेमवर्णः ॥ ददर्शसौमित्रिमदीनसत्वंविशालनेत्रःसविशालनेत्रम् ॥ ६६ ॥ इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०कि०कां०त्रयस्त्रिंशःसर्गः ॥३३॥ तमप्रतिहतंक्रुद्धंप्रविष्टंपुरुषर्षभम् ॥ सुग्रीवोलक्ष्मणंदृष्ट्वाबभूवव्यथितेंद्रियः ॥ १ ॥ क्रुद्धंनिःश्वसमानंतंप्रदीप्तमिवतेजसा ॥ भ्रातुर्व्यसनसंतप्तंदृष्ट्वादशरथात्मजम् ॥ २ ॥ उत्पपातहरिश्रेष्ठोहित्वासौवर्णमासनम् ॥ महान्महेंद्रस्ययथास्वलंकृतइवध्वजः ॥ ३॥ उत्पतंतमनूत्पेतूरुमाप्रभृतयःस्त्रियः ॥ सुग्रीवंगगनेपूर्णचंद्रंतारागणाइव ॥४ ॥ संरक्तनयनःश्रीमान्संचचारकृतांजलिः ॥ बभूवावस्थितस्तत्रकल्पवृक्षोमहानिव ॥५॥ रुमाद्वितीयंसुग्रीवंनारीमध्यगतंस्थितं ॥ अब्रवील्लक्ष्मणःक्रुद्धःसतारंशशिनंयथा ॥ ६ ॥

त अपने भाईकी दुःखानलसे संतापित दशरथकुमार लक्ष्मणजीको लंबे२श्वास लेते हुये देखकर॥२॥कपिश्रेष्ठ सुग्रीवजी अपना स्वर्णासन त्यागकर इन्द्रकी अलंकृत ध्वजाके समान उठ खड़े हुये ॥३॥ सुग्रीवजीके उठनेपर रुमा इत्यादि सब स्त्रियें खडी होगईं; जिस प्रकार गगन मंडलमें चंद्रमाके निकल आनपर तारागण उसके चारों ओर शोभित होतेहैं ॥ ४ ॥ श्रीमान् अरुणनेत्र सुग्रीवजी हाथ जोड महान् कल्पवृक्षकी समान खडे रहगये ॥ ५ ॥ क्रोधित हुए लक्ष्मणजी नक्षत्रोंके बीचमें टिके हुये चंद्रमाकी समान रुमाके सहित नारियोंके बीचमें खडे

ताका वर्ताव करके पहलेकी समान प्रसन्न हो जाओ ॥ ७ ॥ तुम रूखेवचनोंको छोड करके समयका उल्लंघन करनेंवाले सुग्रीवको समझाते बुझाते हुये हितकर वचन कहना ॥ ८ ॥ जब रामचंद्रजीनें ऐसा कहा तो पुरुषश्रेष्ठ, परवीर घाती, वीरवर लक्ष्मणजी अपने बडे भाईकी आज्ञासे किष्किन्धापुरीमें प्रवेश करते हुये ॥ ९ ॥ फिर शुभमति बुद्धिमान भ्राताका हित करनेंमें रत लक्ष्मणजीनें कोप प्रगट करते हुये कपिराज सुग्रीवके भवनमें प्रवेश किया ॥ १० ॥ मन्दराचल पर्वतकी तुल्य लक्ष्मणजी इन्द्रके धनुषकी समान कालान्तक, यमकी समान पर्वतके शिखरकी तुल्य धनुष धारण करके गमन करते हुये ॥ ११ ॥ मनमें विचाराकि जैसे उत्तर प्रत्युत्तर भाई साहबनें सुग्रीवसे कहनेंको कहेहैं; उन्हीके

सामोपहितयावाचारूक्षाणिपरिवर्जयन् ॥ वक्तुमर्हसिसुग्रीवंव्यतीतंकालपर्यये ॥ ८ ॥ सोऽग्रजेनानुशिष्टार्थोयथावत्पुरुषर्षभः ॥ प्रविवेशपुरींवीरोलक्ष्मणःपरवीरहा ॥ ९ ॥ ततः शुभमतिःप्राज्ञोभ्रातुःप्रियहितेरतः ॥ लक्ष्मणःप्रतिसंरब्धोजगामभवनंकपेः ॥१०॥ शक्रबाणासनप्रख्यंधनुःकालांतकोपमम् ॥ प्रगृह्यगिरिशृंगाभंमंदरःसानुमानिव ॥११॥ यथोक्तकारीवचनमुत्तरंचैवसोत्तरम् ॥ बृहस्पतिसमोबुद्ध्यामत्वारामानुजस्तदा ॥ १२ ॥ कामक्रोधसमुत्थेनभ्रातुःक्रोधाग्निनावृतः ॥ प्रभंजनइवाप्रीतःप्रययौलक्ष्मणस्ततः ॥ १३ ॥ सालतालाश्वकर्णांश्चतरसापातयन्बलात् ॥ पर्यस्यन्गिरिकूटानिद्रुमानन्यांश्चवेगितः ॥ १४ ॥ शिलाश्चशकलीकुर्वन्पद्भ्यांगजइवाशुगः ॥ दूरमेकपदंत्यक्त्वाययौकार्यवशाद्द्रुतम् ॥ १५ ॥

अनुसार कार्य करना उचितहै, यही विचार बृहस्पतिजीके समान बुद्धिमान लक्ष्मणजीनें सब उत्तर शोचलिये ॥ १२ ॥और उसही मध्यमें अपने बडे भ्राताकी कामक्रोधाग्निसे युक्त लक्ष्मणजी बडे वेगसे चले, अति वेगसे चलनेंके कारण वृक्षोंको तोडते चले जातेथे ॥ १३ ॥ वेगवान लक्ष्मणजी शाल,ताल,अश्वकर्ण इत्यादि वृक्षोंको गिराते जाते और पर्वतके शृंगोंको तोडते उखाड़ते इधर उधर फेंकते जाते ॥१४॥ वह पर्वतकी शिला ओंको अपनें दोनों चरणोंसे खंड २ करते, दूर २ पर चरण धरते, कार्यके वशहो अति शीघ्रतासे चलनें लगे; उस समय ऐसा ज्ञात होताथा कि मानों कोई

देनेंसे धर्मकी रक्षा नहीं होती॥४८॥ हे तारे! तुम कार्यके निश्चयको भली भांतिसे जानती हो,सो इस उपस्थित कार्यके लिये जो कुछ करना उचित हो, वही किया चाहिये, बस यही बात तुम सुग्रीवसे जाकर कहो ॥ ४९ ॥ तारा, लक्ष्मणजीके वह धर्मार्थसंबंधयुक्त मधुर वचन सुनकर सुग्रीवसे कालको उल्लंघन होनेंके हेतु विश्वास युक्त वचन बोली ॥ ५० ॥ हे राजेन्द्रकुमार! मित्रके योग्य कार्य तो अभी नहीं बीता है, इस कारणसे आपके कोपका समय अभी नहीं आपहुँचाहै और अपनेके ऊपर आपको क्रोध करना कर्त्तव्यभी नहीं है।आपका प्रयोजन साधन करनेंकी इच्छा किये अपने मित्रका कोई अपराधभी होजाय तोभी आप उसे सहलेंनेके योग्यहैं॥५१॥हे कुमार! आप गुणवान हैं इसलिये हीन पुरुषके ऊपर आपका

तदेवंप्रस्तुतेकार्येकार्यमस्माभिरुत्तरम् ॥ तत्कार्यंकार्यतत्त्वज्ञेत्वमुदाहर्तुमर्हसि ॥ ४९ ॥ सातस्यधर्मार्थसमाधियुक्तं निशम्यवाक्यंमधुरस्वभावम् ॥ तारागतार्थेमनुजेंद्रकार्येविश्वासयुक्तंतमुवाचभूयः ॥ ५० ॥ नकोपकालःक्षितिपालपुत्रनचापिकोपःस्वजनेविधेयः ॥ त्वदर्थकामस्यजनस्यतस्यप्रमादमप्यर्हसिवीरसोढुम् ॥ ५१ ॥ कोपंकथंनामगुणप्रकृष्टःकुमारकुर्यादपकृष्टसत्त्वे ॥ कस्त्वद्विधःकोपवशंहिगच्छेत्सत्वावरुद्धस्तपसःप्रसूतिः ॥ ५२ ॥ जानामिकोपंहरिवीरबंधोर्जानामिकार्यस्यचकालसंगम् ॥ जानामिकार्यंत्वयियत्कृतंनस्तच्चापिजानामियदत्रकार्यम् ॥ ॥५३॥ तच्चापिजानामितथाविषह्यंबलंनरश्रेष्ठशरीरजस्य॥जानामियस्मिंश्चजनेऽवबद्धंकामेनसुग्रीवमसक्तमद्य ॥५४॥

क्रोध करना अनुचित है आप सरीखे पुरुष गण सतोगुणसे क्रोधको वश किये हुये तपस्या पर आधार रखते हैं; इसलिये किस प्रकारसे आप क्रोधके वशमें हो सकते हैं ॥ ५२ ॥ उस वानरबन्धुके ऊपर क्रोधका कारण हम जानती हैं और हम यह भी जान चुकीहैं कि सीताके ढूंढनेका समय आगया है; और आपने हम लोगोंको जो कार्य कियाहै; और आपके प्रति हम लोगोंका जो कर्तव्य है उसकोभी हम जानती हैं॥५३॥ अबतक आपके क्रोध करनेंका कारण नहीं हुआ है; यह भी हम जानती हैं; हेनरश्रेष्ठ ! कामदेवका सहन करनेके अयोग्य जो बल है, उसको भी हम जानतीहैं सुग्रीव जो स्त्रीजनोंके प्रति काममें लगे हुये व और कार्योंके करनेमें अनुरागी नहींहै यहभी ज्ञातहै ॥ ५४ ॥

॥

का समय है, सो यह चार मासभी बीत गये तथापि वह विहारके सुखमें आसक्त होकर हमारी प्रतिज्ञाको नहीं जानता ॥ ७८ ॥ वह सुग्रीव अपने मंत्री और इष्ट मित्र गणोंके सहित मधुपानमें मत्त होकर हमारे ऊपर दया नहीं प्रगट करते ॥ ७९ ॥ हे महाबलवान ! हे वीरश्रेष्ठ ! इस समय तुम जाकर सुग्रीवसे हमारे क्रोधका रूप निवेदन करो और यह सब कठोरवचनभी उनसे कहदेना ॥ ८० ॥ जिस मार्गमें मारा जाकर वालि गयाहै; वह मार्ग कुछ इस समय छोटा नहीं होगयाहै; वह सबही भांतिसे हमारे वशमें है । हे सुग्रीव ! तुम अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार कार्य करो अपने भाई वालिकी राहमें न जाओ ॥ ८१ ॥ हमनें रणस्थलमें केवल एकही बाणसे वालिको मार डाला, परन्तु तुम जो सत्यसे भ्रष्ट

सामात्यपरिषत्क्रीडन्पानमेवोपसेवते ॥ शोकदीनेषुनास्मासुसुग्रीवःकुरुतेदयाम् ॥ ७९ ॥ उच्यतांगच्छसुग्रीवस्त्वयावीरमहाबल ॥ ममरोषस्ययद्रूपंब्रूयाश्चैनमिदंवचः ॥ ८० ॥ नससंकुचितःपंथायेनवालीहतोगतः ॥ समयेतिष्ठसुग्रीवमावालिपथमन्वगाः ॥ ८१ ॥ एकएवरणेवालीशरेणनिहतोमया ॥ त्वांतुसत्यादतिक्रांतंहनिष्यामिसबांधवम् ॥ ८२ ॥ यदेवंविहितेकार्येयद्धितंपुरुषर्षभ ॥तत्तद्ब्रूहिनरश्रेष्ठत्वराकालव्यतिक्रमः ॥ ८३ ॥ कुरुष्वसत्यंममवानरेश्वरप्रतिश्रुतंधर्ममवेक्ष्यशाश्वतम् ॥ मावालिनंप्रेतगतोयमक्षयेत्वमद्यपश्येर्ममचोदितःशरैः ॥ ८४ ॥ सपूर्वजंतीव्रविवृद्धकोपंलालप्यमानंप्रसमीक्ष्यदीनम् ॥ चकारतीव्रांमतिसुग्रतेजाहरीश्वरेमानववंशवर्धनः ॥ ८५ ॥

इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेत्रिंशःसर्गः ॥ ३० ॥ ॥ छ ॥

हुए तो तुमको हम बन्धु बान्धवों सहित मार डालेंगे ॥ ८२ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! इस विषयमें और भी करनें लायक कार्य जोकि हितकारी हों वह २ सब उनसे कह देना क्योंकि इस शीघ्रतासे करने योग्य कार्यमें विलंब होगयाहै ॥ ८३ ॥ और यहभी कह देना कि हे वानरेश्वर ! नित्य, धर्म, दर्शन करकै जो प्रतिज्ञा तुमनें की है उसको तुम पूराकरो देखो ! कहीं तुम हमारे छोडे हुए बाणसे मरकर वालिको मत देखना ॥ ८४ ॥ वह मानववंशके बढानेंवाले उग्र तेजवान लक्ष्मणजी; यह देखकरकि बडे भाई साहबका क्रोध अत्यन्त बढता जाताहै और यह दीन भावसे विलाप कर रहेहैं सुग्रीवके प्रति अत्यन्त क्रोधित हुए ॥ ८५ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे त्रिंशःसर्गः॥३०॥

मारे चंचलचित्तहो प्रियदर्शनवाली तारासे कहनें लगे ॥ ३१ ॥ हे शुभे श्रीरामचंद्रजीके छोटे भाई लक्ष्मणजी स्वभावसे मृदुलचित्तहैं सो इसका क्या कारणहै कि यह क्रोधित होकर यहां आयेहैं सो तुम केहो? ॥ ३२ ॥ हे अनिन्दिते ! कुमारके रोषका कौन कारण दृष्टि आताहै? क्योंकि नरश्रेष्ठ लक्ष्मणजी कभी अकारण क्रोध नहीं करते ॥ ३३ ॥ हमने यदि उन लोगोंका कोई अपराध किया हो और यदि तुम समझती हो; तो उसको शीघ्र बुद्धिसे विचार कर हमसे कहो ॥ ३४ ॥ अथवा हे भामिनि! तुम स्वयंही उनके दर्शनकर और समझानें बुझानेंका वचन कह उन्हें प्रसन्न करो ॥ ३५ ॥ विशुद्धात्मा लक्ष्मणजी तुमको देखतेही क्रोध छोड देंगे, क्योंकि महात्मा लोग स्त्रियोंके निकट दारुण क्रोध नहीं करते

किंनुरुट्कारणंसुभ्रुप्रकृत्यामृदुमानसः ॥ सरोषइवसंप्राप्तोयेनायंराघवानुजः ॥ ३२ ॥ किंपश्यसिकुमारस्यरोषस्थानमनिंदिते ॥ नखल्वकारणेकोपमाहरेन्नरपुंगवः ॥३३॥ यद्यस्यकृतमस्माभिर्बुध्यसेकिंचिदप्रियम् ॥ तद्बुद्ध्यासंप्रधार्याशुक्षिप्रमेवाभिधीयताम् ॥३४॥ अथवास्वयमेवैनंद्रष्टुमर्हसिभामिनि ॥ वचनैःसांत्वयुक्तैश्चप्रसादयितुमर्हसि॥३५॥ त्वद्दर्शनेविशुद्धात्मानस्मकोपंकरिष्यति ॥ नहिस्त्रीषुमहात्मानःक्वचित्कुर्वंतिदारुणम् ॥ ३६ ॥ त्वयासांत्वैरुपक्रांतंप्रसन्नेंद्रियमानसम् ॥ ततःकमलपत्राक्षंद्रक्ष्याम्यहमरिंदमम् ॥ ३७ ॥ साप्रस्खलंतीमदविह्वलाक्षीप्रलंबकांचीगुणहेमसूत्रा ॥ सलक्षणालक्ष्मणसन्निधानंजगामतारानमितांगयष्टिः ॥ ३८ ॥ सतांसमीक्ष्यैवहरीशपत्नींतस्थावुदासीनतयामहात्मा ॥ अवाङ्मुखोभून्मनुजेंद्रपुत्रःस्त्रीसन्निकर्षाद्विनिवृत्तकोपः ॥ ३९ ॥ सापानयोगाच्चनिवृत्तलज्जादृष्टिप्रसादाच्चनरेंद्रसूनोः ॥ उवाचताराप्रणयप्रगल्भंवाक्यंमहार्थंपरिसांत्वरूपम् ॥ ४० ॥

हैं ॥ ३६ ॥ जब तुम समझा बुझाकर उनको प्रसन्न करलोगी, तिसके पीछे हम कमल दल समान नेत्र वाले शत्रुनाशी लक्ष्मणजीके दर्शन करेंगे ॥ ३७ ॥ तब विह्वलनेत्रा, महामतवाली चाल चलती, मद पान करनेंसे विह्वल नेत्र हुई, और श्रेष्ठ लक्षणवाली तारा सुवर्णकी लम्बी क्षुद्रघंटिका पहरे लक्ष्मणजीके निकट गयी ॥ ३८ ॥ मनुजराजकुमार महात्मा लक्ष्मणजी वानरराजकी स्त्री ताराको देखकर स्त्रीकी निकटताके हेतु क्रोध रहित हो नीचे मुखकर खडे होगये ॥ ३९ ॥ तारा मदिरापान करनेंके कारण मतवाली होरहीथी इस कारण लज्जाहीन होकर; रा

यात्राकी उपयोगी तैयारियोंको करते अबतक सुग्रीव दृष्टि नहीं आते ॥६१॥इस समय पर्वतके शिखरोंपर असन; सतावरी, कोविदार, दुपहरिया, व श्याम आदि तरुगण फूले हुए दृष्टि आतेहैं ॥ ६२ ॥ हे लक्ष्मण ! देखो! इस समय हंस, सारस, चक्रवाक और कुरर आदि पक्षी नदियोंकी रेतियोंमें बैठेहैं ॥ ६३ ॥ हम प्राणप्यारी सीताजीको न देखनेसे और उनकेशोकसे अत्यन्त आरत होगयेहैं; इसलिये हमारे लिये तो यह वर्षाका चौमासा मानों चारसौ वर्षकी समान वीताहै ॥६४॥ प्राणजीवनी भार्यासीताजी भयंकर दंडकारण्यको उद्यानकी समान जान करके चकवीकी नांई वन आनेके समय हमारे पीछेर आईथीं॥६५॥हे लक्ष्मण! प्रिया विहीन राज्यहराये दुःख आरत वनमें निकाले हुये हमपर सुग्रीव क्यों नहीं कृपा करते६६

असनाःसप्तपर्णाश्चकोविदाराश्चपुष्पिताः ॥ दृश्यंतेबंधुजीवाश्चश्यामाश्चगिरिसानुषु ॥ ६२ ॥ हंससारसचक्राह्वैःकुररैश्चसमंततः ॥ पुलिनान्यवकीर्णानिनदीनांपश्यलक्ष्मण ॥ ६३ ॥ चत्वारोवार्षिकामासागतावर्षशतोपमाः ॥ ममशोकाभितप्तस्यतथासीतामपश्यतः ॥ ६४ ॥ चक्रवाकीवभर्तारंपृष्ठतोऽनुगतावनम् ॥ विषमंदंडकारण्यमुद्यानमिवचांगना ॥ ६५ ॥ प्रियाविहीनेदुःखार्तेहृतराज्येविवासिते ॥ कृपांनकुरुतेराजासुग्रीवोमयिलक्ष्मण ॥६६॥ अनाथोहृतराज्योऽयंरावणेनचधर्षितः ॥ दीनोदूरगृहःकामीमांचैवशरणंगतः ॥ ६७ ॥ इत्येतैःकारणैःसौम्यसुग्रीवस्यदुरात्मनः ॥ अहंवानरराजस्यपरिभूतःपरंतपः ॥ ६८ ॥ सकालंपरिसंख्यायसीतायाःपरिमार्गणे ॥ कृतार्थःसमयंकृत्वादुर्मतिर्नावबुध्यते ॥ ६९ ॥

यह अनाथ राज्य खोय, रावणसे पीडित दीन, घरसे निकाले हुये कामी रामनें हमारी शरण ग्रहणकीहै॥ ६७ ॥ यही कारण विचार कर दुरात्मा सुग्रीव तुच्छ व पराजित समझ कर हमारा निरादर करताहै ॥ ६८ ॥सीताजीके ढूंढनेंके समयका स्थिरकर और प्रतिज्ञाकर वह दुर्मति

* जानकी विन जीवन अति भारी ॥ अस्ताई ॥ पल पखवाडे घडी महीने, दिवसवर्ष सम वीतें रात्रिकाल युगसे लागतहै यह गति भई हमारी ॥ अवल जान घर जनते न्यारे लख यह काम सतावै। ताहूपर सुग्रीव विरतहो हमरी सुरत विसारी ॥ जानकी० ॥ विमलाकाश सरोवर निर्मल भये शरदके आये। या अवसर मोहिं मैन सतावे सुमन बाणकर धारी ॥ जानकी० ॥ वरषत नीर नेत्रसों अविरल नेह महा दुख दाई। जनक लडैतीके विन देखे, है बलदेव दुखारी॥ जानकी० ॥

रकी समान उजले सुगन्धित चंदनादि वस्तु, और हारोंसे युक्त अति धन धान्यसे भरेपुरे व स्त्रीरूपी रत्नोंसे शोभायमानथे॥ १३ ॥ इस सब गृहोंके मध्यमें कुछेक अरुण व श्वेतरंग वाले पर्वतसे घिरे जानेके कारण मूढ व्यक्तिके प्रवेश करनेके अयोग्य इन्द्र भवनकी सदृश सुग्रीवजीके गृहको लक्ष्मणजीने देखा ॥ १४ ॥ कैलासके शिखरकी समान श्वेतवर्ण धवरहरे और सर्वकालमें फलउत्पन्न कारी पुष्पित वृक्षोंसे परिशोभित१५॥व इनके अतिरिक्त औरभी इन्द्रके दिये धनादि और श्याम मेघघटाकी समान कल्पवृक्षादिसे शोभितथा इसकारण कि इन तरुवरोंकी छाया बडी शीतलकारिणी होतीथी ॥ १६ ॥ उस घरके द्वारपर बलवान हाथमें अस्त्र शस्त्र लिये हुये वानरगण खडेथे; उसका गुम्बज दिव्यमालासे ढका

पांडुरेणतुशैलेनपरिक्षिप्तंदुरासदम् ॥ वानरेंद्रगृहंरम्यंमहेंद्रसदनोपमम् ॥ शुक्लैःप्रासादशिखरैः कैलासशिखरोपमैः ॥ सर्वकामफलैर्वृक्षैःपुष्पितैरुपशोभितम् ॥ १५ ॥ महेंद्रदत्तैःश्रीमद्भिर्नीलजीमूतसन्निभैः ॥ दिव्यपुष्पफलैर्वृक्षैःशीतच्छायैर्मनोरमैः ॥ १६ ॥ हरिभिःसंवृतद्वारंबलिभिःशस्त्रपाणिभिः ॥ दिव्यमाल्यावृतंशुभ्रंतप्तकांचनतोरणम् ॥ १७ ॥ सुग्रीवस्यगृहंरम्यंप्रविवेशमहाबलः ॥ अवार्यमाणःसौमित्रिर्महाभ्रमिवभास्करः ॥ १८ ॥ ससप्तकक्ष्याधर्मात्मायानासनसमावृताः ॥ ददर्शसुमहद्गुप्तंददर्शांतःपुरंमहत् ॥ १९ ॥ हैमराजतपर्यंकैर्बहुभिश्चवरासनैः ॥ महार्हास्तरणोपेतैस्तत्रतत्रसमावृतम् ॥ २० ॥ प्रविशन्नेवसततंशुश्रावमधुरस्वनम् ॥ तंत्रीगीतसमाकीर्णंसमतालपदाक्षरम् ॥ २१ ॥ बह्वीश्चविविधाकारारूपयौवनगर्विताः ॥ स्त्रियःसुग्रीवभवनेददर्शसमहाबलः ॥ २२ ॥

हुआ और सुवर्ण व तपाये हुये सुवर्णसे बना ॥ १७ ॥ जिस प्रकार सूर्य भगवान् महा मेघमें प्रवेश करतेहैं वैसेही महा बलवान् लक्ष्मणजी सुग्रीवके मनोहर गृहमें प्रवेश करते हुये; और किसी वानरनें उनको नहीं रोका ॥ १८ ॥ धर्मात्मा लक्ष्मणजी सुग्रीवकी सवारियें व आसनसे युक्त सात फाटक नांघकर शयन गृहके अंतःपुरमें पहुँचे ॥ १९ ॥ उस अंतःपुरके अनेक स्थानोंमें महा मूल्यवान विस्तरोंसे विशिष्ट बहुत सारे उत्तम२ आसन और सुवर्ण चांदीसे बनेहुये अनेक पर्यङ्कभी पडेथे ॥ २० ॥ उस अंतःपुरमें प्रवेश करतेही लक्ष्मणजीनें बराबर अक्षरवाला समताल सहित वीणा आदि बाजोंसें उत्पन्न हुआ मधुर स्वर श्रवण किया ॥ २१ ॥महाबलवान् लक्ष्मणजी सुग्रीवके गृहमें रूप यौवन सम्पन्न अनेक आकार

श्वेत वासनोंकी समान हैं इस कारणसे इस समय रात्रि वस्त्र धारण कियेहुये अच्छे लक्षणवाली स्त्रीकी समान विराजमान है ॥ ४६ ॥ इस समय सारसगण पकेहुये धानोंकी बालें खाय, हर्षित होकर पवनसे चलायमान मालाकी समान वेग सहित आकाशमें उडे जारहे हैं ॥ ४७ ॥ इस समय इस महा कुंडके जलमें एक हंस सो रहा है, और उसही सरोवरमें बहुत सारे बबूलेभी शोभा पारहेहैं; इससे ऐसी शोभा हो रही है; मानों रात्रिकें समय नक्षत्रगणोंसे युक्त मेघ सहित आकाशमें पूर्ण चन्द्रमा निकले हुये शोभा पारहे हैं॥४८॥ इस शरद कालमें हंसगण वापियोंके चंद्रहार स्वरूप;खिले हुये कमल फूल मानों उनकी माला हैं सो इन वस्तुओंसे शोभित होनेंकेकारण वह वापियें विभूषितउत्तमस्त्रियोंकी समान उत्तम शोभाधारण

विपक्वशालिप्रसवानिभुक्त्वाप्रहर्षितासारसचारुपंक्तिः ॥ नभःसमाक्रामतिशीघ्रवेगावातावधूताग्रथितेवमाला ॥ ४७॥
सुप्तैकहंसंकुमुदैरुपेतंमहाह्रदस्थंसलिलंविभाति॥घनैर्विमुक्तंनिशिपूर्णचंद्रंतारागणाकीर्णमिवांतरिक्षम् ॥४८॥ प्रकीर्ण
हंसाकुलमेखलानांप्रबुद्धपद्मोत्पलमालिनीनाम् ॥ वाप्युत्तमानामधिकाद्यलक्ष्मीर्वरांगनानामिवभूषितानाम् ॥ ४९ ॥
वेणुस्वरव्यंजिततूर्यमिश्रःप्रत्यूषकालेनिलसंप्रवृत्तः ॥ संमूर्च्छितोगह्वरगोवृषाणामन्योन्यमापूरयतीवशब्दः ॥ ५० ॥
नवैर्नदीनांकुसुमप्रहासैर्व्याधूयमानैर्मृदुमारुतेन ॥ धौतामलक्षौमपटप्रकाशैःकूलानिकाशैरुपशोभितानि ॥ ५१ ॥
वनप्रचंडामधुपानशौंडाःप्रियान्विताःषट्चरणाःप्रहृष्टाः ॥ वनेषुमत्ताःपवनानुयात्रांकुर्वंतिपद्मासनरेणुगौराः ॥ ५२ ॥
जलंप्रसन्नंकुसुमप्रहासंक्रौंचस्वनंशालिवनंविपक्वम् ॥ मृदुश्चवायुर्विमलश्चचंद्रःशंसंतिवर्षव्यपनीतकालम् ॥ ५३ ॥

किये हुयेहैं ॥४९॥ प्रभातकालमें बाँसोंका शब्द रूप नगाडेद्वारा मिला, पवनका किया हुआ शब्द गुफाओंकी ध्वनि और बनैले बैलोंके शब्दसे मिलकर मानों परस्पर एक दूसरेके शब्दको बढा रहाहै॥५०॥जिनमें धोये हुए विमल महीन कपडेकी तुल्य खिले हुए फूल हैं,ऐसी हँसती हुई व मन्द कम्पायमान नई काशके समूहोंसे नदियोंके किनारे शोभायमान हो रहेहैं॥५१॥ वनके मध्य मधुपान करनेंमें चतुर मतवाले हर्षित भ्रमर गण, कमल फूल और आसन पुष्पके परागसे रँग, गौरवर्णहो सुगन्धिके लोभसे पवनमें उडे जारहेहैं ॥५२॥ निर्मल जल, खिले हुए फूलोंके समूह, क्रौंचका शोर,

आपका मंगल कार्य नहीं देखते ॥ १७ ॥ राजकार्यमें नियुक्त मंत्री लोगोंको उचितहै कि राजासे अवश्यही हितकर वचन कहैं; इस कारणसेही भय छोडकर हमनें यह निश्चित वचन आपसे कहे ॥ १८ ॥ श्रीरामचन्द्रजी क्रोधित हो धनुष चढाकर देव, असुर और गन्धर्वोंके सहित समस्त जगत् अपनें वशमें रख सकतेहैं ॥ १९ ॥ विशेष करके पहला उपकार स्मरण किये हुये कृतज्ञ पुरुष जिनको फिरभी प्रसन्न करना होगा; सो ऐसे पुरुषोंपर क्रोध करना उचित नहींहै ॥ २० ॥ हे राजन्! आप पुत्र और इष्ट मित्रोंके सहित मस्तक झुका प्रणामकरके अपनी प्रतिज्ञामें टिकिये कि जैसे स्त्रीका कल्याण पतिके अधीनमें रहनेंहीसे होताहै॥ २१ ॥ हे कपीन्द्र! श्रीराम और उनके भाई श्रीलक्ष्मणजीकी आज्ञाको

नियुक्तैर्मंत्रिभिर्वाच्योह्यवश्यंपार्थिवोहितम् ॥ इतएवभयंत्यक्त्वाब्रवीम्यवधृतंवचः ॥ १८ ॥ अभिक्रुद्धःसमर्थोहिचापमुद्यम्यराघवः ॥ सदेवासुरगंधर्ववशेस्थापयितुंजगत् ॥ १९ ॥ नसक्षमःकोपयितुंयःप्रसाद्यःपुनर्भवेत् ॥ पूर्वोपकारंस्मरताकृतज्ञेनविशेषतः ॥ २० ॥ तस्यमूर्ध्नाप्रणम्यत्वंसपुत्रःससुहृज्जनः ॥ राजंस्तिष्ठस्वसमयेभर्तुर्भार्येवतद्वशे ॥ २१ ॥ नरामरामानुजशासनंत्वयाकपींद्रयुक्तंमनसाप्यपोहितुम् ॥ मनोहितेज्ञास्यतिमानुषंबलंसराघवस्यास्यसुरेंद्रवर्चसः ॥ २२ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०किष्किंधाकांडेद्वात्रिंशःसर्गः ॥ ३२ ॥ ॥ अथप्रतिसमादिष्टोलक्ष्मणःपरवीरहा ॥ प्रविवेशगुहांरम्यांकिष्किंधांरामशासनात् ॥ १ ॥ द्वारस्थाहरयस्तत्रमहाकायामहाबलाः ॥ बभूवुर्लक्ष्मणंदृष्ट्वासर्वेप्रांजलयःस्थिताः ॥ २ ॥

मनके द्वाराभी उल्लंघन करना आपका कर्त्तव्य नहींहै; और आपका मन वालि वधके हेतु इन्द्र तुल्य पराक्रम शाली श्रीरामचन्द्रजीके अमानुषिक बलको तो जानताहीहै ॥ २२ ॥ इ० वा० आ० कि० द्वात्रिंशःसर्गः ॥ ३२ ॥ हनुमानजीनें तो इस प्रकारसे सुग्रीवको समझाया बुझाया, तब पर वीर विनाशी लक्ष्मणजी अंगदजीके द्वारा सुग्रीवकी आज्ञाको प्राप्तकर श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञा पालन करनेंके हेतु मनोहर गुहामें वसी किष्किन्धा पुरीमें प्रवेश करते हुए ॥ १ ॥ द्वार पर खडे हुए महा बलवान् समस्त वानर लक्ष्मणजीको देख हाथ जोडकर खडे होगये ॥ २ ॥

खडे हुए चक्रवाकोंके झुन्डसहित विहार करहेहैं ॥ ३१ ॥ मतवालेहाथियोंके झुन्डमें, घमंडी वृषभोंमें, और नदियोंके निर्मल जलमें शरद लक्ष्मी खंड २ होकर शोभायमान होरहीहै ॥ ३२ ॥ आकाश मंडलको वादलोंसे छूटाहुआ देख, वनोंमें भूषण रूप पंख पसार, प्रियामें अनुराग शून्य शोभाशून्य और उत्सव शून्य होकर समस्त मोर गण ध्यान कर रहेहैं ॥३३॥ मन हरण करनेंवाली सुगन्ध, वहुत सारे सुवर्णकी समान रंगके उजले आसन वृक्षोंकी डालियें फूलोंके भारसे झुककर वनस्थलीको महाशोभायमान कर रहीं हैं ॥ ३४ ॥ तडाग प्रिय, अपनी २प्यारी हथनियों के साथ रहनेंवाले, वनवासी फूलोंके सूँघनें वाले, मदके भारसे आलसीहुये, मदसे उत्कट गजेन्द्र समूहोंकी गति अति धीमी पड गई है ॥ ३५ ॥

मदप्रगल्भेषुचवारणेषुगवांसमूहेषुचदर्पितेषु ॥प्रसन्नतोयासुचनिम्नगासुविभातिलक्ष्मीर्बहुधाविभक्ता॥३२॥नभःसमी
क्ष्यांबुधरैर्विमुक्तंविमुक्तबर्हाभरणावनेषु ॥ प्रियासुरक्ताविनिवृत्तशोभागतोत्सवाध्यानपरामयूराः ॥३३॥ मनोज्ञगंधैः
प्रियकैरनल्पैःपुष्पाग्रभारावनताग्रशाखैः॥सुवर्णगौरैर्नयनाभिरामैरुद्द्योतितानीववनांतराणि॥३४॥प्रियान्वितानांन
लिनीप्रियाणांवनप्रियाणांकुसुमोद्गतानाम् ॥ मदोत्कटानांमदलालसानांगजोत्तमानांगतयोऽद्यमंदाः ॥ ३५ ॥ व्य
क्तंनभःशस्त्रविधौतवर्णंकृशप्रवाहानिनदीजलानि ॥ कल्हारशीताःपवनाःप्रवांतितमोविमुक्ताश्चदिशःप्रकाशाः ॥ ३६ ॥
सूर्यातपक्रामणनष्टपंकाभूमिश्चिरोद्घाटितसांद्ररेणुः॥अन्योन्यवैरेणसमायुतानामुद्योगकालोऽद्यनराधिपानाम् ३७
शरद्गुणाप्यायितरूपशोभाःप्रहर्षिताःपांसुसमुत्थितांगाः ॥ मदोत्कटाःसंप्रतियुद्धलुब्धावृषागवांमध्यगतानदंति ॥३८

आकाश मण्डलका वर्ण विमल असिके तुल्य हो गया है, नदियोंके जलका प्रवाह अत्यन्त घट गया है; पवन कमल फूलकी गन्धसे युक्त और शीतल होकर चलती है; सब दिशायें अंधकारसे छूटकर प्रकाशित होरहीं हैं ॥ ३६ ॥ सूर्य नारायणकी धूपका ताप लगनेंसे पृथ्वीपर की कीचडका नाश हो गया, धूल उडनें लगी यह शरदऋतु परस्पर वैर किये हुये नृपति लोगोंकी चढाई करनेंका समय है ॥ ३७ ॥ इस समय शरदके गुणसे बैलोंका रूप और शोभा बढ जाती है, बडे प्रसन्न,धूरियुक्त अंगवाले, मदमत्त वृषभ इस समय युद्धकी इच्छा करे हुये गा

हे राजन्! धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजीनें जिस प्रकारसे आपका कार्य साधन किया है, आप सत्यनिष्ठ हो सावधानचित्तसे उनकी प्रतिज्ञाका पालन कीजिये॥५१॥इ० श्री० वा० आ० किष्किन्धाकांडे एकत्रिंशः सर्गः॥ ३१॥अंगदजीके वचन सुन उन मंत्रिगणोंके सहित सुग्रीवजी सचिव गणोंके सहित कोपायमान लक्ष्मणजीको प्रसन्न करनेके लिये आसनसे खडे होगये ॥ १ ॥ मंत्रके विषयमें निष्ठावान मंत्र कुशल सुग्रीवजी गुरु लघु विचार कर मंत्र जाननेंवाले मंत्रियोंसे कुछ न बोले ॥ २ ॥ हमनें कोई दुष्ट वचन नहीं कहा; और कोई दुष्ट कार्य नहीं किया; फिर श्रीरामचन्द्रजीके भ्राता लक्ष्मणजी किस निमित्त कुपित हुये हैं! इस बातकी हमें बडी चिंताहै ॥ ३ ॥ हम जानते हैं कि हमारे असुहृद् दोषोंकें ढूंढनेवाले शत्रु लोगोंनें हमारे

यथाहिरामोधर्मात्मातत्कुरुष्वसमाहितः ॥ राजंस्तिष्ठस्वसमयेभवसत्यप्रतिश्रवः ॥ ५१ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणे वा०आ०किष्किंधाकांडेएकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥ ७ ॥ अंगदस्यवचःश्रुत्वासुग्रीवःसचिवैःसह ॥ लक्ष्मणंकुपितंश्रुत्वा मुमोचासनमात्मवान् ॥ १ ॥ सचतानब्रवीद्वाक्यंनिश्चित्यगुरुलाघवम् ॥ मंत्रज्ञान्मंत्रकुशलोमंत्रेषुपरिनिष्ठितः ॥ २ ॥ नमेदुर्व्याहृतंकिंचिन्नापिमेदुरनुष्ठितम् ॥ लक्ष्मणोराघवभ्राताक्रुद्धःकिमितिचिंतये ॥ ३ ॥ असुहृद्भिर्ममामित्रैर्नित्यमंतरदर्शिभिः ॥ ममदोषानसंभूतान्श्रावितोराघवानुजः ॥ ४ ॥ अत्रतावद्यथाबुद्धिःसर्वैरेवयथाविधि ॥ भावस्यनिश्चयस्तावद्विज्ञेयोनिपुणंशनैः ॥ ५ ॥ नखल्वस्तिममत्रासोलक्ष्मणान्नापिराघवात् ॥ मित्रंत्वस्थानकुपितंजनयत्येवसंभ्रमम् ॥ ६ ॥ सर्वथासुकरंमित्रंदुष्करंप्रतिपालनम् ॥ अनित्यत्वात्तचित्तानांप्रीतिरल्पेपिभिद्यते ॥ ७ ॥ अतोनिमित्तंत्रस्तोहंरामेणतुमहात्मना ॥ यन्ममोपकृतंशक्यंप्रतिकर्तुनतन्मया ॥ ८ ॥

दोष निःसन्देह रामानुज लक्ष्मणजीसे कहे हैं॥ ४ ॥ इस विषयमें यथाविधि और यथाबुद्धि तुम सब लोग विचार करो कि यही बात है; अथवा कुछ और ॥ ५ ॥ हमको श्रीरामचन्द्र व लक्ष्मणजीसे कुछ भय नहीं है; परन्तु विना अपराधसे कोपित हुये मित्रसेही भय हुआ करता है॥ ६॥ मित्रताई करना सदाही सरल है. परन्तु मित्रताका निवाहनाही वडा कठिन कार्य है; क्योंकि चित्तकी अतिस्थिरतासे हुये अल्प कारणसे प्रीतिमें भेद पड जाता है ॥ ७ ॥ इस निमित्त ही हम महात्मा श्रीरामचन्द्रजीसे त्रासितहुये हैं; क्योंकि जो प्रत्युपकार करनेको हम समर्थहैं; वह अबतक हमनें

श्रीरामचंद्रजीको देखकर उनका विषाद दूर करनेंके लिये अतिदीनतासे बोले ॥ १५ ॥ हे आर्य ! आप आत्म पौरुषको पराजितकर; और कामके वशहो क्या कर्म करतेहैं? आप शोक करके चित्तकी एकाग्रता दूरकररहेहैं, ऐसे समयमें आप समाधि योगकर समस्त दुःखोंका नाशकीजिये ॥ १६ ॥ हे प्रभो! आप धीरज धारण करके शौच स्नानादिक्रिया योगकर मनको निर्मल कर लीजिये; और यथाकालमें समाधि योगके अनुगतहो सब कार्योंका समाधान कीजिये ॥ १७ ॥हे नरनाथ ! जानकीजी आपसेही सनाथ होसकतीहैं; वह दूसरेसे कभी सनाथ नहीं हो सकती; क्योंकि प्रज्वलित अग्निकी ज्वालाको प्राप्त होकर कौन नहीं दग्ध होता अर्थात् अग्निवत् जानकीजीकी ज्वालासे रावण का

किमार्यकामस्यवशंगतेनकिमात्मपौरुष्यपराभवेन ॥ अयंह्रियासंह्रियतेसमाधिःकिमत्रयोगेननिवर्ततेन ॥ १६ ॥
क्रियाभियोगंमनसःप्रसादंसमाधियोगानुगतंचकालम्॥ साहायसामर्थ्यमदीनसत्त्वःस्वकर्महेतुंचकुरुष्वतात॥१७॥
नजानकीमानववंशनाथत्वयासनाथासुलभापरेण ॥ नचाग्निचूडांज्वलितामुपेत्यनदह्यतेवीरवरार्हकश्चित् ॥ १८ ॥
सलक्षणंलक्ष्मणमप्रधृष्यंस्वभावजंवाक्यमुवाचरामः ॥ हितंचपथ्यंचनयप्रसक्तंससामधर्मार्थसमाहितंच ॥ १९ ॥
निःसंशयंकार्यमवेक्षितव्यंक्रियाविशेषोप्यनुवर्तितव्यः ॥ नतुप्रवृद्धस्यदुरासदस्यकुमारवीर्यस्यफलंचचिंत्यम्॥२०॥
अथपद्मपलाशाक्षींमैथिलीमनुचिंतयन् ॥ उवाचलक्ष्मणंरामोमुखेनपरिशुष्यता ॥ २१ ॥ तर्पयित्वासहस्राक्षःसलिलेनवसुंधराम् ॥ निर्वर्तयित्वासस्यानिकृतकर्माव्यवस्थितः ॥ २२ ॥

नाश होजायगा ॥ १८ ॥ श्रीरामचन्द्रजी लक्षण युक्त दुर्द्धर्ष लक्ष्मणजीसे तत्त्वार्थ, नीतिसम्मत, पथ्य और हितकारी व धर्मयुक्त वचन बोले ॥ ॥ १९ ॥ हे लक्ष्मण कुमार ! तुमने जो कहाहै उस कर्म योग व ज्ञान योगका निश्चयही साधन करना उचितहै अति दुःखसे वृद्धिको प्राप्त हुए सहन करनेंके अयोग्य इस अपने वीर्य बलके फलकीभी अवश्य चिंता करनी चाहिये ॥२०॥ फिर कमलदल नेत्रवाली जानकीजीका स्मरण कर के रामचन्द्रजीका मुख विवर्ण होगया, और वह लक्ष्मणजीसे बोले ॥२१॥ इन्द्रजी, वर्षाकी धारासे पृथ्वीको तृप्तकर अन्न उपजानेंके कार्यको पूराकर

श्रीरामचंद्रजीके छोटे भाई लक्ष्मण अपने भ्राताके संतापसे संतापितहो तुम्हारे पास आय द्वार पर खडे हैं ॥ ३३ ॥ हेपरवीर घाती ! यदि तुम्हारी रुचि होय तो उनके वचनका प्रतिपालनकरो । हे वत्स ! इतनी बात कहकर तुम वहांसे लौट आना ॥ ३४॥ अंगद लक्ष्मणजीके यह वचन सुन शोकोपहतचित्तहो अपने चचा सुग्रीवसे जाकर बोले कि हे तात ! रामचंद्रजीके छोटे भाई लक्ष्मणजी यहां आये हैं ॥ ३५ ॥ कार्य करने में चतुर अंगदजी लक्ष्मणजीके तीव्र वचनोंसे दीन वदन और भ्रान्तचित्त हो सुग्रीवके निकट जाकर पहले उनके चरणोंकी वंदना करते हुये ॥ ३६ ॥ उग्र तेजवान अंगदजीने सुग्रीवजीके दोनों चरण ग्रहण करके फिर

तस्यवाक्यंयदिरुचिःक्रियतांसाधुवानरः ॥ इत्युक्त्वाशीघ्रमागच्छवत्सवाक्यमरिंदम ॥ ३४ ॥ लक्ष्मणस्यवचः श्रुत्वाशोकाविष्टोगदोब्रवीत् ॥ पितुःसमीपमागम्यसौमित्रिरयमागतः ॥ ३५ ॥ अथांगदस्तस्यसुतीव्रवाचा सम्भ्रांतभावःपरदीनवक्त्रः ॥ निर्गत्यपूर्वंनृपतेस्तरस्वीततोरुमायाश्चरणौववंदे ॥ ३६ ॥ संगृह्यपादौपितुरुग्रतेजाजग्राहमातुःपुनरेवपादौ॥पादौरुमायाश्चनिपीडयित्वानिवेदयामासततस्तदर्थम्॥३७॥ सनिद्राक्लांतसंवीतोवानरोनविबुद्धवान् ॥ बभूवमदमत्तश्चमदनेनचमोहितः ॥ ३८ ॥ ततःकिलकिलांचक्रुर्लक्ष्मणंप्रेक्ष्यवानराः ॥ प्रसादयंतस्तंक्रुद्धंभयमोहितचेतसः ॥ ३९ ॥ तेमहौघनिभंदृष्ट्वावज्राशनिसमस्वनम् ॥ सिंहनादंसमंचक्रुर्लक्ष्मणस्यसमीपतः ॥ ४० ॥ तेनशब्देनमहताप्रत्यबुध्यतवानरः ॥ मदविह्वलताम्राक्षोव्याकुलःस्रग्विभूषणः ॥ ४१ ॥

रुमाके चरणोंमें प्रणामकर लक्ष्मणजीके आनेकी वार्त्ता कही ॥ ३७ ॥ वह मदनमोहित मदमत्त वानर सुग्रीव निद्रासे क्लान्तचित्त होनेंके कारण अंगदजीके वचन और प्रणामको न जान सका ॥ ३८ ॥ फिर भय मोहित वानर गण लक्ष्मणजीको क्रोधित देखकर उनको प्रसन्न करते २ किलकिला शब्द कर उठे ॥ ३९ ॥ उन वानरलोगोंने लक्ष्मणजीको देखकर सुग्रीवके निकट जाय उनको जगानेके लिये वज्रतुल्य और महा समुद्रके महा तरंगकी समान भयंकर शब्द करना प्रारंभ किया ॥ ४० ॥ उस बडे भारी शब्दसे वानरराज सुग्रीवकी नींद टूटी, उस समय मारे मदके उनके नेत्र अरुण होरहे और माला आदि गहने खस रहेथे वह बहुत व्याकुल चित्तहो जाग पडे ॥ ४१ ॥

को देखते भालते रहो ॥ ३२ ॥ जो जो वानर लोग एक पखवाडेके बीचमें इस स्थानमें नहीं आवेगा; उसे बिना विचारे प्राणदंड देदो ॥ ३३ ॥
हमारी आज्ञाके वशमें टिके वृद्ध वानर गणोंके निकट तुमही अंगदके साथ चले जाओ. वानरश्रेष्ठ वीर्यवान् सुग्रीवजी इस प्रकारकी व्यवस्था क
रके राजमंदिरमें प्रवेश करते हुये ॥ ३४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे श्रीवाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे एकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥
इधरतो सुग्रीव राजमंदिरमें गये उधर गगन मंडल मेघ रहित हुआ और, वर्षांतकी रातोंके वीत जानेंपर श्रीरामचंद्रजी काम शोकसे पीडित
हुये ॥ १ ॥ वह आकाश मंडल निर्मल, विमल चंद्र मंडलकी चांदनीसे युक्त शरद ऋतुकी रात्रि देख ॥ २ ॥ जनककुमारी सीताको हरा हुआ,

त्रिपंचरात्रादूर्ध्वंयःप्राप्नुयादिहवानरः ॥तस्यप्राणांतिकोदंडोनात्रकार्याविचारणा ॥ ३३ ॥ हरींश्चवृद्धानुपयातुसांग
दोभवान्ममाज्ञामधिकृत्यनिश्चितम् ॥ इतिव्यवस्थांहरिपुंगवेश्वरोविधायवेश्मप्रविवेशवीर्यवान् ॥ ३४ ॥ इत्यार्षे
श्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेएकोनत्रिंशःसर्गः ॥ २९ ॥ ॥ छ ॥ गृहंप्रविष्टेसुग्रीवेविमुक्ते
गगनेघनैः ॥ वर्षरात्रेस्थितोरामःकामशोकाभिपीडितः ॥ १ ॥ पांडुरंगगनंदृष्ट्वाविमलंचंद्रमंडलम् ॥ शारदींरजनीं
चैवदृष्ट्वाज्योत्स्नानुलेपनाम् ॥२॥कामवृत्तंचसुग्रीवंनष्टांचजनकात्मजाम् ॥ दृष्ट्वाकालमतीतंचमुमोहपरमातुरः ॥ ३॥
सतुसंज्ञामुपागम्यमुहूर्तान्मतिमान्नृपः ॥ मनःस्थामपिवैदेहींचिंतयामासराघवः ॥ ४॥ दृष्ट्वाचविमलंव्योमगतविद्यु
द्बलाहकम् ॥ सारसारवसंघुष्टंविललापार्तयागिरा ॥ ५॥ आसीनःपर्वतस्याग्रेहेमधातुविभूषिते ॥ शारदंगगनं
दृष्ट्वाजगाममनसाप्रियाम् ॥ ६ ॥

सुग्रीवको कामासक्त और कालको वीतजाता हुआ देख अत्यन्त कातर और मोहित हुये ॥ ३ ॥ अनन्तर मतिमान नृपति श्रीरामचंद्रजी एक
मुहूर्त भरमें चित्तकी सावधानताको प्राप्तकर, जानकीजीकी चिंता करनें लगे, क्योंकि वही बराबर इनके मनमें वसी रहतीथीं ॥ ४ ॥ आकाश
मंडल मेघ और विजलीसे रहित होनेके कारण विमल हुआ, और सरोवरोंमें सारसकी पुकार सुन श्रीरामचंद्र अति आरत वाणीसे विलाप करनें
लगे ॥ ५ ॥ वह हेम धातु विभूषित पर्वतके अग्रभागमें बैठ शरदऋतुका आकाश देख मनहीं मनमें प्रियाका ध्यान करने लगे ॥ ६ ॥

मतवाला हाथी तोडता फोडता चला आताहै ॥ १५ ॥ इक्ष्वाकुश्रेष्ठ लक्ष्मणजीनें बडे २ पर्वतोंके बीचमें बसी हुई सेना समूहसे परिपूर्ण दुर्गम कपिराज पुरी किष्किन्धा नगरीको देखा ॥ १६ ॥ सुग्रीवके ऊपर क्रोध करनेंसे लक्ष्मणजीके अधर फडकनें लगे; उन्होंनें किष्किन्धा नगरीके बाहर घूमते हुये बहुतसे बडे २ बन्दरोंको देखा ॥ १७ ॥ कुंजरकी समान वानरगणोंनें पुरुषश्रेष्ठ लक्ष्मणजीको क्रोधित देख भयभीतहो पर्वतों पर जाय बडे २ पर्वतोंके शिखर और वृक्ष ग्रहण कर लिये और खडे होगये ॥ १८ ॥ लक्ष्मणजी उन वानर गणोंको आयुध ग्रहण किये हुये देखकर बहुत लकडी डालनेंसे प्रज्वलित हुई अग्निके समान दूने क्रोधित होगये ॥ १९ ॥ शत २ वानर गण प्रलयकालकी मृत्युके समान लक्ष्मणजीको अत्यन्त क्रोधित देखकर चारों ओर भाग खडे हुये ॥ २० ॥ उनमेंसे प्रधान २ वानरोंनें सुग्रीवके भवनमें प्रवेश करके लक्ष्मणजीके क्रोधमें भरकर आनेंका समस्त वृत्तान्त निवेदन किया ॥ २१ ॥ कामसे आसक्त हुआ सुग्रीव उस समय ताराके सहित मिलकर सुखभोग रहाथा; उसने उन कपिश्रेष्ठोंके वह वचन नहीं सुने ॥ २२ ॥ जब सुग्रीव कुछ न बोले तब मंत्रियोंकी आज्ञासे पर्वत व हाथियोंकी अनुहार मेघ समान वानरगण रोम फुलाकर लक्ष्मणजीके रोकनेंके लिये किष्किन्धापुरीसे निकले ॥ २३ ॥ वह सबही वानर विकटा

तामपश्यद्बलाकीर्णांहरिराजमहापुरीम् ॥ दुर्गामिक्ष्वाकुशार्दूलःकिष्किंधांगिरिसंकटे ॥ १६ ॥ रोषात्प्रस्फुरमाणोष्ठः सुग्रीवंप्रतिलक्ष्मणः ॥ ददर्शवानरान्भीमान्किष्किंधायांबहिश्चरान् ॥ १७ ॥ तंदृष्ट्वावानराःसर्वेलक्ष्मणंपुरुषर्षभम् ॥ शैलशृंगाणिशतशःप्रवृद्धांश्चमहीरुहान् ॥ जगृहुःकुंजरप्रख्यावानराःपर्वतांतरे ॥ १८ ॥ तान्गृहीतप्रहरणान्सर्वान्दृष्ट्वातुलक्ष्मणः ॥ बभूवद्विगुणंक्रुद्धोबह्विंधनइवानलः ॥ १९ ॥ तंतेभयपरीतांगाःक्षुब्धंदृष्ट्वाप्लवंगमाः ॥ कालमृत्युयुगांताभंशतशोविद्रुतादिशः ॥ २० ॥ ततःसुग्रीवभवनंप्रविश्यहरिपुंगवाः ॥ क्रोधमागमनंचैवलक्ष्मणश्चन्यवेदयन् ॥ २१ ॥ तारयासहितःकामीसक्तःकपिवृषस्तदा ॥ नतेषांकपिसिंहानांशुश्रावचचनंतदा ॥ २२ ॥ ततःसचिवसंदिष्टाहरयोरोमहर्षणाः ॥ गिरिकुंजरमेघाभानगरान्निर्ययुस्तदा ॥ २३ ॥ नखदंष्ट्रायुधाःसर्वेवीराविकृतदर्शनाः ॥ सर्वेशार्दूलदंष्ट्राश्चसर्वेविवृतदर्शनाः ॥ २४ ॥

सो अब जानकी जीके ढूंडने भालने रूप श्रीरामचंद्रजीका कार्य पूरा कीजिये ॥ १५ ॥ समयके जाननेवाले रामचंद्र तुमसे नहीं कहेंगे कि अब समय वीतताहै यद्यपि वह महात्मा श्रीरामचंद्रजी शीघ्रही अपने कार्यको साधन करनेंकी इच्छा करते हैं परन्तु आपके वश हो वह विलंब कर रहे हैं॥ १६॥आपके इस बडे कुल राज्यकी प्राप्तिके हेतु और दीर्घ कालके बन्धु उन श्रीरामचंद्रजीका अतुल प्रभावहै और वह गुण गणोंसे अनुपम हैं ॥१७॥हे कपिनाथ! उन्होंने पहले ही आपका कार्य पूरा कर दियाहै सो इस समय आप उनका कार्य करनेके लिये वानर गणोंको आज्ञा दीजिये ॥१८॥ प्रेरणाके विना स्वयंही विचार कर कार्य करनेसे, समयका उल्लंघन नहीं होता, जो कार्य कि आज्ञा किये जानें, अर्थात् प्रेरणा होनेंपर कियाजाता

नचकालमतीतंतेनिवेदयतिकालवित् ॥ त्वरमाणोपिसप्राज्ञस्तवराजन्वशानुगः ॥ १६ ॥ कुलस्यहेतुःस्फीतस्यदीर्घबंधुश्चराघवः ॥ अप्रमेयप्रभावस्यस्वयंचाप्रतिमोगुणैः ॥ १७ ॥ तस्यत्वंकुरुवैकार्यंपूर्वंतेनकृतंतव ॥ हरीश्वरकपिश्रेष्ठानाज्ञापयितुमर्हसि ॥ १८ ॥ नहितावद्भवेत्कालोव्यतीतश्चोदनादृते ॥ चोदितस्यहिकार्यस्यभवेत्कालव्यतिक्रमः ॥ १९ ॥ अकर्तुरपिकार्यस्यभवान्कर्ताहरीश्वर ॥ किंपुनःप्रतिकर्तुस्तेराज्येनचवधेनच ॥ २० ॥ शक्तिमानतिविक्रांतोवानरर्क्षगणेश्वर ॥ कर्तुंदाशरथेःप्रीतिमाज्ञायांकिंनुसज्जसे ॥ २१ ॥ कामंखलुशरैःशक्तःसुरासुरमहोरगान् ॥ वशेदाशरथिःकर्तुंत्वत्प्रतिज्ञामवेक्षते ॥ २२ ॥ प्राणत्यागाविशंकेनकृतंतेनमहत्प्रियम् ॥ तस्यमार्गामवैदेहींपृथिव्यामपिचांबरे ॥ २३ ॥

है, वह कार्य होजानें परभी उस कार्यका काल व्यतीत हो जाता है इस्से हुआ न हुआ बराबर है ॥ १९ ॥ हे वानरनाथ! यदि आपका कोई पुरुष उपकार न करै तोभी आप उसका उपकार किया करते हैं; फिर श्रीरामचन्द्रजीनें तो वालिको मार करके आपको राज्य प्रदान किया है; सो आप जो उनका उपकार करेंगे उसमें कहनाही क्या! ॥ २० ॥ आप वानर और रीछोंके राजा हैं; और श्रीरामचन्द्रजी शक्तिमान और अतिशय विक्रम शाली हैं आप श्रीरामचन्द्रजीकी प्रसन्नताके हेतु उनका कार्य करनेंके लिये क्यों तैयार नहीं होते? ॥ २१ ॥ दशरथकुमार श्रीरामचन्द्रजी सुर असुर और भुजंगोंकोभी अपनें वशमें करनेंको समर्थ हैं; वह तो केवल आपकी प्रतिज्ञाको परखते हैं ॥ २२ ॥ उन्होंनें प्राण त्याग न करनेंकी आ

श्रीरामचन्द्रजीके छोटे भाई लक्ष्मणजी, अगाध वीर्य कामसे उत्पन्न हुये शोकसे युक्त नरेन्द्रपुत्र राजकुमार श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ १ ॥ वह वानर साधु लोगोंके चरित्र पर नहीं टिकेगा, वह मित्रताका मूल राज्यलाभरूप फलभी मनमें न समझेगा, और वानर राज्य, लक्ष्मीकोभी भोग नहीं करैगा और उसकी बुद्धि प्रतिज्ञाके प्रतिपालन करनेंमेंभी आगे नहीं बढेगी ॥ २ ॥ वह अपनी नीतिक्षय होजानेंके कारणसे स्त्री आदिकोंके सुखमें आसक्त होगयाहै आपको प्रसन्नताके हेतु उसकी यह बुद्धि नहीं होगी कि उनका प्रत्युपकार करे वह इस समय मरकर वालिको देखे ! इस दुष्टबुद्धि सुग्रीवको राज्य देना कुछ उचित नहीं हुआ ॥ ३ ॥ हमारे क्रोधका वेग उकसा आताहै, कि जिसके धारण करनेंमें हम समर्थ नहीं हैं आज हम उस मिथ्या

सकामिनंदीनमदीनसत्त्वंशोकाभिपन्नंसमुदीर्णकामम् ॥ नरेंद्रसूनुर्नरदेवपुत्रंरामानुजःपूर्वजमित्युवाच ॥ १ ॥ नवानरः स्थास्यतिसाधुवृत्तेनमन्यतेकर्मफलानुषंगान् ॥ नभोक्ष्यतेवानरराज्यलक्ष्मींतथाहिनातिक्रमतेऽस्यबुद्धिः ॥ २ ॥ मतिक्षयाद्ग्राम्यसुखेषुसक्तस्तवप्रसादात्प्रतिकारबुद्धिः ॥ हतोऽग्रजंपश्यतुवीरवालिनंनराज्यमेवंविगुणस्यदेहम् ॥ ३ ॥ नधारयेकोपमुदीर्णवेगंनिहन्मिसुग्रीवमसत्यमद्य ॥ हरिप्रवीरैःसहवालिपुत्रोनरेंद्रपुत्र्याविचयंकरोतु ॥ ४ ॥ तमात्तबाणासनमुत्पतंतंनिवेदितार्थंरणचंडकोपम् ॥ उवाचरामःपरवीरहंतास्ववीक्षितंसानुनयंचवाक्यम् ॥ ५ ॥ नहिवैत्वद्विधोलोकेपापमेवंसमाचरेत् ॥ कोपमार्येणयोहंतिसवीरःपुरुषोत्तमः ॥ ६ ॥ नेदमत्रत्वयाग्राह्यंसाधुवृत्तेनलक्ष्मण ॥ तांप्रीतिमनुवर्तस्वपूर्ववृत्तंचसंगतम् ॥ ७ ॥

वादी सुग्रीवको मार करके अंगदको राज्य दे देंगे, वह वालि पुत्र मुख्य २वानरगणोंके सहित सीताजीको खोजेंगे ॥ ४ ॥ इतना कह और धनुष धारण करके लक्ष्मणजी खडे होगये, तब परवीरघाती श्रीरामचंद्रजी रणस्थलमें प्रचंड कोपशाली लक्ष्मणजीकी ओर देखकर उनको नम्र करते हुये बोले ॥ ५ ॥ हे लक्ष्मणजी ! तुम सरीखे पुरुष मित्रवध रूप पापका आचरण नहीं करते; जो पुरुष उचित ज्ञानसे कोपका संहार कर डालताहै; वही वीर और पुरुषोंके मध्यमें श्रेष्ठहै ॥ ६ ॥ हे लक्ष्मण! वह मित्रघातरूप अकार्य तुमको करना उचित नहीं है, तुम सुग्रीवके प्रति साधु

हे महाराज ! आपनें जो कुछ कहा;उस सबकोही सुग्रीवजी करेंगे, इस समय आप शरदकालको परखतें हुये इस वर्षा कालको विता दीजिये॥६६॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे अष्टाविंशःसर्गः॥२८॥विगत विद्युत और विगतवारिद,सारस समूहसे निनादित मनोहर चांदनीसे अनुलिप्त विमल आकाशको अवलोकन करकै सुग्रीवके निकट हनुमानजी गये ॥ १ ॥ सुग्रीव अत्यन्त समृद्धिशाली होकर धर्म और अर्थको इकट्ठा करनेंके विषय में शिथिल और असत पुरुषोंके मार्ग अर्थात् काम वृत्ति में अत्यन्त आसक्तचित्त ॥ २ ॥ और सब कार्यों में निवृत्त वालिके मारनेंमें कृतकार्य हुये, समस्त इष्ट और मनोरथ लाभ किये हुये राज्यको प्राप्त कर ॥ ३ ॥ अपनी स्त्री रुमा और

यदुक्तमेतत्तवसर्वमीप्सितंनरेंद्रकर्तानचिराद्धरीश्वरः॥शरत्प्रतीक्षःक्षमतामिदंभवान्जलप्रपातंरिपुनिग्रहेधृतः॥ ६६ ॥
इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०किष्किंधाकांडेअष्टाविंशःसर्गः ॥ २८ ॥ ॥ ७ ॥ समीक्ष्यविमलंव्योमगतविद्युद्बलाहकम् ॥
सारसाकुलसंघुष्टंरम्यज्योत्स्नानुलेपनम् ॥ १ ॥ समृद्धार्थंचसुग्रीवंमंदधर्मार्थसंग्रहम् ॥ अत्यर्थंचासतांमार्गमेकां
तगतमानसम् ॥ २ ॥ निवृत्तकार्यंसिद्धार्थंप्रमदाभिरतंसदा ॥ प्राप्तवंतमभिप्रेतान्सर्वानेवमनोरथान् ॥ ३ ॥ स्वां
चपत्नीमभिप्रेतांतारांचापिसमीप्सिताम् ॥ विहरंतमहोरात्रंकृतार्थंविगतज्वरम् ॥ ४ ॥ क्रीडंतमिवदेवेशंगंधर्वाप्सरसां
गणैः ॥ मंत्रिषुन्यस्तकार्यंचमंत्रिणामनवेक्षकम् ॥ ५ ॥ उच्छिन्नराज्यसंदेहंकामवृत्तमिवस्थितम् ॥ निश्चितार्थोऽर्थत
त्त्वज्ञःकालधर्मविशेषवित्॥६॥प्रसाद्यवाक्यैर्विविधैर्हेतुमद्भिर्मनोरमैः॥वाक्यविद्वाक्यतत्त्वज्ञंहरीशंमारुतात्मजः ॥ ७॥

वांछा करनें योग्य ताराको प्राप्त करकै व्यथा रहित हो ॥ ४ ॥ अप्सरागणोंके सहित देवराज इन्द्रकी समान दिन रात विहार करतेंहैं सब राज्य भार मंत्रि लोगोंके ऊपर छोड करकै फिर उसको देखतेभी नहीं ॥ ५ ॥ वह मंत्रीगणोंकी कार्यकी चतुरतासे राज्यके पालन करनेंके विषयमें संदेह न करकै कामवृद्धकी नाई टिके हुयेहैं ऐसे सुग्रीवको देख अर्थतत्त्वके जाननेंवाले सब अर्थोंको निश्चित किये कालोचित धर्मतत्त्वको जानने वाले ॥ ६ ॥ वाक्यविशारद श्रीहनुमानजी प्रीति युक्त मनोहर वचनोंसे वाक्य तत्त्वके जाननेंवाले

सुग्रीव कृतार्थहो इस समय उसको यादकर नहीं जागता ॥ ६९ ॥ तुम हमारे वचन सुन किष्किन्धा नगरीमें गमन कर उस मूर्ख व स्त्रीके सुखमें आसक्त वानर सुग्रीवसे कहना ॥ ७० ॥ कि जो पुरुष कार्यार्थी होकर आये हुए, और प्रथम अपना उपकार किये हुए पुरुषको आशा देकर फिर उसका कार्य पूरा नहीं करता वह इस लोकमें अधमपुरुष कहा जाताहै ॥ ७१ ॥ अच्छाहो, वा बुराहो, जो वचन दिया गयाहै; ऐसे वचनको जो पुरुष सत्य रूपमें ग्रहण करतेहैं, वही निःसंदेह वीर औरपुरुषोंमें श्रेष्ठहैं ॥ ७२ ॥ जो लोग अपना काम निकाल लेते, और जिस का कार्य सिद्ध नहीं हुआहै ऐसे मित्रके कार्य वा उपकारको साधन नहींकरते; उनके मरनें पर मांसके खाने वाले जन्तु गणभी उनके मांसको

सकिष्किंधांप्रविश्यत्वंब्रूहिवानरपुंगवम् ॥ मूर्खंग्राम्यसुखेसक्तंसुग्रीवंवचनान्मम ॥ ७० ॥ अर्थिनामुपपन्नानांपूर्वंचाप्युपकारिणाम् ॥ आशांसंश्रुत्ययोहंतिसलोकेपुरुषाधमः ॥ ७१ ॥ शुभंवायदिवापापंयोहिवाक्यमुदीरितम् ॥ सत्येनपरिगृह्णातिसवीरःपुरुषोत्तमः ॥ ७२ ॥ कृतार्थाह्यकृतार्थानांमित्राणांनभवंतिये ॥ तान्मृतानपिक्रव्यादाःकृतघ्नान्नोपभुंजते ॥ ७३ ॥ नूनंकांचनपृष्ठस्यविकृष्टस्यमयारणे ॥ द्रष्टुमिच्छसिचापस्यरूपंविद्युद्गणोपमम् ॥ ७४ ॥ घोरंज्यातलनिर्घोषंक्रुद्धस्यममसंयुगे ॥ निर्घोषमिववज्रस्यपुनःसंश्रोतुमिच्छसि ॥ ७५ ॥ काममेवंगतेप्यस्यपरिज्ञातेपराक्रमे ॥ त्वत्सहायस्यमेवीरनचिंतास्यान्नृपात्मज ॥ ७६ ॥ यदर्थमयमारंभःकृतःपरपुरंजय ॥ समयंनाभिजानातिकृतार्थःप्लवगेश्वरः ॥ ७७ ॥वर्षासमयकालंतुप्रतिज्ञायहरीश्वरः ॥ व्यतीतांश्चतुरोमासान्विहरन्नावबुध्यते ॥ ७८ ॥

नहीं खाते ॥ ७३ ॥ तुम निश्चयही संग्रामस्थलमें, हमसे खेंचे हुए सुवर्णकी पीठ वाले और बिजलीकी समान गुण युक्त धनुषका रूप देखनेंकी इच्छा करते हो ॥ ७४ ॥ तुम फिर यह श्रवण करनें की इच्छा करते होकि हम संग्रामभूमिमें क्रोधित हो वज्रके शब्दकी समान प्रत्यंचाकी घोर टंकार करें ॥ ७५ ॥ जब कि हम उसका सब बल जानतेहैं; और वह तुम्हारे सहाय युक्त हमारे पराक्रमकोभी जान्ताहै तौभी उस सुग्रीवको यह चिन्ता नहीं कि यह वालिकी तरह मुझे मार डालेंगे बडे आश्चर्य की बातहै ॥ ७६ ॥ हे पराये पुरको जीतनेंवाले लक्ष्मण ! वानरराज सुग्रीव कृतार्थ होकर किस कारण इस समय वालिके वध और इस मित्रताईको स्मरण नहीं करते हैं ॥ ७७ ॥ वर्षाके वीतनेपरही प्रतिज्ञाके पूर्ण करनें

तकी गुफाओंमें टूटे हुए डोरेवाले हारकी समान छितराकर गिर रहाहै ॥ ४९ ॥ पर्वतोंके विपुल वेगवान झरनें गिरिशृङ्गोंकी तली धोते हुए गिरकर महा गुफाओंमें मुक्तासमूहकी समान रोके जातेहैं ॥ ५० ॥ स्वर्गीय स्त्रीगणोंके रति कार्यके मर्दनसे टूटकर अतुल मोतियोंके हारकी समान चारों ओर जल धारा गिर रहीहैं ॥ ५१ ॥ पक्षियोंके घोंसलोंमें चलेजानेंसे और कमल फूलोंके बंद होनेंसे मालती पुष्पके खिलनेंसे, सूर्यका उदय अस्त जाना जाताहै; नहीं तो बराबर वादलोंके छाये रहनेंसे सूर्यभगवान्‌का उदय अस्त नहीं जाना जासकता ॥ ५२ ॥ इस कालमें नृपति लोगोंकी यात्रा बंद हो रहीहै, जो किसी राजाकी सेना किसी शत्रुपर चढ चलीथी वहभी मार्गमें जहां की तहां रही । और वैर व मार्ग

शीघ्रंप्रवेगाविपुलाःप्रपातानिर्धौतशृंगोपतलागिरीणाम् ॥ मुक्ताकलापप्रतिमाःपतंतोमहागुहोत्संगतलैर्ध्रियंते॥५०॥सुरतामर्दविच्छिन्नाःस्वर्गस्त्रीहारमौक्तिकाः ॥ पतंतिचातुलादिक्षुतोयधाराःसमंततः ॥५१॥विलीयमानैर्विहगैर्निमीलद्भिश्चपंकजैः ॥ विकसंत्याचमालत्यागतोऽस्तंज्ञायतेरविः ॥ ५२ ॥ वृत्तायात्रानरेंद्राणांसेनापथ्येववर्तते ॥ वैराणिचैवमार्गाश्चसलिलेनसमीकृताः ॥ ५३ मासिप्रोष्ठपदेब्रह्मब्राह्मणानांविवक्षताम् ॥ अयमध्यायसमयःसामगानामुपस्थितः ॥ ५४ ॥ विवृत्तकर्मायतनोनूनंसंचितसंचयः ॥ आषाढीमभ्युपगतोभरतःकोशलाधिपः ॥ ५५ ॥ नूनमापूर्यमाणायाःसरय्वावर्धतेरयः ॥ मांसमीक्ष्यसमायांतमयोध्यायाइवस्वनः ॥ ५६ ॥ इमाःस्फीतगुणावर्षाःसुग्रीवःसुखमश्नुते ॥ विजितारिःसदारश्चराज्येमहतिचास्थितः ॥ ५७ ॥

जलनें सबको समान कर दिया ॥ ५३ ॥ वेद पढनेंकी अभिलाषा किये साम जाननेंवाले ब्राह्मणोंका यह भाद्रपद रूप वेद पढनेंका समय आ पहुंचाहै ॥५४॥ कौशलाधिपति भरतजी अब करलेनें आदिके सब कार्योंसे निवट, जीवन साधन करनेंकी समस्त वस्तुयें एकत्र कर आषाढी पूर्णिमासे कुछ विशेष अनुष्ठान करने लगे होंगे ॥ ५५ ॥ इस समय सरयूनदी वर्षाके जलसे पूर्ण होगई होगी; इस समय सरयू नदीका वेग ऐसा बढता होगा; कि जैसे हमको आये देख अयोध्यावासी प्रजा कुलाहल करैगी॥५६॥वर्षाके गुणसमूह भली भांति प्रकाशित हो रहेहैं ।इस समय सुग्रीव विजय

पके हुए धानोंका वन, मन्द पवन, और विमल चंद्रमा, यह सब वर्षाका जाना और शरद ऋतुका आना बता रहेहैं ॥ ५३ ॥ इस समय प्रभात कालमें अपनें पतियों करके भोगी जानेंसे आलस्य पाई हुई कामनियोंकी समान, मीन रूप तगडी धारण किये नदी वधूटियोंकी गति मन्द होग ईहै ॥५४॥चक्रवाक व शिवार युक्त काश रूपी वसन पहरे हुए नदियोंके मुख पत्र रेखा युक्त और रोचन लगाये वधूटियोंके मुखकी समान शोभा धारण किये हुएहैं ॥ ५५ ॥प्रफुल्ल बाण और आसन पुष्पोंसे चित्र विचित्र हर्षित भ्रमरोंकी गुंजारसे गुंजायमान, वनोंमें प्रचंड धनुष धारण किये कामदेव विरही जनोंको दंड देनेके लिये अत्यन्त प्रचंड होगया ॥ ५६ ॥मेघ अति वृष्टिसे सब लोकोंको संतुष्ट कर, नदी तडागोंको पूर्ण और वसु

मीनोपसंदर्शितमेखलानांनदीवधूनांगतयोद्यमंदाः॥कांतोपभुक्तालसगामिनीनांप्रभातकालेष्विवकामिनीनाम्॥५४॥
सचक्रवाकानिसशैवलानिकाशैर्दुकूलैरिवसंवृतानि ॥ सपत्ररेखाणिसरोचनानिवधूमुखानीवनदीमुखानि ॥ ५५ ॥
प्रफुल्लबाणासनचित्रितेपुप्रहृष्टपट्पादनिकूजितेपु ॥ गृहीतचापोद्यतदंडचंडःप्रचंडचापोऽद्यवनेषुकामः ॥ ५६ ॥ लो
कंसुवृष्ट्यापरितोपयित्वानदीस्तटाकानिचपूरयित्वा ॥ निष्पन्नसस्यांवसुधांचकृत्वात्यक्त्वानभस्तोयधराःप्रनष्टाः५७
दर्शयंतिशरन्नद्यःपुलिनानिशनैःशनैः ॥ नवसंगमसव्रीडाजघनानीवयोषितः ॥ ५८ ॥ प्रसन्नसलिलाःसौम्यकुररा
भिविनादिताः ॥ चक्रवाकगणाकीर्णाविभांतिसलिलाशयाः ॥ ५९ ॥ अन्योन्यबद्धवैराणांजिगीपूणांनृपात्मज ॥
उद्योगसमयःसौम्यपार्थिवानामुपस्थितः ॥ ६० ॥ इयंसाप्रथमायात्रापार्थिवानांनृपात्मज ॥ नचपश्यामिसुग्री
वमुद्योगंचतथाविधम् ॥ ६१ ॥

धाको धान्यसे पूरित कर, उस समय आकाश मंडलको त्याग चले गयेहै ॥ ५७ ॥ इस समय नदियें धीरे २ अपने किनारे दिखातीहैं, जैसे नवीन आई हुई वधुयें नये संगमसे लज्जाशीलहो अपने २ पतिको अपने जांघादिअंग सहजसे दिखा देतीहैं ॥ ५८ ॥ हे सौम्य! निर्मल जलवाले सारसोंके शब्दसे शब्दायमान चक्रवाकोंसे पूर्ण समस्त जलसे शोभायमान होरहेहैं ॥ ५९ ॥ हे राजकुमार! परस्पर वैर रखनेंवाले और एक दूसरेके जीतनेंका अभिलाष किये राजा लोगोंके उद्योग करनेंका यह समय आगयाहै ॥ ६० ॥ राजालोगोंकी यात्रा करनेंका यही प्रथम समयहै, परन्तु

शब्द और नृत्यसे मद्यपान करनेंके स्थानकी समान जान पडतीहै॥३४॥मोतीकी समान गिरा, पत्तोंपर लगा इन्द्रका दिया निर्मल जल, पीले वि वर्ण पंखवाले प्यासे पक्षीगण हर्षित होकर पान कर रहेहैं ॥ ३५ ॥ भ्रमर ध्वनि रूप मधुर, गीत और उसमें वानरोंकी ध्वनि कंठताल, मेघ शब्द मृदंग ध्वनि, इस प्रकारसे वनमें मानों संगीत होना प्रारंभ हुआहै ॥३६॥ कभी नृत्य करकै कभी शब्द करकै कभी वृक्षकी डालियों पर बैठ करकै कभी लंबे पंखोंको भूषण रूप विस्तार करकै मोरगण वनस्थलमें संगीत कर रहेहैं॥३७॥ वानरगण मेघोंके शब्दसे बहुत दिनोंसे ग्रहण की हुई निद्राको परित्याग करकै जागरितहो, अनेक प्रकारका रूप धार व अनेक प्रकारका शब्द करकै नये जलकी धारासे पीडितहो किल २ कर रहेहैं ॥ ३८ ॥ सम

मुक्तासमाभंसलिलंपतद्वैसुनिर्मलंपत्रपुटेषुलग्नम् ॥ हृष्टाविवर्णच्छदनाविहंगाःसुरेंद्रदत्तंतृषिताःपिबंति ॥ ३५ ॥ षट्पा दतंत्रीमधुराभिधानंप्लवंगमोदीरितकंठतालम् ॥ आविष्कृतंमेघमृदंगनादैर्वनेषुसंगीतमिवप्रवृत्तम् ॥ ३६ ॥ क्वचित्प्र नृत्तैःक्वचिदुन्नदद्भिःक्वचिच्चवृक्षाग्रनिषण्णकायैः ॥ व्यालंबबर्हाभरणैर्मयूरैर्वनेषुसंगीतमिवप्रवृत्तम् ॥३७॥ स्वनैर्घनानां प्लवगाःप्रबुद्धाविहायनिद्रांचिरसंनिरुद्धाम् ॥ अनेकरूपाकृतिवर्णनादानवांबुधाराभिहतानदंति ॥३८॥ नद्यःसमुद्वा हितचक्रवाकास्तटानिशीर्णान्यपवाहयित्वा ॥ दृप्तानवप्रावृतपूर्णभोगाद्दुतंस्वभर्तारमुपोपयंति ॥ ३९ ॥ नीलेषुनी लानववारिपूर्णामेघेषुमेघाःप्रतिभांतिसक्ताः ॥ दवाग्निदग्धेषुदवाग्निदग्धाःशैलेषुशैलाइवबद्धमूलाः ॥ ४० ॥ प्रमत्त सन्नादितबर्हिणानिसशक्रगोपाकुलशाद्वलानि ॥ चरंतिनीपार्जुनवासितानिगजाःसुरम्याणिवनांतराणि ॥ ४१ ॥

स्त नदियें, चक्रवाक समूहको अपने किनारोंसे हटातीं और अपने ढहेहुए करारोंको जल वेगसे वहाती;वर्षाके जलसे पूर्ण होनेंके कारण मदान्धहो भोग करानें की इच्छासे अपने स्वामी समुद्रके निकट चली जाती हैं ॥३९॥ नील मेघोंके समूहमें आसक्त, नील जल भरे वादल, दावाग्निसे दग्ध हुये पहाडों में दावाग्नि दग्ध सब पर्वत एक दूसरे की जडमें बँधेहुयेसे ज्ञात होतेहैं ॥ ४० ॥ इस कालमें नीप और अर्जुनके पुष्पकी सुगन्धिसे वसे हुए वनके रमणीक थलोंमें मोर मतवाले होकर नाच रहेहैं। हरी घास पर वीरवहूटियां शोभा पाय रहीहैं; और हाथीभी इधर उधर झूम २ कर

योंके बीचमें खडे शब्द करते हैं ॥ ३८ ॥ कामके व्याप्त होनेसे जिनका अनुराग बढ गया है, ऐसी अपनी परिवारके सहित धीरे २ गमन करनें वाली हथिनी वनमें मतवाले चलते हुये अपने पतिके पीछे, घेरती हुई चलती हैं॥३९॥अपने सुन्दर पंख रूप भूषणका त्याग किये, मोरगण नदी के किनारोंपर रहनेवाले सारसोंसे धमकी पाकर दीनमलीन हो चलेजाते हैं॥ ४० ॥ गजेन्द्र गणोंके गलफुओंको भेदकर मदकी धार निकल रही है वह गजराज खिले हुये कमल फूलोंसे युक्त सरोवरमें बैठे हुये कारण्डव और चक्रवाकोंको पीडित करके जल पीरहे हैं ॥ ४१ ॥ सारस गणोंके श ब्दसे शब्दायमान, कीचड रहित, वालुकासे पूर्ण बैल गायोंसे युक्त नदियोंके समूहमें हंसगण हर्षित होकर कूदते फांदते हैं ॥ ४२ ॥ इस समय नदी

समन्मथातीव्रतरानुरागाकुलान्वितामंदगतिःकरेणूः ॥ मदान्वितंसंपरिवार्ययांतंवनेषुभर्तारमनुप्रयाति ॥ ३९ ॥ त्यक्त्वावराण्यात्मविभूषितानिबर्हाणितीरोपगतानदीनाम् ॥ निर्भर्त्स्यमानाइवसारसौघैःप्रयांतिदीनाविमनामयूराः४० वित्रास्यकारंडवचक्रवाकान्महारवैर्भिन्नकटागजेंद्राः॥सरस्सुबुद्धांबुजभूषणेषुविक्षोभ्यविक्षोभ्यजलंपिबंति ४१॥व्यपेतपंकासुसवालुकासुप्रसन्नतोयासुसगोकुलासु॥ससारसारावविनादितासुनदीषुहंसानिपतंतिहृष्टाः ॥४२॥नदीघनप्रस्रवणोदकानामतिप्रवृद्धानिलबर्हिणानाम् ॥ प्लवंगमानांचगतोत्सवानांध्रुवंरवाःसंप्रतिसंप्रनष्टाः ॥ ४३ ॥ अनेकवर्णाः सुविनष्टकायानवोदितेष्वंबुधरेषुनष्टाः ॥ क्षुधार्दिताघोरविषाबिलेभ्यश्चिरोषिताविप्रसरंतिसर्पाः ॥ ४४ ॥ चंचच्चंद्रकरस्पर्शहर्षोन्मीलिततारका ॥ अहोरागवतीसंध्याजहातुस्वयमंबरम् ॥ ४५ ॥ रात्रिःशशांकोदितसौम्यवक्त्रातारागणोन्मीलितचारुनेत्रा ॥ ज्योत्स्नांशुकप्रावरणाविभातिनारीवशुक्लांशुकसंवृतांगी ॥ ४६ ॥

मेघ, झरनें, जल अति बढा हुआ पवन, मोर, और उत्सव रहित वानरोंका शब्द बंद हो गया है ॥ ४३ ॥ इस समय अनेक वर्ण वाले और नये मेघोंके उदय होनेंपर जो चल फिर नहीं सकतेथे, इस कारण मृतककी तुल्य घोर विषधर बहुत दिनोंसे भूखे सर्पगण, बिलसे निकलकर घूम रहे हैं ॥ ४४ ॥ इस समय शोभायमान चन्द्रमाकी किरणोंका स्पर्श होनेंसे, तारा रूप नेत्र पुतलियोंके तारे धारण किये हर्षवती सन्ध्या आकाश [illegible] ॥ ४५ ॥ स समय उदय [illegible]आ चन्द्रमा रात्रिके मुखकी समान; तारागण खुले हुये मनोहर नेत्रोंकी समान और चांदनी

भयंकर नाद करनेवाले मेघगण रणमें खडेहुये मतवाले हाथियोंकी समान गर्जना कर रहेहैं ॥ २० ॥ जिनके तृणयुक्त सब स्थान वर्षाके जलसे तृप्त होगयेहैं और जिनमें मोर सदासेही नाच रहेहैं और मेघगण अतिवर्षा करके अब थम रहेहैं, सो ऐसे वन अपराह्न कालमें अधिक शोभा धारण किये हुयेहैं, ॥ २१ ॥ उस कालमें बकमाला युक्त सब मेघ बहुत सारे पानीका बोझ लादे हुये पर्वतोंके बडे २ शृङ्गो पर वार २ विश्राम करके फिर चले जातेहैं ॥ २२ ॥ गर्भ धारण करनेंके लिये मेघके प्रति काम युक्त बक पंक्ति हर्षवतीहो वायुसे कंपायमान श्रेष्ठ श्वेत कमल फूलोंकी मालाके समान मनोहर आकाशके गलेमें पडकर शोभा पारहीहै ॥ २३ ॥ इस समयमें नई उत्पन्न हुई इन्द्रवधू, वीरबहूटियोंके मध्यमें पडनेंसे चित्रित

वर्षोदकाप्यायितशाद्वलानिप्रवृत्तनृत्तोत्सवबर्हिणानि ॥ वनानिनिर्वृष्टबलाहकानिपश्यापराह्णेष्वधिकंविभांति॥२१॥ समुद्वहंतःसलिलातिभारंबलाकिनोवारिधरानदंतः ॥ महत्सुशृंगेषुमहीधराणांविश्रम्यविश्रम्यपुनःप्रयांति ॥ २२ ॥ मेघाभिकामापरिसंपतंतीसंमोदिताभातिबलाकपंक्तिः ॥ वातावधूतावरपौंडरीकीलंबेवमालारुचिरांबरस्य ॥२३॥ बालेंद्रगोपांतरचित्रितेनविभातिभूमिर्नवशाद्वलेन ॥ गात्रानुवृत्तेनशुकप्रभेणनारीवलाक्षोक्षितकंबलेन ॥२४॥ निद्राशनैःकेशवमभ्युपैतिद्रुतंनदीसागरमभ्युपैति ॥ हृष्टाबलाकाघनमभ्युपैतिकांतासकामाप्रियमभ्युपैति ॥ २५ ॥ जातावनांताःशिखिसुप्रनृत्ताजाताःकदंबाःसकदंबशाखाः ॥ जातावृषागोषुसमानकामाजातामहीसस्यवनाभिरामा ॥२६॥ वहंतिवर्षंतिनदंतिभांतिध्यायंतिनृत्यंतिसमाश्वसंति ॥ नद्योघनामत्तगजावनांताःप्रियाविहीनाःशिखिनःप्लवंगमाः ॥२७॥

तृणोंसे ढकी हुई भूमि, मध्य २ में लाखके रंगकी विन्दियां लगाय श्वेत वर्णका कम्बल ओढे स्त्रीकी समान शोभितहै ॥ २४ ॥ इस वर्षाकालमें क्रम २ निद्रा केशवको और नदियें द्रुतवेगसे सागरको, बकपांति हर्षित होकर मेघको, और कामनी स्त्रियां अपने प्रीतम पतिको प्राप्त होती हैं ॥ २५ ॥ इस समय बनोंमें मोर नाच रहेहैं, कदमके पेडोंकी डालियोंमें पुष्प खिल रहेहैं, वृषभ गाइयोंके ऊपर कामातुर हो रहेहैं, और मही अनाज और वनसे मनोहर होगईहै ॥ २६ ॥ इस समय नदियां वही जातीहैं. मतवाले हाथी गर्ज रहेहैं, वन चमक रहेहैं प्यारीके विरहमें विरही

अब सिद्ध काम हुए ॥ २२ ॥ हे राजकुमार ! मेघगण धीर गंभीर शब्दयुक्त पर्वत व नदियोंके समीप आय २ जल वर्षायर अब थकगयेहैं॥२३॥ नीले कमलकी पखडियोंके समान श्याम रंगके मेघ सब दिशाओंको श्याम रंग मय करते हुए मद रहित हाथीकी समान शान्त वेगसे चलनें लगे ॥ २४ ॥ कुटज और अर्जुन पुष्पकी सुगन्धि वाला जल अपने गर्भमेंसे वर्षाय पवनसे उठे हुए बादल, विचरण करके अब शान्त होगयेहैं॥२५॥ हे पापरहित लक्ष्मण! मेघ मातंग मोर और झरनें इन सबका शब्द एकवारही बंद होगयाहै ॥ २६ ॥ महा मेघके समूहोंसे धुए हुए विचित्र कँगूरे पर्वतोंके समूह चन्द्रमाकी किरणोंके पडनेंसे शोभायमान होरहेहैं; ॥ २७॥इस समय शतावरीके वृक्षोंकी डालियोंमें, ताराचन्द्र और सूर्यकी प्रभामें;

दीर्घगंभीरनिर्घोषाःशैलद्रुमपुरोगमाः ॥ विसृज्यसलिलंमेघाःपरिशांतानृपात्मज॥२३॥ नीलोत्पलदलश्यामाःश्यामीकृत्वादिशोदश ॥ विमदाइवमातंगाःशांतवेगाःपयोधराः॥२४॥जलगर्भामहामेघाःकुटजार्जुनगंधिनः॥चरित्वाविरताःसौम्यवृष्टिवाताःसमुद्यताः॥२५॥ घनानांवारणानांचमयूराणांचलक्ष्मण॥नादःप्रस्रवणानांचप्रशांतःसहसानघ ॥२६॥ अभिवृष्टामहामेघैर्निर्मलाश्चित्रसानवः॥ अनुलिप्ताइवाभांतिगिरयश्चंद्ररश्मिभिः ॥२७॥ शाखासुसप्तच्छदपादपानांप्रभासुताराार्कनिशाकराणाम् ॥ लीलासुचैवोत्तमवारणानांश्रियंविभज्याद्यशरत्प्रवृत्ता ॥ २८ ॥ संप्रत्यनेकाश्रयचित्रशोभालक्ष्मीशरत्कालगुणोपपन्ना ॥ सूर्याग्रहस्तप्रतिबोधितेषुपद्माकरेष्वभ्यधिकंविभाति ॥ २९ ॥ सप्तच्छदानांकुसुमोपगंधीषट्पादवृंदैरनुगीयमानः ॥ मत्तद्विपानांपवनानुसारीदर्पंविनेष्यन्नधिकंविभाति ॥ ३० ॥ अभ्यागतैश्चारुविशालपक्षैःस्मरप्रियैःपद्मरजोवकीर्णैः ॥ महानदीनांपुलिनोपयातैःक्रीडंतिहंसाःसहचक्रवाकैः ॥ ३१ ॥

उत्तम गजेन्द्र गणोंकी लीलामें, अपनी लक्ष्मीका भाग करके शरत्काल आ पहुँचाहै ॥ २८ ॥ इस समय शरत्कालकी गुण युक्त लक्ष्मीकी शोभानें अनेक वस्तुओंमें आश्रय लियाहै; वह लक्ष्मी सूर्य नारायणकी पहली किरणसे खिले हुए कमल फूलोंमें अधिक शोभायमान होरहीहै॥२९॥ यह शरतकाल शतावरीके फूलोंको सुगन्धि युक्त करता, भ्रमर गणोंमें ध्वनि उपजाता, पवनके पीछे २ चलता, मतवाले हाथियोंका दर्प चूर्ण करके अधिक शोभित होरहाहै ॥ ३० ॥ इस समय हंसगण, मनोहरविशाल पंखवाले, कामप्रिय, पद्मपरागसे सने, महा नदियोंके किनारों पर

अलंकृत करतेंहैं ॥ ४ ॥ सन्ध्या समयकी ललाईसे और अंतभागमें श्वेतवर्ण स्निग्ध मेघरूप छिन्न वस्त्रोंनें, मानों आकाशके घाव स्थानोंमें पट्टी बाँध रक्खी है ॥ ५ ॥ मन्द पवन रूप निःश्वास युक्त सन्ध्याकी ललाई मानों चन्दन लगाये हुये है, श्वेतवर्णके मेघोंसे युक्त आकाश मानों कामातुर होगयासा जान पडता है ॥ ६ ॥ ग्रीष्मके तापसे महाकष्टित नये पानीके छिडके जानेसे, शोकसे संतापित यह पृथ्वी, सीताजीकी समान आंसू छोडती है ॥ ७ ॥ मेघके उदरसे निकले हुये, कपूर लगे जलकी समान, शीतल, और केतकीकी सुगन्धि युक्त पवन अँजलि द्वारा पान करनेंके योग्य होगया है ॥ ८ ॥ उस पर्वतपर अर्जुनके सब वृक्ष कुसुमित होगये हैं केतकीकी सुगन्धिसे सुगन्धि युक्त और सुग्रीवकी समान

संध्यारागोत्थितैस्ताम्रैरंतेष्वपिचपांडुभिः॥स्निग्धैरभ्रपटच्छेदैर्बद्धव्रणमिवांबरम्॥५॥मंदमारुतनिःश्वासंसंध्याचंदनरंजितम् ॥आपांडुजलदंभातिकामातुरमिवांबरम्॥६॥एषाधर्मपरिक्लिष्टानववारिपरिप्लुता॥सीतेवशोकसंतप्तामहीबाष्पंविमुंचति॥७॥ मेघोदरविनिर्मुक्ताःकर्पूरदलशीतलाः ॥ शक्यमंजलिभिःपातुंवाताःकेतकगंधिनः ॥८॥ एषफुल्लार्जुनःशैलःकेतकैरभिवासितः ॥ सुग्रीवइवशांतारिर्धाराभिरभिषिच्यते ॥ ९ ॥ मेघकृष्णाजिनधराधारायज्ञोपवीतिनः ॥ मारुतापूरितगुहाःप्राधीताइवपर्वताः ॥ १० ॥ कशाभिरिवहैमीभिर्विद्युद्भिरभिताडितम् ॥ अंतस्तनितनिर्घोषंसवेदनमिवांबरम् ॥ ११॥ नीलमेघाश्रिताविद्युत्स्फुरंतीप्रतिभातिमे ॥ स्फुरंतीरावणस्यांकेवैदेहीवतपस्विनी ॥ १२ ॥ इमास्तामन्मथवतांहिताःप्रतिहतादिशः ॥ अनुलिप्ताइवघनैर्नष्टग्रहनिशाकराः ॥ १३ ॥

शत्रुरहित होकर जलकी धारसे अभिषेकित होरहेहैं ॥ ९ ॥ मेघरूप चीर वल्कल धारी, धारारूप यज्ञोपवीत युक्त, गुहाके मुखमें पवन शब्द युक्त सब पर्वत, वेदाध्ययन करनेंवाले बटुक गणोंकी समान शोभायमान हो रहे हैं ॥ १० ॥ इस वर्षाकालमें आकाशस्थल बीजलीरूप सुवर्णके कोडेसे ताडित होकर हृदयमें वेदना पाय घोर शब्द कर रहाहै ॥ ११ ॥ हम विचार करते हैं कि नीलमेघकी गोदीमें बैठी हुई बिजली चमक कर रावणके अंकमें बैठी कृपा करनेंके योग्य तपस्विनी जानकीजीके समान प्रकाशित हो रही है ॥ १२ ॥ यह सब दिशायें मेघोंसे छा रही हैं; इसलिये तारागण और चन्द्रादि छिप गये हैं इसलिये इस समय यह सब दिशायें कामीगणोंको सुखकी देनेवाली होगईहैं ॥ १३ ॥

जो सारस तुल्य शब्द करनेंवाली, सारस गणोंके शब्द सुनकर आश्रममें आनंदित होती, वह इस समय किस प्रकारसे मन बहलातीहोंगी? ॥ ७ ॥ वह मृगशावक नयनी सुवर्णके पुष्प सदृश, पुष्प युक्त आसनके वृक्षोंको देखकर, हमको विनादेखे किस प्रकारसे मन मुदित करतीं होंगी ॥ ८ ॥ जो मधुर भाषण करनेंवाली श्री जानकीजी प्रथम कलहंसोंके शब्दको श्रवण कर जागतीथीं, वह सर्वांगश्रेष्ठ इस समय किस प्रकारसे आनंदको प्राप्त करती होंगी? ॥ ९ ॥ वह कमलदलकी समान आंखोवाली जानकीजी चक्रवाकोंका कलशब्द श्रवण करके किस प्रकारसे जीवन धारण करनेंको समर्थ होंगी? ॥ १० ॥ हम उन मृगनयनीके विना, सरोवर, नदियें, वापी, वन और काननमें विचरण करके कुछभी सुख प्राप्त करनेंमें

सारसारवसंनादैःसारसारावनादिनी ॥ याश्रमेरमतेबालासाद्यमेरमतेकथम् ॥ ७ ॥ पुष्पितांश्चासनान्दृष्ट्वाकांचनानिवनिर्मलान् ॥ कथंसारमतेबालापश्यंतीमामपश्यती ॥ ८ ॥ यापुराकलहंसानांकलेनकलभाषिणी ॥ बुध्यते चारुसर्वांगीसाद्यमेरमतेकथम् ॥ ९ ॥ निःस्वनंचक्रवाकानांनिशम्यसहचारिणाम् ॥ पुंडरीकविशालाक्षीकथमेषा भविष्यति ॥ १० ॥ सरांसिसरितोवापीःकाननानिवनानिच ॥ तांविनामृगशावाक्षींचरन्नाद्यसुखंलभे ॥ ११ ॥ अपितांमद्वियोगाच्चसौकुमार्याच्चभामिनीम् ॥ सुदूरंपीडयेत्कामःशरद्गुणनिरंतरः ॥ १२ ॥ एवमादिनरश्रेष्ठोविललापनृपात्मजः ॥ विहंगइवसारंगःसलिलंत्रिदशेश्वरात् ॥ १३ ॥ ततश्चंचूर्यरम्येषुफलार्थीगिरिसानुषु ॥ ददर्शपर्युपावृत्तोलक्ष्मीवाल्लँक्ष्मणोऽग्रजम् ॥ १४ ॥ सचिंतयादुःसहयापरीतंविसंज्ञमेकंविजनेमनस्वी ॥ भ्रातुर्विषादात्त्वरितोतिदीनःसमीक्ष्यसौमित्रिरुवाचदीनम् ॥ १५ ॥

समर्थ नहीं होतेहैं ॥ ११ ॥ एकतो हमारा विरह, दूसरे सुकुमारताके हेतु अपने साथ शरदके गुणोंसे नित्य प्रकृत कामदेव उनको अतिशय पीडा देता होगा ॥ १२ ॥ सारंग नामक चातक पक्षी इन्द्रजीसे जिस प्रकार कातर होकर जलकी प्रार्थना करताहै, वैसेही राजकुमार श्रीरामचंद्रजी अनेक भांतिके विलाप करनें लगे ॥ १३ ॥ फिर लक्ष्मीयुक्त लक्ष्मणजी जोकि भाईके दुःखसे दुःखी, फलोंको लानेंके लिये पर्वतोंके कँगूरों पर गयेथे, लौट आकर अपने बडे भाई साहबको देखते हुये ॥ १४ ॥ मनस्वी लक्ष्मणजी अति शीघ्रतासे दुस्सह चिन्तायुक्त ज्ञानहीन और अतिदीन

किस प्रकार आपके हाथसे मरैगा? ॥ ३६ ॥ आप अपने मानसक्षेत्रसे शोकवृक्ष जडसे उखाड डालिये और व्यवसाय बुद्धि स्थिर कीजिये, ऐसा करनेंसे आप सपरिवार रावणका संहार करनेंको समर्थ होसकेंगे ॥ ३७ ॥ हे रघुवीर ! आप वन सागर और पर्वतोंके सहित इस पृथ्वीको उलट पलट कर सकतेहैं; फिर रावणका मारना तो एक साधारण बातहै ॥ ३८ ॥ अब वर्षाकाल आगयाहै; सो इसके बीतनेंपर आप शरत्कालके आनेंकी बाट देखिये, जैसेही शरत्काल आया कि रावणको उसकी सेना, व राज्य सहित वध कर डालिये ॥ ३९ ॥ हम भस्म से ढकी हुई अग्निको आहुति देकर प्रदीप्त करनेंकी समान आपके सोते हुये वीर्यको उकसातेहैं ॥ ४० ॥ लक्ष्मणजीके शुभकारी हितकारी उन वचनोंका आदर करके सुहृद और

समुन्मूलयशोकंत्वंव्यवसायंस्थिरीकुरु॥ततःसपरिवारंतंराक्षसंहंतुमर्हसि॥३७॥ पृथिवीमपिकाकुत्स्थससागरवनाचलाम् ॥परिवर्तयितुंशक्तःकिंपुनस्तंहिरावणम्॥३८॥शरत्कालंप्रतीक्षस्वप्रावृट्कालोयमागतः॥ततःसराष्ट्रंसगणंरावणंतंवधिष्यसि॥३९॥अहंतुखलुतेवीर्यंप्रसुप्तंप्रतिबोधये॥ दीप्तैराहुतिभिःकालेभस्मच्छन्नमिवानलम् ॥४०॥ लक्ष्मणस्यहितद्वाक्यंप्रतिपूज्यहितंशुभम् ॥ राघवःसुहृदंस्निग्धमिदंवचनमब्रवीत् ॥ ४१ ॥ वाच्यंयदनुरक्तेनस्निग्धेनचहितेनच ॥ सत्यविक्रमयुक्तेनतदुक्तंलक्ष्मणत्वया ॥ ४२ ॥ एषशोकःपरित्यक्तःसर्वकार्यावसादकः ॥ विक्रमेष्वप्रतिहतंतेजःप्रोत्साहयाम्यहम् ॥ ४३ ॥ शरत्कालंप्रतीक्षिष्येस्थितोस्मिवचनेतव ॥ सुग्रीवस्यनदीनांचप्रसादमनुपालयन् ॥ ४४ ॥ उपकारेणवीरस्तुप्रतिकारेणयुज्यते ॥ अकृतज्ञोप्रतिकृतोहंतिसत्त्ववतांमनः॥ ४५ ॥

स्नेही लक्ष्मणजीसे श्रीरामचन्द्रजी बोले ॥ ४१ ॥ हे लक्ष्मण! तुमनें अनुरक्त, स्निग्ध, हितकर, और सत्यविक्रमी लोगोंकी समानही वचन यथार्थही कहे ॥ ४२ ॥ यह लो, हमनें समस्त कार्योंके विनाश करनेंवाले शोकको परित्यागकर, विक्रमके विषयमें रुके हुए तेजको उत्साहित किया ॥ ४३ ॥ हम सुग्रीव और सब नदियोंकी प्रसन्नता करते हुए (अर्थात् सुग्रीवभी बहुत दिनोंके दुःखपाये हुए विश्राम पालेंगे और नदियेंभी बरसात बीतनें पर उतर जायँगी) तुम्हारे, वचनको मान शरदकालकी बाट देखते है॥ ४४ ॥ वीर पुरुषोंके साथ जो कुछभी उपकार किया जाताहै; तो

शंका न करके आपका बडा भारी कार्य किया है; इसलिये हम पृथ्वी व आकाशमें जहां कहींभीहों जानकीजीको ढूंढ लावेंगे ॥ २३ ॥ देव, दानव गन्धर्व, असुर, मरुद्गण, और यक्षगण सबही रणमें रामचन्द्रजीसे भय करते हैं, फिर उनसे राक्षसगण क्यों भय नहीं करेंगे? ॥ २४ ॥ इस प्रकार के शक्ति युक्त श्रीरामचन्द्रजीनें पहलेही आपका उपकार किया है, इस लिये हे कपिराज! इस समय सब प्रकारसे आपको उनका उपकार करना उचित है ॥ २५ ॥ हे कपीन्द्र! आपकी आज्ञासे हम वानरोंके मध्यमें, किसकी गति पृथ्वी के नीचे, जलमें, अथवा आकाशमें न होगी? ॥२६॥ हे अनघ! करोडों दुर्द्धर्ष वानर आपके वशमें हैं; सो आप आज्ञा दीजिये कि कौन किस स्थानमें जाय? ॥ २७ ॥ यथाकालमें उत्तम रूपसे विरूपित हनुमा

देवदानवगंधर्वाअसुराःसमरुद्गणाः॥नचयक्षाभयंतस्यकुर्युःकिमिवराक्षसाः ॥२४॥ तदेवंशक्तियुक्तस्यपूर्वंप्रतिकृतस्तथा ॥ रामस्यार्हसिपिंगेशकर्तुंसर्वात्मनाप्रियम् ॥ २५ ॥ नाधस्तादवनौनाप्सुगतिर्नोपरिचांबरे ॥ कस्यचित्सज्जतेऽस्माकंकपीश्वरतवाज्ञया ॥ २६ ॥ तदाज्ञापयकःकिंतेकुतोवापिव्यवस्यतु ॥ हरयोह्यप्रधृष्यास्तेसंतिकोट्यग्रतोनघ ॥२७॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाकालेसाधुनिरूपितम् ॥ सुग्रीवःसत्त्वसंपन्नश्चकारमतिमुत्तमाम् ॥ २८ ॥ संदिदेशातिमतिमान्नीलंनित्यकृतोद्यमम् ॥ दिक्षुसर्वासुसर्वेषांसैन्यानामुपसंग्रहे ॥ २८ ॥ यथासेनासमग्रामेयूथपालाश्चसर्वशः ॥ समागच्छंत्यसंगेनसेनाग्र्येणतथाकुरु ॥ ३० ॥ येत्वंतपालाःप्लवगाःशीघ्रगाव्यवसायिनः ॥ समानयंतुतेशीघ्रंत्वरिताःशासनान्मम ॥ ३१ ॥ स्वयंचानंतरंकार्यंभवानेवानुपश्यतु ॥ ३२ ॥

नजीके यह वचन सुनकर बुद्धिमान सुग्रीवजीनें उन वचनोंमें उत्तम मति की ॥ २८ ॥ उस समय मतिमान सुग्रीवजीनें नित्य हितकारी और उद्यम शील नील वीरको समस्त दिशाओंसे सेना इकट्ठी करनेंके लिये आज्ञा दी ॥ २९ ॥ सुग्रीवनें कहा कि–जिससे समस्त यूथपाल गण अपने२सेनापतियोंके सहित अपनी समस्त सेना ले यहांपर चले आवें; तुमको ऐसा यत्न करना चाहिये ॥ ३० ॥ उनमेंसे जोकि शीघ्र चलनेंवाले सब दिशाओंको जाननेंवाले और दृढ संकल्प करनेंवाले हैं; उनको तुम बहुतही शीघ्र हमारे पास भेज देना ॥ ३१ ॥ और तुम स्वयं सेनापति आदिकों

भित होरहेहैं ॥ १७ ॥ वानीर, तिमिद, बकुल, केतक, हिन्ताल, तिनिश, नीप, वेत, कृतमालक आदि वृक्ष शोभायमानहैं ॥ १८ ॥ यह नदी किनारों पर लगे हुये अनेक प्रकारके वृक्षोंसे सब जगह ऐसी शोभायमानहै जैसे वस्त्राभूषण धारण किये हुये युवास्त्री शोभा पाती हैं ॥१९॥ अनेक रत्नों करकै युक्त यह नदी शत २ पक्षियोंके शब्दसे शब्दायमान और परस्पर अनुराग करते हुये चकवा चकवियोंसे सुशोभित हो रही है ॥२०॥ फिर यह नदी हंस और सारसों के द्वारा सेवित होनेंसे अनेक प्रकारके रत्नोंसे विभूषित हो अपने रमणीक किनारोंसे मानो हँसही रही है ॥ २१ ॥ इस नदीमें किसी २ जगह नीले कमल कहीं २ लाल कमल और कहीं २ दिव्य शुक्ल वर्ण वाले कुमुदके फूलोंसे शोभा होरही है ॥ २२ ॥ यह रमणीया

वानीरैस्तिमिदैश्चैवबकुलैःकेतकैरपि ॥ हिंतालैस्तिनिशैर्नीपैर्वेतसैःकृतमालकैः ॥ १८ ॥ तीरजैःशोभिताभातिनानारूपैस्ततस्ततः ॥ वसनाभरणोपेताप्रमदेवाभ्यलंकृता ॥१९॥ शतशःपक्षिसंघैश्चनानानादविनादिता ॥ एकैकमनुरक्तैश्चचक्रवाकैरलंकृता ॥ २० ॥ पुलिनैरतिरम्यैश्चहंससारससेविता ॥ प्रहसंत्येवभात्येषानानारत्नसमन्विता ॥ २१ ॥ क्वचिन्नीलोत्पलैश्छन्नाभातिरक्तोत्पलैःक्वचित् ॥ क्वचिदाभातिशुक्लैश्चदिव्यैःकुमुदकुड्मलैः ॥२२॥ पारिप्लवशतैर्जुष्टाबर्हिक्रौंचविनादिता ॥ रमणीयानदीसौम्यमुनिसंघनिषेविता ॥२३॥ पश्यचंदनवृक्षाणांपंक्तीःसुरुचिराइव ॥ ककुभानांचदृश्यंतेमनसैवोदिताःसमम् ॥ २४ ॥ अहोसुरमणीयोयंदेशःशत्रुनिषूदन ॥ दृढंरंस्यावसौमित्रेसाध्वत्रनिवसावहे ॥ २५ ॥ इतश्चनातिदूरेसाकिष्किंधाचित्रकानना ॥सुग्रीवस्यपुरीरम्याभविष्यतिनृपात्मज ॥२६॥ गीतवादित्रनिर्घोषःश्रूयतेजयतांवर ॥ नदतांवानराणांचमृदंगाडंबरैःसह ॥ २७ ॥

सौम्यदर्शन नदी शत २ जल पक्षी मोर और क्रौंचोंके कलरवसे शब्दायमान होकर मुनि गणोंसे सेवित होतीहै ॥ २३ ॥ देखो यह स्थलमें चंदन के पुष्पोंकी लंगार और दशो दिशा मानो सब हमारे मनकेअनुसारही उदित होकर शोभा पारही हैं ॥ २४ ॥अहो लक्ष्मण! यह क्या परम रमणीय स्थानहै हे परवीरघाती! आओ हम इस स्थानमें परम सुखसे वास करें ॥ २५ ॥ हे राजकुमार!सुग्रीवजीकी मनको रमण करनेंवाली पुरी चित्र विचित्र काननवाली किष्किन्धा यहांसें निकटही वसतीहै॥२६॥हे विजयिश्रेष्ठ ! यह सुनो शब्द करनें वाले वानरोंकी मृदंग ध्वनिके

वानरपतिको ॥ ७ ॥ समझाय बुझाय प्रसन्न कर सत्य युक्त साधक साम, धर्म, अर्थ व नीतियुक्त प्रेम प्रीति सम्पन्न विश्वास निश्चय किये वचन ॥ ८ ॥ सुग्रीवजीके निकट जाकर हनुमानजी बोले कि आपने राज्य यश और कुलसे चली आई हुई विपुल राज्यलक्ष्मी प्राप्त कीहै ॥ ९ ॥ इस समय मित्र गणोंका शेष कार्य साधन करनेंके कर्त्तव्यका यत्न करना आपको उचितहै । जो काल जाननेवाला पुरुष मित्रलोगोंको सदाही साधुताके भावसे वर्त्तता है ॥ १० ॥ उसका राज्य कीर्ति और प्रताप वृद्धिको प्राप्त होताहै । जिसका खजाना, सेना और इन्द्रियादि युक्त देह और दंड मित्रोंके सहित समान हैं वह पुरुष बडे राज्यको भोगता है ॥ ११ ॥ इस कारण अच्छे

हितंतथ्यंचपथ्यंचसामधर्मार्थनीतिमत् ॥ प्रणयप्रीतिसंयुक्तंविश्वासकृतनिश्चयम् ॥ ८ ॥ हरीश्वरमुपागम्यहनूमान्वाक्यमब्रवीत् ॥ राज्यंप्राप्तंयशश्चैवकौलीश्रीरभिवर्धिता ॥ ९ ॥ मित्राणांसंग्रहःशेषस्तद्भवान्कर्तुमर्हति ॥ योहिमित्रेषुकालज्ञःसततंसाधुवर्तते ॥ १० ॥ तस्यराज्यंचकीर्तिश्चप्रतापश्चापिवर्धते ॥ यस्यकोशश्चदंडश्चमित्राण्यात्माचभूमिप ॥ समान्येतानिसर्वाणिसराज्यंमहदश्नुते ॥ ११ ॥ तद्भवान्वृत्तसंपन्नःस्थितःपथिनिरत्यये ॥ मित्रार्थमभिनीतार्थंयथावत्कर्तुमर्हति ॥ १२ ॥ संत्यज्यसर्वकर्माणिमित्रार्थेयोनवर्तते ॥ संभ्रमाद्विकृतोत्साहःसोऽनर्थेनावरुध्यते ॥ १३ ॥ योहिकालव्यतीतेषुमित्रकार्येषुवर्तते ॥ सकृत्वामहतोप्यर्थान्नमित्रार्थेनयुज्यते ॥ १४ ॥ तदिदंमित्रकार्यंनःकालातीतमरिंदम ॥ क्रियतांराघवस्यैतद्वैदेह्याःपरिमार्गणम् ॥ १५ ॥

चरित्र वाले आप हानि रहित मार्गमें टिक कर जानाहुआ मित्रका कार्य यथाविधिसे कीजिये ॥ १२ ॥ जो मनुष्य समस्त कार्यको परित्याग करके मित्रके कार्यको करनेंमें यत्नवान नहींहोता वह उत्साह विहीन और चंचल चित्त होकर अनर्थकी परम्परासे रुकजाताहै॥ १३ ॥ जो समय को विताकर मित्रका कार्य करतेहैं वह चाहें बडे भारी अर्थकोभी साधन करदें परन्तु कालके वीतनें से वह विना हुयेही की समान है इसलिये समय वीतनें पर कार्य का करना न करना बराबर है ॥१४॥ इसलिये हे शत्रु वीरोंको मारनेंवाले! अब समय वीताही चाहताहै

शोभा पानें लगी ॥ ४१ ॥ अभिषेकका सब वृत्तान्त श्रीरामचंद्रजीसे कह कपि सेनापति महावीर्यवान् सुग्रीवजी, अपनी स्त्री रुमाको प्राप्त होकर सुरराजकी समान वानरराज्यपर स्थापित हुये ॥ ४२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥ सुग्रीवजीके अभिषेक होजानेंपर श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञासे सबवानरोंके सहित जब किष्किन्धा पुरीमें चलेगये तब श्रीरामचंद्रजी अपने भ्राताके सहित प्रस्रवण पर्वत पर चले गये ॥ १ ॥ यह पर्वत शार्दूल मृग गणोंके शब्दसे युक्त और भयंकर गर्जन करने वाले सिंहोंके झुन्डोंसे भरपूर अनेक प्रकारकी झाडी लता और वृक्षोंसे परिपूर्ण ॥ २ ॥ रीछ, वानर, गोपुच्छ और बिलावादि करके सेवित मेघ

निवेद्यरामायतदामहात्मनेमहाभिषेकंकपिवाहिनीपतिः ॥ रुमांचभार्यामुपलभ्यवीर्यवानवापराज्यंत्रिदशाधिपो यथा ॥ ४२ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेषड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥ ७५ ॥ अभिषिक्ते तुसुग्रीवेप्रविष्टेवानरेगुहाम्॥ आजगामसहभ्रात्रारामःप्रस्रवणंगिरिम् ॥ १ ॥ शार्दूलमृगसंघुष्टंसिंहैर्भीमरवैर्वृतम् ॥ नागुल्मलतागूढंबहुपादपसंकुलम् ॥२ ॥ ऋक्षवानरगोपुच्छैर्मार्जारैश्चनिषेवितम् ॥ मेघराशिनिभंशैलंनित्यंशुचिकरं शिवम्॥ ३ ॥तस्यशैलस्यशिखरेमहतीमायतांगुहाम् ॥ प्रत्यगृह्णतवासार्थंरामःसौमित्रिणासह ॥४ ॥कृत्वाचसमयंरामः सुग्रीवेणसहानघः॥कालयुक्तंमहद्वाक्यमुवाचरघुनंदनः ॥ ५ ॥ विनीतंभ्रातरंभ्रातालक्ष्मणंलक्ष्मिवर्धनम् ॥ इयंगिरिगु हारम्याविशालायुक्तमारुता ॥ ६ ॥अस्यांवत्स्यामसौमित्रेवर्षरात्रमरिंदम॥गिरिशृंगमिदरम्यमुत्तमंपार्थिवात्मज ॥७॥

राशि तुल्य दृष्टि आनें वाला पवित्र करनेंवाला कल्याण कर और शोभायमान था ॥ ३ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें लक्ष्मणजीके सहित उस पर्वतके शिखरपर येक बडी लम्बी चौडी गुफा अपने वास करनेंके लिये स्वीकारकी ॥ ४ ॥ विमलात्मा रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी सुग्रीवसें वर्षाभर इस पर्वतपर रहनेंका नियमकर कालोचित महा वचन ॥ ५ ॥ विनीतलक्ष्मीके बढानेंवाले भ्राता लक्ष्मणजीसें बोले कि यह पर्वतकी गुफा बहुत बडी है और इसमें चारोंओरसे पवन आतीहै ॥ ६ ॥ हे शत्रुघातीलक्ष्मण! अब चौमासे भर यहीं वसेंगे हे राजकुमार! यह पर्वतका शृङ्ग

करके वह बडा भारी राज्य पाय अपनी स्त्रियोंके साथ विविध भांतिके सुख भोगोंमें आसक्त होरहेहैं ॥ ५७ ॥ हे लक्ष्मण! परन्तु हमारी प्यारी हरी गईहैं; और हमारा बडाभारी राज्यभी छूट गया, सो जलसे कटते हुए नदीके किनारेकी समान इस समय हम कष्टितहैं ॥ ५८ ॥ हमारा शोक अति बडाहै, वर्षा अतिशय दुर्गमहै; रावण महाशत्रुहै; यह सबही हमको बडे अपार ज्ञात होतेहैं ॥ ५९ ॥ इस वर्षाहीके कारण शत्रुपर चढाई नहीं की जाती; क्योंकि मार्ग सब अति दुर्गम हो रहेहैं इस्से सुग्रीवजीनें सीताजीके ढूंढ भालनेंके विषयमें हमसे कहाभीथा परन्तु तब हमनें उनसे कुछभी न कहा ॥ ६० ॥ और सुग्रीव अत्यन्त कष्ट पाकर अपनी स्त्रियोंसेमिलेहैं, और हमारा कार्य अत्यन्त भारी थोडे समयमें नहीं होगा, इसी

अहंतुहृतदारश्चराज्याच्चमहतश्च्युतः ॥ नदीकूलमिवक्लिन्नमवसीदामिलक्ष्मण ॥ ५८ ॥ शोकश्चममविस्तीर्णोवर्षाश्चभृशदुर्गमाः ॥ रावणश्चमहाञ्छत्रुरपारःप्रतिभातिमे ॥ ५९ ॥ अयात्रांचैवदृष्ट्वेमांमार्गांश्चभृशदुर्गमान् ॥ प्रणतेचैवसुग्रीवेनमयाकिंचिदीरितम् ॥ ६० ॥ अपिचापिपरिक्लिष्टंचिराद्दारैःसमागतम् ॥ आत्मकार्यगरीयस्त्वाद्वक्तुंनेच्छामिवानरम् ॥ ६१ ॥ स्वयमेवहिविश्रम्यज्ञात्वाकालमुपागतम् ॥ उपकारंचसुग्रीवोवेत्स्यतेनात्रसंशयः ॥ ६२ ॥ तस्मात्कालप्रतीक्षोऽहंस्थितोस्मिशुभलक्षण ॥ सुग्रीवस्यनदीनांचप्रसादमभिकांक्षयन् ॥ ६३ ॥ उपकारेणवीरोहिप्रतीकारेणयुज्यते ॥ अकृतज्ञोप्रतिकृतोहंतिसत्त्ववतांमनः ॥ ६४ ॥ अथैवमुक्तःप्रणिधायलक्ष्मणःकृताञ्जलिस्तत्प्रतिपूज्यभाषितम् ॥ उवाचरामंस्वभिरामदर्शनंप्रदर्शयन्दर्शनमात्मनःशुभम् ॥ ६५ ॥

कारण हम उनसे कुछ कहनेंकी इच्छा नहीं करते ॥ ६१ ॥ इसमें कुछ संदेह नहींहै कि सुग्रीव विश्राम करके आपही समयको आया जान उपकारका स्मरण करैगा ॥ ६२ ॥ इसलिये हे लक्ष्मण! हम सब नदियोंकी और सुग्रीवकी प्रसन्नताको चाहते यहां पर कालकी प्रतीक्षा किये टिके हुएहैं ॥ ६३ ॥ वीर लोग उपकार करनेंवालेका अवश्यही प्रत्युपकार किया करतेहैं और जो उपकारको प्राप्त होकर उसको नहीं मानते तो वीरगणोंका मन असन्तुष्ट होजाताहै; क्योंकि कोई किसीके साथ उपकार करनेंका उत्साह नहीं करते ॥६४॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें लक्ष्मणजीसे इस प्रकार कहा; तो वह हाथ जोड उन वचनोंका आदर करते हुए अपना विश्वास उनपर प्रगट करके मनकी जाननेंवाले श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥६५॥

॥

महा बलवान् वीर्यवान सुग्रीवजी फिर अपने भ्राताके रनवासमें गये, तब उन भीम विक्रम करनें वाले वानर श्रेष्ठ सुग्रीवजीको देख ॥ २२ ॥ सब इन्द्र तुल्य बन्दरों व सुहृदोंनें उनको राज्य पर स्थापित किया और सुवर्णकी डंडी लगा हुआ श्वेत छत्र उनके लिये ले आये ॥२३॥ और केशोंके दो शुक्ल चमर लाये, उनमेंभी सुवर्णकी डंडी लगीथीं; अनेक प्रकारके रत्न,समस्तबीज, और सब औषधियें एकत्रित कीं ॥ २४ ॥ क्षीर वाले वृक्षोंके अंकुर सब भांतिके फूल शुक्ल वस्त्र, शुक्लही उबटन ॥ २५ ॥ सुगंधि युक्त हार, स्थलकमल, दिव्य चंदन, विविध भांतिकी सुगन्धें ॥ २६ ॥ अक्षत,

भ्रातुरंतःपुरंसौम्यंप्रविवेशमहाबलः ॥ प्रविष्टंभीमविक्रांतंसुग्रीवंवानरर्षभम् ॥ २२ ॥ अभ्यषिंचंतसुहृदःसहस्राक्षमिवामराः ॥ तस्यपांडुरमाजह्रुश्छत्रंहेमपरिष्कृतम् ॥ २३ ॥ शुक्लेचवालव्यजनेहेमदंडेयशस्करे ॥ तथारत्नानिसर्वाणिसर्वबीजौषधानिच ॥२४॥ सक्षीराणांचवृक्षाणांप्ररोहान्कुसुमानिच ॥ शुक्लानिचैववस्त्राणिश्वेतंचैवानुलेपनम् ॥२५॥ सुगंधीनिचमाल्यानिस्थलजान्यंबुजानिच ॥ चंदनानिचदिव्यानिगंधांश्चविविधान्बहून् ॥ २६ ॥ अक्षतंजातरूपंचप्रियंगुमधुसर्पिषी ॥ दधिचर्मचवैयाघ्रंपराध्यौंचाप्युपानहौ ॥२७॥ संमालंभनमादायगोरोचनंमनःशिलाम् ॥ आजग्मुस्तत्रमुदितावराःकन्याश्चषोडश ॥ २८ ॥ ततस्तेवानरश्रेष्ठमभिषेक्तुंयथाविधि ॥ रत्नैर्वस्त्रैश्चभक्ष्यैश्चतोषयित्वाद्विजर्षभान् ॥ २९ ॥ ततःकुशपरिस्तीर्णंसमिद्धंजातवेदसम् ॥ मंत्रपूतेनहविषाहुत्वामंत्रविदोजनाः ॥ ३० ॥ ततोहेमप्रतिष्ठानेवरास्तरणसंवृते ॥ प्रासादशिखरेरम्येचित्रमाल्योपशोभिते ॥ ३१ ॥

सुवर्ण, प्रियङ्गु, मधु, सरसों, दही, व्याघ्रचर्म, बडे मोलकी दोनों उपानह, (जूता)॥ २७ ॥ और समालम्भन नामक अनुलेपन गोरोचन, मेनशिल; इत्यादि अभिषेककी सामग्रियें लाई जानें लगीं फिर सुलक्षण युक्त सोलह कन्या हर्षित होकर अभिषेकके स्थानमें आई ॥ २८ ॥फिर वानर श्रेष्ठका अभिषेक करानेंके लिये रत्न वस्त्र और भोजनसे,श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको संतोषित किया गया ॥ २९ ॥तत्पश्चात् वेदशास्त्रज्ञ जनोंनें किनारेपर कुश बिछाय प्रदीप्त अग्निमें मंत्र पढ २ कर घृतकी आहुतिदी ॥ ३० ॥ पीछे जब होम होगया तब सुवर्ण युक्त श्रेष्ठ बिछौनोंसे बिछाहुआ चित्र और मालाओंसे

फिर रहेहैं ॥ ४१ ॥ भ्रमर गण हर्षित होकर नये जलकी धारासे पुष्परसविहीन कमल फूलोंको त्याग, पुष्परस सहित कदम्बके नये पुष्पोंको पान कर रहेहैं ॥ ४२ ॥ इस कालके समय वनमें गजेन्द्र गण मत्त, वृषभगण मुदित, सिंहगण अतिशय पराक्रम कर रहेहैं; पर्वत मनोहर हैं नृपति गण उद्योग विहीन हैं । और इन्द्रजी मेघोंसे क्रीडा करनेमें लग रहेहैं॥४३॥महाजलकी धार वाले गगनमें फैले हुए मेघगण समस्त समुद्रोंमें शब्द उठा रहेहैं, और नदी तडाग सरोवर वापियोंको पूर्ण करते पृथ्वीके ऊपर जल बहा रहेहैं ॥ ४४ ॥ इस कालमें अति वेग सहित वर्षाकी धार गिरतीहै पवनभी अति वेगसे चलतीहै नदियें किनारोंको तोडती फाडती कुमार्गमें दहाडती चली जातीहैं॥४५॥मनुष्यगण जिस प्रकारसे राजाको स्नान कराते

नवांबुधाराहतकेसराणिध्रुवंपरिष्वज्यसरोरुहाणि ॥ कदंबपुष्पाणिसकेसराणिनवानिहृष्टाभ्रमराःपिबंति ॥ ४२ ॥
मत्तागजेंद्रामुदितागवेंद्रावनेषुविक्रांततरामृगेंद्राः ॥ रम्यानगेंद्राःनिभृतानरेंद्राःप्रक्रीडितोवारिधरैःसुरेंद्रः ॥ ४३ ॥ मे
घाःसमुद्भूतसमुद्रनादामहाजलौघैर्गगनावलंबाः ॥ नदीस्तटाकानिसरांसिवापीर्महींचकृत्स्नामपवाहयंति ॥ ४४ ॥
वर्षप्रवेगाविपुलाःपतंतिप्रवांतिवाताःसमुदीर्णवेगाः ॥ प्रनष्टकूलाःप्रवहंतिशीघ्रंनद्योजलंविप्रतिपन्नमार्गाः ॥ ४५ ॥
नरैर्नरेंद्राइवपर्वतेंद्राःसुरेंद्रनीतैःपवनोपनीतैः ॥ घनांबुकुंभैरभिषिच्यमानारूपंश्रियंस्वामिवदर्शयंति ॥ ४६ ॥ घनोप
गूढंगगनंनतारानभास्करोदर्शनमभ्युपैति ॥ नवैर्जलौघैर्धरणीवितृप्तातमोविलिप्तानदिशःप्रकाशाः॥४७॥महांतिकूटा
निमहीधराणांधाराविधौतान्यधिकंविभांति ॥ महाप्रमाणैर्विपुलैःप्रपातैर्मुक्ताकलापैरिवलंबमानैः ॥ ४८ ॥ शैलोपल
प्रस्खलमानवेगाःशैलोत्तमानांविपुलाःप्रपाताः ॥ गुहासुसन्नादितबर्हिणासुहाराविकीर्यंतइवावभांति ॥ ४९ ॥

हैं, वैसेही इन्द्रजीके दिये पवन करके आये मेघरूप घोडोंके द्वारा स्नान करकेपर्वत गण मानों अपना रूप और श्री दिखलातेहैं॥४६॥इस कालमें मेघोंसे ढके हुए आकाशमें तारागण और सूर्यके दर्शन नहीं होतेहैं; धरणी नवीनजलकी धारासे तृप्त होगई सब दिशाओंमें अंधकार छा जानेके कारण उनमें कुछभी प्रकाश विदित नहीं होता॥४७॥पर्वतोंके बडे२शिखर जलधाराके गिरनेसे धोये जाकर और महाप्रभाववाले विपुल लंबे मोती रूप झरनोंके द्वारा अधिक शोभायमान होरहेहैं ॥ ४८ ॥ पर्वतोंके बडे २ झरनोंका पानी चटानोंपर वेग सहित बहताहुआ मोरोंके शब्दसे युक्त पर्व

हे श्रीरामचंद्रजी ! आपके प्रसादसे इन सुग्रीवजीनें बडे २ दांत वाले बल और ऐश्वर्य सम्पन्न महात्मा वानर लोगोंका यह पितामहादिकोंका राज्य प्राप्त किया ॥४॥ हे प्रभो! आपके कृपासे महात्मा लोगोकोभी दुष्प्राप्य यह राज्य इन्हैं मिला, इसलिये अब यह आपकी आज्ञा पाय अपनी सुन्दर किष्किन्धा नगरीमें प्रवेशकर ॥ ५ ॥ सब सुहृद गणोंके साथ समस्त कार्य सम्पन्न करेंगे फिर वह विविध भांतिकी सुगन्धि और औषधियोंसे विधि विधान सहित स्नान कर ॥ ६ ॥ रत्न मालादि द्वारा भली भांतिसे आपको पूजेंगे, सो इसलिये आप कृपा करके इस रमणीक गिरि गुहामें वसी किष्किन्धापुरीको चलिये ॥ ७ ॥ और स्वामी संबंध बांधकर इन सब वानरोंको हर्षित कीजिये शत्रु दमनकारी खरारी श्रीरामचंद्रजीसे जब

भवत्प्रसादात्काकुत्स्थपितृपैतामहंमहत् ॥ वानराणांसुदंष्ट्राणांसंपन्नबलशालिनाम् ॥ ४ ॥ महात्मनांसुदुष्प्रापंप्राप्तंराज्यमिदंप्रभो ॥ भवतासमनुज्ञातःप्रविश्यनगरंशुभम् ॥ ५ ॥ संविधास्यतिकार्याणिसर्वाणिससुहृद्गणः ॥ स्नातोयंविविधैर्गंधैरौषधैश्चयथाविधि ॥ ६ ॥ अर्चयिष्यतिमाल्यैश्चरत्नैश्चत्वांविशेषतः ॥ इमांगिरिगुहांरम्यामभिगंतुंत्वमर्हसि ॥ ७ ॥ कुरुष्वस्वामिसंबंधंवानरान्संप्रहर्षय ॥ एवमुक्तोहनुमताराघवःपरवीरहा ॥ ८ ॥ प्रत्युवाचहनूमंतंबुद्धिमान्वाक्यकोविदः ॥ चतुर्दशसमाःसौम्यग्रामंवायदिवापुरम् ॥ ९ ॥ नप्रवेक्ष्यामिहनुमन्पितुर्निर्देशपारगः ॥ सुसमृद्धांगुहांदिव्यांसुग्रीवोवानरर्षभः ॥ १० ॥ प्रविष्टोविधिवद्वीरःक्षिप्रंराज्येभिषिच्यताम् ॥ एवमुक्त्वाहनूमंतंरामःसुग्रीवमब्रवीत् ॥ ११ ॥ वृत्तज्ञोवृत्तसंपन्नमुदारबलविक्रमम् ॥ इममप्यंगदंवीरंयौवराज्येभिषेचय ॥ १२ ॥

हनुमानजीनें ऐसा कहा तो ॥ ८ ॥ अति बुद्धिमान वाक्य विशारद श्रीरामचंद्रजी हनुमानजीसे बोले कि हे साधो ! हम चौदह वर्षतक ग्राम या नगरमें ॥ ९ ॥ प्रवेश नहीं करेंगे, क्योंकि हमको पिताजीकी ऐसीही आज्ञाहै और हम उस आज्ञाके वशहैं । उस समृद्धि शाली दिव्य गुहामें वानर श्रेष्ठ सुग्रीव ॥ १० ॥ प्रवेश करें और तुम सब शीघ्रही विधि पूर्वक उनको राज्यपर अभिषेकित करो श्रीरामचंद्रजीनें हनुमानजीसे ऐसा कह फिर सुग्रीवसे कहा ॥ ११ ॥ कि तुम लोकाचारके जाननें वालेहो; इसलिये इन बल विक्रमशाली वीर अंगदको युवराज पदवी देदेना ॥ १२ ॥

गण ध्यान कर रहेहैं, मोरगण नाच रहेहैं और वानर गण आशायुक्तहो श्वास ले रहेहैं ॥ २७ ॥ नवीन झरनोपर हाथी, केतकी, पुष्पकी सुगन्धि सूंघकर मतवाले, हृष्ट और जल गिरनेंके शब्दसे आकुलितहो मोरगणोंके सहित शब्द करतेहैं ॥ २८ ॥ कदम्बकी डालीपर अनुरागी हुये भौरोंके झुन्ड जलकी धारा गिरनेंसे आहतहो पहले क्षणका इकट्ठा कियाहुआ गाढ पुष्परस रूप मद परित्याग किये देतेहैं ॥ २९ ॥ जामनके वृक्षकी डालियें अंगार चूर्ण समूह तुल्य अधिकरसवाले फलके समूहसे, भ्रमर गणोंसे पीजातीहुईसी प्रकाशमान होरहीहैं ॥ ३० ॥ वि

प्रहर्षिताःकेतकिपुष्पगंधमाघ्रायमत्तावननिर्झरेषु ॥ प्रपातशब्दाकुलितागजेंद्राःसार्धमयूरैःसमदानदंति ॥ २८ ॥ धारानिपातैरभिहन्यमानाःकदंबशाखासुविलंबमानाः ॥ क्षणार्जितंपुष्परसावगाढंशनैर्मदंषट्चरणास्त्यजंति ॥ २९ ॥ अंगारचूर्णोत्करसंनिकाशैःफलैःसुपर्याप्तरसैःसमृद्धैः ॥ जंबूद्रुमाणांप्रविभांतिशाखानिपीयमानाइवषट्पदौघैः ॥ ३० ॥ तडित्पताकाभिरलंकृतानामुदीर्णगंभीरमहारवाणाम् ॥ विभांतिरूपाणिबलाहकानांरणोत्सुकानामिववानराणाम् ॥ ३१ ॥ मार्गानुगःशैलवनानुसारीसंप्रस्थितोमेघरवंनिशम्य ॥ युद्धाभिकामःप्रतिनादशंकीमत्तोगजेंद्रःप्रतिसंनिवृत्तः ॥ ३२ ॥ क्वचित्प्रगीताइवषट्पदौघैःक्वचित्प्रनृत्ताइवनीलकंठैः ॥ क्वचित्प्रमत्ताइववारणेंद्रैर्विभांत्यनेकाश्रयिणोवनांताः ॥ ३३ ॥ कदंबसर्जार्जुनकंदलाढ्यावनांतभूमिर्मधुवारिपूर्णा ॥ मयूरमत्ताभिरुतप्रनृत्तैरापानभूमिप्रतिमाविभाति ॥ ३४ ॥

द्युत रूप पताकासे अलंकृत गंभीर महाशब्द युक्त मेघ गण रण करनेको तैयार हाथियोंकी समान शोभित होतेहैं ॥ ३१ ॥ पर्वत वनके चलनेवाले अपने मार्गमें टिके हुए युद्धकी कामना किये गजेन्द्रगण, मेघका गर्जना सुन, दूसरे शत्रु हाथीके गर्जनेंकी शंकाकर युद्ध करनेंके लिये लौट रहे हैं ॥ ३२ ॥ किसी २ जगह भ्रमरगण गुंजार कररहेहैं, कहीं मोर नाच रहेहैं, कहीं हाथियोंके झुन्ड मतवाले होकर शोभा पारहेहैं, इस प्रकारसे समस्त वन इन सब वस्तुओंसे प्रकाशित होतेहैं ॥ ३३ ॥ कदम्ब, सर्ज्ज, अर्ज्जुन, कन्दलयुक्त मधु समान वारिसे पूर्ण वनभूमि मदमाते मोरोंके

रखकर महा दुःखित हो विलाप करनें लगी । हा वानर महाराज! हा हमारेप्यारे! ॥ ४० ॥ हा महावाहो! हा हमारे प्रिय! तुम हमको देखो! यह सब वानरगण शोकसे पीडित हो रहे हैं, सो तुम इन सबको क्यों नहीं देखतेहो? ॥ ४१ ॥ हे मानद! यद्यपि प्राण छूट गये हैं परन्तु तौ भी मानो तुम्हारा मुख हर्षितही होरहा है और जीवितकी समान अस्त होते हुये सूर्यकी भांति जान पड़ता है ॥ ४२ ॥ हे वानर राज! यह रामरूपकाल तुमको परलोकमें ले जानेंके लिये खेंच रहा है, इन रामचन्द्रजीनें रणस्थलमें एकही बाणको चलाय, इन सब वानरियोंके सहित हमको विधवा कर दिया ॥ ४३ ॥ हे राजेन्द्र! यह समस्त वानरियें झपटकर चलना नहींजानती हैं, यह पैदलही, इतनी दूर दौडी चली आई हैं, सो क्या इनको

हामहाईमहाबाहोहाममप्रियपश्यमाम् ॥ जनंनपश्यसीमंत्वंकस्माच्छोकाभिपीडितम् ॥ ४१ ॥ प्रहृष्टमिहतेवक्रंगतासोरपिमानद ॥ अस्तार्कसमवर्णंचदृश्यतेजीवतोयथा ॥ ४२ ॥ एषत्वांरामरूपेणकालःकर्षतिवानर ॥ येनस्मविधवाःसर्वाःकृताएकेषुणारणे ॥ ४३ ॥ इमास्तास्तवराजेंद्रवानर्योऽप्लवगास्तव ॥ पादैर्विकृष्टमध्वानमागताःकिंनबुध्यसे ॥ ४४ ॥ तवेष्टानुचैवेमाभार्याश्चंद्रनिभाननाः ॥ इदानींनेक्षसेकस्मात्सुग्रीवंप्लवगेश्वर ॥ ४५ ॥ एतेहिसचिवाराजंस्तारप्रभृतयस्तव ॥ पुरवासिजनश्चायंपरिवार्यविषीदति ॥ ४६ ॥ विसर्जयैनान्सचिवान्यथापुरमरिंदम ॥ ततःक्रीडामहेसर्वावनेषुमदनोत्कटाः ॥ ४७ ॥ एवंविलपतींतारांपतिशोकपरीवृताम् ॥ उत्थापयंतिस्मतदावानर्यःशोककर्शिताः ॥ ४८ ॥ सुग्रीवेणततःसार्धंसोंगदःपितरंरुदन् ॥ चितामारोपयामासशोकेनाभिप्लुतेंद्रियः ॥ ४९ ॥

तुम नहीं देखतेहो? ॥ ४४ ॥ हे कपि श्रेष्ठ! यह सब चन्द्रवदना भार्या इष्ट चाहनें वाली हैं, सो तुम इनको और सुग्रीवको क्यों नहीं देखते हो॥४५॥ हे राजन्! यह तारा इत्यादि महिषी गण सचिव लोग और पुरवासी तुमको घेरे हुये विषादित होरहे हैं सो तुम इनको क्यों नहीं देखते॥४६॥ हे शत्रुनाशक! आप सब मंत्रियोंको विदा दीजिये; फिर हम तुम सब मिलकर कामसे मत्तहो यहां विहार करेंगे ॥ ४७ ॥ पतिशोकसे व्याकुल हुई तारानें जब इस प्रकारसे विलाप किया, तब शोकसे आरत हुई, और वानरियोंनें उसको उठाया ॥ ४८ ॥ फिर सुग्रीवजीके साथ अंगदजीनें रोतेर

हे लक्ष्मण! कहीं २ नदीवारिके संयोगसे उत्पन्न हुई वाफयुक्त वर्षाके आनेंसे समुत्सुक पर्वतके शृङ्गोंपर, पुष्पित कुटजवृक्ष सीताके शोकसे उत्पन्न हमको कामोद्दीपन कराते हुये टिके हैं, ॥ १४ ॥ हे लक्ष्मण! इस वर्षाकालमें धूल उडनी बंद होगई है वायु पालायुक्त हो चलता है, ग्रीष्म कालके समस्त दोष दूर हो शान्तिको प्राप्त होजातेहैं; राजाओंकी यात्रा बंद होगई और परदेशी मनुष्य अपनी प्यारीके विरहमें रहनेंसे असमर्थहो अपने २ देशको चले आतेहैं ॥ १५ ॥ इस समयमें सब चक्रवाक अपनी २ प्यारी चकवीके सहित बसनेंके लिये मानस सरोवरपर चले जाते हैं। और इस समय बराबर वर्षा होनेंके कारणसे रथादि सवारियोंका चलनाभी बंद होगया है ॥ १६ ॥ इस समयमें कहीं

क्वचिद्बाष्पाभिसंरुद्धान्वर्षागमसमुत्सुकान् ॥ कुटजान्पश्यसौमित्रेपुष्पितान्गिरिसानुषु ॥ ममशोकाभिभूतस्य कामसंदीपनान्स्थितान् ॥ १४ ॥ रजःप्रशांतंसहिमोद्यवायुर्निदाघदोषप्रसराःप्रशांताः ॥ स्थिताहियात्रावसुधाधिपानांप्रवासिनोयांतिनराःस्वदेशान् ॥ १५ ॥ संप्रस्थितामानसवासलुब्धाःप्रियान्विताःसंप्रतिचक्रवाकाः ॥ अभीक्ष्णवर्षोदकविक्षतेषुयानानिमार्गेषुनसंपतंति ॥ १६ ॥ क्वचित्प्रकाशंक्वचिदप्रकाशंनभःप्रकीर्णांबुधरंविभाति ॥ क्वचित्क्वचित्पर्वतसंनिरुद्धंरूपंयथाशांतमहार्णवस्य ॥ १७ ॥ व्यामिश्रितंसर्जकदंबपुष्पैर्नवंजलंपर्वतधातुताम्रम् ॥ मयूरकेकाभिरनुप्रयातंशैलापगाःशीघ्रतरंवहंति ॥ १८ ॥ रसाकुलंषट्पदसंनिकाशंप्रभुज्यतेजंबुफलंप्रकामम् ॥ अनेकवर्णंपवनावधूतंभूमौपतत्याम्रफलंविपक्कम् ॥ १९ ॥ विद्युत्पताकाःसबलाकमालाःशैलेंद्रकूटाकृतिसंनिकाशाः ॥ गर्जंतिमेघाःसमुदीर्णनादामत्तागजेंद्राइवसंयुगस्थाः ॥ २० ॥

प्रकाशहै कहीं अप्रकाशहै क्योंकि आकाश मंडल मेघ समूहसे छारहाहै और कहीं पर्वतोंसे संरुद्ध हो रहाहै इसलिये तरंगहीन महासमुद्रकी समान शोभायमानहै ॥ १७ ॥ साखू और कदम्बके फूलोंसे युक्त, पर्वतकी धातुओंसे मिश्रित, ताम्रवर्ण मोरोंकी बोलीसे शब्दायमान, पहाडी नदियें शीघ्रतासे वही जातीहैं ॥ १८ ॥ इस समयमें सब जीवगण रसयुक्त भ्रमरोंकी समान, अनेक जम्बूफूलोंको भक्षण करतेहैं; और पवनसे, संचालित अनेक वर्णके पकेहुये आमफल पृथ्वीपर गिर रहेहैं ॥ १९ ॥ बिजलीरूप पताका लगाये और बगलोंकी पंक्तियुक्त माला पहरे, शैल शिखर तुल्य

किये गयेथे, पक्षियोंके आकार वन रहेथे, ॥ २२ ॥ वह सुघटित चित्रितपैदल सिपाहियोंसे भूषितथी, सिद्ध लोगोंके विमान की समान उसमें जालिये और झड़ोखे लग रहेथे, और प्रवेश करनेंके लियें सुन्दर द्वार बनेथे उसके सबही अंग सुडौलथे; वह बडी लंबी चौडीथी; कारीगरोंनें उसको काठका बनायाथा, और शोभाके लिये उसके भीतर एक क्रीडा पर्वत भी बन रहाथा, शिल्पियोंनें उसमें अपनी अति महीन, मनोहर कारीगरी दिखाईथी॥२३॥२४॥ बहु मूल्यवान भूषण व हार और चित्र विचित्र फूलोंकेधरनेंसे वह शिविका शोभितथी, वन व कन्दरादिक सबही उसमें रचीगईथीं, रक्त चंदनके कामसे वह सब जगह सजाई गईथी ॥ २५ ॥ पद्मादि पुष्पोंके हजारों हार उसमें टंग रहेथे, और लटक रहेथे, इस्से वह

आचितांचित्रपत्तीभिःसुनिविष्टांसमंततः ॥ विमानमिवसिद्धानांजालवातायनायुताम् ॥ २३ ॥ सुनियुक्तांविशालांचसुकृतांशिल्पिभिःकृताम् ॥ दारुपर्वतकोपेतांचारुकर्मपरिष्कृताम् ॥ २४ ॥ वराभरणहारैश्चचित्रमाल्योपशोभिताम् ॥ गुहागहनसंछन्नांरक्तचंदनभूषिताम् ॥ २५ ॥ पुष्पाढ्यैःसमभिच्छन्नांपद्ममालाभिरेवच ॥ तरुणादित्यवर्णाभिर्भ्राजमानाभिरावृताम् ॥ २६ ॥ ईदृशींशिबिकांदृष्ट्वारामोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ क्षिप्रंविनीयतांवालीप्रेतकार्यंविधीयताम् ॥ २७ ॥ ततोवालिनमुद्यम्यसुग्रीवःशिबिकांतदा ॥ आरोपयतविक्रोशन्नंगदेनसहैवतु ॥ २८ ॥ आरोप्यशिबिकांचैववालिनंगतजीवितम् ॥ अलंकारैश्चविविधैर्माल्यैर्वस्त्रैश्चभूषितम् ॥ २९ ॥ आज्ञापयत्तदाराजा सुग्रीवःप्लवगेश्वरः ॥ और्ध्वदेहिकमार्यस्यक्रियतामनुकूलतः ॥ ३० ॥

प्रातःकालीन सूर्य नारायणके समान प्रकाशित हो रहीथी ॥ २६ ॥ ऐसी शिविका अवलोकन करकै श्रीरामचन्द्रजीनें लक्ष्मणजीसे कहा कि शीघ्र वालिको इस शिविका अर्थात् (पालकी) पर चढाकर इसका प्रेत कार्य व दाह कार्य कराया जाय ॥२७॥ अंगदके सहित सुग्रीवजीने रोते २ वालिको उठाय उस पालकी पर लिटाया ॥ २८ ॥ गतप्राण वालिको विविध भांतिके उत्तमहार, वस्त्र, पुष्प, और गहनोंसे सजायकर उस शिविका पर चढाया ॥ २९ ॥ वानरराज सुग्रीवजीनें यह अनुमतिकीथी कि हमारे भाई वालिकी क्रिया विधि विधानसे की जाय,उ

वेभी अवश्यही उसका प्रत्युपकार करतेहैं; इस्से निश्चयहै कि सुग्रीव हमसे उपकार पाकर प्रत्युपकार करेंगे यदि अकृतज्ञ होकर वह प्रत्युपकार न करें तो उन महात्मा गणोंका मन (जिनके साथ पहले उपकार किया गयाहो) अर्थात् मित्रादि नाशको प्राप्त होजातेहैं ॥ ४५ ॥ फिर लक्ष्मण जी श्रीरामचन्द्रजीके वचन ठीक २ समझकर अपनी शोभित बुद्धि दिखाते हुए मनोज्ञ श्रीरामचन्द्रजीसे हाथ जोड कहनें लगे ॥ ४६ ॥ हेनरेन्द्र! आपनें जो कहा यही मेराभी मतहै; वानर वर सुग्रीव शीघ्रही सहायताकरनेंमें नियुक्त होंगे आप वर्षाकालको विताते हुए शरद कालकी राह परखिये वर्षाकाल वीतनें पर शत्रुका वध करना ॥ ४७ ॥ आप कोपको नियमित किये हुये हमारे सहित एकत्र वासकर वर्षा

तदेवयुक्तंप्रणिधायलक्ष्मणःकृतांजलिस्तत्प्रतिपूज्यभाषितम् ॥ उवाचरामंस्वभिरामदर्शनंप्रदर्शयन्दर्शनमात्मनः शुभम् ॥४६ ॥ यथोक्तमेतत्तवसर्वमीप्सितंनरेंद्रकर्तानचिरात्तुवानरः ॥ शरत्प्रतीक्षःक्षमतामिमंभवान्जलप्रपातंरिपुनिग्रहेधृतः ॥४७॥नियम्यकोपंपरिशाल्यतांशरत्क्षमस्वमासांश्चतुरोमयासह॥ वसाचलेस्मिन्मृगराजसेवितेसंवर्तयन्शत्रुवधेसमर्थः ॥ ४८ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०किष्किंधाकांडेसप्तविंशःसर्गः ॥२७॥ ॥ ७॥ सतदावालिनंहत्वासुग्रीवमभिषिच्यच ॥ वसन्माल्यवतःपृष्ठेरामोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ १ ॥ अयंसकालःसंप्राप्तःसमयोऽद्यजलागमः ॥ संपश्यत्वंनभोमेघैःसंवृतंगिरिसंनिभैः ॥ २ ॥ नवमासधृतंगर्भंभास्करस्यगभस्तिभिः ॥ पीत्वारसंसमुद्राणांद्यौःप्रसूतेरसायनम् ॥ ३ ॥ शक्यमंबरमारुह्यमेघसोपानपंक्तिभिः ॥ कुटजार्जुनमालाभिरलंकर्तुंदिवाकरः ॥ ४ ॥

कालके चौमासेको विता शरद समयकी राह परखिये। आप अवश्यही शत्रुके मार डालनेंमें समर्थ हैं। इस समय आप मृगराज सेवित इस पर्वत पर वास कीजिये ॥ ४८ ॥ इ० श्री० वा० आ० कि० सप्तविंशः सर्गः ॥२७॥ तब श्रीरामचन्द्रजी वालिको मारकर सुग्रीवको राज्य दे माल्यवान पर्वतपर वसकर लक्ष्मणजीसे कहनें लगे ॥ १ ॥ यहलो वर्षाकाल आ पहुंचा देखो! पर्वतोंके समान मेघोंके समूहोंसे आकाश मण्डल ढकगया ॥२॥ स्वर्गस्थली; समुद्रका जल रूपरस, सूर्यकी किरणोंके द्वारा पीकर, कार्तिकादि नव मासतक गर्भधारण करके लोकोंका जीवन स्वरूप जलरूप रसायन छोडती है ॥ ३ ॥ सूर्यभगवान आकाशमें आरोहण करके कूटज और अर्जुन मालाकी समान मेघसोपान, श्रेणीसे उस गगन मण्डलको

सीके नियोग करनेमें ईश्वर नहींहै सब लोक पहले किये हुये कर्मोंके वशहोस्थिति कर रहेहैं ॥५॥ काल रूप ईश्वर कालको अर्थात् जन्म मरणादिरूप व्यवस्थाको उल्लंघन नहीं कर सकता भगवान् काल कभी हीन नहीं होते पहले किये हुये कर्म प्राप्तको कोई जीव देवतादिकोंको भी उल्लंघन नहीं कर सकता अर्थात् जो उत्पत्ति योगसे उत्पन्न होताहै जो नष्टवानहै सो नष्ट होजाताहै ॥ ६ ॥ काल किसीसे बंधुता नहीं रखता अर्थात् काल प्राप्त होनें पर सबही को संहार करता है कालका हेतु नहीं कालके ऊपर किसीका पराक्रम नहीं चल सकता अर्थात् महापराक्रमशाली पुरुष भी कालको प्राप्त हो मर जाताहै काल किसीसे मित्र या जातिका सम्बन्ध नहीं रखता और कालहीके कारणसे काल किसीके वशमें नहीं रहता है ॥ ७ ॥ धर्म अर्थ और काम कालके परिपाक स्वरूप होकर कालचक्रके आधीनहोरहेहैं सो इसको विवेकवान जन देखते रहते हैं * ॥ ८ ॥

नकालःकालमत्येतिनकालःपरिहीयते ॥ स्वभावंचसमासाद्यनकिंचिदतिवर्तते ॥ ६ ॥ नकालस्यास्तिबंधुत्वंनहेतुर्न पराक्रमः ॥ नमित्रज्ञातिसंबंधःकारणंनात्मनोवशः ॥ ७ ॥ किंतुकालपरीणामोद्रष्टव्यःसाधुपश्यता ॥ धर्मश्चार्थश्चकामश्चकालक्रमसमाहिताः ॥ ८ ॥ इतःस्वांप्रकृतिंवालीगतःप्राप्तःक्रियाफलम् ॥ सामदानार्थसंयोगैःपवित्रंप्लवगेश्वरः ॥ ९ स्वधर्मस्यचसंयोगाज्जितस्तेनमहात्मना ॥ स्वर्गःपरिगृहीतश्चप्राणानपरिरक्षता ॥ १० ॥ एषावैनियतिःश्रेष्ठायांगतो हरियूथपः ॥ तदलंपरितापेनप्राप्तकालमुपास्यताम् ॥ ११ ॥ वचनांतेतुरामस्यलक्ष्मणःपरवीरहा ॥ अवदत्प्रश्रितं वाक्यंसुग्रीवंगतचेतसम् ॥ १२ ॥

यह वानरराज वालि साम, दान, और अर्थके संयोगसे पवित्र क्रिया फलको प्राप्त यहांसे अपनी प्रकृतिमें चला गयाहै ॥ ९ ॥ महात्मा वालिनें कालधर्मको प्राप्त होकर स्वर्गको लाभ कियाहै, इसलिये निजधर्मसे संयोग होनेंके हेतु उसनें निःसन्देह जय पाईहै ॥ १० ॥ वानरराजवालि जिसको प्राप्त हुआहै; वह सर्वोपरि श्रेष्ठ कालहै, इसलिये संताप करनेंका कुछ प्रयोजन नहींहै ॥ इस समय कालोचित कर्तव्य कर्म तुमको करनें चाहिये ॥ ११ ॥ जब श्रीरामचंद्रजी यह वचन कहचुके तब परवीरघाती लक्ष्मणजी चेतना रहित वानरप्रभु सुग्रीवसे बोले ॥ १२ ॥

* तो पै काल अचानक टूटैगा (सावित्री सत्यवान) ॥

सहित गीत और बाजा बजानेका शब्द सुनाई आताहै ॥ २७ ॥ कपिवर सुग्रीवजी राज्य और स्त्री और महत् राज्यलक्ष्मी प्राप्त करकै सुहृदगणों के सहित प्रीति और महा आनंद प्राप्त करेंगे ॥ २८ ॥ यह कहकर श्रीरामचन्द्रजी गुहा और कुंज युक्त उस प्रस्रवण पर्वतपर लक्ष्मणजीके सहित वास करनें लगे ॥ २९ ॥ उस बहुत द्रव्य संपन्न, सुखाकर पर्वतपर वासकरकै श्रीरामचन्द्रजीको कुछभी प्रसन्नता न हुई ॥ ३० ॥ प्राणसेभी अधिक प्यारी उन हरी हुई भार्या सीताजीको जब याद करते, और विशेषकरकै उस समय जब कि उदयाचलपर उदित होते हुये निशानाथ चंद्रमाको अवलोकन करते ॥ ३१ ॥ तब सीताजीसे उत्पन्न हुए शोकके आंसुओंसे हतबुद्धिहो श्रीरामचन्द्रजी, सुखकी सेजपर शयन करकैभी

लब्ध्वाभार्यांकपिवरःप्राप्यराज्यंसुहृद्वृतः॥ध्रुवंनंदतिसुग्रीवःसंप्राप्यमहतींश्रियम् ॥ २८॥ इत्युक्त्वान्यवसत्तत्रराघवः सहलक्ष्मणः ॥ बहुदृश्यदरीकुंजेतस्मिन्प्रस्रवणेगिरौ ॥ २९ ॥ सुसुखेहिबहुद्रव्येतस्मिन्हिधरणीधरे ॥ वसतस्तस्यरामस्यरतिरल्पापिनाभवत् ॥ ३० ॥ हृतांहिभार्यांस्मरतःप्राणेभ्योपिगरीयसीम् ॥ उदयाभ्युदितंदृष्ट्वाशशांकंसविशेषतः ॥ ३१ ॥ आविवेशनतंनिद्रानिशासुशयनंगतम् ॥ तत्समुत्थेनशोकेनबाष्पोपहतचेतनम् ॥ ३२ ॥ तंशोचमानंकाकुत्स्थंनित्यंशोकपरायणम् ॥ तुल्यदुःखोब्रवीद्भ्रातालक्ष्मणोनुनयंवचः ॥ ३३ ॥ अलंवीरव्यथांगत्वानत्वंशोचितुमर्हसि॥शोचतोह्यवसीदंतिसर्वार्थाविदितंहिते॥३४ ॥भवान्क्रियापरोलोकेभवान्देवपरायणः॥आस्तिकोधर्मशीलश्चव्यवसायीचराघव॥३५॥नह्यव्यवसितःशत्रुंराक्षसंविशेषतः॥समर्थस्त्वंरणेहंतुंविक्रमेजिह्मकारिणम् ॥ ३६ ॥

रात्रिमें निद्रा प्राप्त नहीं कर सकतेथे ॥ ३२ ॥ नित्य शोकपरायण श्रीरामचन्द्रजीको शोक करते देखकर उनकीही समान दुःखी लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीसे विनय सहित वचन बोले ॥ ३३ ॥ हे वीरवर! आप व्यथितहोकर शोक न कीजिये; कारण यह कि आप जानतेहैं, कि शोक करनें वाले लोग सदा कष्टही पाया करतेहैं ॥ ३४॥ हे रघुनंदन! आप लोकमें नित्यही कर्मके अनुष्ठान करनेंवाले, देवपरायण आस्तिक, धर्मशील, और उद्यमशालीहैं ॥ ३५॥ जो आप किसी प्रकारका उद्योग न करकै अपना चित्त ऐसाही व्याकुल किये रहेंगे तो वह कपटाचारी राक्षस रावण संग्राममें

हे राजपुत्र ! आप महात्मा होनेंसे कदाचित् विचार करें कि स्त्रीके मारनेंसे हमको स्त्रीहत्यासे उत्पन्न पाप लग सकताहै, परन्तु यह पाप आपको कदापि नहीं लग सकेगा क्योंकि इस तारा और वालिकी आत्माको आप एकही समझिये, इसलिये आपको स्त्री वध करनेंका पाप नहीं लगेगा ३७॥ आप जानतेहैं कि शास्त्रोंके प्रयोग और वेदोंके वचनोंसे स्त्री और पुरुषकी आत्मा अलग २ नहीं हो सकतीहै इसलिये ज्ञानी लोग कहा करतेहैं कि स्त्रीके दानसे अधिक लोकमें और कोई दान नहींहै ॥३८॥ हे वीर! आप धर्मको विचार हमको संहार वालिको स्त्रीका दान कीजिये जिस्से कि आपको स्त्री दान करनेंका फल प्राप्त होगा और स्त्रीहत्याका पाप फिर किस प्रकारसे आपको लग सकताहै ॥ ३९ ॥ हम अनाथाहैं ! इस्से अति

यच्चापिमन्येतभवान्महात्मास्त्रीघातदोषस्तुभवेतमह्यम् ॥ आत्मेयमस्येतिहिमांजहित्वंनस्त्रीवधःस्यान्मनुजेंद्रपुत्र ॥ ॥ ३७ ॥ शास्त्रप्रयोगाद्विविधाच्चवेदादनन्यरूपाःपुरुषस्यदाराः ॥ दारप्रदानाद्धिनदानमन्यत्प्रदृश्यतेज्ञानवतांहिलोके ॥ ३८ ॥ त्वंचापिमांतस्यममप्रियस्यप्रदास्यसेधर्ममवेक्ष्यवीर ॥ अनेनदानेननलप्स्यसेत्वमधर्मयोगंममवीरघातात् ॥ ३९ ॥ आर्तामनाथामपनीयमानामेवंगतांनार्हसिमामहंतुम् ॥ अहंहिमातंगविलासगामिनाप्लवंगमानामृषभेणधीमता ॥ ४० ॥ विनावराहोंत्तमहेममालिनाचिरंनशक्ष्यामिनरेंद्रजीवितुम् ॥ इत्येवमुक्तस्तुविभुर्महात्मातारांसमाश्वास्यहितंबभाषे ॥ ४१ ॥ मावीरभार्येविमतिंकुरुष्वलोकोहिसर्वोविहितोविधात्रा ॥ तंचैवसर्वंसुखदुःखयोगंलोकोब्रवीत्तेनकृतंविधात्रा ॥ ४२ ॥

पीडित अनाथ पतिके आलिंगनसे छुटाकर और जगह ले आई गई, और आरतहैं सो हमको वध न करना आपका बडा अनुचित कर्महै ! क्योंकि हम मातंग सम विलासगामी, वानरश्रेष्ठ बुद्धिमान् ॥ ४० ॥ इन्द्रकी दी हुई सुवर्णकी माला धारण किये हुये वालिके विना जीवन धारण नहीं करसकती महात्मा विभु श्रीरामचंद्रजीसे जब ताराने ऐसा कहा तब श्रीरामचंद्रजी उसको समझाते हुए हितकारी वचन बोले ॥ ४१ ॥ हे वीरभार्ये! तुम उदास न होवो यह सब लोक ब्रह्माजीके बनाये हुए हैं । यहभी जानलो सबही कहतेहैं कि समस्त सुख दुःख संयोग वियोग, यह सब ब्रह्माजीही

अति रमणीकहै ॥ ७ ॥ यह श्वेत काली और लाल वर्णोंकी शिलाओंसे शोभायमान है अनेक प्रकारके धातु द्रव्य इसमें पूर्ण हैं और नदीके मेंढक भी इसमें हैं ॥ ८ ॥ विविध वृक्षोंके समूह से मनोहर विचित्र लता युक्त नाना विधि विहंगम व उत्तमोत्तम मोरोंके शब्दसे शब्दायमान॥९॥और खिली हुई मालती कुन्द, गुल्म, सिन्दुवार,शिरस, कदम्ब, अर्जुन, सर्जादि वृक्षोंसे सुशोभित हैं ॥१०॥खिले हुये कमल फूलोसे भूपित यह जलाशय पानीके वढनेसे हमारी गुहाके धोरेही हो जायगा॥ ११॥ यह गुफा पूर्वकी ओरको नीची है इस कारण वास करनेमें वडा सुख देगी और पश्चिमकी ओर को ऊंची है सो वर्षा होनेपर पवनकी झकझोरसे इसमें जल भी नहीं आनें पावैगा ॥ १२ ॥ हे लक्ष्मण! गुहाके द्वारपर नीचेमें शोभायमान लम्बी

श्वेताभिःकृष्णताम्राभिःशिलाभिरुपशोभितम् ॥ नानाधातुसमाकीर्णंनदीदर्दुरसंयुतम् ॥ ८ ॥ विविधैर्वृक्षषंडैश्चचारु चित्रलतायुतम् ॥ नानाविहगसंघुष्टंमयूरस्वरनादितम् ॥ ९ ॥मालतीकुंदगुल्मैश्चसिंदुवारैःशिरीषकैः ॥ कदंबार्जुनसर्जैश्चपुष्पितैरुपशोभितम्॥ १० ॥ इयंचनलिनीरम्याफुल्लपंकजमंडिता ॥ नातिदूरेगुहायानौभविष्यतिनृपात्मज ॥११॥ प्रागुदक्प्रवणेदेशेगुहासाधुभविष्यति॥ पश्चाच्चैवोन्नतासौम्यविवातेयंभविष्यति ॥ १२ ॥ गुहाद्वारेचसौमित्रेशिला समतलाशिवा ॥ कृष्णाचैवायताचैवभिन्नांजनचयोपमा॥१३ ॥ गिरिशृंगमिदंतातपश्यचोत्तरतःशुभम् ॥ भिन्नांजन चयाकारमंभोधरमिवोदितम् ॥ १४ ॥ दक्षिणस्यामपिदिशिस्थितंश्वेतमिवांबरम् ॥ कैलासशिखरप्रख्यंनानाधातुवि राजितम् ॥१५॥ प्राचीनवाहिनींचैवनदींभृशमकर्दमाम्॥गुहायाःपरतःपश्यत्रिकूटेजाह्नवीमिव ॥१६॥ चंदनैस्तिलकैः सालैस्तमालैरतिमुक्तकैः ॥ पद्मकैःसरलैश्चैवअशोकैश्चैवशोभिताम् ॥ १७ ॥

चौडी अलग अंजनकी समान काली शिला पडीहै ॥ १३ ॥ हे वत्स लक्ष्मण! यह देखो उत्तरकी ओर अंजनके ढेरकी तुल्य उदित मेघकी समान सुशोभित पर्वतकी शिखर विराजमानहै॥१४॥दक्षिणके ओर भी कैलासपर्वतके शिखरकी समान श्वेत मेघोंकी तुल्य अनेक प्रकारकी धातुओंसे रँगा हुआ यह गिरिशृंग शोभा पारहा है ॥ १५ ॥ यह देखो गुहाके अग्रभागमे चित्रकूट पर्वतके निकट वहती हुई नदीके समान कीचड रहित पूर्ववाहिनी मन्दाकिनी नामक नदी वहती है ॥ १६ ॥ इसके तटपर चंदन, तिलक, शाल, तमाल अति मुक्तक, पद्मक और अशोक वृक्ष शो ॥

गे, और यह समस्त वानरगण आपकी इच्छामें रह कर सीताजीको खोजेंगे ॥ २२ ॥ हेमनुजेन्द्रनंदन! हमारे विद्यमान न रहनेंसेभी, यह वानर लोग आपके समस्त कार्यका साधन करेंगे।सो हम कुलनाशक जीवन धारण करनेंके अयोग्य पाप करनेंवालेको आप मरनेकी आज्ञा दीजिये ॥ २३ ॥ सुग्रीवजीनें अत्यन्त कातर होकर जब इस प्रकारसे कहा तब शत्रुओंके तपानेंवाले श्रीरामचंद्रजी अश्रुपूर्ण नेत्र होकर एक मुहूर्ततक उदासरहे ॥ २४ ॥ उस समय पृथ्वीकी समान क्षमावान्. भुवनके रक्षा करता श्रीरामचंद्रजी,शोकके मारे उत्सुक हुई अतिशय दुःखमें डूबी रोतीहुई ताराके प्रति वारंवार दृष्टि करनें लगे ॥ २५ ॥ तब मुख्य २ मंत्रियोंनें उदार बुद्धि, कपिराजपत्नी सुन्दर नेत्रवाली ताराको वालिकी देहसे लिपटे हुये पडे देख उसको

कृत्स्नंतुतेसेत्स्यतिकार्यमेतन्मय्यप्यतीतेमनुजेंद्रपुत्र ॥ कुलस्यहंतारमजीवनार्हंरामानुजानीहिकृतागसंमाम्॥२३॥ इत्येवमार्तस्यरघुप्रवीरःश्रुत्वावचोवालिजघन्यजस्य ॥ संजातबाष्पःपरवीरहंतारामोमुहूर्तंविमनाबभूव ॥ २४ ॥ तस्मिन्क्षणेऽभीक्ष्णमवेक्षमाणःक्षितिक्षमावान्भुवनस्यगोप्ता ॥ रामोरुदंतींव्यसनेनिमग्नांसमुत्सुकःसोथददर्शताराम् ॥ २५ ॥ तांचारुनेत्रांकपिसिंहनाथांपतिंसमाश्लिष्यतदाशयानाम् ॥ उत्थापयामासुरदीनसत्त्वांमंत्रिप्रधानाःकपिराजपत्नीम् ॥ २६ ॥ साविस्फुरंतीपरिरभ्यमाणाभर्तुःसमीपादपनीयमाना ॥ ददर्शरामंशरचापपाणिंस्वतेजसासूर्यमिवज्वलंतम् ॥ २७ ॥ सुसंवृतंपार्थिवलक्षणैश्चतंचारुनेत्रंमृगशावनेत्रा ॥ अदृष्टपूर्वंपुरुषप्रधानमयंसकाकुत्स्थइतिप्रजज्ञे ॥ २८ ॥ तस्येंद्रकल्पस्यदुरासदस्यमहानुभावस्यसमीपमार्या ॥ आर्तातितूर्णंव्यसनंप्रपन्नाजगामतारापरिविह्वलंती ॥ २९ ॥

पृथ्वीपरसे उठाया ॥ २६ ॥ जब मंत्रीलोग पतिके निकटसे उसको लियेआतेथे.तब तारा हाथ पैर छट पटाकर पतिके निकट जानेकी इच्छा करनें लगी; और जब मंत्री उसको श्रीरामचंद्रजीके निकट लेही आये, तब अपनें तेजसे दीप्तिमान दिवाकरकी समान श्रीरामचंद्रजीको देखा ॥ २७ ॥ मृगनयनी तारा, सुन्दरनेत्रवाले, पहले कभी न देखे हुये सर्वलक्षणसम्पन्न पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीको देखकर यह वही रघुवीर रामचंद्रजीहैं, यह जानती हुई ॥ २८ ॥ अति दुःखित तारा उन दुर्द्धर्ष इन्द्रतुल्य पराक्रमवान् महानुभव श्रीरामचंद्रजीके निकट आरत और विह्वल होकर

शोभित रमणीय प्रासादके शिखापर ॥ ३१ ॥ श्रेष्ठ सिंहासन पर पूर्वको मुख करवाय सुग्रीवजीको बैठाय विविध मंत्र पढकर सबनदी,नद, व अनेक प्रकारके तीर्थोंसे ॥ ३२ ॥ और सब समुद्रोंसे विमल जल लालाकर सबवानर श्रेष्ठोंनें स्वर्णके कलशोंमें भरदिया ॥ ३३ ॥ पवित्र वृषभके सींगोंमें सुवर्णके कलशोंमें भरकर लायर शास्त्रके दिखाये मार्गानुसार, और महर्षियोंकी बताई हुई विधिके समान ॥ ३४ ॥गय, गवाक्ष, गवय,शरभ,गन्ध मादन, मैन्द, द्विविद, हनुमान और जाम्बवान॥३५॥इन्होंनें विमल सुगन्धियुक्त जलसे सुग्रीवजीको स्नान कराया जैसे आठों वसु इन्द्रजीको स्नान करातेहैं ॥ ३६ ॥ जब इस प्रकारसे सुग्रीवजीका अभिषेक होगया तबप्रधान २ सैकडों हजारों वानर गण हर्षितहो आनन्द ध्वनि करनें

प्राङ्मुखंविधिवन्मंत्रैःस्थापयित्वावरासने ॥ नदीनदेभ्यःसंहृत्यतीर्थेभ्यश्चसमंततः ॥ ३२ ॥ आहृत्यचसमुद्रेभ्यःसर्वे भ्योवानरर्षभाः ॥ अपःकनककुंभेषुनिधायविमलंजलम् ॥ ३३ ॥ शुभैर्ऋषभशृंगैश्चकलशैश्चैवकांचनैः ॥ शास्त्रदृष्टे नविधिनामहर्षिविहितेनच ॥ ३४ ॥ गजोगवाक्षोगवयःशरभोगंधमादनः ॥ मैंदश्चद्विविदश्चैवहनूमान्जांबवांस्त था ॥ ३५ ॥ अभ्यषिंचंतसुग्रीवंप्रसन्नेनसुगंधिना ॥ सलिलेनसहस्राक्षंवसवोवासवंयथा ॥ ३६ ॥ अभिषिक्तेतुसुग्री वेसर्वेवानरपुंगवाः ॥ प्रचुक्रुशुर्महात्मानोहृष्टाःशतसहस्रशः ॥ ३७ ॥ रामस्यतुवचःकुर्वन्सुग्रीवोवानरेश्वरः ॥ अं गदंसंपरिष्वज्ययौवराज्येभ्यषेचयत् ॥३८॥ अंगदेचाभिषिक्तेतुसानुक्रोशाःप्लवंगमाः ॥ साधुसाध्वितिसुग्रीवंमहात्मा नोह्यपूजयन् ॥ ३९ ॥ रामंचैवमहात्मानंलक्ष्मणंचपुनःपुनः ॥ प्रीताश्चतुष्टुवुःसर्वेतादृशेतत्रवर्तिनि ॥ ४० ॥ हृष्ट पुष्टजनाकीर्णापताकाध्वजशोभिता ॥ बभूवनगरीरम्याकिष्किंधागिरिगह्वरे ॥ ४१ ॥

लगे ॥ ३७ ॥ वानरराज सुग्रीवजीनें श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञा प्रतिपालनकरके अंगदजीको भेंट युवराज पदवी पर अभिषिक्त किया ॥ ३८ ॥ जब अंगदजीभी युवराजकी पदवीपर अभिषिक्त होचुके तब महात्मा वानर गण हर्षकी ध्वनि करकै"बहुत अच्छा,बहुत अच्छा" शब्द कर सुग्री वजीकी बडाई करनें लगे॥३९॥ जब सुग्रीव और अंगदजीका अभिषेक होगया;तब सब कपिगण प्रसन्न होकर महात्मा श्रीराम लक्ष्मणजीकी स्तुति क रनें लगे ॥४०॥गिरि गुहामें बसीहुई किष्किन्धा पुरी हृष्टपुष्ट जनोंके चलनेंफिरनें और ध्वजा पताका ओंसे सुशोभित होकर मनोरम रूप बना

जबकि वालि युद्धमें हमको मारना प्रारंभ करता और हम जब भागकर रोया और चिल्लाया करते,तब वह हमसे समझा बुझाकर कहते कि जाओ, ऐसा कार्य फिर मत करना परंतु हमको वध नहीं करते ॥ ११ ॥ महात्मा वालिने अपनी श्रेष्ठताकी बडाई; और भायपनकी रक्षा की परंतु हमनें निःसंदेह काम क्रोध और वानरता दिखाई है ॥ १२ ॥ देवराज इन्द्रजी विश्वकर्माके पुत्र विश्वरूप ❀ ब्राह्मणको वध करके जिस प्रकार पाप को प्राप्त हुएथे हमनेंभी भ्राताका वध कर वैसेही; यह दीनताके अयोग्य; तर्जनीय, दर्शनके अयोग्य, कामनाके अयोग्य, भ्रातृवधरूप, पाप बटो

द्रुमशाखावभग्नोहंमुहूर्तपरिनिष्टनन् ॥ सांत्वयित्वात्वनेनोक्तोनपुनःकर्तुमर्हसि ॥ ११ ॥ भ्रातृत्वमार्यभावश्चधर्म श्चानेनरक्षितः॥ मयाक्रोधश्चकामश्चकपित्वंचप्रदर्शितम् ॥ १२ ॥ अचिंतनीयंपरिवर्जनीयमनीप्सनीयंस्वनवेक्षणी यम् ॥ प्राप्तोस्मिपाप्मानमिदंवयस्यभ्रातुर्वधात्त्वाष्ट्रवधादिवेंद्रः ॥ १३ ॥ पाप्मानमिंद्रस्यमहीजलंचवृक्षाश्चकामं जगृहुःस्त्रियश्च ॥ कोनामपाप्मानमिमंसहेतशाखामृगस्यप्रतिपत्तुमिच्छेत् ॥ १४ ॥ नार्हामिसंमानमिमंप्रजानां नयौवराज्यंकुतएवराज्यम् ॥ अधर्मयुक्तंकुलनाशयुक्तमेवंविधंराघवकर्मकृत्वा ॥ १५ ॥ पापस्यकर्तास्मिविगर्हि तस्यक्षुद्रस्यलोकापकृतस्यलोके ॥ शोकोमहान्मामभिवर्ततेऽयंवृष्टेर्यथानिम्नमिवांबुवेगः ॥ १६ ॥

रा ॥ १३॥ पृथ्वी, जल, वृक्ष, और स्त्रियोंनें इन्द्रजीके उस पापको ग्रहणकियाथा, परंतु हम वानरजातिका पाप कौन ग्रहण करनेंकी इच्छा करैगा ॥ १४ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! इस प्रकारका अयुक्तकुलनाशक कर्म करके हम तो प्रजागणोंका सन्मान और युवराज्यपदवीकेभी योग्य नहीं हैं; फिर भला, राज्यप्राप्तिके योग्य हम कैसे हो सकतेहैं? ॥ १५ ॥ वृष्टिसे वर्षे हुये जलका वेग जिस प्रकार नीचे ही की ओरको गिरताहै, वैसेही अतिनीच पापकारी; लोकोंके अपकार करनेंवाला हमारा यह महान् शोक वेग हममें स्थिर हुआ है ॥ १६ ॥

❀ जब विश्वरूपको इन्द्रनें अपना पुरोहित किया, और पीछे उसे राक्षसोंसे मिला देख मारडाला तब इन्द्रको ब्रह्महत्या लगी तब ब्रह्माजीने उसे चार जगह बांटा, पृथ्वीको दिया जिस्से यह जहां तहां ऊसर होगई, वृक्षोंको एक भाग दिया जो गोंदरूप हुआ कीकडका गोंद छोड बाकी गोंद अशुद्धहैं;जलको एक भाग दिया जो काई रूपहै, एक भाग स्त्रीको दिया जो महीनेके महीने रजस्वला होकर छूनेंके अयोग्य होती हैं ।

यह तुम्हारे बडे भाई वालिका पुत्रहै विक्रम शालीभी तुम्हारी समानहै; इसलिये उदार आत्मा अंगद सब भांतिसें युवराज पदवीके योग्यहैं ॥१३॥
हे सौम्य ! जिसमें वर्षा होतीहै ऐसा जो चौमासाहै, तो उसमें जलका वर्षानें वाला यह श्रावण मास पहलाहै ! ॥ १४ ॥ इसलिये इस समय
सीताजीके खोजनेंकी तैयारी नहीं होगी इसलिये तुम अपनी पुरीमें प्रवेश करो; और हम लक्ष्मणजीके सहित इस पर्वत पर वास करतेहैं ॥ १५ ॥
हे सौम्य ! यह गिरिगुहा पवनयुक्त, मनोहर, विशाल, जलयुक्त, और बहुत सारे कमल जिस नीरमें खिले हुए ऐसे जलाशयोंसे शोभितहै, इसलिये
यह सब भांतिसे हमारे वास करने योग्यहै ॥ १६ ॥ जब कार्तिक मास लगे तब तुम रावणका नाश होनेंके लिये यत्न करना हे सौम्य ! इसलिये

ज्येष्ठस्यहिसुतोज्येष्ठःसदृशोविक्रमेणच ॥ अंगदोयमदीनात्मायौवराज्यस्यभाजनम् ॥ १३ ॥ पूर्वोयंवार्षिकोमा
सःश्रावणःसलिलागमः ॥ प्रवृत्ताःसौम्यचत्वारोमासावार्षिकसंज्ञिताः ॥ १४ ॥ नायमुद्योगसमयःप्रविशत्वंपुरींशु
भाम् ॥ अस्मिन्वत्स्याम्यहंसौम्यपर्वतेसहलक्ष्मणः ॥ १५ ॥ इयंगिरिगुहारम्याविशालायुक्तमारुता ॥ प्रभूतसलि
लासौम्यप्रभूतकमलोत्पला ॥ १६ ॥ कार्तिकेसमनुप्राप्तेत्वंरावणवधेयत ॥ एषनःसमयःसौम्यप्रविशत्वंस्वमालय
म् ॥ १७ ॥ अभिषिंचस्वराज्येचसुहृदःसंप्रहर्षय ॥ इतिरामाभ्यनुज्ञातःसुग्रीवोवानरर्षभः ॥ १८ ॥ प्रविवेशपुरींर
म्यांकिष्किंधांवालिपालिताम् ॥ तंवानरसहस्राणिप्रविष्टंवानरेश्वरम् ॥ १९ ॥ अभिवार्यप्रविष्टानिसर्वतःप्लवगेश्व
रम् ॥ ततःप्रकृतयःसर्वादृष्ट्वाहरिगणेश्वरम् ॥ २० ॥ प्रणम्यमूर्ध्नापतितावसुधायांसमाहिताः ॥ सुग्रीवःप्रकृतीःस
र्वाःसंभाष्योत्थाप्यवीर्यवान् ॥ २१ ॥

अब तुम अपनी पुरीको चले जाओ॥ १७ ॥ तुम राज्यपर स्थापित होकर सुहृद गणोंके हर्षको बढाओ; वानर श्रेष्ठ सुग्रीव श्रीरामचंद्रजीसे ऐसी
आज्ञा पाकर ॥१८॥वालिपालित मनोरम किष्किन्धा पुरीमें प्रवेश करते हुए वानरेन्द्र सुग्रीवजी जब कि किष्किन्धा पुरीमें प्रवेश करते हुए तब
सहस्र २ वानरोंनें उनको घेरे हुए पुरीमें प्रवेश किया ॥१९॥फिर समस्त प्रजाके लोग वानर श्रेष्ठ सुग्रीवजीको पुरीमें आये हुये देखकर ॥ २० ॥
मस्तक झुका पृथ्वीमें गिरकर प्रणाम करते हुए तब सुग्रीवजीने प्रेम सहित कुशल पूछ २ कर उन सबको उठाया ॥ २१ ॥

तुम्हारा ज्ञान स्नान किस प्रकारसे पूर्णहुआ॥२७॥देवराज इन्द्रनें संग्राममें सन्तुष्ट होकर जो सुवर्णकी माला तुमको दीथी, वह माला इस समय हम तुमको धारण किये नहीं देखती इसका कारण क्या है? ॥ २८ ॥ हे मानद! चारों ओर घूमते हुये सूर्यकी प्रभा जिस प्रकार अस्ताचलको नहीं परित्याग करती है, वैसेही प्राण निकल जानेंपरभी राजश्री आपको नहींछोडती है ॥ २९ ॥ हाय ! हमनें हितकारी जो वचन कहेथे उनको सुनकरभी आपने ग्रहण नहीं किया, इस समय युद्धस्थलमें निहत आपके सहित पुत्रवती हमभी विनाशको प्राप्त हुई ! हाय इस समय लक्ष्मी देवी हमको परित्याग कर गई ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीवाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥ अत्यन्त

यादत्तादेवराजेनतवतुष्टेनसंयुगे॥ शातकौंभींप्रियांमालांतांतेपश्यामिनेहकिम्॥ २८ ॥राज्यश्रीर्नजहातित्वांगतासुमपिमानद ॥ सूर्यस्यावर्तमानस्यशैलराजमिवप्रभा ॥ २९ ॥ नमेवचःपथ्यमिदंत्वयाकृतंनचास्मिशक्ताहिनिवारणेतव ॥ हतासपुत्रास्मिहतेनसंयुगेसहत्वयाश्रीर्विजहातिमामपि ॥ ३० ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेत्रयोविंशःसर्गः ॥ २३ ॥ ॥ ७ ॥ ॥तामाशुवेगेनदुरासदेनत्वभिप्लुतांशोकमहार्णवेन ॥ पश्यंस्तदावाल्यनुजस्तरस्वीभ्रातुर्वधेनाप्रतिमेनतेपे ॥ १ ॥ सबाष्पपूर्णेनमुखेनपश्यन्क्षणेननिर्विण्णमनामनस्वी ॥ जगामरामस्यशनैःसमीपंभृत्यैर्वृतःसंपरिदूयमानः ॥ २ ॥ सतंसमासाद्यगृहीतचापमुदात्तमाशीविषतुल्यबाणम् ॥ यशस्विनंलक्षणलक्षितांगमवस्थितंराघवमित्युवाच ॥ ३ ॥ यथाप्रतिज्ञातमिदंनरेंद्रकृतंत्वयादृष्टफलंचकर्म ॥ ममाद्यभोगेषुनरेंद्रसूनोमनोनिवृत्तंहतजीवितेन ॥ ४ ॥

वेगशाली अति कठिनसे तरने योग्य अतुल शोक समुद्रमें डूबती हुई ताराको विलाप करते देखकर वालिके छोटे भाई सुग्रीव अपने भ्राताके मारे जानेंसे अत्यन्त सन्तापको प्राप्त हुये ॥ १ ॥ ताराको रोतीहुई निहार मनस्वी सुग्रीवजी अत्यन्त दुःखित और खिन्न मनहो सब नौकर चाकरोंके साथ धीरे २ श्रीरामचन्द्रजीके समीप चले ॥ २ ॥ सुग्रीवजी वहां पहुँचकर उग्र भुजंग समान बाण युक्त शरासनधारी शास्त्रोंमें कहे हुये लक्षणों करके सहित यशस्वी रामचन्द्रजीको बैठे हुए देखकर बोले ॥ ३ ॥ हे नरनाथ ! आपनें जो प्रतिज्ञा कीथी, उसको तो

शोकके मारे व्याकुल इन्द्रिय होकर वालिको चिताके ऊपर धर दिया ॥ ४९ ॥ तिसके पीछे विकलेंद्रिय अंगदजीनें विधि पूर्वक लंबे मार्गमें गमन करनें वाले अपने पिता वालिको अग्नि प्रदानकर उनकी प्रदक्षिणा की ॥ ५० ॥ वानरश्रेष्ठगण विधि पूर्वक वालिका सत्कार करके जल क्रिया करनेंके लिये पवित्र और निर्मल जलवाली नदीपर गये ॥ ५१ ॥ वहां पहुँच अंगदजीको आगेकर सुग्रीव तारा इत्यादि सबही वालिके अर्थ जल देनें लगे ॥ ५२ ॥ महा बलवान् श्रीरामचंद्रजीनें सुग्रीवहीकी समान शोककर उनकेही साथ दीन भावसे वालिका प्रेतकार्य कराया ॥ ५३ ॥ फिर अति बलवान् श्रीरामचंद्रजीके एक बाणसे निहत प्रदीप्त अग्नि तुल्य तेजस्वी वालिको अग्नि द्वारा प्रदीप्ति और दग्ध करके सुग्री

ततोऽग्निंविधिवद्दत्त्वासोपसव्यंचकारह ॥ पितरंदीर्घमध्वानंप्रस्थितंव्याकुलेंद्रियः ॥ ५० ॥ संस्कृत्यवालिनंतंतुविधिवत्प्लवगर्षभाः ॥ आजग्मुरुदकंकर्तुंनदींशुभजलांशिवाम् ॥ ५१ ॥ ततस्तेसहितास्तत्रअंगदंस्थाप्यचाग्रतः ॥ सुग्रीवतारासहिताःसिषिचुर्वानराजलम् ॥ ५२ ॥ सुग्रीवेणेवदीनेनदीनोभूत्वामहाबलः ॥ समानशोकःकाकुत्स्थःप्रेतकार्याण्यकारयत् ॥ ५३ ॥ ततोथतंवालिनमग्र्यपौरुषंप्रकाशमिक्ष्वाकुवरेषुणाहतम् ॥ प्रदीप्यदीप्ताग्निसमौजसंतदासलक्ष्मणंराममुपेयिवान्हरिः ॥ ५४ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेपंचविंशःसर्गः२५

ततःशोकाभिसंतप्तंसुग्रीवंक्लिन्नवाससम् ॥ शाखामृगमहामात्राःपरिवार्योपतस्थिरे ॥ १ ॥ अभिगम्यमहाबाहुंराममक्लिष्टकारिणम् ॥ स्थिताःप्रांजलयःसर्वेपितामहमिवर्षयः ॥ २ ॥ ततःकांचनशैलाभस्तरुणार्कनिभाननः ॥ अब्रवीत्प्रांजलिर्वाक्यंहनूमान्मारुतात्मजः ॥ ३ ॥

वजी श्रीराम लक्ष्मणके निकट आये ॥ ५४ ॥ इत्यार्पें श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे पंचविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

वालिकी दाह क्रियाकर शोककी आगसे संतापित हुए उदास मन सुग्रीवजी जब रामचंद्रजीके निकट आये, तब बडे २ वानर चारोंओरसे उनको घेरकर खडे हुए ॥ १ ॥ सब वानर लोग महाबाहु सरलतासे कर्म करनें वाले श्रीरामचंद्रजीके निकट, ब्रह्माजीके समीपवर्ती ऋषियोंकी समान हाथ जोडे खडे रहे ॥ २ ॥ फिर तरुण सूर्यकी समान लाल मुख वाले सुवर्णके पर्वतकी तुल्य पवनपुत्र हनुमानजी हाथ जोडकर बोले ॥ ३ ॥

हमारा हृदय अत्यन्त कठिन और लोहेका बना हुआ है ॥ १० ॥ जो लोहेका बना हुआ न होता तो प्राणप्यारे स्वामीको मरा हुआ देखकर
अबतक शत खंड होजाता हाय हमारे प्रिय स्वामी स्वभावसेही हमकोप्रिय व सुहृद ॥ ११ ॥ संग्राम करनेमें पराक्रमवान शूर वहभी
मृत्युको प्राप्त हुये जो नारी पतिहीना है वह पुत्रवती भी होय तौभी उसे ॥१२॥ पंडित गण विधवाही कहते हैं चाहै उसको कितनाही धन धान्य
हो हे वीर! अपने ही अंगोंसे निकले रुधिरके वेरमें तुम सोते हो ❋ ॥१३॥ मानों वीरवधुओंके समान रंगवाले अपनी शय्यापरही शयन कियेहो।
हे वानरनाथ! तुम्हारे अंगोंमें धूल और रुधिर जहां तहां लग रहा है ॥१४॥इसकारण हम अपनी दोनों बाहोंसे तुमको लिपट नहीं सकतीं; इस अति
दारुण शत्रुतामें सुग्रीव कृतार्थ होगये ॥ १५ ॥ क्योंकि श्रीरामचन्द्रजीके छूटे हुये एकही बाणसे जिसका भय दूर होगया, हम उसी हृदयमें ल
गे हुये बाणके कारण तुम्हारे अंग स्पर्श नहीं कर सकतीं ॥ १६ ॥ हाय क्या कष्ट है! कि तुमारे मरनें परभी हम तुमको हृदयसे न लगा स
कें। तारा इस प्रकारसे विलाप कर रहीथी कि नीलवीरनें वालिके हृदयसे बाण निकाला ॥ १७ ॥ वह बाण इस भांति निकला जैसे गिरि गुहा

भर्तारंनिहतंदृष्ट्वायन्नाद्यशतधाकृतम् ॥ सुहृच्चैवचभर्ताचप्रकृत्याचममप्रियः ॥ ११ ॥प्रहारेचपराक्रांतःशूरःपंचत्वमाग
तः॥पतिहीनातुयानारीकामंभवतुपुत्रिणी ॥१२॥ धनधान्यसमृद्धापिविधवेत्युच्यतेबुधैः॥ स्वगात्रप्रभवेवीरशेषेरुधिर
मंडले॥१३॥कृमिरागपरिस्तोमेस्वकीयेशयनेयथा॥रेणुशोणितसंवीतंगात्रंतवसमंततः॥१४॥परिरब्धुंनशक्नोमिभुजा
भ्यांप्लवगर्षभ॥कृतकृत्योद्यसुग्रीवोवैरेस्मिन्नतिदारुणे॥१५॥यस्यरामविमुक्तेनहृतमेकेषुणाभयम्॥शरेणहृदिलग्नेनगा
त्रसंस्पर्शनेतव ॥ १६ ॥ वार्यामित्वांनिरीक्षंतीत्वयिपंचत्वमागते ॥ उद्बबर्हशरंनीलस्तस्यगात्रगतंतदा ॥ १७ ॥
गिरिगह्वरसंलीनंदीप्तमाशीविषंयथा ॥ तस्यनिष्कृष्यमाणस्यबाणस्यापिबभौद्युतिः ॥ १८ ॥

❋ जहँ पिय तहीं सबै सुख साज ॥ पिय विहीन सुरपुरको सुख सखि आवे कौने काज। पिया विना धन धाम काम किमि जर जाओ यहराज ॥ पियाविन तिय चाहे सुख संपति परै तासु परगाज॥ विधवा होय सजावत तनुको लागत जाहि न लाज ॥ तापर दुःख पडैगो अतिहीजाय कहाँ सें भाज ॥ मिश्र यही कर्त्तव्य सबनको राम भजो शिरताज॥ ना हित पर मँझ धार सिन्धु विच डूबहि सकल समाज ॥

समें किसी प्रकारका भेद न पडनें पावे॥ ३० ॥ विविध भांतिके बहुत सारेरत्नोंकी बखेर करते २ वानर गण आगे २ चलें, और उनके पीछे २ शिविका चले ॥ ३१ ॥ हे वानर गण ! जिस प्रकारसे पृथ्वीमें राजा लोगोंकी महान धन सम्पत्ति देखी जाती है, वैसेही हमारे भाई बालिकी सत्क्रियाका निर्वाह होवै ॥३२॥ ऐसी आज्ञाको प्राप्त कर तार आदि वानर अंगदजीको आगे लेकर, जैसा सुग्रीवजीनें कहाथा वैसेही क्रिया करनेंका प्रारंभ करनें लगे, जैसे महाराजाधिराजोंकी क्रिया की जाती है॥ ३३ ॥ सब वानर गण रोते चिल्लाते पुकारते अपने परम बन्धु स्नेही मित्रके कारण चले जातेथे। तिनके पीछे वानरियें जोकि वालिके वशमें थीं चलीं ॥ ३४ ॥ जिनका प्राणपति मरगयाथा, ऐसी तारा इत्यादिक वानरी गण "वीर! वीर! प्यारे! प्यारे" शब्द करके रोदन करनें लगीं ॥ ३५ ॥ वह सब करुणा भरे शब्दसे रोतेर पीछेर चलीं उन वानरियोंके रोने और चिल्लानेंके शब्दसे उस वनमें के मानों ३६॥ सब वन और पर्वत रोदन करनें लगे, इस प्रकारसे गमन करपर्वतके नीचे बहती हुई नदीके तीरमें कि जहांसे जल निकटहीथा ॥३७॥ ऐसे निर्जन स्थानमें वनचारी वानरोंने चिता बनाई, उन वानर श्रेष्ठोंनें अपने कन्धोंसे शिविका चिताके निकटही उतार दी ॥ ३८ ॥ और शोकके मारे व्याकुल हो सबके सब एकान्तमें खडे हो रहे, तब तारा अपने पतिको शिविका पर पडा हुआ देखकर ॥ ३९ ॥ उसका शिर अपनी गोदीमें

विश्राणयंतोरत्नानिविविधानिबहूनिच ॥ अग्रतःप्लवगायांतुशिबिकातदनंतरम् ॥ ३१ ॥ राज्ञामृद्धिविशेषाहिदृश्यंतेभुवियादृशाः ॥ तादृशैरिहकुर्वंतुवानराभर्तृसत्क्रियाम् ॥ ३२ ॥ तादृशंवालिनःक्षिप्रंप्राकुर्वन्नौर्ध्वदेहिकम् ॥ अंगदंपरिरभ्याशुतारप्रभृतयस्तथा ॥ ३३ ॥ क्रोशंतःप्रययुःसर्वेवानराहतबांधवाः ॥ ततःप्रणिहिताःसर्वावानर्योस्यवशानुगाः ॥ ३४ ॥ चुक्रुशुर्वीरवीरेतिभूयःक्रोशंतिताःप्रियम् ॥ ताराप्रभृतयःसर्वावानर्योहतबांधवाः ॥ ३५ ॥ अनुजग्मुश्चभर्तारंक्रोशंत्यःकरुणस्वनाः ॥ तासांरुदितशब्देनवानरीणांवनांतरे ॥ ३६ ॥ वनानिगिरयश्चैवविक्रोशंतीवसर्वतः ॥ पुलिनेगिरिनद्यास्तुविविक्तेजलसंवृते ॥ ३७ ॥ चितांचक्रुःसुबहवोवानरावनचारिणः ॥ अवरोप्यततःस्कंधाच्छिबिकांवानरोत्तमाः ॥ ३८ ॥ तस्थुरेकतमाश्रित्यसर्वेशोकपरायणाः ॥ ततस्तारापतिंदृष्ट्वाशिबिकातलशायिनम् ॥ ३९ ॥ आरोप्यांकेशिरस्तस्यविललापसुदुःखिता ॥ हावानरमहाराजहानाथममवत्सल ॥ ४० ॥

कर भयंकराकार होगये और उसका प्राण वायु निकल गया ॥ २४ ॥फिर समस्त वानर और वानरपतिगण ऊंचे स्वरसे विलाप और परि
ताप करनें लगे ॥ २५ ॥ जब वानरनाथ वालि स्वर्गको चलागया तब किष्किन्धा नगरी और वहांकी समस्त फुलवाडियां व पर्वत शूने
होगये ॥ २६ ॥ वानरश्रेष्ठ गन्धर्वगणोंका पराजय करनेवाला वालिमहात्मा जब मारागया तब समस्त वानर गण प्रभाहीन होगये जिस महा
त्मा वालिनें गन्धर्वके साथ महायुद्ध कियाथा ॥ २७ ॥ उस गन्धर्वकानाम गोलभथा, उस महा बलवानसे पंद्रह वर्षतक विना दिन रात्रिमें विश्राम
लिये वालिने घोर युद्ध किया ॥ २८॥ फिर सोलहे वर्षमें वालिनें उसको माराथा, कराल डाढवाले वालिनें उस दुर्विनीत गन्धर्वको मार कर॥२९॥

ततोविचुक्रुशुस्तत्रवानराहतयूथपाः ॥ परिदेवयमानास्तेसर्वेप्लवगसत्तमाः ॥ २५ ॥ किष्किंधाह्यद्यशून्याचस्वर्गते
वानरेश्वरे ॥ उद्यानानिचशून्यानिपर्वताःकाननानिच ॥ २६ ॥ हतेप्लवगशार्दूलेनिष्प्रभावानराःकृताः ॥ येनदत्तं
महद्युद्धंगंधर्वस्यमहात्मनः ॥ २७ ॥ गोलभस्यमहाबाहोर्दशवर्षाणिपंचच ॥ नैवरात्रौनदिवसेतद्युद्धमुपशाम्य
ति ॥ २८ ॥ ततःषोडशमेवर्षेगोलभोविनिपातितः ॥ तंहत्वादुर्विनीतंतुवालीदंष्ट्राकरालवान् ॥ २९ ॥ सर्वाभयंकरो
स्माकंकथमेषनिपातितः ॥ ३० ॥ हतेतुवीरेप्लवगाधिपेतदावनेचरास्तत्रनशर्मलेभिरे ॥ वनेचराःसिंहयुतेमहावने
यथाहिगावोनिहतेगवांपतौ ॥ ३१ ॥ ततस्तुताराव्यसनार्णवप्लुतामृतस्यभर्तुर्वदनंसमीक्ष्यसा ॥ जगामभूमिंपरिरभ्य
वालिनंमहाद्रुमंछिन्नमिवाश्रितालता ॥ ३२ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०कि०द्वाविंशःसर्गः ॥ २२ ॥ ॥ छ ॥ ॥

हमारा सब काम महा भयसे उद्धार कियाथा। हाय! वह वालि क्यों मारागया ॥ ३० ॥ जिस प्रकार सिंहयुक्त महावनमें गोयूथपति मरजाय
तब वहांपर गायें सुख नहीं पातीं ऐसेही वानरनाथ वालिके मरजानेंसे वानरगण किसी प्रकारसे सुख न पासकें ॥ ३१ ॥
तब तारा महादुःखके समुद्रमें डूबकर अपने मृतक स्वामीका मुख निहार जैसे आश्रित लता छिन्नमहावृक्षको चिपट कर पृथ्वीमें गिरतीहै. वैसेही
वालिको लिपटाय भूमिपर गिरी ॥ ३२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

हे सुग्रीव ! तुम तारा और अंगदके साथ इस समय वालिके प्रेत कार्यकी क्रिया आरंभ कर पहले दाह कर्म निर्वाह करो॥१३॥नौकर चाकरोंको आ
ज्ञादो कि वह वालिकी दाह क्रिया करनेके लिये सूखे बहुत सारे दिव्य, चंदनादि काष्ठ ले आवें ॥ १४ ॥ तुम इस समय दीन अंगदको समझाओ
बुझाओ तुम स्वयं इस समय मूढ बुद्धि न करो, और इस समय यह पुरीअपनेही आधीन जानो ॥ १५ ॥ इस समय, माला, और विविध प्रकारके
वस्त्र, घृत तेल, और गन्धादि, जिस २ वस्तुका प्रयोजनहो वह सब अंगदलावें ॥ १६ ॥ हे सचिव तार ! तुम शीघ्र जाकर शिविका ले आओ
शीघ्रता करना इस समय विशेष भांतिसे गुणका कार्य जानना (अथार्तशिविका शीघ्रले आओगे तो अच्छा होगा)॥१७॥शिविकाको वहन करनेंके

कुरुत्वमस्यसुग्रीवप्रेतकार्यमनंतरम् ॥ तारांगदाभ्यांसहितोवालिनोदहनंप्रति ॥ १३ ॥ समाज्ञापयकाष्ठानिशुष्काणि
चबहूनिच ॥ चंदनानिचदिव्यानिवालिसंस्कारकारणात् ॥ १४ ॥ समाश्वासयदीनंत्वमंगदंदीनचेतसम् ॥ माभूर्बालि
शबुद्धिस्त्वंत्वदधीनमिदंपुरम् ॥ १५ ॥ अंगदस्त्वानयेन्माल्यंवस्त्राणिविविधानिच ॥ घृतंतैलमथोगंधान्यच्चात्रसमनं
तरम् ॥ १६ ॥ त्वंतारशिबिकांशीघ्रमादायागच्छसंभ्रमात् ॥ त्वरागुणवतीयुक्ताह्यस्मिन्कालेविशेषतः ॥ १७ ॥
सज्जीभवंतुप्लवगाःशिबिकावाहनोचिताः ॥ समर्थाबलिनश्चैवनिर्हरिष्यंतिवालिनम् ॥ १८ ॥ एवमुक्त्वाथसुग्रीवंसुमित्रानं
दवर्धनः ॥ तस्थौभ्रातृसमीपस्थोलक्ष्मणःपरवीरहा ॥ १९ ॥ लक्ष्मणस्यवचःश्रुत्वातारःसंभ्रांतमानसः ॥ प्रविवेशगुहां
शीघ्रंशिबिकासक्तमानसः ॥ २० ॥ आदायशिबिकांतारःसतुपर्यापतत्पुनः ॥ वानरैरुह्यमानांतांशूरैरुद्वहनोचितैः ॥ २१ ॥
दिव्यांभद्रासनयुतांशिबिकांस्यंदनोपमाम् ॥ पक्षिकर्मभिराचित्रांद्रुमकर्मविभूषिताम् ॥ २२ ॥

योग्य वानर गण बलवान वालिको उठानेंके लिये तैयार होवें ॥ १८ ॥ सुमित्राजीके आनंद वढानें वाले, परवीर घाती लक्ष्मणजी सुग्रीवसे यह
कहकर अपने भाईके निकट खडे रहे ॥ १९ ॥ सचिव श्रेष्ठ तार, लक्ष्मणजीके यह वचन सुनकर शिविका लानेंके लिये शीघ्रतासे गुहामें प्रवेश
करता हुआ ॥ २० ॥ वह तार उसके उठानेंके योग्य शूर वानर गण करके उठाई हुई पालकीको लेकर फिर उस स्थानमें आया जहां श्रीरामचन्द्र
जीथे ॥ २१ ॥ वह पालकी बहुतही उत्तमथी, उसमें बैठनेंके लिये अच्छेरआसन बनेथे, यह दिव्य और रथके तुल्यथी । उत्तम चित्रित काम इसमें

लक्ष्मी और आनंदित यश समस्तही परित्याग करते हैं ॥ ६॥ हे वीरा! हम इस मरणावस्थामें जो कुछ कहते हैं वह दुष्कर होनेसें भी तुमको अवश्य करना चाहिये क्योंकि ऐसे समयकी बात सब कोई मानते हैं ॥ ७ ॥ सुखके योग्य और सुखसेही पालनकर बडे हुये बुद्धिमान् बालक अंगदको देखो कि जो रोताहुआ पृथ्वीपर पडाहै ॥ ८ ॥सो हमारे प्राणसेभी अधिक प्यारे गुणवान् इस पुत्रको अपने पुत्रकी समान पालन करना, पहले जिस प्रकार हम इसके समस्त प्रयोजन सिद्धकरतेथे वैसेही अब तुम करते रहना ॥ ९ ॥ हे वानरेश्वर! जैसे प्रथम हम इसके सब प्रकारसे पिता, दाता, परित्राता, रक्षक और भयमें अभय देनेवालेथे, वैसेही इस समय तुम हो, कारण कि पिता और पितृव्य समानही

अस्यांत्वहमवस्थायांवीरवक्ष्यामियद्वचः ॥ यद्यप्यसुकरंराजन्कर्तुमेवत्वममर्हसि ॥ ७ ॥ सुखार्हंसुखसंवृद्धंबालमेनम बालिशम् ॥ बाष्पपूर्णमुखंपश्यभूमौपतितमंगदम् ॥ ८ ॥ ममप्राणैःप्रियतरंपुत्रंपुत्रमिवौरसम् ॥ मयाहीनमही नार्थंसर्वतःपरिपालय ॥ ९ ॥ त्वमप्यस्यपितादातापरित्राताचसर्वशः ॥ भयेष्वभयदश्चैवयथाहंप्लवगेश्वर ॥ १० ॥ एषतारात्मजःश्रीमांस्त्वयातुल्यपराक्रमः ॥ रक्षसांचवधेतेषामग्रतस्तेभविष्यति ॥ ११ ॥ अनुरूपाणिकर्माणिवि क्रम्यबलवान्रणे ॥ करिष्यत्येषतारेयस्तेजस्वीतरुणोंगदः ॥ १२ ॥ सुषेणदुहिताचेयमर्थसूक्ष्मविनिश्चये ॥ औत्पा तिकेचविविधेसर्वतःपरिनिष्ठिता ॥ १३ ॥ यदेषासाध्वितिब्रूयात्कार्यंतन्मुक्तसंशयम्॥नहितारामतंकिंचिदन्यथापरि वर्तते ॥ १४ ॥ राघवस्यचतेकार्यंकर्तव्यमविशंकया ॥ स्यादधर्मोह्यकरणेत्वांचहिंस्यादमानितः ॥ १५ ॥

हैं ॥ १० ॥ तुम्हारी तुल्यपराक्रमवान् यह श्रीमान् ताराकुमार अंगदराक्षसोंके वध करनेके समय तुम्हारे आगे २ चलेगा ॥ ११ ॥ यह तेजस्वी युवा तारापुत्र बलवान अंगद रणमें विक्रम प्रगट करके हमारीही समान समस्त कार्य करैगा ॥ १२ ॥ और सुषेणकी पुत्री तारा सूक्ष्मार्थके निर्ण य करने, वा उत्पाती कामोंका विचार करनेमें बडी निपुण है ॥ १३ ॥यह साध्वी जो कुछ कहै, उसको तुम संशयरहित होकर करना, देखो! इस ता राकी सम्मति कभी अन्यथा न जाय ॥ १४ ॥ तुम निःशंकचित्त होकर श्रीरामचन्द्रजीके कार्यकी साधना करना, यदि न करोगे तो अधर्म होगा

करतेहैं ॥ ४२ ॥ इन तीनों लोकोंकी सृष्टि करके ब्रह्माजीनेंही इनकी सब विधि नियत कीहै, सो सब लोक उस विधिकेही वशमें रहतेहैं और किसी प्रकारसेभी उस विधिका उल्लंघन करनेंको समर्थ नहीं होते, जब तुम्हारा पुत्र युवराजपदवीको प्राप्त होगा, तिस्से तुम फिरभी वालिकी संयोग जनित प्रीतिको प्राप्त होगी और सुख भोग करती रहोगी ॥ ४३ ॥ विधाताने शूरलोगोंका विधानही इस प्रकारसे निर्माण कियाहै; तुम समझ लो कि वीरोंकी स्त्रियां कभी विलाप नहीं करतीं प्रभावशाली और परवीरके हनन करनेवाले महात्मा श्रीरामचंद्रजीने जब इस प्रकारसे समझाया तब सुवेश धारिणी वीरनारी तारानें विलाप करना छोड दिया॥४४॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४॥

त्रयोपिलोकाविहितंविधानंनातिक्रमंतेवशगाहितस्य॥प्रीतिंपरांप्राप्स्यसितांतथैवपुत्रश्चतेप्राप्स्यतियौवराज्यम्४३॥
धात्राविधानंविहितंतथैवनशूरपत्न्यःपरिदेवयंति ॥ आश्वासित्रातेनमहात्मनातुप्रभावयुक्तेनपरंतपेन॥ सावीरपत्नी
ध्वनतासुखेनसुवेषरूपाविररामतारा॥४४॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवा०आ०किष्किंधाकांडेचतुर्विंशःसर्गः ॥ २४ ॥
ससुग्रीवंचतारांचसांगदांसहलक्ष्मणः ॥ समानशोकःकाकुत्स्थःसांत्वयन्निदमब्रवीत् ॥ १ ॥ नशोकपरितापेनश्रेय
सायुज्यतेमृतः ॥ यदत्रानंतरंकार्यंतत्समाधातुमर्हथ ॥ २ ॥ लोकवृत्तमनुष्ठेयंकृतंवोबाष्पमोक्षणम् ॥ नकालादुत्त
रंकिंचितपरंकर्मउपासितुम् ॥ ३ ॥ नियतिःकारणंलोकेनियतिःकर्मसाधनम् ॥ नियतिःसर्वभूतानांनियोगेष्विह
कारणम् ॥ ४ ॥ नकर्ताकस्यचित्कश्चिन्नियोगेनापिचेश्वरः ॥ स्वभावेवर्ततेलोकस्तस्यकालःपरायणम् ॥ ५ ॥

सुग्रीव,तारा,और अंगद इन समान शोक सम्पन्न उन लक्ष्मण सहित श्रीरामचंद्रजी सबको समझानेके योग्य यह वचन बोले ॥ १ ॥ जिस्से मृतक जनका भला होवे तुम सबको वही करना चाहिये इसलिये शोक और संतापसे कुछ प्रयोजन नहीं अब तुम सब वालिकी पारलौकिक क्रियाओंको करो ॥ २ ॥ लोकाचारकी रीतिको अवश्य करना चाहिये, इसलिये रो पीटकर तुम सबनें लोकरीतको पाला किन्तु काल उल्लंघन करनेके लिये,तुम्हारे किसी कर्मका साधन न होगा क्योंकि कालको उल्लंघन करनेंमें कोई समर्थ नहीं हो सकता ॥३॥ नियति अर्थात् कालही लोकके उत्पन्न करनेका कारण है कालही कर्म साधन करनेका कारणहै और कालही सब प्राणियोंके नियोग करनेंमें कारण है ॥४॥ कोईभी किसीका कर्त्ता नहींहैं कोईभी कि

जिनवानरेन्द्रके जीवन समयमें शत२सहस्र २अर्बुद २ वानर इनकी आशा बांधकर जीवन धारण करतेथे. यह वही वानरश्रेष्ठ इस समय कालकवल में पतित होतेहैं ॥ ६ ॥ जब कि यह नीतिशास्त्र द्वारा राजकार्य देखकरसाम, दाम, क्षमादि परायण होकर धर्मजितोंके मार्गको प्राप्त हुये, तुम फिर इनके लिये शोक क्यों करतीहो ? ॥ ७ ॥ हे निन्दारहितचरितवाली ! समस्त वानर गण तुम्हारे पुत्र अंगद और वानर पतिका समस्त राज्य, तुम्हारेही वशमें होगा, इसमें कुछभी संदेह नहींहै ॥ ८ ॥ इसलियेइन शोकसे संतापित अंगदजीको और सुग्रीवजीको कुछ आज्ञा दीजिये; तुम करके प्रेरितहो यह अंगद यहांका राज्य करें ॥ ९ ॥ यहअंगद पुत्र तुम्हारा विद्यमानहै इसीलिये तुम शोक न करो और

यस्मिन्हरिसहस्राणिशतानिनियुतानिच ॥ वर्तयंतिकृताशानिसोयंदिष्टांतमागतः ॥ ६ ॥ यदयंन्यायदृष्टार्थः सामदानक्षमापरः ॥ गतोधर्मजितांभूमिंनैनंशोचितुमर्हसि ॥ ७ ॥ सर्वेचहरिशार्दूलाःपुत्रश्चायंतवांगदः ॥ हर्यृक्षप तिराज्यंचत्वत्सनाथमनिंदिते ॥ ८ ॥ ताविमौशोकसंतप्तौशनैःप्रेरयभामिनि ॥ त्वयापरिगृहीतोयमंगदःशास्तुमेदि नीम् ॥ ९ ॥ संततिश्चयथादृष्टाकृत्यंयच्चापिसांप्रतम् ॥ राज्ञस्तत्क्रियतांसर्वमेषकालस्यनिश्चयः ॥ १० ॥ संस्कार्यो हरिराजस्तुअंगदश्चाभिषिच्यताम् ॥ सिंहासनगतंपुत्रंपश्यंतीशांतिमेष्यसि ॥ ११ ॥ सातस्यवचनंश्रुत्वाभर्तृव्यस नपीडिता ॥ अब्रवीदुत्तरंताराहनूमंतमवस्थितम् ॥ १२ ॥ अंगदप्रतिरूपाणांपुत्राणामेकतःशतम् ॥ हतस्या प्यस्यवीरस्यगात्रसंश्लेषणंपरम् ॥ १३ ॥

वालिकी समस्त क्रिया इन अंगदको करनी चाहिये, क्योंकि इस समय इन सब कर्मोंका करनाहीं ठीक २ होगा ॥ १० ॥ वानरराज वालिका अग्निसंस्कार करके अंगदका राज्याभिषेक कीजिये इसमें कुछ संदेह नहीं है. कि जब आप अपने पुत्रको सिंहासन पर बैठे देखेंगी तब अवश्यही शान्ति प्राप्त करेंगी ॥ ११ ॥ हनुमानजीके यहवचन सुनकर स्वामीके मरणसे अति दुःखित तारा वहां खडे हुये हनुमान जीसे बोली ॥ १२ ॥ अंगदकी समान शतपुत्रोंसे अधिक इन प्राण दिये वीरश्रेष्ठ हमारे स्वामीका शरीर स्पर्श करना निःसंदेह हमारे लिये

शीघ्र जा पहुंची ॥२९॥शोकके मारे चंचल स्वभावसम्पन्न मनस्विनी तारा शुद्धभावयुक्त, रणस्थलमें उत्कर्ष कर्म करनें वाले श्रीरामचंद्रजीके समीप कहनें लगी ॥ ३० ॥ आप दुर्द्धर्ष, आपके गुण किसीके प्रमाण करनेंके योग्यनहीं, इन्द्रियोंको वशमें रखनेंवाले; उत्तम धर्म युक्त सावधान उदार कीर्ति, पृथ्वीके तुल्य क्षमा करनेंवाले और दिव्य देह अरुणनयन ॥ ३१ ॥आपके अंग अतिशय दृढ आप महाबलवान् धनुष बाण धारण करनेंवाले दिव्य शरीरधारी लक्ष्मीयुक्त राज्य छोड अपने अंगसे उत्पन्न मंगल कर्म युक्तहो ॥३२॥ आपनें जिस बाणसे हमारे प्राण सम प्यारे पति वालिको माराहै, उसी बाणसे आप हमकोभी मार डालिये, इस बाणसे मरनेंके कारण हम उनके निकट पहुंच जांयगी, क्योंकि हमारे प्राणपति हमारे विना

तंसासमासाद्यविशुद्धसत्वंशोकेनसंभ्रांतशरीरभावा॥मनस्विनीवाक्यमुवाचताराराममंरणोत्कर्षणलब्धलक्ष्यम्॥३०॥
त्वमप्रमेयश्चदुरासदश्चजितेंद्रियश्चोत्तमधर्मकश्च ॥ अक्षीणकीर्तिश्चविचक्षणश्चक्षितिक्षमावान्क्षतजोपमाक्षः ॥ ३१ ॥
त्वमात्तबाणासनबाणपाणिर्महाबलःसंहननोपपन्नः ॥ मनुष्यदेहाभ्युदयंविहायदिव्येनदेहाभ्युदयेनयुक्तः ॥ ३२ ॥
येनैवबाणेनहतःप्रियोमेतेनैवबाणेनहिमांजहीहि ॥ हतागमिष्यामिसमीपमस्यनमांविनावीररमेतवाली ॥३३॥ स्वर्गे
पिपद्मामलपत्रनेत्रसमेत्यसंप्रेक्ष्यचमामपश्यन् ॥ नह्येषउच्चावचताम्रचूडाविचित्रवेषाप्सरसोभजिष्यत् ॥ ३४ ॥
स्वर्गेपिशोकंचविवर्णतांचमयाविनाप्राप्स्यतिवीरवाली ॥रम्येनगेंद्रस्यतटावकाशेविदेहकन्यारहितोयथात्वम्॥३५॥
त्वंवेत्थतावद्वनिताविहीनःप्राप्नोतिदुःखंपुरुषःकुमारः ॥ तत्त्वंप्रजानन्जहिमांनवालीदुःखंममादर्शनजंभजेत ॥ ३६ ॥

दूसरी स्त्रीसे रमण नहीं करते॥ ३३ ॥ हे अमलकमलदलनेत्र ! हमारे प्राणनाथ स्वर्गमें पहुंच हमको न देखकर अनेक प्रकारके फूल मणि और मुक्ता आदिकोंसे जूडागूंथे विचित्र अप्सराओंकोभी भजना न करेंगे॥३४॥ हे वीर! आप जिस प्रकारसे जानकीके विरहमें दुःखितहो हिमालयके मनो हर निम्नदेशमेंभी रमण नहीं करते वैसेही हमारे विना वालि स्वर्गमें शोकके मारे निःसंदेह पीले पड जांयगे ॥ ३५ ॥ आप जानतेहैं कि स्त्रीके विना कुमार पुरुष दुःखको प्राप्त होताहै, सो यह जानकर आप हमको मार डालिये क्योंकि फिर वालिको हमारे न देखनेंका दुःख न मिलैगा ॥ ३६ ॥

शोक संतापित हृदयसे वैधव्ययंत्रणाका भोग करैंगी , इसमें कुछ संदेह नहींहै ॥ १६ ॥ हे वत्स अंगद! तुम्हारे कनिष्ठ तात सुग्रीव इस समय
क्रोधसे मूर्च्छित होरहेहैं. हम नहीं कह सकतीं कि तुम कुमार उन सुग्रीवसे सुखके योग्य होकर किस प्रकारकी दुरावस्थाको भोगोगे ॥ १७ ॥
हे वत्स पुत्र! इस समय तुम अपनें धर्मवत्सल पिताको भली भांतिसे देखलो, क्योंकि इस समयसे उनका दर्शन महादुर्लभ हो जायगा ॥ १८ ॥
हे नाथ! हे वीरश्रेष्ठ! इस समय तुम सदाके लिये परदेशको जातेहो इसलिये इस अपने पुत्रको समझाते बुझाते जाओ और हमारे प्रति कुछ आज्ञा
करके पुत्रका मस्तक सूंघिये! ॥ १९ ॥ तुम्हें मारकर श्रीरामचंद्रजीनें बडा भारी कर्म किया,वह ऐसा करके उस प्रतिज्ञासे उऋण हुये जो उन्होंनें सुग्रीव

ललितश्चांगदोवीरःसुकुमारःसुखोचितः ॥ वत्स्यतेकामवस्थांमेपितृव्येक्रोधमूर्च्छिते ॥ १७॥ कुरुष्वपितरंपुत्रसुदृष्टं
धर्मवत्सलम् ॥ दुर्लभंदर्शनंतस्यतववत्सभविष्यति ॥ १८॥ समाश्वासयपुत्रंत्वंसंदेशंसंदिशस्वमे ॥ मूर्ध्निचैनंसमाघ्रा
यप्रवासंप्रस्थितोह्यसि ॥ १९ ॥ रामेणहिमहत्कर्मकृतंत्वामभिनिघ्नता ॥ आनृण्यंतुगतंतस्यसुग्रीवस्यप्रतिश्रवे ॥ २० ॥
सकामोभवसुग्रीवरुमांत्वंप्रतिपत्स्यसे ॥ भुंक्ष्वराज्यमनुद्विग्नःशस्तोभ्रातारिपुस्तव ॥ २१ ॥ किंमामेवंप्रलपतींप्रि
यांत्वंनाभिभाषसे ॥ इमाःपश्यवराबह्वीर्भार्यास्तेवानरेश्वर ॥ २२ ॥ तस्याविलपितंश्रुत्वावानर्यःसर्वतश्चताः ॥
परिगृह्यांगदंदीनादुःखार्ताःप्रतिचुक्रुशुः ॥ २३ ॥ किमंगदंसांगदवीरबाहोविहाययातोसिचिरंप्रवासम् ॥ नयुक्तमेवं
गुणसंनिकृष्टंविहायपुत्रंप्रियचारुवेषम् ॥ २४ ॥

के साथ कीथी हे सुग्रीव!तुम्हारे शत्रु भ्राता अब मारे गये,इस समय तुम सफलमनोरथहो रुमाको प्राप्त करो,और उद्विग्नता छोडकर राज्य भोगो।२०॥२१
हे वानरेश्वर! हम आपकी प्रियभार्या आपके सन्मुखही रोदन कर रही हैं,सो तुम हमसे क्यों नहीं बोलते।यह देखिये तुम्हारी औरभी बहुतसारी स्त्रियां य
हां आकर विलाप कर रहीं हैं॥ २२ ॥ वे वानरी ताराके इस भांति विलाप कलाप सुन और दूसरी वानरियें अंगदको ग्रहणकर दुःखित हो रोदन क
रनें लगीं ॥ २३ ॥ हे अंगदधारिन् वीरवर! इस गुण युक्त सुन्दरबाजूबंद वाले अंग प्रिय पुत्र अंगदको परित्याग करके तुम सदाके लिये विदेश

सहोदर भ्राताका मारा जानाही जिसके शरीरके अन्यान्यभाग,व लोमहैं,और सहोदर भाईके विनाशसे उत्पन्न हुआ संताप जिसके हाथ, नेत्र, शिर, और दंतहैं, वह मतवाला पापमय महाहाथी, नदीके किनारेकी समान हमको वोझसे गिराये देताहै ॥ १७ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ! पीला सुवर्ण अग्निके मध्यमें तपायेजानेंसे नौसादरके द्वारा जिस प्रकार मैलको परित्याग कर देताहै.वैसेही इस असह पापके द्वारा जन्म जन्मांतरोंमें बटोरा हुआ हमारा पुण्य दूर होरहाहै ॥ १८ ॥ हे रामचंद्रजी ! अंगदजीके शोक संताप करनेंसे महा बलवान् वानरश्रेष्ठ गणोंके इसकुलका आधा भाग तो नाशको प्राप्त हुआ, और आधा भाग हमारे पास जीवितरहा, ऐसा हम विचार करतेहैं. ॥ १९ ॥ हेवीरवर ! पुत्रका होना सुलभहै, अपने सब सुजन सुलभ

सोदर्यघातापरगात्रवालःसंतापहस्ताक्षिशिरोविषाणः ॥ एनोमयोमामभिहंतिहस्तीदृप्तोनदीकूलमिवप्रवृद्धः ॥ १७ ॥
अहोबतेदंनृवराविषह्यंनिवर्ततेमेहृदिसाधुवृत्तम् ॥ अग्नौविवर्णपरितप्यमानंकिट्टंयथाराघवजातरूपम् ॥ १८ ॥ महा
बलानांहरियूथपानामिदंकुलंराघवमन्निमित्तम् ॥ अस्यांगदस्यापिचशोकतापादर्धस्थितप्राणमितीवमन्ये ॥ १९ ॥
सुतःसुलभ्यःसुजनःसुवश्यःकुतस्तुपुत्रःसदृशोंगदेन ॥ नचापिविद्येतसवीरदेशोयस्मिन्भवेत्सोदरसंनिकर्षः ॥ २० ॥
अद्यांगदोवीरवरोनजीवेज्जीवेतमातापरिपालनार्थम् ॥ विनातुपुत्रंपरितापदीनासानैवजीवेदितिनिश्चितंमे ॥ २१ ॥
सोहंप्रवेक्ष्याम्यतिदीप्तमग्निंभ्रात्राचपुत्रेणचसख्यमिच्छन् ॥ इमेविचेष्यंतिहरिप्रवीराःसीतांनिदेशेपरिवर्तमानाः॥२२॥

वशमें हो सकतेहैं, परन्तु अंगदकी समान गुणवान पुत्र कहां प्राप्त होगा?क्योंकि यह रो २कर अपने प्राणद रहेहैं और ऐसा देशभी कहीं नहीं है; जहांपर हम अपने उन भ्राता वालिको प्राप्त कर सकेंगे ॥ २० ॥ इस समय वालिके विना हम जीवन धारण नहीं कर सकतेहैं । हां तारा यदि जीवित रहैं, तो वह केवल अंगदका प्रतिपालन करनेंहीके लिये वचेंगी । परन्तु पुत्रके विना वहभी कदापि न जियेंगी, यही हमारा स्थिर निश्चयहै ॥ २१ ॥ इसलिये हम इस पापी जीवनको रखनेंकी इच्छा कदापि नहीं करते । हम अपने भ्राता वालि और अंगदजीसे मित्रताईकी इच्छा करके अग्निमें प्रवेश करें

तारानें देखा ॥ २६ ॥ इन सबको लांघ रणस्थलमें गिरे अपनेंस्वामीको देखकर व्यथित और उद्विग्नहो तारा गिर पडी ॥ २७ ॥
फिर तारा सोते हुएकी समान उठकर "हा आर्यपुत्र!" ऐसा कह पतिको मृत्युके पाशसे बँधा देख रोने लगी ॥ २८ ॥ सुग्रीवजी कुररीकी समान
रोती हुई ताराको और उसके पुत्र अंगदको देख विषादके मारे महा समुद्रमें डूबगये ॥ २९ ॥ इ० श्रीम० वा० आ०कात्यायनकुमार पंडित
ज्वालाप्रसादमिश्रकृत भाषानुवादे किष्किन्धाकांडे एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥ चंद्रवदनी तारा श्रीरामचंद्रजीके धनुषसे छूटे प्राण विनाशी बाणसे
मरे हुए देख अपने पति ॥ १ ॥ वालिके निकट जाकर बाणसे हत हुए उस कुंजरकी समान गिरे हुएसे लिपट भली भांति मिली ॥ २ ॥ फिर

तानतीत्यसमासाद्यभर्तारंनिहतंरणे ॥ समीक्ष्यव्यथिताभूमौसंभ्रांतानिपपातह ॥ २७ ॥ सुप्तेवपुनरुत्थायआर्यपुत्रे
तिवादिनी ॥ रुरोदसापतिंदृष्ट्वासंवीतंमृत्युदामभिः ॥ २८ ॥ तामवेक्ष्यतुसुग्रीवःक्रोशंतींकुररीमिव ॥ विषादमगमत्कष्टं
दृष्ट्वाचांगदमागतम् ॥ २९ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० किष्किंधाकांडेएकोनविंशःसर्गः ॥ १९ ॥ छ ॥ रामचापवि
सृष्टेनशरेणांतकरेणतम् ॥ दृष्ट्वाविनिहतंभूमौतारातारधिपानना ॥ १ ॥ सासमासाद्यभर्तारंपर्यष्वजतभामिनी ॥ इषुणा
भिहतंदृष्ट्वावालिनंकुंजरोपमम् ॥ २ ॥ वानरंपर्वतेंद्राभंशोकसंतप्तमानसा ॥ तारातरुमिवोन्मूलंपर्यदेवयतातुरा ॥ ३ ॥
रणेदारुणविक्रांतप्रवीरप्लवतांवर ॥ किमिदानींपुरोभागामद्यत्वंनाभिभाषसे ॥ ४ ॥ उत्तिष्ठहरिशार्दूलभजस्वशय
नोत्तमम् ॥ नैवंविधाःशेरतेहिभूमौनृपतिसत्तमाः ॥ ५ ॥ अतीवखलुतेकांतावसुधावसुधाधिप ॥ गतासुरपितांगात्रै
र्मांविहायनिषेवसे ॥ ६ ॥ व्यक्तमद्यत्वयावीरधर्मतःसंप्रवर्तता ॥ किष्किंधेवपुरीरम्यास्वर्गमार्गेविनिर्मिता ॥ ७ ॥

पर्वतकी समान दीप्तिमान पडे हुए वृक्षकीनांई वालिको देखकर शोक और संतप्त हृदयसे विलाप करने लगी ॥ ३ ॥ हे दारुणविक्रम! वानर
श्रेष्ठ,वीरवर! इस समय तुम अत्यन्त अपराधिनी हमसे क्यों नहीं बोलते हो? ॥ ४ ॥ हे वानरश्रेष्ठ! उठकर उत्तम सेजपर शयन करो. नृपश्रेष्ठ
इस प्रकार पृथ्वीके ऊपर शयन नहीं करतेहैं ॥ ५ ॥ हे वसुधादिप! यह पृथ्वी तुमको अत्यन्त प्यारीहै. क्योंकि हमको छोडकरभी तुम
शरीरसे पृथ्वीको चिपटाये हुएहो ॥ ६ ॥ हे वीर! हम जान गईं कि तुम यहां धर्म और शास्त्रके अनुसारही चलतेथे. इससे कोई दूसरी अति
९

आपने कार्यद्वारा पूरा करदिया, परन्तु अब हम इस निंदनीय जीवनके भोग करनेकी इच्छा नहीं करते ॥ ४ ॥ वालि हमारे भाईके मरजानेंसे यह तारा अंगद, और पुरवासी लोग दुःखित व संतप्त होकर रोदन कर रहेहैं इसलिये राज्यके लाभ करनेंको हमारा मन सुख शान्ति प्राप्त नहीं करता ॥ ५ ॥ क्रोधके कारण, वैर अमर्षके हेतु, धर्षणा और अपमानता होनेंसे पहले भ्राताका वध हमारी मतिके अनुकूलथा। परन्तु हे इक्ष्वाकु श्रेष्ठ! वानरराज वालिके मारेजानेंसे इस समय हम अत्यन्तही तीव्रतासे संतापित होरहेहैं ॥ ६ ॥ उस पर्वतश्रेष्ठ ऋष्यमूक शैलपर वासकर, जैसे तैसे जीविका निर्वाह करना हम अच्छा समझते हैं, परन्तु भइयाको मारकर स्वर्ग प्राप्त होनाभी हमें अच्छा नहीं लगता ॥ ७ ॥ इन मतिमान्

अस्यांमहिष्यांतुभृशंरुदंत्यांपुरेऽतिविक्रोशतिदुःखतप्ते ॥ हतेनृपेसंशयितेंगदेचनरामराज्येरमतेमनोमे ॥ ५ ॥ क्रो
धादमर्षादतिविप्रधर्षाद्भ्रातुर्वधोमेनुमतःपुरस्तात् ॥ हतेत्विदानींहरियूथपेस्मिन्सुतीक्ष्णमिक्ष्वाकुवरप्रतप्स्ये ॥ ६ ॥
श्रेयोद्यमन्येममशैलमुख्येतस्मिन्हिवासश्चिरमृष्यमूके ॥ यथातथावर्तयतःस्ववृत्त्यानेमंनिहत्यत्रिदिवस्यलाभः ॥
॥ ७ ॥ नत्वांजिघांसामिचरेतियन्मामयंमहात्मामतिमानुवाच ॥ तस्यैवतद्रामवचोनुरूपमिदंवचःकर्मचमेनुरूपम्
॥ ८ ॥ भ्राताकथंनाममयागुणस्यभ्रातुर्वधंरामविरोचयेत ॥ राज्यस्यदुःखस्यचवीरसारंविचिंतयन्कामपुरस्कृतोपि
॥ ९ ॥ वधोहिमेमतोनासीत्स्वमाहात्म्यव्यतिक्रमात् ॥ ममासीद्बुद्धिदौरात्म्यात्प्राणहारीव्यतिक्रमः ॥ १० ॥

महात्मानें हमसे कहाथा, कि हम तुमको मारनेंकी इच्छा नहीं रखते हैं; तुम जहां इच्छाहो वहां चले जाओ, यह उनके वचन उन्हीं महात्माके योग्यथे। परन्तु यह हमारे वचन और भ्राताके मारनेंका कर्म करानेंवाली दुष्ट बुद्धि हमारे लायक हुई. कि हम नीचनें उनको मारही डाला॥ ८ ॥ काम भोगमें अत्यन्त शक्तिमान हमनें भ्राता होकर भी राज्य और उसके सुखका, व भ्राताके वधरूप दुःखका अंतर न विचारा! हाय! महागुण संपन्न भाईका वध किस प्रकारसे सम्मत और रुचिकर हो सकताहै॥ ९ ॥हाय! अपनें बडेपनका उल्लंघन होना विचार हमारा वध करनेंको, उन महात्माकी इच्छा नथी; परन्तु भ्राताके प्राण हरनेंवाले हम नीचनें बुद्धिकी दुष्टताके हेतु, निःसंदेह उस महात्माको उल्लंघन करदिया ॥ १० ॥

वालिको देख भागते हुए वानरोंके निकट गमन करके कहने लगी ॥७॥ हे वानरगण ! तुम लोग जिस राजसिंहके आगे होकर युद्ध करतेथे. इस
समय उसको त्याग चित्तमें भ्रमितहो क्यों भागे जातेहो? ॥ ८ ॥ राज्यकेलिये उन वानर राजके क्रूर भ्राता सुग्रीवजीसे भेजे जाकर श्रीरामचंद्रजीनें
दूर खडेहो दूर जानें वाले बाणसे क्या उन वानरराज वालिको मार डाला?॥९॥कपिकी स्त्रीके वचन सुनकर कामरूपी वानर गण वालिकी स्त्री तारासे
कालोचित प्रबोध वचन कहनें लगे ॥ १० ॥ हे तारे ! आपका शत्रु अभी जीविततहै इसलिये आप लौट जाकर अंगदकी रक्षा और पालन कीजिये का
ल, राम रूप धर वालिको अपने पुरमें लिये जाताहै ॥ ११ ॥ वालिके द्वारा छोडे हुए बहुतसारे वृक्ष और शिलाओंको व्यर्थ करके श्रीरामचंद्रजीनें

वानरराजसिंहस्ययस्ययूयंपुरःसराः ॥तंविहायसुवित्रस्ताःकस्माद्द्रवतदुर्गताः॥ ८ ॥ राज्यहेतोःसचेद्भ्राताभ्रात्राक्रूरे
णप्रातितः ॥ रामेणप्रसृतैर्दूरान्मार्गणैर्दूरपातिभिः ॥ ९ ॥ कपिपत्न्यावचःश्रुत्वाकपयःकामरूपिणः ॥ प्राप्तकालमवि
श्लिष्टमूचुर्वचनमंगनाम् ॥१०॥ जीवपुत्रेनिवर्तस्वपुत्रंरक्षस्वचांगदम् ॥ अंतकोरामरूपेणहत्वानयतिवालिनम् ॥११॥
क्षिप्तान्वृक्षान्समाविध्यविपुलाश्चतथाशिलाः ॥ वालीवज्रसमैर्बाणैर्वज्रेणेवनिपातितः ॥ १२ ॥ अभिभूतमिदंसर्वंवि
द्रुतंवानरंबलम् ॥ अस्मिन्प्लवगशार्दूलेहतेशक्रसमप्रभे ॥ १३ ॥ रक्ष्यतांनगरीशूरैरंगदश्चाभिषिच्यताम् ॥ पदस्थंवा
लिनःपुत्रंभजिष्यंतिप्लवंगमाः ॥ १४ ॥ अथवारुचितंस्थानमिहतेरुचिरानने ॥ आविशंतिचदुर्गाणिक्षिप्रमद्यैववा
नराः ॥ १५ ॥ अभार्याःसहभार्याश्चसंत्यत्रवनचारिणः ॥ लुब्धेभ्योविप्रलब्धेभ्यस्तेभ्योनःसुमहद्भयम् ॥ १६ ॥

इन्द्रकी समान वालिको वज्र तुल्य बाणके प्रहारसे मार डाला ॥ १२ ॥ हे वानरराजप्रिये ! जब इन्द्र समान वह वानरराज वालि मारे गये; तब
यह समस्त वानर गण श्रीरामचंद्रजीके बलसे भीत होकर चारोंओरको भागतेहैं ॥ १३ ॥ इस समय आप वीर गणोंसे नगरीकी रक्षा करके अंग
दको राज्य सिंहासन पर बैठाल दीजिये, जब वह राज्यपर बैठ जायँगे तो सब वानर गण इन वालिपुत्रकी सेवा करेंगे ॥ १४ ॥ हे सुमुखी ! अथवा
यह स्थान तुमको अच्छा न लगेगा तो सुग्रीवादि वानरगण शीघ्रतासे इस स्थानमें और किले आदिकमें प्रवेश करेंगे ॥ १५ ॥ जब यह लोग किलेमें
चले जायगे, तो भार्याहीन वा भार्यासहित टिके हुए जो वनचारी वानरगण इस स्थानमें टिकेहैं उनको सुग्रीवादि वानर गणोंसे महा भय प्राप्त

में टिका हुआ सर्प निकलता है, उस बाणके निकलनेके समय प्रभाभीहुई ॥ १८ ॥ जिस प्रकार अस्ताचलके ऊपर उदय हुई सूर्य नारायणकी द्युतिशोभायमान होती है। तत्पश्चात् वालिके सब आहतस्थानोंमें रुधिरका प्रवाह निकला ॥ १९ ॥ जैसे धराधरसे तांबा और गेरूसे मिलकर जल धारा निकलती है, रणकी धूलमें लोटते हुये अपने पतिको॥ २० ॥नेत्रवारिसे तारा धोती हुई, और सब अंगोंमें रक्त लगे मृतक पतिको देख॥२१॥ तारा पिंगल नेत्र निज सुत अंगदसे कहनें लगी कि हे बेटा! अंतकालके समयको प्राप्त हुये अपनें पिताकी अतिदारुण अवस्थाको देखो ॥ २२ ॥ जो शत्रुता बलात्कारसे इन्होंनें की यह उसी कर्मका फल है, हे पुत्र! प्रातःकालीन सूर्य भगवानके समान ज्वलित देह, और यमसदनको जाते हुये

अस्तमस्तकसन्नद्धरश्मेर्दिनकरादिव ॥ पेतुःक्षतजधारास्तुव्रणेभ्यस्तस्यसर्वशः ॥ १९ ॥ ताम्रगैरिकसंपृक्ताधाराइवधराधरात् ॥ अवकीर्णंविमार्जंतीभर्तारंरणरेणुना ॥ २० ॥अस्रैर्नयनजैःशूरंसिषेचास्त्रसमाहतम् ॥ रुधिरोक्षितसर्वांगंदृष्ट्वाविनिहतंपतिम् ॥ २१ ॥ उवाचतारापिंगाक्षंपुत्रमंगदमंगना ॥ अवस्थांपश्चिमांपश्यपितुःपुत्रसुदारुणाम् ॥ २२ ॥ संप्रसक्तस्यवैरस्यगतोंतःपापकर्मणा ॥ बालसूर्योज्ज्वलतनुंप्रयातंयमसादनम्॥२३॥अभिवादयराजानंपितरंपुत्रमानदम् ॥ एवमुक्तःसमुत्थायजग्राहचरणौपितुः ॥ २४ ॥ भुजाभ्यांपीनवृत्ताभ्यामंगदोहमितिब्रुवन् ॥ अभिवादयमानंत्वामंगदंत्वंयथापुरा ॥ २५ ॥ दीर्घायुर्भवपुत्रेतिकिमर्थंनाभिभाषसे ॥ अहंपुत्रसहायात्वामुपासे गतचेतनम् ॥ सिंहेनपातितंसद्योगौःसवत्सेवगोवृषम् ॥ २६ ॥ इष्ट्वासंग्राममयज्ञेनरामप्रहरणांभसा ॥ तस्मिन्नवभृथेस्नातःकथंपत्न्यामयाविना ॥ २७ ॥

अपने पिताजीको भली भांति देखलो ॥ २३ ॥ हे पुत्र! तुम मान देनेवाले राजा अपने पिताको प्रणाम करो, ऐसा सुनकर व उठ पिताजीके चरणों को ग्रहण कर ॥ २४ ॥ और गोल दोनों बाहोंसे चरण थामकर कहा, किमैं अंगदहूं जिस प्रकार पहले प्रणाम करनेंपर आप कहतेथे कि, 'दीर्घायु होवो' यह कहकर अब आशीर्वाद क्यों नहीं देते? फिर तारानें कहाकि सिंहसे मारे हुये वृषभको देख बच्चा सहित गायके समान मृत्युको प्राप्त हुये तुम्हारे निकट अपने पुत्रके सहित हम बैठी हैं ॥२५॥२६॥ तुम संग्राम यज्ञ पूर्णकर चुके हो. इस समय पत्नीके बिना रामके अस्त्ररूप वारि द्वारा

अपने वधकी वांछा कर ॥ ५९ ॥ भ्राता सुग्रीवके साथ द्वंद्व युद्ध करनें लगे । वानरराज वालि रामचंद्रजीसे यह कह चुप होरहा ॥ ६० ॥ तब श्रीरामचंद्रजी धर्मार्थसंयुक्त साधु समस्त वचनोंसे ब्रह्मज्ञानी वालिको समझाने लगे ॥ ६१ ॥ हे वानरश्रेष्ठ वालि ! हमनें गुप्त वध रूप अकार्य कियाहै,ऐसा तुम कभी मत समझना, और ऐसाभी न समझना कि तुमको हमने इसलिये माराहै; कि तुमनें अपने भाईकी स्त्रीको हर लियाहै,क्योंकि हम तुमसे अधिक परिशोधित बुद्धि द्वारा धर्म और शास्त्रानुसार कार्य करतेहैं, बस यही बात तुमभी समझो ॥ ६२ ॥ जो पुरुष दंडपानें योग्य

सुग्रीवेणसहभ्रात्राद्वंद्वयुद्धमुपागतः ॥ इत्युक्त्वावानरोराममंविरराममहरीश्वरः ॥ ६० ॥ सतमाश्वासयद्रामोवालिनंव्यक्तदर्शनम् ॥ साधुसंमतयावाचाधर्मतत्त्वार्थयुक्तया ॥ ६१ ॥ नवयंभवताचिंत्यानाप्यात्माहरिसत्तम ॥ वयंभवद्विशेषेणधर्मतःकृतनिश्चयाः ॥ ६२ ॥ दंडचेयःपातयेद्दंडंदंडचोयश्चापिदंडचते ॥ कार्यकारणसिद्धार्थावुभौतौनावसीदतः ॥ ६३ ॥ तद्भवान्दंडसंयोगादस्माद्विगतकल्मषः ॥ गतःस्वांप्रकृतिंधर्म्यांदंडदिष्टेनवर्त्मना ॥ ६४ ॥ त्यजशोकंचमोहंचभयंचहृदयेस्थितम् ॥ त्वयाविधानंहर्यग्र्यनशक्यमतिवर्तितुम् ॥ ६५ ॥ यथात्वय्यंगदोनित्यंवर्ततेवानरेश्वर ॥ तथावर्ततसुग्रीवेमयिचापिनसंशयः ॥ ६६ ॥ सतस्यवाक्यंमधुरंमहात्मनःसमाहितंधर्मपथानुवर्तितत् ॥ निशम्यरामस्यरणावमर्दिनोवचःसुयुक्तंनिजगादवानरः ॥ ६७ ॥

जनको दंडदेताहै, और दंडपानें लायक जन जिस करके दंड पाताहै उसकी कार्य सिद्धि और कारण सिद्धि विनाशको नहीं प्राप्तहोती ॥ ६३ ॥ इसलिये दंड पाकर तुम पापसे छूटगये और दंडसे बताये हुए मार्ग द्वारा तुम अपने धर्म संयुक्त मार्गको प्राप्त होगये ॥ ६४ ॥ हे वानरश्रेष्ठ ! तुम अपने हृदयमें टिका हुआ शोक और मोह दूर करदो; क्योंकि पहले किये हुए कर्मोंको तुम उल्लंघन करनेंमें समर्थ नहीं हो सकते ॥ ६५ ॥ जिस प्रकारसे अंगदमें तुम भाव रखतेथे. वही भाव हमारा और सुग्रीवका उसमें रहैगा; इसमें कुछ संदेह नहीं है ॥ ६६ ॥ वालि, उन महात्मा

फिर तारा कपिराज बालिका मुख चुम्बन करती जगविख्यात अपने मृतक स्वामीसे कहने लगी ॥ १ ॥ हे वीरश्रेष्ठ! तुम हमारे वचन न सुनकर पथरीली वा दुःख देनेंवाली पृथ्वीपर शयन कर रहे हो॥२॥हे वानर नाथ!हम जानती हैं कि पृथ्वी तुमको हमसे अधिक प्यारी है क्योंकि उसको चिपट कर शयन कर रहे हो और हमसे बोलतेतक नहीं ॥३॥यह राम रूप विधि सुग्रीवके वश में होगया वह सुग्रीव आजही अपनी भार्यासे मिल जायगा इसलिये सुग्रीवही विक्रमवान् और साहसी जान पडताहै ॥ ४ ॥ जो बडेर ऋच्छ और मुख्य २वानरगण बलवान् आपकी सेवा करतेथे उनका और शोक करते हुये अंगदका रोदन ॥५॥ और हमारा यह विलाप श्रवण करके तुम क्यों नहीं जागते हो हेवीर ! जिस पर तुम संग्रा

ततःसमुपजिघ्रंतीकपिराजस्यतन्मुखम् ॥ पतिंलोकश्रुतातारामृतंवचनमब्रवीत् ॥ १ ॥ शेषेत्वंविषमेदुःखमकृत्वाव
चनंमम ॥ उपलोपचितेवीरसुदुःखेवसुधातले ॥ २ ॥ मत्तःप्रियतरानूनंवानरेंद्रमहीतव ॥ शेषेहितांपरिष्वज्यमांचन
प्रतिभाषसे ॥ ३ ॥ सुग्रीवस्यवशंप्राप्तोविधिरेषभवत्यहो ॥ सुग्रीवएवविक्रांतोवीरसाहसिकप्रिय ॥ ४ ॥ ऋक्षवानरमु
ख्यास्त्वांबलिनंपर्युपासते ॥ तेषांविलपितंकृच्छ्रमंगदस्यचशोचतः ॥ ५ ॥ ममचेमागिरःश्रुत्वाकिंत्वंनप्रतिबुध्यसे॥
इदंतद्वीरशयनंतत्रशेपेहतोयुधि ॥ ६ ॥ शायितानिहतायत्रत्वयैवरिपवःपुरा ॥ विशुद्धसत्त्वाभिजनप्रिययुद्धमम
प्रिय ॥ ७ ॥ मामनाथांविहायैकांगतस्त्वमसिमानद ॥ शूरायनप्रदातव्याकन्याखलुविपश्चिता ॥ ८ ॥ शूरभार्यांहतां
पश्यसद्योमांविधवांकृताम् ॥ अवभग्नश्चमेमानोभग्नामेशाश्वतीगतिः ॥ ९ ॥ अगाधेचनिमग्नास्मिविपुलेशोकसागरे॥
अश्मसारमयंनूनमिदंमेहृदयंदृढम् ॥ १० ॥

ममें मरकर शयन किये हो यह वह स्थलहै ॥६॥ कि जहां तुम्हारे हाथोंसे मरकर शत्रुगण शयन किया करतेथे हे विशुद्धबलयुक्त लोकोंके व युद्धके प्रियकारी हमारे प्यारे ॥ ७ ॥ हमारा आदर मान करनेवाले हम अनाथ हैं सो तुम हमको छोडकर कहां चले जातेहो पंडित लोगों को उचित है कि शूर पुरुषको अपनी कन्या न विवाहै ॥ ८ ॥ क्यों कि देखो शूरकी भार्या हम शीघ्र ही विधवा हुई हाय हमारा मानभी गया और अधिक स्थिर सुख भी विनाशको प्राप्त हुआ ॥ ९ ॥ हम इस समय अगाध विपुल शोक सागरमें डूब गई हम जानती हैं कि

चाहिये, और न कुप्यारे वचन कहै, क्योंकि यह राजालोग देवता, और मनुष्यके रूपमें पृथ्वीपर फिरा करतेहैं ॥ ४३ ॥ तुम धर्मका मार्ग न जानकर केवल क्रोधके वशहो पितापितामहादिकोंके धर्ममें टिके हुये हमारी निन्दा करते हो ॥ ४४ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा, तब वालि अपने कहे हुये पहले कठोर वचनोंका पछतावा कर व्यथित होनें लगा; और भली भांतिसे धर्मके तत्त्वको जानकर फिर रामचंद्रजीमें दोष बुद्धि नहीं करता हुआ ॥ ४५ ॥तब उसनें हाथ जोडकर श्रीरामचंद्रजीसे कहा कि हे नरश्रेष्ठ ! इस बातमें कुछ संशय नहीं कि आपनें हमसे जो कुछ कहा वह सब सत्यही सत्यहै ॥ ४६ ॥ श्रेष्ठ पुरुषके आगे नीच पुरुष बोलनें को समर्थ नहीं होता, हमनें पहले अज्ञानताके मारे जो वचन

त्वंतुधर्ममविज्ञायकेवलंरोषमास्थितः ॥ विदूषयसिमांधर्मेपितृपैतामहेस्थितम् ॥ ४४ ॥ एवमुक्तस्तुरामेणवाली प्रव्यथितोभृशम् ॥ नदोषंराघवेदध्यौधर्मेऽधिगतनिश्चयः ॥ ४५ ॥ प्रत्युवाचततोरामंप्रांजलिर्वानरेश्वरः ॥ यत्त्व मात्थनरश्रेष्ठतत्तथैवनसंशयः ॥ ४६ ॥ प्रतिवक्तुंप्रकृष्टेहिनापकृष्टस्तुशक्नुयात् ॥ यदयुक्तंमयापूर्वंप्रमादाद्वाक्यमप्रि यम् ॥ ४७ ॥ तत्रापिखलुमांदोषंकर्तुंनार्हसिराघव ॥ त्वंहिदृष्टार्थतत्त्वज्ञःप्रजानांचहितेरतः ॥ ४८ ॥ कार्यकारणसि द्धौचप्रसन्नाबुद्धिरव्यया ॥ ४९ ॥ मामप्यवगतंधर्माद्व्यतिक्रांतपुरस्कृतम् ॥ धर्मसंहितयावाचाधर्मज्ञपरिपाल य ॥ ५० ॥ बाष्पसंरुद्धकंठस्तुवालीसार्तरवःशनैः ॥ उवाचरामंसंप्रेक्ष्यपंकलग्नइवद्विपः ॥ ५१ ॥ नचात्मानमहंशो चेनतारांनापिबांधवान् ॥ यथापुत्रंगुणज्येष्ठमंगदंकनकांगदम् ॥ ५२ ॥

कहेथे ॥ ४७ ॥ सो उनसे आप कुछ दोष न ग्रहण करें आप प्रमाणित धर्मादितत्त्वके यथार्थही विचार करताहैं, और इसमें भी कुछ संदेह नहीं कि आप प्रजागणोंका हित करनेंमें निरतभीहैं ॥ ४८ ॥ इसमें कुछ संशय नहीं कि आपकी स्थिर बुद्धि कार्य कारणके सिद्ध करनेंमें निपुणहै ॥ ४९ ॥ हे धर्मज्ञ! हम धर्म उल्लंघन करनेंवाले पुरुषोंके अग्रणीय और पापीहैं सो आप धर्मयुक्त वचनोंसे हमको उत्तम लोक देकर प्रतिपालन कर लीजिये ॥ ५० ॥ वालि दल २ में फँसे हुये हाथी की समान आरत स्वरसे श्रीरामचंद्रजीसे दीन वचन बोला उस समय उसका कंठ आंसुओंसे रुक गयाथा ॥ ५१ ॥ हम अपनें लिये, ताराकें लिये, और वानर गणोंके लिये शोक नहीं करते, हमतो केवल सोनेके बाजू पहरे

तव अपनी अपमानता और धर्मभ्रष्ट होनेसे यह रामचन्द्रजी तुमको मारभी डालेंगे ॥ १५ ॥ हे सुग्रीव! यह दिव्यकाञ्चनीयमाला तुम पहरलो, इ
समें अतिउत्तम विजयलक्ष्मी वास करती है, सो हम मरे हुयेभी इस मालाको पहरे रहेंगे तो इसकी श्री जाती रहेगी, इस कारण तुम इसको अभी
धारण करलो ॥ १६ ॥ जब वालिनें भायपनके मारे स्नेहयुक्त हो ऐसा कहा तब सुग्रीवजी हर्ष परित्याग करके राहुसे ग्रसे हुये चन्द्रमाकी समान
मलीन मूर्ति होगये ॥ १७ ॥ सुग्रीवजीनें स्थिरचित्तसे वालिके कहे हुयेवचनोंके अनुसार कार्यकर उसकी आज्ञा लेकर वह काञ्चनीमाला पह
रली ॥ १८ ॥ मृत्युके निकट पहुंचा वालि वह काञ्चनीमाला सुग्रीवकोदे आगे खडे हुये अपने पुत्र अंगदसे स्नेहके वशहो कहने लगा ॥ १९ ॥

इमांचमालामाधत्स्वदिव्यांसुग्रीवकांचनीम् ॥ उदाराश्रीःस्थिताह्यस्यांसंप्रजह्यान्मृतेमयि ॥ १६ ॥ इत्येवमुक्तः
सुग्रीवोवालिनाभ्रातृसौहृदात् ॥ हर्षंत्यक्त्वापुनर्दीनोग्रहग्रस्तइवोडुराट् ॥ १७ ॥ तद्वालिवचनाच्छांतःकुर्वन्युक्तमतं
द्रितः ॥ जग्राहसोभ्यनुज्ञातोमालांतांचैवकांचनीम् ॥१८॥ तांमालांकांचनींदत्वादृष्ट्वाचैवात्मजंस्थितम् ॥ संसिद्धःप्रे
त्यभावायस्नेहादंगदमब्रवीत् ॥ १९ ॥ देशकालौभजस्वाद्यक्षममाणःप्रियाप्रिये ॥ सुखदुःखसहःकालेसुग्रीववशगो
भव ॥ २० ॥ यथाहित्वंमहाबाहोलालितःसततंमया ॥ नतथावर्तमानंत्वांसुग्रीवोबहुमन्यते॥ २१ ॥ नास्यामित्रैर्गतं
गच्छेर्माशत्रुभिररिंदम॥भर्तुरर्थपरोदांतःसुग्रीववशगोभव॥२२ ॥नचातिप्रणयःकार्यःकर्तव्योऽप्रणयश्चते॥उभयंहिम
हादोषंतस्मादंतरदृग्भव॥२३॥इत्युक्त्वाथविवृत्ताक्षःशरसंपीडितोभृशम् ॥ विवृतैर्दशनैर्भीमैर्बभूवोत्क्रांतजीवितः ॥ २४॥

तुम प्रिय अप्रिय वचन सहते, देश कालके अनुसार सुख दुःख भुगतते इन सुग्रीवके वश होवो ॥ २० ॥ हे महाबाहो ! पहले हम जिस प्रकार
तुम्हारे अपराध करने परभी तुम्हारा लालन पालन करतेथे। सो यदि अबभी वैसेही अपराध करोगे तो सुग्रीव तुमको अधिक प्यार नहीं करें
गे इसलिये सब भांतिसे इन सुग्रीवजीकी सेवा करना ॥ २१ ॥ हेअरिन्दम ! तुम इनके अमित्र वा शत्रुके साथ न मिलना सुग्रीवही तु
म्हारे ईश्वर और पालन करता हैं सो तुम शांत हो इनके वशमें रहना ॥२२॥ अब तुम इनसे अतिस्नेह न करना और न शत्रुता क्योंकि यह दोनोंही महा
दोषकी खानिहैं; इसलिये इन दोनोंके मध्यमें होकर तुम चलते रहना ॥२३॥ इस प्रकार कहते हुए बाणसे पीडित वालिके नेत्र दांत घूमने और निकल

ग कर सकते हैं ॥ २७ ॥ इन सब धर्म संयुक्त बडे कारणोंके समूहके निमित्त हमनें तुमको दंड दिया है सो तुमभी इसको उचितही समझो॥२८॥ तुमको दंड देना सब भांतिसेही धर्मानुसार ज्ञात होता है।और मित्रका उपकार करनाभी धर्मचारी पुरुषोंको अवश्यही कर्तव्य है ॥ २९ ॥ सो तुमको दंड देकर हमने धर्महीका वर्ताव कियाहै महात्मा मनुजीके चारित्रवान दो श्लोक हमने सुन रक्खे हैं सो उनको हमनें तथा सबही धर्म कुशल जनोंनें ग्रहण कियाहै ॥ ३० ॥ उनश्लोकोंका अर्थ यहहै कि पाप करने वाले मनुष्य गण राज दंड ग्रहण करकै सुकृति करनेवाले पुरुषोंकी समान निर्मल होकर स्वर्गमें गमन करते हैं ॥ ३१ ॥ हम पापी हैं इसलिये हमको पाप दंड दीजिये,

तदेभिःकारणैःसर्वैर्महद्भिर्धर्मसंश्रितैः ॥ शासनंतवयद्युक्तंतद्भवाननुमन्यताम् ॥ २८ ॥ सर्वथाधर्मइत्येवद्रष्टव्यस्तवनिग्रहः ॥ वयस्यस्योपकर्तव्यंधर्ममेवानुपश्यता ॥ २९ ॥ शक्यंत्वयापितत्कार्यंधर्ममेवानुवर्तता ॥ श्रूयतेमनुनाभीतौश्लोकौचारित्रवत्सलौ ॥ गृहीतौधर्मकुशलैस्तथातच्चरितंमया॥ ३० ॥ राजभिर्धृतदंडाश्चकृत्वापापानिमानवाः ॥ निर्मलाःस्वर्गमायांतिसंतःसुकृतिनोयथा ॥ ३१ ॥ शासनाद्वापिमोक्षाद्वास्तेनःपापात्प्रमुच्यते ॥ राजात्वशासन्पापस्यतदवाप्नोतिकिल्बिषम् ॥ ३२ ॥ आर्येणममभांधात्राव्यसनंघोरमीप्सितम् ॥ श्रमणेनकृतेपापेयथापापंकृतंत्वया ॥ ३३ ॥ अन्यैरपिकृतंपापंप्रमत्तैर्वसुधाधिपैः ॥ प्रायश्चित्तंचकुर्वंतितेनतच्छाम्यतेरजः ॥ ३४ ॥

यह कहकर जो पापी राजाके निकट चला जाय, उसको राजा दंड दे अथवा न देकर कृपा दिखा छोडदे तौ उन दोनों वातोंसे पापी तो अपने पापसे छूटगया, परन्तु छोड देनेंसे उस पापका भागी राजा होताहै । इसलिये हमनें तुमको दंड दिया ॥ ३२ ॥ जैसा कि पाप तुमनें कियाहै; वैसाही पाप एक समय किसी श्रमण (आर्हत संन्यासी) नें कियाथा. कि जिसको हमारे पुरुषा मान्धाताजीनें घोर दंड दिया ॥ ३३ ॥ और राजा लोगोंने भी प्रथम पापियोंको दंड दियाहै, अधिक क्या कहें, पाप करने वाले पुरुष आपही पापका प्रायश्चित्त करके शुद्ध हुआ करते हैं ॥ ३४ ॥

श्रेष्ठ है ॥ १३ ॥ स्त्री होनेंके कारणसे हम सुग्रीव या अंगदजीकीस्वामिनी अथवा राज्य योग्य नहीं हो सकतीं इन हमारे स्वामीके पीछे अंगदके कनिष्ठ तात सुग्रीव ही समस्त राज्य कार्यके स्वामी होंगे ॥१४॥हे हनुमान! हम अंगदको राज्य पर अभिषिक्त करें इस प्रकारकी बुद्धि करना कदापि कर्तव्य नहीं है क्योंकि पिताही पुत्रका बन्धु है माता बन्धुनहीं हो सकती॥१५॥वानर राजके आश्रय विना इस लोक वा परलोकमें हमारा मंगल करऔर कुछ भी नहींहै इन सन्मुख खडे हुये निहत वीर करके सेवित इसशय्याकी सेवा करना हमारे लिये निःसंदेह अति श्रेयस्कर है॥१६॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे एकविंशः सर्गः॥२१॥मृत्युसेज पर पडे हुए वालिने चारों ओर निहारते २

नचाहंहरिराज्यस्यप्रभवाम्यंगदस्यवा ॥ पितृव्यस्तस्यसुग्रीवःसर्वकार्येष्वनंतरः ॥ १४ ॥ नह्येषाबुद्धिरास्थेयाह नूमन्नंगदंप्रति ॥ पिताहिबंधुःपुत्रस्यनमाताहरिसत्तम ॥ १५ ॥ नहिममहरिराजसंश्रयात्क्षमतरमस्तिपरत्रचेहवा॥ अभिमुखहतवीरसेवितंशयनमिदंममसेवितुंक्षमं ॥ १६॥ इत्यार्षे० श्रीमद्रा० वा० आ० कि० एकविंशःसर्गः ॥ २१ ॥

वीक्ष्यमाणस्तुमंदासुःसर्वतोमंदमुच्छ्वसन् ॥ आदावेवतुसुग्रीवंददर्शानुजमग्रतः ॥ १ ॥ तंप्राप्तविजयंवालीसुग्रीवं प्लवगेश्वरम् ॥ आभाष्यव्यक्तयावाचासस्नेहमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥ सुग्रीवदोषेणनमांगंतुमर्हसिकिल्बिषात् ॥ कृष्य माणंभविष्येणबुद्धिमोहेनमांबलात् ॥ ३ ॥ युगपद्विहितंतातनमन्येसुखमावयोः ॥ सौहार्दंभ्रातृयुक्तंहितदिदंजात मन्यथा ॥ ४ ॥ प्रतिपद्यत्वमद्यैवराज्यमेषांवनौकसाम् ॥ मामप्यद्यैवगच्छंतंविद्धिवैवस्वतक्षयम् ॥ ५ ॥जीवितंच हिराज्यंचश्रियंचविपुलांतथा ॥ प्रजहाम्येपवैतूर्णमहंचागर्हितंयशः ॥ ६ ॥

मंद२श्वासलेअंगदके आगे खडे हुए सुग्रीवजीको देखा॥१॥वालि विजय प्राप्त किये उन वानर वर सुग्रीवजीसे स्नेह सहित यह वचन बोला॥२॥हे सुग्रीव! पहले किये हुए रोषके कारण इस समय वा आगेको हमारे प्रति दोप बुद्धिका तुम परित्याग करदेना॥३॥हम दोनो भाइयोंमें एकवारही भाय पनकासुख और राज्य सुख नहीं रहा वरन इसके विपरीत वैर भाव रहा विधाताने राज्यसुख हम तुमको एक साथ सुख भोगना नहीं लिखाथा॥४॥तुम इस समय इन वनवासी लोगोंके राजा होवो और हम इस समय यमपुरको जाते हैं इसमें अब कुछभी विलंब नहीं है॥५॥हम इस समय जीवन राज्य विपुल राज्य

ग कर सकते हैं ॥ २७ ॥ इन सब धर्म संयुक्त बडे कारणोंके समूहके निमित्त हमनें तुमको दंड दिया है सो तुमभी इसको उचितही समझो॥२८॥ तुमको दंड देना सब भांतिसेही धर्मानुसार ज्ञात होता है।और मित्रका उपकार करनाभी धर्मचारी पुरुषोंको अवश्यही कर्तव्य है ॥ २९ ॥ सो तुमको दंड देकर हमने धर्महीका वर्ताव कियाहै महात्मा मनुजीके चारित्रवान दो श्लोक हमने सुन रक्खे हैं सो उनको हमनें तथा सबही धर्म कुशल जनोंनें ग्रहण कियाहै ॥ ३० ॥ उनश्लोकोंका अर्थ यहहै कि पाप करने वाले मनुष्य गण राज दंड ग्रहण करकै सुकृति करनेवाले पुरुषोंकी समान निर्मल होकर स्वर्गमें गमन करते हैं ॥ ३१ ॥ हम पापी हैं इसलिये हमको पाप दंड दीजिये,

तदेभिःकारणैःसर्वैर्महद्भिर्धर्मसंश्रितैः ॥ शासनंतवयद्युक्तंतद्भवाननुमन्यताम् ॥ २८ ॥ सर्वथाधर्मइत्येवद्रष्टव्यस्तवनिग्रहः ॥ वयस्यस्योपकर्तव्यंधर्ममेवानुपश्यता ॥ २९ ॥ शक्यंत्वयापितत्कार्यंधर्ममेवानुवर्तता ॥ श्रूयतेमनुनागीतौश्लोकौचारित्रवत्सलौ ॥ गृहीतौधर्मकुशलैस्तथातच्चरितंमया॥ ३० ॥ राजभिर्धृतदंडाश्चकृत्वापापानिमानवाः ॥ निर्मलाःस्वर्गमायांतिसंतःसुकृतिनोयथा ॥ ३१ ॥ शासनाद्वापिमोक्षाद्वास्तेनःपापात्प्रमुच्यते ॥ राजात्वशासन्पापस्यतदवाप्नोतिकिल्बिषम् ॥ ३२ ॥ आर्येणममर्मांधात्राव्यसनंघोरमीप्सितम् ॥ श्रमणेनकृतेपापेयथापापंकृतंत्वया ॥ ३३ ॥ अन्यैरपिकृतंपापंप्रमत्तैर्वसुधाधिपैः ॥ प्रायश्चित्तंचकुर्वंतितेनतच्छाम्यतेरजः ॥ ३४ ॥

यह कहकर जो पापी राजाके निकट चला जाय, उसको राजा दंड दे अथवा न देकर कृपा दिखा छोडदे तौ उन दोनों बातोंसे पापी तो अपने पापसे छूटगया, परन्तु छोड देनेंसे उस पापका भागी राजा होताहै । इसलिये हमनें तुमको दंड दिया ॥ ३२ ॥ जैसा कि पाप तुमनें कियाहै; वैसाही पाप एक समय किसी श्रमण (आर्हत संन्यासी) नें कियाथा. कि जिसको हमारे पुरुषा मान्धाताजीनें घोर दंड दिया ॥ ३३ ॥ और राजा लोगोंने भी प्रथम पापियोंको दंड दियाहै, अधिक क्या कहें, पाप करने वाले पुरुष आपही पापका प्रायश्चित्त करकै शुद्ध हुआ करते हैं ॥ ३४ ॥

जाते हो, सो यह अनंत अनुचित कर्म होता है॥ २४ ॥ हे महाबाहो!यदि हमनें कोई अपराधकियाहो, तब उसका विचारकरके क्षमा कर दीजिये। हे वानर–वंश–नाथ!देखिये,हम अपना शिर तुम्हारे चरणोंपर धरती हैं॥२५॥ निन्दा रहित तारा सब वानरियोंके सहित करुणाके वचन कह विलाप कर,वालिके निकटही बैठ मरणव्रत ग्रहणकर प्राण त्यागनेका निश्चय करती हुई ॥ २६ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० कि० विंशः सर्गः ॥ २० ॥ फिर आकाशसे गिरे तारेकी समान ताराको पृथ्वीपर पडा हुआ देखकर वानर यूथपति हनुमानजी, उसको धीरे २ समझाने बुझानें लगे ॥ १ ॥ समस्त जीवजन्तुगण अपने कर्मके हेतु शमादिगुण और रागादि रोषकृतकार्य करके परलोकमें बलात्कार शुभ और अशुभ फलकी प्राप्ति करतेहैं॥२॥

यद्यप्रियंकिंचिदसंप्रवार्यकृतंमयास्यात्तवदीर्घबाहो ॥ क्षमस्वमेतद्धरिवंशनाथव्रजामिमूर्ध्नातववीरपादौ ॥ २५ ॥
तथातुताराकरुणंरुदंतीभर्तुःसमीपेसहवानरीभिः ॥ व्यवस्यतप्रायमनिंद्यवर्णाउपोपवेषंभुवियत्रवाली ॥ २६ ॥
इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेविंशःसर्गः ॥ २० ॥ ॥ ॥ ॥ ततोनिपतितांतारां
च्युतांतारामिवांबरात् ॥ शनैराश्वासयामासहनूमान्हरियूथपः ॥ १ ॥ गुणदोषकृतंजंतुःस्वकर्मफलहेतुकम् ॥ अव्यग्र
स्तदवाप्नोतिसर्वंप्रेत्यशुभाशुभम् ॥ २ ॥ शोच्याशोचसिकंशोच्यंदीनंदीनानुकंपसे ॥ कश्चकस्यानुशोच्योस्तिदेहे
स्मिन्बुद्बुदोपमे ॥ ३ ॥ अंगदस्तुकुमारोयंद्रष्टव्योजीवपुत्रया ॥ आयत्यांचविधेयानिसमर्थान्यस्यचिंतया ॥ ४ ॥
जानास्यनियतामेवंभूतानामागतिंगतिम् ॥ तस्माच्छुभंहिकर्तव्यंपंडितेनेहलौकिकम् ॥ ५ ॥

तुमभी पाप पुण्यरूपी कर्मकी फाँसीसे बँधी हुईहो, इसलिये स्वयं शोचेजानेके योग्य होकर तुम किसके लिये शोक करतीहो ? और कर्मानुसार फल पाय दीनहो किस दीनके ऊपर दया कर रहीहो,इस पानीके बबूलेकीतुल्य देहका कौन शोच करतीहो ? सो तुम हमें बताओ ॥ ३॥ यह तुम्हारे पुत्र कुमार अंगद जीवितहैं, तुम इनका लालन पालन करो, औरइस समय तुम अपने स्वामी वालिकी परलोकके लिये उचित क्रियाका यत्न करो ॥ ४ ॥ प्राणियोंकी सद्गति कुछ नियत नहींहै; इसलिये पंडित गण इस लोकमें लौकिक शुभ कर्मोंको किया करतेहैं ॥ ५ ॥

प्रकार धर्म, अर्थ, काम सहित हितकारी व कठोर वचन बोला ॥ १ ॥ उस वानरवरको प्रभाहीन सूर्यकी समान, जल रहित मेघकी समान, और बुझी हुई आगके समान वचन कह चुपहुये ॥ २ ॥ धर्म, अर्थ, गुण युक्त, उत्तम वानरनाथ वालिसे बहुतनिन्दा किये जानेंपरभी श्रीरामचंद्रजी बोले ॥ ३ ॥ धर्म, अर्थ, काम, लौकिक आचार इन सबको विनाजाने तुम बालककी समान हमारी निन्दा क्यों करतेहो ॥ ४ ॥ तुम आचार्य, समस्त, वृद्ध और बुद्धिमानोंके विना पूछे ही, वानर स्वभावही की चपलताके हेतु हमारी निन्दा करनेंकी इच्छा करते हो ॥ ५ ॥ हम इक्ष्वाकु वंशियोंके पूर्व पुरुष मनुजीनें, शैलवन और काननादि सहित यह पृथ्वी हम लोगोंको दी तिस्से इस पृथ्वीके जितनें मृग पक्षी व मनुष्यहैं, सब

तंनिष्प्रभमिवादित्यंमुक्ततोयमिवांबुदम् ॥ उक्तवाक्यंहरिश्रेष्ठमुपशांतमिवानलम् ॥ २ ॥ धर्मार्थगुणसंपन्नंहरीश्वरमनुत्तमम् ॥ अधिक्षिप्तस्तदारामःपश्चाद्वालिनमब्रवीत् ॥ ३ ॥ धर्ममर्थंचकामंचसमयंचापिलौकिकम् ॥ अविज्ञाय कथंबाल्यान्मामिहाद्यविगर्हसे ॥ ४ ॥ अपृष्ट्वाबुद्धिसंपन्नान्वृद्धानाचार्यसंमतान् ॥ सौम्यंवानरचांचल्यात्त्वंमांवक्तुमिहेच्छसि ॥ ५ ॥ इक्ष्वाकूणामियंभूमिःसशैलवनकानना ॥ मृगपक्षिमनुष्याणांनिग्रहानुग्रहेष्वपि ॥ ६ ॥ तांपालयतिधर्मात्माभरतःसत्यवानृजुः ॥ धर्मकामार्थतत्त्वज्ञोनिग्रहानुग्रहेरतः ॥ ७ ॥ नयश्चविनयश्चोभौयस्मिन्सत्यंचसुस्थितम् ॥ विक्रमश्चयथादृष्टःसराजादेशकालवित् ॥८॥ तस्यधर्मकृतादेशावयमन्येचपार्थिवाः॥चरामोवसुधांकृत्स्नांधर्मसंतानमिच्छवः ॥ ९ ॥ यस्मिन्नृपतिशार्दूलेभरतेधर्मवत्सले ॥ पालयत्यखिलांपृथ्वींकश्चरेद्धर्मविप्रियम् ॥ १० ॥

पर अनुग्रह और दंड करनेका अधिकार हमहींको है ॥ ६ ॥सत्यशाली, सरल स्वभाव, दंड और अनुग्रह करनें में निरत, धर्म, अर्थ व कामके तत्वको जाननेंवाले, धर्मात्मा भरतजी इस समय इस पृथ्वीका पालन करते हैं॥७॥जिसमें नीति विनय और सत्य देखा जाय वही देश काल ज्ञाता पुरुष राजा हो सकताहै, सो यह सब भरतजीमें हैं॥ ८ ॥हम व और दूसरे नृपति गण, उनसे धर्माचरण करनेंके निमित्त आज्ञा पाकर इस पृथ्वीपर विचरतेहैं ॥ ९ ॥ जबकि नृपतिश्रेष्ठ धर्मवत्सल भरतजी समस्त पृथ्वीका पालन कर रहेहैं, तब कौन पुरुष धर्मका अप्रिय साधन करनेंमें समर्थ

रमणीक पुरी स्वर्ग सम किष्किन्धा नगरीकी तुल्य तुमनें बनालीहै ॥७॥ हमनें वसन्तके समयमें जो विहार सुगंधित वनोंमें आपके साथ किये हैं. उन सबका आपने शेष करदिया॥ ८ ॥ हम निरानंद और निराश होकर सागरमें डूबीं,हे यूथपोंके नाथ!यह सब वातें आपहीके मर जानेंसे हुई ॥९॥ हमारा हृदय बडा कठिन है, जो आपको पृथ्वीपर पडे देखकरभी मारे शोकके संतापित हो विदीर्ण होकर सहस्र खंड नहीं होजाता ॥ १० ॥ हे वानर नाथ! आपनें सुग्रीवकी स्त्रीको हरण करके उनको जो राज्यसे निकाल दिया आज उसी कार्यका यह फल प्राप्त हुआ ॥११॥ हमनें आपकी कुशलकी वांछाकर और हितैषीहो जो हितकारी वचन कहेथे सो आपनें कहा न मानकर हमारी निन्दा कीथी ॥ १२ ॥ हेआर्य! इस समय

यान्यस्माभिस्त्वयासार्धंवनेषुमधुगंधिषु ॥ विहृतानित्वयाकालेतेषामुपरमःकृतः ॥ ८ ॥ निरानंदानिराशाहंनिमग्ना शोकसागरे ॥ त्वयिपंचत्वमापन्नेमहायूथपयूथपे ॥ ९ ॥ हृदयंसुस्थितंमह्यंदृष्ट्वानिपतितंभुवि ॥ यन्नशोकाभिसंतप्तं स्फुटतेद्यसहस्रधा ॥ १० ॥ सुग्रीवस्यत्वयाभार्याहृतासचविवासितः ॥ यत्तत्तस्यत्वयाव्युष्टिःप्राप्तेयंप्लवगाधिप॥ ११ ॥ निःश्रेयसपरामोहात्त्वयाचाहंविगर्हिता॥यैषाब्रुवंहितंवाक्यंवानरेंद्रहितैषिणी॥१२ ॥रूपयौवनदृप्तानांदक्षिणानांचमा नद॥नूनमप्सरसामार्यचित्तानिप्रमथिष्यसि ॥१३॥कालोनिःसंशयोनूनंजीवितांतकरस्तव ॥ बलाद्येनावपन्नोसिसुग्री वस्यावशोवशी ॥ १४ ॥ अस्थानेवालिनंहत्वायुध्यमानंपरेणच ॥ नसंतप्यतिकाकुत्स्थःकृत्वाकर्मसुगर्हितम् ॥ १५ ॥ वैधव्यंशोकसंतापंकृपणाकृपणासती ॥ अदुःखोपचितापूर्ववर्तयिष्याम्यनाथवत् ॥ १६ ॥

हम समझती हैं कि आप रूप यौवन संपन्न अनुकूल नायका अप्सरा गणोंके चित्त मथोगे, इसमें कुछ संदेह नहीं ॥ १३ ॥ हे वीर! हमनें निश्चय जानाकि जीवनका अंत करनेंवाला काल निश्चयहै क्योंकि सुग्रीवके वश करके जिस कालनें तुम्हारे प्राण हरण कर लियेहैं ॥ १४ ॥ यद्यपि तुम सुग्रीवके साथ युद्ध करनेंमें लगरहेथे तथापि काकुत्स्थकुलतिलकजीनें अधर्मका अनुसरण करके तुम्हारा वध किया. और तिस परभी वह नहीं पछताते ॥ १५ ॥ इससे पहले हमनें कभी कोई दुःख नहीं पायाहै, सो इस समय हम अत्यन्त दीन अनाथ व कृपाके योग्य हो

इस लिये तुमनें कामाचारीहो धर्मके मार्गको उल्लंघनकिया । उस भ्रातृभार्याकी धर्षणा करनेंके हेतु हमनें यह दंड तुमको दिया ॥ २० ॥ हे वा
नरवर! लोकोंके व्यवहारकी मर्यादाको उल्लंघन करनेंवाले लोक विमुख पुरुषको मारनेंके सिवाय हम और कोई दंड नहीं देखते ॥ २१ ॥ हम
श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न हुये, क्षत्रिय पापको नहीं सहसकते, सहोदरा भगिनी अथवा छोटे भ्राताकी स्त्रीसे ॥ २२ ॥ रमण करनेंवाले पुरुषको मार डाल
नाही ठीक दंड है महीपाल भरतजीनें हमको इसी प्रकारकी आज्ञाकीहै; सो हमनें उनकी आज्ञानुसारही कार्य किया है ॥ २३ ॥ तुमनें धर्मकी म
र्यादाको तोडा है; जो गुरु होकर धर्मकी मर्यादा तोडे; तौ परलोकमें धर्म पालक होकर उसकोभी विना दंड दिये नहीं छोड सकते ॥ २४ ॥

तद्व्यतीतस्यतेधर्मात्कामवृत्तस्यवानर ॥ भ्रातृभार्याभिमर्शेऽस्मिन्दंडोऽयंप्रतिपादितः ॥ २० ॥ नहिलोकविरुद्ध
स्यलोकवृत्तादपेयुषः ॥ दंडादन्यत्रपश्यामिनिग्रहंहरियूथप ॥ २१ ॥ नचतेमर्षयेपापंक्षत्रियोऽहंकुलोद्गतः ॥ औ
रसींभगिनींवापिभार्यांवाप्यनुजस्ययः ॥ २२ ॥ प्रचरेतनरःकामात्तस्यदंडोवधःस्मृतः ॥ भरतस्तुमहीपालोवयंत्वा
देशवर्तिनः ॥ २३ ॥ त्वंचधर्मादतिक्रांतःकथंशक्यमुपेक्षितुम् ॥ गुरुधर्मव्यतिक्रांतंप्राज्ञोधर्मेणपालयन् ॥ २४ ॥ भ
रतःकामयुक्तानांनिग्रहेपर्यवस्थितः ॥ वयंतुभरतादेशावधिंकृत्वाहरीश्वर ॥ त्वद्विधान्भिन्नमर्यादान्निग्रहीतुंव्यवस्थि
ताः ॥ २५ ॥ सुग्रीवेणचमेसख्यंलक्ष्मणेनयथातथा ॥ दारराज्यनिमित्तंचनिःश्रेयसकरःसमे ॥ २६ ॥ प्रतिज्ञाच
मयादत्तातदावानरसंनिधौ ॥ प्रतिज्ञाचकथंशक्यामद्विधेनानवेक्षितुम् ॥ २७ ॥

भरतजीनें कामाधीनहो स्वेच्छानुसार चलनेंवाले पुरुषोंको दंड देनेंकी व्यवस्थाकीहै; सो हम लोग उन भरतकी आज्ञा पालन करकै तुम्हारी स
मान धर्मकी मर्यादा तोडनेंवाले पुरुषोंको विनाश किये हैं ॥ २५ ॥जैसे लक्ष्मणजीके सहित हमारी मित्रताईहै, वैसेही सुग्रीवजीभी हमारे सखा हैं,
सो सुग्रीवजी हमारी मित्रतासे अपना राज्य व स्त्री पानेंकेलिये हमारे निकट आये हैं, यह वानर हमारा बडा प्रियकारीहै ॥ २६॥ और दूसरे हमनें स
व वानरोंके सहित प्रतिज्ञाभी कीहै कि तुम्हारा राज्य और तुम्हारी स्त्री तुम्हें दिलादेंगे । सो भला हम समान पुरुष प्रतिज्ञाको किस प्रकारसे त्या

होगी ? क्योंकि इन लोगोंनें पहले सुग्रीवादिसे बडा छल कियाहै ॥ १६ ॥ चारुहासिनी तारा थोडी दूर खडे हुए वानरोंके वचन श्रवण करके अपने योग्य वचन उनसे कहनें लगी ॥१७॥ उन महाभाग कपिश्रेष्ठ हमारे पतिके मर जानेंसे हमको पुत्र, राज्य, वा जीवनसे क्या प्रयोजनहै ॥ १८ ॥ जो हमारे पति श्रीरामचंद्रजीके छोडे हुए वाणसे मारे गयेहैं, हम उन्हीं महात्माके चरण कमलकी शरणमें गमन करेंगी ॥ १९ ॥ यह कहकर शोकसे विह्वल हुई तारा, रोते २ दौड दुःखके मारे दोनों हाथोंसे शिर और छातीको पीटनें लगी ॥ २० ॥ वह सती शीघ्रतासे चलते २ समरमें न भागनें वाले, भूमिमें गिरे, दैत्येन्द्रोंको मारनें वाले ॥२१॥ वज्र चलानेंवाले इन्द्रकी समान, पर्वत समूहोंको उखाड कर फेंकनेंवाले, महा प्रचंड पवन युक्त

अल्पांतरगतानांतुश्रुत्वावचनमंगना ॥ आत्मनःप्रतिरूपंसाबभाषेचारुहासिनी ॥ १७ ॥ पुत्रेणममकिंकार्यंराज्ये नापिकिमात्मना ॥ कपिसिंहेमहाभागेतस्मिन्भर्तरिनश्यति ॥ १८ ॥ पादमूलंगमिष्यामितस्यैवाहंमहात्मनः ॥ योऽसौरामप्रयुक्तेनशरेणविनिपातितः॥१९॥एवमुक्त्वाप्रदुद्रावरुदतीशोकमूर्छिता ॥ शिरश्चोरश्चबाहुभ्यांदुःखेनसमभिघ्नती ॥ २० ॥ साव्रजंतीददर्शाथपतिंनिपतितंभुवि ॥ हंतारंवानरेंद्राणांसमरेष्वनिवर्तिनाम् ॥ २१ ॥ क्षेप्तारंपर्वतेंद्राणां वज्राणामिववासवम् ॥ महावातसमाविष्टंमहामेघौघनिःस्वनम् ॥ २२ ॥ शक्रतुल्यपराक्रांतंवृष्ट्वेवोपरतंघनम् ॥ नर्दंतंनर्दतांभीमंशूरंशूरेणपातितम् ॥ २३ ॥ शार्दूलेनामिषस्यार्थेमृगराजमिवाहतम् ॥ २४ ॥ अर्चितंसर्वलोकस्यसपताकंसवेदिकम् ॥ नागहेतोःसुपर्णेनचैत्यमुन्मथितंयथा ॥ २५ ॥ अवष्टभ्यावतिष्ठंतंददर्शधनुरूर्जितम् ॥ रामं रामानुजंचैवभर्तुश्चैवतथानुजम् ॥ २६ ॥

महामेघकी समान घोर शब्द करनें वाले ॥ २२ ॥ इन्द्र तुल्य पराक्रमवान् वाण वृष्टि संयुक्त मेघकी समान वानरगणोंके मध्यमें श्रेष्ठ शूर भयंकर गर्जन करनेंवाले श्रीरामचंद्रजीसे गिराये ॥ २३ ॥ मांसके लिये व्याघ्र द्वारा मारे हुए हाथीके समान गिरे ॥ २४ ॥ सर्व लोकसे पूजित पताका सहित वैदिक मंत्रसे अर्चित अंतरमें भुजंग युक्त वामीको सर्पके निमित्त गरुडनें जैसे उन्मथित कियाहो ऐसे, विध्वंसित देवालयकी समान दुर्दशा ग्रस्त वालिको देखा ॥ २५ ॥ और भूमिमें खडे महाधनुष चढाये श्रीरामचंद्रजीके सहित लक्ष्मण और अपने पतिके छोटे भाई सुग्रीवको

वनवासी और फलोंके खानेवालेहैं सो हमारे फल मूलके ऊपर आप किसी प्रकार लोभ नहीं कर सकते ॥ ३१ ॥ नीति, विनय, अनुग्रह, निग्रह, इन चार वार्तोंके अतिरिक्त राजा लोग और किसी बातमें स्वेच्छाचारी नहीं होते ॥ ३२ ॥ आप स्वेच्छाचारी कोपनस्वभाव चंचलचित्त राजकार्योंमें अयोग्यहैं, जहां तहां धनुषसे बाण छोडते फिरतेहैं ॥ ३३ ॥ मनुष्योंके राजा होनेपरभी धर्ममें आपका आदर नहीं यथार्थ अर्थमें बुद्धि स्थिर नहींहै, वरन आप स्वेच्छाचारी होकर इन्द्रियगणोंके वशमें पड खिंचे फिरतेहैं ॥ ३४ ॥ हम विन अपराधीको बाणसे मार अति निन्द नीय कर्मका अनुष्ठान कर आप सज्जनोंके बीचमें क्या कहेंगे ? ॥ ३५ ॥राजघाती, ब्रह्मघाती, चोर, प्राणियोंको मारनेंवाला नास्तिक, परिवेत्ता ❋

नयश्चविनयश्चोभौनिग्रहानुग्रहावपि ॥ राजवृत्तिरसंकीर्णाननृपाःकामवृत्तयः ॥ ३२ ॥ त्वंतुकामप्रधानश्चकोपनश्चा नवस्थितः ॥ राजवृत्तेषुसंकीर्णःशरासनपरायणः ॥३३॥ नतेऽस्त्यपचितिर्धर्मेनार्थेबुद्धिरवस्थिता ॥ इंद्रियैःकामवृत्तः सन्कृष्यसेमनुजेश्वर ॥ ३४ ॥ हत्वाबाणेनकाकुत्स्थमामिहानपराधिनम् ॥ किंवक्ष्यसिसतांमध्येकर्मकृत्वाजुगुप्सि तम् ॥ ३५ ॥ राजहाब्रह्महागोघ्नश्चोरःप्राणिवधेरतः ॥ नास्तिकःपरिवेत्ताचसर्वेनिरयगामिनः ॥ ३६ ॥ सूचकश्च कदर्यश्चमित्रघ्नोगुरुतल्पगः ॥ लोकंपापात्मनामंतेगच्छंतेनात्रसंशयः ॥ ३७ ॥ अधार्यंचर्ममेसद्भीरोमाण्यस्थि चवर्जितम् ॥ अभक्ष्याणिचमांसानित्वद्विधैर्धर्मचारिभिः ॥ ३८॥ पंचपंचनखाभक्ष्याब्रह्मक्षत्रेणराघव ॥ शल्य कःश्वाविधोगोधाशशःकूर्मश्चपंचमः ॥ ३९ ॥

यह सब पुरुष नरकको जातेहैं ॥३६॥ चुगली करनेंवाला, कादर मित्रका मारनेंवाला गुरुतल्पग × यह लोगभी निःसंदेह पापियोंके लोकको जाते हैं ॥३७॥ हम लोगोंका चर्म आप लोगोंके धारण करनें योग्य नहीं हमारे रुवें और हड्डियेंभी सज्जन लोग नहीं ग्रहण करते; और मांसभी आप सरीखे धर्मचारी गणोंके अयोग्यहै; इस कारण राजाओंके आखेट धर्मका वहानाभी आप हमपर नहीं कर सकते ॥ ३८ ॥ हे राघव ! गैंडा, सई, गोह,

❋ बडे भाईका विवाह विनाही हुये छोटा जो विवाह कर लेताहै उसको परिवेत्ता कहतेहैं ॥ × गुरुकी स्त्रीको हरण करनेंवाला ।

रणजयी श्रीरामचंद्रजीके धर्म युक्त सावधान मधुर वचन सुनकर उनसे बोला ॥६७॥ हे इन्द्रकी समान भीमविक्रम श्रीरामचंद्रजी! हमनें बाणके आघातसे चेतना रहित और बुद्धिहीनहो जो कुछ दुर्वचन कहाहो सो आप प्रसन्न होकर हमारे उस अपराधको क्षमा करदीजिये ॥ ६८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥ बाणसे पीडितहो वानरराज वालि श्रीरामचंद्रजीके हेतु युक्त वचन सुन फिर कुछ उत्तर न देसका ॥ १ ॥ एक तो सुग्रीवजीके मारेहुए पत्थरोंकी चोट व वृक्षोंकी चोटसे वालिके अंग छिन्न भिन्न और घायल होरहेथे. तिसपर श्रीरामचंद्रजीके बाणसे आहतहो दीर्घ श्वास लेताहुआ वह मरणान्तमें मोहको प्राप्त हुआ ॥ २ ॥ वालिकी भार्या तारानें रनवासमेंही यह

शराभितप्तेनविचेतसामयाप्रभाषितस्त्वंयदजानताविभो ॥ इदंमहेंद्रोपमभीमविक्रमप्रसादितस्त्वंक्षममेहरीश्वर ॥ ६८ ॥ इ०श्री०वा०आ०कि०अष्टादशःसर्गः ॥ १८ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ सवानरमहाराजःशयानःशरपीडितः ॥ प्रत्युक्तोहेतुमद्वाक्यैर्नोत्तरंप्रतिपद्यत ॥ १ ॥ अश्मभिःपरिभिन्नांगःपादपैराहतोभृशम् ॥ रामबाणेनचाक्रांतोजीवितांतेमुमोहसः ॥२॥ तंभार्याबाणमोक्षेणरामदत्तेनसंयुगे ॥ हतंप्लवगशार्दूलंताराशुश्रावबालिनम् ॥३॥ सासपुत्राऽप्रियंश्रुत्वावधंभर्तुःसुदारुणम् ॥ निष्पपातभृशंतस्मादुद्विग्नागिरिकंदरात् ॥ ४ ॥ येत्वंगदपरीवारावानराहिमहाबलाः ॥ तेसकार्मुकमालोक्यरामंत्रस्ताःप्रदुद्रुवुः ॥५॥ साददर्शततस्त्रस्तान्हरीनापततोद्रुतम् ॥ यूथादिवपरिभ्रष्टान्मृगान्निहतयूथपान् ॥ ६ ॥ तानुवाचसमासाद्यदुःखितान्दुःखितासती ॥ रामवित्रासितान्सर्वाननुबद्धानिवेषुभिः ॥ ७ ॥

वार्त्ता सुनी कि वानरशार्दूल वालि संग्राम स्थलमें श्रीरामचंद्रजीके चलाये हुए बाणसे मारागया ॥ ३ ॥ पुत्रके सहित तारा पतिके मारे जानेंकी दारुण वार्ता सुनकर उद्विग्न चित्तहो गिरि कंदरमें बसती हुई किष्किन्धापुरीसे सहसा चली ॥ ४ ॥ अंगदजीके सब जो महाबल रक्षा करनेंवालेथे वह धनुष धारण किये श्रीरामचंद्रजीको देख भयके मारे भागने लगे ॥ ५ ॥ फिर तारानें देखा कि निहत यूथपति और यूथसे बिछुडे हुए मृगगणोंकी नांई वानर गण डरकर भाग रहेहैं ॥ ६ ॥ दुःखिता तारा शरद्वारा शयन करते हुएकी समान श्रीरामचंद्रजी करके त्रासित

वचन बोला ॥ १४ ॥ अल्पतेज, अल्पप्राण, चेतना रहित, भूमिपातित वालि रणगर्वित श्रीरामचंद्रजीसे गर्वित वचन कहनें लगा ॥ १५ ॥ हेराम! आपके सहित हमनें सन्मुख युद्ध नहीं किया फिर भला आपने हमको मार कर किस गुणको प्राप्त किया हम सुग्रीवके साथ युद्ध करनेंमें लगे रहकर आपके द्वारा मारे गये ॥ १६ ॥ हे राम! आप करुणामय प्रजागणोंके हित में निरत, कुलीन, सत्वसम्पन्न, तेजस्वी, वेदविहितकर्मकारी ॥ १७ ॥ महोत्साही, दृढव्रतधारी, उचित अनुचित कालके जाननेवाले लज्जाशीलहैं पृथ्वीके सबही मनुष्य इस प्रकारसे कहकर आपका यश बखानते हैं ॥ १८ ॥ दम, शम, क्षमा, धर्म, धीरज, सत्यता और

सभूमावल्पतेजोसुर्निहतोनष्टचेतनः ॥ अर्थसंहितयावाचागर्वितंरणगर्वितम् ॥ १५ ॥ पराङ्मुखवधंकृत्वाकोऽत्रप्राप्तस्त्वयागुणः ॥ यदहंयुद्धसंरब्धस्त्वत्कृतेनिधनंगतः ॥ १६ ॥ कुलीनःसत्त्वसंपन्नस्तेजस्वीचरितव्रतः ॥ रामःकरुणवेदीचप्रजानांचहितेरतः ॥ १७ ॥ सानुक्रोशोमहोत्साहःसमयज्ञोदृढव्रतः ॥ इत्येतत्सर्वभूतानिकथयंतियशोभुवि ॥ १८ ॥ दमःशमःक्षमाधर्मोधृतिःसत्त्वंपराक्रमः ॥ पार्थिवानांगुणाराजन्दंडश्चाप्यपकारिषु ॥ १९ ॥ तान्गुणान्संप्रधार्याहमग्र्यंचाभिजनंतव ॥ तारयाप्रतिषिद्धःसन्सुग्रीवेणसमागतः ॥ २० ॥ नमामन्येनसंरब्धंप्रमत्तंवेद्धुमर्हसि ॥ इतितेबुद्धिरुत्पन्नाबभूवादर्शनेतव ॥ २१ ॥ सत्वांविनिहतात्मानंधर्मध्वजमधार्मिकम् ॥ जानेपापसमाचारंतृणैःकूपमिवावृतम् ॥ २२ ॥

पराक्रम व अपकारियोंको दंड देना यह समस्त राजा लोगोंके गुणहैं ॥ १९ ॥ सो हम आपमें यही समस्त गुण सुना करते थे और यह भी ज्ञातथा कि आप सत्कुलमें जन्मे हैं, यही कारण हुआकि ताराके रोकने पर भी हम सुग्रीवसे युद्ध करते हुये ॥ २० ॥ हम दूसरे के सहित यह विचार कर युद्ध में नियुक्त थे कि आप धर्मको छोडकर हमको क्यों मारनेंलगेहैं और इसी कारण वश आपकी ओरसे कुछ चिन्ता नकी हमारी बुद्धि आपके दर्शनसे पहले यह थी कि आप धर्मके प्रतिपालकहैं परन्तु अब यह बुद्धि जातीरही परन्तु हमने भली प्रकार चीन्ह लिया कि धर्मध्वज आप, अधार्मिक तृणोंसे ढके हुये अंधकूपकी समान, नष्टात्मा ॥ २१ ॥ २२ ॥

बालक अंगदके ही लिये शोक करतेहैं क्योंकि मैं तो भगवानसे मारा गया तारासे सुग्रीव प्रीति करैगा, वानर सेवा कर रह जांयगे, वस अंगदका कहीं ठीक नहीं ॥ ५२ ॥ जब वह बच्चाहीथा तबसे हमनें उसका लालन पालन किया, वह हमको न देखकर दीन भावको प्राप्तहो उस तडागकी समान सूख जायगा; कि जिसका जल हाथियोंनें पीलियाहो ॥ ५३ ॥ हेराम! ताराके गर्भसे उत्पन्न हमारे इकलौते, कच्ची बुद्धि युक्त महा बलवान अंगद बालककी आप रक्षा कीजिये; हे महाराज! कहीं मेरे पुत्रको कष्ट नहो ॥ ५४ ॥ सुग्रीवकी बुद्धि ऐसी बदल दीजिये कि वह अंगदसे प्रीति करनेंलगे। क्योंकि आप कार्य अकार्यके बीधनें में सबके सिखलानें और रक्षा करनेवाले हैं, इस कारण इनको आप भली भांतिसे पालते

सममादर्शनाद्दीनोबाल्यात्प्रभृतिलालितः ॥ तटाकइवपीतांबुरुपशोषंगमिष्यति ॥ ५२ ॥ बालश्चाकृतबुद्धिश्चएकपुत्र श्चमेप्रियः ॥ तारेयोरामभवतारक्षणीयोमहाबलः ॥ ५४ ॥ सुग्रीवेचांगदेचैवविधत्स्वमतिमुत्तमाम् ॥ त्वंहिगोप्ताच शास्ताचकार्याकार्यविधौस्थितः ॥ ५५ ॥ यातेनरपतेवृत्तिर्भरतेलक्ष्मणेचया ॥ सुग्रीवेचांगदेराजंस्तांचिंतयितुमर्ह सि ॥ ५६ ॥ मद्दोषकृतदोषांतांयथातारांतपस्विनीम् ॥ सुग्रीवोनावमन्येततथावस्थातुमर्हसि ॥ ५७ ॥ त्वयाह्यनु गृहीतेनशक्यंराज्यमुपासितुम् ॥ त्वद्वशेवर्तमानेनतवचित्तानुवर्तिना ॥ ५८ ॥ शक्यंदिवंचार्जयितुंवसुधांचापिशासि तुम् ॥ त्वत्तोऽहंवधमाकांक्षन्वार्यमाणोपितारया ॥ ५९ ॥

पोषते रहिये ॥ ५५ ॥ हे नरेश्वर! आप भरत और लक्ष्मणजीमें जिसप्रकारकी स्नेह बुद्धि रखतेहैं; वही बुद्धि सुग्रीव और अंगदके प्रति कीजिये ॥ ५६ ॥ हमनें दोष कियाहै, कहीं यह समझ कर ताराको दोष नदिया जाय, हे श्रीरामचंद्रजी! आप ऐसा कीजिये कि जिस्से शोचनीय उस स्त्रीको सुग्रीव प्रतिपालनकरे व निरादर न करै ॥ ५७ ॥ आपके वशमें रहकर आपके चित्तका अनुयायी और आपके अनुग्रहका भाजन होकर वह वानर राज्यको पालन कर सकता ॥ ५८ ॥ समस्त पृथ्वीको पालन कर सकता, और स्वर्गका राज्य भी करनेंमें निःसंदेह समर्थ हो सकताहै, फिर इस तुच्छ राज्यकी क्या चलाई । हे श्रीरामचंद्रजी! हम इसीलिये तारा करकै रोके जानेपरभी आपके हाथसे

कठोर कुंभकर्णपर प्रहार करनेंलगे ॥ २५ ॥ परन्तु कुंभकर्ण उन सब प्रहारोंको सुखका स्पर्श समझकर कुछभी पीडित नहीं हुआ, और उसनें महावेगसे ऋषभको अपनी बांहोंसे पकड़कर अपनी छातीमे लगालिया ॥ २६ ॥ वानर श्रेष्ठ ऋषभ कुंभकर्णकी बांहोंके प्रहारसे पीड़ित होकर उसी समय पृथ्वीपर गिर पड़ा उसके मुखसे बराबर रुधिरकी धारा बहनें लगी ॥ २७ ॥ उसके उपरान्त इन्द्रके शत्रु कुंभकर्णनें रणभूमिमें मूका मारकर शरभको जांघके प्रहारसे नीलको और लात मारकर गवाक्षके ऊपर प्रहार किया ॥२८॥ यह सब वानर वीर अत्यन्त दारुण प्रहारसे मर्ममें घायल होकर गिरगये, उनके सब अंगोंमें रुधिरकी धारा बहनेंसे वह जड़कटे हुए टेसूके वृक्षकी समान पृथ्वीमें गिरपड़े ॥ २९ ॥ उन महाबलवान मुख्य२वानरोंके पृथ्वीपर

स्पर्शानिवप्रहारांस्तान्वेदयानोनविव्यथे ॥ ऋषभंतुमहावेगंबाहुभ्यांपरिषस्वजे ॥ २६ ॥ कुंभकर्णभुजाभ्यांतुपी
डितोवानरर्षभः ॥ निपपातर्षभोभीमःप्रमुखागतशोणितः ॥ २७ ॥ मुष्टिनाशरभंहत्वाजानुनानीलमाहवे ॥ आजघा
नगवाक्षंतुतलेनेंद्ररिपुस्तदा ॥ २८ ॥ दत्तप्रहारव्यथितामुमुहुःशोणितोक्षिताः ॥ निपेतुस्तेतुमेदिन्यांनिकृत्ताइवार्किं
शुकाः ॥ २९ ॥ तेषुवानरमुख्येषुपातितेषुमहात्मसु ॥ वानराणांसहस्राणिकुंभकर्णप्रदुद्रुवुः ॥ ३० ॥ तंशैलमिवशैला
भाःसर्वेतुप्लवगर्षभाः ॥ समारुह्यसमुत्पत्यददंशुःप्लवगर्षभाः ॥ ३१ ॥ तंनखैर्दशनैश्चापिमुष्टिभिर्बाहुभिस्तथा ॥
कुंभकर्णंमहाबाहुंनिजघ्नुःप्लवगर्षभाः ॥ ३२ ॥ सवानरसहस्रैस्तुविचितःपर्वतोपमः ॥ रराजराक्षसव्याघ्रोगिरि
रात्मरुहैरिव ॥ ३३ ॥ बाहुभ्यांवानरान्सर्वान्प्रगृह्यसमहाबलः ॥ भक्षयामाससंक्रुद्धोगरुडःपन्नगानिव ॥ ३४ ॥

गिरनेंसे असंख्य वानरोंकी सैना कुंभकर्णके सन्मुख दौड़ी ॥ ३० ॥ पर्वताकार वानरश्रेष्ठ गण छलांग मारकर पर्वताकर कुंभकर्णके शरीरपर सवार होकर वारंवार दांतोंसे उसको काटनें लगे ॥ ३१ ॥ वह वानरश्रेष्ठ गण, नख दन्त मूका और बांहोंसे महाबलवान कुंभकर्णको मारनेलगे॥३२॥ उसकालमें पर्वताकार राक्षसश्रेष्ठ कुंभकर्ण हजारों वानरोंके लिपट जानेसे वृक्षराजि विराजित पर्वतश्रेष्ठकी समान ॥ ३३ ॥ गरुडजी जिसप्रकार सर्पोंको भक्षण करतेहैं, वैसेही वह महाबलवान कुंभकर्ण क्रोधमें भरकर अपनी बाहोंसे वानरोंको पकड़ २ कर खानेंलगा ॥ ३४ ॥

हे वानरशार्दूल ! पछतावा करनेंसे कुछ प्रयोजन नहींहै, हमनें धर्मानुसारही तुम्हारा संहार कियाहै, क्योंकि हमभी धर्मशास्त्रके वशहैं, कुछ स्वाधीन नहींहैं ॥ ३५ ॥ हे कपिश्रेष्ठ ! इस विषयमें औरभी कारणहैं; वह भी तुम्हें बतातेहैं, उनको सुनकर तुम मनमें उपजा हुआ क्रोध छोडदो॥ ॥ ३६ ॥ हे वानरश्रेष्ठ ! नतो इसलिये कुछ हमारे मनको संतापहै, न कुछ क्रोधहीहै; क्योंकि बहुत सारे मांस खानेंवाले नरगण, जाल, फांसी; व विविध भांतिके कपट कर ॥ ३७ ॥ छिपकर, वा प्रगट होकर भागते और डरे हुये या विश्वास कर बैठे हुए बहुत मृगोंको पकडतेहैं ॥ ३८ ॥ जो राजा लोग सावधान या असावधान दुष्ट मृगोंको काननमें हनन करते हैं उनकोभी मनुष्य वध करनेंके समान अघ नहीं प्राप्त होता, चाहें मांस

तदलंपरितापेनधर्मतःपरिकल्पितः ॥ वधोवानरशार्दूलनवयंस्ववशेस्थिताः ॥ ३५ ॥ शृणुचाप्यपरंभूयःकारणंहरिपुंगव ॥ तच्छ्रुत्वाहिमहद्वीरनमन्युंकर्तुमर्हसि ॥ ३६ ॥ नमेतत्रमनस्तापोनमन्युर्हरिपुंगव ॥ वागुराभिश्चपाशैश्चकूटैश्चविविधैर्नराः ॥ ३७ ॥ प्रतिच्छन्नाश्चदृश्याश्चगृह्णंतिसुबहून्मृगान् ॥ प्रधावितान्वावित्रस्तान्विस्रब्धानतिविष्ठितान्॥ ॥ ३८ ॥ प्रमत्तानप्रमत्तान्वानरामांसाशिनोभृशम् ॥ विद्ध्यंतिविमुखांश्चापिनचदोषोऽत्रविद्यते ॥ ३९ ॥ यांतिराजर्षयश्चात्रमृगयांधर्मकोविदाः॥ तस्मात्त्वंनिहतोयुद्धेमयाबाणेनवानर ॥४०॥ अयुध्यन्प्रतियुध्यन्वायस्माच्छाखामृगोह्यसि ॥ ४१ ॥ दुर्लभस्यचधर्मस्यजीवितस्यशुभस्यच ॥ राजानोवानरश्रेष्ठप्रदातारोनसंशयः ॥ ४२ ॥ तान्नहिंस्यान्नचाक्रोशेन्नाक्षिपेन्नाप्रियंवदेत् ॥ देवामानुषरूपेणचरंत्येतेमहीतले ॥ ४३ ॥

के अर्थ वा यज्ञार्थ चाहें जिसके लिये मारें उन्हें कुछभी दोष नहीं होता ॥ ३९ ॥ बहुत सारे धर्मके जाननेंवाले राजर्षि लोगोंनें शिकार खेलते २ अनेक वनैले मृग मार डालेहैं, व इसी कारणसे हमने तुमको बाण मारकर संहार किया । क्योंकि तुमभी तो शाखामृगहीहो ॥४०॥ चाहें तुम हमसे युद्ध करतेथे या न करतेथे परन्तु थे तो मृगही;इस्से हमने तुमको मारा ॥ ४१ ॥ हे वानरश्रेष्ठ ! राजा लोग दुर्लभ और शुभकारी धर्म और जीवनतक दानकर देतेहैं इसमें कुछ संदेह नहीं ॥ ४२ ॥ राजालोगोंको न मारना चाहिये, उनके ऊपर क्रोध कर तर्जनादि न करना

र्णं उस शिखरके लगनेसे ॥ ४४ ॥ क्रोधके मारे अत्यन्त प्रज्वलितहो उठा और वेगसे वालिकुमार अंगदजीके ऊपर धाया ॥ ४५ ॥ महानाद करके कुंभकर्णनें समस्त वानरोंको त्रासितकर अत्यन्त रोषसे वह शूल महा बलवान अंगदजीके ऊपर छोड़ा ॥ ४६ ॥ परन्तु युद्धविद्याविशारद कपि श्रेष्ठ अंगदजी उस शूलको आता हुआ देख अपने शरीरको छोडकर दूरको कूदगये, और उस शूलको व्यर्थ कर दिया ॥ ४७ ॥ तिसके पीछे वेगसे उछलकर वीरश्रेष्ठ अंगदजीनें कुंभकर्णकी छातीमें इस प्रकार जोरसे लातमारी कि पर्वतकी समान कुंभकर्णभी उस लातके लगनेंसे मूर्छित होगया ॥ ४८ ॥ विपुल बलशाली कुंभकर्णनें क्षणभरमें चेतना पाय हँसकर अंगदजीकी छातीमें एक मूकामारा, कि जिसके

कुंभकर्णःप्रजज्वालक्रोधेनमहतातदा ॥ सोभ्यधावतवेगेनवालिपुत्रममर्षणम् ॥४५॥ कुंभकर्णोमहानादस्त्रासयन्सर्वं
वानरान्॥ शूलंससर्जवैरोषादंगदेतुमहाबलः॥४६॥तदापतंतंबलवान्युद्धमार्गविशारदः॥लाघवान्मोक्षयामासबलवान्व
नरर्षभः॥४७॥उत्पत्यचैनंतरसातलेनोरस्यताडयत्॥सतेनाभिहतःकोपात्प्रमुमोहाचलोपमः॥४८॥ सलब्धसंज्ञोऽतिब
लोमुष्टिंसंगृह्यराक्षसः ॥ अपहासेनचिक्षेपविसंज्ञःसपपातह॥४९॥तस्मिन्प्लवगशार्दूलेविसंज्ञेपतितेभुवि॥तच्छूलंसमुपा
दायसुग्रीवमभिदुद्रुवे ॥ ५० ॥ तमापतंतंसंप्रेक्ष्यकुंभकर्णंमहाबलम् ॥ उत्पपाततदावीरःसुग्रीवोवानराधिपः ॥ ५१ ॥
सपर्वताग्रमुत्क्षिप्यसमाविध्यमहाबलः ॥ अभिदुद्राववेगेनकुंभकर्णंमहाबलम् ॥ ५२ ॥ तमापतंतंसंप्रेक्ष्यकुंभकर्णःप्ल
वंगमम् ॥ तस्थौविवृत्तसर्वांगोवानरेंद्रस्यसंमुखः ॥ ५३ ॥

लगनेंसे वीरश्रेष्ठ अंगदजीभी मूर्छित होकर पृथ्वीमें गिरपड़े ॥ ४९ ॥ वानर शार्दूल अंगदजी जब पृथ्वीपर गिरकर मूर्छित होगये तब कुंभकर्ण शूल ग्रहण करके सुग्रीवजीके सन्मुख धाया ॥ ५० ॥ वीरश्रेष्ठ वानरराज सुग्रीवजी महा बलवान कुंभकर्णको आता हुआ देखकर आपही उछल गये ॥ ५१ ॥ वह महा बलवान सुग्रीवजी एक पर्वतको उखाड़कर महा बलवान कुंभकर्णके ऊपर चलाय स्वयं अतिवेगसे उसके ऊपरको दौडे ॥ ५२ ॥ परन्तु कुंभकर्ण वानरराज सुग्रीवजीको वीर दर्पसे आता हुआ देखकर, अपने हाथ पांव फैलाकर सुग्रीवजीके सन्मुख हुआ ॥५३॥

इस लिये तुमनें कामाचारीहो धर्मके मार्गको उल्लंघनकिया। उस भ्रातृभार्याकी धर्षणा करनेंके हेतु हमनें यह दंड तुमको दिया ॥ २० ॥ हे वा
नरवर! लोकोंके व्यवहारकी मर्यादाको उल्लंघन करनेंवाले लोक विमुख पुरुषको मारनेंके सिवाय हम और कोई दंड नहीं देखते ॥ २१ ॥ हम
श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न हुये, क्षत्रिय पापको नहीं सहसकते, सहोदरा भगिनी अथवा छोटे भ्राताकी स्त्रीसे ॥ २२ ॥ रमण करनेंवाले पुरुषको मार डाल
नाही ठीक दंड है महीपाल भरतजीनें हमको इसी प्रकारकी आज्ञाकीहै; सो हमनें उनकी आज्ञानुसारही कार्य किया है ॥ २३ ॥ तुमनें धर्मकी म
र्यादाको तोडा है; जो गुरु होकर धर्मकी मर्यादा तोडे; तौ परलोकमें धर्म पालक होकर उसकोभी विना दंड दिये नहीं छोड सकते ॥ २४ ॥

तद्व्यतीतस्यतेधर्मात्कामवृत्तस्यवानर ॥ भ्रातृभार्याभिमर्शेऽस्मिन्दंडोऽयंप्रतिपादितः ॥ २० ॥ नहिलोकविरुद्धं
स्यलोकवृत्तादपेयुषः ॥ दंडादन्यत्रपश्यामिनिग्रहंहरियूथप ॥ २१ ॥ नचतेमर्षयेपापंक्षत्रियोऽहंकुलोद्गतः ॥ औ
रसींभगिनींवापिभार्यांवाप्यनुजस्ययः ॥ २२ ॥ प्रचरेतनरःकामात्तस्यदंडोवधःस्मृतः ॥ भरतस्तुमहीपालोवयंत्वा
देशवर्तिनः ॥ २३ ॥ त्वंचधर्मादतिक्रांतःकथंशक्यमुपेक्षितुम् ॥ गुरुधर्मव्यतिक्रांतंप्राज्ञोधर्मेणपालयन् ॥ २४ ॥ भ
रतःकामयुक्तानांनिग्रहेपर्यवस्थितः ॥ वयंतुभरतादेशावधिंकृत्वाहरीश्वर ॥ त्वद्विधान्भिन्नमर्यादान्निग्रहीतुंव्यवस्थि
ताः ॥ २५ ॥ सुग्रीवेणचमेसख्यंलक्ष्मणेनयथातथा ॥ दारराज्यनिमित्तंचनिःश्रेयसकरःसमे ॥ २६ ॥ प्रतिज्ञाच
मयादत्तातदावानरसंनिधौ ॥ प्रतिज्ञाचकथंशक्यामद्विधेनानवेक्षितुम् ॥ २७ ॥

भरतजीनें कामाधीनहो स्वेच्छानुसार चलनेंवाले पुरुषोंको दंड देनेंकी व्यवस्थाकीहै; सो हम लोग उन भरतकी आज्ञा पालन करकै तुम्हारी स
मान धर्मकी मर्यादा तोडनेंवाले पुरुषोंको विनाश किये हैं ॥ २५ ॥ जैसे लक्ष्मणजीके सहित हमारी मित्रताईहै, वैसेही सुग्रीवजीभी हमारे सखा हैं,
सो सुग्रीवजी हमारी मित्रतासे अपना राज्य व स्त्री पानेंकेलिये हमारे निकट आये हैं, यह वानर हमारा बडा प्रियकारीहै ॥ २६ ॥ और दूसरे हमनें स
ब वानरोंके सहित प्रतिज्ञाभी कीहै कि तुम्हारा राज्य और तुम्हारी स्त्री तुम्हें दिलादेंगे। सो भला हम समान पुरुष प्रतिज्ञाको किस प्रकारसे त्या

अत्यन्त कुपित हुआ वह मुख फैलायकर सिंहनाद करनें लगा। इसके उपरान्त क्षण कालमें बिजलीकी समान प्रकाशमान शूल ग्रहणकर व घुमाय उसनें वानर रीछोंके पति सुग्रीवजीका प्राण संहार करनेंके लिये उनके ऊपर चलाया ॥ ६१ ॥ कि इतनेहीमें पवनकुमार हनुमानजीनें मूर्छासे जाग अति वेगसे उछलकर कुंभकर्णकी भुजा ओंके चलाये सुवर्णकी मालासे शोभित और पैने उस शूलको दोनों बाहोंसे पकडकर तोड डाला ॥६२ ॥ महावीर हनुमानजीने सौ भारके बने हुए उस कालेलोहेके शूलको अपनी जांघ पर रखकर लीला पूर्वक तोड़ डाला जिसको देखकर वानरोंके आनंदकी सीमा न रही ॥६३॥ हनुमानजीसे शूलको टूटा हुआ देखकर वानरोंकी सैना आनंदसे सिंहनाद करती हुई आगेको धाई ॥ ६४॥

तत्कुंभकर्णस्यभुजप्रणुन्नशूलंशितंकांचनदामयष्टिम् ॥ क्षिप्रंसमुत्पत्यनिगृह्यदोर्भ्यांबभंजवेगेनसुतोऽनिलस्य ॥ ६२ ॥ कृतंभारसहस्रस्यशूलंकालायसंमहत् ॥ बभंजजानुमारोप्यतदाहृष्टःप्लवंगमः ॥ ६३ ॥ शूलंभग्नंहनुमतादृष्ट्वावानरवाहिनी ॥ हृष्टाननादबहुशःसर्वतश्चापिदुद्रुवे ॥ ६४॥ बभूवाथपरित्रस्तोराक्षसोविमुखोऽभवत् ॥ सिंहनादंचतेचक्रुः प्रहृष्टावनगोचराः ॥ मारुतिंपूजयांचक्रुर्दृष्ट्वाशूलंतथागतम् ॥ ६५ ॥ सतत्तथाभग्नमवेक्ष्यशूलंचुकोपरक्षोधिपतिर्महात्मा ॥ उत्पाट्यलंकामलयात्सशृंगंजघानसुग्रीवमुपेत्यतेन ॥ ६६ ॥ सशैलशृंगाभिहतोविसंज्ञःपपातभूमौयुधिवानरेंद्रः ॥ तंवीक्ष्यभूमौपतितंविसंज्ञंनेदुःप्रहृष्टायुधियातुधानाः ॥ ६७॥ समभ्युपेत्याद्भुतघोरवीर्यंसकुंभकर्णोयुधिवानरेंद्रम् ॥ जहारसुग्रीवमभिप्रगृह्ययथानिलोमेघमिवप्रचंडः ॥ ६८ ॥

त्रासितहोकर राक्षसभी युद्ध करनेंसे विमुख होगये, उनको देखकर वानर गण हर्षितहो वारंवार सिंहनाद करनें लगे, और शूलको टूटा हुआ देखकर हनुमानजीकी बड़ाई करनें लगे॥ ६५॥ राक्षसपति महाबलवान कुंभकर्ण शूलको इस प्रकारसे टूटा हुआ देखकर अत्यन्त क्रोधित हुआ और लंकाके समीप स्थित मलयाचलका एक शृङ्ग उखाड़कर सुग्रीवजीके निकट आय उससे इनके ऊपर प्रहार किया॥ ६६ ॥ वानरोंके राजा सुग्रीवजी उस पर्वतके शृङ्गोंसे अत्यन्त घायल और चेतना रहित होकर पृथ्वीमें गिर पड़े उनको मूर्छित होकर पृथ्वीमें पड़ा देख निशाचरगण आनंदसे सिंहनाद करनें लगे ॥ ६७॥ उसके उपरान्त प्रचंड पवन जिस प्रकारसे बादलोंको उड़ा कर ले जाता है वैसेही कुंभकर्ण अद्भुत वीर्यवान

तुमनें सुग्रीवका प्रिय करनें और अपनी स्त्री प्राप्त करनेंके लिये हमको मारडाला, यदि पहलेहीसे आप हमें जतादेते तो हम एक दिनके बीचमें निःसंदेह आपकी भार्या मैथिलीको ला देते ॥ ४९ ॥ हम निःसंदेह तुम्हारी भार्याके हरण करनेंवाले दुरात्मा राक्षस रावणको संग्राममें विनाहने उसके गलेमें रस्सा बाँधकर आपके निकट ले आते ॥ ५० ॥ मैथिली समुद्रके जलमें, वा पातालमें, अथवा जहां कहीं भी होती आपकी आज्ञा पाते ही जानकी आपके पास ले आते, जैसे मधु कैटभ दैत्य करके हरीहुई शुक्ल यजुर्वेदकी श्रुतिको हयग्रीवजी ले आयेथे ॥ ५१ ॥ यह तो ठीकही ठीक हुआ कि हमारे स्वर्ग जानें पर सुग्रीव राजा होंगे, परन्तु यह कार्य अत्यन्त अनुचित हुआ कि आपनें हमको अधर्मसे मार डा

सुग्रीवप्रियकामेनयदहंनिहतस्त्वया ॥ मामेवयदिपूर्वंत्वमेतदर्थमचोदयः ॥ मैथिलीमहमेकाह्नातवचानीतवान्भवेः ॥ ४९ ॥ राक्षसंचदुरात्मानंतवभार्यापहारिणम् ॥ कंठेबद्ध्वाप्रदद्यांतेऽनिहतंरावणंरणे ॥ ५० ॥ न्यस्तांसागरतोयेवापातालेवापिमैथिलीम् ॥ आनयेयंतवादेशाच्छ्वेतामश्वतरीमिव ॥ ५१ ॥ युक्तंयत्प्राप्नुयाद्राज्यंसुग्रीवःस्वर्गतेमयि ॥ अयुक्तंयदधर्मेणत्वयाहंनिहतोरणे ॥ ५२ ॥ काममेवंविधोलोकःकालेनविनियुज्यते ॥ क्षमंचेद्भवताप्राप्तमुत्तरंसाधुचिंत्यताम् ॥ ५३ ॥ इत्येवमुक्त्वापरिशुष्कवक्त्रःशराभिघाताद्व्यथितोमहात्मा ॥ समीक्ष्यरामंरविसन्निकाशंतूष्णींबभौवानरराजसूनुः ॥ ५४ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०कि०सप्तदशःसर्गः ॥ १७ ॥ ॥ छ ॥ ॥
इत्युक्तःप्रश्रितंवाक्यंधर्मार्थसहितंहितं ॥ परुषंवालिनारामोनिहतेनविचेतसा ॥ १ ॥

ला ॥ ५२ ॥ एक दिन सबहीको कालके गालमें जानाहै, फिर इस्से हम मृत्युको प्राप्त हुए; तो क्या हुआ ? परन्तु आप हमको अधर्मसे वधकर जब राज्य प्राप्त करेंगे, और उस समय राज्य स्थित प्रजा गण प्रश्न करेंगे तो उनको आप क्या उत्तर देंगे? ॥ ५३ ॥ इस प्रकार बाणकी चोटसे व्यथित होकर वानरराज महात्मा वालिका मुख पीला पडगया और वह सूर्य समान तेजवान देखते २ मौनहोरहा ॥ ५४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे सप्तदशःसर्गः ॥ १७ ॥ श्रीरामचंद्रजीके द्वारा घायल, अचेतन वालि, श्रीरामचंद्रजीसे इस

कुम्भकर्णका सब शरीर फट जायगा और वह मरजायगा तब वानरराज सुग्रीवजीके समस्त वानरोंके आनंदकी सीमा न रहेगी ॥ ७५ ॥ अथवा हमारी इस प्रकारकी सहायताका क्या प्रयोजनहै ? यह वानरराज सुग्रीवजी यदि असुर व सर्पोंके सहित देवता लोगोंसे पकड़े जाँय तथापि यह अपने आपहीसे अपनेको छुटालेंगे ॥ ७६ ॥ ऐसा जान पड़ताहै कि पर्वतके प्रहारसे अत्यन्त चोट खानेंके कारण इन सुग्रीवजीका ज्ञान लोप हुआ होगा, इसी कारणसे स्वयं जो कुम्भकर्णसे रणस्थलमें वह पकडे गये हैं, ॥ ७७ ॥ इस बातको अबतक नहीं जान सकेहैं हमको निश्चय है कियह महात्मा सुग्रीवजी इसी मुहूर्तमें चेतनाको पाय अपना और वानर गणोंका जिस्से मंगल होगा उसकी चेष्टा करेंगे ॥ ७८ ॥ और जो अवश्यही हम

अथवास्वयमप्येषमोक्षंप्राप्स्यतिवानरः ॥ गृहीतोऽयंयदिभवेत्रिदशैःसासुरोरगैः ॥ ७६ ॥ मन्येनतावदात्मानंबुध्यते वानराधिपः ॥ शैलप्रहाराभिहतःकुंभकर्णेनसंयुगे ॥ ७७ ॥ अयंमुहूर्तात्सुग्रीवोलब्धसंज्ञोमहाहवे ॥ आत्मनोवानराणां चयत्पथ्यंतत्करिष्यति ॥ ७८ ॥ मयातुमोक्षितस्यास्यसुग्रीवस्यमहात्मनः ॥ अप्रीतिश्चभवेत्कष्टाकीर्तिनाशश्चशा श्वतः ॥ ७९ ॥ तस्मान्मुहूर्तंकांक्षिष्येविक्रमंमोक्षितस्यतु ॥ भिन्नंचवानरानीकंतावदाश्वासयाम्यहम् ॥ ८० ॥ इत्ये वंचिंतयित्वाथहनूमान्मारुतात्मजः ॥ भूयःसंस्तंभयामासवानराणांमहाचमूम् ॥ ८१ ॥ सकुंभकर्णोथविवेशलंकां स्फुरंतमादायमहाहरिंतम् ॥ विमानचर्यागृहगोपुरस्थैःपुष्पाग्र्यवर्षैरभिपूज्यमानः ॥ ८२ ॥ लाजगंधोदवर्षैस्तुसे व्यमानःशनैःशनैः ॥ राजवीथ्यास्तुशीतत्वात्संज्ञांप्रापमहाबलः ॥ ८३ ॥

महा बलवान सुग्रीवजीको ऐसे कष्टसे छुटादें तो इनकी निरंतर कीर्त्तिका नाश होगा; और इसही कारणसे हमारे साथ अनबनाव होजानाभी संभव है ॥ ७९ ॥ इसलिये हम क्षणभर परखकर इन शत्रुसे छुटे हुए वीरका पराक्रम देखें । और इतने इस भागी हुई वानरोंकी सैनाको सम झावें बुझावें ॥ ८० ॥ पवनकुमार हनुमानजी इस प्रकारकी चिन्ता करके इस बड़ी भारी वानरोंकी सैनाको फिर समझा बुझाकर स्थापित करनें लगे ॥ ८१ ॥ इस ओर कुम्भकर्ण उन दीप्तिमान् महा वानर सुग्रीवजीको ग्रहण करके विमान, मार्ग, ग्रह, और फाटको पर बैठे हुए राक्षसों करके उत्तम पुष्पोंकी वर्षासे पूजितहो लंकामें प्रवेश करता हुआ ॥ ८२ ॥ तब अक्षत चंदन युक्त जलकी वर्षासे धीरे २ सींचे जानेंके कारण और

हो सकताहै? ॥ १० ॥ हम अति उत्तम अपने धर्ममें टिके रह भरतजीकी आज्ञा शिर पर धारण कर, धर्ममार्ग छोडनेंवाले पुरुषोंका विचार किया करतेंहैं ॥ ११ ॥ तुमनें धर्मको क्लेश देकर निन्दनीय कर्म कियाहै ॥ तुम राजधर्मका अपमानकर उसमें नहीं टिके हुए अधिक कर कामाधीन हुएंहो ॥ १२ ॥ धर्ममें और अच्छे मार्गमें चलनेंवाले बडे भ्राता, पिता, और जो विद्या पढावे यह तीनोंजन पिताकी तुल्य होतेंहैं ॥ १३ ॥ छोटाभाई पुत्र और गुणवान शिष्य इनतीनों जनोंको पुत्रकी तुल्य समझना चाहिये, इसमें धर्मही कारणरूप गिना जाताहै ॥ १४ ॥हे वानर! सज्जनोंका परम धर्म अति सूक्ष्महै, सो हृदयमें टिका हुआ आत्मा शुभ अशुभ समस्तही जान सकताहै ॥ १५ ॥ तुम चपलस्वभाव, जन्मान्ध

तेवयंमार्गविभ्रष्टंस्वधर्मेपरमेस्थिताः ॥ भरताज्ञांपुरस्कृत्यचिंतयामोयथाविधि ॥ ११ ॥ त्वंतुसंक्लिष्टधर्मश्चकर्मणाचविगर्हितः ॥ कामतंत्रप्रधानश्चनस्थितोराजवर्त्मनि ॥ १२ ॥ ज्येष्ठोभ्रातापितावापियश्चविद्यांप्रयच्छति ॥ त्रयस्तेपितरोज्ञेयाधर्मेचपथिवर्तिनः ॥ १३ ॥ यवीयानात्मनःपुत्रःशिष्यश्चापिगुणोदितः ॥ पुत्रवत्तेत्रयश्चिंत्याधर्मश्चैवात्रकारणम् ॥ १४ ॥ सूक्ष्मःपरमविज्ञेयःसतांधर्मःप्लवंगम ॥ हृदिस्थःसर्वभूतानामात्मावेदशुभाशुभम् ॥ १५ ॥ चपलश्चपलैःसार्द्धंवानरैरकृतात्मभिः ॥ जात्यंधइवजात्यंधैर्मंत्रयन्प्रेक्षसेनुकिम् ॥१६॥ अहंतुव्यक्ततामस्यवचनस्य ब्रवीमिते ॥ नहिमांकेवलंरोषात्त्वंविगर्हितुमर्हसि॥१७॥तदेतत्कारणंपश्ययदर्थंत्वंमयाहतः ॥ भ्रातुर्वर्तसिभार्यायांत्यक्त्वाधर्मंसनातनम् ॥१८॥ अस्यत्वंधरमाणस्यसुग्रीवस्यमहात्मनः ॥ रुमायांवर्तसेकामात्स्नुषायांपापकर्मकृत्॥१९॥

और मूढहो, चपल बुद्धि जन्मान्ध वानरगणोंके सहित सलाह कर व उनके निकट उठनें बैठनेंसे तुमभी वैसेही होगयेहो ॥ १६ ॥तुम श्रवण करो कि हम यह वचन स्पष्ट प्रगट कर कहतेंहैं, कि तुम केवल रोषमें भर हमारी निन्दा करतेहो सो यह तुमको उचित नहींहै॥१७॥हम तुमको यह भी बतलातेंहैं कि जिस कारणसे हमनें तुमको माराहै तुम सनातन धर्मको छोड छोटेभ्राताकी स्त्रीसे रमण करते हो सो इसका विचार तुमही करलो कि यह बात उचित है वा अनुचित॥१८॥महात्मा सुग्रीवके जीवित रहते पापाचारी तुमनें उनकी स्त्री अपनी भ्रातावधूसे कामके अधीन हो रमणकिया १९॥

कुम्भकर्ण रुधिर उगलता हुआ शोभित हुआ ॥ ९० ॥ महावीर कुंभकर्णका आकार नीले अंजनकी समान काले रंगकाथा, सन्ध्या फूलनेंके
रंगसे रँगे हुए मेघकी समान उसकी शोभा अनुपमथी; ऐसे अति भयंकर रूप निशाचरनें फिर युद्धभूमिमें चलनेंके लिये अभिलाष किया ॥ ९१ ॥
वानरराज सुग्रीवजीके चले जानेंपर रौद्र मूर्त्ति इन्द्रका शत्रु कुम्भकर्ण दूसरी वार रणभूमिकी ओरको दौड़ा और अपनेंको आयुध
हीन विचार कर एक मुद्गर इसनें ग्रहण किया ॥ ९२ ॥ इसके उपरान्त वह महाबलवान राक्षस कुंभकर्ण सहसा लंका पुरीसे निकल
प्रलय समयके अग्नि जिस प्रकार प्रजा गणोंको भस्म करतेहैं, वैसेही वानरोंको भक्षण करनें लगा ॥ ९३ ॥ मांस रुधिरका लालची

नीलांजनचयप्रख्यःससंध्यइवतोयदः ॥ युद्धायाभिमुखोभीमोनमश्चक्रेनिशाचरः ॥ ९१ ॥ गतेचतस्मिन्सुरराजशत्रुः
क्रोधात्प्रदुद्रावरणायभूयः ॥ अनायुधोस्मीतिविचिंत्यरौद्रोघोरंतदामुद्गरमाससाद ॥ ९२ ॥ ततःसपुर्याःसहसाम
हात्मानिष्क्रम्यतद्वानरसैन्यमुग्रम् ॥ बभ्क्षरक्षोयुधिकुंभकर्णःप्रजायुगांताग्निरिवप्रवृद्धः ॥ ९३ ॥ बुभुक्षितःशोणित
मांसगृध्नुःप्रविश्यतद्वानरसैन्यमुग्रम् ॥ चखादरक्षांसिहरीन्पिशाचानृक्षांश्चमोहाद्युधिकुंभकर्णः यथैवमृत्युर्हरतेयुगां
तेसभक्षयामासहरींश्चमुख्यान् ॥ ९४ ॥ एकंद्वौत्रीन्बहून्क्रुद्धोवानरान्सहराक्षसैः ॥ समादायैकहस्तेनप्रचिक्षे
पत्वरन्मुखे ॥ ९५ ॥ संप्रस्रवत्तदामेदःशोणितंचमहाबलः ॥ वध्यमानोनगेंद्राग्रैर्भक्षयामासवानरान् ॥ ९६ ॥ ते
भक्ष्यमाणाहरयोरामंजग्मुस्तदागतिम् ॥ कुंभकर्णोभृशंक्रुद्धःकपीन्खादन्प्रधावति ॥ ९७ ॥

कुंभकर्ण भूंखा हुआथा इस कारणसे मोहके मारे ज्ञानहीन होकर उग्र वानरोंकी सैनामें प्रवेश करके, उसनें वानर, राक्षस, पिशाच या रीछोंमें
जिसको पाया ॥ ९४ ॥ वह वीर कुंभकर्ण क्रोधके मारे एक दो तीन या इस्से अधिक वानर गणोंको राक्षसोंके सहित एक हाथसे उठाय अपने
मुखमें डालनें लगा ॥ ९५ ॥ उस समय वसा (चरबी) और रुधिरकी धारा वहनेंसे उसका शरीर भीग गया, वानर गण पर्वतके शृङ्गोंसे उसको
प्रहार करते जातेथे, तथापि उसनें वानरोंको भक्षण करनेंमें कोई कसर नहीं रक्खी ॥ ९६ ॥ इस प्रकारसे कुंभकर्णके क्रोधमें भरकर वानरोंके

खरगोश, शशा, और कछुआ, यह पांच पंचनख वाले जीव ब्राह्मण और क्षत्रियोंके भक्षण करनें योग्यहैं ॥ ३९ ॥ बुद्धिमान् लोग वानरका चमडा, हड्डी, और रुवेंको स्पर्श तक नहीं करते और मांस तो हमारा अभक्ष्यहैही सो हम उन्हीं पंचनखवाले वानरको आपनें किस कारणसे वध किया ? ॥ ४० ॥ हाय ! सर्व ज्ञान सम्पन्न तारानें हमको सत्य और हितकारी वचन कहेथे, परन्तु हम अज्ञान वश उसके वचनोंको न मानकर कालके कराल गालमें पडे ॥ ४१ ॥ हे श्रीरामचंद्र ! विधर्मी पतिको प्राप्त कर जिस प्रकार सुशील स्त्री सनाथ नहीं होती वैसेही आपको पाय पृथ्वी सनाथ नहीं हुई॥४२॥महाराज दशरथजी तो महात्मा पुरुष थे उनसे शठ पराया बुरा करने वाले नीच मिथ्या भाषी आपनें किस प्रकारसे जन्म ग्रह

चर्मचास्थिचमेरामनस्पृशंतिमनीषिणः॥अभक्ष्याणिचमांसानिसोऽहंपंचनखोहतः ॥४०॥तारयावाक्यमुक्तोऽहंसत्यं सर्वज्ञयाहितम् ॥ तदतिक्रम्यमोहेनकालस्यवशमागतः ॥ ४१ ॥ त्वयानाथेनकाकुत्स्थनसनाथावसुंधरा ॥ प्रमदा शीलसंपूर्णापत्येवचविधर्मणा ॥ ४२ ॥ शठोनैकृतिकःक्षुद्रोमिथ्याप्रश्रितमानसः ॥ कथंदशरथेनत्वंजातःपापोमहा त्मना ॥ ४३ ॥ छिन्नचारित्र्यकक्ष्येणसतांधर्मातिवर्तिना ॥ त्यक्तधर्मांकुशेनाहंनिहतोरामहस्तिना ॥ ४४ ॥ अशुभंचाप्ययुक्तंचसतांचैवविगर्हितम् ॥ वक्ष्यसेचेदृशंकृत्वासाद्भिःसहसमागतः ॥ ४५ ॥ उदासीनेषुयोऽस्मासुवि क्रमोऽयंप्रकाशितः॥अपकारिषुतेरामनैवंपश्यामिविक्रमम्॥ ४६ ॥दृश्यमानस्तुयुध्येथामयायुधिनृपात्मजः ॥अद्यवै वस्वतंदेवंपश्येस्त्वंनिहतोमया॥ ४७ ॥ त्वयाऽदृश्येनतुरणेनिहतोऽहंदुरासदः ॥ प्रसुप्तःपन्नगेनेवनरःपापवशंगतः॥४८॥

ण किया॥४३॥राम रूप हस्तीनें सज्जन लोगोंका धर्म उल्लंघन कर सदाचार की रस्सी तोड और धर्म रूप अंकुशको न मानकर हमको मार डाला॥४४॥ अशुभ, अयुक्त, सज्जनोंसे निन्दित कार्य कर, जब आप सज्जनसमाजमें बैठेंगे, तब उन लोगोंसे आप क्या कहेंगे ? ॥ ४५ ॥ हे राम ! आपनें हम उदासीन जनके ऊपर ऐसा विक्रम प्रकाश किया, परन्तु अपकारी पुरुषके ऊपर आपका पराक्रम दृष्टि नहीं आता ॥ ४६ ॥ हे राजकुमार ! यदि आप प्रगट होकर हमसे संग्राम करते तो अभी हमसे मारे जाकर निःसंदेह आप यमराजका भवन देखते ॥ ४७ ॥ हे राम ! मनुष्य लोग जिस प्रकार सोतेहुये सर्पको मार डालतेहैं आपनेंभी वैसेही अप्रगट रह कर अतिशय दुर्द्धर्ष हमको प्राणसे मारडाला ॥ ४८ ॥

वीर कुंभकर्ण महावीर [illegible] स्वरसे निरादरके प्रगट करनें वाले वचन कहनें लगा ॥ १०५ ॥ जिसनें संग्रामभूमिमें सरलतासे जीत लियाहै, उस कुंभकर्णके साथ निर्भय युद्ध करके तुमनें आज बड़ी भारी वीरता प्रकाशकी ॥ १०६ ॥ जिस समय हम अस्त्र शस्त्र धारण करके साक्षात् मृत्युकी समान घूमतेहैं, उस समय हमारे साथ युद्ध करना तो एक ओर रहै, जो हमारे सामनें उस समय खड़ाभीहोजाय, वही धन्यवाद देनेंके योग्यहै ॥ १०७ ॥ कारणकि सब ओरसे देवताओंके बीचमें घिरे हुए ऐरावत हाथीपर सवार देवराज इन्द्रभी पहले कभी रणभूमिमें हमारे सामनें टिकनेंको समर्थ नहीं हुए ॥ १०८ ॥ परन्तु हेलक्ष्मण! तुमनें बालक होंने परभी आज अपने बल

अंतकस्याप्यकष्टेनयुधिजेतारमाहवे ॥ युध्यतामामभीतेनख्यापितावीरतात्वया ॥ ६ ॥ प्रगृहीतायुधस्येहमृत्योरि
वमहामृधे ॥ तिष्ठन्नप्यग्रतःपूज्यःकिमुयुद्धप्रदायकः ॥ ७ ॥ ऐरावतंसमारूढोवृतःसर्वामरैःप्रभुः ॥ नैवशक्रोपि
समरेस्थितपूर्वःकदाचन ॥ ८ ॥ अद्यत्वयाहंसौमित्रेबालेनापिपराक्रमैः ॥ तोषितोगंतुमिच्छामित्वामनुज्ञाप्यराघ
वम् ॥ ९ ॥ यत्तुवीर्यबलोत्साहैस्तोषितोऽहंरणेत्वया ॥ राममेवैकमिच्छामिहंतुंयस्मिन्हतेहतम् ॥ ११० ॥ रामे
मयात्रनिहतेयेन्येस्थास्यंतिसंयुगे ॥ तानहंयोधयिष्यामिस्वबलेनप्रमाथिना ॥ ११ ॥ इत्युक्तवाक्यंतद्रक्षःप्रोवाच
स्तुतिसंहितम् ॥ मृधेघोरतरंवाक्यंसौमित्रिःप्रसहन्निव ॥ १२ ॥

और पराक्रमसे हमको सन्तुष्ट कर दियाहै, इसलिये हम तुम्हारी अनुमति लेकर रामचंद्रके निकट जानेंका अभिलाष करतेहैं ॥१०९॥ हम संग्राम भूमिमें तुम्हारे वीर्य बल और उत्साहसे परम संतोषको प्राप्त हुएहैं; इस कारण तुम्हैं छोड़कर अब हम रामकेही मार डालनेंकी इच्छा करतेहैं कारणकि उसके मारे जानेंपर सैना सबही मरजायगी ॥ ११० ॥ रामचंद्रके मर जानेपर बचे बचाये जो कोईभी समरमें टिके रहेंगे, हम अपने प्रचंड बलसे युद्ध कर उनके मानकोभी मथ डालेंगे ॥ १११ ॥ जब कुंभकर्णनें स्तुति युक्त और घोर यह वचन कहे तो सुमित्राके पुत्र लक्ष्म

असज्जनहो परन्तु सज्जनोका वेश धारण किये हुये पापिष्ठी पावकतुल्य ढके हुये कपट धर्मसे छिपे हो हमने पहले न जाना कि आप ऐसे हैं ॥ २३ ॥ आपके राज्यमें या नगरमें हमनें कोई पाप वा बुरा आचरण नहीं किया फिर आपनें किस कारणसे हमें मारा? हम नहीं जानते कि आप कौन हैं ॥ २४ ॥ हम नित्य फल मूल भोजन करनेवाले वनवासी वानर सुग्रीवसे युद्ध करतेथे कुछ आपको तो नहीं छेडाथा फिर आपनें क्यों हमें मारा? ॥ २५ ॥ हे राजन्! आप राजा दशरथजीके पुत्र प्रिय दर्शनहैं और आपमें धर्मानुसार चिह्नभी दृष्टि आतेहैं.कि जिस्से ज्ञात होताहै कि आप कभी अधर्म न करते होंगे ॥ २६ ॥ क्षत्रिय कुलमें उत्पन्न हुआ वेद जाननेंवाला इसलिये संशय रहित धर्म चिह्न धारण करके कौन पुरुष क्रूर

सतांवेषधरंपापंप्रच्छन्नमिवपावकम् ॥ नाहंत्वामभिजानामिधर्मच्छद्माभिसंवृतम् ॥ २३ ॥ विषयेवापुरेवातेयदा पापंकरोम्यहम् ॥ नचत्वामवजानेऽहंकस्मात्त्वंहंस्यकिल्बिषम् ॥ २४ ॥ फलमूलाशनंनित्यंवानरंवनगोचरम् ॥ मामिहप्रतियुध्यंतमन्येनचसमागतम् ॥ २५ ॥ त्वंनराधिपतेःपुत्रःप्रतीतःप्रियदर्शनः ॥ लिंगमप्यस्तितेराजन्दृश्यते धर्मसंहितम् ॥ २६ ॥ कःक्षत्रियकुलेजातःश्रुतवान्नष्टसंशयः॥ धर्मलिंगप्रतिच्छन्नःक्रूरंकर्मसमाचरेत् ॥ २७ ॥ त्वंराघवकुलेजातोधर्मवानितिविश्रुतः ॥ अभव्योभव्यरूपेणकिमर्थंपरिधावसे ॥ २८ ॥ सामदानंक्षमाधर्मःसत्यंधृति पराक्रमौ ॥ पार्थिवानांगुणाराजन्दंडश्चाप्यपकारिषु ॥२९॥ वयंवनचरारामममृगामूलफलाशिनः ॥ एषाप्रकृतिरस्माकं पुरुषस्त्वंनरेश्वर ॥ ३० ॥ भूमिर्हिरण्यंरूपंचनिग्रहेकारणानिच ॥ तत्रकस्तेवनेलोभोमदीयेषुफलेषुवा ॥ ३१ ॥

कर्मका आचरण करताहै? ॥ २७ ॥ रघुकुलमें आपनें जन्म लियाहै, संसारमें धर्मवान्के नामसे आप विख्यातहैं; फिर भला शुभ रूप धारण करके आपनें अधर्म कर्म क्यों किया? ॥ २८ ॥ हे राजन्! साम, दान, क्षमा, सत्य, धीरज और पराक्रम व शत्रुको दंड देना यह समस्त राजाओंके गुणहैं ॥ २९ ॥ हे नरेश्वर! हम फल मूलके भोजन करनेंवाले वनचर पशु तुल्यहैं, हमारी बुद्धि पशुकी समान होजाय तो आश्चर्य नहीं परन्तु आप नगरवासी पुरुषहैं आपका ऐसा स्वभाव क्योंकर हुआ ॥३०॥ आप सोना, चांदी, इत्यादिकोंके ऊपरही विवाद व युद्ध कर सकतेहैं;हम

हाथोंके चपत लगाय२कर बड़ाभारी युद्ध आरंभ किया जिस प्रकार पर्वतसे झरने गिराकरतेहैं वैसेही कुंभकर्णका रुधिरसे भीगाहुआ शरीर बाणो से अतिविद्ध होनेके कारण रुधिरके धाराओंको छोड़ने लगा अर्थात् उससे रुधिरकी धारें निकलने लगीं॥१२१॥उस समय वह वीर तीक्ष्णकोप और रुधिरकी गंधसे मूर्छित होकर वानर राक्षस और रीछोंको भक्षण करता हुआ दौड़ने लगा॥१२२॥इसकेउपरान्त यमराजकेसमान भयंकर पराक्रमकारी बलवान कुंभकर्णनें एक पर्वतका शृङ्ग उखाड श्रीरामचंद्रजीके मारनेंको चलाया परन्तु रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी फिर धनुष चढायकर सीधे चलने वाले सात बाणोसे बीचमेंही उस पर्वतके शृङ्गको खंड २ कर देते हुए ॥ १२३ ॥ तिसके उपरान्त धर्मात्मा भरतजीके बडे भाई श्रीराम

सतीव्रेणचकोपेनरुधिरेणचमूर्छितः ॥ वानरान्राक्षसानृक्षान्खादन्सपरिधावति ॥ २२ ॥ अथशृंगंसमाविध्यभीमंभी
मपराक्रमः ॥ चिक्षेपराममुद्दिश्यबलवानंतकोपमः ॥ आप्राप्तमंतरारामःसप्तभिस्तमजिह्मगैः ॥ २३ ॥ ततस्तुरामो
धर्मात्मातस्यशृंगंमहत्तदा ॥ शरैःकांचनचित्रांगैश्चिच्छेदभरताग्रजः ॥ २४ ॥ तन्मेरुशिखराकारैर्द्योतमानमिव
श्रिया ॥ द्वेशतेवानराणांचपतमानमपातयत् ॥ २५ ॥ तस्मिन्कालेसधर्मात्मालक्ष्मणोराममब्रवीत् ॥ कुंभकर्णवधे
युक्तोयोगान्परिमृशन्बहून् ॥ २६ ॥ नैवायंवानरान्राजन्नविजानातिराक्षसान् ॥ मत्तःशोणितगंधेनस्वान्परांश्चैव
खादते ॥ २७ ॥ साध्वेनमधिरोहंतुसर्वतोवानरर्षभाः ॥ यूथपाश्चयथामुख्यास्तिष्ठंत्वस्मिन्समंततः ॥ २८ ॥

चंद्रजीनें सुवर्णकी फोंक लगे हुए बाणोंसे उसका बडा भारी कवच काट कर फेंक दिया ॥ १२४ ॥ अपनी कांतिसे मेरु पर्वतके शिखरकी समान प्रकाशमान वह कवच पृथ्वीपर गिरा, और दो शत २०० वानर उसके नीचे दबगये ॥ १२५ ॥ उस समय धर्मात्मा लक्ष्मणजी स्वस्थ मनसे कुंभकर्णके वध करनेंको बहुतसे उपाय सोचते विचारते श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ १२६ ॥ हे महाराज ! कुंभकर्णको इस समय वानर और राक्षसोंका कुछभी भेद ज्ञान नहीं है, देखिये ! यह रुधिरकी गन्धसे मतवाला होकर अपनी पराई दोनों सैनाके वीरोंको पकड २ कर खा रहाहै ॥ १२७ ॥ हे राजन् ! इस्से वानरश्रेष्ठगण इसके ऊपर चढ़ जावें; और प्रधान यूथपति इसके ऊपर चढ़कर इसको चारों ओरसे घेरे रहैं ॥ १२८ ॥

भरकर वह पर्वतका शृङ्ग अतिवेगसे पर्वत श्रेष्ठकी समान निशाचर कुंभकर्ण के मारा कि जिसके लगनेंसे वह अत्यन्त कातर और व्याकुल हुआ; और उसके अंग; रुधिर और वसा (चरबी) से भीगगये ॥१८॥ तब महावीर कुंभकर्णनें बिजलीके समान प्रकाशमान और शब्दित शूल घुमायकर पर्वत जिसप्रकार जलते हुए अग्निके शृङ्गको धारण करताहै, वैसेही वह शूल हनुमानजीकी बाहोंमे मारा उस समय ऐसा जान पड़ा मानो कुमारने शक्ति चलायकर क्रौञ्च पर्वतको फोड़ डाला ॥ १९ ॥ अत्यन्त दारुण प्रहारसे रणभूमिमें वानर वीर हनुमानजी अत्यन्त विह्वल हुए, उनके मुखसे अनिवारित रुधिरकी धारा वहनें लगी; और वह प्रलयकालीन मेघके गर्जनकी समान अत्यन्त भयंकर गर्जन करनेंलगे॥२०॥ राक्षसगण हनुमानजीको अचा

सशूलमाविध्यतडित्प्रकाशंगिरिर्यथाप्रज्वलिताग्निशृंगम् ॥ बाह्वंतरेमारुतिमाजघानगुहोचलंक्रौंचमिवोग्रशक्त्या ॥ १९ ॥ सशूलनिर्भिन्नमहाभुजांतरःप्रविह्वलःशोणितमुद्वमन्रुषा ॥ ननादभीमंहनुमान्महाहवेयुगांतमेघस्तनितस्वनोपमम् ॥ २० ॥ ततोविनेदुःसहसाप्रहृष्टारक्षोगणस्तंव्यथितंसमीक्ष्य ॥ प्लवंगमास्तुव्यथिताभयार्ताःप्रदुद्रुवुःसंयतिकुंभकर्णात् ॥ २१ ॥ ततस्तुनीलोबलवान्पर्यवस्थापयन्बलम् ॥ प्रविचिक्षेपशैलाग्रंकुंभकर्णायधीमते ॥ २२ ॥ तदापतंतंसंप्रेक्ष्यमुष्टिनाभिजघानह ॥ मुष्टिप्रहाराभिहतंतच्छैलाग्रंव्यशीर्यत ॥ सविस्फुलिंगंसज्वालंनिपपातमहीतले ॥ २३ ॥ ऋषभःशरभोनीलोगवाक्षोगंधमादनः ॥ पंचवानरशार्दूलाःकुंभकर्णमुपाद्रवन् ॥ २४ ॥ शैलैर्वृक्षैस्तलैःपादैर्मुष्टिभिश्चमहाबलाः ॥ कुंभकर्णमहाकायंनिजघ्नुःसर्वतोयुधि ॥ २५ ॥

नक इस प्रकार व्यथित देखकर हर्षसे सिंहनाद करनें लगे और वानरगण भयसे दुःखित हृदयहो कुंभकर्णके निकटसे भागनेंलगे ॥२१॥ तिसके पीछे भयंकर पराक्रमकारी वानर सैनापति नीलनें सैनाको सावधान करके कुंभकर्ण पर एक बड़ा भारी पर्वतका शृंग चलाया ॥ २२ ॥ दूरसे उस पर्वतके शृङ्गको आता हुआ देखकर बलवान कुंभकर्णने घूसा मारकर उसको चूर्ण करडाला देखते २ उस पर्वत शृङ्गमेसें चिनगारियें निकलनें लगीं और ज्वाला सहित उसके टुकड़े पृथ्वीपर गिरनेलगे ॥ २३ ॥ उस समय ऋषभ, शरभ, नील, गवाक्ष, और गन्धमादन यह पांच वानरश्रेष्ठ कुंभकर्णकी ओर धाये ॥ २४ ॥ यह पांचों वानर वृक्षोंके आघातसे, पर्वतोंके प्रहारसे चपतकी मारसे लातोंकी चोटसे, और मूकोंकी मारसे पर्वताकार

किरीटधारी, शत्रुनाशी कुंभकर्णको देख पाया ॥ १३७ ॥ इसके संगमें असंख्य राक्षसोंकी सैनाथी, वह क्रोधसहित वानरोंकी सैनाको खोजत फिरताथा, जिस प्रकार दिगपाल हस्ती क्रोधित होताहो; वैसेही यह राक्षस वीर सबको व्याकुल कर रहाथा ॥ १३८ ॥ उसका आकार विन्ध्याचल और मन्दराचल पर्वतकी समान था सुवर्णका बाजू वह पहरेहुएथा, उसके मुखसे अनिवारित रुधिरकी धारा गिर रहीथी जिसके देखनेसे वह वर्षा कालीन मेघकी समान जान पड़ताथा ॥१३९॥ जीभसे अपने रुधिर लगे दोनो गलफड़ोंको कुंभकर्ण वारंवार चाट रहाथा, वह यमराजकी समान आकार धारण किये बराबर वानरोंकी सैनाका संहार कर रहा था ॥ १४० ॥ पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीनें प्रज्वलित अग्निकी समान उस

सर्वान्समभिधावंतंयथारुष्टंदिशागजम् ॥ मार्गमाणंहरीन्क्रुद्धंराक्षसैःपरिवारितम् ॥ ३८ ॥ विंध्यमंदरसंकाशंकांचनांगदभूषणम् ॥ स्रवंतंरुधिरंवक्त्राद्वर्षमेघमिवोत्थितम् ॥ ३९ ॥ जिह्वयापरिलिह्यंतंसृक्किणीशोणितोक्षिते ॥ मृद्नंतंवानरानीकंकालांतकयमोपमम् ॥ १४० ॥ तंदृष्ट्वाराक्षसश्रेष्ठंप्रदीप्तानलवर्चसम् ॥ विस्फारयामासतदाकार्मुकंपुरुषर्षभः ॥ ४१ ॥ सतस्यचापनिर्घोषात्कुपितोराक्षसर्षभः ॥ अमृष्यमाणस्तंघोषमभिदुद्रावराघवम् ॥ ४२ ॥ ततस्तुधारोद्धतमेघकल्पंभुजंगराजोत्तमभोगबाहुः ॥ तमापतंतंधरणीधराभमुवाचरामोयुधिकुंभकर्णम् ॥ ४३ ॥ आगच्छरक्षोधिपमाविषादमवस्थितोहंप्रगृहीतचापः ॥ अवेहिमांराक्षसवंशनाशनंयस्त्वंमुहूर्ताद्भवितािचेताः ॥ १४४ ॥

उग्र मूर्त्तिवाले राक्षस कुंभकर्णको देख अपने धनुष पर टंकारदी॥१४१॥ परन्तु राक्षसश्रेष्ठ कुंभकर्ण उस धनुषकी टंकारको नही सहन करसका वरन वह दूना क्रोधकर श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख दौड़ा ॥ १४२ ॥ इसके उपरान्त भुजगराजसदृश बाहुयुगलशाली श्रीरामचंद्रजी कुंभकर्णको पवनसे उठायेहुए मेघकी समान आताहुआ देखके कहनें लगे ॥ १४३ ॥ हे राक्षसपति! तुम विषाद न करो! यह देखो हम धनुष हाथमें लिये खडे हुएहैं । हमकोही राक्षसोंके कुलका अंत करनेंवाला राम जानो हे वीर! तुम इसी मुहूर्तमें जीवविहीन होगये ॥ १४४ ॥

परन्तु वानरगण कुंभकर्ण करके उसके पातालकी समान मुखविवरमें डाले जाकर नाकके छेद और कानोंमें होकर निकलने लगे॥३५॥वह पर्वताकार राक्षसश्रेष्ठ अत्यन्त क्रोधित होकर वानरोंको भक्षण करता हुआ समस्त वानरोंकी सैनाको पटकरकर उसके अंग भंग करने लगा॥३६॥इस प्रकार राक्षस कुंभकर्ण रणभूमिमें मांस और रुधिरकी कीचड़ उठाय प्रलय कालके प्रदीप्त अग्नि समान वानरोंकी सैनाके बीचमे घूमनें लगा॥३७॥इन्द्रजी वज्रधारण करके जिसप्रकार शोभित होतेहैं, फांसी हाथमें लिये यमराज जिसप्रकार शोभायमान होतेहैं वैसेही शूल धारण करके कुंभकर्णकी चमत्कार शोभा हुई ॥ ३८ ॥जिसप्रकार अग्नि ग्रीष्मऋतुमें ग्रीष्मके समयमें सूखे हुए वनको जलातेहैं, वैसेही कुंभकर्णभी वानरोंकी सैनाको भस्म करनें लगा ॥ ३९ ॥

प्रक्षिप्ताःकुंभकर्णेनवक्त्रेपातालसन्निभे ॥ नासापुटाभ्यांसंजग्मुःकर्णाभ्यांचैववानराः ॥ ३५ ॥ भक्षयन्भृशसंक्रुद्धोहरीन्पर्वतसन्निभः ॥ बभंजवानरान्सर्वान्संक्रुद्धोराक्षसोत्तमः ॥ ३६ ॥ मांसशोणितसंक्लेदांकुर्वन्भूमिंसराक्षसः ॥ चचारहरिसैन्येषुकालाग्निरिवमूर्छितः ॥ ३७ ॥ वज्रहस्तोयथाशक्रःपाशहस्तइवांतकः ॥ शूलहस्तोबभौयुद्धेकुंभकर्णोमहाबलः ॥ ३८ ॥ यथाशुष्काण्यरण्यानिग्रीष्मेदहतिपावकः ॥ तथावानरसैन्यानिकुंभकर्णोददाहसः ॥ ३९ ॥ ततस्तेवध्यमानास्तुहतयूथाःप्लवंगमाः ॥ वानराभयसंविग्नाविनेदुर्विकृतैःस्वरैः ॥ ४० ॥ अनेकशोवध्यमानाःकुंभकर्णेनवानराः ॥ राघवंशरणंजग्मुर्व्यथिताभिन्नचेतसः ॥ ४१ ॥ प्रभग्नान्वानरान्दृष्ट्वावज्रहस्तात्मजात्मजः ॥ अभ्यधावतवेगेनकुंभकर्णमहाहवे ॥ ४२ ॥ शैलशृंगंमहद्गृह्यविनदन्समुहुर्मुहुः ॥ त्रासयन्राक्षसान्सर्वान्कुंभकर्णपदानुगान् ॥ ४३ ॥ चिक्षेपशैलशिखरंकुंभकर्णस्यमूर्धनि ॥ सतेनाभिहतोमूर्ध्निशैलेनेंद्ररिपुस्तदा ॥ ४४ ॥

तब मोरचोंसे तितर बितर हुए वानरगण कुंभकर्णसे वध्यमान होकर भयके मारे उद्विग्न मनसे विकट नादकरनें लगे ॥ ४० ॥ इस प्रकारसे वानरगण कुंभकर्णसे मारे जाकर उत्साह रहित होगये, और अत्यन्त भीतहो व्यथित मनसे श्रीरामचंद्रजीकी शरणमें गये ॥ ४१ ॥ वालिकुमार अंगदजी महारणमें वानरोंको कुंभकर्णके डरसे भागा हुआ देखकर वेग सहित उसके सन्मुख दौड़े ॥ ४२ ॥ उन वीर वालिकुमार अंगदजीने बड़ा भारी पर्वत का शृंग ग्रहणकरके कुंभकर्णके अनुगामी सब राक्षसोंको त्रासित कर॥४३॥ वह पर्वताकार शिखर कुंभकर्णके मस्तकपर चलाया इन्द्रका शत्रु कुंभक

व्यथा उपजानेंको समर्थ नहीं हुए ॥ १५२ ॥ इन्द्रके शत्रु कुंभकर्णनें पानीकी धाराके समान वह समस्त बाण अपनें शरीरमें धारण करके अति
उग्र वेगवाले मुद्गरके प्रहारसे श्रीरामचंद्रजीके सब बाणोंका वेग निवारण कर दिया ॥ १५३ ॥ इसके उपरान्त कुंभकर्ण जिस्से देवताओंकी
सैनाभी भागगईथी उसी रुधिर लगे हुए उग्र वेगवान मुद्गरके प्रहारसे बड़ी भारी वानरोंकी सैनाको भगानें लगा ॥ १५४ ॥ यह देखकर श्रीरा
मचन्द्रजीनें वायव्य नामक श्रेष्ठ अस्त्र ग्रहणकर कुंभकर्णके ऊपर चलाय उस्से मुद्गरके सहित उसकी बांह काटडाली और कुंभकर्णभी बांह कट
जानेंसे कठोर शब्द करनें लगा ॥ १५५ ॥ पर्वतके शृङ्गकी समान मुद्गरयुक्त श्रीरामचन्द्रजीके बाणसे कटाहुआ वह हाथ वानरराज सुग्रीवजीकी

सवारिधाराइवसायकांस्तान्पिबन्शरीरेणमहेंद्रशत्रुः ॥ जघानरामस्यशरप्रवेगंव्याविध्यतंमुद्गरमुग्रवेगम् ॥ ५३ ॥
ततस्तुरक्षःक्षतजावलिप्तंवित्रासनंदेवमहाचमूनाम् ॥ व्याविध्यतंमुद्गरमुग्रवेगंविद्रावयामासचमूंहरीणाम् ॥ ५४ ॥
वायव्यमादायततोपरास्त्रंरामःप्रचिक्षेपनिशाचराय ॥ समुद्गरंतेनजहारबाहुंसकृत्तबाहुस्तुमुलंननाद ॥ ५५ ॥
सतस्यबाहुर्गिरिशृंगकल्पःसमुद्गरोराघवबाणकृत्तः ॥ पपाततस्मिन्हरिराजसैन्येजघानतांवानरवाहिनींच ॥ ५६ ॥
तेवानराभग्नहतावशेषाःपर्यंतमाश्रित्यतदाविषण्णाः ॥ प्रपीडितांगादद‍ृशुःसुघोरंनरेंद्ररक्षोधिपसन्निपातम् ॥ ५७ ॥
सकुंभकर्णोस्त्रनिकृत्तबाहुर्महासिकृत्ताग्रइवाचलेंद्रः ॥ उत्पाटयामासकरेणवृक्षंततोभिदुद्रावरणेनरेंद्रम् ॥ ५८ ॥
तंतस्यबाहुंसहतालवृक्षंसमुद्यतंपन्नगभोगकल्पम् ॥ ऐंद्रास्त्रयुक्तेनजघानरामोबाणेनजांबूनदचित्रितेन ॥ ५९ ॥

सैनामें गिरा, कि जिस्से बहुतसी वानरोंकी सैना दबकर मरगई ॥ १५६ ॥ भागे हुए और बचे बचाये देहमें पीड़ा पाय वानरगण
व्याकुल वदनसे एक बगल खड़ेहो मनुष्योंमें इन्द्र श्रीरामचन्द्रजी और राक्षसोंमें इन्द्र कुंभकर्णका घोर संग्राम देखनें लगे ॥ १५७ ॥ इसके उपरान्त
बड़े भारी खड्गसे कटे हुए पर्वतकी समान श्रीरामचन्द्रजीके बाणसे हाथ कटा हुआ कुम्भकर्ण दूसरे हाथसे एक वृक्ष उखाड़कर नरेन्द्र श्रीरामचं
द्रजीकी ओर दौड़ा ॥ १५८ ॥ परन्तु श्रीरामचन्द्रजीनें सुवर्णसे चित्रित ऐन्द्रास्त्रसंयोजित बाणसे शालवृक्षके सहित सर्पके शरीरकी समान चढ़

महा २ वानरोंके भक्षण करनेंसे जिनके सर्वाङ्गोंमें वानरोंका रुधिर लगा हुआथा उस कुंभकर्णको सन्मुख खडा हुआ देखकर सुग्रीवजी कहनें लगे॥ ५४ ॥ हेवीर! तुमनें हमारी ओरके प्रधान २ वीरोंको मारकर वीरताका परिचय दियाहै, हमारी बहुत सारी सैना तुमने भक्षणभी करली है, अधिक क्याकहें तुमनें यह कार्य करके अनुपम यश प्राप्त कियाहै ॥ ५५ ॥ इसलिये इस समय तुम इन वानरोंको छोडदो, साधारण वानरोंके साथ युद्ध करनेंसे तुमको क्या फल मिलेगा ? हे राक्षस ! जो युद्धकी वासना हो तो हम यह पर्वतका शृङ्ग चलाते हैं, तुम आज हमारे साथ युद्ध करो ॥ ५६ ॥ वानरराज सुग्रीवजीके वीरता धीरता युक्त ऐसे वचन सुनकर राक्षस शार्दूल कुंभकर्ण बोला ॥ ५७ ॥ तुम प्रजापति ब्रह्माजीके

कपिशोणितदिग्धांगंभक्षयंतंमहाकपीन् ॥ कुंभकर्णंस्थितंदृष्ट्वासुग्रीवोवाक्यमब्रवीत् ॥ ५४ ॥ पातिताश्चमयावीराःकृतंकर्मसुदुष्करम् ॥ भक्षितानिचसैन्यानिप्राप्तंतेपरमंयशः ॥ ५५ ॥ त्यजतद्वानरानीकंप्राकृतैःकिंकरिष्यसि ॥ सहस्वैकंनिपातंमेपर्वतस्यास्यराक्षस ॥ ५६ ॥ तद्वाक्यंहरिराजस्यसत्त्वधैर्यसमन्वितम् ॥ श्रुत्वाराक्षसशार्दूलःकुंभकर्णोऽब्रवीद्वचः ॥५७॥ प्रजापतेस्तुपौत्रस्त्वंतथैवर्क्षरजःसुतः ॥ धृतिपौरुषसंपन्नस्तस्माद्गर्जसिवानर ॥ ५८ ॥ सकुंभकर्णस्यवचोनिशम्यव्याविध्यशैलंसहसामुमोच ॥ तेनाजघानोरसिकुंभकर्णंशैलेनवज्राशनिसन्निभेन ॥ ५९ ॥ तच्छैलशृंगंसहसाविभिन्नंभुजांतरेतस्यतदाविशाले ॥ ततोविषेदुःसहसाप्लवंगारक्षोगणाश्चापिमुदाविनेदुः ॥ ६० ॥ सशैलशृंगाभिहतश्चुकोपननादरोषाच्चविवृत्यवक्त्रम् ॥ व्याविध्यशूलंचतडित्प्रकाशंचिक्षेपहर्यृक्षपतेर्वधाय ॥ ६१ ॥

पोते और ऋक्षराज वानरके पुत्रहो विशेष करके तुममें धीरता और पौरुषहै; इसीलिये तुम ऐसा गर्जन करतेहो ॥ ५८ ॥ तिसके पीछे वानर राज सुग्रीवजीनें राक्षसराज रावणके छोटे भ्राता कुंभकर्णके ऐसे वचन सुनकर, उस पर्वतके शिखरको घुमाय कुंभकर्णके ऊपर चलाया, वज्र और अशनिके समान वह शैल शृङ्ग कुंभकर्णकी छातीमें लगा ॥ ५९ ॥ परन्तु वह पर्वतका शृङ्ग कुंभकर्णकी बड़ी छातीमें लगकर सहसा चूर्ण होगया, तिसके चूर्ण होंनेसे वानरगण शोकित हुए और राक्षस गण आनंदके मारे सिंहनाद करनें लगे ॥ ६० ॥ शैल शृङ्गकी ताड़नासे कुंभकर्ण

ससायकोराघवबाहुचोदितोदिशःस्वभासादशसंप्रकाशयन् ॥ विधूमवैश्वानरभीमदर्शनोजगामशक्राशनिभीमवि
क्रमम् ॥ ६७ ॥ सतन्महापर्वतकूटसन्निभंसुवृत्तदंष्ट्रंचलचारुकुंडलम् ॥ चकर्तरक्षोधिपतेःशिरस्तदायथैववृत्रस्यपुरा
पुरंदरः ॥ ६८ ॥ कुंभकर्णशिरोभातिकुंडलालंकृतंमहत् ॥ आदित्येऽभ्युदितेरात्रौमध्यस्थइवचंद्रमाः ॥ ६९ ॥ तद्रा
मबाणाभिहतंपपातरक्षःशिरःपर्वतसन्निकाशम् ॥ बभंजचर्यागृहगोपुराणिप्राकारमुच्चंतमपातयच्च ॥ १७० ॥ तच्चाति
कायंहिमहत्प्रकाशंरक्षस्तदातोयनिधौपपात ॥ ग्राहान्परान्मीनवरान्भुजंगमान्ममर्दभूमिंचतथाविवेश ॥ ७१ ॥ त
स्मिन्हतेब्राह्मणदेवशत्रौमहाबलेसंयतिकुंभकर्णे ॥ चचालभूर्भूमिधराश्चसर्वेहर्षाच्चदेवास्तुमुलंप्रणेदुः ॥ ७२ ॥ तत
स्तुदेवर्षिमहर्षिपन्नगाःसुराश्चभूतानिसुपर्णगुह्यकाः ॥ सयक्षगंधर्वगणानभोगताःप्रहर्षितारामपराक्रमेण ॥ ७३ ॥

प्रदीप्त सूर्य अग्निके समान प्रकाशित, और इन्द्रके वज्रकी तुल्य वेगवाला यह बाण निशाचर कुंभकर्णके ऊपर चलाया ॥ १६६ ॥ श्रीरामचंद्रजीकी भुजाओंसे चलाहुआ वह बाण अपनी प्रभासे प्रकाशित कराता हुआ धुंआरहित अग्निकी समान भयंकर दर्शनहो, इन्द्रवज्रकी समान विक्रमकारी उस राक्षसके ऊपर पहुंचा ॥१६७॥ जिसप्रकार पूर्वकालमें पुरन्दर इन्द्रजीनें वृत्रासुरका मस्तक काट डालाथा वैसेही हिलतेहुए दोकुंडलोंसे शोभाय मान दांत निकलाहुआ कुंभकर्णका मस्तक पहुंचतेही उस बाणने काटडाला ॥ १६८ ॥ उसकालमें कुंभकर्णका कुंडलहीन बड़ा भारी मस्तक सूर्यके उदय होनेसे मलीन हुए आकाशमें टिके चन्द्रमाकी समान शोभायमान हुआ॥१६९॥ राक्षस कुंभकर्णका पर्वतकी समान मस्तक श्रीरामचं द्रजीके बाणसे कटकर जब लंकाके कोटकी भीत सैना निवास स्थान और प्राकारपर जैसेही गिरा,कि उसके गिरतेही धमाकेसे यह ढह पड़े ॥१७०॥ हिमालयकी समान बड़े आकारवाले उस राक्षसका धड़ समुद्रमें जायकर गिरा, और बड़े २ ग्राह, मीन, सर्पगण, और पृथ्वीकोभी मर्दित करता हुआ जलमें डूबगया ॥ १७१ ॥ देवता और ब्राह्मण लोगोंके शत्रु महाबलवान उस कुंभकर्णके रणभूमिके मध्य मारे जानेंपर पृथ्वी और समस्त पर्वत कंपायमान होनेलगे और देवतालोग हर्षके मारे कठोर सिंहनाद करनेंलगे ॥ १७२ ॥ आकाशमें टिके हुए देव, देवर्षि, पन्नग, गरुड़, गुह्यक

घोर पराक्रमकारी वानरेन्द्र सुग्रीवके निकट आय उनको काखमें दबाय उडा ले चला ॥ ६८ ॥ उस कालमें सुमेरु पर्वतकी समान आकार वाला कुंभकर्ण, महामेघकी समान सुग्रीवजीको ग्रहण करके बड़े ऊंचे शृङ्गोंसे युक्त चलते हुए मेरु पर्वतकी समान शोभायमान होनें लगा ॥ ६९ ॥ और वानरराज सुग्रीवजीको पकड़ा हुआ देखकर देवता लोग अत्यन्त विस्मितहो अनेक प्रकारसे शोकका जताने वाला हाहाकार शब्द करनें लगे और वीरश्रेष्ठ राक्षसेन्द्र कुंभकर्ण उन समस्त शब्दोंको श्रवण करता हुआ निशाचरोंसे बड़ाई पाता लंकाको चला ॥ ७० ॥ इन्द्रकी समान वीर्यवान् इन्द्रका शत्रु कुंभकर्ण उस समय इन्द्रकी समान वानरोंके स्वामी सुग्रीवजीको पकड़कर मनमें निश्चय करता हुआ कि, इस सुग्रीवके

सतंमहामेघनिकाशरूपमुत्पाट्यगच्छन्युधिकुंभकर्णः ॥ रराजमेरुप्रतिमानरूपोमेरुर्यथाव्युच्छ्रितघोरशृंगः ॥ ६९ ॥
ततस्तमादायजगामवीरःसंस्तूयमानोयुधिराक्षसेंद्रः ॥ शृण्वन्निनादंत्रिदिवालयानांप्लवंगराजग्रहविस्मितानाम् ॥
॥ ७० ॥ ततस्तमादायतदासमेनेहरींद्रमिंद्रोपममिंद्रवीर्यः ॥ अस्मिन्हृतेसर्वमिदंहतंस्यात्सराघवंसैन्यमितींद्रशत्रुः ॥ ७१ ॥ विद्रुतांवाहिनींदृष्ट्वावानराणामितस्ततः ॥ कुंभकर्णेनसुग्रीवंगृहीतंचापिवानरम् ॥ ७२ ॥
हनूमांश्चिंतयामासमतिमान्मारुतात्मजः ॥ एवंगृहीतेसुग्रीवेकिंकर्तव्यंमयाभवेत् ॥ ७३ ॥ यद्विन्याय्यंमयाकर्तुंतत्करिष्याम्यसंशयम् ॥ भूत्वापर्वतसंकाशोनाशयिष्यामिराक्षसम् ॥ ७४ ॥ मयाहतेसंयतिकुंभकर्णेमहाबलेमुष्टिविशीर्णदेहे ॥ विमोचितेवानरपार्थिवेचभवंतुहृष्टाःप्लवगाःसमग्राः ॥ ७५ ॥

मरनें पर रामचंद्र व लक्ष्मणके सहित समस्त वानरोंकी सेना अपने आप मर जायगी ॥ ७१ ॥ उस समय इधर उधर भागती हुई वानरोंकी सेनाको निहार और कुंभकर्णसें पकड़े हुए सुग्रीवजीको देख वानर ॥ ७२ ॥ पवन कुमार बडे बुद्धिमान हनुमानजी अपने मनमें चिन्ता करनें लगे; कि सुग्रीवजी तो इस भांतिसे पकडे गये अब हमको क्या करना उचितहै ॥७३॥इस समय जो कुछ करना उचितहै, हम वही समस्त पूर्ण करनेंके निमित्त पर्वताकार देह धारण करके निश्चयही निशाचर कुंभकर्णका संहार करेंगे ॥ ७४ ॥ हम देखते हैं कि हमारे हाथके मूका लगनेंसे युद्धमें

हे राजन्! कालकी समान आपके भ्राता कुंभकर्ण कालधर्म संयुक्त हुए प्रथम रणभूमिमें पहुंचतेही पहुंचते उन्होंनें समस्त वानरोंकी सैनाको भगादिया और जब वानरगण उनके निकट आये तौ सहस्रों लक्षोंको उन्होंनें खा लिया ॥ २ ॥ इस प्रकार एक मुहूर्तभरतक सबको संतापितकर और आपभी संतप्त हो फिर वह कुंभकर्ण श्रीरामचंद्रजीके तेजसे आपही बुझ गये उनका मस्तकविहीन देह (अगण्ड) भयंकर दर्शनवाले समुद्रमें प्रवेश करगया ॥ ३ ॥ उनका नाक कान विहीन रुधिरसे सनाहुआ पर्वतकी समान मस्तक लंकाके द्वारको रूंधे हुए डटा हुआहै ॥ ४ ॥ अधिक क्या कहे तुम्हारे भ्राता कुंभकर्णको श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे पीड़ित और हाथ पाँव रहित होकर दावानलसे भस्म हुए वृक्षकी समान अनावृत

राजन्सकालसंकाशःसंयुक्तःकालकर्मणा ॥ विद्राव्यवानरींसेनांभक्षयित्वाचवानरान् ॥ २ ॥ प्रतपित्वामुहूर्तंतु प्रशांतोरामतेजसा ॥ कायेनार्धप्रविष्टेनसमुद्रंभीमदर्शनम् ॥ ३ ॥ निकृत्तनासाकर्णेनविक्षरद्रुधिरेणच ॥ रुद्ध्वा द्वारंशरीरेणलंकायाःपर्वतोपमः ॥ ४ ॥ कुंभकर्णस्तवभ्राताकाकुत्स्थशरपीडितः ॥ अगंडभूतोविवृतोदावदग्ध इवद्रुमः ॥ ५ ॥ श्रुत्वाविनिहतंसंख्येकुंभकर्णंमहाबलम् ॥ रावणःशोकसंतप्तोमुमोहचपपातच ॥ ६ ॥ पितृव्यंनिहतं श्रुत्वादेवांतकनरांतकौ ॥ त्रिशिराश्चातिकायश्चरुरुदुःशोकपीडिताः ॥ ७ ॥ भ्रातरंनिहतंश्रुत्वारामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ महोदरमहापार्श्वौशोकाक्रांतौबभूवतुः ॥ ८ ॥ ततःकृच्छ्रात्समासाद्यसंज्ञांराक्षसपुंगवः ॥ कुंभकर्णवधाद्दीनोविललापाकुलेंद्रियः ॥ ९ ॥

देहसे प्राण त्याग करनें पड़े हैं ॥ ५ ॥ महाबलवान कुंभकर्णको रणभूमिमे मरा हुआ सुनकर रावण शोकसे संतापित हो मूर्छा खाय पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ६ ॥ उस देवान्तक नरान्तक त्रिशिरा और अतिकाय यह सब अपने चचाके मरनेंका समाचर पाय शोकसे आतुर रोंनें लगे ॥ ७ ॥ महोदर और महापार्श्व यह अपने सौतेले भाईको सरल कर्मकारी श्रीरामचंद्रजीके हाथसे नष्ट हुआ सुनकर शोकसे अत्यन्त अधीर होगये ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त राक्षसश्रेष्ठ रावण बडे कष्टसें चेतना पाय कुंभकर्णके मारेजानेसे इन्द्रियोंकी व्याकुलताके वश दीनभावसे

मार्गकी शीतलताई लगनेंसे धीरे २ महा बलवान सुग्रीवजीकी मूर्छा जागी ॥ ८३ ॥ इस प्रकारसे वह महा बलवान सुग्रीवजी बहुत कष्टसे चेतना पाय अपनेको लंकापुरीके मार्ग बीच उस महा बलशाली कुम्भकर्ण की बाहोंमें फँसा देख विचार करनें लगे ॥ ८४ ॥ कि इस प्रकारसे जब यह हमको पकड़े हुए हैं तब हमसे क्या होसकताहै? जो कुछभीहो आज इस अवस्थामेंभी हम ऐसा कार्य करेंगे कि जिस्से वानर गणोंका मंगल और हितकारी कार्य सिद्ध हो ॥ ८५ ॥ यह विचारकर महा बलवान सुग्रीवजीनें तीखे दांत और नखोंके आघातसे अति शीघ्रता पूर्वक कुम्भ कर्णकी नाक काट डाली, व दोनों कानभी साफ उडादिये और अपने पावोंके तीक्ष्ण नखोंसे उसकी दोनों बगलें चीर फाड़ डालीं ॥ ८६ ॥ उस

ततःससंज्ञांमुपलभ्यकृच्छ्राद्बलीयसस्तस्यभुजांतरस्थः ॥ अवेक्षमाणःपुरराजमार्गंविचिंतयामाससमुहुर्महात्मा ॥८४ ॥ एवंगृहीतेनकथंनुनामशक्यंमयासंप्रतिकर्तुमद्य ॥ तथाकरिष्यामियथाहरीणांभविष्यतीष्टंचहितंचकार्यं ॥ ८५ ॥ ततःकराग्रैःसहसासमेत्यराजाहरीणाममरेंद्रशत्रोः ॥ खरैश्चकर्णौदशनैश्चनासांददंशपादैर्विददारपार्श्वौ ॥ ८६ ॥ सकुंभकर्णोहृतकर्णनासोविदारितस्तेनरदैर्नखैश्च ॥ रोषाभिभूतःक्षतजार्द्रगात्रःसुग्रीवमाविध्यपिपेषभूमौ ॥ ८७ ॥ सभूतलेभीमबलाभिपिष्टःसुरारिभिस्तैरभिहन्यमानः ॥ जगामखंकंदुकवज्जवेनपुनश्चरामेणसमाजगाम ॥ ८८॥ कर्णनासाविहीनस्तुकुंभकर्णोमहाबलः ॥ रराजशोणितोत्सिक्तोगिरिःप्रस्रवणैरिव ॥ ८९ ॥ शोणितार्द्रोमहाकायोराक्षसोभीमदर्शनः ॥ आमर्षाच्छोणितोद्गारीशुशुभेरावणानुजः ॥ ९० ॥

समय नाक कानके कटजानेंसे नख और दांतोंसे भली भांति विदीर्ण होनेंसे और सर्वाङ्ग रुधिर द्वारा भीगजानेंसे कुम्भकर्णनें अत्यन्त क्रोधित होकर सुग्रीवजीको पृथ्वीपर पटक दिया और उनको पीसनें लगा ॥ ८७ ॥ परन्तु वानरराज सुग्रीवजी उस भयंकर बलवान कुम्भकर्ण करके पीसे जाकर व और दूसरे राक्षस लोगोंसे सर्व प्रकार मार खाकरभी गेंदकी समान लुढ़कते हुए झटपट बडे वेगसे आकाशको उछलगये और श्रीरामचन्द्रजीके निकट आयकर खड़े हुए ॥ ८८ ॥ उस कालमें महा बलवान् कुंभकर्ण नाक कान विहीन होकर रुधिर उगलता हुआ बहुत सारे झरनोंसे युक्त पर्वतराजकी समान शोभायमान होनें लगा ॥ ८९ ॥ रुधिरसे भीगा हुआ भयंकर रूप और बड़े आकारवाला रावणका छोटाभाई

क्या प्रयोजन है और हम सीताको भी अब लेकर क्या करेंगे कारण कि कुंभकर्णविहीन होकर अबहम जीवन धारण करनेंका भी अभिलाष नहीं करते ॥१७॥ हम यदि उस भाईके मारनेंवाले रामचंद्रको संग्राममें नहीं मार सकते तौ वृथा इस जीवनके बोझको रखनेंसे हमारे लिये मरना ही भला है ॥ १८ ॥ हम भ्राताहीन होकर एक क्षणभरको भी प्राण नहीं रखसकते इस कारण जिस स्थानमें हमारे भाई कुंभकर्ण सोये हैं हमभी आज उसी स्थानमें गमन करेंगे॥ १९ ॥ हा! कुंभकर्ण हमनें पहले देवता लोगोंके अनेक अपकार कियेहैं परन्तु आज तुम्हारे मारे जानेसे जो हम इन्द्रको नहीं जीतसकेंगे तौ देवता लोग हमारी हँसी करेंगे ॥२०॥ हाय! हमनें अज्ञानके मारे महात्मा विभीषणके जो शुभ वचन नहीं

यद्यहंभ्रातृहंतारंनहन्मियुधिराघवम् ॥ ननुमेमरणंश्रेयोनचेदंव्यर्थजीवितम् ॥१८॥ अद्यैवतंगमिष्यामिदेशंयत्रानुजो मम ॥ नहिभ्रातॄन्समुत्सृज्यक्षणंजीवितुमुत्सहे ॥१९॥ देवाहिमांहसिष्यंतिदृष्ट्वापूर्वापकारिणम् ॥ कथमिंद्रंजयिष्या मिकुंभकर्णहतेत्वयि ॥२०॥ तदिदंमामनुप्राप्तंविभीषणवचःशुभम् ॥ यदज्ञानान्मयातस्यनगृहीतंमहात्मनः ॥२१॥ वि भीषणवचस्तावत्कुंभकर्णप्रहस्तयोः ॥ विनाशोयंसमुत्पन्नोमांव्रीडयतिदारुणः ॥२२॥ तस्यायंकर्मणःप्राप्तोविपाकोम मशोकदः॥यन्मयाधार्मिकःश्रीमान्सनिरस्तोविभीषणः॥२३॥इतिबहुविधमाकुलांतरात्माकृपणमतीवविलप्यकुंभक र्णम् ॥ न्यपतदपिदशाननोभृशार्तस्तमनुजमिंद्ररिपुंहतंविदित्वा ॥ २४ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रा० वा० आ० युद्धकांडेअष्ट षष्टितमःसर्गः ॥ ६८ ॥ ७ ॥ एवंविलपमानस्यरावणस्यदुरात्मनः ॥ श्रुत्वाशोकाभिभूतस्यत्रिशिरावाक्यमब्रवीत् ॥१॥

माने आज उसका ही परिणाम हमारे ऊपर आय पहुंचाहै ॥ २१ ॥ जबसे हमनें कुंभकर्ण और प्रहस्तके मारेजानेंका संवाद सुनाहै तबसे विभीषण के वचन हमको लज्जा देरहे हैं ॥ २२ ॥ हाय! हमने धार्मिक श्रीमान् विभीषणको जो यहांसे निकाल दियाहै, आज उसी दारुण कर्मका शोक दिलानेंवाला परिणाम आय पहुंचाहै ॥ २३ ॥ उस समय रावण इन्द्रके शत्रु कुंभकर्णको माराहुआ सुनकर शोकाकुल मनसे दीनभावयुक्तहो अनेक प्रकारके विलाप करनेंलगा इसके उपरान्त शोकका वेग अत्यन्त प्रबल होनेसे रावण मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २४ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० अष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥ शोकसे व्याकुल दुरात्मा रावणके इस प्रकारसे विलापके वचन सुन

भक्षण करते दौड़ने पर वानरगण भक्ष्यमाण होकर श्रीरामचंद्रजीकी शरणागतमें गये ॥ ९७ ॥ इस ओर कुंभकर्ण, सात, आठ, वीस, तीस वानरोंको अपने हाथोंसे पकड़२कर उनको अपने पेटमें डालता हुआ रणभूमिमें दौड़ने लगा ॥ ९८ ॥ इसके उपरान्त मेद, चरवी और रुधिर अंगोंमें लगाये तीक्ष्ण दांत वाला कुंभकर्ण दोनों कानोंके शेषमें आंतोंकी माला पहरे महा प्रलयमें बढ़े हुए कराल मूर्त्ति कालकी समान वानरोंकी सैनापर शूल चलानें लगा ॥ ९९ ॥ उसी समयमें गोहके चर्मसे बनाहुआ अंगुलित्राण (गुस्ताना) पहरे वीर वेषधारी शत्रुकी सैनाका नाश करनें वाले सुमित्रा कुमार लक्ष्मणजी युद्ध करनेंके लिये आये ॥ १०० ॥ वीर्यवानलक्ष्मणजीनें कुंभकर्णके शरीरमें सात बाण मारकर फिर औरभी बाण ग्रहण करके

शतानिसप्तचाष्टौचविंशत्रिंशत्तथैवच ॥ संपरिष्वज्यबाहुभ्यांखादन्विपरिधावति ॥ ९८ ॥ मेदोवसाशोणितदिग्धगात्रः कर्णावसक्तग्रथितांत्रमालः ॥ ववर्षशूलानिसुतीक्ष्णदंष्ट्रःकालोयुगांतस्थइवप्रवृद्धः ॥ ९९ ॥ तस्मिन्कालेसुमित्रायाःपुत्रः परबलार्दनः ॥ चकारलक्ष्मणःक्रुद्धोयुद्धंपरपुरंजयः ॥ १०० ॥ सकुंभकर्णस्यशरान्शरीरेसप्तवीर्यवान् ॥ निचखा नाददेचान्यान्विससर्जचलक्ष्मणः ॥ १ ॥ पीड्यमानस्तदस्त्रंतुविशेषंतत्सराक्षसः ॥ ततश्चुकोपबलवान्सुमित्रानंदव र्धनः ॥ २ ॥ अथास्यकवचंशुभ्रंजांबूनदमयंशुभम् ॥ प्रच्छादयामासशरैःसंध्याभ्रमिवमारुतः ॥ ३ ॥ नीलांज नचयप्रख्यःशरैःकांचनभूषणैः ॥ आपीड्यमानःशुशुभेमेघैःसूर्यइवांशुमान् ॥ ४ ॥ ततःसराक्षसोभीमःसुमित्रानंदव र्धनम् ॥ सावज्ञमेवप्रोवाचवाक्यंमेघौघनिःस्वनः ॥ ५ ॥

उसके ऊपर छोड़े ॥ १०१ ॥ कुंभकर्णने उन अस्त्रोंके प्रहारोंसें पीडित हो उन बाणोंको हाथोंसे पकड२ अपने विक्रम प्रभावसे खंड२ करके फेंक दिये यह देख सुमित्राजीके आनंद बढानेवाले बलवान लक्ष्मणजीनें महा कोप किया ॥ १०२ ॥ पवन जिस प्रकार संध्या समयके मेघको उड़ालें जाताहै वैसेही कुंभकर्णके सुवर्णमय शुभ शुक्ल कवचको लक्ष्मणजीनें बाणोंसें रूंध दिया ॥ १०३ ॥ उस कालमें नीले अंजनकी समान कुंभ कर्ण सुवर्णभूषित बाणोंसे पीड़ित होकर मेघमाला घिरे हुए सूर्यभगवानकी समान शोभायमान होनें लगा ॥ १०४ ॥ तिसके पीछे राक्षस

प्रकाश करनें लगे ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त इन्द्रकी समान पराक्रम शाली राक्षसश्रेष्ठ वीर वर रावणके पुत्र गण "आगे हम जांयगे आगे हम जांयगे" ऐसा कह गर्जन करनें लगे ॥ १० ॥ सबही अंतरिक्षमें चलनेंवाले सबही सब प्रकारकी माया जाननेंवाले, सबही देवता लोगोंका दर्प तोड़नें वाले, और सबही समरमें जीतनेंके अयोग्यथे ॥ ११ ॥ सबही बलशालीथे, सबहीकी कीर्त्ति फैली हुईथी, और सबही जायकर कभी हारे हुए नहीं सुने गयेथे ॥ १२ ॥ देवता, गन्धर्व, किन्नर, और उरग चाहें किसीसेभी उन्होंनें युद्ध किया परन्तु पराजित नहीं हुए कारणकि युद्ध करनेंमें बड़े पंडितथे ॥ १३ ॥ सबही बड़े भारी विज्ञानीथे, और सबही वरदान पाये हुएथे ॥ १४ ॥ उस समय सूर्यकी तुल्य शत्रुकी सैनाको मथनेंवाले अपने

ततोहमहमित्येवगर्जतोनैर्ऋतर्षभाः ॥ रावणस्यसुतावीराःशक्रतुल्यपराक्रमाः ॥ १० ॥ अंतरिक्षगताःसर्वेसर्वेमायावि
शारदाः ॥ सर्वेत्रिदशदर्पघ्नाःसर्वेसमरदुर्मदाः ॥ ११ ॥ सर्वेसुबलसंपन्नाःसर्वेविस्तीर्णकीर्तयः ॥ सर्वेसमरमासाद्यनश्रूयंते
स्मनिर्जिताः ॥ १२ ॥ देवैरपिसगंधर्वैःसकिन्नरमहोरगैः ॥ सर्वेस्त्रविदुषोवीराःसर्वेयुद्धविशारदाः ॥ १३ ॥ सर्वेप्रवरवि
ज्ञानाःसर्वेलब्धवरास्तथा ॥ १४ ॥ सतैस्तथाभास्करतुल्यदर्शनैःसुतैर्वृतःशत्रुबलश्रियार्दनैः ॥ रराजराजामघवान्य
थामरैर्वृतोमहादानवदर्पनाशनैः ॥ १५ ॥ सपुत्रान्संपरिष्वज्यभूषयित्वाचभूषणैः ॥ आशीर्भिश्चप्रशस्ताभिःप्रेषया
मासवैरणे ॥ १६ ॥ युद्धोन्मत्तंचमत्तंचभ्रातरौचापिरावणः ॥ रक्षणार्थंकुमाराणांप्रेषयामाससंयुगे ॥ १७ ॥ तेभिवा
द्यमहात्मानंरावणंलोकरावणम् ॥ कृत्वाप्रदक्षिणंचैवमहाकायाःप्रतस्थिरे ॥ १८ ॥ सर्वौषधीभिर्गंधैश्चसमालभ्यम
हाबलाः ॥ निर्जग्मुर्नैर्ऋतश्रेष्ठाःषडेतेयुद्धकांक्षिणः ॥ १९ ॥

वीर पुत्र गणोंके बीचमें बैठाहुआ राक्षसराज रावण दानवगर्वखर्वकारी देवता लोगोंके बीचमें बैठे देवराज इन्द्रजीकी समान शोभायमान होनें लगा ॥ १५ ॥ इसके पीछे रावणनें अपने पुत्रोंको छातीसे लगाय उत्तम२ भूषण पहराय बड़े आशीर्वाद देकर उनको समरमें भेजा ॥१६॥ रावणनें युद्ध करनेंको उत्तम वीर सहोदर महोदर, और महापार्श्व दो भाइयोंको अपने पुत्रोंकी रक्षा करनेंके निमित्त समरमें भेजा ॥ १७ ॥ वह सब शत्रुओंके मारनेंवाले महात्मा रावणको प्रणाम और प्रदक्षिणा करके युद्ध करनेंके लिये यात्रा करते हुए ॥१८॥ वह छैः राक्षस घावको भरनें

णजी हँसते हुए यह वचन बोले ॥ ११२ ॥ हेवीर! तुमने जो इन्द्रादि देवताओंसे असह्य पराक्रम पायाहै, वह सत्यहैं, और हमने आज तुम्हारा वह पराक्रम सत्य देखा ॥११३॥ और श्रीरामचंद्रजीको जो तुमनें पूछा यह दशरथकुमार श्रीरामचंद्रजी अचल पर्वतकी समान विराजमानहो रहेहैं। यह सुन लक्ष्मणजीका अनादर कर वह निशाचर चला ॥ ११४ ॥ महाबलवान कुंभकर्ण लक्ष्मणजीको छोड़ पृथ्वीको कंपायमान करता हुआ श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख दौड़ा ॥ ११५ ॥ इसके उपरान्त दशरथ कुमार श्रीरामचंद्रजीनें घोर अस्त्रोंका प्रयोग करके कुंभकर्णके हृदयको ताककर उसमें तीखे बाण मारे ॥ ११६ ॥ राक्षस कुंभकर्ण श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे विंधकर सहसा उनकी ओर धाया । उस समय

यस्त्वंशक्रादिभिर्देवैरसह्यःप्राप्यपौरुषम् ॥ तत्सत्यंनान्यथावीरदृष्टस्तेद्यपराक्रमः ॥ १३ ॥ एषदाशरथीराम स्तिष्ठत्यद्रिरिवाचलः ॥ इतिश्रुत्वाह्यनादृत्यलक्ष्मणंसनिशाचरः ॥ १४ ॥ अतिक्रम्यचसौमित्रिंकुंभकर्णोमहा बलः ॥ राममेवाभिदुद्रावकंपयन्निवमेदिनीम् ॥ १५ ॥ अथदाशरथीरामोरौद्रमस्त्रंप्रयोजयन् ॥ कुंभकर्णस्यहृदये ससर्जनिशिताञ्छरान् ॥ १६ ॥ तस्यरामेणविद्धस्यसहसाभिप्रधावतः ॥ अंगारमिश्राःक्रुद्धस्यमुखान्निश्चेरुरर्चिं षः ॥ १७ ॥ रामास्त्रविद्धोघोरंवैनर्दन्राक्षसपुंगवः ॥ अभ्यधावततंक्रुद्धोहरीन्विद्रावयन्रणे ॥११८॥ तस्योरसिनि मग्नास्तेशराबर्हिणवाससः ॥ हस्ताच्चास्यपरिभ्रष्टागदाचोर्व्यांपपातह ॥ १९ ॥ आयुधानिचसर्वाणिविप्रकीर्यंतभूतले॥ सनिरायुधमात्मानंयदामेनेमहाबलः ॥ १२० ॥ मुष्टिभ्यांचकराभ्यांचचकारकदनंमहत् ॥ सबाणैरतिविद्धांगःक्षतजे नसमुक्षितः ॥ रुधिरंपरिसुस्त्रावगिरिःप्रस्त्रवणंयथा ॥ २१ ॥

कुंभकर्णका शरीर क्रोधके मारे फडकने लगा ॥ ११७ ॥ राक्षसश्रेष्ठ कुंभकर्ण रणभूमिमें श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे विंधकर श्रीरामचंद्रजीको छोड क्रोधके मारे वानरोंको तित्तर वित्तर करता हुआ धाया ॥ ११८ ॥ इसी समयमें श्रीरामचंद्रजीके छोडे हुए मोरपंखोंसे शोभित उन समस्त बाणोंके कुंभकर्णकी छातीमे घुसजानेसे इस कुंभकर्णकी हाथसे गदा छुट कर पृथ्वीपर गिर पडी ॥ ११९ ॥ वह कुंभकर्ण औरभी जितने हथियार लगाये था वहभी सब पृथ्वीपर गिरपडे इस प्रकारसे जब उस महाबलवान कुंभकर्णने अपनेको आयुधहीन देखा ॥ १२० ॥ तब उसने मूकों और

वीरश्रेष्ठ अतिकायके शिरपर विचित्र कांचनमय मुकुटथा वह अनेक प्रकारके गहनोंसे भूषितथा; सुमेरु जिस प्रकार अपनी प्रभासे सबको प्रकाशित करताहै, वैसेही अतिकाय अनुपम शोभा पानें लगा ॥ २८ ॥ राक्षसशार्दूलगण उन महाबलवान राजकुमारोंको चारों ओरसे घेरे हुएथे, इस्से वह राजकुमार देवता लोगोंसे घिरे हुए इन्द्रजीकी समान शोभित होनें लगे ॥ २९ ॥ निशाचर नरान्तक उच्चैःश्रवाकी समान एक श्वेतवर्ण कनक भूषित पवनकी समान वेगसे जानेवाले एक बडे भारी घोड़ेपर चढ़ा ॥ ३० ॥ तेजस्वी नरान्तक उल्काको तुल्य भाला हाथमें लिये हुए मोरपर चढे शक्ति हाथमें लिये स्वामिकार्तिककी समान शोभायमान होने लगा ॥ ३१ ॥ राक्षस देवान्तक सुवर्ण लगा हुआ एक परिघ ग्रहण करके इसप्रकार शोभित हुआ, कि समुद्र मथनेंके समय विष्णुजीनें जिस प्रकार बांहोंसे मन्दराचलको धारण कियाथा ॥ ३२ ॥ महा तेजस्वी वीर्यवान् महापार्श्व गदा ग्रहण करके रणभूमिमें कुबेरजीकी समान शोभा धारण करता हुआ ॥ ३३ ॥ जिस प्रकार देवता लोग अमरावतीसे चलते हैं; वैसेही वह वीरगणभी लंकापुरीसे युद्ध करनेंके लिये चले, तुरंग घोडे,मातंग हाथी, और मेघकी समान शब्दायमान रथोंपर चढ़ २ कर ॥३४॥ बड़े २ आयुध लेर कर महाकाय, महात्मा राक्षस लोग चले, व सूर्यकी समान तेजस्वी महात्मा राजकुमार ॥ ३५ ॥ किरीट धारण किये हुए आकाशमें प्रकाशमान ग्रहोंके समान शोभायमान हुए उन राक्षसलोगोंके हाथोंमेंकी ग्रहणकीहुई आयुधोंकी श्रेणी(पांति) ॥ ३६ ॥

सकांचनविचित्रेणकिरीटेनविराजता ॥ भूषणैश्चबभौमेरुःप्रभाभिरिवभासयन् ॥ २८ ॥ स रराजरथेतास्मिन्राजसूनुर्महाबलः ॥ वृतोनैर्ऋतशार्दूलैर्वज्रपाणिरिवामरैः ॥ २९ ॥ हयमुच्चैःश्रवःप्रख्यंश्वेतंकनकभूषणम् ॥ मनोजवं महाकायमारुरोहनरांतकः ॥ ३० ॥ गृहीत्वाप्रासमुल्काभंविरराजनरांतकः ॥ शक्तिमादायतेजस्वीगुहःशिखिगतो यथा ॥ ३१ ॥ देवांतकःसमादायपरिघंहेमभूषणम् ॥ परिगृह्यगिरिंदोर्भ्यांवपुर्विष्णोर्विडंबयन् ॥ ३२ ॥ महापार्श्वोयहातेजागदामादायवीर्यवान् ॥ विरराजगदापाणिःकुबेरइवसंयुगे ॥ ३३ ॥ तेप्रतस्थुर्महात्मानोऽमरावत्याःसुराइव ॥ तान्गजैश्चतुरंगैश्चरथैश्चांबुदनिःस्वनैः ॥ ३४ ॥ अनूत्पेतुर्महात्मानोराक्षसाःप्रवरायुधाः ॥ तेविरेजुर्महात्मानःकुमाराःसूर्यवर्चसः ॥ ३५ ॥ किरीटिनःश्रियाजुष्टाग्रहादीप्ताइवांबरे ॥ प्रगृहीताबभौतेषांवस्त्राणामावलिःशिवा ॥ ३६ ॥

इस्से यह दुर्मति राक्षस वानरोंके बोझसे अत्यन्तही पीडितहो पृथ्वीपर घूमता हुआ और वानरोंको संहार नहीं कर सकैगा ॥१२९॥ बुद्धिमान राज कुमार लक्ष्मणजीके ऐसे वचन सुनकर महाबलवान वानरगण कुंभकर्णके ऊपर चढ़ गये ॥ १३० ॥ परन्तु वानरोंके चढ़नेंपर कुंभकर्णनें अत्यन्त पीड़ितहो हाथी जिस प्रकार अपने ऊपर चढनेंवालेको गिराताहै ऐसेही गरदन कंपायमान करके वानरोंको गिरा दिया ॥ १३१ ॥ वान रोंको गिरा हुआ देखकर श्रीरामचंद्रजी "कुंभकर्ण क्रोधित हुआहै" यह विचार उत्तम धनुष बाण धारण कर सहसा उठ खड़े हुए ॥ १३२ ॥ तब मारे क्रोधके लाल नेत्रकर नेत्रोंसे मानों भस्मही करतेहुए श्रीरामचंद्रजी उसके ऊपर अतिवेगसे दौड़े ॥ १३३ ॥ और कुंभकर्णके बलसे पीड़ित

अद्यायंदुर्मतिःकालेगुरुभारप्रपीडितः ॥ प्रचरन्राक्षसोभूमौनान्यान्हन्यात्प्लवंगमान् ॥ २९ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वारा जपुत्रस्यधीमतः ॥ तेसमारुरुहुर्हृष्टाःकुंभकर्णंमहाबलाः ॥१३०॥ कुंभकर्णस्तुसंक्रुद्धःसमारूढैःप्लवंगमैः॥व्यधूनयत्तान्वे गेनदुष्टहस्तीवहस्तिपान् ॥३१॥तान्दृष्ट्वानिर्धुतान्रामोरुष्टोऽयमितिराक्षसम् ॥ समुत्पपातवेगेनधनुरुत्तममाददे॥३२॥ क्रोधरक्तेक्षणोधीरोनिर्दहन्निवचक्षुषा ॥ राघवोराक्षसंवेगादभिदुद्राववेगितः ॥ ३३ ॥ यूथपान्हर्षयन्सर्वान्कुंभकर्णबला र्दितान् ॥ ३४ ॥ सचापमादायभुजंगकल्पंदृढज्यमुग्रंतपनीयचित्रम् ॥ हरीन्समाश्वास्यसमुत्पपातरामोनिबद्धो त्तमतूणबाणः ॥ ३५ ॥ सवानरगणैस्तैस्तुवृतःपरमदुर्जयैः ॥ लक्ष्मणानुचरोवीरःसंप्रतस्थेमहाबलः ॥ ३६ ॥ सददर्श महात्मानंकिरीटिनमरिंदमम् ॥ शोणितावृतरक्ताक्षंकुंभकर्णंमहाबलम् ॥ ३७ ॥

हुए उन यूथपति वानरोंको हर्षित कराया ॥ १३४ ॥ महावीर श्रीरामचंद्रजीके हाथमें दृढ़ प्रत्यंचा सहित सुवर्णके वेल बूटेसे बना हुआ धनुष और कंधेपर उत्तम बाणोंसे भराहुआ तरकश लगाथा, वह श्रीरामचंद्रजी वानर लोगोंको समझाते बुझाते कुंभकर्णके साथ युद्ध करनेके लिये आगो बढ़े ॥ १३५ ॥ महाबलवान वीरधुरीण श्रीरामचंद्रजीके चलनेंपर लक्ष्मणजी उनके पीछे २ चले और परम दुर्जय वानर गण उनको चार ओरसे घेरे हुए गमन करनें लगे ॥ १३६ ॥ इस प्रकार गमन करते हुए दशरथकुमार श्रीरामचंद्रजीनें, रुधिरसे शरीर भीगे महाबलवान महावीर

करके राक्षसलोगोंनें उसको असह्य समझ और परमानंदसे सब मिलकर अपने आपही आप सिंहनाद करनेंलगे ॥ ४५ ॥ इसके पीछे वानर वीर गण पर्वत धारण करके शिखरधारी पर्वतोंकी समान राक्षसोंकी सैनामें प्रवेश करते हुए ॥ ४६ ॥ वृक्ष और पर्वतको ग्रहण करके कोई २ वानर तो क्रोधके मारे आकाशको चले गये और वहांसे राक्षसोंपर टूटे और कोई२ वृक्ष शिलादि ग्रहण करके पृथ्वीपरही राक्षसोंसे जाय जुटे ॥ ४७ ॥ कोई २ वानरश्रेष्ठ बहुतशाखावाले वृक्षोंको ग्रहणकर युद्ध करनें लगे इस प्रकारसे वानर और राक्षसोंका तुमुल संग्राम होनेंलगा ॥ ४८ ॥ वानरगण बराबर वृक्ष और शिला राक्षसोंके ऊपर वर्षारहेथे और राक्षस लोगभी वानरोंके शरीरोंमें बाण गाड़ रहेथे ॥४९॥ धीरेर दोनों ओरसे घोर

तेराक्षसबलंघोरंप्रविश्यहरियूथपाः ॥ विचेरुरुद्यतैःशैलैर्नगाःशिखरिणोयथा ॥ ४६ ॥ केचिदाकाशमाविश्यकेचि
दुर्व्यांप्लवंगमाः ॥ रक्षःसैन्येषुसंक्रुद्धाःकेचिद्द्रुमशिलायुधाः ॥ ४७ ॥ द्रुमांश्चविपुलस्कंधान्गृह्यवानरपुंगवाः ॥ तद्युद्ध
मभवद्घोरंरक्षोवानरसंकुलम् ॥ ४८ ॥ तेपादपशिलाशैलैश्चक्रुर्वृष्टिमनूपमाम् ॥ बाणौघैर्वार्यमाणाश्चहरयोभीमवि
क्रमाः ॥ ४९ ॥ सिंहनादान्विनेदुश्चरणेराक्षसवानराः ॥ शिलाभिश्चूर्णयामासुर्यातुधानान्प्लवंगमाः ॥ ५० ॥ नि
जघ्नुःसंयुगेक्रुद्धाःकवचाभरणावृतान् ॥ केचिद्रथगतान्वीरान्गजवाजिगतानपि ॥ ५१ ॥ निजघ्नुःसहसावीरान्या
तुधानान्प्लवंगमाः ॥ शैलशृंगान्वितांगास्तेमुष्टिभिर्वांतलोचनाः ॥ ५२ ॥ चेलुःपेतुश्चनेदुश्चतत्रराक्षसपुंगवाः ॥
राक्षसाश्चशरैस्तीक्ष्णैर्बिभिदुःकपिकुंजरान् ॥ ५३ ॥

सिंहनाद होनें लगा शिलाधारी वानरलोग शिलाके प्रहारसे राक्षसोंको चूर्ण करनेंलगे ॥ ५० ॥ वानरगण रणमें क्रोध करकै कवच धारण किये हुए राक्षसोंका संहार करनेंलगे कोई रथपर चढ़े हुए वीरोंको ॥ ५१ ॥ वानरलोग मारते हुए इस प्रकारसे असंख्य राक्षसोंकी सैना वानरोंके हाथसे मारीगई। बहुत राक्षसोंकी सैना वानरोंके हाथसे मारीगई। बहुत राक्षसोंका शरीर शृङ्गोंके प्रहारसे चूर्ण होगया, और किसी २ का नेत्र घूंसा मारनेंसे निकल पड़ा ॥ ५२ ॥इस प्रकार दारुण प्रहारसे राक्षसगण विचलित और गिरकर कठोर आरत शब्द करनें लगे, और राक्षसलोगभी

श्रीरामचंद्रजीके ऐसा कहनें पर "यही रामचंद्रहैं" ऐसा जानकर कुंभकर्ण विकट स्वरसे हँसता हुआ क्रोधके मारे वानरोंकी सैनाको भगाता श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख दौड़ा ॥ १४५ ॥ इसके उपरान्त सब वनवासी वानरोंके हृदय विदारण करता, मेघके गर्जनकी समान विकट भयंकर स्वरसे हँसता हुआ ॥ १४६ ॥ महातेजस्वी कुंभकर्ण श्रीरामचंद्रजीसे बोला, हमको, विराध कबन्ध खर अथवा मारीच मनमें न समझ लेना हम कुंभकर्ण आयेहैं॥१४७॥हमारा यह काले लोहेका बना हुआ बड़ा भारी मुद्गर देखो हमने इस्सेही पहले देवता और दानव लोगोंको जीत लिया है ॥ १४८ ॥ हमको नाक कान हीन हुआ जानकर तुम हमारा निरादर मत करना, कारणकि नासिका और कान कटजानेंसे हमको कुछभी

रामोयमितिविज्ञायजहासविकृतस्वनम् ॥ अभ्यधावतसंक्रुद्धोहरीन्विद्रावयन्रणे ॥ ४५ ॥ दारयन्निवसर्वेषांहृदयानिवनौकसाम् ॥ प्रहस्यविकृतंभीमंसमेघस्तनितोपमम् ॥ ४६ ॥ कुंभकर्णोमहातेजाराघवंवाक्यमब्रवीत् ॥ नाहंविराधोविज्ञेयोनकबंधःखरोनच ॥ नवालीनचमारीचःकुंभकर्णःसमागतः ॥ ४७ ॥ पश्यमेमुद्गरंभीमंसर्वंकालायसंमहत् ॥ अनेननिर्जितादेवादानवाश्चपुरामया ॥ ४८ ॥ विकर्णनासइतिमांनावज्ञातुंत्वमर्हसि ॥ स्वल्पापिहिनमेपीडाकर्णनासाविनाशनात् ॥ ४९ ॥ दर्शयेक्ष्वाकुशार्दूलवीर्यंगात्रेषुमेनघ ॥ ततस्त्वांभक्षयिष्यामिदृष्टपौरुषविक्रमम् ॥ १५० ॥ सकुंभकर्णस्यवचोनिशम्यरामःसपुंखान्विससर्जबाणान् ॥ तैराहतोवज्रसमप्रवेगैर्नचुक्षुभेनव्यथतेसुरारिः॥५१॥ यैःसायकैःसालवरानिकृत्तावालीहतोवानरपुंगवश्च॥तेकुंभकर्णस्यतदाशरीरंवज्रोपमानव्यथयांप्रचक्रुः॥५२॥

पीड़ा नहीं हुईहै ॥ १४९ ॥ हेपापरहित इक्ष्वाकुशार्दूल! तुम हमारे शरीर पर पहले अपना बल वीर्य दिखाओ तिसके पीछे तुम्हारा विक्रम और पौरुष देखकर हम तुमको भक्षण करेंगे ॥ १५० ॥ कुंभकर्णके वचन सुनकर रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीनें फोंकलगेहुए बाण उसके ऊपर चलाये, परन्तु वज्रकी समान वेगवान उन सब बाणोंके लगनेंपरभी देवताओंका शत्रु कुंभकर्ण कुछभी दुःखी या चलायमान नहीं हुआ॥ १५१ ॥ जिन बाणोंसे और दूसरे राक्षस मार डाले गये और वानरश्रेष्ठ वाली मारागया. वही वज्रकी समान बाण कुंभकर्णके शरीरमें कुछभी

राक्षसलोगोंके देहसे रुधिरकी धारा वहनें लगी ॥ ६१ ॥ वानरलोग रथको चलाय २ कर रथ तोड़नें लगे,हाथीको उठाय २ हाथीपर मारनेंलगे और घोड़ोंको उठायकर घोड़ोंका संहार करते हुए ॥ ६२ ॥ वानरगण शिला वृक्षसे राक्षसोंको मारतेथे और राक्षसगण वानरोंके छोड़े वह शिला वृक्ष, तेज छूरे अर्द्धचन्द्र और भाला आदि अस्त्र शस्त्रोंसे काट डालतेथे ॥ ६३ ॥ उस समय फेंकेहुए पर्वतोंसे अस्त्र शस्त्रोंके कटेहुए वृक्षोंसे और राक्षस वानरोंके शरीरसे रणभूमि दुर्गम होगई ॥ ६४ ॥ गर्वित और हर्षित चित्त प्रदीनता युक्त समरमें अनुषंगी वानरगण भय छोड, नख, दांत, वृक्ष, शिला, आदि अस्त्र शस्त्रोंको चलाय २ राक्षसोंके साथ युद्ध करनेंलगे ॥ ६५ ॥ इस प्रकारसे कठोर युद्धमें वानरगण हर्षित होकर

रथेनचरथंचापिवारणेनापिवारणम् ॥ हयेनचहयंकेचिन्निर्जघ्नुर्वानरारणे ॥ ६२ ॥ क्षुरप्रैरर्धचंद्रैश्चभल्लैश्चनिशितैः
शरैः ॥ राक्षसावानरेंद्राणांबिभिदुःपादपान्शिलाः ॥ ६३ ॥ विकीर्णाःपर्वतास्तैश्चद्रुमच्छिन्नैश्चसंयुगे ॥ हतैश्चकपि
रक्षोभिर्दुर्गमावसुधाभवत् ॥ ६४ ॥ तेवानरागर्वितहृष्टचेष्टाःसंग्राममासाद्यभयंविमुच्य ॥ युद्धंस्मसर्वेसहराक्षसैस्ते
नानायुधाश्चक्रुरदीनसत्त्वाः ॥ ६५ ॥ तस्मिन्प्रवृत्तेतुमुलेविमर्देप्रहृष्यमाणेषुवलीमुखेषु ॥ निपात्यमानेषुचराक्षसे
षुमहर्षयोदेवगणाश्चनेदुः ॥ ६६ ॥ ततोहयंमारुततुल्यवेगमारुह्यशक्तिंनिशितांप्रगृह्य ॥ नरांतकोवानरसैन्यमुग्रं
महार्णवंमीनइवाविवेश ॥ ६७ ॥ सवानरान्सप्तशतानिवीरःप्रासेनदीप्तेनविनिर्बिभेद ॥ एकःक्षणेनेंद्ररिपुर्महात्मा
जघानसैन्यंहरिपुंगवानाम् ॥ ६८ ॥ ददृशुश्चमहात्मानंहयपृष्ठप्रतिष्ठितम् ॥ चरंतंहरिसैन्येषुविद्याधरमहर्षयः ॥ ६९ ॥

जब निशाचरोंका संहार करनेंलगे; तब महर्षि और देवतालोग यह युद्ध देखकर आनंदका कुलाहल करतेथे ॥ ६६ ॥ इसके उपरान्त मत्स्य जिस प्रकार महासमुद्रमें प्रवेश करताहै, वैसेही नरान्तक पवनकी समान वेगवान एक घोड़े पर सवार हुआ तीक्ष्ण शक्ति ग्रहण करके वानरोंकी सैनामें प्रवेश कर गया ॥ ६७ ॥ उस महाबलवान वीर नरान्तकनें प्रकाशमान भालेसे सातसौ वानरोंको मारडाला व उसनें एकही क्षणमें इन्द्रके शत्रु महात्मा इस राक्षसनें वानरश्रेष्ठों की औरभी बहुतसी वानरोंकी सैना मारडाली ॥ ६८ ॥ इस महात्माको घोड़ेकी पीठपर संग्रामभूमिके मध्य

उतार ऊपरको उठा हुआ उसका वह हाथभी काट डाला ॥ १५९ ॥ कुंभकर्णकी पर्वतकी समान उस कटी हुई भुजानें चेष्टाहीन हो पृथ्वीपर गिर तडपते हुए वृक्ष पर्वत और वानर राक्षसोंको चूर्ण कर डाला ॥ १६० ॥ तिसके पीछे श्रीरामचन्द्रजीनें उस राक्षसको फिरभी सिंहनाद करके आते हुए देख दो तीखे अर्द्ध चन्द्रवाण ग्रहण करके उसके दोनों पांव काटडाले ॥ १६१ ॥ उसके वह दोनों पांव दिशा, विदिशा, पर्वतोंकी गुफा, समुद्र लंका और वानर व राक्षसोंकी सैनाको शब्दायमान करते हुए पृथ्वीमें गिरे ॥ १६२ ॥ जैसे अन्तरिक्षमें राहु चन्द्रमाको ग्रास करनेंके लिये दौड़ताहै वैसेही हाथ पांव कटा कुंभकर्ण उस समय घोड़ेके मुखकी समान अपना मुख फैलाय शब्द करता हुआ आकाश मार्गसे होकर सहसा

सकुंभकर्णस्यभुजोनिकृत्तः पपातभूमौगिरिसन्निकाशः ॥ विचेष्टमानोनिजघानवृक्षान्शैलान्शिलावानरराक्षसांश्च ॥ १६० ॥ तंच्छिन्नबाहुंसमवेक्ष्यरामःसमापतंतंसहसानदंतम् ॥ द्वावर्धचंद्रौनिशितौप्रगृह्यचिच्छेदपादौयुधिराक्षसस्य ॥ ६१ ॥ तौतस्यपादौप्रदिशोदिशश्चगिरेर्गुहाश्चैवमहार्णवंच ॥ लंकांचसेनांकपिराक्षसानांविनादयंतौविनिपेततुश्च ॥ ६२ ॥ निकृत्तबाहुर्विनिकृत्तपादोविदार्यवक्त्रंवडवामुखाभम् ॥ दुद्रावरामंसहसाभिगर्जन्राहुर्यथाचंद्रमिवांतरिक्षे ॥ ६३ ॥ अपूरयत्तस्यमुखंशिताग्रैरामःशरैर्हेमपिनद्धपुंखैः ॥ संपूर्णवक्त्रोनशशाकवक्तुंचुकूजकृच्छ्रेणमुमूर्छचापि ॥ ६४ ॥ अथाददेसूर्यमरीचिकल्पंसब्रह्मदंडांतककालकल्पम् ॥ अरिष्टमैंद्रंनिशितंसुपुंखंरामःशरंमारुततुल्यवेगम् ॥ १६५ ॥ तंवज्रजांबूनदचारुपुंखंप्रदीप्तसूर्यज्वलनप्रकाशम् ॥ महेंद्रवज्राशनितुल्यवेगंरामःप्रचिक्षेपनिशाचराय ॥ ६६ ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी ओर दौड़ा ॥ १६३ ॥ कुंभकर्णको इस प्रकारसे आता हुआ देखकर रघुनंदन श्रीरामचन्द्रजीनें सुवर्णके फोंक लगेहुए वाणोंसे उसका मुख पूर्ण कर दिया, तब वाणोंसे समस्त मुख पूर्ण हो जानेंके कारण कुंभकर्ण कुछभी नहीं बोल सका और सूक्ष्मसा शब्द करके मूर्छित हो गया ॥ १६४ ॥ तिसके पीछे श्रीरामचंद्रजीनें सूर्यकी किरणोंके समान प्रकाशमान दीप्तियुक्त, ब्रह्मदंड और कालदंडकी सदृश शत्रुओंको नाश करनेवाला अति तीक्ष्ण सुन्दर फोंकलगा प्रचंड पवनके वेगकी समान ऐन्द्र नामक वाण लिया ॥ १६५ ॥ जिसमें कि हीरे और सुवर्णकी फोंक लगीथी,

अपूर्व मूर्त्ति प्रकाशकी ॥ ७८ ॥ इसके उपरान्त जो महावीर वानरश्रेष्ठगण पहले कुंभकर्णके मारेहुए संग्राममें मूर्छित पडेथे, वह सावधान होकर सुग्रीवजीके निकट गये ॥ ७९ ॥ और सुग्रीवजीनें नरान्तकके भयसे वानरोंकी सैनाको इधर उधर भागताहुआ देखा ॥ ८० ॥ सुग्रीव जीनें वानरोंकी सैनाको भागता हुआ देखकर दूरको निहारकर देखा कि भाला धारण किये घोडेपर सवारहुआ नरान्तक आगमन कररहा है ॥८१॥उसको आता हुआ देखकर महा तेजस्वी वानर राज सुग्रीवजी इन्द्रके समान पराक्रमशाली वालिके पुत्र वीरश्रेष्ठ अंगदजीसे कहनें लगे,यह घोडे पर चढ़ा हुआ निशाचर जोकि वानरोंकी सैनाको भगाताहुआ चला आताहै, जाओ इस वीर राक्षसको तुम शीघ्र मारकर आओ ॥८२॥ ८३ ॥

येतुपूर्वंमहात्मानःकुंभकर्णेनपातिताः ॥ तेस्वस्थावानरश्रेष्ठाःसुग्रीवमुपतस्थिरे ॥ ७९ ॥ प्रेक्षमाणःससुग्रीवोद
दृशेहरिवाहिनीम् ॥ नरांतकभयत्रस्तांविद्रवंतींयतस्ततः ॥ ८० ॥ विद्रुतांवाहिनींदृष्ट्वासददर्शनरांतकम् ॥ गृही
तप्रासमायांतंहयपृष्ठप्रतिष्ठितम् ॥ ८१ ॥ दृष्ट्वोवाचमहातेजाःसुग्रीवोवानराधिपः ॥ कुमारमंगदंवीरंशक्रतुल्य
पराक्रमम् ॥ ८२ ॥ गच्छैनंराक्षसंवीरंयोसौतुरगमास्थितः ॥ भक्षयंतंपरबलंक्षिप्रंप्राणैर्वियोजय ॥ ८३ ॥ सभर्तुर्व
चनंश्रुत्वानिष्पपातांगदस्तदा ॥ अनीकान्मेघसंकाशादंशुमानिववीर्यवान् ॥ ८४ ॥ शैलसंघातसंकाशोहरीणामुत्त
मोंगदः ॥ रराजांगदसन्नद्धःसधातुरिवपर्वतः ॥८५॥ निरायुधोमहातेजाःकेवलंनखदंष्ट्रवान् ॥ नरांतकमभिक्रम्यवालि
पुत्रोऽब्रवीद्वचः ॥ ८६ ॥ तिष्ठकिंप्राकृतैरेभिर्हरिभिस्त्वंकरिष्यसि ॥ अस्मिन्वज्रसमस्पर्शंप्रासंक्षिपममोरसि ॥८७॥

वीर्यवान् अंगदजी वानरोंके राजा सुग्रीवजीके ऐसे वचन सुनकर वानरोंकी सैनामेंसे इस प्रकार निकले, कि जिस प्रकार सूर्य भगवान घटासे निकल आतेहैं ॥ ८४ ॥उस कालमें निविड कृष्ण पर्वतकी समान आकारवाले वह वानरश्रेष्ठ अंगदजी बाहोंमे दो बाजू धारण कियेहुए धातुमय पर्वतकी समान शोभायमान होनें लगे ॥ ८५ ॥ केवल नख, दांतके अतिरिक्त और कोई भी आयुध नहीं धारण किये महा तेजस्वी वालि कुमार अंगदजी नरान्तकके निकट पहुंचकर बोले ॥ ८६ ॥ खडा रह, साधारण वानरोंके मारनेंसे क्या होगा ? इस वज्रकी समान भालेसे तू

यक्ष और गन्धर्वगणोंके सहित समस्त प्राणीही श्रीरामचंद्रजीका पराक्रम देखकर परम प्रसन्न हुए ॥ १७३ ॥ राक्षसराज रावणके चिन्ताशील बन्धुबान्धवगण कुंभकर्णके ऐसे दारुण वधसे अत्यन्त दुःखीहो जिसप्रकार मृगराजसिंहको देख हाथी भागतेहैं वैसेही श्रीरामचंद्रजी और वानरोंको देखकर शब्द करते हुए भागनें लगे ॥ १७४ ॥ उसकालमें श्रीरामचंद्रजी देवता लोगोंके कालस्वरूप कुंभकर्णका संग्रामभूमिमें संहारकर अपनी सेनाके बीचमें बैठे राहुके मुखसे छूटे हुए सूर्यकी समान शोभायमान हुए ॥ १७५ ॥ उस भयंकर बलवान शत्रुके मारे जानेपर हर्षके मारे वानरलोगोंके मुख कमलके फूलकी समान खिलगये और वह सब उस समय जगत्पूज्य श्रीरामचंद्रजीकी पूजा करनेलगे ॥ १७६ ॥

ततस्तुतेतस्यवधेनभूरिणामनस्विनोनैर्ऋतराजबांधवा ॥ विनेदुरुच्चैर्व्यथितारघूत्तमंहरिंसमीक्ष्यैवयथामतंगजाः ७४॥ सदेवलोकस्यतमोनिहत्यसूर्योयथाराहुमुखाद्विमुक्तः ॥ तथाव्यभासीद्धरिसैन्यमध्येनिहत्यरामोयुधिकुंभकर्णम् ॥ ॥ १७५ ॥ प्रहर्षमीयुर्बहवश्चवानराःप्रबुद्धपद्मप्रतिमैरिवाननैः ॥ अपूजयन्राघवमिष्टभागिनंहतेरिपौभीमबलेनृपात्मजम् ॥ ७६ ॥ सकुंभकर्णंसुरसैन्यमर्दनंमहत्सुयुद्धेषुकदाचनाजितम् ॥ ननंदहत्वाभरताग्रजोरणेमहासुरंवृत्रमिवामराधिपः ॥ १७७ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रा०वा०आ०यु०सप्तषष्टितमःसर्गः ॥ ६७ ॥ कुंभकर्णंहतंदृष्ट्वाराघवेणमहात्मना ॥ राक्षसाराक्षसेंद्रायरावणायन्यवेदयन् ॥ १ ॥

अमरराज इन्द्रजी महाअसुर वृत्रासुरका संहारकरके जिस प्रकारसे आनंदित हुयेथे वैसेही भरतजीके बड़े भ्राता श्रीरामचंद्रजीनें जो कभी किसीसे महारणमें नहीं हाराथा उस देवताओंकी सेनाके मर्दन करनेवाले कुंभकर्णका नाशकरके परम हर्ष प्राप्तकिया ॥ १७७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये भाषानुवादे कात्यायनकुमारपंडितज्वालाप्रसाद मिश्रकृत सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥ कुंभकर्णको महाबलवान श्रीरामचंद्रजीसे मराहुआ देखकर राक्षस लोगोंनें राक्षसोंके स्वामी रावणके समीप जाकर निवेदन किया ॥ १ ॥

महावलवान वालिके पुत्र अंगदजीनें नरान्तककी छातीमें मृत्युकी समान महावेगसे पर्वतके शृङ्गकी नांई एक मूका मारा ॥ ९४ ॥ उस मूकेके लगनेसे राक्षसकी छाती उकड २ कर टूट गई; उसके मुखसे रुधिरकी धारा निकलनेंलगी सर्व शरीर रुधिरसे भीग गया, उस समय वह नरान्तक वज्रके गिरनेंसे टूटे हुए पर्वतकी समान पृथ्वीपर गिरकर मरगया ॥ ९५ ॥ उस संग्राममें जब वालिनंदन अंगदजी करके उग्र वीर्यवान् निशाचर नरान्तक मारा गया तब आकाशसे देवता गणोंका और रण भूमिमें वानरोंका बड़ा भारी शब्द होनें लगा ॥ ९६ ॥ इस प्रकारसे भयंकर कर्म कारी अंगदजी श्रीरामचंद्रजीके हर्ष जनक इस प्रकारका कठिन विक्रम प्रगट करके श्रीरामचंद्रजीको हर्षित कराय, और फिर आप भी समर

समुंष्टिनिर्भिन्ननिमग्नवक्षाज्वालावमन्शोणितदिग्धगात्रः ॥ नरांतकोभूमितलेपपातयथाऽचलोवज्रनिपातभग्नः ॥९५॥
तदांतरिक्षेत्रिदशोत्तमानांवनौकसांचैवमहाप्रणादः ॥ बभूवतस्मिन्निहतेऽग्र्यवीर्येनरांतकेवालिसुतेनसंख्ये ॥ ९६ ॥ अ
थांगदोराममनःप्रहर्षणंसुदुष्करंतंकृतवान्हिविक्रमम् ॥ विसिस्मियेसोप्यथभीमकर्मापुनश्चयुद्धेसबभूवहर्षितः ॥९७॥
नरांतकंहतंदृष्ट्वाचुक्रुशुर्नैर्ऋतर्षभाः ॥ देवांतकस्त्रिमूर्धाचपौलस्त्यश्चमहोदरः ॥ ९८ ॥ आरूढोमेघसंकाशंवारणेंद्रं
महोदरः ॥ वालिपुत्रंमहावीर्यमभिदुद्राववेगवान् ॥ ९९ ॥ भ्रातृव्यसनसंतप्तस्तदादेवांतकोबली ॥ आदायपरिघं
घोरमंगदंसमभिद्रवत् ॥ १०० ॥ रथमादित्यसंकाशंयुक्तंपरमवाजिभिः ॥ आस्थायत्रिशिरावीरोवालिपुत्रमथा
भ्यगात् ॥ १ ॥ सत्रिभिर्देवदर्पघ्नैराक्षसेंद्रैरभिद्रुतः ॥ वृक्षमुत्पाटयामासमहाविटपमंगदः ॥ २ ॥ देवांतकायतंवी
रश्चिक्षेपसहसांगदः ॥ महावृक्षंमहाशाखंशक्रोदीप्तमिवाशनिम् ॥ ३ ॥

करनेंके लिये उत्साह प्रगट करनें लगे॥ ९७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा०आ०यु०एकोनसप्ततितमः सर्गः (कतक मतसें सर्ग समाप्ति नही) ॥ ६९ ॥ नरान्तकको मरा हुआ देखकर देवान्तक, त्रिशिरा और महोदर इत्यादि निशाचर गण अत्यन्त क्रोध करते हुए ॥ ९८ ॥ वेगवान राक्षस महोदर मेघकी समान हाथीपर चढ़ा हुआ वालिकुमार वीर्यवान अंगदजीके सन्मुखदौड़ा ॥९९॥ और बलवान देवान्तकभी अपने भाईके वधसे अत्यन्त दुःखी होकर घोर परिघ धारण करके अंगदजीकी ओरको धाया ॥१००॥ वीर त्रिशिरा उत्तम घोड़ोंसे जुते हुए आदित्यकी समान रथपर सवार होकर

विलाप करताहुआ कहनें लगा ॥ ९ ॥ हावीर! हा शत्रुगर्वखर्वकारी! हा महाबलवान्! हा कुंभकर्ण! प्रारब्धके वश तुम हमको छोड़कर यमराजके भवनको चले गये ॥ १० ॥ हा महाबलवान्! तुम हमारे और व हमारे बन्धु बान्धवोंके हृदयमें गडे हुए फलके विनाही उखाडे हम सबको छोड़ शत्रुकी सैनाको भगाय अकेले ही कहांको चले गये ॥ ११ ॥ हा वीर! तुम हमारे दाहिने हाथथे इसी कारणसे हम सुर या असुरलोगोंसे भय नहीं करतेथे परन्तु आज हम अपनी उस बांहके गिरनेंसे लोप होनेंके निकट पहुंचगये ॥ १२ ॥ हाय! जिस कालके समयकी अग्निके समान वीरनें देवता

हावीररिपुदर्पघ्नकुंभकर्णमहाबल ॥ त्वंमांविहायवैदैवाद्यातोसियमसादनम् ॥ १० ॥ ममशल्यमनुद्धृत्यबांधवानांमहाबल ॥ शत्रुसैन्यंप्रताप्यैकःक्वमांसंत्यज्यगच्छसि ॥ ११ ॥ इदानींखल्वहंनास्मियस्यमेपतितोभुजः ॥ दक्षिणोयंसमाश्रित्यनबिभेमिसुरासुरात् ॥ १२ ॥ कथमेवंविधोवीरोदेवदानवदर्पहा ॥ कालाग्निप्रतिमोह्यद्यराघवेणरणेहतः ॥ १३ ॥ यस्यतेवज्रनिष्पेषोनकुर्याद्व्यसनंसदा ॥ सकथंरामबाणार्तःप्रसुप्तोसिमहीतले ॥ १४ ॥ एतेदेवगणाःसार्धमृषिभिर्गगनेस्थिताः ॥ निहतंत्वांरणेदृष्ट्वानिनदंतिप्रहर्षिताः ॥ १५ ॥ ध्रुवमद्यैवसंहृष्टालब्धलक्षाःप्लवंगमाः ॥ आरोक्ष्यंतीहदुर्गाणिलंकाद्वाराणिसर्वशः ॥ १६ ॥ राज्येननास्तिमेकार्यंकिंकरिष्यामिसीतया ॥ कुंभकर्णविहीनस्य जीवितेनास्तिमेमतिः ॥ १७ ॥

और दानव गणोंका भी गर्व खर्व कियाथा सो एक दशरथकुमार रणभूमिमे किसप्रकारसे उसको मार डालनेके अर्थ समर्थ हुआ ॥ १३ ॥ हा वज्रकी चोट खानेंपरभी जिसको कुछ पीडा नहीं ज्ञात होतीथी वही वीर किस प्रकारसे आज रामचंद्रके बाणसे पीड़ितहो पृथ्वीपर शयन कररहा है ॥ १४ ॥ हा! यह देखो भइया ऋषि लोगोंके साथ आकाशमें टिके हुए देवता गण तुमको रणमें मराहुआ देखकर हर्षके मारे सिंहनाद कर रहे हैं ॥ १५ ॥ हम निश्चय जानते हैं कि वानरगण अवसर पायकर आज ही लंकाके द्वार और दुर्गपरचढ़ आवेंगे ॥ १६ ॥ हमको अब राज्यसें

* हाय भ्राता किधरको सिधारे॥आजतक दुःख मैने नमाना युद्ध संसारमें भौत ठाना मुझको दीखे कही ना ठिकाना फिर जियूंगा मै किसके सहारें ॥१॥ जो बडे शूरमाथे निशाचर जिनका मुझको भरोसा सहोदर युद्धमें जो न हारे कहींपर अब गये वीरवे सारे मारे॥२॥जो विभीषणने हमको सुनाया उसका कहना सभी आगे आया अपनी मुंह जाता अब ना दिखाया कौन धीरज बंधावै हमारे ॥३॥ जानकी कालके रूप आई गढकू मेरे हुई दुःखदाई उसकी माय नही जानि जाई जो लिखा है टरै वो न टारे ॥ ४ ॥

प्रतापवान् अंगदजी कुछभी व्यथित न हुए ॥१०९॥ इसके उपरान्त परम दुर्जेय वानर श्रेष्ठ अंगदजीनें महा वेगसे उस हाथीके मस्तकमें एक लात मारी जिसपर महोदर चढ़ा हुआथा॥११०॥उस लातके घोर प्रहारसे उस हस्तिराजके दोनों नेत्र बाहर निकल आये; और वह हाथी अत्यन्त दारुण शब्द करनें लगा और मरगया तब वालिके पुत्र महाबलवान् अंगदजीनें उस हाथीका एक दांत निकालकर ॥१११॥ देवान्तककी ओर दौड़ उस दांतसे रणभूमिमें उसको मारा जिसके लगनेसे वह तेजस्वी देवान्तक ऐसा विह्वल हुआ जैसे पवनके लगनेंसे वृक्ष कंपित होताहै ॥ ११२ ॥ उसके मुखसे लाखके रंग केसा बहुतही रुधिर निकलनें लगा इसके पीछे महा तेजस्वी वीर वर देवान्तकनें अति कष्टसे चेतना पाय ॥ ११३ ॥ अंगदजीकी

लाक्षारससवर्णंचसुस्रावरुधिरंमहत् ॥ अथाश्वस्यमहातेजाःकृच्छ्राद्देवांतकोबली ॥ १३ ॥ आविध्यपरिघंवेगादाज
घानदंतांगदम् ॥ परिघाभिहतश्चापिवानरेंद्रात्मजस्तदा ॥ १४ ॥ जानुभ्यांपतितोभूमौपुनरेवोत्पपातह ॥ तमुत्पतं
तंत्रिशिरास्त्रिभिर्बाणैरजिह्मगैः ॥ १५ ॥ घोरैर्हरिपतेःपुत्रंललाटेभिजघानह ॥ ततोंगदंपरिक्षिप्तंत्रिभिर्नैर्ऋतपुंगवैः ॥१६॥
हनूमानथविज्ञायनीलश्चापिप्रतस्थतुः ॥ ततश्चिक्षेपशैलाग्रंनीलस्त्रिशिरसेतदा ॥ १७ ॥ तद्रावणसुतोधीमान्बिभेदनि
शितैःशरैः ॥ तद्बाणशतनिर्भिन्नंविदारितशिलातलम् ॥ १८ ॥ सविस्फुलिंगंसज्वालंनिपपातगिरेःशिरः ॥ सविजृंभि
तमालोक्यहर्षाद्देवांतकोबली ॥ १९ ॥ परिघेणाभिदुद्रावमारुतात्मजमाहवे ॥ तमापतंतमुत्पत्यहनूमान्कपिकुंजरः
॥ १२० ॥ आजघानतदामूर्ध्निवज्रकल्पेनमुष्टिना ॥ शिरसिप्राहरद्वीरस्तदावायुसुतोबली ॥ नादेनाकंपयच्चैवराक्ष
सान्समहाकपिः ॥ २१ ॥

छातीमें अति वेगसे एक गदा मारी वानरोंमें इन्द्र अंगदजी गदाके प्रहारसे घायलहो ॥११४॥ जांघोंके बल पृथ्वीपर गिरे, और क्षणभरके पीछे फिर उठ बैठे उनके उठनेंके समय तीन सीधे चलनेंवाले बाण ॥ ११५ ॥ जो कि अति घोरथे अंगदजीके माथेमें मारे, अंगदजीको तीन राक्षस श्रेष्ठों करके घिरा हुआ जान ॥ ११६ ॥ हनुमान् और नीलभी उनके निकट चले आये; तब नीलनें त्रिशिराको ताककर उसके मस्तकपर एक पर्वतका शिखर चलाया ॥ ११७ ॥ परन्तु बुद्धिमान रावणके पुत्र त्रिशिराने तीखे बाणोंसे उस शिखरको खंड २ कर डाला उस कालमें शत बाणोंसे वह

त्रिशिरा नाम राक्षस कहनें लगा॥ १ ॥ हेमहाराज! आपनें जिस प्रकारसे कहा, हमारे ऐसे गुणसम्पन्न मध्यम चचा मारे तो अवश्य गये, परन्तु कोईभी वीर पुरुष आपकी समान विलाप नहीं करता ॥ २ ॥ हेस्वामी! आप किस कारणसे साधारण पुरुषकीनांई अपने आपही आप ऐसे शोकसे संतापित हो रहेहो? हम निश्चय जानतेहैं कि आप इस त्रिभुवनकाभी नाश कर सकतेहैं ॥ ३ ॥ आपके पास पितामह ब्रह्माजीकी दी हुई शक्ति, कवच, बाण, धनुष और मेघकी समान शब्दायमान रथहै कि जिसमें सहस्र गधे जुतेहैं ॥ ४ ॥ आपने तो विनाही शस्त्र ग्रहणकिये अनेक वार देवता लोगोंको पराजय कियाहै; इस कारण अब सर्वभांतिके आयुध धारण करनेंसे निश्चयही आप रामचंद्रके जीतनेंको समर्थ होंगे ॥ ५ ॥

एवमेवमहावीर्योहतोनस्तातमध्यमः ॥ नतुसत्पुरुषाराजन्विलपंतियथाभवान् ॥ २ ॥ नूनंत्रिभुवनस्यापिपर्याप्तस्त्वमसिप्रभो ॥ सकस्मात्प्राकृतइवशोचस्यात्मानमीदृशम् ॥ ३ ॥ ब्रह्मदत्तास्तितेशक्तिःकवचंसायकोधनुः ॥ सहस्रखरसंयुक्तोरथोमेघसमस्वनः ॥ ४ ॥ त्वयाऽसकृद्विशस्त्रेणविशस्तादेवदानवाः ॥ ससर्वायुधसंपन्नोराघवंशास्तुमर्हसि॥५॥ कामंतिष्ठमहाराजनिर्गमिष्याम्यहंरणे ॥ उद्धरिष्यामितेशत्रून्गरुडःपन्नगानिव ॥ ६ ॥ शंबरोदेवराजेननरकोविष्णुना यथा॥ तथाद्यशयितारामोमयायुधिनिपातितः ॥ ७॥ श्रुत्वात्रिशिरसोवाक्यंरावणोराक्षसाधिपः ॥ पुनर्जातमिवात्मानं मन्यतेकालचोदितः ॥ ८ ॥ श्रुत्वात्रिशिरसोवाक्यंदेवांतकनरांतकौ ॥ अतिकायश्चतेजस्वीबभूवुर्युद्धहर्षिताः ॥ ९ ॥

अथवा आप सुखसहित विश्राम करें हम अकेलेही समरमें जायकर आपके शत्रुओंका नाश करेंगे कि जिसप्रकार गरुड़ सर्पोंका नाश करतेहैं ॥ ६ ॥ जिस प्रकार इन्द्रनें शम्बरासुरको और विष्णुजीनें नरकासुरको मार डालाथा, वैसेही हमभी रणभूमिमें रामचंद्रका संहारकर उनको पृथ्वी पर लुटा देंगे ॥ ७ ॥ राक्षसोंके स्वामी रावणनें त्रिशिराके ऐसे वचन सुनकर कालप्रेरितहो अपना दूसरा जन्म होना मानता हुआ (अर्थात्) रावणनें तो जान लियाकि बस अब हम मरगये, और सब आशा जाती रहीथी, परन्तु त्रिशिराके वचन सुन फिर हमको आशा हुई और इस प्रकार हमनें अपना दूसरा जन्म समझा ॥८॥ तब त्रिशिराके ऐसे वचन सुनकर तेजस्वी अतिकाय, देवान्तक; और नरान्तक युद्ध करनेंके लिये हर्ष

घिरकर विद्ध शरीर और बाणोंसे रोके जाकर और देहमें घाव खायकर अत्यन्त व्यथित हुए, उनका शरीर अवश हुआ, चेतना जाती रही और
मूर्छा आय गई ॥ २६ ॥ परन्तु महावीर नीलनें एक क्षणभरमें चेतना पाय वृक्षोंके सहित एक पर्वत उखाड़ और कूदकर वह पर्वत महावीर
महोदरके शिरपर देमारा ॥ २७ ॥ महोदरभी पर्वतके लगनेसे उस बड़े भारी हाथीके सहित चूर्णित और प्राण रहित होकर वज्रसे छूटे हुए पर्व
तकी समान पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २८ ॥ अपने चचा महोदरको मरा हुआ देखकर त्रिशिरा अत्यंत क्रोधित हुआ; और यह धनुष पर बाण
चढ़ाय तीखे बाणोंसे हनुमानजीको बींधनें लगा ॥ २९ ॥ तब पवनकुमार हनुमानजीनेंभी क्रोधित होकर एक पर्वतका शिखर चलायाकि तिसको

सवायुसूनुः कुपितश्चिक्षेपशिखरंगिरेः ॥ त्रिशिरास्तच्छरैस्तीक्ष्णैर्बिभेदबहुधाबली ॥ १३० ॥ तद्व्यर्थंशिखरंदृष्ट्वाद्रु
मवर्षंतदाकपिः ॥ विससर्जरणेरणेतस्मिन्रावणस्यसुतंप्रति ॥ ३१ ॥ तमापतंतमाकाशेद्रुमवर्षंप्रतापवान् ॥ त्रिशि
रानिशितैर्बाणैश्चिच्छेदचननादच ॥ ३२ ॥ हनूमांस्तुसमुत्पत्यहयंत्रिशिरसस्तदा ॥ विददारनखैःक्रुद्धोनागेंद्रंमृगरा
डिव ॥ ३३ ॥ अथशक्तिंसमासाद्यकालरात्रिमिवांतकः ॥ चिक्षेपानिलपुत्रायत्रिशिरारावणात्मजः ॥ ३४ ॥ दिवः
क्षिप्तामिवोल्कांतांशक्तिंक्षिप्तामसंगताम् ॥ गृहीत्वाहरिशार्दूलोबभंजचननादच ॥ ३५ ॥ तांदृष्ट्वाघोरसंकाशांश
क्तिंभग्नांहनूमता ॥ प्रहृष्टावानरगणाविनेदुर्जलदायथा ॥ ३६ ॥ ततःखड्गंसमुद्यम्यत्रिशिराराक्षसोत्तमः ॥ निचखानत
दाखड्गंवानरेंद्रस्यवक्षसि ॥ ३७ ॥

बलशाली त्रिशिरानें खंड २ कर डाला ॥ १३० ॥ संग्राम भूमिमें पर्वतके शिखरको व्यर्थ हुआ देखकर कपि श्रेष्ठ हनुमानजीनें रावणके
पुत्रको निशाना बनाय उसके ऊपर वृक्षोंकी वर्षा करनी आरंभकी ॥ १ ॥ परन्तु प्रतापशाली त्रिशिरा उन सब वृक्षोंको तीखे बाणोंके समूहसे
आकाश मार्गमेंही काट कर सिंहनाद कर उठा ॥ २ ॥ यह देख हनुमानजी कूदकर त्रिशिराके घोड़े पर चढ़ उस घोड़ेको अपने नखोंसे इस
प्रकार चीर फाड़ डालाकि जैसे सिंह हाथीको चीर डालताहै ॥ ३ ॥ इसके उपरान्त रावणके पुत्र त्रिशिरानें जिस प्रकार यमराज प्रलय कालमें काल

वाली बूटी और सब सुगन्धित पदार्थ स्पर्श करके संग्राममें विजय पानेंकी वासनासे चले ॥१९॥ त्रिशिरा, अतिकाय, देवान्तक, नरान्तक, महोदर, और महापार्श्व, यह छैः निशाचर मानो कालसेही भेजे जाकर संग्राममें गमन करते हुए ॥ २० ॥ नीले बादरके रंगकी समान ऐरावतके कुलसे उत्पन्न हुए सुदर्शननाम हाथीपर महोदर सवार हुआ ॥ २१ ॥ तरकस और बाणोंसे अलंकृत सर्वायुधधारी, वह वीर हाथीपर सवार होकर अस्ताचलपर आरोहण करते हुए सूर्यभगवानकी समान शोभायमान होनें लगा ॥ २२ ॥ रावणका पुत्र त्रिशिरा दिव्य घोड़े जिसमें जुते, और सब भांतिके अस्त्र शस्त्रभी भर रहेथे ऐसे एक श्रेष्ठ रथपर सवार हुआ ॥ २३ ॥ धनुप धारण किये हुए त्रिशिरा रथपर सवार होकर बिजली, उल्का

त्रिशिराश्चातिकायश्चदेवांतकनरांतकौ ॥ महोदरमहापार्श्वौनिर्जग्मुःकालचोदिताः ॥ २० ॥ ततःसुदर्शनंनागंनीलजीमूतसन्निभम् ॥ ऐरावतकुलेजातमारुरोहमहोदरः ॥ २१ ॥ सर्वायुधसमायुक्तस्तूणीभिश्चाप्यलंकृतः ॥ रराजगजमास्थायसवितेवास्तमूर्धनि ॥ २२ ॥ हयोत्तमसमायुक्तंसर्वायुधसमाकुलम् ॥ आरुरोहरथश्रेष्ठंत्रिशिरारावणात्मजः ॥ २३ ॥ त्रिशिरारथमास्थायविरराजधनुर्धरः ॥ सविद्युदुल्कःसज्वालःसेंद्रचापइवांबुदः ॥ २४ ॥ त्रिभिःकिरीटैस्त्रिशिराःशुशुभेसरथोत्तमे ॥ हिमवानिवशैलेंद्रस्त्रिभिःकांचनपर्वतैः ॥ २५ ॥ अतिकायोतितेजस्वीराक्षसेंद्रसुतस्तदा ॥ आरुरोहरथश्रेष्ठंश्रेष्ठःसर्वधनुष्मताम् ॥ २६ ॥ सुचक्राक्षंसुसंयुक्तंसानुकर्षंसकूबरम् ॥ तूणीबाणासनैर्दीप्तंप्रासासिपरिघाकुलम् ॥ २७ ॥

ज्वाला, और इन्द्र धनुपयुक्त बादलकी समान शोभायमान हुआ ॥ २४ ॥ तीन सुवर्णके शृङ्गोंसे हिमवान पर्वतकी जैसी शोभा होतीहै, वैसेही त्रिशिरा अपने तीन मस्तकोंपर तीन किरीट धारण करके श्रेष्ठ रथपर सवार हो शोभित होनें लगा ॥ २५ ॥ धनुप धारण करनेंवालोंमें प्रथम गिनें जानेंके योग्य रावणका पुत्र अतितेजस्वी अतिकाय श्रेष्ठ रथपर आरोहण करता हुआ ॥ २६ ॥ इस रथके पहिये और धुरे सुगठितथे अनुकर्ष और कूबरयुक्त दो विशेष अंगोंसे यह शोभितथा, इसमें बाण शरासन, प्रास, खड्ग और परिघ यह सब सजे सजाये रक्खेथे ॥ २७ ॥

आदि धातु वहा करती हैं ॥ ५९ ॥ इसके उपरान्त महात्मा ऋषभके सन्मुख वह महापार्श्व दौड़ा परन्तु फिर महात्मा उस वानरनें उस भयंक
र गदाको तोल और जांचकर वारंवार बल पूर्वक ग्रहणकर ॥१६०॥ महा पार्श्वके शिरपर प्रहारकिया अपनी ही गदासे. इसप्रकार घायलहो महापा
र्श्वकी जीभ निकल आई और दांतभी टूटकर बाहर आन पडे ॥ ६१ ॥ और वह वज्रसें टूटे हुए पर्वतकी समान पृथ्वीपर गिरपड़ा उसके दोनों
नेत्र निकल पडे और वह प्राणरहित होगया उस राक्षस महापार्श्वके गिर तेही राक्षसोंकी सैना भागगई ॥ ६२ ॥ इसप्रकारसे उस रावणके भ्राता
महापार्श्वके मरजानेसें वह समुद्र समान निशाचरोंकी सेना अस्त्र शस्त्र त्यागकरके केवल अपना जीवही बचानेंको उछलतेहुए समुद्रकी भांति चारों

तस्मिन्हतेभ्रातरिरावणस्यतन्नैर्ऋतानांबलमर्णवाभम्॥त्यक्तायुधंकेवलजीवितार्थंदुद्रावभिन्नार्णवसन्निकाशम्॥१६३॥
इत्यार्षेश्रीमद्रा०वा०आ०युद्धकांडेसप्ततितमःसर्गः ॥ ७० ॥ छ ॥ स्वबलंव्यथितंदृष्ट्वातुमुलंलोमहर्षणम् ॥ भ्रातृंश्चनि
हतान्दृष्ट्वाशक्रतुल्यपराक्रमान् ॥ १ ॥ पितृव्यौचापिसंदृश्यसमरेसंनिपातितौ ॥ युद्धोन्मत्तंचमत्तंचभ्रातरौराक्षसो
त्तमौ ॥ २ ॥ चुकोपचमहातेजाब्रह्मदत्तवरोयुधि ॥ अतिकायोद्रिसंकाशोदेवदानवदर्पहा ॥ ३ ॥ सभास्करसहस्र
स्यसंघातमिवभास्वरम् ॥ रथमारुह्यशक्रारिरभिदुद्राववानरान् ॥ ४ ॥ सविस्फार्यतदाचापंकिरीटीमृष्टकुंडलः ॥
नामसंश्रावयामासननादचमहास्वनम् ॥ ५ ॥

ओरको भागगई ॥ १६३ ॥ इ० श्रीम०वा० आ० यु० सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥ अति भयंकर लोमहर्षणकारी अपनी सेनाका संहार देख और इन्द्र
की समान पराक्रमकारी देवान्तक नरान्तक त्रिशिरा इन तीन भाइयोंको मृतक देख ॥ १ ॥ और अपने दोनो चचा महोदर व महापार्श्वको भी
संग्राममें मरा हुआ निहारकर ॥ २ ॥ ब्रह्माजीसे वरदान पाया हुआ देवता दानवोंका अहंकार तोड़नें वाला पर्वताकार अतिकाय नामक राक्ष
स समरमें बडा क्रोध करता हुआ॥३॥ सहस्र सूर्योंके उदय होनसे जिसप्रकार तेज होताहै ऐसे ही यह राक्षस अतिकाय अति तेजस्वी था यह इस समय
रथपर चढ़कर वानरोंकी सेनाके सन्मुख दौड़ा ॥ ४ ॥ यह कुंडलसें अलंकृत और किरीटधारी वीर अतिकाय धनुष पर टंकार देता हुआ

ऐसी शोभितहुई जैसे शरदऋतुके समय आकाशमें उडती हुई. हंसोकी पांति शोभायमान होती है; या तो मरहीजायँगे या शत्रुलोगोंको ही जीतलेंगे ॥ ३७ ॥ ऐसा निश्चयकर वह सब महात्मा वीर युद्ध करनेंके लिये चले, उनमेंसे कोई २ गर्जनेंलगे कोई २ सिंहनाद करनें लगे और कोई २ शत्रुकी ओर बाणोंकी वर्षा करनेंलगे ॥ ३८ ॥ इस प्रकारसे रणमें दुर्मद वह महात्मा वीर चले, उन राक्षसोंके घोर सिंहनाद करनेंसे पृथ्वी कंपायमान होनें लगी ॥ ३९ ॥ वह और दूसरे राक्षसोंकेभी सिंहनाद करनेंसे आकाशभी मानों फूटही गया; इस प्रकारसे वह महाबलवान राक्षस हर्षयुक्त होकर समर करनेंको चले ॥ ४० ॥ उन महाबली अत्यन्त आनंदित राक्षसोंनें वृक्ष शिलादि हाथमें लिये ऊप

शरदभ्रप्रतीकाशाहंसावलिरिवांबरे ॥ मरणंवापिनिश्चित्यशत्रूणांवापराजयम् ॥ ३७ ॥ इतिकृत्वामतिंवीराःसंजग्मुःसंयुगार्थिनः ॥ जगर्जुश्चप्रणेदुश्चचिक्षिपुश्चापिसायकान् ॥ ३८ ॥ जगृहुश्चमहात्मानोनिर्यातायुद्धदुर्मदाः ॥ क्ष्वेडितास्फोटितानांवैसंचचालेवमेदिनी ॥ ३९ ॥ रक्षसांसिंहनादैश्चसंस्फोटितमिवांबरम् ॥ तेभिनिष्क्रम्यमुदिताराक्षसेंद्रामहाबलाः ॥ ४० ॥ ददृशुर्वानरानीकंसमुद्यतशिलानगम् ॥ हरयोपिमहात्मानोददृशूराक्षसंबलम् ॥ ४१ ॥ हस्त्यश्वरथसंबाधंकिंकिणीशतनादितम् ॥ नीलजीमूतसंकाशंसमुद्यतमहायुधम् ॥ ४२ ॥ दीप्तानलरविप्रख्यैर्नैर्ऋतैःसर्वतोवृतम् ॥ तद्दृष्ट्वाबलमायातंलब्धलक्षाःप्लवंगमाः ॥ ४३ ॥ समुद्यतमहाशैलाःसंप्रणेदुर्मुहुर्मुहुः ॥ अमृष्यमाणारक्षांसिप्रतिनर्दंतवानराः ॥ ४४ ॥ ततःसमुत्कृष्टरवंनिशम्यरक्षोगणावानरयूथपानाम् ॥ अमृष्यमाणाःपरहर्षमुग्रंमहाबलाभीमतरंप्रणेदुः ॥ ४५ ॥

रको उठाये हुए वानरोंको देखा ॥ ४१ ॥ वानरलोगोंनेभी देखाकि राक्षसोंकी सैना, युद्ध करनेंके लिये आगे बढ़रहीहै; यह समस्त सैना हाथी घोड़े और रथोंसे परिपूर्णथी और किंकिणियोंके शब्दसे शब्दायमानथी ॥ ४२ ॥ इस सैनाका आकार नीले मेघकी समानथा और इस सैनाके हाथमें अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्रथे और उसका तेज दीप्त अग्नि और सूर्यकी समान उज्ज्वलथा॥ ४३॥ वानर लोग राक्षसोंको युद्धके लिये आयाहुआ देखकर पर्वतोंको ग्रहण करके वारंवार सिंहनाद करनेंलगे ॥ ४४ ॥ इसके उपरान्त वानरयूथपतिलोगोंका घोर शब्द श्रवण

जोकि कालजिह्वाकी समान प्रकाशमान रथ और शक्तियोंको धारण कियेहुए विराजमान हो रहाहै ॥ १४ ॥ इन्द्रधनुष जिस प्रकार आकाशको शोभित करताहै, वैसेही यह वीर सुवर्णका सुसाज शरासन धारण करकै रथको सुशोभित कर रहाहै ॥ १५ ॥ जो सूर्यकी समान तेजमय रथपर आरोहण करकै प्रधान रथीके स्वरूपमें रणभूमिको शोभायमान करता हुआ युद्ध करनेंके लिये चलाआताहै ॥ १६ ॥ जिसके रथकी ध्वजापर राहुकी मूर्तिहै,जो सूर्यकी किरणोंके समान बाण चलाय करकै दशों दिशाओंको ढकताहुआ आगमन कर रहाहै ॥ १७ ॥ जो निशाचर मेघकी समान शब्दायमान तीन जगहसे झुका हुआ सुवर्णकी पीठसे युक्त अलंकृत धनुष लियेहुये इन्द्र धनुषकी समान शोभायमान हो रहाहै ॥ १८ ॥

कालजिह्वाप्रकाशाभिर्यएषोभिविराजते ॥ आवृतोरथशक्तीभिर्विद्युद्भिरिवतोयदः ॥ १४ ॥ धनूंषिचास्यसज्जानिहेमपृष्ठानिसर्वशः ॥ शोभयंतिरथश्रेष्ठंशक्रचापमिवांबरम् ॥ १५ ॥ यएषरक्षःशार्दूलोरणभूमिंविराजयन् ॥ अभ्येतिरथिनांश्रेष्ठोरथेनादित्यवर्चसा ॥ १६ ॥ ध्वजशृंगप्रतिष्ठेनराहुणाभिविराजते ॥ सूर्यरश्मिप्रभैर्बाणैर्दिशोदशविराजयन् ॥ १७ ॥ त्रिनतंमेघनिर्ह्रादंहेमपृष्ठमलंकृतम् ॥ शतक्रतुधनुःप्रख्यंधनुश्चास्यविराजते ॥ १८ ॥ सध्वजःसपताकश्चसानुकर्षोमहारथः ॥ चतुःसादिसमायुक्तोमेघस्तनितनिःस्वनः ॥१९॥ विंशतिर्दशचाष्टौचतूणास्यरथमास्थिताः ॥ कार्मुकाणिचभीमानिज्याश्चकांचनपिंगलाः ॥२०॥ द्वौचखड्गौचपार्श्वस्थौप्रदीप्तौपार्श्वशोभितौ ॥ चतुर्हस्तत्सरुचितौव्यक्तहस्तदशायतौ ॥२१॥ रक्तकंठगुणोधीरोमहापर्वतसन्निभः॥कालःकालमहावक्त्रोमेघस्थइवभास्करः२२॥

जिसका मेघकी समान शब्दायमान ध्वजा पताकासे शोभित चार सारथियोंसे चलाया जाताहुआ रथ घर्घराता हुआ चला आताहै ॥ १९ ॥ जिस रथपर अड़तीश तर्कस भयंकर धनुषभी इतनेही और कांचनके समान पिंगल वर्णवाली जिसपर बहुतसी ज्या रक्खी हुई हैं ॥ २० ॥ जिसके दो खड्ग जिसकी दोनों बगलोंको शोभायमान कर रहेहैं;जिनके चार २ हाथके कब्जेही देखकर मालूम पड़ताहै कि इन दोनों खड्गोंमेंसे प्रत्येक दश२ हाथका लंबा होगा ॥ २१ ॥ जिसके गलेमें पड़ी हुई लाल माला शोभायमान हो रहीहै; जिसका वदन कालकी समान है; यह महापर्वतकी समान

कपिकुंजरोंको तीक्ष्ण बाणोंसे मारतेथे ॥ ५३ ॥ शूल,मुद्गर, खड्ग, भाला, शक्ति, इत्यादिसेभी मारतेथे, और दूसरे अस्त्र शस्त्रोंसे परस्पर जयकी इच्छा किये एक दूसरेको मारतेथे ॥ ५४ ॥ धीरे २ इस प्रकारका युद्ध हुआ कि वानर और राक्षसगणोंका शरीर परस्परके शत्रुओंके रुधिरसे रंगगया वानर और राक्षस लोगोंके चलाये पर्वत खड्ग इत्यादि अस्त्र शस्त्रोंसे ॥ ५५ ॥ केवल मुहूर्तभरमें रणभूमि ढकगई और वहांपर रुधिरकी नदी वहनेंलगी, उस कालमें वानरोंसे मारेहुए रणमें मतवाले राक्षसोंके पड़ेहुए पर्वताकार देहोंसें रणभूमि परिपूर्ण होगई ॥ ५६ ॥ जब मारते २ और चलाते २ वृक्षपर्वतादि टूट फूट गये तव वानरगण अपनें अंगोंसे युद्ध करनेंलगे ॥ ५७ ॥ वानरश्रेष्ठगण राक्षसोंको

शूलमुद्गरखड्गैश्चजघ्नुःप्रासैश्चशक्तिभिः ॥ अन्योन्यंपातयामासुःपरस्परजयैषिणः ॥ ५४ ॥ रिपुशोणितदिग्धांगास्तत्रवानरराक्षसाः ॥ ततःशैलैश्चखड्गैश्चविसृष्टैर्हरिराक्षसैः ॥ ५५ ॥ मुहूर्तेनावृताभूमिरभवच्छोणितोक्षिता ॥ विकीर्णैःपर्वताकारैरक्षोभिरभिमर्दितैः ॥ आसीद्वसुमतीपूर्णातदायुद्धमदान्वितैः ॥ ५६ ॥ आक्षिप्ताःक्षिप्यमाणाश्चभग्नशैलैश्चवानरैः ॥ पुनरंगैस्तदाचक्रुर्वानरायुद्धमद्भुतम् ॥ ५७ ॥ वानरान्वानरैरेवजघ्नुस्तेनैर्ऋतर्षभाः ॥ राक्षसान्राक्षसैरेवजघ्नुस्तेवानराअपि ॥ ५८ ॥ आक्षिप्यचशिलाःशैलाञ्जघ्नुस्तेराक्षसास्तदा ॥ तेषांचाच्छिद्यशस्त्राणिजघ्नूरक्षांसिवानराः ॥ ५९ ॥ निर्जघ्नुःशैलशृंगैश्चबिभिदुश्चपरस्परम् ॥ सिंहनादान्विनेदुश्चरणेराक्षसवानराः ॥ ६० ॥ छिन्नवर्मतनुत्राणाराक्षसावानरैर्हताः ॥ रुधिरंप्रस्तुतास्तत्ररससारमिवद्रुमाः ॥ ६१ ॥

उठाय २ राक्षसोंपर दे दे मारतेथे और राक्षसश्रेष्ठगण वानरोंको उठाय२ वानरोंपर दंदे मारतेथे ॥ ५८ ॥ राक्षसलोग वानरोंके चलाये शिला और पर्वतोंको बलसे ग्रहण करके उनको उनकेही ऊपर चलानेंलगे; और वानर गणभी राक्षसोंके अस्त्र शस्त्र छीनकर उनसेही राक्षसोंका नाश करनें लगे ॥ ५९ ॥ इस प्रकारसें वह वानर और निशाचरगण पर्वतोंके शृङ्गोंसे रणभूमिमें परस्पर एक दूसरेपर चोट चलाते हुए सिंहनाद करनें लगे ॥ ६० ॥ वानरोंके हाथसे राक्षसोंके धनुष टूटगये कवच किर्च २ होगये, और वह मरनेंभी लगे। जिस प्रकार वृक्षसे गोंद निकलताहै वैसेही

मालिनी राक्षसीके गर्भसे उत्पन्न हुआहै इसका नाम अतिकायहै ॥ ३० ॥ इस निशाचरनें पूर्वकालमें पवित्रभावसे बहुत सारी तपस्या करके पिताम
ह ब्रह्माजीको प्रसन्न कियाथा और उनकेही अनुग्रहसे इसनें अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र पायकर अपने शत्रुओंको पराजित कियाहै ॥ ३१ ॥
यह स्वयंभू प्रजापति ब्रह्माजीके वरसे सुर असुर किसीसेभी नहीं मरसकता इसनें तपोबलसे दिव्य कवच और सूर्यकी समान प्रकाशित रथभी
पायाहै ॥ ३२ ॥ बहुत सारे देव दानवगण इसके हाथसे हारगयेहैं, इसनें राक्षसोंकी रक्षा करके यक्षोंका संहार कियाहै ॥ ३३ ॥ इसनें रणभूमिमें
बाणोंसे बुद्धिमान देवराज इन्द्रजीके वज्रको रोक दिया, और जलराज वरुणजीकी फांसीकोभी इसनें व्यर्थ करदिया ॥३४॥ देवता और दानवलो

एतेनाराधितोब्रह्मातपसाभावितात्मना ॥ अस्त्राणिचाप्यवाप्तानिरिपवश्चपराजिताः ॥ ३१ ॥ सुरासुरैरवध्यत्वंदत्तम
स्मैस्वयंभुवा ॥ एतच्चकवचंदिव्यंरथश्चरविभास्वरः ॥ ३२ ॥ एतेनशतशोदेवादानवाश्चपराजिताः ॥ रक्षितानिचरक्षां
सियक्षाश्चापिनिषूदिताः ॥३३॥ वज्रंविष्टंभितंयेनबाणैरिंद्रस्यधीमता ॥ पाशःसलिलराजस्ययुद्धेप्रतिहतस्तथा ॥३४॥
एषोतिकायोबलवान्राक्षसानामथर्षभः ॥ सरावणसुतोधीमान्देवदानवदर्पहा ॥ ३५ ॥ तदस्मिन्क्रियतांयत्नःक्षिप्रं
पुरुषपुंगव ॥ पुरावानरसैन्यानिक्षयंनयतिसायकैः ॥ ३६ ॥ ततोतिकायोबलवान्प्रविश्यहरिवाहिनीम् ॥ विस्फारया
मासधनुर्ननादचपुनःपुनः ॥३७॥ तंभीमवपुषंदृष्ट्वारथस्थंरथिनांवरम् ॥ अभिपेतुर्महात्मानःप्रधानायेवनौकसः ॥३८॥
कुमुदोद्विविदोमैंदोनीलःशरभएवच ॥ पादपैर्गिरिशृंगैश्चयुगपत्समभिद्रवन् ॥ ३९ ॥

गोंके दर्पका नाश करनेंवाला यह वही राक्षसश्रेष्ठ बलवान अतिकायहै॥३५॥ हे पुरुषोत्तम ! शीघ्रतासे इसका विनाश करनेंमें यत्न कीजिये कारण कि
यह सबसे पहले वानरोंकी सैनाकोही बाणोंसे संहारकररहाहै ॥ ३६ ॥ इसके उपरान्त बलवान् अतिकायनाम राक्षस वानरोंकी सैनाके बीचमें
प्रवेश करके धनुष पर टंकारदे वारंवार सिंहनाद करनें लगा ॥ ३७ ॥ भयंकराकार उस राक्षसको श्रेष्ठ रथपर चढ़ा हुआ देखकर मुखिया २
वानर गण उनके सामनेको दौड़े ॥ ३८ ॥ कुमुद, द्विविद, मैन्द, नील, शरभ यह कई एक वानरवीर इकट्ठे होकर वृक्ष और पर्वतोंके शृङ्ग धारण

वानरोंकी सैनामें घूमता हुआ विद्याधर और महर्षि लोगोंनें देखा ॥ ६९ ॥ वह जिस ओरको चला जाताथा उसी ओर मार्गमें रुधिर मांसकी कीच और गिरेहुए पर्वताकार वानरोंके शरीरोंसे ढकता जाताथा ॥ ७० ॥ वानर लोग जिस २ स्थानमें भाग जानेंलगे नरान्तक उसही स्थानपर जाकर उनका संहार करनें लगा ॥ ७१ ॥ अग्निके वनको जलानें की समान निशाचर नरान्तक जब वानरोंकी सैनाको भस्म करनेंलगा वैसेही वनचारी वानरोंनेभी वृक्ष उखाड़ने आरंभ किये और जैसेही कि उसपर चलाये वैसेही भालेसे कटकर ऐसे गिरे कि जैसे वज्रसे कटकर पर्वत गिरेथे संग्राममें नरान्तकनें प्रकाशमान उस भालेको उठाया ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ वह महाबलवान राक्षस नरान्तक संग्रामभूमिमें चारोंओर घूमनें लगा

सतस्यददृशेमार्गोमांसशोणितकर्दमः ॥ पतितैःपर्वताकारैर्वानरैरभिसंवृतः ॥ ७० ॥ यावद्विक्रमितुंबुद्धिंचक्रुःप्लवगपुंगवाः ॥ तावदेतानतिक्रम्यनिर्बिभेदनरांतकः ॥ ७१ ॥ ददाहहरिसैन्यानिवनानीवविभावसुः ॥ यावदुत्पाटयामासुर्वृक्षान्शैलान्वनौकसः ॥ ७२ ॥ तावत्प्रासहताःपेतुर्वज्रकृत्ताइवाचलाः ॥ ज्वलंतंप्रासमुद्यम्यसंग्रामांतेनरांतकः ॥७३॥ दिक्षुसर्वासुबलवान्विचचारनरांतकः॥प्रमृद्नन्सर्वतोयुद्धेप्रावृट्कालेयथानिलः ॥ ७४ ॥ नशेकुर्धावितुंवीरानस्थातुंस्पंदितुंकुतः ॥ उत्पतंतंस्थितंयांतंसर्वान्विव्याधवीर्यवान् ॥७५॥ एकेनांतककल्पेनप्रासेनादित्यतेजसा ॥ भग्नानिहरिसैन्यानिनिपेतुर्धरणीतले ॥ ७६ ॥ वज्रनिष्पेषसदृशंप्रासस्याभिनिपातनम् ॥ नशेकुर्वानराःसोढुंतेविनेदुर्महास्वनम् ॥ ७७ ॥ पततांहरिवीराणांरूपाणिप्रचकाशिरे ॥ वज्रभिन्नाग्रकूटानांशैलानांपततामिव ॥ ७८ ॥

और सर्व वानरोंको इस प्रकारसे युद्धमें मर्दित करताथा जैसे वर्षा कालमें प्रचंड पवन झोके देकर सर्वको व्याकुल करताहै ॥ ७४ ॥ वीर्यवान् राक्षसका पराक्रम देखकर वानर लोग न तो भागही सके न युद्धही करसके, वह घोर विपदमें घिरगये, उन वानरोंनें कुछ उपाय न देखकर जैसेही कूदकर और कहीं जानेंका उद्योग किया, वैसेही अस्त्र चलाकर नरान्तकनें ऊपरही सबको मार डाला ॥ ७५ ॥ सूर्यकी समान तेज युक्त केवल उस एकही शूलके मारनेंसे समस्त सैना भागगई और कुछ पृथ्वीपर गिर पडी ॥ ७६ ॥ वानरलोग वज्र पड़नेंकी तुल्य उस भालेके प्रहारको न सहकर अत्यन्त दारुण आरत नाद करनें लगे ॥७७॥ जिसप्रकार वज्रके गिरनेंसे पर्वतका शृङ्ग गिर पड़ताहै, वैसेही वानरोंकी सैनाने गिरकर

वैसेही शिवजीके शूलकी समान यह बाण तुम्हारा रुधिर पान करेंगे ॥५६॥ बलशाली मनस्वी श्रीमान् राजकुमार लक्ष्मणजी रणभूमिमें अतिकायके ऐसे सरोष और गर्वित वचन सुन अत्यन्त क्रोधित होकर बोले ॥ ५७ ॥ हे दुरात्मन् ! तुम केवल वचनोंहीके कहनेंसे वीर नहीं होसकते, कारण कि केवल अपनी बड़ाई करनेंसे लोग गुणवान् कहाकर नहीं विख्यात होते यह मैं धनुष बाण हाथमें लेकर टिकाहुआहूं तुममें जितनी कुछ सामर्थ्य हो अपना पराक्रम दिखाओ ॥ ५८ ॥ जिसमें पौरुषहै लोग उसकोही शूर कहते हैं; इसलिये तुम वृथा अपनी बड़ाई न मार करके कार्यके द्वारा अपनेको प्रकाश करो ॥ ५९ ॥ तुम रथपर सवार होकर अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र ले युद्ध करनेंके लिया आये हो इस

श्रुत्वातिकायस्यवचःसरोषंसगर्वितंसंयतिराजपुत्रः ॥ ससंचुकोपातिबलोमनस्वीउवाचवाक्यंचततोबृहच्छ्रीः ॥५७॥ नवाक्यमात्रेणभवान्प्रधानोनकत्थनात्सत्पुरुषाभवंति ॥ मयिस्थितेधन्विनिबाणपाणौनिदर्शयस्वात्मबलंदुरात्मन् ॥ ५८ ॥ कर्मणासूचयात्मानंनविकत्थितुमर्हसि ॥ पौरुषेणतुयोयुक्तःसतुशूरइतिस्मृतः ॥ ५९ ॥ सर्वायुधसमायुक्तोधन्वीत्वंरथमास्थितः ॥ शरैर्वायदिवाप्यस्त्रैर्दर्शयस्वपराक्रमम् ॥ ६० ॥ ततःशिरस्तेनिशितैःपातयिष्याम्यहंशरैः ॥ मारुतःकालसंयुक्तंवृंतात्तालफलंयथा ॥६१॥ अद्यतेमामकाबाणास्तप्तकांचनभूषणाः॥ पास्यंतिरुधिरंगात्राद्बाणशल्यांतरोत्थितम् ॥ ६२ ॥ बालोयमितिविज्ञायनचावज्ञातुमर्हसि ॥ बालोवायदिवावृद्धोमृत्युंजानीहिसंयुगे ॥ ६३ ॥ बालेनविष्णुनालोकास्त्रियःक्रांतास्त्रिविक्रमैः ॥ लक्ष्मणस्यवचःश्रुत्वाहेतुमत्परमार्थवत् ॥ अतिकायःप्रचुक्रोधबाणंचोत्तममाददे ॥ ६४ ॥

समय बाण छोड़कर या और कोई अस्त्र चलायकर तुमही अपना पराक्रम दिखाओ ॥ ६० ॥ तिसके पीछे पवन जिस प्रकार पके हुए तालके पत्तेको गुच्छेसे गिरा देती है, वैसेही तीखे बाणोंसे हम तुम्हारा मस्तक गिरादेंगे ॥ ६१ ॥ आज हमारे तपाये हुए सुवर्णसे भूषित बाण, बाणोंसे किये हुए छेदमेंसे निकलते हुए तेरे शरीरमेंके रुधिरको पानकरेंगे ॥६२॥ बालक समझकर निरादर करना उचित नहींहै हम बालकही हों या वृद्धहीहों हमारेही हाथसे रणमें निश्चय तेरी मृत्यु होगी ॥ ६३ ॥ कारणकि बालकरूपी विष्णुजीके तीन चरणोंसे त्रिलोकी नांपलीगईथी

हमारी छातीमें प्रहार कर ॥ ८७ ॥ अंगदजीके वचन सुनकर नरान्तक अत्यन्त क्रोधित हुआ, और क्रोधके मारे लंबे २ श्वास लेता हुआ, दांतोसे होठोंको चाटता वालिकुमार अंगदजीके निकट गया ॥ ८८ ॥ इसके उपरान्त प्रकाशमान भाला उठाकर उसनें अंगदजीके ऊपर चलाया परन्तु वह भाला अंगदजीकी वज्र समान छातीमें लगकर और टूटकर पृथ्वीमें गिर पडा ॥ ८९ ॥ गरुडजी जिस प्रकार सर्पका शरीर छिन्न भिन्न कर डालते हैं; वैसेही उस भालेको चूर्ण देखकर नरान्तकके घोडेके मस्तकमें एक लात मारी ॥ ९० ॥ उस दारुण प्रहारसे उस पर्वताकार घोडेके

अंगदस्यवचःश्रुत्वाप्रचुक्रोधनरांतकः ॥ संदश्यदशनैरोष्ठंनिःश्वस्यचभुजंगवत् ॥ अभिगम्यांगदंक्रुद्धोवालिपुत्रं
नरांतकः ॥ ८८ ॥ सप्रासमाविध्यतदांगदायसमुज्ज्वलंतंसहसोत्ससर्ज ॥ सवालिपुत्रोरसिवज्रकल्पेबभूवभग्नो
न्यपतच्चभूमौ ॥ ८९ ॥ तंप्रासमालोक्यतदाविभग्नंसुपर्णकृत्तोरगवीर्यकल्पम् ॥ तलंसमुद्यम्यसवालिपुत्रस्तुरंगम
स्याभिजघानमूर्ध्नि ॥ ९० ॥ निमग्नपादःस्फुटिताक्षितारोनिष्क्रांतजिह्वोचलसन्निकाशः ॥ सतस्यवाजीनिपपातभू
मौतलप्रहारेणविकीर्णमूर्धा ॥ ९१ ॥ नरांतकःक्रोधवशंजगामहतंतुरंगंपतितंसमीक्ष्य ॥ समुष्टिमुद्यम्यमहाप्रभावो
जघानशीर्षेयुधिवालिपुत्रम् ॥ ९२ ॥ अथांगदोमुष्टिविशीर्णमूर्धासुस्रावतीव्रंरुधिरंभृशोष्णम् ॥ मुहुर्विजज्वालमुमो
हचापिसज्ञांसमासाद्यविसिस्मियेच ॥ ९३ ॥ अथांगदोमृत्युसमानवेगंसंवर्त्यमुष्टिंगिरिशृंगकल्पम् ॥ निपातयामा
सतदामहात्मानरांतकस्योरसिवालिपुत्रः ॥ ९४ ॥

चारों पांव टूट गये, नेत्रोंकी पुतलियें बाहर निकल आईं, जीभ मुंहसे निकल आई, मस्तक चूर्ण होगया, घोडा मृतक होकर पृथ्वीमें गिर पडा ॥ ९१ ॥ घोडेको मृतक होकर पृथ्वीपर पडाहुआ देखकर महा प्रभाव नरान्तकनें अत्यन्त कोप किया, और मूका उठायकरे वालिकुमार अंगदजीके मस्तकमें मारा ॥ ९२ ॥ उस प्रहारसे अंगदजीका मस्तक फट गया और उस्से गरम २ रुधिरकी धारा वहनें लगी, और वह मूर्छित होगये, परन्तु एक क्षणभरमेंही वह चेतना पाय अत्यन्त विस्मित और क्रोधसे दूने प्रज्वलित होगये ॥ ९३ ॥ उसके उपरान्त उन

करके अतिकायपर एकही संग धाये ॥ ३९ ॥ परन्तु अस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी अतिकायनें कनकभूषित बाणोंसे उन वानरोंके चलाये समस्त वृक्ष और पर्वतोंको काटडाला ॥ ४० ॥ तिसके पीछे उस रणपंडित अस्त्रविशारद बलशाली निशाचरनें स्वच्छ लोहेके बाणोंसे सन्मुखको दौड़े आतेहुए उन वानरोंको ताड़ित किया ॥ ४१ ॥ वानर लोग भी अतिकायकी बाण वर्षासे छिन्न गात्र और पराजित होकर वह इसका कुछभी बदला उस राक्षससे न लेसके ॥ ४२ ॥ युवाअवस्थाके आनेंसे गर्वित मृगराज (सिंह) जिस प्रकार मृगके झुण्डोंको भयभीत करताहै वैसेही वह अतिकायनाम राक्षस वानरोंकी सैनाको त्रासित करनें लगा ॥ ४३ ॥ जो वानर रीछ कि युद्धमें विमुख थे उनपर अतिकायनें

तेषांवृक्षांश्चशैलांश्चशरैःकनकभूषणैः ॥ अतिकायोमहातेजाश्चिच्छेदास्त्रविदांवरः ॥ ४० ॥ तांश्चैवसर्वान्सहरीञ्छरैः सर्वायसैर्बली ॥ विव्याधाभिमुखान्संख्येभीमकायोविशारदः ॥ ४१ ॥ तेऽर्दिताबाणवर्षेणभिन्नगात्राःपराजिताः ॥ नशेकुरतिकायस्यप्रतिकर्तुंमहाहवे ॥ ४२ ॥ तत्सैन्यंहरिवीराणांत्रासयामासराक्षसः ॥ मृगयूथमिवक्रुद्धोहरिर्यौवनदर्पितः ॥ ४३ ॥ सराक्षसेंद्रोहरियूथमध्येनायुध्यमानंनिजघानकंचित् ॥ उत्पत्यरामंसधनुःकलापीसगर्वितं वाक्यमिदंबभाषे ॥ ४४ ॥ रथेस्थितोहंशरचापपाणिर्नप्राकृतंकंचनयोधयामि ॥ यस्यास्तिशक्तिर्व्यवसाययुक्तो ददातुमेशीघ्रमिहाद्ययुद्धम् ॥ ४५ ॥ तत्तस्यवाक्यंब्रुवतोनिशम्यचुकोपसौमित्रिरमित्रहंता ॥ अमृष्यमाणश्चस मुत्पपातजग्राहचापंचततःस्मयित्वा ॥ ४६ ॥ क्रुद्धःसौमित्रिरुत्पत्यतूणादाक्षिप्यसायकम् ॥ पुरस्तादतिकायस्य विचकर्षमहद्धनुः ॥ ४७ ॥

अस्त्रका प्रहार नहीं किया इसके उपरान्त वीरवर अतिकाय धनुष धारण करके श्रीरामचंद्रजीके सन्मुखहो उनसे गर्वसहित यह वचन बोला ॥ ४४ ॥ हम किसी साधारण वीरके साथ युद्ध करनेंका अभिलाष नहीं करते यह हम धनुष बाण हाथमें लिये बैठेहैं यदि किसीको युद्ध करना आता हो या किसीमें शक्ति हो तो वह शीघ्र आकर हमारे साथ युद्ध करै ॥ ४५ ॥ राक्षस अतिकायके ऐसे वचन सुनकर शत्रुनाशी लक्ष्मणजी न सहकर मुसकातेहुए धनुष बाण हाथमें लेकर उठे ॥ ४६ ॥ लक्ष्मणजीनें उठतेही तरकससे बाण ग्रहण किया, और अतिकायके सन्मु

वालिकुमार अंगदजीकी ओर झपटा ॥ १०१ ॥ उन अंगदजीके ऊपर जब दर्पके नाश करनेंवाले तीन राक्षस श्रेष्ठ इस प्रकारसे दौड़े तब अंगदजीनें बहुत शाखाओंसे युक्त एक बड़ा भारी वृक्ष उखाड़ डाला ॥ १०२ ॥ इसके उपरान्त देवराज इन्द्रजी जिसप्रकारसे वज्र चलातेहैं; वैसेही अंगदजीनेंभी देवान्तकको लक्ष करके बहुत शाखा युक्त उस वृक्षको चलाया ॥ १०३ ॥ परन्तु राक्षस त्रिशिरानें विषधर सर्पकी समान उसको काट डाला और अंगदजीभी उस वृक्षको कटा हुआ देखकर कूदगये ॥ १०४ ॥ अनन्तर उन कपि कुंजर अंगदजीके पर्वत और वृक्षोंकी वर्षा करनें पर, त्रिशिरानें क्रो

त्रिशिरास्तंप्रचिच्छेदशरैराशीविषोपमैः ॥ सवृक्षंकृत्तमालोक्यउत्पपाततदांगदः ॥ ४ ॥ सववर्षततोवृक्षाञ्शि
लाश्चकपिकुंजरः ॥ तान्प्रचिच्छेदसंक्रुद्धस्त्रिशिरानिशितैःशरैः ॥ ५ ॥ परिघाग्रेणतान्वृक्षान्बभंजसमहोदरः ॥
त्रिशिराश्चांगदंवीरमभिदुद्रावसायकैः ॥ ६ ॥ गजेनसमभिद्रुत्यवालिपुत्रंमहोदरः ॥ जघानोरसिसंक्रुद्धस्तो
मरैर्वज्रसन्निभैः ॥ ७ ॥ देवांतकश्चसंक्रुद्धःपरिघेणतदांगदम् ॥ उपगम्याभिहत्याशुव्यपचक्रामवेगवान् ॥ ८ ॥ सत्रि
भिर्नैर्ऋतश्रेष्ठैर्युगपत्समभिद्रुतः ॥ नविव्यथेमहातेजावालिपुत्रःप्रतापवान् ॥ ९ ॥ सवेगवान्महावेगंकृत्वापरमदुर्ज
यः ॥ तलेनसमभिद्रुत्यजघानास्यमहागजम् ॥ ११० ॥ पेततुर्नयनेतस्यविननाशसकुंजरः ॥ विषाणंचास्यानिष्कृ
ष्यवालिपुत्रोमहाबलः ॥ ११ ॥ देवांतकमभिद्रुत्यताडयामाससंयुगे ॥ सविह्वलस्तुतेजस्वीवातोद्धूतइवद्रुमः ॥ १२ ॥

धित होकर उन समस्त वृक्ष पर्वतोंको काट डाला ॥१०५॥ दूसरी ओरसे महोदरभी बाणोंकी वर्षा करके जब उन अंगदजीके चलाये वृक्ष और पर्वतोंको काटनें लगा,तब त्रिशिरा अवसर पाय बाण हाथमें ले वीर वालिकुमार अंगदजीकी ओर धाया॥१०६॥हाथीपर सवार हुआ महोदरनेंभी अंगदजीकी ओरको झपटकर क्रोध सहित वज्रकी समान भालेसे उनकी छातीमें प्रहार किया ॥ १०७॥ क्रोध युक्त देवान्तकभी अति वेगसे आय अंगदजीकी छातीमें परिघ मारकर भागा ॥ १०८॥ इस प्रकारसे यद्यपि तीन राक्षस वीरोंने एक साथही अंगदजीके मारा तथापि वालिकुमार महा तेजस्वी

करके अतिकायपर एकही संग धाये ॥ ३९ ॥ परन्तु अस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी अतिकायनें कनकभूषित बाणोंसे उन वानरोंके चलाये समस्त वृक्ष और पर्वतोंको काटडाला ॥ ४० ॥ तिसके पीछे उस रणपंडित अस्त्रविशारद बलशाली निशाचरनें स्वच्छ लोहेके बाणोंसे सन्मुखको दौड़े आतेहुए उन वानरोंको ताड़ित किया ॥ ४१ ॥ वानर लोग भी अतिकायकी बाण वर्षासे छिन्न गात्र और पराजित होकर वह इसका कुछभी बदला उस राक्षससे न लेसके ॥ ४२ ॥ युवाअवस्थाके आनेंसे गर्वित मृगराज (सिंह) जिस प्रकार मृगके झुण्डोंको भयभीत करताहै वैसेही वह अतिकायनाम राक्षस वानरोंकी सैनाको त्रासित करनें लगा ॥ ४३ ॥ जो वानर रीछ कि युद्धमें विमुख थे उनपर अतिकायनें

तेषांवृक्षांश्चशैलांश्चशरैःकनकभूषणैः ॥ अतिकायोमहातेजाश्चिच्छेदास्त्रविदांवरः ॥ ४० ॥ तांश्चैवसर्वान्सहरीञ्छरैः सर्वायसैर्बली ॥ विव्याधाभिमुखान्संख्येभीमकायोविशारदः ॥ ४१ ॥ तेऽर्दिताबाणवर्षेणभिन्नगात्राःपराजिताः ॥ नशेकुरतिकायस्यप्रतिकर्तुंमहाहवे ॥ ४२ ॥ तत्सैन्यंहरिवीराणांत्रासयामासराक्षसः ॥ मृगयूथमिवक्रुद्धोहरिर्यौवनदर्पितः ॥ ४३ ॥ सराक्षसेंद्रोहरियूथमध्येनायुध्यमानंनिजघानकंचित् ॥ उत्पत्यरामंसधनुःकलापीसगर्वितंवाक्यमिदंबभाषे ॥ ४४ ॥ रथेस्थितोहंशरचापपाणिर्नप्राकृतंकंचनयोधयामि ॥ यस्यास्तिशक्तिर्व्यवसाययुक्तोददातुमेशीघ्रमिहाद्ययुद्धम् ॥ ४५ ॥ तत्तस्यवाक्यंब्रुवतोनिशम्यचुकोपसौमित्रिरमित्रहंता ॥ अमृष्यमाणश्चसमुत्पपातजग्राहचापंचततःस्मयित्वा ॥ ४६ ॥ क्रुद्धःसौमित्रिरुत्पत्यतूणादाक्षिप्यसायकम् ॥ पुरस्तादतिकायस्यविचकर्षमहद्धनुः ॥ ४७ ॥

अस्त्रका प्रहार नहीं किया इसके उपरान्त वीरवर अतिकाय धनुष धारण करके श्रीरामचंद्रजीके सन्मुखहो उनसे गर्वसहित यह वचन बोला ॥ ४४ ॥ हम किसी साधारण वीरके साथ युद्ध करनेंका अभिलाष नहीं करते यह हम धनुष बाण हाथमें लिये बैठेहैं यदि किसीको युद्ध करना आता हो या किसीमें शक्ति हो तो वह शीघ्र आकर हमारे साथ युद्ध करै ॥ ४५ ॥ राक्षस अतिकायके ऐसे वचन सुनकर शत्रुनाशी लक्ष्मणजी न सहकर मुसकातेहुए धनुष बाण हाथमें लेकर उठे ॥ ४६ ॥ लक्ष्मणजीनें उठतेही तरकससे बाण ग्रहण किया, और अतिकायके सन्मु

पर्वतका शिखर जब चूर्ण करडाला गया ॥ १८ ॥ तब चिनगारियें और अग्नि निकलता हुआ वह पर्वतका शृङ्ग पृथ्वीपर गिर पड़ा उस पर्वतके शृङ्गको व्यर्थ देख हर्षितहो महावली देवान्तक ॥ १९ ॥ परिघ ग्रहण करके समरमें हनुमानजीकी ओर दौड़ा, उसको सामनेंसे आता हुआ देखकर कपि कुंजर हनुमानजीनें ॥ २० ॥ कूदकर वज्रकी समान मूका उसके शिरपर मारा तब उन महाकपि वलशाली वीर पवनकुमारने उसके मस्तकपर प्रहार करके सिंहनाद किया कि जिससे समस्त निशाचर गण कंपायमान होंनेंलगे ॥ २१ ॥ उस घूंसेके लगनेसे राक्षस राजके पुत्र देवान्तकका मस्तक पिसकर टूटगया दांत और नेत्र निकल पड़े और जीभ लंवी होकर मुखके वाहर निकलआई, और वह प्राण रहितहो सहसा पृथ्वीपर गिरपड़ा २२

समुष्टिनिष्पिष्टविभिन्नमूर्धानिर्वांतदंताक्षिविलंबिजिह्वः ॥ देवांतकोराक्षसराजसूनुर्गतासुरुर्व्यांसहसापपात ॥ २२ ॥
तस्मिन्हतेराक्षसयोधमुख्येमहाबलेसंयतिदेवशत्रौ ॥ क्रुद्धस्त्रिशीर्षानिशितास्त्रमुग्रंववर्षनीलोरसिबाणवर्षम् ॥ २३ ॥
महोदरस्तुसंक्रुद्धःकुंजरंपर्वतोपमम् ॥ भूयःसमधिरुह्याशुमंदरंरश्मिवानिव ॥ २४ ॥ ततोबाणमयंवर्षनीलस्योपर्यपातयत् ॥ गिरौवर्षंतडिच्चक्रंसगर्जन्निवतोयदः ॥ २५ ॥ ततःशरौघैरभिवृष्यमाणोविभिन्नगात्रःकपिसैन्यपालः ॥
नीलोबभूवाथविसृष्टगात्रोविष्टंभितस्तेनमहाबलेन ॥ २६ ॥ ततस्तुनीलःप्रतिलब्धसंज्ञःशैलंसमुत्पाट्यसवृक्षखंडम् ॥
ततःसमुत्पत्यमहोग्रवेगोमहोदरंतेनजघानमूर्ध्नि ॥ २७ ॥ ततःसशैलाभिनिपातभग्नोमहोदरस्तेनमहाद्रिपेन ॥ व्यामोहितोभूमितलेगतासुःपपातवज्राभिहतोयथाद्रिः ॥ २८ ॥ पितृव्यंनिहतंदृष्ट्वात्रिशिराश्चापमाददे ॥ हनूमंतंचसंक्रुद्धोविव्याधनिशितैःशरैः ॥ २९ ॥

उस राक्षस वीर प्रधान महावलवान् देवताओंके शत्रु देवान्तकके रणभूमिमें मारे जानेंपर त्रिशिरानें क्रोधितहो नीलकी छातीको ताककर उग्र और तीखे वाणोंकी वर्षा करनें लगा ॥ २३ ॥ इस ओर वीर श्रेष्ठ महोदर क्रोधित होकर पर्वताकार हाथीपर सवारहो सूर्य जिस प्रकार मन्दराचलपर आरोहण करतेहैं वैसेही नीलके सामनेको झपटता हुआ ॥ २४ ॥ अनन्तर नीलके शरीरको वाणोंके जालसे वींधनें लगा उस समय ऐसा जान पड़ाकि इन्द्र धनुष युक्त मेघ वारंवार गर्जन करके पर्वतपर जलकी वर्षा कर रहाहै ॥ २५ ॥ वानरोंकी सैनाके पति नील उस बलवान राक्षससे

करो; कारण, कि इस ब्रह्मास्त्रके अतिरिक्त और किसी बाणसे तुम इसको नहीं मार सकोगे ॥ ९७ ॥ इन्द्रकी समान वीर्यवान सुमित्रारानीके पुत्र लक्ष्मणजीने पवनके वचन सुन ब्रह्ममंत्रसे अभिमंत्रित कर एक उग्र वेगवान् बाणले धनुष पर चढाया ॥ ९८ ॥ सुमित्राकुमार लक्ष्मणजीनें श्रेष्ठ अभिमंत्रसे अभिमंत्रित कर जब वह तीक्ष्ण फलकयुक्त बाण धनुषपर चढ़ाया; तब दिशा, विदिशा, चंद्रमा इत्यादि समस्त महाग्रह पृथ्वी व आकाश त्रासितहोगये और शब्दायमान हुए ॥ ९९ ॥ लक्ष्मणजीनें, रणभूमिमें यमदूत और वज्रकी समान वह तीक्ष्ण फोंकवाला बाण ब्रह्मास्त्रसे अभिमंत्रित करके इन्द्रशत्रु रावणपुत्र अतिकायके ऊपर चलाया ॥ १०० ॥ उत्तम सुवर्णसे चित्रित वज्रकी फोंक लगाहुआ और

ततस्तुवायोर्वचनंनिशम्यसौमित्रिरिंद्रप्रतिमानवीर्यः ॥ समादधेबाणमथोग्रवेगंतद्ब्राह्ममस्त्रंसहसानियुज्य ॥ ९८ ॥ तस्मिन्वरास्त्रेतुनियुज्यमानेसौमित्रिणाबाणवरेशिताग्रे ॥ दिशश्चचंद्रार्कमहाग्रहाश्चनभश्चतत्रासरराासचोर्वी॥९९॥ तंब्रह्मणोस्त्रेणनियुज्यचापेशरंसपुंखंयमदूतकल्पम् ॥ सौमित्रिरिंद्रारिसुतस्यतस्यससर्जबाणंयुधिवज्रकल्पम् ॥ १००॥ तंलक्ष्मणोत्सृष्टविवृद्धवेगंसमापतंतंश्वसनोग्रवेगम् ॥ सुपर्णवज्रोत्तमचित्रपुंखंतदातिकायःसमरेददर्श ॥ १०१ ॥ तंप्रेक्षमाणःसहसातिकायोजघानबाणैर्निशितैरनेकैः ॥ ससायकस्तस्यसुपर्णवेगस्तदातिवेगेनजगामपार्श्वम् ॥ १०२॥ तमागतंप्रेक्ष्यतदातिकायोबाणंप्रदीप्तांतककालकल्पम् ॥ जघानशक्त्यृष्टिगदाकुठारैःशूलैःशरैश्चाप्यविपन्नचेष्टः ॥ १०३ ॥ तान्यायुधान्यद्भुतविग्रहाणिमोघानिकृत्वासशरोग्निदीप्तः॥ प्रगृह्यतस्यैवकिरीटजुष्टंतदातिकायस्यशिरोजहार१०४॥

पवनकी समान वेगसे आतेहुए लक्ष्मणजीके छोड़नेंसे औरभी प्रचंड वेगवान् उस संग्रामभूमिमें अतिकायनें देखा ॥ १०१ ॥ उस बाणको वेगसे आताहुआ देखकर अतिकाय बड़ी शीघ्रताके साथ अत्यन्त पैंने बाणोंसे उस बाणको काटनें लगा; परन्तु गरुड़जीके समान वेगवान वह बाण बाणोंसे न रुककर अतिकायके निकट पहुंचही तो गया ॥१०२ ॥ महावीर रावणका पुत्र अतिकाय प्रदीप्त कालकी अग्निके समान उस ब्रह्मास्त्रको निकट आते देखकर उसके ऊपर यद्यपि शक्ति, ऋष्टि, शूल, गदा, बाण, फरशा इत्यादि चलाकर उसको काटनें लगा; परन्तु किसी सेभी कुछ न हुआ ॥ १०३ ॥ परन्तु उस अग्निकी समान प्रदीप्त बाणनें उन समस्त अद्भुत आयुधोंको विफल करके अतिबलसे

रात्रिको पाय सब प्रजाको भक्षण कर लेतेहैं वैसेही शक्ति ग्रहण करके पवनकुमार हनुमानजीकी ओर चलाई ॥ ३४ ॥ वानर शार्दूल हनुमानजीनें आकाशसे छूटती हुई उल्काकी समान उस बड़ी भारी शक्तिको पकड़ कर तोड़ डाला और बड़ा भारी सिंहनाद करनें लगे ॥ ३५ ॥ उस भयंकरी शक्तिको हनुमानजीसे टूटा हुआ देखकर वानर लोग हर्षसे मेघकी समान गर्जन करनें लगे ॥ ३६ ॥ उसके उपरान्त राक्षस श्रेष्ठ त्रिशिरानें खड्ग उठाय कर वानरोंमें इन्द्र हनुमानजीकी छातीमें मारा ॥ ३७ ॥ वीर्यवान पवनकुमार हनुमानजीनेभी खड्गके प्रहारसे घायलहो त्रिशिराकी छातीमें एक लातमारी ॥ ३८ ॥ उस लातके लगनेसे राक्षसके हाथसे सब अस्त्र शस्त्र छूटपड़े और वह महा तेजस्वी अति शीघ्र मूर्छित होकर

खड्गप्रहाराभिहतोहनूमान्मारुतात्मजः ॥ आजघानत्रिमूर्धानंतलेनोरसिवीर्यवान् ॥ ३८ ॥ सतलाभिहतस्तेनस्रस्तहस्तांबरोभुवि ॥ निपपातमहातेजास्त्रिशिरास्त्यक्तचेतनः ॥ ३९ ॥ सतस्यपततःखड्गंतमाच्छिद्यमहाकपिः ॥ ननादगिरिसंकाशस्त्रासयन्सर्वराक्षसान् ॥ १४० ॥ अमृष्यमाणस्तंघोषमुत्पपातनिशाचरः ॥ उत्पत्यचहनूमंतंताडयामासमुष्टिना ॥ ४१ ॥ तेनमुष्टिप्रहारेणसंचुकोपमहाकपिः ॥ कुपितश्चनिजग्राहकिरीटेराक्षसर्षभम् ॥ ४२ ॥ सतस्यशीर्षाण्यसिनाशितेनकिरीटजुष्टानिसकुंडलानि ॥ क्रुद्धःप्रचिच्छेदसुतोनिलस्यत्वष्टुःसुतस्येवशिरांसिशक्रः ॥ ४३ ॥ तान्यायताक्षाण्यगसन्निभानिप्रदीप्तवैश्वानरलोचनानि ॥ पेतुःशिरांसींद्ररिपोःपृथिव्यांज्योतींषिमुक्तानियथेंद्रमार्गात् ॥ ४४ ॥ तस्मिन्हतेदेवरिपौत्रिशीर्षेहनूमताशक्रपराक्रमेण ॥ नेदुःप्लवंगाःप्रचचालभूमीरक्षांस्यथोदुद्रुविरेसमंतात् ॥ ४५ ॥ हतंत्रिशिरसंदृष्ट्वायुद्धोन्मत्तंतथैवच ॥ हतौप्रेक्ष्यदुराधर्षौदेवांतकनरांतकौ ॥ ४६ ॥

पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ३९ ॥ महाकपि हनुमानजी उसके हाथसे खड्ग छीनकर राक्षसोंके मनमें शंका उपजाय सिंहनाद करनें लगे ॥ १४० ॥ परन्तु राक्षस त्रिशिरा उस शब्दको न सहन करके उसी समय उठा और कूदकर उसनें हनुमानजीकी छातीमें एक घूंसा मारा ॥ १४१ ॥ महाकपि हनुमानजी उस मुष्टिके प्रहारसे अत्यन्त क्रोधित हुए और क्रोधमें भरकर उन्होंने राक्षस श्रेष्ठके मुकुटको पकड़ लिया ॥ १४२ ॥ देवराज इन्द्रजीनें जिस प्रकार वृत्रासुरका मस्तक काट डालाथा वैसेही हनुमानजीनें अत्यन्त क्रोधसे उस तीक्ष्ण खड्गसे उस कुंडलसे अलंकृत और किरीट

हाथसे पराजित होनेंवाले नहींथे; और सदा शत्रुको जीततेथे ॥ ३ ॥ हाय!सरलस्वभाववाले श्रीरामचंद्रजीके हाथसे सैना सहित यह सबही वीर मारे गये अनेकशस्त्रविशारद महाकाय राक्षस ॥ ४ ॥ और भी अनेक राक्षस जोकि बड़े शूरथे मारे गये और विख्यात बलवीर्यवाले हमारे पुत्र इन्द्रजीतने ॥ ५ ॥ वरदान पाये हुए घोर बाणोंसे दोनो भाइयोंको बांध लियाथा कि जिस बन्धको महाबलवान सुर असुर कोई भी नहीं छुटा सकतेथे ॥ ६ ॥ वरन इस घोर बन्धनको यक्ष गन्धर्व पन्नग कोईभी नहीं छुटा सकतेथे; फिर हम नहीं जानते कि अपने प्रभावसे, मायासे अथवा किसी मोहन मंत्रसे ॥ ७ ॥ वह दोनों भाई राम लक्ष्मण उस शर बन्धनसे छूट गये; और जो शूर योद्धा वीर राक्षस भेजे हुए रणमें गये ॥ ८ ॥

ससैन्यास्तेहतावीरारामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ राक्षसाःसुमहाकायानानाशस्त्रविशारदाः ॥ ४ ॥ अन्येचबहवःशूराम हात्मानोनिपातिताः ॥ प्रख्यातबलवीर्येणपुत्रेणेंद्रजितामम ॥ ५ ॥ तौभ्रातरौतदाबद्धौघोरैर्दत्तवरैःशरैः ॥ यन्नश क्यंसुरैःसर्वैरसुरैर्वामहाबलैः ॥ ६ ॥ मोक्तुंतद्बंधनंघोरंयक्षगंधर्वपन्नगैः ॥ तन्नजानेप्रभावैर्वामाययामोहनेनवा ॥ ७ ॥ शरबंधाद्विमुक्तौतौभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ येयोधानिर्गताःशूराराक्षसाममशासनात् ॥ ८ ॥ तेसर्वेनिहतायुद्धेवानरैःसुम हाबलैः ॥ तंनपश्याम्यहंयुद्धेयोघ्नरामंसलक्ष्मणम् ॥ नाशयेत्सबलंवीरंससुग्रीवंबिभीषणम् ॥ ९ ॥ अहोसुबलवान्रामो महदस्त्रबलंचवै ॥ यस्यविक्रममासाद्यराक्षसानिधनंगताः ॥ १० ॥ अप्रमत्तैश्चसर्वत्रगुल्मैरक्ष्यापुरीत्वियम् ॥ अशोकव निकाचैवयत्रसीताभिरक्ष्यते ॥ ११ ॥ निष्क्रामोवाप्रवेशोवाज्ञातव्यःसर्वदैवनः ॥ यत्रयत्रभवेद्गुल्मस्तत्रतत्रपुनःपुनः ॥ १२ ॥

वह सबही युद्धमें महाबलवान वानरोंसे मारडाले गये; हम ऐसा किसीको नहीं देखते जो आज युद्धमें जायकर लक्ष्मणके सहित रामचंद्रको सुग्रीव व विभीषण और उनकी सैनाके सहित मार डाले ॥ ९ ॥ अहो! जिसके विक्रमसे निशाचर मारेगयेहैं; वह रामचंद्र अत्यन्त बलवानहै और उसके अस्त्रबलकोभी धन्यवादहै ॥ १० ॥ [हमको बोध होताहै कि वह अनामय वीर रघुनंदन नारायणही होंगे, कारण कि भयसेही लंकानगरीके द्वार और तोरण सब रुकेहुयेहैं] इस समय अति सावधानीसे लंका पुरीकी रक्षा करना कर्तव्यहै जहां पर सीता देवी विराजमानहैं उस अशोकवाटिकाकीभी रक्षा भलीभांति करनी चाहिये ॥ ११ ॥ अशोक वन राजपुर, या और कहीं सैनानिवासस्थानोंमें कोई आवै, या कोई

वारंवार अपना नाम सबको सुनाय घोर शोरसे सिंहनाद करने लगा॥५॥उसके सिंहकी समान गर्जनसे वारंवार नामके कीर्तनसे और रोदेकी टंकारका भयंकर शब्द श्रवण करनेसे वानरोंको भयसे अत्यन्त त्रास उपजा ॥६॥वानर लोग उसकी भयंकर मूर्त्ति देखकर "यह एक दूसरा कुंभकर्ण आया है" ऐसा विचार भयके मारे परस्पर एक दूसरेका आसरा ग्रहण करनें लगे॥७॥राजा बलिको छलनेंके समय विष्णुजीनें जिस मूर्त्तिसे तीनों लोकों का नाप लियाथा ऐसेही मूर्ति इस राक्षसकी देखकर वानरोंके यूथप इधर उधर भागनें लगे ॥ ८ ॥ वह मूढचित्त वानरगण अतिकाय राक्षसको संग्राम भूमिमें आता हुआ देखकरही सबको शरण देने वाले लक्ष्मणजीके बडे भ्राता श्रीरामचंद्रजीकी शरणमें आये ॥ ९ ॥

तेनसिंहप्रणादेननामविश्रावणेनच ॥ ज्याशब्देनचभीमेनत्रासयामासवानरान् ॥ ६ ॥ तेदृष्ट्वादेहमाहात्म्यंकुंभकर्णोयमुत्थितः ॥ भयार्तावानराःसर्वेसंश्रयंतेपरस्परम् ॥ ७ ॥ तेतस्यरूपमालोक्ययथाविष्णोस्त्रिविक्रमे ॥ भयाद्वानरयोधास्तेविद्रवंतिततस्ततः ॥ ८ ॥ तेऽतिकायंसमासाद्यवानरामूढचेतसः ॥ शरण्यंशरणंजग्मुर्लक्ष्मणाग्रजमाहवे ॥९॥ ततोतिकायंकाकुत्स्थोरथस्थंपर्वतोपमम् ॥ ददर्शधन्विनंदूराद्गर्जंतंकालमेघवत् ॥ १० ॥ सतंदृष्ट्वामहाकायंराघवस्तुसुविस्मितः॥ वानरान्सांत्वयित्वाचविभीषणमुवाचह ॥११॥ कोऽसौपर्वतसंकाशोधनुष्मान्हरिलोचनः॥ युक्तेहयसहस्रेणविशालेस्यंदनेस्थितः॥१२॥सएषनिशितैःशूलैःसुतीक्ष्णैःप्रासतोमरैः ॥ अर्चिष्मद्भिर्वृतोभातिभूतैरिवमहेश्वरः॥१३॥

इसके उपरान्त रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीनें देखाकि राक्षस वीर अतिकायका आकार पर्वतकी समानहै, वह रथपर बैठा हुआहै, वह हाथमें प्रचंड धनुष लिये दूरसेही गंभीर गर्जन करताहुआ चला आताहै, देखनेंसे वह काल मेघकी समान जान पड़ताथा ॥ १० ॥ श्रीरामचंद्रजी उस मायावी अतिकायकी मूर्ति देखकर अत्यन्त विस्मित हुए, और वानरोंको समझाते हुए विभीषणजीसे बोले ॥ ११ ॥ कि सिंहकी समान आंखोंवाला जो पर्वतकी समान धनुष धारण किये हुए वीर हजार घोड़ोंके नेहेहुए विशाल रथमें सवार होकर चला आताहै, सो यह कोन वीरहै? ॥ १२ ॥ तीक्ष्ण शूल और तीक्ष्ण भाले मुद्गरादिद्वारा सजनेंसे तौ भूतगणोंसे वेष्टित महेश्वर शिवजीकी समान जान पड़ताहै; इस वीरका क्या नामहै? ॥१३॥

वार्ता सुनकर रोते २ मोहको प्राप्तहुआ; इसके पीछे पुत्रोंके नाश और भ्राताओंके संहारकी घोर विपत्तिकी चिन्ता करते हुए कुछ समयतक ध्यान साधे रहा ॥ २ ॥ तब शोक सागरमें डूबते हुए राजा रावणको देख परमश्रेष्ठ राक्षसराज रावणका पुत्र इन्द्रजित (मेघनाद) बोला ॥ ३ ॥ हे राक्षसनाथ ! हे पिता! इन्द्रजितके जीवित रहते आप इस प्रकार संतापमें न जलिये; आप निश्चय जानें कि रणमें इन्द्रजीतके बाणसे घायल होकर कोईभी अपने प्राण नहीं रख सकता ॥ ४ ॥ आप देखेंगे कि लक्ष्मणजीके सहित आजही रामचन्द्रके सब अंग हमारे बाणोंसे कट जायँगे; वह मेरे अस्त्रसे प्राण त्याग करके आजही पृथ्वीपर शयन करेंगे ॥ ५ ॥ आप इन्द्रजीतकी दैव और पौरुष संयुक्त यह निश्चित प्रतिज्ञा

ततस्तुराजानमुदीक्ष्यदीनंशोकार्णवेसंपरिपुप्लुवानम् ॥ रथर्षभोराक्षसराजसूनुस्तामिंद्रजिद्वाक्यमिदंबभाषे ॥ ३ ॥
नतातमोहंपरिगंतुमर्हसेयत्रेंद्रजिज्जीवतिनैर्ऋतेश ॥ नेंद्रारिबाणाभिहतोहिकश्चित्प्राणान्समर्थःसमरेऽभिपातुम् ॥ ४ ॥
पश्याद्यरामंसहलक्ष्मणेनमद्बाणनिर्भिन्नविकीर्णदेहम् ॥ गतायुषंभूमितलेशयानंशितैःशरैराचितसर्वगात्रम् ॥ ५ ॥
इमांप्रतिज्ञांशृणुशक्रशत्रोःसुनिश्चितांपौरुषदैवयुक्ताम् ॥ अद्यैवरामंसहलक्ष्मणेनसंतर्पयिष्यामिशरैरमोघैः ॥ ६ ॥
अद्येंद्रवैवस्वतविष्णुरुद्रसाध्याश्चवैश्वानरचंद्रसूर्याः ॥ द्रक्ष्यंतुमेविक्रममप्रमेयंविष्णोरिवोग्रंबलियज्ञवाटे ॥ ७ ॥
सएवमुक्त्वात्रिदशेंद्रशत्रुरापृच्छ्यराजानमदीनसत्त्वः ॥ समारुरोहानिलतुल्यवेगंरथंखरश्रेष्ठसमाधियुक्तम् ॥ ८ ॥
समास्थायमहातेजारथंहरिरथोपमम् ॥ जगामसहसातत्रयत्रयुद्धमरिंदमः ॥ ९ ॥

श्रवण करें, कि हम आजही लक्ष्मणके सहित रामचन्द्रको अमोघ बाणोंसे नाश करदेंगे ॥ ६ ॥ अधिक क्याकहैं बलिके यज्ञमें वामनरूपी विष्णु जीकी समान आज इन्द्र, यम, रुद्र, अग्नि, साध्यगण, और सूर्य यह सबही आज हमारे अप्रमाण विक्रमको देखेंगे ॥ ७ ॥ इस प्रकार रावणसे कह व उसकी आज्ञा लेकर प्रसन्न चित्तहो मेघनाद श्रेष्ठ गधेजुते वायुकी समान वेगसे चलनेवाले रथपर सवार हुआ ॥ ८ ॥ सूर्यके समान दिव्य रथपर सवार होकर महातेजस्वी मेघनाद झटपट युद्ध भूमिको गया; कि जहां पर शत्रुनाशी श्रीरामचन्द्रजी विराजमानथे ॥ ९ ॥

॥

घोर रूपवाला काले रंगका राक्षस मेघमें छिपे हुए सूर्यकी समान शोभायमान होरहाहै ॥ २२ ॥ जिस प्रकार हिमवान अति ऊंचे अपने दो शृङ्गोंसे शोभितहों वैसेही यह निशाचरभी सोनेके बाजू जिनमें बंधे हुए, ऐसी दो बांहोंसे वैसाही शोभायमान होरहाहै ॥ २३ ॥ इसका सुन्दर नेत्रयुक्त मुख कुंडल युगलसे ऐसा शोभायमान हो रहाहै, कि जो पुनर्वसु नक्षत्रके मध्यमें गये हुए परिपूर्ण निशाकर(चंद्रमा)की समान जान पड़ताहै ॥ २४ ॥ हे महाबाहो ! जिसको देखकर वानरगण मारे भयके चारों ओरको भागे जातेहैं यह राक्षस कौन है; यह तुम हमारे निकट प्रकाश करो ॥ २५ ॥ अमित तेजस्वी रघुवंशावतंस राजकुमार श्रीरामचंद्रजी करकें इसप्रकारसे पूछे जाकर महातेजमान विभीषणजी बोले ॥ २६ ॥ कि दशगर

कांचनांगदनद्धाभ्यांभुजाभ्यामेषशोभते ॥ शृंगाभ्यामिवतुंगाभ्यांहिमवान्पर्वतोत्तमः ॥ २३ ॥ कुंडलाभ्यामुभाभ्यां चभातिवक्त्रंसुभीषणम् ॥ पुनर्वस्वंतरगतःपरिपूर्णोनिशाकरः ॥ २४ ॥ आचक्ष्वमेमहाबाहोत्वमेनंराक्षसोत्तमम् ॥ यंदृष्ट्वावानराःसर्वेभयार्ताविद्रुतादिशः ॥ २५ ॥ सपृष्टोराजपुत्रेणरामेणामिततेजसा ॥ आचचक्षेमहातेजाराघवाय विभीषणम् ॥ २६ ॥ दशग्रीवोमहातेजाराजावैश्रवणानुजः ॥ भीमकर्मामहात्माहिरावणोराक्षसेश्वरः ॥ २७ ॥ तस्यासीद्वीर्यवान्पुत्रोरावणप्रतिमोबले ॥ वृद्धसेवीश्रुतबलःसर्वास्त्रविदुषांवरः ॥ २८ ॥ अश्वपृष्ठेनागपृष्ठेखड्गेधनुषि कर्षणे ॥ भेदेसांत्वेचदानेचनयेमंत्रेचसंमतः ॥ २९ ॥ यस्यबाहुंसमाश्रित्यलंकाभवतिनिर्भया ॥ तनयंधान्यमालिन्याअतिकायमिमंविदुः ॥ ३० ॥

दनवाला महा तेजमान राजा कुबेरजीका छोटा भाई, भयंकर कर्मकारी राक्षसोंका स्वामी जो महात्मा रावणहै ॥ २७ ॥ यह वीर्यवान उसकाही पुत्र है और रावणकीही समान इसमें बलहै; वृद्धोंकी सेवा करनेंवाला विख्यात बलवाला और सब शस्त्र धारणकरनेंवालोंमें यह अग्रुआहै ॥ २८ ॥ यह वीर घोड़ेपर चढ़नेमें रथ अथवा हाथीपर सवार होनेंमें खड्ग धनुष अथवा भालादि अस्त्र शस्त्रोंसे युद्ध करनेंमें और साम दान भय भेद विषयक राजनीति और मंत्र (सलाह) देनेंमें चतुरहै ॥ २९ ॥ इसकेही बाहु बलका आश्रय करके लंकापुरी निर्भय विराजमान हो रहीहै । यह धान्य

समस्त आकाश मंडल त्रासित होगया ॥ २५ ॥ इन्द्रकी समान प्रभावशाली और अग्निकी समान प्रदीप्त वह अप्रमेय वीर्यवाला इन्द्रजीत इस प्रकारसे अग्निमें आहुति दे धनुष बाण शूल अश्व और रथके सहित आकाशमें जाय अन्तर्ध्यान होगया ॥ २६ ॥ तिसके उपरान्त ध्वजा पताका शोभित और अश्व रथयुक्त वह राक्षसोंकी सैना भी युद्धकी वासनासे सिंहनाद करती हुई चली ॥ २७ ॥ इस सैनाके राक्षस निकुंभिलासे निकलते ही महावेगसे अलंकृत असंख्य बाण तोमर और अंकुशोंसे वानर वीरोंको मारने लगे ॥ २८ ॥ रावणका पुत्र मेघनाद अपनी सैनाको समर करता हुआ देखकर क्रोधमें भरकर कहने लगा; कि तुम सब वानरोंका संहार करनेंकी इच्छासे युद्ध करते रहो ॥ २९ ॥ विजयकी अभि

सपावकंपावकदीप्ततेजाहुत्वामहेंद्रप्रतिमप्रभावः ॥ सचापबाणासिरथाश्वशूलःखेंतर्दधेत्मानमचिंत्यवीर्यः ॥ २६ ॥ ततोहयरथाकीर्णपताकाध्वजशोभितम् ॥ निर्ययौराक्षसबलंनर्दमानंयुयुत्सया ॥ २७ ॥ तेशरैर्बहुभिश्चित्रैस्तीक्ष्णवेगैरलंकृतैः ॥ तोमरैरंकुशैश्चापिवानरान्जघ्नुराहवे ॥ २८ ॥ रावणिस्तुसुसंक्रुद्धस्तान्निरीक्ष्यनिशाचरान् ॥ हृष्टाभवंतोयुध्यंतुवानराणांजिघांसया ॥ २९ ॥ ततस्ते राक्षसाःसर्वेगर्जंतोजयकांक्षिणः ॥ अभ्यवर्षंस्ततोघोरान्वानराञ्छरवृष्टिभिः ॥ ३० ॥ सतुनालीकनाराचैर्गदाभिर्मुसलैरपि ॥ रक्षोभिःसंवृतःसंख्येवानरान्विचकर्षह ॥ ३१ ॥ तेवध्यमानाःसमरेवानराःपादपायुधाः ॥ अभ्यवर्षंतसहसारावणिंशैलपादपैः ॥ ३२ ॥ इंद्रजित्तुतदाक्रुद्धोमहातेजामहाबलः ॥ वानराणांशरीराणिव्यधमद्रावणात्मजः ॥ ३३ ॥ शरेणैकेनचहरीन्नवपंचचसप्तच ॥ बिभेदसमरे क्रुद्धोराक्षसान्संप्रहर्षयन् ॥ ३४ ॥

लाषा किये हुए राक्षसगण यह बात सुनतेही वानरोंके ऊपर घोर बाणोंकीवर्षा करनें लगे ॥ ३० ॥ वानरोंकी सैनाके ऊपर आकाशमें टिका हुआ इन्द्रजीतभी नालीक, नाराच, गदा और मूसल इत्यादि अस्त्र शस्त्रोंसे वानरगणोंको विद्ध करनें लगा ॥ ३१ ॥ वृक्षोंको आयुध बनाये हुए वानरगणभी राक्षसोंसे इस प्रकार समरमें मारे जाकर उन राक्षसोंके ऊपर पर्वत और वृक्षोंकी वर्षा करनें लगे ॥ ३२ ॥ महातेजस्वी महाबलवान रावणका पुत्र इन्द्रजीत इससे अत्यन्त क्रोधित होकर वानरोंकी देहको छिन्न भिन्न करनें लगा ॥ ३३ ॥ वह इन्द्रजीत संग्राम भूमिमें राक्षस लोगोंको

करकै अतिकायपर एकही संग धाये ॥ ३९ ॥ परन्तु अस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी अतिकायनें कनकभूषित बाणोंसे उन वानरोंके चलाये समस्त वृक्ष और पर्वतोंको काटडाला ॥ ४० ॥ तिसके पीछे उस रणपंडित अस्त्रविशारद बलशाली निशाचरनें स्वच्छ लोहेके बाणोंसे सन्मुखको दौड़े आतेहुए उन वानरोंको ताड़ित किया ॥ ४१ ॥ वानर लोग भी अतिकायकी बाण वर्षासे छिन्न गात्र और पराजित होकर वह इसका कुछभी बदला उस राक्षससे न लेसके ॥ ४२ ॥ युवाअवस्थाके आनेंसे गर्वित मृगराज (सिंह) जिस प्रकार मृगके झुण्डोंको भयभीत करताहै वैसेही वह अतिकायनाम राक्षस वानरोंकी सैनाको त्रासित करनें लगा ॥ ४३ ॥ जो वानर रीछ कि युद्धमें विमुख थे उनपर अतिकायनें

तेषांवृक्षांश्चशैलांश्चशरैःकनकभूषणैः ॥ अतिकायोमहातेजाश्चिच्छेदास्त्रविदांवरः ॥ ४० ॥ तांश्चैवसर्वान्सहरीञ्छरैः सर्वायसैर्बली ॥ विव्याधाभिमुखान्संख्येभीमकायोविशारदः ॥ ४१ ॥ तेऽर्दिताबाणवर्षेणभिन्नगात्राःपराजिताः ॥ नशेकुरतिकायस्यप्रतिकर्तुमहाहवे ॥ ४२ ॥ तत्सैन्यंहरिवीराणांत्रासयामासराक्षसः ॥ मृगयूथमिवक्रुद्धोहरियौंवनदर्पितः ॥ ४३ ॥ सराक्षसेंद्रोहरियूथमध्येनायुध्यमानंनिजघानकंचित् ॥ उत्पत्यरामंसधनुःकलापीसगर्वितं वाक्यमिदंबभाषे ॥ ४४ ॥ रथेस्थितोहंशरचापपाणिर्नप्राकृतंकंचनयोधयामि ॥ यस्यास्तिशक्तिर्व्यवसाययुक्तो ददातुमेशीघ्रमिहाद्ययुद्धम् ॥ ४५ ॥ तत्तस्यवाक्यंब्रुवतोनिशम्यचुकोपसौमित्रिरमित्रहंता ॥ अमृष्यमाणश्चसमुत्पपातजग्राहचापंचततःस्मयित्वा ॥ ४६ ॥ क्रुद्धःसौमित्रिरुत्पत्यतूणादाक्षिप्यसायकम् ॥ पुरस्तादतिकायस्य विचकर्षमहद्धनुः ॥ ४७ ॥

अस्त्रका प्रहार नहीं किया इसके उपरान्त वीरवर अतिकाय धनुष धारण करकै श्रीरामचंद्रजीके सन्मुखहो उनसे गर्वसहित यह वचन बोला ॥ ४४ ॥ हम किसी साधारण वीरके साथ युद्ध करनेंका अभिलाष नहीं करते यह हम धनुष बाण हाथमें लिये बैठेहैं यदि किसीको युद्ध करना आता हो या किसीमें शक्ति हो तो वह शीघ्र आकर हमारे साथ युद्ध करै ॥ ४५ ॥ राक्षस अतिकायके ऐसे वचन सुनकर शत्रुनाशी लक्ष्मणजी न सहकर मुसकातेहुए धनुष बाण हाथमें लेकर उठे ॥ ४६ ॥ लक्ष्मणजीनें उठतेही तरकससे बाण ग्रहण किया, और अतिकायके सन्मु

जब मेघनादको रणमें जानेंके लिये तैयार देख श्रेष्ठ धनुषधारी भयंकरविक्रमकारी अनेक महाबलवान् राक्षस हर्ष सहित उस महात्माके पीछे २ चले॥१०॥कोई २ हाथीपर चढ़कर चले कोई २ घोड़ेपर सवार होकर गमन करनें लगे, कोई २ व्याघ्रपर कोई२ वृश्चिक * पर, कोई २ मार्जार (बिलाव) पर कोई २ गधे ऊंट और सिंहपर आरोहण करके चले ॥ ११॥ कोई २ पर्वताकार सिंहोंके ऊपर, और गीदड़ोंके ऊपर, और काक हँस और मयूरादि पक्षियोंके ऊपर भीम विक्रम राक्षस सवार होकर,भाला,मुद्गर,निस्त्रिंश,फरसा,गदा,भुशुण्डि, ऋष्टि, शतघ्नी और परिघादि आयुध उठाय सज्जित होकर गमन करनें लगे ॥ १२ ॥ क्रमसे शंख और भेरि बजनेंके शब्दसे दशोंदिशा पूर्ण होगईं इस प्रकारसे वीर्यवान राक्षसराजका पुत्र

तंप्रस्थितंमहात्मानमनुजग्मुर्महाबलाः ॥ संहर्षमाणाबहवोधनुःप्रवरपाणयः ॥ १० ॥ गजस्कंधगताःकेचित्केचित्परमवाजिभिः ॥ व्याघ्रवृश्चिकमार्जारखरोष्ट्रैश्चभुजंगमैः ॥११॥ वराहैःश्वापदैःसिंहैर्जंबुकैःपर्वतोपमैः ॥ काकहंसमयूरैश्चराक्षसाभीमविक्रमाः ॥ प्रासमुद्गरनिस्त्रिंशपरश्वधगदाधराः ॥ १२ ॥ सशंखनिनदैःपूर्णैर्भेरीणांचापिनिःस्वनैः ॥ जगामत्रिदशेंद्रारिराजिंवेगेनवीर्यवान् ॥ १३ ॥ सशंखशशिवर्णेनच्छत्रेणरिपुसूदनः ॥ रराजप्रतिपूर्णेननभश्चंद्रमसायथा ॥ १४ ॥ वीज्यमानस्ततोवीरोहैमैर्हैमविभूषणः ॥ चारुचामरमुख्यैश्चमुख्यःसर्वधनुष्मताम् ॥ १५ ॥ ततस्त्विद्रजितालंकासूर्यप्रतिमतेजसा ॥ रराजाप्रतिवीर्येणद्यौरिवार्केणभास्वता ॥ १६ ॥ ससंप्राप्यमहातेजायुद्धभूमिमरिंदमः ॥ स्थापयामासरक्षांसिरथंप्रतिसमंततः ॥ १७ ॥

इन्द्रजित युद्ध करनेंके लिये चला ॥ १३ ॥ पूर्ण चन्द्रमाके उदय होनेंपर आकाशकी जिस प्रकारसे शोभा होती है वैसेही शत्रुओंके मारनेंवाले इन्द्रजीतके शिरपर शंख और चन्द्रमाकी नाईं उज्ज्वल श्वेत वर्णका छत्रथा ॥ १४ ॥ धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ वह मेघनादके ऊपर हेमभूषित सुंदर चामर ढल रहाथा ॥१५॥ उस कालमें सूर्यकी समान तेजस्वी उस अप्रमेय वीर्यवान इन्द्रजीतके रूपसे लंकानगरी तेजसे प्रकाशमान सूर्य नारायणसे शोभित आकाश मंडलकी नाईं प्रकाशमान होनें लगी॥१६॥ अनन्तर वह अग्निकी समान शत्रुदमनकारी महातेजस्वी राक्षसश्रेष्ठ इन्द्रजित

* वृश्चिकादि आंकरके वाहन भीथे ।

खही अपने बड़े धनुष पर टंकोर दी ॥ ४७ ॥ उनके धनुषकी टंकोरसे वहां की सब पृथ्वी सागर और समस्त दिशायें परिपूरित होगई, और राक्षसोंको बहुतही त्रास हुआ ॥ ४८ ॥ सुमित्राकुमार लक्ष्मणजीके धनुषकी टंकारका ऐसा भयंकर शब्द सुनकर महा तेजस्वी रावणका पुत्र भी अत्यन्त विस्मित हुआ ॥ ४९ ॥ अतिकायनें लक्ष्मणजीको युद्धके लिये उठाहुआ देख क्रोधितहो तीक्ष्ण बाण धारण कर उनसे यह कहा ॥ ५० ॥ अरे लक्ष्मण ! तुम बालकहो; इसलिये समर कार्यमें भी चतुर नहीं हो हम तौ तुम्हारे लिये कालकी समानहैं इस कारण हमारे संगमें युद्धका अभिलाष त्याग करके शीघ्र भाग जाओ ॥ ५१ ॥ तुम्हारी बात तौ दूर रहै; पृथ्वी आकाश, अथवा हिमवान पर्वत भी हमारी बांहोसे छोड़े हुए

पूरयन्समहींसर्वामाकाशंसागरंदिशः ॥ ज्याशब्दोलक्ष्मणस्योग्रस्त्रासयन्रजनीचरान् ॥ ४८ ॥ सौमित्रेश्चापनिर्घोषंश्रुत्वाप्रतिभयंतदा ॥ विसिस्मियेमहातेजाराक्षसेंद्रात्मजोबली ॥ ४९ ॥ तदातिकायःकुपितोदृष्ट्वालक्ष्मणमुत्थितम् ॥ आदायनिशितंबाणमिदंवचनमब्रवीत् ॥ ५० ॥ बालस्त्वमसिसौमित्रेविक्रमेष्वविचक्षणः ॥ गच्छकिंकालसंकाशंमांयोधयितुमिच्छसि ॥ ५१ ॥ नहिमद्बाहुसृष्टानांबाणानांहिमवानपि ॥ सोढुमुत्सहतेवेगमंतरिक्षमथोमही ॥ ५२ ॥ सुखप्रसुप्तंकालाग्निंविबोधयितुमिच्छसि ॥ न्यस्यचापंनिवर्तस्वप्राणान्नजहिमद्गतः ॥ ५३ ॥ अथवात्वंप्रतिस्तब्धोननिवर्तितुमिच्छसि ॥ तिष्ठप्राणान्परित्यज्यगमिष्यसियमक्षयम् ॥ ५४ ॥ पश्यमेनिशितान्बाणान्रिपुदर्पनिषूदनान् ॥ ईश्वरायुधसंकाशांस्तप्तकांचनभूषणान् ॥ ५५ ॥ एषतेसर्पसंकाशोबाणःपास्यतिशोणितम् ॥ मृगराजइवक्रुद्धोनागराजस्यशोणितम् ॥ इत्येवमुक्त्वासंक्रुद्धःशरंधनुषिसंदधे ॥ ५६ ॥

इन बाणोंका वेग सहन करनेंको समर्थ नहींहै ॥ ५२ ॥ सुखसे सोई हुई कालकी अग्निको क्यों जगानेंकी इच्छा करतेहो ! क्यों हमारे हाथसे प्राण खोतेहो धनुष बाण त्यागकर शीघ्रही भाग जाओ ॥ ५३ ॥ अथवा यदि गर्वके वश होकर लौटना नहीं चाहतेहो तौ एक क्षणभर खडे रहो बस प्राणोंका त्याग करके एक वारही सीधे यमराजके घरपर चले जाना ॥ ५४ ॥ शत्रुके दलका गर्व खर्व करनेंवाले शिवजीके त्रिशूलकी समान तपाये हुए सुवर्णसे भूषित हमारे इन तीखे बाणोंको तुम देखो ॥ ५५ ॥ सिंह जिस प्रकार क्रोधित होकर गजराजके रुधिरको पान करताहै

मैन्द, द्विविद, नाल, गवाक्ष, गवय, केशरी, हरिलोम विद्युद्दंष्ट्र यह वानर ॥५९॥ और सूर्यानन ज्योतिर्मुख तथा दधिमुख वानर पावकाक्ष नल और
कुमुद वानरोंको ॥ ६० ॥ शूल से वानरश्रेष्ठोंको मारा और तीखे अभिमंत्रितबाणोसे राक्षसोंमें श्रेष्ठ इन्द्रजीत मेघनाद सूर्यकी समान वर्णवाले
बाणोंसे और गदा इत्यादि अस्त्र शस्त्रोंसे वानरोंके यूथनाथोंको इस प्रकार बींधताहुआ श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीके ऊपर
सूर्यके किरणोंकें समान बाणोंकी वर्षा करनें लगे ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ अद्भुत श्रीसम्पन्न श्रीरामचंद्रजीके ऊपर सर्व प्रकारसे वह बाणोंकी वर्षा
वर्षाईं गईं, परन्तु वह उस समय बाण वर्षाको जलकी धाराके तुल्य विचार करकै लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ६३ ॥ हे लक्ष्मण ! यह देखो इन्द्रका शत्रु

मैंदंचद्विविदंनीलंगवाक्षंगवयंतथा ॥ केसरिंहरिलोमानंविद्युद्दंष्ट्रंचवानरम् ॥ ५९ ॥ सूर्याननंज्योतिमुखंतथादधि
मुखंहरिम् ॥ पावकाक्षंनलंचैवकुमुदंचैववानरम् ॥ ६० ॥ प्रासैःशूलैःशितैर्बाणैरिंद्रजिन्मंत्रसंहितैः ॥ विव्याधहरिशा
र्दूलान्सर्वांस्तान्राक्षसोत्तमः ॥ ६१ ॥ सवैगदाभिर्हरियूथमुख्यान्निर्भिद्यबाणैस्तपनीयवर्णैः ॥ ववर्षरामंशरवृष्टि
जालैःसलक्ष्मणंभास्कररश्मिकल्पैः ॥ ६२ ॥ सबाणवर्षैरभिवृष्यमाणोधारानिपातानिवतानचिंत्य ॥ समीक्षमाणः
परमाद्भुतश्रीरामस्तदालक्ष्मणमित्युवाच ॥ ६३ ॥ असौपुनर्लक्ष्मणराक्षसेंद्रोमहास्त्रमाश्रित्यसुरेंद्रशत्रुः ॥ निपात
यित्वाहरिसैन्यमस्माञ्छितैःशरैरर्दयतिप्रसक्तम् ॥ ६४ ॥ स्वयंभुवादत्तवरोमहात्मासमाहितोंतर्हितभीमकायः ॥
कथंनुशक्योयुधिनष्टदेहोनिहंतुमद्येंद्रजिदुद्यतास्त्रः ॥ ६५ ॥ मन्येस्वयंभूर्भगवानचिंत्यस्तस्यैतदस्त्रंप्रभवश्चयोस्य ॥
बाणावपातंत्वमिहाद्यधीमन्मयासहाव्यग्रमनाःसहस्व ॥ ६६ ॥

राक्षसोंमें श्रेष्ठ मेघनाद इन्द्रजित महा अस्त्रका आश्रय लेकर उग्र वानरोंकी सैनाको मार रहाहै, यह ब्रह्माजीके वरदानसे पाये हुए बाणोंके
समूहसे फिर भी हमको पीडित कर रहाहै ॥ ६४ ॥ यह भयंकर शरीर वाला अस्त्र उठाये महा बलवान इन्द्रजित ब्रह्माजीसे वर पायकर आकाशमें
अन्तर्धान होगयाहै, फिर भला इस प्रकार छिपे हुए रहकर युद्ध करते हुए इस राक्षस मेघनादका हम किस प्रकारसे वध करनेंमें समर्थ होंगे ॥ ६५ ॥
हे बुद्धिमान ! जिन्हौंनें इस विश्वको बनायाहै यह सब बाणभी उन्हीं ब्रह्माजीके बनाये जान पड़तेहैं, कि जिनका विजय चिन्तासे बाहर होंनेके

रुधिरकी धारा निकलता हुआ उस समय ऐसा जानपड़ा मानों पर्वतमें रुधिरसे सनाहुआ सांप घुसरहाहै ॥ ७३ ॥ जिसप्रकार पूर्वकालमें शिवजीके बाणसे त्रिपुरासुरके पुरद्वार कंपायमान हुएथे वैसेही लक्ष्मणजीके बाणोंसे राक्षस वीर व्यथित होकर कांपा, इसके उपरान्त महाबलवान् अतिकाय क्षण भरमें सावधान हो मनही मनमें विचारकर कहनें लगा॥७४॥ धन्य लक्ष्मण ! तुम्हारा बाण चलाना देखकर हम तुमको बड़ाई करनेंके योग्य शत्रु समझते हैं । तिसके पीछे यह अतिकाय, मुख वाय, दोनों बाहैं फैलाय अपने रथपर चढ़ा हुआ रणभूमिमें इधर उधर घूमनें लगा ॥ ७५ ॥ उस कालमें वह राक्षस धनुषको खेंचकर एकही वारमें एक, तीन, पांच और सातातक बाण धनुषपर चढ़ायकर छोड़नें लगा ॥७६॥

राक्षसःप्रचकंपेऽथलक्ष्मणेषुप्रपीडितः ॥ रुद्रबाणहतंघोरंयथात्रिपुरगोपुरम् ॥ चिंतयामासचाश्वस्यविमृश्यचमहाबलः ॥ ७४ ॥ साधुबाणनिपातेनश्लाघनीयोसिमेरिपुः ॥ विधायैवंविदार्यास्यंविनम्यचमहाभुजौ ॥ सरथोपस्थमास्थायरथेनप्रचचारह ॥ ७५ ॥ एकंत्रीन्पंचसप्तेतिसायकान्राक्षसर्षभः ॥ आददेसंदधेचापिविचकर्षोत्ससर्जच ॥ ७६ ॥ तेबाणाःकालसंकाशाराक्षसेंद्रधनुश्च्युताः ॥ हेमपुंखारविप्रख्याश्चक्रुर्दीप्तमिवांबरम् ॥ ७७ ॥ ततस्तान्राक्षसोत्सृष्टान्शरौघान्राघवानुजः ॥ असंभ्रांतःप्रचिच्छेदनिशितैर्बहुभिःशरैः ॥ ७८ ॥ तान्छरान्युधिसंप्रेक्ष्यनिकृत्तान्रावणात्मजः ॥ चुकोपत्रिदशेंद्रारिर्जग्राहनिशितंशरम् ॥ ७९ ॥ ससंधायमहातेजास्तंबाणंसहसोत्सृजत् ॥ तेनसौमित्रिमायांतमाजघानस्तनांतरे ॥ ८० ॥

जिस प्रकार सूर्यनारायण आकाशमंडलको दीप्ति युक्त करते हैं वैसेही राक्षसोंमें इन्द्र अतिकायके धनुषसे छूटे हुए कालसमान सुवर्णकी फोंक वाले बाणोंनें आकाशमें अग्निसी लगाकर उसको प्रदीप्त कर दिया ॥७७॥ यह देखकर श्रीरामचन्द्रजीके छोटे भाई लक्ष्मणजीनें सावधान चित्तसे तीखे बाणोंकेद्वारा उस राक्षसके चलाये हुए वह समस्त बाण काट डाले ॥ ७८ ॥ महा तेजस्वी इन्द्रके शत्रु रावणका पुत्र अत्यन्त क्रोध करता हुआ तब उसनें एक और तीखा बाण ग्रहण किया ॥ ७९ ॥ उसने एक पलकके मध्यमें बाण चढ़ायकर जैसेही

अतिकायका किरीटशोभित मस्तक काट डाला ॥१०४॥ लक्ष्मणजीके बाणसे कटाहुआ और लोहेकी टोपी इत्यादि शोभित राक्षस अतिकायका शिर हिमाचलके शृङ्गके समान सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ १०५ ॥ मरनेंसे बचे बचाये राक्षस उस वीर अतिकायको पृथ्वी पर गिराहुआ देखकर अत्यन्त दुःखी हुए ॥ १०६ ॥ वानरलोगोंके प्रहारसे जर्जरित विषादित मुख और दीनभावयुक्त वह निशाचरगण सहसा महाशब्दकर विकट स्वरसे शब्द करनें लगे ॥ १०७ ॥ इस प्रकारसे वह राक्षसगण अपने सैनापतिके मारे जानें पर अत्यन्त दुःखित और भीत होकर अति शीघ्रतासे लंकाकी ओर भागे ॥ १०८ ॥ भयंकर और दुर्द्धर्ष राक्षसके मारे जानेंपर वानर लोगोंके आनंदकी सीमा न रही उन वानरोंके मुखके

तच्छिरःसशिरस्त्राणंलक्ष्मणेषुप्रमर्दितम् ॥पपातसहसाभूमौशृंगंहिमवतोयथा ॥१०५॥तंभूमौपतितंदृष्ट्वाविक्षिप्तांबरभूषणम् ॥ बभूवुर्व्यथिताःसर्वेहतशेषानिशाचराः ॥ १०६ ॥ तेविषण्णमुखादीनाःप्रहारजनितश्रमाः ॥ विनेदुरुच्चैर्बहवःसहसाविस्वरैःस्वरैः ॥१०७॥ ततस्तत्परितोयातानिरपेक्षानिशाचराः ॥ पुरीमभिमुखाभीताद्रवंतोनायकेहते ॥१०८॥प्रहर्षयुक्ताबहवस्तुवानराःप्रफुल्लपद्मप्रतिमाननास्तदा ॥ अपूजयँल्लक्ष्मणमिष्टभागिनंहतेरिपौभीमबलेदुरासदे ॥१०९॥ इत्यार्षेश्रीमद्रा०वा०आ०युद्धकांडेएकसप्ततितमःसर्गः ॥ ७१ ॥ ॥ छ ॥ ॥ अतिकायंहतंश्रुत्वालक्ष्मणेनमहात्मना ॥ उद्वेगमगमद्राजावचनंचेदमब्रवीत् ॥ १ ॥ धूम्राक्षःपरमामर्षीसर्वशस्त्रभृतांवरः ॥ अकंपनःप्रहस्तश्चकुंभकर्णस्तथैवच ॥ २ ॥ एतेमहाबलावीराराक्षसायुद्धकांक्षिणः ॥ जेतारःपरसैन्यानांपरैर्नित्यापराजिताः ॥ ३ ॥

रंगनें खिलेहुए कमलको पराजित किया । वह सबही वीरश्रेष्ठ लक्ष्मणजीकी वीरताको सराहसराहकर उनका उचित सन्मान करते हुए ॥ १०९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० युद्ध०एकसप्ततितमः सर्गः ॥७१ ॥ महात्मा लक्ष्मणजीसे अतिकायका संहार हुआ सुनकर राक्षसराज रावण बहुतही उदासहुआ और कहनें लगा ॥ १ ॥ सर्व शस्त्रास्त्र धारण करनेंवालोंमें श्रेष्ठ, दारुण क्रोधयुक्त धूम्राक्ष वीरश्रेष्ठ अकम्पन, प्रहस्त और कुंभकर्ण ॥ २ ॥ इत्यादि महाबलशाली वीरगण जो युद्धमें अद्वितीय और संग्राम जीतनेंका अभिलाष करतेथे ; यह सबही शत्रुके

रुधिरकी धारा निकलता हुआ उस समय ऐसा जानपड़ा मानों पर्वतमें रुधिरसे सनाहुआ सांप घुसरहाहै ॥ ७३ ॥ जिसप्रकार पूर्वकालमें शिवजीके बाणसे त्रिपुरासुरके पुरद्वार कंपायमान हुएथे वैसेही लक्ष्मणजीके बाणोंसे राक्षस वीर व्यथित होकर कांपा, इसके उपरान्त महाबलवान् अतिकाय क्षण भरमें सावधान हो मनही मनमें विचारकर कहनें लगा॥७४॥ धन्य लक्ष्मण ! तुम्हारा बाण चलाना देखकर हम तुमको बड़ाई करनेंके योग्य शत्रु समझते हैं । तिसके पीछे यह अतिकाय, मुख बाय, दोनों बाहें फैलाय अपने रथपर चढ़ा हुआ रणभूमिमें इधर उधर घूमनें लगा ॥ ७५ ॥ उस कालमें वह राक्षस धनुषको खेंचकर एकही वारमें एक, तीन, पांच और साततक बाण धनुषपर चढ़ायकर छोड़नें लगा ॥७६॥

राक्षसःप्रचकंपेऽथलक्ष्मणेषुप्रपीडितः ॥ रुद्रबाणहतंघोरंयथात्रिपुरगोपुरम् ॥ चिंतयामासचाश्वस्यविमृश्यचमहाबलः ॥ ७४ ॥ साधुबाणनिपातेनश्लाघनीयोसिमेरिपुः ॥ विधायैवंविदार्यास्यंविनम्यचमहाभुजौ ॥ सरथोपस्थमास्थायरथेनप्रचचारह ॥ ७५ ॥ एकंत्रीन्पंचसप्तेतिसायकान्राक्षसर्षभः ॥ आददेसंदधेचापिविचकर्षोत्ससर्जच ॥ ७६ ॥ तेबाणाःकालसंकाशाराक्षसेंद्रधनुश्च्युताः ॥ हेमपुंखारविप्रख्याश्चक्रुर्दीप्तमिवांबरम् ॥ ७७ ॥ ततस्तान्राक्षसोत्सृष्टान्शरौघान्राघवानुजः ॥ असंभ्रांताःप्रचिच्छेदनिशितैर्बहुभिःशरैः ॥ ७८ ॥ ताञ्छरान्युधिसंप्रेक्ष्यनिकृत्तान्रावणात्मजः ॥ चुकोपत्रिदशेंद्रारिर्जग्राहनिशितंशरम् ॥ ७९ ॥ ससंधायमहातेजास्तंबाणंसहसोत्सृजत् ॥ तेनसौमित्रिमायांतमाजघानस्तनांतरे ॥ ८० ॥

जिस प्रकार सूर्यनारायण आकाशमंडलको दीप्ति युक्त करते हैं वैसेही राक्षसोंमें इन्द्र अतिकायके धनुषसे छूटे हुए कालसमान सुवर्णकी फोंकवाले बाणोंनें आकाशमें अग्निसी लगाकर उसको प्रदीप्त कर दिया ॥७७॥ यह देखकर श्रीरामचन्द्रजीके छोटे भाई लक्ष्मणजीनें सावधान चित्तसे तीखे बाणोंकेद्वारा उस राक्षसके चलाये हुए वह समस्त बाण काट डाले ॥ ७८ ॥ महा तेजस्वी इन्द्रके शत्रु रावणका पुत्र अत्यन्त क्रोध करता हुआ तब उसनें एक और तीखा बाण ग्रहण किया ॥ ७९ ॥ उसने एक पलकके मध्यमें बाण चढ़ायकर जैसेही

बाहर जावे, उसको वारंवारसे सर्व प्रकार परीक्षा करके देखना ॥ १२ ॥ सब ओरसे तुम लोग जा टिके रहो और सब कहीं सैनाभी टिकी रहै, हे निशाचरो वानरोंके स्थान और उनके पद सदा देखते रहो ॥ १३ ॥ प्रदोषके समय, आधीरातके समय या प्रातःकालके समय किसी समय भी वानरोंको छोटा मत समझो कि यह हैं ही क्या!॥ १४॥ कारणकि हम सबके निकट बड़ी भारी वानरोंकी सैना तैयार पड़ीहै न जानें किस समय लंकापर आन कर धावा करदे! यह सब राक्षस लंकापति रावणके वचन सुनकर ॥१५॥ महाबलवान तौ येही उस रावणकी आज्ञानुसार जहां तहां टिके॥ १६॥

सर्वतश्चापितिष्ठध्वंसैन्यैःपरिवृताबलैः ॥ द्रष्टव्यंचपदंतेषांवानराणांनिशाचराः ॥ १३ ॥ प्रदोषेवार्धरात्रेवाप्रत्यूषे वापिसर्वशः ॥ नावज्ञातत्रकर्तव्यावानरेषुकदाचन ॥ १४ ॥ द्विषतांबलमुद्युक्तमापतत्किंस्थितंयथा ॥ ततस्ते राक्षसाःसर्वेश्रुत्वालंकाधिपस्यतत् ॥ १५ ॥ वचनंसर्वमातिष्ठन्यथावत्तुमहाबलाः ॥ १६ ॥ तान्सर्वान्हिसमादिश्यरावणोराक्षसाधिपः ॥ मन्युशल्यंवहन्दीनःप्रविवेशस्वमालयम् ॥ १७॥ ततःससंदीपितकोपवन्हिर्निशाचराणामधिपोमहाबलः ॥ तदेवपुत्रव्यसनंविचिंतयन्मुहुर्मुहुश्चैवतदाविनिःश्वसन् ॥ १८ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणे वाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेद्विसप्ततितमःसर्गः ॥ ७२ ॥ ॥ ततोहतान्राक्षसपुंगवांस्तान्देवांतकादित्रिशिरोतिकायान् ॥ रक्षोगणास्तत्रहतावशिष्टास्तेरावणायत्वरिताःशशंसुः ॥ १ ॥ ततोहतांस्तान्सहसानिशम्यराजामहाबाष्पपरिप्लुताक्षः ॥ पुत्रक्षयंभ्रातृवधंचघोरंविचिंत्यराजाविपुलंप्रदध्यौ ॥ २ ॥

राक्षस राज रावण सब राक्षसोंको ऐसी आज्ञा देकर हृदयमें शोक रूप प्रदीप्त बाण धारण किये हुए अपने भवनमें प्रवेश करता हुआ ॥ १७ ॥ शोकसे पीड़ित निशाचर पति रावण अपने पुत्रोंकी शंकटकी अवस्था विचारकर कोपसे जलबल उठा और वारंवार लंबे २ श्वास लेनें लगा ॥ १८॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० युद्ध० द्विसप्ततितमःसर्गः॥ ७२ ॥ इसके उपरान्त जब मरनेंसे बचे बचाये राक्षसोंनें देवान्तक अतिकाय और त्रिशिरा इत्यादि निशाचरोंको मारा हुआ देख राक्षसराज रावणसे यह समाचार कहते हुए ॥ १ ॥ तब रावण उन राक्षसोंके मुखसे यह अशुभ

जब मेघनादको रणमें जानेंके लिये तैयार देख श्रेष्ठ धनुषधारी भयंकरविक्रमकारी अनेक महाबलवान् राक्षस हर्ष सहित उस महात्माके पीछे २ चले॥१०॥कोई २ हाथीपर चढ़कर चले कोई २ घोड़ेपर सवार होकर गमन करनें लगे, कोई २ व्याघ्रपर कोई२ वृश्चिक * पर, कोई २ मार्जार (बिलाव) पर कोई २ गधे ऊंट और सिंहपर आरोहण करके चले ॥ ११॥ कोई २ पर्वताकार सिंहोंके ऊपर, और गीदड़ोंके ऊपर, और काक हँस और मयूरादि पक्षियोंके ऊपर भीम विक्रम राक्षस सवार होकर,भाला,मुद्गर,निस्त्रिंश,फरसा,गदा,भुशुण्डि, ऋष्टि, शतघ्नी और परिघादि आयुध उठाय सज्जित होकर गमन करनें लगे ॥ १२ ॥ क्रमसे शंख और भेरि बजनेंके शब्दसे दशोंदिशा पूर्ण होगई इस प्रकारसे वीर्यवान राक्षसराजका पुत्र

तंप्रस्थितंमहात्मानमनुजग्मुर्महाबलाः ॥ संहर्षमाणाबहवोधनुःप्रवरपाणयः ॥ १० ॥ गजस्कंधगताःकेचित्केचित्प रमवाजिभिः ॥ व्याघ्रवृश्चिकमार्जारखरोष्ट्रैश्चभुजंगमैः ॥११॥ वराहैःश्वापदैःसिंहैर्जंबुकैःपर्वतोपमैः ॥ काकहंसमयूरै श्चराक्षसाभीमविक्रमाः ॥ प्रासमुद्गरनिस्त्रिंशपरश्वधगदाधराः ॥ १२ ॥ सशंखनिनदैःपूर्णैर्भेरीणांचापिनिःस्वनैः ॥ जगामत्रिदशेंद्रारिराजिंवेगेनवीर्यवान् ॥ १३ ॥ सशंखशशिवर्णेनच्छत्रेणरिपुमूदनः ॥ रराजप्रतिपूर्णेननभश्चंद्रम सायथा ॥ १४ ॥ वीज्यमानस्ततोवीरोहैमैर्हेमविभूषणः ॥ चारुचामरमुख्यैश्चमुख्यःसर्वधनुष्मताम् ॥ १५ ॥ तत स्त्विंद्रजितालंकासूर्यप्रतिमतेजसा ॥ रराजाप्रतिवीर्येणद्यौरिवार्केणभास्वता ॥ १६ ॥ ससंप्राप्यमहातेजायुद्धभूमि मरिंदमः ॥ स्थापयामासरक्षांसिरथंप्रतिसमंततः ॥ १७ ॥

इन्द्रजित युद्ध करनेंके लिये चला ॥ १३ ॥ पूर्ण चन्द्रमाके उदय होनेंपर आकाशकी जिस प्रकारसे शोभा होती है वैसेही शत्रुओंके मारनेंवाले इन्द्रजीतके शिरपर शंख और चन्द्रमाकी नाईं उज्ज्वल श्वेत वर्णका छत्रथा ॥ १४ ॥ धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ वह मेघनादके ऊपर हेमभूषित सुंदर चामर ढल रहाथा ॥१५॥ उस कालमें सूर्यकी समान तेजस्वी उस अप्रमेय वीर्यवान इन्द्रजीतके रूपसे लंकानगरी तेजसे प्रकाशमान सूर्य नाराय णसे शोभित आकाश मंडलकी नाईं प्रकाशमान होनें लगी॥१६॥ अनन्तर वह अग्निकी समान शत्रुदमनकारी महातेजस्वी राक्षसश्रेष्ठ इन्द्रजित

* वृश्चिकादि आंकरके वाहन भीथे।

युद्धमें जय दिलानेंवाले निकुम्भलास्थित रणभूमिमें पहुंचगया और वहां पहुंचते ही उसनें अपने रथके चारों ओर सैनाको स्थापित किया ॥१७॥ इस स्थानका नाम निकुम्भिलाथा अग्नि तुल्य तेजस्वी इन्द्रजित यहां पर उत्तम मंत्रोंसे विधिपूर्वक अग्निमें होम करनें लगा ॥ १८ ॥ उस प्रतापशाली राक्षसोंमे श्रेष्ठ इन्द्रजितनें प्रथम अग्निमें माला और सुगन्धित द्रव्य चढ़ायकर तिसके पीछे खीर अक्षतसे उसका संस्कार पूराकरके हवन कर्मको आरंभ करता हुआ ॥१९॥ उस यज्ञकुण्डके चारों ओर जहां शरपत विछानें चाहिये वहां उसनें सब शस्त्र विछाये व बहेडीकी लकडीका ईंधन बनाया समस्त लालही वस्त्र धारण किये और लोहेका स्रुवा बनाया कारण कि मारणमें यही पदार्थ कार्यमें आतेहैं ॥२०॥ पतभालोंके ऊपर अग्निस्था

ततस्तुहुतभोक्तारंहुतभुक्सदृशप्रभः ॥ जुहुवेराक्षसश्रेष्ठोविधिवन्मंत्रसत्तमैः ॥ १८ ॥ सहविर्लाजसत्कारैर्माल्यगंध पुरस्कृतैः ॥ जुहुवेपावकंतत्रराक्षसेंद्रःप्रतापवान् ॥ १९ ॥ शस्त्राणिशरपत्राणिसमिधोथबिभीतकाः ॥ लोहितानिच वासांसिस्रुवंकार्ष्णायसंतथा ॥ २० ॥ सतत्राग्निंसमास्तीर्यशरपत्रैःसतोमरैः ॥ छागस्यकृष्णवर्णस्यगलंजग्राहजी वतः ॥ २१ ॥ सकृदेवसमिद्धस्यविधूमस्यमहार्चिषः ॥ बभूवुस्तानिलिंगानिविजयंयान्यदर्शयन् ॥ २२ ॥ प्रदक्षि णावर्तशिखस्तप्तकांचनसन्निभः ॥ हविस्तत्प्रतिजग्राहपावकःस्वयमुत्थितः ॥ २३ ॥ सोस्त्रमाहारयामासब्राह्ममस्त्र विशारदः ॥ धनुश्चात्मरथंचैवसर्वंतत्राभ्यमंत्रयत् ॥ २४ ॥ तस्मिन्नाहूयमानेस्त्रेहूयमानेचपावके ॥ सार्कग्रहेंदुनक्षत्रं वितत्रासनभःस्थलम् ॥ २५ ॥

पन कर सम्पूर्ण काले वर्णका छाग ले उसकी गर्दन पकड़ जीवितही उसे अग्निमें डालदिया ॥ २१ ॥ उस छागकी जैसेही आहुति दीगई कि वैसेही अग्नि विधूम होगई और शिखा विस्तार करके जल उठी और अग्निमें जो जयसूचक सब चिह्न दृष्टि आतेहैं वह सब प्रकाशितहुये ॥ २२ ॥ इसके उपरान्त तपायेहुए सुवर्णकी समान अग्नि दाहिनी ओरको घूमतीहुई अपनी शिखाके साथ स्वयं अग्निकुंडमेंसे उठे और मेघनादकी दीहुई आहुती उन्होंनें ग्रहणकी ॥ २३ ॥ इसके उपरान्त अस्त्रविशारद इन्द्रजीतनें अपना अस्त्र धनुष रथ कवच मंत्रसे अभिमंत्रित किया ॥ २४ ॥ जब उस वीर मेघनादनें अग्निमें आहुति दी और सब अस्त्रोंको ब्रह्म मंत्रसे अभिमंत्रित किया उस समय चंद्र सूर्य इत्यादि ग्रह नक्षत्र गणोंके सहित

अठारह बाणोंसे नीलको और नव बाणोंसे नलनाम वानरको दूरसेही खड़े रहकर रणभूमिमें मारा ॥ ४३ ॥ उस महावीर्यवाननें सात मर्म विदारी बाणोंसे नीलको वींधडाला और पांच बाणसे संग्रामभूमिमें गजको विद्ध किया ॥४४॥ इस प्रकारसे दश बाणोंसे जाम्बवानकोव फिर तीस बाणोंसे नलको मर्माहत किया; इसके उपरान्त वानरराज सुग्रीव, ऋषभ अंगद और द्विविदको तीक्ष्ण बाणोंसें मारकर मृतकतुल्य कर दिया ॥ ४५ ॥ इस प्रकारसे उस मेघनादनें अत्यन्त घोर वरदानसे प्राप्त तीक्ष्ण बाणोंसे इन वानरोंको मारा और समस्त वानरोंकोभी असंख्य बाणोंसें मारा ॥ ४६ ॥ क्रोधसें कालाग्निकी समान मूर्छितहों उस महा पराक्रमी मेघनादनें सूर्यकी समान प्रकाशित शीघ्रगामी भली भांतिसे चलाये हुए बाणोंसे ॥ ४७ ॥

सप्तभिस्तुमहावीर्योमैंदंमर्मविदारणैः ॥ पंचभिर्विशिखैश्चैवगजंविव्याधसंयुगे ॥ ४४ ॥ जांबवंतंतुदशभिर्नीलंत्रिंशद्भिरेवच ॥ सुग्रीवमृषभंचैवसोंगदंद्विविदंतथा ॥ ४५ ॥ घोरैर्दत्तवरैस्तीक्ष्णैर्निष्प्राणानकरोत्तदा ॥ अन्यानपितदासुख्यान्वानरान्बहुभिःशरैः ॥ ४६ ॥ अर्दयामाससंक्रुद्धःकालाग्निरिवमूर्छितः ॥ सशरैःसूर्यसंकाशैःसुमुक्तैःशीघ्रगामिभिः ॥ ४७ ॥ वानराणामनीकानिनिर्ममंथमहारणे ॥ आकुलांवानरींसेनांशरजालेनपीडिताम् ॥ ४८ ॥ हृष्टःसपरयाप्रीत्याददर्शक्षतजोक्षिताम् ॥ पुनरेवमहातेजाराक्षसेंद्रात्मजोबली ॥ ४९ ॥ संमृज्यबाणवर्षंचशस्त्रवर्षंचदारुणम् ॥ ममर्दवानरानीकंपरितस्त्विंद्रजिलद्बली ॥ ५० ॥ स्वसैन्यमुत्सृज्यसमेत्यतूर्णमहाहवेवानरवाहिनीषु ॥ अदृश्यमानःशरजालमुग्रंववर्षनीलांबुधरोयथांबु ॥ ५१ ॥

वानरोंको एक बारही मर्दित कर डाला बाणोंसे पीड़ित होनेंके कारण व्याकुल और रुधिरसेभीगी हुई वानरोंकी सैनाको ॥ ४८ ॥ देखकर मेघनाद अत्यन्त हर्षित हुआ और फिर महातेजस्वी रावणका पुत्र मेघनाद ॥ ४९ ॥ दारुण शब्द और बाणोंकी वर्षा करके वानरोंकी सैनाको यह इन्द्रजीत सब प्रकारसे मर्दित कर कंपायमान करनें लगा ॥ ५० ॥ मेघनाद सहसा अपनी सैनाको छोड़कर वानरोंकी दृष्टिसे लोप होगया और अदृश्य रहकर नीला बादर जिस प्रकार जलकी वर्षा करताहै वैसेही वानरोंको ताककर उनके ऊपर अनिवारित बाणोंकी वर्षा करनें लगा॥५१॥

छायाके समान साथ चलनेंवाली इन सीताजीके संग आप निर्विघ्न मार्गमें चले जांय ॥ ११ ॥ हे वीर ! योगमें जिनके चित्त लगे हुएहैं ऐसे दण्डकारण्यवासी इन सब ऋषियोंके रमणीय आश्रम देख आइये॥१२॥अनेक प्रकारके बहुत कंद मूल फल सहित फूले हुए वनोंमें जिनमें भलेर श्रेष्ठ मृग गण रहते हैं और पक्षियोंके झुन्डके झुन्ड भरेहैं॥१३॥जहां साफ जल वाली ताल तलैयोंमें कमल फूल रहेहैं और उन्हीं तालावों पर हंस और कारंडवादि पक्षी विराजरहेहैं ॥ १४ ॥ और इनके अतिरिक्त देखनेमें अति मनोहर पर्वतोंके झरने और जहां मोर शोर कर रहे

पश्याश्रमपदंरम्यंदंडकारण्यवासिनाम् ॥ एषांतपस्विनांवीरतपसाभावितात्मनाम् ॥ १२ ॥ सुप्राज्यफलमूला निपुष्पितानिवनानिच ॥ प्रशस्तमृगयूथानिशांतपक्षिगणानिच ॥ १३ ॥ फुल्लपंकजखंडानिप्रसन्नसलिलानिच ॥ कारंडवविकीर्णानितटाकानिसरांसिच ॥ १४ ॥ द्रक्ष्यसेदृष्टिरम्याणिगिरिप्रस्रवणानिच ॥ रमणीयान्यरण्यानिमयूराभिरुतानिच ॥ १५ ॥ गम्यतांवत्ससौमित्रेभवानपिचगच्छतु ॥ आगंतव्यंचतेदृष्ट्वापुनरेवाश्रमंप्रति ॥ १६ ॥ एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वाकाकुत्स्थःसहलक्ष्मणः ॥ प्रदक्षिणंमुनिंकृत्वाप्रस्थातुमुपचक्रमे ॥ १७ ॥ ततःशुभतरेतूणी धनुषीचायतेक्षणा ॥ ददौसीतातयोर्भ्रात्रोःखड्गौचविमलौततः ॥ १८ ॥ आबध्यचशुभेतूणीचापेचादायसस्वने ॥ निष्क्रांतावाश्रमाद्गंतुमुभौतौरामलक्ष्मणौ ॥ १९ ॥

हैं ऐसे वन भी आप देखेंगे ॥ १५ ॥ वत्स सौमित्रे ! गमन करो श्रीरामचन्द्रजी आपभी जांय, परन्तु इन सब आश्रमोंके दर्शन करके फिर भी इस स्थानमें आप लौट कर आवैं ॥ १६ ॥ जब सुतीक्ष्णजी यह बोले तब श्रीरामचन्द्रजीनें कहा कि ऐसाही होगा यह कहकर लक्ष्मणजीके साथ सुतीक्ष्णजीकी परिक्रमा कर जानेके लिये तैयार हुये ॥ १७ ॥ अनन्तर बडे २ नेत्रवाली सीताजीनें दोनों भाइयों को श्रेष्ठ तरकस धनुष और दो निर्मल खड्ग दिये जो कि रामचन्द्रजीने व लक्ष्मणजीनें खोलकर धर दियेथे ॥ १८ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजी व लक्ष्मणजी

दोनों शुभ तरकस बांध और दो शब्द सहित धनुष कांधेमें डाल यात्रा करनेके लिये आश्रमसे बाहर हुए ॥ १९ ॥ रूपवान् दोनों रघुवीरोंने महर्षि सुतीक्ष्णजीकी आज्ञा पाकर धनुष बाण धारण करके सीताजीके सहित शीघ्र यात्राकी ॥२०॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आ० अष्टमः सर्गः ॥८॥ रघुनंदन रामचंद्रजी जब सुतीक्ष्णजीकी आज्ञा लेकर यात्रा करते हुए तब सीताजी स्नेह साने मनोहर वचन श्रीरामचंद्रजीसे बोलीं ॥ १ ॥ यद्यपि आप अतिशय महात्माहैं परन्तु परम सूक्ष्म रूपसे विचार कर देखनेसे आप अधर्मको संचय करतेहैं इस समय कामजव्यसनसे निवृत्त होतेही यह अधर्म नहीं होगा ॥ २ ॥ कामज व्यसन तीन प्रकारके हैं मिथ्यावाक्य अर्थात् झूंठ बोलना व इस्से भी परम भारी और दो

शीघ्रंतौरूपसंपन्नावनुज्ञातौमहर्षिणा ॥ प्रस्थितौधृतचापासीसीतयासहराघवौ ॥ २० ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० आ० अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥७॥ सुतीक्ष्णेनाभ्यनुज्ञातंप्रस्थितंरघुनंदनम् ॥ हृष्टयास्निग्धयावाचाभर्तारमिदमब्रवीत्॥ १ ॥ अधर्मंतुसुसूक्ष्मेणविधिनाप्राप्यतेमहान् ॥ निवृत्तेनचशक्योयंव्यसनात्कामजादिह ॥ २ ॥ त्रीण्येवव्यसनान्यत्र कामजानिभवंत्युत ॥ मिथ्यावाक्यंतुपरमंतस्माद्गुरुतरावुभौ ॥ ३ ॥ परदाराभिगमनंविनावैरंचरौद्रता ॥ मिथ्या वाक्यंनतेभूतंनभविष्यतिराघव ॥ ४ ॥ कुतोभिलषणंस्त्रीणांपरेषांधर्मनाशनम् ॥ तवनास्तिमनुष्येंद्रनचाभूत्तेकदा चन ॥ ५ ॥ मनस्यपितथारामनचैतद्विद्यतेक्वचित् ॥ स्वदारानिरतश्चैवनित्यमेवनृपात्मज ॥६ ॥ धर्मिष्ठःसत्यसंधश्च पितुर्निर्देशकारकः ॥ त्वयिधर्मश्चसत्यंचत्वयिसर्वंप्रतिष्ठितम् ॥ ७ ॥

पापहैं ॥ ३ ॥ परस्त्री गमन (पराई स्त्रीसे भोग करना) और विना वैरकेही वृथा प्राणीको मार डालना यह पाप बडे भारीहैं हे रघुनंदन ! आपने कभी मिथ्या वचन नहीं कहा न कभी आप आगेको कहैंगे॥ ४॥ हे नरश्रेष्ठ! और आप धर्मका नाश करनेंवाला परस्त्रीगमन नहीं करते सो हे नरनाथ! ना तो यह बात आपमें कभी हुई न होगी ॥ ५ ॥ आपने किसी कारण वश होकर मनके बीचमें भी पराई स्त्रीकी अभिलाषा नहीं की। हे राजकुमार! आप सदाही अपनी स्त्रीमें अनुरागी रहतेहैं॥६॥ आप धर्मात्मा और सच्ची प्रतिज्ञा करनेवालेहैं पिताजीकी आज्ञा आप

पालन कर रहेहैं धर्म और सत्य सब आपमेंही टिके हुएहैं ॥ ७ ॥ हे महाबाहो! जो लोग जितेन्द्रियहै वह लोगही इन सब बातोंका पालन
कर सकतेहैं। हे शुभदर्शन! सब प्राणी आपकी जितेन्द्रियताको जानतेहैं ॥ ८ ॥ परन्तु विना अपराध प्राणियोंकी हिंसा करनेका जो
यह भयानक तीसरा व्यसनहै इस समय वही व्यसन आपमें उपस्थित हुआहै ॥ ९ ॥ हेवीर! आपने प्रतिज्ञाकीहै कि दंडकारण्यवासी ऋषि
लोगोंकी रक्षा करनेके लिये युद्धमें हम राक्षसोंके प्राण संहार करैंगे ॥ १० ॥ इसीकारण आपने धनुष बाण ग्रहण करके लक्ष्मण
सहित दण्डक नामसे जो वन विख्यातहै उसमेंको यात्रा की है ॥ ११ ॥ अतएव आपको यात्रा करते हुए देखकर और आपका अंगीकार पालन

तच्चसर्वंमहाबाहोसत्यंवोढुंजितेंद्रियैः ॥ तववश्येंद्रियत्वंचभूतानांशुभदर्शन ॥ ८ ॥ तृतीयंयदिदंरौद्रंपरप्राणा
भिहिंसनम् ॥ निर्वैरंक्रियतेमोहात्तच्चतेसमुपस्थितम् ॥ ९ ॥ प्रतिज्ञातस्त्वयावीरदंडकारण्यवासिनाम् ॥ ऋषीणां
रक्षणार्थायवधःसंयतिरक्षसाम् ॥ १० ॥ एतन्निमित्तंवचनंदंडकाइतिविश्रुतम् ॥ प्रस्थितस्त्वंसहभ्रात्राधृतबाण
शरासनः ॥ ११ ॥ ततस्त्वांप्रस्थितंदृष्ट्वाममचिंताकुलंमनः ॥ त्वद्वृत्तंचिंतयंत्यावैभवेन्निःश्रेयसंहितम् ॥ १२ ॥
नहिमेरोचतेवीरगमनंदंडकान्प्रति ॥ कारणंतत्रवक्ष्यामिवदंत्याःश्रूयतांमम ॥ १३ ॥ त्वंहिबाणधनुष्पाणिर्भ्रात्रास
हवनंगतः ॥ दृष्ट्वावनचरान्सर्वान्कच्चित्कुर्याःशरव्ययम् ॥ १४ ॥ क्षत्रियाणामिहधनुर्हुताशस्येंधनानिच ॥ समी
पतःस्थितंतेजोबलमुच्छ्रयतेभृशम् ॥ १५ ॥

रूप व्रत जानकर आपके पारलौकिक और ऐहिक सुखके विषयमें हमारे मनको बडी चिन्ता हो रहीहै ॥१२॥ हे वीर! दंडकारण्यका जाना
हमें अच्छा नहीं लगता सो इसका कारणभी कहतीहैं आप श्रवण करें ॥ १३ ॥ हे महाराज! आप धनुष बाण ग्रहण करके भाईके सहित
वनको जायंगे वहां पर जो आप किसी राक्षसको देख पावेंगे तो कहीं न कहीं अवश्यही बाण त्याग करैंगे ॥१४॥ निकट रक्खा हुआ काठ जैसे अ
ग्निके तेजको बढाताहै वैसेही यह धनुष जिसके पास रहताहै वहभी किसी न किसीपर चलायाही चाहताहै क्योंकि क्षत्रियोंके पास रहकर धनुष

उनके बलको बढाताहै ॥ १५ ॥ हे महाबाहो! पहले कोई मृग पक्षियों करके युक्त पुण्यमय वनके बीच एक सत्यमें टिके हुए पवित्र आचरण करनेवाले तपस्वी रहतेथे ॥ १६ ॥ शचीपति इन्द्रजी इन ऋषिको तपस्यामें विघ्न करनेके लिये योद्धाका वेष बनाय खड्ग हाथमें लेकर उनके आश्रममें आये ॥ १७ ॥ और उस आश्रममें उस तपोनिष्ठ पवित्र मुनिके पास धरोहरकी भांति यह खड्ग रख कर चले गये॥ १८ ॥ मुनि जी इस अस्त्रको पाकर इसकी रक्षा करनेके लिये बहुत यत्न करनेंमें लगे और विश्वासघातक न बनना पडे इस कारण इस अस्त्रको संगही लेकर वनमें घूमनें लगे ॥ १९ ॥ वह धरोहर वस्तुकी रक्षाकरनेंमें इतना यत्न करते कि जब कहींसे कंद मूल फल लेनेंके लिये जाते तौभी विना

पुराकिलमहाबाहोतपस्वीसत्यवाञ्छुचिः ॥ कस्मिंश्चिदभवत्पुण्येवनेरतमृगद्विजे ॥१६॥ तस्यैवतपसोविघ्नंकर्तुमिंद्रः शचीपतिः ॥ खड्गपाणिरथागच्छदाश्रमंभटरूपधृक् ॥ १७॥ तस्मिंस्तदाश्रमपदेनिहितःखड्गउत्तमः ॥ संन्यासविधिनादत्तःपुण्येतपसितिष्ठतः ॥ १८ ॥ सतच्छस्त्रमनुप्राप्यन्यासरक्षणतत्परः ॥ वनेतुविचरत्येवरक्षन्प्रत्ययमात्मनः ॥१९॥ यत्रगच्छत्युपादातुंमूलानिचफलानिच ॥ नविनायातितंखड्गंन्यासरक्षणतत्परः ॥२०॥ नित्यंशस्त्रंपरिवहन्क्रमेणसतपोधनः॥चकाररौद्रींस्वांबुद्धिंत्यक्त्वातपसिनिश्चयम् ॥२१॥ततःसरौद्राभिरतःप्रमत्तोधर्मकर्षितः ॥ तस्यशस्त्रस्यसंवासाज्जगामनरकंमुनिः ॥२२॥ एवमेतत्पुरावृत्तंशस्त्रसंयोगकारणम् ॥अग्निसंयोगवद्धेतुःशस्त्रसंयोगउच्यते ॥२३॥ स्नेहाच्चबहुमानाच्चस्मारयेत्वांतुशिक्षये ॥ नकथंचनसाकार्यागृहीतधनुषात्वया ॥ २४ ॥

इस खड्गके गमन नहीं करतेथे ॥ २० ॥ सदा खड्ग संग लिये फिरनेंसे सहज २ में मुनिका विश्वाश तप करनेंसे हट गया और उनका स्वभाव कठोर होगया ॥ २१ ॥ तिसके पीछे वह उसी शस्त्रसे प्राणियोंको मारने लगे और मतवालेसे होगये और अधर्मसे घिर शस्त्र साथ रखने से अंत समय नरक को गये ॥ २२ ॥ शस्त्रको पास रखनेंसे पहले ऐसा हुआथा इसही कारणसे पंडित लोग शस्त्र संयोगको अग्नि संयोगकी समान विकारका हेतु कहा करतेहैं ॥ २३ ॥ हे प्राणनाथ! हम आपसे बहुत स्नेह करतीहैं इस कारण आपको याद दिलादी कुछ हम आपको शिक्षा नहीं

करती। हे वीर! आप धनुष धारण करके ऐसा कार्य मत कीजिये॥२४॥ निरपराध दंडकवासी राक्षसोंको मारनेका विचार मत कीजिये हे वीर! विना अपराध किसी को भी वध करना आपको उचित नहीं है ॥ २५ ॥ वनमें विचरते हुए क्षत्रियोंका धनुष धारण करना निरपराध जीवोंको मारनेके लिये नहीं वरन दुःखी लोगोंकी रक्षाही करनेके लियेहै ॥ २६ ॥ वनवासोको क्या शस्त्रधारण करना उचितहै ? तपस्वियोंमें क्या क्षत्रियोंका स्वभाव शोभा पाताहै? कहां शस्त्र? कहां वन? कहां क्षत्रिय धर्म? कहां तप? यह सब कर्म एक दूसरेसे विरुद्धहैं इससे वनका ही धर्म यहां पर वर्तना चाहिये ॥ २७ ॥ बराबर शस्त्रका व्यवहार करनेसे बुद्धि कादर और मलीन होजातीहै जब आप अयोध्याजीको लौट चलें तब फिर

बुद्धिर्वैरंविनाहंतुंराक्षसान्दंडकाश्रितान् ॥ अपराधंविनाहंतुंलोकोवीरनमंस्यते ॥ २५ ॥ क्षत्रियाणांतुवीराणांवने षुनियतात्मनाम् ॥ धनुषाकार्यमेतावदार्तानामभिरक्षणम् ॥ २६ ॥ कचशस्त्रंकचवनंकचक्षात्रंतपःकच ॥ व्याविद्धमिदमस्माभिर्देशधर्मस्तुपूज्यताम् ॥ २७ ॥ कदर्यकलुषाबुद्धिर्जायतेशस्त्रसेवनात् ॥ पुनर्गत्वात्वयोध्यायांक्षत्रधर्मंचरिष्यसि ॥२८॥ अक्षयातुभवेत्प्रीतिःश्वश्रूश्वशुरयोर्मम ॥ यदिराज्यंहिसंन्यस्यभवेस्त्वंनिरतोमुनिः ॥२९॥ धर्मादर्थःप्रभवतिधर्मात्प्रभवतेसुखम् ॥ धर्मेणलभतेसर्वंधर्मसारमिदंजगत् ॥ ३० ॥ आत्मानंनियमैस्तैस्तैःकर्षयित्वाप्रयत्नतः ॥ प्राप्यतेनिपुणैर्धर्मोनसुखाल्लभतेसुखम् ॥ ३१ ॥ नित्यंशुचिमतिःसौम्यचरधर्मंतपोवने ॥ सर्वंतुविदितंतुभ्यंत्रैलोक्यमपितत्वतः ॥ ३२ ॥

क्षत्रियोंके धर्मका आचरण कर लेना ॥ २८ ॥ आप राज्य परित्याग करके जो यहां पर ऋषियोंके धर्मका आचरण करेंगे तो हमारे श्वशुर दशरथजीकी प्रीतिभी आपमें अधिकहोगी। क्योंकि उन्होंनेभी यही आज्ञा दीहै कि मुनिवेष धारण कर वनमें वसो ॥ २९ ॥ धर्मसे ही अर्थका लाभ होताहै धर्मसे ही सुख उत्पन्न होताहै वरन धर्मसे ही सब कुछ प्राप्त होजाताहै इस कारण धर्मही संसारमें एक मात्र सार वस्तुहै अतएव आपभी धर्मका ही आचरण कीजिये ॥ ३० ॥ चतुर मनुष्य बहुत यत्नसे शरीरको कष्ट दे दुर्बल करके धर्मका लाभ करतेहैं; क्योंकि शारीरक सुख जनक उपायसे धर्म प्राप्त नहीं होता॥३१॥हे प्रियदर्शन! तुम सदा शुद्ध चित्त होकर, तपोवनमें करने योग्य जो

धर्मानुष्ठानहैं उनके करनेमें मन लगाओ त्रिभुवनके सूक्ष्मातुसूक्ष्म सब विषयही आपको विदितहैं तब फिर कौन धर्म विषयमें, आपको समझा सकताहै ? ॥ ३२ ॥ हमने केवल स्त्रियोंके स्वभावसे जो चंचलता होतीहै उसकेही वश होकर ऐसा कहा इस समय अनुज लक्ष्मणके साथ विचार करके जो उचित समझा जाय, विलंब न लगाकर उसको कीजिये ॥३३॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

पतिकी भक्ति करनेंवाली मैथिली जानकीजीके ऐसे वचन कहनेंपर परम धर्मनिष्ठ रामचंद्रजी उनको सुनकर अपनेको भली भांति समाहृत जान उत्तर देते हुए ॥ १ ॥ हे धर्मज्ञ देवि जानकी ! तुमने स्नेह वचनसे क्षत्रिय कुलका धर्म बताकर जो कुछ कहा वह सबही हितकारी और

स्त्रीचापलादेतदुपाहृतंमेधर्मंचवक्तुंतवकःसमर्थः ॥ विचार्यबुद्ध्यातुसहानुजेनयद्रोचतेतत्कुरुमाचिरेण ॥ ३३ ॥
इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० आरण्यकांडेनवमः सर्गः ॥ ९ ॥ वाक्यमेतत्तुवैदेह्याव्याहृतंभर्तृभक्तया ॥ श्रुत्वाधर्मे
स्थितोरामःप्रत्युवाचाथजानकीम् ॥ १ ॥ हितमुक्तंत्वयादेविस्निग्धयासदृशंवचः ॥ कुलंव्यपदिशंत्याचधर्मज्ञेजन
कात्मजे ॥ २ ॥ किंनुवक्ष्याम्यहंदेवित्वयैवोक्तमिदंवचः ॥ क्षत्रियैर्धार्यतेचापोनार्तशब्दोभवेदिति ॥ ३ ॥ तेचार्ता
दंडकारण्येमुनयःसंशितव्रताः ॥ मांसीतेस्वयमागम्यशरण्यंशरणंगताः ॥ ४ ॥ वसंतःकालकालेषुवनेमूलफला
शनाः ॥ नलभंतेसुखंभीरुराक्षसैःक्रूरकर्मभिः ॥ ५ ॥ भक्ष्यंतेराक्षसैर्भीमैर्नरमांसोपजीविभिः ॥ तेभक्ष्यमाणामु
नयोदंडकारण्यवासिनः ॥ ६ ॥

बहुत अच्छाहै ॥ २ ॥ किन्तु देवी ! कोई दुःखित होकर वचन न सुनावे इसही कारण क्षत्रिय लोग धनुष धारण करतेहैं सो यह वार्त्ता कहकर तुमने स्वयंही अपने प्रश्नका उत्तर देलियाहै फिर भला हम और क्या उत्तरदें ॥ ३ ॥ दंडकारण्यके रहनेंवाले महातपस्वी ऋषि लोग दुःखित होकर स्वयंही यहां आकर हमको सबका शरण देनेवाला समझ हमारी शरण आये ॥ ४ ॥ अयि भीरु ! वह लोग नित्य फल मूल भक्षण करके वनमें वास करतेहैं परन्तु क्रूर कर्म करनेवाले राक्षसोंके उपद्रव करनेंसे वह मुनिगण सुख नहीं पा सकते ॥ ५ ॥ इसके सिवाय राक्षस नर मांस

भोजी तो होतेहीहैं सो वैसे नरमांसोपजीवी भयंकर स्वभाववाले राक्षसोंसे अनेक मुनि लोग भक्षण किये गयेहैं ॥ ६ ॥ उनसे बचे कुचे दंडकारण्यवासी मुनि लोगोंने हमारे निकट आ हमसे यह सब दुःखका वृत्तान्त कहा तब हम उनके ऐसे वचन सुन ॥ ७ ॥ उनकी प्रतिष्ठा करते हुए उनसे बोले कि आप हम पर प्रसन्न हूजिये हमको बहुतही लज्जा आतीहै कि आपके ऐसे दुःखित वचन सुनें ॥ ८ ॥ क्योंकि आप लोग स्वभावसेही हम लोगोंके पूज्यहैं किन्तु इस समय आप हमारी शरणमें आये अनन्तर हमनें उनके सामनेही कहा कि हमें क्या करना होगा सो आज्ञा कीजिये ॥ ९ ॥ तब सबहीनें एकत्रहो मिलकर कहा राम ! दंडकारण्यमें बहुसंख्याक कामरूप निशाचरोंने एकत्र होकर अतिशय सताना आरंभ कियाहै ॥ १० ॥ आप उनके हाथोंसे हमारा उद्धार कीजिये । हे अनघ ! होम करनेके काल और पौर्णमासी अमावास्याके

अस्मानभ्यवपद्यैतेमामूचुर्द्विजसत्तमाः ॥ मयातुवचनंश्रुत्वातेषामेवमुखाच्च्युतम् ॥ ७ ॥ कृत्वावचनशुश्रूषांवाक्यमेतदुदाहृतम् ॥ प्रसीदंतुभवंतोमेह्रीरेषातुममातुला ॥ ८ ॥ यदीदृशैरहंविप्रैरुपस्थेयैरुपस्थितः ॥ किंकरोमीतिचमया व्याहृतंद्विजसंनिधौ ॥ ९ ॥ सर्वैरेवसमागम्यवागियंसमुदाहृता ॥ राक्षसैर्दंडकारण्येबहुभिःकामरूपिभिः ॥ १० ॥ अर्दिताःस्मभृशंरामभवान्नस्तत्ररक्षतु ॥ होमकालेतुसंप्राप्तेपर्वकालेषुचानघ ॥ ११ ॥ धर्षयंतिस्मदुर्धर्षाराक्षसाःपिशिताशनाः॥राक्षसैर्धर्षितानांचतापसानांतपस्विनाम् ॥१२॥ गतिंमृगयमाणानांभवान्नःपरमागतिः॥कामंतपःप्रभावेणशक्ताहंतुंनिशाचरान् ॥१३॥ चिरार्जितंनचेच्छामस्तपःखंडयितुंवयम्॥ बहुविघ्नंतपोनित्यंदुश्चरंचैवराघव ॥१४॥

दिन जब हम यज्ञ करने लगतेहैं ॥ ११ ॥ तब वह मांसके खानेवाले राक्षस लोग आयर कर हठ सहित यज्ञ विध्वंस करते और हमको सताते हैं अतएव इन राक्षसोंसे व्याकुल महा तपस्वी लोगोंको ॥ १२ ॥ आप बचाइये उन लोगोंको हम पराजित नहीं कर सक्ते तपमें रत ऋषिगण इस प्रकार राक्षसोंके दुःख फंदमें फँसकर छुटकारा पानेकी वासनासे आपको शरण लेतेहैं । आपही हम लोगोंके परम गतिहैं यद्यपि हम तपस्याके प्रभावसे स्वयंभी राक्षसोंका संहार कर सकतेहैं ॥ १३ ॥ तथापि बहुत कालकी बटोरी हुई तपस्याके क्षय करनेको हमारा अभिलाष नहीं होता। हे रघुनंदन ! तपस्या जैसे कि बहुत कष्टोंसे इकट्ठी होतीहै वैसेही इकट्ठा करनेके समय इसमें अनेक विघ्नभी होतेहैं ॥ १४ ॥

इसी कारणसे राक्षस लोग खाभी लेतेहैं पर हम उनको शाप देकर नहीं मारते क्योंकि तपका फल शाप देनेंसे नहीं रहता तिस्से दंडकारण्यवासी राक्षसोंसे सताये हुए हम लोगोंकी ॥ १५ ॥ भ्राता लक्ष्मणके सहित आप रक्षा करें क्योंकि आपही हमारे रक्षा करताहैं जब हमने मुनियोंके ऐसे वचन सुने तब उनसे कहा कि आप लोगोंका पालन हम सब प्रकारसे करेंगे ॥ १६ ॥ हे जानकि ! हमने दंडकारण्यवासी तपस्विगणोंकी यह वार्त्ता सुनकर उनकी रक्षा करनेकी प्रतिज्ञाकीहै सो प्राण रहते इस प्रतिज्ञाके पालन करनेमें किसी भांति विमुख नहीं होंगे ॥ १७ ॥ एक तो ऋषि गणोंके सामने प्रतिज्ञा फिर उसमें सत्यही हमाराभी परम अभीष्टहै। फिर भला हम इसके विपरीत कैसे कर सकतेहैं ? हे सीते! तुम्हें,

तेनशापंनमुंचामोभक्ष्यमाणाश्चराक्षसैः ॥ तदर्द्यमानान्रक्षोभिर्दंडकारण्यवासिभिः ॥ १५ ॥ रक्षकस्त्वंसहभ्रात्रा त्वन्नाथाहिवयंवने ॥ मयाचैतद्वचःश्रुत्वाकात्स्न्र्येनपरिपालनम् ॥ १६ ॥ ऋषीणांदंडकारण्येसंश्रुतंजनकात्मजे ॥ संश्रुत्यचनशक्ष्यामिजीवमानःप्रतिश्रवम् ॥ १७ ॥ मुनीनामन्यथाकर्तुंसत्यमिष्टंहिमेसदा ॥ अप्यहंजीवितंजह्यांत्वांवासीतेसलक्ष्मणाम् ॥ १८ ॥ नतुप्रतिज्ञांसंश्रुत्यब्राह्मणेभ्योविशेषतः ॥ तदवश्यंमयाकार्यमृषीणांपरिपालनम् ॥ १९ ॥ अनुक्तेनापिवैदेहिप्रतिज्ञायकथंपुनः ॥ ममस्नेहाच्चसौहार्दादिदमुक्तंत्वयावचः॥२०॥ परितुष्टोस्म्यहंसीतेनह्यनिष्टोनुशास्यते॥सदृशंचानुरूपंचकुलस्यतवशोभने ॥ सधर्मचारिणीमेत्वंप्राणेभ्योपिगरीयसी॥२१॥

लक्ष्मणको और अपने प्राणकोभी हम त्याग कर सकतेहैं॥ १८ ॥ परन्तु प्रतिज्ञा करके विशेषतः ब्राह्मणोंके विषयमें सो हम कभी त्याग नहीं कर सकते तिस्से ऋषि लोगोंका पालन करना हमारा परम कार्यहै ॥ १९ ॥ ऋषि लोगोंके न कहनेपरभी जब कि सवही भांतिसे उन लोगोंकी रक्षा करना हमारा आवश्यकीय कार्यहै, फिर भला प्रतिज्ञा करके किस प्रकार उस कार्यसे विमुखहों। जो हो हे सीते! तुमने हमारे प्रति स्नेह और सौहार्दसे जो वचन कहे सोभी हमने जाने ॥ २० ॥ इस्से हम बहुत संतुष्टहैं क्योंकि कोईभी कुप्यारे मनुष्यसे हितकारो वचन नहीं कहता । हे शोभने ! तुमने हमसे अपने वंशके लायक उचित बचनही कहेहैं तुम हमारी धर्म चारिणीहो, हम तुमको प्राणसेभी अधिक प्यारा समझतेहैं ॥२१॥

धनुष धारण किये हुए महानुभाव श्रीरामचंद्रजी जनकदुलारी सुकुमारी सीताजीसे इस प्रकारके वचन कहकर लक्ष्मणजीके सहित परम रमणीय तपोवनोंमें गमन करते हुए ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० आर० दशमः सर्गः ॥ १० ॥ श्रीरामचंद्रजी आगे, सुशोभित सीताजी बीचमें और लक्ष्मणजी धनुष धारण करके पीछे २ जाने लगे ॥ १ ॥ उन दोनों भाइयोंनें जानकीजीके सहित जानेके समय विविध भांतिके पर्वत, वन, नदी, तालाव आदि देखे ॥ २ ॥ सारस और चकवा, चकवी नदियोंके किनारे घूम रहे और कमल फूल फूले हुए जल मुरगावी आदिकों करके युक्त सरोवर देखे॥३॥चीता, वाघ आदिकोंके झुन्डके झुन्ड, सुविशाल शींग जिनके ऐसे मदसे

इत्येवमुक्त्वावचनंमहात्मासीतांप्रियांमैथिलराजपुत्रीम् ॥ रामोधनुष्मान्सहलक्ष्मणेनजगामरम्याणितपोवनानि ॥ २२ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०आरण्यकांडेदशमःसर्गः ॥ १० ॥ ॥ छ ॥ अग्रतःप्रययौरामःसीतामध्येसुशोभना ॥ पृष्ठतस्तुधनुष्पाणिर्लक्ष्मणोनुजगामह ॥ १ ॥ तौपश्यमानौविविधान्शैलप्रस्थान्वनानिच ॥ नदीश्चविविधारम्याजग्मतुःसहसीतया ॥ २ ॥ सारसांश्चक्रवाकांश्चनदीपुलिनचारिणः ॥ सरांसिचसपद्मानियुतानिजलजैःखगैः ॥ ३ ॥ यूथबंधांश्चपृषतांमदोन्मत्तान्विषाणिनः ॥ महिषांश्चवराहांश्चगजांश्चद्रुमवैरिणः ॥ ४ ॥ तेगत्वादूरमध्वानंलंबमानेदिवाकरे ॥ ददृशुःसहितारम्यंतटाकंयोजनायतम् ॥ ५ ॥ पद्मपुष्करसंबाधंगजयूथैरलंकृतम् ॥ सारसैर्हंसकादंबैःसंकुलंजलजातिभिः ॥ ६ ॥ प्रसन्नसलिलेरम्येतस्मिन्सरसिशुश्रुवे ॥ गीतवादित्रनिर्घोषोननुकश्चनदृश्यते ॥ ७ ॥

उन्मद भैंसे वराह और वृक्षोंके वैरी हाथी ॥ ४ ॥ देखते दिखाते चले तिसके पीछे जब दिवाकर अस्ताचल सन्मुखीन हुए तब रामचंद्र लक्ष्मण व सीताजीने बहुत दूर चलकर एक योजनमें विस्तार जिसका ऐसा एक तालाव देखा ॥ ५ ॥ इस तालावमें हाथियोंके झुन्डके झुन्ड नहा रहे बहुत सारे लाल और श्वेत कमल फूल खिल रहे जल पक्षी सारस और हंस कल्लोलें कर रहेथे ॥ ६ ॥ और इसका जल अति निर्मल था श्रीरामचंद्र लक्ष्मण व जानकीजीनें इस रमणीय सरोवरपर गीत और बाजेका शब्द सुना; परन्तु कोई गानें बजानेंवाला दिखाई न दिया ॥ ७ ॥

महारथी श्रीरामचंद्र और लक्ष्मणजी दोनों कौतूहलके वश होकर धर्मभृत् नामक ऋषिसे पूछते हुए ॥ ८ ॥ हे महर्षे ! यह बडे आश्चर्यका शब्द सुनकर हम सबकोही बडा कौतूहल हुआहै ! अतएव इस घटनाका सविशेष समस्त वर्णन कीजिये ॥ ९ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें इस प्रकार कहा तब धर्मात्मा ऋषि तत्क्षण इस सरोवरके प्रभावका वर्णन करने लगे ॥ १० ॥ ऋषि बोले हे रामचंद्रजी ! इस तडागका नाम पंचाप्सरहै इसमें सदा जल रहताहै कभी सूखता नहीं । महर्षि माण्डकर्णिनें तपोबलसे इसको बनायाहै ॥ ११ ॥ वह महामुनि माण्डकर्णि दश हजार वर्ष केवल पवन भोजन करते यहां रह कठोर तप करते रहे॥१२॥इस तपस्यासे इन्द्र, वरुण, कुबेर, अग्नि सूर्यादि देवता सब बहुतही व्यथित

ततःकौतूहलाद्रामोलक्ष्मणश्चमहारथः ॥ मुनिंधर्मभृतंनामप्रष्टुंसमुपचक्रमे ॥ ८ ॥ इदमत्यद्भुतंश्रुत्वासर्वेषांनोमहामुने ॥ कौतूहलंमहज्जातंकिमिदंसाधुकथ्यताम् ॥ ९ ॥ तेनैवमुक्तोधर्मात्माराघवेणमुनिस्तदा ॥ प्रभावंसरसःक्षिप्रमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ १० ॥ इदंपंचाप्सरोनामतटाकंसार्वकालिकम् ॥ निर्मितंतपसाराममुनिनामांडकर्णिना॥११॥ सहितेपेतपस्तीव्रंमांडकर्णिर्महामुनिः ॥ दशवर्षसहस्राणिवायुभक्षोजलाशये ॥ १२ ॥ ततःप्रव्यथिताःसर्वेदेवाःसाग्निपुरोगमाः ॥ अब्रुवन्वचनंसर्वेपरस्परसमागताः ॥ १३ ॥ अस्माकंकस्यचित्स्थानमेषप्रार्थयतेमुनिः ॥ इतिसंविग्नमनसःसर्वेतत्रदिवौकसः ॥ १४ ॥ ततःकर्तुंतपोविघ्नंसर्वदेवैर्नियोजिताः ॥ प्रधानाप्सरसःपंचविद्युच्चलितवर्चसः ॥ १५ ॥ अप्सरोभिस्ततस्ताभिर्मुनिर्दृष्टपरावरः ॥ नीतोमदनवश्यत्वंदेवानांकार्यसिद्धये ॥ १६ ॥ ताश्चैवाप्सरसःपंचमुनेःपत्नीत्वमागताः ॥ तटाकेनिर्मितंतासांतस्मिन्नंतर्हितंगृहम् ॥ १७ ॥

होकर परस्पर इकट्ठे होकर कहनें लगे ॥१३॥ यह ऋषि हममें से किसीका पद पानेंके लिये तप करतेहैं । इस प्रकार निश्चय करके देवताओंके अंतःकरण महा उद्विग्न होगये ॥ १४ ॥ तब उन सब देवताओंनें मिलकर उनके तपमें विघ्न करनेकी अभिलाषसे; बिजलीकी समान प्रभावाली पांच मुख्य अप्सराओंको भेजा ॥ १५ ॥ अप्सराओंनेभी देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये अपने और पराये विषयके जाननें वाले महर्षि माण्डकर्णिजीको मदनके मदसे मतवाला कर दिया ॥ १६ ॥ ऋषिजी उन पांचों अप्सराओंको अपनी स्त्रीकी भांति ग्रहण करके

उनके लिये इस सरोवरमें न दीखनेंवाला सुन्दर घर बनाया ॥ १७ ॥ पांचों अप्सरायें यथा सुखसे इस गृहमें वास करके तपके प्रभावसे युवा अवस्थाको प्राप्त हुए उन ऋषिका मन मुदित करनेंको उनके संग विहार करनें लगीं ॥ १८ ॥ मुनिजीके सहित विहार करती हुई उन अप्सरा गणोंकेही बाजे बजाने और गानेका यह शब्दहै, व उन्हींके गहनोंका यह मनोहर शब्द सुनाई देताहै ॥ १९ ॥ महायशवान श्रीराम चंद्रजी भ्राता लक्ष्मणजीके सहित विशुद्ध चित्त महर्षिजीकी इस कथाको सुन बडा अचरज पाते हुए ॥ २० ॥ और कैसे अचरजको बातहै यह कहते २ चारों ओर कुश चीर जिनमें पडे, ब्राह्मी शोभा समन्वित आश्रममंडल श्रीरामचंद्रजी देखते हुए ॥ २१ ॥ वह बहुत शीघ्र भ्रात।

तत्रैवाप्सरसःपंचनिवसंत्योयथासुखम् ॥ रमयंतितपोयोगान्मुनिंयौवनमास्थितम् ॥ १८ ॥ तासांसंक्रीडमाना नामेषवादित्रनिःस्वनः ॥ श्रूयतेभूषणोन्मिश्रोगीतशब्दोमनोहरः ॥ १९ ॥ आश्चर्यमितितस्यैतद्वचनंभाविता त्मनः ॥ राघवःप्रतिजग्राहसहभ्रात्रामहायशाः ॥ २० ॥ एवंकथयमानःसददर्शाश्रममंडलम् ॥ कुशचीरपरि क्षिप्तंब्राह्म्यालक्ष्म्यासमावृतम् ॥ २१ ॥ प्रविश्य सहवैदेह्यालक्ष्मणेनचराघवः ॥ तदातस्मिन्सकाकुत्स्थःश्रीमत्या श्रममंडले ॥ २२ ॥ उषित्वाससुखंतत्रपूज्यमानोमहर्षिभिः ॥ जगामचाश्रमांस्तेषांपर्यायेणतपस्विनाम् ॥ २३ ॥ येषामुषितवान्पूर्वंसकाशेसमहास्त्रवित् ॥ क्वचित्परिदशान्मासानेकसंवत्सरंक्वचित् ॥ २४ ॥ क्वचिच्चचतुरोमासान्पं चषट्चपरान्क्वचित् ॥ अपरत्राधिकान्मासानध्यर्धमधिकंक्वचित् ॥ २५ ॥

लक्ष्मण और भार्या जानकीजीके सहित वन शोभासम्पन्न आश्रमोंमें प्रवेश करते हुए ॥ २२ ॥ जब वहां ऋषियोंनें कंद मूल फलोंसे उनकी पूजाकी तब रामचंद्रजी वहां सुखसे बसे, फिर बारी२ से रामचंद्रजी सबही ऋषियोंके आश्रमों पर गये और पूजा पाते हुए ॥ २३ ॥ वह महास्त्र वित् श्रीरामचंद्रजी पहले जिनके आश्रममें बसेथे, इस समय फिर उनके आश्रममें जाते हुए। वह किसी आश्रममें पूरे दश महीने, कहीं पूरे वर्ष भर ॥ २४ ॥ कहीं चार महीने कहीं पांच महीने कहीं छः महीने कहीं एक वर्षसेभी अधिक, कहीं पखवाडेसे अधिक कहीं तीन महीनें और

कहीं २ साढे तीन २ महीने ॥ २५ ॥ कहीं तीन मास, कहीं आठ महीनेतक रहे कहीं इस्से न्यूनाधिक रहे ऐसे तिन मुनियोंके आश्रमों पर श्रीरामचंद्रजी बसे ॥ २६ ॥ सबही जगह वह सुख सहित रहे; उन आश्रमोंमें वसते हुए ऋषि लोगोंकी अनुकूलतासे सीता सहित दश वर्ष श्रीरामचंद्रजीनें बितादिये ॥ २७ ॥ इस प्रकारसे धर्मके जाननेवाले श्रीरामचंद्रजी सीताके साथ सब पुण्य आश्रमोंमें घूम घाम कर फिर महर्षि सुतीक्ष्णजीके आश्रममें आये जहां मुनि गणोनें उनकी बडी पूजाकी ॥ २८ ॥ वहां पर दुश्मनोंके मारनेवाले श्रीरामचंद्रजी कुछ एक दिन रहकर एक दिन विनय सहित उन महामुनि सुतीक्ष्णजीसे ॥ २९ ॥ श्रीरामचंद्रजी पूछते हुए, कि हे भगवन्! इस वनमें

त्रीन्मासानष्टमासांश्चराघवोन्यवसत्सुखम् ॥ तत्रसंवसतस्तस्यमुनीनामाश्रमेषुवै ॥ २६ ॥ रमतश्चानुकूल्येनययुः संवत्सरादश ॥ परिसृत्यचधर्मज्ञोराघवःसहसीतया ॥ २७ ॥ सुतीक्ष्णस्याश्रमपदंपुनरेवाजगामह ॥ सतमाश्रममागम्यमुनिभिःपरिपूजितः ॥ २८ ॥ तत्रापिन्यवसद्रामःकिंचित्कालमरिंदमः ॥ अथाश्रमस्थोविनयात्कदाचित्तंमहामुनिम् ॥ २९ ॥ उपासीनःसकाकुत्स्थःसुतीक्ष्णमिदमब्रवीत् ॥ अस्मिन्नरण्येभगवन्नगस्त्योमुनिसत्तमः ॥ ३० ॥ वसतीतिमयानित्यंकथाःकथयतांश्रुतम् ॥ नतुजानामितंदेशंवनस्यास्यमहत्तया ॥ ३१ ॥ कुत्राश्रमपदंरम्यंमहर्षेस्तस्यधीमतः ॥ प्रसादार्थंभगवतःसानुनःसहसीतया ॥ ३२ ॥ अगस्त्यमधिगच्छेयमभिवादयितुंमुनिम् ॥ मनोरथोमहानेषहृदिसंपरिवर्तते ॥ ३३ ॥ यदहंतंमुनिवरंशुश्रूषेयमपिस्वयम् ॥ इतिरामस्यसमुनिः श्रुत्वाधर्मात्मनोवचः ॥ ३४ ॥

मुनियोंमें श्रेष्ठ भगवान् अगस्त्यजी ॥ ३० ॥ वसतेहैं, यह बात हमनें बहुत ऋषि लोगोंसे सुनीहै परन्तु यह हमने अबतक नजान पाया कि उन महा तपस्वीजीके रहनेंका कौन वनहै? ॥ ३१ ॥ फिर यहभी नहीं जानते कि उन धीमान् महर्षिजीका उस वनमें रमणीक आश्रम कौनसाहै? उनके प्रसादके लिये लक्ष्मण और जानकीके सहित ॥ ३२ ॥ अगस्त्यजीके पास हम प्रणाम करनेको जाया चाहतेहैं। इस प्रकारका महा मनोरथ हमारे हृदयमें वर्त्त रहाहै ॥ ३३ ॥ वहां पर जाकर हम स्वयं मुनिराजजीकी सेवा करेंगे। इस प्रकार सुतीक्ष्णजीनें

धर्मात्मा रामचंद्रजीकी वाणी सुन ॥ ३४ ॥ दशरथजीके प्यारे दुलारे पुत्र श्रीरामचंद्रजीसे बोले कि हम लक्ष्मण सहित आपसे यह बतलानेको होथे कि ॥ ३५ ॥ आप लक्ष्मण व जनककुमारी सीताजीके सहित अगस्त्यजीके निकट जाइये, सो बडे भाग्यकी बातहै कि आपनेंही अपनें मुखसे यह वार्त्ता पूछी ॥ ३६ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! महर्षि अगस्त्यजी जिस वनमें रहतेहैं उसको हम बतातेहैं,—हे तात ! इस आश्रमसे दक्षिण दिशाकी ओर सोलह कोश मार्ग चले जाइये, तब अगस्त्यजीके भ्राताका आश्रम आपकी दृष्टि आवेगा ॥३७॥ इस आश्रमकी भूमि बडी व समा नहै यहां पिप्पलीके वृक्षोंका वन शोभित होरहाहै और नाना भांतिके पक्षी शब्द करतेहैं। ऐसे परम मनोहर और विविध भांतिके फल पुष्प

सुतीक्ष्णःप्रत्युवाचेदंप्रीतोदशरथात्मजम् ॥ अहमप्येतदेवत्वांवक्तुकामःसलक्ष्मणम् ॥ ३५ ॥ अगस्त्यमभिगच्छेतिसीतयासहराघव ॥ दिष्ट्यात्विदानीमर्थेस्मिन्स्वयमेवब्रवीषिमाम् ॥ ३६ ॥ अयमाख्यामितेरामयत्रागस्त्यो महामुनिः ॥ योजनान्याश्रमात्तातयाहिचत्वारिवैततः ॥ दक्षिणेनमहाञ्छ्रीमानगस्त्यभ्रातुराश्रमः ॥ ३७ ॥ स्थलीप्रायवनोद्देशेपिप्पलीवनशोभिते ॥ बहुपुष्पफलेरम्येनानाविहगनादिते ॥ ३८ ॥ पद्मिन्योविविधास्तत्रप्रसन्नसलिलाशयाः ॥ हंसकारंडवाकीर्णाश्चक्रवाकोपशोभिताः ॥ ३९ ॥ तत्रैकांरजनींव्युष्यप्रभातेरामगम्यताम् ॥ दक्षिणांदिशमास्थायवनखंडस्यपार्श्वतः ॥ ४० ॥ तत्रागस्त्याश्रमपदंगत्वायोजनमंतरम् ॥ रमणीयेवनोद्देशे बहुपादपशोभिते ॥ ४१ ॥ रंस्यतेतत्रवैदेहीलक्ष्मणश्चत्वयासह ॥ सहिरम्योवनोद्देशोबहुपादपसंयुतः ॥ ४२ ॥

युक्त वनके देशमें यह आश्रम प्रतिष्ठितहै ॥ ३८ ॥ वहां पर स्वच्छ वारिसे भरे बहुत सारे सरोवरहैं, हंस, कराकुल, चकवा, चकवी और सारस इत्यादि जलमें खेल किया करतेहैं ॥ ३९ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! उस आश्रममें आप एक रात्रि वास करके प्रभात होतेही उस आश्रमके निकटस्थ वनको करवटमें छोड दक्षिणकी ओरको गमन कीजिये ॥ ४० ॥ बस चार कोश मार्ग चलतेही विविध भांतिके वृक्षोंसे घिरा हुआ रमणीय वनमें हर्षित अगस्त्यजीके रहनेका आश्रम देखोगे ॥४१॥ सीता और लक्ष्मणजी तुम्हारे साथ वहां वास करके परम प्रसन्न होंगे,

क्योंकि वह अनेक प्रकारके वृक्षोंसे युक्त वन अतिरमणीयहै ॥ ४२ ॥ हे महामते ! यदि महर्षि अगस्त्यजीके दर्शन करनेका अभिलापहै तो आजही जानेका विचार कीजिये ॥ ४३ ॥ श्रीरामचंद्रजी सुतीक्ष्णमुनिके ऐसे वचन सुन उनको प्रणाम करके भ्राता लक्ष्मण और जानकीजीके सहित अगस्त्यजीके देखनेको प्रस्थान करतेहुए ॥ ४४ ॥ मार्गमें जानेकेसमय बहुत सारे विचित्र वन, बादलोंकी समान ऊंचे २ पहाड, नदी सरोवर सबही श्रीरामचंद्रजी देखते जातेथे ॥ ४५ ॥ इस प्रकार श्रीरामचंद्रजी सुतीक्ष्णजीके बताये हुए मार्गमें यथासुखसे गमन करके परम

यदिबुद्धिःकृताद्रष्टुमगस्त्यंतंमहामुनिम् ॥ अद्यैवगमनेबुद्धिंरोचयस्वमहामते ॥ ४३ ॥ इतिरामोमुनेश्रुत्वासहभ्रात्राभिवाद्यच ॥ प्रतस्थेगस्त्यमुद्दिश्यसानुजःसहसीतया ॥ ४४ ॥ पश्यन्वनानिचित्राणिपर्वतांश्चाभ्रसन्निभान् ॥ सरांसिसरितश्चैवपथिमार्गवशानुगान् ॥ ४५ ॥ सुतीक्ष्णेनोपदिष्टेनगत्वातेनपथासुखम् ॥ इदंपरमसंहृष्टोवाक्यंलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ ४६ ॥ एतदेवाश्रमपदंनूनंतस्यमहात्मनः ॥ अगस्त्यस्यमुनेर्भ्रातुर्दृश्यतेपुण्यकर्मणः ॥ ४७ ॥ यथाहीमेवनस्यास्यज्ञाताःपथिसहस्रशः ॥ सन्नताःफलभारेणपुष्पभारेणचद्रुमाः ॥ ४८ ॥ पिप्पलीनांचपक्वानांवनादस्मादुपागतः ॥ गंधोयंपवनोत्क्षिप्तःसहसाकटुकोदयः ॥ ४९ ॥ तत्रतत्रचदृश्यंतेसंक्षिप्ताःकाष्ठसंचयाः ॥ लूनाश्चपरिदृश्यंतेदर्भावैदूर्यवर्चसः ॥ ५० ॥ एतच्चवनमध्यस्थंकृष्णाभ्रशिखरोपमम् ॥ पावकस्याश्रमस्थस्यधूमाग्रंसंप्रदृश्यते ॥ ५१ ॥

प्रसन्न और हर्षितहो लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ४६ ॥ कि निश्चयही पुण्य कर्म करनेवाले महात्मा अगस्त्यऋषिके भ्राताका यह आश्रम दिखलाई देताहै ॥ ४७ ॥ क्योंकि जिस प्रकारसे सुनाथा वैसेही मार्गमें इस वनमेंको आते २ फल और फूलोंके बोझसे झुकेहुए सैकडों हजारों पेड हमनें देखेहैं ॥ ४८ ॥ यह देखो पकेहुए पिप्पलोके फलोंकी कडवी गन्ध पवन वेगसे वहीहुई चली आतीहै ॥४९॥ स्थान२में इकट्ठे किये हुए काठके बोझ और छिन्न वैदूर्यमणिके वर्णकी समान हरे कुशभी यहां देख पडतेहैं ॥ ५० ॥ आश्रममें स्थित हुई अग्निकी यह वही धूमशिखा,

कृष्णमेघयुक्त पर्वतके शिखरकी समान वनके बीच दृष्टि आतीहै ॥५१॥ और यह ब्राह्मण लोग स्वच्छ तीर्थके जलमें स्नान करके अपने लाये हुये फूलोंके समूहसे इष्ट देवताओंकी पूजा कर रहेहैं ॥५२॥ हे सौम्य! महर्षि सुतीक्ष्णजीके मुखसे जैसा श्रवण कियाथा उसीके अनुसार यहांपर सब कुछ देखकर हमको निश्चयही जान पडताहै कि यही अगस्त्यजीके भ्राताका आश्रमहै॥५३॥जिनमहर्षि अगस्त्यजीनें सब लोकोंका हित करनेकी कामनासे बल सहित साक्षात् मृत्युकी समान दैत्यको मारकर इस दक्षिण दिशाकोभी सबके वसने योग्य कियाहै ॥५४॥ ऐसा प्रसिद्धहै कि पहले एक समय महा असुर ब्राह्मणोंका घात करनेवाले वातापि और इल्वल नामक दो क्रूर कर्म करनेवाले भाई इकट्ठे इस वनमें वास करतेथे ॥ ५५ ॥ उन

विविक्तेषुचतीर्थेषुकृतस्नानाद्विजातयः ॥ पुण्योपहारंकुर्वंतिकुसुमैःस्वयमर्जितैः ॥५२ ॥ ततःसुतीक्ष्णवचनंयथासौम्यमयाश्रुतम् ॥ अगस्त्यस्याश्रमोभ्रातुर्नूनमेषभविष्यति ॥ ५३ ॥ निगृह्यतरसामृत्युंलोकानांहितकाम्यया ॥ यस्यभ्रात्राकृतेयंदिक्शरण्यापुण्यकर्मणा ॥ ५४ ॥ इहैकदाकिलक्रूरोवातापिरपिचेल्वलः ॥ भ्रातरौसहितावास्तांब्राह्मणघ्नौमहासुरौ ॥५५॥ धारयन्ब्राह्मणंरूपमिल्वलःसंस्कृतंवदन् ॥ आमंत्रयतिविप्रान्सश्राद्धमुद्दिश्यनिर्घृणः ॥ ५६ ॥ भ्रातरंसंस्कृतंकृत्वाततस्तंमेषरूपिणम् ॥ तान्द्विजान्भोजयामासश्राद्धदृष्टेनकर्मणा ॥ ५७॥ ततोभुक्तवतांतेषांविप्राणामिल्वलोऽब्रवीत् ॥ वातापेनिष्क्रमस्वेतिस्वरेणमहतावदन् ॥ ५८ ॥ ततोभ्रातुर्वचःश्रुत्वावातापिर्मेषवन्नदन् ॥ भित्त्वाभित्त्वाशरीराणिब्राह्मणानांविनिष्पतत् ॥ ५९ ॥ ब्राह्मणानांसहस्राणितैरेवंकामरूपिभिः ॥ विनाशितानिसंहत्यनित्यशःपिशिताशनैः ॥ ६० ॥

दोनोंमेंसे निर्दयी इल्वल जब श्राद्धका समय आवे तौ ब्राह्मणका वेष धर संस्कृत उच्चारण करके ब्राह्मणोंको निमंत्रण करै ॥ ५६ ॥ जब सब ब्राह्मण आजावें तब अपने भ्राता मेषरूपी वातापिको श्राद्धके कहे अनुष्ठानके अनुसार उत्तम रूपसे रांधकर सब ब्राह्मणोंको भोजन करादेवे ॥ ५७ ॥ तिसके पीछे जब ब्राह्मण भोजन कर चुकें इल्वल अति ऊंचे स्वरसे (वातापि ! निकल आओ) यह वचन कहता ॥ ५८॥ वातापि भ्राताका शब्द सुनकर मेंढेकी समान शब्द करता हुआ ब्राह्मणोंके शरीर फार २ निकल आता ॥ ५९ ॥ यह इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले मांस

भोजी असुर इस प्रकारसे प्रतिदिन परस्पर मिलकर सहस्र २ ब्राह्मणोंकी हत्या करते ॥ ६० ॥ यह देखकर महर्षि अगस्त्यजीनें देवताओंकी प्रार्थनाके वश होकर श्राद्धमें उस महा असुर वातापिको भक्षण करलिया, ऐसी बात प्रसिद्धहै ॥ ६१ ॥ जब श्राद्ध पूरा होगया इस प्रकारसे कहके ब्राह्मणोंके हाथ धुलानेंके लिये जल देकर " वातापि! बाहर निकल आओ " यह कहकर इल्वल भ्राताको पुकारने लगा ॥ ६२ ॥ जब इल्वलनें बार २ अपने भाईको पुकारा तब यह देखकर मुनियोंमें श्रेष्ठ अगस्त्यजीनें हँसकर विप्रघाती इल्वलसे कहा ॥ ६३ ॥ हमनें तुम्हारे मेपरूपी भ्राता वातापिको पचा डाला, वह यमराजके गृहको चला गया सो अब उसको बाहर होनेकी सामर्थ्य कहां? ॥ ६४ ॥ निशाचर इल्वल भाईके मरनेकी वार्त्ता

अगस्त्येनतदादेवैःप्रार्थितेनमहर्षिणा ॥ अनुभूयकिलश्राद्धेभक्षितःसमहासुरः ॥ ६१ ॥ ततःसंपन्नमित्युक्त्वादत्त्वा हस्तेवनेजनम् ॥ भ्रातरंनिष्क्रमस्वेतिइल्वलःसमभाषत ॥ ६२ ॥ सतदाभाषमाणंतुभ्रातरंविप्रघातिनम् ॥ अब्रवीत्प्रहसन्धीमानगस्त्योमुनिसत्तमः ॥ ६३ ॥ कुतोनिष्क्रमितुंशक्तिर्मयाजीर्णस्यरक्षसः ॥ भ्रातुस्तुमेषरूपस्यगतस्य यमसादनम् ॥ ६४ ॥ अथतस्यवचःश्रुत्वाभ्रातुर्निधनसंश्रितम् ॥ प्रधर्षयितुमारेभेमुनिंक्रोधान्निशाचरः ॥ ६५ ॥ सोऽभ्यद्रवद्द्विजेंद्रंतंमुनिनादीप्ततेजसा ॥ चक्षुषाऽनलकल्पेननिर्दग्धोनिधनंगतः ॥ ६६ ॥ तस्यायमाश्रमोभ्रातुस्तटाकवनशोभितः ॥ विप्रानुकंपयायेनकर्मेदंदुष्करंकृतम् ॥ ६७ ॥ एवंकथयमानस्यतस्यसौमित्रिणासह ॥ रामस्यास्तंगतःसूर्यःसंध्याकालोऽभ्यवर्तत ॥ ६८ ॥

सुन करके क्रोध युक्तहो महर्षि अगस्त्यजीके मारनेको तैयार हुआ ॥ ६५ ॥ जैसेही वह मारनेको दौडा कि महर्षिजीनें प्रज्वलित अग्निकी समान दृष्टिसे एक बार देख दिया, बस देखनें मात्रसेही, वह भस्म होगया और प्राण त्यागन करदिये ॥ ६६ ॥ जिन्होंने ब्राह्मणगणोंके ऊपर दयाके वश होकर इस प्रकारका औरके न करने योग्य अनुष्ठान कियाथा उन अगस्त्यजीके महात्मा भाईकाही यह तडागमय शोभित आश्रमहै ॥ ६७ ॥ श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके साथ यह वार्त्ता कहतेही रहेकि इतनेमें भगवान् भास्कर अस्ताचलचूडावलम्बी हुए और संध्या होआई ॥ ६८ ॥

तब श्रीरामचंद्रजीनें भ्राता लक्ष्मणजीके सहित विधिवत् सायंकालकी संध्या समाप्त करके अगस्त्यजीके भाईके आश्रममें प्रवेश किया और अगस्त्यजीके भाईको प्रणाम किया॥ ६९ ॥ और अगस्त्यजीके भाईनेंभी उनका भली भांति शिष्टाचार किया और कंद मूल फल खानेको दिये सो भोजनकर श्रीरामचंद्रजी एक रात्रि वहां पर बसे ॥७०॥ फिर जब रात बीत गयी और सूर्य नारायण निकल आये तब श्रीरामचंद्रजीने विदाकी प्रार्थना करते ऋषिसे निवेदन करते हुए॥७१॥कि हे भगवन् ! हम आपको प्रणाम करतेहैं हमने यहां बडे सुखसे यह रात्रि बिताई अब इस समय विदा दीजिये अब आपके बडे भाई गुरुदेव अगस्त्यजीके दर्शन करनेको हमारी अभिलाषा हुईहै ॥ ७२ ॥ यह कहकर ऋषिकी आज्ञा ले उनके

उपास्यपश्चिमांसंध्यांसहभ्रात्रायथाविधि ॥ प्रविवेशाश्रमपदंतमृषिंचाभ्यवादयत् ॥ ६९ ॥ सम्यक्प्रतिगृहीतस्तु मुनिनातेनराघवः ॥ न्यवसत्तांनिशामेकांप्राश्यमूलफलानिच ॥ ७० ॥ तस्यांरात्र्यांव्यतीतायामुदितेरविमंडले ॥ भ्रातरंतमगस्त्यस्यआमंत्रयतराघवः ॥ ७१ ॥ अभिवादयेत्वांभगवन्सुखमस्म्युषितोनिशाम् ॥ आमंत्रयेत्वांगच्छामिगुरुंतेद्रष्टुमग्रजम् ॥ ७२ ॥ गम्यतामितितेनोक्तोजगामरघुनंदनः ॥ यथोद्दिष्टेनमार्गेणवनंतच्चावलोकयन् ॥ ७३ ॥ नीवारान्पनसान्सालान्वंजुलांस्तिनिशांस्तथा ॥ चिरिबिल्वान्मधूकांश्चबिल्वानथचतिंदुकान् ॥७४॥ पुष्पितान्पुष्पिताग्राभिर्लताभिरुपशोभितान् ॥ ददर्शरामःशतशस्तत्रकांतारपादपान् ॥ ७५ ॥ हस्तिहस्तैर्विमृदितान्वानरैरुपशोभितान् ॥ मत्तैःशकुनिसंघैश्चशतशःप्रतिनादितान् ॥ ७६ ॥ ततोब्रवीत्समीपस्थंरामोराजीवलोचनः ॥ पृष्ठतोनुगतंवीरंलक्ष्मणंलक्ष्मिवर्धनम् ॥ ७७ ॥

आश्रमका वन देखते भालते सुतीक्ष्ण मुनिके बताए हुए आश्रमको जाते हुए ॥ ७३॥ जानेके समय वनके मध्यमें शत २ नीवार, पनस, शाल, वञ्जुल, तिनिश, चिरिबिल्व (नक्तमाल) मधूक, वेल॥७४॥ तिन्दुक इत्यादि वृक्ष परस्पर फूली फली लताओंसे शोभित सैकडों हजारों वृक्ष श्रीरामचंद्रजीनें देखे ॥ ७५ ॥ अनेक प्रकारके पक्षीगण मतवाले होकर उन वृक्षोंपर गुंजार कर रहेथे कुसुमित शिखर लता और वानरगणोंके निकट रहनेंसे वहां अतिशय शोभा होरही,और हाथियोंकी शूंडके आघातसे उन वृक्षोंकी टहनियां टूट फूट रहींथीं ॥ ७६ ॥ यह देखकर राजीवलोचन

श्रीरामचंद्रजी अपने पीछे आते हुए निकटवर्ती लक्ष्मीके बढानेवाले लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ७७ ॥ इन सब वृक्षोंके पत्ते जैसे चिकने दिखाई देतेहैं और मृगगण जैसे शान्तचित्त दृष्टि आतेहैं सो इन सब बातोसे ज्ञात होताहै कि उन विशुद्धचित्त महर्षि अगस्त्यजीका आश्रम अब अधिक दूर नहींहै ॥ ७८ ॥ जिन्होंनें अनेक कर्म द्वारा लोकमें प्रसिद्ध अगस्त्य नाम पायाहै, उनही महर्षिजीका थके हुए लोगोंके श्रमका हरनेवाला यह आश्रम दिखाई देताहै ॥ ७९ ॥ यज्ञका धुवाँ वनमें छाय रहाहै वृक्षोंकी डालियोंपर चीर वस्त्र टँग रहेहैं; वैरको छोडे हुए सब मृग इधर उधर घूमरहेहैं। अनेक प्रकारके पक्षी मधुर २ नाद कर रहेहैं ॥ ८० ॥ जिन्होंने मनुष्योंका हित करनेकी कामनासे बल सहित जम ऐसे

स्निग्धपत्रायथावृक्षायथाक्षांतामृगद्विजाः ॥ आश्रमोनातिदूरस्थोमहर्षेर्भावितात्मनः ॥७८॥ अगस्त्यइतिविख्यातोलोकेस्वेनैवकर्मणा ॥ आश्रमोदृश्यतेतस्यपरिश्रांतश्रमापहः ॥ ७९ ॥ प्राज्यधूमाकुलवनश्चीरमालापरिष्कृतः ॥ प्रशांतमृगयूथश्चनानाशकुनिनादितः ॥ ८० ॥ निगृह्यतरसामृत्युंलोकानांहितकाम्यया ॥ दक्षिणादिकृतायेनशरण्यापुण्यकर्मणा ॥ ८१ ॥ तस्येदमाश्रमपदंप्रभावाद्यस्यराक्षसैः ॥ दिगियंदक्षिणात्रासाद्दृश्यतेनोपभुज्यते ॥ ८२ ॥ यदाप्रभृतिचाक्रांतादिगियंपुण्यकर्मणा ॥ तदाप्रभृतिनिर्वैराःप्रशांतारजनीचराः ॥ ८३ ॥ नाम्नाचेयंभगवतोदक्षिणादिक्प्रदक्षिणा ॥ प्रथितात्रिषुलोकेषुदुर्धर्षाक्रूरकर्मभिः ॥ ८४ ॥ मार्गंनिरोद्धुंसततंभास्करस्याचलोत्तमः ॥ संदेशंपालयंस्तस्यविंध्यशैलोनवर्धते ॥ ८५ ॥

असुरोंको जीतकर दक्षिण दिशाको सबके वास योग्य कर दियाहै ॥८१॥ और जिनके प्रभावसे राक्षस लोग त्रासित होकर इस दक्षिण दिशाके ओर केवल देखते और आते तो हैं; परन्तु किसीको पीडा नहीं दे सकते; उन्हीं पुण्य कर्म करनेवाले महर्षि अगस्त्यजीका यह आश्रमहै ॥ ८२ ॥ उन पवित्र वेत्ता अगस्त्यजीनें जबसे इस आश्रममें आकर वास कियाहै तबसे निशाचर लोग वैर छोडकर शान्तचित्तहोगये हैं ॥ ८३ ॥ भगवान् अगस्त्यजीकी यह दक्षिण दिशा आगस्त्यादिक् नामसे त्रिलोकीमें प्रसिद्ध होगईहै और उनके प्रभावसे क्रूर कर्म करनेवाले निशाचरगणोंके दबजानेंसे यह दिशा मुनिलोगोंके वास करनें योग्य होगईहै ॥ ८४ ॥ पर्वतोंमें श्रेष्ठ विन्ध्याचल उनकी आज्ञाका

प्रति पालनही करता हुआ, सूर्यका मार्ग रोकनेके लिये और निरन्तर नहीं बढता * ॥ ८५॥ लोकोंके वीचमें विख्यात कर्म करनेवाले दीर्घायु महर्षि अगस्त्यजीका विनय युक्त मृगगण सेवित यही आश्रमहै॥८६॥जबकि हम सर्व लोकोंमें पूजित सदा साधु लोकोंका हित चाहनेंवाले साधु चरित्र इन महर्षि अगस्त्यजीके आश्रममें जांयगे, तब वह अवश्यही हमारा मंगल विधान करेंगे ॥ ८७ ॥ हे शुभदर्शन ! हम इसी आश्रममें रहकर महर्षि अगस्त्यजीकी आराधना करेंगे और वनवासका शेष समय यहीं विता देंगे ॥ ८८॥ इस आश्रममें देवता गन्धर्व, तपस्या करके सिद्ध हुए महर्षि

अयंदीर्घायुषस्तस्यलोकेविश्रुतकर्मणः ॥ अगस्त्यस्याश्रमःश्रीमान्विनीतमृगसेवितः ॥ ८६ ॥ एषलोकार्चितःसा धुर्हितेनित्यंरतःसताम् ॥ अस्मानधिगतानेषश्रेयसायोजयिष्यति ॥ ८७ ॥ आराधयिष्याम्यत्राहमगस्त्यंतंमहा मुनिम् ॥ शेषंचवनवासस्यसौम्यवत्स्याम्यहंप्रभो ॥ ८८ ॥ अत्रदेवाःसगंधर्वाःसिद्धाश्चपरमर्षयः ॥ अगस्त्यंनि यताहाराःसततंपर्युपासते ॥ ८९ ॥ नात्रजीवेन्मृषावादीक्रूरोवायदिवाशठः ॥ नृशंसःपापवृत्तोवामुनिरेषतथावि धः ॥ ९० ॥ अत्रदेवाश्चयक्षाश्चनागाश्चपतगैःसह ॥ वसंतिनियताहाराधर्ममाराधयिष्णवः ॥ ९१ ॥ अत्रसिद्धामहा त्मानोविमानैःसूर्यसन्निभैः ॥ त्यक्त्वादेहान्नवैर्देहैःस्वर्याताःपरमर्षयः ॥ ९२ ॥

लोग निराहार रहकर सदाही अगस्त्यजीकी भलीभांति सेवा किया करते हैं॥ ८९ ॥ महर्षि अगस्त्यजीका प्रभाव ऐसाहै कि इनके आश्रममें झूंठ बोलनेवाला, शठ दुष्ट निर्लज्ज पापपरायण पुरुष किसी भांति जीता हुआ नहीं रह सकता ॥ ९० ॥ इस आश्रममें देव, यक्ष, नाग और पक्षी गण धर्मकी आराधना करनेंके लिये नियताहारी होकर वास करते हैं ॥ ९१ ॥ महात्मा महर्षि लोग इस आश्रममें सिद्धहो देह त्याग नवीन

* एक समय अगस्त्यजीका शिष्य विन्ध्याचल पर्वत सूर्यका मार्ग रोकनेके लिये अधिकतासे बढने लगा यह देख देवता बहुत भयभीतहो अगस्त्यजीकी शरण जाकर कहने लगे कि आप अपने शिष्यको इस दुर्घट कार्यके करनेसे निवारण कीजिये तब अगस्त्यजी विन्ध्याचलके निकट गये पर्वतने इन्हें देखकर प्रणाम किया और चरण पकडे २ पूछा गुरु देव ! आज्ञा कीजिये कैसे आगमन हुआ अगस्त्यजी बोले जबतक हम लौटकर न आवें तवतक तुम योंही पडे रहो विन्ध्यने तथास्तु कहा तबसे अगस्त्यजी दक्षिणदिशामें आकर रहनेलगे और फिर उधर न गये विन्ध्याचल गुरु आज्ञासे आजतक लेट रहाहै ॥

देह धारण कर सूर्य तुल्य देदीप्यमान विमान में सवार हो स्वर्गको गयेहैं ॥ ९२ ॥ जो समस्त पवित्र कर्म करनेंवाले प्राणीगण इस आश्रममें रहतेहैं वह देवताओंकी उपासना करके देवताओंके प्रसादसे देवत्व, यक्षत्व, और विविध राज्योंको प्राप्त होतेहैं ॥ ९३ ॥ हे सुमित्राकुमार! हम इस समय उसही आश्रममें आय पहुँचेहैं। तुम पहले प्रवेश करके उन मुनिसे यह निवेदन करदोकि हम सीताके सहित उनके आश्रममें आयेहैं ॥ ९४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे एकादशःसर्गः ॥ ११ ॥ ऐसा जब रामचंद्रजीनें कहा, तब उनके छोटे भइया लक्ष्मणजी आश्रममें प्रवेश करके अगस्त्यजीके शिष्यके समीप पहुँचकर कहने

यक्षत्वममरत्वंचराज्यानिविविधानिच ॥ अत्रदेवाःप्रयच्छंतिभूतैराराधिताःशुभैः ॥ ९३ ॥ आगताःस्माश्रमपदंसौमित्रेप्रविशाग्रतः ॥ निवेदयेहमांप्राप्तमृषयेसहसीतया ॥ ९४ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकिये आरण्यकांडेएकादशःसर्गः ॥ ११ ॥ ॥ छ ॥ सप्रविश्याश्रमपदंलक्ष्मणोराघवानुजः ॥ अगस्त्यशिष्यमासाद्यवाक्यमेतदुवाचह ॥१॥ राजादशरथोनामज्येष्ठस्तस्यसुतोबली॥रामःप्राप्तोमुनिंद्रष्टुंभार्ययासहसीतया॥२॥ लक्ष्मणोनामतस्याहंभ्रातात्ववरजोहितः ॥ अनुकूलश्चभक्तश्चयदितेश्रोत्रमागतः ॥ ३ ॥ तेवयंवनमत्युग्रंप्रविष्टाःपितृशासनात् ॥ द्रष्टुमिच्छामहेसर्वेभगवंतंनिवेद्यताम् ॥ ४ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वालक्ष्मणस्यतपोधनः ॥ तथेत्युक्त्वाग्निशरणंप्रविवेशनिवेदितुम् ॥ ५ ॥

लगे ॥ १ ॥ कि राजा दशरथजीके बडे पुत्र महाबलवान श्रीरामचन्द्रजी अपनी स्त्री सीताजीके साथ महर्षिजीके चरणोंका दर्शन करनेको आयेहैं ॥ २ ॥ और हमारा नाम लक्ष्मणहै, हम उनके हितकारी परम भक्त और उनके अनुकूल चलनेवाले उनके छोटे भाई हैं सो कदाचित् आपने हमारी वार्त्ता सुनीही होगी ॥३ ॥ हमने पिताजीकी आज्ञासे अतिभयंकर वनमें प्रवेश कियाहै और अब भगवान् अगस्त्यमुनिके दर्शन करनेकी हमको अभिलाष हुईहै, सो आप उनसे यह वृत्तान्त निवेदन कर दीजिये ॥४॥ वह तपोधन लक्ष्मणजीके यह वचन श्रवण कर उनसे आपका आना निवेदन करता हूं यह कह कर इस वार्त्ताको महर्षि अगस्त्यजीसे कहनेके निमित्त अग्निगृहमें प्रवेश करता हुआ ॥ ५ ॥

और वहां पहुँचकर हाथ जोड तपोवलसे प्रदीप्त मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजीसे रामचन्द्रजीके आनेका समाचार कहा ॥ ६ ॥ अगस्त्यजीका शिष्य लक्ष्मणजीके वचनके अनुसार कहने लगा कि अयोध्याजीके राजा दशरथ कुमार राम और लक्ष्मण ॥ ७ ॥ आपके आश्रममें अपनी भार्या सहित आयेहैं, वह शत्रुतापन आपकी सेवा करनें व देखनेके लिये यहां आयेहैं ॥ ८ ॥ सो इसमें जैसा कर्त्तव्यहो वही आज्ञा आप कीजिये, शिष्यके मुखसे रामचन्द्र व लक्ष्मणजीका आगमन सुन ॥ ९ ॥ और महा भाग्यवती सीताजीकीभी आगमनकी वार्ता सुन करके महर्षि अगस्त्यजी बोले, कि बडे भाग्यकी बातहै बहुत दिनोंपर श्रीरामचंद्रजी हमारे दर्शन करनेको यहां आयेहैं ॥ १० ॥ और मैंनेभी मनसे इनके समा

सप्रविश्यमुनिश्रेष्ठंतपसादुष्प्रधर्षणम् ॥ कृतांजलिरुवाचेदंरामागमनमंजसा ॥ ६ ॥ यथोक्तंलक्ष्मणेनैवशिष्योगस्त्यस्यसंमतः ॥ पुत्रौदशरथस्येमौरामोलक्ष्मणएवच ॥ ७ ॥ प्रविष्टावाश्रमपदंसीतयासहभार्यया ॥ द्रष्टुंभवंतमायातौशुश्रूषार्थमरिंदमौ॥८॥यदत्रानंतरंतत्त्वमाज्ञापयितुमर्हसि ॥ ततःशिष्यादुपश्रुत्यप्राप्तंरामंसलक्ष्मणं ॥९॥ वैदेहींचमहाभागामिदंवचनमब्रवीत ॥ दिष्ट्यारामश्चिरस्याद्यद्रष्टुंमांसमुपागतः ॥ १० ॥ मनसाकांक्षितंह्यस्यमयाप्यागमनंप्रति ॥ गम्यतांसत्कृतोरामःसभार्यःसहलक्ष्मणः ॥ ११ ॥ प्रवेश्यतांसमीपंमेकिमयंनप्रवेशितः ॥ एवमुक्तस्तुमुनिनाधर्मज्ञेनमहात्मना॥१२॥अभिवाद्याब्रवीच्छिष्यस्तथेतिनियतांजलिः ॥तदानिष्क्रम्यसंभ्रांतःशिष्योलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ १३॥ कोऽसौरामोमुनिंद्रष्टुमेतुप्रविशतुस्वयम् ॥ ततोगत्वाश्रमपदंशिष्येणसहलक्ष्मणः ॥ १४ ॥

गमकी आकांक्षा कीथी तिस्से आगे जाकर आदर मान सहित श्रीरामचन्द्रजीको भ्राता और स्त्री सहित ॥ ११ ॥ यहां लिवालाओ और अब तक तुम किस कारणसे उनको यहां नहीं लिवालाये, जब महात्मा धर्मज्ञ अगस्त्यजीनें इस प्रकार कहा ॥१२॥तो शिष्य कर जोडकर जो आज्ञा अभी लिवाये लाताहूं कह और प्रणाम करके तभी वहांसे बाहर आ आदर सहित लक्ष्मणजीसे बोला॥१३॥आपमें राम कौनसेहैं ? वह भगवान् अगस्त्यजीके दर्शन करनेके लिये आवें और स्वयं प्रवेश करें अनन्तर लक्ष्मण उस शिष्यके सहित वहां गये जहां श्रीरामचन्द्रजीथे ॥ १४ ॥

और उस शिष्यको जनककुमारी सीता व श्रीरामचन्द्रजीको दिखादिया, उस शिष्यने बडी नरमाईसे अगस्त्यजीके वचन श्रीरामचंद्रजीसे जाय कहे ॥ १५ ॥ यथा नियम भलीभांति आदर सत्कार करके श्रीरामचंद्रजीको लक्ष्मण व सीताजीके सहित आश्रममें प्रवेश कराया ॥ १६ ॥ उस आश्रममें प्रवेश करनेके समय श्रीरामचंद्रजीनें देखाकि परम शान्तस्वभाव हरिण चारों ओर बैठेहैं, ब्रह्मा, शिव ॥१७॥ विष्णु, इन्द्र, सूर्य, चंद्र, भग, कुबेर ॥ १८ ॥ धाता, विधाता, पवन, पाशहस्त महात्मा वरुण ॥१९ ॥ गायत्री, वसु, नागराज वासुकी

दर्शयामासकाकुत्स्थंसीतांचजनकात्मजाम्॥ तंशिष्यःप्रश्रितंवाक्यमगस्त्यवचनंब्रुवन् ॥ १५॥ प्रावेशयद्यथान्यायंसत्कारार्हंसुसत्कृतम् ॥ प्रविवेशततोरामःसीतयासहलक्ष्मणः ॥ १६ ॥ प्रशांतहरिणाकीर्णमाश्रमंह्यवलोकयन् ॥ सतत्रब्रह्मणःस्थानमग्नेःस्थानंतथैवच॥१७॥विष्णोःस्थानंमहेंद्रस्यस्थानंचैवविवस्वतः॥ सोमस्थानंभगस्थानंस्थानंकौबेरमेवच ॥ १८॥ धातुर्विधातुःस्थानंचवायोःस्थानंतथैवच ॥ स्थानंचपाशहस्तस्यवरुणस्यमहात्मनः ॥ १९ ॥ स्थानंतथैवगायत्र्यावसूनांस्थानमेवच ॥ स्थानंचनागराजस्यगरुडस्थानमेवच ॥ २०॥ कार्तिकेयस्यचस्थानंधर्मस्थानंचपश्यति ॥ ततःशिष्यैःपरिवृतोमुनिरप्यभिनिष्पतत् ॥ २१॥ तंददर्शाग्रतोरामोमुनीनांदीप्ततेजसाम् ॥ अब्रवीद्वचनंवीरोलक्ष्मणंलक्ष्मिवर्धनम् ॥ २२ ॥ बहिर्लक्ष्मणनिष्क्रामत्यगस्त्योभगवानृषिः ॥ औदार्येणावगच्छामिनिधानंतपसामिदम् ॥ २३ ॥ एवमुक्त्वामहाबाहुरगस्त्यंसूर्यवर्चसम् ॥ जग्राहापततस्तस्यपादौचरघुनंदनः ॥ २४॥

आदि सर्प, गरुड ॥ २० ॥ कार्त्तिकेय और धर्म, इन सबकी पूजाके निमित्त अलग २ स्थान बनें हुए एक २ करके श्रीरामचंद्रजीनें देखे मुनिअगस्त्यजीभी अपने शिष्योंके संग होमशालामेंसे निकले ॥ २१ ॥ वीर्यवान् श्रीरामचंद्रजी सब तपस्वियोंमें बडे तेजवान् अगस्त्यजीको सामनेसे आते देखकर लक्षण युक्त लक्ष्मणजीसे बोले ॥ २२ ॥ हे लक्ष्मण! भगवान् अगस्त्यजी ऋषि कुटीसे बाहर निकलतेहैं इस समय हम उदारता युक्त होकर उन तप प्रकाशित ऋषिवरके निकट गमन करेंगे ॥ २३ ॥ ऐसा कहकर महाबाहु श्रीरामचंद्रजी कुटीसे बाहर आये

हुए सूर्यकी समान तेजवान महर्षि अगस्त्यजीके चरण छूकर प्रणाम करते हुए ॥ २४ ॥ धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मणजीके सहित ऋपिजीके चरणोंकी वंदना करके करजोड उनके आगे खडे रहे ॥ २५ ॥ यह देखकर महर्षि अगस्त्यजीनें आदर सहित रामचन्द्रजीको ग्रहण किया चरण पखारनेके लिये जल मंगवा दिया, आसन देकर बैठनेकी अनुमतिदी फिर कुशल प्रश्न किया ॥ २६ ॥ तिसके पीछे अगस्त्यजोनें अग्निमें आहुति देकर उन आये हुए पाहुनोंको अर्घ्य दिया, और वानप्रस्थ धर्मके अनुसार आहार करनेकी सामग्रीदी ॥ २७॥ अनन्तर धर्मके जाननेवाले महर्षि अगस्त्यजी प्रथम स्वयं बैठ पीछे कर जोडकर बैठे हुए धर्मपंडित श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ २८ ॥ हे रामच

अभिवाद्यतुधर्मात्मातस्थौरामःकृतांजलिः॥ सीतयासहवैदेह्यातदारामःसलक्ष्मणः ॥ २५ ॥ प्रतिगृह्यचकाकुत्स्थमर्चयित्वासनोदकैः ॥ कुशलप्रश्नमुक्त्वाचआस्यतामितिसोब्रवीत् ॥ अग्निंहुत्वाप्रदायार्घ्यमतिथीन्प्रतिपूज्यच ॥ वानप्रस्थेनधर्मेणसतेषांभोजनंददौ ॥ २७ ॥ प्रथमंचोपविश्याथधर्मज्ञोमुनिपुंगवः ॥ उवाचराममासीनंप्रांजलिंधर्मकोविदम् ॥ २८ ॥ अन्यथाखलुकाकुत्स्थतपस्वीसमुदाचरन् ॥ दुःसाक्षीवपरेलोकेस्वानिमांसानिभक्षयेत् ॥ २९ ॥ राजासर्वस्यलोकस्यधर्मचारीमहारथः ॥ पूजनीयश्चमान्यश्चभवान्प्राप्तःप्रियातिथिः ॥ ३० ॥ एवमुक्त्वाफलैर्मूलैः पुष्पैश्चान्यैश्चराघवम् ॥ पूजयित्वायथाकामंततोगस्त्यस्तमब्रवीत् ॥ ३१ ॥ इदंदिव्यंमहच्चापंहेमवज्रविभूषितम् ॥ वैष्णवंपुरुषव्याघ्रनिर्मितंविश्वकर्मणा ॥ ३२ ॥

न्द्रजी ! तपस्वी यदि पाहुनेका सत्कार न करके उसके प्रति और कोई अन्यथा आचरण करे तो वह झूठी गवाही देनेवाले मनुष्यकी समान परलोकमें अपना मांस भक्षण करताहै ॥ २९ ॥ फिर आप तो महारथी और सब लोकोंके धर्मचारी राजाहैं तिस पर आपने प्रिय अतिथि की भांति हमारे आश्रममें आगमन कियाहै । अतएव आपकी पूजा और सन्मान करना हमारा सब भांतिसे कर्त्तव्यहै ॥ ३० ॥ यह कहकर महर्षिजी फल, मूल, पुष्प, व औरभी उत्तम २ वनके पदार्थोंसे यथाभिलषित भांतिसे रामचंद्रजीकी पूजा करके फिर कहनें लगे ॥ ३१ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! हमको यह विश्वकर्माका बनाया हुआ, स्वर्ण और वज्र मणिसे विभूषित दिव्य और बडा वैष्णव चाप ॥ ३२ ॥

और सूर्यकी समान प्रभासम्पन्न उत्तम बाण यह दोनों चीजें हमें ब्रह्माजीनें दीहैं और इन्द्रजीने दो तरकस जिनके बाण कभी नहीं निवडते हमको दियेहैं ॥ ३३ ॥ तीखे बाणोंसे परिपूर्ण और अग्निकी समान चमकते हुए यह उत्तम दो तरकस और यह स्वर्णमय कोश बद्ध खड्ग इन्द्रजीने हमको दियाहै ॥ ३४ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! पहले भगवान् विष्णुजीनें इस वैष्णव धनुकी सहायतासे युद्धमें महाबली छली असुरोंको संहार करके देवताओंको दीप्तिमती लक्ष्मी प्रदानकीथी ॥ ३५ ॥ हे मानद ! वज्रधर इन्द्रजी जिस प्रकार वज्र धारण करतेहैं, तुमभी तैसेही पवित्र यश प्राप्त करनेंके अर्थ यह शर चाप खड्ग और दो तरकस ग्रहण करो ॥ ३६ ॥ महा तेजवान् भगवान् महर्षि अगस्त्यजी ऐसा कह कर महापण्डित

अमोघःसूर्यसंकाशोब्रह्मदत्तःशरोत्तमः ॥ दत्तोममर्हेंद्रेणतूणीचाक्षय्यसायकौ ॥ ३३ ॥ संपूर्णौनिशितैर्बाणैर्ज्वल
द्भिरिवपावकैः॥महारजतकोशोयमसिर्हेमविभूषितः॥३४॥अनेनधनुषारामहत्वासंख्येमहासुरान्॥आजहारश्रियं
दीप्तांपुराविष्णुर्दिवौकसाम्॥३५॥ तद्धनुस्तौचतूणीचशरंखड्गंचमानद॥ जयायप्रतिगृह्णीष्ववज्रंवज्रधरोयथा॥३६॥
एवमुक्त्वामहातेजाःसमस्तंतद्वरायुधम् ॥ दत्वारामायभगवानगस्त्यःपुनरब्रवीत् ॥ ३७॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवा
ल्मीकीयेआरण्यकांडेद्वादशःसर्गः ॥ १२ ॥ रामप्रीतोस्मिभद्रंतेपरितुष्टोस्मिलक्ष्मण॥ अभिवादयितुंयन्मांप्राप्तौ
स्थःसहसीतया ॥ १ ॥ अध्वश्रमेणवांखेदोबाधतेप्रचुरश्रमः ॥ व्यक्तमुत्कंठतेवापिमैथिलीजनकात्मजा ॥ २ ॥
एषाचसुकुमारीचखेदैश्चनविमानिता ॥ प्राज्यदोषंवनंप्राप्ताभर्तृस्नेहप्रचोदिता ॥ ३ ॥

प्रवीण रामचन्द्रजीको वह समस्त अतिश्रेष्ठ वैष्णव आयुध देकर फिर बोले ॥ ३७ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आ० द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥ हे श्रीरामचन्द्र! तुम जो सीता सहित हमको प्रणाम करनें आये हो इस्से हम तुम्हारे और लक्ष्मणके प्रति बहुतही प्रसन्न हुए हैं; तुम्हारा मंगल होवे ॥ १ ॥ यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि मार्ग चलनेकी थकावट से तुमको महा कष्ट हुआ है। जनककुमारी सुकुमारी जानकीजीभी विश्राम करना चाहतीहैं ॥ २ ॥ यह बडी ही सुकुमार हैं; इन्होंने भला कभी काहेकोही कष्ट सहा होगा परन्तु पतिसे स्नेहके कारण इस

बडे कष्ट देनेवाले वनमें यह आई हैं ॥ ३ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! जानकीजीका मन जिसमें प्रसन्न रहे वही तुमको करना चाहिए, क्योंकि तुम्हारे साथ २ वनको आकर इन्होंनें बडा दुष्कर काम किया है ॥ ४ ॥ हे रघुनन्दन ! जबसे स्वयंभूकी उत्पत्ति हुई है तबसे स्त्रिओंका स्वभावही ऐसा है कि धनवान पुरुषको ग्रहण करती और दरिद्रको त्याग करती हैं ॥ ५ ॥ स्त्रियें बिजलीकी चपलता, अस्त्रोंकी तीक्ष्णता, गरुड और पवनकी शीघ्रताका अनुकरण करती हैं ॥ ६ ॥ परन्तु इन तुम्हारी भार्या जानकीजीमें इन सबमें से कोई दोष भी नहीं है । यह देवताओंके बीचमें अरुन्धती की समान प्रशंसनीय और कीर्तिवान हैं ॥ ७ ॥ हे शत्रुदमनकारी ! तुम सुमित्राकुमार और सीताजीके साथ जिस देशमें

यथैषारमतेरामइहसीतातथाकुरु ॥ दुष्करंकृतवत्येषावनेत्वामभिगच्छति ॥ ४ ॥ एषाहिप्रकृतिःस्त्रीणामासृष्टे रघुनंदन ॥ समस्थमनुरज्यंतेविषमस्थंत्यजंतिच ॥ ५ ॥ शतह्रदानांलोलत्वंशस्त्राणांतीक्ष्णतांतथा ॥ गरुडानिलयोःशैघ्र्यमनुगच्छंतियोषितः ॥ ६ ॥ इयंतुभवतोभार्यादोषैरेतैर्विवर्जिता ॥ श्लाघ्याचव्यपदेश्याचयथादेवेष्वरुंधती ॥ ७ ॥ अलंकृतोयंदेशश्चयत्रसौमित्रिणासह ॥ वैदेह्याचानयारामवत्स्यासित्वमरिंदम ॥ ८ ॥ एवमुक्तस्तुमुनिनाराघवःसंयतांजलिः ॥ उवाचप्रश्रितंवाक्यमृषिंदीप्तमिवानलम् ॥ ९ ॥ धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मियस्यमेमुनिपुंगवः ॥ गुणैःसभ्रातृभार्यस्यगुरुर्नंपरितुष्यति ॥ १० ॥ किंतुव्यादिशमेदेशंसोदकंबहुकाननम् ॥ यत्राश्रमपदंकृत्वावसेयंनिरतःसुखम् ॥ ११ ॥ ततोऽब्रवीन्मुनिश्रेष्ठःश्रुत्वारामस्यभाषितम् ॥ ध्यात्वामुहूर्तंधर्मात्माततावाचवचःशुभम् ॥ १२ ॥

वास करोगे वही देश शोभायमान हो जायगा ॥ ८ ॥ जब ऋषिनें इस प्रकार कहा तब श्रीरामचन्द्रजीनें हाथ जोड विनीत वचनसे अग्नि समान तेजवान उन महर्षि अगस्त्यजीसे कहा ॥ ९ ॥ हे मुनिवर ! हमारे, हमारी भार्याके, और हमारे भ्राताके गुणोंसे जो आप प्रसन्न हुएहैं इससे मैं धन्य और अनुग्रह भाजन हुआ ॥ १० ॥ तिस्से आज्ञा कीजिये कि ऐसा कोई स्थानहै जहां वनभी बडा हो और जलभी सरलतासे प्राप्त हो जाया करे और यहां हम कुटी बनाकर स्वच्छन्दतासे वास कर सकें ॥ ११ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके वचन श्रवण करके धर्मात्मा

मुनिवर मुहूर्त भरतक चिंता करके शुभ वचन बोले ॥ १२ ॥ वत्स।इस स्थानसे आठ कोशके अन्तर पर पंचवटी नामक विख्यात एक अति सुन्दर स्थान है इस स्थानमें फल,मूल और जल बहुतायतसे मिलताहै और अनेक प्रकारके पशुभी वहां वास करते हैं॥१३॥तुम लक्ष्मणजीके साथ वहां जा और आश्रम बनाकर पिता दशरथजीका सत्य पालन करते हुए सुखसे वास करो॥१४॥हे पापरहित। हम स्नेहके वश होनेके कारण तपके प्रभावसे तुम्हारा और दशरथजीका समस्त वृत्तान्त जानते हैं कारण, दशरथजीका हमसे बडा स्नेहथा नहीं तो ऐसे वृत्तान्त जान्नेकी क्या आवश्यकता थी॥ १५ ॥ और हम तपके प्रभावसे यहभी जानते हैं कि यह प्रतिज्ञा करके कि हमारे निकट आप बसैंगे, और फिर अब वासस्थानकी

इतोद्वियोजनेतातबहुमूलफलोदकः ॥ देशोबहुमृगःश्रीमान्पंचवट्याभिविश्रुतः॥१३॥तत्रगत्वाश्रमपदंकृत्वासौमित्रिणासह ॥ रमस्वत्वंपितुर्वाक्यंयथोक्तमनुपालयन् ॥ १४ ॥विदितोह्येषवृत्तांतोममसर्वस्तवानघ ॥ तपसश्चप्रभावेनस्नेहाद्दशरथस्यच ॥ १५ ॥ हृदयस्थंचतेच्छंदोविज्ञातंतपसामया ॥ इहवासंप्रतिज्ञायमयासहतपोवने ॥ १६ ॥ अतश्चत्वामहंब्रूमिगच्छपंचवटीमिति ॥ सहिरम्योवनोद्देशोमैथिलीतत्ररंस्यते ॥ १७ ॥ सदेशःश्लाघनीयश्चनातिदूरेचराघव ॥ गोदावर्याःसमीपेचमैथिलीतत्ररंस्यते ॥ १८ ॥ प्राज्यमूलफलैश्चैवनानाद्विजगणैर्युतः ॥ विविक्तश्चमहाबाहोपुण्योरम्यस्तथैवच ॥ १९ ॥ भवानपिसदाचारःशक्तश्चपरिरक्षणे ॥ अपिचात्रवसन्नामतापसान्पालयिष्यसि ॥ २० ॥

वार्त्ता क्यों पूछते हैं? अर्थात् हमारे निकट राक्षस नहीं आसक्ते आप उनका मारना चाहते हैं इस कारण आप यहां रहना नहीं चाहते ॥१६॥ इसही कारण हम कहते हैं कि तुम पंचवटीको चले जाओ वह बनैला देश अति रमणीय है वहां सीताके मनकोभी सन्तोष होगा ॥ १७ ॥ पंचवटी बडाई करनेंके योग्य है और बहुत दूरभी नहीं है, इस गोदावरीके निकटही है मिथिलेशदुलारी वहां पर प्रसन्न होकर रहैंगी ॥ १८ ॥ हे महाबाहो। वह बहुत फल मूल करके युक्त अनेक भांतिके विहंगमोंसे परिपूर्ण पुण्यमय और निर्जन देश अति रमणीय है ॥ १९ ॥ तुमभी सदाचारी और रक्षाकार्य करनेमें समर्थ हो उस स्थानमें वास करके तपस्वीलोगोंका पालन भली प्रकार कर सकोगे ॥ २० ॥

हेवीर! यह जो महुयेके वृक्षोंका महावन दिखलाई देताहै उसके उत्तर ओर होकर तुमको जाना होगा, फिर उसके पीछे तुमको न्यग्रोध आश्रम प्राप्त होगा ॥ २१ ॥ तिसके पीछे विशेष स्थानपर पहुँचनेसे तुमको एकपर्वत दिखाई देगा, उस पर्वतके कुछ दूर ही विख्यात पंचवटीका वन है वह सदाही फूला फला रहता है ॥ २२ ॥ श्रीअगस्त्यजीके ऐसे वचन श्रवण करके श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके सहित ऋषिका भली भांति आदर सत्कार करके उनसे विदा मांगते हुए ॥ २३ ॥ अगस्त्यजीकी आज्ञा पाकर दोनोंजन उनके चरणोंकी वन्दना करके सीताजीके साथ पंच

एतदालक्ष्यतेवीरमधूकानांमहावनम् ॥ उत्तरेणास्यगंतव्यंन्यग्रोधमपिगच्छता ॥ २१ ॥ ततःस्थलमुपारुह्यपर्वतस्याविदूरतः ॥ ख्यातःपंचवटीत्येवनित्यपुष्पितकाननः ॥ २२ ॥ अगस्त्येनैवमुक्तस्तुरामःसौमित्रिणासह ॥ सत्कृत्यामंत्रयामासतमृषिंसत्यवादिनम् ॥ २३ ॥ तौतुतेनाभ्यनुज्ञातौकृतपादाभिवंदनौ ॥ तमाश्रमंपंचवटींजग्मतुःसहसीतया ॥ २४ ॥ गृहीतचापौतुनराधिपात्मजौविषक्ततूणीसमरेष्वकातरौ ॥ यथोपदिष्टेनपथामहर्षिणाप्रजग्मतुःपंचवटींसमाहितौ ॥ २५ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेत्रयोदशःसर्गः ॥ १३ ॥ ॥ ७ ॥ अथपंचवटींगच्छन्नंतरारघुनंदनः ॥ आससादमहाकायंगृध्रंभीमपराक्रमम् ॥ १ ॥ तंदृष्ट्वातौमहाभागौवनस्थंरामलक्ष्मणौ ॥ मेनातेराक्षसंपक्षिंब्रुवाणौकोभवानिति ॥ २ ॥ ततोमधुरयावाचासौम्ययाप्रीणयन्निव ॥ उवाचवत्समांविद्धिवयस्यंपितुरात्मनः ॥ ३ ॥

वटी आश्रमके लिये चले ॥ २४ ॥ समरमें न डरनेवाले दोनों नृपकुमार धनुष धारण कर और तरकस बांधकर महर्षि अगस्त्यजीनें जो मार्ग बता दियाथा अति सावधानसे उस मार्गके द्वारा पंचवटीकी यात्रा करते हुए ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आरण्यकांडे त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥ अनन्तर श्रीरामचन्द्रजीनें पंचवटीके मार्गमें जाते २ एक भयानक पराक्रमवान महाशरीरवाले गीधको देखा ॥ १ ॥ महाभाग श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणजी वनमें इस पक्षीको देख राक्षस समझ कर उससे पूछनें लगे, कि तुम कौन हो? ॥ २ ॥ गीध मधुर और प्यारे वचनोंसे

उनको प्रसन्न करके बोला, कि– वत्स! तुम हमको अपने पिताका मित्र समझो ॥ ३ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजीनें उसको पिताका मित्र जानकर पूजा करते हुए व्यग्र भावसे उसका कुल और नाम पूछा ॥ ४ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके वचन सुनकर गीध सब जीवोंकी उत्पत्तिका वर्णनाका प्रसंग वर्णन करके अपना कुल और नाम कहनें लगा ॥ ५ ॥ हे महाबाहो हे राघव! पूर्वकालमें जो कि प्रजापति हुएथे, हम क्रमशः उन सबका नाम बतलाते हैं आप श्रवण कीजिये ॥ ६ ॥ कर्दम उन सबमें बडेथे उनके बाद विकृत, शेष, संश्रय, वीर्यवान् बहुपुत्र ॥ ७ ॥ स्थाणु, मरी

सतंपितृसखंमत्वापूजयामासराघवः ॥ सतस्यकुलमव्यग्रमथपप्रच्छनामच ॥ ४ ॥ रामस्यवचनंश्रुत्वाकुलमात्मानमेवच ॥ आचचक्षेद्विजस्तस्मैसर्वभूतसमुद्भवम् ॥ ५ ॥ पूर्वकालेमहाबाहोयेप्रजापतयोभवन् ॥ तान्मेनिगदतः सर्वानादितःशृणुराघव ॥ ६ ॥ कर्दमःप्रथमस्तेषांविकृतस्तदनंतरम् ॥ शेषश्चसंश्रयश्चैवबहुपुत्रश्चवीर्यवान् ॥ ७ ॥ स्थाणुर्मरीचिरत्रिश्चक्रतुश्चैवमहाबल ॥ पुलस्त्यश्चांगिराश्चैवप्रचेताःपुलहस्तथा ॥ ८ ॥ दक्षोविवस्वानपरोऽरिष्टनेमिश्चराघवः ॥ कश्यपश्चमहातेजास्तेषामासीच्चपश्चिमः ॥ ९ ॥ प्रजापतेस्तुदक्षस्यबभूवुरितिविश्रुताः ॥ षष्टिर्दुहितरोरामयशस्विन्योमहायशः ॥ १० ॥ कश्यपःप्रतिजग्राहतासामष्टौसुमध्यमाः ॥ अदितिंचदितिंचैवदनूमपिचकालकाम् ॥ ११ ॥ ताम्रांक्रोधवशांचैवमनुंचाप्यनलामपि ॥ तास्तुकन्यास्ततःप्रीतःकश्यपःपुनरब्रवीत् ॥ १२ ॥ पुत्रांस्त्रैलोक्यभर्तॄन्वैजनयिष्यथमत्समान् ॥ अदितिस्तन्मनारामदितिश्चदनुरेवच ॥ १३ ॥

चि, अत्रि महाबलवान क्रतु, पुलस्त्य, अंगिरा, प्रचेता, पुलह ॥ ८ ॥ दक्ष, विवस्वान, अरिष्टनेमि यह क्रमसे उत्पन्न हुए महात्मा कश्यप उन सबमें छोटेथे ॥ ९ ॥ हे महायशवान् श्रीरामचन्द्रजी! उनमें दक्ष प्रजापतिके यशस्विनी लोकमें विख्यात साठ ६० कन्यायें उत्पन्न हुई ॥ १० ॥ उनमें अति सुन्दरी आठ कन्याओंका कश्यपजी विवाह करते हुए। उनके नाम अदिति, दिति, दनु, कालका, ॥ ११ ॥ ताम्रा, क्रोधवशा, मनु, व अनला, विवाह होजानें पर प्रसन्नहो कश्यपजी इन दक्षकन्याओंसे बोले ॥ १२ ॥ कि तुम हमारी समान त्रिलोकीका भरण

६

पोषण करनेंवाले पुत्र उत्पन्न करो यह सुन दिति अदिति दनु ॥१३॥ और कालका यह तो वैसे पुत्र प्राप्त करनेंके लिये अभिलाषिता हुई और शेष चारोंने पतिके कहनेंमें ध्यान न लगाया आदितिके तेंतीस ३३ देवता हुए ॥ १४ ॥ अदितिके गर्भमें १२ आदित्य ८ वसु ११ रुद्र २ अश्विनी कुमार उपजे। और दितिने भी बडे यशवान् दैत्य उत्पन्न किये ॥ १५ ॥ पहले वन और समुद्र सहित यह पृथ्वी उनहीकी थी। हे अरिन्दम! दनुने अश्वग्रीव नामक एक पुत्र उत्पन्न किया ॥ १६ ॥ और कालकानें नरक और कालक नामक दो पुत्र उत्पन्न किये क्रौञ्ची भासी

कालकाचमहाबाहोशेषास्त्वमनसोभवन् ॥ अदित्यांजज्ञिरेदेवास्त्रयस्त्रिंशदरिंदम ॥ १४ ॥ आदित्यावसवोरुद्राअश्विनौचपरंतप ॥ दितिस्त्वजनयत्पुत्रान्दैत्यांस्तातयशस्विनः ॥ १५ ॥ तेषामियंवसुमतीपुरासीत्सवनार्णवा ॥ दनुस्त्वजनयत्पुत्रमश्वग्रीवमरिंदम ॥ १६ ॥ नरकंकालकंचैवकालकापिव्यजायत ॥ क्रौंचींभासींतथाश्येनींधृतराष्ट्रींतथाशुकीम् ॥ १७ ॥ ताम्रातुसुषुवेकन्याःपंचैतालोकविश्रुताः ॥ उलूकाञ्जनयत्क्रौंचीभासीभासान्व्यजायत ॥ १८ ॥ श्येनीश्येनांश्चगृध्रांश्चव्यजायतसुतेजसः ॥ धृतराष्ट्रीतुहंसांश्चकलहंसांश्चसर्वशः ॥ १९ ॥ चक्रवाकांश्चभद्रंतेविजज्ञेसापिभामिनी ॥ शुकीनतांविजज्ञेतुनतायांविनतासुता ॥ २० ॥ दशक्रोधवशारामविजज्ञेप्यात्मसंभवाः ॥ मृगींचमृगमंदांचहरींभद्रमदामपि ॥ २१ ॥ मातंगीमथशार्दूलींश्वेतांचसुरभींतथा ॥ सर्वलक्षणसंपन्नांसुरसांकद्रुकामपि ॥ २२ ॥

श्येनी, धृतराष्ट्री और शुकी ॥ १७ ॥ ताम्रासे यह लोकविख्यात पांच कन्या जन्मी उसमें क्रौञ्चीसे उलूक पैदा हुए भासीसे भास जन्मे ॥ १८ ॥ श्येनीने अति तेजस्वी श्येन और गीधोंको प्रसव किया और धृतराष्ट्री से सब हंस ॥ १९ ॥ और चकवा चकवियोंको भी उसीनें उत्पन्न किया शुकी के नता कन्या हुई और नताके विनता उत्पन्न हुई ॥ २० ॥ हे राम! क्रोधवशाके दश कन्या उत्पन्न हुई उनके नाम यहहैं यथा—मृगी मृगमंदा, हरी, भद्रमदा ॥ २१ ॥ मातंगी, शार्दूली, श्वेता, सुरभी, सुरसा, कद्रुका यह सब कन्यायें शुभ लक्षण सम्पन्न थीं ॥ २२ ॥

हेनरश्रेष्ठ! समस्त मृग,मृगीसे उत्पन्न हुए और काले व सफेद रीछ सृमर चमरी आदि मृग मन्दाके जन्मे॥२३॥ भद्रमदानें इरावती नामक कन्या प्रसव की उसका पुत्र लोकपाल महा गज ऐरावत हुआ॥२४॥ सिंह वानर और गोपुच्छ गण हरीके उत्पन्न हुए शार्दूलीने व्याघ्रोंको प्रसव किया॥२५॥ हे पुरुषवर श्रीरामचंद्रजी! सब हाथी मातङ्गीके पुत्र हुए। श्वेताने दिग्गजोंको उत्पन्न किया ॥२६॥ सुरभीके दो कन्या हुईं, यशस्विनी रोहिणी और गन्धर्व्वी ॥ २७ ॥ रोहिणीने गौ बेल आदिकों को और गन्धर्वीनें अश्वोंको प्रसव किया हे राम! सुरसाने नागोंको प्रसव किया, और

अपत्यंतुमृगाःसर्वेम्मृग्यानरवरोत्तम॥ ऋक्षाश्चमृगमंदायाःसृमराश्चमरास्तथा॥ २३॥ ततास्त्विरावतींनामजज्ञेभद्रमदासुताम्॥ तस्यास्त्वैरावतःपुत्रोलोकनाथोमहागजः॥ २४॥ हर्याश्चहरयोपत्यंवानराश्चतपस्विनः ॥ गोलांगूलाश्चशार्दूलीव्याघ्रांश्चाजनयत्सुतान् ॥२५॥ मातंग्यास्त्वथमातंगाअपत्यंमनुजर्षभ ॥ दिशागजंतुकाकुत्स्थश्वेताव्यजनयत्सुतान्॥ २६ ॥ ततोदुहितरौरामसुरभिर्देव्यजायत॥ रोहिणींनामभद्रंतेगंधर्वीचयशस्विनीम् ॥ २७ ॥ रोहिण्यजनयद्गावोगंधर्वीवाजिनःसुतान्॥ सुरसाजनयन्नागान्रामकद्रूश्चपन्नगान् ॥ २८ ॥ मनुर्मनुष्याञ्जनयत्कश्यपस्यमहात्मनः ॥ ब्राह्मणान्क्षत्रियान्वैश्याञ्छूद्रांश्चमनुजर्षभ ॥ २९ ॥ मुखतोब्राह्मणाजाताउरसःक्षत्रियास्तथा॥ ऊरुभ्यांजज्ञिरेवैश्याःपद्भ्यांशूद्राइतिश्रुतिः॥ ३० ॥ सर्वान्पुण्यफलान्वृक्षाननलापिव्यजायत ॥ विनताचशुकीपौत्रीकद्रूश्चसुरसास्वसा॥३१॥ कद्रूर्नागसहस्रंतुविजज्ञेधरणीधरान् ॥ द्वौपुत्रौविनतायास्तुगरुडोऽरुणएवच ॥ ३२॥ तस्माज्जातोहमरुणात्संपातिश्चममाग्रजः ॥ जटायुरितिमांविद्धिश्येनीपुत्रमरिंदम॥ ३३ ॥

कद्रुके सर्प उत्पन्न हुए ॥ २८ ॥ महात्मा कश्यपजीकी दूसरी स्त्री मनुसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र यह सब मनुष्य जन्मे ॥ २९ ॥ सो ऐसी कहावत चली आतीहै कि मुखसे ब्राह्मण, वक्षःस्थलसे क्षत्रिय जंघाओंसे वैश्य, और चरणोंसे शूद्रोंकी उत्पत्ति हुई ॥ ३० ॥ अनलानें परम श्रेष्ठ फल युक्त वृक्ष जनें, विनता शुकीकी पौत्री, और कद्रु सुरसाकी कन्या हुई ॥ ३१ ॥ उनमें कद्रुनें सहस्रों नाग पुत्र उत्पन्न किये यही सब पृथ्वीको धारण किये हुएहैं और विनताके दो पुत्र गरुड व अरुण हुए ॥ ३२ ॥ हम तिनही गरुडजीसे उत्पन्न हुएहैं, सम्पाति हमारे बडे

भाईहैं। हे अरिनाशक! हमारा नाम जटायु व हमारी माताका नाम श्येनी जानिये ॥ ३३ ॥ हे तात! यदि इच्छा होवे तो हम तुम्हारी वनमें वसने के समय सहायता करैं और जब तुम लक्ष्मणजीके सहित कहीं वनमें कंद, मूल, फल लेने जाया करोगे तो हम सीताजीकी रक्षा किया करेंगे ॥ ३४ ॥ रामचंद्रजी प्रफुल्लतासे जटायुको भेंट और उसकी पूजाकर उसको प्रणाम करते हुए, और पिताजीके साथ जो मित्रता उसकी थी सो उस जटायुके मुखसे वारंवार श्रवण करने लगे ॥ ३५ ॥ फिर वह बलवान जटायुके हाथमें सीताजीकी रक्षाका भार सौंपकर उसको साथले लक्ष्मणजीके सहित शत्रुओंको जलाते वनकी रक्षा करनेंके लिये सुप्रसिद्ध पंचवटीमें गमन करते हुए ॥ ३६ ॥ इत्यार्षे

सोहंवाससहायस्तेभविष्यामियदीच्छसि ॥ सीतांचतातरक्षिष्येत्वयियातेसलक्ष्मणे ॥ ३४ ॥ जटायुषंतुप्रतिपू ज्यराघवोमुदापरिष्वज्यचसन्नतोऽभवत् ॥ पितुर्हिशुश्रावसखित्वमात्मवान्जटायुषासंकथितंपुनःपुनः ॥ ३५ ॥ सतत्रसीतांपरिदायमैथिलींसहैवतेनातिबलेनपक्षिणा ॥ जगामतांपंचवटींसलक्ष्मणोरिपून्दिधक्षन्सवनानिपाल यन् ॥ ३६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेचतुर्दशःसर्गः ॥ १४ ॥ ततःपंचवटीं गत्वानानाव्यालमृगायुताम् ॥ उवाचलक्ष्मणंरामोभ्रातरंदीप्ततेजसम् ॥ १ ॥ आगताःस्मयथोद्दिष्टंयंदेशंमुनिरब्र वीत् ॥ अयंपंचवटीदेशःसौम्यपुष्पितकाननः ॥ २ ॥ सर्वतश्चार्यतांदृष्टिःकाननेनिपुणोह्यसि ॥ आश्रमःकतर स्मिन्नोदेशेभवतिसंमतः ॥ ३ ॥ रमतेयत्रवैदेहीत्वमहंचैवलक्ष्मण ॥ तादृशोदृश्यतांदेशःसन्निकृष्टजलाशयः ॥ ४ ॥

श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे चतुर्दशःसर्गः ॥ १४ ॥ तिसके पीछे यह अनेक प्रकारके सर्प और पशुयुक्त पंचवटीमें गमन करके तेजसे प्रकाशमान भ्राता लक्ष्मणसे बोले ॥ १ ॥ हे सौम्य! महर्षि अगस्त्यजीनें जिसको बतायाथा अब हम उसी सदा फूले फले वन करके शोभायमान पंचवटीमें आगयेहैं ॥ २ ॥ आश्रम बनानेंके लायक स्थान निर्णय करनेंमें तुम भलीभांति चतुरहो तिस्से इस काननके चारों ओर दृष्टि डालिये कि कौनसे स्थानमें हमारे मनमाना आश्रम बनसकताहै ॥ ३ ॥ हेलक्ष्मण! जिसै स्थानमें तुम हम और जानकीजी विशेषप्रसन्नता

सहित रहसकें और जल भी जहां निकटही हो ऐसे स्थानको तुम खोजो ॥ ४ ॥ जिस जगह वन और जल दोनोंही रमणीय और पावनहों व ईंधन, पुष्प, कुश, जल जहां निकटही पाया जावे ऐसा स्थानदेखो ॥ ५ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें जब इस प्रकार कहा तब लक्ष्मणजीनें कर जोड कर सीताजीके सामने रामचंद्रजीसे कहा ॥ ६ ॥ हे भाई साहब! हम आपके विद्यमान रहते सैकडों वर्षतकभी स्वाधीन नहींहैं न कुछ विचार करही सकतेहैं और हमारा विचार ठीकभी नहींहै तिस्से अब आप स्वयंही मनोहर स्थान देख भाल हमको वहां आश्रम बनानेकी आज्ञा दीजिये ॥ ७ ॥ महाद्युतिमान श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके यह वचन सुन परम प्रसन्न हो विचार करके सर्व गुणों करके युक्त एक मनोहर स्थान खोज लेते

वनरामण्यकंयत्रजलरामण्यकंतथा ॥ सन्निकृष्टंचयस्मिंस्तुसमित्पुष्पकुशोदकम् ॥ ५ ॥ एवमुक्तस्तुरामेणलक्ष्मणः संयतांजलिः ॥ सीतासमक्षंकाकुत्स्थमिदंवचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥ परवानस्मिकाकुत्स्थत्वयिवर्षशतंस्थिते ॥ स्वयंतुरुचिरेदेशेक्रियतामितिमांवद ॥ ७ ॥ सुप्रीतस्तेनवाक्येनलक्ष्मणस्यमहाद्युतिः ॥ विमृशन्रोचयामासदेशंसर्वगुणान्वितम् ॥ ८ ॥ सतंरुचिरमाक्रम्यदेशमाश्रमकर्मणि ॥ हस्तेगृहीत्वाहस्तेनरामःसौमित्रिमब्रवीत् ॥ ९ ॥ अयंदेशः समःश्रीमान्पुष्पितैस्तरुभिर्वृतः ॥ इहाश्रमपदंरम्यंयथावत्कर्तुमर्हसि ॥ १० ॥ इयमादित्यसंकाशैःपद्मैःसुरभिगंधिभिः ॥ अदूरेदृश्यतेरम्यापद्मिनीपद्मशोभिता ॥ ११ ॥ यथाख्यातमगस्त्येनमुनिनाभावितात्मना ॥ इयंगोदावरीरम्यापुष्पितैस्तरुभिर्वृता ॥ १२ ॥

हुए ॥ ८ ॥ यह स्थान सब भांतिसे मनोहर और आश्रम बनानेंके लायक था वहां श्रीरामचंद्रजी पदार्पणकर अपने हाथसे लक्ष्मणजीका हाथ पकडकर बोले ॥ ९ ॥ यह स्थान परम श्रीसम्पन्न भूमि वहांकी बराबरहै और फूले हुए वृक्षोंसे घिराहुआहै तिस्से तुम इस स्थानमें विधानुसार पर्णकुटी बनाओ ॥ १० ॥ सूर्यकी समान उज्वल चित्त प्रसन्न करनेवाली सुगन्धि जिनमें आरहीहैं ऐसेकमलके फूलोंके सहित यह पुष्करणी यहांसे निकटही बहरहीहै ॥ ११ ॥ विशुद्धात्मा महर्षि अगस्त्यजीने जिस प्रकार कहाथा यह देखो वैसेही फुलाने वृक्षोंसे शोभित

गोदावरी दृष्टि आतीहै ॥ १२ ॥ वहां हंस और कारंडव बोल रहेहैं चकवा चकवी पक्षियोंसे शोभायमान यह नदी न यहांसे बडी दूरहै न
बहुत निकटहीहै मृगोंके यूथके यूथ जहां घूम रहेहैं ॥ १३ ॥ खिले हुए वृक्षोंसे शोभित मोर गण जहां नाद कर रहेहैं बहुत गुफा जिनमें विद्यमान
परम मनोहर देखनेमें दिव्य बडे २ ऊंचे यह सब पहाड दिखाई देतेहैं ॥ १४ ॥ उन सब पहाडों के स्थान २ में सब हाथी सुवर्ण चां
दी और ताम्र वर्ण की विचित्र रचना से सजे हुएकी समान शोभा पारहेहैं ॥१५॥ साल,ताल, तमाल,खजूर, कटहल, निवार, निमिश,पुन्नागसे शो
भित॥१६॥आम, अशोक,तिलक, केतकी, और चंपा आदि पुष्प, गुल्म, लता इत्यादि वृक्षोंसे शोभाय मान॥१७॥स्यन्दन, चन्दन, कदंब, लुचकुच,

हंसकारंडवाकीर्णाचक्रवाकोपशोभिता ॥ नातिदूरेनचासन्नेमृगयूथनिपीडिता ॥ १३ ॥ मयूरनादितारम्याःप्रां
शवोबहुकंदराः ॥ दृश्यंतेगिरयःसौम्याःफुल्लैस्तरुभिरावृताः ॥ १४ ॥ सौवर्णैराजतैस्ताम्रैर्देशेदेशेतथाशुभैः ॥
गवाक्षिताइवाभांतिगजाःपरमभक्तिभिः ॥ १५ ॥ सालैस्तालैस्तमालैश्चखर्जूरैःपनसैर्द्रुमैः ॥ नीवारैस्तिनिशैश्चैव
पुन्नागैश्चोपशोभिताः ॥१६॥चूतैरशोकैस्तिलकैःकेतकैरपिचंपकैः ॥ पुष्पगुल्मलतोपेतैस्तैस्तैस्तरुभिरावृताः ॥१७॥
स्यंदनैश्चंदनैर्नीपैःपनसैर्लकुचैरपि ॥ धवाश्वकर्णखदिरैःशमीकिंशुकपाटलैः ॥ १८ ॥ इदंपुण्यमिदंरम्यमिदंबहुमृ
गद्विजम् ॥ इहवत्स्यामसौमित्रेसार्धमेतेनपक्षिणा॥१९॥एवमुक्तस्तुरामेणलक्ष्मणःपरवीरहा ॥ अचिरेणाश्रमंभ्रातु
श्चकारसुमहाबलः ॥ २० ॥ पर्णशालांसुविपुलांतत्रसंघातमृत्तिकाम् ॥ सुस्तंभांमस्करैर्दीर्घैःकृतवंशांसुशोभ
नाम् ॥ २१ ॥ शमीशाखाभिरास्तीर्यदृढपाशावपाशिताम् ॥ कुशकाशशरैःपर्णैःसुपरिच्छादितांतथा ॥ २२ ॥

धव, अश्वकर्ण, खैर, शमी, ढाक और पटल इन तरुवरोंसेभी घिरे हुएहैं ॥ १८ ॥ हे लक्ष्मण ! यह स्थान अतिशय पवित्र, अतिशय मनो
हर, अनेक प्रकारके मृग और पक्षियोंसे परिपूर्णहै; सो जटायुके सहित इस स्थानपर हम वास करेंगे ॥ १९ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा
तब श्रीलक्ष्मणजीनें बहुत शीघ्र रामचंद्रजीके रहनेके लिये परम श्रेष्ठ एक स्थान बनाया ॥ २० ॥ उसमें बडी भारी पर्णशाला बनाई, भीतें
मिट्टीसे उठादीं सुन्दर थंभ गाड दिये, ऊपर लंबे २ वांस धरे ॥ २१ ॥ उन तिरछे वासोंपर शमीकी डालियें काट २ कर छादीं फिर उन

शाखाओंको रस्सियोंसे अति दृढता सहित बांध दिया, कुश, कांश, और शर पत्रसे भलीभांति उसको छाकर बराबर करदिया ॥ २२ ॥ तिसपर शमीकी डालियोंकी बतियें छा कसकर बांधदीं, ऐसा मनोहर स्थान लक्ष्मणजीनें श्रीरामचंद्रजीके रहनेके लिये बनाया ॥ २३ ॥ जब स्थान बन चुका तो श्रीमान् लक्ष्मणजी गोदावरी नदीमें नहाकर वहांसे कमलके फूल और अनेक फल लेकर आश्रमको लौटे ॥ २४ ॥ फिर लक्ष्मण जीनें फूलोंसे यथा विधि वास्तुशान्ति करके उस कुटीको पवित्रकर श्रीरामचंद्रजीको दिखाया ॥ २५ ॥ श्रीरघुनंदन रामचंद्रजी सीताके सहित लक्ष्मणजीकी बनाई वह शुभदर्शन कुटी देखकर परम प्रसन्न हुए ॥ २६ ॥ और बहुतही हर्षमें भरकर दोनों बाहोंसे लक्ष्मणजीको स्नेह

समीकृततलांरम्यांचकारसुमहाबलः ॥ निवासंराघवस्यार्थेप्रेक्षणीयमनुत्तमम् ॥ २३ ॥ सगत्वालक्ष्मणःश्रीमा न्नदींगोदावरींतदा ॥ स्नात्वापद्मानिचादायसफलःपुनरागतः ॥ २४ ॥ ततःपुष्पबलिंकृत्वाशांतिंचसयथाविधि ॥ दर्शयामासरामायतदाश्रमपदंकृतम् ॥ २५ ॥ सतंदृष्ट्वाकृतंसौम्यमाश्रमंसहसीतया ॥ राघवःपर्णशालायांहर्षमा हारयत्परम् ॥ २६ ॥ सुसंहृष्टःपरिष्वज्यबाहुभ्यांलक्ष्मणंतदा ॥ अतिस्निग्धंचगाढंचवचनंचेदमब्रवीत् ॥ २७ ॥ प्रीतोस्मितेमहत्कर्मत्वयाकृतमिदंप्रभो ॥ प्रदेयोयन्निमित्तंतेपरिष्वंगोमयाकृतः ॥ २८ ॥ भावज्ञेनकृतज्ञेनधर्मज्ञे नचलक्ष्मण ॥ त्वयापुत्रेणधर्मात्मानसंवृत्तःपितामम ॥ २९ ॥ एवंलक्ष्मणमुक्त्वातुराघवोलक्ष्मिवर्धनः ॥ तस्मिन्दे शेबहुफलेन्यवसत्ससुखंसुखी ॥ ३० ॥

सहित अपनी छातीसे लगा लिया और बडे मनोहर प्रेमसने वचन बोले ॥ २७ ॥ हे कार्य करनेमें चतुर! हम तुमपर बहुतही प्रसन्न हुए हैं तुमनें यह बडा भारी कार्य किया सो इस कार्यका तुमको इनाम देना चाहिये अतएव इसके बदलेहीमें हमनें तुमसे भेंटकी ॥ २८ ॥ हे लक्ष्मण जी! तुम्हारी समान विचारवान् सबका भाव जाननेंवाले, उपकार माननेंवाले, और धर्मके जाननेंवाले पुत्रके रहते राजा दशरथजीकी मृत्यु नहीं हुई ॥ २९ ॥ लक्ष्मीके बढानेवाले श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणसे ऐसा कहकर परम सुखभोगमय बहु फल युक्त उस आश्रमपदमें वास करने लगे ॥ ३० ॥

वह धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मण करके सेवित होनेंपर देवलोकमें देवताकी समान वहां कुछ दिन वास करते हुए ॥ २१ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आर० पंचदशःसर्गः ॥ १५ ॥ महात्मा रामचंद्रजीके वहां सुखसे वास करते२शरत्काल वीता और सबका प्यारा हेमन्त समय आया ॥ १ ॥ एक समय रात्रि वीतकर प्रभात हुआ तो उस समय श्रीरामचंद्रजी स्नानकरनेंके लिये रमणीक गोदावरी नदीपर जाते हुए ॥ २ ॥ वीर्यवान् भ्राता लक्ष्मणजी सीताजीके साथ जलका कलश हाथमें लेकर उनके पीछे २ चलते हुए नम्रता से बोले ॥ ३ ॥ हे प्रिय बोलनेवाले! जो इस समय आपको प्याराहै; यह वही हेमन्तकाल उपस्थित हुआहै। इस हेमन्तके समागमसेही शुभ

कंचित्कालंसधर्मात्मासीतयालक्ष्मणेनच ॥ अन्वास्यमानोन्यवसत्स्वर्गलोकेयथामरः ॥ २१ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा०आ०आर०पंचदशःसर्गः ॥ १५ ॥ ॥ ७ ॥ वसतस्तस्यतुसुखंराघवस्यमहात्मनः ॥ शरद्व्यपायेहेमंतऋतुरिष्टःप्रवर्तत ॥ १ ॥ सकदाचित्प्रभातायांशर्वर्यांरघुनंदनः ॥ प्रययावभिषेकार्थंरम्यांगोदावरींनदीम् ॥ २ ॥ प्रह्वः कलशहस्तस्तुसीतयासहवीर्यवान् ॥ पृष्ठतोनुव्रजन्भ्रातासौमित्रिरिदमब्रवीत् ॥ ३ ॥ अयंसकालःसंप्राप्तःप्रियोयस्तेप्रियंवद ॥ अलंकृतइवाभातियेनसंवत्सरःशुभः ॥ ४ ॥ नीहारपरुषोलोकःपृथिवीसस्यमालिनी ॥ जलान्यनुपभोग्यानिसुभगोहव्यवाहनः ॥ ५ ॥ नवाग्रयणपूजाभिरभ्यर्च्यपितृदेवताः ॥ कृताग्रयणकाःकालेसंतोविगतकल्मषाः ॥६॥ प्राज्यकामाजनपदाःसंपन्नतरगोरसाः ॥ विचरंतिमहीपालायात्रार्थंविजिगीषवः ॥ ७ ॥ सेवमानेदृढंसूर्येदिशमंतकसेविताम् ॥ विहीनतिलकेवस्त्रीनोत्तरादिक्प्रकाशते ॥ ८ ॥

संवत्सर मानों सजकरही मनोहर हुआहै ॥४॥ शरदोके प्रभावसे सबही लोगोंके शरीर रूखे होगये, और पृथ्वी अनाजोंसे भरपूर होरहीहै और अग्निही इस समय लोगोंको प्रिय लगतीहै शरदीसे पानी नहीं छुआ जाता ॥ ५ ॥ इस समय मनुष्य गण नये अनाजसे देवता और पित्रोंकी विशेष भांतिसे पूजा करके नवशस्य निमित्तक यज्ञ करते हुए निष्पाप हुएहैं ॥ ६ ॥ इस समय सब देशोंमें काम्यवस्तु; दही, दूध, गोरस आदि बहुत प्राप्त होताहै इस समय विजयकी इच्छा किये हुए राजा लोग देशोंमें घूमनेंके लिये यात्रा करतेहैं ॥ ७ ॥ दक्षिण दिशामें सूर्य भगवा

नका अधिक अनुराग होनेसे उत्तरदिशा तिलकहीन स्त्रीकी नांई शोभारहित होगईहै ॥ ८ ॥ एक तो हिमालय पर स्वभावसेही बहुत पाला पडताहै तिसपर अब सूर्य भगवान् उस्से बहुत दूर होगयेहैं; तिस्से हिमवानका हिमालय (पालेका घर) नाम ठीक २ होरहाहै ॥ ९ ॥ इस समय दुपहरियामें घूमना अच्छा लगताहै धूप लगनेसे सुख होताहै, इस समय सूर्य सबके सुख देनेंवाले, और छाया जल एकवारही नहीं सेवन किया जाता ॥ १० ॥ अब सूर्य नारायणका वह पहलासा तेज नहींहै। कुहरा पडने व पवन चलनेसे जाडा बहुतही अधिक पडताहै तिस जाडेके पडनेंसे जीवमात्रही जडीभूत होगये, तिससे सब ही वन सूनेसे जान पडतेहैं प्रभातकाल हिमग्रस्त होकर प्रकाशित

प्रकृत्याहिमकोशाढ्योदूरसूर्यश्चसांप्रतम् ॥ यथार्थनामसुव्यक्तंहिमवान्हिमवान्गिरिः ॥ ९ ॥ अत्यंतसुखसंचारा मध्याह्नेस्पर्शतःसुखाः ॥ दिवसाःसुभगादित्याश्छायासलिलदुर्भगाः ॥ १० ॥ मृदुसूर्याःसुनीहाराःपटुशीताःसमाहिताः ॥ शून्यारण्याहिमध्वस्तादिवसाभांतिसांप्रतम् ॥ ११ ॥ निवृत्ताकाशशयनाःपुष्यनीताहिमारुणाः ॥ शीतवृद्धतरायामास्त्रियामायांतिसांप्रतम् ॥ १२ ॥ रविसंक्रांतसौभाग्यस्तुषारारुणमंडलः ॥ निःश्वासांधइवादर्शश्चंद्रमानप्रकाशते॥१३॥ज्योत्स्नातुषारमलिनापौर्णमास्यांनराजते ॥ सीतेवचातपश्यामालक्ष्यतेनचशोभते ॥१४॥ प्रकृत्याशीतलस्पर्शोहिमविद्धश्चसांप्रतम् ॥ प्रवातिपश्चिमोवायुःकालेद्विगुणशीतलः ॥ १५ ॥

होताहै ॥ ११ ॥ पुष्य नक्षत्र युक्त इस पुष्य मासमें और पाला पडती हुई धूसर वर्ण इन दिनोंको रात्रिमें विना छाये हुए स्थानमें नहीं सोया जाता अब रात्रियों में शीत अधिक पडताहै ॥१२॥ जिस प्रकार श्वासकी वाफ लगनेंसे दर्पण अंधासा होजाताहै, वैसेही सुखसेव्यतादि सबही सौभाग्य इस समय सूर्यसे दबजानें और बरफके द्वारा किरणोंके ढक जानें और धूसरवर्ण होजानेंसे चंद्रमाकाभी अब प्रकाश नहींहैं॥१३॥तुषार करके मलीन होनेंसे चांदनी अब पूर्णमासीकी रात्रिमेंभी नहीं खिलती केवल दीखतीहै जैसे सीताजी धूमके लगनेंसे श्याम होगईहैं और शोभित नहीं होतीं ॥ १४ ॥ स्वभावतः शीतलता युक्त पछादिया पवन अब हिमसे आवृत और उससे मिलकर दूना शीतलहो चल रहाहै ॥ १५ ॥

यव और गेहुओं करके पूर्ण ओस जिनमें पडी हुई ऐसे समस्त वन सूर्यके उदय होनेपर शब्द करते हुए सारस और क्रौंचादिक पक्षियोंसे व्याप्त
होकर शोभा विस्तार करतेहैं ॥ १६ ॥ सुवर्णके वर्णवाले शालि समूह खजूरके फूलकी समान तन्दुल भरी हुई बालोंके लगनेसे कुछ एक
झुके हुए विराजरहेहैं ॥ १७ ॥ सूर्य आकाशमें ऊँचे उठकर चन्द्रमाकी समान शीतल अल्प प्रकाशमय दृष्टि आतेहैं, क्योंकि इधर
उधर फैली हुई उनकी किरणें पालेसे ढक रहीहैं ॥ १८ ॥ धूपका तेज सबेरे २ तो कुछ होताही नहीं दुपहर को कुछ एक सुखका देनेवाला होता

बाष्पच्छन्नान्यरण्यानियवगोधूमवंतिच ॥ शोभंतेभ्युदितेसूर्येनदद्भिःक्रौंचसारसैः ॥ १६ ॥ खर्जूरपुष्पाकृ
तिभिःशिरोभिःपूर्णतंडुलैः ॥ शोभंतेकिंचिदालंबाःशालयःकनकप्रभाः ॥ १७ ॥ मयूखैरुपसर्पद्भिर्हिमनीहा
रसंवृतैः ॥ दूरमभ्युदितःसूर्यःशशांकइवलक्ष्यते ॥ १८ ॥ अग्राह्यवीर्यःपूर्वाह्णेमध्याह्नेस्पर्शतःसुखः ॥ संसक्तः
किंचिदापांडुरातपःशोभतेक्षितौ ॥ १९ ॥ अवश्यायनिपातेनकिंचित्प्रक्लिन्नशाद्वला ॥ वनानांशोभतेभूमिर्निविष्ट
तरुणातपा ॥ २० ॥ स्पृशन्सुविपुलंशीतमुदकंद्विरदःसुखम् ॥ अत्यंततृषितोवन्यःप्रतिसंहरतेकरम् ॥ २१ ॥ एते
हिसमुपासीनाविहगाजलचारिणः ॥ नावगाहंतिसलिलमप्रगल्भाइवाहवम् ॥ २२ ॥ अवश्यायतमोनद्धानीहार
तमसावृताः ॥ प्रसुप्ताइवलक्ष्यंतेविपुष्पावनराजयः ॥ २३ ॥

है और उसी समय वर्ण कुछ पीला पडजानेसे पृथ्वीमें शोभित होता है ॥ १९ ॥ प्रभातमें ओसकी बूंदोंके गिरनेसे हरी २ घास गीली होरहीहै
उस घासपर सूर्यकी किरणें पडनेसे वन भूमिकी शोभाकी सीमा नहीं रहती ॥ २० ॥ वनैला हाथी अधिक प्यासा होनेपरभी शीतल जल
छूतेही उसी समय शूंड खेंच लेताहै ॥ २१ ॥ डरपोक आदमी जिस प्रकार युद्धमें नहीं जाते, वैसेही यह जलचर पक्षीगण जलके समीप बैठे
रह करभी किसी प्रकारसे जलमें डुबकी नहीं मारते ॥ २२ ॥ प्रसून शून्य वनश्रेणी रात्रिमें ओस और अंधकारसे ढक जाने और प्रभातको

कुहरके अंधेरेसे छिपजानेंपर ऐसी लगतीहै मानों सोयरहीहै ॥ २३ ॥ अब समस्त नदियें वाफसे ढकी हुईहैं, और उनके तीरका रेतभी पालेके पडनेंसे गीला होरहाहै; और शब्द करते हुए सारसोंके घूमनेंसे सब नदियें बहुतही शोभायुक्त हुईहैं ॥ २४ ॥ वर्फके गिरनें और सूर्यका तेज मंद होनेंसे,शीतके वशहो पर्वतोंके अग्रभागका जलभी प्रायः स्वादिष्ठ होगयाहै ॥ २५ ॥ अब जराके वश होजानेंसे पत्तोंके गिरजानें और पंखडियोंके टूट जानें व हिमग्रस्त होजानेंसे कमल फूलमें केवल डंडी मात्र रह गईहै अब कमलाकर सरोवर शोभा नहीं पाते ॥ २६ ॥ हे पुरुष श्रेष्ठ। इस दारुण हेमन्त कालमें धर्मात्मा भरतजी आपकी भक्तिके वशहो नगरमें रहकरभी दुःखका बोझ सहन करते हुए तपस्या करते

बाष्पसंछन्नसलिलारुतविज्ञेयसारसाः ॥ हिमार्द्रवालुकास्तीरैः सरितोभांतिसांप्रतम् ॥ २४ ॥ तुषारपतनाच्चैवमृदुत्वाद्भास्करस्यच ॥ शैत्यादगाग्रस्थमपिप्रायेणरसवज्जलम् ॥ २५ ॥ जराझर्झरितैःपत्रैःशीर्णकेसरकर्णिकैः ॥ नालशेषाहिमध्वस्तानभांतिकमलाकराः ॥ २६ ॥ अस्मिंस्तुपुरुषव्याघ्रकालेदुःखसमन्वितः ॥ तपश्चरतिधर्मात्मात्वद्भक्त्याभरतःपुरे ॥ २७ ॥ त्यक्त्वाराज्यंचमानंचभोगांश्चविविधान्बहून् ॥ तपस्वीनियताहारःशेतेशीतेमहीतले ॥ २८ ॥ सोपिवेलामिमांनूनमभिषेकार्थमुद्यतः ॥ वृतःप्रकृतिभिर्नित्यंप्रयातिसरयूंनदीम् ॥ २९ ॥ अत्यंतसुखसंवृद्धःसुकुमारोहिमार्दितः ॥ कथंत्वपररात्रेषुसरयूमवगाहते ॥ ३० ॥ पद्मपत्रेक्षणःश्यामःश्रीमान्निरुदरोमहान् ॥ धर्मज्ञःसत्यवादीचह्रीनिषेधोजितेंद्रियः ॥ ३१ ॥

होंगे ॥ २७ ॥ और राज्य मान और अनेक प्रकारके राज्योचित सुख छोडकर नियत समयपर आहार करके तपस्वी हो शीतल पृथ्वीपर शयन करते होंगे ॥ २८ ॥ वह निश्चय प्रति दिन इस समय निरालस्यहो मंत्री आदिकोंके साथ सरयू नदीमें नहानेंके लिये जाते होंगे ॥ २९ ॥ भरतजी स्वभावसेही सुकुमारहैं और परम सुखसे पलकर इतनें बडे हुएहैं । सो अब वह किस प्रकारसे पाला पडते हुये प्रभात कालमें सरयूके जलसे स्नान करते होंगे। ॥ ३० ॥ आर्य। वह कमलनेत्र,श्यामवर्ण,बडाई करके युक्त शोभावान सूक्ष्मोदर, धर्मज्ञ, सत्यवादी,सभामें बडे ढीठे जितेन्द्रिय॥ ३१ ॥

प्रिय वचन बोलनेवाले शत्रुओंका दमन करनेवाले लंबी भुजाओंवाले लज्जाशील श्रीमान् भरतजी सब सुख भोगको जलांजलि देकर अंतःकरणसे आपकोही आश्रय किये हुएहैं ॥ ३२ ॥ हे वनवासिन्! यद्यपि आपके भ्राता महात्मा भरतजी तापस धर्मका आश्रय करके वनवासी नहीं हुएहैं तथापि उन्होंने आपके अनुरूप कार्यकर स्वर्गको जीत लियाहै ॥ ३३ ॥ जगत्में जो यह कहावत चली आतीहै कि मनुष्योंमें पिताका भाव नहीं आता वरन माताहीका स्वभाव आताहै सो भरतजीनें इस कहावतके विरुद्ध किया क्योंकि उनमें कैकेयीका स्वभाव नहींहै॥३४॥परन्तु श्रीराजाधिराज महाराज दशरथजी जिसके स्वामी और साधु भरतजी जिसके पुत्र वह जननी कैकेयी किस प्रकारसे ऐसी क्रूर

प्रियाभिभाषीमधुरोदीर्घबाहुररिंदमः ॥ संत्यज्यविविधान्सौख्यानार्यंसर्वात्मनाश्रितः ॥ ३२ ॥ जितःस्वर्गस्तवभ्रात्राभरतेनमहात्मना ॥ वनस्थमपितापस्येयस्त्वामनुविधीयते ॥ ३३ ॥ नपित्र्यमनुवर्ततेमातृकंद्विपदाइति ॥ ख्यातोलोकप्रवादोयंभरतेनान्यथाकृतः ॥ ३४ ॥ भर्तादशरथोयस्याःसाधुश्चभरतःसुतः ॥ कथंनुसांबाकैकेयीतादृशीक्रूरदर्शिनी ॥ ३५ ॥ इत्येवंलक्ष्मणेवाक्यंस्नेहाद्वदतिधार्मिके ॥ परिवादंजनन्यास्तमसहन्राघवोऽब्रवीत् ॥ ३६ ॥ नतेऽबामध्यमातातगर्हितव्याकदाचन ॥ तामेवेक्ष्वाकुनाथस्यभरतस्यकथांकुरु ॥ ३७॥ निश्चितैवहिमेबुद्धिर्वनवासेदृढव्रता ॥ भरतस्नेहसंतप्ताबालिशीक्रियतेपुनः ॥ ३८ ॥ संस्मराम्यस्यवाक्यानिप्रियाणिमधुराणिच ॥ हृद्यान्यमृतकल्पानिमनःप्रह्लादनानिच ॥ ३९ ॥

बुद्धिवाली हुई ? ॥ ३५ ॥ महात्मा लक्ष्मणजीनें जब भाईके स्नेहके वश हो इस प्रकार कहा तब श्रीरामचंद्रजी माता कैकेयीकी वह निन्दा न सहते हुए कहनें लगे ॥ ३६ ॥ हे भइया ! मँझली माता कैकेयीकी निन्दा मत करो तुम केवल इक्ष्वाकुनाथ भरतजीकेही गुणगणोंका बखान करो ॥ ३७ ॥ यद्यपि हमारी बुद्धि एक मात्र वनवासमें निश्चित और दृढव्रत हुईहै तथापि भरतजीके स्नेहके वश होकर बावरीसी होग ईहै ॥ ३८ ॥ भरतजीकी प्रिय मधुर हृदयको अमृतकी नांई सिंचन करनेवाली मनको आह्लाद देनेवाली वार्त्ता वार २ हमारे मनमें स्मरण

होरहीहै ॥ ३९ ॥ नहीं जानते कि कितनें दिनोंमें फिर महात्मा भरतजी और शत्रुघ्नजीसे तुम्हारे सहित हम मिलेंगे ! ॥ ४० ॥ रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी इस प्रकारसे विलाप करते २ भ्राता लक्ष्मण और सीताके सहित गोदावरी नदीपर पहुंचकर स्नान करते हुए ॥ ४१ ॥ फिर सबनें गोदावरीके जलसे पितृगणोंको देवतोंको तर्पण करके उदित सूर्य व और दूसरे देवताओंका स्तोत्र किया ॥ ४२ ॥ भगवान् भूतनाथ पार्वती और नन्दिके सहित स्नान करके जिस प्रकारसे शोभाको प्राप्त होते हैं सीताजी और लक्ष्मणजीके सहित नहाकर श्रीरामचन्द्रजीनेंभी वैसेही शोभा धारण की ॥४३॥ इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०आर० षोडशः सर्गः ॥१६॥ श्रीरामचन्द्रजी, सीताजी, व लक्ष्मणजी तीनों जन स्नान करके गोदा

कदाह्यहंसमेष्यामिभरतेनमहात्मना ॥ शत्रुघ्नेनचवीरेणत्वयाचरघुनंदन ॥४० ॥ इत्येवंविलपंस्तत्रप्राप्यगोदावरीं नदीम् ॥ चक्रेभिषेकंकाकुत्स्थःसानुजःसहसीतया॥ ४१ ॥ तर्पयित्वाथसलिलैस्तैःपितॄन्दैवतानपि ॥ स्तुवंतिस्मोदितंसूर्यंदेवताश्चतथानघाः ॥ ४२ ॥ कृताभिषेकःसरराजरामःसीताद्वितीयःसहलक्ष्मणेन ॥ कृताभिषेकस्त्वगराजपुत्र्यारुद्रःसनंदिर्भगवानिवेशः ॥४३॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आदिकाव्येआरण्यकांडेषोडशःसर्गः ॥ १६ ॥ छ॥

कृताभिषेकोरामस्तुसीतासौमित्रिरेवच ॥ तस्माद्गोदावरीतीरात्ततोजग्मुःस्वमाश्रमम् ॥१॥ आश्रमंतदुपागम्य राघवःसहलक्ष्मणः ॥ कृत्वापौर्वाह्णिकंकर्मपर्णशालामुपागमत् ॥ २ ॥ उवाससुखितस्तत्रपूज्यमानोमहर्षिभिः ॥ सरामःपर्णशालायामासीनःसहसीतया ॥ ३ ॥ विरराजमहाबाहुश्चित्रयाचंद्रमाइव ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्राचकार विविधाःकथाः ॥ ४ ॥ तदासीनस्यरामस्यकथासंसक्तचेतसः ॥ तंदेशंराक्षसीकाचिदाजगामयदृच्छया ॥ ५ ॥

वरीके तीरसे आश्रमको लौटे ॥ १ ॥ और श्रीरामचन्द्रजीनें आश्रममें पहुँच कर लक्ष्मणजीके साथ प्रथम कालकी सब क्रिया कर पर्णशाला में प्रवेश किया ॥ २ ॥ और महर्षि लोगों से पूजे जाकर वहां सुखसे वास करनेंलगे उस काल सीताजीके सहित पर्णशालामें आसीन होनेंसे ॥ ३ ॥ महाबाहु रामचन्द्रजी; चित्रा नक्षत्र युक्त चन्द्रमा की समान शोभा पानें लगे। तिसके पीछे भ्राता लक्ष्मणजीके सहित रामचन्द्रजीनें अनेक प्रकारकी कथा वार्त्ता आरंभ करदी ॥ ४ ॥ इस प्रकारसे बैठे रहकर कथा वार्त्ता कहनेंमें लगे हुयेहैं कि इतनेंही में कोई राक्षसी

अपनी इच्छासे घूमतीहुई वहां आई ॥ ५ ॥ यह राक्षसी दशवदन रावणकी बहनथी नाम इसका शूर्पणखा था वह देवताओंकी समान
रामचन्द्रजीके निकट आकर उनको देखती हुई ॥ ६ ॥ उसनें देखा कि रामचन्द्रजीका वदन प्रदीप्तमान है बाहें घुटनोंतक आती हैं दोनों नेत्र
कमलदलकी समान बडे हैं चाल हाथीकी समान है शिर पर जटा धारण किये हुयेहैं ॥ ७ ॥ अंग प्रत्यंग अति कोमल हैं बल विक्रम
अपार है! शरीर राजलक्षणों करके युक्त है! वर्ण नीले कमलकी समान श्यामता लिये हुयेहैं, कोटि मदनकी समान सुन्दर हैं ॥ ८ ॥ इस प्रकार
साक्षात् इन्द्रकी समान श्रीरामचन्द्र जीको देखकर राक्षसी कामसे मोहित हुई । श्रीरामचन्द्रजीका वदन मण्डल श्रेष्ठथा! राक्षसीका मुख खरा
वथा रामचन्द्रजीका मध्य देश गोलाकार व राक्षसीका उदर अति बृहत् था ॥ ९ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके दोनों नेत्र अति विशाल व राक्षसी

सातुशूर्पणखानामदशग्रीवस्यरक्षसः ॥ भगिनीराममासाद्यददर्शत्रिदशोपमम् ॥ ६॥ दीप्तास्यंचमहाबाहुंपद्मपत्रा
यतेक्षणम् ॥ गजविक्रांतगमनंजटामंडलधारिणम् ॥ ७ ॥ सुकुमारंमहासत्त्वंपार्थिवव्यंजनान्वितम् ॥ राममिंदीवर
श्यामंकंदर्पसदृशप्रभम् ॥ ८ ॥ बभूवेंद्रोपमंदृष्ट्वाराक्षसीकाममोहिता ॥ सुमुखंदुर्मुखीरामंवृत्तमध्यंमहोदरी ॥ ९॥
विशालाक्षंविरूपाक्षीसुकेशंताम्रमूर्धजा ॥ प्रियरूपंविरूपासासुस्वरंभैरवस्वना ॥ १० ॥ तरुणंदारुणावृद्धादक्षिणं
वामभाषिणी ॥ न्यायवृत्तंसुदुर्वृत्ताप्रियमप्रियदर्शना॥ ११॥शरीरजसमाविष्टाराक्षसीराममब्रवीत्॥जटीतापसवेषेण
सभार्यःशरचापधृक् ॥ १२॥आगतस्त्वमिमंदेशंकथंराक्षससेवितम्॥ किमागमनकृत्यंतेतत्त्वमाख्यातुमर्हसि॥ १३॥

की आंखें अति बुरीथीं रामचन्द्रके अति श्रेष्ठ घूंघर वाले बालथे और राक्षसी के केश ताम्रवर्ण थे! श्रीरामचन्द्र जी प्रिय रूपवान् और
राक्षसी महाभयानक रूपथी श्रीरामचंद्रजीका अति मधुर स्वरथा और राक्षसीका स्वर नितान्त कर्कश भीषण और भयंकरथा ॥ १० ॥ श्रीराम
चंद्रजी युवाथे, व राक्षसी महावृद्धाथी, श्रीरामचंद्रजी अति मधुर वचन बोलनेंवाले, व राक्षसी अत्यन्त कर्कशभाषिणी थी, श्रीरामचंद्रजी न्याय
वृत्त, और राक्षसी दुर्वृत्तथी, श्रीरामचंद्रजी देखनें में जैसे प्यारे थे ! वह राक्षसी देखनें में वैसीही कुप्यारीथी ॥ ११ ॥ ऐसी शूर्पणखा महाका
मातुर होकर श्रीरामचंद्रजीसे बोली कि तुम जटा रखाये तपस्वीका वेष धारे धनुष बाण लिये स्त्री सहित ॥ १२ ॥ किस कारणसे राक्षसोंसे

सेवित देशमें आयेहो तुम्हारे यहां पर आनेका क्या प्रयोजन है ? सो यथार्थ कहो ॥ १३ ॥ शत्रुओंके तपानेवाले श्रीरामचंद्रजी राक्षसी शूर्पणखाकी यह वार्त्ता सुनकर सरलता सहित कुछ न छिपाते हुए सब वर्णन करने लगे ॥ १४ ॥ श्रीरामचंद्रजी बोले कि देवताओंकी समान विक्रमवान दशरथजी नामक एक राजाथे हम उनके ज्येष्ठ पुत्रहैं लोकमें हमारा नाम रामहै ॥ १५ ॥ और इनका नाम लक्ष्मणहै, यह हमारे आज्ञाकारी छोटे भ्राताहैं, और यह विदेहकुमारी हमारी भार्या हैं इनका सीता ऐसा नामहै ॥ १६ ॥ पिता और माता कैकेयीके कहनेंसे धर्मके लाभकी आशा और धर्मकी रक्षा करनेंके कारण वनमें वास करनेंके लिये हम इस स्थानमें आयेहैं ॥ १७ ॥ इस समय यह

एवमुक्तस्तुराक्षस्याशूर्पणख्यापरंतपः ॥ ऋजुबुद्धितयासर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ १४ ॥ आसीद्दशरथोनामराजा त्रिदशविक्रमः ॥ तस्याहमग्रजःपुत्रोरामोनामजनैःश्रुतः ॥ १५ ॥ भ्रातायंलक्ष्मणोनामयवीयान्मामनुव्रतः ॥ इयं भार्याचवैदेहीममसीतेतिविश्रुता ॥ १६ ॥ नियोगात्तुनरेंद्रस्यपितुर्मातुश्चयंत्रितः ॥ धर्मार्थंधर्मकांक्षीचवनंवस्तुमिहागतः ॥ १७ ॥ त्वांतुवेदितुमिच्छामिकस्यत्वंकासिकस्यवा ॥ त्वंहितावन्मनोज्ञांगीराक्षसीप्रतिभासिमे ॥ १८ ॥ इहवाकिंनिमित्तंत्वमागताब्रूहितत्त्वतः ॥ साब्रवीद्वचनंश्रुत्वाराक्षसीमदनार्दिता ॥ १९ ॥ श्रूयतांरामतत्त्वार्थंवक्ष्यामिवचनंमम ॥ अहंशूर्पणखानामराक्षसीकामरूपिणी ॥ २० ॥ अरण्यंविचरामीदमेकासर्वभयंकरा ॥ रावणोनाममेभ्रातायदितेश्रोत्रमागतः ॥ २१ ॥ प्रवृद्धनिद्रश्चसदाकुंभकर्णोमहाबलः ॥ विभीषणस्तुधर्मात्मानतुराक्षसचेष्टितः ॥ २२ ॥

हमारी इच्छा तुमको जाननेंकी हुईहै, तुम कौनहो किसकी बेटीहो; और किसकी स्त्रीहो ! हमें तो ऐसा जान पडताहै कि तुम राक्षसोंका मन मोहने वालीहो ॥ १८ ॥ और तुम किसलिये यहां आई हो सो सत्यही सत्य कहो ! यह वचन सुनकर वह मदनसे आतुर हुई राक्षसी बोली ॥ १९ ॥ हे रामचंद्र ! तुम ठीक २ हमारा परिचय सुनो हम कहती हैं; हम शूर्पणखा नामक कामरूपा राक्षसी ॥ २० ॥ सबको भय उपजाती हुई अकेली इस वनमें घूमा करतीहैं हमारे भइयाका नाम रावणहै सो कदाचित् तुमने उसका वृत्तान्त व नाम सुनाही होगा ॥ २१ ॥ हमारे और दो भाइयोंका नाम कुम्भकर्ण और विभीषणहै कुंभकर्ण अति बलवान्है और सदा सोताही रहता है और विभीषण परम धार्मिक है राक्षसोंके चरित्र उसमें नहीं हैं ॥ २२ ॥

खर और दूषण यह दोनोंभी हमारे भ्राता रणमें बडे वीर्यवान् और बलशाली लोकमें प्रसिद्ध हैं ॥ २३ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी! तुमको प्रथम देखते ही हम उन सबको छोड छाँड तुम्हारा अपूर्व रूप देख पुरुषोत्तम जान प्रेमके मारे अपना पति बनानेंके लिये यहां आईहैं ॥२४॥ हममें बडा पराक्रमहै; और बल होनेके कारण जहां इच्छा होतीहै वहीं स्वच्छन्दतासे घूमती रहती हूं।सो तुम सदाके लिये हमारे स्वामी बेना। इस सीताको लेकर क्या करोगे? ॥ २५ ॥ यह सीता विकटाकार और कुरूपाहै; किसी भांतिभी यह तुम्हारे योग्य नहींहै हमको देखो; हमहीं रूपके

प्रख्यातवीर्यौचरणेभ्रातरौखरदूषणौ॥२३॥तानहंसमतिक्रांतारामत्वापूर्वदर्शनात् ॥समुपेतास्मिभावेनभर्तारंपुरुषोत्तमम् ॥ २४ ॥अहंप्रभावसंपन्नास्वच्छंदबलगामिनी ॥ चिरायभवभर्तामेसीतयाकिंकरिष्यसि ॥ २५ ॥ विकृताचविरूपाचनसेयंसदृशीतव ॥ अहमेवानुरूपातेभार्यारूपेणपश्यमाम् ॥ २६ ॥ इमांविरूपामसतींकरालांनिर्णतोदरीम् ॥ अनेनसहतेभ्रात्राभक्षयिष्यामिमानुषीम् ॥ २७ ॥ ततःपर्वतशृंगाणिवनानिविविधानिच ॥ पश्यन्सहमयाकामीदंडकान्विचरिष्यसि ॥ २८ ॥ इत्येवमुक्तःकाकुत्स्थःप्रहस्यमदिरेक्षणाम् ॥ इदंवचनमारेभेवक्तुंवाक्यविशारदः ॥ २९ ॥इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेसप्तदशःसर्गः ॥ १७ ॥ ॥ छ ॥ तांतुशूर्पणखांरामःकामपाशावपाशिताम् ॥ स्वेच्छयाश्लक्ष्णयावाचास्मितपूर्वमथाब्रवीत् ॥ १ ॥ कृतदारोस्मिभवतिभार्येयंदयितामम ॥ त्वद्विधानांतुनारीणांसुदुःखाससपत्नता ॥ २ ॥

हेतु तुम्हारी भार्या बननेंके लायकहैं॥२६॥हम तुम्हारे इस भ्राताके सहित इस मानवी, कुरूपा, असती, कराला और नतोदरी सीताको भक्षण कर जांयगी॥२७॥तुम काम भोग में तत्पर होकर हमारे सहित और पर्वतोंके शृङ्गोंको देखते हुए दंडकारण्यमें विचरण करोगे॥२८॥वचन बोलनेमें चतुर रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी यह वचन सुन ऊंचे स्वरसे हँसकर क्रूरनयना शूर्पणखासे बोले॥ २९ ॥इत्यार्षे श्रीम० वा० आ०आ० सप्तदशः सर्गः ॥१७॥ श्रीरामचंद्रजीनें उपहास करनेंके लिये हँस कर मधुर वचनसे उस कामके फंदमें फँसी शूर्पणखासे कहा ॥ १ ॥ अयि कल्याणी! हमारा

विवाह होगयाहै यह सीताजी हमारी स्त्रीहै । सो तुम सरीखी स्त्रियोंको सौतका होना बहुतही दुःखका विषय है ॥ २ ॥ परन्तु हमारे यह छोटे भ्राता लक्ष्मणजी सच्चरित्र श्रीमान् वीर्यवान् और प्रियदर्शनहैं । इनका विवाह अभी नहीं हुआहै अथवा अकृतदार इनके निकट स्त्री नहींहै अथवा इन्होंनें स्त्री परिग्रह नहीं कियाहै ॥ ३ ॥ इन्होंनें पहले कभी स्त्रीका सुख नहीं भोगा है इसी कारण यह विवाहार्थी हुएहैं और विशेष करके यह युवाहैं तिस्से यह सब प्रकारसे तुम्हारे लायक स्वामी होंगे ॥ ४ ॥ हे बडे नेत्रोंवाली ! सूर्यकी प्रभा जिस प्रकार सुमेरुकू भजना करतीहै, तुमभी वैसेही सौत रहित होकर हमारे इन भाईकी स्वामीकी भांतिसे सेवा करो ॥ ५ ॥ वह कामसे मोहित हुई राक्षसी राम

अनुजस्त्वेषमेभ्राताशीलवान्प्रियदर्शनः ॥ श्रीमानकृतदारश्चलक्ष्मणोनामवीर्यवान् ॥ ३ ॥ अपूर्वीभार्ययाचार्थी तरुणःप्रियदर्शनः ॥ अनुरूपश्चतेभर्तारूपस्यास्यभविष्यति ॥ ४ ॥ एनंभजविशालाक्षिभर्तारंभ्रातरंमम ॥ असपत्नावरारोहेमेरुमर्कप्रभायथा ॥ ५ ॥ इतिरामेणसाप्रोक्ताराक्षसीकाममोहिता ॥ विसृज्यरामंसहसाततोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ ६ ॥ अस्यरूपस्यतेयुक्ताभार्याहंवरवर्णिनी ॥ मयासहसुखंसर्वान्दंडकान्विचरिष्यसि ॥ ७ ॥ एवमुक्तस्तुसौमित्रीराक्षस्यावाक्यकोविदः ॥ ततःशूर्पणखींस्मित्वालक्ष्मणोयुक्तमब्रवीत् ॥ ८ ॥ कथंदासस्यमेदासी भार्याभवितुमिच्छसि ॥ सोहमार्येणपरवान्भ्रात्राकमलवर्णिनी ॥ ९ ॥ समृद्धार्थस्यसिद्धार्थानुदितामलवर्णिनी ॥ आर्यस्यत्वंविशालाक्षिभार्याभवयवीयसी ॥ १० ॥

चंद्रजीके यह वचन सुनकर तुरन्त लक्ष्मणजीके निकट जाकर कहनें लगी॥६॥मैं सब स्त्रियोंसे अधिक सुन्दरहूं तिससे तुम्हारे इस रूप लायकही भार्या बनूंगी तुम हमारे सहित सुखपूर्वक समस्त वनोंमें विचरण करोगे ॥ ७ ॥ उस राक्षसीसे ऐसा सुन वचन बोलनेंमें चतुर सुमित्रानंदन लक्ष्मणजी मन्द मन्द हँसकर उस्से यह युक्तियुक्त वचन बोले ॥ ८ ॥ अयि कमलवर्णनि ! हम दासहैं फिर किस कारण तुम हमारी स्त्री बनकर दासी बननेंकी अभिलाषिणी हुईहो ! हम इन बडे भ्राता रामचन्द्रजीके दासहैं ॥ ९ ॥ हे विशालनेत्रवाली ! तुम सिद्धकामा, और आनन्दिता

होकर सर्व भावसे संपत्तिमान् हमारे बडे भ्राता आर्य श्रीरामचन्द्रजीकी दूसरी स्त्री बनो क्योंकि उनसे विवाह करनेमें तुम्हारी विधि भली मिलेगी। उनका श्यामरंग तुम्हारे वर्णसे कुछ २ मिलता हुआहै । परन्तु हमारा तुम्हारा रंग कुछभी नहीं मिलता ॥ १० ॥ फिर जब इनसे विवाह कर लोगी तो यह कुरूपा, असती, भय उपजानेंवाली, कृशोदरी, और वृद्धा भार्याको त्याग करके तुममेंही अनुरागी हो जांयगे ॥११॥अयि वरवर्णिनि! अयि वरारोहे! कौन चतुर पुरुषहै जो तुम्हारे इस श्रेष्ठ रूपका अनादर करके मानुषीमें अनुरागीहो ? ॥ १२ ॥ जब लक्ष्मणजीनें इस प्रकार कहा तो बडे पेटवाली सबलोकोंको डरावनेंवाली निशाचरी शूर्पणखा उस हँसीकी बातको न समझकर लक्ष्मणजीकी बातको सत्यही

एतांविरूपामसतींकरालांनिर्णतोदरीम् ॥ भार्यांवृद्धांपरित्यज्यत्वामेवैषभजिष्यति ॥११॥ कोहिरूपमिदंश्रेष्ठंसंत्यज्यवरवर्णिनि ॥ मानुषीषुवरारोहेकुर्याद्भावंविचक्षणः॥१२॥ इतिसालक्ष्मणेनोक्ताकरालानिर्णतोदरी॥ मन्यतेतद्वचः सत्यंपरिहासाविचक्षणा॥१३ ॥सारामंपर्णशालायामुपविष्टंपरंतपम् ॥ सातयासहदुर्धर्षमब्रवीत्काममोहिता ॥१४॥ इमांविरूपामसतींकरालांनिर्णतोदरीम् ॥ वृद्धांभार्यामवष्टभ्यनमांत्वंबहुमन्यसे ॥ १५ ॥ अद्येमांभक्षयिष्यामि पश्यतस्तवमानुषीम् ॥ त्वयासहचरिष्यामिनिःसपत्नायथासुखम् ॥ १६ ॥ इत्युक्त्वामृगशावाक्षीमलातसदृशेक्षणा ॥ अभ्यगच्छत्सुसंक्रुद्धामहोल्कारोहिणीमिव ॥ १७ ॥ तांमृत्युपाशप्रतिमामापतंतींमहाबलः ॥ निगृह्यरामः कुपितस्ततोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ १८ ॥

समझी ॥ १३ ॥ तिसके पीछे वह मोहित होकर पर्णकुटीमें सीताजीके साथ बैठे हुये शत्रुओंके तपानेंवाले अजेय श्रीरामचन्द्रजीसे कहनें लगी ॥ १४ ॥ कि तुम इस बुढिया कुरूपा कृशोदरी, भय उपजानेंवाली असती स्त्रीमें अनुरागी होकर हमारा आदर सन्मान नहीं करते ॥ १५ ॥ तिससे तुम्हारे सामनेही इसी मुहूर्त्तमें हम इस मानुषीको भक्षण करैंगी और सौतहीन होकर यथा सुखसे घूमा करैंगी ॥ १६ ॥ यह कहकर जलते अंगारेकी समान चमकते हुये नेत्रोंवाली निशाचरी महा क्रोधमें भरकर हरिणके बच्चोंकी समान नेत्रहैं जिनके ऐसी सीताजीके सामनेको दौडी जैसे रोहिणीकी ओर उल्का धावमानहो ॥ १७ ॥ उस यमकी फांसीकी समान राक्षसीको सामने आते देखकर श्रीरामचन्द्रजी क्रोधमें

भर उसको रोक लक्ष्मणजीसे बोले ॥ १८ ॥ हे लक्ष्मण ! क्रूर स्वभाववाले ! दुष्टोंके साथमें हँसी करनाभी किसी भांति कर्त्तव्य नहींहै । देखो इस परिहासके होनेंसेही जानकीजीको अपने जीवनमें संदेह हुआहै॥१९॥हे पुरुषश्रेष्ठ ! इस समय तुम इस कामसे मत्त हुई बडे पेटवाली कुरूपिणी असती राक्षसीको औरभी कुरूप करदो ॥ २०॥ महाबलवान् श्रीलक्ष्मणजीनें श्रीरामचन्द्रजीके यह वचन सुनकर महाक्रोधितहो तलवार उठाकर उनके सामनेही राक्षसी शूर्पणखाके नाक कान काट डाले ॥२१॥ नाक कान कटायेहुए घोर स्वभाववाली वह राक्षसी उस समय विकट

क्रूरैरनार्यैःसौमित्रेपरिहासःकथंचन ॥ नकार्यःपश्यवैदेहींकथंचित्सौम्यजीवतीम् ॥ १९ ॥ इमांविरूपामसतीम
तिमत्तांमहोदरीम् ॥ राक्षसींपुरुषव्याघ्रविरूपयितुमर्हसि ॥ २० ॥ इत्युक्तोलक्ष्मणस्तस्याःक्रुद्धोरामस्यपश्यतः ॥
उद्धृत्यखड्गंचिच्छेदकर्णनासेमहाबलः ॥ २१ ॥ निकृत्तकर्णनासातुविस्वरंसाविनद्यच ॥ यथागतंप्रदुद्रावघोराशू
र्पणखावनम् ॥ २२॥ साविरूपामहाघोराराक्षसीशोणितोक्षिता ॥ ननादविविधान्नादान्यथाप्रावृषितोयदः ॥ २३॥
साविक्षरंतीरुधिरंबहुधाघोरदर्शना ॥ प्रगृह्यबहुगर्जंतीप्रविवेशमहावनम् ॥ २४ ॥ ततस्तुसाराक्षससंघसंवृतंखरंजन
स्थानगतंविरूपिता ॥ उपेत्यतंभ्रातरमुग्रतेजसंपपातभूमौगगनाद्यथाशनिः ॥ २५ ॥

शब्दसे चिल्लातीहुई जहांसे आईथी उसी वनकी ओर शीघ्रतासे दौडी ॥२२॥ अति भयंकर शरीरवाली कुरूपा वह राक्षसी शरीरमें रुधिर लगाये हुए वर्षा कालीन बादरकी समान विविध प्रकारके शब्द करनें लगी॥२३॥तिसके पीछे वह बांहे उठाकर घावोंसे रुधिर बहाती—गर्जती हुई महा वनमें प्रवेश कर गई ॥ २४ ॥ वहां प्रवेश करके उसी कुरूप रूपसे राक्षसगणोंसे घेरे हुए जनस्थानवासी उग्र तेजवान् अपनें भाई खरके

निकट जाकर आकाशसे वज्रपातकी समान पृथ्वीमें गिरी ॥२५॥ रुधिर जिसके सब अंगोंमें लगा हुआ भय और मोहसे जिसका चित्त ठिकानें नहीं ऐसी उस खरकी बहिन राक्षसी शूर्पणखानें खरसे स्त्री और भ्राताके सहित श्रीरामचन्द्र जीका वनमें आना और उनसे अपने नाक कान काटे जानेंका सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा॰ वा॰ आ॰ पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषानुवादे आर॰ अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥ राक्षसगण खर अपनी बहनको कुरूपा, शरीरमें रुधिर लगा हुआ और पृथ्वीमें पडा हुआ देखकर क्रोधसे संतापित हो, बूझनें लगा ॥ १ ॥ खरनें कहा, उठकर बैठो, वृत्तान्त तो कहो, मूर्च्छा और चित्त की चपलताको छोडो, साफ़ २ कहो कि किसनें तुमको ऐसा विरूप

ततःसभार्यंभयमोहमूर्छितासलक्ष्मणंराघवमागतंवनम् ॥ विरूपणंचात्मनिशोणितोक्षिताशशंससर्वंभगिनीखरस्य सा ॥ २६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेअष्टादशःसर्गः ॥ १८ ॥ ॥ ७ ॥ ॥
तांतथापतितांदृष्ट्वाविरूपांशोणितोक्षिताम् ॥ भगिनींक्रोधसंतप्तःखरःपप्रच्छराक्षसः ॥ १ ॥ उत्तिष्ठतावदाख्याहिप्र मोहंजहिसंभ्रमम् ॥ व्यक्तमाख्याहिकेनत्वमेवंरूपाविरूपिता ॥ २ ॥ कःकृष्णसर्पमासीनमाशीविषमनागसम् ॥ तुदत्यभिसमापन्नमंगुल्यग्रेणलीलया ॥ ३ ॥ कालपाशंसमासज्यकंठेमोहान्नबुध्यते ॥ यस्त्वामद्यसमासाद्यपी तवान्विषमुत्तमम् ॥ ४ ॥ बलविक्रमसंपन्नाकामगाकामरूपिणी ॥ इमामवस्थांनीतात्वंकेनांतकसमागता ॥ ५ ॥ देवगंधर्वभूतानामृषीणांचमहात्मनाम् ॥ कोयमेवंमहावीर्यस्त्वांविरूपांचकारह ॥ ६ ॥

किया? ॥ २॥ किसनें सामने बैठे हुए, कुण्डली बाँधे हुए निरपराध विषधर काले सांपको खेलसेही उंगली के पोरुएसे छेडकर जगायाहै? ॥३ ॥ उसनें तेरे साथ कुत्सित व्यापार कर अब भयंकर विष पिया, अपने गलेमें कालकी फांसी डाली सो वह अज्ञानी इस बात को जो विपत्ति उसके ऊपर पडेगी उसको नहीं समझा है ॥ ४ ॥ बल विक्रम सम्पन्न यमराजकी समान चलनेवाली कामरूपिणी यमसमान तुम किसके पास गईथी, कि जिसनें तुम्हारी यह दशा की है? ॥ ५ ॥ देव गन्धर्व भूत और महात्मा ऋषि लोगोंमें कौन ऐसा वीर्यवान् है कि–जिसनें

तुमको विरूप किया है। ॥ ६ ॥ देवताओंमें पाकशासन सहस्रलोचन, इन्द्रके सिवाय, ब्राह्मणमें हम ऐसा और किसीको नहीं देखते जो हमारा अप्रिय कार्य करे ॥ ७ ॥ हंस जिस प्रकार जलसे मिले हुए दूधको अलग कर पीलेताहै आज हम भी प्राण हरणकारो तीरोंके समूहसे उसके शरीरसे प्राण अलग करेंगे, कि जिसनें तुमको विरूप किया है ॥ ८ ॥ समर में मुझ करके शरजालद्वारा छिन्न मर्म किसमरे हुए पुरुषका फेन सहित रुधिर पृथ्वीनें पीनेंकी इच्छा की है। ॥ ९ ॥ लडाईमें मुझ करके मारे हुए किस पुरुषके देहसे मांस नोच २ कर आनंद सहित चील गिद्धादि पक्षी खांयगे ॥ १० ॥ हम संग्राममें जिसके ऊपर चढाई करेंगे उस हतभागेको, क्या देवता, क्या गन्धर्व, क्या

नहिपश्याम्यहंलोकेयःकुर्यान्ममविप्रियम् ॥ अमरेषुसहस्राक्षंमहेंद्रंपाकशासनम् ॥ ७ ॥ अद्याहंमार्गणैःप्राणानादा
स्येजीवितांतगैः ॥ सलिलेक्षीरमासक्तंनिष्पिबन्निवसारसः ॥ ८ ॥ निहतस्यमयासंख्येशरसंकृत्तमर्मणः ॥ सफेनं
रुधिरंकस्यमेदिनीपातुमिच्छति ॥ ९ ॥ कस्यपत्ररथाःकायान्मांसमुत्कृत्यसंगताः ॥ प्रहृष्टाभक्षयिष्यंतिनिहत
स्यमयारणे ॥ १० ॥ तंनदेवानगंधर्वानपिशाचानराक्षसाः ॥ मायापकृष्टंकृपणंशक्तास्त्रातुंमहाहवे ॥ ११ ॥ उपा
लभ्यशनैःसंज्ञातंमेशंसितुमर्हसि ॥ येनत्वंदुर्विनीतेनवनेविक्रम्यनिर्जिता ॥ १२ ॥ इतिभ्रातुर्वचःश्रुत्वाक्रुद्धस्यचाविशे
पतः ॥ ततःशूर्पणखावाक्यंसबाष्पमिदमब्रवीत् ॥ १३ ॥ तरुणौरूपसंपन्नौसुकुमारौमहाबलौ ॥ पुंडरीकवि
शालाक्षौचीरकृष्णाजिनांबरौ ॥ १४ ॥ फलमूलाशनौदांतौतापसौब्रह्मचारिणौ ॥ पुत्रौदशरथस्यास्तांभ्रातरौराम
लक्ष्मणौ ॥ १५ ॥ गंधर्वराजप्रतिमौपार्थिवव्यंजनान्वितौ ॥ देवौवादानवावेतौनतर्कयितुमुत्सहे ॥ १६ ॥

पिशाच, क्या राक्षस, कोई भी उद्धार करनेंको समर्थ नहीं होगा ॥ ११ ॥ इस समय तुम सहज २ सावधान होकर हमसे कहो कि किस दुष्ट व्यक्तिनें वनमें पराक्रम प्रकाश करके तुमको पराजय किया है? ॥ १२ ॥ महा क्रोधित हुए अपनें भाई खरके यह वचन सुनकर शूर्पणखा आंसू पोंछती हुई बोली ॥ १३ ॥ कि तरुण, रूपसम्पन्न, सुकुमार, महाबलवान् कमलनयन चीर व मृग चर्म धारण किये ॥ १४ ॥ कन्द मूल फलके खानेवाले, जितेन्द्रिय, तपस्वी, ब्रह्मचारी राजा दशरथके दो पुत्र राम, व लक्ष्मण ॥ १५ ॥ वह देखनेंमें गन्धर्वराजकी समान

इ… हो सकता ॥ १६ ॥ हमने देखा है
और राजलक्षणोंकरके युक्त जान पडतेहैं। वह दोनों जन देव हैं; अथवा दानव इसका कुछ निश्चय नहीं हो सकता ॥ १६ ॥ हमने देखा है
कि वहां पर उन दोनों जनोंके साथ एकरूपवती सब भूषण धारण किये हुए युवाअवस्थाको प्राप्त एक स्त्रीभीहै ॥ १७ ॥ उन दोनों भाइयोंनें
मिलकर उस स्त्रीके कहनेसे, जैसे कोई अनाथ कुलटा स्त्रीकी दुर्दशा करताहै, वही दशा हमारी की अर्थात् नाक कान काट डाले ॥ १८ ॥
हम कुटिल चरित्रवाली उस स्त्रीका और उन दोनों जनोंका झाग सहित रुधिर समरमें पान करनेकी इच्छा करतीहैं ॥ १९ ॥ तुम हमारी यह
पहली अभिलाषा पूर्ण करो हम संग्राममें उस स्त्रीका और उन दोनों का खून पियेंगी ॥ २० ॥ जब शूर्पणखाने यह वचन कहे तब खर

तरुणीरूपसंपन्नासर्वाभरणभूषिता॥ दृष्टातत्रमयानारीतयोर्मध्येसुमध्यमा ॥ १७ ॥ ताभ्यामुभाभ्यांसंभूयप्रम दामधिकृत्यताम्॥ इमामवस्थांनीताहंयथाऽनाथाऽसतीतथा ॥ १८॥ तस्याश्चानृजुवृत्तायास्तयोश्चहतयोरहम्॥ सफेनंपातुमिच्छामिरुधिरंरणमूर्धनि ॥ १९ ॥ एषमेप्रथमःकामःकृतस्तत्रत्वयाभवेत्॥ तस्यास्तयोश्चरुधिरंपिबे यमहमाहवे ॥ २० ॥ इतितस्यांब्रुवाणायांचतुर्दशमहाबलान्॥ व्यादिदेशखरःक्रुद्धोराक्षसानंतकोपमान्॥ २१॥ मानुषौशस्त्रसंपन्नौचीरकृष्णाजिनांबरौ॥ प्रविष्टौदंडकारण्यंघोरंप्रमदयासह ॥ २२ ॥ तौहत्वातांचदुर्वृत्तामुपावर्तितुमर्हथ॥ इयंचभगिनीतेषांरुधिरंममपास्यति ॥ २३॥ मनोरथोयमिष्टोऽस्याभगिन्याममराक्षसाः॥ शीघ्रंसंपाद्यतां गत्वातौप्रमथ्यस्वतेजसा ॥२४॥ युष्माभिर्निहतौदृष्ट्वातावुभौभ्रातरौरणे॥इयंप्रहृष्टामुदितारुधिरंयुधिपास्यति॥२५॥

ने क्रोधित होकर महाबलवान् [१४] राक्षसोंको आज्ञादी कि ॥ २१ ॥ शस्त्र लगाए हुए चीर व मृगचर्म पहरे हुए, दो मनुष्य घोर दण्डका
रण्यमें स्त्रीसहित आये हैं ॥ २२ ॥ सो तुम उन दोनों जनोंको और उस दुष्टा स्त्रीको मार करके लौट आओ क्योंकि हमारी यह बहन उन
का रुधिर पियेगी ॥ २३ ॥ हे राक्षसो! तुम लोग शीघ्र जाकर बलसे उन दोनोंजनोंको संहार करके हमारी बहनका यह अभीष्ट मनोरथ पूरा
करो ॥ २४ ॥ तुमनें युद्धमें उन दोनों भाइयोंको मार डालाहै सो देखकर हमारी यह बहन अतिशय संतोषित और हर्षित होकर युद्धके

स्थलमें उनका रुधिर पियेगी ॥ २५ ॥ इस प्रकारकी आज्ञा पाकर यह चौदह राक्षस वायुसे चलायमान मेघको समान शूर्पणखाके साथ जहां श्रीरामचन्द्रजीथे, उस स्थानकी यात्रा करते हुए ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आर० एकोनविंशःसर्गः ॥ १९ ॥ तिसके पीछे शूर्पणखा श्रीरामचन्द्रजीके आश्रममें आई, और राक्षसोंको सीताजीके सहित उन दोनों भ्राताओंको दिखा दिया ॥ १ ॥ उन राक्षसों नें पर्णशालामें महाबलवान् श्रीरामचन्द्रजीको श्रीसीताजीके सहित बैठा और लक्ष्मणजीसे सेवित देखा ॥ २ ॥ श्रीमान् रघुनन्दन रामचन्द्रजी इन राक्षसोंको आया हुआ देखकर दीप्तिसे तेजमान भ्राता लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ३ ॥ हे लक्ष्मण! एक घडीभर तुम सीताजीके निक

इतिप्रतिसमादिष्टाराक्षसास्तेचतुर्दश ॥ तत्रजग्मुस्तयासार्धंघनावातेरिताइव ॥ २६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेएकोनविंशःसर्गः ॥१९॥ ॥छ॥ ॥ ततःशूर्पणखाघोराराघवाश्रममागता॥ राक्षसानाचचक्षेतौभ्रातरौसहसीतया ॥ १ ॥ तेरामंपर्णशालायामुपविष्टंमहाबलम् ॥ ददृशुःसीतयासार्धंलक्ष्मणेनापिसेवितम् ॥ २ ॥ तांदृष्ट्वाराघवःश्रीमानागतांस्तांश्चराक्षसान् ॥ अब्रवीद्भ्रातरंरामोलक्ष्मणंदीप्ततेजसम् ॥ ३ ॥ मुहूर्तंभवसौमित्रेसीतायाःप्रत्यनंतरः ॥ इमानस्यावधिष्यामिपदवीमागतानिह ॥ ४ ॥ वाक्यमेतत्ततःश्रुत्वारामस्यविदितात्मनः ॥ तथेतिलक्ष्मणोवाक्यंराघवस्यप्रपूजयन् ॥ ५ ॥ राघवोपिमहच्चापंचामीकरविभूषितम् ॥ चकारसज्जंधर्मात्मातानिरक्षांसिचाब्रवीत् ॥ ६ ॥ पुत्रौदशरथस्यावांभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ प्रविष्टौसीतयासार्द्धंदुश्चरंदंडकावनम् ॥ ७ ॥ फलमूलाशनौदांतौतापसौब्रह्मचारिणौ ॥ वसंतौदंडकारण्येकिमर्थमुपहिंसथ ॥ ८ ॥

ट रहो। इतनेमें हम इस राक्षसीके पक्षपाती इन सब राक्षसोंको मार डालें ॥ ४ ॥ तब विदितात्मा लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीके वचन श्रवण करके तथास्तु कह उनकी बात शिरमाथे चढाते हुए ॥ ५ ॥ व इधर धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रभी सुवर्णभूषित महाधनुषमें रोदा चढाय इन सब राक्षसोंसे बोले ॥ ६ ॥ हम दो भ्राता हैं, नाम हमारा राम व लक्ष्मण है राजा दशरथजीके पुत्र हैं; हम सीता सहित इस दुर्गम दण्डकारण्यमें आयेहैं ॥ ७ ॥ हम फल मूल खानेवाले अपनी इन्द्रियोंको जीतेहुएहैं तपस्वी और धर्मचारी होकर दण्डकारण्यमें वास करतेहैं,

सो तुम किसकारण हमारें उपर चढाई करते हो॥८॥ यदि कहो कि तुम तपस्वी होकर धनुप क्यों धारण किये हो तौ इसका उत्तर यह है कि
तुम लोग पापात्मा हो सो महावनमें ऋषि लोगोंकी आज्ञासे हम तुमको विनाश करनेके लिये धनुप धारणकर यहां आयेहैं ॥ ९ ॥ सन्तुष्ट हो
कर इसी स्थानमें खडे रहो, और आगे न बढो; हे निशाचरगण! यदि प्राणोंका मोह होवे, और तुम इसका प्रयोजन समझते हो तौ
यहांसे लौट जाओ हम किसीको नहीं मारेंगे ॥ १० ॥ ब्रह्मघाती, शूलधारी, भयंकर यह चौदह राक्षस श्रीरामचंद्रजीके यह
वचन श्रवण करके महाक्रोधित हो बोले ॥ ११ ॥ सबही लाल २ नेत्र कर रामचंद्रके प्रति कठोर वचन कहते थे वह सब श्रीरामचंद्रजीके परा

युष्मान्पापात्मकान्हंतुंविप्रकारान्महाहवे ॥ ऋषीणांतुनियोगेनसंप्राप्तःसशरासनः ॥ ९॥ तिष्ठतैवात्रसंतुष्टानोपाव
तितुमर्हथ ॥ यदिप्राणैरिहार्थोवोनिवर्तध्वंनिशाचराः ॥ १० ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाराक्षसास्तेचतुर्दश ॥ ऊचुर्वाचंसु
संक्रुद्धाब्रह्मघ्नाःशूलपाणयः ॥११॥ संरक्तनयनाघोरारामंसंरक्तलोचनम्॥परुषामधुराभाषंहृष्टादृष्टपराक्रमम् ॥१२॥
क्रोधमुत्पाद्यनोभर्तुःखरस्यसुमहात्मनः ॥ त्वमेवहास्यसेप्राणान्सद्योस्माभिर्हतोयुधि ॥१३॥ काहितेशक्तिरेकस्यब
हूनांरणमूर्धनि ॥ अस्माकमग्रतःस्थातुंकिंपुनर्योद्धुमाहवे ॥ १४॥ एभिर्बाहुप्रयुक्तैश्चपरिघैःशूलपट्टिशैः ॥ प्राणांस्त्य
क्ष्यसिवीर्यंचधनुश्चकरपीडितम् ॥ १५ ॥ इत्येवमुक्त्वासंरब्धाराक्षसास्तेचतुर्दश ॥ उद्यतायुधनिस्त्रिंशारामेवाभि
दुद्रुवुः ॥ १६ ॥ चिक्षिपुस्तानिशूलानिराघवंप्रतिदुर्जयम् ॥ तानिशूलानिकाकुत्स्थःसमस्तानिचतुर्दश ॥ १७ ॥

क्रमको नहीं जानतेथे इससे हर्षयुतहो मधुर वचन बोलनेंवाले श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ १२ ॥ तुमने हमारे प्रभु महात्मा खरको क्रोध उपजा
याहै, इस कारण अभी युद्धमें हमारे हाथसे मारे जाकर तुमको शीघ्रही प्राण छोडने पडेंगे ॥ १३ ॥ तुम इकले हो और हम बहुतहैं, इसलिये
लडाईमें युद्ध करना तो दूर रहै हमारे सामनें भी तुम खडे नहीं हो सकोगे ॥ १४ ॥ हमारे इन बाहोंसे परिघ, शूल, और पटासे घायल
होकर तुमको प्राण, वीर्य और हाथमें धारण किया हुआ धनुप त्याग करना पडेगा ॥ १५ ॥ यह चौदह राक्षस इस भांतिसे कहकर महा
क्रोधित हो आयुध और खड्ग उठाकर श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख दौडे ॥१६॥ और यह सब दुर्जय अस्त्र शस्त्र शूलादि श्रीरामचंद्रजीके ऊपर चलानें

लगे । उन चौदह राक्षसोंके चलाये हुए शूल आदि श्रीरामचंद्रजीनें ॥ १७ ॥ चौदहही स्वर्ण भूषित बाणोंसे काटकर फेंक दिये । तत्प श्चात् महातेजवान् श्रीरामचंद्रजीनें सूर्यकी समान प्रभावाले बाण ग्रहणकर ॥ १८ ॥ उनको धनुष पर चढाय महा क्रोधवान् हो चौदह राक्ष सोंको ताक कर शिलपशाणित नामक बाण ॥ १९ ॥ छोडे, जिस प्रकार इन्द्र वज्र छोडतेहैं । यह सब नाराच अति वेगसे राक्षसोंकी छातियों में प्रवेश कर रुधिरमें सन ॥ २० ॥ पृथ्वीमें गिरे जिस प्रकार वँमईमें से सांप निकला करतेहैं।राक्षसभी इन सब बाणोंसे छिन्न भिन्न हृदयहो पृथ्वी में गिरे । जैसे जड कटे हुए वृक्ष भूमिमें गिर पडतेहैं ॥२१॥ वह राक्षस कलेजेमें बाण लगनेके कारण रुधिरमें सराबोर हो रहेथे, प्राण जाते रहेथे

तावद्भिरेवचिच्छेदशरैःकांचनभूषितैः ॥ ततःपश्यन्महातेजानाराचान्सूर्यसन्निभान् ॥ १८ ॥ जग्राहपरमक्रुद्धश्च तुर्दशशिलाशितान् ॥ गृहीत्वाधनुरायम्यलक्ष्यानुद्दिश्यराक्षसान् ॥१९ ॥ मुमोचराघवोबाणान्वज्रानिवशतक्रतुः ॥ तेभित्त्वारक्षसांवेगाद्वक्षांसिरुधिरप्लुताः ॥ २० ॥ विनिष्पेतुस्तदाभूमौवल्मीकादिवपन्नगाः ॥ तैर्भग्नहृदयाभूमौभि न्नमूलाइवद्रुमाः ॥२१॥ निपेतुःशोणितस्नाताविकृताविगतासवः ॥ तान्भूमौपतितान्दृष्ट्वाराक्षसीक्रोधमूर्च्छिता २२ ॥ उपगम्यखरंसातुकिंचित्संशुष्कशोणिता ॥ पपातपुनरेवार्तासनिर्यासेववल्लरी ॥ २३ ॥ भ्रातुःसमीपेशोकार्तासससर्ज निनदंमहत् ॥ सस्वरंमुमुचेबाष्पंविवर्णवदनातदा ॥ २४ ॥ निपातितान्प्रेक्ष्यरणेतुराक्षसान्प्रधाविताशूर्पणखापुन स्ततः ॥ वधंचतेषांनिखिलेनरक्षसांशशंससर्वंभगिनीखरस्यसा ॥ २५ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआ दिकाव्येआरण्यकांडेविंशतितमःसर्गः ॥ २० ॥

उनकी सूरतें बिगडगईथीं ऐसा उन राक्षसोंको गिरा हुआ देखकर राक्षसी शूर्पणखा क्रोधसे अधीरा होकर ॥ २२ ॥ अपने भाई खरके पास जा फिर कातरहो गिर पडी उस समय उसके शरीरका रक्त कुछेक सूख गयाथा इस कारण वह गोंद लगी लताके समान दृष्टि आतीथी ॥ २३॥ राक्षसी अपने भ्राता खरके निकट शोकसे पीड़ितहो घोर चिल्लाने लगी और उदासीन मुख व विकट शब्दसे रोने लगी ॥ २४ ॥ खरकी बहन शूर्पणखा राक्षसी राक्षसोंको मराहुआ देख वेगसे दौडआकर खरसे बोली कि राक्षस सब मारे गये ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा

मायणे आदिकाव्ये वाल्मीकीये आरण्यकांडे विंशतितमःसर्गः ॥ २० ॥ अनर्थके निमित्त आईहुई शूर्पणखाको फिर पृथ्वीमें पडा देखकर खर क्रोधमें भर फिर जोरसे कहनें लगा ॥ १ ॥ कि हमनें तुम्हारा प्रिय कार्य करनेंके लिये मांस खानेवाले, चौदह राक्षसोंको आज्ञादीथी सो अब फिर तुम किस कारणसे रो रहीहो? ॥ २ ॥ वह राक्षस जो कि हमनें भेजेहैं सब हमारे अनुरागी भक्त और सदाही हित करनेंवालेहैं वह किसीके मारेसे मरनेंवाले नहींहैं और सबही अंतःकरणसे हमारी आज्ञाका पालन करते रहतेहैं ॥ ३ ॥ फिर तुम किस कारण हानाथ कह वार २ चिल्लाकर सर्पकी समान लोट रहीहो सो इसका क्या कारणहै! उसको मैं जानना चाहताहूं ॥ ४ ॥ हमसा रक्षक होनेंपरभी तुम

सपुनःपतितांदृष्ट्वाक्रोधाच्छूर्पणखांपुनः ॥ उवाचव्यक्तयावाचातामनर्थार्थमागताम् ॥ १ ॥ मयात्विदानींशूरास्तेराक्षसाःपिशिताशनाः ॥ त्वत्प्रियार्थंविनिर्दिष्टाःकिमर्थंरुद्यतेपुनः ॥ २ ॥ भक्ताश्चैवानुरक्ताश्चहिताश्चममनित्यशः ॥ हन्यमानानहन्यंतेननकुर्युर्वचोमम ॥३॥ किमेनच्छ्रोतुमिच्छामिकारणंयत्कृतेपुनः॥हानाथेतिविनर्दंतीसर्पवच्चेष्टसेक्षितौ ॥ ४ ॥ अनाथवद्विलपसिकिंनुनाथेमयिस्थिते ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठमामैवंवैक्लव्यंत्यज्यतामिति ॥५॥ इत्येवमुक्तादुर्धर्षाखरेणपरिसांत्विता ॥ विमृज्यनयनेसास्रेखरंभ्रातरमब्रवीत् ॥ ६ ॥ अस्मीदानीमहंप्राप्ताहतश्रवणनासिका ॥ शोणितौघपरिक्लिन्नात्वयाचपरिसांत्विता ॥ ७॥ प्रेषिताश्चत्वयाशूराराक्षसास्तेचतुर्दश ॥ निहंतुंराघवंघोरंमत्प्रियार्थंसलक्ष्मणम् ॥ ८॥ तेतुरामेणसामर्षाःशूलपट्टिशपाणयः॥ समरेनिहताःसर्वेसायकैर्मर्मभेदिभिः ॥ ९ ॥

किस कारण अनाथकी समान विलाप करतीहो! उठो और शोकका त्याग करो ॥ ५ ॥ खरनें जब इस प्रकार कहकर विशेप भांतिसे शूर्पणखाको समझाया बुझाया तब दुर्द्धर्ष शूर्पणखा आंसूभरे नेत्रोंको पोंछ बोली ॥ ६ ॥ कि हमारे नाक कान दोनोंही गयेहैं और मैं खूनसे भीज गईहूं इस अवस्थामें पहले की समान फिर तुम्हारे पास आईहूं और तुमने हमको बहुत समझाया बुझाया ॥ ७ ॥ परन्तु तुमनें जो हमारा प्रिय कार्य करनेंकी कामनासे लक्ष्मण सहित भयानक रामचंद्रको मार डालनेंके लिये जो वीर चौदह राक्षस भेजेथे ॥ ८ ॥ रामचंद्रनें मर्मभेदी

बाणोंको छोडकर शूल, पटा आदि, हाथमें लिये हुए क्रोधपरायण, उन सबही राक्षसोंको युद्धमें मारडाला॥९॥ अतिशय तेजस्वी राक्षसोंको क्षण भरमेंही पृथ्वी पर पडा हुआ देख और रामचंद्रका यह भारी कार्यदेख मुझको महा भय लगताहै॥१०॥मैं डरी हुईहूं, उत्कंठितहूं, और विषादित होकर सबही जगह भय देखती हुई तुम्हारी शरणमें आईहूं ॥११॥ तुम किस कारणसे हमारा उद्धार नहीं करते? हम विषाद रूप मगर और गोहोंसे भरे हुए तरङ्ग उठते हुए गंभीर शोक सागरमें डूब रहीहैं॥१२॥जो मांस खानेवाले राक्षस हमारे साथ तुमनें भेजेथे उन सबको रामचंद्रनें तीखे बाणोंसे मारडाला ॥१३॥ यदि हमारे ऊपर और उन सब राक्षसोंकी सन्तानोंके ऊपर तुमको दयाहो, यदि रामचंद्रसे युद्ध करनेकी शक्ति और

तान्भूमौपतितान्दृष्ट्वाक्षणेनैवमहाजवान् ॥ रामस्यचमहत्कर्ममहांस्त्रासोभवन्मम ॥ १० ॥ सास्मिभीता समुद्विग्नाविषण्णाचनिशाचर ॥ शरणंत्वांपुनःप्राप्तासर्वतोभयदर्शिनी ॥ ११ ॥ विषादनक्राध्युषितेपरित्रासोर्मिमालिनि ॥ किंमांनत्रायसेमग्नांविपुलेशोकसागरे ॥ १२ ॥ एतेचनिहताभूमौरामेणनिशितैःशरैः ॥ येचमेपदवींप्राप्ताराक्षसाःपिशिताशनाः ॥ १३ ॥ मयितेयद्यनुक्रोशोयदिरक्षःसुतेषुच ॥ रामेणयदिशक्तिस्तेतेजोवास्तिनिशाचर ॥ १४ ॥ दंडकारण्यनिलयंजहिराक्षसकंटकम्॥यदिराममामित्रघ्नंनत्वमद्यवधिष्यसि ॥१५ ॥तवचैवाग्रतःप्राणांस्त्यक्ष्यामि निरपत्रपा॥ बुद्ध्याहमनुपश्यामिनत्वंरामस्यसंयुगे ॥ १६ ॥ स्थातुंप्रतिमुखेशक्तःसबलोपिमहारणे ॥ शूरमानीनशूरस्त्वंमिथ्यारोपितविक्रमः॥१७॥अपयाहिजनस्थानात्त्वरितःसहबांधवः॥जहित्वंसमरेमूढान्यथातुकुलपांसन॥१८॥

तेज तुममेंहो ॥ १४ ॥ तब तो राक्षस कुलके कण्टक रूप दंडकारण्यवासी रामचंद्रको आजही मारडालोयदि शत्रु ओंके मारनेवाले रामचंद्रको तुम आजही संहार न कर डालोगे ॥ १५॥ तो हम लाजरहित होकर तुम्हारे सामनेंही प्राण त्याग करेंगी क्योकि हमें अपनी बुद्धिसे जान पडता है कि तुम संग्राममें ॥ १६॥ रामचंद्रके सामने खडे न हो सकोगे यद्यपि तुम्हारे साथ चतुरंगिनी सेनाभी भारीहै और तुम अपनेको शूर कहकर अभिमानभी करतेहो किन्तु वास्तवमें तुम शूर नहीं हो और तुम्हारा विक्रमभी मिथ्या कहनेकेही लियेहै ॥ १७ ॥ हे मूढ ! हे कुलाधम,

तुम इस मुहूर्त्तही बन्धु बान्धव कुटुम्ब सहित इस जनस्थानसे भाग जाओ ॥ १८ ॥ नहीं तो राम और लक्ष्मणको संग्रा
संहार करो, राम लक्ष्मण मनुष्यहैं यदि उनको मारनेकीभी सामर्थ्य तुममें नहींहै तो हीनवीर्य दुर्बल होकर किस प्रकारसे यहां रह
सकोंगे ॥ १९ ॥ रामचंद्रके तेजसे निन्दितहो थोडेही समयमें तुम्हारा नाश हो जायगा। दशरथकुमार रामचंद्र स्वभावसेही अतिशय तेज
मानहैं ॥ २० ॥ और उनके भाई लक्ष्मणभी महावीर्यवानहैं कि जिन्होनें हमारे नाक कान काट डालेहैं इस प्रकारसे वह बडे उदरवाली राक्षसी
बहुत भांतिसे विलाप कर॥२१॥अपने भ्राता खरके निकट शोकके मारे व्याकुलहो अचेतन होगई और दुःखसे व्याकुलहो दोनों हाथोंसे छाती पीटर

मानुषौतौनशक्तोषिहंतुंवैरामलक्ष्मणौ ॥ निःसत्त्वस्याल्पवीर्यस्यवासस्तेकीदृशस्त्विह ॥ १९॥ रामतेजोभिभूतो
हित्वंक्षिप्रंविनशिष्यसि ॥ सहितेजःसमायुक्तोरामोदशरथात्मजः ॥ २० ॥ भ्राताचास्यमहावीर्योयेनचास्मि
विरूपिता ॥ एवंविलप्यबहुशोराक्षसीप्रदरोदरी ॥ २१ ॥ भ्रातुःसमीपेशोकार्तानष्टसंज्ञाबभूवह ॥ कराभ्यामुद
रंहत्वारुरोदभृशदुःखिता ॥२२॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआ०आरण्यकांडेएकविंशःसर्गः ॥२१॥ एवमा
धर्षितःशूरःशूर्पणख्याखरस्ततः ॥ उवाचरक्षसांमध्येखरःखरतरंवचः ॥ १॥ तवापमानप्रभवःक्रोधोयमतुलोमम ॥
नशक्यतेधारयितुंलवणांभइवोल्बणम् ॥२॥ नरामंगणयेवीर्यान्मानुषंक्षीणजीवितम् ॥ आत्मदुश्चरितैःप्राणान्हतो
योद्यविमोक्ष्यते ॥ ३ ॥ बाष्पःसंधार्यतामेषसंभ्रमश्चविमुच्यताम् ॥ अहंरामंसहभ्रात्रानयामियमसादनम् ॥ ४ ॥

कर रोनें लगी ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० आर० एकविंशः सर्गः ॥२१॥ शूर्पणखानें जब क्रोधमें भरकर इस प्रकार खरका
तिरस्कार किया तब तेजस्वभाववाला शूरवीर खर राक्षसोंकी सभाके बीचमें उससे कठोर वचन कहने लगा ॥१॥ कि तुम्हारा अपमान होनेसे जो
क्रोध हमको हुआहै उसकी तुलना नहींहै घावमें छोडे हुए नमकीन जलकी समान इस क्रोधको धारण करनेंकी हममें शक्ति नहींहै ॥२॥ रामचंद्र
और लक्ष्मण तौ मनुष्यहैं. हममें जो पराक्रमहै उससे हम रामको कुछ नहीं गिनते उस रामनें जो कुकर्म कियाहै उसके पापसे वह आजही
निहत होकर प्राण त्याग करेगा ॥ ३ ॥ इसकारण तुम रोना धोना छोड डरका त्याग करो हम अवश्यही रामके सहित लक्ष्मणको यमपुरीमें

पठावेंगे ॥ ४ ॥ अयि राक्षसि ! अब मरणोन्मुख रामचंद्रजी जब हमारे शरसे घायल होकर मर जायगा तब तुम उसका लाल २ गरम २ रुधिर पान करना ॥ ५ ॥ शूर्पणखा खरके मुखसे निकले हुए यह वचन सुन मोहसे अधिक हर्षमें भर फिर उस राक्षसश्रेष्ठ खरकी बडाई करनें लगी ॥ ६ ॥ जब निशाचरी शूर्पणखानें प्रथम निन्दाकी और फिर प्रशंसाकी तब तत्क्षण खर दूषण नामक अपने सेनापतिसे बोला॥ ७ ॥ कि हे शुभदर्शन ! जो सब भांतिसे हमारा प्रिय अनुष्ठान करनेंवालेहैं जो कभी युद्धमें पीठ नहीं दिखाते अति वेगवान् भयंकर चौदह हजार राक्षस ॥ ८ ॥ जो लोगोंकी हत्या करके सदा खेला करतेहैं जिनका पराक्रम भयानक और जिनका वर्ण नीले बादरकी समानहै ऐसे राक्षसोंको

परश्वधहतस्याद्यमंदप्राणस्यभूतले ॥ रामस्यरुधिरंरक्तमुष्णंपास्यसिराक्षसि ॥ ५ ॥ संप्रहृष्टावचःश्रुत्वाखरस्य वदनाच्च्युतम् ॥ प्रशशंसपुनर्मौर्ख्याद्भ्रातरंरक्षसांवरम् ॥ ६ ॥ तयापरुषितःपूर्वंपुनरेवप्रशंसितः ॥ अब्रवीद्दूषणं नामखरःसेनापतिंतदा ॥७॥ चतुर्दशसहस्राणिममचित्तानुवर्तिनाम् ॥ रक्षसांभीमवेगानांसमरेष्वनिवर्तिनाम् ॥८॥ नीलजीमूतवर्णानांलोकहिंसाविहारिणाम् ॥ सर्वोद्योगमुदीर्णानांरक्षसांसौम्यकारय ॥ ९ ॥ उपस्थापयमेक्षिप्रं रथंसौम्यधनूंषिच ॥ शरांश्चचित्रान्खड्गांश्चशक्तीश्चविविधाःशिताः ॥ १० ॥ अग्रेनिर्यातुमिच्छामिपौलस्त्यानां महात्मनाम् ॥ वधार्थंदुर्विनीतस्यरामस्यरणकोविद ॥११॥ इतितस्यब्रुवाणस्यसूर्यवर्णमहारथम् ॥ सदश्वैःशबलै र्युक्तमाचचक्षेथदूषणः ॥ १२ ॥ तंमेरुशिखराकारंतप्तकांचनभूषणम् ॥ हेमचक्रमसंबाधंवैदूर्यमयकूबरम् ॥ १३ ॥

सब प्रकारसे सजाकर हमारे सामनें लाओ ॥ ९ ॥ इसके सिवाय शीघ्र चलनेंवाला रथ, धनुष, विचित्र बाणसमूह तेजधारवाली अनेक भांति की शक्तियें और खड्गभी ले आओ ॥ १० ॥ हे रणपंडित ! महानुभव राक्षसोंके प्रथमही; हम महात्मा पुलस्त्यवंशसे उत्पन्न, जो रामचंद्र राक्षसोंको मारनेंके लिये आयेहैं उन दुर्विनीत रामचंद्रके वधार्थ संग्राममें जानेंकी इच्छा करतेहैं ॥ ११ ॥ खरनें जब इस प्रकार कहा तो दूषण तुरन्तही विचित्र वर्णवाले श्रेष्ठ घोडे जिसमें जुते हुए सूर्यकी समान चमकता हुआ रथ खरके समीप ले आया ॥ १२ ॥ इस रथका आकार मेरु

पर्वतकी समान सब गहनें इसमें तपाए हुए सुवर्णके लगेथे पहिये सुवर्णके बनेथे और दोनों गुम्मजभी वैदूर्य मणिके बनेथे ॥ १३ ॥ जिसमें मछली पुष्प, द्रुम, शैल, चन्द्रकान्त मणि यह सुवर्णके लगे हुएथे और सुवर्णकेही पक्षि और तारागणभी इस रथमें जड रहेथे ॥ १४ ॥ छोटी २ पेटिया, इसमें लगी हुईथीं खर क्रोधमें भरा हुआ, कुछभी विलम्ब न करके ध्वजा पताका युक्त अच्छे घोडों करके चलाये जाते हुए रथपर सवार हुआ ॥ १५ ॥ खरको सवार हुआ देखकर दूषणनें रथ चर्म आदि हथियार लिये, ध्वजा युक्त बडी सेनाको युद्धके लिये कूच करनेंकी आज्ञादी उसनें जब सब राक्षसोंसे इस प्रकार कहा ॥ १६ ॥ तब भयंकर चर्म ध्वजा युक्त वह राक्षसोंकी सेना महावेगसे महाकुलाहल मचाती हुई जन

मत्स्यैःपुष्पैर्द्रुमैःशैलैश्चंद्रकांतैश्चकांचनैः॥मांगल्यैःपक्षिसंघैश्चताराभिश्चसमावृतम् ॥१४॥ध्वजनिस्त्रिंशसंपन्नंकिंकिणीवरभूषितम् ॥ सदश्वयुक्तंसोमर्षादारुरोहखरस्तदा ॥ १५ ॥ खरस्तुतन्महत्सैन्यंरथचर्मायुधध्वजम् ॥निर्यातेत्यब्रवीत्प्रेक्ष्यदूषणःसर्वराक्षसान् ॥ १६ ॥ ततस्तद्राक्षसंसैन्यंघोरचर्मायुधध्वजम् ॥ निर्जगामजनस्थानान्महानादंमहाजवम् ॥ १७ ॥ मुद्गरैःपट्टिशैःशूलैःसुतीक्ष्णैश्चपरश्वधैः ॥ खड्गैश्चक्रैरथस्थैश्चभ्राजमानैःसतोमरैः ॥ १८ ॥शक्तिभिःपरिघैर्घोरैरतिमात्रैश्चकार्मुकैः ॥ गदासिमुसलैर्वज्रैर्गृहीतैर्भीमदर्शनैः ॥ १९ ॥ राक्षसानांसुघोराणांसहस्राणिचतुर्दश ॥ निर्यातानिजनस्थानात्खरचित्तानुवर्तिनाम् ॥ २० ॥ तांस्तुनिर्धावतोदृष्ट्वाराक्षसान्भीमदर्शनान् ॥ खरस्याथरथःकिंचिज्जगामतदनंतरम् ॥ २१ ॥ ततस्तांश्छबलानश्वांस्तप्तकांचनभूषितान् ॥ खरस्यमतमाज्ञाय सारथिःपर्यचोदयत् ॥ २२ ॥

स्थानसे चली ॥ १७ ॥ उस सेनामें राक्षस मुद्गर, पटा, तेजशूल, फरशे, खड्ग, चक्र, व तोमरादि शस्त्र धारण किये शोभायमान थे ॥ १८ ॥ शक्ति, परिघ, महा भयंकर धनुष, गदा, तलवार, मूसल और भयंकर अस्त्र शस्त्र ग्रहण कर राक्षस जनस्थानसे निकले ॥ १९ ॥ इस प्रकार खरके मनकी बात करनेंवाले बडे भयंकर स्वरूप चौदह हजार राक्षस जनस्थानसे बाहर हुए ॥ २० ॥ वह भयंकर राक्षस जब महा वेगसे दौडे तब इसको देखकर खरका रथभी कुछ तिनके निकटही पहुँचा ॥ २१ ॥ सारथिनें खरकी आज्ञा जानकर विचित्र वर्णवाले सुवर्णके गहनें पहनें

घोडोंको शीघ्रतासे चलाया ॥२२॥ उस समय रिपुघाती खरका चलताहुआ रथ अपनें शब्दसे सहसा दिशा विदिशाओंको भर देता हुआ ॥२३॥ अतिबलवान् वह बडे स्वरवाला खर क्रोधमें भर यमराजकी समान शत्रु संहार करनेंमें विशेष शीघ्रतायुक्त हो ओले वर्षानेंवाले महा मेघकी समान गर्जताहुआ सारथीसे बोला कि रथ जलदी २ चलाओ ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आ० द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥ जब इस प्रकारके वह भयंकर राक्षसोंकी सेना युद्ध करनेंके लिये चली, तब गंधर्वकी समान धूसरवर्ण महा डरावने मेघ आकाशमें उठकर

संचोदितोरथःशीघ्रंखरस्यरिपुघातिनः ॥ शब्देनापूरयामासदिशःसप्रदिशस्तथा ॥ २३ ॥ प्रवृद्धमन्युस्तुखरःखर स्वरोरिपोर्वधार्थत्वरितोयथांतकः ॥ अचूचुदत्सारथिमुन्नदन्पुनर्महाबलोमेघइवाश्मवर्षवान् ॥ २४ ॥ इत्यार्षेश्रीम द्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेद्वाविंशःसर्गः ॥ २२ ॥ ॥ ७ ॥ तत्प्रयातंबलंघोरमशिवंशोणितो दकम् ॥ अभ्यवर्षन्महाघोरस्तुमुलोगर्दभारुणः ॥ १ ॥ निपेतुस्तुरगास्तस्यरथयुक्तामहाजवाः ॥ समेपुष्पचिते देशेराजमार्गेयदृच्छया ॥ २ ॥ श्यामंरुधिरपर्यंतंबभूवपरिवेषणम् ॥ अलातचक्रप्रतिमंप्रतिगृह्यादिवाकरम् ॥ ३ ॥ ततोध्वजमुपागम्यहेमदंडंसमुच्छ्रितम् ॥ समाक्रम्यमहाकायस्तस्थौगृध्रःसुदारुणः ॥ ४ ॥ जनस्थानसमीपेच समाक्रम्यखरस्वनाः ॥ विस्वरान्विविधान्नादान्मांसादान्मृगपक्षिणः ॥ ५ ॥

कडा शब्द करके रुधिर मिला हुआ जल वर्षानें लगे ॥१॥ खरके रथमें जो तेज चलनेवाले घोडे जुत रहेथे वह राजमार्गमें चलनेंके समय सहसा कुल बिछी हुई बराबर हुई पृथ्वीमें गिर पडे ॥ २ ॥ सूर्य मंडलके चारों ओर श्यामवर्णका घेरा बन गया इस घेरका बाहरी भाग अरुण वर्ण और आकार अंगार चक्रकी समान गोलथा ॥ ३ ॥ इसके पीछे बडे आकारवाला भयंकर गिद्ध बडा ऊंचो सुवर्णकी रथकी ध्वजाके निकट आकर पंख उठाकर उसके ऊपर बैठ गया ॥ ४ ॥ विकट शब्दकारी, मांस खानेंवाले पशु पक्षीगण जनस्थानके समीप आकर भयंकर शब्द करके

चिल्लाने लगे ॥ ५ ॥ भयंकर सियार पूर्व दिशामें राक्षसोंका अमंगलदायक भयंकर घोर शब्द करने लगे ॥ ६ ॥ मतवाले हाथियोंकी समान भयंकर मूर्तिवाले मेघ जलको समान रुधिरकी वर्षा करके वहांके सब आकाशको एक वारही छालेते हुए ॥ ७ ॥ रुवें खडा करनेंवाला ऐसा घोर अंधकार छाया कि दिशा विदिशा समस्त एक साथही उस्से ढकगईं, फिर कुछभी दृष्टि न आया ॥ ८ ॥ संध्या खूनसे भीगे वस्त्रकी समान वर्ण धारण करके अकालमेंही प्रकाशित होगई भयंकर पशुपक्षीगणोने खरके सन्मुख मुख करके कठोर स्वरसे चिल्लाना आरंभ किया ॥ ९ ॥

व्याजह्रुरभिदीप्तायांदिशिवैभैरवस्वनम् ॥ अशिवंयातुधानानांशिवाघोरामहास्वनाः ॥ ६ ॥ प्रभिन्नगजसंकाशास्तोयशोणितधारिणः ॥ आकाशंतदनाकाशंचक्रुर्भीमांबुवाहकाः ॥ ७ ॥ बभूवतिमिरंघोरमुद्धतंरोमहर्षणम् ॥ दिशोवाप्रदिशोवापिसुव्यक्तंनचकाशिरे ॥ ८ ॥ क्षतजार्द्रसवर्णाभासंध्याकालंविनाबभौ ॥ खरंचाभिमुखंनेदुस्तदा घोरामृगाःखगाः ॥ ९ ॥ कंकगोमायुगृध्राश्चचुक्रुशुर्भयशंसिनः ॥ नित्याशिवकरायुद्धेशिवाघोरनिदर्शनाः ॥ १० ॥ नेदुर्बलस्याभिमुखंज्वालोद्गारिभिराननैः ॥ कबंधःपरिघाभासोदृश्यतेभास्करांतिके ॥ ११ ॥ जग्राहसूर्यंस्वर्भानुरपर्वणिमहाग्रहः ॥ प्रवातिमारुतःशीघ्रंनिष्प्रभोभूद्दिवाकरः ॥ १२ ॥ उत्पेतुश्चविनारात्रिंताराःखद्योतसप्रभाः ॥ संलीनमीनविहगानलिन्यःशुष्कपंकजाः ॥ १३ ॥

सफेद चील शियार और गिद्धगण खरको भय उपजाते हुए ऊंची आवाजसे शब्द करनेंलगे और युद्धमें जिनका बोलना महा अमंगलका उपजानेंवालाहै ऐसी शृगालियांभी भय उपजाती हुईं ॥१०॥ सनोक सामनें घोर शोर करनें लगीं सूर्यके निकट परिघाकार कबंध दिखलाई देनेलगा ॥ ११॥ महा ग्रह राहुनें विना अमावस्या और पर्वकालकेही सूर्यको ग्रस लिया पवन प्रचंड चलनें लगी सूर्यकी दीप्ति जाती रही ॥ १२ ॥ और रात्रि न होनें परभी तारागण पट वीजनेंकी समान चमककर उदय हुए तालावोंके कमल सूख गये मछलीभी सागर सरोवरोंमें हो लीन होगईं

और पक्षीभी नाशको प्राप्त होगये ॥ १३ ॥ उस समय सब वृक्ष फल फूलों करके रहित होगये और विना पवनके चलनेंपरभी महा धूरि उडनें लगी वादल लाल होगये ॥ १४ ॥ उस काल मैंना पक्षी सिखाये हुए शब्दोंको त्याग करके (चीची कूचि इत्यादि) अर्थ रहित शब्द करनें लगे घोर भयावन उल्कायें यह कांप करके पृथ्वीपर गिरनें लगीं॥१५॥और वन उपवन और पर्वत सहित पृथ्वी कांपनें लगी धीमान् खर रथमें बैठकर गर्जन करनेलगा ॥ १६ ॥ खरकी वांई भुजा बहुतही कांपनें लगीं स्वर बिगड गया इस प्रकार इधर उधर देखते २ उसके दोनों नेत्रोंमें आंसू भर आये ॥ १७ ॥ उस खरके शिरमें वारंवार पीर होनें लगी तथापि मोहके मारे वह संग्राममें जानेंसे नहीं लौटा इन सब रोमहर्षण

तस्मिन्क्षणेबभूवुश्चविनापुष्पफलैर्द्रुमाः ॥ उद्धूतश्चविनावातंरेणुर्जलधरारुणः ॥ १४ ॥ चीचीकूचीतिवाश्यंतोबभूवुस्तत्रसारिकाः ॥ उल्काश्चापिसनिर्घोषानिपेतुर्घोरदर्शनाः ॥ १५ ॥ प्रचचालमहीचापिसशैलवनकानना ॥ खरस्यचरथस्थस्यनर्दमानस्यधीमतः ॥ १६ ॥ प्राकंपतभुजःसव्यःस्वरश्चास्यावसज्जत ॥ सास्रासंपद्यतेदृष्टिःपश्यमानस्यसर्वतः ॥१७॥ ललाटेचरुजाजातानचमोहान्न्यवर्तत ॥ तान्समीक्ष्यमहोत्पातानुत्थितान्रोमहर्षणान् ॥ १८ ॥ अब्रवीद्राक्षसान्सर्वान्प्रहसन्सखरस्तदा॥महोत्पातानिमान्सर्वानुत्थितान्घोरदर्शनान् ॥१९॥ नाचिंतयाम्यहंवीर्याद्बलवान्दुर्बलानिव ॥ ताराअपिशरैस्तीक्ष्णैःपातयेयंनभस्तलात् ॥ २० ॥ मृत्युंमरणधर्मेणसंक्रुद्धोयोजयाम्यहम् ॥ राघवंतंबलोत्सिक्तंभ्रातरंचापिलक्ष्मणम् ॥२१॥ अहत्वासायकैस्तीक्ष्णैर्नोपावर्तितुमुत्सहे॥यन्निमित्तंतुरामस्यलक्ष्मणस्यविपर्ययः ॥ २२ ॥

महाउत्पातोंको उपस्थित हुआ देख ॥ १८ ॥ खर हँसता २ सब राक्षसोंसे बोला कि यह तो घोर दिखाई देनेवाले महाउत्पात इस समय हो रहेहैं इनको देखकर मैं ॥ १९ ॥ ऐसे कुछ नहीं समझता कि बलवान जिस प्रकार दुर्बलोंको नहीं गिनता वैसेही हमारे पराक्रमसे इन उत्पातोंको मनमें स्थान नहीं देते । जो हम क्रुद्ध होवें तो तीखे बाणोंसे आकाश मंडलसे तारागणोंकोभी पृथ्वीपर गिरादें॥ २० ॥ हम क्रोधित हों तो यमराजकीभी मृत्यु शोध लावें; इस्से हम बलसे दर्पित रामचंद्रको उसके भाई लक्ष्मण सहित ॥ २१ ॥ तीखे बाणोंके आघातसे विना मार

डाले हुए नहीं लौटेंगे । जिसके लिये रामचंद्र व लक्ष्मणकी विपरीत बुद्धि हुई और उन्होंनें इसके नाक कान काट डाले॥ २२ ॥ ऐसी हमारी बहन शूर्पणखा भ्राताके सहित रामका रुधिर पीकर सफल मनोरथ होवे। और हमें पराजय होनेका कुछ डरही नहीं क्योंकि आजतक हम किसी संग्राममें पहले नहीं हारेहैं ॥ २३ ॥ सो तुम लोगोंको ज्ञातहीहै इस कारण हम मिथ्या नहीं कहते जो हम क्रुद्ध होजांय तौ मत्त ऐरावत हाथीपर असवार इन्द्रको ॥२४॥ यद्यपि रणके मध्य उसके हाथमें वज्रभी हो तथापि मार डालें फिर राम लक्ष्मणके मारनेंमें क्या बडी बातहै वह तो मनुष्यहैं यह कहकर खर गर्जने लगा जिसे श्रवणकर राक्षसोंकी बडीभारी फौज॥२५॥अतुलित हर्षित हुई, यद्यपि यमके फंदमें फँसीथी। इस ओर युद्धके देख

सकामाभगिनीमेऽस्तुपीत्वातुरुधिरंतयोः ॥ नकचित्प्राप्तपूर्वोमेसंयुगेषुपराजयः ॥ २३ ॥ युष्माकमेतत्प्रत्यक्षंनानृतंकथयाम्यहम् ॥ देवराजमपिक्रुद्धोमत्तैरावतगामिनम् ॥ २४ ॥ वज्रहस्तंरणेहन्यांकिंपुनस्तौचमानवौ ॥ सातस्य गर्जितंश्रुत्वाराक्षसानांमहाचमूः ॥ २५ ॥ प्रहर्षमतुलंलेभेमृत्युपाशावपाशिता ॥ समेयुश्चमहात्मानोयुद्धदर्शनकांक्षिणः॥ २६ ॥ ऋषयोदेवगंधर्वाःसिद्धाश्चसहचारणैः ॥ समेत्यचोचुःसहितास्तेन्योन्यंपुण्यकर्मणः ॥ २७ ॥ स्वस्तिगोब्राह्मणेभ्यस्तुलोकानांयेचसंमताः ॥ जयतांराघवोयुद्धेपौलस्त्यान्रजनीचरान् ॥ २८ ॥ चक्रहस्तोयथाविष्णुःसर्वानसुरसत्तमान् ॥ एतच्चान्यच्चबहुशोब्रुवाणाःपरमर्षयः ॥ २९ ॥ जातकौतूहलास्तत्रविमानस्थाश्चदेवताः ॥ ददृशुर्वाहिनींतेषांराक्षसानांगतायुषाम् ॥ ३० ॥

नेंकी वासनासे महात्मा लोग आये ॥ २६ ॥ उनमें ऋषिगण, देवगण गन्धर्वगण, व सिद्ध लोग सबही आये । वह पुण्य कर्म करनेंवाले वहां सबही एकत्र होकर परस्पर कहनें लगे ॥ २७ ॥ कि, गौ, ब्राह्मण सुखसे रहैं इसके सिवाय औरभी सब लोकसम्मत प्राणियोंका मंगल होवे और श्रीरघुनंदन श्रीरामचंद्रजी युद्धमें पुलस्त्य वंशी राक्षसोंको जीतें ॥ २८ ॥ जैसे चक्रधारी विष्णुजीनें समस्त असुरश्रेष्ठोंको जीताथा । परमर्षिगण ऐसे, व औरभी अनेक प्रकारके वचन परस्पर कहनें लगे ॥ २९ ॥ विमानमें बैठे हुए देवता लोग कौतूहलके वश होकर मृत्यु जिनकी

निकट आईहै ऐसे राक्षसोंको बडी सेनाको देखनें लगे ॥ ३० ॥ इस समय खर रथपर चढा हुआ सेनाके अगले भागमें हुआ, तब उसके अगल बगल श्येनगामी, पृथुश्याम, यज्ञ शत्रु, विहङ्गम, ॥ ३१ ॥ दुर्ज्जय, परवीराक्ष, परुष, कालिकार्मुक, हेममाली, महामाली, सर्वास्य, और रुधिराशन। यह बारह महावीर राक्षस खरको घेरे हुए जातेथे॥ ३२॥ महाकपाल, स्थूलाक्ष, प्रमाथ और त्रिशिरा, यह चार राक्षस दूषण सेनापतिके पीछे२चले जातेथे ३३॥ जिस प्रकार ग्रहजाल चंद्र और सूर्यको प्राप्त होताहै, वैसेही भीम वेग सुदारुण, महा बलवान् राक्षसगण संग्रामका अभिलाष किये हुए सहसा राजपुत्र रामचंद्र और लक्ष्मणजीके निकट पहुंचे ॥ ३४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकिये आदिकाव्ये आरण्यकांडे त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

रथेनतुखरोवेगात्सैन्यस्याग्राद्विनिःसृतः ॥ श्येनगामीपृथुग्रीवोयज्ञशत्रुर्विहंगमः ॥ ३१ ॥ दुर्जयःपरवीराक्षःपरुषः कालकार्मुकः ॥ हेममालीमहामालीसर्पास्योरुधिराशनः ॥ द्वादशैतेमहावीर्याःप्रतस्थुरभितःखरम् ॥ ३२ ॥ महाकपालःस्थूलाक्षःप्रमाथस्त्रिशिरास्तथा ॥ चत्वारएतेसेनाग्रेदूषणंपृष्ठतोऽन्वयुः ॥ ३३ ॥ साभीमवेगासमराभिकांक्षिणी सुदारुणाराक्षसवीरसेना ॥ तौराजपुत्रौसहसाभ्युपेतामालाग्रहाणामिवचंद्रसूर्यौ ॥ ३४ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेत्रयोविंशःसर्गः ॥ २३ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ आश्रमंप्रतियातेतुखरेखरपराक्रमे ॥ तानेवौत्पातिकान्रामःसहभ्रात्राददर्शह ॥ १ ॥ तानुत्पातान्महाघोरान्रामोदृष्ट्वात्यमर्षणः ॥ प्रजानामहितान्दृष्ट्वावाक्यंलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ २ ॥ इमान्पश्यमहाबाहोसर्वभूतापहारिणः ॥ समुत्थितान्महोत्पातान्संहर्तुंसर्वराक्षसान् ॥ ३ ॥ अमीरुधिरधारास्तुविसृजंतेखरस्वनाः ॥ व्योम्निमेघाविवर्तंतेपरुषागर्दभारुणाः ॥ ४ ॥

इस भांति तीक्ष्ण पराक्रमवाला खर जब रामचंद्रजीके आश्रमकी ओर चला तब श्रीरामचंद्रजीनें भ्राता लक्ष्मणके सहित वह उत्पात जोकि खरके चलनेंके समय हुएथे वह सब देखे ॥ १ ॥ श्रीरामचंद्रजी प्रजागणोंके अमंगलकारी महाघोर इन सब उत्पातोंको देखकर अस्वस्थ चित्तसे लक्ष्मणजीसे बोले ॥ २ ॥ हे महाबाहो ! सब प्राणियोंके प्राणनाश करनें वाले यह बडे भारी उत्पात राक्षस कुलका संहार करनेंके लिये होरहेहैं सो तुम देखो ॥ ३ ॥ गर्दभकी समान धूसर वर्णवाले वादलोंका समूह इस आकाशमें इधर उधर दौडकर बडे शब्दसे गर्जरुधिर वर्षाताहै॥ ४॥

हमारे सब बाणोंसे धुआं निकलताहै, सो यह युद्ध होनेंका आनंद मना रहेहैं; और स्वर्ण जिनकी पीठमें लगा हुआहै ऐसे धनुषभी विचलित हो रहेहैं ॥ ५ ॥ वनचर पक्षीगण जिस प्रकारसे शब्द करतेहैं इससे राक्षसोंको भय और प्राणसंशय आकर उपस्थित हुआहै ॥ ६॥ अब शीघ्रही महा युद्ध होगा, इसमें कुछभी संदेह नहींहै। परन्तु हे वीर! हमारा यह दहना हाथ वार २ फडककर हमारे जयकी सूचना करताहै ॥ ७ ॥ हे शूर! हमारी जय और शत्रुओंकी पराजय निकट आय पहुंचीहै, तुम्हारा वदनभी प्रसन्न और प्रभायुक्त देख पडताहै ॥ ८ ॥ हे लक्ष्मण! युद्ध करनेंके लिये तैयार हुए जिन पुरुषोंका मुख मलीन हो जाताहै, इससे उन लोगोंकी आयुका क्षय होताहै ॥ ९ ॥ राक्षसोंके घोर और

सधूमाश्चशराःसर्वेममयुद्धाभिनंदिताः ॥ रुक्मपृष्ठानिचापानिविचेष्टंतेविचक्षण ॥ ५ ॥ यादृशाइहकूजंतिपक्षिणो वनचारिणः॥ अग्रतोनोभयंप्राप्तंसंशयोजीवितस्यच ॥ ६ ॥ संप्रहारस्तुसुमहान्भविष्यतिनसंशयः ॥ अयमाख्या तिमेबाहुःस्फुरमाणोमुहुर्मुहुः ॥७॥ सन्निकर्षेतुनःशूरजयंशत्रोःपराजयम् ॥ सुप्रभंचप्रसन्नंचतववक्त्रंहिलक्ष्यते॥८॥ उद्यतानांहियुद्धार्थंयेषांभवतिलक्ष्मण ॥ निष्प्रभंवदनंतेषांभवत्यायुःपरिक्षयः ॥ ९ ॥ रक्षसांनर्दतांघोषःश्रूयतेयंम हाध्वनिः ॥ आहतानांचभेरीणांराक्षसैःक्रूरकर्मभिः ॥१०॥ अनागतविधानंतुकर्तव्यंशुभमिच्छता ॥ आपदाशंक मानेनपुरुषेणविपश्चिता ॥११॥ तस्माद्गृहीत्वावैदेहींशरपाणिर्धनुर्धरः ॥ गुहामाश्रयशैलस्यदुर्गांपादपसंकुलाम्॥१२॥ प्रतिकूलितुमिच्छामिनहिवाक्यमिदंत्वया ॥ शापितोममपादाभ्यांगम्यतांवत्समाचिरम् ॥ १३ ॥

गंभीर गर्जनका यह शब्दभी अब सुनाई आताहै। व उन क्रूर कर्म करनेंवाले राक्षसोंके भेरीकी ध्वनिभी अब सुनाई आतीहै ॥१०॥ कल्याणके चाहनेवाले पंडित पुरुष विपत्तिकी शंका रहनेसे प्रथमही उस आनेवाली विपत्तिका ऐसा उपाय करतेहैं कि जिस्से वह विपत्ति निकट न आवै ॥ ११ ॥ इस कारण तुम धनुष धारण करके जानकीजीको ले वृक्षोंकरके युक्त दुर्गम पर्वतकी कन्दरामें चले जाओ ॥ १२ ॥ तुम हमारे इन वचनोंके प्रतिकूल आचरण मत करना। वत्स! हम तुमको अपने चरणोंकी सौगन्ध देतेहै कि तुम शीघ्रही जानकीको लेकर गिरिगुहामें

चले जाओ ॥ १३ ॥ तुम शूर और बलवान्हो. निश्चय इन राक्षसोंको वधकर सकतेहो इसमें सन्देह नहींहै परन्तु हम आपही इन सर्व निशाचरोंके मार डालनेंकी इच्छा करतेहैं ॥ १४ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा तब लक्ष्मणजी सीताजीके सहित शर और चाप ग्रहण करके दुर्गम पर्वतकी कन्दरामें चले गये ॥ १५ ॥ जब जानकीजीके साथ लक्ष्मणजी पर्वतकी कन्दरामें चले गये, तब श्रीरामचंद्रजी बडे हर्षित हुए और कवच व बाण रघुनंदनजीनें ग्रहण किया ॥ १६ ॥ अग्निवर्ण वाले कवचके धारण करनेंसे श्रीरामचंद्रजी अन्धकारमध्यमेंसे उठे हुए महा अग्निकी समान जान पडनें लगे ॥ १७ ॥ तत्पश्चात् वीर्यवान् श्रीरामचंद्रजी धनुषको उठाय, बाणोंको ग्रहण कर प्रत्यंचाकी टंकारके शब्दसे दशोंदिशा

त्वंहिशूरश्चबलवान्हन्याएतान्नसंशयः ॥ स्वयंनिहंतुमिच्छामिसर्वानेवनिशाचरान् ॥ १४ ॥ एवमुक्तस्तुरामेणल
क्ष्मणःसहसीतया ॥ शरानादायचापंचगुहांदुर्गांसमाश्रयत् ॥ १५ ॥ तस्मिन्प्रविष्टेतुगुहांलक्ष्मणेसहसीतया ॥
हंतनिर्युक्तमित्युक्त्वारामःकवचमाविशत् ॥ १६ ॥ सतेनाग्निनिकाशेनकवचेनविभूषितः ॥ बभूवरामस्तिमिरेम
हानग्निरिवोत्थितः ॥ १७ ॥ सचापमुद्यम्यमहच्छरानादायवीर्यवान् ॥ संबभूवास्थितस्तत्रज्यास्वनःपूरयन्दि
शः ॥ १८ ॥ ततोदेवाःसगंधर्वाःसिद्धाश्चसहचारणैः ॥ समेयुश्चमहात्मानोयुद्धदर्शनकांक्षया ॥ १९ ॥ ऋषयश्चम
हात्मानोलोकेब्रह्मर्षिसत्तमाः ॥ समेत्यचोचुःसहितास्तेन्योन्यंपुण्यकर्मणः ॥ २० ॥ स्वस्तिगोब्राह्मणानांचलोकानांचे
तिसंस्थिताः ॥ जयतांराघवोयुद्धेपौलस्त्यान्रजनीचरान् ॥ २१ ॥ चक्रहस्तोयथायुद्धेसर्वानसुरपुंगवान् ॥ एवमुक्त्वा
पुनःप्रोचुरालोक्यचपरस्परम् ॥ २२ ॥

ओंको पूर्ण करते हुए भली भांतिसे दृढहो वहां खडे होगये ॥ १८ ॥ उस समय महात्मा देवगण, गन्धर्वगण, सिद्धगण, और चारण गण संग्राम देखनेंकी अभिलाषसे वहां आये ॥ १९ ॥ लोकमें जो ब्रह्मर्षि प्रसिद्धहैं वह सब महर्षिभी वहां आये वह सब पुण्य कर्म करनेंवाले एकत्र होकर परस्पर मिल कहनें लगे ॥ २० ॥ गौ, ब्राह्मण व और सब लोकोंका सब प्रकारसे मंगलहो और श्रीरामचंद्रजी युद्धमें पुलस्त्यवंशीय निशाचरोंको जीतें, ॥ २१ ॥ जिस प्रकार श्रीविष्णुजीनें चक्र हाथमें लेकर असुर श्रेष्ठोंको हरायाथा। इस प्रकार कहकर वह फिर परस्पर अवलोकन

करते हुए कहनेंलगे ॥ २२ ॥ कि भयंकर कर्म करनेंवाले राक्षस तो चौदह हजार [१४०००] हैं, और धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी इकलेहैं; सो इस्से कह नहीं सकते कि किस प्रकार युद्ध होगा ॥ २३ ॥ इस प्रकारसे राजर्षिगण, सिद्धगण, विद्याधरादि समस्त देवयोनि गण प्रधान २ ब्रह्मर्षिगण कौतूहलाक्रांत चित्त किये वहां खडेथे ॥ २४ ॥ महा तेजवान श्रीरामचंद्रजीको समर स्थलमें अकेला खड़ा देख, प्राणिमात्रही भयके मारे दुःखी हुए कि न जानें महाराजको आज कैसा परीश्रम पडेगा और कैसे इन १४००० हजार दुष्टोंसे लडेंगे ? ॥ २५ ॥ महात्मा रुद्रजी जब क्रोध करतेहैं और उनका रूप जैसा होजाताहै, वैसाही क्लेशरहित कर्म करनेंवाले श्रीरामचंद्रजीका रूप होगया जिसके समान विकराल

चतुर्दशसहस्राणिरक्षसांभीमकर्मणाम्॥एकश्चरामोधर्मात्माकथंयुद्धंभविष्यति ॥२३॥इतिराजर्षयःसिद्धाःसगणाश्च द्विजर्षभाः॥ जातकौतूहलास्तस्थुर्विमानस्थाश्चदेवताः ॥२४॥ आविष्टंतेजसारामंसंग्रामशिरसिस्थितम् ॥ दृष्ट्वासर्वाणिभूतानिभयाद्विव्यथिरेतदा ॥ २५ ॥ रूपमप्रतिमंतस्यरामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ बभूवरूपंक्रुद्धस्यरुद्रस्येवमहात्मनः ॥ २६ ॥ इतिसंभाष्यमाणेतुदेवगंधर्वचारणैः ॥ ततोगंभीरनिर्ह्रादंघोरचर्मायुधध्वजम् ॥ २७ ॥ अनीकंयातुधानानांसमंतात्प्रत्यपद्यत॥वीरालापान्विसृजतामन्योन्यमभिगच्छताम्॥२८॥ चापानिविस्फारयतांजृंभतांचाप्यभीक्ष्णशः ॥ विप्रघुष्टस्वनानांचदुंदुभींश्चाभिनिघ्नताम् ॥ २९ ॥ तेषांसुविपुलःशब्दःपूरयामासतद्वनम् ॥ तेनशब्देनवित्रस्ताास्त्रासितावनचारिणः ॥ ३० ॥ दुद्रुवुर्यत्रनिःशब्दंपृष्ठतोनावलोकयन ॥ तच्चानीकंमहावेगंरामंसमनुवर्तत ॥ ३१ ॥

रूप और नहींथा ॥२६॥ आकाशमें देव गन्धर्व और चारण लोग ऐसा कहही रहेहैं कि इतनेंमें महा गंभीर शब्द करती, अति घोर ढाल खड्गादि हथियार लिये ॥ २७ ॥ चारोंओरसे राक्षसोंकी सेना अनी वनी ठनी आ पहुँची, जो वीरपनेकी वार्त्ता आपसमें कर रहीथी ॥ २८ ॥ उस सेनाके कोई २ लोग धनुषकी प्रत्यंचा खेंच २ वजाते कोई वार २ जंभाई लेते कोई ऊँचे स्वरसे चिल्लाते और कोई नगाडोंकोही वजातेथे ॥ २९ ॥ इस सब सेनाके राक्षसोंका ऐसा घोर शब्द हुआ कि जिस्से वह वन भर गया और उस शब्दसे वनचारी पशु पक्षीभी घवडा गये ॥३०॥ और लौटकर पीछेको न देखतेहुए जिस जगह वह शब्द श्रवणगोचर न होवै वहांको भागे। व इसओर राक्षसी सेना धूम धामसे श्रीरामचंद्रजीके

निकट आय पहुँची ॥ ३१ ॥ उस सेनाके वीरगण अनेक प्रकारके हथियार धारण कियेथे, वह समुद्र समान उफनती चली आतीथी समरपंडित श्रीरघुनंदन रामचंद्रजीनें नेत्र डाल चारों ओर निहारातो॥३२॥युद्ध करनेंको खरकी सेना, उनकीसोंही चली आतीहै, तब श्रीरामचंद्रजीनें धनुष को उठाय, और तरकसमेंसे बाण समूहको ग्रहणकर ॥ ३३ ॥ राक्षस कुलका संहार करनेंके लिये महाक्रोध किया, उस समय श्रीरामचंद्रजीका ऐसा विकट स्वरूप होगया मानों प्रलयकालकी अग्निहो॥३४॥वन देवता लोग उनका वह तेजवान स्वरूप देखकर बडेही व्यथित हुए क्योंकि उन्हों ने वह भयावना रामचन्द्रजीका रूप काहेको देखाथा।परन्तु दक्षका यज्ञ विनाश करनेंको तैयार महादेवजीकी समान श्रीरामचन्द्रजीकी वह क्रोधभरी

धृतनानाप्रहरणंगंभीरंसागरोपमम् ॥ रामोपिचारयंश्चक्षुःसर्वतोरणपंडितः ॥ ३२ ॥ ददर्शखरसैन्यंतद्युद्धायाभिमुखोगतः॥ विततत्यचधनुर्भीमंतूण्याश्चोद्धृत्यसायकान् ॥ ३३ ॥ क्रोधमाहारयत्तीव्रंवधार्थंसर्वरक्षसाम् ॥ दुष्प्रेक्ष्यश्चाभवत्क्रुद्धोयुगांताग्निरिवज्वलन् ॥३४॥ तंदृष्ट्वातेजसाविष्टंप्राव्यथन्वनदेवताः ॥तस्यरुष्टस्यरूपंतुरामस्यददृशेतदा॥ दक्षस्येवक्रतुंहंतुमुद्यतस्यपिनाकिनः ॥ ३५ ॥ तत्कार्मुकैराभरणैरथैश्चतद्वर्मभिश्चाग्निसमानवर्णैः ॥ बभूवसैन्यंपिशिताशनानांसूर्योदयेनीलमिवाभ्रजालम् ॥ ३६ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०आरण्यकांडेचतुर्विंशःसर्गः ॥ २४ ॥ अवष्टब्धधनुंरामंक्रुद्धंतंरिपुघातिनम् ॥ ददर्शाश्रममागम्यखरःसहपुरःसरैः ॥ १ ॥ तंदृष्ट्वासगुणंचापमुद्यम्यखरनिःस्वनम् ॥ रामस्याभिमुखंसूतंचोद्यतामित्यचोदयत् ॥ २ ॥ सखरस्याज्ञयासूतस्तुरगान्समचोदयत् ॥ यत्ररामोमहाबाहुरेकोधुन्वन्धनुःस्थितः ॥ ३ ॥

मूर्त्ति उस समय उन सबनें देखीथी ॥ ३५ ॥ जैसे नीले रंगके बादर सूर्योदयमें शोभा पातेहैं। राक्षससेनाभी अग्नि सम वर्ण,कवच, रथ, आभरण और धनुष युक्त होकर उस काल वैसीही शोभा पाने लगी ॥ ३६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे चतुर्विंशःसर्गः ॥ २४ ॥ अपने साथियोंके साथ आश्रममें आकर खरनें शत्रुओंके मारनेंवाले श्रीरामचन्द्रजीको क्रोधमें भरे और धनुष ग्रहण किये देखा ॥१॥ ऐसा देखकर उसनें कठोर प्रत्यंचा युक्त धनुष उठाकर सारथिसे ऊंचे स्वरसे कहा कि रामचंद्रके सामनें रथ लेचलो ॥ २ ॥ सारथिनें खरकी आज्ञा

नुसार जहां महाबाहु श्रीरामचंद्रजी धनुषपर टंकार देते हुए इकले खडेथे वहांपर घोडोंको चलाया ॥३॥ खरको रामचंद्रजीके आगे जाता हुआ देखकर उसके मंत्री श्येनगम्यादि बारह राक्षस उसके चारों ओर हो लिये ॥ ४ ॥ तब रथपर चढा हुआ खर दुर्विनीत राक्षसोंके बीचमें ऐसा शोभित होताथा, जैसे ताराओंके बीचमें प्रदीप्त मंगल ग्रह शोभित होताहै ॥ ५ ॥ अनन्तर वह खर श्रीरामचंद्रजीके ऊपर युद्धमें हजार बाण छोडकर महा शब्दसे चिल्लानें लगा ॥ ६ ॥ तिसके पीछे सब निशाचर क्रोधित होकर भयंकर धनुषधारी, निवारण करनेंके योग्य श्रीरामचंद्र जीको ताककर विविध भांतिके शर वर्षानें लगे ॥ ७ ॥ वह राक्षस सेना, युद्धमें क्रोधितहो अनेक २ लोहेके मुन्दर, शूल, फांसी, तलवार, और फरसे आदिकसे श्रीरामचंद्रजीके ऊपर प्रहार करनेंलगे ॥ ८ ॥ फिर वह बडे २ शरीरवाले महाबलवान्, मेघ समान निशाचर गण, रथ, घोडे, हाथियोंपर चढ २ युद्धमें श्रीरामचन्द्रजीको मार डालनेंके लिये उनके पीछे दौडे ॥ ९ ॥ उनसे कुछ राक्षस पर्वतोंके शृंग समान आकारवाले हाथियोंपर चढकर श्रीरामचंद्रजीको युद्धमें मार डालनेंके लिये आयेथे, इस कारण वह सब रामचंद्रजीपर बाणोंकी वर्षा करनें लगे॥१०॥जैसे मेघमाला पर्वतोंपर वर्षा करतीहै, वैसेही बाणवर्षा उन निशाचरोंने श्रीरामचंद्रजीके ऊपर की, सब राक्षसोंके मध्य जानकी जीवन कैसे शोभित होतेथे॥११॥जैसे प्रदोषकी यामिनीयोंमें पार्षदोंके मध्य महादेवजी शोभित होतेहैं।राक्षसोंके चलाये अस्त्र शस्त्रश्रीरामचंद्रजीनें॥१२॥

तंतुनिष्पतितंदृष्ट्वासर्वतोरजनीचराः ॥ मुंचमानामहानादंसचिवाःपर्यवारयन् ॥४॥ सतेषांयातुधानानांमध्येरथगतःखरः ॥ बभूवमध्येताराणांलोहितांगइवोद्धतः ॥ ५ ॥ ततःशरसहस्रेणराममप्रतिमौजसम् ॥ अर्दयित्वामहानादंननादसमरेखरः ॥६॥ ततस्तंभीमधन्वानंक्रुद्धाःसर्वेनिशाचराः ॥ रामंनानाविधैःशस्त्रैरभ्यवर्षंतदुर्जयम् ॥ ७ ॥ मुद्गरैरायसैःशूलैःप्रासैःखड्गैःपरश्वधैः ॥ राक्षसाःसमरेशूरंनिजघ्नूरोषतत्पराः ॥ ८॥ तेबलाहकसंकाशामहाकायामहाबलाः ॥ अभ्यधावंतकाकुत्स्थंरथैर्वाजिभिरेवच ॥ ९ ॥ गजैःपर्वतकूटाभैरामंयुद्धेजिघांसवः॥ तेरामेशरवर्षाणिव्यसृजन्रक्षसांगणाः ॥ १० ॥ शैलेंद्रमिवधाराभिर्वर्षमाणामहाघनाः ॥ सर्वैःपरिवृतोरामोराक्षसैःक्रूरदर्शनैः ॥११॥ तिथिष्विवमहादेवोवृतःपारिषदांगणैः ॥ तानिमुक्तानिशस्त्राणियातुधानैःसराघवः ॥ १२ ॥

अपने बाणोंके सहित ग्रहण किये, जैसे नदीयोंकी धाराओंको महोदधि ग्रहण करताहै यद्यपि श्रीरामचन्द्रजीके अंगमें अतिघोर वह अस्त्र शस्त्र लगेथे पर इससे उनको कुछ व्याधि न हुई ॥ १३ ॥ जैसे प्रकाशमान बहुतसे वज्रोंसे हिमालय पर्वतको पीडा नहीं होती।सर्व शरीरमें बाणोंके लगनेंसे रुधिर वहनेंसें श्रीरामचन्द्र ऐसे शोभित हुए ॥१४॥ जैसे संध्याकालीन बादरोंके बीचमें होनेसे सूर्य भगवान् शोभित होतेहैं। रघुनंदनजीकी यह अवस्था देख देव, गन्धर्व, और सिद्ध व परमर्षिगण बडे विषादित हुए ॥ १५ ॥ कारण कि अकेले रामचंद्रजीको सहस्रों निशाचर घेरे हुएथे। ऋषि आदिकोंकी यह अवस्था देख श्रीरामचंद्रजीनें महाक्रोध युक्तहो धनुषको जोरसे खेंच ॥ १६ ॥

प्रतिजग्राहविशिखैर्नद्योघानिवसागरः ॥ सतैःप्रहरणैर्घोरैर्भिन्नगात्रोनविव्यथे ॥ १३ ॥ रामःप्रदीप्तैर्बहुभिर्वज्रैरिवम हाचलः ॥ सविद्धःक्षतजादिग्धःसर्वगात्रेषुराघवः ॥ १४ ॥ बभूवरामःसंध्याभ्रैर्दिवाकरइवावृतः ॥ विषेदुर्देवगंधर्वाः सिद्धाश्चपरमर्षयः ॥ १५ ॥ एकंसहस्रैर्बहुभिस्तदादृष्ट्वासमावृतम् ॥ ततोरामस्तुसंक्रुद्धोमंडलीकृतकार्मुकः ॥ १६ ॥ ससर्जनिशितान्बाणाञ्छतशोथसहस्रशः ॥ दुरावारान्दुर्विषहान्कालपाशोपमान्रणे ॥ १७ ॥ मुमोचलीलयाकंकप त्रान्कांचनभूषणान् ॥ तेशराःशत्रुसैन्येषुमुक्तारामेणलीलया ॥ १८ ॥ आददूरक्षसांप्राणान्पाशाःकालकृताइव॥ भि त्त्वाराक्षसदेहांस्तांस्तेशरारुधिराप्लुताः ॥ १९ ॥ अंतरिक्षगतारेजुर्दीप्ताग्निसमतेजसः ॥ असंख्येयास्तुरामस्यसाय काश्चापमंडलात् ॥ २० ॥

शत २ सहस्र २ अति तीखे बाण छोडे वे सब बाण किसीके रोकनेंसे नहीं रुकते, वरन अनिवारथे सहन करनेंके योग्य नहींथे और देखनेंमें यमराजकी फांसीके समानथे ॥ १७ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें लीला पूर्वक सुवर्णसे चित्र विचित्र कंकपत्र युक्त बाण शत्रुकी सेनामें चलाये। वह सब बाण शत्रुकी सेनामें पहुँच २ ॥ १८ ॥ चलाई हुई यमकी फाँसियोंकी समान राक्षसोंका देह भेद व प्राणग्रहण करके रुधिरके लगनेंसे लाल गेरुकंहीं॥१९॥आकाशमें जाकर जलती हुई अग्निकी समान शोभा पानें लगे, उस समय श्रीरामचन्द्रजीके चाप मंडलसे असंख्यों बाण छूटे ॥२०॥

श्रीरामचंद्रजी उन सब बाणोंसे राक्षसोंके शत २ शरासन और सहस्र २ शरासन, ध्वजाके अग्रभाग ढाल, कवच ॥ २१ ॥ हाथके गहनों करके युक्त बाहु हाथियोंकी शुण्डके समान जंघाएँ सैकडों हजारों काट डालीं ॥ २२ ॥ इनके अतिरिक्त सुवर्णके कवच धारण किये घोडे रथ और सारथी महावत् व सवारसहित हाथी घुडसवारसहित घोडे ॥ २३ ॥ इन सबको प्रत्यंचासे छूटे हुए श्रीरामचंद्रजीके बाणोंनें छिन्न भिन्न किया, और पैदलोंकोभी संहार करके यमराजके भवनमें पहुंचाया ॥ २४ ॥ राक्षसगण, अग्रभाग जिनका महातीक्ष्णहै ऐसे नालीक, नाराच, और विकर्ण समूहसे कट कुट कर भयंकर शब्द कर आरत पुकारने लगे ॥ २५ ॥ शुष्कवनश्रेणी जिस प्रकार अग्निको पाकर

विनिष्पेतुरतीवोग्रारक्षःप्राणापहारिणः ॥ तैर्धनूंषिध्वजाग्राणिचर्माणिकवचानिच ॥२१॥ बाहून्सहस्ताभरणानूरून्करिकरोपमान् ॥ चिच्छेदरामःसमरेशतशोथसहस्रशः ॥ २२ ॥ हयान्कांचनसन्नाहान्रथयुक्तान्ससारथीन् ॥ गजांश्चसगजारोहान्सहयान्सादिनस्तदा ॥ २३ ॥ चिच्छिदुर्बिभिदुश्चैवरामबाणागुणच्युताः ॥ पदातीन्समरेहत्वा अनयद्यमसादनम् ॥ २४ ॥ ततोनालीकनाराचैस्तीक्ष्णाग्रैश्चविकर्णिभिः ॥ भीममार्तस्वरंचक्रुश्छिद्यमानानिशाचराः ॥ २५ ॥ तत्सैन्यंविविधैर्बाणैरर्दितंमर्मभेदिभिः ॥ नरामेणसुखंलेभेशुष्कंवनमिवाग्निना ॥ २६ ॥ केचिद्भीमबलाःशूराःप्रासान्शूलान्परश्वधान् ॥ चिक्षिपुःपरमक्रुद्धारामायरजनीचराः ॥ २७ ॥ तेषांबाणैर्महाबाहुःशस्त्राण्यावार्यवीर्यवान् ॥ जहारसमरेप्राणांश्चिच्छेदचाशिरोधरान् ॥ २८ ॥ तेछिन्नशिरसःपेतुश्छिन्नचर्मरासनाः ॥ सुपर्णवातविक्षिप्ताजगत्यांपादपायथा ॥ २९ ॥

खूबही घूम २ कर जलतीहै, वैसेही राक्षस सेनाभी श्रीरामचंद्रजीके मर्मभेदी बाणोंसे पीडित होकर सुख प्राप्त करनेंको समर्थ नहीं होसकी ॥२६॥ उस सेनाके कोई २ महाबलवान् शूरवीर राक्षस महा क्रोधित होकर श्रीरामचंद्रजीके ऊपर, प्रास, फरसे और शूल इत्यादि चलानेंलगे ॥२७॥ महाबाहु वीर्यवान् श्रीरामचंद्रजीनें अपनें बाणोंसे राक्षसोंके चलाये हुए अस्त्र शस्त्रोंको रोक उनके प्राण हरण करके उनके मस्तकभी धडसे उडा देते हुए ॥ २८ ॥ गरुडजीके उडनेंके समय जो उनके पंखोंसे पवन निकलती जिस प्रकार उससे वृक्षसमूह पृथ्वीपर गिर जातेहैं वैसेही

राक्षसगण छिन्नमस्तकहो पृथ्वीपर गिरनेंलगे उनका धनुष और ढाल तलवारभी टूट टाट गईं ॥ २९ ॥ बचे बचाये राक्षस श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसें घायल होनेके कारण व्याकुल हो मलीनभावसे खरकी शरणमें गये ॥ ३० ॥ यह देखकर दूषण महा क्रोधित होकर धनुष सँभाल भागे हुए राक्षसोंको धीर बँधाता हुआ क्रोधित कालकी समान रोष परायण श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख दौडा ॥ ३१ ॥ तब रणसे भागे हुए निशाचर गण दूषणका आसरा पाय लौटकर शाल, ताल, शिला, पाश, मुद्गर, और शूल इन सब आयुधोंको धारण कर श्रीरामचंद्रजीके सामने धाये ॥ ३२ ॥ उन राक्षसोंने संग्राममें आतेही शूल, मुद्गर, पाशादि, अस्त्र शस्त्रोंकी वर्षा श्रीरामचंद्रजीके ऊपर की । ३३॥ फिर वृक्षोंकी वर्षा और

अवशिष्टाश्चयेतत्रविषण्णास्तेनिशाचराः॥खरमेवाभ्यधावंतशरणार्थशराहताः॥३०॥ तान्सर्वान्धनुरादायसमाश्वास्यचदूषणः॥अभ्यधावत्सुसंक्रुद्धःक्रुद्धंक्रुद्धइवांतकः ॥३१॥निवृत्तास्तुपुनःसर्वेदूषणाश्रयनिर्भयाः॥ राममेवाभ्यधावंतसालतालशिलायुधाः॥३२॥ शूलमुद्गरहस्ताश्चपाशहस्तामहाबलाः ॥ सृजंतःशरवर्षाणिशस्त्रवर्षाणिसंयुगे ॥ ३३ ॥ द्रुमवर्षाणिमुंचंतःशिलावर्षाणिराक्षसाः ॥ तद्बभूवाद्भुतंयुद्धंतुमुलंरोमहर्षणम् ॥ ३४॥ रामस्यास्यमहाघोरंपुनस्तेषांचरक्षसाम् ॥ तेसमंतादभिक्रुद्धाराघवंपुनरार्दयन् ॥ ३५॥ ततःसर्वादिशोदृष्ट्वाप्रदिशश्चसमावृताः ॥ राक्षसैःसर्वतःप्राप्तैःशरवर्षाभिरावृतः ॥ ३६ ॥ सकृत्वाभैरवंनादमस्त्रंपरमभास्वरम् ॥ समयोजयद्गांधर्वंराक्षसेषुमहाबलः ॥ ३७ ॥ ततःशरसहस्राणिनिर्ययुश्चापमंडलात् ॥ सर्वादशदिशोबाणैरापूर्यंतसमागतैः ॥ ३८ ॥

शिलाकी वृष्टि प्रारंभ होनेंपर तिस समय महाभयानक और घोर लोमहर्षण संग्राम होनें लगा ॥ ३४ ॥ उधरसे राक्षसगण श्रीरामचंद्रजी पर अस्त्र शस्त्र चलारहेथे इधरसे श्रीरामचंद्रजी राक्षसोंपर बाण वर्षा करतेथे यह देखकर राक्षसोंने फिर अस्त्र शस्त्रोंसे श्रीरामचंद्रजीको पीडित किया ॥ ३५ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें देखा कि सर्व दिशा विदिशा राक्षसोंसे भर गईहैं और हमभी उनके बाणोंसे ढक गयेहैं ॥ ३६ ॥ यह देख श्रीरामचंद्रजीनें बडा शब्दकर भयंकर राक्षसगणोंके ऊपर परम देदीप्यमान गान्धर्वास्त्र चलाया ॥ ३७॥ इस गान्धर्वास्त्रके चलानेके पीछे श्रीरामचंद्रजीके धनुषसे हजार २ बाण निकलनें लगे; उन निकलते हुए बाणोंसे समस्त दिशायें भरगईं ॥ ३८ ॥

राक्षसगण इस समय यह नहीं देख सके कि कब श्रीरामचंद्रजी श्रेष्ठ और भयंकर शर ग्रहण करते कब छोडते और कब धनुषको आक
र्षण करतेहैं परन्तु केवल उनके बाणोंसे महा व्यथित होनें लगे॥ ३९ ॥ श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे अन्धकार उत्पन्न होकर दिवाकर सहित आकाश
मंडलको ढक लेता हुआ। परन्तु श्रीरामचंद्रजी बराबर शर धारा छोडते चले जातेथे ॥ ४० ॥ उस बाण धारासे अनेक २ राक्षस महा घायल हुए
कोई २ गिरे हुए कोई२गिरते हुए दिखाई देतेथे ऐसे राक्षसोंसे पृथ्वी पूर्ण होगई ॥ ४१ ॥ रणभूमिमें सर्वत्रही सहस्र २ राक्षस पतित, छिन्न, भिन्न,
विदारित और कंठगत प्राण दृष्टि आने लगे। श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे छिन्न भिन्न पगडी सहित मस्तक बाजू युक्त बाँह व अनेक २ भांतिके

नाददानंशरान्घोरान्विमुंचंतंशरोत्तमान् ॥ विकर्षमाणंपश्यंतिराक्षसास्तेशरार्दिताः ॥ ३९ ॥ शरांधकारमाकाश
मावृणोत्सदिवाकरम् ॥ बभूवावस्थितोरामःप्रक्षिपन्निवताञ्छरान् ॥ ४० ॥ युगपत्पतमानैश्चयुगपच्चहतैर्भृशम् ॥
युगपत्पतितैश्चैवविकीर्णावसुधाभवत् ॥ ४१ ॥ निहताःपतिताःक्षीणाश्छिन्नाभिन्नाविदारिताः ॥ तत्रतत्रस्मदृश्यंतेरा
क्षसास्तेसहस्रशः ॥ ४२ ॥ सोष्णीषैरुत्तमांगैश्चसांगदैर्बाहुभिस्तथा ॥ ऊरुभिर्बाहुभिश्छिन्नैर्नानारूपैर्विभूषणैः ॥४३॥
हयैश्चद्विपमुख्यैश्चरथैर्भिन्नैरनेकशः ॥ चामरव्यजनैश्छत्रैर्ध्वजैर्नानाविधैरपि ॥ ४४ ॥ रामेणबाणाभिहतैर्विच्छिन्नैः
शूलपट्टिशैः ॥ विच्छिन्नैःसमरेभूमिर्विस्तीर्णाभूद्भयंकरा ॥ ४५ ॥ तान्दृष्ट्वानिहतान्सर्वेराक्षसाःपरमातुराः ॥ नत
त्रचलितुंशक्तारामंपरपुरंजयम् ॥ ४६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेपंचविंशः
सर्गः ॥ २५ ॥ ॥ छ ॥ ॥ दूषणस्तुस्वकंसैन्यंहन्यमानंविलोक्यच ॥ संदिदेशमहाबाहुर्भीमवेगान्दुरासदान् ॥ १ ॥

गहनें ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ अश्व, हस्ती, चमर, व्यजन, छत्र, व नाना प्रकारकी ध्वजाओंसे ॥ ४४ ॥ व शूल पटादि शस्त्रोंसे जोकि रामचंद्र
जीके बाणोंसे कट २ टूट गयेथे यह पृथ्वी अति भयंकर होगई ॥ ४५ ॥ इस प्रकार बहुतसे राक्षसोंको मारे हुए व पृथ्वीमें पडे देख बचे
बचाये राक्षसगण अतिशय कातर होकर शत्रुओंके जीतनेवाले श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख जानेको और समर्थ नहीं हुए ॥ ४६ ॥ इत्यार्षे
श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे पंचविंशःसर्गः ॥ २५ ॥ महाबाहु दूषण अपनी सेनाको श्रीरामचंद्रजीसे माराहुआ देख

इन्द्रजीके वज्र चलानेंसे जिस प्रकार पर्वत पंख कटाकर नीचे गिरेथे, वैसेही वानरलोग राक्षसी मायासे मोहित होगये, इनका सब शरीर राक्षसके बाणोंसे फटगया और वह धीरे २ विकट स्वरसे शब्द करके रणभूमिमें गिरनें लगे ॥ ५२ ॥ उस समय वानरगणने सेनामें केवल इन्द्रजीतके छोड़े हुए अत्यन्त तीखे बाणोंको देखपाया; परन्तु मायाके बलसे छिपे हुए उस इन्द्रकेशत्रु मेघनादको न देखा कि कहां खड़ाहुआ बाणोंकी वर्षा करताहै ॥ ५३ ॥ इसके उपरान्त राक्षसपति महाबलवान इन्द्रजीत सूर्यकी समान गांसीलगे हुए बाणोंसे सब दिशाओंको छायलिया; और अत्यन्त पैंने बाणोंसे वानरोंको मारनेंभी लगा ॥ ५४ ॥ और प्रदीप्त अग्निकी समान अंगारे व चिनगारियोंसे युक्त शूल, निस्त्रिंश, और परशु

तेशक्रजिद्बाणविशीर्णदेहामायाहताविस्वरमुन्नदंतः ॥ रणेनिपेतुर्हरयोद्रिकल्पायथेंद्रवज्राभिहतानगेंद्राः ॥ ५२ ॥ तेकेवलंसंददृशुःशिताग्रान्बाणान्रणेवानरवाहिनीषु ॥ मायाविगूढंचसुरेंद्रशत्रुंनचात्रतंराक्षसमप्यपश्यन् ॥ ५३ ॥ ततःसरक्षोधिपतिर्महात्मासर्वादिशोबाणगतैःशिताग्रैः ॥ प्रच्छादयामासरविप्रकाशैर्विदारयामासचवानरेंद्रान्॥५४॥ सशूलनिस्त्रिंशपरश्वधानिव्याविद्धदीप्तानलसप्रभाणि ॥ सविस्फुलिंगोज्ज्वलपावकानिववर्षतीव्रंप्लवगेंद्रसैन्ये॥५५॥ ततोज्वलनसंकाशैर्बाणैर्वानरयूथपाः ॥ ताडिताःशक्रजिद्बाणैःप्रफुल्लाइवकिंशुकाः ॥ ५६ ॥ उदीक्षमाणागगनंकेचिन्नेत्रेषुताडिताः ॥ शनैर्विविशुरन्योन्यंपेतुश्चजगतीतले ॥ ५७ ॥ हनूमंतंचसुग्रीवमंगदंगंधमादनम् ॥ जांबवंतंसुषेणंचवेगदर्शिनमेवच ॥ ५८ ॥

इत्यादि सब आयुधोंको ग्रहण करके वानरराज सुग्रीवजीकी सैनाके ऊपर वह मेघनाद वर्षानें लगा ॥ ५५ ॥ इस प्रकार इंद्रके शत्रु मेघनादके बाणोंसे जब वानर गणोंका शरीर छिन्नभिन्न होकर रुधिरसे भीग गया तब वह समस्त वानर खिले हुए टेसूके वृक्षकी समान शोभायमान हुए ॥५६॥ उस समय कोई२वानर ऊपरको नेत्र उठाये आकाशकी ओर देख रहेथे; कि इतनेंमेंही बाण आनकर उनकी आंखोंमें लगा; तब वह परस्पर एक दूसरेका आश्रय लेनेलगे और कोई पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ५७ ॥ इसके उपरान्त हनुमान सुग्रीव अंगद गन्धमादन जाम्बवान सुषेण वेगदर्शी ॥५८॥

समय घाव रहित होगये और वानर वीर गणभी घावरहित हो उठ बैठे॥६९जिसप्रकार रात्रिके आनेसे समस्त जीव सोजातेहैं और रात्रि वीत जाने पर जाग उठते हैं वैसेही एक क्षणमें समस्त वानर रोगरहित होकर उठ बैठे और जो वानर रणमें मृतक हो गयेथे उन वानरोंकी भी देहोंमें प्राण आय गये॥ ७० ॥परन्तु उन महौषधियोंसे, राक्षस कोईभी नहीं जिया। कारण कि जबसे वानर और राक्षसों का युद्ध आरंभ हुआथा उस समयसे ही रावणकी आज्ञाके अनुसार परिमाण जाननेके लिये ॥ ७१ ॥ जो राक्षस रणमें वानरवीरोंसे मारे जातेथे वह समस्त राक्षसोके द्वारा तुरत ही समुद्रमें फेक दिये जातेथे फिर भला राक्षस कैसे जियें ॥ ७२ ॥ इसके उपरान्त जब सब समस्त वानर जी गये तब अत्यन्त वेग सम्प

सर्वेविशल्याविरुजाःक्षणेनहरिप्रवीराश्चहताश्चयेस्युः ॥ गंधेनतासांप्रवरौषधीनांसुप्तानिशांतेष्विवसंप्रबुद्धाः॥ ७० ॥ यदाप्रभृतिलंकायांयुध्यंतेहरिराक्षसाः ॥ तदाप्रभृतिमानार्थमाज्ञयारावणस्यच ॥ ७१ ॥ येहन्यंतेरणेतत्रराक्षसाः कपिकुंजरैः ॥ हताहतास्तुक्षिप्यंतेसर्वएवतुसागरे ॥ ७२ ॥ ततोहरिर्गंधवहात्मजस्तुतमोषधीशैलमुदग्रवेगः ॥ निनाय वेगाद्धिमवंतमेवपुनश्चरामेणसमाजगाम ॥ ७३ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रा०वा०आ०युद्धकांडेचतुःसप्ततितमःसर्गः ॥७४॥

ततोब्रवीन्महातेजाःसुग्रीवोवानरेश्वरः ॥ अर्थ्यंविज्ञापयंश्चापिहनूमंतमिदंवचः ॥ १ ॥ यतोहतःकुंभकर्णःकुमाराश्चनिषूदिताः ॥ नेदानीमुपनिर्हाररंरावणोदातुमर्हति ॥ २ ॥ येयेमहाबलाःसंतिलघवश्चप्लवंगमाः ॥ लंकामभिपतंत्वाशुगृह्योल्काःप्लवगर्षभाः ॥ ३ ॥

न्न गन्धवहनंदन [पवनकुमार] वानरश्रेष्ठ हनुमानजी उस औषधि पर्वतको ग्रहणकरके वेगसे हिमालय पर्वतपर जहांका तहां स्थापन करके फिर श्रीरामचंद्रजीके निकट चले आये ॥ ७३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे चतुःसप्ततितमःसर्गः ॥ ७४ ॥ इसके उपरान्त वानरराज सुग्रीवजी किसी एक कार्यको विचार करके हनुमानजीसे यह कहते हुए॥ १ ॥ जब कि कुंभकर्ण मारा गया और रावणके पुत्र भी मारे गये तिस्परभी यह रावण अपनी लंकापुरीकी रक्षा करनेमें समर्थ होगा ऐसा तो हमें ज्ञात नहीं होता ॥२॥ इसलिये इन सब वानरोंमें जो महाबलवान् और शीघ्रविक्रमकारी वानरगणहैं वह वानर गण शीघ्रही मसालें हाथमें लेकर लंकापुरीको जलावें ॥ ३ ॥

अठारह बाणोंसे नीलको और नव बाणोंसे नलनाम वानरको दूरसेही खड़े रहकर रणभूमिमें मारा ॥ ४३ ॥ उस महावीर्यवाननें सात मर्म विदारी
बाणोंसे नीलको वींधडाला और पांच बाणसे संग्रामभूमिमें गजको विद्ध किया ॥४४॥ इस प्रकारसे दश बाणोंसे जाम्बवानकोव फिर तीस बाणोंसे
नलको मर्माहत किया; इसके उपरान्त वानरराज सुग्रीव, ऋषभ अंगद और द्विविदको तीक्ष्ण बाणोंसें मारकर मृतकतुल्य कर दिया ॥ ४५ ॥ इस
प्रकारसे उस मेघनादनें अत्यन्त घोर वरदानसे प्राप्त तीक्ष्ण बाणोंसे इन वानरोंको मारा और समस्त वानरोंकोभी असंख्य बाणोंसें मारा ॥ ४६ ॥
क्रोधसें कालाग्निकी समान मूर्छितहों उस महा पराक्रमी मेघनादनें सूर्यकी समान प्रकाशित शीघ्रगामी भली भांतिसे चलाये हुए बाणोंसे ॥ ४७ ॥

सप्तभिस्तुमहावीर्योमैंदंमर्मविदारणैः ॥ पंचभिर्विशिखैश्चैवगजंविव्याधसंयुगे ॥ ४४ ॥ जांबवंतंतुदशभिर्नीलंत्रिंश
द्भिरेवच ॥ सुग्रीवमृषभंचैवसोंगदंद्विविदंतथा ॥ ४५ ॥ घोरैर्दत्तवरैस्तीक्ष्णैर्निष्प्राणानकरोत्तदा ॥ अन्यानपितदामु
ख्यान्वानरान्बहुभिःशरैः ॥ ४६ ॥ अर्दयामाससंक्रुद्धःकालाग्निरिवमूर्छितः ॥ सशरैःसूर्यसंकाशैःसुमुक्तैःशीघ्रगामि
भिः ॥ ४७ ॥ वानराणामनीकानिनिर्ममंथमहारणे ॥ आकुलांवानरींसेनांशरजालेनपीडिताम् ॥ ४८ ॥ हृष्टःसप
श्यत्प्रीत्याददर्शक्षतजोक्षिताम् ॥ पुनरेवमहातेजाराक्षसेंद्रात्मजोबली ॥ ४९ ॥ संसृज्यबाणवर्षंचशस्त्रवर्षंचदारुणम् ॥
ममर्दवानरानीकंपरितस्त्विद्राजिलद्बली ॥ ५० ॥ स्वसैन्यमुत्सृज्यसमेत्यतूर्णंमहाहवेवानरवाहिनीषु ॥ अदृश्य
मानःशरजालमुग्रंववर्षनीलांबुधरोयथांबु ॥ ५१ ॥

वानरोंको एक बारही मर्दित कर डाला बाणोंसे पीड़ित होनेंके कारण व्याकुल और रुधिरसेभीगी हुई वानरोंकी सैनाको ॥ ४८ ॥ देखकर मेघ
नाद अत्यन्त हर्षित हुआ और फिर महातेजस्वी रावणका पुत्र मेघनाद ॥ ४९ ॥ दारुण शब्द और बाणोंकी वर्षा करके वानरोंकी सैनाको
यह इन्द्रजीत सब प्रकारसे मर्दित कर कंपायमान करनें लगा ॥ ५० ॥ मेघनाद सहसा अपनी सैनाको छोड़कर वानरोंकी दृष्टिसे लोप होगया
और अदृश्य रहकर नीला बादर जिस प्रकार जलकी वर्षा करताहै वैसेही वानरोंको ताककर उनके ऊपर अनिवारित बाणोंकी वर्षा करनें लगा॥५१॥

यह कह कर हनुमानजीने शृङ्ग प्रस्तर, खण्ड, मातङ्ग और सुवर्ण आदि धातुओंके उस अनेक शिखरवाले और सहस्रों धातुओंसे प्रज्वलित शृङ्ग सानु समन्वित उस पर्वतको सहसा ग्रहण करकै अतिवेगसे उखाड़ लिया ॥ ६३ ॥ गरुड़जीकी समान अति उग्र वेगवाले हनुमानजी उस पर्वतशृङ्गको उखाड़ आकाशमें उछल गये और सुरेन्द्र व असुरगणोंके सहित समस्त लोकोंको त्रासित करते२ असंख्य आकाशचारियोंसे स्तुति किये जाते हुए अतिवेगसे गमन करते हुए ॥ ६४ ॥ सूर्यकी समान रूप सम्पन्न वह वीर हनुमानजी सूर्यकी समान पर्वत ग्रहण करके सूर्यके मार्गमें उपस्थित हो दूसरें सूर्यकी समान शोभाधारण करते हुए ॥ ६५ ॥ पर्वताकार हनुमानजी उस पर्वतको ग्रहण करकै अग्निकी ज्वालासे युक्त

सतस्यशृंगंसनगंसनागंसकांचनंधातुसहस्रजुष्टम् ॥ विकीर्णकूटंज्वलिताग्रसानुंप्रगृह्यवेगात्सहसोन्ममाथ ॥ ६३ ॥ सतंसमुत्पाट्यखमुत्पपातवित्रास्यलोकान्ससुरान्सुरेंद्रान् ॥ संस्तूयमानःखचरैरनेकैर्जगामवेगाद्गरुडोग्रवेगः ॥ ६४ ॥ सभास्कराध्वानमनुप्रपन्नस्तंभास्कराभंशिखरंप्रगृह्य॥बभौतदाभास्करसन्निकाशोरवेःसमीपेप्रतिभास्कराभः॥६५॥ सतेनशैलेनभृशंरराजशैलोपमोगंधवहात्मजस्तु ॥ सहस्रधारेणसपावकेनचक्रेणखेविष्णुरिवार्पितेन ॥ ६६ ॥ तंवानराःप्रेक्ष्यतदाविनेदुःसतानपिप्रेक्ष्यमुदाननाद ॥ तेषांसमुत्कृष्टरवंनिशम्यलंकालयाभीमतरंविनेदुः ॥ ६७ ॥ ततोमहात्मानिपपाततस्मिन्शैलोत्तमेवानरसैन्यमध्ये ॥ हर्युत्तमेभ्यःशिरसाभिवाद्यविभीषणंतत्रचसस्वजेसः ॥ ६८ ॥ तावप्युभौमानुषराजपुत्रौतंगंधमाघ्रायमहौषधीनाम् ॥ बभूवतुस्तत्रतदाविशल्यावुत्तस्थुरन्येचहरिप्रवीराः ॥ ६९ ॥

हाथमें सहस्र धार चक्र द्वारा शोभित विष्णुजीकी समान शोभायमान होनें लगे॥६६॥ उस कालमें लंकाके मैदान में खड़े हुए वानरगण उनको देखकर सिंहनाद करने लगें और हनुमानजी भी उनको देखकर सिंहनाद कर उठे उस अत्यन्त दारुण शब्दको श्रवणकरकै लंका निवासी निशाचरगणभी भयंकर घोर सिंहनाद करने लगे॥६७॥ इसके उपरान्त महाबलवान हनुमानजी पर्वतश्रेष्ठ त्रिकूटके ऊपर वानरोंकी सेनामें उतरकर मुख्य२ वानरोंको प्रणाम करकै बिभीषणजीको लिपटायकर मिले॥६८॥इस ओर मनुष्यराजकुमार राम और लक्ष्मणजी सब महौषधियोंकी सुगन्धि सूंघकर उसी

सैना निरुपाय और चेष्टा रहित होकर मोहको प्राप्त हुई ॥ १ ॥ तब बुद्धिमान लोगोंमें आगे गिनेजानेके योग्य विभीषणजी सबको ऐसा विषादित देखकर वानरराज सुग्रीवजीके वीरोंको अनुपम वचनोंसे समझानें बुझानें लगे ॥ २ ॥ हे वीरगण! तुम लोग डरो मत यह शोक करनेंका अवसर नहींहै, तुम जो इन्द्रजीतके बाणजालसे श्रीराम लक्ष्मणजीको व्याकुल और मृतक देखतेहो भगवान स्वयंभू ब्रह्माजीका सन्मानही करनेंके लिये श्रीराम लक्ष्मणजीनें ऐसा कियाहै ॥ ३ ॥ स्वयंभू ब्रह्माजीनें इन्द्रजीतको यह बड़ा भारी अमोघ (अन्यर्थ) वीर्य वाला ब्रह्मास्त्र दान कियाहै, यह दोनों राजकुमार इस अस्त्रकी मर्यादा रक्षा करनेंके लियेही ऐसी अवस्थाको प्राप्त होकर गिरे हैं, जो कुछभी हो

ततोविषण्णंसमवेक्ष्यसर्वंविभीषणोबुद्धिमतांवरिष्ठः ॥ उवाचशाखामृगराजवीरानाश्वासयन्नप्रतिमैर्वचोभिः ॥ २ ॥ माभैष्टनास्त्यत्रविषादकालोयदार्यपुत्रौह्यवशौविषण्णौ ॥ स्वयंभुवोवाक्यमथोद्वहंतौयत्सादिताविंद्रजितास्त्रजालैः ॥ ३ ॥ तस्मैतुदत्तंपरमास्त्रमेतत्स्वयंभुवाब्राह्ममघवीर्यम् ॥ तन्मानयंतौयुधिराजपुत्रौनिपातितौकोऽत्रविषादकालः ॥ ४ ॥ ब्राह्ममस्त्रंततोधीमान्मानयित्वातुमारुतिः ॥ विभीषणवचःश्रुत्वाहनूमानिदमब्रवीत् ॥ ५ ॥ अस्मिन्नस्त्रहतेसैन्येवानराणांतरस्विनाम् ॥ योयोधारयतेप्राणांस्तंतमाश्वासयावहे ॥ ६ ॥ तावुभौयुगपद्वीरौहनूमद्राक्षसोत्तमौ ॥ उल्काहस्तौतदारात्रौरणशीर्षेविचेरतुः ॥ ७ ॥ भिन्नलांगूलहस्तोरुपादांगुलिशिरोधरैः ॥ स्रवद्भिःक्षतजंगात्रैःप्रस्रवद्भिःसमंततः ॥ ८ ॥

फिर इसमें शोक करनेंका या घवड़ानेंका क्या कारणहै ? ॥ ४ ॥ पवन कुमार हनुमानजी विभीषणजीके वचन सुनकर उनकाही कही ब्रह्मास्त्रकी मर्यादाको "यथार्थ है " ऐसा कहतेहुए बोले ॥५॥ हे राक्षसकुलतिलक! राक्षस वीर इन्द्रजीतके चलाये हुए ब्रह्मास्त्रसे लग भग हमारी समस्त सैना मारी गई है; इस समय जो वानर कि जीवितहैं उनको समझाना बुझाना हमारा कर्तव्यहै ॥ ६ ॥ इसके उपरान्त हनुमानजी और विभीषणजी यह दोनों वीर उस रात्रिमें मसाल हाथमें लेकर रणभूमिमें घूमनें लगे ॥७॥ उन्होंने रणभूमिमें घूमते हुए देखा कि हाथ जांघ, पैर, उंगली, मस्तक और पूंछ कटे हुए अनेक वानर रणभूमिमें पड़े हुए हैं; वहुत वानरोंके शरीरसे रुधिरकी धारा वहरहीहै; किसी २ वानरका भयके मारे पयःस्राव

ग्रीष्म कालमें दामिनीसे विराजित घटाकी समान प्रकाश पानेंलगे अग्नि लगनेंसे प्रकाशित समस्त गृह ॥ २२ ॥ दावाग्निसे प्रकाशित महापर्वतके शिखरोंकी समान शोभायमान होंनेलगे, समस्त विमानोमें सोती हुई श्रेष्ठस्त्रियें अग्निसे जलती हुई ॥ २३ ॥ सब अंगोंसे गहना निकाल २ कर ऊंचे शब्दसे हाहाकार करके रोदन करनें लगीं ! अग्निसे जलाये समस्त भवन भी ॥ २४ ॥ इन्द्रके वज्रसे आहत हुए महापर्वतोंके शृङ्गोंकी समान गिरनें लगे वह भस्म हुए समस्त धवरहर दूरसे ऐसे प्रकाशित होतेथे ॥ २५ ॥ कि मानों जलते हुए हिमवान पर्वतके शिखर जल रहेहैं. ज्वालासे प्रज्वलित हर्म्यादिकोंके भस्म होंनेसे ॥ २६ ॥ फूले हुए पलाशके वृक्षोंसे पूर्ण रात्रिमें वह समस्त लंकानगरी ज्ञात होंने लगी।

विद्युद्भिरिवनद्धानिमेघजालानिधर्मगे ॥ ज्वलनेनपरीतानिगृहाणिप्रचकाशिरे ॥ २२ ॥ दावाग्निदीप्तानियथाशिखराणिमहागिरेः ॥ विमानेषुप्रसुप्ताश्चदह्यमानावरांगनाः ॥ २३ ॥ त्यक्ताभरणसंयोगाहाहेत्युच्चैर्विचुक्रुशुः ॥ तत्रचाग्निपरीतानिनिपेतुर्भवनान्यपि ॥ २४ ॥ वज्रिवज्रहतानीवशिखराणिमहागिरेः ॥ तानिनिर्दह्यमानानिदूरतःप्रचकाशिरे ॥ २५ ॥ हिमवच्छिखराणीवदह्यमानानिसर्वशः ॥ हर्म्याग्रैर्दह्यमानैश्चज्वालाप्रज्वलितैरपि ॥ २६ ॥ रात्रौसादृश्यतेलंकापुष्पितैरिवकिंशुकैः ॥ हस्त्यध्यक्षैर्गजैर्मुक्तैर्मुक्तैश्चतुरगैरपि ॥ बभूवलंकालोकांतेभ्रांतग्राहइवार्णवः ॥ २७ ॥ अश्वंमुक्तंगजोदृष्ट्वाक्कचिद्भीतोपसर्पति ॥ भीतोभीतंगजंदृष्ट्वाक्कचिदश्वोनिवर्तते ॥ २८ ॥ लंकायांदह्यमानायांशुशुभेचमहोदधिः ॥ छायासंसक्तसलिलोलोहितोदइवार्णवे ॥ २९ ॥ साबभूवमुहूर्तेनहरिभिर्दीपितापुरी ॥ लोकस्यास्यक्षयेघोरेप्रदीप्तेववसुंधरा ॥ ३० ॥

उस कालमें अध्यक्ष लोगोंनें अग्निके भयसे भीत होकर हाथी और घोड़ोंको उनके थान परसे खोल दिया, उस समय ऐसा जाना गया मानों लंका पुरी महा प्रलयमें घूमते हुए ग्राह मकरादिसे पूर्ण महा समुद्रकी समान होगई है ॥ २७ ॥ किसी स्थानमें हाथी घोड़ोंको खुला हुआ देखकर भागनें लगा और कहीं डरे हुए हाथियोंको देख घोड़ाही लौट पड़ता था ॥ २८ ॥ जबकि लंका नगरी इस प्रकारसे दग्ध होगई, तब अग्निकी शिखाओंकी परछांई समुद्रके जलमें पड़नेंसे समुद्र लाल समुद्रकी समान जान पड़ताथा ॥ २९ ॥ अधिक क्या कहैं वानर गणों करके दीप्तिमान

होगयाहै ॥ ८ ॥ पर्वताकार प्रधान २ वानरोंके गिरनेंसे रणभूमि परिपूर्ण होरहीहै और बहुतसारे अस्त्र शस्त्रभी टूटेफूटेहुए पड़ेहैं ॥ ९ ॥ सुग्रीव, अंगद, नील, शरभ, गन्धमादन, जाम्बवन्त सुषेण और वेगदर्शी ॥ १० ॥ मैन्द, नल ज्योतिर्मुख और द्विविद वानरोंकोभी हनुमान और विभीषण जीनें रणभूमिमें मृतक हुए देखा ॥ ११ ॥ इस संग्रामके मध्यम दिनके पांचमें भागमें अर्थात् छैः घड़ीमें ब्रह्माजीके अस्त्रसे रावणके पुत्र मेघनादनें सड़सठ करोड वानरोंको मार डालाथा; उन सबको उन दोनों वीरोंनें देखा ॥१२॥ हनुमानजी विभीषणजीके सहित समुद्रके प्रवाहकी समान विस्तारवाली भयंकर वानर सैनाकी यह दशा देखकर जाम्बवानको खोजनें लगे ॥ १३ ॥ बहुत ढूंढ भाल करनेंके पीछे शीघ्र बुझनेंवाली अग्निके

पतितैःपर्वताकारैर्वानरैरभिसंवृताम् ॥ शस्त्रैश्चपतितैर्दीप्तैर्ददृशातेवसुंधराम् ॥ ९ ॥ सुग्रीवमंगदंनीलंशरभंगंधमादनम् ॥ जांबवंतंसुषेणंचवेगदर्शिनमेवच ॥ १० ॥ मैंदंनलंज्योतिमुखंद्विविदंचापिवानरम् ॥ विभीषणोहनूमांश्चददृशातेहतान्रणे ॥ ११ ॥ सप्तषष्टिर्हताःकोट्योवानराणांतरस्विनाम् ॥ अह्नःपंचमशेषेणवल्लभेनस्वयंभुवः ॥ १२ ॥ सागरौघनिभंभीमंदृष्ट्वाबाणार्दितंबलम् ॥ मार्गतेजांबवंतंचहनूमान्सविभीषणः ॥ १३ ॥ स्वभावजरयायुक्तंवृद्धंशरशतैश्चितम् ॥ प्रजापतिसुतंवीरंशाम्यंतमिवपावकम् ॥ १४ ॥ दृष्ट्वासमभिसंक्रम्यपौलस्त्योवाक्यमब्रवीत् ॥ कच्चिदार्यशरैस्तीक्ष्णैर्नप्राणाध्वंसितास्तव ॥ १५ ॥ विभीषणवचःश्रुत्वाजांबवानृक्षपुंगवः ॥ कृच्छ्रादभ्युद्गिरन्वाक्यमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १६ ॥ नैर्ऋतेंद्रमहावीर्यस्वरेणत्वाभिलक्षये ॥ विद्धगात्रःशितैर्बाणैर्नत्वांपश्यामिचक्षुषा ॥ १७ ॥

समान सेकड़ों हजारों बाणोंसे विंधेहुए जराग्रसित वृद्ध प्रजापतिके पुत्र वीर जाम्बवानको ॥ १४ ॥ देखकर पौलस्त्य विभीषणभी उनके समीप जायकर बोले कि हे आर्य ! इस दारुण तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षासे आपके कहीं चोट तौ नहीं लगी ॥ १५ ॥ विभिषणजीके वचन सुनकर ऋक्षश्रेष्ठ जाम्बवानजी अत्यन्त कष्टसे वचन उच्चारण कर कहनेंलगे ॥ १६ ॥ हे महावीर्यवान ! तीखे बाणोंसे हमारा शरीर ऐसा विद्ध हुआहै; कि हम आपको अपने नेत्रोंसे देखभी नहीं सकतेहैं; केवल आपका बोल सुनकर ही हम आपको राक्षसोंका स्वामी विभीषण मानते हैं ॥ १७ ॥

की हुई वह लंकापुरी एक मुहूर्त भरमें प्रलय कालमें प्रदीप्त हुई पृथ्वीकी समान भस्म होगई ॥ ३० ॥ उस कालमें अग्निसे संतापित धुएंसे व्याप्त
और रुदन करती हुई राक्षसोंकी स्त्रियोंका शब्द सौ योजनसे सुनाई आनें लगा ॥ ३१ ॥ उस समय जले अध जले जो राक्षस भागकर लंकाके बाहर
को आतेथे युद्ध करनेंके लिये वानर वृन्द उनके सन्मुख जायर कर उनको मारनें लगे॥३२॥उस कालमें वानर लोगोंके उद्योगसे और निशाचरगणोंके
शब्दसे दशोंदिशा समुद्र, और समस्त पृथ्वी शब्दायमान होनें लगी ॥३३॥ इस ओर दोनों राज कुमार महात्मा श्रीराम लक्ष्मणजी घाव रहित व
सावधान चित्तहो दोनोंनें श्रेष्ठ धनुष धारण किये ॥ ३४ ॥ उसके उपरान्त श्रीरामचंद्रजीनें जब अपनें बड़ेभारी उत्तम धनुषपर टंकोरदी तब राक्षस

नारीजनस्यधूमेनव्याप्तस्योच्चैर्विनेदुषः ॥ स्वनोज्वलनतप्तस्यशुश्रुवेशतयोजनम् ॥ ३१ ॥ प्रदग्धकायानपरान्रा
क्षसान्निर्गतान्बहिः ॥ सहसाभ्युत्पतंतिस्महरयोथयुयुत्सवः ॥ ३२ ॥ उद्घुष्टंवानराणांचराक्षसानांचनिःस्वनम् ॥ दिशो
दशसमुद्रंचपृथिवींचव्यनादयत् ॥ ३३ ॥ विशल्यौचमहात्मानौतावुभौरामलक्ष्मणौ ॥ असंभ्रांतौजगृहतुस्तेउभे
धनुषीवरे ॥ ३४ ॥ ततोविस्फारयामासरामश्चधनुरुत्तमम् ॥ बभूवतुमुलःशब्दोराक्षसानांभयावहः ॥ ३५ ॥ अशो
भततदारामोधनुर्विस्फारयन्महत् ॥ भगवानिवसंक्रुद्धोभवोवेदमयंधनुः ॥ ३६ ॥ उद्घुष्टंवानराणांचराक्षसानांच
निःस्वनम् ॥ ज्याशब्दस्तावुभौशब्दावतिरामस्यशुश्रुवे ॥ ३७ ॥ वानरोद्घुष्टघोषश्चराक्षसानांचनिःस्वनः ॥ ज्याश
ब्दश्चापिरामस्यत्रयंव्यापदिशोदश ॥ ३८ ॥

लोगोंका भयावह कठोर शब्द होनें लगा ॥ ३५ ॥ जिस समय श्रीरामचंद्रजीनें बड़ेभारी धनुषपर टंकोरदी; तब उस समय वह संहार कालमें
शब्द ब्रह्मात्मक वेदमय धनु विस्फारण कारी भगवान भवानी पतिकी समान जान पड़नें लगे ॥ ३६ ॥ वानरोंके गर्जन करनें और राक्षसोंके
रोदन करनेंका शब्द और श्रीरामचंद्रजीके धनुषकी टंकारका शब्द यह तीनों शब्द एक दूसरेको मूंद लेते हुएसे सुनाई देतेथे ॥ ३७ ॥
और वानर गणोंका गर्जना, निशाचर गणोंका रोना और श्रीरामचंद्रजीके धनुषके टंकोर यह तीनो शब्द दशों दिशाओंमें व्याप्त होगये ॥ ३८ ॥

हे सुव्रत! जिनको पुत्र प्राप्त करके अंजनी सुपुत्रवती हुई है और पवन देव पुत्रवान् हुएहैं वह वानरश्रेष्ठ हनुमान् क्या जीवित हैं? ॥१८॥ जाम्बवानके वचन सुनकर बिभीषणजी बोले हे आर्य! आप आर्यपुत्र श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजीको छोड़कर प्रथम किस कारणसे हनुमानजीका वृत्तान्त पूछते हैं? ॥ १९ ॥ आपने रघुनंदन, वानर सुग्रीवजी अथवा अंगदजीके प्रति स्नेहानुराग न दिखाकर हनुमानजीमें जो ऐसा स्नेह प्रकाश किया इसका कारण क्याहै? ॥ २० ॥ बिभीषणजीके वचन सुनकर जाम्बवन्तजीनें कहा; हे राक्षसशार्दूल! हमनें जिस कारणसे और सबको छोड़कर केवल हनुमानजीका वृत्तान्त पूछा, उसका कारण श्रवण करो ॥ २१ ॥ यद्यपि यह वानरोंकी सेना मारी तो गईहै, परन्तु वीर

अंजनासुप्रजायेनमातरिश्वाचसुव्रत ॥ हनूमान्वानरश्रेष्ठःप्राणान्धारयतेक्कचित् ॥ १८ ॥ श्रुत्वाजांबवतोवाक्यमुवाचेदंविभीषणः ॥ आर्यपुत्रावतिक्रम्यकस्मात्पृच्छसिमारुतिम् ॥ १९ ॥ नैवराजनिसुग्रीवेनांगदेनापिराघवे ॥ आर्यसंदर्शितःस्नेहोयथावायुसुतेपरः ॥ २० ॥ विभीषणःवचःश्रुत्वाजांबवान्वाक्यमब्रवीत् ॥ शृणुनैर्ऋतशार्दूलयस्मात्पृच्छामिमारुतिम् ॥ २१ ॥ अस्मिन्जीवतिवीरेतुहतमप्यहतंबलम् ॥ हनूमत्युज्झितप्राणेजीवंतोपिमृतावयम् ॥ २२ ॥ धरतेमारुतिस्तातमारुतप्रतिमोयदि ॥ वैश्वानरसमोवीर्येजीविताशाततोभवेत् ॥ २३ ॥ ततोवृद्धमुपागम्यविनयेनाभ्यवादयत् ॥ गृह्यजांबवतःपादौहनूमान्मारुतात्मजः ॥ २४ ॥ श्रुत्वाहनूमतोवाक्यंतदाविव्यथितेंद्रियः ॥ पुनर्जातमिवात्मानंमन्यतेप्लवगोत्तमः ॥ २५ ॥

श्रेष्ठ वानर हनुमानजीके जीवित रहते, हम किसीको भी मरा हुआ नहीं समझते परन्तु पवनकुमार हनुमानजीके मर जानेंसे हम लोग जीतेहुए भी मरेही हैं॥ २२ ॥ इस्से जो हनुमान जीवितहों तब हमें जीवनकी आशा होगी नहीं तौ जीना क्याहै कारणकि वह पवनकी समान समरमें वेगवान हैं और वीर्यमें अग्निको समान हैं हेतात! हनुमानजीका जीना सुनकर फिर हमें जीनेंकी आशा होगी ॥ २३ ॥ तब महावीर हनुमानजी वृद्ध जाम्बवानके निकट जायकर उनके चरण पकड़ विनीत भावसे प्रणाम करके अपना नाम बतायकर बोले कि हम आपकी कृपासे जीतेहैं॥२४॥ तब हनुमानजीके वचन सुनकर रीछराज अत्यन्त कातर रहनेंपरभी आनन्दके मारे अत्यन्त हर्षित हो अपना दूसरा जन्म समझतेहुए ॥२५॥

श्रीरामचंद्रजीके धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे उस लंका पुरीके कैलास पर्वतके शिखरकी समान फाटक चूर्ण होकर पृथ्वीमें गिर पडे ॥ ३९ ॥
इस ओर विमान और गृहोकों गिरता हुआ व श्रीरामचंद्रजीके बाणोंको देख राक्षस श्रेष्ठोमें भी कठोर युद्धकी तैयारियां होनें लगी ॥ ४० ॥
जब राक्षस श्रेष्ठ गण सिंहनाद करके संग्राम करनेंके लिये तैयार होनें लगे तब उस समय यह रात्रि कालरात्रिकी समान जान पड़नें लगी ॥ ४१ ॥
इसी अवसरमें महा बलवान् वानर सुग्रीवजीनें वानर श्रेष्ठोंको यह आज्ञादी कि "हे वानर गण ! तुम लोगोंमेंसे जो वानर जिस द्वारके निकटहो वही उसी द्वारपर युद्ध करै ॥ ४२ ॥ श्रेणी [मोरचा] पर उपस्थित रहकर भी जो हमारी आज्ञाका निरादर करैगा, राजाज्ञाके अनादर करनेंवाले उस

तस्यकार्मुकनिर्मुक्तैःशरैस्तत्पुरगोपुरम् ॥ कैलासशृंगप्रतिमंविकीर्णमभवद्भुवि ॥ ३९ ॥ ततोरामशरान्दृष्ट्वाविमानेषुगृहेषुच ॥ सन्नाहोराक्षसेंद्राणांतुमुलःसमपद्यत ॥ ४० ॥ तेषांसन्नह्यमानानांसिंहनादंचकुर्वताम् ॥ शर्वरीराक्षसेंद्राणांरौद्रीवसमपद्यत॥४१॥ आदिष्टावानरेंद्रास्तेसुग्रीवेणमहात्मना ॥ आसन्नंद्वारमासाद्ययुध्यध्वंचप्लवंगमाः ॥४२॥ यश्चवोवितथंकुर्यात्तत्रतत्राप्युपस्थितः ॥ सहंतव्योभिसंप्लुत्यराजशासनदूषकः ॥ ४३ ॥ तेषुवानरमुख्येषुदीप्तोल्कोज्ज्वलपाणिषु ॥ स्थितेषुद्वारमाश्रित्यरावणंक्रोधआविशत् ॥ ४४ ॥ तस्यजृंभितविक्षेपाद्व्यामिश्रावैदिशोदश ॥ रूपवानिवरुद्रस्यमन्युर्गात्रेष्वदृश्यत ॥ ४५ ॥ सकुंभंचनिकुंभंचकुंभकर्णात्मजावुभौ ॥ प्रेषयामाससंक्रुद्धोराक्षसैर्बहुभिःसह ॥ ४६ ॥ यूपाक्षःशोणिताक्षश्चप्रजंघःकंपनस्तथा ॥ निर्ययुःकौंभकर्णाभ्यांसहरावणशासनात् ॥ ४७॥ शशासचैवतान्सर्वान्राक्षसान्समहाबलान् ॥ राक्षसागच्छताद्यैवसिंहनादंचनादयन् ॥ ४८ ॥

वानरको निःसन्देह मार डालेंगे" ॥ ४३ ॥ इसके उपरान्त जब वह मुखियार वानर लूके हाथमें लिये सब द्वारोंको घेरेहुये खड़े रहे तब निशाचरराज रावणको अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हुआ ॥४४॥ जब रावणनें जंभाई ली तब दशोंदिशा कलुषित होगई और प्रलयकालीन रुद्रके रूपवान् क्रोधके समान रावणके शरीरमें भी क्रोधके चिह्न दिखाई देनें लगे ॥ ४५ ॥ तिसके उपरान्त निशाचरपति रावणनें क्रोधमें भरकर कुंभकर्णके पुत्र कुंभ और निकुंभको बहुत निशाचरोंके साथ युद्ध करनेंके लिये भेजा ॥ ४६ ॥ रावणकी आज्ञाके अनुसार, यूपाक्ष, शोणिताक्ष, प्रजङ्घ और कंपन नामक चार राक्षस इन कुंभकर्णके दो पुत्रोंके साथ चले ॥ ४७ ॥ तब उस समय रावणनें राक्षसोंका भय दूर करनेंके लिये सिंहनाद करके उन महाबल

इसके उपरान्त महातेजमान् जाम्बवानजी हनुमानजीसे बोले कि हेवानरश्रेष्ठ! आओ प्रथम इन सब वानरोंकी रक्षा करना तुम्हारा कर्तव्यहै ॥ २६॥
हेवीर! इस समय हम और किसीको नहीं देखते केवल तुमही इन लोगोंके परम सखा हो और तुम्हारा पराक्रमही इन लोगोंका उद्धार करनेंमें यथेष्ट
होगा, विशेष करकै इस समय तुम्हारे उस पराक्रम प्रकाश करनेंका समय आयाहै ॥ २७ ॥ रीछ और वानरवीरगणोंकी इस समस्त सैनाको
हर्षित कराओ और पीड़ित हुए श्रीराम, व लक्ष्मणजीके अंगोंमेंसे वाण निकाल डालो ॥ २८ ॥ हे शत्रुदमनकारी हनुमान्! तुम इस समय
महासमुद्रके पार बहुत दूरतक गमन करकै पर्वतश्रेष्ठ हिमालयपर पहुँचोगे ॥ २९ ॥ इसके आगे सुवर्णमय ऋषभनाम पर्वतश्रेष्ठहै; हे शत्रु

ततोब्रवीन्महातेजाहनूमंतंसजांबवान् ॥ आगच्छहरिशार्दूलवानरांस्त्रातुमर्हसि ॥ २६ ॥ नान्योविक्रमपर्याप्तस्त्वमे
षांपरमःसखा ॥ त्वत्पराक्रमकालोयंनान्यंपश्यामिकंचन ॥ २७ ॥ ऋक्षवानरवीराणामनीकानिप्रहर्षय ॥ विशल्यौ
कुरुचाप्येतौसादितौरामलक्ष्मणौ ॥ २८ ॥ गत्वापरममध्वानमुपर्युपरिसागरम् ॥ हिमवंतंनगश्रेष्ठंहनूमन्गंतुमर्ह
सि ॥ २९ ॥ ततःकांचनमत्युग्रमृषभंपार्वतोत्तमम् ॥ कैलासशिखरंचात्रद्रक्ष्यस्यरिनिषूदन ॥ ३० ॥ तयोःशिखरयो
र्मध्येप्रदीप्तमतुलप्रभम् ॥ सर्वौषधियुतंवीरद्रक्ष्यस्योषधिपर्वतम् ॥ ३१ ॥ तस्यवानरशार्दूलचतस्रोमूर्ध्निसंभवाः ॥
द्रक्ष्यस्योषधयोदीप्तादीपयंतीर्दिशोदश ॥ ३२ ॥ मृतसंजीवनींचैवविशल्यकरणीमपि ॥ सुवर्णकरणींचैवसंधानीं
चमहौषधीम् ॥ ३३ ॥ ताःसर्वाहनुमन्गृह्यक्षिप्रमागंतुमर्हसि ॥ आश्वासयहरीन्प्राणैर्योज्यगंधवहात्मज ॥ ३४ ॥

दमनकारी! वहां पर तुम कैलासपर्वतके शिखरभी देखोगे ॥ ३० ॥ वहांपर इन दोनों शिखरोंके मध्यमें समस्त औषधियोंसे युक्त अतुल
प्रभा युक्त और प्रदीप्त ओषधि पर्वत तुमको दिखाई देगा ॥ ३१ ॥ हे वानरशार्दूल! तुम उस पर्वतके शिखर पर चार प्रकारकी ओषधि देख
पाओगे, तुम देखोगे कि वह अपने प्रभावसे दशों दिशाओंको प्रकाशमान कर रही होंगी ॥ ३२ ॥ उनके मृतसञ्जीवनी [मरे हुएको जिलानें
वाली] विशल्यकरणी [अंगोंकी व्यथा दूर करनेंवाली] सुवर्णकरिणी, [घाव आदिकसे हुई विवर्णताको दूरकर अंग सुन्दर करतीहै] और
सन्धानकरणी, [लगातेही घावको भर देती है] यह चार नामहैं ॥३३॥ हे गन्धवह [पवन] नन्दन हनुमान्! तुम इन सब औषधियोंको जितनी

वान् राक्षसोंसे कहा "हे निशाचर गण ! तुम सब इस रात्रिमेंही युद्ध करनेंके लिये जाओ" ॥ ४८॥ राक्षसगण राक्षसराज रावण करके इस प्रका
रसे युद्धमें भेजे जाकर आयुध उठाय वारंवार सिंहनाद करते हुए लंकासे निकले ॥ ४९ ॥ तब राक्षसोंकें धारण कियेहुए अलंकारोंसे और
शरीरोंके कांतिसें और वानरोने पकडेहुये उल्कासे आकाश प्रकाशित होगया ॥ ५० ॥ ऊपरसे चंद्रमा और तारागण व नीचे वानर राक्षसोंके
भूषणोंकी प्रकाशमय कांतिसे दोनों सैनाओंके बीचमें टिकाहुआ आकाश प्रदीप्तमान होगया ॥ ५१ ॥ चंद्रमाकी चांदनी गहनोंकी कांति

ततस्तुचोदितास्तेनराक्षसाज्वलितायुधाः ॥ लंकायांनिर्ययुर्वीराःप्रणदंतःपुनःपुनः ॥ ४९ ॥ रक्षसांभूषणस्था
भिर्भाभिःस्वाभिश्चसर्वशः ॥ चक्रुस्तेसप्रभंव्योमहरयश्चाग्निभिःसह ॥ ५० ॥ तत्रताराधिपस्याभाताराणांभातथै
वच ॥ तयोराभरणाभाचज्वलिताद्यामभासयत् ॥ ५१ ॥ चंद्राभाभूषणाभाचग्रहाणांज्वलिताचभा ॥ हरिरा
क्षससैन्यानिभ्राजयामाससर्वतः ॥ ५२ ॥ तत्रचार्धप्रदीप्तानांगृहाणांसागरःपुनः ॥ भाभिःसंसक्तसलिलश्चलोर्मिःशुशु
भेध्रुवम् ॥ ५३ ॥ पताकाध्वजसंयुक्तमुत्तमासिपरश्वधम् ॥ भीमाश्वरथमातंगंनानापत्तिसमाकुलम् ॥ ५४ ॥ दीप्तशूल
गदाखड्गप्रासतोमरकार्मुकम् ॥ तद्राक्षसबलंभीमंघोरविक्रमपौरुषम् ॥ ५५ ॥ ददृशेज्वलितप्रासंकिंकिणीशतनादि
तम् ॥ हेमजालाचितभुजंव्यावेष्टितपरश्वधम् ॥ ५६ ॥

और जलतेहुए भवनोंकी अग्नि;यह सब वानर और राक्षसोंको प्रकाशित करनें लगीं ॥ ५२ ॥ अग्निसे जलतेहुए गृहोंकी दीप्तिकी परछांई
जब समुद्रके जलमें पडी तब चंचल तरंग माला शोभित समुद्र और भी अधिक शोभायमान हुआ ॥ ५३ ॥ ध्वजा पताकासंयुक्त, उत्तम खड्ग,
फरसासहित, भयंकर घोड़े व हाथियोंके साथ अनेक प्रकारके पैदलोंके सहित ॥ ५४ ॥ प्रदीप्त शूल, गदा खड्ग, प्राश, तोमर, धनुष ऐसे राक्षसोंकी
घोर विक्रमकारी और पौरुषयुक्त सैनाको ॥ ५५ ॥ प्रकाशमान देखा वह सैना शत २ किङ्किणीनिनादित, प्रज्वलित कुठार और सुवर्ण भूषणसे

जलदी लासकते हो, उतनी जलदी लेआओ, और वानरोंको प्राणदान देकर इन लोगोंको आनंदित करो ॥ ३४ ॥ उस समय पवननंदन हनुमानजी जाम्बवन्तके वचन सुनकर पवनके वेगसे जिस प्रकार समुद्र उफनजाताहै, वैसेही प्रबल वेगसे आपभी उद्धतहो उठे ॥ ३५॥ इसके उपरान्त कूदनेंके लियेही जब यह त्रिकूट पर्वतके आगे खड़े हुए तब दूसरे पर्वतके समान जानपड़तेथे ॥ ३६ ॥ तिस काल वानरश्रेष्ठ हनुमानजीके पांवों द्वारा अत्यन्त पीड़ित होंनेसे वह पर्वत अपने स्थानमें रहनेंको असमर्थ हो टूटकर झुक पड़ा ॥ ३७ ॥ वानर श्रेष्ठ हनुमानजीके वेगसे पीड़ित होनेसे उस पर्वतके समस्त वृक्ष पृथ्वीपर गिर पड़े और उसके समस्त शिखर फटगये कि जिनसे अग्नि निकलनेंलगी और सब शृङ्गभी फट

श्रुत्वाजांबवतोवाक्यंहनूमान्मारुतात्मजः ॥ आपूर्यतबलोद्धर्षैर्वायुवेगैरिवार्णवः ॥३५॥ सपर्वततटाग्रस्थःपीडयन्पर्वतो त्तमम् ॥हनूमान्दृश्यतेवीरोद्वितीयइवपर्वतः ॥३६॥ हरिपादविनिर्भग्नोनिषसादसपर्वतः ॥ नशशाकतदात्मानंवोढुंभृश निपीडितः॥३७॥तस्यपेतुर्नगाभूमौहरिवेगाच्चजज्वलुः ॥ शृंगाणिचव्यकीर्यंतपीडितस्यहनूमता ॥ ३८ ॥ तस्मिन्संपी डद्यमानेतुभग्नद्रुमशिलातले ॥ नशेकुर्वानराःस्थातुंघूर्णमानेनगोत्तमे ॥ ३९ ॥ साघूर्णितमहाद्वाराप्रभग्नगृहगोपुरा ॥ लंकात्रासाकुलारात्रौप्रनृत्येवाभवत्तदा॥४०॥ पृथिवीधरसंकाशोनिपीड्यपृथिवीधरम् ॥ पृथिवींक्षोभयामाससार्णवां मारुतात्मजः ॥ ४१ ॥ पद्भ्यांतुशैलमाविध्यवडवामुखवन्मुखम् ॥ विवृत्योग्रंननादोच्चैस्त्रासयन्रजनीचरान् ॥ ४२ ॥ तस्यनानद्यमानस्यश्रुत्वानिनदमुत्तमम् ॥ लंकास्थाराक्षसव्याघ्रानशेकुःस्पंदितुंकचित् ॥ ४३ ॥

गये ॥ ३८ ॥ इस प्रकार पर्वतश्रेष्ठ त्रिकूटके सब वृक्ष टूट गये शिलाओंका चूरा होगया, और वह पर्वतभी पीड़ित होकर घूमनेंलगा; उस पर्वतके रहनेंवाले वानर लोग उस पर नहीं टिकसके ॥ ३९ ॥ लंकाके गृह और पुरद्वार टूट गये, और कंपायमान होनेलगे सबही शंकायुक्त हुए; उस समय ऐसा ज्ञात हुआ कि मानों राक्षसोंकी पुरी लंका नाच रहीहै ॥ ४० ॥ पर्वताकार वानरवीर पवनकुमार पर्वतको पीड़ित करके समस्त पृथ्वीको समुद्रके सहित चलायमान कर देते हुए ॥ ४१ ॥ हनुमानजी चरणके आघातसे पृथ्वीको विदीर्ण करके घोड़ीके मुखकी समान प्रदीप्त मुख फैलाय राक्षसोंको शंकित करके घोर गर्जन करनेंलगे ॥ ४२ ॥ लंकामें टिकेहुए राक्षसलोग अचानक कठोर गर्जन सुन

भूषित बाहु और प्रज्वलित भालोंसे युक्त ॥ ५६ ॥ महाशस्त्रोंको घुमाते हुए धनुष पर बाण चढ़ाते हुए, गन्धमाला व पवनकी मधुकमोहकेसं मोदित करते ॥ ५७ ॥ शूरगणोंके भरे रहनेसे अतिघोर महा मेघके गर्जनकी समान शब्द करती ऐसी दुर्द्धर्ष राक्षसोंकी सेना आई हुई देखकर ॥ ५८ ॥ वानरोंकी सैनानें विचलित होकर ऊंचे स्वरसे सिंहनाद किया। फिर उस राक्षसोंकी बड़ी भारी सैनाके बीचमें ॥ ५९ ॥ अतिवेगसे कूद पड़े कि जैसे पतंगे अग्निमें कूद पड़तेहैं तिन राक्षस लोगोंके भुजोंके व्यापारसे कंपायमान,किये गये वज्र व अशनिसें युक्त ॥ ६० ॥

व्याघूर्णितमहाशस्त्रंबाणसंसक्तकार्मुकम् ॥ गंधमाल्यमधूत्सेकसंमोदितमहानिलम् ॥ ५७ ॥ घोरंशूरजनाकीर्णमहांबुधरनिःस्वनम् ॥ तद्दृष्ट्वाबलमायातंराक्षसानांदुरासदम् ॥ ५८ ॥ संचचालप्लवंगानांबलमुच्चैर्ननादच ॥ जवेनाप्लुत्यच पुनस्तद्बलंरक्षसांमहत् ॥ ५९ ॥ अभ्ययात्प्रत्यरिबलंपतंगाइवपावकम् ॥ तेषांभुजपरामर्शव्यामृष्टपरिघाशनि ॥ ६० ॥ राक्षसानांबलंश्रेष्ठंभूयःपरमशोभत ॥ तत्रोन्मत्ताइवोत्पेतुर्हरयोथयुयुत्सवः ॥ ६१ ॥ तरुशैलैरभिघ्नंतोमुष्टिभिश्चनिशाचरान् ॥ तथैवापततांतेषांहरीणांनिशितैःशरैः ॥ ६२ ॥ शिरांसिसहसाजह्रुराक्षसाभीमविक्रमाः ॥ दशनैर्हृतकर्णाश्चमुष्टिभिर्भिन्नमस्तकाः ॥ शिलाप्रहारभग्नांगाविचेरुस्तत्रराक्षसाः ॥ ६३ ॥ तथैवाप्यपरेतेषांकपीनामसिभिःशितैः ॥ प्रवरानभितोजघ्नुर्घोररूपानिशाचराः ॥ ६४ ॥

राक्षसोंकी सैना फिर अत्यन्त शोभित हुई। इसके उपरान्त युद्ध करनेंके लिये तैयार वानरलोग उन्मत्तकी समान ॥ ६१ ॥ वृक्ष शैल, मूकोंसे कूद २ कर निशाचरोंको मारनें लगे। तब उन कूद २ कर आते हुए वानरोंके तीक्ष्ण बाणोंसे ॥ ६२ ॥ भयंकरविक्रमकारी राक्षस लोग शिर काटनें लगे निशाचरलोग वानर लोगोंके दांतोंसे काटे जाकर कर्ण रहित मूकोंके मारनेंसे शिर रहित और शिलाओंके प्रहारसे अंग भंगहो उस रण भूमिमें विचरण करनेंलगे ॥६३॥ व दूसरी ओरसे घोर रूप निशाचर गणोंने भी तीक्ष्ण खड्गसे मुख्य२वानरोंका संहार करना आरंभ किया ॥ ६४ ॥

धनु, और वसुन्धराकी नाभि, अर्थात् सब प्राजापत्यस्थानोंको देखा ॥५६॥ [महावीर पवनकुमार हनुमानजीनें उस हिमालय पर विघ्नेश्वर (गणेशजी) नंदिकेश्वर, देवता लोगोंसे वेष्टित कुमार कार्तिकेय और कन्या गणोंके साथमें दीप्तिमती हैमवती (दुर्गाजीको) देखा] इसके उपरान्त हिमवत शिखर कैलास; जाम्बवन्तके बताये हुए वृक्ष पर्वत श्रेष्ठ सुवर्णका पर्वत देखकर सब औषधियोंसे प्रदीप्त औषधि पर्वत हनुमानजीनें देखा ॥५७॥ पवनकुमार हनुमानजी कूदकर अनलकी राशिके समान प्रदीप्त उस औषधिपर्वतपर पहुंचकर जाम्बवानकी बताईहुई सब महौषधियोंको खोजनेंलगे और इन औषधियोंको अग्निके समान प्रकाशमान देख हनुमानजी विस्मितभी हुए ॥ ५८ ॥ इस प्रकारसे महाकपि हनुमा

कैलासमुग्रंहिमवच्छिलांचतंवैवृषंकांचनशैलमग्र्यम् ॥ प्रदीप्तसर्वौषधिसंप्रदीप्तंददर्शसर्वौषधिपर्वतेंद्रम् ॥ ५७ ॥ सतंसमीक्ष्यानलराशिदीप्तंविसिस्मियेवासवदूतसूनुः ॥ आप्लुत्यतंचौषधिपर्वतेंद्रंतत्रौषधीनांविचयंचकार ॥ ५८ ॥ सयोजनसहस्राणिसमतीत्यमहाकपिः ॥ दिव्यौषधिधरंशैलंव्यचरन्मारुतात्मजः ॥ ५९ ॥ महौषध्यस्ततःसर्वास्तस्मिन्पर्वतसत्तमे ॥ विज्ञायार्थिनमायांतंततोजग्मुरदर्शनम् ॥ ६० ॥ सतामहात्माहनुमानपश्यंश्चुकोपरोषाच्चभृशंननाद ॥ अमृष्यमाणोग्निसमानचक्षुर्महीधरेंद्रंतमुवाचवाक्यम् ॥ ६१ ॥ किमेतदेवंसुविनिश्चितंतेयद्राघवेनासिकृतानुकंपः ॥ पश्याद्यमद्बाहुबलाभिभूतोविकीर्णमात्मानमथोनगेंद्र ॥ ६२ ॥

नजी हजार योजन मार्ग चलकर सब ओषधियुक्त उस पर्वतपर पहुंचकर घूमनें लगे॥५९॥परन्तु उस पर्वतश्रेष्ठके ऊपर जो समस्त महौषधिथीं, वह यह समझकरकि हमको ढूंढ़नेंको कोई आयाहै सबही अदृश्य होगईं॥६०॥उन समस्त औषधियोंको न देख पायकर क्रोधके मारे हनुमानजीके दोनों नेत्र अग्निकी समान लाल होगये और वह उन औषधियोंका ऐसा कार्य न सहन करके वारंवार सिंहनाद करतेहुए उस पर्वतसे बोले ॥ ६१ ॥ हे पर्वत! तुम जो श्रीरामचंद्रजीके प्रति दया प्रगट नहीं करते यह कैसा कार्य तुमनें निश्चय कियाहै? यदि तुमनें अपनी सामर्थ्यपर भरोसा रखके कार्यमें ऐसी उदासीनता प्रकाश की तो आज हमारे बाहुबलसे व्याकुल होकर तुम अपनेको रत्ती २ चूर्णहुआ देखोगे ॥ ६२ ॥

जायकर उठगये ॥ १ ॥ वेगवान् कंपननेंभी युद्ध करनेंके लिये अंगदको पुकारकर अपनी गदासे उनको मारा कि जिस्से अत्यन्त घायलहो
अंगदजी चलायमान होगये ॥ २ ॥ परन्तु तेजस्वी अंगदजीनें क्षण कालमेंही मूर्छासे जागकर एक पर्वतका शिखर उसके ऊपर चलाया कि उस
प्रहारके लगतेही कंपन अर्दित होकर पृथ्वीमें गिर पड़ा ॥ ३ ॥ कंपनको रणमें मराहुआ देखकर शोणिताक्ष अपने रथको चलाता हुआ निर्भयहो
शीघ्रतासे अंगदजीके समीप गया ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त अत्यन्त वेगसे अंगदजीके ऊपर तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करनेंलगा; वह कालकी अग्निके समान
सायक वीरश्रेष्ठ अंगदजीके शरीरमें विंधगये ॥ ५ ॥ राक्षसवीरनें वानरवीरके प्रति क्रमसे छुरे, क्षुरप्र, नाराच, वत्सदन्त, शिलीमुख, कर्णीशल्य

आहूयसोंगदंकोपात्ताडयामासवेगितः ॥ गदयाकंपनः पूर्वंसचचालभृशाहतः ॥ २ ॥ ससंज्ञांप्राप्यतेजस्वीचिक्षेपशि
खरंगिरेः ॥ अर्दितश्चप्रहारेणकंपनः पतितोभुवि ॥ ३ ॥ ततस्तुकंपनंदृष्ट्वाशोणिताक्षोहतंरणे ॥ रथेनाभ्यपतत्क्षिप्रं
तत्रांगदमभीतवत् ॥ ४ ॥ सोंगदंनिशितैर्बाणैस्तदाविव्याधवेगितः ॥ शरीरदारणैस्तीक्ष्णैः कालाग्निसमविग्रहैः ॥ ५ ॥
क्षुरक्षुरप्रनाराचैर्वत्सदंतैःशिलीमुखैः ॥ कर्णीशल्यविपाटैश्चबहुभिर्निशितैःशरैः ॥ ६ ॥ अंगदःप्रतिविद्धांगोवालिपुत्रः
प्रतापवान् ॥ धनुरुग्रंरथंबाणान्ममर्दतरसाबली ॥ ७ ॥ शोणिताक्षस्ततःक्षिप्रमसिचर्मसमाददे ॥ उत्पपाततदाक्रुद्धो
वेगवानविचारयन् ॥ ८ ॥ तंक्षिप्रतरमाप्लुत्यपरामृश्यांगदोबली ॥ करेणतस्यतंखड्गंसमाच्छिद्यननादच ॥ ९ ॥ तस्यां
सफलकेखड्गंनिजघानततोंगदः ॥ यज्ञोपवीतवच्चैनंचिच्छेदकपिकुंजरः ॥ १० ॥

और विपाट इत्यादिक अनेक प्रकारके बाण छोड़े प्रतापवान् बलशाली वालिकुमार अंगदके शरीरमें जब यह समस्त बाण लगे तब उन्होंनें
अत्यन्त वेगसे उस राक्षसका उग्र धनु और समस्त बाणोंको छिन्न भिन्न कर डाला ॥ ६ ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त शोणिताक्ष क्रोधमें भरकर शीघ्रतासे
ढाल तरवार ग्रहण कर विना विचारे वेगसे कूद पड़ा ॥ ८ ॥ तब विपुलबलशाली अंगदजीनें शीघ्रतासे छलांग मारकर उस राक्षसको पकड़ा
और उसके हाथसे बलपूर्वक ढाल तरवार छीन वारंवार सिंहनाद करनेंलगे ॥ ९ ॥ उसकाही खड्ग उसके वायें हाथपर इस प्रकारसे अंगदजीनें

यह कह कर हनुमानजीने शृङ्ग प्रस्तर, खण्ड, मातङ्ग और सुवर्ण आदि धातुओंके उस अनेक शिखरवाले और सहस्रों धातुओंसे प्रज्वलित शृङ्ग सानु समन्वित उस पर्वतको सहसा ग्रहण करके अतिवेगसे उखाड़ लिया ॥ ६३ ॥ गरुड़जीकी समान अति उग्र वेगवाले हनुमानजी उस पर्वतशृङ्गको उखाड़ आकाशमें उछल गये और सुरेन्द्र व असुरगणोंके सहित समस्त लोकोंको त्रासित करते२ असंख्य आकाशचारियोंसे स्तुति किये जाते हुए अतिवेगसे गमन करते हुए ॥ ६४ ॥ सूर्यकी समान रूप सम्पन्न वह वीर हनुमानजी सूर्यकी समान पर्वत ग्रहण करके सूर्यके मार्गमें उपस्थित हो दूसरें सूर्यकी समान शोभाधारण करते हुए ॥ ६५ ॥ पर्वताकार हनुमानजी उस पर्वतको ग्रहण करके अग्निकी ज्वालासे युक्त

सतस्यशृंगंसनगंसनागंसकांचनंधातुसहस्रजुष्टम् ॥ विकीर्णकूटंज्वलिताग्रसानुंप्रगृह्यवेगात्सहसोन्ममाथ ॥ ६३ ॥
सतंसमुत्पाट्यखमुत्पपातवित्रास्यलोकान्ससुरान्सुरेंद्रान् ॥ संस्तूयमानःखचरैरनेकैर्जगामवेगाद्गरुडोग्रवेगः ॥ ६४ ॥
सभास्कराध्वानमनुप्रपन्नस्तंभास्कराभंशिखरंप्रगृह्य॥बभौतदाभास्करसन्निकाशोरवेःसमीपेप्रतिभास्कराभः॥६५॥
सतेनशैलेनभृशंरराजशैलोपमोगंधवहात्मजस्तु ॥ सहस्रधारेणसपावकेनचक्रेणखेविष्णुरिवार्पितेन ॥ ६६ ॥ तंवान
राःप्रेक्ष्यतदाविनेदुःसतानपिप्रेक्ष्यमुदाननाद ॥ तेषांसमुत्कृष्टरवंनिशम्यलंकालयाभीमतरंविनेदुः ॥ ६७॥ ततोमहा
त्मानिपपाततस्मिन्शैलोत्तमेवानरसैन्यमध्ये ॥ हर्युत्तमेभ्यःशिरसाभिवाद्यविभीषणंतत्रचसस्वजेसः ॥ ६८ ॥ ताव
प्युभौमानुषराजपुत्रौतंगंधमाघ्रायमहौषधीनाम् ॥ बभूवतुस्तत्रतदाविशल्यावुत्तस्थुरन्येचहरिप्रवीराः ॥ ६९ ॥

हाथमें सहस्र धार चक्र द्वारा शोभित विष्णुजीकी समान शोभायमान होनें लगे॥६६॥ उस कालमें लंकाके मैदान में खड़े हुए वानरगण उनको देखकर सिंहनाद करने लगें और हनुमानजी भी उनको देखकर सिंहनाद कर उठे उस अत्यन्त दारुण शब्दको श्रवणकरके लंका निवासी निशाचर गणभी भयंकर घोर सिंहनाद करने लगे॥६७॥ इसके उपरान्त महाबलवान हनुमानजी पर्वतश्रेष्ठ त्रिकूटके ऊपर वानरोंकी सेनामें उतरकर मुख्य२ वानरोंको प्रणाम करके विभीषणजीको लिपटायकर मिले॥६८॥इस ओर मनुष्यराजकुमार राम और लक्ष्मणजी सब महौषधियोंकी सुगन्धि सूंघकर उसी

वलवान वानरवीरोंनेभी प्रबल राक्षसोंका संहार किया, एक २ जनके मारनेंको जैसेही तैयारहुआ कि वैसेही एक दूसरेनें आकर उसको ढकेल दिया कोई किसीको काटरहाथा कि दूसरेनें आनकर उसको काट खाया, कोई एक २ किसीकी निन्दाकररहाथा कि वैसेही एक तीसरेनें आकर उसका निरादर किया; किसीके युद्ध चाहनेंपर दूसरा उस्से युद्ध कर रहाहै कि इतनेहीमें कोई आयकर बोला कि हम युद्ध करेंगे " क्यों क्लेशदेतेहो ! तुम यहां खड़े रहो " रणभूमिमे तिसकाल एक दूसरेसे ऐसा कह रहेथे ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ धीरे २ दोनोंओरका युद्ध अतिभयं कर हो उठा, राक्षस लोगोंके शस्त्र व्यर्थ होनेंलगे, उनके कवच आयुध समस्त छिन्न भिन्न होगये। राक्षसलोग बड़े २ भाले, मुष्टि, शूल, और तलवार उठाय रहगये ॥ ६७ ॥ " प्रावर्तत महारौद्रं युद्धं वानररक्षसाम् ॥ वानरान्दश सप्तेति राक्षसा जघ्नुराहवे " इस प्रकारसे वानर

घ्नंतमन्यंजघानान्यःपातयंतमपातयत् ॥ गर्हमाणंजगर्हान्योदशंतमपरोदशत् ॥ ६५ ॥ देहीत्यन्योददात्यन्यो ददामीत्यपरःपुनः ॥ किंक्लेशयसितिष्ठेतितत्रान्योन्यंबभाषिरे ॥ ६६ ॥ विप्रलंभितशस्त्रंचविमुक्तकवचायुधम् ॥ समु द्यतमहाप्रासंमुष्टिशूलासिकुंतलम् ॥ ६७ ॥ प्रावर्ततमहारौद्रंयुद्धंवानररक्षसाम् ॥ वानरान्दशसप्तेतिराक्षसाजघ्नु राहवे ॥ ६८ ॥ विप्रलंभितवस्त्रंचविमुक्तकवचध्वजम् ॥ बलंराक्षसमालंब्यवानराःपर्यवारयन् ॥ ६९ ॥ इ० श्री मद्रा० वा० आ० यु० पंचसप्ततितमःसर्गः ॥ ७५ ॥ ॥ छ ॥ ॥ प्रवृत्तेसंकुलेतस्मिन्वीरेघोरजनक्षये ॥ अंगदःकंपनंवीरमाससादरणोत्सुकः ॥ १ ॥

और राक्षसोंका महाघोर युद्ध होनेंलगा निशाचर लोग एकही वारमें सहस्र २ वानरोंको संहार करनेंलगे ॥ ६८ ॥ " राक्षसान्दशसप्तेति वानरास्त्वभ्यपातयन् । बलं राक्षसमालंब्य वानराः पर्यवारयन् ॥ " और वानर लोगभी इतनेही राक्षसोंको एक २ बाणसे रणभूमिमें मारते हुए और उनके वस्त्र फाड कवच तोड ध्वजा नष्ट करदी, उस युद्धमें वानरगण राक्षस लोगोंकी समान बलका आश्रय करके राक्षस लोगोंको निवारण करनेंलगे ॥ ६९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे भाषानुवादे पंचसप्ततितमः सर्गः ॥ ॥ ७५ ॥ जब इस प्रकारसे लोकक्षयकारी घोर कठोर संग्राम होनेंलगा तब महावीर अंगदजी युद्धका अभिलाप करके राक्षसवीर कंपनके सन्मुख

जब वानरराज सुग्रीवजीनें इस प्रकारसे आज्ञा दी तौ उसी दिन सूर्य छिपनेंकें पीछे घोर रात्रिमें वानरश्रेष्ठगण मसालें हाथमें लेलेकर लंकाके
सन्मुख गये ॥ ४ ॥ विरूपाक्ष राक्षसगण जोकि लंकाके द्वारकी रक्षा करतेथे वह सब वानरोंको लूके हाथमें लिये हुए देखकर घवड़ाये और
वानरगणोंसे मार खाय कर भागगये ॥ ५ ॥ तब वानर लोगोंनें हर्षित अंतःकरणसे बाहर द्वारोंपर, अटारियोंपर, छज्जोंपर, विविध चर्या और
धवरहरोंपर सबही जगह अग्नि लगादी ॥ ६ ॥ उस कालमें अग्निनें उन राक्षसोंके हजारों गृह भस्म कर दिये, और पर्वताकार समस्त धवरहर
भस्महो पृथ्वीपर भयराय कर गिरनेंलगे ॥ ७ ॥ लंकाके स्थान २ में अगर, परम सुगन्धि युक्त चंदन, मुक्तामणि, उत्तम २ हीरे प्रवाल भस्म
ततोऽस्तंगतआदित्येरौद्रेतस्मिन्निशामुखे ॥ लंकामभिमुखाःसोल्काजग्मुस्तेप्लवगर्षभाः ॥ ४ ॥ उल्काहस्तैर्हरिगणैः
सर्वतःसमभिद्रुताः ॥ आरक्षस्थाविरूपाक्षाःसहसाविप्रदुद्रुवुः ॥ ५ ॥ गोपुराट्टप्रतोलीषुचर्यासुविविधासुच ॥ प्रासादे
षुचसंहृष्टाःससृजुस्तेहुताशनम् ॥ ६ ॥ तेषांगृहसहस्राणिददाहहुतभुक्तदा ॥ प्रासादाःपर्वताकाराःपतंतिधरणीत
ले ॥ ७ ॥ अगुरुर्दह्यतेतत्रपरंचैवसुचंदनम् ॥ मौक्तिकामणयःस्निग्धावज्रंचापिप्रवालकम् ॥ ८ ॥ क्षौमंचदह्यतेतत्रकौ
शेयंचापिशोभनम्॥ आविकंविविधंचौर्णंकांचनंभांडमायुधम्॥९॥नानाविकृतसंस्थानंवाजिभांडपरिच्छदम्॥ गजग्रै
वेयकक्ष्याश्चरथभांडांश्चसंस्कृतान् ॥ १० ॥ तनुत्राणिचयोधानांहस्त्यश्वानांचचर्मच ॥ खड्गाधनूंषिज्याबाणास्तो
मरांकुशशक्तयः ॥ ११ ॥ रोमजंवालजंचर्मव्याघ्रजंचांडजंबहु ॥ मुक्तामणिविचित्रांश्चप्रासादांश्चसमंततः ॥ १२ ॥
होंने लगे ॥ ८ ॥ अनेक प्रकारके क्षौम कौशेय, [रेशमीन] राङ्कव और उनके बने हुए वस्त्रादि भस्म होगये, आयुध व सुवर्णके पात्रभी जलकर
मट्टीमें मिलगये ॥ ९ ॥ भांति २ अन्नादि धरनेंके स्थान घोड़ोंके व और दूसरेभी बहुत सारे अलंकार, हाथियोंके गलोंमें बांधनेंकी वस्तुयें और
कमरमें बांधनेंके रस्से, रथोंके गहने, व भोजनादिके पात्र जो कुछभी बनेठने धरेथे ॥ १० ॥ योद्धागणोंके कवच वर्म इत्यादि, हाथी घोड़ोंके
कवच, खड्ग, धनुष, प्रत्यंचा, बाण, भाला, अंकुश, शक्ति ॥ ११ ॥ उनके बनेहुए वस्त्र वालोंके बनेहुए चामरादि असंख्य व्याघ्रचर्म, अण्डजात मृग

भूषित बाहु और प्रज्वलित भालोंसे युक्त ॥ ५६ ॥ महाशस्त्रोंको घुमाते हुए धनुष पर बाण चढ़ाते हुए, गन्धमाला व पवनकी मधुकमोहकेसं
मोदित करते ॥ ५७ ॥ शूरगणोंके भरे रहनेसे अतिघोर महा मेघके गर्जनकी समान शब्द करती ऐसी दुर्द्धर्ष राक्षसोंकी सैना आई
हुई देखकर ॥ ५८ ॥ वानरोंकी सैनानें विचलित होकर ऊंचे स्वरसे सिंहनाद किया। फिर उस राक्षसोंकी बड़ी भारी सैनाके बीचमें ॥ ५९ ॥
अतिवेगसे कूद पड़े कि जैसे पतंगे अग्निमें कूद पड़तेहैं तिन राक्षस लोगोंके भुजोंके व्यापारसे कंपायमान किये गये वज्र व अशनिसें युक्त ॥ ६० ॥

व्याघूर्णितमहाशस्त्रंबाणसंसक्तकार्मुकम् ॥ गंधमाल्यमधूत्सेकसंमोदितमहानिलम् ॥ ५७ ॥ घोरंशूरजनाकीर्णमहां
बुधरनिःस्वनम् ॥ तद्दृष्ट्वाबलमायातंराक्षसानांदुरासदम् ॥ ५८ ॥ संचचालप्लवंगानांबलमुच्चैर्ननादच ॥ जवेनाप्लुत्यच
पुनस्तद्बलंरक्षसांमहत् ॥ ५९ ॥ अभ्ययात्प्रत्यरिबलंपतंगाइवपावकम् ॥ तेषांभुजपरामर्शव्यामृष्टपरिघाश
नि ॥ ६० ॥ राक्षसानांबलंश्रेष्ठंभूयःपरमशोभत ॥ तत्रोन्मत्ताइवोत्पेतुर्हरयोथयुयुत्सवः ॥ ६१ ॥ तरुशैलैरभिघ्नं
तोमुष्टिभिश्चनिशाचरान् ॥ तथैवापततांतेषांहरीणांनिशितैःशरैः ॥ ६२ ॥ शिरांसिसहसाजह्रुराक्षसाभीमविक्रमाः ॥
दशनैर्हृतकर्णाश्चमुष्टिभिर्भिन्नमस्तकाः ॥ शिलाप्रहारभग्नांगाविचेरुस्तत्रराक्षसाः ॥ ६३ ॥ तथैवाप्यपरेतेषांकपीनाम
सिभिःशितैः ॥ प्रवरानभितोजघ्नुःघोररूपानिशाचराः ॥ ६४ ॥

राक्षसोंकी सैना फिर अत्यन्त शोभित हुई। इसके उपरान्त युद्ध करनेंके लिये तैयार वानरलोग उन्मत्तकी समान ॥ ६१ ॥ वृक्ष शैल, मूकोंसे
कूद २ कर निशाचरोंको मारनें लगे। तब उन कूद २ कर आते हुए वानरोंके तीक्ष्ण बाणोंसे ॥ ६२ ॥ भयंकरविक्रमकारी राक्षस लोग शिर का
टनें लगे निशाचरलोग वानर लोगोंके दांतोंसे काटे जाकर कर्ण रहित मूकोंके मारनेंसे शिर रहित और शिलाओंके प्रहारसे अंग भंगहो उस रण
भूमिमें विचरण करनेंलगे ॥ ६३ ॥ व दूसरी ओरसे घोर रूप निशाचर गणोंने भी तीक्ष्ण खड्गसे मुख्य२ वानरोंका संहार करना आरंभ किया ॥ ६४ ॥

भयंकर वेषवाले आक्रमण करनेके अयोग्य ॥ १ ॥ पांच हजार राक्षसोंको जो कि समरसे लौटनाही चाहतेथे और महावेगवानथे उनको युद्ध करनेके लिये आज्ञादी वह सब राक्षस समरमें जाय शूल, पटा, खड्ग, और वृक्षादिक व बाणोंकी वर्षा लगातार श्रीरामचंद्रजीके ऊपर करनें लगे वह वृक्ष और पर्वतोंकी वर्षा प्राणोंकी हरण करनेंवालीथी ॥ २ ॥३॥ धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीनें अपनें तीखे बाणों परही उस वर्षाका ग्रहण किया और उसे ग्रहण करके नेत्र बंद कर लिये ॥ ४ ॥ फिर बडा कोप किया और सब राक्षसोंके संहार करनेंका संकल्प किया उस समय क्रोध और तेजसे प्रकाशमान होते हुए श्रीरामचंद्रजीनें॥५॥दूषण सहित सेनाके ऊपर बाणोंकी वर्षा की । फिर शत्रुदूषण सेनापति दूषण क्रोधित हो

राक्षसान्पंचसाहस्रान्समरेष्वनिवर्तिनः ॥ तेशूलैःपट्टिशैःखड्गैःशिलावर्षैर्द्रुमैरपि ॥ २ ॥ शरवर्षैरविच्छिन्नंववर्षुस्तंसमंततः ॥ तद्द्रुमाणांशिलानांचवर्षंप्राणहरंमहत् ॥ ३ ॥ प्रतिजग्राहधर्मात्माराघवस्तीक्ष्णसायकैः ॥ प्रतिगृह्यचतद्वर्षंनिमीलितइवर्षभः ॥ ४ ॥ रामःक्रोधंपरंलेभेवधार्थंसर्वरक्षसाम् ॥ ततःक्रोधसमाविष्टःप्रदीप्तइवतेजसा ॥ ५ ॥ शरैरभ्यकिरत्सैन्यंसर्वतःसहदूषणम् ॥ ततःसेनापतिःक्रुद्धोदूषणःशत्रुदूषणः ॥६॥शरैरशनिकल्पैस्तंराघवंसमवारयत्॥ततोरामःसुसंक्रुद्धःक्षुरेणास्यमहद्धनुः ॥७॥ चिच्छेदसमरेवीरश्चतुर्भिश्चतुरोहयान्॥हत्वाचाश्वाञ्छरैस्तीक्ष्णैरर्धचंद्रेणसारथेः ॥ ८ ॥ शिरोजहारतद्रक्षस्त्रिभिर्विव्याधवक्षसि ॥ सच्छिन्नधन्वाविरथोहताश्वोहतसारथिः ॥ ९ ॥ जग्राहगिरिशृंगाभंपरिघंलोमहर्षणम् ॥ वेष्टितंकांचनैःपट्टैर्देवसैन्याभिमर्दनम् ॥ १० ॥

कर ॥ ६॥ वज्रकी समान बाणोंसे श्रीरामचंद्रजीको निवारण करनें लगा। तब श्रीरामचंद्रजीनें महाक्रोधकर छुरेकी समान तेज बाणोंसे दूषणका धनुष॥७॥ काट कर चार बाणोंसे उसके रथमें जो घोडे नधेथे उनको मार डाला।अश्वोंको तीक्ष्ण बाणोंसे वधकर अर्द्धचंद्र बाणसे उसके सारथिका ॥ ८ ॥ शिर काट डाला। और तीन बाण राक्षस खरकी छातीमें मारे। तब दूषणका धनुषभी टूटा रथभी चूर्ण हुआ और घोडे व सारथि भी उसके मारे गये॥९॥तब उसने जिसके देखनेसे संनाटे रुएं खडे हो जाँय ऐसा पहाडके शृंग समान एक परिघ ग्रहण किया वह सुवर्णके बन्धोंसे

बँधा देवताओंकी सेनाको मर्दन करनेवाला ॥ १० ॥ लोहेकी कीलोंसें जडा शत्रुओंकी चरबी जिसमें लगी हुई वज्र के समान कठोर व शत्रुपुरके द्वारका विदारण करनेंवाला ॥ ११ ॥ ऐसे महासर्पके समान उस परिघको ले संग्राममें क्रूरकर्मकारी दूषणराक्षस श्रीरामचंद्रजी की ओर धाया॥१२॥श्रीरामचंद्रजीने उस दौडे आतेहुए दूषणके भूषणसहित दोनों कर काटडाले ॥ १३ ॥ हाथोंके कट जानेपर उसका वह बृह दाकार परिघ स्थानभ्रष्ट होकर इन्द्रध्वजाकी समान समरमें गिरा ॥१४॥ हाथ कटजानेंसे मुंहकेबल दूषणभी इसभांति पृथ्वीमें गिरा जैसे दांतटूट

आयसैःशंकुभिस्तीक्ष्णैःकीर्णंपरवसोक्षितम्॥वज्राशनिसमस्पर्शंपरगोपुरदारणम्॥११॥तंमहोरगसंकाशंप्रगृह्यपरि घंरणे॥ दूषणोऽभ्यपतद्रामंक्रूरकर्मानिशाचरः ॥ १२ ॥ तस्याभिपतमानस्यदूषणस्यचराघवः ॥ द्वाभ्यांशराभ्यां चिच्छेदसहस्ताभरणौभुजौ ॥१३॥ भ्रष्टस्तस्यमहाकायःपपातरणमूर्धनि ॥ परिघश्छिन्नहस्तस्यशक्रध्वजइवाग्र तः ॥ १४ ॥ कराभ्यांचविकीर्णाभ्यांपपातभुविदूषणः ॥ विषाणाभ्यांविशीर्णाभ्यांमनस्वीवमहागजः ॥ १५ ॥ दृष्ट्वातंपतितंभूमौदूषणंनिहतंरणे ॥ साधुसाध्वितिकाकुत्स्थंसर्वभूतान्यपूजयन् ॥ १६ ॥ एतस्मिन्नंतरेक्रुद्धा स्त्रयःसेनाग्रयायिनः ॥ संहत्याभ्यद्रवन्रामंमृत्युपाशावपाशिताः ॥ १७ ॥ महाकपालःस्थूलाक्षःप्रमाथीचमहा बलः ॥ महाकपालोविपुलंशूलमुद्यम्यराक्षसः ॥ १८ ॥ स्थूलाक्षःपट्टिशंगृह्यप्रमाथीचपरश्वधम्॥ दृष्ट्वैवापततस्तां स्तुराघवःसायकैःशितैः ॥ १९ ॥

जानेंपर महा मनस्वी गजराज पृथ्वीमें गिरताहै ॥ १५ ॥ दूषण को संग्राम में मराहुआ और पृथ्वीमें पडाहुआ देखकर सबही प्राणी साधु २ कह कर श्रीरामचंद्रजीकी प्रशंसा करनेंलगे ॥ १६ ॥ इसीसमय उस खरके तीन सेनापति जो निशाचर सेनाके आगेही चलेथे परस्पर मिलकर मृत्युकी फाँसीसे बँधकर क्रोधमें भरकर श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख धाये ॥ १७ ॥ इन तीनोंके नाम महाकपाल, स्थूलाक्ष और महाबलवान् प्रमाथीथे, इनमें महाकपाल विशाल शूल, उठाय ॥ १८ ॥ स्थूलाक्ष पटालेकर, व प्रमाथी फरशा ग्रहण करके श्रीरामचंद्रजीकी ओर चले,

कपिश्रेष्ठ रथ, घोड़े, वृक्ष लेकर राक्षसोंपर चलाये पर्वतोंके शृङ्ग जो कुछभी पातेथे वहां चलातेथे परन्तु महाबलवान् यूपाक्षने बाण चलाय उन सबको टुकड़े २ कर डाला ॥ २० ॥ इसके उपरान्त वीर द्विविद और मैन्दने वृक्षोंको उखाड़कर राक्षसोंके ऊपर चलाया इन सबको वीर्यवान् प्रतापशाली शोणिताक्षनें अधबीचमें ही तोड़डाला ॥ २१ ॥ इसी समयमें वीरश्रेष्ठ प्रजंघ परमर्मभेदी विपुल खड्ग धारण करके अति वेगसे अंगदजीकी ओर धाया ॥२२॥ तब विपुल बलशाली वानरेन्द्र वालिकुमार अंगदजीनें इस राक्षसको निकट आयाहुआ देखकर एक अश्वकर्णवृक्ष ले बड़े वेगसे उसके मारा ॥२३॥ और उस राक्षसके खड्गयुक्त हाथमें एक मूकाभी अंगदजीने मारा कि उसके चोटसे उस निशाचरके हाथसे खड्ग गिर

रथान्सर्वान्द्रुमाञ्छैलान्प्रतिचिक्षिपुराहवे ॥ शरौघैःप्रतिचिच्छेदतान्यूपाक्षोमहाबलः ॥ २० ॥ सृष्टान्द्विविदमैंदाभ्यां द्रुमानुत्पाट्यवीर्यवान् ॥ बभंजगदयामध्येशोणिताक्षःप्रतापवान् ॥ २१ ॥ उद्यम्यविपुलंखड्गंपरमर्मविदारणम् ॥ प्रजंघोवालिपुत्रायअभिदुद्राववेगितः ॥ २२ ॥ तमभ्याशगतंदृष्ट्वावानरेंद्रोमहाबलः ॥ आजघानश्वकर्णेनद्रुमेणातिबलस्तदा ॥ २३ ॥ बाहुंचास्यसनिस्त्रिंशमाजघानसमुष्टिना ॥ वालिपुत्रस्यघातेनसपपातक्षितावसिः ॥ २४ ॥ तंदृष्ट्वापतितंभूमौखड्गंमुसलसन्निभम् ॥ मुष्टिंसंवर्तयामासवज्रकल्पंमहाबलः ॥ २५ ॥ सललाटेमहावीर्यमंगदंवानरर्षभम् ॥ आजघानमहातेजाःसमुहूर्तंचचालह ॥ २६ ॥ ससंज्ञांप्राप्यतेजस्वीवालिपुत्रःप्रतापवान् ॥ प्रजंघस्यशिरःकायात्पातयामासमुष्टिना ॥ २७ ॥ सयूपाक्षोश्रुपूर्णाक्षःपितृव्येनिहतेरणे ॥ अवरुह्यरथात्क्षिप्रंक्षीणेषुःखड्गमाददे ॥ २८ ॥

पड़ा ॥ २४ ॥ उस मूशलकी समान खड्गको पृथ्वीमें गिराहुआ देखकर महावीर प्रजंघनें वज्रकी समान मूका बांधकर अंगदजीपर उठाया ॥ २५ ॥ और महावीर्यवान् वानरश्रेष्ठ अंगदजीके माथेमें वह मूका मारा उस मूकेके लगनेंसे अंगदजी एक मुहूर्तभरतक चलायमान रहे ॥ २६ ॥ परन्तु प्रतापवान तेजस्वी वालिकुमार अंगदजीनेभी फिर शीघ्र चेतना पाय एक मूका मारकर प्रजंघके धड़से शिरको अलग करदिया ॥ २७ ॥ अपने चचा प्रजंघको संग्राममें मराहुआ देखकर यूपाक्ष आंखोंमें आंसू भर धनुष बाण छोड़ खड्ग धारणकर रथसे उतर पड़ा ॥ २८ ॥

वार्ता सुनकर अत्यंत क्रोधसे अग्निकी समान प्रज्वलित होगया ॥ १ ॥ राक्षसराज रावण, क्रोध और शोकसे व्याकुल होकर विशाल नेत्रवाले खरके पुत्र मकराक्षसे बोला ॥ २ ॥ वत्स ! हम तुमको आज्ञा देतेहैं, तुम बड़ी भारी सैनाको साथ लेकर संग्रामभूमिमें जाय वानरोंके सहित उन रामचंद्र और लक्ष्मणको मार डालो ॥ ३ ॥ रावणके वचन सुनकर अपने को शूर माननेवाले बलशाली ढीठ खरके पुत्र राक्षस मकराक्षनें "बहुत अच्छा" कहकर रावणके वचनको स्वीकार किया ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त वह रावणको प्रणामकर व उसकी प्रदक्षिणा कर रावणकी आज्ञानुसार उजले वर्णके गृहोंसे निकला ॥ ५ ॥ तब खरके पुत्र मकराक्षनें समीपही खड़े हुए सैनाके नायकसे कहाकि तुम जलदीसे रथ तैयार कराओ

नैर्ऋतःक्रोधशोकाभ्यांद्वाभ्यांतुपरिमूर्च्छितः ॥ खरपुत्रंविशालाक्षंमकराक्षमचोदयत् ॥ २ ॥ गच्छपुत्रमयाज्ञप्तोबले
नाभिसमन्वितः ॥ राघवंलक्ष्मणंचैवजहितौसवनौकसौ ॥ ३ ॥ रावणस्यवचःश्रुत्वाशूरमानीखरात्मजः ॥
बाढमित्यब्रवीद्धृष्टोमकराक्षोनिशाचरम् ॥ ४ ॥ सोभिवाद्यदशग्रीवंकृत्वाचापिप्रदक्षिणम् ॥ निर्जगामगृहाच्छु
भ्राद्रावणस्याज्ञयाबली ॥५॥ समीपस्थंबलाध्यक्षंखरपुत्रोब्रवीद्वचः ॥ रथमानीयतांतूर्णंसैन्यंत्वानीयतांत्वरात् ॥ ६ ॥
तस्यतद्वचनंश्रुत्वाबलाध्यक्षोनिशाचरः ॥ स्यंदनंचबलंचैवसमीपंप्रत्यपादयत् ॥ ७ ॥ प्रदक्षिणंरथंकृत्वासमाहूय
निशाचरः ॥ सूतंसंचोदयामासशीघ्रंवैरथमावह ॥८॥ अथतान्राक्षसान्सर्वान्मकराक्षोब्रवीदिदम् ॥ यूयंसर्वेप्रयुध्यध्वं
पुरस्तान्ममराक्षसाः ॥ ९ ॥ अहंराक्षसराजेनरावणेनमहात्मना ॥ आज्ञप्तःसमरेहंतुंतावुभौरामलक्ष्मणौ ॥ १० ॥

और सब सैनाकोभी सजालाओ ॥ ६ ॥ व सैनाध्यक्षनें मकराक्षकी यह आज्ञा पाय उसका रथ व सब सैनाको वहां सजाकर उपस्थित किया ॥ ७ ॥ निशाचर मकराक्ष रथकी प्रदक्षिणा करकै शीघ्रही उसपर सवारहुआ और सारथिसे कहनेंलगा सूत ! शीघ्रतासे रथको चलाओ ॥ ८ ॥ उसके उपरान्त मकराक्ष उन सब राक्षसोंको पुकार कर कहता हुआ" हे निशाचर गण! तुम हमारे आगे रहकर वानरोंसे युद्ध करना ॥ ९ ॥ और हमको महात्मा राक्षसोंके स्वामी रावणसे संग्राममें उन राम लक्ष्मण दोनोंके मारनेंको आज्ञा मिलीहै " ॥ १० ॥

समीप भागकर आईहुई सैनाको अनेक प्रकारसे समझाया बुझाया, अतिश्रेष्ठ महावीर्यवान् वानरोंसे ॥ ३६ ॥ महावीर राक्षसोंकी सैनाको मराहुआ देखकर महातेजस्वी कुंभनें संग्राममें अत्यन्त दुष्कर कर्म किया ॥ ३७ ॥ वह धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ कुंभ सावधानमनसे धनुप धारणकर विषधर सर्पोंकी समान फुंकारतेहुए देहविदारी बाण छोड़नें लगा ॥ ३८ ॥ उस कालमें कुंभका बाणसहित श्रेष्ठ धनुष, बिजली ऐरावतके सहित दूसरे इन्द्रधनुषकी समान शोभायमान होनेंलगा ॥ ३९ ॥ उस वीर कुंभनें सुवर्णकी फोंकवाले पत्रशोभित बाणोंको कानतक खेंचकर उनसे द्विविदको मारा ॥ ४० ॥ पर्वतके शृङ्गकी समान वानरोंमें श्रेष्ठ द्विविद उन बाणोंके लगनेंसे अत्यन्त घायलहो मुंहवाय और दोनों पैर

निपातितमहावीरांदृष्ट्वारक्षश्चमूंतदा ॥ कुंभःप्रचक्रेतेजस्वीरणेकर्मसुदुष्करम् ॥ ३७ ॥ सधनुर्धन्विनांश्रेष्ठःप्रगृह्य सुसमाहितः ॥ मुमोचाशीविषप्रख्याञ्छरान्देहविदारणान् ॥ ३८ ॥ तस्यतच्छुशुभेभूयःसशरंधनुरुत्तमम् ॥ विद्युदैरावतार्चिष्मद्द्वितीयेंद्रधनुर्यथा ॥ ३९ ॥ आकर्णकृष्टमुक्तेनजघानद्विविदंतदा ॥ तेनहाटकपुंखेनपत्रिणापत्रवाससा ॥ ४० ॥ सहसाभिहतस्तेनविप्रमुक्तपदःस्फुरन् ॥ निपपातत्रिकूटाभोविह्वलन्प्लवगोत्तमः ॥ ४१ ॥ मैंदस्तुभ्रातरंतत्रभग्नंदृष्ट्वामहाहवे ॥ अभिदुद्रावंवेगेनप्रगृह्यविपुलांशिलाम् ॥ ४२ ॥ तांशिलांतत्रचिक्षेपराक्षसायमहाबलः ॥ बिभेदतांशिलांकुंभःप्रसन्नैःपंचभिःशरैः ॥ ४३ ॥ संधायचान्यंसुमुखंशरमाशीविषोपमम् ॥ आजघानमहातेजावक्षसिद्विविदाग्रजम् ॥ ४४ ॥ सतुतेनप्रहारेणमैंदोवानरयूथपः ॥ मर्मण्यभिहतस्तेनपपातभुविमूर्च्छितः ॥ ४५ ॥ अंगदोमातुलौदृष्ट्वामथितौतुमहाबलौ ॥ अभिदुद्राववेगेनकुंभमुद्यतकार्मुकम् ॥ ४६ ॥

फैलाय विकल हो पृथ्वीपर गिरपड़ा ॥ ४१ ॥ मैन्दनें अपनें भ्राता द्विविदको उस महासंग्राममें व्याकुल होते देख एक बड़ी भारी शिला ग्रहण कर कुंभके ऊपर दौड़ा ॥ ४२ ॥ महाबलवान मैन्दनें राक्षसके ऊपर वह शिला चलाई परन्तु महातेजस्वी कुंभनें हँसते २ पांच बाणोंसे उस शिलाको काट डाला ॥ ४३ ॥ और विषधर सर्पकी समान एक और सुमुख बाण धनुषपर चढ़ायकर द्विविदके बड़े भाई मैन्दकी छातीमें कुंभनें मारा ॥ ४४ ॥ कुंभका चलायाहुआ वह बाण वानरयूथपति मैन्दके मर्मस्थानमें लगा कि जिस्से वह मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ४५ ॥ तब वानरवीर अंगदजी

कुछभी चिन्ता नकरकै जिस स्थानमें श्रीराम लक्ष्मणजी विराजमानथे उसी ओरको चला ॥ २० ॥ युद्धकी अभिलाषा किये राक्षसोंका आकार मेघ मातंग [हाथी] महिष [भैंस] की तुल्यथा उन राक्षसोंकी देहोंमें गदा खड्ग व और दूसरे अस्त्रोंके चिह्न प्रकाशमानथे वह सबही युद्धविद्यामें पंडितथे पहले हम युद्ध करेंगे पहले हम युद्ध करेंगे समस्त इस उत्साहमें सिंहनाद करतेहुए रणभूमिमें विचरनें लगे ॥ २१ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० भाषानुवादे अष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥ वानरश्रेष्ठ गण मकराक्षको युद्धकरनेके लिये निकलाहुआ देखकर अतिबलसे कूदते फांदते युद्धकी अभिलाषासे तैयार हुए ॥ १ ॥ इसके उपरान्त देवता लोगोंके सहित दानव गणोके समान राक्षसोंके साथ वानरोंका बडाभारी रोमहर्षणकारी युद्ध आरंभ हुआ ॥ २ ॥ उस समय वानर और राक्षसगण वृक्ष शूल गदा परिघादि चलाय २ कर परस्पर एक दूसरेको मारनें लगे ॥ ३ ॥ राक्षसलोग शक्ति खड्ग गदा भाला सांग पटा भिन्दिपाल और बाणोंसे वानरोंको मारते हुए ॥ ४ ॥ फिर पाश मुद्गरादि श्रेष्ठ २ आयुधोंसें भी उन राक्षसोंने वानरोंको मारा कि जिस्से बहुतसारे वानर शार्दूल मरगये ॥ ५ ॥ खरके पुत्र मकराक्षके बाणोंसे इस प्रकार पीडित हो वानरगण मारे व्याकुल हो भागनें लगे॥६॥रणविजयी राक्षस लोग वानरोंको चारोंओर भागते हुए देखकर गर्वसहित सिंहनाद करनेलगे ॥७॥

घनगजमहिषांगतुल्यवर्णाःसमरमुखेष्वसकृद्गदासिभिन्नाः ॥ अहमहमितियुद्धकौशलास्तेरजनिचराःपरिबभ्रमुर्मुहुस्ते ॥ २१ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेअष्टसप्ततितमःसर्गः ॥ ७८ ॥ छ ॥ निर्गतंमकराक्षंतेदृष्ट्वावानरपुंगवाः ॥ आप्लुत्यसहसासर्वेयोद्धुकामाव्यवस्थिताः ॥ १ ॥ ततः प्रवृत्तंसुमहत्तद्युद्धंलोमहर्षणम् ॥ निशाचरैःप्लवंगानांदेवानांदानवैरिव ॥ २ ॥ वृक्षशूलनिपातैश्चगदापरिघपातनैः ॥ अन्योन्यंमर्दयंतिस्मतदाकपिनिशाचराः ॥ ३ ॥ शक्तिखड्गगदाकुंतैस्तोमरैश्चनिशाचराः ॥ पट्टिशैर्भिंदिपालैश्चबाणपातैःसमंततः ॥ ४ ॥ पाशमुद्गरदंडैश्चनिर्घातैश्चापरैस्तथा॥कदनंकपिसिंहानांचक्रुस्तेरजनीचराः ॥५॥ बाणौघैरर्दिताश्चापिखरपुत्रेणवानराः॥संभ्रांतमनसःसर्वेदुद्रुवुर्भयपीडिताः ॥६॥ तान्दृष्ट्वाराक्षसाःसर्वेद्रवमाणान्वनौकसः ॥ नेदुस्तेसिंहवद्दृप्ताराक्षसाजितकाशिनः ॥७॥

परन्तु महाबलवान वीर द्विविदनें इस राक्षसको आताहुआ देखकर क्रोधसहित इसकी छातीमें एक शिला मारी और अत्यन्तबलसे इस राक्षसको पकड़ लिया ॥ २९ ॥ अपने भाईको पकड़ा हुआ देखकर महातेजस्वी महाबलवान् शोणिताक्षनें द्विविदवीरकी छातीमें एक गदा मारी ॥ ३० ॥ उस अत्यन्त दारुण प्रहारसे वानरवीर द्विविद चलायमान होगया परन्तु थोड़ीही देरमें स्थिरहो उस राक्षसकी दूसरी वार उठी गदाको देख इस वीरने छीन लिया ॥ ३१ ॥ इसी अवसरमें मैन्द अपनें भ्राताकी सहायता करनेंके लिये द्विविदके निकट आय पहुंचा और शोणिताक्ष यूपाक्ष नाम इन दोनों राक्षसोंसे यह दोनों वानरश्रेष्ठ मल्लयुद्ध करनें लगे परस्पर एक दूसरेको खेचते खाचते झटका झोरी करते कठोर युद्धकरने लगे॥३२॥तब द्विविदनें

तमापतंतंसंप्रेक्ष्ययूपाक्षंद्विविदस्त्वरन् ॥ आजघानोरसिक्रुद्धोजग्राहचबलाद्बली ॥ २९ ॥ गृहीतंभ्रातरंदृष्ट्वा शोणिताक्षोमहाबलम् ॥ आजघानमहातेजावक्षसिद्विविदंततः ॥ ३० ॥ सततोभिहतस्तेनचचालचमहाबलः ॥ उद्यतांचपुनस्तस्यजहारद्विविदोगदाम् ॥ ३१ ॥ एतस्मिन्नंतरेमैंदोद्विविदाभ्याशमागमत् ॥ तौशोणिताक्षयूपाक्षौप्लवंगाभ्यांतरस्विनौ॥ चक्रतुःसमरेतीव्रमाकर्षोत्पाटनंभृशम् ॥ ३२ ॥ द्विविदःशोणिताक्षंतुविददारनखैर्मुखे ॥ निष्पिपेषसवीर्येणक्षितावाविध्यवीर्यवान् ॥ ३३ ॥ यूपाक्षमभिसंक्रुद्धोमैंदोवानरपुंगवः ॥ पीडयामासबाहुभ्यांपपातसहतःक्षितौ ॥ ३४ ॥ हतप्रवीराव्यथिताराक्षसेंद्रचमूस्तथा ॥ जगामाभिमुखीसातुकुंभकर्णात्मजोयतः ॥ ३५ ॥ आपतंतींचवेगेनकुंभस्तांसांत्वयच्चमूम् ॥ अथोत्कृष्टंमहावीर्यैर्लब्धलक्षैःप्लवंगमैः ॥ ३६ ॥

अपने मुखसे नखोंसे शोणिताक्षका मुख चीर फाड़ डाला और वकोटलिया और पकड़कर अत्यन्त बलसे पृथ्वीमें दबायकर पीस डाला ॥ ३३ ॥ तब वानरश्रेष्ठ वीर्यवान् मैन्दने अत्यन्त क्रोधितहो दोनों बांहोंसे यूपाक्षको उठाय पृथ्वीपर पटक दिया कि जिस्से यह राक्षस अत्यन्त पीड़ित और निहत होकर पृथ्वीमें गिरपड़ा ॥ ३४ ॥ मारनेंसे बचीहुई राक्षसोंकी सैना राक्षसवीरोंको संग्राममें मृतक देख अत्यन्त दुःखी हुई और अति शीघ्रतासे वहां गई जहां कुम्भकर्णका पुत्र कुंभ खड़ाथा वहां जाकर इस सैनानें यह अशुभ संवाद कुंभसे निवेदन किया ॥ ३५ ॥ कुंभनेंभी उस

इसलियें हेराक्षसगण ! आज हम उत्तम बाणोंसे राम लक्ष्मण सुग्रीव व और दूसरे वानरोंकाभी प्राण संहार करेंगे ॥ ११ ॥ जिस प्रकार अग्नि सूखे हुए काठकों जलाताहै, वैसेही हमभी आज शूल चलायकर बड़ीभारी वानरोंकी सैनाको भस्म कर देंगे ॥ १२ ॥ तब वीरवर मकराक्षके वचनोंके अनुसार बलवान् राक्षसगण युद्धके लिये तैयार हुए उनके हाथोंमें अनेक प्रकारके अस्त्रशस्त्र थे ॥ १३ ॥ वह राक्षस क्रूरस्वभाव पीले २ नेत्रवाले कामरूपी और भयंकरदर्शनथे उनके बाल बिखरेहुएथे आकार भयंकर था यह सब राक्षस मतवाले हाथीकी समान बड़ा भारी शब्द करनें लगे ॥१४॥ ऐसे बडे२ शरीरवाले राक्षस महावीरगण मकराक्षको घेरकर चलनेंलगे उनके पैर धरनेकी धमकसे पृथ्वी कंपायमान होने लगी॥१५॥

अद्यराममंवधिष्यामिलक्ष्मणंचनिशाचराः ॥ शाखामृगंचसुग्रीवंवानरांश्चशरोत्तमैः ॥ ११ ॥ अद्यशूलनिपातैश्चवानराणांमहाचमूम् ॥ प्रदहिष्यामिसंप्राप्तांशुष्कंधनमिवानलः ॥ १२ ॥ मकराक्षस्यतच्छ्रुत्वावचनंतेनिशाचराः ॥ सर्वेनानायुधोपेताबलवंतःसमाहिताः ॥ १३ ॥ तेकामरूपिणःक्रूरादंष्ट्रिणःपिंगलेक्षणाः ॥ मातंगाइवनर्दंतोध्वस्तकेशाभयावहाः ॥ १४ ॥ परिवार्यमहाकायामहाकायंखरात्मजम् ॥ अभिजग्मुस्ततोहृष्टाश्चालयंतोनभस्तलम् ॥ १५ ॥ शंखभेरीसहस्राणामाहतानांसमंततः ॥ क्ष्वेलितास्फोटितानांचतत्रशब्दोमहानभूत् ॥ १६ ॥ प्रभ्रष्टोथकरात्तस्यप्रतोदःसारथेस्तदा ॥ पपातसहसादैवाद्ध्वजस्तस्यतुरक्षसः ॥ १७ ॥ तस्यतेरथसंयुक्ताहयाविक्रमवर्जिताः ॥ चरणैराकुलैर्गत्वादीनाःसास्रमुखाययुः ॥ १८ ॥ प्रवातिपवनस्तस्मिन्सपांसुःखरदारुणः ॥ निर्याणेतस्यरौद्रस्यमकराक्षस्यदुर्मतेः ॥ १९ ॥ तानिदृष्ट्वानिमित्तानिराक्षसावीर्यवत्तमाः ॥ अचिंत्यनिर्गताःसर्वेयत्रतौरामलक्ष्मणौ ॥ २० ॥

उस समय भेरी शंख हजारों नगाड़ोंका और वीर लोगोंकी ताल देनेंका और सिंहनाद करनेंका बड़ाभारी शब्द हुआ॥१६॥रणभूमिमें जानेके समय सहसा मकराक्षके सारथीके हाथसे कोड़ा गिरपड़ा और अचानक रथध्वजभी पृथ्वीपर गिरा ॥ १७ ॥ मकराक्षके रथमें जुतेहुए दीन दशाको प्राप्त हुए घोड़े विक्रमहीन हो व्याकुल पवनकी चालसे आंखोंसे आंसू गिरातेहुए गमन करनें लगे ॥ १८ ॥ उस दुर्मति घोर राक्षस मकराक्षके युद्धमें जानेके समय धूलसे युक्त दारुण कठोर पवन चलनेलगी ॥ १९ ॥ परन्तु अत्यन्त वीर्यवान् वह निशाचर उन दुर्निमित्तोंको देखकरभी उनकी

कपिश्रेष्ठ रथ, घोड़े, वृक्ष लेकर राक्षसोंपर चलाये पर्वतोंके शृङ्ग जो कुछभी पातेथे वहां चलातेथे परन्तु महाबलवान् यूपाक्षने बाण चलाय उन सबको टुकड़े २ कर डाला ॥ २० ॥ इसके उपरान्त वीर द्विविद और मैन्दने वृक्षोंको उखाड़कर राक्षसोंके ऊपर चलाया इन सबको वीर्यवान् प्रतापशाली शोणिताक्षनें अधबीचमें ही तोड़डाला ॥ २१ ॥ इसी समयमें वीरश्रेष्ठ प्रजंघ परमर्मभेदी विपुल खड्ग धारण करके अति वेगसे अंगदजीकी ओर धाया ॥२२॥ तब विपुल बलशाली वानरेन्द्र वालिकुमार अंगदजीनें इस राक्षसको निकट आयाहुआ देखकर एक अश्वकर्णवृक्ष ले बड़े वेगसे उसके मारा ॥२३॥ और उस राक्षसके खड्गयुक्त हाथमें एक मूकाभी अंगदजीने मारा कि उसके चोटसे उस निशाचरके हाथसे खड्ग गिर पड़ा ॥ २४ ॥ उस मूशलकी समान खड्गको पृथ्वीमें गिराहुआ देखकर महावीर प्रजंघनें वज्रकी समान मूका बांधकर अंगदजीपर उठाया ॥ २५ ॥ और महावीर्यवान् वानरश्रेष्ठ अंगदजीके माथेमें वह मूका मारा उस मूकेके लगनेंसे अंगदजी एक मुहूर्तभरतक चलायमान रहे ॥ २६ ॥ परन्तु प्रतापवान तेजस्वी वालिकुमार अंगदजीनेभी फिर शीघ्र चेतना पाय एक मूका मारकर प्रजंघके धड़से शिरको अलग करदिया ॥ २७ ॥ अपने चचा प्रजंघको संग्राममें मराहुआ देखकर यूपाक्ष आंखोंमें आंसू भर धनुष बाण छोड़ खड्ग धारणकर रथसे उतर पड़ा ॥ २८ ॥

रथान्सर्वान्द्रुमाञ्छैलान्प्रतिचिक्षिपुराहवे ॥ शरौघैःप्रतिचिच्छेदतान्यूपाक्षोमहाबलः ॥ २० ॥ सृष्टान्द्विविदमैंदाभ्यां द्रुमानुत्पाट्यवीर्यवान् ॥ बभंजगदयामध्येशोणिताक्षःप्रतापवान् ॥ २१ ॥ उद्यम्यविपुलंखड्गंपरमर्मविदारणम् ॥ प्रजंघोवालिपुत्रायअभिदुद्राववेगितः ॥ २२ ॥ तमभ्याशगतंदृष्ट्वावानरेंद्रोमहाबलः ॥ आजघानश्वकर्णेनद्रुमेणातिबलस्तदा ॥ २३ ॥ बाहुंचास्यसनिस्त्रिंशमाजघानसमुष्टिना ॥ वालिपुत्रस्यघातेनसपपातक्षितावसिः ॥ २४ ॥ तंदृष्ट्वापतितंभूमौखड्गंमुसलसन्निभम्॥मुष्टिंसंवर्तयामासवज्रकल्पंमहाबलः॥२५॥सललाटेमहावीर्यमंगदंवानरर्षभम् ॥ आजघानमहातेजाःसमुहूर्तंचचालह ॥२६॥ससंज्ञांप्राप्यतेजस्वीवालिपुत्रःप्रतापवान् ॥ प्रजंघस्यशिरःकायात्पातयामाससमुष्टिना ॥ २७ ॥ सयूपाक्षोऽश्रुपूर्णाक्षःपितृव्येनिहतेरणे ॥ अवरुह्यरथात्क्षिप्रंक्षीणेषुःखड्गमाददे ॥ २८ ॥

वार्ता सुनकर अत्यंत क्रोधसे अग्निकी समान प्रज्वलित होगया ॥ १ ॥ राक्षसराज रावण, क्रोध और शोकसे व्याकुल होकर विशाल नेत्रवाले खरके पुत्र मकराक्षसे बोला ॥ २ ॥ वत्स ! हम तुमको आज्ञा देतेहैं, तुम बड़ी भारी सैनाको साथ लेकर संग्रामभूमिमें जाय वानरोंके सहित उन रामचंद्र और लक्ष्मणको मार डालो ॥ ३ ॥ रावणके वचन सुनकर अपने को शूर माननेवाले बलशाली ढीठ खरके पुत्र राक्षस मकराक्षनें "बहुत अच्छा" कहकर रावणके वचनको स्वीकार किया ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त वह रावणको प्रणामकर व उसकी प्रदक्षिणा कर रावणकी आज्ञानुसार उजले वर्णके गृहोंसे निकला ॥ ५ ॥ तब खरके पुत्र मकराक्षनें समीपही खड़े हुए सैनाके नायकसे कहाकि तुम जलदीसे रथ तैयार कराओ

नैर्ऋतःक्रोधशोकाभ्यांद्वाभ्यांतुपरिमूर्च्छितः ॥ खरपुत्रंविशालाक्षंमकराक्षमचोदयत् ॥ २ ॥ गच्छपुत्रमयाज्ञप्तोबलेनाभिसमन्वितः ॥ राघवंलक्ष्मणंचैवजहितौसवनौकसौ ॥ ३ ॥ रावणस्यवचःश्रुत्वाशूरमानीखरात्मजः ॥ बाढमित्यब्रवीद्धृष्टोमकराक्षोनिशाचरम् ॥ ४ ॥ सोभिवाद्यदशग्रीवंकृत्वाचापिप्रदक्षिणम् ॥ निर्जगामगृहाच्छुभ्राद्रावणस्याज्ञयाबली ॥५॥ समीपस्थंबलाध्यक्षंखरपुत्रोब्रवीद्वचः ॥ रथमानीयतांतूर्णंसैन्यंत्वानीयतांत्वरात् ॥ ६ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाबलाध्यक्षोनिशाचरः ॥ स्यंदनंचबलंचैवसमीपंप्रत्यपादयत् ॥ ७ ॥ प्रदक्षिणंरथंकृत्वासमाहूयनिशाचरः ॥ सूतंसंचोदयामासशीघ्रंवैरथमावह ॥८॥ अथतान्राक्षसान्सर्वान्मकराक्षोब्रवीदिदम् ॥ यूयंसर्वेप्रयुध्यध्वंपुरस्तान्ममराक्षसाः ॥ ९ ॥ अहंराक्षसराजेनरावणेनमहात्मना ॥ आज्ञप्तःसमरेहंतुंतावुभौरामलक्ष्मणौ ॥ १० ॥

और सब सैनाकोभी सजालाओ ॥ ६ ॥ व सैनाध्यक्षनें मकराक्षकी यह आज्ञा पाय उसका रथ व सब सैनाको वहां सजाकर उपस्थित किया ॥ ७ ॥ निशाचर मकराक्ष रथकी प्रदक्षिणा करकै शीघ्रही उसपर सवारहुआ और सारथिसे कहनेंलगा सूत ! शीघ्रतासे रथको चलाओ ॥ ८ ॥ उसके उपरान्त मकराक्ष उन सब राक्षसोंको पुकार कर कहता हुआ" हे निशाचर गण! तुम हमारे आगे रहकर वानरोंसे युद्ध करना ॥ ९ ॥ और हमको महात्मा राक्षसोंके स्वामी रावणसे संग्राममें उन राम लक्ष्मण दोनोंके मारनेंको आज्ञा मिलीहै " ॥ १० ॥

मन्दरपर्वतके सदृश और इन्द्रध्वजकी समान उस वृक्षको सब राक्षसोंके सामनें अत्यन्त वेगसे कुंभके ऊपर चलाया ॥५५॥ कुंभकर्णके पुत्र कुंभनें सात देहको भेदनेंवाले तीखे बाणोंसे अंगदके भेजे उस वृक्षको काटडाला व और एक बाण अतिशीघ्रतासे अंगदजीकी छातीमें मारा अंगद जीभी उस बाणसे अत्यन्त पीड़ित और मोहित होकर पृथ्वीमें गिर पड़े ॥५६॥ समुद्रके जलमें डुबेहुएकी समान अंगदजीको उस महारणमें व्याकुल होकर मूर्छित हुआ देख वानरश्रेष्ठोंनें यह वृत्तान्त श्रीरामचंद्रजीके निकट जायकर निवेदन किया ॥ ५७ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें महासंग्राममें वालिके पुत्र महाबलवान अंगदजीको संग्राममें व्याकुलहुआ सुनकर जाम्बवान् इत्यादि मुख्य २ वानरोंको अंगदजीकी सहाय करनेंकी आज्ञादी ॥ ५८ ॥

तमिंद्रकेतुप्रतिमंवृक्षंमंदरसन्निभम् ॥ समुत्सृजतवेगेनमिषतांसर्वरक्षसाम् ॥ ५५ ॥ सचिच्छेदशितैर्बाणैःसप्तभिः कायभेदनैः ॥ अंगदोविव्यथेभीक्ष्णंसपपातमुमोहच ॥ ५६ ॥ अंगदंपतितंदृष्ट्वासीदंतमिवसागरम् ॥ दुरासदंहरिश्रेष्ठाराघवायन्यवेदयन् ॥५७॥ रामस्तुव्यथितंश्रुत्वावालिपुत्रंमहाहवे ॥ व्यादिदेशहरिश्रेष्ठाञ्जांबवत्प्रमुखांस्ततः ॥ ५८ ॥ तेतुवानरशार्दूलाःश्रुत्वारामस्यशासनम् ॥ अभिपेतुःसुसंक्रुद्धाःकुंभमुद्यतकार्मुकम् ॥ ५९ ॥ ततोद्रुमशिलाहस्ताः कोपसंरक्तलोचनाः ॥ रिरक्षिषंतोभ्यपतन्नंगदंवानरर्षभाः ॥ ६० ॥ जांबवांश्चसुषेणश्चवेगदर्शीचवानरः ॥ कुंभकर्णात्मजंवीरंक्रुद्धाःसमभिदुद्रुवुः ॥ ६१ ॥ समीक्ष्यापततस्तांस्तुवानरेंद्रान्महाबलान् ॥ आववारशरौघेणनगेनेवजलाशयम् ॥ ६२ ॥ तस्यबाणपथंप्राप्यनशेकुरपिवीक्षितुम् ॥ वानरेंद्रामहात्मानोवेलामिवमहोदधिः ॥ ६३ ॥

यह वानर शार्दूलगण श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञाको सुनकर क्रोधितहो धनुष उठाये कुंभकी ओर दौड़े ॥ ५९ ॥ इन सबके हाथोंमें वृक्ष और पर्वतथे; क्रोधसे इन सबके नेत्र लाल होरहेथे यह सब अंगदजीके जीवनकी रक्षा करनेके लिये आगे बढ़े ॥ ६० ॥ जाम्बवान् सुषेण, और वानर वेगदर्शी यह तीनों महा क्रोधकर कुंभके सन्मुख धावमान हुए ॥ ६१ ॥ जिस प्रकार पत्थरोंके टुकड़ोंसे जलके सोतेको रोकदियाजाताहै वैसेही कुंभनें उन महाबलवान् वानरश्रेष्ठोंको आताहुआ देखकर बाणोंसे उनकी गतिको रोक दिया ॥ ६२ ॥ जिस प्रकार महासमुद्रका जल वेलाभूमिको

उसीसे तुम हमारे साथ युद्ध करो ॥ १६ ॥ दशरथनंदन श्रीरामचन्द्रजी मकराक्षके यह वचन सुनकर हँसते २ उस वृथा बकवाद करनेंवाले मक राक्षसे बोले ॥ १७ ॥ हे निशाचर! किस कारणसे बहुत सारी बकवादकरके अपनी बड़ाई कररहाहै? तू युद्ध न करके केवल वचनोंहीसे जय प्राप्त करनेंके लिये समर्थ नहीं होगा ॥ १८ ॥ हमनें अकेलेही दंडकारण्यमें तुम्हारे पिता खर, त्रिशिरा, दूषण, और उनके संगी चौदह हजार राक्षसोंका संहार कियाहै ॥ १९ ॥ रे पापी! आज तेराभी प्राण संहारकराजायगा और तेरा मांस तीक्ष्ण चोंच और तीक्ष्ण पंजोंवाले गिद्ध, शृगाल और कौए खायकर तृप्त हो जाँयगे ॥ २० ॥ "रुधिरार्द्रमुखा हृष्टारक्तपक्षाण्डजाश्च ये। खेचरा वसुधाराश्च भविष्यन्ति च सर्वतः ॥ जो

मकराक्षवचःश्रुत्वारामोदशरथात्मजः ॥ अब्रवीत्प्रहसन्वाक्यमुत्तरोत्तरवादिनम् ॥ १७ ॥ कत्थसेकिंवृथारक्षोबहू न्यसदृशानिते ॥ नरणेशक्यतेजेतुंविनायुद्धेनवाग्बलात् ॥ १८ ॥ चतुर्दशसहस्राणिरक्षसांत्वत्पिताचयः ॥ त्रिशिरा दूषणश्चापिदंडकेनिहतोमया ॥ १९ ॥ स्वाशिताश्चापिमांसेनगृध्रगोमायुवायसाः ॥ भविष्यंत्यद्यवैपापतीक्ष्णतुंडन खांकुशाः ॥ २० ॥ राघवेणैवमुक्तस्तुमकराक्षोमहाबलः ॥ बाणौघानमुचत्तस्मैराघवायरणाजिरे ॥ २१ ॥ तान्छरा न्छरवर्षेणरामश्चिच्छेदनैकधा ॥निपेतुर्भुविविच्छिन्नारुक्मपुंखाःसुवाससः ॥ २२ ॥

आकाशके चरनेवाले और लाल पंखयुक्त हैं वह सब पक्षीभी अपनी चोंचसे तेरा रुधिर पान करके हर्षितचित्तहो पृथ्वीके अनेक स्थानोंमें घूमेंगे ❋ ॥" जब श्रीरामचन्द्रजीनें यह वचन कहे तब महाबलवान् मकराक्षनें समर करनेंके लिये तैयार होकर एकहीवारमें श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर अगणित बाणोंकी वर्षा की ॥ २१ ॥ परन्तु श्रीरामचन्द्रजीनें अपनी बाणवर्षासे उन समस्त बाणोंको काटडाला, वह सुवर्णकी फोंक

❋ यह श्लोक प्राचीन पुस्तकोंमें है यद्यपि टीकाकारोंने एकार्थप्रतिपादक जानकर इस श्लोकको छोड़ दियाहै परन्तु वाल्मीकिजीकी कविताका छोडना उचित नहीं इस कारण यह श्लोक यहांपर लिखागया ॥

नहीं लांघसकता वैसेही वह महाबलवान् वानरश्रेष्ठभी उसके बाणोंको तोड़कर आगे बढ़नेमें समर्थ न हुए ॥ ६३ ॥ वानरश्रेष्ठ उन वानरोंको संग्राममें बाणोंकी वर्षासे मर्दित देख अपने भतीजे अंगदजीको पीछे छोड़ वानरराज सुग्रीवजी ॥ ६४ ॥ कुंभकर्णके पुत्र कुंभ पर झपटे जिस प्रकार वेगवान् केसरी सिंह पर्वतके शृङ्गोंपर चरतेहुए हाथीपर दौड़ताहै ॥ ६५ ॥ वह महाकपि सुग्रीवजी अश्वकर्णादि अनेक प्रकारके वृक्ष उखाड़ २ कर कुंभपर चलानेलगे ॥ ६६ ॥ परन्तु कुंभकर्णके पुत्र कुंभनें आकाशको छालेनेवाली दुर्द्धर्ष वृक्ष वृष्टिको तीखे बाणोंके समूहसे अति शीघ्र खंड २ कर डाला ॥ ६७ ॥ वह काटेहुए दुर्द्धर्ष सब वृक्ष घोर शतघ्नियोंकी समान दिखाई देनेलगे, बाणोंकी वर्षाको

तांस्तुदृष्ट्वाहरिगणाञ्छरवृष्टिभिरर्दितान्॥ अंगदंपृष्ठतःकृत्वाभ्रातृजंप्लवगेश्वरः ॥ ६४ ॥ अभिदुद्रावसुग्रीवःकुंभकर्णात्मजंरणे ॥ शैलसानुचरंनागंवेगवानिवकेसरी ॥६५॥ उत्पाट्यचमहावृक्षानश्वकर्णादिकान्बहून्॥ अन्यांश्चविविधान्वृक्षांश्चिक्षेपसमहाकपिः ॥ ६६ ॥ तांछादयंतीमाकाशंवृक्षवृष्टिंदुरासदाम् ॥ कुंभकर्णात्मजःश्रीमांश्चिच्छेदस्वशरैःशितैः ॥ ६७ ॥ अर्दितास्तेद्रुमारेजुर्यथाघोराःशतघ्नयः ॥ द्रुमावर्षंतुतद्भिन्नंदृष्ट्वाकुंभेनवीर्यवान् ॥ ६८ ॥ वानराधिपतिःश्रीमान्महासत्त्वोनविव्यथे ॥ सविध्यमानःसहसासहमानस्तुताञ्छरान् ॥६९॥ कुंभस्यधनुराक्षिप्यबभंजेंद्रधनुःप्रभम् ॥ अवप्लुत्यधनुःशीघ्रंकृत्वाकर्मसुदुष्करम् ॥ ७० ॥ अब्रवीत्कुपितःकुंभंभग्नशृंगमिवद्विपम् ॥ निकुंभाग्रजवीर्यंतेबाणवेगंतदद्भुतम् ॥ ७१ ॥ सन्नतिश्चप्रभावश्चतववारावणस्यवा ॥ प्रह्लादबलिवृत्रघ्नकुबेरवरुणोपमम् ॥ ७२ ॥

वीर्यवान् कुंभ करके छिन्न भिन्न देख वानरोंके स्वामी श्रीमान् महासत्वसम्पन्न सुग्रीवजी कुछभी व्यथित न हुए ॥ ६८ ॥ वानरराज राक्षसके बाणसे विंधकर अतिसरलतासे उस दारुण आघातको सहलेतेहुए उन सुग्रीवजीनें इसके उपरान्त कुंभके हाथसे बलपूर्वक इन्द्रके धनुषकी तुल्य ॥ ६९ ॥ उसका धनुष छीन तोड़ डाला वानरराज सुग्रीवजी ऐसा दुष्कर कर्म करके छलांग मार ॥७०॥ कोपकियेहुए दांत टूटेहुए हाथीकी समान खड़ेहुए कुंभसे जायकर बोले । हे निकुंभके बड़े भाई कुंभ ! तुम्हारे बाणोंका वेग व वीर्य अतिअद्भुतहै, ॥ ७१ ॥ तुममें विनय और प्रताप

॥

लगे, गांसीयुक्त समस्त बाण कटकर पृथ्वीपर गिरपड़े ॥ २२ ॥ इस प्रकारसे राक्षस खर और नरेन्द्र महाराज दशरथजीके पुत्र उन दोनोंके पुत्र मकराक्ष व श्रीरामचन्द्रजीका परस्पर तेज सहित मिलनें पर दोनोंका घोरयुद्ध आरंभ हुआ ॥ २३ ॥ तिस काल उस रणभूमिमें आकाशमें शब्द करतेहुए दो मेघोंकी समान दोनोंके धनुषकी टंकार और हाथसे खेचनें का और धनुषसे बाण छोड़नेंका शब्द सुनाईआनेंलगा ॥ २४ ॥ देव, दानव, गन्धर्व, किन्नर, और बड़े २ सर्पगण युद्ध देखनेंके लिये आकाशमें विराजमान हुए ॥ २५ ॥ उस समय दोनोंके शरीर जितनेंही बाणोंसे विंधे वैसेही वैसे दोनोंकी सामर्थ्य बढ़नेंलगी, जब एक दूसरेको मारताथा, तब दूसराभी उसका उत्तर देनेंके लिये उसके उसी अंगमें घाव लगाताथा॥२६॥

तद्युद्धमभवत्तत्रसमेत्यान्योन्यमोजसा ॥ खरराक्षसपुत्रस्यसूनोर्दशरथस्यच ॥ २३ ॥ जीमूतयोरिवाकाशेशब्दोज्यातलयोरिव ॥ धनुर्मुक्तस्वनोन्योन्यंश्रूयतेचरणाजिरे ॥ २४ ॥ देवदानवगंधर्वाःकिन्नराश्चमहोरगाः ॥ अंतरिक्षगताः सर्वेद्रष्टुकामास्तदद्भुतम्॥२५॥विद्धमन्योन्यगात्रेषुद्विगुणंवर्धतेबलम् ॥ कृतप्रतिकृतान्योन्यंकुरुतांतौरणाजिरे॥२६॥ राममुक्तांस्तुबाणौघान्राक्षसस्त्वाच्छिनद्रणे॥ रक्षोमुक्तांस्तुरामोवैनैकधाप्राच्छिनच्छरैः ॥ २७॥ बाणौघवितताःसर्वा दिशश्चप्रदिशस्तथा ॥ संछन्नावसुधाचैवसमंतान्नप्रकाशते॥२८॥ततःक्रुद्धोमहाबाहुर्धनुश्चिच्छेदसंयुगे॥ अष्टाभिरथनाराचैःसूतंविव्याधराघवः॥२९॥भित्त्वारथंशरैरामोहत्वाअश्वानपातयत् ॥ विरथोवसुधास्थःसमकराक्षोनिशाचरः॥३०॥

श्रीरामचन्द्रजीनें जितनें बाण चलाये मकराक्षनें उन सबको काटडाला और राक्षस मकराक्षके छोड़ेहुए बाणसमूहोंको बाणोंकी वर्षा करके श्रीरामचन्द्रजीनें काटडाला ॥ २७ ॥ दोनों वीरोंके चलायेहुए बाणोंसे समस्त दिशा विदिशा भरगईं, और पृथ्वी आकाश दोनोंमें अंधकार छाय गया ॥ २८ ॥ इसके उपरान्त महाबाहु श्रीरामचन्द्रजीनें क्रोधित होकर मकराक्षका धनुष काटकर अठारह बाण चलायकर उसके सारथिको बींधा ॥ २९ ॥ व और बहुतसे बाणोंसे रथको भेदकर उसमेंके जुतेहुए घोड़ोंकाभी संहारकिया तब राक्षस मकराक्ष रथहीन होकर पृथ्वीपर

रावणकी नांईहैं; तुम्हारा विक्रम, बल, प्रह्लाद, इन्द्र कुबेर, और वरुणकी समान है ॥ ७२ ॥ तुम सब प्रकारसे अपने पिता कुंभकर्णके अनुरूप पुत्रहो हेमहाबाहो शत्रुदमनकारी! जब तुम अकेले शूल हाथमें लेकर खड़े हो जाओ ॥ ७३ ॥ तब देवता लोगभी भयभीतहो तुम्हारे सन्मुख न आय सकेंगे; कि जिस प्रकारसे मनकी पीड़ा इन्द्रियोंके जीतनेंवाले पुरुषके सन्मुख नहीं खड़ी हो सकती [अर्थात् उसको पीड़ा नहीं देसकती] अच्छा जो हुआ सो हुआ आज तुम इस महासंग्राममें अपना विक्रम प्रकाश करो और हमारा विक्रम देखो ॥ ७४ ॥ तुम्हारे ताऊ रावणनें तौ ब्रह्माजीके वरदानके प्रभावसेही देवता और दानव लोगोंको जीताथा, परन्तु कुंभकर्णनें अपनें वीर्यके प्रभावसे सुर असुर लोगोंको पराजित

एकस्त्वमनुजातोसिपितरंबलवत्तरम्॥त्वामेवैकंमहाबाहुंशूलहस्तमरिंदमम् ॥७३॥ त्रिदशानातिवर्ततेजितेंद्रियमिवा धयः॥ विक्रमस्वमहाबुद्धेकर्माणिममपश्यच॥७४॥वरदानात्पितृव्यस्तेसहतेदेवदानवान्॥कुंभकर्णस्तुवीर्येणसहतेच सुरासुरान् ॥ ७५ ॥ धनुषींद्रजितस्तुल्यःप्रतापेरावणस्यच ॥ त्वमद्यरक्षसांलोकेश्रेष्ठोसिबलवीर्यतः ॥ ७६ ॥ महावि मर्दंसमरेमयासहतवाद्भुतम् ॥ अद्यभूतानिपश्यंतुशक्रशंबरयोरिव ॥ ७७ ॥ कृतमप्रतिमंकर्मदर्शितंचास्त्रकौशलम् ॥ पातिताहरिवीराश्चत्वयैतेभीमविक्रमाः ॥ ७८ ॥ उपालंभभयाच्चैवनासिवीरमयाहतः ॥ कृतकर्मपरिश्रांतो विश्रांतःपश्यमेबलम् ॥ ७९ ॥

कियाथा ॥ ७५ ॥ तुम प्रतापमें रावणकी समान और धनुषविद्यामें इन्द्रजीतकी तुल्य हो, इसलिये अब राक्षसोंके बीचमें एक तुमही हमको बल वीर्यमें श्रेष्ठ जान पड़तेहो ॥ ७६ ॥ जिस प्रकार शत्रु लोगोंके साथ शम्बरासुरका संग्राम हुआथा, वैसेही तुम्हारे साथ आज हमारा कठोर संग्राम होगा; समस्त प्राणी इस भयंकर समरको अपनी आंखोंसे देखेंगे ॥ ७७ ॥ तुमनें असाधारण कर्म कियाहै; तुमनें अपने अस्त्रकी चतुरताभी बाणों को चलाय कर दिखाई है, कि इन भीमविक्रमकारी जाम्बवान् आदि वानरोंको बाणोंसें रोकदियाहै ॥ ७८ ॥ तुम अकेले इन बहुत सारे वान रोंके साथ युद्ध करके थकगयेहो; अतएव इस समय बल प्रकाश करके तुम्हारे वध करनेंपर लोग निन्दा करेंगे इसी भयसे हम तुमको नहीं मार

खड़ा रहगया ॥ ३० ॥ पृथ्वीपर खड़ेहुए उस राक्षस मकराक्षनें सर्व प्राणियोंको भय दिलानेंवाला प्रलयकालकी समान प्रकाशित शूल अपने हाथमें ग्रहणकिया ॥ ३१ ॥ यह शूल राक्षस मकराक्षनें महादेवजीकी तपस्या करके प्राप्त कियाथा, यह भयं कर और अतिदुर्द्धर्ष था, यह अपने तेजसे आकाशमें प्रज्वलितहो रहाथा, ॥ ३२ ॥ देखनेंसे यह शूल दूसरे संहारास्त्रकी समान जान पड़ताथा जिसको देखकर सब देवता भयके मारे आरत हो दशों दिशाओंको भागगये; ॥ ३३ ॥ ऐसा बड़ाभारी प्रज्वलित शूल घुमायकर राक्षसनें क्रोधसहित वह शूल महात्मा श्रीरामचंद्रजीके ऊपर चलाया उस आतेहुए खरपुत्र मकराक्षके हाथसे चलायेहुए प्रज्व

तत्तिष्ठद्वसुधांरक्षःशूलंजग्राहपाणिना ॥ त्रासनंसर्वभूतानांयुगांताग्निसमप्रभम् ॥३१॥ दुरवापंमहच्छूलंरुद्रदत्तंभयंकरम् ॥ जाज्वल्यमानमाकाशेसंहारास्त्रमिवापरम् ॥३२॥ यंदृष्ट्वादेवताःसर्वाभयार्ताविद्रुतादिशः ॥ विभ्राम्यचमहच्छूलं प्रज्वलंतंनिशाचरः ॥ ३३ ॥ सक्रोधात्प्राहिणोत्तस्मैराघवायमहात्मने ॥ तमापतंतंज्वलितंखरपुत्रकराच्च्युतम् ॥३४॥ बाणैश्चतुर्भिराकाशेशूलंचिच्छेदराघवः ॥ सभिन्नोनैकधाशूलोदिव्यहाटकमंडितः ॥ व्यशीर्यतमहोल्केवरामबाणार्दितोभुवि ॥३५॥ तच्छूलंनिहतंदृष्ट्वारामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ साधुसाध्वितिभूतानिव्याहरंतिनभोगताः ॥३६॥ तंदृष्ट्वानिहतंशूलंमकराक्षोनिशाचरः ॥ मुष्टिमुद्यम्यकाकुत्स्थंतिष्ठतिष्ठेतिचाब्रवीत्॥३७॥सतंदृष्ट्वापतंतंतुप्रहस्यरघुनंदनः ॥ पावकास्त्रंततोरामःसंदधेतुशरासने॥३८॥तेनास्त्रेणहतंरक्षःकाकुत्स्थेनतदारणे॥सच्छिन्नहृदयंतत्रपपातचममारच॥३९॥

लित ॥ ३४ ॥ शूलको चार वाणोंसे आकाशमेंही श्रीरामचंद्रजीनें काट डाला । तपायेहुए सुवर्णसे शोभित वह दिव्यशूल श्रीरामचंद्रजीके वाणसे मर्दित और अनेक खंड होकर बड़ीभारी उल्काकी समान पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ३५ ॥ उस समय सरलकर्मकारी श्रीरामचंद्रजी करके उस शूलको कटा हुआ देखकर आकाशमें टिके हुए सब प्राणी "धन्यहो, धन्यहो" ऐसा कहनेंलगे ॥ ३६ ॥ निशाचर मकराक्ष शूलको कटा हुआ देख मूका उठाय "खड़े रहो खड़े रहो" ऐसा कहकर श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख धाया ॥ ३७ ॥ ॥ रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीनेंभी उस राक्षसको आताहुआ देख मंद २ हँसतेहुए धनुषको धारण किया और उसपर अग्निबाण चढ़ाया ॥ ३८ ॥ श्रीरामचंद्रजीके उस आग्नेयास्त्रसे राक्षस

डालते हैं. एक क्षणभर विश्राम करकै तुम हमारा पराक्रम देखो ॥ ७९ ॥सुग्रीवजीके ऐसे सारवान् सन्मानयुक्त वचनोंसे अग्निमें आहुति लगनेंके समान कुंभका तेज औरभी बढ़ा ॥८०॥ इसके उपरान्त वीर्यवान कुंभनें दोनों बाहोंसे सुग्रीवजीको पकड़ लिया, वह दोनों जने उस समय मदचु आते हाथीकी समान वारंवार लंबे २ श्वास लेनें लगे ॥ ८१ ॥ परस्पर एक दूसरेका शरीर गांठनें लगे, दोनोंही एक दूसरेको खेंचतेथे अत्यन्त जोरसे लड़नेंकें कारण दोनोंहीके मुखसे मारे परिश्रमके धुवें सहित अग्निकी शिखा निकल रहीथी ॥८२॥ दोनों वीरोंके चरणोंकी धमकसे पृथ्वी नीचे को धसनेंलगीं समुद्रमें बड़ी तरंगें उठनें लगी और समुद्र कंपायमानभी हुआ ॥८३॥ तिसके उपरान्त सुग्रीवजीनें कुंभको पकड़कर मानों समुद्रकी

तेनसुग्रीववाक्येनसावमानेनमानितः ॥ अग्नेराज्यहुतस्येवतेजस्तस्याभ्यवर्धत ॥ ८० ॥ ततःकुंभस्तुसुग्रीवंबाहुभ्यां जगृहेतदा ॥ गजाविवावीतमदौनिःश्वसंतौमुहुर्मुहुः ॥ ८१ ॥ अन्योन्यगात्रग्रथितौघर्षंतावितरेतरम् ॥ सधूमांमुखतो ज्वालांविसृजंतौपरिश्रमात् ॥ ८२ ॥ तयोःपादाभिघाताच्चनिमग्नाचाभवन्मही ॥ व्याघूर्णिततरंगश्चचुक्षुभेवरुणा लयः ॥ ८३ ॥ ततःकुंभंसमुत्क्षिप्यसुग्रीवोलवणांभसि ॥ पातयामासवेगेनदर्शयन्नुदधेःस्थलम् ॥ ८४ ॥ ततःकुंभनिपाते नजलराशिःसमुत्थितः ॥ विंध्यमंदरसंकाशोविससर्पसमंततः ॥ ८५ ॥ ततःकुंभःसमुत्पत्यसुग्रीवमभिपात्यच ॥ आजघानोरसिक्रुद्धोवज्रकल्पेनमुष्टिना ॥ ८६ ॥ तस्यचर्मचपुस्फोटसंजज्ञेचापिशोणितम् ॥ तस्यमुष्टिर्महावेगःप्रति जघ्नेऽस्थिमंडले ॥ ८७ ॥ तस्यवेगेनतत्रासीत्तेजःप्रज्वलितंमहत् ॥ वज्रनिष्पेषसंजाताज्वालामेरोर्यथागिरेः ॥ ८८ ॥

तली दिखलानेंके लियेही उसको अतिवेगसे लवणसमुद्रमें झोक दिया ॥८४॥ जब कुंभ समुद्रमें झोकागया तब समुद्रके जलकी राशि विन्ध्य और मन्दराचल पर्वतकी समान ऊंचा उठकर चारों ओर उफलाय उठा ॥ ८५ ॥ कुंभ एकक्षणभरके पीछेही समुद्रसे निकलकर सुग्रीवजीके निकट आया और क्रोधमें भरकर उनकी छातीमें एक वज्रकी समान मूका मारा॥८६॥उस भयंकर आघातसे सुग्रीवजीके शरीरकी खाल फट गई, अतिवेगसे रुधिरकी धारा वहनेंलगी और उस महावेगसे चलेहुए मूकेनें सुग्रीवजीकी छातीकी हड्डियें तोड़ डालीं ॥ ८७ ॥ जिस प्रकार वज्रके चलानेसे

मकराक्षका हृदय फट गया और वह संग्राम भूमिमें गिरकर प्राण छोड़ता हुआ ॥ ३९ ॥ उस समय और सब राक्षस मकराक्षको मृतक देख राम
बाणके भयसे अत्यन्त व्याकुलहो लंकाकी ओरको भागे ॥ ४० ॥ इस ओर देवता लोग राजा दशरथजीके पुत्र श्रीरामचंद्रजी करके
खरके पुत्र निशाचर मकराक्षको मृतक और वज्रसे विदारण हुए पर्वतकी समान पड़े देखकर परम प्रसन्न हुए ॥ ४१ ॥ इ०
श्रीम० वा० आ० यु० भाषानुवादे नवसप्ततितमः सर्गः ॥ ७९ ॥ महावीर रावण मकराक्षकी मृत्युका समाचार सुनकर अत्यन्त क्रोध
युक्त हुआ और दांतसे दांत पीसकर "कटकट" शब्द करनेंलगा ॥ १ ॥ इसके उपरान्त क्षणभरतक "अब क्या करना उचितहै" यह चिन्ता

दृष्ट्वातेराक्षसाःसर्वेमकराक्षस्यपातनम् ॥ लंकामेवप्रधावंतरामबाणभयार्दिताः ॥ ४० ॥ दशरथनृपसूनुबाणवेगैरज
निचरंनिहतंखरात्मजंतम् ॥ प्रददृशुरथदेवताःप्रहृष्टागिरिमिववज्रहतंतथाविकीर्णम् ॥ ४१ ॥ इ० श्रीम० वा०आ०
यु०नवसप्ततितमःसर्गः ॥ ७९ ॥ ॥ छ ॥ ॥ मकराक्षंहतंश्रुत्वारावणःसमितिंजयः ॥ रोषेणमहताविष्टोदंतान्कटक
टाय्यच ॥ १ ॥ कुपितश्चतदातत्रकिंकार्यमितिचिंतयन् ॥ आदिदेशाथसंक्रुद्धोरणायेंद्रजितंसुतम् ॥ २ ॥ जहिवी
रमहावीर्यौभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ अदृश्योदृश्यमानोवासर्वथात्वंबलाधिकः ॥ ३ ॥ त्वमप्रतिमकर्माणमिंद्रंजय
सिसंयुगे ॥ किंपुनर्मानुषौदृष्ट्वानवधिष्यसिसंयुगे ॥ ४ ॥ तथोक्तोराक्षसेंद्रेणप्रतिगृह्यपितुर्वचः ॥ यज्ञभूमौसविधि
वत्पावकंजुहवेंद्रजित् ॥५॥ जुह्वतश्चापितत्राग्निंरक्तोष्णीषधराःस्त्रियः ॥ आजग्मुस्तत्रसंभ्रांताराक्षस्योयत्ररावणिः॥६॥

करके महा क्रोधकर पुत्र इन्द्रजीतको संग्राममें जानेंकी आज्ञा देता हुआ ॥ २ ॥ रावणनें कहा, हेवीर! तुम सब प्रकारसे महाबलवानहो इस
लिये प्रगट होकर अथवा अन्तर्ध्यान होकर दोनों भ्राता राम और लक्ष्मणको मार डालो ॥ ३ ॥ तुमनें जो रणभूमिमें अनुपमकर्मकारी इन्द्रको
जीत लियाहै फिर भला "दो मनुष्योंको" तौ देखतेही तुम मार डालोगे इसमें संदेहही क्याहै इन्द्रजीतनें राक्षसोंके स्वामी रावणकी इस प्रकारसे
आज्ञा पाय यज्ञभूमिमें जाय अग्निमें यथाविधिसे होम करना आरंभ किया ॥ ४ ॥ ५ ॥ जिस स्थानमें राक्षसराजका पुत्र मेघनाद यज्ञकार्यमें ॥

सुमेरु पर्वतसें अग्नि निकलतीथी वैसेही उस मूकेके लगनेंसे सुग्रीवजीकी छातीकी हड्डियोंमेंसे तेज निकलनें लगा ॥ ८८ ॥ महाबलशाली वीर्यवान वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजीनें कुंभकरके इस प्रकारसे चोट खाय वज्रकी समान महाबलसे मूका बांधा ॥ ८९ ॥ सहस्रकिरणोंसे समुज्वल रविमंडलकी समान वह घूंसा कुंभकी छातीमें मारा ॥ ९० ॥ तब उस प्रहारसे कुंभ अत्यन्त ताड़ित और विह्वल होकर लपटहीन अग्निके समान पृथ्वीमें गिर पड़ा ॥९१॥ और वह निशाचर मूकेसे मारा जायकर आकाशसे अपनें आपसे गिरेहुए मंगल ग्रहकी समान गिरकर शोभायमान हुआ ॥ ९२ ॥ मूकेके प्रहारसे कुंभकी छाती टूट गई और गिरे हुए कुंभकारूप महादेवजीके मारनेंसे गिरे हुए सूर्यकी समान शोभित हुआ॥९३॥

सतत्राभिहतस्तेनसुग्रीवोवानरर्षभः ॥ मुष्टिंसंवर्तयामासवज्रकल्पंमहाबलः ॥ ८९ ॥ अर्चिःसहस्रविकचरविमंडलवर्चसम् ॥ समुष्टिंपातयामासकुंभस्योरसिवीर्यवान् ॥ ९० ॥ सतुतेनप्रहारेणविह्वलोभृशपीडितः ॥ निपपाततदाकुंभोगतार्चिरिवपावकः ॥ ९१ ॥ मुष्टिनाभिहतस्तेननिपपाताशुराक्षसः ॥ लोहितांगइवाकाशाद्दीप्तरश्मिर्यदृच्छया ॥९२ ॥ कुंभस्यपततोरूपंभग्नस्योरसिमुष्टिना ॥ बभौरुद्राभिपन्नस्ययथारूपंगवांपतेः ॥ ९३ ॥ तस्मिन्हतेभीमपराक्रमेणप्लवंगमानामृषभेणयुद्धे ॥ महीसशैलासवनाचचालभयंचरक्षांस्यधिकंविवेश ॥ ९४ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेषट्सप्ततितमःसर्गः ॥ ७६ ॥७७॥ निकुंभोभ्रातरंदृष्ट्वासुग्रीवेणनिपातितम् ॥ प्रदहन्निवकोपेनवानरेंद्रमुदैक्षत ॥ १ ॥ ततःस्रग्दामसन्नद्धंदत्तपंचांगुलंशुभम् ॥ आददेपरिघंधीरोमहेंद्रशिखरोपमम् ॥ २ ॥

इस प्रकार भयंकर पराक्रमकारी वानरराज करकै रणभूमिमें जब कुंभ मारा गया, तब समस्त वन और पर्वतोंकें साथ पृथ्वी चलायमान होगई व निशाचर गण औरभी अधिक भीत हुए ॥ ९४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ॥ ७६ ॥ वानरराज सुग्रीवजीके हाथसे अपने भ्राता कुंभको निहत देखकर महावीर निकुंभ क्रोधसे लाल २ नेत्रकर जलाताहीहुआसा मानों सुग्रीवजीकी ओर देखने लगा ॥ १ ॥इसके उपरान्त उस वीरनें काले लोहेका बनाहुआ पांच अंगुलके प्रमाणवाला बन्धोंसें बँधा ज्वाला मालासे शोभित

दीक्षित हुआथा वहांपर कईएक लाल वस्त्र धारण किये हुए राक्षसियें अतिसावधानीसे आयकर इस यज्ञकी सेवा करनें लगीं ॥ ६ ॥ उस यज्ञमें शस्त्रही शरपतके तुल्य बिछरहेथे और उसके पूरा करनेंके लिये बहेड़ेकी लकड़ी, लाल वर्णके वस्त्र, और काले लोहेसे बना हुआ स्रुवा लाया गया ॥ ७ ॥ तब इन्द्रजीतनें तोमर स्वरूप शरपत्रोंसे अग्नि प्रज्वलितकी और एक जीते हुए काले छागकी गर्दन पकड़ी ॥ ८ ॥ और उस छागको अग्निमें होम दिया, होम करतेही वह शरपत्रोंपर फैली हुई अग्नि धूम रहित होगई, और उसमें निकली हुई शिखाओंसे विजयकी सूचना देने वाले चिह्न प्रकाशित हुए ॥ ९ ॥ और तपाये हुए कांचनकी समान अग्निने दाहिनी ओरकी धूम लपटोंके सहित उठकर मेघनादकी दी हुई

शस्त्राणिशरपत्राणिसमिधोथबिभीतकाः ॥ लोहितानिचवासांसिस्रुवंकार्ष्णायसंतथा ॥ ७ ॥ सर्वतोग्निंसमास्तीर्य शरपत्रैःसतोमरैः ॥ छागस्यसर्वकृष्णस्यगलंजग्राहजीवतः ॥ ८ ॥ शरहोमसमिद्धस्यविधूमस्यमहार्चिषः ॥ बभूवु स्तानिलिंगानिविजयंदर्शयंतिच ॥ ९ ॥ प्रदक्षिणावर्तशिखस्तप्तहाटकसन्निभः ॥ हविस्तत्प्रतिजग्राहपावकःस्वयमु त्थितः ॥ १० ॥ हुत्वाग्निंतर्पयित्वाथदेवदानवराक्षसान् ॥ आरुरोहरथश्रेष्ठमंतर्धानगतंशुभम् ॥ ११ ॥ सवाजिभि श्चतुर्भिस्तुबाणैस्तुनिशितैर्यतः ॥ आरोपितमहाचापःशुशुभेस्यंदनोत्तमे ॥ १२ ॥ जाज्वल्यमानोवपुषातपनीयप रिच्छदः ॥ मृगैश्चंद्रार्धचंद्रैश्चसरथःसमलंकृतः ॥ १३ ॥ जांबूनदमहाकंबुर्दीप्तपावकसन्निभः ॥ बभूवेंद्रजितःकेतु वैंदूर्यसमलंकृतः ॥ १४ ॥

आहुति ग्रहणकी ॥ १० ॥ रावणका पुत्र मेघनाद इस प्रकार अग्निको आहुतिदे देव, दानव और राक्षसोंकी तृप्ति करताहुआ व किसीको न दीखनें वाले शुभ लक्षणयुक्त रथपर सवारहुआ ॥ ११ ॥ उस कालमें चार घोड़ोंसे चलाये जाते उत्तम रथमें सवार होकर वह वीर बड़ाभारी धनुष और तीखे बाणसमूह ग्रहण करके परम शोभायमान होनें लगा ॥ १२ ॥ महावीर इन्द्रजीतका देह सुवर्णके वस्त्राभूषणसे शोभायमानथा उसका रथभी सुवर्णसे भूषितथा, उस रथमें मृगोंकी तसवीर बनरहीथी और अर्द्धचंद्रोंसेभी वह भली भांति अलंकृतथा ॥ १३ ॥ सोनेके वलयसे युक्त

वीर हनुमानजीको उठाय आकाश मार्गसे लंकाकी ओर जानें लगा, तब राक्षस लोग युद्धके इस वृत्तान्तको देखकर हर्षित मनसे कुलाहल करनें लगे ॥ १८ ॥ उस समय महावीर हनुमानजी अपनेको राक्षसके हाथमें पड़ा हुआ देखकर अत्यन्तही लज्जित हुए और उन्होंनें उस राक्षसकी छातीमें वज्रकी समान एक घूंसा मारा ॥ १९ ॥ हनुमानजी उसी समय राक्षसके हाथसे अपनेंको छुटाय कूदकर पृथ्वीपर खड़े होगये और निकुंभको पकड़कर उन्होंनें शीघ्रही पृथ्वीपर पटक दिया॥२०॥ वह वेगवान वीर हनुमानजी क्रोधमें भरकर निकुंभको पृथ्वीपर पटक वारंवार पीसकर देदे मारनें लगे और आपभी कूदकर उसकी छातीपर चढ बैठे ॥ २१ ॥ इसके उपरान्त अपनी दोनों बाहोंसे पकडकर उसका शिर मरोरदिया,

सतथाह्रियमाणोपिहनूमांस्तेनरक्षसा ॥ आजघानानिलसुतोवज्रकल्पेनमुष्टिना ॥ १९ ॥ आत्मानंमोक्षयित्वाथ क्षितावभ्यवपद्यत ॥ हनूमानुन्ममाथाशुनिकुंभंमारुतात्मजः ॥२० ॥ निक्षिप्यपरमायत्तोनिकुंभंनिष्पिपेषच ॥ उत्पत्यचास्यवेगेनपपातोरसिवेगवान् ॥ २१ ॥ परिगृह्यचबाहुभ्यांपरिवृत्यशिरोधराम् ॥ उत्पाटयामासशिरोभैरवंनदतोमहत् ॥ २२॥ अथनिनदतिसादितेनिकुंभेपवनसुतेनरणेबभूवयुद्धम् ॥ दशरथसुतराक्षसेंद्रसूनोर्भृशतरमागतरोषयोःसुभीमम् ॥ २३ ॥ व्यपेतेतुजीवेनिकुंभस्यहृष्टाविनेदुःप्लवंगादिशःसस्वनुश्च ॥ चचालेवचोर्वीपपातेवसाद्यौर्बलं राक्षसानांभयंचाविवेश ॥ २४ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवा०आ०युद्धकांडेसप्तसप्ततितमःसर्गः ॥ ७७ ॥ ॥ छ ॥

निकुंभंनिहतंदृष्ट्वाकुंभंचविनिपातितम् ॥ रावणःपरमामर्षीप्रजज्वालानलोयथा ॥ १ ॥

और उस भयंकर शब्द करतेहुएका शिर उखाड़कर फेंक दिया ॥२२॥ इस प्रकार जब पवनकुमार हनुमानजीसे संग्राममें शब्दकरताहुआ निकुंभ मारा गया तब अत्यन्त क्रोध पूर्ण श्रीरामचंद्रजीका और राक्षसोंमें श्रेष्ठ खरके पुत्र मकराक्षका युद्ध आरंभ हुआ ॥ २३ ॥ निकुंभके मारेजानेंपर वानर लोगोंकी आनंदपूर्ण सिंहनादसे दशों दिशा शब्दायमान, पृथ्वी चलायमान और आकाश मानों पृथ्वीपर गिर पड़ा । निकुंभको माराहुआ देखकर वानर लोगोंका भयंकर शब्द सुनकर राक्षसोंकी सैनामें अत्यन्त भयका संचार हुआ ॥ २४ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० भाषानुवादे सप्तसप्ततितमःसर्गः ॥ ७७ ॥ इसके उपरान्त लंकापति दशानन रावण निकुंभ और कुंभके मरनेंकी ॥

और प्रदीप्त अग्निकी समान उसका केतुभी वैदूर्यमणिसे सबप्रकार सजरहाथा ॥ १४ ॥ उस सूर्यकी समान रथ और ब्रह्मास्त्रसे रक्षित होनेंके कारण महाबलवान रावणका पुत्र मेघनाद अत्यन्त अजीत होगया ॥१५॥ समरविजयी इन्द्रजीत इस प्रकारसे अग्निमें होमकरके नगरसे बाहर निकला और राक्षसी मंत्रोंसे अन्तर्ध्यान होकर बोला ॥ १६ ॥ मिथ्या वनको निकले हुए राम और लक्ष्मणको संग्राममें मारकर हम रणमें बटोरी हुई जय अपने पिता रावणको देंगे ॥ १७ ॥ आज हम लक्ष्मणके सहित रामचंद्रका नाशकर पृथ्वीको वानरविहीन और पिताजीको परम प्रसन्न करेंगे ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त महावीर इन्द्रजीत रावणकी प्रेरणासे प्रेरित होकर क्रोधसहित युद्धभूमिमें आया, मेघनाद हाथमें तीक्ष्ण अस्त्र धारण करके औरभी अधिक तीक्ष्ण होगया ॥ १९ ॥ इन्द्रजीतने देखा कि वानरलोगोंके बीचमें तीन फणवाले सर्पकीसमान श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी खडेहैं [इनके बन्धनोंमें दो दो तरकस लग रहेथे और मस्तकके साथ तीन २ शिरवाले ज्ञात होतेथे, इस कारण तीन फणवाला सर्प कहा] यह श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी वानर लोगोंके बीचमें खड़े रहकर बाणोंकी वर्षा कर रहेथे ॥ २० ॥ इन्द्रजीतनें उनको देखतेही पहचानलिया और मेघ जिसप्रकार जलकी धारा वर्षातेहैं वैसेही मेघनाद धनुषपर बाण चढायकर निरन्तर बाणोंकी वर्षा करनें लगा ॥ २१ ॥ आकाशगामी रथपर सवार होकर वह वीर दृष्टिके ओझलहोकर टिका हुआ तीखे बाण समूहसे श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीको वींधताहुआ ॥ २२ ॥ महावीर श्रीरामचंद्र

तेनचादित्यकल्पेनब्रह्मास्त्रेणचपालितः ॥ सबभूवदुराधर्षोरावणिःसुमहाबलः॥१५॥ सोभिनिर्यायनगरादिंद्रजित्समितिंजयः ॥ हुत्वाग्निंराक्षसैर्मंत्रैरंतर्धानगतोब्रवीत् ॥ १६ ॥ अद्यहत्वारणेयौतौमिथ्याप्रव्रजितौवने ॥ जयंपित्रेप्रदास्यामिरावणायरणेधिकम् ॥१७॥ अद्यनिर्वानरामुर्वींहत्वारामंचलक्ष्मणम्॥ करिष्येपरमांप्रीतिमित्युक्त्वांतरधीयत॥१८॥ आपपाताथसंक्रुद्धोदशग्रीवेणचोदितः॥ तीक्ष्णकार्मुकनाराचैस्तीक्ष्णस्त्विंद्ररिपूरणे ॥१९॥ सददर्शमहावीर्यौनागौत्रिशिरसाविव ॥ सृजंताविषुजालानिवीरौवानरमध्यगौ ॥ २० ॥ इमौतावितिसंचिंत्यसज्जंकृत्वाचकार्मुकम् ॥ संततानिषुधाराभिःपर्जन्यइववृष्टिमान् ॥ २१ ॥ सतुवैहायसरथोयुधितौरामलक्ष्मणौ ॥ अचक्षुर्विषयेतिष्ठन्विव्याधनिशितैःशरैः ॥ २२ ॥ तौतस्यशरवेगेनपरीतौरामलक्ष्मणौ ॥ धनुषीसशरेकृत्वादिव्यमस्त्रंप्रचक्रतुः ॥ २३ ॥

इन तीनोंको अपनें ऊपर आयाहुआ देख श्रीरामचंद्रजीनें तीक्ष्ण बाणों से ॥१९॥ इनकी अगवानीकी। जैसे मनुष्य आयेहुए पाहुनोंकी अगुवानी व उचित पूजा करतेहैं। और महाकपालका तो रघुनंदनजीनें शिर ही उड़ादिया ॥ २० ॥ व अगणित बाणोंसे प्रमाथीका माथा, और स्थूलाक्षकी मोटी आखोंको पूरण करदिया ॥२१॥ यह तीनों कटेहुए वृक्षोंकी नांई पृथ्वीमें गिर पडे। इसके पीछे पांचहजार जो दूषणके अनुयायी राक्षसथे उन सबको अति क्रोधकर एक क्षणभरमें ॥२२॥ संहारकर उन सबको श्रीदशरथकुमारनें यमपुरको पठादिया, तब दूषण, व उसके अनुगामी सैन्यको मरा गयाहुआ सुन ॥२३॥ खरनें क्रोधित होकर महाबलवान् और दूसरे सेनापतियोंको इस प्रकारसे आज्ञा दी, कि, से

तीक्ष्णाग्रैःप्रतिजग्राहसंप्राप्तानतिथीनिव ॥ महाकपालस्याशिरश्चिच्छेदरघुनंदनः ॥ २० ॥असंख्येयैस्तुबाणौघैःप्रममाथप्रमाथिनम् ॥ स्थूलाक्षस्याक्षिणीस्थूलेपूरयामाससायकैः ॥ २१ ॥ सपपातहतोभूमौविटपीवमहाद्रुमः ॥ दूषणस्यानुगान्पंचसाहस्रान्कुपितःक्षणात् ॥२२॥ हत्वातुपंचसाहस्रैरनयद्यमसादनम् ॥ दूषणंनिहतंश्रुत्वातस्यचैवपदानुगान् ॥ २३ ॥ व्यादिदेशखरःक्रुद्धःसेनाध्यक्षान्महाबलान् ॥ अयंविनिहतःसंख्येदूषणःसपदानुगः ॥ २४ ॥ महत्यासेनयासार्धंयुद्धारामंकुमानुषम् ॥ शस्त्रैर्नानाविधाकारैर्हनध्वंसर्वराक्षसाः ॥ २५ ॥ एवमुक्त्वाखरःक्रुद्धोराममेवाभिदुद्रुवे ॥ श्येनगामीपृथुग्रीवोयज्ञशत्रुर्विहंगमः ॥ २६ ॥ दुर्जयःकरवीराक्षःपरुषःकालकार्मुकः ॥ हेममालीमहामालीसर्पास्योरुधिराशनः ॥ २७ ॥ द्वादशैतेमहावीर्याबलाध्यक्षाःससैनिकाः ॥ राममेवाभ्यधावंतविसृजंतःशरोत्तमान् ॥ २८ ॥

नापति लोगो! दूषण तो अपने अनुगामियों समेत मारागया ॥ २४ ॥ बस अब तुम सब राक्षसगण एकत्रहो बडी भारी सेनाको साथ लेकर विविध आकार अस्त्र शस्त्र छोडकर मनुष्याधम रामचंद्रको मारडालो॥२५॥खर सेनापतियोंसे इस प्रकार कहकर क्रोधमें भर आपही श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख दौडा। श्येनगामी, पृथुग्रीव, यज्ञशत्रु, विहङ्गम ॥ २६ ॥ दुर्ज्जय, परवीराक्ष, परुष, कालकार्मुक, हेममाली, महामाली, सर्प्पास्य, रुधिराशन ॥ २७ ॥ यह बारह महावीर सेनापति अपनी सेनाके साथ श्रेष्ठ बाण वर्षातेहुए श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख धाये ॥ २८ ॥

इन सब राक्षसोंको तेजस्वी श्रीरामचंद्रजीने अपने ऊपर आताहुआ देखकर हेमवज्रविभूषित अग्नितुल्य बाणोंसे खरकी इस बची बचाई सेनापर
प्रहार करना आरंभकिया ॥ २९ ॥ वज्रपडनेसे जिस प्रकार बडे २ वृक्ष गिर जातेहैं वैसेही श्रीरामचंद्रजीके सुवर्ण पंख सायक सधूम
अग्निकी समान राक्षसोंको संहार करनेलगे ॥३०॥ श्रीरामचंद्रजीने एक शत बाण चलाकर एकशत राक्षसोंका संहारकिया, व हजार बाण चलाकर
हजार राक्षसोंका प्राण लेलिया ॥ ३१ ॥ राक्षसगण रुधिरमें सनेहुए पृथ्वीमें गिरे, उनके कवच भूषण और धनुष छिन्नभिन्न और विदीर्ण
होगये ॥ ३२ ॥ यज्ञकी वेदीपर जिसप्रकार कुश बिछे होतेहैं वैसेही संग्रामकी समस्त पृथ्वी रुधिरसे सराबोर बाल खुलेहुए राक्षसों से छार

ततःपावकसंकाशैर्हेमवज्रविभूषितैः ॥ जघानशेषंतेजस्वीतस्यसैन्यस्यसायकैः ॥ २९ ॥ तेरुक्मपुंखावि
शिखाःसधूमाइवपावकाः ॥ निजघ्नुस्तानिरक्षांसिवज्राइवमहाद्रुमान् ॥ ३० ॥ रक्षसांतुशतंरामःशतेनैकेनक
र्णिना ॥ सहस्रंतुसहस्रेणजघानरणमूर्धनि ॥३१॥ तैर्भिन्नवर्माभरणाश्छिन्नभिन्नशरासनाः ॥ निपेतुःशोणितादिग्धा
धरण्यांरजनीचराः ॥ ३२ ॥ तैर्मुक्तकेशैःसमरेपतितैःशोणितोक्षितैः ॥ विस्तीर्णावसुधाकृत्स्नामहावेदिःकुशैरिव॥३३॥
तत्क्षणेतुमहाघोरंवनंनिहतराक्षसम् ॥ बभूवनिरयप्रख्यंमांसशोणितकर्दमम् ॥ ३४ ॥ चतुर्दशसहस्राणिरक्षसांभी
मकर्मणाम् ॥ हतान्येकेनरामेणमानुषेणपदातिना ॥ ३५ ॥ तस्यसैन्यस्यसर्वस्यखरःशेषोमहारथः ॥ राक्षसस्त्रिशि
राश्चैवरामश्चरिपुसूदनः ॥३६॥ शेषाहतामहावीर्याराक्षसारणमूर्धनि ॥ घोरादुर्विषहाःसर्वेलक्ष्मणस्याग्रजेनते ॥३७॥

हीथी ॥ ३३ ॥ सब राक्षसोंके मारे जानेसे वनभूमि उनके मांस व रुधिरकी कीचसे ढककर क्षणभरमेंही महाभयंकर नरककी समान
होगई ॥ ३४ ॥ मनुष्यशरीरधारी रामचंद्रने इकलेही विना रथपर चढे चौदह हजार भयंकरकर्म करनेंवाले राक्षसोंको मारडाला ॥ ३५ ॥
सब सेनाके बीचमें महारथी खर, त्रिशिरा और शत्रुओंके हनन करनेंवाले श्रीरामचंद्रजीके बल यह तीनजन शेषरहे ॥ ३६ ॥ बचेबचाये राक्षस
सबही लक्ष्मणजीके बडेभाई श्रीरामचंद्रजीसे मारेगये, यह समस्त राक्षस अतिशय बलवान, भयंकर, व बडेदुःखसे सहनेके योग्यथे ॥ ३७ ॥

व लक्ष्मणजी राक्षसके बाण लगनेंसे धनुष चढायकर दिव्यास्त्रका प्रयोग करते हुए ॥ २३ ॥ यद्यपि श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीके बाणोंसे आकाश मंडल छाय गया परन्तु वह समस्त बाण इन्द्रजीतके शरीरको स्पर्श नहीं करसके ॥ २४ ॥ राक्षसवीर इन्द्रजीतनें मायाके बलसे धुवें सहित अंधकार विस्तार करके दशों दिशाओंको छाय लिया, और आप उस अंधकार मंडलसे ढका रहकर किसी दूसरेकी दृष्टिमें न आनेंयोग्य हो गया ॥२५॥ उस कालमें उसके रथका घर्घर शब्द धनुषकी टंकार घोडोंके पैर धरनेंका शब्द कुछभी सुनाई नहीं आताथा और मेघनाद स्वयम्भी भली भांतिसे लोप होगया ॥ २६ ॥ उस निबिड़ अंधकारमें सब दिशा विदिशा अंधकारसे छाय गईं, महाबाहु इन्द्रजीत पत्थर वर्षानेंकी समान

प्रच्छादयंतोगगनंशरजालैर्महाबलौ ॥ तमस्त्रैःसूर्यसंकाशैर्नैवपस्पर्शतुःशरैः ॥२४॥ सहिधूमांधकारंचचक्रेप्रच्छादयन्नभः ॥ दिशश्चांतर्दधेश्रीमान्नीहारतमसावृतः ॥२५॥ नैवज्यातलनिर्घोषोनचनेमिखुरस्वनः ॥ शुश्रुवेचरतस्तस्यनचरूपंप्रकाशते ॥२६॥ घनांधकारेतिमिरेशिलावर्षमिवाद्भुतम् ॥ सववर्षमहाबाहुर्नाराचशरवृष्टिभिः ॥२७॥ सरामंसूर्यसंकाशैःशरैर्दत्तवरैर्भृशम् ॥ विव्याधसमरेक्रुद्धःसर्वगात्रेषुरावणिः ॥ २८ ॥ तौहन्यमानौनाराचैर्धाराभिरिवपर्वतौ ॥ हेमपुंखान्नरव्याघ्रौतिग्मान्मुमुचतुःशरान् ॥ २९ ॥ अंतरिक्षेसमासाद्यरावर्णिकंकपत्रिणः ॥ निकृत्यपतगाभूमौपेतुस्तेशोणिताप्लुताः ॥ ३० ॥ अतिमात्रंशरौघेणदीप्यमानौनरोत्तमौ ॥ तानिपून्पततोभल्लैरनेकैर्विचकर्ततुः ॥ ३१ ॥ यतोहिददृशातेतौशरान्निपतिताञ्छितान् ॥ ततस्तुतौदाशरथीससृजातेस्त्रमुत्तमम् ॥ ३२ ॥

अद्भुत नाराच और बाणोंकी वर्षा आरंभ करता हुआ ॥ २७ ॥ मेघनाद क्रोधमें भरकर सूर्यकी समान प्रदीप्त बाण समूहसे रणभूमिमें श्रीरामचंद्रजीको मारनें लगा ॥ २८ ॥ पर्वतपर जिसप्रकारसे वृष्टि होती है वैसेही वह दोनों नर शार्दूल श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी मेघनादके बाणोंसे ताडित होकर घोररूप सुवर्णकी फोंक लगे बाणसमूह मेघनादके ऊपर चलानें लगे ॥ २९ ॥ वह समस्त कंकबाण आकाशमें मेघनादके समीप जायकर उसकी देहको भेद रुधिरसे भीग पृथ्वीपर गिरनेंलगे ॥ ३० ॥ इन्द्रजीतके बाण चलानेंसे श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीकी दीप्ति बढ उठी कि उन्होंनेभी राक्षसके चलायेहुए समस्त बाणोंको भाले चलाकर व्यर्थ करदिया ॥ ३१ ॥ यद्यपि श्रीराम लक्ष्मणजी इन्द्रजीतको देख नहीं

परन्तु आपने उस कालमें राज्यको छोड़कर उस अर्थमूल धर्मकी मूल काट डाली ॥ ३१ ॥ जिस प्रकार पर्वतसे नदियें निकलतीहैं वैसेही अनेक देशसे लाये जाकर बढ़े हुए अर्थसेही सब क्रिया प्रवर्तित हुआ करतीहै ॥३२॥ इसके विरुद्ध जिस प्रकार छोटी नदियें ग्रीष्मकालमें सूख जाती हैं वैसेही अल्पबुद्धि अर्थहीन पुरुषकी सब क्रिया नष्ट हो जातीहैं ॥ ३३ ॥ अनेक वार ऐसाभी देखा जाताहै कि पुरुष प्रथम सुख साधन अर्थ छोड़कर पीछेसे सुखका अभिलाषी होताहै, और काल पायकर जब वह अभिलाष बढ़ जाताहै तब वह पापके आचरण करनें आरंभ कर देताहै कि जिस्से दोष होजाताहै ॥ ३४ ॥ इस संसारमें जिसके पास धनहै वही पुरुषहै और मित्र व बन्धु बान्धव गणभी उसीके हैं,धनवानही पुरुषहै धन

अर्थेभ्योथप्रवृद्धेभ्यःसंवृत्तेभ्यस्ततस्ततः ॥ क्रियाःसर्वाःप्रवर्ततेपर्वतेभ्यइवापगाः ॥ ३२ ॥ अर्थेनहिविमुक्तस्यपुरुषस्याल्पचेतसः ॥ विच्छिद्यंतेक्रियाःसर्वाग्रीष्मेकुसरितोयथा ॥ ३३ ॥ सोयमर्थंपरित्यज्यसुखकामःसुखैधितः ॥ पापमांचरतेकर्तुंतदादोषःप्रवर्तते ॥ ३४ ॥ यस्यार्थास्तस्यमित्राणियस्यार्थास्तस्यबांधवाः ॥ यस्यार्थाःसपुमाँल्लोकेयस्यार्थाःसचपंडितः ॥ ३५ ॥ यस्यार्थाःसचविक्रांतोयस्यार्थाःसचबुद्धिमान् ॥ यस्यार्थाःसमहाबाहुर्यस्यार्थाःसगुणाधिकः ॥ ३६ ॥ अर्थस्यैतेपरित्यागेदोषाःप्रव्याहृतामया ॥ राज्यमुत्सृजताधीरयेनबुद्धिस्त्वयाकृता ॥ ३७ ॥ यस्यार्थाधर्मकामार्थास्तस्यसर्वंप्रदक्षिणम् ॥ अधनेनार्थकामेननार्थःशक्यंविचिन्वता ॥ ३८ ॥ हर्षःकामश्चदर्पश्चधर्मःक्रोधःशमोदमः ॥ अर्थादेतानिसर्वाणिप्रवर्ततेनराधिप ॥ ३९ ॥

वानही पंडितहै ॥ ३५ ॥ जिसके पास धनहै उसकाही विक्रमहै, जिसके पास धनहै वही बुद्धिमानहै; जिसके पास धनहै वही महावीर और वही गुणवानहै ॥ ३६ ॥ हेधीर! हमनें जो कुछ कहा धनका त्याग करनेंसे यही दोष होजातेहैं; परन्तु हम नहीं कह सकते कि आपने किस बुद्धिके वश होकर राज्य छोड़ दिया ॥ ३७ ॥ जिसके पास धनहै उसके सबही कुछ वशमे है और वह सहजहीसे धर्म कामादिकोंको सिद्ध कर सकताहै परन्तु निर्धन पुरुष चाहै अनंत उद्योग करै उसका कोई प्रयोजनभी सिद्ध नहींहो सकता ॥ ३८ ॥ हेनरनाथ! हर्ष, काम, गर्व, धर्म, क्रोध,शम,

पातेथे परन्तु जिस ओरसे उसके बाण चले आतेथे उसही ओरको यह दोनोंजन तीखे बाण चलानें लगे ॥ ३२ ॥ अतिरथ इन्द्रजीतनेंभी सर्व दिशाओंमे रथ चलाते २ तीखे बाण समूहसे उन बाण वर्षाते हुए दोनों राजकुमारोंको मारना आरंभ किया ॥ ३३ ॥ उस समय वह वीरश्रेष्ठ दोनों दशरथकुमार सुवर्णकी फोंक लगे मेघनादके बाणोंसे विंधकर फूले हुए दो पलाश वृक्षोंकी समान शोभायमान हुए ॥ ३४ ॥ जिस प्रकार मेघसे ढके हुए सूर्यकी गति नहीं जानीजायसक्ती है; वैसेही कोईभी इन्द्रजीतकी गति, रूप, धनुष, अथवा बाण कुछभी नहीं देख सकता ॥ ३५ ॥ उस युद्धमें सैकड़ों हजारों वानर घायल हुए और मृतक होकर पृथ्वीपर गिरपड़े ॥ ३६ ॥

रावणिस्तुदिशःसर्वारथेनातिरथोपतत् ॥ विव्याधतौदाशरथीलघ्वस्त्रौनिशितैःशरैः ॥३३॥ तेनातिविद्धौत्तौवीरौरुक्मपुंखैसुसंहतैः ॥ बभूवतुर्दाशरथीपुष्पिताविवकिंशुकौ ॥३४॥ नास्यवेगगतिंकश्चिन्नचरूपंधनुःशरान् ॥ नचास्यविदितंकिंचित्सूर्यस्येवाभ्रसंप्लुवे ॥३५॥ तेनविद्धाश्चहरयोनिहताश्चगतासवः ॥ बभूवुःशतशस्तत्रपतिताधरणीतले ॥ ३६ ॥ लक्ष्मणस्तुततःक्रुद्धोभ्रातरंवाक्यमब्रवीत् ॥ ब्राह्ममस्त्रंप्रयोक्ष्यामिवधार्थंसर्वरक्षसाम् ॥ ३७ ॥ तमुवाचततोरामोलक्ष्मणंशुभलक्षणम् ॥ नैकस्यहेतोरक्षांसिपृथिव्यांहंतुमर्हसि ॥ ३८ ॥ अयुध्यमानंप्रच्छन्नंप्रांजलिंशरणागतम् ॥ पलायमानंमत्तंवानहंतुंत्वमिहार्हसि ॥ ३९ ॥ तस्यैवतुवधेयत्नंकरिष्यामिमहाभुज ॥ आदेक्ष्यावोमहावेगानस्त्रानाशीविषोपमान् ॥ ४० ॥ तमेनंमायिनंक्षुद्रमंतर्हितरथंबलात् ॥ राक्षसंनिहनिष्यंतिदृष्ट्वावानरयूथपाः ॥ ४१ ॥

इसी अवसरमें क्रोधित होकर रामचंद्रजीके छोटे भ्राता लक्ष्मणजी श्रीरामचंद्रजीसे यह वचन बोले कि जो आज्ञाहो तो हम राक्षसोंके कुलको निर्मूल करनेंके लिये ब्रह्मास्त्र छोड़ें; हे महाबलवान! हमारी यही इच्छाहै कि इस लोकको राक्षसशून्यकरदें ॥३७॥ यह वचन सुनकर श्रीरामचंद्रजी शुभ लक्षणयुक्त लक्ष्मणजीसे बोलेकि एक राक्षसके लिये पृथ्वीके समस्त राक्षसोंको नहीं मार डालना चाहिये ॥ ३८ ॥ युद्ध न करते हुए छिपेहुए हाथ जोड़कर शरण आये हुए भागे हुए अथवा मतवाले शत्रुका मार डालनाही ठीक नहीं ॥ ३९ ॥ हेमहाभुज! इस कारण आज हम इसके वध करनेंके निमित्तही यत्नवान होकर विषधर सर्पकी समान बाण अति वेगसे छोड़ेंगे ॥ ४० ॥ हेवीर! मायाके बलसे अदृश्य रथ किये यह मायावी

विषयके अभिप्रायको जानतेहैं, वह कभी सीताजीको नहीं मारनें देगा ॥ १० ॥ हमने रावणके हितकीही कामनासे उस्से वारंवार कहाकि " जानकी श्रीरामचन्द्रजीको देदो; " परन्तु उसनें हमारी इस बातपर कानतकभी नहीं दिया ॥ ११ ॥ सीताजीको वध करना तौ दूर रहा; महाराज ! जब कि साम, दान, अथवा भेद इन तीन उपायोंसेभी जब कोई सीताजीका दर्शन नहीं पाय सकता; तब इन्द्रजीत संग्रामस्थलमें किस प्रकारसे उनका दर्शन प्राप्त करनेंमें समर्थ होगा ? ॥ १२ ॥ हे महावीर ! वह मायाकी सीता इन्द्रजीतने मारडाली होगी हम निश्चय जानते हैं कि राक्षस इन्द्रजीत इस उपायसे वानरोंको मोहित करके चला गयाहै ॥ १३ ॥ आज निकुम्भिलामें वह मेघनाद जाकर होम करैगा इन्द्रादि देवताओंके साथ अग्नि

याच्यमानःसुबहुशोमयाहितचिकीर्षुणा ॥ वैदेहीमुत्सृजस्वेतिनचतत्कृतवान्वचः ॥ ११ ॥ नैवसाम्नानदानेननभेदे
नकुतोयुधा ॥ साद्रष्टुमपिशक्येतनैवचान्येनकेनचित् ॥ १२ ॥ वानरान्मोहयित्वातुप्रतियातःसराक्षसः ॥ मा
यामयींमहाबाहोतांविद्धिजनकात्मजाम् ॥ १३ ॥ चैत्यंनिकुंभिलामद्यप्राप्यहोमंकरिष्यति ॥ हुतवानुपयातोहिदे
वैरपिसवासवैः ॥ १४ ॥ दुराधर्षोभवत्येषसंग्रामेरावणात्मजः ॥ तेनमोहयतानूनमेषामायाप्रयोजिता ॥ विघ्नमन्वि
च्छतातत्रवानराणांपराक्रमे ॥ १५ ॥ ससैन्यास्तत्रगच्छामोयावत्तन्नसमाप्यते ॥ त्यजैनंनरशार्दूलमिथ्यासंताप
मागतम् ॥ १६ ॥ सीदतेहिबलंसर्वंदृष्ट्वात्वांशोककर्शितम् ॥ इहत्वंस्वस्थहृदयस्तिष्ठसत्त्वसमुच्छ्रितः ॥ १७ ॥

वहां पहुँचे हैं ॥ १४ ॥ जबकि वह यज्ञमें होम करके अग्निको प्रसन्नकर लेगा तब देवताओंके सहित इन्द्रकोभी संग्राममें रावणका पुत्र मेघनाद दुर्द्धर्षहोजायगा, हम निश्चय कहतेहैं कि अपना अभिलाष सिद्ध करनेंके लिये और वानरोंको पराक्रमहीनही करनेके लिये उसनें ऐसी माया प्रगटकी है ॥ १५ ॥ जबतक उसका यज्ञ समाप्त न होजायगा तबतक हम सैनाके सहित वहां पहुंचजायँगे। हे नरशार्दूल ! आप शोक संतापका त्याग कीजिये ॥ १६ ॥ कारण कि आपको शोकसे पीड़ित देखकर ही समस्त वानरोंकी सैना व्याकुल होरही है; इस कारण अब

राक्षस जो किसी प्रकारसे वानर लोगोंकी दृष्टिमें आजावे तव तो वानरोंके यूथपही उसको मार डालेंगे ॥ ४१ ॥ अधिक क्या है जो इन्द्रजीत, स्वर्ग लोक, मृत्युलोक, पाताल, अथवा आकाश, चाहे जहां प्रवेशकर छिप जावे तथापि हमारे अस्त्रोंसे यह भस्म और प्राणरहित होकर पृथ्वीपर गिर जायगा ॥ ४२ ॥ महात्मा रघुवीरश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी यह महाअर्थयुक्त वचन कहकर वानरोंकी सैनाके संग खड़ेहुए क्रूरकर्मकारी राक्षस का प्राण संहार करनेंके लिये अनेक प्रकारसे उपाय उठानें लगे ॥ ४३ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० युद्धकांडे अशीतितमःसर्गः ॥ ८० ॥ महावीर इन्द्रजीत महात्मा श्रीरामचंद्रजीका ऐसा अभिप्राय जानकर उसी समय समरसे निवृत्त होकर लंकापुरीमें चलागया ॥ १ ॥ परन्तु वह

यद्येषभूमिंविशतेदिवंवारसातलंवापिनभस्तलंवा ॥ एवंविगूढोपिममास्त्रदग्धःपतिष्यतेभूमितलेगतासुः॥४२॥इत्येवमुक्त्वावचनंमहार्थंरघुप्रवीरःप्लवगर्षभैर्वृतः ॥ वधायरौद्रस्यनृशंसकर्मणस्तदामहात्मात्वरितंनिरीक्षते ॥ ४३ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रा०वा०आ०युद्धकांडेअशीतितमःसर्गः ॥ ८० ॥ ॥ ७ ॥ ॥ विज्ञायतुमनस्तस्यराघवस्यमहात्मनः ॥ सनिवृत्याहवात्तस्मात्प्रविवेशपुरंततः ॥ १ ॥ सोनुस्मृत्यवधंतेषांराक्षसानांतरस्विनाम् ॥ क्रोधताम्रेक्षणःशूरोनिर्जगामाथरावणिः ॥ २ ॥ सपश्चिमेनद्वारेणनिर्ययौराक्षसैर्वृतः ॥ इंद्रजित्सुमहावीर्यःपौलस्त्योदेवकंटकः ॥ ३ ॥ इंद्रजित्तुततोदृष्ट्वाभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ रणायात्युद्यतौवीरौमायांप्रादुष्करोत्तदा ॥ ४ ॥ इंद्रजित्तुरथेस्थाप्यसीतांमायामयींतदा ॥ बलेनमहतावृत्यतस्यावधमरोचयत् ॥ ५ ॥

शूर मेघनाद शूर कुंभकर्ण इत्यादि तेजस्वी निशाचरोंके वधको विचार क्रोधसे लाल २ नेत्रकर फिर लंकापुरीसे निकला ॥ २ ॥ पौलस्त्य कुलमें उत्पन्न हुआ देवकंटक महा वीर्यवान् मेघनाद वहुत सारे राक्षसोंको साथ लेकर लंकाके पश्चिमद्वारसे निकला ॥ ३ ॥ और इन्द्रजीतनें वीर श्रेष्ठ दोनों भाई रामचंद्र और श्रीलक्ष्मणजीको युद्ध करनेंके लिये तैयार देख वैसे उनको अजीत विचार कर मायाका विस्तार किया ॥ ४ ॥ उस समय मायावी निशाचरनें रथके ऊपर मायाकी सीता वनाकर स्थापित की इन्द्रजीतके साथ वड़ी भारी राक्षसोंकी सैनाथी. इन सीताजीको मार

धीरज धर सावधान हो इस स्थानमें आप विराजमान रहैं ॥ १७ ॥ और सब सैनाके सहित लक्ष्मणजीको हमारे साथ भेज दीजिये ॥ १८ ॥ यह महावीर नरशार्दूल ! लक्ष्मणजी तीक्ष्ण बाण चलाय २ कर उसके यज्ञ कार्यमें विघ्न कर देंगे, जब उससे यज्ञ करना छुट जायगा तब हम उसे मार डालेंगे ॥ १९ ॥ इनके गरुडजीकी समान अंगयुक्त वेगशाली तीक्ष्ण रुधिरके पीनें वाले बाण गिद्ध इत्यादि अशुभ पक्षियोंकी समान उस राक्षसका रुधिर पियेंगे॥२०॥ इसलिये हे महावीर ! जिस प्रकार वज्रधर इन्द्रजीत दैत्योंके मारनेंके लिये वज्रको आज्ञा देतेहैं, वैसेही आपभी शुभ लक्षणयुक्त लक्ष्मणजीको हम लोगोंके साथ जानेंकी आज्ञादे दें ॥ २१ ॥ हे मनुजश्रेष्ठ ! शत्रुके मारनेंमें विलम्ब करना उचित नहीं है; इसलिये

लक्ष्मणंप्रेषयास्माभिःसहसैन्यानुकर्षिभिः ॥१८॥ एषतंनरशार्दूलोरावणिंनिशितैःशरैः ॥ त्याजयिष्यतितत्कर्मततोवध्योभविष्यति॥१९॥तस्यैतेनिशितास्तीक्ष्णापत्रिपत्रांगवाजिनः॥ पतत्रिणइवासौम्याःशराःपास्यंतिशोणितम् ॥२०॥ सत्संदिशमहाबाहोलक्ष्मणंशुभलक्षणम् ॥ राक्षसस्यविनाशायवज्रंवज्रधरोयथा ॥ २१ ॥ मनुजवरनकालविप्रकर्षोरिपुनिधनंप्रतियत्क्षमोद्यकर्तुम् ॥ त्वमतिसृजरिपोर्वधायवज्रंदिविजरिपुमथनेयथामहेंद्रः ॥ २२ ॥ समाप्तकर्माहिसराक्षसर्षभोभवत्यदृश्यःसमरेसुरासुरैः ॥ युयुत्सतातेनसमाप्तकर्मणाभवेत्सुराणामपिसंशयोमहान् ॥ २३॥ इत्यार्षेश्रीम० वा०आ०यु०चतुरशीतितमःसर्गः ॥ ८४ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाराघवःशोककर्शितः ॥ नोपधारयतेव्यक्तंयदुक्तंतेनरक्षसा ॥ १ ॥ ततोधैर्यमवष्टभ्यरामःपरपुरंजयः ॥ विभीषणमुपासीनमुवाचकपिसन्निधौ ॥ २ ॥

जिस प्रकार इन्द्रजी दैत्योंका वध करनेंके लिये वज्रको भेजते हैं वैसेही लक्ष्मणजीको आप हमारे संग भेजदें ॥ २२ ॥ हे महाराज ! वह राक्षसश्रेष्ठ जब कार्य अर्थात् होम समाप्त करलेगा,तब सुर और असुर लोगभी उसको नहीं देख सकते; बस जबकि वह होम समाप्त करके युद्ध करनें लगेगा तब देवता लोगोंकोभी बड़ाभारी संशय उपस्थित होगा ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुरशीतितमःसर्गः ॥८४॥ शोकाकुल श्रीरामचन्द्रजी बिभीषणके वचनोंको सुन करके जो वचन कि बिभीषणजीनें स्पष्ट २ कहेथे उनको धारण करनेंमें समर्थ न हुए ॥ १ ॥ इसके उपरान्त परपुर जीतनेंवाले श्रीरामचन्द्रजी धीरज धारण करकै वानर लोगाके निकट बैठे हुए बिभीषणजीसे बोले ॥ २ ॥

में गमन करतेहैं अथवा नरघातक चोर जिस स्थानको कलंकित करतेहैं तू उसी स्थानमें प्राणोंको छोड़कर उन्हीं सब लोकोंको जायगा ॥ २२ ॥ हनुमानजी केवल यही वचन कह आयुधधारी वानरोंके साथ क्रोधमें भर राक्षसराजके पुत्र इन्द्रजीतके सन्मुख दौड़े ॥ २३ ॥ उस महावीर्यवान वानरोंकी सैनाको आताहुआ देखकर इन्द्रजीतनें महा कोपकर राक्षसोंकी सैनासे उनको रुकवाया ॥ २४ ॥ उस समय महावीर इन्द्रजीत हजार बाण चलाय वानरोंकी सैनाको चलायमान कर वानर श्रेष्ठ हनुमानजीसे यह वचन बोला ॥ २५ ॥ राम, सुग्रीव, अथवा तुम जिस कारणसे इस स्थानमें आयेहो आज हम तुम्हारे सामनेही उन जानकीजीका वध करेंगे ॥ २६ ॥ अरे वानर! इसको मारकर तिसके पीछे

इतिब्रुवाणोहनुमान्सायुधैर्हरिभिर्वृतः ॥ अभ्यधावत्सुसंक्रुद्धोराक्षसेंद्रसुतंप्रति ॥ २३ ॥ आपतंतंमहावीर्यंतदनीकंवनौकसाम् ॥ रक्षसांभीमकोपानामनीकेनन्यवारयत् ॥ २४ ॥ सतांबाणसहस्रेणविक्षोभ्यहरिवाहिनीम् ॥ हनूमंतंहरिश्रेष्ठमिंद्रजित्प्रत्युवाचह ॥ २५ ॥ सुग्रीवस्त्वंचरामश्चयन्निमित्तमिहागताः ॥ तांवधिष्यामिवैदेहीमद्यैवतवपश्यतः ॥ २६ ॥ इमांहत्वाततोरामंलक्ष्मणंत्वांचवानर॥सुग्रीवंचवधिष्यामितंचानार्यंविभीषणम् ॥ २७॥ नहंतव्याःस्त्रियश्चेतियद्ब्रवीषिप्लवंगम ॥ पीडाकरममित्राणांयच्चकर्तव्यमेवतत् ॥ २८ ॥ तमेवमुक्त्वारुदतींसीतांमायामयींचताम् ॥ शितधारेणखड्गेननिजघानेंद्रजित्स्वयम् ॥ २९ ॥

हम राम, लक्ष्मण, सुग्रीव अनार्य बिभीषणके सहित तुझकोभी मार डालेंगे ॥ २७ ॥ रे बंदर! तैंने जो कहा कि "स्त्रीका वध करना कर्त्तव्य नहीं" सो राजनीतिके अनुसार शत्रुओंको जिस २ कार्यके करनेंसे पीड़ा पहुँचे वह कार्य करना उचित है उसके करनेंसे पापनहीं होता * ॥२८॥ इन्द्रजीतनें यह वचन कहतेही तेजधारवाले खड्गसे अपने आप उन रोती हुईमायामयी जानकीजीके ऊपर प्रहार कर दिया ॥ २९ ॥

* अनेक रामायणोंमें २९ संख्याका श्लोक नहीं, हम नहीं जानते कि छापनेवालोंनें इसे क्यों छोड़ दियाहै । "ताडकाया वधं रामः किमर्थं कृतवान् पुरा ॥ तदहं हन्मि रामस्य महिषीं जनकात्मजां ॥ २९ ॥" भला यह न सही परन्तु पहले रामनें किस प्रकारसे ताडकाको मार डालाथा! उन्हौनें जिस कारण यह कार्य किया हमभी इसी कारणसे इस रामकी भार्या जनककी बेटी सीताको मार डालेंगे ॥२९॥

॥

हो वैसेही जलके भीगे नगाडेकी समान शब्द करनेलगा ॥ ८ ॥ रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीनें त्रिशिरा राक्षसको अपने सन्मुख आते देखकर धनुष उठाय शब्दकर तीखे बाण चढाय ॥ ९ ॥ त्रिशिराके मारे, उस समय अतिबलवान सिंह और हाथीकी समान श्रीरामचंद्रजी और त्रिशिराका तुमुल संग्राम आरंभ हुआ जिसके देखनेंसे रोम खडे हो जातेथे ॥ १० ॥ अनन्तर क्रोध न करनें वाले श्रीरामचंद्रजी त्रिशिराकरके तीन बाणोंके द्वारा ताडित होकर जो उनके माथे में लगेथे; उनके लगनेंसे रोषयुक्तहो गर्वित वचन कहनें लगे ॥ ११ ॥ कि अरे! विक्रम शूर निशाचर! बस तेरा इतनाही बलहै कि तेरे चलाये हुए बहुत सारे बाण हमारे माथेमें फूलोंकी समान लगे हम तो जानतेथे कि तुममें कुछ

आगच्छंतंत्रिशिरसंराक्षसंप्रेक्ष्यराघवः ॥ धनुषाप्रतिजग्राहविधुन्वन्सायकाञ्शितान् ॥ ९ ॥ ससंप्रहारस्तुमुलोरामात्रिशिरसोस्तदा ॥ संबभूवातिबलिनोःसिंहकुंजरयोरिव ॥१०॥ ततस्त्रिशिरसाबाणैर्ललाटेताडितस्त्रिभिः ॥ अमर्षीकुपितोरामःसंरब्धइदमब्रवीत् ॥११॥ अहोविक्रमशूरस्यराक्षसस्येदृशंबलम् ॥ पुष्पैरिवशरैर्योहंललाटेऽस्मिपरिक्षितः ॥१२॥ ममापिप्रतिगृह्णीष्वशरांश्चापगुणाच्च्युतान् ॥ एवमुक्त्वस्तुसंरब्धःशरानाशीविषोपमान् ॥ १३ ॥ त्रिशिरावक्षसिक्रुद्धोनिजघानचतुर्दश ॥ चतुर्भिस्तुरगानस्यशरैःसन्नतपर्वभिः ॥ १४ ॥ न्यपातयततेजस्वीचतुरस्तस्यवाजिनः ॥ अष्टभिःसायकैःसूतंरथोपस्थेन्यपातयत् ॥ १५ ॥ रामश्चिच्छेदबाणेनध्वजंचास्यसमुच्छ्रितम् ॥ ततोहतरथात्तस्मादुत्पतंतंनिशाचरम् ॥ १६ ॥ चिच्छेदरामस्तंबाणैर्हृदयेसोभवज्जडः ॥ सायकैश्चाप्रमेयात्मासामर्षात्तस्यरक्षसः ॥ १७ ॥

विक्रम होगा, सो कुछभी नहीं ॥ १२ ॥ क्या आश्चर्यहै! अब तू हमारे धनुषके रोदेसे छूटे हुए बाणोंके समूहको ग्रहण कर। यह कह बडा क्रोधकर विषधर सर्पोंकी समान ॥ १३ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें चौदह बाण त्रिशिराके हृदयमें मारे और चार घोडोंको ॥ १४ ॥ महा तेजवान श्रीरामचंद्रजीनें मार डाला और आठ बाणोंसे रथपरही उसके सारथिको मार गिराया ॥ १५ ॥ व एक बाणसे अति ऊंची उसकी ध्वजाको काट डाला जब सारथि और घोडे उसके मारे गये तब त्रिशिरा रथसे कूदनेंको हुआ ॥ १६ ॥ तो उसी बीचमें श्रीरामचंद्रजीनें अनेक

जैसेही मेघनादनें प्रहार किया कि बड़ी नितम्बवाली प्रियदर्शन वह जानकी यज्ञोपवीतके स्थानसे कटकर छिन्न भिन्न हो पृथ्वीपर गिरी ॥ ३० ॥ तब इन्द्रजीतनें हनुमानजीसे कहाकि यह देखो हमने अस्त्रके प्रहारसे रामचन्द्रकी प्यारी वैदेही को मारडाला ॥ ३१ ॥ फिर जब कि जानकी ही मृतक होगई तब फिर तुमलोगोंको और वृथा परिश्रम करनेका क्या फल है। ॥ ३२ ॥ इन्द्रजीत इस प्रकारसे उन मायामयी सीताजीको खड्गसे मारकर हर्षित अंतःकरणसे अपने रथपर सवार हो घोर शब्दसे सिंहनाद करनेलगा ॥ ३३ ॥ वानर लोग निकटही टिककर वज्रसमान कठोर शब्द सुननेलगे और उन्होंनें देखाकि महावीर इन्द्रजीत दुर्गमें प्रवेश करके विकटाकार मुखसे

यज्ञोपवीतमार्गेणाछिन्नातेनतपस्विनी ॥ सापृथिव्यांपृथुश्रोणीपपातप्रियदर्शना ॥३० ॥ तामिंद्रजित्स्त्रियंहत्वाहनुमंतमुवाचह ॥ मयारामस्यपश्येमांप्रियांशस्त्रनिषूदिताम् ॥ ३१ ॥ एषांविशस्तावैदेहीनिष्फलोवःपरिश्रमः ॥ ३२ ॥ ततःखड्गेनमहताहत्वातामिंद्रजित्स्वयम् ॥ हृष्टःसरथमास्थायननादचमहास्वनम् ॥ ३३ ॥ वानराःशुश्रुवुःशब्दमदूरेप्रत्यवस्थिताः ॥ व्यादितास्यस्यनदतस्तद्दुर्गसंश्रितस्यतु ॥ ३४ ॥ तथातुसीतांविनिहत्यदुर्मतिःप्रहृष्टचेताःसबभूवरावणिः ॥ तंहृष्टरूपंसमुदीक्ष्यवानराविषण्णरूपाःसमभिप्रदुद्रुवुः ॥ ३५ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रा० वा०आ० यु० एकाशीतितमःसर्गः॥ ८१ ॥ ॥ ७ ॥ श्रुत्वातंभीमनिह्रादंशक्राशनिसमस्वनम् ॥ वीक्षमाणादिशःसर्वादुद्रुवुर्वानराभृशम् ॥ १ ॥ तानुवाचततःसर्वान्हनूमान्मारुतात्मजः ॥ विषण्णवदनान्दीनांस्त्रस्तान्विद्रवतःपृथक्॥२ ॥

कठोर हर्षकी ध्वनि कररहाहै ॥ ३४ ॥ दुर्मती रावणके पुत्र इन्द्रजीतने जब इस प्रकारसे उस मायाकी सीताका प्राण संहार किया तब वानरलोग उस हर्षित वीरको देखकर शोकाकुल हो चारों ओरको भागनें लगे ॥ ३५ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० एकाशीतितमःसर्गः ॥ ८१ ॥ देवराज इन्द्रजीके वज्रकी शब्दकी समान इन्द्रजीतका वह भयंकर सिंहनाद सुनकर वानरलोग चारों ओरको निहारते हुए भागनें लगे ॥ १ ॥ परन्तु पवनकुमार हनुमानजी उनको भयकेमारे शोकाकुल वदन और दीनभावसे भागाहुआ देखकर सबहीसे अलग २ कहने लगे ॥ २ ॥

फिर वह प्रत्यंचाको वारंवार टंकार देता, अपनी शिक्षा और अस्त्रोंको दिखाता हुआ अनेक भांतिके वाण छोडतेर संग्राम भूमिमें घूमनेंलगा ॥५॥
और सब दिशा विदिशाओंको उस महारथी खरनें वाणोंसे पूर दिया। रामचंद्रजीनें सब दिशाओंको वाणोंसे भरा देख बडा भारी
धनुष हाथमें लिया ॥ ६ ॥ व अग्निके अंगारोंकी समान सहन करनेंके अयोग्य सायक समूहसे आकाशको पूर्ण कर दिया जैसे मेघमंडल वृष्टि
करतेहैं ॥ ७ ॥ आकाश खर और श्रीरामचंद्रजीके छुटे हुए वाणोंसे छाकर सब प्रकारसे अवकाशरहित होगया अर्थात् पृथ्वी आकाशके
बीच २ में सबही जगह वाणही वाण भरेथे ॥ ८ ॥ तब परस्पर एक दूसरेकी मार डालनेकी इच्छासे छोडे हुए वाणोंके जाल करके आकाशके

ज्यांविधुन्वन्सुबहुशःशिक्षयास्त्राणिदर्शयन् ॥ चचारसमरेमार्गाञ्छरैरथगतःखरः ॥ ५ ॥ ससर्वाश्चदिशोबाणैःप्रदिश
श्चमहारथः ॥ पूरयामासतंदृष्ट्वारामोपिसुमहद्धनुः ॥ ६ ॥ ससायकैर्दुर्विषहैर्विस्फुलिंगैरिवाग्निभिः ॥ नभश्चकारा
विवरंपर्जन्यइववृष्टिभिः ॥ ७ ॥ तद्बभूवशितैर्बाणैःखररामविसर्जितैः ॥ पर्याकाशमनाकाशंसर्वतःशरसंकुलम् ॥८॥
शरजालावृतःसूर्योनतदास्मप्रकाशते ॥ अन्योन्यवधसंरंभादुभयोःसंप्रयुज्यतोः ॥९ ॥ ततोनालीकनाराचैस्तीक्ष्णा
ग्रैश्चविकर्णिभिः ॥ आजघानरणेरामंतोत्रैरिवमहाद्विपम् ॥ १० ॥ तंरथस्थंधनुष्पाणिंराक्षसंपर्यवस्थितम् ॥ द
दृशुःसर्वभूतानिपाशहस्तमिवांतकम् ॥ ११ ॥ हंतारंसर्वसैन्यस्यपौरुषेपर्यवस्थितम् ॥ परिश्रांतंमहासत्वंमेनेरा
मंखरस्तदा ॥ १२ ॥ तंसिंहमिवविक्रांतंसिंहविक्रांतगामिनम् ॥ दृष्ट्वानोद्विजतेरामःसिंहःक्षुद्रमृगंयथा ॥ १३ ॥

छा जानेसे सूर्य भगवानभी छिप गये ॥ ९ ॥ इसके पीछे महावत महा गजके जिस प्रकार अंकुश मारताहै वैसेही खर तीखे नालीक नाराच
और विकीर्ण अस्त्र शस्त्रोंसे श्रीरामचंद्रजीको घायल करनें लगा ॥ १० ॥ उस समय सबही प्राणी रथमें बैठे धनुष धारी खरको पाश धारी यमरा
जकी समान देखने लगे ॥ ११ ॥ उस काल खरनें अपनी समस्त सेनाके विनाश करनेंवाले पुरुषार्थमें टिके हुए धीर्यवान् रामचंद्रजीको रण
करनेंसे थके समझा ॥ १२ ॥ और सिंहकी समान विक्रम दिखाता हुआ इधर उधर घूमनें लगा सिंह जिस प्रकार मृग छौनाको देखकर

हे वानरगण! तुम सब किस कारणसे रणका उत्साह छोडकर व्याकुल मुख किये भागे जातेहो? तुम्हारी यह शूरता कहांगई नामवाले शूर लोगोंको भागना उचित नहीं है इसलिये हम आगे २ चलते हैं और तुम सब हमारे पीछे २ चलो ॥ ३ ॥ बुद्धिमान् हनुमानजी करकै इस प्रकार कहे जाकर वानरोंको क्रोध उत्पन्न हुआ और वह सबही उत्साहसहित शिला और वृक्षोंको ग्रहण करनेलगे ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त वह सब वानरश्रेष्ठ हनुमानजीको घेरे हुए गर्जते २ महा समरके सन्मुख चले ॥ ५ ॥ वानर वीर हनुमानजी वानरोंकी सैनासे घेरे जाकर चलतेहुए जिसप्रकार अग्नि अपनी शिखाओंके संगमें शोभायमान होतेहैं वैसेही शोभायमान होकर शत्रुओंकी सैनाको भस्म करनें लगे ॥ ६ ॥ कालान्तक यमराज

कस्माद्विषण्णवदनाविद्रवध्वंप्लवंगमाः ॥ त्यक्तयुद्धसमुत्साहाःशूरत्वंक्कनुवोगतम् ॥ पृष्ठतोनव्रजध्वंमामग्रतोयांतमाहवे ॥ ३ ॥ एवमुक्ताःसुसंक्रुद्धावायुपुत्रेणधीमता ॥ शैलशृंगान्द्रुमांश्चैवजगृहुर्हृष्टमानसाः ॥ ४ ॥ अभिपेतुश्चगर्जंतोराक्षसान्वानरर्षभाः ॥ परिवार्यहनूमंतमन्वयुश्चमहाहवे ॥ ५ ॥ सतैर्वानरमुख्यैस्तुहनूमान्सर्वतोवृतः ॥ हुताशनइवार्चिष्मानदहच्छत्रुवाहिनीम् ॥ ६ ॥ सराक्षसानांकदनंचकारसुमहाकपिः ॥ वृतोवानरसैन्येनकालांतकयमोपमः ॥ ७ ॥ सतुशोकेनचाविष्टःकोपेनमहताकपिः ॥ हनूमान्रावणिरथेमहतींपातयच्छिलाम् ॥ ८ ॥ तामापतंतींदृष्ट्वैवरथंसारथिनातदा ॥ विधेयाश्वसमायुक्तोविदूरमपवाहितः ॥ ९ ॥ तमिंद्रजितमप्राप्यरथस्थंसहसारथिम् ॥ विवेशधरणीमित्वासाशिलाव्यर्थमुद्यता ॥ १० ॥ पतितायांशिलायांतुव्यथितारक्षसांचमूः ॥ निपतंत्याचशिलयाराक्षसामथिताभृशम् ॥ ११ ॥

की समान महाकपि हनुमानजीनें वानरसैनाकी सहायतासे बहुत सारे राक्षसोंको मार डाला ॥ ७ ॥ हनुमानजीनें शोक और क्रोधसें अधीर होकर एक बड़ीभारी शिलाग्रहण करकै रावणके पुत्र मेघनादके रथपर चलाई ॥ ८ ॥ परन्तु शिलाको रथके ऊपर आता हुआ देख सारथिनें संकेत [इशारा] ही किया कि सीखे सिखाये घोडे रथको दूरले जाय कर रक्षा करतेहुए ॥ ९ ॥ तब वह हनुमानजीकी चलाई हुई शिला सारथिके सहित रथपर बैठे हुए इन्द्रजीतको न पायकर विफल हो पृथ्वीमें घुसगई ॥ १० ॥ वह शिला इस प्रकारके वेगसे चलाई गईथी कि जिस

खरकी ध्वजा काटडाली ॥ २२ ॥ वह सुन्दर सुवर्णकी ध्वजा सहसा छिन्न होकर गिरनेंके कालमें ऐसी शोभा धारण करताहुई जैसे कभी देवताओंके नियमसे सूर्यनारायण पृथ्वीमें आयकर शोभितहों ॥ २३ ॥ यह देखकर मर्म जाननेंवाले खरनें क्रोधितहो चार बाण छोडकर; जिस प्रकार लोग भालोंसे मतवाले हाथी को मारतेहैं, वैसेही श्रीरामचंद्रजीके हृदयको व और दूसरे मर्मस्थानोंको घायल किया ॥ २४ ॥ तिस समय वह महा धनुर्द्धारी श्रीरामचंद्रजी, खरके धन्वासे छूटे हुए बहुतसे बाणोंसे विंधे जाकर. और रुधिरमें भीग महा क्रोधित हुए ॥ २५ ॥ और दृढभावसे श्रेष्ठधनुधन्वा ग्रहण करके खरको भली भांति निशाना बनाय उसके ऊपर छेः बाण छोडे ॥२६॥ उनमेंसे एक बाणसे खरका मस्तक

सदर्शनीयोबहुधाविच्छिन्नःकांचनोध्वजः ॥ जगामधरणींसूर्योदेवतानामिवाज्ञया ॥ २३ ॥ तंचतुर्भिःखरः क्रुद्धोरामंगात्रेषुमार्गणैः ॥ विव्याधहृदिमर्मज्ञोमातंगमिवतोयदैः ॥ २४ ॥ सरामोबहुभिर्बाणैःखरकार्मुकनिःसृतैः ॥ विद्धोरुधिरसिक्तांगोबभूवरुषितोभृशम् ॥ २५ ॥ सधनुर्धन्विनांश्रेष्ठःसंगृह्यपरमाहवे ॥ मुमोचपरमेष्वासःषट्शरानभिलक्षितान् ॥ २६ ॥ शिरस्येकेनबाणेनद्वाभ्यांबाह्वोरथापयत ॥ त्रिभिश्चंद्रार्धवक्रैश्चवक्षस्यभिजघान ॥ २७ ॥ ततःपश्चान्महातेजानाराचान्भास्करोपमान् ॥ जघानराक्षसंक्रुद्धस्त्रयोदशशिलाशितान् ॥ २८ ॥ रथस्ययुगमेकेनचतुर्भिःशबलान्हयान् ॥ षष्ठेनचशिरःसंख्येचिच्छेदखरसारथेः॥२९॥त्रिभिस्त्रिवेणून्बलवान्द्वाभ्यामक्षं महाबलः ॥ द्वादशेनतुबाणेनखरस्यसकरंधनुः ॥ ३० ॥

वींधा दोबाणोंसे दोनों भुजाओंको घायल किया, और अर्द्धचंद्रतुल्य टेढे तीन बाणोंसे खरकी छातीमें प्रहार किया ॥ २७ ॥ उसके पीछे उन इन्द्र समान महाबलवान् तेजवान् श्रीरामचंद्रजीनें बडा क्रोध कर सूर्यकी समान, धार धराये हुए तेरहबाण ग्रहण करकै उस खर निशाचरको निशाना बनाकर छोडे ॥ २८ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें एक बाणसे रथका युगकाय चार बाणोंसे चार चित्र विचित्र घोडे, और एक बाणसे उसके सारथिका मस्तक ॥ २९ ॥ तीन बाणोंसे रथके तीनों वांश; और दो बाणोंसे दोनों पहिये, और बारह बाणोंसे खरका बाण

समय वह गिरी असंख्य राक्षसोंकी सैना उससे व्यथित हुई व कुचलगई ॥ ११ ॥ तब उस समय सैंकड़ों हजारों बलशाली बड़े २ शरीर वाले वानरगण पर्वतोंके शिखर और वृक्षोंको उठाये ॥ १२ ॥ अति शीघ्रतासे यह भयंकरविक्रमकारी वानर इन्द्रजीतके सन्मुख दौडे और इन समस्त वानरोंने मेघनादके सैनापर शिलावृक्षादिकी वर्षा करदी ॥ १३ ॥ वानर लोगोंनें राक्षसोंके ऊपर वृक्ष और पर्वतोंकी वर्षा करके उनमेंसे बहुत सारोंका नाश करदिया और विविध भांतिसे सिंहनाद करनेंलगे भयंकर आकारवाले वानरगण घोर रूप वाले निशाचरोंको ॥ १४ ॥ अति वीर्यसे वृक्ष व शिलाके प्रहारसे चूर्ण करके पृथ्वीपर लुटानेलगे तब महावीर इन्द्रजीत वानरोंके हाथसे राक्षसोंको पीडित देखकर ॥ १५ ॥

तमभ्यधावन्शतशोनदंतःकाननौकसः ॥ तेद्रुमांश्चमहाकायागिरिशृंगाणिचोद्यताः ॥ १२ ॥ क्षिपंतींद्रजितंसंख्येवानराभीमविक्रमाः ॥ वृक्षशैलमहावर्षंविसृजंतःप्लवंगमाः ॥ १३ ॥ शत्रूणांकदनंचक्रुर्नेदुश्चविविधैःस्वनैः ॥ वानरैस्तैर्महाभीमैर्घोररूपानिशाचराः ॥ १४ ॥ वीर्यादभिहतावृक्षैर्व्यचेष्टंतरणक्षितौ ॥ ससैन्यमभिवीक्ष्याथवानरार्दितमिंद्रजित् ॥ १५ ॥ प्रगृहीतायुधःक्रुद्धःपरानभिमुखोययौ ॥ सशरौघानवसृजन्स्वसैन्येनाभिसंवृतः ॥ १६ ॥ जघानकपिशार्दूलान्सुबहून्दृढविक्रमः ॥ शूलैरशनिभिःखड्गैःपट्टिशैःशूलमुद्गरैः ॥ १७ ॥ तेचाप्यनुचरांस्तस्यवानराजघ्नुराहवे ॥ १८ ॥ सुस्कंधविटपैःशैलैःशिलाभिश्चमहाबलः ॥ हनूमान्कदनंचक्रेरक्षसांभीमकर्मणाम् ॥ १९ ॥ सन्निवार्यपरानीकमब्रवीत्तान्वनौकसः ॥ हनूमान्सन्निवर्तध्वंननःसाध्यमिदंबलम् ॥ २० ॥

क्रोध सहित हथियार उठाय शत्रुकी सैनामें प्रवेश करता हुआ उसने अपनी सैनाके बीचमें खड़े होकर बाणोंकी झडी लगादी ॥ १६ ॥ कि जिस्सें बहुतसे दृढ विक्रमकारी वानरगण मृतक होगये जोकि शूल वज्र, खड्ग, पटा, कूट व मुद्गरादिकोंसे मारेगये ॥ १७ ॥ उस समयमें वानरगणोंने भी मेघनादकी बहुत सैना मार डाली ॥ १८ ॥ महाबलवान् हनुमानजी स्कन्ध और शाखायुक्त शाल वृक्ष और शिलाओंके प्रहारसे भयंकर कर्मकारी राक्षसोंको मारने लगे ॥१९॥और अपने पराक्रमसे शत्रुओंकी सैनाको निवारित करते हुए अपनी सैनासे बोले कि हे वानरो! लौटच

कर्म करताहै वह निश्चयही उस पापके फलको पाताहै, जैसे अकालवृष्टिके साथ गिरेहुए पत्थरोंको लालचसे ब्राह्मणी (बामनी नामक कीडा) खाकर मर जातीहै ॥ ५ ॥ रेराक्षस! दंडकारण्यवासी धर्माचरण करनेंवाले महातेजवान तपस्वियोंको मारकर तुझको कैसा बुरा फल प्राप्तहोगा सो हमारी समझमें नहीं आता ॥ ६ ॥ अथवा जो क्रूरस्वभाववाले जन चिरकाल पापकर्म करके लोकोंकी निन्दा पानेंके पात्र हो जातेहैं, वह जन ऐश्वर्य पाकरभी जड गले हुए वृक्षकी समान बहुत दिनोंतक नहीं रहसकते अर्थात् गिर पडतेहैं ॥ ७ ॥ वृक्ष जिस प्रकार समय पाय कर फूलताहै, वैसेही समयके आजानें पर पाप कर्मका भयावना फल निश्चयही प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥ हे निशाचर!

वसतोदंडकारण्येतापसान्धर्मचारिणः ॥ किन्नुहत्वामहाभागान्फलंप्राप्स्यसिराक्षस ॥ ६ ॥ नचिरंपापकर्माणःक्रूरा लोकजुगुप्सिताः ॥ ऐश्वर्यंप्राप्यतिष्ठंतिशीर्णमूलाइवद्रुमाः॥७॥ अवश्यंलभतेकर्ताफलंपापस्यकर्मणः ॥ घोरंपर्या गतेकालेद्रुमःपुष्पमिवार्तवम् ॥ ८ ॥ नचिरात्प्राप्यतेलोकेपापानांकर्मणांफलम् ॥ सविषाणामिवान्नानांभुक्तानांक्षण दाचर ॥ ९ ॥ पापमाचरतांघोरंलोकस्याप्रियमिच्छताम् ॥ अहमासादितोराजाप्राणान्हंतुंनिशाचर ॥ १० ॥ अद्य भित्त्वामयामुक्ताःशराःकांचनभूषणाः ॥ विदार्यापिपतिष्यंतिवल्मीकमिवपन्नगाः ॥ ११ ॥ येत्वयादंडकारण्येभ क्षिताधर्मचारिणः ॥ तानद्यनिहतःसंख्येससैन्योनुगमिष्यसि ॥ १२ ॥ अद्यत्वांनिहतंबाणैःपश्यंतुपरमर्षयः ॥ नि रयस्थंविमानस्थायेत्वयानिहताःपुरा ॥ १३ ॥

जिस प्रकार जहर मिला हुआ अन्न खानेंसे शीघ्रही मृत्यु होतीहै, वैसेही पाप कर्म करनेंका फल थोडेही समयमें फलजाताहै ॥ ९ ॥ रेराक्षस! भयानक पाप कर्म करनेंवाले और लोकोंका बुरा चाहनेंवाले दुष्टोंको मारनेंकेही लिये ऋषिलोगोंनें हमें यहां पठायाहै ॥ १० ॥ सर्प जिस प्रकार बंमईको फोडकर पृथ्वी पर निकल आताहै, वैसेही इस समय हमारे शरासनसे छूटे हुए बाण तेरे शरीरको चीर फाडकर निकल आमेंगे ॥ ११ ॥ पहले तैनें जिस २ दंडकारण्यवासी धर्मचारी तपस्वीका भक्षण कियाहै सो तू आज हमसे युद्धमें मारे जाकर सेना सहित उनके पीछे २ जायगा ॥ १२ ॥ पहले जो समस्त तापस तुझ करके मारे गयेहैं, आज वह विमानमें बैठकर तुझको हमारे बाणसे मरा

लो अब इन राक्षसोंके साथ युद्ध करनेकी आवश्यकता नहींहै ॥ २० ॥ तुम सब श्रीरामचंद्रजीका प्रिय कार्य सिद्ध करनेंकी वासनासे प्राण तक देनेको तैयार होकर पराक्रम प्रकाश करतेहो परन्तु जिनके लिये युद्ध किया जाताहै वह जानकीजीही मारडाली गईहैं ॥ २१ ॥ चलो रामचंद्रजी व सुग्रीवजीको यह समाचार सुनादें; वह जैसी आज्ञा दें वैसेही किया जायगा ॥ २२ ॥ वानरश्रेष्ठ हनुमानजी निर्भयहो यह वचन कह समस्त वानरोंको निवारित कर धीरे २ सेनासहित संग्रामसे लौटतेहुए ॥ २३ ॥ हनुमानजीको श्रीरामचंद्रजीके निकट जाता हुआ देखकर दुष्टात्मा राक्षस इन्द्रजीत होम करनेंके लिये प्रथम निकुंभिला देवालयके वृक्षोंके समीप गमन करके अग्निमें होम करताहु

त्यक्त्वाप्राणान्विचेष्टंतोरामप्रियचिकीर्षवः ॥ यन्निमित्तंहियुध्यामोहतासाजनकात्मजा ॥ २१ ॥ इममर्थंहिविज्ञा
प्यरामंसुग्रीवमेवच ॥ तौयत्प्रतिविधास्येतेतत्करिष्यामहेवयम् ॥ २२ ॥ इत्युक्त्वावानरश्रेष्ठोवारयन्सर्ववानरान् ॥
शनैःशनैरसंत्रस्तःसबलःसंन्यवर्तत ॥ २३ ॥ ततःप्रेक्ष्यहनूमंतंव्रजंतंयत्रराघवः ॥ सहोतुकामोदुष्टात्मागतश्चैत्यंनिकुं
भिलाम् ॥ २४ ॥ निकुंभिलामधिष्ठायपावकंजुहवेंद्रजित् ॥ यज्ञभूम्यांततोगत्वापावकस्तेनरक्षसा ॥ २५ ॥ हूयमानः
प्रजज्वालहोमशोणितभुक्तदा ॥ सार्चिःपिनद्धोददृशेहोमशोणिततर्पितः ॥ संध्यागतइवादित्यःसुतीव्रोग्निःसमुत्थि
तः ॥ २६ ॥ अथेंद्रजिद्राक्षसभूतयेतुजुहावहव्यंविधिनाविधानवित् ॥ दृष्ट्वाव्यतिष्ठंतचराक्षसास्तेमहासमूहेषुनयान
यज्ञाः ॥ २७ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकाण्डेद्व्यशीतितमःसर्गः ॥ ८२ ॥ ७ ॥

आ ॥ २४ ॥ इसके उपरान्त यज्ञभूमिमें गमन करके अग्निमें होम आरंभ करनेंसे होममें रुधिरका पान करनेंवाली अग्नि प्रज्वलितहो उठी ॥ २५ ॥ उस कालमें ज्वालासे युक्त और होम तथा रुधिरसे तृप्त कीहुई वह उठीहुई तीव्र अग्नि संध्यासमयके सूर्यकी समान ज्ञात होनें लगी॥२६॥ इस प्रकारसे राक्षसलोगोंकी उन्नतिके हेतुके विधानको जाननेंवाला इन्द्रजीत जब यथाविधिसे होम करनेंलगा तब संग्राम करनेमें कुशल निशाचरगण स्थिरभावसे बैठेहुए इस यज्ञको देखनेंलगे ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥

तुम्हारा वरन त्रिलोकीके सबही प्राणियोंका संहार कर सकतेहैं ॥२२॥ हमको तुमसे औरभी कुछ कहनाथा, परन्तु उसको अब कुछ नहीं कहेंगे क्योंकि सूर्य अस्त होनेंपर आगयेहैं सो विशेष देर लगानेसे युद्धमें विघ्न हो जायगा ॥ २३ ॥ तुमनें जो १४००० चौदह हजार राक्षस मार डालेहैं सो अब तुझको मारकर उनकी स्त्री पुत्रादिकोंके आंसू पोंछेंगे ॥ २४ ॥ यह कहकर खरनें महाक्रोधितहो अतिश्रेष्ठ सुवर्णके बँद जिसमें बँधे ऐसी जो गदा उसके हाथमें थी वह देदीप्यमान इन्द्रके वज्रकी समान उसनें रामचंद्रजीके ऊपर चलाई ॥ २५ ॥ यह प्रज्वलित बडी गदा उसकी भुजासे छूटकर अगल बगलके वृक्षलता दिकोंको जलातीहुई श्रीरामचंद्रजीके समीप आनें लगी ॥ २६ ॥ तब श्रीरामचंद्रजीने

कामंबह्वपिवक्तव्यंत्वयिवक्ष्यामिनत्वहम् ॥ अस्तंप्राप्नोतिसवितायुद्धविघ्नस्ततोभवेत् ॥ २३ ॥ चतुर्दशसहस्राणिराक्षसानांहतानिते ॥ त्वद्विनाशात्करोम्यद्यतेषामश्रुप्रमार्जनम् ॥ २४ ॥ इत्युक्त्वापरमक्रुद्धःसगदांपरमांगदाम् ॥ खरश्चिक्षेपरामायप्रदीप्तामशनिंयथा ॥ २५ ॥ खरबाहुप्रमुक्तासाप्रदीप्तामहतीगदा ॥ भस्मवृक्षांश्चगुल्मांश्चकृत्वागात्तत्समीपतः ॥ २६ ॥ तामापतंतींमहतींमृत्युपाशोपमांगदाम् ॥ अंतरिक्षगतांरामश्चिच्छेदबहुधाशरैः ॥ २७ ॥ साविशीर्णाशरैर्भिन्नापपातधरणीतले ॥ गदामंत्रौषधिबलैर्व्यालीवविनिपातिता ॥ २८ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेएकोनत्रिंशःसर्गः ॥ २९ ॥ ७ ॥ ॥ भित्त्वातुतांगदांबाणैराघवोधर्मवत्सलः ॥ स्मयमानइदंवाक्यंसंरब्धमिदमब्रवीत् ॥१॥ एतत्तेबलसर्वस्वंदर्शितंराक्षसाधम ॥ शक्तिहीनतरोमत्तोवृथात्वमुपगर्जसि ॥२॥

बाण जाल चलाकर साक्षात् मृत्युके फंदकी समान निकट आती हुई, उस बडी गदाके आकाशमें खंड २ कर डाले ॥ २७ ॥ अतीव हिंसा करनेंका स्वभाव जिसका हो ऐसी सांपिनि जिसप्रकार मंत्र और दवाईके प्रभावसे गिर जातीहै, वैसेही यह गदा श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे टुकडे २ हो पृथ्वीमें गिरपडी ॥ २८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे एकोनत्रिंशःसर्गः ॥ २९ ॥ धर्मवत्सल श्रीरामचंद्रजी अपनें बाणोंसे उस गदाको काटकर मुसकाय क्रोधमें भरे खरसे कहनेंलगे ॥१॥ रे राक्षसाधम! बस तुमनें इतनाही

उसओर रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी वानर राक्षसोंका बड़ा भारी समरका शब्द सुनकर जाम्बवान्से कहनेंलगे ॥ १ ॥ हे सौम्य ! ऐसा जान पड़ताहै कि हनुमाननें अति दुष्कर कार्य कियाहै कारण कि अतिभारी भयंकर आयुध चलानेंका शब्द सुनाईदेताहै ॥ २ ॥ इस कारण हे ऋक्षराज ! इन युद्ध करतेहुए वानरश्रेष्ठकी सहायता करनेंके लिये तुम अतिशीघ्रतासे अपनी सेनाके साथ जाओ ॥ ३ ॥ ऋक्षराज जाम्बवानजी " बहुत अच्छा " कहकर जिस स्थानमें वानरश्रेष्ठ हनुमानजी विराजतेथे अपनी सेनाके सहित उसी पश्चिमद्वारको गये ॥ ४ ॥ वहां जायकर ऋक्षराज जाम्बवानजीनें देखाकि हनुमानजी लौटे हुये आयरहेहैं और उनके साथमें जो वानरोंकी सेनाहै; यु

राघवश्चापिविपुलंतंराक्षसवनौकसाम्॥श्रुत्वासंग्रामनिर्घोषंजांबवंतमुवाचह॥ १ ॥ सौम्यनूनंहनुमताकृतंकर्मसुदुष्करम् ॥ श्रूयतेचयथाभीमःसुमहानायुधस्वनः ॥२॥ तद्गच्छकुरुसाहाय्यंस्वबलेनाभिसंवृतः ॥ क्षिप्रमृक्षपतेतस्यकपिश्रेष्ठस्ययुध्यतः ॥ ३ ॥ ऋक्षराजस्तथेत्युक्त्वास्वेनानीकेनसंवृतः ॥ आगच्छत्पश्चिमंद्वारंहनूमान्यत्रवानरः ॥ ४ ॥ अथायांतंहनूमंतंददर्शर्क्षपतिस्तदा ॥ वानरैःकृतसंग्रामैःश्वसद्भिरभिसंवृतम् ॥ ५ ॥ दृष्ट्वापथिहनूमांश्चतदृक्षबलमुद्यतम् ॥ नीलमेघनिभंभीमंसन्निवार्यन्यवर्तत ॥ ६ ॥ सतेनसहसैन्येनसन्निकर्षमहायशाः ॥ शीघ्रमागम्यरामायदुःखितोवाक्यमब्रवीत् ॥ ७ ॥ समरेयुध्यमानानामस्माकंप्रेक्षतांचसः ॥ जघानरुदतींसीतामिंद्रजिद्रावणात्मजः ॥ ८ ॥ उद्भ्रांतचित्तस्तांदृष्ट्वाविषण्णोहमरिंदम ॥ तदहंभवतोवृत्तंविज्ञापयितुमागतः ॥ ९ ॥

द्ध कर थकित शरीरसे हो वारंवार लंबे २ श्वास लेरहीहै ॥ ५ ॥ हनुमानजीनें मार्गमें उस नीले वादलकी समान समर करनेंके लिये तैयार भयंकर रीछोंकी सैनाको देखकर उन सबको लौटाये ॥ ६ ॥ महायशवान् हनुमानजी ऋक्ष और वानरोंकी सब सैनाके साथ दुःखित मनसे श्रीरामचंद्रजीके निकट पहुचे और उनसे यह कहा ॥ ७ ॥ " हम सबनें संग्रामभूमिमें युद्ध करते २ देखा कि रावणक पुत्र इन्द्रजीतनें हम लोगोंके सामनेंही रोतीहुई जानकीजीको मारडाला ॥ ८ ॥ हे शत्रुओंका नाश करनेंवाले! उनकी ऐसी अवस्था देख हमारा चित्त उद्भ्रा

यें होजायँगी ॥ ११ ॥ रे निर्लज्ज! क्षुद्रात्मा! ब्राह्मणकंटक! मुनिगण तुमसे शंका करके अग्निमें आहुति दिया करतेहैं सो आजसे वह भय जाता
रहेगा ॥१२॥ जब रघुकुमार श्रीरामचंद्रजीने महा क्रोधके वशहोकर इस प्रकार कहा तब निशाचर खर क्रोधयुक्तहो फिर बड़े ऊंचे स्वरसे रामचंद्र
जीको दुर्वादिक कहताहुआ बोला ॥१३॥ कि तुम निश्चयही गर्वितहो और भयहोनेपरभी भय नहीं करते इसीकारण मृत्युके वश होकर क्या कहने
लायक क्या न कहने लायकहै, उसको नहीं समझ सकते॥१४॥ जो पुरुष कि कालकी फांसोमें बंध जातेहैं, उनकी अन्तःकरणादि छेः इन्द्रियोंकी वृत्ति
विषय जाती रहनेंके कारण उनको कार्याकार्यका ज्ञान नहीं रहता॥१५॥ निशाचर खरनें श्रीरामचंद्रजीसे इस प्रकार कहकर भ्रुकुटी टेढीकर निकटही
बहुत बडा एक शालका वृक्ष देखा ॥ १६ ॥ उस बड़े भारीशालके पेड़को देखकर युद्धमें उसकोही अपना अस्त्ररूप बनानेंके लिये खरनें किच
किचाकर उसको उखाड लिया ॥ १७ ॥ और घोर गंभीर शब्द करके दोनों भुजाओंसे इस वृक्षको उठा "लो तुम मारे गये" यह कहकर वह वृक्ष
श्रीरामचंद्रजीके ऊपर चलाया ॥ १८ ॥ प्रतापवान् श्रीरामचंद्रजीनें अपनें ऊपर आतेहुए इस शालके वृक्षको अनेक बाणोंसे काट डालकर
युद्धमें खरको मारडालनेंके लिये महाकोप किया ॥ १९ ॥ महाक्रोध करनेंके कारण श्रीरामचंद्रजीके नयन लाल २ हो आये, शरीरसे पसीना

नृशंसशीलक्षुद्रात्मन्नित्यंब्राह्मणकंटक ॥ त्वत्कृतेशंकितैरग्नौमुनिभिःपात्यतेहविः ॥ १२ ॥ तमेवमभिसंरब्धंब्रु
वाणंराघवंवने ॥ खरोनिर्भर्त्सयामासरोषात्खरतरस्वरः ॥ १३ ॥ दृढंखल्ववलिप्तोसिभयेष्वपिचनिर्भयः ॥ वा
च्यावाच्यंततोहित्वंमृत्योर्वश्योनबुध्यसे ॥ १४ ॥ कालपाशपरिक्षिप्ताभवंतिपुरुषाहिये ॥ कार्याकार्यंनजानंतिते
निरस्तषडिंद्रियाः ॥ १५ ॥ एवमुक्त्वाततोरामंसंरुध्यभ्रुकुटींततः ॥ सददर्शमहासालमविदूरेनिशाचरः ॥ १६ ॥
रणेप्रहरणस्यार्थेसर्वतोह्यवलोकयन्॥ सतमुत्पाटयामाससंदष्टदशनच्छदम् ॥ १७ ॥ तंसमुत्क्षिप्यबाहुभ्यांविनर्द
त्वामहाबलः॥ राममुद्दिश्यचिक्षेपहतस्त्वमितिचाब्रवीत् ॥१८॥ तमापतंतंबाणौघैश्छित्त्वारामःप्रतापवान्॥ रोषमाहा
रयत्तीव्रंनिहंतुंसमरेखरम्॥१९॥ जातस्वेदस्ततोरामोरोषरक्तांतलोचनः॥ निर्बिभेदसहस्रेणबाणानांसमरेखरम्॥२०॥

मान असत्कल्प अप्रत्यक्षरूप धर्म स्वयं अचेतनहै, इस कारण वह स्वकर्त्तव्य शत्रुप्रतिकारादि कार्यको कुछभी नहीं जानताहै ॥ २४ ॥ हे साधुश्रेष्ठ ! यथार्थ विचार करनेपर यदि कुछ धर्म होता तौ आपको किसी प्रकारके दुःख भोग करनेंकी संभावना नहीं होती, फिर जब कि आप ऐसा दुःख भोग कर रहेहैं, तब हमको यह नहीं जान पड़ता कि धर्म कुछ है ॥ २५ ॥ हमारे विचारसे धर्म एक क्षुद्र पदार्थहै; उस्से कार्य साधन नहीं होता, न उसमें कोई शक्ति है, हां वह केवल कार्य करनेंके समय बलकी सहायता किया करताहै; वह सुखका साधन करनेवाला नहीं हमारी सम्मतिमें उस दुर्बल मर्यादाहीन धर्मकी उपासना करना उचित नहीं है ॥२६॥ यदि धर्म केवल बलका सहायकही हुआ तब फिर उसकी पूजा करनें का क्या प्रयोजन! आप जो धर्मकी पूजा करतेहैं उस धर्मकी पूजा छोड़ जैसे आप धर्मकी पूजा करतेहैं वैसेही यत्नसहित पौरुषका आश्रय लीजिये॥२७॥

यदिसत्स्यात्सतांमुख्यनासत्स्यात्तवकिंचन ॥ त्वयायदीदृशंप्राप्तंतस्मात्तन्नोपपद्यते ॥ २५ ॥ अथवादुर्बलःक्लीबोबलं धर्मोनुवर्तते ॥ दुर्बलोहृतमर्यादोनसेव्यइतिमेमतिः ॥ २६ ॥ बलस्ययदिचेद्धर्मोगुणभूतःपराक्रमैः ॥ धर्ममुत्सृज्यवर्त स्वयथाधर्मेतथाबले ॥ २७ ॥ अथचेत्सत्यवचनंधर्मःकिलपरंतप ॥ अनृतंत्वय्यकरणेकिंनबद्धस्त्वयाविना ॥ २८ ॥ यदिधर्मोभवेद्भूतअधर्मोवापरंतप ॥ नस्महत्वामुनिंवज्रीकुर्यादिज्यांशतक्रतुः ॥ २९ ॥ अधर्मसंश्रितोधर्मोवि नाशयतिराघव ॥ सर्वमेतद्यथाकामंकाकुत्स्थकुरुतेनरः ॥ ३० ॥ ममचेदंमतंतातधर्मोयमितिराघव ॥ धर्ममूलंत्वया छिन्नंराज्यमुत्सृजतातदा ॥ ३१ ॥

हेशत्रुओंके तपानेवाले ! यदि सत्य वचनहीं आपके विचारमें धर्म माना गयाहो तौ जब पिता दशरथजीनें आपको युवराज देना चाहाथा, तब प्रथम आपनें उस वचनको अंगीकार किया और फिर आपनें उस वचनको नहीं पाला; तब उसके लिये आपको अधर्म क्यों नहीं हुआ ! ॥ २८ ॥ हेशत्रुदमनकारी ! यदि धर्म अथवा अधर्म इन दोनोंके बीचमें कोई बड़ा होता तौ, इन्द्रजी विश्वरूप मुनिका वधरूप अधर्म और तिसके पीछे यज्ञरूप धर्म इन दोनोंको न करते ॥ २९ ॥ हेश्रीरामचंद्रजी ! पौरुषका आश्रय कियाहुआ धर्महीं शत्रुके विनाशादिमें समर्थहै इसी कारणसे लोग दोनोंका अनुष्ठान किया करतेहैं ॥ ३० ॥ हेरघुनंदन देश, काल, और पात्रके अनुसार कार्य करनाही परम धर्म ज्ञात होताहै;

होकर गिरेथे खरभी वैसेही श्रीरामचंद्रजीके बाणसे नाशहोकर पृथ्वीमें गिरा ॥ २८ ॥ इससमय देवतागण चारणोंके सहित महाहर्ष और विस्म
य युक्तहोकर नगाडे बजातेहुए श्रीरामचंद्रजीके ऊपर चारों ओरसे फूलों की वर्षा करनें लगे ❋ ॥ २९ ॥ और सब देवता चारण गण फूल बर
साकर बडे विस्मित हुए कि डेढही मुहूर्तमें तीखे बाणोसें श्रीरामचंद्रजीनें ॥ ३० ॥ इस महायुद्धमें खर दूषण इत्यादि मुख्य राक्षसोंके सहित
कामरूपी चौदह हजार राक्षसोंको मार डाला ॥ ३१ ॥ साक्षात् विष्णुजीकी समान सर्वदर्शी श्रीरामचंद्रजीका क्याही बडा आश्चर्यका कार्यहै
अहो! क्या अद्भुत वीर्यहै! और क्या विस्मय उपजानेंवाली दृढता हमनें इनमें देखी! ॥ ३२ ॥ यह बात कहते २ एकत्र हुए सब देवता लोग

एतस्मिन्नंतरेदेवाश्चारणैःसहसंगताः ॥ दुंदुभींश्चाभिनिघ्नंतःपुष्पवर्षंसमंततः ॥ २९ ॥ रामस्योपरिसंहृष्टाववर्षुर्विस्मि
तास्तदा ॥ अर्धाधिकमुहूर्तेनरामेणनिशितैःशरैः ॥ ३० ॥ चतुर्दशसहस्राणिरक्षसांकामरूपिणाम् ॥ खरदूषणमु
ख्यानांनिहतानिमहामृधे ॥ ३१ ॥ अहोबतमहत्कर्मरामस्यविदितात्मनः ॥ अहोवीर्यमहोदार्ढ्यंविष्णोरिवहिदृ
श्यते ॥३२॥ इत्येवमुक्त्वातेसर्वेययुर्देवायथागतम् ॥ ततोराजर्षयःसर्वेसंगताःपरमर्षयः ॥ ३३ ॥ सभाज्यमुदितारामं
सागस्त्याइदमब्रुवन् ॥ एतदर्थंमहातेजामहेंद्रःपाकशासनः॥३४॥ शरभंगाश्रमंपुण्यमाजगामपुरंदरः ॥ आनीतस्त्व
मिमंदेशमुपायेनमहर्षिभिः॥३५॥एषांवधार्थंशत्रूणांरक्षसांपापकर्मणाम् ॥ तदिदंनःकृतंकार्यंत्वयादशरथात्मज॥३६॥

अपनें २ स्थानको चलेगये । तिसके पीछे राजर्षि व महर्षिगण एकत्र होकर आये ॥३३॥ अगस्त्यजीके सहित श्रीरामचंद्रजीकी बडाई
कर मुदित होकर सब ऋषिश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीसे बोले, कि इसी कारणसे महातेजवान् इन्द्रजी ॥ ३४ ॥ शरभंगजीके पुण्य आश्रममें
आपके निकट आयेथे। इसी कारणसे महर्षि गण बडे उपायसे आपको यहां पर लायेहैं ॥ ३५ ॥ बस एक यही कार्य था कि केवल इन पाप
कर्म करनेंवाले राक्षसोंको मरवानाथा क्योंकि यह सब हमारे शत्रुथे, सो हे दशरथकुमार! आपनें यह हमारा कार्य सिद्ध किया ॥ ३६ ॥

❋ राम २ कह तन तजहिं, पावहिं पद निर्वान । कर उपाय रिपु मोर, छिनमें कृपानिधान ॥

इसप्रकार महासंग्राममें समस्त भयंकर बलवान राक्षसोंको श्रीरामचंद्रजीसे माराहुआ देखकर खर बडे भारी रथपर सवार होकर वज्र उठाये हुए इन्द्रकी समान रामचंद्रजीके मारनेंको चला॥३८॥ इ० श्री० वा० आ० आर० षड्विंशः सर्गः॥२६॥ इसके पीछे खर जब श्रीरामचन्द्रजीके सन्मुख धाया, तब सेनापति त्रिशिरा राक्षस उसके समीप आकर कहनेंलगा॥१॥ मैं विक्रमवानहूं आप यह साहस त्यागकरके मुझको रामचंद्रको मार डालनेके लिये नियत करके समरमें महाबाहु रामचंद्रको मुझकरके माराहुआही देखिये ॥ २ ॥ मैं आपके समीप हथियार छूकर सत्यही प्रतिज्ञा करताहूं कि समस्त राक्षसोंके मारनें योग्य रामचंद्रको मैं निश्चयही मार डालूंगा ॥ ३ ॥ या तो संग्राममें मैंही मरूंगा, अथवा उस रामकोही मार

ततस्तुतद्भीमबलंमहाहवेसमीक्ष्यधर्मेणहतंवलीयसा ॥ रथेनरामंमहताखरस्ततःसमाससादेंद्रइवोद्यताशनिः॥३८॥
इ० श्री० वा० आ० अ० षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥ ॥ छ ॥ ॥ खरंतुरामाभिमुखंप्रयांतंवाहिनीपतिः ॥ राक्षस
त्रिशिरानामसन्निपत्येदमब्रवीत् ॥ १ ॥ मांनियोजयविक्रांतंत्वंनिवर्तस्वसाहसात् ॥ पश्यरामंमहाबाहुंसंयुगेविनि
पातितम् ॥ २ ॥ प्रतिजानामितेसत्यमायुधंचाहमालभे ॥ यथारामंवधिष्यामिवधार्हंसर्वरक्षसाम् ॥ ३ ॥ अहंवास्य
रणेमृत्युरेषवासमरेमम ॥ विनिवर्त्यरणोत्साहंमुहूर्तंप्राश्निकोभव ॥ ४ ॥ प्रहृष्टोवाहतेरामेजनस्थानंप्रयास्यसि ॥
मयिवानिहतेरामंसंयुगायप्रयास्यसि ॥ ५ ॥ खरस्त्रिशिरसातेनमृत्युलोभात्प्रसादितः ॥ गच्छयुध्येत्यनुज्ञातोराघ
वाभिमुखोययौ ॥ ६ ॥ त्रिशिरास्तुरथेनैववाजियुक्तेनभास्वता ॥ अभ्यद्रवद्रणेरामंत्रिशृंगइवपर्वतः ॥ ७ ॥ शरधारा
समूहान्समहामेघइवोत्सृजन् ॥ व्यसृजत्सदृशंनादंजलार्द्रस्येवदुंदुभेः ॥ ८ ॥

डालूंगा आप क्षणके लिये रणके उत्साहको छोडकर दोनों ओरका युद्ध देखते रहिये ॥ ४ ॥ राम मारा जायगा तो आप आनन्दित चित्तसे जन स्थानको चले जाइये और जो मेरा संहार होवे तो आप स्वयंही युद्ध करनेंके लिये रामचंद्रके सन्मुख होना ॥ ५ ॥ त्रिशिरा इस प्रकार खरको प्रसन्न करके युद्ध करनेके लिये उसकी आज्ञा लेकर श्रीरामचंद्रजीके सामनें दौडा ॥ ६ ॥ तीन शृंगवाले पर्वतकी समान वह तीन शिर वाला राक्षस देदीप्यमान घोडे जुते हुए रथमें सवार होकर श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख धाया ॥ ७ ॥ और महा मेघ जिस प्रकार जलधारा वर्षाता हुआ

डाला इसमें रामचंद्रजीकी अनंतशक्ति ईश्वरता सूचन करीहै ॥ २० ॥ अकम्पनकी यह भयानक वार्त्ता सुनकर रावणनें कहाकि हम राम लक्ष्मणको मारनेके कारण अभी जनस्थानको जांयगे ॥ २१ ॥ जब रावणनें इस प्रकार कहा तब अकंपन कहनें लगा कि हे राजन्! राममें जिस प्रकारका बल और पौरुष और चरित्रहै उसको श्रवण करो॥२२॥ कि जब महायशवान श्रीरामचंद्रजी क्रोध करें तो उनको निवारण करनेंकी ब्रह्मादि देवताओंकोभी साध्य नहींहै। वह जलसे पूर्ण नदीका वेगभी अपनें बाणोंसे रोक सकतेहैं ॥ २३ ॥ आकाशमंडलसे ग्रह नक्षत्र और सर्व तारागणोंको रामचंद्रजी गिरा सकतेहैं और वह विपदमें पडी हुई पृथ्वीकोभी उधार सकतेहैं ॥ २४ ॥ समुद्रकी वेला भूमिको तोड

अकंपनवचःश्रुत्वारावणोवाक्यमब्रवीत् ॥ गमिष्यामिजनस्थानंरामंहंतुंसलक्ष्मणम् ॥ २१ ॥ अथैवमुक्तेवचनेप्रोवाचेदमकंपनः ॥ शृणुराजन्यथावृत्तंरामस्यबलपौरुषम् ॥ २२ ॥असाध्यःकुपितोरामोविक्रमेणमहायशाः ॥ आपगायास्तुपूर्णायावेगंपरिहरेच्छरैः ॥ २३ ॥ सताराग्रहनक्षत्रंनभश्चाप्यवसादयेत् ॥ असौरामस्तुसीदंतींश्रीमानभ्युद्धरेन्महीम् ॥ २४ ॥ भित्त्वावेलांसमुद्रस्यलोकानाप्लावयेद्विभुः ॥ वेगंवापिसमुद्रस्यवायुंवाविधमेच्छरैः ॥ २५ ॥ संहृत्यवापुनर्लोकान्विक्रमेणमहायशाः ॥ शक्तःश्रेष्ठःसपुरुषःस्रष्टुंपुनरपिप्रजाः ॥ २६ ॥ नहिरामोदशग्रीवशक्योजेतुंरणेत्वया रक्षसांवापिलोकेनस्वर्गःपापजनैरिव ॥ २७ ॥ नतंवध्यमहंमन्येसर्वैर्देवासुरैरपि ॥ अयंतस्यवधोपायस्तन्ममैकमनाः शृणुः ॥ २८ ॥ भार्यातस्योत्तमालोकेसीतानामसुमध्यमा ॥ श्यामासमविभक्तांगीस्त्रीरत्नंरत्नभूषिता ॥ २९ ॥

ताडकर रामचंद्र सब लोकोंको जलमें डुबो सकतेहैं वह अपने बाणोंसे सागरका अथवा पवनका वेगभी रोक सकतेहैं ॥ २५ ॥ और वह महायशवान् श्रीरामचंद्रजी श्रेष्ठ पुरुष अपने २ विक्रमसे समस्त लोकोंका संहार करके फिर नई प्रजाको उत्पन्न कर सकतेहैं ॥ २६ ॥ हे दशानन! पापात्मा लोग जिस प्रकार स्वर्गके जीतनेंकी सामर्थ्य नहीं रखते सो आप या आपके राक्षस लोग कोईभी युद्धमें श्रीरामचंद्रजीके जीतनेको समर्थ नहींहैं ॥ २७ ॥ मैं तो यह जानताहूं कि देवासुर सब एकत्र होकरभी उनको नहीं वध कर सकते तौभी उनके मारनेंका एक उपायहै सो चित्त देकर सुनिये ॥ २८ ॥ सीता नामक उनकी स्त्री एक लोकके मध्यमें सर्व श्रेष्ठ श्यामा अवस्थावालीहै वह स्त्रियोंमें रत्नकी नांईहै वह रत्नोंसे

बाण उसके हृदयमें मारे जिनके लगनेंसे वह फिर हथियार ग्रहण करनेंको समर्थ नहीं हुआ ॥ १७ ॥ फिर अप्रमेयात्मा श्रीरामचंद्रजीनें क्रोधमें भरकर वेगवान् तीन बाणोंकी सहायतासे उसके तीनों शिर काट डाले, तिसके पीछे धुवेंके समान रुधिर गिरता श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे पीडित त्रिशिरा॥१८॥समरमें गिरा, जिसके शिर पहलेही गिर गयेथे। त्रिशिराके मारे जानेंके बाद शेष राक्षस भागकर खरकी शरणमें गये॥ १९ ॥ और वहांभी खडे न होकर सिंह करके भय पाये हुए मृग यूथकी समान भागेही चले गये तिनको भागे हुए देख खरनें रोपमें भर शीघ्रतासे श्रीरामचंद्रजीकी ओर दौडा जैसे राहु चंद्रमाकी ओर दौडताहै ॥ २० ॥ इत्यार्पे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ०आरण्यकांडे सप्तविंशःसर्गः॥२७॥

शिरांस्यपातयत्त्रीणिवेगवद्भिस्त्रिभिःशरैः ॥ सधूमशोणितोद्गारीरामबाणाभिपीडितः ॥ १८ ॥ न्यपतत्पतितैःपूर्वंसमरस्थोनिशाचरः ॥ हतशेषास्ततोभग्नाराक्षसाःखरसंश्रयाः ॥ १९ ॥ द्रवंतिस्मनतिष्ठंतिव्याघत्रस्तामृगाइव ॥ तान्खरोद्रवतोदृष्ट्वानिवर्त्यरुषितस्त्वरन् ॥ राममेवाभिदुद्रावराहुश्चंद्रमसंयथा ॥ २० ॥ इत्यार्पेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीये आदिकाव्येआरण्यकांडेसप्तविंशःसर्गः ॥ २७ ॥ निहतंदूषणंदृष्ट्वारणेत्रिशिरसासह ॥ खरस्याप्यभवत्त्रासोदृष्ट्वारामस्यविक्रमम् ॥ १ ॥ सदृष्ट्वाराक्षसंसैन्यमविषह्यंमहाबलम् ॥ हतमेकेनरामेणदूषणास्त्रिशिराअपि ॥ २ ॥ तद्बलंहतभूयिष्ठंविमनाःप्रेक्ष्यराक्षसः ॥ आससादखरोरामंनमुचिर्वासवंयथा ॥ ३ ॥ विकृष्यबलवच्चापंनाराचान्रक्तभोजनान् ॥ खराश्चिक्षेपरामायक्रुद्धानाशीविषानिव ॥ ४ ॥

दूषण और त्रिशिरा राक्षसको मरा हुआ देख और संग्राममें श्रीरामचंद्रजीकी शूरता निहार खरके मनमेंभी भयका संचार हुआ ॥ १ ॥ खर विचार करनें लगा कि दूषण और त्रिशिराको, सहनेंके अयोग्य पराक्रम वान महाबलवान् राक्षसी सेनाके सहित अकेले रामचंद्रनें संग्राममें मार डाला ॥ २ ॥ ऐसा विचार करता हुआ वह राक्षस खर उदास होकर श्रीरामचंद्रजीके ऊपर दौडा, जैसे नमुचि दैत्य इन्द्रके ऊपर धाया था ॥ ३ ॥ और बडे जोरसे धनुष खैंचकर श्रीरामचंद्रजीके ऊपर, सर्पके विषकी समान रुधिर पान करनेंवाले बाण छोडे ॥ ४ ॥

त्रिशिराको मारा हुआ देखकर शूर्पणखा मेघकी समान गंभीर शब्दसे गर्जनें लगी ॥ २ ॥ औरके करनेंके अयोग्य श्रीरामचंद्रजीका किया हुआ कर्म देखकर अति उकसाके रावणपालिता लंका नगरीको शूर्पणखा गई ॥ ३ ॥ वहां जाकर देखा कि महातेजवान् रावण विमान पर बैठाहै, देवतागण जिस प्रकार इन्द्रके निकट बैठे रहतेहैं। मंत्रीगण वैसेही रावणके घोरे बैठेहैं ॥ ४ ॥ सूर्यकी समान प्रकाशित हुए सुवर्णमय श्रेष्ठ आसनपर बैठनेसे, सुवर्णमय वेदिमध्यगत प्रज्वलित अग्निकी समान उसकी शोभा होरहीहै ॥ ५ ॥ देवता, गन्धर्व, भूत व महात्मा व ऋषि लोगोंके जीतनें अयोग्य अति भयंकर मुँह वाये मानों दूसरा यमराजही बैठाथा ॥ ६ ॥ फिर देवताओं व राक्षसोंके मणियुक्त वज्र कक्ष घाव

साद्दष्ट्वाकर्मरामस्यकृतमन्यैःसुदुष्करम् ॥ जगामपरमोद्विग्नालंकांरावणपालिताम् ॥ ३ ॥ साददर्शविमानाग्रेरावणं दीप्ततेजसम् ॥ उपोपविष्टंसचिवैर्मरुद्भिरिववासवम् ॥ ४ ॥ आसीनंसूर्यसंकाशेकांचनेपरमासने ॥ रुक्मवेदिगतं प्राज्यंज्वलंतमिवपावकम् ॥ ५ ॥ देवगंधर्वभूतानामृषीणांचमहात्मनाम् ॥ अजेयंसमरेघोरंव्यात्ताननमिवांतकम् ॥ ६ ॥ देवासुरविमर्देषुवज्राशनिकृतव्रणम् ॥ ऐरावतविषाणाग्रैरुत्कृष्टकिणवक्षसम् ॥ ७ ॥ विंशद्भुजंदशग्रीवंदर्शनीयपरिच्छदम् ॥ विशालवक्षसंवीरंराजलक्षणलक्षितम् ॥ ८ ॥ नद्धवैदूर्यसंकाशंतप्तकांचनभूषणम् ॥ सुभुजंशुक्लदशनंमहास्यंपर्वतोपमम् ॥ ९ ॥ विष्णुचक्रनिपातैश्चशतशोदेवसंयुगे ॥ अन्यैःशस्त्रैःप्रहारैश्चमहायुद्धेषुताडितम् १० ॥

सहित, और ऐरावताचल हाथीके दांतोंसे बडाभारी चिह्न छातीमें विद्यमान ॥ ७ ॥ उसकी वीस भुजा व दशशिर, पोशाक बडी सुहावन मनभावन, चौडी छाती, और शरीर राजलक्षण युक्त ॥ ८ ॥ वह जो वैदूर्य मणि पहर रहाहै, उसकी देहकी कान्तिभी वैदूर्यमणिके सदृश कांनोंके कुंडल तपाये हुए सुवर्णके बने, वीसों भुजा परमसुन्दर, दाँतोंकी कतारअति सुन्दर, वदन मंडल अतीव महान्, आकार पर्वतकी समान ॥ ९ ॥ देवताओंके सहित सैकडों संग्रामोंमें विष्णुचक्रके लगनेंसे व और २अनेक महासंग्रामोंमें अस्त्रोंके प्रहारसे बहुत भांति ताडित हुआ ॥ १० ॥

नहीं डरता वैसेही श्रीरामचंद्रजी खरको देख कुछभी नहीं घबडाये॥१३॥अनन्तर खर सूर्यसमान द्युतिशाली महारथ पर चढकर श्रीरामचंद्रजीके निकट पहुंचा जिस प्रकार आगके धोरे पतंग पहुंचतेहैं ॥ १४ ॥ तिसके पीछे महात्मा श्रीरामचंद्रजीको खरने अपने हाथोंकी फुरती दिखाई और रामचंद्रजीका बाण चढाहुआ मुट्ठीके धोरेसे काट डाला ॥ १५ ॥ फिर क्रोधमे भरकर इन्द्रके वज्रकी तुल्य प्रतापशाली तीखे सात बाण ग्रहण करके श्रीरामचंद्रजीके मर्म स्थानमें मारे॥१६॥और फिर सैकडों हजारों बाणोंसे श्रीरामचंद्रजीको पीडितकर समरमें अपना उपमा रहित तेज दिखाताहुआ महाशब्दसे गर्जनेलगा॥१७॥उससमय श्रीरामचंद्रजीका सूर्यकी समान प्रकाशमान कवच, सुन्दर तेज धार वाले बाणोंके समू

ततःसूर्यनिकाशेनरथेनमहताखरः ॥ आससादाथतंरामंपतंगइवपावकम् ॥ १४ ॥ ततोस्यसशरंचापंमुष्टिदेशेमहा
त्मनः ॥ खरश्चिच्छेदरामस्यदर्शयन्हस्तलाघवम् ॥ १५ ॥ सपुनस्त्वपरान्सप्तशरानादायमर्मणि ॥ निजघानरणेक्रु
द्धःशक्राशनिसमप्रभान् ॥ १६ ॥ ततःशरसहस्रेणराममप्रतिमौजसम् ॥ अर्दयित्वामहानादंननादसमरेखरः ॥ १७॥
ततस्तत्प्रहतंबाणैःखरमुक्तैःसुपर्वभिः ॥ पपातकवचंभूमौरामस्यादित्यवर्चसम् ॥ १८ ॥ सशरैरर्पितःक्रुद्धःसर्वगा
त्रेषुराघवः ॥ रराजसमरेरामोविधूमोग्निरिवज्वलन् ॥ १९ ॥ ततोगंभीरनिर्ह्रादंरामःशत्रुनिबर्हणः ॥ चकारांतायस
रिपोःसज्जमन्यन्महद्धनुः ॥ २० ॥ सुमहद्वैष्णवंयत्तदतिसृष्टंमहर्षिणा ॥ वरंतद्धनुरुद्यम्यखरंसमभिधावतः ॥ २१ ॥
ततःकनकपुंखैस्तुशरैःसन्नतपर्वभिः ॥ चिच्छेदरामःसंक्रुद्धःखरस्यसमरेध्वजम् ॥ २२ ॥

हसे छिन्न भिन्न होकर पृथ्वीमें गिरपडा ॥ १८ ॥ उस समय रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीका सब शरीर बाणोंसे विंधगया, तब श्रीरामचंद्रजी क्रोधित होकर प्रज्वलित धूमरहित अग्निकी शोभा धारण करतेहुए ॥ १९ ॥ उसके पीछे उन शत्रुओंका नाशकरनेंवाले श्रीरामचंद्रजीनें शत्रुओंका संहार करनेके लिये और एकगंभीर शब्द करनेंवाले धनुषपर रोदा चढाते हुए ॥ २० ॥ श्रीरामचंद्रजी महर्षि अगस्त्यजीका दियाहुआ वह बृहत् वैष्णव धनुष उठाकर खरके ऊपर क्रोधित होकर धाये ॥ २१ ॥ तदनन्तर सुवर्णके पंखलगे तीखे बड़े भारी बाणोंसे समरमें श्रीरामचंद्रजीनें

कर जिसकी स्तुति करनेंलगेथे ॥ १९ ॥ यह महाबलवान् रावण होमशालामें गमन करके पवित्र सोमको नष्टकरदेता और दक्षिणा देनें
के समय यज्ञको ध्वंसकरदेता सर्वदा ब्राह्मणहननादिक क्रूरकार्योंको क्रियाकरता ॥ २० ॥ सदा प्रजागणोंका अहित आचरण करता कर्कशथा
अनेक प्रकारकी पीडा देकर सब लोकोंका भय उपजानेंवाला होनेंकेकारण लोक उसको रावण कहा करतेथे ॥ २१ ॥ राक्षसी शूर्पणखानें
अपनें क्रूर महाबली भ्राताको देखा । वह रावण दिव्यवस्त्र, दिव्य गहनें,और माला पहर रहाथा ॥ २२ ॥ आसनपर भली प्रकारसे बैठाथा, उस
काल कालकी मूर्तिसा प्रतीत होताथा । ऐसा राक्षसनाथ महाभाग पौलस्त्यकुलनंदन रिपुओंका नाश करनेंवाला ॥ २३ ॥ इस प्रकारके

हविर्धानेषुयः सोममुपहंतिमहाबलः ॥ प्राप्तयज्ञहरंदुष्टंब्रह्मघ्नंक्रूरकारिणम् ॥ २० ॥ कर्कशंनिरनुक्रोशंप्रजानाम
हितेरतम् ॥ रावणंसर्वभूतानां सर्वलोकभयावहम् ॥ २१ ॥ राक्षसीभ्रातरंक्रूरंसाददर्शमहाबलम् ॥ तंदिव्यवस्त्राभ
रणंदिव्यमाल्योपशोभितम् ॥ २२ ॥आसनेसूपविष्टंतंकालेकालमिवोद्यतम् ॥ राक्षसेंद्रंमहाभागंपौलस्त्यकुलनंदन
म् ॥ २३ ॥ उपगम्याब्रवीद्वाक्यंराक्षसीभयविह्वला ॥ रावणंशत्रुहंतारंमंत्रिभिःपरिवारितम् ॥ २४ ॥ तमब्रवीद्दी
प्तविशाललोचनंप्रदर्शयित्वाभयलोभमोहिता ॥ सुदारुणंवाक्यमभीतचारिणीमहात्मनाशूर्पणखाविरूपिता॥२५॥
इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेद्वात्रिंशःसर्गः ॥३२॥ ७१ ॥ ॥ ततःशूर्पणखादीनारावणंलो
करावणम् ॥ अमात्यमध्येसंक्रुद्धापरुषंवाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥ प्रमत्तःकामभोगेषुस्वैरवृत्तोनिरंकुशः ॥ समुत्पन्नंभयं
घोरंबोद्धव्यंनावबुध्यसे ॥ २ ॥

गुणोंसे युक्त रावणको देख लक्ष्मणजीनें जो नाक कान काट डालेथे इसकारण भयसे विह्वलहो, मंत्रियोंके बीचमे बैठेहुए रावणसे बोली ॥ २४ ॥
इस प्रकारकी निशाचरी जो कि श्रीरामचंद्रजीके द्वारा कुरूपको प्राप्त होगईथी जिसका नाम शूर्पणखा था वह निर्भय दारुण वचन कहती हुई
रावणसे बोली ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥ उस समय दीन हो
रही शूर्पणखा क्रोधयुक्तहो सब लोकोंके रुवानेंवाले रावणसे मंत्रिगणोंके सामनें कडुवे वचन कहनें लगी ॥ १ ॥ कि तुम स्वेच्छाचारी

सहित शरासन युक्त वायाँ हाथ,॥३०॥काटकर हँसतेरवज्र समान एक बाणसे खरको इंद्रसमान श्रीरामचंद्रजीनें मारा ॥३१॥ तब वह खर राक्षस धनुष रहित, रथ रहित, सारथि रहित होकर गदाले रथसे कूद पृथ्वी पर खडा होगया ॥ ३२ ॥ उस काल विमानमें बैठे हुए देवता और महर्षिगण महारथी श्रीरामचंद्रजीका यह कार्य अवलोकन करके परम हर्ष प्राप्त करते हुए और परस्पर एकत्रहो हाथजोड स्तुतिकर श्रीरामचंद्रजीकी पूजा करते हुए ॥ ३३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे अष्टाविंशःसर्गः ॥ २८ ॥
इसके पीछे खर रथहीन और हाथमें गदा धारण करके जब पृथ्वीमें खड़ा होगया तब महातेजवान् श्रीरामचंद्रजी बोलनेमें मधुर

छित्त्वावज्रनिकाशेनराघवःप्रहसन्निव ॥ त्रयोदशेनेंद्रसमोबिभेदसमरेखरम् ॥ ३१ ॥ प्रभग्नधन्वाविरथोहताश्वो हतसारथिः ॥ गदापाणिरवप्लुत्यतस्थौभूमौखरस्तदा ॥ ३२ ॥ तत्कर्मरामस्यमहारथस्यसमेत्यदेवाश्चमहर्षयश्च ॥ अपूजयन्प्रांजलयःप्रहृष्टास्तदाविमानाग्रगताःसमेताः ॥ ३३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडेअष्टाविंशःसर्गः ॥ २८ ॥ ॥ छ ॥ ॥ खरंतुविरथंरामोगदापाणिमवस्थितम् ॥ मृदुपूर्वंमहातेजाः परुषंवाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥ गजाश्वरथसंबाधेबलेमहतितिष्ठता ॥ कृतंतेदारुणंकर्मसर्वलोकजुगुप्सितम् ॥ २ ॥ उद्वेजनीयोभूतानांनृशंसःपापकर्मकृत् ॥ त्रयाणामपिलोकानामीश्वरोपिनतिष्ठति ॥ ३ ॥ कर्मलोकविरुद्धंतुकुर्वाणं क्षणदाचर ॥ तीक्ष्णंसर्वजनोहंतिसर्पंदुष्टमिवागतम् ॥ ४ ॥ लोभात्पापानिकुर्वाणःकामाद्वायोनबुध्यते ॥ हृष्टः पश्यतितस्यांतंब्राह्मणीकरकादिव ॥ ५ ॥

परंतु वास्तवमें कठोर वचनसे खरसे बोले ॥ १ ॥ हेखर! तैंने हाथी अश्व और रथादि युक्त सेनाके मध्यमें टिककर सर्व लोकमें निन्दित महा भयंकर कर्म कियाहै ॥ २ ॥ यदि त्रिलोकीका स्वामीभी निर्लज्ज होकर पाप कर्म करे और सर्व प्राणियोंको घबडानेंवाला हो तो वहभी अपने पदसें भ्रष्ट होजाताहै ॥ ३ ॥ अरे निशाचर! सभी पुरुष लोकोंके विरुद्ध कर्म करनेवाले तीक्ष्ण स्वभाववाले पुरुषको, आये हुए काल सर्पकी समान संहार कर डालतेहैं ॥ ४ ॥ जो व्यक्ति फल जान करभी लोभ, या कामदेवके वश होकर हिंसा परस्त्रीगमन इत्यादि पाप

खजाना, दूत, और नीति नहीं होती, ऐसे राजालोग साधारण मनुष्योंके समानहैं ॥ ९ ॥ राजा लोग सबजगह अपने दूतोंको नियुक्त करके सब दूरका वृत्तान्त मानों देखते रहतेहैं इसी कारण वह दीर्घचक्षु, कहे जातेहैं ॥ १० ॥ हम जानतीहैं कि तुमनें कहीं भी दूतादि नहीं नियत कियेहैं और तुम साधारण बुद्धिवाले मंत्रियोंके साथ सदाही बैठे रहतेहो। इसीकारणसे निजजन और जनस्थानका जो नाशहोगयाहै उसको तुम नहीं जानते ॥ ११ ॥ देखो! अति कठिन कर्म करनेंवाले रामचंद्रनें इकलेही भयंकरकर्म करनेंवाले चौदह हजार राक्षस खर दूषणसहित मार डाले॥१२॥उन रामचंद्रनें ऋषिगणोंको अभय करदियाहै समस्त दंडकारण्यको निष्कंटक और जनस्थानको भयभीत कर दियाहै ॥ १३ ॥ पर

यस्मात्पश्यंतिदूरस्थान्सर्वानर्थान्नराधिपाः ॥ चारेणतस्मादुच्यंतेराजानोदीर्घचक्षुषः ॥ १० ॥ अयुक्तचारंमन्येत्वां प्राकृतैःसचिवैर्युतः ॥ स्वजनंचयतःस्थानंनिहतंनावबुध्यसे ॥ ११ ॥ चतुर्दशसहस्राणिरक्षसांभीमकर्मणाम् ॥ हतान्येकेनरामेणखरश्चसहदूषणः ॥ १२ ॥ ऋषीणामभयंदत्तंकृतक्षेमाश्चदंडकाः ॥ धर्षितंचजनस्थानंरामेणाक्लिष्टकारिणा ॥ १३ ॥ त्वंतुलुब्धःप्रमत्तश्चपराधीनश्चराक्षस॥ विषयेस्वेसमुत्पन्नंयद्भयंनावबुध्यसे ॥ १४ ॥ तीक्ष्णमल्पप्रदातारंप्रमत्तंगर्वितंशठम् ॥ व्यसनेसर्वभूतानिनाभिधावंतिपार्थिवम् ॥ १५ ॥ अतिमानिनमग्राह्यमात्मसंभावितंनरम् ॥ क्रोधनंव्यसनेहंतिस्वजनोपिनराधिपम् ॥ १६ ॥ नानुतिष्ठतिकार्याणिभयेषुनबिभेतिच ॥ क्षिप्रंराज्याच्च्युतोदीनस्तृणैस्तुल्योभवेदिह ॥ १७ ॥

न्तु हे रावण! तुम तो लोभी मतवाले और सदाही पराये आधीन रहनेंवालेहो इसीकारण तुम नहीं जानते कि तुम्हारे राज्यपर क्या भय आ पहुंचाहै ॥ १४ ॥ जो राजा अति तीक्ष्णस्वभाववाला, असावधान, गर्वित, शठ, और अल्पदान करनेंवाला होताहै, विपदके समय प्रजाभी उस राजाकी रक्षाकरनेंके लिये कोई यत्न नहीं करती ॥ १५ ॥ जो राजा अतिशय अभिमानी होता, क्रोध स्वभाववाला होता, और जो अपने आपही अपना गौरव करताहै, कोई जिसकी बातको नहीं सुनते। विपदके समय उसके सगेही उसका नाश कर देतेहैं ॥१६ ॥ जो राजा राजकार्य को अपने हाथसे नहींकरता। और भय होनेपरभी नहींडरता, ऐसे राजाको शीघ्रही राज्यभ्रष्ट होना पडताहै और सबहीकोई उसे तृणकी स

और नरकमें जाता हुआ देखें ॥ १३ ॥ रे नीचकुलमें उत्पन्न हुए! तू भली भांतिसे यत्न करके हमारे ऊपर प्रहार कर, किन्तु आज हम निश्चयही तालफलके समान तेरा शिर काटकर गिरादेंगे ॥ १४ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा तब क्रोधके वश होकर खरके दोनों नेत्र लालहो आये और क्रोधके मारे ज्ञान रहितहो खर हँसते २ श्रीरामचंद्रजीसे बोला ॥ १५ ॥ रेदशरथकुमार! समरमें साधारण राक्षसोंको मार वास्तवमें प्रशंसित न होनेंपरभी तुम आपही किस प्रकारसे अपनीही प्रशंसा करतेहो ॥ १६ ॥ बलवान् पराक्रमशाली नरगण तेजके मारे गर्वित होकर किसी समयभी अपनी प्रशंसा नहीं किया करते ॥ १७ ॥ जिनका चित्त शुद्ध नहींहै, ओछा स्वभावहै ऐसे क्षत्रियोंमें अधम लोगही

प्रहरस्वयथाकामंकुरुयत्नंकुलाधम ॥ अद्यतेपातयिष्यामिशिरस्तालफलंयथा ॥ १४ ॥ एवमुक्तस्तुरामेणक्रुद्धःसंरक्तलोचनः ॥ प्रत्युवाचततोरामंप्रहसन्क्रोधमूर्छितः ॥ १५ ॥ प्राकृतान्राक्षसान्हत्वायुद्धेदशरथात्मज ॥ आत्मना कथमात्मानमप्रशस्यंप्रशंससि ॥ १६ ॥ विक्रांताबलवंतोवायेभवंतिनरर्षभाः ॥ कथयंतिनतेकिंचित्तेजसाचातिगर्विताः ॥ १७ ॥ प्राकृतास्त्वकृतात्मानोलोकेक्षत्रियपांसनाः ॥ निरर्थकंविकत्थंतेतथारामविकत्थसे ॥ १८ ॥ कुलंव्यपदिशन्वीरःसमरेकोभिधास्यति ॥ मृत्युकालेतुसंप्राप्तेस्वयमप्रस्तुवेस्तवम् ॥ १९ ॥ सर्वथातुलघुत्वंतेकत्थनेनविदर्शितम् ॥ सुवर्णप्रतिरूपेणतप्तेनेवकुशाग्निना ॥ २० ॥ नतुमामिहतिष्ठंतंपश्यसित्वंगदाधरम् ॥ धराधरमिवाकंप्यंपर्वतंधातुभिश्चितम् ॥ २१ ॥ पर्याप्तोहंगदापाणिर्हंतुंप्राणान्रणेतव ॥ त्रयाणामपिलोकानांपाशहस्तइवांतकः ॥ २२ ॥

तुम्हारी समान निरर्थक गर्व प्रगट किया करते हैं ॥ १८ ॥ मृत्यु समयके निकट आजानेंपर कौन वीर अपनें वंशका परिचय देकर प्रशंसाके अयोग्य विषयमें अपनी प्रशंसा करताहै ॥ १९ ॥ जिस प्रकार आग अपने तापसे सुवर्णकी समान पीतलकी अधमताई प्रगट करतीहै वैसेही तुमनें जो अपनी प्रशंसा की इस्से तुम्हारा ओछापनही प्रगट हुआ ॥ २० ॥ तुम क्या गदा धारण किये हुए समरमें टिके देखकर विविध धातुओंके आकार धराधर पर्वतकी समान हमको अकम्पनीय नहीं समझतेहो॥२१॥हम लीलासेही गदा हाथमें लेकर समरमें पाशधारी यमराजकी समान

शूर्पणखा मंत्रियोंकी सभाके बीचमें अनेक प्रकारके कटुवचन कहरहीहै यह देखकर रावणने क्रोधित होकर पूछा ॥ १ ॥ राम कौनहै? उन
का वीर्य, रूप और पराक्रम कैसाहै? वह किस कारणसे इस दुस्तर दंडकारण्यमें आयेहैं? ॥ २॥ उन्होंनें जिनसें कि खर दूषण और त्रिशिरा आदि
राक्षसोंको युद्धमें मार डाला वह उन रामचंद्रके आयुध कैसेहैं? ॥ ३ ॥हे मनोहर शरीरवाली! तुमको किसनें विरूप कर दिया? सब यथार्थही
कहो। जब राक्षसराज रावणनें इस प्रकारसे कहा तब राक्षसी क्रोधसे मूर्च्छितहो ॥ ४ ॥ जैसेका तैसा ठीक २ श्रीरामचंद्रजीका वृत्तान्त कहनें
लगी। उसनें कहा रामचंद्र दशरथके पुत्र कामदेवकी समान रूपवान् दीर्घबाहु और विशाल नेत्र, वल्कल व मृगचर्म धारण किये हुए ॥५ ॥ उनका

ततःशूर्पणखांदृष्ट्वाब्रुवतींपरुषंवचः ॥ अमात्यमध्येसंक्रुद्धःपरिपप्रच्छरावणः ॥ १ ॥ कश्चरामःकथंवीर्यःकिंरूपःकिं
पराक्रमः ॥ किमर्थंदंडकारण्यंप्रविष्टश्चसुदुस्तरम् ॥ २ ॥ आयुधंकिंचरामस्ययेनतेराक्षसाहताः ॥ खरश्चनिहतः
संख्येदूषणस्त्रिशिरास्तथा ॥ ३ ॥ तत्त्वंब्रूहिमनोज्ञांगिकेनत्वंचविरूपिता ॥ इत्युक्ताराक्षसेंद्रेणराक्षसीक्रोधमूर्च्छि
ता ॥ ४ ॥ ततोरामंयथान्यायमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ दीर्घबाहुर्विशालाक्षश्चीरकृष्णाजिनांबरः ॥ ५ ॥ कंदर्पसमरूप
श्चरामोदशरथात्मजः ॥ शक्रचापनिभंचापंविकृष्यकनकांगदम् ॥ ६ ॥ दीप्तान्क्षिपतिनाराचान्सर्पानिवमहाविषा
न् ॥ नाददानंशरान्घोरान्विमुंचंतंमहाबलम् ॥ ७ ॥ नकार्मुकंविकर्षंतंरामंपश्यामिसंयुगे ॥ हन्यमानंतुतत्सैन्यं
पश्यामिशरवृष्टिभिः ॥ ८ ॥ इंद्रेणेवोत्तमंसस्यमाहतंत्वश्मवृष्टिभिः ॥ रक्षसांभीमवीर्याणांसहस्राणिचतुर्दश ॥ ९ ॥
निहतानिशरैस्तीक्ष्णैस्तेनैकेनपदातिना ॥ अर्धाधिकमुहूर्तेनखरश्चसहदूषणः ॥ १० ॥

धनुष इन्द्रके धनुषकी समानहै उसमें सुवर्णके बंद लगेहैं उस धनुषको खेंचकर ॥ ६ ॥ तेज विषवाले सर्पोंकी समान प्रतीप नाराच रामचंद्र छो
डतेहैं यह हमनें नहीं देखा ॥ ७ ॥ और धनुषको किस समयमें खैंचतेहैं यहभी हमनें नहीं देखा केवल इतनाही देखाहै कि बाण वर्षा करके वह संग्रा
ममें राक्षसोंका संहार करतेथे ॥ ८ ॥ जैसे इन्द्र अकालमें ओले वर्षाकर श्रेष्ठ अन्नका नाश कर देतेहैं इसी प्रकार भयंकर वीर्यवान् १४००० हजार
राक्षसोंको ॥ ९ ॥ तीक्ष्ण बाणोंके प्रहारसे अकेले पैदल रामचंद्रजीनें मार डाला। केवल आधेही मुहूर्त्तमें खरको दूषणके सहित संहार कर॥१०॥

अपना सब बल दिखाया तुम हम करके हीन बल होकर वृथा क्यों गर्जना करतेहो ॥ २ ॥ तुम केवल निरर्थक बकवाद करनेमें समर्थहो ! तुम्हारी गदानें हमारे बाणोंसे टुकडे २ होकर पृथ्वीमें गिरकर तुम्हारे विश्वासको नष्ट किया ॥ ३॥ और तुमने जो कहाथा कि मरे हुए राक्षसोंके स्त्री पु त्रादिकोंके आंसू पोंछेंगे; सो तुम्हारी यह बातभी मिथ्याहुई ॥ ४ ॥ और गरुडजीनें जिस प्रकार अमृत हरण कियाथा इस समय हमभी वैसेही नीच, ओछे स्वभाववाले झूंठी प्रतिज्ञा करनेवाले तुम जो हो सो तुम्हारा प्राण हरण करेंगे ॥ ५ ॥ आज हमारे बाणों करके विदारित होनेसे जब तुम्हारा शिर कट जायगा, तब पृथ्वी तुम्हारे गलेका झाग सहित रुधिर पान करैगी ॥ ६ ॥ आज तुम शिथिलहो गिरेहुए दोनों हाथोंसे सर्वांगमें

एषाबाणविनिर्भिन्नागदाभूमितलंगता ॥ अभिधानप्रगल्भस्यतवप्रत्ययघातिनी ॥ ३ ॥ यत्त्वयोक्तंविनष्टानामिद मश्रुप्रमार्जनम् ॥ राक्षसानांकरोमीतिमिथ्यातदपितेवचः ॥ ४ ॥ नीचस्यक्षुद्रशीलस्यमिथ्यावृत्तस्यरक्षसः ॥ प्राणानपहरिष्यामिगरुत्मानमृतंयथा ॥ ५ ॥ अद्यतेभिन्नकंठस्यफेनबुद्बुदभूषितम् ॥ विदारितस्यमद्बाणैर्मही पास्यतिशोणितम् ॥ ६ ॥ पांसुरूषितसर्वांगःस्रस्तन्यस्तभुजद्वयः ॥ स्वप्स्यसेगांसमाश्लिष्यदुर्लभांप्रमदामिव ॥ ७॥ प्रवृद्धनिद्रेशयितेत्वयिराक्षसपांसने॥भविष्यतिशरण्यानांशरण्यादंडकाइमे ॥८॥जनस्थानेहतस्थानेतवराक्षसमच्छ रैः॥ निर्भयाविचरिष्यंतिसर्वतोमुनयोवने ॥ ९॥ अद्यविप्रसरिष्यंतिराक्षस्योहतबांधवाः ॥ बाष्पार्द्रवदनादीनाभया दन्यभयावहाः॥१०॥अद्यशोकरसज्ञास्ताभविष्यंतिनिरर्थिकाः ॥ अनुरूपकुलाःपत्न्योयासांत्वंपतिरीदृशः ॥ ११ ॥

रुधिर लगाये हुए दुर्लभस्त्रीके समान पृथ्वीको चिपटाकर शयनकरोगे ॥ ७ ॥ रे राक्षसकुलका नाश करनेंवाले! यह दंडकवन सब लो कोंका आश्रय स्वरूप ऋषिगणोंका आश्रय हो जायगा ॥ ८ ॥ रे राक्षस! मेरे बाण समूहकरके जनस्थान राक्षसशून्य होनेंसे मुनिगण निर्भय हो कर सब प्रकारसे वनमें निर्भय होकर घूमेंगे ॥ ९ ॥ भयंकरी सब राक्षसीयें आज बन्धु बान्धवोंके मारे जानेसे रुदन करती हुई हमारे भयसे आज जनस्थानसे भाग जांयगी ॥ १० ॥ तुम जिनके पतिहो सो वह तुम्हारेही समान वंशकी पतियें आज शोकरसके मर्मको जानकर हीनवी

हर्षमें भर कर भेंटे वह पुरुष समस्त प्राणी क्या, वरन इन्द्रसेभी अधिकसुखसे जीवन बिताताहै ॥ १९ ॥ सीताके सबही अंग सब लोकोंके प्रशंसा करनेंके योग्यहैं और पृथ्वीमें उसका रूप अतुलनीयहै। वह सुशीला तुम्हारेही लायक भार्याहै, और तुम उसकेही अनुरूप पतिहो ॥ २० ॥ उसके दोनों पयोधर ऊंचेहैं. जंघा अति विशालहैं और मुखमंडल अतिश्रेष्ठहै उसको हम सोच विचार कर तुम्हारी स्त्री होनेंके योग्य जान लैनें गईथीं ॥ २१ ॥ हे महाभुज! सो इस कार्यको करतेही हुए क्रूर लक्ष्मणनें हमारे नाक कान काट डाले उस पूर्णचन्द्रमुखवाली विदेहकुमारीको देखतेही ॥ २२ ॥ तुम फूलबाणधारीके पुष्प बाणोंका निशाना बनोगे, यदि उसको अपनी स्त्री बनानेंका तुम्हारा आशय होतो शीघ्रही

सासुशीलावपुःश्लाघ्यारूपेणाप्रतिमाभुवि ॥ तवानुरूपाभार्यासात्वंचतस्याःपतिर्वरः ॥ २० ॥तांतुविस्तीर्णजघनांपीनोत्तुंगपयोधराम् ॥ भार्यार्थेतुतवानेतुमुद्यताहंवराननाम् ॥ २१ ॥ विरूपितास्मिक्रूरेणलक्ष्मणेनमहाभुज ॥ तांतुदृष्ट्वाद्यवैदेहींपूर्णचंद्रनिभाननाम् ॥ २२ ॥ मन्मथस्यशराणांचत्वंविधेयोभविष्यसि ॥ यदितस्यामभिप्रायोभार्यात्वे तवजायते ॥ शीघ्रमुद्ध्रियतांपादोजयार्थमिहदक्षिणः ॥ २३ ॥ रोचतेयदितेवाक्यंममैतद्राक्षसेश्वर ॥ क्रियतांनिर्विशंकेनवचनंममरावण ॥ २४ ॥ विज्ञायैषामशक्तिंचक्रियतांचमहाबल ॥ सीतातवानवद्यांगीभार्यात्वेराक्षसेश्वर ॥ २५ ॥ निशम्यरामेणशरैरजिह्मगैर्हतान्जनस्थानगतान्निशाचरान् ॥ खरंचदृष्ट्वानिहतंचदूषणंत्वमद्यकृत्यंप्रतिपत्तुमर्हसि २६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेचतुस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३४ ॥ ॥ ७ ॥

रामचंद्रके जीतनेंको दहिना चरण आगे धरकर चलो ॥ २३ ॥ राक्षसराज रावण! हमारा यह वचन यदि तुम्हें रुचाहो, तो जो हमनें कहा उसको चित्तसे शंका त्यागकर करो ॥ २४ ॥ हे महाबल! तुम उनको असमर्थ और अपनेंको समर्थ जानकर इस सर्वाङ्गसुन्दरी सीताको स्त्री बनानें में यत्नवान होवो ॥ २५ ॥ रामचंद्रनें सीधे चलनेंवाले बाणोंसे समस्त उन जनस्थानवासी राक्षसोंको खर व दूषणके सहित मार डालाहै यह सुनकर अब जो कुछ कर्त्तव्यहो सो करो ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

निकलनें लगा, उन्होंनें हजार बाणोंसे खरके अंगको छिन्न भिन्नकर डाला ॥ २० ॥ पर्वतके झरनेंसे जिसप्रकार पानीकी धारा निकलती रह तीहै, वैसेही खरकी देहमें जो बाण लगनेके कारण छिद्र होगयेथे, उनसे रुधिर गिरनें लगा ॥ २१ ॥ खर श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे व्याकुलहो और रुधिर गन्धसे मतवाला होकर श्रीरामचंद्रजीके सामने बहुत शीघ्रतासे धाया ॥ २२ ॥ यह रुधिरसे डुबाहुआ और अतिशय क्रोधाविष्ट होकर इसप्रकारसे दौडा कि कृतास्त्र श्रीरामचंद्रजी शीघ्रतासे दो तीन परग पीछेको हटगये ॥ २३ ॥ इसके पीछे श्रीरामचंद्रजीनें खरके मारडा लनेंके लिये दूसरे ब्रह्मदंडकीसमान अग्निसमान बाण ग्रहणकिया ॥ २४ ॥ धीमान् देवराज इन्द्रजीनें यह बाण श्रीरामचंद्रजीको दियाथा धर्मात्मा

तस्यबाणांतराद्रक्तंबहुसुस्रावफेनिलम्॥गिरेःप्रस्रवणस्येवधाराणांचपरिस्रवः २१॥विकलःसकृतोबाणैःखरोरामेणसंयुगे॥मत्तोरुधिरगंधेनतमेवाभ्यद्रवद्द्रुतम् ॥२२॥ तमापतंतंसंक्रुद्धंकृतास्त्रोरुधिराप्लुतम्॥अपासर्पद्द्वित्रिपदंकिंचित्त्वरितविक्रमः ॥ २३ ॥ ततःपावकसंकाशंवधायसमरेशरम् ॥ खरस्यरामोजग्राहब्रह्मदंडमिवापरम् ॥ २४ ॥ सतद्दत्तंमघवतासुरराजेनधीमता ॥ संदधेचसधर्मात्मामुमोचचखरंप्रति ॥ २५॥ सविमुक्तोमहाबाणोनिर्घातसमनिःस्वनः ॥ रामेणधनुरायम्यखरस्योरसिचापतत् ॥ २६ ॥ सपपातखरोभूमौदह्यमानःशराग्निना ॥ रुद्रेणेवविनिर्दग्धःश्वेतारण्येयथांधकः ॥ २७ ॥ सवृत्रइववज्रेणफेनेननमुचिर्यथा ॥ बलोवेंद्राशनिहतोनिपपातहतःखरः ॥ २८ ॥

श्रीरामचंद्रजीनें वही बाण धनुषपर चढाकर खरके ऊपर छोड़ा ॥२५ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें धनुषको खैंचकर वह महाबाण छोडा, तब वह बाण वज्रकोसमान शब्द करताहुआ खरकी छातीमें लगा ॥ २६ ॥ खर उस बाणकी अग्निसे भस्महोकर, श्वेतारण्यमें रुद्रकरके भस्महुए अंधकासुरकी समान पृथ्वीमें गिरपडा ॥ २७ ॥ वृत्रासुर जिसप्रकार वज्रसे, नमुचि जिसप्रकार फेनसे, और बलासुर जिसप्रकार इन्द्रके वज्रसे हत

१ कावेरीनदीके किनारे श्वेतारण्यमें एक श्वेत नाम राजर्षि तप करतेथे तब अन्धकासुर उन्हे मारनेको धाया उस समय शिवजीनें लात मारकर उस राक्षसका संहार किया ॥ २ बृहस्पतिजीके रूठ जानेपर जब इन्द्रने विश्वरूपको पुरोहित किया तब इन्द्रनें गुप्त रूपसे दैत्योंके निमित्त उसे आहुति देते देख मारडाला विश्वरूपके मरनेपर उसके पिताने यज्ञ कुंडसे वृत्रासुरको उत्पन्न किया बडा युद्ध इंद्रके साथ हुआ तब इन्द्रनें दधीच ऋषिसे उनकी जांघका हाड मांग वज्र बनाय उस्से वृत्रासुरका संहार किया ॥ ३ नमुचि दैत्यको ब्रह्माजीका वरदानथा तुम गीले सूखे किसी प्रकारके आयुधसे न मरोगे तब इन्द्रने वज्रमें फेन लपेटकर मारा जो गीलासूखा नहींथा ॥

योंके हनन करनेंको यह रावण साक्षात् दश कँगूरों करकै युक्त पर्वतराजसा दिखाई देताथा ॥ ९ ॥ वह रावण उस यथेच्छाचारी विमान पर चढकर ऐसा शोभित हुआ मानों सौदामिनीके संग घन श्याम बगलोंकीपांतिके साथ गगन मंडलमें जाताहै ॥ १० ॥ रावण चलते २ समुद्रके तीरपर पहुंचा, बीचमें उसनें बहुतसे पर्वत व समुद्रकी तलैटीकेदेश देखे वह स्थान अनेक प्रकारके पुष्प फल और वृक्षोंसे शोभायमानथे ॥ ११ ॥ शीतल मंगल जल युक्त तलैयां वहांपर थीं. वेदी युक्त और बडे २ आश्रमोंसे वह देश अलंकृतथा ॥ १२ ॥ केलेका वन चारो ओर लगा, नारियलके पेड़ अलगही लह लहा रहेथे, और शाल ताल तमालादि नाना जातिके पुष्पित वृक्ष लगेथे ॥ १३ ॥ वह स्थान, जो सदा

कामगंरथमास्थायशुशुभेराक्षसाधिपः ॥ विद्युन्मंडलवान्मेघःसबलाकइवांबरे ॥ १० ॥ सशैलसागरानूपंवीर्यवानवलोकयन् ॥ नानापुष्पफलैर्वृक्षैरनुकीर्णंसहस्रशः ॥ ११ ॥ शीतमंगलतोयाभिःपद्मिनीभिःसमंततः ॥ विशालैराश्रमपदैर्वेदिमद्भिरलंकृतम् ॥ १२ ॥ कदल्यटविसंशोभंनालिकेरोपशोभितम् ॥ सालैस्तालैस्तमालैश्चतरुभिश्चसुपुष्पितैः ॥ १३ ॥ अत्यंतनियताहारैःशोभितंपरमर्षिभिः ॥ नागैःसुपर्णैर्गंधर्वैःकिन्नरैश्चसहस्रशः ॥ १४ ॥ जितकामैश्चसिद्धैश्चचारणैश्चोपशोभितम् ॥ आजैर्वैखानसैर्माषैर्वालखिल्यैर्मरीचिपैः ॥ १५ ॥ दिव्याभरणमाल्याभिर्दिव्यरूपाभिरावृतम् ॥ क्रीडारतविधिज्ञाभिरप्सरोभिःसहस्रशः ॥ १६ ॥ सेवितंदेवपत्नीभिःश्रीमतीभिरुपासितम् ॥ देवदानवसंघैश्चचरितंत्वमृताशिभिः ॥ १७ ॥

नियमित भोजनमें मग्न रहते ऐसे परमर्षियोंसे शोभायमानथा, नाग, गरुड, गन्धर्व और सहस्रों किन्नरभी वहांपर थे ॥ १४ ॥ और कामदेवको जिन्होंनें जीत रक्खाहै, ऐसे सिद्ध और चारण गणभी उस स्थानमें शोभित हो रहेथे, आज्य, धूम्र, वैखानस, साख, वालखिल्य, मरीचिआदि ॥ १५ ॥ दिव्य वस्त्राभूपण दिव्य माला, और दिव्य रूप स्त्रियों के संग घूम रहेथे । क्रीडा व रतिकी विधि जाननेंवाली हजारों अप्सराओंके साथ सिद्धगण विहार करतेथे॥१६॥देवोंकी श्रीसम्पन्न स्त्रियांभी घूमरहीथीं.अमृत पीनेंवाले देव दानवोंके समूह भी इधर उधर फिरतेथे१७

अब महर्षिलोग दंडकारण्यमें अपना२ धर्म स्वच्छन्द हो करेंगे । मुनिगण इतना कहही रहेथे कि इतनेमें वीर लक्ष्मणजी सीताजीके सहित ॥ ३७ ॥ गिरिगुहासे सुख सहित बाहर आकर अपनें आश्रममें प्रवेश करते हुए इसके पीछे विजयी श्रीरामचंद्रजी महर्षियों करके पूजित होकर ॥ ३८॥ और लक्ष्मणजीसेभी पूजितहो अपनें आश्रममें आगमन करतेहुए तिन महर्षियोंके आनंद बढानेवाले शत्रुओंके दमन करनेंवाले श्रीरामचंद्रजीको देख ॥ ३९ ॥ श्रीजानकीजी प्रसन्न हुईं; और अपनें पति श्रीरामचंद्रजीसे अति प्रेम पूर्वक मिलीं, और फिर राक्षसोंको मरे हुए देख॥४०॥

स्वधर्मंप्रचरिष्यंतिदंडकेषुमहर्षयः॥ एतस्मिन्नंतरेवीरोलक्ष्मणःसहसीतया॥ ३७॥ गिरिदुर्गाद्विनिष्क्रम्यसंविवेशाश्रमेसुखी॥ ततोरामस्तुविजयीपूज्यमानोमहर्षिभिः॥ ३८॥ प्रविवेशाश्रमंवीरोलक्ष्मणेनाभिपूजितः॥ तंदृष्ट्वाशत्रुहंतारंमहर्षीणांसुखावहम्॥ ३९॥ बभूवहृष्टावैदेहीभर्तारंपरिषस्वजे॥ मुदापरमयायुक्तादृष्ट्वारक्षोगणान्हतान्॥ ४०॥ रामंचैवाव्ययंदृष्ट्वातुतोषजनकात्मजा॥ ४१॥ ततस्तुतंराक्षससंघमर्दनंसंपूज्यमानंमुदितैर्महात्मभिः॥ पुनःपरिष्वज्यमुदान्वितानना बभूवहृष्टाजनकात्मजातदा॥ ४२॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आर० त्रिंशःसर्गः॥ ३०॥

त्वरमाणस्ततोगत्वाजनस्थानादकंपनः॥ प्रविश्यलंकांवेगेनरावणंवाक्यमब्रवीत्॥ १॥ जनस्थानस्थिताराजन्राक्षसाबहवोहताः॥ खरश्चनिहतःसंख्येकथंचिदहमागतः॥ २॥

व श्रीरामचंद्रजीको समस्तही निरापद देखकर श्रीजानकीजी अति संतोषको प्राप्त हुईं ॥ ४१ ॥ अनन्तर सुकुमारी जनकदुलारी परम प्रेम और हर्षमें भरकर राक्षसकुलके संहार करनेंवाले श्रीरामचंद्रजीसे फिर मिलीं और महात्मा ऋषिगण प्रफुल्लित होकर अनेक २ प्रकारसे श्रीरामचंद्रजीकी पूजा करनेंलगे ॥ ४२ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० आर० त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥खर दूषण त्रिशिरा आदि राक्षसोंके मारेजानेंपर अकम्पन नामक राक्षस शीघ्रतासे जनस्थानसे पलायन कर लंकामें जाकर रावणसे कहनें लगा ॥ १ ॥ हे राजन् ! जनस्थानवासी अनेक राक्षस संग्राममें मारे

सिन्धु राजका अनूप किनारा देखा,वह देखनेमें स्वर्गकेही सम तुल्य था, वहां पर सबओरसे मुनियों करके सेवित मेघ सम श्याम एक वरगदका वृक्ष देखा२७उसकी समस्त शाखा चारों ओर शत योजनके घेरमें फैल रहीथीं जहांपर वडे शरीर वाले हाथी और कछुएको२८गरुडजी भोजन करनेंके लिये, इस पेडकी एक शाखा पर बैठेथे पक्षियोंके स्वामी गरुडजीनें मारे वोझके उसकी एक डाली ॥ २९ ॥ जिसमें वहुत पत्र लगेथे तोड डाली उसी शाखाका आश्रय कर वैखानस, माष,मरीचिपायी,वालखिल्य॥३०॥और धूम्राख्य परमर्षिगण मिलकर तपस्या कर रहेथे। धर्मात्मा गरुडजी

अनूपेसिंधुराजस्यददर्शत्रिदिवोपमम् ॥ तत्रापश्यत्समेघाभंन्यग्रोधंमुनिभिर्वृतम्॥ २७ ॥ समंताद्यस्यताःशाखाः शतयोजनमायताः॥ यस्यहस्तिनमादायमहाकायंचकच्छपम्॥ २८ ॥ भक्षार्थंगरुडःशाखामाजगाममहाबलः॥ तस्यतांसहसाशाखांभारेणपतगोत्तमः ॥ २९ ॥ सुपर्णःपर्णबहुलांबभंजाथमहाबलः ॥ तत्रवैखानसामाषावालखिल्यामरीचिपाः ॥ ३० ॥ आजाबभूवुर्धूम्राश्चसंगताःपरमर्षयः॥ तेषांदयार्थंगरुडस्तांशाखांशतयोजनम्॥ ३१ ॥ भग्नामादायवेगेनतौचोभौगजकच्छपौ॥ एकपादेनधर्मात्माभक्षयित्वातदामिषम् ॥ ३२ ॥ निषादविषयंहत्वाशाखयापतगोत्तमः ॥ प्रहर्षमतुलंलेभेमोक्षयित्वामहामुनीन् ॥ ३३ ॥ सतुतेनप्रहर्षेणद्विगुणीकृतविक्रमः॥ अमृतानयनार्थंवैचकारमतिमान्मतिम् ॥ ३४ ॥ अयोजालानिनिर्मथ्यभित्त्वारत्नगृहंवरम् ॥ महेंद्रभवनाद्गुप्तमाजहारामृतंततः ॥ ३५ ॥ तंमहर्षिगणैर्जुष्टंसुपर्णकृतलक्षणम्॥ नाम्नासुभद्रंन्यग्रोधंददर्शधनदानुजः ॥ ३६ ॥

उन ऋषियोंके प्रति दया करके एक पैरसेही उस शत योजनकी ॥ ३१ ॥टूटी हुई शाखाको पकड दूसरे पैरसे गज कच्छपको दबाय महात्मा गरुडनें उनका मांस खाकर ॥ ३२॥ उस टूटी हुई शाखाकी सहायसे समस्तनिषाद देशको नाश कर दिया इस प्रकार मुनि गणोंको वचाकर गरुडजी परम हर्षित हुएथे ॥ ३३॥ अनन्तर उस हर्षके वशहो गरुडजीका विक्रम दूना वढ गया तौ इस कारण मतिमान गरुडजी अमृतके लानेंका विचार करते हुए ॥ ३४ ॥ और लोहेके जालको तोड ताड रत्नमय श्रेष्ठ गृह फोड फाड महेन्द्र भवनसे अमृतले आये ॥ ३५॥ सो इस समय कुबेरका

भूपितहै युवा अवस्था आरहीहै उसके सब अंग बराबरहैं कोई बड़ा छोटा नहींहै ॥ २९॥ न देवी, न देवता, न गन्धर्वी, न अप्सरा, न पन्नगी कोईभी उसकी तुल्यता नहीं करसकती फिर मनुष्यकी स्त्री किस भांति उनकेसमान होसकतीहैं ॥ ३० ॥ सो अब महावनमें जाकर किसी प्रकार छल बल चतुराईसे उनकी वह स्त्री हर लीजिये जब उनकी स्त्री हरी जायगी तब राम न बचेंगे वरन अवश्यही मर जांयगे ॥ ३१ ॥ यह बात महाबाहु, राक्षसराज रावणके मनको भाई । वह सोच विचार, करके अकम्पनसे बोला ॥ ३२ ॥ कि अच्छा ! हम अकेले सारथीके साथ वहां जांयगे, और जानकीको हर्ष सहित इस लंकापुरीमें लावैंगे ॥ ३३ ॥ इस प्रकार कह कर राक्षसराज रावण सूर्यकी समान प्रभावाले रथपर

नैवदेवीनगंधर्वीनाप्सरानचपन्नगी ॥ तुल्यासीभंतिनीतस्यमानुषीतुकुतोभवेत् ॥ ३० ॥ तस्यापहरभार्यांत्वंतंप्रम
थ्यमहावने ॥ सीतयारहितोरामोनचैवहिभविष्यति ॥ ३१ ॥ अरोचयततद्वाक्यंरावणोराक्षसाधिपः ॥ चिंतयि
त्वामहाबाहुरकंपनमुवाचह ॥ ३२ ॥ बाढंकल्यंगमिष्यामिएकःसारथिनासह ॥ आनेष्यामिचवैदेहीमिमांहृष्टो
महापुरीम् ॥ ३३ ॥ तदेवमुक्त्वाप्रययौखरयुक्तेनरावणः ॥ रथेनादित्यवर्णेनदिशःसर्वाःप्रकाशयन् ॥ ३४ ॥ सर
थोराक्षसेंद्रस्यनक्षत्रपथगोमहान् ॥ चंचूर्यमाणःशुशुभेजलदेचंद्रमाइव ॥ ३५ ॥ सदूरेचाश्रमंगत्वाताटकेयमुपाग
मत् ॥ मारीचेनार्चितोराजाभक्ष्यभोज्यैरमानुषैः ॥ ३६ ॥ तंस्वयंपूजयित्वातुआसनेनोदकेनच ॥ अर्थोपहितया
वाचामारीचोवाक्यमब्रवीत् ॥ ३७ ॥

जिसमें खचड़ जुतेथे सवारहो समस्त दिशा विदिशाओंको प्रकाशित करताहुआ चला ॥ ३४ ॥ राक्षसेन्द्रका वह रथ तारागणोंके मार्गमें वेगसे भराहुआ चलनेंके कारण मेघमंडलमें चंद्रमाकी समान शोभाविस्तार करता हुआ ॥ ३५ ॥ इसके पीछे रावण बहुत दूर चलकर ताडकाके पुत्र मारीचके स्थानपर पहुंचा मारीचनें विविध प्रकारके खानें पीनेंके पदार्थोंसे रावण राक्षसनाथकी पूजाकी । वह पदार्थ मनुष्योंके भक्षण करनेंके अयोग्यथे ॥ ३६ ॥ जब मारीच इस प्रकार आसन, जल, और खानें पीनेंकी वस्तुओंसे रावणकी पूजा कर चुका

जानतेहीहो ॥ २ ॥ मांसका खानें वाला राक्षस त्रिशिरा व औरभी बहुतनिशाचर गण युद्धमें उत्साही व शूरवीर ॥ ३ ॥ मेरी आज्ञा पालन करते हुए वहां वसा करतेथे। वह सब निशाचर गण महावनमें धर्मचारीऋषियोंके अनुष्ठानमें सदाही बाधा दिया करतेथे ॥ ४ ॥ इन सब राक्षसोंकी संख्या १४००० चौदह हजारथी । वह सबही भयंकर कर्मकरनेंवाले, शूर युद्धमें उत्साही और खरके चित्तके अनुसार कार्य करनें वालेथे ॥ ५ ॥ इस समय जनस्थानके रहनेवाले महाबलवान खरइत्यादि राक्षस युद्धमें रामचंद्रके साथ ॥ ६ ॥ विविध भांतिके अस्त्र शस्त्र धारण करके व दुर्भेद्यकवच बांधकर युद्धमें भिडेथे तब रामचंद्रनें महाक्रोध करके ॥७॥ कुछभी कठोर वचन न कहकर धनुष पर बाण चढाय

त्रिशिराश्चमहाबाहूराक्षसःपिशिताशनः ॥ अन्येचबहवःशूरालब्धलक्षानिशाचराः ॥ ३ ॥ वसंतिमन्नियोगेनअधिवासंचराक्षसाः ॥ बाधमानामहारण्येमुनीन्येधर्मचारिणः ॥ ४ ॥ चतुर्दशसहस्राणिरक्षसांभीमकर्मणाम् ॥ शूराणांलब्धलक्षाणांखरचित्तानुवर्तिनाम् ॥ ५ ॥ तेत्विदानींजनस्थानेवसमानामहाबलाः ॥ संगताःपरमायत्तारामेणसहसंयुगे ॥ ६ ॥ नानाशस्त्रप्रहरणाःखरप्रमुखराक्षसाः ॥ तेनसंजातरोषेणरामेणरणमूर्धनि ॥ ७ ॥ अनुक्त्वापरुषंकिंचिच्छरैर्व्यापारितंधनुः ॥ चतुर्दशसहस्राणिरक्षसामुग्रतेजसाम् ॥ ८ ॥ निहतानिशरैर्दीप्तैर्मानुषेणपदातिना ॥ खरश्चनिहतःसंख्येदूषणश्चनिपातितः ॥ ९ ॥ हत्वात्रिशिरसंचापिनिर्भयादंडकाःकृताः ॥ पित्रानिरस्तःक्रुद्धेनसभार्यःक्षीणजीवितः ॥ १० ॥ सहंतातस्यसैन्यस्यरामःक्षत्रियपांसनः ॥ अशीलःकर्कशस्तीक्ष्णोमूर्खोलुब्धोऽजितेंद्रियः ॥ ११ ॥ त्यक्तधर्मात्वधर्मात्माभूतानामहितेरतः ॥ येनवैरंविनारण्येसत्वमास्थायकेवलम् ॥ १२ ॥

उनको छोड चौदह हजार उग्रतेजवान राक्षसोंको ॥ ८ ॥ मनुष्यका अवतार लिये रामचंद्रनें खर व दूषण सहित सबको संग्राममें तीक्ष्ण दीप्तिवान नाराचोंसें संहार किया ॥ ९ ॥ और त्रिशिराकोभी मार दंडकवनको अभय करदिया। उस रामचंद्रका चाल चलनभी ठीक नहीं मालूम होता क्योंकि उसके पितानें उसको निर्लज्ज जानकर स्त्री सहित घरसे निकाल दियाहै ॥ १० ॥ वही दुःशील, कर्कश, तीक्ष्ण, मूर्ख, लोभी अविजितेंद्रिय, क्षत्रियकुल कलंक रामचंद्र इस राक्षसोंकी सेनाका मार डालनेवालाहै ॥ ११ ॥ जो धर्मका त्याग और अधर्मका आश्रय करके सदाही

और उसके सब अंगभी देवताओं करके शस्त्रद्वारा घायल हुएहैं किसीसे चलायमान नहींहों ऐसे समुद्रोंकोभी खलबलानेंको जिसमें विशेष सामथ्य है, और शीघ्रही सब कार्य करनेंवाला ॥११॥ पर्वतोंके कंगूरोंको उखाडडालनेंवाला देवताओंका मर्दन करनेंवाला सबधर्मोंका जडसे उखा डनेंवाला पराई पतिव्रता स्त्रियोंका सत्य हरणकारी ॥ १२ ॥ दिव्यास्त्रोंका प्रयोजककारी और सर्व यज्ञ विघ्नकारी, भोगवती नगरीमें जाय नागराज वासुकिको जीत ॥ १३ ॥ तक्षक नामक सर्पको पराजयकरता हुआ उसकी प्रियस्त्रीको हरण करनेवाला कैलासपर्वतपर गमन करके नरवाहन कुबेरको जीतनेवाला ॥ १४ ॥ और उसका मनइच्छासे चलनेवाला पुष्पक विमान हरण करनेवाला, चैत्ररथ नामक

अहतांगैःसमस्तैस्तंदेवप्रहरणैस्तदा ॥ अक्षोभ्याणांसमुद्राणांक्षोभणंक्षिप्रकारिणम् ॥ ११ ॥ क्षेप्तारंपर्वताग्राणांसुरा
णांचप्रमर्दनम् ॥ उच्छेत्तारंचधर्माणांपरदाराभिमर्शनम् ॥ १२ ॥ सर्वदिव्यास्त्रयोक्तारंयज्ञविघ्नकरंसदा ॥ पुरींभो
गवतींगत्वापराजित्यचवासुकिम् ॥ १३ ॥ तक्षकस्यप्रियांभार्यांपराजित्यजहाररयः ॥ कैलासंपर्वतंगत्वाविजित्य
नरवाहनम् ॥ १४ ॥ विमानंपुष्पकंतस्यकामगंवैजहाररयः ॥ वनंचैत्ररथंदिव्यंनलिनींनंदनंवनम् ॥ १५ ॥
विनाशयतियःक्रोधाद्देवोद्यानानिवीर्यवान् ॥ चंद्रसूर्योमहाभागावुत्तिष्ठंतौपरंतपौ ॥ १६ ॥ निवारयतिबाहुभ्यां
यःशैलशिखरोपमः ॥ दशवर्षसहस्राणितपस्तप्त्वामहावने ॥ १७॥ पुरास्वयंभुवेधीरःशिरांस्युपजहाररयः ॥ देवदान
वगंधर्वपिशाचपतगोरगैः॥१८॥अभयंयस्यसंग्रामेमृत्युतोमानुषाद्दते॥मंत्रैरभिष्टुतंपुण्यमध्वरेषुद्विजातिभिः ॥१९॥

दिव्यवन, नलिनी, नन्दन, कानन, ॥ १५ ॥ व औरभी सबदेवताओंके उद्यानोंका विनाश क्रोधसे जिसनें करदिया है; फिर उदय होते हुए महाभाग्य चंद्रमा व सूर्योंको ॥ १६ ॥ दोनोंबाहोंसे निवारण करनेंवाला पर्वतोंके समान ऊंचा व वीर्यवान व दश हजार वर्ष वनमें तपकर ॥ १७ ॥ ब्रह्माजीको अपनें सब शिर काट २कर जिसनें चढादियेथे, देव, दानव, गन्धर्व, पिशाच, पतंग, वा उरग ॥१८॥ किसीके द्वाराभी जिसको मृत्युका भय नहीं जिसने केवल मनुष्योंको कुछ न समझ उनसे अभय नही मांगा, और ब्राह्मण लोग यज्ञोंमें मंत्र पढ२

रामचंद्रको संग्राममें जीतलेंगे ॥ २१ ॥ रावणके ऐसे वचन सुनतेही महात्मा मारीचका मुख सूख गया और वह अतिशय भयभीत हो गया ॥ २२ ॥ और चिन्ताके वश होकर अपने सूखे होठोंको जीभसे चाटनें लगा और उसके नेत्र मानों निमेषहीन होगये। मारीच आरत भावसे मृतकतुल्य होकर रावणकी ओर देखता रहगया ॥ २३ ॥ वह पहलेहीसे महावनमें श्रीरामचंद्रजीके पराक्रमको जानताथा। इसी कारणसे भयभीत और शोकित चित्तसे हाथ जोडकर रावणसे अपनें व उसके हितके करनेंवाले वचन बोला ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे षट्त्रिंशःसर्गः ॥ ३६ ॥ महातेजवान् राक्षसराजके यह वचन सुन वाक्यविशारद मारीच

तस्यरामकथांश्रुत्वामारीचस्यमहात्मनः॥शुष्कंसमभवद्वक्रंपरित्रस्तोबभूवच ॥२२॥ ओष्ठौपरिलिहञ्छुष्कोनेत्रैरनिमिषैरिव ॥ मृतभूतइवार्तस्तुरावणंसमुदैक्षत ॥ २३ ॥ सरावणंत्रस्तविषण्णचेतामहावनेरामपराक्रमज्ञः ॥ कृतांजलिस्तत्त्वमुवाचवाक्यंहितंचतस्मैहितमात्मनश्च ॥ २४ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०आरण्य०षट्त्रिंशःसर्गः ॥ ३६ ॥ ॥ ७ ॥ तच्छ्रुत्वाराक्षसेंद्रस्यवाक्यंवाक्यविशारदः ॥ प्रत्युवाचमहातेजामारीचोराक्षसेश्वरम् ॥ १ ॥ सुलभाःपुरुषाराजन्सततंप्रियवादिनः ॥ अप्रियस्यचपथ्यस्यवक्ताभोक्ताचदुर्लभः ॥ २ ॥ ननूनंबुध्यसेरामंमहावीर्यंगुणोन्नतम्॥अयुक्तचारश्चपलोमहेंद्रवरुणोपमम्॥३॥अपिस्वस्तिभवेत्तातसर्वेषामपिरक्षसाम्॥अपिरामोनसंक्रुद्धःकुर्याल्लोकानराक्षसान्॥४॥अपितेजीवितांतायनोत्पन्नाजनकात्मजा॥अपिसीतानिमित्तंचनभवेद्व्यसनंमहत्॥५॥

उससे बोला ॥ १ ॥ हे राजन्! मुंह देखी कहनेंवाले लोग बहुत मिलतेहैं किन्तु सुननें में कुप्यारे और वास्तवमें हितकारीहों ऐसे वचनोंके कहनें सुननेंवाले दोनोंही संसारमें कम मिलतेहैं ॥२॥ एकतौ तुमनें दूतोंको नहीं नियुक्त कर रक्खाहै कि जिससे सब स्थानोंका वृत्तान्त तुमको मिलता रहै दूसरे तुम्हारा स्वभाव चंचलहै। इसी कारणसे रामचंद्र जो साक्षात् महेन्द्र और कुवेरकी समान, महावीर्यवान् और श्रेष्ठ गुणों करके युक्तहैं इस बातको तुमनें नहीं जाना ॥ ३ ॥ हे तात! रामचंद्रसे वैर करनेंमें क्या राक्षसकुलका मंगल होगा? रामचंद्र क्रोधित होनें पर क्या सर्व लोक राक्षसोंसे शून्य नहीं कर सकतेहैं? ॥ ४ ॥ क्या जानकी तुम्हाराही नाश करनेंके लिये उत्पन्न हुईहै? कहीं सीताके ले आनेंका

होकर सदाही कामभोगमें मतवाले रहतेहो और तुम किसी विपयमें किसीकाभी निपेध करना या बाधा देना नहीं मानते। इसी कारण अवश्यही जाननेंके योग्य जो इससमय भयंकर विपद् आ पहुंचीहै, तुम उसको नहीं जानते ॥ २ ॥ परन्तु जो राजा स्त्री इत्यादिक ग्राम्य भोग वस्तुओंमें सदाही आसक्त रहता, स्वेच्छाचारी और लोभी होताहै। प्रजागण मशानकी अग्निकी समान उस राजाका आदर नहीं करते ॥ ३॥ जो राजा यथाकालमें अपनें सब कार्यौंको नहींकरताहै। वह राजा और उसके कार्य न करनेंसे अपने राज्य सहित विनाशको प्राप्त होताहै ॥ ४ ॥ जो राजा स्त्रीआदिकोंके आधीन रहकर दूतोंको नियुक्त करके प्रजाका हाल नहीं जानताहै। तौ हाथी जिस प्रकार

सक्तंग्राम्येषुभोगेषुकामवृत्तंमहीपतिम् ॥ लुब्धंनबहुमन्यंतेश्मशानाग्निमिवप्रजाः ॥ ३ ॥ स्वयंकार्याणियःकालेनानुतिष्ठतिपार्थिवः ॥ सतुवैसहराज्येनतैश्चकार्यैर्विनश्यति ॥ ४॥ अयुक्तचारंदुर्दर्शमस्वाधीनंनराधिपम् ॥ वर्जयंतिनरादूरान्नदीपंकमिवद्विपाः ॥ ५ ॥ येनरक्षंतिविषयमस्वाधीनंनराधिपाः ॥ तेनवृद्ध्याप्रकाशंतेगिरयःसागरेयथा ॥ ६॥ आत्मवद्भिर्विगृह्यत्वंदेवगंधर्वदानवैः ॥ अयुक्तचारश्चपलःकथंराजाभविष्यसि ॥७ ॥ त्वंतुबालस्वभावश्चबुद्धिहीनश्चराक्षस ॥ ज्ञातव्यंतंनजानीषेकथंराजाभविष्यसि ॥८॥ येषांचाराश्चकोशश्चनयश्चजयतांवर ॥ अस्वाधीनानरेंद्राणांप्राकृतैस्तेजनैःसमाः ॥ ९ ॥

दूरसेही दल २ वाली नदीको त्याग करके चले जातेहैं, प्रजा लोगभी वैसेही उस राजाको त्याग देतेहैं ॥ ५ ॥ औरभी जो नृपतिलोग अपनें आधीनमें न आये हुए राज्योंको उपाय करकै अपनें वश नहीं करलेते। वह समुद्रमें पडेहुए पर्वतोंकी समान प्रकाश को नहीं प्राप्त होते ॥ ६ ॥ एकतो तुम स्वभावसेहो चंचलहो और दूसरे कुछ तुम आचारभी नहीं करते; भला फिर विशुद्धचित्त देव, दानव और गन्धर्वोंसे वैर करकै तुम किस प्रकार राज कर सकोगे ॥ ७ ॥ हेराक्षस! तुम बुद्धिरहित हो,बालकोंकिसा तुम्हारा स्वभावहै और जिस बातको जानना उचितहै; उसकोभी नहीं जानते भला फिर किस प्रकारसे अपने इस राज्यकी रक्षा कर सकोगे? ॥ ८ ॥ हे विजयी श्रेष्ठ! जिन राजा लोगोंके आधीन

इन्द्र जिस प्रकार देवताओंके स्वामीहैं वैसेही वहभी सब लोकोके राजाहैं ॥ १३ ॥ वह अपनें तेजसे जनककुमारी जानकीजीकी रक्षा करतेहैं तुम किस प्रकारसे उनकी जानकीको हरण करनेंकी इच्छा करतेहो ?क्योंकि उनके हरण करनेंकी इच्छा करना मानो सूर्यकी किरणको हाथसे पकड़नाहै ॥ १४ ॥ सब बाणही जिसकी शिखाहैं, धनुष और खड्ग जिसका ईंधनहैं, और जिसकी त्रिसीमामें गमन करना असंभवहै सो उस राम रूप प्रज्वलित अग्निमें सहसा प्रवेश करना तुमको उचितनहींहै ॥ १५ ॥ धनुषका चढानाहीं जिसका प्रकाशित मुखहै, बाणही जिसकी दीप्तिहैं इसीसे असह्य धनुर्बाण धारण किये; इसीसे तीक्ष्ण और शत्रुओंकी सेनाके संहार कर्ता ॥ १६ ॥ कृतान्त समान रामचंद्रजीके

कथंनुतस्यवैदेहींरक्षितांस्वेनतेजसा ॥ इच्छसे प्रसभंहर्तुंप्रभामिवविवस्वतः ॥ १४॥ शरार्चिषमनाधृष्यंचापखड्गेंधनं रणे ॥ रामाग्निंसहसादीप्तंनप्रवेष्टुंत्वमर्हसि ॥ १५॥ धनुर्व्यादितदीप्तास्यंशरार्चिषममर्षणः ॥ चापबाणधरंतीक्ष्णंशत्रुसेनापहारिणम्॥१६॥राज्यंसुखंचसंत्यज्यजीवितंचेष्टमात्मनः ॥ नात्यासादयितुंतातरामांतकमिहार्हसि ॥ १७॥ अप्रमेयंहितत्तेजोयस्यसाजनकात्मजा॥नत्वंसमर्थस्तांहर्तुंरामचापाश्रयांवने ॥ १८॥ तस्यवैनरसिंहस्यसिंहोरस्कस्य भामिनी॥प्राणेभ्योपिप्रियतराभार्यानित्यमनुव्रता॥१९॥नसाधर्षयितुंशक्यामैथिल्योजस्विनःप्रिया॥दीप्तस्येवहुताशस्यशिखासीतासुमध्यमा ॥२०॥किमुद्यमंव्यर्थमिमंकृत्वातेराक्षसाधिप॥दृष्टश्चेत्त्वंरणेतेनतदंतमुपजीवितम्॥२१॥

सन्मुख राज्य सुख छोडकर तुम जाओ। यदि गयेभी तो जातेही तुम्हारा नाश होजायगा ॥१७ ॥ उनके तेजकी तुलना नहींहै; जानकी उनकीही स्त्री है, और सदाही उनके धनुर्बलका आश्रय करके वनमें वास करतीहै। तुम किसी भांतिभी जानकीको हरण नहीं करसकोगे! ॥ १८ ॥ सिंहकी समान चौडी छातीवाले नरसिंह रामचंद्रजी नित्य अनुगत सीताजीको प्राणसे भी प्यारी समझतेहैं ॥ १९ ॥ प्रज्वलित अग्निकी शिखाके समान तेजस्वी रामचंद्रजीकी प्रिय स्त्री श्यामा अवस्थावाली जानकीको हर लानेंकी किसीकोभी सामर्थ्य नहींहै ॥ २० ॥ हे राक्षसराज! तुम्हारा इस निरर्थक उद्यमसे प्रयोजन क्याहै? जो वनमें रामचंद्र कहीं तुम्हें मिलभी गये तो वहीं तुम्हारे जीवनकी इतिश्री होजायगी॥२१॥

मान जाननें लगतेहैं ॥ १७॥ सूखे काठ ढेले और धूलसेभी वहुत कार्य होसकतेहैं, परन्तु राज्यभ्रष्ट हुए राजासे कोई कार्यभी नहीं होसकता१८॥ पहराहुआ वस्त्र और मलगिजी माला जिसप्रकार किसीकार्यकी नहींहोती। राज्यभ्रष्ट राजाभी वैसेही शांतिसम्पन्न होकरभी निरर्थक कहाताहै ॥ १९ ॥ जो राजा प्रमादहीन, सर्वज्ञ भली भांतिसे जितेन्द्रिय,कृतज्ञ, और धर्ममें रतहोतेहैं वही राजपदपर चिरस्थाई होतेहैं ॥ २० ॥ जो राजा नेत्रोंसे निद्रित होनेपरभी नीतिरूप नेत्र विस्तार करके जागतेरहतेहैं; और जिनका क्रोध, व प्रसन्नता कार्यके समय प्रगटहो, वह राजाही लोकसमाजमें पूजे जातेहैं ॥ २१ ॥ परन्तु हे रावण! तुम कुबुद्धि और इन समस्त गुणोंसे रहितहो, कारण कि राक्षसोंका वह सर्व नाशहुआ

शुष्ककाष्ठैर्भवेत्कार्यंलोष्ठैरपिचपांसुभिः॥नतुस्थानात्परिभ्रष्टैःकार्यंस्याद्वसुधाधिपैः॥१८॥ उपभुक्तंयथावासःस्रजोवामृदितायथा ॥ एवंराज्यात्परिभ्रष्टःसमर्थोपिनिरर्थकः ॥ १९ ॥ अप्रमत्तश्चयोराजासर्वज्ञोविजितेंद्रियः ॥ कृतज्ञोधर्मशीलश्चसराजातिष्ठतेचिरम् ॥ २० ॥ नयनाभ्यांप्रसुप्तोवाजागर्तिनयचक्षुषा ॥ व्यक्तक्रोधप्रसादश्चसराजापूज्यतेजनैः ॥ २१ ॥ त्वंतुरावणदुर्बुद्धिर्गुणैरेतैर्विवर्जितः ॥ यस्यतेऽविदितश्चारैरक्षसांसुमहान्वधः ॥ २२ ॥ परावमंताविषयेषुसंगवान्नदेशकालप्रविभागतत्त्ववित् ॥ अयुक्तबुद्धिर्गुणदोषनिश्चयेविपन्नराज्योनचिराद्विपत्स्यते ॥ २३ ॥ इतिस्वदोषान्परिकीर्तितांस्तयासमीक्ष्यबुद्ध्याक्षणदाचरेश्वरः ॥ धनेनदर्पेणबलेनचान्वितोविचिंतयामासचिरंसरावणः ॥ २४ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेत्रयस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३३ ॥ ॥ ७ ॥

और तुमनें दूतोंके द्वारा उसका कुछ वृत्तान्त न जाना ॥ २२ ॥ तुम केवल पराया अपमान करतेहो, सदाही भोगविलासमें मतवाले बने रहते हो देशकालका निश्चय करना नहीं जानते,और गुण दोषका विचार करनेका सामर्थ्य तुम्हारी बुद्धि नहीं रखती,इस कारण तुमको शीघ्रही विपद्ग्रस्त और राज्यभ्रष्ट होना पडेगा ॥ २३ ॥ धन, बल, और गर्वयुक्त राक्षसनाथ रावण शूर्पणखाको इस प्रकारसे अपनें समस्तदोष कहतेहुए देखकर बहुतही देरतक मनही मन विचारकरतारहा ॥ २४ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० आ० त्रयस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३३ ॥

राजा दशरथसे यह बोले कि अमावस्या और पूर्णमासीको जब हम समाधि अवस्थामें रहेंगे उस समय इन रामचंद्रको हमारी रक्षा करनी होगी ॥ ४ ॥ हे राजन्! मारीच राक्षससे हमको घोर भय उत्पन्न हुआहै । जब ऋषिनें इस प्रकार कहा तब धर्मात्मा राजा दशरथ ॥ ५ ॥ उन महर्षि महाभाग विश्वामित्रको प्रत्युत्तर देते हुए कि रामकी अवस्था अभी सोलह वर्षसेभी कमहै और अस्त्रविद्याभी अभी इन्हें नहीं आती ॥ ६ ॥ इस कारण इनको नहीं देसकते। परन्तु तुम्हारा कार्यकरनेंके लिये हम अपनी बडी भारी चतुरंगिनी सेना सहित चलकर वहां उस निशाचरको ॥ ७ ॥ यमलोकमें पठावेंगे जोकि आपका शत्रुहै जिसका संहार करना आपको अभीष्टहै, विश्वामित्रजी राजा

मारीचान्मेभयंघोरंसमुत्पन्नंनरेश्वर ॥ इत्येवमुक्तोधर्मात्माराजादशरथस्तदा ॥ ५ ॥ प्रत्युवाचमहाभागंविश्वामित्रंमहामुनिम् ॥ ऊनद्वादशवर्षोयमकृतास्त्रश्चराघवः ॥ ६ ॥ कामंतुममतत्सैन्यंमयासहागमिष्यति ॥ बलेनचतुरंगेणस्वयमेत्यनिशाचरम् ॥ ७ ॥ वधिष्यामिमुनिश्रेष्ठशत्रुंतवयथेप्सितम् ॥ एवमुक्तःसतुमुनीराजानमिदमब्रवीत् ॥ ८ ॥ रामान्नान्यद्बलंलोकेपर्याप्तंतस्यरक्षसः ॥ देवतानामपिभवान्समरेष्वभिपालकः ॥ ९ ॥ आसीत्तवकृतंकर्मत्रिलोकविदितंनृप ॥ काममस्तिमहत्सैन्यंतिष्ठत्विहपरंतप ॥ १० ॥ बालोप्येषहातेजाःसमर्थस्तस्यनिग्रहे ॥ गमिष्येराममादायस्वस्तितेऽस्तुपरंतप ॥ ११ ॥ इत्येवमुक्त्वासमुनिस्तमादायनृपात्मजम् ॥ जगामपरमप्रीतोविश्वामित्रःस्वमाश्रमम् ॥ १२ ॥

दशरथजीके यह वचन सुन उनसे बोले ॥ ८ ॥ यद्यपि यह सत्यहै कि आप संग्राममें देवताओंकेभी रक्षक हो और तुम्हारा किया कर्मभी तीनों लोकोंमें प्रगटहै परन्तु रामचंद्रके सिवाय और किसीका बलभी इस राक्षसका नाश करनेंमें समर्थ नहीं होगा इस कारण हेपरंतप! तुम्हारी जो बडी भारी चतुरंगिनी सेनाहै वह यहीं रहै ॥ ९ ॥ १० ॥ यह महातेजवान रामचंद्र बालक होनेंपरभी राक्षसका नाश करनेंमें समर्थ होंगे इस्से हम इनको लेजांयगे। हे राजन्! तुम्हारा कल्याणहो ॥ ११ ॥ महर्षि विश्वामित्रजी यह कहकर श्रीरामचंद्रजीको

ऋषिगणोंको अभयदे समस्त दंडकवनको मंगलमयकर दिया ॥ ११ ॥ उन आत्मज्ञानी महात्मा श्रीरामचंद्रजीने स्त्रीके वधकी शंका करके, केवल नाक कानहीं काट कर हमहींको अकेला छोडाहै ॥१२॥ लक्ष्मण नाम रामचंद्रका छोटा भाई महातेजस्वी गुण और विक्रममें अपनें बडे भ्राताकी तुल्यहै, वह उनकाही अनुरागी भक्तहै। वह अतिशयबुद्धिमान् बलवान्, और वीर्यवान्है ॥ १३ ॥ विक्रममानहैं, क्रोधावि ष्टहै, सबहीके जीतनेंवाले, और आप किसीसे जीते जानेंके योग्य नहींहै और श्रीरामचंद्रजीके दहिनेंहाथ, वरन शरीरके बाहर रहनें वाले प्राणहैं ॥ १४ ॥ और रामचंद्रजीकी जो स्त्रीहै उसके नेत्र बडे २ हैं और वदन पूर्णमासीके चंद्रमाकी समानहै, रामचंद्रको बहुत प्यार करतीहैं, और वहभी सदा पतिको

ऋषीणामभयंदत्तंकृतक्षेमाश्चदंडकाः ॥ ११ ॥ एकाकथंचिन्मुक्ताहंपरिभूयमहात्मना ॥ स्त्रीवधंशंकमानेनरामेण विदितात्मना ॥ १२ ॥ भ्राताचास्यमहातेजागुणतस्तुल्यविक्रमः ॥ अनुरक्तश्चभक्तश्चलक्ष्मणोनामवीर्यवान् ॥ १३ ॥ अमर्षीदुर्जयोजेताविक्रांतोबुद्धिमान्बली ॥ रामस्यदक्षिणोबाहुर्नित्यंप्राणोबहिश्चरः ॥ १४ ॥ रामस्यतुविशालाक्षी पूर्णेंदुसदृशानना ॥ धर्मपत्नीप्रियानित्यंभर्तुःप्रियहितेरता ॥ १५ ॥ सासुकेशीसुनासोरूःसुरूपाचयशस्विनी ॥ देवतेववनस्यास्यराजतेश्रीरिवापरा ॥ १६ ॥ तप्तकांचनवर्णाभारक्ततुंगनखीशुभा ॥ सीतानामवरारोहावैदेहीतनुमध्यमा ॥ १७ ॥ नैवदेवीनगंधर्वीनयक्षीनचाकिन्नरी ॥ तथारूपामयानारीदृष्टपूर्वामहीतले ॥ १८ ॥ यस्यसीताभवेद्भार्यायंचतुष्टापरिष्वजेत् ॥ अभिजीवेत्ससर्वेषुलोकेष्वपिपुरंदरात् ॥ १९ ॥

प्यारी और हितकरनेंवाला कार्य करती रहतीहैं ॥१५॥ उस यशस्विनी रामचंद्रजीकी स्त्रीके केश, नासिका, उरू और रूप अति उत्तमहैं। वह मानों उस बनकी अधिष्ठात्री देवी और दूसरी लक्ष्मीकी समान विराजमान होरहीहैं ॥ १६ ॥ उनके वर्णकी ज्योति तपाये हुए सुवर्णकी समानहै, कमर पतली और नखोंकी पंक्तिका शिर लालहै। वह अतिशय सुन्दरता युक्तहैं और सब स्त्रियोंकी शिरोमणिहैं, उन्होंनें विदेह वंशमें जन्म ग्रहण कियाहै, और वह सीतानामसे संसारमें विख्यातहैं ॥ १७ ॥ न देवी न गन्धर्वी न यक्षिणी, न किन्नरी किसीकीभी सुन्दरताई उनकी शोभाके संगमें नही चलसकती यहांतक कि कभी हमनें इस पृथ्वीपर इस प्रकारकी रूपवानरमणी नहीं देखीथी ॥ १८ ॥ वह सीता जिसकी स्त्रीहों, और वह जिसको

गंभीर समुद्रके जलमें गिरे और बहुत देरके पीछे चैतन्यता प्राप्त कर लंकामें आये ॥ २१ ॥ इस प्रकारसे हमनें तो रक्षा पाई। परन्तु कठिन कर्म करनेंवाले रामचंद्रनें अशिक्षितास्त्र और बालक होनेपरभी हमारे सहाय सब राक्षसोंको मार डाला ॥ २२ ॥ इसी कारणसे निवारण करताहूं कि यदि तुम रामचंद्रजीके साथ युद्ध करोगे तो भयंकर विपदमें पडकर नाशको प्राप्त होजाओगे ॥ २३ ॥ और अपनें आप यत्न करकै समाज उत्सवोंके देखनेवाले और क्रीडा रतिकी विधि जाननेवाले राक्षसोंके कारण वृथा संताप बटोरोगे ॥ २४ ॥ बस सीताहीके लिये, अटा, और अटारि, वा धवरहरोंसे पूर्ण नानारत्नभूषिता लंका नगरीको तुम नाशवान देखोगे ॥ २५ ॥ जिस प्रकार किसी तालावमें सर्प

पातितोऽहंतदातेनगंभीरेसागरांभसि ॥ प्राप्यसंज्ञांचिरात्तातलंकांप्रतिगतःपुरीम् ॥२१॥ एवमस्मितदामुक्तःसहाया स्तेनिपातिताः ॥ अकृतास्त्रेणरामेणबालेनाक्लिष्टकर्मणा ॥ २२ ॥ तन्मयावार्यमाणस्तुयदिरामेणविग्रहम् ॥ करिष्य स्यापदंघोरांक्षिप्रंप्राप्यनशिष्यसि॥२३॥ क्रीडारतिविधिज्ञानांसमाजोत्सवदर्शिनाम् ॥ रक्षसांचैवसंतापमनर्थंचाहरि ष्यसि ॥२४॥ हर्म्यप्रासादसंबाधांनानारत्नविभूषिताम् ॥ द्रक्ष्यसित्वंपुरींलंकांविनष्टांमैथिलीकृते ॥२५॥ अकुर्वतोपि पापानिशुचयःपापसंश्रयात् ॥ परपापैर्विनश्यंतिमत्स्यानागह्रदेयथा॥२६॥ दिव्यचंदनदिग्धांगान्दिव्याभरणभूषि तान् ॥ द्रक्ष्यस्यभिहतान्भूमौतवदोषात्तुराक्षसान् ॥२७॥ हतदारान्सदारांश्चदशविद्रवतोदिशः॥ हतशेषानशरणान्द्र क्ष्यसित्वंनिशाचरान्॥२८॥ शरजालपरिक्षिप्तामग्निज्वालासमावृताम्॥ प्रदग्धभवनांलंकांद्रक्ष्यसित्वमसंशयम्॥२९॥

होतेहैं तो वहांकी बिचारी मछलियांभी गरुड करकै मारडाली जातीहैं; इसी प्रकार जो लोक पाप नहीं करते; ऐसे शुद्धात्मा पुरुषभी, पापा त्माके आश्रयमें रहनेंसे उस पापात्माके पापसे विनाशको प्राप्त होतेहैं॥ २६ ॥ इस कारण तुम देखोगे कि तुम्हारे निजके दोषसे दिव्य चंदन शरीरमें लगाये हुए; दिव्य वस्त्राभूषण पहरे हुए निशाचर गण समूल भूमियोंमें गिरेंगे ॥ २७ ॥ और आश्रयरहित राक्षस गण कोई स्त्री रहित हो कोई स्त्रीके सहित दशों दिशाओंको भागेंगे ॥ २८॥ तुम शर जालसे छाई हुई अग्निकी शिखासे पीडित हुई, ऐसी लंकापुरीके सबही गृह

शूर्पणखाके यह रोम हर्षण वचन सुन कर्तव्य स्थिरकर मंत्रियोंकी सम्मति ले रावण जनस्थानमें जानेंको तैयार हुआ ॥ १ ॥ गमन करनेंके समय उस कार्यको भली भांतिसे छानकर, और उसके सब विषयोंको भली प्रकार सोच विचार दोप गुणभी समझ लेता हुआ, बल, अबल सब जानलिया, उसनें जानकीका हरलाना महात्मा रामचंद्रसे वैर करनाही ठीकजांचा ॥ २ ॥ सब कर्त्तव्योंका मनमें निश्चय कर स्थिर बुद्धिहो प्रथम रमणीक यानशालामें गया ॥ ३ ॥ और यानशालामेंपहुंच कर राक्षसराज रावण गुप्त भावसे सारथिसे बोला कि शीघ्रही रथ तैयार करो ॥ ४ ॥ रावणके ऐसा कहतेही एक क्षणमें जल्दबाज सारथिनें जो रथ रावणकी इच्छानुसार था उस रथको सजाया ॥ ५ ॥

ततःशूर्पणखावाक्यंतच्छ्रुत्वारोमहर्षणम्॥ सचिवानभ्यनुज्ञायकार्यंबुद्ध्वाजगामह ॥ १ ॥ तत्कार्यमनुगम्यांतर्यथावदुपलभ्यच ॥ दोषाणांचगुणानांचसंप्रधार्यबलाबलम् ॥ २ ॥ इतिकर्तव्यमित्येवकृत्वानिश्चयमात्मनः ॥ स्थिरबुद्धिस्ततोरम्यांयानशालांजगामह ॥ ३ ॥ यानशालांततोगत्वाप्रच्छन्नंराक्षसाधिपः ॥ सूतंसंचोदयामासरथःसंयुज्यतामिति ॥ ४ ॥ एवमुक्तःक्षणेनैवसारथिर्लघुविक्रमः ॥ रथंसंयोजयामासतस्याभिमतमुत्तमम् ॥ ५ ॥ कामगंरथमास्थायकांचनंरत्नभूषितम् ॥ पिशाचवदनैर्युक्तंखरैःकनकभूषणैः ॥ ६ ॥ मेघप्रतिमनादेनसनेतधनदानुजः ॥ राक्षसाधिपतिःश्रीमान्ययौनदनदीपतिम् ॥ ७ ॥ सश्वेतवालव्यजनःश्वेतच्छत्रोदशाननः ॥ स्निग्धवैदूर्यसंकाशस्तप्तकांचनभूषणः ॥ ८ ॥ दशग्रीवोविंशतिभुजोदर्शनीयपरिच्छदः ॥ त्रिदशारिर्मुनींद्रघ्नोदशशीर्षइवाद्रिराट् ॥ ९

रावण उस इच्छानुसार कंचनसे बने हुए रत्नभूषित पिशाचवदनवाले गधे जिसमें जुते हुए, ऐसे रथ पर सवार हुआ ॥ ६ ॥ जब वह रथ चला तब उसका शब्द मेघोंके गर्जनेंकी समान होताथा। कुबेरका छोटाभाई राक्षसपति श्रीमान् दशानन उस रथपर चढ, नदनदीपति समुद्रकी ओर चला ॥ ७ ॥ रावणके ऊपर जो चमर और छत्र लगेथे वहदोनों श्वेतथे, रावणके देहकी कांति वैदूर्यमणिके समान नीलीथी, वह सब तपाये हुए सुवर्णके भूषण पहरे हुएथा ॥ ८ ॥ उसके दशमुख, दशमस्तक, दश गर्दन, और बीस भुजा, देवगणोंके शत्रु, और मुनि

अग्निहोत्र होतेथे, वहींपर तपस्वियोंको संहार भक्षण करते हुए हम घूमतेथे ॥ ४ ॥ उस दंडक वनमें धर्मात्मा ऋषिगणोंको संहार २ उनका रुधिर पान करके मांस खा जातेथे ॥५ ॥ और महा कुटिल स्वभाववाले हो जो कोई मिलता उसे भय उपजाते, इस भांति रुधिर पीनेंसे मतवाले हो हम दंडकवनमें घूमतेथे ॥ ६ ॥ जब तपस्वी धर्मका अवलंबनकिये हुए रामचंद्रको हमनें पीडित किया जबकि वह वनमें फिरतेथे ॥ ७ ॥ व महाभाग्यवाली जानकीजीकोभी डरवाया, तब महारथी, तपस्वीरूप सब प्राणियोंका हित करनेंमे तत्पर लक्ष्मणजीकोभी पीडित किया ॥ ८ ॥ फिर महाबलवान् वनमें घूमनेंवाले, रामचंद्रजीको तपस्वी मान पहले वैरका स्मरण कर ॥ ९ ॥ मार डालनेकी इच्छासे

निहत्यदंडकारण्येतापसान्धर्मचारिणः ॥ रुधिराणिपिबंस्तेषांतन्मांसानिचभक्षयन् ॥ ५ ॥ ऋषिमांसाशनः
क्रूरस्त्रासयन्वनगोचरान् ॥ तदारुधिरमत्तोऽहंव्यचरंदंडकावनम् ॥ ६ ॥ तदाहंदंडकारण्येविचरन्धर्मदूषकः ॥
आसादयंतदारामंतापसंधर्ममाश्रितम् ॥ ७ ॥ वैदेहींचमहाभागांलक्ष्मणंचमहारथम् ॥ तापसंनियताहारंसर्वभूत
हितेरतम् ॥ ८ ॥ सोऽहंवनगतंराममंपरिभूयमहाबलम् ॥ तापसोऽयमितिज्ञात्वापूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ९ ॥ अभ्यधावं
सुसंक्रुद्धस्तीक्ष्णशृंगोमृगाकृतिः ॥ जिघांसुरकृतप्रज्ञस्तंप्रहारमनुस्मरन् ॥ १० ॥ तेनत्यक्तास्त्रयोबाणाःशिताःशत्रु
निबर्हणाः ॥ विकृष्यसुमहच्चापंसुपर्णानिलतुल्यगाः॥ ११॥ तेबाणावज्रसंकाशाःसुघोरारक्तभोजनाः ॥ आजग्मुःसहि
ताःसर्वेत्रयःसन्नतपर्वणः ॥ १२॥ पराक्रमज्ञोरामस्यशठोदृष्टभयःपुरा॥समुत्क्रांतस्ततोमुक्तस्तावुभौराक्षसौहतौ॥ १३॥

क्रोधित हो, यद्यपि उनके पराक्रमको जानतेथे तथापि अपने बडे २ सींगआगेको झुकाय उनपर धावित हुए ॥ १०॥ तब उन्होंनें कानके समीप तक धनुषको खेंचकर तीन नाराच हम तीन मृगोंके ऊपर चलाये, वहबाण गरुड व पवनकी गति समान चले ॥ ११ ॥ वह वज्रसम आकार वाले, अति घोर रक्त पीनेंवाले बाण हम तीनोंके ऊपर आगमन करनेलगे ॥ १२ ॥ हम बडे मूर्ख हैं, इस कारण पहलेही रामचंद्रसे भय देखकर उनका पराक्रम भली भांति जानतेथे तौभी लडे परन्तु हम तो भागकर किसी रीतिसे बचगये। परन्तु वह हमारे सहाई

हंस, क्रौञ्च, मण्डूक, और सारस समूह चारों ओर बोलरहेथे । वैदूर्यमणिके समान नीलवर्णके पत्थर वहां पर विराजतेथे और समुद्र तरंगोंकी हिल्लोल वश वह देश सदाही शीतल और स्निग्ध भावकरके युक्तथा ॥ १८ ॥ इन सब वस्तु ओंके सिवाय, रावण दिव्य माला युक्त, गीत और वाजोंकी ध्वनि जिसमें होरही ऐसे श्वेत वर्ण विशालविमानपर चढा रावण चारों ओर देखनें लगा ॥ १९ ॥ जिन लोगोंनें अपनें तपोबलसे अनेक लोकोंको जीत लियाहै और इच्छाचारीविमानों पर जो बैठेहैं; कुबेरके छोटे भाई रावणनें जानेंके समय मार्गमें उन गन्धर्व गणोंको अप्सराओंके साथ देखा ॥ २० ॥ वहां पर वनमे गोंद रसमूल सहित हजारों सुन्दर, नासिकाको अपनी सुगन्धिसे तृप्त

हंसक्रौंचप्लवाकीर्णसारसैःसंप्रसादितम् ॥ वैदूर्यप्रस्तरंस्निग्धंसांद्रंसागरतेजसा ॥ १८ ॥ पांडुराणिविशाला निदिव्यमाल्ययुतानिच ॥ तूर्यगीताभिजुष्टानिविमानानिसमंततः ॥ १९ ॥ तपसाजितलोकानांकामगान्यभिसं पतन् ॥ गंधर्वाप्सरसश्चैवददर्शधनदानुजः ॥ २० ॥ निर्यासरसमूलानांचंदनानांसहस्रशः ॥ वनानिपश्यन्सौम्या निघ्राणतृप्तिकराणिच ॥ २१ ॥ अगुरूणांचमुख्यानांवनान्युपवनानिच ॥ तक्कोलानांचजात्यानांफलानांचसुगंधि नाम् ॥ २२ ॥ पुष्पाणिचतमालस्यगुल्मानिमरिचस्यच ॥ मुक्तानांचसमूहानिशुष्यमाणानितीरतः ॥ २३ ॥ शै लानिप्रवरांश्चैवप्रवालनिचयांस्तथा ॥ कांचनानिचशृंगाणिराजतानितथैवच ॥ २४ ॥ प्रस्रवाणिमनोज्ञानिप्रसन्ना न्यद्भुतानिच ॥ धनधान्योपपन्नानिस्त्रीरत्नैरावृतानिच ॥ २५ ॥ हस्त्यश्वरथगाढानिनगराणिविलोकयन् ॥ तंस मंसर्वतःस्निग्धंमृदुसंस्पर्शमारुतम् ॥ २६ ॥

करनेंवाले चंदनके वृक्ष देखे ॥ २१ ॥ अगरके मुख्य वन उपवन अंकोल वृक्षोंके सुगन्धित पुष्पित और जायफलके फलित वन उप वनादि देखे ॥ २२ ॥ तमालनाम यक वृक्षके फूल, और काली मिरच गुल्मसमूह समुद्रके किनारे फूले व मोतियोंके समूहगिरे हुए देखे ॥२३॥ पर्वत व मूगोंकी चटानोंके समूह व चांदी सुवर्णके शृंगभी रावणनें देखे ॥ २४ ॥ सुविमल जल पूर्ण अद्भुत मनोहर सोते धन धान्यके सहित स्त्री रत्न युक्त ॥ २५ ॥ हाथी घोडे सहित अनेक प्रकारके नगर देखताहुआ, रावणनें शीतल मंद सुगन्ध पवन सहित ॥ २६ ॥

अपराध करनेंसे सपरिवार विनाशको प्राप्त हुए हैं ॥ २१ ॥इसी प्रकार तुम्हारे अपराधसे हमको नाश होना पडेगा. हेनिशाचर जो तुम्हारी इच्छाहो सो करो, परंतु हम तुम्हारे साथ नहीं चलेंगे, हमें अपनें प्राण प्यारेहैं ॥ २२ ॥ वह महातेजवान् महाबुद्धिमान्, महा बलवान् रामचंद्रजी वास्तवमेंही निशाचरों के कालहैं ॥ २३॥ यद्यपि पहले जनस्थानका रहनेंवाला अपावन खर, शूर्पणखाके लिये रामचं द्रसे मार डाला गयाहै, परन्तु इस विषयमें रामचंद्रजीका क्या अपराध हैसो तुम्हीं सत्य २ कहो ॥ २४ ॥ तुम हमारे बन्धुहो इस कारणसे हमनें तुम्हारे मंगलकेही लिये यह सत्य वचन कहे, यदि तुम हमारे वचनोंको न मानकर रामचंद्रसे वैर करोगे

सोऽहंपरापराधेनविनशेयंनिशाचर ॥ कुरुयत्तेक्षमंतत्त्वमहंत्वांनानुयामिवै ॥ २२ ॥ रामश्चहिमहातेजामहासत्त्वो महाबलः ॥ अपिराक्षसलोकस्यभवेदंतकरोऽपिहि ॥ २३ ॥ यदिशूर्पणखाहेतोर्जनस्थानगतःखरः ॥ अतिवृत्तोहतः पूर्वंरामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ अत्रब्रूहियथातत्त्वंकोरामस्यव्यतिक्रमः ॥ २४ ॥ इदंवचोबंधुहितार्थिनामयायथोच्य मानंयदिनाभिपत्स्यसे ॥ सबांधवस्त्यक्ष्यसिजीवितंरणेहतोऽद्यरामेणशरैरजिह्मगैः ॥ २५ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामा यणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेएकोनचत्वारिंशःसर्गः ॥३९॥ ॥ ७॥ ॥ मारीचस्यतुतद्वाक्यंक्षमंयुक्तं चरावणः ॥ उक्तोनप्रतिजग्राहमर्तुकामइवौषधम् ॥ १ ॥ तंपथ्यहितवक्तारंमारीचंराक्षसाधिपः ॥ अब्रवीत्परुषंवाक्य मयुक्तंकालचोदितः ॥ २ ॥ दुष्कुलैतदयुक्तार्थंमारीचमयिकथ्यते ॥ वाक्यंनिष्फलमत्यर्थंबीजमुप्तमिवोखरे ॥ ३॥ त्वद्वाक्यैर्नतुमांशक्यंभेत्तुंरामस्यसंयुगे ॥ मूर्खस्यपापशीलस्यमानुषस्यविशेषतः ॥ ४ ॥

तो निश्चयही बन्धु बान्धवों सहित रामचंद्रजीके बाणोंसे युद्धमें विनाशको प्राप्तहो तुमको प्राण परित्याग करना पडेगा ॥२५॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे एकोनचत्वारिंशःसर्गः ॥ ३९ ॥ जिस प्रकार मृत्यु जिसकी निकटहै ऐसा रोगी औषधि ग्रहण नहीं करता ऐसेही सहनेंके योग्य व उचित मारीचके वचन रावणनें ग्रहणनहीं किये ॥ १ ॥ उस काल प्रेरित निशाचरपति रावणनें मंगलजनक और युक्तियुक्त संग वचन कहनें वाले मारीचसे अयोग्य व कठोर वचनकहे ॥२॥३॥ हे मारीच ! तुमनें जो यह प्रतिकूल वचन हमसे कहे, यह

अनुज रावण गरुड चिन्हित महर्षिगण सेवित सुभद्र नामक इस वट वृक्षको देखता हुआ॥३६॥ वहांसे नदीपति समुद्रके दूसरीपार जाकर दूसरे वनमें परम पवित्र रमणीक एक निर्जन आश्रम रावणनें देखा ॥ ३७ ॥ रावणनें देखा कि मारीच नामक निशाचर मृगचर्म और जटाजूट धारण करके नियताहार कर वहां वास करताहै ॥ ३८ ॥ राक्षस मारीच रावणको देखतेही मिला और यथा विधानसे विविध भांतिकी अमानुषी भोग्य वस्तुओंसे रावणकी पूजा करता हुआ ॥ ३९ ॥ इस प्रकार भोजनकी सामग्री व जलसे स्वयं रावणकी पूजाकर मारीच अर्थ युक्त वचन

तंतुगत्वापरंपारंसमुद्रस्यनदीपतेः॥ददर्शाश्रममेकांतेपुण्येरम्येवनांतरे ॥ ३७॥ तत्रकृष्णाजिनधरंजटामंडलधारिणम् ॥ ददर्शनियताहारंमारीचंनामराक्षसम् ॥ ३८ ॥ सरावणःसमागम्यविधिवत्तेनरक्षसा ॥ मारीचेनार्चितो राजासर्वकामैरमानुषैः॥३९॥तंस्वयंपूजयित्वाचभोजनेनोदकेनच॥अथोपहितयावाचामारीचोवाक्यमब्रवीत्४०॥ कच्चित्तेकुशलंराजन्लंकायांराक्षसेश्वर ॥ केनार्थेनपुनस्त्वंवैतूर्णमेवइहागतः ॥ ४१ ॥ एवमुक्तोमहातेजामारीचेनस रावणः॥ ततःपश्चादिदंवाक्यमब्रवीद्वाक्यकोविदः ॥४२॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्य कांडेपंचत्रिंशःसर्गः ॥ ३५ ॥ मारीचश्रूयतांतातवचनंममभाषतः॥आर्तोस्मिममचार्तस्यभवान्हिपरमागतिः॥१॥ जानीषेत्वंजनस्थानंभ्रातायत्रखरोमम ॥ दूषणश्चमहाबाहुःस्वसाशूर्पणखाचमे ॥ २ ॥

बोला ॥ ४० ॥ राजन्! राक्षसेश्वर! आपकी और लंकाकी कुशलतो है?फिर आप किस कारणसे यहां शीघ्रही पधारे हैं? ॥ ४१ ॥ जब मारीचनें ऐसा कहा तब वचन बोलनेंमें चतुर महातेजस्वी रावणनें इसप्रकार कहना आरंभ किया ॥ ४२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे पंचत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥ तात मारीच! कहताहूं श्रवण करो। हम बडे दुःखीहैं, तुमही विपदके समय हमारी परम गतिहो ॥ १ ॥ जिस स्थानमें हमारा भाई खर और महाबाहु दूषण व बहन शूर्पणखा रहा करतीथी उस जनस्थानको तुम

शीतलताई, यमराजकी समान दंडता, और वरुणके समान प्रसन्नताहोतीहै ॥ १३ ॥ इस कारणसे सबही अवसरमें उनकी पूजा व सन्मान करना योग्यताहै। तुम धर्मका विषय कुछभी न जानकर केवल मायाकेही आधीन हो रहेहो ॥ १४ ॥ इसीसे तुम्हारे ग्रहमें आनें पर भी तुमनें हमारी पूजा न की, वरन दौरात्मके वश होकर ऐसे कठोर वचन कहताहै हे राक्षस! हमनें तुमसे इस कार्यके गुण दोष नहीं पूछे न यह कि इस कार्यका करना कर्तव्यहै, अथवा नहीं ॥ १५ ॥ हे अमितविक्रम! हमनें तो तुमसे यही कहाथा कि तुम इस कार्यमें हमारी सहायता करो ॥ १६ ॥ यह मोरे वचनानुसार जो कार्य तुमको करनाहोगा हम उसको कहतेहैं तुम श्रवणकरो कि तुम रजतबिन्दु विचित्र सुवर्ण मृग होकर

तस्मात्सर्वास्ववस्थासुमान्याःपूज्याश्चनित्यदा ॥ त्वंतुधर्ममविज्ञायकेवलंमोहमाश्रितः ॥ १४ ॥ अभ्यागतंतुदौरा
त्म्यात्परुषंवदसीदृशम्॥गुणदोषौनपृच्छामिक्षयंचात्मनिराक्षस ॥ १५॥ मयोक्तमपिचैतावत्त्वांप्रत्यमितविक्रम ॥
अस्मिंस्तुसभवान्कृत्येसाहाय्यंकर्तुमर्हसि॥१६॥शृणुतत्कर्मसाहाय्येयत्कार्यंवचनान्मम ॥सौवर्णस्त्वंमृगोभूत्वाचि
त्रोरजतबिंदुभिः॥१७॥आश्रमेतस्यरामस्यसीतायाःप्रमुखेचर ॥ प्रलोभयित्वावैदेहींयथेष्टंगंतुमर्हसि ॥१८ ॥ त्वांहि
मायामयंदृष्ट्वाकांचनंजातविस्मया॥ आनयैनमितिक्षिप्रंरामंवक्ष्यतिमैथिली ॥ १९॥ अपक्रांतेचकाकुत्स्थेदूरंगत्वा
प्युदाहर ॥ हासीतेलक्ष्मणेत्येवंरामवाक्यानुरूपकम् ॥ २० ॥ तच्छ्रुत्वारामपदवींसीतयाचप्रचोदितः ॥ अनुगच्छ
तिसंभ्रांतंसौमित्रिरपिसौहृदात् ॥ २१ ॥

॥ १७ ॥ उन रामचंद्रके आश्रममें जायकर विदेहराजकुमारी सीताके सामनें विचरण कर उनको लुभा हमारे अभिलषित स्थानमें चले जाओ ॥ १८ ॥ जनककुमारी सीताजी तुमको मायामयको सुवर्णका देखकर विस्मयको प्राप्त हो रामसे शीघ्र मृगके ले आनेंको कहेगी ॥ १९ ॥ तिसके पश्चात् जब काकुत्स्थनंदन राम आश्रमसे बाहर आकर तुम्हारेपीछे धावैं तब तुम उनको बहुत दूर तक ले जाना, और वहां ठीक रामचंद्रजीके बोलसा शब्द बनाकर बड़े जोरसे "हा सीता! हा लक्ष्मण!" ऐसा वचन उच्चारण करना ॥ २० ॥ तब ऐसा शब्द सुन करके सीता

प्राणियोंका अहित करनेमें रत रहतेहैं जिसनें विना वैरही केवल अपने बलके घमंडमें आय ॥ १२ ॥ नाक कान काटकर हमारी बहन शूर्पणखाको विरूप करदिया। इस कारण जनस्थानसे उसकी स्त्री सीता जोकि देवताओंसेभी चढकर रूपमें है ॥१३॥हम अपने विक्रमसे ले आमेंगे तुमको हमारी सहायता करनी होगी, तुम महाबलवान् सहायके साथ॥१४॥व अपने भाइयोंके संग हम सारे देवताओंकोभी कुछ नहीं गिनते, तिससे हे मारीच! तुम हमारे इस विषयमें सहायक हो क्योंकि तुम समर्थहो ॥ १५ ॥ तुम महाशूरहो और सब प्रकारकी माया जानतेहो, वीर्यमें, युद्धमें, दर्पमें और उपायमें तुम्हारी समान दूसरा कोई नहींहै ॥ १६ ॥ हे निशाचर! इसी कारणसे इस समय हम तुम्हारे समीप

कर्णनासापहारेणभागिनीमेविरूपिता॥ अस्यभार्यांजनस्थानात्सीतांसुरसुतोपमाम्॥१३॥आनयिष्यामिविक्रम्यसहायस्तत्रमेभव॥ त्वयाह्यहंसहायेनपार्श्वस्थेनमहाबल॥ १४॥ भ्रातृभिश्चसुरान्सर्वान्नाहमत्राभिचिंतये॥ तत्सहायोभवत्वंमेसमर्थोह्यसिराक्षस॥१५॥ वीर्येयुद्धेचदर्पेचनह्यस्तिसदृशस्तव॥उपायतोमहाञ्छूरोमहामायाविशारदः॥१६॥ एतदर्थमहंप्राप्तस्त्वत्समीपंनिशाचर॥ शृणुतत्कर्मसाहाय्येयत्कार्यंवचनान्मम ॥१७॥ सौवर्णस्त्वंमृगोभूत्वाचित्रोरजतबिंदुभिः॥ आश्रमेतस्यरामस्यसीतायाःप्रमुखेचर॥१८॥त्वांतुनिःसंशयंसीतादृष्ट्वातुमृगरूपिणम् ॥ गृह्यतामितिभर्तारंलक्ष्मणंचाभिधास्यति ॥ १९ ॥ ततस्तयोरपायेतुशून्येसीतांयथासुखम् ॥ निराबाधोहरिष्यामिराहुश्चंद्रप्रभामिव ॥ २० ॥ ततःपश्चात्सुखंरामेभार्याहरणकर्शिते ॥ विस्रब्धंप्रहरिष्यामिकृतार्थेनांतरात्मना ॥ २१ ॥

आयेहैं, इस समय हमारी सहायता करनेकें लिये जो कुछ तुमको करनाहोगा, सो हम कहतेहैं; तुम श्रवण करो ॥ १७॥ तुम चांदीकी विन्दिये युक्त स्वर्णके मृग बनकर रामचंद्रके आश्रममें जा सीताके सामनें इधर उधर फिरना ॥ १८ ॥ सीता मृगरूपी तुमको देखकर निःसन्देहही अपने स्वामी रामचंद्र और लक्ष्मणसे यह कहेगी कि इस मृगको पकडदो ॥ १९ ॥ जब वह रामचंद्र और लक्ष्मण मृगको पकडनेंके लिये आश्रमसे दूर निकल जांयगे तब हम शून्य आश्रम पाकर सुख सहित निर्विघ्नले आवेंगे; जिस प्रकार राहु चंद्रमाकी प्रभाको हरण कर लेता है ॥२०॥ जब उनकी स्त्री हर लीजायगी तब रामचंद्र शोकके मारे दुर्बल होजांयगे तब कृतार्थ होकर यथासुख और निःशंक चित्तसे

आज्ञा पाकर शंका रहित चित्तसे यह कठोर वचन बोला ॥ १ ॥ कि हे निशाचरराज ! किस पाप कर्म करनेंवाले पुरुषनें तुम्हें राज्य मंत्रिवर्ग, और पुत्रोंके सहित विनाश होनेंका यह उपदेश दियाहै ? ॥ २ ॥ कौन पापात्मा तुम्हारे सुखसे सुखीनहीं हो सकताहै? किस पापीनें उपायके छलसे यह तुम्हारी मृत्युका उपाय तुम्हें बतला दियाहै? ॥ ३ ॥ हे राक्षसनाथ! तुम्हारे हीन वीर्य शत्रु लोग, निश्चयही बलवान् पुरुषके साथ तुम्हारा विरोध कराकर तुम्हारा नाश होता देखनेके अभिलाषी हुएहैं॥४॥हे रावण! किस दुष्ट बुद्धि वालेने तुमको ऐसा उपदेश दियाहै? उस दुष्टका यही अभिलाषहै कि तुम अपने कर्मोंके प्रभावसेही नाशको प्राप्त होओ॥ ५ ॥ हे रावण! मंत्रिगण किसी प्रकारसे मार डालनेंके योग्य नहीं

केनायमुपदिष्टस्तेविनाशःपापकर्मणा ॥ सपुत्रस्यसराज्यस्यसामात्यस्यनिशाचर ॥ २ ॥ कस्त्वयासुखिनाराज न्नाभिनंदतिपापकृत् ॥ केनेदमुपदिष्टंतेमृत्युद्वारमुपायतः ॥ ३ ॥ शत्रवस्तवसुव्यक्तंहीनवीर्यानिशाचर ॥ इच्छंतित्वांविनश्यंतमुपरुद्धंबलीयसा ॥ ४ ॥ केनेदमुपदिष्टंतेक्षुद्रेणाहितबुद्धिना ॥ यस्त्वामिच्छतिनश्यंतंस्वकृते ननिशाचर ॥ ५ ॥ वध्याःखलुनवध्यंतेसचिवास्तवरावण ॥ येत्वामुत्पथमारूढंननिगृह्णंतिसर्वशः ॥ ६ ॥ अमात्यैः कामवृत्तोहिराजाकापथमाश्रितः ॥ निग्राह्यःसर्वथासद्भिःसनिग्राह्योनगृह्यसे ॥ ७ ॥ धर्ममर्थंचकामंचयशश्चजय तांवर ॥ स्वामिप्रसादात्सचिवाःप्राप्नुवंतिनिशाचर ॥ ८ ॥ विपर्ययेतुतत्सर्वंव्यर्थंभवतिरावण ॥ व्यसनंस्वामिवै गुण्यात्प्राप्नुवंतीतरेजनाः ॥९॥राजमूलोहिधर्मश्चयशश्चजयतांवर॥ तस्मात्सर्वास्ववस्थासुरक्षितव्यानराधिपाः॥१०॥

होते, परन्तु जो खोटे रस्ते में चलनेंसे तुमको नहीं रोकते, वही मारडालनेंके लायकहैं ॥ ६ ॥ देखो तुम कामके वश होकर खोटे मार्ग में चलना चाहतेहो, और तुम्हारे मंत्री तथापि तुमको सब प्रकारसे नहीं रोकते ॥७ ॥ हे निशाचर ! हे विजय करनें वालों में उत्तम ! मंत्रिगण अपनें स्वामी कीही प्रसन्नतासे, अर्थ, धर्म, काम व यशको प्राप्त होतेहैं ॥ ८ ॥और जो स्वामीकीही प्रसन्नता नहुई तो सबही व्यर्थ जाताहै और स्वामी के गुणोंमें विकार होनेंके कारण सबही दुःख पातेहैं, और प्रजापर भी महाभय प्राप्त होताहै ॥ ९ ॥ नरपाल प्रजाओंके यश व धर्मकी प्राप्तिके

यह व्यौहार तुम्हारे दुःखका कारण नहो? ॥ ५ ॥ तुम इच्छानुसार चलनेंवाले और निरंकुशहो अर्थात् तुम्हारा कहनें सुन्नेवाला कोई नहींहै । इसकारण तुम्हारे राजा होते समस्त लंका तुम्हारें और सर्व राक्षसोंके साथ क्या विनष्ट नहीं होगी ? अर्थात् अवश्य होगी ॥ ६॥ तुम्हारी समान जो राजा, बुरे शीलवाला, पाप बुद्धि और इच्छानुसार चलनेंवाला होताहै, वह राजा अपनेको, समस्त राज्यको अपने कुटुं बियोको नाश करनेंका कारण होताहै ॥ ७ ॥ रामचंद्र अपनें पिताकरकै नहीं त्यागे गयेहैं । वह मर्यादा रहित भी नहींहै, अथवा, लोभी, दुःशील और क्षत्रियवंशके नाशकभी नहीहैं ॥ ८ ॥ कौशल्याकुमार अपनी माताके आनंदको बढानेंवाले धर्मसे वा गुणोंसे हीन नहींहैं; उ

अपित्वामीश्वरंप्राप्यकामवृत्तंनिरंकुशम् ॥ नविनश्येत्पुरीलंकात्वयासहसराक्षसा ॥ ६ ॥ त्वद्विधःकामवृत्तोहिदुः शीलःपापमंत्रितः ॥ आत्मानंस्वजनंराष्ट्रंसराजाहंतिदुर्मतिः ॥ ७ ॥ नचपित्रापरित्यक्तोनामर्यादःकथंचन ॥ नलु ब्धोनचदुःशीलोनचक्षत्रियपांसनः ॥ ८ ॥ नचधर्मगुणैर्हीनःकौसल्यानंदवर्धनः ॥ नचतीक्ष्णोहिभूतानांसर्वभूतहि तेरतः ॥ ९ ॥ वंचितंपितरंदृष्ट्वाकैकेय्यासत्यवादिनम् ॥ करिष्यामीतिधर्मात्माततःप्रव्रजितोवनम् ॥ १० ॥ कैके य्याःप्रियकामार्थंपितुर्दशरथस्यच ॥ हित्वाराज्यंचभोगांश्चप्रविष्टोदंडकावनम् ॥ ११ ॥ नरामःकर्कशस्तातनावि द्वान्नाजितेंद्रियः ॥ अनृतंनश्रुतंचैवनैवत्वंवक्तुमर्हसि ॥ १२ ॥ रामोविग्रहवान्धर्मःसाधुःसत्यपराक्रमः ॥ राजासर्व स्यलोकस्यदेवानामिववासवः ॥ १३ ॥

नका तीक्ष्ण स्वभाव नहींहैं । और वह सदा सब प्राणियोंका अहित करनेंमें रतभी नहींहैं वरन सबका हित करनेंमें तत्परहैं ॥ ९ ॥ अपनें सत्य वादी पिताको कैकेयी करके ठगाहुआ देखकर, वह उनके सत्यकी रक्षा करनेके लिये रामचंद्रजी वनको चले आयेहैं ॥ १० ॥ और पिता दशरथ, व रानी केकेयीका प्रिय कार्य करनेंकी वासनासे, राज्यसुखको जलांजलि देकर श्रीरामचंद्रजी दंडकारण्यमें आयेहैं ॥ ११ ॥ हे तात! रामचंद्र कर्कशस्वभाववालेभी नहींहैं, मूर्खभी नहींहैं, अजितेन्द्रियभी नहींहैं, और मिथ्या कहना तो दूरहै, वह इस झुंठाईके प्रसंगमेंभी नहींहैं। सो उनके प्रति ऐसे वचन कहना आपको उचित नहींहै ॥ १२ ॥ अधिक कहांतक कहूं; रामचंद्र धर्ममूर्तिहैं, साधूहैं; सत्यपराक्रमवानहै और

तेही मरे धरेहैं और यहभी भली भांति समझ रक्खो कि सीताको हरणकरतेही तुमभी अपने परिवार सहित मारे जाओगे॥१८॥यदि हमारे साथ मिल रामचंद्रजीको धोखादे तुम सीता महारानीको आश्रमसे लेभी आये, तौ हमारी, तुम्हारी, लंकापुरी, व निशाचर गणोंकी किसीकीभी रक्षा न होगी॥१९॥यदि तुम हमारे इनहितकारी वचनोंको न सुनकर ऐसा कार्य करनेंसे नहीं रुकोंगे तो तुम्हारा नाश हो जायगा क्योंकि जिस मनुष्यकी आयु क्षीण हो जातीहै वह किसी सुहृदके हतकारी वचनोंको नहींमाना करता॥२०॥इ०श्रीम०वा०आ०आर०एकचत्वारिंशः सर्गः ४१॥ मारीचनें राक्षसराज रावणसे ऐसे कठोर वचन कहकर, फिर उसकेभयसे भीतहो यहभी कह दिया कि अच्छा हम चलतेहैं ॥ १ ॥ वह

आनयिष्यसिचेत्सीतामाश्रमात्सहितोमया ॥ नैवत्वमपिनाहंवैनैवलंकानराक्षसाः ॥ १९ ॥ निवार्यमाणस्तुमया हितैषिणानमृष्यसेवाक्यमिदंनिशाचर ॥ परेतकल्पाहिगतायुषोनराहितंनगृह्णंतिसुहृद्भिरीरितम् ॥२०॥इ०श्री० वा०आ०आरण्यकांडे एकचत्वारिंशःसर्गः॥४१॥ एवमुक्त्वातुपरुषंमारीचोरावणंततः ॥ गच्छावेत्यब्रवीद्दीनोभया द्रात्रिंचरप्रभोः ॥ १ ॥ दृष्टश्चाहंपुनस्तेनशरचापासिधारिणा ॥ मद्वधोद्यतशस्त्रेणनिहतंजीवितंचमे ॥ २ ॥ नहिरामं पराक्रम्यजीवन्प्रतिनिवर्तते ॥ वर्ततेप्रतिरूपोऽसौयमदंडहतस्यते ॥ ३ ॥ किंतुकर्तुंमयाशक्यमेवंत्वयिदुरात्मनि ॥ एषगच्छाम्यहंतातस्वस्तितेस्तुनिशाचर ॥ ४ ॥

धनुर्बाणधारी, और खड्ग धारण किये हुए रामचंद्रजी आयुध उठाकर हमारी ओर व तुम्हारी ओर रामचंद्रजीनें देखातो तुम अपनें व हमारे प्राण गएही जानो ॥२॥हे तात! रामचंद्रजीसे कैसाही पराक्रम प्रकाश करकोईभी जीवित नहीं लौट सकता फिर हम तौ तुम्हारे खोटे आचारोंके कारण यमराजरूप रामचंद्रके बाणोंसे मृत्युको प्राप्तहो तुम्हारेही समानहो जायँगे अर्थात् हम तुम दोनों मारे जायँगे ॥ ३ ॥ तुम्हारे ऊपर अपनी सामर्थ्य प्रकाश करकै जीता हुआ रहना संभव नहीं क्योंकि तुम अतिदुरात्माहो! हम तुम्हारा करही क्या सकतेहैं! हे राक्षसराज तुम्हारा मं

देखो राज्य, सुख प्राण यह इस संसारमें महादुर्लभहैं इससे जो सुखभोग किया चाहो तो रामचंद्रजीसे वैरभाव न करो अब यहांसे जाय सब विभीषणादि मंत्रियोंके साथ ॥ २२ ॥ सलाहकर अपना मतभी स्थिरकर गुण दोषोंको विचार रामचंद्रजीके और अपने बलको जांचक र ॥ २३ ॥ फिर रामचंद्रजीके बलमें अपना बल मिथ्या जान मेरी रायमें तो तुमको चुप रहना उचितहै बस तुम्हारा हित इसीमें होगा हमारे इन कडे वचनोंको जो मैंनें आपका हित करनेंके लिये कहेहैं क्षमा करना ॥ २४ ॥हमें कौशल्याधिप दशरथजीके पुत्र श्रीरामचंद्रजीके साथ तुम्हारा युद्धमें समागम करना अच्छा नहीं लगता, इस कारण हे राक्षसनाथ। फिरभी तुम्हारे हितकी युक्तियुक्त वार्ता कहताहूं तुम श्रवण

जीवितंचसुखंचैवराज्यंचैवसुदुर्लभम् ॥ ससर्वैःसचिवैःसार्धंबिभीषणपुरस्कृतैः ॥ २२ ॥ मंत्रयित्वासधर्मिष्ठैःकृत्वानिश्चयमात्मनः ॥ दोषाणांचगुणानांचसंप्रधार्यबलाबलम् ॥ २३ ॥ आत्मनश्चबलंज्ञात्वाराघवस्यचतत्त्वतः ॥ हितंहि तवनिश्चित्यक्षमंत्वंकर्तुमर्हसि ॥ २४ ॥ अहंतुमन्येतवनक्षमंरणेसमागमंकोसलराजसूनुना ॥ इदंहिभूयःशृणुवाक्य मुत्तमंक्षमंचयुक्तंचनिशाचराधिप ॥ २५ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्येकांडेसप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥ ॥ छ ॥ कदाचिदप्यहंवीर्यात्पर्यटन्पृथिवीमिमाम् ॥ बलंनागसहस्रस्यधारयन्पर्वतोपमः ॥ १ ॥ नीलजीमूतसंकाशस्तप्तकांचनकुंडलः ॥ भयंलोकस्यजनयन्किरीटीपरिघायुधः ॥ २ ॥ व्यचरन्दंडकारण्यमृषिमांसानिभक्षयन् ॥ विश्वामित्रोथधर्मात्मामाद्वित्रस्तोमहामुनिः ॥ ३ ॥ स्वयंगत्वादशरथंनरेंद्रमिदमब्रवीत् ॥ अयंरक्षतुमांरामःपर्वकालेसमाहितः ॥ ४ ॥

करो॥ २५॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे सप्तत्रिंशःसर्गः ॥ ३७ ॥ मैं एक समय अपने बलवीर्यके घमंडके मारे पृथ्वीपर घूमता हुआ फिरताथा मेरे पर्वतकी समान शरीरमें सहस्र हाथियोंका बलथा ॥१॥ हाथमें परिघ आयुध लिये मस्तक पर किरीट कानमें तपाये हुए सोनेकेबने कुण्डल पहरेथा।मेरे देहकी कान्ति नीले बादरोंकी समानथी इसप्रकारकी अवस्थामें लोकोंको भय उपजाताहुआ॥२॥मैं दंडक वनमें घूम २ कर ऋषिलोगोंका मांस भक्षण करताथा । अनन्तर धर्मात्मा महामुनि विश्वामित्रजी मेरे भयसे भीत होकर ॥ ३ ॥ स्वयं जाकर

रा हुआ यह रामचंद्रका आश्रम दिखाई देताहै ॥ १३ ॥ जिस कारणसे कि हम लोग यहां आयेहैं; इस समय शीघ्रतासे उस कार्यका आरंभ करो। निशाचर मारीच रावणके यह वचन सुनकर ॥ १४॥ महा अद्भुत मृग रूप धारण करके रामचंद्रजीके आश्रमके द्वारपर फिरनें लगा॥१५॥ इस मृगके शींगोंका अग्रभाग मणि प्रवर सदृशथा, और मुखकी आकृति श्वेत कृष्ण विविध वर्णोंसे चित्रितथी वदनमंडल कमलके फूलकी समान श्रवण युगल इन्द्र नील पद्मकी समानथे ॥ १६ ॥ गरदन कुछ एक ऊंची उदरभी इन्द्र नील मणिकी समता रखताथा पीछेका भागम हुयेके सुमनकी समान और वर्ण पद्म परागकी तुल्यथा॥ १७ ॥ खुरियें वैदूर्य मणिकी तुल्यथीं, दोनों जाघें पतलीथीं सब सन्धियें एक दूसरीसे गठी

क्रियतांतत्सखेशीघ्रंयदर्थंवयमागताः ॥सरावणवचःश्रुत्वामारीचोराक्षसस्तदा ॥ १४ ॥ मृगोभूत्वाश्रमद्वारिरामस्य विचचारह ॥ सतुरूपंसमास्थायमहदद्भुतदर्शनम् ॥ १५ ॥ मणिप्रवरशृंगाग्रःसितासितमुखाकृतिः ॥ रक्तपद्मोत्पलमुखइंद्रनीलोत्पलश्रवाः ॥ १६ ॥ किंचिदत्युन्नतग्रीवइंद्रनीलनिभोदरः ॥ मधूकनिभपार्श्वश्चकंजकिंजल्कसन्निभः॥१७॥ वैदूर्यसंकाशखुरस्तनुजंघःसुसंहतः ॥ इंद्रायुधसवर्णेनपुच्छेनोर्ध्वंविराजितः ॥ मनोहरस्निग्धवर्णोरत्नैर्नानाविधैर्वृतः ॥ क्षणेनराक्षसोजातोमृगःपरमशोभनः ॥ १९ ॥ वनंप्रज्वलयन्रम्यंरामाश्रमपदंचतत् ॥ मनोहरंदर्शनीयंरूपंकृत्वासराक्षसः ॥ २० ॥ प्रलोभनार्थंवैदेह्यानानाधातुविचित्रितम् ॥विचरन्गच्छतेशष्पंशाद्वलानिसमंततः॥२१॥ रौप्यैर्बिंदुशतैश्चित्रंभूत्वाचप्रियनंदनः ॥ विटपीनांकिसलयान्भक्षयन्विचचारह ॥ २२ ॥

हुईथीं, और पूंछ इन्द्रधनुषकी समान ऊपरको उठी हुई विराजमान होरहीथी ॥ १८ ॥ उसका वर्ण चिकना और मनोहरथा और शरीर उसका अनेक भांतिके रत्नोंसे विभूषितथा उस मारीच राक्षसनें क्षण भरमें यह परमशोभा युक्त मृग मूर्ति धारणकी ॥१९॥ उस वनको शोभित करता हुआ और श्रीरामचंद्रजीके आश्रमकोभी अपनें परम मनोहर देखनें योग्यरूपसे वह राक्षस प्रकाश मान करनें लगा ॥ २० ॥ जानकी जीको ललचानेके लिये अनेक प्रकारकी धातुओंसे चित्र विचित्ररूप धारण किये चारों ओर हरी २ घास चरता हुआ वह मृग रामचंद्रजीके आश्रम पर विचरनें लगा ॥ २१ ॥उसके शरीरपर सैकडों चांदीके विन्द लगेथे ऐसे कि जिनके देखनेंसे परम प्रीति उपजे वह मृग कभी २ वृक्षोंकी कों

साथले परम प्रीतियुक्त हो अपने सिद्धाश्रममें आये ॥ १२ ॥ तिसके पीछें जब महर्षि विश्वामित्रजी यज्ञ करनेंके लिये दीक्षित हुए तब श्रीरामचंद्रजी विचित्र धनुषकी टंकार करनेंके लिये विश्वामित्रजीके समीप आये ॥ १३ ॥ उनके गलेमें सुवर्णकी माला मस्तकपर अलकें हाथमें धनुष, दोनों नेत्र परम सुन्दर, एक मात्र जांघिया पहरे ब्रह्मचारीशरीर श्यामल वर्ण और अति सुन्दरताईसे शोभायमान, तबतक उनके रेख इत्यादि पुरुषचिह्न नहीं प्रगट हुएथे ॥ १४ ॥ वह अपने तेजसे समस्त दंडकारण्यको सुशोभित करके द्वितीयाके चंद्रमाके समान उदय होते हुए दिखलाई देनें लगे ॥ १५ ॥ उस समय हम तप्तकाञ्चन कुण्डलधारी, मेघका रंग धारण करके ब्रह्माजीके दिये हुए वर

तंतथादंडकारण्येयज्ञमुद्दिश्यदीक्षितम् ॥ बभूवोपस्थितोरामश्चित्रंविस्फारयन्धनुः ॥ १३ ॥ अजातव्यंजनःश्रीमान्बालःश्यामःशुभेक्षणः ॥ एकवस्त्रधरोधन्वीशिखीकनकमालया ॥ १४ ॥ शोभयन्दंडकारण्यंदीप्तेनस्वेनतेजसा॥अदृश्यततदारामोबालचंद्रइवोदितः ॥१५॥ ततोऽहंमेघसंकाशस्तप्तकांचनकुंडलः ॥ बलीदत्तवरोदर्पादाजगामाश्रमांतरम् ॥१६॥ तेनदृष्टःप्रविष्टोऽहंसहसैवोद्यतायुधः ॥ मांतुदृष्ट्वाधनुःसज्यमसंभ्रांतश्चकारह ॥ १७ ॥ अवजानन्नसंमोहाद्बालोऽयमितिराघवम् ॥ विश्वामित्रस्यतांवेदिमभ्यधावंकृतत्वरः॥१८॥तेनमुक्तस्ततोबाणःशितःशत्रुनिबर्हणः॥ तेनाहंताडितःक्षिप्तःसमुद्रेशतयोजने॥१९॥नेच्छतातातमांहंतुंतदावीरेणरक्षितः ॥रामस्यशरवेगेननिरस्तोभ्रांतचेतनः२०

प्रभावसे बल मदसे दर्पित हो विश्वामित्रजीके आश्रममें आये ॥ १६ ॥मैं जैसेही उनसे छिपकर हथियार लेकर आया वैसेही हमको आया हुआ देखतेही श्रीरामचंद्रजीनें तत्क्षणात् आयुध उठाकर हर्षित हो धनुषपर शर चढाया ॥ १७ ॥ बहुतही मोहवश होनेके कारण हमनें बालक समझ उनको ध्यानमें न लाकर बड़ी शीघ्रतासे विश्वामित्रजीकी यज्ञवेदीके ऊपरको दौडे ॥ १८ ॥ यह देखकर श्रीरामचंद्रजीनें शत्रुओंके मारनेवाले तीखे बाणोंको चला हमें घायल कर शत योजन दूर समुद्रको फेंक दिया॥१९॥हे तात ! हमारे मारनेंकी इच्छा उस समय उनको नहीं थी इसी कारणसे उन्होंनें उस समय हमको संहार न कर रक्षा की तिसके पीछें हम रामचंद्रजीके बाणवेगसे मूर्छित होकर उतनी दूर चलेगये२०

लोचना वैदहीजी॥ ३० ॥ फूल चुननेंके लिये, कभी अशोक कभी कर्णिकार और कभी आम वृक्षके निकट जातीथीं ॥ ३१ ॥ वनवास करनेंके अयोग्य उन रुचिर वदना सीताजीनें फूल चुनते हुए, घूमते २ उस रत्नमय मृगको देखा ॥ ३२ ॥ उसके सब अंग मुक्ता मणियोंसे चित्रितथे। ऐसी वराङ्गना और अति सुन्दर दांत व अधर वाली जानकी जीनें भली भांति उस मृगको देखा इस मृगके रुयें चांदी और गेरु धातुके समान थे॥३३॥श्रीजानकीजी विस्मयसेप्रफुल्ल नेत्रोंसे स्नेह सहित उस मृगको देखनेंलगीं माया मय मृगभी राम प्यारी सीताजीकी ओर देखतारहा॥३४॥ अनन्तर वह मृग उस वनको प्रकाशित करता हुआ इधर उधर घूमने लगा। जनक कुमारी श्रीसीताजी अनेक रत्नमय अदृष्टपूर्व (जो

कुसुमापचयेव्यग्रापादपानत्यवर्तत ॥ कर्णिकारानशोकांश्चचूतांश्चमदिरेक्षणा ॥ ३१ ॥ कुसुमान्यपचिन्वंती चचाररुचिरानना ॥ अनर्हांवनवासस्यसातंरत्नमयंमृगम् ॥ ३२ ॥ मुक्तामणिविचित्रांगंददर्शपरमांगना ॥ तंवैरुचिरदंतोष्ठंरूप्यधातुतनूरुहम्॥३३॥विस्मयोत्फुल्लनयनासस्नेहंसमुदैक्षत॥सचतांरामदयितांपश्यन्मायामयो मृगः॥ ३४ ॥ विचचारततस्तत्रदीपयन्निवतद्वनम् ॥ अदृष्टपूर्वंदृष्ट्वातंनानारत्नमयंमृगम् ॥ विस्मयंपरमंसीताज गामजनकात्मजा॥ ३५ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वाल्मीकीयेआदिकाव्येआ०कां०द्विचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४२ ॥ ॥छ॥

सातंसंप्रेक्ष्यसुश्रोणिकुसुमाविचिन्वती ॥ हेमराजतवर्णाभ्यांपार्श्वाभ्यामुपशोभितम् ॥ १ ॥ प्रहृष्टाचानवद्यांगीमृ ष्टहाटकवर्णिनी ॥ भर्त्तारमपिचक्रंदलक्ष्मणंचैवसायुधम् ॥ २ ॥ आहूयाहूयचपुनस्तंमृगंसाधुवीक्षते ॥ आगच्छा गच्छशीघ्रंवैआर्यपुत्रसहानुज ॥३॥ तावाहूतौनरव्याघ्रौवदह्यारामलक्ष्मणौ॥वीक्षमाणौतुतंदेशंतदाददृशतुर्मृगम्॥४॥

पहले कभी नहीं देखा) मृगको देखकर अति विस्मयको प्राप्त हुई॥३५॥इत्यार्षे श्रीरामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आ० द्विचत्वारिंशःसर्गः ४२ सुश्रोणी,फूल चुनती हुई सीताजीनें इस मृगके शरीरके मध्य चांदीके बिंदुशोभाय मान देख दोनों बगल उसके सुवर्ण व चांदीके देखे॥१॥ यह देखकर परम हर्षित हो अनिन्दिताङ्गी,विशुद्ध वर वर्णिनी सीताजीनें आयुध धारणकिये हुए रामचंद्र व लक्ष्मणजीको पुकारा॥२॥हे आर्यपुत्र! लक्ष्मणके स हित शीघ्र आओ इस प्रकारसे कहकर रामचंद्रजीको पुकारते२उस मृगकी ओर देखनें लगीं॥३॥ सीताजीके पुकारनें पर पुरुषोत्तम श्री रामचंद्रजी

एकही कालमें भस्म हुए देखोगे ॥ २९ ॥ क्योंकि पराई स्त्रीके हरनकरनेंकी तुल्य और कोई भारी पाप नहीं है! हे राजन्। तुम्हारे रनवासमें सैकडों हज़ारों स्त्रियां विराजमान हैं ॥ ३० ॥ तुम अपनी ग्रहणकीहुई उनही समस्त स्त्रियोंमें आसक्त रहकर अपने वंश, अभीष्ट प्राण, राज्य, संपद्, मान और राक्षसकुलकी रक्षा करो ॥ ३१ ॥ यदि परमसुन्दरी स्त्रिये और मित्रोंके साथ सदांही सुख भोगनेंकी इच्छा करतेहो तौ रामचंद्रका अप्रिय कार्य मत करो ॥ ३२ ॥ हम तुम्हारे सुहृदहैं इसी कारण वारंवार तुमको निवारण करतेहैं यदि इतनेपरभी तुम बलपूर्वक सीताको हर लाओगे तौ निश्चयही तुमको रामबाणसे बन्धु बान्धवों सहित, क्षीणबल और क्षीणप्राण होकर यमराजके भवनमें

परदाराभिमर्शात्तुनान्यत्पापतरंमहत् ॥ प्रमदानांसहस्राणितवराजन्परिग्रहे ॥ ३० ॥ भवस्वदारनिरतः स्वकुलंरक्षराक्षसान् ॥ मानंवृद्धिंचराज्यंचजीवितंचेष्टमात्मनः ॥ ३१ ॥ कलत्राणिचसौम्यानिमित्रवर्गंतथैवच ॥ यदीच्छसिचिरंभोक्तुंमाकृथारामविप्रियम् ॥ ३२ ॥ निवार्यमाणःसुहृदामयाभृशंप्रसह्यसीतांयदिधर्षयिष्यसि ॥ गमिष्यसिक्षीणबलःसबांधवोयमक्षयंरामशरास्तजीवितः ॥३३॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०आर०अष्टात्रिंशःसर्गः॥३८॥छ॥
एवमस्मितदामुक्तःकथंचित्तेनसंयुगे ॥ इदानीमपियद्वृत्तंतच्छृणुष्वयदुत्तरम् ॥ १ ॥ राक्षसाभ्यामहंद्वाभ्यामनिर्विण्णस्तथाकृतः ॥ सहितोमृगरूपाभ्यांप्रविष्टोदंडकावने ॥२॥ दीप्तजिह्वोमहादंष्ट्रस्तीक्ष्णशृंगोमहाबलः ॥ व्यचरन्दंडकारण्यंमांसभक्षोमहामृगः ॥३॥ अग्निहोत्रेषुतीर्थेषुचैत्यवृक्षेषुरावण ॥ अत्यंतघोरोव्यचरंस्तापसांस्तान्प्रधर्षयन् ॥४॥

जाना पडेगा ॥ ३३ ॥इत्यार्षे० श्रीम० वा० आ०आ० अष्टत्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥ उस कालमें तौ हम किसी प्रकारसे रामचंद्रजीके द्वारा इस भांति युद्धमें छूट गयेथे, इस समय वह कहताहूं जो अब हुआहै, सो तुमश्रवण करो ॥ १ ॥ जब दो मृगरूपी राक्षसोंके साथ हम दंडकारण्यको गये वहांभी इसी प्रकार पराजित हुए ॥ २ ॥ जब हम दंडकारण्यको गयेथे तौ हमारी बडी अग्निके समान तो जिह्वाथी, बडे तीखे दांतथे, बडे २ सींगथे महाबलवान् भयंकर रूप था, और दंडकारण्यमें मांस खाते हुएं हम विचरण करतेथे ॥ ३ ॥ फिर जहां २ तीर्थरूपी वृक्षथे,

इसका सबही शरीर विविध वर्णोंसे विचित्रहा रहाहै। मध्य २ में रत्नोंके विन्दु बनेहैं। यह मृग चद्रमाकी समान वनभूमिको शान्ति भावसे प्रकाशित करता हुआ हमारे सन्मुख विराजमान हो रहाहै ॥ १४ ॥ अहहह क्या सुन्दरताईहै! अहो क्या श्रीहै! आहा क्या शोभाहै! क्या मधुर इसका बोलहै! यह अपूर्व विचित्र अंगवाला मृग हमारे मनको चुरायेलेताहै ॥ १५ ॥ यदि आप इसको जीता हुआही पकड देंगे तो बडा अपूर्व यह पदार्थ सदा निकट रहकर विस्मय उपजाता रहा करैगा॥१६॥जब हम वनवासके व्रतको पूरा करकै फिर अपने राज्यमें चलेंगे तब यह मृग हमारे रन वासका भूषण होगा ॥ १७ ॥ हे प्रभो! भरतजीको आपको, हमारी सासोंको, वरन सबकोही यह दिव्य मृगरूप विस्मय

नानावर्णविचित्रांगोरत्नभूतोममाग्रतः ॥ द्योतयन्वनमव्यग्रंद्योततेशशिसन्निभः ॥ १४ ॥ अहोरूपमहोलक्ष्मीःस्वरसंपच्चशोभना ॥ मृगोऽद्भुतोविचित्रांगोहृदयंहरतीवमे ॥ १५ ॥ यदिग्रहणमभ्येतिजीवन्नेवमृगस्तव ॥ आश्चर्यंभूतंभवतिविस्मयंजनयिष्यति ॥ १६ ॥ समाप्तवनवासानांराज्यस्थानांचनःपुनः ॥ अंतःपुरेविभूषार्थोमृगएषभविष्यति ॥ १७ ॥ भरतस्यार्यपुत्रस्यश्वश्रूणांममचप्रभो ॥ मृगरूपमिदंदिव्यंविस्मयंजनयिष्यति ॥ १८ ॥ जीवन्नयदितेभ्येतिग्रहणंमृगसत्तमः ॥ अजिनंनरशार्दूलरुचिरंतुभविष्यति ॥ १९ ॥ निहतस्यास्यसत्वस्यजांबूनदमयत्वचि ॥ शष्पबृस्यांविनीतायामिच्छाम्यहमुपासितुम् ॥ २० ॥ कामवृत्तमिदंरौद्रंस्त्रीणामसदृशंमतम् ॥ वपुषात्वस्यसत्त्वस्यविस्मयोजनितोमम ॥ २१ ॥ तेनकांचनरोम्णातुमणिप्रवरशृंगिणा ॥ तरुणादित्यवर्णननक्षत्रपथवर्चसा ॥२२॥

उत्पन्न करावैगा ॥ १८ ॥ हे पुरुषोत्तम! यदि इस मृगको आपजीता न पकड सकें, तो इसका चर्मही परम मनोहर होगा ॥ १९ ॥ इस निहत मृगके सुवर्णमय चर्मको कुशासनपर बिछाकर उसपर बैठ तुम्हारे सहित भगवान्‌की पूजा करनेंको हमारा अभिलाष हुआहै ॥ २० ॥ यद्यपि स्वामीको इस प्रकारकी प्रेरणा करना स्त्रियोंके लिये स्वेच्छा चारिताहै,और भयंकर, व अनुचितभीहै, तथापि इस मृगकी विचित्र देहनें हमको बहुतही विस्मय उपजायाहै ॥ २१ ॥ उसके कंचनके समान रोम भली श्रेष्ठ मणिकी समान शृंग प्रभात कालीन सूर्यकी नांई और आकाशकी

राक्षस रामचंद्रजीके दो बाणोंसे मारे गये ॥ १३ ॥ हे रावण! हम किसीप्रकारसे रामचंद्रजीके बाणसे अपने प्राणोंको बचा तबसे तपस्वीका धर्म ग्रहण कर चित्तको रोके हुए इस स्थानमें योगका अवलंबन करके तपस्याकरतेहैं ॥ १४ ॥ तबसे हम फांसी हाथमें लिये यमराजकी समान उन चीर व मृगचर्म धारण किये धनुषधारी रामचंद्रको मानों प्रत्येक वृक्षके तले देखतेहैं ॥ १५ ॥ हम भयके मारे भीतहो निरन्तर सहस्रों रामको जहां तहां देखतेहैं । इस समस्तही वनमें मानों श्रीरामचंद्रजी हमको दिखाई देरहेहैं ॥ १६ ॥ हे राक्षसेश्वर ! हम रामचंद्र करके रहित स्थान मेंभी, बराबर केवल उन्हीं रामचंद्रको देखतेहैं ! वरन स्वप्नमेंभी उनको देखकर मैं डरके मारे जागतेकी समान इधर उधर दौडने लगताहूं

शरेणमुक्तोरामस्यकथंचित्प्राप्यजीवितम् ॥ इहप्रव्राजितोयुक्तस्तापसोऽहंसमाहितः ॥ १४ ॥ वृक्षेवृक्षेहिपश्यामिचीर कृष्णाजिनांबरम् ॥ गृहीतधनुषंरामंपाशहस्तमिवांतकम् ॥१५॥ अपिरामसहस्राणिभीतःपश्यामिरावण॥रामभूत मिदंसर्वमरण्यंप्रतिभातिमे ॥ १६ ॥ राममेवहिपश्यामिरहितेराक्षसेश्वर ॥ दृष्ट्वास्वप्नगतंराममुद्भ्रमामीवचेतनः॥१७॥ रकारादीनिनामानिरामत्रस्तस्यरावण ॥ रत्नानिचरथाश्चैववित्रासंजनयंतिमे ॥१८॥ अहंतस्यप्रभावज्ञोनयुद्धंतेनते क्षमम् ॥ बलिंवानमुचिंवापिहन्याद्धिरघुनंदनः ॥१९॥रणेरामेणयुद्ध्यस्वक्षमांवाकुरुरावण ॥ नतेरामकथाकार्यायदि मांद्रष्टुमिच्छसि ॥ २० ॥ बहवःसाधवोलोकेयुक्ताधर्ममनुष्ठिताः ॥ परेषामपराधेनविनष्टाःसपरिच्छदाः ॥ २१ ॥

॥ १७ ॥ हे रावण ! हम तुमसे अधिक कहांतक कहैं कि हम रामचंद्रसे यहांतक डर गयेहैं, कि रत्न, रथ, इत्यादि जिन शब्दोंकी आदिमें रकारहै उन शब्दोंके श्रवण करनेंसेभी हमें डर लगताहै *॥ १८ ॥ हम भली भांति उन रघुनंदन रामचंद्रजीके पराक्रमको जानतेहैं । इस कारणसे उनके साथ युद्ध करना तुमको उचित नहीं है।वह राम बलि, अथवा नमुचिको संहार करनेंमेंभी समर्थ हैं ॥ १९ ॥ हे रावण ! तुम रामचंद्रके सहित युद्ध करो वा न करो, परन्तु यदि हमको देखनेंका अभिलाष करतेहो तौ हमारे साथ श्रीरामचंद्रजीकी वार्ता मत करो नहीं तौ हम यहाँसे चले जायगे ॥ २० ॥ इस लोकमें धर्मका अनुष्ठान करनेंवाले योगयुक्त होकरभी बहुतसे पुरुष पराया

* "दोहा" रावण राके सुनतही रहत न मोहिं तन प्राण । तिन रघुनंदन सों न छल,करहु वचन मम बान ॥

बहुत मृगोंको मार डालतेहैं ॥ ३१ ॥ अधिक करके वह राजा लोक मृग वधमें उद्यत होकर बड़े २ वनोंमें मणिरत्न सुवर्णादि धातुरूप धनका संग्रहभी करतेहैं ॥ ३२ ॥ हे लक्ष्मण ! इस प्रकार धनधान्यकी राशिसे खजाना बढता है । इस लिये वनमें सबही पुरुषोंकी ब्रह्मकी नांई मनकी इच्छा सफल होतीहै ॥३३॥ हे लक्ष्मण ! अर्थकी इच्छा करनेंवाला पुरुष अर्थसाधन वस्तुके कारण निःसंशय चित्तसे उस कार्यमें लगै तो अर्थ शास्त्रज्ञ पंडित लोग उसकोही ठीक अर्थ कहते हैं ॥ ३३ ॥ इस कारणसे इस मृगके वध करनेंमें कुछ दुविधा करनेंकी आवश्यकता नहीं है। सुमध्यमा जानकीजी हमारे साथ इस मृग रत्नके श्रेष्ठ व सुवर्ण मय चर्म पर बैठेंगी ॥ ३५॥ क्या कदली और प्रियक मृगका चमडा

धनानिव्यवसायेनविचीयंतेमहावने ॥ धातवोविविधाश्चापिमणिरत्नसुवर्णिनः ॥ ३२ ॥ तत्सारमखिलंनृणांधनंनिच
यवर्धनम् ॥ मनसाचिंतितंसर्वंयथाशुक्रस्यलक्ष्मण ॥ ३३ ॥ अर्थीयेनार्थकृत्येनसंव्रजत्यविचारयन् ॥ तमर्थमर्थ
शास्त्रज्ञाःप्राहुरर्थ्याःसुलक्ष्मण ॥ ३४ ॥ एतस्यमृगरत्नस्यपरार्ध्यैकांचनत्वचि ॥ उपवेक्ष्यतिवैदेहिमयासहसुमध्य
मा ॥ ३५ ॥ नकादलीनप्रियकीनप्रवेणीनचाविकी ॥ भवेदेतस्यसदृशीस्पर्शेनेनेतिमेमतिः ॥ ३६ ॥ एषचैवमृगःश्रीमा
न्यश्चदिव्योनभश्चरः ॥ उभावेतौमृगौदिव्यौतारामृगमहीमृगौ ॥ ३७ ॥ यदिवायंतथायन्मांभवेद्वदसिलक्ष्मण ॥ मा
यैषाराक्षसस्येतिकर्तव्योस्यवधोमया ॥ ३८ ॥ एतेनहिनृशंसेनमारीचेनाकृतात्मना ॥ वनेविचरतापूर्वंहिंसितामुनि
पुंगवाः ॥ ३९ ॥ उत्थायबहवोयेनमृगयायांजनाधिपाः ॥ निहताःपरमेष्वासास्तस्माद्वध्यस्त्वयंमृगः ॥ ४० ॥

क्या प्रवेणी नामक छागलका चमडा क्या मेषादिकका चमडा । कोई भी चमडा इस मृगके चमडे की समान कोमल, चिकना, व मनोहर हमको नहीं ज्ञात होताहै ॥ ३६ ॥ यह ही मृग श्रीमानहै, और आकाशमें जो मृग विचरण करतेहैं; वही श्रीमानहै । बस इससे वह तारा मृग (मृग शिरा नक्षत्र) और यह महीमृग यही दोनों मृग दिव्यहैं ॥३७॥ हे लक्ष्मण ! तुम कहतेहो कि यह राक्षसकी मायाहै; सो यदि वास्तवमें ऐसाही हो तोभी हमको इसका संहार करना कर्त्तव्यहीहै ॥ ३८ ॥ क्योंकि देखो इस दुरात्मा निर्दय मारीचनें वनमें घूमते २ अनेक मुनिश्रेष्ठोंको मारडालाहै ॥ ३९ ॥ और शिकार खेलनें जब राजालोग इस वनमें आये तो इस राक्षसनें इसी भांति मायामृग बनकर परम धनुर्द्धर अनेक

अयोग्यहैं निष्फलहैं ॥ ४ ॥ जो पुरुष साधारण स्त्रीके कहनेंसे माता, पिता, राज्य, और सुहृदगणोंको छोडकर वनमें चला आयाहै ॥ ५ ॥ सो हम तुम्हारे सामने अवश्यही युद्धमें खरका नाशकरनेंवाले उसरामकी प्राणसे अधिक प्यारी भार्याको हरण करेंगे ॥ ६ ॥ रे मारीच! हमनें अपनी बुद्धिसे अपने हृदयमें ऐसा निश्चय करही लियाहै, सो इन्द्रके सहित सुरासुरगणभी इसके विरुद्ध नहीं कर सकते! अर्थात् हमको इस संकल्पसे नहीं हटा सकते ॥ ७ ॥ यदि हम इस कार्यकेविषय में कर्त्तव्याकर्त्तव्य निश्चय करनेंको तुमसे पूछते, तब तुमको सके दोष, गुण, हानि, लाभ, उपाय, इत्यादि कहने उचितथे ॥ ८ ॥ जो ज्ञानवान् मंत्री अपने ऐश्वर्य अभिलाषी होतेहैं वह राजा करके

यस्त्यक्त्वासुहृदोराज्यंमातरंपितरंतथा ॥ स्त्रीवाक्यंप्राकृतंश्रुत्वावनमेकपदेगतः ॥ ५ ॥ अवश्यंतुमयातस्यसंयुगे खरघातिनः ॥ प्राणैःप्रियतरासीताहर्तव्यातवसंनिधौ ॥ ६ ॥ एवंमेनिश्चिताबुद्धिर्हृदिमारीचविद्यते ॥ नव्याव र्तयितुंशक्यासेंद्रैरपिसुरासुरैः ॥ ७ ॥ दोषंगुणंवासंपृष्टस्त्वमेवंवक्तुमर्हसि ॥ अपायंवाउपायंवाकार्यस्यास्यविनि श्चये ॥ ८ ॥ संपृष्टेनतुवक्तव्यंसचिवेनविपश्चिता ॥ उद्यतांजलिनाराज्ञोयइच्छेद्भूतिमात्मनः ॥ ९ ॥ वाक्यमप्रति कूलंतुमृदुपूर्वंशुभंहितम् ॥ उपचारेणवक्तव्योयुक्तंचवसुधाधिपः ॥ १० ॥ सावमर्दंतुयद्वाक्यमथवाहितमुच्यते ॥ ना भिनंदेततद्राजामानार्थीमानवर्जितम् ॥ ११ ॥ पंचरूपाणिराजानोधारयंत्यमितौजसः ॥ अग्नेरिंद्रस्यसोमस्यय मस्यवरुणस्यच ॥ १२ ॥ औष्ण्यंतथाविक्रमंचसौम्यंदंडंप्रसन्नताम् ॥ धारयंतिमहात्मानोराजानःक्षणदाचर ॥ १३ ॥

पूछे जानेंपर हाथ जोड पूछे हुए विषयका उत्तर नम्रतासे निवेदन करतेहैं ॥ ९ ॥ कारण कि राजा ओंके समीप, उपचार युक्त मनोहर, मंगल जनक अप्रतिकूल वचनही कहनें ठीकहै ॥ १० ॥ मंगलजनक वचनसेभी यदि अपमान होताहो तो माननीय राजा लोग उस सन्मान रहित वचनोंको सुन प्रसन्न नहीं होते अथवा ग्रहण नहीं करते ॥ ११ ॥ हे निशाचर! अमिततेजवान् महात्मा भूपतिलोग, अग्नि, इन्द्र, चंद्र, यम और वरुण इन पंच देवताओंका रूप धारण करतेहैं ॥ १२ ॥ इससेही हे मारीच! उनमें, अग्निकी गरमाई, इन्द्रका पराक्रम; चंद्रमाकी

बडी अभिलाषा हुईहै, देखो; अब हम बहुत शीघ्रतासे इस मृगको पकडनेंके लिये जायंगे. ॥ ४८ ॥ इस मृगका चर्म सब मृगोंसे अच्छाहै, आज निश्चयही इसको प्राण त्याग करना पडेगा। लक्ष्मण! हम जबतक इस मृगको नहीं मारडालें तब तक तुम सीताजीके साथ सावधानतासे आश्रममें टिके रहो ॥ ४९ ॥ हे लक्ष्मण! हमें एक बाणसे शीघ्रही मृगको मार कर इसका चर्म ले आऊंगा जब तक हम लौट कर न आवें तब तक तुम सावधानीसे यहां पर रहना ॥ ५० ॥ हे लक्ष्मण! तुम जानकीको लेकर अति बलवान् बुद्धिमान, अच्छे कार्योंको करनेंमें चतुर, बली, श्रेष्ठ जटायुके साथ निरंतर शंकित और सावधानीसे यहां पर रहना ॥५१॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० आर० त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥४३॥

त्वचाप्रधानयाह्येषमृगोऽद्यनभविष्यति॥अप्रमत्तेनतेभाव्यमश्रमस्तेनसीतया॥४९॥यावत्पृषतमेकेनसायकेननिहन्म्यहम् ॥ हत्वैतच्चर्मआदायशीघ्रमेष्यामिलक्ष्मण ॥ ५० ॥ प्रदक्षिणेनातिबलेनपक्षिणाजटायुषाबुद्धिमताच लक्ष्मण ॥ भवाप्रमत्तःप्रतिगृह्यमैथिलींप्रतिक्षणंसर्वतएवशंकितः ॥ ५१ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०आर०त्रिचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४३ ॥ ७ ॥ ॥ तथातुतंसमुद्दिश्यभ्रातरंरघुनंदनः॥ दधारासिंमहातेजाजांबूनदमयत्सरुम् ॥१॥ ततस्त्रिविनतंचापमादायात्मविभूषणम् ॥ आबध्यचकलापौद्वौजगामोदग्रविक्रमः ॥ २ ॥ तंवन्यराजोराजेंद्रमापतंतंनिरीक्ष्यवै ॥ बभूवांतर्हितस्त्रासात्पुनःसंदर्शनेऽभवत् ॥ ३ ॥ बद्धासिर्धनुरादायप्रदुद्रावयतोमृगः ॥ तंस्मपश्यतिरूपेणद्योतयंतामिवाग्रतः ॥ ४ ॥

परम तेजस्वी रघुनंदन! रामचंद्रजी भ्राता लक्ष्मणजीको इस प्रकारसे समझाय बुझाय सुवर्ण निर्मित मुष्टि लगा हुआ खड्ग हाथमें लेते हुए ॥ १ ॥ तिसके पीछे जिसका बिचला भाग तीन जगहसे झुका हुआथा, ऐसा अपना भूषण स्वरूप धनुष ग्रहण करके और दो तरकश बांध करके प्रचंड पराक्रमी श्रीरामचंद्रजी गये ॥ २ ॥ वह मृगश्रेष्ठ मृगोंका राजा रामचंद्रजीको अपनें सन्मुख आता हुआ देखकर भयके मारे अन्तरध्यानहो फिर थोडी दूरपै उनको दीख पडा ॥ ३ ॥ श्रीरामचंद्रजीभी खड्ग और धनुष बाण धारण करके जिस ओर मृगथा उस ओर को धाये। और देखते हुए कि मृग अपनें रूपसे चारों ओर को प्रकाश करता हुआ मानों सामनेंही विराजरहाहै ॥ ४ ॥

जीकी प्रेरणासे, व भाईकी सुहृदताके प्रेमसे, लक्ष्मणजीभी सम्भ्रान्तचित्तहो रामके निकट चले जायँगे ॥ २१ ॥ इस प्रकार राम लक्ष्मण दोनोंही जब उस आश्रममें चले जांयगे, तब हम सीताको सुखसे हरणकरेंगे। जिस प्रकार इन्द्रनें शचीका हरण कियाथा ॥ २२ ॥ हे सुव्रत निशाचर! मारीच ! तुम इस प्रकार कार्यके पूरा करके जहां इच्छा हो वहां चले जाना। इस कार्यके पूरा होनेंपर हम तुमको आधा राज्य देंगे ॥ २३ ॥ हे शुभदर्शन ! तुम इस कार्यको पूर्ण करनेंके लिये दंडकारण्यके मार्गमें मंगल सहित चलो, हमभी रथपर चढकर तुम्हारे पीछे२ चलतेहैं ॥ २४ ॥ हम रामको ठगकर बिना युद्ध किये सीताको प्राप्तकर कृतकार्य हो फिर लंकापुरीको तुम्हारे सहित लौटेंगे ॥ २५ ॥ हे

अपक्रांतेचकाकुत्स्थेलक्ष्मणेचयथासुखम् ॥ आहरिष्यामिवैदेहींसहस्राक्षःशचीमिव ॥ २२ ॥ एवंकृत्वात्विदंकार्यंयथेष्टंगच्छराक्षस ॥ राज्यस्यार्धंप्रदास्यामिमारीचतवसुव्रत ॥ २३ ॥ गच्छसौम्यशिवंमार्गंकार्यस्यास्यविवृद्धये ॥ अहंत्वानुगमिष्यामिसरथोदंडकावनम् ॥ २४ ॥ प्राप्यसीतामयुद्धेनवंचयित्वातुराघवम् ॥ लंकांप्रतिगमिष्यामिकृतकार्यःसहत्वया ॥ २५ ॥ नोचेत्करोषिमारीचहन्मित्वामहमद्यवै ॥ एतत्कार्यमवश्यंमेबलादपिकारिष्यसि ॥ राज्ञोविप्रतिकूलस्थोनजातुसुखमेधते ॥ २६ ॥ आसाद्यतंजीवितसंशयस्तेमृत्युर्ध्रुवोह्यद्यमयाविरुध्यतः ॥ एतद्यथावत्परिगण्यबुद्ध्यायदत्रपथ्यंकुरुतत्तथात्वम् ॥ २७ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०आर०कां०चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥ ॥ छ ॥ आज्ञप्तोरावणेनेत्थंप्रतिकूलंचराजवत् ॥ अब्रवीत्परुषंवाक्यंनिःशंकोराक्षसाधिपम् ॥ १ ॥

निशाचर! मारीच ! यदि तुम हमारे वचनोंके प्रतिकूल करोगे तो अभी हम तुमको मार डालेंगे, कोई पुरुष राजाके विरुद्ध आचरण करके सुख संपत्ति नहीं पासकता ॥ २६ ॥ रामचंद्रके निकट जानेंसे तुम्हारे जीवनमें संशय मात्र है, परन्तु हमारे साथ विरुद्धाचरण करनेंसे इसी समय तुम्हारीमृत्यु निश्चय होगी; सो अपनी बुद्धिसे यथोचित विचार कर इस विषयमें जो कर्तव्य हो सोकरो ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥ मारीच राक्षसपति रावण करके राजाकी समान मनोगत विषयमें

और उसको दृढ धनुष्यपर चढा बलसे खेंच जलती अग्निकी समान प्रकाशित तिस मृगपर ॥ १४ ॥ ब्रह्माका बनाया हुआ अतिप्रज्वलित अस्त्र, उस मृगरूपी राक्षस मारीचके लायकही छोडा॥१५॥शर श्रेष्ठ ब्रह्मास्त्रनें छूटतेही वज्रकी समान मृगरूपी मारीचका हृदय विदारण करडाला तब वह मारीच अतिशय आतुर होकर ताडके वृक्ष समान ऊपरको उछल पृथ्वीपर गिर पडा ॥ १६ ॥ और क्षीण प्राण मरनेंके निकट पहुँच पृथ्वी पर गिरकर भयंकर शब्दसे बहुत चिल्लाया । उस राक्षसनें मरनेंके समय वह अपनी बनावटी छलकी देह त्यागन करदी ॥ १७ ॥ अनन्तर मारीच मरनेंके समय उस मायामय देहको त्याग रावणकी आज्ञा स्मरण कर विचारनें लगाकि किस उपायका अवलंबन करनेंसे सीता लक्ष्मणको यहां

संधायसदृढंचापेविकृष्यबलवद्बली ॥ तमेवमृगमुद्दिश्यज्वलंतमिवपन्नगम् ॥ १४ ॥ मुमोचज्वलितंदीप्तमस्त्रंब्रह्म
विनिर्मितम् ॥ सभृशंमृगरूपस्यविनिर्भिद्यशरोत्तमः ॥ १५ ॥ मारीचस्यैवहृदयंबिभेदाशनिसन्निभः ॥ तालमात्रम
थोत्प्लुत्यन्यपतत्सभृशातुरः॥१६॥व्यनदद्भैरवंनादंधरण्यामल्पजीवितः॥म्रियमाणस्तुमारीचोजहौतांकृत्रिमांतनुम्॥
॥ १७ ॥ स्मृत्वातद्वचनंरक्षोदध्यौकेनतुलक्ष्मणम् ॥ इहप्रस्थापयेत्सीतातांशून्येरावणोहरेत् ॥ १८ ॥ सप्राप्तकाल
माज्ञायचकारचततःस्वनम् ॥ सदृशंराघवस्यैवहासीतेलक्ष्मणेतिच ॥ १९ ॥ तेनकर्मणिनिर्विद्धंशरेणानुपमेनहि ॥
मृगरूपंतुतत्त्यक्त्वाराक्षसंरूपमास्थितः ॥ २० ॥ चक्रेससुमहाकायोमारीचोजीवितंत्यजन् ॥ तंदृष्ट्वापतितंभूमौरा
क्षसंभीमदर्शनम् ॥ २१ ॥ रामोरुधिरसिक्तांगंचेष्टमानंमहीतले ॥ जगाममनसासीतांलक्ष्मणस्यवचःस्मरन् ॥ २२ ॥

भेजें, और रावण शून्य आश्रमको पाकर सीताको हरण करले ॥ १८ ॥ यह विचारकर अपना काल आया हुआ जान रावणकी उपदेश कीहुई सलाहके अनुसार, "हा सीते! हा लक्ष्मण!" कहकर रामचंद्रजीके समान कंठस्वर बनाकर उस राक्षसनें चिल्लाना आरंभ किया ॥ १९ ॥ श्री रामचंद्रजीके अनुपम बाणसे उसको मर्म स्थानमें इतना विंध गयाथा; कि फिर वह मृगरूप धारण नहीं कर सका और राक्षसमूर्ति ग्रहणकी॥ २०॥ मरनेंके समय मारीचकी देह बडी भारी होगई उस भयंकर निशाचर मारीचको भूमिमें ॥ २१ ॥ रुधिरसे लिपटा पृथ्वीमें लोटता हुआ श्रीरा

मूलहोतेहैं। इस कारण सबही अवस्था में भली भांति राजाकी रक्षाकरनी ठीकहै ॥ १० ॥ हे निशाचर! अति तीक्ष्ण स्वभाव वाला सबका अनभल चाहनेंवाला महात्मा ओंके आगे नम्रतासे नहीं रहनेवाला राजा राज्यका पालन नहीं कर सकताहै ॥ ११ ॥ जो मंत्री लोग बडी कठोर आज्ञासें राजासें कहकर प्रकाशित करा देतेहैं; फिर वे लोगभी राजासे दुःख पातेहैं! जैसे अयोग्य ऊंचे रथ हांकनेंवाले सारथीभी मालिकके साथ झटके सहतेहैं ॥ १२ ॥ इस लोकमें अनेक मनुष्य उचित धर्मानुष्ठान किये अपने पदके योग्य पराये अपराधसे बंधुबांधवोंसहित नाशको प्राप्त हो गयेहैं ॥ १३ ॥ हे दशानन! प्रजा प्रतिकूलाचारी तीक्ष्णस्वभाव राजा करके रक्षमान होकर, शियारों करके रक्षित ससा

राज्यंपालयितुंशक्यंनतीक्ष्णेननिशाचर॥ नचातिप्रतिकूलेननाविनीतेनराक्षस ॥ ११ ॥ येतीक्ष्णमंत्राःसचिवाभुज्यंतेसहतेनवै ॥ विषमेषुरथाःशीघ्रंमंदसारथयोयथा ॥ १२ ॥ बहवःसाधवोलोकयुक्तधर्ममनुष्ठिताः ॥ परेषामपराधेनविनष्टाःसपरिच्छदाः ॥ १३ ॥ स्वामिनाप्रतिकूलेनप्रजास्तीक्ष्णेनरावण ॥ रक्ष्यमाणानवर्धंतेमृगागोमायुनायथा ॥ १४ ॥ अवश्यंविनशिष्यंतिसर्वेरावणराक्षसाः ॥ येषांत्वंकर्कशोराजादुर्बुद्धिरजितेंद्रियः ॥ १५ ॥ तदिदंकाकतालीयंघोरमासादितंमया ॥ अत्रत्वंशोचनीयोसिससैन्योविनशिष्यसि ॥ १६ ॥ मांनिहत्यतुरामोसावचिरात्त्वांवधिष्यति ॥ अनेनकृतकृत्योस्मिम्रियेचाप्यरिणाहतः ॥ १७ ॥ दर्शनादेवरामस्यहतंमामवधारय ॥ आत्मानंचहतंविद्धिहत्वासीतांसबांधवम् ॥ १८ ॥

आदि मृग गणोंकी नांई आगे प्रजा वृद्धिको प्राप्त नहीं होती ॥ १४ ॥ अरे रावण! तुम खोटी बुद्धिवाले हो इन्द्रियोंके वश हुए हो, कैडे स्वभाववाले हो, ऐसे जो तुम जिनके राजा हो वह समस्तही निशाचर अवश्यही मृत्युके ग्रास हो जांयगे ॥ १५ ॥ जिससे कि तुम ससैन्य भावना की हुई मृत्युसे भरे हुए शोचनीय हो, वैसेही तुम्हारा हमारे ऊपरभी यह घोरदुःख आन पडाहै ॥ १६ ॥ रामचंद्रजी हमको मारकर फिर तुम्हारा संहार करेंगे! युद्ध करके शत्रुके हाथसे मारे जानेंपर हम तो कृतकृतार्थहो जांयगे ॥ १७ ॥ परन्तु तुम निश्चय जानों कि, हम तो रामको देख

कारण तुम वेगही शरणार्थी अपने भ्राताकी रक्षाके लिये दौडो ॥ ३ ॥ गाय बैल जिस प्रकार सिंहके वशमें पडताहै,तुम्हारे भइयाभी वैसेही राक्षसके
वशमें पडेहैं । परन्तु लक्ष्मणजीको मृग मारनेको गमन करनेंके समय जो रामचंद्रजी आज्ञा देगयेथे उसको याद करके सीताजीसे इस प्रकार कहे
जानें परभी रामचंद्रजीके समीप नहीं गये ॥ ४ ॥ तब सीताजी नितान्त क्षुभित होकर लक्ष्मणजीसे बोलीं कि हे लक्ष्मण ! तुम रामचंद्रजीके मित्र
रूपी शत्रुहो ॥ ५ ॥ देखो तुम इस प्रकारकी अवस्थामेंभी उनकी रक्षा करनेंके लिये नहीं जाते । इस्से समझ पडा कि तुम हमको लेलेनेंके
लिये रामचंद्रजीके विनाशकी कामना करतेहो ॥ ६ ॥ निश्चयही हमारे प्रति लुभानेंसे तुम उनके समीप नहीं जाते इसी कारणसे रामचन्द्रजीकी

रक्षसांवशमापन्नंसिंहानामिवगोवृषम् ॥ नजगामतथोक्तस्तुभ्रातुराज्ञायशासनम् ॥ ४ ॥ तमुवाचततस्तत्रक्षुभिताजन
कात्मजा ॥ सौमित्रेमित्ररूपेणभ्रातुस्त्वमसिशत्रुवत् ॥ ५ ॥ यस्त्वमस्यामवस्थायांभ्रातरंनाभिपद्यसे ॥ इच्छसित्वं
विनश्यंतंरामंलक्ष्मणमत्कृते ॥ ६ ॥ लोभात्तुमत्कृतेनूनंनानुगच्छसिराघवम् ॥ व्यसनंतेप्रियंमन्येस्नेहोभ्रातरिना
स्तिते ॥ ७ ॥ तेनतिष्ठसिविश्रब्धंतमपश्यन्महाद्युतिम् ॥ किंहिसंशयमापन्नेतस्मिन्निहमयाभवेत् ॥ ८ ॥ कर्तव्य
मिहतिष्ठंत्यायत्प्रधानस्त्वमागतः ॥ एवंब्रुवाणांवैदेहींबाष्पशोकसमन्विताम् ॥ ९ ॥ अब्रवील्लक्ष्मणस्त्रस्तांसीतांमृ
गवधूमिव ॥ पन्नगासुरगंधर्वदेवदानवराक्षसैः ॥ १० ॥ अशक्यस्तववैदेहिभर्ताजेतुंनसंशयः ॥ देविदेवमनुष्येषुगंध
र्वेषुपतत्रिषु ॥ ११ ॥ राक्षसेषुपिशाचेषुकिन्नरेषुमृगेषुच ॥ दानवेषुचघोरेषुनसविद्येतशोभने ॥ १२ ॥

यह विपद तुमको प्रिय लगतीहै । और तुमको उनसे कुछ स्नेह नहीं है ॥ ७ ॥ इसी कारण तुम महाद्युतिमान् रामचन्द्रजीको न देख
करभी निश्चिन्त बैठे हो । किन्तु तुम जो रामचन्द्रजीके आधीनमें होकर वनमें आये हो । तो उनके यहां संशयापन्न होनेंसे ॥ ८ ॥ मुझसे यहां
रहकर क्या कार्य होगा जब वैदेहीजीनें आँखोंमें आंसू भरकर यह कहा कि तुम्हारी तो यह दशा रही तो अब हम क्या करें ॥ ९ ॥ तब मृगीके
समान डरी हुई सीताजीसे लक्ष्मणजी बोले कि हे विदेहकुमारी ! नाग, असुर, गन्धर्व, देव, दानव, राक्षस ॥ १० ॥ कोईभी आपके स्वामीको
जीतनेंमें समर्थ नहींहैं; इसमें कुछभी सन्देह नहींहै । हे देवि ! मनुष्य, गन्धर्व, पक्षी ॥ ११ ॥ राक्षस, पिशाच, किन्नर, मृग, व अतिघोर इनमें

गलहो हम चलतेहैं ॥ ४ ॥ राक्षसपति रावण मारीचके यह वचन सुन परम हर्षित हो उस्से भली भांति भेंटा और यह वचन बोला ॥५॥ कि तुमनें हमारे अभिप्रायके अनुसार जब कार्य करनेंको कहा तब यही वचन तुम्हारा वीरोचित हुआ। पहले तुम एक साधारण मारीच राक्षसथे पर अब तुम हमारी समान हुए ॥ ६ ॥ अब तुम हमारे साथ शीघ्रही इस रत्नविभूषित अंतरिक्षमें टिके हुए रथपर जिसमें कि पिशाचोंकी समान गधे जुत रहेहैं बैठो ॥ ७॥ फिर वहां पहुंचकर विदेह राजकुमारी सीता को लुभाकर इच्छानुसार स्थानमें चल देना । तब हम राम लक्ष्मण स

प्रहृष्टस्त्वभवत्तेनवचनेनसराक्षसः ॥ परिष्वज्यसुसंश्लिष्टमिदंवचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥ एतच्छौटीर्ययुक्तंतेमच्छंदवशवर्तिनः ॥ इदानीमसिमारीचःपूर्वमन्योहिराक्षसः ॥ ६ ॥ आरुह्यतामयंशीघ्रंखगोरत्नविभूषितः ॥ मयासहरथोयुक्तःपिशाचवदनैःखरैः ॥ ७ ॥ प्रलोभयित्वावैदेहींयथेष्टंगतुमर्हसि ॥ तांशून्येप्रसभंसीतामानयिष्यामिमैथिलीम् ॥ ८ ॥ ततस्तथेत्युवाचैनंरावणंताटकासुतः ॥ ततोरावणमारीचौविमानमिवतंरथम् ॥ ९ ॥ आरुह्याययतुःशीघ्रंतस्मादाश्रममंडलात् ॥ तथैवतत्रपश्यंतौपत्तनानिवनानिच ॥ १० ॥ गिरींश्चसरितःसर्वाराष्ट्राणिनगराणिच ॥ समेत्यदंडकारण्यंराघवस्याश्रमंततः ॥ ११ ॥ ददर्शसहमारीचोरावणोराक्षसाधिपः ॥ अवतीर्यरथात्तस्मात्ततःकांचनभूषणात् ॥ १२ ॥ हस्तेगृहीत्वामारीचंरावणोवाक्यमब्रवीत् ॥ एतद्रामाश्रमपदंदृश्यतेकदलीवृतम् ॥ १३ ॥

हित शून्य आश्रममें प्रवेश करके बल पूर्वक सीताको हर लावेंगे ॥८॥ऐसा सुनकर ताडका तनय मारीचने कहा कि बहुत अच्छा चलिये । तत्पश्चात् रावण व मारीच विमान समान उस रथपर चढ ॥ ९ ॥ जलदीसे उस आश्रमसे चले और अनेक भांतिके पत्तन वन ॥ १० ॥ पर्वत नदी राज्य व नगरोंको देखते भालते दंडकारण्यमें आये जहां रामचंद्रजीका आश्रमथा ॥ ११ ॥ और आश्रमको मारीचके सहित रावणनें देखा और दोनों जने उस रत्न भूषित रथसे उतरे ॥ १२ ॥ और मारीचका हाथ पकडकर रावण कहनें लगा कि हे सखे! वनमें केलेंके वृक्षोंसें घि

जानकीजीके नेत्र लाल हो आये ॥ २० ॥ वह कठोर वचन सत्यवादी लक्ष्मणजीसे बोलीं कि रे नृशंस! कुलनाशक! तुम श्रीरामचंद्र को मरवाकर दया करके हमारी रक्षा करनेंको तैयार हुए हो, इस कारणसे यह ध्यान आर्यजनोचित नहींहै ॥ २१ ॥ हमनें जाना कि रामचन्द्रजीकी यह बडी भारी विपद तुम्हारी परम प्यारी हुईहै इसी कारण तुम उनको विपदमें पडा हुआ देखकर ऐसा कहतेहो॥२२॥ हे लक्ष्मण! तुम्हारी समान सदा क्रूर स्वभाव व गुप्त पापी शत्रुके मनमें जो ऐसा निन्दनीय पाप रहैगा तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?॥२३॥तुम्हारा स्वभाव बड़ा खोटा है रामचन्द्रजी जो अकेले वनको आनें लगे, तौ हमारा लालच करके तुमभी अकेले ही उनके साथ आये। अथवा छिपकर

अब्रवीत्परुषंवाक्यंलक्ष्मणंसत्यवादिनम् ॥ अनार्यकरुणारंभनृशंसकुलपांसन ॥ २१ ॥ अहंतवप्रियंमन्येरामस्य व्यसनंमहत् ॥ रामस्यव्यसनंदृष्ट्वातेनैतानिप्रभाषसे ॥ २२ ॥ नैवचित्रंसपत्नेषुपापंलक्ष्मणयद्भवेत् ॥ त्वद्विधेषु नृशंसेषुनित्यंप्रच्छन्नचारिषु ॥ २३ ॥ सुदुष्टस्त्वंवनेराममेकमेकोनुगच्छसि ॥ ममहेतोःप्रतिच्छन्नःप्रयुक्तोभर तेनवा ॥ २४ ॥ तन्नसिद्ध्यतिसौमित्रेतवापिभरतस्यवा ॥ कथमिंदीवरश्यामंरामंपद्मनिभेक्षणम् ॥ २५ ॥ उपसंश्रित्यभर्तारंकामयेयंपृथग्जनम् ॥ समक्षंतवसौमित्रेप्राणांस्त्यक्ष्याम्यसंशयम् ॥ २६ ॥ रामंविनाक्ष णमपिनैवजीवामिभूतले ॥ इत्युक्तःपरुषंवाक्यंसीतयारोमहर्षणम् ॥ २७ ॥ अब्रवील्लक्ष्मणःसीतांप्रांजलिःसजि तेंद्रियः ॥ उत्तरंनोत्सहेवक्तुंदैवतंभवतीमम ॥ २८ ॥

भरतके भेजे हुए तुम स्वामीके साथ आये हुए हो ॥ २४ ॥ किन्तु हे लक्ष्मण! तुमनें या भरतनें जो मनमें सोचाहै, वह सिद्ध नहीं होगा। क्योंकि हम पद्मपलाशलोचन, नीलोत्पलश्याम ॥ २५ ॥ श्रीरामचन्द्रजीकी स्त्री होकर किस प्रकारसे अन्यजनकी अभिलाषा करेंगी। इससे हे लक्ष्मण! हम तुम्हारे सामने निश्चयही प्राण त्याग देंगी ॥ २६ ॥ क्योंकि रामचन्द्रजीके विना क्षण कालभी हम इस लोकमें प्राण धारण नहीं कर सकतीं। सीताजीके इस प्रकार रोमहर्षण कठोर वचन ॥ २७ ॥ सुन जितेन्द्रिय लक्ष्मणजी हाथ जोडकर उनसे बोले कि आप हमारी साक्षात्

पलके नये २ पत्ते खाता हुआ घूमने लगा ॥ २२ ॥ कभी केलोंकी बगियामें और कर्णिकारके वनमें प्रवेश करके और कभी श्रीसीताजीकी दृष्टिके सन्मुख जाकर इस प्रकार आश्रमके इधर उधर वह मृगमन्द गतिसे चलनें लगा ॥ २३ ॥ पीठपर सुवर्णके द्वारा चित्र विचित्र होनेंसे उसकाल इस महामृगकी अतिशय शोभा हुई थी, वह यथा सुखसे रामचंद्रजीके निकट घूमनें लगा ॥ २४ ॥ आश्रममें घूमनेंके समय कभी दौडता, कभी ठिठककर खडा होजाता कभी मुहूर्त भरतक आगेको आश्रममें चलता, कभी फिर झटपट लौट आता ॥ २५ ॥ कभी इधर उधर खेलता, कभी पृथ्वी पर लेट जाता,कभी आश्रमके द्वारपर आकर सुखसे चरते हुए मृग झुंडोंके साथ

कदलीगृहकंगत्वाकर्णिकारानितस्ततः ॥ तमाश्रमंमंदगतिंसीतासंदर्शनंततः ॥ २३ ॥ राजीवचित्रपृष्ठःसविरराज महामृगः ॥ रामाश्रमपदाभ्याशेविचचारयथासुखम् ॥ २४ ॥ पुनर्गत्वानिवृत्तश्चविचचारमृगोत्तमः ॥ गत्वामुहूर्तंत्वरयापुनःप्रतिनिवर्तते ॥ २५ ॥ विक्रीडंश्चपुनर्भूमौपुनरेवनिषीदति ॥ आश्रमद्वारमागम्यमृगयूथानिगच्छति॥२६॥ मृगयूथैरनुगतःपुनरेवनिवर्तते॥ सीतादर्शनमाकांक्षन्राक्षसोमृगतांगतः ॥ २७॥ परिभ्रमतिचित्राणिमंडलानिविनिष्पतन् ॥ समुद्वीक्ष्यचसर्वेतंमृगायेऽन्येवनेचराः ॥ २८ ॥ उपगम्यसमाघ्रायविद्रवंतिदिशोदश ॥ राक्षसःसोपितान्वन्यान्मृगान्मृगवधेरतः॥२९॥ प्रच्छादनार्थंभावस्यनभक्षयतिसंस्पृशन्॥तास्मिन्नेवततःकालेवैदेहीशुभलोचेन॥३०॥

चरनें लगता ॥ २६ ॥ कभी मृगोंके साथही साथ आकर फिर सीताजीको दिखाई देनेंकी वांछासे फिर आश्रममें चला आता जानकीके दर्शनकी इच्छासे वह राक्षश मृग होगया ॥ २७ ॥ इस प्रकार वह मृगताको प्राप्त होकर विचित्र मंडल देखता कूद फांद करनें लगा इसकी कूद फांद देख और वनके मृग ॥ २८ ॥ उसके निकट आये और उसको सूंघतेही दशोंदिशाओंको भागनें लगे । मारीच यद्यपि सदा मृगोंके मारनें में रतथा ॥ २९ ॥ तथापि उसनें अपना भाव छिपानेंके लिये उनमृगोंको भक्षण नहीं किया केवल स्पर्श करनें लगा । इसी समय शुभ

भीजकर रोते २ लक्ष्मणजीसे बोलीं ॥ ३५ ॥ हे लक्ष्मण! रामके विना हम गोदावरीमें डूब मरेंगी अथवा फांसीसे प्राण त्याग करेंगी अथवा किसी ऊंचे पर्वत इत्यादिक पर चढकर वहांसे अपनी देहको नीचे गिरा देंगी ॥ ३६ ॥ या तीक्ष्ण विष पान करेंगी, अथवा अग्निमें प्रवेश करेंगी। तथापि श्रीरामचन्द्रजीके विना और किसी पुरुषको हम कभी स्पर्श नहीं करेंगी ॥ ३७ ॥ सीताजी इस प्रकार शोक युक्त होकर रोते २ लक्ष्मणजीसे ऐसा कहकर दुःखके मारे अपनीछाती पीटनें लगीं (सर्व राक्षसोंके नाश विना मेरी उदरपूर्ति न होगी यह शास्त्र की ध्वनि है) ॥ ३८ ॥ लक्ष्मणजीनें विशाल नयना जनकदुलारी सीताजीको महा आरत भावसे रोते देखकर बहुत समझाया बुझाया परन्तु फिर जानकी

गोदावरींप्रवेक्ष्यामिहीनारामेणलक्ष्मण ॥ आबंधिष्येऽथवात्यक्ष्येविषमेदेहमात्मनः॥ ३६ ॥पिबामिवाविषंतीक्ष्णंप्रवेक्ष्यामिहुताशनम् ॥ नत्वहंराघवादन्यंकदापिपुरुषं स्पृशे ॥ ३७ ॥ इतिलक्ष्मणमाश्रुत्यसीताशोकसमन्विता ॥ पाणिभ्यांरुदतीदुःखादुदरंप्रजघानह ॥ ३८ ॥ तामार्तरूपांविमनारुदंतींसौमित्रिरालोक्यविशालनेत्राम् ॥ आश्वासयामासनचैवभर्तुस्तंभ्रातरंकिंचिदुवाचसीता ॥ ३९ ॥ ततस्तुसीतामभिवाद्यलक्ष्मणःकृतांजलिःकिंचिदभिप्रणम्य॥ अवेक्षमाणोबहुशःसमैथिलींजगामरामस्यसमीपमात्मवान् ॥ ४० ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेपंचचत्वारिंश सर्गः॥४५॥ तयापरुषमुक्तस्तुकुपितोराघवानुजः॥सविकांक्षन्भृशंरामंप्रतस्थेनचिरादिव ॥१॥

जीनें अपने देवर लक्ष्मणजीसे और कुछ न कहा ॥ ३९ ॥ तिसके पिछे जितेन्द्रिय और विशुद्ध चित्त लक्ष्मणजी हाथ जोड प्रणाम कर कुछ एक विनती करते हुए और वारंवार उनकी ओर देखते दुःखित हो रामचन्द्रजीके निकट को चले ॥ ४० ॥ ❀ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि काव्ये पंडितज्वालाप्रसादमिश्र कृत भाषा टीकायांआर० पंचचत्वारिंशःसर्गः॥४५॥लक्ष्मणजी जानकीजीकी कटूक्तिसे पीडित हो क्रोधमें भर श्री

* कूर्म पुराणसे भी सिद्धहै कि जानकीजीकी यही प्रतिज्ञा पूर्णथी कि अन्य पुरुपको स्पर्शन करूंगी अग्निमें प्रवेश कर जाऊंगी इससेभी ध्वनि निकलतीहै कि जानकी अग्निमें प्रवेश कर गईथीं और यह मायाकी जानकीनें लक्ष्मणसे ऐसे वचन कहे क्योंकि मायासेही ऐसा होताहै

और लक्ष्मणजी दोनों जनोंनें इधर उधर देखते वहां आये और इस मृगको देखा ॥ ४ ॥ परन्तु लक्ष्मणजी मृगको देख शंकितहो श्रीरामचंद्र जीसे कहनें लगे कि महाराज ! हमें तो ऐसा समझ पडताहै कि यह मृग रूपी निशाचर मारीचहै ॥ ५ ॥ यह पापात्मा मारीच मृगरूप धारण करके परम हर्ष सहित आखेटको वनमें आये हुए राजा लोगोंको मारडाला करताहै ॥६॥ यह राक्षस मायाका जाननें वालाहै, इसनें मायाके बलसे इस प्रकारका मृगरूप धारण करलियाहै । हे पुरुषसिंह ! यह मृगरूप गन्धर्व नगरकी समान अब रमणीय और परम दीप्ति युक्तहै परन्तु वास्तवमें यह मृग नहींहै ॥ ७ ॥ हे रघुनंदन! इस प्रकार रत्न चित्रित मृगकभी पृथ्वी पर नहीं हो सकता । हे जगत्नाथ ! यह निश्चयही माया है

शंकमानस्तुतंदृष्ट्वालक्ष्मणोवाक्यमब्रवीत् ॥ तमेवैनमहंमन्येमारीचंराक्षसंमृगम् ॥ ५ ॥ चरंतोमृगयांहृष्टाःपापेनोपाधिनावने॥अनेननिहताराजानःपापरूपिणा॥६॥अस्यमायाविदोमायामृगरूपमिदंकृतम् ॥ भानुमत्पुरुषव्याघ्रगंधर्वपुरसन्निभम् ॥ ७ ॥ मृगोह्येवंविधोरत्नविचित्रोनास्तिराघव ॥ जगत्यांजगतीनाथमायैषाहिनसंशयः॥ ८ ॥ एवंब्रुवाणंकाकुत्स्थंप्रतिवार्यशुचिस्मिता ॥ उवाचसीतासंहृष्टाच्छद्मनाहृतचेतना ॥ ९ ॥ आर्यपुत्राभिरामोसौमृगोहरतिमेमनः ॥ आनयैनंमहाबाहोक्रीडार्थंनोभविष्यति ॥ १० ॥ इहाश्रमपदेऽस्माकंबहवःपुण्यदर्शनाः॥ मृगाश्चरंतिसहिताश्चमराःसृमरास्तथा ॥ ११ ॥ ऋक्षाःपृषतसंघाश्चवानराःकिन्नरास्तथा ॥ विहरंतिमहाबाहोरूपश्रेष्ठामहाबलाः ॥ १२ ॥ नचान्यःसदृशोराजन्दृष्टःपूर्वंमृगोमया ॥ तेजसाक्षमयादीप्त्यायथाऽयंमृगसत्तमः ॥ १३ ॥

इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ८ ॥ जब लक्ष्मणजी इस प्रकार कहनें लगे तब कुछ एक मुस्कोई हुई सीताजीनें राक्षसके छलसे मोहितहो लक्ष्मणजीको इस कहनेसे रोक दिया और आप परम हर्षितहो बोलीं ॥९ ॥हे आर्यपुत्र! इस अभिराम मृगनें हमारे मनको हरण कियाहै हे महाबाहो! इसको पकड लाओ हम इस मृगके साथ खेला करेंगी ॥ १० ॥ क्योंकिहमारे इस पुण्याश्रममें बहुतसे पुण्यदर्शन मृगगण चमर सृमर घूमा करतेहैं, जिनकी काली और सफेद पूछ होतीहै ॥ ११ ॥ और ऋक्ष, पृषत वानर, व किन्नरादिभी घूमतेहैं यह सब महाबलवान् और रूपवान् हैं ॥ १२ परन्तु हे राजन्! पहले कभी इस प्रकारका मृग हमारी दृष्टिमें नहीं आया, तेज क्षमा कान्तिमें यह मृगोंमें श्रेष्ठ ज्ञात होताहै ॥ १३ ॥

ऐसा टीप टापका संन्यासी वेश बनाया, जिस प्रकार तिनकोसे कोई कुएँको पाटै, और वहां आनें वाला चट उसमें गिरे ॥ १० ॥ ऐसा छद्मवेशी साधुका वेश धारण किये हुए रावण उन यशस्विनी रामदयिता जानकीजीकी ओर देखकर खड़ा हुआ ॥ ११ ॥ सुन्दर स्वरूप, दशनपंक्ति जिनकी मनोहर, वदन पूर्णचन्द्रसमान जो जानकीजी पर्णशालामें बैठी अपने पतिके शोकसे पीडित होरहीथीं ॥ १२ ॥ तिन कमलनेत्रा पीताम्बर धारण किये जानकीजीके निकट वह निशाचर हर्ष सहित पहुंचा ॥ १३ ॥ऐसी जानकीजीको देख रावण मारके बाणसे माराहुआ पीडित हुआ उस समय रावणने वेदका उच्चारण करके जानकीजीकी प्रशंसा करके कहा॥ १४॥तुम तीनों लोकमें उत्तमहो; और पद्मिनीकी समान मनोहर कमल फूलों

अतिष्ठत्प्रेक्ष्यवैदेहींरामपत्नींयशस्विनीम् ॥ तिष्ठन्संप्रेक्ष्यचतदापतींरामस्यरावणः ॥ ११ ॥ शुभांरुचिरदंतोष्ठींपूर्णचंद्रनिभाननाम् ॥ आसीनांपर्णशालायांबाष्पशोकाभिपीडिताम् ॥ १२ ॥ सतांपद्मपलाशाक्षींपीतकौशेयवासिनीम् ॥ अभ्यगच्छतवैदेहींहृष्टचेतानिशाचरः ॥ १३ ॥ दृष्ट्वाकामशराविद्धोब्रह्मघोषमुदीरयन् ॥ अब्रवीत्प्रश्रितंवाक्यंरहितेराक्षसाधिपः ॥ १४ ॥ तामुत्तमांत्रिलोकानांपद्महीनामिवश्रियम् ॥ विभ्राजमानांवपुषारावणःप्रशशंसह ॥ १५ ॥ रौप्यकांचनवर्णाभेपीतकौशेयवासिनि ॥ कमलानांशुभांमालांपद्मिनीवचबिभ्रती ॥१६ ह्रीःश्रीःकीर्तिःशुभालक्ष्मीरप्सरावाशुभानने ॥ भूतिर्वात्वंवरारोहेरतिर्वास्वैरचारिणी ॥ १७ ॥ समाःशिखरिणःस्निग्धाःपांडुरादशनास्तव ॥ विशालेविमलेनेत्ररक्तांतेकृष्णतारके ॥ १८ ॥

से समाकुल होरहीहो ऐसी प्रशंसा रावणनें की ॥ १५ ॥ फिर कहा कि हेशुभानने! तुम्हारा वर्ण विशुद्ध कांचनकी सदृशहै तिसपर तुम पीले वर्णके रेशमीन वस्त्र पहरेहो, कमल फूलोंकी माला गलेमें धारण कियेहो ॥ १६॥हेवरारोहे! तुम ह्री, श्री, कीर्ति, लक्ष्मी, अप्सरा, अथवा भूति, या साक्षात् रतिकी समान जो वनमें इच्छानुसार विहार करती हो सो बतलाओ कि तुम कौन हो ॥ १७ ॥ तुम्हारे सब दांत परस्पर समानहैं, उनका अग्रभाग कुन्दकी कोर सदृश मनोहर और श्वेत वर्णहै । तुम्हारे नेत्र युगल विशाल, निर्मल, अरुणाई लिये, और कृष्णताराओंकरकै युक्तहैं ॥ १८ ॥

समान प्रकाशमान ॥ २२ ॥ रूपसे रामचंद्रजीके हृदयमेंभी विस्मय इसकी अवाई हुई सीताजीके ऐसे वचन सुनकर और उस अद्भुत मृगकी देख ॥ २३ ॥ तिसके शरीरकी सुन्दरताईसे रामचंद्रजी लुभागये, तिस पै सीताजीनें प्रेरणाकी इस कारण हर्षित चित्त हो श्रीरामचंद्रजी भ्राता लक्ष्मणसे बोले ॥ २४ ॥ कि हे लक्ष्मण! अवलोकन करो इस मृगका श्रेष्ठ रूप देखकर जानकीजीकी अभिलाषा उल्लसित हो उठीहै। अतएव इस समय इसका प्राण धारण करना असंभव है ॥ २५ ॥ हे लक्ष्मण! क्या वनमें, क्या नन्दनमें, क्या चैत्ररथकाननमें, अथवा पृथ्वीके किसी स्थानमेंभी इसके समान मृग नहीं है ॥ २६ ॥ देखो इसके रोमोंकी पंक्तियें कुछ सीधी कुछ वंकिमाकार कैसी शोभाको प्राप्त होरही हैं और

बभूवराघवस्यापिमनोविस्मयमागतम् ॥ इतिसीतावचःश्रुत्वादृष्ट्वाचमृगमद्भुतम् ॥ २३ ॥ लोभितस्तेनरूपेणसीतयाचप्रचोदितः ॥ उवाचराघवोहृष्टोभ्रातरंलक्ष्मणंवचः ॥ २४ ॥ पश्यलक्ष्मणवैदेह्यास्पृहामुल्लसितामिमाम् ॥ रूपश्रेष्ठतयाह्येषमृगोऽद्यनभविष्यति ॥ २५ ॥ नवनेनंदनोद्देशेनचैत्ररथसंश्रये ॥ कुतःपृथिव्यांसौमित्रेयोऽस्यकश्चित्समोमृगः ॥ २६ ॥ प्रतिलोमानुलोमाश्चरुचिरारोमराजयः ॥ शोभंतेमृगमाश्रित्यचित्राःकनकबिंदुभिः ॥ २७ ॥ पश्यास्यजृंभमाणस्यदीप्तामग्निशिखोपमाम् ॥ जिह्वांमुखान्निःसरंतींमेघादिवशतह्रदाम् ॥ २८ ॥ मसारगल्वर्कमुखःशंखमुक्तानिभोदरः ॥ कस्यनामानिरूप्योसौनमनोलोभयेन्मृगः ॥ २९ ॥ कस्यरूपमिदंदृष्ट्वाजांबूनदमयप्रभम् ॥ नानारत्नमयंदिव्यंनमनोविस्मयंव्रजेत् ॥ ३० ॥ मांसहेतोरपिमृगान्विहारार्थंचधन्विनः ॥ घ्नंतिलक्ष्मणराजानोमृगयायांमहावने ३१

तिसपर उसमें सुवर्ण बिन्दुओंके चित्रित होनेंसे औरभी सुन्दरताई आई है ॥ २७ ॥ देखो भइया! मेघसें बिजली जिस प्रकार चमकती है वैसेही जमुहाई लेनेंके समय उसके मुखसे अग्निकी शिखाके समान प्रदीप्त जीभ निकलती है ॥ २८ ॥ इसका मुखमंडल इन्द्रनीलमणि निर्मित पान पात्रके आकारसाहै। पेट शंख और मोतीकी समानहै, और इसके स्वरूपका निर्णय करना दुःसाध्यहै, इसको देखनेंसे किसका मन मोहित नहीं होता? ॥ २९ ॥ इसका रूप पक्के सुवर्णकी प्रभासे परिपूर्ण है, और नाना प्रकारके रत्नमयहै ऐसा दिव्य स्वरूप दृष्टि आनेंसे किसका मन विस्मयको प्राप्त नहीं होता? ॥ ३० ॥ धनुर्द्धारी नृपतिगण महा वनमें शिकार करनेंके लिये प्रवृत्त हो मांसके लिये अथवा विहारके लिये

मालायें,श्रेष्ठ सुगन्धियें श्रेष्ठ वस्त्रोंके तुम भोगनें योग्यहो॥२६॥हेअसितेक्षणी ! फिर तुम्हारे लिये स्वामीभी तो श्रेष्ठही चाहिये, हेशुचिस्मिते ! रुद्रगण अथवा मरुद्गण ॥ २७ ॥ या आठ वसुओंमेंसे किसीकी स्त्री हो, हे वरारोहे! हमको तौ तुम स्पष्टही देवता प्रतीत होतीहो, क्योंकि यहां गन्धर्व, देवता, किन्नर कोई नहीं आने पाते ॥ २८॥ यहां वनमें तो राक्षसगणही वास किया करतेहैं; फिर तुम यहां किस प्रकारसे आईहो; यहां तो वनमें वानर, सिंह, चीता, व्याघ्र, भेड़िया, मृग, ॥२९॥ गेंडे ऋक्षादि जीव रहतेहैं. सो इनको देखकर तुम क्यों नहीं डरतीहो? और मतवाले, कठोर मन शी

भर्तारंचवरंमन्येत्वद्युक्तमसितेक्षणे ॥ कात्वंभवसिरुद्राणांमरुतांवाशुचिस्मिते ॥ २७ ॥ वसूनांवावरारोहेदेवताप्रतिभासिमे ॥ नेहगच्छंतिगंधर्वानदेवानचकिन्नराः ॥ २८ ॥ राक्षसानामयंवासःकथंतुत्वमिहागता ॥ इहशाखामृगाःसिंहाद्वीपिव्याघ्रमृगावृकाः ॥ २९ ॥ ऋक्षास्तरक्षवःकंकाःकथंतेभ्योनबिभ्यसे ॥ मदान्वितानांघोराणांकुंजराणांतरस्विनाम् ॥ ३० ॥ कथमेकामहारण्येनबिभेषिवरानने ॥ कासिकस्यकुतश्चत्वंकिन्निमित्तंचदंडकान् ॥ ३१ ॥ एकाचरसिकल्याणिघोरान्राक्षससेवितान् ॥ इतिप्रशस्तावैदेहीरावणेनमहात्मना ॥ ३२ ॥ द्विजातिवेषेणहितंदृष्ट्वारावणमागतम् ॥ सर्वैरतिथिसत्कारैःपूजयामासमैथिली ॥ ३३ ॥ उपानीयासनंपूर्वंपाद्येनाभिनिमंत्र्यच ॥ अब्रवीत्सिद्धमित्येवतदातंसौम्यदर्शनम् ॥ ३४ ॥

घ्र चलनेंवाले हाथियोंसे ॥ ३० ॥ तुम अकेली कैसे- इस महावनमें नहीं डरतीहो, हे वरानने! तुम कौनहो, किसकी स्त्री हो, कहांसे आईहो, और किस कारण इस दंडकारण्यमें ॥ ३१ ॥अकेली विचरतीहो; क्योंकि यह जगह घोर राक्षसों करके युक्तहै इस प्रकारसे महात्मा रावणने वैदेहीजीकी प्रशंसाकी ॥ ३२ ॥ उसको ब्राह्मण वेष धारण किये आया हुआ देख जानकीजीनें यथाविधि अतिथिसत्कारसे उसकी पूजा की ॥ ३३ ॥ प्रथम बैठनेंके लिये आसन दिया फिर चरण धोनेंको जल, पुनः फलाहारादिक जो रक्खेथे वह सौम्यदर्शन रावणको निवेदन किये ॥ ३४ ॥

राजा ओंको संहार कियाहै। इस कारण इस मृगको वधकरनाही कर्तव्यहै ॥ ४० ॥ पेटमें रहतेही हुए जिस प्रकार खिचडीकी गर्भ अपनी माताको मार डालताहै; वैसेही पूर्व समय इस वनमें राक्षस वातापिनेंभी तपस्वी ब्राह्मणोंके पेटमें प्रवेश करके उनको संहार किया करता था ॥ ४१ ॥ बहुत काल पीछे किसी समय वह वातापि तेजस्वी महामुनि अगस्त्यजीको प्राप्त होकर उनके द्वारा पचाया गयाथा ॥ ४२ ॥ फिर जबकि श्राद्धके पूर्ण होनेउपरान्त वातापिको राक्षस रूप धारण करनेंका इच्छुक देख भगवान् अगस्त्यजी मुसकाय कर बोले ॥ ४३ ॥ वातापि! तूनें अपने तेजसे ज्ञानरहित हो इस जीव लोकमें अनेक श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको मारडालाहै, इसी कारणसे हमनें तुमको पचाडाला ॥ ४४ ॥

पुरस्तादिहवातापिःपरिभूयतपस्विनः ॥ उदरस्थोद्विजान्हंतिस्वगर्भोश्वतरीमिव ॥ ४१ ॥ सकदाचिच्चिराल्लोकेआससादमहामुनिम्॥अगस्त्यंतेजसायुक्तंभक्ष्यस्तस्यबभूवह॥४२॥समुत्थानेचतद्रूपंकर्तुकामंसमीक्ष्यतम् ॥उत्स्मयित्वातुभगवान्वातापिमिदमब्रवीत् ॥ ४३ ॥ त्वयाऽविगण्यवातापेपरिभूताश्चतेजसा ॥जीवलोकेद्विजश्रेष्ठास्तस्मादसिजरांगतः ॥ ४४ ॥ तद्रक्षोपिनभवेदेववातापिरिवलक्ष्मण ॥ मद्विधंयोतिमन्येतधर्मनित्यंजितेंद्रियम् ॥ ४५ ॥ भवेद्धतोयंवातापिरगस्त्येनेवमागतः॥इहत्वंभवसन्नद्धोयंत्रितोरक्षमैथिलीम् ॥ ४६ ॥ अस्यामायत्तमस्माकंयत्कृत्यंरघुनंदन॥ अहमेनंवधिष्यामिग्रहीष्याम्यथवामृगम् ॥ ४७ ॥ यावद्गच्छामिसौमित्रेमृगमानयितुंद्रुतम् ॥ पश्यलक्ष्मणवैदेह्यामृगत्वचिगतांस्पृहाम् ॥ ४८ ॥

हे लक्ष्मण। जो हमारी समान धर्म निरत और जितेन्द्रिय पुरुषका निरादर करताहै; उस राक्षसके प्राण वातापिही समान नष्ट होजाते हैं ॥ ४५ ॥ अतएव मारीच इस आश्रममें आकर अगस्त्यजी करके वातापिकी नांई हमारे द्वारा मारडाला जायगा। इस समय तुम कवच इत्यादि बांधकर यत्न सहित सीताजीकी रक्षा करो ॥ ४६ ॥ हे रघुनंदन! हमारा कर्त्तव्य कार्य जानकीके आधीनहै इसलिये तुम सावधानीसे यहां टिके रहो, हम इस मृगको मारही डालेंगे, अथवा जीता हुआ पकड लावेंगे ॥ ४७ ॥ हे लक्ष्मण! इस मृग चर्म लेनेकी,जानकीको

विवाह होनेंके पीछे इक्ष्वाकुवंशियोंकी राजधानी अयोध्यानगरीमें बारह वर्षतक रहकर पूर्णमनोरथहो अनेक प्रकारके मनुष्योंको दुर्लभ सुख ह मनें भोगे ॥ ४ ॥ फिर तेरह वर्षमें राजा दशरथजीनें मंत्रिगणोंके साथ सलाह करके रामचंद्रजीके अभिषेक करनेंका उद्योग किया ॥ ५ ॥ उनकी आज्ञानुसार सब अभिषेककी तइयारियां होनें लगीं उस समय हमारी माननीया सासु कैकेयीनें अपनें स्वामी राजा दशरथजीसे दो वर मांगे ॥ ६॥ कैकेयीजीनें अपनी कृतिके बलसे श्वशुरको धर्मके वशमें करके हमारे स्वामी रामचंद्रजीको बनवास, और भरतजीको अभिषेक, यह दो वर नृपश्रेष्ठ सत्यप्रतिज्ञ महाराज दशरथजीसे मांगे ॥ ७ ॥ और उन्होंने सत्यप्रतिज्ञ, नृपतिश्रेष्ठ राजा दशरथजी अपनें स्वामीसे

उषित्वाद्वादशसमाइक्ष्वाकूणांनिवेशने ॥ भुंजानामानुषान्भोगान्सर्वकामसमृद्धिनी ॥ ४ ॥ तत्रत्रयोदशेवर्षेराजाऽमं त्रयतप्रभुः ॥ अभिषेचयितुंरामंसमेतोराजमंत्रिभिः ॥ ५ ॥ तस्मिन्संभ्रियमाणेतुराघवस्याभिषेचने ॥ कैकेयी नामभर्तारंममार्यायाचतेवरम् ॥६॥ परिगृह्यतुकैकेयीश्वशुरंसुकृतेनमे ॥ ममप्रव्राजनंभर्तुर्भरतस्याभिषेचनम् ॥७॥ द्वावयाचतभर्तारंसत्यसंधंनृपोत्तमम् ॥नाद्यभोक्ष्येनचस्वप्स्येनपास्येचकदाचन ॥ ८॥ एषमेजीवितस्यांतोरामोयद भिषिच्यते ॥ इतिब्रुवाणांकैकेयींश्वशुरोमेसपार्थिवः ॥ ९ ॥ अयाचतार्थैरन्वर्थैर्नचयाश्चांचकारसा ॥ ममभर्तामहाते जावयसापंचविंशकः ॥ १० ॥ अष्टादशहिवर्षाणिममजन्मनिगण्यते ॥ रामेतिप्रथितोलोकेसत्यवाञ्छीलवाञ्छु चिः ॥ ११ ॥ विशालाक्षोमहाबाहुःसर्वभूतहितेरतः ॥ कामार्तश्चमहाराजःपितादशरथःस्वयम् ॥ १२ ॥

दो वर मांगे और यहभी कहा कि जो रामचंद्रजीका अभिषेक होगा, तो हम किसी प्रकारसे भी भोजन पान वा शयन न करेंगी ॥ ८ ॥ और यही हमारे जीवनका अंत होजायगा जो रामचंद्रजीका अभिषेक हुआ तो हम न जियेंगी । जब कैकेयीनें इस प्रकार कहा तो हमारे श्वशुर महाराज दशरथजीने ॥ ९ ॥ उनसे बहुत और धनादि देनेंकी प्रार्थना की परन्तु उन कैकेयीजीनें न मानी उस समय महा तेजवान हमारे स्वामी पचीस वर्षके ॥१०॥ और हमारी आयु जन्मसे गणना करके अठारह वर्षकी थी, हमारे स्वामी रामनामसे विख्यात हैं, वह सत्यवान, सुशील, निर्मल स्वभाव ॥ ११ ॥ विशालनेत्र, सर्व प्राणियोंके हितकारी महाबाहु हैं परन्तु इनके पिता महाराज दशरथजी बडे कामी थे ॥ १२ ॥

कभी वह मृग शारंगपाणि रामको वारंवार देखकर वनमें दौडता कभी कुलांच मारकर दूर हो रहता॥ ५ ॥ कभी शंकित और भ्रान्त चित्त होकर मानों आकाशको चला जायगा ऐसी छलांग मारता, कभी अदृश्य होजाता, कभी दिखाई पडने लगता ॥ ६ ॥ और कभी छिन्न भिन्न मेघ समूहमें घिरे हुए शारदीय चंद्र मंडलकी समान मुहूर्त भरमें अदृश्य होजाता और मुहूर्तमात्रमेंही दूर दिखाई देता ॥ ७ ॥ इस प्रकारसे मृगरूपी मारीच छल बलकर दीखता छिपता रामचंद्रजीको आश्रमसे बहुत दूर ले गया ॥ ८ ॥ रामचंद्रजी उसकी मायासे मोहित और नितान्त अवश होकर क्रोधसे घिरे और बहुतही थक कर एक पेडकी छायाके नीचे हरी दूबके खेतमें बैठ गये ॥ ९ ॥

अवेक्ष्यावेक्ष्यधावंतंधनुष्पाणिर्महावने ॥ अतिवृत्तमिवोत्पाताल्लोभयानंकदाचन ॥ ५ ॥ शंकितंतुसमुद्भ्रांतमुत्पतंत
मिवांबरम् ॥ दृश्यमानमदृश्यंचवनोद्देशेषुकेषुचित् ॥ ६ ॥ छिन्नाभ्रैरिवसंवीतंशारदंचंद्रमंडलम् ॥ मुहूर्तादेवददृशे
मुहुर्दूरात्प्रकाशते॥ ७ ॥ दर्शनादर्शनेनैवसोऽपाकर्षतराघवम् ॥ सदूरमाश्रमस्यास्यमारीचोमृगतांगतः ॥८॥ आसी
त्क्रुद्धस्तुकाकुत्स्थोविवशस्तेनमोहितः ॥ अथावतस्थेसुश्रांतश्छायामाश्रित्यशाद्वले ॥ ९ ॥ सतमुन्मादयामासमृग
रूपोनिशाचरः ॥ मृगैःपरिवृतोऽथान्यैरदूरात्प्रत्यदृश्यत ॥ १० ॥ ग्रहीतुकामंदृष्ट्वातंपुनरेवाभ्यधावत ॥ तत्क्षणादेवसं
त्रासात्पुनरंतर्हितोभवत् ॥ ११ ॥ पुनरेवततोदूराद्वृक्षखंडाद्विनिसृतः ॥ दृष्ट्वारामोमहातेजास्तंहंतुंकृतनिश्चयः ॥ १२॥
भूयस्तुशरमुद्धृत्यकुपितस्तत्रराघवः ॥ सूर्यरश्मिप्रतीकाशंज्वलंतमरिमर्दनम् ॥ १३ ॥

मृगरूपी मारीचनें उनको उन्मादित करदियाथा, वह मारीच फिर अन्यमृगोंके साथ बहुत निकटही रामचन्द्रजीको दृष्टि आया ॥ १० ॥ वह मारीच राक्षस श्रीरामचन्द्रजीको अपनें पकडनेका अभिलाषी जानकर दौडा। और मारे भयके उसी समय फिर अन्तर्ध्यान होगया ॥ ११ ॥ और बहुत दूर जाकर फिर वृक्ष समूहोंके नीचे दिखाई दिया, महातेजवान् रामचन्द्रजी यह देखकर अब उस मृगका मार डालनाही निश्चय करते हुए ॥ १२ ॥ उन्होनें रोषमें भरकर फिर तरकशसे सूर्यकी किरणोंकी समान शत्रुका नाश करनेंवाला प्रज्वलित एक बाण निकाला ॥ १३ ॥

दंडकारण्यमें आये ॥ २१ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ! अब हम तीनजन कैकेयीके कारण राज्यभ्रष्ट होकर अपने तेजके प्रभावसे गंभीर वनमें विचरण करते हैं। हे द्विजश्रेष्ठ! एक मुहूर्त भर विश्रामकरो ॥ २२ ॥ अभी हमारे स्वामी बहुत सारे वनफल, मूल, और, रुरु, वराह व गोधा वध करके बहुत मांस द्रव्य ले यहां आते होंगे जब वह आवेंगे तब आपका भली भांतिसे सत्कार होगा इस्से विराजिये ॥ २३ ॥ इस समय आप अपना नाम. गोत्र और वंश सत्यरही कहिये हे द्विज! किस कारण से आप इस दंडकारण्यमें अकेले घूमतेहैं ॥ २४ ॥ जब रामभार्या सीताने इस प्रकारके वचन कहे तो महा बलवान् राक्षसराज रावण उनको तीखा उत्तर देता हुआ बोला ॥ २५ ॥ हे जानकि! सुर असुर और मनुष्यसहित समस्त

विचरामद्विजश्रेष्ठवनंगंभीरमोजसा ॥ समाश्वसमुहूर्ततुशक्यंवस्तुमिहत्वया ॥ २२ ॥ आगमिष्यतिमेभर्तावन्यमादायपुष्कलम् ॥ रुरून्गोधान्वराहांश्चहत्वादायामिषंबहु ॥२३॥ सत्वंनामचगोत्रंचकुलमाचक्ष्वतत्त्वतः ॥ एकश्चदंडकारण्येकिमर्थंचरसिद्विज ॥ २४ ॥ एवंब्रुवत्यांसीतायांरामपत्न्यांमहाबलः ॥ प्रत्युवाचोत्तरंतीव्रंरावणोराक्षसाधिपः ॥ २५ ॥ येनवित्रासितालोकाःसदेवासुरमानुषाः ॥ अहंसरावणोनामसीतेरक्षोगणेश्वरः ॥ २६ ॥ त्वांतुकांचनवर्णाभांदृष्ट्वाकौशेयवासिनीम् ॥ रतिंस्वकेषुदारेषुनाधिगच्छाम्यनिंदिते ॥ २७ ॥ बह्वीनामुत्तमस्त्रीणामाहृतानामितस्ततः ॥ सर्वासामेवभद्रंतेममाग्रमहिषीभव ॥ २८ ॥ लंकानामसमुद्रस्यमध्येममममहापुरी ॥ सागरेणपरिक्षिप्तानिविष्टागिरिमूर्धनि ॥ २९ ॥ तत्रसीतेमयासार्द्धवनेषुविचरिष्यसि ॥ नचास्यवनवासस्यस्पृहयिष्यसिभामिनी ॥ ३० ॥

लोक जिसके डरके मारे थर २ कांपतेहैं हम वही राक्षसोंके राजा रावणहैं ॥ २६ ॥ तुम्हारा लावण्य कांचनकी समानहै और तुम रेशमी वस्त्र पहररहीहो हे अनिन्दते! तुमको देखकर अपनी स्त्रियोंमें हमारा अब कुछभी अनुराग नहीं रहा ॥ २७ ॥ हम बहुत सारी उत्तम स्त्रियें अनेक स्थानोंसे हर कर लायेहैं सो तुम उन समस्तके बीचमें पटरानी बनो ॥ २८ ॥ तुम्हारा मंगलहो हे जानकि! चारो तरफ समुद्रसे घिरी हुई पर्वतके शिर त्रिकूट पर लंका नामक जो नगरीहै वह हमारीही है ॥ २९ ॥ तुम वहां हमारे साथ महावनोंमें विचरण किया करोगी. हे

मचंद्रजीनें देखा और मनही मनमें सीता और लक्ष्मणके वचन याद करकै आश्रमकी ओर लौटे ॥ २२ ॥ आश्रमको लौटनेंके समय विचारनें लगे कि लक्ष्मणजीनें पहलेही कहाथा कि यह मारीचकी मायाहै । उनकीही बात इस समय सत्य हुई । यथार्थही मारीचको हमनें मारडाला ॥२३॥ इस समय मारीचनें " हा सीते ! हा लक्ष्मण " बडे ऊंचे शब्दसे यह कह कर प्राण त्याग कियेहैं; न जाने सीता इस शब्दको सुनकर क्या करैंगी ॥ २४ ॥ अथवा महाबाहु लक्ष्मणजी किस अवस्थाको प्राप्त होंगे? इस प्रकार चिन्ता करते २ धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीके रोम खडे होगये॥२५॥ उस काल मृगरूपी राक्षसको मार डालकर और इसका इस प्रकारचिल्लाना सुनकर विषादके मारे तीव्र भयसे रामचंद्रजी भीत हुए ॥ २६॥

मारीचस्यतुमायैषापूर्वोक्तालक्ष्मणेनतु ॥ तत्तथाह्यभवच्चाद्यमारीचोऽयंमयाहतः ॥ २३ ॥ हासीतेलक्ष्मणेत्येवमाक्रुश्यतुमहास्वनम् ॥ ममारराक्षसःसोऽयंश्रुत्वासीताकथंभवेत् ॥ २४ ॥ लक्ष्मणश्चमहाबाहुःकामवस्थांगमिष्यति ॥ इतिसंचिंत्यधर्मात्मारामोहृष्टतनूरुहः ॥ २५ ॥ तत्ररामंभयंतीव्रमाविशेशविषादजम् ॥ राक्षसंमृगरूपंतंहत्वाश्रुत्वा चतत्स्वनम् ॥ २६ ॥ निहत्यपृषतंचान्यंमांसमादायराघवः ॥ त्वरमाणोजनस्थानंससाराभिमुखंतदा ॥ २७ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआर ० चतुश्चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४४ ॥ ॥ ७ ॥ आर्तस्वरंतुतंभर्तुर्विज्ञायसदृशंवने ॥ उवाचलक्ष्मणंसीतागच्छजानीहिराघवम् ॥ १ ॥ नहिमेजीवितंस्थानेहृदयंवावतिष्ठते ॥ क्रोशतः परमार्तस्यश्रुतःशब्दोमयाभृशम्॥२॥आक्रंदमानंतुवनेभ्रातरंत्रातुमर्हसि॥ तंक्षिप्रमभिधावत्वंभ्रातरंशरणैषिणम्३ ॥

तिसके पीछे वह एक और मृगको मारकर और उसका मांस ग्रहण करकै शीघ्रतासे जनस्थानकी ओर चले ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥ यहां आश्रममें वनके मध्य अपने स्वामीकी समान बहु करुणाका शब्द सुनकर सीताजी लक्ष्मणसे बोली जाकर देख आओ रामचंद्रजीको क्या हुआ?॥ १ ॥ वह महाआरत वचनसे चिल्ला रहेहैं यह शब्द सुनकर हमारा मन प्राण अपने२ ठिकाने नहींहै ॥ २ ॥ वनके बीच ऊंचें स्वरसे रोते हुए अपने भ्राताका उद्धार करना तुमको अवश्य कर्तव्यहै । इस

सकता ऐसेही श्रीरामचंद्रजीके तेज रूप अग्निसे घिरी हमको तुम पानेंकी सामर्थ्य नहीं रखते ॥३७॥ अरे अभागे राक्षस! जब कि तैंनें रघुनंदन श्री रामचंद्रजीकी भार्याके हरनेंका अभिलाष कियाहै, तब तू निश्चयही सब वृक्षोंको सुवर्णमय देखता होगा (स्वप्नमें सोनेका वृक्ष देखना मृत्युरूपहै) अर्थात् तुमको हमारा प्राप्त करना ऐसा दुर्लभहै जैसे कोई दरिद्र सुवर्णके सहस्रों पेड अपनें गृहमें देखनेकी इच्छाकरै ॥ ३८ ॥ मृगारि शीघ्रगामी, और बडे क्षुधित सिंहके मुखसे या विषधर सर्पके मुखसे तुम दांत निकालनेंकी इच्छा करतेहो ॥ ३९ ॥ तुम पर्वतवर मन्दराचलको भुजासे उत्पाटन करना चाहतेहो, और कालविष पीकरभी इस शरीर सहित कुशल जाया चाहतेहो ॥ ४० ॥ क्या तुम सूची (सुई) से अपने नेत्रोंके

पादपान्कांचनान्नूनंबहून्पश्यसिमंदभाक् ॥ राघवस्यप्रियांभार्यांयस्त्वमिच्छसिराक्षस ॥ ३८ ॥ क्षुधितस्यचासिं हस्यमृगशत्रोस्तरस्विनः ॥ आशीविषस्यवदनाद्दंष्ट्रामादातुमिच्छसि ॥ ३९ ॥ मंदरंपर्वतश्रेष्ठंपाणिनाहर्तुमिच्छसि ॥ कालकूटंविषंपीत्वास्वस्तिमान्गंतुमिच्छसि ॥ ४० ॥ अक्षिसूच्याप्रमृजसिजिह्वयालेढिचक्षुरम् ॥ राघवस्यप्रियां भार्यामधिगंतुंत्वमिच्छसि ॥ ४१ ॥ अवसज्ज्यशिलांकंठेसमुद्रंतर्तुमिच्छसि ॥ सूर्यचंद्रमसौचोभौपाणिभ्यांहर्तुमिच्छसि ॥ ४२ ॥ योरामस्यप्रियांभार्यांप्रधर्षयितुमिच्छसि ॥ अग्निंप्रज्वलितंदृष्ट्वावस्त्रेणाहर्तुमिच्छसि ॥ ४३ ॥ कल्याणवृत्तांयोभार्यांरामस्याहर्तुमिच्छसि ॥ अयोमुखानांशूलानांमध्येचरितुमिच्छसि ॥ रामस्यसदृशींभार्यां योऽधिगंतुंत्वमिच्छसि ॥ ४४ ॥

खुजानेंकी इच्छा करतेहो, या छुरेकी धारसे अपनी रसनाको चाटना अच्छा समझतेहो; क्योंकि जो तुम हमें श्रीरामचंद्रजीकी परम प्यारी स्त्री नारी हमको पानेंकी इच्छा करतेहो ॥ ४१ ॥ तुम ग्रीवामें पर्वतका शिखरबांध समुद्र उतरना विचारतेहो, और सूर्य चंद्रमा दोनोंको उभय भुजासे पकडना चाहतेहो ॥ ४२ ॥ जो कि तुमनें श्रीरामचंद्रजीकी प्यारी नारीको बलपूर्वक प्राप्त होनेंकी इच्छाकीहै, सो यह इच्छा ऐसीहै, जैसे कोई जलती हुई अग्नि वस्त्रमें बांधकर लेजाना चाहै ॥ ४३ ॥ तुमने जो रामचंद्रजीकी कल्याणव्रतवाली भार्याको हरनेंकी इच्छा कीहै सो यह

भी ऐसा कोई नहीं है;॥ १२ ॥ जो इन्द्रके समान पौरुषी श्रीरामचन्द्रजीका सामना करसकै फलतः उनको समरमें कोई मारभी नहीं सकता इस लिये तुमको ऐसा अनुचित नहीं कहना चाहिये ॥ १३ ॥ और रामचन्द्रजीके विना इकेली इस वनके बीच त्याग करनेंकोभी किसी प्रकारसे हमारा साहस नहीं होता, इन्द्रादि बलवान् देवगणभी अपनें बलसे रामचन्द्रजीके बलको नहीं रोक सकते॥१४॥अथवा सब त्रिलोकी समस्त देवता गणोंके सहित एकत्र मिलकरभी रामचंद्रजीके पराजय करनेंको सामर्थ्य नहीं रखते इससे आप शोक त्याग करकै स्थिर चित्त हूजिये ॥ १५ ॥ आपके स्वामी रामचंद्रजी मृगोत्तमको हनन करकै शीघ्रही लौटेंगे और हम निश्चय कहतेहैं कि यह शब्द उनका नहींहै और न कोई यह देव

योरामंप्रतियुध्येतसमरेवासवोपमम् ॥ अवध्यःसमरेरामोनैवंत्वंवक्तुमर्हसि ॥ १३ ॥ नत्वामस्मिन्वनेहातुमुत्सहे राघवंविना ॥ अनिवार्यबलंतस्यबलैर्बलवतामपि ॥ १४ ॥ त्रिभिर्लोकैःसमुदितैः सेश्वरैःसामरैरपि ॥ हृदयंनिर्वृतंते स्तुसंतापस्त्यज्यतांतव ॥ १५ ॥ आगमिष्यतितेभर्ताशीघ्रंहत्वामृगोत्तमम् ॥ नसतस्यस्वरोव्यक्तंनकश्चिदपिदै वतः ॥ १६ ॥ गंधर्वनगरप्रख्यामायातस्यचरक्षसः ॥ न्यासभूतासिवैदेहिन्यस्तामयिमहात्मना ॥ १७ ॥ रामेण त्वंवरारोहेनत्वां त्यक्तुमिहोत्सहे ॥ कृतवैराश्चकल्याणिवयमेतैर्निशाचरैः ॥ १८ ॥ खरस्यनिधनेदेविजनस्थानवधं प्रति ॥ राक्षसाविविधावाचोव्याहरंतिमहावने ॥ १९ ॥ हिंसाविहारावैदेहिनचिंतयितुमर्हसि ॥ लक्ष्मणेनैवमु क्तातुक्रुद्धासंरक्तलोचना ॥ २० ॥

प्रेरित शब्दहै ॥ १६ ॥ निशाचर मारीचही गन्धर्व नगर सदृशी मिथ्या माया विस्तार करकै इस प्रकार शब्द चिल्लाकर कररहाहै । हे जानकि! महात्मा राम करकै आप हमारे निकट सौंपी गईहैं ॥ १७ ॥ इसही कारणसे आपको त्याग करनेंमें हमारा उत्साह नहीं होता । हे कल्याणि ! हे वरारोहे ! इन सब राक्षसोंके सहित हमारी शत्रुता होगई है ॥ १८ ॥ हे देवि ! खरको मार और जनस्थानको विध्वंस करनेंसे राक्षस लोग इस महावनमें हमारे ऊपर अनेक प्रकारके वचन प्रयोग किया करतेहैं ॥१९॥ हे जानकि ! साधु लोगोंकी हिंसा करनाही राक्षस लोगोंका एक मात्र खेल है । इस कारण इस विषयमें चिन्ता करना किसी प्रकारसेभी आपको उचित नहीं है । जब लक्ष्मणजीनें इस प्रकार कहा तब क्रोधके मारे

जब सीताजीनें इस प्रकारसे कठोर वचन कहे तब रावणनें महा क्रोधित होकर भ्रुकुटि टेढी करके कहा ॥ १ ॥ हे वरवर्णनि! हम कुबेरके सौतेले भाईहैं। हम परमप्रतापशालीका नाम दशग्रीव रावणहै, तुम्हारा मंगलहो ॥ २ ॥ जिस प्रकार प्रजागण मृत्युसे भय करतेहैं, वैसेही हमारे भयसे भीत होकर, देव, गन्धर्व, पिशाच, पन्नग, और उरग गण समस्तही सदा भागतेहैं ॥ ३ ॥ हमने किसी कारण वशसे क्रोधमें भर द्वन्द्व करके संग्राममें विक्रम प्रकाश करके सौतेले भाई कुबेरको सब प्रकारसे जीत लियाहै ॥ ४ ॥ इस कारण वह हमसे डरकर धन धान्य ऋषि सिद्धिसे भरी पुरी अपनी लंकापुरी त्यागकर पर्वतराज कैलासमें वास करतेहैं॥५॥ हे भद्रे! हमने अपने वीर्यके प्रभावसे उन कुबेरका इच्छानुसार चलनें

एवंब्रुवत्यांसीतायांसंरब्धःपरुषंवचः ॥ ललाटेभ्रुकुटिंकृत्वारावणःप्रत्युवाचह ॥ १ ॥ भ्रातावैश्रवणस्याहंसापत्नो वरवर्णिनि ॥ रावणोनामभद्रंतेदशग्रीवःप्रतापवान् ॥ २ ॥ यस्यदेवाःसगंधर्वाःपिशाचपतगोरगाः ॥ विद्रवंतिसदाभीतामृत्योरिवसदाप्रजाः ॥ ३ ॥ येनवैश्रवणोभ्रातावैमात्रःकारणांतरे ॥ द्वंद्वमासादितःक्रोधाद्रणेविक्रम्यनिर्जितः ॥ ४ ॥ मद्भयार्तःपरित्यज्यस्वमधिष्ठानमृद्धिमत् ॥ कैलासंपर्वतश्रेष्ठमध्यास्तेनरवाहनः ॥५॥ यस्यतत्पुष्पकंनाम विमानंकामगंशुभम् ॥ वीर्यादावर्जितंभद्रेयेनयामिविहायसम् ॥ ६ ॥ ममसंजातरोषस्यमुखंदृष्ट्वैवमैथिलि ॥ विद्रवंतिपरित्रस्ताःसुराःशक्रपुरोगमाः ॥ ७ ॥ यत्रतिष्ठाम्यहंतत्रमारुतोवातिशंकितः ॥ तीव्रांशुःशिशिरांशुश्चभयात्संपद्यतेदिवि ॥ ८ ॥ निष्कंपपत्रास्तरवोनद्यश्चस्तिमितोदकाः ॥ भवंतियत्रतत्राहंतिष्ठामिचचरामिच ॥ ९ ॥

वाला परम सुन्दर पुष्पक नामक विमानभी हरण कर लियाहै तुम उसी विमानमें बैठकर हमारे साथ आकाशमार्गमें चलोगी ॥ ६ ॥ हे मैथिलि! हमें क्रोध उत्पन्न हुआ कि हमारा मुख देखतेही इन्द्रादि मुख्य देवता गण महाभयभीत होकर दशोदिशाओंको भाग जातेहैं ॥ ७ ॥ जहां पर हम रहा करतेहैं, वायु वहांपर शंका सहित चला करतीहै और सूर्यभी हमारे भयसे आकाश मंडलमें चंद्रमाकी समान देख पडताहै ॥ ८ ॥ अधिक क्या कहें? जहां पर हम बैठते उठते व घूमते घामतेहैं वहां पर वृक्षोंके पत्तेभी नहीं हिलते डुलते, नदियोंका जलभी वहनेसे रुक जाताहै॥९॥

प्रकार उत्तर देनेंको हमारा साहस नहीं होता ॥ २८ ॥ परन्तु हे जानकि ! आपनें जो यह अयोग्य वार्ता कही है सो स्त्रियोंके लिये
छ विचित्र बात नहीं है, क्योंकि इस लोकमें स्त्रियोंका स्वभाव ऐसा देखा ही जाता है ॥ २९ ॥ स्त्रियोंकी जाति, स्वभावसेही
न हीन है, यह पिता पुत्र इत्यादिमें परस्पर भेद करा देती हैं। किन्तु हे जानकि! तुम्हारी यह वार्ता हम पर नहीं सही जाती
तपे हुए बाणोंकी नांई यह तुम्हारे वचन हमारे दोनों कानोंको विद्धकर रहे हैं। अच्छा! वनवासी देवता गण सबही हमारे
वण करें ॥ ३१ ॥ हमनें यथार्थ बार्ता कही है तथापि तुमनें हमको कठोर वचन कहे तुमको धिक्कार है! निश्चयही तुम्हारा

…तरूपंतुनचित्रंस्त्रीषुमैथिलि ॥ स्वभावस्त्वेषनारीणामेषुलोकेषुदृश्यते ॥ २९ ॥ विमुक्तधर्माश्चपलास्तीक्ष्णा
:स्त्रियः ॥ नसहेहीदृशंवाक्यंवैदेहिजनकात्मजे ॥ ३० ॥ श्रोत्रयोरुभयोर्मध्येतप्तनाराचसंनिभम् ॥ उपशृण्वं
…र्वसाक्षिणोहिवनेचराः ॥ ३१ ॥ न्यायवादीयथावाक्यमुक्तोहंपरुषंत्वया ॥ धिक्त्वामद्यविनश्यंतींयन्मामेवंविशं
कसे ॥ ३२ ॥ स्त्रीत्वाद्दुष्टस्वभावेनगुरुवाक्येव्यवस्थितम् ॥ गच्छामियत्रकाकुत्स्थःस्वस्तितेऽस्तुवरानने ॥ ३३ ॥
रक्षंतुत्वांविशालाक्षिसमग्रावनदेवताः ॥ निमित्तानिहिघोराणियानिप्रादुर्भवंतिमे ॥ अपित्वांसहरामेणपश्येयंपुनरा
गतः ॥ ३४ ॥ लक्ष्मणेनैवमुक्तातुरुदतीजनकात्मजा ॥ प्रत्युवाचततोवाक्यंतीव्रबाष्पपरिप्लुता ॥ ३५ ॥

विनाश काल उपस्थित है (राक्षसकुलकी नाश करानेंवाली तुझको धिक्कार है यह गूढ है) जो हम पर ऐसी शंका करती हो ॥ ३२ ॥ हम सदाही गुरुजनोंकी आज्ञाका पालन किया करते हैं इस रामचन्द्रजीकी आज्ञा मान तुम्हें छोड नहीं जातेथे। किन्तु तुमनें स्त्रीके स्वभाव और दुष्ट प्रकृतिके वश होकर हमको दुर्वचन कहे। हे वरानने! जहां रामचन्द्रजी हैं हमभी वहां जाते हैं; तुम कुशल क्षेमसे रहो ॥ ३३ ॥ और समस्त वन देवता गण तुम्हारी रक्षा करैं; हे विशालाक्षि! बडे २ बुरे शकुन हमारे सामने प्रगट हो रहे हैं; इस कारणसे फिर रामचन्द्रजीके साथ आकर तुमको कुशल सहित देखें ॥ ३४ ॥ जब लक्ष्मणजीनें इस प्रकारसे कहा तब जनकनन्दनी सीताजी अविरलवाहिनी अश्रुधारासे

त हुईथी ॥ १८ ॥ राम मनुष्यहै, वह युद्धमें हमारी एक अंगुलीकी समानभी नहीं होगा । हे वरवर्णिनि! हम तुम्हारे सौभाग्यसेही आप यहां आ
येहैं, इस्से तुम हमको अपना पति बनाओ ॥ १९ ॥ जब रावण नें इस प्रकारके वचन कहे, तब सीताजीके नेत्र क्रोधके मारे लाल २ होगये।
वह उस निर्जन वनमें रावणसे यह कठोर वचन बोली ॥ २० ॥ सब देवताओंके नमस्कार करनेंके योग्य उन परम पूजनीय, कुबेरजीको
अपना भाई बताकर तुम किस प्रकार निन्दनीय कार्य करनेंका अभिलाष करते हो? ॥ २१ ॥ हे रावण! तुम्हारी समान खोटी बुद्धि
वाला कर्कश और अजितेन्द्रिय पुरुष जिनका राजाहै, उन सबही राक्षस गणोंको नाशको प्राप्त होना पडेगा ॥ २२ ॥ इन्द्रपत्नी

अंगुल्यानसमोरामोममयुद्धेसमानुषः ॥ तवभाग्येनसंप्राप्तंभजस्ववरवर्णिनि ॥ १९ ॥ एवमुक्तातुवैदेहीक्रुद्धा
संरक्तलोचना ॥ अब्रवीत्परुषंवाक्यंरहितेराक्षसाधिपम् ॥ २० ॥ कथंवैश्रवणंदेवंसर्वदेवनमस्कृतम् ॥ भ्रात
रंव्यपदिश्यत्वमशुभंकर्तुमिच्छसि ॥ २१ ॥ अवश्यंविनशिष्यंतिसर्वेरावणराक्षसाः ॥ येषांत्वंकर्कशोराजादुर्बु
द्धिरजितेंद्रियः ॥ २२ ॥ अपहृत्यशचींभार्यांशक्यमिंद्रस्यजीवितुम् ॥ नहिरामस्यभार्यांमामानीयस्वस्तिमान्भवे
त् ॥ २३ ॥ जीवेच्चिरंवज्रधरस्यपश्चाच्छचींप्रधृष्याप्रतिरूपरूपाम् ॥ नमादृशींराक्षसधर्षयित्वापीतामृतस्यापितवा
स्तिमोक्षः ॥ २४ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेअष्टचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४८ ॥ ॥ ॥
सीतायावचनंश्रुत्वादशग्रीवःप्रतापवान् ॥ हस्तेहस्तंसमाहन्यचकारसुमहद्वपुः ॥ १ ॥

शचीको हरण करकै; चाहें कोई जीवित रहजाय; परन्तु रामभार्या हमको हरण करकै कौन पुरुष वच कल्याण पासकताहै? ॥ २३ ॥
रे राक्षस! अत्यन्त रूपवती देवराज इन्द्रके पीछे उनकी भार्या को बलपूर्वक हरण करकै चाहे किसीका जीवित रहना संभवभीहो, परन्तु
हम समान स्त्रीको रामचन्द्रजीके पीछे अपमानता करकै अमृत पिया हुआ पुरुषभी मृत्युके हाथसे नहीं वच सकैगा ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा
मायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे अष्टचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४८ ॥ प्रतापवान् दशग्रीव रावण सीताजीके यह वचन सुनकर, हाथपर हा

रामचन्द्रजीको देखनेंके लिये अतिव्यग्रचित्तसे चले ॥ १ ॥ तिसके पीछे दशानन रावण यह सुअवसर पाकर यतीका रूप धारण कर शीघ्रही श्रीसीताजीके सामनें आया ॥ २ ॥ वह कोमल गेरुआ वस्त्र पहरे, शिर पर वार रखाये छत्री लगाये खडाऊं पहरे, वांये कंधे पर लाठी और कमंडलु हाथमें ॥ ३ ॥ ऐसा त्रिदंडी संन्यासीका रूप बना सीताजीके सन्मुख हुआ जबकि दोनों भाई आश्रममें नहींथे ॥ ४ ॥ जिस प्रकार विना चन्द्र सूर्यके सन्ध्याकालमें महा अंधकार हो आता है। वैसेही विना राम और लक्ष्मणजीके सीताजीके निकट दशानन आकर परम यशस्विनी राजपुत्री जनकनन्दनीजीको देखनें लगा ॥ ५ ॥ जैसे चन्द्रमाकरके हीन रोहिणी नक्षत्रको राहु देखे जनस्थानके समस्त वृक्ष उग्र

तदासाद्यदशग्रीवःक्षिप्रमंतरमास्थितः ॥ अभिचक्रामवैदेहींपरिव्राजकरूपधृक् ॥ २ ॥ श्लक्ष्णकाषायसंवीतःशिखी छत्रीउपानही ॥ वामेचांसेऽवसज्ज्याथशुभेयष्टिकमंडलू ॥ ३ ॥ परिव्राजकरूपेणवैदेहीमन्ववर्तत ॥ तामाससादातिबलोभ्रातृभ्यांरहितांवने ॥ ४ ॥ रहितांसूर्यचंद्राभ्यांसंध्यामिवमहत्तमः ॥ तामपश्यत्ततोबालांराजपुत्रींयशस्विनीम् ॥ ५ ॥ रोहिणींशशिनाहीनांग्रहवद्भृशदारुणः ॥ तमुग्रंपापकर्माणंजनस्थानगताद्रुमाः ॥ ६ ॥ संदृश्यनप्रकंपंतेनप्रवातिचमारुतः ॥ शीघ्रस्रोताश्चतंदृष्ट्वावीक्षंतंरक्तलोचनम् ॥ ७ ॥स्तिमितंगंतुमारेभेभयाद्गोदावरीनदी ॥ रामस्यत्वंतरंप्रेप्सुर्दशग्रीवस्तदंतरे ॥ ८ ॥ उपतस्थेचवैदेहींभिक्षुरूपेणरावणः ॥ अभव्योभव्यरूपेणभर्तारमनुशोचतीम् ॥ ९ ॥ अभ्यवर्ततवैदेहींचित्रामिवशनैश्चरः ॥ सहसाभव्यरूपेणतृणैःकूपइवावृतः ॥ १० ॥

स्वभाव पाप कर्म करनेंवाले रावणको देखकर ॥ ६ ॥ हिलनें झुलनेंसे रहित होगये पवनका चलना वंद हो गया। लाल २ नेत्र किये सीताजीके प्रति उसकी दृष्टिको लगा देख नदीभी शीघ्र गतिको त्याग मंद२वहनें लगी ॥ ७ ॥ गोदावरी नदीका जलभी शंकाके वश होकर मंद२वहनें लगा। इसी अवसरमें रामचंद्रजीका अन्तर चाहनेंवाला दशग्रीव ॥ ८ ॥ भिक्षुकका वेश बनाकर वैदेहीजीके निकट आन पहुंचा, यह महाकुरूप दशानन, अति रूपवती अपने पतिके लिये शोक करती हुई ॥ ९ ॥ जानकीजीको ऐसे प्राप्त हुआ जिस प्रकार चित्रानक्षत्रके निकट शनि आताहै, वहां पहुंच उसनें

हुए जानकीजीसे कहनें लगा ॥ १० ॥ कि त्रिभुवनविख्यात स्वामीके प्राप्त करनेंकी यदि इच्छाहो तो हे वरारोहे! हमारा आश्रय ग्रहण करो, हम ही तुम्हारे समान पतिहैं ॥ ११ ॥ तुम बहुत कालके लिये हमारी भजना करो. हमहीं तुम्हारे वांछित और बडाई करनें योग्य पतिहैं। हेभद्रे ! हम कभी ऐसा आचरण नहीं करेंगे जो तुम्हें प्यारा नहो ॥ १२ ॥ तुम मनुष्यके प्रति प्रीति त्यागकरके हमारी ओर अपना प्रेम लगाओ, राज्यसे भ्रष्ट आयुहीन, अर्थरहित, राममें ॥ १३ ॥ किन गुणोंसे तुम अनुरागिणी हुईहो? हे मूढे पंडित मानिनि मैथिलि! जो रामचंद्र स्त्रीके कहनेंसे राज्य और सुहृद्गणोंको छोडकर ॥ १४ ॥ जोकि हम हिंसक जन्तुओंके वास करनें की भूमिमें वनके बीच वह दुर्मति रहताहै । इस प्रकार

त्रिषुलोकेषुविख्यातंयदिभर्तारमिच्छसि॥ मामाश्रयवरारोहेतवाहंसदृशःपति ॥११॥मांभजस्वचिरायत्वमहंश्लाघ्यः पतिस्तव ॥ नैवचाहंक्वचिद्भद्रेकरिष्येतवविप्रियम् ॥ १२ ॥ त्यज्यतांमानुषोभावोमयिभावःप्रणीयताम् ॥ राज्याच्च्युतमसिद्धार्थंरामंपरिमितायुषम्॥१३॥कैर्गुणैरनुरक्तासिमूढेपण्डितमानिनि॥यःस्त्रियोवचनाद्राज्यंविहायससुहृज्जनम् ॥१४॥अस्मिन्व्यालानुचरितेवनेवसतिदुर्मतिः॥इत्युक्त्वामैथिलींवाक्यंप्रियार्हांप्रियवादिनीम्॥१५॥अभिगम्यसुदुष्टात्माराक्षसःकाममोहितः ॥ जग्राहरावणःसीतांबुधःखेरोहिणीमिव ॥१६॥ वामेनसीतांपद्माक्षींमूर्धजेषुकरेणसः ॥ ऊर्वोस्तुदक्षिणेनैवपरिजग्राहपाणिना ॥ १७ ॥ तंदृष्ट्वागिरिशृंगाभंतीक्ष्णदंष्ट्रंमहाभुजम् ॥ प्राद्रवन्मृत्युसंकाशंभयार्तावनदेवताः ॥ १८ ॥ सचमायामयोदिव्यःखरयुक्तःखरस्वनः ॥ प्रत्यदृश्यतहेमांगोरावणस्यमहारथः ॥ १९ ॥

प्रिय वचन कहनें के योग्य मैथिलीजीसे ॥ १५ ॥ यह कहकर अति दुष्टात्मा रावण जानकीजीके समीप आया और उनको ग्रहण किया, उस समय ऐसा बोध हुआ मानों आकाशके बीच बुधनें रोहिणीको ग्रहण किया ॥ १६ ॥ उस समय सीता महारानी रावणके कठोर वचन सुन और इसका रूप देखकर कुछ ऐसी मूर्छितसी होगई थीं कि वाम बाहुसे तौ रावणनें उनपद्माक्षीका केशपाश और दाहिनी भुजासे दोनों चरणोंको पकड उठा लिया॥१७॥ वन देवता लोकभी उस समय उस पर्वत शृङ्ग सदृश तीक्ष्ण डाढ वाले महा सर्प तुल्य रावणको देख भयभीत हो कर दशों दिशाओंको भाग गये ॥ १८ ॥ देखतेही देखतेही रावणका वह मायामय स्वर्ण मंडित गर्दभजुता हुआ भयंकर शब्दकारी दिव्यरथ व

तुम्हारा जघन, अति पीन व विशालहैं और जांघें हाथीकी शुण्डके समान चढ़ावउतार, बडे२गोलाकर एकमें एक मिले कुछ कम्पायमान ॥१९॥ तुम्हारी दोंनों छातियें पीनहैं और जिनका अग्रभाग उठा हुआहै, परम मनोहरहैं और चिकने ताल फलके आकारवालेहैं! और उनपर मणियोंकी माला पडीहैं ॥ २० ॥ फलतः तुम्हारे दांत नेत्र और मुसकुराना सबहीकुछ रमणीयहै । हे रमणीये! नदी जिस प्रकार जलके वेगसे कूलको हरण करतीहै तैसेही तुमभी इन सबसे हमारे चित्तको हरण करतीहो ॥ २१ ॥ तुम्हारे केश परम सुन्दरहैं, दोनों पयोधर अत्यन्त घनेहैं, और तुम्हारा मध्य देश अर्थात् कमर इतनी पतलीहै कि मुट्ठीके बीचमें आजाय। क्या देवी, क्या गन्धर्वी, क्या यक्षी, क्या किन्नरी, ॥ २२ ॥ कोईभी तुम्हारे स

विशालंजघनंपीनमूरूकरिकरोपमौ ॥ एतावुपचितौवृत्तौसंहतौसंप्रगल्भितौ ॥ १९ ॥ पीनोन्नतमुखौकांतौस्निग्धतालफलोपमौ ॥ मणिप्रवेकाभरणौरुचिरौतौपयोधरौ ॥ २० ॥ चारुस्मितेचारुदतिचारुनेत्रेविलासिनि ॥ मनोहरसिमेरामेनदीकूलमिवांभसा ॥ २१ ॥ करांतमितमध्यासिसुकेशेसंहतस्तनि ॥ नैवदेवीनगंधर्वीनयक्षीनचकिन्नरी ॥ २२ ॥ नैवंरूपामयानारीदृष्टपूर्वामहीतले ॥ रूपमग्र्यंचलोकेपुसौकुमार्यंवयश्चते ॥ २३ ॥ इहवासश्चकांतारेचित्तमुन्माथयंतिमे ॥ साप्रतिक्रामभद्रंतेनत्वंवस्तुमिहार्हसि ॥ २४ ॥ राक्षसानामयंवासोघोराणांकामरूपिणाम् ॥ प्रासादाग्राणिरम्याणिनगरोपवनानिच ॥ २५ ॥ संपन्नानिसुगंधीनियुक्तान्याचरितुंत्वया ॥ वरंमाल्यंवरंगंधंवरंवस्त्रंचशोभने ॥ २६ ॥

मान रूपवान नहींहै । हमनें इससे पहले पृथ्वीपर तुम्हारे समान रूपवती राजरानी नहीं देखी, तुम्हारा रूप यौवन, सुकुमारता ॥ २३ ॥ और इस निर्जन वनमें वास यह चारोंही त्रिलोकीमें श्रेष्ठहैं, इस कारण इन वातोंसे हमारा चित्त क्षुभित होताहै । इस कारण वाहर चली आओ । तुम्हारा कल्याणहो; बनवास करना तुम को उचित नहींहै ॥ २४ ॥यहां तौ कामरूपी भयंकर निशाचर गण रहा करतेहैं तुम तौ अति रमणीय प्रासादशिखर, नगर व उपवनोंमें ॥ २५ ॥ जहां सव भोग्य वस्तु प्रस्तुतहैं, और सुगन्धिके पदार्थ धरे रहतेहैं यह स्थान तुम्हारे रहनेंके योग्यहै; श्रेष्ठ

रहित होकर यह जो कर्म किया इसके लिये तुमको रामचंद्रजीसे प्राणान्त करनेंवाली घोर विपद् में पडना होगा ॥ २८॥ हाय! हम धर्म की इच्छा
करनें वाले यशस्वी रामचंद्रजीकी धर्म पत्नी होकर भी हरी जातीहैं । इतनें दिन पीछे सब कुटुम्बियों सहित कैकेयीकी मनो कामना पूर्ण हुई॥२९॥
इन पुष्पित कर्णिकार और जनस्थान, सब सेही हम यह प्रार्थना करतीहैं कि सब रामचंद्रजीसे कहदेना कि रावण सीताजीको हरण कर लेगया
है ॥ ३०॥ हे संसार सेवित तरंगिणि गोदावरी! हम तुम्हारी वंदना करतीहैं; तुमभी शीघ्र रामचंद्रजीसे यह कह देना रावण जानकीको हरण करके
ले गयाहै ॥ ३१ ॥ इस विविध प्रकारके वृक्ष कानन में जो देवता वास करते हैं, हम उन सबको नमस्कार करतीहैं, वहभी हमारे स्वामी श्रीराम

हंतेदानींसकामातुकैकेयीबांधवैःसह ॥ ह्रियेयंधर्मकामस्यधर्मपत्नीयशस्विनः ॥ २९ ॥आमंत्रयेजनस्थानंकर्णिकारां
श्चपुष्पितान् ॥ क्षिप्रंरामायशंसध्वंसीतांहरतिरावणः ॥ ३० ॥ हंससारससंघुष्टांवंदेगोदावरींनदीम् ॥ क्षिप्रंरामा
यशंसध्वंसीतांहरतिरावणः ॥ ३१ ॥ दैवतानिचयान्यस्मिन्वनेविविधपादपे ॥ नमस्करोम्यहंतेभ्योभर्तुःशंसतमांह
ताम् ॥ ३२ ॥ यानिकानिचिदप्यत्रसत्त्वानिविविधानिच ॥ सर्वाणिशरणंयामिमृगपक्षिगणानिवै ॥ ३३ ॥ ह्रियमा
णांप्रियांभर्तुःप्राणेभ्योऽपिगरीयसीम् ॥ विवशातेहृतासीतारावणेनेतिशंसत ॥ ३४ ॥ विदित्वातुमहाबाहुरमुत्रापि
महाबलः ॥ आनेष्यतिपराक्रम्यवैवस्वतहृतामपि ॥ ॥ ३५ ॥ सातदाकरुणावाचोविलपंतीसुदुःखिता ॥ वनस्पति
गतंगृध्रंददर्शायतलोचना ॥ ३६ ॥

चंद्रजीसे हमारे हरणकी वार्ता कहैं॥३२ ॥ इस वनमें. मृग. पक्षी,इत्यादि जो कोई प्राणी भी वसतेहैं, हम उन सबकी ही शरण आतीहैं ॥ ३३ ॥
वह सबही पशु पक्षी हमारे स्वामीसे उनकी प्यारी स्त्रीके हरनेंका वृत्तान्त सुनावैं, और कहैं कि विवश होकर सीता रावण करकै हरी गईहैं॥ ३४ ॥
हमको यदि यमराज भी हर कर ले जांय और महाबाहु रामचंद्रजीको समाचार मिल जावैं, तो वह अपना पराक्रम प्रकाश करकै वहांसेभी हमको
लेआवेंगे ॥३५ ॥ विशाल नेत्रवाली जानकीजीनें अतिशय दुःखित होकर विलाप करते २ अचानक देखा कि गृध्रराज जटायु पेड पर बैठेहैं ॥३६॥

ब्राह्मणका वेष धारण किये लाल वस्त्र पहरे जानकीजीनें ब्राह्मणकेही समान रावणका निमंत्रण करके कहा॥ ३५ ॥ हे विप्र! आप कुशासनपर सुख सहित बैठ जाइये, और यह पाद्य ग्रहण कीजिये,व यह वनके फल सब आपकेही लियें रखेंहैं, इनको भोजनकीजिये ॥ ३६ ॥ नरेन्द्रभार्या जानकीजीनें जब इस प्रकार निमंत्रण किया तब रावण उनकी ओर देख अपनें वध करानेंको बलपूर्वक उनके हरलेजानेंका निश्चय करताहुआ ॥ ३७ ॥परमप्रिय मूर्ति रामचंद्रजी लक्ष्मणजीके सहित मृगया करनें गयेथे. जानकी उस समय उनकी वाट देखती हुई इधर उधर दृष्टि करनें लगीं तो केवल चारों ओर बड़े

द्विजातिवेषेणसमीक्ष्यमैथिलीसमागतंपात्रकुसुंभधारिणम् ॥ अशक्यमुद्रेष्टुमुपायदर्शनान्यमंत्रयद्ब्राह्मणवत्तथागतम् ॥ ३५ ॥ इयंबृसीब्राह्मणकाममास्यतामिदंचपाद्यंप्रतिगृह्यतामिति ॥ इदंचसिद्धंवनजातमुत्तमंत्वदर्थमव्यग्रमिहोपभुज्यताम् ॥ ३६ ॥ निमंत्र्यमाणःप्रतिपूर्णभाषिणींनरेंद्रपत्नींप्रसमीक्ष्यमैथिलीम् ॥ प्रसह्यतस्याहरणेदृढंमनःसमर्पयामासवधायरावणः ॥ ३७ ॥ ततःसुवेषंमृगयागतंपतिंप्रतीक्षमाणासहलक्ष्मणंतदा ॥ निरीक्षमाणाहरितंददर्शतन्महद्वनंनैवतुरामलक्ष्मणौ ॥ ३८ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेषट्चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४६ ॥ ॥ ७ ॥ रावणेनतुवैदेहीतदापृष्टाजिहीर्षुणा ॥ परिव्राजकरूपेणशशंसात्मानमात्मना ॥ १ ॥ ब्राह्मणश्चातिथिश्चैषअनुक्तोहिशपेतमाम् ॥ इतिध्यात्वामुहूर्ततुसीतावचनमब्रवीत् ॥ २ ॥ दुहिताजनकस्याहंमैथिलस्यमहात्मनः ॥ सीतानामास्मिभद्रंतेरामस्यमहिषीप्रिया ॥ ३ ॥

विस्तारवाली हरे वर्णकी वनभूमिही दृष्टि आई,परन्तु राम लक्ष्मणजी दिखाई नहीं दिये ॥ ३८ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०आर०षट्चत्वारिंशःसर्गः॥४६॥ जब संन्यासीवेशधारी रावणनें हरण करनेंके अभिलाषसे इस भांति पूछा तब सीताजी आपही आप विचार करनें लगीं ॥ १ ॥ कि एक तो यह ब्राह्मणहै दूसरे अतिथिहै जो हम इस्से नहीं बोलतीं, तो कदाचित् शाप न देदे, एक मुहूर्त भर यह शोच विचार कर जानकीजी उस्से बोलीं ॥ २ ॥ आपका कल्याणहो । हम मिथिलानरेश महात्मा जनकजीकी तो कन्याहैं और श्रीरामचंद्रजीकी प्रिय भार्याहैं हमारा नाम सीताहै ॥ ३ ॥

नाथ रामचंद्रजीकी धर्मपत्नीहैं ॥ ५ ॥ सीता इनका नामहै जिनको तुम हरण करनेंको उद्यत हो सो तुम प्रजा पालन रूप धर्ममें स्थिर रहकर किस प्रकारसे पराई स्त्रीको हरण करोगे ॥ ६ ॥ हे महावलवान! विशेष कर राज पत्नियोंका रक्षा करना सब भांतिसे कर्त्तव्य है; अतएव तुम पराई स्त्रीके हरण करने ओछे विषय की नीच बुद्धिको निवारण करो ॥ ७ ॥ जिस कर्मके करनें से लोकमें निन्दाहो, धीर पुरुष कभी ऐसे कार्यको नहीं किया करतेहैं। अपनी स्त्रीके समान पराई स्त्रीको पर पुरुषके स्पर्श से रक्षा करना सबही पुरुषोंको कर्त्तव्यहै॥ ८ ॥ हे पौलस्त्यनंदन! शास्त्रसे निश्चित न होने पर भी शिष्ट जब राजा के अनुवर्ती होकर अनेकानेक धर्म, अर्थ अथवा काम विषयके अनुष्ठानमें रत होतेहैं ॥ ९ ॥ राजाही

सीतानामवरारोहार्यात्वंहर्तुमिहेच्छसि ॥ कथंराजास्थितोधर्मेपरदारान्परामृशेत् ॥६॥ रक्षणीयाविशेषेणराजदारामहाबल ॥ निवर्तयगतिंनीचांपरदाराभिमर्शनात् ॥ ७॥ नतत्समाचरेद्धीरोयत्परोस्यविगर्हयेत् ॥ यथात्मनस्तथान्येषांदारारक्ष्याविमर्शनात् ॥८॥ अर्थंवायदिवाकामंशिष्टाःशास्त्रेष्वनागतम् ॥ व्यवस्यंत्यनुराजानंधर्मंपौलस्त्यनंदन ॥ ९ ॥ राजाधर्मश्चकामश्चद्रव्याणांचोत्तमोनिधिः ॥ धर्मःशुभंवापापंवाराजमूलंप्रवर्तते ॥ १० ॥ पापस्वभावश्चपलःकथंत्वंरक्षसांवर ॥ ऐश्वर्यमभिसंप्राप्तोविमानमिवदुष्कृती ॥ ११ ॥ कामस्वभावोयःसोऽसौनशक्यस्तंप्रमार्जितुम् ॥ नहिदुष्टात्मनामार्यमावसत्यालयेचिरम् ॥ १२ ॥ विषयेवापुरेवातेयदारामोमहाबलः ॥ नापराध्यतिधर्मात्माकथंतस्यापराध्यसि ॥ १३ ॥

धर्म, राजाही काम और राजाही समस्त द्रव्यों में उत्तम रत्न स्वरूपहै; धर्म, काम, वा पाप समस्त ही राजमूलकहैं ॥ १० ॥ हे राक्षसराज! हम नहीं कह सकते कि तुम पाप स्वभाव और चपल होकर किस प्रकार दुष्कर्म करनेवाले जनको देवयोनि प्राप्त होने के समान ऐसे ऐश्वर्य को प्राप्त हुए? ॥ ११ ॥ जो पुरुष स्वेच्छाचारी होताहै वह उस अपने स्वभावको त्यागन नहीं कर सकता, क्यों कर दुरात्माओंके स्थानों में पुण्य कभी टिक नहीं सकताहै ॥ १२ ॥ महाबल धर्मात्मा रामचंद्रजीनें तुम्हारे नगर व अधिकारमें कोई अपराध नहीं कियाहै; फिर तुम किस

इसकारण कैकेयीका प्रिय करनेंके लिये उन्होंने इस प्रकारके गुणसम्पन्न रामचंद्रजीको अभिषेक न किया और जब श्रीरामचंद्रजी अभिषेकार्थ अपने पिताके निकट आये तौ ॥ १३॥ कैकेयीने शीघ्रही उनसे यह वचन कहा, कि, हे रघुनंदन! तुम्हारे पिताजीनें तुमको जो आज्ञा दीहै वह हमसे सुनो ॥ १४ ॥ हे काकुत्स्थ! भरतको यह निष्कंटक राज्य देना होगा और तुम्हें चौदह वर्षके लिये वनमें रहना पडेगा ॥ १५ ॥ इसकारण तुम वनमें जाकर पिताके सत्यकी रक्षा करो और मिथ्यावादी न करो पिताको इस ऋणसे छुटाओ, तब दृढव्रत हमारे स्वामी श्रीरामचंद्रजीनें निडरहोकर कैकेयीसे ऐसाही होगा; यह कहा ॥ १६ ॥ हमारे दृढ व्रत धारी स्वामीनें उनके वचन सुनकर उसीके अनुसार कार्य किया हे विप्र! वह केवल लोकोंको दान किया करतेहैं; परन्तु कभी किसीसे कुछ ग्रहण नहीं करते सदाही सत्य कहतेहैं कभी मिथ्या नहीं कहते ॥ १७ ॥ हे ब्राह्मण! वस यही रामचंद्रजीका श्रेष्ठ व्रतहै। उनके सौतेले भाई लक्ष्मणजी अतिशय वीरहैं ॥ १८ ॥व सदा रामजीके संग रहा करतेहैं पुरुषव्याघ्रहैं समरमें निहारतेही शत्रुका संहार करतेहैं वह ब्रह्मचारी और दृढव्रतधारीहैं ॥ १९ ॥ धनुषबाण हाथमें ले, जटा रखाय तपस्वीका भेष बनाय रामचंद्रजीके साथ२ वनमें चले आये॥२०॥ इस प्रकार दृढव्रतधारी महात्मा रामचंद्रजी भ्राता लक्ष्मण और अपनी स्त्री सहित जटा रखाय तपस्वी वेष धारण कर

कैकेय्याःप्रियकामार्थंतंरामंनाभ्यषेचयत् ॥ अभिषेकायतुपितुःसमीपंराममागतम् ॥ १३ ॥ कैकेयीममभर्तारमित्युवाचद्रुतंवचः ॥ तवपित्रासमाज्ञप्तंममेदंशृणुराघव ॥ १४ ॥ भरतायप्रदातव्यमिदंराज्यमकंटकम् ॥ त्वयातुखलुवस्तव्यंनववर्षाणिपंचच॥ १५॥ वनेप्रव्रजकाकुत्स्थपितरंमोचयानृतात् ॥ तथेत्युवाचतांरामःकैकेयीमकुतोभयः ॥ १६ ॥ चकारतद्वचःश्रुत्वाभर्तामममदृढव्रतः ॥ दद्यान्नप्रतिगृह्णीयात्सत्यंब्रूयान्नचानृतम् ॥ १७ ॥ एतद्ब्राह्मणरामस्यव्रतंधृतमनुत्तमम् ॥ तस्यभ्रातातुवैमात्रोलक्ष्मणोनामवीर्यवान् ॥ १८ ॥ रामस्यपुरुषव्याघ्रःसहायःसमरेऽरिहा ॥ सभ्राता लक्ष्मणोनामब्रह्मचारीदृढव्रतः ॥ १९ ॥ अन्वगच्छद्धनुष्पाणिःप्रव्रजंतंमयासह ॥ जटीतापसरूपेणमयासहसहानुजः ॥ २० ॥ प्रविष्टोदंडकारण्यंधर्मनित्योदृढव्रतः ॥ तेवयंप्रच्युताराज्यात्कैकेय्यास्तुकृतेत्रयः ॥ २१ ॥

यदि तुम शूर हो युद्ध करो। अथवा हे रावण! एक मुहूर्त भर ठहर, पहले खर जिस प्रकार पृथ्वीपर शयन कर चुका तुमभी वैसेही मारे जाकर पृथ्वीपर शयन करोगे॥२२॥ २३ ॥जिन तुमने वारंवार युद्धमें दैत्य और दानवोंको मार डाला है, सो जटावल्कलधारी रामचन्द्रजी शीघ्रही संग्राममें तुमको वध करेंगे॥ २४ ॥ वह दो राजकुमार, राम लक्ष्मण अभी दूरे हैं हम क्या करें, रे नीच! तुमको शीघ्रही उनसे भीत होकर विनाशको प्राप्त होना पडेगा इसमें कुछ सन्देह नहीं है॥ २५ ॥ और जबतक कि हम जीते हैं तब तकभी तुम हमारे सामनें रामचन्द्र जीकी प्रिय स्त्री कमलनेत्र सुस्वभावा इन जानकीजीको ले नहीं जा सकोगे॥ २६ ॥ क्योंकि जबतक हम जीवित हैं तब तक प्राण तलकभी

नशक्तस्त्वंबलाद्धर्तुंवैदेहींममपश्यतः॥ हेतुभिर्न्यायसंयुक्तैर्ध्रुवांवेदश्रुतीमिव॥ २२ ॥ युद्धचस्वयदिशूरोसिमुहूर्तंतिष्ठ रावण॥ शयिष्यसेहतोभूमौयथापूर्वंखरस्तथा॥२३॥ असकृत्संयुगेयेननिहतादैत्यदानवाः॥ नचिराच्चीरवासास्त्वां रामोयुधिवधिष्यति॥ २४ ॥ किंनुशक्यंमयाकर्तुंगतौदूरंनृपात्मजौ॥ क्षिप्रंत्वंनश्यसेनीचतयोर्भीतोनसंशयः॥२५॥ नहिमेजीवमानस्यनयिष्यसिशुभामिमाम्॥ सीतांकमलपत्राक्षींरामस्यमहिषींप्रियाम्॥२६॥ अवश्यंतुमयाकार्यंप्रि यंतस्यमहात्मनः॥ जीवितेनापिरामस्यतथादशरथस्यच॥ २७ ॥ तिष्ठतिष्ठदशग्रीवमुहूर्तंपश्यरावण॥ वृंतादिवफलं त्वांतुपातयेयंरथोत्तमात्॥ २८ ॥ युद्धातिथ्यंप्रदास्यामियथाप्राणंनिशाचर॥ २९ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवा ल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेपंचाशःसर्गः॥ ५० ॥ ॥ छ ॥ इत्युक्तःक्रोधताम्राक्षस्तप्तकांचनकुंडलः॥ रा क्षसेंद्रोऽभिदुद्रावपतगेंद्रममर्षणः॥ १ ॥

देकर महात्मा रामचन्द्र और दशरथजीका प्रिय कार्य हमको अवश्य करना उचित है॥ २७ ॥ इस कारण हे रावण! एक मुहूर्त खडा रह खडा रह. तुझको हम देखेंगे जिस प्रकार बौर से फल तोड लिया जाता है वैसेही तुमको हम रथसे नीचे गिरावेंगे॥२८॥ रे निशाचर! जब तक हमारे प्राण हैं तब तक भली भांति हम तुम्हारी युद्धकी पहुनई करेंगे॥ २९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० आर० पंचाशः सर्गः॥ ५० ॥ पक्षीराज जटायुनें जब इस प्रकारसे कहा तब शुद्ध सुवर्णके बने कुंडल पहरे राक्षस राज रावण क्रोधके मारे लाल २ नेत्र कर उनके सामनें

भामिनि! वहां विचरण करनेंपर फिर तुमको इस वनमें वास करनेंकी अभिलापा नहीं रहेगी ॥ ३० ॥ हे सीते! यदि तुम हमारी भार्या बनोगी तो सर्व वस्त्राभूषणभूषित पांच हजार दासिये तुम्हारी सेवा किया करेंगी ॥ ३१ ॥ रावण यह जान्ताथा कि मैंने ऐसे पाप कियेहैं कि जिससे जप तप करनेंसे कदाचित् मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती इस कारण विरोध करके राम जिनको तत्त्वसे ईश्वर जानताथा उनके हाथसे मरनेंमें मुक्तिकी प्राप्ति विचार कर जानकीसे ऐसे वाक्य कहे कि जो ऐसे नि ठुर वचन कहूं तो शीघ्र अधिक पाप करनेसे रामचंद्रके हाथसे परम पद पाऊंगा अनन्दिता जनककुमारी जानकीजी राक्षस राज रावण करके इस प्रकार कहीजानेंपर महा क्रोधित हुई, और उसका अनादर करके कहनें

पंचदास्यःसहस्राणिसर्वाभरणभूषिताः ॥ सीतेपरिचरिष्यंतिभार्याभवसिमेयदि ॥ ३१ ॥ रावणेनैवमुक्तातुकुपिताज
नकात्मजा ॥ प्रत्युवाचानवद्यांगीतमनादृत्यराक्षसम् ॥ ३२ ॥ महागिरिमिवाकंप्यंमहेंद्रसदृशंपतिम् ॥ महोदधि
मिवाक्षोभ्यमहंराममनुव्रता ॥ ३३ ॥ सर्वलक्षणसंपन्नंन्यग्रोधपरिमंडलम् ॥ सत्यसंधंमहाभागमहंराममनुव्रता
॥ ३४ ॥ महाबाहुंमहोरस्कंसिंहविक्रांतगामिनम् ॥ नृसिंहंसिंहसंकाशमहंराममनुव्रता ॥ ३५ ॥ पूर्णचंद्राननंरा
मंराजवत्संजितेंद्रियम् ॥ पृथुकीर्तिमहाबाहुमहंराममनुव्रता ॥ ३६ ॥ त्वंपुनर्जंबुकःसिंहीमामिहेच्छसिदुर्लभाम् ॥
नाहंशक्यास्त्वयास्प्रष्टुमादित्यस्यप्रभायथा ॥ ३७ ॥

लगीं ॥ ३२ ॥ जो यहां पर्वत सुमेरुकी समान अकंपनीय, महासागरकी समान क्षोभरहितहैं, ऐसे महेन्द्र तुल्य हम स्वामी रामचंद्रजीकी अनुगताहैं ॥ ३३ ॥ जो शुभलक्षण युक्त वटवृक्षकी समानहैं, हम उनही सत्य प्रतिज्ञ महाभाग रामचंद्रजीकी अनुगताहैं ॥ ३४ ॥ जो आजानुबाहु वालेहैं, विशाल हृदयहैं, और सिंहकी समान विक्रमके साथ चलनेंवालेहैं, हम उनही नृसिंह और सिंह सदृश रामचंद्रजीकी अनुगताहैं ॥ ३५ ॥ उनका मुख पूर्ण चंद्रमाकी समानहै कीर्ति बहुतही विस्तारित होरहीहै; और वांहें जिनकी अति बडीहैं हम उन्हीं राजकुमार जितेन्द्रिय रामचंद्रजीकी अनुगताहैं ॥ ३६ ॥ तुम शृगाल होकर सिंहीका अभिलाष करतेहो, परन्तु तुम हमको नहीं ले सकते, जैसे सूर्यकी प्रभाको कोई नहीं छू

क्रोधयुक्तहो दूसरा धनुष ग्रहण करकै शत २ सहस्र २ बाणोंकी वर्षा जटायु पर करनें लगा ॥ ११ ॥ उस समय पक्षिराज जटायु उन शर समूहसे विधकर घोंसलेमें बैठे हुए पक्षीकी समान शोभित होनें लगे ॥ १२ ॥ तिसके पीछे महा तेजस्वी जटायुजीनें अपने दोनों पंखोंसे उस शर जालको तोड ताड फिर अपने पंजोंसे रावणके महा धनुषको तोड डाला ॥ १३ ॥ और पंखोंके प्रहारसे महा तेजस्वी जटायुनें रावणका अग्निकी समान प्रदीप्त कवचभी खण्ड २ कर दिया ॥ १४ ॥ समरमें रावणका सुवर्णमय दिव्य कवच तोडकर जटायुजीने अतिशय शीघ्र चलनें वाले पिशाचवदन गधोंको जो रावणके रथमें जुतेथे मार डाला ॥ १५ ॥ फिर वेगमें भर कर रावणकी इच्छानुसार चलनेंवाले अग्निकी समान

शरैरावारितस्तस्यसंयुगेपतगेश्वरः ॥ कुलायमभिसंप्राप्तःपक्षिवच्चबभौतदा ॥ १२ ॥ सतानिशरजालानिपक्षाभ्यांतुविधूयह ॥ चरणाभ्यांमहातेजाबभंजास्यमहद्धनुः ॥ १३ ॥ तच्चाग्निसदृशंदीप्तंरावणस्यशरावरम् ॥ पक्षाभ्यांचमहातेजाव्यधुनोत्पतगेश्वरः ॥ १४ ॥ कांचनोरश्छदान्दिव्यान्पिशाचवदनान्खरान् ॥ तांश्चास्यजवसंपन्नाञ्जघानसमरेबली ॥ १५ ॥ अथत्रिवेणुसंपन्नंकामगंपावकार्चिषम् ॥ मणिसोपानचित्रांगंबभंजचमहारथम् ॥ १६ ॥ पूर्णचंद्रप्रतीकाशंछत्रंचव्यजनैःसह ॥ पातयामासवेगेनग्राहिभीराक्षसैःसह ॥ १७ ॥ सारथेश्चास्यवेगेनतुंडेनचमहच्छिरः ॥ पुनर्व्यपहनच्छ्रीमान्पक्षिराजोमहाबलः ॥ १८ ॥ सभग्नधन्वाविरथोहताश्वोहतसारथिः ॥ अंकेनादायवैदेहींपपातभुविरावणः ॥ १९ ॥

प्रभावाले, मणिरचित सोपान युक्त, तीन वांस जिसमें लगे हुए ऐसे रावणके रथकोभी जटायुनें तोडा ॥ १६ ॥ छत्र आदि धारण करनें वाले राक्षसोंके सहित पूर्ण चन्द्रमाकी समान छत्र और व्यजनभी जटायुनें नीचे गिराया ॥ १७ ॥ और फिर अपनी चोंचके प्रहारसे सारथीका बडा भारी शिरभी बडे वेगसे जटायुनें काटा इस प्रकार परम श्रीसम्पन्न महा बलवान पक्षिराज करकै ॥ १८ ॥ शरासन छिन्न रथके टूट जानें पर सारथी और घोडोंके मर जानेंसे जानकीजीको दोनों भुजाओंसे पकडे हुए रावण पृथ्वीपर गिरा ॥ १९ ॥

इच्छा लोहेके त्रिशूलोंके वीचमें चलनेंकी समानहे ॥ ४४ ॥ सिंह और शृगालमें, क्षुद्रनदी व सागरमें अमृत और सिरकेमें जितना भेदहे उतनाही भेद श्रीरामचंद्रजी और तुममें है ॥ ४५ ॥ कांचन, शीशे, और लोहे में, चंदन जल और कीचडमें वनमें, हाथी और विलाव में जितना अंतरहे, उतनाही अंतर श्रीरामचंद्रजी और तुममें है ॥ ४६ ॥ गरुड और काकमें, मोर और जलमुर्गीमें, हंस और गीधमें जितना अंतरहे उतनाही अंतर श्रीरामचंद्रजी और तुममें है ॥ ४७ ॥ महेन्द्रसम प्रभावशाली श्रीरामचंद्रजी जो धनुष बाण धारण किये इस पृथ्वीपर टिकेहें, तो यदि तुम हमको हरभी ले जाओगे तो तुम्हारे यहां हम वृद्धावस्थाको प्राप्त न होंगी अर्थात् वह बहुत शीघ्र तुमको मारकर हमको लेआवेंगे। जिस

यदंतरंसिंहसृगालयोर्वनेयदंतरंस्यंदनिकासमुद्रयोः ॥ सुराग्र्यसौवीरकयोर्यदंतरंतदंतरंदाशरथेस्तवैवच ॥ ४५ ॥ यदंतरंकांचनसीसलोहयोर्यदंतरंचंदनवारिपंकयोः ॥ यदंतरंहस्तिबिडालयोर्वनेतदंतरंदाशरथेस्तवैवच ॥ ४६ ॥ यदंतरंवायसवैनतेययोर्यदंतरंमद्गुमयूरयोरपि ॥ यदंतरंहंसकगृध्रयोर्वनेतदंतरंदाशरथेस्तवैवच ॥ ४७ ॥ तस्मिन्सहस्राक्षसमप्रभावेरामेस्थितेकार्मुकबाणपाणौ ॥ हृतापितेहंनजरांगमिष्येआज्यंयथामक्षिकयाऽवगीर्णम् ॥ ४८ ॥ इतीवतद्वाक्यमदुष्टभावासुदुष्टमुक्त्वारजनीचरंतं ॥ गात्रप्रकंपाद्व्यथिताबभूववातोद्धतासाकदलीवतन्वी ॥ ४९ ॥ तांवेपमानामुपलक्ष्यसीतांसरावणोमृत्युसमप्रभावः ॥ कुलंबलंनामचकर्मचात्मनःसमाचचक्षेभयकारणार्थम् ॥ ५० ॥
॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेसप्तचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४७ ॥ ॥ छ ॥

प्रकार घृतमें मक्खी पडजाय, तो घृत दूषित नहीं होता, वरन मक्खी ही प्राण देतीहै। अर्थात् हमारा कुछ न होगा, तुमही मारे जाओगे ॥ ४८ ॥ जिस प्रकार पवनके चलनेंसे कदलीका वृक्ष कंपायमान होकर हिलनें लगताहै, वैसेही शुद्धस्वभाववाली जानकीजी दुष्ट राक्षससे इस प्रकारके वचन कह थर२ कांपने लगीं ॥ ४९ ॥ तिन जनकात्मजा सीताजीको कंपायमान देखकर मृत्यु सम प्रभावयुक्त रावण उनको डरपानेंके लिये अपना कुल नाम और कर्म कहताहुआ ॥ ५० ॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे सप्तचत्वारिंशः सर्गः॥४७॥

किसी स्थानमें गमन करके भी इस भांतिकी काल फांससे न छूटेगा ॥ २७ ॥ हे रावण! राम लक्ष्मणको कोई नहीं जीत सकता। सो तू जो इस आश्रमका निरादर कर जानकीजीको लिये चला जाता है इस बातको यह सुनकरभी तुझे किसी भांति क्षमा नहीं करेंगे ॥ २८ ॥ तुझ डरपोकनें सर्व लोक निन्दित जैसे कर्मका अनुष्ठान किया है सो ऐसे मार्गमें तस्कर लोग चला करते हैं, और वीर लोग इस मार्गमें नहीं चलते॥२९॥ अरे रावण! यदि तुझमें शूरताहो तौ युद्ध कर! नहीं तौ एक मुहूर्त ठहर बस अपनें भ्राता खरकी समान तूभी पृथ्वीमें शयन करैगा॥३०॥ मृत्युके समय लोग जिस प्रकारके कार्यको करते हैं, सो तूभी अपना नाश करनें के लिये उसी भांतिके अधर्म कार्य करनेंको तैयार हुआ है॥ ३१ ॥ जिस

नहिजातुदुराधर्षौकाकुत्स्थौतवरावण ॥ धर्षणंचाश्रमस्यास्यक्षमिष्येतेतुराघवौ ॥ २८ ॥ यथात्वयाकृतंकर्मभीरुणालोकगर्हितम् ॥ तस्कराचरितोमार्गोनैषवीरनिषेवितः ॥ २९ ॥ युद्धचस्वयदिशूरोसिमुहूर्तंतिष्ठरावण ॥ शयिष्यसिहतोभूमौयथाभ्राताखरस्तथा ॥ ३० ॥ परेतकालेपुरुषोयत्कर्मप्रतिपद्यते ॥ विनाशायात्मनोऽधर्म्यंप्रतिपन्नोसिकर्मतत् ॥ ३१ ॥ पापानुबंधोवैयस्यकर्मणःकोनुतत्पुमान् ॥ कुर्वीतलोकाधिपतिःस्वयंभूर्भगवानपि ॥ ३२ ॥ एवमुक्त्वाशुभंवाक्यंजटायुस्तस्यरक्षसः ॥ निपपातभृशंपृष्ठेदशग्रीवस्यवीर्यवान् ॥ ३३ ॥ तंगृहीत्वानखैस्तीक्ष्णैर्विददारसमंततः ॥ अधिरूढोगजारोहोयथास्याद्दुष्टवारणम् ॥ ३४ ॥ विददारनखैरस्यतुंडंपृष्ठेसमर्पयन् ॥ केशांश्चोत्पाटयामासनखपक्षमुखायुधः ॥ ३५ ॥

अधर्म कार्यके करनेंसे केवल पापही होता है, उस कार्यके करनें में कौन जन हाथ डालता है? इन्द्रादि लोकपाल अथवा स्वयं भगवान् ब्रह्माजीभी नहीं करते ॥ ३२ ॥ महाबलवान् जटायुजी इस प्रकारका नीति युक्त वचन कह कर दशानन रावणकी पीठ पर चिपट गये ॥३३ महावत दुष्ट हाथीपर चढकर जिस प्रकार अंकुश और भाला आदिसे उसके मस्तकको बींधता है, जटायुनेंभी वैसेही रावणको पकड अपने तीक्ष्ण नखोंकी चोटसे भली भांति रावणको घायल किया ॥ ३४ ॥ और इसी भांतिसे चोंचके आघात और पंजोंके प्रहारसे रावणकी पीठ नोंचकर

समुद्रके पार हमारी लंका नामक परम सुन्दरी नगरीहै वह पुरी देखनेमे इन्द्रकी दूसरी अमरावतीहै भयंकर निशाचर गण उसमें रहा करतेहैं ॥ १० ॥ और वहांपर श्वेत धवरहरे वृक्ष बहुतसे शोभित हो रहेहैं, उस लंकापुरीके सब फाटक वैदूर्य मणिके बनेहैं, और बहारदीवारी सुवर्णकीहै चारों ओर जिसके समुद्र रूपी खाईहै जिस्से यह पुरी परम मनोहारिणी होगईहै ॥ ११ ॥ वहांपर सदाही बाजोंकी ध्वनि गूंजती रहतीहै। उसमें हाथी घोडे और रथ समूह बहुत भर रहेहैं। वहांकी सब फुल वाडियें अभिलाषित फल देनेवाले वृक्षोंसे युक्तहैं जिस्से वाडियोंकी अति शोभा होरहीहै ॥ १२ ॥ हे राजपुत्री सीते! तुम हमारे साथ उस नगरीमें वास करोगी, तब फिर मनुष्योंकी स्त्रियोंको कभी स्मरणभी

ममपारेसमुद्रस्यलंकानापुरीशुभा ॥ संपूर्णाराक्षसैर्घोरैर्यथेंद्रस्यामरावती ॥ १० ॥ प्राकारेणपरिक्षिप्तापांडुरेणविराजिता ॥ हेमकक्ष्यापुरीरम्यावैदूर्यमयतोरणा ॥ ११ ॥ हस्त्यश्वरथसंबाधातूर्यनादविनादिता ॥ सर्वकामफलैर्वृक्षैःसंकुलोद्यानभूषिता ॥ १२ ॥ तत्रत्वंवसहेसीतेराजपुत्रिमयासह ॥ नस्मरिष्यसिनारीणांमानुषीणांमनस्विनि ॥ १३ ॥ भुंजानामानुषान्भोगान्दिव्यांश्चवरवर्णिनि ॥ नस्मरिष्यसिरामस्यमानुषस्यगतायुषः ॥ १४ ॥ स्थापयित्वाप्रियंपुत्रंराज्येदशरथोनृपः ॥ मंदवीर्यस्ततोज्येष्ठःसुतःप्रस्थापितोवनम् ॥ १५ ॥ तेनकिंभ्रष्टराज्येनरामेणगतचेतसा ॥ करिष्यसिविशालाक्षितापसेनतपस्विना ॥ १६ ॥ रक्षराक्षसभर्तारंकामयस्वयमागतम् ॥ नमन्मथशराविष्टंप्रत्याख्यातुंत्वमर्हसि ॥१७॥ प्रत्याख्यायहिमांभीरुपश्चात्तापंगमिष्यसि ॥ चरणेनाभिहत्येवपुरूरवसमुर्वशी ॥१८॥

नहीं किया करेंगे ॥ १३ ॥ हेमनस्विनी वरवर्णिनी! वहां पर तुम वह दिव्य भोग करके जो मनुष्योंको महादुर्लभहैं क्षीणायु रामचंद्रको कभी मनमें याद न करोगी ॥ १४ ॥ और राजा दशरथजीनें भरत जीको राज्याभिषेक करके मन्द वीर्य वाले अपने बड़े पुत्र श्रीरामचंद्रजीको वनमें भेज दिया ॥ १५ ॥ हे बडे २ नेत्रवाली! तुम उन राज्यभ्रष्ट, गतचित्त, तपस्वी रामके साथ रहकर क्या करोगी? ॥ १६ ॥ हम समस्त राक्षसोंके राजा, काम बाणसे वींधे जाकर तुम्हारे पास आपही आयेहैं; सो हमारा निरादर करना तुमको उचित नहींहै ॥१७॥ हेभीरु! हमारा निरादर करनेंसे पीछे तुमको पछताना पडेगा। जिस प्रकार उर्वशी राजा पुरूरवाको लात मार कर संतापि

उनकी ओर दौडीं ॥ ४४ ॥ लंकापति रावणने नीले मेघकी समान विपुल वीर्यवान श्वेत वर्ण युक्त छाती वाले और भूपतित जटायुजीको बुझी हुई दावानलके समान शांत देखा ॥४५॥ अनन्तर चंद्र वदना सीताजी रावणके वेगसे मर्दित व पृथ्वीपर पडे हुए जटायुजीको दोनों वाहोंसे पकडकर वारंवार विलाप करकै रोनें लगीं ॥ ४६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे एकपंचाशःसर्गः ॥ ५१ ॥ रावण करके गृद्धराजका नाश देखकर चंद्रमुखी जानकीजी महादुःखितहो यह कहकर विलाप करनें लगीं ॥१॥ नेत्रोंका फडकना कृष्ण पुरुष दर्शनादि विषयक स्वप्न, पक्षियोंका देखना और पक्षियोंका स्वर श्रवण करना इत्यादि निश्चयही मनुष्योंके होंनहार सुख दुःखकी सूचना करतेहैं ऐसा

तंनीलजीमूतनिकाशकल्पंसपांडुरोरस्कमुदारवीर्यम्॥ददर्शलंकाधिपतिःपृथिव्यांजटायुषंशांतमिवाग्निदावम्॥४५॥ ततस्तुतंपत्ररथंमहीतलेनिपातितंरावणवेगमर्दितम्॥ पुनश्चसंगृह्यशशिप्रभाननारुरोदसीताजनकात्मजातदा॥४६॥ इत्यार्षेश्रीम॰ वा॰ आ॰आर॰एकपंचाशःसर्गः ॥ ५१ ॥ सातुताराधिपमुखीरावणेननिरीक्ष्यतम् ॥ गृध्रराजंविनिहतंविललापसुदुःखिता॥ १ ॥निमित्तंलक्षणस्वप्नंशकुनिस्वरदर्शनम् ॥ अवश्यंसुखदुःखेषुनराणांपरिदृश्यते ॥ २ ॥ ननूनंरामजानासिमहद्व्यसनमात्मनः॥ धावंतिनूनंकाकुत्स्थमदर्थंमृगपक्षिणः ॥ ३ ॥ अयंहिकृपयाराममांत्रातुमिहसंगतः ॥ शेतेविनिहतोभूमौममाभाग्याद्विहंगमः ॥ ४ ॥ त्राहिमामद्यकाकुत्स्थलक्ष्मणेतिवरांगना ॥ सुसंत्रस्तासमाक्रंदच्छृण्वतांतुयथांतिके ॥ ५ ॥

देखा जाताहै ॥ २ ॥ हे काकुत्स्थ रामचंद्र!, आज निश्चयही मृग और पक्षी गण इस विपदकी सूचना करकै हमारा वियोग जतानेको तुम्हारे सामनें दौडते होंगे; तथापि तुम इस अपनें बडे कष्टको नहीं जानतेहो॥३॥हे काकुत्स्थ! यह विहङ्गम जटायु कृपा करकै हमारा उद्धार करनेंके लिये यहां आकर हमारेही भाग्य दोषसे निहतहो पृथ्वीपर पडेहैं ॥४॥ हे नाथ रामचंद्रजी! लक्ष्मणजी! तुम यहां पर हमारी रक्षा करो यह कहकर स्त्री रत्न सीताजी अतिशय शंकित होकर बडे जोरसे रुदन करनें लगीं। उनके रोनेंको निकट वर्ती प्राणियोंनें सुना ॥ ५ ॥

थमार अपनें शरीरको वहुत बढाता हुआ ॥ १ ॥ तिसके पीछे वचन बोलनें में चतुर दशशीश फिर जानकीजीसे बोला; समझपडा कि तुम उन्मत्त सी हो गईहो। क्या हमारा वीर्य और पराक्रम तुम्हारे श्रवण गोचर नहीं हुआ? ॥ २ ॥ हम आकाशमें टिके रह कर अपनी दोनों भुजाओं से पृथ्वीको उठा सकतेहैं सब समुद्रके जलकोभी पीसकतेहैं; और युद्धमें यमराजकोभी मार सकतेहैं ॥ ३ ॥ और तीखे बाणजालसे आकाशमें टिके हुए सूर्यकोभी व्यथित कर सकते, और पृथ्वीमें गिरा सकतेहैं ॥ ४ ॥ इस प्रकार कहतेही क्रोध युक्त होनेंके कारण रावणके सांवरे नेत्र समान हो गये और जलती हुई अग्निकी समानताको पहुँचे ॥ ५ ॥ फिर वह कुबेरका छोटा भाई रावण डंडी भेसको त्यागकर शीघ्रही यम

समैथिलींपुनर्वाक्यंबभाषेवाक्यकोविदः ॥ नोन्मत्तयाश्रुतौमध्येममवीर्यपराक्रमौ ॥ २ ॥ उद्वहेयंभुजाभ्यांतुमेदिनीमंबरेस्थितः ॥ आपिबेयंसमुद्रंचमृत्युंहन्यांरणेस्थितः ॥ ३ ॥ अर्कंतुद्यांशरैस्तीक्ष्णैर्विभिंद्यांहिमहीतलम् ॥ कामरूपेणउन्मत्तेपश्यमांकामरूपिणम् ॥४॥ एवमुक्तवतस्तस्यरावणस्यशिखिप्रभे ॥ क्रुद्धस्यहरिपर्यंतेरक्तेनेत्रेबभूवतुः॥ ५ ॥ सद्यःसौम्यंपरित्यज्यतीक्ष्णरूपंसरावणः ॥ स्वंरूपंकालरूपाभंभेजेवैश्रवणानुजः ॥ ६ ॥ संरक्तनयनःश्रीमांस्तप्तकांचनभूषणः ॥ क्रोधेनमहताविष्टोनीलजीमूतसंनिभः ॥ ७ ॥ दशास्योविंशतिभुजोबभूवक्षणदाचरः ॥ सपरिव्राजकच्छद्ममहाकायोविहायतत् ॥ ८ ॥ प्रतिपेदेस्वकंरूपंरावणोराक्षसाधिपः ॥ रक्तांबरधरस्तस्थौस्त्रीरत्नंप्रेक्ष्यमैथिलीम् ॥ ९ ॥ सतामसितकेशांतांभास्करस्यप्रभामिव ॥ वसनाभरणोपेतांमैथिलींरावणोऽब्रवीत् ॥ १० ॥

रूप समान अपना तीक्ष्ण रूप धारण करता हुआ ॥ ६ ॥ और महा क्रोध परायण होकर तपाये सोनेके वनेहुए गहनोंसे सुशोभित होकर नील मेघ सदृश श्रीमान् निशाचर रूप प्रगट हुआ ॥ ७ ॥ उस समय वह दशमुख व वीस भुजा वाला होगया, और छलसे जो दंडीका भेष वनायाथा उसको छोड दिया और बडी कायावाला वनगया ॥ ८ ॥ उस राक्षसपति रावणनें पहला रूप धारण कर लिया, परन्तु वस्त्र लाल रंगकेही पहरे रहा, और रमणीरत्न सीताजीको देखकर ॥ ९ ॥ उन सूर्यकी समान प्रभावाली, काले वालों करके युक्त वस्त्राभूषण धारण किये

कि दैवयोगसे रावणका विनाश आ पहुँचा इसमें कुछभी सन्देह नहींहै॥१२॥इस ओर सीताजी वारम्वार राम और लक्ष्मणजीका नाम लेकर रोनें लगीं
राक्षस राज रावण उनको ग्रहण करकै आकाश मार्गमें गमन करनें लगा ॥ १३ ॥ तपे हुए सुवर्णके गहने पहने पीले रेशमीन वस्त्र पहरे राज
नंदनी जानकीजी अतीव शोभान्विता सौदामिनी (विजली) की समान दीप्ति धारण करती हुई ॥ १४ ॥ उस कालमें सीताजीके पीत वसन उडनें
के कारण रावणभी अग्निद्वारा प्रदीप्त पर्वतकी समान अधिक विराजमान हुआ ॥ १५ ॥ परम कल्याणि सीताजीके शरीरमें जो सुगन्धि युक्त
अरुण वर्णके कमल दलथे; वह समस्त दशाननके अंगपर गिरते जातेथे ॥ १६ ॥ इसके सिवाय जानकीजीके विशुद्ध स्वर्ण वर्णके रेशमीन वस्त्र

सतुतांरामरामेतिरुदतींलक्ष्मणेतिच ॥ जगामादायचाकाशंरावणोराक्षसेश्वरः ॥ १३ ॥ तप्ताभरणवर्णांगीपीतकौ
शेयवासिनी॥रराजराजपुत्रीतुविद्युत्सौदामनीयथा॥१४॥ उद्धूतेनचवस्त्रेणतस्याःपीतेनरावणः॥अधिकंपरिबभ्राज
गिरिर्दीप्तइवाग्निना॥१५॥तस्याःपरमकल्याण्यास्ताम्राणिसुरभीणिच॥ पद्मपत्राणिवैदेह्याअभ्यकीर्यंतरावणम् १६
तस्याःकौशेयमुद्धूतमाकाशेकनकप्रभम् ॥ बभौचादित्यरागेणताम्रमभ्रमिवातपे॥ १७॥ तस्यास्तद्विमलंवक्त्रमाकाशे
रावणांकगम्॥ नरराजविनारामंविनालमिवपंकजम् ॥ १८॥ बभूवजलदंनीलंभित्त्वाचंद्रइवोदितः॥ सुललाटंसुके
शांतंपद्मगर्भाभमव्रणम्॥१९॥ शुक्लैःसुविमलैर्दंतैःप्रभावद्भिरलंकृतम्॥ तस्यासुनयनंवक्त्रमाकाशेरावणांकगम्॥२०॥
रुदितंव्यपमृष्टास्रंचंद्रवत्प्रियदर्शनम् ॥ सुनासंचारुताम्रोष्ठमाकाशेहाटकप्रभम् ॥ २१ ॥

आकाशमें उडकर सन्ध्या कालीन सूर्य किरण शोभान्वित मेघोंकी समान शोभा विस्तार करने लगे॥ १७॥ और सीताका निर्मल मुख
मंडल रावणके अंकमें रहनेंके कारण श्री रामचंद्रजीके विना मृणाल रहित कमलकी समान किसी भांति शोभित नहीं हुआ ॥ १८ ॥ नील
मेघको भेदनकर उदय होते हुए चंद्रमाकी समान सुन्दर ललाट सहित सुन्दर केश पर्यन्त पद्मगर्भ सम प्रकाशित विस्फोटकका चिह्न रहित॥१९॥
दीप्तमान् श्वेतवर्ण दन्त पंक्तिकी प्रभासे सुशोभित सुन्दर नेत्रयुक्त जानकीजीका वदन रावणके अंगमें स्थित आकाशमें इस प्रकारसे शोभा
पाने लगा॥२०॥ अनवरत रोदन युक्त आंसुओंके जलसें मलीन चंद्रमाकी समान प्रियदर्शन सुन्दर नासिका सहित, मनोहर, व लाल अधरों

हां पर आ पहुंचा ॥ १९ ॥ उस रथको देख रावण नें गंभीर स्वर और कठोर वचनों से जानकीजीको डांटा और धमकाया और उनको गोदमें लेकर रथमें डाल दिया ॥ २० ॥ यशस्विनी सीताजी उस करके ग्रही जानेपर और भयसे व्याकुलहो हाराम! हा राम! कहकर पुकार करनें लगीं परन्तु रामचंद्रजी उस समय बहुत दूरथे ॥ २१ ॥ रावणके प्रति जानकीजीका कछुभी अनुराग नहींथा इस कारणसे वह अपने छुटानेंके लिये यथाशक्य चेष्टा करनेंलगीं, परन्तु कामके वशहुआ रावण पन्नग राजकी स्त्रीके समान उनको लेकर आकाशको उडगया ॥ २२ ॥ इस प्रकारसे राक्षसराज रावण आकाशमें जानकी हरण करके लेचला जानकीजी मत्त भ्रान्त चित्त और आतुरकी समान यह कहकर बडे जोरसे विलाप

ततस्तांपरुषैर्वाक्यैरभितर्ज्यमहास्वनः ॥ अंकेनादायवैदेहींरथमारोहयत्तदा ॥२० ॥ सागृहीतातिचुक्रोशरावणेनयशस्विनी ॥ रामेतिसीतादुःखार्तारामंदूरंगतंवने ॥ २१ ॥ तामकामांसकामार्तःपन्नगेंद्रवधूमिव ॥ विचेष्टमानामादायउत्पपाताथरावणः ॥ २२ ॥ ततःसाराक्षसेंद्रेणह्रियमाणाविहायसा ॥ भृशंचुक्रोशमत्तेवभ्रांतचित्तायथातुरा ॥ २३ ॥ हालक्ष्मणमहाबाहोगुरुचित्तप्रसादक ॥ ह्रियमाणांनजानीषेरक्षसाकामरूपिणा ॥ २४ ॥ जीवितंसुखमर्थंचधर्महेतोःपरित्यजन् ॥ ह्रियमाणामधर्मेणमांराघवनपश्यसि ॥ २५ ॥ ननुनामाविनीतानांविनेतासिपरंतप ॥ कथमेवंविधंपापंनत्वंशाधिहिरावणम् ॥ २६ ॥ ननुसद्योऽविनीतस्यदृश्यतेकर्मणःफलम् ॥ कालोप्यंगीभवत्यत्रसस्यानामिवपक्तये ॥ २७ ॥ त्वंकर्मकृतवानेतत्कालोपहतचेतनः ॥ जीवितांतकरंघोरंरामाद्व्यसनमाप्नुहि ॥ २८ ॥

करनेलगीं ॥ २३ ॥ हा गुरुचित्तप्रसादक! महाबाहु लक्ष्मणजी! काम रूपी राक्षस करके मैं हरी जातीहूं सो इसको तुम नहीं जानतेहो ॥ २४ ॥ हाराम! तुम धर्मकी रक्षा करनेंके लिये, प्राण, सुख, संपत्ति सबकाही त्याग करतेहो, इस समय हम अधर्मके द्वारा हरी जातीहैं सो क्योंनहीं हमें आनकर बचाते? ॥ २५ ॥ हे शत्रुओंके तपानेंवाले! जो अविनयी होतेहैं आप उनका सदाही शासन किया करतेहैं, फिर क्योंनहीं ऐसेही पापात्मा रावणका शासन करतेहो? ॥ २६ ॥ अन्यायी पुरुषके कर्मका फल शीघ्रही नहीं मिलता; जिस प्रकार नाजके पकनेंमें कुछ समय का प्रयोजन होताहै इसी प्रकार समय आनेंपर अन्यायका फल मिलताहै ॥ २७ ॥ हे रावण! तुमनें कालके प्रभावसे चेतना

साथ नीले वर्णका रावण कांचनकक्ष्यावेष्टित हस्तीकी समान शोभा पानें लगा इससे जानकीजी हाथीकी सुवर्णकी कौंधनीकी समान शोभा पानें
लगीं ॥ ३० ॥ श्रीसीताजी महाज्वालाकी समान अपनें तेजसे आकाशके वीच देदीप्यमान होने लगीं, कुवेरका भाई रावण उस अवस्थामें उनको
आकाश मार्गमें गमन करके ले जानें लगा ॥ ३१ ॥ उस समय सीताजीके अग्नि वर्णवाले शब्दायमान उनकी देहसे खसककर सब भूषण पृथ्वीमें
गिरने लगे, उस समय ऐसा बोध हुआ मानों पुण्यक्षीण हुए तारागण आकाशसे गिर रहेहैं ॥३२॥ सीताजीका चंद्र सदृश दीप्तिवाला हार उनके
दोनो उरोजोंके मध्यसे भ्रष्ट होकर गगनसे गिरी हुई गंगाजीके समान शोभा विस्तार करता गिरने लगा ॥ ३३ ॥ उत्पातकी वायुके चलनें से शिरः

तांमहोल्कामिवाकाशेदीप्यमानांस्वतेजसा ॥ जहाराकाशमाविश्यसीतांवैश्रवणानुजः ॥ ३१ ॥ तस्यास्तान्यग्नि
वर्णानिभूषणानिमहीतले ॥ सघोषाण्यवशीर्यंतक्षीणास्ताराइवांबरात् ॥ ३२ ॥ तस्याःस्तनांतराद्भ्रष्टोहारस्ताराधि
पद्युतिः ॥ वैदेह्यानिपतन्भातिगंगेवगगनच्युता ॥ ३३ ॥ उत्पातवाताभिरतानानाद्विजगणायुताः ॥ मामैरितिवि
धूताग्राव्याजह्रुरिवपादपाः ॥ ३४ ॥ नलिन्योध्वस्तकमलास्त्रस्तमीनजलेचराः ॥ सखीमिवगतोत्साहांशोचंतीवस्म
मैथिलीम् ॥ ३५ ॥ समंतादभिसंपत्यसिंहव्याघ्रमृगद्विजाः ॥ अन्वधावंस्तदारोषात्सीताच्छायानुगामिनः ॥ ३६ ॥
जलप्रपातास्रमुखाःशृंगैरुच्छ्रितबाहुभिः ॥ सीतायांह्रियमाणायांविक्रोशंतीवपर्वताः ॥ ३७ ॥ह्रियमाणांतुवैदेहींदृष्ट्वादी
नोदिवाकरः ॥ प्रविध्वस्तप्रभःश्रीमानासीत्पांडुरमंडलः ॥ ३८ ॥

समूह कम्पित होनेके कारण विविध विहंगम युक्त वृक्ष मानों जानकीसे "कुछ भय नहींहै !" यह कहने लगे ॥ ३४ ॥ कमलदलोंके विध्वंस हो
जानेसे, और मत्स्य इत्यादिक जलचरोंके व्याकुल हो जानेपर सब सरोवर सखीकी समान उत्साह रहित जानकीजीके शोकसे विह्वल होरहेथे ॥
॥३५॥सिंह, व्याघ्र, मृग, और पक्षी समूह क्रोधमें भरकर सीताजीकी परछांईके पकडने के लिये चारों ओरसे आकर उनके पीछेर दौडने लगे॥३६॥
जानकीजीके हर जानेसे समस्त पर्वत शृङ्गरूप बाहु परम्परा उठाकर झरने रूप अश्रुधाराकुल वदनसे मानो रुदनही करने लगे ॥ ३७ ॥
श्रीमान् सूर्य नारायणभी उस अवस्थामें जानकीजीको देखकर दीन और तेज हीन होगये और उनका मंडल प्रदेश धूंधला होगया ॥ ३८ ॥

जटायुको देखकर रावणके वशमें पडी हुई सुश्रोणी जानकीजी भयके मारे दुःखित हो रोकर बोलीं ॥ ३७ ॥ आर्य जटायु! अवलोकन करो यह पापात्मा राक्षसराज रावण हमको अनाथकी समान निर्दय भावसे हरण करके लिये जाता है ॥ ३८ ॥ आप इस महाबलवान् विजय चिह्न धारी दुर्मति क्रूर आयुधधारी निशाचर रावणको निवारण नहीं कर सकेंगे ॥ ३९ ॥ आप इस निशाचरको निवारण करनेंमें समर्थ नहींहैं, इस कारण ही श्रीरामचंद्रजीसे हमारे हरणकी वार्ता ठीक २ कह देना, और लक्ष्मणजीसे यह सब वृत्तान्त व्यौरेवार कहना ॥ ४० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे एकोनपंचाशः सर्गः ॥ ४९ ॥ जटायु भोजन करके गहरी नींदमें सोरहेथे वह यह शब्द सुनतेही

सातमुद्वीक्ष्यसुश्रोणीरावणस्यवशंगता ॥ समाक्रंदद्भयपराद्दुःखोपहितयागिरा ॥ ३७ ॥ जटायोपश्यमामार्यह्रियमाणामनाथवत् ॥ अनेनराक्षसेंद्रेणकरुणंपापकर्मणा ॥ ३८ ॥ नैषवारयितुंशक्यस्त्वयाक्रूरोनिशाचरः ॥ सत्त्ववान्जितकाशीचसायुधश्चैवदुर्मतिः ॥ ३९ ॥ रामायतुयथातत्त्वंजटायोहरणंमम ॥ लक्ष्मणायचतत्सर्वमाख्यातव्यमशेषतः ॥ ४० ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेएकोनपंचाशःसर्गः ॥ ४९ ॥ ॥ तंशब्दमवसुप्तस्तुजटायुरथशुश्रुवे ॥ निरैक्षद्रावणंक्षिप्रंवैदेहींचददर्शसः ॥ १ ॥ ततःपर्वतशृंगाभस्तीक्ष्णतुंडःखगोत्तमः ॥ वनस्पतिगतःश्रीमान्व्याजहारशुभांगिरम् ॥ २ ॥ दशग्रीवस्थितोधर्मेपुराणेसत्यसंश्रवः ॥ भ्रातस्त्वंनिंदितंकर्मकर्तुंनार्हसिसांप्रतम् ॥३॥ जटायुर्नामनाम्नाहंगृध्रराजोमहाबलः ॥ राजासर्वस्यलोकस्यमहेंद्रवरुणोपमः ॥४॥ लोकानांचहितेयुक्तोरामोदशरथात्मजः ॥ तस्यैषालोकनाथस्यधर्मपत्नीयशस्विनी ॥ ५ ॥

जाग पडे और रावण और जानकी दोनों को देखा ॥१॥ फिर पर्वतके शृंगसमान बडी तेज चोंचवाले और वृक्षपर बैठे हुए श्रीमान् पक्षिराज जटायु मीठे वचन से रावण को पुकारते हुए ॥ २ ॥ भ्रातः दशवदन! हम पुराण धर्म निरत और सत्यप्रतिज्ञहैं; इस कारण तुम हमारे सामने ऐसा निन्दनीय कार्य करनेंमें प्रवृत्त न होवो ॥ ३ ॥ हम महा बलवान् गृध्रराज जटायु हैं और दशरथकुमार श्रीरामचंद्रजी भी साक्षात् महेन्द्र और वरुणजीके समान सब लोकोंके राजाहैं ॥ ४ ॥ वह सब लोकोंके हितकारी कार्य करनेंको तैयार रहतेहैं, यह वरारोहा यशस्विनी उन्ही लोक

रेराक्षसाधम रावण! हमको अकेला पाकर चोरी करके तू लिये भागाजाताहै अरे क्या इस नीच कर्मसे तुझे लाज नहीं आती? ॥ ३ ॥ रे दुरा
त्मन्! मैं जान गई कि तू डरपोक स्वभाववालाहै इसी कारणसे हमारे हरण करनेका अभिलाष कर मायामय मृगरूप बना हमारे स्वामी रामचं
द्रजीको छलसे दूरले गया॥४॥और इस समय हमारी रक्षा करनेके लिये जो तैयार हुएथे उन हमारे श्वशुरके सखा गृध्रराज जटायुजीकोभी तैंनेमारडा
ला हे राक्षसाधम! इससेही जाना गया कि तुझमें कुछ वीरता नहींहै तूने केवल हमको अपना नामही सुनाकर हरण किया, कुछ तुझ करके हम जी
ती नहीं गई. हाँ राम लक्ष्मणसे युद्ध कर हमें जीतता तौ एक बातथी॥५॥६॥रेनीच! शून्यमें पराई स्त्रीके हरण करनेंका यह नीच निन्दनीय कार्य कर

नव्यपत्रपसेनीचकर्मणानेनरावण ॥ ज्ञात्वाविरहितांयोमांचोरयित्वापलायसे ॥ ३ ॥ त्वयैवनूनंदुष्टात्मन्भीरुणाह
र्तुमिच्छता ॥ ममापवाहितोभर्तामृगरूपेणमायया॥४॥ योहिमामुद्यतस्त्रातुंसोप्ययंविनिपातितः ॥ गृध्रराजःपुराणोऽ
सौश्वशुरस्यसखामम ॥ ५ ॥ परमंखलुतेवीर्यंदृश्यतेराक्षसाधम ॥ विश्राव्यनामधेयंहियुद्धेनास्मिजितात्वया ॥ ६ ॥
ईदृशंगर्हितंकर्मकथंकृत्वानलज्जसे ॥ स्त्रियाश्चाहरणंनीचरहितेचपरस्यच ॥ ७ ॥ कथयिष्यंतिलोकेषुपुरुषाःकर्मकु
त्सितम् ॥ सुनृशंसमधर्मिष्ठंतवशौटीर्यमानिनः ॥ ८ ॥ धिक्तेशौर्यंचसत्त्वंचयत्त्वयाकथितंतदा ॥ कुलाक्रोश
करंलोकेधिक्तेचारित्रमीदृशम् ॥ ९ ॥ किंशक्यंकर्तुमेवंहियज्जवेनैवधावसि ॥ मुहूर्तमपितिष्ठत्वंनजीवन्प्रतियास्य
सि ॥ १० ॥ नहिचक्षुःपथंप्राप्यतयोःपार्थिवपुत्रयोः ॥ ससैन्योपिसमर्थस्त्वंमुहूर्तमपिजीवितुम् ॥ ११ ॥

के तू लज्जित नहीं होता ॥७॥रेअपनेंको शूर माननेंवाले! तूनें जो यह अति निर्लज्ज और निन्दनीय कार्य कियाहै सो इसकी चरचा सब पुरुष कर२
के तुझे बुरा कहेंगे॥८॥तूनें जो अपनी शूरताईकी और शारीरक बलकी वार्ता कही सो तेरी इस शूरताको धिक्कारहै! तेरेइस बलकोभी धिक्कारहै!
तेरे कुलके कलंक जनक ऐसे चरित्रपरभी धिक्कारहै ॥ ९ ॥ तू इस प्रकारसे हरण करकै शीघ्रताके साथ दौड़ा जाताहै फिर भला हम क्या कर स
कें हां यदि एक मुहूर्तभी तू खड़ा रहै, तौ प्राण लेकर नहीं लौटने पावेगा ॥ १० ॥ राजकुमार रामचंद्र और लक्ष्मणजीकी दृष्टिके आगे आते

कारण से उनका अपराध करतेहो? ॥ १३ ॥ देखो जनस्थानका रहनेंवाला खर अतिशय दुष्टथा तिससे सरलता करनेंवाले रामनें शूर्पणखाके लिये यदि उसको मार डालाहै ॥ १४॥ तौ इस्में रामचंद्रजीका क्या अपराधहै? तुम वही लोकनाथ रामचंद्रजीकी भार्या हरण करके लिये जातेहो॥१५॥ अभी जानकीको छोड दो; इन्द्रने जिस प्रकार वज्रसे वृत्रासुरको जलाडालाथा वैसेही कहीं रामचंद्रजी तुमको अनल कल्प रूप भयंकर दृष्टिसे भस्म न कर दें ॥ १६ ॥ तुमने जो अपने वस्त्रके अंचलमें महा विषदार सर्प बांधाहै सो उसको तुमनें सर्प नहीं जाना है अथवा तुम उस कालपाशको नहीं देखतेहो जो तुम्हारे गलेमें पडीहै ॥ १७ ॥ हे सौम्य! जिस भारको वहन करनेंसें दबजाना न पडे वही बोझा लेकर चलना चाहिये । और जो सहजही से पच जावै, और किसी प्रकार पीडा नकरै उसही अन्नको खाना चाहिये॥१८ ॥ जिसकार्य करनेंसें धर्म, कीर्ति,

यदिशूर्पणखाहेतोर्जनस्थानगतःखरः ॥ अतिवृत्तोहतःपूर्वंरामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ १४॥ अत्रब्रूहियथातत्त्वंकोरामस्य व्यतिक्रमः ॥ यस्यत्वंलोकनाथस्यहृत्वाभार्यांगमिष्यसि ॥ १५ ॥ क्षिप्रंविसृजवैदेहींमात्वाघोरेणचक्षुषा ॥ दहेद्दहनभूतेनवृत्रमिंद्राशनिर्यथा॥१६॥ सर्पमाशीविषंबद्ध्वावस्त्रांतेनावबुध्यसे॥ग्रीवायांप्रतिमुक्तंचकालपाशंनपश्यसि॥१७॥ सभारःसौम्यभर्तव्योयोनरंनावसादयेत्॥ तदन्नमपिभोक्तव्यंजीर्यतेयदनामयम्॥ १८॥ यत्कृत्वानभवेद्धर्मोनकीर्तिर्नयशोध्रुवम्॥ शरीरस्यभवेत्खेदःकस्तत्कर्मसमाचरेत्॥ १९ ॥ षष्टिवर्षसहस्राणिजातस्यममरावण ॥ पितृपैतामहंराज्यंयथावदनुतिष्ठतः ॥ २० ॥ वृद्धोहंत्वंयुवाधन्वीसरथःकवचीशरी ॥ नचाप्यादायकुशलीवैदेहींमेगमिष्यसि ॥ २१॥

वा चिरस्थाई यश, किसीके मिलनेंकी भी संभावना हो, वरन उलटा उससे शरीर में खेद हो, भला ऐसे कार्यके करनेकी कौन पुरुष इच्छा करैगा? ॥१९॥हे रावण! हमें साठ हजार वर्ष जन्म लिये हुए, तबसे विधि पूर्वक पिता पितामहादिकोंका पक्षियोंका राज्य पालन करते हैं॥ २०॥यद्यपि हम बूढे होगयेहैं और तुम युवा धनुर्बाण धारी कवच सम्पन्न और रथ पर सवारहो, तथापि हमारे सामनें तुम निरापद जानकीको न लेजा सकोगे* ॥ २१ ॥

* भजन–गीधराज सुनि आरत वानी । नैन उठाय विलोकन लागे रघुकुल तिलक नारि पहिचानी॥१॥परीं अधम निश्चरके वशमें जात पुकारत सारंग पानी॥२॥महा क्रोधमें भर अधीरहो रार करन की मनमें ठानी॥३॥पवन समान वेगसों धाये बोले ठहर तनक अभिमानी॥४॥चोर समान लिये सीताको जात कहां वचैकै अभिमानी॥५ ॥यह कह चोंच मार रथ तोरयो रथीमार सुमिरे सुख दानी॥पुनि रावणको कियो मूर्छित लई उतार सीय महारानी ॥ ६ ॥ यह बलदेव भक्तके कर्तव युग २ कीरत चली सुहानी ॥ ७ ॥

और भी महद् कंटकाकीर्ण सुतीक्ष्ण शाल्मली वृक्ष यह सब बहुत शीघ्र तुझको दिखाई देंगे! तुम उन महात्मा रामचंद्रजीका ऐसा
अप्रिय कार्य करकै नहीं जी सकोगे ॥ २१ ॥ जिस प्रकार विषका पीनें वाला बहुत देर तक नहीं प्राण रख सकता, रेनिर्घृण! रावण! इन सब
वातोंसे स्पष्टहै कि तू कठिन कालकी फांसीसे बँधाहै ॥ २२ ॥ महात्मा हमारे स्वामीके सन्मुख संग्राममें प्राप्त होकर फिर तुम्हारा कहीं निस्तारा
नहीं, फिर तू कहां जायकर वचेगा; उन्होंने अकेलेही विना अपनें भ्राताकी सहायताके एक निमेष मात्रमें ॥२३॥ चौदह हजार राक्षस मारडाले,वही
सब अस्त्र शस्त्रोंके जाननेंवाले महाबलवान् वीर्यसम्पन्न श्रीरामचंद्रजी ॥ २४ ॥ सुतीक्ष्ण वाणोंके समूहसे अपनी प्रिय भार्याके
द्रक्ष्यसेशाल्मलींतीक्ष्णामायसैःकंटकैश्रिताम् ॥ नहित्वमीदृशंकृत्वातस्यालीकंमहात्मनः ॥ २१ ॥ धारितुंशक्ष्य
सिचिरंविषंपीत्वेवनिर्घृणं ॥ बद्धस्त्वंकालपाशेनदुर्निवारेणरावण ॥ २२ ॥ क्वगतोलप्स्यसेशर्ममभर्तुर्महात्मनः ॥
निमेषांतरमात्रेणविनाभ्रातरमाहवे ॥ २३ ॥ राक्षसानिहतायेनसहस्राणिचतुर्दश ॥ कथंसराघवोवीरःसर्वास्त्रकुशलो
बली ॥ २४ ॥ नत्वांहन्याच्छरैस्तीक्ष्णैरिष्टभार्यापहारिणम् ॥ एतच्चान्यच्चपरुषंवैदेहीरावणांकगा ॥ भयशोकसमा
विष्टाकरुणंविललापह ॥ २५ ॥ तदाभृशार्तांबहुचैवभाषिणींविलापपूर्वंकरुणंचभामिनीम् ॥ जहारपापस्तरुणींविचे
ष्टतींनृपात्मजामागतगात्रवेपथुः ॥ २६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेत्रिपंचा
शःसर्गः ॥ ५३ ॥ ह्रियमाणातुवैदेहीकंचिन्नाथमपश्यती ॥ ददर्शगिरिशृंगस्थान्पंचवानरपुंगवान् ॥ १ ॥
हरनेंवाले तुझको अवश्यही मार डालेंगे, रावणके हाथोंके बीचमें बैठी वैदेहीजी भय और शोक युक्त होकर इस प्रकारसे व औरभी बहुत
भांतिसे कठोर वचनके साथ करुणास्वरसे विलाप करनें लगीं ॥ २५ ॥ वह महाव्याकुल होकर अपने छुडानेंकी चेष्टा करती हुई करुणा स
हित विलाप करकै अनेक वचन कहनें लगीं, उस समय पापचारी रावण अपनें शरीरको कंपाता हुआ उनको हरण करके ले चला ॥ २६ ॥
इ०श्रीम० वा० आ० आर० त्रिपंचाशः सर्गः ॥ ५३ ॥ जब रावण हरण करकै ले चला तब जानकीजी और किसीको रक्षा करनेंवाला

बडे वेगसे दौडा ॥ १ ॥ फिर गगन मण्डलमें वायु प्रेरित दो मेघोंकी टक्कर जिस प्रकार लडती है वैसेही इन दोनोंका महाघोर संग्राम आरंभ हुआ ॥ २ ॥ पर लगे हुए माला पहरे हुए दो श्रेष्ठ पर्वतोंकी समान गृध्रराज जटायु और राक्षसेन्द्र रावणका अद्भुत संग्राम उपस्थित हुआ ॥ ३ ॥ तिसके पीछे रावणने महाबलवान गृध्रराजके ऊपर अनवरत महाभयंकर तीक्ष्णफलक लगे हुए नालीक और नाराच व विकर्णि समूह बाणोंकी वर्षा की ॥ ४॥ पक्षिराज जटायुनें युद्धमें रावणके चलाये हुए अस्त्र और समस्त शर जाल ग्रहण किया ॥ ५ ॥ और अति तीखे नखून लगे हुए अपने दोनों चरणोंसे रावणके शरीरमें सहस्रों घाव कर दिये ॥ ६ ॥ अपने शरीरमें घाव हुए देख महावीर दशवदन रावणनें

ससंप्रहारस्तुमुलस्तयोस्तस्मिन्महामृधे ॥ बभूववातोद्धतयोर्मेघयोर्गगनेयथा ॥ २ ॥ तद्बभूवाद्भुतंयुद्धंगृध्रराक्षसयोस्तदा ॥ सपक्षयोर्माल्यवतोर्महापर्वतयोरिव ॥ ३ ॥ ततोनालीकनाराचैस्तीक्ष्णाग्रैश्चविकर्णिभिः ॥ अभ्यवर्षन्महाघोरैर्गृध्रराजंमहाबलम् ॥ ४ ॥ सतानिशरजालानिगृध्रःपत्ररथेश्वरः ॥ जटायुःप्रतिजग्राहरावणास्त्राणिसंयुगे ॥ ५ ॥ तस्यतीक्ष्णनखाभ्यांतुचरणाभ्यांमहाबलः ॥ चकारबहुधागात्रेव्रणान्पतगसत्तमः ॥ ६ ॥ अथक्रोधाद्दशग्रीवोजग्राहदशमार्गणान् ॥ मृत्युदंडनिभान्घोराञ्छत्रोर्निधनकांक्षया ॥ ७ ॥ सतैर्बाणैर्महावीर्यःपूर्णमुक्तैरजिह्मगैः ॥ बिभेदनिशितैस्तीक्ष्णैर्गृध्रंघोरैःशिलीमुखैः ॥ ८ ॥ सराक्षसरथेपश्यञ्जानकींबाष्पलोचनाम् ॥ अचिंतयित्वाबाणांस्तान्राक्षसंसमभिद्रवत् ॥ ९ ॥ ततोस्यसशरंचापंमुक्तामणिविभूषितम् ॥ चरणाभ्यांमहातेजाबभंजपतगोत्तमः ॥ १० ॥ ततोऽन्यद्धनुरादायरावणःक्रोधमूर्छितः ॥ ववर्षशरवर्षाणिशतशोथसहस्रशः ॥ ११ ॥

क्रोध पूर्ण हो शत्रुओंके मार डालनेकी इच्छासे यमराजके दंडकी समान भयंकर दशबाण ग्रहण किये ॥ ७ ॥ और कानतक धनुषकों खेंचकर उन सीधे चलनें वाले तीखे रुधिरके प्यासे भयंकर शिलीमुख बाणोंको छोडकर जटायुको वध किया ॥ ८ ॥ राक्षस राज रावणके रथमें रुदन करती हुई जानकीको देखकर पक्षीराज जटायु उन समस्त बाणोंको कुछ न गिनते हुए रावणके सन्मुख दौडे ॥ ९ ॥ और अपनें दोनों चरणोंसे तेजमान जटायुनें रावणका मणि मुक्ता भूषित बाण सहित शरासन तोड डाला ॥ १० ॥ अपने धनुष बाणको टूटा हुआ देखकर रावण महा

दशा तो नदीनाथकी हुई और अन्तरिक्षमें विचरण करनें वाले चारण गण कहनें लगे ॥ १० ॥ कि अब रावण किसी प्रकार नहीं बच सकता
यहींतक इसके जीवनका शेष होगया । सिद्ध गणभी ऐसाही कहने लगे इस ओर रावण विचेष्ट माना सीताजीको गोदीमें लिये ॥ ११ ॥ अपनी लं
का पुरीमें लेआया, वह सीताजीको नहींलाया वरन कहींसे अपनी मृत्युको मोल ले आया । उस समय लंका नगरीमें बडे २ चौराहे और मार्ग
सुशोभित हो रहेथे ॥ १२ ॥ वहां पहुंचकर अपनें परम सुन्दर रणवास में रावणने शोक मोहसे युक्त तिन परम सुन्दरीको जाकर बैठा दिया १३
उस समय ऐसा बोध हुआ मानों मय दानव अपने पुरमें आसुरी मायाले आयाहै, दशानन सीताजीको अपने रणवासमें स्थापन करकै घोर दर्शना

एतदंतोदशग्रीवइतिसिद्धास्तदाब्रुवन् ॥ सतुसीतांविचेष्टंतीमंकेनादायरावणः ॥ ११ ॥ प्रविवेशपुरींलंकांरूपिणीं
मृत्युमात्मनः ॥ सोऽभिगम्यपुरींलंकांसुविभक्तमहापथान् ॥ १२ ॥ संरूढकक्ष्यांबहुलांस्वमंतःपुरमाविशत् ॥
तत्रतामसितापांगींशोकमोहसमन्विताम् ॥ १३ ॥ निदधेरावणःसीतांमयोमायामिवासुरीम् ॥ अब्रवीच्चदशग्री
वःपिशाचीर्घोरदर्शनाः ॥ १४ ॥ यथानैनांपुमान्स्त्रीवासीतांपश्यत्यसंमतः ॥ मुक्तामणिसुवर्णानिवस्त्राण्याभरणा
निच ॥ १५ ॥ यद्यदिच्छेत्तत्तदेवास्यादेयंमच्छंदतोयथा ॥ याचवक्ष्यतिवैदेहींवचनंकिंचिदप्रियम् ॥ १६ ॥ अज्ञा
नाद्यदिवाज्ञानान्नतस्याजीवितंप्रियम् ॥ तथोक्त्वाराक्षसीस्तास्तुराक्षसेंद्रःप्रतापवान् ॥ १७ ॥ निष्क्रम्यांतः
पुरात्तस्मात्किंकृत्यमितिचिंतयन् ॥ ददर्शाष्टौमहावीर्यान्राक्षसान्पिशिताशनान् ॥ १८ ॥

पिशाचनियोंको आज्ञा देताहुआ ॥ १४ ॥ कि तुम भली भांतिसे इनकी रक्षाकरो । कोई स्त्री व पुरुष हमारी विना आज्ञा इन सीताको नहीं
देखनें पावै मुक्ता मणि,सुवर्ण वस्त्र भूषण ॥ १५ ॥ इत्यादि जिस २ वस्तुकी यह इच्छा करैं वह समस्तही इनको दीजाय यह मेरी आज्ञाहै व जोकोई
स्त्री तुममेंसे इन जानकीको अप्रिय वचन ॥ १६ ॥ ज्ञानसे व अज्ञानसे कहेगी वह निज शरीरमें अपने प्राणोंको न समझै इस तरह सब रक्षांकर
नें वालियोंसे कह महा प्रतापवान रावण ॥ १७ ॥ रनवास से वाहर आ विचार करनें लगाकि इससमय हमको क्या करना उचितहै, यह सोच उस

रावणकी सवारीको टूटा फूटा देख; और स्वयं रावणकोभी पृथ्वीपर गिरादेख, समस्त प्राणी वारंवार " साधु साधु! " कह कर गृद्ध्रराजकी बडाई करनें लगे ॥ २० ॥ तिसके पीछे रावण बडी उमर होनेंके कारण बुढापा ग्रस्त पक्षियूथपाति जटायुको थका हुआ देख हर्ष सहित मैथिलि सीताजीको ग्रहण कर आकाश मार्गमें गमन करनें लगा ॥ २१ ॥ रावणके समस्तही युद्ध साधन विनष्ट और हत हो गयेथे केवल एक खड्ग बच रहाथा ।वह रावण उस अवस्था में भी नितान्त हृष्टचित्त होकर जानकीजीको गोदीमें बैठाय जानेंको तैयार हुआ॥२२॥महा तेजस्वी गृद्ध्रराज जटायुनें बडे जोरसे कूद रावणके सामनें दौडे और उसको भली भांति रोक कर कहनें लगे ॥ २३ ॥ अरे अल्पज्ञानी रावण! तुम समस्त राक्षस कुलको

दृष्ट्वानिपतितंभूमौरावणंभग्नवाहनम् ॥ साधुसाध्वितिभूतानिगृध्रराजमपूजयन् ॥ २० ॥ परिश्रांतंतुतंदृष्ट्वाजरयापक्षियूथपम् ॥ उत्पपातपुनर्हृष्टोमैथिलींगृह्यरावणः ॥ २१ ॥ तंप्रहृष्टंनिधायांकेरावणंजनकात्मजाम् ॥ गच्छंतंखड्गशेषंचप्रनष्टहतसाधनम् ॥ २२ ॥ गृध्रराजःसमुत्पत्यरावणंसमभिद्रवत् ॥ समावार्यमहातेजाजटायुरिदमब्रवीत् ॥ २३ ॥ वज्रसंस्पर्शबाणस्यभार्यांरामस्यरावण ॥ अल्पबुद्धेहरस्येनांवधायखलुरक्षसाम् ॥ २४ ॥ समित्रबंधुःसामात्यःसबलःसपरिच्छदः ॥ विषपानंपिबस्येतत्पिपासितइवोदकम् ॥ २५ ॥ अनुबंधमजानंतःकर्मणामविचक्षणः ॥ शीघ्रमेवविनश्यंतियथात्वंविनशिष्यसि ॥ २६ ॥ बद्धस्त्वंकालपाशेनक्कगतस्तस्यमोक्ष्यसे ॥ वधायबडिशंगृह्यसामिषंजलजोयथा ॥ २७ ॥

विनाश करनेंके लियेही उन वज्र समान बाण धारण करनें वाले श्रीरामचन्द्रजीकी इन जानकीजीको हरण करता है ॥ २४ ॥ हम समझे, कि प्यासा होकर मनुष्य जिस प्रकार जल पीता है तूभी वैसेही मित्र, बन्धु, मंत्री, चतुरंग सेना और दास दासी इत्यादि समस्त परिजनोंके सहित विष पीनेंको तैयार हुआ है ॥ २५ ॥ मूर्खलोग जिस प्रकार कर्मके फलको न जान कर शीघ्रही विष पीकर शीघ्रही विनाशको प्राप्त होते हैं वैसेही तुम्हारा सब परिवारके साथ सत्यानाश हो जायगा ॥ २६ ॥ तू कालकी फांसीमें बँधा है, मछली जिस प्रकार मांसका टुकडा लगी हुई वंशीको ग्रहण करनेंके अर्थ अपना प्राण खोनेंको उसके सामनें को दौडती है और निश्चयंही उसके प्राण जाते हैं । सो इसी प्रकार तूभी

सावधानीसे वहां पर चले जाओ, और सदा उस रामचंद्रको मार डालनेंके लिये यत्न करते रहना ॥ २७ ॥ हमनें पहले संग्राममें अनेक वार तुम
लोगोंके बलको जान लियाहै, बस इसी कारणसे हमनें तुम लोगोंको जन स्थानमें विठाया ॥ २८ ॥ वह आठ राक्षस इन अर्थ युक्त मीठे वचनोंको
सुन और रावणको प्रणाम कर लंका छोड करकै जनस्थानकी ओर गुप्त भावसे सबके सब चले ॥ २९ ॥ इस प्रकारसे रावण श्रीजानकी
जीको परम हर्षित चित्तसे ग्रहण करकै और उनको अपनें रनवासमें टिका, रामचंद्रजीसे महा शत्रुता करकै मोह युक्तहो परमानंदित हुआ ॥ ३० ॥
इ० श्रीम० वाल्मीकीये आदि काव्ये आर० चतुष्पंचाशःसर्गः ॥ ५४ ॥ रावणकी मतिमें भ्रम होगयाथा इसी कारणसे वह घोर महा बलवान्

युष्माकंतुबलंज्ञातंबहुशोरणमूर्धनि ॥ अतश्चास्मिन्जनस्थानेमयायूयंनिवेशिताः ॥ २८ ॥ ततःप्रियंवाक्यमुपेत्यरा
क्षसामहार्थमष्टावभिवाद्यरावणम् ॥ विहायलंकांसहिताःप्रतस्थिरेयतोजनस्थानमलक्ष्यदर्शनाः ॥ २९ ॥ ततस्तुसी
तामुपलभ्यरावणःसुसंप्रहृष्टःपरिगृह्यमैथिलीम् ॥ प्रसज्ज्यरामेणचवैरमुत्तमंबभूवमोहान्मुदितःसरावणः॥३०॥ इत्या
र्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेचतुष्पंचाशःसर्गः ॥ ५४ ॥ संदिश्यराक्षसान्घोरान्राव
णोऽष्टौमहाबलान् ॥ आत्मानंबुद्धिवैक्लव्यात्कृतकृत्यममन्यत ॥ १ ॥ सचिंतयानोवैदेहींकामबाणैःप्रपीडितः ॥
प्रविवेशगृहंरम्यंसीतांद्रष्टुमभित्वरन् ॥ २ ॥ सप्रविश्यतुतद्वेश्मरावणोराक्षसाधिपः ॥ अपश्यद्राक्षसीमध्येसी
तांदुःखपरायणाम् ॥ ३ ॥ अश्रुपूर्णमुखींदीनांशोकभारावपीडिताम् ॥ वायुवेगैरिवाक्रांतांमज्जंतींनावमर्णवे ॥ ४ ॥

आठ राक्षसोंको जनस्थानमें भेजकर अपनेको कृत कृत्य समझता हुआ कि अब हमें कोई कार्य करनेंको वाकी नहीं रहा ॥ १ ॥ अनन्तर वह वरावर
जानकीजीका स्मरण करते हुए राम बाणसे पीडित होकर उन जानकीजीको देखनेंके लिये शीघ्रतासे अपने रमणीय गृहमें प्रवेश करता
हुआ ॥ २ ॥ राक्षस पति रावणनें उस घरमें प्रवेश करकै दुःखपरायण सीताजीको राक्षसियोंके वीचमें बैठे हुए देखा ॥ ३ ॥ सीताजी शोकके
भारसे महा पीडा पा अतिशय दीन भावको प्राप्तहो नेत्रोंसे आंसू वहातीं हुई बैठीथीं, उस समय ऐसा वोध होताथा मानों नौका वायुके वेगसे कां

फिर उन्होंनें नखून पंख और चोंचरूपी इन हथियारोंकी सहायतासे रावणके सब बाल उखाड डाले ॥ ३५ ॥ गृद्धराजके वारंवार प्रहार करनेंसे रावण महा पीडित होगया, और क्रोधमें भरनेके कारण उसके अधर और सब शरीर कांपने लगे ॥ ३६ ॥ तब रावणने अतिव्याकुल और मूर्च्छित होकर वांई बगलमें भली भांति जानकीजीको दाब जटायुके एक लात मारी ॥३७॥ शत्रु दमन कारी पक्षिराज जटायुजीनें उस लातके प्रहारको सहकर अपनी चोंचसे रावणके दश बायें हाथ उखाड डाले ॥ ३८ ॥ वांहें उखड जानें परभी, रावणके शरीरसे सहसा नये हाथ निकल आये। उस समय ऐसा ज्ञात हुआ मानों विष ज्वाला युक्त सर्प गण वमईसे वाहर निकले ॥ ३९ ॥ इसके वाद वीर्यवान् दशवदन क्रोधमें भर जानकी

सतदागृध्रराजेनक्लिश्यमानोमुहुर्मुहुः॥ अमर्षस्फुरितोष्ठःसन्प्राकंपतचराक्षसः ॥३६॥ संपरिष्वज्यवैदेहींवामेनांकेनरावणः॥ तलेनाभिजघानार्तोजटायुंक्रोधमूर्छितः ॥ ३७ ॥जटायुस्तमतिक्रम्यतुंडेनास्यखगाधिपः ॥ वामबाहून्दशतदाव्यपाहरदरिंदमः॥३८॥ संछिन्नबाहोःसद्योवैबाहवःसहसाऽभवन्॥विषज्वालावलीमुक्तावल्मीकादिवपन्नगाः ३९॥ ततःक्रोधाद्दशग्रीवःसीतामुत्सृज्यवीर्यवान् ॥ मुष्टिभ्यांचरणाभ्यांचगृध्रराजमपोथयत् ॥ ४० ॥ ततोमुहूर्तंसंग्रामोबभूवातुलवीर्ययोः॥ राक्षसानांचमुख्यस्यपक्षिणांप्रवरस्यच ॥ ४१ ॥ तस्यव्यायच्छमानस्यरामस्यार्थेसरावणः ॥ पक्षौपादौचपार्श्वौचखड्गमुद्धृत्यसोच्छिनत्॥४२॥ सच्छिन्नपक्षःसहसारक्षसारौद्रकर्मणा ॥ निपपातमहागृध्रोधरण्यामल्पजीवितः॥ ४३ ॥ तंदृष्ट्वापतितंभूमौक्षतजार्द्रंजटायुषम् ॥ अभ्यधावतवैदेहीस्वबंधुमिवदुःखिता ॥ ४४ ॥

जीको छोड मुक्के और लातोंसे जटायुजीको मारने लगा ॥ ४० ॥ और जटायुजीभी उसें खुरचनें व काटनें लगे तब अनुपम पराक्रम गृद्धराज और राक्षस राजका घोर युद्ध होनें लगा ॥ ४१ ॥ जटायुजी रामचंद्रजीके उपकार करनेंको युद्ध करतेथे तब रावणनें खड्ग उठाकर उनके दोनों पंख दो चरण और दो बगलें काट डालीं ॥ ४२ ॥ जब घोर कर्म करनें वाले निशाचरनें पंख काट डाले तब गृद्धराज जटायु मृत्युके निकट पहुंच कर तत्क्षण पृथ्वीमें गिरे ॥ ४३॥ उनको रुधिर लगी देहसे पृथ्वीमें गिरा हुआ देखकर सीताजी दुःखितहो बन्धुकी समानके समीप शीघ्रतासे

वह समस्त दिव्य गृह दिखलाकर कहनें लगा ॥ १३ ॥ कि हे जानकी! यहां बत्तीस करोड राक्षस बालक और बूढोंको छोडकर हमारे आधी नहैं ॥१४॥ उन सब भयंकर कर्म करनें वाले राक्षसोंके हम स्वामीहैं। और हमारे इकले केही एक सहस्र दासहैं ॥ १५ ॥ अब हमारा यह समस्त राज्य तुम्हारेही वशमेंहै हे विशालाक्षि! हमारा जीवन पर्यन्तभी तुम्हारे आधीनहै; अधिक क्या कहैं तुम हमारे प्राणोंसेभी प्यारीहो ॥ १६ ॥ हे मैथिली! हमारे रनवासमें जो सब उत्तम स्त्रियांहैं, सो तुम हमारी भार्या होकर उन सबके ऊपर पटरानी बनो ॥ १७ ॥ हे जानकी! हमनें जो कुछ कहा वह तुम्हारे लिये विशेष हितकारीहै; तुम इस बातमें राजी होजाओ, दूसरी भांतिका अभिप्राय करके क्या करोगी; तुम्हारे कारण हम बहुतही

दशराक्षसकोट्यश्चद्वाविंशतिरथापराः ॥ वर्जयित्वाजनान्वृद्धान्बालांश्चरजनीचरान् ॥ १४ ॥ तेषांप्रभुरहंसीतेसर्वेषां भीमकर्मणाम् ॥ सहस्रमेकमेकस्यममकार्यपुरःसरम् ॥ १५ ॥ यदिदंराज्यतंत्रंमेत्वयिसर्वंप्रतिष्ठितम् ॥ जीवितंच विशालाक्षित्वंमेप्राणैर्गरीयसी ॥ १६ ॥ बह्वीनामुत्तमस्त्रीणांममयोऽसौपरिग्रहः ॥ तासांत्वमीश्वरीसीतेममभार्याभव प्रिये ॥ १७ ॥ साधुकिंतेन्यथाबुद्ध्यारोचयस्ववचोमम ॥ भजस्वमाभितप्तस्यप्रसादंकर्तुमर्हसि ॥ १८ ॥ परिक्षिप्तास मुद्रेणलंकेयंशतयोजना ॥ नेयंधर्षयितुंशक्यासेंद्रैरपिसुरासुरैः ॥ १९ ॥ नदेवेषुनयक्षेषुनगंधर्वेषुनर्षिषु ॥ अहंपश्या मिलोकेषुयोमेवीर्यसमोभवेत् ॥ २० ॥ राज्यभ्रष्टेनदीनेनतापसेनपदातिना ॥ किंकरिष्यसिरामेणमानुषेणाल्पते जसा ॥ २१ ॥ भजस्वसीतेमामेवभर्ताहंसदृशस्तव ॥ यौवनंत्वध्रुवंभीरुरमस्वेहमयासह ॥ २२ ॥

संतापित हुएहैं सो तुम प्रसन्न होकर हमको भजो ॥ १८ ॥ चारों ओर समुद्रसे घिरी हुई शतयोजनके विस्तार वाली इस लंकापुरीको इन्द्रके सहित समस्त देव दानवभी किसी प्रकारका भय नहीं करासकें ॥ १९ ॥ क्या देवता, क्या गन्धर्व, क्या यक्ष, क्या ऋषि इन लोगोंमें हम किसी कोभी ऐसा नहीं देखते जो वीरतामें हमारी समानहों ॥ २० ॥ तौ फिर भला; दीन, तपस्वी राज्य भ्रष्ट, पादचारी, अल्प प्राण मनुष्य रामको लेकर तुम क्या करोगी ॥ २१ ॥ इस कारणसे हे सीते! हमही तुम्हारे योग्य पतिहैं; तुम हमारीही भजनाकरो; हेभीरु! यौवन सदा नहीं रहता,

उनके सब गहने और माला इत्यादि मैली होगई और अनाथकी नांई विलाप करनें लगीं तब राक्षस पति रावण उनके सन्मुख दौडा ॥ ६ ॥ और जटायुको पकडे हुए सीताजीको देखकर बारम्बार, इसे छोडो, इसे छोडो, ऐसा रावणनें कहा, जिस प्रकार लता वृक्षोंको घेर लेतीहै, ऐसे जटायुको पकडे जो सीताजी बैठीथीं उनके समीप ऐसी दशामें रावण आया ॥ ७ ॥ इस समय सीताजी रामचंद्रजीके विरहके मारे वनमें वारं वार, राम ! राम ! करके बडे शब्दसे रुदन करती हुई चिल्लानें लगीं तब साक्षात् यमराजकी समान रावणनें अपना नाश करनेंके लिये उनके केश ग्रहण किये ॥ ८ ॥ जब जानकीजीका इस प्रकारसे अपमान हुआ तब सचराचर समस्त जगत् मर्यादा शून्य होकर घोर निबिड़

तांक्लिष्टमाल्याभरणांविलपंतीमनाथवत् ॥ अभ्यधावतवैदेहींरावणोराक्षसाधिपः ॥ ६ ॥ तांलतामिववेष्टंतीमालिंगंतींमहाद्रुमान् ॥ मुंचमुंचेतिबहुशःप्रापतांराक्षसाधिपः ॥ ७ ॥ क्रोशंतींरामरामेतिरामेणरहितांवने ॥ जीवितांतायकेशेषुजग्राहांतकसंनिभः ॥ ८ ॥ प्रधर्षितायांवैदेह्यांबभूवसचराचरम् ॥ जगत्सर्वममर्यादंतमसांधेनसंवृतम् ॥ ९ ॥ नवातिमारुतस्तत्रनिष्प्रभोऽभूद्दिवाकरः ॥ दृष्ट्वासीतांपरामृष्टांदेवोदिव्येनचक्षुषा ॥ १० ॥ कृतंकार्यमितिश्रीमान्व्याजहारपितामहः ॥ प्रहृष्टाव्यथिताश्चासन्सर्वेतेपरमर्षयः ॥ ११ ॥ दृष्ट्वासीतांपरामृष्टांदंडकारण्यवासिनः ॥ रावणस्यविनाशंचप्राप्तंबुद्ध्वायदृच्छया ॥ १२ ॥

अंधकारसे छागया ॥ ९ ॥ फिर पवन वहां नहीं चले, प्रभाकर प्रभा शून्य होगये उसी समय दिव्य दृष्टिसे यह केशाकर्षण घटना देखकर ब्रह्माजीनें जानाकि रावण सीताको हर लेगया ❋ ॥ १० ॥ और श्रीमान् देव पितामह ब्रह्माजीनें सब देवताओंसे यह बात कही कि अब कार्य सिद्ध हुआ क्योंकि अब अवश्यही श्रीरामचंद्रजी रावणको मार डालेंगे यह सुनकर कि अब देवताओंको कष्ट न होगा इससे तो सब देवगण हर्षित हुए व जानकीजीका हरण सुन परम दुःखित हुये ॥ ११ ॥ जानकीजीको हरा हुआ देखकर दंडकारण्य वासियोंनेंभी जान लिया

❋रागनी वरुनाताल ॥ रोदन कर शिर धुनत जानकी ॥ हा रघुपति कित गये छोड मुहि रक्षाकीजे आन आनकी ॥कपट भेष धरि दुष्ट हरन कियो सुधि न रही मोहि रेख आनकी॥हा लक्ष्मण तव वचन न माने अपने हित मै आप हानकी॥मम रोदन धुनि सुनत न कोऊ क्या इच्छाहै कृपानिधानकी ॥ नारद काऊ आय नियरानो मति बौरानी यातुधानकी ॥

साथ संग्राम करके उसको हम जीत लायेहैं,वह अति विशाल रमणीयहै उसका वे ... समानहै ॥ ३० ॥ सो हे सीते! उस विमानपर चढ
कर तुम हमारे साथ विहार सुखसहित करो। हे वरानने! पद्मकी समान परम सुन्दर और सुविमल कान्ति सम्पन्न तुम्हारा मुख ॥ ३१ ॥ शोकके
मारे मलीन होनेंसे अब शोभित नहीं होता, इसकारण तुम शोक नकरो जब रावणनें इस प्रकार से कहा तब पतिव्रता शिरोमणि सीताजी वस्त्रको
आडमें ॥ ३२ ॥ अपना चंद्रसमान वदन मंडल ढक कर रोनें लगीं चिन्तासे उनकादेह पीला पडगया वह बहुतही अस्वस्थकी समान ध्यानमें मग्न
होगई ॥ ३३ ॥ इसको देखकर वीर्यवान निशाचर रावण उनसे बोला कि हे वैदेही! धर्मलोप होजानेकी शंकासे लज्जित मतहोवो ॥ ३४ ॥ देखो

तत्रसीतेमयासार्धंविहरस्वयथासुखम् ॥ वदनंपद्मसंकाशंविमलंचारुदर्शनम् ॥ ३१ ॥ शोकार्तंतुवरारोहेनभ्राजतिव
रानने ॥ एवंवदतितस्मिन्सावस्त्रांतेनवरांगना ॥ ३२ ॥ पिधायेंदुनिभंसीतामंदमश्रूण्यवर्तयत् ॥ ध्यायंतींतामिवा
स्वस्थांसीतांचिंताहतप्रभाम् ॥ ३३ ॥ उवाचवचनंवीरोरावणोरजनीचरः ॥ अलंव्रीडेनवैदेहिधर्मलोपकृतेनते ॥ ३४ ॥
आर्षोऽयंदेविनिष्पंदोयस्त्वामभिभविष्यति ॥ एतौपादौमयास्निग्धौशिरोभिःपरिपीडितौ ॥ ३५ ॥ प्रसादंकुरुमेक्षि
प्रंवश्योदासोऽहमस्मिते ॥ इमाःशून्यमयावाचःशुष्यमाणेनभाषिताः ॥ ३६ ॥ नचापिरावणःकांचिन्मूर्ध्नास्त्रींप्रणमे
त ॥ एवमुक्त्वादशग्रीवोमैथिलींजनकात्मजाम् ॥ कृतांतवशमापन्नोममेयमितिमन्यते ॥ ३७ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रा०
वा०आ०आर०पंचपंचाशःसर्गः ॥ ५५ ॥ सातथोक्तातुवैदेहीनिर्भयाशोककर्शिता ॥ तृणमंतरतःकृत्वारावणंप्रत्यभाषत ॥ १ ॥

तुम्हारे प्रति हम ऋषि गणोंकेही उपदेश कियेहुए विधिक्रमसे प्रणय बन्धन बांधने को तैयार हुएहैं यह लो हम अपनें दशों शिरोंसे तुम्हारे मनोहर
चरणोंको दबातेहैं ॥ ३५ ॥ हमारे प्रति प्रसन्नता प्रगटकरने में और विलंब मतकरो हम तुम्हारे वशवर्ती दास होजायँगे, हमनें कामके वशहोकर
यह जो वार्ताकही देखो इसकाकोई अंश निरर्थक नहीं जाय ॥ ३६ ॥ रावणनें कभी इसप्रकारसे किसी स्त्रीके चरणोंमें प्रणाम नहीं कियाथा न
शिरधराथा। दशानन मृत्युके वशहोकर जनक नंदिनी मैथिली जीसे इसप्र कार कहकर मनमें समझा कि यह हमारीही होगई ॥ ३७ ॥ इ० श्रीम०
वा० आ० आरण्य० पंचपंचाशः सर्गः ॥ ५५ ॥ शोकसे तपीहुई जानकीजी यह वचन सुन कुछ भय न करके मनहीमन रावणको

करके युक्त सुवर्णके समान आकार कान्तिवाला ॥ २१ ॥ रावण करके कंपायमान हुआ तिन श्रीजानकीजीका मुख मंडल आकाशमें दिनके चंद्रमाकी समान विना श्री रामचन्द्रजीके शोभाको प्राप्त नहीं हुआ ॥ २२ ॥ सुवर्णकी बनी हुई क्षुद्रघंटिका जिस प्रकार नील वर्णके हाथीके आश्रयमें शोभा पातीहै, स्वर्ण वर्ण जानकीजीभी वैसेही रावणके साथ शोभाको प्राप्त हुई ॥ २३ ॥ सीताजी पद्म केशरवर्ण और सुवर्णकी समान कान्तियुक्तथीं और उनके सब गहने तपे हुये सुवर्णके बनेथे। इस कारण रावणके सामनें वह ऐसी शोभा धारण करती हुई, जिस प्रकार बिजली मेघमें विराजमान रहतीहै ॥ २४ ॥ उस कालमें सीताजीके गहनोंके शब्दसे दशानन शब्द करते हुए सुविमल नील वर्ण मेघकी समा

राक्षसेंद्रसमाधूतंतस्यास्तद्वदनंशुभम् ॥ शुशुभेनविनारामंदिवाचंद्रइवोदितः ॥ २२ ॥ साहेमवर्णानीलांगंमैथिली राक्षसाधिपम् ॥ शुशुभेकांचनीकांचीनीलंगजमिवाश्रिता ॥ २३ ॥ सापद्मपीताहेमाभारावणंजनकात्मजा ॥ विद्यु द्घनमिवाविश्यशुशुभेतप्तभूषणा ॥ २४ ॥ तस्याभूषणघोषेणवैदेह्याराक्षसेश्वरः ॥ बभूवविमलोनीलःसघोषइवतोयदः ॥ २५ ॥ उत्तमांगच्युतातस्याःपुष्पवृष्टिःसमंततः ॥ सीतायाह्रियमाणायाःपपातधरणीतले ॥ २६ ॥ सातुरावणवे गेनपुष्पवृष्टिःसमंततः ॥ समाधूतादशग्रीवंपुनरेवाभ्यवर्तत ॥ २७ ॥ अभ्यवर्ततपुष्पाणांधारावैश्रवणानुजम् ॥ न क्षत्रमालाविमलामेरुंनगमिवोत्तमम् ॥ २८ ॥ चरणान्नूपुरंभ्रष्टंवैदेह्यारत्नभूषितम्॥विद्युन्मंडलसंकाशंपपातधरणीतले ॥ २९ ॥ तरुप्रवालरक्तासानीलांगंराक्षसेश्वरम् ॥ प्रशोभयतवैदेहीगजंकक्ष्येवकांचनी ॥ ३० ॥

नता धारण करता हुआ॥२५॥जब सीताजीको रावण हरकर ले चला तो उनके मस्तकसे फूलोंकी झडीसी लगकर पृथ्वीपर गिरनें लगी॥२६॥परन्तु वही पुष्पवृष्टि रावणके गमन वेगसे उत्पन्न हुए पवन द्वारा कंपाई जाकर फिर कुबेरके छोटे भाई रावणकेही चारों ओर गिरनें लगी ॥२७॥ वह सीताजीके शिरके फूलोंकी झडी रावणके चारों ओर सुमेरु पर्वतके चारों ओर नक्षत्रोंकी पांतिकी समान शोभित होतीथी ॥२८॥उसी समय जानकीजीके चरणसे रत्न भूषित नूपुर खसकर बिजलीके मंडलकी समान पृथ्वीपर गिर पडा॥२९॥श्रीजानकीजी नवतरु पल्लवकी समान रक्त वर्ण वालीथीं, उनके

तौ हे राक्षस! तू तत्क्षणही भस्म हो जायगा जिस प्रकार महादेवजीकी नेत्राग्निसे कामदेव भस्म हो गयाथा ॥ १० ॥ जो चंद्रमाकोभी आकाशसे पृथ्वीपर गिरा सकते या नाश कर सकतेहैं वह सीताको भी अवश्यही यहां आकर इस स्थानसे छुडावेंगे ॥ ११ ॥ तेरी उमर बीतचुकी, श्री जाती रही, वीर्य समाप्त होगया, इन्द्रियांभी अपने २ कार्यसे शिथिल होगई, इस्से विदित होताहै कि तुम्हारे लिये लंकानगरी निश्चयही विधवा हो जायगी ॥१२॥ तुमनें जो पाप कार्य कियाहै इसका परिणाम कभी सुखकर नहीं होगा, क्योंकि तूनें विना विचारे बलात्कारकर पतिकी सेवासे हमको अलग कियाहै ॥ १३ ॥ हमारे वह महाद्युतिमान स्वामी अपने भ्राता लक्ष्मणके सहित केवल अपनें वीर्यका आश्रय लेकर निडरहो निर्जन वनमें वास

यश्चंद्रंनभसोभूमौपातयेन्नाशयेतवा ॥ सागरंशोषयेद्वापिससीतांमोचयेदिह ॥ ११ ॥ गतासुस्त्वंगतश्रीकोगतसत्त्वोगतेंद्रियः ॥ लंकावैधव्यसंयुक्तात्वत्कृतेनभविष्यति ॥ १२ ॥ नतेपापमिदंकर्मसुखोदर्कंभविष्यति ॥ याहंनीताविनाभावंपतिपार्श्वात्त्वयाबलात् ॥ १३ ॥ सहिदेवरसंयुक्तोममभर्तामहाद्युतिः ॥ निर्भयोवीर्यमाश्रित्यशून्येवसतिदंडके ॥ १४ ॥ सतेवीर्यंबलंदर्पमुत्सेकंचयथाविधम् ॥ व्यपनेष्यतिगात्रेभ्यःशरवर्षेणसंयुगे ॥ १५ ॥ यदाविनाशोभूतानांदृश्यतेकालचोदितः ॥ तदाकार्येप्रमाद्यंतिनराःकालवशंगताः ॥१६॥ मांप्रधृष्यसतेकालःप्राप्तोऽयंराक्षसाधम॥ आत्मनोराक्षसानांचवधायांतःपुरस्यच ॥१७॥ नशक्यायज्ञमध्यस्थावेदिःस्रुग्भांडमंडिता॥ द्विजातिमंत्रसंपूताचंडालेनावमर्दितुम्॥१८॥ तथाहंधर्मनित्यस्यधर्मपत्नीदृढव्रता॥ त्वयास्प्रष्टुंनशक्याहंराक्षसाधमपापिना॥ १९ ॥

करतेहैं ॥ १४ ॥ वह संग्राम स्थलमें वाणोंकी वर्षा करकै तेरी देहसे, बल वीर्य, घमंड, व ऐसा अहंकार अलग करदेंगे ॥ १५ ॥ कालके वश होकर जबकि प्राणियोंका नाश निकट आजाताहै तब वह कालके वशहोकर कार्य अकार्यका विचार करनेंमें ज्ञान रहित हो जातेहैं ॥ १६ ॥ रे राक्षसाधम! जब कि तैंनें हमारा अपमान कियाहै, तब स्वयं तेरा, समस्त राक्षसोंका और सर्व रनवासोंके नाश होनेंका काल आ पहुँचाहै ॥ १७ ॥ जिस प्रकार ब्राह्मणों करकै मंत्रसे पढी हुई यज्ञको सामग्रीसे विभूषित यज्ञ वेदी चंडालके छूनें योग्य नहीं होती वैसेही हमभी तेरे स्पर्श करनेंके योग्य नहींहैं ॥ १८ ॥ रेराक्षसाधम ! रेपापात्मा ! हम नित्य धर्मपरायण श्रीरामचन्द्रजीकी धर्मपत्नीहैं, मन वचन कायसे स्वामीहीके प्रति

जब कि रावण सीताजी रामभार्याको हरण करके लिये जाताहै, तब फिर सत्य, दया, धर्म, सरलता और सुशीलता सबही संसारसे लोप होगई यदि ऐसा न होता तो रावण कैसे जानकीजीको हरता? ॥ ३९ ॥ सबही प्राणी झुन्डके झुन्ड मिलकर यह कह विलाप करनें लगे, मृगछौना गण त्रासित होकर वारंवार शोभा रहित नेत्रोंसे दीनमुखहो रोनें लगे ॥ ४० ॥नेत्र खोल२ वार२ यह देख वनदेवताओंका शरीर मारे भयके थरथरा कर कांपने लगा॥४१॥"राम-राम" लक्ष्मण-लक्ष्मण" कह२कर जोरसे रोती व दुःखसे पुकारती जानकीजीको मधुर स्वरसे बोलती हुई ॥ ४२ ॥ और वार२ उनको पृथ्वीपर निहारती हुई देख, जिनका तिलक विसना हुआ और अति व्याकुल हो रहाहै चित्त जिनका ऐसी जानकीजीको अपनासर्वनाश

नास्तिधर्मःकुतःसत्यंनार्जवंनानृशंसता ॥ यत्ररामस्यवैदेहीसीतांहरतिरावणः ॥ ३९ ॥ इतिभूतानिसर्वाणिगणशः पर्यदेवयन् ॥ वित्रस्तकादीनमुखारुरुदुर्मृगपोतकाः ॥ ४० ॥ उद्वीक्ष्योद्वीक्ष्यनयनैर्भयादिवविलक्षणैः ॥ सुप्रवेपितगात्राश्चबभूवुर्वनदेवताः॥४१॥विक्रोशंतींदृढंसीतांदृष्ट्वादुःखंतथागताम् ॥ तांतुलक्ष्मणरामेतिक्रोशंतींमधुरस्वराम् ॥४२॥ अवेक्षमाणांबहुशोवैदेहींधरणीतलम् ॥ सतामाकुलकेशांतांविप्रमृष्टविशेषकाम् ॥ जहारात्मविनाशायदशग्रीवोमनस्विनीम् ॥ ४३ ॥ ततस्तुसाचारुदतीशुचिस्मिताविनाकृताबंधुजनेनमैथिली ॥ अपश्यतीराघवलक्ष्मणावुभौविवर्णवक्त्राभयभारपीडिता ॥ ४४ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेद्विपंचाशः सर्गः ॥ ५२ ॥ खमुत्पतंतंतंदृष्ट्वामैथिलीजनकात्मजा ॥ दुःखितापरमोद्विग्नाभयेमहतिवर्तिनी ॥ १ ॥ रोषरोदनताम्राक्षीभीमाक्षंराक्षसाधिपम् ॥ रुदतीकरुणंसीताह्रियमाणातमब्रवीत् ॥ २ ॥

करानेके कारण रावण हर कर लेगया॥४३॥अनन्तर मनोहर दन्त वाली मन्द२हास्य युक्त, जानकीजी राम और लक्ष्मण दोनोंको नहींदेखनेपर बन्धु जनके विरहसे मलीन मुखी और भयसे बहुतही पीडित हुई॥४४॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे द्विपंचाशः सर्गः ॥५२॥ रावणको आकाशमें उडता हुआ देखकर जनककुमारी, सुकुमारी सीताजी महाभीत होकर घबडाई और बहुतही दुःखित हुई ॥ १ ॥ क्रोध करनेंके कारण और रोते२ उनके दोनों नेत्र लाल हो आये, वह आरत स्वरसे रोकर उस कालमें भयंकर नेत्र कियेहुए राक्षसपतिसे कहने लगीं॥ २॥

जो आज्ञा कहकर रावणके कहनेंके अनुसार सीताजीको घेर लेतीहुईं॥२८॥यह देखकर रावण मानों पृथ्वीको कंपित और विदीर्ण करता हुआ कई एक परग चलकर, उन घोर दर्शनवाली राक्षसियोंको विशेष रूपसे फिर आज्ञा करता हुआ ॥ २९ ॥ तुम जानकीको अशोक वनमें लेकर चली जाओ और सब मिलकर सदा इनको घेरे रहकर गूढ भावसे इनकी रक्षाकरो ॥३०॥ वनकी हथिनीको जिस प्रकार वशमें किया जाताहै, तुम सबभी उसीतरहसे घोर तर्जन करके अथवा समझा बुझाकर इनको हमारे वशमें लाओ ॥ ३१ ॥ जब राक्षसेन्द्र रावणनें इस भांति आज्ञाकी तब राक्षसियें

सताःप्रोवाचराजासौरावणोघोरदर्शनाः ॥ प्रचल्यचरणोत्कर्षैर्दारयन्निवमेदिनीम् ॥२९॥ अशोकवनिकामध्ये मैथिलीनीयतामिति ॥ तत्रेयंरक्ष्यतांगूढंयुष्माभिःपरिवारिता ॥३०॥ तत्रैनांतर्जनैर्घोरैःपुनःसांत्वैश्चमैथिलीम् ॥ आनयध्वंवशंसर्वावन्यांगजवधूमिव॥ ३१ ॥ इतिप्रतिसमादिष्टाराक्षस्योरावणेनताः॥अशोकवनिकांजग्मुर्मैथिलींपरि गृह्यतु॥ ३२ ॥ सर्वकामफलैर्वृक्षैर्नानापुष्पफलैर्वृताम् ॥ सर्वकालमदैश्चापिद्विजैःसमुपसेविताम् ॥ ३३ ॥ सातुशोकपरी तांगीमैथिलीजनकात्मजा ॥ राक्षसीवशमापन्नाव्याघ्रीणांहरिणीयथा ॥ ३४ ॥ शोकेनमहतात्रस्तामैथिलीजनका त्मजा ॥ नशर्मलभतेभीरुःपाशबद्धामृगीयथा ॥ ३५ ॥ नविंदतेतत्रतुशर्ममैथिलीविरूपनेत्राभिरतीवतर्जिता ॥ पतिं स्मरंतीदयितंचदेवरंविचेतनाभूद्भयशोकपीडिता ॥ ३६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकां डेषट्पंचाशःसर्गः ॥ ५६ ॥ छ ॥

सीताजीको घेरकर अशोकवनमें ले गईं ॥ ३२ ॥ अनेक जातिके मन वांछित पुष्प फल सम्पन्न वृक्ष समूह और सब काल मतवालेही विविध भांतिके विहंगम इस अशोक वनको शोभाको बढातेथे ॥ ३३ ॥ शोकके वशमें पड़ी हुई जनक दुलारी मैथिलीजी अशोकवनके मध्य राक्षसोंके वशमें पड़कर रहीं, जिस प्रकार व्याघ्रनियोंमें हरिणी रहतीहै ॥ ३४ ॥ अशोक वनमें फांसीसे बँधी डरपोक मृगीके समान अतिशय शोकमें सीताजी रहीं, वह वहां पर किसी भांतिका सुख न प्राप्त कर सकीं ॥ ३५ ॥ विरूप नेत्रवाली राक्षसियों करके घुडकी डरपाई व धमकाई जाकर; पर

ही तू सेना सहित एक मुहूर्तभरभी प्राण धारण नहीं कर सकेगा॥११॥पक्षी जिस प्रकार वनमें लगी हुई दावानलको नहीं छू सकता, वैसेही उन राजकु
मारोंके बाणोंका स्पर्श सहन करनेंकी किसी भांति तुझमें सामर्थ्य नहींहै ॥ १२ ॥ इस कारण हेरावण! भली भांति अपना हिताहित विचार
करकै सीधी तरहसे हमको छोड़दे । नहीं तौ हमारे स्वामी अपने भ्राताके सहित हमारे इस पकड़े जानें पर महा क्रोधितहो ॥ १३ ॥ यदि तू हम
को न छोड देगा तौ तेरा विनाश करनेंके लिये यत्न करेंगे, तू जिस आशयसे हमको हरण करकै लिये जाताहै ॥ १४ ॥ सो हे राक्षस नीच! वह तेरा
आशय कभी सिद्ध नहीं होगा हम उन देव समान अपनें स्वामीको न देखनें पर ॥ १५ ॥ शत्रुके वशमें रहकर बहुत कालतक प्राण धारण करनें

नत्वंतयोःशरस्पर्शंसोढुंशक्तःकथंचन ॥ वनेप्रज्वलितस्येवस्पर्शमग्नेर्विहंगमः ॥ १२ ॥ साधुकृत्वात्मनःपथ्यंसाधुमां
मुंचरावण ॥ मत्प्रधर्षणसंक्रुद्धोभ्रात्रासहपतिर्मम ॥ १३ ॥ विधास्यतिविनाशायत्वंमांयादिनमुंचासि ॥ येनत्वंव्यव
सायेनबलान्मांहर्तुमिच्छसि ॥ १४ ॥ व्यवसायस्तुतेनीचभविष्यतिनिरर्थकः ॥ नह्यहंतमपश्यंतीभर्तारंविबुधो
पमम् ॥ १५ ॥ उत्सहेशत्रुवशगाप्राणान्धारयितुंचिरम्॥ ननूनंचात्मनःश्रेयःपथ्यंवासमवेक्षसे ॥ १६ ॥ मृत्युका
लेयथामर्त्योविपरीतानिसेवते ॥ मुमूर्षूणांतुसर्वेषांयत्पथ्यंतन्नरोचते ॥ १७ ॥ पश्यामीहहिकंठेत्वांकालपाशावपा
शितम् ॥ यथाचास्मिन्भयस्थानेनबिभेषिनिशाचर॥१८॥ व्यक्तंहिरण्मयांस्त्वंहिसंपश्यसिमहीरुहान् ॥ नदींवैतरणीं
घोरांरुधिरौघविवाहिनीम् ॥ १९ ॥ खड्गपत्रवनंचैवभीमंपश्यसिरावण ॥ तप्तकांचनपुष्पांचवैदूर्यप्रवरच्छदाम् ॥ २०॥

को समर्थ न होंगी, हमको समझ पड़ताहै कि तू अपना कल्याण और हित नहीं देखता ॥ १६ ॥ जिस प्रकार मृत्युके समय लोगोंकी बुद्धि विपरी
त हो जातीहै अथवा मरनेके निकट किसीको पथ्य रुचिकर नहीं होता ॥ १७ ॥ रेराक्षस! तू इस समयके कार्यमेंभी भय नहीं करता, इस कारण
हम देखतीहैं कि तेरा गला कालकी फाँसीसे बँध गयाहै ॥१८॥ और साफही समझ पड़ताहै कि तेरी मृत्यु जो निकटहै इस्से सब वृक्ष तुझे सुवर्णके
दृष्टि आते होंगे,कारणकि जिनकी मृत्यु निकट होतीहै, उनको वृक्ष सुवर्णकेही दीखतेहैं, और रक्तवाहिनी भयंकर वैतरणी नदी ॥ १९॥ और महा
भीषण खड्ग रूप पत्र युक्त वृक्षोंका वन तू अति शीघ्र देखेगा।और उत्कृष्ट वैदूर्यमणिमय पत्ते लगे हुए तपाये हुए सुवर्णके बने फूल लगे हुए॥२० ॥

कर परम प्रसन्न हुई ॥ ९ ॥ देवताओंके कार्य सिद्धिके निमित्त राक्षसोंको मोहित करती हुई इसी अवसरमें इन्द्राणीके पति इन्द्रजी ॥ १० ॥ उस
स्थानमें प्राप्तहो वनमें स्थित हुई जानकी से बोले कि हे भद्रे! मैं देवताओंका राजा इन्द्रहूं. हे सुन्दर हास्य युक्त जानकी! ॥ ११ ॥ मैं तुम्हारे
और रामचंद्रके कार्य सिद्ध करनेंके निमित्त सहाय करनेंको आयाहूं हे जनककुमारी! तुम शोच मत करो ॥ १२ ॥ मेरी कृपासे सैना सहित
रामचंद्रजी सागर तर जांयगे, हे कल्याणी! मेरीही मायाने इन राक्षसियों को मोहित कियाहै॥१३॥ इसी कारण हे जानकी! मैं यह हवि अन्न तुम्हें

देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थंप्रामोहयतराक्षसान् ॥ एतस्मिन्नंतरेदेवःसहस्राक्षःशचीपतिः ॥ १० ॥ आससादवनस्थांतांवचनंचे
दमब्रवीत् ॥ देवराजोस्मिभद्रंतेइहचास्मिशुचिस्मिते ॥ ११ ॥ अहंत्वंकार्यसिद्ध्यर्थंराघवस्यमहात्मनः ॥ साहाय्यं
कल्पयिष्यामिमाशुचोजनकात्मजे ॥ १२ ॥ मत्प्रसादात्समुद्रंसतरिष्यतिबलैःसह ॥ मयैवेहचराक्षस्योमाययामो
हिताःशुभे ॥ १३ ॥ तस्मादन्नमिदंसीतेहविष्यान्नमहंस्वयम् ॥ सत्वांसंगृह्यवैदेहिआगतःसहनिद्रया ॥ १४ ॥ एत
दत्स्यसिमद्धस्तान्नत्वांबाधिष्यतेशुभे ॥ क्षुधातृषाचरंभोरुवर्षाणामयुतैरपि ॥ १५ ॥ एवमुक्तातुदेवेंद्रमुवाचपरिशं
किता ॥ कथंजानामिदेवेंद्रंत्वामिहस्थंशचीपतिम् ॥ १६ ॥ देवलिंगानिदृष्टानिरामलक्ष्मणसन्निधौ ॥ तानिदर्शय
देवेंद्रयदित्वंदेवराट्स्वयम् ॥ १७ ॥ सीतायावचनंश्रुत्वातथाचक्रेशचीपतिः ॥ पृथिवींनास्पृशत्पद्भ्यामनिमेषे
क्षणानिच ॥ १८ ॥

देनेको निद्राके साथ आयाहूं सो हे जानकी! तुम इसे लो ॥ १४ ॥ हे जानकी! मेरे हाथसे यें हवि भक्षण करनेंसे तुमको क्षुधा दश हजार वर्ष तक
भी न व्यापेगी ॥ १५ ॥ जब इन्द्रने ऐसा कहा तौ डरती हुई जानकी बोलीं कि मैं यह कैसे जानूं कि तुम शचीके पति इन्द्रहो ॥ १६ ॥
जो चिह्न राम लक्ष्मणके साथ मैंने आपके देखेथे यदि तुम देवता ओंके राजा इन्द्र हो तौ उन चिह्नोंको दिखाओ ॥ १७ ॥ इन्द्रजी जान
कीजी के वचन सुन पैरोंसे पृथ्वी न स्पर्श करते हुए और नेत्रोंको पलक लगना बंदहोगया देवताओंकी यही पहचानहै कि पैरोंसे

न पाकर चली जानें लगीं। और जाते २ उन्होंनें पर्वतके शृंग पर बैठे हुए प्रधान पांच वंदरोंको देखा॥ १ ॥ तब उन बडे २ नेत्र वाली
जानकीजीनें सुवर्णके रंगका अपना एक वस्त्र व कुछ गहनें उतार उन वन्दरोंके बीचमें ॥ २ ॥ इस विचारसे डाल दिये कि यह कदाचित्
रामचंद्रजीसे यह सब वृत्तान्त कहभी सकतेहैं। वह जानकीजी का छोडा हुआ वस्त्र व भूषण वन्दरोंके बीचमें गिरा ॥ ३ ॥ जानकी जीके वस्त्र और
भूषण डालनें का यह कर्म घबडाहटके मारे रावणनें नहीं जाना, उस कालमें सीताजी बहुतही रुदन कर रही थीं उनको अनिमेष लोचनसे ॥४॥
पीली आंखों वाले वानर श्रेष्ठोंनें सीताजीको अपनें नेत्रोंसे वारंवार देखलिया व रावण पम्पापुरीको नांघ लंकापुरीकी ओर ॥ ५ ॥ रोती हुई

तेषांमध्येविशालाक्षीकौशेयंकनकप्रभम् ॥ उत्तरीयंवरारोहाशुभान्याभरणानिच ॥ २ ॥ मुमोचयदिरामायशंसेयुरि
तिभामिनी ॥ वस्त्रमुत्सृज्यतन्मध्येनिक्षिप्तंसहभूषणम् ॥ ३ ॥ संभ्रमात्तुदशग्रीवस्तत्कर्मचनबुद्धवान् ॥ पिंगाक्षास्तांवि
शालाक्षींनेत्रैरनिमिषैरिव ॥ ४ ॥ विक्रोशंतींतदासीतांददृशुर्वानरोत्तमाः ॥ सचपंपामतिक्रम्यलंकामभिमुखःपुरी
म् ॥ ५ ॥ जगाममैथिलींगृह्यरुदतींराक्षसेश्वरः ॥ तांजहारसुसंहृष्टोरावणोमृत्युमात्मनः ॥ ६ ॥ उत्संगेनैवभुजगीं
तीक्ष्णदंष्ट्रांमहाविषाम् ॥ वनानिसरितःशैलान्सरांसिचविहायसा ॥ ७ ॥ सक्षिप्रंसमतीयायशरश्चापादिवच्युतः ॥ ति
मिनक्रनिकेतंतुवरुणालयमक्षयम् ॥ ८ ॥ सरितांशरणंगत्वासमतीयायसागरम् ॥ संभ्रमात्परिवृत्तोर्मीरुद्धमीनमहो
रगः ॥ ९ ॥ वैदेह्यांह्रियमाणायांबभूववरुणालयः ॥ अंतरिक्षागतावाचःसमृजुश्चारणास्तथा ॥ १० ॥

सीताजीको लेकर चला गया, अपनी मूर्तिमान मृत्युस्वरूप सीताजीको हरण करके रावणके हर्षकी सीमा न रही ॥ ६ ॥ वह तेज डाढ वाली और
तेज विष वाली सर्पिणीकी समान सीताजीको अंकमें भरकर आकाश मार्गमें होकर बहुतसे पर्वत वन नदियां व तडागादि देखता हुआ ॥ ७ ॥
बडी शीघ्रताके साथ रावण मत्स्य कच्छप मगर नाके इत्यादिकों के स्थान समुद्रको उतर गया, जिसप्रकार कि कमानसे छूटा हुआ बाण
अति शीघ्रतासे सीधा चलताहै ॥ ८ ॥ जब रावणनें जानकीजीको हरण किया, तब जगमाताका हरण होनेके कारण क्षुभित होकर वरुणालय
समुद्र तरंगविहीन होगया, और उसमेंके मीन और बडे २ सब सर्प व्याकुल होगये ॥ ९ ॥ इस प्रकार जानकीजीके हरण करनेंके समय यह

उस ओर श्रीरामचंद्रजी मृग रूपसे विचरण करनें वाले काम रूपी निशाचर मारीचको संहार करकै शीघ्रही आश्रमके मार्गको लौटे ॥ १ ॥
और श्रीजानकीजीको देखनेंके लिये अति वेगसे चले। इसी समयमें एक शियार उनकी पीठके पीछे महा कठोर शब्द करनेलगा ॥ २ ॥
श्रीरामचंद्रजी शियारके इस रोमाञ्चकर दारुण बोलको सुन अति भयभीतहो मनही मनमें शंका करनें लगे ॥ ३ ॥ जिस प्रकारका शब्द यह
शियार कर रहाहै, इससे तौ ऐसा जान पडताहै, कि कोई अशुभ होगा। इस समय राक्षसोंनें जानकीको भक्षण न कर लियाहो, और सीताजी
कुशलसेहों तभी मंगलहै ॥ ४ ॥ मृग रूपी मारीचनें जान बूझकर हमारे बोलकी समान जो चिल्लाहटकीहै यदि लक्ष्मणनें उस बोलको सुना

राक्षसंमृगरूपेणचरंतंकामरूपिणम् ॥ निहत्यरामोमारीचंतूर्णंपथिन्यवर्तत ॥ १ ॥ तस्यसंत्वरमाणस्यद्रष्टुकामस्यमै
थिलीम् ॥ क्रूरस्वनोथगोमायुर्विननादास्यपृष्ठतः ॥२॥ सतस्यस्वरमाज्ञायदारुणंरोमहर्षणम् ॥ शंकयामासगोमायोः
स्वरेणपरिशंकितः ॥ ३ ॥अशुभंबतमन्येहंगोमायुर्वाशितेयथा ॥ स्वस्तिस्यादपिवैदेह्याराक्षसैर्भक्षणंविना ॥ ४ ॥ मारी
चेनतुविज्ञायस्वरमालक्ष्यमामकम् ॥ विक्रुष्टंमृगरूपेणलक्ष्मणःशृणुयाद्यदि ॥ ५ ॥ ससौमित्रिःस्वरंश्रुत्वातांचहि
त्वाथमैथलीम् ॥ तयैवप्रहितःक्षिप्रंमत्सकाशमिहैष्यति ॥ ६ ॥ राक्षसैःसहितैर्नूनंसीतायाईप्सितोवधः ॥ कांचनश्चमृ
गोभूत्वाव्यपनीयाश्रमात्तुमाम् ॥ ७ ॥ दूरंनीत्वाथमारीचोराक्षसोभूच्छराहतः ॥ हालक्ष्मणहतोस्मीतियद्वाक्यं
व्याजहारह ॥ ८ ॥ अपिस्वस्तिभवेदाभ्यांरहिताभ्यांमयावने ॥ जनस्थाननिमित्तंहिकृतवैरोस्मिराक्षसैः ॥ ९ ॥

हो ॥ ५ ॥ वस लक्ष्मणजी उस स्वरके सुन्तेही तुरत सीताजी करके भेजे जाकर सीताको छोडकर वह शीघ्रही हमारे निकट आवेंगे ॥ ६ ॥ निश्च
यही राक्षसोंनें मिलकर जानकीके वध करनेंकी अभिलाषकीहै और इसी कारणसे राक्षस मारीचने सुवर्ण मृग रूप धारण करकै हमको आश्रमसे
वहुत दूर किया ॥ ७ ॥ और हमको दूर लाकर फिर हमारे वाणसे घायल होकर लक्ष्मणकोभी यहां लानेंके लिये, हाय लक्ष्मण ! हम मारे गये !
यह कहकर उस राक्षसनें प्राण छोडे ॥ ८ ॥ इस शब्दको सुन लक्ष्मणभी तौ चलेही आये होंगे फिर जव वनमें आश्रम पर हम दोनों भाई नरहें तौ

नें इधर उधर देखा तो आगेही मांसके खानेंवाले आठ राक्षस बैठेथे॥ १८॥ उन राक्षसों को देखकर ब्रह्माजीके वरदानसे मोहित हुआ रावण उन राक्षसोंके बल वीर्यकी प्रशंसा करनें लगा ॥ १९ ॥ तुम लोग अनेक भांतिके अस्त्र शस्त्र धारण करकै शीघ्र इस स्थानसे जहां पर खर रहा करताथा उस जन शून्य जनस्थानको जाओ ॥ २० ॥ और तुम लोग वहां बल और पौरुषका आश्रय लेकर किसीकाभी डर न करकै जन शून्य जनस्थानमें जाय टिके रहो ॥ २१ ॥ वहां पर खर और दूषणके सहित हमारी जो महावीर्य वान बहुत सारी सेना रहतीथी, वह समस्त रामचंद्रके बाणसे खर दूषण सहित मारी गई ॥ २२ ॥ इस कारणसे हमको बडा क्रोध हुआहै, और इससेही हम बडे धीर्यवानका धीरज

सतान्दृष्ट्वामहावीर्योवरदानेनमोहितः ॥ उवाचतानिदंवाक्यंप्रशस्यबलवीर्यतः ॥ १९ ॥नानाप्रहरणाःक्षिप्रमितोगच्छ
तसत्वराः ॥ जनस्थानंहतस्थानंभूतपूर्वंखरालयम् ॥ २० ॥ तत्रास्यतांजनस्थानेशून्येनिहतराक्षसे ॥ पौरुषंबलमाश्रि
त्यत्रासमुत्सृज्यदूरतः ॥२१॥ बहुसैन्यंमहावीर्यंजनस्थानेनिवेशितम् ॥ सदूषणखरंयुद्धेनिहतंरामसायकैः ॥ २२ ॥ त
तःक्रोधोममापूर्वोधैर्यस्योपरिवर्धते ॥ वैरंचसुमहज्जातंरामंप्रतिसुदारुणम् ॥ २३ ॥ निर्यातयितुमिच्छामितच्चवैरं
महारिपोः ॥ नहिलप्स्याम्यहंनिद्रामहत्वासंयुगेरिपुम् ॥ २४ ॥ तंत्विदानीमहंहत्वाखरदूषणघातिनम् ॥ रामंशर्मो
पलप्स्यामिधनंलब्ध्वेवनिर्धनः ॥ २५ ॥ जनस्थानेवसद्भिस्तुभवद्भीराममाश्रिता ॥ प्रवृत्तिरुपनेतव्याकिंकरोती
तितत्त्वतः ॥ २६ ॥ अप्रमादाच्चगंतव्यंसर्वैरेवनिशाचरैः ॥ कर्तव्यश्चसदायत्नोराघवस्यवधंप्रति ॥ २७ ॥

भी लोप होगया। इस समय रामचंद्रके प्रति हमारा महा वैरभाव उपस्थित हुआहै ॥ २३ ॥ सो इस समय परम शत्रु रामके प्रति वह अपना क्रोध हम प्रगट करना चाहतेहैं, जब तक हम युद्धमें उस महा शत्रुका वध नहीं करलेते, तब तक हमको सुखकी नींद न आवेगी ॥ २४ ॥ जिस प्रकार निर्धन पुरुष धन प्राप्त करकै सुखी होताहै, वैसेही खर दूषणके मारनें वाले रामचंद्रजीका नाश करकै हमभी सुखी होंगे ॥ २५ ॥ तुम लोग जनस्थानमें रहकर राम किस समय क्या करतेहैं, सदाही इस विषयकी यथा तथा खोज खबर लेते रहो ॥ २६ ॥ तुम सब लोग बडी

का कार्य किया है ॥१७॥हे शुभदर्शन! तुमनें जो अकेला छोडा इस्से क्या सीताका भला होगा? कभी नहीं! हे वीर! जनककुमारी अब आश्रममें नहीं हैं इस बातमें हमको अब कुछ संशय नहीं होता ॥ १८ ॥ परग परग पर जिस प्रकारके अशकुन होरहे हैं इस्से यह ज्ञात होता है कि यातौ सीताको कोई वनचारी राक्षस चुराकर ले गया या मारकर खा गया होगा ॥ १९ ॥ हे लक्ष्मण! जनककुमारीजी सब प्रकारसे कुशल हैं, क्या हम ऐसा देख पावेंगे? हे पुरुषसिंह! क्या जानकी सब प्रकार कुशलसे जीती हैं ॥ २० ॥ हे महाबलवान्! यह मृग गण, शियार, और पक्षी गण सूर्यकी ओरको मुख करकै महा भयंकर शब्द कर दशोंदिशाओंको देखते हैं मानों इनमें आग लगी है। ऐसे अपशकुन देखकर किस प्रकार

सीतामिहागतःसौम्यकच्चित्स्वस्तिभवेदिति ॥ नमेऽस्तिसंशयोवीरसर्वथाजनकात्मजा ॥ १८ ॥ विनष्टाभ क्षितावापिराक्षसैर्वनचारिभिः ॥ अशुभान्येवभूयिष्ठंयथाप्रादुर्भवंतिमे ॥ १९ ॥ अपिलक्ष्मणसीतायाःसामग्र्यं प्राप्नुयामहे ॥ जीवंत्याःपुरुषव्याघ्रसुतायाजनकस्यवै ॥ २० ॥ यथावैमृगसंघाश्चगोमायुश्चैवभैरवम् ॥ वाशंते शकुनाश्चापिप्रदीप्तामभितोदिशम् ॥ अपिस्वस्तिभवेत्तस्याराजपुत्र्यामहाबल ॥ २१ ॥ इदंहिरक्षोमृगसंनिकाशंप्र लोभ्यमांदूरमनुप्रयातम् ॥ हतंकथंचिन्महताश्रमेणसराक्षसोभून्म्रियमाणएव ॥ २२ ॥ मनश्चमेदीनमिहाप्रहृष्टं चक्षुश्चसव्यंकुरुतेविकारम् ॥ असंशयंलक्ष्मणनास्तिसीताहृतामृतावापथिवर्ततेवा ॥ २३ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ० आर०सप्तपंचाशःसर्गः ॥५७॥

कह दें कि राजपुत्री सीताजी कुशलसे हैं? ॥ २१ ॥ यह मृग रूपी राक्षसभी हमको ललचाकर दूर ले आया, जिसको फिर हमनें बहुतही परीश्रम करकै किसी भांति मार पाया मरनेंके समय उसनें निज राक्षस मूर्ति धारण की ॥ २२ ॥ हमारा मनभी बहुतही दीन और घबडाया हुआ है; और वांई आंखभी फडक रही है! हे लक्ष्मण! निःसन्देह सीता आश्रममें नहीं, यातौ उनको कोई हरण करकै ले गया, या मार्गमें मरी पडी होंगी ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आर०" पं०ज्वालाप्रसाद मिश्र "कृत भाषानुवादे सप्तपंचाशःसर्गः ॥ ५७ ॥

पकर जलमें डूबी हुईहै ॥ ४ ॥ अथवा जैसे मृगी यूथसे विछुड कर कुत्तोंसे घिरीहो सीताजी शोकके वश पडनेंसे विवश और व्याकुलहो शिर झुकाये बैठीथीं ॥ ५ ॥ राक्षसपति रावण सन्मुख होकर उन शोकसे दीन हुई सीताजीकी इच्छा न रहनें पर भी बलात्कारसे उनको उस देव गृह सदृश दिव्य भवनको दिखाने लगा ॥ ६ ॥ यह घर अनेक प्रकार अटा अटारी और धवहरोंसे परिपूर्णहै, सहस्रों स्त्रियां इसमेंहैं व अनेक प्रकारके पक्षी और विविध भांतिके रत्नभी इस गृहमेंहैं ॥ ७ ॥ उसके सब थंभ हाथीदांतके बनेथे, सुवर्ण, स्फटिक, रजत, और वैदूर्य निर्मित परम चित्रित और देखनेमें मनके हरण करनें वालेथे ॥ ८ ॥ वहां पर समस्त वंदनवारें तपाये हुए सुवर्णकी बनी हुईथीं, और वहां पर निर

मृगयूथपरिभ्रष्टांमृगींश्वभिरिवावृताम् ॥ अधोगतमुखींसीतांतामभ्येत्यनिशाचरः ॥ ५ ॥ तांतुशोकवशांदीनामवशां राक्षसाधिपः॥सबलाद्दर्शयामासगृहंदेवगृहोपमम्॥६॥हर्म्यप्रासादसंबाधंस्त्रीसहस्रनिषेवितम्॥नानापक्षिगणैर्जुष्टंनाना रत्नसमन्वितम् ॥ ७ ॥ दांतकैस्तापनीयैश्चस्फाटिकैराजतैस्तथा ॥ वज्रवैदूर्यचित्रैश्चस्तंभैर्दृष्टिमनोरमैः ॥ ८ ॥ दिव्यदुंदुभिनिर्घोषंतप्तकांचनभूषणम् ॥ सोपानंकांचनंचित्रमारुरोहतयासह ॥ ९ ॥ दांतकाराजताश्चैवगवाक्षाःप्रियदर्शनाः ॥ हेमजालावृताश्चासंस्तत्रप्रासादपंक्तयः॥ १० ॥ सुधामणिविचित्राणिभूमिभागानिसर्वशः ॥ दशग्रीवः स्वभवनेप्रादर्शयतमैथिलीम् ॥ ११ ॥ दीर्घिकाःपुष्करिण्यश्चनानापुष्पसमावृताः ॥ रावणोदर्शयामाससीतांशोकपरायणाम् ॥ १२ ॥ दर्शयित्वातुवैदेहींकृत्स्नंतद्भवनोत्तमम् ॥ उवाचवाक्यंपापात्मासीतांलोभितुमिच्छया ॥ १३ ॥

न्तर दिव्य दुन्दुभी आठ पहर बजती रहतीथीं, रावण सीताजीके सहित इस गृहकी सुवर्ण से बनी हुई विचित्र सीढियोंपर चढा ॥ ९ ॥ वह घर हाथी दांत और चांदी निर्मित होनेंके कारण अति सुन्दर हजारों जालियें वहां लगी हुईथीं जिनको देखतेही मन हर जाय औरभी वहुतसे घर वहां बनेथे जिनमें सुवर्णके जंगले लगेथे ॥ १० ॥ सब भूमि भाग सुधा धवलित और मणि समूह चित्रित रहनेंके कारण विचित्र शोभा दे रहाथा, इस प्रकारका भवन रावणनें सीताजीको दिखाया ॥ ११ ॥ उस मन्दिरमें जगह२ बावली और छोटी २ तलैयेंभी बनीथीं जिनमें अनेक प्रकारके पुष्प खिल रहेथे दशग्रीव रावणनें जानकीजीको यह सब कुछ दिखाया ॥१२॥ इस प्रकारसे पापात्मा रावण जानकीजीको लुभानेंकी इच्छासे अपना

यदि परलोकमें चलीं गईहैं तो हमभी प्राण त्यागन करैंगे ॥ ९ ॥ जब हम आश्रममें पहुंचेंगे और सीता सन्मुख हँसकर यदि हमसे न बोलेंगी
तबभी हम प्राण त्यागेंगे ॥ १० ॥ इस कारणसे हे लक्ष्मण ! तुम बताओ कि जानकी जीवितहैं ? अथवा तुम्हारी असावधानतासे उन तपस्विनी
जानकीजीको राक्षसोंने तौ नहीं भक्षण कर लिया ॥ ११ ॥ वैदेहीजी सुकुमारीहैं, वालिकाहैं, और दुःख भोग करनेंके अयोग्यहैं, वह इस समय
हमारे दुःखसे निश्चयही दुःखीहो सोच करके शोक करती होंगी ॥ १२ ॥ अतिशय दुरात्मा क्रूर निशाचर मारीचनें ऊंचे शब्दसे (हा लक्ष्मण!)
कहकर सब प्रकारसे तुमको भय उत्पन्न करा दियाहै ॥ १३ ॥ हमजानतेहैं कि हमारे बोलकी समान वह बोल जानकीजीनें सुनकर तुमको

यदिमामाश्रमगतंवैदेहीनाभिभाषते ॥ पुरःप्रहसितासीताविनशिष्यामिलक्ष्मण ॥ १० ॥ ब्रूहिलक्ष्मणवैदेहीयदिजी
वतिवानवा ॥ त्वयिप्रमत्तेरक्षोभिर्भक्षितावातपस्विनी ॥ ११ ॥ सुकुमारीचबालाचनित्यंचादुःखभागिनी ॥ मद्वियो
गेनवैदेहीव्यक्तंशोचतिदुर्मनाः ॥ १२ ॥ सर्वथारक्षसातेनजिह्मेनसुदुरात्मना ॥ वदतालक्ष्मणेत्युच्चैस्तवापिजनितंभ
यम् ॥ १३ ॥ श्रुतश्चमन्येवैदेह्यासस्वरःसदृशोमम ॥ त्रस्तयाप्रेषितस्त्वंचद्रष्टुंमांशीघ्रमागतः ॥ १४ ॥ सर्वथातुकृतं
कष्टंसीतामुत्सृजतावने ॥ प्रतिकर्तुंनृशंसानांरक्षसांदत्तमंतरम् ॥ १५ ॥ दुःखिताःखरघातेनराक्षसाःपिशिताशनाः ॥
तैःसीतानिहताघोरैर्भविष्यतिनसंशयः ॥ १६ ॥ अहोऽस्मिव्यसनेमग्नःसर्वथारिपुनाशन ॥ किंत्विदानींकरिष्यामिशं
केप्राप्तव्यमीदृशम् ॥ १७ ॥ इतिसीतांवरारोहांचिंतयन्नेवराघवः ॥ आजगामजनस्थानंत्वरयासहलक्ष्मणः ॥ १८ ॥

यहांपर भेजाहै और तुमभी हमारे देखनेंके लिये शीघ्रही यहांपर आयेहो ॥ १४ ॥ तुमनें सीताजीको अकेला वनमें छोड यहां आकर बडा
कष्टकर कार्य कियाहै । इस्से निर्दयी राक्षसोंको हमारे किये हुए अपकारका प्रतिकार करनेंको तुमनें अवसर दे दिया ॥ १५ ॥ खरको मार
डालनेंसे मांसभोजी राक्षस गण बहुतही दुःखित होगयेहैं । उन घोरनिशाचरोंने निश्चयही जानकीको मार डाला होगा इस्में सन्देह नहीं
है ॥ १६ ॥ हाय ! शत्रुसूदन लक्ष्मण ! हम सब भांतिसे विपदमें डूबे अब हम क्या करैं ? हमको शंका होतीहै कि यह विपद अवश्य होन
हारहै ॥ १७ ॥ श्रीरामचन्द्रजी सुमुखी जानकीके लिये इस प्रकार चिंताकरकै लक्ष्मणजीके सहित शीघ्रतासे जनस्थानमें आये ॥ १८ ॥

इस्से हमारे साथ इस लंका नगरीमें विहार करो ॥ २२ ॥ हे वरानने! अब तुम रामचंद्रके देखनेंकी आशा छोडो! उनमें क्या शक्तिहै जो वह मनो
रथ सेभी यहां पर आसकें? ॥ २३ ॥ जिस प्रकार कोई वहां प्रचंड पवन आकाशमें चलते हुये बांधाचाहै, परन्तु नहीं बांध सकता, या प्रदीप्त
अग्निकी शिखाको कोई हाथसे पकडनाचाहै तौ नहीं पकड सकता, ऐसेही रामभी यहां नहीं आ सकता ॥ २४ ॥ हे शोभने! समस्त भुवनोंमें हम
ऐसा किसीको नहीं देखते कि जो पराक्रम प्रकाश करके हमारी भुजाओंसे रक्षित तुमको लेजासकै ॥ २५ ॥ अतएव तुम इस विशाल लं
काके राज्यका पालन करो, हमारी समान सब पुरुष तुम्हारे आज्ञाकारी दास हो जांयगे । और हमकोभी यदि सेवक समझकर ग्रहण करो तो

कास्यशक्तिरिहागंतुमपिसीतेमनोरथैः ॥ २३ ॥ नशक्योवायुराकाशेपाशै
दर्शनेमाकृथाबुद्धिंराघवस्यवरानने ॥ त्रयाणामपिलोकानांनतंपश्यामिशोभने ॥
र्बद्धुंमहाजवः ॥ दीप्यमानस्यवाप्यग्नेर्ग्रहीतुंविमलाःशिखाः ॥ २४ ॥ त्वत्प्रेष्यामद्विधाश्चैवदे
विक्रमेणनयेद्यस्त्वांमद्बाहुपरिपालिताम् ॥ २५ ॥ लंकायाःसुमहद्राज्यमिदंत्वमनुपालय ॥ २६ ॥ दुष्कृतंयत्पुराकर्मवनवासेनतद्गतम् ॥ २७ ॥
वाश्चापिचराचरम् ॥ २६ ॥ अभिषेकजलक्लिन्नातुष्टाचरमयस्वच ॥ भूषणानिचमुख्यानि
यच्चतेसुकृतंकर्मतस्येहफलमाप्नुहि ॥ २८ ॥ इहसर्वाणिमाल्यानिदिव्यगंधानिमैथिलि ॥
तानिसेवमयासह ॥ २९ ॥ विमानंसूर्यसंकाशंतरसानिर्जितंरणे ॥ वि
पुष्पकंनामसुश्रोणिभ्रातुर्वैश्रवणस्यमे ॥
शालंरमणीयंचतद्विमानंमनोजवम् ॥ ३० ॥

जायगा ॥ २६ ॥ अब तुम
हमभी तुम्हारी आज्ञाके आधीन हो जांयगे। सब देवता गण वरन स्थावर जंगमादि समस्त जगत् तुम्हाराही दास हो जायगा ॥ २६ ॥ अब तुम
अभिषेकके जलसे धौतदेहाहोकर सन्तुष्ट चित्तसे हमको तृप्तकरो पहले जन्मके तुम्हारे जो कुछ पापथे वह सब वनवास करनेंसे क्षयको प्राप्त होगये२७
अब तुम लंकामें रहकर अपने पहले कियेहुए पुण्योंके फलको प्राप्तहो । हे मैथिलि! यहांपर जो दिव्य मालायें दिव्यगन्ध और दिव्यभूषण रक्खेहैं
तुम उन सबको हमारे साथ भोगकरो। हे सुमध्यमे! भाई कुबेरका पुष्पक नाम ॥२८॥२९॥ विमान सूर्यके समान प्रकाश मान हमारे यहांहै कुबेरके

श्रीरामचन्द्रजीसे बोले॥५॥हम आप अपनी इच्छानुसार सीताजीको त्यागकरके यहां नहीं आये वरन उनके पठाये हुयेही आपके निकट आयेहैं॥६॥ आपके बोलकी समान बोल बनाकर जो किसीनें (हमें बचाओ) कहकर भय और व्याकुलताके स्वरसे जो चीत्कार कियाथा, सो वही चिल्लाहट जानकीजीके श्रवण गोचर हुई ॥ ७ ॥ उन्होंनें लक्ष्मण हमें बचाओ वह करुणाका बोल सुनकर भयसे विकलहो आपके स्नेहके वशके मारे रोतेर हमसे यह कहना आरंभ किया कि शीघ्र जाओ ॥ ८ ॥ वह वारंवार हमसेजानेको कहनें लगीं, तब हमनें उनको विश्वास दिलानेंके लिये यह वार्ता कही ॥ ९ ॥ हम ऐसा किसी राक्षसको नहीं देखते जो श्रीरामचंद्रजीको भय उपजासके, इस्से यह करुणाका वचन रामचंद्रजीका नहीं, वरन यह

नस्वयंकामकारेणतांत्यक्त्वाहमिहागतः ॥ प्रचोदितस्तयैवोग्रैस्त्वत्सकाशमिहागतः ॥ ६ ॥ आर्येणेवपराक्रुष्टंलक्ष्मणेतिसुविस्वरम् ॥ परित्राहीतियद्वाक्यंमैथिल्यास्तच्छ्रुतिंगतम् ॥ ७ ॥ सातमार्तस्वरंश्रुत्वातवस्नेहेनमैथिली ॥ गच्छगच्छेतिमामाहरुदतीभयविक्लवा ॥ ८ ॥ प्रचोद्यमानेनमयागच्छेतिबहुशस्तया ॥ प्रत्युक्तामैथिलीवाक्यमिदंतत्प्रत्ययान्वितम् ॥ ९ ॥ नतत्पश्याम्यहंरक्षोयदस्यभयमावहेत् ॥ निर्वृताभवनास्त्येतत्केनाप्येतदुदाहृतम् ॥ १० ॥ विगर्हितंचनीचंचकथमार्योभिधास्यति ॥ त्राहीतिवचनंसीतेयस्त्रायेत्रिदशानपि ॥ ११ ॥ किन्निमित्तंतुकेनापिभ्रातुरालंब्यमेस्वरम् ॥ विस्वरंव्याहृतंवाक्यंलक्ष्मणत्राहिमामिति ॥ १२ ॥ राक्षसेनेरितंवाक्यंत्रासात्राहीतिशोभने ॥ नभवत्याव्यथाकार्याकुनारीजनसेविता ॥ १३ ॥ अलंविक्लवतांगंतुंस्वस्थाभवनिरुत्सुका ॥ नचास्तित्रिषुलोकेषुपुमान्योराघवंरणे ॥ १४ ॥

वचन किसी राक्षसनें वा और किसीनें कहा होगा इस कारण आप वेखटके रहैं ॥ १० ॥ हे सीते! जो देवताओंकीभी रक्षा कर सकतेहैं, वह श्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी "हमको बचाओ" यह नीचजनोचित वार्ता किस प्रकारसे कह सकतेहैं ॥ ११ ॥ इस कारणसे किसीने किसी कारण वश रामचंद्रजीके बोलसा बोल बनाकर "लक्ष्मण हमको बचाओ" यह कह व्याकुल स्वरसे चिल्लाहट कीहै इसमें कुछभी सन्देह नहींहै ॥ १२ ॥ हे शोभने किसी राक्षसनें त्रासके मारे "बचाओ" यह शब्द कियाहै । इस्से आप नीचस्त्रीजनोचित मनो वेदना त्याग कर दीजिये ॥ १३ ॥ व्याकुल होनेंकी

तृणसमान समझतीहुई उत्तर देतीहुई कि ॥ १ ॥ राजा दशरथ साक्षात् धर्मके पर्वत सदृश अभेद्यसेतु और सत्य प्रतिज्ञतासे सर्व संसारमें विख्यातथे श्रीरामचंद्रजी उनकेही पुत्रहैं ॥ २ ॥ यहभी धर्मात्माके नामसे तीनों भुवनमें विख्यातहैं, वही दीर्घबाहु विशाल लोचन श्रीरामचंद्रजी हमारे स्वामी और साक्षात् देवताहैं ॥ ३ ॥ उनके कंधे सिंहकी समानहैं, वह महाद्युतिमान और इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुयेहैं वे भ्राता लक्ष्मणके सहित हो अवश्यही तेरे प्राणोंका वध करनें यहां आवेंगे॥४॥ यदि हम उनके सन्मुख बलपूर्वक इसप्रकारसे खेंचीजाती तबतो युद्धमें खरकी समान निहतहो कर तुमको भी रणभूमिमें शयन करना पडता ॥ ५ ॥ तुमनें जिन सब घोरतर महा बलवान राक्षसोंकी वार्ताकही सो गरुडके निकट सर्पसमूह

राजादशरथोनामधर्मसेतुरिवाचलः ॥ सत्यसंधःपरिज्ञातोयस्यपुत्रःसराघवः ॥ २ ॥ रामोनामसधर्मात्मात्रिषुलोकेषुविश्रुतः ॥ दीर्घबाहुर्विशालाक्षोदैवतंसपतिर्मम ॥ ३ ॥ इक्ष्वाकूणांकुलेजातःसिंहस्कंधोमहाद्युतिः ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्रायस्तेप्राणान्वधिष्यति ॥ ४ ॥ प्रत्यक्षंयद्यहंतस्यत्वयावैधर्षिताबलात् ॥ शयितात्वंहतःसंख्येजनस्थानेयथाखरः ॥ ५ ॥ यएतेराक्षसाःप्रोक्ताघोररूपामहाबलाः ॥ राघवेनिर्विषाःसर्वेसुपर्णेपन्नगायथा ॥ ६ ॥ तस्यज्याविप्रमुक्तास्तेशराःकांचनभूषणाः ॥ शरीरंविधमिष्यंतिगंगाकूलमिवोर्मयः ॥ ७ ॥ असुरैर्वासुरैर्वात्वंयद्यवध्योसिरावण ॥ उत्पाद्यसमुहद्वैरंजीवंस्तस्यनमोक्ष्यसे ॥ ८ ॥ सतेजीवितशेषस्यराघवोंतकरोबली ॥ पशोर्यूपगतस्येवजीवितंतवदुर्लभम् ॥ ९ ॥ यदिपश्येत्सरामस्त्वांरोषदीप्तेनचक्षुषा ॥ रक्षस्त्वमद्यनिर्दग्धोयथारुद्रेणमन्मथः ॥ १० ॥

की समान रामचंद्रजीके निकट यह सब राक्षस हीनबल विहीनतेज होजायँगे ॥ ६ ॥ तरंग जिसप्रकार गंगाजीके किनारेको तोडतीहै वैसेही श्रीरामचंद्रजी अपने धनुषसे छूटेहुए उन स्वर्णभूषित बाणोंके समूहसे राक्षसोंके शरीरका भेदनकरेंगे ॥ ७ ॥ रावण! यद्यपि तू देव दानवोंसे अवध्यहै, परन्तु रामचंद्रकेसाथ यह बडाभारी वैर करकै किसीप्रकार तेरे प्राण न बचेंगे ॥८॥ वह बलवान श्रीरामचंद्रजीही तुम्हारे बचेहुए जीवनका समय पूरा कर देंगे। इससे यज्ञस्तम्भसे बँधेहुए पशुकी समान अब तुम्हारा जीना दुर्लभहै ॥ ९ ॥ यदि श्रीरामचन्द्रजी क्रोध भरे नेत्रोंके दृष्टिसे एक वारही तुझको देखें

जानकीके यह क्रोध वचन सुन आश्रमसे बाहर चले आये ॥ २२ ॥ एक तौ स्त्री, दूसरे क्रोधित, ऐसी जानकीके कठोर वचनोंसे तुमभी उनको
छोडकर यहां पर चले आये इससे हम तुम्हारे ऊपर प्रसन्न नहीं हुए॥ २३ ॥तुमनें सीताके वचन सुन क्रोधके वशहो हमारी आज्ञाका उल्लंघन किया
इस्से तुम्हारा यह कार्य बहुतही निन्दनीय हुआहै ॥ २४ ॥ देखो! यह राक्षस जो मृग बनकर हमको आश्रमसे दूरतक लायाहै वह हमारे बाणसे
मरा हुआ पडाहै॥ २५ ॥ हमनें धनुष चढा खेंच उस पर बाण चढा लीलासेही एक बाणका इसके ऊपर प्रहार किया जिस बाणके लगनेसे इस राक्ष

नहितेपरितुष्यामित्यक्त्वायदसिमैथिलीम् ॥ क्रुद्धायाःपरुषंश्रुत्वास्त्रियायत्त्वमिहागतः ॥ २३ ॥ सर्वथात्वपनीतं
तेसीतयायत्प्रचोदितः ॥ क्रोधस्यवशमागम्यनाकरोःशासनंमम ॥ २४ ॥ असौहिराक्षसःशेतेशरेणाभिहतोमया ॥
मृगरूपेणयेनाहमाश्रमादपवाहितः ॥ २५ ॥ विकृष्यचापंपरिधायसायकंसलीलबाणेनचताडितोमया ॥ मार्गीतनुं
त्यज्यचविक्लवस्वरोबभूवकेयूरधरःसराक्षसः ॥ २६ ॥ शराहतेनैवतदार्तयागिरास्वरंममालंब्यसुदूरसुश्रवम् ॥ उ
पाहृतंतद्वचनंसुदारुणंत्वमागतोयेनविहायमैथिलीम् ॥ २७ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआर
ण्यकांडेएकोनषष्टितमःसर्गः ॥ ५९ ॥ ॥ छ ॥ भृशमाव्रजमानस्यतस्याधोवामलोचनम् ॥ प्रास्फुरच्चास्ख
लद्रामोवेपथुश्चास्यजायते ॥ १ ॥

सने मृग तनु छोड विकल स्वर कर बाजू पहरे हुये निशाचरका शरीरधारण कियाहै॥२६॥उसकाल हमारे बाणसे घायल होकर दूरसेही श्रवण गोचरहो
इस प्रकारका हमारा बोल बनाकर इस राक्षसके दारुण आर्त्तनाद करनेसे तुम उसको सुन इस समय जानकीको छोडकर यहां आयेहो॥२७॥ इत्यार्षे
श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे एकोनषष्टितमःसर्गः ५९ आश्रममें आनेके समय श्रीरामचंद्रजीके वामनेत्रके नीचेका भाग अत्य
न्तही फडकनेंलगा, परग २ पर चरण फिसलता, और शरीर कांपरहाथा इन अपशकुनोंका यह प्रभावहै कि जिस कार्यके लिये जाओ उसकी सि

दृढव्रताहैं; इस कारण हम किसी प्रकारसेभी तेरे छूनेंके योग्य नहींहैं ॥ १९ ॥ जो हंसिनी कमल पुष्पोंके मध्यमें राज हंसके साथ नित्य क्रीडा करतीहैं वह किस प्रकारसे तृणोंके बीच बैठे हुए मद्गुर (जलकाकविशेष) के प्रति दृष्टि डालेगी ॥ २० ॥ रेराक्षस! यह देहस्वभावसेही संज्ञाहीनहै, इसको बांध, या इसपर आघातदे, जो तेरी इच्छाहो सो कर हम किसी प्रकारसे इस शरीरकी रक्षा नहीं करेंगी ॥ हमें प्राणोंसे कुछ प्रयोजन नहींहै ॥ २१ ॥ और अधिक तू जो हमारे शरीरको स्पर्श करे तौ हम अपने जातेजी यह कलंक पृथ्वीपर विस्तार नहीं कर सकेंगी ! वैदेही जी इस प्रकारसे कठोर वचन कह ॥ २२ ॥ फिर रावणसे और कुछ न बोलीं तब रावण सीताजीके कठोर और रोम हर्षण वचन सुनकर ॥२३॥

क्रीडंतिराजहंसेनपद्मखंडेषुनित्यशः ॥ हंसीसातृणमध्यस्थंकथंद्रक्ष्येतमद्गुकम् ॥ २० ॥ इदंशरीरंनिःसंज्ञंबंधवाघातयस्ववा ॥ नेदंशरीरंरक्ष्यंमेजीवितंवापिराक्षस ॥ २१ ॥ नतुशक्यमपक्रोशंपृथिव्यांदातुमात्मनः ॥ एवमुक्त्वातुवैदेहीक्रोधात्सुपरुषंवचः ॥ २२ ॥ रावणंजानकीतत्रपुनर्नोवाचकिंचन ॥ सीतायावचनंश्रुत्वापरुषंरोमहर्षणम् ॥२३॥ प्रत्युवाचततःसीतांभयसंदर्शनंवचः ॥ शृणुमैथिलिमद्वाक्यंमासान्द्वादशभामिनि ॥ २४ ॥ कालेनानेननाभ्येषियदिमांचारुहासिनि ॥ ततस्त्वांप्रातराशार्थंसूदाश्छेत्स्यंतिलेशशः ॥ २५ ॥ इत्युक्त्वापरुषंवाक्यंरावणःशत्रुरावणः ॥ राक्षसीश्चततःक्रुद्धइदंवचनमब्रवीत् ॥ २६ ॥ शीघ्रमेवहिराक्षस्योविरूपाघोरदर्शनाः ॥ दर्पमस्यापनेष्यंतुमांसशोणितभोजनाः ॥ २७ ॥ वचनादेवतास्तस्यसुघोराघोरदर्शनाः ॥ कृतप्रांजलयोभूत्वामैथिलींपर्यवारयन् ॥ २८ ॥

सीताजीको डर पानेंके लिये कहनें लगा। कि हे मैथिली! बारह महीनें तक कुछ न कहूंगा ॥ २४ ॥ हे चारुहासिनी! इस समयके मध्यम यदि तुम हमको न प्राप्त होगी तौ रसोई करनें वाले हमारे प्रातःकलेवेके लिये तुमको टुकडे २ कर काट डालेंगे ॥ २५ ॥ शत्रुओंको रुवानें वाला रावण इस प्रकारसे कठोर वचन कहकर फिर क्रोधितहो राक्षसियोंको आज्ञा देता हुआ ॥ २६ ॥ हे विकटरूपा, घोर दर्शना, रक्त मांसभोजी राक्षसिगण! तुम सब शीघ्रही जानकीका समस्त गर्व तोड डालो ॥ २७ ॥ वह घोर दर्शना निशाचरी गण यह सुन तत्क्षणही हाथ जोड

शोकके मारे उनके नेत्र लाल रहोगये उससमय वह उन्मत्तोंकी समान फिरनेलगे ॥ १० ॥ श्रीरामचंद्रजी शोकके समुद्रमें डूबकर एक वृक्षसे दूसरे वृक्षके नीचे दौडकर जानेलगे और विलाप करते २ नद नदी और पर्वतोंपर घूमनेलगे ॥ ११ ॥ अनन्तर श्रीरामचंद्रजी उन्मत्तकी समान कदम्बादि वृक्षोंसे सीताजीको पूछनें लगे कि हे कदम्ब! तुमने उन कदम्बप्रिया हमारी प्राणप्यारी जानकीको देखाहै? यदि देखाहो तौ उन शुभाननाकी वार्त्ता हमसे कहो॥ १२ ॥ हे बिल्व! वह बिल्वसदृश स्तनवाली पल्लव समान कान्तियुक्त पीले रेशमीन वस्त्र धारणकिये सीताको यदि तुमने देखाहो तो बताओ ॥ १३ ॥ अथवा हे अर्जुन! प्रिया तुमको अतिशयचाहतीथी,सो वह क्षीणाङ्गी जनककुमारी जीवितहैं या नहीं सो बताओ १४॥ अथवा यह ककुभवृक्ष ककुभके समान जांघवाली सीताको निश्चयही जानताहोगा. क्योंकि इस वृक्षपर लता पुष्पफल सबही लगेहैं ॥ १५ ॥

वृक्षाद्वृक्षंप्रधावन्सगिरींश्चापिनदीनदम् ॥ बभ्रामविलपन्रामःशोकपंकार्णवप्लुतः ॥ ११ ॥ अस्तिकच्चित्त्वयादृष्टासाकदंबप्रियाप्रिया ॥ कदंबयदिजानीषेशंससीतांशुभाननाम् ॥१२॥ स्निग्धपल्लवसंकाशांपीतकौशेयवासिनीम् ॥ शंसस्वयदिसादृष्टाबिल्वबिल्वोपमस्तनी ॥ १३ ॥ अथवार्जुनशंसत्वंप्रियांतामर्जुनप्रियाम् ॥ जनकस्यसुतातन्वीयादजीवतिवानवा ॥ १४ ॥ ककुभःककुभोरूंतांव्यक्तंजानातिमैथिलीम् ॥ लतापल्लवपुष्पाढ्योभातिह्येषवनस्पतिः ॥ १५ ॥ भ्रमरैरुपगीतश्चयथाद्रुमवरोह्यसि ॥ एषव्यक्तंविजानातितिलकस्तिलकप्रियाम् ॥ १६ ॥

और भ्रमरगणोंके संगीत रवसे परिपूर्ण शोभा पारहाहै । हे वनस्पति ! तुम सब वृक्षोंमें प्रधानहो । और जानकीभी सब रमणीयोंमें श्रेष्ठहैं अतएव वह कहांहैं सो बताओ, ❋ अथवा प्रिया तिलक पुष्पको बहुत प्यारकरतीथी इससे यह तिलक वृक्ष निश्चयही उनके वृत्तान्तको जानता होगा ॥ १६ ॥

*रागनी झंझौटी ताल एकताला।सीता विनु देख कुटी सोचत रघुराई।।आस्ताई॥लक्ष्मण तुमकहा कीन इकली सिय छांडदीन निश्चर कोइ दाओ चीन्ह लेगयो उडाई ॥ १ ॥ सियविन व्याकुल शरीर मनना तनक धरतधीर पीर कौन हरै नीर द्रगचले वहाई ॥ २ ॥ प्रेमविवस रामभये द्रुमलतासों पूछनगये सोकबिबस बोलत नाहिं सबरहे मुरझाई ॥ ३ ॥ आगे गृद्ध भेटभई ताने सकल बातकही तेहि का प्रभु मोक्षदई नारद बलिजाई ॥ ४ ॥

मप्रिय स्वामी और देवरको सदा याद करकै और शोकसे सतानेंके कारण चेतना रहित होकर जानकीजीनें वहां किसी प्रकार शान्ति नहीं पाई॥२६॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे षट्पंचाशः सर्गः॥५६॥ जिस समय जानकीजीको लंकामें रावण लेगया उस समय ब्रह्माजी नें देवताओंकें राजा इन्द्रसे इस प्रकारके वचन कहे ॥ १ ॥ त्रिलोकीके हित करनेंके वास्ते और राक्षसोंके नाशके निमित्त दुरात्मा रावण जानकीजी को लंकामें ले गयाहै॥२॥ वहां महाभाग्यवाली पतिव्रत धर्म युक्त जो सदा सुखहीसे इतनी बड़ी हुईहै अपने स्वामीको न देखकर और राक्षसोंको दे खकर ॥ ३ ॥ राक्षसियोंसे घिरी हुई पतिव्रत धर्म वाली जानकी समुद्रके बीचमें जो लंका पुरीहै उसमें स्थित हैं ॥ ४ ॥ रामचंद्रजी किस प्रकार जा

प्रवेशितायांसीतायांलंकांप्रतिपितामहः ॥ तदाप्रोवाचदेवेंद्रंपरितुष्टंशतक्रतुम् ॥ १ ॥ त्रैलोक्यस्यहितार्थायरक्षसाम
हितायच ॥ लंकांप्रवेशितासीतारावणेनदुरात्मना ॥ २ ॥ पतिव्रतामहाभागानित्यंचैवसुखैधिता ॥ अपश्यंतीचभर्ता
रंपश्यंतीराक्षसीजनम् ॥ ३ ॥ राक्षसीभिःपरिवृताभर्तृदर्शनलालसा ॥ निविष्टाहिपुरीलंकातीरेनदनदीपतेः ॥ ४ ॥
कथंज्ञास्यतितांरामस्तत्रस्थांतामनिंदिताम् ॥ दुःखंसंचिंतयंतीसाबहुशःपरिदुर्लभा ॥५॥ प्राणयात्रामकुर्वाणाप्राणां
स्त्यक्ष्यत्यसंशयम् ॥ सभूयःसंशयोजातःसीतायाःप्राणसंक्षये ॥ ६ ॥ सत्वंशीघ्रमितोगत्वासीतांपश्यशुभाननाम् ॥
प्रविश्यनगरींलंकांप्रयच्छहविरुत्तमम् ॥ ७ ॥ एवमुक्तोथदेवेंद्रःपुरींरावणपालिताम् ॥ आगच्छन्निद्रयासार्धं
भगवान्पाकशासनः ॥ ८ ॥ निद्रांचोवाचगच्छत्वंराक्षसान्संप्रमोहय ॥ सा तथोक्तामघवतादेवीपरमहर्षिता ॥ ९ ॥

नेंगें कि वहां निन्दा रहित जानकीजीहैं बड़े कष्ट और दुःखसे रामचंद्रको स्मरण करती हुई जानकी ॥ ५ ॥ भोजनादिके न करनेंसे निश्चय प्राणोंको त्यागन करदेंगी, सो जानकीजीके प्राण रक्षा करनेंमें हमको बड़ा सन्देहहै ॥ ६ ॥ सो तुम शीघ्र यहांसे जाकर सुन्दर मुख वाली जानकीका दर्श नकर लंका पुरीमें प्रवेशकर यह हवि ले जाकर जानकीजीको देदो ॥७॥ जब यह वचन ब्रह्माजीनें कहा तब रावणकी लंकापुरीमें इन्द्रजी आये और निद्राको अपनें साथ लेते आये ॥ ८ ॥ तब इन्द्रनें निद्रा देवीसे कहा, कि तू जाकर राक्षसों को मोहित कर निद्रा देवी इन्द्रके यह वचन सुन

हे शार्दूल ! उन चंद्र वदना हमारी प्यारी मैथिलीको यदि देखाहो तो हमाराविश्वास करकै हमें बतादो ! तुमको कुछ भय नहींहै अर्थात् तुम इस
बातसे नडरो, कि हम तुम्हें मार डालेंगे ॥ २५ ॥ हे प्रिये ! हे कमलेक्षणे ! तुम अब क्यों दौडी जातीहो ? हमने अब निश्चयही तुमको देख लियाहै
तुम किस कारणसे इन वृक्षोंके मध्यमें छिप कर हमसे नहीं बोलतीहो ? ॥ २६ ॥ हे वरारोहे ! हम वारंवार कहतेहैं कि तुम खडी रहो, व
इधर उधर दौडती न फिरो, क्या हमारे ऊपर तुमको दया नहीं आती ? तुमतो कभो हमारे साथ इतना उपहास नहीं करती थी ॥ २७ ॥ हे
वरवर्णिनी ! हमने तुम्हारे पीले रेशमीन वस्त्र देखकर तुमको पहचानलिया है, और यहभी हम देख रहेहैं कि तुम भागही रहीहो इस्से यदि

शार्दूलयदिसादृष्टाप्रियाचंद्रनिभानना ॥ मैथिलीममविस्रब्धःकथयस्वनतेभयम् ॥ २५ ॥ किंधावसिप्रिये
नूनंदृष्टासिकमलेक्षणे ॥ वृक्षैराच्छाद्यचात्मानंकिंमांनप्रतिभाषसे ॥ २६ ॥ तिष्ठतिष्ठवरारोहेनतेस्तिकरुणाम
यि ॥ नात्यर्थंहास्यशीलासिकिमर्थंमामुपेक्षसे ॥ २७ ॥ पीतकौशेयकेनासिसूचितावरवर्णिनि ॥ धावंत्य
पिमयादृष्टातिष्ठयद्यस्तिसौहृदम् ॥ २८ ॥ नैवसानूनमथवाहिंसिताचारुहासिनि ॥ कृच्छ्रंप्राप्तंहिमांनूनंयथापेक्षि
तुमर्हति ॥ २९ ॥ व्यक्तंसाभक्षिताबालाराक्षसैःपिशिताशनैः ॥ विभज्यांगानिसर्वाणिमयाविरहिताप्रिया ॥ ३० ॥
नूनंतच्छुभदंतोष्ठंसुनासंशुभकुंडलम् ॥ पूर्णचंद्रनिभंग्रस्तंमुखंनिष्प्रभतांगतम् ॥ ३१ ॥ साहिचंदनवर्णाभाग्रीवाग्रै
वेयकोचिता ॥ कोमलाविलपंत्यास्तुकांतायाभक्षिताशुभा ॥ ३२ ॥

तुम कुछ प्रेम हमारे साथ रखतीहो तौ लौट आओ और भागती नफिरो ॥ २८ ॥ अथवा हे चारुहासिनी ! हमनें जिसको देखाहै वह तुम
नहींहो, तुमको तो निश्चयही किसीनें मारडाला, यदि ऐसा नहोता तो इस दारुण क्लेशके समयभी क्या तुमभी हमको छोड सकतीहो ॥ २९॥
साफ मालूम होताहै कि मांस खानें वाले राक्षसोंनें हमारा वियोग पाईहुई हमारी प्रियाके अंगोंको खंड २ करके खा लिया ॥ ३० ॥ अहो ! इनका
वह मनोहर दांत वाला, श्रेष्ठ नासिका युक्त, शुभकुंडलसमन्वित, पूर्ण चंद्रमाकी समान वदन राक्षसों करकै ग्रस्त होजानें पर निश्चयही प्रभाही
न होगया होगा ॥ ३१ ॥ उनकी कोमल गरदन हार आदि भूपणोंसे भूपित जिसके वर्णकी ज्योति चंदनकी समान चिकनी और विशदहै

पृथ्वी नहीं स्पर्श करते उनके नेत्रोंके पलक नहीं लगते ॥ १८ ॥ धूलि रहित वस्त्र धारण किये हुए जो फूल मलीन नहीं ऐसे फूलोंकी माला धारण किये इन लक्षणोंसे जानकीजी इन्द्रको पहचान परम हर्षित हुई ॥ १९ ॥ और फिर रोती हुई बोलीं, हे भगवन् ! भाग्यसे महाबाहु रामचंद्रका नाम उनके भाई सहित आज मैंनें सुना ॥ २० ॥ जैसे मेरे श्वशुर दशरथजी, पिता जनकजी हैं तैसेही आज मैं तुम्हें देखतीहूं तुमसे मेरे पति सनाथ हुए ॥ २१ ॥ हे देवेन्द्र ! तुम्हारी आज्ञासे यह दूधकी बनी खीर रघु कुलके बढानें हारे तुम्हारे हाथकी दी हुई मैं खाऊंगी॥२२॥ सुहासिनी जानकीजीनें वह हवि इन्द्रके हाथसे लेकर प्रथम अपने स्वामी रामचंद्र और देवर लक्ष्मणजीको निवेदितकी ॥ २३ ॥ और कहा कि

अरजोंबरधारीचनम्लानकुसुमस्तथा ॥ तंज्ञात्वालक्षणैःसीतावासवंपरिहर्षिता ॥ १९ ॥ उवाचवाक्यंरुदतीभगवद्रा घवंप्रति ॥ सहभ्रात्रामहाबाहुर्दिष्ट्यामेश्रुतिमागतः ॥ २० ॥ यथामेश्वशुरोराजायथाचमिथिलाधिपः ॥ तथात्वा मद्यपश्यामिसनाथोमेपतिस्त्वया ॥ २१ ॥ तवाज्ञयाचदेवेंद्रपयोभूतामिदंहविः ॥ अशिष्यामित्वयादत्तंरघूणांकुलव र्धनम् ॥ २२ ॥ इंद्रहस्तादृगृहीत्वाततपायसंसाशुचिस्मिता॥ न्यवेदयतभर्त्रेसालक्ष्मणायचमैथिली ॥ २३ ॥ यदिजी वतिमेभर्तासहभ्रात्रामहाबलः ॥ इदमस्तुतयोर्भक्त्यातदाश्नात्पायसंस्वयम् ॥ २४ ॥ इतीवतत्प्राश्यहविर्वराननाज हौक्षुधादुःखसमुद्भवंचतम् ॥ इंद्रात्प्रवृत्तिमुपलभ्यजानकीकाकुत्स्थयोःप्रीतमनाबभूव ॥ २५ ॥ सचापिशक्रस्त्रिदि वालयंतदाप्रीतोययौराघवकार्यसिद्धये ॥ आमंत्र्यसीतांसततोमहात्माजगामनिद्रासहितःस्वमालयम् ॥ २६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेसर्गः ॥ १ ॥

यदि मेरे महाबली भर्ता लक्ष्मण भाई सहित जीवितहैं तो यह जो मैं प्रेमसे देतीहूं यह वह पायस ग्रहण करै ॥ २४ ॥ वह सुमुखी इस प्रकार खीरको निवेदन कर पीछे आप भक्षण करती हुई. जिसके खातेही भूंख प्यासका दुःख जाता रहा, इन्द्रसे यह कथा सुनकर कि रामचंद्र शीघ्र आवेंगे रामचंद्रमें मन लगाती हुई ॥ २५ ॥ वह इन्द्रभी उस समय रामचंद्र की कार्य सिद्धिके निमित्त प्रसन्न होकर स्वर्गको गये, और वह महात्मा चलते समय जानकीको समझाकर निद्रा सहित स्वर्गको पधारे॥२६॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे क्षेपकः सर्गः॥५६॥

कि शून्य पडा है, पर्णशालामें कोई नहीं है आसन भी सब इधर उधर पडे हैं ॥ १ ॥ सब ओर वहां पर देख और वैदेहीजीको न पाकर श्रीराम
चन्द्रजी लक्ष्मणजीके दोनों हाथ पकड रोकर बोले ॥ २ ॥ हे लक्ष्मण! सीता कहां हैं? इस आश्रमसे किस स्थानको चली गई हैं? हे सौमित्र! प्रिया
को किसनें हरण किया, वा भक्षण किया? ॥ ३ ॥ हे सीते! यदि वृक्षकी आडमें छिपी रहकर तुम्हें उपहास करनेंकी इच्छा हुई हो, तब तो जितना
चाहियेथा उतना उपहास होगया, अब अधिक न सताओ। देखो! हम महादुःखके पडनेंसे व्याकुल होरहे हैं सो इस समय आनकर तुम
शीघ्र हमको धीरजदो, और समझाओ ॥ ४ ॥ हे सौम्य! तुम जो इन सब विश्वासी मृगछौनोंके सहित खेल करतीथीं सो इस समय यह सब

अदृष्ट्वातत्रवैदेहींसन्निरीक्ष्यचसर्वशः ॥ उवाचरामःप्राक्रुश्यप्रगृह्यरुचिरौभुजौ ॥ २ ॥ क्वनुलक्ष्मणवैदेहीकंवादेश
मितोगता ॥ केनाहृतावासौमित्रेभक्षिताकेनवाप्रिया ॥ ३ ॥ वृक्षेणावार्ययदिमांसीतेहसितुमिच्छसि ॥ अलंतेह
सितेनाद्यमांभजस्वसुदुःखितम् ॥ ४ ॥ यैःपरिक्रीडसेसीतेविश्वस्तैर्मृगपोतकैः ॥ एतेहीनास्त्वयासौम्येध्यायंत्यस्रा
विलेक्षणाः ॥ ५ ॥ सीतयारहितोऽहंवैनहिजीवामिलक्ष्मण ॥ वृतंशोकेनमहतासीताहरणजेनमाम् ॥ ६ ॥ परलोके
महाराजोनूनंद्रक्ष्यतिमेपिता ॥ कथंप्रतिज्ञांसंश्रुत्यमयात्वमभियोजितः ॥ ७ ॥ अपूरयित्वातंकालंमत्सकाशमिहाग
तः ॥ कामवृत्तमनार्यंवामृषावादिनमेवच ॥ ८ ॥ धिक्त्वामितिपरेलोकेव्यक्तंवक्ष्यतिमेपिता ॥ विवशंशोकसंतप्तंदीनं
भग्नमनोरथम् ॥ ९ ॥ मामिहोत्सृज्यकरुणंकीर्तिर्नरमिवानृजुम् ॥ क्वगच्छसिवरारोहेमामोत्सृजसुमध्यमे ॥ १० ॥

तुम्हारे विना नेत्रोंसे अश्रुजल भरे चिंता कर रहे हैं ॥ ५ ॥ हे लक्ष्मण! सीताके विरहमें हम कभी जीवन धारण नहीं कर सकते, उनके हर जानें
से उत्पन्न हुए घोरतर शोकनें हमको ढक लिया है ॥ ६ ॥ पितृदेव महाराज दशरथजीको निश्चयही हम परलोकमें मिलेंगे, और वह निश्चय
ही हमसे यह कहेंगे कि हे राम! हमनें तो तुमको प्रतिज्ञा पूर्ण करनेंको कहाथा, और तुमनेभी स्वीकार कियाथा, कि हम चौदह वर्ष वनमें
बसेंगे॥ ७ ॥ सो तुम उस प्रतिज्ञाको पूर्ण बिना कियेही इस समय कैसे यहां पर आये? तुम स्वेच्छाचारी, मिथ्यावादी, और नीचता युक्त तुमको ॥८॥
धिक्कार है! सो निश्चयही इस प्रकारके वचन पिताजी हमें कहेंगे, विवश शोकसे व्याकुल, दीन और मनोरथ टूटे हुए ॥ ९ ॥ व दया करनेंके योग्य

कैसे कहैं कि मंगल होगा। कारण कि जनस्थानका नाश करनेंके कारण हमसे और राक्षसोंसे भारी वैरहै ॥ ९ ॥ और तिसपर यहां हमको घोर दुर्निमित्त दिखाई देतेहैं, आत्मवान श्रीरामचंद्रजीनें शृगालका शब्द सुनकर इस प्रकार चिन्ता करते २ ॥ १० ॥ लौटकर बडी शीघ्रतासे आश्रमकी ओर गमन करने लगे। मृग रूपी मारीच जो उनको आश्रमसे दूर ले आयाथा, इस कारण रामचंद्रजी जल्दीसे आश्रमको चले॥ ११ ॥ और शंकित चित्त होकर श्रीरामचन्द्रजी आश्रममें पहुँचे तब सब मृग पक्षी गण इनके मनको उदास देखकर सब इनके निकट आये ॥ १२ ॥ वह सब मृग पक्षीगण उस कालमें रामचन्द्रजीकी बांई तरफ होकर कठोर स्वरसे शब्द करनें लगे उन महा घोर सब दुर्निमित्तोंको देखकर

निमितानिचघोराणिदृश्यंतेऽद्यबहूनिच ॥ इत्येवंचिंतयन्रामःश्रुत्वागोमायुनिःस्वनम् ॥ १० ॥ निवर्तमानस्त्वरितोजगामाश्रममात्मवान् ॥ आत्मनश्चापनयनंमृगरूपेणरक्षसा ॥ ११ ॥ आजगामजनस्थानंराघवःपरिशंकितः ॥ तंदीनमानसंदीनमासेदुर्मृगपक्षिणः ॥ १२ ॥ सव्यंकृत्वामहात्मानंघोरांश्चससृजुःस्वरान् ॥ तानिदृष्ट्वानिमित्तानिमहाघोराणिराघवः ॥ १३ ॥ ततोलक्ष्मणमायांतंददर्शविगतप्रभम् ॥ ततोविदूरेरामेणसमीयायसलक्ष्मणः ॥ १४ ॥ विषण्णःसन्विषण्णेनदुःखितोदुःखभागिना ॥ सजगर्हेऽथतंभ्रातादृष्ट्वालक्ष्मणमागतम् ॥ १५ ॥ विहायसीतांविजनेवनेराक्षससेविते ॥ गृहीत्वाचकरंसव्यंलक्ष्मणंरघुनंदनः ॥ १६ ॥ उवाचमधुरोदर्कमिदंपरुषमार्तवत् ॥ अहोलक्ष्मणगर्ह्यंतेकृतंयत्त्वंविहायताम् ॥ १७ ॥

श्रीरामचन्द्रजीनें देखातो॥१३॥प्रभा हीन हुए लक्ष्मणजी चले आतेहैं देखते ही देखते लक्ष्मणजी रामचन्द्रजीके निकट आ पहुँचे॥१४॥रामचन्द्रजीको विषादित व दुःखित देखकर लक्ष्मणजीभी विषादित और दुःखित हुए। तब श्रीरामचन्द्रजी अपनें भ्राता लक्ष्मणजीकी निन्दा करनें लगे॥१५॥क्योंकि लक्ष्मणजी सीताजीको राक्षस सेवित सूने वनमें अकेली छोडकर आयेथे लक्ष्मणजीका वांयां हाथ पकडकर श्रीरामचन्द्रजी ॥ १६ ॥ आरतकी समान श्रवण कठोर परिणाम मधुर वचन कहने लगे कि—हे लक्ष्मण! तुम सीताजीको त्याग कर जो यहां चले आये हो, यह तुमनें अतीव निन्दा

हे काकुत्स्थ! आपतोभी यह मानते हों कि जानकी इसी वनमें हैं तब तो इस वनके सबही आश्रमोंमें खोजेंगे, अब शोक न कीजिये॥१८॥जब सौहार्दके वश होकर लक्ष्मणजीनें इस प्रकार कहा तब रामचन्द्रजी सावधान चित्त होकर लक्ष्मणजीको संग ले ढूंढनें लगे ॥१९॥ वन, गिरि, तलाव, एक२करके दोनों भाइयोंनें सीताको ढूंढनेंके लिये छाने ॥ २० ॥ फिर उन पर्वतोंके कंगूरों, चटान, व शिखर, सब रत्ती२खोजे पर जानकीजीके दर्शन न हुए॥२१॥ उस कालमें समस्त पर्वतको ढूंढ भालकर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीसे बोले कि हे भाई! इस पर्वत पर प्यारी जनकदुलारी तो दृष्टि नहीं आती ॥ २२ ॥

वनंसर्वंविचिनुवोयत्रसाजनकात्मजा ॥ मन्यसेयदिकाकुत्स्थमास्मशोकेमनःकृथाः ॥ १८ ॥ एवमुक्तःससौहार्दा लक्ष्मणेनसमाहितः ॥ सहसौमित्रिणारामोविचेतुमुपचक्रमे ॥ १९ ॥ तौवनानिगिरींश्चैवसरितश्चसरांसिच ॥ निखिलेनविचिन्वंतौसीतांदशरथात्मजौ ॥ २० ॥ तस्यशैलस्यसानूनिशिलाश्चशिखराणिच ॥ निखिलेनविचिन्वंतौनैवतामभिजग्मतुः ॥ २१ ॥ विचित्यसर्वतःशैलंरामोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ नेहपश्यामिसौमित्रेवैदेहींपर्वते शुभाम् ॥ २२ ॥ ततोदुःखाभिसंतप्तोलक्ष्मणोवाक्यमब्रवीत् ॥ विचरन्दंडकारण्यंभ्रातरंदीप्ततेजसम् ॥ २३ ॥ प्राप्स्यसेत्वंमहाप्राज्ञमैथिलींजनकात्मजाम् ॥ यथाविष्णुर्महाबाहुर्बलिंबद्ध्वा महीमिमाम् ॥ २४ ॥ एवमुक्तस्तुवीरेणलक्ष्मणेनसराघवः ॥ उवाचदीनयावाचादुःखाभिहतचेतनः ॥ २५ ॥ वनंसुविचितंसर्वंपद्मिन्यःफुल्लपंकजाः ॥ गिरिश्चायंमहाप्राज्ञबहुकंदरनिर्झरः ॥ नहिपश्यामिवैदेहींप्राणेभ्योऽपिगरीयसीम् ॥ २६ ॥

लक्ष्मणजी समस्त दंडकारण्य में विचरण करते हुए भी जानकीजीको न पाकर दुःखसे संतप्त हो प्रदीप्त तेजवाले अपने भ्राता रामचंद्रजी से बोले ॥ २३ ॥ कि महाबलवान् विष्णु जीने जिसप्रकार बलियोंको बांधकर इस पृथ्वीको प्राप्त कियाथा हे बुद्धिमान्! आपभी वैसेही जनककुमारी सीताजीको पामेंगे ॥ २४ ॥ वीर लक्ष्मणजीके यह वचन सुन दुःखसे चित्त हरे हुये श्रीरामचंद्रजी अतिदीनतासे बोले ॥ २५ ॥ हे महा बुद्धिमान्! सारा वन खिले हुये कमल कमलाकरसरोवर बहुत सारी कन्दराओंसे युक्त बहुत झरनोंसे सुशोभित यह पर्वत जरा २ करके देखा

लक्ष्मणजी महादीन और उदास मन हो रहेथे । उनको सीताके विना आता हुआ देखकर धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी पूछनें लगे ॥ १ ॥ हे लक्ष्मण! जब हम वनको आये और उस समय जो हमारे साथही वनको आईथीं; और तुम जिनको छोडकर यहां आये हो; वह सीता कहां हैं? ॥२ ॥ जब हम राज्यसे भ्रष्ट होकर दीनभावसे दंडकारण्यको आये, और उस समय जो हमारे दुःखमें सहाय हुई, वह तनुमध्यमा जानकीजी कहां हैं? ॥३॥ जिसके विना हम एक मुहूर्त भरभी प्राण धारण करने को उत्साही नहीं, वह देवकन्याकी समान प्राण सहाय जानकीजी कहां हैं? ॥ ४ ॥ हे लक्ष्मण! हम उन तपाये हुए सुवर्णकी समान प्रभावाली जनकात्मजाके विना देवताओंकी प्रभुताई अथवा पृथ्वीकी रजाई लेनेंकीभी अभिलाषा नहीं करते ॥ ५॥

सदृष्ट्वालक्ष्मणंदीनंशून्यंदशरथात्मजः ॥ पर्यपृच्छतधर्मात्मावैदेहीमागतंविना ॥१ ॥ प्रस्थितंदंडकारण्यंयामामनुजगामह ॥ क्वसालक्ष्मणवैदेहीयांहित्वात्वमिहागतः ॥ २ ॥ राज्यभ्रष्टस्यदीनस्यदंडकान्परिधावतः ॥ क्वसादुःखसहायामेवैदेहीतनुमध्यमा ॥ ३ ॥ यांविनानोत्सहेवीरमुहूर्तमपिजीवितुम् ॥ क्वसाप्राणसहायामेसीतासुरसुतोपमा ॥ ४ ॥ पतित्वममराणांहिपृथिव्याश्चापिलक्ष्मण ॥ विनातांतपनीयाभांनेच्छेयंजनकात्मजाम् ॥ ५ ॥ कच्चिज्जीवतिवैदेहीप्राणैःप्रियतरामम ॥ कच्चित्प्रव्राजनंवीरनमेमिथ्याभविष्यति ॥ ६ ॥ सीतानिमित्तंसौमित्रेमृतेमयिगतेत्वयि ॥ कच्चित्सकामाकैकेयीसुखितासाभविष्यति ॥ ७ ॥ सपुत्रराज्यांसिद्धार्थांमृतपुत्रातपस्विनी ॥ उपस्थास्यतिकौसल्याकच्चित्सौम्येनकैकयीम् ॥ ८ ॥ यदिजीवतिवैदेहीगमिष्याम्याश्रमंपुनः ॥ संवृत्तायदिवृत्तासाप्राणांस्त्यक्ष्यामिलक्ष्मण ॥ ९ ॥

हे वीर! हमारी प्राणोंसेभी प्यारी जानकी क्या अभीतक जीतींहैं, क्या हमने जो चौदह वर्ष तक वनमे रहनेकी प्रतिज्ञा की है यह मिथ्या तौ नहोजाय ॥ ६ ॥ लक्ष्मण! सीताके लिये हमारे प्राण त्यागने पर और तुम्हारे अयोध्यामें लौट जानेपर कैकेयी क्या सफल मनोरथ और सुखी होगी॥७॥ कैकेयी इस प्रकार अपनें पुत्रकी राज्य प्राप्तिसे जब सिद्ध काम होगी, तब क्या मृतपुत्रा, दीना, तपस्विनी, हमारी माता कौशल्याजीको विनयके साथ उसकी सेवा करनी होगी ॥ ८ ॥ हे लक्ष्मण! वैदेही यदि जीवितहैं, तब तो हम फिर आश्रमको चलतेहैं, और वह शुद्धचारिणी

अशोक शाखा समूह द्वारा अपना शरीर ढक कर हमारे शोकको अतिशय बढाती हो ॥ ३ ॥ हे देवि! तुम्हारी दोनों जांघें केलेके खंभकी सदृश हैं तुमनें उनको कदलीसे छिपा रक्खाहै सो हम उनको देख रहेहैं तुम अब उनको नहीं छिपा सकतीहो ॥ ४ ॥ हे भद्रे! तुम हँसते २ कर्णिकारके वनमें प्रवेश करतीहो, परन्तु हमको पीडन करके और अधिक उपहास करनेंका प्रयोजन नहींहै ॥ ५ ॥ विशेष करके आश्रमके स्थानमें परिहास करना अच्छा नहीं होता, हे प्रिये! यह तो हम जानतेहैं कि स्वभावसे ही तुम परिहासप्रियहो ॥ ६ ॥ परन्तु हे विशालाक्षी! यह पर्णशाला शूनी पडीहै इस कारण आओ। हे लक्ष्मण! निश्चय होताहै कि. सीताको राक्षसोंनें भक्षण कर लिया. अथवा वह उनको हरण करके

कदलीकांडसदृशौकदल्यासंवृतावुभौ ॥ ऊरूपश्यामितेदेविनासिशक्तानिगूहितुम् ॥ ४ ॥ कर्णिकारवनंभद्रेहसंती देविसेवसे ॥ अलंतेपरिहासेनममबाधावहेनवै ॥ ५ ॥ विशेषेणाश्रमस्थानेहासोयंनप्रशस्यते ॥ अवगच्छामितेशीलंपरिहासप्रियंप्रिये ॥ ६ ॥ आगच्छत्वंविशालाक्षिशून्योयमुटजस्तव ॥ सुव्यक्तंराक्षसैःसीताभक्षिताvाहृतापिवा॥७॥ नहिसाविलपंतंमामुपसंप्रतिलक्ष्मण ॥ एतानिमृगयूथानिसाश्रुनेत्राणिलक्ष्मण ॥ ८ ॥ शंसंतीवहिमेदेवींभक्षितांरजनीचरैः ॥ हाममार्येक्वयातासिहासाध्विवरवर्णिनि ॥ ९ ॥ हासकामाद्यकैकेयीदेविमेद्यभविष्यति ॥ सीतयासहनिर्यातोविनासीतामुपागतः ॥ १० ॥ कथंनामप्रवेक्ष्यामिशून्यमंतःपुरंमम ॥ निर्वीर्यइतिलोकोमांनिर्दयश्चेतिवक्ष्यति ॥ ११ ॥ कातरत्वंप्रकाशंहिसीतापनयनेनमे ॥ निवृत्तवनवासश्चजनकंमिथिलाधिपम् ॥ १२ ॥

लेगये ॥ ७ ॥ इसी कारण वह हमको विलाप करते हुए देख कर भी हमारे निकट नहीं आतीं; हे लक्ष्मण! इस पर ये मृग यूथ गण रोदन करते हैं ॥८॥ यह भी मानों यही कह रहे हैं कि राक्षसोंनें सीताका भक्षण कर लिया। हा अच्छेशीलवाली साधवि! हा वरवर्णिनी सुमुखि! हा आर्या! तुम कहां गई हो ॥ ९ ॥ अब सीताकरकै रहित देशको गमन करना पडेगा, इतने दिनोंके पीछे कैकेयीदेवी सफल मनोरथ हुई क्योंकि अब वह देखेंगी कि सीता सहित गयेथे। और आये सीता रहित! ॥ १० ॥ किस प्रकारसे हम सीता रहित अपनें रनवासमें प्रवेश करेंगे? सब लोग हमको वीर्य रहित और निर्दयी कह कर निन्दा करेंगे॥११॥सीताजीके विना संग होनेंसे निश्चय ही हमको कातरता प्राप्त हो जायगी, कारण कि जब

क्षुधा,श्रम, और प्यासके मारे रामचन्द्रजीका मुख सूख गयाथा, वह शोकितचित्तसे दीर्घ निश्वास त्याग करते लक्ष्मणजीकी आर्य भावसे निन्दा करते २ इस प्रकारसे आश्रममें आयकर देखा तो वहां सीता नहींहै वह आश्रम शून्य पडाहै॥ १९ ॥ जब सीताजीको न देखा तब श्रीरामचन्द्रजी आश्रममें प्रवेश करके सीताजीके खेलनेंके सब स्थान और वनवासके उठनें बैठनेंके स्थानमें ढूंढनें लगे, परन्तु वहांभी जनकनंदिनीको न पाया, तब श्रीरामचन्द्रजीनें जानकीजीके उठनें बैठनें और खेलनेंके स्थानोंको विसूर२याद किया, याद करतेही उनके रोम खडे होगये और बहुत घबडाये ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आर० अष्टपंचाशः सर्गः ॥ ५८ ॥ जब इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीनें आश्रमके मार्गमें वचन कहे और वह

विगर्हमाणोऽनुजमार्तरूपंक्षुधाश्रमेणैवपिपासयाच ॥ विनिःश्वसन्शुष्कमुखोविषण्णःप्रतिश्रयंप्राप्यसमीक्ष्यशून्यम्॥ १९ ॥ स्वमाश्रमंसप्रविगाह्यवीरोविहारदेशाननुसृत्यकांश्चित् ॥ एतत्तदित्येववनवासभूमौप्रहृष्टरोमाव्यथितोबभूव ॥ २० ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेअष्टपंचाशःसर्गः॥ ५८ ॥ ७ ॥ ॥
अथाश्रमादुपावृत्तमंतराराघुनंदनः॥ परिपप्रच्छसौमित्रिंरामोदुःखादिदंवचः॥ १ ॥ तमुवाचकिमर्थंत्वमागतोऽपास्यमैथिलीम् ॥ यदासातवविश्वासाद्वनेविरहितामया ॥ २ ॥ दृष्ट्वैवाभ्यागतंत्वांमेमैथिलींत्यज्यलक्ष्मण ॥ शंकमानंमहत्पापंयत्सत्यंव्यथितंमनः॥ ३ ॥ स्फुरतेनयनंसव्यंबाहुश्चहृदयंचमे ॥ दृष्ट्वालक्ष्मणदूरेत्वांसीताविरहितंपथि ॥ ४ ॥ एवमुक्तस्तुसौमित्रिर्लक्ष्मणःशुभलक्षणः ॥ भूयोदुःखसमाविष्टोदुःखितंराममब्रवीत् ॥ ५ ॥

लक्ष्मण कुछ न बोले तब फिर महादुःखीहो रामचन्द्रजी सुमित्राकुमारसेबोले ॥ १ ॥ भाई तुम कैसे सीताको छोडकर यहां चले आये ? जबकि हम तुम्हारेही विश्वासपर सीताको वनके बीच छोड आयेहैं ॥ २ ॥ यहदेखतेही कि तुम सीताजीको त्याग कर यहां आयेहो, हमारा मन जो महा अनिष्टकी शंका करके व्यथित होताथा वह हमारी शंका सत्यही सत्यहुई ॥ ३ ॥ तुमको मार्गमें दूरसेही जानकीके विन अकेला आता देखकर हमारा, वामकर, वामनेत्र और हृदयका वायांभाग फड़कने लगा ॥ ४ ॥शुभलक्षण युक्त लक्ष्मणजी रामचन्द्रजीकी यह वार्ता सुन महा दुःखित हो

श्रीरामचंद्रजी सुकेशी सीताके विरहमें महा व्याकुल होकर इस प्रकारसे विलाप करने लगे। तब भयके मारे लक्ष्मणजीका मुख पीला पड गया मन व्यथित हुआ और वह बहुतही आतुर होगये ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्य कांडे द्विषष्टितमःसर्गः ६२॥ राजकुमार श्रीरामचंद्रजी प्रियाविहीनहो शोक मोहसे आतुर होनेंके कारण लक्ष्मणजीको विषाद उत्पन्न कराते हुए आपभी बडे तीव्र विषादको प्राप्त हुए ॥ १ ॥ तिसके पीछे वह विपुल शोकमें डूबकर लंबे २ श्वास लेते हुये, रोते२ शोकसे घिरे हुए लक्ष्मणजीको उपस्थित विपदके अनुरूप वचन कहने लगे. ॥ २ ॥ हम समझतेहैं कि हमारी समान बुरे कर्म करनेवाला दूसरा पुरुष पृथ्वीपर और नहींहै, देखो एकके पीछे एक

इतिविलपतिराघवेतुदीनेवनमुपगम्यतयाविनासुकेश्या ॥ भयविकलमुखस्तुलक्ष्मणोऽपिव्यथितमनाभृशमातुरो बभूव ॥ २० ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवा०आ०आर०द्विषष्टितमःसर्गः ॥ ६२ ॥ ७ ॥ ॥ सराजपुत्रःप्रिययाविहीनःशोकेनमोहेनचपीड्यमानः ॥ विषादयन्भ्रातरमार्तरूपोभूयोविषादंप्रविवेशतीव्रम् ॥ १ ॥ सलक्ष्मणंशोकवशाभिपन्नंशोकेनिमग्नोविपुलेतुरामः ॥ उवाचवाक्यंव्यसनानुरूपमुष्णंविनिःश्वस्यरुदन्सशोकम् ॥ २ ॥ नमद्विधोदुष्कृतकर्मकारीमन्येद्वितीयोऽस्तिवसुंधरायाम् ॥ शोकानुशोकोहिपरंपरायामामेतिभिंदन्हृदयंमनश्च ॥ ३ ॥ पूर्वमयानूनमभीप्सितानिपापानिकर्माण्यसकृत्कृतानि ॥ तत्रायमद्यापतितोविपाकोदुःखेनदुःखंयदहंविशामि ॥ ४ ॥ राज्यप्रणाशःस्वजनैर्वियोगःपितुर्विनाशोजननीवियोगः॥सर्वाणिमेलक्ष्मणशोकवेगमापूरयंतिप्रविचिंतितानि ॥ ५ ॥ सर्वंतुदुःखंममलक्ष्मणेदंशांतंशरीरेवनमेत्यक्लेशम् ॥ सीतावियोगात्पुनरभ्युदीर्णंकाष्ठैरिवाग्निःसहसोपदीप्तः ॥ ६ ॥

इस प्रकार लगा तार शोक इकट्ठे होकर हमारे मन और हृदयको वेधे डालतेहैं ॥ ३ ॥ पहले जन्ममें हमनें इच्छानुसार वारंवार बहुत सारे पाप कर्म कियेहैं आज उनका फल मिलरहाहै। इसीकारण हमारे ऊपर दुःखके ऊपर दुःख पड रहेहैं ॥४॥ राज्यका नाश होना, पिताजीका मरना, माताजीका वियोग होना, और वन्धु वान्धवोंसे छूटना, यह सब वातें जब याद आतीहैं तो हमारे शोकके वेगको परिपूर्ण कर देतीहैं ॥ ५ ॥ हे लक्ष्मण! वनमें आकर सीताके साथ रहनेंसे वह सव दुःखही छूट गयेथे वरन शरीरको क्लेशका नाम नहीं जान पडताथा, परन्तु आज जानकीके वियो

कोई आवश्यकता नहीं, नघवडानेका कुछ प्रयोजन, इस बातका विचार आप छोडें, क्योंकि लोकमें ऐसा कोई पुरुष नहींहै जो संग्राममें श्रीरघुनंदन रामचंद्रजीको ॥ १४ ॥ जीतसकै आजके समयही क्या वरन कभी ऐसा नहीं हुआ और न आगेको होगा, श्रीरामचंद्रजीको तो संग्राममें इन्द्रादि देवताभी नहीं जीत सकते ॥ १५ ॥ मोहितचित्त वैदेहीजीने हमारे यह बचन सुन आँसू त्यागकर रोतेर हमको यह दारुण वचन कहे ॥ १६ ॥ कि हमारे प्रति तुम्हारा अत्यन्त पाप भाव स्थापित हुआहै, परन्तु भ्राताके विनष्ट होनेपर तुम किसी भाँतिसे हमको प्राप्त नहीं कर सकोगे ॥ १७ ॥ हम समझीं कि तुम भरतके गुप्त भावसे पठाये श्रीरामचंद्रजीके साथ आयेहो इसीसे रामचंद्रजीका आरत नाद करना सुन करभी तुम उनकी सहा

जातोवाजायमानोवासंयुगेयःपराजयेत् ॥ अजेयोराघवोयुद्धेदेवैःशक्रपुरोगमैः ॥ १५ ॥ एवमुक्तातुवैदेहीपरिमोहितचेतना ॥ उवाचाऽश्रूणिमुंचंतीदारुणंमामिदंवचः ॥ १६ ॥ भावोमयितवात्यर्थंपापएवनिवेशितः ॥ विनष्टेभ्रातरिप्राप्तुंनचत्वंमामवाप्स्यसे ॥ १७ ॥ संकेताद्भरतेनत्वंरामंसमनुगच्छसि ॥ क्रोशंतंहियथात्यर्थंनैनमभ्यवपद्यसे ॥ १८ ॥ रिपुःप्रच्छन्नचारीत्वंमदर्थमनुगच्छसि ॥ राघवस्यांतरंप्रेप्सुस्तथैनंनाभिपद्यसे ॥ १९ ॥ एवमुक्तस्तुवैदेह्यासंरब्धोरक्तलोचनः ॥ क्रोधात्प्रस्फुरमाणोष्ठआश्रमादभिनिर्गतः ॥ २० ॥ एवंब्रुवाणंसौमित्रिंरामःसंतापमोहितः ॥ अब्रवीद्दुष्कृतंसौम्यतांविनात्वमिहागतः ॥ २१ ॥ जानन्नपिसमर्थंमांरक्षसामपवारणे ॥ अनेनक्रोधवाक्येनमैथिल्यानिर्गतोभवान् ॥ २२ ॥

यतार्थ नहीं जाते ॥ १८ ॥ अथवा तुम हमारे गुप्त शत्रुहो, हमारेही लेलेनेके लिये रामचंद्रजीके पीछेर वनमें फिरतेहो और सर्वदा अवसर ढूंढतेहो कि कब रामचंद्र कहींको जॉय, और हम इनको ग्रहण करें इस कारणसे तुम उनकी सहायता करनेके लिये नहीं जाते ॥ १९ ॥ जब वैदेहीजीनें इस प्रकार कहा, तब अति क्रोधके मारे हमारे नेत्र लाल हो आये, रोषमें भरकर अधर फडकने लगे और हम तैसेही आश्रमसे चल खडे हुए ॥२०॥ जब लक्ष्मणजीनें इस प्रकारसे कहना आरंभ किया, तब रामचंद्रजी शोकसे मोहित होकर उनसे बोले कि हे सौम्य! तुम जो जानकीको छोडकर यहां चले आये यह अतिशय दुष्कर कर्म हुआ ॥ २१ ॥ देखो, राक्षसोंका बल निवारण करनेकी हममें विलक्षण सामर्थ्य है उसको जानबूझ करभी तुम

प्रथम हमारे साथ इस शिलातल पर तुम्हारे निकट बैठकर हँसते २ तुमसे कितनी बातें कहतीथीं ॥ १२ ॥ यह नदियोंमें श्रेष्ठ गोदावरीहै, जो हमारी प्रियाको सर्वदाही बहुत प्यारीथी, सो हमारे मनमें यह बातभी आतीहै कि कदाचित् वह इस नदीके तीरपर चली गईहो। परन्तु नहीं वह अकेली यहांपर कभी नहीं आतीथीं ॥ १३ ॥ तब क्या वह कमल दलके समान नेत्रवाली कमलमुखी जानकी कमल लेनेंको चली गई हैं यहभी किसी प्रकार ठीक नहीं हो सकता; क्योंकि वह कभी हमारे विना कमल लेनें नहीं जातीथीं ॥ १४ ॥ अथवा वह इस पुष्पित वृक्ष समूह शोभित अनेक जातिके विहंगमोंसे पूर्ण यह वन अपनी इच्छानुसार देखनेंको गई हैं यहभी बात किसी भांति संभव नहीं हो सकती, क्यों

गोदावरीयंसरितांवरिष्ठाप्रियाप्रियायाममनित्यकालम्॥अप्यत्रगच्छेदितिचिंतयामिनैकाकिनीयातिहिसाकदाचि
त्॥ १३ ॥ पद्माननापद्मपलाशनेत्रापद्मानिवानेतुमभिप्रयाता ॥ तदप्ययुक्तंनहिसाकदाचिन्मयाविनागच्छतिपंकजा
नि ॥ १४ ॥ कामंत्विदंपुष्पितवृक्षषंडंनानाविधैःपक्षिगणैरुपेतम् ॥ वनंप्रयातानुतदप्ययुक्तमेकाकिनीसातिबिभेति
भीरुः ॥ १५ ॥ आदित्यभोलोककृताकृतज्ञलोकस्यसत्यानृतकर्मसाक्षिन् ॥ ममप्रियासाक्वगताहृतावाशंसस्वमेशो
कहतस्यसर्वम् ॥ १६ ॥ लोकेषुसर्वेषुननास्तिकिंचिद्यत्तेननित्यंविदितंभवेत्तव ॥ शंसस्ववायोकुलपालिनींतांमृता
हृतावापथिवर्ततेवा ॥ १७ ॥ इतीवतंशोकविधेयदेहंरामंविसंज्ञंविलपंतमेव ॥ उवाचसौमित्रिरदीनसत्त्वोन्याय्ये
स्थितःकालयुतंचवाक्यम् ॥ १८ ॥

कि उनका डरपोक स्वभावहै अकेली वनके मध्य प्रवेश करनेंसे वह बहुत डरतींथीं ॥ १५ ॥ हे भगवन्! सूर्य! आप सबके कृता कृतको जानतेहैं, और सत्य मिथ्या सबके साक्षीभी आपहैं. इस कारणसे शोक हत हमको बतला दीजिये कि हमारी प्रिया कहां चलीगई अथवा कौंन उनको हरकर लेगया ॥ १६ ॥ हे पवन! समस्त लोकोंमें ऐसा कुछ नहींहै जो नित्यहीतुम्हारे ज्ञान मार्गमें उदित न होताहो, इससे बतला दीजिये कि हमारी उन कुलमर्य्यादारक्षनी सीतानें प्राण दियेहैं या वह किसीसे हरी गईहैं,अथवा कहीं मार्गमें टिक रहींहैं ॥ १७ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीनें शोक

द्धि नहींहोती ॥ १ ॥ श्रीरामचंद्रजी वारंवार अपशकुन होते देखकर आपही कहनेंलगे कि जनें सीता कुशलसेहैं अथवा नहीं॥ २ ॥ यह सोचते वि चारते सीताके दर्शनकरनेंकी लालसासे शीघ्र २ चलकर देखतेहुए किआश्रम सूनापडाहै यह देखकर श्रीरामचंद्रजी बहुत उकसाये॥ ३॥ वह वे ग सहित इधर उधर भुजायें चला और घूमकर समस्त पर्ण शालाके स्थान २ करके खोजनेलगे ॥ ४ ॥ रामचंद्रजीनें पर्णशालामें गमन करके दे खाकि वहां सीता नहींहैं जानकी बिन हेमंतऋतुके समागम से ध्वस्तपद्मिनीकी समान हो पर्णशाला अत्यन्त श्री विहीन अवस्थामें पडीथी ॥ ५ ॥ वन देवतागण आश्रमको श्रीभ्रष्ट और विध्वस्त देखकर एकवारही छोडकर चलेगये आश्रमके मृग पक्षी और समस्त पुष्पभी मलीन

उपालक्ष्यनिमित्तानिसोशुभानिमुहुर्मुहुः ॥ अपिक्षेमंतुसीतायाइतिवैव्याजहारह ॥ २ ॥ त्वरमाणोजगामाथसी तादर्शनलालसः ॥ शून्यमावसथंदृष्ट्वाबभूवोद्विग्नमानसः ॥ ३ ॥ उद्भ्रमन्निववेगेनविक्षिपन्रघुनंदनः ॥ तत्रतत्रो टजस्थानमभिवीक्ष्यसमंततः ॥ ४ ॥ ददर्शपर्णशालांचसीतयारहितांतदा ॥ श्रियाविरहितांध्वस्तांहेमंतेपद्मिनी मिव ॥ ५ ॥ रुदंतमिववृक्षैश्चग्लानपुष्पमृगद्विजम् ॥ श्रियाविहीनंविध्वस्तंसंत्यक्तंवनदैवतैः ॥ ६ ॥ विप्रकीर्णा जिनकुशंविप्रविद्धबृसीकटम्॥ दृष्ट्वाशून्योटजस्थानंविललापपुनःपुनः ॥७॥ हतामृतावानष्टावाभक्षितावाभविष्यति ॥ निलीनाप्यथवाभीरुरथवावनमाश्रिता ॥ ८ ॥ गताविचेतुंपुष्पाणिफलान्यपिचवापुनः ॥ अथवापद्मिनींयाताज लार्थंवानदींगता ॥९॥ यत्नान्मृगयमाणस्तुनाससादवनेप्रियाम् ॥ शोकरक्तेक्षणःश्रीमानुन्मत्तइवलक्ष्यते ॥ १० ॥

होगयेथे, वहांपरके वृक्ष मानों रोरहेथे ॥ ६ ॥ मृगचर्म और कुश इधर उधर पडे और कुशासन छिन्नभिन्न और गिरे पडेथे, पर्णशालाकी ऐ सी अवस्था देखकर श्रीरामचंद्रजी वारंवार यह कहकर विलाप करनेंलगे ॥ ७ ॥ कि निश्चय जानकी हरीगई वा मृतक होगई, अथवा किसी क रके भक्षण करडालीगई, या वह डरपोक स्वभाववाली छिप रहींहैं या वनमें चली गईहैं ॥८॥ अथवा वह फूल फल चुननेंके लिये कहीं वनमेंगई हैं वा जल लानेकेलिये सरोवर वा नदीपर गई होंगी ॥ ९ ॥ श्रीरामचंद्रजीने यत्नपूर्वक ढूंढने भालने परभी वनके बीच प्रियाको कहीं नपाया, तब

श्रीरामचंद्रजी आपही गोदावरी नदीके तटपर गये, और वहां खडे होकर बूझने लगे कि सीता कहां है? ॥ ६ ॥ समस्त प्राणियोंनें तथा गोदावरी नदी किसीनें भी श्रीरामचंद्रजीको यह न बतायाकि मारे जानेंके योग्य राक्षस रावण सीताको हरकर लेगयाहै ॥ ७ ॥ तब पृथ्वी जल, वायु, अग्नि, आकाश इन पांच महाभूतोंनें व प्राणियोंनें गोदावरी नदीसे कहा कि रामचंद्रजीसे सीताजीको बताओ, और सोच करते हुये रामचंद्रजीनें भी पूछा परन्तु गोदावरीनें न बताया ॥ ८ ॥ न बतानेंका कारण यह हुआ कि रावणका रूप और उस दुष्टात्माके कार्योंका स्म रण करनेंके मारे भयसे गोदावरीनदीनें श्रीरामचंद्रजीसे सीताको न बताया ॥ ९ ॥ इस प्रकार जब गोदावरीनें सीताजीके दर्शनसे निराश किया

समरामःभिचक्रामस्वयंगोदावरींनदीम् ॥ सतामुपस्थितोरामःक्वसीतेत्येवमब्रवीत् ॥ ६ ॥ भूतानिराक्षसेंद्रेणव धार्हेणहृतामपि ॥ नतांशशंसूरामायतथागोदावरीनदी ॥ ७ ॥ ततःप्रचोदिताभूतैःशंसचास्मैप्रियामिति ॥ नचसह्या वदत्सीतांपृष्टारामेणशोचता ॥ ८ ॥ रावणस्यचतद्रूपंकर्माणिचदुरात्मनः ॥ ध्यात्वाभयात्तुवैदेहसिांनदीनशशं सह॥ ९ ॥ निराशस्तुतयानद्यासीतायादर्शनेकृतः ॥ उवाचरामःसौमित्रिंसीतादर्शनकर्षितः ॥ १० ॥ एषागोदावरीसौ म्यकिंचिन्नप्रतिभाषते ॥ किंतुलक्ष्मणवक्ष्यामिसमेत्यजनकंवचः ॥ ११ ॥ मातरंचैववैदेह्याविनातामहमप्रियम् ॥ यामेराज्यविहीनस्यवनेवन्येनजीवतः ॥ १२ ॥ सर्वंव्यपानयच्छोकंवैदेहीक्वनुसागता ॥ ज्ञातिवर्गविहीनस्यवैदेही मप्यपश्यतः ॥ १३ ॥ मन्येदीर्घाभविष्यंतिरात्रयोममजाग्रतः ॥ मंदाकिनींजनस्थानमिमंप्रस्रवणंगिरिम् ॥ १४ ॥

तब श्रीरामचंद्रजी सीताके विरहसे व्यथित होकर लक्ष्मणजीसे बोले ॥ १० ॥ हे शुभदर्शन! यह गोदावरी तो कुछभी उत्तर नहीं देती परन्तु हम सीताके विना अपने देशमें जाकर पिता जनकजीसे क्या कहेंगे ॥ ११ ॥ और वैदेहीजीकी मातासे विना जानकीके कैसे अप्रिय वचन कहेंगे, जो जानकीजी राज्यविहीन वनमें कंद मूलादि भोजन कर जीतेहुये हमारे ॥ १२ ॥ सब शोक अपनयन करतींथीं वह वैदेहीजी कहां गई? हम जातिके लोगोंसे सहायक विहीन होनेके कारण और सीताजीका दर्शन न पानेंके कारण ॥१३॥ जागरित रहनेंसे रात्रि हमको बडी जान पडेंगी

हे अशोक ! तुम शोकको दूर किया करतेहो, इससे शोकसे हतचित्त मुझको प्रियाके साथ मिलाकर अपनें नाम वाला हमको करदो ॥ १७ ॥ हे ताल ! यदि तुमने उन पक्वतालकी समान स्तनवाली जानकीको देखाहै और हमारे ऊपर कुछभी दया करतेहो तव वह वरारोहा सीता कहांहै ? सो हमको बतादो ॥ १८ ॥ हे जामुन ! यदि जाम्बूनद सुवर्ण सम प्रभावाली हमारी प्रियाको तुमनें देखाहै तौ निःशंक चित्तसे बताओ ॥ १९ ॥ हे कर्णिकार ! आज तुम पुष्पित होकर अत्यन्तशोभा पारहे हो और हमारी प्रियाभी तुमसे बहुतही स्नेह करतींथीं सो यदि कहीं उन साध्वीको देखाहो तौ कहो ॥ २० ॥ इसी प्रकार आम,नीम, महाशाल, कटहल, व अनारको देख २ कर श्रीरामचंद्रजी उनसे

अशोकशोकापनुदशोकोपहतचेतनम् ॥ त्वन्नामानंकुरुक्षिप्रंप्रियासंदर्शनेनमाम् ॥ १७ ॥ यदितालत्वयादृष्टापक्वतालोपमस्तनी ॥ कथयस्ववरारोहांकारुण्यंयदितेमयि ॥ १८ ॥ यदिदृष्टात्वयाजंबोजांबूनदसमप्रभा ॥ प्रियांयदिविजानासिनिःशंकंकथयस्वमे ॥ १९ ॥ अहोत्वंकर्णिकाराद्यपुष्पितःशोभसेभृशम् ॥ कर्णिकारप्रियांसाध्वींशंसदृष्टायदिप्रिया ॥ २० ॥ चूतनीपमहासालान्पनसान्कुररांस्तथा ॥ दाडिमानपितान्गत्वादृष्ट्वारामोमहायशाः ॥ २१ ॥ बकुलानथपुन्नागांश्चंदनान्केतकांस्तथा ॥ पृच्छन्रामोवनेभ्रांतउन्मत्तइवलक्ष्यते ॥ २२ ॥ अथवामृगशावाक्षींमृगजानासिमैथिलीम् ॥ मृगविप्रेक्षणीकांतामृगीभिःसहिताभवेत् ॥ २३ ॥ गजसागजनासोरूर्यदिदृष्टात्वयाभवेत् ॥ तांमन्येविदितांतुभ्यमाख्याहिवरवारण ॥ २४ ॥

कहतेथे ॥ २१ ॥ और बकुल, पुन्नाग, चन्दन, केतकी आदि और वृक्षोंकेनीचे २ जाकर भ्रान्त चित्तहो उन्मत्तकी समान श्रीरामचंद्रजी वनमें विचरने लगे ॥ २२ ॥ तिसके पीछे श्रीरामचंद्रजी मृग इत्यादि पशुओंसेपूछते हुए बोले कि, हे मृग ! तुम क्या उन मृगछौनाकीसी आंखोंवाली सीताका कुछ वृत्तान्त जान्तेहो ? अथवा वह मृगलोचना मृगीगणोंके साथ मिलकर घूमती होंगी ॥ २३ ॥ हे गज ! तुम्हारीही शूंड समान आकार वाली उनकी जांघेंहै, यदि तुमनें उनको देखाहो तौकहो ? इस्से हे गजराज ! हमें बतादो कि वह कहांहै ? ॥ २४ ॥

उपाय मिलजावे, तब श्रीरामचन्द्रजी ऐसाहीहो कहकर दक्षिण दिशाकी ओर चले ॥ २३ ॥ इसके पश्चात् २ लक्ष्मणजी आगे २ आप चले दोनों भाईजन इधर उधर देखते भालते व आपसमें बात चीत करते २ चले॥२४॥आगे चलकर देखा तो कहींपर फूल पडेहैं। पृथ्वीपर फूलोंकी वृष्टि पडी देखकर श्रीरामचन्द्रजी ॥ २५ ॥ वह बडे दुःखित हो दुःखित लक्ष्मणजीसे बोले, कि हे लक्ष्मण हम जानतेहैं कि यह वही पुष्पहैं ॥ २६ ॥ जो हमनें वैदेहीजीको दियेथे और उन्होंने यह सब अपनें अंगोंमें धारण कियेथे, यह अभी कुम्हलाये नहीं, ऐसा बोध होताहै कि हमारा प्रिय करनेंके लिये सूर्य, पवन, तपस्विनी पृथ्वीनें ॥ २७ ॥ इन पुष्पोंकी रक्षाकीहै, महाबाहु धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी पुरुषश्रेष्ठ लक्ष्मणजीसे ऐसा कहा ॥ २८ ॥

लक्ष्मणानुगतःश्रीमान्वीक्षमाणोवसुंधराम्॥एवंसंभाषमाणौतावन्योन्यंभ्रातरावुभौ॥२४॥ वसुंधरायांपतितपुष्पमार्गमपश्यताम् ॥ पुष्पवृष्टिंनिपतितांदृष्ट्वारामोमहीतले ॥ २५ ॥ उवाचलक्ष्मणंवीरोदुःखितोदुःखितंवचः ॥ अभिजानामिपुष्पाणितानीमानीहलक्ष्मण ॥ २६ ॥ अपिनद्धानिवैदेह्यामयादत्तानिकानने ॥ मन्येसूर्यश्चवायुश्चमेदिनीचयशस्विनी ॥ २७ ॥ अभिरक्षंतिपुष्पाणिप्रकुर्वंतोममप्रियम् ॥ एवमुक्त्वामहाबाहुर्लक्ष्मणंपुरुषर्षभम् ॥ २८ ॥ उवाचरामोधर्मात्मागिरिंप्रस्रवणाकुलम्॥कच्चित्क्षितिभृतांनाथदृष्टासर्वांगसुंदरी ॥ २९ ॥ रामारम्येवनोद्देशेमयाविरहितात्वया ॥ क्रुद्धोब्रवीद्गिरिंतत्रसिंहःक्षुद्रमृगंयथा ॥ ३० ॥ तांहेमवर्णांहेमांगींसीतांदर्शयपर्वत ॥ यावत्सानूनिसर्वाणिनतेविध्वंसयाम्यहम् ॥ ३१ ॥ एवमुक्तस्तुरामेणपर्वतोमैथिलींप्रति ॥ दर्शयन्निवतांसीतांनादर्शयतराघवे ॥ ३२ ॥

बहुत सारे झरनें जिसमें झररहे ऐसे सामनेंवाले पर्वतसे पुकारकर बोले. हे पर्वतश्रेष्ठ! तुमनें क्या उन सर्वांगसुन्दरीको देखाहै? ॥ २९ ॥ हमारी प्रिया हमारे विना रमणीय इस वनमें देखीहै? जब उस पर्वतनें इनकी बातका कुछ उत्तर न दिया तब यह क्रुद्ध होकर उस पर्वतसे बोले जिस प्रकार सिंह छोटे मृगोंसे कडककर बोलताहै ॥ ३० ॥ हे पर्वत! जब तक हम तुम्हारे शृङ्ग तोड न डालें, तबतक तुम सोनेकी समान वर्णवाली हमारी सीताजीको हमें दिखादो ॥ ३१ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीनें ऐसा कहा तो मानों वह पर्वत जानकीजीको जानता हुआ श्रीरामचं-

सो राक्षसोंनें ऐसी मनोहर गरदनकोभी खा डाला, राक्षसोंनें जब हमारी प्रियाको भक्षण किया होगा, तौ न जानें उन्होंनें कितना विलाप किया होगा ॥ ३२ ॥ उनकी दोनों बाँहैं पल्लवकी समान कोमल और हाथोंके गहनोंसे सुशोभितहैं निश्चयही राक्षसोंनें इधर उधर फेंक फांक कर उनको खालिया उस कालमें उन दोनों बाहोंका अग्रभाग अवश्य कंपित हुआ होगा ॥ ३३ ॥ हाय ! हम क्या राक्षसोंके भोजनार्थं ही उनको आश्रममें अकेला छोडकर यहां आयेथे इस्सेही वह बन्धु बान्धव युक्त होकरभी राक्षसोंके पेटमें पड गई और कोई बन्धु बान्धव काम न आया॥३४॥ हे लक्ष्मण ! क्या तुमनें प्राणप्यारीको कहीं देखाहै ? हा प्रिया ! हासीते! हा भद्रे! तुम कहां गई इन शब्दोंको रामचंद्रजी वार २ कहतेथे ॥३५॥ इस

नूनंविक्षिप्यमाणौतौबाहूपल्लवकोमलौ ॥ भक्षितौवेपमानाग्रौसहस्ताभरणांगदौ ॥ ३३ ॥ मयाविरहिताबालारक्षसां भक्षणायवै ॥ सार्थेनैवपरित्यक्ताभक्षिताबहुबांधवा ॥ ३४ ॥ हालक्ष्मणमहाबाहोपश्यसेत्वंप्रियांकचित् ॥ हाप्रियेक्कगताभद्रेहासीतेतिपुनःपुनः ॥ ३५ ॥इत्येवंविलपन्रामःपरिधावन्वनाद्वनम् ॥ क्कचिदुद्भ्रमतेयोगात्कचिद्विभ्रमतेबलात् ॥ ३६ ॥ क्कचिन्मत्तइवाभातिकांतान्वेषणतत्परः ॥ सवनानिनदीःशैलान्गिरिप्रस्रवणानिच ॥ काननानिच वेगेनभ्रमत्यपरिसंस्थितः ॥ ३७ ॥ तदासगत्वाविपुलंमहद्वनंपरीत्यसर्वंत्वथमैथिलींप्रति ॥ अनिष्ठिताशःसचकार मार्गणेपुनःप्रियायाःपरमंपरिश्रमम् ॥ ३८ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेपष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥ दृष्ट्वाश्रमपदंशून्यंरामोदशरथात्मजः ॥ रहितांपर्णशालांचप्रविद्धान्यासनानिच ॥ १ ॥

प्रकार वारंवार विलाप करते२रामचंद्रजी वन२में वेग सहित घूमनें लगे कहीं ठोकर खाकर गिर पडते और कभी२ दिशा विदिशाओंमें घूमनें लगते॥३६॥ कभी रामचंद्रजी उन्मत्तकी समान दृष्टि आते कभी२प्रियाके ढूंढनें में तत्पर होकर वेग सहित नदी पर्वत झरनें और समस्त वनोंमें भ्रमण करने लगे ३७॥ उस समय श्रीरामचन्द्रजी स्थिर होकर कहीं भी न रह सकते।और एक महा वनमें प्रवेश करके उसमें चारों ओर जानकीजीको एक २ वृक्ष और एक२ स्थल ढूंढने परभी रामचन्द्रजीका अभिलाप पूर्ण नहीं हुआ । परन्तु वह फिरभी प्यारी सुकुमारी जनकदुलारीकी खोज करनेमें परिश्रम करने लगे ॥ ३८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० आर० पष्टितमः सर्गः॥६० ॥ इस प्रकार ढूंढते भालते श्रीरामचन्द्रजी फिर आश्रममें आये तो देखा

हे भइया, लक्ष्मण! हमको जान पडताहै कि कामरूपी राक्षसोंने जानकीजीके खंड २ कर आपसमें बांट चूंट उनको खाडाला ॥ ४१ ॥ हे लक्ष्मण! ऐसा समझमें आताहै कि सीताके लिये झगडा होंनेंसे यहां दो राक्षसोंका घोर युद्ध हुआथा इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ४२ ॥ हे सौम्य! किसीका यह मुक्ता मणिसे बना हुआ रमणीय विभूषित धनुष पृथ्वी पर टूटा हुआ पडाहै ॥ ४३ ॥ हे वत्स! या तौ यह धनुष राक्षसोंका है। वा देवता ओंका है। प्रातःकालके सूर्यकी समान अरुण (लाल) वैदूर्य मणिकी मूठ इसमें लगीहै ॥ ४४ ॥ किसीका यह सुवर्णका कवचभी रत्ती २

मन्येलक्ष्मणवैदेहीराक्षसैःकामरूपिभिः ॥ भित्त्वाभित्त्वाविभक्तावाभक्षितावाभविष्यति ॥ ४१ ॥ तस्यानिमित्तं सीतायाद्वयोर्विवदमानयोः ॥ बभूवयुद्धंसौमित्रेघोरंराक्षसयोरिह ॥ ४२ ॥ मुक्तामणिचितंचेदंरमणीयंविभूषितम् ॥ धरण्यांपतितंसौम्यकस्यभग्नंमहद्धनुः ॥ ४३ ॥ राक्षसानामिदंवत्ससुराणामथवापिवा ॥ तरुणादित्यसंकाशंवैदूर्यगु लिकाचितम् ॥ ४४ ॥ विशीर्णंपतितंभूमौकवचंकस्यकांचनम् ॥ छत्रंशतशलाकंचदिव्यमाल्योपशोभितम् ॥४५॥ भग्नदंडमिदंसौम्यभूमौकस्यनिपातितम् ॥ कांचनोरच्छदाश्चेमेपिशाचवदनाःखराः ॥ ४६ ॥ भीमरूपामहाकायाः कस्यवानिहतारणे ॥ दीप्तपावकसंकाशोद्युतिमान्समरध्वजः ॥ ४७ ॥ अपविद्धश्चभग्नश्चकस्यसांग्रामिकोरथः ॥ रथाक्षमात्राविशिखास्तपनीयविभूषणाः ॥ ४८ ॥ कस्येमेनिहताबाणाःप्रकीर्णाघोरदर्शनाः ॥ शरावरौशरैःपूर्णौ विध्वस्तौपश्यलक्ष्मण ॥ ४९ ॥

टूटा फूटा हुआ पृथ्वीपर पडाहै और यह शत २ शलाका समन्वित दिव्य माला शोभित छत्र किसका भूमिपर पडाहै ॥ ४५ ॥ हे सौम्य! इसका दंडा टूट गयाहै किसने तोडाहै व सोनेंकी गर्दनी पडी पिशाचों समान मुख वाले गधे भी ॥ ४६ ॥ महा भयंकर व बडे आकारवाले किसीके रणमें मरे पडे हैं। फिर दीप्तिमान अग्निके समान अति देदीप्यमान किसीका युद्ध में काम देनेवाला रथभी पडाहै ॥ ४७ ॥ जो जगह२ पटकने व दे मारनेंसे टूट गयाहै! वह किसीके रथके लम्बे२ बांसभी सुवर्णके विभूषणोंसे भूषित ॥ ४८ ॥ हे लक्ष्मण! टूटे फूटे पडेहैं

हमको यहां छोड कहां जातीहो? जिस प्रकार कुटिल मनुष्यको कीर्त्ति छोड देती है। हे वरारोहे! हे सुमध्यमे! तुम हमको न छोडो ॥ १० ॥ हम तुम्हारे विरहमें अपना जीवन परित्याग करेगे श्रीरामचन्द्रजी सीता के दर्शनाभिलाषी होकर इस प्रकार विलाप करनें लगे ॥ ११ ॥ परन्तु दुःखसे आरत हुए उन्होंने जानकीजीको न देखा; इस कारण वह जानकीके शोकमें निमग्न होकर ॥ १२ ॥ अतीव दलदलमें फँसे हुए महा गजकी समान बहुतही व्याकुल होगये । रामचन्द्रजीकी यह दशा देख लक्ष्मणजी उनके हितकी कामनासे कहनें लगे ॥ १३ ॥ हे महाद्युतिमान्! आप विषाद न कीजिये। हमारे साथ यत्न कीजिये तब अवश्यही सीताका दर्शन मिलैगा। हे वीर! यह बहुत कन्दराओंसे शोभित गिरिवर जो है और

त्वयाविरहितश्चाहंत्यक्ष्येजीवितमात्मनः ॥ इतीवविलपन्रामःसीतादर्शनलालसः ॥ ११ ॥ नददर्शसुदुःखार्तोराघवो जनकात्मजाम् ॥ अनासादयमानंतंसीतांशोकपरायणम् ॥ १२ ॥ पंकमासाद्यविपुलंसीदंतमिवकुंजरम् ॥ लक्ष्मणो राममत्यर्थमुवाचहितकाम्यया ॥ १३ ॥ माविषादंमहाबुद्धेकुरुयत्नंमयासह ॥ इदंगिरिवरंवीरबहुकंदरशोभित म् ॥ १४ ॥ प्रियकाननसंचारावनोन्मत्ताचमैथिली ॥ सावनंवाप्रविष्टास्यान्नलिनींवासुपुष्पिताम् ॥ १५ ॥ सरितंवा पिसंप्राप्तामीनवंजुलसेविताम् ॥ वित्रासयितुकामावालीनास्यात्काननेक्वचित् ॥ १६ ॥ जिज्ञासमानावैदेहीत्वांमां चपुरुषर्षभ ॥ तस्याह्यन्वेषणेश्रीमन्क्षिप्रमेवयतावहे ॥ १७ ॥

इस वनमें घूमना जानकीजीको बहुत प्यारा है, क्योंकि वनको देख वह सदा मत्त हो जातीथीं सो क्या अचरजहै कि वह वन देखनें न चली गईहों अथवा कोई पुष्प शोभित कमल युक्त तलैयां देखनें गई हों ॥ १४ ॥ १५ ॥ अथवा मत्स्ययुक्त वेतसनामक विहंगसेवित नदीपर तो न चली गई हों! अथवा हम तुमको त्रासित करनेंकी कामनासे इस वनके किसी स्थानमें तो न छिप रहीं हों ॥ १६ ॥ हे पुरुषसिंह! वह यह जाननेंके लिये वनमें लुकाई हैं कि, हम वा आप किस प्रकारसे उनको खोजकर पालेंगे, सो हमको चाहिये कि उनके खोजनेंका अवश्य यत्न करें ॥ १७ ॥

चंद्रमाकी चांदनीको मिटाय, महा सूर्यके समान उदयवत् हमारा प्रकाश देखो, जो कि सुशीलता इत्यादि गुणोंको छोड अब सबको ठीककर
तेहैं॥ ५७ ॥ हे लक्ष्मण! तुम देखते रहो कि अब यक्ष, गन्धर्व,पिशाच, राक्षस, किन्नर, वा मनुष्य कोईभी सुख प्राप्त करनेंको समर्थ नहीं
होगा ॥ ५८ ॥ हे लक्ष्मण आज हमारे बाण समूहसे समस्त आकाशव्याप्त हो जायगा, देखो आज हम त्रिलोक वासी प्राणियोंके गमनागमन
रोके देतेहैं आज हम त्रिलोकीको कालके कवरमें निक्षेप करैंगे ॥ ५९ ॥जब हम सबका गमनागमन रोक देंगे तौ इस्से ग्रहोंकी चाल रुक जायगी
चंद्रमा अन्तर्हित हो जांयगे, वायु, अग्नि, और सूर्य इत्यादिकी द्युतिके नाशहोनेंसे, सब जगह गाढा अंधकार छा जायगा ॥ ६० ॥ सबही शैल शिखर

संहृत्यैवशशिज्योत्स्नांमहान्सूर्यइवोदितः ॥ संहृत्यैवगुणान्सर्वान्ममतेजःप्रकाशते ॥ ५७ ॥ नैवयक्षानगंधर्वानपि
शाचानराक्षसाः॥ किंनरावामनुष्यावासुखंप्राप्स्यंतिलक्ष्मण ॥ ५८ ॥ ममास्त्रबाणसंपूर्णमाकाशंपश्यलक्ष्मण ॥
असंपातंकरिष्यामिह्यद्यत्रैलोक्यचारिणाम् ॥ ५९ ॥ सन्निरुद्धग्रहगणमावारितनिशाकरम् ॥ विप्रनष्टानलमरु
द्भास्करद्युतिसंवृतम्॥६०॥विनिर्मथितशैलाग्रंशुष्यमाणजलाशयम्॥ध्वस्तद्रुमलतागुल्मंविप्रणाशितसागरम्॥६१॥
त्रैलोक्यंतुकरिष्यामिसंयुक्तंकालकर्मणा ॥ नतेकुशलिनींसीतांप्रदास्यंतिममेश्वराः ॥ ६२ ॥ अस्मिन्मुहूर्तेसौमित्रे
ममद्रक्ष्यंतिविक्रमम् ॥ नाकाशमुत्पतिष्यंतिसर्वभूतानिलक्ष्मण ॥ ६३ ॥ समाकुलममर्यादंजगत्पश्याद्यलक्ष्मण ॥
आकर्णपूर्णैरिषुभिर्जीवलोकदुरावरैः ॥ ६४ ॥ करिष्येमैथिलीहेतोरपिशाचमराक्षसम् ॥ ममरोषप्रयुक्तानांविशि
खानांबलंसुराः ॥ ६५ ॥

मथित हो जांयगे, समुद्र सूख जांयगे, वृक्षलता, और गुल्म विध्वंस होजांयगे, और वन एक साथही उजड जांयगे ॥ ६१ ॥ हम तीनों लोकोंका
नाश करदेंगे यदि इन्द्रादि देवगण मंगलमय जानकीजीको नदेदेंगे ॥६२॥तौ हमारा पराक्रम देखना हे लक्ष्मण! उस समय आकाशमेंभी कूदकर
कोई न वच सकेगा ॥ ६३ ॥ हे लक्ष्मण! आज हमारे चापके मुखसे छूटेहुये शर जालसे निरन्तर मर्दित होकर सब जगत् महा व्याकुल मर्यादा शू
न्य हो जायगा, और मृग व पक्षीगण सबही सब भांतिसे भ्रान्त और विनष्टहोजांयगे ॥ ६४ ॥ आज हम सीताके लिये कानतक प्रत्यंचा खेंच छोडे

व ढूंढा तथापि प्राणोंसे भी बहुत भारी प्यारी जानकीजीके दर्शन हमने न पाये ॥ २६ ॥ सीताजीके हरणसे संतापितहो श्रीरामचंद्रजी शोकसे दुःखी और व्याकुल होकर इस प्रकार विलाप करते २एक मुहूर्त्त भर तक रामचंद्रजी विह्वल होरहे ॥ २७ ॥ वह बुद्धिहीन और चैतन्य रहित हो गये और सर्व शरीर विह्वल होगया इस प्रकार श्रीरामचंद्रजी अतिशय व्याकुल और स्पन्दनाहीन होकर गरम लंबे २ श्वासलेकर विलाप करनेंलगे॥२८॥ इसके पश्चात् राजीवलोचन श्रीरामचंद्रजीनें वारंवार श्वास ले हाप्रिये! ऐसा कह गद्गद हो आंसूभर बडे शब्दसे रोदन करना आरंभ किया ॥ २९ ॥ रामचंद्रजीको देखकर उनके प्रिय भ्राता लक्ष्मणजी शोकसे आरत हो विनय सहित हाथ जोड उनको समझाने बुझाने लगे। परन्तु श्रीराम

एवंसविलपन्रामःसीताहरणकर्शितः ॥ दीनःशोकसमाविष्टोमुहूर्तंविह्वलोभवत् ॥ २७ ॥ सविह्वलितसर्वांगोगतबुद्धिर्विचेतनः ॥ विषसादातुरोदीनोनिःश्वस्याशीतमायतम् ॥ २८ ॥ बहुशःसतुनिःश्वस्यरामोराजीवलोचनः ॥ हाप्रियेतिविचुक्रोशबहुशोबाष्पगद्गदः ॥ २९ ॥ तंसांत्वयामासततोलक्ष्मणःप्रियबांधवम् ॥ बहुप्रकारंशोकार्तःप्रश्रितःप्रश्रितांजली ॥ ३० ॥ अनादृत्यतुतद्वाक्यंलक्ष्मणोष्ठपुटच्युतम् ॥ अपश्यंस्तांप्रियांसीतांप्राक्रोशत्सपुनःपुनः ॥ ३१ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेएकषष्टितमःसर्गः ॥ ६१ ॥ सीतामपश्यन्धर्मात्माशोकोपहतचेतनः ॥ विललापमहाबाहूरामःकमललोचनः ॥ १ ॥ पश्यन्निवचतांसीतामपश्यन्मन्मथार्दितः ॥ उवाचराघवोवाक्यंविलापाश्रयदुर्वचम् ॥ २ ॥ त्वमशोकस्यशाखाभिःपुष्पप्रियतराप्रिये ॥ आवृणोषिशरीरंतेममशोकविवर्धनी ॥ ३ ॥

चंद्रजी उनके मुखसे निकले हुए वचनोंका अनादर करकै प्रियतमा सीताजीके अदर्शनसे वारंवार रोदन करनें लगे ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥ महाबाहु धर्मात्मा कमललोचन श्रीरामचंद्रजी सीताजीके दर्शन ना पाकरके शोकके मारे चेतना रहित हो विलाप करने लगे ॥ १ ॥ वह सीताजीके दर्शन ना पाकरभी, मानों उनको देखही रहे हैं इस भाव करके कामबाणसे पीडितहो विलाप युक्त दुःखके साने वचन कहने लगे ॥ २ ॥ हे प्रिये! तुम पुष्पोंको अतिशय प्यार करती हो सो इस समय

घोर प्रदीप्त सायक ॥ ७३ ॥ श्रीरामचन्द्रजीनें उस धनुष पर चढाया। और प्रलयकालकी अग्निके समान क्रोधमें भरकर कहने लगे ॥ ७४ ॥ हे
लक्ष्मण! जरा, मृत्यु, काल, और विधि यह सब जिस प्रकारसे प्राणिमात्रके रोकनेंसे नहीं रुक सकते, वैसेही हम क्रोधित हुए हैं। निःसन्देह कोई
हमको निवारण नहीं कर सकैगा ॥ ७५ ॥ सुदन्तयुक्त निन्दा रहित मिथिलाराजनंदिनी सीताको बिना प्राप्त हुए हम देव, गन्धर्व, मनुष्य,
पन्नग और पर्वत सहित समस्त जगत् मर्दित करडालेंगे ॥ ७६ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आर० चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

संदधेधनुषिश्रीमान्रामःपरपुरंजयः ॥ युगांताग्निरिवक्रुद्धइदंवचनमब्रवीत् ॥ ७४ ॥ यथाजरायथामृत्युर्यथा
कालोयथाविधः॥ नित्यंनप्रतिहन्यंतेसर्वभूतेषुलक्ष्मण॥ तथाहंक्रोधसंयुक्तोननिवार्योस्म्यसंशयम् ॥७५॥ पुरेवमेचा
रुदतीमनिंदितांदिशंतिसीतांयदिवाद्यमैथिलीम् ॥ सदेवगंधर्वमनुष्यपन्नगंजगत्सशैलंपरिवर्तयाम्यहम् ॥ ७६ ॥ इत्या
र्षेश्रीम०वा०आ०आर०चतुःषष्टितमःसर्गः॥६४॥तप्यमानंतदारामंसीताहरणकर्शितम्॥लोकानामभवेयुक्तंसांवर्तक
मिवानलम् ॥ १ ॥ वीक्षमाणंधनुःसज्यनिःश्वसंतंपुनःपुनः ॥ दग्धुकामंजगत्सर्वंयुगांतेचयथाहरम् ॥ २ ॥ अदृष्ट
पूर्वंसंक्रुद्धंदृष्ट्वारामंसलक्ष्मणः ॥ अब्रवीत्प्रांजलिर्वाक्यंमुखेनपरिशुष्यता ॥ ३ ॥ पुराभूत्वामृदुर्दांतःसर्वभूतहितेरतः ॥
नक्रोधवशमापन्नःप्रकृतिंहातुमर्हसि ॥ ४ ॥

सीताजीके हरणसे कातर हुये श्रीरामचन्द्रजी सन्तापित हो संवर्तकप्रलयकालकी अग्निके समान लोकोंका नाश करनेंको तैयार हुए ॥ १ ॥
और प्रलयकालमें समस्त जगत् दग्ध करनेंके अभिलाषी महादेवजीके समान वारंवार श्वास त्याग करतेहुए प्रत्यंचायुक्त शरासनको श्रीराम
चन्द्रजी देखनें लगे ॥ २ ॥ लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीका अदृष्ट पूर्व जो पहले कभी नहीं देखाथा, ऐसा क्रोध देखकर शुष्क मुख बना हाथ जोड
उनसे बोले ॥ ३ ॥ आप पहलेसे मृदु, सर्व इन्द्रियोंके जीतनेंवाले और सर्वभूतोंके हितकारी कार्य करनेंमें तैयार हैं सो इस समय क्रोधके

हम वनवास करके घरको लौटेंगे और उस समय मिथिलानाथ जनकजी॥१२॥कुशल पूछेंगे तो किस प्रकार हम उनको अवलोकन करनेमें समर्थ होंगे? विदेहराज निश्चय हमको विना सीताके देखकर ॥ १३ ॥ अपनी पुत्री जानकीके विनाशसे संतप्तहो मोहके वश हो जांयगे ॥ पिता दशरथजीही धन्यहैं।क्योंकि वे स्वर्गमें वास करतेहैं।अथवा अब हम भरतकी पालित अयोध्यापुरीको न जांयगे॥१४॥अयोध्याकी बात तो एक ओर रही सीताके विना तो हम स्वर्गकोभी शून्य समझतेहैं; इस कारण हे लक्ष्मण! तुम अब हमको इस वनमें छोडकर अयोध्याको चले जाओ ॥ १५ ॥ हम

कुशलंपरिप्रच्छंतंकथंशक्ष्येनिरीक्षितुम् ॥ विदेहराजोनूनंमांदृष्ट्वाविरहितंतया ॥ १३ ॥ सुताविनाशसंतप्तो मोहस्यवशमेष्यति ॥ "तातएवकृतार्थःसतत्रैववसतादिति"॥ अथवानगमिष्यामिपुरींभरतपालिताम् ॥ १४ ॥ स्वर्गोपिहितयाहीनःशून्यएवमतोमम ॥ तन्मामुत्सृज्यहिवनेगच्छायोध्यापुरींशुभाम् ॥ १५ ॥ नत्वहं तांविनासीतांजीवेयंहिकथंचन ॥ गाढमाश्लिष्यभरतोवाच्योमद्वचनात्त्वया ॥ १६ ॥ अनुज्ञातोऽसिरामे णपालयेतिवसुंधराम् ॥ अंबाचममकैकेयीसुमित्राचत्वयाविभो ॥ १७ ॥ कौसल्याचयथान्यायमभिवाद्या ममाज्ञया ॥ रक्षणीयाप्रयत्नेनभवतासूक्तचारिणा ॥ १८ ॥ सीतायाश्चविनाशोऽयंममचामित्रसूदन ॥ विस्तरेणज नन्यामेविनिवेद्यस्त्वयाभवेत् ॥ १९ ॥

जानकीके विना किसी प्रकारभी जीवन धारण करनेंको समर्थ नहींहैं। तुम हमारी ओरसे भली भांति भरतजीको गाढ आलिंगन कर कहना ॥ १६॥ कि रामचंद्रजीने यह आज्ञाकीहै कि तुमही इस राज्यका पालन करो ॥ हेविभो! माता कैकेयी व सुमित्रा अपनी मातासे ॥ १७ ॥ और कौश ल्याजीसे इनमेसे प्रत्येकको हमारी आज्ञानुसार यथायोग्य तुम प्रणाम कह देना। और सदा नीके वचनोंसे समझा बुझाकर यत्न सहित उनकी रक्षाभी करते रहना ॥ १८ ॥ हेशत्रुके मारनेवाले! और सब माताओंसे सीताजीके व हमारे विनाशका वृत्तान्तभी विस्तार सहित तुम निवेदन कर देना ॥१९॥

आप हमारे साथ धनुष हाथमें लेकर चलिये, और परमर्षि गणोंको सहायक बनाय समुद्र वन पर्वत ढूढेंगे ॥ १३ ॥ विविध प्रकारकी ताल
तलैयां व गुफायें और देवता गन्धर्वोंके लोक समस्तही यत्न सहित आप ढूंढिये ॥ १४ ॥ जब तक कि आपकी स्त्रीके हरनेंवालेको न पावेंगे, और इस
प्रकार शान्त भावसे ढूंढनेंपरभी इन्द्रादि देव गण यदि आपकी भार्याको न दें तब हे कौशलेन्द्र! पीछेसे आप उनको यथायोग्य दंड दीजियेगा॥१५॥
हे नरेन्द्र! शीलतासे सामसे और विनय अवलंबन करकेभी यदि आप सीताको न पावें, तब आप इन्द्रके वज्र सदृश सुवर्णपंखवाले शरजालसे
समस्त संसारको संहार कर डालियेगा ॥ १६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

मद्वितीयोधनुष्पाणिःसहायैःपरमर्षिभिः ॥ समुद्रंवाविचेष्यामःपर्वतांश्चवनानिच ॥ १३ ॥ गुहाश्चविविधाघोराःप
झिन्योविविधास्तथा ॥ देवगंधर्वलोकाश्चविचेष्यामःसमाहिताः ॥ १४ ॥ यावन्नाधिगमिष्यामस्तवभार्यापहारिणम् ॥
नचेत्साम्नाप्रदास्यंतिपत्नींतेत्रिदशेश्वराः ॥ कोशलेंद्रततःपश्चात्प्राप्तकालंकरिष्यसि ॥ १५ ॥ शीलेनसाम्नाविनये
नसीतांनयेननप्राप्स्यसिचेन्नरेंद्र ॥ ततःसमुत्सादयहेमपुंखैर्महेंद्रवज्रप्रतिमैःशरौघैः ॥ १६ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीम०
वा०आ०आरण्यकांडेपंचषष्टितमःसर्गः ॥ ६५ ॥ ॥ तंतथाशोकसंतप्तंविलपंतमनाथवत् ॥ मोहेनमहतायुक्तंपरिद्यू
नमचेतसम् ॥ १ ॥ ततःसौमित्रिराश्वास्यमुहूर्तादिवलक्ष्मणः ॥ रामंसंबोधयामासचरणौचाभिपीडयन् ॥ २ ॥
महतातपसाचापिमहताचापिकर्मणा ॥ राज्ञादशरथेनासील्लब्धोमृतमिवामरैः ॥ ३ ॥ तवचैवगुणैर्बद्धस्त्वद्वियोगा
न्महीपतिः ॥ राजादेवत्वमापन्नोभरतस्ययथाश्रुतम् ॥ ४ ॥

श्रीरामचंद्रजीनें लक्ष्मणके वाक्यसे क्रोध त्यागकर इस प्रकार शोक संतप्त और महा मोहसे युक्त चेतना रहित होकर अनाथोंकी समान विलाप
करना आरंभ किया ॥ १ ॥ लक्ष्मणजी उनके चरण छूकर एक मुहूर्त भरतक उनको समझाते बुझाते हुए कहनें लगे ॥ २ ॥ कि राजा दशरथजीनें
अनेक तपस्या और वहु विधि धर्मानुष्ठान करके आपको प्राप्त कियाथा जिस प्रकार देवता लोगोंनें अमृतको बडे२ उपायोंसे प्राप्त कियाथा ॥ ३ ॥
भरतजीसे जैसा जैसा सुनाथा उस्से तौ यही ज्ञात होताहै कि राजा दशरथ आपहीके गुणोंमें बंधकर, व आपकेही वियोगमें देवलोकको प्राप्त हुयेहैं॥४॥

गसे, काष्ठके संयोगसे सहसा प्रदीप्त हुई अग्निकी समान वही दुःख फिर प्रवल होगयेहैं ॥ ६ ॥ निश्चयही कोई राक्षस उन भीरुस्वभाववाली आर्या सीताको आकाशमार्गसे आय हरण करकै लेगयाहै! हाय! इसमें कोई सन्देह नहीं है । कि उस समय उन सुन्दर बोलनेंवालीनें भयके विवशहो विकृतस्वरसे वारंवार रोदन किया होगा ॥ ७ ॥ सुंदर सदाही लाल चंदन लगानेंके योग्य हमारी प्रियाके दोनों सुन्दर कुच निश्चयही राक्षसोंनें भक्षण करनेंके समय उनमें रुधिर लगादिया होगा जिस्से वह शोभित नहीं होतेहोंगे हाय इतने परभी हमारे प्राण नहीं जाते ॥ ८ ॥ अव हम इस शरीरसे उनको न भेट सकेंगे । उनका मुखमंडल घूंघरवाले वालोंके वीचमें शोभित, और सुन्दर,सुमधुर सुकोमल, और साफ चिकना सँवा

सानूनमार्याममराक्षसेनह्यभ्याहृताखंसमुपेत्यभीरुः ॥ अप्यस्वरंसुस्वरविप्रलापाभयेनविक्रंदितवत्यभीक्ष्णम् ॥ ७॥
तौलोहितस्यप्रियदर्शनस्यसदोचितावुत्तमचंदनस्य ॥ वृत्तौस्तनौशोणितपंकदिग्धौनूनंप्रियायाममनाभिपातः ॥८॥
तच्छ्लक्ष्णसुव्यक्तमृदुप्रलापंतस्यामुखंकुंचितकेशभारम् ॥ रक्षोवशंनूनमुपागतायानभ्राजतेराहुमुखेयथेंदुः ॥ ९ ॥
तांहारपाशस्यसदोचितांतांग्रीवांप्रियायाममसुव्रतायाः ॥ रक्षांसिनूनंपरिपीतवंतिशून्येहिभित्त्वारुधिराशनानि ॥ १० ॥ मयाविहीनाविजनेवनेसारक्षोभिराघृत्यविकृष्यमाणा ॥ नूनंविनादंकुररीवदीनासामुक्तवत्यायतकांतनेत्रा ॥ ११॥ अस्मिन्मयासार्धमुदारशीलाशिलातलेपूर्वमुपोपविष्टा॥कांतस्मितालक्ष्मणजातहासात्वामाहसीतावहुवाक्यजातम् ॥ १२ ॥

रा हुआहै, सो जानकीको राक्षसके वश होनेसे राहुमुखमें ग्रसेहुये चंद्रमाकी समान. निश्चय उस मुखकी अब सब सुंदरताई अलगहोगई होगी ॥ ९ ॥ पतिव्रतप्रियाकी वह सुन्दर गरदन सदाही हारके गुच्छोंसे भूषित रहतीथी. सो रुधिरपान करनेंवाले राक्षसोंने शूनेमें पाकर निश्चयही उसको भेदकर रुधिरपान कियाहोगा ॥ १० ॥ हमारे न होनेपर निर्जन वनमें राक्षसोंने चारों ओरसे घेरकर जव उनको खेंचना आरंभ कियाहोगा; तौ उससमय वह रुधिर और बडे नेत्रवाली सीतानें निश्चयही हरिणीकी समान विलाप कियाहोगा ॥ ११ ॥ हे लक्ष्मण! हम व हँसमुख उदारस्वभाववाली सीता

हे वीर! आप की समान सर्वदर्शी और हितदर्शी मनुष्य गण सचराचर बडीभारी विपद पडनें परभी शोक नहीं करते ॥ १४ ॥ हे नरश्रेष्ठ! आप भली भांति विचार करकै यथार्थतासे शुभाशुभका विचार कीजिये ।आपकी समान महाप्राज्ञ पुरुषगण बुद्धिसे विचार करकै शुभाशुभ भली भांतिसे जान लेते हैं ॥१५॥ जिनके गुण और दोष जबतक प्रगटदृष्टिमें नहीं आते, तबतक उन सब अध्रुव अर्थात् अस्थिर कर्मोंके अनुष्ठानसे कभी इष्ट फलकी प्राप्तिकी आशा नहीं होसकती और उनका जानना बिना क्रिया योगके नहीं होता ॥ १६ ॥ हे वीर! आपनें ही प्रथम हमको अनेक वार इस प्रकारका उपदेश दिया है और आपको उपदेश देने में तो साक्षात् बृहस्पतिजीभी समर्थ नहीं हैं ॥ १७ ॥ हे महाप्राज्ञ! आपकी

त्वद्विधानहिशोचंतिसततंसर्वदर्शनाः ॥ सुमहत्स्वपिकृच्छ्रेषुरामानिर्विण्णदर्शनाः ॥ १४ ॥ तत्त्वतोहिनरश्रेष्ठबुद्ध्यास मनुचिंतय ॥ बुद्ध्यायुक्तामहाप्राज्ञाविजानंतिशुभाशुभे ॥१५ ॥ अदृष्टगुणदोषाणामध्रुवाणांतुकर्मणाम् ॥ नांतरेण क्रियांतेषांफलमिष्टंचवर्तते ॥ १६ ॥ मामेवंहिपुरावीरत्वमेवबहुशोक्तवान् ॥ अनुशिष्याद्धिकोनुत्वामपिसाक्षाद्बृह स्पतिः ॥ १७ ॥ बुद्धिश्चतेमहाप्राज्ञदेवैरपिदुरन्वया ॥ शोकेनाभिप्रसुप्तंतेज्ञानंसंबोधयाम्यहम् ॥ १८ ॥ दिव्यं चमानुषंचैवमात्मनश्चपराक्रमम् ॥ इक्ष्वाकुवृषभावेक्ष्ययतस्वद्विषतांवधे ॥ १९ ॥ किंतेसर्वविनाशेनकृतेनपुरुषर्ष भ ॥ तमेवतुरिपुंपापंविज्ञायोद्धर्तुमर्हसि ॥ २० ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेषट्षष्टि तमःसर्गः ॥ ६६ ॥ ॥ पूर्वजोऽप्युक्तवाक्यस्तुलक्ष्मणेनसुभाषितम् ॥ सारग्राहीमहासारंप्रतिजग्राहराघवः ॥ १ ॥

बुद्धिको देवता लोगभी नहीं पहुँच सकते अब आपकी वह बुद्धि शोकसे इस प्रकार ढक रही है, कि इस समय हम उसको जगा रहे हैं ॥ १८ ॥ हे इक्ष्वाकुप्रवर! आप अपना दिव्य और मानवी पराक्रम विचार शत्रुसंहार करनेंमें यत्न कीजिये ॥ १९ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ! आपको समस्त लोकोंके संहार करनेंका क्या प्रयोजनहै? आप उसी अपने शत्रुको जानकर उसे विध्वंसकर सीताको बचाइये॥२०॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि काव्ये आरण्यकांडे "पंडितज्वालाप्रसाद" मिश्रकृतभाषानुवादे षट्षष्टितमःसर्गः ॥६६ ॥लक्ष्मणजीके इस प्रकार अतिशय सार गर्भ सुन्दर वचन

युक्त शरीरसे अचेतन अवस्थामें विलाप करना आरंभ किया तब न्यायशास्त्रमें स्थितहो अदीन हुये सौमित्र लक्ष्मण उनसे समयानुसार वचन बोले ॥ १८ ॥ हे आर्य ! शोक छोडकर धीरज धारण करके उत्साहयुक्तहो जानकीजीको ढूंढिये । उत्साही पुरुष संसारी दुष्कर कार्य करनें मेंभी कभी नहीं घबडाते॥१९॥बडे पौरुषी लक्ष्मणजीनें जब ऐसा कहा तब रघुवंशियोंमें उत्तम श्रीरामचन्द्रजीनें उस वचनको चिन्तनीय समझकर न गिना वरन वह एकवारही धीरजको छोडकर फिर महा दुःखमें डूबगये ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आर०त्रिपष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥ दीनभावापन्न श्रीरामचन्द्रजी दीन वचन कह लक्ष्मणजीसे बोले कि हे लक्ष्मण ! शीघ्र गोदावरी नदीपर जाकर जान आओ ॥ १ ॥

शोकंविसृज्याद्यधृतिंभजस्वसोत्साहताचास्तुविमार्गणेस्याः ॥ उत्साहवंतोहिनरानलोकेसीदंतिकर्मस्वतिदुष्करेषु ॥ १९ ॥ इतीवसौमित्रिमुदग्रपौरुषंब्रुवंतमार्तरघुवंशसत्तमः ॥ नचिंतयामासधृतिंविमुक्तवान्पुनश्चदुःखंमहदप्युपागमत्॥२०॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेत्रिषष्टितमःसर्गः॥६३॥ सदीनोदीनयावाचालक्ष्मणंवाक्यमब्रवीत्॥शीघ्रंलक्ष्मणजानीहिगत्वागोदावरींनदीम् ॥ १ ॥ अपिगोदावरींसीतापद्मान्यानयितुंगता ॥ एवमुक्तस्तुरामेणलक्ष्मणःपुनरेवहि ॥ २ ॥ नदींगोदावरींरम्यांजगामलघुविक्रमः ॥ तांलक्ष्मणस्तीर्थवतींविचित्वाराममब्रवीत् ॥ ३ ॥ नैनांपश्यामितीर्थेषुक्रोशतोनशृणोतिमे ॥ कंनुसादेशमापन्नावैदेहीक्लेशनाशिनी ॥ ४ ॥ नहितंवेद्मिवैरामयत्रसातनुमध्यमा ॥ लक्ष्मणस्यवचःश्रुत्वादीनःसंतापमोहितः ॥ ५ ॥

कि सीता कमल फूल लेनेंको तौ वहां नहीं चली गईहैं? जब श्रीरामचंद्रजी नें ऐसा कहा तौ लक्ष्मणजी फिर ॥ २ ॥ शीघ्र २ पग धरके गोदावरी नदीपर गये, और उस रमणीय घाटवाली गोदावरीके चारों ओर जरा २ करके ढूंढ भाल रामचंद्रजीसे शीघ्रही आकर कहा ॥ ३ ॥ कि हमनें सबही घाटोंपर ढूंढा परन्तु कहींपर उनको न पाया पुकारा भी परन्तु उन्होंनें न सुना । हे आर्य! जनें कौन देशमें क्लेशहारिणी जानकीजी चली गईहै॥४॥सो उनका जिनका मध्यमस्थान सूक्ष्महै पता हम नहीं जानते लक्ष्मणजीके वचन सुनकर रामचंद्र और भी दीन व संतापसे मोहितहो ॥५॥

इसमें कुछ संशय नहीं है कि इस गृध्ररूपी वनचर निशाचरनेंही जानकीको भक्षण कर लियाहै, वस यह ठीकही ठीक जान पड
ता है यह गृध्र वना वनमें घूमताहै॥ ११ ॥यह राक्षस उन विशालाक्षी सीताजीको भक्षण करकै यथा सुखसे विश्राम कर रहाहै ।इस कारण हम सीधे
चलनेवाले अग्निकी समान प्रकाशमान भयंकर बाणोंसे इसका संहारकरेंगे ॥ १२ ॥ श्रीरामचंद्रजी यह कहकर क्रोधित हो समुद्र पर्यन्त
पृथ्वीको कँपाते हुये धनुष पर तीक्ष्ण बाण चढाय उसके देखनेंको चले ॥ १३ ॥ तिसके पीछे पक्षिराज जटायु सफेन रुधिर उगलता हुआ
अतिशय कातर वचनोंसे उन दशरथकुमार श्रीरामचंद्रजीसे बोला ॥१४॥आयुष्मान्! तुम औषधिकी समान जिनको इस महा वनमें खोजते हो, वह

अनेनसीतावैदेहीभक्षितानात्रसंशयः ॥ गृध्ररूपमिदंव्यक्तंरक्षोभ्रमतिकाननम् ॥ ११ ॥ भक्षयित्वाविशालाक्षीमा
स्तेसीतांयथासुखम् ॥ एनंवधिष्येदीप्ताग्रैःशरैर्घोरैरजिह्मगैः ॥ १२ ॥ इत्युक्त्वाऽभ्यपतद्द्रष्टुंसंधायधनुषिक्षुरम् ॥ क्रु
द्धोरामःसमुद्रांतांचालयन्निवमेदिनीम् ॥ १३ ॥ तंदीनदीनयावाचासफेनंरुधिरंवमन् ॥ अभ्यभाषतपक्षीसरामंदश
रथात्मजम् ॥ १४ ॥ यामोषधीमिवायुष्मन्नन्वेषसिमहावने ॥ सादेवीममचप्राणारावणेनोभयंहृतम् ॥ १५ ॥ त्व
याविरहितादेवीलक्ष्मणेनचराघव ॥ ह्रियमाणामयादृष्टारावणेनबलीयसा ॥ १६ ॥ सीतामभ्यवपन्नोऽहंरावणश्चरणे
प्रभो ॥ विध्वंसितरथच्छत्रःपतितोधरणीतले ॥ १७ ॥ एतदस्यधनुर्भग्नमेतेचास्यशरास्तथा ॥ अयमस्यरणेराम
भग्नःसांग्रामिकोरथः॥ १८॥ अयंतुसारथिस्तस्यमत्पक्षनिहतोभुवि ॥ परिश्रांतस्यमेपक्षौछित्त्वाखड्गेनरावणः ॥१९॥

देवी जानकी और हमारे प्राण दोनोंही रावणनें हर लियेहैं ॥ १५॥ हे रघुनंदन! महावलवान् दशानन आपके और लक्ष्मणजीके आश्रममें नरहनें
पर सूनेसे जानकीको हर ले जाता हुआ हमनें देखाहै ॥ १६॥ उस समय हमनें सीताजीको छुटानेंके लिये सन्मुख हो युद्ध करकै उसके रथ और
छत्रको तोड डाला तव रावण पृथ्वीमें गिरा ॥ १७ ॥ यह जो धनुष और बाण टूटे हुये पडे हैं यह उसकेही हैं और रामचंद्रजी! यह उसकाही
संग्राममें काम देनेंवाला रथहै । जो टूटा हुआ पडाहै ॥ १८ ॥ और यह सारथी भी उसीका है जो हमारे पंखोंके प्रहारसे मरकर पृथ्वीपर पडाहै

अब हम मन्दाकिनी नदी जटा स्थान और झरना झरता हुआ यह पर्वत ॥ १४ ॥ इन सबही स्थानोंमें विचरण किया करेंगे ! जिस्से कि सीताजीको देखें । हे वीर ! यह मृगगण हमको वार २ देखतेंहैं ॥ १५ ॥ इनके इशारेसे जान पडताहै कि मानों यह हमसे कुछ कहा चाहतेहैं, लक्ष्मणजीसे ऐसा कह उन मृगोंको देख पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी उन मृगोंसे बोले ॥ १६ ॥ हे मृगो! सीता कहांहैं ? यह कहतेही आंसू निकल आये वाणी गद्गद होगई, जब महाराज श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा तौ वह सब मृग सहसा उठ खडे हुए ॥१७॥ और जिस दिशाको रावण जानकीजीको हरण कर लेगयाथा? उसी दक्षिण दिशाको मुखकर आकाशकी ओर निहार २ देखनें लगे ॥ १८ ॥ वह सब मृगगण वारंवार उसी दक्षिण

सर्वाण्यनुचरिष्यामियदिसीताहिलभ्यते ॥ एतेमहामृगावीरामामीक्षंतेपुनःपुनः ॥ १५ ॥ वक्तुकामाइवहिमेइंगितान्युपलक्षये ॥ तांस्तुदृष्ट्वानरव्याघ्रोराघवःप्रत्युवाचह ॥ १६ ॥ क्वसीतेतिनिरीक्षन्वैबाष्पसंरुद्धयागिरा ॥ एवमुक्तानरेंद्रेणते मृगाःसहसोत्थिताः ॥ १७ ॥ दक्षिणाभिमुखाःसर्वेदर्शयंतोनभःस्थलम् ॥ मैथिलीह्रियमाणासादिशंयामभ्यपद्यत ॥ १८ ॥ तेनमार्गेणगच्छंतोनिरीक्षंतेनराधिपम् ॥ येनमार्गंचभूमिंचनिरीक्षंतेस्मतेमृगाः ॥ १९ ॥ पुनर्नदंतोगच्छंति लक्ष्मणेनोपलक्षिताः ॥ तेषांवचनसर्वस्वंलक्षयामासचेंगितम् ॥ २० ॥ उवाचलक्ष्मणोधीमान्ज्येष्ठंभ्रातरमार्तवत् क्वसीतेतित्वयापृष्टायदिमेसहसोत्थिताः ॥ २१ ॥ दर्शयंतिक्षितिंचैवदक्षिणांचदिशंमृगाः ॥ साधुगच्छावहेदेवदिशमेतांचनैर्ऋतीम् ॥ २२ ॥ यदितस्यागमःकश्चिदार्यावासाथलक्ष्यते ॥ बढिमत्येवकाकुत्स्थःप्रथितोदक्षिणांदिशम् ॥ २३ ॥

दिशाकी ओर मुखकर, चिंघडते, और फिर श्रीरामचंद्रजीकी ओर देख दक्षिणको दौडते ॥१९॥ मृग गणोंकी यह दशा देख लक्ष्मणजीनें उनके हृदयका वृत्तान्त जान लिया ॥ २० ॥ अत्यन्त धीमान् लक्ष्मणजी अपनें बडे भ्राता रामचंद्रजीसे आरतकी समान बोले कि हे देव ! जब आपनें इन मृगोंसे पूछा कि सीता कहां हैं ? तब यह सब एक एक उठ खडे होकर ॥ २१ ॥ दक्षिण दिशा और पृथ्वीको दिखाने लगे । इस कारण चलिये हम लोगभी इसी दक्षिण दिशाको चले चलें ॥ २२ ॥ क्योंकि कदाचित् आपी सीता वहां मिलजांय, अथवा उनकी प्राप्तिका कोई

भाग्यके फेरसे घायल होकर पृथ्वीपर शयन कररहेहैं ❀ ॥ २७ ॥ रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी इस प्रकारके अनेक वचन कहते लक्ष्मणजीके पिताकी समान स्नेह दिखातेहुये जटायुको स्पर्श करते हुये ॥ २८ ॥ फिर श्रीरामचंद्रजी पंख कटे रुधिर में डूबे गृध्रराज जटायुको चिपट कर "हमारी प्राणप्रिया मैथिली कहांगई हैं" यह कह कर पृथ्वीमें गिर पडे ॥ २९ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० आ० सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥ श्रीरामचंद्रजी भयंकर राक्षसके प्रहारसे पृथ्वीपर पडे हुये जटायुको देखकर परमबंधु सुमित्रापुत्रसे कहते हुये ॥ १ ॥ निश्चयही यह पक्षी हमारे लिये यत्न करकै हमारे ही लिये राक्षससे मारा जाकर अब प्राणत्याग करताहै॥२॥हेलक्ष्मण! इसका बोल धीमा पडगया, और दृष्टि हीन हो आईहै

इत्येवमुक्त्वाबहुशोराघवःसहलक्ष्मणः ॥ जटायुषंचपस्पर्शपितृस्नेहंनिदर्शयन् ॥ २८ ॥ निकृत्तपक्षंरुधिरावसिक्तंतंगृध्रराजंपरिगृह्यराघवः ॥ क्वमैथिलीप्राणसमागतेतिविमुच्यवाचंनिपपातभूमौ ॥ २९ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआ०आरकां०सप्तषष्टितमःसर्गः ॥ ६७ ॥ रामःप्रेक्ष्यतुतंगृध्रंभुविरौद्रेणपातितम् ॥ सौमित्रिंमित्रसंपन्नमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १ ॥ ममायंनूनमर्थेषुयतमानोविहंगमः ॥ राक्षसेनहतःसंख्येप्राणांस्त्यजतिमत्कृते ॥ २ ॥ अतिखिन्नःशरीरेऽस्मिन्प्राणोलक्ष्मणविद्यते ॥ तथास्वरविहीनोऽयंविक्लवंसमुदीक्षते ॥ ३ ॥ जटायोयदिशक्नोषिवाक्यंव्याहरितुंपुनः ॥ सीतामाख्याहिभद्रंतेवधमाख्याहिचात्मनः ॥ ४ ॥ किंनिमित्तोजहारार्यांरावणस्तस्यकिंमया ॥ अपराधंतुयंदृष्ट्वारावणेनहृताप्रिया ॥ ५ ॥

और प्राणभी अति मात्र व्याकुल होकर कुछेक इसकी देहमें टिक रहेहैं ॥३॥ हे जटायु ! तुम्हारा कल्याणहो, यदि फिर तुममें कुछ बोलनेंकी शक्तिहो तो सीताहरणका वृत्तान्त, और तुम कैसे मारे गये, यह सब कह दीजिये ॥ ४ ॥ और रावणनें किस निमित्त आर्या जानकीको हरण किया?

*कवित्त॥ दीन मलीन अधीन है अंग विहंग परचो क्षिति खिन्न दुखारी॥ राघव दीन दयालुकृपालु को देख दुखी करुणा भयभारी ॥ गीधको गोदमें राख कृपानिधि नैन सरोजनमें भरिवारी ॥वार हि बार सुधारत पंख जटायुकी धूरि जटान सों झारी ॥ १ ॥ गीधको गोदमें राख कृपानिधि निहारैं और नैननसों जलढारैं ॥ टूक हे जातहैं सीता विथाके जो याकी स्नेह कथाको विचारैं ॥ छोड चले केहि हेतु हमें हमें सौंह तिहारीहै संग सिधारैं ॥ यों कहि राम भरे जल नैन जटायुकी धूरि जटानसों झारैं ॥ २ ॥

जीको बताना चाहताथा परन्तु रावणके भयसे नहीं बताया ॥ ३२ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजी उस पर्वतसे फिर बोले, कि तुम हमारे बाणानलकी अनन्त अग्निसे भस्म हो जाओगे ॥ ३३ ॥ फिर तृण वृक्ष व पल्लवादि जल जानेंसे फिर कोई तुम्हारा आश्रय न लेगा हे लक्ष्मण ! आज इस गोदावरी नदीकोभी शुष्क करदेंगे ॥ ३४ ॥ यदि यह सब हमारी चंद्रमुखी सीताको नहीं बताते तौ हम ऐसाही करेंगे, इस प्रकारसे श्रीरामचन्द्रजी क्रोधान्वित होकर मानों उनको नेत्रोंसे भस्मही किये देतेथे ॥३५॥ इधर उधर देखते २ श्रीरामचन्द्रजीनें पृथ्वीपर देखा जहांकि राक्षसके चरण चिह्न बनेथे, व उसी स्थानपर भयभीत और रामचन्द्रजीके दर्शनकी इच्छा किये इधर उधर दौडती हुई ॥ ३६ ॥ राक्षसके अनुसरण करनेंसे

ततोदाशरथीरामउवाचचशिलोच्चयम् ॥ ममबाणाग्निनिर्दग्धोभस्मीभूतोभविष्यसि ॥ ३३ ॥ असेव्यःसर्वतश्चैव निस्तृणद्रुमपल्लवः ॥ इमांवासरितंचाद्यशोषयिष्यामिलक्ष्मण ॥ ३४ ॥ यदिनाख्यातिमेसीतामद्यचंद्रनिभाननाम् ॥ एवंप्ररुषितोरामोदिधक्षन्निवचक्षुषा ॥ ३५ ॥ ददर्शभूमौनिष्क्रांतंराक्षसस्यपदंमहत् ॥ त्रस्तायारामकांक्षिण्याःप्रधावंत्याइतस्ततः ॥ ३६ ॥ राक्षसेनानुसृप्तायावैदेह्याश्चपदानितु ॥ ससमीक्ष्यपरिक्रांतंसीतायाराक्षसस्यच ॥ ३७ ॥ भग्नंधनुश्चतूणीचविकीर्णबहुधारथम् ॥ संभ्रांतहृदयोरामःशंशसभ्रातरंप्रियम् ॥ ३८ ॥ पश्यलक्ष्मणवैदेह्याःकीर्णाःकनकबिंदवः ॥ भूषणानांहिसौमित्रेमाल्यानिविविधानिच ॥ ३९ ॥ तप्तबिंदुनिकाशैश्चचित्रैःक्षतजबिंदुभिः ॥ आवृतंपश्यसौमित्रेसर्वतोधरणीतलम् ॥ ४० ॥

जानकीजीकेभी पैरोंके चिह्न उन चिह्नोंके बीचमें बनें देखे, सीताजीके व राक्षसके पद एकमें मिले देख श्रीरामचन्द्रजीनें बडा क्रोध किया ॥३७॥ धनुष व तूणीर (तरकस) कोभी टूटा फूटा पृथ्वीपर पडा देख रथकोभी रत्ती २ चूर्ण देख व्याकुलहो चकित होते हुये श्रीरामचन्द्रजी अपने प्यारे भ्रातासे बोले ॥ ३८ ॥ हे लक्ष्मण! देखो! जानकीजीके गहनोंके सुवर्णविन्दु और बहुत सारी मालायें यहांपर टूटी पडीहैं ॥ ३९ ॥ हे भइया! इस ओर देखो भूमिमें चारों ओर सुवर्ण विन्दु सम विचित्रित रक्तविन्दु समूह छिटक रहेहैं यह सीताका तो रुधिर नहींहै ॥ ४० ॥

इसको नहीं जानताहै, इस कारण वंशीका मांस ग्रहण करनेंसे काली मछलीके समान शीघ्र उसका विनाश होगा ॥ १३ ॥ इस मुहूर्तमें खोई हुई वस्तुही नहीं मिलती किन्तु शत्रुका नाशभी होताहै; तुमभी श्रीजानकीजीके प्राप्त होनेके विषयमें और कुछ संदेह न करो। रावणको संग्राममें मारकर शीघ्रही सीताके सहित विहार करनेंको तुम समर्थ होगे॥ १४ ॥ तिसके पीछे रामचन्द्रजीके साथ संभाषण करनेंवाले सावधान चित्त मरनेंके निकट गिद्धराज जटायुके मुखसे मांस युक्त रुधिर वहनें लगा ॥ १५ ॥ उस समय जटायुनें रावण विश्रवाका पुत्र, और कुवेरका भाईहै केवल इतनाही कहकर दुर्लभ प्राण त्याग करदिये ॥१६॥ श्रीरामचन्द्रजी हाथ जोडे बोलिये! बोलिये! इस प्रकारसे कहनेंलगे,

नचत्वयाव्यथाकार्याजनकस्यसुतांप्रति॥ वैदेह्यारंस्यसेक्षिप्रंहत्वातंरणमूर्धनि ॥ १४ ॥ असंमूढस्यगृध्रस्यरामंप्रत्यनुभाषतः॥आस्यात्सुस्रावरुधिरंम्रियमाणस्यसामिषम्॥ १५ ॥ पुत्रोविश्रवसःसाक्षाद्भ्रातावैश्रवणस्यच॥ इत्युक्त्वादुर्लभान्प्राणान्मुमोचपतगेश्वरः॥ १६॥ ब्रूहिब्रूहीतिरामस्यब्रुवाणस्यकृतांजलेः ॥ त्यक्त्वाशरीरंगृध्रस्यप्राणाजग्मुर्विहायसम्॥ १७॥ सनिक्षिप्यशिरोभूमौप्रसार्यचरणौतथा ॥ विक्षिप्यचशरीरंस्वंपपातधरणीतले॥ १८॥ तंगृध्रंप्रेक्ष्यताम्राक्षंगतासुमचलोपमम्॥ रामःसुबहुभिर्दुःखैर्दीनःसौमित्रिमब्रवीत्॥ १९ ॥ बहूनिरक्षसांवासेवर्षाणिवसतासुखम्॥ अनेनदंडकारण्येविशीर्णमिहपक्षिणा ॥ २० ॥ अनेकवार्षिकोयस्तुचिरकालसमुत्थितः ॥ सोऽयमद्यहतः शेते कालोहिदुरतिक्रमः॥ २१॥ पश्यलक्ष्मणगृध्रोऽयमुपकारीहतश्चमे ॥ सीतामभ्यवपन्नोहिरावणेनबलीयसा ॥ २२ ॥

उसी समय उनके सामनेही जटायुके प्राण शरीरको त्याग करके आकाशको चलेगये ॥ १७॥ उस समय गिद्धराज चरण युगल फैलाय अपना शरीर फटफटाय भूमिमें शिर गिराय पृथ्वीमें गिरपडे ॥ १८ ॥ श्रीरामचन्द्रजी पर्वत समान बडे आकारवाले ताम्रवत् रक्तनेत्र गृध्रको मरा हुआ देखकर दुःखितहो लक्ष्मणजीसे बोले॥१९॥राक्षसोंके वसनें योग्य दंडकारण्यमें बहुत वर्षोंसे यह जटायुजी रहतेथे, सो आज उन्होंने देह त्याग करदिया ॥२०॥ इस प्रकार यह अनेक वर्षतक जीवितथे; वह आज निहत होकर पृथ्वीमें शयन कररहेहैं; हम समझे कि कालको उल्लंघन करना सहज नहींहै,लक्ष्मण! देखो ये गृध्र हमारा कैसा उपकारीहै, सीताजीको उद्धार करनेंमें तैयार होकर रावण दुरात्मा करके यह मारे गयेहैं॥२१॥ २२॥

जिनको देखनेसे भय उत्पन्न होताहै। बाणोंसे पूर्ण किसीके तूणीरभी पृथ्वीमें पडेहैं ॥ ४९॥ देखो! चाबुक और बाग हाथमें लिये किसीका सारथिभी मृतक पडाहै। देखो यह किसी पुरुष राक्षसके जानेंका प्रगट मार्ग बनाहै ॥ ५० ॥ हे शुभदर्शन ! किस कारणसे अतीव काठिन हृदय कामरूप निशाचर गणोंके सहित हमारा पहलेसे शत गुण अधिक वैर होगया! तुम देखलेना कि इस्से उनके जीवनका अंत होगा ॥ ५१ ॥ या तो राक्षसोंनें सीताको हर लिया वा भक्षण कर लिया, अथवा उन तपस्विनीनें प्राणत्याग करदिया होगा, किन्तु जब इस महा अरण्यमें जानकीजी मरणके निकट पहुँची तब पतिव्रत धर्मनेभी उनकी रक्षा न की! ॥ ५२ ॥ हे लक्ष्मण! इस प्रकारसे जब कि जानकी हरी गई और उस समय धर्मनेंभी

प्रतोदाभीषुहस्तोऽयंकस्यवासारथिर्हतः ॥पदवीपुरुषस्यैषाव्यक्तंकस्यापिरक्षसः॥५०॥वैरंशतगुणंपश्यममतैर्जीवितां तकम्॥सुघोरहृदयैःसौम्यराक्षसैःकामरूपिभिः ॥५१ ॥ हृतामृतावावैदेहीभक्षितावातपस्विनी॥नधर्मस्त्रायतेसीतांह्रि यमाणांमहावने ॥ ५२ ॥ भक्षितायांहिवैदेह्यांहृतायामपिलक्ष्मण ॥ केहिलोकेप्रियंकर्तुंशक्ताःसौम्यममेश्वराः ॥ ॥ ५३ ॥ कर्तारमपिलोकानांशूरंकरुणवेदिनम् ॥ अज्ञानादवमन्येरन्सर्वभूतानिलक्ष्मण ॥ ५४ ॥ मृदुंलोकहिते युक्तंदांतंकरुणवेदिनम् ॥ निर्वीर्यइतिमन्यंतेनूनंमांत्रिदशेश्वराः ॥ ५५ ॥ मांप्राप्यहिगुणोदोषःसंवृत्तःपश्यलक्ष्मण॥ अद्यैवसर्वभूतानांरक्षसामभवायच ॥ ५६ ॥

उनकी रक्षा न की तब संसारमें ईश्वरीय शक्ति सम्पन्न और कौन पुरुष हमारा प्रिय करनेंमें समर्थ होगा? ॥ ५३ ॥ प्राणीगण इनही सब कारणोंसे अज्ञान प्रयुक्त समस्त लोकोंके कर्त्ता परम दयालु सुरवर परमेश्वरको नहीं मानतेहैं ॥ ५४ ॥ हमारा स्वभाव अतिशय कोमलहै, और सर्वदाही हम सब लोकोंका हित कार्य करतेहैं और करुणा सहित उनका शुभाशुभ विधान करतेहैं परन्तु हम सीताका उद्धार नकरसके, इस कारण इन्द्रादि देवता गण निश्चयही हमको वीर्य रहित समझेंगे ॥ ५५ ॥ हे लक्ष्मण! विचार करके देखो! कि हमको प्राप्त होकर दया दाक्षिण्यादि समस्त गुण दोष रूपमें बदल गये इन दोषोंसे हम छिप गये, अब कोई हमको पराक्रमवान् नहीं समझता इस्से अभी सब प्राणी व राक्षसोंका नाश करनेंके लिये॥५६॥

रामचन्द्रजी सुमित्रानन्दन लक्ष्मणजीके साथ वनमें गये और बडे आकारवाले मृगोंका वधकर उनका मांसले फिर वहां आये जहां जटायुको दाह
कियाथा । वहां आ जटायुको पिंड देनेंके लिये तृण फैलाये ॥ ३२ ॥और उस समस्त मांसके टुकडे २ कर डाले और उनके पिंड बना उनको हरी
घासपर रख जटायुके अर्थ प्रदान किये ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणलोग प्रेत पुरुषकी स्वर्ग प्राप्ति होनेंके लिये जिन मंत्रोंका जप किया करते हैं, श्रीरामचन्द्रजी
जटायुको शीघ्र स्वर्ग प्राप्त करानेंके लिये उन्हीं समस्त मंत्रोंका जप करनेंलगे ॥ ३४ ॥ तिसके पीछे राजकुमार श्रीरामचन्द्र व लक्ष्मणजी दोनों
जन गोदावरी नदीपर जाकर जटायुके लियें तर्पण करते हुए ॥ ३५ ॥ वह दोनों जन स्नान करकै शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार जटायुको

रोहिमांसानिचोद्धृत्यपेशीकृत्वामहायशाः ॥ शकुनायददौरामोरम्येहरितशाद्वले ॥ ३२ ॥ यत्तत्प्रेतस्यमर्त्यस्यकथ
यंतिद्विजातयः ॥ तत्स्वर्गगमनंक्षिप्रंतस्यरामोजजापह ॥ ३४ ॥ ततोगोदावरींगत्वानदींनरवरात्मजौ ॥ उदकंच
क्रतुस्तस्मैगृध्रराजायताबुभौ ॥ ३५ ॥ शास्त्रदृष्टेनविधिनाजलंगृध्रायराघवौ ॥ स्नात्वातौगृध्रराजायउदकंचक्रतु
स्तदा ॥ ३६ ॥ सगृध्रराजःकृतवान्यशस्करंसुदुष्करंकर्मरणेनिपातितः ॥ महर्षिकल्पेनचसंस्कृतस्तदाजगामपुण्यां
गतिमात्मनःशुभाम् ॥ ३७ ॥ कृतोदकौतावपिपक्षिसत्तमेस्थिरांचबुद्धिंप्रणिधायजग्मतुः ॥ प्रवेश्यसीताधिगमेततो
मनोवनंसुरेंद्राविवविष्णुवासवौ ॥ ३८ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० आर० अष्टषष्टितमःसर्गः ॥ ६८ ॥ कृत्वैवमुद
कंतस्मैप्रस्थितौराघवौतदा ॥ अवेक्षंतौवनेसीतांजग्मतुःपश्चिमांदिशम् ॥ १ ॥

जल देकर पिंड व तिलाञ्जलि देते हुए ॥ ३६ ॥ गृध्रराज जटायु दुष्करकार्य करते हुए युद्धमें मारे जाकर, और महर्षिसदृश श्रीरामचन्द्रजीके
संस्कारित हो परम पवित्र पुण्य गतिको प्राप्त हुए ॥ ३७ ॥ तब राम और लक्ष्मण दोनों जन जलादि क्रिया समाप्त करकै पक्षिश्रेष्ठ
जटायुके प्रति पितृबुद्धि स्थापित कर वहांसे प्रस्थान करते हुए, और सीताजीके खोजनेंमें मन लगाकर सुरश्रेष्ठ विष्णु और इन्द्रजीकी समान वनमें
प्रवेश करतेहुए॥३८॥इ० श्रीम०वा०आ०आ०अष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥ जब पक्षिराज जटायुकी जलक्रिया होचुकी तब श्रीरामचन्द्र व लक्ष्म

हुए बाणोंसे सब संसार पिशाच और राक्षसोंसे रहित कर देंगे ॥ ६५ ॥ इस संसारमें कोईभी हमारे इन बाणोंको निवारण नहीं करसकैगा, आज देवता लोग देखेंगे कि समूहके समूह बाण हम करके रोष और क्रोधमें भरकर चलाये हुए कितनी २ दूरपर जाकर गिरते हैं न देवता न दैत्य न पिशाच न राक्षस ॥ ६६ ॥ जब हमारे क्रोधसे तीनों लोकोंका नाश हुआ तब कोईभी रक्षा न पावैगा ॥ ६७ ॥ अधिक क्या कहैं, सुर, असुर, यक्ष और राक्षसोंके समस्तही लोक हमारे बाण जालसे खंड २ होकर गिरेंगे आज हम बाणोंको छोडकर समस्त लोकको मर्यादा शून्य करेंगे॥ ६८॥ प्रिया वैदेहीजी मरही गईहों अथवा हरही गईहों सो किसी अवस्थामें हों यदि ब्रह्मादि देव गण उने हमको न देदें ॥ ६९ ॥ हम चराचर सहित इस

द्रक्ष्यंत्यद्यविमुक्तानाममर्षाद्दूरगामिनाम् ॥ नैवदेवानदैतेयानपिशाचानराक्षसाः ॥ ६६ ॥ भविष्यंतिममक्रोधात्रैलोक्येऽपिप्रणाशिते ॥ देवदानवयक्षाणांलोकायेरक्षसामपि ॥ ६७ ॥ बहुधानिपतिष्यंतिबाणौघैःशकलीकृताः ॥ निर्मर्यादानिमान्लोकान्करिष्याम्यद्यसायकैः ॥६८॥ हृतांमृतांवासौमित्रेनदास्यंतिममेश्वराः ॥ तथारूपांहिवैदेहींनदास्यंतियदिप्रियाम् ॥ ६९॥ नाशयामिजगत्सर्वंत्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ यावद्दर्शनमस्यावैतापयामिचसायकैः ॥ ७० ॥ इत्युक्त्वाक्रोधताम्राक्षःस्फुरमाणोष्ठसंपुटः ॥ वल्कलाजिनमाबध्यजटाभारमबंधयत् ॥ ७१ ॥ तस्यक्रुद्धस्यरामस्यतथाभूतस्यधीमतः ॥ त्रिपुरंजघ्नुषःपूर्वंरुद्रस्येवबभौ तनुः ॥ ७२ ॥ लक्ष्मणादथचादायरामोनिष्पीड्यकार्मुकम् ॥ शरमादायसंदीप्तंघोरमाशीविषोपमम् ॥ ७३ ॥

सब जगत्का विनाश कर डालेंगे और जबतक हम सीताको न देख पावेंगे तबतक बाणोंसे चराचरको संतापित करेंगे ॥ ७० ॥ यह कह कर क्रोधसे श्रीरामचन्द्रजीकी आंखें लाल २ हो आईं, होठ फडकने लगे, श्रीरामचन्द्रजीनें चीर वल्कल मृगचर्म और जटाजूट कस कर बांधा ॥ ७१ ॥ उस कालमें धीमान् रामचन्द्रजीनें क्रोधित होकर जब ऐसे कार्यका अनुष्ठान किया, तब उनका देह ऐसा प्रतिभात होनें लगा कि जैसे पूर्व कालमें रुद्रजी त्रिपुर वध करनेंको तैयार हुएथे ॥ ७२ ॥ अनन्तर उन्होंनें लक्ष्मणजीके निकटसे धनुष ग्रहण कर और दृढ रूपसे धारण करके सर्प विष सदृश

गुफामें नित्यही अंधकार रहताथा ॥ १० ॥ श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीनें उसके निकट पहुँचकर उसम भयंकर आकारवाली और विकृत वदन
एक राक्षसीको देखा ॥ ११ ॥ राक्षसी देखनेंमें अति भयंकरीथी, खाल अति कडीथी ॥ १२ ॥ स्वभाव अति भयंकरथा बडे२ मृगोंको वह भ
क्षण करती, रूप बडा भयावना शिरके बाल खुले, ऐसी उस राक्षसीको दोनों भाइयोंनें देखा ॥ १३ ॥ तिसके पीछे वह निशाचरी रामचंद्रजीके
आगे खडे हुये लक्ष्मणजीके निकट आकर कहनें लगी कि "आओ हम तुमसे विहार करें" ऐसा कहकर उसनें लक्ष्मणजीको ग्रहण किया ॥१४॥
और वह राक्षसी उनको चिपटायकर कहनेंलगी कि हे नाथ! हमारा अयोमुखी नामहै, अब तुमको परम लाभ हुआ और तुमही हमारे प्यारे

आसाद्यचनरव्याघ्रौदर्यास्तस्याविदूरतः ॥ ददर्शतुर्महारूपांराक्षसींविकृताननाम् ॥ ११ ॥ भयदामल्पसत्त्वा
नांबीभत्सांरौद्रदर्शनाम् ॥ लंबोदरींतीक्ष्णदंष्ट्रांकरालींपरुषत्वचम् ॥ १२ ॥ भक्षयंतींमृगान्भीमान्विकटांमुक्त
मूर्धजाम् ॥ अवैक्षतांतुतौतत्रभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ १३ ॥ सासमासाद्यतौवीरौव्रजंतंभ्रातुरग्रतः ॥ एहिरंस्यावहे
त्युक्त्वासमालंभतलक्ष्मणम् ॥ १४ ॥ उवाचचैनंवचनंसौमित्रिमुपगृह्यच ॥ अहंत्वयोमुखीनामलाभस्तेत्वमसिप्रि
यः ॥ १५ ॥ नाथपर्वतदुर्गेषुनदीनांपुलिनेषुच ॥ आयुश्चिरमिदंवीरत्वंमयासहरंस्यसे ॥ १६ ॥ एवमुक्तस्तुकुपितःखड्ग
मुद्धृत्यलक्ष्मणः ॥ कर्णनासस्तनंतस्यानिचकर्तारिसूदनः ॥ १७ ॥ कर्णनासेनिकृत्तेतुविस्वरंविननादसा ॥ यथागतं
प्रदुद्रावराक्षसीघोरदर्शना ॥१८॥ तस्यांगतायांगहनंव्रजंतौवनमोजसा॥आसेदतुरमित्रघ्नौभ्रातरौरामलक्ष्मणौ॥१९॥

हुये ॥ १५ ॥ हे नाथ! हमारे सहित सब जीवनतक नदियोंके किनारों पर और नाना प्रकारके पर्वतोंपर तुम विहार किया करना ॥१६॥ शत्रुओंका
नाश करनेंवाले लक्ष्मणजीनें इस बातसे क्रोधित होकर खड्ग उठाकर उस राक्षसीके नाक कान व स्तन काट डाले ॥ १७ ॥ जब उसके कान नाक
व स्तन काट डाले गये तब वह घोरदर्शनवाली राक्षसी विकट शब्दसे चिल्लाकर शब्द करतीहुई जहांसे आईथी वहांको दौडी ॥ १८ ॥ जब वह
वहांसे भाग गई तो महातेजमान शत्रुओंके मारनेंवाले श्रीराम लक्ष्मण दोनों भाई वेग सहित चलतेहुए एक गहन वनमें पहुँचे ॥ १९ ॥

वश होकर अपना स्वभाव छोडना आपको योग्य नहीं है ॥ ४ ॥ चन्द्रमामें श्री, वायुमें गति, पृथ्वीमें क्षमा, सूर्यमें दीप्ति, इन चारोंमें यह चार पदार्थ नित्य हैं और आपमें यश सहित यह चारों पदार्थ विद्यमान हैं ॥ ५ ॥ एक जनके अपराधसे समस्त लोकको हनन करना आपको उचित नहीं है, निश्चयही हम जानते हैं कि यह जो रथ टूटा पडा है यह एकही जनका है बहुतोंका नहीं ॥ ६ ॥ किन्तु यह जुआ युक्त और परिच्छेद सहित रथ किसका है, और क्योंकर टूटा है इसको हम नहीं जानते, देखिये यह स्थान खुरियोंसे खुद खुदाय रहा है और रुधिरसे भीगनेंके कारण अतिशय भयंकर हो रहाहै ॥ ७ ॥ निश्चयही यहांपर संग्राम हुआहै ॥ और इन सब कारणोंसे यहभी बोध होताहै कि एक रथीके सहित और किसी पशुका युद्ध

चंद्रेलक्ष्मीःप्रभासूर्येगतिर्वायौभुविक्षमा ॥ एतच्चनियतंनित्यंत्वयिचानुत्तमंयशः ॥ ५ ॥ एकस्यानापराधेनलोकान्हंतुंत्वमर्हसि ॥ ननुजानामिकस्यायंभग्नःसांग्रामिकोरथः ॥ ६ ॥ केनवाकस्यवाहेतोःसंयुगःसपरिच्छदः ॥ खुरनेमिक्षतश्चायंसिक्तोरुधिरबिंदुभिः ॥ ७ ॥ देशोनिर्वृत्तसंग्रामःसुघोरःपार्थिवात्मज ॥ एकस्यतुविमर्दोऽयंनद्वयोर्वदतांवर ॥ ८ ॥ नहिवृत्तंहिपश्यामिबलस्यमहतःपदम् ॥ नैकस्यतुकृतेलोकान्विनाशयितुमर्हसि ॥ ९ ॥ युक्तदंडाहिमृदवःप्रशांतावसुधाधिपाः ॥ सदात्वंसर्वभूतानांशरण्यःपरमागतिः ॥ १० ॥ कोनुदारप्रणाशंतेसाधुमन्येतराघव ॥ सरितःसागराःशैलादेवगंधर्वदानवाः ॥ ११ ॥ नालंतेविप्रियंकर्तुंदीक्षितस्येवसाधवः ॥ येनराजन्हृतासीतातमन्वेषितुमर्हसि ॥ १२ ॥

हुआहै दोजनोंका युद्ध नहीं हुआहै ॥ ८ ॥ बडी भारी सेनाके चरण चिह्न यहां पर नहीं दृष्टि आते इसलिये एक जनके अपराधसे समस्त लोकोंको विनाश करना आपको उचित नहींहै ॥ ९ ॥ राजा लोग सचराचरपर अतिशय शान्त और मृदु स्वभाववाले होतेहैं, और अपराधानुसार दंड दिया करतेहैं आपभी सर्वदा सब भूतोंके शरण्य और परम गतिहैं ॥ १० ॥ हे रघुनंदन! संसारमें कौन पुरुष आपकी भार्याका वियोग आपसे अच्छा समझताहै कारण कि नदी, समुद्र, पर्वत, देवता, गन्धर्व, दानव, सरित सागर ॥ ११ ॥ और शैल कोईभी आपका अप्रिय नहीं करसकते, जैसे यजमानका अप्रिय साधुलोग नहीं कर सकते। हे राजन्! जिसनें सीताको हरण कियाहै इस समय उस जनकी खोज करना आपका कर्त्तव्य हुआहै ॥ १२ ॥

द्रजीके आगे आनकर खडा होगया,उसका मस्तक आर गर्दन नहींथी शरीर बहुत बडाथा,मुख पेट में था ॥२७॥रुवें भालेके समान तीखे और सीधे थे आकार उसका महा पर्वतकी समान ऊंचाथा स्वर मेघके गर्जनेंकी तुल्य, रंग नीले मेघकी समान, व स्वभाव और आकार उसका बडा भयंकरथ[illegible]ट॥ और उसका नेत्र यह अग्निकी ज्वालाके समान प्रदीप्त और बडी२ धूमिली पलकें इस पर थीं और यह नेत्र बडाभी बहुत था ॥ २९ ॥ और उस दूसरा नेत्र छातीमें था यह नेत्र अतिशय भयंकर और तीक्ष्ण दिखावका था, उसका मुखभी बडा भारीथा और उसके मुखमें बडे २ दांतोंकी पंक्ति यांथीं, वह उस मुखसे मानो लीलेही लेताथा ॥ ३० ॥ और वह अपनी चार २ कोशकी लंबी दोनों बांहोंसे पकड २ ऋक्ष, सिंह, मृगादिकोंको

रोमभिर्निशितैस्तीक्ष्णैर्महागिरिमिवोच्छ्रितम् ॥ नीलमेघनिभंरौद्रंमेघस्तनितनिःस्वनम् ॥ २८ ॥ अग्निज्वाला
निकाशेनललाटस्थेनदीप्यता ॥ महापक्ष्मेणपिंगेनविपुलेनायतेनच ॥ २९ ॥ एकेनोरसिघोरेणनयनेनसुदर्शि
ना ॥ महादंष्ट्रोपपन्नंतंलेलिहानंमहामुखम् ॥ ३० ॥ भक्षयंतंमहाघोरानृक्षासिंहमृगद्विजान् ॥ घोरौभुजौविकु
र्वाणमुभौयोजनमायतौ ॥ ३१ ॥ कराभ्यांविविधान्गृह्यऋक्षान्पक्षिगणान्मृगान् ॥ आकर्षंतंविकर्षंतमनेकान्मृगयू
थपान् ॥ ३२ ॥ स्थितमावृत्यपंथानंतयोर्भ्रात्रोःप्रपन्नयोः ॥ अथतंसमतिक्रम्यक्रोशमात्रंददर्शतुः ॥ ३३ ॥ महांतंदा
रुणंभीमंकबंधंभुजसंवृतम् ॥ कबंधमिवसंस्थानादतिघोरप्रदर्शनम् ॥ ३४ ॥ समहाबाहुरत्यर्थंप्रसार्यविपुलौभुजौ ॥
जग्राहसहितावेपराघवौपीडयन्बलात् ॥ ३५ ॥

भक्षण करता चला आताथा ॥ ३१ ॥ वह अपनी दोनों बांहोंसे विविध प्रकारके मृग पक्षी, ऋक्ष और मृगयूथोंको पकडता और अपने मुखमें छोडताथा ॥ ३२ ॥ जिस मार्गसे होकर राम लक्ष्मणजीको जानाथा, वह उसीको रोके हुये पडाथा, तब राम लक्ष्मणजीनें घूमकर एक कोश पर जाकर देखा तो ॥ ३३ ॥ अति घोर दर्शन दारुण भयंकराकार बडे शरीरवाला कवन्ध दिखलाई पडा वह अपनी दोनों भुजाओंसे जीव जन्तुओंको सब प्रकारसे पकडताथा और उसके शरीरकी गठन देखनेंसे ठीकही वह कबंध ज्ञात होताथा ॥ ३४ ॥ फिर महाबलवान कवन्धने

हे काकुत्स्थ ! यदि आपही इस आई हुई विपदको न झेलेंगे तौ अल्प प्राण मनुष्य कौन सह सकेगा ? ॥ ५ ॥ हे नरश्रेष्ठ! आप अपनें चित्तको सँभालिये। विपद अग्निकी समान सबही प्राणियोंको स्पर्श करतीहै किन्तु क्षण कालमेंही दूर चली जातीहै ॥ ६ ॥ लोकका स्वभावही यहहै। देखिये नहुषपुत्र ययाति, इन्द्रपदवी प्राप्त करकेभी अनीतिसे स्वर्गसे च्युत हुआथा ॥ ७ ॥ जो हमारे पिताजीके पुरोहितहैं, उन महर्षि वशिष्ठजीनें एक दिनमें शतपुत्र उत्पन्न किये, और एकदिनमेंही वह सब नष्ट होगये ॥ ८ ॥ हे कौशलेश्वर । जगन्माता, सर्व लोकके नमस्कार करनें योग्य इस पृथ्वीकाभी चलायमानहोना पाया जाताहै अर्थात् भूकंपादि दुःख इसको हुआ करतेहैं ॥ ९ ॥

यदिदुःखमिदंप्राप्तंकाकुत्स्थंनसहिष्यसे ॥ प्राकृतश्चाल्पसत्त्वश्चइतरःकःसहिष्यति ॥ ५ ॥ आश्वसिहिनरश्रेष्ठप्राणिनःकस्यनापदः ॥ संस्पृशंत्यग्निवद्राजन्क्षणेनव्यपयांतिच ॥ ६ ॥ लोकस्वभावएवैषययातिर्नहुषात्मजः ॥ गतःशक्रेणसालोक्यमनयस्तंसमस्पृशत् ॥ ७ ॥ महर्षियोंवसिष्ठस्तुयःपितुर्नःपुरोहितः ॥ अह्नापुत्रशतंजज्ञेतथैवास्यपुनर्हतम् ॥८॥ याचेयंजगतोमातासर्वलोकनमस्कृता ॥ अस्याश्चचलनंभूमेर्दृश्यतेकोशलेश्वर ॥ ९ ॥ यौधर्मौजगतोनेत्रौयत्रसर्वंप्रतिष्ठितम् ॥ आदित्यचंद्रौग्रहणमभ्युपेतौमहाबलौ ॥ १० ॥ सुमहांत्यपिभूतानिदेवाश्चपुरुषर्षभ ॥ नदैवस्यप्रमुंचंतिसर्वभूतानिदेहिनः ॥ ११ ॥ शक्रादिष्वपिदेवेषुवर्तमानौनयानयौ ॥ श्रूयेतेनरशार्दूलनत्वंव्यथितुमर्हसि ॥ १२ ॥ मृतायामपिवैदेह्यांनष्टायामपिराघव ॥ शोचितुंनार्हसेवीरयथान्यःप्राकृतस्तथा ॥ १३ ॥

जो सूर्य चन्द्रमा कि जगत्के नेत्र और साक्षात् धर्मस्वरूप हैं,और जिनमें समस्त संसार टिका हुआ है उन महाबलवान् सूर्य चन्द्रमाकाभी ग्रहण हो जाता है ॥ १० ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ! इस प्रकारसे अति महत् भूत और देवतालोगभी जब दैवके वश हैं तब साधारण शरीर धारी प्राणियोंकी क्या गिनती है? ॥ ११ ॥ अधिक क्या कहैं इन्द्रादि देवताओंमेंभी नीति और अनीति सुख दुःख सुना जाया करता है, इस्से हे नरसिंह! आप अब व्यथित न हूजिये॥१२॥हे रघुनंदन!यदि जानकीजी हरी गई हों, वा मृतक होगईहों तौभी साधारण पुरुषोंकी समान आपको शोक करना योग्य नहीं है१३॥

यहांपर क्या कार्यहै, और तुम किस कारणसे यहांपर आयेहो सो कहो॥४४॥ हम भूखे होकर यहांपर टिकरहेहैं सो तुम धनुष बाण और खड्ग धारण किये हुये तेज सींगवाले बैलकी समान यहांपर हमारे मुखमें आय पडेहो ॥ ४५ ॥ परन्तु अब हमारे मुखमें पड तुम्हारा जीवित रहना दुर्लभहै दुरात्मा कबंधके यह वचन सुनकर ॥ ४६ ॥ श्रीरामचंद्रजी वदन सुखाकर लक्ष्मणजीसे बोले कि यह सत्यविक्रम ! प्रिया सीताजीके हरणसे विषम विपद आपडी है, सो इस्से निश्चयही प्राण संहार होनेंकी संभावनाहै तिसके ऊपर फिर वारंवार यह कष्टके ऊपर कष्ट पड रहे हैं ॥ ४७ ॥ अब तौ यह महा दुःख हमको प्राप्त हुआ है, अब प्रियाके पानेकीभी आश त्याग करैं। हे लक्ष्मण! सब प्राणियोंमें कालका बडा वीर्य दिखलाई देता

इमंदेशमनुप्राप्तौक्षुधार्तस्येहतिष्ठतः॥ सबाणचापखड्गौचतीक्ष्णशृंगाविवर्षभौ ॥ ४५ ॥ मांतूर्णमनुसंप्राप्तौदुर्लभंजीवितंहिवाम् ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाकबंधस्यदुरात्मनः ॥ ४६ ॥ उवाचलक्ष्मणंरामोमुखेनपरिशुष्यता॥कृच्छ्रात्कृच्छ्रतरंप्राप्यदारुणंसत्यविक्रम ॥ ४७ ॥ व्यसनंजीवितांतायप्राप्तमप्राप्यतांप्रियाम् ॥ कालस्यसुमहद्वीर्यंसर्वभूतेषुलक्ष्मण ॥ ४८ ॥ त्वांचमांचनरव्याघ्रव्यसनैःपश्यमोहितौ ॥ नहिभारोऽस्तिदैवस्यसर्वभूतेषुलक्ष्म ॥ ४९ ॥ शूराश्चबलवंतश्चकृतास्त्राश्चरणाजिरे ॥ कालाभिपन्नाःसीदंतियथावालुकसेतवः ॥ ५० इतिब्रुवाणोदृढसत्यविक्रमोमहायशादाशरथिःप्रतापवान् ॥ अवेक्ष्यसौमित्रिमुदग्रविक्रमःस्थिरांतदास्वांमतिमात्मनाकरोत् ॥ ५१ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा०आ० आर०एकोनसप्ततितमःसर्गः ॥ ६९ ॥ ॥ ७ ॥ ॥

है ॥४८॥हे नरश्रेष्ठ लक्ष्मण! देखो हम तुम दोनों कालकेही प्रभावसे कैसे दुःखमें पडे हैं, प्राणियोंको दुःख देनेंमें कालको कुछभी डर नहीं है ॥४९॥ कालके वश हो बडे शूरवीर अस्त्र शस्त्रोंके जाननेंवाले पुरुषभी रेतेसे बनाये हुये पुलकी समान संग्राममें खस जाते हैं ॥ ५० ॥ सत्य और अनतिक्रमणीय दृढविक्रमसम्पन्न, प्रतापवान महायशस्वी दशरथनंदन बुद्धिमान श्रीरामचन्द्रजीनें लक्ष्मणजीको देख ऐसा कहते २ ज्ञानके प्रभावसे अपने चित्तको स्थिर किया ॥ ५१ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आदिकाव्ये आरण्यकांडे एकोनसप्ततितमः सर्गः॥ ६९ ॥

कहनें पर सारके ग्रहण करनेंवाले महाबाहु रामचन्द्रजीनें उनको ग्रहण किया॥१॥ तिसके पीछे वह अपना बढा हुआ क्रोध शान्तकर विचित्र धनुष धारण करके लक्ष्मणजीसे कहनें लगे॥२॥ हे वत्स! हम इस समय कहां जांय क्या करें, और किस उपायसे जानकीको प्राप्त होवैं? सो तुम इसका विचार करो॥३॥ तब लक्ष्मणजी अति संतापित रामचन्द्रजीसे बोले कि इस जनस्थानकोही ढूंढना और खोज करना आपको उचित है॥४॥ बहुत सारे राक्षसों करके समाकीर्ण और विविध भांतिके लता वृक्षोंसे युक्त इस जनस्थानमें अनेक गिरि गुहा कंदरा॥५॥ पत्थरोंकी चटानें और अनेक जाति वाले मृग गणोंसे पूर्ण गुफायें किन्नर व गन्धर्व गणोंके फिरनेंके स्थान और भवन जहां बहुत सारे हैं॥६॥ सो आप हमारे सहित साव

सनिगृह्यमहाबाहुःप्रवृद्धंरोषमात्मनः ॥ अवष्टभ्यधनुश्चित्रंरामोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ २ ॥ किंकरिष्यावहेवत्स
क्ववागच्छावलक्ष्मण ॥ केनोपायेनपश्यावःसीतामिहविचिंतय ॥ ३ ॥ तंतथापरितापार्तंलक्ष्मणोवाक्यमब्रवीत् ॥
इदमेवजनस्थानंत्वमन्वेषितुमर्हसि ॥ ४ ॥ राक्षसैर्बहुभिःकीर्णंनानाद्रुमलतायुतम् ॥ संतीहगिरिदुर्गाणिनिर्दराः
कंदराणिच ॥ ५ ॥ गुहाश्चविविधाघोरानानामृगगणाकुलाः ॥ आवासाःकिन्नराणांचगंधर्वभवनानिच ॥ ६ ॥
तानियुक्तोमयासार्धंसमन्वेषितुमर्हसि ॥ त्वद्विधाबुद्धिसंपन्नामहात्मानोनरर्षभाः ॥ ७ ॥ आपत्सुनप्रकंपंतेवायुवेगैरि
वाचलाः ॥ इत्युक्तस्तद्वनंसर्वंविचचारसलक्ष्मणः ॥ ८ ॥ क्रुद्धोरामःशरंघोरंसंधायधनुषिक्षुरम् ॥ ततःपर्वतकूटाभं
महाभागंद्विजोत्तमम् ॥ ९ ॥ ददर्शपतितंभूमौक्षतजार्द्रंजटायुषम् ॥ तंदृष्ट्वागिरिशृंगाभंरामोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ १० ॥

धान होकर इन सब जगहको ढूंढ लीजिये, आपकी समान बुद्धिसम्पन्न महात्मा पुरुषोत्तम॥७॥ आपदके समय कभी नहीं विचलते, जैसे वायुके वेगसे पर्वत नहीं कांपते यह सुन श्रीरामचन्द्रजीनें लक्ष्मणजीके साथ समस्त बन खोजा॥८॥ उस समय श्रीरामचन्द्रजीनें बडा कोप करके पैनी धारवाला भयंकर बाणभी धनुषपर चढायाथा, वहां जाते २ पर्वतकी समान आकारवाला बडा भाग्यवान् पक्षी श्रेष्ठ॥९॥ जटायुको पृथ्वीपर पडा और रुधिरसे लिपटा हुआ देखा उसको पर्वतके शृंगकी समान आकारवाला देख श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीसे बोले॥१०॥

जब बाहें काट डालीं गई तब भयंकर शब्द करता हुआ महाबाहु कबन्ध मेघकी समान घोर शब्द करके गगनमण्डल और दशोंदिशाओं को अपने शब्दसे भर देता हुआ गिर पडा ॥ १० ॥ फिर अपनी दोनों भुजा ओंको कटा हुआ देखकर दानव कबंध रुधिरसे डूबा हुआ दोनों भाइयोंसे बोला कि तुम कौनहो? ॥ ११ ॥ जब कबन्धनें इस प्रकारसे पूछा तब महाबलवान् शुभ लक्षण युक्त काकुत्स्थ लक्ष्मणजी कबंधसे बोले ॥१२॥ यह इक्ष्वाकु वंशमें उत्पन्न हुए हैं और श्रीराम नामसे यह लोकमें विख्यात हैं और हम इनके छोटे भाई हमारा नाम लक्ष्मण है ॥१३॥ सौतेली जननी कैकेयी करके इनकी राज्य प्राप्ति रोकी जाकर सर्व त्यागी करा यह वनको पठाये गये सो यह हमारे और अपनी भार्याके साथ वनमें विचरण करतेथे

सपपातमहाबाहुश्छिन्नबाहुर्महास्वनः ॥ खंचगांचदिशश्चैवनादयन्जलदोयथा ॥ १० ॥ सनिकृत्तौभुजौदृष्ट्वा शोणितौघपरिप्लुतः ॥ दीनःपप्रच्छतौवीरौकौयुवामितिदानवः ॥ ११ ॥ इतितस्यब्रुवाणस्यलक्ष्मणःशुभलक्षणः ॥ शशंसतस्यकाकुत्स्थंकबंधस्यमहाबलः ॥ १२ ॥ अयमिक्ष्वाकुदायादोरामोनामजनैःश्रुतः ॥ तस्यैवावरजंविद्धिभ्रातरंमांचलक्ष्मणम् ॥ १३ ॥ मात्राप्रतिहतेराज्येरामःप्रव्राजितोवनम् ॥ मयासहचरत्येषभार्ययाचमहद्वनम् ॥ १४ ॥ अस्यदेवप्रभावस्यवसतोविजनेवने ॥ रक्षसापहृताभार्यायामिच्छंताविहागतौ ॥ १५ ॥ त्वंतुकोवाकिमर्थंवाकबंधसदृशोवने ॥ आस्येनोरसिदीप्तेनभग्नजंघोविचेष्टसे ॥ १६ ॥ एवमुक्तःकबंधस्तुलक्ष्मणेनोत्तरंवचः ॥ उवाचवचनंप्रीतस्तदिंद्रवचनंस्मरन् ॥ १७ ॥ स्वागतंवांनरव्याघ्रौदिष्ट्यापश्यामिवामहम् ॥ दिष्ट्याचेमौनिकृत्तौमेयुवाभ्यांबाहुबंधनौ ॥ १८ ॥

॥ १४ ॥ कि वनमें वास करनेंके समय इन देव तुल्य प्रतापशाली श्रीरामचन्द्रजीकी भार्या हरी गई हैं सो उनको ही ढूँढतेर हम लोग यहां पर आये हैं॥१५॥और तुम कौन हो? जो कबन्धकी समान वनमें घूमते हो! तुम्हारी जांघ टूटी हुई हैं, और अतिशय दीप्तयुक्त वदन मंडल छातीमें लगा हुआ है ॥ १६ ॥ जब लक्ष्मणजीनें ऐसा कहा तब इन्द्रके वचनका स्मरण करता हुआ कबन्ध प्रसन्न होकर बोला ॥ १७ ॥ कि आप लोग दोनों ही पुरुषोंमें श्रेष्ठहैं । आप अच्छी तरहसे तो आये आज भाग्यसे ही हमनें आप लोगोंको देखाहै और आपनें जो हमारे बंधन रूप हाथ काट डाले

जब हम बूढे होनेंके कारण लडते २ थक गये तब राक्षसनाथ रावणनें खड्ग से हमारे पंख काट डाले ॥ १९ ॥ और सीताजीको लेकर आकाश मार्गमें चला गया, प्रथम तो हम रावण करकै मारेही गये हैं, सो इस समय हमारा वध करना आपको उचित नहीं है ॥ २० ॥ श्रीरामचंद्रजी गिद्धके मुखसे सीताजीके विषयक प्रिय वचन सुनतेही महा धनुष को त्याग करके आलिंगन करलेते हुये ॥ २१ ॥ और शोकसे अवश हो पृथ्वी में गिर कर लक्ष्मणजीके सहित रोदन करनें लगे । यद्यपि श्रीरामचंद्रजी महावीरथे तथापि दूना संताप पाकर बहुत व्याकुल होगये ॥ २२ ॥ उसकाल जटायुको एकान्त में पडे वारंवार ऊंची श्वास लेते हुये देख शोकसे आतुर हो श्रीरामचंद्रजीने लक्ष्मणजीसे कहा ॥ २३ ॥ हम राज्यसे भ्रष्ट हुये

सीतामादायवैदेहीमुत्पपातविहायसम् ॥ रक्षसानिहतंपूर्वंमांनहंतुंत्वमर्हसि ॥ २० ॥ रामस्तस्यतुविज्ञायसीतासक्तांप्रियांकथाम्॥गृध्रराजंपरिष्वज्यपरित्यज्यमहद्धनुः॥२१॥निपपातावशोभूमौरुरोदसहलक्ष्मणः॥द्विगुणीकृततापार्तोरामोधीरतरोऽपिसन् ॥ २२ ॥ एकमेकायनेकृच्छ्रेनिःश्वसंतंमुहुर्मुहुः ॥ समीक्ष्यदुःखितोरामःसौमित्रिमिदमब्रवीत् ॥ २३ ॥ राज्यंभ्रष्टंवनेवासःसीतानष्टामृतोद्विजः ॥ ईदृशीयंममालक्ष्मीर्दहेदपिहिपावकम् ॥ २४ ॥ संपूर्णमपिचेदद्यप्रतरेयंमहोदधिम् ॥ सोपिनूनंममालक्ष्म्याविशुष्येत्सरितांपतिः ॥ २५ ॥ नास्त्यभाग्यतरोलोकेमत्तोऽस्मिन्सचराचरे ॥ येनेयंमहतीप्राप्तामयाव्यसनवागुरा ॥ २६ ॥ अयंपितुर्वयस्योमेगृध्रराजोमहाबलः ॥ शेतेविनिहतोभूमौममभाग्यविपर्ययात् ॥ २७ ॥

वनमें वास हुआ, सीताजी हरी गईं और जटायुकी मृत्यु होगई हमारे खोटे कर्मसे उपस्थित हुई यह विपत्ति अग्निकोभी भस्म कर सकतीहै ॥ २४॥ हम अपने भाग्यकी क्या बात कहैं! हम इस दुःखके संतापसे शान्ति पानेंके लिये तलहीन तटहीन महासागरको भी उतरें! तो वह सरित स्वामी समुद्र भी निश्चयही हमारे दुर्भाग्यके प्रभावसे एक वारही सूख जायगा ॥ २५ ॥ सचराचर लोकोंमें हमसा अधिक मन्दभाग्य और कोई नहीं है क्योंकि हमनें इतनीबडी दुःखकी फांसी पाई है ॥ २६ ॥ यह महाबली गिद्धराज हमारे पिताके प्रिय सखाहैं, सो यह भी हमारे

कर लोगे सो हे लक्ष्मण ! हम दनुके श्रीमान् पुत्रहैं ॥७॥संग्राममें इन्द्रजीके शापसे यह कवंधकासा रूप हमने पायाहै उसका ठीक २ वृत्तान्त यह है कि आगे हमनें अत्युग्र तप करके ब्रह्माजी को प्रसन्न किया ॥ ८ ॥ तब उन्होंने हमको दीर्घायु प्रदान की तिसके पीछे हमारे चित्तमें भ्रम हुआ और जिस्से हमनें गर्वित होकर विचारा कि । इन्द्र हमारा क्या कर सकते हैं क्योंकि अब तौ हमनें दीर्घायु पालीहै ॥ ९ ॥ ऐसी बुद्धिमें स्थिर हो संग्राममें हमनें इन्द्रको ललकारा तब उन्होंनें अपना सौधारका वज्र हमारे ऊपर छोडा जिसके लगनेंसे ॥ १० ॥ मस्तक कनपटी आदि सब अंग हमारे शरीरके भीतर पैठ गये । तिसके पीछे हमने अपनी मौत चाही भी परन्तु उन्होनें हमें यमपुरको न भेजा ॥ ११ ॥ वरन केवल उन्होंनें

इंद्रशापादिदंरूपंप्राप्तमेवंरणाजिरे ॥ अहंहितपसोग्रेणपितामहमतोषयम् ॥ ८ ॥ दीर्घमायुःसमेप्रादात्ततोमांवि भ्रमोऽस्पृशत् ॥ दीर्घमायुर्मयाप्राप्तंकिंमांशक्रःकरिष्यति ॥ ९ ॥ इत्येवंबुद्धिमास्थायरणेशक्रमधर्षयम् ॥ तस्य बाहुप्रमुक्तेनवज्रेणशतपर्वणा ॥ १० ॥ सक्थिनीचाशिरश्चैवशरीरेसंप्रवेशितम् ॥ समयायाच्यमानःसन्नानयद्यम सादनम् ॥ ११ ॥ पितामहवचःसत्यंतदस्त्वितिममाब्रवीत् ॥ अनाहारःकथंशक्तोभग्नसक्थिशिरोमुखः ॥ वज्रिणाभिहतःकालंसुदीर्घमपिजीवितुम् ॥ सएवमुक्तःशक्रोमेबाहूयोजनमायतौ ॥ १२ ॥ तीक्ष्णदंष्ट्रमकल्पयत् ॥ सोऽहंभुजाभ्यांदीर्घाभ्यांसंक्षिप्यास्मिन्वनेचरान् ॥ १३ ॥ तदाचास्यंचमेकुक्षौ सिंहद्वीपिमृगव्याघ्रान्भक्षया मिसमंततः ॥ सतुमामब्रवीदिंद्रोयदारामःसलक्ष्मणः ॥ १४ ॥ ॥ १५ ॥

इतनाही कहा कि जाओ पितामह ब्रह्माजीका वचन सत्य होवे और तुम बहुत दिनोंतक जीवित रहो तब हमनें उनसे कहाकि आपका वज्र लगनेसे हम शिर कनपटीमुख आदि अंगोंसें रहित होगये फिर भला हम किस प्रकारसे विना कुछ खाये पिये दीर्घकालतक जीवन धारण करनें में समर्थ होंगे ॥ १२ ॥ इस बातको सुनकर इन्द्रजीनें कहाकि बहुत अच्छा अब तेरी बाहें एक योजन लंबी हो जायँगी ॥ १३ ॥ यह कह कर उन्होंनें हमारे पेटमें बडे २ दांत सहित मुख भी बना दिया तबसे हम अपनें बडे हाथ फैलाकर वनचरोंको पकड२मुखमें डाललेते हैं॥१४॥ उनमें सिंह व्याघ्र ऋक्ष आदि जो मिलते उनको पकड २ कर हम भक्षण किया करतेथे, इन्द्रजीनें फिर यहभी कहाथा कि जब श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजी॥१५॥

और हमनें उसका क्या अपराध कियाथा, जो वह हमारी प्राणप्यारीको हरण करकै लेगया ॥ ५ ॥ हे विहंगवर ! हरणके समय जानकीका वह पूर्ण शशि सदृश मनोहर मुखमंडल कैसा हो गयाथा ? और उन्होंने उस समय क्या कहाथा ॥ ६ ॥ उस राक्षसराज रावणका वीर्य, रूप, और कर्म किस प्रकारकाहै । हे तात ! उसका निवास कहांपरहै ? जो हम पूछतेहैं सो सब बता दीजिये ॥ ७ ॥ तब धर्मात्मा जटायु लड खडाती वाणीसे विलाप करते व पूछते हुये श्रीरामचन्द्रजीसे यह वचन बोला ॥ ८ ॥ राक्षसोंके राजा दुरात्मा रावणनें वायु और दुर्दिन (जबकि आकाशमें बादल आजातेहैं) कारिणी महामायाका आश्रय करके सीताका हरण कियाहै ॥ ९ ॥ हे तात ! जब हम लडते २ बहुत थकगये, तब निशाचर

कथंतच्चंद्रसंकाशंमुखमासीन्मनोहरम् ॥ सीतयाकानिचोक्तानितस्मिन्कालेद्विजोत्तम ॥ ६ ॥ कथंवीर्यःकथंरूपः किंकर्मासचराक्षसः ॥ क्वचास्यभवनंतातब्रूहिमेपरिपृच्छतः ॥ ७ ॥ तमुद्वीक्ष्यसधर्मात्माविलपंतमनाथवत् ॥ वाचाविक्लवयारामभिदंवचनमब्रवीत् ॥ ८ ॥ साहृताराक्षसेंद्रेणरावणेनदुरात्मना ॥ मायामास्थायविपुलांवातदुर्दिनसंकुलाम् ॥ ९ ॥ परिक्लांतस्यमेतातपक्षौछित्त्वानिशाचरः ॥ सीतामादायवैदेहींप्रयातोदक्षिणामुखः ॥ १० ॥ उपरुध्यंतिमेप्राणादृष्टिर्भ्रमतिराघव ॥ पश्यामिवृक्षान्सौवर्णानुशीरकृतमूर्धजान् ॥ ११ ॥ येनयातिमुहूर्तेनसीतामादायरावणः ॥ विप्रनष्टंधनंक्षिप्रंतत्स्वामीप्रतिपद्यते ॥ १२ ॥ विंदोनाममुहूर्तोऽसौनचकाकुत्स्थसोऽबुधत् ॥ झषवद्बडिशंगृह्यक्षिप्रमेवविनश्यति ॥ १३ ॥

हमारे दोनों पंख काट सीताको ग्रहण करके दक्षिण दिशाको चला गया ॥ १० ॥ हे रघुनंदन ! अब हमारे प्राण रुकतेहैं, और दृष्टिभी भ्रमित होतीहै और हमको सब वृक्ष सुवर्णके दिखाई देतेहैं, मानों सब वृक्ष अपनें शिरके केशोंमें खश और फूलोंकी माला पहर रहेहैं ॥ ११ ॥ रावण जिस मुहूर्तमें सीताको हर लेगयाहै, उस मुहूर्तमें धनका स्वामी अपनाबहुत दिनका नष्ट (खोया हुआ) धनभी शीघ्रही प्राप्त करलेताहै, अर्थात् इस मुहूर्तकी खोई चीज शीघ्र मिलजातीहै ॥ १२ ॥ इस मुहूर्तका नाम विंदहै, इस मुहूर्तकी खोई हुई वस्तु शीघ्र मिलजातीहै, सो रावण

सो तुम हमारेऊपर उपकार करके हमारे ऊपर दया करो उसको बताओ और हाथियोंके दातोंसे टूटे हुये सूखे काठ बटोरकर तुमको ॥ २४ ॥
गढा खोद एक उसमें हे वीर ! हम तुमको जलादेंगे अब जो पुरुष सीताको हरण करके जिस जगह लेगयाहै. सो समस्त हमसे कहो ॥ २५ ॥ यदि
यथार्थही तुम इस बातको जानतेहो तौ इस्से हमारा बडा मंगल हो जायगा, जब श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा तो वह दानवश्रेष्ठ ॥ २६॥ अच्छा बोल
नेंवाला श्रीरामचंद्रजीसे बडी कुशलताके साथ कहनें लगा हमको अभी दिव्यज्ञान नहींहै इस कारण यह नहीं जानते कि जानकी कहांहैं ॥ २७ ॥
परन्तु जो तुमको उन्हें बतावेगा, उसको हम तुम्हें बतामेंगे, आप हमें भस्म कीजिये फिर हम अपना पहला रूप प्राप्त करके जोकि रावणको

कारुण्यंसदृशंकर्तुमुपकारेणवर्तताम् ॥ काष्ठान्यानीयभग्नानिकालेशुष्काणिकुंजरैः ॥२४॥धक्ष्यामस्त्वांवयंवीरश्वभ्रे
महतिकल्पिते ॥ सत्वंसीतांसमाचक्ष्वयेनवायत्रवाहृता ॥ २५ ॥ कुरुकल्याणमत्यर्थंयदिजानासितत्त्वतः ॥ एवमु
क्तस्तुरामेणवाक्यंदनुरनुत्तमम् ॥ २६ ॥ प्रोवाचकुशलोवक्तावक्तारमपिराघवम् ॥ दिव्यमस्तिनमेज्ञानंनाभिजाना
मिमैथिलीम् ॥ २७ ॥ यस्तांवक्ष्यतितंवक्ष्येदग्धःस्वंरूपमास्थितः ॥ योभिजानातितद्रक्षस्तद्वक्ष्येरामतत्परम् ॥ २८॥
अदग्धस्यहिविज्ञातुंशक्तिरस्तिनमेप्रभो ॥ राक्षसंतुमहावीर्यंसीतायेनहृतातव ॥ २९ ॥ विज्ञानंहिमहद्भ्रष्टंशापदोषेण
राघव ॥ स्वकृतेनमयाप्राप्तंरूपंलोकविगर्हितम् ॥ ३० ॥ किंतुयावन्नयात्यस्तंसविताश्रांतवाहनः ॥ तावन्मामवटेक्षि
प्त्वादहरामयथाविधि ॥ ३१ ॥

जानताहै उसको आपसे बतादेंगे ॥ २८ ॥ हे प्रभो ! जिस महावीर्य राक्षसनें आपकी सीताजीको हरण कियाहै सो बिना भस्म हुये हम किसी
प्रकारसेभी उनको न जान सकेंगे ॥ २९ ॥ पहले हममें बडा विज्ञानथासो इस शापके प्रभावसे हमारा वह दिव्यज्ञान नष्ट होगया, और हम
अपनेही कर्मके दोषसे ऐसे संसारमें निन्दित रूपको प्राप्त हुयेहैं ॥ ३० ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! जबतक सूर्य भगवानके घोडे थककर अस्ता
चलको न चले जांय क्योंकि अब अस्ताचलको जानाही चाहतेहैं तिससे पहलेही आप हमको गढेमें डालकर यथा विधिसे भस्म कर दीजिये ॥३१॥

और हमारे निमित्त पितृपितामहप्राप्त महत् राज्य परित्याग करके इनगृध्रराजने प्राण छोडेहै ॥ २३ ॥ हम जानतेहैं कि सभी जातियोंमें शूरता युक्त शरण देनेवाले धर्माचरण करनेंवाले साधु देखे जातेहैं,सो मनुष्यादिके सिवाय पक्षिआदि तिर्यग्योनिमेंभी ऐसे लोग देखे जातेहैं॥ २४॥ हे सौम्य! ह मारेहीलिये इस गृध्रनें प्राण छोडेहैं इसलिये इसकी मृत्युसे सीताके हरणसेभी अधिक हमको दुःख हुआहै ॥२५॥महा यशमान श्रीमान् राजा दशर थजी जिस प्रकारसे हमारे पूजनीय और माननीयहैं परोपकार करनें और पिताजीका सखा होनेंसे यह विहंगमश्रेष्ठभी हमको वैसाही है ॥ २६ ॥ हे सुमित्रानंदन! तुम काठ ले आओ हम अग्नि उत्पन्न करके हमारे लिये प्राण दिये हुए इन गृध्रराजका दाह करेंगे ॥ २७ ॥ हे लक्ष्मण! यह

गृध्रराज्यंपरित्यज्यपितृपैतामहंमहत् ॥ ममहेतोरयंप्राणान्मुमोचपतगेश्वरः ॥२३॥ सर्वत्रखलुदृश्यंतेसाधवोधर्मचारिणः ॥ शूराःशरण्याःसौमित्रेतिर्यग्योनिगतेष्वपि॥२४॥सीताहरणजंदुःखंनमेसौम्यतथागतम् ॥यथाविनाशोगृध्रस्य मत्कृतेचपरंतप ॥ २५ ॥ राजादशरथःश्रीमान्यथाममहायशाः ॥ पूजनीयश्चमान्यश्चतथायंपतगेश्वरः॥ २६॥ सौमित्रेहरकाष्ठानिनिर्मथिष्यामिपावकम् ॥ गृध्रराजंदिधक्ष्यामिमत्कृतेनिधनंगतम् ॥ २७ ॥ नाथंपतगलोकस्यचितिमारोपयाम्यहम् ॥ इमंधक्ष्यामिसौमित्रेहतंरौद्रेणरक्षसा ॥ २८ ॥ यागतिर्यज्ञशीलानामाहिताग्नेश्चयागतिः ॥ अपरावर्तिनांयाचयाचभूमिप्रदायिनाम् ॥ २९ ॥ मयात्वंसमनुज्ञातोगच्छलोकाननुत्तमान् ॥ गृध्रराजमहासत्त्वसंस्कृतश्चमयाव्रज ॥ ३० ॥ एवमुक्त्वाचितांदीप्तामारोप्यपतगेश्वरम् ॥ ददाहरामोधर्मात्मास्वबंधुमिवदुःखितः ॥३१॥ रामोऽपिसहसौमित्रिर्वनंयात्वासवीर्यवान् ॥ स्थूलान्हत्वामहारोहीननुतस्तारतंद्विजम् ॥ ३२ ॥

जटायु पक्षियोंका राजा, और घोर कर्म करनेंवाले राक्षसके हाथसे मारेगये हैं, हम इनका चितापर रखकर दाह करेंगे ॥ २८॥ यज्ञशील और आहिताग्नियोंकी जो गति होती है, समरसे पराङ्मुख न होनेंवाले; और भूमि दान करनें वाले पुरुषोंकी जो गति होती है॥ २९ ॥ हे महाबलवान् गृध्रराज! तुम हम करके संस्कृत और हमारीही आज्ञासे उन सब श्रेष्ठगतियोंको प्राप्त होवो ॥३०॥ धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकारसे यह कह कर दुःखित हो अपने बंधुकी समान पक्षिराज जटायुको जलती हुई चिता में चढाकर दाह करते हुए ॥ ३१ ॥ फिर वह महायशवान् वीर्यवान् श्री

शरीरके प्रभासे दशो दिशाओंको प्रकाशता हुआ ॥ ६ ॥ आकाशमें उठ श्रीरामचंद्रजीकी ओर दृष्टि करके कहनें लगा कि हे रघुनंदन ! जिस उपायसे आप सीताको प्राप्त कर सकेंगे वह रीति ठीकर सुनो ॥ ७ ॥ सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय, यह जो छैः युक्ति व उपायहैं, सो राजा लोग इनकी सहायतासेही सब वातोंका विचार करतेहैं और विना इनका आश्रय लिये किसी कार्यकीभी सिद्धि नहीं होती ॥ ८ ॥ सो इसमें दुर्दशाके समय समाश्रय नामक जो उपायहै, उसका आश्रय करना कहाहै सो जव बहुतही दुर्दशा होजाय तव लोग उसका आश्रय करतेहैं सो इस समय आपकोभी इसी समाश्रयके आश्रय लेनेंका प्रयोजन हुआहै क्योंकि इस समय आप लक्ष्मणजीके सहित वैसेही दुर्दशासे ग्रसे जाकर

सोंतरिक्षगतोवाक्यंकबंधोराममब्रवीत् ॥ शृणुराघवतत्त्वेनयथासीतामवाप्स्यसि ॥ ७ ॥ रामषड्युक्तयोलोकेयाभिःसर्वंविमृश्यते ॥ परिमृष्टोदशांतेनदशाभागेनसेव्यते ॥ ८ ॥ दशाभागगतोहीनस्त्वंहिरामसलक्ष्मणः ॥ यत्कृतेव्यसनंप्राप्तंत्वयादारप्रधर्षणम् ॥ ९ ॥ तदवश्यंत्वयाकार्यःससुहृत्सुहृदांवर ॥ अकृत्वानहितेसिद्धिमहंपश्यामिचिंतयन् ॥ १० ॥ श्रूयतांरामवक्ष्यामिसुग्रीवोनामवानरः ॥ भ्रात्रानिरस्तःक्रुद्धेनवालिनाशक्रसूनुना ॥ ११ ॥ ऋष्यमूकेगिरिवरेपंपापर्यंतशोभिते ॥ निवसत्यात्मवान्वीरश्चतुर्भिःसहवानरैः ॥ १२ ॥ वानरेंद्रोमहावीर्यस्तेजोवानमितप्रभः ॥ सत्यसंधोविनीतश्चधृतिमान्मतिमान्महान् ॥ १३ ॥

राज्यादिसे भ्रष्ट हुएहैं ॥ ९ ॥ और इसी कारणसे आपके ऊपर तुम्हारी स्त्रीका हरण स्वरूप महा दुःखभी आनकर पडाहै । इस कारणसे हे राजवर! आपको दूसरेके सहित जिसका परिवारभी बहुत हो; उस्से अवश्यही मित्रता करनी होगी, हमनें भली भांतिसे सोच विचारकर देखलियाहै कि ऐसे उपायका अवलंबन न करनेंसे आपके कार्यकी सिद्धि नहीं होगी ॥ १० ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! सुनिये एक सुग्रीव नामक वानरहै उसके भाईका नाम जो कि इन्द्रका पुत्रहै वालि है; उस वालिनें क्रोधकर सुग्रीवको घरसे निकाल दियाहै ॥ ११ ॥ अव वह सुग्रीव ऋष्यमूक पर्वतपर अपनें चार वानरोंके सहित रहताहै । यह ऋष्यमूक पर्वतके चारों ओर पंपानदीतक शोभित हो रहीहै ॥ १२ ॥ वह वानरेन्द्र सुग्रीव महा

णजी दोनों वहांसे चलकर वनमें सीताजीको ढूंढते भालते हुए पश्चिमदिशाकी ओर चले॥ १ ॥ और धनुष बाण खड्ग हाथमें लेकर दोनों भ्राता जिस मार्गमें तबतक कोई मनुष्य नहीं गयाथा, उसी पश्चिम दक्षिण कोणवाले मार्गको चले ॥ २ ॥ उस मार्गमें अनेक प्रकारके झाड वृक्ष वल्ली लता आदि लगनेंके कारण वह चारोंओरसे घिर रहाथा, इसी कारणसे वह अतिभयानक वा दुर्गम बोध होताथा॥३॥उस मार्गमें होकर फिर वह महाबलवान् दोनों रघुवीर दक्षिणदिशाकी ओर बडी वेगसे महावनमें हो करके चले ॥४॥इस प्रकारसे जाते२जनस्थानसे तीन कोश दूर क्रौञ्च नामक घनें वनमें पहुँचे॥५॥यह वन अतिशय दुर्गम देखनेंमें बहुत सारे मेघोंकी समान महाघनाथा, अनेक प्रकारके सुन्दर फूलोंके खिले रहनेंसे मानों वह सब भांतिसे

तांदिशंदक्षिणांगत्वाशरचापासिधारिणौ ॥ अविप्रहतमैक्ष्वाकौपंथानंप्रतिपेदतुः ॥ २ ॥ गुल्मैर्वृक्षैश्चबहुभिर्लताभिश्चप्रवेष्टितम् ॥ आवृतंसर्वतोदुर्गंगहनंघोरदर्शनम् ॥ ३ ॥ व्यतिक्रम्यतुवेगेनगृहीत्वादक्षिणांदिशम् ॥ सुभीमंतन्महारण्यंव्यतियातौमहाबलौ ॥ ४ ॥ ततःपरंजनस्थानात्त्रिक्रोशंगम्यराघवौ ॥ क्रौंचारण्यंविविशतुर्गहनंतौमहौजसौ ॥५॥ नानामेघघनप्रख्यंप्रहृष्टमिवसर्वतः ॥ नानावर्णैःशुभैःपुष्पैर्मृगपक्षिगणैर्युतम् ॥ ६ ॥ दिदृक्षमाणौवैदेहींतद्वनंतौविचिन्वतुः ॥ तत्रतत्रावतिष्ठंतौसीताहरणदुःखितौ ॥ ७ ॥ ततःपूर्वेणतौगत्वात्रिक्रोशंभ्रातरौतदा ॥ क्रौंचारण्यमतिक्रम्यमतंगाश्रममंतरे ॥ ८ ॥ दृष्ट्वातुतद्वनंघोरंबहुभीममृगद्विजम् ॥ नानावृक्षसमाकीर्णंसर्वंगहनपादपम् ॥ ९ ॥ ददृशातेगिरौतत्रदरींदशरथात्मजौ ॥ पातालसमगंभीरांतमसानित्यसंवृताम् ॥ १० ॥

हर्षपूरितथा, और मृग व पक्षीभी उसमें बहुतथे ॥६॥दोनों भ्राता सीताजीके हरणसे दुःखितहो और उनके दर्शनकी कामनासे वह वन ढूंढते२ शान्तिके वश स्थान२ पर खडे हो जानें लगे ॥७॥ फिर वह पूर्वकी ओर तीन कोश चलकर क्रौंचारण्यको नांघकर मातंग मुनिके आश्रमको देखते हुए ॥ ८ ॥ उस आश्रमका वन महा भयंकरथा, और भयंकर स्वभाववाले अनेक जातिके मृग और पक्षीभी वहां बहुतथे, और अनेक प्रकारके वृक्षोंसे घिरे रहनेंके कारण वह वन बडा घनाथा ॥ ९ ॥ फिर उस वनमें श्रीरामचंद्र व लक्ष्मणजीनें पातालकी समान गहरी एक गिरी गुफा देखी, इस

शरीरकी प्रभासे दशो दिशाओंको प्रकाशता हुआ ॥ ६ ॥ आकाशमें उठ श्रीरामचंद्रजीकी ओर दृष्टि करके कहनें लगा कि हे रघुनंदन! जिस उपायसे आप सीताको प्राप्त कर सकेंगे वह रीति ठीकरसुनो॥ ७ ॥ सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय, यह जो छैः युक्ति व उपायहैं, सो राजा लोग इनकी सहायतासेही सब बातोंका विचार करतेहैं और विना इनका आश्रय लिये किसी कार्यकीभी सिद्धि नहीं होती ॥ ८ ॥ सो इसमें दुर्दशाके समय समाश्रय नामक जो उपायहै, उसका आश्रय करना कहाहै सो जब बहुतही दुर्दशा होजाय तब लोग उसका आश्रय करतेहैं सो इस समय आपकोभी इसी समाश्रयके आश्रय लेनेंका प्रयोजन हुआहै क्योंकि इस समय आप लक्ष्मणजीके सहित वैसेही दुर्दशासे ग्रसे जाकर

सोंतरिक्षगतोवाक्यंकबंधोराममब्रवीत् ॥ शृणुराघवतत्त्वेनयथासीतामवाप्स्यसि ॥ ७ ॥ रामषड्युक्तयोलोकेयाभिःसर्वंविमृश्यते ॥ परिमृष्टोदशांतेनदशाभागेनसेव्यते ॥ ८ ॥ दशाभागगतोहीनस्त्वंहिरामसलक्ष्मणः ॥ यत्कृतेव्यसनंप्राप्तंत्वयादारप्रधर्षणम् ॥ ९ ॥ तदवश्यंत्वयाकार्यःससुहृत्सुहृदांवर ॥ अकृत्वानहितेसिद्धिमहंपश्यामिचिंतयन् ॥ १० ॥ श्रूयतांरामवक्ष्यामिसुग्रीवोनामवानरः ॥ भ्रात्रानिरस्तःक्रुद्धेनवालिनाशक्रसूनुना ॥ ११ ॥ ऋष्यमूकेगिरिवरेपंपापर्यंतशोभिते ॥ निवसत्यात्मवान्वीरश्चतुर्भिःसहवानरैः ॥ १२ ॥ वानरेंद्रोमहावीर्यस्तेजोवानमितप्रभः ॥ सत्यसंधोविनीतश्चधृतिमान्मतिमान्महान् ॥ १३ ॥

राज्यादिसे भ्रष्ट हुएहैं ॥ ९ ॥ और इसी कारणसे आपके ऊपर तुम्हारी स्त्रीका हरण स्वरूप महा दुःखभी आनकर पडाहै। इस कारणसे हे राजवर! आपको दूसरेके सहित जिसका परिवारभी बहुत हो; उस्से अवश्यही मित्रता करनी होगी, हमनें भली भांतिसे सोच विचारकर देखलियाहै कि ऐसे उपायका अवलंबन न करनेंसे आपके कार्यकी सिद्धि नहीं होगी ॥ १० ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! सुनिये एक सुग्रीव नामक वानरहै उसके भाईका नाम जो कि इन्द्रका पुत्रहै वालि है; उस वालिनें क्रोधकर सुग्रीवको घरसे निकाल दियाहै ॥ ११ ॥ अब वह सुग्रीव ऋष्यमूक पर्वतपर अपनें चार वानरोंके सहित रहताहै। यह ऋष्यमूक पर्वतके चारों ओर पंपानदीतक शोभित हो रहीहै ॥ १२ ॥ वह वानरेन्द्र सुग्रीव महा

वहां पहुँचकर सत्यवक्ता, शीलवान् पवित्र स्वभाव और परम तेजस्वी लक्ष्मणजी हाथ जोड कर तेजसे प्रदीप्तमान श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥२० ॥ हे भ्रातः! हमारा वांया हाथ जल्दी२ फडकताहै और मन मानो बहुत उकसाताहै, और प्रायः दुर्लक्षणभी बहुत दृष्टि आतेहैं ॥ २१ ॥ इस्से हे आर्य! आप सज करके तैयार होरहैं; और हमारी बात सुनें यह सब अपशकुन स्पष्टही कहे देतेहैं कि भय आयाही चाहताहै ॥ २२ ॥ परन्तु विजय हमारी अवश्य होगी। क्योंकि यह अति भयानक वञ्चुलक पक्षी मानों हमारी युद्ध विजय कहता हुआ शब्द कर रहाहै ॥ २३ ॥ फिर जब महा

लक्ष्मणस्तुमहातेजाःसत्यवाञ्छीलवाञ्छुचिः ॥ अब्रवीत्प्रांजलिर्वाक्यंभ्रातरंदीप्ततेजसम् ॥ २० ॥ स्पंदतेमेदृढं बाहुरुद्विग्नमिवमेमनः ॥ प्रायशश्चाप्यनिष्टानिनिमित्तान्युपलक्षये ॥ २१ ॥ तस्मात्सज्जीभवार्यत्वंकुरुष्ववचनं मम ॥ ममैवहिनिमित्तानिसद्यःशंसंतिसंभ्रमम् ॥ २२ ॥ एषवंचुलकोनामपक्षीपरमदारुणः ॥ आवयोर्विजयं युद्धेशंसन्निवविनर्दति ॥ २३ ॥ तयोरन्वेषतोरेवंसर्वतद्वनमोजसा ॥ संजज्ञेविपुलःशब्दःप्रभंजन्निवतद्वनम् ॥ २४ ॥ संवेष्टितमिवात्यर्थंगहनंमातरिश्वना ॥ वनस्यतस्यशब्दोऽभूद्वनमापूरयन्निव ॥ २५ ॥ तंशब्दंकांक्षमाणस्तुरामःखड्गी सहानुजः ॥ ददर्शसुमहाकायंराक्षसंविपुलोरसम् ॥ २६ ॥ आसेदतुश्चतद्रक्षस्तावुभौप्रमुखेस्थितम् ॥ विवृद्धमशिरो ग्रीवंकबंधमुदरेमुखम् ॥ २७ ॥

तेजस्वी श्रीराम लक्ष्मणजी उस समस्त वनको ढूंढ रहेथे कि इतनेमेंही एक विपुल शब्द मानों उस वनको विध्वंस करता हुआ होनें लगा ॥२४॥ उस वनमें एकाएकी प्रचंड पवन चलनें लगा, और इस वायुके चलनेंसे वृक्ष आपसमें टकरानें लगे। तब उसमेंसे एक शब्द समस्त वनको शब्दाय मान करता उत्पन्न हुआ ॥२५॥ श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके सहित खड्ग धारण करके "यह शब्द कहांसे हुआ" यह जाननेंके लिये अभिलाषी हो इधर उधर देखतेथे कि चौंडी छातीवाला बृहदाकार एक राक्षस सहसा देख पडा॥२६॥उसका पेट बहुत बडा व नाम उसका कबन्धथा, वह श्रीरामचं

वानरनाथसे ॥ २१ ॥ सत्यताके साथ मित्रताई कीजिये हे राघव! वह वानरश्रेष्ठ सब स्थानोंमें कपि कुंजरोंके साथ जाजाकर ॥ २२ ॥ फिर भली भांतिसे नरमांसके खानेंवाले राक्षसोंकेभी लोकमें चला जायगा हे राघव! लोकमें ऐसा कोई स्थान नहीं जिसे सुग्रीव न जानता हो ॥ २३ ॥ हे शत्रु ओंके तपानेंवाले रघुनन्दनजी! सहस्रकिरण सूर्य भगवानकी किरणें जहांतक पडती हैं, उतनें बीचमें जितनी २ नदियां और बडे २ पर्वत व पर्वतोंकी गुफा हैं ॥ २४ ॥समस्त जगत्में जहां कहीं आपकी भार्या जानकीजी होंगी सो हे रघुनन्दन! यह सुग्रीव ढुंढवायकर आपसे मिला देगा कारणकि वह तुरंत सब दिशाओंमें बडे शरीरवाले वानरोंको पठावेगा ॥ २५ ॥ व तुम्हारे वियोगसे शोच करती हुई श्रीजानकीजीको वह

कुरुराघवसत्येनवयस्यंवनचारिणम् ॥ सहिस्थानानिकात्स्न्येनसर्वाणिकपिकुंजरः ॥ २२ ॥ नरमांसाशिनांलोकेनै पुण्यादधिगच्छति ॥ नतस्याविदितंलोकेकिंचिदस्तिहिराघव ॥ २३ ॥ यावत्सूर्यःप्रतपतिसहस्रांशुःपरंतप ॥ सनदी विंपुलाञ्छैलान्गिरिदुर्गाणिकंदरान् ॥२४॥ अन्विष्यवानरैःसार्धंपत्नींतेधिगमिष्यति ॥वानरांश्चमहाकायान्प्रेषयिष्य तिराघव ॥ २५ ॥ दिशोविचेतुंतांसीतांत्वद्वियोगेनशोचतीम् ॥ अन्वेष्यतिवरारोहांमैथिलींरावणालये ॥ २६ ॥ स मेरुशृंगाग्रगतामनिंदितांप्रविश्यपातालतलेपिवाश्रिताम् ॥ प्लवंगमानामृषभस्तवप्रियांनिहत्यरक्षांसिपुनःप्रदास्य ति ॥ २७ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेद्विसप्ततितमःसर्गः ॥ ७२ ॥ दर्शयित्वातु रामायसीतायाःपरिमार्गणे ॥ वाक्यमन्वर्थमर्थज्ञःकबंधःपुनरब्रवीत् ॥ १ ॥ एषरामशिवःपंथायत्रैतेपुष्पिताद्रुमाः ॥ प्रतीचींदिशमाश्रित्यप्रकाशंतेमनोरमाः ॥ २ ॥

रावणके घरमें हुई तौ वहांसेभी ढूंढ लाकर आपको मिला देंगे ॥ २६ ॥ अनाथा निंदारहित सीताजी मेरु पर्वतके शिखरके अग्रभागमें हों अथवा पातालमें निवास करतीं हों कपिराज सुग्रीवजी वहीं जाकर राक्षसोंका नाश करके आपकी भार्या सीताको ले आवेंगे और आपसे मिला देंगे ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आर० द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥ कवन्ध इस प्रकारसे सीताजीके शोधका उपाय वताकर फिरभी श्रीरामचन्द्रजीसे यह अर्थयुक्त वचन वोला ॥ १ ॥ कि हे श्रीरामचन्द्रजी यही वहांका कल्याणदायक मार्ग है जिधर यह फूले हुए मनोहर

दोनों बडी २ बाहें फैलाकर राम और लक्ष्मण दोनोंकोही बलसे पीडन करके दोनोंको एक साथही ग्रहण करलिया ॥ ३५ ॥ दृढ धनुष और खड्ग धारण किये हुए तीव्र तेजमान्! महाबलवान्, महाबाहु, वह दोनों भ्राता कवन्धसे खेंचे जाकर अवश होगये ॥ ३६ ॥ श्रीरामचन्द्रजी तो स्वभावसेही धीर्यवान् और शूरतासंपन्नथे, वह तो कुछभी व्याकुल न हुये, परन्तु लक्ष्मणजी बालक और अनाथ होनेंके कारण एकवारही महा व्याकुल होगये ॥ ३७ ॥ और शोक करके राघवनंदन श्रीरामचन्द्रजीसे बोले कि हे वीर! देखो हम विवश होकर राक्षसके वश हुयेहैं ॥ ३८ ॥ इस कारण एक मात्र हमकोही देकर आप छूट जाइये। और हमें इस राक्षसके आगे बलिकी भांति देकर यथा सुखसे आप भाग जाइये ॥ ३९ ॥

खड्गिनौदृढधन्वानौतिग्मतेजौमहाभुजौ ॥ भ्रातरौविवशंप्राप्तौकृष्यमाणौमहाबलौ ॥ ३६ ॥ तत्रधैर्याच्चशूरस्तुराघवो नैवविव्यथे॥ बाल्यादनाश्रयाच्चैवलक्ष्मणस्त्वभिविव्यथे ॥ ३७ ॥उवाचचविषण्णःसन्राघवंराघवानुजः ॥ पश्यमां विवशंवीरराक्षसस्यवशंगतम् ॥ ३८ ॥ मयैकेनतुनिर्युक्तःपरिमुच्यस्वराघव ॥ मांहिभूतबलिंदत्वापलायस्वयथासु खम् ॥ ३९ ॥ अधिगंतासिवैदेहीमचिरेणेतिमेमतिः ॥ प्रतिलभ्यचकाकुत्स्थपितृपैतामहींमहीम् ॥ ४० ॥ तत्रमांरामरा ज्यस्थःस्मर्तुमर्हसिसर्वदा ॥ लक्ष्मणेनैवमुक्तस्तुरामःसौमित्रिमब्रवीत् ॥ ४१ ॥ मास्मत्रासंवृथावीरनहित्वादृग्वि षीदति ॥ एतस्मिन्नंतरेक्रूरोभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ ४२ ॥ तावुवाचमहाबाहुःकबंधोदानवोत्तमः ॥ कौयुवांवृषभस्कंधौ महाखड्गधनुर्धरौ ॥ ४३ ॥ घोरंदेशमिमंप्राप्तौदैवेनममचाक्षुषौ ॥ वदतंकार्यमिहवांकिमर्थंचागतौयुवाम् ॥ ४४ ॥

हे काकुत्स्थ राम! हम निश्चयही समझतेहैं कि आप शीघ्रही वैदेहीको प्राप्त होंगे, और पिता पितामहका राज्यभी शीघ्रही आप करेंगे ॥ ४० ॥ अब इस समय यही प्रार्थनाहै कि आप राज्य पदपर प्रतिष्ठित होकर आप सदाही हमको याद करते रहा कीजिये जब लक्ष्मणजीनें इस प्रकार कहा तब श्रीरामचंद्रजी उनसे बोले ॥ ४१ ॥ कि हे वीर! वृथाभीत न हूजिये तुम सरीखे पुरुष कभी व्यथित नहीं होतेहैं दोनों भाइयोंसे इसी समय वह क्रूर ॥ ४२ ॥ महाबाहु, दानवश्रेष्ठ कवन्ध कहनें लगा कि तुम्हारे कंधे बैलोंकी समान ऊँचेहैं और हाथमें तुमने बडे २ धनुष और खड्ग धारण कियेहैं, सो बताओ कि तुम कौनहो? ॥ ४३ ॥ तुम लोग भाग्यसेही इस भयंकर देशमें आकर हमारे नेत्रोंके सन्मुख पडेहो तुम्हारा

आदि पक्षी ॥१२॥ पम्पाके जलमें पैरते हुए मनोहर शब्द बोलते हैं, वह मनुष्योंको देखकरभी नहीं डरते, क्योंकि पहले उन्हैं किसीनें कभी नहीं मारा है ॥१३॥ हे श्रीरघुनंदन ! आप बडे शरीरवाले घीके पिंडकी समान इन सब पक्षियोंको, और रोहित, चक्रतुंड व नल नामक मछलियोंको वहां पर भक्षणकीजिये ॥ १४ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! जिनके पंख नहीं होते, और बडेशरीर जिनके होतेहैं, त्वक्, और बहुत कांटौ करकै युक्त ऐसी श्रेष्ठ मछलियोंको बाणोंसे मारकर और अग्निमें भूंनकर आप पंपासर पर भक्षण कीजिये ॥ १५ ॥ इसके सिवाय लक्ष्मणजी आपके प्रति भक्तिके वश होकर वहांके कमल पुष्पोंमें विचरती हुई उक्त मछलियोंके समूह आपको देंगे ॥ १६ ॥ पंपाका जल कमल पुष्पोंकी सुगंधिसे युक्त रोग

वल्गुस्वराणिकूजंतिपंपासलिलगोचराः ॥ नोद्विजंतेनरान्दृष्ट्वावधस्याकोविदाःपुरा ॥ १३ ॥ घृतपिंडोपमान्स्थूलांस्तान्द्विजान्भक्षयिष्यथ ॥ रोहितांश्चक्रतुंडांश्चनलमीनांश्चराघव ॥ १४ ॥ पंपायामिषुभिर्मत्स्यांस्तत्रामवरान्हतान् ॥ निस्त्वक्पक्षानयस्ततप्तानकृशानेककंटकान् ॥ १५ ॥ तवभक्त्यासमायुक्तोलक्ष्मणःसंप्रदास्यति ॥ भृशंतान्खादतोमत्स्यान्पंपायाःपुष्पसंचये ॥ १६ ॥ पद्मगंधिशिवंवारिसुखशीतमनामयम् ॥ उद्धृत्यसतदाक्लिष्टंरूप्यस्फटिकसंनिभम् ॥ १७ ॥ अथपुष्करपर्णेनलक्ष्मणःपाययिष्यति ॥ स्थूलान्गिरिगुहाशय्यान्वानरान्वनचारिणः ॥ १८ ॥ सायाह्नेविचरन्रामदर्शयिष्यतिलक्ष्मणः ॥ अपांलोभादुपावृत्तान्वृषभानिवनर्दतः ॥ १९ ॥ स्थूलान्पीतांश्चपंपायांद्रक्ष्यसित्वंनरोत्तम ॥ सायाह्नेविचरन्रामविटपीमाल्यधारिणः ॥ २० ॥

विहीन स्वास्थकर सुशीतल, चांदी और स्फटिक मणिके समान निर्मल जिसके पीनेंसे कोईभी क्लेश नहीं होता ॥ १७ ॥ उस समयमें लक्ष्मणजी पुरैनके पत्तोंका दोना बना वह जल लाकर आपको पिलावेंगे और बडे२ वन्दर पर्वतोंकी कन्दराओं और वृक्षोंके रहनेंवाले ॥ १८ ॥ सन्ध्याके समय घूमनेके कालमें लक्ष्मणजी आपको दिखावेंगे, वह बडे २ वानर जल पीनेंके अर्थ बैलोंके समान शब्द करते हुये आतेहैं ॥ १९ ॥ हेनरश्रेष्ठ ! फिर पंपापर बडे हृष्ट पुष्ट नीले पीलेभी बहुतसें वन्दर वृक्षोंकी शाखा हाथमें लिये हुये आप देखेंगे ॥ २० ॥

श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मण इन दोनों भाइयोंको अपनी बाहोंकी फांसीमें बँधा हुआ वहां खडा देख कबन्ध उनसे बोला ॥ १ ॥ अरे क्षत्रिय श्रेष्ठ! दोनों जन! हम भूखे हुए हैं, विधातानें तुम दोनोंको चेतना रहित करके हमारे खानेंको भेज दिया है। इसलिये हमको देख अब तुम क्या राह देख रहे हो तैयार होवो॥ २ ॥ उसके ऐसे वचन सुनकर लक्ष्मणजी दुःखित व विक्रम प्रकाश करनेंमें कृत निश्चय होकर उस कालके अनुसार वाक्य श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ ३ ॥ कि यह राक्षसाधम हम दोनोंही जनको पकडे हुए है इस कारण आइये हम अभी दो खड्गोंसे इसके बडे भारी दोनों हाथ काट डालें ॥ ४॥ यह बडे आकारवाला भयंकर राक्षस केवल अपनी भुजाओंकी ही सहायतासे सब लोकोंको सर्व प्रकारसे जीत अब

तौतुतत्रस्थितौदृष्ट्वाभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ बाहुपाशपरिक्षिप्तौकबंधोवाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥ तिष्ठतःकिंनुमांदृष्ट्वाक्षुधार्तंक्षत्रियर्षभौ ॥ आहारार्थंतुसंदिष्टौदैवेनहतचेतनौ ॥ २ ॥ तच्छ्रुत्वालक्ष्मणोवाक्यंप्राप्तकालंहितंतदा ॥ उवाचार्तिंसमापन्नोविक्रमेकृतनिश्चयः ॥ ३ ॥ त्वांचमांचपुरातूर्णमादत्तेराक्षसाधमः ॥ तस्मादसिभ्यामस्याशुबाहूछिंदावहेगुरू ॥ ४ ॥ भीषणोऽयंमहाकायोराक्षसोभुजविक्रमः ॥ लोकंह्यतिजितंकृत्वाह्यावांहंतुमिहेच्छति ॥ ५ ॥ निश्चेष्टानांवधोराजन्कुत्सितोजगतीपतेः ॥ क्रतुमध्योपनीतानांपशूनामिवराघव ॥ ६ ॥ एतत्संजल्पितंश्रुत्वातयोःक्रुद्धस्तुराक्षसः ॥ विदार्यास्यंततोरौद्रंतौभक्षयितुमारभत् ॥ ७ ॥ ततस्तौदेशकालज्ञौखड्गाभ्यामेवराघवौ॥अच्छिंदतांसुसंहृष्टौबाहूतस्यांसदेशयोः ॥८॥ दक्षिणोदक्षिणंबाहुमसक्तमसिनाततः ॥ चिच्छेदरामोवेगेनसव्यंवीरस्तुलक्ष्मणः ॥९॥

हम तुमको मारनेंके लिये तैयार हुआ है ॥ ५ ॥ परन्तु हे राजन्! यज्ञमें आये हुए छागोंकी समान चेष्टा रहित होकर मरना क्षत्रियोंके लिये बहुत ही निंदाकी बात है ॥ ६ ॥ श्रीराम लक्ष्मणजीकी ऐसी वार्ता सुन निशाचर कबंध क्रोधित होकर मुँहबाय उनको भक्षण करनेंके लिये तैयार हुआ ॥ ७ ॥ तब देश और कालके जाननेंवाले श्रीराम और लक्ष्मण दोनों भ्राताओंनें खड्ग ग्रहण करके उसकी दोनों भुजायें खंभे परसे काट डालीं ॥ ८ ॥ चतुर श्रीरामचन्द्रजीनें उसकी दाहिनी भुजा और वीर्यवान् लक्ष्मणजीनें उसकी बांई भुजा शीघ्रतासे काट डाली ॥ ९ ॥

श्रम काननको नहीं खल बला सकते ॥२९॥ इसी कारणसे वह वन मतंग वनके नामसे प्रसिद्ध हुआ है. हे रघुनंदन! वह वन देवताओंके नंदन वनकी समानहै रमणीय है ॥ ३० ॥ उसमें अनेक प्रकारके पक्षी सुहावनी बोली बोलते हैं वहां प्रवेश करके आप अच्छी तरहसे विहारकर सकेंगे और पंपाके सामनेही वृक्ष समूहसे सुशोभित ऋष्यमूक पर्वतहै ॥ ३१ ॥ इस कठिन से आरोहण करनेंके योग्य पर्वतकी रक्षा छोटे सर्प किया करते हैं और यह पर्वत उदार ब्रह्माजी करके पहले समयमें बनायागयाथा ॥३२॥ इस उदार पर्वतके शृंगपर जो पुरुष शयन करके स्वप्नमें जो धन प्राप्त करैं तौ जागनेंपरभी उसको वही धन मिलताहै ॥ ३३ ॥ अधर्म कार्य करनेमें रत पापकर्म करनेवाले पुरुषके उस पर्वतपर चढनेपर राक्षस लोग उसके

मतंगवनमित्येवविश्रुतंरघुनंदन ॥ तस्मिन्नंदनसंकाशेदेवारण्योपमेवने ॥ ३० ॥ नानाविहगसंकीर्णेरंस्यसेरामनि
र्वृतः ॥ ऋष्यमूकस्तुपंपायाःपुरस्तात्पुष्पितद्रुमः ॥ ३१ ॥ सुदुःखारोहणश्चैवशिशुनागाभिरक्षितः ॥ उदारोब्रह्मणा
चैवपूर्वकालेभिनिर्मितः ॥३२ ॥ शयानःपुरुषोरामतस्यशैलस्यमूर्धनि ॥ यःस्वप्नेलभतेवित्तंतत्प्रबुद्धोधिगच्छति॥३३॥
यस्त्वेनंविषमाचारःपापकर्माधिरोहति ॥ तत्रैवप्रहरंत्येनंसुप्तमादायराक्षसाः ॥ ३४ ॥ ततोपिशिशुनागानामाक्रंदः
श्रूयतेमहान् ॥ क्रीडतांरामपंपायांमतंगाश्रमवासिनाम् ॥ ३५ ॥ सक्तारुधिरधाराभिःसंहत्यपरमद्विपाः ॥ प्रचरंति
पृथक्कीर्णामेघवर्णास्तरस्विनः ॥ ३६ ॥ तेतत्रपीत्वापानीयंविमलंचारुशोभनम् ॥ अत्यंतसुखसंस्पर्शंसर्वगंधसमन्वि
तम् ॥ ३७ ॥ निवृत्ताःसंविगाहंतेवनानिवनगोचराः ॥ ऋक्षांश्चद्वीपिनश्चैवनीलकोमलकप्रभान् ॥ ३८ ॥

शयन करनेंके समय उसको पकड कर वहीं संहार करदेतेहैं ॥ ३४ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! तिसके पीछे आप मतंगाश्रम निवासी पंपातटविहारी हाथियोंके बच्चोंका घोर शब्द श्रवण करोगे ॥ ३५ ॥ उन सबके सिवाय आप कुछ एक लाल वर्णकी मदधारा चुआतेहुए मेघवर्ण वेग युक्त हाथियोंके दलके दल इधर उधर घूमते हुए देखोगे॥३६॥ वह हाथी पंपाका निर्मल सुन्दर और अत्यन्त सुखकारी सुवासित नीर पीकरके॥ ३७॥ पंपा सरोवरमें विहारसे निवृत्तहो वनमें विहार किया करतेहैं! हे श्रीरामचंद्रजी! वहांपर आप रीछ,गैंडे,व्याघ्र,और नील मणिवत कोमल कान्तिवाले॥३८॥

सो यह भी हमारे बडे सौभाग्यकी बात है; इसमें कुछ संदेह नहींहै ॥ १८ ॥ जिसभांतिसे हमारा इस विरूपताका रूपथा, व जिस ऊधमसे हम इस कुरूपताको प्राप्त हुये सो सब ज्योंका त्यों कहतेहैं आप श्रवण करैं ॥ १९ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० आ० सप्ततितमःसर्गः ॥ ७० ॥ हे महाबाहु श्रीरामचंद्रजी! पूर्वकालमें हमारा रूप अत्यन्त सुन्दर अचिन्तनीय ऐश्वर्य महाबल व पराक्रम युक्त और तीनों लोकोंमें विख्या तथा ॥ १ ॥और सूर्य चंद्रमा व इन्द्रके शरीरकी समान हमारा भी रूपथा, सो ऐसा रूप धारण कर हम तीनो लोकोंको डरपाने लगे ॥ २ ॥ हम घूम २ कर वनवासी ऋषि लोगोंको भयभीत करतेथे एक समय जाते २ हमनें स्थूलशिरा नामक महर्षिको कोपित कराया ॥ ३ ॥ वे

विरूपंयच्चमेरूपंप्राप्तंह्यविनयाद्यथा ॥ तन्मेशृणुनरव्याघ्रतत्त्वतःशंसतस्तव ॥ १९ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेसप्ततितमःसर्गः ॥७०॥ ॥ पुराराममहाबाहोमहाबलपराक्रमम् ॥ रूपमासीन्ममाचिंत्यंत्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥१॥ यथासूर्यस्यसोमस्यशक्रस्यचयथावपुः ॥ सोऽहंरूपमिदंकृत्वालोकवित्रासनंमहत् ॥२॥ ऋषीन्वनगतान्रामत्रासयामिततस्ततः ॥ ततःस्थूलशिरानाममहर्षिःकोपितोमया ॥ ३ ॥ सचिन्वन्विविधंवन्यंरूपेणानेनधर्षितः ॥ तेनाहमुक्तःप्रेक्ष्यैवंघोरशापाभिधायिना ॥ ४ ॥ एतदेवंनृशंसंतेरूपमस्तुविगर्हितम् ॥ समयायाचितःक्रुद्धःशापस्यांतोभवेदिति ॥ ५ ॥ अभिशापकृतस्येतितेनेदंभाषितंवचः ॥ यदाछित्त्वाभुजौरामस्त्वांदहेद्विजनेवने ॥ ६ ॥ तदात्वंप्राप्स्यसेरूपंस्वमेवविपुलंशुभम् ॥ श्रियाविराजितंपुत्रदनोस्त्वंविद्धिलक्ष्मण ॥ ७ ॥

महर्षि जी विविध भांतिके वनके फूल फलादि इकट्ठे कर रहेथे कि हमने अपने रूपके गर्वसे उनको धिक्कारा और क्रोधित कराया तब उन्होंनें हमारी ओर देख अति घोर शाप दिया ॥ ४ ॥ कि जाओ मूर्ख! तुम्हारा रूप भी हमारे ही सा कुरूप होजायगा जब हमनें क्रोध युक्तहो उनको शापदेते हुये देखा तो शापके उद्धारके लिये प्रार्थना की, कि इसका निवारण कब होगा ॥ ५ ॥ तब शापके अन्त होनेंके लिये उन्होंने कहाकि जिस समय श्रीरामचंद्रजी तुम्हारे हाथ काट डालेंगे और विजन वनमें तुमको फूँक देंगे ॥ ६ ॥ बस उसी समय तुम अपना सुविपुल और मनोहर रूप प्राप्त

णजी कवंधका बताया हुआ मार्ग लेकर पंपानदीकी ओर पश्चिम दिशाको चले ॥ १ ॥ जिस समय श्रीराम लक्ष्मणजी सुग्रीवके देखनेंको जा रहेथे उस समय पर्वतोंके शिखरोंपर मधु समान स्वाद युक्त फल व फूलवाले अनेक २ वृक्ष उनके नयन गोचर होनें लगे ॥ २ ॥ वह दोनों भ्राता मार्गमें एक रात्रि एक पर्वतके ऊपर रहकर प्रभात होतेही पंपाके पश्चिम किनारे पर जा पहुँचे ॥ ३ ॥ पंपाके पश्चिम किनारे पर पहुँचकर शवरीका रमणीय आश्रम श्रीराम लक्ष्मणजीनें देखा ॥ ४ ॥और उस विविध वृक्षसमूह से समाकीर्ण रमणीय आश्रमको देखते हुये उसमें प्रवेश करकें शवरीके निकट आये ॥ ५ ॥ तव सिद्ध शवरी श्रीराम लक्ष्मणजीको देखतेही हाथ जोडे हुये बुद्धिमान् दोनों भाइयोंके चरणोंमें प्रणाम करती हुई ॥ ६ ॥

तौशैलेष्वाचितानेकान्क्षौद्रपुष्पफलद्रुमान् ॥ वीक्षंतौजग्मतुर्द्रष्टुंसुग्रीवंरामलक्ष्मणौ ॥ २ ॥ कृत्वातुशैलपृष्ठेतुतौवासंरघुनंदनौ ॥ पंपायाःपश्चिमंतीरंराघवावुपतस्थतुः ॥ ३ ॥तौपुष्करिण्याःपंपायास्तीरमासाद्यपश्चिमम् ॥ अपश्यतांततस्तत्रशबर्यारम्यमाश्रमम् ॥ ४ ॥ तौतमाश्रममासाद्यद्रुमैर्बहुभिरावृतम् ॥ सुरम्यमभिवीक्षंतौशबरीमभ्युपेयतुः ॥ ५ ॥ तौदृष्ट्वातुतदासिद्धासमुत्थायकृतांजलिः॥ पादौजग्राहरामस्यलक्ष्मणस्यचधीमतः ॥ ६ ॥ पाद्यमाचमनीयंचसर्वंप्रादाद्यथाविधि॥ तामुवाचततोरामःश्रमणींधर्मसंस्थिताम् ॥ ७ ॥ कच्चित्तेनिर्जितांविघ्नाःकच्चित्तेवर्धतेतपः ॥ कच्चित्तेनियतःकोपआहारश्चतपोधने ॥ ८ ॥ कच्चित्तेनियमाःप्राप्ताःकच्चित्तेमनसःसुखम् ॥ कच्चित्तेगुरुशुश्रूषासफलाचारुभाषिणि ॥ ९ ॥ रामेणतापसीपृष्टासासिद्धासिद्धसंमता ॥शशंसशबरीवृद्धारामायप्रत्यवस्थिता॥१०॥

और यथाविधिसे पाद्य आचमनीयभी शवरीने किया, तिसके पीछे श्रीरामचन्द्रजी धर्मनिरता शवरीसे बोले ॥ ७ ॥ कि तुमनें सुख व विघ्नोंको तौ जीत लिया है, तुम्हारा तप वढता तो है और क्रोध तौ तुम्हारे वशमें है, हे तपोधने! ॥ ८ ॥ तुम्हारे सव नियम तौ भली भांतिसे चले आते हैं, तुम्हारे मनको तौ सदा सुख रहता है? हे चारुभाषिणी! तुम्हारे गुरुकी सेवा करनी तौ तुम्हें फलवती हुई है ॥ ९ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीनें इस प्रकार पूछा तौ सिद्ध लोगोंकी अभिमता और तप सिद्धा शवरी सामने निकल कर उनसे निवेदन करती हुई ॥ १० ॥

समरमें तुम्हारे दोनों हाथ काटेंगे तव तुम स्वर्गको जाओगे । तवसे हे राजसत्तम ! हम इसी शरीरसे इस वनमें ॥ १६ ॥ जिस २ को देख
लेतेहैं उसको ग्रहण कर लेतेहैं, व यहभी हमको निश्चयथा कि इन्द्रके वचनानुसार कोई न कोई अवश्य हमको मिलता रहेगा ॥ १७ ॥ सदा
अपना ऐसाही विचार रखतेहैं कुछ विशेप भ्रमभी नहीं करतेथे सो इस समय हमनें सत्य २ जाना कि श्रीरामचंद्रजी आपही हैं क्योंकि और
कोई हमको नहीं मार सकता ॥ १८ ॥ क्योंकि महर्षिजीनें जो कुछ कहा सो सत्यही हुआहै, इस कारण हे श्रीरामचंद्रजी और तो हमसे कुछ नहीं
हो सकता । परन्तु हे नरश्रेष्ठ! बुद्धिद्वारा आपकी कुछ सहायता कर सकेंगे ॥ १९ ॥ अर्थात् जव आप हमको अग्निमें जलादेंगे तव हम

छेत्स्यतेसमरेबाहूतदास्वर्गंगमिष्यसि ॥ अनेनवपुपातातवनेऽस्मिन्राजसत्तम ॥ १६ ॥ यद्यत्पश्यामिसर्वस्यग्रहणं
साधुरोचये ॥ अवश्यंग्रहणंरामोमन्येऽहंसमुपैष्यति ॥ १७ ॥ इमांबुद्धिंपुरस्कृत्यदेहन्यासकृतश्रमः ॥ सत्वं
रामोऽसिभद्रंतेनाहमन्येनराघव ॥ १८ ॥ शक्योहंतुंयथातत्त्वमेवमुक्तंमहर्पिणा ॥ अहंहिमतिसाचिव्यंकरिष्या
मिनरर्षभ ॥ १९ ॥ मित्रंचैवोपदेक्ष्यामियुवाभ्यांसंस्कृतोग्निना ॥ एवमुक्तस्तुधर्मात्मादनुनातेनराघवः ॥ २० ॥
इदंजगादवचनंलक्ष्मणस्यचपश्यतः ॥ रावणेनहृताभार्यासीताममयशस्विनी ॥ २१ ॥ निष्क्रांतस्यजनस्थानात्स
हभ्रात्रायथासुखम् ॥ नाममात्रंतुजानामिनरूपंतस्यरक्षसः ॥ २२ ॥ निवासंवाप्रभावंवावयंतस्यनविद्महे ॥ शो
कार्तानामनाथानामेवंविपरिधावताम् ॥ २३ ॥

आपको एक मित्र वतामेंगे, जव इस प्रकारसे उस दनुके पुत्रनें महात्मा धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीसे कहा तो ॥ २० ॥ लक्ष्मणजीके सामनें
उस्से श्रीरामचंद्रजी बोले कि रावण करके हमारी यशस्विनी भार्या सीताजी हरी गईहैं ॥ २१ ॥ हम उस समय भ्राताके सहित जन
सुख स्थानसे पूर्वक कहींपर चले गयेथे तव वह उनको हरण करके ले गयाथा हम उसराक्षस रावणका केवल नाम मात्र जानतेहैं, परन्तु उसका
रूप ॥ २२ ॥ निवास व प्रभाव कुछभी नहीं जानते । केवल शोकसे आरत हुये अनाथकी समान इसी भांतिसे वन २ में घूमते फिरतेहैं ॥ २३ ॥

लिया कि यह परमात्माकोभी भली भांति जानती है यह समझ उससे कहाकि हमनें कवंधसे तुम्हारा प्रभाव और आचारका माहात्म्य
श्रवण कियाथा सो तुम यदि उचित समझो तौ हम उसको प्रत्यक्ष उनका वृत्तान्त देखनेंकी इच्छा करते हैं, श्रीरामचन्द्रजीके मुखसे निकला हुआ ॥ १९ ॥
ऐसा वचन सुन ॥ २० ॥ शबरी उन दोनों भ्राताओंको वह बडा वन दिखाकर कहनें लगी कि मृग और पक्षियोंसे परिपूर्ण काले बादरकी समान
श्यामरंगका यह वन देखिये ॥ २१ ॥ हे रघुनन्दन! इस वनका नाम मतंग वन प्रसिद्ध है, हे महाद्युतिमान्! इस वनमें विशुद्धात्मा हमारे गुरु लोग
मंत्र पूजित यज्ञ करनेंके लिये वेदके मंत्रोंसे काल हरण करतेथे ॥ २२ ॥ यह वही प्रत्यक्स्थल नामक वेदी है; जिस वेदीपर बैठकर हमारे परम

श्रुतंप्रत्यक्षमिच्छामिसंद्रष्टुंयदिमन्यसे ॥ एतत्तुवचनंश्रुत्वारामवक्त्रविनिःसृतम् ॥ २० ॥ शबरीदर्शयामासतावुभौतद्व
नंमहत् ॥ पश्यमेघघनप्रख्यंमृगपक्षिसमाकुलम् ॥ २१ ॥ मतंगवनमित्येवविश्रुतंरघुनंदन ॥ इहतेभावितात्मानो
गुरवोमेमहाद्युते ॥ जुहवांचक्रिरेनीडंमंत्रवन्मंत्रपूजितम् ॥ २२ ॥ इयंप्रत्यक्स्थलीवेदीयत्रतेमेसुसत्कृताः ॥ पुष्पोप
हारंकुर्वंतिश्रमादुद्वेपिभिःकरैः ॥ २३ ॥ तेषांतपःप्रभावेणपश्याद्यापिरघूत्तम ॥ द्योतयंतीदिशःसर्वाःश्रियावेद्यतुलप्र
भा ॥ २४ ॥ अशक्नुवद्भिस्तैर्गंतुमुपवासश्रमालसैः ॥ चिंतितेनागतान्पश्यसमेतान्सप्तसागरान् ॥ २५ ॥ कृताभिषे
कैस्तैर्न्यस्तावल्कलाःपादपेष्विह ॥ अद्यापिनविशुष्यंतिप्रदेशेरघुनंदन ॥ २६ ॥ देवकार्याणिकुर्वद्भिर्यानीमानिकृ
तानिवै ॥ पुष्पैःकुवलयैःसार्धंम्लानत्वंनतुयांतिवै ॥ २७ ॥

पूजनाय गुरु लोग पुष्पांजलि सहित श्रम युक्त हाथोंसे देवताओंकी पूजा करतेथे ॥ २३ ॥ हे रघुवर! देखिये यह वही अनुपम प्रभायुक्त वेदी उनके
तपोवलसे आजभी अपनी दीप्तिसे दशों दिशाओंको दिपा रही है ॥ २४ ॥ जब वह ऋषि लोग उपवासोंके परिश्रमसे आलस्यीहोकर स्नान करनें
को जानेंमें समर्थ हीन होगये, तव उनके चिंता करतेही यह सात समुद्र यहां आगये सो आप देखिये ॥ २५ ॥ हे रघुनन्दन! ऋषि लोगोंनें स्नान करकै
यहां वृक्षोंपर जो अपने गीले वस्त्र टांग दिये हैं सो वह अवतक नहीं सूखे हैं ॥ २६ ॥ उन्होनें देवताओंका कार्य साधन करनेके लिये जो नीले कमलके सहित

हे महावीर! रघुनंदन! जब यथा विधिसे आप हमको गढेमें रखकर फूंक देंगे तब हम बतलावेंगे कि कौन रावणको जानताहै ॥ ३२ ॥ हे राघव! आप उस अच्छी वृत्तिवाले पुरुषके साथ मित्रता करलेना वह पराक्रमी वीर आपकी वडी भारी सहायता करेगा ॥ ३३ ॥ हे महाराज! त्रिलोकीमें ऐसा कुछभी नहींहै जिसको यह पुरुष न जानता हो वह प्रथम किसी वडेही कारणके वश होकर त्रिलोकीमें घूमा है ॥ ३४ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० आर० एकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥ जब कवन्धनें उन दोनों वीरशिरोमणियोंसे ऐसा कहा तब नर श्रेष्ठ श्रीरामचंद्र व लक्ष्मणजीने पर्वतकी गुफामें लेजाकर उसको अग्नि देदी ॥ १ ॥ लक्ष्मणने वडी २ उल्काओंको प्रज्वलित करके

दग्धस्त्वयाहमवटेन्यायेनरघुनंदन ॥ वक्ष्यामितंमहावीरयस्तंवत्स्येतिराक्षसम् ॥ ३२ ॥ तेनसख्यंचकर्तव्यंन्याय्य वृत्तेनराघव ॥ कल्पयिष्यतितेवीरसाहाय्यंलघुविक्रम ॥ ३३ ॥ नहितस्यास्त्यविज्ञातंत्रिषुलोकेषुराघव ॥ सर्वान्प रिवृतोलोकान्पुरावैकारणांतरे ॥ ३४ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० आरण्यकांडेएकसप्ततितमःसर्गः ॥ ७१ ॥ ॥ ७२ ॥ एवमुक्तौतुतौवीरौकबंधेननरेश्वरौ ॥ गिरिप्रदरमासाद्यपावकंविससर्जतुः ॥ १ ॥ लक्ष्मणस्तुमहोल्काभिर्ज्वलिता भिःसमंततः ॥ चितामादीपयामाससाप्रजज्वालसर्वतः ॥ २ ॥ तच्छरीरंकबंधस्यघृतपिंडोपमंमहत् ॥ मेदसा पच्यमानस्यमंदंदहतपावकः ॥ ३ ॥ सविधूयचितामाशुविधूमोऽग्निरिवोत्थितः ॥ अरजेवाससीबिभ्रन्माल्यंदिव्यं महाबलः ॥ ४ ॥ ततश्चितायावेगेनभास्वरोविरजांबरः ॥ उत्पपाताशुसंहृष्टःसर्वप्रत्यंगभूषणः ॥ ५ ॥ विमाने भास्वरेतिष्ठन्हंसयुक्तेयशस्करे ॥ प्रभयाचमहातेजादिशोदशविराजयन् ॥ ६ ॥

चारों ओर अग्नि लगादी तब चिता भली भांतिसे जलनें लगी ॥ २ ॥ तब कवन्धका घीके पिंडेकी समान चरबीसे परिपूर्ण बडा भारी शरीर धीरे२ जलनें लगा ॥ ३ ॥ जब चिता जल कर रहगई तब महा बलवान कबंध उसी समय चिताको कंपायमान करता हुआ निर्मल वस्त्र और दिव्य माला धारण करके धुआं रहित अग्निकी समान उसमेंसे निकला ॥ ४ ॥ और दिव्य कांति युक्त शरीरसे वेगमें भर आनंद सहित उसी समय आ काशको गया उसके समस्त अंग प्रत्यंग गहनोंसे भूषितथे ॥ ५ ॥ तिसके पीछे वह अतिशय उजले हंस युक्त यशस्कर विमानमें बैठकर अपनी

उसस्थानको प्रकाशित करनेंलगी ॥ ३४ ॥ उसके गुरु वह विशुद्धात्मा महर्षि गण जिस स्थानोंमें विराजमानथे श्रमणी भी आत्मसमाधिके
प्रभावसे परम पवित्र उस पुण्य लोकको चली गई ॥ ३५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आर० चतुःसप्तति तमः सर्गः ॥ ७४ ॥
जब शबरी अपनी तपस्याके प्रभावसे स्वर्गको चलीगई तब धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मण जीके सहित चिन्तनाकरनें लगे ॥ १ ॥ वह उन
धर्मात्मा महर्षि गणोंका अद्भुत प्रभाव विचार एकही परम हितकारी अपने भ्राता श्री लक्ष्मणजीसे बोले ॥ २ ॥ हे सौम्य! हमने उन विशुद्धात्मा
महर्षियोंके आश्चर्य युक्त यह आश्रम देखे यहांपर मृग और व्याघ्र लोग वैर भाव छोडकर विचरण करते हैं और अनेक प्रकारके पक्षी भी वास

यत्रतेसुकृतात्मानोविहरंतिमहर्षयः ॥ तत्पुण्यंशबरीस्थानंजगामात्मसमाधिना ॥ ३५ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणे
वाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेचतुःसप्ततितमःसर्गः ॥ ७४ ॥ ॥ छ ॥ ॥ दिवंतुतस्यांयातायांशबर्यांस्वे
नतेजसा ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्राचिंतयामासराघवः ॥ १ ॥ चिंतयित्वातुधर्मात्माप्रभावंतंमहात्मनाम् ॥ हितका
रिणमेकाग्रंलक्ष्मणंराघवोऽब्रवीत् ॥ २ ॥ दृष्टोमयाश्रमःसौम्यबह्वाश्चर्यःकृतात्मनाम् ॥ विश्वस्तमृगशार्दूलोनाना
विहगसेवितः ॥ ३ ॥ सप्तानांचसमुद्राणांतेषांतीर्थेषुलक्ष्मण ॥ उपस्पृष्टंचविधिवत्पितरश्चापितर्पिताः ॥ ४ ॥ प्रन
ष्टमशुभंयन्नःकल्याणंसमुपस्थितम् ॥ तेनत्वेतत्प्रहृष्टंमेमनोलक्ष्मणसंप्रति ॥ ५ ॥ हृदयेमेनरव्याघ्रशुभमाविर्भवि
ष्यति ॥ तदागच्छगमिष्यावःपंपांतांप्रियदर्शनाम् ॥ ६ ॥ ऋष्यमूकोगिरिर्यत्रनातिदूरेप्रकाशते ॥ यस्मिन्वसति
धर्मात्मासुग्रीवोंशुमतःसुतः ॥ ७ ॥ नित्यंवालिभयात्त्रस्तश्चतुर्भिःसहवानरैः ॥ अहंत्वरेचतंद्रष्टुंसुग्रीवंवानरर्षभम् ॥ ८ ॥

करतेहैं ॥ ३ ॥ उनके स्थापन किये हुये इन सप्त सागर तीर्थोंमें हमनें यथा विधान से स्नान और पितृ लोगोंको तर्पण भी किया ॥ ४ ॥ इससे
हमारे अशुभ भी नष्ट होगये और कल्याण भी प्राप्त होगया हे लक्ष्मण इस्से हमारा मन इस समय बहुत ही प्रफुल्ल हो रहाहै ॥ ५ ॥ और हे नर
व्याघ्र! इस समय हमारा हृदय भी शुभ भावसे पूरितहै सो अब अच्छाही होगा इस कारण हम उस मनोहर पंपासर पर चलें ॥ ६ ॥ जिस पंपाके
निकट ही ऋष्यमूक पर्वत प्रकाशित होरहाहै जहांपर धर्मात्मा सूर्यके पुत्र सुग्रीवजी बसतेहैं ॥ ७ ॥ नित्य वालिके भयसेभीत चारों वानरों

वीर्यवान्, महातेजस्वी, महादीप्तिमान्, सत्यप्रतिज्ञ, नीतिशास्त्रका जाननेंवाला, धारण शक्ति युक्त महान् ॥ १३ ॥ दक्ष प्रगल्भ प्रकाशमान और महाबल पराक्रमयुक्तहै। परन्तु उस महात्माको राज्यके कारण वालिनें घरसे निकाल दियाहै ॥ १४ ॥ वह निश्चयही सीताके ढूंढनें भालनेंमें आपका सहायक और मित्र होगा। सो आप अब शोक करनेंमें अपने मनको न लगाइये वहां जाइये ॥ १५ ॥ कोईभी होनहारको नहीं मेट सकता, जो होनहारहै वह अवश्यही होगी, हे इक्ष्वाकुश्रेष्ठ! कालकी गति बडी दुर्गमहै ॥ १६ ॥ इस कारणसे हेवीर! आप शीघ्रही इस स्थानसे महापराक्रमवान सुग्रीवके पास जाकर उस्से मित्रता कर लीजिये हे रघुनंदन! इसी समय आप चले जाइये ॥ १७ ॥ प्रज्वलित अग्निके

दक्षःप्रगल्भोद्युतिमान्महाबलपराक्रमः ॥ भ्रात्राविवासितोवीरराज्यहेतोर्महात्मना ॥ १४ ॥ सतेसहायोमित्रंच सीतायाःपरिमार्गणे ॥ भविष्यतिहितेराममाचशोकेमनःकृथाः ॥ १५ ॥ भवितव्यंहितच्चापिनतच्छक्यमिहान्यथा ॥ कर्तुमिक्ष्वाकुशार्दूलकालोहिदुरतिक्रमः ॥ १६ ॥ गच्छशीघ्रमितोवीरसुग्रीवंतंमहाबलम् ॥ वयस्यंतंकुरुक्षिप्रमितोगत्वाद्यराघव ॥ १७ ॥ अद्रोहायसमागम्यदीप्यमानेविभावसौ ॥ नचतेसोऽवमंतव्यःसुग्रीवोवानराधिपः ॥ १८ ॥ कृतज्ञःकामरूपीचसहायार्थीचवीर्यवान् ॥ शक्तौह्यद्ययुवांकर्तुंकार्यंयस्यचिकीर्षितम् ॥ १९ ॥ कृतार्थो वाऽकृतार्थोवातवकृत्यंकरिष्यति ॥ सऋक्षरजसःपुत्रःपंपामटतिशंकितः ॥ २० ॥ भास्करस्यौरसःपुत्रोवालिनाकृतकिल्बिषः ॥ संनिधायायुधंक्षिप्रमृष्यमूकालयंकपिम् ॥ २१ ॥

सन्मुख उसको साक्षीकर सुग्रीवसे मित्रता कीजिये, परन्तु उस वानरनाथका अपमान आप कभी न कीजिये ॥ १८ ॥ क्योंकि कृतज्ञहै कामरूपी इच्छानुसार रूप धारण करलेनेंवालाहै वीर्यवान्भीहै, और विशेष करके इस समय स्वयंभी किसीकी चाहताहै सो आपभी उसके कार्यको कर देंगे ॥ १९ ॥ फिर वह कार्यका चाहनेंवाला सुग्रीव सफल मनोरथ हो आपका कार्य कर देगा वह ऋक्षराजकी स्त्रीमें सूर्य भगवानसे उत्पन्न हुआ है, और इस समय भाईकी शंकासे पंपाके किनारे २ फिरा करता है॥२०॥ ...णका औरसपुत्र वालिके संग वैर होनेंके कारण दुःखित है इस्से आप अस्त्र शस्त्र दूर धरकर ऋष्यमूक पर्वत पर बैठे हुए उस

रेतीसे घिरा हुआ है ॥१७॥वह पंपासर मछलियें और कछुओंसे शोभित फैली फली बेलें जिसको सखियोंके समान घेरे हुये हैं जिसके किनारे२बहुतसे वृक्ष लगे हुये हैं, गन्धर्व, किन्नर, सर्प, यक्ष, और राक्षसगण ॥ १८ ॥ उसकेइधर उधर घूमते हैं और वह अनेक जातिके वृक्ष और लताओंसे घिरा हुआ है उसका जल शीतल और महाशोभायमान है ॥ १९ ॥ वह कहीं लाल कमल और कल्हारसे छारहाहै इस्से लाल वर्ण,और कहीं नीलेकमल फूलोंके खिलनेंसे नीला और कहीं बबूलोंसे छायाजानेके कारण श्वेत वर्णहो गया है और अनेक वर्णोंसे चित्रित होनेके कारण रंग बिरंगी हाथीकी झूलकी समान शोभायमान है ॥२०॥वह अरविन्द, उत्पल और पुष्पित आम बनके समूह पूरित और मयूरोंके शब्दसे शब्दायमान ॥ २१ ॥ पंपा

मत्स्यकच्छपसंबाधांतीरस्थद्रुमशोभिताम् ॥ सखीभिरेवसंयुक्तांलताभिरनुवेष्टिताम् ॥ १८॥ किन्नरोरगगंधर्वयक्ष राक्षससेविताम् ॥ नानाद्रुमलताकीर्णांशीतवारिनिधिंशुभाम् ॥१९॥ पद्मसौगंधिकैस्ताम्रांशुक्लांकुमुदमंडलैः ॥ नीलां कुवलयोद्घाटैर्बहुवर्णांकुथामिव॥ २०॥ अरविंदोत्पलवतींपद्मसौगंधिकायुताम् ॥ पुष्पिताम्रवणोपेतांबर्हिणोद्घुष्टनादिताम् ॥ २१ ॥ सतांदृष्ट्वाततःपंपांरामःसौमित्रिणासह ॥ विललापचतेजस्वीरामोदशरथात्मजः ॥ २२ ॥ तिलकैर्बीजपूरैश्चवटैःशुक्लद्रुमैस्तथा ॥ पुष्पितैःकरवीरैश्चपुन्नागैश्चसुपुष्पितैः ॥ २३ ॥ मालतीकुंदगुल्मैश्चभंडीरैर्निचुलैस्तथा ॥ अशोकैःसप्तपर्णैश्चकेतकैरतिमुक्तकैः ॥ २४ ॥ अन्यैश्चविविधैर्वृक्षैःप्रमदेवोपशोभिताम् ॥ अस्यास्तीरेतुपूर्वोक्तःपर्वतोधातुमंडितः ॥ २५ ॥ ऋष्यमूकइतिख्यातश्चित्रपुष्पितपादपः ॥ हरिर्ऋक्षरजोनाम्नःपुत्रस्तस्यमहात्मनः ॥ २६ ॥

सरोवरको रामचन्द्रजीनें लक्ष्मणजीके सहित देखा उसको देखकर, तेजस्वी दशरथ कुमार श्रीरामचन्द्रजी विलाप करनें लगे ॥ २२ ॥ श्रीरामचंद्रजीने फिर देखाकी तिलक बीज पूरक, वट लोध, द्रुम पुष्पित करवीर फूला हुआ,पुन्नाग ॥२३॥ मालती,कुंद,गुल्म,भांडीर, निचुल, अशोक सप्तवर्ण केतकी, चमेली अतिमुक्तक॥२४॥ इत्यादि औरभी अनेकप्रकारके वृक्षवहां शोभित होरहेहैं श्रीरामचंद्रजी बोले, इसके ही किनारे पहले कहा हुआ धातुओंसे सजा हुआ पर्वत ॥ २५ ॥ विख्यात ऋष्यमूक विचित्र पुष्प युक्त वृक्षोंसे युक्तहै महात्मा हरि ऋक्षरजके पुत्र ॥ २६ ॥ महावीर

वीर्यवान्, महातेजस्वी, महादीप्तिमान्, सत्यप्रतिज्ञ, नीतिशास्त्रका जाननेंवाला, धारण शक्ति युक्त महान् ॥ १३ ॥ दक्ष प्रगल्भ प्रकाशमान और महाबल पराक्रमयुक्तहै। परन्तु उस महात्माको राज्यके कारण वालिनें घरसे निकाल दियाहै ॥ १४ ॥ वह निश्चयही सीताके ढूंढनें भालनेंमें आपका सहायक और मित्र होगा। सो आप अब शोक करनेंमें अपने मनको न लगाइये वहां जाइये ॥ १५ ॥ कोईभी होनहारको नहीं मेट सकता, जो होनहारहै वह अवश्यही होगी, हे इक्ष्वाकुश्रेष्ठ! कालकी गति बडी दुर्गमहै ॥ १६ ॥ इस कारणसे हेवीर! आप शीघ्रही इस स्थानसे महापराक्रमवान सुग्रीवके पास जाकर उस्से मित्रता कर लीजिये हे रघुनंदन! इसी समय आप चले जाइये ॥ १७ ॥ प्रज्वलित अग्निके

दक्षःप्रगल्भोद्युतिमान्महाबलपराक्रमः ॥ भ्रात्राविवासितोवीरराज्यहेतोर्महात्मना ॥ १४ ॥ सतेसहायोमित्रंच सीतायाःपरिमार्गणे ॥ भविष्यतिहितेराममाचशोकेमनःकृथाः ॥ १५ ॥ भवितव्यंहितच्चापिनतच्छक्यमिहान्यथा ॥ कर्तुमिक्ष्वाकुशार्दूलकालोहिदुरतिक्रमः ॥ १६ ॥ गच्छशीघ्रमितोवीरसुग्रीवंतंमहाबलम् ॥ वयस्यंतंकुरुक्षिप्रमितोगत्वाद्यराघव ॥ १७ ॥ अद्रोहायसमागम्यदीप्यमानेविभावसौ ॥ नचतेसोऽवमंतव्यःसुग्रीवोवानराधिपः ॥ १८ ॥ कृतज्ञःकामरूपीचसहायार्थीचवीर्यवान् ॥ शक्तौह्यद्ययुवांकर्तुंकार्यंयस्यचिकीर्षितम् ॥ १९ ॥ कृतार्थोवाऽकृतार्थोवातवकृत्यंकरिष्यति ॥ सऋक्षरजसःपुत्रःपंपामटतिशंकितः ॥ २० ॥ भास्करस्यौरसःपुत्रोवालिनाकृतकिल्बिषः ॥ संनिधायायुधंक्षिप्रमृष्यमूकालयंकपिम् ॥ २१ ॥

सन्मुख उसको साक्षीकर सुग्रीवसे मित्रता कीजिये, परन्तु उस वानरनाथका अपमान आप कभी न कीजिये ॥ १८ ॥ क्योंकि वह कृतज्ञहै कामरूपी इच्छानुसार रूप धारण करलेनेंवालाहै वीर्यवान्भीहै, और विशेष करके इस समय स्वयंभी किसीकी सहायता चाहताहै सो आपभी उसके कार्यको कर देंगे ॥ १९ ॥ फिर वह कार्यका चाहनेंवाला सुग्रीव सफल मनोरथ हो आपका कार्य भी अवश्य कर देगा वह ऋक्षराजकी स्त्रीमें सूर्य भगवानसे उत्पन्न हुआ है, और इस समय भाईकी शंकासे पंपाके किनारे २ फिरा करता है॥२०॥ वह सूर्य नारायणका औरसपुत्र वालिके संग वैर होनेंके कारण दुःखित है इस्से आप अस्त्र शस्त्र दूर धरकर ऋष्यमूक पर्वत पर बैठे हुए उस

-हुआ है ॥१७॥ ...न हित कारण धरो, प्रभुनें मनुज शरीर । ऋषि मुनियनकी दासकी, दूर करी सबपीर ॥
गन्धर्व, कि... कृ... अनुग्रह अस करो, रहै तुम्हारे ध्यान । प्रभु ज्वालापरसादको, यह वरदान न आन ॥
जिमि ... ऋपियनसों भयो, प्रभुको शुभ संवाद । सो सब भाषामें कियो, लख ज्वालापरसाद ॥
पढहिं स... नकृपा करि,सुमिरहिंलक्ष्मणराम । यामें कुछ संशय नहीं, सिद्ध होत सब काम ॥

इदं व... ...ीकीयरामायणारण्यकाण्डं भाषाटीकासहितं श्रीकृष्णदासात्मजखेमराजेन मुम्बय्यां स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वराख्य" यंत्रालये मुद्रितम् शके १८१४

पुस्तकमिलनेका ठिकाना.

खेमराज श्रीकृष्णदास

"श्रीवेङ्कटेश्वर"छापाखाना बम्बई.

वृक्ष लगरहे हैं, जो यहांसे पश्चिमकी ओर दृष्टि आते हैं॥२॥ उन वृक्षोंमें जामन, चिरोंजी, कटहर, वट, पाकर, तेंदू, पीपल, कठचंपा, आम आदि अनेक प्रकारके है ॥ ३ ॥और धवई, नागकेशर, अगेथू , तिलक, किलवार, श्याम, अशोक, कदम्ब, कंदैल, यह सब पुष्पित वृक्ष लगे हैं॥४॥ हरे २ अशोक, नींबके वृक्ष सब प्रकारके औरभी उत्तम२वृक्ष हैं सो आप उनपर चढके अथवा बलसे हिलाकर फल भूमिमें गिराकर ॥५॥ अमृत समान फल खाते पीतें हुए दोनो जने चले जाओ हे काकुत्स्थ! उस फूले वृक्ष द्वारा परिपूर्ण वनसे आप निकल जांयगे ॥ ६ ॥ तब और एक नन्दन और उत्तर कुरुदेशके समान वन मिलेगा; जिसमें सब कालमें फले ऐसे मीठे फलवाले वृक्षभी लग रहे हैं॥ ७ ॥उस वनमें सब समयमें सब ऋतु चैत्र रथ बनकी समान विद्य

जंबूप्रियालपनसान्यग्रोधप्लक्षतिंदुकाः ॥ अश्वत्थाःकर्णिकाराश्चचूताश्चान्येचपादपाः ॥ ३ ॥ धन्वनानागवृक्षाश्च तिलकानक्तमालकाः ॥ नीलाशोकाःकदंबाश्चकरवीराश्चपुष्पिताः ॥ ४ ॥ अग्निमुख्याअशोकाश्चसुरक्ताःपारिभद्रकाः ॥ तानारुह्याथवाभूमौपातयित्वाचतान्बलात् ॥ ५ ॥ फलान्यमृतकल्पानिभक्षयित्वागमिष्यथ ॥ तदतिक्रम्यकाकुत्स्थवनंपुष्पितपादपम् ॥ ६ ॥ नंदनप्रतिमंत्वन्यत्कुरवस्तूत्तराइव ॥ सर्वकालफलायत्रपादपामधुरस्रवाः ॥ ७ ॥ सर्वेचऋतवस्तत्रवनेचैत्ररथेयथा ॥ फलभारनतास्तत्रमहाविटपधारिणः ॥ ८ ॥ शोभंतेसर्वतस्तत्रमेघपर्वतसंनिभाः ॥ तानारुह्याथवाभूमौपातयित्वाथवासुखम् ॥ ९ ॥ फलान्यमृतकल्पानिलक्ष्मणस्तेप्रदास्यति ॥ चंक्रमंतौवरान्शैलान्शैलाच्छैलंवनाद्वनम् ॥ १० ॥ ततःपुष्करिणींवीरौपंपांनामगमिष्यथ ॥ अशर्करामविभ्रंशांसमतीर्थामशेवलाम् ॥ ११ ॥ रामसंजातवालूकांकमलोत्पलशोभिताम् ॥ तत्रहंसाःप्लवाःक्रौंचाःकुरराश्चैवराघव ॥ १२ ॥

मान रहती हैं, वहां सब वृक्ष फल भारसे झुके हुए देख पडते हैं ॥ ८ ॥वह सब मेघों और पर्वतोंकी समान शोभायमान होते हैं । वहां परभी उनपर चढकर अथवा जोरसे हिला झुला भूमिमें गिराकर जैसा ठीक समझा जाय ॥ ९ ॥ अमृतकी समान फल वह वृक्ष आपको देंगे, इस भांतिसे दोनों भ्राता पर्वतों पर होते हुए इस वनसें उस बनमें जाय ॥ १० ॥ फिर पंपा नामक सरोवर पर पहुँचोगे, यह सरोवरमें शिवार, शर्करा, कंकर और फिसलनी भूमि नहीं है सब घाट बराबर बने हैं ॥११॥ हे राम! उसमें रेती बहुत श्रेष्ठ है विविध भांतिके कमल उसमें फूलते हैं, हंस, राजहंस, क्रौंच, कुरर

राक्षसके हाथसे मार डाले गये ॥ ३५ ॥ हेजानकी ! इस प्रकार हमारी सैनागण करके तुम्हारे स्वामी सर्व सैनागणके साथ मार डाले गयेहैं
तुम्हैं विश्वाश दिलानेंके लिये हम उनका रुधिर से सना व कटाहुआ मस्तकभी यहां लेआयेहैं ॥ ३६ ॥ तिसके पीछे परम दुर्जय राक्षसेश्वर
रावण सीताजीको सुनानेंके लिये उनके निकट बैठीहुई राक्षसीसे बोला॥३७॥कि हेनिशाचरी! जो राक्षस रण भूमिसे स्वयं रामचंद्रका शिर काटकर ले
आयाहै, उस क्रूरकर्मकारी विद्युज्जिह्व राक्षसको शीघ्र यहां बुला लाओ ॥ ३८ ॥ तिसके पीछे रावणके ऐसा कहतेही यह मायावी विद्यु
ज्जिह्व धनुष बाणके सहित मायामय रामचंद्रजीका कटाहुआ शिर ग्रहणकर रावणके आगे आय प्रणाम करता हुआ ॥ ३९ ॥ रावण मंत्री श्रेष्ठ

एवंतवहतोभर्तासमैन्योममसेनया ॥ क्षतजार्द्ररजोध्वस्तमिदंचास्याहृतंशिरः ॥ ३६ ॥ ततःपरमदुर्धर्षोरावणोराक्षसेश्व
रः ॥ सीतायामुपशृण्वंत्यांराक्षसीमिदमब्रवीत् ॥३७॥ राक्षसंक्रूरकर्माणंविद्युज्जिह्वंसमानय ॥ येनतद्राघवशिरःसंग्रामा
त्स्वयमाहृतम् ॥ ३८ ॥ विद्युज्जिह्वस्तदागृह्यशिरस्तत्सशरासनम् ॥ प्रणामंशिरसाकृत्वारावणस्याग्रतःस्थितः ॥ ३९ ॥
तमब्रवीत्ततोराजारावणोराक्षसंस्थितम् ॥ विद्युज्जिह्वंमहाजिह्वंसमीपपरिवर्तिनम् ॥ ४० ॥ अग्रतःकुरुसीतायाःशीघ्रं
दाशरथेःशिरः ॥ अवस्थांपश्चिमांभर्तुःकृपणासाधुपश्यतु ॥ ४१ ॥ एवमुक्तंतुतद्रक्षःशिरस्तत्प्रियदर्शनम् ॥ उपनि
क्षिप्यसीतायाःक्षिप्रमंतरधीयत ॥ ४२ ॥ रावणश्चापिचिक्षेपभास्वरंकार्मुकंमहत् ॥ त्रिषुलोकेषुविख्यातंरामस्यैतदि
तिब्रुवन् ॥ ४३ ॥ इदंतत्तवरामस्यकार्मुकंज्यासमावृतम् ॥ इहप्रहस्तेनानीतंतंहत्वानिशिमानुषम् ॥ ४४ ॥

महाजीभवाले विद्युज्जिह्वको आगे आया हुआ देखकर बोला ॥४०॥ रामचंद्रका कटा हुआ मस्तक तुम इन जानकीको दिखाओ, कारणकि इस समय
यह कृपणा सीता अपने स्वामीकी अंतिमा अवस्था देखें ॥ ४१ ॥ जब राक्षस विद्युज्जिह्वसे रावणनें ऐसा कहा तब वह प्रियदर्शन
शिर सीताजीको दिखायकर शीघ्रही अन्तर्ध्यान होगया ॥ ४२ ॥ तिसके पीछे रावण बोला, हेसीते! देखो यह उन्ही रामचंद्रका त्रिलोकवि
ख्यात दीप्तिशील और बडा भारी धनुषबाण है यह कहकर रावणने वह भयंकर धनुष फेंकदिया॥ ४३ ॥ हे सीते! पहँचान लो यह वही रोदा चढ़ा

पंपाका शीतल जल देखकर व पीकर आप शोक भूल जांयगे, और वहां फूले हुये तिलक, नक्तमालक आदिक वृक्षहैं ॥ २१ ॥ और हे रघुनंदन ! वहां पर भांति२के कमलभी फूल रहेहैं, परन्तु उन पुष्पोंकी माला बनाकर पहरनेंवाला वहां पर कोई पुरुष नहीं रहता ॥ २२ ॥ वह फूल न कभी मुरझातेहैं, न अपने आपसे गिरतेहैं कारणकि वहां पर मतंग ऋषिके चेले जो ऋषि लोगहैं, वह एकाग्र चित्त होकर वहां रहतेथे ॥ २३ ॥ वह सब शिष्य ऋषि लोग अपनें गुरूजीके लिये वनके फल फूल लेनें जाते हुये, वोझके मारे थक जानें पर उनके शरीरसे जो पसीनें की बूंदें पृथ्वीपर गिर पडतीथीं ॥ २४ ॥ वहीं २ स्वेद बिन्दु उस कालमें उनके तपके प्रभावसे फूल होगये हैं हे रघुनंदन! ऋषिलोगोंके पसीनेंकी बूंदोंसे उत्पन्न होनेंके कारण यह सब

शिवोदकंचपंपायांदृष्ट्वाशोकंविहास्यसि ॥ सुमनोभिश्चितास्तत्रतिलकानक्तमालकाः ॥ २१ ॥ उत्पलानिचफुल्लानि पंकजानिचराघव ॥ नतानिकश्चिन्माल्यानितत्रारोपयितानरः ॥ २२ ॥ नचवैग्लानतांयांतिनचशीर्यंतिराघव ॥ मतंग शिष्यास्तत्रासन्नृषयःसुसमाहिताः ॥ २३ ॥ तेषांभाराभितप्तानांवन्यमाहरतांगुरोः ॥ येप्रपेतुर्महींतूर्णंशरीरात्स्वेदबिंदवः ॥ २४ ॥ तानिमाल्यानिजातानिमुनीनांतपसातदा ॥ स्वेदबिंदुसमुत्थानिनविनश्यंतिराघव ॥ २५ ॥ तेषांगतानामद्यापिदृश्यतेपरिचारिणी ॥ श्रमणीशबरीनामकाकुत्स्थचिरजीविनी ॥ २६ ॥ त्वांतुधर्मेस्थितानित्यंसर्वभूतनमस्कृतम् ॥ दृष्ट्वादेवोपमंरामस्वर्गलोकंगमिष्यति ॥ २७ ॥ ततस्तद्रामपंपायास्तीरमाश्रित्यपश्चिमम् ॥ आश्रमस्थानमतुलंगुह्यं काकुत्स्थपश्यसि ॥ २८ ॥ नतत्राक्रमितुंनागाःशक्नुवंतितदाश्रमे ॥ ऋषेस्तस्यमतंगस्यविधानात्तच्चकाननम् ॥ २९ ॥

पुष्प अविनासी होगयेहैं ॥ २५ ॥ यद्यपि सब ऋषि लोग वहांसे अन्तर्ध्यान होगयेहैं परन्तु अबतक उनकी परिचारिका श्रमणी नामक शबरी वहांपर दृष्टि आतीहै ॥ २६ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! आप साक्षात् देवताओंकी समान सब लोकोंके नमस्कार करनें योग्य हैं नित्य धर्म परायण श्रमणी आपको अवलोकन करकै स्वर्गको चली जायगी ॥ २७ ॥ हे काकुत्स्थनंदन! जब आप पंपाके पश्चिम तीरपर जांयगे तब महर्षि मतंग का अनेक आश्रमोंमें गुप्तआश्रम दृष्टि आवैगा ॥ २८ ॥ पृथ्वीमें यह आश्रम अतुलनीय है मतंग मुनिजीके प्रभावके वशसे हाथीभी इस आ

समान पृथ्वीपर गिर पड़ीं ॥ ६ ॥ तिसके पीछे बड़े नेत्रोंवाली सीताजी सावधान होकर बहुत देरके पीछे चैतन्यता प्राप्त कर ... मार डाले गयेहैं
निकट उस मस्तकको रखकर विलाप करनें लगी ॥ ७॥ हा महाबाहो! हम जीवित हुईभी मारी गईं!, तुमनें वीर श्रेष्ठकी समान अपने पिताका सत्य
प्रतिपालन किया, परन्तु हमनें विधवा होकर तुम्हारी यह सबसे पीछे अवस्था देखी ॥ ८ ॥ हा नाथ! पहले स्वामीका मरण होनेंसे वह स्त्रीके
दोषसेही मरण कहलाताहै परन्तु हमको साध्वी (पतिव्रता) जानकरभी तुम किस कारणसे साधुकी समान पहलेही मृतक होगये ॥ ९ ॥ हाय!
हम महादुःखके समुद्रमें डूबती हुई बड़े कष्टसे दिन विताय रहीहैं, हमें भरोसा था कि तुम हमे इस विपदसे छुड़ाओगे, परन्तु! हमारे जले भाग्यसे

साम्रुहूर्तात्समाश्वस्यपरिलभ्याथचेतनाम् ॥ तच्छिरःसमुपास्थायविललापायतेक्षणा ॥ ७ ॥ हाहतास्मिमहाबाहो
वीरव्रतमनुव्रत ॥ इमांतेपश्चिमावस्थांगतास्मिविधवाकृता ॥ ८ ॥ प्रथमंमरणंनार्याभर्तुर्वैगुण्यमुच्यते ॥ सुवृत्तः
साधुवृत्तायाःसंवृत्तस्त्वंममाग्रतः ॥ ९ ॥ महद्दुःखंप्रपन्नायाममग्नायाःशोकसागरे ॥ योहिमामुद्यतस्त्रातुंसोपित्वंविनिपा
तितः ॥ १० ॥ साश्वश्रूर्ममकौसल्यात्वयापुत्रेणराघव ॥ वत्सलातेयथाधेनुर्विवत्सावत्सलाकृता ॥ ११ ॥ उद्दि
ष्टंदीर्घमायुस्तेयैरचिन्त्यपराक्रम ॥ अनृतंवचनंतेषामल्पायुरसिराघव ॥ १२ ॥ अथवानश्यतिप्रज्ञाप्राज्ञस्यापिसत
स्तव ॥ पचत्येनंतथाकालोभूतानांप्रभवोह्ययम् ॥ १३ ॥ अदृष्टंमृत्युमापन्नाःकस्मात्त्वंनयशास्त्रवित् ॥ व्यसना
नामुपायज्ञःकुशलोह्यसिवर्जने ॥ १४ ॥

आज तुमही मृतक होगये ॥ १० ॥ हानाथ! तुम सरीखा पुत्र पायकरभी हमारी वह सास कौशल्याजी किस कारणसे विना बच्चेकी गायके
समान वत्सरहित होगई? ॥ ११ ॥ हे रामचंद्रजी! वशिष्ठ आदि दैवके जाननेंवाले महर्षियोंनें तुमको बड़ी आयुवाला कहाथा, परन्तु हमारे
कुभाग्यसे तुम अल्पायु होकरही मृतक होगये, हा! अब उन महर्षियोंके वचन मिथ्या हुए ॥ १२ ॥ तुम पंडित होकरभी जो सावधानताका
नाश होनेंके कारण शत्रुके वशमें पड़े, सो यह सब बात कालसे ही हुईहै, कारण कि कालही सर्व भूतोंका ईश्वरहै ॥ १३ ॥ हा
नीतिशास्त्रविशारद! तुम तो सब विपदोंसे बचनेंका उपाय जानतेथे, और इन विपदोंके निवारण करनेंमें समर्थ होकरभी तुम

कोमल और सुन्दर वनैले पशु रुरु मृग देख शोक परित्याग करदेंगे, हे श्रीरामचंद्रजी ! उस पर्वतकी कंदराभी अति शोभायमान हैं ॥ ३९ ॥ उस कंदराके द्वारपर सदाही भारी शिला लगी रहतीहै, इस कारण सरलतासे उसमें प्रवेश करना नहीं हो सकता, उस गुफाके पूर्व द्वार पर एक बडा भारी अचल जलका कुंडहै ॥ ४० ॥ उस कुंडके किनारे पर बहुत सारे फूल व फलोंसे युक्त अनेकर भांतिके रमणीक वृक्ष लगेहैं, और वहींपर धर्मात्मा सुग्रीवजी वानरोंके सहित वास करतेहैं ॥ ४१ ॥ और वह सुग्रीवजी कभीर उस पर्वतके शिखर परभी बैठे रहतेहैं, इस प्रकारसे वह कबंध श्रीराम लक्ष्मणजीसे बताय ॥ ४२ ॥ फूलोंकी माला पहरे, सूर्यके समान प्रकाशित आकाशमें टिका हुआ शोभित होनें लगा,

रुरूनपेतानजयान्दृष्ट्वाशोकंप्रहास्यसि ॥ रामतस्यतुशैलस्यमहतीशोभतेगुहा ॥३९॥शिलापिधानाकाकुत्स्थदुःखंचा स्याःप्रवेशनम्॥ तस्यागुहायाःप्राग्द्वारेमहान्शीतोदकोह्रदः ॥४० ॥ बहुमूलफलोरम्योनानानगसमाकुलः॥तस्यांवस तिधर्मात्मासुग्रीवःसहवानरैः ॥ ४१ ॥ कदाचिच्छिखरेतस्यपर्वतस्यापितिष्ठति ॥ कबंधस्त्वनुशास्यैवंतावुभौरामल क्ष्मणौ ॥ ४२ ॥ स्रग्वीभास्करवर्णाभःखेव्यरोचतवीर्यवान् ॥ तंतुखस्थंमहाभागंतावुभौरामलक्ष्मणौ ॥ ४३ ॥ प्रस्थि तौत्वंव्रजस्वेतिवाक्यमूचतुरंतिके॥गम्यतांकार्यसिद्ध्यर्थमितितावब्रवीत्सच ॥४४॥सुप्रीतौतावनुज्ञाप्यकबंधःप्रस्थित स्तदा ॥ ४५ ॥ सतत्कबंधःप्रतिपद्यरूपंवृतःश्रियाभास्वरसर्वदेहः ॥ निदर्शयन्राममवेक्ष्यखस्थःसख्यंकुरुष्वेतितदा भ्युवाच ॥ ४६ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०आर०त्रिसप्ततितमःसर्गः ॥७३॥ ॥ तौकबंधेनतंमार्गंपंपायादर्शितंवने॥ आतस्थतुर्दिशंगृह्यप्रतीचींनृवरात्मजौ ॥ १ ॥

उस बडे भाग्यवालेको श्रीराम लक्ष्मणजीनें देखकर ॥ ४३ ॥ उस कबंधसे कहा कि अच्छा इस समय हम सुग्रीवकें निकट जाते हैं, और तुमभी स्वर्गको जाओ ॥ ४४ ॥ तब कबंध श्रीराम लक्ष्मणजीकी आज्ञा लेकर प्रसन्न होकर स्वर्गको चला ॥४५॥ उस कालमें कबंध अपना पहला रूपप्राप्त करके शोभा समन्वित और प्रदीप्त शरीर होकर श्रीरामचन्द्रजीकी ओर दृष्टि करकै कहने लगा कि आप सुग्रीवके साथ मित्रता स्थापन कीजिये ॥ ४६॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आदिकाव्ये आरण्यकांडे त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥७३॥जब कबंध इस प्रकारसे कहकर स्वर्गको चला गया तब श्रीराम लक्ष्म

अपने साथ लेते चलो ॥२१॥ हे भली गतिको पहुंचे हुए! हमको दुःख भोग करनेंके लिये इस लोकको छोडकर तुम किस वास्ते परलोक ॥२२॥हाय ??? तुम्हारा-यह मंगलमय मनोहर शरीर केवल हमही भेंटतीथीं अब वही शरीर राक्षस लोगों करकै इधर उधर खेंचा जाता होगा! ॥२३॥ तुमनें बहुत दक्षिणाके साथ अग्निष्टोमादि यज्ञ करकै जो संस्कार कियेथे, इस समय अग्निहोत्रद्वारा तुम वह संस्कार क्यों नहीं ग्रहण करते ॥२४॥ हाय ! हम तीन जने अयोध्या पुरीसे वनवास करनेंको आयेथे; परन्तु अब कौशिल्याजी इकले लक्ष्मणजीकोही लौटा आये देखकर शोकके समुद्रमें डूब जांयगी ॥ २५ ॥ तिसके पीछे जब वह लक्ष्मणजीसे तुम्हारा वृत्तान्त पूछेंगी. तब लक्ष्मणजीभी निश्चयही वानरोंकी सैनाका वध,

कस्मान्मामपहायत्वंगतोगतिमतांवर ॥ अस्माल्लोकादमुंलोकंत्यक्त्वामामपिदुःखिताम् ॥ २२ ॥ कल्याणैरुचिरंगात्रं परिष्वक्तंमयैवतु ॥ क्रव्यादैस्तच्छरीरंतेनूनंविपरिकृष्यते ॥ २३ ॥ अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्टवानाप्तदक्षिणैः ॥ अग्निहोत्रेणसंस्कारंकेनत्वंनतुलप्स्यसे ॥ २४ ॥ प्रव्रज्यामुपपन्नानांत्रयाणामेकमागतम् ॥ परिप्रेक्ष्यतिकौसल्यालक्ष्मणं शोकलालसा ॥ २५ ॥ सतस्याःपरिपृच्छंत्यावधंमित्रबलस्यते ॥ तवचाख्यास्यतेनूनंनिशायांराक्षसैर्वधम् ॥ २६ ॥ सात्वांसुप्तंहतंज्ञात्वामांचरक्षोगृहंगताम् ॥ हृदयेनावदीर्णेनभविष्यतिराघव॥२७॥ ममहेतोरनार्यायाअनघःपार्थिवात्मजः ॥ रामःसागरमुत्तीर्यवीर्यवान्गोष्पदेहतः ॥ २८ ॥ अहंदाशरथेनोढामोहात्स्वकुलपांसनी ॥ आर्यपुत्रस्यरामस्य भार्यामृत्युरजायत ॥२९॥ नूनमन्यांमयाजातिंवारितंदानमुत्तमम् ॥ याहमद्यैवशोचामिभार्यासर्वातिथेरिह ॥ ३० ॥

और जिस राक्षसोंसे तुम मार डाले गये वह सर्व वार्ता कहेंगे ॥ २६ ॥ हा राघव ! उस समय तुमको सोते हुए नाशको प्राप्त और हमको राक्षसके घरमें घिरी हुई सुनैगी, तब क्या उनका हृदय शतखंड नही हो जायगा? ॥ २७ ॥ हाय ! मुझ खोटे शीलवालीकेही लिये पापरहित राजकुमार श्रीरामचंद्रजीके समुद्रके पार होकर एक गौके खुरभर पानीमें डूब गये ॥ २८ ॥ हाय! आर्यपुत्र श्रीरामचंद्रजीनें अज्ञानकेही वश इस कुल नाशिनीके साथ विवाह कियाथा, कारण कि मुझ भार्याकेही परिणाममें श्रीरामचंद्रजीकी मृत्यु हुई ॥२९॥ हे आर्य ! जब कि हम अतिथि लोगोंके

अद्यप्राप्तातपःसिद्धिस्तवसंदर्शनान्मया ॥ अद्यमेसफलंजन्मगुरवश्चसुपूजिताः ॥ ११ ॥ अद्यमेसफलंतप्तंस्वर्गश्चैवभ
विष्यति ॥ त्वयिदेववरेरामपूजितेपुरुषर्षभ ॥ १२ ॥ तवाहंचक्षुषासौम्यपूतासौम्येनमानद ॥ गमिष्याम्यक्षयान्
लोकांस्त्वत्प्रसादादरिंदम ॥ १३ ॥ चित्रकूटंत्वयिप्राप्तेविमानैरतुलप्रभैः ॥ इतस्तेदिवमारूढायानहंपर्यचारिषम् ॥ १४ ॥
तैश्चाहमुक्ताधर्मज्ञैर्महाभागैर्महर्षिभिः ॥ आगमिष्यतितेरामःसुपुण्यमिममाश्रमम् ॥ १५ ॥ सतेप्रतिग्रहीतव्यःसौ
मित्रिसहितोऽतिथिः ॥ तंचदृष्ट्वावराँल्लोकानक्षयांस्त्वंगमिष्यसि ॥ १६ ॥ एवमुक्तामहाभागैस्तदाहंपुरुषर्षभ ॥ म
यातुसंचितंवन्यंविविधंपुरुषर्षभ ॥ १७ ॥ तवार्थेपुरुषव्याघ्रपंपायास्तीरसंभवम् ॥ एवमुक्तःसधर्मात्माशबर्याशबरी
मिदम् ॥ १८ ॥ राघवःप्राहविज्ञानेतांनित्यमबहिष्कृताम् ॥ दनोःसकाशात्तत्त्वेनप्रभावंतेमहात्मनाम् ॥ १९ ॥

आज आपके दर्शनोंसे मेरे तपकी सिद्धि हुई, जन्म सफल हुआ, गुरु गणोंकी पूजा भली भांतिसे होगई ॥ ११ ॥ और तपस्याभी सार्थक होगई, हे पुरुषोत्तम! आप देवताओंमें श्रेष्ठ हैं सो इस समय आपकी पूजा करनेसे हमें ब्रह्मलोक प्राप्त होगया ॥ १२ ॥ हे सौम्य! हे मान देनें वाले हे शत्रुघाती! आपके शुभकारी नेत्रोंकी दृष्टि पडनेंसे हम पवित्र होगईं, अब आपके प्रसादसे हमको सब अक्षय लोकोंकी प्राप्ति हो जायगी ॥ १३ ॥ जिनकी हम सेवा करतीथीं वह ऋषि आपके चित्रकूट पर्वतपर पधारतेही अनुपम देदीप्यमान देव विमानोंमें सवार होकर इस आश्रमसें स्वर्गको चले गये हैं ॥ १४ ॥ वह सब महा भाग्यवान धर्मात्मा महर्षि लोक स्वर्ग जानेंके समय हमसे कह गये कि श्रीरामचन्द्रजी तुम्हारे इस पुण्य जनक आश्रममें आमेंगे ॥ १५ ॥ सो तुम लक्ष्मणजीकी और उन श्रीरामचन्द्रजीकी अतिथिकी समान आदरसत्कारसे पूजा करना, उनके दर्शन करनेसे ही तुमको सर्व अक्षय लोकोंकी प्राप्ति हो जायगी ॥ १६ ॥ हे पुरुषोत्तम! उस समय वह महाभाग्यशाली महर्षिलोग हमसे इस प्रकार कह गयेथे हे पुरुषश्रेष्ठ! तभीसे हमनें विविध भांतिके भले २ फल ढूंढकर ॥ १७ ॥ आपकी सेवाके लिये धररक्खे हैं यह सब फल इसी पंपाके तीरवाले वृक्षोंके हैं धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी शबरी करकै इस प्रकार कहे जाकर उससे यह वचन बोले ॥ १८ ॥ कारण कि श्रीरामचन्द्रजीनें अपनें मनमें विचरा

देखनेंको जाता हुआ ॥ ३८ ॥ और उन मंत्रियोंके मुखसे श्रीरामचंद्रजीके पराक्रमको जान उसके विषयमें कर्त्तव्याकर्त्तव्यका विचार और उस लायक कार्यके अनुष्ठान करनेंके निमित्त सभामें आया ॥ ३९ ॥ इस ओर जैसेही कि रावण यहांसे चला गया, कि वैसेही उसके संगरमें वह मायाकल्पित रामचंद्रजीका शिर और विचित्र धनुषभी अन्तर्ध्यान होगया ॥ ४० ॥ इस समयमें राजा रावण भयंकर विक्रमकारी मंत्रियोंके सहित रामचंद्रजीके संबंधमें इस समय क्या कर्त्तव्यहै यह मंत्रणा करनें लगा ॥ ४१ ॥ तब रावण अपने समीप बैठे हुए हितकारी अपने सैनापति लोगोंसे समयानुसार वचन बोला ॥ ४२ ॥ कि बहुत शीघ्र भेरी (बिगुल) बजवाकर तुम लोग शीघ्रही हमारी सैनाको यहां बुला लाओ;

सतुसर्वसमर्थ्यैवमंत्रिभिःकृत्यमात्मनः ॥ सभांप्रविश्यविदधेविदित्वारामविक्रमम् ॥ ३९ ॥ अंतर्धानंतुतच्छीर्षं तच्चकार्मुकमुत्तमम् ॥ जगामरावणस्यैवनिर्याणसमनंतरम् ॥ ४० ॥ राक्षसेंद्रस्तुतैःसार्धंमंत्रिभिर्भीमविक्रमैः ॥ समर्थयामासतदारामकार्यविनिश्चयम् ॥ ४१ ॥ अविदूरस्थितान्सर्वान्बलाध्यक्षान्हितैषिणः ॥ अब्रवीत्कालसदृशो रावणोराक्षसाधिपः ॥ ४२ ॥ शीघ्रंभेरीनिनादेनस्फुटंकोणाहतेनमे ॥ समानयध्वंसैन्यानिवक्तव्यंचनकारणम् ॥ ४३ ॥ ततस्तथेतिप्रतिगृह्यतद्वचस्तदैवदूताःसहसामहद्बलम् ॥ समानयंश्चैवसमागतंचन्यवेदयन्भर्तरियुद्धकांक्षिणि ॥ ४४ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०युद्धकांडेद्वात्रिंशःसर्गः ॥ ३२ ॥ ॥छ॥ सीतांतुमोहितांदृष्ट्वासरमानामराक्षसी ॥ आससादाथवैदेहींप्रियांप्रणयिनीसखी ॥१॥ मोहितांराक्षसेंद्रेणसीतांपरमदुःखिताम् ॥ आश्वासयामासतदासरमामृदुभाषिणी ॥२॥

परन्तु किसीसेभी बुलानेंका कारण न कहना ॥ ४३ ॥ तिसके पीछे वह युद्धाभिलाषी दूतगण "तथास्तु" कहकर राक्षसराज रावणके वचन कहकर वचन मान, उस बड़ी भारी राक्षसी सैनाको वहां लायकर रावणके निकट उनके आगमनकी वार्ता रावणसे निवेदन की ॥ ४४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे द्वात्रिंशःसर्गः ॥ ३२ ॥ इधर सीताजीको मोहित निहार अत्यन्त हितकारिणी सीताजीकी सरमा नाम राक्षसी सखी जानकीजीके निकट आई ॥ १ ॥ और मीठे वचनोंकरके उस रावणके संताप देनेंसे मोहित हुई परम दुःखित

यह जो समस्त पुष्प देवता ओंको चढायेथे, सो वह अवतक नहीं मुर झायेहैं ॥ २७ ॥ आप सव वन देख चुके, और जो वात श्रवण करनेंके योग्यथी वह श्रवणभी कर चुके अव हमनें इस देहके छोडनेंका अभिलाप कियाहै सो आप आज्ञा दीजिये ॥ २८ ॥ जिनका यह आश्रमहै और जिनकी हम परिचारिका हैं उन विशुद्धात्मा महर्पियोंके निकट जानेंका हमारा अभिलाप हुआहै ॥ २९ ॥ श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके सहित शवरीकी यह धर्म युक्त वार्त्ता सुनकर अतिशय हर्षित हुये और वोले कि यह वडे आश्चर्य की वातहै ॥ ३० ॥ तिसके पीछे श्रीरामचंद्रजी हढव्रत वाली शवरीसे बोले कि हे भद्रे! तुमने हमारी पूजा भली भांतिसे की अव तुम सुख सहित जहां जाना चाहती हो वहां पर चली जा

कृत्स्नंवनमिदंदृष्टंश्रोतव्यंचश्रुतंत्वया ॥ तदिच्छाम्यभ्यनुज्ञातात्यक्ष्याम्येतत्कलेवरम् ॥ २८ ॥ तेषामिच्छाम्यहं गंतुंसमीपंभावितात्मनाम् ॥ मुनीनामाश्रमोयेषामहंचपरिचारिणी ॥ २९ ॥ धर्मिष्ठंतुवचःश्रुत्वाराघवःसहलक्ष्मणः ॥ प्रहर्षमतुलंलेभेआश्चर्यमितिचाब्रवीत् ॥ ३० ॥ तामुवाचततोरामःशवरींसंशितव्रताम् ॥ अर्चितोऽहंत्वयाभद्रेगच्छ कामंयथासुखम् ॥ ३१ ॥ इत्येवमुक्ताजटिलाचीरकृष्णाजिनांबरा ॥ अनुज्ञातातुरामेणहुत्वात्मानंहुताशने ॥ ३२ ॥ ज्वलत्पावकसंकाशास्वर्गमेवजगामह ॥ दिव्याभरणसंयुक्तादिव्यमाल्यानुलेपना ॥ ३३ ॥ दिव्यांबरधरातत्रब भूवप्रियदर्शना ॥ विराजयंतीतंदेशंविद्युत्सौदामनीयथा ॥ ३४ ॥

ओ ❋ ॥ ३१ ॥ जव श्रीरामचंद्रजीनें इस प्रकारसे आज्ञादी तव जटा,चीर और काले वसन पहरे हुये शवरीनें अपने शरीरको अनलमें आहुतिदे ३२॥ प्रज्वलित अग्निके समान स्वर्गको चली गई स्वर्ग में गमन करनेंके समय उसके आभरण मालायें व चंदनादि सुगन्धित लगानेंके सव पदार्थ दिव्य होगये ॥ ३३ ॥ उसकालमें वह दिव्यही वस्त्र पहरनेंके कारण परम मनोहारिणी दृष्टि आतीथी और वह दीप्तिमान विद्युतकी समान

भामिनि जो तै नेहलगायो ॥ मुक्त भई सव आस पासते ब्रह्मलोक फलपायो॥युगयुग कीरति चलिहै तेरी कियो ऋपिन मन भायो ॥ प्रातकाल तेरो सुमिरन करिकै रैनको पापन शायो ॥ यों वलदेव प्रसाद कहैं प्रभु, वेद विरद अस गायो ॥

वह अत्यन्त घोर पराक्रम करनेंवाले, और नित्यकाल अपने परायेकी रक्षाकरनें वाले, नीति शास्त्रके असाधारण जाननेंवाले परम कुलीनहैं, भ्राता लक्ष्मणभी उनके साथही साथ रहतेंहैं ॥ ११ ॥ हेसीते! शत्रुकी सैनाके नाश करनें वाले, अचिन्त्य बल पौरुषयुक्त, शत्रुके संहारकारी अपने लघु भ्राता लक्ष्मणके सहित श्रीरामचंद्रजी नहीं मारे गये ॥ १२ ॥ अन्याय बुद्धियुक्त क्रूरकर्म करनेंवाले सर्व प्राणियोंका विरोध करनेंवाले भयंकर रावणनें तुम्हारे निकट माया फैलाय यह धनुष बाण और शिर दिखलानेंका कार्य कियाहै ॥ १३ ॥ हेसीते! शोक बीतकर अब तुम्हारे बड़े भारी कल्याणका समय आयाहै। हेमान्ये! तुम बहुतही थोड़े समयमें बड़ी भारी सम्पत्ति प्राप्त करोगी, कारणकि तुम्हारे लिये जिस मंगल

विक्रांतोरक्षितानित्यमात्मनश्चपरस्यच ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्राकुलीनोनयशास्त्रवित् ॥११॥हंतापरबलौघानामचिंत्यबलपौरुषः ॥ नहतोराघवःश्रीमान्सीतेशत्रुनिबर्हणः ॥१२॥ अयुक्तबुद्धिकृत्येनसर्वभूतविरोधिना ॥ इयंप्रयुक्तारौद्रेणमायामायाविनात्वयि ॥१३॥ शोकस्तेविगतःसर्वकल्याणंत्वामुपस्थितम्॥ध्रुवंत्वाभजतेलक्ष्मीःप्रियंतेभवतिशृणु ॥१४॥ उत्तीर्यसागरंरामःसहवानरसेनया ॥ सन्निविष्टःसमुद्रस्यतीरमासाद्यदक्षिणम् ॥ १५ ॥ दृष्टोमेपरिपूर्णार्थःकाकुत्स्थःसहलक्ष्मणः ॥ सहितैःसागरांतस्थैर्बलैस्तिष्ठतिरक्षितः ॥ १६ ॥ अनेनप्रेषितायेचराक्षसालघुविक्रमाः ॥ राघवस्तीर्णइत्येवंप्रवृत्तिस्तैरिहाहृता ॥१७॥ सतांश्रुत्वाविलाशाक्षिप्रवृत्तिंराक्षसाधिपः ॥ एषमंत्रयतेसर्वैःसचिवैःसहरावणः ॥१८॥

मय कार्यका प्रारंभ हमनें कियाहै, वह तुम सुनों ॥ १४ ॥ हम देख आईहैं कि श्रीरामचंद्रजी वानरसैनाके सहित समुद्रके पार होकर महा समुद्रके दक्षिण किनारे पर टिके हुएहै॥१५॥ हमनें अंतरीक्षमें टिक कर स्वयं देखाहै कि परिपूर्णार्थ रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी समुद्रके तीर टिकी वानरोंकी सैनासे रक्षित होकर अपने भ्राता लक्ष्मणजीके साथ विराजमानहो रहेहैं ॥ १६ ॥ और राक्षसोंके स्वामी रावणनें जिन लघु विक्रमी दूतोंको भेजाथा उन लोगोंनेंभी लौटकर रावणके निकट " रामचंद्रजी समुद्रको उतर आये " यह समाचार दियाहै ॥ १७ ॥ हेविशालनेत्रवाली! राक्षस

सहित वहांपर रहतेहैं हम चारों वानरों के सहित शीघ्रही उन वानरश्रेष्ठ सुग्रीव जीको वहांपर देखने चलेंगे ॥८॥कारण कि सीताजीको खोजना हमारा कार्य है,वह उन्हीं सुग्रीवके हाथमें है जव श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा तव लक्ष्मणजी उनसे बोले॥ ९॥ कि हमारा मन भी शीघ्रता करताहै इसकारण जलदी चलिये । यह सुन पृथ्वीश्वर दोनों भाई उस मतंगाश्रमसे चले॥१०॥और वहांसे चलकर पंपा नदीके तीर पर पहुंचे वहांपर देखा तो उसके चारों ओर अनेक प्रकारके पुष्पित वृक्ष लगेथे ॥ ११ ॥ वहांपर पहुंचने के समय कोयल अर्जुन तोता मैना आदि पक्षी गण वहांपर शब्द कर रहेथे ऐसा शब्दाय मान होता हुआ इस महावन ॥१२॥ ऐसे जात२के वृक्ष और समस्त सरोवरोंको देखते कामसे संतप्त हो श्रीरामचंद्रजी उस

तदधीनंहिमेकार्यंसीतायाःपरिमार्गणम् ॥ इतिब्रुवाणंतंवीरंसौमित्रिरिदमब्रवीत् ॥ ९ ॥ गच्छावस्त्वरितंतत्रममापि त्वरतेमनः ॥ आश्रमात्तुततस्तस्मान्निष्क्रम्यसविशांपतिः ॥ १० ॥ आजगामततःपंपांलक्ष्मणेनसहप्रभुः ॥ समीक्षमाणःपुष्पाढ्यंसर्वतोविपुलद्रुमम् ॥ ११ ॥ कोयष्टिभिश्चार्जुनकैःशतपत्रैश्चकीचकैः ॥ एतैश्चान्यैश्चबहुभिर्नादितंतद्वनंमहत् ॥ १२ ॥ सरामोविविधान्वृक्षान्सरांसिविविधानिच ॥ पश्यन्कामाभिसंतप्तोजगामपरमंह्रदम् ॥ १३ ॥ सतामासाद्यवैरामोदूरात्पानीयवाहिनीम् ॥ मतंगसरसंनामह्रदंसमवगाहत ॥ १४ ॥ तत्रजग्मतुरव्यग्रौराघवौहिसमाहितौ ॥ सतुशोकसमाविष्टोरामोदशरथात्मजः ॥ १५ ॥ विवेशनलिनींरम्यांपंकजैश्चसमावृताम् ॥ तिलकाशोकपुन्नागबकुलोद्दालकाशिनीम् ॥ १६ ॥ रम्योवपनसंबाधांरम्यसंपीडितोदकाम् ॥ स्फटिकोपमतोयांतांश्लक्ष्णवालुकसंतताम् ॥ १७ ॥

श्रेष्ठ ह्रदके तीर पहुंच गये ॥ १३ ॥ उस ह्रदका जल अति मीठा शीतल है और यह मतंग सरनामसे विख्यातथा ऐसे उस उत्तम जल वहते हुये मतंग सरमें श्रीरामचन्द्रजीनें स्नान किया॥१४॥तव वहां पर अव्याकुलतासे और मोहित चित्तसे श्रीरामचन्द्रजी गये फिर दशरथ कुमार श्रीरामचन्द्रजी शोकसे व्याकुल हो ॥ १५ ॥ पुरैनके पत्तोंसे छाये और कमल फूलोंसे छाया पंपा सरोवर पर तिलक,अशोक, पुन्नाग वकुल,उद्दाल इत्यादि वहुत लग रहे हैं ॥ १६ ॥ मनोहर वन उसके किनारे पर लगा हुआ है पद्मों करकै आवृत और स्फटिककी समान निर्मल जल और सुख स्पर्श चिकना

हिनहिनानेंका शब्द तुम श्रवण करो रावणके अनुयायी राक्षसगण हथियार उठाये गमन कर रहेहैं; देखते २ भयंकर रुओंको खड़ा करनेंवाली तैयारीयें होंने लगी, देखो! शोकका नाश करनेंवाली लक्ष्मी तुम्हारे अंगोंमें शोभायमान होरहीहै; राक्षसलोगोंको श्रीरामचंद्रजीसें भय उत्पन्न हुआ है ॥२७॥ कि जिस प्रकार इन्द्रजीसे दैत्योंको भय उत्पन्न होताहै। हे कमलदलसम नेत्रवाली जितेन्द्रिय अचिंत्य विक्रमकारी तुम्हारे पति श्रीरामचंद्रजी समरमें रावणको संहार करके तुमको प्राप्त करेंगे ॥२८॥ इन्द्रजीनें जिस प्रकार विष्णुजीकी सहायतासे शत्रु लोगोंपर विशेष पराक्रम प्रकाश कियाथा, वैसेही तुम्हारे स्वामी श्रीरामचंद्रजी अपने भ्राता लक्ष्मणजीके साथ संग्राममें राक्षसोंके ऊपर विचित्र विक्रम प्रगट करेंगे ॥ २९ ॥ जब

रामःकमलपत्राक्षोदैत्यानामिववासवः ॥ अवजित्यजितक्रोधस्तमचिंत्यपराक्रमः ॥रावणंसमरेहत्वाभर्तात्वाऽधिगमि
ष्यति ॥ २८ ॥ विक्रमिष्यतिरक्षस्सुभर्तातेसहलक्ष्मणः ॥ यथाशत्रुषुशत्रुघ्नोविष्णुनासहवासवः ॥ २९ ॥ आगतस्य
हिरामस्याक्षिप्रमंकगतांसतीम् ॥ अहंद्रक्ष्यामिसिद्धार्थांत्वांशत्रौविनिपातिते ॥ ३० ॥ अस्राण्यानंदजानित्वंवर्तयिष्य
सिजानकि ॥ समागम्यपरिष्वक्तातस्योरसिमहोरसः ॥ ३१ ॥ अचिरान्मोक्ष्यतेसीतेदेवितेजघनंगताम् ॥ धृतामेकां
बहून्मासान्वेणींरामोमहाबलः ॥ ३२ ॥ तस्यदृष्ट्वामुखंदेविपूर्णचंद्रमिवोदितम् ॥ मोक्ष्यसेशोकजंवारिनिर्मोकमिवप
न्नगी ॥ ३३ ॥ रावणंसमरेहत्वानचिरादेवमैथिलि ॥ त्वयासमग्रःप्रिययासुखार्होलप्स्यतेसुखम् ॥ ३४ ॥

शत्रुका नाश होजायगा, तब तुम्हारा मनोरथभी पूर्ण होगा और हम तुम्हें यहां आये हुए तुम्हारे स्वामीके अंगमें विराजमान देखेंगी ॥ ३० ॥ हेजानकी! उन चौंड़ी छातीवाले अपने स्वामी श्रीरामचंद्रजीको भेंटकर तुम उनकी छातीपर बहुतही शीघ्र आनंदके आंसू बहाओगी ॥ ३१ ॥ हेदेवी! तुम कई महीनोंसे जो जांघोंतक लम्बायमान एक मात्र वेणी धारण किये हुएहो सो महाबलवान श्रीरामचंद्रजी शीघ्रही इस चोटीको बहुत शीघ्र अपने करपंकजोंसे सुधारदेंगे और तुम बहुतही शीघ्र इस विपदसे छूटोगी ॥३२॥हेदेवी! जिस प्रकार सांपनि पुरानी केंचलीको छोड़ देतीहै; वैसेही तुम उदय हुए चंद्रमाकी समान अपने स्वामीका वह मुख देखकर आनंदके आंसू छोड़ोगी ॥ ३३ ॥ हेरामप्यारी जानकी! सुखके योग्य श्रीराम

सुग्रीव नाम करके वहां वसते हैं सो हे नरश्रेष्ठ! उस व नाथ सुग्रीवके पास चलें ॥ २७ ॥ सत्य विक्रमवान् श्रीरामचंद्रजी फिर लक्ष्मणजीसे
बोले कि हे लक्ष्मण! हम राज्यभ्रष्ट दीन और सीतागत होकर किस भांतिसे सीताके विरह में जीवन धारण करें? ॥२८॥ श्रीरामचंद्रजी सीताजीमें
चित्त लगाये और मदनसे पीडितहो लक्ष्मणजीसे ऐ महाशोक प्रकाश करते हुये उस कमल पुष्पोंसे युक्त मनोहर पंपाके तीरमें पैठते हुये॥२९॥
और चारों ओरका विविध भांति वन देखते भा जाते हुये धीरे २ अनेक प्रकारके पक्षियोंके समूहसे आकुल सुन्दर वन शोभित पंपासरमें
पैठे॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मी आदिकाव्ये पंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृत टीकायां आरण्यकांडे पंचसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

॥सुग्रीवमभिगच्छत्वंवानरेंद्रंनरर्षभ ॥२७ ॥ इत्युवाचपुनर्वाक्यंलक्ष्मणंसत्य
अध्यास्तेतुमहावीर्यःसुग्रीवइतिवि क्ष्मणजीवितुम् ॥ २८ ॥ इत्येवमुक्त्वामदनाभिपीडितःसलक्ष्मणंवाक्यमनन्यचे
विक्रमः॥ कथंमयाविनासीताशक्य त्तमंशोकमुदीरयाणः ॥ २९ ॥ क्रमेणगत्वाप्रविलोकयन्वनंददर्शपंपांशुभद
तनः ॥ विवेशपंपांनलिनीमनोरम संकुलांविवेशरामःसहलक्ष्मणेन ॥ ३० ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआ
र्शकाननाम् ॥ अनेकनानाविध सर्गः ॥ ७५ ॥ ॥ अतःपरंकिष्किंधाकांडंभविष्यति तस्यायमाद्यःश्लोकः ॥
दिकाव्येआरण्यकांडेपंचसप्ता कुलाम् ॥ रामःसौमित्रिसहितोविललापाकुलेंद्रियः ॥ १ ॥
सतांपुष्करिणींगत्वापद्मोत्पल

इसके आगे किष्किंधाकांड है जिसके यह श्लोक है ॥ कमल, लाल कमल मछलियोंसे युक्त पंपासरोवरके किनारे लक्ष्मण सहित जाकर
महात्मा रामचन्द्र व्याकुलेन्द्रियहो करनें लगे ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥

संकट हरन, विघ्न विनाशन आप ॥ ब्रह्म सच्चिदानंदघन, दूर करो संताप ॥
दोहा—नागर परम, नरतनु धारि खरार । लीला विस्तारी जगत, नित मंगल दातार ॥
गुणनंत सुमिरन करैं, गुणगण प्रभुके गाय । ते विनु श्रम संसारके, पारभये सुख पाय ॥

कोमल वाणीसे सरमासे बोली ॥ ५ ॥ निःसन्देह तुम आकाश पातालमें जायसकती हो; और वहभी हम जानती हैं कि ऐसा कोई कार्य नहीं जिसको कि हमारे लिये तुम न कर सको ॥ ६ ॥ जो कुछ भी हो यदि हमारा प्रियकार्य सिद्धकरना तुम चाहती हो और यदि इस कार्यमे तुम्हारी स्थिर मति हुई हो तौ रावण इस स्थानसे जायकर इस समय हमारे संबंधमें क्या विचार कर रहाहै; यह जान आओ कारण कि यही बात जाननेंकी हमारी इच्छा हुई है ॥ ७ ॥ जिसप्रकार लोग मदिरा पान करके मोहित होजाते हैं वैसेही मायाके बलसे क्रूर शत्रु रावण हमको मोहित करनेकी चेष्टा कर रहा है॥८॥ सरमे!रावण सदा घोर राक्षसियोंसे हमारी रक्षा कराताहै; और उनसे हमको डरवा धमकायकर हमारी निन्दाभी कराता

समर्थागगनंगंतुमपिचत्वंरसातलम् ॥ अवगच्छाद्यकर्तव्यंकर्तव्यंतेमदंतरे ॥ ६ ॥ मत्प्रियंयदिकर्तव्यंयदिबुद्धिः स्थिरातव ॥ ज्ञातुमिच्छामितंगत्वाकिंकरोतीतिरावणः ॥ ७ ॥ सहिमायाबलःक्रूरोरावणःशत्रुरावणः ॥ मांमोहयतिदुष्टात्मापीतमात्रेववारुणी ॥ ८ ॥ तर्जापयतिमांनित्यंभर्त्सापयतिचासकृत् ॥ राक्षसीभिःसुघोराभिर्योमांरक्षतिनित्यशः ॥ ९ ॥ उद्विग्नाशंकिताचास्मिनस्वस्थंचमनोमम ॥ तद्भयाच्चाहमुद्विग्नाअशोकवनिकांगता ॥ १० ॥ यदिनामकथातस्यनिश्चितंवापियद्भवेत् ॥ निवेदयेथाःसर्वंतद्वरोमेस्यादनुग्रहः ॥ ११ ॥ साप्येवंब्रुवतींसीतांसरमा मृदुभाषिणी ॥ उवाचवचनंतस्याःस्पृशंतीबाष्पविक्लवम् ॥ १२ ॥

है॥९॥हमारा मन हमारे वशमें न रहकर सदा रुवा हुआ शंकायुक्त रहताहै;सखि! अधिक क्या कहैं, हम रावणके भयसेही अशोक वनमें वास करती हैं, परन्तु क्षणभरके लियेभी हमारे मनकी व्याकुलता दूर नहीं होती ॥ १० ॥ हे सरमे! रावणकी सभामें हमारे छोड देनेंके सम्बंधमें अथवा और कोई दूसरी परामर्श हो; वह यदि तुम हमारे निकट समस्त प्रकाश करके कहो; तौ तुम्हारी हमारे ऊपर बडीही दया होगी; बस यही वरदान हम तुमसे मांगतीहैं ॥ ११ ॥ मृदु वचन बोलनेंवाली सरमानें सीताजीके ऐसे वचन सुनकर अपने डुपट्टेके अंचलसे उनका

भयके मारे उठनें लगा तब राक्षस लोगोंनें बहुतसे पटे मार २ कर उनकी जांघें तोडदी; ऐसी चोट खाय वहभी मर गया, और जड़ कटे पेड़की समान वहांपर पड़ाहै ॥ २७ ॥ वानरश्रेष्ठ मैन्द और द्विविद नामक दोनों जनें लंबे २ श्वास लेते रुदन करते २ लोहू लुहान शरीर हो मर गये ॥ २८ ॥ प्रथमही अस्त्र प्रहार करके दुष्ट शत्रुओंके मारनेवाले लोगोंके हाथ काट डाले गयेथे, पनस फल जिस प्रकार पृथ्वीपर गिरताहै, वैसेही वानर पनस पृथ्वीपर शरीरको फैलाये हुए पड़ाहै ॥ २९ ॥ वानर दधिमुख अनेक प्रकारके बाण चलाये जानेंसे मस्तक हीन होकर पर्वतकी कन्दरामें सदाके लिये सोय गयाहै । और महातेजस्वी कुमुद नाम वानरभी चुप चाप शब्दरहित हो पृथ्वीपर पड़ाहै ॥ ३० ॥ अंग

मैंदश्चद्विविदश्चोभौतौवानरवरर्षभौ ॥ निःश्वसंतौरुदंतौचरुधिरेणपरीवृतौ ॥२८॥ असिनाव्यायतौछिन्नौमध्येह्यरिनिषूदनौ ॥ अनुष्वनतिमेदिन्यांपनसःपनसोयथा ॥ २९ ॥ नाराचैर्बहुभिश्छिन्नःशेतेदर्यांदरीमुखः ॥ कुमुदस्तुमहातेजा निष्कूजन्सायकैर्हतः ॥ ३० ॥ अंगदोबहुभिश्छिन्नःशरैरासाद्यराक्षसैः ॥ परितोरुधिरोद्गारीक्षितौनिपतितोऽगदः॥३१॥ हरयोमथितानागैरथजालैस्तथापरे ॥ शयानामृदितास्तत्रवायुवेगैरिवांबुदाः ॥ ३२ ॥ प्रसृताश्चपरेत्रस्ताहन्यमाना जघन्यतः ॥ अनुद्रुतास्तुरक्षोभिःसिंहैरिवमहाद्विपाः ॥ ३३ ॥ सागरेपतिताःकेचित्केचिद्गगनमाश्रिताः ॥ ऋक्षावृक्षानुपारूढावानरैर्व्यतिमिश्रिताः॥३४॥सागरस्यचतीरेषुशैलेषुचवनेषुच॥पिंगलास्तेविरूपाक्षैराक्षसैर्बहवोहताः॥३५॥

दभी बहुतसे बाणोंसे छिन्न होकर मारागया, उसका अंगभी भूमिपर पड़ा हुआहै, और उसके सब अंगोंसे रुधिरकी धारा निकल रहीहैं ॥ ३१ ॥ और वायु वेगके प्रभावसे चलायमान मेघ मालाकी समान हाथी व रथोंके टकरानें और पिचनेंसे जितनी वानरसैना मारी गईहै उसकी कुछ गिनतीही नहीं हो सकती ॥ ३२ ॥ सिंह जिस प्रकार महागजोंके पीछे दौड़ताहै, वैसेही राक्षस लोगोंके हाथसे असंख्य वानर सैना भागती हुईभी गिरगई ॥ ३३ ॥ रीछ लोग वानर दलके साथ मिल व छिपकर वृक्षोंपर चढ़ गयेहैं, और कोई २ समुद्रमें गिर गयेहैं, और कोई २ आकाशका आश्रय ग्रहण किये हुएहैं ॥ ३४ ॥ समुद्रके किनारों पर पर्वत और बनोंमें जिन पीले अंगवाले वानरोंने आश्रय लियाथा; यह समस्त विरूपाक्ष

"कि हे रावण! शीघ्र श्रीरामचंद्रजीको आदर सहित तुम सीताजीको लौटादो; हे राजन्! उनका पराक्रम तौ तुम जानतेही हो, कि जनस्थानमें उन्होंनें कैसा अद्भुत कर्म कियाथा वस पराक्रमका तौ प्रमाण तौ इतनाही बहुत है॥२१॥ हे राजन्! समुद्रके पार आकर हनुमानजी सीताको देख कर गया यह क्या कुछ थोडी बात है? हे राक्षसराज! श्रीरामचंद्रजी साधारण मनुष्य नहीं है; कारण कि ऐसा कौन मनुष्यहै जो रणभूमिमें राक्षसोंको मार सकताहै" ॥२२॥ हे जानकि! इस प्रकारसे वृद्धमंत्री और रावणकी मातानें तुम्हैं छोड देनेंके लिये रावणको बहुत समझाया बुझाया; परन्तु लालची पुरुष जिस प्रकार धनको किसी भांति नहीं छोड़ता वैसेही रावणकी इच्छा तुम्हैं छोड़नेंकी नहीं है ॥ २३ ॥ हे

दीयतामभिसत्कृत्यमनुजेंद्रायमैथिली ॥ निदर्शनंतेपर्याप्तंजनस्थानेयदद्भुतम् ॥ २१ ॥ लंघनंचसमुद्रस्यदर्शनंच हनूमतः ॥ वधंचरक्षसांयुद्धेकःकुर्यान्मानुषोयुधि ॥ २२ ॥ एवंसमंत्रिवृद्धैश्चमात्राचबहुबोधितः ॥ नत्वामुत्सहतेमोक्तुमर्थमर्थपरोयथा ॥ २३ ॥ नोत्सहत्यमृतोमोक्तुंयुद्धेत्वामितिमैथिलि ॥ सामात्यस्यनृशंसस्यनिश्चयोह्येषवर्तते॥२४॥ तदेषांसुस्थिराबुद्धिर्मृत्युलोभादुपस्थिता ॥ भयान्नशक्तस्त्वांमोक्तुमनिरस्तःससंयुगे ॥ २५॥ राक्षसानांचसर्वेषामात्मनश्चवधेनहि ॥ निहत्यरावणंसंख्येसर्वथानिशितैःशरैः ॥ प्रतिनेष्यतिरामस्त्वामयोध्यामसितेक्षणे ॥ २६ ॥ एतस्मिन्नंतरेशब्दोभेरीशंखसमाकुलः ॥ श्रुतोवैसर्वसैन्यानांकंपयन्धरणीतलम् ॥ २७ ॥

सीते! रावणनें अपने सब मंत्रियोंके साथ यह निश्चय कियाहै कि हम प्राण रहते रामचंद्रकी सीता रामचंद्रको कभी नही देंगे ॥ २४ ॥ राक्षसोंके साथ स्वयं रावणभी जबतक न मरजायगा तबतक केवल मृत्युका भयंकर युद्ध न करनेंमें मति नहीं करेगा और न तुमको त्यागही करेगा ऐसा उस रावणनें निश्चय सिद्धान्तकर लियाहै ॥ २५ ॥ हे श्यामनेत्रवाली! तुम कुछभी चिन्ता न करो, श्रीरामचंद्रजी संग्राममें चलाये तीक्ष्ण बाणोंकी सहायतासे रावणका गर्व्व खर्व्व करकै तुमको अपनी राजधानी अयोध्यापुरीमें लेजांयगे ॥२६॥ सरमा इस प्रकारसे कह रहीथी कि इतनेमें

हुआ रामचंद्रजीका धनुषहै, जिसको रात्रि कालमें रामचंद्रजीका प्राण संहार करके प्रहस्त लायाहै ॥ ४४ ॥ तिसके पीछे रावण विद्युज्जिह्वका लाया हुआ वह मस्तक और यशस्विनी सीताजीके सामनें रखकर उनसे बोला"जो होंना था सो तो होगया,अब तुम्हारा कर्तव्य यहीहै कि तुम हमारे वशमें होजाओ ॥ ४५ ॥ इ०श्रीमवा० आ०यु०एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥ तब सीताजी रामचंद्रजीका शरासन और उनका मस्तक देख और वह सुधिकर जो कि हनुमानजीनें कहाथा कि वानरराज सुग्रीवकी रामचंद्रजीसे मित्रता हुईहै बहुत देरतक रोईं ॥ १ ॥ जानकीजीने देखा कि कटे हुए मस्तकके दोनों नेत्र रामचंद्रजीकेही समानहैं, वैसाही मुखका रंग, केश, और ठोडी, व चूडामणिके सहितभी इसका कुछ अन

सविद्युजिह्वेनसहैवतच्छिरोधनुश्चभूमौविनिकीर्यमाणः ॥ विदेहराजस्यसुतांयशस्विनींततोऽब्रवीत्तांभवमेवशानुगा ॥ ४५ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेएकत्रिंशःसर्गः ॥ ३१ ॥ ॥ छ ॥ सासीतातच्छिरोदृष्ट्वातच्चकार्मुकमुत्तमम् ॥ सुग्रीवप्रतिसंसर्गमाख्यातंचहनूमता ॥ १ ॥ नयनेमुखवर्णंचभर्तुस्तत्सदृशंमुखम् ॥ केशान्केशांतदेशंचतंचचूडामणिंशुभम् ॥ २ ॥ एतैःसर्वैरभिज्ञानैरभिज्ञायसुदुःखिता ॥ विजगर्हेत्रकैकेयींक्रोशंतीकुररीयथा ॥ ३ ॥ सकामाभवकैकेयिहतोयंकुलनंदनः ॥ कुलमुत्सादितंसर्वंत्वयाकलहशीलया ॥ ४ ॥ आर्येणकिंनुकैकेय्याःकृतंरामेणविप्रियम् ॥ यन्मयाचीरवसनंदत्त्वाप्रव्राजितोवनम् ॥ ५ ॥ एवमुक्त्वातुवैदेहीवेपमानातपस्विनी ॥ जगामजगतींबालाछिन्नातुकदलीयथा ॥ ६ ॥

मेल नहींहै ॥ २ ॥ जनकनंदिनी सीताजी औरभी अनेक प्रकारके चिह्न देख निश्चय अपने स्वामीकी मृत्युका होना जान अत्यन्त दुःखित हुईं; और कुरीं जिसप्रकार शोकसे व्याकुल होकर विलाप करतीहै, वैसेही विलापसे कैकेयीकी निन्दा कर कहनें लगी ॥ ३ ॥ हे कैकेयी! तुम्हारी मनोकामना पूरी हुई, हे क्लेशको प्यार करनेंवाली तुमसेही रघुकुलनंदन श्रीरामचंद्रजी निहत हुए, तुझकोही प्राप्त होकर बड़े भारी रघुकुलका नाश होगया ॥ ४ ॥ हाय!!! आर्यपुत्र श्रीरामचंद्रजीनें तेरा ऐसा क्या बुरा कियाथा, कि जो तैंनें चीरवसन पहरायकर हमारे सहित उनको बनोवास दिया!!! ॥ ५ ॥ इतनाही कहकर तपस्विनी छोटी अवस्थावाली जानकीजीकी देह कम्पायमान होंनेलगी, और वह जड़ कटे हु...

पंडित माल्यवान नामक रावणका नाना रावणके वचन सुनकर बोला ॥ ६ ॥ हेमहाराज! जो राजा चौदहविद्यानिधान होकर नीतिशास्त्रके अनुसार कार्य करताहै, वही शत्रुलोगोंको वश करके अपने ऐश्वर्यको सदा भोगते रहतेहैं ॥ ७ ॥ जो राजा समयके अनुसार शत्रुके साथ संधि और विग्रह (लड़ाई) करके अपने पक्षको बढाताहै, वही बड़ेभारी ऐश्वर्यको प्राप्त करताहै ॥ ८ ॥ राजा किसी समयभी शत्रुको तुच्छ समझकर छोड़ नहींदे जो आप शत्रुसे कम बलवानहो, या समान बलवालाहो, तब तौ संधि करले; परन्तु जो शत्रुसे अधिक बलवालाहो तब तौ शत्रुसे विग्रहही करना उचितहै ॥ ९ ॥ हेरावण ! हमारी सम्मतिमें तौ जिसके लिये श्रीरामचंद्रजीसे युद्ध करतेहो उसी सीताको

विद्यास्वभिविनीतोयोराजाराजन्नयानुगः ॥ सशास्तिचिरमैश्वर्यमरींश्चकुरुतेवशे ॥ ७ ॥ संदधानोहिकालेनविगृह्णंश्चारिभिःसह ॥ स्वपक्षेवर्धनंकुर्वन्महदैश्वर्यमश्नुते ॥ ८ ॥ हीयमानेनकर्तव्योराज्ञासंधिःसमेनच ॥ नशत्रुमवमन्येत ज्यायान्कुर्वीतविग्रहम् ॥ ९ ॥ तन्मह्यंरोचतेसंधिःसहरामेणरावण ॥ यदर्थमभियुक्तोसिसीतातस्मैप्रदीयताम् ॥१०॥ तस्यदेवर्षयःसर्वेगंधर्वाश्चजयैषिणः ॥ विरोधंमागमस्तेनसंधिस्तेतेनरोचताम् ॥ ११ ॥ असृजद्भगवान्पक्षौद्वावेवहिपितामहः ॥ सुराणामसुराणांचधर्माधर्मौतदाश्रयौ ॥ १२ ॥ धर्मोहिश्रूयतेपक्षअमराणांमहात्मनाम् ॥ अधर्मोरक्षसांपक्षोह्यसुराणांचराक्षस ॥ १३ ॥ धर्मोवैग्रसतेऽधर्मंयदाकृतमभूद्युगम् ॥ अधर्मोग्रसतेधर्मंतदातिष्यःप्रवर्तते ॥ १४ ॥

लौटायकर उन रामचंद्रजीके साथ संधि करनाही तुमको उचितहै ॥ १० ॥ देवता गन्धर्व, व ऋषि लोग सबही की यह कामनाहै कि रामचंद्रजीकी जीतहो; इस कारण उनके साथ विरोध न करके आपके संधि करलैनी उचितहै ॥११॥ भगवान पितामह ब्रह्माजीनें सुर व असुर लोगोंके आश्रय वाले धर्म अधर्मरूप दो पक्ष बनायेहैं ॥ १२ ॥ हेनिशाचर! हमनें सुना है कि उसमें धर्म महात्मा देवताओंका, और अधर्म राक्षस लोगोंका पक्ष कहलाया जाताहै ॥ १३ ॥ जिस समय सतयुग लगताहै; उस समय धर्म अधर्मको ग्रास करलेताहै परन्तु जब अधर्म धर्मको लील

किस कारणसे इस अदृष्टकी मृत्युके वश हुए ॥ १४ ॥ हा कमललोचन! हमहीनें क्या क्रूर घोर रूपवाली कालरात्रि स्वरूप हो तुम्हें चिपटाय, तुम्हारी प्राणवायुको हरण कर लियाहै ?॥ १५ ॥ हा महाबाहो! पुरुषश्रेष्ठ! तपस्विनीकी समान हमको परित्याग कर प्रियतमा स्त्रीकी समान पृथ्वीको छातीसे लगाये तुम कहां पड़ेहो? ॥१६॥ तुम हमारे साथ सुगन्धित द्रव्य और हारोंसे सदा जिसकी पूजा किया करतेथे और जो हमको भी बहुतही प्याराथा उसी तुम्हारे इस सुवर्णमय धनुषकी यह क्या अवस्था हुई है? ॥ १७ ॥ हा पापरहित! तुम निश्चयही स्वर्गधाममें हमारे श्वशुर पिताकी समान महाराज दशरथजीके व और दूसरे पितृलोगोंके साथमें मिल गयेहो ॥ १८ ॥ जो आ

यथात्वंसंपरिष्वज्यरौद्रयाऽतिनृशंसया ॥ कालरात्र्यामयाच्छिद्यहृतःकमललोचनः ॥ १५ ॥ इहशेषेमहाबाहोमांविहायतपस्विनीम् ॥ प्रियामिवयथानारींपृथिवींपुरुषर्षभ ॥१६॥ अर्चितंसततंयत्नाद्गंधमाल्यैर्मयातव ॥ इदंतेमत्प्रियंवीरधनुःकांचनभूषितम् ॥ १७ ॥ पित्रादशरथेनत्वंश्वशुरेणममानघ ॥ सर्वैश्चपितृभिःसार्धंनूनंस्वर्गेसमागतः ॥ १८ ॥ दिविनक्षत्रभूतंचमहत्कर्मकृतंतथा ॥ पुण्यंराजर्षिवंशंत्वमात्मनःसमुपेक्षसे ॥ १९ ॥ किंमांनप्रेक्षसेराजन्किंवानप्रतिभाषसे ॥ बालांबालेनसंप्राप्तांभार्यांमांसहचारिणीम् ॥ २० ॥ संश्रुतंगृह्णतापाणिंचरिष्यामीतियत्त्वया ॥ स्मरतन्नामककाकुत्स्थनयमामपिदुःखिताम् ॥ २१ ॥

काशमें नक्षत्रके स्वरूपमें टिक रहेहैं उन राजर्षि त्रिशंकुके पवित्र वंशमें जन्म ग्रहण करके, तुमनें अपने पिताके वचनोंका पालनरूप बड़ा भारी कार्य किया, परन्तु ऐसा पुण्य प्राप्त करके भी जो ऐसे पवित्र वंशको त्याग आप स्वर्गको चले गये यह बहुतही अनुचित हुआ ॥ १९ ॥ हा राजन्! तुमनें बालकपनमें हीं जिस बालिकाको अपनी सम सुख दुःख भोग करनेंवाली, स्त्री कहकर स्वीकार कियाथा, अब तुम किस कारणसे उसकी बातका उत्तर नहीं देते? प्यारे! अब हमारी ओरको दृष्टि उठायकर भी नही देखते ॥ २० ॥ हे काकुत्स्थ! तुमनें विवाहमें पाणिग्रहण करनेके समय "तुम्हारेसहित धर्म कर्मका आचरण करेंगे" ऐसी जो प्रतिज्ञाकीथी, इस समय उसको याद करके

ऋषि लोग जिस २ पुण्यवान स्थानमें ॥ २१ ॥ तपस्या करतेहैं; वह वहींसे राक्षस लोगोंको संतापित किया करतेहैं और तुमको कदाचित् यह गर्वहो कि वरदान पानेके प्रभावसे हमारा मरणहोभी नहीं सकता सो हे महाराज! यही वर तौ तुमनें ब्रह्माजीसे मांगाथा कि हम, देव, दानव पक्षसे न मरें; मनुष्य और वानरोंको तौ कुछ गिनकर इनसे तौ अवध्य मांगाही नहीं ॥ २२ ॥ परन्तु महाबलवान दृढ़ विक्रमकारी अजेय मनुष्य और गोपुच्छ वानर यहां आयकर गर्जन कर रहेहैं; इनसे कैसे निवटोगे; कारणकि इनके रोकनेंका पहलेसे आपनें कोई उपाय नहीं कियाहै ॥ २३ ॥ इस समय अनेक प्रकारके घोर उत्पात और विविध भांतिके घोर दुर्निमित्त दिखलाई देतेहैं; कि जिस्से हमको यह ज्ञात

चर्यमाणंतपस्तीव्रंसंतापयतिराक्षसान्॥देवदानवयक्षेभ्योगृहीतश्चवरस्त्वया ॥२२॥ मनुष्यावानराऋक्षागोलांगूलाम
हाबलाः ॥ बलवंतइहागम्यगर्जंतिदृढविक्रमाः॥२३॥उत्पातान्विविधान्दृष्ट्वाघोरान्बहुविधान्बहून् ॥ विनाशमनुपश्या
मिसर्वेषांरक्षसामहम् ॥ २४॥ खराभिस्तनिताघोरामेघाःप्रतिभयंकराः ॥ शोणितेनाभिवर्षंतिलंकामुष्णेनसर्वतः॥२५॥
रुदतांवाहनानांचप्रपतंत्यश्रुबिंदवः ॥ रजोध्वस्ताविवर्णाश्चनप्रभांतियथापुरम् ॥ २६ ॥ व्यालागोमायवोगृध्रावा
श्यंतिचसुभैरवम् ॥ प्रविश्यलंकामारामेसमवायांश्चकुर्वते ॥ २७ ॥ कालिकाःपांडुरैर्दंतैःप्रहसंत्यग्रतःस्थिताः ॥ स्त्रि
यःस्वप्नेषुमुष्णंत्योगृहाणिप्रतिभाष्यच ॥ २८ ॥

होताहै कि समस्त राक्षसोंका नाश होजायगा ॥ २४ ॥ हे रावण! हम गधोंको भयंकर शब्दसे रेंकताहुआ देखतेहैं; और बादल घोर शब्दसे गर्ज २ कर गरम रुधिरकी वर्षा करतेहैं. कि जिसको देखकर अत्यन्त डर लगताहै ॥ २५ ॥ सवारीके समस्त पशुगण रोतेहैं, कि जिस्से बराबर उनकी आंखोंसे आसुओंको बूंदे गिरती रहतीहैं; और समस्त दिशा विदिशा धूरिसे छाये रहनेंके कारण पहलेकी समान प्रकाशित नहीं होती ॥ २६ ॥ गीध, गीदड़, सर्प इत्यादि मांस खानेंवाले पशु पक्षीगण लंकानगरको फुलवाड़ियोंमें प्रवेश करकै झुन्ड़ बांध २ भयंकर शब्द करतेहैं ॥२७॥ शृगालियें पीले २ दांत निकाल कर आगे २ हँसती हुई चलतीहैं, सब स्त्रियां स्वप्नमेंही बात करते २ उठकर अपने घरोंको

प्रिय तुम्हारी भार्याहो इस थोड़ी उमरमेंही यहां शोक करनेंको रहगई, तब निश्चयही जान पड़ताहै, कि पहले जन्ममें, हमनें, गौदान, सुवर्ण दान व पृथ्वीदानादि कुछभी नहीं किया ॥ ३० ॥ हे रावण! तुम शीघ्रही यह पति स्त्रीका मिलनरूप भलाईका देनेंवाला कार्य पूरा करो, कि श्रीरामचंद्रजीके पीछे अब हमकोभी मार डालो ॥ ३१ ॥ हे दशशीश! तुम हमारे स्वामीके मस्तकके साथ हमारा मस्तक और उनके शरके साथ हमारा शरीर मिलादो । रावण! महानुभाव पतिके साथही जाना हमको अच्छा लगताहै ॥ ३२ ॥ बडे२नेत्रवाली जनककुमारी जानकीजी अपने स्वामीका मस्तक और वह बड़ा भारी धनुष देखते २ अत्यन्त दुःखसे संतापित होकर विलाप करनें लगी ॥ ३३ ॥ इधर जानकीजो तो

साधुघातयमांक्षिप्रंरामस्योपरिरावण ॥ समानयपतिंपत्न्याकुरुकल्याणमुत्तमम् ॥ ३१ ॥ शिरसामेशिरश्चास्यकायं
कायेनयोजय ॥ रावणानुगमिष्यामिगतिंभर्तुर्महात्मनः ॥३२॥इतीवदुःखसंतप्ताविललापायतेक्षणा ॥ भर्तुःशिरोधनुश्चै
वददर्शजनकात्मजा॥३३ ॥एवंलालप्यमानायांसीतायांतत्रराक्षसः॥अभिचक्रामभर्तारमनीकस्थःकृतांजलिः॥ ३४ ॥
विजयस्वार्यपुत्रेतिसोभिवाद्यप्रसाद्यच॥न्यवेदयदनुप्राप्तंप्रहस्तंवाहिनीपतिम् ॥३५॥अमात्यैःसहितःसर्वैःप्रहस्तस्त्वा
मुपस्थितः ॥ तेनदर्शनकामेनअहंप्रस्थापितःप्रभो ॥३६ ॥ नूनमस्तिमहाराजराजभावात्क्षमान्वित ॥ किंचिदात्ययिकं
कार्यंतेषांत्वंदर्शनंकुरु॥३७॥एतच्छ्रुत्वादशग्रीवोराक्षसप्रतिवेदितम् ॥ अशोकवनिकांत्यक्त्वामंत्रिणांदर्शनंययौ ॥३८॥

इस प्रकार रोदन कर रहींथी, कि इतनेंमें सैनाका एक निशाचर राक्षस रावणके सन्मुख आन पहुंचा ॥ ३४ ॥ और उसनें "आर्य पुत्र! आपकी जयहो" यह कह रावणको प्रसन्नकर हाथ जोड प्रणाम किया और कहा कि प्रहस्तनाम सैनापति आयाहै ॥ ३५ ॥ वह फिर विशेष करके बोलाकि हे प्रभो! महावीर प्रहस्तनें सर्व मंत्रियोंके साथ मिलकर आपके दर्शन पानेंकी आशासे हमको यहां भेज दियाहै ॥ ३६ ॥ हे राजन्! ऐसा जान पड़ताहै कि निश्चय कोई राजकार्य आनकर पड़ाहै जो कि अति आवश्यकीयहै, इसी कारणसे वह लोग यहांपर आये हैं इस कारण आप उनको दर्शन दीजिये ॥ ३७ ॥ राक्षसके मुखसे राक्षस रावण ऐसी घबड़ा हटका समाचार पाय अशोक वनको छोड़ मंत्रियोंको

लिये हे रावण! तुम श्रीरामचंद्रजीसे मेल मिलाप करलो॥२॥" औरश्रीरामचंद्रजीकोही इन सब दुर्निमित्तोंका कारण जान परिणाममें जिस कार्यको
सुखकारी समझो उसीको करो ॥ ३५ ॥ शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ उत्तम पौरुषवाला बलवान माल्यवान यह वचन कहकर राक्षसराज रावणके मनकी परीक्षा
करता हुआ उसके मुखका भाव देखकर चुप होगया ॥ ३६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे पंचत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥
दुष्ट बुद्धिवाला रावण माल्यवानके कहे हुए वह हितकारी वचन सुनकर, कालके वश होनेंसे उसके वचनोंको सहन नहीं करसका ॥ १ ॥
वरन क्रोधके मारे उसके दोनों नेत्र घूमनें लगे, फिर क्रोधके वश हो और मुंह टेढ़ा करकै रावण माल्यवानसे बोला ॥ २ ॥ तुमने शत्रुपक्षको प्रबल

ज्ञात्वाऽवधार्यकर्माणिक्रियतामायतिक्षमम्॥३५॥इदंवचस्तस्यनिगद्यमाल्यवान्परीक्ष्यरक्षोधिपतेर्मनःपुनः ॥ अनुत्त
मेषूत्तमपौरुषोबलीबभूवतूष्णींसमवेक्ष्यरावणम् ॥ ३६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेपंच
त्रिंशःसर्गः ॥ ३५ ॥ ॥७॥ तत्तुमाल्यवतोवाक्यंहितमुक्तंदशाननः ॥ नमर्षयतिदुष्टात्माकालस्यवशमागतः ॥ १ ॥
सबद्ध्वाभ्रुकुटिंवक्त्रेक्रोधस्यवशमागतः ॥ अमर्षात्परिवृत्ताक्षोमाल्यवंतमथाब्रवीत् ॥ २ ॥ हितबुद्ध्यायदहितंवचःपुरुष
मुच्यते ॥ परपक्षंप्रविश्यैवनैतच्छ्रोत्रगतंमम ॥ ३ ॥ मानुषंकृपणंराममेकंशाखामृगाश्रयम् ॥ समर्थंमन्यसेकेनत्यक्तं
पित्रावनाश्रयम् ॥ ४ ॥ रक्षसामीश्वरंमांचदेवानांचभयंकरम् ॥ हीनंमांमन्यसेकेनअहीनंसर्वविक्रमैः ॥ ५ ॥ वीर
द्वेषेणवाशंकेपक्षपातेनवारिपोः ॥ त्वयाहंपरुषाण्युक्तोममप्रोत्साहनेनवा ॥ ६ ॥

विचार करकै हमारा हित साधनेंकी कामनासे जो कठोर वचन कहे उनको हमनें ग्रहण नहीं किया ॥ ३ ॥ रामचंद्र मनुष्य होनेंके कारण
स्वभावसेही दुर्बलहैं, और केवल वानरलोगही उनकी सहायता करनेंवालेहैं; यदि उसमें कुछ सामर्थही होती तौ वह अपने बापदादोंका राज्य
छोड़कर बनकोही क्यों आता ॥ ४ ॥ और जिन हमनें देवता लोगोंकोभी भय उत्पन्न करादियाहै, और सर्व विक्रमवान राक्षसोंके हम राजाहैं, फिर
हमको जो तुम असमर्थ समझते हो इसका कारण क्याहै ॥ ५ ॥ हमको जान पड़ताहै कि वीर लोगोंसे वैर या शत्रुकी पक्षपातता तरफदारी अ

जानकीजीको वह समझानें बुझानें लगीं ॥ २ ॥ यद्यपि सरमा सीताजीकी रक्षा करनेंमें नियुक्त तो थी, परन्तु वह सीताजीकी अनुरागिनी और पक्षपातिनीथी, इस लिये सीताजीके साथ उनकी घनी मित्रता हो गईथी ॥ ३ ॥ उसनें अपनी प्रियसखी जानकीजीको लगभग चेतना रहित देखा घोड़ी जिस प्रकार पृथ्वीपर लोटा करतीहै, वैसेही पृथ्वीकुमारी पृथ्वीपर लोट रहीथी, सरमा उनको उठाकर सखीके स्नेहसे समझानें बुझानें लगी ॥ ४ ॥ हेसखी! रावणनें तुमसे जो कुछ कहाथा, और तुमनें उसको जिस प्रकारसे उत्तर दियाथा, इसलिये तुह्मारेप्रति अधिक स्नेह होंनके कारण उन बातोंके श्रवण करनेंमें हममें कसर नहींकी॥५॥हम रावणके भयसे तुमको छोड़कर अबतक निबिड़ वनमें टिक रहीथीं। परन्तु हेबड़ेनेत्रोंवाली जो कुछ कार्यहो तो हम तुम्हारे लिये रावणसेभी कुछ शंका नहीं करतीं ॥ ६ ॥ हे मैथिलि! वह राक्षसोंका, स्वामी

साहितत्रकृतामित्रंसीतयारक्ष्यमाणया ॥ रक्षंतीरावणादिष्टासानुक्रोशादृढव्रता॥३ ॥सादर्शसखीसीतांसरमानष्टचेतनाम् ॥ उपावृत्योत्थितांध्वस्तांवडवामिवपांसुषु ॥ ४ ॥ तांसमाश्वासयामाससखीस्नेहेनसुव्रताम् ॥ उक्तायद्रावणेनत्वंप्रत्युक्तश्चस्वयंत्वया॥५॥लीनयागहनेशून्येभयमुत्सृज्यरावणात् ॥ तवहेतोर्विशालाक्षिनहिमेरावणाद्भयम् ॥६॥ ससंभ्रांतश्चनिष्क्रांतोयत्कृतेराक्षसेश्वरः॥तत्रमेविदितंसर्वमभिनिष्क्रम्यमैथिलि ॥ ७ ॥ नशक्यंसौप्तिकंकर्तुंरामस्यविदितात्मनः॥ वधश्चपुरुषव्याघ्रेतस्मिन्नैवोपपद्यते ॥८॥ नत्वेवंवानराहंतुंशक्याःपादपयोधिनः॥ सुरादेवर्षभेणेवरामेणहिसुरक्षिताः ॥ ९ ॥दीर्घवृत्तभुजःश्रीमान्महोरस्कःप्रतापवान् ॥ धन्वीसन्नहनोपेतोधर्मात्माभुविविश्रुतः ॥ १० ॥

रावण जिस कारणसे इस स्थानको घबड़ाहटके साथ छोड़ चला गयाथा, वह समस्तही कारण उसके पीछे२ जायकर हम जान आई हैं॥७॥ उन सर्व्वान्तर्यामी श्रीरामचंद्रजीके सोते रहते उनके सैनाके साथ कोई भी युद्ध नहीं कर सकता और उस अवस्थामें उन पुरुषसिंह श्रीरामचंजीका वध करना भी युक्तियुक्त नहीं हो सकता ॥८॥ श्रीरामचंद्रजीकी बात तो दूर रही; इन्द्र करके रक्षित देवता लोगोंकी नाई श्रीरामचंद्रजीसे रक्षित, वह वृक्ष हाथोंमें लेकर लड़नेंवाले वानरोंको भी कोई नहीं मार सकता॥ ९ ॥ उन श्रीरामचंद्रजीकी सुगोल दौनों भुजा जंघातक लम्बीहै, उनके सब शरीर पुष्टहैं; प्रतापवान धनुष धारण करनेंवाले कवच वख्तर धारण किये वह धर्मात्मा तीन लोकमैं विख्यातहैं ॥ १० ॥

शपथके साथ प्रतिज्ञा कहतेहैं. कि वह जीता हुआ लौटकर किसी प्रकारसे यहांसे जानेंको समर्थ न होगा ॥ १३ ॥ यह कहकर रावण बहुतही क्रोध करता हुआ, तब निशाचर माल्यवान लज्जाके मारे नीचेको मुख करके बैठ गया, और किसी बातका उत्तर न देता हुआ ॥ १४ ॥ परन्तु रावणकी यथोचित जयसूचक आशिर्वादसे बढती मनाय उसकी आज्ञा लेकर अपने गृह चला गया ॥ १५ ॥ तब लंकापति रावण सब मंत्रियोंके साथ परामर्श करके भलीभांति शोच विचार लंकापुरीकी रक्षा करनेंके लिये पहरे दारोंको नियत किया ॥ १६ ॥ राक्षस प्रहस्तको पूर्व द्वारपर और महावीर महापार्श्व, और महोदरको दक्षिणके द्वारपर रावणनें रहनेंकी आज्ञादी, ॥ १७ ॥ और पश्चिमके द्वारपर रहनेंके लिये

जयाशिषातुराजानंवर्धयित्वायथोचितम् ॥ माल्यवानभ्यनुज्ञातोजगामस्वंनिवेशनम् ॥ १५ ॥ रावणस्तुमहामात्येमंत्रयित्वाविमृश्यच ॥ लंकायास्तुतदागुप्तिंकारयामासराक्षसः ॥ १६ ॥ व्यादिदेशचपूर्वस्यांप्रहस्तंद्वारिराक्षसं ॥ दक्षिणस्यांमहावीर्यौमहापार्श्वमहोदरौ ॥ १७ ॥ पश्चिमायामथद्वारिपुत्रमिंद्रजितंतदा ॥ व्यादिदेशमहामायंराक्षसैर्बहुभिर्वृतम् ॥ १८ ॥ उत्तरस्यांपुरद्वारिव्यादिश्यशुकसारणौ ॥ स्वयंचात्रगमिष्यामिमंत्रिणस्तानुवाचह ॥ १९ ॥ राक्षसंतुविरूपाक्षंमहावीर्यपराक्रमम् ॥ मध्यमेऽस्थापयद्गुल्मेबहुभिःसहराक्षसैः ॥ २० ॥ एवंविधानंलंकायांकृत्वाराक्षसपुंगवः ॥ कृतकृत्यमिवात्मानंमन्यतेकालचोदितः ॥ २१ ॥

एवंब्रुवाणंसंरब्धंरुष्टंविज्ञायरावणम् ॥ व्रीडितोमाल्यवान्वाक्यंनोत्तरंप्रत्यपद्यत ॥ १४ ॥

इन्द्रका जीतनेंवाला मेघनाद अत्यन्तही मायावी और बहुत सैनाको संग लिये हुएथा ॥ १८ ॥ और शुक सारण नामक मंत्रियोंको उत्तरके द्वारसे हटाकर जहांकि श्रीरामचंद्रजीकी सैना पड़ी हुईथी, रावणनें आज्ञा दीकि उत्तरके द्वारपर हम स्वयंही ठडे रहेंगे ॥ १९ ॥ महा पराक्रमवान महावीर्ययुक्त राक्षस विरूपाक्षको रावणनें बहुत सारे राक्षसोंके साथ लंकाके बीचों बीचमें जहां सैनाकी छावनी थी रहनेंके लिये आज्ञादी ॥ २० ॥ राक्षसोंमें श्रेष्ठ रावण लंकामें इस प्रकारसे सब ओर राक्षसोंको रक्षाके लिये नियुक्त करके, कालप्रेरित होनेसे अपनेंको कृतार्थ मानता हुआ।

नाथ रावण यह वार्ता सुन करकेही मंत्रि लोगोंके साथ परामर्श करताहै ॥१८॥ सरमा यह बात कह रहीथी कि इतनेमें जानकीजी और सरमा दोनोंनें रावणकी सेनाका समरमें तैयार होनेके लिये भयंकर सिंहनादको सुना ॥ १९ ॥ मधुर वचन बोलनेंवाली सरमा सेनाकी तैयारीकी चरचा देनेंवाली भेरीका महाशब्द सुनकर सीताजीसे बोली ॥ २० ॥ हेभीरु! जिस भेरीके शब्दको सुनकर सेना बख्तर धारण व समरकी तैयारी करतीहै; अतएव मेघके गर्जनेंकी समान यह उसकी भेरीका शब्द तुम सुनो ॥ २१ ॥ मदमाते हाथी समस्तही सजगये, रथोंमें घोड़े जुतगये कवच बख्तर पहरे हुए असंख्य वीरगण भाला हाथमें लिये घोड़ों पर सवारहो रहेहैं ॥ २२ ॥ और अस्त्रधारी अगणित वीरगण आगे बढ़रहेहैं,

इतिब्रुवाणासरमाराक्षसीसीतयासह ॥ सर्वोद्योगेनसैन्यानांशब्दंशुश्रावभैरवम् ॥ १९॥ दंडनिर्घातवादिन्याःश्रुत्वा भेर्यामहास्वनम् ॥ उवाचसरमासीतामिदंमधुरभाषिणी ॥ २० ॥ सन्नाहजननीह्येषाभैरवाभीरुभेरिका ॥ भेरीनादंचगंभीरंशृणुतोयदनिस्वनम् ॥२१॥ कल्प्यंतेमत्तमातंगायुज्यंतेरथवाजिनः ॥ दृश्यंतेतुरगारूढाःप्रासहस्ताःसहस्रशः ॥ २२ ॥ तत्रतत्रचसन्नद्धाःसंपतंतिसहस्रशः ॥ आपूर्यंतेराजमार्गाःसैन्यैरद्भुतदर्शनैः ॥ २३ ॥ वेगवद्भिर्नदद्भिश्च तोयौघैरिवसागरः॥शस्त्राणांचप्रसन्नानांचर्मणांवर्मणांतथा॥२४॥रथवाजिगजानांचराक्षसेंद्रानुयायिनाम्॥संभ्रमोरक्षसामेषहृषितानांतरस्विनाम् ॥ २५ ॥ प्रभांविसृजतांपश्यनानावर्णसमुत्थिताम् ॥ २६ ॥ "वनंनिर्दहतोघर्मेयथारूपंविभावसोः ॥ घंटानांशृणुनिर्घोषंरथानांनेमिनिःस्वनम्॥१॥हयानांह्रेषमाणानांशृणुतूर्यध्वनिंतथा॥उद्यतायुधहस्तानांराक्षसेंद्रानुयायिनाम् ॥२॥" संभ्रमोरक्षसामेषतुमुलंलोमहर्षणम् ॥ श्रीस्त्वांभजतिशोकघ्नीरक्षसांभयमागतम् ॥ २७ ॥

और राजमार्ग अद्भुत रूप धारण किये सेनासे इस प्रकार छाय रहाहै ॥ २३ ॥ कि जिस प्रकार वेगयुक्त शब्दायमान समुद्र तरंगोंसे परिपूर्ण होताहै। सिपाहियोंके अस्त्र शस्त्र ढाल बख्तर ॥२४॥ रथ घोड़े हाथी,और रावणके अनुगमनकारी राक्षसोंका शब्द होरहाहै योधा लोग हर्षितमन और अति वेगसे युद्धके लिये तैयार होरहेहैं ॥ २५ ॥ यह देखो! ध्वजा पताका इत्यादिकी अनेक वर्णवाली प्रभा प्रकाशमान होरहीहै जैसे ग्रीष्मकालमें वनके जलानेंवाले सूर्यकी अनेक वर्णवाली प्रभा निकलतीहै ॥ २६॥ हेसीते !यह घंटोंकी ध्वनि रथोंका स्वर २ शब्द और तुरंही निनाद, और घोड़ोंके

बनायकर शत्रुके दलमें प्रवेश करके, रावणनें जो लंकापुरीकी रक्षा करनेंका उपाय किया, उसको भली भांतिसे जानकर यह हमारे निकट आये हैं ॥ ८ ॥ हेश्रीरामचंद्रजी दुरात्मा रावणके पुररक्षा करनेंके विषयमें, हमनें अपने मंत्रियोंसे जो कुछ जानाहै, वह समस्तही कहतेहैं ॥ ९ ॥ कि प्रहस्त बहुत सारी सैनाके साथ पूर्व द्वारपर टिकाहै. और महावीर्यवान महापार्श्व व महोदर लंकाके दक्षिणद्वारकी रक्षा करतेहैं ॥ १० ॥ पटा खड्ग इत्यादि विविध अस्त्र शस्त्रधारी और शूल मुद्गर हाथमें लिये असंख्य शूर राक्षस गणोंके साथ रावण पुत्र इन्द्रजित लंकाके पश्चिम द्वारकी रक्षा करता है ॥ ११ ॥ अनेक प्रकारके और दूसरे हथियार धारण किये शूरवीर रावणके पुत्रभी संगहैं, और स ;स्रों लक्षों शस्त्रपाणि राक्षसोंको संग लि

संविधानंयथाहुस्तेरावणस्यदुरात्मनः ॥ रामतद्ब्रुवतःसर्वंयाथातथ्येनमेशृणु ॥ ९ ॥ पूर्वंप्रहस्तःसबलोद्वारमासाद्य
तिष्ठति ॥ दक्षिणंचमहावीर्यौमहापार्श्वमहोदरौ ॥ १० ॥ इंद्रजित्पश्चिमंद्वारंराक्षसैर्बहुभिर्वृतः ॥ पट्टिशासिधनुष्मद्भिः
शूलमुद्गरपाणिभिः॥११॥नानाप्रहरणैःशूरैरावृतोरावणात्मजः॥ राक्षसानांसहस्रैस्तुबहुभिःशस्त्रपाणिभिः ॥१२॥ युक्तः
परमसंविग्नोराक्षसैःसहमंत्रवित्॥ उत्तरंनगरद्वारंरावणःस्वयमास्थितः ॥१३॥ विरूपाक्षस्तुमहताशूलखड्गधनुष्मता ॥
बलेनराक्षसैःसार्धंमध्यमंगुल्ममाश्रितः ॥ १४ ॥ एतानेवंविधान्गुल्मॉंल्लंकायाःसमुदीक्ष्यते ॥ मामकामंत्रिणः
सर्वेशीघ्रंपुनरिहागताः ॥१५॥ गजानांदशसाहस्रंरथानामयुतंतथा ॥ हयानामयुतेद्वेचसाग्रांकोटिंचरक्षसाम् ॥ १६ ॥
विक्रांतबलवंतश्चसंयुगेष्वाततायिनः ॥ इष्टाराक्षसराजस्यनित्यमेतेनिशाचराः ॥ १७ ॥

ये ॥ १२ ॥ मंत्रका जाननेंवाला रावण उद्विग्नचित्त होकर लंकाके उत्तर फाटक पर स्वयं स्थित हुआहै॥१३॥राक्षस विरूपाक्ष शूल, खड्ग, व धनुष धारी बड़ी भारी सैनाके साथ लंकाके बीचों बीचमें जहां छावनीहै टिका हुआ है ॥ १४ ॥ हमारे मंत्रिलोग लंकाको समस्त चाटियोंको इस प्रकारसे देखकर शीघ्रही हमारे पास लौट आयेहैं ॥ १५ ॥ दश हजार ही रथ बीसहजार घोड़े, व करोड़ों राक्षस ॥ १६ ॥ जो कि अति बलवान और अति विक्रमकारी, समर करनेंमें अत्यन्तही आततायी है, और राक्षसराज रावणका कार्य सिद्ध करनेंको यत्न किये

चंद्रजी बहुतही शीघ्र रणभूमिमैं रावणका संहार करके तुम्हारे साथ सुख प्राप्त करेंगे ॥ ३४ ॥ जिस प्रकार यथोचित वर्षा होनेंसे धान्ययुक्त पृथ्वीकी अपूर्व शोभा होतीहै वैसेही तुम श्रीरामचंद्रजीके प्रेम व्यवहारसे सन्मानित होकर अत्यन्तही सन्तोष भोग करोगी ॥ ३५ ॥ हेदेवी जानकि! जो पर्वतश्रेष्ठ सुमेरुके चारोंओर अश्वकी समान गोलाकार गतिसे घुमा करतेहैं; अब तुम उन्ही प्रजा लोगोंका मंगल करनें वाले अपने कुलदेवता सूर्य भगवानकी शरणमें जाओ * ॥ ३६ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० यु० त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥ ॥ छ ॥ ग्रीष्म ऋतुके तापसे संतापित हुई पृथ्वीको जलसे सींचनेकी समान सरमानें इस प्रकारके वचन कह कर, उस रावणके वचनोंकरके मोहित जानकी

सभाजितात्वंरामेणमोदिष्यसिमहात्मना ॥ सुवर्षेणसमायुक्तायथासस्येनमेदिनी ॥ ३५ ॥ गिरिवरमभितोविवर्तमानोहयइवमंडलमाशुयःकरोति ॥ तमिहशरणमभ्युपैहिदेविदिवसकरंप्रभवोह्ययंप्रजानाम् ॥ ३६ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०युद्धकांडेत्रयस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३३ ॥ अथतांजातसंतापांतेनवाक्येनमोदिताम् ॥ सरमाह्लादयामासमहींदग्धामिवांभसा ॥ १ ॥ ततस्तस्याहितंसख्याचिकीर्षंतीसखीवचः ॥ उवाचकालेकालज्ञास्मितपूर्वाभिभाषिणी ॥ २ ॥ उत्सहेयमहंगत्वात्वद्वाक्यमसितेक्षणे ॥ निवेद्यकुशलंरामेप्रतिच्छन्नानिवर्तितुम् ॥ ३ ॥ नहिमेक्रममाणायानिरालंबेविहायसि ॥ समर्थोगतिमन्वेतुंपवनोगरुडोपिवा ॥ ४ ॥ एवंब्रुवाणांतांसीतासरमामिदमब्रवीत् ॥ मधुरंश्लक्ष्णयावाचापूर्वशोकाभिपन्नया ॥ ५ ॥

जीका संतापित हृदय शीतल किया ॥ १ ॥ तिसके पीछे समयको जाननेंवाली सरमाने प्रिय सखी जानकीजीको हितकी कामनासे हँसकर उस समय जानकीजीसे कहा ॥ २ ॥ हेअसितलोचने! जानकी! हमनें गुप्त भावसे जायकर श्रीरामचंद्रजीका संवाद जान तुम्हारे निकट आयकर कहैंगी ॥ ३ ॥ हमारे आश्रय रहित आकाशमे गमन करनें पर पवन या विनताके पुत्र गरुडजी भी हमारी गतिको नहीं रोक सकते हैं ॥ ४ ॥ यद्यपि सीताजी शोक संतापसे क्षीण शरीर होगईथीं परन्तु सरमाके धीरजयुक्त वचनोंसे उनको कुछेक धीरज आया, और फिर वह मधुर

* सूर्य कुलके रामचंद्रकी तुम वधू हो सो दयानिधान सूर्य भगवान तुम्हारी विपत दूरकरैंगे यह आशय है

संहार करनेंके लिये यह वचन बोले ॥ २५ ॥ वानरश्रेष्ठ नील बहुत सारे वानरोंको साथ लेकर लंकाके पूर्वद्वारपर टिके हुए प्रहस्तके साथ युद्ध करेंगे ॥ २६ ॥ और वालिपुत्र अंगदजीभी बड़ी भारी सैनाके साथ दक्षिण द्वारपर महापार्श्व और महोदरसे लड़कर उनका विध्वंस करे ॥ २७ ॥ अतुलबलशाली पवनकुमार हनुमानजी बहुत सैनाको साथ लेकर पश्चिम द्वार पर जावें, और वहां मेघनादसे युद्ध करे ॥ २८ ॥ दैत्य दानवोंके समूहोंके संग और महात्मा ऋषि लोगोंके साथ जो सदाही अपकार करताहै, महा नीचस्वभावयुक्त वरदान पानेके मदसे मदान्ध ॥ २९ ॥ जो कि सब लोकोंकी प्रजाओंको संतापित करताहै, और सब लोकोंको कुछ नहीं गिनता, उस राक्षसोंके स्वामी रावणका वध

पूर्वद्वारंतुलंकायानीलोवानरपुंगवः ॥ प्रहस्तंप्रतियोद्धास्याद्वानरैर्बहुभिर्वृतः ॥ २६ ॥ अंगदोवालिपुत्रस्तुबलेनमहतावृतः॥दक्षिणेबाधतांद्वारेमहापार्श्वमहोदरौ ॥२७॥ हनूमान्पश्चिमद्वारंनिष्पीड्यपवनात्मजः॥ प्रविशत्वप्रमेयात्मा बहुभिःकपिभिर्वृतः ॥ २८ ॥दैत्यदानवसंघानामृषीणांचमहात्मनाम् ॥ विप्रकारप्रियःक्षुद्रोवरदानबलान्वितः ॥ २९ ॥ परिक्रमातियःसर्वाल्लोँकान्संतापयन्प्रजाः ॥ तस्याहंराक्षसेंद्रस्यस्वयमेववधेधृतः ॥ ३० ॥ उत्तरंनगरद्वारमहंसौमित्रिणासह ॥ निपीड्याभिप्रवेक्ष्यामिसबलोयत्ररावणः ॥ ३१ ॥ वानरेंद्रश्चबलवानृक्षराजश्चवीर्यवान् ॥ राक्षसेंद्रानुजश्चैवगुल्मेभवतुमध्यमे ॥ ३२ ॥ नचैवमानुषंरूपंकार्यंहरिभिराहवे ॥ एषाभवतुनःसंज्ञायुद्धेस्मिन्वानरेबले ॥ ३३ ॥

हम स्वयंही जायकर करेंगे ॥ ३० ॥ जहां कि रावण अपनी सैनाके साथ टिका हुआहै, हम लक्ष्मणजीके सहित लंकापुरीके उस उत्तर द्वारको पीड़ित करनेंके समय प्रवेश करेंगे ॥ ३१ ॥ बलवान वानरेन्द्र सुग्रीवजी, वीर्यवान ऋक्षराज जाम्बवान और राक्षसराज रावणके छोटे भाई विभीषणजी यह सब मिलकर मध्यम गुल्ममें अर्थात् सैनासमूहके वीचमें रहकर उसकी रक्षा करें ॥ ३२ ॥ रणस्थलमें कोईभी वानर मनुष्यका रूप धारण नहीं करे, कारण कि इस संग्राममें मनुष्यका चिह्न केवल हमही लोग धारण किये रहेंगे ॥३३॥

आंसूयुक्त मुखमंडल पोंछकर कहा ॥ १२ ॥ कि हे जानकी! यदि तुम्हारी यही इच्छाहै तौ हम सत्य करके कहती हैं कि तुम्हारे शत्रु रावणका सब वृत्तान्त जानकर हम शीघ्रही यहांपर लौटेंगी ॥ १३ ॥ सरमा जानकीजीसे ऐसे वचन कहकर रावणकी सभामें चलीगई; और मंत्रिलोगोके साथ रावणकी जो सलाह हो रहीथी वह समस्तही उसनें सुनी ॥ १४ ॥ तिसके पीछे सरमा वनाय निश्चय करके दुरात्मा रावणकी सलाहके समस्त समाचार जान शीघ्रही मनोहर अशोकवनमें चली आई ॥ १५ ॥ उस सरमानें अशोक वाटिकामें आय जानकीजीको इस प्रकारसे अपने राह परखते हुए देखाकि जिस प्रकार कमलफूलोंसे भ्रष्ट होकर लक्ष्मीजी बैठी हैं ॥ १६ ॥ तव सीताजीनें मधुर वचन कहनें

एषतेयद्यभिप्रायस्तस्माद्गच्छामिजानकि ॥ गृह्यशत्रोरभिप्रायमुपावर्तामिमैथिली ॥ १३ ॥ एवमुक्त्वाततोगत्वासमीपंतस्यरक्षसः ॥ शुश्रावकथितंतस्यरावणस्यसमंत्रिणः ॥ १४ ॥ साश्रुत्वानिश्चयंतस्यनिश्चयज्ञादुरात्मनः ॥ पुनरेवागमत्क्षिप्रमशोकवनिकांशुभाम् ॥ १५ ॥ साप्रविष्टाततस्तत्रददर्शजनकात्मजाम् ॥ प्रतीक्षमाणांस्वामेवभ्रष्टपद्मामिवाश्रियम् ॥ १६ ॥ तांतुसीतापुनःप्राप्तांसरमांप्रियभाषिणीम् ॥ परिष्वज्यचसुस्निग्धंददौचस्वयमासनम् ॥ १७ ॥ इहासीनासुखंसर्वमाख्याहिममतत्त्वतः ॥ क्रूरस्यनिश्चयंतस्यरावणस्यदुरात्मनः ॥ १८ ॥ एवमुक्तातुसरमासीतयावेपमानया ॥ कथितंसर्वमाचष्टरावणस्यसमंत्रिणः ॥ १९ ॥ जनन्याराक्षसेंद्रोवैत्वन्मोक्षार्थंबृहद्वचः ॥ अतिस्निग्धेनवैदेहिमंत्रिवृद्धेनचोचितः ॥ २० ॥

वाली सरमाको फिर आयाहुआ देखकर, प्रेमसहित भली भांति उनसे भेंटी और स्वयं उसके बैठनेंको आज्ञा देकर कहा ॥ १७ ॥ कि हे सखि! इस आसनपर बैठकर उस क्रूरकर्मकारी रावणकी समस्त सलाह तुम हमसे कहो ॥ १८ ॥ जब सीताजीनें सरमासे इस प्रकार कहा तब सरमा मंत्रिलोगोंके सहित रावणकी जो परामर्श हुईथी उसका समस्त भेद जानकीजीसे कहनें लगीं ॥ १९ ॥ सरमा बोली कि हे जानकी! वृद्ध लोगोंनें और रावणकी मातानें तुमको श्रीरामचंद्रजीके निकट लौटा देनेके लिये मधुर वाणीसे यह अत्युत्तम वचन रावणसे कहे ॥ २० ॥

और सुवेल पर्वतपरसे जो मृत्युके समयतक दुःख भोग करनेके लिये हमारी भार्याको हरण करके ले आया है, उस दुरात्मा रावणके गृह दीख पड़ेंगे ॥ ४ ॥ जिस क्रूर राक्षसने राक्षसी बुद्धिके वश होकर,धर्म सदाचार और कुलकी ओर दृष्टि न करके यह निन्दनीय कार्य कियाहै उस राक्षसोंमें नीच रावणका नाम लेनेंपरभी हमको क्रोध उत्पन्न होताहै, हे सुग्रीव! हम इस रावणके ही अपराधसे समस्त राक्षसोंका नाश देखते हैं; देखो एक जन कालकी फांसीमें पड़कर पापाचार करताहै; परन्तु इकले उस दुष्टात्माके अपराधसे उसका समस्त कुलभी नष्ट होताहै ॥ ५ ॥ श्रीरामचंद्रजी रावणके प्रति क्रोधमें भरकर यह वचन कहते सुवेल पर्वतपर वास करनेंके लिये उसके शृङ्गोंपर चढ़ते हुए ॥ ६ ॥ विक्रमवान लक्ष्म

लंकांचालोकयिष्यामोनिलयंतस्यरक्षसः ॥ येनमेमरणांतायहृताभार्यादुरात्मना ॥ ४ ॥ येनधर्मोनविज्ञातोनवृत्तं
नकुलंतथा ॥ राक्षस्यानीचयाबुद्ध्यायेनतद्गर्हितंकृतम् ॥ ५ ॥ एवंसंमंत्रयन्नेवसक्रोधोरावणंप्रति ॥ रामःसुवेलमासा
द्यचित्रसानुमुपारुहत् ॥ ६ ॥ पृष्ठतोलक्ष्मणश्चैनमन्वगच्छत्समाहितः ॥ सशरंचापमुद्यम्यसुमहद्विक्रमेरतः ॥ ७ ॥
तमन्वारोहत्सुग्रीवःसामात्यःसविभीषणः ॥ तेवायुवेगप्रवणास्तांगिरिंगिरिचारिणः ॥ ८ ॥ अध्यारोहंतशतशःसुवे
लंयत्रराघवः ॥ तेत्वदीर्घेणकालेनगिरिमारुह्यसर्वतः ॥ ९ ॥ ददृशुःशिखरेतस्यविषक्तामिवखेपुरीम् ॥ तांशुभां
प्रवरद्वारांप्राकारवरशोभिताम् ॥ १० ॥

णजीभी बाण सहित धनुष हाथमें लिये एकाग्र मनसे श्रीरामचंद्रजीके पीछे २ चले ॥ ७ ॥ तिनके पीछे अपने मंत्रियोंके साथ सुग्रीवजी चले, और सुग्रीवजीके पीछे २ विभीषणजी, तत्पश्चात् हनुमान, अंगद, नील, द्विविद, गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, पनस, कुमुद, रंभ, जाम्बवान्, सुषेण, शतबलि, वानरश्रेष्ठ दुर्मुख, इत्यादि पर्वतोंके चरनेंवाले वानर वायु वेगसे उस पर्वतपर ॥ ८ ॥ चढ़े और सुवेल पर्वत पर श्रीरामचंद्रजीके निकट पहुंचे; पर्वतपर चढ़नेके समय उन समस्त वानरोंको कुछभी समय न लगा; वहांपर सबनें चढकर ॥ ९ ॥ उस पर्वतके रमणीय शिखरोंपर आरोहण कर त्रिकूट पर्वतके शिखरपर बसी हुई सुन्दर तोरण छहरदिवारी युक्त आकाशको र[illegible] करती ॥ [illegible]०

सैनाकी तैयारीके और शंखका भेरीयुक्त बड़ा भारी शब्द उठा कि जिस्से समस्त पृथ्वी कांपगई ॥ २७ ॥ तब लंकामें टिके हुए रावणके भृत्य राक्षसलोग वानरोंकी सैनाका यह कठोर सिंहनाद सुनकर अपनेंको अत्यन्त हीन कार्य और दीनभाव युक्त समझाते हुए और रावणकी दुर्बुद्धि होनेंके कारण वह लोग उस समय किसी प्रकारके कल्याणका सुख न देखसके॥२८॥इ० श्रीम० वा०आ०यु० चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥३४॥ पराये पुरको जीतनेंवाले महाबलवान श्रीरामचंद्रजी, भेरी शंख मिश्रित शब्दके साथ संग्राम करनेंके लिये तैयार हुए ॥ १ ॥ राक्षसपति रावण वह बड़ाभारी शब्द सुनकर मुहूर्त्तभरतक अपने मनमें सोच विचार करकै समस्त मंत्री गणोंकी ओर देखनें लगा ॥ २ ॥ महाबल

श्रुत्वातुतंवानरसैन्यनादंलंकागताराक्षसराजभृत्या ॥ हतौजसोदैन्यपरीतचेष्टाःश्रेयोनपश्यंतिनृपस्यदोषात् ॥२८॥
इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेचतुस्त्रिंशःसर्गः ॥३४॥ ॥छ॥ ॥ तेनशंखविमि
श्रेणभेरीशब्देननादिना ॥ उपायतिमहाबाहूरामःपरपुरंजयः ॥ १ ॥ तंनिनादंनिशम्याथरावणोराक्षसेश्वरः ॥
मुहूर्तंध्यानमास्थायसचिवानभ्युदैक्षत ॥ २ ॥ अथतान्सचिवांस्तत्रसर्वानाभाष्यरावणः ॥ सभांसन्नादयन्स
र्वानित्युवाचमहाबलः ॥ ३ ॥ जगत्संतापनःक्रूरोगर्हयन्राक्षसेश्वरः ॥ तरणंसागरस्यास्यविक्रमंबलपौरुषम् ॥४॥
यदुक्तवंतोरामस्यभवंतस्तन्मयाश्रुतम् ॥ भवतश्चाप्यहंवेद्मियुद्धेसत्यपराक्रमान् ॥ तूष्णीकानीक्षतोन्योऽन्यंविदि
त्वारामविक्रमम् ॥ ५ ॥ ततस्तुसुमहाप्राज्ञोमाल्यवान्नामराक्षसः ॥ रावणस्यवचःश्रुत्वाइतिमातामहोब्रवीत् ॥ ६ ॥

वान रावण मंत्रीयोंको अपने सन्मुख कर सब सभाको अपने शब्दसे गुंजाताहुआ मंत्रीयोंसे बोला ॥ ३ ॥ जगतको संताप देंनेवाला क्रूर स्वभाव राक्षस रावण रामचंद्रजीके पराक्रमकी व उनके समुद्र उतरनेंकी निन्दा करनें लगा॥४॥रावण मंत्रीयोंसे बोला कि तुम लोगोंनें जो रामचंद्रके समुद्रके उतर आने और उनके बलविक्रम पौरुषके विषयमें जो कुछ कहा वह समस्तही हमनें सुना, और तुम लोग सफल पराक्रम होकरभी जो रामचंद्रके पराक्रमको जानकर उत्साहहीनहो परस्पर एक दूसरेका मुख देख रहेहो यहभी समस्त हमनें जानाहै ॥५॥ रावणनें ऐसा कहा तौ महा

विमानोंसे लंकानगरी अत्यन्त शोभायमान हो रहीथी ॥२१॥ जिस लंकामें राजमंदिर जिसमें कि सहस्रों खम्भ लगे हुएथे; जो देखनेंमें कैलास पर्वतकी समान इतना ऊंचाथा कि मानों वह आकाशमें कोई बात लिख रहाथा ॥२२॥ और असंख्य राक्षस गण सदा जिसकी रक्षा करतेथे, ऐसा राक्षसराज रावणका वह चैत्य नामक राज मंदिर समस्त लंका नगरीका भूषण रूप हुआथा॥ २३ ॥ पुरीके स्थान २ में मनोहर कानन दृष्टि आतेथे अनेक प्रकारके धातु उत्पन्न करनेंवाले पर्वतोंकी असीम शोभा होरहीथी, और बीच २ में रमणीय उद्यान शोभा विस्तार कर रहेथे ॥ २४॥ विविध भांतिके विहारोंसे युक्त मृग गण निषेवित कुसुमोंसे शोभायमान अगणित राक्षसोंसे रक्षित वह लंकापुरीथी ॥२५॥ तिसके पीछे लक्ष्मीवान लक्ष्मणजीक बड़े भाई श्रीरामचंद्रजी अमरावतीकी समान समृद्धार्थ धन अन्न जनसे परिपूर्ण लंकानगरीको देखकर अत्यन्त विस्मयको प्राप्त हुए ॥ २६॥ इस प्रकारसे श्रीरामचंद्रजी बड़ी भारी वानरी सैनाके साथ वहां पर विराजमान होकर उस राज्य पूर्ण धवरहरोंकी श्रेणीसे शोभायमान अनेक बड़े२ यंत्र और किवाड़ोंसे युक्त लंका नगरीको देखते हुए ॥२७॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥३९ ॥ इसके पीछे श्रीरामचंद्रजी वानरोंकी सैनाके साथ सुग्रीवजीको संग लेकर दो योजनके विस्तारवाले सुवेल पर्वतके शिखरपर चढ़ते हुए ॥ १॥

यस्यांस्तंभसहस्रेणप्रासादःसमलंकृतः ॥ कैलासशिखराकारोदृश्यतेखमिवोल्लिखन् ॥ २२ ॥ चैत्यःसराक्षसेंद्रस्यबभूवपुरभूषणम् ॥ शतेनरक्षसांनित्यंयःसमग्रेणरक्ष्यते॥ २३ ॥ मनोज्ञांकांचनवतींपर्वतैरुपशोभिताम् ॥ नानाधातुविचित्रैश्चउद्यानैरुपशोभिताम्॥२४॥नानाविहगसंघुष्टांनानामृगनिषेविताम् ॥ नानाकुसुमसंपन्नांनानाराक्षससेविताम्॥२५॥ तांसमृद्धांसमृद्धार्थांलक्ष्मीवाँल्लक्ष्मणाग्रजः॥ नगरींत्रिदिवप्रख्यांविस्मयंप्रापवीर्यवान्॥ २६ ॥ तांरत्नपूर्णांबहुसंविधानांप्रसादमालाभिरलंकृतांच ॥ पुरींमहायंत्रकवाटमुख्यांददर्शरामोमहताबलेन ॥ २७ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणे वाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेएकोनचत्वारिंशःसर्गः ॥ ३९ ॥ ७ ॥ ॥ ततोरामःसुवेलाग्रंयोजनद्वयमंडलम् ॥ उपारोहत्ससुग्रीवोहरियूथैःसमन्वितः ॥ १ ॥

लेताहै तब कलिराजकी अवाई होतीहै ॥ १४ ॥ परन्तु तुमने दिग्विजयके समय महाऐश्वर्य सिद्ध करनेंवाले धर्मको छोड़ देव ब्राह्मणोंको पीड़ा पहुंचाय अधर्मका आचरण कियाहै, इसी कारणसे तुम्हारे शत्रु लोग ऐसे प्रबल होगयेहैं ॥ १५ ॥ तुम्हारे चित्तके दोषसे उत्पन्न वह हुआ अधर्महीं इस समय हमको ग्रासकिये लेताहै, परन्तु देवता लोगोंके नित्य किये हुए धर्मकार्य उनके पक्षको बढा रहेहैं ॥ १६ ॥ तुमनें स्वतंत्र होकर चलनें और भोग विलासमें आसक्त होकर सदांही अग्निकी समान तेजस्वी ऋषिलोगोंको अत्यन्त क्रोध उपजायाहै ॥ १७ ॥ हे रावण! उन ऋषिलोगोंका प्रभाव प्रदीप्त अग्निकी समान अत्यन्तही दुर्द्धर्ष है उनके अंतःकरण तपोबलसे शुद्ध होगयेहैं; वह लोग धर्मके अ

तत्त्वयाचरतालोकान्धर्मोऽपिनिहतोमहान् ॥ अधर्मःप्रगृहीतश्चतेनास्मद्बलिनःपरे ॥ १५ ॥ सप्रमादात्प्रवृद्धस्तेऽधर्मोहिग्रसतेहिनः ॥ विवर्धयतिपक्षंचसुराणांसुरभावनः ॥ १६ ॥ विषयेषुप्रसक्तेनयत्किंचित्कारिणात्वया ॥ ऋषीणामग्निकल्पानामुद्वेगोजनितोमहान् ॥ १७ ॥ तेषांप्रभावोदुर्धर्षःप्रदीप्तइवपावकः ॥ तपसाभावितात्मानोधर्मस्यानुग्रहेरताः ॥ १८ ॥ मुख्यैर्यज्ञैर्यजंत्येतेतैस्तैर्यत्तैर्द्विजातयः ॥ जुह्वत्यग्नींश्चविधिवद्वेदांश्चोच्चैरधीयते ॥ अभिभूयचरक्षांसिब्रह्मघोषानुदीरयन् ॥ १९ ॥ दिशोविप्रद्रुताःसर्वेस्तनयित्नुरिवोष्णगे ॥ ऋषीणामग्निकल्पानामग्निहोत्रसमुत्थितः ॥ २० ॥ आवृत्यरक्षसांतेजोधूमोव्याप्यदिशोदश ॥ तेषुतेषुचदेशेषुपुण्येष्वेवधृतव्रतैः ॥ २१ ॥

नुग्रहमें टिके हुएहैं ॥ १८ ॥ हे रावण! वह द्विजातीगण! वेदका उच्चारण करते हुए राक्षस लोगोंको रोकते वेदाध्ययन ध्यानरूप मुख्य यज्ञसे ब्रह्मकी पूजा करके विधिपूर्वक अग्निमें आहुति दिया करतेहैं ॥ १९ ॥ जिसप्रकार ग्रीष्मकालमें अत्यन्त तेजवान सूर्य भगवानके उदय होनेंपर बादल इधर उधरको भाग जातेहैं; वैसेही राक्षस लोग उन ब्राह्मणकी वेद ध्वनी सुनकर चारों ओरको भाग जातेहैं; सो अग्नितुल्य तेजस्वी ऋषिलोगोंके अग्निहोत्रसे उठा हुआ ॥ २० ॥ धुआ राक्षस लोगोंके घरमे उनके तेजको ढककर दशों दिशाओंमें फैला हुआहैं; वह व्रत धारण किये

प्रकार हमसे छुटकारा पानेंको समर्थ न होग। ॥ १० ॥ वानरराज सुग्रीवजी यह कह छलांग मार सहसा उसके मस्तक पर चढ़गये और रावणके शिरपरसे विचित्र मुकुट उतार पृथ्वीपर फेंकदिये, और फिर पृथ्वीपर उतर दुवारा उसके ऊपर झपटे ॥ ११ ॥ निशाचर रावण सुग्रीवको अति वेग सहित दूसरी वार आते हुए देखकर बोलाकि, हेसुग्रीव! जबतक तुम हमें दृष्टि नहीं आये तबहीतक तुम सुग्रीवथे, परन्तु अब हीनग्रीव हो जाओगे ॥ १२ ॥ रावणनें यह कहकर सुग्रीवजीके दोनों हाथ पकड़ उनको पटक दिया, परन्तु सुग्रीवजीनेंभी जलसे लुढ़कती गेंदकी समान शीघ्रतासे उठ रावणकी दोनों वाहें पकड़ उसको पृथ्वीपर पटक डाला ॥ १३ ॥ जब वह परस्पर इस प्रकारसे

इत्युक्त्वासहसोत्पत्यपुप्लुवेतस्यचोपरि ॥ आकृष्यमुकुटंचित्रंपातयामासतद्भुवि ॥११॥ समीक्ष्यतूर्णमायांतंबभाषेतंनिशाचरः ॥ सुग्रीवस्त्वंपरोक्षंमेहीनग्रीवोभविष्यसि ॥ १२ ॥ इत्युक्त्वोत्थायतंक्षिप्रंबाहुभ्यामाक्षिपत्तले ॥ कंदुवत्ससमुत्थायबाहुभ्यामाक्षिपद्धरिः ॥ १३ ॥ परस्परंस्वेदविदिग्धगात्रौपरस्परंशोणितरक्तदेहौ ॥ परस्परंश्लिष्टनिरुद्धचेष्टौपरस्परंशाल्मलिकिंशुकाविव ॥ १४ ॥ मुष्टिप्रहारैश्चतलप्रहारैररत्निघातैश्चकराग्रघातैः ॥ तौचक्रतुर्युद्धमसह्यरूपंमहाबलौराक्षसवानरेंद्रौ ॥ १५ ॥ कृत्वानियुद्धंभृशमुग्रवेगौकालंचिरंगोपुरवेदिमध्ये ॥ उत्क्षिप्यचोत्क्षिप्यविनम्यदेहौपादक्रमाद्गोपुरवेदिलग्नौ ॥ १६ ॥

युद्ध करनें लगे, तब दौनोंके शरीरसे पसीना वहनें लगा, रुधिरकी धारा वहनेंके कारण दौनोंके देह लाल होगये, परस्पर लिपटनेंके कारण दोनोंके शारीरिक व्यापार बंद होगये, और दोनोंही एक दूसरेसे मिले हुए सेमल और ढाकके वृक्षोंकी समान शोभित होनें लगे ॥ १४ ॥ महाबलवान राक्षसराज रावण और वानरनाथ सुग्रीवजी इस प्रकारसे परस्पर मुक्का, लात, जांघ, चनकटा आदिके आघातोंसे एक दूसरेको पीडित करनें लगे ॥ १५ ॥ इस प्रकार वहुत समयतक लंकाके सामनेवाले फाटककी वेदीपर इन दोनोंका बाहुयुद्ध होता रहा तिसके पीछे यहांतक युद्ध हुआ कि कभी २ दोनो लात चलायकर कभी २ वह रावण इनके शरीरको ऊपर उछालताथा और कभी यह

छोड़ चली जातीहैं। अथवा यह कि स्वप्नमें पीले दांतवाली काली स्त्रियां घरोंमें धरी हुई चीज वस्तुसे हँस २ वाते करतीहैं ॥ २८ ॥ कौओंके अर्थ जो बलिकी सामग्री दीजातीहै, उसे कुत्ते खाजातेहैं । गायोंसे गधे, और न्योलोंसे चूहोंकी उत्पति होतीहै ॥ २९ ॥ व्याघ्रोंके साथ बिलाव, कुत्तोंके साथ शुअर, राक्षसोंके साथ किन्नर, और मनुष्योंके साथ राक्षस मैथुन करतेहैं ॥ ३० ॥ पीले वरणके लालचरणवाले बहुत सारे कबूतर राक्षस लोगोंके विनाशार्थही मानों कालके भेजे हुए घरोंमें घूमतेहैं ॥ ३१ ॥ और घरके भीतर पाली हुई सारिका परस्पर क्लेश करती चीची कूची शब्द करतीहैं, व लड़नेंके लिये दूसरे जंगली पक्षीभी उनके पास आते उनसे लडते २ वह सारिका एक दूसरेसे गुथकर अपने अड्डो

गृहाणांबलिकर्माणिश्वानःपर्युपसेवते ॥ स्वरागोपुप्रजायंतेमूपकानकुलेपुच ॥ २९ ॥ मार्जाराद्वीपिभिःसार्धसूकराःशुनकैःसह ॥ किन्नराराक्षसैश्चापिलभेयुर्मानुपैःसह ॥ ३० ॥ पांडुरारक्तपादाश्चविहगाःकालचोदिताः ॥ राक्षसानांविनाशायकपोताविचरंतिच ॥ ३१ ॥ चीचीकूचीतिवाशंतःशारिकावेश्मसुस्थिताः ॥ पतंतिग्रथिताश्चापिनिर्जिताःकलहैषिभिः ॥ ३२ ॥ पक्षिणश्चमृगाःसर्वेप्रत्यादित्यंरुदंतिते ॥ करालोविकलोमुंडःपुरुपःकृष्णपिंगलः ॥ ३३ ॥ कालोगृहाणिसर्वेषांकालेकालेऽन्ववेक्षते ॥ एतान्यन्यानिदुष्टानिनिमित्तान्युत्पतंतिच ॥ ३४ ॥ " रामंमन्यामहेविष्णुंमानुषंरूपमास्थितम् ॥ नहिमानुपमात्रोसौराघवोदृढविक्रमः ॥ १ ॥ येनबद्धःसमुद्रेचसेतुःसमरमाद्भुतः ॥ कुरुष्वनरराजेनसंधिंरामेणरावण ॥ २ ॥"

परसे गिर पड़तीहैं ॥ ३२ ॥ पशु और पक्षीगण सूर्यकी ओरको मुख कर २ रोतेहैं विकराल रूप और शिर मुड़ाये काले पीले वर्णका कालपुरुष ॥ ३३ ॥ सन्ध्याके समय हम लोगोंके घरोंमें प्रवेश करके घूमता फिरताहै । इसी प्रकारके और दुष्ट निमित्त हम लोगोंको दिखाई देते है ॥ ३४ ॥ "नराकार धारण किये श्रीरामचंद्रजीको हम तो पुराण पुरुषोत्तम विष्णुही जानतेहैं कारण कि मनुष्यमें दृढ़ पराक्रम होंना कदापि संभव नही ॥ १ ॥ जिन्होंनें समुद्रमें महाअद्भुत सेतु बांध लिया, वह नारायण विष्णुजी न होकर मनुष्य किस प्रकारसे होसकतेहैं ? इस

इस प्रकारसे युद्धविशारद राक्षसेन्द्र और वानरेन्द्र कभी विचित्र मंडल कभी विविध स्थान गोमूत्रोंकार गति कभी विचित्रगत प्रत्यागत ॥ २३ ॥ कभी टेढ़ी और चक्राकार गति, कभी परस्परका प्रहार बचाय कुटिलतासे चलना, और चोटके प्रहारको युक्तिसे बचाना व कौशल पूर्वक मुष्टिक आदि से बचना, दूसरेके प्रहार करनेपर आगे को कूद जाना ॥ २४ ॥ शीघ्रतासे सन्मुखको दौड़ना, ऊपरको कूद जाना साविग्रह अवस्थिति अर्थात् विग्रह दिखा एक स्थानमें टिके रहना कभी पराङ्मुख गति कभी पीछेको हटकर शीघ्रतासे कूद जाना, बगलमें होकर अपद्रुत (जांघ पकड़नेके लिये झुक जाना) अवप्लुत ॥ २५ ॥ उपन्यास कभी अपन्यास इस प्रकारसे युद्धविशारद पारदर्शी दोनोंही वानरेन्द्र सुग्रीव और राक्षसनाथ रावण चतुरता दिखलायकर घूमने लगे ॥ २६ ॥ इतनेहीमें राक्षस रावण वानर सुग्रीवजीसे अपने छुटकारेका उपाय न देखकर

मंडलानिविचित्राणिस्थानानिविविधानिच ॥ गोमूत्रकाणिचित्राणिगतप्रत्यागतानिच ॥ २३ ॥ तिरश्चीनगतान्ये
वतथावक्रगतानिच ॥ परिमोक्षंप्रहाराणांवर्जनंपरिधावनम् ॥ २४ ॥ अभिद्रवणमाप्लावमवस्थानंसविग्रहम् ॥ परा
वृत्तमपावृत्तमपद्रुतमवप्लुतम् ॥ २५ ॥ उपन्यस्तमपन्यस्तंयुद्धमार्गविशारदौ ॥ तौविचेरतुरन्योन्यंवानरेंद्रश्चराव
णः ॥ २६ ॥ एतस्मिन्नंतरेरक्षोमायाबलमथात्मनः ॥ आरब्धुमुपसंपेदेज्ञात्वातंवानराधिपः ॥ २७ ॥ उत्पपाततदाका
शंजितकाशीजितक्लमः ॥ रावणःस्थितएवात्रहरिराजेनवंचितः ॥ २८ ॥ अथहरिवरनाथःप्राप्तसंग्रामकीर्तिर्निशिचरप
तिमाजौयोजयित्वाश्रमेण ॥ गगनमतिविशालंलंघयित्वार्कसूनुर्हरिगणबलमध्येरामपार्श्वंजगाम ॥ २९ ॥

अपनी माया दिखलानेपर तैयार हुआ, इसे जानकर वानरराज सुग्रीव ॥ २७ ॥ रावणको छोडकर आकाशमें कूद गये, वानरराज सुग्रीवजीको न देखकर रावण धोखा खाय वहांपर खड़ाही रहगया ॥ २८ ॥ तिसके पीछे सूर्यके पुत्र वानरराज सुग्रीव अत्यन्त परिश्रमसे निशाचर

१ मंडलक चार भागके हैं चारिमंडल, करणमडल, खंडमंडल और महामंडल, जिस मंडलमें एक चरण चलानेका कार्य पडताहै, उसे चारि, जिसमें दोनों चरण चलायें जाते हैं उसे करण, जहां कहीं एक करणमंडलोंका संयोग होताहै, उसे खण्ड, और तीन या इस्से अधिक जहां खण्डमंडल होते उसे महामंडल कहते हैं ॥ २ दोनों चरणोंका तिरछा चलाना–वैष्णवादि छ स्थान है ॥ वैष्णव, संपाद, वैशाख, मंडल, प्रत्यालीढ, अनालीढ, ३ गोमूत्र गति कुटिल भावसे चलना अर्थात् टेढे मेढे होकर चलना ॥ ४ युद्धका आरंभ करके सन्मुख खडे रहना ॥ ५ शत्रुको मारनेके लिये पांव उठाकर दौडना शत्रुबाहोंको न पकड ले इस कारण बाहोंको ऊंची किये रहना ॥ ६ शत्रुकी बांहे पकडनेके लिये अपनी बांहे बढाना॥

थवा हमारे उत्साहसे उत्साहित होकर हमको औरभी उत्साह दिलानेंको तुमनें ऐसे कठोर वचन कहे ॥ ६ ॥ कारण कि उत्साह करनेंका आशय न होनेंसे कौंन शास्त्रके तत्वका जाननेंवाला पंडित युद्धमें सामर्थवान राज्यपर विराजमान अपने स्वामीको ऐसे कठोर वचन कह सकताहै ॥ ७ ॥ कमलहीन लक्ष्मीकी सुन्दरताई जिस प्रकारसे होतीहै, वैसेही हम जनस्थानसे जानकीको हरण करके ले आये, इस समय क्या रामचंद्रसे डरकर हम उनको सीता देदें? ॥ ८ ॥ यह बात सत्यहै कि कोटि २ वानरोंकी सैनाके सहित व सुग्रीव और लक्ष्मणके साथ रामचंद्र लंकामें आयेहैं; परन्तु हम तुमसे कहतेहैं, कि थोड़ेही दिनोंमें तुम उनको हमारे हाथसे सेनासहित नाशको प्राप्त हुआ देखोगे ॥ ९ ॥ जिसके

प्रभवंतंपरस्थंहिपरुषंकोऽभिभाषते ॥ पंडितःशास्त्रतत्त्वज्ञोविनाप्रोत्साहनेंनवा ॥ ७ ॥ आनीयचवनात्सीतांपद्महीनामिवश्रियम् ॥ किमर्थंप्रतिदास्यामिराघवस्यभयादहम् ॥ ८ ॥ वृतंवानरकोटीभिःससुग्रीवंसलक्ष्मणम् ॥ पश्यकैश्चिदहोभिश्चराघवंनिहतंमया ॥ ९ ॥ द्वंद्वेयस्यनतिष्ठंतिदैवतान्यपिसंयुगे ॥ सकस्माद्रावणोयुद्धेभयमाहारयिष्यति ॥ १० ॥ द्विधाभज्येयमप्येवंननमेयंतुकस्यचित् ॥ एषमेसहजोदोषःस्वभावोदुरतिक्रमः॥ ११ ॥ यदितावत्समुद्रेतुसेतुर्बद्धोयदृच्छया ॥ रामेणविस्मयःकोत्रयेनतेभयमागतम् ॥ १२ ॥ सतुतीर्त्वार्णवंरामःसहवानरसेनया ॥ प्रतिजानामितेसत्यंनजीवन्प्रतियास्यति ॥ १३ ॥

साथ युद्धमें देवता लोगभी खड़े नहीं होसकते, वह दिग्विजयी रावण क्या कभी युद्ध करनेंसे डरेगा? ॥ १० ॥ चाहें हमारे दोखंड होजांय, परन्तु तौभी हम किसीसे नहीं दबेंगे; यद्यपि यह हमारे स्वभावका दोषहै तौ सही, तथापि स्वभाव अलंघनीय है, इस कारण हम उसको त्याग नहीं सकते ॥ ११ ॥ रामचंद्रका समुद्रमें सेतु बांधना देखकर जो तुम डरगये, भला बतलाओ तौ कि इसमें विस्मयकी क्या बातहै, यह सेतुतो बड़ी सरलतासे बंधा है हम चाहें तौ ऐसे २ हजारों सेतु बँधवादें ॥ १२ ॥ रामचंद्र वानरोंकी सैनाके साथ समुद्रके पार उतरकर यहां आये तौ हैं, परन्तु हम तुमसे

परन्तु तथापि तुम्हारे अवतक न आनेसे हमनें अपनें मनमें इस प्रकारसे स्थित कियाथा ॥ ६ ॥ कि रणभूमिमें, पुत्र सैना, और वाहनोंके सहित रावणका संहार करके बिभीषणको लंकापुरीका राज्य दे देंगे ॥ ७ ॥ हे महाबल ! फिर अयोध्यामें जाय भरतजीको राज्यभार सोंप अपने शरीरकोभी त्याग करदेंगे जब श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा तब सुग्रीवजी उनसे बोले॥८॥हे वीर रघुनंदन! हम अपने पराक्रमको जानकर आपकी भार्याके हरण करनेंवाले रावणको देखकरभी हम किस प्रकार उसे विना दंड दिये रह सकतेहैं ॥ ९ ॥ रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीके यह वचन सुनकर सुग्रीवजीकी बड़ाई करते हुए लक्ष्मी सम्पन्न लक्ष्मणजीसे बोले ॥१०॥ कि आओ हम सवजन सुशीतल जल और फल मूल शोभित वनस्थलीका आश्रय

हत्वाहंरावणंयुद्धेसपुत्रबलवाहनम् ॥ अभिषिच्यचलंकायांविभीषणमथापिच ॥ ७ ॥ भरतेराज्यमारोप्यत्यक्ष्ये देहंमहाबल ॥ तमेवंवादिनंरामंसुग्रीवःप्रत्यभाषत ॥ ८ ॥ तवभार्यापहर्तारंदृष्ट्वाराघवरावणम् ॥ मर्षयामिकथं वीरजानन्विक्रममात्मनः ॥ ९ ॥इत्येवंवादिनंवीरमभिनंद्यचराघवः ॥ लक्ष्मणंलक्ष्मिसंपन्नमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १० ॥ परिगृह्योदकंशीतंवनानिफलवंतिच ॥ बलौघंसंविभज्येमंव्यूह्यतिष्ठामलक्ष्मण ॥ ११ ॥ लोकक्षयकरंभीमंभयंपश्याम्युपस्थितम् ॥ निबर्हणंप्रवीराणामृक्षवानररक्षसाम् ॥ १२ ॥ वाताहिपरुषंवांतिकंपतेचवसुंधरा ॥ पर्वताग्राणिवेपंतेनदंतिधरणीधराः ॥ १३ ॥मेघाःक्रव्यादसंकाशाःपुरुषाःपरुषस्वराः ॥ क्रूराःक्रूरंप्रवर्षंतेमिश्रंशोणितबिंदुभिः ॥ १४ ॥ रक्तचंदनसंकाशासंध्यापरमदारुणा ॥ ज्वलच्चनिपतत्येतदादित्यादग्निमंडलम् ॥ १५ ॥

ले सैनाको विभाग कर व्यूहकी रचना करके उसमें टिकें ॥११॥ इस समय हम लोकोंका क्षय करनेंवाले भयंकर भय चिह्न देखतेहैं इस युद्धमें जोकि होनेंवालाहै, अनेक २ वीर्यवान ऋक्ष, राक्षस और वानर गणोंका विनाश होगा ॥ १२ ॥ यह देखो भयंकर पवन चल रहीहै पृथ्वी और पर्वतोंके शिखर तरु कंपायमान होरहेहैं; और समस्त पर्वतभी शब्दायमान होरहे हैं ॥ १३ ॥ व्याघ्र सिंहादि हिंसक जन्तुओंकी समान भयंकर क्रूर जलद जाल (वादल) रुधिरकी बूंदोंसे मिला हुआ अशुभ जल वर्षातेहैं ॥ १४ ॥सन्ध्यामें लाल चन्दनकी समान लाल ललाई रंगसे दारुण मूर्ति धारण

कि बस सब होगया अब किसी प्रकारका खटका नहीं ॥ २१ ॥ रावण इस प्रकारसे लंकाकी चौकसीके लिये राक्षसोंको नियत करके मंत्रिगणको विदा देकर और आपभी जयसूचक आशीर्वादसे पूजित होकर, धनजन पूर्ण अपने बडे भारी रनवासमें प्रवेश करता हुआ ॥२२॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आदिकाव्ये युद्धकांडे षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥ इधर मनुष्योंके राजा श्रीरामचंद्रजी वानरराज सुग्रीव, कपिश्रेष्ठ पवनकुमार हनुमानजी, ऋक्षराज जाम्बवान राक्षसराज विभीषण ॥ १ ॥ वालिके पुत्र अंगदजी सुमित्राके पुत्र लक्ष्मणजी वानरश्रेष्ठ शरभ, अपने परिवार सहित सुषेण, मैन्द और द्विविद ॥ २ ॥ गज, गवाक्ष, कुमुद, नल और पनस अपने दुश्मनके राज्य लंकामें आय एकत्रहो बैठकर

विसर्जयामासततःसमंत्रिणोविधानमाज्ञाप्यपुरस्यपुष्कलम् ॥ जयाशिषामंत्रिगणेनपूजितोविवेशसोंतःपुरमृद्धिमन्महत् ॥ २२ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०युद्धकांडेषट्त्रिंशःसर्गः ॥ ३६ ॥ ॥ छ ॥ नरवानरराजानौसतुवायुसुतःकपिः ॥ जांबवानृक्षराजश्चराक्षसश्चविभीषणः ॥ १ ॥ अंगदोवालिपुत्रश्चसौमित्रिःशरभःकपिः ॥ सुषेणःसहदायादोमैंदोद्विविदएवच ॥ २ ॥ गजोगवाक्षःकुमुदोनलोथपनसस्तथा ॥ अमित्रविषयंप्राप्ताःसमवेताःसमर्थयन् ॥ ३ ॥ इयंसालक्ष्यते लंकापुरीरावणपालिता ॥ सासुरोरगगंधर्वैःसर्वैरपिसुदुर्जया ॥ ४ ॥ कार्यसिद्धिंपुरस्कृत्यमंत्रयध्वंविनिर्णये ॥ नित्यंसन्निहितोयत्ररावणोराक्षसाधिपः ॥ ५ ॥ अथतेषुब्रुवाणेषुरावणावरजोब्रवीत् ॥ वाक्यमग्राम्यपदवत्पुष्कलार्थंविभीषणः ॥ ६ ॥ अनलःपनसश्चैवसंपातिःप्रमतिस्तथा ॥ गत्वालंकांममामात्याःपुरींपुनरिहागताः ॥ ७ ॥ भूत्वाशकुनयःसर्वेप्रविष्टाश्चरिपोर्बलम् ॥ विधानंविहितंयच्चतद्दृष्ट्वासमुपस्थिताः ॥ ८ ॥

कहनें लगे ॥ ३ ॥ असुर, उरग, और गन्धर्वगणोंकोभी जो अजेयहै, ऐसी रावणसे पाली जाती हुई लंकापुरीमें हम आगयेहैं ॥ ४ ॥ लंकेश्वर रावण यहांपर सदांही बड़ी सावधानीसे रहताहै; अब जिस प्रकारसे कार्यकी सिद्धि होवे ऐसी परामर्श हम सबको करना उचितहै ॥५॥ जब सबनें यही कहा तब रावणके छोटे भाई बिभीषण उनके वचन सुनकर, ग्रामीणादिदोष रहित अर्थयुक्त यह उदार वचन बोले ॥ ६ ॥ कि अनल पनस सम्पाति और प्रमति नामक हमारे यह चारों मंत्री लंकामें जायकर इसी समय वहांसे लौटकर यहां आयेहैं ॥ ७ ॥ यह चारों पक्षियोंका रूप

कहकर पर्वतके शृङ्गसे नीचे उतरनेंकी इच्छा करते हुए ॥ २३ ॥ धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीनें उस पर्वतपरसे उत्तर शत्रुओं करकै बड़े दुःख
सेभी भयभीत न होनेंवाली अपनी वानरी सैनाको देखा ॥ २४ ॥ सुग्रीवजीके साथ श्रीरामचंद्रजीनें, कवच वख्तरादिकी सामग्री धारण कर
सुग्रीवजीको व्यूह बनानेंके लिये कहा और युद्ध करनेंके लिये वानरों को आज्ञादी ॥ २५ ॥ तिसके पीछे महा बलवान श्रीरामचंद्रजी विजय
मुहूर्त्तमें बड़ी भारी सैनाके साथ धनुष धारण करकै लंकापुरीकी ओर मुख कर संग्राम करनेंको चले ॥ २६ ॥ जब श्रीरामचंद्रजी चले तौ वा
नरराज सुग्रीव, हनुमान ऋक्षराज, जाम्बवान् नल नील और लक्ष्मण उनके पीछे २ चले ॥ २७ ॥ रीछ और वानरोंकी बड़ी भारी सैना वि
अवतीर्यतुधर्मात्मातस्माच्छैलात्सराघवः ॥ परैःपरमदुर्धर्षंददर्शबलमात्मनः ॥ २४ ॥ सन्नह्यतुससुग्रीवःकपिराजबलंम
हत्॥कालज्ञोराघवःकालेसंयुगायाभ्यचोदयत् ॥२५॥ ततःकालेमहाबाहुर्बलेनमहतावृतः ॥ प्रविष्टःपुरतोधन्वीलंकाम
भिमुखःपुरीम् ॥२६॥ तौविभीषणसुग्रीवौहनूमान्जांबवान्नलः॥ऋक्षराजस्तथानीलोलक्ष्मणश्चान्वयुस्तदा ॥२७॥ ततः
पश्चात्सुमहतीपृतनर्क्षवनौकसाम् ॥ प्रच्छाद्यमहतींभूमिमनुयातिस्मराघवम् ॥ २८ ॥ शैलशृंगाणिशतशःप्रवृद्धां
श्चमहीरुहान् ॥ जगृहुःकुंजरप्रख्यावानराःपरवारणाः ॥ २९ ॥ तौत्वदीर्घेणकालेनभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ रावणस्य
पुरींलंकामासेदतुररिंदमौ ॥ ३० ॥ पताकामालिनींरम्यामुद्यानवनशोभिताम् ॥ चित्रवप्रांसुदुष्प्रापामुच्चैःप्राकार
तोरणाम् ॥ ३१ ॥ तांसुरैरपिदुर्धर्षांरामवाक्यप्रचोदिताः ॥ यथानिदेशंसंपीड्यन्यविशंतवनौकसः ॥ ३२ ॥
स्तारित पृथ्वीके एक बड़े भागको ढक कर रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीके पीछे २ गमन करनें लगी ॥ २८ ॥ शत्रुओंका विनाश करनेंमें समर्थ
हाथियोंके समान आकारवाले वानरोंनें गमन करनेंके समय असंख्य पर्वतोंके शिखर और बड़े २ वृक्ष ग्रहण कर लिये ॥ २९ ॥ इस प्रकारसे
शत्रुओंके मारनेंवाले श्रीरामचंद्रजी बहुतही शीघ्रतासे राक्षस रावणकी लंकापुरीके द्वारपर पहुंचे ॥ ३० ॥ यह लंकापुरी बहुत सारी पताका
ओंके लगनेंसे शोभायमान होरहीथी, रमणीक फुलवाडियोंसे शोभितथी; उसकी दुर्ग प्राचीर अति विचित्रथी, परिखा (खदं) व द्वारोंपरके स्थान
अति विशाल थे; इस कारण बड़े दुःखसेभी वहां कोई नहीं पहुंच सकताथा ॥ ३१ ॥ देवताओंकोभी अति दुःखसे प्रवेश करनेंके योग्य लंकापुरी

हुएहैं ॥ १७ ॥ हेपृथ्वीनाथ! इन करोड़ २ सैनाके एक २ राक्षसके साथ उसका असंख्य परिवारभी मिल जाकर युद्धके समय इकट्ठाहो जाता है ॥ १८ ॥ महाबलवान् विभीषणजीनें मंत्रियोंसे सुना हुआ यह लंकाका वृत्तान्त निवेदन करके अपने चारों मंत्री श्रीरामचंद्रजीको दिखा दिये ॥ १९ ॥ व उन चारों मंत्रियोंनें कमलदलकी समान नेत्रवाले श्रीरामचंद्रजीसे यह सब वृत्तान्त निवेदन किया ॥ २० ॥ तिसके पीछे रावणके छोटे भाई श्रीमान् विभीषणजी रामचंद्रजीका हित साधन करनेंकी वासनासे उनसे बोले, कि रावणके बलकी क्या बातहै, जब यह रावण कुबेरके साथ युद्ध करताथा ॥ २१ ॥ उस समय साठ लाख राक्षस इसके साथ युद्ध करनेंको गयेथे । हेराजन् ! वह दुरात्मा राक्षसगण

एकैकस्यात्रयुद्धार्थैराक्षसस्यविशांपते ॥ परीवारःसहस्राणांसहस्रमुपतिष्ठति ॥ १८ ॥ एतांप्रवृत्तिंलंकायांमंत्रिप्रोक्तां विभीषणः ॥ एवमुक्त्वामहाबाहूराक्षसांस्तानदर्शयत् ॥ १९ ॥ लंकायांसचिवैःसर्वैरामायप्रत्यवेदयत् ॥ रामंकमलपत्राक्षमिदमुत्तरमब्रवीत् ॥ २० ॥ रावणावरजःश्रीमान्रामप्रियचिकीर्षया ॥ कुबेरंतुयदारामरावणःप्रतियुद्ध्यति ॥ २१ ॥ षष्टिःशतसहस्राणितदानिर्यातिराक्षसाः ॥ पराक्रमेणवीर्येणतेजसासत्वगौरवात् ॥ सदृशाह्यत्रदर्पेणरावणस्यदुरात्मनः ॥ २२ ॥ अत्रमन्युर्नकर्तव्यःकोपयेत्वांनभीषये ॥ समर्थोह्यसिवीर्येणसुराणामपिनिग्रहे ॥ २३ ॥ तद्भवांश्चतुरंगेणबलेनमहतावृतम् ॥ व्यूह्येदंवानरानीकंनिर्मथिष्यसिरावणम् ॥ २४ ॥ रावणावरजेवाक्यमेवंब्रुवतिराघवः ॥ शत्रूणांप्रतिघातार्थमिदंवचनमब्रवीत् ॥ २५ ॥

पराक्रम, वीर्य, तेज, बल, धीरता, और दर्प किसी बातमें किसी प्रकार रावणसे कम नहीं ॥ २२ ॥ हेराजन्! आप क्रोध न कीजिये, हमनें; भय दिखानेके लिये, ऐसा नहीं कहा, वरन केवल आपका क्रोध प्रदीप्त करनेंहीके लिये ऐसा कहाहै; कारणकि आप क्रोधित होकर अपने वीर्यके बलसे देवता इन्द्रादिकोंकोभी दंड देसकते हैं ॥ २३ ॥ हम निश्चयही कहतेहैं कि आप इस बड़ी भारी चतुरंगिनी सैनाको व्यूहाकारमें स्थापन करके रावणको भलीभांति मर्दन करेंगे ॥ २४ ॥ रावणके छोटे भाई विभीषणजीनें जब ऐसा कहा तब रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी शत्रुगणोंका

साथ दक्षिण द्वार परगये, और मध्यके गुल्म पर स्वयं सुग्रीवजी जाउठे ॥ ४१ ॥ कि जिनके साथ सर्व वानरश्रेष्ठ थे, कि जिनमें गरुड़ और पवनकी समान बल था, इस वानरोंकी सैनामें छत्तीस करोड़ विख्यात वानरोंके यूथपथे ॥ ४२ ॥ यह सब वानर वहां पर मिलकर आये कि जहां सुग्रीवजीथे, रामचंद्रजीकी आज्ञासे लक्ष्मण और विभीषणजीनें ॥ ४३ ॥ लंकाके प्रत्येक द्वार पर करोड़ २ वानरोंको नियुक्त करते हुए सुषेण जाम्बवान् बहुतसी वानरोंकी सैनाको संगलेकर श्रीरामचंद्रजीके पीछे ॥ ४४ ॥ अत्यन्त निकटवाले मध्य गुल्म पर बहुतसी सैनाके साथ जाय टिके इस प्रकार वानर शार्दूलगण कि जिनके दांतभी सिंहकी समान तीक्ष्ण थे, वृक्ष और पर्वतोंको धारण करके हर्षित मनसे

सहस्रैर्हरिश्रेष्ठैःसुपर्णपवनोपमैः ॥ वानराणांतुषट्त्रिंशत्कोट्यःप्रख्यातयूथपाः ॥ ४२ ॥ निपीड्योपनिविष्टाश्चसुग्रीवोयत्रवानरः ॥ शासनेनतुरामस्यलक्ष्मणःसविभीषणः ॥ ४३ ॥ द्वारेद्वारेहरीणांतुकोटिंकोटीन्र्यवेशयत् ॥ पश्चिमेनतुरामस्यसुषेणःसहजांबवान् ॥ ४४ ॥ अदूरान्मध्यमेगुल्मेतस्थौबहुबलानुगः ॥ तेतुवानरशार्दूलाःशार्दूलाइवदंष्ट्रिणः ॥ गृहीत्वाद्रुमशैलाग्रान्हृष्टायुद्धायतस्थिरे ॥ ४५ ॥ सर्वेविकृतलांगूलाःसर्वेदंष्ट्रानखायुधाः ॥ सर्वेविकृतिचित्रांगाःसर्वेचविकृताननाः ॥ ४६ ॥ दशनागबलाःकेचित्केचिद्दशगुणोत्तराः ॥ केचिन्नागसहस्रस्यबभूवुस्तुल्यविक्रमाः ॥ ४७ ॥ संतिचौघबलाःकेचित्केचिच्छतगुणोत्तराः ॥ अप्रमेयबलाश्चान्येतत्रासन्हरियूथपाः ॥ ४८ ॥ अद्भुतश्चविचित्रश्चतेषामासीत्समागमः ॥ तत्रवानरसैन्यानांशलभानामिवोद्गमः ॥ ४९ ॥

युद्धकी राह परखनें लगे ॥ ४५ ॥ नख और दांतोंको आयुध बनाये विचित्र देहवाले वह वानरगण क्रोधमें भरकर अपनी पूंछको फटकारने अंग चलानें और मुख विरानेंके आकार करनें लगे ॥ ४६ ॥ इन वानरोंमें किसी२के दश हाथियोंका बल था, किसी २ के शत हाथियोंका बलथा, और किन्हीं २ में हजार हाथियोंकी समान बल विक्रम था ॥ ४७ ॥ उन वानरोंमें कोई २ अमोघ सङ्घ औरकोई २ के शत अमोघ सङ्घ हाथियोंकी समान बलशाली थे, और कोई २ यूथपतिसे ऐसे बलशाली थे, कि उनकी तुलना किसीके साथ नहीं हो सकती ॥ ४८ ॥ टीढ़ियोंकी समान उस वानरोंकी

हे वानरगण! तुम लोगोंका चिन्ह वानरहीहै, इस कारण तुम सब यही रूप धारण किये रहना, केवल हम सात जन मनुष्यका रूप धारण करके शत्रुसे युद्ध करेंगे ॥३४॥ उनमें हम महा तेजस्वी लक्ष्मणजी सखा बिभीषणजी, और इनके सचिव चारों राक्षस बस यह सात जन मनुष्यका रूप धारण करके युद्ध करेंगे, इनके सिवाय मनुष्यका रूप धारण किये और जिसकोभी देखेंगे मार डालेंगे ॥ ३५ ॥ सब कार्योंके करनेमें समर्थ बुद्धिमान स्वामी श्रीरामचंद्रजी धार्मिक बिभीषणजीसे यह कहकर सुवेल पर्वतपर चढ़नेंकी अपनी बुद्धि करते हुए ॥ ३६ ॥ क्योंकि, वह सुवेल पर्वतका तट श्रीरामचंद्रजीको बहुत रमणीयतर दिखायी दिया ॥ ३७ ॥ इस प्रकारसे महाबलवान श्रीरामचंद्रजी शत्रुका वध करनेके लिये

वानराएववश्चिह्नंस्वजनेऽस्मिन्भविष्यति॥वयंतुमानुषेणैवसप्तयोत्स्यामहेपरान्॥३४॥ अहमेवसहभ्रात्रालक्ष्मणेनमहौजसा॥आत्मनापंचमश्चायंसखाममविभीषणः॥३५॥ सरामःकृत्यसिद्ध्यर्थमेवमुक्त्वाविभीषणम्॥ सुवेलारोहणेबुद्धिंचकारमतिमान्प्रभुः॥ ३६ ॥ रमणीयतरंदृष्ट्वासुवेलस्यगिरेस्तटम्॥ ३७ ॥ ततस्तुरामोमहताबलेनप्रच्छाद्यसर्वांपृथिवींमहात्मा॥ प्रहृष्टरूपोभिजगामलंकांकृत्वामतिंसोरिवधेमहात्मा ॥ ३८ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेसप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥ ॥ छ ॥ ॥ सतुकृत्वासुवेलस्यमतिमारोहणंप्रति ॥ लक्ष्मणानुगतोरामः सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥ बिभीषणंचधर्मज्ञमनुरक्तंनिशाचरम् ॥ मंत्रज्ञंचविधिज्ञंचश्लक्ष्णयापरयागिरा ॥ २ ॥ सुवेलंसाधुशैलेंद्रमिमंधातुशतैश्चितम् ॥ अध्यारोहामहेसर्वेवत्स्यामोत्रनिशामिमाम् ॥ ३ ॥

कृतनिश्चय होकर अपनी बड़ी भारी वानर सैनासे पृथ्वीको ढककर हर्षित अंतःकरणसे लंकाके जंगलमें विराजमान होनें लगे ॥ ३८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥ श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके साथ सुवेल पर्वत पर चढनेंकी अभिलाषा करके वानरराज सुग्रीवजीसे बोले ॥ १ ॥ मंत्र जाननेंवाले, धर्मके जानकर अनुरागी चित्त और समस्त विधान समझानेंवाले बिभीषणजीसे भी श्रीरामचंद्रजीने कहा ॥ २ ॥ कि चलो हम सब जन द्रुम (वृक्ष) और धातु युक्त सुवेल पर्वतपर चढकर आज वहांपर रात्रि वितामेंगे ॥ ३ ॥

उस बड़े भारी शब्दसे पर्वत, वन कानन प्राकार और फाटकोंके सहित समस्त लंकाद्वीप वारंवार कम्पायमान होनें लगा ॥ ५६ ॥ अधिक क्याकहैं उस समयमें वह वानरोंकी सैना श्रीरामचंद्र लक्ष्मण व सुग्रीवजी करकै रक्षित होनेंके कारण देवता व राक्षसोंसे भी जीतनेंके अयोग्य जान पड़तीथी ॥ ५७ ॥ श्रीरामचंद्रजी इस प्रकारसे राक्षसोंका वध करनेंके लिये सैना स्थापनकर कर्त्तव्याकर्त्तव्यका निश्चय करनेंके लिये मंत्रियोंके साथ सलाह करनेंमें लगे और वारंवार कार्यका निर्णय करनेंमें आगे बढ़े ॥ ५८ ॥ श्रीरामचंद्रजी साम दाम भेद दंड इन चारों उपायोंको जानतेथे, परन्तु उपस्थित कार्यमें शेष उपाय अर्थात् दंड देनाही श्रेष्ठ विचार करकै राजधर्ममें

तेनशब्देनमहतासप्राकारासतोरणा ॥ लंकाप्रचलितासर्वासशैलवनकानना ॥ ५६ ॥ रामलक्ष्मणगुप्तासासुग्रीवेणच वाहिनी॥बभूवदुर्धर्षतरासर्वैरपिसुरासुरैः ॥५७॥राघवःसन्निवेश्यैवस्वसैन्यंरक्षसांवधे ॥ संमंत्र्यमंत्रिभिःसार्धंनिश्चित्य चपुनःपुनः ॥५८॥आनंतर्यमभिप्रेप्सुःक्रमयोगार्थतत्त्ववित् ॥ विभीषणस्यानुमतेराजधर्ममनुस्मरन् ॥ ५९ ॥ अंगदंवा लितनयंसमाहूयेदमब्रवीत्॥ गत्वासौम्यदशग्रीवंब्रूहिमद्वचनात्कपे ॥६०॥ लंघयित्वापुरींलंकांभयंत्यक्त्वागतव्यथः ॥ भ्रष्टश्रीकंगतैश्वर्यंमुमूर्षानष्टचेतनम् ॥ ६१ ॥ ऋषीणांदेवतानांचगंधर्वाप्सरसांतथा ॥ नागानामथयक्षाणांराज्ञांचर जनीचर ॥ ६२ ॥ यच्चपापंकृतंमोहादवलिप्तेनराक्षस ॥ नूनंतेविगतोदर्पःस्वयंभूवरदानजः ॥ ६३ ॥ यस्यदंडधरस्ते हंदाराहरणकर्शितः ॥ दंडंधारयमाणस्तुलंकाद्वारेव्यवस्थितः ॥ ६४ ॥

मन लगाते हुए और विभीषणजीकी परामर्शके अनुसार यही कर्त्तव्य स्थिर करकै ॥ ५९ ॥ वालिके पुत्र अंगदजीको बुलायकर उनसे बोले, कि हेसौम्य ! तुम हमारे वचनोंको जायकर रावणसे कहना; ॥ ६० ॥ तुम निर्भय होकर समस्त लंका पुरीको लांघते हुए चले जाना, और राक्षसोंका भय छोड़ उनसे कहनाकि हेलक्ष्मीरहित, ऐश्वर्यहीन मृत्युके निकट पहुंचे चेतना रहित राक्षस ॥ ६१ ॥ ऋषि, देवता, गन्धर्व, अप्सरा, सर्प, यक्ष और राजाओंका ॥ ६२ ॥ जो पाप विनाविचारे व गर्वसे तुमनें कियाहै, उस पापके भोगनेंका समय अव आगयाहै; अव उन पापोंका दारुण परिणाम फलनाही चाहताहै, ब्रह्माके वरदानसे ये गर्व तुमको हुआहै, आज वह चूर्ण कर देंगे ॥ ६३ ॥ तुमनें जो हमारी भार्या

राक्षसोंसें पूर्ण लंकापुरीको वानर यूथपोंने देखा कोटकी भीत और खंबोंपर चढे राक्षसोंसे घिरी हुई उस लंकापुरीमें व नील वर्ण वाली राक्षसी सैनाकी श्रेणीको मानों दूसरी दुर्ग प्राचीर (शहर पनाह) तुल्य वानर श्रेष्ठोंनें देखी ॥ ११ ॥ युद्धकी अभिलाषा किये वानर गण उन समस्त राक्षसोंकी सैनाको देख रामचंद्रके सामनेही सिंहनाद करनें लगे ॥ १२ ॥ तिसके पीछे सन्ध्या राग रंजित दिवाकर सूर्य भगवान अस्ताचलको गमन करते हुए, और रात्री हो आई, उस समय पूर्ण चंद्रमाके उदय होनेंसे रात्रिभी प्रदीप्त तुल्य बोध होनें लगी ॥ १३ ॥ तिसके पीछे श्रीरामचंद्रजी अपने सैनापती वानरयूथप व विभीषणजीसे पूजित और सन्मानित होकर लक्ष्मणजीके साथ यूथपति

लंकांराक्षससंपूर्णांददृशुर्हरियूथपाः ॥ प्राकारवरसंस्थैश्चतथानीलैश्चराक्षसैः ॥ ददृशुस्तेहरिश्रेष्ठाःप्राकारमपरंकृतम् ॥ ११ ॥ तंदृष्ट्वावानराःसर्वेराक्षसान्युद्धकांक्षिणः ॥ मुमुचुर्विविधान्नादांस्तस्यरामस्यपश्यतः ॥ १२ ॥ ततोस्तमगमत्सूर्यःसंध्ययाप्रतिरंजितः ॥ पूर्णचंद्रप्रदीप्ताचक्षपासमतिवर्तत ॥ १३ ॥ ततःसरामोहरिवाहिनीपतिर्विभीषणेनप्रतिनंद्यसत्कृतः ॥ सलक्ष्मणोयूथपयूथसंयुतःसुवेलपृष्ठेन्यवसद्यथासुखम् ॥ १४ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० युद्धकांडेअष्टत्रिंशःसर्गः ॥ ३८ ॥ ॥ ७ ॥ तांरात्रिमुषितास्तत्रसुवेलेहरियूथपाः ॥ लंकायांददृशुर्वीरावनान्युपवनानिच ॥ १ ॥ समसौम्यानिरम्याणिविशालान्यायतानिच ॥ दृष्टिरम्याणितेदृष्ट्वाबभूवुर्जातविस्मयाः ॥ २ ॥ चंपकाशोकबकुलशोलतालसमाकुला ॥ तमालपनसच्छन्नानागमालासमावृता ॥ ३ ॥

और यूथ गणोंके सहित यथा सुखसे सुवेल पर्वतके शृंगोंपर वास करनें लगे ॥ १४ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० अष्टत्रिंशःसर्गः ॥ ३८ ॥ तिसके पीछे वानरोंकी सैनाके यूथप सुवेल पर्वतके शिखर पर वह रात्रि विताय लंकापुरीके समस्त वन व उपवनोंको देखते हुए ॥ १ ॥ यह समस्त उपवन, विशाल समान सुखदाई, लम्बे चौड़े और देखतेही मन मोहतेथे, जिनको देखकर वानरगण अत्यन्त विस्मित हुए ॥ २ ॥ वानरोंनें देखाकि इन वन उपवनोंमें,चम्पा, बकुल, शाकुल, शाल, ताल छायरहे हैं, और तमाल कटहरसे छायकर यह वन नागवेलिसे युक्त हैं ॥ ३ ॥

हे निशाचर! तुम यदि पक्षीकी देह धारण करके त्रिलोकीके मध्यमें भी घूमोगे,तथापि हमारी दृष्टिसे अलग हो जानेको अथवा अपने जीवनके रक्षा करनेको तुम समर्थ न होगे ॥७१॥अबतुम्हारा जीवन हमारे ही हाथमें है; इस कारण तुम्हारे हितके निमित्त ही कहते हैं, कि तुम पर लोक सद्गति प्राप्त करनेके लिये दानपुण्य जो कुछ करने हैं वह कर लो, और तुम्हारा मरण देखकर लंकानगरी प्रमुदित होवै ॥ ७२ ॥ दुष्करकर्म करने वाले श्रीरामचंद्रजी करके इस प्रकारसे कहे जाकर ताराकुमार अंगदजी मूर्तिमान अग्निकी समान आकाश मार्ग में गमन करने ॥ ७३ ॥ इसके पीछे एक मुहूर्त भरके बीचमें रावणके मंदिर पर पहुंचकर मंत्रि लोगोंके साथ बैठे अविचालित हृदय रावणको अंगदजी देखते हुए ॥ ७४ ॥

ब्रवीमित्वांहितंवाक्यं
यद्याविशसिलोकांस्त्रीन्पक्षीभूतोनिशाचर ॥ ममचक्षुःपथंप्राप्यनजीवन्प्रतियास्यसि ॥७१॥ इत्युक्तःसतुतारेयोरामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ जगामाकाशमाविश्यमूर्तिमानिवहव्यवाट् ॥ ७३ ॥ सोतिपत्यमुहूर्तेनश्रीमान्रावणमंदिरम् ॥ ददर्शासीनमव्यग्रंरावणंसचिवैःसह ॥ ७४ ॥ ततस्तस्याविदूरेणनिपत्यहरिपुंगवः ॥ दीप्ताग्निसदृशस्तस्थावंगदःकनकांगदः ॥ ७५ ॥ तद्रामवचनंसर्वमन्यूनाधिकमुत्तमम् ॥ सामात्यंश्रावयामासनिवेद्यात्मानमात्मना ॥ ७६ ॥ दूतोहंकोशलेंद्रस्यरामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ वालिपुत्रोंगदोनामयदितेश्रोत्रमागतः ॥ ७७ ॥ आहत्वांराघवोरामःकौसल्यानंदवर्धनः ॥ निष्पत्यप्रतियुध्यस्वनृशंसपुरुषोभव ॥ ७८ ॥

क्रियतामौर्ध्वदेहिकम् ॥ सुदृष्टाक्रियतांलंकाजीवितंतेमयिस्थितम् ॥ ७२ ॥

तिसके पीछे सुवर्णके बाजूसे भूषित प्रदीप्त अग्निकी समान वानरश्रेष्ठ अंगदजी रावणके निकट ही आकाशसे उतर स्वयं अपना नाम सबको सुनाय मंत्रियोंके सहित रावणसे वह श्रीरामचंद्रजीके कहे हुए वचन यथार्थ २ कहने लगे ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ अंगदजी बोले कदाचित्त तुमने हमारा नाम सुनाही होगा, जो न सुना हो तौ अब सुनो कि हम वालिके पुत्र हैं और अंगद हमारा नामहै । इस समय दुष्कर कर्म करनेवाले श्रीरामचंद्रजीके दूत होकर यहां आये हैं ॥ ७७ ॥ कौशल्याजीको आनंद बढ़ानेवाले श्रीरामचंद्रजीनें तुमसे कह दियाहै कि—रे पुरुषोंमें

वहांपर चढ़कर एक मुहूर्त्तभरतक टिक दशों दिशाओंको श्रीरामचंद्रजीनें निहारा, तब विश्वकर्माजीकी बनाई त्रिकूटपर्वतके शिखरपर वसी हुई लंका नगरी ॥ २ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें देखी, यह पुरी अच्छे नियमद्वारा क्रम २ से बनाई गईथी, और रमणीकवनभी इसमें चारों ओर शोभायमान थे, उस लंकामें बने हुए ऊंचे द्वारके (गोपुरके) ऊपर राक्षसोंके राजा अति दुर्द्धर्ष रावणको मस्तक पर ॥ ३ ॥ विजय छत्र लगाये;अगल बगल दो श्वेत चँवर ढुलते लाल चंदन लगाये, लाल कपड़े व लालही गहनोंसे भूषित ॥ ४ ॥ और नीले बादरके रंगका सुवर्ण जड़ित उत्तरीय वस्त्र धारण किये, छातीमें ऐरावत हाथीके दांत लगजानेंसे घावयुक्त होनेंके कारण उसके चिह्नसे युक्त ॥ ५ ॥ खरगोशके

स्थित्वामुहूर्तंतत्रैवदिशोदशविलोकयन् ॥ त्रिकूटशिखरेरम्येनिर्मितांविश्वकर्मणा ॥ २ ॥ ददर्शलंकांसुन्यस्तांरम्यकाननशोभिताम् ॥ तस्यगोपुरशृंगस्थंराक्षसेंद्रंदुरासदम् ॥ ३ ॥ श्वेतचामरपर्यंतंविजयच्छत्रशोभितम् ॥ रक्तचंदनसंलिप्तंरक्ताभरणभूषितम् ॥ ४ ॥ नीलजीमूतसंकाशंहेमसंछादितांबरम् ॥ ऐरावतविषाणाग्रैरुत्कृष्टकिणवक्षसम् ॥ ५ ॥ शशलोहितरागेणसंवीतंरक्तवाससा ॥ संध्यातपेनसंछन्नंमेघराशिमिवांबरे ॥ ६ ॥ पश्यतांवानरेंद्राणांराघवस्यापिपश्यतः ॥ दर्शनाद्राक्षसेंद्रस्यसुग्रीवःसहसोत्थितः ॥ ७ ॥ क्रोधवेगेनसंयुक्तःसत्वेनचबलेनच ॥ अचलाग्रादथोत्थायपुप्लुवेगोपुरस्थले ॥ ८ ॥ स्थित्वामुहूर्तंसंप्रेक्ष्यनिर्भयेनांतरात्मना ॥ तृणीकृत्यचतद्रक्षःसोब्रवीत्परुषंवचः ॥ ९ ॥ लोकनाथस्यरामस्यसखादासोस्मिराक्षस ॥ नमयामोक्ष्यसेऽद्यत्वंपार्थिवेंद्रस्यतेजसा ॥ १० ॥

रुधिरकी समान रंगवाला लाल वस्त्र पहरे सन्ध्याकी धूपसे ढके हुए बादलके समूहकी समान आकाशमें विराजमान ॥ ६ ॥ वानरोंनें और श्रीरामचंद्रजीनें देखा, ऐसे राक्षसराजको देखतेही सुग्रीवजी सहसा उठ खड़ेहुए ॥ ७ ॥ वह सुग्रीव कोधके वेगसे परिपूर्ण और अपनें बल विक्रमसे उत्साहित होकर पर्वतके ऊपरसे छलांग मारकर उसी गोपुरके स्थानमें पहुंच गये जहांकि रावण खड़ाथा ॥ ८ ॥ तिसके पीछे वहां पर भय रहित मनसे कुछ देरतक खड़ेहो रावणके प्रति एक दृष्टिसे देख उसको तृणकी समान समझ कठोर वचन कहनेंलगे ॥ ९ ॥ कि हे निशाचर! हम सर्व लोकके स्वामी श्रीरामचंद्रजीके दासहैं; हम उन पृथ्वीनाथके अनुग्रहसे जिस प्रकारके तेजस्वी हुएहैं, तिस्से तौ आज किसी

राक्षस रावणके सामनेही पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ८७ ॥ तिसके पीछे महाप्रतापी अंगदजीनें पर्वतके शिखरकी समान ऊंचे रावणके राजमंदिर पर चढ़कर उस पर बलसे एक पद प्रहार किया ॥ ८८ ॥ वज्रधारी इन्द्रजीके वज्र मारनेंसे जिस प्रकार पूर्व कालमें हिमाचलका शृङ्ग चूर्ण होगयाथा वैसेही रावणके सन्मुख उसके देखते २ राजमंदिर फटकर गिर पड़ा ॥८९॥ इस प्रकारसे अंगदजी राज मंदिरके शिखरको तोडकर वारंवार अपना नाम सबको सुनाय अत्यन्त घोर सिंहनाद करते हुए आकाशको उछल गये ॥ ९० ॥ वीर अंगदजी इस प्रकारसे राक्षसोंको दुःखी और वानर गणोको हर्ष उपजाते हुए वानर गणोंके बीचमें बैठे श्रीरामचंद्रजी के निकट पहुंच गये ॥ ९१॥ राजमंदिरके टूटनेंपर रावणको अत्यन्तही क्रोध उत्पन्न

ततःप्रासादशिखरंशैलशृंगमिवोन्नतम् ॥ चक्रामराक्षसेंद्रस्यवालिपुत्रःप्रतापवान् ॥ ८८ ॥ पफालचतदाक्रांतंदशग्रीवस्यपश्यतः ॥पुराहिमवतःशृंगंवज्रेणेवविदारितम्॥८९॥ भंक्त्वाप्रासादशिखरंनामविश्राव्यचात्मनः ॥ विनद्यसुमहानादमुत्पपातविहायसा ॥९०॥व्यथयन्राक्षसान्सर्वान्हर्षयंश्चापिवानरान् ॥ सवानराणांमध्येतुरामपार्श्वमुपागतः॥९१॥ रावणस्तुपरंचक्रेक्रोधंप्रासादधर्षणात् ॥ विनाशंचात्मनःपश्यन्निःश्वासपरमोभवत् ॥ ९२ ॥ रामस्तुबहुभिर्हृष्टैर्विनदद्भिःप्लवंगमैः ॥ वृतोरिपुवधाकांक्षीयुद्धायैवाभिवर्तत ॥ ९३ ॥ सुषेणस्तुमहावीर्योगिरिकूटोपमोहरिः ॥ बहुभिःसंवृतस्तत्रवानरैःकामरूपिभिः ॥ ९४ ॥ सतुद्वाराणिसंयम्यसुग्रीववचनात्कपिः ॥ पर्यक्रामतदुर्धर्षोनक्षत्राणीवचंद्रमाः ॥ ९५ ॥ तेषामक्षौहिणिशतंसमवेक्ष्यवनौकसाम् ॥ लंकामुपनिविष्टानांसागरंचाभिवर्तताम् ॥ ९६ ॥

हुआ और वह श्रीरामचंद्रजीके दूतका बल और अपने होंनेवाले विनाशको निश्चय जानकर चिन्ता सहित वारंवार लंबे २ श्वास लेने लगा ॥ ९२ ॥ इस ओर महाबलवान श्रीरामचंद्रजीभी हर्षित किलकिलात वानर गणोंसे वेष्टित होकर शत्रुका नाश करनेंके लिये युद्धमेंही अपने मनको लगाते हुए ॥९३॥ पर्वताकार महाबलशाली सुषेणभी कामरूपधारी बहुत सारे वानरोंकी सैना संगलेकर आगे बढ शोभायमान हुआ ॥ ९४ ॥ वह अजेय सुषेण नाम वानर कपिराज सुग्रीवजीकी आज्ञासे तारागणोंसे घिरे हुए चंद्रमंडलकी समान बहुत सारी सैनाको साथ लेकर लंकाके समस्त द्वारोंपर घूमनें लगा ॥ ९५ ॥ लंकाके मयदानमें समुद्रकी सीमातक उठी हुई असंख्य अक्षौहिणीके प्रमाणवाली वानरोंकी सैना देखकर ॥९६॥

सुग्रीव इसके शरीरको ऊपर उछालकर गिरा देतेथे ॥ १६ ॥ तिसके पीछे दोनों दोनोंको दबाय एक दूसरेसे लिपट दुर्ग प्राचीरकी खाई में गिरे, वहां थोडी देर दोनोही चेष्टा रहित होकर निर्जीवसे पडे रहे और फिर अतिकठिनतासे पृथ्वी पकड़ वहांसे निकले उसकाल दोनों ही वारंवार लंबी श्वासें ले रहेथे ॥ १७ ॥ क्रोध शिक्षा और बलके सहित यह मार्गमें घूमते हुए दोनों दोनोंको वारंवार लिपटते हुए ऐसे जान पड़ने लगे कि मानों दोनों २ को वारंवार रस्सीसे बांध रहेहैं ॥ १८ ॥ इस प्रकारसे दांत निकले सिंह व शार्दूलशिशुके सहित समरमें आसक्त हो हाथीके पाठोंकी समान दोनों दोनों बाहोंसे आघात प्रतिघात करते हुए दोनोंही एक साथ पृथ्वीपर गिरनें लगे ॥ १९ ॥ इस प्रकारसे वह दोनों वीर परस्पर एक

अन्योन्यमापीडचविलग्नदेहौतौपेततुःसालनिखातमध्ये ॥ उत्पेततुर्भूमितलंस्पृशंतौस्थित्वामुहूर्तंत्वभिनिःश्वसंतौ ॥ १७ ॥ आलिंग्यचालिंग्यचबाहुयोक्त्रैःसंयोजयामासतुराहवेतौ ॥ संरंभशिक्षाबलसंप्रयुक्तौसुचेरतुःसंप्रतियुद्धमार्गे ॥ १८ ॥ शार्दूलसिंहाविवजातदंष्ट्रौगजेंद्रपोताविवसंप्रयुक्तौ ॥ संहत्यसंवेद्यचतौकराभ्यांतौपेततुर्वैयुगपद्धरायाम् ॥ १९ ॥ उद्यम्यचान्योन्यमधिक्षिपंतौसंचक्रमातेबहुयुद्धमार्गे ॥ व्यायामशिक्षाबलसंप्रयुक्तौक्लमंनतौजग्मतुराशुवीरौ ॥ २० ॥ बाहूत्तमैर्वारणवारणाभैर्निवारयंतौपरवारणाभौ ॥ चिरेणकालेनभृशंप्रयुद्धौसंचेरतुर्मंडलमार्गमाशु ॥ २१ ॥ तौपरस्परमासाद्ययत्तावन्योन्यसूदने ॥ मार्जाराविवभक्षार्थेऽवतस्थातेमुहुर्मुहुः ॥ २२ ॥

दूसरे को वारंवार मारते और उछाल देतेथे, और, उत्साह शिक्षा व बल सहित अनेक प्रकारकी चतुरताभी दिखातेथे, परन्तु तथापि उन दोनों वीरोंमे से शीघ्र कोई भी न थका ॥ २० ॥ मतवाले हाथियोंकी समान वह दोनों वीर हाथीकी शुण्डके समान आकार वाली अपनी दोनों भुजाओंसे एक दोनोंको निवारण करते हुए बहुत विलम्बतक युद्ध करके मंडलाकार होकर लड़ने लगे ॥ २१ ॥ किसी भोजन करनेंकी वस्तु को भोजन करनेके लिये लड़ते हुए दो बिलावोंकी समान यह दोनों वीरभी एक दूसरेका प्राण संहार करनेंमे यत्न करनेंलगे ॥ २२ ॥

चिन्ता होनें लगी कि किस प्रकारसे वानरोंका नाश किया जाय ॥ ४ ॥ बहुत देरतक यह चिन्ता करके वह धीर धारणकरके नेत्र फैलाय २ राम लक्ष्मण और उनकी सैनाके समूहको देखनें लगा ॥ ५ ॥ वहांपर श्रीरामचंद्रजीनें हर्षित अंतःकरणसे सैनाके सहित लंकापुरीके प्राकारके निकट पहुँच गुप्त राक्षसोंकी पुरी लंकाको सब जगह राक्षसोंसे पूरित होकर रक्षा की जाती हुई देखा ॥ ६ ॥ ध्वजा पताकाओंसे शोभायमान लंकापुरीको देखतेही सीतापति रघुनाथजीके विरहसे उत्पन्न हुए दुःखकी अवाई हुई और इसी समय श्रीरामचंद्रजी मनही मनमें कहनें लगे ॥ ७ ॥ हाय! इसी स्थानमें वह मृग छौनाकेसे नेत्रवाली कृशाङ्गी जनककुमारी जानकी हमारे लिये पीडित और शोकसे संतापित होकर

सचिंतयित्वासुचिरंधैर्यमालंब्यरावणः ॥ राघवंहरियूथांश्चददर्शायतलोचनः ॥ ५ ॥ राघवःसहसैन्येनमुदितोनामपुप्लुवे ॥ लंकांददर्शगुप्तांवैसर्वतोराक्षसैर्वृताम् ॥६॥ दृष्ट्वादाशरथिर्लंकांचित्रध्वजपताकिनीम् ॥ जगाममनसासीतांदूयमानेनचेतसा ॥७॥ अत्रसामृगशावाक्षीमत्कृतेजनकात्मजा ॥ पीडयतेशोकसंतप्ताकृशास्थंडिलशायिनी ॥ ८॥ निपीडयमानांधर्मात्मावैदेहीमनुचिंतयन्॥क्षिप्रमाज्ञापयद्रामोवानरान्द्विषतांवधे ॥ ९॥ एवमुक्तेतुवचसिरामेणाक्लिष्टकर्मणा॥ संघर्षमाणाःप्लवगाःसिंहनादैरपूरयन् ॥ १० ॥ शिखरैर्विकिरामैतांलंकांमुष्टिभिरेववा ॥ इतिस्मदधिरेसर्वेमनांसिहरियूथपाः ॥ ११ ॥ उद्यम्यगिरिशृंगाणिमहांतिशिखराणिच ॥ तरूंश्चोत्पाटयविविधांस्तिष्ठंतिहरियूथपाः ॥१२॥

पृथ्वीमें शयन करती हैं ॥ ८ ॥ श्रीरामचंद्रजी इस प्रकार वैदेहीजीके दुःखको विचारकर अत्यन्तही कातर हुए; और शीघ्रही युद्ध करनेके लिये उन्होंने वानर लोगोंको आज्ञादी ॥ ९ ॥ वानर लोग सरलतासे कर्म करनें वाले श्रीरामचंद्रजीकी इस प्रकारसे आज्ञा पाय समस्तही वानर एक साथ आगे बढनेंके लिये सिंहनाद कर२ के चारों दिशाओंको परिपूरित करते हुए ॥ १० ॥ उस कालमें वह वानरयूथपतिगण समस्तही "हम लोग पर्वतोंके शिखरसे इस लंका नगरीको तितर बितर करेंगे अथवा घुमाकर उसको चूर्ण कर डालेंगे," इस प्रकारसे सबही मनमें कहनें लगे ॥ ११ ॥ वह वानरोंके समस्त यूथप पर्वत शृङ्ग बड़े २ शिखर और अनेक प्रकारके वृक्षोंको उखाड़कर हाथमें ले लड़नेंको तैयार हुए ॥ १२ ॥

पति रावणको पराजित और स्वयंभी विजय रूप कीर्ति पाय अतिविशाल आकाशको लांघकर वानरोंकी सैनाके मध्यमें टिके हुए श्रीरामचंद्रजीके निकट पहुंचनेंकी इच्छा करते हुए ॥ २९ ॥ तिसके पीछे हर्षित अन्तःकरण और पवनवेग तुल्यसे वानरोंकी सैनाके बीचमें प्रवेशकर उन वानरोंसे पूजितहो युद्धका वृत्तान्त निवेदन करतेहुए श्रीरामचंद्रजीके आनंदको बढानेंलगे ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥ इसके पीछे दशरथ कुमार श्रीरामचंद्रजी सुग्रीवजीके शरीरमें युद्धके चिह्न देख उनको भेंटकर कहनें लगे ॥ १ ॥ हे सखे तुमनें हमारे साथ विना सलाह कियेही साहस प्रकाश कियाहै, सो राजालोग कभीभी ऐसा

सइतिसवितृसूनुस्तत्रतत्कर्मकृत्वापवनगतिरनीकंप्राविशत्संप्रहृष्टः ॥रघुवरनृपसूनोर्वर्धयन्युद्धहर्षंतरुमृगगणमुख्यैः पूज्यमानोहरींद्रः ॥ ३० ॥ ॥इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०यु०चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४० ॥ ७ ॥ ॥ अथतस्मिन्निमित्तानिदृष्ट्वा लक्ष्मणपूर्वजः ॥ सुग्रीवंसंपरिष्वज्यरामोवचनमब्रवीत् ॥ १ ॥ असंमंत्र्यमयासार्धंतदिदंसाहसंकृतम् ॥एवंसाहसयुक्तानिनकुर्वंतिजनेश्वराः ॥२॥ संशयेस्थाप्यमांचेदंबलंचेमंविभीषणम् ॥ कष्टंकृतमिदंवीरसाहसंसाहसप्रिय॥ ३॥इदानींमाकृथावीरएवंविधमरिंदम॥त्वयिकिंचित्समापन्नेकिंकार्यंसीतयामम ॥४॥भरतेनमहाबाहोलक्ष्मणेनयवीयसा ॥ शत्रुघ्नेनचशत्रुघ्नस्वशरीरेणवापुनः ॥५॥त्वयिचानागतेपूर्वमितिमेनिश्चितामतिः ॥ जानतश्चापितेवीर्यंमहेंद्रवरुणोपम ॥ ६ ॥

साहसका कार्य करनेंमें नही लगतेहैं अर्थात् राजाओंका ऐसा साहस करना अनुचितहै ॥ २ ॥ हे साहसप्रिय वीर ! तुमनें जिस प्रकारके महा साहसका कार्य कियाहै, इस्से हमें वानरोंकी सहायताको और विभीषणजीकीभी तुम्हारे यहांपर लौटनेंमें संदेह हुआथा ॥ ३ ॥ हे शत्रुदमनकारी ! जो करना था सो कर चुके, परन्तु अब आगेको ऐसा साहस कभी न करना, कारण कि तुम्हारा जो किसी प्रकारसेभी कुछ अनभल होगया तौ हम सीताको लेकर क्या करेंगे ? ॥ ४ ॥ हे महाबलवान् शत्रुओंके मारनेंवाले ! तुम्हारा कुछभी अपमान होनेंपर, हम भरत, उनसे छोटे लक्ष्मण शत्रुघ्न अथवा इस अपने शरीरहीको लेकर क्या करेंगे ? ॥५ ॥ यद्यपि महेन्द्र और वरुणजीकी तुल्य हम तुम्हारे बल विक्रमको जानतेहैं

प्राकारपर घूमनें लगे ॥ २१ ॥ यूथपति वीर सुबाहु, वीरबाहु, नल और पनस यह यूथपतिगण सैनाको नगरीमें प्रवेश करानेके लिये लंकाकी छहरदिवारीको तोड़ते पुरमें प्रवेश करते हुए, इसी समय इन वानर वीरोंनें लंकाके निवास स्थानको पीड़ित किया ॥ २२ ॥ कुमुद नाम रण विजयी महा बलवान् वानर दश करोड़ वानरोंको संग लेकर पूर्वके द्वारको घेर लेता हुआ ॥ २३ ॥ व उसी कुमुदकी सहायता करनेंके लिये बहुतसे वानरोंको साथ लिये वानरश्रेष्ठ प्रसभ, और महाबाहु पनस नाम वानरभी तैयार हो खड़ा होगया ॥ २४ ॥ वीरश्रेष्ठ बलवान वानर शतबलि वीस करोड़ वानरोंकी सैनाके सहित लंकाके दक्षिणद्वारको घेर लेता हुआ ॥ २५ ॥ ताराका पिता बलवान सुषेण करोड़ २ वानरोंकी सैना

वीरबाहुःसुबाहुश्चनलश्चपनसस्तथा॥निपीडचोपनिविष्टास्तेप्राकारंहरियूथपाः ॥एतस्मिन्नंतरेचक्रुःस्कंधावारनिवेशनम्॥२२॥पूर्वद्वारंतुकुमुदःकोटिभिर्दशभिर्वृतः॥ आवृत्यबलवांस्तस्थौहरिभिर्जितकाशिभिः॥२३॥सहायार्थंतुतस्यैवनिविष्टःप्रसभोहरिः ॥ पनसश्चमहाबाहुर्वानरैरभिसंवृतः॥ २४ ॥ दक्षिणद्वारमासाद्यवीरःशतबलिःकपिः॥ आवृत्यबलवांस्तस्थौविंशत्याकोटिभिर्वृतः॥२५॥सुषेणःपश्चिमद्वारंगत्वातारापिताबली॥आवृत्यबलवांस्तस्थौकोटिकोटिभिरावृतः ॥ २६ ॥ उत्तरद्वारमागम्यरामःसौमित्रिणासह॥आवृत्यबलवांस्तस्थौसुग्रीवश्चहरीश्वरः ॥ २७ ॥ गोलांगूलोमहाकायोगवाक्षोभीमदर्शनः ॥ वृतःकोटचामहावीर्यस्तस्थौरामस्यपार्श्वतः ॥ २८ ॥ ऋक्षाणांभीमकोपानांधूम्रःशत्रुनिबर्हणः॥ वृतःकोटचामहावीर्यस्तस्थौरामस्यपार्श्वतः॥ २९ ॥ सन्नद्धस्तुमहावीर्योगदापाणिर्विभीषणः ॥ वृतोयत्तैस्तुसचिवैस्तस्थौयत्रमहाबलः ॥ ३० ॥

को संग लेकर लंकाके पश्चिमद्वारपर विराजमान हुआ॥ २६ ॥ उत्तर द्वारको घेरकर महाबलवान श्रीरामचंद्र लक्ष्मणजीके साथ खड़े हुए, और सुग्रीवजी श्रीरामचंद्रजीकी सहायता करनेंके लिये तैयार होगये ॥ २७॥ भयंकराकार महावीर्यवान, महाकाय गोपुच्छ गवाक्ष नामक वानर एक करोड़ वानरोंको साथ लेकर श्रीरामचंद्रजीकी पार्श्वमें रक्षा करनें लगा ॥ २८ ॥ व श्रीरामचंद्रजीकी दूसरी बगलमें शत्रुओंका तपानेंवाला महा बलवान् धूम्र करोड़ रीछोंके साथ विराजमान होनें लगा ॥ २९ ॥ कवच वख्तर पहरे गदा हाथमें लिये महावीर्य विभीषणजी अपने चारों

कीहै, सूर्य मंडलसे अग्निके अंगारे जलते हुए गिरतेहैं ॥ १५ ॥ दीन स्वभाव क्रूर बुरे पशु और पक्षीगण सूर्यके सन्मुख होकर बड़ी दीनतासे रोतेहैं; कि जिनको सुनकर अत्यन्त भय उत्पन्न होताहै ॥ १६ ॥ रात्रिमें चंद्रमा उदय होकर लोकोंको संताप किया करताहै; और प्रलय कालकी समान उसके चारों ओर काली और लाल किरणें दिखलाई देतीहैं हे लक्ष्मण! चंद्रमाका ऐसा विपरीत भाव बहुतही बुराहै ॥ १७ ॥ हे लक्ष्मण देखो! सूर्यके मंडलमें नीले दाग दिखलाई देतेहैं; चंद्रमाकी भांति सूर्य मंडलभी रूखा, छोटा, बुरा और लाल वर्णका होगयाहै ॥ १८ ॥ हे ल

आदित्यमभिवाश्यंतिजनयंतोमहद्भयम् ॥ दीनादीनस्वराःक्रूराअप्रशस्तामृगद्विजाः ॥ १६ ॥ रजन्यामप्रशस्तश्चसंतापयतिचंद्रमाः ॥ कृष्णरक्तांशुपर्यंतोयथालोकस्यसंक्षये ॥ १७ ॥ ह्रस्वोरूक्षोप्रशस्तश्चपरिवेषःसुलोहितः ॥ आदित्यमंडलेनीलंलक्ष्मलक्ष्मणदृश्यते ॥ १८ ॥ दृश्यतेनयथावच्चनक्षत्राण्यभिवर्तते ॥ युगांतमिवलोकस्यपश्यलक्ष्मणशंसति ॥ १९ ॥ काकाःश्येनास्तथागृध्रानीचैःपरिपतंतिच ॥ शिवाश्चाप्यशुभावाचःप्रवदंतिमहास्वनाः ॥ २० ॥ शैलैःशूलैश्चखड्गैश्चविमुक्तैःकपिराक्षसैः ॥ भविष्यत्यावृताभूमिर्मांसशोणितकर्दमा ॥ २१ ॥ क्षिप्रमद्यदुराधर्षांपुरींरावणपालिताम् ॥ अभियामजवेनैवसर्वतोहरिभिर्वृताः ॥ २२ ॥ इत्येवंतुवदन्वीरोलक्ष्मणंलक्ष्मणाग्रजः ॥ तस्मादवातरच्छीघ्रंपर्वताग्रान्महाबलः ॥ २३ ॥

क्ष्मण! चंद्रमाके प्रति नक्षत्रमें यथावत न टिकनेंसे निश्चय ज्ञात होताहै कि मानो शीघ्रही प्रलय काल आया चाहताहै ॥ १९ ॥ गिद्ध, बाज, और कौये ऊपरसे सहसा गिरतेहैं, और शृगालियां मानों ऊंचे स्वरसे अशुभ समाचारको ही प्रगट कर रहीहैं ॥ २० ॥ वानरराक्षसोंके छोड़े हुए वृक्ष शूल और खड्गादिकोंसे मरी हुई सैनाके मांस व रक्तसे यहांकी, पृथ्वी परिपूर्ण होजायगी ॥ २१ ॥ हे लक्ष्मण! जो कुछभी हो वानर गणोंके साथ बल पूर्वक आज हम रावणसे पाली जाती हुई दुर्द्धर्ष लंकापुरीमें प्रवेश करेंगे ॥ २२ ॥ वीर श्रेष्ठ महाबलवान श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीसे यह

सिंहनाद करनेंसे पृथ्वी आकास और समुद्रभी पूर्ण होगया ॥ ३९ ॥ हाथियोंकी चिंघाड घो
शंख नगाडोंके बजनें, और वानर गणोंके
ड़ोंकी हिनहिनाहट रथोंके खरखर शब्द व राक्षस लोगोंके चरण धरनेके शब्दसे पृथ्वी पूर्ण होगई, ॥ ४० ॥ इसके पीछे फिर वानर और
राक्षसोंके घोर संग्रामका प्रारंभ हुआ; कि जैसा पूर्वकालमें देवताओंके साथ असुरोंका संग्राम हुआथा ॥ ४१ ॥ राक्षस लोग वारंवार अपने २
विक्रमका प्रकाश करके; प्रदीप्त, शक्ति, शूल, फरसे और गदा चलाय२कर वानरोंका प्रहार करने लगे ॥ ४२ ॥ वेगवान बड़े शरीरवाले वानर

पृथिवींचांतरिक्षंचसागरंचाभ्यनादयत् ॥ ३९ ॥ गजानांबृंहितैःसार्धंहया
शंखदुदुंभिनिर्घोषःसिंहनादस्तरस्विनाम् ॥ पृथिवीं... एतस्मिन्नंतरेघोरःसंग्रामःसमपद्यत ॥ रक्षसांवानराणां
नांहेषितैरपि ॥ रथानांनेमिनिर्घोषैरक्षसांपदनिःस्वनैः ॥ ४० ॥ निजघ्नुर्वानरान्सर्वान्कथयंतःस्वविक्रमान् ॥ ४२ ॥
चयथादेवासुरेपुरा ॥४१॥ तेगदाभिःप्रदीप्ताभिःशक्तिशूलपरश्वधैः ॥ निजघ्नुर्वानरान्सर्वान्कथयंतःस्वविक्रमान् ॥ ४२ ॥
चयथादेवासुरेपुरा ॥४१॥ तेगदाभिःप्रदीप्ताभिःशक्तिशूलपरश्वधैः ॥ राजाजयतिसुग्रीवइतिशब्दो
तथावृक्षैर्महाकायाःपर्वताग्रैश्चवानराः ॥ निजघ्नुस्तानिरक्षांसिनखैर्दन्तैश्चवेगिनः ॥ ४३ ॥ राजाजयतिसुग्रीवइतिशब्दो
महानभूत् ॥ राजन्जयजयेत्युक्त्वास्वस्वनामकथांततः ॥ ४४ ॥ राक्षसास्त्वपरेभीमाःप्राकारस्थामहींगतान् ॥ वान
रान्भिदिपालैश्चशूलैश्चैवव्यदारयन् ॥ ४५ ॥ वानराश्चापिसंक्रुद्धाःप्राकारस्थान्महींगताः ॥ राक्षसान्पातयामासुः
खमाप्लुत्यस्वबाहुभिः ॥ ४६ ॥

गणभी, नख, दांत, वृक्ष और पर्वतके शिखर चलाय २ कर राक्षसोंको मारनें लगे ॥ ४३ ॥ तिस समय उस वानरोंकी सैनामेंसे " वानर राज
सुग्रीवजीकी जयहो " ऐसा बड़ा भारी शब्द हुआ और इधर " राक्षस रावणकी जयहो " ऐसा शब्द सुनाय अपने २ नामको बताय परस्पर
दोनों दल लड़नें लगे ॥ ४४ ॥ भयंकर आकारवाले राक्षसगण लंकाकी दुर्ग प्राचीरपर चढ़कर वानरोंको भिन्दिपाल, और शूलादि अस्त्रोंसे
मारनें लगे ॥ ४५ ॥ यह देखकर पृथ्वीपर टिके हुए वानर लोगभी क्रोधसे आकाशमें कूद और भुजाओंके प्रहारसे कोटकी

पर श्रीरामचंद्रजीके वचनोंसे प्रेरित वानर गण यथायोग्य स्थानोंको दबाय २ बैठगये ॥ ३२ ॥ इस प्रकारसे श्रीरामचंद्रजी धनुष धारण करके अनुज लक्ष्मणजीके साथ पर्वतके शिखर समान ऊंचे उत्तर द्वारको रोककर अपनी सैनाकी रक्षा करनें लगे ॥ ३३ ॥ महाराजाधिराज दशरथजीके पुत्र श्रीरामचंद्रजी वीर लक्ष्मणजीको साथ लेकर रावणसे रक्षित लंकापुरीमें प्रवेश करते हुए ॥ ३४ ॥ जहां पर रावण स्वयं विराजमान था रामचंद्रजीके सिवाय और कोईभी उसकी रक्षा करनेंको समर्थ नहीं होगा यही विचार कर वीरदशरथकुमार श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके सहित स्वयं उस रावणपालित लंका पुरीके उत्तर द्वारको घेर लेते हुए ॥ ३५ ॥ वरुणजीसे रक्षित महासागर और

लंकायास्तूत्तरद्वारंशैलशृंगैमिवोन्नतम्॥ रामःसहानुजोधन्वीजुगोपचरुरोधच॥३३॥लंकामुपनिविष्टस्तुरामोदशरथात्मजः ॥ लक्ष्मणानुचरोवीरःपुरींरावणपालिताम् ॥३४॥ उत्तरंद्वारमासाद्ययत्रतिष्ठतिरावणः ॥ नान्योरामाद्धितद्द्वारंसमर्थःपरिरक्षितुम् ॥ ३५ ॥ रावणाधिष्ठितंभीमंवरुणेनेवसागरम् ॥ सायुधैराक्षसैर्भीमैरभिगुप्तंसमंततः ॥ ३६ ॥ लघूनांत्रासजननंपातालमिवदानवैः ॥ विन्यस्तानिचयोधानांबहूनिविविधानिच॥ ३७ ॥ ददर्शायुधजालानितथैवकवचानिच ॥ पूर्वंतुद्वारमासाद्यनीलोहरिचमूपतिः ॥ ३८ ॥ अतिष्ठत्सहमैंदेनद्विविदेनचवीर्यवान् ॥ अंगदोदक्षिणद्वारंजग्राहसुमहाबलः ॥ ३९ ॥ ऋषभेणगवाक्षेणगजेनगवयेनच ॥ हनूमान्पश्चिमद्वाररररक्षबलवान्कपिः ॥ ४० ॥ प्रजंघतरसाभ्यांचवीरैरन्यैश्चसंगतः ॥ मध्यमेचस्वयंगुल्मेसुग्रीवःसमतिष्ठत ॥ ४१ ॥

दानवोंके दलसे रक्षित पाताल पुरीकी समान शस्त्रलिये भयंकर रूप राक्षसों करके सर्व प्रकारसे व रावणसेभी रक्षा किया जाताहुआ, उत्तर द्वारके देखनेंसे अल्पवीर्य वालोंको अत्यन्त भय लगताथा ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ और वहां पर वानर लोगोंने राक्षस वीरोंके अनेक अस्त्र और कवच देखे सेनापति नील वानरोंकी सैनाके साथ पूर्व द्वार पर पहुंचा ॥ ३८ ॥ इन नीलके साथ वीर्यवान मैन्द और द्विविद यह दोनों वानरभीथे महा वली वालिके पुत्र अंगदजी दक्षिणके द्वार पर गये ॥ ३९ ॥ अंगदजीके साथ ऋषभ, गज, गवय और गवाक्ष, यह चार वानरभी दक्षिण द्वार परगये महावीर हनुमानजीनें पश्चिम द्वारको जायकर घेर लिया ॥ ४० ॥ प्रजङ्घ, तरस, व और दूसरे वीर सेनापति उन हनुमानजीके

प्रजङ्घके साथ युद्ध करनें लगा और वानरश्रेष्ठ हनुमानजी, जम्बुमाली राक्षससे जायकर भिड़े ॥ ७ ॥ उस संग्राम भूमिमें रावणके छोटे भाई विभीषणजी अत्यन्त क्रोध युक्तहो शत्रुघ्न नामक राक्षसके साथ युद्ध करते हुए ॥ ८ ॥ महा बलवान गजनाम वानर तपन राक्षसके साथ अति पराक्रमसे युद्ध करनें लगा, और महा तेजस्वी नील नाम सैनापति निकुम्भ नाम राक्षससे जाय भिड़ा ॥ ९ ॥ वानरोंके राजा सुग्रीवजी राक्षस प्रघसके साथ द्वन्द्व युद्ध करनें लगे और विरूपाक्ष नामक राक्षसके साथ श्रीमान् लक्ष्मणजीका युद्ध होनें लगा ॥ १० ॥ दुर्द्धर्ष, अग्निकेतु, रश्मिकेतु, मित्रघ्न, और यज्ञकोप यह चार राक्षस श्रीरामचंद्रजीके साथ युद्ध करने लगे ॥ ११ ॥ घोर रूपवान वज्रमुष्टि और अशनिप्रभ नामक यह

संगतस्तुमहाक्रोधोराक्षसोरावणानुजः ॥ समरेतीक्ष्णवेगेनशत्रुघ्नेनविभीषणः ॥ ८ ॥ तपनेनगजःसार्धंराक्षसेनमहाबलः ॥ निकुंभेनमहातेजानीलोपिसमयुध्यत ॥ ९ ॥ वानरेंद्रस्तुसुग्रीवःप्रघसेनसुसंगतः ॥ संगतःसमरेश्रीमान्विरूपाक्षेणलक्ष्मणः ॥ १० ॥ अग्निकेतुःसुदुर्धर्षोरश्मिकेतुश्चराक्षसः ॥ मित्रघ्नोयज्ञकोपश्चरामेणसहसंगताः ॥ ११ ॥ वज्रमुष्टिश्चमैंदेनद्विविदेनाशनिप्रभः ॥ राक्षसाभ्यांसुघोराभ्यांकपिमुख्यौसमागतौ ॥ १२ ॥ वीरःप्रतपनोघोरोराक्षसोरणदुर्धरः॥समरेतीक्ष्णवेगेननलेनसमयुध्यत ॥१३॥ धर्मस्यपुत्रोबलवान्सुषेणइतिविश्रुतः ॥ सविद्युन्मालिनासार्धमयुध्यतमहाकपिः ॥ १४ ॥ वानराश्चापरेघोराराक्षसैरपरैःसह ॥ द्वंद्वंसमीयुःसहसायुद्धाचबहुभिःसह ॥ १५ ॥ तत्रासीत्सुमहद्युद्धंतुमुलंरोमहर्षणम् ॥ रक्षसांवानराणांचवीराणांजयमिच्छताम् ॥ १६ ॥

दो राक्षस मैन्द व द्विविद नामक दो वानरोंके साथ युद्ध करनें लगे ॥ १२ ॥ भयंकराकार रणमें दुर्जय वीर प्रतपन नामक राक्षस, तीक्ष्ण वेगवान नल नामक वानरके साथ संग्राम करनें लगा ॥ १३ ॥ त्रिलोक विख्यात बलवान धर्मका पुत्र महाकपि सुषेण विद्युन्माली राक्षसके साथ युद्ध करनेंको जाय उठा ॥ १४ ॥ व और दूसरे भयंकर पराक्रम करनेंवाले वानर गणभी अगणित राक्षसोंके साथ घोर द्वन्द्व युद्ध करनें लगे, ॥ १५ ॥ इस प्रकारसे उस रणभूमिमें अपने २ जयको अभिलाषा किये वीर राक्षस और वानर गणोंका तुमुल रोमहर्षण कारी युद्ध प्रारंभ हुआ ॥ १६ ॥

सैनाका ऐसा विचित्र समागम हुआथा कि पहले कभी भी ऐसा समागम नहीं हुआथा ॥ ४९ ॥ लंका पर पहुंचे हुए वानरगणों करके वहांकी पृथ्वी और कूदते फांदते हुए वानरोंसे आकाश परिपूर्ण हो रहाथा ॥ ५० ॥ इनके सिवाय युद्धकी अभिलाषा करके असंख्य वानर और रीछगण चारों ओरसे लंकाके द्वारों पर आय २ जुटनें लगे ॥ ५१ ॥ उस समय समस्त पर्वतश्रेष्ठ गिरि चित्रकूट समस्त वानरोंसे छाया हुआ जान पड़नें लगा, अति द्वार पर सन्निवेशित सैनाका वृत्तान्त जाननेके लिये एक कोटि वानरगण लंकापुरीके चारों ओर घूमनें लगे ॥ ५२ ॥ लंका नगरी, वृक्ष हाथोंमें लिये वानरों करके इस प्रकार सर्व भावसे घेरी गई कि वहां पवनका प्रवेश करनाभी कठिन ज्ञात होनें लगा ॥ ५३ ॥ मेघाकार और इन्द्र तुल्य पराक्रमकारी वानर गणोंसे पीड़ित होकर राक्षसगण अत्यन्त विस्मित हुए ॥ ५४ ॥ समुद्रकें ऊपर सेतु बँधनेंसे जिस प्रकार उसके जलका अत्यन्त भयंकर शब्द होताहै, वैसेही अतिभारी वानरोंकी सैनाका तुमुल शब्द प्रगट होनें लगा * ॥ ५५ ॥

प्रतिपूर्णमिवाकाशंसंपूर्णेवचमेदिनी ॥ लंकामुपनिविष्टैश्चसंपतद्भिश्चवानरैः ॥ ५० ॥ शतंशतसहस्राणांप्टतनर्क्षवनौकसाम् ॥ लंकाद्वाराण्युपाजग्मुरन्येयोद्धुंसमंततः ॥ ५१ ॥ आवृतःसगिरिःसर्वैस्तैःसमंतात्प्लवंगमैः ॥ अयुतानांसहस्रंचपुरींतामभ्यवर्तत ॥५२ ॥ वानरैर्बलवद्भिश्चबभूवद्रुमपाणिभिः ॥ सर्वतःसंवृतालंकादुष्प्रवेशापिवायुना ॥५३॥ राक्षसाविस्मयंजग्मुःसहसाभिनिपीडिताः॥ वानरैर्मेघसंकाशैःशक्रतुल्यपराक्रमैः ॥ ५४ ॥ महाञ्छब्दोभवत्तत्रबलौघस्याभिवर्ततः ॥ सागरस्येवभिन्नस्ययथास्यात्सलिलस्वनः ॥ ५५ ॥

---

* कवित्त ॥ चढ़त कटक महाराज रामचंद्रजीके गरद गगन रवि झंपिगो झड़ाकदै ॥फूटिगो जलधवन्ध लूटिकै दुवनपुर, छूटिगोमवीस वन हटिगो हड़ाकदै ॥ श्रीपति सुजान भने चिरिगो बराह रद फिरिगो सुमेरगिरिशृगो धड़ाकदै ॥ धुंधरकी धरनिमें फलक्यो फनिन्द फन दरकी कमठ पीठ कड़की कड़ाकदै॥१॥उज्वल अमल आभा अधिक विराजमान गंगाकी तरंग सुर लोककी निसैनीहै ॥ रसरौद्र पूरन सरस्वती सहित जहां स्यामता सहित रविसुता सुखदैनी है ॥ भट अवतंश महाराज रघुवंश मणि कहै रसरूप जाकी धारा अति पैनी है । महामदमत्त बलवन्त बड़े वैरिनको तारिवेको थारी तरवार यौं त्रिवेनी है ॥ २ ॥ जानदैहौं भरत अवध सब जान देहौं जान देहौं कौशिला हमारी मात प्रानकी ॥ जानदैहौं सकल जहानको सुकौनकाम कहै रघुनाथ ऐसो वचन प्रमानकी ॥ जानदैहौं लखन सुकंठमें विचार कहौं जान देहौं खेल पेल अपने सवानकी । जानदैहौं धनुष कमान वान जान दैहौं; जानदैहौं जान पै न जान देहौं जानकी ॥

वेगसे सप्तपर्णका वृक्ष उखाड़ उसके प्रहारसे प्रघस नाम राक्षसको मारडाला,भयंकराकार राक्षसको बाण वर्षासे व्याकुल कर ॥ २५ ॥ फिर एक बाणसे लक्ष्मणजीनें उस अपने शत्रु विरूपाक्ष नामक राक्षसको संहार किया। दुर्द्धर्ष अग्निकेतु व रश्मिकेतु मित्रघ्न व यज्ञकोप इन चार राक्षसोंनें श्रीरामचंद्रजीके ऊपर बाणोंकी वर्षाकी ॥ २६ ॥ तब रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीनें अत्यन्त क्रोध करके अग्निकी शिखाकी समान लप लपाते चार भयंकर बाणोंसे उन चारों राक्षसोंका शिर काट डाला ॥२७॥मैन्द नामक वानरनें घूंसा मारकर रणमें वज्रमुष्टिका संहार किया, तब यह राक्षस रथ और घोड़ोंके सहित पृथ्वीपर गिर पड़ा कि जैसे कोई नगरकी ऊंची अटारी फयराय पड़े ॥ २८ ॥ सूर्य नारायण जिस प्रकार

निजघानविरूपाक्षंशरेणैकेनलक्ष्मणः ॥ अग्निकेतुश्चदुर्धर्षोरश्मिकेतुश्चराक्षसः ॥ मित्रघ्नोयज्ञकोपश्चराममादीपयच्छरैः ॥ २६ ॥ तेषांचतुर्णांरामस्तुशिरांसिसमरेशरैः ॥ क्रुद्धश्चतुर्भिश्चिच्छेदघोरैरग्निशिखोपमैः ॥ २७ ॥ वज्रमुष्टिस्तुमैंदेनमुष्टिनानिहतोरणे ॥ पपातसरथःसाश्वःसुराट्टइवभूतले ॥ २८ ॥ निकुंभस्तुरणेनीलंनीलांजनचयप्रभम् ॥ निर्बिभेदशरैस्तीक्ष्णैःकरैर्मेघमिवांशुमान् ॥ २९ ॥ पुनःशरशतेनाथक्षिप्रहस्तोनिशाचरः ॥ बिभेदसमरेनीलंनिकुंभःप्रजहासच ॥ ३० ॥ तस्यैवरथचक्रेणनीलोविष्णुरिवाहवे ॥ शिरश्चिच्छेदसमरेनिकुंभस्यचसारथेः ॥ ३१ ॥ वज्राशनिसमस्पर्शोद्विविदश्चसमप्रभम् ॥ जघानगिरिशृंगेणमिषतांसर्वरक्षसाम् ॥ ३२ ॥ द्विविदंवानरेंद्रंतुद्रुमयोधिनमाहवे ॥ शरैरशनिसंकाशैःसविव्याधाशनिप्रभः ॥ ३३ ॥

अपनी किरणोंसे बादलोंको अलग २ करके उड़ाय देतेहैं वैसेही वीर निकुम्भ राक्षसनें तीक्ष्ण बाणोंको चलायकर नील अंजनकी समान प्रभावाले सैनापति नीलके शरीरको वींध डाला, और तिसके पीछे दूसरी बार फिर शतबाण छोड़ नीलका शरीर भेद यह निकुम्भ राक्षस अति ऊंचेस्वरसे ठट्ठा करके हँसनें लगा ॥ २९ ॥ ३० ॥ परन्तु सैनापति नीलनें राक्षसनिकुम्भके रथका पहिया ग्रहण कर, चक्र धारण किये हुए विष्णुजीकी समान निकुम्भ और उसके सारथिका मस्तक काट डाला ॥ ३१ ॥ वज्रकी समान कठिन प्रहार करनें वाले द्विविद नाम वानरनें सर्व राक्षसोंके सामनेंहो पर्वतके शिखरका प्रहार करके राक्षस अशनिप्रभके ऊपर चोट चलाई ॥ ३२ ॥ राक्षस अशनिप्रभनेंभी

का हरणरूप अपराध कियाहै; हम उसका उचित दंड देनेंके लिये साक्षात् कालकी समान लंकाके द्वारपर टिक रहेहैं ॥ ६४ ॥ यदि हमारे साथ युद्ध करनेंही की तेरी इच्छाहै, तौ युद्धमें हमारे हाथसे तेरी मृत्यु होनेंपर तेरे भाग्यमें देवता महर्षि राजाओंकी गति प्राप्त होगी॥६५॥ रे राक्षसाधम! तैंनें जो बल और मायाका आश्रय करके हमारी कुटीसे दूरकरके सीताको हरण कियाहै, अब वही बल और वही माया तुमको दिखानी चाहिये ॥ ६६ ॥ यदि तुम सीताको समर्पण करके हमारे शरणागत नहोगे; तौ जान लेनाकि अत्यन्त तीखे बाणोंसे हम समस्त लोक राक्षसशून्य करेंगे; इस्से जानकीको देदे क्योंकि जानकी किसी प्रकारसे हम नहीं छोड़ सकते ❋ ॥ ६७ ॥ धर्मात्मा राक्षसश्रेष्ठ विभीषण हमारी शरणमें आयेहैं; हमभी इनकोही निष्कंटक लंकाका राज्य व तुम्हारा सब ऐश्वर्य दान कर देंगे ॥ ६८ ॥ तुम जिस प्रकारके पापा

पदवींदेवतानांचमहर्षीणांचराक्षस ॥ राजर्षीणांचसर्वेषांगमिष्यसियुधिस्थिरः ॥ ६५ ॥ बलेनयेनवैसीतांमाययाराक्षसाधम ॥ मामतिक्रमयित्वात्वंहृतवांस्तन्निदर्शय ॥ ६६ ॥ अराक्षसमिमंलोकंकर्तास्मिनिशितैःशरैः ॥ नचेच्छरणमभ्येषितामादायतुमैथिलीम् ॥ ६७ ॥ धर्मात्माराक्षसश्रेष्ठःसंप्राप्तोयंविभीषणः ॥ लंकैश्वर्यमिदंश्रीमान्ध्रुवंप्राप्नोत्यकंटकम् ॥ ६८ ॥ नहिराज्यमधर्मेणभोक्तुंक्षणमपित्वया ॥ शक्यंमूर्खसहायेनपापेनाविदितात्मना ॥ ६९ ॥ युध्यस्वमाधृतिंकृत्वाशौर्यमालंब्यराक्षस ॥ मच्छरैस्त्वंरणेशांतस्ततःशांतोभविष्यसि ॥ ७० ॥

चारी और सज्ञानहीनहो,और तिसपर ऐसा अधर्म्माचरण करके इन मूर्ख मंत्रियोंकी सहायतासे अब अधिक कालतक राज्य नहीं कर सकोगे ॥६९॥ हेराक्षस! यदि शरणमें आना तुम्हारा मन माना न होवे तौ धीरता और शूरताका आश्रय लेकर युद्ध करो कारणकि युद्ध करनें पर हमारे चलाये हुए बाणोंसे तुम्हारा देह पवित्रहो जायगा, और तुमनें जन्मसे लेकर अबतक जो पापकार्य कियेहैं उनसे तुम्हारा छुटकाराहो जायगा ॥७० ॥

❋ खर भर भये लंक संकित सब रजनीचर अकुलाते है ।सहि न जात वह तेज वदनकी मूंदि नयन रह जाते है॥ दाह कलंक कीस सोइ आयउ श्रवननिलागि सुनाते हैं ॥कौन विधाता अबकी राखै यह कहते बिलखाते हैं ॥ कहि लंकेशहि पोच शोच सब पुरवासी घबडाते हैं । बिन पूछे मग लंका गढकी कर जोरे बतलाते हैं । मुकुट शीशकर गदा विराजै सूर्य तेजमन भाते है । दशग्रीव मानके मथन हेतु बलशीव वालिसुत आते हैं ॥

चरोंके समूह वीरश्रेष्ठ वानरों करके मर्दित होनें लगे ॥ ४२ ॥ भाले, गदा, शक्ति, तोमर और बाणोंके प्रहार लगनेंसे रथ और समरके घोड़े समस्तही पृथ्वीपर गिरनें लगे ॥ ४३ ॥ मरेहुए मतवाले, हाथियोंसे, वानर, राक्षसोंसे, रथके टूटे पहियोंसे, जुआ व धुरे आदिकोंसे ॥ ४४ ॥ संग्राम भूमि परिपूर्ण होगई, इसी कारणसे उस घोर रूप संग्राममें सहस्रों शृगाल घूमनेंलगे; अनेक भांतिसे राक्षस और वानरोंके कबन्ध नृत्य करनें लगे ॥४५॥ अधिक क्या कहैं यह संग्रामभी वैसाही हुआ जैसा कि देवासुरसंग्राम पूर्वकालमें हुआथा ॥ ४६ ॥ परन्तु उस कालमें रक्त गन्धसे मूर्छित निशाचरोंनें वानर वीरों करके अत्यन्त पीड़ित हो करकेभी फिर अत्यन्त बलके साथ युद्ध करना प्रारंभकिया, और वह राक्षस लोग सूर्य

भल्लैश्चान्यैर्गदाभिश्चशक्तितोमरसायकैः ॥ अपविद्धैश्चापिरथैस्तथासांग्रामिकैर्हयैः ॥ ४३ ॥ निहतैःकुंजरैर्मत्तैस्तथा वानरराक्षसैः ॥ चक्राक्षयुगदंडैश्चभग्नैर्धरणिसंश्रितैः ॥ ४४ ॥ बभूवायोधनंघोरंगोमायुगणसेवितम् ॥ कबंधानि समुत्पेतुर्दिक्षुवानररक्षसाम् ॥ ४५ ॥ विमर्देतुमुलेतस्मिन्देवासुररणोपमे ॥ ४६ ॥ निहन्यमानाहरिपुंगवैस्तदानि शाचराःशोणितगंधमूर्च्छिताः ॥ पुनःसुयुद्धंतरसासमाश्रितादिवाकरस्यास्तमयाभिकांक्षिणः ॥ ४७ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा०आदिकाव्येयुद्धकांडेत्रिचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४३ ॥ ॥छ॥ ॥ युध्यतामेवतेषांतुतदावानररक्षसाम् ॥ रविरस्तंगतोरा त्रिःप्रवृत्ताप्राणहारिणी ॥१॥ अन्योन्यंबद्धवैराणांघोराणांजयमिच्छताम् ॥ संप्रवृत्तंनिशायुद्धंतदावानररक्षसाम् ॥२॥ राक्षसोसीतिहरयोवानरोसीतितिराक्षसाः ॥ अन्योन्यंसमरेजघ्नुस्तस्मिंस्तमसिदारुणे ॥ ३ ॥

भगवानके छिपनें और रात्रिके आनेंकी वाट देखने लगे ॥४७॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥४३॥ जब राक्षस और वानर गणोंमें सहज २ करके घोर युद्ध होनें लगा तब सूर्य भगवान अस्ताचलका आश्रय ग्रहण करते हुए; और देखतेही देखते जीव जीवन नाशिनी रात्रि आय पहुँची ॥१॥ तिस समय परस्पर वैर बांधे हुए जयके अभिलाषी घोररूपी उन वानर व राक्षसोंका रात्रि युद्ध आरंभ हुआ ॥ २॥ उस दारुण अंधकारको वानर लोग "तू राक्षसहै" और राक्षस " तू वानरहै " यह कहकर परस्पर परस्परको आघात करनेंलगे ॥३॥

नीच क्रूर! तुम लंकापुरीसे निकल हमसे युद्धकरो ॥ ७८ ॥ हम पुत्र जाति बांधव और मंत्रियोंके सहित तेरा संहार करेंगे रावण! तुम्हारे मर जानेंपर त्रिभुवनकी व्याकुलता और घबडाहट जाती रहेगी ॥ ७९ ॥ हम तुम्हारा संहार करके देव,दानव, यक्ष, गन्धर्व,सर्प, राक्षस और ऋषि लोगोंके कण्टकका उद्धार करेंगे ॥ ८० ॥ तुम हमारे चरणोंमें झुककर आदर सहित यदि हमको जानकी न देदोगे तौ निश्चयही तुम नाशको प्राप्त होगे; और तुम्हारा समस्त ऐश्वर्य बिभीषणका होजायगा ॥ ८१ ॥ जब वानरवीर अंगदजीनें इस प्रकारके कठोर वचन कहे तब राक्षसोंका राजा रावण क्रोधके वश हुआ ॥ ८२ ॥ वह रावण अत्यन्त ही क्रोधके वशहोकर अपने मंत्रियोंसे बोला कि तुम अभी इस वानरको पकडकर

हंतास्मित्वांसहामात्यंसपुत्रज्ञातिबांधवम् ॥ निरुद्विग्नास्त्रयोलोकाभविष्यंतिहतेत्वयि ॥ ७९॥ देवदानवयक्षाणांगंधर्वोरगरक्षसाम्॥शत्रुमद्योद्धरिष्यामित्वामृषीणांचकंटकम्॥८०॥ विभीषणस्यचैश्वर्यंभविष्यतिहतेत्वयि॥नचेत्सत्कृत्य वैदेहींप्रणिपत्यप्रदास्यसि ॥ ८१ ॥ इत्येवंपरुषंवाक्यंब्रुवाणेहरिपुंगवे ॥ अमर्षवशमापन्नोनिशाचरगणेश्वरः ॥ ८२ ॥ ततःसरोषमापन्नःशशाससचिवांस्तदा ॥ गृह्यतामितिदुर्मेधावध्यतामितिचासकृत् ॥ ८३ ॥ रावणस्यवचःश्रुत्वादीप्ताग्निमिवतेजसा ॥ जगृहुस्तंततोघोराश्चत्वारोरजनीचराः ॥ ८४ ॥ ग्राहयामासतारेयःस्वयमात्मानमात्मवान् ॥ बलंदर्शयितुंवीरोयातुधानगणेतदा ॥ ८५ ॥ सतान्बाहुद्वयासक्तानादायपतगानिव ॥ प्रासादंशैलसंकाशमुत्पपातांगदस्तदा ॥ ८६ ॥ तस्योत्पतनवेगेननिर्धूतास्तत्रराक्षसाः ॥ भूमौनिपतिताःसर्वेराक्षसेंद्रस्यपश्यतः ॥ ८७ ॥

इसका प्राण संहार कर डालो ॥ ८३ ॥ रावणके ऐसे वचन सुनकर घोर रूपवाले चार निशाचर उन प्रदीप्त अग्निकी तुल्य अंगदजीको पकडनेके लिये तैयार हुये ॥ ८४ ॥ वीरश्रेष्ठ बुद्धिमान ताराकुमार अंगदजीने समर्थ होकर भी अपना बल राक्षसोंको दिखलानेके लिये स्वयं ही अपनेंको पकड़वा दिया ॥ ८५ ॥ जब राक्षस लोग अंगदजीकी बाँहें बांध रहेथे, तब अंगदजी सहसा उन राक्षसोंके सहित पर्वतके शृङ्गोंकी समान ऊंचे बडे भारी राजमंदिरपर कूदकर चढ गये ॥ ८६ ॥ अंगदजीके कूदनेंके समय राक्षस लोग ऐसे त्रासित हो उठे कि वह समस्त

मृदंग और ढोलोंको अद्भुत अनुपम शब्द होनें लगा ॥ १२ ॥ घायल हुए व ताडित हुए राक्षसोंकी आरत वाणी और अस्त्र शस्त्र चलानेके शब्दसे व वानर गणोंके दारुण शब्दसे संग्रामभूमि परिपूर्ण होगई ॥ १३ ॥ शक्ति, शूल, और परशु इत्यादि अस्त्र शस्त्रोंसे मरे हुए वानर और पर्वताकार कामरूपी राक्षस लोगोंके गिरनेसे ॥ १४ ॥ वह रणभूमि शस्त्ररूप पुष्पोंसे शोभायमान उद्यान (फुलवाड़ी) की समान जानपड़ने लगी।सब जगह ही रुधिरके वहनेंसे कीचड़ हो जानेंसे वह संग्राम भूमि सबके न देखनें योग्य और न प्रवेश करने योग्य होगई ॥१५॥ वास्तवमें राक्षस और वानर गणोंकी प्राण हरण करने वाली वह रात्रि कालरात्रिकी समान सबही प्राणियोंको अत्यन्त भयंकर हुई ॥ १६ ॥ तिसके पीछे उस दारुण

हयानांस्तनमानानांराक्षसानांचनिःस्वनः॥शस्तानांवानराणांचसंबभूवात्रदारुणः ॥१३॥हतैर्वानरमुख्यैश्चशक्तिशूलपरश्वधैः॥निहतैःपर्वताकारैराक्षसैःकामरूपिभिः ॥१४॥ शस्त्रपुष्पोपहाराचतत्रासीद्युद्धमेदिनी ॥दुर्ज्ञेयादुर्निवेशाचशोणितास्रावकर्दमा ॥ १५ ॥ साबभूवनिशाघोराहरिराक्षसहारिणी ॥ कालरात्रीवभूतानांसर्वेषांदुरतिक्रमा ॥ १६ ॥ ततस्तेराक्षसास्तत्रतस्मिंस्तमसिदारुणे ॥ राममेवाभ्यवर्तंतसंहृष्टाःशरवृष्टिभिः ॥ १७॥ तेषामापततांशब्दःक्रुद्धानामपिगर्जताम् ॥ उद्वर्तइवसत्वानांसमुद्राणामभूत्स्वनः ॥ १८ ॥ तेषांरामःशरैःषड्भिःषड्जघाननिशाचरान् ॥ निमेषांतरमात्रेणशरैरग्निशिखोपमैः ॥ १९ ॥ यज्ञशत्रुश्चदुर्धर्षोमहापार्श्वमहोदरौ ॥ वज्रदंष्ट्रोमहाकायस्तौचोभौशुकसारणौ ॥ २० ॥ तेतुरामेणबाणौघैःसर्वमर्मसुताडिताः ॥ युद्धादपसृतास्तत्रसावशेषायुषोभवन् ॥ २१ ॥

अंधकारमें समस्त ही राक्षस श्रीरामचंद्रजीके ऊपर बाण वर्षाते हुए आगे बढ़े ॥ १७॥ उस समय जब भयंकर क्रोधकिये हुये राक्षस सिंहनाद करते जब श्रीरामचंद्रजीके सन्मुखको दौडे; तब प्रलयकालके समयमें सात समुद्रकी समान कोलाहलरूप बड़ाभारी शब्द हुआ ॥ १८ ॥ परन्तु श्रीरामचंद्रजीनें एक पलक मारनेंके समय इनमेंसे छै राक्षसोंको अग्निकी लपटके समान तीखे बाणोंसे मारा ॥ १९ ॥ अजेय, यज्ञशत्रु, महापार्श्व, महोदर, बड़े शरीरवाला वज्रदंष्ट्र, शुक और सारण॥ २० ॥ यह छै राक्षस श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे मर्ममें चोट खायकर अपनें २

राक्षस लोगोंमेंसे कोई २ विस्मित हुए कोई २ भीत हुए और कोई २ रणके उत्साहसे मत्त होकर अतिशय आनंदको प्राप्त हुए ॥ ९७ ॥ वानरोंकी सैनानें लंकाके दुर्गकी भीतको छाय लियाथा; जिस्से ऐसा ज्ञात हुआ कि वानर गणोंके घेरनेंसे प्राकार (दुर्गकी भीत) गिरकर पृथ्वीमें मिल गया, ऐसा दीन भावयुक्त राक्षसोंने देखा ॥ ९८ ॥ यह देखकर राक्षस लोग भयके मारे हा! हा! कार करनें लगे ॥ ९९ ॥ इस प्रकारसे राक्षसोंकी राजधानी लंकापुरीमें कठोर कुलाहल होनें लगा, तब वीर राक्षस गण प्रचंड अस्त्र शस्त्र ग्रहण करके युगान्त कालके राहुकी समान इधर उधर घूमनें लगे ॥ १०० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

राक्षसाविस्मयंजग्मुस्त्रासंजग्मुस्तथापरे ॥ अपरेसमरेहर्षाद्धर्षमेवोपपेदिरे ॥ ९७ ॥ कृत्स्नंहिकपिभिर्व्याप्तंप्राकारपरिखांतरम् ॥ ॥ ददृशूराक्षसादीनाःप्राकारंवानरीकृतम् ॥ ९८ ॥ हाहाकारमकुर्वंतराक्षसाभयमागताः ॥ ९९ ॥ तस्मिन्महाभीषणकेप्रवृत्तेकोलाहलेराक्षसराजयोधाः ॥ प्रगृह्यरक्षांसिमहायुधानियुगांतवाताइवसंविचेरुः ॥ १०० ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०युद्धकांडेएकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥ ७ ॥ ॥ ततस्तेराक्षसास्तत्रगत्वारावणमंदिरम् ॥ न्यवेदयन्पुरींरुद्धांरामेणसहवानरैः ॥ १ ॥ रुद्धांतुनगरींश्रुत्वाजातक्रोधोनिशाचरः ॥ विधानंद्विगुणंश्रुत्वाप्रासादंचाप्यरोहत ॥ २ ॥ सददर्शावृतांलंकांसशैलवनकाननाम् ॥ असंख्येयैर्हरिगणैःसर्वतोयुद्धकांक्षिभिः ॥ ३ ॥ सदृष्ट्वावानरैःसर्वैर्वसुधांकपिलीकृताम् ॥ कथंक्षपयितव्याःस्युरितिर्चिंतापरोभवत् ॥ ४ ॥

इसके पीछे राक्षस लोगोंने रावणके गृहमें प्रवेश करके निवेदन किया कि श्रीरामचंद्रजीनें सैनाके समेत लंकापुरीको चारों ओरसे घेर लिया ॥ १ ॥ पुरीके रोके जानेंका समाचार सुनतेही राक्षस रावण क्रोधके मारे अधीर होगया, और प्रति द्वार पहलेसे दूनी सैना नियतकर स्वयं बडे ऊंचे धवरहर पर चढ़ा ॥ २ ॥ और देखा कि शैल, वन, और कानन सहित समस्त लंका असंख्य युद्धकी अभिलाषी वानरगणोंसे घिर रहीहै ॥ ३ ॥ उन सब वानरोंके बडे भारी जमाओंसे मानों लंकापुरीका वर्ण पीलासा हो रहाथा इनको देखकर रावणके मनमें यह

लक्ष्मण इन दोनोंकीभी अनेक प्रशंसा करनें लगे ॥ २९ ॥ इन्द्रजीतके रणका पराक्रम सवही जानतेथे इसीलिये उसको अंगदजी करके परा
जित देखकर सवही आनंद करनें लगे ॥ ३० ॥ सुग्रीव, विभीषण, व और दूसरे वानरगणभी शत्रुको पराजित देखकर सिंहनाद करनें लगे, और
साधु साधु कहकर अंगदजीकी अनेक प्रकारसे बड़ाई करते हुए ॥ ३१ ॥ भयंकर कर्मकारी अंगदजीसे संग्रामभूमिमें पराजित होकर इन्द्रजीत
बड़ा लज्जित हुआ, और उसको अत्यन्त क्रोध हो आया ॥ ३२ ॥ तब वह दुष्ट ब्रह्माजीके वरदान पानेंसे गर्वितहो अत्यन्त क्रोधकर अन्तर्ध्यान

प्रभावंसर्वभूतानिविदुरिंद्रजितोयुधि ॥ ततस्तेनमहात्मानंदृष्ट्वातुष्टाःप्रधर्षितम् ॥ ३० ॥ ततःप्रहृष्टाःकपयःससुग्री
वविभीषणाः ॥ साधुसाध्वितिनेदुश्चदृष्ट्वाशत्रुंपराजितम् ॥ ३१ ॥ इंद्रजित्तुतदानेननिर्जितोभीमकर्मणा ॥ संयुगे
वालिपुत्रेणक्रोधंचक्रेसुदारुणम् ॥ ३२ ॥ सोंतर्धानगतःपापोरावणीरणकर्शितः ॥ ब्रह्मदत्तवरोवीरोरावणिःक्रो
धमूर्च्छितः ॥ ३३ ॥ अदृश्योनिशितान्बाणान्मुमोचाशनिवर्चसः ॥ रामंचलक्ष्मणंचैवघोरैर्नागमयैःशरैः ॥ ३४ ॥
बिभेदसमरेक्रुद्धःसर्वगात्रेषुराघवौ ॥ माययासंवृतस्तत्रमोहयन्राघवौयुधि ॥ ३५ ॥ अदृश्यःसर्वभूतानांकूटयोधी
निशाचरः ॥ बबंधशरबंधेनभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ ३६ ॥ तौतेनपुरुषव्याघ्रौक्रुद्धेनाशीविषैःशरैः ॥ सहसाभिहतौ
वीरौतदाप्रैक्षंतवानराः ॥ ३७ ॥

होगया ॥ ३३ ॥ और किसीको दिखाई न देता हुआ आकाशमें टिककर वज्रकी समान बाण चलानें लगा और रामचंद्रजी व लक्ष्मणजीके सवही
अंग उसनें वींध डाले ॥ ३४ ॥ उस मेघनादनें क्रोधित होकर संग्राममें श्रीरामचंद्रजीके सब अंगोंको बाणोंसे भेदा, उसनें अपनी मायासे समरमें
दोनों भ्राताओंको मोहित किया ॥ ३५ ॥ वह छलसे युद्ध करनेंवाला निशाचर इन्द्रजीत अन्तर्ध्यान रह सब प्राणियोंको न दीखकर मायाके बलसे
रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजीको बाणोंके बन्धनोंसे बांधलेता हुआ ॥ ३६ ॥ उन पुरुषसिंह श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजीको क्रोधित

राक्षसोंके नाथं रावणनें देखा कि असंख्य वानरोंकी सैना श्रीरामचंद्रजीका प्रिय कार्य सिद्ध करनेंके लिये लंकापर चढ़ी ॥ १३ ॥ इस प्रकारसे वह शिला और वृक्षोंको लेकर युद्ध करनेंवाले अरुण मुख स्वर्णकी समान प्रभावान वानरगण श्रीरामचंद्रजीके लिये जीवतक छोड़नेंको तैयार होकर सबही लंकाकी ओरको धाये ॥ १४ ॥ वह वानरगण लंका नगरीके निकट आयकर वृक्ष और पर्वतों शिखर व मुष्टि प्रहारसे लंकाके पुरीके प्राचीर (भीत) और असंख्य फाटक तोड़नें फोड़नें लगे ॥१५॥ वह वानरगण अति बड़े २ पर्वतके टुकड़ोंसे, तिनकोंसे, काठसे व धूल डाल २ कर निर्मल जलसे शोभायमान लंकाके खांयेको पूर्ण करनें लगे ॥ १६ ॥ और जो समस्त वीर कि लंकापुरीकी प्राचीरपर चढ़गये, उनमें

प्रेक्षतोराक्षसेंद्रस्यतान्यनीकानिभागशः ॥ राघवप्रियकामार्थंलंकामारुरुहुस्तदा ॥ १३ ॥ तेताम्रवक्राहेमाभारामार्थेत्यक्तजीविताः ॥ लंकामेवाभ्यवर्ततसालभूधरयोधिनः ॥१४॥ तेद्रुमैःपर्वताग्रैश्चमुष्टिभिश्चप्लवंगमाः ॥ प्राकाराग्राण्यसंख्यानिममंथुस्तोरणानिच ॥ १५ ॥ परिखान्पूरयंतश्चप्रसन्नसलिलाशयान् ॥ पांसुभिःपर्वताग्रैश्चतृणैःकाष्ठैश्चवानराः ॥ १६ ॥ ततःसहस्रयूथाश्चकोटियूथाश्चयूथपाः ॥ कोटियूथशताश्चान्येलंकामारुरुहुस्तदा ॥ १७॥ कांचनानिप्रमर्दंतस्तोरणानिप्लवंगमाः ॥ कैलासशिखराग्राणिगोपुराणिप्रमथ्यच ॥ १८ ॥ आप्लवंतःप्लवंतश्चगर्जंतश्चप्लवंगमाः ॥ लंकांतामभिधावंतिमहावारणसन्निभाः ॥ १९ ॥ जयत्युरुबलोरामोलक्ष्मणश्चमहाबलः ॥ राजाजयतिसुग्रीवोराघवेणाभिपालितः ॥ २० ॥ इत्येवंघोषयंतश्चगर्जंतश्चप्लवंगमाः ॥ अभ्यधावंतलंकायाःप्राकारंकामरूपिणः ॥ २१ ॥

कोई २ वानर सहस्र यूथका अधिपति था कोई करोड़ यूथका और कोई२ शत करोड़ यूथका स्वामी था, वह वानरगण लंकामें प्रवेश करके कांचन निर्मित तोरण और कैलाश पर्वतकी समान उन तोरणोंके ऊपर बने हुए बड़े स्थानोंको तोड़नें फोड़नें लगे ॥ १७॥ १८ ॥ महा गजकी समान अगणित वानरगण ऊपरको छलांगें भरते तड़कते, व गर्जते हुए लंकाके चारों ओर घूमनें लगे ॥ १९ ॥ दोहा ॥ जयति जयति भ्राता सहित, महाबली रघुराज ॥ राघव पालित सूर्य सुत, जीतहिं सहित समाज ॥ २० ॥ इस प्रकारसे पुकारते व गर्जन करते हुए कामरूपी वानर गण लंकाके

करता हुआ॥७॥वह दोनों भाई क्रोधित मेघनादके चलाये सर्पमय बाणोंसे ऐसे विद्ध हुए कि उनके शरीरका कोई स्थानभी विना घावके न रहा॥८॥ उनके घावोंसे बहुत सारा रुधिर वहनेंके कारण वह दोनों भाई फूले हुए दो टेशूके वृक्षोंकी समान शोभायमान होनेलगे॥९॥ तिसके पीछे लाललाल नेत्र किये अंजनवाले पर्वतकी समान काला रावणका बेटा मेघनाद अदृश्यही रहकर उन दोनों भ्राताओंसे यह वचन बोला॥१०॥ अरे बाण जालसे बंधे हुए दो राजकुमारो! तुम्हारी बात तौ दूर रहे हम जिस समय अदृश्य होकर युद्ध करतेहैं, उस समय स्वर्गके पति इन्द्रभी हमारा दर्शन नहीं कर सकते, या हमको प्राप्त नहीं होसकतेहैं ॥ ११॥ जो कुछभी हो अब हम बहुतही शीघ्र कंकपत्र लगे बाणोंसे भली प्रकार तुमको बींधकर यम

निरंतरशरीरौतुतावुभौरामलक्ष्मणौ ॥ क्रुद्धेनेंद्रजितावीरौपन्नगैःशरतांगतैः ॥ ८ ॥ तयोःक्षतजमार्गेणसुस्रावरुधिरं बहु ॥ तावुभौचप्रकाशेतेपुष्पिताविवकिंशुकौ ॥ ९ ॥ ततःपर्यंतरक्ताक्षोभिन्नांजनचयोपमः ॥ रावणिर्भ्रातरौवाक्यमंतर्धानगतोब्रवीत् ॥ १०॥ युध्यमानमनालक्ष्यंशक्रोपित्रिदशेश्वरः ॥ द्रष्टुमासादितुंवापिनशक्तःकिंपुनर्युवाम् ॥ ११ ॥ प्रापिताविषुजालेनराघवौकंकपत्रिणा ॥ एषरोषपरीतात्मानयामियमसादनम् ॥ १२ ॥ एवमुक्त्वातुधर्मज्ञौभ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ निर्बिभेदशितैर्बाणैःप्रजहर्षननादच ॥ १३ ॥ भिन्नांजनचयश्यामोविस्फार्यविपुलंधनुः ॥ भूयएव शरान्घोरान्विससर्जमहामृधे ॥१४॥ ततोमर्मसुमर्मज्ञोमज्जयन्निशिताञ्छरान् ॥ रामलक्ष्मणयोर्वीरोननादचमुहुर्मुहुः ॥ १५ ॥ बद्धौतुशरबंधनतावुभौरणमूर्धनि ॥ निमेषांतरमात्रेणनशेकतुरवेक्षितुम् ॥ १६ ॥

राजके गृहमें भेजे देतेहैं ॥ १२ ॥ धर्मात्मा श्रीरामचंद्र और लक्ष्मणजी दोनों भाइयोंसे ऐसा कह मेघनाद अत्यन्त तीक्ष्ण बाणोंसे उनको घायल कर वारंवार हर्षसे सिंहनाद करनें लगा ॥ १३ ॥ उस घोर रूप संग्राममें काले अंजनकी समान श्याम रंगवाला मेघनाद अपने धनुषपर टंकार दे वारंवार अत्यन्त घोर बाणजाल वर्षानें लगा ॥ १४ ॥ इसके पीछे वह मेघनाद धर्मात्मा श्रीरामचंद्र और लक्ष्मणजीके मर्म स्थानमें तीखे बाण मारकर हर्ष सहित वारंवार सिंहनाद करता हुआ ॥ १५ ॥ उस समय वह दोनों वीर रणभूमिमें बाणोंके बंधनसे बंधकर एक पल

मंत्रियोंके साथ महा बलवान श्रीरामचंद्रजीके निकट पहुंचे ॥ ३० ॥ गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, और गंधमादन यह कई एक वानरगण समस्त वानर सैनाकी रक्षा करनेंके लिये चारों ओर घूमनें लगे ॥ ३१ ॥ निशाचर पति रावण यह समस्त वृत्तान्त जानकर अत्यन्तही क्रोधके वश हुआ, और शीघ्रही अपनी सैनाको युद्ध करनेंके अर्थ बाहर निकलनेकी आज्ञा देता हुआ ॥ ३२ ॥ राक्षस लोगोंनेंभी रावणके मुखसे यह वचन सुनकर भेरी बजाकर उसके शब्दके साथ इस आज्ञाका सब कहीं प्रचार कर दिया ॥ ३३ ॥ तिसके पीछे चारों ओरसे राक्षस लोगोंकी सुवर्णकोणाभिहत सोनेंके दंडे से ताडित और चंद्रमाकी समान उजले मुखवाले ढकनोंसे युक्त भेरियें

गजोगवाक्षोगवयःशरभोगंधमादनः ॥ समंतात्परिधावंतोररक्षुर्हरिवाहिनीम् ॥३१॥ ततःकोपपरीतात्मारावणोराक्षसेश्वरः ॥ निर्याणंसर्वसैन्यानांद्रुतमाज्ञापयत्तदा ॥ ३२ ॥ एतच्छ्रुत्वातदावाक्यंरावणस्यमुखेरितम् ॥ सहसाभीमनिर्घोषमुद्घुष्टरजनीचरैः ॥३३॥ ततःप्रबोधिताभेर्यश्चंद्रपांडुरपुष्कराः ॥ हेमकोणैरभिहताराक्षसानांसमंततः ॥ ३४ ॥ विनेदुश्चमहाघोषाःशंखाःशतसहस्रशः ॥ राक्षसानांसुघोराणांमुखमारुतपूरिताः ॥३५॥ तेबभुःशुकनीलांगाःसशंखारजनीचराः ॥ विद्युन्मंडलसन्नद्धाःसबलाकाइवांबुदाः ॥ ३६ ॥ निष्पतंतिततःसैन्याहृष्टारावणचोदिताः ॥ समयेपूर्यमाणस्यवेगाइवमहोदधेः ॥ ३७॥ ततोवानरसैन्येनमुक्तोनादःसमंततः ॥ मलयःपूरितोयेनससानुप्रस्थकंदरः ॥ ३८ ॥

बजनें लगीं ॥ ३४ ॥ घोर रूपवाले राक्षस लोगोंकी मुख पवनसे परिपूर्ण हो घोर शब्दसे युक्त सैकडों हजारों शंख एक समयमेंही बजनें लगे ॥ ३५ ॥ मेघमाल्यके साथ बिजलीके मिलनें और बगलोकी लंगारके सम्मित होंनेंसे जिस प्रकार शोभा होतीहै वैसेही शुकपक्षीकी समान नीले देहवाले राक्षस लोगोंके मुखमें लगे हुए शंख शोभायमान हुए ॥ ३६ ॥ इसके पीछे राक्षस लोग रावणकी आज्ञा पाय प्रलयकालके समय उछलते हुए समुद्रकी तरंगोंकी समान महावेगसे बाहर निकल कर चले ॥ ३७ ॥ इन राक्षसलोगोंको आते देखकर वानरोंकी सैना चारों ओरसे सिंहनाद करनें लगी. कि जिस्से बहुत दूर पर टिका हुआ मलयपर्वतभी शृङ्ग शिखर और कन्दराओंके साथ गूंजनें लगा ॥ ३८ ॥

भूषित और मुष्टिस्थानोंसे अलग शरासनको त्यागकर श्रीरामचंद्रजी वीरोचित सेजपर शयन करते हुए; उस समय उनमें कवच बख्तर धारण करनेंकीभी कुछ सामर्थ्य न रही ॥ २४ ॥ पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीको बाणोंकी सेजपर सोया हुआ देखकर लक्ष्मणजी जीवनकी आशा त्याग करते हुए॥२५॥ और उन कमलदललोचन रणतोषण शरण देनेंवाले अपने भ्राताको पृथ्वीमें गिरा हुआ देखकर विलाप करनें लगे ॥२६॥ वानरगणभी श्रीरामचंद्रजीकी ऐसी अवस्था देखकर अत्यन्त सन्तापित हुए और शोकके मारे नेत्रोंमें आंसू भरकर बड़े शब्दसे रोनें लगे ॥ २७ ॥ हनुमान इत्यादि मुखिया२ वानर लोग राम लक्ष्मण दोनों भाइयोंको नाग फाँससे बँधा हुआ और वीरोचित सेजपर शयन किये हुए देखकर चारों ओरसे घेर

बाणपातांतरेरामंपातितंपुरुषर्षभम् ॥ सतत्रलक्ष्मणोदृष्ट्वानिराशोजीवितेऽभवत् ॥ २५ ॥ रामंकमलपत्राक्षंशरण्यं
रणतोषिणम् ॥ शुशोचभ्रातरंदृष्ट्वापतितंधरणीतले ॥ २६ ॥ हरयश्चापितंदृष्ट्वासंतापंपरमंगताः ॥ शोकार्ताश्चुक्रुशुर्घो
रमश्रुपूरितलोचनाः ॥ २७ ॥ बद्धौतुतौवीरशयेशयानौतेवानराःसंपरिवार्यतस्थुः ॥ समागतावायुसुतप्रमुख्याविषाद
मार्ताःपरमंचजग्मुः ॥ २८ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा० आ०युद्धकांडेपंचचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४५ ॥ छ ॥ ततोद्यांपृथिवींचैववी
क्षमाणावनौकसः ॥ ददृशुःसंततैबाणैर्भ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ १ ॥ वृष्ट्वेवोपरतेदेवेकृतकर्मणिराक्षसे ॥ आजगामाथतंदे
शंससुग्रीवोविभीषणः ॥ २ ॥ नीलश्चद्विविदोमैंदःसुषेणःकुमुदोंगदः ॥ तूर्णंहनुमतासार्धमन्वशोचंतराघवौ ॥ ३ ॥

कर अत्यन्त विलाप करनें लगे ॥ २८ ॥ इ० श्रीम०वा०आ०यु० पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥ इसके पीछे वानर लोगोंनें भयके मारे आकाश और पृथ्वीको खोज करके देखा कि राम लक्ष्मण दोनों भाई नागफाँससे बँधेहुए पड़े हैं ॥१॥ तिसके पीछे इन्द्र जिस प्रकार जलधारा वर्षाय कर थँम जाते हैं, वैसेही इन्द्रजीत इन दोनों वीरोंको बाणजालसे घायल और बाँध करके थमगया,तब सुग्रीव विभीषणके सहित उस स्थानमें आये ॥२॥ तिसके पीछे नील, द्विविद, मैन्द, सुषेण, कुमुद, और अंगद हनुमानजीके साथ वहांपर आय श्रीरामचंद्रजीके निमित्त शोक करनें लगे ॥ ३ ॥

भीत पर चढ़े हुए राक्षसोंको नीचे पृथ्वीमें गिरानें लगे ॥ ४६ ॥ उस समय वानर और राक्षस लोगोंका ऐसा भारी घोर संग्राम हुआकि दोनों ओर वाले वीरोंके शरीरसे निकले हुए मांस और रुधिरसे रण भूमि कीचड़से परिपूर्ण होगई; और वह समर ऐसा हुआ; कि जैसा पहले कभी नहीं हुआथा ॥ ४७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्ध कांडे द्विचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४२ ॥ इस प्रकारसे महाबलवान वानर और राक्षसगण जब युद्ध करनें लगे, तब उनमें परस्पर जय लाभ करनेंकी कामनासे अत्यन्त दारुण क्रोध हुआ ॥ १ ॥ वह समस्त वीर राक्षसगण सुवर्णके आभूषण पहरे, घोड़े व अग्निकी शिखाके समान आकारवाले चमकते दमकते हाथियोंपर

ससंप्रहारस्तुमुलोमांसशोणितकर्दमः ॥ रक्षसांवानराणांचसंबभूवाद्भुतोपमः ॥ ४७ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेद्विचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४२ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ॥ युध्यतांतुततस्तेषांवानराणांमहात्मनाम् ॥ रक्षसांसंबभूवाथबलरोषःसुदारुणः ॥ १ ॥ तेहयैःकांचनापीडैर्गजैश्चाग्निशिखोपमैः ॥ रथैश्चादित्यसंकाशैःकवचैश्चमनोरमैः ॥ २ ॥ निर्ययूराक्षसावीरानादयंतोदिशोदश ॥ राक्षसाभीमकर्माणोरावणस्यजयैषिणः ॥ ३ ॥ वानराणामपिचमूर्बृहतीजयमिच्छताम् ॥ अभ्यधावततांसेनांरक्षसांघोरकर्मणाम् ॥ ४ ॥ एतस्मिन्नंतरेतेषामन्योन्यमभिधावताम् ॥ रक्षसांवानराणांचद्वंद्वयुद्धमवर्तत ॥ ५ ॥ अंगदेनेंद्रजित्सार्धंवालिपुत्रेणराक्षसः ॥ अयुध्यतमहातेजास्त्र्यंबकेणयथांधकः ॥ ६ ॥ प्रजंघेनचसंपातिर्नित्यंदुर्धर्षणोरणे ॥ जंबुमालिनमारब्धोहनुमानपिवानरः ॥ ७ ॥

और सूर्यकी समान प्रभावान रथोंपर चढ़ मनोहर कवच बख्तर धारण कर ॥ २ ॥ दशों दिशाओंमें निहारते भयंकर कर्म करनेंवाले राक्षस रावणके जयकी कामना किये संग्राम करनेंको आये ॥ ३ ॥ इन राक्षसोंकी सैनाको आता हुआ देखकर जयकी इच्छा किये बड़ी भारी वानर सैनाभी राक्षस लोगोंकी सैनाके सन्मुख धाई ॥ ४ ॥ जब इस प्रकार वानरोंकी सैना राक्षसोंपर धाई, व राक्षसी सैना वानरों पर धाई तब राक्षस वीर वानरगणोंका द्वंद्व युद्ध होंनें लगा ॥ ५ ॥ जिस प्रकार अन्धकासुरके साथ युद्ध करते हुए महादेवजीका संग्राम हुआथा, वैसेही महा तेजस्वी वालिकुमार अंगदजीके साथ इन्द्रजीतका युद्ध होंनें लगा ॥ ६ ॥ रणमें अति अजेय सम्पाती नाम वानर राक्षस

सब राक्षसोंको सन्तोष दिलाता कहनें लगा ॥ ११ ॥ कि जो सब जगत्‌में बड़े बलवान विख्यात हैं. जिनके हाथसे खर दूषण मारे गये, उन्हीं
राम लक्ष्मण दोनों भाइयोंका आज हमनें अपनें बाणोंसे संहार कर डाला ॥ १२ ॥ यदि सुर असुर, और समस्त ऋषिलोगभी यहां आन
कर इकट्ठे हो इनको नागफाँससे छुटानेंका यत्न करैं, परन्तु किसी प्रकारसेभी यह नागफाँस टूटनेंवाली नहीं ॥ १३ ॥ जिनके लिये हमारे पिता
भय और शोकसे अत्यन्तही व्याकुल थे, जिनके कारण वह हमारे पिता सेजपर विना अंगके लगायेही तीन पहर रात्रि बितादेते हैं ॥ १४ ॥
जिनके लिये लंकाके रहनेंवाले समस्तही लोग वर्षाके समयवाली नदीकी समान व्याकुलथे, उस अनर्थके मूलकोही आज हमनें उखाड़ डाला॥१५॥

दूषणस्यचहंतारौखरस्यचमहाबलौ ॥ सादितौमामकैर्बाणैर्भ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ १२ ॥ नेमौमोक्षयितुंशक्यावेतस्मा
दिषुबंधनात् ॥ सर्वैरपिसमागम्यसर्षिसंघैःसुरासुरैः ॥ १३ ॥यत्कृतेचिंतयानस्यशोकार्तस्यपितुर्मम ॥ अस्पृष्टद्वाश
यनंगात्रैस्त्रियामायातिशर्वरी ॥ १४ ॥ कृत्स्नेयंयत्कृतेलंकानदीवर्षास्विवाकुला ॥ सोयंमूलहरोनर्थःसर्वेषांशमितोमया
॥ १५ ॥ रामस्यलक्ष्मणस्यैवसर्वेषांचवनौकसाम् ॥ विक्रमानिष्फलाःसर्वेयथाशरदितोयदाः ॥ १६ ॥ एवमुक्त्वातुतान्स
र्वान्राक्षसान्परिपश्यतः ॥ यूथपानपितान्सर्वांस्ताडयत्सचरावणिः ॥ १७ ॥ नीलंनवभिराहत्यमैंदंसद्विविदंतथा ॥ त्रि
भिस्त्रिभिरमित्रघ्नस्ततापपरमेषुभिः ॥ १८ ॥ जांबवंतंमहेष्वासोविद्धाबाणेनवक्षसि ॥ हनूमतोवेगवतोविससर्जशरा
न्दश ॥ १९ ॥ गवाक्षंशरभंचैवतावप्यमितविक्रमौ ॥ द्वाभ्यांद्वाभ्यांमहावेगोविव्याधयुधिरावणिः ॥ २० ॥

शरदकालके मेघ जिस प्रकार निष्फल होते हैं; वैसेही राम-लक्ष्मण व और समस्त वानरोंका विक्रम निष्फल हो गया ॥ १६ ॥ राक्षस लोगोंसे
यह वचन कहकर उनके सन्मुखही वानरोंके यूथनाथोंकोभी ताड़ना करनें लगा ॥ १७ ॥ उस अमित्र घाती अति धनुर्द्धर मेघनादनें वीर नील
पर नल और मैन्द व द्विविद वानरपर तीन२ अति तीखे बाण चलायकर उनको वींध डाला ॥ १८ ॥ तिसके पीछे जाम्बवानकी छातीमें एक बाण
मारकर उसनें हनुमानजीके ऊपर दश बाण चलाये ॥ १९ ॥ गवाक्ष और शरभके ऊपर महा पराक्रमी वेगवान मेघनादनें दो दो बाण चलाये और

राक्षस और वानर गणोंकी पर्वताकार देहसे प्रहारोंके लगनेंसे जो रक्तकी धार निकलतीथी, वही नदीकी समान और उनके शरीरके रोमसमूहथे वही शैवाल की समान जान पड़नें लगे ॥ १७ ॥ वज्रधारी इन्द्रजी जिसप्रकार वज्र चलातेहैं, वैसेही इन्द्रजीत मेघनादनें क्रोधमें मूर्छित होकर शत्रुओंकी सैनाको विदारण करनेंवाले अंगदजीको ताककर एक गदा इनके ऊपर चलाई ॥ १८ ॥ वानरश्रेष्ठ वेगवान अंगदजीनें मेघनादकी चलाई गदा पकड़ करके उसके अश्व, सारथी और सुवर्णसे चित्रित रथको कीर्चेर करडाला ॥ १९ ॥ प्रजङ्घ राक्षसनें तीन बाणद्वारा संपाति नाम वानर पर प्रहार किया, तदनन्तर संपातिनें एक अश्वकर्णके वृक्षको उखाड़कर प्रजङ्घके मस्तकपर चलाया ॥ २० ॥ रथोंमें बैठेहुए महाबलवान

हरिराक्षसदेहेभ्यःप्रसृताःकेशशाद्वलाः॥शरीरसंघाटवहाःप्रसुस्त्रुःशोणितापगाः ॥१७॥ आजघानेंद्रजित्क्रुद्धोवज्रेणेवशतक्रतुः ॥ अंगदंगदयावीरंशत्रुसैन्यविदारणम् ॥१८॥ तस्यकांचनचित्रांगंरथंसाश्वंससारथिम् ॥ जघानगदयाश्रीमानंगदोवेगवान्हरिः ॥ १९ ॥ संपातिस्तुप्रजंघेनत्रिभिर्बाणैःसमाहतः ॥ निजघानाश्वकर्णेनप्रजंघंरणमूर्धनि ॥ २० ॥ जंबुमालीरथस्थस्तुरथशक्त्यामहाबलः ॥ बिभेदसमरेक्रुद्धोहनुमंतंस्तनांतरे ॥ २१ ॥ तस्यतंरथमास्थायहनूमान्मारुतात्मजः ॥ प्रममाथतलेनाशुसहतेनैवरक्षसा ॥ २२ ॥ नदन्प्रतपनोघोरोनलंसोभ्यनुधावत ॥ नलःप्रतपनस्याशुपातयामासचक्षुषी ॥ २३ ॥ भिन्नगात्रःशरैस्तीक्ष्णैःक्षिप्रहस्तेनरक्षसा ॥ ग्रसंतमिवसैन्यानिप्रघसंवानराधिपः ॥ २४ ॥ सुग्रीवःसप्तपर्णेननिजघानजवेनच ॥ प्रपीड्यशरवर्षेणराक्षसंभीमदर्शनम् ॥ २५ ॥

जम्बुमाली नाम राक्षसनें क्रोधमें भरकर हनुमानजीके बीच छातीमें एक शक्ति मारी ॥ २१ ॥ शक्ति लगनेंपर हनुमानजीनें अति शीघ्रताके साथ उसके रथपर कूद उसमें एक लात मारी कि जिस्से वह रथ चूर्ण होगया; और उसके सहित उस राक्षसकाभी नाश कर दिया ॥ २२ ॥ भयंकराकार प्रतपन नामक राक्षस शब्द करता हुआ नल नाम वानरकी ओर दौड़ा, वीर नलनेंभी विक्रम प्रकाश करके उस राक्षसकी दोनों आंखें निकालली ॥ २३ ॥ बाण चलानेंमें चतुर उस राक्षसके बाण चलानेंसे यद्यपि नलका शरीर छिन्न भिन्न होरहाथा, परन्तु तौभी उन्होंनें उसकी आंखें निकालली, इधर प्रघस नामक राक्षसनें समस्त सैनाको निकल जाना विचारा परन्तु वानरोंके राजा ॥ २४ ॥ सुग्रीवजीनें महा

उस समय बड़े चतुर विभीषणजी नेत्रोंमें आंसूभरे हुए दीनभावसे युक्त और क्रोधाकुल नेत्र वानरराज सुग्रीवजीसे बोले कि हे सुग्रीव! त्रासको छोड़ो और रोनेंकाभी कुछ काम नहीं ॥ ३० ॥ युद्धका फल इसी प्रकारसे हुआ करताहै, कारण कि कभी किसीको सदा जय नहीं प्राप्त हुआ करतीहै, हे वीर! यदि हम लोगोंका भाग्य प्रसन्न होजायगा ॥ ३१ ॥ तौ महाबलवान महात्मा इन दोनों भाइयोंका मोह बहुतही शीघ्र छुट जायगा; हेवानरपाति! तुम निश्चय जानना कि जो लोग सत्य और धर्मके अनुरागी होतेहैं; उन लोगोंको कभी मृत्यु उपस्थित नहीं होती, इसलिये तुम अनाथकी समान शोक न करके अपनेको और हमको सावधान करो ॥३२॥ विभीषणजीनें यह कहकर प्रथम अपने हाथमें लिये हुए जलसे सुग्रीवजीके दोनों नेत्र धोय दिये॥३३॥तिसके पीछे फिर जल हाथमें लेकर उसको शोकनिवारण विद्यासे अभिमंत्रितकर उस्से फिर सुग्रीवके दोनोंनेत्र धोदिये ॥३४॥तब बुद्धिमान् वानरराज सुग्रीवजीके नेत्र जलसे पोंछ समयके अनुसार व्याकुलताके निवारण करनेंवाले वचन विभीषणजी बोले ॥३५॥ हेसखे! यह व्याकुल होनेंके योग्य समय नहींहै जान लो कि ऐसे कठिन समयमें स्नेहभी मृत्युका कारण होजाताहै॥३६॥इस कारण इन सब कार्योंकी विनाश करनेंवाली विकलताको छोड़कर जिस्से श्रीरामचंद्रजीकी अनुगामी सेनाका मंगल होवे ऐसा तुमको करना उचितहै ॥ ३७ ॥

तमुवाचपरित्रस्तंवानरेंद्रंविभीषणः ॥ सबाष्पवदनंदीनंक्रोधव्याकुललोचनम् ॥ अलंत्रासेनसुग्रीवबाष्पवेगोनिगृह्य
ताम् ॥ ३० ॥ एवंप्रायाणियुद्धानिविजयोनास्तिनैष्ठिकः ॥ सभाग्यशेषतास्माकंयदिवीरभविष्यति ॥ ३१ ॥ मो
हमेतौप्रहास्येतेमहात्मानौमहाबलौ ॥ पर्यवस्थापयात्मानमनाथंमांचवानर ॥ सत्यधर्माभिरक्तानांनास्तिमृत्युकृतं
भयम् ॥ ३२ ॥ एवमुक्त्वाततस्तस्यजलक्लिन्नेनपाणिना ॥ सुग्रीवस्यशुभेनेत्रेप्रममार्जविभीषणः ॥ ३३ ॥ ततःस
लिलमादायविद्ययापरिजप्यच ॥ सुग्रीवनेत्रेधर्मात्माप्रममार्जविभीषणः ॥ ३४ ॥ विमृज्यवदनंतस्यकपिराजस्यधी
मतः ॥ अब्रवीत्कालसंप्राप्तमसंभ्रांतमिदंवचः ॥३५॥ नकालःकपिराजेंद्रवैक्लव्यमवलंबितुम् ॥ अतिस्नेहोऽपिकालेऽस्मि
न्मरणायोपकल्पते ॥३६॥ तस्मादुत्सृज्यवैक्लव्यंसर्वकार्यविनाशनम् ॥ हितंरामपुरोगाणांसैन्यानामनुचिंतय ॥३७॥

वज्रकी समान बाणोंसे वृक्ष ग्रहण करके युद्ध करते हुए वानरोंमें श्रेष्ठ द्विविदको विद्ध किया ॥ ३३ ॥ परन्तु बाणोंके लगनेंसे द्विविदको अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हुआ और इन्होंनें एक शालका वृक्ष उखाड़ कर अश्व और रथके सहित राक्षसका संहार किया॥ ३४ ॥ रथमें बैठा हुआ राक्षस विद्युन्माली स्वर्णभूषित अनेक बाणोंको चलाय सुषेणजीको पीड़ित करके वारंवार सिंहनाद करनेंलगा ॥ ३५ ॥ तब वानरोंमें श्रेष्ठ सुषेण जीनें उसको रथमें बैठा हुआ देखकर एक पर्वताकार शिला चलाय उसके रथका चूर्ण करदिया ॥ ३६ ॥ तब निशाचर विद्युन्माली अत्यन्त शीघ्र चतुरता सहित रथपरसे उतरकर अजेय गदा लेकर पृथ्वीमें खड़ा होगया ॥ ३७ ॥ तब वानर सुषेण, राक्षसको खड़ा हुआ देखकर क्रोधि

सशरैरभिविद्धांगोद्विविदःक्रोधमूर्छितः ॥ सालेनसरथंसाश्वंनिजघानाशनिप्रभम् ॥ ३४ ॥ विद्युन्मालीरथस्थस्तुशरैः कांचनभूषणैः ॥ सुषेणंताडयामासननादचमुहुर्मुहुः ॥ ३५ ॥ तंरथस्थमथोदृष्ट्वासुषेणोवानरोत्तमः ॥ गिरिशृंगेणमहतारथमाशुन्यपातयत् ॥ ३६ ॥ लाघवेनतुसंयुक्तोविद्युन्मालीनिशाचरः ॥ अपक्रम्यरथात्तूर्णंगदापाणिःक्षितौस्थितः ॥ ३७ ॥ ततःक्रोधसमाविष्टःसुषेणोहरिपुंगवः ॥ शिलांसुमहतींगृह्यनिशाचरमभिद्रवत् ॥ ३८ ॥ तमापतंतंगदयाविद्युन्मालीनिशाचरः ॥ वक्षस्यभिजघानाशुसुषेणंहरिपुंगवम् ॥ ३९ ॥ गदाप्रहारंतंघोरमचिंत्यप्लवगोत्तमः ॥ तांतूष्णींपातयामासतस्योरसिमहामृधे ॥ ४० ॥ शिलाप्रहाराभिहतोविद्युन्मालीनिशाचरः ॥ निष्पिष्टहृदयोभूमौगतासुर्निपपातह ॥ ४१ ॥ एवंतैर्वानरैःशूरैःशूरास्तेरजनीचराः ॥ द्वंद्वेविमथितास्तत्रदैत्याइवदिवौकसः ॥ ४२ ॥

त हो शिला ग्रहण करके इसकी ओरको दौड़े ॥ ३८ ॥ निशाचर विद्युन्माली इनको शिला ग्रहण किये आता हुआ देखकर शीघ्रतासे वानर श्रेष्ठ सुषेणजीकी छातीमें गदाका प्रहार करता हुआ ॥ ३९ ॥ वानरश्रेष्ठ सुषेणजीनें उस गदाको कुछभी न समझ कर उस राक्षस विद्युन्मालीकी छातीमें प्रथमही ग्रहणकीहुई अपनी शिलाको चलाया ॥ ४० ॥ निशाचर विद्युन्माली उस शिलाके प्रहार लगनेंसे पीड़ित और चूर्णित हृदय होकर पृथ्वी पर गिरा कि जिस्से उसके प्राणतक निकल गये ॥ ४१ ॥ इस प्रकारसे उस द्वन्द्व युद्धमें सुर गणसे असुर गणोंकी समान शूर निशा

बैठा हुआ रावण अपने दोनों शत्रुओंका मारा जाना सुनकर खड़ाहो हर्षित अंतःकरणसे पुत्रको हृदयसे लगाताहुआ ॥ ४६ ॥ तब रावणनें अति प्रसन्नता सहित पुत्रका मस्तक सूंघकर पुत्रसे युद्धका समस्त वृत्तान्त पूछा, पुत्र इन्द्रजीतनेंभी सब चरित्र पितासे निवेदन किया ॥ ४७ ॥ जिस प्रकारसे राम और लक्ष्मणको संग्राममें नागपाशसे बांधकर चेष्टाहीन और प्रभाहीन किया,वह सब वृत्तान्त रावणसे इन्द्रजीतनें कहा ॥ ४८ ॥ महाबलवान महारथ इन्द्रजीतके मुखसे संग्राममें जीतनेका समाचार पाय अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ, और उस समय उसके अंतःकरणसें श्रीरामचंद्रजीका भय दूर होगया, तब वह हर्षित वचनोंसे पुत्रकी बड़ाई करनेंलगा ॥ ४९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्ध

उपाघ्रायचतंमूर्ध्निपप्रच्छप्रीतमानसः ॥ पृच्छतेचयथावृत्तंपित्रेतस्मैन्यवेदयत् ॥ ४७॥ यथातौशरबंधेननिश्चेष्टौनिष्प्र भौकृतौ ॥४८॥ सहर्षवेगानुगतांतरात्माश्रुत्वागिरंतस्यमहारथस्य ॥ जहौज्वरंदाशरथेःसमुत्थंप्रहृष्टवाचाभिननंदपु त्रम् ॥ ४९ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेषट्चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४६ ॥ छ ॥ तस्मिन्प्रविष्टेलं कायांकृतार्थेरावणात्मजे ॥ राघवंपरिवार्याथररक्षुर्वानरर्षभाः ॥ १ ॥ हनुमानंगदोनीलःसुषेणःकुमुदोनलः ॥ गजो गवाक्षःपनसःसानुप्रस्थोमहाहरिः ॥ २ ॥ जांबवानृषभःसुंदोरंभःशतबलिःपृथुः ॥ व्यूढानीकाश्चयत्ताश्चद्रुमानादायस र्वतः ॥ ३ ॥ वीक्षमाणादिशःसर्वास्तिर्यगूर्ध्वंचवानराः ॥ तृणेष्वपिचचेष्टत्सुराक्षसाइतिमेनिरे ॥ ४ ॥

काण्डे षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥ ॥ छ ॥ तिसके पीछे जब रावणका पुत्र मेघनाद रणविजयी होकर लंकाको चलागया, तब वानरश्रेष्ठगण श्रीरामचंद्रजीको चारों ओरसे घेरकर उनकी रक्षा करनें लगे ॥ १ ॥ हनुमान, अंगद, नील, सुषेण, कुमुद, नल, गज, गवाक्ष, पनस, महावानर सानुप्रस्थ ॥ २ ॥ जाम्बवान, ऋषभ, सुन्द, रम्भ, शतबलि और पृथु इत्यादि यह सबही वानर यूथपगण वृक्षोंको हाथमें ग्रहणकर सैनाका व्यूह बनाय श्रीरामचंद्रजीकी रक्षा करनें लगे ॥ ३ ॥ उस कालमें रक्षामें नियुक्त हुए वानर गण इस प्रकारकी

उसकाल उस सैनाके वीचमें मारडालो फाड़डालो भागता क्यों है लौट करआ इस प्रकारसे कठोर शब्द सुनाई आने लगे ॥ ४ ॥ उस अं धकारमें काले वर्णवाले राक्षस लोग सुवर्णका बना कवच धारण करनेंसे प्रदीप्त औषधिवन भूषित पर्वतराजोंकी समान जान पड़नें लगे ॥ ५ ॥ उस अपार अन्धकारमें क्रोधसे भरे हुए राक्षस लोग वानरोंकी सैनामें अति वेगसे प्रवेश करकै उनको भक्षण करनें लगे ॥ ६ ॥ भयंकर क्रोध किये हुए वानरगणभी छलांग मार २ कर अपने तीक्ष्ण दांतोंसे काट कर राक्षस लोगोंके सुवर्णसे मंडित घोड़े और सर्पाकार ध्वजाओंके डंडे खंड २ करने लगे ॥ ७ ॥ उस संग्रामभूमिमें बलवान वानरगणोंनेंभी राक्षसोंकी सैनाको खल बलाय दिया, हाथी और हाथियोंके सवार

हतदारयचैहीतिकथंविद्रवसीतिच ॥ एवंसुतुमुलःशब्दस्तस्मिन्सैन्येतुशुश्रुवे ॥ ४ ॥ कालाःकांचनसन्नाहास्तस्मिंस्त मसिराक्षसाः ॥ संप्रदृश्यंतशैलेंद्रादीप्तौषधिवनाइव ॥ ५ ॥ तस्मिंस्तमसिदुष्पारेराक्षसाःक्रोधमूर्च्छिताः ॥ परिपेतुर्म हावेगाभक्षयंतःप्लवंगमान् ॥ ६ ॥ तेहयान्कांचनापीडान्ध्वजांश्चाशीविषोपमान् ॥ आप्लुत्यदशनैस्तीक्ष्णैर्भीमको पाव्यदारयन् ॥ ७ ॥ वानराबलिनोयुद्धेऽक्षोभयन्राक्षसींचमूम् ॥ कुंजरान्कुंजरारोहान्पताकाध्वजिनोरथान् ॥ ८ ॥ चकर्षुश्चददंशुश्चदशनैःक्रोधमूर्च्छिताः ॥ लक्ष्मणश्चापिरामश्चशरैराशीविषोपमैः ॥ ९ ॥ दृश्यादृश्यानिरक्षांसिप्रवरा णिनिजघ्नतुः ॥ तुरंगखुरविध्वस्तंरथनेमिसमुत्थितम् ॥ १० ॥ रुरोधकर्णनेत्राणियुध्यतांधरणीरजः ॥ वर्तमानेतथाघो रेसंग्रामेलोमहर्षणे ॥ रुधिरौघामहाघोरानद्यस्तत्रविसुस्रुवुः ॥ ११ ॥ ततोभेरीमृदंगानांपणवानांचनिःस्वनः ॥ शं खनेमिस्वनोन्मिश्रःसंबभूवाद्भुतोपमः ॥ १२ ॥

पताका और ध्वजा शोभित रथ ॥ ८ ॥ सबको यह वानरगण क्रोधमें मूर्छित होकर खेंचनें व दांतोंसे काटनें लगे । लक्ष्मण और श्रीरामचं द्रजीभी विषकी समान बाणधारा वर्षायकर ॥ ९ ॥ दीखते अन दीखते बडे २ राक्षसोंका संहार करनें लगे । उस कालमें घोडोंके खुरोंसे रथके पहियोंसे उठी हुई धूरिने ॥ १० ॥ युद्ध करती हुई सैनाके कान और नेत्र पृथ्वीपरसे उड़कर मूंदलिये, इस प्रकारसे कठोर और रोमहर्षण कारी संग्राम आरंभ हुआ; तब उस संग्राममें घोर रुधिरकी नदी वहनें लगी ॥ ११ ॥ तिसके पीछे शंखका शब्द, रथचक्रकी खर २ ध्वनि भेरी

और पतिके शोकसे दुर्बल हुई सीताको उन राक्षसियोंनें अपनें हाथसे पकड़कर पुष्पकविमानपर चढ़ाया ॥ १३ ॥ रावण त्रिजटाके साथ सीताजीको पुष्पक विमानमें सवार कराकर ध्वजा पताकोंओंसे शोभायमान लंकापुरीमें घुमानें लगा ॥ १४ ॥ उस राक्षसपति रावणनें घुमानेंके कालमें चारों ओर यह पुकारवाया कि "संग्रामभूमिमें इन्द्रजीतके हाथसे राम लक्ष्मण दोनों भाई मारे गये" ॥ १५ ॥ इस पीछे जनककुमारी सीताजी त्रिजटाके सहित रणभूमिमें जाय कर देखती हुई कि लगभग समस्त वानरसैनाही मरी पड़ीहै ॥ १६ ॥ मांसके खानेंवाले राक्षस लोग हर्षित अंतःकरणसे चारों ओर घूमरहेहैं; और वानर गण दुःखित मनसे श्रीराम लक्ष्मणजीके निकट खड़े हुएहैं ॥ १७ ॥

तामादायतुराक्षस्योभर्तृशोकपराजिताम् ॥ सीतामारोपयामासुर्विमानंपुष्पकंतदा ॥ १३ ॥ ततःपुष्पकमारोप्यसीतांत्रिजटयासह ॥ रावणश्चारयामासपताकाध्वजमालिनीम् ॥ १४ ॥ प्राघोषयतहृष्टश्चलंकायांराक्षसेश्वरः॥ राघवोलक्ष्मणश्चैवहताविंद्रजितारणे ॥ १५ ॥ विमानेनापिगत्वातुसीतात्रिजटयासह ॥ ददर्शवानराणांतुसर्वंसैन्यंनिपातितम् ॥ १६ ॥ प्रहृष्टमनसश्चापिददर्शपिशिताशनान् ॥ वानरांश्चातिदुःखार्तान्रामलक्ष्मणपार्श्वतः ॥ १७ ॥ ततःसीताददर्शोभौशयानौशरतल्पगौ ॥ लक्ष्मणंचैवरामंचविसंज्ञौशरपीडितौ ॥ १८ ॥ विध्वस्तकवचौवीरौविप्रविद्धशरासनौ ॥ सायकैश्छिन्नसर्वांगौशरस्तंबमयौक्षितौ ॥ १९ ॥ तौदृष्ट्वाभ्रातरौतत्रप्रवीरौपुरुषर्षभौ ॥ शयानौपुंडरीकाक्षौकुमाराविवपावकी ॥२०॥ शरतल्पगतौवीरौतथाभूतौनरर्षभौ ॥ दुःखार्ताकरुणंसीतासुभृशंविललापह॥ २१॥

तिसके पीछे जनककुमारी जानकीजीनें देखा कि राम और लक्ष्मणजी बाणोंसे पीड़ित होनेंके कारण चेतनारहितहो बाणोंकी शेजपर पड़े हुए हैं ॥ १८ ॥ वह दोवीरश्रेष्ठ दोनों भाई राम और लक्ष्मणजी कवचहीन धनुष त्याग किये सब अंगोंमें बाण विंधवाये पृथ्वीपर पड़े हुएहैं ॥ १९ ॥ जानकीजीनें देखा—वह वीराग्रगण्य पुरुषश्रेष्ठ पुण्डरीकाक्ष दोनों भ्राता, दो अग्निकुमारोंकी समान बाणोंकी शेज पर शयन किये हुएथे ॥ २० ॥ उन पुरुषश्रेष्ठ दोनों वीरोंको ऐसी अवस्थामें बाणोंकी शेजपर शयन किये हुए देख जनककुमारी सीताजी दुःखकी अधिकाईके

जीवको ले रणभूमिसे भागगये ॥ २१ ॥ उस कालमें महारथी श्रीरामचंद्रजी इस प्रकार अग्निकी लपटके समान बाण चलानेंलगे कि जिस्से पलभरमें दशोंदिशा व विदिशाओंमें अंधकार छायगया ॥ २२ ॥ जिस प्रकार अग्निके मुखमें गिरकर पतंगे जल जाते हैं; वैसेही जो राक्षस श्रीरामचंद्रजीकी ओर धायेथे उनका उसी समय नाश होगया ॥ २३ ॥ सबही कहीं सुवर्ण लगे बाणोंके गिरनेंसे, वह रात्रि पटबीजनों करके युक्त शरदृऋतुकी रात्रिके समान विचित्र ज्ञात होनें लगी ॥ २४ ॥ राक्षस लोगोंके सिंहनाद और भेरीके शब्दसे शब्दायमान होनेंके कारण वह रात्रि औरभी घोर भयंकर होगई ॥ २५ ॥ सर्व प्रकारसे बढ़ा हुआ बड़ा भारी शब्द त्रिकूट पर्वतकी कन्दराओंमें प्रवेश करके गुंजार करनें

निमेषांतरमात्रेणघोरैरग्निशिखोपमैः ॥ दिशश्चकारविमलाःप्रदिशश्चमहारथः ॥ २२ ॥ येत्वन्येराक्षसावीरारामस्या भिमुखेस्थिताः॥ तेपिनष्टाःसमासाद्यपतंगाइवपावकम् ॥ २३ ॥ सुवर्णपुंखैर्विशिखैःसंपतद्भिःसमंततः ॥ बभूवरजनी चित्राखद्योतैरिवशारदी ॥ २४ ॥ राक्षसानांचनिनदैर्भेरीणांचैवनिःस्वनैः ॥ साबभूवनिशाघोराभूयोघोरतराभव त् ॥ २५ ॥ तेनशब्देनमहताप्रवृद्धेनसमंततः ॥ त्रिकूटःकंदराकीर्णःप्रव्याहरदिवाचलः ॥ २६ ॥ गोलांगूलामहाकाया स्तमसातुल्यवर्चसः ॥ संपरिष्वज्यबाहुभ्यांभक्षयन्रजनीचरान् ॥ २७ ॥ अंगदस्तुरणेशत्रून्निहंतुंसमुपस्थितः ॥ इं द्रजित्तुरथंत्यक्त्वाहताश्वोहतसारथिः ॥ अंगदेनमहायस्तस्तत्रैवांतरधीयत ॥ २८ ॥ तत्कर्मवालिपुत्रस्यसर्वेदेवाः सहर्षिभिः॥ तुष्टुवुःपूजनार्हस्यतौचोभौरामलक्ष्मणौ ॥ २९ ॥

लगा ॥ २६ ॥ श्याम रंगवाले महाशरीरधारी गोपुच्छ वानरगण अपनी बांहोंसे राक्षसोंको पकड़ फिर भक्षण करनेंलगे ॥ २७ ॥ अंगदजीभी शत्रुका विनाश करनेंकी वासनासे रणमें प्रवेश करके रावणके पुत्र इन्द्रजीतके ऊपर प्रहार करते हुए, और उसके सारथि व घोड़ोंको मार डाला, परन्तु मायाविशारद इन्द्रजीत अंगदजी करके घोड़े और सारथिके मारे जानें परभी रथको छोड़कर उसी स्थानमें अन्तर्ध्यान होजाताहुआ ॥ २८ ॥ देवता, और ऋषिलोगोंके प्रशंसा करनेंके योग्य वालिकुमार अंगदजीका ऐसा कठिन कार्य देखकर उनकी व राम

प्रतिज्ञा करके हमारे अभिषेकके सम्बन्धमें जो शुभकारी वार्त्ता कहीथी,सो आज श्रीरामचंद्रजीके मृतक हो जानेसे उनके वचनभी विफल हो गये ॥ ५ ॥ दोनों चरणोंमें पद्म चिह्न रहनेसे जो कुलकी स्त्रियां नरेन्द्रपतियोंके साथ अधिराजस्थानपर अभिषेचित होतीहैं, वे पद्माकार रेखा रूप हमारे चरणोंमें हैं ॥ ६ ॥ क्या आश्चर्य है कि जिन सब कुलक्षणोंके रहनेसे दुर्भाग्यवती स्त्रियें विधवा अवस्थाको प्राप्त होतीहैं; हम विशेष रूपसे देख भालकरभी अपने शरीरमें वैसा कोई कुलक्षण नहीं देखती वरन जबकि हम ऐसे सुलक्षण युक्त होकरभी विधवा हुई; इस्से निश्चयही बोध होताहै कि यह पद्म चिह्न इत्यादि हमसे हत होगये ॥ ७ ॥ हा!लक्षण जाननेंवाले पंडित लोग जिस पद्मचिह्नका "अमोघ" फल कहा

इमानिखलुपद्मानिपादयोर्वैकुलस्त्रियः ॥ आधिराज्येऽभिषिच्यंतेनरेंद्रैःपतिभिःसह ॥ ६ ॥ वैधव्यंयांतियैर्नार्योऽलक्षणैर्भाग्यदुर्लभाः ॥ नात्मनस्तानिपश्यामिपश्यंतीहतलक्षणा ॥७॥ सत्यनामानिपद्मानिस्त्रीणामुक्तानिलक्षणैः ॥ तान्यद्यनिहतेरामेवितथानिभवंतिमे ॥ ८ ॥ केशाःसूक्ष्माःसमानीलाभ्रुवौचासंहतेमम ॥ वृत्तेचारोमकेजंघेदंताश्चाविरलाममम ॥ ९ ॥ शंखेनेत्रेकरौपादौगुल्फावूरूसमौचितौ ॥ अनुवृत्तनखाःस्निग्धाःसमाश्चांगुलयोमम ॥ १० ॥ स्तनौचाविरलौपीनौमामकौमग्नचूचुकौ ॥ मग्नाचोत्सेधनीनाभिःपार्श्वोरस्कंचमेचितम् ॥ ११ ॥ ममवर्णोमणिनिभोमृदून्यंगरुहाणिच ॥ प्रतिष्ठितांद्वादशभिर्मामूचुःशुभलक्षणाम् ॥ १२ ॥

करतेहैं श्रीरामचंद्रजीके निहत होंनेसे आज हमारे जान तौ यह सबमिथ्या होगये ॥ ८ ॥ देखो स्त्रियोंके समस्त सुलक्षण हममें हैं, नील, पतले, और बराबर हमारे केशहैं, दोनों भौंयें परस्पर मिली हुईनहीं हैं दोनो जांघें गोल और रोम रहितहैं, दांतोंकी पंक्ति विरल है ॥ ९ ॥ नेत्रोंके कोये, नेत्र, हाथ, पांव, घुटने, उरू, यह सब हमारे मोटेहैं, चढा उतार, चिकने लाल नखहैं, उंगलियें, समस्त बराबर हैं ॥ १० ॥ हमारे परस्पर मिले हुए स्तन ऐसे मोटे और ऊंचेहैं मानो दोनो स्तनकोरक उनमें पैठेही जातेहैं, हमारे स्तनोके निकटवाली बगल व उरू विशालहै नाभि ऊंची पार्श्ववाली और सुगंभीरहै ॥ ११ ॥ हमारा वर्ण शान पर चढ़ी मणिकी समान उजलाहै, रोम समस्त कोमल

इन्द्रजीत करके नागमय बाणसमूहोंसे बँधनें पर वानर लोग विस्मित होकर देखनें लगे ॥ ३७ ॥ राक्षसराज रावणके पुत्र इन्द्रजीतनें जिस समय देखाकि राम लक्ष्मणको सन्मुख संग्राममें जीत लेना कुछ सहज बात नहीं है; तब उस समय दुरात्मा निशाचर मायाके बलका आश्रय करके सबके सन्मुख अन्तर्ध्यान होकर उन दोनों राजकुमारोंको बांधलेता हुआ ॥ ३८ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०यु०चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥
तब उस दुष्टात्मा मेघनादके खोजनेंके लिये महा प्रतापी राजकुमारजीनें दश बलवान वानर यूथपोंको आज्ञादी ॥ १ ॥ उनमें दो तौ सुषेणके भाईथे और वानरोंमें श्रेष्ठ नील, वालिकुमार अंगद, अतिवेगवान शरभ ॥ २ ॥ द्विविद हनुमान महाबलवान, प्रस्थ, ऋषभ, और ऋषभस्कन्ध

प्रकाशरूपस्तुयदानशक्तस्तौबाधितुंराक्षसराजपुत्रः ॥ मायांप्रयोक्तुंसमुपाजगामबबंधतौराजसुतौदुरात्मा ॥ ३८ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० युद्धकांडेचतुश्चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४४ ॥ ७ ॥ ॥ सतस्यगतिमन्विच्छन्राजपुत्रःप्रतापवान् ॥ दिदेशातिबलोरामोदशवानरयूथपान् ॥ १ ॥ द्वौसुषेणस्यदायादौनीलंचप्लवगाधिपम् ॥ अंगदंवालिपुत्रंचशरभंचतरस्विनम् ॥ २ ॥ द्विविदंचहनूमंतंसानुप्रस्थंमहाबलम् ॥ ऋषभंचर्षभस्कंधमादिदेशपरंतपः ॥ ३ ॥ तेसंप्रहृष्टाहरयोभीमानुद्यम्यपादपान् ॥ आकाशंविविशुःसर्वेमार्गमाणादिशोदश ॥ ४ ॥ तेषांवेगवतांवेगमिषुभिर्वेगवत्तरैः ॥ अस्त्रवित्परमास्त्रेणवारयामासरावणिः ॥ ५ ॥ तंभीमवेगाहरयोनाराचैःक्षतविक्षताः ॥ अंधकारेनदद्दृशुर्मेघैःसूर्यमिवावृतम् ॥ ६ ॥ रामलक्ष्मणयोरेवसर्वदेहभिदःशरान् ॥ भृशमावेशयामासरावणिःसमितिंजयः ॥ ७ ॥

इन्हीं दश शत्रुओंके तपानेवाले वानरोंको श्रीरामचंद्रजीने आज्ञादी ॥ ३ ॥ यह सुनकर वह वानरगण अत्यन्त आनंदित होकर बड़े २ वृक्षोंको उठाय दशों दिशाओंको खोजते हुए आकाशमें प्रवेश करते हुए ॥ ४ ॥ अस्त्रके जाननें वाले इन्द्रजीतनें ब्रह्मास्त्र मंत्र पढ़े हुए बाणोंसे उन वेगवान वानरोंकी गति रोकदी ॥ ५ ॥ वह वेगवान वानरगण बाण जालसे छिन्नभिन्न होकर बादलसे ढके हुए सूर्यकी समान अंधकारमें छिपे हुए इन्द्रजीतको नहीं देखसके ॥ ६ ॥ इतनेही अवसरमें रणदुर्जय रावणका पुत्र मेघनाद सर्व देहके भेद करनेंवाले बाणोंसे राम लक्ष्मणजीको विद्ध

में क्यों मारे जाते? ॥ १९ ॥ श्रीरामचंद्रजी, महारथी लक्ष्मणजी जननी अथवा अपने लियेभी हमें ऐसा शोक नहीं; परन्तु तपस्विनी सास कौशल्याजीके परिणामकी चिन्ता करके हमारी छाती फटी जाती है ॥ २० ॥वह सदा यही चिंता किया करती हैं कि--कब राम लक्ष्मण वधूके सहित व्रत समाप्त करके आवेंगे? कब हम उनको देखनें पावेंगी? ॥ २१ ॥ जब जनक कुमारी सीताजी इस प्रकारसे विलापकर रहीथीं तब त्रिजटा नाम राक्षसीनें कहा कि--हे देवि! तुम अब विलाप न करो, कारण कि तुम्हारे स्वामी अभी जीवितहैं ॥ २२ ॥ हे देवि! भ्राता राम और लक्ष्मण जिस प्रकारसे जीवितहैं, इसका बड़ा भारी कारण हम कहती हैं; तुम उसको श्रवण करो ॥ २३ ॥ यह वानरगण क्रोध प्रकाश कररहे हैं और उनके मु

नशोचामितथारामंलक्ष्मणंचमहारथम् ॥ नात्मानंजननींचापियथाश्वश्रूंतपस्विनीम् ॥ २० ॥ सातुचिंतयतेनित्यं समाप्तव्रतमागतम् ॥ कदाद्रक्ष्यामिसीतांचलक्ष्मणंचसराघवम् ॥ २१ ॥ परिदेवयमानांतांराक्षसीत्रिजटाब्रवीत् ॥ माविषादंकृथादेविभर्ताऽयंतवजीवति ॥ २२ ॥ कारणानिचवक्ष्यामिमहांतिसदृशानिच ॥ यथेमौजीवतोदेविभ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ २३ ॥ नहिकोपपरीतानिहर्षपर्युत्सुकानिच ॥ भवंतियुधियोधानांमुखानिनिहतेपतौ ॥ २४ ॥ इदं विमानंवैदेहिपुष्पकंनामनामतः ॥ दिव्यंत्वांधारयेन्नेदंयद्येतौगतजीवितौ ॥ २५ ॥ हतवीरप्रधानाहिगतोत्साहानिरुद्यमा ॥ सेनाभ्रमतिसंख्येषुहतकर्णेवनौर्जले ॥ २६ ॥ इयंपुनरसंभ्रांतानिरुद्विग्नातपस्विनी ॥ सेनारक्षतिकाकुत्स्थौ मयाप्रीत्यानिवेदितौ ॥ २७ ॥

खों पर हर्षके चिह्नभी दिखाई देते हैं; परन्तु रणस्थलमें राजाके मरजानें पर उसकी सैनाके मुखपर कभी इस प्रकारके चिह्न प्रकाशित नहीं होते ॥ २४ ॥ हे वैदेही! औरभी सुनो; यदि श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजी जीवित न होते. तौ यह पुष्पक विमान किसी प्रकारसे भी तुमको धारण न करता, क्योंकि यह अपने ऊपर विधवा स्त्रियोंको नहीं चढ़ाता है ॥ २५ ॥ हम जानती हैं कि युद्धमें सेनापति या प्रधानकी मृत्यु हो जानें पर सैनाके लोगोंमें उत्साह और उद्यम नहीं रहता; परन्तु इन वानरोंमें हम यह सब बातें पातीहैं, यदि श्रीरामचंद्रजीका कोई अंग नष्ट हुआ होता तौ निश्चयही विनामांझी की नौकाके समान यह सैना संग्राम भूमिमें इधर उधर फिरती ॥ २६ ॥ परन्तु हे तपस्विनी! यह वानरोंकी

भरभी किसी ओर देखनेंको समर्थ न हुए ॥ १६ ॥ परन्तु इस समय वह बाणोंके फलकोंसे पीड़ित हो गयेथे, व उनके अंगभी कट गयेथे, इस्से वह दोनों जन रस्सीसे रहित कम्पायमान महेन्द्रके ध्वज युगलकी समान शोभित हुए ॥ १७ ॥ इस प्रकारसे महा बलवान जगतपति श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी मर्ममें घाव लग जानेंसें पीड़ित होकर पृथ्वीपर गिरपड़े ॥ १८ ॥ वह दोनों वीर सब अंगोंमें बाण लगनेंके कारण अत्यन्त पीड़ित होकर वीरोचित सेजपर शयन करते हुए, व उनके सब अंगोंसे रुधिरकी धारा निकलनें लगी ॥ १९ ॥ उनके अंगमें एक उंगलभी ऐसा स्थान नहींथा कि जहां बाण न लगाहो, और उंगलियोंके पौरुवोंसे लेकर कोईभी उनके अंगका स्थान नागमय बाण समूहसे अविचलित या

ततोविभिन्नसर्वांगौशरशल्याचितौकृतौ ॥ ध्वजाविवमहेंद्रस्यरज्जुमुक्तौप्रकंपितौ ॥ १७ ॥ तौसंप्रबलितौ वीरौमर्मभेदेनकर्षितौ ॥ निपेततुर्महेष्वासौजगत्यांजगतीपती ॥ १८ ॥ तौवीरशयनेवीरौशयानौरुधिरोक्षितौ ॥ शरवेष्टितसर्वांगावार्तौपरमपीडितौ ॥ १९ ॥ नह्यविद्धंतयोर्गात्रेबभूवांगुलमंतरम् ॥ नानिर्विण्णंनचाध्वस्तमाकराग्रादजिह्मगैः ॥ २० ॥ तौतुक्रूरेणनिहतौरक्षसाकामरूपिणा ॥ असृक्सुस्रुवतुस्तीव्रंजलंप्रस्रवणाविव ॥ २१ ॥ पपातप्रथमंरामोविद्धोमर्मसुमार्गणैः ॥ क्रोधादिंद्रजितायेनपुराशक्रोविनिर्जितः ॥ २२ ॥ ॥ रुक्मपुंखैःप्रसन्नाग्रैरजोगतिभिराशुगैः ॥ नाराचैरर्धनाराचैर्भल्लैरंजलिकैरपि ॥ विव्याधवत्सदंतैश्चसिंहदंष्ट्रैःक्षुरैस्तथा ॥ २३ ॥ सवीरशयनेशिश्येविज्यमाविध्यकार्मुकम् ॥ भिन्नमुष्टिपरीणाहंत्रिणतंरुक्मभूषितम् ॥ २४ ॥

साबित नहीं रहा, सबही अंग कटेथे ॥ २० ॥ वह दोनोंजन कामरूपी क्रूर राक्षस करके बाणोंसे ऐसे घायल हुए कि जिस प्रकार झरनेंसे जलकी धार निकलतीहै; वैसेही इनके सब अंगोंसे रुधिरकी धारा निकलनें लगी ॥ २१ ॥ पहले श्रीरामचंद्रजी राक्षस इन्द्रजीतके दारुण बाणसे विद्ध होकर पृथ्वीमें गिरपड़े; जिस प्रकार इन्द्रजीतनें पहले इन्द्रको युद्धमें हरायाथा वैसेही श्रीरामचंद्रजीकी पराजयभी उसको आनंदकी देनेंवाली हुई ॥ २२ ॥ फिरभी इस दुष्ट मेघनादनें सुवर्णके फोंके लगे हुए रजकी समान सब कहीं पहुंचनेंवाले बाणोंसे, व अनेक प्रकारके भालोंसे, बछडेके दांतोंके समान वह सिंह दशनके समान आकारवाले बाणोंसे श्रीरामचंद्रजीको मारा ॥ २३ ॥ तब शरसहित तीन स्थानोंपर झुकेहुए रुक्म

मिथिलाराजनन्दिनी, देवकन्याओंकी समान सीता यह समस्त वचन श्रवण कर हाथ जोड़कर बोलीं कि तुमनें जो कुछ कहा वही समस्त वचन तुम्हारे सत्यहैं ॥ ३४ ॥ तिसके पीछे त्रिजटा उस मनके वेगकी अनुसार शीघ्र चलनेंवाले पुष्पक विमानको लौटाय कर दीन सीता जीको फिर लंकापुरीमें प्रवेश कराती हुई ॥ ३५ ॥ तदनन्तर जनकपुत्री सीताजी त्रिजटाके सहित अशोक वनके समीपमें उपस्थित हो समस्त राक्षसियोंके सहित फिर उसमें प्रवेश करती हुई ॥ ३६ ॥ इस प्रकारसे जानकीजीनें राक्षसोंमें इन्द्र रावणकी विहारभूमि अनेक वृक्षोंसे युक्त अशोक वाटिकामें प्रवेश किया; परन्तु इन्होंनें दो राजकुमारोंको जिस अवस्थामें पड़ा देखाथा, अशोकवनमें आनेंके समय

श्रुत्वातुवचनंतस्याःसीतासुरसुतोपमा ॥ कृतांजलिरुवाचेमामेवमस्त्वितिमैथिली ॥ ३४ ॥ विमानंपुष्पकंतत्तुसन्निव
त्यंमनोजवम् ॥ दीनात्रिजटयासीतालंकामेवप्रवेशिता ॥ ३५ ॥ ततस्त्रिजटयासार्धंपुष्पकादवरुह्यसा ॥ अशोकव
निकामेवराक्षसीभिःप्रवेशिता ॥ ३६ ॥ प्रविश्यसीताबहुवृक्षखंडांतांराक्षसेंद्रस्यविहारभूमिम् ॥ संप्रेक्ष्यसंचिंत्यचरा
जपुत्रौपरंविषादंसमुपाजगाम ॥ ३७ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेअष्टचत्वारिंशः स
र्गः ॥ ४८ ॥ ॥छ॥ ॥ घोरेणशरबंधेनबद्धौदशरथात्मजौ ॥ निःश्वसंतौयथानागौशयानौरुधिरोक्षितौ ॥ १ ॥ सर्वेतेवा
नरश्रेष्ठाःससुग्रीवमहाबलाः ॥ परिवार्यमहात्मानौतस्थुःशोकपरिप्लुताः ॥ २ ॥ एतस्मिन्नंतरेरामःप्रत्यबुध्यतवीर्य
वान् ॥ स्थिरत्वात्सत्त्वयोगाच्चशरैःसंदानितोपिसन् ॥ ३ ॥

वही चिन्ता आयकर इनके मनको अत्यन्त व्याकुल और हृदयको मथनें लगी ॥ ३७ ॥ इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०लं०अष्टचत्वारिंशःसर्गः ४८ ॥ दशरथकुमार श्रीरामचंद्र व लक्ष्मणजी नागफाँसमें बँधे हुए बाणोंकी सेजपर पड़ेथे, व उनके सब अंगोंसे रुधिर निकल रहाथा; हाथी जिस प्रकार गर्जन किया करताहै; उस समय यह दो भ्राताभी इसी भांति लंबे२ श्वास लेनें लगे ॥ १ ॥ सुग्रीवादि मुख्य२ बलवान वानर श्रेष्ठ गण शोकसे अत्यन्त पीड़ित होकर उनको चारों ओरसे घेर कर खड़े होगये ॥ २ ॥ यद्यपि श्रीरामचंद्रजी दृढ़ नाग फांसमें बँधे हुएथे; परन्तु अपनी दृढ़ता

उन समस्त वानरोंनें देखा कि राम लक्ष्मण शरविद्ध होनेंके कारण चेष्टारहित हैं, उनके सब शरीरमें रुधिर बह रहा है,श्वास मन्द२चल रहा है, और वह बाणोंकी सेजपर बाणोंसे विंधेहुए पड़े हैं ॥ ४ ॥ तेजहीन सर्पकी जो अवस्था होती है, दशरथकुमार श्रीरामचंद्रजीकीभी वही अवस्था होर हीथी वह धीरे २ लंबे २ श्वास ले रहे थे, वह सर्वाङ्गमें रुधिर लगाये सुवर्णसे ध्वजाओंके डंडेकी समान पृथ्वीपर पड़ेहुए शोभायमान हो रहे हैं ॥ ५ ॥ वह वीरशय्यापर शयन करनेंके कारण हाथ पांव आदि न हिलाते डुलाते अपने उन यूथपोंके बीचमें लोटे हुएथे जो कि उनके चारों ओर खड़े रोतेथे ॥ ६ ॥ बाणजालसे विंधेहुए श्रीरामचंद्रजीको पृथ्वीपर गिरा हुआ देखकर विभीषणके सहित सबही वानर अत्यन्त व्यथित होते

अचेष्टौमंदनिःश्वासौशोणितेनपरिप्लुतौ॥शरजालचितौस्तब्धौशयानौशरतल्पगौ ॥४॥ निःश्वसंतौयथासर्पौनिश्चेष्टौदीनविक्रमौ ॥ रुधिरस्रावदिग्धांगौतपनीयाविवध्वजौ ॥ ५॥ तौवीरशयनेवीरौशयानौमंदचेष्टितौ ॥ यूथपैःस्वैःपरिवृतौबाष्पव्याकुललोचनैः॥ ६॥ राघवौपतितौदृष्ट्वाशरजालसमन्वितौ ॥ बभूवुर्व्यथिताःसर्वेवानराःसविभीषणाः ॥ ७ ॥ अंतरिक्षंनिरीक्षंतोदिशःसर्वाश्चवानराः ॥ नचैनंमाययाछन्नंददृशूरावणिंरणे ॥ ८॥ तंतुमायाप्रतिच्छन्नंमाययैवविभीषणः ॥ वीक्ष्यमाणोददर्शाग्रेभ्रातुःपुत्रमवस्थितम् ॥ तमप्रतिमकर्माणमप्रतिद्वंद्वमाहवे ॥ ९ ॥ ददर्शांतर्हितंवीरंवरदानाद्विभीषणः ॥ तेजसायशसाचैवविक्रमेणचसंयुतः ॥ १० ॥ इंद्रजित्त्वात्मनःकर्मतौशयानौसमीक्ष्यच ॥ उवाचपरमप्रीतोहर्षयन्सर्वराक्षसान् ॥ ११ ॥

हुए ॥ ७ ॥ यद्यपि इस समय वानरगण रावणके पुत्र मेघनादको आकाशमें ढूंढ़ रहेथे, परन्तु मायासे अदृश्य होनेंके कारण उसको कोईभी न देख सका ॥ ८ ॥ परन्तु विभीषण इस मायाको जानते थे, इस कारण जैसेही कि उन्होंनें दृष्टि की, वैसेही मायाके बलसे ढके हुए, उस अपने भाईके पुत्र- (भतीजे) मेघनादको इन्होंनें देखा कि वह अनुपम कर्म करनेंवाला, संग्रामभूमिमें अप्रतिद्वन्द्व ॥ ९ ॥ वरदान पानेंसे गर्वित वीर अन्तर्ध्यान होकर सन्मुखही आकाशमें टिका हुआ है, ऐसे मेघनादको तेज, यश, विक्रमसंयुक्त विभीषणजीनें देखा ॥ १० ॥ इसके पीछे इन्द्रजीत मेघनाद इन श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी दोनों वीरोंको वीरशेजपर पड़ाहुआ देखकर अत्यन्त सन्तुष्ट हो अपना कर्म सबको सुनाता हुआ

जब कि अपने पुत्र लक्ष्मणजीके लिये सुमित्राजी हमारी निन्दा करेंगी; तब वह वचन हमसे किस प्रकार सहे जांयगे;इसकारण यहींपर जीवन त्याग देना हमारा कर्तव्य है ॥ ११॥ हा! हम बड़े ही दुष्कार्यके करनेंवाले और अतिशय अनार्य हैं, इसलिये हमको धिक्कारहै; अहो ! हमारेही कारण हमारे छोटे भाई लक्ष्मण बाणोंकी सेजपर लेटे हुए मृतककी समान पड़ेहैं ॥१२॥ भैया लक्ष्मण! जब हम कुछ शोक करते तब तुम सदाही हमको समझाते परन्तु आज हम इस प्रकारके पीड़ित होरहे हैं,तथापि तुम मृतककी समान हमसे कुछभी वार्तालाप नहीं करते और न हमें समझाते हो॥१३॥हाय! आज इस रणभूमिमें जिन करके असंख्य राक्षस वशको प्राप्त होकर पृथ्वीमें शयन कररहे हैं; वही शूर श्रेष्ठ लक्ष्मणजीभी बाणोंसे घायल होकर आज

उपालंभंनशक्ष्यामिसोढुमंबासुमित्रया ॥ इहैवदेहंत्यक्ष्यामिनहिजीवितुमुत्सहे ॥ ११ ॥ धिङ्मांदुष्कृतकर्माणमनार्यमत्कृतेह्यसौ ॥ लक्ष्मणःपातितःशेतेशरतल्पेगतासुवत् ॥ १२ ॥ त्वंनित्यंसुविषण्णंमामाश्वासयसिलक्ष्मण ॥ गतासुर्नाद्यशक्तोसिमामार्तमभिभाषितुम् ॥ १३ ॥ येनाद्यबहवोयुद्धेनिहताराक्षसाःक्षितौ ॥ तस्यामेवाद्यशूरस्त्वंशेषेविनिहतःशरैः ॥१४॥ शयानःशरतल्पेऽस्मिन्सशोणितपरिप्लुतः ॥ शरभूतस्ततोभासिभास्करोऽस्तमिवव्रजन् ॥ १५॥ बाणाभिहतमर्मत्वान्नशक्नोषीहभाषितुम् ॥ रुजाचाब्रुवतोयस्यदृष्टिरागेणसूच्यते ॥ १६ ॥ यथैवमांवनंयांतमनुयातोमहाद्युतिः ॥ अहमप्यनुयास्यामितथैवैनंयमक्षयम् ॥ १७ ॥ इष्टबंधुजनोनित्यंमांचनित्यमनुव्रतः ॥ इमामद्यगतोऽवस्थांममानार्यस्यदुर्नयैः ॥ १८॥

बाणोंकी सेज पर शयन कररहे हैं ॥१४॥ हा लक्ष्मण! तुम रुधिरसे भीगे हुए होकर बाणोंकी सेजपर शयनकरके शर रूप प्राप्त अस्तगामी सूर्यकी समान शोभा धारण किये हुएहो ॥ १५ ॥ हाय! तुम्हारे सब मर्मस्थानोंमें बाणोंके लगनेंसे तुम कुछ कहनेंको समर्थ नहीं हो; परन्तु कुछ न कहनेंपरभी तुम्हारे नेत्रोंके लालेपनसे तुम्हारे मनकी समस्तही व्यथा प्रगट होरही है ॥ १६ ॥ हाय! जिस प्रकार हमारे वनमें आनेंके समय तुम महाद्युतिमान हमारे पीछे२ आयेथे, वैसेही हमभी तुम्हारे पीछे२आज यमलोकमें गमन करेंगे ॥ १७॥ हाय! जो सदाही अपने बन्धुजनोंके प्रति

उनकोभी वींध डाला ॥ २० ॥ और बड़ी शीघ्रताके साथ उसने गोपुच्छ वानरोंके स्वामी ऋक्षराज धूम्र और वालिकुमार अंगदजीके ऊपर बहुत असंख्य बाण चलाये ॥ २१ ॥ महा सत्वयुक्त बलवान रावणकुमार उन अग्निकी शिखाके समान लपलपाते बाण समूहसे वानरोंको मारकर सिंह नाद करनें लगा ॥ २२ ॥ वह महाबाहु मेघनाद बाणोंकी चोटसे वानरोंको शंकित और पीड़ित करके विकट हँसनें लगा और राक्षस लोगोंको पुकारकर बोला ॥ २३ ॥ हे निशाचर गण ! श्रवण करो; हमनें बराबर बाणोंकी वर्षा करके अंतमें राम लक्ष्मणको नागफाँससे बांधही लिया॥२४॥ छलसे युद्ध करनेंवाले राक्षस लोग मेघनादकी बात सुनकर उसके कार्यसे अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और उसकी उपमारहित वीरताको देखकर अत्य

गोलांगूलेश्वरंचैववालिपुत्रमथांगदम् ॥ विव्याधबहुभिर्बाणैस्त्वरमाणोथरावणिः ॥ २१ ॥ तान्वानरवरान्भित्त्वाशरै रग्निशिखोपमैः ॥ ननादबलवांस्तत्रमहासत्त्वःसरावणिः ॥ २२ ॥ तानर्दयित्वाबाणौघैस्त्रासयित्वाचवानरान् ॥ प्रजहा समहाबाहुर्वचनंचेदमब्रवीत् ॥२३॥ शरबंधनघोरेणमयाबद्धौचमूमुखे ॥ सहितौभ्रातरावेतौनिशामयतराक्षसाः॥२४॥ एवमुक्तास्तुतेसर्वेराक्षसाःकूटयोधिनः ॥ परंविस्मयमापन्नाःकर्मणातेनहर्षिताः ॥ २५ ॥ विनेदुश्चमहानादान्सर्वेते जलदोपमाः ॥ हतोरामइतिज्ञात्वारावणिंसमपूजयन् ॥ २६ ॥ निष्पंदौतुतदादृष्ट्वाभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ वसुधायां निरुच्छ्वासौहतावित्यन्वमन्यत ॥ २७ ॥ हर्षेणतुसमाविष्टइंद्रजित्समितिंजयः ॥ प्रविवेशपुरींलंकांहर्षयन्सर्वनैर्ऋ तान् ॥ २८ ॥ रामलक्ष्मणयोर्दृष्ट्वाशरीरेसायकैश्चिते ॥ सर्वाणिचांगोपांगानिसुग्रीवंभयमाविशत् ॥ २९ ॥

न्त विस्मित होरहे ॥ २५ ॥ तब मेघाकार राक्षस लोग "राम मारे गये" यह मनमें निश्चय करके सबही सिंहनाद करते हुए इन्द्रजीतमेघनादकी बड़ाई करनेंलगे ॥ २६ ॥ और उन दोनों भ्राता श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीको विना हाथ पैर हिलाते डुलाते और श्वास रहित पृथ्वीमें पड़े देख तब राक्षसोंनें निश्चय जान लिया कि यह मृतक होगये ॥ २७ ॥ तिसके पीछे रणमें विजय करनेवाला इन्द्रजीत रणमें विजय पाय कर राक्षसोंको आनंदित कराता हुआ लंकामें प्रवेश करता हुआ ॥ २८ ॥ इसी समयमें कपिराज सुग्री वजी राक्षसराज रावणके पुत्र मेघनादके बाणोंसे श्रीराम लक्ष्मणके समस्तअंग विद्ध और रुधिरसे भीगे देखकर अत्यन्त भयको प्राप्त हुए ॥ २९ ॥

गोपुच्छके राजानें जो कठिन कर्म हमारे लिये किये तिस्से हम परम प्रसन्न हैं ॥ २५ ॥ और अंगदनेंभी बड़ेभारी कर्म किये, व मैन्द, द्विवि
द, केशरी और सम्पातिनाम वानरनेंभी युद्धमें हमारे लिये बड़े घोर कर्म किये ॥ २६ ॥ गवय, गवाक्ष, शरभ, गज, व औरभी दूसरे वा
नरोंनें अपने प्राणतककी बाजी लगाकर युद्ध करनेंके लिये तैयार होकर संग्राम कियाहै ॥ २७ ॥ हे सुग्रीव! मनुष्य भाग्यको कभी उल्लंघन न
हीं करसकता जो मित्रको मित्रके साथ और सुहृदको सुहृदके साथ करना उचित है; वह मेरे लिये ॥ २८ ॥ हे सुग्रीव ! तुमने धर्म और श
क्तिके अनुसार सबही कुछ किया; हेवानरश्रेष्ठो! तुमनेभी हमारा मित्रकार्य भली भांतिसे किया ॥ २९ ॥ इसलिये अब हम तुमको आज्ञा दे

अंगदेनकृतंकर्ममैंदेनाद्विविदेनच ॥ युद्धंकेसरिणासंख्येघोरंसंपातिनाकृतम् ॥ २६ ॥ गवयेनगवाक्षेणशरभेणगजे
नच ॥ अन्यैश्चहरिभिर्युद्धंदुर्धरंत्यक्तजीवितैः ॥ २७ ॥ नचातिक्रमितुंशक्यंदैवंसुग्रीवमानुषैः ॥ यत्तुशक्यंवयस्ये
नसुहृदावापरंमम ॥ २८ ॥ कृतंसुग्रीवतत्सर्वंभवताधर्मभीरुणा ॥ मित्रकार्यंकृतमिदंभवद्भिर्वानरर्षभाः ॥ २९ ॥
अनुज्ञातामयासर्वेयथेष्टंगंतुमर्हथ ॥ शुश्रुवुस्तस्ययेसर्वेवानराःपरिदेवितुम् ॥ वर्तयांचक्रिरेऽश्रूणिनेत्रैःकृष्णेतरे
क्षणाः ॥ ३० ॥ ततःसर्वाण्यनीकानिस्थापयित्वाविभीषणः ॥ आजगामगदापाणिस्त्वरितंयत्रराघवः ॥ ३१ ॥ तं
दृष्ट्वात्वरितंयांतंनीलांजनचयोपमम् ॥ वानराद्रुद्रुवुःसर्वेमन्यमानास्तुरावणिम् ॥ ३२ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ०
युद्धकांडेएकोनपंचाशःसर्गः ॥ ४९ ॥ ७ ॥

ते हैं कि तुम्हारी सबकी जहां पर इच्छा हो वहांपर चले जाओ; जब रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी इस प्रकारसे विलाप करते रहे, तब उसकाल जितनें वानरोंनें
उनका वह विलाप सुना; उन सबके नेत्रोंसेही आंसुओंकी धारा गिरनेलगीं ॥ ३० ॥ इतनेंमेंही विभीषणजी सब सैनाको धीरज बँधाते
जहांके तहां सब को टिकाते गदा ग्रहणकर अति शीघ्रतासे श्रीरामचंद्रजीके पास आये ॥ ३१ ॥ परन्तु नील अंजनके ढेरकी समान उस
वीर विभीषणको शीघ्रतासे श्रीरामचंद्रजीके समीप आते देखकर वानर उनको इन्द्रजीत समझकर चारों ओर भागनें लगे ॥ ३२ ॥ इत्यार्षे
श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे भाषानुवादे कात्यायनकुमारपं० ज्वालाप्रसादमिश्रकृते एकोनपंचाशः सर्गः ॥ ४९ ॥

अथवा जबतक श्रीरामचंद्रजीका मोह छूटकर उनको संज्ञा प्राप्तहो तब तक तुम उनकी रक्षा करते रहो; जान लो कि जब काकुत्स्थ श्रीरामचंद्रजीनें चैतन्यता प्राप्त करली तब फिर हमको कोईभी भय न रहैगा॥३८॥श्रीरामचंद्रजीकी मोहकी अवस्था जो तुम देखतेहो यह सब कुछभी नहीं है,लक्षणसे अनुमान होताहै कि किसी प्रकारसेभी श्रीरामचंद्रजीकी मृत्यु होनेंवाली नहीं; जीवका जीवन नष्ट होनें पर जो श्री दुर्लभहै,इन श्रीरामचंद्रजीके शरीरमें वही श्री स्पष्ट दिखलाई देतीहै॥३९॥ हेसुग्रीव! जो हुआ सो हुआ तुम सावधान होवो; और अपनी सैनाकोभी ढांढस बँधाओ,और हमभी अपनी सैनाको फिर स्थिर करतेहैं ॥ ४० ॥ हे वानरश्रेष्ठ! यह देखो, वानर गण नेत्र फैलाय २ भीत और शंकित होकर परस्पर एक

अथवारक्ष्यतांरामोयावत्संज्ञाविपर्ययः॥ लब्धसंज्ञौहिकाकुत्स्थौभयंनौव्यपनेष्यतः॥ ३८ ॥ नैतात्किंचनरामस्यनच रामोमुमूर्षति॥ नह्येनंहास्यतेलक्ष्मीर्दुर्लभायागतायुषाम् ॥ ३९ ॥ तस्मादाश्वासयात्मानंबलंचाश्वासयस्वकम् ॥ यावत्सैन्यानिसर्वाणिपुनःसंस्थापयाम्यहम् ॥ ४० ॥ एतेहिफुल्लनयनास्त्रासादागतसाध्वसाः ॥ कर्णेकर्णेप्रकथिताहरयो हरिसत्तम ॥ ४१ ॥ मांतुदृष्ट्वाप्रधावंतमनीकंसंप्रहर्षितम् ॥ त्यजंतुहरयस्त्रासंभुक्तपूर्वामिवस्रजम् ॥ ४२ ॥ समाश्वास्य तुसुग्रीवंराक्षसेंद्रोविभीषणः ॥ विद्रुतंवानरानीकंतत्समाश्वासयत्पुनः ॥४३ ॥ इंद्रजित्तुमहामायःसर्वसैन्यसमावृतः ॥ विवेशनगरींलंकांपितरंचाभ्युपागमत् ॥ ४४ ॥ तत्ररावणमासाद्यअभिवाद्यकृतांजलिः ॥ आचचक्षेप्रियंपित्रेनिहतौरामलक्ष्मणौ ॥ ४५ ॥ उत्पपाततत्तोहृष्टःपुत्रंचपरिषस्वजे ॥ रावणोरक्षसांमध्येश्रुत्वाशत्रूनिपातितौ ॥ ४६ ॥

दूसरेके कानही कानमें श्रीरामचंद्रजीकी वार्ता कर रहे हैं ॥ ४१ ॥ हमको इधर उधर घूमते हुए देखकर व समस्त वानरवाहिनीकोभी हर्षित देख पहरनेंसे मलगिजी व कुंभलाई हुई मालाके त्याग करनेंके समान सब वानर अपनी व्याकुलताको छोडेंगे ॥ ४२ ॥ तिसके पीछे वह राक्षसोंके इन्द्र बिभीषणजी वानरराज सुग्रीवजीको यह कह समझाय बुझाय फिर भागीहुई सैनाको धीरज बँधाने लगे ॥ ४३ ॥ इस ओर माया विशारद इन्द्रजीत सब सैनाको साथ लेकर लंका नगरीमें प्रवेशित हो अपने पिता रावणके निकट जायकर पहुंचा ॥ ४४ ॥ फिर रावणके निकट जाय हाथ जोड़ प्रणामकर रामचंद्र व लक्ष्मणके मारे जानेकी प्रिय वार्त्ता वह मेघनाद निवेदन करताहुआ॥ ४५ ॥ राक्षसमंडलके वीचमे

णजीकोही वानरगणोंके भयका कारण जानकर समीपमें बैठे हुए ऋक्षराज जाम्बवान्‌से यह वचन बोले ॥ ८ ॥ यह विभीषण यहांपर आये हैं; इनकोही देख और रावणका पुत्र मेघनाद समझकर भयके मारे चकितनेत्र होकर वानरगण यह शंका करके कि फिर वह भय आया भागे जाते हैं ॥ ९ ॥ इस कारण आप शीघ्रही त्रासित और चारों ओरको भागी जाती हुई इस वाहिनीको पुकारकर सावधान करो, कि यह इन्द्रजीत नहीं वरन विभीषणजी आये हैं ॥ १० ॥ तब ऋक्षराज जाम्बवानजी सुग्रीवजीके ऐसे वचन सुनकर भागते हुए वानरोंको लौटनेको पुकारनें लगे ॥ ११ ॥ तिसके पीछे समस्त वानर गणभी जो कि भागे जाते थे ऋक्षराज जाम्बवान्‌जीके वचन सुन और विभीषणको आयाहुआ देख

विभीषणोयंसंप्राप्तोयंदृष्ट्वावानरर्षभाः ॥ द्रवंत्यागतसंत्रासारावणात्मजशंकया ॥ ९ ॥ शीघ्रमेतान्सुसंत्रस्तान्बहुधाविप्रधावितान् ॥ पर्यवस्थापयाख्याहिविभीषणमुपस्थितम् ॥ १० ॥ सुग्रीवेणैवमुक्तस्तुजांबवानृक्षपार्थिवः ॥ वानरान्सांत्वयामाससंनिवर्त्यप्रधावतः ॥ ११ ॥ तेनिवृत्ताःपुनःसर्वेवानरास्त्यक्तसाध्वसाः ॥ ऋक्षराजवचःश्रुत्वातंचदृष्ट्वाविभीषणम् ॥ १२ ॥ विभीषणस्तुरामस्यदृष्ट्वागात्रंशरैश्चितम् ॥ लक्ष्मणस्यतुधर्मात्माबभूवव्यथितस्तदा ॥ १३ ॥ जलक्लिन्नेनहस्तेनतयोर्नेत्रेविमृज्यच ॥ शोकसंपीडितमनारुरोदविललापच ॥ १४ ॥ इमौतौसत्वसंपन्नौविक्रांतौप्रियसंयुगौ ॥ इमामवस्थांगमितौराक्षसैःकूटयोधिभिः ॥ १५ ॥ भ्रातृपुत्रेणचैतेनदुष्पुत्रेणदुरात्मना ॥ राक्षस्याजिह्मयाबुद्ध्यावंचितावृजुविक्रमौ ॥ १६ ॥

भय त्यागकर लौट आये ॥ १२ ॥ तत्पश्चात् धर्मात्मा विभीषणजी श्रीराम लक्ष्मणजी दोनोंहीके शरीर बाणोंसे छाये और रुधिरसे नहाये देख मनमें बहुतही दुःखी हुए ॥ १३ ॥ विभीषणजीनें अपनें हाथमें जल लेकर स्वयं महात्मा श्रीरामचंद्रजीके और लक्ष्मणजीके नेत्र धोये और फिर शोकित मनसे नेत्रोंमें आंसू भरा देख और विलाप करनें लगे ॥ १४ ॥ हाय! यह दोनों सत्वसम्पन्न समरप्रिय भयंकरविक्रमकारी दोनों भाई कपटयुद्ध करनेंवाले निशाचरोंसे ऐसी दुरवस्थाको प्राप्त हुएहैं ॥ १५ ॥ हाय! रावणके पुत्र और हमारे भतीजे दुरात्मा मेघनादकी राक्षसी कु

सावधानतासे चारों ओर देखने लगे कि जो कहीं तनक शब्दभी हुआ तौ वह लोग "राक्षस आगया" ऐसा जान करके उसही ओरको दौड़ने लगे ॥ ४ ॥ इस ओर रावण हर्षित मनसे प्रियपुत्र इन्द्रजीतको विदा देकर सीताजीके रक्षाकार्यमें नियत हुई राक्षसियोंको बुलाता हुआ ॥ ५ ॥ त्रिजटा व और भी सब राक्षसियें रावणकी आज्ञा जानकर वहां पर आई, तब राक्षसोंका स्वामी रावण हर्ष भरे मनसे यह कहता हुआ ॥ ६ ॥ कि तुम सब सीताको समाचार दो कि इन्द्रजीतके हाथसे राम लक्ष्मण दोनों भाई मारे गये उनसे यह कह व फिर उन्हें पुष्पकविमानपर चढ़ायकर रण भूमिमें मरे हुए दोनों भाइयोंको दिखलाओ ॥ ७ ॥ उस जानकीसे तुम कहना कि जिनके आश्रयके गर्वके मारे तुम इतनें दिनोंतक हमसे विरु

रावणश्चापिसंहृष्टोविसृज्येंद्रजितंसुतम् ॥ आजुहावततःसीतारक्षणीराक्षसीस्तदा ॥५॥ राक्षस्यस्त्रिजटाचापिशासनात्तमुपस्थिताः॥ ताउवाचततोहृष्टोराक्षसीराक्षसाधिपः ॥६॥ हताविंद्रजिताख्यातवैदेह्यारामलक्ष्मणौ ॥ पुष्पकंतत्समारोप्यदर्शयध्वंरणेहतौ ॥ ७ ॥ यदाश्रयादवष्टब्धानेयंमामुपतिष्ठते ॥ सोस्याभर्तासहभ्रात्रानिहतोरणमूर्धनि ॥ ८ ॥ निर्विशंकानिरुद्विग्नानिरपेक्षाचमैथिली ॥ मामुपस्थास्यतेसीतासर्वाभरणभूषिता ॥ ९ ॥ अद्यकालवशंप्राप्तंरणेरामंसलक्ष्मणम् ॥ अवेक्ष्यविनिवृत्तासाचान्यांगतिमपश्यती ॥ अनपेक्षाविशालाक्षीमामुपस्थास्यतेस्वयम् ॥ १० ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वारावणस्यदुरात्मनः ॥ राक्षस्यस्तास्तथेत्युक्त्वाजग्मुर्वैयत्रपुष्पकम् ॥ ११ ॥ ततःपुष्पकमादायराक्षस्योरावणाज्ञया ॥ अशोकवनिकास्थांतांमैथिलींसमुपानयन् ॥ १२ ॥

द्धथीं, इस समय वही तुम्हारे स्वामी अपने भाईके सहित मार डाले गये हैं ॥ ८ ॥ अब सीता रामके सहित मिलनेंकी आशाको भली भांतिसे त्यागकर और शोक व शंकाको छोड़ सर्व गहनोंसे भूषितहो हमारे वशमें हो जाय ॥ ९ ॥ जान पड़ताहै कि आज वह बड़े नेत्रोंवाली जानकी संग्रामभूमिमें लक्ष्मणजीके सहित रामचंद्रको प्राण रहित और अपनी कोई और गति न देखकर जब वहांसे लौटेगी; तब आपही हमारे वशमें पड़ेंगी ॥ १० ॥ तब यह सब राक्षसी दुरात्मा रावणके यह वचन सुनकर और "ऐसेही होगा" कहकर जहां पुष्पक विमान रक्खाथा वहांपर गई ॥११॥ तिसके पीछे वह राक्षसी गण रावणकी आज्ञासे वह पुष्पक विमान लेकर अशोकवनमें वास करती हुई सीताजीके निकट पहुंचीं ॥ १२ ॥

राम और लक्ष्मण व और दूसरे शूर वानर वीरोंको किष्किन्धापुरीमें लेजाओ, और जबतक इन शत्रुओंके मारनेंवालोंको चैतन्यता न प्राप्त होवे, तब तक उसी स्थानमें इनकी रक्षा करते रहना॥ २४ ॥ और इस ओर हमभी, इस रावणको पुत्र पौत्र और बान्धवोंके साथ संहार करके, रावणसे हरी हुई जानकीजीका उद्धार करके लेआवेंगे, कि जैसे नष्ट हुई राज्यलक्ष्मीको इन्द्रजीनें फिर प्राप्त कियाथा ॥ २५ ॥ सुग्रीवजीके ऐसे वचन सुनकर सुषेण बोलेकि ॥ – " पहले हमनें देवता व असुरोंका बड़ाभारी संग्राम देखाथा " ॥ २६ ॥ उस संग्राममें बाण चलानेंमें अति चतुर और शस्त्रास्त्रके कर्ममें अति कुशल राक्षसोंनें जब रण करनेंमें चतुर देवता लोगोंको बाणोंके समूहसे वारंवार ढक लियाथा ॥ २७ ॥ तब देवतागुरु

अहंतुरावणंहत्वासपुत्रंसहबांधवम् ॥ मैथिलीमानयिष्यामिशक्रोनष्टामिवश्रियम् ॥ २५ ॥ श्रुत्वैतद्वानरें
द्रस्यसुषेणोवाक्यमब्रवीत् ॥ देवासुरंमहायुद्धमनुभूतंपुरातनम् ॥ २६ ॥ तदास्मदानवादेवान्शरसंस्पर्शको
विदान् ॥ निजघ्नुःशस्त्रविदुषश्छादयंतोमुहुर्मुहुः ॥ २७ ॥ तानार्तान्नष्टसंज्ञांश्चगतासूंश्चबृहस्पतिः ॥ विद्याभिर्मंत्र
युक्ताभिरोषधीभिश्चिकित्सति ॥ २८ ॥ तान्यौषधान्यानयितुंक्षीरोदंयांतुसागरम् ॥ जवेनवानराःशीघ्रंसंपातिपनसा
दयः ॥ २९ ॥ हरयस्तुविजानंतिपार्वतीतेमहौषधी ॥ संजीवकरणींदिव्यांविशल्यांदेवनिर्मिताम् ॥ ३० ॥ चंद्रश्च
नामद्रोणश्चक्षीरोदेसागरोत्तमे ॥ अमृतंयत्रमथितंतत्रतेपरमौषधी ॥ ३१ ॥

बृहस्पतिजी उन देवताओंको पीड़ित चेतना रहित और विनाशको प्राप्त देखकर, मंत्रविद्याके प्रभावसे व यथायोग्य औषधियोंसे उनकी चिकित्सा करते रहे कि जिस्से वह समस्त देवता फिर जीवित होगये ॥ २८॥ हेराजन्! तिन औषधियोंको लानेंके अर्थ सम्पाति पनसादि वानर बहुतही शीघ्र क्षीर समुद्रके निकट जांय ॥ २९ ॥ कारणकि यह वानर उन दो पहाड़ी बूंटियोंको भली भांति जानतेहैं उन दोनों बूटियोंमें एकका नाम (संजीवनी) और एकका नाम (विशल्यकरणी) अर्थात् घावकी पीड़ाको दूर करनेंवालीहै ॥ ३० ॥ जिस स्थानपर देवता लोगोंनें समुद्रको मथन

मारे वारं वार विलाप करनें लगी ॥ २१ ॥ कृष्णलोचन वाली व कोमल अंगवाली जानकीजी अपने स्वामी और लक्ष्मणजीको धूरिमें लोटता हुआ देखकर रोदन करनें लगीं ॥ २२ ॥ इस प्रकारसे जनक कुमारी जानकीजी सुर सुत समान दोनों भाइयोंको ऐसी अवस्थामें देख " यह मृतक होगये " ऐसा मनमें स्थिर करती हुई और शोकके मारे उनका वदन मंडल आंसुओंकरके पूर्णहो जानेसे वह अत्यंत दुःखके मारे कहनें लगीं ॥ २३ ॥ इ० श्रीम० आ०यु०सप्तचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४७ ॥ अपने स्वामी और महाबलवान लक्ष्मणजीको मृतक देखकर मारे शोक के दुर्बल सीताजी अत्यन्त करुणा भरी वाणीसे इस प्रकार विलाप करनेंलगीं ॥ १ ॥ हाय; सामुद्रिकके जाननेंवाले पुरुष हमको देखकर कहतेहैं

भर्तारमनवद्यांगीलक्ष्मणंचासितेक्षणा ॥ प्रेक्ष्यपांसुषुचेष्टंतौरुरोदजनकात्मजा ॥ २२ ॥ सबाष्पशोकाभिहतासमीक्ष्यतौभ्रातरौदेवसुतप्रभावौ ॥ वितर्कयंतीनिधनंतयोःसादुःखान्वितावाक्यमिदंजगाद ॥ २३ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेसप्तचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४७ ॥ भर्तारंनिहतंदृष्ट्वालक्ष्मणंचमहाबलम् ॥ विललापभृशंसीताकरुणंशोककर्शिता ॥ १ ॥ ऊचुर्लाक्षणिकायेमांपुत्रिण्यविधवेतिच ॥ तेऽद्यसर्वेहतेरामेऽज्ञानिनोऽनृतवादिनः ॥ २ ॥ यज्वनोमहिषींयेमामूचुःपत्नींचसत्रिणः ॥ तेऽद्यसर्वेहतेरामेज्ञानिनोऽनृतवादिनः ॥ ३ ॥ वीरपार्थिवपत्नीनांयेविदुर्भर्तृपूजिताम् ॥ तेऽद्यसर्वेहतेरामेज्ञानिनोऽनृतवादिनः ॥ ४ ॥ ऊचुःसंश्रवणेयेमांद्विजाःकार्तांतिकाः शुभाम् ॥ तेऽद्यसर्वेहतेरामेज्ञानिनोऽनृतवादिनः ॥ ५ ॥

कि तुम पुत्रवती होकर सदा सुहागन रहोगी, परन्तु आज श्रीरामचंद्रजीके मृतक हो जानेंसे उनके वह वचन मिथ्या हुए ॥ २ ॥ और जो लोग हमको देखकर कहते हैं कि तुम यज्ञ करने वाले राजाकी स्त्री होगी; हाय;आज श्रीरामचंद्रजीके मृतक हो जानेसे वह ज्ञानी लोगभी मिथ्यावादी हुए ॥ ३ ॥ हाय! और उन ज्ञानी लोगोंने हमको देखकर यहभी कहाथा कि तुम वीरराजाकी सब रानियोंमें बडी होगी, परन्तु बड़े शोककी बात है कि आज श्रीरामचंद्रजीके मरजानेंसे उन ज्ञानी लोगोंकी बातभी मिथ्या हुई ॥ ४ ॥ ज्योतिष शास्त्रके जाननेंवाले ब्राह्मणोंने हमको देख

शरीरमें जितने घाव थे वह सब भर गये, और वह दोनों ज की समान चिकना शरीर और प्रथमहीकी समान शोभा धारण करते हुए ॥३९॥ इनका तेज, पराक्रम, शरीरका बल, महागुण, उत्साह, दर्शन शक्ति, बुद्धि और स्मरण शक्ति यह सब बातें पहलेसे दुगनी हो गई ॥ ४० ॥ तिस समय महा तेजस्वी गरुडजीनें इन्द्र तुल्य भाइयोंको उठाकर अति हर्षसे अपने हृदयसे लगा लिया; तव श्रीरामचंद्रजी हर्षित अंतःकरण युक्त गरुड़जीसे बोले ॥ ४१ ॥ कि तुम्हारेही प्रसादसे हम इन्द्रजित कृत घोर विपदसे शीघ्र छूट गये, और अब हमारे शरीरोंमें भी प्रथम हीकी समान बल आगयाहै ॥ ४२ ॥ अधिक क्याकहैं पितामह अज और पिता दशरथजीको देख हमें जिस प्रकारका आनंद होता,

तेजोवीर्यंबलंचौजउत्साहश्चमहागुणाः॥प्रदर्शनंचबुद्धिश्चस्मृतिश्चद्विगुणातयोः॥४०॥तावुत्थाप्यमहातेजागरुडोवासवोपमौ ॥ उभौचसस्वजेहृष्टोरामश्चैनमुवाचह ॥ ४१ ॥ भवत्प्रसादाद्व्यसनंरावणिप्रभवंमहत् ॥ उपायेनव्यतिक्रांतौशीघ्रंचबलिनौकृतौ ॥ ४२ ॥ यथातातंदशरथंयथाऽजंचपितामहम् ॥ तथाभवंतमासाद्यहृदयंमेप्रसीदति ॥ ४३ ॥ कोभवान्रूपंसपन्नोदिव्यस्रगनुलेपनः ॥ वसानोविरजेवस्त्रेदिव्याभरणभूषितः ॥ ४४ ॥ तमुवाचमहातेजावैनतेयोमहाबलः ॥ पतत्रिराजःप्रीतात्माहर्षपर्याकुलेक्षणम् ॥ ४५ ॥ अहंसखातेकाकुत्स्थप्रियःप्राणोबहिश्चरः ॥ गरुत्मानिहसंप्राप्तोयुवयोःसाह्यकारणात् ॥ ४६ ॥

आपका दर्शन करनेंसे भी हमारे हृदयनें वैसीही प्रसन्नता प्राप्तकीहै॥४३॥आपनें स्वर्गीय हार और दिव्य अनुलेपन धारण कियाहै; दिव्य अलंकारसे अलंकृत होकर आपने विमल वस्त्र युगल धारण कियेहैं; इस कारण सत्यही सत्य बताइये कि आप कोनहैं? ॥ ४४ ॥ तव ऐसा सुनकर महा तेजस्वी विनताके पुत्र महाबल पक्षिराज गरुड़जी आनंदसे उत्फुल्लनेत्रहो प्रीति सहित श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ ४५ ॥ कि हे श्रीरामचंद्रजी ! हम आपके प्राणके समान प्रिय बाहर घूमनेंवाले सखाहैं; हमारा नाम गरुड़है; आपकी सहायता करनेंके अर्थही यहांपर आयेहैं ॥ ४६ ॥

हैं, इस प्रकार दश इन्द्रियें और मन बुद्धिसे हमको सब शुभ लक्षणवालीही कहते हैं ॥ १२ ॥ हमारे उंगलियोंके पोरुवोंपर सब यव पूरे हैं. कोई रेखासे खंडित नहीं और हाथ पैरकी सब उंगलियें घनीहैं, और समस्त अंग शोभासे युक्त हैं; इन सब लक्षणोंसे लक्षण जाननेंवाले लोग हमको मन्दस्मिता कहा करतेथे ॥ १३ ॥ हा! ज्योतिष शास्त्रके जाननें वाले ब्राह्मण लोगोंनें कहाथा कि " पतिके साथ तुम अधिराज्यपर अभिषिक्त होगी " परन्तु यह सबही आज मिथ्या होगया ॥ १४ ॥ हा! यह दोनों भ्राता जनस्थानके कंटकको दूर करके हमारा पता लगाय लांघनें के अयोग्य समुद्रके पार होकर अंतमें हमारे भाग्यसे गायके खुरके गढ़ेमें भरेहुए जलमें डूबगये ॥१५॥ हाय! इन दोनों वीरोंने वरुण आग्नेय इन्द्र वायव्य

समग्रयवमच्छिद्रंपाणिपादंचवर्णवत ॥ मंदस्मितेत्येवचमांकन्यालाक्षणिकाविदुः ॥ १३ ॥ आधिराज्येभिषेकोमे ब्राह्मणैः पतिनासह ॥ कृतांतकुशलैरुक्तंतत्सर्वंवितथीकृतम् ॥ १४ ॥ शोधयित्वाजनस्थानंप्रवृत्तिमुपलभ्यच ॥ तीर्त्वासागरमक्षोभ्यंभ्रातरौगोष्पदेहतौ ॥ १५ ॥ ननुवारुणमाग्नेयमैंद्रंवायव्यमेवच ॥ अस्त्रंब्रह्मशिरश्चैवराघवौप्रत्यपद्यत ॥ १६ ॥ अदृश्यमानेनरणेमाययावासवोपमौ ॥ ममनाथावनाथायानिहतौरामलक्ष्मणौ ॥ १७ ॥ नहिदृष्टिपथंप्राप्यराघवस्यरणेरिपुः ॥ जीवन्प्रतिनिवर्तेतयद्यपिस्यान्मनोजवः ॥ १८ ॥ नकालस्यातिभारोस्तिकृतांतश्चसुदुर्जयः ॥ यत्ररामःसहभ्रात्राशेतेयुधिनिपातितः ॥ १९ ॥

और ब्रह्मशिर नामक जिन अस्त्रोंको प्राप्त कियाथा. किस कारणसे यह सब अस्त्र इन्होंनें इस कुसमयमें स्मरण नहीं किये ❋ ॥१६॥ हाय! हाय! मुझ अनाथिनीके नाथ इन्द्रकी समान पराक्रमकारी राम और लक्ष्मणजी मायाके बलसे अन्तर्ध्यान हुए इन्द्रजीतके हाथसे संग्राम भूमिमें मारे गये हैं ॥ १७ ॥ इन्द्रजीतनें अदृश्य रह करही ऐसा किया है; परन्तु संग्राममें वह किसी प्रकारसेभी ऐसा नहीं कर सकता कारण कि रणभूमिमें रघुनंदनकी दृष्टिके सामनें पड़कर मनकी समान वेगवान् शत्रुभी जीता हुआ लौटकर नहीं जाय सकता ॥ १८ ॥ जो कुछभी हो कालके लिये कोईभी कार्य दुष्कर नहीं है. और को तौ जीतभी लियाजाय सकता है, परन्तु कालको कोई जीतनेंवाला नहीं, यदि ऐसा न होता तौ यह दोनों भ्राता रण

❋ "किस कारणसे उन्होंनें यह सब अस्त्र इस कुसमयमें स्मरण नहीं किये।" यह कथा मूलमें नहीं है; परन्तु टीकाकारका अभिप्रायहै.

दृष्टान्तसे जान गये कि राक्षस लोग कैसे कुटिल होतेहैं ॥ ५४ ॥ महा बलवान विनताके पुत्र गरुड़जी यह कहकर दशरथ कुमार श्रीरामचंद्रजीको भेंट स्नेह सहित यह वचन बोले ॥ ५५ ॥ हे मित्रश्रीरामचंद्रजी! हे धर्मज्ञ! शत्रुके प्रतिभी आप बहुतही अनुग्रह किया करतेहैं। इस समय हम आपकी आज्ञा लेकर अपने स्थानमें जानेंकी इच्छा करतेहैं ॥ ५६ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी हमारे प्रति तुम्हारा सखा संबन्ध किस प्रकारसे हुआ इसके जाननेंको आप कौतूहल प्रकाश नकीजिये, युद्धमें विजय प्राप्त करके जिस समय आप अपने देशको लौटेंगे उसी समय यह सम्बन्ध आपको ज्ञात हो जायगा ॥ ५७ ॥ हे वीर श्रीरामचंद्रजी! आपके बाणोंकी तरंगोंके वेगसे लंकापुरी विध्वंस होकर केवल बालक और बूढे

एवमुक्त्वातदारामंसुपर्णःसमहाबलः ॥ परिष्वज्यचसुस्निग्धमाप्रष्टुमुपचक्रमे ॥ ५५ ॥ सखेराघवधर्मज्ञरिपूणामपिवत्सल ॥ अभ्यनुज्ञातुमिच्छामिगमिष्यामियथासुखम् ॥५६॥ नचकौतूहलंकार्यंसखित्वंप्रतिराघव ॥ कृतकर्माऽरणेवीरसखित्वंप्रतिवेत्स्यसि ॥५७॥ बालवृद्धावशेषांतुलंकांकृत्वाशरोर्मिभिः ॥ रावणंतुरिपुंहत्वासीतांत्वमुपलप्स्यसे॥५८॥ इत्येवमुक्त्वावचनंसुपर्णःशीघ्रविक्रमः ॥ रामंचनीरुजंकृत्वामध्येतेषांवनौकसाम् ॥५९॥ प्रदक्षिणंततःकृत्वापरिष्वज्यचवीर्यवान् ॥ जगामाकाशमाविश्यसुपर्णःपवनोयथा ॥ ६० ॥ नीरुजौराघवौदृष्ट्वाततोवानरयूथपाः ॥ सिंहनादंतदानेदुर्लांगूलंदुधुवुश्चते ॥६१॥ ततोभेरीःसमाजघ्नुर्मृदंगांश्चाप्यवादयन् ॥ दध्मुःशंखान्संप्रहृष्टाःक्ष्वेलंत्यपियथापुरम्॥६२॥

लोगोंकी रहनेंकी भूमि हो जायगी हम निश्चय कहते हैं कि आप बहुतही शीघ्र संग्राममें रावणका संहार करके सीताजीको प्राप्त कर सकेंगे ॥ ५८ ॥ शीघ्र विक्रम वीर्यवान सुपर्ण (गरुड) जी श्रीरामचन्द्रजी व लक्ष्मणजो दोनोंको रोगरहित करते यह कहकर वानरोंके बीचमें बैठे श्रीरामचन्द्रजीकी ॥ ५९ ॥ प्रदक्षिणा कर पवनकी समान वेग धारण कर आकाशमार्गको गरुडजी चलेगये ॥ ६० ॥ तिसके उपरान्त दोनो रघुवीरोंको रोग रहित देखकर वानर यूथपगण मनमें आनंद मनाय सिंहनादकर अपनी पूंछको कम्पायमान करने लगे ॥ ६१ ॥ इसके पीछे भेरियोंका शब्द उठा मृदंगोंकी नाद होनें लगी इतने शंख बजेकि उनकी ध्वनि आकाशमें गुंजारती रही और सब वानर लोग हर्षित

सैना बड़ी सावधानतासे उद्वेग रहितहो दोनों भ्राता राम लक्ष्मणजीकी रक्षा करती हैं; इस कारण हमें ज्ञात होताहै, कि यह मृतक न होकर मूर्छित होगये हैं यह बात हमने प्रीतिके कारण तुमसे कहीहै. ॥ २७ ॥ हेजानकी! तुम इस समय सावधान होवो, हमको स्पष्ट अनुमान करनेंसे जान पड़ताहैकि राम लक्ष्मणजीका कुछ अमंगल नहीं हुआ, तुम्हारे प्रति हमारा स्नेह जोहै इसी कारण तौ हम तुमसे यह बात कहती हैं ॥ २८ ॥ हेमैथिलि! हमनें पहले कभी तुमसे कोई मिथ्या वार्त्ता न कही, न अब कहैं, हे देवि! अधिक क्या कहैं तुमने अपने निर्मल चरित्रके प्रभावसे हमारे अंतःकरणको अपने वशमें कर लियाहै ॥ २९ ॥ हमनें श्रीरामचंद्र व लक्ष्मणजीकी जो सौम्यमूर्त्ति देखीहै; तिसको देखकर

सात्वंभवसुविस्रब्धाअनुमानैःसुखोदयैः॥ अहतौपश्यकाकुत्स्थौस्नेहादेतद्ब्रवीमिते ॥२८॥ अनृतंनोक्तपूर्वंमेनचवक्ष्यामिमैथिलि ॥ चारित्रसुखशीलत्वात्प्रविष्टासिमनोमम ॥ २९ ॥ नेमौशक्यौरणेजेतुंसेंद्रैरपिसुरासुरैः ॥ तादृशंदर्शनंदृष्ट्वामयाचोदीरितंतव ॥ ३० ॥ इदंतुसुमहच्चित्रंशरैःपश्यस्वमैथिलि ॥ विसंज्ञौपतितावेतौनैवलक्ष्मीर्विमुंचति ॥ ३१ ॥ प्रायेणगतसत्वानांपुरुषाणांगतायुषाम् ॥ दृश्यमानेषुवक्त्रेषुपरंभवतिवैकृतम् ॥ ३२ ॥ त्यजशोकंचदुःखंचमोहंचजनकात्मजे ॥ रामलक्ष्मणयोरर्थेनाद्यशक्यमजीवितुम् ॥ ३३ ॥

हम निश्चयही कह सकतीहैं कि इनको पराजित करनेकी सुर व असुरोंके सहित इन्द्रमेंभी सामर्थ्य नहीं है, फिर यह राक्षस बिचारे तो हैं ही क्या वस्तु? ॥ ३० ॥ हेरामप्राणवल्लभे! और एक बात आश्चर्यकी यहभी है कि यह दोनों बाणोंसे विद्ध और संज्ञाहीन होकर पृथ्वी पर गिर पड़े हैं; परन्तु जिस परभी इनकी सुन्दरताईमें कुछ अन्तर नहीं आयाहै ॥ ३१ ॥ बहुधा देखनेंमें आताहै कि प्राणियोंका जीवन नष्ट या शक्तिहीन होनेपर उनके मुखकी शोभा नहीं रहती वरन मुखकी आकृति बिगड़ जातीहै हेजनककुमारी! हम इसीलिये कहतीहैं कि तुम शोक दुःख और मोहको छोड़ो; कारणकि यदि राम लक्ष्मण जीवरहित होते तौ इनके शरीरोंपर ऐसा लावण्य किसी प्रकारसेभी नहीं रहता ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

समय उन वानरवृन्दोंका यह बड़ा भारी शब्द उठनेंसे हमको अत्यन्तही शंका होतीहै ॥ ५ ॥ राक्षसोंका स्वामी रावण निज मंत्रियोंसे ऐसा कह अपने निकट बैठे हुए राक्षसोंसे बोला ॥ ६ ॥ कि इन वनवासी वानर लोगोंका ऐसे शोकके समय एकाएकी आनंदित होंनेका कारण तुम लोग जानकर शीघ्र आओ ॥ ७ ॥ राक्षसगण इस प्रकारसे रावणकी आज्ञा पाय सावधानहो एक धवरहरे पर जोकि अति ऊंचाथा चढ़े और तब उन्होंने देखा कि महात्मा सुग्रीवजी उस वानर वाहिनीकी रक्षा करते हैं ॥ ८ ॥ श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी यह दोनों भ्राता भी नाग फांससे छुटकर उठ बैठेहैं, यह देखकर यह राक्षस अत्यन्तही विषादित हुए ॥ ९ ॥ उस समय यह राक्षस त्रासित मनसे कोटकी अति ऊंची भीतसे नीचे

एवंचवचनंचोक्त्वामंत्रिणोराक्षसेश्वरः ॥ उवाचनैर्ऋतांस्तत्रसमीपपरिवर्तिनः ॥ ६ ॥ ज्ञायतांतूर्णमेतेषांसर्वेषांचवनौकसाम् ॥ शोककालेसमुत्पन्नेहर्षकारणमुत्थितम् ॥ ७ ॥ तथोक्तास्तेसुसंभ्राताःप्राकारमधिरुह्यच ॥ ददृशुःपालितांसेनांसुग्रीवेणमहात्मना ॥८॥ तौचमुक्तौसुघोरेणशरबंधेनराघवौ ॥ समुत्थितौमहाभागौविषेदुःसर्वराक्षसाः ॥९॥ संत्रस्तहृदयाःसर्वेप्राकारादवरुह्यते ॥ विवर्णाराक्षसाघोराराक्षसेंद्रमुपस्थिताः ॥१०॥ तदप्रियंदीनमुखारावणस्यचराक्षसाः ॥ कृत्स्नंनिवेदयामासुर्यथावद्वाक्यकोविदाः ॥ ११ ॥ यौताविंद्रजितायुद्धेभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ निबद्धौशरबंधेननिष्प्रकंपभुजौकृतौ ॥ १२ ॥ विमुक्तौशरबंधेनदृश्येतेतौरणाजिरे ॥ पाशानिवगजौछित्त्वागजेंद्रसमविक्रमौ ॥ १३ ॥ लच्छ्रुत्वावचनंतेषांराक्षसेंद्रोमहाबलः ॥ चिंतारोपसमाक्रांतोविवर्णवदनोऽभवत् ॥ १४ ॥

उतरनें लगे, उनके मुखकी कान्ति मलीन होगई और वह सब अत्यन्त दीन भावसे रावणके निकट आये ॥ १० ॥ उन दीन मुख वचन बोलनेंमें चतुर राक्षसोंनें रावणके अप्रिय वचन यथार्थ २ निवेदन किये ॥ ११ ॥ कि जो राम लक्ष्मण संग्राम भूमिमें इन्द्रजीतके द्वारा बाणोंसे विंध गयेथे और तिसके बाद जिनकी दोनो भुजायें कुछ भी हिलडुल नहीं सकती थीं ॥ १२ ॥ इस समय हमनें देखाकि गजेन्द्रविक्रमकारी वह दोनों भ्राता दो गजोंकी समान नागफांशको तोडकर बाणबन्धनसे छूट रणभूमिमें विराजमान होरहेहैं ॥ १३ ॥ महाबलवान राक्षसोंका स्वामी राक्षसोंके मुखसे यह समाचार सुनकर चिन्ताके वशमें हुआ, और शोचके मारे उस समय उसका मुखमंडलभी प्रभाहीन होगया ॥ १४ ॥

और बलकी अधिकाईके अनुसार वह इस समय सचेत हुए ॥ ३ ॥ जाग कर श्रीरामचंद्रजी अपने छोटे भइया लक्ष्मणजीको दीन वदन किये शरीरसे रक्त वहाते पृथ्वीपर शयन करते हुए देखकर आतुर पुरुषकी समान रोदन करनें लगे ॥ ४ ॥ कि जब हमनें प्राणोंसेभी अधिक अपने प्रिय भ्राता लक्ष्मणजीको युद्धमें पराजित और पृथ्वी पर पड़े हुए देखा, फिर भला अब हम सीताका उद्धार करके क्या करेंगे, और हमारे इस जीवन धारण करनेंकाभी क्या प्रयोजनहै? ॥ ५ ॥ हाय ! पृथ्वीपर ढूंढ़नेंसे सीताकी समान अनेक स्त्रियां पाई जासकतीहैं; परन्तु त्रिलोकीमें ढूंढ़ नेंसेंभी लक्ष्मणकी समान संग्रामका मंत्री भाई हम नहीं पाय सकेंगे "मिलहिं न जगत सहोदर भ्राता" ॥ ६ ॥ जो यह सुमित्राजीके आनंद बढ़ानें

ततोदृष्ट्वासरुधिरंनिषण्णंगाढमर्पितम् ॥ भ्रातरंदीनवदनंपर्यदेवयदातुरः ॥ ४ ॥ किंनुमेसीतयाकार्यंलब्धयाजीविते नवा ॥ शयानंयोद्यपश्यामिभ्रातरंयुधिनिर्जितम् ॥ ५ ॥ शक्यासीतासमानारीमर्त्यलोकेविचिन्वता ॥ नलक्ष्मण समोभ्रातासचिवःसांपरायिकः ॥ ६ ॥ परित्यक्ष्याम्यहंप्राणान्वानराणांतुपश्यताम् ॥ यदिपंचत्वमापन्नःसुमित्रानं दवर्धनः ॥७॥ किंनुवक्ष्यामिकौसल्यांमातरंकिंनुकैकयीम् ॥ कथमंबांसुमित्रांचपुत्रदर्शनलालसाम् ॥ ८ ॥ विवत्सां वेपमानांचवेपंतींकुररीमिव ॥ कथमाश्वासयिष्यामियदियास्यामितंविना ॥ ९ ॥ कथंवक्ष्यामिशत्रुघ्नंभरतंचयश स्विनम् ॥ मयासहवनंयातोविनातेनाहमागतः ॥ १० ॥

वाले लक्ष्मणजी मृतक होगयेहों तब हम इसी मुहूर्त्तमें समस्त वानरोंके सन्मुखही प्राण त्याग करेंगे ॥ ७ ॥ क्या कष्टहै ? जबकि हम अयोध्या जीमें लौटकर जांयगे तब माता, कौशल्या, कैकेयी, और पुत्रके दर्शनकी लालसा किये माता सुमित्राजीसे क्या कहेंगे ॥ ८ ॥ हादैव! जो हम अयोध्यापुरीको विना लक्ष्मणकेही चलेजांय; तो कुररीकी समान कम्पायमान उन वत्सरहित सुमित्राजीको हम क्या कहकर समझावेंगे ॥ ९ ॥ हा! हम जिनके साथ वनमें आयेथे, उन लक्ष्मणजीके विना अयोध्यामें लौट कर हम यशस्वी भरत और शत्रुघ्नसे क्या कहेंगे कुछ समझमें नहीं आता ॥ १० ॥

नाद करते हुए हर्षित मनसे धूम्राक्षके चारों ओर खड़े होगये, वह समस्त राक्षस अतिशय बलवानथे उनकी कमरमें घंटे लगे हुए बज रहेथे ॥२३॥ विविध भांतिके अस्त्र शस्त्र ग्रहणकर, शूल, मुद्गर, गदा, पटा, दंड, मूसल आदि धारण किये ॥ २४ ॥ बड़े २ मुद्गर, धनवासी, भाले, फांसी, फरसे आदि अस्त्र शस्त्र लिये समस्त राक्षसगण मेघकी समान गर्जन करते हुए चले ॥ २५ ॥ उन राक्षसोंमें कोई २ कवच धारण करके ध्वजा पताकासे शोभायमान विचित्र चित्रित रथोंमें सवार हुए और कोई २ सुवर्ण जाल मंडित विविध भांतिके मुखवाले गधोंपर चढ़े ॥२६॥ और कोई २ राक्षस अति शीघ्रतासे चलनेंवाले घोडों पर चढ़ चले और कोई २ मदान्ध हाथियोंकी पीठपर सवार हुए; इस प्रकारसे वह राक्षसव्याघ्र लोग अजेय व्या

विविधायुधहस्ताश्चशूलमुद्गरपाणयः ॥ गदाभिःपट्टिशैर्दंडैरायसैर्मुसलैरपि ॥ २४ ॥ परिघैर्भिंदिपालैश्चभल्लैः पाशैःपरश्वधैः ॥ निर्ययूराक्षसाघोरानर्दंतोजलदायथा ॥ २५ ॥ रथैःकवचिनस्त्वन्येध्वजैश्चसमलंकृतैः ॥ सुवर्णजालविहितैःखरैश्चविविधाननैः ॥ २६ ॥ हयैःपरमशीघ्रैश्चगजैश्चैवमदोत्कटैः ॥ निर्ययुर्नैर्ऋतव्याघ्राव्याघ्राइवदुरासदाः ॥ २७ ॥ मृगसिंहमुखैर्युक्तंखरैःकनकभूषितैः ॥ आरुरोहरथंदिव्यंधूम्राक्षःखरनिःस्वनः ॥ २८ ॥ सनिर्यातोमहावीर्योधूम्राक्षोराक्षसैर्वृतः ॥ हसन्वैपश्चिमद्वाराद्धनूमान्यत्रातिष्ठति ॥ २९ ॥ रथप्रवरमास्थायखरयुक्तंखरस्वनम् ॥ प्रयांतंतुमहाघोरंराक्षसंभीमदर्शनम् ॥ ३० ॥ अंतरिक्षगताःक्रूराःशकुनाःप्रत्यषेधयन् ॥ रथशीर्षेमहाभीमोगृध्रश्चनिपपातह ॥ ३१ ॥

घ्रकी समान गमन करनें लगे ॥ २७ ॥ महावीर धूम्राक्ष कनकभूषित भेडियां सिंह और व्याघ्र मुखवाले गधे जुते हुए रथमें बैठकर रणमें जानें लगा ॥ २८ ॥ इस प्रकार महावीर धूम्राक्ष बड़ीभारी राक्षसोंकी सेनाके साथ जहां पर हँसते हुए मुखसे हनुमानजी डट रहेथे लंकाके उस पश्चिम द्वारपर आया ॥ २९ ॥ कठोर शब्द करनेंवाले गधे जुते, श्रेष्ठ रथपर सवार हो, महाघोर, भयंकर विक्रमकारी राक्षसको जाताहुआ देख ॥ ३० ॥ आकाशमें प्राप्त हुए क्रूर शकुन विविध अमंगलकारी चिह्नोंसे उस राक्षस को निवारण करते हुए कि पहले तो धूम्राक्षके रथकी छत्रीपर एक बड़ा

प्रीति दिखलातेथे और हमारीभी आज्ञामें सदाही रहतेथे; आज इस कुभागी मुझ दशरथके पुत्रकी कुनीतिसेही उन लक्ष्मणजीकी ऐसी दशा हुई॥१८॥ हाय! यह वीर लक्ष्मणजी भी जब कि महा कोपके वश होजाते; तबभी कभी इन्होंनें हमको कोई कठोर वचन न सुनायाथा. ऐसा तो हमको स्मरणनहीं होता अर्थात् इन्होंनें कभी हमको कठोर वचन नहीं कहा॥१९॥हाय! जो लक्ष्मण दोबांहोंवाले होकरभी जबकि एक वेगमेंही पांच २ शत बाण छोडतेथे. तब अस्त्र चलानेमें यह सहस्र बाहोंवाले कार्त्तवीर्यसेभी अधिकथे; कारणकि वह तो हजार बाहें होंनेपर एक कालमें पांचशत बाण चलाताथा; परन्तु यह दोबांहोंसेंही एक कालमें पांच शत बाण छोड़तेथे ॥ २० ॥ हा! जो वीर अपने अस्त्रोंके बलसे इन्द्रके वज्रादि अस्त्रोंको,,भी निवारणकरसकतेथे;और पहले जिनको बड़े मोलकी शय्या पर शयन करनेंसेभी निद्रा न आतीथी; आज वही लक्ष्मणजी मेघनादके बाणोंसे मृतक

सुरुष्टेनापिवीरेणंलक्ष्मणेननसंस्मरे ॥ परुषंविप्रियंचापिश्रावितंतुकदाचन ॥ १९ ॥ विससर्जैकवेगेनपंचबाणशतानि यः ॥ इष्वस्त्रेष्वधिकस्तस्मात्कार्तवीर्याच्चलक्ष्मणः ॥ २० ॥ अस्त्रैरस्त्राणियोहन्याच्छक्रस्यापिमहात्मनः ॥ सोयमुर्व्या हतःशेतेमहार्हशयनोचितः ॥ २१ ॥ तत्तुमिथ्याप्रलप्तंमांप्रधक्ष्यतिनसंशयः ॥ यन्मयानकृतोराजाराक्षसानांविभीषणः ॥ २२ ॥ अस्मिन्मुहूर्तेसुग्रीवप्रतियातुमिहार्हसि ॥ सत्त्वहीनंमयाराजन्रावणोभिभविष्यति ॥ २३ ॥ अंगदंतुपुरस्कृत्यससैन्यंसपरिच्छदम् ॥ सागरंतरसुग्रीवनीलेनचनलेनच ॥ २४ ॥ कृतंहिसुमहत्कर्मयदन्यैर्दुष्करंरणे ॥ ऋक्षराजेनतुष्यामिगोलांगूलाधिपेनच ॥ २५ ॥

होकर पृथ्वीपर शयन कररहे हैं ॥ २१ ॥ हाय! हमनें जो " विभीषणको लंकाका राजा बनावेंगे " ऐसी प्रतिज्ञा कीथी, और अब इस प्रतिज्ञाको पूरा न करसके बस इस समय वही मिथ्या प्रलाप हमारी आत्माको दग्ध किये डालताहै ॥ २२ ॥ हे सुग्रीव! जबकि हम प्राणत्याग करेंगे; तब रावण तुमको बलहीन समझकर अवश्यही कोई न कोई उपद्रव करेगा, इस कारण तुम इसी मुहूर्त यहां परसे अपनें देश किष्किन्धाको चले जाओ ॥ २३ ॥ हे सुग्रीव! तुम अंगद व सब सैनाकोभी आगे२ करकै नील नल और भी सैनाके सब सामान सहित समुद्रके पार होकर शीघ्रता करकै यहांसे चले जाओ ॥ २४ ॥ हनुमाननें हमारे लिये रणभूमिमें औरसे न होनेके योग्य जो कठिन कर्म किये, और ऋक्षराज जाम्बवान व

युद्ध प्रारंभ हुआ उस समय वह बड़े २ वृक्ष, शूल, मुद्गर चलाय २ कर परस्पर परस्परके ऊपर प्रहार करनें लगे ॥ २ ॥ निशाचरोंनें वानर लोगोंको सब भांतिसे घेर लिया, और, वानर गणभी वृक्षोंको चलाय २ राक्षसोंको पृथ्वीपर शयन करानें लगे ॥ ३ ॥ राक्षसभी क्रोधमें भरकर तीखे बाण समूह और सीधे चलनेंवाले घोर रूप कंकपत्रयुक्त बाणोंसे वानरोंका नाश करनें लगे ॥ ४ ॥ उस समय महाबलवान वानरगण भयंकर गदा, शूल, पटा, मुद्गर घोर परिघ और चित्र विचित्र शूलोंके द्वारा॥५॥राक्षसोंसे विदारितहो क्रोधमें भरकर और उत्साहसे भरपूरहो भयरहितकी समान युद्धके कर्म करनें लगे ॥ ६ ॥ वानरोंके शरीर बाणोंसे घायल होनें लगे; उनकी देहमें स्थान २ पर घाव होगये, वह वानर यूथप राक्ष

राक्षसैर्वानराघोराविनिकृत्ताःसमंततः ॥ वानरैराक्षसाश्चापिद्रुमैर्भूमिसमीकृताः ॥ ३ ॥ राक्षसास्त्वभिसंक्रुद्धावानरान्निशितैःशरैः ॥ विव्यधुर्घोरसंकाशैःकंकपत्रैरजिह्मगैः ॥ ४ ॥ तेगदाभिश्चभीमाभिःपट्टिशैःकूटमुद्गरैः ॥ घोरैश्चपरिघैश्चित्रैस्त्रिशूलैश्चापिसंश्रितैः ॥ ५ ॥ विदार्यमाणारक्षोभिर्वानरास्तेमहाबलाः ॥ अमर्षजनितोद्धर्षाश्चक्रुःकर्माण्यभीतवत् ॥ ६ ॥ शरनिर्भिन्नगात्रास्तेशूलनिर्भिन्नदेहिनः ॥ जगृहुस्तेद्रुमांस्तत्रशिलाश्चहरियूथपाः ॥ ७ ॥ तेभीमवेगाहरयोनर्दमानास्ततस्ततः ॥ ममंथूराक्षसान्वीरान्नामानिचबभाषिरे ॥ ८ ॥ तद्बभूवाद्भुतंघोरंयुद्धंवानररक्षसाम् ॥ शिलाभिर्विविधाभिश्चबहुशाखैश्चपादपैः ॥ ९ ॥ राक्षसामथिताःकेचिद्वानरैर्जितकाशिभिः ॥ प्रवेमूरुधिरंकेचिन्मुखैरुधिरभोजनाः ॥ १० ॥ पार्श्वेषुदारिताःकेचित्केचिद्राशीकृताद्रुमैः ॥ शिलाभिश्चूर्णिताःकेचित्केचिद्दंतैर्विदारिताः ॥ ११ ॥

सोंके निकटसे अपनी पराजय सहन न करके बड़े २ वृक्षोंको ग्रहणकर उनकी ओर दौड़े ॥ ७ ॥ भयंकर वेगवान वानर लोग सिंहनाद करके वीर राक्षसोंका संहार करनें लगे ; चोट चलानेंके समय सबही एक दूसरेको अपना २ नाम बतानें लगे ॥ ८ ॥ उस कालमें अनेक शाखाओंसे युक्त वृक्ष और विविध भांतिकी शिलाओंके चलाये जानेंसे वह वानर और राक्षसोंका घोर युद्ध अद्भुत जान पड़नें लगा ॥ ९ ॥ उस समय कितनेंही रुधिर पान करनेंवाले निशाचरगण जीतेजानेंसे प्रसन्न वानरोंसे मारखाय रुधिर उगलनें लगे ॥ १० ॥ इसी प्रकारसे किसी २ की देह छिन्न होगई , कोई २ वृक्षोंकी चोटसे मरगये, कोई २ शिलाओंकी चोटसे पिसकर चूर्णकी समान होगये, और कोई २ तीक्ष्ण दांतोंके

इसके पीछे महाबलवान् महातेजवान् वानरराज सुग्रीवजी बोले कि जलके बीचमें प्रचंड पवनके लगनेंसे नौकाकी समान किस प्रकारसे यह वानरोंकी सैना ऐसी चलायमान हुई ॥ १ ॥ सुग्रीवजीके ऐसे वचन सुन वालिके पुत्र अंगद बोले क्या तुम महारथी श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी को नहीं देखते। ॥ २ ॥ जो दशरथकुमार बड़े वीर होनेपरभी बाणजालसे विंधे हैं, इनके सब अंगोंसे रुधिर निकल रहा है, और बाणोंकी शय्या पर सोय रहे हैं जबकि यही ऐसी अवस्थामें पड़कर दुःख पाय रहे हैं तब सैनाके इस प्रकारसे चलायमान होनेंका कारण इसके अतिरिक्त और क्या हो सकता है? तिसके पीछे वानरोंके स्वामी सुग्रीवजी अपने भतीजे अंगदसे बोले कि वत्स! वानरगण जो ऐसे चलायमान हुए हैं, इसका कोई बड़ा भारी

अथोवाचमहातेजाहरिराजोमहाबलः ॥ किमियंव्यथितासेनामूढवातेवनौर्जले ॥ १ ॥ सुग्रीवस्यवचःश्रुत्वावालिपुत्रों
गदोब्रवीत् ॥ नत्वंपश्यसिरामंचलक्ष्मणंचमहारथम् ॥ २ ॥ शरशालाचितौवीरावुभौदशरथात्मजौ ॥ शरतल्पेमहा
त्मानौशयानौरुधिरोक्षितौ ॥३॥ अथाब्रवीद्वानरेंद्रःसुग्रीवःपुत्रमंगदम् ॥ नानिमित्तमिदंमन्येभवितव्यंभयेनतु ॥ ४ ॥
विषण्णवदनाह्येतेत्यक्तप्रहरणादिशः ॥ पलायंतेत्रहरयस्त्रासादुत्फुल्ललोचनाः ॥ ५ ॥ अन्योन्यस्यनलज्जंतेननिरीक्षं
तिपृष्ठतः ॥ विप्रकर्षंतिचान्योन्यंपतितंलंघयंतिच ॥ ६ ॥ एतस्मिन्नंतरेवीरोगदापाणिर्विभीषणः ॥ सुग्रीवंवर्धया
मासराघवंचजयाशिषा ॥ ७ ॥ विभीषणंचसुग्रीवोदृष्ट्वावानरभीषणम् ॥ ऋक्षराजंमहात्मानंसमीपस्थमुवाचह ॥ ८ ॥

कारण है ऐसा समझ पड़ताहै कि कोई भय आया होगा॥ ३ ॥४॥ यह देखो वानर गण व्याकुल मुख किये समस्त अस्त्र शस्त्रोंको त्याग चारों ओरको भागे जाते हैं; और भयके मारे उन सबके नेत्र लाल और चंचल हो रहे हैं ॥ ५ ॥ देखो ! यह सब ऐसे डरगये हैं कि भागनेंमें कुछभी लाज नहीं करते, कोई सन्मुख पड़कर गतिको रोकै तो उसको खैंचकर पीछे ढकेल देते; और कोई गिरजाय तो उसको लांघते हुए सब भागे जाते हैं; और कोई पीछेकी ओरको दृष्टि नहीं करता ॥ ६ ॥ सुग्रीवजी ऐसा कहरहे थे कि इतनेमें वीर विभीषणजी गदा हाथमें लिये वहां आय पहुंचे और विजयसूचक आशीर्वाद देकै वचनोंसे रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी और वानरराज सुग्रीवजीको प्रणाम करते हुए ॥ ७ ॥ तब सुग्रीवजी विभीष

विह्वलहो जीव गँवाय संग्रामभूमिमें गिरपड़े ॥ २० ॥ और बहुतसे वानर क्रोधित राक्षसों करकै रणभूमिमें मारे जायकर रुधिर वहतीहुई देहसे पृथ्वीपर गिर पड़े और कोई २ लोहू लुहान होकर भागनें लगे ॥ २१ ॥ इस दारुण संग्राममें राक्षस गण क्रोधके मारे यमराजकी समान मूर्त्ति धार णकर वानरोंके हृदय चीरनें फाड़नें लगे, कि जिस्से कोई २ वानर एक ओर को गिर पड़े; और कोई २ त्रिशूलसे घायल हुए और बहुतसे अस्त्रके प्रभावसे भाग निकले ॥२२ ॥ इस प्रकारसे वानर और राक्षसोंका भयंकर युद्ध होने लगा, दोनो ओरसे अनेक अस्त्र शस्त्र चले, और शिला समेत वृक्षोंकी वृष्टि होनें लगी ॥ २३ ॥ धीरे २ रणभूमि गीत विद्याका रूप धारण करती हुई, राक्षसोंके धनुषोंके रोदोंका शब्द वीनाके तारका कार्य

केचिद्विनिहताभूमौरुधिरार्द्रावनौकसः॥ केचिद्विद्रावितानष्टाःसंक्रुद्धैराक्षसैर्युधि ॥ २१ ॥ विभिन्नहृदयाःकेचिदेकपार्श्वेनशायिताः ॥ विदारितास्त्रिशूलैश्चकेचिदांत्रैर्विनिःसृताः ॥ २२ ॥ तत्सुभीमंमहद्युद्धंहरिराक्षससंकुलम् ॥ प्रबभौशस्त्रबहुलंशिलापादपसंकुलम् ॥ २३ ॥ धनुर्ज्यातंत्रिमधुरंहिक्कातालसमन्वितम् ॥ मंदस्तनितगीतंतद्युद्धगांधर्वमाबभौ ॥ २४ ॥ धूम्राक्षस्तुधनुष्पाणिर्वानरान्रणमूर्धनि ॥ हसन्विद्रावयामासदिशस्ताञ्छरवृष्टिभिः ॥ २५ ॥ धूम्राक्षेणार्दितंसैन्यंव्यथितंप्रेक्ष्यमारुतिः ॥ अभ्यवर्ततसंक्रुद्धःप्रगृह्यविपुलांशिलाम् ॥ २६ ॥ क्रोधाद्द्विगुणताम्राक्षःपितुस्तुल्यपराक्रमः ॥ शिलांतांपातयामासधूम्राक्षस्यरथंप्रति ॥ २७ ॥ आपतंतींशिलांदृष्ट्वागदामुद्यम्यसंभ्रमात् ॥ रथादाप्लुत्यवेगेनवसुधायांव्यतिष्ठत ॥ २८ ॥

करनें लगा और वीरोंको गिरनेंके समय जो हिचकियें आनें लगीं, वही ताल गिनीगईं, और हाथियोंका गर्जनाही उस समय गीतकी समान जान पड़ताथा, इस प्रकार यह द्वन्द्वयुद्ध गन्धर्वविद्याकी तुल्य शोभाको प्राप्त हुआ ॥ २४ ॥ राक्षस धूम्राक्ष इस प्रकारसे संग्राम भूमिमें धनुष धार बाणवर्षाय सर्व दिशा छाय हँसते २ सब वानरोंको मार भगाय देता हुआ॥२५॥धूम्राक्षके हाथसे वानरोंकी सैनाको अत्यन्त पीड़ित देखकर हनुमान्‌जी क्रोधके मारे घुमाते बड़ी भारी शिला ग्रहण करकै उस्से युद्ध करनेंके लिये आगे बढ़े ॥ २६ ॥ पिता पवनकी त[illegible] क्रोधके मारे अरुणनयन हो उस बडी भारी शिलाको धूम्राक्षके रथपर अति जोरसे मारते [illegible]

टिल बुद्धिसे यह सरल बुद्धिवाले दोनों राजकुमार धोखा खाय गये हैं ॥ १६ ॥ यह वाणोंसे युक्त और शरीरमें रुधिर निकलनेंके कारण पृथ्वीमें पड़े रहनेंसे कांटोंसे युक्त सैंजनेके वृक्षकी समान जान पड़ते हैं ॥ १७ ॥ हाय! जिनके वीर्यके ऊपर भरोसा करकेही हमनें लंकाकी राज्यगद्दीपर बैठनेंकी अभिलाषा की थी, इस समय वही पुरुषश्रेष्ठ दोनों राजकुमार अपनी देहका नाश करनेके लियेही पृथ्वीपर पड़े हैं ॥ १८ ॥ हाय! इनकी ऐसी अवस्था होनेपर हम तो जीते हुए मर गये; और मनमें जो राज्यप्राप्त करनेंकी बलवती आशा हुईथी, वहभी नाशको प्राप्त हुई, परन्तु शत्रु रावणकी प्रतिज्ञाभी पूरी हुई और इसके मनोरथभी पूरे हुए ॥ १९ ॥ जब कि विभीषणजी इस

शरैरिमावलंविद्धौरुधिरेणसमुक्षितौ ॥ वसुधायामिमौसुप्तौदृश्येतेशल्यकाविव ॥ १७ ॥ ययोर्वीर्यमुपाश्रित्यप्रतिष्ठा
कांक्षितामया ॥ ताविमौदेहनाशायप्रसुप्तौपुरुषर्षभौ ॥ १८॥ जीवन्नद्यविपन्नोस्मिनष्टराज्यमनोरथः ॥ प्राप्तप्रतिज्ञश्च
रिपुःसकामोरावणःकृतः॥१९॥एवंविलपमानंतंपरिष्वज्यविभीषणम् ॥ सुग्रीवःसत्वसंपन्नोहरिराजोऽब्रवीदिदम् ॥२०॥
राज्यंप्राप्स्यसिधर्मज्ञलंकायांनेहसंशयः ॥ रावणःसहपुत्रेणस्वकामंनेहलप्स्यते ॥ २१ ॥ गरुडाधिष्ठितावेतावुभौरा
घवलक्ष्मणौ ॥ त्यक्त्वामोहंवधिष्येतेसगणंरावणंरणे ॥ २२ ॥ तमेवंसांत्वयित्वातुसमाश्वास्यतुराक्षसम् ॥ सुषेणंश्वशु
रंपार्श्वेसुग्रीवस्तमुवाचह॥२३॥सहशूरैर्हरिगणैर्लब्धसंज्ञावरिंदमौ ॥ गच्छत्वंभ्रातरौगृह्यकिष्किंधांरामलक्ष्मणौ ॥२४॥

प्रकारसे विलाप कररहेथे, तब बलवान सत्वसंयुक्त वानरराज सुग्रीवजी उनको हृदयसे लगाय भलीभांति भेंटकर बोले ॥ २० ॥ हेधर्मज्ञ! आप निश्चय जानलें कि रावण अथवा इन्द्रजीतका मनोरथ किसी प्रकारसे पूर्ण नहीं होगा । और निश्चयही लंकापुरीका राज्य आपको मिलेगा, इसमें कुछभी संशय नहीं ॥ २१ ॥ यह दोनों भ्राता गरुड़जीके उपासकहैं, बस गरुड़जीके आतेही राम लक्ष्मण दोनों भाई संज्ञा प्राप्त करेंगे, और इनका मोह दूर होजायगा, और फिर यह बहुतही शीघ्र संग्रामभूमिमें रावणको वंश सहित विध्वंस करेंगे ॥ २२ ॥ सुग्रीवजी राक्षसश्रेष्ठ विभीषणजीको इस प्रकारसे समझा बुझाकर निकट बैठे हुए अपने श्वशुर सुषेणनामक यूथपसे बोले ॥ २३ ॥ कि तुम इन दोनों भ्राता

वड़ी भारी शिला धूम्राक्षके ऊपर चलाई,कि जिस गिरिशृङ्गके प्रहारसे उस राक्षसके अंग फटकर फैलगये ॥३६॥पर्वत जिस प्रकार फटकर गिर जाता
है, वैसेही धूम्राक्षके अंग फट जानेंके कारण पृथ्वीपर गिर पड़ा और उसके प्राण निकल गये;और मरनेंसे बचे बचाये राक्षस गण सैनापति धूम्राक्षको
मरा हुआ देखकर अत्यन्तही त्रासित हुए;और वानर गणोंकी मार खाय मरनेके निकट पहुंच भयके मारे शीघ्रही लंकापुरीको भागगये॥३७॥महाबलवा
न् पवनकुमार हनुमानजी इस प्रकारसे शत्रुओंका संहार करते हुए रणभूमिमें रुधिर की नदी बहाय शत्रुके मारनेंके श्रमसे अत्यन्त थकित होंनेपरभी
वानर गणों करके पूजितहो अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त करते हुए ॥३८॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे द्विपंचाशःसर्गः ॥ ५२ ॥

पपातसहसाभूमौविकीर्णइवपर्वतः ॥ धूम्राक्षंनिहतंदृष्ट्वाहतशेषानिशाचराः ॥ त्रस्ताःप्रविविशुर्लंकांवध्यमानाःप्लवंग
मैः ॥ ३७ ॥ सतुपवनसुतोनिहत्यशत्रून्क्षतजवहाःसरितश्चसंविकीर्य ॥ रिपुवधजनितश्रमोमहात्मामुदमगमत्क
पिभिःसुपूज्यमानः ॥ ३८ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआ०युद्धकांडेद्विपंचाशःसर्गः ॥ ५२ ॥ ॥७॥ धूम्राक्षं
निहतंश्रुत्वारावणोराक्षसेश्वरः ॥ क्रोधेनमहताविष्टोनिःश्वसन्नुरगोयथा ॥ १ ॥ दीर्घमुष्णंविनिःश्वस्यक्रोधेनकलुषी
कृतः ॥ अब्रवीद्राक्षसंक्रूरंवज्रदंष्ट्रंमहाबलम् ॥ २ ॥ गच्छत्वंवीरनिर्याहिराक्षसैःपरिवारितः ॥ जहिदाशरथिंरामंसुग्री
वंवानरैःसह ॥ ३ ॥ तथेत्युक्त्वाद्रुततरंमायावीराक्षसेश्वरः ॥ निर्जगामबलैःसार्धंबहुभिःपरिवारितः ॥ ४ ॥ नागैरश्वैः
खैरुष्ट्रैःसंयुक्तःसुसमाहितः ॥ पताकाध्वजचित्रैश्चबहुभिःसमलंकृतः ॥ ५ ॥

राक्षसोंका स्वामी रावण धूम्राक्षका संग्राममें मरना सुन अत्यन्त क्रोधयुक्तहो सर्पकी समान लंबे २ श्वास त्याग करनें लगा ॥ १ ॥ तिसके
पीछे क्रोधसे अधीरहो लंबे २ और गरम २ श्वास छोड़ताहुआ रावण क्रूरस्वभावी महाबलवान वज्रदंष्ट्र नामक राक्षससे बोला ॥ २ ॥ हेवीर!
तुम राक्षसोंकी सैनाके साथ रणभूमिमें जायकर दशरथकुमार रामचंद्र और वानरगणोंके साथ सुग्रीवका नाश कर आओ ॥ ३ ॥ रावणकी
ऐसी आज्ञा पाय अति शीघ्रतासे मायावी राक्षसोंका ईश्वर वज्रदंष्ट्र बहुतसे राक्षसोंको संग लेकर चला ॥ ४ ॥ और उसके साथमें, हाथी, घोड़े, गधे

कियाथा वहांपर चन्द्र और द्रोण नामक दो पर्वतहैं उन्हीं पर्वतपर यह दोनों बूटियें हैं ॥ ३१ ॥ इन दोनों बूटियोंको देवताओंनें क्षीर समुद्रके बीचमें स्थापित कर दियाहै; इस कारण, हेराजन्! और किसी वानरको वहाँ जानेंकी आवश्यकता नहीं; यह पवनके पुत्र वेगवान हनुमानही वहाँ पर जांय; सुषेण यह वचन कहही रहेथेकि इतनेमें दामिनीमाला शोभित मेघ, और प्रबल आंधी उठकर समुद्रके जल और पर्वतोंको कम्पायमान करनें लगी ॥ ३२ ॥ ३३ ॥प्रबल पंखोंकी पवनके लगनेंसे द्वीपोंमें लगे हुए जो बड़े २ वृक्षथे उनकी शाखायें टूट गईं, और वह वृक्ष सब महासमुद्रके जलमें उड़कर जायगिरे ॥ ३४ ॥ देखते २ समुद्रके निवासी बड़े शरीरवाले सर्पगण भयंकराकारसे व्याकुल होंने लगे, । और जलजन्तु गण

तौतत्रविहितौदेवैःपर्वतौतौमहोदधौ ॥ अयंवायुसुतोराजन्हनूमांस्तत्रगच्छतु ॥ ३२ ॥ एतस्मिन्नंतरेवायुर्मेघाश्चापिस विद्युतः ॥ पर्यस्यसागरेतोयंकंपयन्निवपर्वतान् ॥ ३३ ॥ महतापक्षवातेनसर्वद्वीपमहाद्रुमाः ॥ निपेतुर्भग्नविटपाःसलि लेलवणांभसि ॥ ३४ ॥ अभवन्पन्नगास्त्रस्ताभोगिनस्तत्रवासिनः ॥ शीघ्रंसर्वाणियादांसिजग्मुश्चलवणार्णवम् ॥ ३५ ॥ ततोमुहूर्ताद्गरुडंवैनतेयंमहाबलम् ॥ वानरादद्दृशुःसर्वेज्वलंतमिवपावकम् ॥ ३६ ॥ तमागतमभिप्रेक्ष्यनागास्तेवि प्रदुद्रुवुः ॥ यैस्तुतौपुरुषौबद्धौशरभूतैर्महाबलैः ॥ ३७ ॥ ततःसुपर्णःकाकुत्स्थौस्पृष्ट्वाप्रत्यभिनंद्यच ॥ विममर्शचपाणि भ्यांमुखेचंद्रसमप्रभे ॥ ३८ ॥ वैनतेयेनसंस्पृष्टास्तयोसंरुरुहुर्व्रणाः ॥ सुवर्णेचतनूस्निग्धेतयोराशुबभूवतुः ॥ ३९ ॥

बड़ी शीघ्रतासे लवण समुद्रके जलमें प्रवेश कर गये ॥ ३५ ॥ तिसके पीछे समस्त वानरलोगोंनें एक मुहूर्त्त भरके बीचमें प्रदीप्त अग्निकी समान प्रकाशित विनताके पुत्र गरुड़जीको आते हुए देखा ॥ ३६ ॥ उन गरुड़जीके आतेही, जिन्होंने बाण रूपसे श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीको बांध रक्खाथा, और जो अतिशय बलवान्थे, ऐसे वह समस्त नाग डरके मारे अतिशीघ्रतासे भाग गये ॥ ३७ ॥ तिसके पीछे विनतानन्दन गरुड़जी रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजीको प्रणाम करके उनके अंगको अपने हाथोंसे स्पर्श करते हुए इन दोनों भ्राताओंको चंद्रमाकी समान द्युतिवाले मुख मंडल अपने हाथसे सुहरानें लगे ॥ ३८ ॥ गरुड़जीके करस्पर्शसे इन दोनों भ्राताओंके

शृगालियें अग्निकी लपटें उगालती हुई अशुभ शब्द करनें लगीं ॥ १४ ॥ और मृगादि पशुगण चिल्लाय २ कर राक्षसोंके संहारको बतानें लगे, चलते २ वीर योद्धा लोग एकाएक पैर फिसलनेंसे भयंकर भांतिसे गिरनें लगे ॥ १५ ॥ परन्तु महा बलवान वज्रदंष्ट्र राक्षस यह समस्त उत्पात उठानेंवाले लक्षण देखकर भी धीरज धारण कर समरका अभिलाषी हो लंकागढ़से बाहर निकला ॥ १६ ॥ इस ओर विजयी वानर समूह राक्षसोंको आया हुआ देखकर ऐसा सिंहनाद करनें लगे, कि उसकी गुंजारसे दशों दिशायें पूर्ण होगईं ॥ १७ ॥ तिसके पीछे परस्पर एक दूसरेको मार डालनेंकी आशा किये भयंकर रूप महाबलवान वानर और राक्षसोंका घोर संग्राम आरंभ हुआ ॥ १८ ॥ उस समय उन अति उत्साह

व्याहरंतमृगाघोरारक्षसांनिधनंतदा ॥ समापतंतोयोधास्तुप्रास्खलंस्तत्रदारुणम् ॥ १५ ॥ एतानौत्पातिकान्दृष्ट्वा वज्रदंष्ट्रोमहाबलः ॥ धैर्यमालंब्यतेजस्वीनिर्जगामरणोत्सुकः ॥ १६ ॥ तांस्तुविद्रवतोदृष्ट्वावानराजितकाशिनः ॥ प्रणेदुःसुमहानादान्दिशःशब्देनपूरयन् ॥ १७ ॥ ततःप्रवृत्तंतुमुलंहरीणांराक्षसैःसह ॥ घोराणांभीमरूपाणामन्योन्यवधकांक्षिणाम् ॥ १८ ॥ निष्पतंतोमहोत्साहाभिन्नदेहशिरोधराः ॥ रुधिरोक्षितसर्वांगान्यपतन्धरणीतले ॥ १९ ॥ केचिदन्योन्यमासाद्यशूराःपरिघबाहवः ॥ चिक्षिपुर्विविधाञ्छस्त्रान्समरेष्वनिवर्तिनः ॥ २० ॥ द्रुमाणांचशिलानांचशस्त्राणांचापिनिःस्वनः ॥ श्रूयतेसुमहांस्तत्रघोरोहृदयभेदनः ॥२१॥ रथनेमिस्वनस्तत्रधनुषश्चापिघोरवत् ॥ शंखभेरीमृदंगानांबभूवतुमुलःस्वनः ॥२२॥ केचिदस्त्राणिसंत्यज्यबाहुयुद्धमकुर्वत ॥ तलैश्चचरणैश्चापिमुष्टिभिश्चद्रुमैरपि ॥२३॥

वाले वीरोंकी देह, मस्तक, अधर, इत्यादि अंग कटजानेंसे व रुधिरमें शरीर डूबजानेंसे वह पृथ्वीपर गिर जानें लगे ॥ १९ ॥ समरसे न लौटनेवाले और परिघकी समान लंबी २ बांहवाले वीरगण लड़ते २ परस्पर पर लिपट जाते, और तिसके पीछे विविध भांतिके अस्त्र शस्त्र चलानें लगते ॥ २० ॥ उस घोर संग्राम भूमिमें वृक्ष पर्वत और अस्त्र शस्त्रोंका भयंकर हृदयको फाड़नेंवाला शब्द सुनाई आनें लगा ॥ २१ ॥ संग्राममें रथके चक्रोंका घर घर शब्द धनुषकी टंकार शंख भेरी और मृदंगोंका बड़ा कठोर शब्द हुआ ॥ २२ ॥ अनन्तर कोई राक्षस वानर वीर

कारणकि महा पराक्रमकारी दैत्य महाबलवान वानर गण और गन्धर्वादिकोंके सहित देवतालोग या स्वयं इन्द्रभी ॥४७॥ मायाके बलसे क्रूर कर्म कारी मेघनादका रचा हुआ यह अति दारुण नागरूपी बाण बन्धन नहीं छुड़ा सकतेथे, इसी कारण आपको इस संकटसे छुटानेंके लिये हम आये॥४८॥ तीक्ष्ण दन्त युक्त महा विषधर यह कद्रूके पुत्र नाग गण राक्षसी मायाके प्रभावसेही बाण रूप होकर आपका आश्रय किये हुएथे ॥ ४९ ॥ हे धर्मज्ञ! सत्य पराक्रमकारी श्रीरामचंद्रजी! समरमें रिपुघाती इन भ्राता लक्ष्मणजीके सहित आप अपनेको बड़ाही भाग्यवान समझें; कारणकि भाग्यहीसे आप इस घोर बन्धनसे मुक्त हुएहैं ॥ ५० ॥ आपकी यह अत्यन्त शोचनीय दशा सुनकर हम बड़ीही शीघ्रतासे इस स्थानमें आये

असुरावामहावीर्यावानरावामहाबलाः ॥ सुराश्चापिसगंधर्वाःपुरस्कृत्यशतक्रतुम् ॥ ४७ ॥ नेमंमोक्षयितुंशक्ताःशरबंधंसुदारुणम् ॥ मायाबलादिंद्रजितानिर्मितंक्रूरकर्मणा ॥ ४८ ॥ एतेनागाःकाद्रवेयास्तीक्ष्णदंष्ट्राविषोल्बणाः ॥ रक्षोमायाप्रभावेणशरभूतास्त्वदाश्रयाः ॥ ४९ ॥ सभाग्यश्चासिधर्मज्ञरामसत्यपराक्रम ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्रासमरेरिपुघातिना ॥ ५० ॥ इमंश्रुत्वातुविक्रांतस्त्वरमाणोहमागतः ॥ सहसैवावयोःस्नेहात्सखित्वमनुपालयन् ॥ ५१ ॥ मोक्षितौचमहाघोरादस्मात्सायकबंधनात् ॥ अप्रमादश्चकर्तव्योयुवाभ्यांनित्यमेवहि ॥ ५२ ॥ प्रकृत्याराक्षसाःसर्वेसंग्रामेकूटयोधिनः ॥ शूराणांशुद्धभावानांभवतामार्जवंबलम् ॥ ५३ ॥ तन्नविश्वसनीयंवोराक्षसानांरणाजिरे ॥ एतेनैवोपमानेननित्यंजिह्माहिराक्षसाः ॥ ५४ ॥

हैं, हमारा यह आना केवल आपसे स्नेह करनेंहीके कारण हुआ ॥ ५१ ॥ इस समय अनायासमें यह कार्य हुआ कि हमनें आपको इस महाघोर सर्प रूपी बाण बन्धनसे छुटा दिया, अब आगेको आप सदाही सावधान रहाकरें ॥ ५२ ॥ आपकी समान शुद्ध स्वभाववाले शूर लोग रण भूमिमें सदा सरलतासेही युद्ध किया करतेहैं; परन्तु राक्षसगण सदाही संग्राममें छलते युद्ध किया करतेहैं ॥ ५३ ॥ इस कारण आप रणभूमिमें इन राक्षस लोगोंका किसी प्रकारसे भी विश्वास न कीजिये, कारण कि यह लोग सदाहीसे क्रूर बुद्धिवाले होतेहैं; अब तो आप एक इन्द्रजीतहीके

ढकनेंके कारण वह रणभूमि अत्यन्त भयंकरी होगई । हार, बाजू वस्त्र और कटे हुए शस्त्रोंसे सजनेंके कारण ॥ ३१ ॥ वह रणभूमि शरद् ऋतुकी रात्रिके समान शोभा धारण करती हुई जिस प्रकार पवनके वेगसे मेघोंका जाल तितर वितर होकर पड़जाता है, वैसेही अंगदजीकी वीरता और उन करके मर्दित होनेंसे राक्षसोंकी सैना कम्पायमान हुई ॥३२॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे त्रिपंचाशः सर्गः ॥५३॥ तब महाबलवान वज्रदंष्ट्र राक्षस अपनी सेनाका नाश और अंगदजीके बलका प्रकाश देखकर अत्यन्तही क्रोध करता हुआ ॥ १ ॥ उस समय वह वज्रदंष्ट्र वज्रकी समान प्रभावाला भयंकर धनुष बाण शब्दितकर और उसे चढ़ाय वानरोंकी सैनापर बाणोंकी वर्षा करनें लगा ॥ २ ॥ रथपर चढ़े हुए

भूमिर्भातिरणेतत्रशारदीवयथानिशा॥ अंगदस्यचवेगेनतद्राक्षसबलंमहत् ॥ प्राकंपततदातत्रपवनेनांबुदोयथा॥२२॥
इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवा० आदिकाव्येयुद्धकांडेत्रिपंचाशःसर्गः ॥ ५३ ॥ ७ ॥ स्वबलस्यचघातेनअंगदस्यबलेन
च ॥ राक्षसःक्रोधमाविष्टोवज्रदंष्ट्रोमहाबलः ॥ १ ॥ विस्फार्यचधनुर्घोरंशक्राशनिसमप्रभम् ॥ वानराणामनीकानि
प्राकिरच्छरवृष्टिभिः ॥ २ ॥ राक्षसाश्चापिमुख्यास्तेरथैश्चसमवस्थिताः ॥ नानाप्रहरणाःशूराःप्रायुध्यंततदारणे ॥३॥
वानराणांचशूरास्तुतेसर्वेप्लवगर्षभाः ॥ अयुध्यंताशिलाहस्ताःसमवेताःसमंततः ॥ ४ ॥ तत्रायुधसहस्राणितस्मिन्ना
योधनेभृशम् ॥ राक्षसाःकपिमुख्येषुपातयांचक्रिरेतदा ॥ ५ ॥ वानराश्चैवरक्षःसुगिरिवृक्षान्महाशिलाः ॥ प्रवीराः
पातयामासुर्मत्तवारणसन्निभाः ॥ ६ ॥ शूराणांयुध्यमानानांसमरेष्वनिवर्तिनाम् ॥ तद्राक्षसगणानांचसुयुद्धंसमवर्त
त ॥ ७ ॥अभग्नशिरसःकेचिच्छिन्नैःपादैश्चबाहुभिः ॥ शस्त्रैरर्दितदेहास्तुरुधिरेणसमुक्षिताः ॥ ८ ॥

विविध भांतिके अस्त्र शस्त्र धारण किये बड़े २ शूर निशाचरभी युद्ध करनेंलगे ॥३॥ कूदनें फादनेंमे चतुर शूर वानर गणभी एकत्र हो शिला हाथमें लेकर सर्व प्रकारसे युद्ध करनें लगे ॥ ४ ॥ उस रणभूमिमें राक्षसोंने वानरश्रेष्ठोंके ऊपर सहस्र २ घोर कठोर बाण चलाये ॥ ५ ॥ मतवाले हाथियोंकी समान वानर वीर गणभी राक्षसोंको ताक २ कर बडे २ वृक्ष और बडी २शिलायें चलाने लगे ॥ ६ ॥ इस प्रकार संग्रामसें न लौटने वाले और समराभिलाषी उन राक्षस और वानरोंका महाघोर युद्ध आरंभहुआ ॥७॥ उनमें से किसी २ के शिर कट गये और किसी किसीके चरण

होकर प्रथमहीकी समान क्रीडा करने लगे ॥ ६२ ॥ व औरभी शत सहस्र पर्वतोंसे युद्ध करनेवाले विकराल वानरगण विविध भांतिके वृक्षों को उखाडते फांदते कूदते दलके दल खडेहो ॥ ६३ ॥ राक्षसोंको त्रासित करते हुए बड़ाभारी नादकरने लगे और वह सब वानर युद्धकी कामनासे आगे बढकर लंकापुरीके द्वारपर जाय पहुंचे ॥ ६४ ॥ ग्रीष्म कालके अंत समय रात्रिके समय शब्दायमान घनघटा समूहके भयंकर गर्जनकी समान उन वानर यूथनाथोंका भयंकर कठोर सिंहनाद श्रवण गोचर होने लगा ॥ ६५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे पंचाशः सर्गः ॥ ५० ॥ ॥ ७ ॥ इस ओर विभीषण इत्यादि राक्षस गणोंके सहित शब्दायमान उन महातेजस्वी

अपरेस्फोट्यविक्रांतावानरानगयोधिनः ॥ द्रुमानुत्पाट्यविविधांस्तस्थुःशतसहस्रशः ॥ ६३ ॥ विसृजंतोमहानादां स्त्रासयंतोनिशाचरान् ॥ लंकाद्वाराण्युपाजग्मुर्युद्धकामाःप्लवंगमाः ॥ ६४ ॥ तेषांसुभीमस्तुमुलोनिनादोबभूवशाखा मृगयूथपानाम् ॥ क्षयेनिदाघस्ययथाघनानांनादःसुभीमोनदतांनिशीथे ॥ ६५ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०युद्धकांडेपं चाशःसर्गः ॥ ५० ॥७॥ तेषांतुतुमुलंशब्दंवानराणांमहौजसाम् ॥ नर्दतांराक्षसैःसार्धंतदाशुश्रावरावणः ॥ १ ॥ स्नि ग्धगंभीरनिर्घोषंश्रुत्वातंनिनदंभृशम् ॥ सचिवानांततस्तेषांमध्येवचनमब्रवीत् ॥ २ ॥ यथाऽसौसंप्रहृष्टानांवानरा णामुपस्थितः ॥ बहूनांसुमहान्नादोमेघानामिवगर्जताम् ॥ ३ ॥ सुव्यक्तंमहतीप्रीतिरेतेषांनात्रसंशयः ॥ तथाहिविपुलै र्नादैश्चुक्षुभेलवणार्णवः ॥ ४ ॥ तौतुबद्धौशरैस्तीक्ष्णैर्भ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ अयंचसुमहान्नादःशंकांजनयतीवमे ॥ ५ ॥

वानरवृन्दोंका तुमुल कठोर सिंहनाद राक्षसोंके स्वामी रावणने सुना ॥ १ ॥ वह रावण स्पष्ट गंभीर और कठोर सिंहनाद वार २ श्रवण करके अपने मंत्रियोंसे जोकि वहां बैठेथे यह कहने लगा ॥ २ ॥ जब कि हर्षितचित्त हुए उन वानरोंका यह घोर सिंहनाद सुनाई आता है, जब कि बादलकी समान वह वानर गंभीर गर्जन कर रहे हैं ॥ ३ ॥ तब इसमें कोईभी सन्देह नहींहै कि उनको कोई बड़ी प्रसन्नता प्राप्त हुईहै यह देखो उनके बड़े भारी शब्दसे क्षार समुद्रभी खल बलाय रहाहै ॥ ४ ॥ वह दोनों भाई राम और लक्ष्मण तीक्ष्ण बाणोंसे बंध गयेथे; परन्तु इस

वज्रदंष्ट्रभी अंगदजीको वार २ क्रोधकी दृष्टिसे देखनें लगा ॥ १६ ॥ तब वज्रदंष्ट्र और अंगदजी दोनोही अत्यन्त क्रोधमें भरकर युद्ध करनें लगे उस समय वह दोनो मतवाले हाथी और केशरी (सिंह) की समान जान पड़तेथे ॥ १७ ॥ तिसके पीछे राक्षसोंकी सैनाके पति वज्रदंष्ट्रने अग्निकी शिखाके समान हजार बाण चलायकर वानर सैनापति अंगदजी के मर्म स्थानमें प्रहार किया ॥ १८ ॥ उस अत्यन्त हजार बाणका प्रहार लगनेंसे वालिकुमार अंगदजीके सब शरीरसे रुधिर निकलने लगा और इन्होनें भयंकर शब्दसे गर्जकर उस राक्षस वज्रदंष्ट्रके ऊपर एक बडा भारी वृक्ष चलाया ॥ १९ ॥ राक्षस वज्रदंष्ट्रने उस बडे भारी वृक्षको अपने ऊपर गिरता हुआ देखकर अति सावधानीसे बाण चलाय उसके

वज्रदंष्ट्रोऽगदश्चोभौयोयुध्येतेपरस्परम् ॥ चेरतुःपरमक्रुद्धौहरिमत्तगजाविव ॥ १७ ॥ ततःशरसहस्रेणहरिपुत्रं महाबलम् ॥ जघानमर्मदेशेषुशरैरग्निशिखोपमैः ॥ १८ ॥ रुधिरोक्षितसर्वांगोवालिसूनुर्महाबलः ॥ चिक्षेपवज्रदंष्ट्रायवृक्षंभीमपराक्रमः ॥ १९ ॥ दृष्ट्वापतंतंतंवृक्षमसंभ्रांतश्चराक्षसः ॥ चिच्छेदबहुधासोपिमथितःप्रापतद्भुवि ॥ २० ॥ तंदृष्ट्वावज्रदंष्ट्रस्यविक्रमंप्लवगर्षभः ॥ प्रगृह्यविपुलंशैलंचिक्षेपचननादच ॥ २१ ॥ तमापतंतंदृष्ट्वासरथादाप्लुत्यवीर्यवान् ॥ गदापाणिरसंभ्रांतःपृथिव्यांसमतिष्ठत ॥ २२ ॥ अंगदेनशिलाक्षिप्तागत्वातुरणमूर्धनि ॥ सचक्रकूबरंसाश्वप्रममाथरथंतदा ॥ २३ ॥ ततोऽन्यच्छिखरंगृह्यविपुलंद्रुमभूषितम् ॥ वज्रदंष्ट्रस्यशिरसिपातयामासवानरः॥२४॥अभवच्छोणितोद्गारीवज्रदंष्ट्रःसुमूर्च्छितः ॥ मुहूर्तमभवन्मूढोगदामालिंग्यनिःश्वसन् ॥ २५ ॥

टुकडेकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ २० ॥ वानरश्रेष्ठ अंगदजीनें वज्रदंष्ट्रका ऐसा विक्रम देखकर एक अत्यन्त बडी शिला ग्रहण करके उसके ऊपर चलाय सिंह नादकरने लगे॥ २१ ॥ परन्तु वीर्यवान राक्षस वज्रदंष्ट्र उस शिलाको गिरता हुआ देख रथसे छलांग मार श्रमरहितहो गदा हाथमें ले पृथ्वीपर खड़ा होगया ॥ २२ ॥ तिसकाल अंगदजीकी चलाई हुई शिलाने अत्यन्त जोरसे गिरकर रणभूमिके बीचमें टिका हुआ, चक्र और कूबरके सहित वज्रदंष्ट्रके रथको चूर्ण कर डाला ॥ २३ ॥ तब वानरोंके सैनापति अंगदजीनें वृक्षोंसे शोभायमान एक पर्वतका शिखर उखाड़कर उस राक्षस वज्रदंष्ट्रके शिरपर देमारा ॥ २४ ॥ उस घोर शैलशृङ्गकी चोट लगनेंसे रुधिर वमन करता हुआ वज्रदंष्ट्र मूर्च्छित होगया, और एक मुहूर्त भर

तब रावण कुछ एक रुष्ट होकर कहनें लगा कि मेघनादनें संग्राम स्थलमें भलीभांति मान मर्दनकर अति घोर वर प्राप्त किये हुए विषधर सर्पोंकी समान सफल और सूर्यवत्प्रकाशित बाणोंसे जिनको बंधन कियाथा॥१५॥जब कि वह शत्रु ऐसे बाण बन्धनसेभी छुटगये तब हमको ऐसा नहीं जान पड़ता कि हम इस राक्षसोंकी सैनासे विजयको प्राप्त करेंगे ॥ १६ ॥ आश्चर्यहै कि जिन सब अस्त्रोंने संग्राम भूमिमें वारंवार शत्रुगणोके प्राण हरण कियेथे, आज वही अग्निकी समान तेजस्वी अस्त्र हमारे कुभाग्यहीसे निष्फल होगये ॥ १७ ॥ यह कहकर रावण अत्यन्त क्रोधमें भरकर सर्प की समान लंबे २ श्वासलेने लगा; और कुछ देर पीछे रावण राक्षसोंके बीचमें बैठे हुए धूम्राक्षसे कहता हुआ ॥ १८ ॥ कि हे भयंकर विक्रमका

घोरैर्दत्तवरैर्बद्धौशरैराशीविषोपमैः ॥ अमोघैःसूर्यसंकाशैःप्रमथ्येंद्रजितायुधि ॥ १५ ॥ तदस्त्रबंधमासाद्ययदिमुक्तौ रिपूमम ॥ संशयस्थमिदंसर्वमनुपश्याम्यहंबलम् ॥ १६ ॥ निष्फलाःखलुसंवृत्ताःशराःपावकतेजसः॥ आदत्तंयैस्तुसंग्रामेरिपूणांजीवितंमम ॥१७॥एवमुक्त्वातुसंक्रुद्धोनिःश्वसन्नुरगोयथा ॥अब्रवीद्रक्षसांमध्येधूम्राक्षंनामराक्षसम्॥१८॥ बलेनमहतायुक्तोराक्षसैर्भीमविक्रमैः ॥ त्वंवधायाशुनिर्याहिरामस्यसहवानरैः ॥ १९ ॥ एवमुक्तस्तुधूम्राक्षोराक्षसेंद्रेणधीमता ॥ परिक्रम्यततःशीघ्रंनिर्जगामनृपालयात् ॥ २० ॥ अभिनिष्क्रम्यतद्द्वारंबलाध्यक्षमुवाचह ॥ त्वरयस्व बलंशीघ्रंकिंचिरेणयुयुत्सतः ॥ २१ ॥ धूम्राक्षवचनंश्रुत्वाबलाध्यक्षोबलानुगः ॥ बलमुद्योजयामासरावणस्याज्ञया भृशम् ॥ २२ ॥ तेबद्धघंटाबलिनोघोररूपानिशाचराः ॥ विनद्यमानाःसंहृष्टाधूम्राक्षंपर्यवारयन् ॥ २३ ॥

री ! वानर गणोंके और रामचंद्रका संहार करनेंके लिये तुम बड़ीभारी सैनाको संग लेकर शीघ्र युद्ध करनेंको जाओ ॥ १९ ॥ राक्षस धूम्राक्ष, बुद्धिमान राक्षसोंके स्वामी रावणकी ऐसी आज्ञा पाय उसकी प्रदक्षिणा करता हुआ अतिशीघ्र राजभवनसे बाहर निकला ॥ २० ॥ राक्षस धूम्राक्षनें राजद्वारके बाहर आयकर सैनाध्यक्षसे कहा कि,—हम युद्धमें जाना चाहते हैं, इस कारण कुछभी विलंब न लगायकर झटपट सैनाको सजाओ ॥ २१ ॥ धूम्राक्षके वचन सुन सैनाध्यक्षनें रावणकी आज्ञानुसार समस्त सैनाको बहुतही शीघ्र सजाया ॥ २२ ॥ घोररूपी राक्षसगण सिंह

तव महाबलवान अंगदजीने अत्यन्त तीक्ष्ण और विमल चमकते दमकते खड्गकी चोटसे वज्रदंष्ट्रका शिर काटकर पृथ्वीपर गिरादिया ॥ ३४ ॥ राक्षस वीर वज्रदंष्ट्रकी देह दोखंड होकर गिर पड़ी; सर्व शरीरसे रुधिर निकलनें लगा, उसकी दोनों आंखें उलट गईं और रुण्डपरसे पृथक् होकर शिर नीचे गिरपड़ा ॥३५॥ राक्षसगण वज्रदंष्ट्रको माराहुआ देखकर भयके मारे विह्वलहो लंकापुरीको भागगये। भागनेंके समय वानरवीरोंनें उनके ऊपर ऐसी मार धाड़ मचाईकि राक्षसोंके मरनेंमें कुछ कसर न रही। यह समस्त राक्षस इस अवस्थामें व्याकुलवदन और दीनभावयुक्तहो लज्जा से मुखको नीचा करके लंकामें प्रवेश करते हुए ॥ ३६ ॥ इस प्रकारसे इन्द्रकी समान प्रतापवान वह महाबलशाली वालिकुमार अंगदजी वानरोंकी

निर्मलेनसुधौतेनखड्गेनास्यमहच्छिरः ॥ जघानवज्रदंष्ट्रस्यवालिसूनुर्महाबलः ॥ ३४ ॥ रुधिरोक्षितगात्रस्यबभूवप
तितंद्विधा ॥ तच्चतस्यपरीताक्षंशुभंखड्गहतंशिरः ॥ ३५ ॥ वज्रदंष्ट्रंहतंदृष्ट्वाराक्षसाभयमोहिताः ॥ त्रस्ताह्यभ्यद्रवँल्लं
कांवध्यमानाःप्लवंगमैः ॥ विषण्णवदनादीनाह्रियाकिंचिदवाङ्मुखाः ॥ ३६ ॥ निहत्यतंवज्रधरःप्रतापवान्सवालिसूनुः
कपिसैन्यमध्ये ॥ जगामहर्षंमहितोमहाबलःसहस्रनेत्रस्त्रिदशैरिवावृतः ॥ ३७ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०युद्धकांडेच
तुष्पंचाशःसर्गः ॥ ५४ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ वज्रदंष्ट्रंहतंश्रुत्वावालिपुत्रेणरावणः ॥ बलाध्यक्षमुवाचेदंकृतांजलिमुपस्थित
म् ॥ १ ॥ शीघ्रंनिर्यांतुदुर्धर्षाराक्षसाभीमविक्रमाः ॥ अकंपनंपुरस्कृत्यसर्वशस्त्रास्त्रकोविदम् ॥ २ ॥

सैनाके वीचमें उस राक्षस वज्रदंष्ट्रको मार परम प्रसन्नता प्राप्त करतेहुए, और देवतालोगोंके वीचमें बैठे सहस्रलोचन इन्द्रकी नाईं वानरगणोंसे पूजित हुए ॥ ३७ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० चतुष्पंचाशः सर्गः ॥ ५४ ॥ तिसके पीछे लंकापति रावण वालिके पुत्र अंगदजीके हाथसे वज्रदंष्ट्र राक्षसको माराहुआ सुन निकटही हाथ जोड़कर खड़ेहुए सैनापति प्रहस्तसे बोला ॥ १ ॥ कि भयंकर विक्रम करनेंवाले दुर्द्धर्ष निशाचर लोक समस्त अस्त्र शस्त्रोंके जाननेंमें पंडित राक्षस अकम्पनको अपना

भयंकर गिद्ध आकाशसे गिरा ॥ ३१ ॥ मांसके खानेंवाले, पक्षिगण गुँधी हुई मालाकी समान लंगार (श्रेणी) से उसके रथकी ध्वजापर गिरनें लगे और रुधिरमें सना हुआ अत्यंत श्वेत कबंध धूम्राक्षके निकट पृथ्वी पर गिरा ॥ ३२ ॥ अत्यन्त भयंकर शब्द करता हुआ कबंध धूम्राक्षके सन्मुख गिरा। बादलोंसे रुधिरकी वर्षा होनें लगी, और पृथ्वी कंपायमान हुई ॥ ३३ ॥ और वज्रकी समान शब्द करताहुआ पवन चलनें लगा, घोर अंधकारसे ढकजानेंके कारण दशोंदिशा अप्रकाशित होगईं ॥ ३४ ॥ राक्षस धूम्राक्ष राक्षस लोगोंके यह अमंगल भयजनक घोर उत्पात देखकर हृदयमें अत्यन्त भय करता हुआ;और उसके साथ चलनेंवाली राक्षसोंकी सैनाभी यह अचानक अमंगल शकुन देखकर मूर्च्छित

ध्वजाग्रेग्रथिताश्चैवनिपेतुःकुणपाशनाः ॥ रुधिरार्द्रोमहान्श्वेतःकबंधःपतितोभुवि ॥ ३२ ॥ विस्वरंचोत्सृजन्नादान्धूम्राक्षस्यनिपातितः ॥ ववर्षरुधिरंदेवःसंचचालचमेदिनी ॥३३॥ प्रतिलोमंववौवायुर्निर्घातसमनिःस्वनः ॥ तिमिरौघावृतास्तत्रदिशश्चनचकाशिरे ॥ ३४ ॥ सतूत्पातांस्ततोदृष्ट्वाराक्षसानांभयावहान् ॥ प्रादुर्भूतान्सुघोरांश्चधूम्राक्षोव्यथितोभवत् ॥ मुमुहूराक्षसाःसर्वेधूम्राक्षस्यपुरःसराः ॥ ३५ ॥ ततःसुभीमोबहुभिर्निशाचरैर्वृतोभिनिष्क्रम्यरणोत्सुकोबली ॥ ददर्शतांराघवबाहुपालितांमहौघकल्पांबहुवानरींचमूम् ॥ ३६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेएकपंचाशःसर्गः ॥ ५१ ॥ ॥ छ ॥ धूम्राक्षंप्रेक्ष्यनिर्यांतंराक्षसंभीमविक्रमम् ॥ विनेदुर्वानराःसर्वेप्रहृष्टायुद्धकांक्षिणः ॥ १ ॥ तेषांसुतुमुलंयुद्धंसंजज्ञेकपिरक्षसाम् ॥ अन्योन्यंपादपैर्घोरैर्निघ्नतांशूलमुद्गरैः ॥ २ ॥

होगई ॥ ३५ ॥ तिसके पीछे रण करनेंकी इच्छा किये महाबलवान भयंकररूप राक्षस धूम्राक्ष असंख्य निशाचरगणोंके सहित, लंकापुरीसे बाहर आय श्रीरामचंद्रजीकी बाहुसे रक्षित प्रलयके समुद्रकी समान उन वानरोंकी सैनाको देखता हुआ कि जिसका कुछ ओर छोर नथा ॥ ३६ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० एकपंचाशः सर्गः ॥ ५१ ॥ युद्धकी अभिलाषा किये वानरगण भयंकर विक्रमकारी राक्षस धूम्राक्षको युद्ध करनेंके लिये आये हुए देखकर हर्षित मनसे सिंहनाद करनें लगे ॥ १ ॥ तिसके पीछे धीरे २ उन वानर और राक्षसोंका घोर कठोर

अचानक दीनभाव प्राप्त हुआ,युद्ध करनेंको प्रसन्नतासे चलेजाते हुए अकम्पनका वांया नेत्रभी फडकनें लगा ॥ १० ॥ इसका मुखमंडल मलीन होगया, और कंठस्वर विरूपताको प्राप्त हुआ, उस दिनके समय दुर्दिन आय पहुंचा पवन रूखेपनसे वहनें लगी ॥ ११ ॥ और मृग पक्षीगण सबहीके भयका उपजानेंवाला क्रूर शब्द करना आरंभ करनें लगे; परन्तु सिंहकी समान ऊँचे कंधोंवाला और शार्दूलकी समान विक्रमकारी ॥ १२ ॥ वह अकम्पनवीर; इन उत्पातोंको कुछभी नहीं समझताहुआ रणभूमिको चला; वह निशाचर राक्षसोंकी सैनाके साथ लंकापुरीसे निकला ॥ १३ ॥ इस सैनाका इस प्रकारका बड़ाभारी शब्द हुआ कि जिस्से समुद्रमेंभी खलबली पडगई, और वानरोंकी सैनाभी उस शब्दसे त्रासित होकर ॥१४॥

विवर्णोमुखवर्णश्चगद्गदश्चाभवत्स्वनः ॥ अभवत्सुदिनेकालेदुर्दिनंरूक्षमारुतम् ॥ ११ ॥ ऊचुःखगमृगाःसर्वेवाचःक्रू
राभयावहाः ॥ ससिंहोपचितस्कंधःशार्दूलसमविक्रमः ॥ १२ ॥ तानुत्पातानचिंत्यैवनिर्जगामरणाजिरम् ॥ तथानि
र्गच्छतस्तस्यरक्षसःसहराक्षसैः ॥ १३ ॥ बभूवसुमहान्नादःक्षोभयन्निवसागरम् ॥ तेनशब्देनवित्रस्तावानराणांमहा
चमूः ॥ १४ ॥ द्रुमशैलप्रहाराणांयोद्धुंसमुपतिष्ठताम् ॥ तेषांयुद्धंमहारौद्रंसंजज्ञेकपिरक्षसाम् ॥ १५ ॥ रामरावण
योरर्थेसमभित्यक्तदेहिनः ॥ सर्वेह्यतिबलाःशूराःसर्वेपर्वतसन्निभाः ॥ १६ ॥ हरयोराक्षसाश्चैवपरस्परजिघांसया ॥
तेषांविनर्दतांशब्दःसंयुगेऽतितरस्विनाम् ॥ १७ ॥ शुश्रावसुमहान्कोपादन्योन्यमभिगर्जताम् ॥ रजश्चारुणवर्णाभ
सुभीममभवद्भृशम् ॥ १८ ॥ उद्धूतंहरिरक्षोभिःसंरुरोधदिशोदश ॥ अन्योन्यंरजसातेनकौशेयोद्धतपांडुना ॥ १९ ॥

उसी समय वृक्ष और पर्वतोंको उठाय २ युद्ध करनेंके लिये आगे बढ़ी । तब उन वानर और राक्षसोंका महा घोरयुद्ध आरंभ हुआ ॥ १५ ॥
अनन्तर श्रीरामचंद्रजी और रावणके लिये प्राणतक त्यागना दोनो ओरके वीरोंनें विचारा दोनोंही बलवान विक्रमशाली और पर्वताकारथे ॥ १६ ॥
राक्षस और वानरगण परस्पर एक दूसरेको मार डालनेंके लिये तैयारथे । अतिवेगवान तिन वानर और राक्षसोंका शब्द समरमें ॥ १७ ॥ श्रवण
गोचर होंनें लगा, दोनो दलोंकेही क्रोधसहित गर्जनेंका महाभयानक शब्द उठा, दोनो दलोंमें धूम पड़नेसे बड़ी भारी लाल २ धूल उड़ी ॥१८॥
वानर और राक्षसोंके चरणोंकी उडीहुई धूलसे दशोंदिशा पूर्ण होगई, यह धूल धूसर वर्णकी कुछ २ लालपन लिये हुएथी ॥ १९ ॥

ही प्रहारसे चीर फाड़कर काटे गये ॥ ११ ॥ कोई २ ध्वजाओंसे मल डाले गये कोई खड्गसे पृथ्वीपर खड़ा होगया ॥ २८ ॥ हनुमानजीकी चलाई कितनेही राक्षस अत्यन्त व्यथित हुए ॥ १२ ॥ पर्वतोंके शिखरकी समान पर्वताकार हाथी वानर गण ओरसे वह शिला पृथ्वीमें गिरी ॥ २९ ॥ वह समर भूमि पूर्ण होगई ॥ १३ ॥ भयंकर विक्रमकारी वेगवान वानरगण वारंवार छलांग मारते हुए अपने नखोंसे निशाचरोंके मुख लगे ॥ ३० ॥ फाड़नें लगे ॥ १४ ॥ तब राक्षस इस अवस्थाको पाय अत्यन्त विषादित हुए, उनके बाल खुलगये, और वह बराबर वहते हुए रुधिर गन्ध मूर्च्छितहो पृथ्वीपर गिरनें लगे ॥ १५ ॥ इसी समयमें बहुत सारे राक्षस गण क्रोधसे प्रदीप्त हो वेगवान वानरोंको, वज्रकी समान लात मारनेंके

ध्वजैर्विमथितैर्भग्नैःखड्गैश्चविनिपातितैः ॥ रथैर्विध्वंसिताःकेचिद्व्यथितारजनीचराः ॥ १२ ॥ गजेंद्रैःपर्वताकारैःपर्वताग्रैर्वनौकसाम् ॥ मथितैर्वाजिभिःकीर्णंसारोहैर्वसुधातलम् ॥ १३ ॥ वानरैर्भीमविक्रांतैराप्लुत्योत्प्लुत्यवेगितैः ॥ राक्षसाःकरजैस्तीक्ष्णैर्मुखेषुविनिदारिताः ॥ १४ ॥ विषण्णव[illegible] भूयोविप्रकीर्णशिरोरुहाः ॥ मूढाःशोणितगंधेननिपेतुर्धरणीतले ॥ १५ ॥ अन्येतुपरमक्रुद्धाराक्षसाभीमविक्र[illegible] तलैरेवाभिधावंतिवज्रस्पर्शसमैर्हरीन् ॥ १६ ॥ वानरैः पातयंतस्तेवेगितावेगवत्तरैः ॥ मुष्टिभिश्चरणैर्दंतैःपादपैश्चावपोथिताः ॥ १७ ॥ सैन्यंतुविद्रुतंदृष्ट्वाधूम्राक्षोराक्षसर्षभः ॥ रोषेणकदनंचक्रेवानराणांयुयुत्सताम् ॥ १८ ॥ प्रासैःप्रमथिताःकेचिद्वानराःशोणितस्रवाः ॥ मुद्गरैराहताःकेचित्पतिताधरणीतले ॥ १९ ॥ परिघैर्मथिताःकेचिद्भिंदिपालैश्चदारिताः ॥ पट्टिशैर्मथिताःकेचिद्विह्वलंतोगतासवः ॥ २० ॥

लिये उनकी ओर दौड़े ॥ १६ ॥ परन्तु वेगवान वानरगण;—घूंसा, लात, दांत, और वृक्षोंसे उनको इस प्रकारकि मार देनें लगे, कि वह राक्षस उनके सामने स्थिर न रहकर भाग निकले ॥ १७ ॥ तिसके पीछे राक्षसश्रेष्ठ धूम्राक्ष अपनी सैनाको चलायमान देखकर क्रोधमें भर वानरोंके ऊपर प्रहार करनें लगा ॥ १८ ॥ तब कोई २ वानर तो वाण लगनेंसे मर्दित होगये और उनके शरीरसे रुधिर वहनें लगा, और अनेक वानर मुद्गरोंसे घायल होकर पृथ्वीपर गिरते हुए ॥ १९ ॥ कोई २ वानर परिघसे, और कोई पटेसे कुचल डाले गये, और कोई धनवासी लगनेंके कारण घायल होनेंसे

हर्षित करानें लगा;वानर लोगभी राक्षसोंको बड़े २ वृक्ष और बड़ीर शिलायें ग्रहण कर ॥ २९ ॥ बलपूर्वक राक्षसोंके अस्त्र शस्त्र उनको विदारण करनें लगे, कि उसी अवसरमें वानर वीर, कुमुद, नल, ॥३०॥ मैन्दादि सब महाक्रोध कर बड़ावेग करनेंलगे। यह महावीर वानर गण बड़े २ वृक्षोंको लेकर सैनाके मुखमें टिके हुए ॥३१॥ लीलासेही खेलसा करते हुए राक्षसोंकी बड़ीभारी दुर्दशा करनें लगे; इन वानरश्रेष्ठोंनें यहां तक वृक्ष चलाये, कि बहुतसे राक्षस मृतक होगये। इन वानरोंनें औरभी अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंसे राक्षसोंका मान मथडाला ॥ ३२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा मायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पंचपंचाशः सर्गः ॥ ५५ ॥ तब वानर वीरगणोंका अद्भुत विक्रम देखकर और उनके बड़ेभारी

विदारयंत्यभिक्रम्यशस्त्राण्याच्छिद्यवीर्यतः ॥ एतस्मिन्नंतरेवीराहरयःकुमुदोनलः ॥ ३० ॥ मैंदश्चपरमक्रुद्धश्चक्रु वेंगमनुत्तमम् ॥ तेतुवृक्षैर्महावीराराक्षसानांचमूमुखे ॥ ३१ ॥ कदनंसुमहच्चक्रुर्लीलयाहरिपुंगवाः ॥ ममंथूराक्षसान्सर्वे नानाप्रहरणैर्भृशम् ॥ ३२ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० युद्ध० पंचपंचाशः सर्गः ॥५५॥ ॥ छ ॥ ॥ तद्दृष्ट्वासुम त्कर्मकृतंवानरसत्तमैः ॥ क्रोधमाहारयामासयुधितीव्रमकंपनः ॥ १ ॥ क्रोधमूर्छितरूपस्तुधुन्वन्परमकार्मुकम् ॥ दृष्ट्वातुकर्मशत्रूणांसारथिंवाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥ तत्रैवतावत्त्वरितोरथंप्रापयसारथे ॥ एतेचबलिनोघ्नंतिसुबहून्राक्ष सान्रणे ॥ ३ ॥ एतेचबलवंतोवाभीमकोपाश्चवानराः ॥ द्रुमशैलप्रहरणास्तिष्ठंतिप्रमुखेमम ॥ ४ ॥ एतान्निहंतुमि च्छामिसमरश्लाघिनोह्यहम् ॥ एतैःप्रमथितंसर्वंरक्षसांदृश्यतेबलम् ॥ ५ ॥

कार्यको विचारकर राक्षस सैनापति अकंपननें अत्यन्त क्रोधकिया ॥ १ ॥वह वीर अकंपन शत्रुलोगोंका ऐसा कर्म देखकर बड़ा भारी विचित्र शरा सन ग्रहण कर उसपर टंकारदे क्रोधसे मूर्छितहो अपने सारथिसे बोला ॥ २ ॥ हेसारथे! यह बलवान वानर गण संग्राममें अगणित राक्षसोंको संहार कर रहेहैं, इस कारण जहांपर यह वानरहैं, वहीं पर हमारा रथ ले चलो ॥३॥ जो वानर लोग कि वृक्ष और शिलारूप हथियार धारण किये हुए हमारे सामने टिकेहैं; यह समरकी अभिलाषा किये भयंकर कोप करनेंवाले वानर अतिशय बलवानहैं ॥ ४ ॥ इस कारण हम पहले इन

शिलाको अपने ऊपर आती देख बडी शीघ्रताके साथ रथसे छलांगमार गदा ग्रहण कर पृथ्वीपर खड़ा होगया ॥ २८ ॥ हनुमानजीकी चलाई गदाके प्रहारसे केवल धूम्राक्षका रथही चूर्ण नहीं हुआ, वरन, चक्र, कूवर, ध्वजा और धनुष बाणतक नष्ट करके वह शिला पृथ्वीमें गिरी ॥ २९ ॥ तिसके पीछे हनुमानजी धूम्राक्षके रथको छोड़ कर शाखा और पत्तोंके सहित वृक्षोंसे राक्षसोंका विध्वंस करनें और उनको भगानें लगे ॥ ३० ॥ तब वृक्षोंके द्वारा पीड़ित होनेंसे राक्षसोंके शिर फूट गये और इस कारण रुधिरकी धारा निकलनेंसे वह पृथ्वी पर गिरनें लगे कुछेक राक्षस मार डालेगये और कितनोंनें अपने प्राणोंकी आशा छोड़दी ॥ ३१ ॥ पवनकुमार हनुमानजी इस प्रकारसे राक्षसोंकी सैनाको तितर वितर कर भगाय

साप्रमथ्यरथंतस्यनिपपातशिलाभुवि ॥ सचक्रकूबरमुखंसध्वजंसशरासनम् ॥ २९ ॥ सत्यक्त्वातुरथंतस्यहनूमान्मारुतात्मजः ॥ रक्षसांकदनंचक्रेसस्कंधविटपैर्द्रुमैः ॥ ३० ॥ विभिन्नशिरसोभूत्वाराक्षसारुधिरोक्षिताः ॥ द्रुमैः प्रमथिताश्चान्येनिपेतुर्धरणीतले ॥ ३१ ॥ विद्राव्यराक्षससैन्यंहनूमान्मारुतात्मजः ॥ गिरेःशिखरमादायधूम्राक्षमभिदुद्रुवे ॥ ३२ ॥ तमापतंतंधूम्राक्षोगदामुद्यम्यवीर्यवान् ॥ विनर्दमानःसहसाहनूमंतमभिद्रवत् ॥ ३३ ॥ तस्यक्रुद्धस्यरोषेणगदांतांबहुकंटकाम् ॥ पातयामासधूम्राक्षोमस्तकेऽथहनूमतः ॥ ३४ ॥ ताडितःसतयातत्रगदयाभीमवेगया ॥ सकपिर्मारुतबलस्तंप्रहारमचिंतयत् ॥ ३५ ॥ धूम्राक्षस्यशिरोमध्येगिरिशृंगमपातयत् ॥ सविस्फारितसर्वांगोगिरिशृंगेणताडितः ॥ ३६ ॥

एक पर्वतका शृङ्ग ग्रहण करके धूम्राक्षके सामनें दौड़े ॥ ३२ ॥ वीर्यवान राक्षस धूम्राक्षभी हनुमानजीको अपनी ओर आता हुआ देख सिंहनादकर एक गदा उठाय उनके सन्मुख हुआ ॥ ३३ ॥ तिसके पीछे धूम्राक्षनें क्रोधमे भरकर वह अपनी बहुत कांटोंसे युक्त गदा क्रोधित हनुमानजीके शिरपर मारी ॥ ३४ ॥ परन्तु पवनकी समान बलवान हनुमानजी उस भयंकर वेगवाली गदाका प्रहार अपनें शिरमें लगनेंसेभी उस प्रहारको कुछभी नहीं समझते हुए कि जानें कहां लगा ॥ ३५ ॥ तिसके पीछे अञ्जनीहृदयनंदन पवनकुमार हनुमानजीनें अपनी वह पहली ग्रहणकीहुई

घोर सिंहनाद करतेहुए उनका रूप अत्यन्त असह होगया और वह प्रदीप्त अग्निकी समान अपने तेजसे आपही प्रकाशित हुए ॥ १४ ॥ वानर श्रेष्ठ क्रोधयुक्त हनुमानजीनें अपने आपको जब आयुधसे हीन जाना तब अतिवेगसे इन्होंनें एक पर्वत उखाड लिया ॥ १५ ॥ और एक हाथसे उस महापर्वतको ग्रहण कर पवननंदन हनुमानजी वारंवार सिंहनादकरकै उस पर्वतको घुमानेंलगे ॥ १६ ॥ पहले देवराज इन्द्रजी संग्राममें जिस प्रकार नमुचि दैत्यपर दौड़ेथे, वैसेही श्रीहनुमानजी राक्षसश्रेष्ठ अकंपनकी ओर दौड़े ॥ १७ ॥ परन्तु अकम्पननें हनुमानजीको गिरि शृंग लिये आता हुआ देखकर दूरसेही बड़े भारी अर्द्धचन्द्र बाण चलाय इस पर्वतको खंड २ कर डाला ॥ १८ ॥ हनुमानजी उस पर्वतको राक्ष

आत्मानंत्वप्रहरणंज्ञात्वाक्रोधसमन्वितः ॥ शैलमुत्पाटयामासवेगेनहरिपुंगवः ॥ १५ ॥ गृहीत्वासुमहाशैलंपाणि नैकेनमारुतिः ॥ सविनद्यमहानादंभ्रामयामासवीर्यवान् ॥ १६ ॥ ततस्तमभिदुद्रावराक्षसेंद्रमकंपनम् ॥ पुराहिन मुचिंसंख्येवज्रेणेवपुरंदरः ॥ १७ ॥ अकंपनस्तुतदृष्ट्वागिरिशृंगंसमुद्यतम् ॥ दूरादेवमहाबाणैरर्धचंद्रैरदारयत् ॥ १८ ॥ तंपर्वताग्रमाकाशेरक्षोबाणविदारितम् ॥ विकीर्णपतितंदृष्ट्वाहनूमान्क्रोधमूर्छितः ॥ १९ ॥ सोश्वकर्णसमासाद्यरोषदर्पा न्वितोहरिः ॥ तूर्णमुत्पाटयामासमहागिरिमिवोच्छ्रितम् ॥ २० ॥ तंगृहीत्वामहास्कंधंसोश्वकर्णमहाद्युतिः ॥ प्रगृह्य परयाप्रीत्याभ्रामयामासभूतले ॥ २१ ॥ प्रधावन्नुरुवेगेनबभंजतरसाद्रुमान् ॥ हनूमान्परमक्रुद्धश्चारणैर्दारयन्मही म् ॥ २२ ॥ गजांश्चसगजारोहान्सरथान्रथिनस्तथा ॥ जघानहनुमान्भीमान्राक्षसांश्चपदातिगान् ॥ २३ ॥

सके बाणोंसे आकाशमार्गमेंही कटा और इधर उधर छितराया देखकर क्रोधके मारे अधीर होगये ॥ १९ ॥ तब क्रोध और गर्व किये हुए उन वानरश्रेष्ठ हनुमानजीनें महापर्वतकी समान ऊंचे एक अश्वकर्ण वृक्षके नीचे जाय अति शीघ्रताके सहित उसको उखाड़ लिया ॥ २० ॥ तिसके पीछे महाद्युतिमान हनुमानजीनें शाखा फुलंची युक्त उस अति ऊंचे अश्वकर्णके वृक्षको ग्रहण करकै परम प्रसन्नता सहित उसको रणस्थलमें घुमाय कर एक वार पृथ्वीपर देमारा ॥ २१ ॥ उस कालमें क्रोधपूर्ण हनुमानजी करकै उस वृक्षके घुमानेंसे अनेक वृक्ष टूट गये, और उनके चरणोंके वेगसे वसुमती पृथ्वी घूमनें लगी ॥ २२ ॥ महावीर हनुमानजी उस वृक्षको घुमाय २ हाथी, हाथियोंके साथ, रथी, रथ और भयंकर परा

ऊंट, इत्यादि जीवगणभी चलनेंलगे, और चित्र विचित्र ध्वजा पताकाओंसे यह सब विशेष सुशोभितथे ॥ ५ ॥ वीर वज्रदंष्ट्र विचित्र बाजू बांधे शोभायमान मुकुट शिर पर धारे युद्ध करनेंको चला, उसका शरीर बख्तरसे ढकाहुआथा, और हाथोंमें धनुष बाणथा ॥ ६ ॥ उसका रथ ध्वजा पताकाओंके लगनेसे शोभायमानथा, तपायाहुआ सुवर्णभी उसमें बहुत स्थानोंपर लगा हुआथा, ऐसे रथकी प्रदक्षिणा करके वज्रदंष्ट्र उस पर सवार हुआ ॥ ७ ॥ तेगा, तोमर, मूसल, तीक्ष्ण फरसे, भिण्डिपाल, धनुष, शक्ति पटा ॥ ८ ॥ खड्ग, चक्र, गदा; इत्यादि और अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र लिये पैदल सैना वज्रदंष्ट्र नामक राक्षसके साथ २ चली ॥ ९ ॥ वह राक्षसश्रेष्ठ सबही उजले और दीप्त चित्रित वस्त्र पहर रहेथे, उस

ततोविचित्रकेयूरमुकुटेनविभूषितः ॥ तनुत्रंचसमावृत्यसधनुर्निर्ययौद्रुतम् ॥ ६ ॥ पताकालंकृतंदीप्तंतप्तकांचनभूषितम् ॥ रथंप्रदक्षिणंकृत्वासमारोहच्चमूपतिः ॥ ७ ॥ ऋष्टिभिस्तोमरैश्चित्रैःश्लक्ष्णैश्चमुसलैरपि ॥ भिंदिपालैश्चचापैश्चशक्तिभिःपट्टिशैरपि ॥ ८ ॥ खड्गैश्चक्रैर्गदाभिश्चनिशितैश्चपरश्वधैः ॥ पदातयश्चनिर्यांतिविविधाःशस्त्रपाणयः ॥ ९ ॥ विचित्रवाससःसर्वेदीप्taराक्षसपुंगवाः ॥ गजामदोत्कटाःशूराश्चलंतइवपर्वताः ॥ तेयुद्धकुशलारूढास्तोमरांकुशपाणिभिः ॥ अन्येलक्षणसंयुक्ताःशूरारूढामहाबलाः ॥ ११ ॥ तद्राक्षसबलंसर्वंविप्रस्थितमशोभत ॥ प्रावृट्कालेयथामेघानर्दमानाःसविद्युतः ॥ १२ ॥ निःसृतादक्षिणद्वारादंगदोयत्रयूथपः ॥ तेषांनिष्क्रममाणानामशुभंसमजायत ॥ १३ ॥ आकाशाद्विघनात्तीव्रादुल्मुकान्यपतंस्तदा ॥ वमंतःपावकज्वालाःशिवाघोरावंवाशिरे ॥ १४ ॥

सैनाके पीछे २ मदमाते हाथी, गमन करनेंके समय चलते हुए पर्वतोंकी समान ज्ञात होतेथे ॥ १० ॥ वह समस्त हाथी युद्ध करनेंमें बड़े कुशलथे, उन पर भाला अंकुशादि धारण किये वीर लोग चढ़ेथे व औरभी महाबली सर्व लक्षण सम्पन्न वीर गण उन पर चढ रहेथे ॥ ११ ॥ उस समय वह चलती हुई राक्षस सैना वर्षा समयकी श्रेणीसे शोभित गर्जती हुई मेघ मालाकी समान शोभायमान होनें लगी ॥ १२ ॥ उस समय वह सैना निकलकर वहां पर जहां कि यूथपति अंगदजी लंकाके दक्षिणद्वारपर टिके हुएथे राक्षसोंकी सैना जैसेही निकलीकि उसके अशुभकी सूचना करनें वाले अमंगल दृष्टि आनें लगे ॥ १३ ॥ आकाशसे विनाही मेघके तीव्र विजलीके सहित उल्का गिरनें लगीं । घोर रूपवाली

भागनें लगे ॥ ३२ ॥ उन राक्षसोंके वाल छूट रहेथे उन्होंने पराजित होकर मान मर्यादाको जल दे दिया, भयके मारे उनके सब अंगोंमें पसीना आ रहाथा, और प्राणोंका डर करके उनके चित्त स्थिर नहींथे ॥ ३३ ॥ उस समय उनको इस प्रकारका भय हुआथा कि वह राक्षस भागनेंके समय वारंवार पीछे को देखनें लगे, और आपही परस्पर एक दूसरेको मारते हुए नगरमें प्रवेश करते हुए ॥ ३४ ॥ जब वह महावल राक्षस लंका पुरीको चले गये तव समस्त वानर एकत्रहो हनुमानजीकी पूजा करनें लगे और उन नीतिविशारद सत्वसम्पन्न हनुमानजीनेभी भेंटकरके, व संभाषण करके उन सब वानरोंकी यथायोग्य रूपसे वडाईकर प्रतिपूजित किया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ तिसके पीछे वह विजयी वानर गण मृतक

तेमुक्तकेशाःसंभ्रांताभग्नमानाःपराजिताः॥भयाच्छ्रमजलैरंगैःप्रस्रवद्भिर्विदुद्रुवुः ॥३३॥ अन्योन्यंतेप्रमथ्नंतोविविशुर्नगरंभयात् ॥ पृष्ठतस्तेतुसंमूढाःप्रेक्षमाणामुहुर्मुहुः ॥३४॥ तेषुलंकांप्रविष्टेषुराक्षसेषुमहाबलाः ॥ समेत्यहरयःसर्वेहनूमंतमपूजयन् ॥३५॥ सोपिप्रवृद्धस्तान्सर्वान्हरीन्संप्रत्यपूजयत् ॥ हनूमान्सत्त्वसंपन्नोयथार्हमनुकूलतः ॥ ३६ ॥ विनेदुश्चयथाप्राणंहरयोजितकाशिनः ॥ चकृषुश्चपुनस्तत्रसप्राणानेवराक्षसान् ॥ ३७ ॥ सवीरशोभामभजन्महाकपिःसमेत्यरक्षांसिनिहत्यमारुतिः ॥ महासुरंभीमममित्रनाशनंविष्णुर्यथैवोरुबलंचमूमुखे ॥३८॥ अपूजयन्देवगणास्तदाकपिंस्वयंचरामोतिबलश्चलक्ष्मणः॥तथैवसुग्रीवमुखाःप्लवंगमाविभीषणश्चैवमहाबलस्तदा ॥ ३९ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वाल्मीकीयेआ० युद्धकांडेषट्पंचाशःसर्गः ॥५६॥अकंपनवधंश्रुत्वाक्रुद्धोवैराक्षसेश्वरः॥किंचिद्दीनमुखश्चापिसचिवांस्तानुदैक्षत ॥ १ ॥

राक्षसोंको ऐसा समझकर कि कदाचित् यह जीवित न हों फिर इधर उधर खेंचने लगे ॥ ३७ ॥ जिस प्रकार शत्रुओंके मारनेंवाले विष्णुजीने संग्रामभूमिमें भयंकर रूप महा वलवान मधुकैटभादि महा असुरोंको मारकर वडी भारी शोभा धारण कीथी वैसेही यह महाकपि पवनकुमार हनुमानजी राक्षसोंको ऐसा संहारकरके वीरोंकी शोभासे शोभित हुए ॥ ३८ ॥ उस समय आकाशमें टिके हुए देवतागण सुग्रीवादि मुख्य २ वानर गण, महावलवान विभीषण अति वलवान लक्ष्मण और स्वयं श्रीरामचंद्रजीभी उन महाकपि हनुमानजीकी वारंवार प्रशंसा करने लगे ॥ ३९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे षट्पंचाशःसर्गः ॥ ५६ ॥ अकम्पनके मारे जानेका वृत्तान्त सुनकर निशाचरपति रावण अ

सब अस्त्र शस्त्रोंको त्याग करके, तल, चरण और घूमनेंसे मल्ल युद्ध और कोई वृक्षोंको लेकर युद्ध करनें लगे ॥ २३ ॥ उस समय कोई २ राक्षस युद्धमें मतवाले वानर गणोंसे जांघसे मारे जाकर अपने शरीरको तुडवाते हुए, और कोई राक्षस वानरोंकी चलाई हुई शिलाओंके प्रहारसे पिसकर चूर्ण होगये ॥ २४ ॥ तिसके पीछे वज्रदंष्ट्र यह समस्त व्यापारदेख वानरोंको त्रासित करता हुआ लोक संहार करनेंके लिये तैयार फांसी हाथमें लिये हुए यमराजकी समान रणभूमिमें घूमनें लगा ॥ २५ ॥उस समय विविध अस्त्र शस्त्र धारी अस्त्रवित् बलवान निशाचर गण क्रोधसे मूर्छित होकर वानरोंकी सैनाका संहार करनें लगे ॥ २६ ॥ परन्तु महा वीरजी रणभूमिमें राक्षसों करके वानर लोगोंको मरते देखकर प्रलय

जानुभिश्चहताःकेचिद्भग्नदेहाश्चराक्षसाः ॥ शिलाभिश्चूर्णिताःकेचिद्वानरैर्युद्धदुर्मदैः ॥ २४ ॥ वज्रदंष्ट्रोथतंदृष्ट्वारणेवि
त्रासयन्हरीन् ॥ चचारलोकसंहारेपाशहस्तइवांतकः ॥ २५ ॥ बलवंतोऽस्त्रविदुषोनानाप्रहरणारणे ॥ जघ्नुर्वानरसैन्यानि
राक्षसाःक्रोधमूर्छिताः ॥ २६ ॥ जघ्नेतान्राक्षसान्सर्वान्दृष्टोवायुसुतोरणे ॥ क्रोधेनद्विगुणाविष्टःसंवर्तकइवानलः ॥ २७॥
तान्राक्षसगणान्सर्वान्वृक्षमुद्यम्यवीर्यवान् ॥ अंगदःक्रोधताम्राक्षःसिंहःक्षुद्रमृगानिव ॥ २८॥ चकारकदनंघोरंशक्रतु
ल्यपराक्रमः ॥ अंगदाभिहतास्तत्रराक्षसाभीमविक्रमाः ॥ २९ ॥विभिन्नशिरसःपेतुर्निकृत्ताइवपादपाः ॥ रथैश्चित्रैर्ध्वजै
रश्वैःशरीरैर्हरिरक्षसाम् ॥ ३० ॥ रुधिरौघेणसंछन्नाभूमिर्भयकरीतदा ॥ हारकेयूरवस्त्रैश्चछत्रैश्चसमलंकृता॥ ३१ ॥

कालके अग्निकी समान द्विगुण कोप करते हुए ॥ २७ ॥ इन्द्रतुल्य पराक्रम शाली अंगदजी भी क्रोधके मारे लाल २ नेत्रकर सिंह जिस प्रकार छोटे २ मृगोंका नाश करताहै वैसेही वृक्षोंको उठाय २ यह राक्षसोंकाघोर विनाश करनें लगे॥ २८॥यद्यपि यह राक्षस लोग भी बड़े विक्रमीथे परन्तु इन्द्रकी समान घोर विक्रम कारी अंगदजीके द्वारा मारे जानेंसे ॥ २९ ॥ इन राक्षसोंके शिर कट गये, कि जिस्से यह राक्षस कटे हुए वृक्षकी समान पृथ्वीपर गिरनें लगे। रथ चित्र विचित्र ध्वजा पताका अश्व और वानर राक्षसोंके मृतक शरीरोंसे ॥ ३० ॥ और रुधिरके सोतेसे

सिंहकी सिंहनादको नहीं सहसकतेहैं; वैसेही वह नीतिरहित चपल और चंचलचित्त वानरोंकी सैना तुम्हारा भयंकर गर्जना नहीं सहसकेगी हे प्रहस्त! सब वानरोंकी सैनाके इधर उधर भाग जानेंसे वह स्वामी शक्तिहीन सहायरहित रामचंद्र और सुमित्राके पुत्र लक्ष्मणके सहित तुम्हारे वशमें होजांयगे ॥९॥ १० ॥ हे वीर ! यद्यपि आपत् अर्थात् युद्धमें मरण संशय युक्तहै; कारण कि यह नहीं जाने कि कौन मारा जायगा. और निःसंशयमें अमंगलहै, इस कारण इसका प्रतिलोम और अनुलोम, जिसमें प्रवृत्तिहो वही तुम करो ❋ ॥ ११ ॥ जब रावणनें यह कहा तब सैनापति प्रहस्त शुक्राचार्य जिस प्रकार दैत्येन्द्रसे कहा करते हैं वैसेही राक्षसोंके स्वामी रावणसे यह बोला ॥ १२ ॥ हे महाराज! पहले हम

विद्रुतेचबलेतस्मिन्रामःसौमित्रिणासह ॥ अवशस्तुनिरालंबः प्रहस्तवशमेष्यति ॥ १० ॥ आपत्संशयिताश्रेयोनात्रनिःसंशयीकृता ॥ प्रतिलोमानुलोमंवायत्तुनोमन्यसेहितम् ॥ ११ ॥ रावणेनैवमुक्तस्तुप्रहस्तोवाहिनीपतिः ॥ राक्षसेंद्रमुवाचेदमसुरेंद्रमिवोशना ॥ १२ ॥ राजन्मंत्रितपूर्वंनःकुशलैःसहमंत्रिभिः ॥ विवादश्चापिनोवृत्तःसमवेक्ष्यपरस्परम् ॥१३॥ प्रदानेनतुसीतायाःश्रेयोव्यवसितंमया ॥ अप्रदानेपुनर्युद्धंदृष्टमेवतथैवनः ॥१४॥ सोहंदानैश्चमानैश्चसततंपूजितस्त्वया ॥ सांत्वैश्चविविधैःकालेकिंनकुर्यांहितंतव ॥ १५ ॥

लोगोंनें नीतिके जाननेंवाले मंत्रियोंके सहित इस सम्बन्धमें परामर्श कियाथा. परन्तु उसकालमें परस्पर एकमत न होनेंसे हम लोगोंमें विवाद भी हुआ ॥ १३ ॥ उस समय हमनें जानकीका दे देनाही निश्चय कियाथा; और यह भी हमनें कहाथा कि सीता न देनेंसे युद्धभी होगा सो हे महाराज ! इस समय हमें वही युद्ध प्राप्त हुआहै ॥ १४ ॥ हे राक्षसनाथ ! जो कुछभी हो आप दान, सन्मान और मीठे वचनोंसे सदाही हमारा सन्मान किया करतेहैं; इस कारण इस समय हम आपके लिये किसी प्रकार हितकारी कार्य करनेंमें कोई कसर न रक्खेंगे ॥ १५ ॥

* तात्पर्य;—युद्ध क्षेत्रमें तुम्हारीभी मृत्यु होगी इसकी क्या स्थिरता है ? परन्तु इसमे जयलाभ करना एक प्रकारसे स्थिर सिद्धान्त है इसकारण युद्धमें तुम्हारे लिये जानाही अच्छा हैं युद्धसे विमुख होना तुम्हारा कर्त्तव्य नहींहैं ॥

और हाथ कटगये और शस्त्रोंसे कट जानेके कारण उनके सब अंगोंमें रुधिर वहने लगा ॥ ८ ॥ असंख्य वानर और राक्षसगण मर २ कर पृथ्वीपर गिर पडे, तब उनके मृतक शरीरोंपर सहस्रों काक, गिद्ध, व गीदड बैठ मांस खाय २ नाचनें लगे ॥ ९ ॥ डरपोकोंको डरावने वाले कबंध उडनें लगे रणभूमिमें असंख्य सैनाके हाथ पैर शिर कटकर शरीरसे अलग होने लगे ॥ १० ॥ तिसके पीछे वानरोंकी सैनाकरके मारीहुई निशाचरोंकी वह सैना राक्षस वज्रदंष्ट्रके सन्मुखही रणभूमि छोड कर भागनेका आरंभ करनेंलगी ॥ ११ ॥ वानरोंकी सैनाके हाथसे राक्षसोंको मारा जाता हुआ और भयसे भीत देखकर ॥ १२ ॥ प्रतापशाली राक्षसोंका सैनापति वज्रदंष्ट्र कोपसे परिपूर्ण हो गया उसके दोनोंनेत्र

हरयोराक्षसाश्चैवशेरतेगांसमाश्रिताः ॥ कंकगृध्रबलाढ्याश्चगोमायुकुलसंकुलाः ॥९ ॥ कबंधानिसमुत्पेतुर्भीरूणांभीषणानिवै ॥ भुजपाणिशिरश्छिन्नाश्छिन्नकायाश्चभूतले ॥ १० ॥ वानराराक्षसाश्चापिनिपेतुस्तत्रभूतले ॥ ततोवानरसैन्येनहन्यमानंनिशाचरम् ॥ ११ ॥ प्राभज्यतबलंसर्ववज्रदंष्ट्रस्यपश्यतः ॥ राक्षसान्भयवित्रस्तान्हन्यमानान्प्लवंगमैः ॥१२॥ दृष्ट्वासरोषताम्राक्षोवज्रदंष्ट्रःप्रतापवान् ॥ प्रविवेशधनुष्पाणिस्त्रासयन्हरिवाहिनीम् ॥१३॥ शरैर्विदारयामासकंकपत्रैरजिह्मगैः ॥ बिभेदवानरांस्तत्रसप्ताष्टौनवपंचच ॥ विव्याधपरमक्रुद्धोवज्रदंष्ट्रःप्रतापवान् ॥ १४ ॥ त्रस्ताःसर्वेहरिगणाःशरैःसंकृत्तदेहिनः ॥ अंगदंसंप्रधावंतिप्रजापतिमिवप्रजाः ॥ १५ ॥ ततोहरिगणान्भग्नान्दृष्ट्वावालिसुतस्तदा ॥ क्रोधेनवज्रदंष्ट्रंतमुदीक्षंतमुदैक्षत ॥ १६ ॥

क्रोधके मारे लाल हो आये वह धनुष करके वानरोंकी सैनामें प्रवेश करके उसको ताडित करने लगा ॥ १३ ॥ और अपनी कुटिल गतिसे कंक पत्र लगे हुए अगणित बाण चलाय २ वानर सैनाको घायल करने लगा, उस महाप्रतापी वज्रदंष्ट्रने अत्यन्त कोपमें भरकर वानर गणोंको यथा क्रमसे सात, आठ; नौ और पांच २ बाण चलाय उन वानरोंके शरीरको भेदा ॥ १४ ॥ तब भयके मारे सब वानर गण भागने लगे उनके शरीर बाणोंके लगनेंसे छिन्नभिन्न होगये सताई हुई प्रजा जिस प्रकार ब्रह्माजीके निकट जाया करतीहै वैसेही वानर गण अंगदजीके निकट दौडकर आने लगे ॥ १५ ॥ तब महा बलवान अंगदजी वज्रदंष्ट्रके द्वारा वानरोंको भागा हुआ देखकर उसकी ओर क्रोधसें दृष्टि करते हुए। राक्षस सैनापति

सर्व अस्त्र शस्त्रोंसे पूर्ण और तैयार रथपर सजा सजाया प्रहस्त नाम सैनापति सवार हुआ इस रथमें अत्यन्त वेगवान् घोड़े जुतेथे और सर्व भांतिसे चतुर सारथीभी इसपर चढ़ा हुआथा॥२५॥ इस रथका शब्द बड़े भारी मेघगर्जनकी समानथा चन्द्र सूर्यकी समान इसमें प्रकाशथा, सर्पाकार ध्वजा इसपर लटक रहीथीं। सुन्दर गुम्मजदार ॥ २६ ॥ सुवर्णके जालसे युक्त अपनी सुन्दरताईकी शोभाको मानो आपही हँसरही है, ऐसे रथपर रावणकी आज्ञासे सैनापति प्रहस्त सवार होकर ॥ २७ ॥ बड़ी भारी राक्षसोंकी सैना संगले लंकासे बहुतही शीघ्र निकला। उस समय मेघकी गर्जनेंकी समान नगाडोंका शब्द होनें लगा व और दूसरे बाजोंके शब्दसेभी पृथ्वी और दशोंदिशा पूर्ण होगई ॥ २८ ॥ जब वह सैनापति प्रहस्त

आरुरोहरथंयुक्तःप्रहस्तःसज्जकल्पितम् ॥ हयैर्महाजवैर्युक्तंसम्यक्सूतंसुसंयतम् ॥ २५ ॥ महाजलदनिर्घोषंसाक्षाच्चंद्रार्कभास्वरम् ॥ उरगध्वजदुर्धर्षसुवरूथंस्वपस्करम् ॥२६॥ सुवर्णजालसंयुक्तंप्रहसंतमिवश्रिया ॥ ततस्तंरथमास्थाय रावणार्पितशासनः ॥ २७ ॥ लंकायानिर्ययौतूर्णंबलेनमहतावृतः ॥ ततोदुंदुभिनिर्घोषःपर्जन्यनिनदोपमः ॥ वादित्राणां चनिनदःपूरयन्निवमेदिनीम् ॥ २८ ॥ शुश्रुवेशंखशब्दश्चप्रयातेवाहिनीपतौ ॥ निनदंतःस्वरान्घोरान्राक्षसाजग्मुरग्रतः ॥ २९ ॥ भीमरूपामहाकायाःप्रहस्तस्यपुरःसराः ॥ नरांतकःकुंभहनुर्महानादःसमुन्नतः ॥ प्रहस्तसचिवाह्येते निर्ययुःपरिवार्यतम् ॥ ३० ॥ व्यूढेनैवसुघोरेणपूर्वद्वारात्सनिर्ययौ ॥ गजयूथनिकाशेनबलेनमहतावृतः ॥ ३१ ॥ सागरप्रतिमौघेनवृतस्तेनबलेनसः ॥ प्रहस्तोनिर्ययौक्रुद्धःकालांतकयमोपमः ॥ ३२ ॥

चला, तब बहुत सारे शंखभी बजनेंलगे और बड़े उच्च शब्दसे घोर गर्जन करते हुए राक्षस गणभी आगे २ चले ॥२९॥ प्रहस्तके साथ इस प्रकारसे महाकाय और भयंकर रूपवाले यह राक्षस आगे बढ़े।नारान्तक, कुम्भहनु,महानाद, समुन्नत, प्रहस्तके यह चार मंत्री प्रहस्तको घेरकर लंकासे निकले ॥ ३० ॥ हाथियोंके यूथकी समान बडीभारी राक्षसोंकी सैनाके साथ वह प्रहस्त घोर व्यूहकी रचना करता हुआ लंकाके पूर्वद्वारसे निकला ॥३१॥ प्रहस्तकी सैना बड़े भारी विस्तारवाले समुद्रकी समानथी। वह प्रहस्त कराल कालकी समान भयंकर मूर्ति धारण कर सेनाको संगले समरभूमिके

तक चेतना रहित हो अपनी गदाको पकड़े हुए लंबे श्वास चलानें लगा ॥२५॥ फिर कुछ देरमें चेतना पाय राक्षस वज्रदंष्ट्रनें क्रोधमें भर सन्मुख खडे हुए वालिकुमार अंगदजीको छातीमें एक गदा मारी॥ २६ ॥ तिसके पीछे गदा युद्ध छोड वह वानर और राक्षस दोनों मूका,लात,चनकटा इत्यादि मार२बाहु युद्धकर परस्पर एक दूसरे पर चोट चलानें लगे॥२७॥दोनोंकेही शरीरसे रुधिर निकलनें लगा.घोर कठोर प्रहारोंके लगनेंसे दोनों वीरही थक गये; उस समय वह ऐसे ज्ञात होतेथे मानों रणभूमिमें मंगल और बुध ग्रह घूम रहेहैं ॥२८॥ तब परम तेजस्वी वानर श्रेष्ठ अंगदजी पुष्प और फलोंसे शोभायमान एक बडा भारी वृक्ष उखाडकर रणभूमिमें खडे होगये ॥२९ ॥ परन्तु निशाचर वज्रदंष्ट्रने किंकिणीजालसे युक्त विमल ऋषभके चर्मसे

सलब्धसंज्ञोगदयावालिपुत्रमवस्थितम् ॥ जघानपरमक्रुद्धोवक्षोदेशेनिशाचरः ॥ २६ ॥ गदांत्यक्त्वाततस्तत्रमुष्टियुद्ध मकुर्वत ॥ अन्योन्यंजघ्नतुस्तत्रतावुभौहरिराक्षसौ ॥२७॥ रुधिरोद्गारिणौतौतुप्रहारैर्जनितश्रमौ ॥ बभूवतुःसुविक्रांता वंगारकबुधाविव ॥ २८ ॥ ततःपरमतेजस्वीअंगदःप्लवगर्षभः ॥ उत्पाट्यवृक्षंस्थितवानासीत्पुष्पफलैर्युतः ॥ २९ ॥ जग्राहचार्षभंचर्मखड्गंचविपुलंशुभम् ॥ किंकिणीजालसंछन्नंचर्मणाचपरिष्कृतम् ॥३०॥ चित्रांश्चरुचिरान्मार्गांश्चेरतुः कपिराक्षसौ ॥ जघ्नतुश्चतदान्योन्यंनर्दंतौजयकांक्षिणौ ॥३१॥ व्रणैःसमुत्थैःशोभेतांपुष्पिताविवकिंशुकौ ॥ युध्यमानौ परिश्रांतौजानुभ्यामवनींगतौ ॥ ३२॥ निमेषांतरमात्रेणअंगदःकपिकुंजरः ॥ उदतिष्ठतदीप्ताक्षोदंडाहतइवोरगः॥३३॥

बनी ढाल और चमड़ेके म्यानसे ढकी हुई तलवार निकाली तब वालिकुमार अंगदजीनेंभी मृगचर्मसे बनी हुई जयकी सूचना करनेंवाली बडी ढाल और खड्ग ग्रहण किया ॥ ३० ॥ उस समय विजयकी अभिलाषा किये वह दोनों वानर और राक्षस विचित्रमार्गेमें घूमतेहुए परस्परमें एक दूसरेके ऊपर चोट चलानें लगे ॥ ३१ ॥ परस्पर युद्ध करते हुए उन दोनों वीरोंके सर्वाङ्गोंमें रुधिर निकलनेंके कारण वह दोनों फूले हुए दो टेसू वृक्षोंकी समान शोभायमान हो रहेथे, परस्पर जांघोंको सकोड़ कर यह दोनों वीर थककर पृथ्वीमें बैठतेहुए ॥ ३२ ॥ कपि कुंजर अंगदजी एक निमेष मात्रमें दंडसे आहत हुए सर्पकी समान तड़ककर उठे, उनके दोनों नेत्रोंनें दीप्तिमान अग्निके समान प्रभाव धारण किया ॥ ३३ ॥

और बड़ी शिलायें ग्रहण करके पर्वतोंके शृङ्गोंको तोड़ते हुए धीरे २ आगे बढ़े ॥ ४१ ॥ तिसके पीछे वानर और निशाचरोंकी सैना ऐसा गर्जन और सिंहनाद करनें लगी ! दोनोंही ओरकी सैना युद्धकी वासनासे हर्षितचित्त होरहीथी ॥ ४२ ॥ यह दोनों वानर और राक्षसगण एक दूसरेका नाश करना चाहतेथे, उस कालमें दोनों सैनाके वीर दोनों ओरके वीरोंको लड़नेंके लिये पुकारतेथे, वस यही शब्द उस काल श्रवण होताथा ॥४३॥ तिसके पीछे राक्षसोंकी सैनाका पति खोटीमतिवाला प्रहस्त युद्धमें जय पानेंकी वासनासे; पतंग जिस प्रकार मृत्युके निकट पहुंचकर प्रदीप्त अग्निकी शिखामें गिरजाताहै, वैसेही अत्यन्त वेगसे वानरोंकी सैनामें प्रवेश करता हुआ ॥ ४४ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०यु०सप्तपंचाशःसर्गः ॥ ५७ ॥

नदतांराक्षसानांचवानराणांचगर्जताम् ॥ उभेप्रमुदितेसैन्येरक्षोगणवनौकसाम् ॥ ४२ ॥ वेगितानांसमर्थानामन्योन्य वधकांक्षिणाम् ॥ परस्परंचाह्वयतांनिनादःश्रूयतेमहान् ॥ ४३ ॥ ततःप्रहस्तःकपिराजवाहिनीमभिप्रतस्थेविजया यदुर्मतिः ॥ विवृद्धवेगश्चविवेशितांचमूंयथामुमूर्षुःशलभोविभावसुम् ॥ ४४ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मी कीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेसप्तपंचाशःसर्गः ॥ ५७ ॥ ॥ छ ॥ ॥ ततःप्रहस्तंनिर्यातंदृष्ट्वारणकृतोद्यमम् ॥ उवाच सस्मितंरामोविभीषणमरिंदमः ॥ १ ॥ कएषसुमहाकायोबलेनमहतावृतः ॥ आगच्छतिमहावेगःकिंरूपबलपौरु षः ॥ २ ॥ आचक्ष्वमेमहाबाहोवीर्यवंतंनिशाचरम् ॥ राघवस्यवचःश्रुत्वाप्रत्युवाचबिभीषणः ॥ ३ ॥ एषसेनापति स्तस्यप्रहस्तोनामराक्षसः ॥ लंकायांराक्षसेंद्रस्यत्रिभागबलसंवृतः ॥ वीर्यवानस्त्रविच्छूरःसुप्रख्यातपराक्रमः ॥ ४ ॥

तिसके पीछे शत्रुदमनकारी श्रीरामचंद्रजी प्रहस्तको संग्राम करनेंके लिये तैयार देख हँसकर विभीषणजीसे पूछनेंलगे ॥ १ ॥ यह महाकाय वीर्यवान् निशाचर जो बड़ी भारी सैनाके साथ अतिवेगसे यहांपर आय रहाहै; इसका बल और पौरुष कैसा है ॥ २ ॥ हेमहाबाहो ! हमको इस वीर्यवान् निशाचरका यह समस्त वृत्तान्त सुनाओ, तब श्रीरामचंद्रजीके ऐसे वचन सुनकर विभीषणजी उत्तर देतेहुए ॥ ३ ॥ कि यह प्रहस्तनामक निशाचर राक्षसराज रावणका सैनापतिहै; लंकापुरीमें जितनीभर रावणकी सैनाहै यह विख्यातपराक्रम अस्त्रोंका जाननेंवाला

सेनापति बनायकर युद्ध करनेके लिये जाँय ॥ २ ॥ यह अकम्पन वीर शत्रु लोगोंको दमन करनेंमें बड़ा चतुरहै,यह अपनी सैनाकी रक्षा करनें वाला और युद्ध कार्यका प्रेरकहै; विशेष करकै यह हमारा एक हितकारी बन्धुहै युद्ध कार्यमें इसका बड़ा अनुरागहै ॥ ३ ॥ यही महाबल वान् सुग्रीवके सहित रामचंद्र और लक्ष्मणको युद्धमे पराजित करेंगे; और इसमेंभी कोई सन्देह नहीं कि इनके हाथसे युद्धमें और वानरवीर गणभी मारे जायँगे ॥ ४ ॥ शीघ्र पराक्रम करनेंवाला महाबलवान् प्रहस्त रावणकी ऐसी आज्ञाको पायकर सब सैनाको युद्ध करनेंके लिये चलनेंकी आज्ञा देताहुआ ॥ ५ ॥ तब वह अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र धारी भयंकर नेत्र और भयंकराकार प्रधान २ राक्षसगण सैनापतिकी यह

एषशास्ताचगोप्ताचनेताचयुधिसत्तमः ॥ भूतिकामश्चमेनित्यंनित्यंचसमरप्रियः॥३॥ एषजेष्यतिकाकुत्स्थौसुग्रीवंच महाबलम्॥वानरांश्चापरान्घोरान्हनिष्यतिनसंशयः ॥४॥परिगृह्यसतामाज्ञांरावणस्यमहाबलः॥स्वबलंप्रेरयामासतदा लघुपराक्रमः॥५॥ततोनानाप्रहरणाभीमाक्षाभीमदर्शनाः ॥ निष्पेतूराक्षसामुख्याबलाध्यक्षप्रचोदिताः ॥६॥ रथमास्था यविपुलंतप्तकांचनभूषणम् ॥ मेघाभोमेघवर्णश्चमेघस्वनमहास्वनः ॥ ७ ॥ राक्षसैःसंवृतोघोरैस्तदानिर्यात्यकंपनः ॥ नहिकंपयितुंशक्यःसुरैरपिमहामृधे ॥ ८ ॥ अकंपनस्ततस्तेषामादित्यइवतेजसा ॥ तस्यनिर्धावमानस्यसंरब्धस्य युयुत्सया ॥ ९ ॥ अकस्माद्दैन्यमागच्छद्धयानांरथवाहिनाम् ॥ विस्फुरन्नयनंचास्यसव्यंयुद्धाभिनंदिनः ॥ १० ॥

आज्ञा पायकर युद्ध करनेंके लिये निकले ॥ ६ ॥ राक्षसोंके सेनापतिका वर्ण मेघतुल्य और शब्द मेघके गर्जन करनेंकी समान था; वह तपाये हुए सुवर्णसे विभूषित रथपर सवार होता हुआ ॥ ७ ॥ उसके साथ २ भयंकराकार अगणित राक्षसोंकी सैना युद्ध करनेंके लिये निकली इस वीर अकंपनको संग्रामस्थानमें देवतालोगभी कंपायमान करनेंको समर्थ नहीं थे ॥ ८ ॥ यह तेजस्वी अकंपन अपनी सेनाके बीचमें साक्षात् सूर्य भग वान् की समान शोभायमान होंनेलगा जब यह युद्ध करनेंकी इच्छासे चला, तब क्रोधकर दौडतेहुए अकम्पनके ॥ ९ ॥ रथमें जुतेहुए घोडोंको

खड्गमें दो टुकडे कर डाले गये; किसी २ वानरकी बगलही कटगईथी; इस्से वहभी पृथ्वीपर पड़ेथे ॥ १४ ॥ इसी प्रकारसे बड़ा क्रोध करके वानरोंनें राक्षसोंके ऊपर पर्वतोंके शिखर और वृक्षोंका प्रहार किया, कि जिस्से वह पिसकर पृथ्वीपर गिर पडे ॥ १५ ॥ कोई २ राक्षस वानरोंके चनकटे खाय और कोई २ घूंसे खाय २ कर मारे गये, कोई २ रुधिर उगलनेंलगे, और किसी २ राक्षसके मुख सूखकर फैल गयेथे ॥ १६ ॥ इस प्रकारसे राक्षस और वानरोंकी सैनाके बीचमें आरत वाणी सिंहनाद और गर्जन करनेंका कठोर शब्द उत्पन्न हुआ ॥ १७ ॥ इस प्रकारसे वह विकराल वदन क्रूर निशाचर और वानर गण वीर मार्गमें टिके हुए क्रोधमें भर भय छोड़ युद्ध करते हुए

वानरैश्चापिसंक्रुद्धैराक्षसौघाःसमंततः ॥ पादपैर्गिरिशृंगैश्चसंपिष्टावसुधातले ॥ १५ ॥ वज्रस्पर्शतलैर्हस्तैर्मुष्टिभिश्च हताभृशम् ॥ वमञ्छोणितमास्येभ्योविशीर्णवदनेक्षणाः ॥ १६ ॥ आर्तस्वनंचस्वनतांसिंहनादंचनर्दताम् ॥ बभूवतु मुलःशब्दोहरीणांरक्षसामपि ॥ १७ ॥ वानरराक्षसाःक्रुद्धावीरमार्गमनुव्रताः ॥ विवृत्तवदनाःक्रूराश्चक्रुःकर्माण्यभी तवत् ॥ १८ ॥ नरांतकःकुंभहनुर्महानादःसमुन्नतः ॥ एतेप्रहस्तसचिवाःसर्वेजघ्नुर्वनौकसः ॥ १९ ॥ तेषांनिपततां शीघ्रंनिघ्नतांचापिवानरान् ॥ द्विविदोगिरिशृंगेणजघानैकंनरांतकम् ॥२०॥ दुर्मुखःपुनरुत्थायकपिःसविपुलद्रुमम् ॥ राक्षसंक्षिप्रहस्तंतुसमुन्नतमपोथयत् ॥ २१ ॥ जांबवांस्तुसुसंक्रुद्धःप्रगृह्यमहतींशिलाम् ॥ पातयामासतेजस्वीमहा नादस्यवक्षसि ॥ २२ ॥ अथकुंभहनुस्तत्रतारेणासाद्यवीर्यवान् ॥ वृक्षेणमहतासद्यःप्राणान्संत्याजयद्रणे ॥ २३ ॥

अद्भुत कर्म करनें लगे ॥ १८ ॥ प्रहस्तके मंत्री नरान्तक, कुम्भहनु, महानाद, और समुन्नत, नामक यह चारों राक्षस भी अनेक वानरोंका संहार करनें लगे ॥ १९॥ परन्तु द्विविद नाम वानरनें इनको इस प्रकारसे कूद२ कर वानरोंको मारते देख पर्वतका शृङ्ग उठाय उस्से राक्षस नरान्तकका प्राण संहार किया ॥ २० ॥ कपिश्रेष्ठ दुर्मुखनें एक बड़ा भारी वृक्ष उठाय उस्से शीघ्र कर्मकारी निशाचर समुन्नतको मार डाला ॥२१ ॥ महावीर तेजस्वी जाम्बवानजीनें अत्यन्त क्रोधमें भरकर महानादकी छातीमें एक बड़ी भारी शिलामार उसको पृथ्वीपर गिरा दिया ॥२२॥ कपिवर वीर्यवान

इस धूरनें सब दिशाओंको ढक लिया, न राक्षस, न वानर, न ध्वजा, न पताका, न ढाल, न अश्व, न गज॥२०॥न हथियार, न रथ, कुछभी उस धूलके उड़नेंसे नहीं दीख पड़तेथे। संग्राममें गर्जन करके धावमान होते हुए वानर और राक्षसोंका बड़ा भारी शब्दही॥२१॥ केवल कठोर युद्धमें सुनाई देताथा, परन्तु किसीका कोई रूप दिखाई नहीं देताथा। अधिक क्या कहैं यहांतक हुआकि रूप न दिखाई देनेके कारण वानरगण वानरोंकोही मारनें लगे, और राक्षस लोग अंधकारके मारे राक्षसोंहीको संहार करनें लगे, वानर और राक्षस दोनोंही अपनी २ ओरवालोंको; और अपने २ शत्रुओंकोभी मारतेथे ॥ २२ ॥ २३ ॥ वानर और राक्षसगण यहांतक लड़े कि पृथ्वी रुधिरसे गीली होगई और इनके शरीरोंमें रुधिरकी कीच लिपट

संवृतानिचभूतानिदद्दशुर्नरणाजिरे ॥ नध्वजोनपताकावाचर्मवातुरगोपिवा ॥ २० ॥ आयुधंस्यंदनोवापिदद्दशेते नरेणुना ॥ शब्दश्चसुमहांस्तेषांनर्दतामभिधावताम् ॥२१॥ श्रूयतेतुमुलेयुद्धेनरूपाणिचकाशिरे ॥ हरीनेवसुसंरुष्टाहरयोजघ्नुराहवे ॥ २२॥ राक्षसाराक्षसांश्चापिनिजघ्नुस्तिमिरेतदा ॥ तेपरांश्चविनिघ्नंतःस्वांश्चवानरराक्षसाः ॥ २३ ॥ रुधिरार्द्रांतदाचक्रुर्महींपंकानुलेपनाम् ॥ ततस्तुरुधिरौघेणसिक्तंह्यपगतंरजः ॥ २४ ॥ शरीरशवसंकीर्णाबभूवचवसुंधरा ॥ द्रुमशक्तिगदाप्रासैःशिलापरिघतोमरैः ॥ २५ ॥ राक्षसाहरयस्तूर्णंजघ्नुरन्योन्यमोजसा ॥ बाहुभिःपरिघाकारैर्युध्यंतःपर्वतोपमान् ॥ २६ ॥ हरयोभीमकर्माणोराक्षसान्जघ्नुराहवे ॥ राक्षसास्त्वभिसंक्रुद्धाःप्रासतोमरपाणयः ॥२७॥ कपीन्निजघ्निरेतत्रशस्त्रैःपरमदारुणैः ॥ अकंपनःसुसंक्रुद्धोराक्षसानांचमूपतिः ॥२८॥ संहर्षयतितान्सर्वान्राक्षसान्भीमविक्रमान् ॥ हरयस्त्वपिरक्षांसिमहाद्रुममहाश्मभिः ॥ २९ ॥

गई, जब रुधिरसे कीच उठी तब धूल जातीरही ॥२४॥तिसके पीछे देखते२ पृथ्वी मृतक शरीरोंसे पूर्ण होगई। वृक्ष, शक्ति, गदा, फांसी, शिला, परिघ, तोमर, आदि अस्त्र शस्त्रोंसे ॥ २५ ॥ वानर और राक्षसगण परस्पर एक दूसरेपर चोट चलानें लगे। परिघाकारवाली बाहोंसे युद्ध करते हुए पर्वतकी समान ॥ २६ ॥ भयंकर कर्मकारी वानरगण राक्षसोंका संहार करनें लगे; और राक्षसोंनेंभी प्रास तोमर हाथोंमें ले ॥ २७ ॥ व औरभी परम दारुण अस्त्र शस्त्रोंसे वानरोंको मारा तिसके पीछे राक्षसोंका सैनापति अकंपन क्रोध करता हुआ ॥ २८ ॥ भयंकर कर्मकारी सब राक्षसोंको

कायर पुरुषोंके लिये यह युद्धमय नदी अतिदुःखसे पार होनेके योग्यहै, शरदकालमें जैसे श्रेष्ठ नदी हंस सारस पक्षियोंसे सेवित होतीहै ऐसी ॥ ३२ ॥ नदीमें गजयूथपतिगण जिस प्रकारसे पद्मरजशालिनी नलिनीके पार उतर जातेहैं; वैसेही वह राक्षस और वानर मुख्य २ गण अति सरलतासे इस नदीके पार उतरनें लगे ॥ ३३ ॥ तिसके पीछे प्रहस्तको रथपर सवार हुआ बाणोंकी वर्षा करते हुए वानर गणोंको विदारित करते देख सैनापति नील अत्यन्त वेगसे धाये ॥ ३४॥ सैनापति प्रहस्त बड़े भारी मेघकी समान बलशाली और आकाशमें टिके हुए पवनकी समान नीलको रणभूमिमें अपनी ओर झपटकर आता हुआ देख ॥ ३५ ॥ अपने सूर्यकी समान रथको चलायकर नीलके सन्मुख आया तिसके पीछे

तांकापुरुषदुस्तारांयुद्धभूमिमयींनदीम् ॥ नदीमिवघनापायेहंससारससेविताम् ॥ ३२ ॥ राक्षसाःकपिमुख्यास्ते
तेरुस्तांदुस्तरांनदीम् ॥ यथापद्मरजोध्वस्तांनलिनींगजयूथपाः ॥ ३३ ॥ ततःसृजंतंबाणौघान्प्रहस्तंस्यंदनेस्थितम् ॥
ददर्शतरसानीलोविधमंतंप्लवंगमान् ॥ ३४ ॥ उद्धूतइववायुःखेमहदभ्रबलंबलात् ॥ समीक्ष्याभिद्रुतंयुद्धेप्रहस्तोवाहि
नीपतिः ॥ ३५ ॥ रथेनादित्यवर्णेननीलमेवाभिदुद्रुवे ॥ सधनुर्धन्विनांश्रेष्ठोविकृष्यपरमाहवे॥ ३६ ॥ नीलायव्यसृज
द्बाणान्प्रहस्तोवाहिनीपतिः ॥ तेप्रेत्यविशिखानीलंविनिर्भिद्यसमाहिताः ॥ ३७ ॥ महींजग्मुर्महावेगारोषिताइवपन्न
गाः ॥ नीलःशरैरभिहतोनिशितैर्ज्वलनोपमैः ॥ ३८ ॥ सतंपरमदुर्धर्षमापतंतंमहाकपिः ॥ प्रहस्तंताडयामासवृक्षमु
त्पाट्यवीर्यवान् ॥ ३९ ॥ सतेनाभिहतःक्रुद्धोनर्दन्राक्षसपुंगवः ॥ ववर्षशरवर्षाणिप्लवंगानांचमूपतौ ॥ ४० ॥

धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ सैनापति प्रहस्त अपने बडे भारी धनुषको खेंचकर ॥ ३६ ॥ सैनापति नीलके ऊपर बाणोंकी वर्षा करनेंलगा; वह समस्त महावेगवान बाण नीलके शरीरपर गिर और नीलकी देहको फोड़ उसमें प्रवेश करते हुए ॥ ३७ ॥ मानो क्रोधित सर्प पृथ्वीमें प्रवेश कर रहेहैं, सैनापति नील अग्निकी समान बाणोंसे घायल होकर ॥ ३८ ॥ वह परम दुर्द्धर्ष वीर्यवान् महाकपि एक वृक्ष उखाड़कर प्रहस्तके ऊपर प्रहार करतेहुए ॥ ३९ ॥ राक्षसश्रेष्ठ प्रहस्त इस घोर प्रहारसे अत्यन्त दुःखित और व्यथित होकर अत्यन्त क्रोधयुक्त हो वारंवार सिंहनादकर

केही संहार करनेंकी इच्छा करतेहैं, कारण कि हम देखते हैं कि कईएक वानरोंसेही समस्त राक्षसोंकी सैना मथी जा रहीहै॥५॥ ऐसा सुनकर जब सारथिनें घोड़े हाँके तब राक्षसश्रेष्ठ अकंपन, वानर गणोंके सामने जाय दूरसेही उन वानरोंके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ६ ॥ तिस समय उस अकम्पनके साथ युद्ध करना तौ दूर रहै वानर गण रणमें उसके सामनेभी नहीं टिकसके, वरन उसके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित और छिन्नभिन्न होकर सबही इधर उधरसे भागनें लगे ॥ ७ ॥ परन्तु महाबलवान हनुमानजी अपनी जातिवाले वानरोंको अकम्पनके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित और मृत्युके मुखमें धरे हुए देखकर उसके सामनेंको बढ़े ॥ ८ ॥ तिस समय उन महाकपिको देखकर सब महावीर वानरगण फिर रण

ततःप्रचलिताश्वेनरथेनरथिनांवरः ॥ हरीनभ्यपतद्दूराच्छरजालैरकंपनः ॥६॥ नस्थातुंवानराःशेकुःकिंपुनर्योद्धुमाहवे॥ अकंपनशरैर्भग्नाःसर्वएवाभिदुद्रुवुः ॥७॥ तान्मृत्युवशमापन्नानकंपनशरानुगान् ॥ समीक्ष्यहनुमान्ज्ञातीनुपतस्थेमहाबलः ॥ ८ ॥ तंमहाप्लवगंदृष्ट्वासर्वेतेप्लवगर्षभाः ॥ समेत्यसमरेवीराःसहिताःपर्यवारयन् ॥ ९ ॥ व्यवस्थितंहनूमंतंतेदृष्ट्वाप्लवगर्षभाः ॥ बभूवुर्बलवंतोहिबलवंतमुपाश्रिताः ॥ १० ॥ अकंपनस्तुशैलाभंहनूमंतमवस्थितम् ॥ महेंद्रइवधाराभिःशरैरभिववर्षह ॥११॥ अचिंतयित्वाबाणौघान्शरीरेपातितान्कपिः ॥ अकंपनवधार्थायमनोदध्रेमहाबलः ॥१२॥ सप्रहस्यमहातेजाहनूमान्मारुतात्मजः ॥ अभिदुद्रावतद्रक्षःकंपयन्निवमेदिनीम् ॥ १३ ॥ तस्याथनर्दमानस्यदीप्यमानस्यतेजसा ॥ बभूवरूपंदुर्धर्षंदीप्तस्येवविभावसोः ॥ १४ ॥

भूमिमें आ करके हनुमानजीको घेरकर खड़े होगये ॥ ९ ॥ हनुमानजीको युद्ध करनेंके लिये पहुंचाहुआ देखकर वह भागे हुए वानरश्रेष्ठगणभी, बल प्राप्त करते हुए कारण कि बलवानसे सहाय पायकर दुर्बल भी बलवान होजातेहैं ॥ १० ॥ पर्वताकार हनुमानजीको आगे खड़ाहुआ देखकर राक्षस अकम्पन उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करनेंलगा, कि जिस प्रकार इन्द्रजी पृथ्वीपर जलकी धारा वर्षातेहैं ॥ ११ ॥ परन्तु महाबलवान वानर हनुमानजी अपने शरीर पर गिरते उन बाणोंकी कुछभी चिन्ता न करते हुए अकम्पनके संहार करनेंका विचार करते हुए ॥ १२ ॥ वह महातेजस्वी पवनकुमार हनुमानजी पृथ्वीको कंपायमान करते हँसते २उस राक्षस अकम्पनके सन्मुख धाये ॥ १३ ॥ इस समय यह हनुमानजी

वासनासे युद्धकरने लगे दोनो ही परस्पर एक दूसरेको विना जीते हुए समरसे लौटनेंवाले नहीं थे ॥ ४८ ॥ तिसके पीछे विपुलबलशाली सैनापति प्रहस्तनें नीलके माथेपर मूसलका प्रहार किया; जिसके प्रहारसे नीलके माथेसे रुधिर बहनेंलगा ॥ ४९ ॥ जब अंगोंसे रुधिर निकलने लगा, तब महाकपि सैनापाति नीलनें अत्यन्त क्रोधित हो एक बड़ा भारी वृक्ष ग्रहणकर प्रहस्तकी छातीमें प्रहार किया ॥ ५० ॥ परन्तु सैनापति वीर प्रहस्त उस प्रहारको कुछभी न समझता हुआ वही बड़ाभारी मूसल ग्रहण कर अत्यन्त जोरसे बलवान् वानरश्रेष्ठ नीलके सन्मुख धाया। महाकपि नील उस उग्र वेगवान् राक्षसको सन्मुख दौड़े आते हुए ॥ ५१ ॥ देख एक महाशिला ग्रहण करके उस समरकी अभिलाषा करनेंवाले

अजघानतदानीलंललाटेमुसलेनसः ॥ प्रहस्तःपरमायत्तस्ततःसुस्रावशोणितम् ॥ ४९ ॥ ततःशोणितदिग्धांगःप्रगृह्यचमहातरुम् ॥ प्रहस्तस्योरसिक्रुद्धोविससर्जमहाकपिः ॥ ५० ॥ तमाचिंत्यप्रहारंसप्रगृह्यमुसलंमहत् ॥ अभिदुद्रावबलिनंबलान्नीलंप्लवंगमम् ॥ तमुग्रवेगंसंरब्धमापतंतंमहाकपिः ॥ ५१ ॥ ततःसंप्रेक्ष्यजग्राहमहावेगोमहाशिलाम् ॥ तस्ययुद्धाभिकामस्यमृधेमुसलयोधिनः ॥ ५२ ॥ प्रहस्तस्यशिलांनीलोमूर्ध्नितूर्णमपातयत् ॥ नीलेनकपिमुख्येन विमुक्तामहतीशिला ॥ बिभेदबहुधाघोराप्रहस्तस्याशिरस्तदा ॥ ५३ ॥ सगतासुर्गतश्रीकोगतसत्त्वोगतेंद्रियः ॥ पपातसहसाभूमौछिन्नमूलइवद्रुमः ॥ ५४ ॥ विभिन्नशिरसस्तस्यबहुसुस्रावशोणितम् ॥ शरीरादपिसुस्रावगिरेःप्रस्रवणो यथा ॥ ५५ ॥ हतेप्रहस्तेनीलेनतदकंप्यंमहाबलम् ॥ राक्षसानामहृष्टानांलंकामभिजगामह ॥ ५६ ॥

मूसलसे युद्ध करते हुए ॥ ५२ ॥ प्रहस्तके मूसल प्रहार करनेंसे पहलेही उसके मस्तकपर वह शिला मारी कपिश्रेष्ठ नीलकी चलाई हुई उस घोर और महाशिलानें प्रहस्तके मस्तकको खंड २ कर डाला; उस समय उस प्रहस्तकी इन्द्रियें लोप होगईं, बल जाता रहा, देहकी श्री नष्ट होगई; और वह प्राण रहित होकर जड़ कटे हुए वृक्षकी समान पृथ्वीमें गिर पडा ॥५३॥॥५४॥ तिस काल प्रहस्तका मस्तक धड़से अलग हो जानेंपर उससे और उसके शरीरसे इस प्रकारसे रुधिरकी धारें गिरनें लगी, कि जिस प्रकार पर्वतसे झरना झरते हैं ॥ ५५ ॥ इस प्रकार सैनापति नीलके हाथसे

क्रम करनेंवाले राक्षसोंको संहार करनें लगे ॥ २३ ॥ तब राक्षस गण वृक्षका प्रहार करते हुए प्राणहरण करनेंवाले यमराजकी समान उन क्रोधित अंजनीके पुत्र हनुमानजीको देखकर भागनें लगे ॥ २४ ॥ राक्षस सैनापति महावीर अकम्पन उन महावीर्य क्रोधित हनुमानजीको राक्षसोंके लिये भय उत्पन्न कराते देखकर अत्यन्तही क्रोध करताहुआ और उस समय उस अकम्पननें घोरनादसे गर्जन करना आरंभ किया ॥ २५ ॥ और शरीरको विदारण करनेंवाले अत्यन्त तीखे चौदह बाण उसनें हनुमानजीके देहमें मारे ॥ २६ ॥ उस कालमें तीखे नाराच और शक्तियोंके लग नेंसे हनुमानजीका शरीर ऐसा विद्ध हो रहाथा कि उस समय वह वृक्ष युक्त गिरिवरकी समान शोभित होतेथे ॥ २७ ॥ महाबलवान् महाकाय

तमंतकमिवक्रुद्धंसद्रुमंप्राणहारिणम् ॥ हनूमंतमभिप्रेक्ष्यराक्षसाविप्रदुद्रुवुः ॥ २४ ॥ तमापतंतंसंक्रुद्धंराक्षसानांभयावहम् ॥ ददर्शाकंपनोवीरश्चुक्षोभचननादच ॥ २५ ॥ सचतुर्दशभिर्बाणैर्निशितैर्देहदारणैः ॥ निर्बिभेदमहावीर्यंहनूमंतमकंपनः ॥ २६ ॥ सतथाविप्रकीर्णस्तुनाराचैःशितशक्तिभिः ॥ हनूमान्ददृशेवीरःप्ररूढइवसानुमान् ॥ २७ ॥ विरराजमहावीर्योमहाकायोमहाबलः ॥ पुष्पिताशोकसंकाशोविधूमइवपावकः ॥ २८ ॥ ततोन्यंवृक्षमुत्पाट्यकृत्वावेगमनुत्तमम् ॥ शिरस्यभिजघानाशुराक्षसेंद्रमकंपनम् ॥ २९ ॥ सवृक्षेणहतस्तेनसक्रोधेनमहात्मना ॥ राक्षसोवानरेंद्रेणपपातचममारच ॥ ३० ॥ तंदृष्ट्वानिहतंभूमौराक्षसेंद्रमकंपनम् ॥ व्यथिताराक्षसाःसर्वेक्षितिकंपइवद्रुमाः ॥ ३१ ॥ त्यक्तप्रहरणाःसर्वेराक्षसास्तेपराजिताः ॥ लंकामभिययुस्त्रासाद्वानरैस्तैरभिद्रुताः ॥ ३२ ॥

और महावीर्यवान हनुमानजी फूलेहुए अशोक और धूमरहित अग्निकी समान शोभायमान होनेंलगे ॥ २८ ॥ तिसके पीछे पवनकुमार हनुमानजीनें अति शीघ्रतासे एक वृक्ष उखाड़ कर अत्यन्त वेगसे राक्षसोंके सैनापति अकंपनके शिरपर मारा ॥ २९ ॥ क्रोधसे पूर्ण महाबल वान् वानरोंमें इन्द्र हनुमानजी करके इस प्रकारसे वृक्षद्वारा घायलहो वह राक्षस तत्क्षणही पृथ्वीमें गिरकर मृतक होगया ॥ ३० ॥ समस्त राक्षस राक्षसोंके स्वामी अकम्पनको मृतक और पृथ्वीमें पड़ा हुआ देखकर अत्यन्त दुःखित हुए, और भूडोलके समय जिस प्रकार वृक्ष काँपतेहैं, ऐसेही कम्पायमान होनें लगे ॥ ३१ ॥ उस समय वह हारे हुए राक्षस वानरलोगोंसे खेदे जाकर अपने अस्त्र शस्त्र त्यागकर लंकाके सन्मुख

चित्त होकर देवराज इन्द्रजी जिसप्रकार देवसैनाके अधिनायकोंसे कहतेहैं इसीभांति रावण राक्षस दलके यूथनाथोंसे बोला ॥ ३ ॥ कि जिनकरके इन्द्रके बलका मथनकारी हमारा वह सैनापति अपने अनुयायी वर्ग और हाथी घोडेके सहित मार डालागया ऐसे शत्रुको अब तुच्छ नहीं समझना चाहिये ॥ ४ ॥ इसकारण शत्रुओंका विनाशकरनें और विजय प्राप्त करनेंके लिये हम स्वयंही अद्भुत रणभूमिमें जायँगे अब शोच विचार करनें कीभी कुछ आवश्यकता नहीं ॥५॥ प्रदीप्त अग्निसे वनके जलनेंकी समान आज हम बाणसमूहोंसे रामचंद्र व लक्ष्मणके सहित उस वानरोंकी सैनाको मार डालेंगे ॥ ६ ॥ अपने प्रकाशित शरीरसे प्रकाशमान होता हुआ अमरराज इन्द्रजीका शत्रु रावण यह कह कर दामिनीकी समान

नावज्ञारिपवेकार्यायैरिंद्रबलसादनः ॥ सूदितःसैन्यपालोमेसानुयात्रःसकुंजरः ॥ ४ ॥ सोहंरिपुविनाशायविजयायाविचारयन् ॥ स्वयमेवगमिष्यामिरणशीर्षंतदद्भुतम् ॥ ५ ॥ अद्यतद्वानरानीकंरामंचसहलक्ष्मणम् ॥ निर्दहिष्यामिबाणौघैर्वनंदीप्तैरिवाग्निभिः ॥ ६ ॥ सएवमुक्त्वाज्वलनप्रकाशंरथंतुरंगोत्तमराजियुक्तम् ॥ प्रकाशमानंवपुषाज्वलंतंसमारुरोहामरराजशत्रुः ॥ ७ ॥ सशंखभेरीपणवप्रणादैरास्फोटितक्ष्वेडितसिंहनादैः ॥ पुण्यैःस्तवैश्चापिसुपूज्यमानस्तदाययौराक्षसराजमुख्यः ॥ ८ ॥ सशैलजीमूतनिकाशरूपैर्मांसाशनैःपावकदीप्तनेत्रैः ॥ बभौवृतोराक्षसराजमुख्योभूतैर्वृतोरुद्रइवामरेशः ॥ ९ ॥ ततोनगर्याःसहसामहौजानिष्क्रम्यतद्वानरसैन्यमुग्रम् ॥ महार्णवाभ्रस्तनितंददर्शसमुद्यतंपादपशैलहस्तम् ॥ १० ॥

दमकते हुए उत्तम घोडे जोते हुए रथपर सवार हुआ ॥ ७ ॥ उस समय शंख, भेरी, और ढोल बजनें लगे; वीरगण कोई बांहोंको थपकनें लगे कोई २ किल किलानें लगे और कोई २ सिंहनाद करनें लगे! इस प्रकारसे राक्षस रावण पवित्र स्तोत्रसे पूजित होकर शीघ्रही युद्ध करनेंको चलता हुआ ॥ ८ ॥ उस कालमें पर्वत व बादलकी समान आकारवाले और अग्निकी समान दीप्त नेत्र युक्त मांस खानेवाले राक्षसोंके संगमें वह राक्षसपति रावण भूतोंके संग अमरनाथ रुद्रकी समान शोभायमान होनेलगा ॥ ९ ॥ तिसके पीछे उस महातेजस्वी रावणनें सैनाके

त्यन्त क्रोधयुक्त हुआ और दीन मलीन मुखहो मंत्रीलोगोंके मुखकी ओर देखनें लगा ॥ १ ॥ रावण एक मुहूर्त्तभरतक चिन्ता करके मंत्रीलोगोंके सहित सलाहकर समस्त लंकाकी मोरचेबंदी देखनेके लिये दशघडी दिन चढे लंकाके तीर घूमने को चला ॥ २ ॥ रावणने नगर मे घूमकर देखाकि ध्वजा पताका युक्त और बहु व्यूह समन्वित वह लंकानगरी राक्षस लोगों करके सब भांतिसे रक्षित हो रहीहै ॥ ३ ॥ तब राक्षसोंका स्वामी रावण उस लंका नगरीको सब भांतिसे वानरोंके द्वारा रूंधीहुई देखकर यथा समयमें युद्धविशारद प्रहस्तसे अपने हितकारी यह वचन बोला ॥ ४ ॥ रावण बोला कि हे युद्धविशारद शत्रुकी सैना चारो ओरसे रूंधकर पुरीको जिस प्रकारसे संताप देरहीहै इस्से तो युद्ध करनेके सिवाय छुटकारा पानेंका हम

सतुध्यात्वामुहूर्तंतुमंत्रिभिःसंविचार्यच ॥ ततस्तुरावणःपूर्वंदिवसेराक्षसाधिपः ॥ पुरींपरिययौलंकांसर्वान्गुल्मानवेक्षितुम् ॥ २ ॥ तांराक्षसगणैर्गुप्तांगुल्मैर्बहुभिरावृताम् ॥ ददर्शनगरींराजापताकाध्वजमालिनीम् ॥ ३ ॥ रुद्धांतुनगरींदृष्ट्वा रावणोराक्षसेश्वरः॥ उवाचात्महितंकालेप्रहस्तंयुद्धकोविदम्॥४॥पुरस्योपनिविष्टस्यसहसापीडितस्यह ॥ नान्यंयुद्धात्प्रपश्यामिमोक्षंयुद्धविशारदाः ॥ ५ ॥ अहंवाकुंभकर्णोवात्वंवासेनापतिर्मम ॥ इंद्रजिद्वानिकुंभोवावहेयुर्भारमीदृशम् ॥ ६ ॥ सत्वंबलमतःशीघ्रमादायपरिगृह्यच ॥ विजयायाभिनिर्याहियत्रसर्वेवनौकसः ॥ ७ ॥ निर्याणादेवतूर्णंच चलिताहरिवाहिनी ॥ नर्दतांराक्षसेंद्राणांश्रुत्वानादंद्रविष्यति ॥ ८ ॥ चपलाह्यविनीताश्चचलचित्ताश्चवानराः ॥ नसहिष्यंतितेनादंसिंहनादमिवद्विपाः ॥ ९ ॥

दूसरा उपाय नहीं देखते ॥ ५ ॥ परन्तु इस समय हमारे इन्द्रजितके कुम्भकर्णके निकुम्भके अथवा हमारे सैनापति तुम्हारे सिवाय, और कौन इस बड़े भारी भारको उठासकताहै ॥ ६ ॥ इस कारण तुम शीघ्रही रथ पर सवारहो सैनाको साथले जिस स्थानपर वानरगण टिके हुएहैं, वहां पर युद्ध करनेंके लिये जाओ ॥ ७ ॥ ऐसा हम जानतेहैं कि "तुम लड़नेंके लिये आयेहो" यह बात सुनतेही वह वानरोंकी सैना चलायमान होजायगी; हम निश्चय कहतेहैं कि राक्षसोंका सिंहनाद सुनकर यह वानर भयके मारे इधर उधर भाग जांयगे ॥ ८ ॥ हे वीर ! जिस प्रकारसे हाथी

समान लाल २ नेत्र किये जो महाबलवान् राक्षस घंटेके नादकी समान नादकरते हुए क्रूर स्वभाववाले हाथीके ऊपर चढकर गर्जन कर रहाहै यही महात्मा महोदर नाम वीर है ॥ १७ ॥ जो सन्ध्या कालके मेघ और पर्वतकी समान आकार वालाहै और सुवर्णके गहनोंसे भूषित घोडों पर चढकर मरीच्याकार झालर लगा प्रास उठाये हुएहै इस वज्रकी समान वेगवान वीरका नाम पिशाचहै ॥१८॥ जो तीक्ष्ण शूल ग्रहण करके वज्रसे भी अधिक वेगवान चंद्रमाकी समान प्रकाशमान और बिजलीकी समान श्रेष्ठ बैलपर चढ़कर चला आताहै वह बडा यशस्वी त्रिशिरानामक राक्षसहै ॥ १९ ॥ विशाल और चौडी छातीवाला और सौदामिनीकी समान रूपवान जो वीर स्थिरभावसे अपने धनुषको टंकारता और

योसौहयंकांचनचित्रभांडमारुह्यसंध्याभ्रगिरिप्रकाशः ॥ प्रासंसमुद्यम्यमरीचिनद्धंपिशाचएषोशनितुल्यवेगः ॥ १८॥
यश्चैषशूलंनिशितंप्रगृह्यविद्युत्प्रभंकिंकरवज्रवेगम् ॥ वृषेंद्रमास्थायशशिप्रकाशमायातियोसौत्रिशिरायशस्वी ॥१९॥
असौचजीमूतनिकाशरूपःकुंभःपृथुव्यूढसुजातवक्षाः ॥ समाहितःपन्नगराजकेतुर्विस्फारयन्यातिधनुर्विधुन्वन् ॥ २० ॥
यश्चैषजांबूनदवज्रजुष्टंदीप्तंसधूमंपरिघंप्रगृह्य ॥ आयातिरक्षोबलकेतुभूतोयोसौनिकुंभोऽद्भुतवीरकर्मा ॥ २१ ॥
यश्चैषचापासिशरौघजुष्टंपताकिनंपावकदीप्तरूपम् ॥ रथंसमास्थायविभात्युदग्रोनरांतकोसौनगशृंगयोधी ॥ २२ ॥
यश्चैषनानाविधघोररूपैर्व्याघ्रोष्ट्रनागेंद्रमृगाश्ववक्त्रैः ॥ भूतैर्वृतोभातिविवृत्तनेत्रैर्योसौसुराणामपिदर्पहंता ॥ २३ ॥

कंपायमान करता चला आताहै और जिसके रथकी ध्वजापर शेषजीका चिह्न दिखाई देताहै उसका नाम कुम्भहै ॥ २० ॥ निशाचरोंकी सैनाका पताकारूप जो अद्भुत कर्म करनेंवाला वीर सुवर्ण और हीरोंसे खचित प्रकाशमान धूम सहित परिघलिये हुए आगमन करताहै इसका नाम निकुम्भहै ॥ २१ ॥ जो बड़े शरीरवाला वीर अग्निकी समान तेज युक्त पताका शोभित, चाप खड्ग बाण समूहसे परिपूर्ण रथपर चढ़ा हुआ शोभायमान होरहाहै इसकाही नाम नरान्तक कहतेंहैं ॥ महाराज ! यह वीर अपनी समान योद्धा न पायकर अपनी बांहोंकी चुलबुलाहट मिटानेंको पर्वतके शृङ्गोंसेही युद्ध किया करताहै ॥ २२ ॥ जिसनें देवतालोगोंकाभी गर्व नाश कियाहै, और विविध

अपना प्राण पुत्र परिवार और धन कुछभी हम रखना नहीं चाहते;इस कारण हम कहते हैं कि इस समय आपके अर्थही युद्धमें इस जीवनको भी हमदेंगे ॥ १६ ॥ सैनापति प्रहस्तनें राक्षसपति रावणसे यह कहकर सामने आकर खडें हुए सैनाध्यक्षसे कहा ॥ १७ ॥ कि जलदीसे बडीभारी राक्षसोंकी सैनाको सजायकर लेआओ;हमारे बाणोंके वेगसे रणमें मृतक हुए॥१८॥ वानरोंके मांससे आज वनके रहनेंवाले पशुपक्षी भलीभांति तृप्तहोंगे । प्रहस्तके यह वचन सुनकर महाबलवान् सैनाध्यक्ष लोगोंनें ॥ १९ ॥ तिस राक्षसराजके गृहमें लायकर सैनाको इकट्ठा कर दिया, एक मुहूर्तमें अनेक

नहिमेजीवितंरक्ष्यंपुत्रदारधनानिच ॥ त्वंपश्यमांजुहूषंतंत्वदर्थेजीवितंयुधि ॥ १६ ॥ एवमुक्त्वातुभर्तारंरावणंवाहिनीपतिः ॥ उवाचेदंबलाध्यक्षान्प्रहस्तःपुरतःस्थितान् ॥ १७ ॥ समानयतमेशीघ्रंराक्षसानांमहाबलम् ॥ मद्बाणानांतुवेगेनहतानांतुरणाजिरे ॥ १८ ॥ अद्यतृप्यंतुमांसादाःपक्षिणःकाननौकसः ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाबलाध्यक्षामहाबलाः ॥ १९ ॥ बलमुद्योजयामासुस्तस्मिन्राक्षसमंदिरे ॥ साबभूवमुहूर्तेनभीमैर्नानाविधायुधैः ॥ २० ॥ लंकाराक्षसवीरैस्तैर्गजैरिवसमाकुला ॥ हुताशनंतर्पयतांब्राह्मणांश्चनमस्यताम् ॥ २१ ॥ आज्यगंधप्रतिवहःसुरभिर्मारुतोववौ ॥ स्रजश्चविविधाकाराजगृहुस्त्वभिमंत्रिताः ॥ २२ ॥ संग्रामसज्जाःसंहृष्टाधारयन्राक्षसास्तदा ॥ सधनुष्काःकवचिनोवेगादुत्सृज्यराक्षसाः ॥ २३ ॥ रावणंप्रेक्ष्यराजानंप्रहस्तंपर्यवारयन् ॥ अथामंत्र्यतुराजानंभेरीमाहत्यभैरवाम् ॥ २४ ॥

प्रकारके अस्त्र शस्त्र धारण किये॥२०॥राक्षस वीरोंसे लंकापुरी ऐसी पूर्ण हुई मानो हाथियोसे पूर्ण होगई । कोई राक्षस अग्निको तृप्त करते हुए कोई ब्राह्मणोंको प्रणाम करते हुए ॥२१॥ ऐसे राक्षसोंके घृतकी सुगन्धिसे युक्त होकर सुगन्धित पवन चलनें लगा और विविध प्रकारकी मालायें जो मंत्रोंसे पढ़ी हुईथीं राक्षसोंने ग्रहणकी ॥२२॥ और संग्राममें जानेंके लिये वह राक्षस रणके आयुधोंसे सजनें लगे, तिसके पीछे कवच और धनुषधारी वह राक्षसगण अतिवेगसे राक्षसराज रावणको देखकर प्रहस्तनाम सैनापतिको घेर खड़े होगये । फिर राजाकी आज्ञा ले अतिघोर भेरी बजवाय ॥ २३ ॥ २४ ॥

कि आज यह पापात्मा हमारे दृष्टि गोचर हुआहै इस लिये सीता हरण होंनेसे जो क्रोध हमारे मनमें उत्पन्न हुआहै, वह क्रोध
आज हम इसके ऊपर छोडेंगे ॥ ३१ ॥ वीर्यवान् श्रीरामचन्द्रजी यह कहकर धनुषपर रोदा चढ़ाय आगे बढे, और लक्ष्मणजीभी इनके पीछे २
चले ॥ ३२ ॥ तिसके पीछे महात्मा राक्षसपति रावण उन महा बलवान राक्षसोंसे बोला कि तुम लोग हमारी आज्ञासे इस समय जाय लंकाके चार
पुर द्वार राजमार्ग और घरोंमें शंका रहित मनके सुख सहित टिके रहो ॥ ३३ ॥ कारण कि एकत्र हुए महाबलवान वनवासी वानरगण तुम लोगोंके
सहित हमारी पुरीसे बाहर आनेका यह छिद्र पाय, प्रवेश करनेंके अयोग्य वीर शून्य लंका पुरीको मर्दन करके विध्वंश कर डालेंगे ॥ ३४ ॥ जब

एवमुक्त्वाततोरामोधनुरादायवीर्यवान् ॥ लक्ष्मणानुचरस्तस्थौसमुद्धृत्यशरोत्तमम् ॥ ३२ ॥ ततःसरक्षोधिपतिर्महा
त्मारक्षांसितान्याहमहाबलानि ॥ द्वारेषुचर्यागृहगोपुरेषुसुनिर्वृतास्तिष्ठतनिर्विशंकाः ॥ ३३ ॥ इहागतंमांसहितंभव
द्भिर्वनौकसश्छिद्रमिदंविदित्वा ॥ शून्यांपुरींदुष्प्रसहांप्रमथ्यप्रधर्षयेयुःसहसासमेताः ॥ ३४ ॥ विसर्जयित्वासचि
वांस्ततस्तान्गतेषुरक्षःसुयथानियोगम् ॥ व्यदारयद्वानरसागरौघंमहाझषःपूर्णमिवार्णवौघम् ॥ ३५ ॥ तमापतंतं
सहसासमीक्ष्यदीप्तेषुचापंयुधिराक्षसेंद्रम् ॥ महत्समुत्पाट्यमहीधराग्रंदुद्रावरक्षोधिपतिंहरीशः ॥ ३६ ॥ तच्छैलशृं
गंबहुवृक्षसानुंप्रगृह्यचिक्षेपनिशाचराय ॥ तमापतंतंसहसासमीक्ष्यचिच्छेदबाणैस्तपनीयपुंखैः ॥ ३७ ॥

राक्षस लोग रावणकी आज्ञाके अनुसार पुरीकी रक्षा करनेको उसमें प्रवेश करते हुए; तब निशाचर पति रावणभी अपने मंत्रियोंको विदा
देकर स्वयं बडे २ मत्स्य आदि जीवोंसे परिपूर्ण महा समुद्रकी समान उस बडी भारी वानरोंकी सैनाको विदारण करने लगा ॥ ३५ ॥ तब
वानरराज सुग्रीवजी, प्रदीप्त बाण सहित धनुष धारण किये राक्षसोंके स्वामी रावणको अचानक आया हुआ देख एक बडा भारी पर्वतका
शिखर उखाडकर निशाचर पतिकी ओर दौडे ॥ ३६ ॥ तिसके पीछे बहुत वृक्ष और कंगूरोंसे शोभित वह पर्वतका शृङ्ग इन्होंने राक्षस
रावणके ऊपर चलाया परन्तु रावणनें अपने ऊपर गिरते २ उस पर्वतके शृङ्गको सुवर्णकी फोंका लगे हुए बाणोंसे सहसा खंड २ कर डाला ॥ ३७ ॥

सन्मुख गमन करनें लगा ॥ ३२ ॥ जब प्रहस्त निकला तब उसके साथवाले शब्द करते हुए. राक्षसोंके निकलनेसे ऐसा बड़ा भारी नाद उत्पन्न हुआ कि लंका नगरीके समस्त प्राणी पुञ्जविकट स्वरसे चिल्लानें लगे॥३३॥मांस रुधिरके खानें पीनेंवाले गिद्ध आदि, विना मेघके आकाशमें मंडलाकारसे रथके ऊपर घूमने लगे ॥ ३४ ॥ भयंकर रूपवाली शृगालियें भयंकर शब्दसे बोलकर मुखसे अग्निकी लपटें छोडती चिल्लाने लगीं अन्तरिक्षसे वार २ उल्का गिरनें लगीं,पवनभी रूखेपनसे चलनें लगा ॥३५॥ परस्पर एक दूसरेके क्रोधितहो युद्ध करनेंसे सब ग्रहोंकी प्रभा हीन होगई राक्षस सेनापतिके रथपर मेघमाला गंभीर शब्दसे गर्जन करके ॥३६॥ रुधिरकी वर्षा करनें लगी और उसके आगे चलती हुई सेनापरभी रुधिर वर्षा रथ

तस्यनिर्याणघोषेणराक्षसानांचनर्दताम् ॥ लंकायांसर्वभूतानिनिनेदुर्विकृतैःस्वरैः ॥ ३३ ॥ व्यभ्रमाकाशमाविश्यमांसशोणितभोजनाः ॥ मंडलान्यपसव्यानिखगाश्चक्रूरथंप्रति ॥ ३४ ॥ वमंतिपावकज्वालाःशिवाघोराववाशिरे॥अंतरिक्षात्पपातोल्कावायुश्चपरुषंववौ ॥ ३५ ॥ अन्योन्यमभिसंरब्धाग्रहाश्चनचकाशिरे ॥ मेघाश्चखरनिर्घोषारथस्योपरिरक्षसः ॥ ३६ ॥ ववर्षूरुधिरंचास्यसिषिचुश्चपुरःसरान् ॥ केतुमूर्धनिगृध्रस्तुविलीनोदक्षिणामुखः ॥ ३७॥ नदन्नुभयतःपार्श्वंसमग्रांश्रियमाहरत् ॥ सारथेर्बहुशश्चात्रसंग्राममनिवर्तिनः ॥ ३८ ॥ प्रतोदोन्यपतद्धस्तात्सूतस्यहयसादिनः ॥ निर्याणश्रीश्चयाचस्याद्भास्वराचसुदुर्लभा ॥ ३९ ॥ साननाशमुहूर्तेनसमेचस्खलिताहयाः ॥ प्रहस्तंतंहिनिर्यांतंप्रख्यातगुणपौरुषम् ॥ युधिनानाप्रहरणाकपिसेनाऽभ्यवर्तत ॥ ४० ॥ अथघोषःसुतुमुलोहरीणांसमजायत ॥ वृक्षानारुजतांचैवगुर्वीर्वैगृह्णतांशिलाः ॥ ४१ ॥

की ध्वजापर गिद्ध बैठ गया; और दक्षिण मुख होकर शब्द करने लगा ॥३७॥ और अपनें दोनों पंखोंको फैलायकर सैनापति प्रहस्तकी समस्त प्रभा और श्रीको हरण कर लेता हुआ । समरसे विमुख नहोनेंवाले सारथिकीभी श्री जाती रही ॥ ३८ ॥ और घोड़ोंके सिखानेंवालेके हाथसे, व सारथिके हाथसे वारंवार चाबुक गिर पड़नें लगा जो युद्धमें जानेंके समयकी शोभा और दीप्तिथी वह एक मुहूर्तभरमें नाशको प्राप्त हुई, घोड़ोंका पैर फिसलनें लगा इस प्रकारसे विख्यात बलपौरुषवाला प्रहस्त जब लंकासे युद्ध करनेंको निकला, तब रणभूमिमें वानरगण, वृक्ष शिला इत्यादि अनेक प्रकारके आयुध धारण किये हुए उसके सन्मुख दौड़े ॥ ३९ ॥ ४० ॥ इस समय वानरगण कटकटाय कर गर्जनेंलगे और वह बड़े २ वृक्ष

तव वह भयंकर शरीरवाले वानर गणभी राक्षसनाथ रावणके बाणोंकेलगनेसे छिन्न भिन्न शरीरहो पृथ्वीपर गिरनें लगे ॥४३॥ तब राक्षस रावण बाणोंके ढेरके ढेर चलायकर उग्र स्वभाववाली उस वानरोंकी सैनाको बाण जालसे छानें लगा इस प्रकार रावणके बाणोंसे मर्ममें चोट खाय वानरोंमेसे अनेक मर गये और अनेक गिर पड़े, अनेक छिन्न भिन्न होगये और उनमेंसे अनेक भयके मारे विह्वल होकर शरणागत प्रतिपालक अनाथ नाथ श्रीरामचंद्रजीकी शरणमें गये ॥ ४४ ॥वानरोंको शरणमें आया हुआदेखकर धनुष धारियोंमें श्रेष्ठ महात्मा श्रीरामचंद्रजी सहसा आगे बढ़नेंको तैयार हुए कि इतने हीमें लक्ष्मणजीनें हाथ जोड़कर उनसे यह परमार्थ युक्त वचन कहे॥४५॥हे आर्य ! हम अकेलेही इस दुरात्मा रावणका संहार

ततस्तुतद्वानरसैन्यमुग्रंप्रच्छादयामाससबाणजालैः ॥ तेवध्यमानाःपतिताश्चवीरानानद्यमानाभयशल्यविद्धाः ॥ शाखामृगारावणसायकार्ताजग्मुःशरण्यंशरणंस्मरामम् ॥ ४४ ॥ ततोमहात्मासधनुर्धनुष्मानादायरामःसहसाजगाम ॥ तंलक्ष्मणःप्रांजलिरभ्युपेत्यउवाचरामंपरमार्थयुक्तम् ॥ ४५ ॥ काममार्यसुपर्याप्तोवधायास्यदुरात्मनः ॥ विधमिष्याम्यहंचैतमनुजानीहिमांविभो ॥ ४६ ॥ तमब्रवीन्महातेजारामःसत्यपराक्रमः ॥ गच्छयत्नपरश्चापि भवलक्ष्मणसंयुगे ॥ ४७ ॥ रावणोहिमहावीर्योरणेऽद्भुतपराक्रमः ॥ त्रैलोक्येनापिसंक्रुद्धोदुष्प्रसह्योनसंशयः ॥ ४८॥ तस्यच्छिद्राणिमार्गस्वस्वच्छिद्राणिचलक्षय ॥ चक्षुषाधनुषात्मानंगोपायस्वसमाहितः ॥ ४९ ॥ राघवस्यवचःश्रुत्वासंपरिष्वज्यपूज्यच ॥ अभिवाद्यचरामायययौसौमित्रिराहवे ॥ ५० ॥

कर सकतेहैं, इस कारण हे विभो! आप निश्चय जानें कि इस निशाचरको हमहीं मार डालेंगे ॥ ४६ ॥ यह वचन सुनकर सत्य पराक्रम महा तेजवान श्रीरामचंद्रजीनें कहा कि हे लक्ष्मण ! जाओ परन्तु रणमें भली भांति सावधान रहना ॥ ४७ ॥ तुमसे इतना कहनेंका यही अभिप्रायहै, कि रावण अत्यन्त वीर और महाबलवानहै, उसका पराक्रम अद्भुतहै, जब उसको क्रोध उत्पन्न होजाताहै. तब त्रिलोकवासी समस्त जनभी इसके पराक्रमको नही सह सकते इसमें कोईभी सन्देह नहीं ॥ ४८ ॥ तुम उस रावणके प्रहार करनेंका अवसर खोजते रहना और सावधान चित्तसे अपनी रक्षा करते रहकर अपने प्रहारके समय शत्रुपर दृष्टि रक्खो. व धनुष परबाण चलाय संभालकर रिपुपर चलाओ ॥४९॥ श्रीरामचंद्रजीके यह वचन

वीर्यवान और शूर निशाचर उस तीन भागवाली सैनामेंसे एक भाग सैना अपने साथ लेकर यहां आयाहै ॥ ४ ॥ और इस ओर सैनापति प्रहस्त भयंकर पराक्रम दिखाता, गर्जता हुआ बहुत सारे राक्षसोंकी सैनाके साथ निकला ॥ ५ ॥ महाबलवान वानरगण बड़ी भारी प्रहस्तकी सैनाको देखकर अत्यन्त क्रोध युक्त होकर गर्जन करनें लगे ॥ ६ ॥ खड्ग, शक्ति, छंड, ऋष्टि, शूल, बाण, मूसल, गदा, परिघ, प्रास, विविध भांतिके फरसे, ॥ ७ ॥ चित्र विचित्र, धनुष लिये, जीतनेंकी इच्छा किये वानरोंके ऊपर धावमानहोते हुए राक्षसोंके अस्त्र शस्त्र शोभायमान होतेथे, यह देखकर समरके अभिलाषी वानरगणभी पुष्पित वृक्ष, और पर्वतोंके शिखर, और बड़ी २ शिलायें ग्रहण करते हुए ॥ ८ ॥ ९ ॥ दोनों ओरकी

ततःप्रहस्तंनिर्यातंभीमंभीमपराक्रमम्॥ गर्जंतंसुमहाकायंराक्षसैरभिसंवृतम्॥५॥ददर्शमहतीसेनावानराणांबलीयसाम् ॥ अभिसंजातघोषाणांप्रहस्तमभिगर्जताम् ॥ ६ ॥ खड्गशक्त्यृष्टिशूलाश्चबाणानिमुसलानिच ॥ गदाश्चपरिघाःप्रासाविविधाश्चपरश्वधाः॥७॥धनूंषिचविचित्राणिराक्षसानांजयैषिणाम् ॥ प्रगृहीतान्यराजंतवानरानभिधावताम्॥८॥ जगृहुःपादपांश्चापिपुष्पितांस्तुगिरींस्तथा ॥ शिलाश्चविपुलादीर्घायोद्धुकामाःप्लवंगमाः ॥ ९ ॥ तेषामन्योन्यमासाद्यसंग्रामःसुमहानभूत् ॥ बहूनामश्मवृष्टिंचशरवर्षंचवर्षताम् ॥ १० ॥ बहवोराक्षसायुद्धेबहून्वानरपुंगवान् ॥ वानराराक्षसांश्चापिनिजघ्नुर्बहवोबहून् ॥ ११ ॥ शूलैःप्रमथिताःकेचित्केचित्तुपरमायुधैः ॥ परिघैराहताःकेचित्केचिच्छिन्नाःपरश्वधैः॥ १२॥ निरुच्छ्वासाःपुनःकेचित्पतिताजगतीतले ॥ विभिन्नहृदयाःकेचिदिषुसंधानसादिताः॥ १३ ॥ केचिद्द्विधाकृताःखड्गैःस्फुरंतःपतिताभुवि ॥ वानराराक्षसैःशूरैःपार्श्वतश्चविदारिताः ॥ १४ ॥

सैनामें भयंकर संग्राम आरंभ हुआ; दोनोंही ओरके वीर शिला और बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ १० ॥ राक्षसगणोंनें संग्राममें अगणित वानरोंको मार डाला और वानरोंनेभी असंख्य राक्षसोंका प्राण संहार किया॥११॥वानरोंमेंसे कोई२ राक्षसोंके शूलप्रहारसे मारे गये और कोई२ दूसरे अस्त्र शस्त्रोंसे मृतक हुए; कोई परिघकी चोटसे रणभूमिमें गिरे और फरसेके प्रहारसे किसी २ का शिर कटगया ॥ १२ ॥ किसीनें पृथ्वीपर गिरकर प्राणत्याग, दिया किसी २ का हृदय छिन्नभिन्न होगया किसी२ के शरीरमें बाणही लगे,कि जिस्से वह गिरे ॥ १३ ॥ कोई २ वानर शूरराक्षसों करके

हमारा पराक्रम जानही लेना चाहतेहो तौ हमसे विनाशको प्राप्त हुए अपनेपुत्र अक्षकुमारकी याद करलो ॥ ५८ ॥ महातेजस्वी वीर्यवान राक्षसोंके
स्वामी रावणने हनुमानजीसे ऐसा सुन उन पवनकुमारकी छातीमें एक लातमारी; उस लातके लगनेसे हनुमानजी वारंवार विचलित भी हुए॥५९॥
परन्तु उन महातेजस्वी हनुमानजीनेंभी एक मुहूर्तमें स्थिरहो अत्यन्त क्रोध सहित एक लात रावणके ऊपर चलाई ॥ ६० ॥ तब दशमुख
रावण उन महाबलवान हनुमानजीके चरणकी चोट खाय भूडोलके समय कांपते हुए पर्वतकी समान कम्पायमान होंनेलगा ॥ ६१ ॥
उस कालमें सिद्ध चारण ऋषि देवता और असुरगण रावणको संग्राम भूमिमें इस प्रकारसे लातके प्रहारसे चेतना रहित होते देखकर आनंदके

एवमुक्तोमहातेजारावणोराक्षसेश्वरः ॥ आजघानानिलसुतंतलेनोरसिवीर्यमान् ॥ सतलाभिहतस्तेनचचालचमुहु
र्मुहुः ॥ ५९ ॥ स्थितोमुहूर्तंतेजस्वीस्थैर्यंकृत्वामहामतिः ॥ आजघानचसंक्रुद्धस्तलेनैवामरद्विषम् ॥ ६० ॥ ततःस
तेनाभिहतोवानरेणमहात्मना ॥ दशग्रीवःसमाधूतोयथाभूमिचलेऽचलः ॥ ६१ ॥ संग्रामेतंतथादृष्ट्वारावणंतलताडि
तम् ॥ ऋषयोवानराःसिद्धानेदुर्देवाःसुरासुरैः ॥ ६२ ॥ अथाश्वास्यमहातेजारावणोवाक्यमब्रवीत् ॥ साधुवानरवी
र्येणश्लाघनीयोसिमेरिपुः ॥ ६३ ॥ रावणेनैवमुक्तस्तुमारुतिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ धिगस्तुममवीर्यस्ययत्त्वंजीवसिराव
ण ॥ ६४ ॥ सकृत्तुप्रहरेदानींदुर्बुद्धेकिंविकत्थसे ॥ ततस्त्वांमामकोमुष्टिर्नयिष्यतियमक्षयम् ॥ ६५ ॥ ततोमारुति
वाक्येनकोपस्तस्यप्रजज्वले ॥ संरक्तनयनोयत्नान्मुष्टिमावृत्यदक्षिणम् ॥ पातयामासवेगेनवानरोरसिवीर्यवान्॥६६॥

मारे सिंहनाद करनें लगे ॥ ६२ ॥ तिसके पीछे रावण कुछ देरमें चेतना पायकर स्थिर हो हनुमानजीसे बोला कि हे वानर! तुम अपने वीर्यके
प्रभावसे बड़ाई करनेंके योग्य हुए हो और इस बातसे हमभी बड़ाई करनेंके योग्य हुए हैं कि तुम समान बलवान हमारे शत्रु हुए हैं ॥ ६३ ॥ जब राव
णनें इस प्रकारसे कहा तब हनुमानजी बोले हे रावण! मेरे वीर्यको धिक्कारहै, कारणकि मेरी लातके प्रहारको खायकर भी तू अबतक जी
वितहै ॥ ६४ ॥ रेनिर्बोध तू वृथा क्यों गर्व करताहै! और एक वार प्रहार कर देख; तिसके पीछे हमारा यह घूंसा तुझको यमराजके भवनमें पहुंचा
वेगा ॥ ६५ ॥ पवनकुमार हनुमानजीके ऐसे वचन सुनकर वीर्यवान रावणके क्रोधकी अग्नि भड़क उठी, और दोनों नेत्र लाल हो आये, और

तारनें बड़े भारी वृक्षके प्रहारसे कुम्भहनुके ऊपर चोट चलाई कि जिस्से उसका प्राण निकल गया ॥ २३ ॥ परन्तु रथपर चढ़ा हुआ प्रहस्त उन वानर लोगोंके इस कर्मको न सहकर धनुष धारण करके वानरोंका घोर नाश करनें लगा ॥ २४ ॥ उस कालमें दोनों ओरकी सैनाके वेगसे इधर उधर भ्रमण करनेंसे उनकी वह विचित्र गति आवर्तके समान जान पड़नें लगी, और उससे खलबलायमान अप्रमेय समुद्रकी समान शब्द होनें लगा ॥ २५ ॥ उस रणभूमिमें दुर्मद निशाचर प्रहस्तनें अत्यन्त क्रोधित होकर बाणोंका झड लगाकर वानरोंको मारने लगा ॥२६॥ उस समय वह रणभूमि वानर और राक्षसगणोंके मृतक देहोंसे परिपूर्ण होगई कि जिस्से वह ऐसी ज्ञात होनें लगी मानों यह भयंकर पर्वतोंसे घिररही

अमृष्यमाणस्तत्कर्मप्रहस्तोरथमाश्रितः ॥ चकारकदनंघोरंधनुष्पाणिर्वनौकसाम् ॥ २४ ॥ आवर्तइवसंजज्ञेसेनयो रुभयोस्तदा ॥ क्षुभितस्याप्रमेयस्यसागरस्येवनिःस्वनः ॥ २५ ॥ महताहिशरौघेणराक्षसोरणदुर्मदः ॥ अर्दयामास संक्रुद्धोवानरान्परमाहवे ॥२६॥ वानराणांशरीरैस्तुराक्षसानांचमेदिनी ॥ बभूवातिचिताघोरैःपर्वतैरिवसंवृता ॥२७॥ सामहीरुधिरौघेणप्रच्छन्नासंप्रकाशते ॥ संछन्नामाधवेमासिपलाशैरिवपुष्पितैः ॥ २८॥ हतवीरौघवप्रांतुभग्नायुधम हाद्रुमाम् ॥ शोणितौघमहातोयांयमसागरगामिनीम् ॥ २९ ॥ यकृत्प्लीहमहापंकांविनिकीर्णांत्रशैवलाम् ॥ भिन्न कायशिरोमीनामंगावयवशाद्वलाम् ॥ ३० ॥ गृध्रहंसवराकीर्णांकंकसारससेविताम् ॥ मेदःफेनसमाकीर्णामावर्त स्वननिःस्वनाम् ॥ ३१ ॥

है॥२७॥ वसन्तऋतुके आगमनसे खिले हुए पलाशके फूलोंसे जिस प्रकार पृथ्वी शोभायमान होतीहै, वैसेही रणभूमिमें रुधिरकी नदीनें प्रवाहित होकर अत्यन्त शोभा धारणकी ॥ २८ ॥ मरे हुए वानर राक्षस इसके तट टूटे हुए अस्त्र शस्त्रही किनारे वाले बड़े २ वृक्ष रुधिरका वहनाही जल राशि ऐसी यह रणभूमि उस कालमें यमसागरगामिनी नदीसी ज्ञात हुई ॥ २९ ॥ प्लीहा और यकृत जिसकी घनी कीचड इधर उधर पडे हुए इसके शिवार वीरोंकें कटे हुए रुण्डही इस नदीके बड़े मच्छ व काटे हुए अंग जलकी घासके समान ॥३०॥ रक्त मांसकी चाहना करनेंवाले गृध्रही इस नदीके हंस,कंक रूप सारसही जिसमें बैठेहैं,और चरबीही जिसका फेनरूपहै;और आरत वाणीही जिसका वादलोंका गर्जना रूपशब्दहै॥ ३१ ॥

खंड २ होकर पृथ्वीपर गिरा हुआ देख कोपके मारे प्रलयकी अग्निके समान जल उठे ॥ ७४ ॥ उस समय वह सैनापति नील अश्वकर्ण, धव, शाल और बौरे हुए आम इत्यादि वृक्ष उखाड़ २ समरमें रावणके ऊपर चलानें लगे ॥ ७५ ॥ राक्षसोंके राजा रावणने इन समस्त चलाये हुए वृक्षोंको देखते २ खंड २ कर डाला और नीलके ऊपर वाणोंकी घोर वर्षाकरने लगा ॥ ७६ ॥ मेघ जिस प्रकार जल वर्षातेहैं वैसेही लंकेश्वर रावणके वाण वर्षासे घवड़ाय वानर सैनापति नील अपनी देहको छोटा वनाय कूदकर रावणकी ध्वजापर कूद गये ॥ ७७ ॥ तव दशानन रावण अग्निपुत्र नीलको अपनी ध्वजापर वैठा हुआ देखकर क्रोधके मारे जल उठा यह देखकर वानर सैनापति नीलनें घोर सिंहनाद किया ॥ ७८ ॥ इस प्रकारसे वानरोंके सैनापति नील कभी रावणकी ध्वजाके डंडेपर, कभी धनुषपर, और कभी २ रावणके मुखके आगे विराजमान होनें लगे, सेनापति नीलकी यह अनुपम वीरता देखकर श्रीरामचंद्र, लक्ष्मण हनुमानजी अत्यन्त विस्मित हुए ॥ ७९ ॥ रावणनें भी सैनापति नीलकी यह अद्भुत रणकी चतुरता देख अत्यन्त विस्मितहो एक अद्भुत प्रदीप्त अग्नि वाण ग्रहण किया ॥ ८० ॥ इस ओर वानरगण रावणको नीलकी शीघ्रता और चंचलतासे रावणको सम्भ्रान्त चित्त देख आनंदसे कुलाहल करनें लगे ॥ ८१ ॥ रावणभी वानर दलका ऐसा शब्द सुनकर इस प्रकारका

सोश्वकर्णद्रुमान्शालांश्चूतांश्चापिसुपुष्पितान् ॥ अन्यांश्चविविधान्वृक्षान्नीलश्चिक्षेपसंयुगे ॥ ७५ ॥ सतान्वृक्षान्समासाद्यप्रतिचिच्छेदरावणः ॥ अभ्यवर्षच्चघोरेणशरवर्षेणपावकिम् ॥ ७६ ॥ अभिवृष्टःशरौघेणमेघेनेवमहाबलः ॥ ह्रस्वंकृत्वाततोरूपंध्वजाग्रेनिपपातह ॥ ७७ ॥ पावकात्मजमालोक्यध्वजाग्रेसमवस्थितम् ॥ जज्वालरावणःक्रोधात्ततोनीलोननादच ॥ ७८ ॥ ध्वजाग्रेधनुषश्चाग्रेकिरीटाग्रेचतंहरिम् ॥ लक्ष्मणोथहनूमांश्चरामश्चापिसुविस्मिताः ॥ ७९ ॥ रावणोपिमहातेजाःकपिलाघवविस्मितः ॥ अस्त्रमाहारयामासदीप्तमाग्नेयमद्भुतम् ॥ ८० ॥ ततस्तेचुक्रुशुर्हृष्टालब्धलक्षाःप्लवंगमाः ॥ नीललाघवसंभ्रांतंदृष्ट्वारावणमाहवे ॥ ८१ ॥ वानराणांचनादेनसंरब्धोरावणस्तदा ॥ संभ्रमाविष्टहृदयोनकिंचित्प्रत्यपद्यत ॥ ८२ ॥

एकही वानरोंके सैनापति नीलके ऊपर बाणोंकी वर्षा करनें लगा ॥४०॥ वानरोंके सैनापति नील इन दुरात्मा प्रहस्तके बाणोंको न रोक सके और नेत्र मूंदकर उन समस्त बाणोंको सहन कर लिया। जैसे कि शरद ऋतुकी शीघ्र वर्षाको वृषभ सहन कर लेताहै ॥ ४१ ॥ इसी प्रकार बडे दुःखसे सहनेके अयोग्यभी प्रहस्तके बाण सैनापति नीलनें नेत्र मूंद करकै सहन कर लिये ॥४२॥ तिसके पीछे वह महाबलवान् सैनापति नील प्रहस्तके बाणोंकी वर्षा देख क्रोधित हो एक बडाभारी शालका वृक्ष ग्रहण करते हुए, और उसको चलाय कर प्रहस्तके रथमें जुते हुए चार घोडोंका संहार किया ॥ ४३ ॥ और क्रोधमें भरकर उस दुरात्मा राक्षस प्रहस्तका धनुषभी नीलनें बल पूर्वक ग्रहण करकै तोड डाला; धनुष तोडकर वानर

तस्यबाणगणानेवराक्षसस्यदुरात्मनः ॥ अपारयन्वारयितुंप्रत्यगृह्णान्निमीलितः ॥ यथैवगोवृषोवर्षंशारदंशीघ्रमागतम् ॥ ४१ ॥ एवमेवप्रहस्तस्यशरवर्षान्दुरासदान् ॥ निमीलिताक्षःसहसानीलःसेहेदुरासदान् ॥ ४२ ॥ रोषितःशरवर्षेणसालेनमहतामहान् ॥ प्रजघानहयान्नीलःप्रहस्तस्यमहाबलः ॥ ४३ ॥ ततोरोषपरीतात्माधनुस्तस्यदुरात्मनः ॥ बभंजतरसानीलोननादचपुनःपुनः ॥ ४४ ॥ विधनुःसकृतस्तेनप्रहस्तोवाहिनीपतिः ॥ प्रगृह्यमुसलंघोरंस्यंदनादवपुप्लुवे ॥ ४५ ॥ तावुभौवाहिनीमुख्यौजातवैरौतरस्विनौ ॥ स्थितौक्षतजसिक्तांगौप्रभिन्नाविवकुंजरौ ॥४६॥ उल्लिखंतौसुतीक्ष्णाभिर्दंष्ट्राभिरितरेतरम् ॥ सिंहशार्दूलसदृशौसिंहशार्दूलचेष्टितौ ॥ ४७ ॥ विक्रांतविजयौवीरौसमरेष्वनिवर्तिनौ ॥ कांक्षमाणौयशःप्राप्तुंवृत्रवासवयोरिव ॥ ४८ ॥

सैनापति नील वारंवार सिंहनाद करनें लगे ॥ ४४ ॥ धनुषहीन होनेपर सैनापति प्रहस्त घोर मूसल ग्रहण करकै रथसे छलांग मारकर पृथ्वीपर कूद पडा ॥ ४५ ॥ दोनों घोर युद्ध करनें लगे; दोनों जिस प्रकार वैर बांधे हुएथे; वैसेही बलवानभीथे। युद्ध करते २ दोनोंका शरीर कट गया; और दोनोंहीके शरीरसे रुधिर बहनें लगा ॥४६॥ दोनोंही तीक्ष्ण दाँतोंके प्रहारसे परस्पर एक दूसरेको काटनें लगे, दोनोंका विक्रम और चेष्टा सिंह शार्दूल की समानथी॥४७॥वृत्रासुर और वृत्रासुरके मारनेंवाले इन्द्रमें जिस प्रकारसे युद्धहुआथा; इसही प्रकारसे यह दोनों वीर समरमें यश प्राप्त करनेकी

चेतना रहित देख मेघके समान शब्द करते हुए अपने रथको चलायकर सुमित्रा कुमार लक्ष्मणजीकी ओर चला ॥ ९० ॥ प्रतापवान रावण लक्ष्मणजीको प्राप्त होकर वानरोंको निवारण कर अपने तेजसे विराज मान हो वारंवार अपने धनुषको टंकारनें लगा ॥ ९१ ॥ तब प्रबल बल शाली सुमित्रानंदन लक्ष्मणजी रावणको इस प्रकारसे धनुषपर टंकार देते देखकर बोले; हे राक्षस नाथ ! वानरोंके साथ युद्ध करना तुमको उचित नहीं है, क्योंकि वह तुम्हारी समानके नहीं हैं, इस कारण उनसे युद्ध न करके हमारे साथ युद्ध करो हम तुमसे युद्ध करनेंके लिये तैयार हैं ॥ ९२ ॥ यह कहकर लक्ष्मणजी धनुषपर टंकार देंने लगे; तब राक्षस राज दशानन उनके प्रति शब्द पूर्ण वचन और धनुषकी टंकारका उग्र

आसाद्यरणमध्येतुवारयित्वास्थितोज्वलन् ॥ धनुर्विस्फारयामासराक्षसेंद्रःप्रतापवान् ॥ ९१ ॥ तमाहसौमित्रिरदी
नसत्त्वोविस्फारयंतंधनुरप्रमेयम् ॥ अवेहिमामद्यनिशाचरेंद्रनवानरांस्त्वंप्रतियोद्धुमर्हसि ॥ ९२ ॥ सतस्यवाक्यंप्रति
पूर्णघोषंज्याशब्दमुग्रंचनिशम्यराजा ॥ आसाद्यसौमित्रिमुपस्थितंतंरोषान्वितंवाचमुवाचरक्षः ॥ ९३ ॥ दिष्ट्यासिमे
राघवदृष्टिमार्गंप्राप्तोंतगामीविपरीतबुद्धिः ॥ अस्मिन्क्षणेयास्यसिमृत्युलोकंसंसाद्यमानोममबाणजालैः ॥ ९४ ॥
तमाहसौमित्रिरविस्मयानोगर्जंतमुद्वृत्तशिताग्रदंष्ट्रम् ॥ राजन्नगर्जंतिमहाप्रभावाविकत्थसेपापकृतांवरिष्ठ ॥ ९५ ॥
जानामिवीर्यंतवराक्षसेंद्रबलंप्रतापंचपराक्रमंच ॥ अवस्थितोहंशरचापपाणिरागच्छकिंमोघविकत्थनेन ॥ ९६ ॥

शब्द श्रवण करके और सुमित्राके पुत्र लक्ष्मणजीको इस प्रकारसे आगे खड़ा देखकर क्रोधसे पूर्ण यह वचन बोला ॥ ९३ ॥ हे लक्ष्मण ! तुम्हारा समय पूर्ण होगया इस कारणसे तुम्हारी बुद्धिमेंभी विपरीतता आगई है; इसही कारणसे हो या हमारे सौभाग्य हीसेही जबकि तुम आज हमारी दृष्टिके मार्गमें पड़ेहो तब निश्चयही हमारे बाणोंसे छिन्न भिन्न इसी मुहूर्तमें तुम यमलोककी यात्रा करोगे ॥ ९४ ॥ रावणके यह वचन सुनकर महावीर लक्ष्मणजी विस्मय रहितहो बोले; हे रावण ! तुम पापी लोगोंके अगुएहो, इसीसे निर्लज्जहो, गर्ज २ कर अपने उज्वल दांत बाहर निकाल ऐसी बकवादकर रहेहो परन्तु महा प्रभाव लोग कभी ऐसा नहीं कहते ॥ ९५ ॥ हे राक्षसेन्द्र ! हम तुम्हारे वीर्य बल प्रताप और पराक्रमको भली भांति

जब प्रहस्त मारा गया, तब निशाचरोंकी बची हुई वह कंपायमान करनेंके अयोग्य बड़ी भारी सैना शिर झुकायकर लंकाको चली गई ॥५६॥ जिस प्रकार पुल पांव देके टूट जानें पर सब जल निकल जाताहै और नहीं रुक सकताहै, वैसेही सेनापति प्रहस्तके मारे जानेंपर वह निशाचरगण वहां टिकनेंको समर्थ न हुये ॥ ५७ ॥ उस सैनापति प्रहस्तके मारे जानेंपर वह निशाचर गण शोकके समुद्रमें डूबकर चेतना रहित होगये, और पीछे सब उद्यम छोड़ राक्षसपति रावणके मन्दिरमें आय ध्यान करते हुए पुरुषकी समान मौन धारण किये रहे ॥ ५८ ॥ इस ओर महावीर सैनापति नील युद्धमें जय प्राप्त करके श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजीके निकट आये, तत्काल सबही उनकी इस

नशेकुःसमवस्थातुंनिहतेवाहिनीपतौ ॥ सेतुबंधंसमासाद्यविशीर्णंसलिलंयथा ॥ ५७॥ हतेतस्मिंश्चमूमुख्येराक्षसास्ते निरुद्यमाः ॥ रक्षःपतिगृहंगत्वाध्यानमूकत्वमागताः ॥ प्राप्ताःशोकार्णवंतीव्रंविसंज्ञाइवतेभवन् ॥ ५८ ॥ ततस्तुनीलो विजयीमहाबलःप्रशस्यमानःसुकृतेनकर्मणा ॥ समेत्यरामेणसलक्ष्मणेनप्रहृष्टरूपस्तुबभूवयूथपः ॥ ५९ ॥ इत्यार्षे श्री० वा० आ० यु०अष्टपंचाशःसर्गः ॥ ५८ ॥ ॥ ७ ॥ तस्मिन्हतेराक्षससैन्यपालेप्लवंगमानामृषभेणयुद्धे ॥ भी मायुधंसागरवेगतुल्यंविदुद्रुवेराक्षसराजसैन्यम् ॥ १ ॥ गत्वातुरक्षोधिपतेःशशंसुःसेनापतिंपावकसूनुशस्तम् ॥ तच्चा पितेषांवचनंनिशम्यरक्षोधिपःक्रोधवशंजगाम ॥ २ ॥ संख्येप्रहस्तंनिहतंनिशम्यक्रोधार्दितःशोकपरीतचेताः ॥ उ वाचतान्राक्षसयूथमुख्यानिंद्रोयथानिजरयूथमुख्यान् ॥ ३ ॥

वीरताकी बहुतसी बडाई करनें लगे ॥ ५९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे अष्टपंचाशः सर्गः ॥ ५८ ॥ वानर श्रेष्ठ नीलके हाथसे जब सैनापति प्रहस्त संग्रामभूमिमें मारा गया तब भयंकर अस्त्र शस्त्रधारी समुद्रके वेगकी समान राक्षस रावणकी भागी हुई ॥ १ ॥ उस सैनानें लंका नगरीमें रावणके निकट जाय "अग्निके पुत्र नीलके हाथसे प्रहस्त मारा गया" उसको यह सम्वाद सुनाया। राक्षस रावण सैनाके मुखसे प्रहस्तका मरना सुनकर अत्यन्त क्रोधित हुआ ॥२॥ रणभूमिमें प्रहस्तको माराहुआ सुनकर रोषके परवश और शोकसे विकल

किया ॥ १०२ ॥ लक्ष्मणजीनें रावणके बाणसे अत्यन्त पीडित आरत होकर क्षण भरको चलायमान हुए, परन्तु अनेक कष्ट करके क्षणभरमेंही चेतना पाय अपने गिरे हुए धनुषको उठायकर उसपर बाण चढ़ाय इन्द्रके शत्रु रावणका धनुष काट डाला ॥ १०३ ॥ दशरथ कुमार लक्ष्मणजीनें इस प्रकारसे रावणका धनुष काटकर अत्यन्त तीखे तीन बाण उस राक्षस राजके मारे रावण उन बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर मोहित होगया और फिर अत्यन्त कष्टसे मूर्छासे जागा ॥ १०४ ॥ लक्ष्मणजीसे धनुष कट जानें और उनके बाणोंसे ताडित होनेंके कारण उग्र सामर्थ्यवान देव शत्रु रावणके अंगोंमें चरबीसे मिला हुआ रुधिर निकलनेसे और दूसरा उपाय नदेखकर उसने ब्रह्माजीकी दीहुई अमोघ(अव्यर्थ)शक्ति ग्रहणकी॥१०५॥

सलक्ष्मणोरावणसायकार्तश्चचालचापंशिथिलंप्रगृह्य ॥ पुनश्चसंज्ञांप्रतिलभ्यकृच्छ्राच्चिच्छेदचापंत्रिदशेंद्रशत्रोः ॥ ३॥
निकृत्तचापंत्रिभिराजघानबाणैस्तदादाशरथिःशिताग्रैः ॥ ससायकार्तोविचचालराजाकृच्छ्राच्चसंज्ञांपुनराससाद ॥४॥
सुकृत्तचापःशरताडितश्चमेदार्द्रगात्रोरुधिरावसिक्तः ॥ जग्राहशक्तिंस्वयमुग्रशक्तिःस्वयंभुदत्तांयुधिदेवशत्रुः ॥१०५॥
सतांसधूमानलसन्निकाशांवित्रासनींसंयतिवानराणाम् ॥ चिक्षेपशक्तिंतरसाज्वलंतींसौमित्रयेराक्षसराष्ट्रनाथः ॥ ६ ॥
तामापतंतींभरतानुजोस्त्रैर्जघानबाणैश्चहुताग्निकल्पैः ॥ तथापिसातस्यविवेशशक्तिर्भुजांतरंदाशरथेर्विशालम् ॥ ७ ॥ स
शक्तिमाञ्छक्तिसमाहतःसञ्जज्वालभूमौसरघुप्रवीरः ॥ तंविह्वलंतंसहसाभ्युपेत्यजग्राहराजातरसाभुजाभ्याम् ॥ ८॥

राक्षसोंके राजा रावणनें सुमित्राकुमार लक्ष्मणजीको ताककर संग्राम भूमिमें वानरोंको त्रास उपजानेंवाली और धुरों सहित अग्निकी समान जलती हुई वह शक्ति छोड़दी ॥ १०६ ॥ भरतजीके छोटे भाई लक्ष्मणजीनें उस शक्तिको अपने ऊपर गिरता हुआ देखकर उसको ताक असंख्य अग्निकी समान बाण छोड़े तथापि वह शक्ति किसी प्रकारसे व्यर्थ न होकर लक्ष्मणजीकी विशाल भुजामें आनकर प्रवेश करती हुई ॥ १०७ ॥ तब वह शक्तिमान रघुवीर लक्ष्मणजी शक्तिसे घायल होकर पृथ्वीमें गिर पडे; उनको इस प्रकारसे पृथ्वीमें गिरते हुए देखकर राक्षसराज रावण सहसा

सहित नगरसे बाहर आय महासमुद्र और महामेघकी समान शब्दायमान पर्वत, वृक्ष, हाथमें लिये रण करनेंको तैयार और उग्ररूप वाली बलशाली निराली वानरोंकी सैनाको देखा ॥ १० ॥ इस ओर भुजगेन्द्र सदृश बाहुयुगल शाली अपनी सैनामें टिके हुए सुन्दरदर्शन रघुनन्दन श्रीरामचंद्रजी उस परम प्रचंड राक्षसकी सैनाको देखकर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ विभीषणजीसे बोले ॥ ११ ॥ रंगविरंगी ध्वजा पताकाओंसे शोभित महेन्द्राचलकी समान हाथी घोड़ोंसे युक्त और प्रास खड्ग शूल इत्यादि भांति २ के अस्त्र शस्त्रोंसे परिपूर्ण यह किस वीरकी सैना है ॥ ॥ १२ ॥ श्रीरामचंद्रजकि यह वचन सुनकर इन्द्र तुल्य वीर्यवान विभीषणजी उन महाबलवान राक्षसश्रेष्ठोंकी सैनाका परिचय श्रीरामचंद्रजीके

तद्राक्षसानीकमतिप्रचंडमालोक्यरामोभुजगेंद्रबाहुः ॥ विभीषणंशस्त्रभृतांवरिष्ठमुवाचसेनानुगतःपृथुश्रीः ॥ ११ ॥
नानापताकाध्वजछत्रजुष्टंप्रासासिशूलायुधशस्त्रजुष्टम् ॥ कस्येदमक्षोभ्यमभीरुजुष्टंसैन्यंमहेंद्रोपमनागजुष्टम् ॥ १२ ॥
ततस्तुरामस्यनिशम्यवाक्यंविभीषणःशक्रसमानवीर्यः ॥ शशंसरामस्यबलप्रवेकंमहात्मनांराक्षसपुंगवानाम् ॥ १३ ॥
योसौगजस्कंधगतोमहात्मानवोदितार्कोपमताम्रवक्रः ॥ संकंपयन्नागशिरोभ्युपैतिह्यकंपनंत्वेनमवेहिराजन् ॥ १४ ॥
योसौरथस्थोमृगराजकेतुर्धुन्वन्धनुःशक्रधनुःप्रकाशम् ॥ करीवभात्युग्रविवृत्तदंष्ट्रःसइंद्रजिन्नामवरप्रधानः ॥ १५ ॥
यश्चैषविंध्यास्तमहेंद्रकल्पोधन्वीरथस्थोऽतिरथोतिवीरः ॥ विस्फारयंश्चापमतुल्यमानंनाम्नातिकायोतिविवृद्धकायः॥१६॥योसौनवार्कोदितताम्रचक्षुरारुह्यघंटानिनदप्रणादम् ॥ गजंखरंगर्जतिवैमहात्मामहोदरोनामसएषवीरः ॥१७॥

समीप निवेदन करने लगे ॥ १३ ॥ विभीषणजी बोले हे राजन्! प्रभात कालके उदय होते हुए सूर्यकी समान जो महाबलवान राक्षस हाथीपर चढकर उसके मस्तकको कम्पायमान करता हुआ आता है उसका नाम अकम्पन है (यह दूसरा अकम्पन था) ॥ १४ ॥ जो रथपर चढ़कर वारंवार इन्द्रके धनुषकी तुल्य अपने धनुषको कंपायमान करता है जिसके रथपर सिंह ध्वज लगाहै,जो तिरछे दांतवाले हाथीकी समान शोभायमान होरहाहै वही वरदान पाया हुआ राक्षसोंमें श्रेष्ठ इन्द्रजीतहै ॥१५॥ विन्ध्याचल अस्ताचल और महेन्द्र पर्वतकी समान अप्रमेय देहवालाहै जो धनुषधारी अतिरथहै और अपने धनुषपर टंकार देता हुआ आय रहा है इसही बडे आकारवाले वीरका नाम अतिकायहै ॥ १६ ॥ प्रभातकालके सूर्यकी

वानर ऋषि सिद्ध और इन्द्रादि देवगण सिंहनाद करनें लगे तिसके पीछे तेजस्वी हनुमानजी रावणसें पीडित लक्ष्मणजीको ॥ ११६ ॥ अपनी
दोनों बाहोंसे ग्रहण करके श्रीरामचंद्रजीके पास लाये सुमित्रानंदन लक्ष्मणजी शत्रु लोगोंसे कंपायमान होनेके योग्य नहीं इसकारण रावणके उठाने
से न उठे परन्तु हनुमानजीका सौहार्दता और परम भक्तिसे प्रसन्न होकर वह उनके लिये बहुतही हलके होगये ॥ ११७ ॥
तिसके पीछे वह शक्ति संग्रामभूमिको छोड़े हुए लक्ष्मणजीको त्याग कर रावणके रथमें आय अपने स्थानपर विराजमान हुई ॥ ११८ ॥ अतुल
तेजस्वी रावणनेभी उस बड़े भारी संग्राममें चैतन्यताको पाय फिर अपना बड़ा भारी धनुष और तीक्ष्ण बाण ग्रहणकिये ॥ ११९ ॥ इस ओर

ऋषयोवानराश्चैवनेदुर्देवाश्चसासुराः ॥ हनुमानथतेजस्वीलक्ष्मणंरावणार्दितम् ॥ १६ ॥ आनयद्राघवाभ्याशंबाहु
भ्यांपरिगृह्यतम् ॥ वायुसूनोःसुहृत्त्वेनभक्त्यापरमयाचसः ॥ शत्रूणामप्यकंप्योपिलघुत्वमगमत्कपेः ॥ ११७ ॥
तंसमुत्सृज्यसाशक्तिःसौमित्रिंयुधिनिर्जितम् ॥ रावणस्यरथेतस्मिन्स्थानंपुनरुपागमत् ॥ १८ ॥ रावणोपिमहाते
जाःप्राप्यसंज्ञांमहाहवे ॥ आददेनिशितान्बाणान्जग्राहचमहद्धनुः ॥ १९ ॥ आश्वस्तश्चविशल्यश्चलक्ष्मणःशत्रुसूद
नः ॥ विष्णोर्भागममीमांस्यमात्मानंप्रत्यनुस्मरन् ॥ २० ॥ निपातितमहावीरांवानराणांमहाचमूम् ॥ राघवस्तुर
णेदृष्ट्वारावणंसमभिद्रवत् ॥ २१ ॥ अथैनमनुसंक्रम्यहनूमान्वाक्यमब्रवीत् ॥ ममपृष्ठंसमारुह्यराक्षसंशास्तुमर्ह
सि ॥ २२ ॥ विष्णुर्यथागरुत्मंतमारुह्यामरवैरिणाम् ॥ तच्छ्रुत्वाराघवोवाक्यंवायुपुत्रेणभाषितम् ॥ २३ ॥

शत्रुओंके मारनेंवाले लक्ष्मणजीभी अपने अचिन्तनीय वैष्णव अंशको स्मरणकर व्यथित और सावधानचित्त हुए ॥ १२० ॥ तब रघुनंदन
श्रीरामचंद्रजी वानरोंकी सैनाके अनेक वीरोंको रावणके हाथसे मृतक होते देखकर शीघ्रतासे उसकी ओर चले॥१२१॥ श्रीरामचंद्रजीको संग्राम
करनेंके लिये तैयार देखकर वीर हनुमानजी उनसे हाथ जोड़कर बोलेकि हमारी पीठपर सवार होकर आप रावणका वध कीजिये॥१२२॥विष्णुजीने
जिस प्रकार गरुड़जी पर सवार होकर देवताओंके वैरी दैत्योंका संहार कियाथा, श्रीरामचंद्रजी हनुमानजीके कहे हुए ऐसे वचन सुनकर॥१२३॥

प्रकारके घोर रूप वाले विकट नेत्र युक्त व्याघ्र, ऊंट हाथी, मृग, घोड़ेके समान मुखवाले भूतोंके सँग जो शोभितहैं ॥ २३ ॥ और भूतोंसे घिरे हुए शिवजीकी समान शोभायमान हो रहाहै, और जहांपर महीन सौ कमानियोंका बना हुआ चंद्रमाकी समान उज्ज्वल व श्रेष्ठ छत्र लगा दिखाई देताहै, इसी स्थानमें राक्षसोंका स्वामी विराजमानहै ॥ २४ ॥ हेमहाराज ! जिसने इन्द्र और यमराजके गर्वकाभी नाश कियाहै,और जिसके मुखपर हलते हुए कुण्डल दीख पडतेहैं, यह वही हिमालय और विन्ध्याचल पर्वतकी समान भयंकराकार निशाचर पति सूर्यकी समान प्रकाशमान हो रहाहै ॥ २५ ॥ तिसके पीछे शत्रुनाशी श्रीरामचंद्रजी विभीषणसे कहने लगे कि अहो ! राक्षसराज रावणका तेज कैसा प्रदीप्तहै ! और बडाही

यत्रैतदिंदुप्रतिमंविभातिच्छत्रंसितंसूक्ष्मशलाकमग्र्यम् ॥ अत्रैवरक्षोधिपतिर्महात्माभूतैर्वृतोरुद्रइवावभाति ॥ २४ ॥ असौकिरीटीचलकुंडलास्योनगेंद्रविंध्योपमभीमकायः ॥ महेंद्रवैवस्वतदर्पहंतारक्षोधिपःसूर्यइवावभाति ॥ २५ ॥ प्रत्युवाचततोरामोविभीषणमरिंदमः ॥ अहोदीप्तमहातेजारावणोराक्षसेश्वरः ॥ २६ ॥ आदित्यइवदुष्प्रेक्ष्योरश्मिभिर्भातिरावणः ॥ नव्यक्तंलक्षयेह्यस्यरूपंतेजःसमावृतम् ॥२७॥ देवदानववीराणांवपुर्नैवंविधंभवेत् ॥ यादृशंराक्षसेंद्रस्य वपुरेतद्विराजते ॥ २८ ॥ सर्वेपर्वतसंकाशाःसर्वेपर्वतयोधिनः ॥ सर्वेदीप्तायुधधरायोधास्तस्यमहात्मनः ॥ २९ ॥ विभातिरक्षोराजोसौप्रदीप्तैर्भीमदर्शनैः ॥ भूतैःपरिवृतैस्तीक्ष्णैर्देहवद्भिरिवांतकः ॥ ३० ॥ दिष्ट्यायमद्यपापात्मामम दृष्टिपथंगतः ॥ अद्यक्रोधंविमोक्ष्यामिसीताहरणसंभवम् ॥ ३१ ॥

तेजस्वीहै ॥ २६ ॥ इसके देहकी किरणें चारों ओर ऐसी फैल रहीहैं, और यह सूर्यकी समान ऐसा दुष्प्रेक्ष्य हुआहै कि इसका तेजसे ढका हुआ रूप हमको नहीं दीख पाताहै ॥२७॥इस राक्षसोंके स्वामी रावणका शरीर जिस प्रकारसे प्रकाशित हो रहाहै, देवता और दानव वीर गणोंका शरीरभी ऐसा प्रकाशित नहीं हुआ करताहै ॥ २८ ॥ महाबलवान राक्षस जो कि रावणके अनुगामी वर्ग हैं वह सबही पर्वतोंके समान बड़े आकारवाले दीप्तायुधधारीहैं; और देहकी चुलबुलाहट निवारण करनेके लिये सबही पर्वतोंके सहित युद्ध किया करतेहैं ॥ २९ ॥ यह राक्षस रावण प्रदीप्त भयंकर दर्शन और तीक्ष्ण देह वाले राक्षसोंके संग होनेसे भूत गणोंके साथ यमराजकी समान जान पडताहै ॥ ३० ॥ बडेही भाग्यकी बातहै

जोकि श्रीरामचंद्रजीको अपने ऊपर चढ़ा रहेथे ॥ १३१ ॥ अत्यन्त क्रोध युक्तहो पहला वैर संभाल, कालाग्निकी समान प्रकाशित अत्यन्त तीखे
बाण मारे ॥ १३२ ॥ जोकि, हनुमानजीके लगे, परन्तु संग्राममें रावणके बाणोंसे ताड़ित हुए स्वभावसेही महातेजस्वी हनुमानजीका तेज औरभी
अधिक चढ़ा ॥ १३३ ॥ तिसके पीछे महा तेजस्वी श्रीरामचंद्रजी हनुमानजीकी पीठमें रावणके बाणोंसे घाव हुआ देख अत्यन्त क्रोध करते
हुए ॥ १३४ ॥ उन श्रीरामचंद्रजीनें तीक्ष्ण बाणोंको चलायकर पहिये, घोड़े, छत्र, पताका, सारथि, शूल और खड्गके सहित रावणका रथ चूर्ण
और छिन्नभिन्न करके रत्ती २ काट डाला ॥ १३५ ॥ जिस प्रकार भगवान इन्द्रजीनें सुमेरु पर्वतको चूर्ण कियाथा, वैसेही वज्र और अशनि समान

रोषेण महताविष्टः पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ आजघानशरैर्दीप्तैःकालानलशिखोपमैः ॥३२॥ राक्षसेनाहतेतस्यताडितस्यापि
सायकैः ॥ स्वभावतेजोयुक्तस्यभूयस्तेजोभ्यवर्धत ॥ ३३ ॥ ततोरामोमहातेजारावणेनकृतव्रणम् ॥ दृष्ट्वाप्लवगशार्दू
लंक्रोधस्यवशमेयिवान् ॥ ३४ ॥ तस्याभिसंक्रम्यरथंसचक्रंसाश्वध्वजच्छत्रमहापताकम् ॥ ससारथिंसाशनिशूल
खड्गंरामःप्रचिच्छेदशितैःशराग्रैः ॥ ३५ ॥ अथेंद्रशत्रुंतरसाजघानबाणेनवज्राशनिसन्निभेन ॥ भुजांतरेव्यूढसुजात
रूपेवज्रेणमेरुंभगवानिवेंद्रः ॥ ३६ ॥ योवज्रपाताशनिसन्निपातान्नचुक्षुभेनापिचचालराजा ॥ सरामबाणाभिहतो
भृशार्तश्चचालचापंचमुमोचवीरः ॥ ३७ ॥ तंविह्वलंतंप्रसमीक्ष्यरामःसमाददेदीप्तमथार्धचंद्रम् ॥ तेनार्कवर्णसहसा
किरीटंचिच्छेदरक्षोधिपतेर्महात्मा ॥ ३८ ॥ तंनिर्विषाशीविषसन्निकाशंशांतार्चिषंसूर्यमिवाप्रकाशम् ॥ गतश्रियंकृ
त्तकिरीटकूटमुवाचरामोयुधिराक्षसेंद्रम् ॥ ३९ ॥

बाणोंसे उन्होंनें इन्द्रके शत्रु रावणकी छातीमें चोटदी, और विविध भांतिके गहनोंसे युक्त भुजामेंभी प्रहार किया ॥ १३६ ॥ पहले वज्र अथवा अश
निके आघातसेभी क्षुभित या चलायमान नहीं हुआ; वही वीरश्रेष्ठ रावण श्रीरामचंद्रजीके बाणसे घायल होकर ऐसा आरत और
चलायमान हुआकि उसका धनुष उसके हाथसे गिर पड़ा ॥ १३७ ॥ महाबलवान श्रीरामचंद्रजीनें रावणको ऐसा व्याकुल देख एक अर्द्ध
चंद्र दीप्तबाण ग्रहण कर उससे राक्षसपतिका सूर्यकी समान प्रकाशित मुकुट काट डाला ॥ १३८ ॥ इस समयमें राक्षस

वह बड़े भारी और उत्तम कंधूरे व तरु श्रेणी विराजित पर्वतको शृङ्ग जब पृथ्वीमें गिर पड़ा तब निशाचर नाथ रावणनें भयंकर बड़े सर्पकी तुल्य यमराजकी समान एक बाण ग्रहण करता हुआ ॥ ३८ ॥ इस कुमति वाले रावणनें सुग्रीवजीके मार डालनेंकी वासनासे यह महा वेगवान बाण उनके ऊपर चलाया यह बाण चिनगार निकलते अग्निकी समान प्रदीप्ततथा उसकी गति वज्र और पवनके समान थी ॥ ३९ ॥ षड़ानन स्वामी कार्त्तिक जीकी चलाई हुई उस शक्तिनें जिस प्रकार क्रौञ्च पर्वतको भेद डालाथा, वैसेही रावणकी वाहोंसे छूटे हुए उस बाणनें इन्द्रजीके वज्रकी समान प्रकाशित देह वानर राज सुग्रीवजीके ऊपर गिरकर उनके हृदयको भेद डाला ॥ ४० ॥ वीर

तस्मिन्प्रवृद्धोत्तमसानुवृक्षेशृंगेविदीर्णेपतितेपृथिव्याम् ॥ महाहिकल्पंशरमंतकाभंसमादधेराक्षसलोकनाथः ॥ ३८ ॥
सतंगृहीत्वाऽनिलतुल्यवेगंसविस्फुलिंगज्वलनप्रकाशम् ॥ बाणंमहेंद्राशनितुल्यवेगंचिक्षेपसुग्रीववधायरुष्टः ॥ ३९ ॥
ससायकोरावणबाहुमुक्तःशक्राशनिस्पर्शवपुःप्रकाशम् ॥ सुग्रीवमासाद्यविभेदवेगाद्गुहेरिताक्रौंचमिवोग्रशक्तिः ॥ ४० ॥
ससायकार्तोविपरीतचेताःकूजन्पृथिव्यांनिपपातवीरः ॥ तंवीक्ष्यभूमौपतितंविसंज्ञंनेदुःप्रहृष्टायुधियातुधानाः ॥ ४१ ॥
ततोगवाक्षोगवयःसुषेणस्त्वथर्षभोज्योतिमुखोनलश्च ॥ शैलान्समुत्पाट्यविवृद्धकायाःप्रदुद्रुवुस्तंप्रतिराक्षसेंद्रम् ॥ ४२ ॥ तेषांप्रहारान्सचकारमोघान्रक्षोधिपोबाणशतैःशिताग्रैः ॥ तान्वानरेंद्रानपिबाणजालैर्बिभेदजांबूनदचित्रपुंखैः ॥ तेवानरेंद्रास्त्रिदशारिबाणैर्भिन्नानिपेतुर्भुविभीमकायाः ॥ ४३ ॥

श्रेष्ठ वानरराज सुग्रीवजी उस बाणके प्रहारसे अत्यन्त आरत और चेतना रहित हो घोर शब्द करते हुए पृथ्वीपर गिरपड़े राक्षसगण उनको रणभूमिके मध्य मूर्छित होकर पृथ्वीमें पड़ा हुआ देखकर आनंद के मारे सिंहनाद करनें लगे ॥ ४१ ॥ फिर गवाक्ष गवय सुषेण ऋषभ ज्योतिर्मुख नल इत्यादि वानरगण अपनी २ देहको बढाय उठाय २ राक्षसराज रावणके सन्मुख दौड़े ॥ ४२ ॥ परन्तु राक्षसोंके पर्वतोंको स्वामी रावणनें अत्यन्त तीखे शत बाण चलाय उनके प्रहारको व्यर्थकर सुवर्णकी फोंक लगे हुए बाणोंसे उन वानरश्रेष्ठोंके ऊपर प्रहारकिया

इसके पीछे लंकेश्वर दशानन श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे व्यथित हृदय होकर लंकापुरीमें प्रवेश करता हुआ, उसके हृदयमें श्रीरामचंद्रजीका भय तबतक प्रबलथा दिग्विजयी होनेंका इतने दिनोंतक जो अभिमान था आज वह अभिमान चूर्ण होगया ॥ १ ॥ सिंहके निकट हाथी और पन्नग राज गरुड़जीके निकट सर्पकी अवस्था जिस प्रकार होजातीहै, श्रीरामचंद्रजीके निकट रावणकी भी आज वही अवस्था हुई थी ॥ २ ॥ रावण घरमें बैठकर विकसित सौदामिनीकी समान तेजशाली और ब्रह्मदंडकी समान बाणोंको याद करके अत्यन्त दुःखी हुआ ॥ ३ ॥ तिसके पीछे सुवर्णके बने सिंहासन पर बैठ राक्षसोंकी ओर निहार रावण बोला ॥ ४ ॥ हा ! हमनें जो कठोर तप कियाथा; हम जानतेहैं कि आज वह तप वृथा

सप्रविश्यपुरींलंकांरामबाणभयार्दितः ॥ भग्नदर्पस्तदाराजाबभूवव्यथितेंद्रियः ॥ १ ॥ मातंगइवसिंहेनगरुडेनेवपन्नगः ॥ अभिभूतोभवद्राजाराघवेणमहात्मना ॥ २ ॥ ब्रह्मदंडप्रतीकानांविद्युच्चलितवर्चसाम् ॥ स्मरन्राघवबाणानांविव्यथेराक्षसेश्वरः ॥ ३ ॥ सकांचनमयंदिव्यमाश्रित्यपरमासनम् ॥ विप्रेक्षमाणोरक्षांसिरावणोवाक्यमब्रवीत् ॥ ४ ॥ सर्वंतत्खलुमेमोघंयत्तप्तंपरमंतपः ॥ यत्समानोमहेंद्रेणमानुषेणविनिर्जितः ॥ ५ ॥ इदंतद्ब्रह्मणोघोरंवाक्यंमामभ्युपस्थितम् ॥ मानुषेभ्योविजानीहिभयंत्वमितितत्तथा ॥ ६ ॥ देवदानवगंधर्वैर्यक्षराक्षसपन्नगैः ॥ अवध्यत्वंमयाप्रोक्तंमानुषेभ्योनयाचितम् ॥ ७ ॥ तमिमंमानुषंमन्येरामंदशरथात्मजम् ॥ इक्ष्वाकुकुलजातेनअनरण्येनयत्पुरा ॥ ८ ॥

होगया; हम इन्द्र तुल्य प्रतापी होकर जब कि एक साधारण मनुष्यसे रणभूमिमें हार गये; तब हमारी वीरताही क्या हुई ॥ ५ ॥ पूर्व कालमें प्रजापति ब्रह्माजीनें हमसे कहाथा कि हे राक्षसराज ! मनुष्यके हाथसेही तुमको भयहै, इस समय उनकी वही बात हमको याद आतीहै; देखतेहैं कि अब सत्य सत्यही मनुष्यसे हमको घोर भय आ पहुँचा; कि जिसका ठिकाना नहीं ॥ ६ ॥ हमनें वरदान पानेंके समय ब्रह्माजीसे, देवता, गन्धर्व, दानव यक्ष, राक्षस, और सर्प इन सब जातियोंसे न मारे जांय, यह वर मांगा था मनुष्यकी जातिको अपदार्थ समझकर "मनुष्य जातिसे भी हम न मारे जाँय" ऐसा वरदान हमनें नहीं मांगा ॥ ७ ॥ पूर्व समय इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न हुए महाराजाधिराज अनरण्यनें जो शाप हमको दियाथा

सुनकर सुमित्राके पुत्र लक्ष्मणजी उनको प्रणाम करते हुए, और उनकी पूजाकी, व श्रीरामचंद्रजीनेंभी इनको गलेसे लगाय कर भेंटा जब लक्ष्मणजी युद्ध करनेंको गये ॥५०॥ तब युद्धमें आगे बढ़कर लक्ष्मणजीनें देखा कि हाथीकी शुण्डके समान चढ़ा उतार बांहोंवाला राक्षस रावण भयं कर धनुष उठाय अनिवार बाणोंकी वर्षा करता हुआ वानरोंको ढक रहाहै, और वानर लोगभी छिन्नभिन्न शरीरहो पृथ्वीपर गिर रहेहैं ॥ ५१ ॥ इतने हीमें पवनकुमार हनुमानजी लक्ष्मणजीको आगे बढ़ा हुआ देखकर उनको रोक आप रावणके बाणजालको चीरते फाड़ते उसके सन्मुख धाये ॥ ५२ ॥ तिसके पीछे बुद्धिमान हनुमानजी रावणके रथपर चढ़ दहिनी भुजाका तमाचा उठाय उसको भय दिखाते हुए बोले ॥ ५३ ॥ कि

सरावणंवारणहस्तबाहुंददर्शभीमोद्यतदीप्तचापम् ॥ प्रच्छादयंतंशरवृष्टिजालैस्तान्वानरान्भिन्नविकीर्णदेहान् ॥ ५१ ॥ तमालोक्यमहातेजाहनूमान्मारुतात्मजः ॥ निवार्यशरजालानिविदुद्रावसरावणम् ॥ ५२ ॥ रथंतस्यसमासाद्यबाहुमुद्यम्यदक्षिणम् ॥ त्रासयन्रावणंधीमान्हनूमान्वाक्यमब्रवीत् ॥ ५३ ॥ देवदानवगंधर्वैर्यक्षैश्चसहराक्षसैः ॥ अवध्यत्वंत्वयाप्राप्तंवानरेभ्यस्तुतेभयम् ॥ ५४ ॥ एषमेदक्षिणोबाहुःपंचशाखःसमुद्यतः ॥ विधमिष्यतितेदेहेभूतात्मानंचिरोषितम् ॥ ५५ ॥ श्रुत्वाहनूमतोवाक्यंरावणोभीमविक्रमः ॥ संरक्तनयनःक्रोधादिदंवचनमब्रवीत् ॥ ५६ ॥ क्षिप्रंप्रहरनिःशंकंस्थिरांकीर्तिमवाप्नुहि ॥ ततस्त्वांज्ञातविक्रांतंनाशयिष्यामिवानर ॥ ५७ ॥ रावणस्यवचःश्रुत्वावायुसूनुर्वचोब्रवीत् ॥ प्रहतंहिमयापूर्वमक्षंतवसुतंस्मर ॥ ५८ ॥

तुम वरदानके प्रभावसे देवता, दानव, गन्धर्व और राक्षस लोगोंसेही अवध्य हुएहो, परन्तु वानर लोगोंसे तुमको सम्पूर्ण भयकी सम्भावनाहै ॥ ५४ ॥ इससमय पांच उँगलियोंके सहित हमारा दहना हाथ जो उठा हुआ देखते हो यही तेरी देहमें बहुत कालके वसे हुए प्राणोंको सदाके लिये निकाल कर अलग करेगा ॥ ५५ ॥ भयंकर पराक्रमकारी रावण हनुमानजीके वचन सुन क्रोधके मारे लाल २ नेत्रकर उनसे कहता हुआ ॥ ५६ ॥ कि हे वानर ! तुम शंकारहित होकर शीघ्र हमारे ऊपर प्रहार करकै अचल कीर्त्ति को प्राप्त करो; तिसके पीछे तुम्हारे पराक्रमकी परीक्षा करकै फिर हमभी तुम्हारा संहार करेंगे ॥ ५७ ॥ रावणके वचन सुनकर हनुमानजी बोले कि हमारे पराक्रमको और अधिक जाननेंकी क्या आवश्यकताहै, यदि तुम

आज्ञादी, कि सब द्वारोंपर प्रथम यत्न करो, और फिर सब प्राकार पर चढ़कर उसको रखाओ ॥ १५ ॥ और नींदके वश हुए कुंभकर्णकोभी जगाओ, कारण कि वह कामके मारे हमारे विचले भाई सदा सोयेही रहतेहैं ॥१६॥ पितामह ब्रह्माजीसे वर पानेके अनुसार निशाचर कुंभकर्ण छैमहीनेतक सो या हुआ रहकर केवल एक दिनको जागताहै परन्तु इससमय उसको सोये हुए केवल नौही दिन * हुएहैं,इसकारण उसको यत्न सहित इससमय जगा नाही कर्तव्यहै ॥ १७ ॥ एक वही महाबाहु इस भयंकर युद्धमें बड़ा चतुर है;वही सब वीरोंका शिरोमणिहै, वही राम लक्ष्मण और समस्त वानरोंका बहुत शीघ्र विनाश करैगा ॥ १८ ॥ सम्पूर्ण राक्षसोंमें श्रेष्ठ कुंभकर्ण ऐसा महाबल शाली होकरभी ग्राम्यसुखमें (स्त्रीपुत्रादिकोंके सुख) अनुरा

निद्रावशसमाविष्टःकुंभकर्णोविबोध्यताम् ॥ सुखंस्वपितिनिश्चिंतःकामोपहतचेतनः ॥ १६ ॥ नवसप्तदशाष्टौचमा
सान्स्वपितिराक्षसः ॥ मंत्रंकृत्वाप्रसुप्तोयमितस्तुनवमेहनि ॥ १७॥ सहिसंख्येमहाबाहुःककुदंसर्वरक्षसाम् ॥ वान
रान्राजपुत्रौचक्षिप्रमेवहनिष्यति ॥ १८ ॥ एषकेतुःपरंसंख्येमुख्योवैसर्वरक्षसाम् ॥ कुंभकर्णःसदाशेतेमूढोग्रा
म्यसुखेरतः ॥ १९ ॥ रामेणाभिनिरस्तस्यसंग्रामेस्मिन्सुदारुणे ॥ भविष्यतिनमेशोकःकुंभकर्णेविबोधिते ॥ २० ॥
किंकरिष्याम्यहंतेनशक्रतुल्यबलेनहि ॥ ईदृशेव्यसनेघोरेयोनसाह्यायकल्पते ॥ २१ ॥ तेतुतद्वचनंश्रुत्वाराक्षसें
द्रस्यराक्षसाः ॥ जग्मुःपरमसंभ्रांताःकुंभकर्णनिवेशनम् ॥ २२ ॥

गी रहकर मूढ सोयाही रहताहै ॥ १९ ॥ हम उस दारुण संग्राम भूमिमें रामचंद्रसे यद्यपि हारगयेहैं परन्तु कुंभकर्णके जागनेंपर हमको यह शोक नहीं दुःखित करैगा ॥ २० ॥ हमपर ऐसी घोर विपद पड़नेंके समयभी यदि इन्द्रकी समान पराक्रम करनेंवाला कुम्भकर्ण हमारी किसी प्रकारकी सहायताके कामोंमें न आवैगा.तब फिर हम उसको लेकर क्या करेंगे॥२१॥राक्षसोंके राजा रावणके ऐसे वचन सुनकर सब राक्षसगण अति शीघ्र तासे कुम्भकर्णके स्थानको गये ॥२२ ॥ रक्त मांस प्रिय वे राक्षस लोग रावणकी आज्ञाके अनुसार कुंभकर्णके लिये सुगन्धितमाला और श्रेष्ठ २

* कुंभकर्णके जागनेका नियम नहींथा वर्षों सोताही रहताथा क्योंकि"नव सप्तदशाष्टौचमासानिति" इस्से महीनों और अगस्त्यके वाक्यसे वर्षोंका सोना पाया जाताहै ॥

उसनें अपने दहिने हाथकी मुट्ठी बांधकर वानर श्रेष्ठ हनुमानजीकी छातीमें एक घूंसा मारा ॥ ६६ ॥ हनुमानजी भी बड़ी छातीमें घूंसेका प्रहार लगनेंसे वारंवार चलायमानहो चेतना रहित हुए महा बलवान हनुमानजीको विह्वल देखकर ॥ ६७ ॥ अतिरथ रावण रथपर चढ़ा हुआ शीघ्र नीलके सन्मुख आया, राक्षसोंके राजा दशग्रीव प्रतापशाली रावणनें ॥ ६८ ॥ पराये मर्मको भेदनेंवाले भयंकर सर्पके विषकी समान बाणोंके समूहसे वानरोंके सैनापति नीलको मारा॥ ६९ ॥ परन्तु वानरोंके सैनापति नीलनें बाणोंसे घायल होकर भी एक हाथसे एक पर्वतका शृङ्ग ग्रहण कर राक्षसपति रावणके ऊपर चलाया ॥ ७० ॥ इतनेही में इस ओर महा तेजस्वी हनुमानजी चेतना प्राप्तकर सावधान हो समर करनेंकी वास

हनूमान्वक्षसिव्यूढेसंचचालपुनःपुनः ॥ विह्वलंतंतदादृष्ट्वाहनूमंतंमहाबलम् ॥ ६७ ॥ रथेनातिरथःशीघ्रंनीलंप्रति समभ्यगात् ॥ राक्षसानामधिपतिर्दशग्रीवःप्रतापवान् ॥ ६८ ॥ पन्नगप्रतिमैर्भीमैःपरमर्माभिभेदनैः ॥ शरैरादीपयामासनीलंहरिचमूपतिम् ॥ ६९ ॥ सशरौघसमायस्तोनीलोहरिचमूपतिः ॥ करेणैकेनशैलाग्रंरक्षोधिपतयेसृजत् ॥ ७० ॥ हनूमानपितेजस्वीसमाश्वस्तोमहामनाः ॥ विप्रेक्षमाणोयुद्धेप्सुःसरोषमिदमब्रवीत् ॥ ७१ ॥ नीलेनसहसंयुक्तंरावणंराक्षसेश्वरम् ॥ अन्येनयुद्ध्यमानस्यनयुक्तमभिधावनम् ॥ ७२ ॥ रावणोथमहातेजास्तंशृंगंसप्तभिःशरैः ॥ आजघानसुतीक्ष्णाग्रैस्तद्विशीर्णंपपातह ॥ ७३ ॥ तद्विशीर्णंगिरेःशृंगंदृष्ट्वाहरिचमूपतिः ॥ कालाग्निरिवजज्वालकोपेनपरवीरहा ॥ ७४ ॥

नासे चारों ओर निहार राक्षस रावणको नीलके साथ युद्ध करते हुए देख क्रोधमें भरकर बोले ॥ ७१ ॥ कि हे रावण ! इस समय तुम नीलके साथ युद्ध कर रहेहो, इस कारण इस समय तुम्हारे ऊपर धावमान होना हमेंउचित नहींहै;नहीं तौ अभी तुम्हें हम भलीभांति सिखावन देते ॥ ७२ ॥ परन्तु अतुल तेजस्वी बलशाली राक्षसेन्द्र रावणनें हनुमानजीके वचनोंका निरादर करके, उस नीलके छोड़े हुए पर्वतके शिखरको ताककर, ऐसे सात बाण छोड़े कि जिस्से वह शृङ्ग खंडर होकर पृथ्वीमें गिर पड़ा॥७३॥तब परवीरघाती वानर सैनापति नील संग्राम भूमिमें उस पर्वतके शृङ्गको

नाश करनेंवाले कुम्भकर्णको राक्षसोंने देखा ॥ ३० ॥ तिसके पीछे राक्षसोंने कुम्भकर्णके निकट पर्वताकार तृप्तिकर जीवजन्तुओंकी राशि
उसके खानेंको खडी करदी ॥ ३१ ॥ असंख्य मृग महिष और शूकर इकट्ठे किये गये इसके पीछे अद्भुत ढेरका ढेर अन्नभी राक्षसव्याघ्रोंने
वहांपर संग्रह किया ॥ ३२ ॥ तिसके पीछे राक्षस लोगोंनें रुधिरके भरे हुए घड़े और विविध भांतिके माँस भी इकट्ठे करकै कुम्भकर्णके निकट
रखदिये ॥ ३३ ॥ तिसके पीछे उसकी देहमें सुगन्धित उत्तम चंदन लगाया और वह सब राक्षस उसको श्रेष्ठ २ हार और श्रेष्ठ चन्दनकी सुगन्धिको
सुँघानें लगे ॥ ३४ ॥ निशाचर गण उस शत्रुनाशी कुम्भकर्णके सन्मुख तीव्रगंधवाली धूप इत्यादि सुगन्धियें रखकर वादलके समान गंभीर

ततश्चक्रुर्महात्मानःकुंभकर्णस्यचाग्रतः ॥ भूतानांमेरुसंकाशंराशिंपरमतर्पणम् ॥ ३१ ॥ मृगाणांमहिषाणां
चवराहाणांचसंचयान् ॥ चक्रुर्नैर्ऋतशार्दूलाराशिमन्नस्यचाद्भुतम् ॥ ३२ ॥ ततःशोणितकुम्भांश्चमांसानिविवि
धानिच ॥ पुरस्तात्कुंभकर्णस्यचक्रुस्त्रिदशशत्रवः ॥ ३३ ॥ लिलिपुश्चपरार्ध्येनचंदनेनपरंतपम् ॥ दिव्यैराश्वास
यामासुर्माल्यैर्गंधैश्चगंधिभिः ॥ ३४ ॥ धूपंगंधांश्चससृजुस्तुष्टुवुश्चपरंतपम् ॥ जलदाइवचानेदुर्यातुधानास्ततस्त
तः ॥ ३५ ॥ शंखांश्चपूरयामासुःशशांकसदृशप्रभान् ॥ तुमुलंयुगपच्चापिविनेदुश्चाप्यमर्षिताः ॥ ३६ ॥ नेदुरास्फो
टयामासुश्चिक्षिपुस्तेनिशाचराः ॥ कुंभकर्णविबोधार्थंचक्रुस्तेविपुलंस्वरम् ॥ ३७ ॥ सशंखभेरीपणवप्रणादंसास्फो
टितक्ष्वेलितसिंहनादम् ॥ दिशोद्रवंतस्त्रिदिवंकिरंतःश्रुत्वाविहंगाःसहसानिपेतुः ॥ ३८ ॥

शब्दसे गर्ज कर उसकी स्तुति करनें लगे ॥ ३५ ॥ चन्द्रमाकी समान श्वेत शंखोंको वायु पूरित कर बजाने लगे जब कुम्भकर्ण न जागा तौ
क्रोधमें भरकर सिंहनादभी करनें लगे ॥ ३६ ॥ कोई २ राक्षस वडे शब्दसे चिल्लानें लगे; कोई २ बाजे आदि अंग बजाय २ ताल देते, कोई
उसके चरण उठाय पृथ्वीपर पटक देते; और कोई २ कुम्भकर्णके जागनें के लिये विविध भांतिसे शब्दही करनें लगे ॥ ३७ ॥ उस समय शंख,
भेरी और ढोलकी नादके सहित बाहु स्फोटन और सिंहनादका शब्द श्रवण करके पक्षीगण चारों ओरको उड़े परन्तु उडते हुए पृथ्वीपर गिरपड़े ॥ ३८ ॥

क्रोधयुक्त और सम्भ्रान्त चित्त हुआ कि अपने कर्तव्यको वह निश्चय न कर सका कि अब क्या करना चाहिये ॥ ८२ ॥ तिसके पीछे उस महा तेजस्वी राक्षसोंके पति रावणनें आग्नेयास्त्रसे युक्त बाण ग्रहण करकें ध्वजापर बैठे हुए नीलकी ओर दृष्टि करके कहा ॥ ८३ ॥ तब महातेज वान राक्षसोंके स्वामी रावणनें नीलसे कहाकि हे वानर ! तुमने वारंवार मायासे अपना छोटारूप बनायकर हमको धोखा दिया ॥ ८४ ॥ परन्तु अब जो समर्थ हो तौ अपने जीवनकी रक्षा कर कारणकि हमनें देखा कि तैंने मायाके प्रभावसे वारंवार अपने रूपको छोटा बनायाहै सो अबभी वही छोटा रूप बनाकर अपने जीवनकी रक्षाकर ॥ ८५ ॥ परन्तु तुम्हारे अनंत चेष्टाओं करके जीवनकी रक्षामें यत्नवान होने पर

आग्नेयेनापिसंयुक्तंगृहीत्वारावणःशरम् ॥ ध्वजशीर्षस्थितंनीलमुदैक्षतनिशाचरः ॥ ८३ ॥ ततोऽब्रवीन्महातेजारावणोराक्षसेश्वरः ॥ कपेलाघवयुक्तोसिमाययापरयासह ॥ ८४ ॥ जीवितंखलुरक्षस्वयदिशक्तोसिवानर ॥ तानितान्यात्मरूपाणिसृजसित्वमनेकशः ॥ ८५ ॥ तथापित्वांमयामुक्तःसायकोस्त्रमयोजितः ॥ जीवितंपरिरक्षंतंजीविताद्भ्रंशयिष्यति ॥ ८६ ॥ एवमुक्त्वामहाबाहूरावणोराक्षसेश्वरः ॥ संधायबाणमस्त्रेणचमूपतिमताडयत् ॥ ८७ ॥ सोस्त्रमुक्तेनबाणेननीलोवक्षसिताडितः ॥ निर्दह्यमानःसहसासपपातमहीतले ॥ ८८ ॥ पितृमाहात्म्यसंयोगादात्मनश्चापितेजसा ॥ जानुभ्यामपतद्भूमौनतुप्राणैर्वियुज्यत ॥ ८९ ॥ विसंज्ञंवानरंदृष्ट्वादशग्रीवोरणोत्सुकः ॥ रथेनांबुदनादेनसौमित्रिमभिदुद्रुवे ॥ ९० ॥

भी आग्नेयास्त्र युक्त हमारा यह बाण प्राण रक्षा करते हुए तुम्हारे प्राणों का नाश कर देगा ॥ ८६ ॥ महाबाहु राक्षसराज रावणनें यह कहकर आग्नेयास्त्रसे शर सन्धानकर सैनापति नीलके ऊपर वह बाणचलाया ॥ ८७ ॥ तब सैनापति नीलकी छातीमें वह अग्निबाण लगा, कि जिसके लगनेंसे वह जलते हुए सहसा गिर पडे ॥ ८८ ॥ परन्तु अपने तेज और पिता अग्निके माहात्म्यसे इस आग्नेयास्त्रसे उनके प्राणोंका नाश नहीं हुआ वह केवल दोनों जांघोंको पकडे हुए पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ८९ ॥ इस ओर समरका अभिलाषी रावण वानरश्रेष्ठ नीलको

और मुद्गर व मूसलसेभी कुंभकर्णको यह राक्षस अति जोरसे मारनें लगे,तिस कालमें उस तुमुलनिनादसे पर्वत और समस्त वनोंके सहित लंका पूर्ण होगई, परन्तु कुम्भकर्णकी नींद न टूटी ॥ ४७ ॥ तिसके पीछे सुवर्णके बने हुए सहस्रों नगाड़े एकही संग बजाये गये और चारों ओर उनकी ध्वनि गूंज उठी परन्तु कुम्भकर्ण न जागा ॥ ४८ ॥ जबकि कुंभकर्ण शापसे ग्रसित रहनेंके कारण ऐसी घोर निद्रामें सोया रहकर किसी प्रकारसे न जागा तब यह सब राक्षस अत्यन्त क्रोधित हुए ॥ ४९ ॥ तिसके पीछे उन कोप युक्त भयंकर कर्मकारी राक्षस कुम्भकर्णको जगानेंके लिये अपना २ पराक्रम दिखानें लगे ॥ ५० ॥ कोई २ नगाड़े और भेरी बजानें लगे, कोई २ सिंहनादही करते हुए किसी २ नें उसके बाल पकड़

मुद्गरैर्मुसलैश्चापिसर्वप्राणसमुद्यतैः ॥ तेननादेनमहतालंकासर्वाप्रपूरिता ॥ सपर्वतवनासर्वासोऽपिनैवप्रबुध्यते ॥ ४७ ॥
ततोभेरीसहस्रंतुयुगपत्समहन्यत ॥ मृष्टकांचनकोणानामसक्तानांसमंततः ॥ ४८ ॥ एवमप्यतिनिद्रस्तुयदानैवप्रबु
ध्यत ॥ शापस्यवशमापन्नस्ततःक्रुद्धानिशाचराः ॥ ४९ ॥ ततःकोपसमाविष्टाःसर्वेभीमपराक्रमाः ॥ तद्रक्षोबोधयिष्यं
तश्चक्रुरन्येपराक्रमम् ॥५० ॥ अन्येभेरीःसमाजघ्नुरन्येचक्रुर्महास्वनम् ॥ केशानन्येप्रलुलुपुःकर्णानन्येदशंतिच ॥ ५१ ॥
उदकुंभशतानन्येसमसिंचंतकर्णयोः ॥ नकुंभकर्णःपस्पंदेमहानिद्रावशंगतः ॥ ५२ ॥ अन्येचबलिनस्तस्यकूटमुद्गर
पाणयः ॥ मूर्ध्निवक्षसिगात्रेषुपातयन्कूटमुद्गरान् ॥ ५३ ॥ रज्जुबंधनबद्धाभिःशतघ्नीभिश्चसर्वशः ॥ वध्यमानोमहाका
योनप्राबुध्यतराक्षसः ॥ ५४ ॥ वारणानांसहस्रंचशरीरेस्यप्रधावितम् ॥ कुंभकर्णस्तदाबुद्धास्पर्शंपरमबुध्यत ॥ ५५ ॥

कर खेंचे और कोई२ उसके कानोंको काटनें लगे ॥ ५१ ॥ और बहुतसे राक्षस सैकड़ों जलके भरे हुए घड़े लेकर कुम्भकर्णके कानोंको जलसे भरनें लगे, तथापि नींदमें मस्त कुम्भकर्ण कुछभी चलायमान न हुआ ॥ ५२ ॥ और दूसरे कूट, मुद्गरादि हाथसें लिये बलवान निशाचर गण मुद्गरोंसे उसके मस्तक, छाती, और सब अंगोंमें चोट देनें लगे॥५३॥ बहुत सारे राक्षस रस्सियोंके बन्धनसे बांधकर उसके शरीरमें शतघ्नियोंका प्रहार करनें लगे; इस प्रकारसेभी मार खाय कर कुम्भकर्णनें निद्राके सुखको नहीं त्यागा ॥ ५४ ॥ तब राक्षसोंनें उसके ऊपर अति वेग सहित

जानतेहैं (अर्थात् सूने आश्रमको पायकर जानकीको हर लायेहो इस्से यह ध्वनि निकलतीहै) इसलिये अब ऐसे वकवाद करनेंका कुछ प्रयोजन नहीं है,हम धनुष बाण धारण करके टिके हुए हैं, तुमभी आगेको बढ़ो ॥ ९६ ॥ जब लक्ष्मणजीनें ऐसा कहा तब रावणनें लक्ष्मणजीके ऊपर श्रेष्ठ फोंक लगे हुए सात बाण चलाये सुमित्राके पुत्र लक्ष्मणजीनें तीखे धार युक्त सुपुंख बाणोंसे उन रावणके चलाये बाणोंको काट डाला ॥ ९७ ॥ तब लंकापति रावण शरीर कटे सर्पोंकी समान उन बाणोंको सहसा खंड २ देखकर अत्यन्त क्रोधित हुआ, व और दूसरे तीखे बाण लक्ष्मणजीके ऊपर चलानें लगा ॥ ९८ ॥ परन्तु श्रीरामचन्द्रजीके छोटे भाई वीर लक्ष्मणजीनें उन बाणासे चलायमान होकर अपने धनुपको चढ़ाकर बाणोंकी

सएवमुक्तःकुपितःससर्जरक्षोधिपःसप्तशरान्सुपुंखान्॥ताँल्लक्ष्मणःकांचनचित्रपुंखैश्चिच्छेदबाणैर्निशिताग्रधारैः॥९७॥ तान्प्रेक्षमाणःसहसानिकृत्तान्निकृत्तभोगानिवपन्नगेंद्रान् ॥ लंकेश्वरःक्रोधवशंजगामससर्जचान्यान्निशितान्पृषत्कान् ॥ ९८ ॥ सबाणवर्षंतुववर्षतीव्रंरामानुजःकार्मुकसंप्रयुक्तम् ॥ क्षुरार्धचंद्रोत्तमकर्णभल्लैःशरांश्चचिच्छेदनचुक्षुभे च ॥ ९९ ॥ सबाणजालान्यपितानितानिमोघानिपश्यंस्त्रिदशारिराजः ॥ विसिस्मियेलक्ष्मणलाघवेनपुनश्चबाणान्निशितान्मुमोच ॥१०० ॥ सलक्ष्मणश्चापिशितान्शिताग्रान्महेंद्रतुल्योशनिभीमवेगान् ॥ संधायचापेज्वलनप्रकाशान्ससर्जरक्षोधिपतेर्वधाय ॥ १ ॥ सतान्प्रचिच्छेदहिराक्षसेंद्रःशिताञ्छराँल्लक्ष्मणमाजघान ॥ शरेनकालाग्निसमप्रभेण स्वयंभुदत्तेनललाटदेशे ॥ २ ॥

वर्षा करनें लगे; और छुरे, अर्द्धचन्द्र, व तीखे फलके लगे हुए भालोंसे रावणके चलाये हुए बाणोंको खंड २ कर डाला ॥ ९९ ॥ उन अमोघ बाणोंके जालको निष्फल देख और लक्ष्मणजीकीभी शीघ्रतासे विस्मित हो रावणनें फिर तीक्ष्ण बाण चलाये ॥ १०० ॥ तब लक्ष्मणजीनेंभी अपने धनुषको चढ़ाय इन्द्रके वज्रकी समान वेगवान अग्निकी समान तीक्ष्ण धारवाले बाण राक्षसपति रावणके वध करनेंके लिये छोड़े ॥ १०१ ॥ परन्तु राक्षसोंके स्वामी रावणनें उन समस्त बाणोंको काटकर ब्रह्माजीके दिये हुए प्रलयकी अग्निके प्रचंड बाणसे लक्ष्मणजीके माथेमें प्रहार

बढ़ते गये और शिर झुकायकर प्रणाम कर उसके चारों ओर खड़े होगये ॥ ६४ ॥ उसकी
राक्षसगण उसको तृप्त जानकर धीरे २ उसके आगे बढ़ते गये और शिर झुकायकर प्रणाम कर उसके चारों ओर दृष्टि डालकर राक्षसोंको देखा ॥ ६५ ॥ राक्षस
आंखें नींदके वश होनेसे कुछ एक खुली, और लाल २ हो रहींथीं; उस कुम्भकर्णनें चारों ओर दृष्टि डालकर राक्षसोंको देखा ॥ ६५ ॥ राक्षस
श्रेष्ठ कुम्भकर्ण इन सब राक्षसोंको समझाय बुझाय फिर अकालमें जगानेंके कारण विस्मितहो इन सबसे बोला ॥ ६६ ॥ हेराक्षस गण! तुमनें
आदर सहित अति यत्नसे किस कारण हमको जगाया! महाराज निशाचर नाथ कुशलसे तौहैं? इस समय भयका तौ कोई कारण नहीं है?॥ ६७ ॥

निद्राविशदनेत्रस्तुकलुषी
ततस्तृप्तइतिज्ञात्वासमुत्पेतुर्निशाचराः ॥ शिरोभिश्चप्रणम्यैनंसर्वतःपर्यवारयन् ॥ ६४ ॥ निद्राविशदनेत्रस्तुकलुषी
कृतलोचनः ॥ चारयन्सर्वतोदृष्टिंतानुवाचनिशाचरान् ॥ ६५ ॥ ससर्वान्सांत्वयामासनैर्ऋतान्नैर्ऋतर्षभः ॥ बोधना
द्विस्मितश्चापिराक्षसानिदमब्रवीत् ॥ ६६ ॥ किमर्थमहमादृत्यभवद्भिःप्रतिबोधितः ॥ कच्चित्सुकुशलंराज्ञोभयंवाने
हकिंचन ॥ ६७ ॥ अथवाध्रुवमन्येभ्योभयंपरमुपस्थितम् ॥ यदर्थमेवत्वरितैर्भवद्भिःप्रतिबोधितः ॥ ६८ ॥ अद्य
राक्षसराजस्यभयमुत्पाटयाम्यहम् ॥ दारयिष्येमहेंद्रंवाशीतयिष्येतथानलम् ॥ ६९ ॥ नह्यल्पकारणेसुप्तंबोधयिष्य
तिमादृशम् ॥ तदाख्यातार्थतत्त्वेनमत्प्रबोधनकारणम् ॥ ७० ॥ एवंब्रुवाणंसंरब्धंकुंभकर्णमरिंदमम् ॥ यूपाक्षः
सचिवोराज्ञःकृतांजलिरभाषत ॥ ७१ ॥

पहुंचाहै इसमें कोईभी संदेह
अथवा इस पूछनेंका क्या प्रयोजनहै जबकि तुमनें हमको ऐसी शीघ्रतासे जगायाहै तब तौ कोई बड़ा भारी भय आ पहुंचाहै इसमें कोईभी संदेह
नहीं ॥ ६८ ॥ जो कुछभीहो आज हम राक्षस राजका भय दूर कर देंगे; महेन्द्र पर्वतको उखाड़ और तोड़ फोड़कर फेंक देंगे अथवा अग्निके तेजको
खर्वकर देंगे ॥ ६९ ॥ जब कि हमारी समान सोते हुए वीरको जगाया गयाहै; तब इस्का साधारण कारण नहीं जान पड़ता; इससे हमारे जगानेंका क्या
कारण है वह तुम यथार्थ२ कहो ॥ ७० ॥ शत्रुओंके नाश करनें वाले कुम्भकर्ण के ऐसा कहनें पर रावणका यूपाक्ष मंत्री हाथ जोड़कर बोला ॥ ७१ ॥

उनके निकट चला गया, और उनको उठानेंके अभिप्रायसे भुजाओंसे बल सहित ग्रहण करता हुआ ॥ १०८ ॥ परन्तु आश्चर्य! जो महावीरनें हिमालय, मन्दर, सुमेरु; वरन सब प्राणियोंके सहित त्रिलोकके उठानेंको समर्थ हैं, परन्तु वही वीर रावण आज लक्ष्मणजीके उठानेंको किसी प्रकारसे समर्थ नहीं हुआ ॥ १०९ ॥ ब्रह्माजीकी शक्तिके छातीमें लगनेंसे यद्यपि लक्ष्मणजी मूर्च्छितभी हुए तथापि विष्णुजीभी जिन श्रीरामचन्द्रजीको यथार्थतासे नहीं जानते कि इनमें कितनी सामर्थ्य है; ऐसे ऐश्वर्य युक्त सबके प्रेरणा करनेंवाले श्रीरामचन्द्रजीका इन लक्ष्मणजीनें स्मरण किया, इस कारण चौदह भुवनोंसे कोटि गुणी अधिक गरुआई लक्ष्मणजीमें आगई कि जिससे रावण इनको उठा नहीं सका ॥ ११० ॥ देवताओंका कण्टक रावण इस बातको जानकरही देव दानवोंका गर्व हरनें वाले लक्ष्मणजीको उठानेंके लिये अपनी बीसों भुजा ओंसे बहुतेरी चेष्टा करता

हिमवान्मंदरोमेरुस्त्रैलोक्यंवासहामरैः ॥ शक्यंभुजाभ्यामुद्धर्तुंनशक्योभरतानुजः ॥ ९ ॥ शक्त्याब्राह्म्यातुसौमित्रिस्ताडितोपिस्तनांतरे ॥ विष्णोरमीमांस्यभागमात्मानंप्रत्यनुस्मरत् ॥ ११० ॥ ततोदानवदर्पघ्नंसौमित्रिंदेवकंटकः ॥ तंपीडयित्वाबाहुभ्यांनप्रभुर्लंघनेभवत् ॥ ११ ॥ ततःक्रुद्धोवायुसुतोरावणंसमभिद्रवत् ॥ आजघानोरसिक्रुद्धोवज्रकल्पेनमुष्टिना ॥ १२ ॥ तेनमुष्टिप्रहारेणरावणोराक्षसेश्वरः ॥ जानुभ्यामगमद्भूमौचचालचपपातच ॥ १३ ॥ आस्यैश्चनेत्रैःश्रवणैःपपातरुधिरंबहु ॥ विघूर्णमानोनिश्चेष्टोरथोपस्थउपाविशत् ॥ १४ ॥ विसंज्ञोमूर्छितश्चासीन्नचस्थानंसमालभत् ॥ विसंज्ञंरावणंदृष्ट्वासमरेभीमविक्रमम् ॥ ११५ ॥

हुआ परन्तु इस्से किसी प्रकारसे लक्ष्मणजीकी मर्यादा उल्लंघन नहीं हो सकी ॥ १११ ॥ इतनेहीमें पवनकुमार हनुमानजी लक्ष्मणजीको मूर्छित हुआ देख क्रोधित हो रावणके सन्मुख धाये और वज्रकी समान मूका बांधकर अति वेगसे उसकी छातीमें मारा ॥ ११२ ॥ राक्षसोंका स्वामी रावण उस मूकेके प्रहारसे चेतना रहित और रथसे गिरकर अपनी दोनों जांघों के बल कांपता थर थराता पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥११३॥ इस समय रावणके मुख नेत्र और कानोंसे बहुतही रुधिर बहनें लगा और वह ज्ञानरहित हो घूमता २ फिर अपने रथपर जाकर गिरा ॥११४॥ ऐसा मूर्छित यह रावण हुआ कि हाथ पैर कुछभी इसके नहीं चलतेथे, तब भयंकर विक्रमकारी रावणको मूर्छित हुआ देखकर ॥ ११५ ॥

राक्षस सैनापति वीरोंमें मुख्य महोदर कुम्भकर्णके ऐसे गर्वित और रोषके मारे दोष युक्त वचन सुनकर हाथ जोड़कर बोला ॥ ८१ ॥ कि हे महा वाहो ! रावणके वचन सुनकर और उनके गुण दोष विचार पीछेसे शत्रु लोगोंको आप जीतें ॥ ८२ ॥ विपुल बलशाली महा तेजस्वी कुम्भकर्ण महोदरके ऐसे वचन सुनकर राक्षसोंके साथ २ उस स्थानसे चलनेंका अभिलाषी हुआ ॥ ८३ ॥ उस कालमें कुछ एक निशाचर भयंकर नेत्र वाले भीमरूप और भयंकर पराक्रम कुम्भकर्णको जागा हुआ देखकर पहले हीसे रावणके निकट चले गयेथे ॥ ८४ ॥ उन्होंनें वहां जाकर देखा कि रावण दिव्य सिंहासन पर बैठाहै; तब उन राक्षसोंने यह देखतेही हाथ जोड़कर रावणसे कहा ॥ ८५ ॥ हे राक्षसेश्वर ! आपके भ्राता कुम्भकर्ण

तत्तस्यवाक्यंब्रुवतोनिशम्यसगर्वितंरोषविवृद्धदोषम् ॥ महोदरोनैर्ऋतयोधमुख्यःकृतांजलिर्वाक्यमिदंबभाषे ॥ ८१ ॥
रावणस्यवचःश्रुत्वागुणदोषौविमृश्यच ॥ पश्चादपिमहाबाहोशत्रून्युधिविजेष्यसि ॥ ८२ ॥ महोदरवचःश्रु
त्वाराक्षसैःपरिवारितः ॥ कुंभकर्णोमहातेजाःसंप्रतस्थेमहाबलः ॥ ८३ ॥ सुप्तमुत्थाप्यभीमाक्षंभीमरूपप
राक्रमम् ॥ राक्षसास्त्वरिताजग्मुर्दशग्रीवनिवेशनम् ॥ ८४ ॥ तेभिगम्यदशग्रीवमासीनंपरमासने ॥ ऊचुर्बद्धांज
लिपुटासर्वएवनिशाचराः ॥ ८५ ॥ कुंभकर्णःप्रबुद्धोसौभ्रातातेराक्षसेश्वर ॥ कथंतत्रैवनिर्यातुद्रक्ष्यसेतमिहागतम्
॥ ८६ ॥ रावणस्त्वब्रवीद्धृष्टोराक्षसांस्तानुपस्थितान् ॥ द्रष्टुमेनमिहेच्छामियथान्यायंचपूज्यताम् ॥ ८७ ॥ तथेत्यु
क्त्वातुतेसर्वेपुनरागम्यराक्षसाः ॥ कुंभकर्णमिदंवाक्यमूचूरावणचोदिताः ॥ ८८ ॥ द्रष्टुंत्वांकांक्षतेराजासर्वराक्षसपुं
गवः ॥ गमनेक्रियतांबुद्धिर्भ्रातरंसंप्रहर्षय ॥ ८९ ॥

जाग गये हैं अब वह सीधेही वहांसे रणभूमिको चले जाँय या आप इस स्थानमें उनके साथ साक्षात् करनेंकी इच्छा करतेहैं ॥ ८६ ॥ तब लंका पति रावणनें हर्षित होकर उनसे कहाकि हम एकवार कुम्भकर्णको देखनेंकी इच्छा करते हैं; तुम परम आदर मानके साथ उसको संग लेकर यहांपर चले आओ ॥८७॥ वे राक्षस रावणकी आज्ञाके अनुसार उसके वचनोंको स्वीकारकर कुम्भकर्णके निकट आनकर निवेदन करते हुए ॥८८॥ राक्षस राज रावण आपके देखनेंकी इच्छा करतेहैं; इस कारण आप गमन करनेंमें स्थिर निश्चय कीजिये; हम लोगोंके निवेदन करनेंसे आप अपनें

महाबाहु हनुमानजीकी पीठपर चढ़े और श्रीरामचंद्रजीनें रावणकोभी रथपर चढ़ेहुए देखा ॥ १२४ ॥ महातेजस्वी श्रीरामचंद्रजी उस रावणको देखकर विष्णुजीनें जिस प्रकार क्रोधितहो अस्त्र धारण कर राजा बलिपर दौड़ेथे वैसेही रावणके सन्मुख धाये ॥ १२५ ॥ तब श्रीरामचंद्रजी अपने धनुष पर वज्रके शब्दकी समान कठोर टंकारदे रावणसे यह गंभीर वचन बोले ॥१२६॥ रेराक्षसशार्दूल खड़ा रह खडारह! तू हमारे ऐसे कुप्यारे कार्यको करके क्या स्थानमें भागकर छुटकारा पायसकताहै? ॥१२७॥ तुम यदि भागकर इन्द्र, यम, सूर्य, ब्रह्मा, अग्नि अथवा श्रीशंकरजीकेभी शरणमें

अथारुरोहसहसाहनूमंतंमहाकपिम् ॥ रथस्थंरावणंसंख्येददर्शमनुजाधिपः ॥ २४ ॥ तमालोक्यमहातेजाःप्रदुद्राव सरावणम् ॥ वैरोचनमिवक्रुद्धोविष्णुरभ्युद्यतायुधः ॥ २५ ॥ ज्याशब्दमकरोत्तीव्रंवज्रनिष्पेषनिष्ठुरम् ॥ गिरागंभीरया रामोराक्षसेंद्रमुवाचह ॥ २६ ॥ तिष्ठतिष्ठममत्वंहिकृत्वाविप्रियमीदृशम् ॥ क्वनुराक्षसशार्दूलगत्वामोक्षमवाप्स्यसि ॥ २७ ॥ यदींद्रवैवस्वतभास्करान्वास्वयंभुवैश्वानरशंकरान्वा ॥ गमिष्यसित्वंदशधादिशोवातथापिमेनाद्यगतोवि मोक्ष्यसे ॥ २८ ॥ यश्चैषशक्त्यानिहतस्त्वयाद्यगच्छन्विषादंसहसाभ्युपेत्य ॥ सएषरक्षोगणराजमृत्युःसपुत्रपौत्र स्यतवाद्ययुद्धे ॥ २९ ॥ एतेनचात्यद्भुतदर्शनानिशरैर्जनस्थानकृतालयानि ॥ चतुर्दशान्यात्तवरायुधानिरक्षःसहस्रा णिनिषूदितानि ॥ १३० ॥ राघवस्यवचःश्रुत्वाराक्षसेंद्रोमहाबलः ॥ वायुपुत्रंमहावेगंवहंतंराघवंरणे ॥ ३१ ॥

जाओ, या दशों दिशाओंमें कहीं जाकर छिपो तथापि आज हमारे हाथसे तुम किसी प्रकारसे निस्तार नपासकोगे ॥ १२८ ॥ राक्षसराज! तेरे द्वारा घायल होकर लक्ष्मण विषादित हुएहैं, हम इसी दुःखसे आज प्रतिज्ञा करके तुम्हारे पुत्रोंके सहित तुम्हारी मृत्युके स्वरूप हो रणभूमिमें आयेहैं ॥ १२९ ॥ विचारकर याद कर ले कि जनस्थानके रहनेंवाले श्रेष्ठ अस्त्र शस्त्र धारण किये अद्भुत दर्शन चौदह हजार (१४०००) राक्षसोंका हमनेही प्राण संहार कियाहै ॥ १३० ॥ महाबलवान रावणनें श्रीरामचंद्रजीके ऐसे वचन सुन महावेगवान पवनकुमार हनुमानजीकी पीठमें

उन वानरोंमेसे कोई२ सबके शरण देनेंवाले श्रीरामचंद्रजीकी शरणमें गये और कोई २ दुःखी होकर पृथ्वीपर गिर पड़े, कोई २ दशों दिशा ओंमें
भागगये; और कोई २ मारे भयके पृथ्वीपर गिरकर सोयरहे ॥ ९७ ॥ अधिक क्या कहें? जिसनें अपने तेजसे सूर्यको भी उल्लंघन कर दियाहै;
उस पर्वतके शृङ्गकी समान किरीट धारी बड़े ऊंचे और अद्भुत दर्शन वीर कुम्भकर्णको देखतेही,वानरोंमें जिसनें जहां सुभीता पाया वह भयके मारे
उसी स्थानमें भाग गया ॥ ९८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥
तिसके पीछे महा तेजस्वी वीर्यवान् धनुष धारण करनें वाले श्रीरामचंद्रजीनें उस किरीट धारी महाकाय कुम्भकर्णको देखा ॥ १ ॥ पहले

केचिच्छरण्यंशरणंस्मरामंव्रजंतिकेचिद्व्यथिताःपतंति ॥केचिद्दिशश्चव्यथिताःपतंतिकेचिद्भयार्ताभुविशेरतेस्म९७॥
तमद्रिशृंगप्रतिमंकिरीटिनंस्पृशंतमादित्यमिवात्मतेजसा ॥ वनौकसःप्रेक्ष्यविवृद्धमद्भुतंभयार्दितादुद्रुविरेयतस्त
तः ॥ ९८ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० षष्टितमःसर्गः ॥ ६० ॥ ॥ छ ॥ ततोरामोमहातेजाधनुरादाय
वीर्यवान् ॥ किरीटिनंमहाकायंकुंभकर्णंददर्शह ॥ १ ॥ तंदृष्ट्वाराक्षसश्रेष्ठंपर्वताकारदर्शनम् ॥ क्रममाणमि
वाकाशंपुरानारायणंयथा ॥ २ ॥ सतोयांबुदसंकाशंकांचनांगदभूषणम् ॥ दृष्ट्वापुनःप्रदुद्राववानराणांमहाचमूः ॥
॥ ३ ॥ विद्रुतांवाहिनींदृष्ट्वावर्धमानंचराक्षसम् ॥ सविस्मितमिदंरामोविभीषणमुवाचह ॥ ४ ॥ कोसौपर्वतसंकाशः
किरीटीहरिलोचनः ॥ लंकायांदृश्यतेवीरःसविद्युदिवतोयदः ॥ ५ ॥

समयमें आकाश मापते समय वामनजीके समान उस पर्वताकार राक्षस श्रेष्ठ कुम्भकर्णको देखकर श्रीरामचंद्रजी सतर्क हुए ॥ २ ॥ परन्तु सजल
जलद, (पानी सहित वादल) की समान आकार वाले सुवर्णके वाजू पहरे उस वीरको धीरे २ बढ़ता हुआ देखकर वानरोंकी बड़ी सैना
फिर भाग खड़ी हुई ॥ ३ ॥ तब रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी वानरोंकी सैनाको त्रासित और राक्षस कुम्भकर्णको बढ़ा हुआ देखकर विस्मय युक्तहो
विभीषणजीसे बोले ॥ ४ ॥ लंकाके बीचमें पर्वतकी समान मस्तक पर किरीट धारण किये, वानरोंकेसे नेत्र वाला दामिनी युक्त मेघकी समान

राज रावणकी अवस्था विषहीन सर्प और तेजहीन सूर्यकी समान हुई । मुकुटके कट जानेंसे रावणकी समस्त सुन्दरता जाती रही तब श्रीरामचंद्रजी उस्से बोले ॥ १३९ ॥ हेराक्षस ! तुमनें घोर युद्ध कियाहै तुम्हारे हाथसे हमारी सेनाके अनेक वीर मारे गयेहैं इस समय हम तुमको इसी कारणसे बहुत थका हुआ देखतेहैं; यही विचारकर हमनें आज अपने बाणोंसे तुमको यमराजके गृहमें नहीं पठाया ॥ १४० ॥ हेराक्षसराज! तुम संग्राम करके श्रमके मारे अत्यन्त कातर हुएहो इस लिये हम सलाह देतेहैं कि तुम इस समय लंकामें जायकर सावधान होवो। सावधान होनेंके पीछे धनुष धारण कर जबकि फिर संग्राम भूमिमें आगमन करोगे उसी समय तुम हमारा पराक्रम जान सकोगे ॥ १४१ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा तो लंकानाथ रावण लंका पुरीको झटपट चला गया, उसका वीर गर्व और उत्साह जातारहा, धनुष कट कुट गया घोड़े

कृतंत्वयाकर्ममहत्सुभीमंहतप्रवीरश्चकृतस्त्वयाहम्॥तस्मात्परिश्रांतइतिव्यवस्यनत्वांशरैर्मृत्युवशंनयामि॥ ४०॥ प्र
याहिजानामिरणार्दितस्त्वंप्रविश्यरात्रिंचरराजलंकाम्॥आश्वस्यनिर्याहिरथीसधन्वीतदाबलंप्रेक्ष्यसिमेरथस्थः ४१॥
सएवमुक्तोहतदर्पहर्षोनिकृत्तचापःसहताश्वसूतः ॥ शरार्दितोभग्नमहाकिरीटोविवेशलंकांसहसास्मराजा ॥ ४२ ॥ त
स्मिन्प्रविष्टेरजनीचरेंद्रेमहाबलेदानवदेवशत्रौ ॥ हरीन्विशल्यान्सहलक्ष्मणेनचकाररामःपरमाहवाग्रे ॥ ४३ ॥ तस्मि
न्प्रभग्नेत्रिदशेंद्रशत्रौसुरासुराभूतगणादिशश्च ॥ ससागराः सर्वमहोरगाश्चतथैवभूम्यंबुचराःप्रहृष्टाः ॥ १४४ ॥ इत्या
र्षेश्रीम०वा०आ०यु०एकोनषष्टितमःसर्गः ॥ ५९ ॥ ॥ ७ ॥ ॥७॥ ॥७॥ ॥

और सारथीभी नष्ट हुए रावणका शरीर बाणोंके लगनेंसे घायल होरहा उसकी चूडामणि लुप्त होगई ऐसी अवस्थाको पाय मनमें अति दुःखित रावण लंकापुरीमें प्रवेश करता हुआ ॥ १४२ ॥ देवता और दानव गणोंका शत्रु महाबलवान निशाचरपति रावण जब इस प्रकारसे लंकाको चलगया तब श्रीरामचंद्रजीनें लक्ष्मणजीके सहित रणभूमिमें जो वानर पड़ेथे; और उनके अंगोंमें जो बाण गड़ेथे उनको निकलवा डाला और सबकी व्यथा निवारणकी ॥ १४३ ॥ इस ओर इन्द्रके शत्रु रावणको रणसे भागा इस प्रकारसे लंकामें प्रवेश करते देखकर, सुर, असुर, महर्षि, उरग, भूतगणादिक और समस्त सागर व भूचर जलचरादि सबही प्राणी प्रसन्न हुए ॥ १४४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये कात्यायनकुमार पंडित ज्वालाप्रसादमिश्रकृते भाषानुवादे युद्धकांडे एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥ ॥ ७ ॥

इन्द्रकी शरणमें जायकर उनसे अपनी इस दुर्गतिको निवेदन किया॥१४॥यह सुनकर इन्द्रनें क्रोधितहो इनके ऊपर वज्र चलाया यह महात्मा कुम्भ
कर्ण वज्रसे कुछ चोट खाय और विचलित होकर भी वारंवार सिंहनाद करनेंलगा ॥ १५ ॥ उस कालमें सिंहनाद करते हुए राक्षसश्रेष्ठ कुम्भकर्णका
वह घोर शब्द सुनकर प्रजा फिर बहुतही भयभीत हुई ॥ १६ ॥ तिसके पीछे महाबलवान कुम्भकर्णनें ऐरावत हाथीके दांत खेंचकर उखाड़
उस्से इन्द्रकी छातीमें प्रहार किया ॥ १७ ॥ अत्यन्त दारुण प्रहारसे वज्रधर इन्द्रजी बहुत व्याकुल हुए उनके सब शरीरसे रुधिर वहनें
लगा; ब्रह्मर्षि और दानवगण यह अवस्था देखकर अत्यन्त विषाद करनें लगे ॥ १८ ॥ और सबही इन्द्र और प्रजाके साथ मिलकर सहसा

सकुंभकर्णंकुपितोमहेंद्रोजघानवज्रेणशितेनवज्री ॥ सशक्रवज्राभिहतोमहात्माचचालकोपाच्चभृशंननाद ॥ १५ ॥
तस्यनानद्यमानस्यकुंभकर्णस्यरक्षसः ॥ श्रुत्वानिनादंवित्रस्ताःप्रजाभूयोवितत्रसुः ॥ १६ ॥ ततःक्रुद्धोमहेंद्रस्य
कुंभकर्णोमहाबलः ॥ निष्कृष्यैरावताद्दंतंजघानोरसिवासवम् ॥ १७ ॥ कुंभकर्णप्रहारार्तोविजज्वालसवासवः॥
ततोविषेदुःसहसादेवाब्रह्मर्षिदानवाः ॥ प्रजाभिःसहशक्रश्चययौस्थानंस्वयंभुवः ॥ १८ ॥ कुंभकर्णस्यदौरात्म्यंशशं
सुस्तेप्रजापतेः ॥ प्रजानांभक्षणंचापिशशंसुस्तेदिवौकसाम् ॥ आश्रमध्वंसनंचापिपरस्त्रीहरणंतथा ॥ १९ ॥ एवं
प्रजायदित्वेषभक्षयिष्यतिनित्यशः ॥ अचिरेणैवकालेनशून्योलोकोभविष्यति ॥ २० ॥ वासवस्यवचःश्रुत्वासर्वलो
कपितामहः ॥ रक्षांस्यावाहयामासकुंभकर्णंददर्शह ॥ २१ ॥ कुंभकर्णंसमीक्ष्यैववितत्रासप्रजापतिः ॥ कुंभकर्ण
मथाश्वस्तःस्वयंभूरिदमब्रवीत् ॥ २२ ॥

प्रजापति ब्रह्माजीके निकट गये; और वहां उन्होंनें प्रजागणोंको भक्षण करना देवता लोगोंको सताना, आश्रमोंका विध्वंसित होना और पराई
स्त्रीका हरण, रूपी कुम्भकर्णकी यह सब दुष्टता ब्रह्माजीसे निवेदनकी ॥ १९ ॥ तब इन्द्रजीनें कहाकि यह यदि नित्य प्रति प्रजाको भक्षण
किया करैगा; तौ बहुतही शीघ्रतासे सब लोग उजाड़ होजांयगे ॥ २० ॥ सर्व लोगोंके पितामह ब्रह्माजीने इन्द्रजीके वचन सुनकर गायत्र्यादि
मंत्रोंसे राक्षसोंको आह्वानकरकै उनमें कुम्भकर्णकोभी देखा ॥ २१ ॥ परन्तु कुम्भकर्णको देखतेही ब्रह्माजीको अत्यन्त भय उपस्थित हुआ

सो जान पड़ताहै कि उसही शापका फल फलनेंके लिये उनके वंशमें दशरथ कुमार रामचंद्रका जन्म हुआ होगा ॥ ८ ॥ महाराज अनरण्यनें कहाथा कि हे राक्षसोंमें नीच! हमारे वंशमेंसे एक ऐसे वीर पुरुष जन्म ग्रहण करेंगे कि जिसके हाथसे तुम, तुम्हारे पुत्र, मंत्री, समस्त सैना, अश्व, सारथि, ॥ ९ ॥ इन सबके साथ हे दुर्मति नराधम! तुम संग्राममें मारे जाओगे; हमनें पूर्वकालमें एक वार वेदवतीके प्रति बल प्रकाश करके उसके सतीपनका अपमान कियाथा ॥ १० ॥ सो अव जान पड़ताहै कि उन वेदवती हीनें इन महाभागा जनकनंदिनीके रूपसें जन्म ग्रहण कियाहै, इनसेही हमारा नाश होगा, इनके अतिरिक्त देवी उमा, नन्दीश्वर, रम्भा, और वरुणजीकी कन्या पुञ्जिकस्थलीनें ॥ ११ ॥ जो

उत्पत्स्यतिहिमद्वंशपुरुषोराक्षसाधम ॥ यस्त्वांसपुत्रंसामात्यंसबलंसाश्वसारथिम् ॥ ९ ॥ निहनिष्यतिसंग्रामेत्वां कुलाधमदुर्मते ॥ शप्तोहंवेदवत्याचयथासाधर्षितापुरा ॥ १० ॥ सेयंसीतामहाभागाजाताजनकनंदिनी ॥ उमानंदीश्वरश्चापिरंभावरुणकन्यका ॥ ११ ॥ यथोक्तास्तन्मयाप्राप्तंनमिथ्याऋषिभाषितम् ॥ एतदेवसमागम्ययत्नंकर्तुमिहार्हथ ॥ १२ ॥ राक्षसाश्चापितिष्ठंतुचर्यागोपुरमूर्धसु ॥ सचाप्रतिमगांभीर्योदेवदानवदर्पहा ॥ १३ ॥ ब्रह्मशापाभिभूतस्तुकुंभकर्णोविबोध्यताम् ॥ समरेजितमात्मानंप्रहस्तंचनिषूदितम् ॥ १४ ॥ ज्ञात्वारक्षोभीमबलमादिदेशमहाबलः ॥ द्वारेषुयत्नःक्रियतांप्राकारश्चाधिरुह्यताम् ॥ १५ ॥

शाप हमको दियेहैं, * इससमय हमको वही शापकी दशा उपस्थित हुईहै; ऋषिलोगोंके वचन कभी मिथ्या होंनेवाले नहीं, हे राक्षसगण! यह समस्त जान बूझकर अब जो कुछ कर्तव्यहो सो तुम करो ॥ १२ ॥ इससमय राजमार्ग और कोटकी भीतके किनारे २ राक्षसलोग रक्षाकरनेंको टिक रहेंहैं अति गंभीरता युक्त देव दानव गर्व खर्व कारी ॥ १३ ॥ पितामह ब्रह्माजीके शापसे सोतेहुए कुम्भकर्णको भी अव जगाना उचितहै। अपने आपको समरमें श्रीरामचंद्रजीसे हारा और प्रहस्तको मारा हुआ जान ॥ १४ ॥ और कुम्भकर्णको महाबलवान् जाना तव महाबली रावणनें राक्षसोंको

* जब रावणने कैलाश उठाया तब पार्वतीने शाप दिया कि स्त्रीके निमित्त तेरा मरण होगा नंदीश्वरकी वानराकार मूर्त्ति देखकर हँसा तब उन्होंने शाप दिया कि वानरही तेरा नाश करैंगे रंभा निमित्त नल कूबरके शापकी कथा लिख चुकेहैं। वरुणकी कन्या पुंजिकस्थालीको रावणने पकडा तौ ब्रह्माने शाप दिया कि स्त्रीहरणसे मरण होगा ॥

तैयार होगा ॥ ३० ॥ इस कुम्भकर्णको देखते ही वानरगण भाग रहे हैं परन्तु जब यह क्रोधित होकर रणभूमिमें खड़ा होगा उस काल वानरोंमेंसे कौन इसको निवारणकर सकैगा ॥३१॥ इस कारणसे सब वानरोंके सैनाके मध्यमें इस वातका प्रचारित कर दियाजाय कि यह मूर्ति सजीव नहीं है वरन रावणनें तुम लोगोंको डरवानेके लिये यह कल बनाई है बस इस वातको सुन सब वानर भयरहित होजांयगे ॥ ३२ ॥ वानर लोगोंके हितकारी और युक्ति युक्त विभीषणजीके कहे हुए वचन सुनकर रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी सेनापति नीलसे बोले ॥ ३३ ॥ हे अग्निकुमार! तुम जायकर सब वानरों

कुंभकर्णप्रतीक्ष्यैवहरयोद्यप्रदुद्रुवुः ॥ कथमेनंरणेक्रुद्धंवारयिष्यंतिवानराः ॥ ३१ ॥ उच्यंतांवानराःसर्वैयंत्रमेतत्समुच्छ्रितम् ॥ इतिविज्ञायहरयोभविष्यंतीहनिर्भयाः ॥ ३२ ॥ विभीषणवचःश्रुत्वाहेतुमत्सुमुखोद्गतम् ॥ उवाचराघवोवाक्यंनीलंसेनापतिंतदा ॥ ३३ ॥ गच्छसैन्यानिसर्वाणिव्यूह्यतिष्ठस्वपावके ॥ द्वाराण्यादायलंकायाश्चर्याश्चाप्यथसंक्रमान् ॥ ३४ ॥ शैलशृंगाणिवृक्षांश्चशिलाश्चाप्युपसंहरन् ॥ भवंतःसायुधाःसर्वैवानराःशैलपाणयः ॥ ३५ ॥ राघवेणसमादिष्टोनीलोहरिचमूपतिः ॥ शशासवानरानीकंयथावत्कपिकुंजरः ॥ ३६ ॥ ततोगवाक्षःशरभोहनूमानंगदस्तथा ॥ शैलशृंगाणिशैलाभागृहीत्वाद्वारमभ्ययुः ॥ ३७ ॥ रामवाक्यमुपश्रुत्यहरयोजितकाशिनः ॥ पादपैरर्दयन्वीरावानराःपरवाहिनीम् ॥ ३८ ॥

का व्यूह बनाओ और सावधान होकर लंकाके पुरद्वार राजमार्ग व और भी सब मोर्चे घेरलो ॥ ३४ ॥ हमारी आज्ञानुसार तुम सब शैल शृंग वृक्ष और शिला इकट्ठी कर रक्खो तुम लोग अस्त्र और पर्वतादि धारण करकै सावधानतासे टिके रहो॥३५॥वानर सैनापति कपिकुंजर नीलनें श्रीरामचंद्रजीकी ऐसी आज्ञा पाय समस्त वानरोंमें उस आज्ञाका प्रचार करादिया॥३६॥तिसके पीछे गवाक्ष, शरभ, हनुमान, और अंगद, यह समस्त वानर पर्वतों के शृङ्ग ग्रहण करकै लंकाके द्वारपर उपस्थित हुए ॥ ३७ ॥ इस प्रकारसे वह जययुक्त वानरगण श्रीरामचंद्रजीके वचनोंसे सावधानहो शत्रुकी

भोजन करनेंकी सामग्री इकट्ठी करके लेजानें लगे ॥ २३ ॥ तिसके पीछे वह राक्षस कुम्भकर्णकी गुहामें प्रवेश करते हुए, यह गुफा अतिरमणीक थी, यहांपर फूलोंकी सुगन्धि आय रहीथी, इस गुहाका द्वार अति विस्तार वालाथा; यह गुफा चार कोशकी लंबी चौड़ी थी ॥ २४ ॥ वह महाबली राक्षस कुम्भकर्णके श्वासोंकी पवन लगनेके कारण बहुतही कंपायमान हुए और बड़े कष्टसे स्थिर हो अति यत्न सहित उस गुफामें पैठे ॥ २५ ॥ तिसके पीछे राक्षसोंनें रत्नकांचन बनें हुए फर्ससे युक्त उस रमणीक गुफामें प्रवेश करके सोते हुए भयंकर विक्रम कारी कुम्भकर्णको देखा ॥ २६ ॥ सब राक्षस लोग मिलकर कुम्भकर्णकी निद्रा तोड़नेका उपाय करने लगे इन राक्षसोंनें देखा कि महावीर्य

तेरावणसमादिष्टामांसशोणितभोजनाः ॥ गंधंमाल्यंमहद्भक्ष्यमादायसहसाययुः ॥ २३ ॥ तांप्रविश्यमहाद्वारां सर्वतोयोजनायताम् ॥ कुंभकर्णगुहांरम्यांपुष्पगंधप्रवाहिनीम् ॥२४॥ कुंभकर्णस्यनिःश्वासादवधूतामहाबलाः ॥ प्रतिष्ठमानाःकृच्छ्रेणयत्नात्प्रविविशुर्गुहाम् ॥ २५ ॥ तांप्रविश्यगुहांरम्यांरत्नकांचनकुट्टिमाम् ॥ ददृशुर्नैर्ऋतव्याघ्राः शयानंभीमविक्रमम् ॥ २६ ॥ तेतुतंविकृतंसुप्तंविकीर्णमिवपर्वतम् ॥ कुंभकर्णमहानिद्रंसमेताःप्रत्यबोधयन् ॥ २७ ॥ उर्ध्वलोमांचिततनुंश्वसंतमिवपन्नगम् ॥ भ्रामयंतंविनिःश्वासैःशयानंभीमविक्रमम् ॥ २८ ॥ भीमनासापुटंतंतुपातालविपुलाननम् ॥ शयनेन्यस्तसर्वांगंमेदोरुधिरगंधिनम् ॥ २९ ॥ कांचनांगदनद्धांगंकिरीटेनार्कवर्चसम् ॥ ददृशुर्नैर्ऋतव्याघ्रंकुंभकर्णमरिंदमम् ॥ ३० ॥

कुम्भकर्ण सोता हुआ विकराल हो रहा है और पर्वतकी समान पड़ा है ॥ २७ ॥ कुम्भकर्णके सब रुँये ऊपरको खड़ेथे वह सर्पकी समान लंबे २ श्वासोंकी पवनसे मानों राक्षसोंको घूमाय रहाथा ऐसा भयंकर कर्मकारी कुम्भकर्णको राक्षसोंने देखा ॥ २८ ॥ इसका मुख पातालकी समान बड़ाथा नाक के स्वरभी बहुतही लंबे चौडेथे उसके सब शरीरमें (जोकि शेजपर पड़ाथा) चरबी और रुधिरकी दुर्गन्ध आय रहीथी॥२९॥ वह सुवर्णका बाजू पहरे हुएथा उसके शिरपर मुकुट सूर्य भगवानकी किरणोंकी समान प्रकाशित हो रहाथा ऐसे राक्षसव्याघ्र शत्रुओंका

पातेही शीघ्रता सहित हर्षित अंतःकरणसे उठकर कुंभकर्णको अपने समीप लाया ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त रावणके आसनपर बैठनेंके पीछे महा बलवान कुंभकर्ण अपने भ्राताके चरणयुगल वंदन करके बोलाकि "हमें क्या करना होगा?"॥८॥ रावण कुम्भकर्णको प्रणाम करता हुआ देखकर हर्षित अंतःकरणसे फिर उठकर उसे भलीभांति अपने हृदयसे लगाता हुआ ॥ ९ ॥ महा बलवान् कुम्भकर्णभी अपने भ्राता करकै भेंटे जाकर और यथायोग्य रूपसे आदर पाय श्रेष्ठ व देवताओंके बैठनेंके योग्य आसनपर बैठा ॥ १० ॥ तब कुम्भकर्ण क्रोधके मारे लाल २ नेत्र करकै रावण से बोला कि हे महाराज ! किसकारणसे आपने ऐसे यत्नसे हमको जगवायाहै? ॥ ११ ॥ किससे आपको भय पहुंचाहै? और किसको आज हम

अथासीनस्यपर्यंकेकुंभकर्णोमहाबलः ॥ भ्रातुर्ववंदेचरणौकिंकृत्यमितिचाब्रवीत् ॥८॥ पुनःसमुदितोत्पत्यरावणःपरि षस्वजे ॥ सभ्रात्रासंपरिष्वक्तोयथावच्चाभिनंदितः ॥ ९ ॥ कुंभकर्णःशुभंदिव्यंप्रतिपेदेवरासनम् ॥ सतदासनमा श्रित्यकुंभकर्णोमहाबलः ॥ १० ॥ संरक्तनयनःक्रोधाद्रावणंवाक्यमब्रवीत् ॥ किमर्थमहमादृत्यत्वयाराजन्प्रबोधि तः ॥ ११ ॥ शंसकस्माद्भयंतेत्रकोवाप्रेतोभविष्यति ॥ भ्रातरंरावणःक्रुद्धंकुंभकर्णमवस्थितम् ॥ रोषेणपरिवृत्ताभ्यां नेत्राभ्यांवाक्यमब्रवीत् ॥ १२ ॥ अयंतेसुमहान्कालःशयानस्यमहाबल ॥ सुषुप्तस्त्वंनजानीषेममरामकृतंभय म् ॥ १३ ॥ एषदाशरथिःश्रीमान्सुग्रीवसहितोबली ॥ समुद्रंलंघयित्वातुकुलंनःपरिकृंतति ॥ १४ ॥ हंतपश्यस्वलं कायांवनान्युपवनानिच ॥ सेतुनासुखमागत्यवानरैकार्णवंकृतम् ॥ १५ ॥

यमराजके भवनोंमें भेजें ? यह समस्त वृत्तान्त आप हमारे निकट प्रकाश करकै कहिये; कुम्भकर्ण क्रोधसे यह वचन कह मौनरहा, और अपने लघुभ्राताके वचन सुनकर रावणभी क्रोधके मारे अपनी दोनों आँखोंको घुमानें लगा ॥ १२ ॥ हेमहाबलवान् ! तुम बराबर शयन करकै सुखसे सो रहेथे इसलिये रामचंद्रसे जो भय हमको उपस्थित हुआहै वह तुम कुछभी नहीं जानतेहो ? ॥ १३ ॥ महाबलशाली श्रीमान् दशरथके पुत्र रामचंद्र सुग्रीव सहित समुद्रके पार आयकर हमारे जाति कुलका नाश कररहेहैं ॥ १४ ॥ लंकाके वन उपवनोंकी ओर एकवार

परन्तु जब नीदसे अचेत हुआ महाबलवान महात्मा कुम्भकर्ण निशाचर गणोंके घोर सिंहनाद करनेंसेभी न जागा, तब राक्षसोंनें क्रोधित होकर भुशुण्डी, मूशल, और गदा इत्यादि अस्त्र शस्त्र ग्रहण किये ॥ ३९ ॥ तिसके पीछे प्रचंड निशाचर गण पर्वतोंके शिखर, मूसल गदा और मूकोंसे पृथ्वीपर सुखसे सोये हुए कुम्भकर्ण की छातीमें अत्यन्त बलसे प्रहार करनें लगे, परन्तु किसीसेभी कुछ न हुआ ॥ ४० ॥ यह राक्षसगण महाबलवान होकरभी कुम्भकर्णके प्रबल श्वासोंकी पवनके आगे किसी प्रकार ठहरनेंको समर्थ नहीं हुए ॥ ४१ ॥ तिसके पीछे भयंकर विक्रमकारी वह राक्षस गण धोती जांघिये आदि अपने वस्त्रोंको संभालकर मृदंग, ढोल, भेरी शंख और कुम्भ नामक बाजोंको बजानें

यदाभृशार्तैर्निनदैर्महात्मानकुंभकर्णोबुबुधेप्रसुप्तः ॥ ततोभुशुंडीर्मुसलानिसर्वेरक्षोगणास्तेजगृहुर्गदाश्च ॥ ३९ ॥ तंशैलशृंगैर्मुसलैर्गदाभिर्वक्षस्थलेमुद्गरमुष्टिभिश्च ॥ सुखप्रसुप्तंभुविकुंभकर्णंरक्षांस्युदग्राणितदानिजघ्नुः ॥ ४० ॥ तस्यनिःश्वासवातेनकुंभकर्णस्यरक्षसः ॥ राक्षसाःकुंभकर्णस्यस्थातुंशेकुर्नचाग्रतः ॥ ४१ ॥ ततःपरिहितागाढंराक्षसाभीमविक्रमाः ॥ मृदंगपणवान्भेरीःशंखकुंभगणांस्तथा ॥ ४२ ॥ दशराक्षससाहस्रंयुगपत्पर्यवारयत् ॥ नीलांजनचयाकारंतेतुतंप्रत्यबोधयन् ॥ ४३ ॥ अभिघ्नंतोनदंतश्चनचसंबुबुधेतदा ॥ यदाचैनंनशेकुस्तेप्रतिबोधयितुंतदा ॥ ४४ ॥ ततोगुरुतरंयत्नंदारुणंसमुपाक्रमत् ॥ अश्वानुष्ट्रान्खरान्नागाञ्जघ्नुर्दंडकशांकुशैः ॥ ४५ ॥ भेरीशंखमृदंगांश्चसर्वप्राणैरवादयन् ॥ निजघ्नुश्चास्यगात्राणिमहाकाष्ठकटंकरैः ॥ ४६ ॥

लगे ॥ ४२ ॥ इस प्रकारसे दश हजार नीले अंजनकी ढेरकी समान उस कुम्भकर्णको जगानेके लिये बड़ेही यत्न करनें लगे ॥ ४३ ॥ वह राक्षस अनेक प्रकारके प्रहार, गर्जन और भांति २ के बाजे बजाकरभी उस कुम्भकर्णको नहीं जगाय सके ॥ ४४ ॥ जब वह राक्षस इन सब कार्योंके करनेंका कुछ फल न पाते हुए, तब उन राक्षसोंकी मति इस्सेभी भारी उपाय करनें की हुई, वह राक्षसगण उन्हींके अनुसार ऊंट गधे और हाथियोंको, वारंवार दंडोंसे चाबकोंसे और अंकुशोंसे मार कर कुम्भकर्णके ऊपर चलानें लगे ॥ ४५ ॥ सब इकट्ठे होकर भेरी शंख, और अति जोरसे मृदंग बजानें लगे और कुम्भकर्णके शरीरमें बड़े भारी कांटे लगे काठोंसे ठोकनें लगे ॥ ४६ ॥

कोभी तुम्हारी समान बलवान नहीं देखते; कारण तुमही हमारे लिये अधिक वीर्य प्रकाश करो ॥ २१ ॥ प्रचंड पवन जिस प्रकारसे
शरद समयके मेघको उड़ा देतीहै; वैसेही तुम अपने तेजके प्रभावसे शत्रुकी सेनाके धुर्रे उड़ादो हे बान्धवप्रिय ! हे समराभिलाषी!
तुम हमारे हितार्थ यह उत्तम कार्य पूराकरो ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥
राक्षसराज रावणके ऐसे विलापके वचन सुनकर कुम्भकर्ण हँसता हुआ बोला ॥ १ ॥ हमनें परामर्श होनेके समयमें जिस दोषकी शंका
कीथी, आपने उन हितकारी वचनोंपर श्रद्धा नहीं की, इसी कारणसे अब आपको वही दोष आय प्राप्त हुआहै ॥ २ ॥ कुकर्म करनेंवाले जन जिस

स्वतेजसाव्यथयसपत्नवाहिनींशरद्घनंपवनइवोद्यतोमहा
कुरुष्वमेप्रियहितमेतदुत्तमंयथाप्रियंप्रियरणबांधवप्रिय ॥ तस्यराक्षसराजस्यनिशम्यपरिदेवितम् ॥
न्॥२२॥इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०युद्धकांडेद्विषष्टितमःसर्गः॥६२॥ ॥७॥ हितेष्वनभियुक्तेनसोयमासा
कुंभकर्णोबभाषेदंवचनंप्रजहासच ॥ १ ॥ दृष्टोदोषोहियोस्माभिःपुरामंत्रविनिर्णये ॥ प्रथमंवै
दितस्त्वया ॥ २ ॥ शीघ्रंखल्वभ्युपेतंत्वांफलंपापस्यकर्मणः ॥ निरयेष्वेवपतनंयथादुष्कृतकर्मणः ॥ ३ ॥ यःपश्चात्पूर्वकार्याणिकुर्यादैश्वर्यमास्थि
महाराजकृत्यमेतदचिंतितम् ॥ केवलंवीर्यदर्पेणनानुबंधोविचारितः ॥ ४ ॥ क्रियमाणानिदुष्यंति
तः ॥ पूर्वंचोत्तरकार्याणिनसवेदनयानयौ ॥ ५ ॥ देशकालविहीनानिकर्माणिविपरीतवत् ॥ सचिवैःसमयंकृत्वाससम्यग्वर्ततेपथि ॥ ७ ॥
हवींष्यप्रयतेष्विव ॥ ६ ॥ त्रयाणांपंचधायोगंकर्मणांयःप्रपद्यते ॥

प्रकार शीघ्रही नरकमें पड़ा करतेहैं; ऐसेही तुमको अपने पापकर्म करनेंका फल बहुत शीघ्र मिलगया ॥ ३ ॥ हेमहाराज ! आपनें केवल वीर्यके
घमंडके वशमें हो पहले इस सम्बन्धमें कुछ चिन्ता नहींकी; और ऐसे निन्दनीय कार्यके विषयमें कुछ सुविचारभी नहीं किया ॥ ४ ॥ जो ऐश्वर्यके
मदसे मदवाले होकर पहले करनें योग्य कार्य पीछे, और पीछे करनें योग्य कार्योंको पहले किया करतेहैं; उन्होंनें नीति अनीतिको कुछभी
नहीं जाना ॥ ५ ॥ जिस प्रकार संस्कारके अयोग्य अग्निमें दीहुई आहुति विफल होजातीहै वैसेही देशकालको विना विचारे जो कार्य किये जातेहैं;
वह समस्तही विपरीत और दूषित होजातेहैं ॥ ६ ॥ जो राजा विचार करनेंके पीछे, कर्त्तव्य, क्षय, वृद्धि स्थान और सभादिके विषयमें चिन्ता

हजारों हाथियोंकी दांय चलाई, तब हाथियोंके पैरोंसे दबनेंका सुख पाय कुम्भकर्ण जाग उठा ॥ ५५ ॥ कुम्भकर्ण उन गिराये हुए पर्वतोंके शिखर और वृक्षोंसे मार खाय करभी निद्रा नाशके वश, भूंखसे व्याकुलहो वारंवार जंभाई लेता सहसा उठ कर बैठ गया ॥ ५६ ॥ तिसके पीछे राक्षसेन्द्र कुम्भकर्ण वज्रसेभी अधिक सारवान और अचल शृङ्ग व नाग भोगकी समान दोनों बांहोंको फैलाय घोड़ीके समान अपने विकट मुखको खोल ॥ ५७ ॥ जँभाई लेनेंके समय उसका वदन पातालकी समान गंभीर और मुख मंडल सुमेरु गिरिपर उदय हुए सूर्यकी समान दृष्टि आया ॥ ५८ ॥ जब जँभाई लेता हुआ वह निशाचर जागा तब जिस प्रकार पर्वत परसे निकल कर पवन वहतीहै उसही भांति कुम्भकर्णकी

सापत्यमानैर्गिरिशृंगवृक्षैरचिंतयंस्तान्विपुलान्प्रहारान्॥ निद्राक्षयात्क्षुद्भयपीडितश्चविजृंभमाणःसहसोत्पपात॥५६॥ सनागभोगाचलशृंगकल्पोविक्षिप्यबाहूजितवज्रसारौ ॥ विवृत्यवक्रंवडवामुखाभंनिशाचरोसौविकृतंजजृंभे ॥ ५७॥ तस्यजाजृंभमाणस्यवक्रंपातालसन्निभम् ॥ ददृशेमेरुशृंगाग्रेदिवाकरइवोदितः ॥ ५८॥ सजृंभमाणोतिबलःप्रबुद्धस्तुनिशाचरः ॥ निःश्वासश्चास्यसंजज्ञेपर्वतादिवमारुतः ॥ ५९ ॥ रूपमुत्तिष्ठतस्तस्यकुंभकर्णस्यतद्बभौ ॥ युगांतेसर्वभूतानिकालस्येवदिधक्षतः ॥ ६० ॥ तस्याग्निदीप्तसदृशेविद्युत्सदृशवर्चसी ॥ ददृशातेमहानेत्रेदीप्ताविवमहाग्रहौ ॥ ६१ ॥ ततस्त्वदर्शयन्सर्वान्भक्ष्यांश्चविविधान्बहून् ॥ वराहान्महिषांश्चैवबभक्षसमहाबलः ॥ ६२ ॥ आदद्बुभुक्षितोमांसंशोणितंतृषितोपिबत् ॥ मेदःकुंभांश्चमद्यांश्चपपौशक्ररिपुस्तदा ॥ ६३ ॥

श्वासका पवन वहनें लगा ॥ ५९ ॥ जब कुम्भकर्ण जागा तब उसका रूप संसारको जलानेंके लिये तैयार प्रलय कालीन कालकी समान जान पड़नें लगा ॥ ६० ॥ उसकी दोनों आंखें प्रकाशमान अग्निकी समान थीं, उनसे विजलीसी निकल रहीथी; मानों वह कुम्भकर्ण प्रकाशमान महा ग्रह था ॥ ६१ ॥ तिसके पीछे उसके भोजन करनेंको जो महिष शूकरादि विविध प्रकारकी सामग्री गईथी वह इकट्ठी कीगई; वह सब उन राक्षसोंनें कुम्भकर्णको दिखाये, तब महाबलवान कुम्भकर्ण उन सबको भक्षण करनेंमें लगा ॥ ६२ ॥ बहुत दिनोंसे भूंखा प्यासा वह इन्द्रका शत्रु राक्षस कुम्भकर्ण ढेरके ढेर विविध भांतिके मांस खाय और असंख्य चरबी; व मदिराके घड़ोंको पान करके अपनी प्यास बुझाता हुआ ॥ ६३ ॥

जो शास्त्रको न जानतेहों; उनका वचन राजा कभी ग्रहण नहीं करे; कारण कि वह अहितकाही करनेंवाला होताहै, कारण कि वे लोग अर्थशास्त्रके न जाननेंसे धनकी बड़ी आशा रखते, और ठकुर सुहाती बात कह देतेहैं इससे उनकी बातका क्या ठीकहै ? ॥ १५ ॥ जो पुरुष अहित बातको ऐसा नोन मिर्च लगायकर कहते, कि मानों यह बड़ाही हित कर रहेहैं,ऐसे धूर्तोंको मंत्रणा कार्यसे बाहर निकालदेना चाहिये, कारण कि उनसे सब कार्य भ्रष्ट होजाते हैं ॥ १६ ॥ हे महाराज ! ऐसेभी अनेक मंत्री होतेहैं, जो सब कुछ जाननेंवाले शत्रुओंके साथ सलाह करके विपरीत कार्य करके स्वामीका विनाश कर देतेहैं ॥ १७॥ राजाको उचितहै कि उन मंत्रियोंको जो मित्र बने हुए वैरी हैं व्यवहारसे जानले और जान बूझकर उनका त्याग

अशास्त्रविदुषांतेषांकार्यंनाभिहितंवचः ॥ अथशास्त्रानभिज्ञानांविपुलांश्रियमिच्छताम् ॥ १५ ॥ अहितंचहिताका रंधाष्ट्याज्जल्पंतियेनराः ॥ अवश्यंमंत्रबाह्यास्तेकर्तव्याःकृत्यदूषकाः ॥ १६ ॥ विनाशयंतोभर्त्तारंसहिताःशत्रु भिर्बुधैः ॥ विपरीतानिकृत्यानिकारयंतीहमंत्रिणः ॥ १७ ॥ तान्भर्तामित्रसंकाशानमित्रान्मंत्रनिर्णये ॥ व्यवहारे णजानीयात्सचिवानुपसंहितान् ॥ १८ ॥ चपलस्येहकृत्यानिसहसानुप्रधावतः ॥ क्षिप्रमन्येप्रपद्यंतेक्रौंचस्यखमिव द्विजाः ॥ १९ ॥ योहिशत्रुमवज्ञायआत्मानंनाभिरक्षति ॥ अवाप्नोतिहिसोऽनर्थान्स्थानाच्चव्यवरोप्यते ॥ २० ॥ यदुक्तमिहतेपूर्वंप्रिययामेनुजेनच ॥ तदेवनोहितंवाक्यंयथेच्छसितथाकुरु ॥ २१ ॥ तत्तुश्रुत्वादशग्रीवःकुंभकर्ण स्यभाषितम् ॥ भ्रुकुटिंचैवसंचक्रेक्रुद्धश्चैनमभाषत ॥ २२ ॥

करदे ॥ १८ ॥ जिस प्रकार पक्षीगण स्वामिकार्तिकजीसे विदारित किये हुए क्रौञ्च पर्वतके छिद्रमें प्रवेश करतेहैं, वैसेही शत्रु लोगभी चपल और इधर उधर दौड़कर धानेंवाले राजामें छिद्र पायकर प्रवेश किया करतेहैं ॥१९॥ जो शत्रुको तुच्छ समझकर अपनी रक्षा नहीं करतेहैं; वह बड़े भारी अन र्थको प्राप्त होकर स्थानसे भी भ्रष्ट होजातेहैं ॥ २० ॥ रानी मन्दोदरी और हमारे छोटे प्रिय भ्राता विभीषणजीनें जो कुछ कहाथा, वही कहना हमारे हितका करनें वालाहै; तिसके पीछे जो आपकी इच्छा हो सो कीजिये ॥ २१ ॥ तब दशमुख रावण कुम्भकर्णके ऐसे वचन सुनकर भ्रुकुटि

हेमहाराज ! हम लोगोंको देवकृत कोई भय नहीं पड़ाहै परन्तु इस समय मनुष्योंसे हमको तुमुल भय आन पहुंचाहै ॥ ७२ ॥ हे राजन् ! मनुष्योंसे इस समय जैसा भय हमको पहुंचाहै दैत्य अथवा दानवोंसेभी ऐसा भय हमको कभी नहीं हुआ ॥ ७३ ॥ सीताके हरणसे संतापित हुए श्रीरामचन्द्रही हमारे इस बड़े भारी भयके कारण हैं, उनकीही पर्वताकार वानरोंकी सैनासे लंकापुरी घिरी हुईहै ॥ ७४ ॥ पहले केवल एकही वानर करके लंका जलाई गई, और कुंजर वा अपने साथियोंके सहित हितकुमार अक्षभी मारा गयाहै ॥७५॥ और की वात तो क्याकहें देवता लोगोंका कण्टक स्वयं पुलस्त्यनंदन राक्षस राज रावणभी सूर्यकी समान तेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीके सामनेंसे भागकर चले आये हैं, सोभी

ननोदेवकृतंकिंचिद्भयमस्तिकदाचन ॥ मानुषान्नोभयंराजंस्तुमुलंसंप्रबाधते ॥ ७२ ॥ नदैत्यदानवेभ्योवाभयमस्तिननःक्वचित् ॥ यादृशंमानुषंराजन्भयमस्मानुपस्थितम् ॥ ७३ ॥ वानरैःपर्वताकारैर्लंकेयंपरिवारिता ॥ सीताहरणसंतप्ताद्रामान्नस्तुमुलंभयम् ॥ ७४ ॥ एकेनवानरेणेयंपूर्वंदग्धामहापुरी ॥ कुमारोनिहतश्चाक्षःसानुयात्रःसकुंजरः ॥ ७५ ॥ स्वयंरक्षोधिपश्चापिपौलस्त्योदेवकंटकः ॥ व्रजेतिसंयुगेमुक्तोरामेणादित्यवर्चसा॥७६॥यन्नदेवैःकृतोराजानापिदैत्यैर्नदानवैः ॥ कृतःसइहरामेणविमुक्तःप्राणसंशयात् ॥ ७७ ॥ सयूपाक्षवचःश्रुत्वाभ्रातुर्युधिपराभवम् ॥ कुंभकर्णोविवृत्ताक्षोयूपाक्षमिदमब्रवीत् ॥ ७८ ॥ सर्वमद्यैवयूपाक्षहरिसैन्यंसलक्ष्मणम् ॥ राघवंचरणेजित्वाततोद्रक्ष्यामिरावणम् ॥ ७९ ॥ राक्षसांस्तर्पयिष्यामिहरीणांमांसशोणितैः ॥ रामलक्ष्मणयोश्चापिस्वयंपास्यामिशोणितम् ॥ ८० ॥

जब श्रीरामचन्द्रजीनें दया करके उनसे कहाकि " जाओ भागजाओ " इस समय हमनें तुम्हें छोड़ दिया ॥७६॥ देव, दैत्य, और दानवोंसेभी जिन महाराजकी कभी पहले दुरवस्था नहीं हुई, आज रामचन्द्र करकै ऐसी प्राण संशयकारिणी दशा उनको आई, उन रामचन्द्रनें दया करकै राजाको प्राणोंसे नहीं मारा ॥ ७७ ॥ उस समय कुम्भकर्ण यूपाक्षके वचन सुनकर और संग्राम भूमिमें अपने भ्राता रावणका पराजय होना जानकर नेत्र घुमाय उससे बोला ॥ ७८ ॥ हे यूपाक्ष ! हम प्रथम सबसे पहले वानरोंकी सैनाके सहित राम और लक्ष्मणका नाश करकै पीछेसे अपने बड़े भाई के चरणोंको देखेंगे ॥ ७९ ॥ हम वानर लोगोंके मांस और रुधिरसे राक्षसोंको तृप्त करेंगे; और हम स्वयं राम और लक्ष्मणका रुधिर पियेंगे॥८०॥

छोड़कर सावधानचित्त होजाइये ॥ ३० ॥ हे पृथ्वीनाथ! हमारे जीवित रहतेहुए आप मनमें कभी ऐसे सन्तापको स्थान न दीजिये । हम
निश्चय कहतेहैं कि जिनके लिये आपको इतना संतापित होना पड़ाहै; हम उनका नाश कर डालेंगे ॥ ३१ ॥ हे महाराज! आप चाहें जिस अव
स्थामें हों वही समय हमको हितके वचन कहने चाहिये, इस कारणही बन्धुभाव और भ्राताके स्नेहके वश होकर हमने आपसे ऐसा कहा॥३२॥
संकट पड़नेके समयमें स्नेहके आधीन हुए बन्धुके लिये जो कुछ करना उचितहै, हम उससे विमुख नहीं हैं. आज युद्धमें जाकर हम शत्रुओंकी
सैनाका नाश करतेहैं सो आप देखैं ॥ ३३ ॥ हे महाबाहो! आज हमसे संग्रामभूमिमें भ्राताके सहित रामचंद्रके मारनेंपर आप वानरोंकी सैनाको

नैतन्मनसिकर्तव्यंमयिजीवतिपार्थिव ॥ तमहंनाशयिष्यामियत्कृतेपरितप्यते ॥३१॥ अवश्यंचहितंवाच्यंसर्वावस्थां
गतंमया ॥ बंधुभावादभिहितंभ्रातृस्नेहाच्चपार्थिव ॥ ३२ ॥ सदृशंयच्चकालेस्मिन्कर्तुंस्नेहेनबंधुना ॥ शत्रूणांकदनं
पश्यक्रियमाणंमयारणे ॥ ३३ ॥ अद्यपश्यमहाबाहोमयासमरमूर्धनि ॥ हतेरामेसहभ्रात्राद्रवंतींहरिवाहिनीम् ॥३४॥
अद्यरामस्यतद्दृष्ट्वामयानीतंरणाच्छिरः ॥ सुखीभवमहाबाहोसीताभवतुदुःखिता ॥ ३५ ॥ अद्यरामस्यपश्यंतुनि
धनंसुमहत्प्रियम् ॥ लंकायांराक्षसाःसर्वेयेतेनिहतबांधवाः ॥ ३६ ॥ अद्यशोकपरीतानांस्वबंधुवधशोचिनाम् ॥
शत्रोर्युधिविनाशेनकरोम्यश्रुप्रमार्जनम् ॥ ३७ ॥ अद्यपर्वतसंकाशंससूर्यमिवतोयदम् ॥ विकीर्णंपश्यसमरे
सुग्रीवंप्लवगेश्वरम् ॥ ३८ ॥

भागता हुआ देखैंगे ॥ ३४॥ हे महाभुज! आज मुझ करके रणभूमिसे लायेहुए रामचंद्रके मस्तकको देखकर आप सुखी और जानकी दुःखी
होंगी ॥३५॥ युद्धमें जिनके बन्धु बान्धव मारे गयेहैं आज लंकावासी वह निशाचरगण बड़े भारी सुखका मूल रामचंद्रका मारा जाना देखेंगे ॥ ३६ ॥
युद्धमें बान्धव लोगोंका विनाश होनेंके कारण जो लोग शोकाकुल होकर अश्रु छोड़ रहेहैं आज रणभूमिमें शत्रुओंको विनाश करकै उनके आंसु
ओंको पोंछेंगे॥३७॥ आज पर्वताकार वानरराज सुग्रीव रणभूमिमें सूर्यके सहित बादलके समान फैलाहुआ, और रुधिरसे भीगा हुआ देखोगे ॥३८॥

बड़े भ्राताका आनंद बढ़ावें ॥ ८९ ॥ महावीर दुर्द्धर्ष कुम्भकर्ण अपने भ्राताकी आज्ञाको जान और उसे माथे पर चढ़ाकर (बहुत अच्छा) कह सेजपरसे उठा ॥ ९० ॥ और हर्षित मनसे मुखधो स्नानकर परम सुखपाय बलको बढ़ानेंवाली मदिराके पीनेंका अभिलाष करता हुआ ॥ ९१ ॥ तब राक्षस लोग रावणकी आज्ञाके अनुसार विविध भांति मदिरा और विविध प्रकारके भोजन पदार्थ लेआये ॥ ९२ ॥ तेज बल युक्त कुम्भकर्ण मदिराको पीकर कुछ एक मतवाला और तीव्र स्वभाव होकर चलनेंके लिये तैयार हुआ ॥ ९३ ॥ कुम्भकर्ण हर्षित होकर कालान्तक यमराजकी समान शोभायमान होनें लगा उस कालमें कुम्भकर्ण जब राक्षसोंके साथ २ अपने भ्राता रावणके भवनमें गमन करनें लगा; तब उसके

कुंभकर्णस्तुदुर्धर्षोभ्रातुराज्ञायशासनम् ॥ तथेत्युक्त्वामहावीर्यःशयनादुत्पपातह ॥ ९० ॥ प्रक्षाल्यवदनंहृष्टःस्नातः परमहर्षितः ॥ पिपासुस्त्वरयामासपानंबलसमीरणम् ॥ ९१ ॥ ततस्तेत्वरितास्तत्रराक्षसारावणाज्ञया ॥ मद्यंभक्ष्यांश्चविविधान्क्षिप्रमेवोपहारयन् ॥ ९२ ॥ पीत्वाघटसहस्रेद्वेगमनायोपचक्रमे ॥ ईषत्समुत्कटोमत्तस्तेजोबलसमन्वितः ॥ ९३ ॥ कुंभकर्णोबभौरुष्टःकालांतकयमोपमः ॥ भ्रातुःसभवनंगच्छन्रक्षोबलसमन्वितः ॥ कुंभकर्णः पदन्यासैरकंपयतमेदिनीम् ॥ ९४ ॥ सराजमार्गंवपुषाप्रकाशयन्सहस्ररश्मिर्धरणीमिवांशुभिः ॥ जगामतत्रांजलिमालयावृतःशतक्रतुर्गेहमिवस्वयंभुवः ॥ ९५ ॥ तंराजमार्गस्थममित्रघातिनंवनौकसस्तेसहसाबहिःस्थिताः ॥ दृष्ट्वाप्रमेयंगिरिशृंगकल्पंवितत्रसुस्तेसहयूथपालैः ॥ ९६ ॥

वारंवार चरण धरनें उठानेंसे पृथ्वी कंपायमान होनें लगी ॥ ९४ ॥ जिस प्रकार सूर्य भगवान् अपनी किरणोंके जालसे पृथ्वीको प्रकाशित करतेहैं,वैसेही कुम्भकर्ण भी अपनी कान्तिसे राज मार्गको प्रकाशित करता हुआ चला। इन्द्रजीके ब्रह्माजीके भवनमें जानेंकी समान हाथ जोड़े हुए राक्षस रूपी मालासे घिरकर कुम्भकर्ण अपने भ्राताके स्थानको जानें लगा ॥ ९५ ॥ वह पर्वतके शृङ्गकी समान शत्रु ओंका नाश करनें वाला अप्रमेय वीर जब राजमार्गमें चला जाताथा तब बाहर खड़े हुए वनवासी वानर अपने यूथपतियोंके साथ इसको देखतेही त्रासित हुए ॥ ९६ ॥

राम हमारे मूकेके वेगको सहकर जीवित रहैं ॥ ४६ ॥ तो हमारे बाण उस रामचन्द्रके रुधिरको पान करेंगे। इसलिये हे महाराज! आप हमारे जीवित रहते हुए आप किस कारणसे संतापकरतेहैं ॥ ४७ ॥ लीजिये हम आपके शत्रुका प्राण संहार करनेंके लिये जातेहैं आप रामचंद्रका भय छोड़ दीजिये, क्योंकि हम घोर युद्धमें उनको मार डालेंगे ॥ ४८ ॥ हम राम लक्ष्मण सुग्रीवको और जिस वानरनें राक्षसोंका नाश करके लंकापुरी जलाईथी उस हनुमानकोभी संहार करैंगे ॥ ४९ ॥ और वहांपर जो वानरगण युद्ध करनेंके लिये आयेहैं उनकोभी हम खाडालेंगे! हे महाराज! हमनें आपके बड़े भारी यशकी कामना करके इस असाधारण कामके करनेंकी अभिलाषा कीहै ॥ ५० ॥ हेराजन्! यदि इन्द्र अथवा

ततःपास्यंतिबाणौघारुधिरंराघवस्यमे ॥ चिंतयातप्यसेराजन्किमर्थंमयितिष्ठति ॥ ४७ ॥ सोहंशत्रुविनाशायतव निर्यातुमुद्यतः ॥ मुंचरामाद्भयंघोरंनिहनिष्यामिसंयुगे ॥ ४८ ॥ राघवंलक्ष्मणंचैवसुग्रीवंचमहाबलम् ॥ हनूमंतं चरक्षोघ्नंयेनलंकाप्रदीपिता ॥ ४९ ॥ हरींश्चभक्षयिष्यामिसंयुगेसमुपस्थिते ॥ असाधारणमिच्छामितवदातुंमहद्य शः ॥ ५० ॥ यदिचेंद्राद्भयंराजन्यदिचापिस्वयंभुवः ॥ अपिदेवाःशयिष्यंतेमयिक्रुद्धेमहीतले ॥ ५१ ॥ यमंचशमयिष्यामिभक्षयिष्यामिपावकम् ॥ आदित्यंपातयिष्यामिसनक्षत्रंमहीतले ॥ ५२ ॥ शतक्रतुंवधिष्यामिपास्यामि वरुणालयम् ॥ पर्वतांश्चूर्णयिष्यामिदारयिष्यामिमेदिनीम् ॥ ५३ ॥ दीर्घकालंप्रसुप्तस्यकुंभकर्णस्यविक्रमम् ॥ अद्यपश्यंतुभूतानिभक्ष्यमाणानिसर्वशः ॥ नत्विदंत्रिदिवंसर्वमाहारोममपूर्यते ॥ ५४ ॥

ब्रह्मासेभी आपको भय पहुंचाहो तौ हम उनकोभी मारडालेंगे। हमारे क्रोधित होनेंपर देवता लोग पृथ्वीपर सोते हुए दीखेंगे ॥ ५१ ॥ हम यमराजकाभी नाश करदेंगे अग्निको भक्षण कर डालेंगे; और हम सूर्यकोभी आकाशसे तारागणोंके सहित पृथ्वीपर गिरादेंगे ॥ ५२ ॥ इन्द्रको मार डालेंगे, समुद्रको पान कर जायँगे, पर्वतोंको चूर्ण २ करदेंगे और पृथ्वीको भी हम विदीर्ण करैंगे ॥ ५३ ॥ हम बहुत समयसे सोय रहेथे, परन्तु आज समस्त जीव इस कुम्भकर्णसे भक्षित होकर इसका विक्रम देखें अधिक क्या कहैं यह त्रिलोकभी हमारे पेटको भरनेंके लिये पूरी न होगी ॥ ५४ ॥

यह कौन वीरहै ? ॥ ५ ॥ यह तो पृथ्वीका एक बड़ा पताकारूप अकेलाही जान पड़ताहै; कारणकि इसके केवल देखनेहीसे समस्त वानरोंकी सैना भागी जातीहै ॥ ६ ॥ हमनें पहले कभी इस प्रकारका अद्भुत प्राणी नहीं देखा; इसलिये यह महाप्राणी राक्षसहै या असुरहै; यह हमको ठीक २ बताओ ॥ ७ ॥ सरलतासे कठिन कर्म करनेवाले रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीसे इस भांति कहे जाकर महाप्राज्ञ विभीपणजी बोले ॥ ८ ॥ जिसनें संग्राम भूमिमें यमराज और इन्द्रकोभी हरा दियाथा यह वही विश्रवाका पुत्र प्रतापवान् कुम्भकर्ण है, इसके प्रमाण की समान और कोई राक्षस नहीं है ॥ ९ ॥ हे रामचंद्रजी ! इस करके ही संग्रामभूमिमें दानव, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, विद्याधर और पन्नगगण हजारों वार हारकर इसके

पृथिव्यांकेतुभूतोसौमहानेकोत्रदृश्यत ॥ यंदृष्ट्वावानराःसर्वेविद्रवंतियतस्ततः ॥ ६ ॥ आचक्ष्वसुमहान्कोसौरक्षोवा यदिवासुरः ॥ नमयैवंविधंभूतंदृष्टपूर्वंकदाचन ॥ ७ ॥ संपृष्टोराजपुत्रेणरामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ विभीषणोमहाप्रज्ञः काकुत्स्थमिदमब्रवीत् ॥ ८ ॥ येनवैवस्वतोयुद्धेवासवश्चपराजितः ॥ सैषविश्रवसःपुत्रःकुंभकर्णःप्रतापवान् ॥ अस्यप्रमाणसदृशोराक्षसोन्योनविद्यते ॥ ९ ॥ एतेनदेवायुधिदानवाश्चयक्षाभुजंगाःपिशिताशनाश्च ॥ गंधर्वविद्याधरपन्नगाश्चसहस्रशोराघवसंप्रभग्नाः ॥ १० ॥ शूलपाणिंविरूपाक्षंकुंभकर्णंमहाबलम् ॥ हंतुंनशेकुस्त्रिदशाःकालोऽयमितिमोहिताः ॥ ११ ॥ प्रकृत्याह्येषतेजस्वीकुंभकर्णोमहाबलः ॥ अन्येषांराक्षसेंद्राणांवरदानकृतंबलम् ॥ १२ ॥ बालेनजातमात्रेणक्षुधार्तेनमहात्मना ॥ भक्षितानिसहस्राणिप्रजानांसुबहून्यपि ॥ १३ ॥ तेषुसंभक्ष्यमाणेषुप्रजाभयनिपीडिताः ॥ यांतिस्मशरणंशक्रंतमप्यर्थंन्यवेदयन् ॥ १४ ॥

सामनेसे भागे हैं ॥ १० ॥ हे राजन् ! इस महाबलवान् टेढे नेत्रवाले कुम्भकर्णको मारना तो दूर रहे; जब यह शूल हाथमें लेकर खड़ा होताहै; तब देवतागणभी इसको काल समान समझकर मोहित होजाते हैं ॥ ११ ॥ और दूसरे राक्षसश्रेष्ठ तो वरदान पाय उसकेही बलसे बलवान् हुएहैं, परन्तु यह महाबलवान् कुम्भकर्ण स्वभावसेही तेजस्वीहै ॥ १२ ॥ इस महाबलवान् महात्मा कुम्भकर्णने जन्म ग्रहण करतेही जब यह बहुत बालक था हजारों प्रजापुञ्जोंको भक्षण कर लिया ॥ १३ ॥ तब प्रजागण ऐसी अवस्था देखकर प्राणके भयसे अत्यन्त भीत हुए, और देवराज

तुमने जो धर्म अर्थ और कामको पृथक् २ समयमें सेवन करनेंका वर्णन किया, इन सबका उपदेश औरोंको देना तो दूररहा; तुम स्वयंही स्वभावसे इन सबको नहीं जानते ॥६॥ देखो, कर्महीं, धर्म, अर्थ, और काम इन तीनोंका कारणहै, क्रियाहीन पुरुषका किसी प्रकारसेभी पुरुषार्थ नहीं है;इसकारण अनुष्ठाताको शुभाशुभ कर्मोंका फल भोगना पड़ताहै॥७॥ धर्म, अर्थ, यह दोनों मोक्षकोभी देतेहैं; और इन करके स्वर्गकी प्राप्ति व महाराज्यादिक लोगभी मिल सकतेहैं, जो अधर्म और अनर्थकी प्राप्तिहो तौभी कभी २ अपराधीको सुख प्राप्त होजाताहै ॥ ८ ॥ पुरुष इस लोक और परलोकके लियेभी कर्म करतेहैं और कामपर आरूढ हुआ पुरुषभी सामर्थ कर्मोंके फलोंको प्राप्त कर लेताहै ॥ ९ ॥

यांस्तुधर्मार्थकामांस्त्वंब्रवीषिपृथगाश्रयान् ॥ अवबोद्धुंस्वभावेननहिलक्षणमस्तितान् ॥ ६ ॥ कर्मचैवाहिसर्वेषां कारणानांप्रयोजनम् ॥ श्रेयःपापीयसांचात्रफलंभवतिकर्मणाम् ॥ ७ ॥ निःश्रेयसफलावेवधर्मार्थावितरावपि ॥ अधर्मानर्थयोःप्राप्तंफलंचप्रात्यवायिकम् ॥ ८ ॥ ऐहलौकिकपारक्यंकर्मपुंभिर्निषेव्यते ॥ कर्माण्यपितुकल्पानिलभते काममास्थितः ॥ ९ ॥ तत्रक्लृप्तमिदंराज्ञाहृदिकार्यमतंचनः ॥ शत्रौहिसाहसंयत्तत्किमिवात्रापनीयते ॥ १० ॥ एकस्यैवाभियानेतुहेतुर्यःप्राहृतस्त्वया ॥ तत्राप्यनुपपन्नंतेवक्ष्यामियदसाधुच ॥ ११ ॥ येनपूर्वंजनस्थानेबहवोतिबलास्तदा ॥ राक्षसाराघवंध्वस्ताःकथमेकोजयिष्यसि ॥ १२ ॥ येपूर्वंनिर्जितास्तेनजनस्थानेमहौजसः ॥ राक्षसांस्तान्पुरे सर्वान्भीतानद्यनपश्यसि ॥ १३ ॥

हमनें महाराजके इस विषयको अपने अन्तरके साथ भला कहाहै, इस लिये राक्षसराजके मनमें जोकि निश्चय होगया है उस कार्यकाही अनुष्ठान करना ठीक है कारण कि शत्रुगणोंके प्रति साहस प्रगट करनेंमें कुछ भी अनीति दृष्टि नहीं आती ॥ १० ॥ और तुमने जो अभिमानके वश होकर विना दूसरेकी सहायताके अकेलेही शत्रुओंको जीतनेकी वात कही यहभी हमारे विचारमें असंगत और असाधुपन है श्रवणकरो ॥११॥ कि जिन रामचंद्रने पहले जनस्थानमें असंख्य महाबलवान राक्षसोंका संहार किया है विना किसीकी सहायता लिये तुम उनको अकेले किस प्रकारसे विनाश करोगे ॥ १२ ॥ उस समय जनस्थानमें जो महातेजस्वी राक्षसगण रामचंद्रजीसे हारकर संग्रामसे भाग आयेथे वे रामचंद्रके

तब क्षणभरके पीछे घवडाये हुएसे ब्रह्माजी कुम्भकर्णसे बोले ॥ २२ ॥ हम निश्चयही जानते हैं कि विश्रवाने तुमको लोकका विनाश ही करनेंके लिये उत्पन्न किया है; हम इसीलिये तुमको यह शाप देतेहैं कि तुम आजसे मृतक की समान होकर बराबर शयन करते रहो ॥ २३ ॥ जब पितामह ब्रह्माजीनें ऐसा शापदिया तब कुम्भकर्ण उनके आगेही नींदसे ग्रसित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा यह देख रावण अत्यन्त व्याकुल होकर बोला॥२४॥ भगवन् यह कांचन वृक्ष बढाहै सो फल आनेंके समय आप क्यों इसको काटते हैं हे प्रजापते! विशेष करके अपने नातीको ऐसा शापदेना आपको किसी प्रकारसे उचित नहीं है ॥ २५ ॥ आपके वचन किसी प्रकारसे मिथ्या होनेवाले नहींहै निश्चयही कुम्भकर्णको निद्रा घेरेगी परन्तु आपके

ध्रुवंलोकविनाशायपौलस्त्येनासिनिर्मितः ॥ तस्मात्त्वमद्यप्रभृतिमृतकल्पःशयिष्यसे ॥ २३ ॥ ब्रह्मशापाभिभूतो थनिपपाताग्रतःप्रभोः ॥ ततःपरमसंभ्रांतोरावणोवाक्यमब्रवीत् ॥ २४ ॥ प्रवृद्धःकांचनोवृक्षःफलकालेनिकृंत्यते ॥ ननप्तारंस्वकंन्याय्यंशप्तुमेवंप्रजापते ॥ २५ ॥ नमिथ्यावचनश्चत्वंस्वप्स्यत्येवनसंशयः ॥ कालस्तुक्रियतामस्यशयने जागरणेतथा ॥ २६ ॥ रावणस्यवचःश्रुत्वास्वयंभूरिदमब्रवीत् ॥ शयिताह्येषषण्मासमेकाहंजागरिष्यति ॥ २७ ॥ एकेनाह्नात्वसौवीरश्चरन्भूमिंबुभुक्षितः ॥ व्यात्तास्योभक्षयेल्लोकान्संवृद्धइवपावकः ॥ २८ ॥ सोसौव्यसनमापन्नः कुंभकर्णमबोधयत् ॥ त्वत्पराक्रमभीतश्चराजासंप्रतिरावणः ॥ २९ ॥ सएषनिर्गतोवीरःशिबिराद्भीमविक्रमः ॥ वानरान्भृशसंक्रुद्धोभक्षयन्परिधावति ॥ ३० ॥

निकट यह प्रार्थना है कि आप इसके जागनें और सोनेका उपयुक्त समय नियत कर दीजिये ॥ २६ ॥ राक्षसपतिके यह वचन सुनकर प्रजापति ब्रह्माजी बोले कि यह छःमहीनेतक सोता रहकर केवल एक दिनके लिये जागा करैगा और फिर दूसरे दिन छैः महीनेके लिये सो जाया करेगा ॥ २७ ॥ जागनेके दिन यह क्षुधासे व्याकुलहो पृथ्वीपर घूमा करैगा और प्रदीप्त अग्निकी समान मुख फैलायकर सब लोकोंको भक्षण करेगा ॥२८॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! इस समय तुम्हारे प्रतापसे भीत और विपदमें पड़कर लंकापति रावणनें कुम्भकर्णको जगवायाहै ॥ २९ ॥ हे रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी ! हम निश्चय कहते हैं कि यह भयंकरविक्रमकारी वीर कुम्भकर्ण अपनी गुफासे निकलकर क्रोधमें भर वानरोके भक्षण करनेंको

आप सब कहीं ऐसा ढंडोरा पिटवादीजिये कि द्विजिह्व, संहारी, कुम्भकर्ण वितर्दन, और मैं (महोदर) यह पांच राक्षस रामचन्द्रका विनाश करनेंके लिये गमन करेंगे ॥ २२ ॥ इस ओर हम रणभूमिमें गमन करके यत्न सहित युद्ध करके यदि आपके शत्रुको जीतसकें तब तो हमको और किसी उपायके करनेकी आवश्यकता न पड़ैगी ॥ २३ ॥ परन्तु यदि हम लोगोंके बड़ाभारी युद्धकरनेंपर भी आपका शत्रु जीवित रह जाय तब हमनें मनमें जो उपाय स्थिर कियाहै उसको ही किया जाय ॥ २४ ॥ वह उपाय यहहै कि हम लोग रामनामाङ्कित तीक्ष्ण बाणोंसे अपनी देहको कटाय अंगोंसे रुधिर वहाय समरभूमिसे यहां आमेंगे ॥ २५ ॥ हमलोग आप पर प्रगट करैंगे कि हम राम लक्ष्मणको भक्षण करके

ततोगत्वावयंयुद्धंदास्यामस्तस्ययत्नतः ॥ जेष्यामोयदितेशत्रून्नोपायैःकार्यमस्तिनः ॥ २३ ॥ अथजीवतिनः शत्रुर्वयंचकृतसंयुगाः ॥ ततःसमभिपत्स्यामोमनसायत्समीक्षितम् ॥ २४ ॥ वयंयुद्धादिहैष्यामोरुधिरेणसमुक्षिताः ॥ विदार्यस्वतनुंबाणैरामनामांकितैःशरैः ॥ २५ ॥ भक्षितोराघवोस्माभिर्लक्ष्मणश्चेतिवादिनः ॥ ततःपादौग्रहीष्यामस्त्वन्नःकामंप्रपूरय ॥ २६ ॥ ततोऽवघोषयपुरेगजस्कंधेनपार्थिव ॥ हतोरामःसहभ्रात्रासंसैन्यइतिसर्वतः ॥ २७ ॥ प्रीतोनामततोभूत्वाभृत्यानांत्वमरिंदम ॥ भोगांश्चपरिवारांश्चकामान्वसुचदापय ॥ २८ ॥ ततोमाल्यानिवासांसिवीराणामनुलेपनम् ॥ देयंचबहुयोधेभ्यःस्वयंचमुदितःपिब ॥ २९ ॥ ततोस्मिन्बहुलीभूतेकौलीनेसर्वतोगते ॥ भक्षितःससुहृद्रामोराक्षसैरितिविश्रुते ॥ ३० ॥

चले आये तिसके पीछे इस कार्यका पुरस्कार पानेंको हम आपके चरणोंमें प्रार्थना करेंगे ॥ २६ ॥ हे महीपाल, तिसके पीछे नगरमें आय सबकहीं हाथीपर एक राक्षसको चढवाय इस प्रकारसे पुकारवादेना कि भ्राता और अपनी सब सैनाके सहित रामचन्द्र मारा गयाहै ॥ २७ ॥ आप मानों ऐसा होनेसे बड़ेही प्रसन्न हुएहैं; इस प्रकारसे दास दासियोंको और नौकरों चाकरोंको भोजनके पदार्थ धन धान्य रत्नादि देना ॥ २८ ॥ तिसके उपरान्त वस्त्र, भूषण, और गन्ध प्रदान कीजियेगा और उनके सन्तोष करानेंको उन्हैं सुरादेना; और आपभी मन सहित आनंदमें मग्नहो सुरा पान करना ॥ २९ ॥ तिसके पीछे सुहृद गणोंके सहित राम लक्ष्मण सब राक्षसोंके सहित भक्षण कर लिये गये;इस प्रकारकी जनश्रुति (अफवाह)

ओरके राक्षसोंको वृक्षोंसे मारनेंलगे ॥ ३८ ॥ वानरगण जब कि वृक्ष और पर्वतोंके शृङ्ग ग्रहण करके लंकाके द्वारपर जाय डटे; तब पर्वतके निकटवाली मेघमाला जिस प्रकार प्रकाशित होतीहै, वैसेही यह वानर प्रकाशित हुए ॥ ३९ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०यु० एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥ इस ओर निद्राके मदसे आकुल विपुल विक्रमकारी राक्षसशार्दूल कुम्भकर्ण शोभायमान राजमार्गमें गमन करनें लगा ॥ १ ॥ वह परम दुर्जय वीर कुम्भकर्ण सहस्र राक्षसोंके साथ जिस समय राजमार्गमें जाय रहाथा, उस समय दोनों ओर जो धवरहरोंकी श्रेणी थीं उनके ऊपरसे कुम्भकर्णके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा होनें लगी ॥ २ ॥ कुम्भकर्णनें इसप्रकारसे गमन करते हुए अति निकट अपने भाई रावणके सुवर्णकी जालियोंसे युक्त, सूर्यकी

ततोहरीणांतदनीकमुग्रंरराजशैलोद्यतवृक्षहस्तम् ॥ गिरेःसमीपानुगतंयथैवमहन्महांभोधरजालमुग्रम् ॥ ३९ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेएकषष्टितमःसर्गः ॥ ६१ ॥ ॥ ७ ॥ सतुराक्षसशार्दूलोनिद्रामदसमाकुलः ॥ राजमार्गंश्रियाजुष्टंययौविपुलविक्रमः ॥ १ ॥ राक्षसानांसहस्रैश्चवृतःपरमदुर्जयः ॥ गृहेभ्यः-पुष्पवर्षेणकीर्यमाणस्तदाययौ ॥ २ ॥ सहेमजालविततंभानुभास्वरदर्शनम् ॥ ददर्शविपुलंरम्यंराक्षसेंद्रनिवेशनम् ॥ ३ ॥ सतत्तदासूर्यइवाभ्रजालंप्रविश्यरक्षोधिपतेर्निवेशनम् ॥ ददर्शदूरेग्रजमासनस्थंस्वयंभुवंशक्रइवासनस्थम् ॥ ४ ॥ भ्रातुःसभवनंगत्वारक्षोगणसमन्वितः ॥ कुंभकर्णःपदन्यासैरकंपयतमेदिनीम् ॥ ५ ॥ सोभिगम्यगृहंभ्रातुःकक्ष्यामभिविगाह्यच ॥ ददर्शोद्विग्नमासीनंविमानेपुष्पकेगुरुम् ॥ ६ ॥ अथदृष्ट्वादशग्रीवःकुंभकर्णमुपस्थितम् ॥ तूर्णमुत्थायसंहृष्टःसन्निकर्षमुपानयत् ॥ ७ ॥

समान प्रकाशमान विपुल और रमणीक गृहको देखा ॥ ३ ॥ जिस प्रकार सूर्य भगवान् बादलके मध्यमें प्रवेश करतेहैं वैसेही उस वीरनें राक्षसपति रावणके स्थानमें प्रवेश करके, देवराजके हंसासनसमासीन ब्रह्माजीके दर्शनकीनाईं सिंहासनपर बैठे हुए अपने बड़े भाई रावणको देखा ॥ ४ ॥ वीरश्रेष्ठ कुम्भकर्ण राक्षसगणोंके साथ जिस समयकि रावणके भवनमें जारहाथा, उससमय उसके प्रति पगके धरनेंसे पृथ्वी कंपायमान होरहीथी ॥ ५ ॥ वीर कुंभकर्णनें गमन कर भवनमें जाय उदासमनसे पुष्पक विमानमें बैठे हुए अपने भ्राताको देखा ॥ ६ ॥ रावणभी आयेहुए कुंभकर्णके दर्शन

जब महोदरने यह कहा तब महाबलवान् कुम्भकर्ण उसकी निन्दा करता हुआ राक्षसराज रावणसे यह वचन बोला ॥ १ ॥ हेमहाराज! आप यथा सुखसे विचरण करैं हम उस दुरात्मा रामचंद्रको वध करके आपका घोर भय दूर करके आपको शत्रुरहित कर देंगे ॥ २ ॥ शूर लोग कालमेंभी विना जलके बादलकी समान कभी गर्जन नहीं करते हमनें जो गर्जन कियाहै;आप संग्रामभूमिमेंभी हमको वही कार्य करते हुए देखेंगे ॥ ३ ॥ अधिक क्या कहैं वीर लोग अपनी बड़ाई करके कभी अपनेको छोटा नहीं बनाते; और वह लोग जो कार्य किया करतेहैं; उसको वह अद्भुत और दूसरेसे न होनेंयोग्य न होनें पर कभी नहीं करते ॥ ४ ॥ हेमहोदर! तुमनें जो वृथा ऐसे वचन कहे यह कायर बुद्धि रहित अपने

सतथोक्तस्तुनिर्भर्त्स्यकुंभकर्णोमहोदरम्॥अब्रवीद्राक्षसश्रेष्ठंभ्रातरंरावणंततः ॥१॥ सोहंतवभयंघोरंवधात्तस्यदुरात्म
नः॥ रामस्याद्यप्रमार्जामिनिर्वैरोहिसुखीभव ॥ २ ॥ गर्जंतिनवृथाशूरानिर्जलाइवतोयदाः ॥ पश्यसंपद्यमानंतुगर्जितं
युधिकर्मणा ॥ ३ ॥ नमर्षयंतिचात्मानंसंभावयितुमात्मना ॥ अदर्शयित्वाशूरास्तुकर्मकुर्वंतिदुष्करम् ॥ ४ ॥ विक्लवा
नांह्यबुद्धीनांराज्ञांपंडितमानिनाम् ॥ रोचतेत्वद्वचोनित्यंकथ्यमानंमहोदर ॥ ५ ॥ युद्धेकापुरुषैर्नित्यंभवद्भिःप्रियवा
दिभिः ॥ राजानमनुगच्छद्भिःसर्वंकृत्यंविनाशितम् ॥ ६ ॥ राजशेषाकृतालंकाक्षीणःकोशोबलंहतम् ॥ राजानमिम
मासाद्यसुहृच्चिह्नममित्रकम् ॥ ७ ॥ एषनिर्याम्यहंयुद्धमुद्यतःशत्रुनिर्णये ॥ दुर्नयंभवतामद्यसमीकर्तुंमहाहवे ॥ ८ ॥
एवमुक्तवतोवाक्यंकुंभकर्णस्यधीमतः ॥ प्रत्युवाचततोवाक्यंप्रहसन्राक्षसाधिपः ॥ ९ ॥

आपको पंडित माननेंवाले, और उजड्ड राजाहीको रुचिकर हो सकतेहैं ॥ ५ ॥ तुम लोग डरपोक और कायर पुरुष हो प्यारे वचनोंसे राजाके मनको सन्तुष्ट रखनाही तुम्हारा कार्यहै। तुम लोगोंसे राजाके कर्त्तव्यकर्मोंकी भली भांति अंगहीनता होतीहै ॥ ६ ॥ हा! लंकापुरीकी कैसी दुर्दशाहै? केवल एक राजाही बचगयेहैं, कोषागार (खजाना) शून्य होगया,सैना मारी गई, और मित्रोंका चिह्न धारण किये शत्रुलोगोंसे महाराज घिररहेहैं ॥ ७॥ हम तुम्हारी इस दुर्नीतको युद्धसे भगानेंके लिये शत्रुके जीतनेंको कृतनिश्चय होकर संग्राममें जातेहैं ॥ ८ ॥ बुद्धिमान् कुम्भ

निहार कर देखो कि वानरोंनें सेतुबांध उसकी सहायतासे सुखपूर्वक समुद्रके पारहो इन सबको वानर सागरकी समान कर दिया ॥ १५ ॥ जो राक्षस बड़े २ प्रधान कहकर प्रसिद्धथे; वही सब रणभूमिमें वानरगणोंसे मारे गयेहैं, परन्तु हमनें वानरोंका मरना एक दिनभी नहीं श्रवण किया, और न कभी पहले हमनें वानरोंको युद्धमें जीता ॥१६॥ इनसेही हमको भय उत्पन्न हुआहै, और इस समय तुम इस शंकटसे हमारा त्राण उद्धार करो तुमहीसे यह विपद नाशको प्राप्त होगी, इसी कारणसे तुमको जगाया गयाहै ॥ १७ ॥ हमारा समस्त खजाना खाली होगयाहै; इसलिये

येराक्षसामुख्यतमाहतास्तेवानरैर्युधि ॥ वानराणांक्षयंयुद्धेनपश्यामिकथंचन ॥ नचापिवानरायुद्धेजितपूर्वाःकदा चन ॥ १६ ॥ तदेतद्भयमुत्पन्नंत्रायस्वेहमहाबल ॥ नाशयत्वमिमानद्यतदर्थंबोधितोभवान् ॥ १७ ॥ सर्वक्षपितकोशंचसत्वमभ्युपपद्यमाम् ॥ त्रायस्वेमांपुरींलंकांबालवृद्धावशेषिताम् ॥ १८ ॥ भ्रातुरर्थेमहाबाहोकुरुकर्मसुदुष्करम् ॥ मयैवंनोक्तपूर्वोहिभ्राताकश्चित्परंतप ॥ १९ ॥ त्वय्यस्तिममचस्नेहःपरासंभावनाचमे ॥ देवासुरेषुयुद्धेषुबहुशो राक्षसर्षभ ॥ त्वयादेवाःप्रतिव्यूह्यनिर्जिताश्चामरायुधि ॥ २० ॥ तदेतत्सर्वमातिष्ठवीर्यंभीमपराक्रम ॥ नहिते सर्वभूतेषुदृश्यतेसदृशोबली ॥ २१ ॥

तुम हमारा उद्धार करो, और बालक बूढ़ेही जिस पुरीमें रहेहैं, ऐसी लंका पुरीकी तुम रक्षा करो ॥ १८ ॥ हेशत्रुओंके नाश करनेवाले ! हे महाबाहो ! हमनें पहले कभी किसी भ्रातासे ऐसे दीन वचन नहीं कहे परन्तु आज तुम हमारा कहना मान अपने भ्राताके लिये अति कठिन कर्म करनेंके लिये तैयार होवो ! ॥ १९ ॥ हेराक्षसश्रेष्ठ ! तुमनें देवासुरसंग्रामके समयमें व्यूह बनाकरके अनेक वार देवताओंको रणभूमिमें पराजित कियाथा; इस कारण तुम्हारा तो हमें बड़ा भारी भरोसा है और हम तुमसे स्नेहभी अधिक करतेहैं ॥ २० ॥ हेभयंकरपराक्रमकारी ! हम त्रिलोकीमें किसी

शत्रुओंको मारनेंवाला वीर कुंभकर्णनें अतिवेगसे काले लोहेका बनाहुआ अति तीक्ष्ण शूल लिया। यह शूल प्रदीप्त, तपाये हुए सुवर्णसे भूषित था ॥ १८ ॥ यह शूल इन्द्रके वज्रकी समान और अशनिके समान भारीथा, देव, दानव, गंधर्व, यक्ष, और पन्नगोंके मारनेंको यह समर्थथा ॥ १९ ॥ बड़ी भारी रत्नमालासे शोभित होनेंके कारण उस शूलसे अग्नि निकल रहीथी ऐसे शत्रुओंके रुधिरसे रँगे हुए शूलको ग्रहण करके ॥ २० ॥ महा तेजस्वी कुम्भकर्णनें रावणसे कहा; हम अकेलेही रणमें जाते हैं, तुम्हारी सैना यहीं पर रहे ॥ २१ ॥ आज हम क्षुधित होनेंके कारण क्रोधित होकर

आददेनिशितंशूलंवेगाच्छत्रुनिबर्हणः ॥ सर्वकालायसंदीप्तंतप्तकांचनभूषणम् ॥ १८ ॥ इंद्राशनिसमप्रख्यं वज्रप्रतिमगौरवम् ॥ देवदानवगंधर्वयक्षपन्नगसूदनम् ॥ १९ ॥ रक्तमाल्यमहादामंस्वतश्चोद्गतपावकम् ॥ आदाय विपुलंशूलंशत्रुशोणितरंजितम् ॥ २० ॥ कुंभकर्णोमहातेजारावणंवाक्यमब्रवीत् ॥ गमिष्याम्यहमेकाकीतिष्ठत्विहबलंमहत् ॥ २१ ॥ अद्यतान्क्षुधितःक्रुद्धोभक्षयिष्यामिवानरान् ॥ कुंभकर्णवचःश्रुत्वारावणोवाक्यमब्रवीत् ॥ २२ ॥ सैन्यैःपरिवृतोगच्छशूलमुद्गरपाणिभिः ॥ वानराहिमहात्मानःशूराःसुव्यवसायिनः ॥ २३ ॥ एकाकिनंप्रमत्तंवानयेयुर्दशनैःक्षयम् ॥ तस्मात्परमदुर्धर्षैःसैन्यैःपरिवृतोव्रज ॥ रक्षसामहितंसर्वंशत्रुपक्षंनिषूदय ॥ २४ ॥ अथासनात्समुत्पत्यस्रजंमणिकृतांतराम् ॥ आबबंधमहातेजाःकुंभकर्णस्यरावणः ॥ २५ ॥

वानर गणोंको भक्षण करैंगे, कुंभकर्णके वचन सुनकर रावणनें कहा ॥२२॥ कि हे कुंभकर्ण! तुम शूल, मुद्गर ग्रहण किये सैनाको साथ लेकर यहांसे जाओ, कारण कि वह वानर गण महाबलवान शूर और रण करनेंमें बड़े निपुणहैं ॥ २३ ॥ तुम सदाही मतवाले रहतेहो; इसलिये तुमको अकेला देखकर वह उसी समय विनाश कर डालेंगे; हम इसी कारणसे कहते हैं कि तुम परम दुर्द्धर्ष सैनाको साथ लेकर राक्षस लोगोंके अहितकारी शत्रु गणोंका विनाश कर आओ ॥ २४ ॥ यह कह महा तेजस्वी रावणनें आसनपरसे उठ मणिकी माला कुंभकर्णके गलेमें पहरायदी ॥ २५ ॥

करके मंत्रियोंके साथ सब कार्योंका आरम्भोपाय पुरुष, द्रव्य, सम्मत, देशकाल विभाग, विपरीतप्रतिकार और कार्यसिद्धि, इन पांचोको विचार करता हुआ कार्य करताहै;वह नीतिमार्गसे कभी चलायमान नहीं होता ॥ ७ ॥जो राजा मंत्रिलोगोंके सहित सभादिके कार्याकार्यका विचार करते हैं, वह बुद्धिबलसे मंत्रिलोगोंके मनका भाव और उनमें कौन यथार्थ सुहृद् और कौन केवल खुशामद करके मनको बहलाया करताहै, यह सब वह जानतेहैं ॥ ८ ॥ हे राक्षसनाथ ! सब लोगोंमें कोई प्रभातकाल, कोई मध्याह्नकाल और कोई रात्रिकाल इन तीनों कालमें यथाक्रमसे धर्म और कामकी सेवा करते हैं, कोई २ एकही समयमें धर्म कामादि रूप द्वंद्वका सेवन करतेहैं; और कोई २ एक कालमेंही तीनोंकी सेवा किया करते हैं ॥ ९ ॥ इन तीनोंमेसे कौन श्रेष्ठहै, इसको जो सुनकरभी नहीं जान सकतेहैं; वह राजाही हो अथवा राजकुमारहीहो, सबके सबही विफल हो

यथागमंचयोराजासमयंचचिकीर्षति ॥ बुध्यतेसचिवैर्बुद्ध्यासुहृदश्चानुपश्यति ॥ ८ ॥ धर्ममर्थंहिकामंवासर्वान्वा रक्षसांपते ॥ भजतेपुरुषःकालेत्रीणिद्वंद्वानिवापुनः ॥ ९ ॥ त्रिषुचैतेषुयच्छ्रेष्ठंश्रुत्वातन्नावबुध्यते ॥ राजावाराजमात्रोवाव्यर्थंतस्यबहुश्रुतम् ॥१०॥ उपप्रदानंसांत्वंचभेदंकालेचविक्रमम् ॥ योगंचरक्षसांश्रेष्ठतावुभौचनयानयौ ॥११॥ कालेधर्मार्थकामान्यःसंमंत्र्यसचिवैःसह ॥ निषेवेतात्मवाँल्लोकेनसव्यसनमाप्नुयात् ॥ १२ ॥ हितानुबंधमालोक्यकुर्यात्कार्यमिहात्मनः ॥ राजासहार्थतत्त्वज्ञैःसचिवैर्बुद्धिजीविभिः ॥ १३ ॥ अनभिज्ञायशास्त्रार्थान्पुरुषाःपशुबुद्धयः॥ प्रागल्भ्याद्वक्तुमिच्छंतिमंत्रिष्वभ्यंतरीकृताः ॥ १४ ॥

जातेहैं और वह बहुश्रुत कहकर नहीं मानाजाता अर्थात् उसका शास्त्रज्ञान व्यर्थ है ॥ १० ॥ हे राक्षसश्रेष्ठ ! साम, दान, भेद, विक्रम पहले कहे हुए पांच योग नीति और अनीति ॥ ११ ॥ और अर्थ धर्म काम सम्बन्धी मंत्रणा मंत्रीलोगोंके साथ उचित समय पर जो बुद्धिमान राजा किया करते हैं उनको कभी दुःख प्राप्त नहीं होता ॥ १२ ॥ बुद्धिमान अर्थके तत्त्वोंको जाननेंवाले मंत्रिलोगोंके सहित अपने शुभ परिणामका विचार करके जो राजा कार्य किया करताहै; उसकी भाग्यलक्ष्मी अचल होकर टिकी रहती है ॥ १३ ॥ परन्तु कोई २ पुरुष किसी प्रकारसे जो परामर्श करनेंमें बुलाये गये, तौ वे पशुबुद्धिलोग मारे ढिठाईके शास्त्रका अर्थ न जाननें वाले पुरुषसे कुछ औरका औरही अर्थ कह देतेहैं; ॥ १४॥

मेघकी समान शब्दायमान रथ, हाथी, घोड़े और रथी लोग उस सैनाके पीछे २ चलनें लगे ॥ ३४ ॥ सर्प, ऊंट, गधे, सिंह, हाथी मृगादि पक्षियोंके ऊपर सवार होहोकर राक्षस लोग महा बलवान कुंभकर्णके पीछे २ गमन करनें लगे ॥ ३५ ॥ इस प्रकारसे वह महोत्कट रुधिरकी गन्धसे मतवाला और तीक्ष्ण शूल धारण किये हुए देव दानवोंका शत्रु कुंभकर्ण चला; उस कालमें उसके मस्तकपर छत्रलग रहाथा, और चारों ओरसे उसके ऊपर फूलोंकी वर्षा हो रहीथी ॥ ३६ ॥ कुंभकर्णके पीछे २ बहुतसे पैदल सारवान महाबलवान भयंकर पराक्रमकारी और भयंकर नेत्रवाले राक्षस हाथोंमें शस्त्र लिये चले ॥ ३७ ॥ राक्षसोंकी आँखें लाल होरहीथीं मूर्त्तिनीले अंजनके ढेरकी समान थी; वह राक्षसगण शूल, खड्ग फरसोंको और

सर्पैरुष्ट्रैःखरैश्चैवसिंहद्विपमृगद्विजैः ॥ अनुजग्मुश्चतंघोरंकुंभकर्णमहाबलम् ॥ ३५ ॥ सपुष्पवर्षैरवकीर्यमाणो धृतातपत्रःशितशूलपाणिः ॥ महोत्कटःशोणितगंधमत्तोविनिर्ययौदानवदेवशत्रुः ॥ ३६ ॥ पदातयश्चबहवोमहा सारामहाबलाः ॥ अन्वयूराक्षसाभीमाभीमाक्षाःशस्त्रपाणयः ॥ ३७ ॥ रक्ताक्षाःसुबहुव्यामानीलांजनचयोपमाः ॥ शूलानुद्यम्यखड्गांश्चनिशितांश्चपरश्वधान् ॥ ३८ ॥ भिंदिपालांश्चपरिघान्गदाश्चमुसलानिच ॥ तालस्कंधांश्चविपु लान्क्षेपणीयान्दुरासदान् ॥ ३९ ॥ अथान्यद्वपुरादायदारुणंघोरदर्शनम् ॥ निष्पपातमहातेजाःकुंभकर्णोमहाबलः ॥ ॥ ४० ॥ धनुःशतपरीणाहःसषट्शतसमुच्छ्रितः ॥ रौद्रःशकटचक्राक्षोमहापर्वतसन्निभः ॥ ४१ ॥ सन्निपत्यचरक्षांसि दग्धशैलोपमोमहान् ॥ कुंभकर्णोमहावक्त्रःप्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ४२ ॥

दूसरे अस्त्र शस्त्र धारण करके गमन करनें लगे ॥ ३८ ॥ और भिन्दिपाल, परिघ, गदा, मूसल, तालस्कन्ध बड़े २ क्षेपणीय शस्त्रादि लिये वह दुष्ट राक्षस चले ॥ ३९ ॥ इसके उपरान्त महावीर कुम्भकर्णनें इस समस्त सैनाको साथ ले भयंकर मूर्त्ति धारण कर युद्ध करनेंके लिये यात्रा की॥ ४० ॥ उस समय कुंभकर्णका देह शत धनुष अर्थात् तीन शत हाथही चौडाईमें था, और एक शत छैः धनुष अर्थात् ११८ हाथका लंबाथा छकड़ेके पहियोंकी समान नेत्र थे; और पर्वतकी समान दिखाई देताथा ॥ ४१ ॥ भस्म हुए पर्वतकी समान बड़े भारी मुखवाला कुंभकर्ण व्यूहकी रचना

चढ़ाय क्रोध प्रगटकर यह कहनेंलगा ॥ २२ ॥ हे कुम्भकर्ण ! हम तुम्हारे गुरु और आचार्यकी समान पूजनीयहैं सो तुम हमको उलटा उपदेश देतेहो ! जो कुछभीहो इस वार्त्तालापसे क्या प्रयोजनहै ? जो कुछ हमनें कहा उसको तुम पूरा करो ॥ २३ ॥ और हमने, विभ्रमसे चित्तके मोहसे और बल वीर्यके घमंडके मोहसे वशमें होकर पहले जो तुम सबका उपदेश नहीं सुना; सो उसही उपदेशको अब फिरसे कहनेंकी क्या आवश्यकताहै ? ॥ २४ ॥ वीत गये हुए कार्यके लिये सोच करना कर्तव्य नहीं है,कारणकि जो वीतगया वह तो वीतही गया, इसलिये हे वीर ! इस समय जो करना उचितहो; उसकीही चिन्ता तुम करो; हमको अन्याय करनेंसे जो दुःख उत्पन्न हुआहै वह तुम अपने विक्रमसे दूर करो ॥ २५ ॥ यदि

मान्योगुरुरिवाचार्यःकिंमांत्वमनुशाससि ॥ किमेवंवाक्छ्रमंकृत्वायद्युक्तंतद्विधीयताम् ॥ २३ ॥ विभ्रमाच्चित्तमोहाद्वाबलवीर्याश्रयेणवा ॥ नाभिपन्नमिदानींयद्व्यर्थातस्यपुनःकथा ॥ २४ ॥ अस्मिन्कालेतुयद्युक्तंतदिदानींविचिंत्यताम् ॥ ममापनयजंदुःखंविक्रमेणसमीकुरु ॥ २५ ॥ यदिखल्वस्तिमेस्नेहोविक्रमंवाधिगच्छसि ॥ यदिकार्यममैतत्तेहृदिकार्यतमंमतम् ॥२६॥ ससुहृद्योविपन्नार्थंदीनमभ्युपपद्यते ॥ सबंधुर्योपनीतेषुसाहाय्यायोपकल्पते ॥ २७ ॥ तमथैवंब्रुवाणंसवचनंधीरदारुणम् ॥ रुष्टोऽयमितिविज्ञायशनैःश्लक्ष्णमुवाचह ॥ २८ ॥ अतीवहिसमालक्ष्यभ्रातरंक्षुभितेंद्रियम् ॥ कुंभकर्णःशनैर्वाक्यंबभाषेपरिसांत्वयन् ॥ २९ ॥ शृणुराजन्नवहितोममवाक्यमरिंदम ॥ अलंराक्षसराजेंद्रसंतापमुपपद्यते ॥ रोषंचसंपरित्यज्यस्वस्थोभवितुमर्हसि ॥ ३० ॥

हमारे प्रति तुम्हारा स्नेहहो, यदि तुम्हारे शरीरमें बल विक्रमहो; यदि हमारा यह कार्य तुम्हारे मनमें बड़ा भारी कार्यहो तौ हमको इस दुःखसे छुटाओ ॥२६॥ जोविपदमें पड़े हुए और दीनभावापन्न लोगोंके ऊपर दया कियाकरतेहैं वह सुहृदहै परन्तु नीतिके मार्गसे चलायमान होंनेपरभी जो सहायता कियाकरतेहैं बन्धु उनकोही कहतेहैं ॥२७॥ रावणके इस प्रकार धीर और करुणा वचन कहनेंपर कुंभकर्णनें (भाई साहब क्रोधित होगये) यह जानकर धीरे २ मधुर वाणीसे कहनेका अभिलाष किया॥२८॥ महावीर कुम्भकर्ण अपने भ्राताको महाविकलेन्द्रिय देखकर समझाता बुझाताहुआ कुंभकर्ण बोला ॥ २९ ॥ हे राजन् ! एकाग्रचित्त होकर हमारे वचन सुनो ऐसे संतापित होनेंकी कुछ आवश्यकता नहीं है; क्रोध

परन्तु कालवशसे प्रेरित हुआ कुंभकर्ण उन रोमहर्षण बडे २ उत्पातोंको कुछभी न समझता हुआ चला ही गया ॥ ५२ ॥ पर्वताकार कुंभकर्ण पैदल ही चलकर कोटकी भीतके बाहर आया कि उसमें मेघमाला की समान अद्भुत वानरोंकी सैनाको देखा ॥५३॥ पर्वताकार राक्षस वीर कुंभकर्णको निहारकर पवनसे उडाये हुए मेघकी समान सब वानर लोग इधर उधर भागने लगे ॥ ५४ ॥ वीर कुंभकर्ण प्रचंड वानरोंकी सैनाको मेघ जालकी समान इधर उधर भागता हुआ देखकर हर्षके मारे मेघकी समान गंभीर शब्दसे सिंहनाद करनें लगा ॥ ५५ ॥ जिस प्रकार आकाशमें मेघोंका

अचिंतयन्महोत्पातानुदितान्रोमहर्षणान् ॥ निर्ययौकुंभकर्णस्तुकृतांतबलचोदितः ॥ ५२ ॥ सलंघयित्वाप्राकारंप द्भ्यांपर्वतसन्निभः ॥ सददर्शघनप्रख्यंवानरानीकमद्भुतम् ॥ ५३ ॥ तेदृष्ट्वाराक्षसश्रेष्ठंवानराःपर्वतोपमम् ॥ वायुनुन्नाइव घनाययुःसर्वदिशस्तदा ॥ ५४ ॥ तद्वानरानीकमतिप्रचंडंदिशोद्रवद्भिन्नमिवाभ्रजालम् ॥ सकुंभकर्णःसमवेक्ष्यहर्षान्न नादभूयोघनवद्घनाभः ॥ ५५ ॥ तेतस्यघोरंनिनदंनिशम्ययथानिनादंदिविवारिदस्य ॥ पेतुर्धरण्यांबहवःप्लवंगानि कृत्तमूलाइवशालवृक्षाः ॥ ५६ ॥ विपुलपरिघवान्सकुंभकर्णोरिपुनिधनायविनिःसृतोमहात्मा ॥ कपिगणभयमाददत्सु भीमंप्रभुरिवकिंकरदंडवान्युगांते ॥ ५७ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०युद्धकांडेपंचषष्टितमःसर्गः ॥ ६५ ॥ ॥ छ ॥ सलंघयित्वाप्राकारंगिरिकूटोपमोमहान् ॥ निर्ययौनगरात्तूर्णंकुंभकर्णोमहाबलः ॥ १ ॥

गर्जना शब्द हुआ करता है ऐसेही कुंभकर्ण की घोर सिंहनाद सुनकर वानरोंमेंसें बहुतसे जड़कटे शाल वृक्षकी समान पृथ्वीपर गिर पडे ॥ ५६ ॥ इस प्रकारसे शत्रुका विनाश करनेंके लिये आया हुआ बड़ाभारी शूल हाथमें लिये हुए महा बलवान कुंभकर्ण किंकर गणोंके साथ प्रलयकालीन दंड हाथमें लिये शंकरजीकी समान वानर लोगोंको भयंकर भय उत्पन्न करानें लगा ॥ ५७ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०यु० पंचषष्टितमःसर्गः ॥ ६५ ॥ इसके उपरान्त पर्वताकार महावीर कुंभकर्ण लंकाके प्राकार (कोटकीभीत) को लांघ अति शीघ्रता पूर्वक नगरके बाहर निकला ॥ १ ॥

हे अनघ! कैसा आश्चर्यहै कि रामचंद्रके विनाशकी अभिलाष किये यह समस्त राक्षसगण व हम यह सबही आपको अनेक प्रकारसे समझा रहेहैं, तथापि आप क्यों ऐसे व्यथित होतेहैं ॥ ३९ ॥ हेराक्षसोंके नाथ! रामचंद्रके लिये आपको भय अच्छा! वह पहले हमारा नाश करे पीछे आपका अधिक क्या कहैं यदि हम पहले मारे जांय तौ हमको इसकेलिये कुछ संतापित न होंना चाहिये ॥ ४० ॥ हे शत्रुओंके तपानेवाले! हे अतुल विक्रम! इस समय जैसी इच्छाहो वैसीही आज्ञा हमको दीजिये। शत्रुओंके साथ युद्ध करनेंके लिये आपके जानेंका क्या प्रयोजनहै अब और किसीको युद्धमें भेजनेंके लिये न देखिये ॥ ४१ ॥ हमही अकेले आपके महाबलवान शत्रुका प्राण संहार कर डालेंगे यदि इन्द्र, यम, अग्नि, वायु ॥ ४२॥ कु

कथंचराक्षसैरेभिर्मयाचपरिसांत्वितः ॥ जिघांसुभिर्दाशरथिंव्यथसेवंसदानघ ॥ ३९ ॥ मांनिहत्यकिलत्वांहिनिह निष्यतिराघवः ॥ नाहमात्मनिसंतापंगच्छेयंराक्षसाधिप ॥ ४० ॥ कामंत्विदानीमपिमांव्यादिशत्वंपरंतप ॥ नपरःप्रे क्षणीयस्तेयुद्धायातुलविक्रम ॥ ४१ ॥ अहमुत्सादयिष्यामिशत्रूंस्तवमहाबलान् ॥ यदिशक्रोयदियमोयदिपावकमा रुतौ ॥ ४२ ॥ तानहंयोधयिष्यामिकुबेरवरुणावपि ॥ गिरिमात्रशरीरस्यशितशूलधरस्यमे ॥ ४३ ॥ नर्दतस्तीक्ष्णदंष्ट्र स्यबिभीयाद्वैपुरंदरः॥अथवात्यक्तशस्त्रस्यमृद्नतस्तरसारिपून् ॥ ४४ ॥ नमेप्रतिमुखःकश्चित्स्थातुंशक्तोजिजीविषुः॥ नैवशक्त्यानगदयानासिनानिशितैःशरैः ॥ ४५ ॥ हस्ताभ्यामेवसंरभ्यहनिष्यामिसवज्रिणम् ॥ यदिमेमु ष्टिवेगंसराघवोद्यसहिष्यति ॥ ४६ ॥

बेर और वरुण यह समस्तभी हमारे विमुख युद्धमें खड़े होजांय तौ हम उनकोभी संहार करेंगे युद्ध करनेंकी कथा तौ दूर रहे जिस समय हम तीक्ष्ण शूल धारण करके खड़े होजांयगे तौ उस कालमें हमारा यह पर्वताकार शरीर ॥ ४३ ॥ और तीक्ष्ण दंत देख व सिंहनाद श्रवण करके इन्द्र भी डरकर भाग जायगा ; अथवा अधिक कहनेंकी क्या आवश्यकताहै, जबकि हम अस्त्र शस्त्रोंको चलाय २ कर शत्रुओंको मलते होंगे ॥ ४४ ॥ उस कालमें अपने जीवन बचानेंकी आशा किये कोई जन हमारे सन्मुख टिकनेंके लिये समर्थ न होगा; न शक्ति, न गदा, न असि, न तीखे बाण, इनमेंसे किसीकोभी हम नहीं चाहते ॥ ४५ ॥ हम क्रोधित होकर केवल अपनी बाहोंके बलहीसे जो इन्द्रभी हो तौ उसकोभी मार डालेंगे, यदि वह

२८

परन्तु महाबलवान् कुम्भकर्ण बड़े २ पर्वतोंके शृङ्ग, शिला, और फूले फले हुए वृक्षोंसे ताड़ित होकरभी क्षणभरके लियेभी चलायमान नहीं हुआ ॥ १० ॥ अधिक करके शिला और वृक्ष फूले हुए उसके शरीर पर गिर खंड २ हो पृथ्वीपर गिरनें लगे ॥ ११ ॥ अग्निके वनको जलानेंकी समान क्रोधमें भरकर महा तेजस्वी कुंभकर्णभी वानरोंकी उस सेनाको अति यत्नके साथ मथनें लगा ॥ १२ ॥ उस कालमें बहुतसे वानरगण अरुण रंगके पुष्पोंसे शोभित वृक्षोंकी समान लाल २ रुधिरसे देह भिगाये पृथ्वीपर गिर २ कर शयन करनें लगे ॥ १३ ॥ उनमेंसे कोई २ वानर किसी ओरको न देखकर भागते हुए लांघनेंके अभिप्रायसे समुद्रमें गिरनें लगे; और कोई २ सघन वनोंमें छिप गये ॥ १४ ॥ अधिक

प्रांशुभिर्गिरिशृंगैश्चशिलाभिश्चमहाबलाः ॥ पादपैःपुष्पिताग्रैश्चहन्यमानोनकंपते ॥ १० ॥ तस्यागात्रेषुपतिताभिद्यंतेब हवःशिलाः ॥ पादपाःपुष्पिताग्राश्चभग्नाःपेतुर्महीतले ॥ ११ ॥ सोपिसैन्यानिसंक्रुद्धोवानराणांमहौजसाम् ॥ ममंथ परमायत्तोवनान्यग्निरिवोत्थितः ॥ १२ ॥ लोहितार्द्रास्तुबहवःशेरतेवानरर्षभाः ॥ निरस्ताःपतिताभूमौताम्रपुष्पाइव द्रुमाः ॥ १३ ॥ लंघयंतःप्रधावंतोवानरानावलोकयन् ॥ केचित्समुद्रेपतिताःकेचिद्गगनमास्थिताः ॥ १४ ॥ वध्य मानास्तुतेवीराराक्षसेनचलीलया ॥ सागरंयेनतेतीर्णाःपथातेनैवदुद्रुवुः ॥ १५ ॥ तेस्थलानितदानिम्नंविवर्णवदना भयात् ॥ ऋक्षावृक्षान्समारूढाःकेचित्पर्वतमाश्रिताः ॥ १६ ॥ निपेतुःकेचिदपरेकेचिन्नैवावतस्थिरे ॥ केचिद्भूमौनिपतिताः केचित्सुप्तामृताइव ॥ १७ ॥ तान्समीक्ष्यांगदोभग्नान्वानरानिदमब्रवीत् ॥ अवतिष्ठतयुध्यामोनिवर्तध्वंप्लवंगमाः ॥ १८ ॥

क्या कहें उसकालमें अनेक वानर वीर उस राक्षस कुंभकर्णसे लीला सहित मारे जाकर मरनेके निकट पहुंच जिस मार्गसे समुद्रके पार हुएथे उसी मार्गसे भागनें लगे ॥ १५ ॥ रीछ गणभी भयके मारे विवर्ण मुखहो कोई २ गुफामें प्रवेश करगये, कोई २ वृक्षोंपर चढ़े, और कोई २ पर्वतोंपर आरोहण करते हुए ॥ १६ ॥ कोई २ पर्वतों परसे नीचे उतर आये और कोई २ नीचे नहीं उतरे वही पर रहे; कोई २ मृतक होगये, और कोई २ मृतक तुल्य होकर पृथ्वीपर सोरहे ॥ १७ ॥ तब अंगदजी वानरोंकी यह अवस्था देखकर उनसे बोले तुम लोग लौटो, हम फिर युद्ध करेंगे ॥ १८ ॥

हेराजन्! हम दशरथकुमार रामचंद्रको वध करके आपको असीम सुख प्राप्त करनेंके लिये चले लक्ष्मणके सहित रामचंद्रका विनाश करके हम समस्त वानरोंके यूथपोंको खालेंगे ॥ ५५ ॥ इस समय आप मनके सुखसे मदिरा पानकर स्त्रियोंके सहित विहार करते रहैं, और जितनाभर मनका दुःखहै वह आप छोड़दें । आप निश्चय रक्खें कि यमराजके भवनमें रामचन्द्रके पहुंच जानेंपर सीता सदाके लिये आपके वशमें होजायगी ॥ ५६ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥ विशालबाहु बड़े भारी देहवाले महाबलवान् कुम्भकर्णके ऐसे वचन सुन कर राक्षस महोदर कहने लगा॥१॥हे कुंभकर्ण! तुम बड़े भारी कुलमें जन्मे तौ हो परन्तु ढिठाई और गर्वके मारे तुम यथार्थ अवस्थाको नहीं जान सकते,

वधेनतेदाशरथेःसुखावहंसुखंसमाहर्तुमहंव्रजामि ॥ निहत्यरामंसहलक्ष्मणेनखादामिसर्वान्हरियूथमुख्यान् ॥ ५५ ॥ रमस्वराजन्पिबचाद्यवारुणींकुरुष्वकृत्यानिविनीयदुःखम् ॥ मयाद्यरामेगमितेयमक्षयंचिरायसीतावशगाभविष्यति ॥ ५६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेत्रिषष्टितमःसर्गः ॥ ६३ ॥ ॥ छ ॥ तदुक्तमतिकायस्यबलिनोबाहुशालिनः ॥ कुंभकर्णस्यवचनंश्रुत्वोवाचमहोदरः ॥ १ ॥ कुंभकर्णकुलेजातोधृष्टप्राकृतदर्शनः ॥ अवलिप्तोनशक्नोषिकृत्यंसर्वत्रवेदितुम् ॥ २ ॥ नहिराजानजानीतेकुंभकर्णनयानयौ ॥ त्वंतुकैशोरकाद्धृष्टःकेवलंवक्तुमिच्छसि ॥ ३ ॥ स्थानंवृद्धिंचहानिंचदेशकालविधानवित् ॥ आत्मनश्चपरेषांचबुध्यतेराक्षसर्षभः ॥ ४ ॥ यत्त्वशक्यंबलवतावक्तुंप्राकृतबुद्धिना ॥ अनुपासितवृद्धेनकःकुर्यात्तादृशंनरः ॥ ५ ॥

इसी कारणसे कौन समय क्या करना चाहिये यहभी तुम नहीं जानते॥ २ ॥हमारे राजा क्या नीति अनीतिको नहीं जानतेहैं;तुम बालक पनसेही ढीठहो, इसी कारणसे ऐसे अनर्थक वचनोंका जाल फैलाया करतेहो॥३॥राक्षसराज देश और कालके विभागको जानतेहैं;इनसे अपने ओरकी और शत्रुके ओरकी उन्नति छिपी नहींहै,और अपने पक्षके क्षय वृद्धिके अभावमें किसप्रकारसे रहना होताहै,इन सब बातोंकोही यह जानतेहैं ॥ ४ ॥ जिसनें कभी बड़े बूढेकी पूजानहीं की ऐसी प्राकृत बुद्धिवाले और बलसे गर्वित लोग जो कार्य किया करतेहैं,क्या नीति जाननेंवाले लोग वैसे कार्योंको कर सकतेहैं॥५॥

लोगोंका नाश करसके तौ इस लोकमें अतुल कीर्त्तिको प्राप्त करेंगे ॥२५॥ जिस प्रकार पतंग दीप्तिमान अग्निके निकट होकर अपने जीवनकी रक्षा
करनेमें समर्थ नहीं होता, वैसेही कुंभकर्णभी रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीके निकट आयकर फिर जीता हुआ लंकाको लौटकर नहीं जासकेगा॥२६॥
विशेष करके हम लोग महावीर और बहुत सारे होकरभी यदि एक राक्षससे भय पायकर भाग जांयगे और इस प्रकार अपने प्राणोंकी रक्षाकरेंगे
तौ इस्से हमारा यश नष्ट होजायगा ॥ २७ ॥ कनकका बाजू पहरे शूर श्रेष्ठ अंगदजीके यह वचन सुन भागकर चले जाते हुए वानर लोग शूर
गणोंके आगे निन्दा पानेके योग्य वचन बोले ॥ २८ ॥ हे वीरश्रेष्ठ! महाबलवान् कुम्भकर्ण अति घोर संग्राम कर रहाहै, इस समय हम लोग उसके
सन्मुख किसी प्रकारसे खड़े नहीं हो सकते हैं, जो कुछभीहो हमें अपना प्राण अत्यन्त प्याराहै;इस कारण भाग जानेमेंही हमारी भलाई है ॥ २९ ॥
नकुंभकर्णःकाकुत्स्थंदृष्ट्वाजीवन्गमिष्यति ॥ दीप्यमानमिवासाद्यपतंगोज्वलनंयथा ॥ २६ ॥ पलायनेनचोद्दिष्टाः
प्राणान्रक्षामहेवयम् ॥ एकेनबहवोभग्नायशोनाशंगमिष्यति ॥ २७ ॥ एवंब्रुवाणंतंशूरमंगदंकनकांगदम् ॥ द्रवमा
णास्ततोवाक्यमूचुःशरविगर्हितम् ॥ २८ ॥ कृतंनःकदनंघोरंकुंभकर्णेनरक्षसा ॥ नस्थानकालोगच्छामोदयितंजी
वितंहिनः ॥ २९ ॥ एतावदुक्त्वावचनंसर्वेतेभेजिरेदिशः ॥ भीमंभीमाक्षमायांतंदृष्ट्वावानरयूथपाः॥ ३० ॥ द्रवमाणास्तु
तेवीराअंगदेनवलीमुखाः ॥ सांत्वनैश्चानुमानैश्चततःसर्वेनिवर्तिताः ॥ ३१ ॥ प्रहर्षमुपनीताश्चवालिपुत्रेणधीमता ॥
आज्ञाप्रतीक्षास्तस्थुश्चसर्वेवानरयूथपाः ॥ ३२ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेषट्ष
ष्टितमःसर्गः ॥ ६६ ॥ ७ ॥ तेनिवृत्तामहाकायाःश्रुत्वांगदवचस्तदा ॥ नैष्ठिकींबुद्धिमास्थायसर्वेसंग्रामकांक्षिणः ॥ १ ॥
वानरोंके यूथपति भयंकर नेत्रवाले भयंकर रूपवान कुम्भकर्णको आया हुआ देखकर केवल इतनाही कहकर चारों ओरको भागने लगे ॥ ३० ॥
परन्तु अंगदजीनें समझाय बुझाय लालच दिवाय, उन भागते हुए वानर गणोंके यूथनाथोंको किसी प्रकारसे फिर लौटारा ॥ ३१ ॥ तब बुद्धिमान
अंगदजीने उन सब वानरोंको उत्साहित किया, और यूथपति लोगभी युद्ध करनेके लिये वाट जोहनें लगे ॥ ३२ ॥ (इसके उपरान्त शरभ,
मैन्द धूम्र, नील, कुमुद, सुषेण, गवाक्ष, रम्भ, तार, द्विविद और पवनकुमार हनुमानादि मुख्य २ वानर अतिशीघ्रतासे समरभूमिकी ओर चले)
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि० युद्धकांडे षट्षष्टितमः सर्गः॥६६॥अंगदजीके वचन सुनकर समस्त वानर लौटपडे; और अपनी मृत्युका

भयसे भीत होकर ऐसे छिपे हुएहैं कि तुम अबभी उनको युद्धमें आया हुआ नहीं देखोगे ॥ १३ ॥ आहा ! कैसे आश्चर्यकी बातहै कि तुम जान बूझकर भी क्रोधित होकर सोये हुए केसरी और श्रेष्ठ सर्पकी समान दशरथकुमार रामचंद्रको जगानेकी इच्छा करते हो ॥ १४ ॥ जो रामचंद्र अपने तेजसे प्रदीप्त हैं और क्रोधवश होनेके कारण अत्यन्त दुर्द्धर्ष हैं सो कौन पुरुष मृत्युकी समान सहन करनेके अयोग्य उन वीरश्रेष्ठके निकट बढ़नेकी इच्छा करताहै॥१५॥हे तात!यह समस्त राक्षस गण इकट्ठे होकर रामचंद्रके सन्मुख टिक कर जीते हुए नहीं रह सकते हैं हमेंतो इसमें भी सन्देहहै इसलिये रामचंद्रसें युद्ध करनेके लिये अकेले तुम्हारा जाना हमारी सम्मतिमें नहीं आता॥१६॥स्वयं हीनबल होकरभी कौन पुरुष अपना जीवही देनेंके लिये

तंसिंहमिवसंक्रुद्धंरामंदशरथात्मजम् ॥ सर्पंसुप्तमहोबुद्ध्वाप्रबोधयितुमिच्छसि ॥ १४ ॥ ज्वलंतंतेजसानित्यंक्रोधेनच दुरासदम् ॥ कस्तंमृत्युमिवासह्यमासादयितुमर्हति ॥ १५ ॥ संशयस्थमिदंसर्वंशत्रोःप्रतिसमासने ॥ एकस्यगमनं तातनहिमेरोचतेभृशम्॥१६॥हीनार्थस्तुसमृद्धार्थंकोरिपुंप्राकृतंयथा ॥ निश्चितंजीवितत्यागेवशमानेतुमिच्छति॥१७॥ यस्यनास्तिमनुष्येषुसदृशोराक्षसोत्तम ॥ कथमाशंससेयोद्धुंतुल्येनेंद्रविवस्वतोः ॥ १८ ॥ एवमुक्त्वातुसंरब्धंकुंभकर्णंमहोदरः ॥ उवाचरक्षसांमध्येरावणंलोकरावणम् ॥ १९ ॥ लब्ध्वापुरस्ताद्वैदेहींकिमर्थंत्वंविलंबसे ॥ यदीच्छसि तदासीतावशगातेभविष्यति ॥ २० ॥ दृष्टःकश्चिदुपायोमेसीतोपस्थानकारकः ॥ रुचितश्चेत्स्वयाबुद्ध्याराक्षसेंद्रततः शृणु ॥ २१ ॥ अहंद्विजिह्वःसंह्रादीकुंभकर्णोवितर्दनः ॥ पंचरामवधायैतेनिर्यांतीत्यवघोषय ॥ २२ ॥

दूसरे प्राकृत शत्रुकी समान बलवान शत्रुको अपने वशमे लानेंकी इच्छा कर सकताहै ? ॥ १७ ॥ हे राक्षसोंमें श्रेष्ठ ! त्रिलोकीमें जिनकी समान कोईभी नहीं है तुम किसलिये सूर्य और इन्द्रकी समान इन इक्ष्वाकुवंशावतंस श्रीरामचन्द्रजीके साथ अकेलेही युद्ध करनेंका अभिलाष करतेहो ॥ १८ ॥ राक्षस महोदरनें क्रोधित होकर कुम्भकर्णसे ऐसा कह राक्षसोंके बीचमें बैठे हुए फिर लोगोंके रुवानें वाले रावणसे कहा ॥ १९ ॥ आप सीताको प्राप्त करनेंमें किसलिये देर कर रहे हैं, यदि आपकी इच्छाहो तौ सीता इसी समय आपके वशमें होसकतीहै ॥ २० ॥ हमनें सीताको वशमें करनेंका एक उपाय स्थिर कियाहै; यदि आपकी बुद्धिमेंभी वह भला ज्ञातहो तौ उसको सुनकर आप कीजिये ॥ २१ ॥ वह उपाय यहहै कि

कार कुम्भकर्णकी ओर दौड़ा ॥ ९ ॥ उस वानर श्रेष्ठनें पर्वतका शिखर उखाड़तेही कुम्भकर्ण पर चलाया, परन्तु वह पर्वतका शिखर कुम्भकर्णके ऊपर न गिरके उसकी सैनापर गिरा ॥ १० ॥ उस पर्वत शृङ्गके गिरनेंसे उस सैनाके अश्व, गज, और रथ समस्त चूर्ण होगये । तब वानर द्विविद और एक पर्वतका शृङ्ग चलायकर और राक्षसोंका नाश करनें लगे ॥ ११ ॥ वानर श्रेष्ठ द्विविदके चलाये शैल शृङ्गनें अत्यन्त वेगसे गिरकर राक्षसोंके रथ सारथियोंके सहित चूर्णकर डाले ॥ क्षण भरमें रण भूमि राक्षसोंके रुधिरसे गीली होगई ॥१२॥ तब रणमें बैठे हुए महावीर राक्षस लोग भयंकर सिंहनाद करके कालाग्निकी समान बाण चलाय २ वानरोंका नाश करनें लगे ॥ १३ ॥ इस ओर महा बलवान् वानर गणभी बड़े वृक्षोंको

तंसमुत्पाट्यचिक्षेपकुंभकर्णायवानरः ॥ तमप्राप्यमहाकायंतस्यसैन्येपतत्ततः ॥ १० ॥ ममर्दाश्वान्गजांश्चापिरथां श्चापिगजोत्तमान् ॥ तानिचान्यानिरक्षांसिएवंचान्यद्गिरेःशिरः ॥ ११ ॥ तच्छैलवेगाभिहतंहताश्वंहतसारथिम् ॥ रक्षसांरुधिरक्लिन्नंबभूवायोधनंमहत् ॥ १२ ॥ रथिनोवानरेंद्राणांशरैःकालांतकोपमैः ॥ शिरांसिनदतांजह्रुःसहसाभीमनिःस्वनाः ॥१३॥ वानराश्चमहात्मानःसमुत्पाट्यमहाद्रुमान् ॥ रथानश्वान्गजानुष्ट्रान्राक्षसानभ्यसूदयन् ॥१४॥ हनूमाञ्छैलशृंगाणिशिलाश्चविविधान्द्रुमान् ॥ ववर्षकुंभकर्णस्यशिरस्यंबरमास्थितः ॥ १५ ॥ तानिपर्वतशृंगाणिशूलेनसबिभेदह ॥ बभंजवृक्षवर्षंचकुंभकर्णोमहाबलः ॥ १६ ॥ ततोहरीणांतदनीकमुग्रंदुद्रावशूलंनिशितंप्रगृह्य ॥ तस्थौसतस्यापततःपुरस्तान्महीधराग्रंहनुमान्प्रगृह्य ॥ १७ ॥ सकुंभकर्णंकुपितोजघानवेगेनशैलोत्तमभीमकायम् ॥ संचुक्षुभेतेनतदाभिभूतोमेदार्द्रगात्रोरुधिरावसिक्तः ॥ १८ ॥

उखाड़कर रथ, अश्व, हाथी, ऊंट, और राक्षसोंको विध्वंश करनें लगे ॥१४॥ महावीर हनुमानजीनें आकाश मार्गमें टिककर पर्वतोंके शृङ्ग विविध शिलाखंड और अनेक वृक्ष कुम्भकर्णके मस्तकपर चलाये ॥ १५ ॥ राक्षसवीर महाबलवान कुंभकर्णने देखते २ इन सब शैल शृंगादिकोंको शूलसे खंड २ कर डाला और पलक मारतेमे वृक्षादिकोंको चूर्ण करदिया ॥ १६ ॥ इसके उपरान्त कुंभकर्ण तीक्ष्ण शूल हाथमें लेकर वानर सैनाकी ओर दौड़ा, यह देखकर हनुमानजी एक बड़ा भारी पर्वतका शृङ्ग ग्रहण करके उसके सन्मुख खडे रहे ॥१७॥ तब हनुमानजीनें अत्यन्त क्रोधमें

जब सब ओर फैलेगी,तब इसको सीताभी सुनेंगी,॥३०॥तब आप अशोक वनमें प्रवेश करके एकान्तमें सीताको समझाना बुझाना और धन धान्य रत्न और कामना करने लायक वस्तुओंसे लुभाना ॥ ३१ ॥ हे राजन्! नाथ हीन सीताका अभिलाष होनेपरभी ऐसे शोकके उत्पन्न करानें वालेसे धोखाखाय आपके वशमें होजायगी ॥ ३२ ॥ जानकी अपने प्यारे पतिको नाश हुआ देख सब भांतिकी आशा छोड़ स्त्रीस्वभावकी लघुताईसे आपके वशमें पड़कर आपहीका आश्रय ग्रहण करैंगी ॥ ३३ ॥उन सीतानें पहले अनेक प्रकारके भोग सुख भोगेथे, कभी दुःखका मुखभी नहीं देखा, इस समय वह महादुःख भोग रही हैं; बस वह यह समझकर कि आपके निकट रहनेंसे बड़ा सुख मिलेगा; आपके वशमें होनेंके लिये

प्रविश्याश्वास्यचापित्वंसीतांरहसिसांत्वयन् ॥ धनधान्यैश्चकामैश्चरत्नैश्चैनांप्रलोभय ॥ ३१ ॥ अनयोपधयाराजन्भूयःशोकानुबंधया ॥ अकामात्वद्वशंसीतानष्टनाथागमिष्यति ॥ ३२ ॥ रमणीयंहिभर्तारंविनष्टमधिगम्यसा ॥ नैराश्यात्स्त्रीलघुत्वाच्चत्वद्वशंप्रतिपत्स्यते ॥ ३३ ॥ सापुरासुखसंवृद्धासुखार्हादुःखकर्षिता ॥ त्वय्यधीनंसुखंज्ञात्वासर्वथैवागमिष्यति ॥ ३४ ॥ एतत्सुनीतंममदर्शनेनरामंहिदृष्ट्वैवभवेदनर्थः ॥ इहैवतेसेत्स्यतिमोत्सुकोभूर्महानयुद्धेनसुखस्यलाभः ॥ ३५ ॥ अनष्टसैन्योह्यनवाप्तसंशयोरिपुंत्वयुद्धेनजयञ्जनाधिप ॥ यशश्चपुण्यंचमहान्महीपतिःश्रियंचकीर्तिंचचिरंसमश्नुते॥ ३६ ॥इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेचतुःषष्टितमःसर्गः ॥ ६४ ॥

असम्मत नहीं होगी ॥ ३४ ॥ हे महाराज! हमारे विचारमें तो यही बात उचित जान पड़ताहै और इससेही आपका अभिलाष पूर्ण होगा; इस कारण आप संग्रामभूमिमें रामचन्द्रके सहित युद्ध करनेंका अभिलाष न कीजिये, क्योंकि उस्से सुख प्राप्त न होकर बरन बड़े भारी अनर्थके होनेकी संभावनाहै ॥३५॥हेजनाधिप! जो महान् महीपति अपने आप संशयमें न पड़कर और सैनाको नाश न करके विना युद्ध किये शत्रुलोगोंको जीतलेतेहैं; वह विपुल यश,सुख,सम्पत्ति और कीर्त्तिको प्राप्त करतेहैं ॥ ३६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे चतुःषष्टितमःसर्गः॥६४॥

वह वालिकी छातीमें जाकर महावेगसे लगा ॥ ३५ ॥ तब महातेजमान् वीर्यवान् वानरराज वालि बाणसे घायल होकर पृथ्वीपर गिर पडा ॥ ३६॥
जिस प्रकार आश्विन मासमें पूर्णमासीके अंतमें इन्द्रध्वज गिर पडताहै, वैसेही वालिके प्राण निकलनें लगे, और वह वनाथ मूर्च्छित होगया॥३७॥
कफके मारे उसका कंठ रुकगया और सहज २ आरत स्वर उसनें प्रगट किया ॥ ३८॥ जिस प्रकार श्रीशंकरजी मुखसे धूम अग्नि छोडतेहैं वैसेही
कालकी समान नरोत्तम श्रीरामचंद्रजीनें सुवर्णविभूषित शत्रुओंका नाश करनेंवाला बाण वालिपर छोडा ॥ ३९ ॥ फिर शरीरसे रुधिर निकलता
हुआ पर्वत परसे उत्पन्न हुए अशोक वृक्षकी समान इन्द्रसुत वालि चेतनारहित, पवनवेगसे टूटे हुए इन्द्रध्वजकी समान पृथ्वीपर गिरपडा ॥ ४० ॥
ततस्तेनमहातेजावीर्ययुक्तःकपीश्वरः ॥ वेगेनाभिहतोवालीनिपपातमहीतले ॥ ३६ ॥ इंद्रध्वजइवोद्धूतःपौर्णमास्यां
महीतले ॥ आश्वयुक्समयेमासिगतसत्त्वोविचेतनः ॥ ३७ ॥ बाष्पसंरुद्धकंठस्तुवालीचार्तस्वरःशनैः ॥ ३८ ॥
नरोत्तमःकालइवांतकोपमंशरोत्तमंकांचनरूपभासितम्॥ससर्जदीप्तंतममित्रमर्दनंसधूममग्निंमुखतोयथाहरः ॥ ३९॥
अथोक्षितःशोणिततोयविस्रवैःप्रपुष्पिताशोकइवाचलोद्गतः ॥ विचेतनोवासवसूनुराहवेप्रभ्रंशितेंद्रध्वजवत्क्षितिंग
तः ॥ ४० ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेषोडशः सर्गः ॥ १६ ॥ ॥ छ ॥
ततःशरेणाभिहतोरामेणरणकर्कशः ॥ पपातसहसावालीनिकृत्तइवपादपः ॥ १ ॥ सभूमौन्यस्तसर्वांगस्तप्तकांचनभूष
णः ॥ अपतद्देवराजस्यमुक्तरश्मिरिवध्वजः ॥ २ ॥ अस्मिन्निपतितेभूमौहर्यृक्षाणांगणेश्वरे ॥ नष्टचंद्रमिवव्योमनव्य
राजतमेदिनी ॥ ३ ॥ भूमौनिपतितस्यापितस्यदेहंमहात्मनः ॥ नश्रीर्जहातिनप्राणानतेजोनपराक्रमः ॥ ४ ॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीयेआदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे षोडशःसर्गः॥१६॥जब श्रीरामचन्द्रजीनें बाण मारा,तब वह रणशूर वालि उस बाणसे घा
यल हो कटे हुये वृक्षकी समान पृथ्वीपर गिर पडा ॥ १ ॥ उज्ज्वल सुवर्णके भूषण धारण किये हुये वालि डोरी छोड दिये हुये इंद्रध्वजकी समान गि
रकर अपने सब अंग पृथ्वीपर लुटाता हुआ ॥ २ ॥ जब वानर गणोंका राजा वालि पृथ्वीपर गिर पडा तब उसके राज्यकी भूमि चंद्रमा रहित आ
काशकी समान शोभाहीन होगई ॥ ३ ॥ यद्यपि वालि पृथ्वीपर गिर पडा, परन्तु उस महात्माके लक्ष्मी, तेज, प्राण और पराक्रम कुछ न गये॥४॥

कर्णने जब यह कहा तब राक्षस रावण उस्से हँसकर बोला ॥ ९ ॥ हेवत्स !युद्धविशारद! हम निश्चय कहतेहैं कि महोदर रामचंद्रको देखकर डर गया होगा इसी कारणसे इसका युद्ध करनेंका अभिलाष नहींहोता ॥१०॥ हेकुम्भकर्ण! क्या सुहृदतामें, क्या बलके प्रभावमें तुम्हारी समान अपना पुरुष हमारा कोईभी नहीं है, इस कारण तुम शत्रुलोगोंका वध साधन करनेंके लिये और विजय पानेंके अर्थ शीघ्र लंकापुरीसे बाहर चलो ॥ ११ ॥ हेशत्रुनाशी! तुम घोर नींदमें मग्नथे, हमनें शत्रुको जीत लेनेहीके अर्थ तुमको जगवायाहै; इस समय राक्षस लोगोंपर घोर संकट पड़ा देखकर ॥१२॥ फांसी हाथमें लिये यमराज जिस प्रकारसे दौड़तेहैं; उनकीही समान तुमभी शूल हाथमें धारण कर युद्धकी यात्रा करो। और

महोदरोयंरामात्तुपवित्रस्तौनसंशयः ॥ नहिरोचयतेतातयुद्धंयुद्धविशारद ॥ १० ॥ कश्चिन्मेत्वत्समोनास्तिसौहृदेनबलेनच ॥ गच्छशत्रुवधायत्वंकुंभकर्णजयायच ॥ ११ ॥ शयानःशत्रुनाशार्थंभवान्संबोधितोमया ॥ अयंहिकालःसुमहान्राक्षसानामरिंदम ॥ १२ ॥ संगच्छशूलमादायपाशहस्तइवांतकः ॥ वानरान्राजपुत्रौचभक्षयादित्यतेजसौ ॥ १३ ॥ समालोक्यतुतेरूपंविद्रविष्यंतिवानराः ॥ रामलक्ष्मणयोश्चापिहृदयेप्रस्फुटिष्यतः ॥ १४ ॥ एवमुक्त्वामहातेजाःकुंभकर्णमहाबलम् ॥ पुनर्जातमिवात्मानंमेनेराक्षसपुंगवः ॥ १५ ॥ कुंभकर्णबलाभिज्ञोजानंस्तस्यपराक्रमम् ॥ बभूवमुदितोराजाशशांकइवनिर्मलः ॥ १६ ॥ इत्येवमुक्तःसंहृष्टोनिर्जगाममहाबलः ॥ राज्ञस्तुवचनंश्रुत्वायोद्धुमुद्युक्तवांस्तदा ॥ १७ ॥

सूर्यकी समान प्रभावाले राम लक्ष्मणको मार कर पीछेसे वानरोंकोभी भक्षण कर लेना ॥ १३ ॥ हम जानतेहैं कि तुम्हारी भयंकर मूर्त्ति देखनें पर वानर लोग प्राणोंके डरसे भाग जायँगे, और राम लक्ष्मणकाभी हृदय विदीर्ण होजायगा ॥ १४ ॥ राक्षसश्रेष्ठ रावण महाबलवान् कुम्भकर्णसे यह कहकर जयकी आशासे यह समझाकि, मानो दूसरा जन्म हुआ ॥ १५ ॥ उस समय रावणका अंतःकरण पूर्णमासीके चंद्रमाकी समान निर्मल होगया, रावण कुम्भकर्णके बल विक्रमको जानताथा; इसलिये उसको युद्धके लिये तैयार देख इसके आनंदकी सीमा न रही ॥ १६॥ कुम्भकर्णभी राक्षसराज रावणके कहे हुए ऐसे वचन सुनकर परम सन्तुष्ट हुआ, और युद्धमें जानेंकी तैयारियें करनें लगा ॥ १७ ॥

जाय युद्धके लिये समयको देखनें लगा ॥ १७ ॥ सुग्रीवजीभी दृढ मुक्का बाँधकर दर्पमें भर हेमशाली वालिकी ओर गमन करनें लगे ॥१८॥ वालि रणपण्डित क्रोधसे लाल२ नेत्र किये सुग्रीवको महावेगसे आता हुआ देखकर बोला ॥ १९ ॥ यह देखो सब उंगलियोंको सकोड कर हमनें दृढ रूपसे जो यह महामुष्टिका बाँधीहै हम इसको महा वेगसे तुम्हारे ऊपर चलामेंगे इसमें कोई संदेह नहींकि इसके लगतेही तुम्हारा प्राण निकल जायगा जब वालिनें ऐसा कहा तब सुग्रीवजीभी उस्से क्रोधित होकर बोले कि देखो यह हमनें जो मुक्का बांधाहै यहभी तुम्हारे मस्तकपर पडकर प्राण लेहीलेगा ॥२०॥२१॥तब वालिनें अत्यन्त क्रोधित होकर वेगसे जाकर सुग्रीवजीके मुक्का मारा।उस मुक्केके लगनेंसे सुग्रीवजी झरनें सहित पर्वतकी समान रुधिर

श्लिष्टंमुष्टिंसमुद्यम्यसंरब्धतरमागतः ॥ सुग्रीवोपिसमुद्दिश्यवालिनंहेममालिनम् ॥ १८ ॥ तंवालीक्रोधताम्राक्षंसुग्रीवंरणकोविदम् ॥ आपतंतंमहावेगमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १९ ॥ एषमुष्टिर्महान्बद्धोगाढःसुनियतांगुलिः ॥ मयावेगविमुक्तस्तेप्राणानादाययास्यति ॥ २० ॥ एवमुक्तस्तुसुग्रीवःक्रुद्धोवालिनमब्रवीत् ॥ तवचैषहरन्प्राणान्मुष्टिःपततुमूर्धनि ॥ २१ ॥ ताडितस्तेनतंक्रुद्धःसमभिक्रम्यवेगतः ॥ अभवच्छोणितोद्गारीसापीडइवपर्वतः ॥ २२ ॥ सुग्रीवेणतुनिःशंकंसालमुत्पाट्यतेजसा ॥ गात्रेष्वभिहतोवालीवज्रेणेवमहागिरिः ॥ २३ ॥ सतुवृक्षेणनिर्भग्नःसालताडनविह्वलः ॥ गुरुभारभराक्रांतानौःससार्थेवसागरे ॥ २४ ॥ तौभीमबलविक्रांतौसुपर्णसमवेगितौ ॥ प्रयुद्धौघोरवपुषौचंद्रसूर्याविवांबरे ॥ २५ ॥ परस्परममित्रघ्नौछिद्रान्वेषणतत्परौ ॥ ततोऽवर्धतवालीतुबलवीर्यसमन्वितः ॥ २६ ॥

उगलते २पृथ्वीपर गिरे॥२२॥फिर सुग्रीवजीनें झटपट उठकर अति तेजीसे निःशंकहो एक शालका वृक्ष उखाड वालिके मारा, जैसे इन्द्रजीनें वज्रसे पर्वतोंको माराथा ॥ २३ ॥ उस वृक्षके लगनेंसे विह्वलहो वालि समुद्रके मध्य चलती बहुत बोझसे लदीहुई नावके समान चल विचल होनें लगा ॥ २४ ॥वह भयंकर बल वीर्यशाली चन्द्रमा सूर्यकी समान, गरुडतुल्य वेगवान् घोरतरदेहधारी वालि और सुग्रीव महाघोर युद्ध करनें लगे ॥ २५ ॥ परस्पर एक दूसरेका दोष ढूंढनेंमें तैयारहुये दोनों वीर परस्पर चोट चलानें लगे। लड़ते २ बलवीर्य युक्त वालि समरमें जय

फिर बाजू अंगूठी आदि श्रेष्ठ २ भूषण और चंद्रमाकी समान उज्ज्वल हार महात्मा कुंभकर्णको रावणने पहराया ॥ २६ ॥ कुंभकर्णके कानोंमें मनो हर दो कुंडल शोभायमान हुए, और उसके गलेमें अतिसुगन्धित शोभायमान माला रावणनें पहराई ॥ २७ ॥ बड़े कानवाला कुम्भकर्ण सुवर्णके बाजू, केयूर और वह दूसरे आभूषणोंसे भूषित होकर प्रदीप्त अग्निकी समान शोभायमान होने लगा ॥ २८ ॥ उसकी कमरमें काला तगड़ीका डोरा देखनेसे ऐसा जान पड़ताथा, मानो समुद्रसे अमृत मथन करनेंके समय सर्पद्वारा मन्दर पर्वत दृढरूपसे बँधा हुआहै ॥ २९ ॥ कुम्भकर्णनें सुवर्ण का बना हुआ बिजलीकी प्रभाके समान वर्म (बखतर) धारण किया, वह तेजके प्रभावसे दमकरहाथा, बड़ा भारी था, अभेद्य था, इस बखतरसे,

अंगदान्यंगुलीवेष्टान्वराण्याभरणानिच ॥ हारंचशशिसंकाशमाबबंधमहात्मनः ॥ २६ ॥ दिव्यानिचसुगंधीनिमा ल्यदामानिरावणः ॥ गात्रेषुसज्जयामासश्रोत्रयोश्चास्यकुंडले ॥ २७ ॥ कांचनांगदकेयूरनिष्काभरणभूषितः ॥ कुंभकर्णोबृहत्कर्णःसुहुतोग्निरिवाबभौ ॥ २८ ॥ श्रोणीसूत्रेणमहतामेचकेनविराजता ॥ अमृतोत्पादनेनद्धोभुजंगेने वमंदरः ॥ २९ ॥ सकांचनंभारसहंनिवातंविद्युत्प्रभंदीप्तमिवात्मभासा ॥ आबध्यमानःकवचंरराजसंध्याभ्रसंवीतइवा द्रिराजः ॥ ३० ॥ सर्वाभरणसर्वांगःशूलपाणिःसराक्षसः ॥ त्रिविक्रमकृतोत्साहोनारायणइवाबभौ ॥ ३१ ॥ भ्रातरं संपरिष्वज्यकृत्वाचापिप्रदक्षिणम् ॥ प्रणम्यशिरसातस्मैप्रतस्थेसमहाबलः ॥ ३२ ॥ तमाशीर्भिःप्रशस्ताभिःप्रे षयामासरावणः ॥ शंखदुंदुभिनिर्घोषैःसैन्यैश्चापिवरायुधैः ॥ ३३ ॥ तंगजैश्चतुरंगैश्चस्यंदनैश्चांबुदस्वनैः ॥ अनु जग्मुर्महात्मानोरथिनोरथिनांवरम् ॥ ३४ ॥

सन्ध्या समयके मेघसे रँगे हुए हिमालय पर्वतकी समान कुम्भकर्णनें अपूर्व शोभा धारणकी ॥ ३० ॥ कुंभकर्ण समस्त भूषणोंसे भूषित और हाथमें बड़ा भारी शूल लेकर ऐसा ज्ञात हुआ, कि मानों त्रिविक्रमसे विष्णुजी, स्वर्ग मृत्यु, और पाताल लोकके तापनेंको तैयार हुएहैं ॥ ३१ ॥ महा बली कुम्भकर्ण रावणसे भलीभांति मिल भेंटकर उसकी प्रदक्षिणा कर प्रणाम करकै युद्ध करनेंके लिये चला ॥ ३२ ॥ राक्षसराज रावणनें उस समय उसको मंगलसूचक आशीर्वाद दिया, उस कालमें शंख व नगाड़ोंका कठोर शब्द उत्पन्न हुआ ॥ ३३ ॥ श्रेष्ठ हथियार लगाये हुए सैना चली

जाय युद्धके लिये समयको देखनें लगा ॥ १७ ॥ सुग्रीवजीभी दृढ मुक्का बाँधकर दर्पमें भर हेमशाली वालिकी ओर गमन करनें लगे ॥१८॥ वालि रणपण्डित क्रोधसे लाल२ नेत्र किये सुग्रीवको महावेगसे आता हुआ देखकर बोला ॥ १९ ॥ यह देखो सब उंगलियोंको सकोड कर हमनें दृढ रूपसे जो यह महामुष्टिका बाँधीहै हम इसको महा वेगसे तुम्हारे ऊपर चलामेंगे इसमें कोई संदेह नहींकि इसके लगतेही तुम्हारा प्राण निकल जायगा जब वालिनें ऐसा कहा तब सुग्रीवजीभी उस्से क्रोधित होकर बोले कि देखो यह हमनें जो मुक्का बांधाहै यहभी तुम्हारे मस्तकपर पडकर प्राण लेहीलेगा ॥२०॥२१॥तब वालिनें अत्यन्त क्रोधित होकर वेगसे जाकर सुग्रीवजीके मुक्का मारा।उस मुक्केके लगनेंसे सुग्रीवजी झरनें सहित पर्वतकी समान रुधिर

श्लिष्टंमुष्टिंसमुद्यम्यसंरब्धतरमागतः ॥ सुग्रीवोपिसमुद्दिश्यवालिनंहेममालिनम् ॥ १८ ॥ तंवालीक्रोधताम्राक्षंसुग्रीवंरणकोविदम् ॥ आपतंतंमहावेगमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १९ ॥ एषमुष्टिर्महान्बद्धोगाढःसुनियतांगुलिः ॥ मयावेगविमुक्तस्तेप्राणानादाययास्यति ॥ २० ॥ एवमुक्तस्तुसुग्रीवःक्रुद्धोवालिनमब्रवीत् ॥ तवचैषहरन्प्राणान्मुष्टिःपततुमूर्धनि ॥ २१ ॥ ताडितस्तेनतंक्रुद्धःसमभिक्रम्यवेगतः ॥ अभवच्छोणितोद्गारीसापीडइवपर्वतः ॥ २२ ॥ सुग्रीवेणतुनिःशंकंसालमुत्पाट्यतेजसा ॥ गात्रेष्वभिहतोवालीवज्रेणेवमहागिरिः ॥ २३ ॥ सतुवृक्षेणनिर्भग्नःसालताडनविह्वलः ॥ गुरुभारभराक्रांतानौःससार्थेवसागरे ॥ २४ ॥ तौभीमबलविक्रांतौसुपर्णसमवेगितौ ॥ प्रयुद्धौघोरवपुषौचंद्रसूर्याविवांबरे ॥ २५ ॥ परस्परममित्रघ्नौछिद्रान्वेषणतत्परौ ॥ ततोऽवर्धतवालीतुबलवीर्यसमन्वितः ॥ २६ ॥

उगलते २पृथ्वीपर गिरे॥२२॥फिर सुग्रीवजीनें झटपट उठकर अति तेजीसे निःशंकहो एक शालका वृक्ष उखाड वालिके मारा, जैसे इन्द्रजीनें वज्रसे पर्वतोंको माराथा ॥ २३ ॥ उस वृक्षके लगनेंसे विह्वलहो वालि समुद्रके मध्य चलती बहुत बोझसे लदीहुई नावके समान चल विचल होनें लगा ॥ २४ ॥वह भयंकर बल वीर्यशाली चन्द्रमा सूर्यकी समान, गरुडतुल्य वेगवान् घोरतरदेहधारी वालि और सुग्रीव महाघोर युद्ध करनें लगे ॥ २५ ॥ परस्पर एक दूसरेका दोष ढूंढनेमें तैयारहुये दोनों वीर परस्पर चोट चलानें लगे। लड़ते २ बलवीर्य युक्त वालि समरमें जय

करके अपनी सैनासे मृदु हँसकर बोला ॥ ४२ ॥ हे राक्षसगण! तुम लोग वानरोंके यूथ पतियोंको देखते हो हम इनकों इस प्रकारसे भस्म कर डालेंगे कि जैसे अग्नि पतंगको भस्म कर देतीहै ॥ ४३ ॥ अथवा वनचारी वानरलोगोंका अपराध ही क्या है वह तो हम समान पुरुषोंकी पुरी और फुलवाडियोंके ही भूषणहैं ॥ ४४ ॥ हमारे विचारमें रामचंद्र ही लंका घेरनेकी मूल हैं इसलिये आज रामचंद्र व लक्ष्मणको मारडालनेसे और सब अपने आपही से मर जांयगे ॥ ४५ ॥ कुंभकर्ण यह बात कह ही रहाथा कि इतनेंमें ही महाबलवान योद्धा लोग समुद्रको कंपायमान ही करने से मानो घोर सिंहनाद करने लगे ॥ ४६ ॥ महा बुद्धिमान कुंभकर्ण युद्धके लिये निकल रहाथा कि इतनेहीमे चारों ओर अति घोर दुर्नि

अद्यवानरमुख्यानांतानियूथानिभागशः ॥ निर्दहिष्यामिसंक्रुद्धःपतंगानिवपावकः ॥ ४३ ॥ नापराध्यंतिमेकामंवा नरावनचारिणः ॥ जातिरस्मद्विधानांसापुरोद्यानविभूषणम् ॥ ४४ ॥ पुररोधस्यमूलंतुराघवःसहलक्ष्मणः ॥ हते तस्मिन्हतंसर्वंतंवधिष्यामिसंयुगे ॥ ४५ ॥ एवंतस्यब्रुवाणस्यकुंभकर्णस्यरक्षसः ॥ नादंचक्रुर्महाघोरंकंपयंतइवार्णव म् ॥ ४६ ॥ तस्यनिष्पततस्तूर्णंकुंभकर्णस्यधीमतः ॥ बभूवुर्घोररूपाणिनिमित्तानिसमंततः ॥ ४७ ॥ उल्काशनियुतामेघाब भूवुर्गर्दभारुणाः ॥ ससागरवनाचैववसुधासमकंपत ॥ ४८ ॥ घोररूपाःशिवानेदुःसज्वालकवलैर्मुखैः ॥ मंडलान्यपसव्या निबबंधुश्चविहंगमाः ॥ ४९ ॥ निष्पपातचगृध्रोस्यशूलेवैपथिगच्छतः ॥ प्रास्फुरन्नयनंचास्यसव्योबाहुरकंपत ॥ ॥ ५० ॥ निष्पपाततदाचोल्काज्वलंतीभीमनिःस्वना ॥ आदित्योनिष्प्रभश्चासीन्नवातिचसुखोनिलः ॥ ५१ ॥

मित्त होनें लगे ॥ ४७ ॥ उल्का व वज्रसे युक्त मेघ गण गर्दभकी समान अरुण रंग होगये और समुद्र वनके सहित पृथ्वी कंपायमान होने लगी ॥ ४८ ॥ घोर रूप शृगालियें अँगारोंको मुखमें दिये शब्द करने लगीं और पक्षी गण अशुभ मंडल बांधकर दहिनी ओर चलने लगे ॥ ४९ ॥ जबकि कुंभकर्ण मार्ग चल रहाथा तब उस समय उसके शूल पर गिद्ध बैठगया और उसका वांया नेत्र फड़ककर वांया हाथभी कंपायमान होने लगा ॥ ५० ॥ सन्मुख बडी भारी भयंकर जलती हुई उल्का गिर पडी सूर्य भगवान प्रभाहीन होगये और जिस्से सुख प्राप्त हो सके ऐसी वायु भी नहीं चली ॥ ५१ ॥

राजा महा तेजमान जाम्बवान॥२६॥दशकोटि ऋक्षोंकी सेनाले सुग्रीवजीके वशमें आया रुमण नामक तेजस्वी पराक्रमी वानर पति बहुतसे वानरोंके साथ ॥ २७ ॥ और महाबलवान् सौ करोड वानर सेना संग लिये आया तिसके पीछे लक्ष २ करोड २ वानर संग लिये ॥ २८ ॥ महा पराक्रम करने वाला गन्धमादन नामक यूथप आया तिसके पीछे हजार पद्म और हजार शंख कपियोंकी सेनाको साथ लिये ॥ २९ ॥ अपने पिता वालिके तुल्य पराक्रम करनेवाले अतिबुद्धिमान वानरसेनापतियोंके शिरमौर युवराज अंगदजी आये फिर तारागणोंके समान प्रकाशमान अतिभयं कर पराक्रम करनेवाले वानरोंको संग लिये तार नाम यूथनाथ आया ॥ ३० ॥ उस तारके साथ अति प्रचंड पांच कोटि वानर सेना थी

कोटिभिर्दशभिर्व्याप्तःसुग्रीवस्यवशेस्थितः ॥ रुमणोनामतेजस्वीविक्रांतैर्वानरैर्वृतः ॥ २७ ॥ आगतोबलवांस्तूर्णं कोटीशतसमावृतः ॥ ततःकोटिसहस्राणांसहस्रेणशतेनच ॥ २८ ॥ पृष्ठतोऽनुगतःप्राप्तोहरिभिर्गंधमादनः ॥ ततः पद्मसहस्रेणवृतःशंखशतेनच ॥ २९ ॥ युवराजोंगदःप्राप्तःपितुस्तुल्यपराक्रमः ॥ ततस्ताराद्युतिस्तारोहरिभिर्भीम विक्रमैः ॥ ३० ॥ पंचभिर्हरिकोटीभिर्दूरतःपर्यदृश्यत ॥ इंद्रजानुःकविर्वीरोयूथपःप्रत्यदृश्यत ॥ ३१ ॥ एकादशा नांकोटीनामीश्वरस्तैश्चसंवृतः ॥ ततोरंभस्त्वनुप्राप्तस्तरुणादित्यसन्निभः ॥ ३२ ॥ अयुतेनवृतश्चैवसहस्रेणशतेनच ॥ ततोयूथपतिर्वीरोदुर्मुखोनामवानरः ॥ ३३ ॥ प्रत्यदृश्यतकोटीभ्यांद्वाभ्यांपरिवृतोबली ॥ कैलासशिखराकारैर्वानरै र्भीमविक्रमैः॥ ३४ ॥ वृतःकोटिसहस्रेणहनुमान्प्रत्यदृश्यत ॥ नलश्चापिमहावीर्यःसंवृतोद्रुमवासिभिः ॥ ३५ ॥ को टीशतेनसंप्राप्तःसहस्रेणशतेनच ॥ ततोदरीमुखःश्रीमान्कोटिभिर्दशभिर्वृतः ॥ ३६ ॥

तदनन्तर इन्द्रजानु नामक महावीर यूथनाथ ॥ ३१ ॥ ग्यारह कोटि वानरोंको संगलिये हुये दिखाई दिया फिर प्रभातकालके बालसूर्यके वर्णकी समान रंभ नामक वानर यूथपति ॥३२॥ दशहजार एक शत वानरोंकी सेनाको संग लिये हुये सुग्रीवजीके निकट उपस्थित हुआ; इसके पीछे महावीर यूथपति दुर्मुख नामक वानर ॥३३ ॥ महाबली दोकरोड वानरोंकी सेनाको संग लिये हुये दिखाई दिया ॥ फिर कैलास पर्वतके शिखरकी तुल्य आकार वाले भयंकर पराक्रमकारी वानरों की ॥ ३४ ॥ हजार करोड सेना संग लिये आते हुये हनुमानजी दिखाई दिये ॥ फिर महा वीर्यवान् नल नामक यूथनाथ वृक्षोंपर रहनेवाले ॥ ३५ ॥ शत कोटि एक सहस्र येक वानरों की सेना संग लिये हुये आया फिर श्रीमान दधि

वह कुंभकर्ण समुद्रको कंपायमान पर्वतोंको चलायमान, और वज्रको पराजित करके घोर सिंहनाद करनें लगा ॥ २ ॥ वानर गण, इन्द्र, यम और वरुणसेभी न मारे जानें योग्य भयंकर नेत्रवाले उस राक्षसको देखकर डरके मारे भागनें लगे ॥३॥ तब वालिके पुत्र अंगदजी वानरोंको भागते हुए देखकर नल नील गवाक्ष और कुंमुदसे बोले॥ ४ ॥यह क्या! और साधारण वानर लोगोंकी समान तुम लोगभी भयके मारे विह्वलहो कहांको भागे जाते हो? क्या तुम अपने२ परिवार और अपने २ बड़े भारी वीर्यकों भूलगये॥५॥ हेसौम्यस्वभाव वालो! भाग करके प्राणरक्षा करनेंकी क्या आवश्य

ननादचमहानादंसमुद्रमभिनादयन् ॥ विजयन्निवनिर्घातान्विधमन्निवपर्वतान् ॥ २ ॥ तमवध्यंमघवतायमेनवरुणेनवा ॥ प्रेक्ष्यभीमाक्षमायांतंवानराविप्रदुद्रुवुः ॥ ३ ॥ तांस्तुविप्रद्रुतान्दृष्ट्वाराजपुत्रोंगदोब्रवीत ॥ नलंनीलंगवाक्षंचकुमुदंचमहाबलम् ॥ ४ ॥ आत्मनस्तानिविस्मृत्यवीर्याण्यभिजनानिच ॥ क्वगच्छतभयत्रस्ताःप्राकृताहरयो यथा ॥ ५ ॥ साधुसौम्यानिवर्तध्वंकिंप्राणान्परिरक्षथ ॥ नालंयुद्धायवैरक्षोमहतीयंविभीषिका ॥ ६ ॥ महतीमुत्थितामेनांराक्षसानांविभीषिकाम् ॥ विक्रमाद्विधमिष्यामोनिवर्तध्वंप्लवंगमाः ॥ ७ ॥ कृच्छ्रेणतुसमाश्वस्यसंगम्यचततस्ततः ॥ वृक्षान्गृहीत्वाहरयःसंप्रतस्थूरणाजिरे ॥ ८ ॥ तेनिवर्त्यतुसरंब्धाःकुंभकर्णवनौकसः ॥ निर्जघ्नुःपरमक्रुद्धाःसमदाइवकुंजराः ॥ ९ ॥

कताहै? जो कुछभीहो इस समय तुम लौट आओ,जिसको देखकर तुम लोग भय करतेहो यह तो केवल धोखाही धोखाहै, इसमें युद्ध करनेकी सामर्थ्य नहींहै ॥ ६ ॥ हेवानर लोगो! तुम सबके लौट आनेंपर हम सब एकत्रहो मिलकर विक्रम प्रकाश करके राक्षसोंके उठाये हुए बड़े भारी धोखेको नाश कर देंगे ॥ ७ ॥ अंगदजीके ऐसे वचन सुनकर वानरगण धीरज बांध बड़ी कठिनाईसे लौटे और वृक्ष पर्वतादि ग्रहण करके युद्ध करनेंके लिये तैयार हुए ॥ ८ ॥ मदमाते हाथियोंकी समान वह वानर गणोंनें उत्साह सहित लौटतेही क्रोधमें भरकर कुंभकर्णके ऊपर प्रहार करनें लगे ॥ ९ ॥

फिर कपिराज सुग्रीवजी; नरश्रेष्ठ परबलविनाशी श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ १ ॥ कि हमारे राज्यमें रहनेंवाले इन्द्रकी समान बलवान् कामचारी वानरयूथप लोग यहां पहुंचकर अपनी२ सेनाओंमें टिके हुयेहैं॥२॥ यह सब बहुत स्थानोंमें अपना पराक्रम प्रगट कियेहैं; ऐसे भयंकर विक्रमकारी, दैत्य दानवोंकी तुल्य घोररूप बलवान् समस्त वानरोंकी सेना आय पहुँचीहै ॥ ३॥ यह सब कर्म करनेंमें विख्यात, अपने वीर्यमें विख्यात बडे बलवान् युद्धमें कभी थकतेही नहीं, पराक्रम करनेंमें विख्यात अर्थका निश्चय करनेंमें स्थिर प्रतिज्ञावान॥४॥बडे श्रेष्ठ, समुद्रके तीरपर बसनें वाले, और अनेक पर्वतोंके वासी, आपके दास यह करोड २ वानर गण यहां पर आगयेहैं ॥ ५ ॥ हे शत्रुनाशी ! वह सब वानर देशोंके पालनेंवाले स्वामीके

अथराजासमृद्धार्थःसुग्रीवःप्लवगेश्वरः॥उवाचनरशार्दूलंरामंपरबलार्दनम्॥१ ॥आगताविनिविष्टाश्चबलिनःकामचारिणः॥वानरेंद्रामहेंद्राभायेमद्विषयवासिनः॥२॥तइमेबहुविक्रांतैर्बलिभिर्भीमविक्रमैः ॥ आगतावानराघोरादैत्यदानवसन्निभाः ॥ ३ ॥ ख्यातकर्मापदानाश्चबलवंतोजितक्लमाः ॥ पराक्रमेषुविख्याताव्यवसायेषुचोत्तमाः ॥ ४ ॥ पृथिव्यंबुचरारामनानानगनिवासिनः ॥ कोटयोघाश्चइमेप्राप्तावानरास्तवकिंकराः ॥ ५ ॥ निदेशवर्तिनःसर्वेसर्वेगुरुहितेस्थिताः ॥ अभिप्रेतमनुष्ठातुंतवशक्ष्यंत्यरिंदम ॥ ६ ॥ तइमेबहुसाहस्रैरनेकैर्बहुविक्रमैः ॥ आगतावानराघोरादैत्यदानवसन्निभाः ॥ ७ ॥ यन्मन्यसेनरव्याघ्रप्राप्तकालंतदुच्यताम् ॥ त्वत्सैन्यंत्वद्वशेयुक्तमाज्ञापयितुमर्हसि ॥ ८ ॥ काममेवमिदंकार्यंविदितंममतत्त्वतः ॥ तथापितुयथायुक्तमाज्ञापयितुमर्हसि ॥ ९ ॥ तथाब्रुवाणंसुग्रीवंरामोदशरथात्मजः ॥ बाहुभ्यांसंपरिष्वज्यइदंवचनमब्रवीत् ॥ १० ॥

हित कार्यमें रत आपके इच्छानुसार कार्यको साधन करनेंमें निःसन्देह समर्थ होंगे ॥ ६ ॥ वही यह हजार २ कोटि २ बहुत स्थानोंमें अपने पराक्रमको प्रकाश किये घोररूपी, दैत्य दानवोंकी समान वानरगण यहां पर आगयेहैं॥७ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! अब समय उपस्थितहै; अब जैसा आपका विचारहो वह कहिये, यह सब आपकी सेना आपके वशमेंहै; इस समय जो ठीक और उचित आज्ञाहो वह इनको दीजिये ॥ ८ ॥ हम इन लोगोंका ठीक बल जानतेहैं; तथापि आप इन सबकों युक्तिसे युक्तहो वही आज्ञा दीजिये ॥ ९ ॥ जब सुग्रीवजीनें इस प्रकार कहा तब दशरथ कुमारश्रीरा

हे वानर गण! तुम रणभूमिको छोड़कर भागे जातेहो परन्तु हम सारी पृथ्वीपर भी तुम्हारे कहीं रहनेंका स्थान नहीं देखते कि तुम वहां भयरहित होकर बच जाओ और अपने २ प्राणोंकी रक्षा कर सको, इसलिये शीघ्र लौट आओ; इस प्रकारकी प्राण रक्षा करनेंसे क्या होगा; क्योंकि जहां रहोगे वहां सुग्रीव तुम्हें मरवा डालेंगे ॥ १९ ॥ हे अतुल गतिवान् पौरुषयुक्त वानरों! तुम यदि अपने आयुधोंका त्याग करके इस प्रकारसे भाग अपने प्राणोंकी रक्षा करोगे; तब तुम्हारी स्त्रियें जो तुम्हारा उपहास करेंगी; वह उनका हँसना ही मृत्युकी समान होजायगा ॥ २० ॥ आश्चर्य! तुम सबने बडे २ कुलोंमें जन्म ग्रहण कियाहै सो तुम साधारण वानरोंकी समान भयभीत होकर कहां भागे जातेहो? तुम लोग जबकि अपना

भग्नानांवोनपश्यामिपरिक्रम्यमहीमिमाम् ॥ स्थानंसर्वेनिवर्तध्वंकिंप्राणान्परिरक्षथ ॥ १९ ॥ निरायुधानां क्रमतामसंगगतिपौरुषाः ॥ दाराह्युपहसिष्यंतिसवैघातःसुजीवताम् ॥ २० ॥ कुलेषुजाताःसर्वेस्मिन्विस्तीर्णेषुमहत्सुच ॥ क्वगच्छतभयत्रस्ताःप्राकृताहरयोयथा ॥ अनार्याःखलुयद्भीतास्त्यक्त्वावीर्यंप्रधावत ॥ २१ ॥ विकत्थनानिवायानिभवद्भिर्जनसंसदि ॥ तानिवःक्वनुयातानिसोदग्राणिहतानिच ॥ २२ ॥ भीरोःप्रवादाःश्रूयंतेयस्तुजीवतिधिक्कृतः ॥ मार्गःसत्पुरुषैर्जुष्टःसेव्यतांत्यज्यतांभयम् ॥ २३ ॥ शयामहेवानिहताःपृथिव्यामल्पजीविताः ॥ प्राप्नुयामोब्रह्मलोकंदुष्प्रापंचकुयोधिभिः ॥ २४ ॥ अवाप्नुयामःकीर्तिंवानिहत्वाशत्रुमाहवे ॥ निहतावीरलोकस्यभोक्ष्यामोवसुवानराः ॥ २५ ॥

विपुल विक्रम भूलकर भीत हुए हो तब तुम अति नीच और राजद्रोही हो ॥ २१ ॥ अपनी २ उग्रता दिखलानें, और वानर राज सुग्रीवका हित साधन करनेंके लिये तुमनें उस समय जो बड़ी २ बातें मारी थीं वह समस्त बातें कहां अन्तर्ध्यान होगईं ॥ २२ ॥ जिसको सत्पुरुष लोग धिक्कार दिया करते हैं, उस भीरुके नरकमें गिरने आदिके प्रवाद सुनाई देतेहैं इस कारण सत्पुरुषोंके सेवन करनें योग्य मार्गमें चलकर भयको त्यागदो; क्यों भय खातेहो? ॥ २३ ॥ यदि आयुके पूरा होजानेसे हम सब शत्रुओंसे नाशको प्राप्त होकर रणभूमिमें दैवात् पृथ्वीपर गिरें तो अवीर गणोंको प्राप्त होंनेके अयोग्य ब्रह्म लोकको हम प्राप्त करेंगे ॥ २४ ॥ और वीर गणोंके सुखसे भोग करनेंके धनको प्राप्त करेंगे, और जो समरमें शत्रु

ढूँडनेंकेसमय सब पर्वतोंकी कन्दरा ओंमें दुर्गम स्थानोंमें, सब बनोंमें और नदियोंमें; रमणीय गंगा सरयू कौशिकी ॥ २० ॥ कालिन्दी, मनोहर यमुनाऔर यमुनाके समीप वाले सब पर्वतोंको, और सरस्वती,सिन्धु, मणि तुल्यस्वच्छ जल वाला शोणभद्र॥ २१ ॥मही और शैल कानन सहित काल मही औरभी समस्त नदियोंमें और ब्रह्ममाल विदेह, मालव, काशिराज, और कौशलदेश ॥ २२॥ मागध, महाग्राम. पुण्ड्र, अंग, इन समस्त देशोंमें और कोषाकार रेशमकेकीडे जहां होतेहैं, व चांदीकी खानि वालीभूमिमें जहाँ खानोंसे चांदी निकलतीहै ॥ २३ ॥ उन सब स्थानोंमें तुम लोग सीताजी और रावणका स्थान खोजते हुये, जहां कहींभी स्त्री रामचंद्रजीकी भार्या और दशरथजीकी पुत्र वधू जानकीजीहों देखना ॥ २४ ॥

मार्गध्वंगिरिदुर्गेषुवनेषुचनदीषुच॥ नदींभागीरथींरम्यांसरयूंकौशिकींतथा॥२०॥कालिंदींयमुनांरम्यांयामुनंचमहागिरिम्॥ सरस्वतींचसिंधुंचशोणंमणिनिभोदकम्॥ २१ ॥ महींकालमहींचापिशैलकाननशोभिताम् ॥ ब्रह्ममालान्विदेहांश्चमालवान्काशिकोसलान् ॥ २२ ॥ मागधांश्चमहाग्रामान्पुंड्रांस्त्वंगांस्तथैवच ॥ भूमिंचकोशकाराणांभूमिंचरजताकराम् ॥ २३ ॥ सर्वंचतद्विचेतव्यंमृगयद्भिस्ततस्ततः ॥ रामस्यदयितांभार्यांसीतांदशरथस्नुषाम् ॥ २४ ॥ समुद्रमवगाढांश्चपर्वतान्पत्तनानिच॥मंदरस्यचयेकोटिंसंश्रिताःकेचिदालयाः ॥ २५॥ कर्णप्रावरणाश्चैवतथाचाप्योष्ठकर्णकाः॥घोरलोहमुखाश्चैवजवनाश्चैकपादकाः॥२६॥अक्षयाबलवंतश्चतथैवपुरुषादकाः॥किरातास्तीक्ष्णचूडाश्चहेमाभाःप्रियदर्शनाः॥२७॥ आममीनाशनाश्चापिकिराताद्वीपवासिनः॥अंतर्जलचराघोरानरव्याघ्राइतिस्मृताः॥२८ ॥

और जो जो पर्वत और नगर समुद्रके टापुओंमें हों, और मन्दराचल पर्वतके किनारोंपर जो देश बसते हों, उन सबमें तुम भली प्रकार ढूँडना भालना ॥ २५ ॥ जो कानों तक वस्त्र लपेटेहों और जिनके कान अधरपर्यन्तहों, । और जिनका घोर लोह सम मुखहो, बडे वेगसे चलनें वाले व एक पादक लोग जो टापुओंमेंहैं ॥ २६ ॥ और अक्ष संतान बलवान्राक्षस, किरात तीक्षण चूडा वाले बडे बाल वाले सुवर्ण समान दीप्तिमान्, प्रियदर्शन ॥ २७ ॥ और जिन किरात देशोंमें कची मछलियें भक्षणकी जातीहैं, ऐसे किरात गण; नीचेके भागमें मनुष्योंकी समान आकार

होना मनमें ठान युद्ध करनेंका अभिलाष करते हुए ॥ १ ॥ तिसके पीछे बलवान अंगदजीके वचनोंसे वह सब प्रकारसे युद्ध करनेंको आरूढ हुए और उन लोगोंका वीर्य प्रदीप्त होनेंसे वह सब फिर पराक्रम प्रकाश करनें लगे ॥ २ ॥ वह समस्त वानरगण अपने प्राणोंकी आशा छोड़कर मरणमें कृत निश्चयहो कठोर युद्धका आरंभ करतेहुए ॥ ३ ॥ तिसके उपरान्त वह बड़े शरीर वाले वानर गण, वृक्ष और पर्वतोंके शृङ्ग उठायकर कुम्भ कर्णके सन्मुख धाये ॥ ४ ॥ परन्तु वीर्यवान महाकाय कुम्भकर्ण क्रोधमें भर गदा उठाय शत्रुओंको धर्षित करके चारों ओरसे उनके

समुदीरितवीर्यास्तेसमारोपितविक्रमाः ॥ पर्यवस्थापितावाक्यैरंगदेनबलीयसा ॥ २ ॥ प्रयाताश्चगताहर्षंमरणेकृत निश्चयाः ॥ चक्रुःसुतुमुलंयुद्धंवानरास्त्यक्तजीविताः ॥ ३ ॥ अथवृक्षान्महाकायाःसानूनिसुमहांतिच ॥ वानरास्तूर्ण मुद्यम्यकुंभकर्णमभिद्रवन् ॥ ४ ॥ कुंभकर्णःसुसंक्रुद्धोगदामुद्यम्यवीर्यवान् ॥ धर्षयन्समहाकायःसमंताद्व्यक्षिपद्रिपू न् ॥ ५ ॥ शतानिसप्तचाष्टौचसहस्राणिचवानराः ॥ प्रकीर्णाःशेरतेभूमौकुंभकर्णेनताडिताः ॥ ६ ॥ षोडशाष्टौचदश चविंशत्रिंशत्तथैवच ॥ परिक्षिप्यचबाहुभ्यांखादन्सपरिधावति ॥ भक्षयन्भृशसंक्रुद्धोगरुडःपन्नगानिव ॥ ७ ॥ कृच्छ्रे णचसमाश्वस्ताःसंगम्यचततस्ततः ॥ वृक्षाद्रिहस्ताहरयस्तस्थुःसंग्राममूर्धनि ॥८॥ ततःपर्वतमुत्पाट्याद्विविदःप्लवग र्षभः ॥ दुद्रावगिरिशृंगाभंविलंबइवतोयदः ॥ ९ ॥

ऊपर प्रहार करनें लगा ॥ ५ ॥ उस समय असंख्य वानरवीर कुम्भकर्णके प्रहारसे ताडितहो अपनी देह पृथ्वीपर पसारकर सोगये ॥ ६ ॥ जिस प्रकार गरुडजी सर्पोंको भक्षण करतेहैं वैसेही अत्यन्त क्रोधित हुआ कुम्भकर्ण, एक २ वारमें सोलह अठारह, और वीस तीसतक वानरोंको अपनी बांहोंसे पकडकर मुखमें डालकर खाय जाताथा ॥ ७ ॥ वानर लोगभी बड़े कष्टसे सावधान चित्तहो इकट्ठे हुए और वृक्ष व पर्वतोंको हाथमें ग्रहणकर रणभूमिमें विराजमान होंने लगे ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त लंबमान बादलकी समान वानरश्रेष्ठ द्विविद एक पर्वत उखाड़के पर्वता

इसलिये तिस समयमें मेघोंके समान गर्जते और बडे २ सर्पोंसे सेवितहोनेके कारण पार जानेके अयोग्य उस समुद्रमें सुघाट पर उतरना ॥ ३८ ॥
जब इसके पार होजाओगे, तब लाल रंगके जलसे भरे भयंकर लोहित नामकसागर पर जाकर वहां एक बडा भारी शाल्मलीका वृक्ष देखोगे * ॥ ३९ ॥
वहांपर पक्षीनाथ गरुडजीका, कैलाश पर्वतकी समान अनेक रत्नोंसे भूषित विश्वकर्माका बनाया हुआ गृह विराजमानहै ॥ ४० ॥ वहांपर सुरा समुद्रके
पर्वतोंके शृंगोंपर पर्वत तुल्य भयंकर देह धारी, नाना रूपी, भयावह, मंदेह नाम वाले राक्षस गण नीचे मुख किये लटके रहते हैं ॥ ४१ ॥
यह राक्षस सूर्यके उदय होनेपर उनसे युद्ध करनेको आकर सूर्यके तेजसे तीनों वर्णोंके दिये हुये सन्ध्या समयके जलसे घायल होकर समुद्रके

तंकालमेघप्रतिमंमहोरगनिषेवितम् ॥ अभिगम्यमहानादंतीर्थेनैवमहोदधिम् ॥ ३८ ॥ ततोरक्तजलंभीमंलोहितं
नामसागरम् ॥ गत्वाप्रेक्ष्यथतांचैवबृहतींकूटशाल्मलीम् ॥ ३९ ॥ गृहंचवैनतेयस्यनानारत्नविभूषितम् ॥ तत्रकैलाससं
काशंविहितंविश्वकर्मणा ॥ ४० ॥ तत्रशैलनिभाभीमामंदेहानामराक्षसाः ॥ शैलशृंगेषुलंबंतेनानारूपाभयावहाः ॥ ४१ ॥
तेपतंतिजलेनित्यंसूर्यस्योदयनंप्रति ॥ अभितप्ताःस्मसूर्येणलंबंतेस्मपुनःपुनः ॥ ४२ ॥ निहताब्रह्मतेजोभिरहन्यहनि
राक्षसाः ॥ ततःपांडुरमेघाभंक्षीरोदंनामसागरम् ॥ ४३ ॥ गत्वाद्रक्ष्यथदुर्धर्षामुक्ताहारमिवोर्मिभिः ॥ तस्यमध्ये
महाञ्छ्वेतोऋषभोनामपर्वतः ॥ ४४ ॥ दिव्यगंधैःकुसुमितैराचितैश्चनगैर्वृतः ॥ सरश्चराजतैःपद्मैर्ज्वलितैर्हेमकेसरैः ॥ ४५ ॥

जलमें गिर पडते हैं; और फिर जीवित होकर इन पर्वतके कँगूरोंपर लटकनें लगते हैं ॥ ४२ ॥ इन राक्षसोंको सन्ध्याके समय प्रतिदिन ब्राह्मण
लोग मारते हैं; उनके मारनेंसे सूर्य रूपी भगवान प्रसन्न हो जाते हैं,इससे आगे बढकर उजले बादरकी समान क्षीर सागर देखोगे ॥ ४३ ॥ यह क्षीर
सागर अपनी लहरोंसे ऐसा शोभायमान हो रहा है; मानों मोतियोंका हार पहर रहा हो;उस क्षीर सागरके मध्य में तुम अति श्वेत ऋषभ नामक प
र्वत देखोगे ॥ ४४ ॥ इस पर्वतके ऊपर सुवासित पुष्प युक्त अनेक प्रकारके वृक्ष लगे हैं और वहीं पर एक तलावभी बडा उत्तम है जिसमें अनेक

* इस्से शाल्मली द्वीपका अनुमान होताहै ।

इन्द्रकी दी हुई आति उत्तम रत्नभूषित सुवर्णकी माला, उस वानरश्रेष्ठके प्राण, तेज, और देह लक्ष्मीको धारण किये रही ॥ ५ ॥ वानरराज उस सुवर्णकी मालासे संध्याकालीन जलधरकी समान शोभा धारण करता हुआ ॥६॥ यद्यपि वालि गिर पडा, परंतु उस समयभी ऐसा शोभित होताथा कि मानों लक्ष्मी, माला, देह, और मर्म घाती शर इन तीन रूपोंमें प्रगटहो शोभायमान होरहा हैं॥७॥ श्रीरामचंद्रजीके धनुषसे छूटा हुआ स्वर्गका साधक वह बाण उस वीर वालिको परम गतिका देनेंवाला हुआ ॥८॥ युद्धस्थलमें शिखारहित अग्निकी समान गिरे पुण्य क्षय होनेंपर देवलोकसे खसे यया

शक्रदत्तावरामालाकांचनीरत्नभूषिता ॥ दधारहरिमुख्यस्यप्राणांस्तेजःश्रियंचसा ॥ ५ ॥ सतयामालयावीरोहैमयाहरियूथपः ॥ संध्यानुगतपर्यंतःपयोधरइवाभवत् ॥ ६ ॥ तस्यमालाचदेहश्चमर्मघातीचयःशरः ॥ त्रिधेवरचितालक्ष्मीःपतितस्यापिशोभते ॥ ७ ॥ तदस्त्रंतस्यवीरस्यस्वर्गमार्गप्रभावनम् ॥ रामबाणासनक्षिप्तमावहत्परमांगतिम् ॥ ८ ॥ तंतथापतितंसंख्येगतार्चिषमिवानलम् ॥ ययातिमिवपुण्यांतेदेवलोकादिहच्युतम् ॥ ९ ॥ आदित्यमिवकालेनयुगांतेभुविपातितम् ॥ महेंद्रमिवदुर्धर्षमुपेंद्रमिवदुःसहाम् ॥ १० ॥ महेंद्रपुत्रंपतितंवालिनंहेममालिनम् ॥ व्यूढोरस्कंमहाबाहुंदीप्तास्यंहरिलोचनम् ॥ ११ ॥ लक्ष्मणानुचरोरामोददर्शोपससर्पच ॥ तंतथापतितंवीरंगतार्चिषमिवानलम् ॥ १२ ॥ बहुमान्यचतंवीरंवीक्षमाणंशनैरिव ॥ उपयातौमहावीर्यौभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ १३ ॥ तंदृष्ट्वाराघवंवालीलक्ष्मणंचमहाबलम् ॥ अब्रवीत्परुषंवाक्यंप्रश्रितंधर्मसंहितम् ॥ १४ ॥

तिकी तुल्य ॥ ९ ॥ युगान्तके समय पृथ्वीमें गिरे हुये सूर्यकी समान इन्द्रकी समान दुर्द्धर्ष उपेन्द्रकी समान दुस्सह ॥ १० ॥ चौडी छातीवाले महाबाहु प्रदीप्तवदन सिंहलोचन इन्द्रके पुत्र हेममाली वालिको ॥ ११ ॥ रणस्थलमें देख श्रीरामचंद्र लक्ष्मणजीके सहित उसके निकट गये जहां वह वीर बुझी हुई अग्निके समान पृथ्वीपर गिरा पडाथा ॥ १२ ॥ वह मानके करने योग्य श्रीराम लक्ष्मणजी उस वीरश्रेष्ठ वालिके निकट उसको देखते २ गये ॥ १३ ॥ वालि महाबलवान् श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीको देखकर धर्मयुक्त

चिह्न स्वरूप सीमाके अंतमें बिन्दुकी समान निर्माण कर रक्खा है उसके आगे परम हेममय देवता ओंका होता श्रीमान् उदय पर्वत है ॥ ५४ ॥ इस पर्वतकी एक कोटि सौ योजन चौडीहै, और उसके कँगूरे ऐसे ऊंचे हैं कि आकाशको स्पर्शही किये लेते हैं। वह सुवर्णकी बनी वेदी आधार पर्वतके सहित विराजमान है ॥ ५५ ॥ इस पर्वतपर फूले हुये सुवर्ण मय सूर्यकी समान ताल, तमाल, और कर्णिकारके वृक्ष शोभायमान हो रहे हैं ॥ ५६ ॥ वहांपर एक योजन विस्तार वाला और दश योजन ऊंचा सुवर्ण मय सौमनस शृङ्ग है ॥ ५७ ॥ पूर्वकालमें पुरुषोत्तम विष्णुजीनें राजा वलिको छलकर जब सब लोक नापेथे तब पहला चरण उन्होंने वहां रखकर दूसरा चरण मेरुके शिखर पर रक्खाथा ॥ ५८ ॥ सूर्य

तस्यकोटिर्दिवंस्पृष्ट्वाशतयोजनमायता ॥ जातरूपमयीदिव्याविराजतिसवेदिका ॥ ५५ ॥ सालैस्तालैस्तमालैश्चक
र्णिकारैश्चपुष्पितैः ॥ जातरूपमयैर्दिव्यैःशोभतेसूर्यसन्निभैः ॥ ५६ ॥ तत्रयोजनविस्तारमुच्छ्रितंदशयोजनम् ॥
शृंगंसौमनसंनामजातरूपमयंध्रुवम् ॥ ५७ ॥ तत्रपूर्वपदंकृत्वापुराविष्णुस्त्रिविक्रमे ॥ द्वितीयंशिखरेमेरोश्चकारपुरुषो
त्तमः ॥ ५८ ॥ उत्तरेणपरिक्रम्यजंबूद्वीपंदिवाकरः ॥ दृश्योभवतिभूयिष्ठंशिखरंतन्महोच्छ्रयम् ॥ ५९ ॥ तत्रवै
खानसानामवालखिल्यामहर्षयः ॥ प्रकाशमानादृश्यंतेसूर्यवर्णास्तपस्विनः ॥ ६० ॥ अयंसुदर्शनोद्वीपःपुरोय
स्यप्रकाशते ॥ तस्मिंस्तेजश्चचक्षुश्चसर्वप्राणभृतामपि ॥ ६१ ॥ शैलस्यतस्यपृष्ठेषुकंदरेषुवनेषुच ॥ रावणःसहवैदे
ह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥ ६२ ॥

नारायण उत्तर दिशामें घूम जम्बूद्वीपकी परिक्रमा करके फिर उसी ऊंचे शिखर वाले पहले कहे सौमनस शिखर पर टिके हुए फिर जम्बूद्वीपमें रहनेवाले मनुष्योंको दृष्टि आतेहैं॥५९॥और इसी शिखर पर, सूर्य समान प्रकाशमान तपस्वी, दीप्ति प्रयुक्त वैखानस वाल्यखिल्य महर्षि गण प्रकाशित होतेहैं ॥६०॥ जिसके समीप सुदर्शन द्वीप प्रकाशित होताहै, और जब इस सौमनस शिखर पर सूर्य उदय होतेहैं; तभी सब प्राणियोंके नेत्रों में उजाला आताहै, इसका प्रकाश सबको ज्ञातहै ॥६१॥ उस पर्वतकी पीठ कन्दरा, और वनमें तुम लोग रावण सहित जानकीजीका अनुसन्धा

शाली हो बढा ॥ २६ ॥ और सूर्यपुत्र महा बलवान् सुग्रीवजी हीनबल होने लगे, वालिनें इनका गर्व खर्वकर डाला; और इनका विक्रमभी कम होनें पर आया ॥ २७ ॥ परन्तु सुग्रीवजी श्रीरामचन्द्रजीके दिखानेंके अर्थ वालिके ऊपर बडा कोपकर, जड़ व शाखा सहित वृक्ष उखाड, पर्वत शिखर, और वज्र सम धार वाले नखोंसे ॥ २८ ॥ और मुष्टिका, जांघ, चरण, और बाहोंसे फिर लडनें लगे और वालिभी इन्ही आयुधोंसे लड ताथा; इस कारण इन दोनों जनोंका संग्राम ऐसा हुआकि जैसा इन्द्रजीके साथ वृत्रासुरका हुआथा ॥ २९ ॥ वह वनचारी दोनों वानर रुधिरसे न हाय महामेघकी समान घोर शब्दसे परस्पर तर्जन गर्जन करनें लगे॥३०॥तब श्रीरामचन्द्रजीनें देखा कि सुग्रीव अब बहुतही हीनबल होगयेहैं; इस

सूर्यपुत्रोमहावीर्यःसुग्रीवःपरिहीयत ॥ वालिनाभग्नदर्पस्तुसुग्रीवोमंदविक्रमः ॥२७॥ वालिनंप्रतिसामर्षोदर्शयामासरा
घवम् ॥ वृक्षैःसशाखैःशिखरैर्वज्रकोटिनिभैर्नखैः ॥ २८ ॥ मुष्टिभिर्जानुभिःपद्भिर्बाहुभिश्चपुनःपुनः ॥ तयोर्युद्धमभू
द्घोरंवृत्रवासवयोरिव॥२९॥तौशोणिताक्तौयुध्येतांवानरौवनचारिणौ॥मेघाविवमहाशब्दैस्तर्जमानौपरस्परम्॥३०॥
हीयमानमथापश्यत्सुग्रीवंवानरेश्वरम् ॥ प्रेक्षमाणंदिशश्चैवराघवःसमुहुर्मुहुः ॥ ३१ ॥ ततोरामोमहातेजाआर्तंदृष्ट्वा
हरीश्वरम् ॥ सशरंवीक्षतेवीरोवालिनोवधकांक्षया ॥ ३२ ॥ ततोधनुषिसंधायशरमाशीविषोपमं ॥ पूरयामासतच्चा
पंकालचक्रमिवांतकः ॥ ३३ ॥ तस्यज्यातलघोषेणत्रस्ताःपत्ररथेश्वराः ॥ प्रदुद्रुवुर्मृगाश्चैवयुगांतइवमोहिताः ॥ ३४ ॥
मुक्तस्तुवज्रनिर्घोषःप्रदीप्ताशनिसन्निभः ॥ राघवेणमहाबाणोवालिवक्षसिपातितः ॥ ३५ ॥

कारणसेही वारंवार सब दिशाओंकी ओर निहारतेहैं ॥ ३१ ॥ महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजी सुग्रीवको भयातुर देखकर वालिके संहार करनेंकी इच्छासे वारंवार बाणोंकी ओर दृष्टि पात करनें लगे ॥ ३२ ॥ फिर विषधर सर्पकी समान बाण धनुषपर चढाकर यमराजके काल चक्रकी समान धनुषको टंकारनें लगे ॥ ३३ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीनें धनुषको टंकारा तो उस शब्दसे मृग व पक्षीगण युगान्त होनेंके दुकालकी समान मोहको प्राप्तहो वेग सहित भागने लगे ॥ ३४ ॥ फिर श्रीरामचन्द्रजीनें प्रदीप्त अग्निकी समान वज्रतुल्य शब्द करताहुआ वह महाबाण छोडा

डालेंगे, जाओ जनककुमारी जानकीजी को ढूंढभाल और उनका पतालगाकर आओ ॥ ७०॥इन्द्रकी स्त्री, वनादिकोंसे सुशोभित पूर्व दिशाको तुम चतुर वानर उत्तम रीतिसे खोज करके राघव प्रिया सीताजीको पायकर फिर सब जन सुखी होना॥ ७१ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०कि० चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥वानर राज वीर वर सुग्रीवजीनें उस वानरोंकी सेनाको पूर्व दिशाकीओर भेजकर कार्यके साधनका निर्णय करनेंमें चतुर वानरोंको दक्षिण दिशामें भेजा ॥ १ ॥ उनमें अग्नि पुत्र नील महाबलवान् हनुमानजी ब्रह्माका पुत्र महा बलवान् जाम्बवान् ॥ २ ॥ सुहोत्र, शरारि, शर गुल्म, गज, गवाक्ष, गवय, सुषेण, वृषभ ॥ ३ ॥ मैन्द, द्विविद,गन्धमादन, ताराके पिता सुषेण, उल्कामुख, अनंग, यह दोनों अग्निके

महेंद्रकांतांवनषंडमंडितांदिशंचरित्वानिपुणेनवानराः ॥अवाप्यसीतांरघुवंशजप्रियांततोनिवृत्ताःसुखिनोभविष्यथ॥ ॥ ७१ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेचत्वारिंशःसर्गः॥ ४० ॥ ॥ ६१ ॥

ततःप्रस्थाप्यसुग्रीवस्तन्महद्वानरंबलम् ॥ दक्षिणांप्रेषयामासवानरानभिलक्षितान् ॥ १ ॥ नीलमग्निसुतंचैवहनूमं तंचवानरम् ॥ पितामहसुतंचैवजांबवंतंमहौजसम् ॥ २ ॥ सुहोत्रंचशरारिंचशरगुल्मंतथैवच ॥ गजंगवाक्षंगवयंसुषेणं वृषभंतथा ॥ ३ ॥ मैंदंचद्विविदंचैवसुषेणंगंधमादनम् ॥ उल्कामुखमनंगंचहुताशनसुतावुभौ ॥ ४ ॥ अंगदप्र मुखान्वीरान्वीरःकपिगणेश्वरः ॥ वेगविक्रमसंपन्नान्संदिदेशविशेषवित् ॥ ५ ॥ तेषामग्रेसरंचैवबृहद्बलमथांगदम् ॥ विधायहरिवीराणामादिशद्दक्षिणांदिशम्॥६॥येकेचनसमुद्देशास्तस्यांदिशिसुदुर्गमाः ॥ सतेषांकपिमुख्यानांकपीशः समुदाहरत् ॥ ७॥ सहस्रशिरसंविंध्यंनानाद्रुमलतायुतम् ॥ नर्मदांचनदींरम्यांमहोरगनिषेविताम् ॥ ८॥

पुत्र ॥ ४ ॥ व अंगद इत्यादि वेगसे चलनेंवाले महा महापराक्रमी वानरोंको सब देशोंके जाननें वाले सुग्रीवजीनें दक्षिण दिशामें पठाया ॥ ५ ॥ जितनें वानर दक्षिणदिशाको भेजे गये उन समस्त वानरोंका मुखिया बडे बली अंगदजीको करके सुग्रीवजीनें दक्षिण दिशाको भेजा ॥ ६ ॥ कपीश्वर सुग्रीवजी, उस दिशामें जो जो देश दुर्गमथे, वह समस्तही उन वानर यूथपोंको बताने लगें ॥ ७ ॥ कि तुम लोग, सहस्र शिखरवाले विविध वृक्ष लताओंसे विराजमान, विन्ध्याचलपर्वतको प्रथम देखोगे फिर महाभुजंग गण सेवित रमणीक नर्मदा नदी मिलैगी ॥ ८ ॥

अत्याचार नहीं करेंगे केवल वृक्षोंके प्रहारसे और घूसोंसे उन्हैं मारेंगे जिस्से वह पीडित हो अपनी गुफाको चला जायगा ॥ ८ ॥ हे तारे! वह दुरात्मा हमारा हंकार और प्रहारादि नहीं सह सकैगा इसमें कुछ संदेह नहीं, कि तुमनें हमारी बुद्धिकी सहायता करके सुहृदता दिखाई॥९॥ तुमको हमारे प्राणोंकी शपथ है कि तुम इन सब स्त्रियोंके साथ लौट जाओ, हम रणस्थलमें भ्राताको केवल जीतही कर लौट आमेंगे, और उसे प्राणोंसे नहीं मारेंगे ॥ १० ॥ प्रियवादिनी दक्षिणा नायका तारा वालिको भेंटकर उसकी प्रदक्षिणाकर रोते २ वहांसे लौटी ॥ ११ ॥ शोकसे मोहित हुई, स्वस्तिके मंत्र जाननेंवाली तारा विजयकी इच्छा किये स्वस्त्ययन करके सब स्त्रियोंके साथ अन्तःपुरमें चली गई ॥ १२ ॥ जब सब स्त्रियोंके

नमेगर्वितमायस्तंसहिष्यतिदुरात्मवान् ॥ कृतंतारेसहायत्वंदर्शितंसौहृदंमयि ॥ ९ ॥ शापितासिममप्राणैर्निवर्त स्वजनेनच ॥ अलंजित्वानिवर्तिष्येतमहंभ्रातरंरणे ॥ १० ॥ तंतुतारापरिष्वज्यवालिनंप्रियवादिनी ॥ चकाररुदती मंदंदक्षिणासाप्रदक्षिणम् ॥ ११ ॥ ततःस्वस्त्ययनंकृत्वामंत्रविद्विजयैषिणी ॥ अंतःपुरंसहस्त्रीभिःप्रविष्टाशोकमोहिता ॥ १२ ॥ प्रविष्टायांतुतारायांसहस्त्रीभिःस्वमालयम् ॥ नगर्यानिर्ययौक्रुद्धोमहासर्पइवश्वसन् ॥ १३ ॥ सनिःश्वस्यम हारोषोवालीपरमवेगवान् ॥ सर्वतश्चारयन्दृष्टिंशत्रुदर्शनकांक्षया ॥ १४ ॥ सददर्शततःश्रीमान्सुग्रीवंहेमपिंगलम् ॥ सुसंवीतमवष्टब्धंदीप्यमानमिवानलम् ॥ १५ ॥ तंसदृष्ट्वामहाबाहुःसुग्रीवंपर्यवस्थितम् ॥ गाढंपरिदधेवासोवाली परमकोपनः ॥ १६ ॥ सवालीगाढसंवीतोमुष्टिमुद्यम्यवीर्यवान् ॥ सुग्रीवमेवाभिमुखोययौयोद्धुंकृतक्षणः ॥ १७ ॥

साथ तारा अपने घरमें चली गई, तब वालि क्रोधित हुये महासर्पकी समान श्वास लेता हुआ नगरीसे वाहर निकला ॥ १३ ॥ वानरराज वालिनें लंबे २ श्वास लेकर बडे वेगसे आय रोषमें भर शत्रुको देखनेंकी वासनासे चारों ओरको दृष्टि डाली ॥ १४ ॥ तिसके पीछे श्रीमान् वालिनें सुवर्णसम पिंगलनेत्र, कच्छ, कसकर बाँधे हुये, पृथ्वीपर दृढरूपसे खडे देदीप्यमान अनलतुल्य सुग्रीवजीको देखा ॥ १५ ॥ महाबलवान् परम क्रोधित वालि सुग्रीवजीको इस प्रकारसे खडा देख आपभी वस्त्रोंको कसकर पहन लेता हुआ ॥ १६ ॥ वीर्यवान् वालि कच्छ बाँध मुक्का उठाय सुग्रीवजीके सन्मुख

स्त्रीकी समान अपनें पतिरूप समुद्रमें जा मिलती है। फिर हेममय दिव्य मुक्ता मणि विभूषित ॥ १८ ॥ कपाट युक्त पाण्डय वंशियोंका फाटक देखोगे। हे वानरो! फिर तुम निश्चय समुद्रके निकट पहुंचोगे, उस समुद्र पार होनेंके विषयमें समर्थ और असमर्थ विचारकर उसके पार होना ॥ १९ ॥ उस समुद्रके पार होनेंका उपाय कहते हैं सो तुम श्रवण करो कि इसका उपाय अगस्त्यजी तुमको बतावेंगे उनसे सब समाचार जान महेन्द्र पर्वतपर जाय चित्र विचित्र शृङ्गोंपर चढ ॥ २० ॥ समुद्रके पार होजाना, यह पर्वत सुवर्णमय और समुद्रके एक पार्श्वमें डूबा हुआ है और नाना प्रकारके फूले फले वृक्षोंसे शोभायमान है ॥ २१ ॥ यह पर्वत देव, यक्ष, अप्सरा, सिद्ध और चारण गणोंसे सेवित होनेंके कारण

युक्तंकवाटपांड्यानांगताद्रक्ष्यथवानराः ॥ ततःसमुद्रमासाद्यसंप्रधार्यार्थनिश्चयम् ॥ १९ ॥ अगस्त्येनांतरेतत्रसागरे
विनिवेशितः॥चित्रसानुनगःश्रीमान्महेंद्रःपर्वतोत्तमः ॥२०॥ जातरूपमयःश्रीमानवगाढोमहार्णवम्॥नानाविधैर्नगैःफु
ल्लैर्लताभिश्चोपशोभितम् ॥ २१ ॥ देवर्षियक्षप्रवरैरप्सरोभिश्चशोभितम् ॥ सिद्धचारणसंघैश्चप्रकीर्णंसुमनोरमम् ॥ २२
तमुपैतिसहस्राक्षःसदापर्वसुपर्वसु ॥ द्वीपस्तस्यापरेपारेशतयोजनविस्तृतः ॥ २३ ॥ अगम्योमानुषैर्दीप्तस्तंमार्गध्वं
समंततः ॥ तत्रसर्वात्मनासीतामार्गितव्याविशेषतः ॥ २४ ॥ सहिदेशस्तुवध्यस्यरावणस्यदुरात्मनः ॥ राक्षसाधि
पतेर्वासःसहस्राक्षसमद्युतेः ॥ २५ ॥ दक्षिणस्यसमुद्रस्यमध्येतस्यतुराक्षसी ॥ अंगारकेतिविख्याताछायामाक्षि
प्यभोजनी ॥ २६ ॥

परम मनोहर है ॥ २२ ॥ देवराज इन्द्रजी प्रत्येक अमावास्या और पूर्णमासीको इस पर्वतपर आगमन किया करते हैं। इसी समुद्रकी दूसरीपार सौ योजन विस्तारवाला एक द्वीप है ॥२३॥ वहांपर कोई मनुष्य नहीं जा सकता वहांपर चारोंओर विशेष करके द्वीपमें सीताजीको ढूँढना ॥२४॥ हम जानते हैं कि वही स्थान इन्द्रतुल्य दीप्तिमान राक्षसपति दुरात्मा और वध करनेंके योग्य रावणका वासस्थल है ॥ २५ ॥ इस दक्षिण समुद्रके बीचमें अङ्गारिका नाम विख्यात परछांई पकडकर जीवोंको खेंचकर भक्षण करनेंवाली राक्षसी वास किया करती हैं ॥ २६ ॥

नामक वानर यूथप, हजार करोड वानरोंकी सेनाके सहित आया ॥ १६ ॥ फिर, पद्मपरागकी समान वर्णवाला. और घोर प्रभात कालीन सूर्यके रंगकी समान मुख वाला महा बुद्धिमान वानर श्रेष्ठ. और सब वानरोंमें अति उत्तम ॥ १७ ॥ बहुत सहस्र वानरोंकी सेनाके सहित. हनुमानजी का पिता श्रीमान केशरी नामक वानर आया ॥ १८ ॥ गोपुच्छ वानरोंका राजा भयंकर विक्रमकारी गवाक्ष, करोड सहस्र वानरोंको साथ लेकर आ पहुँचा ॥ १९ ॥ भयंकर वेगवान रीछोंका राजा शत्रुओंका मारनेवाला धूम्र नामक ऋक्ष दो सहस्र किरोड ऋक्षोंकी सेना लिये हुये आया ॥ २० ॥ पनस नामक वीर्यवान यूथपति वानर महाबलवान घोर रूप तीन करोड वानर संग लिये वहां आगमन करता हुआ ॥२१॥

पद्मकेसरसंकाशस्तरुणार्कनिभाननः ॥ बुद्धिमान्वानरश्रेष्ठःसर्ववानरसत्तमः ॥ १७ ॥ अनेकैर्बहुसाहस्रैर्वानराणां समन्वितः ॥ पिताहनुमतःश्रीमान्केसरीप्रत्यदृश्यत ॥ १८ ॥ गोलांगूलमहाराजोगवाक्षोभीमविक्रमः ॥ वृतःकोटि सहस्रेणवानराणामदृश्यत ॥ १९ ॥ ऋक्षाणांभीमवेगानांधूम्रःशत्रुनिबर्हणः ॥ वृतःकोटिसहस्राभ्यांद्वाभ्यांसमभिव र्तत ॥२०॥ महाबलनिभैर्घोरैःपनसोनामयूथपः ॥ आजगाममहावीर्यस्तिसृभिःकोटिभिर्वृतः ॥२१॥ नीलांजनचया कारोनीलोनामैषयूथपः ॥ अदृश्यतमहाकायःकोटिभिर्दशभिर्वृतः ॥ २२ ॥ ततःकांचनशैलाभोगवयोनामयूथपः ॥ आजगाममहावीर्यःकोटिभिःपंचभिर्वृतः ॥ २३ ॥ दरीमुखश्चबलवान्यूथपोभ्याययौतदा ॥ वृतःकोटिसहस्रेणसुग्री वंसमवस्थितः ॥ २४ ॥ मैंदश्चद्विविदश्चोभावाश्विपुत्रौमहाबलौ ॥ कोटिकोटिसहस्रेणवानराणामदृश्यताम् ॥ २५ ॥ गजश्चबलवान्वीरस्तिसृभिःकोटिभिर्वृतः ॥ ऋक्षराजोमहातेजाजांबवान्नामनामतः २६ ॥

नील वर्णी अंजन पुंजकी समान द्युतिमान महा काय नील नामक यूथपति दशकोटि वानरोंको संग लिये हुये आया ॥२२॥ सुवर्ण पर्वतके तुल्य द्युतिवाला महा वीर्यवान गवय नामक यूथपति पांच करोड सेनाके संग उपस्थित हुआ ॥ २३ ॥ दरी मुख नामक बलवान यूथपति हजार कोटि वानरोंकी सेना संग लिये हुये सुग्रीवजीके निकट आय पहुँचा॥२४॥मैन्द और द्विविद नामक महा बलवान वानर अश्विनीके पुत्र दोनों कोटि २ सहस्र वानरोंकी सेना संग लिये हुये आये ॥ २५ ॥ गज नामक बलवान वीर तीनकरोड वानरोंकी सैनाको ले आया और ऋक्षोंका

रहनेंका स्थान भोगवती नाम पुरीहै ॥ ३६ ॥ यह पुरी बडे मार्गवाली, दुर्द्धर्षहै, और सब ओरसे रक्षितहै, और महा विषैले तेज दांत वाले घोर
सर्पभी इसकी रक्षा करतेहैं ॥ ३७ ॥ जहांपर महा घोर सर्पराज वासुकीजी वसतेहैं, ऐसी भोगवती पुरीमें जाय सबलोग ॥ ३८ ॥ वहांपरके
ढके ढकाये सब गुप्त देशोंको भली भांतिसे ढूंडना; उस देशको नांघ आगे बढ़कर बैलके आकारवाला बडा भारी ॥ ३९ ॥ सर्व रत्नमय परम
सुन्दर ऋषभ नामक पर्वत मिलैगा । इसपर गोशीर्षक, पद्मक; हरिश्यामा, ॥ ४० ॥ दिव्य विशेष २ चंदन अग्निसम प्रभाशाली उत्पन्न होतेहैं
उन चंदनोंको देखकर तुम कुछ वात न करना और उनको छूनाभी मत ॥ ४१॥ कारणकि उस बनकी रक्षा रोहित नामक घोर गन्धर्व किया

विशालरथ्यादुर्धर्षासर्वतःपरिरक्षिता ॥ रक्षितापन्नगैर्घोरैस्तीक्ष्णदंष्ट्रैर्महाविषैः ॥ ३७ ॥ सर्पराजोमहाघोरोयस्यां
वसतिवासुकिः ॥ निर्यायमार्गितव्याचसाचभोगवतीपुरी ॥ ३८ ॥ तत्रचानंतरोद्देशायेकेचनसमावृताः ॥ तंचदेशम
तिक्रम्यमहानृषभसंस्थितिः ॥ ३९ ॥ सर्वरत्नमयःश्रीमानृषभोनामपर्वतः ॥ गोशीर्षकंपद्मकंचहरिश्यामंचचंदनम् ॥
॥ ४० ॥दिव्यमुत्पद्यतेयत्रतच्चैवाग्निसमप्रभम् ॥ नतुतच्चंदनंदृष्ट्वास्प्रष्टव्यंतुकदाचन ॥ ४१ ॥ रोहितानामगंधर्वाघोरंर
क्षंतितद्वनम् ॥ तत्रगंधर्वपतयःपंचसूर्यसमप्रभाः ॥ ४२ ॥ शैलूषोग्रामणीःशिक्षःशुकोबभ्रुस्तथैवच ॥ रविसोमाग्निवपुषां
निवासःपुण्यकर्मणाम्॥४३॥अंतेपृथिव्यादुर्धर्षास्ततःस्वर्गजितःस्थिताः॥ततःपरंनवःसेव्यःपितृलोकःसुदारुणः॥४४॥
राजधानीयमस्यैषाकष्टेनतमसावृता॥एतावदेवयुष्माभिर्वीरवानरपुंगवाः॥शक्यंविचेतुंगंतुंवानातोगतिमतांगतिः॥४५

करतेहैं वहांपर पांच गन्धर्वोंके पति सूर्यकी समान प्रभावाले ॥ ४२ ॥ शैलूप, ग्रामणी, शिक्ष, शुक, और बभ्रु रहतेहैं उसपर सूर्य चंद्र और अग्नि
के समान प्रकाशित देह पुण्यात्मा लोगोंके रहनेंके स्थान बनेहैं ॥ ४३ ॥ ऐसे पृथ्वीके अंतमें दुर्द्धर्ष तथा स्वर्गके सुख जीतनेंवाले लोग रहतेहैं
इसके आगे दारुण पितृलोकहै, जहांपर मनुष्य नहीं जा सकते ॥ ४४ ॥ यहां अंधकारसे ढकीहुई यमराजकी राजधानी संयमिनी नाम पुरीहै
वहांपर तुम क्षण मात्रभी नहीं ठहर सकतेहो, हे वानर श्रेष्ठगण ! तुमलोग यहींतक ढूंडनेंको समर्थहो इस्से और फिर मनुष्यादिक किसीकीभी

मुख नामक वानर पति नदीप्रदेशसे दशकोटि वानरोंकी अनी संगलिये हुये ॥ ३६ ॥ महात्मा सुग्रीवजीके निकट प्राप्त हुआ शरभ कुमुद व ह्नि और रंभ ॥ ३७ ॥ व और भी बहुतसे इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले वानरोंके यूथप सब पृथ्वी वन और पर्वत आदिकोंको ढकते हुये आये ॥ ३८ ॥ व अनेक प्रकारके नामधारी यूथप आये कि जिनकी संख्या नहीं है इन सब वानरदलोंके मध्यमें कोई कोई २ दल आता जाताथा, और कोई आय २ करके बैठता जाताथा ॥ ३९ ॥ उन दलोंमें के कोई २ वानर उन्हें घेरते छलांग मारते कोई २ गर्जते सुग्रीवजीके निकट पहुँचने लगे, जिस प्रकार मेघ सूर्यके निकट गमन करते हैं॥४०॥ और सबही वानर बहुत शब्द कर रहे थे वह सब महाबली सुग्रीवजीके

संप्राप्तोभिनदंतस्यसुग्रीवस्यमहात्मनः ॥ शरभःकुमुदोवह्निर्वानरोरंभएवच ॥ ३७ ॥ एतेचान्येचबहवोवानराः कामरूपिणः ॥ आवृत्यपृथिवींसर्वांपर्वतांश्चवनानिच ॥ ३८ ॥ यूथपाःसमनुप्राप्तायेषांसंख्यानविद्यते ॥ आगताश्चानिविष्टाश्चपृथिव्यांसर्ववानराः ॥ ३९ ॥ आप्लुवंतःप्लवंतश्चगर्जंतश्चप्लवंगमाः ॥ अभ्यवर्ततसुग्रीवंसूर्यमभ्रगणाइव ॥ ४० ॥ कुर्वाणाबहुशब्दांश्चप्रकृष्टाबाहुशालिनः ॥ शिरोभिर्वानरेंद्रायसुग्रीवायन्यवेदयन् ॥ ४१ ॥ अपरेवानरश्रेष्ठाःसंगम्यचयथोचितम् ॥ सुग्रीवेणसमागम्यस्थिताःप्रांजलयस्तदा ॥ ४२ ॥ सुग्रीवस्त्वरितोरामेसर्वांस्तांस्त्वरितांस्तदा ॥ निवेदयित्वाधर्मज्ञःस्थितःप्रांजलिरब्रवीत् ॥ ४३ ॥ यथासुखंपर्वतनिर्झरेषुवनेषुवर्षेषुचवानरेंद्राः ॥ निवेशयित्वाविधिवद्बलानिबलंबलज्ञःप्रतिपत्तुमीष्टे॥४४॥इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०किष्किंधाकांडेएकोनचत्वारिंशःसर्गः ॥ ३९॥

निकट पहुँच कर मस्तक झुकाय २ अपना २ आना निवेदन कर रहे थे ॥ ४१ ॥ और कोई २ सुग्रीवजीके निकट पहुँचकर, उनका यथोचित आदर सन्मान कर हाथ जोड कर खडे होनेंलगे ॥ ४२ ॥ तिसके पीछे धर्मात्मा सुग्रीवजीने शीघ्रताके सहित श्रीरामचंद्रजीके निकट जाय हाथ जोड उनसे समस्त वानर और वानरयूथपतियोंका आगमन निवेदन किया फिर वानर यूथपोंसे बोले ॥ ४३ ॥ हे समस्तवानरेन्द्रगण! पर्वत, झरने, और वनके समूहोंमें उस सैनाको टिकाकर कि जिसका बल अच्छी तरहसे तुम सब जानते हो । विधिपूर्वक इस बातका निर्णय करो कि कौन वानर आया और कौन नहीं आया ॥ ४४ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० कि० एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥३९॥

कार वाला और प्रकाश गानथा॥३॥और बुद्धिमें खगपति तुल्य द्युतिमान और मरीचिके सुन्दर माला धारण किये मारीच नाम अति गुण धाम और
महाबलवान ॥ ४ ॥ ऋषिपुत्रथे उन सबको पश्चिम दिशामें जानेके लिये सुग्रीवजीनें आज्ञादी, इनके साथ दो लक्ष यूथपथे व और वानरोंकी तो
कुछ गिन्तीही नहीं ॥ ५ ॥ हे वानरो ! सुषेण सहित तुम लोग वैदेहीजीको जाय कर ढूंडो, प्रथम सौराष्ट्र देश फिर बाह्लीक, तिसके आगे चंद्र
चित्र ॥ ६ ॥ इत्यादि मनोहर विभवशाली जनपद, और बहुतसे पुर और पुन्नाग, गहन, बकुल, उद्दालक ॥ ७ ॥ तथा केतक आदिके वृक्षोंसे

बुद्धिविक्रमसंपन्नंवैनतेयसमद्युतिम् ॥ मरीचिपुत्रान्मारीचानर्चिर्माल्यान्महाबलान् ॥ ४॥ ऋषिपुत्रांश्चतान्सर्वान्प्रती
चीमादिशद्दिशम् ॥ द्वाभ्यांशतसहस्राभ्यांकपीनांकपिसत्तमाः ॥ ५ ॥ सुषेणप्रमुखायूयंवैदेहींपरिमार्गथ ॥ सौरा
ष्ट्रान्सहबाल्हीकांश्चंद्रचित्रांस्तथैवच ॥ ६ ॥ स्फीताञ्जनपदान्रम्यान्विपुलानिपुराणिच ॥ पुन्नागगहनंकुक्षिंबकु
लोद्दालकाकुलम् ॥ ७॥ तथाकेतकखंडांश्चमार्गध्वंहरिपुंगवाः ॥ प्रत्यक्स्रोतोवहाश्चैवनद्यःशीतजलाःशिवाः ॥ ८ ॥
तापसानामरण्यानिकांतारगिरयश्चये ॥ तत्रस्थलीर्मरुप्रायाअत्युच्चाशिशिराःशिलाः ॥ ९ ॥ गिरिजालावृतांदुर्गांमा
र्गित्वापश्चिमांदिशम् ॥ ततःपश्चिममागम्यसमुद्रंद्रष्टुमर्हथ ॥ १० ॥ तिमिनक्राकुलजलंगत्वाद्रक्ष्यथवानराः ॥ ततः
केतकखंडेषुतमालगहनेषुच॥११॥कपयोविहरिष्यंतिनारिकेलवनेषुच॥तत्रसीतांचमार्गध्वंनिलयंरावणस्यच ॥१२॥

व्याप्त कुक्षि देशको ढूंडना; हे वानरश्रेष्ठो ! पश्चिमकी ओरको वहनें वाली शीतल जल युक्त पवित्र नदियेंभी ढूंडना ॥ ८ ॥ तपस्वियोंके वन बडे
दुर्गम पर्वत, अति ऊँची वनस्थलियें, जल रहित देश, शीतल शिलायें ॥ ९ ॥ और अ.कें भांतिके पर्वत समूहसे युक्त पश्चिम दिशाको खोज
ना फिर पश्चिम दिशाको आकर पश्चिम समुद्र देखोगे ॥ १० ॥ इस समुद्रमें बडे २ नाके मगर आदि जल जीव भरे हैं इसके आगे केतक खंड
और गहन तमाल वनके मध्य ॥ ११ ॥ और नारियलके काननमें वानरगण विहरेंगे; इन सब स्थानोंमें दुष्ट रावणके स्थान सहित सीताजीको

मचंद्रजी दोनों बाहें पसार उनसे भेंटकर बोले ॥ १० ॥ हे सौम्य ! हेमहा पंडित ! जनककुमारी सीताजी जीवितहैं; अथवा नहीं; और रावण किस देशमें रहताहै इस बातका पता लगाना उचितहै ॥ ११ ॥ जब यह बात जानली जायगी तब रावणके स्थानपर और वैदेहीजीके निकट पहुंचकर तुम्हारे साथ परामर्श करके समयानुसार उचित्त कार्यकाविधान किया जायगा ॥ १२ ॥ हे वानरनाथ! हम या लक्ष्मण इस कार्यके साधन करनेंमें समर्थ नहीहैं! तुमही इस कार्यके कारणहो और तुम्ही इसकेसिद्ध करनेंमें समर्थहो ॥ १३ ॥ हेवीर! तुम निःसन्देह हमारे कार्यको जान तेहो इसलिये तुमही इस विषयमें निश्चित कार्यको सोच विचार करआज्ञादेदो ॥ १४ ॥ तुम हमारे अनुपम सुहृद, बलवान् पंडित, समयको

ज्ञायतांसौम्यवैदेहीयदिजीवतिवानवा ॥ सचदेशोमहाप्राज्ञयस्मिन्वसतिरावणः ॥ ११ ॥ अभिगम्यतुवैदेहींनिलय रावणस्यच ॥ प्राप्तकालंविधास्यामितस्मिन्कालेसहत्वया ॥ १२ ॥ नाहमस्मिन्प्रभुःकार्येवानरेंद्रनलक्ष्मणः ॥ त्वम स्यहेतुःकार्यस्यप्रभुश्चप्लवगेश्वर ॥ १३ ॥ त्वमेवाज्ञापयविभोममकार्यविनिश्चयम् ॥ त्वंहिजानासिमेकार्यममवीरनसं शयः ॥ १४ ॥ सुहृद्द्वितीयोविक्रांतःप्राज्ञःकालविशेषवित् ॥ भवानस्मद्धितेयुक्तःसुहृदाप्तोर्थवित्तमः ॥ १५ ॥ एवमुक्त स्तुसुग्रीवोविनतंनामयूथपम् ॥ अब्रवीद्रामसान्निध्येलक्ष्मणस्यचधीमतः॥१६॥शैलाभंमेघनिर्घोषमूर्जितंप्लवगेश्वरम्॥ सोमसूर्यनिभैःसार्धवानरैर्वानरोत्तम ॥ १७ ॥ देशकालनयैर्युक्तोविज्ञःकार्यविनिश्चये ॥ वृतःशतसहस्रेणवानराणांतर स्विनाम् ॥ १८ ॥ अधिगच्छदिशंपूर्वांसशैलवनकाननाम् ॥ तत्रसीतांचवैदेहींनिलयंरावणस्यच ॥ १९ ॥

भली प्रकारसे जाननें वाले अर्थ विचारनें वालोंमें अग्रगण्यहो और हमाराहितकारी कार्य करनेंमें लगे हुयेहो ॥ १५ ॥ जब सुग्रीवजीसे श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा तब सुग्रीवजी बुद्धिमान श्रीराम लक्ष्मणजीके आगेही वानर श्रेष्ठ ॥ १६ ॥ पर्वत सम आकार वाले मेघकी समान शब्दकारी विनत नाम यूथपसे बोलेकि हे वानरोत्तम ! चंद्रमा व सूर्यकी समान वर्णवाले वानर संगले ॥ १७ ॥ जो देश काल और नीति शास्त्रके जाननें वालेहों उनको साथले, कार्य करनेंमें निश्चय किये औरभी सैकडों सहस्रों वानरोंको साथ लिये ॥ १८ ॥ पूर्वदिशाको चलेजाओ. वहांपर पर्वत, वन इत्यादि स्थलोंमें जनककुमारी सीताजी और रावणके बसनेंके स्थानकोढूंडो (चारों दिशा ओंमें रावणके रहनेंके स्थानथे) ॥ १९ ॥

को पावककी शिखाके तुल्य प्रकाशित चारों ओर घूमा करतेहैं ॥ २१ ॥ भयंकर कर्मकारी वानर गण ऐसे चले जांय कि मानो उनको देखाही नहीं और उनके साथ कोई छेड छाडभी न कीजाय और वहांका कोई फल भी न तोडा जाय ॥ २२ ॥ क्योंकि वह धीर्य वीर्य शाली महाबलवान दुर्द्धर्प वीर गण उन फलोंकी रक्षा किया करते हैं ॥ २३ ॥वहां पर जानकीजीके ढूँडनेमें यत्न करना कर्त्तव्यहै यद्यपि उन गन्धर्वोंका प्रभाव बडाहै तथापि विना अपराध किये उन लोगोंसे किसीको भयका कारण नहींहोता॥२४ ॥ वहीं पर वैदूर्य मणिके रंगका और हीरेकी चमककी समान अनेक भांतिके वृक्षोंसे शोभित ॥ २५ ॥ शत योजनका चौडा और शोभायमान वज्रनाम महा पर्वत है उस पर्वतकी समस्त बडी २ कन्दरायें देखना॥२६॥

नात्यासादयितव्यास्तेवानरैर्भीमविक्रमैः ॥ नादेयंचफलंतस्माद्देशात्किंचित्प्लवंगमैः ॥ २२ ॥ दुरासदाहितेवीराःसत्त्ववंतामहाबलाः ॥ फलमूलानितेतत्ररक्षंतेभीमविक्रमाः ॥ २३ ॥ तत्रयत्नश्चकर्तव्योमार्गितव्याचजानकी ॥ नहितेभ्योभयंकिंचित्कपित्वमनुवर्तताम् ॥ २४ ॥ तत्रवैदूर्यवर्णाभोवज्रसंस्थानसंस्थितः ॥ नानाद्रुमलताकीर्णोवज्रोनाममहागिरिः ॥ २५ ॥ श्रीमान्समुदितस्तत्रयोजनानांशतंसमम् ॥ गुहास्तत्रविचेतव्याःप्रयत्नेनप्लवंगमाः ॥ २६ ॥ चतुर्भागेसमुद्रस्यचक्रवान्नामपर्वतः ॥ तत्रचक्रंसहस्रारंनिर्मितंविश्वकर्मणा ॥ २७ ॥ तत्रपंचजनंहत्वाहयग्रीवंचदानवम् ॥ आजहारततश्चक्रंशंखंचपुरुषोत्तमः ॥ २८ ॥ तत्रसानुषुरम्येषुविशालासुगुहासुच ॥ रावणःसहवैदेह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥ २९ ॥ योजनानिचतुःषष्टिर्वराहोनामपर्वतः ॥ सुवर्णशृंगःसुमहानगाधेवरुणालये ॥ ३० ॥ तत्रप्राग्ज्योतिषंनामजातरूपमयंपुरम् ॥ तस्मिन्वसतिदुष्टात्मानरकोनामदानवः ॥ ३१ ॥

उसके आगे समुद्रके चतुर्थ भागमें टिका हुआ चक्र वान नाम पर्वतहै; वहीं पर विश्वकर्माजीने सहस्र आरागजका चक्र बनायाथा ॥२७॥ वहींपर पुरुषोत्तम विष्णु भगवानजीने पञ्चजन और हयग्रीव नामक दो दानवोंका संहार करके शंख और चक्र ग्रहण कियाथा ॥ २८ ॥ उस पर्वतके मनोहर शृङ्गों पर और समस्त विशाल गुफाओंमें वैदेहीजी और रावणको ढूंडना तुम्हारा कर्त्तव्य है ॥ २९ ॥ इसके आगे अगाध समुद्रमें चौंसठ योजनकी उँचाई वाला सुवर्णशृङ्ग युक्त वराहनामक पर्वत है ॥ ३० ॥ उस पर्वत पर प्राज्ञ ज्योतिष नामक सुवर्ण मय पुरहै

वाले और ऊपरके भागमें व्याघ्रकी समान आकार वाले नर व्याघ्र लोग जोकि जलके मध्यमें रहतेहैं ॥ २८ ॥ इन सब राक्षसोंके स्थानोंमें भली भांति देखना भालना पर्वतोंको देखते भालते, जिन देशोंमें अथवा द्वीपोंमें उछल कूदकर जाना होसके, ऐसे सब देशोंमें ढूंडना तुम्हारा परम कर्त्तव्यहै ॥ २९ ॥ और तुम बडे यत्नके साथ सप्त राज्य सुशोभित यव द्वीपमें जाना; और सुवर्ण कारी पुष्पोंसे शोभित रूपक द्वीपमें ढूँडना तुम्हारा कर्त्तव्यहै ॥ ३० ॥ जब सुवर्ण द्वीपको ढूंडकर आगे चलोगे, तब देव दानव गण करके सेवित शिशिर नामक पर्वत मिलैगा, उसके कँगूरे आकाशको भेद करके मानों स्वर्गको छू रहेहैं ॥ ३१ ॥ इन सब द्वीपादिकोंकेपर्वतोंके दुर्गोंमें वनोंमें, और नदियोंके अप्रगट होनेंके स्थानोंमें, तुम यश

एतेषामाश्रयाःसर्वेविचेयाःकाननौकसः ॥ गिरिभिर्येचगम्यंतेप्लवनेनप्लवेनच ॥ २९ ॥ यत्नवंतोयवद्वीपंसप्तराज्योपशोभितम् ॥ सुवर्णरूप्यकद्वीपंसुवर्णकरमंडितम् ॥ ३० ॥ यवद्वीपमतिक्रम्यशिशिरोनामपर्वतः ॥ दिवंस्पृशतिशृंगेणदेवदानवसेवितः ॥ ३१ ॥ एतेषांगिरिदुर्गेषुप्रपातेषुवनेषुच ॥ मार्गध्वंसहिताःसर्वेरामपत्नीयशस्विनीम् ॥ ३२ ॥ ततोरक्तजलंप्राप्यशोणाख्यंशीघ्रवाहिनम् ॥ गत्वापारंसमुद्रस्यसिद्धचारणसेवितम् ॥ ३३ ॥ तस्यतीर्थेषुरम्येषुविचित्रेषुवनेषुच ॥ रावणःसहवैदेह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥ ३४ ॥ पर्वतप्रभवानद्यःसुभीमबहुनिष्कुटाः ॥ मार्गितव्यादरीमंतःपर्वताश्चवनानिच ॥ ३५ ॥ ततःसमुद्रद्वीपांश्चसुभीमान्द्रष्टुमर्हथ ॥ ऊर्मिमंतंमहारौद्रंक्रोशंतमनिलोद्धतम् ॥ ३६ ॥ तत्रासुरामहाकायाश्छायांगृह्णंतिनित्यशः ॥ ब्रह्मणासमनुज्ञातादीर्घकालंबुभुक्षिताः ॥ ३७ ॥

स्विनी राम भार्या जानकीजीको ढूंढना ॥ ३२ ॥ फिर समुद्रके उस पारजाकर, सिद्ध चारण सेवित लाल जल वाला शोण नामक नद मिलेगा ॥ ३३ ॥ वहां उसके रमणीक तीर्थमें, विचित्र वनोंमें, और कन्दरायुक्त सब पर्वतोंमें और वनोंमें खोज करना ॥ ३४ ॥ भयंकर अनेक उपवनोंसे युक्त पर्वतोंसे निकली हुई समस्त नदियोंमें, और कन्दरा युक्त सबपर्वतोंमें और वनोंमें खोज करना तुम्हारा अवश्य कर्त्तव्यहै ॥ ३५ ॥ फिर भयंकर पवनके सन्नाटेसे भयंकर शब्द करता हुआ, अति उग्र तरंग युक्तसमुद्रके द्वीप तुम लोग देखोगे॥ ३६॥इस इक्षु समुद्रमें ब्रह्माजीकी आज्ञा पाये हुये, भूंखसे सताये असुर गण नित्य २ परछांयी ग्रहण करके प्राणियोंको भक्षण किया करतेहैं, सो यहां पर बडी सावधानीसे जाना॥ ३७॥

आदित्यमुपतिष्ठंतितैश्चसूर्योभिपूजितः ॥ अदृश्यःसर्वभूतानामस्तंगच्छतिपर्वतम् ॥ ४२ ॥ योजनानांसहस्राणि
दशतानिदिवाकरः ॥ मुहूर्तार्धेनतंशीघ्रमभियातिशिलोच्चयम् ॥ ४३ ॥ शृंगेतस्यमहद्दिव्यंभवनंसूर्यसन्निभम् ॥ प्रासा
दगणसंबाधंविहितंविश्वकर्मणा ॥ ४४ ॥ शोभितंतरुभिश्चित्रैर्नानापक्षिसमाकुलैः ॥ निकेतंपाशहस्तस्यवरुणस्य
महात्मनः ॥ ४५ ॥ अंतरामेरुमस्तंचतालोदशशिरामहान् ॥ जातरूपमयःश्रीमान्भ्राजतेचित्रवेदिकः ॥ ४६ ॥ ते
घुसर्वेषुदुर्गेषुसरस्सुचसरित्सुच ॥ रावणःसहवैदेह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥ ४७ ॥ यत्रतिष्ठतिधर्मज्ञस्तपसास्वेनभा
वितः ॥ मेरुसावर्णिरित्येषख्यातोवैब्रह्मणासमः ॥ ४८ ॥ प्रष्टव्योमेरुसावर्णिर्महर्षिःसूर्यसन्निभः ॥ प्रणम्यशिरसा
भूमौप्रवृत्तिंमैथिलींप्रति ॥ ४९ ॥ एतावज्जीवलोकस्यभास्करोरजनीक्षये ॥ कृत्वावितिमिरंसर्वमस्तंगच्छतिपर्व
तम् ॥ ५० ॥ एतावद्वानरैःशक्यंगंतुंवानरपुंगवाः ॥ अभास्करममर्यादंनजानीमस्ततःपरम् ॥ ५१ ॥

गण, वसुगण, मरुद्गण, और सुरलोकके रहनेंवाले देवता लोग आगमन करकै पश्चिमसन्ध्यामें ॥ ४१ ॥ सूर्यदेवकी उपासना करते हैं सूर्य
देव उनसे पूजित और सर्व जीवोंकी दृष्टिसे अदृश्य हो अस्ताचलको प्राप्तहोजातेहैं ॥ ४२ ॥ इसके आगे दशहजार योजनके विस्तार वाले अस्ता
चल पर्वत पर सूर्य नारायण आधे मुहूर्तमें मेरु पर्वतसे पहुँचते हैं ॥ ४३ ॥ उसी पर्वतके शिखरपर बडे २ दिव्य, सूर्यकी समान प्रभावाला बहुत ध
वरहरेवाला भवन विश्वकर्माका बनाया हुआ है ॥ ४४ ॥ वह अनेक प्रकारके पक्षी और वृक्ष समूहके चित्रित होनेंसे शोभायमान है; यही पाश
हस्त वरुण देवजी का स्थान है ॥ ४५ ॥ आगे मेरुकी चोटीमें दश शाखा वाला सुवर्ण मय परम सुन्दर एक ताल वृक्ष शोभायमान हो रहाहै, उस
पर्वतके मूलमें विचित्र वेदी बनी हैं ॥ ४६ ॥ उस पर्वत के समस्त दुर्गम स्थानोंमें, सरोवरोंमें, और नदियोंमें, तुम सब जनोंको जानकी जी और रा
वणका ढूंडना उचित है ॥ ४७ ॥ इसी मेरु पर्वतपर ब्रह्माजी के तुल्य देदीप्यमान अपने तेजसे प्रकाशित धर्मात्मा मेरु सावर्णि नाम विख्यात तप
स्वी वास करते हैं ॥ ४८ ॥ उन सूर्यकी समान प्रकाशित महर्षि मेरु सावर्णिजी को शिर झुका प्रणाम करकै जानकीजीका समाचार पूछना॥४९॥
रात्रिके वीत जानेपर सूर्य नारायण उदयाचलपर्वतसे मेरु सावर्णितकप्रकाश करकै अस्त हो जातेहैं ॥ ५० ॥ हे कपिवरगण! वानर गण यहीं

भांतिके पुष्प खिल रहे हैं ॥ ४५ ॥ इसका नाम सुदर्शनसर है, यह राजहंसोंसे व्याप्त है और इसके किनारे २ देव,चारण, यक्ष, किन्नर, अप्सरा गण ॥ ४६ ॥ हर्षित हो विहार करनेंके लिये उसी घरमें घूमा करते हैं । क्षीर सागर उतरनेके बाद हे वानरगण! ॥ ४७ ॥ जलोद सागरको शीघ्रही देखोगे, यह समुद्र सब प्राणियोंको भय उपजानें वाला है । कारणकि वहां पर और्व ऋषिके क्रोधसे उत्पन्न तेजसे महा हय मुख तेज उत्पन्न हुआ है ॥ ४८ ॥ उस अद्भुत महा वेग हय मुख तेजका प्रलयकालमें सचराचर जगत् अन्न स्वरूप कहाता है । उस स्थानमें असमर्थ विनाशकी शंकासे डरे हुये प्राणियोंका महा आरत शब्द श्रवण आया करता है; यह प्राणी उस हय मुखके देखनेंसे डरकर रोया करते हैं ॥ ४९ ॥ स्वादु समुद्रके

नाम्नासुदर्शनंनामराजहंसैःसमाकुलम् ॥ विबुधाश्चारणायक्षाःकिन्नराश्चाप्सरोगणाः ॥ ४६ ॥ हृष्टाःसमधिगच्छंतिनलिनींतांरिरंसवः ॥ क्षीरोदंसमतिक्रम्यतदाद्रक्ष्यथवानराः ॥ ४७ ॥ जलोदंसागरंशीघ्रंसर्वभूतभयापहम् ॥ तत्रतत्कोपजंतेजःकृतंहयमुखंमहत्॥ ४८ ॥अस्याद्भुतंमहावेगमोदनंसचराचरम् ॥ तत्रविक्रोशतांनादोभूतानांसागरौकसाम्॥ श्रूयतेचासमर्थानांदृष्ट्वाभूद्वडवामुखम् ॥ ४९ ॥ स्वादूदस्योत्तरेतीरेयोजनानित्रयोदश ॥ जातरूपशिलोनामसुमहान्कनकप्रभः ॥ ५० ॥ तत्रचंद्रप्रतीकाशंपन्नगंधरणीधरम् ॥ पद्मपत्रविशालाशंततोद्रक्ष्यथवानराः ॥ ५१ ॥ आसीनंपर्वतस्याग्रेसर्वदेवनमस्कृतम् ॥ सहस्रशिरसंदेवमनंतंनीलवाससम् ॥ ५२ ॥ त्रिशिराःकांचनःकेतुस्तालस्तस्यमहात्मनः ॥ स्थापितःपर्वतस्याग्रेविराजतिसवेदिकः ॥ ५३ ॥ पूर्वस्यांदिशिनिर्माणंकृतंतत्रिदशेश्वरैः ॥ ततःपरंहेममयःश्रीमानुदयपर्वतः ॥ ५४ ॥

उत्तर तीरमें तेरह योजन विस्तार वाला कनक तुल्य प्रभाशाली सुवर्णकी चट्टानोंसे युक्त एक महान पर्वत है ॥ ५० ॥ वहांपर हे वानरो ! तुम चन्द्रमाकी तुल्य श्वेत वर्णवाले कमल दलकी समान विशाल नेत्र वाले धरणी धर भुजंगोंको देखोगे ॥ ५१ ॥ वहीं सहस्र शिरवाले नीलाम्बर धारण किये सब देवताओंके नमस्कार करनेंके योग्य अनन्तजी पर्वतके शिखरपर बैठे रहते हैं ॥ ५२ ॥ इनके शिरके निकट तीन स्कंध वाली सुवर्णकी केतु–स्वरूप ताल वृक्षके आधारसे बनी हुई वेदी विराजित है उस पर अनंतजी प्रतिष्ठित हैं ॥ ५३ ॥ इन्द्रजीनें उस तरुवरको पूर्व दिशाके

वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजी; अपने श्वशुरको पश्चिम दिशामें भेजते हुये और शतबलनामक वानरनाथसे सुग्रीवजी ॥ १ ॥ बोले; सर्वज्ञ कपिराजनें जो वचन कहे वह सबही अपने और श्रीरामचन्द्रजीके हितके लियेथे ॥२॥ सुग्रीवजी बोले कि हे विक्रमशालिन्! तुम अपने मेलके शतसहस्र वनवासी वानरोंके साथ समस्त यमसुत मंत्रि गणोंके सहित यात्रा करो ॥३॥ और हिमालय पर्वतको कर्णफूल बनाये उत्तर दिशामें जायकर यशस्विनी श्रीरामचन्द्रजीकी भार्याको ढूंडो ॥ ४ ॥ हे कृतार्थोंके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ! श्रीरामचन्द्रजीका यह प्रियकार्य पूरा हो जानेंपर हम उनके ऋणसे छूट

ततःसंदिश्यसुग्रीवःश्वशुरंपश्चिमांदिशम् ॥ वीरंशतबलंनामवानरंवानरेश्वरः ॥ १ ॥ उवाचराजासर्वज्ञःसर्ववानरसत्तमः ॥ वाक्यमात्महितंचैवरामस्यचहितंतदा ॥ २ ॥ वृतःशतसहस्रेणत्वद्विधानांवनौकसाम् ॥ वैवस्वतसुतैःसार्धं प्रविष्टःसर्वमंत्रिभिः ॥ ३ ॥ दिशंह्युदीचींविक्रांतहिमशैलावतंसिकाम् ॥ सर्वतःपरिमार्गध्वंरामपत्नींयशस्विनीम् ॥ ४ ॥ अस्मिन्कार्येविनिर्वृत्तेकृतेदाशरथेःप्रिये ॥ ऋणान्मुक्ताभविष्यामःकृतार्थार्थविदांवर ॥ ५ ॥ कृतंहिप्रियमस्माकं राघवेणमहात्मना ॥ तस्यचेत्प्रतिकारोऽस्तिसफलंजीवितंभवेत् ॥ ६ ॥ अर्थिनःकार्यनिर्वृत्तिमकर्तुरपियश्चरेत् ॥ तस्यस्यात्सफलंजन्मकिंपुनःपूर्वकारिणः ॥ ७ ॥ एतांबुद्धिंसमास्थायदृश्यतेजानकीयथा ॥ तथाभवद्भिःकर्तव्यमस्मत्प्रियहितैपिभिः ॥ ८ ॥ अयंहिसर्वभूतानांमान्यस्तुनरसत्तमः ॥ अस्मासुचगतःप्रीतिंरामःपरपुरंजयः ॥ ९ ॥

जाँयगे ॥५॥ महात्मा श्रीरामचन्द्रजीनें हमारा प्रियकार्य सिद्ध कियाहै सो यदि हम उनका कुछभी प्रत्युपकार करसकें तो हमारा जीवन सफल होजाय ६॥ जिसने अपने साथमें कोई उपकार नहीं कियाहो, यदि उसके साथभी कोई उपकार कर दिया जाय तोभी जीवन सफल होजाता है फिर जोकि पहले ही उपकार कर चुका हो उसका कार्य सिद्ध करनेंमें और कहना ही क्या है ॥ ७॥ तुम लोग हमारे हितकी कामना करते हुए जिससे जानकीजी मिलजाँय या उनका पता लगजाय, इस प्रकारकी बुद्धि धारण करो, ऐसा करना सब भांतिसे तुमको उचित है ॥ ८ ॥ शत्रुओंके पुर जीतनें वाले

न करना ॥ ६२ ॥ सुवर्ण शैलके और महात्मा सूर्यके तेजसे युक्त हो अरुण वर्णकी पूर्व संध्या प्रकाशित होतीहै ॥ ६३ ॥ जिस्से कि समस्त भुवनोंमें प्रकाश करनेंके लिये सूर्यके उदयकी आवश्यकता देख प्रथमही ऊपरमें टिके हुए सब जनोंका प्रवेश द्वार स्वरूप उदयगिरिको ब्रह्माजीनें बनायाथा इससेही इसको पूर्व दिशा कहतेहैं ॥ ६४ ॥ उस पर्वतकी पीठ पर झरनोंमें, और गुफाओंमें, तुम लोग रावण और जानकीजीका खोज करना ॥ ६५ ॥ उदयाचलके आगे इस पूर्व दिशामें जिसके अधिष्ठाता इन्द्रादि देवताहैं वहां सूर्य चंद्रमाका प्रकाश नहींहै इस कारणसे अंधेराही

कांचनस्यचशैलस्यसूर्यस्यचमहात्मनः ॥ आविष्टातेजसासंध्यापूर्वारक्ताप्रकाशते ॥ ६३ ॥ पूर्वमेतत्कृतंद्वारंपृथिव्याभुवनस्यच ॥ सूर्यस्योदयनंचैवपूर्वाह्येषादिगुच्यते ॥ ६४ ॥ तस्यशैलस्यपृष्ठेषुनिर्झरेषुगुहासुच ॥ रावणःसहवैदेह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥ ६५ ॥ ततःपरमगम्यास्याद्दिक्पूर्वात्रिदशावृता ॥ रहिताचंद्रसूर्याभ्यामदृश्यातमसावृता ॥ ६६ ॥ शैलेषुतेषुसर्वेषुकंदरेषुनदीषुच ॥ येचनोक्तामयोद्देशाविचेयातेषुजानकी ॥ ६७ ॥ एतावद्वानरैःशक्यंगंतुंवानरपुंगवाः ॥ अभास्करममर्यादंनजानीमस्ततःपरम् ॥ ६८ ॥ अभिगम्यतुवैदेहींनिलयंरावणस्यच ॥ मासेपूर्णेनिवर्तध्वमुदयंप्राप्यपर्वतम् ॥ ६९ ॥ ऊर्ध्वमासान्नवस्तव्यंवसन्वध्योभवेन्मम ॥ सिद्धार्थाःसन्निवर्तध्वमधिगम्यचमैथिलीम् ॥ ७० ॥

अंधेराहै, इसलिये यहांसे आगे कोई नहीं देख सकता ॥ ६६ ॥ इन सबपर्वतोंमें, कन्दराओंमें, नदियोंमें, जितने कि समस्त स्थान हमनें कहे इन सब स्थानोंमें तुम लोग जानकीजीका पता लगाना ॥ ६७ ॥ हे कपि श्रेष्ठगण! बस यहीं तक तुमलोग जानेंको समर्थ हो; इसके आगे सूर्य भगवान रहित और सीमा रहित जो स्थान हैं उन सबको हम नहीं जानते ॥६८॥ जहां जानकीजी हों, और रावणके स्थान में उदयाचल पर्वत तक जाकर एक मासके पूर्ण होते २ तुम लोग फिर आना ॥ ६९ ॥ एक मासके ऊपर वहां पर न रहना यदि कोई एक मासके ऊपर रहेगा तो उसको हम मार

जनका लंबा चौडा एक मयदानहै, जिसमें पर्वत, नदी, वृक्ष, और कोई जन्तुभी नहीं है ॥ १९ ॥ तुम सब इस रोमहर्षण मयदानको नांघकर श्वेत वर्णवाले कैलासपर्वतको पाकर हर्षित चित्त होगे ॥ २० ॥ उस कैलास पर्वतपर श्वेतवर्ण मेघकी प्रभाके समान सुवर्णसे सजाया हुआ मनोहर कुबेरजीका भवन विश्वकर्माजीनें बनायाहै ॥ २१ ॥ उस भवनमें बहुत सारे कमल फूलोंके सहित हंस और कारंडवादि जल पक्षियोंसे परिपूर्ण अप्सरा झुन्डोंसे सेवित एक तलैया विद्यमानहै ॥ २२ ॥ उस भवनमें धनद यक्षराज सर्व लोकोंके नमस्कार किये जानेंके योग्य विश्रवाके पुत्र श्रीमान् कुबेरजी गुह्यक गणोंके साथ आनंद सहित वास किया करतेहैं ॥२३॥ उस कैलासपर्वतकी चन्द्र तुल्य प्रकाशित, पर्वतश्रेणीमें और गुफाओंमें

तश्वशीघ्रमतिक्रम्यकांताररोमहर्षणम् ॥ कैलासंपांडुरंप्राप्यहृष्टायूयंभविष्यथ ॥ २० ॥ तत्रपांडुरमेघाभंजांबूनद
परिष्कृतम् ॥ कुबेरभवनंरम्यंनिर्मितंविश्वकर्मणा ॥ २१ ॥ विशालानलिनीयत्रप्रभूतकमलोत्पला ॥ हंसकारंडवा
कीर्णाअप्सरोगणसेविता॥२२॥तत्रवैश्रवणोराजासर्वलोकनमस्कृतः ॥ धनदोरमतेश्रीमान्गुह्यकैःसहयक्षराट् ॥२३॥
तस्यचंद्रनिकाशेषुपर्वतेषुगुहासुच ॥ रावणःसहवैदेह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥ २४ ॥ क्रौंचंतुगिरिमासाद्यबिलंतस्यसु
दुर्गमम् ॥ अप्रमत्तैःप्रवेष्टव्यंदुष्प्रवेशंहितत्स्मृतम् ॥ २५ ॥ वसंतिहिमहात्मानस्तत्रसूर्यसमप्रभाः ॥ देवैरभ्यर्थिताः
सम्यग्देवरूपामहर्षयः ॥ २६ ॥ क्रौंचस्यतुगुहाश्चान्याःसानूनिशिखराणिच ॥ दर्दराश्चनितंबाश्वविचेतव्यास्ततस्त
तः ॥२७॥अवृक्षंकामशैलंचमानसंविहगालयम् ॥ नगतिस्तत्रभूतानांदेवानांनचरक्षसाम् ॥ २८ ॥

जरा जरा करके रावण और जानकीजीको तुम लोग ढूंडना ॥ २४ ॥ वहांसे चलकर तुम लोग क्रौंचगिरि देखोगे; उस पर्वतके दुर्गम बिलोंमें बडी सावधानीसे प्रवेश करना, क्योंकि उसके ऊपरके बिल बडी कठिनाईसे प्रवेश करनेके योग्यहैं ॥ २५ ॥ और उस पर्वतपर सूर्यकी समान प्रभावाले महात्मा देवरूप, महर्षि गण देवता लोगोंसे प्रार्थना किये जानेपर वहां वास करतेहैं ॥ २६ ॥ क्रौञ्च पर्वतकी और दूसरी गुफायें, और कंगूरे, दर्रे व नितम्बोंको भली प्रकार ढूंडना ॥ २७ ॥ इसी पर्वतका एक शिखर वृक्षोंसे रहित कामतप शैल और पक्षी गणोंका आश्रय स्थान मा

फिर गोदावरी और रमणीक कृष्णवेणी नदी मिलैगी; तदनन्तर मेकल,उत्कल, दशार्ण आदि देश मिलेंगे ॥ ९ ॥ फिर आत्रवन्ती, अवन्ती पुरी दिखलाई देगी । पश्चात् विदर्भ, ऋष्टिक, माहीषक ॥ १० ॥ इत्यादि सबदेश दृष्टि आवेंगे, फिर मत्स्य, कुलिंग, कौशिकादि देशोंको भली भांति खोजना; और नदी गुफा सहित दंडकारण्यमेंभी ढूंडना ॥ ११ ॥ तिसके पीछे तुम सबोंको दूसरी गोदावरी नदी दिखाई देगी इसके आगे, अन्ध्र, पुन्ड्र, चोल, पाण्ड्य, केरल ॥ १२ ॥ आदि देश और अयोमुख नामक अनेक धातुओंसे युक्त पर्वत जिसपर बडे विचित्र शिखरहैं, मिलेगा; इसका

ततोगोदावरींरम्यांकृष्णवेणींमहानदीम् ॥ मेकलानुत्कलांश्चैवदशार्णनगराण्यपि ॥ ९ ॥ आब्रवंतीमवंतींचसर्वमेवानुपश्यत ॥ विदर्भानृष्टिकांश्चैवरम्यान्माहिषकानपि ॥ १० ॥ तथामत्स्यकलिंगांश्चकौशिकांश्चसमंततः ॥ अन्वीक्ष्यदंडकारण्यंसपर्वतनदीगुहम् ॥ ११ ॥ नदींगोदावरींचैवसर्वमेवानुपश्यत ॥ तथैवांध्रांश्चपुंड्रांश्चचोलान्पांड्यांश्च केरलान् ॥ १२ ॥ अयोमुखश्चगंतव्यःपर्वतोधातुमंडितः ॥ विचित्रशिखरःश्रीमांश्चित्रपुष्पितकाननः ॥ १३ ॥ सुचंददनवनोद्देशोमार्गितव्योमहागिरिः ॥ ततस्तामापगांदिव्यांप्रसन्नसलिलाशयाम् ॥ १४ ॥ तत्रद्रक्ष्यथकावेरींविहृतामप्सरोगणैः ॥ तस्यासीनंनगस्याग्रेमलयस्यमहौजसः ॥ १५ ॥ द्रक्ष्यथादित्यसंकाशमगस्त्यमृषिसत्तमम् ॥ ततस्तेनाभ्यनुज्ञाताःप्रसन्नेनमहात्मना ॥ १६ ॥ ताम्रपर्णींग्राहजुष्टांतरिष्यथमहानदीम् ॥ साचंदनवनैश्चित्रैःप्रच्छन्नद्वीपवारिणी ॥ १७ ॥ कांतेवयुवतीकांतंसमुद्रमवगाहते ॥ ततोहेममयंदिव्यंमुक्तामणिविभूषितम् ॥ १८ ॥

वनभी सदा फूला फलाही रहताहै ॥ १३ ॥ चन्दनका वनभी इस पर लगा हुआहै; इस मलयाचलको भली भांति अनुसन्धान करना फिर स्वच्छ जलवाली दिव्य ॥ १४ ॥ अप्सराओंके झुन्डोंसे सेवित कावेरी नदी देखोगे, तिसके पीछे मलय पर्वतके अग्रभागमें बैठे हुए ॥ १५ ॥ महातेज सम्पन्न आदित्य तुल्य ऋषि श्रेष्ठ अगस्त्यजी को देखोगे. फिर प्रणामादि द्वारा उनको प्रसन्न करकै उनकी आज्ञासे चल ॥१६॥ विविध ग्राह युक्त महानदी ताम्रपर्णीके पार होगे । चंदनके वनके द्वारा विचित्र ढकी हुई द्वीपोंसे युक्त, स्वच्छजलवाली वह नदी ॥ १७ ॥ सर्व शृंगार किये

नदी वहतीहै, उसके दोनों किनारोंपर कीचक नामक वांस उत्पन्न होतेहैं ॥ ३७ ॥ वही वांस सिद्ध लोगोंको शैलोदके पार लेजातेहैं और फिर वही इस पारको लेआतेहैं । इसी नदीके दूसरी पार पुण्यात्मा जनोंके निवासका स्थान उत्तर कुरु देशहै ॥ ३८ ॥ उस उत्तरकुरुके रहनेवाले जन, सुवर्ण, पद्मसमन्वित पुष्करणियोंके जलसे तर्पण किया करतेहैं॥ ३९ ॥ वहांपर नीलवर्णके जिनमें वैदूर्य मणियोंके पत्ते लगरहे ऐसे सुवर्णमय लाल कमल फूलोंसे विभूषित सहस्र २ नदियां विराजमानहैं ॥ ४० ॥ प्रभात कालके सूर्यकी समान प्रकाशित समस्त जलाशय, महामणि, महारत्न, और विचित्र सुवर्णकी केशरवाले ॥ ४१ ॥ नील वर्णके कमल फलोंसे व वनोंके समूहसे बडे २ मोलके मुक्तामणियोंसे और धनसे यह

तेनयंतिपरंतीरंसिद्धान्प्रत्यानयंतिच ॥ उत्तराःकुरवस्तत्रकृतपुण्यप्रतिश्रयाः ॥ ३८ ॥ ततःकांचनपद्माभिःपद्मिनीभिःकृतोदकाः॥ ३९ ॥ नीलवैदूर्यपत्राढ्यानद्यस्तत्रसहस्रशः ॥ रक्तोत्पलवनैश्चात्रमंडिताश्चहिरण्मयैः ॥ ४० ॥ तरुणादित्यसंकाशाभांतितत्रजलाशयाः ॥ महार्हमणिरत्नैश्चकांचनप्रभकेसरैः॥४१॥ नीलोत्पलवनैश्चित्रैःसदेशःसर्वतोवृतः॥ निस्तुलाभिश्चमुक्ताभिर्मणिभिश्चमहाधनैः ॥ ४२ ॥ उद्भूतपुलिनास्तत्रजातरूपैश्चनिम्नगाः ॥ सर्वरत्नमयैश्चित्रैरवगाढानगोत्तमैः ॥४३॥ जातरूपमयैश्चापिहुताशनसमप्रभैः॥नित्यपुष्पफलास्तत्रनगाःपत्ररथाकुलाः ॥४४॥दिव्यगंधरसस्पर्शाःसर्वकामान्स्रवंतिच॥ नानाकाराणिवासांसिफलंत्यन्येनगोत्तमाः ॥४५॥मुक्तावैदूर्यचित्राणिभूषणानितथैवच॥ स्त्रीणांयान्यनुरूपाणिपुरुषाणांतथैवच ॥ ४६ ॥

देश पूर्णहै ॥ ४२ ॥ वहांपर सब नदियोंके किनारे सुवर्णमय होरहेहैं जिस्सेकि वडी शोभा होतीहै, और उनके किनारोंपर रत्नोंके तरुवर लग रहे हैं ॥ ४३ ॥ उन सब अग्निसमान प्रकाशित वृक्षोंमें सुवर्णके फूल लगे हैं;उन वृक्षोंमें नित्य फल फूल लगे रहते और पक्षीगण मीठी वाणीसे बोला करतेहैं ॥ ४४ ॥ किसी २ वृक्षमें दिव्य रसकी सुगन्धि और समस्त कमनीय पदार्थ उत्पन्न हुआ करतेहैं व और जितने उत्तम २ वृक्षहैं वह अनेक प्रकारके वसन उत्पन्न किया करतेहैं ॥ ४५ ॥ किसी २ श्रेष्ठ वृक्षमें स्त्रीऔर पुरुषोंके पहरने योग्य उत्तम गहने उत्पन्न होतेहैं जो मुक्ता और

इस प्रकारके संशय युक्त देशोंमें विशेष ढूंढ भाल संशय रहित होकर अमित तेजवान नरेन्द्र श्रीरामचंद्रजीकी भार्याका पता लगाओ ॥ २७ ॥ उस लंकाद्वीपको नांघकर शत योजन वाले समुद्रके बीचमें परम सुन्दरपुष्पितक नाम पर्वत सिद्ध चारण गणोंसे सेवित ॥ २८ ॥ चंद्र सूर्यकी किरणोंसे प्रभाशाली सागरके जलका आश्रय लेकर अपने विपुलकंगूरोंसे मानों स्वर्गको छूलेता टिका हुआहै ॥ २९ ॥ उसके कांचनमय एक शृङ्गकी सेवा सूर्य भगवान् किया करतेहैं, कृतघ्न, नास्तिक औरनिर्लज्ज मनुष्य गण इन शृङ्गोंको नहीं देख सकते ॥ ३० ॥ हे वानरगण ! तुम लोग इस पर्वत श्रेष्ठको प्रणाम करके सीताजीको खोजना उस दुर्द्धर्षपर्वतको नांघकर आगे सूर्यवान नाम पर्वत॥ ३१ ॥ पर पहुँचोगे । इसका

एवंनिःसंशयान्कृत्वासंशयानष्टसंशयाः ॥ मृगयध्वंनरेंद्रस्यपत्नीममिततेजसः ॥२७॥ तमतिक्रम्यलक्ष्मीवान्समुद्रेशत योजने ॥ गिरिःपुष्पितकोनामसिद्धचारणसेवितः ॥२८॥ चंद्रसूर्यांशुसंकाशःसागरांबुसमाश्रयः ॥ भ्राजतेविपुलैःशृंगै रंबरंविलिखन्निव ॥ २९ ॥ तस्यैकंकांचनंशृंगंसेवतेऽयंदिवाकरः ॥ नतंकृतघ्नाःपश्यंतिननृशंसाननास्तिकाः ॥३० ॥ प्रणम्यशिरसाशैलंतंविमार्गथवानराः ॥ तमतिक्रम्यदुर्धर्षंसूर्यवान्नामपर्वतः ॥ ३१ ॥ अध्वनादुर्विगाहेनयोजनानि चतुर्दश ॥ ततस्तमप्यतिक्रम्यवैद्युतोनामपर्वतः ॥ ३२ ॥ सर्वकामफलैर्वृक्षैःसर्वकालमनोहरैः ॥ तत्रभुक्त्वावरार्हाणि मूलानिचफलानिच ॥ ३३ ॥ मधूनिपीत्वाजुष्टानिपरंगच्छतवानराः ॥ तत्रनेत्रमनःकांतःकुंजरोनामपर्वतः ॥ ३४ ॥ अगस्त्यभवनंयत्रनिर्मितंविश्वकर्मणा ॥ तत्रयोजनविस्तारमुच्छ्रितंदशयोजनम् ॥ ३५ ॥ शरणंकांचनंदिव्यंनाना रत्नविभूषितम् ॥ तत्रभोगवतीनामसर्पाणामालयःपुरी ॥ ३६ ॥

विस्तार चौदह योजनहै और यह अति दुर्गमहै, फिर इस्से आगे चलकर वैद्युत नाम पर्वतहै ॥ ३२ ॥ यह सर्वकालमेंही मनोहरहै और सब कामना युक्त फलोंको देनेंवाले वृक्ष इसपर लगे हुयेहैं । वहांपर उत्तम भोजन फल मूल खाय ॥ ३३ ॥ और मधु पीकर तृप्तहो तुम सब लोग आगे बढना तहां नेत्र और मनको आराम देने वाला कुंजर नामक पर्वतहै ॥ ३४ ॥ वहांपर पहले विश्वकर्म्माजीनें अगस्त्यजीका भवन बनायाथा । यह भवन विस्ता रमें एक योजन और उंचाईमें दश योजनहै ॥ ३५ ॥ इस सुवर्ण मय गृहमें अनेक प्रकारके दिव्य रत्न भूपितहोरहेहैं । इसी कुंजर पर्वत पर सर्पोंके

साथ वास करते हैं ॥ ५६ ॥ कुरुके उत्तर देशमें तुम लोग कदापि मतजाना, क्योंकि वहांपर और कोई जीवधारी नहीं जा सकता ॥ ५७ ॥ वह सोमगिरि नामक पर्वत देवता लोगोंकेभी जानेंके योग्य नहीं है तुम लोग केवल उसका दर्शनही करके लौट आना ॥ ५८ ॥ हे वानर श्रेष्ठगण! वानर लोग यहींतक जा सकते हैं; इसके आगे सीमा रहित और सूर्य रहित स्थानोंको हम नहीं जानते॥ ५९॥ हमनें जो स्थान बताये, उन सबही स्थानोंको तुम लोग ढूंढना; और जो स्थान कि हमारे बतलानेंसे रह गये हों; उन सबको अपनी बुद्धिके अनुसार तुम लोग खोजना ॥६०॥ऐसा करनेंसे श्रीरामचन्द्रजीका और हमारा अति प्रियकार्य हो जायगा । हे अनिलतुल्य! और अनल तुल्य वानरगण! उन जनककुमारीका पता लगानेंसे,

नकथंचनगंतव्यंकुरूणामुत्तरेणवः ॥ अन्येषामपिभूतानांनानुक्रामतिवैगतिः ॥ ५७ ॥ सहिसोमगिरिर्नामदेवानामपि दुर्गमः ॥ तमालोक्यततःक्षिप्रमुपावर्तितुमर्हथ ॥ ५८ ॥ एतावद्वानरैःशक्यंगंतुंवानरपुंगवाः ॥ अभास्करममर्यादंनजानीमस्ततःपरम् ॥५९॥ सर्वमेतद्विचेतव्यंयन्मयापरिकीर्तितम् ॥ यदन्यदपिनोक्तंचतत्रापिक्रियतांमतिः ॥ ६० ॥ ततःकृतंदाशरथेर्महत्प्रियंमहत्प्रियंचापिततोममप्रियम् ॥ कृतंभविष्यत्यनिलानलोपमाविदेहजादर्शनजेनकर्मणा॥६१॥ ततःकृतार्थाःसहिताःसबांधवामयार्चिताःसर्वगुणैर्मनोरमैः॥चरिष्यथोर्वींप्रतिशांतशात्रवाःसहप्रियाभूतधराःप्लवंगमाः ॥६२॥इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेत्रिचत्वारिंशःसर्गः ॥४३ ॥ विशेषेणतुसुग्रीवोहनूमत्यर्थमुक्तवान् ॥ सहितस्मिन्हरिश्रेष्ठेनिश्चितार्थोऽर्थसाधने ॥ १ ॥ अब्रवीच्चहनूमंतंविक्रांतमनिलात्मजम् ॥ सुग्रीवःपरमप्रीतःप्रभुःसर्ववनौकसाम् ॥२॥ नभूमौनांतरिक्षेवानांबरेनामरालये ॥ नाप्सुवागतिसंगंतपश्यामिहरिपुंगव॥३॥

हम तुम सबही निःसन्देह कृत कृत्य हो जांयगे ॥ ६१ ॥ फिर कृतार्थ हो हमसे पूजित और शत्रुरहित हो सब मनोहर गुणोंसे विभूषित और भूत गणोंसें आश्रय स्वरूप हो अपनी प्रियाके सहित सुख स्वच्छन्दतासे तुम लोग घूमना ॥ ६२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥ यद्यपि सब वानरोंको सुग्रीवजीनें सब ओरको जानेंके लिये आज्ञादी तथापि सुग्रीवजीनें निश्चय कियाथा कि कार्यकी सिद्धि हनुमानजीसेही होगी इस कारण कपि श्रेष्ठ हनुमानजीसे ॥ १ ॥ वानर नाथ सुग्रीवजी परम प्रीतिसे बोले; क्योंकि यह हनुमानजी पवनके पुत्र और बडे पराक्रमीथे ॥ २ ॥ हे वानर श्रेष्ठ! भूमिमें, वा पक्षियोंके उडनेंके स्थान अन्तरिक्षमें

गति नहींहै ॥ ४५ ॥ जो जो स्थान हमनें बताये तुम सब इनमें व और स्थानभीजो कि दिखाईदें इन सबको देखभाल सीताजीकी गतिजान कर फिर आओ ॥ ४६ ॥ जो वानर एक मासके भीतर लौटकर "हमनें सीताजीको देखाहै" यह वचन कहैगा वह हमारी समान विभवशाली होकर सुखसे विहार करैगा ॥ ४७ ॥ उस्से अधिक और कोईभी हमारा प्रिय न होगा, व अनेक वार अपराध करने परभी हमारा बन्धु रहैगा ॥४८॥ हे वानर गण ! तुम लोग अमित बल विक्रम शाली और विपुल गुण सम्पन्न कुलमें उतपन्न हुये हो, इस समय तुम सव, कि जिस्से जनककुमारी

सर्वमेतत्समालोक्ययच्चान्यदपिदृश्यते ॥ गतिंविदित्वावैदेह्याःसन्निवर्तितुमर्हथ ॥ ४६ ॥ यश्चमासान्निवृत्तोग्रेदृष्टासीतेतिवक्ष्यति ॥ मत्तुल्यविभवोभोगैःसुखंसविहरिष्यति ॥ ४७ ॥ ततःप्रियतरोनास्तिममप्राणाद्विशेषतः ॥ कृतापराधोबहुशोममबंधुर्भविष्यति ॥ ४८ ॥ अमितबलपराक्रमाभवंतोविपुलगुणेषुकुलेषुचप्रसूताः ॥ मनुजपतिसुतांयथालभध्वंतदधिगुणंपुरुषार्थमारभध्वम् ॥ ४९ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०किष्किंधाकांडेएकचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४१ ॥ ❀ ॥ अथप्रस्थाप्यसहरीन्सुग्रीवोदक्षिणांदिशम् ॥ अब्रवीन्मेघसंकाशंसुषेणंनामवानरम् ॥ १ ॥ तारायाःपितरंराजाश्वशुरंभीमविक्रमम् ॥ अब्रवीत्प्रांजलिर्वाक्यमभिगम्यप्रणम्यच ॥ २ ॥ महर्षिपुत्रंमारीचमर्चिष्मंतंमहाकपिम् ॥ वृतंकपिवरैःशूरैर्महेंद्रसदृशद्युतिम् ॥ ३ ॥

सीताजी प्राप्त होजाँय इस विषयमें अनुकूल पुरुषार्थ प्रकाशकर विशेषभांतिसे यत्न करते रहो ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि काव्ये किष्किन्धाकांडे एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥ अनन्तर सुग्रीवजी उन समस्त वानरवृन्दोंको दक्षिणदिशामें भेजकर सुषेण नाम वानरसे बोले ॥ १ ॥ यह सुषेण ताराके पिता, और वालि सुग्रीवके श्वशुर, भयंकर विक्रम करने वालेथे, इस्से उनके हाथ जोड प्रणाम कर सुग्रीवजी बोले ॥ २ ॥ और महर्षि मरीचिके पुत्र अर्चिष्मान् नामक महावानरसे जो कि अति शूरवीर कपिगणोंसे सेवित, महेन्द्राचल सम आ

देनेंके लिये हनुमानजीको अर्पण करदी ॥ १२ ॥ हे वानर श्रेष्ठ ! इसनिशानीसे जानकीजी तुमको निश्चित हमारे निकटसे आया हुआ झट पट जान जांयगी ॥ १३ ॥ हे वीरेन्द्र ! तुम्हारी दृढ चित्तता और अनुपम विक्रम और सुग्रीवजीका आदेश इन सबसेही हमको अपने कार्यकी सिद्धि जान पडतीहै ॥ १४ ॥ यह कपि श्रेष्ठ हनुमानजी उस अँगूठीको माथे चढा हाथ जोडकर श्रीरामचंद्रजीके दोनों चरणोंकी वन्दना करके गमन करनेको तैयार हुये ॥ १५ ॥ पवनपुत्र कपिवीर; वह बडीभारी सेना संगलेंकर मेघ रहित विमल आकाशमें तारा गणोंसे शोभित

अनेनत्वांहरिश्रेष्ठचिह्नेनजनकात्मजा ॥ मत्सकाशादनुप्राप्तमनुद्विग्नाऽनुपश्यति ॥ १३ ॥ व्यवसायश्चतेवीरसत्त्व युक्तश्चविक्रमः ॥ सुग्रीवस्यचसंदेशःसिद्धिंकथयतीवमे ॥ १४ ॥ सतद्गृह्यहरिश्रेष्ठःकृत्वामूर्ध्निकृतांजलिः ॥ वंदित्वा चरणौचैवप्रस्थितःप्लवगर्षभः ॥ १५ ॥ सतत्प्रकर्षन्हरिणांमहद्बलंबभूववीरःपवनात्मजःकपिः ॥ गतांबुदेव्योम्नि विशुद्धमंडलःशशीवनक्षत्रगणोपशोभितः ॥ १७ ॥ अतिबलबलमाश्रितस्तवाहंहरिवरविक्रमविक्रमैरनल्पैः ॥ पव नसुतयथाऽधिगम्यतेसाजनकसुताहनुमंस्तथाकुरुष्व ॥ १७ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०किष्किंधाकांडेचतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ सर्वांश्चाहूयसुग्रीवःप्लवगान्प्लवगर्षभः ॥ समस्तांश्चाब्रवीद्राजारामकार्यार्थसिद्धये ॥ १ ॥ एवमेतद्विचेतव्यंभवद्भिर्वानरोत्तमैः ॥ तदुग्रशासनंभर्तुर्विज्ञायहरिपुंगवाः ॥२॥ शलभाइवसंछाद्यमेदिनींसंप्रतस्थिरे ॥ रामःप्रस्रवणेतस्मिन्न्यवसत्सहलक्ष्मणः ॥ ३ ॥

विशुद्ध मंडल चंद्रमाकी समान शोभापाने लगे ॥ १६ ॥ हेसिंह विक्रम ! अति बल शालीन ! पवन पुत्र ! हमनें तुम्हारेही बलका आश्रय कियाहै; तुम इस समय ऐसा विधान विपुल विक्रमसे करोकिजिस्से जानकीजी प्राप्त हो जांय ॥ १७ ॥ इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०कि०चतुश्चत्वारिंशःसर्गः॥४४॥ अनन्तर कपिराज सुग्रीवजी सब वानरोंको पुकारकर उनसे श्रीरामचंद्रजीके कार्यकी सिद्धि करनेंके लिये कहने लगे ॥ १ ॥ हे वानर श्रेष्ठ गण ! तुम सबही हमारी अति उग्र आज्ञाको जानकर रावण और जानकीजीको खोजो ॥ २ ॥ टीडीकी समान पृथ्वीको छायकर समस्त वानर

ढूँडना ॥ १२ ॥ और समुद्रके किनारे की भूमिवाले सब पर्वत, वन, और मुरची पत्तन, और रमणीक जटापुर ॥ १३ ॥ अवंती, और दो पुरी, अंग लेपा व आलक्षित नामक समस्त वन विशाल राज्य और विशाल वाणिज्यके स्थान देखना ॥ १४ ॥ वहांपर सिन्धुनद और सगर संगमके स्थल में महा तरु समूह समन्वित शत शिखरवाला, सोमगिरि नामक एक महान पर्वतहै ॥ १५ ॥ उस पर्वतके रमणीक प्रस्थ देशमें सिंह नामक पक्षी वास करतेहैं; वह पक्षी तिमि, मत्स्य, और हाथियोंको पंजेसे पकडकर अपने घोंसलेमें लेजाय भक्षण कर लेतेहैं ॥ १६ ॥ उन सिंह पक्षियोंमें गये और गिरिशृङ्गोपर संतापित व उद्दीप्त हाथी मेघोंके गर्जनकी समान शब्द किया करतेहैं ॥ १७ ॥ यह हाथियोंके झुन्ड उस पर्वतके किनारे जो स

वेलातलनिविष्टेषुपर्वतेषुवनेषुच ॥ मुरचीपत्तनंचैवरम्यंचैवजटापुरम् ॥ १३ ॥ अवंतीमंगलेपांचतथाचालक्षितंवनम् ॥ राष्ट्राणिचविशालानिपत्तनानिततस्ततः ॥ १४ ॥ सिंधुसागरयोश्चैवसंगमेतत्रपर्वतः ॥ महान्सोमगिरिर्नामशतशृंगो महाद्रुमः ॥ १५ ॥ तत्रप्रस्थेषुरम्येषुसिंहाःपक्षगमास्थिताः ॥ तिमिमत्स्यगजांश्चैवनीडान्यारोपयंतिते ॥ १६ ॥ तानिनीडानिसिंहानांगिरिशृंगगताश्चये ॥ दृप्तास्तृप्ताश्चमातंगास्तोयदस्वननिःस्वनाः ॥ १७ ॥ विचरंतिविशालेस्मिंस्तोयपूर्णेसमंततः ॥ तस्यशृंगंदिवस्पर्शंकांचनंचित्रपादपम् ॥ १८ ॥ सर्वमाशुविचेतव्यंकपिभिःकामरूपिभिः ॥ कोटिंतत्रसमुद्रस्यकांचनींशतयोजनाम् ॥ १९ ॥ दुर्दर्शांपारियात्रस्यगत्वाद्रक्ष्यथवानराः ॥ कोटयस्तत्रचतुर्विंशद्गंधर्वाणांतपस्विनाम् ॥ २० ॥ वसंत्यग्निनिकाशानांघोराणांपापकर्मणाम् ॥ पावकार्चिःप्रतीकाशाःसमवेताःसमंततः ॥ २१ ॥

मुद्रहै उस परभी विचरा करतेहैं उस पर्वतका एक सुवर्ण मय शृंग इतनाऊँचाहै मानों स्वर्गको चला गयाहै, और उसपर भांति २ के चित्र विचित्र वृक्ष लगेहैं; वहांपर तुम सब वानर लोग काम रूप धारण करके शीघ्रतासहित सब स्थानोंको ढूंडना। उसी समुद्रमें पारियात्र नाम पर्वतकी कोटि शत योजन विस्तारकीहै ॥ १८ ॥ १९ ॥ हे वानर गणो ! उस कोटिका देखना दुर्गम होनें परभी तुम लोग उसे देखोगे। जहांपर चौवीस कोटि२४००००००० गन्धर्व और तपस्वी गण मिलकर तपस्या करतेहैं ॥ २० ॥ यह सब अग्निकी तुल्य दीप्तमान घोर पापकारियोंके जलानें

हम वृक्षोंको उखाड डालेंगे, हम पर्वतोंको तोड फोड डालेंगे, हम पृथ्वीको विदीर्ण कर डालेंगे, हम समुद्रको खल बला डालेंगे ॥१४॥ हम एक छलांगमें येक योजन, हम येक शतसे भी अधिक योजन येक छलांगमें कूदजांयगे ॥ १५ ॥ हमारी गति पृथ्वीमें, समुद्रमें, पर्वतोंमें व वनोंमें पातालमें कहीं भी नहीं रुक सकती, हम सबही स्थानोंमें जा सकतेहैं ॥ १६ ॥ उन वानरराज सुग्रीवजीके निकट येक २ वानर अपने बलके दर्प से ऐठते अकडते ऐसा कहनें लगे ॥ १७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे पंच चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

विधमिष्याम्यहंवृक्षान्दारयिष्याम्यहंगिरीन् ॥ धरणींदारयिष्यामिक्षोभयिष्यामिसागरान् ॥ १४ ॥ अहंयोजन
संख्यायाःप्लवेयंनात्रसंशयः ॥ शतयोजनसंख्यायाःशतंसमधिकंह्यहम् ॥ १५ ॥ भूतलेसागरेवापिशैलेषुचवनेषुच ॥
पातालस्यापिवामध्येनममाच्छिद्यतेगतिः ॥ १६ ॥ इत्येकैकस्तदातत्रवानराबलदर्पिताः ॥ उचुश्चवचनंतस्यहरिरा
जस्यसन्निधौ ॥ १७ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०किष्किंधाकांडेपंचचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४५ ॥ ॥ ४ ॥ ॥ गतेषु
वानरेंद्रेषुरामःसुग्रीवमब्रवीत् ॥ कथंभवान्विजानीतेसर्वंवैमंडलंभुवः ॥ १ ॥ सुग्रीवश्चततोराममुवाचप्रणतात्मवान् ॥
श्रूयतांसर्वमाख्यास्येविस्तरेणवचोमम ॥ २ ॥ यदातुदुंदुभिंनामदानवंमहिषाकृतिम् ॥ प्रतिकालयतेवालीमलयंप्र
तिपर्वतम् ॥ ३ ॥ तदाविवेशमहिषोमलयस्यगुहांप्रति ॥ विवेशवालीतत्रापिमलयंतज्जिघांसया ॥ ४ ॥ ततोहंतत्र
निक्षिप्तोगुहाद्वारिविनीतवत् ॥ नचनिष्क्रामतेवालीतदासंवत्सरेगते ॥ ५ ॥

जब चारों ओरको सब वानरोंके झुन्ड चले गये तब श्रीरामचंद्रजीने सुग्रीवसे कहाकि तुमनें समस्त पृथ्वी मण्डलका समाचार किसप्रकारसे जाना? ॥ १ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीने ऐसा कहा तो सुग्रीवजी शिरनवायश्रीरामचंद्रजीसे बोले कि आप श्रवण करें हम सब विस्तार सहित कहते हैं ॥ २ ॥ जब भैंसे की समान आकार वाले दुन्दुभी नामक दानवके पोछेधावमान होकर वालि मलयाचल पर्यंत तक चलागया॥३॥जब वह महिष मलयाचलकी गुफामें प्रवेश करगया तब वालि भी उसके वध करनेकी वासना से उस पर्वतकी गुफामें बैठा ॥ ४ ॥ हम उस गुफाकेद्वार

उसमें नरक नामक दुष्टात्मा दानव वास करता है ॥ ३१ ॥ उस पर्वतके रमणीक कँगूरों और गुफाओंमें रावणके सहित जानकीजीको ढूंडना तुम्हारा कर्त्तव्य है ॥ ३२ ॥ उस कांचन गर्भ शैलराजको नांघकर धारा और झरनो करके सहित सर्व सौवर्ण नाम पर्वत दिखाई देगा ॥ ३३ ॥ उस पर्वत पर वराह सिंह व्याघ्रादि जन्तु गण सर्वदाही अपने शब्दकी प्रति ध्वनि श्रवण कर दर्पित हो शीघ्रतासे फिर गर्जन करनें लगते हैं ॥३४॥ इसके आगे मेघ नामक पर्वत है इस पर्वतपर पाकशासन श्रीमान इन्द्रजीका देवता ओंनें सुरराज्यपर अभिषेक कियाथा॥ ३५ ॥ इस महेन्द्र परिपालित अचल राजको नांघकर तुम सुवर्णके साठ हजार पर्वत देखोगे ॥३६॥ यह सब पर्वत प्रभात कालके सूर्यकी समान प्रकाशित

तत्रसानुषुरम्येषुविशालासुगुहासुच ॥ रावणःसहवैदेह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥ ३२ ॥ तमतिक्रम्यशैलेंद्रंकांचनांतरदर्शनम् ॥ पर्वतःसर्वसौवर्णोधाराप्रस्रवणायुतः ॥ ३३ ॥ तंगजाश्चवराहाश्चसिंहाव्याघ्राश्चसर्वतः ॥ अभिगर्जंति सततंतेनशब्देनदर्पिताः॥३४॥यस्मिन्हरिहयःश्रीमान्महेंद्रःपाकशासनः॥अभिषिक्तःसुरैराजामेघोनामसपर्वतः॥३५॥ तमतिक्रम्यशैलेंद्रंमहेंद्रपरिपालितम् ॥ षष्टिंगिरिसहस्राणिकांचनानिगमिष्यथ ॥ ३६ ॥ तरुणादित्यवर्णानिभ्राजमानानिसर्वशः॥जातरूपमयैर्वृक्षैःशोभितानिसुपुष्पितैः ॥३७॥ तेषांमध्येस्थितोराजामेरुरुत्तमपर्वतः ॥ आदित्येनप्रसन्नेनशैलोदत्तवरःपुरा ॥ ३८ ॥ तेनैवमुक्तःशैलेंद्रःसर्वएवत्वदाश्रयाः ॥ मत्प्रसादाद्भविष्यंतिदिवारात्रौचकांचनाः ॥३९ ॥ त्वयियेचापिवत्स्यंतिदेवगंधर्वदानवाः ॥तेभविष्यंतिभक्ताश्चप्रभयाकांचनप्रभाः ॥ ४० ॥ विश्वेदेवाश्चवसवोमरुतश्च दिवौकसः ॥ आगत्यपश्चिमांसंध्यांमेरुमुत्तमपर्वतम् ॥ ४१ ॥

हैं और फूले फले हुये सुवर्ण मय वृक्षोंके समूहसे शोभायमान हैं ॥ ३७ ॥ उन साठ हजार पर्वतोंके मध्यमें येक अति उत्तम राजाकी समान सुवर्ण मय मेरुपर्वत है; पहले सूर्यनारायणने प्रसन्न होकर इसको वरदान दियाथा ॥ ३८ ॥ वह वरदान इस प्रकार दियाथा कि येक समय सूर्य नारायणने उस अचलसे कहाकि हमारे प्रसादसे तुम्हारे आश्रित समस्त पर्वत दिन रात्रिमें सुवर्ण मय हो जांयगे ॥ ३९ ॥ और तुम्हारे ऊपर जो देव दानव और गन्धर्व गण वास करेंगे वह हमारे भक्त गण सुवर्णकी समान प्रभावान हो जायँगे ॥ ४० ॥ इस सावर्णि-मेरु पर्वत पर विश्वदेव

प्रकारके विविध रमणीक सरोवर देखे ॥ १४ ॥ वहांपर धातुमंडित उदय पर्वत और अप्सराओंके रहनेंका स्थान क्षीरसमुद्रभी देखा॥ १५ ॥ वहां भी हमारे पोछे२ वालि आया तब वहांसे हम भागते२फिर उदयाचलपर्वतपर आये॥ १६ ॥ पूर्व दिशासे हम विन्ध्याचल और विविध वृक्षोंसे युक्त चन्दन वृक्ष परिशोभित दक्षिणदिशाको भागे ॥ १७ ॥ वहां परभी दूसरे पर्वत पर हमनें अपने पोछे वालिको भागते हुए देख तब हम वहांसेभी भागे और फिर पश्चिम दिशाको आये ॥ १८ ॥ पश्चिम दिशामें विविध देश अनेक पर्वत, और गिरिश्रेष्ठ अस्ताचलको

उदयंतत्रपश्यामिपर्वतंधातुमंडितम् ॥ क्षीरोदंसागरंचैवनित्यमप्सरसालयम् ॥ १५ ॥ परिकाल्यमानस्तुतदावालिनाभिद्रुतोह्यहम् ॥ पुनरावृत्यसहसाप्रस्थितोऽहंतदाविभो ॥ १६ ॥ दिशस्तस्यास्ततोभूयःप्रस्थितोदक्षिणांदिशम् ॥ विंध्यपादपसंकीर्णांचंदनद्रुमशोभिताम् ॥ १७ ॥ द्रुमशैलांतरेपश्यन्भूयोदक्षिणतोपराम् ॥ अपरांचदिशंप्राप्तोवालिनासमभिद्रुतः ॥ १८ ॥ सपश्यन्विविधान्देशानस्तंचगिरिसत्तमम् ॥ प्राप्यचास्तंगिरिश्रेष्ठमुत्तरंसंप्रधावितः ॥ १९ ॥ हिमवंतंचमेरुंचसमुद्रंचतथोत्तरम् ॥ यदानविंदेशरणंवालिनासमभिद्रुतः ॥ २० ॥ ततोमांबुद्धिसंपन्नोहनुमान्वाक्यमब्रवीत् ॥ इदानींमेस्मृतंराजन्यथावालीहरीश्वरः ॥ २१ ॥ मतंगेनतदाशप्तोह्यस्मिन्नाश्रममंडले ॥ प्रविशेद्यदिवावालीमूर्धास्यशतधाभवेत् ॥ २२ ॥ तत्रवासःसुखोऽस्माकंनिरुद्विग्नोभविष्यति ॥ तत्रपर्वतमासाद्यऋष्यमूकंनृपात्मज ॥ २३ ॥

देख, वहांभी वालिके आनेंका समाचार पाय फिर उत्तर दिशाको भागे॥ १९ ॥ उत्तर दिशामें पहुँच हिमवान्, मेरु और उत्तर समुद्रतक हम चले गये, परन्तु वालिके भयसे हमको कहीं शरण नहीं मिलो॥२०॥तब बुद्धिमान् हनुमानजीनें हमसे कहा कि हे राजन्! इस समय हमको याद आया कि यह वानरराज वालि॥ २१ ॥ मतंग मुनिके शापसे शापित जब उस आश्रममंडलमें प्रवेश करेगा तब उसके मस्तकके शत खंड हो जाँयगे॥ २२ ॥वहांपर वास करनेंसे हम सब बेखटके सुखसे वास कर सकेंगे; जब हनुमानजीनें ऐसा कहा तो हम ऋष्यमूक पर्वत पर आये॥२३॥

तक जासकतेहैं कि जहांतक सूर्यका प्रकाश और मर्यादा है; और इसके आगे हम कुछभी नहीं जानते हैं ॥ ५१ ॥ रावणका स्थान और जानकी जीके निकट गमन करनेंके लिये अस्ताचलतक चले जाकर एक मास पूर्ण होते २ लौट आओ ॥ ५२ ॥ एक माससे ऊपर वहांपर मत लगाना और जो एक माससे पीछे आवैगा उसको हम मार डालेंगे, हमारे श्वशुर महावीर्य सुषेण तुम लोगोंके साथ जाँयगे ॥ ५३ ॥ तुम सब उनकी आ ज्ञामें रहना; और जो कुछ यह कहैं वह श्रवण करना क्योंकि यह हमारे श्वशुर महाबलवान् और महाबलशाली हैं इस्से गुरू हैं ॥ ५४ ॥ और

अवगम्यतुवैदेहींनिलयंरावणस्यच ॥ अस्तंपर्वतमासाद्यपूर्णेमासेनिवर्तत ॥ ५२ ॥ ऊर्ध्वंमासान्नवस्तव्यंवसन्वध्यो भवेन्मम ॥ सहैवशूरोयुष्माभिःश्वशुरोमेगमिष्यति ॥ ५३ ॥ श्रोतव्यंसर्वमेतस्यभवद्भिर्दिष्टकारिभिः ॥ गुरुरेषम हाबाहुःश्वशुरोमेमहाबलः ॥ ५४ ॥ भवंतश्चापिविक्रांताःप्रमाणंसर्वएवहि ॥ प्रमाणमेनंसंस्थाप्यपश्यध्वंपश्चिमांदि शम् ॥ ५५ ॥ कृतकृत्याभविष्यामःकृतस्यप्रतिकर्मणा ॥ अतोन्यदपियत्कार्यंकार्यस्यास्यप्रियंभवेत् ॥ संप्रधार्य भवद्भिश्चदेशकालार्थसंहितम् ॥ ५६ ॥ ततःसुषेणप्रमुखाःप्लवंगमाःसुग्रीववाक्यंनिपुणंनिशम्य ॥ आमंत्र्यसर्वेप्लवगाधि पास्तेजग्मुर्दिशंतांवरुणाभिगुप्ताम् ॥ ५७ ॥ ॥ इतिश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेद्वि चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४२ ॥

पश्चिम दिशाको खोजो ॥ ५५ ॥ तुम सबभी पराक्रमी और कर्त्तव्य कार्यका निश्चय करनेंवाले हो; तथापि इनको नियम बतलानेंवाला जानकर पश्चिम दिशाको खोजो ॥ ५५ ॥ रावणका वध होनेंतक जो समस्त प्रिय कार्य हैं उन जब उपकारका बदला प्रत्युपकार देदेंगे तब हम लोग कृतकार्य हो जांयगे इसके सिवाय रावणका वध होनेंतक जो समस्त प्रिय कार्य हैं उन सबको तुम लोग देश काल और अर्थके अनुसार विचार लेना ॥ ५६ ॥ तब सुषेणादि निपुण वानरगण सुग्रीवजीके विनीत वचन सुन उनसे बिदाले प्रीति सहित पश्चिम दिशाको चले गये ॥ ५७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

सब वानरोंके सहित सीताजीको ढूंडकर सुग्रीवजीके निकट उपस्थित हुआ ॥ ९ ॥ उस प्रस्रवणगिरिपर लक्ष्मण सहित रामचन्द्रको प्रणाम कर सुग्रीवजीसे बोला ॥ १० ॥ हमनें समस्त पर्वत, गहन, वन, सागर, नदी, जनपद, ग्राम, पुरादि ढूंडे ॥ ११ ॥ आपके बताये हुए सब गुहादि स्थान ढूंडे और अनेक भांतिके कुंजभी बार २ खोजे ॥ १२ ॥ उनमें जो गहन देशथे उनको वारंवार ढूँढा जो दुर्ग गहन विषम स्थानथे बडे २ जीवोंके रहनेंके स्थानमें ढूंड और उन्हें मार जो रुरु देशहैं उन्हें बार २ देखा ॥ १३ ॥ हे वानरेन्द्र ! महावीर्यवान् और महाकुलमें उत्पन्न

तंप्रस्रवणपृष्ठस्थंसमासाद्याभिवाद्यच ॥ आसीनंसहरामेणसुग्रीवमिदमब्रुवन् ॥१०॥ विचिताःपर्वताःसर्वेवनानिगहनानिच ॥ निम्नगाःसागरांताश्चसर्वेजनपदाश्चये ॥ ११ ॥ गुहाश्चविचिताःसर्वायाश्चतेपरिकीर्तिताः ॥ विचिताश्चमहागुल्मालतावितत संतताः ॥ १२ ॥ गहनेषुचदेशेषुदुर्गेषुविषमेषुच ॥ सत्त्वान्यतिप्रमाणानिविचितानिहतानिच ॥ येचैवगहनादेशाविचितास्तेपुनःपुनः ॥ १३ ॥ उदारसत्त्वाभिजनोहनूमान्समैथिलींज्ञास्यतिवानरेंद्र ॥ दिशंतुयामेवगतातुसीतातामास्थितोवायुसुतोहनूमान् ॥ १४ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेसप्तचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४७ ॥ सहतारांगदाभ्यांतुसहसाहनुमान्कपिः ॥ सुग्रीवेणयथोद्दिष्टंगंतुंदेशंप्रचक्रमे ॥ १ ॥ सतुदूरमुपागम्यसर्वैस्तैःकपिसत्तमैः ॥ ततोविचित्यविंध्यस्यगुहाश्चगहनानिच ॥ २ ॥ पर्वताग्रनदीदुर्गान्सरांसिविपुलद्रुमान् ॥ वृक्षखंडांश्चविविधान्पर्वतान्वनपादपान् ॥ ३ ॥ अन्वेषमाणास्तेसर्वेवानराःसर्वतोदिशम् ॥ नसीतांददृशुर्वीरामैथिलींजनकात्मजाम् ॥ ४ ॥

हुए हनुमानजी सीताको अवश्यही जानसकेंगे क्योंकि सीताजी जिस दिशाको गईहैं; पवनकुमार हनुमान्‌जी उसी दक्षिण दिशामें गयेहैं॥१४॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० किष्किन्धाकांडे सप्तचत्वारिंशःसर्गः॥ ४७ ॥ इधर कपिवर हनुमानजी तार और अंगदजीके सहित सुग्रीवजीकी बताई हुई दिशामें गमन करने लगे ॥ १ ॥ वह समस्त कपिगणोंके सहित दूर गमन करके विन्ध्याचलको सघन गुहादि खोजनें लगे ॥ २ ॥ पर्वत और उनके आगे वहती हुई नदी दुर्गम स्थान सरोवर अनेक तरुवर सघनवृक्षोंसे युक्त विविध पर्वत ॥ ३ ॥ भली भांति सब वानरोंनें दक्षिण दिशामें

श्रीरामचन्द्रजी सर्व प्राणियोंके मान्य और प्रियहैं; सो यह हमारे ऊपर परम प्रसन्न होरहेहैं; तुम लोग अपनी बुद्धि और विक्रमसे जैसे होसके वैसे बहुतसे दुर्गम स्थान, नदी और पर्वत सबमें जानकीजीको ढूंडो॥९॥१०॥ उस उत्तर दिशाकी ओर जानेमें म्लेक्ष, पुलिन्द, शूरसेन, प्रस्थल, भरत, कुरु, मद्रक, ॥ ११ ॥ कम्बोज, वरद, यवन, और शकोंके नगर देखकर हिमालय पर्वतको खोजना ॥ १२ ॥ लोध्र और पद्मक वनमें और देवदारुके वनमें जानकीजी और रावण का अनुसन्धान करना तुम्हारा कर्तव्यहै ॥ १३ ॥ फिर सोमाश्रमपर जाय देवता और गन्धर्वगणोंसे सेवित

इमानिबहुदुर्गाणिनद्यःशैलांतराणिच ॥ भवंतःपरिमार्गंतुबुद्धिविक्रमसंपदा ॥ १० ॥ तत्रम्लेछान्पुलिंदांश्चशूरसेनांस्तथैवच ॥ प्रस्थलान्भरतांश्चैवकुरूंश्चसहमद्रकैः ॥ ११ ॥ कांबोजयवनांश्चैवशकानांपत्तनानिच ॥ अन्वीक्ष्यवरदांश्चैवहिमवंतंविचिन्वथ ॥ १२ ॥ लोध्रपद्मकखंडेषुदेवदारुवनेषुच ॥ रावणःसहवैदेह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥ १३ ॥ ततःसोमाश्रमंगत्वादेवगंधर्वसेवितम् ॥ कालंनाममहासानुंपर्वतंतंगमिष्यथ ॥ १४ ॥ महत्सुतस्यशैलेषुपर्वतेषुगुहासुच॥ विचिन्वतमहाभागांरामपत्नीमनिंदिताम् ॥ १५ ॥ तमतिक्रम्यशैलेंद्रंहेमगर्भंमहागिरिम् ॥ ततःसुदर्शनंनामपर्वतंगंतुमर्हथ ॥ १६ ॥ ततोदेवसखानामपर्वतःपतगालयः ॥ नानापक्षिसमाकीर्णोविविधद्रुमभूषितः ॥ १७ ॥ तस्यकांचनखंडेषुनिर्दरेषुगुहासुच ॥ रावणःसहवैदेह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥ १८ ॥ तमतिक्रम्यचाकाशंसर्वतःशतयोजनम् ॥ अपर्वतनदीवृक्षंसर्वसत्त्वविवर्जितम् ॥ १९ ॥

बडे २ कँगूरोंसे युक्त काल नामक पर्वतको तुम लोग देखोगे ॥ १४ ॥ उस पर्वतकी बडी कन्दराओंमें और सब दुर्गम स्थानोंमें उन निन्दा रहित श्रीरामचन्द्रजीकी भार्याको तुम लोग ढूंडना ॥ १५ ॥ उस काल पर्वतको नाँघकर हेमगर्भ महापर्वत सुदर्शनपर तुम लोग जाओगे ॥ १६ ॥ फिर अनेक भांतिके पक्षियोंसे परिपूर्ण और विविध प्रकारके वृक्षोंसे शोभायमान पक्षि लोगोंका वासस्थान देवसखा नाम महा पर्वतहै ॥ १७ ॥ उसकी सुवर्णमय कन्दराओंमें, और समस्त निर्झरोंमें रावण और जानकीजीको तुम लोग ढूंडना ॥ १८ ॥ उस देवसखा पर्वतके आगे शत यो

तोंकी कन्दरायें ॥ १४ ॥ व नदियें आदि सबही खोजे पर उन महात्माओंनें वहांभी जनककुमारी सीताजीको न पाया ॥ १५ ॥ अथवा सुग्रीवजीके प्रियकारी श्रीरामचंद्रजीकी वनिता हरण करनेंवाले रावणकोभी नहीं देखा वह सब वानर लता और झाडियोंसे ढके उस भयंकर ॥ १६ ॥ वनमें प्रवेश करके देवताओंसे निर्भय हुए भयंकर कर्म करनेवाले एक राक्षसको देखते हुए वानरोंनें उस पर्वताकार घोर असुरको देखकर ॥ १७ ॥ दृढ रूपसे जांघिया आदि वस्त्र पहरे वह बली राक्षसभी उनसमस्त पर्वताकार वानरोंको देखकर उनसे बोला कि देखो मैं अभी तुम

प्रभवानिनदीनांचविचिन्वंतिसमाहिताः ॥ तत्रचापिमहात्मानोनापश्यन्जनकात्मजाम् ॥ १५ ॥ हर्तारंरावणं वापिसुग्रीवप्रियकारिणः ॥ तेप्रविश्यतुतंभीमंलतागुल्मसमावृतम् ॥ १६ ॥ ददृशुर्भीमकर्माणमसुरंसुरनिर्भयम् ॥ तंदृष्ट्वावानराघोरंस्थितंशैलमिवासुरम् ॥ १७ ॥ गाढंपरिहिताःसर्वेदृष्ट्वातंपर्वतोपमम् ॥ सोपितान्वानरान्सर्वान्नष्टाःस्थेत्यब्रवीद्बली ॥ १८ ॥ अभ्यधावतसंक्रुद्धोमुष्टिमुद्यम्यसंगतम् ॥ तमापतंतंसहसावालिपुत्रोंगदस्तदा ॥ १९ ॥ रावणोऽयमितिज्ञात्वातलेनाभिजघानह ॥ सवालिपुत्राभिहतोवक्त्राच्छोणितमुद्वमन् ॥ २० ॥ असुरोन्यपतद्भूमौपर्यस्तइवपर्वतः ॥ तेतुतस्मिन्निरुच्छ्वासेवानराजितकाशिनः ॥ २१ ॥ विचिन्वन्प्रायशस्तत्रसर्वंतेगिरिगह्वरम् ॥ विचितंतुततःसर्वंसर्वेतेकाननौकसः ॥ २२ ॥

सबको मारे डालताहूं ॥ १८ ॥ यह कहकर घूसातान क्रोधकर वह उनसब वानरोंपै धाया उसको इस भांतिसे आता हुआ देखकर सहसा वालिकुमार अंगदजीने ॥ १९ ॥ यही रावणहै यह समझकर उसके एक चपेटलगाई वह वालिपुत्र अंगदजीके चपटाघातसे व्याकुल हो मुखमें रुधिर वमन करता ॥ २० ॥ उखडेहुए पर्वतकी समान वह राक्षस पृथ्वीपर गिरा, उस असुरके मृतक हो जानेंसे वानरगण विजयलक्ष्मी पाय परमानंदको प्राप्त हुए ॥ २१ ॥ फिर उन समस्त वानरोंनें पर्वतकी समस्त कंदराओंको और बनको ढूंढा

नस सरोवरहै, वहांपर देवता, राक्षस और मनुष्यादि जीव गणोंके पहुँचनेंकी गति नहींहे ॥ २८ ॥ इसकारणसे युक्ति पूर्वक तुम सब उस पर्वतके छोटे और बडे शृंगोंको देखना, क्रौञ्च पर्वतसे आगे चलनें पर मेनाक नामपर्वत दिखाई देगा ॥ २९ ॥ उस पर मयदानवने आपही अपनें रहनेंके स्थानको बनायाहै। उस मेनाकके शृंग; प्रस्थ; और कन्दराओंमें सीताजीको ढूंडना ॥ ३० ॥ यह मेनाक पर्वत अश्वमुखी (किन्नरी) स्त्रियोंका भवनहै, इस देशको नांघकर सिद्धसेवित आश्रमोंपर पहुँचोगे ॥ ३१ ॥ वहांपर सिद्ध, वैखानस, वालखिल्य, आदि तपस्वी गण वास करतेहैं; वह पाप रहित सिद्ध व तपस्वियों गणोंके वन्दन करनेके योग्यहैं ॥ ३२ ॥ इस कारण विनय सहित उन सब लोगोंसे सीताजीका समाचार पूछना

सचसर्वैर्विचेतव्यःससानुप्रस्थभूधरः ॥ क्रौंचंगिरिमतिक्रम्यमैनाकोनामपर्वतः ॥ २९ ॥ मयस्यभवनंतत्रदानवस्यस्वयंकृतम् ॥ मैनाकस्तुविचेतव्यःससानुप्रस्थकंदरः ॥ ३० ॥ स्त्रीणामश्वमुखीनांतुनिकेतस्तत्रतत्रतु ॥ तंदेशंसमतिक्रम्यआश्रमंसिद्धसेवितम् ॥ ३१ ॥ सिद्धावैखानसायत्रवालखिल्याश्चतापसाः ॥ वंदितव्यास्ततःसिद्धास्तपसावीतकल्मषाः ॥ ३२ ॥ प्रष्टव्याचापिसीतायाःप्रवृत्तिर्विनयान्वितैः ॥ हिमपुष्करसंछन्नंतत्रवैखानसंसरः ॥ ३३ ॥ तरुणादित्यसंकाशैर्हंसैर्विचरितंशुभैः ॥ औपवाह्यःकुबेरस्यसार्वभौमइतिस्मृतः ॥ ३४ ॥ गजःपर्येतितंदेशंसदासहकरेणुभिः ॥ तत्सरःसमतिक्रम्यनष्टचंद्रदिवाकरम् ॥ अनक्षत्रगणंव्योमनिष्पयोदमनादितम् ॥ ३५ ॥ गभस्तिभिरिवार्कस्यसतुदेशःप्रकाश्यते ॥ विश्राम्यद्भिस्तपःसिद्धैर्देवकल्पैःस्वयंप्रभैः ॥ ३६ ॥ तंतुदेशमतिक्रम्यशैलोदानामनिम्नगा ॥ उभयोस्तीरयोस्तस्याःकीचकानामवेणवः ३७ ॥

उचितहै। वहांपर एक वैखानस नाम सरोवरहै। जिसमें सुवर्णके कमल खिल रहेहैं ॥ ३३ ॥ उस सरोवरपर प्रभात कालके सूर्यकी समान रंग वाले शुभ हंसगण भ्रमण किया करतेहैं और कुबेरजीको सवारीका सार्वभौम नामक ॥ ३४ ॥ गज अपनी हथनियोंके साथ वहां विचरा करताहै; इस सरोवरके नांघनेपर सूर्य चंद्र विहीन और नक्षत्र व मेघोंसे रहित नित्य आकाश स्थलहै ॥ ३५ ॥ वहांपर तो केवल सूर्य नारायणकी किरणोंसे प्रकाश होता रहताहै; वहांपर अपनेही तेजकी प्रभासे दीप्तिमान देव समान सिद्ध लोग तप किया करतेहैं ॥ ३६ ॥ उस देशके आगे शैलोदा नामक

सबको जरा २ करके खोजो ॥ ७ ॥ जो लोग कार्यको करते हैं उनको उस कार्यका फल अवश्यही मिलता है परन्तु एक बार खेदयुक्त होनेसे
फिर उत्साह आना अत्यन्त कठिन हो जाता है ॥ ८ ॥ हे वानरगण! सुग्रीवजी बडे क्रोधी राजा हैं; वह बडा कडा दंड दिया करते हैं; इसलिये उन
से और महात्मा श्रीरामचन्द्रजीसे भय करना उचित है ॥ ९ ॥ तुम्हारे सबके हित करनेंहीके लिये हमनें ऐसा कहा है; यदि रुचि हो तो इस कार्य
को करो; जिस्से जितना कार्य होसके उतनाही कार्य करे; और तुमनें जो कुछ हितकारी बात विचारी हो वहभी कहो ॥ १० ॥ अंगदजीके वचन
सुनकर गन्धमादन नामक वानर प्यासके मारे और परिश्रमसे व्याकुल हो कहने लगा ॥ ११ ॥ अंगदजीने जो कुछ कहा वह हितकारी और अनुकू

अवश्यंकुर्वतांतस्यदृश्यतेकर्मणःफलम् ॥ परंनिर्वेदमागम्यनहिनोन्मीलनंक्षमम् ॥ ८ ॥ सुग्रीवःक्रोधनोराजाती
क्ष्णदंडश्चवानराः ॥ भेतव्यंतस्यसततंरामस्यचमहात्मनः ॥ ९ ॥ हितार्थमेतदुक्तंवःक्रियतांयदिरोचते ॥ उच्यतां
हिक्षमंयत्तत्सर्वेषामेववानराः ॥ १० ॥ अंगदस्यवचःश्रुत्वावचनंगंधमादनः ॥ उवाचव्यक्तयावाचापिपासाश्रमखिन्न
या ॥ ११ ॥ सदृशंखलुवोवाक्यमंगदोयदुवाचह ॥ हितंचैवानुकूलंचक्रियतामस्यभाषितम् ॥ १२ ॥ पुनर्मार्गाम
हेशैलान्कंदरांश्चशिलास्तथा ॥ काननानिचशून्यानिगिरिप्रस्रवणानिच ॥ १३ ॥ यथोद्दिष्टानिसर्वाणिसुग्रीवेणमहा
त्मना ॥ विचिन्वंतुवनंसर्वेगिरिदुर्गाणिसंगताः ॥ १४ ॥ ततःसमुत्थायपुनर्वानरास्तेमहाबलाः ॥ विंध्यकाननसंकी
र्णांविचेरुर्दक्षिणांदिशम् ॥ १५ ॥ तेशारदाभ्रप्रतिमंश्रीमद्रजतपर्वतम् ॥ शृंगवंतंदरीवंतमधिरुह्यचवानराः ॥ १६ ॥
तत्रलोध्रवनंरम्यंसप्तपर्णवनानिच ॥ विचिन्वंतोहरिवराःसीतादर्शनकांक्षिणः ॥ १७ ॥

ल है इसलिये इनके कहनेंके अनुसार कार्य करो ॥ १२ ॥ हम सब जन पर्वत कन्दरायें, शिला, वन और पर्वतोंके शूने स्थान ढूंडे ॥ १३ ॥ जिस
प्रकार सुग्रीवजीनें बताया है उसी प्रकारसे गिरिदुर्ग और पर्वतोंके झरनें सब फिरकर ढूंडो ॥ १४ ॥ यह सुनकर समस्तही बलवान वानरगण फिर
उठे और विन्ध्याचलकी कानन पूर्ण दक्षिण दिशामें घूमने लगे ॥ १५ ॥घूमते २ उन्होंनें एक शरदकालकी मेघकी तुल्य रंगवाला शिखर और
गुफादि युक्त चांदीका एक पर्वत देखा उसपर चढ ॥ १६ ॥ और उसी गिरिपर सीताजीके देखनेंकी इच्छा किये समस्त वानरोंनें सातपत्तेवाले

दूर्य मणियोंसे चित्रित होतेहैं ॥ ४६ ॥ किसी २ वृक्षोंमें सब ऋतुओंमेंपहरनेके योग्य वस्त्रही फला करतेहैं; और तरुवरमें बडे मोलके खिलौनें फला करतेहैं ॥ ४७ ॥ बहुतसे वृक्षोंमें चित्र विचित्र विस्तरे फले करतेहैं किसी २ वृक्षोंमें मनोहर हार ॥ ४८ ॥ और बहुतसे वृक्षोंमें बडे मोलकी सवारियां और खानें पीनेंकी वस्तुयें उत्पन्न होतीहैं; उस स्थानमें रूपयौवन सम्पन्न गुण युक्त स्त्रियांभी फलतीहैं ॥ ४९ ॥ दीप्यमान गन्धर्वगण किन्नरगण, सिद्धगण, नागगण, विद्याधरगण, अपनी २ स्त्रियोंके सहित वहां विहार करतेहैं ॥ ५० ॥ वह सबही पुण्यवान्, सबही रति परायण सबही कामभोग युक्त होते और अपनी २ स्त्रियोंके सहित वास करतेहैं ॥ ५१ ॥ वहांपर समस्त जीव गणोंके रमणीक हास्य स्वरके सहित

सर्वर्तुसुखसेव्यानिफलंत्यन्येनगोत्तमाः॥ महार्हमणिचित्राणिफलंत्यन्येनगोत्तमाः ॥ ४७ ॥शयनानिप्रसूयंतेचित्रास्तरणवंतिच ॥ मनःकांतानिमाल्यानिफलंत्यत्रापरेद्रुमाः॥ ४८ ॥पानानिचमहार्हाणिभक्ष्याणिविविधानिच ॥ स्त्रियश्चगुणसंपन्नारूपयौवनलक्षिताः ॥ ४९ ॥ गंधर्वाःकिन्नराःसिद्धानागाविद्याधरास्तथा ॥ रमंतेसततंतत्रनारीभिर्भास्वरप्रभाः ॥ ५० ॥सर्वेसुकृतकर्माणःसर्वेरतिपरायणाः॥ सर्वेकामार्थसहितावसंतिसहयोषितः ॥ ५१ ॥ गीतवादित्रनिर्घोषःसोत्कृष्टहसितस्वरैः ॥ श्रूयतेसततंतत्रसर्वभूतमनोरमः ॥ ५२ ॥ तत्रनामुदितःकश्चिन्नात्रकश्चिदसत्प्रियः ॥ अहन्यहनिवर्धंते गुणास्तत्रमनोरमाः ॥ ५३ ॥ तमतिक्रम्यशैलेंद्रमुत्तरःपयसांनिधिः ॥ तत्रसोमगिरिर्नाममध्येहेममयोमहान् ॥ ५४ ॥ सतुदेशोविसूर्योपितस्यभासाप्रकाशते॥सूर्यलक्ष्म्याभिविज्ञेयस्तपतेवविवस्वता ॥ ५५ ॥ भगवांस्तत्रविश्वात्माशंभुरेकादशात्मकः ॥ ब्रह्मावसतिदेवेशोब्रह्मर्षिपरिवारितः ॥ ५६ ॥

गीत, और वाजोंकी ध्वनि सदाही सुनाई आया करतीहै ॥ ५२ ॥ वहांपर कोईभी असन्तुष्ट नहीं, किसीको किसी प्यारी वस्तुका वियोग नहीं वहांपर दिन २ मनोहर गुणोंकी भरती हुआ करतीहै ॥ ५३ ॥ जब उस पर्वतसे तुम आगे चलोगे तो उत्तर समुद्र आवैगा वहांपर सुवर्णमय सोमनामक एक महा पर्वत विद्यमान है ॥ ५४ ॥ यद्यपि वहांपर सूर्यका प्रकाश नहीं है तथापि सोम पर्वतकी प्रभासे ही वहां ऐसा प्रकाश रहता है कि जैसा सूर्य युक्त देशमें रहता है ॥ ५५ ॥ वहांपर विश्वात्मा एकादश रुद्रात्मक महादेवजी और देवेश्वर ब्रह्माजी सब ब्रह्मर्षि गणोंके

कि अनेक प्रकारकी गुफा व सघन विस्तारित वन विद्यमानथे; हनुमानजीनें उन समस्त पर्वतोंको ढूंडा ॥ ४ ॥ परस्पर एक दूसरेके निकट रह कर एक २ करके गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गंधमादन, ॥ ५ ॥ मैन्द, द्विविद, हनुमान, जाम्ववान्, युवराज अंगद, तार, इन सबने वनमें फिरते हुये ॥ ६ ॥ पर्वतके समूहसे युक्त दक्षिणदिशाको ढूंडते भालते हुये एक अति ऐंडी गुफा देखी ॥७॥ उस का ऋक्षविल नामथा, वह अति दुर्गम और दानवोंसे रक्षित बेल पत्तोंसे ढक रहीथी. क्षुधा, और प्यास लगनेंके कारण थके जलपान करनेंकी इच्छा किये ॥८॥ लता पातादिकों से छाये उस महाविलको देखते हुये, उसमें से क्रौञ्च, हंस, सारस आदि पक्षी निकल रहेथे ॥ ९ ॥ जलसे भीगे कमल परागसे रँगीले अरुण चकवा चकवीभी

परस्परेणरहिताअन्योन्यस्याविदूरतः ॥ गजोगवाक्षोगवयःशरभोगंधमादनः ॥५॥ मैंदश्चद्विविदश्चैवहनूमान्जांबवानपि॥अंगदोयुवराजश्चतारश्चवनगोचरः॥६॥ गिरिजालावृतान्देशान्मार्गित्वादक्षिणांदिशम्॥विचिन्वंतस्ततस्तत्रददृशुर्विवृतंबिलं॥७॥दुर्गमृक्षबिलंनामदानवेनाभिरक्षितं॥ क्षुत्पिपासापरीतास्तुश्रांतास्तुसलिलार्थिनः॥८॥अवकीर्णंलतावृक्षैर्ददृशुस्तेमहाबिलम् ॥ तत्रक्रौंचाश्चहंसाश्चसारसाश्चापिनिष्क्रमन् ॥ ९ ॥ जलार्द्राश्चक्रवाकाश्च रक्तांगाःपद्मरेणुभिः॥ ततस्तद्बिलमासाद्यसुगंधिदुरतिक्रमम् ॥ १० ॥ विस्मयव्यग्रमनसोबभूवुर्वानरर्षभाः॥ संजातपरिशंकास्तेतद्बिलंप्लवगोत्तमाः ॥ ११ ॥ अभ्यपद्यंतसंहृष्टास्तेजोवंतोमहाबलाः ॥ नानासत्त्वसमाकीर्णंदैत्येंद्रनिलयोपमम् ॥ ॥ १२ ॥ दुर्दर्शमिवघोरंचदुर्विगाह्यंचसर्वशः ॥ ततःपर्वतकूटाभोहनूमान्मारुतात्मजः ॥ १३ ॥ अब्रवीद्वानरान्घोरान्कांतारवनकोविदः ॥ गिरिजालावृतान्देशान्मार्गित्वादक्षिणांदिशम् ॥ १४ ॥

दृष्टि आये, उस सुगन्धिवान, वडे कठिनसे प्रवेश करने योग्य बिलको प्राप्त होकर ॥ १० ॥ सब वानरयूथपोंका मन विस्मयसे व्याकुल होगया उन सब वानर श्रेष्ठोंको उस बिलके विषयमें बडी शंका उत्पन्न हुई ॥ ११ ॥ वह तेजस्वी महा बलवान् वानर गण अनेक प्रकार के जीवोंसे परिपूर्ण राजा वलिके स्थानके तुल्य उस बिलके द्वारपर आये ॥ १२ ॥ वह विल वडे कष्टसे दर्शन करनेंके योग्य अतिघोर सब स्थानोंमें दुर्गम थी, तब पर्वतकी समान पवनकुमार हनुमानजी ॥ १३ ॥ जोकि वनपर्वतोंका विषय भली भांति जानतेथे घोरदर्शन वानरोंसे बोले कि हम सबनें दक्षिणदिशामें

था मेघोंके चलनेंके स्थान अम्बरमें; अथवा स्वर्गमें किम्वा सलिलमें,कहींभी तुम्हारी गति नहीं रुक सकती ॥ ३ ॥ असुर, गन्धर्व, नाग, नर, और
देवता ओंके लोक व समुद्र पृथ्वी और पातालादि समस्त लोकोंको तुमजानते हो ॥ ४ ॥ हे महावीर! क्या गतिमें, क्या तेजमें, क्या शीघ्रतामें,
सबमें तुम अपने पिता तेजस्वी पवनकीही समान हो ॥ ५ ॥ और तुम्हारी समान तेजशाली जीव तीनों लोकमें नहीं है; इस कारण जिस्से
सीताजीका पता लगजाय ऐसा यत्न करनेंमें तुमको विशेष यत्न करनाउचित है ॥ ६ ॥ हे नीति पंडित हनुमन्! तुममेंही वल बुद्धि, पराक्रम दे
श और कालज्ञान और नीति यह समस्तही विद्यमान हैं ॥ ७ ॥ तव श्रीरामचन्द्रजी हनुमान्जीसेही कार्यकी सिद्धि विचार करकै, और हनुमानजीके

गतिर्वेगश्चतेजश्चलाघवंचमहाकपे॥ सासुराःसहगंधर्वाःसनागनरदेवताः॥विदिताःसर्वलोकास्तेससागरधराधराः॥४॥ पितुस्तेसदृशंवीरमारुतस्यमहौजसः ॥ ५ ॥ तेजसावापितेभूतंनसमंभुविविद्यते ॥ तद्यथालभ्यतेसीतातत्त्वमेवानुचिंतय ॥ ६ ॥ त्वय्येवहनुमन्नस्तिबलंबुद्धिःपराक्रमः ॥ देशकालानुवृत्तिश्चनयश्चनयपंडित ॥ ७ ॥ ततःकार्यसमासंगमवगम्यहनूमति ॥ विदित्वाहनुमंतंचचिंतयामासराघवः ॥ ८ ॥ सर्वथानिश्चितार्थोयंहनूमतिहरीश्वरः॥ निश्चितार्थतरश्चापिहनूमान्कार्यसाधने॥९ ॥ तदेवप्रस्थितस्यास्यपरिज्ञातस्यकर्मभिः ॥ भर्त्रापरिगृहीतस्यध्रुवःकार्यफलोदयः ॥ १० ॥ तंसमीक्ष्यमहातेजाव्यवसायोत्तरंहरिम् ॥ कृतार्थइवसंहृष्टःप्रहृष्टेंद्रियमानसः ॥ ११ ॥ ददौतस्य ततःप्रीतःस्वनामांकोपशोभितम् ॥ अंगुलीयमभिज्ञानंराजपुत्र्याःपरंतपः ॥ १२ ॥

बल विक्रमकी ओर सीताजीके उद्धार करनेंकी गुरुताको मनहीमनमें विचारकरनेलगें८श्रीरामचंद्रजीनें विचाराकि,कपिराजसुग्रीवजी यहसमझेहुयेहैं कि
हनुमानजीसेही कार्यकी सिद्धि होगी और हमाराभी अधिक तर यही विचारहै कि इनसेही कार्यकी सिद्धिहोगी ॥ ९ ॥ यह हनुमानजी अपने कर्मोंसे
प्रसिद्ध हुयेहैं और राजाभी इनके ऊपर कृपा करताहै, यदि यह वीरकेशरो सीताजीके ढूँडनेंको जांयगे तो अवश्यही कार्यकी सिद्धिहोगी ॥१०॥
महा तेजवान रामचंद्रजी हनुमानजीको कार्यके साधन करनेंमें श्रेष्ठ विचारकरके कृतार्थकी समान सन्तुष्ट होगये हर्षके कारण उनकी सब इन्द्रियां
प्रफुल्लित होगई ॥ ११ ॥ तिसके पीछे पर वीर घाती श्रीरामचंद्रजीनें प्रसन्नहोकर एक अंगूठी जिसपर उनका नाम खुदा हुआथा सीताजीको निशानी

पडे रहे क्योंकि वह बहुत दुर्बलहोरहेथे ॥ २३ ॥ उन वानरोंनें इधर उधर देखकर समझा कि वस अब यहींपर हमारा मरण होगा फिर वडे कष्ट और यत्नसे चले तौ आगे एक बहुत प्रकाशमय वन दृष्टि आया ॥ २४ ॥ उस वनके सुवर्ण मय वृक्षोंकी प्रभा अग्निकी प्रभाके तुल्यथी, उन वृक्षोंमें ताल, तमाल, पुन्नाग, वंजुल, धव, ॥ २५ ॥ चंपक, नाग, कर्णिकार यह सब वृक्ष फूलरहेथे और विचित्र लाल वर्णके गुच्छे और कोंपल इन वृक्षोंमें लगेथे ॥ २६ ॥ उन वृक्षोंपर जो बेलें छाईहुईथीं, वही उनके गहनेंकी समान शोभायमान हो रहीथीं, उन सबके थांवले वैदूर्य्यमणिके बनाये गयेथे ॥ २७ ॥ यह सब वृक्ष कांचन मय होनेंसे प्रकाशमानथे और सरोवरोंमें नील वैदूर्यमणिके सजीव पक्षी गुंजार कर

आलोकंददृशुर्वीरानिराशाजीवितेयदा ॥ ततस्तंदेशमागम्यसौम्यावितिमिरंवनम्॥ २४॥ददृशुःकांचनान्वृक्षान्दीप्तवैश्वानरप्रभान् ॥ सालांस्तालांस्तमालांश्चपुन्नागान्वंजुलान्धवान् ॥ २५ ॥ चंपकान्नागवृक्षांश्चकर्णिकारांश्चपुष्पितान् ॥ स्तवकैःकांचनैश्चित्रैरक्तैःकिसलयैस्तथा ॥ २६ ॥ आपीडैश्चलताभिश्चहेमाभरणभूषितान् ॥ तरुणादित्यसंकाशान्वैदूर्यमयवेदिकान् ॥ २७ ॥ विभ्राजमानान्वपुषापादपांश्चहिरण्मयान् ॥ नीलवैदूर्यवर्णाश्चपद्मिनीः पतगैर्वृताः ॥२८॥ महद्भिःकांचनैर्वृक्षैर्वृतंबालार्कसन्निभैः ॥ जातरूपमयैर्मत्स्यैर्महद्भिश्चाथपंकजैः॥२९॥नलिनीस्तत्रददृशुःप्रसन्नसलिलायुताः ॥ कांचनानिविमानानिराजतानितथैवच ॥ ३० ॥ तपनीयगवाक्षाणिमुक्ताजालावृतानिच ॥ हैमराजतभौमानिवैदूर्यमणिमंतिच ॥ ३१ ॥ ददृशुस्तत्रहरयोगृहमुख्यानिसर्वशः ॥ पुष्पितान्फलिनोवृक्षान्प्रवालमणिसन्निभान् ॥ ३२ ॥ कांचनभ्रमरांश्चैवमधूनिचसमंततः ॥ मणिकांचनचित्राणिशयनान्यासनानिच ॥ ३३ ॥

रहेथे ॥ २८ ॥ वालसूर्यके समान रंगवाले बडे २ वृक्ष सुवर्णके ही लग रहेथे,और सरोवरोंमें मीनभी सुवर्णके हीथे, कमलभी सब हेममयथे ॥२९॥ इस प्रकारकी स्वच्छ जल वाली पुष्करिणियोंके देखनेंके अतिरिक्त शत २ विमान वहांथे जिनमें अनेक चांदीके वनेथे अनेक सोनेके थे ॥३०॥ सब सुवर्णमय झरोखोंमें मोतियोंकी झालर लगीथीं, सुवर्ण व चांदीके बने वैदूर्यमणियुक्त ॥ ३१ ॥ वहां अनेक प्रकारके गृह वानरोंने देखे और फल पुष्प युक्त मूंगे मणियोंके वृक्षभी देखते हुए॥ ३२ ॥ सुवर्णमय भ्रमर और मधु और मणि काञ्चन सेवित सुवर्णके शयन करनें उठनें बैठनेंके

गण गमन करने लगे; श्रीरामचंद्रजी, लक्ष्मणजीके सहित उस प्रस्रवणपर्वतपर बसे ॥ ३ ॥ सीताजीका समाचार जाननेमें एक महीनेंकी अवधि निश्चय कर रामचंद्रजी वहां बसे फिर हिमाचलसे युक्त रमणीक उत्तरदिशाको ॥ ४ ॥ कपिश्रेष्ठ शतवलि अपनी सेनाको लेकर गया और विनत नामक यूथनाथ उत्तर दिशाको चला ॥ ५ ॥ और तार अंगदादिसहित पवनपुत्र हनुमानजी अगस्त्यजीसे सेवित दक्षिण दिशाको गये ॥ ६ ॥ और वानर शार्दूल सुषेण वरुणजीसे पाली जातीहुई घोर पश्चिम दिशाकी ओर सिधारा, ॥ ७ ॥ तब सब ओरको यथानुरूप वानरोंकी सेनाको भेजकर कपिनाथ राजा सुग्रीवजी हर्षित चित्त हुये ॥ ८ ॥इस प्रकार भेजे जाकर सकल वानर यूथप अपनी २ बताई हुई दिशा

प्रतीक्षमाणस्तंमासंसीताधिगमनेकृतः ॥ उत्तरांतुदिशंरम्यांगिरिराजसमावृताम् ॥ ४ ॥ प्रतस्थेसहसावीरोहरिः शतबलिस्तदा ॥ पूर्वांदिशंप्रतिययौविनतोहरियूथपः ॥ ५ ॥ तारांगदादिसहितःप्लवगःपवनात्मजः ॥ अगस्त्याचरितामाशांदक्षिणांहरियूथपः ॥ ६ ॥ पश्चिमांचदिशंघोरांसुषेणःप्लवगेश्वरः ॥ प्रतस्थेहरिशार्दूलोदिशंवरुणपालिताम् ॥ ७ ॥ ततःसर्वादिशोराजाचोदयित्वायथातथम् ॥ कपिसेनापतिर्वीरोमुमोदसुखितःसुखम्ः ॥ ८ ॥ एवंसंचोदिताः सर्वेराज्ञावानरयूथपाः ॥ स्वांस्वां दिशमभिप्रेत्यत्वरिताःसंप्रतस्थिरे ॥ ९ ॥ नदंतश्चोन्नदंतश्चगर्जंतश्चप्लवंगमाः ॥ क्ष्वेडंतो धावमानाश्चविनदंतोमहाबलाः ॥ १० ॥ एवंसंचोदिताःसर्वेराज्ञावानरयूथपाः ॥ आनयिष्यामहेसीतांहनिष्यामश्चरावणम् ॥ ११ ॥ अहमेकोवधिष्यामिप्राप्तंरावणमाहवे ॥ ततश्चोन्मथ्यसहसाहरिष्येजनकात्मजाम् ॥ १२ ॥ वेपमानांश्रमेणाद्यभवद्भिःस्थीयतामिति ॥ एकएवाहरिष्यामिपातालादपिजानकीम् ॥ १३ ॥

ओंको शीघ्रतासे गमन करते हुये ॥ ९ ॥ महा बलवान् वानर दल, नाद, उच्चनाद, गर्जन और क्रोध पूर्वक अनेक प्रकारके शब्द करते हुये दौडे ॥ १० ॥ वानरराज सुग्रीवजी करके भेजे हुये सब वानर हाथ जोडकर "हमरावणको मार डालेंगे" हम जानकीजीको ले आमेंगे ॥ ११ ॥ कोई २ बोलेकि हम इकलेही रणस्थलमें रावणको पाय सहित सहाय उसको मार जानकीजीको ले आमेंगे ॥ १२ ॥ कोई बोलेकि यदि जानकीजी पातालमें भीहों तो उन श्रमसे कम्पमान होती हुई कामनीको "स्थिर होओ" इस प्रकारसेसमझा दृढ सहित हम अकेलेही उनको वहांसे ले आमेंगे ॥ १३ ॥

धर्मचारिणी महाभागा तपस्विनीसे बोले॥१॥हम लोग सब भांतिसे थकित प्यासे और खिन्न होकर सहसा इस अंधकारसे ढके हुए विलमें चले आयेहैं॥२॥ हम लोग अधिक करकै प्यासे होनेंके कारणही इस बडे भारी विलमें प्रवेश कर आये हैं। परन्तु यहांपर आय यह विविध भांतिके अद्भुत पदार्थ देखे ॥ ३ ॥ जिनके देखतेही हम सब व्यथित, सम्भ्रान्त चित्त और हतबुद्धि होगये हैं, यह प्रभात कालीन सूर्यकी समान प्रभावाले सुवर्ण मय वृक्ष किसके हैं? ॥ ४ ॥ यह पवित्र भोजन करनेंके पदार्थ फल मूलादि किसके हैं? सुवर्णमय विमान चांदीके बने गृह ॥ ५ ॥

इदंप्रविष्टाःसहसाबिलंतिमिरसंवृतम् ॥ क्षुत्पिपासापरिश्रांताःपरिखिन्नाश्चसर्वशः ॥ २ ॥ महद्धरण्याविवरंप्रविष्टाःस्म पिपासिताः ॥ इमांस्त्वेवंविधान्भावान्विविधानद्भुतोपमान् ॥ ३ ॥ दृष्ट्वावयंप्रव्यथिताःसंभ्रांतानष्टचेतसः ॥ कस्यैते कांचनावृक्षास्तरुणादित्यसन्निभाः ॥ ४ ॥ शुचीन्यभ्यवहाराणिमूलानिचफलानिच ॥ कांचनानिविमानानिराजतानिगृहाणिच ॥ ५ ॥ तपनीयगवाक्षाणिमणिजालावृतानिच ॥ पुष्पिताःफलवंतश्चपुण्याःसुरभिगंधयः ॥ ६ ॥ इमेजांबूनदमयाःपादपाःकस्यतेजसा ॥ कांचनानिचपद्मानिजातानिविमलेजले ॥ ७ ॥ कथंमत्स्याश्चसौवर्णादृश्यंतेसहकच्छपैः ॥ आत्मनस्त्वनुभावाद्वाकस्यवैतत्तपोबलम् ॥ ८ ॥ अजानतांनःसर्वेषांसर्वमाख्यातुमर्हसि ॥ एवमुक्ताहनुमतातापसीधर्मचारिणी ॥ ९ ॥ प्रत्युवाचहनूमंतंसर्वभूतहितेरता ॥ मयोनाममहातेजामायावीवानरर्षभ ॥ १० ॥

सुवर्णमय मणियोंके जाल लगे यह झरोखे पुष्पित फलवान् पुण्य दायक सुगन्धिसे महकते ॥ ६ ॥ जाम्बूनदके सुवर्णमय वृक्ष किसके तेजसे उत्पन्न हुये हैं सुवर्णमय कमल फूलसे विमल जलमें कैसे बने ॥ ७ ॥ मछलियां और कछुये किसके तेजसे सुवर्णमय हुये?यह सब आपके प्रभावसे अथवा और किसी तपस्याके बलसे बनेहैं? ॥ ८ ॥ हम सब इस बातको कुछ भी नहीं जानते आप अनुग्रह करकै यह सब वृत्तान्त हमसें कहदीजिये, जब हनुमानजीनें उस धर्मचारिणी तपस्विनीसे ऐसा कहा ॥९॥ तब सब प्राणियोंके ऊपर दया करनेवाली वह तपस्विनी हनुमानजीको उत्तर

पर विनीत हो टिके रहे और येक संवत वीत गया तौभी वालि नहीं लौटा ॥ ५ ॥ फिर रुधिरकी धारासे वह बिल परिपूर्ण होगया तिसको देख
हम विस्मित और भाईके शोकसे जर्जरित हो गये ॥ ६ ॥ फिर हमने बुद्धि रहित होकर स्थिर किया कि बडा भाई वालि मारागया ऐसा
समझ कर पर्वतकी समान येक शिला खंड बिलके द्वारपर लगाय उसको बंद किया ॥ ७ ॥ हमने विचाराकि महिष इसमेंसे निकलनेंका उद्योग करेगा
तो आपही इस्से दबकर मर जायगा ऐसा विचार, और भ्राता वालिके जीवनसे निराशहो हम किष्किन्धाको चले आये ॥ ८ ॥ नगरमें आय ता
रा और रुमा व बडे राज्यको पाय बन्धु बान्धवोंके सहित हम सुखसे वास करने लगे ॥ ९ ॥ फिर वानरश्रेष्ठ वालि उस दानवको मारकर

ततःक्षतजवेगेनआपुपूरेतदाबिलम् ॥ तदहंविस्मितोदृष्ट्वाभ्रातुःशोकविषार्दितः ॥ ६ ॥ अथाहंगतबुद्धिस्तुसुव्यक्तं
निहतोगुरुः ॥ शिलापर्वतसंकाशाबिलद्वारिमयाकृता ॥ ७ ॥ अशक्नुवन्निष्क्रमितुंमहिषोविनशिष्यति ॥ ततोहमागां
किष्किंधांनिराशस्तस्यजीविते ॥ ८ ॥ राज्यंचसुमहत्प्राप्यतारांचरुमयासह ॥ मित्रैश्चसहितस्तस्यवसामिविगत
ज्वरः ॥ ९ ॥ आजगामततोवालीहत्वातंवानरर्षभः ॥ ततोहमददांराज्यंगौरवाद्भययंत्रितः ॥ १० ॥ समांजिघांसुर्दुष्टा
त्मावालीप्रव्यथितेंद्रियः ॥ परिकालयतेवालीधावंतंसचिवैःसह ॥ ११ ॥ ततोहंवालिनातेनसोनुबद्धःप्रधावितः ॥ न
दीश्चविविधाःपश्यन्वनानिनगराणिच ॥ १२ ॥ आदर्शतलसंकाशाततोवैपृथिवीमया ॥ अलातचक्रप्रतिमादृष्टागोष्प
दवत्कृता ॥ १३ ॥ पूर्वांदिशंततोगत्वापश्यामिविविधान्द्रुमान् ॥ पर्वतान्सदरीन्रम्यान्सरांसिविविधानिच ॥ १४ ॥

नगरमें आया तब हमनें भयसे भीतहो और गौरवके हेतु फिर उसको राज्य देदिया ॥ १० ॥ दुष्टात्मा वालि व्यथित हो हमारे मार डालनेंकी
इच्छा करता हुआ हमारे पीछे दौडा तब हमभी अपने मंत्रियोंके सहित भागने लगे ॥ ११ ॥ वरन हमारे सबही साथी वालिके भयसें भागे
हमनें भागते २ मार्गमें अनेक भांतिकी नदियें वन नगर इत्यादि देखे ॥ १२ ॥ इसी प्रकारसे सब भूमि जिसका आकार अलातचक्रकी
समानहै, हमने गोपदके गढेकी समान अवलोकन करली ॥ १३ ॥ फिर पूर्व दिशामें जायकर विविध भांतिके वृक्ष गुफा सहित पर्वत और अनेक

और किस प्रकारसे तुमनें यह दुर्गम वन देखा तुम सबही इस व्यवहारके द्रव्योंको भोगकर फल मूल जल आदि भोजनकर पानी पीकरके अपने आनेका समस्त वृत्तान्त हमसे कहो ॥ १९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडेएकपंचाशः सर्गः ॥ ५१ ॥
ऐसा श्रवण करके सब वानरोंनें विश्रामकर भोजन पान किया तब वह धर्मचारिणी तपस्विनी एकाग्र चित्तहो उन वानरोंसे इस प्रकार बोली ॥ १ ॥
हे वानरो! यदि फल खायकर तुम्हारी थकावट मिट गईहो, और यदि हमारे श्रवण करनेंके अयोग्य नहो तो तुम्हारे आनेंकी कथाके श्रवण कर

कथंचेदंवनंदुर्गंयुष्माभिरुपलक्षितम् ॥ शुचीन्यभ्यवहाराणिमूलानिचफलानिच ॥ भुक्त्वापीत्वाचपानीयंसर्वंमेवक्तुमर्हसि ॥ १९ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेएकपंचाशःसर्गः ॥ ५१ ॥ ॥ ७॥ अथ तानब्रवीत्सर्वान्विश्रांतान्हरियूथपान् ॥ इदंवचनमेकाग्रातापसीधर्मचारिणी ॥ १ ॥ वानरायदिवःखेदःप्रनष्टःफलभक्षणात् ॥ यदिचैतन्मयाश्राव्यंश्रोतुमिच्छामितांकथाम् ॥ २ ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वाहनूमान्मारुतात्मजः ॥ आर्जवेनयथातत्त्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ ३ ॥ राजासर्वस्यलोकस्यमहेंद्रवरुणोपमः ॥ रामोदाशरथिःश्रीमान्प्रविष्टोदंडकावनम् ॥ ४ ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्रावैदेह्यासहभार्यया ॥ तस्यभार्याजनस्थानाद्रावणेनहृताबलात् ॥ ५ ॥ वीरस्तस्यसखाराज्ञःसुग्रीवोनामवानरः ॥ राजावानरमुख्यानांयेनप्रस्थापितावयम् ॥ ६ ॥ अगस्त्यचरितामाशांदक्षिणांयमरक्षिताम् ॥ सहैभिर्वानरैर्मुख्यैरंगदप्रमुखैर्वयम् ॥ ७ ॥

नेंकी हम वासना करतीहैं ॥ २ ॥ पवनकुमार हनुमानजीनें उस तपस्विनीके यह वचन सुनकर सरल भावसे यथार्थ वृत्तान्त कहना आरंभ किया ॥ ३ ॥ इन्द्र और वरुण तुल्य सर्व लोकोंके राजा दशरथजीके पुत्र श्रीरामचंद्रजी दंडकवनमें आये ॥ ४ ॥ वह अपने भ्राता लक्ष्मण और अपनी भार्याके सहित वनमें आये; उनकी भार्याको जनस्थानसे बलात्कार रावण हरण करके ले गया ॥ ५ ॥ उनके सखा वीर सुग्रीवजी वानरोंके राजाहैं उन्होंनेंही हमको यहांपर भेजाहै ॥ ६ ॥ हम लोग अंगदादिप्रधान २ वानरोंके सहित अगस्त्यजीसे सेवित दक्षिण दिशामें आयेहैं॥७॥

वहांपर वालि मतंगजीके शाप भयसे भीत हो नहीं आया । हे राजन् इस प्रकारसे हम समस्त पृथ्वी मंडल दर्शन करके इस गुफामें आयेथे॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मी० आदि० कि० षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥ जानकीजीके ढूंडनेंके निमित्त आज्ञा पायकर सब कपिश्रेष्ठ अपने लिये नियत की हुई दिशाको गये ॥ १ ॥ वह लोग, सरोवर, नदियें, तृणस्थान (काछा)आकाश,नगर,सरित,दुर्गम स्थान और सब देश खोजनेंलगे ॥२॥स मस्त वानर गण सुग्रीवजीके बताये हुए पर्वत वन और कानन सहित सब देशोंको ढूंडनें लगे॥३॥वह दिनके समय सीताजीके ढूंडनेंको आकाशमार्गमें

नविवेशतदावालीमतंगस्यभयात्तदा ॥ एवंमयातदाराजन्प्रत्यक्षमुपलक्षितम् ॥ पृथिवीमंडलंसर्वंगुहामस्म्यागत
स्ततः ॥ २४ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०किष्किंधाकांडेषट्चत्वारिंशःसर्गः ॥४६ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ दर्शनार्थंतुवैदे
ह्याःसर्वतःकपिकुंजराः ॥ व्यादिष्टाःकपिराजेनयथोक्तंजग्मुरंजसा ॥ १ ॥ तेसरांसिसरित्कक्षानाकाशंनगराणिच ॥
नदीदुर्गांस्तथादेशान्विचिन्वंतिसमंततः ॥ २ ॥ सुग्रीवेणसमाख्याताःसर्वेवानरयूथपाः ॥ तत्रदेशान्विचिन्वंतिसशै
लवनकाननान् ॥ ३ ॥ विचित्यदिवसंसर्वेसीताधिगमनेधृताः ॥ समायांतिस्ममेदिन्यांनिशाकालेषुवानराः ॥ ४ ॥
सर्वर्तुकांश्चदेशेषुवानराःसफलान्द्रुमान् ॥ आसाद्यरजनींशय्यांचक्रुःसर्वेष्वहस्सुते॥५॥ तदहःप्रथमंकृत्वामासेप्रस्रवणं
गताः ॥ कपिराजेनसंगम्यनिराशाःकपिकुंजराः ॥ ६ ॥ विचित्यतुदिशंपूर्वांयथोक्तांसचिवैःसह ॥ अदृष्ट्वाविनतः
सीतामाजगाममहाबलः ॥ ७ ॥ दिशमप्युत्तरांसर्वांविविच्यसमहाकपिः ॥ आगतःसहसैन्येनभीतःशतबलिस्तदा॥८॥
सुषेणःपश्चिमामाशांविविच्यसहवानरैः ॥ समेत्यमासेपूर्णेतुसुग्रीवमुपचक्रमे ॥ ९ ॥

रह कर रात्रिके समय पृथ्वीपर आजातेथे ॥ ४ ॥ वह सब वानर दिनके समय देशोंमें समस्त ऋतुओं फलपुष्पशाली वृक्षोंको प्राप्त होकर रात्रिमें फलादि खाते और सोते ॥ ५ ॥ जिस दिवससे गमन कियाथा उस दिवस को प्रथम लगा कर एक मास वीतनेपर प्रथम दिनही आय २ कर सुग्री वजीके निकट एकत्र होने लगे ॥ ६ ॥ महावीर विनत अपनें मंत्रियोंके साहित पूर्वकी ओर सीताजीको ढूंड उनको न देख पाकर लौट आया ॥७॥ महाकपि शतबलि समस्त उत्तरदिशाको छान वीन कर अपनी सब सेनाके सहित लौट आया ॥ ८ ॥ सुषेण एक मास बीतजानेपर अपनें

पर हुए और आपनें हम लोगोंको बचाया ॥ १७ ॥ इसकारणसे यह वानरगण आपका क्या उपकार करें सो आप बताइये जब सब वानरोंनें सर्वज्ञा स्वयम्प्रभा तापसीसे ऐसा कहा तो ॥ १८ ॥ वह समस्त वानरयूथपोंसे बोली कि हम समस्त कार्य करनेंमें चतुर वानरोंके प्रति अत्यन्त सन्तुष्ट हुई ॥ १९ ॥ अपने धर्मानुसार चलती हुई हमारा किसी बातसे कुछ प्रयोजन नहींहै जब इस प्रकार उस तपस्विनीनें धर्म संगत शुभ वचन कहे ॥ २० ॥ तब हनुमानजी उस अनिन्दिता शुभनेत्र वाली तपस्विनीसे बोले कि आप धर्मचारिणीहैं इसलिये हम सबनेंही

ब्रूहिप्रत्युपकारार्थंकिंतेकुर्वंतुवानराः ॥ एवमुक्तातुसर्वज्ञावानरैस्तैःस्वयंप्रभा ॥ १८ ॥ प्रत्युवाचततःसर्वानिदंवान
रयूथपान् ॥ सर्वेषांपरितुष्टास्मिवानराणांतरस्विनाम् ॥ १९ ॥ चरंत्याममधर्मेणनकार्यमिहकेनचित् ॥ इत्यार्षे
श्रीम०वा०आ०किष्किंधाकांडेद्विपंचाशःसर्गः ॥ ५२ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ एवमुक्तःशुभंवाक्यंतापस्याधर्मसंहितम्॥ २० ॥
उवाचहनुमान्वाक्यंतामनिंदितलोचनाम् ॥ शरणंत्वांप्रपन्नाःस्मःसर्वेवैधर्मचारिणीम् ॥ २१ ॥ यःकृतःसमयोस्मा
सुसुग्रीवेणमहात्मना॥सतुकालोव्यतिक्रांतोबिलेचपरिवर्तताम् ॥ २२ ॥ सात्वमस्माद्बिलादस्मानुत्तारयितुमर्हसि ॥
तस्मात्सुग्रीववचनादतिक्रांतान्गतायुषः ॥ २३ ॥ त्रातुमर्हसिनःसर्वान्सुग्रीवभयशंकितान् ॥ महच्चकार्यमस्माभिः
कर्तव्यंधर्मचारिणि ॥ २४ ॥ तच्चापिनकृतंकार्यमस्माभिरिहवासिभिः ॥ एवमुक्ताहनुमतातापसीवाक्यमब्रवीत्॥२५॥
जीवताद्दुष्करंमन्येप्रविष्टेननिवर्तितुम् ॥ तपसःसुप्रभावेणनियमोपार्जितेनच ॥ २६ ॥

आपकी शरण ग्रहणकी ॥ २१ ॥ जो महात्मा सुग्रीवजीनें एक मासका समय हमें दियाथा वह समय तो इस बिलमेंही रहते २ बीत गया॥२२ ॥ इसलिये आप शीघ्रता सहित हमको इस बिलसे बाहर निकालिये क्योंकि उन सुग्रीवका वचन उल्लंघन करनेसे हमको आयुहीन होना पडैगा २३॥ इसलिये आप सुग्रीवके भयसे हम लोगोंका उद्धार कीजिये हे धर्मचारिणी! हमको बडाभारी कार्य करना है ॥ २४ ॥ जो हम इस बिलमेंही बंद रहेंगे तो हमारा वह कार्य सिद्ध नहीं होगा जब हनुमानजीनें यह कहा तो यह तपस्विनी बोली ॥ २५ ॥ कि जो यहांपर प्रवेश करता है, वह

ढूँडा परन्तु कहीं जनककुमारी सीताजीको न पाया ॥ ४ ॥ वह वानर कंद मूल फलादि भक्षण करते जहां तहां उछल कर निर्जल, निर्जन शून्य गहन भयंकरदर्शन॥५॥गहन वन व औरभी वैसेही दूसरे अनेक स्थान ढूँडकर बहुत पोडित हुये क्योंकि गुहा और सघन वह देश खोज करना अत्यन्त दुष्करहै ॥ ६ ॥ निडर वानरवीर यूथपोंने वह देश परित्यागपूर्वक और एक बडे देशमें प्रवेश किया जहां कोई जा नहीं सकताथा वहां यह निडर ढूँडनें लगे ॥ ७ ॥ उस स्थानके वृक्षोंमें फल फूल या पत्ते कुछभी नहींथे नदियोंमें जल नहींथा, और कंदभी नहीं पाया जाता ॥ ८ ॥ वहां पर भैंसे नहीं फिरतेथे, मृग नहीं चरतेथे, वरन हाथी, सिंह, पक्षी इत्यादि औरभी कोई बनैले जीव नहींथे ॥ ९ ॥ वहांपर वृक्ष, औषधि, वेलें, वीरुध

तेभक्षयंतोमूलानिफलानिविविधान्यपि ॥ निर्जलंनिर्जनंशून्यंगहनंघोरदर्शनम् ॥ ५ ॥ तादृशान्यप्यरण्यानिविचित्यभृशपीडिताः ॥ सदेशश्चदुरन्वेष्योगुहागहनवान्महान् ॥ ६ ॥ त्यक्त्वातुतंततोदेशंसर्वेवैहरियूथपाः ॥ देशमन्यंदुराधर्षंविविशुश्चाकुतोभयाः ॥ ७ ॥ यत्रवंध्यफलावृक्षाविपुष्पाःपर्णवर्जिताः ॥ निस्तोयाःसरितोयत्रमूलंयत्रसुदुर्लभम् ॥ ८ ॥ नसंतिमहिषायत्रनमृगानचहस्तिनः ॥ शार्दूलाःपक्षिणोवापियेचान्येवनगोचराः ॥ ९ ॥ नचात्रवृक्षानौषध्योनवल्ल्योनापिवीरुधः ॥ स्निग्धपत्राःस्थलेयत्रपद्मिन्यःफुल्लपंकजाः ॥ १० ॥ प्रेक्षणीयाःसुगंधाश्चभ्रमरैश्चविवर्जिताः ॥ कंडुर्नाममहाभागःसत्यवादीतपोधनः ॥ ११ ॥ महर्षिःपरमामर्षीनियमैर्दुष्प्रधर्षणः ॥ तस्यतस्मिन्वनेपुत्रोबालकोदशवार्षिकः ॥ १२ ॥ प्रनष्टोजीवितांतायक्रुद्धस्तेनमहामुनिः ॥ तेनधर्मात्मनाशप्तंकृत्स्नंतत्रमहद्वनम् ॥ १३ ॥ अशरण्यंदुराधर्षंमृगपक्षिविवर्जितम् ॥ तस्यतेकाननांतांस्तुगिरीणांकंदराणिच ॥ १४ ॥

वहांपर स्थलोंमें दर्शनीय स्निग्ध पत्रवाले खिले कमल फूल ॥ १० ॥ सुगन्धि युक्त भ्रमर गणोंसे शोभित तडागभी नहीं दिखलाई देतेथे। उस स्थानमें कन्दु नामक महाभाग सत्यवादी तपोधन ॥ ११ ॥ क्रोधको जीतेहुए, दुर्द्धर्ष, नियमावलम्वी महर्षि रहतेथे। उनका इस वनमें एक दश वर्षका बालक पुत्र ॥ १२ ॥ मरणको प्राप्त होगया, तव धर्मात्मा उनमुनिनें क्रोधित होकर उस महावनको शाप दिया ॥ १३ ॥ कि यह बडा वन कठिनसे प्रवेश करनेंके योग्य मृग पक्षी इत्यादि और सब जीवोंको आश्रय देनेके अयोग्य हो जायगा उन सब वानरोंनें उस वनके सब पर्व

बनाये हुये गिरिदुर्गको ढूंडतेही ढूंडते उन वानरोंका वह समय बीतगया जो सुग्रीवजीनें नियम कर दियाथा ॥ २ ॥ तब महात्मा वानरवृन्द, वि
न्ध्याचलके पुष्पित तरु शोभित एक पर्वतपर बैठ चिंता करनेलगे ॥ ३ ॥ फिर वह वानरगण फूलोंके बोझसे परिपूर्ण शत २ लता मंडित वसंतका
लके वृक्षोंको देखकर बहुतही शंकित हुये ॥ ४ ॥ वह यह विचारकरकि सुग्रीवजीका नियत किया समय बीतगया और वसंतकाल आगया, पृथ्वी
पर गिर पडे॥५॥तब उन अति श्रेष्ठ वृद्ध वानरोंका बडा आदर मान करते हुये यथावत् अनुमान करके अति मधुर वाणीसे॥ ६ ॥ सिंह वृषभके कंधे
वाले मोटी और बडी भुजा वाले युवराज अंगदजी बोले ॥ ७ ॥ कि हम कपिराज सुग्रीवजीकी आज्ञा पाय किष्किन्धासे निकले हैं सो तुमको

विंध्यस्यतुगिरेःपादेसंप्रपुष्पितपादपे ॥ उपविश्यमहात्मानश्चिंतामापेदिरेतदा ॥ ३ ॥ ततःपुष्पातिभाराग्राल्लँताश
तसमावृतान् ॥ द्रुमान्वासंतिकान्दृष्ट्वाबभूवुर्भयशंकिताः ॥ ४ ॥ तेवसंतमनुप्राप्तंप्रतिवेद्यपरस्परम् ॥ नष्टसंदेशका
लार्थानिपेतुर्धरणीतले ॥ ५ ॥ ततस्तान्कपिवृद्धांश्चशिष्टांश्चैववनौकसः ॥ वाचामधुरयाभाष्ययथावदनुमान्यच
॥ ६ ॥ सतुसिंहवृषस्कंधःपीनायतभुजःकपिः ॥ युवराजोमहाप्राज्ञअंगदोवाक्यमब्रवीत् ॥ ७ ॥ शासनात्कपिराज
स्यवयंसर्वेविनिर्गताः ॥ मासःपूर्णोबिलस्थानांहरयःकिंनबुध्यत ॥ ८ ॥ वयमाश्वयुजेमासिकालसंख्याव्यवस्थिताः ॥
प्रस्थिताःसोपिचातीतःकिमतःकार्यमुत्तरम् ॥ ९ ॥ भवंतःप्रत्ययंप्राप्तानीतिमार्गविशारदाः ॥ हितेष्वभिरताभर्तुर्नि
सृष्टाःसर्वकर्मसु ॥ १० ॥ कर्मस्वप्रतिमाःसर्वेदिक्षुविश्रुतपौरुषाः ॥ मांपुरस्कृत्यनिर्याताःपिंगाक्षप्रतिचोदिताः ॥ ११ ॥
इदानीमकृतार्थानांमर्तव्यंनात्रसंशयः ॥ हरिराजस्यसंदेशमकृत्वाकःसुखीभवेत् ॥ १२ ॥

यह नहीं जान पडता कि बिलमेंही पडे २ एक महीना होगया ॥ ८ ॥ हमनें क्वारमासके प्रारंभसे नियमित समयको निरूपण कियाहै, सो
क्वारमास बीततेही वह समय बीतगया अब क्या कियाजाय॥ ९ ॥ तुमसे इस कारण पूछतेहैं कि आप सब विनीत मार्गमें पंडित अपने स्वामीके
हितमें निरत और समस्त कार्योंके करनेमें निपुण ॥ १० ॥ कार्य साधन करनेमें अनुपम सर्व दिशा विदिशाओंमें अपनें पौरुषसे प्रसिद्ध हुये इसो
कारणसे राजाज्ञाको प्राप्तकिये हमको आगेकर यहां आयेहो ॥ ११ ॥ जिस कार्यके लिये हम भेजेगये अभीतक वह कुछभी सिद्ध नहीं हुआ इस

पर वहांभी सीताजीको न पायकर एक दूसरे वनमें प्रवेश करते हुये ॥ २२ ॥ वहांपर उन्होंनें वडी घोर भयानक कई एक पर्वतकी कन्दरायेंभी देखीं उन सब वानरोंनें वहांभी जरा २ करकै ढूंढा और सीताजीको नदेख वहांसे निकल श्रमसे कातरहो दीन भावसे एक वृक्षकी जडमें बैठ गये ॥ २३ ॥ इ० श्री० वा० आ० कि० अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥ फिर महा पंडित अंगदजी थककर समस्त वानरोंको क्रम २ से समझाकर कहने लगे ॥ १ ॥ वन, पर्वत, दुर्गमस्थान, गहन, दरें, पर्वतोंकी गुफा, यह सब स्थान रत्ती २ करकै ढूंडे गये ॥ २॥ परन्तु इन सब जगह

अन्यदेवापरंघोरंविविशुर्गिरिगह्वरम् ॥ तेविचित्यपुनःखिन्नाविनिष्पत्यसमागताः ॥ एकांतेवृक्षमूलेतुनिपेदुर्दीनमानसाः ॥ २३ ॥ इत्यार्षेश्री०वा०आ०किष्किंधाकांडेअष्टचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४८ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ अथांगदस्तदा सर्वान्वानरानिदमब्रवीत् ॥ परिश्रांतोमहाप्राज्ञःसमाश्वास्यशनैर्वचः ॥ १ ॥ वनानिगिरयोनद्योदुर्गाणिगहनानिच ॥ दरीगिरिगुहाश्चैवविचिताःसर्वमंततः ॥ २ ॥ तत्रतत्रसहास्माभिर्जानकीनचदृश्यते ॥ तथारक्षोपहर्ताचसीतायाश्चैवदुष्कृती ॥ ३ ॥ कालश्चनोमहान्यातःसुग्रीवश्चोग्रशासनः ॥ तस्माद्भवंतःसहिताविचिन्वंतुसमंततः ॥ ४ ॥ विहायतंद्रींशोकंचनिद्रांचैवसमुत्थिताम् ॥ विचिनुध्वंतथासीतांपश्यामोजनकात्मजाम् ॥ ५ ॥ अनिर्वेदंचदाक्ष्यंच मनसश्चापराजयम् ॥ कार्यसिद्धिकराण्याहुस्तस्मादेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ ६ ॥ अद्यापीदंवनंदुर्गंविचिन्वंतुवनौकसः ॥ खेदंत्यक्त्वापुनःसर्वंवनमेवविचिन्वताम् ॥ ७ ॥

श्रीजानकीजी या दुष्कर्म करनेवाले जानकीजीके हरणकारी राक्षस रावणको न पाया ॥ ३ ॥ हम लोगोंको दिया हुआ एक मासका समयभी कबका बीतगया सुग्रीवजीकी आज्ञा वडी कडी है, इस कारण तुम लोग फिर खोजो ॥ ४ ॥ इसलिये सबकोही आलस्य, शोक, निद्रा, परित्याग करकै इस प्रकार ढूंढना चाहिये जिस्सें जानकीजी मिल जांय ॥ ५ ॥ खेदित न रहना, चतुरता, और मनको जीतना, यह सबही कार्य सिद्धिके कारण हैं, इसी कारण हम तुमसे ऐसा कहते हैं ॥ ६ ॥ हे वानरो इस कारण इस समय तुम सब आलस्यको छोडकर वन और जितनें दुर्गम स्थान हैं

युवराज कुमार अंगदजीके यह वचन सुनकर प्रधान २ वानरगण करुणासहित वचन कहने लगे ॥ २० ॥ कि सुग्रीवजी तो तीखे स्वभाववाले, और रामचंद्रजीका प्रिय कार्य करनेंमें अनुरक्त हैं यदि काम हो जाय और समयके वीत जानें पर भी ॥ २१ ॥ वह सुग्रीव नियत किये समयको वीता हुआ देख जानकी को देखनें और विना देखनेंपरभी रामचंद्रजीका प्रिय करनेंको, निश्चय ही हम सबको मार डालेगा इसमें कुछ संदेह नहीं ॥ २२ ॥ अपराधी जन अपने स्वामीके समीप गमन करनेंको समर्थ नहीं होते और तिसपै हम सुग्रीवजीके प्रधान पुरुष होकर आये हैं ॥ २३ ॥ हम विनाही सीताजीके देखे और उनका वृत्तान्त न पाय कदापि सुग्रीवके निकट न जांयगे;

एतच्छ्रुत्वाकुमारेणयुवराजेनभाषितं॥ सर्वेतेवानरश्रेष्ठाःकरुणंवाक्यमब्रुवन्॥२०॥तीक्ष्णःप्रकृत्यासुग्रीवःप्रियारक्तश्च राघवः॥समीक्ष्याकृतकार्यांस्तुतस्मिंश्चसमयेगते॥२१॥अदृष्टायांचवैदेह्यांदृष्ट्वाचैवसमागतान्॥राघवप्रियकामायघा तयिष्यत्यसंशयम्॥२२॥ नक्षमंचापराद्धानांगमनंस्वामिपार्श्वतः॥ प्रधानभूताश्चवयंसुग्रीवस्यसमागताः॥२३॥ इहै वसीतामन्वीक्ष्यप्रवृत्तिमुपलभ्यवा॥ नोचेद्गच्छामतंवीरंगमिष्यामोयमक्षयम्॥२४॥प्लवंगमानांतुभयार्दितानांश्रुत्वा वचस्तारइदंबभाषे॥ अलंविषादेनबिलंप्रविश्यवसामसर्वेयदिरोचतेवः॥२५॥ इदंहिमायाविहितंसुदुर्गमंप्रभूतपुष्पोद कभोज्यपेयम्॥ इहास्तिनोनैवभयंपुरंदरान्नराघवाद्वानरराजतोपिवा॥२६॥ श्रुत्वांगदस्यापिवचोनुकूलमूचुश्चसर्वेह रयःप्रतीताः॥यथानहन्येमतथाविधानमसक्तमद्यैवविधीयतांनः॥२७॥इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०कि०त्रिपंचाशःसर्गः॥५३॥

चाहे यमपुरको चले जाँय ॥ २४ ॥ भयसे पीडित वानर गणोंके यह वचन श्रवण करके तार बोला कि तुम लोग विषाद न करो यदि तुम्हारी इच्छा हो तौ सबही इस बिलमें प्रवेश करेंगे और यहां रहैंगे ॥ २५ ॥ यह बिल मायासें बना हुआ होनेंके कारण अत्यन्त दुर्गम है इसमें बहुतेरे पुष्प भोजन करनेंकी सामग्री, पीनेंके पदार्थ जल इत्यादि हैं; यहांपर इन्द्रसे भी हम लोगोंको भय नहीं है फिर भला वानरराज और रामचंद्रजीसे हम लोगोंको क्या भय हो सकताहै ॥ २६ ॥ अंगदजीके अनुकूल वचन श्रवण कर सब वानर उन वचनोंकी प्रतीत करके बोले कि युवराज जिसमें हमारे प्राण न जांय आपको शीघ्रही उस कार्यका विधान करना चाहिये॥२७॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये कि० त्रिपंचाशः सर्गः॥५३॥

वृक्षोंका वन और लोध्र रमणीक वन देखा, उस सबमेंभी उन्होंने जानकीजीको न देखा ॥ १७ ॥ विपुलविक्रमकारी वानरलोग थककर उस पर्वत की चोटीपर चढे, परन्तु वहांपरभी श्रीरामचन्द्रजीकी प्राणप्यारी जानकीजीको उन्होंने न देखा ॥१८॥ वह वानरगण उस पर्वतकी बहुत सारी कन्दराओंको देखते भालते इधर उधर चढनें लगे ॥ १९ ॥ जब बहुत देरतक परिश्रम करनेंपरभी कुछ फल न पाया तब भूमिपर आय थककर व्याकुलचित्त हो एक वृक्षकी जडका आश्रयकर बैठे रहे ॥ २० ॥ जब उन लोगोंकी कुछ एक थकावट दूर होगई और विश्रामभी मिलगया तब फिर उत्साहित हो दक्षिण दिशाको ढूँडने लगे ॥ २१ ॥ हनुमानादि कपिगण प्रथम भली प्रकारसे विन्ध्याचल ढूँडकर फिर सुग्रीवजीकी बताई

तस्याग्रमधिरूढास्तेश्रांताविपुलविक्रमाः ॥ नपश्यंतिस्मवैदेहींरामस्यमहिषींप्रियाम् ॥ १८ ॥ तेतुदृष्टिगतंदृष्ट्वातंशैलंबहुकंदरम् ॥ अध्यारोहंतहरयोवीक्षमाणाःसमंततः ॥ १९ ॥ अवरुह्यततोभूमिंश्रांताविगतचेतसः ॥ स्थितामुहूर्तंतत्राथवृक्षमूलमुपाश्रिताः ॥ २० ॥ तेमुहूर्तंसमाश्वस्ताःकिंचिद्भग्नपरिश्रमाः ॥ पुनरेवोद्यताःकृत्स्नांमार्गितुंदक्षिणांदिशम् ॥ २१ ॥ हनुमत्प्रमुखास्तावत्प्रस्थिताःप्लवगर्षभाः ॥ विंध्यमेवादितःकृत्वाविचेरुश्चसमंततः ॥ २२ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेएकोनपंचाशःसर्गः ॥ ४९ ॥ ॥ ७ ॥ सहतारांगदाभ्यांतुसंगम्यहनुमान्कपिः ॥ विचिनोतिचविंध्यस्यगुहाश्चगहनानिच ॥ १ ॥ सिंहशार्दूलजुष्टाश्चगुहाश्चपरितस्तदा ॥ विषमेषुनगेंद्रस्यमहाप्रस्रवणेषुच ॥ २ ॥ आसेदुस्तस्यशैलस्यकोटिंदक्षिणपश्चिमाम् ॥ तेषांतत्रैववसतांसकालोव्यत्यवर्तत ॥ ३ ॥ सहिदेशोदुरन्वेष्योगुहागहनवान्महान् ॥ तत्रवायुसुतःसर्वंविचिनोतिस्मपर्वतम् ॥ ४ ॥

हुई समस्त दक्षिण दिशा ढूंडने लगे ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे एकोनपंचाशःसर्गः ॥ ४९ ॥ कपिश्रेष्ठ हनुमान् तार और अंगदजीके सहित विन्ध्याचल पर्वतकी गुफा और समस्त सघन वन ढूंडनें लगे ॥ १ ॥ वह वानर सिंह शार्दूल युक्त गुफा विषम स्थान और पर्वती बडे २ झरने जिनमें विमल जल वहताथा ॥ २ ॥ और उस पर्वतके दक्षिण और पश्चिमवाले कोनोंपर खोज करनें लगे, तबतक सुग्रीवजीनें जो समय उनके लिये नियत कियाथा वह वीतगया ॥ ३॥ वह पर्वत बडी कठिनाईसे खोजनेंके योग्यथा कारण

सामनेही कहतेहैं कि यह लोग पुत्र स्त्रीको छोडकर तुम्हारे पर अनुराग न करेंगे यह जाम्बवान्, नील महाकपि सुहोत्र, ॥ १० ॥ और हम व समस्त
ही वानर गणको, साम, दान, भेद व दंड द्वारा सुग्रीवजीके निकट से तुम नहीं खेंच सकते ॥ ११ ॥ बलवान पुरुष दुर्बल को जीतकर आसन पाय
सकताहै, इसलिये दुर्बलको अपनी रक्षा करते हुए बलवानसे वैर न करना चाहिये ॥ १२ ॥ और जो तुम इस गुफाको अपना रक्षण करनें वाला सम
झो सो यहभी वृथाहै, क्योंकि इस बिलका विदारण करना लक्ष्मणजीके बाणोंका एक अति लघु कामहै ॥ १३ ॥ जब इन्द्रनें मयपर क्रोध करके
इसमें वज्र माराथा तो इस्में एक छोटासा छेदही होगयाथा, परन्तु जब लक्ष्मणजी क्रोध करेंगे तो तीक्ष्ण बाणोंकी धारासे इसको पत्तोंके पुरकी स

नह्यहंतेइमेसर्वेसामदानादिभिर्गुणैः ॥ दंडेननत्वयाशक्याःसुग्रीवादपकर्षितुम् ॥ ११ ॥ विगृह्यासनमप्याहुर्दुर्ब
लेनबलीयसा ॥ आत्मरक्षाकरस्तस्मान्नविगृह्णीतदुर्बलः ॥ १२ ॥ यांचेमांमन्यसेधात्रीमेतद्बलमितिश्रुतम् ॥ एत
ल्लक्ष्मणबाणानामीषत्कार्यंविदारणम् ॥ १३ ॥ स्वल्पंहिकृतमिंद्रेणक्षिपताह्यशनिंपुरा ॥ लक्ष्मणोनिशितैर्बाणैर्भि
द्यात्पत्रपुटंयथा ॥ १४ ॥ लक्ष्मणस्यचनाराचाबहवःसंतितद्विधाः ॥ वज्राशनिसमस्पर्शागिरीणामपिदारकाः ॥
॥ १५ ॥ अवस्थानंयदैवत्वमासिष्यसिपरंतप ॥ तदैवहरयःसर्वेत्यक्ष्यंतिकृतनिश्चयाः ॥ १६ ॥ स्मरंतःपुत्रदाराणां
नित्योद्विग्नाबुभुक्षिताः॥खेदितादुःखशय्याभिस्त्वांकरिष्यंतिपृष्ठतः ॥ १७ ॥ सत्वंहीनःसुहृद्भिश्चहितकामैश्चबंधुभिः॥
तृणादपिभृशोद्विग्नःस्पंदमानाद्भविष्यसि ॥ १८ ॥

मान छिन्न भिन्न कर डालेंगे इसमें कुछभी संदेह नहीं ॥ १४ ॥ कारण कि लक्ष्मणके पास ऐसे पर्वतोंकें तोडनेंवाले वज्र तुल्य बाण बहुत सारे वि
द्यमानहैं ॥ १५ ॥ हे परवीरघाती ! जैसेही कि इस बिलमें तुम अपना वास स्थान बनाओगे तबही यह सब वानरगण कृत निश्चय होकर निःसं
देह तुमको छोडकर चले जायँगे ॥ १६ ॥ यह सब वानर अपने२ स्त्री पुत्रोंकी याद करकै व्याकुल हो भूखों मरेंगे। इस प्रकार दुःखके पानेसे खेद
युक्त हो तुमको पीछे छोड चले जायँगे ॥ १७ ॥ तुम हित चाहनेंवाले बन्धुऔर सुहृदजनोंसे रहित सदा चंचल चित्तहो एक तिनकेसेभी घबडा

पर्वतोंसे घिरे हुये सब देश ढूंडडाले ॥ १४ ॥ और हम अब बहुतही थक गये, परन्तु जानकीजीको अबतक नहीं पाया; इस बिलसे हंस, क्रौञ्च, सारस॥१५॥ और जलसे भीगे चकवा चकवीभी इस स्थानसे निकल रहेहैं इस्से निश्चय होताहै, कि यह कूपहीहो; वा ऱ्हदहीहो, परन्तु जल इसमें अवश्यहै ॥ १६ ॥ और देखो इस बिलके द्वारे पर हरे और चिकने पौधे उत्पन्न होरहेहैं इतना कहकर सबही उस महा अँधियारे बिलमें प्रवेश करते हुये ॥ १७ ॥ वहां पर सूर्य चंद्रमाका प्रकाश नहीं था इस कारण उस बिलमें पैठतेही वानरोंके रोम खडे होगये उन वानरोंको उसमें सिंह, व्याघ्र, मृग, पक्षी, इत्यादि निकलते दिखाई पडे ॥ १८ ॥ परन्तु वह सब वानर निडरहो उस अँधियारे बिलमें प्रवेश करते चलेही गये परन्तु

वयंसर्वेपरिश्रांतानचपश्यामभैथिलीम् ॥ अस्माच्चापिबिलाद्धंसाःक्रौंचाश्चसहसारसैः ॥ १५ ॥ जलार्द्राश्चक्रवाकाश्च निष्पतंतिस्मसर्वशः ॥ नूनंसलिलवानत्रकूपोवायदिवाऱ्हदः ॥ १६ ॥ तथाचेमेबिलद्वारेस्निग्धास्तिष्ठंतिपादपाः ॥ इत्युक्त्वास्तद्बिलंसर्वेविविशुस्तिमिरावृतम् ॥ १७ ॥ अचंद्रसूर्यंहरयोददृशूरोमहर्षणम् ॥ निशाम्यतस्मात्सिंहांश्चतां स्तांश्चमृगपक्षिणः ॥ १८ ॥प्रविष्टाहरिशार्दूलाबिलंतिमिरसंवृतम् ॥ नतेषांसज्जतेदृष्टिर्नतेजोनपराक्रमः ॥ १९ ॥ वायो रिवगतिस्तेषांदृष्टिस्तमसिवर्तते ॥ तेप्रविष्टास्तुवेगेनतद्बिलंकपिकुंजराः ॥२०॥ प्रकाशंचाभिरामंचददृशुर्देशमुत्तमम्॥ ततस्तस्मिन्बिलेभीमेनानापादपसंकुले ॥ २१ ॥ अन्योन्यंसंपरिष्वज्यजग्मुर्योजनमंतरम् ॥ तेनष्टसंज्ञास्तृषिताःसं भ्रांताःसलिलार्थिनः ॥ २२ ॥ परिपेतुर्बिलेतस्मिन्कंचित्कालमतंद्रिताः ॥ तेकृशादीनवदनाःपरिश्रांताःप्लवंगमाः ॥२३॥

वानरगण अपनी दृष्टि या पराक्रम वहां प्रगट नहीं करसके ॥ १९ ॥ उन वानरोंकी गति वायुकी गतिके समान दृष्टि नहीं आतीथी, वरन अंधकारमें डूबीजातीथी; वह कपिकुंजर वेगसे उस बिलमें प्रवेश करते हुये ॥२०॥ जब उस बिलके भीतर पहुंचे तौ उन्होंनें मनोहर प्रकाशित उजाले सहित स्थान देखा उस भयंकर अनेक प्रकारके वृक्ष लगे बिलमें॥ २१ ॥एक दूसरेको पकडे चारकोशतक चले आये तिसके पीछें प्याससे आ तुरजलके लिये वह भ्रान्त चित्त होगये ॥ २२ ॥ और थकावटके मारे उस बिलमें गिरपडे, मार्ग चलनेंके कारण थकितहो कुछ समयतक वैसेही

यकर रोक दे; वह किस प्रकारसे धर्मका जान्नें वाला हो सकताहै ॥ ४ ॥महायशवान कृतकार्य श्रीरामचन्द्रजीको जो सत्यसे ग्रहण करकै भूलगया वह किसकी सुकृति व उपकार याद रख सकता है ॥ ५ ॥ जो अधर्मकाभय नहीं करते जिसनें केवल लक्ष्मणजीके भयसेही सीताजीके खोजनेंकी आज्ञादी है, उसको धर्मका भय किस प्रकारसे संभव है? ॥ ६ ॥ वह पापरूप, कृतघ्न, स्मृतिमार्गके कहे हुये धर्मसे भ्रष्ट हुआ है चंचल चित्त सुग्रीवके प्रति विशेषतः उसकेही कुलमें जन्म लेकर कौन उत्तम पुरुष विश्वास कर सकता है ॥ ७ ॥ सुग्रीव गुणवान हो, अथवा गुणरहित हो, परन्तु वह शत्रुकुल पुत्र हमको राज्यमें प्रतिष्ठित करकै किस प्रकारसे जीवित रखसकैगा ॥ ८ ॥ हमारी विलमें प्रवेश करनेंकी मंत्रणा भेद हो गई है इस

सत्यात्पाणिगृहीतश्चकृतकर्मामहायशाः ॥ विस्मृतोराघवोयेनसकस्यसुकृतंस्मरेत् ॥ ५ ॥ लक्ष्मणस्यभयेनेहनाधर्मभयभीरुणा ॥ आदिष्टामार्गितुंसीताधर्मस्तस्मिन्कथंभवेत् ॥ ६ ॥ तस्मिन्पापेकृतघ्नेतुस्मृतिभिन्नेचलात्मनि ॥ आर्यःकोविश्वसेज्जातुतत्कुलीनोविशेषतः ॥ ७ ॥ राज्येपुत्रंप्रतिष्ठाप्यसगुणोविगुणोपिवा ॥ कथंशत्रुकुलीनंमांसुग्रीवोजीवयिष्यति ॥ ८ ॥ भिन्नमंत्रोपराद्धश्चभिन्नशक्तिःकथंह्यहम् ॥ किष्किंधांप्राप्यजीवेयमनाथइवदुर्बलः ॥ ९ ॥ उपांशुदंडेनहिमांबंधनेनोपपादयेत् ॥ शठःक्रूरोनृशंसश्चसुग्रीवोराज्यकारणात् ॥ १० ॥ बंधनाच्चावसादान्मेश्रेयःप्रायोपवेशनम् ॥ अनुजानंतुमांसर्वेगृहंगच्छंतुवानराः ॥ ११ ॥ अहंवःप्रतिजानामिनगमिष्याम्यहंपुरीम् ॥ इहैवप्रायमासिष्येश्रेयोमरणमेवमे ॥ १२ ॥ अभिवादनपूर्वंतुराजाकुशलमेवच ॥ अभिवादनपूर्वंतुराघवौबलशालिनौ ॥ १३ ॥

लिये अपराधी, हीन, दुर्बल, और अनाथकी समान हम किष्किन्धामें गमन करकै किस प्रकार जीवित रह सकेंगे ॥ ९ ॥ शठ क्रूर निठुर, सुग्रीव, राज्यके लिये यदि हमको प्राणोंसे न मारें, तोभी हमें वन्धुआ तो अवश्यही करलेंगे॥ १० ॥हे वानरगण ! वन्धन और अपवादसे किसी पुण्यस्थानमें जाकर मरना हमारे लिये अच्छाहै; इसलिये हमें आज्ञा देकर आप सब जनें अपने२ घरोंको चले जाइये ॥ ११ ॥ हम आप लोगोंसे प्रतिज्ञा करतेहैं कि हम किष्किन्धामें न जाँयगे इस स्थानमेंही हम मरण व्रत ग्रहण करेंगे क्योंकि हमारा मरणही श्रेष्ठ होगा॥ १२ ॥ प्रथम हमारी ओरसे राजाजीको प्रणाम

आसन विराजमानथे ॥ ३३ ॥ अनेक भांतिकी और अति विशाल यह सब वस्तुयें वानरोंनें देखीं और भोजन करनेंके सोने चांदी व कांसीके व तैनोंके ढेरके ढेर देखे ॥ ३४ ॥ अगर और दिव्य चन्दनोंकी बड़ी २ राशियें देखीं । और अति पवित्र भोजन करनेंके लायक मूल और फल॥३५॥ बडे २ मूल्यवान् शिबिकादियान और रसवान बहुत सारा मधु देखा बडे मोलके वस्त्र समूहभी इकट्ठे देखे ॥ ३६ ॥ और विचित्र शाल दुशाले और मृगचर्मोंके पुंजके पुंज इधर उधर उस बिलमें पडे हुए उन महा कांतिवाले ॥ ३७ ॥ शूरवीर वानरोंनें देखे; जब वह बहुत आगे बढे तब उन्होंनें दूरसे एक स्त्री देखी, उन वानरोंनें उस स्त्रीको कृष्णमृग चर्मके वस्त्र धारणकिये देखी ॥ ३८ ॥ वह नियमित आहार करनेंवाली

विविधानिविशालानिददृशुस्तेसमंततः ॥ हैमराजतकांस्यानांभाजनानांचराशयः ॥३४॥ अगुरूणांचदिव्यानांचंदनानांचसंचयान् ॥ शुचीन्यभ्यवहाराणिमूलानिचफलानिच ॥३५॥ महार्हाणिचयानानिमधूनिरसवंतिच ॥ दिव्यानामंबराणांचमहार्हाणांचसंचयान् ॥३६॥ कंबलानांचचित्राणामजिनानांचसंचयान् ॥ तत्रतत्रविचिन्वंतोबिलेतत्रमहाप्रभाः ॥ ३७ ॥ ददृशुर्वानराःशूराःस्त्रियंकांचिददूरतः ॥ तांचतेददृशुस्तत्रचीरकृष्णाजिनांबराम् ॥ ३८ ॥ तापसींनियताहारांज्वलंतीमिवतेजसा ॥ विस्मिताहरयस्तत्रव्यवतिष्ठंतसर्वशः ॥ पप्रच्छहनुमांस्तत्रकासित्वंकस्यवाबिलम् ॥ ॥ ३९ ॥ ततोहनूमान्गिरिसन्निकाशःकृतांजलिस्तामभिवाद्यवृद्धाम् ॥ पप्रच्छकात्वंभवनंबिलंचरत्नानिचेमानि वदस्वकस्य ॥ ४० ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवा० आ० किष्किंधाकांडेपंचाशःसर्गः ॥ ५० ॥ ॥ छ ॥ ॥

इत्युक्काहनुमांस्तत्रचीरकृष्णाजिनांबराम् ॥ अब्रवीत्तांमहाभागांतापसींधर्मचारिणीम् ॥ १ ॥

तपस्विनी मानोंके अपने तेजसे प्रज्वलित होरहीहै उसे देख सब वानर विस्मय युक्त हो उसको चारों ओरसे घेरकर खडे होगये । तब हनुमानजीनें उस्से पूँछाकि तुम कौनहो ? और यह बिल किसकाहै? ॥ ३९ ॥ वह पर्वत तुल्य देहधारी हनुमानजी हाथ जोडकर उस वृद्ध तपस्विनीसें बूझनें लगे कि तुम कौनहो? और बिल भवन व यह समस्त रत्न किसकेहैं ? सो तुम बताओ ॥ ४० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे पंचाशः सर्गः ॥ ५० ॥ हनुमानजी यह कहकर फिर उस चीर और मृगचर्म धारण करनेंवाले

बडी विपत्ति आई॥२२॥पर्वतकी समान बहुत बलवाले वानरोंके प्रवेश करनें और उस पर्वतके शिखरपर कूदकर चढनेंसे वह पर्वत झरनें सहित श
ब्दायमान हुआ जैसे आकाशमें मेघ शब्द करतेहों॥२३॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे पंचपंचाशः सर्गः॥५५॥
जिस पर्वतपर सब वानर लोग चढ गयेथे, उस पर्वतपर एक गृद्ध्रराज आनकर उपस्थित हुआ, यही बडी भारी विपत्ति वानरोंके लिये आई ॥१॥
उस संपाति नामक चिरंजीवी विहंगम श्रेष्ठका बल पौरुष विख्यातथा,और यह जटायुका बडा भाईथा कि जिसनें श्रीरामचंद्रजीके कार्यमें अपने
प्राण देदियेथे ॥ २ ॥ वह उन वानरोंका बोल सुन विन्ध्याचल पर्वतकी कन्दरामेंसे निकल सब वानरोंको वहां बैठे देख हर्षित होकर कहनें

ससंविशद्भिर्बहुभिर्महीधरोमहाद्रिकूटप्रतिमैःप्लवंगमैः॥बभूवसन्नादितनिर्झरांतरोभृशंनदद्भिर्जलदैरिवांबरम्॥ २३ ॥इ
त्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेपंचपंचाशःसर्गः॥५५॥छ॥ उपविष्टास्तुतेसर्वेयस्मिन्प्रा
यंगिरिस्थले॥ हरयोगृध्रराजश्चतंदेशमुपचक्रमे॥ १ ॥ संपातिर्नामनाम्नातुचिरजीवीविहंगमः ॥ भ्राताजटायुषःश्रीमा
न्विख्यातबलपौरुषः ॥ २ ॥ कंदरादभिनिष्क्रम्यसविंध्यस्यमहागिरेः ॥ उपविष्टान्हरीन्दृष्ट्वाहृष्टात्मागिरमब्रवी
त् ॥ ३ ॥ विधिःकिलनरंलोकेविधानेनानुवर्तते ॥ यथायंविहितोभक्ष्यश्चिरान्मह्यमुपागतः ॥ ४ ॥ परंपराणांभक्षिष्ये
वानराणांमृतंमृतम् ॥ उवाचैतद्वचःपक्षीतान्निरीक्ष्यप्लवंगमान्॥५॥तस्यतद्वचनंश्रुत्वाभक्ष्यलुब्धस्यपक्षिणः ॥ अंगदः
परमायस्तोहनूमंतमथाब्रवीत्॥६॥पश्यसीतापदेशेनसाक्षाद्वैवस्वतोयमः ॥ इमंदेशमनुप्राप्तोवानराणांविपत्तये ॥७॥

लगा ॥ ३ ॥ कर्मके फलसे प्राणियोंके भाग्य अदलते बदलते रहतेहैं उसके अनुसारही यह सब भोजनकी सामग्री बहुत दिनोंके पीछे
आज मेरे सामने आईहै ॥ ४ ॥ हम बराबर २ लंगारसे बैठे हुए इन वानरोंको क्रम २ से मारकर भोग लगाते जाँयगे, पक्षी श्रेष्ठ सम्पातिनें वान
रोंसे इस प्रकार कहा ॥ ५ ॥ वानरोंको भक्षण करनेंके लिये लोभी हुए उस पक्षीके ऐसे वचन सुनकर अंगदजी दुःखित होकर हनुमानजीसे
बोले ॥ ६ ॥ देखो ! सीताजीके भाग्यसे वानर लोगोंकी विपत्तिके लिये साक्षात् यमराजकी समान यह पक्षी इस स्थानमें आयाहै ॥ ७ ॥

देती हुई हेवानरश्रेष्ठ! महा तेजवान मय*नामक एक मायावी दानवथा ॥१०॥ उसने ही यह सब सुवर्ण मय वन मायासे बनाया पहले यह दानव मुख्य दानवोंका विश्वकर्मा अर्थात् शिल्पीथा ॥ ११ ॥ यह काञ्चनमय दिव्य भवन उसकाही बनाया हुआ है उसने हजार वर्ष तपस्या करके इस बडे वनको ॥ १२ ॥ ब्रह्माजीसे वर पायकर बनाया और शुक्राचार्यजीके समस्त शिल्पविद्यारूप धनको प्राप्त करता हुआ अर्थात् उसको सब प्रकारका काम बनाना आगया वह यह समस्त बनाय समस्त भोग वस्तुओंका ईश्वर हो ॥ १३ ॥ कुछ काल तक सुखसे इस महावनमें वास

तेनेदंनिर्मितंसर्वंमाययाकांचनंवनम् ॥ पुरादानवमुख्यानांविश्वकर्माबभूवह ॥ ११ ॥ येनेदंकांचनंदिव्यंनिर्मितंभवनोत्तमम् ॥ सतुवर्षसहस्राणितपस्तप्त्वामहद्वने ॥ १२ ॥ पितामहाद्वरंलेभेसर्वमौशनसंधनम् ॥ विधायसर्वंबलवान्सर्वकामेश्वरस्तदा ॥ १३ ॥ उवाससुखितःकालंकंचिदस्मिन्महावने ॥ तमप्सरसिहेमायांसक्तंदानवपुंगवम् ॥ १४ ॥ विक्रम्यैवाशनिंगृह्यजघानेशःपुरंदरः ॥ इदंचब्रह्मणादत्तंहेमायैवनमुत्तमम् ॥१५॥ शाश्वतःकामभोगश्चगृहंचेदंहिरण्मयम् ॥ दुहितामेरुसावर्णेरहंतस्याःस्वयंप्रभा ॥ १६ ॥ इदंरक्षामिभवनंहेमायावानरोत्तम ॥ ममप्रियसखीहेमानृत्तगीतविशारदा ॥ १७ ॥ तयादत्तवराचास्मिरक्षामिभवनंमहत् ॥ किंकार्यंकस्यवाहेतोःकांताराणिप्रपद्यथ ॥ १८ ॥

कियाथा, तिसके पीछे वह दानवश्रेष्ठ हेमानामवाली अप्सरामें आसक्त हुआ ॥ १४ ॥ तब पुरन्दर इन्द्रजीने यह सब वृत्तान्त जानकर युद्धकर उसको अपने वज्रसे नाश कर दिया फिर ब्रह्माजीनें यह उत्तम वन हेमाको देदिया ॥१५॥ यथेच्छा भोग, और यह सुवर्ण मय गृहभी हेमाको देदिया। हम मेरुसावर्णिकी स्वयंप्रभा कन्याहैं ॥१६॥ हे वानरश्रेष्ठो! हम इस हेमाके भवनकी रक्षा किया करतीहैं। हमारी प्रिय सखी नृत्य और गीतमें विशारद हेमाहै॥१७॥ हम उसके दिये हुए वरसे इस बडेवनकी रक्षा करतीहैं तुम्हारा क्या कार्यहै और किस कारणसे तुम सब इस जंगलके मार्गमें आयेहो?॥१८॥

* दैत्योंमें जो कारीगर होताहै उसे मयकी पदवी प्राप्तहोतीहै ॥

बाणसे वालिका वध ॥ १५ ॥ फिर श्रीरामचंद्रजीके क्रोधसे राक्षसोंका वध, और अब हमारा मरण यह सब बातें एक कैकेयीके वरदान मांगनें हीके कारण हुईहैं ॥ १६ ॥ गृद्ध्र राज महामति सम्पाति उन वानरोंके कहे हुये अपनें अनुजके विषयमें अकीर्तित कृपण वचन सुनकर अत्यन्त चकितहो बोले ॥ १७ ॥ गंभीर स्वरवाले तीक्ष्ण चोंच धारी गृद्ध्र अंगदजीके मुखसे निकले हुये वह वचन सुनकर बोला ॥ १८ ॥ भाई कौन हमारे प्राणोंकी समान प्यारे भ्राता जटायुके वधका समाचार प्रचार करताहै? कि जिसको सुनकर हमारा मन कंपायमान होताहै ॥ १९ ॥ जनस्थानमें रावण और जटायुका युद्ध किस प्रकारसे हुआ? हाय ! बहुत दिनके पीछे हमने अपने प्यारे भ्राताका नाम सुना ॥ २० ॥ परन्तु हम

रामकोपादशेषाणांरक्षसांचतथावधम् ॥ कैकेय्यावरदानेनइदंचविकृतंकृतम् ॥ १६ ॥ तदसुखमनुकीर्तितं वचोभुविपतितांश्चनिरीक्ष्यवानरान् ॥ भृशचकितमतिर्महामतिःकृपणमुदाहृतवान्सगृध्रराजः ॥ १७ ॥ तत्तुश्रुत्वातथावाक्यमंगदस्यमुखोद्गतम् ॥ अब्रवीद्वचनंगृध्रस्तीक्ष्णतुंडोमहास्वनः ॥ १८ ॥ कोयंगिराघोषयतिप्राणैःप्रियतरस्यमे ॥ जटायुषोवधंभ्रातुःकंपयन्निवमेमनः ॥ १९ ॥ कथमासीज्जनस्थानेयुद्धंराक्षसगृध्रयोः ॥ नामधेयमिदंभ्रातुश्चिरस्याद्यमयाश्रुतम् ॥ २० ॥ इच्छेयंगिरिदुर्गाच्चभवद्भिरवतारितुम् ॥ यवीयसोगुणज्ञस्यश्लाघनीयस्यविक्रमैः ॥ २१ ॥ अतिदीर्घस्यकालस्यपरितुष्टोस्मिकीर्तनात् ॥ तदिच्छेयमहंश्रोतुंविनाशंवानरर्षभाः ॥ २२ ॥ भ्रातुर्जटायुषस्तस्यजनस्थाननिवासिनः ॥ तस्यैवचममभ्रातुःसखादशरथःकथम् ॥ २३ ॥

इच्छानुसार इस पर्वत परसे उतर नहीं सकते इसलिये यह इच्छाहैकि तुमलोग उतारलो, हम तुम सब पर गुणज्ञ, विक्रमोंसें प्रशंसनीय अपने लघुभ्राताके ॥ २१ ॥ नामका कीर्तन बहुत दिनोंके पीछे श्रवण करनेंके कारण अत्यन्त प्रसन्न हुये ॥ हे वानरश्रेष्ठो ! मैं उसका विनाश सुना चाहताहूं ॥ २२ ॥ कि जन स्थानका रहनें वाला हमारा भाई कैसे मारागया । और वही हमारा भाई दशरथजीका सखा कैसे हुआ ॥ २३ ॥

उन सुग्रीवजीनें आज्ञादीहै कि तुम सब वानर मिलकर सीता और कामरूपी राक्षस रावणको ढूँडो ॥ ८ ॥ उनकी आज्ञासे हम दक्षिण दिशाको समस्त वन और समुद्र खोज क्षुधितहो थककर वृक्षोंके नीचे बैठ गये॥९॥हम सब वानर पीले वदन ध्यान परायणहो, चिन्ताके महासागरमें डूब गये और किसी प्रकार उसके पार न जाय सके ॥ १० ॥ तब चारों ओर निहार २ कर देख रहेथे कि इतनेंमें लता पत्रकादिकोंसे ढका छाया यह बडा बिल दृष्टि आया ॥ ११ ॥ उस समय इस बिलसे जलके भीगे जल और कमलकी रेणु जिनके पंखोंमें लगी, ऐसे हंस कुरर और सारस पक्षी

रावणंसहिताःसर्वेराक्षसंकामरूपिणम् ॥ सीतयासहवैदेह्यामार्गध्वमितिचोदिताः ॥ ८ ॥ विचित्यतुवनंसर्वंसमुद्रं दक्षिणांदिशम् ॥ वयंबुभुक्षिताःसर्वेवृक्षमूलमुपाश्रिताः ॥ ९ ॥ विवर्णवदनाःसर्वेसर्वेध्यानपरायणाः ॥ नाधिगच्छा महेपारंमग्नाश्चिंतामहार्णवे ॥१०॥ चारयंतस्ततश्चक्षुर्दृष्टवंतोमहद्बिलम् ॥ लतापादपसंपन्नंतिमिरेणसमावृतम् ॥ ११ ॥ अस्माद्धंसाजलक्लिन्नाःपक्षैःसलिलरेणुभिः ॥ कुरराःसारसाश्चैवनिष्पतंतिपतत्रिणः ॥ १२ ॥ साध्वत्रप्रविशामेतिम यातूक्ताःप्लवंगमाः ॥ तेषामपिहिसर्वेषामनुमानमुपागतम् ॥ १३ ॥ अस्मिन्निपतिताःसर्वेप्यथकार्यत्वरान्विताः ॥ त तोगाढंनिपतितागृह्यहस्तैःपरस्परम् ॥ १४ ॥ इदंप्रविष्टाःसहसाबिलंतिमिरसंवृतम् ॥ एतन्नःकार्यमेतेनकृत्येनव यमागताः ॥ १५ ॥ त्वांचैवोपगताःसर्वेपरिद्यूनाबुभुक्षिताः ॥ आतिथ्यधर्मदत्तानिमूलानिचफलानिच ॥ १६ ॥ अ स्माभिरुपयुक्तानिबुभुक्षापरिपीडितैः ॥ यत्त्वयारक्षिताःसर्वेम्रियमाणाबुभुक्षया ॥ १७ ॥

निकल रहेथे ॥ १२ ॥ उनको देखकर हमनें कहाकि हम इस बिलमें प्रवेशकरैंगे और सब वानरगणभी अनुमान करके इस बिलमें प्रवेश करनेंको सम्मत हुए ॥१३॥ फिर कार्य करनेंमें शीघ्रता युक्त वानरगण एक दूसरेका हाथ पकड बिलमें प्रवेश करनें लगे ॥ १४ ॥ इस प्रकारसे हम इस अंध कारसे ढके हुए बिलमें पैठेहैं हमारा यही कार्यहै इसी कार्यके हेतु हम यहां आयेहैं ॥ १५ ॥ हम सबही थकित और क्षुधित होकर आपके निकट आये और आपनें अतिशय धर्मानुसार हमें फल मूल खानेंको दिये ॥ १६ ॥ जिसको भक्षण करके हमनें जीवधारण किया हम मरनें

वनमें आये ॥ ७ ॥ वह श्रीरामचंद्रजी पिताकी आज्ञासे धर्ममार्गमें टिककर भ्राता लक्ष्मण और अपनी भार्या वैदेहीजीके सहित वनमें आये ॥८॥ जबकि रामचंद्रजी आश्रममें नहींथे तब रावण बलसे उन रामचंद्रजीकी स्त्री सीताजीको हरण करके लेगया उनके पिता दशरथजीके मित्र जटायु नाम गृध्रराजने ॥ ९ ॥ देखा कि आकाशमार्गमें होकर रावण जानकीको हरण किये लिये जाताहै, तो उन्होंने रावणको विरथ कर दिया और उस्से सीताजीको छीनलिया परन्तु वृद्ध होनेंके कारण जब वह लडते २ थकगये तब रावणनें संग्राममें उनको संहार कर दिया ॥ १० ॥ जब इस प्रकार गृध्र जटायु बलवान रावणके हाथसे मारागया तब श्रीरामचंद्रजीनें अपने हाथोंसे जटायुकी दाहक्रियाकर उसे उत्तम गतिको

लक्ष्मणेनसहभ्रात्रावैदेह्यासहभार्यया ॥ पितुर्निदेशनिरतोधर्मपंथानमाश्रितः ॥ ८ ॥ तस्यभार्याजनस्थानाद्रावणेनहृताबलात् ॥ रामस्यतुपितुर्मित्रंजटायुर्नामगृध्रराट् ॥ ९ ॥ ददर्शसीतांवैदेहींह्रियमाणांविहायसा ॥ रावणंविरथंकृत्वास्थापयित्वाचमैथिलीम् ॥ परिश्रांतश्चवृद्धश्चरावणेनहतोरणे ॥ १० ॥ एवंगृध्रोहतस्तेनरावणेनबलीयसा ॥ संस्कृतश्चापिरामेणजगामगतिमुत्तमाम् ॥ ११ ॥ ततोममपितृव्येणसुग्रीवेणमहात्मना ॥ चकारराघवःसख्यंसोऽवधीत्पितरंमम ॥ १२ ॥ ममपित्रानिरुद्धोहिसुग्रीवःसचिवैःसह ॥ निहत्यवालिनंरामस्ततस्तमभिषेचयत् ॥ १३ ॥ सराज्येस्थापितस्तेनसुग्रीवोवानरेश्वरः ॥ राजावानरमुख्यानांतेनप्रस्थापितावयम् ॥१४॥ एवंरामप्रयुक्तास्तुमार्गमाणास्ततस्ततः ॥ वैदेहींनाधिगच्छामोरात्रौसूर्यप्रभामिव ॥ १५ ॥

पहुंचाया ॥ ११ ॥ फिर श्रीरामचंद्रजीनें हमारे चचा सुग्रीवजीसे मित्रता की जिस्से उन्होंनें हमारे पिता वालिको मारडाला ॥ १२ ॥ हमारे पिताजीनें सुग्रीवको उनके मंत्रियों सहित राज्यसे निकाल दियाथा जिस्से वह ऋष्यमूक पर्वत पर रहतेथे इसीलिये श्रीरामचंद्रजीनें हमारे पिताको मार सुग्रीवको राजा बनाया ॥ १३ ॥ उन वानरनाथ सुग्रीवजीनें अपने राज्य पर स्थापित होकर सब वानर यूथपोंको आज्ञादी जिस्सेकि हम यहांपर आयेहैं ॥ १४ ॥ और रामचंद्रजीके कहनेसे हमनें इस कार्यमें लगे हुये अनेक स्थानोंमें जानकीजीको खोजा, परन्तु रात्रिकालमें सूर्यकी प्रभाके

फिर जीवितही यहांसे निकलनेंको समर्थ नहीं होता परन्तु हम अपने नियमकी उपार्जन कीहुई तपस्याके प्रभावसे ॥ २६ ॥ समस्त वानरों को इस बिलसे उद्धार करैंगी हे वानरश्रेष्ठो! तुम सब अपने २ नेत्र बंद करो ॥ २७ ॥ क्योंकि बिना नेत्र बंद किये इस स्थानसे निकलनेंमें समर्थ नहीं हुआ जाता यह सुन सब वानरोंनें अपने सुकुमार हाथोंकी अंगुलियोंसे ॥ २८ ॥ अपने नेत्र झटपट बंद किये क्योंकि उनको उस बिलसे निकलनेंकी बासनाथी, जब सब महात्मा वानरोंनें अपने २ नेत्र अपने २ हाथोंसे बंद किये ॥ २९ ॥ तब उस तपस्विनीनें एक पलमें उन सब वानरोंका बिलसे उद्धार किया, जब वह सब बाहर आगये तब वह धर्मचारिणी तपस्विनी उन सबसे बोली ॥ ३० ॥ वह उस विषमस्थानसे वानरों

सर्वानेवबिलादस्मात्तारयिष्यामिवानरान् ॥ निमीलयतचक्षूंषिसर्वेवानरपुंगवाः ॥ २७ ॥ नहिनिष्क्रमितुंशक्यमनिमीलितलोचनैः ॥ ततोनिमीलिताःसर्वेसुकुमारांगुलैःकरैः ॥ २८ ॥ सहसापिदधुर्दृष्टिंदृष्टागमनकांक्षया ॥ वानरास्तुमहात्मानोहस्तरुद्धमुखास्तदा ॥ २९ ॥ निमेषांतरमात्रेणबिलादुत्तारितास्तया ॥ उवाचसर्वांस्तांस्तत्रतापसीधर्मचारिणी ॥ ३० ॥ निसृतान्विषमात्तस्मात्समाश्वस्येदमब्रवीत् ॥ एषविंध्योगिरिःश्रीमान्नानाद्रुमलतायुतः ॥ ३१ ॥ एषप्रस्रवणःशैलःसागरोयंमहोदधिः ॥ स्वस्तिवोस्तुगमिष्यामिभवनंवानरर्षभाः ॥ इत्युक्त्वा तद्बिलंश्रीमत्प्रविवेशस्वयंप्रभा ॥ ३२ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेद्विपंचाशः सर्गः ॥ ५२ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ततस्तेददृशुर्घोरंसागरंवरुणालयम् ॥ अपारमभिगर्जंतंघोरैरूर्मिभिराकुलम् ॥ १ ॥ मयस्यमायाविहितंगिरिदुर्गंविचिन्वताम् ॥ तेषांमासोव्यतिक्रांतोयोराज्ञासमयःकृतः ॥ २ ॥

को निकाल उनको समझा बुझाकर कहनें लगी कि अनेक प्रकारके वृक्षलता आदिसे पूर्ण श्रीमान् विन्ध्याचल यही है ॥ ३१ ॥ यह दूसरा प्रस्रवण पर्वत है, यह महासागर दृष्टि आता है हे वानरगणो! तुम्हारा मंगल हो अब हम अपने स्थानको जांयगी यह कहकर स्वयम्प्रभा तपस्विनी उस परम सुन्दर बिलमें प्रवेश कर गई ॥३२॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडेद्विपंचाशःसर्गः॥ ५२ ॥ जब सब वानर बिलके बाहर आये तब उन्होंने अपार घोर भयंकर तरंग उठताहुआ, गर्जता, वरुणालय सागर देखा ॥ १ ॥ भय करके मायासे

स्थलमें पहुँचकर जटायु सूर्यकी किरणोंसे बहुत व्याकुल हुआ ॥५॥ हमनें सूर्यकी किरणोंसे भ्राताको दुःखित देख स्नेहके मारे अतिशय कातर हो उस भ्राताको अपने दोनों पंखोंसे ढक लिया ॥ ६ ॥ हे वानरश्रेष्ठो ! तब सूर्य नारायणकी किरणोंसे पंख जल गये, और हम इस विन्ध्याचल पर्वत पर गिरे तबसे इस स्थानमें रहते हुए हमनें भ्राता जटायुका कुछ समाचार नहीं जाना ॥ ७ ॥ जटायुके बडे भ्राता संपातीसे इस प्रकार कहे जाकर महाप्राज्ञ युवराज अंगदजी कहनें लगे ॥ ८ ॥ जो आपही जटायुके भ्राताहैं, तो हमारे वचन आपनें सुनेहीहैं, इस समय यदि ज्ञात होतो आप उस राक्षस रावणका स्थान बता दीजिये ॥ ९ ॥ यदि आप उस विचार रहित राक्षसोंमें नीच रावणको जानते हों तो दूरहो या निकट हो उसका

तमहंभ्रातरंदृष्ट्वासूर्यरश्मिभिरर्दितम् ॥ पक्षाभ्यांछादयामासस्नेहात्परमविह्वलम् ॥ ६ ॥ निर्दग्धपक्षःपतितोविंध्येऽहं वानरर्षभाः ॥ अहमस्मिन्वसन्भ्रातुःप्रवृत्तिंनोपलक्षये ॥ ७ ॥ जटायुषस्त्वेवमुक्तोभ्रात्रासंपातिनातदा ॥ युवराजो महाप्राज्ञःप्रत्युवाचांगदस्तदा ॥ ८ ॥ जटायुषोयदिभ्राताश्रुतंतेगदितंमया ॥ आख्याहियदिजानासिनिलयंतस्यरक्षसः ॥ ९ ॥ अदीर्घदर्शिनंतंवैरावणंराक्षसाधमम् ॥ अंतिकेयदिवादूरेयदिजानासिशंसनः ॥ १० ॥ ततोऽब्रवीन्महातेजाभ्राताज्येष्ठोजटायुषः ॥ आत्मानुरूपंवचनंवानरान्संप्रहर्षयन् ॥ ११ ॥ निर्दग्धपक्षोगृध्रोहंगतवीर्यःप्लवंगमाः ॥ वाङ्मात्रेणापिरामस्यकरिष्येसाह्यमुत्तमम् ॥ १२ ॥ जानामिवारुणाँल्लोकान्विष्णोस्त्रैविक्रमानपि ॥ देवासुरविमर्दांश्चह्यमृतस्यविमंथनम् ॥ १३ ॥ रामस्ययदिदंकार्यंकर्तव्यंप्रथमंमया ॥ जरयाचहृतंतेजः प्राणाश्चशिथिलामम ॥ १४ ॥

स्थान हमें बता दीजिये ॥ १० ॥ जब अंगदजीनें ऐसा कहा तब जटायुका भ्राता महातेजवान सम्पाति वानरोंको हर्षित कराता हुआ अपने अनुरूप वचन बोला ॥ ११ ॥ हे वानरश्रेष्ठो ! हमारे पंख जल गयेहैं, इस समय बल वीर्य कुछभी नहींहै तथापि हम केवल वचनकेही सहारे श्रीरामचन्द्रजीकी उत्तम सहाय करेंगे ॥ १२ ॥ हम वरुण लोक और जहांतक लोक त्रिविक्रम वामनजीनें नापेहैं, वह भूरादि लोक सबको जानतेहैं और देवासुरोंका संग्राम, और समुद्रसे अमृतका मन्थन इत्यादि सब कुछ हमनें देखा है ॥ १३ ॥ जरा अवस्थाके आजानेंसे हमारा तेज हत होगया; और प्राण

लिये विना संशय सबका मरण हुआ क्योंकि वानरराज सुग्रीवजीका कार्य न किये कौन पुरुष सुखी होसकताहै ॥ १२ ॥ सुग्रीवजीका नियत किया हुआ समय तों वीतहीगया; इस समय हम सबको प्रायोपवेशन करके प्राण त्यागन करना सब भांतिसे ठीकहै ॥ १३ ॥ सुग्रीवजीका स्वभाव अति तीक्ष्णहै; तिसपर वह इस समय सब वानरोंके राजाहैं, सो उनका अपराध होनेंपर किसी भांति क्षमा न करेंगे ॥ १४ ॥ सीताजीका पता न लगनेंसे वह अवश्यही हम सबको मार डालेंगे, सो उस मरनेंसे इस समय कहीं पुण्यस्थानमें प्राण दे देना हमारे लिये भलाहै ॥ १५ ॥ जो हम लोग यहांसे किष्किन्धाको चले जांयगे तो सुग्रीवजी निश्चयही हम सबको मार डालेंगे इस कारण इस समय यही पुत्र, स्त्री, धन, और गृहादि सम

अस्मिन्नतीतेकालेतुसुग्रीवेणकृतेस्वयम् ॥ प्रायोपवेशनंयुक्तंसर्वेषांचवनौकसाम् ॥ १३ ॥ तीक्ष्णःप्रकृत्यासुग्रीवः स्वामिभावेव्यवस्थितः ॥ नक्षमिष्यतिनःसर्वानपराधकृतोगतान् ॥ १४ ॥ अप्रवृत्तौचसीतायाःपापमेवकरिष्यति ॥ तस्मात्क्षममिहाद्यैवगंतुंप्रायोपवेशनम् ॥ १५ ॥ त्यक्त्वापुत्रांश्चदारांश्चधनानिचगृहाणिच ॥ ध्रुवंनोहिंसतेराजासर्वा न्प्रतिगतानितः ॥ १६ ॥ वधेनाप्रतिरूपेणश्रेयान्मृत्युरिहैवनः ॥ नचाहंयौवराज्येनसुग्रीवेणाभिषेचितः ॥ १७ ॥ नरेंद्रेणाभिषिक्तोस्मिरामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ सपूर्वंबद्धवैरोमांराजादृष्ट्वाव्यतिक्रमम् ॥ १८ ॥ घातयिष्यतिदंडेनती क्ष्णेनकृतनिश्चयः ॥ किंमेसुहृद्भिर्व्यसनंपश्यद्भिर्जीवितांतरे ॥ इहैवप्रायमासिष्येपुण्येसागररोधसि ॥ १९ ॥

स्तको छोड, प्राण त्याग करना हमें बहुत अच्छाहै इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ १६ ॥ जो तुम कहोकि सुग्रीवनें तुमको युवराज कियाहै; वह तुम्हें नहीं मारेंगे, सो अबतक उन्होंनें हमको युवराजपदवी नहीं दीहै; इसलिये उस नीचपनकी मृत्यु होनेंसे इसी स्थान पर मृत्यु पाना हम अच्छा समझतेहैं ॥ १७ ॥ सर्व कार्य करनेंमें चतुर श्रीरामचंद्रजीनें हमको युवराजपदवीपर अभिषेक किया, सुग्रीव तौ प्रथमहीसे हमसे वैराचरण करतेहैं; फिर वह जिस समय जानेंगे कि इन्होंनें कार्य पूरा नहीं किया ॥ १८ ॥ तौ उसी समय हमको वह तीक्ष्ण दंड देकर मार डालेंगे; अपनें सुहृदगणोंके निकट उस निन्दनीय मृत्युकी अपेक्षा, इस पवित्र समुद्रके तीरपर प्राणत्याग करना हमारे अर्थ बहुत श्रेष्ठ होगा इसमें संशयही क्याहै? ॥ १९ ॥

वह रावणके अंतःपुरमें रोकी हुई राक्षसियोंसे रक्षा की जाती हैं, तुम उस नगरीमें जनककुमारी सीताजीको देखोगे ॥ २३ ॥ दुर्ग और प्रचारादिसे रहित लंका पुरीके चारों ओर सागर है, उन शतयोजन समुद्रके पार होकर उस दक्षिण किनारेपर जाय फिर रावणको देख पाओगे, इस्से हे वानरश्रेष्ठो! तुम शीघ्र वहां जाओ और अपना २ विक्रम दिखाओ! हम अपनें ज्ञानसे निश्चय देखते हैं, कि तुम लोग जानकीजीको देखकर लौट आओगे। कबूतर आदि धान्य जीवी पक्षी जो आकाश मार्गमें उडतेहैं इसलिये प्रथम पंथ इनका ॥ २४ ॥ दूसरा मार्ग जो इस्से कुछही ऊँचा है वह फलादि खानेवाले काकोंकाहै, और बटेर क्रौञ्च कुरर आदि इनसेभी कुछ ऊंचे तीसरे मार्गमें उडते हैं ॥२५॥ उनसे ऊंचे चतुर्थ मार्गमें बाज उडतेहैं;

रावणांतःपुरेरुद्धाराक्षसीभिःसुरक्षिता॥जनकस्यात्मजांराज्ञस्तस्यांद्रक्ष्यथमैथिलीम् ॥२३॥ "लंकायामभिगुप्तायांसागरेणसमंततः ॥ संप्राप्यसागरस्यांतेसंपूर्णेशतयोजने॥आसाद्यदक्षिणंकूलंततोद्रक्ष्यथरावणम्॥तत्रैवत्वरिताःक्षिप्रंविक्रमध्वंप्लवंगमाः" ॥ ज्ञानेनखलुपश्यामिदृष्ट्वाप्रत्यागमिष्यथ ॥ आद्यःपंथाःकुलिंगानांयेचान्येधान्यजीविनः ॥ २४ ॥ द्वितीयोबलिभोजानांयेचवृक्षफलाशनाः ॥ भासास्तृतीयंगच्छंतिक्रौंचाश्चकुररैःसह ॥ २५ ॥ श्येनाश्चतुर्थंगच्छंति गृध्रागच्छंतिपंचमम् ॥ बलवीर्योपपन्नानांरूपयौवनशालिनाम् ॥ २६ ॥ षष्ठस्तुपंथाहंसानांवैनतेयगतिःपरा ॥ वैनतेयाच्चनोजन्मसर्वेषांवानरर्षभाः ॥ २७ ॥ गर्हितंतुकृतंकर्मयेनस्मपिशिताशिनः ॥ प्रतिकार्यंचमेतस्यवैरंभ्रातृकृतंभवेत् ॥ २८ ॥ इहस्थोऽहंप्रपश्यामिरावणंजानकींतथा ॥ अस्माकमपिसौपर्णंदिव्यंचक्षुर्बलंतथा ॥ २९ ॥

इनसे ऊर्ध्व पांचवें मार्गमें गृध्रजातेहैं बल वीर्य युक्त रूपयौवनसम्पन्न ॥२६॥ हंसोंका छठा मार्ग है, जो गृध्रकेभी मार्गसे ऊंचा है और गरुडोंकी गति सबसे श्रेष्ठ है, उनकी समान ऊपर आकाशमें और कोईभी जानेंको समर्थ नहीं होता,हे कपिवरो! हम लोगोंका जन्म वैनतेय अरुणसे हुआ है॥२७॥ जिस राक्षसनें पराई स्त्रीको हरण करकै दुष्कार्य किया और हमारे भ्राता जटायुको मार डाला है, सो उसका पता बतानेंसेही मानों हमनें उस्से अपने भाईका वैर लेलिया ॥ २८ ॥ हम यहां रहकरभी रावण और जानकीजीको देख रहे हैं क्योंकि हम लोगोंकी आंखोंका बल गरुडकी दिव्य आं

चंद्रमाकी समान प्रभाशाली तारने जब इस प्रकारसे कहा तो हनुमानजीनें अनुमानकिया कि बस अब अंगद करके सुग्रीवका राज्य गया। ॥ १ ॥ हनुमानजीनें अंगदजीको शुश्रूपादि अष्टविध गुण बुद्धि चतुरंग सेना और देश कालज्ञतादि चौदह गुण निधान विचारा ॥ २ ॥ हनुमानजीनें विचारा कि अंगद सदाही तेज बल और पराक्रम से शुक्ल पक्षकी आदि से लेकर प्रभा लक्ष्मी युक्त चंद्रमाकी समान वर्त्तमान होरहाहे ॥ ३ ॥ यह युवराज बुद्धिमें बृहस्पतिकी समान और विक्रममें अपने पिताकी समानहै, तार वानरसे सेवित है जैसे इन्द्रजी शुक्रके वचनोंसे सेवित होते हैं ॥ ४ ॥ ऐसे अंगदजीको अपने स्वामीका प्रयोजन सिद्ध करनेमें थकित देख सर्व शास्त्रविशारद हनुमानजी उनसे बोले॥५॥ वह हनुमानजी चार

तथाब्रुवतितारेतुताराधिपतिवर्चसि ॥ अथमेनेहृतंराज्यंहनूमानंगदेनतत् ॥ १ ॥ बुद्ध्याह्यष्टांगयायुक्तंचतुर्बलसमन्वितम् ॥ चतुर्दशगुणंमेनेहनूमान्वालिनःसुतम् ॥ २ ॥ आपूर्यमाणंशश्वच्चतेजोबलपराक्रमैः ॥ शशिनंशुक्लपक्षादौवर्धमानमिवश्रिया ॥ ३ ॥ बृहस्पतिसमंबुद्ध्याविक्रमेसदृशंपितुः॥शुश्रूषमाणंतारस्यशुक्रस्येवपुरंदरम् ॥ ४ ॥ भर्तुरर्थेपरिश्रांतंसर्वशास्त्रविशारदः ॥ अभिसंधातुमारेमेहनूमानंगदंततः ॥ ५ ॥ सचतुर्णामुपायानांद्वितीयमुपवर्णयन् ॥ भेदयामासतान्सर्वान्वानरान्वाक्यसंपदा ॥ ६ ॥ तेषुसर्वेषुभिन्नेषुततोऽभीषयदंगदम् ॥ भीषणैर्विविधैर्वाक्यैःकोपोपायसमन्वितैः ॥ ७ ॥ त्वंसमर्थतरःपित्रायुद्धेतारेयवैध्रुवम् ॥ दृढंधारयितुंशक्तःकपिराज्यंयथापिता ॥ ८ ॥ नित्यमस्थिरचित्ताहिकपयोहरिपुंगव ॥ नाज्ञाप्यंविषहिष्यंतिपुत्रदारंविनात्वया ॥ ९ ॥ त्वांनैतेह्यनुरंजेयुःप्रत्यक्षंप्रवदामिते ॥ यथायंजांबवान्नीलःसुहोत्रश्चमहाकपिः ॥ १० ॥

प्रकारोंके उपायोंमेंसे दूसरा उपाय भेद वर्णन करके सार युक्त वचनोंसे उन समस्त वानरोंको भेद करते हुये॥६॥जब सब वानरोंमें भेद पडगया तब हनुमानजीने दंड सहित भयंकर वचनोंसे अंगदको भय दिखाकर कहा ॥ ७ ॥ हे ताराकुमार! तुम युद्ध करनेमें पिताको तुल्य सामर्थ्य रखतेहो, यदि कपिगण तुमको राज्यमें अभिषेकित करें तो तुम पिताजीकी ही समान दृढ़तासे राज्य धारण करनेमें समर्थ होगे ॥ ८ ॥ हे वानरश्रेष्ठ ! चंचलचित्त वानर लोग अपने स्त्री पुत्रोंको सुग्रीवके वशमें पडा देख तुम्हारी आज्ञाका विना पुत्र दाराके यहांपर बैठे हुए मान्य न करेंगे ॥ ९ ॥ हम तुमसे इन सबके

कियाहै,यह सब कहकर वनवासी वानरोंका विशेष उपकार साधन कीजिये॥३॥वह कौनहै कि जिस पुरुषनें दशरथकुमार श्रीराम और लक्ष्मणजीके धनुपसे छूटे हुए वाण समूहके विक्रमकी चिन्ता नहीं की ॥ ४ ॥ सम्पाति उन प्रायोपवेशन त्यागे हुए सीताजीका वृत्तान्त श्रवण करनेंकी इच्छा किये वानरोंको समझा बुझाकर फिर इस प्रकार वचन बोला ॥ ५ ॥ हे वानरो ! सीताजीके हरणका वृत्तान्त जैसे हमनें सुनाहै और वह बडे २ नेत्र वाली इस समय कहांपर रहतीहैं सो तुम श्रवण करो जिसनें हमसे कहा वहभी सुनो ॥ ६ ॥ हम क्षीणप्राण क्षीणपराक्रम और वृद्ध अवस्था युक्त इस पर्वतकी अनेक योजनकी चौडी गुफामें वहुत दिनोंसे गिरकर रहतेहैं ॥ ७ ॥ हमारा पुत्र सुपार्श्वनामक पक्षिश्रेष्ठ हमारी इस अव

कोदाशरथिबाणानांवज्रवेगनिपातिनाम् ॥ स्वयंलक्ष्मणमुक्तानांनचिंतयतिविक्रमम् ॥ ४ ॥ सहरीन्प्रतिसंमुक्तान् सीताश्रुतिसमाहितान् ॥ पुनराश्वासयन्प्रीतइदंवचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥ श्रूयतामिहवैदेह्यायथामेहरणंश्रुतम् ॥ येन चापिममाख्यातंयत्रचायतलोचना ॥ ६ ॥ अहमस्मिन्गिरौदुर्गेबहुयोजनमायते ॥ चिरान्निपतितोवृद्धःक्षीणप्राणपराक्रमः ॥ ७ ॥ तंमामेवंगतंपुत्रःसुपार्श्वोनामनामतः ॥ आहारेणयथाकालंबिभर्तिपततांवरः ॥ ८ ॥ तीक्ष्णकामास्तुगंधर्वास्तीक्ष्णकोपाभुजंगमाः ॥ मृगाणांतुभयंतीक्ष्णंततस्तीक्ष्णक्षुधावयम् ॥ ९ ॥ सकदाचित्क्षुधार्तस्यममाहाराभिकांक्षिणः ॥ गतःसूर्येहनिप्राप्तोममपुत्रोह्यनामिषः ॥ १० ॥ समयाहारसंरोधात्पीडितःप्रीतिवर्धनः ॥ अनुमान्ययथातत्त्वमिदंवचनमब्रवीत् ॥ ११ ॥ अहंतातयथाकालमामिषार्थीखमाप्लुतः ॥ महेंद्रस्यगिरेर्द्वारमावृत्यसुसमाश्रितः ॥ १२ ॥

स्थाको जानकर यथा समयमें आहार देकर हमारा प्रतिपालन करता ॥८॥गन्धर्व गणोंका काममें वडा अभिलाष, सर्प गणोंमें वडा क्रोध मृग गणोंमें वडा भय, और हमारी क्षुधा अत्यन्त तीक्ष्ण जाननी ॥ ९ ॥ एक समयमेंहमारा पुत्र सूर्योदयके समयसे गयार सन्ध्याको विनाही आहारके हमारे पास आया उस समय हम भूंखके मारे व्याकुल हो आहारकी वाट देख रहेथे ॥१०॥ भोजन न पानेके कारण हमनें अपने पुत्रको दुर्वचनोंसे परिपीडित किया तव प्रीतिका वढानेवाला पुत्र हमारा सन्मान करता हुआ हमसे बोला ॥ ११ ॥ हम यथा समयमें मांसकी खोज करनेंके लिये आकाशमें

जाया करोगे ॥ १८ ॥ जो तुम विग्रह करोगे तो लक्ष्मणजीके महा भयंकरतेज, उग्र वेगवान दुर्द्धर्ष बाणोंका समूह तुमको संहार करैगा * ॥ १९ ॥ तुम हमारे संग जो विनीत भावसे सुग्रीवजीके पास चलोगे, तो सुग्रीवजी आदिसे अंततक समस्त वृत्तान्त श्रवण करके तुमको अवश्य राज्यमें अभिषेकित करेंगे ॥ २० ॥ तुम्हारे पितृव्य सुग्रीवजी, धर्मराज, प्रीतिमान, दृढव्रत, पवित्र और सत्य प्रतिज्ञहैं वह कदापि तुम्हारा विनाश नहींकरैंगे २१ ॥ वह सुग्रीवजी तुम्हारी माताका प्रियकार्य करनें वाले हैं, उसकेही निमित्त उनका जीवन है और सुग्रीवके और कोई पुत्रभी नहीं है कि वह उसे राज्य देदेंगे इसलिये अंगद! तुम अवश्य किष्किन्धाको चलो ॥ २२ ॥ इ० श्रीम० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे चतुष्पंचाशः सर्गः ॥ ५४ ॥

अत्युग्रवेगानिशिताघोरालक्ष्मणसायकाः ॥ अपावृत्तंजिघांसंतोमहावेगादुरासदाः ॥ १९ ॥ अस्माभिस्तुगतंसार्धं विनीतवदुपस्थितम् ॥ आनुपूर्व्यात्तुसुग्रीवोराज्येत्वांस्थापयिष्यति ॥ २० ॥ धर्मराजःपितृव्यस्तेप्रीतिकामोदृढव्रतः ॥ शुचिःसत्यप्रतिज्ञश्चसत्वांजातुननाशयेत् ॥ २१ ॥ प्रियकामश्चतेमातुस्तदर्थंचास्यजीवितम् ॥ तस्यापत्यंचनास्त्यन्यं तस्मादंगदगम्यताम् ॥ २२ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० किष्किंधाकांडेचतुष्पंचाशःसर्गः ॥ ५४ ॥ श्रुत्वाहनुमतोवाक्यं प्रश्रितंधर्मसंहितम् ॥ स्वामिसत्कारसंयुक्तमंगदोवाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥ स्थैर्यमात्ममनःशौचमानृशंस्यमथार्जवम् ॥ विक्रमश्चैवधैर्यंचसुग्रीवेनोपपद्यते ॥ २ ॥ भ्रातुर्ज्येष्ठस्ययोभार्यांजीवतोमहिषींप्रियाम् ॥ धर्मेणमातरंयस्तुस्वीकरोतिजुगुप्सितः ॥ ३ ॥ कथंसधर्मंजानीतेयेनभ्रात्रादुरात्मना ॥ युद्धायाभिनियुक्तेनबिलस्यापिहितंमुखम् ॥ ४ ॥

हनुमान्‌जीके धर्म संगत स्वामीका सत्कार करनेंके योग्य विनय समन्वित वचन सुनकर अंगदजी बोले ॥ १ ॥ हे हनुमन्! स्थिरता, मनकी पवित्रता, सलज्जता, सरलता, विक्रम, और धीरता सुग्रीवजीमें यह कुछभीदृष्टि नहीं आता ॥ २ ॥ जो पुरुष माताकी तुल्य धर्ममें वर्तमान बडे भ्राताकी प्यारी रानी स्त्रीको, उसके पुत्र हमारे जीवित रहते स्वीकारकरले अर्थात् अपनी स्त्री बनाले, वह अत्यन्त घृणितहै और धर्मके विषयको कुछ नहीं जानता इसलिये वह अत्यन्त अधार्मिक है ॥ ३ ॥ जो दुरात्मा भ्राता युद्धमें लगे हुये अपने भ्राताके मार्गको बिलमें शिला लगा

* दोहा—तासों मनमें शान्तिकर, ढूंढौ वन चित लाय । जनकसुता निज भाग्य वश जो कदापि मिलजाय ॥

बोलनेंवालेनें कहा॥२१॥जब सुपार्श्वनें हमसे यह समस्त निवेदन किया, तबउसको सुनकर हमारी बुद्धि कुछभी फिर पराक्रम करनेंको न हुई ❋॥२२॥ हम पक्षी होकर भी पक्षहीन हैं, इसलिये किस प्रकारसे युद्धादिके लियेउद्योग करें परन्तु हां जो कुछ वचन बुद्धिके गुणानुसार हम कर सकते हैं ॥ २३ ॥ सो तुम सुनो, वह कार्य तुम लोगोंके बल वीर्यसे पूरा होगा वचन और बुद्धिसे हम तुम्हारा सबका प्रिय और हितका कार्य करेंगे॥२४॥ इसमें कुछ सन्देह नहीं कि जो श्रीरामचंद्रजीका कार्यहै वह हमाराहीहै तिसपर तुमभी तो बुद्धिमान,बलवान मनस्वी॥२५॥देवतालोगोंको भीबडे कष्टसे प्राप्त होनेंके योग्य हो क्योंकि तुम्हें कपिराज सुग्रीवजीने भेजाहै कंकपत्र युक्त श्रीराम लक्ष्मणजीके वाण ॥ २६ ॥ तीन लोकोंकाउद्धार और उनका

एतदर्थंसमग्रंमेसुपार्श्वःप्रत्यवेदयत् ॥ तच्छ्रुत्वापिहिमेबुद्धिर्नासीत्काचित्पराक्रमे ॥ २२ ॥ अपक्षोहिकथंपक्षी
कर्मकिंचित्समारभेत् ॥ यत्तुशक्यंमयाकर्तुंवाग्बुद्धिगुणवर्तिना ॥ २३ ॥ श्रूयतांतत्रवक्ष्यामिभवतांपौरुषाश्र
यम् ॥ वाङ्मतिभ्यांहिसर्वेषांकरिष्यामिप्रियंहिवः ॥ २४ ॥ यद्धिदाशरथेःकार्यंममतन्नात्रसंशयः ॥ तद्भवंतो
मतिश्रेष्ठाबलवंतोमनस्विनः ॥ २५ ॥ प्रहिताःकपिराजेनदेवैरपिदुरासदाः ॥ रामलक्ष्मणबाणाश्चविहिताःकंकप
त्रिणः ॥ २६ ॥ त्रयाणामपिलोकानांपर्याप्तास्त्राणनिग्रहे ॥ कामंखलुदशग्रीवस्तेजोबलसमन्वितः ॥ भवतांतुसम
र्थानांनकिंचिदपिदुष्करम् ॥ २७ ॥ तदलंकालसंगेनक्रियतांबुद्धिनिश्चयः ॥ नहिकर्मसुसज्जंतेबुद्धिमंतोभवद्विधाः ॥
॥ २८ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेएकोनषष्टितमःसर्गः ॥ ५९ ॥ ॥ छ ॥

नाश करनेमें समर्थ हैं दशानन रावण तेज युक्त बलवान होनेपर भी सर्व कार्योंको करनेंकी सामर्थ्य रखनेंवाले तुम लोगोंको कुछ अजीत नहीं होगा ॥ २७ ॥ अब कुछभी विलम्ब लगानेंका प्रयोजन नहीं है इस समय बुद्धिका निश्चय करो क्योंकि तुम्हारी समान बुद्धिमान् लोग कार्य सिद्ध करनें में कुछभी आलस्य नहीं करते॥ २८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

❋ दोहा—पंखहीन अवसर गये,सुत बल कीन्ह धिकार॥गहि मम निकट न लायऊ,हती रामकीनार ॥

करके कुशल पूछना और श्रीराम लक्ष्मणजीसेभी प्रणाम करके कुशलपूछना ॥ १३ ॥ और उन राजा व छोटे हमारे तात सुग्रीवजीसे प्रणाम करके कुशल पूछना और हमारी माता रुमासेभी आरोग्य पूर्वक कुशलपूछना ॥ १४ ॥ और हमारी माता ताराकोभी आप भली भांति समझा देना क्योंकि वह करुणावती तपस्विनी स्वभावसेही हमको बहुत प्यारकरतीहैं ॥ १५ ॥ क्योंकि वह वहांपर हमारा मरण सुनकर निश्चयही अप ने प्राणोंको परित्याग करदेंगी प्रणाम सहित यह सब वृद्धोंसे कह ॥ १६ ॥कर अंगदजी रोदन करते हुए भूमिपर कुश बिछाय मरनेंके लिये उदासी नहो बैठगये उनको इस प्रकार मरनेंपर उतारू देख सब वानर श्रेष्ठ रोनेलगे ॥ १७ ॥ वह सबके सब रोदन कर नेत्रोंसे जल धारा गिराने और

वाच्यस्तातोयवीयान्मेसुग्रीवोवानरेश्वरः ॥ आरोग्यपूर्वंकुशलंवाच्यामातारुमाचमे ॥ १४ ॥ मातरंचैवमेतारामाश्वा सयितुमर्हथ ॥ प्रकृत्याप्रियपुत्रासासानुक्रोशातपस्विनी ॥ १५ ॥ विनष्टमिहमांश्रुत्वाव्यक्तंहास्यतिजीवितम् ॥एता वदुक्त्वावचनंवृद्धांस्तानभिवाद्यच ॥ १६ ॥ विवेशचांगदोभूमौरुदन्दर्भेषुदुर्मुखः ॥ तस्यसंविशतस्तत्ररुदंतोवानरर्ष भाः ॥ १७ ॥ नयनेभ्यःप्रमुमुचुरुष्णंवैवारिदुःखिताः ॥ सुग्रीवंचैवनिंदंतःप्रशंसंतश्चवालिनम् ॥१८॥ परिवार्यांगदंसर्वे व्यवसन्प्रायमासितुम् ॥ तद्वाक्यंवालिपुत्रस्यविज्ञायप्लवगर्षभाः॥१९॥ उपस्पृश्योदकंसर्वेप्राङ्मुखाःसमुपाविशन्॥ दक्षिणाग्रेषुदर्भेषुउदक्तीरंसमाश्रिताः॥२०॥मुमूर्षवोहरिश्रेष्ठाएतत्क्षममितिस्मह॥ रामस्यवनवासंचक्षयंदशरथस्यचं ॥२१॥जनस्थानवधंचैववधंचैवजटायुषः॥हरणंचैववैदेह्यावालिनश्चवधंतथा॥रामकोपंचवदतांहरीणांभयमागतम्॥२२॥

सुग्रीवकी निन्दा और वालिकी बडाई करने लगे ॥ १८ ॥ और अंगदजीके ऐसे वचन सुनकर सब वानर मरनेके लिये निश्चय तैयारहो उनको घेरकर बैठ गये ॥ १९ ॥ और सबही समुद्रके जलमें आचमन कर पूर्वमुखहो समुद्रके दक्षिण किनारेकी ओर कुशोंकी चोटीकर उनपर मरनेंको बैठ गये ॥ २० ॥ मरनेंकी इच्छा किये वानर अपने मरणको श्रेष्ठही मानतेहुए श्रीरामचंद्रजीका वनवास, राजा दशरथका मरण ॥ २१ ॥ जन स्थान का विध्वंस, जटायुका मरण, जानकीका हरण, वालिका वध और श्रीरामचंद्रजीका क्रोध कहतेर वानर गणोंको भय प्राप्त हुआ अर्थात् उनपर एक

जब इस स्थान पर रहतेथे तब हम विन्ध्याचल के भयंकर अग्रभागसे अति कष्ट सहित तीक्ष्ण कुशवाली पृथ्वी पर आये ॥ १० ॥ उन ऋषिका दर्शन करनेंकी लालसासे जटायुके सहित पहले भी हम बहुत वार उनसेमिलेथे तब बडे कष्टसे उनके पास पहुँचे ॥ ११ ॥ उनके आश्रमके निकट सदा सुगन्धि युक्त पवन चलाकरता वहांपर फूल हीन या फलहीन कोईवृक्ष दृष्टि नहीं आताथा॥ १२ ॥ उस आश्रममें आयकर एक पेडकी जडमें बैठे भगवान निशाकर मुनिके दर्शनका अभिलाष हम कर रहेथे ॥ १३॥तिसके पीछे अपनें तेजसे दीप्तिमान दुर्द्धर्ष, स्नानकर उत्तरको मुखकर मह र्षिजी आ रहेहैं ऐसा हमने दूरसे देखा ॥ १४ ॥ दरिद्र प्राणी जिस प्रकार दाताको घेरकर पीछे २ आतेहैं वैसेही शूकर, रीछ, सिंह, व्याघ्र और

तमृषिंद्रष्टुकामोऽस्मिदुःखेनाभ्यागतोभृशम् ॥ जटायुषामयाचैवबहुशोऽधिगतोहिसः ॥ ११ ॥ तस्याश्रमपदाभ्याशे ववुर्वाताःसुगंधिनः ॥ वृक्षोनापुष्पितःकश्चिदफलोवानदृश्यते ॥ १२ ॥ उपेत्यचाश्रमंपुण्यंवृक्षमूलमुपाश्रितः ॥ द्रष्टुकामःप्रतीक्षेचभगवंतंनिशाकरम् ॥ १३ ॥ अथपश्यामिदूरस्थमृषिंज्वलिततेजसम् ॥ कृताभिषेकंदुर्धर्षमुपावृत्तमुदङ्मुखम् ॥ १४ ॥ तमृक्षाःसृमराव्याघ्राःसिंहानानासरीसृपाः ॥ परिवार्योपगच्छंतिदातारंप्राणिनोयथा ॥ १५ ॥ ततःप्राप्तमृषिंज्ञात्वातानिसत्त्वानिवैययुः ॥ प्रविष्टेराजनियथासर्वंसामात्यकंबलम् ॥ १६ ॥ ऋषिस्तुदृष्ट्वामांतुष्टःप्रविष्टश्चाश्रमंपुनः ॥ मुहूर्तमात्रान्निर्गम्यततःकार्यमपृच्छत ॥ १७ ॥ सौम्यवैकल्यतांदृष्ट्वारोम्णांतेनावगम्यते ॥ अग्निदग्धाविमौपक्षौप्राणाश्चापिशरीरके ॥ १८ ॥ गृध्रौद्वौदृष्टपूर्वौमेमातरिश्वसमौजवे ॥ गृध्राणांचैवराजानौभ्रातरौकामरूपिणौ ॥ १९ ॥

अनेक प्रकारके सर्प उनको घेरे हुये चले आतेहैं ॥ १५ ॥ राजाको रनवासमें पैठा जानकर मंत्री आदि जिस भांति अपनें २ स्थानको चले जातेहैं वैसेही ऋषि श्रेष्ठको आश्रममें आया हुआ जानकर सब प्राणी अपने २स्थानको चलेगये ॥ १६ ॥ ऋषिजी हमको देख प्रसन्नहो आश्रममें चले गये और एक मुहूर्त्ततक आश्रमसे फिर बाहर आय हमसे अनेक कार्य पूछने लगे ॥ १७ ॥ कि हे सौम्य ! तुम्हारे पंखोंका विकार देखकर हम तुमको पहँचान नहीं सकतेहैं; तुम्हारे यह पंख अग्निसे जल गये और शरीर व प्राणभी जलेहीकी तुल्य होगयाहै ॥ १८ ॥ हमनें पहले पवनकी

श्रीरामचंद्रजीके कार्यकी सिद्धि न हुई, न राजाहीकी आज्ञाके अनुसार कार्य हुआ। यह देखो! इस समय वानारोंके लिये यह अज्ञात विपद आय पहुँची ॥ ८ ॥ देखो एक जटायु पक्षीनें श्रीजानकीजीकाहित करनेको जो कार्य कियाथा वह समस्त हमने श्रवणकर रक्खाहै॥९॥ इस प्रकार तिर्यक् योनिमें जन्म ग्रहण करके हम वानरोंकी समान सबहोप्राणी प्राणत्याग करकेभी श्रीरामचंद्रजीके हित करनेंका यत्न करतेहैं ॥ १० ॥ वह श्रीरामचंद्रजीके प्रति स्नेह और करुणाके वशहो उनकाउपकार करतेहैं, इसलिये उनका उपकार करनेंके लिये तुम लोगभी अपना जीव दे डालो ॥ ११ ॥ धर्मज्ञ जटायुनें श्रीरामचंद्रजीका कैसाकार्य कियाथा हम सबभीतो श्रीरामचंद्रजीके कार्यके लिये थके थकाये

रामस्यनकृतंकार्यंनकृतंराजशासनम् ॥ हरीणामियमज्ञाताविपत्तिःसहसागता ॥ ८ ॥ वैदेह्याःप्रियकामेनकृतंकर्म जटायुषा ॥ गृध्रराजेनयत्तत्रश्रुतंवस्तदशेषतः ॥ ९ ॥ तथासर्वाणिभूतानितिर्यग्योनिगतान्यपि ॥ प्रियंकुर्वंतिरामस्य त्यक्त्वाप्राणान्यथावयम् ॥ १० ॥ अन्योन्यमुपकुर्वंतिस्नेहकारुण्ययंत्रिताः ॥ ततस्तस्योपकारार्थंत्यजतात्मानमात्मना ॥ ११ ॥ प्रियंकृतंहिरामस्यधर्मज्ञेनजटायुषा ॥ राघवार्थेपरिश्रांतावयंसंत्यक्तजीविताः ॥ १२ ॥ कांताराणि प्रपन्नाःस्मनचपश्याममैथिलीम्॥ससुखीगृध्रराजस्तुरावणेनहतोरणे॥मुक्तश्चसुग्रीवभयाद्गतश्चपरमांगतिम् ॥ १३ ॥ जटायुषोविनाशेनराज्ञोदशरथस्यच ॥ हरणेनचवैदेह्याःसंशयंहरयोगताः ॥ १४ ॥ रामलक्ष्मणयोर्वासमरण्ये सहसीतया॥ राघवस्यचबाणेनवालिनश्चतथावधम् ॥ १५ ॥

जीव देनेको तैयार बैठेहैं ॥ १२ ॥ और हम गिरि दुर्गतक चले आये* परन्तु श्रीजानकीजीको कहीं न देख पाया! वह गृध्रराज जटायु रावणकेहाथसे मरकर सुग्रीवके भयसे छूट परम गतिको प्राप्त हुआ ॥ १३ ॥जटायुके और राजा दशरथजीके मरणसे, फिर जानकीजीके हरणकी इन सब घटना ओंसे वानर गणोंको इस समय प्राण संशय आपहुंचाहै ॥ १४ ॥श्रीराम लक्ष्मणजीका सीताजीके सहित वनमें वास, और श्रीरामचंद्रजीके

* सब पक्षी आदि जीव मात्रके सुग्रीव राजाथे सबको आज्ञा माननी पडतीथी.

आकाशमें उडकर शीघ्रतासे हम दोनों भाई सूर्य भगवानके निकट जानेंको परिश्रम करते हुये और वहांपर हमने ...क अतिविस्तारवाला दूवका वन देखा ॥ ७ ॥ पृथ्वीको देखा तौ वह पर्वतोंसे घिरी हुईथी और नदीरूप डोरोंसे मानों गुंध रहीथी ॥ ८ ॥ ...माचल विन्ध्याचल और सुमेरु पर्वत आकाशसे जल आकारवाली पृथ्वीमें सरोवरोंमें गजकी समानदृष्टि आतेथे ॥ ९ ॥ तब ऐसा देखकर ह... दोनोंकोही अति तीव्र स्वेद खेद, भय, मोह, और दारुण मूर्च्छा आनें लगी ॥ १० ॥ हम दोनों दक्षिण आग्नेय और पश्चिम दिशा कुछभी नहीं समझसके केवल प्रलय कालमें जले हुए पुरुषकी समान बुद्धिरहित होगये ॥ ११ ॥ हमारा मन नेत्रोंके सहित सूर्याग्निसे भस्म होनेंकी तुल्य होगया फिर हमनें

तूर्णमुत्पत्यचाकाशमादित्यपदमास्थितौ ॥ आवामालोकयावस्तद्वनंशाद्वलसंस्थितम् ॥ ७ ॥ उपलैरिवसंछन्नादृश्यतेभूःशिलोच्चयैः ॥ आपगाभिश्चसंवीतासूत्रैरिववसुंधरा ॥ ८ ॥ हिमवांश्चैवविंध्यश्चमेरुश्चसुमहागिरिः ॥ भूतले संप्रकाशंतेनागाइवजलाशये ॥ ९ ॥ तीव्रःस्वेदश्चखेदश्चभयंचासीत्तदावयोः ॥ समाविशतमोहश्चततोमूर्च्छाचदारुणा ॥ १० ॥ नचदिग्ज्ञायतेयाम्यानचाग्नेयीनवारुणी ॥ युगांतेनियतोलोकोहतोदग्धइवाग्निना ॥ ११ ॥ मनश्चमेहतंभूयश्चक्षुःप्राप्यतुसंश्रयम् ॥ यत्नेनमहताह्यस्मिन्मनःसंधायचक्षुषी ॥ १२ ॥ यत्नेनमहताभूयोभास्करःप्रतिलोकितः ॥ तुल्यपृथ्वीप्रमाणेनभास्करःप्रतिभातिनौ ॥ १३ ॥ जटायुर्मामनापृच्छ्यनिपपातमहींततः ॥ तंदृष्ट्वातूर्णमाकाशादात्मानंमुक्तवानहम् ॥ १४ ॥ पक्षाभ्यांचमयागुप्तोजटायुर्नप्रदह्यत ॥ प्रमादात्तत्रनिर्दग्धःपतन्वायुपथादहम् ॥ १५ ॥ आशंकेतंनिपतितंजनस्थानेजटायुपम् ॥ अहंतुपतितोविंध्येदग्धपक्षोजडीकृतः ॥ १६ ॥

अति कष्टसे मनके साथ नेत्रोंको मिलाय ॥ १२ ॥ अनेक यत्नकरके सूर्यनारायणको देखा तो उस समय वह सूर्य पृथ्वीकी तुल्य प्रमाण वाले दिखाई दिये॥ १३ ॥जटायु तो हमसे विनाही पूछे पाछे पृथ्वीपर गिर पडा उसको गिरते देख हमनेंभी आकाशसे अपनेको छुडाया॥ १४ ॥हमनें अपने दोनों पंखोंसे जटायुको ढका इसलिये जटायुके पंख न जलकर हमारे पंख प्रमादके मारे जल गये और हम वायुमार्गसे गिरनेंलगे ॥ १५ ॥ उस समय हमको ऐसा ज्ञात हुआ कि मानों जटायु तो जनस्थानमें गिरा और हम दग्धपंख और जड होकर इस विन्ध्याचल पर्वतपर गिरे ॥ १६ ॥

कि जिन दशरथजीके बडे प्यारे ज्येष्ठ पुत्र गुरुजनके प्रिय श्रीरामचंद्रजीहैं! सूर्यकी किरणोंसे अपने पर जल जानेके कारण हम उड नहीं सकते ॥ २४ ॥ इसलिये हे शत्रुओंके मारनेंवाले वानरो! हम इस पर्वत सें उतरना चाहतेहैं ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे षट्पंचाशःसर्गः ॥ ५६ ॥ वानरयूथपतियोंने शोकके हेतु उस गृध्रके टूटे फूटे वचन सुनकर भी उसका विश्वास न माना क्योंकि वह वानर उसके वध वचन रूप कर्मसे शंकित हो रहेथे ॥ १ ॥ उन मरनेंके लिये व्रत धारण किये हुये वानरों नें गृध्रको देखकर मनमें समझा कि यह भयंकर पक्षी हम सबोंको ही भक्षण करैगा ॥ २ ॥ हमतो प्राणत्याग करनेके लिये प्रायोपवेशन

यस्यरामःप्रियःपुत्रोज्येष्ठोगुरुजनप्रियः ॥ सूर्यांशुदग्धपक्षत्वान्नशक्नोमिविसर्पितुम् ॥ २४ ॥ इच्छयापर्वतादस्मादवततुं मरिंदमाः ॥ २५ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०किष्किंधाकांडेषट्पंचाशःसर्गः ॥ ५६ ॥ ॥ छ ॥ शोकाद्भ्रष्टस्वरमपिश्रुत्वावानरयूथपाः ॥ श्रद्दधुर्नैवतद्वाक्यंकर्मणातस्यशंकिताः ॥ १ ॥ तेप्रायमुपविष्टास्तुदृष्ट्वागृध्रंप्लवंगमाः ॥ चक्रुर्बुद्धिंतदारौद्रांसर्वान्नोभक्षयिष्यति ॥ २ ॥ सर्वथाप्रायमासीनान्यदिनोभक्षयिष्यति ॥ कृतकृत्याभविष्यामःक्षिप्रंसिद्धिमितोगताः ॥ ३ ॥ एतांबुद्धिंततश्चक्रुःसर्वेतेहरियूथपाः ॥ अवतार्यगिरेःशृंगाद्गृध्रमाहांगदस्तदा ॥ ४ ॥ बभूवर्क्षराजोनामवानरेंद्रःप्रतापवान् ॥ ममार्यःपार्थिवःपक्षिन्धार्मिकौतस्यचात्मजौ ॥ ५ ॥ सुग्रीवश्चैववालीचपुत्रौघनबलावुभौ ॥ लोकेविश्रुतकर्माभूद्राजावालीपितामम ॥ ६ ॥ राजाकृत्स्नस्यजगतइक्ष्वाकूणांमहारथः ॥ रामोदाशरथिःश्रीमान्प्रविष्टोदंडकावनम् ॥ ७ ॥

किये ही हैं, सो यदि यह गृध्र जो हमको भक्षण करले तो हमने जो मरण वासना की है वह सिद्ध हो जायगी और हम कृतार्थ हो जांयगे ॥ ३ ॥ समस्त कपि यूथपोंने इस प्रकार बुद्धि करके संपातीको पर्वतसे नीचे उतारा तब फिर अंगदजी उस्से बोले ॥ ४ ॥ हे पक्षिन्! ऋक्षराज नामक पृथ्वीपति प्रतापवान वानरोंके राजा हमारे पितामहथे उनके दो पुत्र अति धार्मिक हुये ॥ ५ ॥ वह सुग्रीव और वालि अति विक्रमशाली हुये उनमें विख्यातकीर्ति हमारे पिता वालि वानरोंके राजा हुये ॥ ६ ॥ जब सब जगत्के राजा इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न हुये दशरथजीके पुत्र रामचंद्रजी

तुल्य देवतालोगोंकोभी दुर्लभ परमान्न देआवेंगे ॥ ८ ॥ सीताजी वह अन्न निश्चय इन्द्रजीका दिया हुआ जानकर उसका अग्रभाग उठाय मंत्र पाठकर पृथ्वीमें श्रीराम लक्ष्मणजीके लिये छोडदेगी ॥ ९ ॥ उस मंत्रका अर्थ यह थाकि यदि हमारे स्वामी और देवर लक्ष्मण जीवितहों अथवा देवलोकको चले गयेहों, यह अन्न उनके निमित्त दिया गया ॥ १० ॥हे विहंगम संपाते ! रामदूत वानरगण सीताजीके ढूंडनेंको भेजे जाकर जब यहां आवेंगे, उस समय तुम उनसे सीताजीके समाचार बताओगे ॥ ११ ॥ तुम और कहीं न जाओ, ऐसी अवस्थामें कहां जाओगे; इस लिये यहीं देश कालकी बाट परख, तुम अपने दोनों पंख फिर प्राप्तकरोगे ॥ १२ ॥ हम अभी तुमको पंख देसकतेहैं; परन्तु तुम इस अवस्थामें

तदन्नंमैथिलीप्राप्यविज्ञायेंद्रादिदंत्विति ॥ अग्रमुद्धृत्यरामायभूतलेनिर्वपिष्यति ॥ ९ ॥ यदिजीवतिमेभर्तालक्ष्मणो वापिदेवरः ॥ देवत्वंगच्छतोर्वापितयोरन्नमिदंत्विति ॥ १० ॥ एष्यंतिप्रेषितास्तत्ररामदूताःप्लवंगमाः ॥ आख्येयारा ममहिषीत्वयातेभ्योविहंगम ॥ ११ ॥ सर्वथातुनगंतव्यमीदृशःक्वगमिष्यसि ॥ देशकालौप्रतीक्षस्वपक्षौत्वंप्रति पत्स्यसे ॥ १२ ॥ उत्सहेयमहंकर्तुमद्यैवत्वांसपक्षकम् ॥ इहस्थस्त्वंहिलोकानांहितंकार्यंकरिष्यसि ॥ १३ ॥ त्वया पिखलुतत्कार्यंतयोश्चनृपपुत्रयोः ॥ ब्राह्मणानांगुरूणांचमुनीनांवासवस्यच ॥ १४ ॥ इच्छाम्यहमपिद्रष्टुंभ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ नेच्छेचिरंधारयितुंप्राणांस्त्यक्ष्येकलेवरम् ॥ महर्षिस्त्वब्रवीदेवंदृष्टतत्त्वार्थदर्शनः ॥ १५ ॥ इतिश्रीम० वा०आ०कि०द्विषष्टितमःसर्गः ॥ ६२ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ एतैरन्यैश्चबहुभिर्वाक्यैर्वाक्यविशारदः ॥ मांप्रशस्याभ्यनु ज्ञाप्यप्रविष्टःसस्वमालयम् ॥ १ ॥

लोकोंका हित साधन करोगे, इस कारण हम तुमको पंख नहीं दिये ॥१३॥ तुम दोनों रघुवीर श्रीराम, लक्ष्मणका, ब्राह्मणोंका, गुरुजनोंका, मुनि समूहोंका और इन्द्रका कार्य कर सकोगे ॥ १४ ॥ श्रीराम, लक्ष्मण दोनों भाइयोंका दर्शन करनेकी तो हमारीभी इच्छाथी परन्तु अब आगे हम इस शरीरके धारण करनेंको समर्थ नहींहैं इसलिये तनु त्याग करेंगे ! तत्त्वदर्शी मुनिजीनें हमसे ऐसा कहाथा ॥ १५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० किष्किन्धाकांडे द्विषष्टितमःसर्गः ॥ ६२ ॥ वाक्यविशारद मुनिवर इस प्रकार व औरभी बहुत वचनोंसे हमारी

समान हमनें उनको कहीं न पाया ॥ १५ ॥ हम सब बडी सावधानीसे दंडकारण्यको ढूंड रहेथे कि अज्ञानके वश होकर एक बिलमें प्रवेश कर गये १६ ॥ वह मय दानवका बनाया हुआहै, उस बिलकोही ढूंडते २सुग्रीवजीका नियत किया हुआ एक मासका समय वीतगया ॥ १७ ॥ हम लोग वानर राज सुग्रीवजीकी आज्ञाके प्रतिपालक,उनके नियत किये समयके वीत जानेंसे मरनेंके लिये प्रायोपवेशन व्रत धारण किये हुयेहैं॥ १८॥ क्योंकि लक्ष्मण सुग्रीव और रामचंद्रजीके क्रोध करनेंसे हमें मरना पडेगा, इसलिये हम वहां न जाकर यहांही प्राण त्यागनेंको तयार हुये हैं ॥ १९ ॥ इ० श्रीम०वा० आ० कि० सप्तपंचाशःसर्गः ॥ ५७ ॥ जब जीवनको त्याग करनेंके लिये निश्चय किये वानरोंनें इस प्रकार करु

तेवयंदंडकारण्यंविचित्यसुसमाहिताः ॥ अज्ञानात्तुप्रविष्टाःस्मधरण्याविवृतंबिलम् ॥ १६ ॥ मयस्यमायाविहितंतं
द्बिलंचविचिन्वताम् ॥ व्यतीतस्तत्रनोमासोयोराज्ञासमयःकृतः ॥ १७ ॥ तेवयंकपिराजस्यसर्वेवचनकारिणः ॥
कृतांसंस्थामतिक्रांताभयात्प्रायमुपासिताः ॥ १८ ॥ क्रुद्धेतस्मिंस्तुकाकुत्स्थेसुग्रीवेचसलक्ष्मणे ॥ गतानामपिसर्वे
षांतत्रनोनास्तिजीवितम् ॥ १९ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आदिकाव्येकिष्किंधाकांडेसप्तपंचाशःसर्गः ॥५७॥ ॥ ७ ॥
इत्युक्तःकरुणंवाक्यंवानरैस्त्यक्तजीवितैः ॥ सबाष्पोवानरान्गृध्रःप्रत्युवाचमहास्वनः ॥ १ ॥ यवीयान्सममभ्राता
जटायुर्नामवानराः ॥ यमाख्यातहतंयुद्धेरावणेनबलीयसा ॥ २ ॥ वृद्धभावादपक्षत्वाच्छृण्वंस्तदपिमर्षये ॥ नहिमेश
क्तिरस्त्यद्यभ्रातुर्वैरविमोक्षणे ॥ ३ ॥ पुरावृत्रवधेवृत्तेसचाहंचजयैषिणौ ॥ आदित्यमुपयातौस्वोज्वलंतंरश्मिमा
लिनम् ॥ ४ ॥ आवृत्त्याकाशमार्गेणजवेनस्वर्गतौभृशम् ॥ मध्यंप्राप्तेतुसूर्येतुजटायुरवसीदति ॥ ५ ॥

णाके भरे वचन कहे तब गृध्रराज सम्पाति नेत्रोंमें जल भरकर गंभीर स्वरसे उन वानरोंसे बोले ॥१॥ हे वानर यूथपो ! बलवान् रावणसें जिसको वध किया हुआ तुम कहतेहो वही हमारा छोटा भाई जटायु था॥२॥यह कठोर वार्त्ता हमनें बुढापे और पंखोंके न रहनेंसे सुनकर सहन करली क्योंकि इस समय रावणसे अपने छोटे भाईका वैर लेनेंके लिये हममें सामर्थ्य नहींहै ॥३॥पूर्वकालमें वृत्रासुरके वधके समय जयके अभिलाषी होकर हम दोनों भ्राता, जलती हुई किरणोंवाले सूर्य नारायणके निकट पहुँच गये ॥ ४ ॥ जब हम आकाशमार्गमें अति वेगसे गमन कर रहेथे, तब सूर्यके मध्य

अतुलनीय हर्ष प्राप्त करके वानरोंसे बोलाकि अमिततेजमान महर्षि निशाकरजीके प्रसादसे ॥ १० ॥
ण वर्णके पंख उवे हुये देखकर ॥९॥ हमारे सूर्यकी किरणोंसे जले हुये दोनों पंख फिर जम आये हम जिस समय युवा अवस्थाको प्राप्त थे उस समय जिसप्रकारका पराक्रम हम
में था ॥ ११ ॥इस समय भी वैसाही वल पौरुष हमनें प्राप्त किया तुम सर्व प्रकारसे यत्न करो अवश्यही सीताजीको पाओगे ॥ १२ ॥ जब कि ह
मारे पंख जम आये, तब विश्वास होताहै कि तुम्हारा कार्यभी अवश्य सिद्ध होगा इस प्रकार पक्षिश्रेष्ठ सम्पाति उन समस्त वानरोंसे ऐसा
कह ॥ १३ ॥ अपने जमे हुए पंखोंसे पहलेही की समान पक्षियोंकी गति जाननेंकी इच्छासे उस पर्वतके शिखरसे उडा उसके यह वचन सुन अ

निशाकरस्यराजर्षेःप्रसादादमितौजसः ॥ १० ॥ आदित्यरश्मिनिर्दग्धौपक्षौ
प्रहर्षमतुलंलेभेवानरांश्चेदमब्रवीत् ॥ पुनरुपस्थितौ॥यौवनेवर्तमानस्यममासीद्यःपराक्रमः ॥ ११ ॥ तमेवाद्यावगच्छामिबलंपौरुषमेवच॥ सर्वथाक्रियतां
यत्नःसीतामधिगमिष्यथ ॥ १२ ॥ पक्षलाभोममायंवःसिद्धिप्रत्ययकारकः ॥ इत्युक्त्वातान्हरीन्सर्वान्संपातिःपतगो
त्तमः ॥ १३ ॥ उत्पपातगिरेःशृंगाज्जिज्ञासुःखगमोगतिम् ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाप्रतिसंहृष्टमानसाः ॥ बभूवुर्हरिशार्दू
लाविक्रमाभ्युदयोन्मुखाः ॥ १४ ॥ अथपवनसमानविक्रमाःप्लवगवराःप्रतिलब्धपौरुषाः ॥ अभिजिदभिमुखांदिशं
ययुर्जनकसुतापरिमार्गणोन्मुखाः ॥ १५ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०कि०त्रिषष्टितमःसर्गः ॥ ६३ ॥ ॥ छ ॥ आ
ख्यातागृध्रराजेनसमुत्प्लुत्यप्लवंगमाः ॥ संगताःप्रीतिसंयुक्ताविनेदुःसिंहविक्रमाः ॥ १ ॥ संपातेर्वचनंश्रुत्वाहरयो
रावणक्षयम् ॥ हृष्टाःसागरमाजग्मुःसीतादर्शनकांक्षिणः॥ २ ॥

फिर पर्वत तुल्य विक्रमवान अति पौरुषी वानर गण
त्यन्त हर्षित मनसे वानरश्रेष्ठगण सीताजीके ढूँडनेंमें अपना २ विक्रमदिखानेंको तैयार हुए॥१४॥ जनककुमारी जानकीजीको खोजनेके लिये अभिजित् मुहूर्तमें दक्षिण दिशाको चले॥ १५ ॥ इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०कि०त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥
गृध्रराजसे इस प्रकार कहे हुए सिंहतुल्य विक्रमवान वानर गण प्रीतिसे प्रफुल्लित चित्तहो इधर उधर कूद फांद परस्पर मिलकर हर्षध्वनि क
रनें लगे ॥ १ ॥ रावणके नाशकारी सम्पातिके वचन सुनकर हर्ष युक्त वानर गण सीताजीका दर्शन करनेंके निमित्त समुद्रके तीरपर आये ॥ २ ॥

शिथिल होआये नहीं तौ श्रीरामचन्द्रजीका प्रथम कार्य हमकोही अवश्य करना चाहियेथा ॥ १४ ॥ सर्व गहनोंसे भूषित, रूपयौवन सम्पन्न श्रीरामचन्द्रजीकी भार्या सीताजीको रावण हरण किये लेजा रहाथा, तव हमनें उसको देखाहै ॥ १५ ॥ वह सीताजी, राम २ लक्ष्मण २ शब्द कह चिल्लाय २ अपने अंगोंके गहने निकाल २ पृथ्वीपर फेंकतीथी ॥ १६ ॥ उनका उत्तम रेशमीन वस्त्र पर्वतके आगेमें सूर्यकी प्रभाके समान शोभा पारहाथा, और वहभी स्वयं काले वर्ण वाले राक्षसोंके निकट आकाशमें रहती हुई विजलीकी समान शोभा विस्तार करतीथीं ॥ १७ ॥ उन्होंनें जो राम २ अपनें मुखसे कहाथा सो अव हमनें जानाकि वह श्रीरामचन्द्रजीकी भार्या सीताजीथीं अव उस राक्षसके रहनेंका स्थान हम कहतेहैं तुम श्र

तरुणीरूपसंपन्नासर्वाभरणभूषिता ॥ ह्रियमाणामयादृष्टारावणेनदुरात्मना ॥ १५ ॥ क्रोशंतीरामरामेतिलक्ष्मणेति चभामिनी ॥ भूषणान्यपविध्यंतीगात्राणिचविधुन्वती ॥ १६ ॥ सूर्यप्रभेवशैलाग्रेतस्याःकौशेयमुत्तमम् ॥ असिते राक्षसेभातियथाविद्युदिवांबरे ॥ १७ ॥ तांतुसीतामहंमन्येरामस्यपरिकीर्तनात् ॥ श्रूयतांमेकथयतोनिलयंतस्यर क्षसः ॥ १८ ॥ पुत्रोविश्रवसःसाक्षाद्भ्रातावैश्रवणस्यच ॥ अध्यास्तेनगरींलंकांरावणोनामराक्षसः ॥ १९ ॥ इतोद्वीपे समुद्रस्यसंपूर्णेशतयोजने ॥ तस्मिँल्लङ्कापुरीरम्यानिर्मिताविश्वकर्मणा ॥ २० ॥ जांबूनदमयैर्द्वारैश्चित्रैःकांचनवे दिकैः ॥ प्रासादैर्हैमवर्णैश्चमहद्भिःसुसमाकृता ॥ २१ ॥ प्राकारेणार्कवर्णेनमहताचसमन्विता ॥ तस्यांवसति वैदेहीदीनाकौशेयवासिनी ॥ २२ ॥

वण करो ॥ १८ ॥ विश्वश्रवाका पुत्र; और कुवेरका साक्षात् भ्राता रावण नामक वह राक्षस लंका नगरीमें वास करताहै ॥ १९ ॥ वह लंका यहांसे चारसौ कोशकी दूरीपर एक समुद्रके द्वीपमें वसीहै, उस मनोहर लंका पुरीको विश्वकर्मानें वनायाहै ॥ २० ॥ उस पुरीमें सव सुवर्णमय द्वार सुवर्णहीकी चित्र विचित्र वेदियां और वडे सुवर्णहीके राजमंदिर वने हैं, और उस पुरीकी भूमि सव जगहही समान है ॥ २१ ॥ उसकी वाहर दिवारीभी सुवर्णमय सूर्यकी प्रभाके समान झलकतीहै उस लंकानगरी में अतिदीना जानकीजो रेशमीन वस्त्र पहरे हुए वसतीहैं ❋ ॥ २२ ॥

❋ हां वसत सिय जनकदुलारी। रामचन्द्र विन निपट दुखारी॥

न्द्रजीके चारों ओर बैठतीहै वैसेही वानरोंकी सेना अंगदजीको घेरकर बैठी ॥ १२ ॥ वालिकुमार अंगदजी और हनुमानजीके सिवाय और कोई उस वानरी सैनाके स्थिर करनेंमें समर्थ नहीं होसकताथा ॥ १३ ॥फिर शत्रुओंका नाश करनेंवाले श्रीमान् अंगदजी वृद्ध वानरोंका और सब सैनाका सन्मान करके सार वचन बोले ॥ १४ ॥ कौन महातेजवान् इस समय समुद्रको लांघेगा ? कौन वानर इस समय शत्रुओं के मारनेंवाले सुग्रीवजीकी प्रतिज्ञाको सत्य करैगा ? ॥ १५ ॥ कौनवीर चार शत कोशका मार्ग एक छलांगमें पार करैगा ? कौन वानर इन समस्त यूथप वानरोंको महाभयसे उद्धार करैगा ॥ १६ ॥ किसके प्रसादसे हम सब वानर गण कार्य सिद्धकर यहांसे घरको लौट अपने घर जाय

ततस्तान्हरिवृद्धांश्चतच्च
कोऽन्यस्तांवानरीसेनांशक्तःस्तंभयितुंभवेत् ॥ अन्यत्रवालितनयादन्यत्रचहनूमतः ॥ १३ ॥ ततस्तान्हरिवृद्धांश्चतच्च
सैन्यमरिंदमः ॥ अनुमान्यांगदःश्रीमान्वाक्यमर्थवदब्रवीत् ॥ १४ ॥ कइदानींमहातेजालंघयिष्यतिसागरम् ॥ कः
करिष्यतिसुग्रीवंसत्यसंधमरिंदमम् ॥ १५ ॥ कोवीरोयोजनशतंलंघयेतप्लवंगमः ॥ इमांश्चयूथपान्सर्वान्मोचये
त्कोमहाभयात् ॥ १६ ॥ कस्यप्रसादाद्दारांश्चपुत्रांश्चैवगृहाणिच ॥ इतोनिवृत्ताःपश्येमसिद्धार्थाःसुखिनोवयम् ॥ १७ ॥
कस्यप्रसादाद्रामंचलक्ष्मणंचमहाबलम् ॥ अभिगच्छेमसंहृष्टाःसुग्रीवंचवनौकसम् ॥ १८ ॥ यदिकश्चित्समर्थो
वःसागरप्लवनेहरिः ॥ सददात्विहनःशीघ्रंपुण्यामभयदक्षिणाम् ॥ १९ ॥ अंगदस्यवचःश्रुत्वानकश्चित्किंचिदब्र
वीत् ॥ स्तिमितेवाभवत्सर्वासातत्रहरिवाहिनी ॥ २० ॥ पुनरेवांगदःप्राहतान्हरीन्हरिसत्तमः ॥ सर्वेबलवतांश्रेष्ठा
भवंतोदृढविक्रमाः ॥ व्यपदेशकुलेजाताःपूजिताश्चाप्यभीक्ष्णशः ॥ २१ ॥

॥ किसके प्रसादसे यह समस्त वनवासी वानर गण हर्षित होकर, राम लक्ष्मण और वनच स्त्री पुत्र और गृहको देखकर सुखी होंगे ॥ १७ ॥ किसके प्रसादसे यह समस्त वनवासी वानर गण हर्षित होकर, राम लक्ष्मण और वनचरोंके राजा सुग्रीवजीके निकट जायँगे ॥ १८ ॥ यदि कोई वानरश्रेष्ठ इससागरके लाँघनेंको समर्थहो वह शीघ्रही हमको पुण्यकारी अभय दक्षिणा देवे ॥ १९ ॥ अंगदजीके वचन सुनकर किसी वानरनें कुछभी उत्तर नदिया, समस्त वानरसैना मौनभावको धारणकर चुपचाप होगई ॥ २० ॥ वानरश्रेष्ठ अंगदजी फिर उन सब वानरोंसे बोले, कि तुम सबही दृढ विक्रम करनेंवाले हो; और तुम कलंकरहित कुलमें

खोंसे उत्पन्न है इसलिये यह दृष्टि बहुत दूरतक जाती है॥२९॥हे वानरो; इस कारण और मांसादि भक्षण करनेंके बलसे हम शतयोजनको वरन इ
ससेभी कुछ अधिक दूरकी वस्तु देख सकते हैं ॥ ३० ॥ स्वभावसेही हम गृध्रोंकी वृत्ति दूरतक स्थित भोजनादि देखनेंकी बनी है और मुरगे आ
दिकी दृष्टि उस पेडकी जडही तक पहुँचतीहै जिसपर वह रहाकरते हैं॥३१॥तुम लोग क्षार समुद्रको नांघनेंके लिये कोई उपाय खोज करो, इस्से जानकी
जीके निकट पहुँचकर कार्य सिद्ध कर किष्किन्धाको लौट आना ॥३२॥ तुम हमको समुद्रके किनारे पर लेचलो हम वहांपर उस स्वर्गको गये हुये
अपने महात्मा छोटे भाईको जलांजली देंगे ॥३३॥ जब सम्पातिने ऐसा कहा तो महात्मा वानरवृन्दोंने उस पंख जले हुये सम्पातिको नदनदी पति

तस्मादाहारवीर्येणनिसर्गेणचवानराः ॥ आयोजनशतात्साग्राद्वयंपश्यामनित्यशः ॥ ३० ॥ अस्माकंविहितावृत्ति
र्निसर्गेणचदूरतः ॥ विहितावृक्षमूलेतुवृत्तिश्चरणयोधिनाम् ॥ ३१ ॥ उपायोदृश्यतांकश्चिल्लंघनेलवणांभसः ॥ अभि
गम्यतुवैदेहींसमृद्धार्थागमिष्यथ ॥ ३२ ॥ समुद्रंनेतुमिच्छामिभवद्भिर्वरुणालयम् ॥ प्रदास्याम्युदकंभ्रातुःस्वर्गतस्य
महात्मनः ॥ ३३ ॥ ततोनीत्वातुतंदेशंतीरेनदनदीपतेः ॥ निर्दग्धपक्षंसंपातिंवानराःसुमहौजसः ॥ ३४ ॥ तंपुनःप्राप
यित्वाचतंदेशंपतगेश्वरम् ॥ बभूवुर्वानराहृष्टाःप्रवृत्तिमुपलभ्यते ॥ ३५ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०किष्किधाकांडेअ
ष्टपंचाशःसर्गः ॥ ५८ ॥ ॥ ७ ॥ ततस्तदमृतास्वादंगृध्रराजेनभाषितम् ॥ निशम्यवदतोहृष्टास्तेवचःप्लवगर्ष
भाः ॥ १ ॥ जांबवान्वानरश्रेष्ठःसहसर्वैःप्लवंगमैः ॥ भूतलात्सहसोत्थायगृध्रराजानमब्रवीत् ॥ २ ॥ क्वसीताकेनवा
दृष्टाकोवाहरतिमैथिलीम् ॥ तदाख्यातुभवान्सर्वंगतिर्भववनौकसाम् ॥ ३ ॥

समुद्रके तीरपर ले आये ॥ ३४ ॥ वानरगण उस पक्षिनाथको जब समुद्रके तीरपर ले गये और सीताजीका वृत्तान्त प्राप्तकर आनंदित हुये ॥३५ ॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे अष्टपंचाशः सर्गः ॥५८॥ फिर गृध्रराज सम्पाति करके कहे हुये अमृतमय वचन सुन
कर वानर गण अत्यन्त हर्षित होनेंकी कथा बार२कहनें लगे॥१॥इसके पीछे वानरपति जाम्बवानजी समस्त वानरगणोंके सहित सहसा उठे और गृध्ररा
जसे कहनें लगे॥२॥कि यद्यपि आप सब बताय चुके तथापि फिर एकवार सीताजी इस समय कहांहै?किस पुरुषनें उनको देखा है?और किसनें उनको हरण

तक जा सकते हैं इसमें कुछभी संशय नहीं है ॥ ८ ॥ अतिधीर वीरबलवान् कपिश्रेष्ठ सुषेणनें कहाकि हम प्रतिज्ञा करके कह सकते हैं कि हम अस्सी योजन तक चले जायँगे ॥ ९ ॥ जब सब वानरोंने ऐसा कहा, तब उनका सन्मान कर वृद्धकपि जाम्बवान् उनसें कहनेंलगा ॥ १० ॥ पूर्वकालमें हम अपनी गतिके विषयमें विशेष पराक्रमी थे परन्तु इस समय हमारी आयु बहुत होगई है ॥ ११ ॥ इस समय जो कार्य आ पडाहे उसको हम त्याग नहीं सकते कि जिस कार्यके लिये श्रीरामचंद्रजी और कपिराज सुग्रीवजी कृतनिश्चय हुये हैं वह कार्य अवश्यही साधन करना पडैगा ॥ १२ ॥ इस समय जहांतक हमारे जानेकी गतिहै वह सुनो कि इस समय येक छलांगमें हम नव्वे योजनतक

सुषेणस्तुमहातेजाःसत्ववान्कपिसत्तमः ॥ अशीतिंप्रतिजानेऽहंयोजनानांपराक्रमे ॥ ९ ॥ तेषांकथयतांतत्रसर्वांस्ता
ननुमान्यच ॥ ततोवृद्धतमस्तेषांजांबवान्प्रत्यभाषत ॥ १० ॥ पूर्वमस्माकमप्यासीत्कश्चिद्गतिपराक्रमः ॥ तेवयं
वयसःपारमनुप्राप्ताःस्मसांप्रतम् ॥ ११ ॥ किंतुनैवंगतेशक्यमिदंकार्यमुपेक्षितुम् ॥ यदर्थंकपिराजश्चरामश्चकृतनि
श्चयौ ॥ १२ ॥ सांप्रतंकालमस्माकंयागतिस्तांनिबोधत ॥ नवतिंयोजनानांतुगमिष्यामिनसंशयः ॥ १३ ॥ तांश्चसर्वा
न्हरिश्रेष्ठान्जांबवानिदमब्रवीत् ॥ नखल्वेतावदेवासीद्गमनेमेपराक्रमः ॥ १४ ॥ मयावैरोचनेयज्ञेप्रभविष्णुःसनातनः ॥
प्रदक्षिणीकृतःपूर्वंक्रममाणस्त्रिविक्रमः ॥ १५ ॥ सइदानीमहंवृद्धःप्लवनेमंदविक्रमः ॥ यौवनेचतदासीन्मेबलमप्रतिमं
परम् ॥ १६ ॥ संप्रत्येतावदेवाद्यशक्यंमेगमनेस्वतः ॥ नैतावताचसंसिद्धिःकार्यस्यास्यभविष्यति ॥ १७ ॥

जा सकते हैं इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ १३ ॥ जाम्बवान्ने फिर उन वानरश्रेष्ठोंसे कहा कि पहले हमारा गमन करनेमें इतनाही पराक्रमनहीं था ॥ १४ ॥ वरन उस समय ऐसा पराक्रम था कि जब सनातन त्रिविक्रम वामन रूपी विष्णुजीनें राजा बलिके यज्ञमें तीन पदसे तीनों लोक नाप लिये तब हमनें उनकी प्रदक्षिणाकी थी ॥ १५ ॥ पहले हम ऐसे पराक्रमी थे परन्तु अब वृद्ध होगये इस समय हम पहलीसी छलांग नहीं मार सकते युवावस्थाके समय हमारी समान किसीमें बल नहीं था ॥ १६ ॥ हम इस समय नव्वे योजन लांघ सकतेहैं अधिक नहीं, परन्तु इतनेमें इस

उडकर महेन्द्र गिरिका द्वार रोककर खडेथे ॥ १२ ॥ हम नीचेको मुखकरके समुद्रके अंतरमें चरनेंवाले सहस्र जीव गणोंका मार्ग रोककर टिके रहें ॥ १३ ॥ वहां पर देखा कि अंजनकी समान काले वर्णवाला कोई जीव उदित सूर्यकी समान प्रभायुक्त एक स्त्रीको संग लेकर जाय रहा है ॥ १४ ॥ तब हमने उसको देखकर विचार कियाकि यह स्त्री पुरुषही आज हमारे पिताके भोजन वनेंगे परन्तु उस जीवनें वहुत गिड़गिड़ाकर हमसे रास्ता मांगा ॥ १५ ॥ नीच पुरुषोंके निकट शान्ति भाव दिखानेंसे वहभी विनाशनहीं कर सकते फिर हमारी समान जीव भला कैसे इस वातको न करें१६॥ जब हमनें उस जीवको छोड दिया तब मानों वह आकाश मार्गको पीछेछोडता हुआही अति वेगसे चला । तब समस्त आकाशचारियोंनें हमारी

तत्रसत्त्वसहस्राणांसागरांतरचारिणाम् ॥ पंथानमेकोऽध्यवसंसन्निरोद्धुमवाङ्मुखः॥ १३ ॥ तत्रकश्चिन्मयादृष्टःसूर्योदयसमप्रभाम् ॥ स्त्रियमादायगच्छन्वैभिन्नांजनचयोपमः ॥ १४॥ सोऽहमभ्यवहारार्थंतौदृष्ट्वाकृतनिश्चयः ॥ तेनसाम्नाविनीतेनपंथानमनुयाचितः ॥ १५ ॥ नहिसामोपपन्नानांप्रहर्ताविद्यतेभुवि ॥ नीचेष्वपिजनःकश्चित्किमंगबतमद्विधः ॥ १६ ॥ सयातस्तेजसाव्योमसंक्षिपन्निववेगितः ॥ अथाहंखेचरैर्भूतैरभिगम्यसभाजितः ॥ १७ ॥ दिष्ट्याजीवतिसीतेतिअब्रुवन्मांमहर्षयः ॥ कथंचित्सकलत्रोऽसौगतस्तेस्वस्त्यसंशयम् ॥ १८ ॥ एवमुक्तस्ततोहंतैःसिद्धैःपरमशोभनैः ॥ सचमेरावणोराजारक्षसांप्रतिवेदितः॥ १९ ॥ पश्यन्दाशरथेर्भार्यांरामस्यजनकात्मजाम् ॥ भ्रष्टाभरणकौशेयांशोकवेगपराजितात्॥२०॥रामलक्ष्मणयोर्नामक्रोशंतींमुक्तमूर्धजाम् ॥ एषकालात्ययस्तातइतिवाक्यविदांवरः ॥ २१ ॥

पूजा व प्रशंसाकी ॥ १७ ॥ तब महर्षियोंनें हमसे कहा कि भाग्यके वशसेही सीताजी जीवित रहीहैं यह पुरुष इस स्त्रीके सहित भाग्यसेही तुमसे छूट गया तुम्हारा मंगलहो॥ १८ ॥ जब परम शोभायमान महर्षियोंने यह कहा तब हमनें जानाकि यह पुरुष राक्षसपति रावण ॥ १९ ॥ और यह स्त्री सीता रामचन्द्रजीकी भार्या हैं इस समय हमनें देखा कि मारे शोकके उनके सब आभरण गिरे पडतेहैं और उनका रेशमीन वस्त्रभी शिथिल हुआ जाताहै॥२०॥उनके शिरके बाल छूटे हुएथे राम लक्ष्मणजीका नाम लेलै रोती चली जातीथीं।हे तात! इसलिये आज मुझको देरहुई ऐसा उस श्रेष्ठ वचन

छभी सन्देह नहींहै ॥ २६॥ हे कपिश्रेष्ठ ! तुम हम लोगोंके गुरुपुत्र और गुरुहो तुमको आश्रय करके हम लोग कार्यके साधन करनेमें समर्थ हो सकतेहैं ॥ २७ ॥ महाप्राज्ञ जाम्बवान्नें जब इस प्रकारसे कहा तब महाकपि वालिके पुत्र अंगदजी जाम्बवान्को उत्तर देते हुए ॥ २८ ॥ यदि हमभी न जांय व औरभी कोई वानर न जाय तौ फिर प्रायोपवेशन करके प्राणोंका छोड़नाही हमारे लिये अच्छाहै ॥ २९ ॥ उन बुद्धिमान कपिपति सुग्रीवजीकी आज्ञाका प्रतिपालन न करके यदि किष्किंधाको चले जांय तो वहांभी प्राणरक्षाका कोई उपाय नहीं दृष्टि आता ॥३०॥ वह सुग्रीव निग्रह और अनुग्रहके ईश्वरहैं उनकी आज्ञाका पालन बिना किये किष्किंधामें चले जानेंसे निश्चयही प्राणका विनाश होगा इसमें कुछभी

गुरुश्चगुरुपुत्रश्चत्वंहिनःकपिसत्तम ॥ भवंतमाश्रित्यवयंसमर्थाह्यर्थसाधने ॥ २७ ॥ उक्तवाक्यंमहाप्राज्ञंजांबवंतंमहाकपिः ॥ प्रत्युवाचोत्तरंवाक्यंवालिसूनुरथांगदः ॥२८॥ यदिनाहंगमिष्यामिनान्योवानरपुंगवः ॥ पुनःखल्विदमस्माभिः कार्यंप्रायोपवेशनम् ॥ २९ ॥ नह्यकृत्वाहरिपतेःसंदेशंतस्यधीमतः ॥ तत्रापिगत्वाप्राणानांनपश्येपरिरक्षणम् ॥ ३० ॥ सहिप्रसादेचात्यर्थंकोपेचहरिरीश्वरः ॥ अतीत्यतस्यसंदेशंविनाशोगमनेभवेत् ॥ ३१ ॥ तत्तथाह्यस्यकार्यस्यनभवत्यन्यथागतिः ॥ तद्भवानेवदृष्टार्थःसंचिंतयितुमर्हति ॥ ३२ ॥ सोंगदेनतदावीरःप्रत्युक्तःप्लवगर्षभः ॥ जांबवानुत्तमंवाक्यंप्रोवाचेदंततोंगदम् ॥ ३३ ॥ तस्यतेवीरकार्यस्यनकिंचित्परिहास्यते ॥ एषसंचोदयाम्येनंयःकार्यंसाधयिष्यति ॥ ३४ ॥ ततःप्रतीतंप्लवतांवरिष्ठमेकांतमाश्रित्यसुखोपविष्टम् ॥ संचोदयामासहरिप्रवीरोहरिप्रवीरंहनुमंतमेव ॥ ३५ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवा०आ०किष्किंधाकांडेपंचषष्टितमःसर्गः ॥ ६५ ॥ ॥ ॥ ७ ॥

सन्देह नहींहै ॥ ३१ ॥ इसलिये आप तत्त्वदर्शी समस्त वानर लोग ऐसा कुछ विचार कीजिये कि जिस्से सुग्रीवजीका कहा जानकीजीका दर्शन रूप कार्य अवश्यही होजाय ॥३२॥ तब कपिवीर जाम्बवान्जी अंगदजी करके इस प्रकार कहे जाकर उनको उत्तर देते हुये ॥ ३३ ॥ हे वीर! उस कार्यके अनुष्ठानमें कुछ भी कसर नहीं होगी जो कि इस कार्यको पूरा करेगा सो यह देखो हम उसको भेजतेहैं॥३४॥तिसके पीछे कपिवर जाम्बवान् वानरगणोंमें श्रेष्ठ एकान्त -स्थानमें चुपचाप सुखसे बैठे हुए हनुमानजीसे बोले॥ ३५ ॥ इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०कि०पंचषष्टितमःसर्गः ॥ ६५ ॥

जव सम्पाति स्नान और अपने भाईकी जलक्रिया करके बैठ गया तव वानर लोग भी रमणीक पर्वत पर उसको घेरकर बैठ गये ॥ १ ॥ समस्त वानरोंके साथ अंगदजी के समीप बैठा हुआ सम्पाति पंखोंके उपजने का हेतु निशाकर मुनिजीके वचनोंका विश्वास कर फिर हर्षित हो कहने लगा ॥ २ ॥ हे समस्त वानरो! तुम लोग चुपचाप रहकर ध्यान देकर सुनो हमनें उन जानकीजीको जिस प्रकारसे जाना है उसका सव वृत्तान्त ठीक २ कहते हैं ॥ ३ ॥ हे वानरो! पहले जव सूर्य नारायणकी किरणोंसे हमारे पंख जलगये और जव हम अति तापितअंग होकर इस विन्ध्याचल पर्वतकी चोटी पर गिरे ॥ ४ ॥ छे रात्रि तक विह्वल और अचेत पडेरहकर फिर कहीं हमें चेतना आई तव हम दशो दिशा ओंकी ओरको

ततःकृतोदकंस्नाततंगृध्रंहरियूथपाः ॥ उपविष्टागिरौरम्येपरिवार्यसमंततः ॥ १ ॥ तमंगदमुपासीनंतैःसर्वैर्हरिभिर्वृतम् ॥ जनितप्रत्ययोहर्षात्संपातिःपुनरब्रवीत् ॥ २ ॥ कृत्वानिःशब्दमेकाग्राःशृण्वंतुहरयोमम ॥ तथ्यंसंकीर्तयिष्यामियथाजानामिमैथिलीम् ॥ ३ ॥ अस्यविंध्यस्यशिखरेपतितोऽस्मिपुरानघ ॥ सूर्यतापपरीतांगोनिर्दग्धःसूर्यरश्मिभिः ॥ ४ ॥ लब्धसंज्ञस्तुषड्रात्राद्विवशोविह्वलन्निव ॥ वीक्षमाणोदिशः सर्वानाभिजानामिकिंचन ॥ ५ ॥ ततस्तुसागरान्शैलान्नदीःसर्वाःसरांसिच ॥ वनानिचप्रदेशांश्चनिरीक्ष्यमतिरागता ॥ ६ ॥ हृष्टपक्षिगणाकीर्णःकंदरोदरकूटवान् ॥ दक्षिणस्योदधेस्तीरेविंध्योऽयमितिनिश्चितः ॥ ७ ॥ आसीच्चात्राश्रमंपुण्यंसुरैरपिसुपूजितम् ॥ ऋषिर्निशाकरोनामयस्मिन्नुग्रतपाभवत् ॥ ८ ॥ अष्टौवर्षसहस्राणितेनास्मिन्नृषिणागिरौ ॥ वसतोममधर्मज्ञेस्वर्गतेतुनिशाकरे ॥ ९ ॥ अवतीर्यचविंध्याग्रात्कृच्छ्रेणविषमाच्छनैः ॥ तीक्ष्णदर्भांवसुमतींदुःखेनपुनरागतः ॥ १० ॥

देखने लगे परन्तु कहीं भी कुछ दृष्टि न आया ॥ ५ ॥ फिर सागर, नदी पर्वत,सरोवर और वनादिकोंका दर्शन करते २हमारे बुद्धि आई और स्थिर हुई ॥ ६ ॥ तव कहीं हमने जानाकि शिखर युक्त और अनेक कन्दरावाले हृष्ट पुष्ट पक्षियोंसे परिपूर्ण विन्ध्याचल पर्वतके दक्षिण समुद्रके किनारे हम पडे हैं ॥७॥ उस स्थानमें देवताओंसे पूजित येक आश्रमथा उस आश्रममें निशाकर नामक उग्र तप करनें वाले येक ऋषि वास करतेथे ॥८॥ उन ऋषिके साथ आठ हजार वर्ष हमने इस पर्वतपर वास किया फिर वह धर्मात्मा निशाकरमुनिजी स्वर्गको चले गये ॥ ९ ॥ वह धर्मात्मा ऋषि

रूप यौवनसम्पन्न हुई ॥ १० ॥ रेशमीन वस्त्र पहरे विचित्र माला और गहने पहने हुये एक दिन वह कामनी वर्षाकालके मेघकी समान पर्वतके
शिखर पर विहार करतीथी ॥ ११ ॥ पवन देवतानें उस पर्वतके अग्रभागमें बैठी हुई विशालाक्षीका अरुण अंचलका सूक्ष्म मनोहर वस्त्र
उठा लिया ॥ १२ ॥ फिर पवनदेवतानें उसकी सुगोल चढा उतारवाली दोनों ऊरु, ऊंचे २ दोनों पयोधर और सुशोभित मनोहर मुख
देखा ॥ १३ ॥ तिस वृत्तानितम्बिनी, पतली कमर वाली शुभ सर्वाङ्गी परमयशस्विनीको देखतेही पवनदेव कामसे मोहित होगये ॥ १४ ॥ काम
देवसे सब अंग मथित होनेंके कारण उस निन्दा रहित स्त्रीमें लीनहो पवनदेवजीनें उसको अपनी लंबी भुजाओंसे पकड़ भली भांतिसे

विचित्रमाल्याभरणाकदाचित्क्षौमधारिणी ॥ अचरत्पर्वतस्याग्रेप्रावृडंबुदसंनिभे ॥ ११ ॥ तस्यावस्त्रंविशालाक्ष्याः
पीतंरक्तदशंशुभम् ॥ स्थितायाःपर्वतस्याग्रेमारुतोपहरच्छनैः ॥ १२ ॥ सददर्शततस्तस्यावृत्तावूरूसुसंहतौ ॥ स्तनौ
चपीनौसहितौसुजातंचारुचाननम् ॥ १३ ॥ तांबलादायतश्रोणींतनुमध्यांयशस्विनीम् ॥ दृष्ट्वैवशुभसर्वांगींपवनः
काममोहितः ॥ १४ ॥ सतांभुजाभ्यांदीर्घाभ्यांपर्यष्वजतमारुतः ॥ मन्मथाविष्टसर्वांगोगतात्मातामनिंदिताम्
॥ १५ ॥सातुतत्रैवसंभ्रांतासुव्रतावाक्यमब्रवीत् ॥ एकपत्नीव्रतमिदंकोनाशयितुमिच्छति ॥ १६ ॥ अंजनायावचः
श्रुत्वामारुतःप्रत्यभाषत ॥ नत्वांहिंसामिसुश्रोणिमाभूत्तेमनसोभयम् ॥ १७ ॥ मनसाऽस्मिगतोयत्त्वांपरिष्वज्ययश
स्विनि ॥ वीर्यवान्बुद्धिसंपन्नस्तवपुत्रोभविष्यति ॥ १८ ॥ महासत्त्वोमहातेजामहाबलपराक्रमः ॥ लंघनेप्लवनेचैवभ
विष्यतिमयासमः ॥ १९ ॥ एवमुक्ताततस्तुष्टाजननीतेमहाकपे ॥ गुहायांत्वांमहाबाहोप्रजज्ञेप्लवगर्षभ ॥ २० ॥

भेंटा ॥ १५ ॥ तब उस साधु चरित्रवाली स्त्रीनें सावधान होकर कहाकि कौन हमारा पातिव्रत्य भंग करताहै १६ ॥ तब अंजनाके वचन
सुनकर पवनदेव बोले कि हेश्रेष्ठनितम्बो वाली! हमनें तुम्हारा व्रत भंग नहीं कियाहै; तुम कुछ भय न करो ॥ १७ ॥ हे यशस्विनी! हम तुमको
आलिंगन करके मनहीसे तुम्हारे पर अनुरागी हुयेहैं; इसलिये व्रत भंग नहोकर तुम्हारे वीर्यवान बुद्धि सम्पन्न पुत्र उत्पन्न होगा॥१८॥वह पुत्र महास
त्त्व,महातेजवान, महाबलवान,पराक्रमी होगा और लांघनें कूदनेमेंभी हमारेही समान होगा॥ १९ ॥ हे कपीन्द्र! पवनजीके यह वचन सुनकर तुम्हारी

समान वेगवाले गृध्रोंके राजा कामरूपी दो भ्राता गृध्रोंको देखाथा॥१९॥ हेसम्पाते ! उनमें तुम बडे और जटायु तुम्हारा छोटा भाई है; तुम लोगोंनें प्रथम मनुष्यका शरीर धारण करकै कई वार हमारे चरण पकड लियेथे यह हमें सबही ज्ञातहै॥२०॥तुम्हें कौनसे रोगनें आकर घेर लिया? दोनों पंख कैसे गिर पडे? अथवा किसीनें तुमको यह दंड दियाहै, सो हम पूछतेहैं यह सब वृत्तान्त ठीकर हमको बतलाओ ॥ २१॥ इत्यार्षे श्रीम०वा० आ०कि०षष्टितमः सर्गः ॥६०॥मुनिजीके पूछे जानेंपर सम्पातिनें जो सूर्य भगवानके निकट पहुँचनेंका दारुण कठिन कर्म किया, वह उस समस्त वृत्तान्तको कहनें लगा॥१॥हे भगवन्! हमारे शरीरमें बडे२घाव होजानेंके कारण लज्जाके मारे व्याकुलेन्द्रिय और थकित होनेंसे बोलनेंकी शक्ति हम

ज्येष्ठोऽवितस्त्वंसंपातेजटायुरनुजस्तव ॥ मानुषंरूपमास्थायगृह्णीतांचरणौमम ॥ २० ॥किंतेव्याधिसमुत्थानंपक्षयोः पतनंकथम् ॥ दंडोवाऽयंधृतःकेनसर्वमाख्याहिपृच्छतः ॥ २१ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०कि०षष्टितमःसर्गः ॥६०॥
ततस्तद्दारुणंकर्मदुष्करंसहसाकृतम् ॥ आचचक्षेमुनेःसर्वंसूर्यानुगमनंतथा॥ १ ॥ भगवन्व्रणयुक्तत्वाल्लज्जयाचाकुलेंद्रियः ॥ परिश्रांतोनशक्नोमिवचनंपरिभाषितुम् ॥ २ ॥ अहंचैवजटायुश्चसंघर्षाद्दर्पमोहितौ ॥ आकाशंपतितौदूराज्जिज्ञासंतौपराक्रमम् ॥ ३ ॥ कैलासशिखरेबद्ध्वामुनीनामग्रतःपणम् ॥ रविःस्यादनुयातव्योयावदस्तंमहागिरिम् ॥ ४ ॥ अप्यावांयुगपत्प्राप्तावपश्यावमहीतले ॥ रथचक्रप्रमाणानिनगराणिपृथक्पृथक् ॥ ५ ॥ क्वचिद्वादित्रघोषश्चक्वचिद्भूषणनिःस्वनः ॥ गायंतीःस्मांगनाबह्वीःपश्यावोरक्तवाससः ॥ ६ ॥

में नहीं रहीहै॥२॥हम और जटायु दोनों उडानके विषयमें गर्वकर और इन्द्रियोंके जय गर्वसे मोहित हो परस्पर पराक्रम दिखा जयकी कामना कर आकाश मार्गमें उडे॥३॥ कैलासपर्वतके शिखरपर मुनिजनोंके सामने हम यह दावँ लगाकर उडे कि जबतक सूर्य अस्त होवैं तब तक उनको छूकर फिर पृथ्वीमें चले आना चाहिये ॥ ४ ॥ हम उस समय ऊपर उडकर पृथ्वीमें नगरोंको इस प्रकारसे देखनें लगे मानों [illegible] लग २ रथके पहियेहैं ॥ ५ ॥ कहीं बाजोंका शब्द कहीं गहनोंकी झनकारका शब्द सुनते हुए कहीं अनेक गानेंवाली लाल वस्त्र धारण कि[illegible] हुई स्त्रियोंको देखनें लगे ॥ ६ ॥

करैगा तबही इसकी मृत्यु होगी; इस प्रकारसे तुम केशरी वानरके भयंकर विक्रमकारी क्षेत्रज पुत्र हुएहो ॥ २९ ॥ तुम मारुतके औरस पुत्रहो तेजमेंभी उनके समान और कूदनें फांदनेंमेंभी उनके ही समान हो ॥३०॥ हम इस समय हीन बल और हीन वीर्य होगयेहैं, सो इस समय चतुर और विक्रम युक्त तुम हमारे निकट दूसरे कपिराज सुग्रीवजीकी समान विद्यमान हो ॥ ३१ ॥ हे वत्स! जब वामनजीनें राजा बलिको छलकर तीन चरणसे तीनों लोक नाप लियेथे, तौ उस समय हमनें शैल, वन, काननसहित इस पृथ्वीकी इक्कीसवार प्रदक्षिणा कीथी ॥३२॥ जब देवताओंकी आज्ञासे हमनें जिनको मथनेसे अमृत निकलताहै, उन सब औषधियोंकासंग्रह कियाथा उस समय हमारे शरीरमें बड़ाबलथा ॥३३॥ सो वही इस

मारुतस्यौरसःपुत्रस्तेजसाचापितत्समः ॥ त्वंहिवायुसुतोवत्सप्लवेनचापितत्समः ॥ ३० ॥ वयमद्यगतप्राणाभवा
न्स्मासुसांप्रतम् ॥ दाक्ष्यविक्रमसंपन्नःकपिराजइवापरः ॥ ३१ ॥ त्रिविक्रमेमयातातसशैलवनकानना ॥ त्रिः
सप्तकृत्वःपृथिवीपरिक्रांताप्रदक्षिणम् ॥ ३२ ॥ तदाचौषधयोऽस्माभिःसंचितादेवशासनात् ॥ निर्मथ्यममृतं
याभिस्तदानींनोमहद्बलम् ॥ ३३ ॥ सइदानीमहंवृद्धःपरिहीनपराक्रमः ॥ सांप्रतंकालमस्माकंभवान्सर्वगुणान्वि
तः ॥ ३४ ॥ तद्विजृंभस्वविक्रांतप्लवतामुत्तमोह्यसि ॥ त्वद्वीर्यंद्रष्टुकामाहिसर्वावानरवाहिनी ॥ ३५ ॥ उत्तिष्ठह
रिशार्दूललंघयस्वमहार्णवम् ॥ पराहिसर्वभूतानांहनुमन्यागतिस्तव ॥ ३६ ॥ विषण्णाहरयःसर्वेहनुमन्किमुपेक्षसे ॥
विक्रमस्वमहावेगविष्णुस्त्रीन्विक्रमानिव ॥ ३७ ॥

समय हम अतिशय वृद्धहैं; इसलिये अत्यन्त हीनबल और विक्रमरहित होगयेहैं; इस समय तुमही हम सबके मध्यमें सर्व गुणवान् ॥ ३४ ॥ विक्रम करने, और उछलनें कूदनेंमें सर्वश्रेष्ठहो, इसलिये तुम तैयार होवो; यह वानरोंकी सैना तुम्हारे बल वीर्य देखनेंका अभिलाष करतीहै ॥ ३५ ॥ इसलिये हे वानरश्रेष्ठ! उठकर महा समुद्रको नांघ जाओ हनुमन्! तुम्हारा लंकामें जाना सर्व जीवोंका भी हितकारीहै इसमें कुछ संदेह नहीं ॥ ३६ ॥ हे वानरश्रेष्ठ! हनुमन् सब वानर गण शोकाकुल होगये हैं अब क्यों देर करते हो जैसे विष्णुजीनें त्रिविक्रमरूप धराथा

हम राज्यहीन, भ्राताहीन, पंखहीन और विक्रमहीन हो गये हैं, सो अब इस पर्वतके शिखरपरसे गिरकर अपने प्राण त्याग करेंगे यह हमारी इच्छा है॥१७॥ इ० श्री० वाल्मीकीये आदिकाव्ये कि०एकषष्टितमः सर्गः॥ ६१ ॥ हम अत्यन्त दुःखित हो मुनिश्रेष्ठ निशाकरजीसे इस प्रकार कह रोनें लगे तब महर्षिजी एक मुहूर्त्ततक ध्यान धरकर बोले॥१॥तुम्हारे दोनों पंख व दूसरे पंख दो चक्र फिर जम आवेंगे और प्राण, विक्रम, बलभी तुममें वैसाही होजायगा॥ २॥ हमनें पुराणोंमें सुनाहै, और तपके बलसे जानाभीहै कि आगेको एक बडी भारी घटना होगी॥ ३ ॥ इक्ष्वाकुकुलके

राज्याच्चहीनोभ्रात्राचपक्षाभ्यांविक्रमेणच ॥ सर्वथामर्तुमेवेच्छन्पतिष्येशिखराद्गिरेः॥ १७ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा० आ०कि०एकषष्टितमःसर्गः॥ ६१ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥एवमुक्त्वामुनिश्रेष्ठमरुदंभृशदुःखितः ॥ अथध्यात्वामुहूर्तंचभगवानिदमब्रवीत् ॥ १ ॥ पक्षौचतेप्रपक्षौचपुनरन्यौभविष्यतः ॥ चक्षुषीचैवप्राणाश्चविक्रमश्चबलंचते ॥ २ ॥पुराणेसुमहत्कार्यंभविष्यंहिमयाश्रुतम् ॥ दृष्टंमेतपसाचैवश्रुत्वाचविदितंमम ॥ ३ ॥ राजादशरथोनामकश्चिदिक्ष्वाकुवर्धनः ॥ तस्यपुत्रोमहातेजारामोनामभविष्यति॥ ४॥ अरण्यंचसहभ्रात्रालक्ष्मणेनगमिष्यति ॥ तस्मिन्नर्थेनियुक्तःसन्पित्रासत्यपराक्रमः ॥ ५॥ नैर्ऋतोरावणोनामतस्यभार्यांहरिष्यति॥ राक्षसेंद्रोजनस्थानेअवध्यःसुरदानवैः॥६॥ साचकामैःप्रलोभ्यंतीभक्ष्यैर्भोज्यैश्चमैथिली ॥ नभोक्ष्यतिमहाभागादुःखमग्नायशस्विनी ॥ ७ ॥ परमान्नंचवैदेह्याज्ञात्वादास्यतिवासवः॥ यदन्नममृतप्रख्यंसुराणामपिदुर्लभम् ॥ ८ ॥

बढानेंवाले एक दशरथ राजा और राम नामक उनके एक महा तेजवान पुत्र होंगे॥ ४ ॥ वह सत्यपराक्रम श्रीरामचंद्रजी अपने पिताकी आज्ञासे अपने छोटे भाई सहित बनको जांयगे॥ ५ ॥ रावण नामक राक्षस उनकी भार्याको हरण करैगा, वह रावण जनस्थानवासी समस्त देव और दानवोंसे अवध्य होगा॥ ६ ॥ उन सीताजीको रावण अनेक प्रकारकी भोज्य,भक्ष्य और भोग वस्तुओंसे ललचावैगा परन्तु वह महाभागा दृढव्रत धारण करनेंवाली दुःखसे ग्रसीहुई सीताजी किसीको ग्रहण या कार्यमें नहीं लावेंगी॥ ७॥ देवराज इन्द्रजी यह वृत्तान्त जानकर उनको अमृत

रहित अग्निकी समान शोभा पानें लगे ॥ ७ ॥ उनके रोम फूल गये तब हनुमान्‌जी वानरोंके बीचमेंसे उठे और वृद्ध कपियोंको प्रणाम करकै कहनें लगे ॥ ८ ॥ आकाशमें टिके हुये बलवान अनुपम अग्निके सखा पवनजी पर्वतोंके अग्रभागको तोड डालते हैं ॥ ९ ॥ हम उन्हीं महात्मा शीघ्रगामी पवनजीके औरस पुत्र हैं और कूदनें फांदनेंमें उनकी ही समान हैं ॥ १० ॥ हम विस्तारित आकाशको छूनें वाले, मेरु पर्वतकी विना विश्रामकिये हुये सहस्र परिक्रमाकर सकते हैं॥११॥और हम अपनी बाहोंके वेगसे चलायमान किये हुये समुद्रके द्वारा, पर्वत, कुण्ड और नदी सहित समस्त लोकोंके डुबानेंको समर्थ हैं॥१२॥हमारी ऊरु और जांघोंके वेगसे वरुणालय समुद्र उफन जायगा और उसमेंके टिके हुये ग्राहादि

हरीणामुत्थितोमध्यात्संप्रहृष्टतनूरुहः ॥ अभिवाद्यहरीन्वृद्धान्हनूमानिदमब्रवीत् ॥ ८ ॥आरुजन्पर्वताग्राणिहुताशनसखोऽनिलः॥बलवानप्रमेयश्चवायुराकाशगोचरः ॥ ९ ॥ तस्याहंशीघ्रवेगस्यशीघ्रगस्यमहात्मनः॥मारुतस्यौरसःपुत्रः प्लवनेनास्मितत्समः ॥ १० ॥ उत्सहेयंहिविस्तीर्णमालिखंतमिवांबरम् ॥ मेरुंगिरिमसंगेनपरिगंतुंसहस्रशः ॥ ११ ॥ बाहुवेगप्रणुन्नेनसागरेणाहमुत्सहे ॥ समाप्लावयितुंलोकंसपर्वतनदीह्रदम् ॥ १२ ॥ ममोरुजंघावेगेनभविष्यतिसमुत्थितः ॥ समुत्थितमहाग्राहःसमुद्रोवरुणालयः ॥ १३ ॥ पन्नगाशनमाकाशेतपंतंपक्षिसेवितम् ॥ वैनतेयमहंशक्तः परिगंतुंसहस्रशः ॥ १४ ॥ उदयात्प्रस्थितंवापिज्वलंतंरश्मिमालिनम् ॥ अनस्तमितमादित्यमहंगंतुंसमुत्सहे ॥ १५ ॥ ततोभूमिमसंस्पृष्ट्वापुनरागंतुमुत्सहे ॥ प्रवेगेनैवमहताभीमेनप्लवगर्षभाः ॥ १६ ॥ उत्सहेयमतिक्रांतुंसर्वानाकाशगोचरान् ॥ सागरान्शोषयिष्यामिदारयिष्यामिमेदिनीम् ॥ १७ ॥

जन्तु गण ऊपर तैर आवेंगे॥ १३ ॥पक्षियोंके कुलसे सेवित सर्पोंको भोजन करनेंवाले गरुडजी जिस समयमें जितनी दूर जाय सकते हैं हम उतनी ही देरमें उनसे हजार गुण मार्ग चल सकतेहैं॥१४॥और उदयाचल पर्वतसे चले हुये प्रज्वलित किरणवाले सूर्य नारायणके निकट गमन करनेंको हम समर्थ हैं और अस्त होनेंसे प्रथम हम उनके आगे जा सकतेहैं ॥ १५ ॥ फिर पृथ्वीतक आकर उसकों विनाही छुये अति भीम वेगसे सूर्यके निकट जासकते हैं फिर सौ योजनका जाना क्या बडी बातहै? ॥ १६ ॥ हम समस्त आकाशचारी ग्रह- नक्षत्रादिकोंको लांघजांय समुद्रको

प्रशंसाकर और हमको आज्ञादे अपने आश्रममें चलेगये ॥ १ ॥ हम उस पर्वतकी कन्दरासे धीरे २ सरककर विन्ध्याचल पर्वतपर आयकर तुम्हारे आनेंकी राह परख रहेथे ॥ २ ॥ जब उन मुनिजीनें हमसे ऐसा कहाथा तबसे लेकर समय धरनेंसे इस समय शत * वर्षसेभी कुछ अधिक बीत गयेहैं हम उन मुनिका वचन हृदयमें धारण कर देशकालको परख रहेहैं ॥ ३ ॥ महायात्राको प्राप्तकर महर्षि निशाकर जब स्वर्गको चले गये तब हम बहुत तर्क करके अत्यन्त संतापित हुये ॥ ४ ॥ हमारी रक्षा करनेंके लिये मुनिवरनें जो बुद्धि हमको दीथी, उसके अनुसार मरण बुद्धि हमनें छोड़दी॥ ५॥जैसे अग्निकी शिखा अन्धकारका नाश कर देतीहै ऐसेही उस बुद्धिनें हमारे संतापका नाश करदिया दुरात्मा रावणके बलको

कंदरात्तुविसर्पित्वापर्वतस्यशनैःशनैः ॥ अहंविंध्यंसमारुह्यभवतःप्रतिपालये ॥ २ ॥ अद्यत्वेतस्यकालस्यवर्षंसाग्रश तंगतम् ॥ देशकालप्रतीक्षोऽस्मिहृदिकृत्वामुनेर्वचः ॥ ३ ॥ महाप्रस्थानमासाद्यस्वर्गतेतुनिशाकरे ॥ मांनिर्दहतिसं तापोवितर्कैर्बहुभिर्वृतम् ॥ ४ ॥ उदितांमरणेबुद्धिंमुनिवाक्यैर्निवर्तये ॥ बुद्धिर्यातेनमेदत्ताप्राणानांरक्षणेमम ॥ ५ ॥ सामेपनयतेदुःखंदीप्तेवाग्निशिखातमः ॥ बुध्यताचमयावीर्यंरावणस्यदुरात्मनः ॥ ६ ॥ पुत्रःसंतर्जितोवाग्भिर्नत्राताम‍ैथिलीकथम् ॥ तस्याविलपितंश्रुत्वातौचसीतावियोजितौ ॥ ७ ॥ नमेदशरथस्नेहात्पुत्रेणोत्पादितंप्रियम् ॥ तस्यत्वेवंब्रुवाणस्यसंहतैर्वानरैःसह ॥ ८ ॥ उत्पेततुस्तदापक्षौसमक्षंवनचारिणाम् ॥ सदृष्ट्वास्वांतनुंपक्षैरुद्गतैररुणच्छदैः ॥ ९ ॥

अपने पुत्रके बलसे थोडाजान ॥ ६ ॥ हमनें अपनें पुत्रको फटकारा और कहाकि तैंनें सीताका विलाप सुन; और राम लक्ष्मणको सीतासे वियोगित सुन क्योंनहीं उनका उद्धार किया? तब उसनें कहा कि प्रथम हमनें उनको जानकी यह जानाही नहीं, जब वह चली गई तब सिद्ध लोगोंक मुखसे सुनाकि यह सीताजीथीं ॥ ७ ॥ इसीलिये दशरथजीके पुत्रका प्रिय कार्य मुझसे नहीं होसका, क्योंकि पुत्रनें वह श्रम न किया, जबकि सम्पाति वानरोंके साथ इस प्रकार वार्त्ता कह रहाथा ॥ ८ ॥कि वानरोंके सामनेही उसके दोनों पंख जम आये वह अपनी देहमें अरु

* यह शतशब्द बहुवाचीहै प्राचीनोनें कहाहै आठ हजारसे कुछ अधिक वर्ष वीतगये.

लोक नांपेथे, हमारी गति और हमारा रूप वैसाही हो जायगा ॥ २५ ॥ हम अपनी बुद्धिसे देख रहेहैं, कि हमारी चेष्टा ऐसी होतीहै कि हम जान कीको देखेंगे। इसलिये हे वानरगण! तुमलोग इस समय आनंद मचाओ॥२६॥हमारे मनमें ऐसा विचार होताहै कि इस समय वेगमें पवन और गरुड जीके तुल्य होकर दशहजार योजन निराधारकोभी हम सरलतासे फलांगजांयगे ॥ २७ ॥ हम वज्रधारी इन्द्रजी, और स्वयंभू ब्रह्माजीके हाथसेभी एकाएकी विक्रम सहित छलांग मारकर अमृत लाय सकतेहैं ॥ २८ ॥ हम समझते हैं कि यदि हम चाहें तो लंकापुरीको उखाडकरभी यहां ले आसकते हैं, अमित प्रभावाले वानरश्रेष्ठ हनुमानजी ऐसा कहकर बहुत गर्जे ॥ २९ ॥ तब सब वानर गण हर्षित और विस्मितहो उनको

बुद्ध्याचाहंप्रपश्यामिमनश्चेष्टाचमेतथा ॥ अहंद्रक्ष्यामिवैदेहींप्रमोदध्वंपवंगमाः ॥ २६ ॥ मारुतस्यसमोवेगेगरुडस्य समोजवे ॥ अयुतंयोजनानांतुगमिष्यामीतिमेमतिः ॥ २७॥ वासवस्यसवज्रस्यब्रह्मणोवास्वयंभुवः ॥ विक्रम्यसहसा हस्तादमृतंतदिहानये ॥२८॥ लंकांवापिसमुत्क्षिप्यगच्छेयमितिमेमतिः ॥ तमेवंवानरश्रेष्ठंगर्जंतममितप्रभम् ॥२९॥ प्रहृष्टाहरयस्तत्रसमुदैक्षंतविस्मिताः ॥ तच्चास्यवचनंश्रुत्वाज्ञातीनांशोकनाशनम् ॥ ३० ॥ उवाचपरिसंहृष्टोजांब वान्प्लवगेश्वरः ॥ वीरकेसरिणःपुत्रवेगवान्मारुतात्मज ॥ ३१ ॥ ज्ञातीनांविपुलःशोकस्त्वयातातप्रणाशितः ॥ तव कल्याणरुचयःकपिमुख्याःसमागताः ॥ ३२ ॥ मंगलान्यर्थसिद्ध्यर्थंकरिष्यंतिसमाहिताः ॥ ऋषीणांचप्रसादेनक पिवृद्धमतेनच ॥ ३३ ॥ गुरूणांचप्रसादेनसंप्लवत्वंमहार्णवम् ॥ स्थास्यामश्चैकपादेनयावदागमनंतव ॥ ३४ ॥

देखनें लगे। जातिके शोकका नाश करनेंवाले हनुमानजीके ऐसे वचन सुनकर ॥ ३० ॥ कपीश्वर जाम्बवान वेगवान उन पवनात्मज केशरी पुत्र वीर हनुमानजीसे बोले ॥ ३१ ॥ हेतात! तुमनें अपनी जाति वालोंका विपुल शोक नाश कर दियाहै, तुम्हारी कल्याणकी इच्छासे यह सब वा नर यहां आयकर ॥ ३२ ॥ समस्त तुम्हारी यात्राके समय अर्थ सिद्ध होनेंके लिये मंगल कीर्त्तन करेंगे अब तुम वृद्ध कपि गणोंके मतसे और ऋ षियोंकी प्रसन्नतासे॥३३॥और गुरुगणोंके प्रसादसे महा समुद्रके पार जाओ हम सब वानर तुम्हारे आनेंके समयतक एक चरणसे खडे रहकर [illegible]

भयंकर विक्रमकारी वानरलोग समुद्रके किनारे आये, वहां उन्होंने चन्द्र सूर्य समन्वित जिसमें सब लोकोंका प्रतिबिम्ब पडताथा ऐसा समुद्र देखा ॥ ३ ॥ महा बलवान् वानरवीरोंने दक्षिण समुद्रके उत्तर किनारे पर प्राप्त होकर उस स्थानमेंही सेनाको टिकाया ॥ ४ ॥ यह समुद्र किसी स्थानमें निद्रितकी नांई स्थितथा, कहीं बालकोंकी समान अपनी वडी तरंगोंसे खेल रहाथा, कहीं २ पर्वताकार जलराशिसे घिरा हुआथा ॥ ५ ॥ कपिवीरगण, पातालवासी दानवेन्द्रोंसे व्याप्त रोमहर्षणकारी समुद्र देखकर वडे विषादको प्राप्त हुए ॥ ६ ॥ वानरगण आकाशकी समान पार जानेंके अयोग्य समुद्रको देखकर 'किस प्रकार कार्यकी सिद्धि होगी किस प्रकार इसके पार जाँयग' आपसमें यह कहकर वडे व्याकुल हुए ॥७॥

अभिगम्यतुतंदेशंददृशुर्भीमविक्रमाः ॥ कृत्स्नंलोकस्यमहतःप्रतिबिंबमवस्थितम् ॥ ३ ॥ दक्षिणस्यसमुद्रस्य समासाद्योत्तरांदिशम् ॥ सन्निवेशंततश्चक्रुर्हरिवीरामहाबलाः ॥ ४ ॥ प्रसुप्तमिवचान्यत्रक्रीडंतमिवचान्यतः ॥ क्वचित्पर्वतमात्रैश्चजलराशिभिरावृतम् ॥ ५ ॥ संकुलंदानवेंद्रैश्चपातालतलवासिभिः ॥ रोमहर्षकरंदृष्ट्वाविषेदुः कपिकुंजराः ॥ ६ ॥ आकाशमिवदुष्पारंसागरंप्रेक्ष्यवानराः ॥ विषेदुःसहिताःसर्वेकथंकार्यमितिब्रुवन् ॥ ७ ॥ विषण्णांवाहिनींदृष्ट्वासागरस्यनिरीक्षणात् ॥ आश्वासयामासहरीन्भयार्तान्हरिसत्तमः ॥ ८ ॥ नविषादेमनःकार्यं विषादोदोषवत्तरः ॥ विषादोहंतिपुरुषंबालंक्रुद्धइवोरगः ॥ ९ ॥ योविषादंप्रसहतेविक्रमेसमुपस्थिते ॥ तेजसातस्यहीनस्यपुरुषार्थोनसिध्यति ॥ १० ॥ तस्यांरात्र्यांव्यतीतायामंगदोवानरैःसह ॥ हरिवृद्धैःसमागम्यपुनर्मंत्रममंत्रयत् ॥ ११ ॥ सावानराणांध्वजिनीपरिवार्यांगदंबभौ ॥ वासवंपरिवार्येवमरुतांवाहिनीस्थितम् ॥ १२ ॥

वानरश्रेष्ठ अंगदजी सब वानरोंको समुद्रके देखनेंसे भयभीत समझ समझा बुझाकर कहनें लगे ॥ ८ ॥ तुम लोग विषाद न करो क्योंकि शोकमें मग्न होना अत्यन्त दोषका विषयहै क्रोधित विषैला सांप जिस प्रकार बालकोंको मार डालताहै इसी प्रकार शोकभी पुरुषको संहार करताहै ॥९॥ विक्रम प्रगट करनेंका अवसर आनेंपर जो पुरुष शोक किया करतेहैं, वह तेजहीन होजाते और उनका कार्य कभी सिद्ध नहीं होता ॥ १० ॥ इस प्रकार कहते २ रात्रि वीतगई, तब युवराज अंगदजी वृद्ध वानरोंके साथमिलकर सलाह करनें लगे ॥ ११ ॥ देवताओंकी सैना जिस प्रकार इ

जब हनुमानजीनें कूदनेंके लिये उस पर्वतको अजमाया तब उस पर्वतकी शिलाओंके टूट २ कर गिरनेंसे सब झरनें नष्ट होनेंलगे । उस पर्वतके मृग और हाथी त्रासित होगये और बडे २ वृक्ष कांपनें लगे ॥४४॥ मदिरा पीनेंके संसर्गसे रतिमें अत्यन्त आसक्त बहुत सारे गन्धर्वोंके जोडे, और विद्याधर और उडनेवाले पक्षियोंने इस पर्वतके कँगूरोंका त्याग किया॥४५॥वहांके सर्पभी उस महागिरिको छोड२भागकर चले, और उस महेंद्र पर्वतके बहुत सारे शृङ्गभी गिरपडे॥ ४६ ॥ उस समय सर्पगण आधे निकले हुए अपने २ फणोंसे वार २ फुफकार करनें लगे, तब ऐसा ज्ञात हुआ मा

मुमोचसलिलोत्पीडान्विप्रकीर्णशिलोच्चयः ॥ वित्रस्तमृगमातंगःप्रकंपितमहाद्रुमः ॥४४॥ नानागंधर्वमिथुनैःपान संसर्गकर्कशैः ॥ उत्पतद्भिर्विहंगैश्चविद्याधरगणैरपि ॥ ४५ ॥ त्यज्यमानमहासानुःसन्निलीनमहोरगः ॥ शैलशृंग शिलोत्पातस्तदाभूत्समहागिरिः ॥ ४६ ॥ निःश्वसद्भिस्तदातैस्तुभुजगैरर्धनिःसृतैः ॥ सपताकइवाभातिसतदाधरणी धरः ॥ ४७ ॥ ऋषिभिस्त्रासंसंभ्रांतैस्त्यज्यमानःशिलोच्चयः ॥ सीदन्महतिकांतारेसार्थहीनइवाध्वगः ॥ ४८ ॥ सवे गवान्वेगसमाहितात्माहरिप्रवीरःपरवीरहंता॥मनःसमाधायमहानुभावोजगामलंकांमनसामनस्वी ॥४९॥इत्यार्षेश्री मद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेसप्तषष्टितमःसर्गः ॥६७॥छ॥ ॥ इतिकिष्किंधाकांडंसमाप्तम्॥४॥

नों महेन्द्र महीधर पताकाओंसे शोभायमान होरहाहै ॥४७॥ सब ऋषि लोग, अपने झुन्डसे विछुडे यात्रीको समान घबडाय और व्याकुल चित्त हो उस पर्वतकी वडी कन्दराओंका दुःखीहो त्याग करनें लगे ॥ ४८ ॥ वह शत्रुसंहारकारी, वेगवान, मनस्वी, महानुभाव, महात्मा हनुमानजी सागर कूदनेंके लिये वेगयुक्त होनेंके लिये सावधान चित्तहो मनही मनमें लंकापुरीका स्मरण कर मनसेही वहां पहुंचे ॥ ४९ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा०आ०कि०पं०ज्वालाप्रसादमि०भाषानुवादे सप्तषष्टितमःसर्गः ॥ ६७ ॥ ॥छ॥ ॥छ॥ ॥छ॥ ॥छ॥ ॥छ॥

इति किष्किन्धाकाण्डं समाप्तम् ।

जन्म ग्रहण करकै सदाही लोकोंमें पूजे जाते हो ॥ २१ ॥ यदि तुम लोगोंमेंसे कदाचित् कोई शत योजनका समुद्र न लांघ सकताहो,
तब जो जितनी दूर जानेंमें समर्थहै वह हमसे कहो ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीम०वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥
तब मुखिया २ वानरगण अंगदजीके यह वचन सुनकर उत्साहके सहित गतिके विषयमें अपनी २ सामर्थ्य कहने लगे ॥ १ ॥ गज, गवाक्ष, गवय
शरभ, गन्धमादन, मैन्द, द्विविद, अंगद और जाम्बवान् इन वानरोंनें प्रथम कहना आरंभ किया ॥ २ ॥ उनमेंसे प्रथम गजनें कहा कि हम

नहिवोगमनेसंगःकदाचित्कस्यचिद्भवेत् ॥ ब्रुवध्वंयस्ययाशक्तिःप्लवनेप्लवगर्षभाः ॥ २२ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीम०
वा०आ०कि०कां०चतुःषष्टितमःसर्गः ॥ ६४ ॥ ॥छ॥ ॥ अथांगदवचःश्रुत्वातेसर्वेवानरर्षभाः ॥ स्वंस्वंगतःसमु
त्साहमूचुस्तत्रयथाक्रमम् ॥ १ ॥ गजोगवाक्षोगवयःशरभोगंधमादनः ॥ मैंदश्चद्विविदश्चैवअंगदोजांबवांस्तथा ॥ २ ॥
आबभाषेगजस्तत्रप्लवेयंदशयोजनम् ॥ गवाक्षोयोजनान्याहगमिष्यामीतिविंशतिम् ॥ ३ ॥ शरभोवानरस्तत्रवान
रांस्तानुवाचह ॥ त्रिंशतंतुगमिष्यामियोजनानांप्लवंगमाः ॥ ४ ॥ ऋषभोवानरस्तत्रवानरांस्तानुवाचह ॥ चत्वारिं
शद्गमिष्यामियोजनानांनसंशयः ॥ ५ ॥ वानरांस्तुमहातेजाअब्रवीद्गंधमादनः ॥ योजनानांगमिष्यामिपंचाशत्तुन
संशयः ॥ ६ ॥ मैंदस्तुवानरस्तत्रवानरांस्तानुवाचह ॥ योजनानांपरंषष्टिमहंप्लवितुमुत्सहे ॥ ७ ॥ ततस्तत्रमहाते
जाद्विविदःप्रत्यभाषत ॥ गमिष्यामिनसंदेहःसप्ततियोजनान्यहम् ॥ ८ ॥

दशयोजन लांघ जानेंमें समर्थ हैं गवाक्षने कहा हम वीस योजन चलेजायँगे॥३॥तहां शरभ नाम वानर उन वानरोंसे बोला कि हम एक छलांग
में तीस योजन जा सकते हैं ॥ ४ ॥ ऋषभ वानरनें वानरोंसे कहा कि हम येक कुदक्कमें चालीस योजनतक चले जांयगे इसमें कुछभी संदेह
नहीं है ॥ ५ ॥ उनमें महातेजवान गन्धमादन वानरनें कहाकि हम कूदकर येक छलांगमें निःसंशय पचाश योजन तक जायँगे ॥ ६ ॥ मैन्द
नामक वानरनें समस्त वानरोंसे कहाकि हम साठ योजन लाँघनेंको समर्थ हैं ॥ ७ ॥ तब महातेजवान् द्विविदने कहाकि हम सत्तर योजन

इति श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणे भाषाटीकासमेते किष्किन्धाकाण्डं संपूर्णम् ।

कार्यकी सिद्धि नहीं होती ॥ १७ ॥ इसके पीछे महाप्राज्ञ अंगदजी महाकपि जाम्बवानका आदर करते हुए महा अर्थयुक्त वचन बोले॥ १८ ॥हम शतयोजन एक छलांगमें जासकतेहैं,परन्तु इसमें संदेहहै कि लौट सकेंगे अथवा नहीं॥ १९ ॥ वाक्य विशारद जाम्बवान् उन कपिश्रेष्ठ अंगदजीसे बोला,—कपिवर ! तुम्हारी गतिकी शक्तिको हम जानतेहैं, कि तुम जाभी सकतेहो और लौटभी आ सकतेहो ॥ २० ॥ सो इतनीही दूर नहीं वरन सैकड़ों हजारों योजन कूदकर तुम जा सकते और लौटकर आसकतेहो ॥ २१ ॥ परन्तु हे तात ! स्वामी कभी भेजनेंके योग्य नहीं हो सकता, क्योंकि वह सबको प्रिय होताहै आप सबको भेज सकतेहैं । तुम हमारे स्वामीहो, इसलिये अपनी स्त्रीके समान प्रतिपालन करनेंके योग्य

अथोत्तरमुदारार्थमब्रवीदंगदस्तदा ॥ अनुमान्यतदाप्राज्ञोजांबवंतंमहाकपिम् ॥ १८ ॥ अहमेतद्गमिष्यामियोजनानांशतंमहत् ॥ निवर्तनेतुमेशक्तिःस्यान्नवेतिननिश्चितम् ॥ १९ ॥ तमुवाचहरिश्रेष्ठंजांबवान्वाक्यकोविदः ॥ ज्ञायतेगमनेशक्तिस्तवहर्यृक्षसत्तम ॥ २० ॥ कामंशतसहस्रंवानह्येषविधिरुच्यते ॥ योजनानांभवान्शक्तोगंतुंप्रतिनिवर्तितुम् ॥ २१ ॥ नहिप्रेषयितातातस्वामीप्रेष्यःकथंचन ॥ भवतायंजनःसर्वःप्रेष्यःप्लवगसत्तम ॥ २२ ॥ भवान्कलत्रमस्माकंस्वामिभावेव्यवस्थितः ॥ स्वामीकलत्रंसैन्यस्यगतिरेषापरंतप ॥ २३ ॥ अपिवैतस्यकार्यस्यभवान्मूलमरिंदम ॥ तस्मात्कलत्रवत्तातप्रतिपाल्यःसदाभवान् ॥ २४ ॥ मूलमर्थस्यसंरक्ष्यमेषकार्यविदांनयः ॥ मूलेहिसतिसिध्यंतिगुणाःसर्वेफलोदयाः ॥२५॥ तद्भवानस्यकार्यस्यसाधनंसत्यविक्रम ॥ बुद्धिविक्रमसंपन्नोहेतुरत्रपरंतप॥२६॥

हो, अर्थात् तुम्हारे प्राण और बलकी रक्षा करना हम लोगोंका अवश्य कर्त्तव्यहै, तुमको स्वामीभावमें टिककर सैनाको आज्ञा देनीं चाहिये यही लौकिक विधिहै ॥२२॥२३॥ हे शत्रुनाशी ! तुम इस कार्यके मूलहो, इसलिये सबकोही अपनी स्त्रीकी समान तुम्हारी रक्षा करनी उचित है ॥ २४ ॥ कार्यके मूलकी रक्षा करनी चाहिये. यही कार्यवेत्ता लोगोंकी नीतिहै, यदि प्रधान मूल बना रहेगा तो प्रधान फलोदय रूप गुण सिद्ध हो सकताहै ॥ २५ ॥ हे शत्रुओंके तपानेंवाले ! इसलिये सत्य विक्रम और बुद्धिसम्पन्न तुमही इस कार्यके साधन करनेंमें हेतु हो; इसमें कु

बड़ाभारी भृत्यकार्य पूरा कियाहै ॥ ६ ॥ जो सेवक स्वामी करके अति कठिन कार्यमें लगाये जानें परभी उसे मनलगाय कर अनुराग सहित सिद्धकरताहै. पंडित लोग उसको पुरुषोत्तम कहते हैं ॥ ७ ॥ जो सेवक एक कार्यमें नियुक्त होकर प्रभुके हितकारी और दूसरे कार्योंके आजानें पर उन्हें समर्थ होकरभी नहीं करता वह मध्यम पुरुषहै ॥८॥ जो सेवक समर्थ होकर बतलाया हुआ कार्य अतियत्नसे पूरा नहीं करता, वह अधम पुरुष कहा जाताहै ॥ ९ ॥ परन्तु हनुमानजीनें राजाज्ञामें नियुक्तहोकर अपना कर्तव्य कार्य यथावत् पूरा कियाहै. और अधिक करके इन्होंनें अपनी लघुताई न दिखाकर सुग्रीवजीको अत्यन्त सन्तुष्ट कियाहै ॥१०॥ हनुमानजी जानकीजीको देख आये, इस्सेहम और महा बलवान् लक्ष्मण

योहिभृत्योनियुक्तःसन्भर्त्राकर्मणिदुष्करे ॥ कुर्यात्तदनुरागेणतमाहुःपुरुषोत्तमम् ॥ ७ ॥ योनियुक्तःपरंकार्यंनकुर्यान्नृपतेःप्रियम् ॥ भृत्योयुक्तःसमर्थश्चतमाहुर्मध्यमंनरम् ॥ ८ ॥ नियुक्तोनृपतेःकार्यंनकुर्याद्यःसमाहितः ॥ भृत्योयुक्तःसमर्थश्चतमाहुःपुरुषाधमम् ॥ ९ ॥ तन्नियोगेनियुक्तेनकृतकृत्यंहनूमता ॥ नचात्मालघुतांनीतःसुग्रीवश्चापितोषितः ॥ १० ॥ अहंचरघुवंशश्चलक्ष्मणश्चमहाबलः ॥ वैदेह्यादर्शनेनाद्यधर्मतःपरिरक्षिताः ॥ ११ ॥ इदंतुममदीनस्यमनोभूयःप्रकर्षति ॥ यदिहास्यप्रियाख्यातुर्नकुर्मिसदृशंप्रियम् ॥ १२ ॥ एषसर्वस्वभूतस्तुपरिष्वंगोहनूमतः ॥ मयाकालमिमंप्राप्यदत्तस्तस्यमहात्मनः ॥ १३ ॥ इत्युक्त्वाप्रीतिहृष्टांगोरामस्तंपरिषस्वजे ॥ हनूमंतंकृतात्मानंकृतवाक्यमुपागतम् ॥ १४ ॥

व दूसरे रघुवंशियोंनें आत्मघात रूप घोर अधर्मसे रक्षा पाई है, क्योंकि जानकीका समाचार नपानेंसे हम निश्चयही प्राणत्याग न करते, फिर हमारे बिना लक्ष्मण इत्यादि कोईभी प्राण धारण करनेंमें समर्थ नहीं होते ॥ ११ ॥ किन्तु दीन अवस्थामें ऐसे प्यारे संवाद देनेवाले हनुमानका इस कार्यके योग्य हम कुछभी प्रिय नहीं करसकते. यही बात हमारे अंतःकरणको अत्यन्त खेद करा रही है ॥ १२ ॥ जो हो. इस समय हमारा यह लिपटाय कर मिलनाही सर्वस्वदान स्वरूप महात्मा हनुमानका कार्यके योग्य पुरस्कार होवै ॥ १३ ॥ सर्व कार्योंके करनेंमें समर्थ हनुमानजी सीताजीकी सुधि लेकर जो लंकासे आये तब रघुसत्तम श्रीरामचंद्रजीसे पहले कहे हुए वचन कहकर प्रीति पुलकित शरीरसे उनको

जाम्बवान्जी अनेक शत सहस्र वानर सेनाको शोकाकुल देखकर हनुमानजीसे इस प्रकार कहनें लगे ॥ १ ॥ हे समस्त वानरकुलमें श्रेष्ठ हनुमन् ! हे सर्वशास्त्र विशारद ! तुम इकले और चुप क्यों बैठेहो? इस लोकके कृत्यको देखकर तुम किस कारणसे कुछभी नहीं कहते ॥ २ ॥ हे हनुमन् ! तुम तेज और बलमें वानरराज सुग्रीव और श्रीराम लक्ष्मणजीकी तुल्यहो ॥ ३ ॥ भगवान कश्यपजीके पुत्र महाबलवान् विनता नंदन गरुडजी सर्व पक्षियोंमें श्रेष्ठहैं ॥ ४ ॥ हे महाबल ! हमनें बहुत वार देखाहैकि उस महाबलवान महाबाहु पक्षीनें सागरसे बडे २ सर्पोंको पक

अनेकशतसाहस्रींविषण्णांहरिवाहिनीम् ॥ जांबवान्समुदीक्ष्यैवंहनुमंतमथाब्रवीत् ॥ १ ॥ वीरवानरलोकस्यसर्वशास्त्रविदांवर ॥ तूष्णीमेकांतमाश्रित्यहनूमन्किंनजल्पासि ॥ २ ॥ हनूमन्हरिराजस्यसुग्रीवस्यसमोह्यसि ॥ रामलक्ष्मणयोश्चापितेजसाचबलेनच॥३॥अरिष्टनेमिनःपुत्रोवैनतेयोमहाबलः॥ गरुत्मानिवविख्यातउत्तमःसर्वपक्षिणाम् ॥४॥ बहुशोहिमयादृष्टःसागरेसमहाबलः ॥ भुजंगानुद्धरन्पक्षीमहाबाहुर्महाबलः ॥५॥ पक्षयोर्यद्बलंतस्यभुजवीर्यबलंतव ॥ विक्रमश्चापितेजश्चनतेतेनापहीयते ॥६॥ बलंबुद्धिश्चतेजश्चसत्त्वंचहरिपुंगव ॥ विशिष्टंसर्वभूतेषुकिमात्मानंनसज्जसे॥ ॥ ७ ॥ अप्सराप्सरसांश्रेष्ठाविख्यातापुंजिकस्थला ॥ अंजनेतिपरिख्यातापत्नीकेसरिणोहरेः ॥ ८ ॥ विख्यातात्रिषुलोकेषुरूपेणाप्रतिमाभुवि ॥ अभिशापादभूत्तातकपित्वेकामरूपिणी ॥ ९ ॥ दुहितावानरेंद्रस्यकुंजरस्यमहात्मनः ॥ मानुषंविग्रहंकृत्वारूपयौवनशालिनी ॥ १० ॥

ड़ाहे ॥ ५ ॥ उन गरुडजीके दोनों पंखोंमें जितना बलहै; तुम्हारी दोनोंबाहोंमेंभी वैसाही बलहै, तुम्हारा विक्रम और तेज किसी भांतिभी उनसे कम नहीं है ॥ ६ ॥ तुम समस्त जीवोंके मध्यमें एक विशेष पदार्थहो फिर तुम समुद्रको लांघनेंके लिये क्यों नहीं तैयार होते॥७॥ अप्सरागणोंमें श्रेष्ठ पुञ्जिकस्थला नामक अप्सरा विशेष करके अंजना नामसे विख्यात, केशरनाम वानरकी स्त्री हुई ॥ ८ ॥ उस स्त्रीकी तीनों लोकोंमें उपमा नहींथी, उसनें शापके हेतु काम रूप धारण करनेंवाली वानरीहो जन्मलिया ॥९॥वह अंजना, वानरश्रेष्ठ महात्मा कुञ्जरकी कन्या मनुष्य देह धारण किये

नहीं देखतेहैं ॥ ३ ॥ आप मतिमान शास्त्रोंके जाननेंवाले. दीर्घदर्शी और पंडितहैं, इसलिये योगी पुरुष जिस प्रकार अपनेको दूषण लगानें वाली बुद्धिका त्याग करदेतेहैं, वैसेही आपभी इस प्रयोजन नाशकरनेंवाली. अशुभदायिनी बुद्धिको छोड़ दीजिये ॥ ४ ॥ हम लोग सवही मछली व नाके आदि जीवोंसे पूर्ण इस महा समुद्रको लांघकर लंकापर चढ़ आपके शत्रुका नाश करेंगे ॥ ५ ॥ हेवीर ! उत्साह रहित, दीन स्वभाव और शोकाकुल पुरुषके सवही प्रयोजन नष्ट होजातेहैं; और ऐसाही पुरुष विपदोंमें पड़ा करताहै ॥ ६ ॥ यह रण करनेंमें चतुर समस्त वानर यूथपति गण आपका प्रियकार्य सिद्ध करनेंकी वासनासे अग्निमेंभी प्रवेश करनेंका उत्साह करतेहैं, फिर समुद्रका पार जाना क्या बड़ी बात

मतिमाञ्छास्त्रवित्प्राज्ञःपंडितश्चासिराघव ॥ त्यजेमांप्राकृतांबुद्धिंकृतात्मेवार्थदूषिणीम् ॥ ४ ॥ समुद्रंलंघयित्वातु महानक्रसमाकुलम् ॥ लंकामारोहयिष्यामोहनिष्यामश्चतेरिपुम् ॥ ५ ॥ निरुत्साहस्यदीनस्यशोकपर्याकुलात्मनः ॥ सर्वार्थाव्यवसीदंतिव्यसनंचाधिगच्छति ॥ ६ ॥ इमेशूराःसमर्थाश्चसर्वतोहरियूथपाः ॥ त्वत्प्रियार्थंकृतोत्साहाःप्रवेष्टुमपिपावकम् ॥ ७ ॥ एषांहर्षेणजानामितर्कश्चापिदृढोमम ॥ ८ ॥ विक्रमेनसमानेष्येसीतांहत्वायथारिपुम् ॥ रावणंपापकर्माणंतथात्वंकर्तुमर्हसि ॥ ९ ॥ सेतुरत्रयथाबध्येद्यथापश्येमतांपुरीम् ॥ तस्यराक्षसराजस्यतथात्वंकुरुराघव ॥ १० ॥ दृष्ट्वातांहिपुरींलंकांत्रिकूटशिखरेस्थिताम् ॥ हतंचरावणंयुद्धेदर्शनादवधारय ॥ ११ ॥ अबद्ध्वासागरेसेतुंघोरेचवरुणालये ॥ लंकानमर्दितुंशक्यासेंद्रैरपिसुरासुरैः ॥ १२ ॥

है ॥ ७ ॥ हमनें इन लोगोंके हर्षित वदनका भाव देख कर इसप्रकारका, दृढ़ निश्चय कियाहै ॥ ८ ॥ इस समय जिसप्रकारसे हम विक्रम प्रकाश करके आपके शत्रु उस पाप कर्म करनेंवाले रावणका विनाश करकै जानकीजीको लासकें ऐसा उपाय आप कीजिये ॥ ९ ॥ हे राघव! इस समुद्रके ऊपर जिसप्रकार सेतु बँधजाय और हम सब जिसप्रकारसे उस राक्षसराजकी लंकापुरीको देख सकें इस समय आप वैसाही उपाय कीजिये ॥ १० ॥ आपनें त्रिकूट पर्वतके शिखरपर वसी हुई लंकापुरीको जैसेही देखा कि वैसेही आप मनमें निश्चय समझ लीजिये कि रावणका विनाश होगया ॥ ११ ॥मकरालय समुद्रके ऊपर बिना सेतु बांधे इन्द्रादि देवगण अथवा असुरगण कोईभी

माता सन्तुष्ट हुई, और उन्होंने गुहामें जायकर तुमको उत्पन्न किया ॥२०॥ तुम बालकपनसेही महावनमें रहतेथे, एक दिन प्रभात कालके समय सूर्य भगवानको उदय हुआ देख उनको फल विचार ग्रहण करनेंकी इच्छाकिये तुम छलांग मार आकाशको चले ॥ २१ ॥ तीन शत योजन चले जानेंपर और सूर्यकी किरणोंके तेजसे संतापित होकर भी तुमविषादको नहीं प्राप्त हुए ॥ २२ ॥ हे कपिवर ! तुमको आकाशमें जाता हुआ देख इन्द्रनें क्रोधकर तुम्हारे ऊपर वज्र चलाया ॥ २३ ॥ तब उसशिखरके अग्र भागपर तुम्हारी बाई हनु टूट गई, इसी कारणसे तुम्हारा

अभ्युत्थितंततःसूर्यंबालोदृष्ट्वामहावने ॥फलंचेतिजिघृक्षुस्त्वमुत्पत्याभ्युत्पतोदिवम् ॥२१॥ शतानित्रीणिगत्वाथयोजनानांमहाकपे॥तेजसातस्यनिर्धूतोनविषादंगतस्ततः ॥२२॥ त्वामप्युपगतंतूर्णमंतरिक्षंमहाकपे॥क्षिप्तमिंद्रेणतेवज्रंकोपाविष्टेनतेजसा॥२३॥तदाशैलाग्रशिखरेवामोहनुरभज्यत॥ततोभिनामधेयंतेहनुमानितिकीर्तितम्॥ २४॥ततस्त्वांनिहतंदृष्ट्वावायुर्गंधवहःस्वयम् ॥ त्रैलोक्यंभृशसंक्रुद्धोनववौवैप्रभंजनः ॥ २५ ॥ संभ्रांताश्चसुराःसर्वेत्रैलोक्येक्षुभितेसतिप्रसादयंतिसंक्रुद्धंमारुतंभुवनेश्वराः ॥ २६ ॥ प्रसादितेचपवनेब्रह्मातुभ्यंवरंददौ ॥ अशस्त्रवध्यतांतातसमरेसत्यविक्रम ॥ २७ ॥ वज्रस्यचनिपातेनविरुजंत्वांसमीक्ष्यच ॥ सहस्रनेत्रःप्रीतात्माददौतेवरमुत्तमम् ॥ २८ ॥ स्वच्छंदतश्चमरणंतवस्यादितिवैप्रभो ॥ सत्वंकेसरिणःपुत्रःक्षेत्रजोभीमविक्रमः ॥ २९ ॥

हनुमान नाम हुआ ॥ २४ ॥ गन्धवह पवनजो तुमको वज्रसे घायल देखकर अत्यन्त कोपित हुए और उन्होंनें तीनों लोकका वहना बंद किया ॥ २५ ॥ पवनको न पायकर त्रिलोक मंडल क्षुभित होगया, भुवनेश्वर देवता लोग त्रासितहो घबडायकर चंचल चित्तसे पवन देवको प्रसन्न करनें लगे ॥ २६ ॥ जब पवनजी प्रसन्न हुए तब ब्रह्माजीनें वर दिया कि तुम्हारा यह सत्य विक्रम पुत्र किसी शस्त्रसे नहीं मरैगा ॥ २७॥ और तुमको वज्राघातसे भी व्यथाहीन देखकर सहस्रनेत्र देवपति इन्द्रजीनें प्रसन्न होकर उत्तम वरदान दिया ॥ २८ ॥ कि जब यह तुम्हारा पुत्र इच्छा

इसकारणसे आप शोकको छोड़कर क्रोधका ग्रहण कीजिये, क्योंकि उद्यम रहित होकर क्षत्रिय सौभाग्यवान नहीं होसकता, जो क्षत्रिय अत्यन्त क्रोधी होताहै; तौ सवही उससे भय माना करतेहैं॥२०॥हम तौ सवही कुछ यत्नकिये तैयार वैठेहैं, इस कारण आप इस समय इस भयंकर नदीपति समुद्रके पार होनेका कोई सूक्ष्म (बारीक) उपाय विचारिये ॥ २१ ॥ हमारी इस सैनाके समुद्र पार होतेही निश्चय आप विजयको प्राप्त करैंगे और मनमें आप समुद्रका लांघा जाना और विजयका होनाभी समझही लीजिये ॥ २२ ॥ यह रणवीर कामरूपी वानरगण शिला और वृक्षोंकी वर्षा करकै समरमें शत्रु गणोंको मारडालेंगे ॥ २३ ॥ हे रणप्रिय! हमारे मनमें तौ यह आताहै. कि किसीप्रकार समुद्रके पारहुए और रावणका

तदलंशोकमालंब्यक्रोधमालंबभूपते ॥ निश्चेष्टाःक्षत्रियामंदाःसर्वेचंडस्यबिभ्यति ॥ २० ॥ लंघनार्थंचघोरस्यसमुद्रस्यनदीपतेः ॥ सहास्माभिरिहोपेतःसूक्ष्मबुद्धिर्विचारय ॥ २१ ॥ लंघितेतत्रतैःसैन्यैर्जितमित्येवनिश्चिनु ॥ सर्वंतीर्णंचमेसैन्यंजितमित्यवधार्यताम् ॥ २२ ॥ इमेहिहरयःशूराःसमरेकामरूपिणः ॥ तानरीन्विधमिष्यंतिशिलापादपवृष्टिभिः ॥ २३ ॥ कथंचित्परिपश्यामिलंघितंवरुणालयम् ॥ हतमित्येवतंमन्येयुद्धेशत्रुनिबर्हण ॥ २४ ॥ किमुक्त्वाबहुधाचापिसर्वथापिजयीभवान् ॥ निमित्तानिचपश्यामिमनोमेसंप्रहृष्यति ॥ २५ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०युद्धकांडे द्वितीयःसर्गः ॥ २ ॥ ॥ ७ ॥ सुग्रीवस्यवचःश्रुत्वाहेतुमत्परमार्थवत् ॥ प्रतिजग्राहकाकुत्स्थोहनूमंतमथाब्रवीत् ॥१॥ तपसासेतुबंधेनसागरोच्छोषणेनच ॥ सर्वथापिसमर्थोस्मिसागरस्यास्यलंघने ॥ २ ॥

युद्धमें नाश हुआ ॥ २४ ॥ हे राजन् अधिक कहनेंकी क्या आवश्यकताहै; आप सवही प्रकारसे विजयको प्राप्त करेंगे कारण कि इधर उधर शुभ निमत्तोंको हम देखतेहैं, और हमारे मनमें हर्षभी अत्यन्त होरहाहै ॥ २५ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥ तिसके पीछे परमार्थके जाननेवाले काकुत्स्थ श्रीरामचंद्रजी सुग्रीवके यह युक्ति युक्त वचन सुनकर उन सवको अंगीकार करते हनुमानजीसे बोले ॥ १ ॥ हेहनुमन्! तपस्याके बलसे इस समुद्रका पुल बांधदेना, इसका समस्त जल शोखदेना अथवा जिस प्रकारसे कहो हम

वैसेही तुमभी महा वेगसे इस समय समुद्रको लांघ जाओ ॥ ३७ ॥ तब ऋक्षश्रेष्ठ जाम्बवान् करकै प्रेरित होकर महावीर पवनपुत्र हनुमान जी वानर सैनाको हर्षित करकै उत्साह युक्तहो समुद्रके लांघने योग्य देहको धारण करते हुये॥३८॥इत्यार्पे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे भाषानुवादे पं० ज्वालाप्रसादकृते षट् षष्टितमः सर्गः ॥६६॥ फिर शतयोजन समुद्रको लांघनेंके लिये बढे हुये वानरोत्तम हनुमानजीको सहसा वेगसे परिपूर्ण देख ॥ १ ॥ एका एकी सब वानर गण शोकको छोड हर्षयुक्तहो महा बलवान हनुमानजीकी स्तुति करने लगे ॥२॥ बलिको छलने और त्रिलोकी को नांपने के लिये नारायणजीको उत्साहित देखकर सब प्रजा जिस प्रकार हर्षित और उत्साहित हुईथी

ततःकपीनामृषभेणचोदितःप्रतीतवेगःपवनात्मजःकपिः ॥ प्रहर्षयस्तांहरिवीरवाहिनींचकाररूपंपवनात्मजस्तदा ॥ ३८ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०कि०षट्षष्टितमःसर्गः ॥ ६६ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ तंदृष्ट्वाजृंभमाणंतेक्रमितुंशतयोजनम् ॥ वेगेनापूर्यमाणंचसहसावानरोत्तमम् ॥ १ ॥ सहसाशोकमुत्सृज्यप्रहर्षेणसमान्विताः ॥ विनेदुस्तुष्टुवुश्चापि हनूमंतमहाबलम् ॥ २ ॥ प्रहृष्टाविस्मिताश्चापितेवीक्ष्यंतेसमंततः ॥ त्रिविक्रमंकृतोत्साहंनारायणमिवप्रजाः ॥ ३ ॥ संस्तूयमानोहनुमान्व्यवर्धतमहाबलः ॥ समाविद्ध्यचलांगूलंहर्षाद्बलमुपेयिवान् ॥ ४ ॥ तस्यसंस्तूयमानस्यवृद्धैर्वानरपुंगवैः ॥ तेजसापूर्यमाणस्यरूपमासीदनुत्तमम् ॥ ५ ॥ यथाविजृंभतेसिंहोविवृतेगिरिगह्वरे ॥ मारुतस्यौरसःपुत्रस्तथासंप्रतिजृंभते ॥ ६ ॥ अशोभतमुखंतस्यजृंभमाणस्यधीमतः ॥ अंबरीषोपमंदीप्तंविधूमइवपावकः ॥ ७ ॥

सब वानर लोगभी हनुमानजीको देखकर वैसेही हर्षित और विस्मयको प्राप्त हुये ॥३॥ जब वानरोंने स्तुतिकी तब महा बलवान वानर हनुमानजी बढने लगे और पूंछको घुमाकर हर्षके हेतु बलको प्राप्त होने लगे ॥ ४ ॥ जब वृद्ध वानर श्रेष्ठोंनें इस प्रकारसे प्रशंसाकी तब हनुमानजी तेजसे परिपूर्ण, और बडी अनुपम देह युक्त हो गये ॥५॥ जिसप्रकार महासिंह भारी पर्वतकी गुहामें जंभाई लेताहै वैसेही वायुके औरस पुत्र हनुमानजी भी जंभाई लेनें और बढनें लगे ॥ ६ ॥ जब बुद्धिमान हनुमानजी बढे तो उनका मुख प्रदीप्त और टूटे हुये पात्रकी समान होगया और वह धुंआ

लोग सदा इस पुरीकी रक्षा किया करते हैं यह पुरी घोडोंसे भरी हुई है और धर्षण करनेंके अयोग्यहै ॥ १० ॥ उस पुरीके महा अर्गला (मूसला) युक्त बड़े दृढ किवाड़ लगे हुए बड़े भारी चार द्वारहैं ॥ ११ ॥ उन चार द्वारोंमें भीतरेसे बाण और शिलादि फेंकनेके लिये दृढ और बड़े भारी इषुउ पल यंत्र (कल) लगे हुये हैं । कि जिस्से आतीहुई शत्रुकी सैना बाहरहीसे रोक दी जातीहै ॥ १२ ॥ राक्षस रावणनें वहां पर लोहेके सारसे बनी हुई शिला और सैकडों हजारों *पैनी शतघ्नियें सजाय रक्खीं हैं. जोकि साफकीहुई रक्खी और महा भयंकर जान पड़तीहैं, लाखों शत्रु जिनके द्वारा दूरसेही मार डाले जांय ॥ १३ ॥ मूंगा. मणि. वैदूर्य. और मुक्तादिसे जड़ित उसकी वह सुवर्णसे बनीहुई छहर दिवारी पर बड़े दुःखसेभी कोई नहीं जायसकता ॥ १४ ॥ उस छहर दिवारीके चारों ओर परिखा युक्त, मीन सेवित, भंयकर

दृढबद्धकपाटानिमहापरिघवंतिच॥चत्वारिविपुलान्यस्याद्वाराणिसुमहांतिच ॥ ११ ॥ तत्रेषूपलयंत्राणिबलवंतिमहांतिच॥आगतंप्रतिसैन्यंतैस्तत्रप्रतिनिवार्यते ॥१२॥द्वारेषुसंस्कृताभीमाःकालायसमयाःशिताः॥शतशोरचितावीरैःशतघ्न्योरक्षसांगणैः ॥१३॥ सौवर्णस्तुमहांस्तस्याःप्राकारोदुष्प्रधर्षणः॥मणिविद्रुमवैदूर्यमुक्ताविरचितांतरः ॥ १४ ॥ सर्वतश्चमहाभीमाःशीततोयामहाशुभाः ॥ अगाधाग्राहवत्यश्चपरिखामीनसेविताः ॥ १५ ॥ द्वारेषुतासांचत्वारःसंक्रमःपरमायताः॥ यंत्रैरुपेताबहुभिर्महद्भिर्गृहपंक्तिभिः ॥ १६ ॥ त्रायंतेसंक्रमास्तत्रपरसैन्यागतेसति ॥ यंत्रैस्तैरवकीर्यंतेपरिखाःसुमंततः ॥ १७ ॥ एकस्त्वकंप्योबलवान्संक्रमःसुमहादृढः ॥ कांचनैर्बहुभिःस्तंभैर्वेदिकाभिश्चशोभितः॥१८॥

नाकोंसे व्याप्त और बहुत सारे शीतल जलसे परिपूर्ण अगाध जलाशयहै ॥ १५ ॥ उस पुरीके चारों द्वारोंपर खांईके पार होनेके लिये चार संक्रमहैं, और उनके निकटमें बहुतसे शतघ्नी इत्यादि यंत्र रक्खे और बहुतसे संग्राम करनेंके स्थानभी बने हुएहैं ॥ १६ ॥ शत्रुकी सैनाके आजानें पर वह चारों संक्रमहीं उनकी चढाईसे पुरीकी रक्षा करतेहैं, और वहां पर जो यंत्र लगे हुएहैं उनको घुमातेही खांईका जल चारों ओरको उफन उठताहै कि जिस्में शत्रुकी सेना डूब जातीहै ॥ १७ ॥ उन चार संक्रममें एक संक्रम सबसे अधिक दृढ बलवान् अकम्पा और

* शतघ्नी नाम तोपकाहै ॥

सोखलें और पृथ्वीको चीडफाड डालें ॥ १७ ॥ हे वानरगण ! छलांग मारकर पर्वतसमूहको चूर्ण कर सकतेहैं; और अतिवेगसे समुद्रकोभी सुखाय सकतेहैं ॥ १८ ॥ हम जब आकाशमें छलांग मारकर वेगसे गमनकरेंगे, तब वेगके वशसे विविध लता और वृक्षोंके पुष्प समूह हमारे पीछे २ उडकर चलेंगे ॥ १९ ॥ जबकि हम घोरतर आकाशमें उठकर गमन करेंगे तब हमारा मार्ग उन पहले कहे पुष्पादिकोंसे, बहुतसारे नक्षत्रोंसे शोभित छायापथकी समान शोभा धारण करेगा॥२०॥ हे वानरगण ! उस समयभी हमें सब प्राणी बराबर देखेंगे, देखो ! इस समय हमनें महामेरुकी तुल्य देह धारणकीहै ॥ २१ ॥ हम आकाशस्थलको ढकते हुये और अम्बरस्थलको ग्रास करतेही हुयेसे गमन करेंगे, तुमलोग देखते

पर्वतांश्चूर्णयिष्यामिप्लुवमानःप्लवंगमाः ॥ हरिष्याम्युरुवेगेनप्लवमानोमहार्णवम् ॥ १८ ॥ लतानांविविधंपुष्पंपादपानांचसर्वशः ॥ अनुयास्यतिमामद्यप्लवमानंविहायसा ॥ १९ ॥ भविष्यतिहिमेपंथाःस्वातेःपंथाइवांबरे ॥ चरंतंघोरमाकाशमुत्पतिष्यंतमेवच ॥ २० ॥ द्रक्ष्यंतिनिपतंतंचसर्वभूतानिवानराः ॥ महामेरुप्रतीकाशंमांद्रक्ष्यध्वंप्लवंगमाः ॥ २१॥ दिवमावृत्यगच्छंतंग्रसमानमिवांबरम् ॥ विधमिष्यामिजीमूतान्कंपयिष्यामिपर्वतान् ॥ सागरंशोषयिष्यामिप्लवमानःसमाहितः ॥ २२ ॥ वैनतेयस्यवाशक्तिर्ममवामारुतस्यवा ॥ ऋतेसुपर्णराजानंमारुतंवामहाबलम् ॥ नतद्भूतंप्रपश्यामियन्मांप्लुतमनुव्रजेत् ॥ २३ ॥ निमेषांतरमात्रेणनिरालंबनमंबरम् ॥ सहसानिपतिष्यामिघनाद्विद्युदिवोत्थिता ॥ २४ ॥ भविष्यतिहिमेरूपंप्लवमानस्यसागरम् ॥ विष्णोःप्रक्रममाणस्यतदात्रीन्विक्रमानिव ॥२५॥

रहो ! हम गायन करनेंके समय मेघसमूहको छिन्नभिन्न, पर्वतोंको कम्पायमान, और समुद्रको शोषण करलेंगे तुम लोग देखते रहो ॥ २२ ॥ गरुडजीकी, हमारी, और पवनजीकी शक्ति समस्त जीवगणोंसे बढकरहै, जबकि हम आकाशमें गमन करेंगे, तब सुपर्ण राज गरुडजी और पवनजीके सिवाय हमारे साथ चलनेंमें कोई प्राणीभी समर्थ नहीं होगा ॥ २३ ॥ हम बादलसे निकली हुई बिजलीकी समान एक निमेषमेंही अवलम्ब रहित अम्बर स्थलमें एकाएकी प्राप्तहो जांयगे ॥ २४ ॥ हम जब कि समुद्रको लांघेंगे तब वामनजीनें तीन चरणकी गतिसे जिस प्रकार तीनों

चतुरंगिणी सैनाके सहित और भी अनेक श्रेष्ठ वीर रहते हैं ॥ २५ ॥ पश्चिमके फाटकपर ढाल तरवार लिये सब अस्त्र शस्त्रोंके चलानेमें कुशल दशलाख राक्षस रहते हैं ॥ २६ ॥ रथी और अश्वारोही दश करोड श्रेष्ठकुलमें उत्पन्न हुए राक्षस रावणकरके अत्यन्त पूजित हो उत्तरके द्वारपर टिके रहते हैं ॥ २७ ॥ और लंका पुरीके मध्य स्कन्धावारमें बीचवाले पडावपर एक करोड छब्बीस लाख राक्षस रहते हैं जो कि युद्ध करनेमें वडे कुशलहैं व और भी इतने राक्षस वहां रहते हैं कि उनकी करनमें गिनती ही नहीं हो सकती॥२८॥हम उस महाबल राक्षसोंकी सैनाका चौथाई भाग नष्ट कर आये;पुरीमें आने जानेके लिये जो चार संक्रम बनेथे उनकोतोड़ फोड डाला और लंकाको जलातेमें हमनें छहर दिवारीको तोड़ २

प्रयुतंरक्षसामत्रपश्चिमद्वारमाश्रितम् ॥ चर्मखड्गधराःसर्वेतथासर्वास्त्रकोविदाः ॥ २६ ॥ न्यर्बुदंरक्षसामत्रउत्तरद्वारमाश्रितम् ॥ रथिनश्चाश्ववाहाश्चकुलपुत्राःसुपूजिताः ॥ २७ ॥ शतशोथसहस्राणिमध्यमंस्कंधमाश्रिताः ॥ यातुधाना दुराधर्षाःसाग्रकोटिश्चरक्षसाम् ॥ २८ ॥ तेमयासंक्रमाभग्नाःपरिखाश्चावपूरिताः ॥ दग्धाचनगरीलंकाप्राकाराश्चावसादिताः ॥ २९ ॥ येनकेनतुमार्गेणतरामवरुणालयम् ॥ हतेतिनगरीलंकावानरैरुपधार्यताम् ॥ ३० ॥ अंगदोद्विविदोमैंदोजांबवान्पनसोनलः ॥ नीलःसेनापतिश्चैवबलशेषेणकिंतव ॥ ३१ ॥ प्लवमानाहिगत्वातांरावणस्यमहापुरीम् ॥ सपर्वतवनांभित्त्वासखातांचसतोरणाम् ॥ ३२ ॥ सप्राकारांसभवनामानयिष्यंतिराघव ॥ ३३ ॥

उस्से खांवेको पाटदिया ॥ २९ ॥ आप यह निश्चय जान लें कि हमकिसी न किसी प्रकारसे समुद्रके पार जांयगे, और लंका नगरी भी वानरोंसे नाशको प्राप्त होगी ॥ ३० ॥ आपको अधिक सैनाका प्रयोजन क्याहै? हे राघव ! केवल अंगद, द्विविद, मैन्द, जाम्बवान, पनस, नल, और सेनापति नील इन कई एक जनोंसे ही कार्य सिद्ध हो जायगा ॥ ३१ ॥ वस हम इतने वानर समुद्रके पार होकर रावणकी महापुरीमें जायकर पर्वत, वन परिखा तोरण सहित ॥ ३२ ॥ धवरहरे व प्राकारोंके सहित लंकापुरीका नाश कर सीता देवीको आपके निकट ले आवेंगे ॥ ३३ ॥

करते रहेंगे॥३४॥ हे हनुमन्! समस्त वनवासियोंका जीवन इस समय तुम्हारे आनेंहीपरहे । तब वानरोंमें श्रेष्ठ हनुमानजी सब वानरोंसे बोले ॥ ३५ ॥
इस समुद्रको लांघनेंके विषयमें इस लोकमें कोईभी हमारा वेग धारण करनेंको समर्थ नहींहे. परन्तु इस शिलायुक्त बडे और स्थिर महेन्द्र पर्वतके
शिखर दृढ होनेंके कारण हमारे वेगको धारण करनेंमें समर्थ हे इसीपरसे हम कूदेंगे ॥३६॥३७॥ अनेक प्रकारके वृक्षोंसे व्याप्त और धातुओंसे परि
शोभित यह बडे शिखर अवश्य हमारे गमन वेगको धारण करलेंगे॥३८॥यह बडे शिखर यहांसे शतयोजनके लांघनेका वेग धारण करलेंगे यह कह
शत्रुनाशी पवनतुल्य पवनकुमार हनुमानजी पर्वतोंमें श्रेष्ठ महेन्द्र पर्वत पर चढे ॥ ३९ ॥ इस पर्वतपर भांति २ के पुष्प लगरहेथे, इस पर्वतके

त्वद्गतानिचसर्वेषांजीवनानिवनौकसाम् ॥ ततश्चहरिशार्दूलस्तानुवाचवनौकसः ॥ ३५ ॥ कोपिलोकेनमेवेगं
प्लवनेधारयिष्यति ॥ एतानीहनगस्यास्यशिलासंकटशालिनः ॥ ३६ ॥ शिखराणिमहेंद्रस्यस्थिराणिचम
हांतिच ॥ येषुवेगंगमिष्यामिमहेंद्रशिखरेष्वहम् ॥ ३७॥ नानाद्रुमविकीर्णेषुधातुनिष्पंदशोभिषु ॥ एतानिममवे
गंहिशिखराणिमहांतिच ॥ ३८ ॥ प्लवतोधारयिष्यंतियोजनानामितःशतम् ॥ ततस्तुमारुतप्रख्यःसहरिर्मारुता
त्मजः ॥ आरुरोहनगश्रेष्ठंमहेंद्रमरिमर्दनः ॥ ३९ ॥ वृतंनानाविधैःपुष्पैर्मृगसेवितशाद्वलम् ॥ लताकुसुमसंबाधंनि
त्यपुष्पफलद्रुमम् ॥ ४० ॥ सिंहशार्दूलसहितंमत्तमातंगसेवितम् ॥ मत्तद्विजगणोद्घुष्टंसलिलोत्पीडसंकुलम् ॥ ४१ ॥
महद्भिरुच्छ्रितःशृंगैर्महेंद्रस्यमहाबलः ॥ विचचारहरिश्रेष्ठोमहेंद्रसमविक्रमः ॥ ४२ ॥ बाहुभ्यांपीडितस्तेनमहाशै
लोमहात्मना ॥ ररासिंहाभिहतोमहान्मत्तइवद्विपः ॥ ४३ ॥

दूब संयुक्त श्याम वर्णके क्षेत्रोंमें मृगगण चररहेथें, इस पर्वतपर सबही ऋतुओंमें पुष्पफल लगेरहते और अनेक प्रकारकी लतायें फूल रहीथीं ॥४०॥
इसपर सिंह शार्दूल और मतवाले हाथी सुखसे विहार करके घूम रहेथे, यह पर्वत मतवाले पक्षियोंसे पूर्णथा और इसपर झरनेभी बहुतथे ॥ ४१ ॥
महा बलवान महेन्द्रकी तुल्य विक्रमकारी कपिश्रेष्ठ हनुमानजी महेन्द्रपर्वतके एक २ शिखरपर घूमने लगे ॥ ४२ ॥ महात्मा हनुमानजीनें दोनों
भुजाओसें पीडित किया तब वह शैल अपनें ऊपर चरनेंवाले प्राणियोंके साथ सिंहसे डरते हुये हाथीकी समान मानों चिल्लानें लगा ॥ ४३ ॥

आगे जो शुभ लक्षण हमको होरहेहैं इसको देख कर हमको बोध होताहै, कि हम सब रणभूमिमें रावणका नाश करके जानकीजीको लेआवेंगे ॥ ६ ॥ हमारे दाहिने नेत्रके ऊपरका भाग वारंवार फड़ककर मानो रामचंद्र तुमनें विजय पाई, यही प्रभास करताहै ॥ ७ ॥ तिसके पीछे अर्थविशारद धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी वानरराज सुग्रीव और लक्ष्मणजीसे पूजे जाकर फिर यह बोले ॥ ८ ॥ सैनापति नील. वेगवान शत २ सहस्र २ वानरोंकी सैना साथ लेकर मार्ग देखनेंके लिये इस सैनाके आगे २ चलें ॥ ९ ॥ हे सैनापति सुग्रीव ! जहां उत्तम फल. मूल और मीठा शीतल जल वहताहै, तुम नीलको ऐसे मार्गसे सैनाको लेजानेंकी आज्ञादो ॥ १० ॥ दुरात्मा राक्षस गण मार्गमेंके फल और जल इत्यादि

निमित्तानिचपश्यामियानिप्रादुर्भवंतिवै ॥ निहत्यरावणंसीतामानयिष्यामिजानकीम् ॥६॥ उपरिष्टाद्धिनयनंस्फुरमाणमिमंमम ॥ विजयंसमनुप्राप्तंशंसतीवमनोरथम् ॥ ७ ॥ ततोवानरराजेनलक्ष्मणेनसुपूजितः ॥ उवाचरामोधर्मात्मा पुनरप्यर्थकोविदः ॥ ८ ॥ अग्रेयातुबलस्यास्यनीलोमार्गमवेक्षितुम् ॥ वृतःशतसहस्रेणवानराणांतरस्विनाम् ॥ ९ ॥ फलमूलवतानीलशीतकाननवारिणा ॥ पथामधुमताचाशुसेनांसेनापतेनय ॥ १० ॥ दूषयेयुर्दुरात्मानःपथिमूलफलोदकम् ॥ राक्षसाःपथिरक्षेथास्तेभ्यस्त्वंनित्यमुद्यतः ॥ ११ ॥ निम्नेषुवनदुर्गेषुवनेषुचवनौकसः ॥ अभिप्लुत्याभिपश्येयुःपरेषांनिहितंबलम् ॥ १२ ॥ यत्तुफल्गुबलंकिंचित्तदत्रैवोपपद्यताम् ॥ एतद्धिकृत्यंघोरंनोविक्रमेणप्रयुज्यताम् ॥ १३ ॥

सब वस्तुओंमें विषादि मिलाकर कहीं उनको दूषित नकरदें, इस कारण सदा तुम उनकी रक्षा करते रहना ❋ ॥ ११ ॥ वानर लोग छलांग मारकर टीकरी और वृक्षादि ऊंचे स्थलोंमें चढ़ २ कर पृथ्वीके नीचे टिके वनके किले और वनोंमेंभी भली भांति देखेंकि कहीं शत्रुकी सैना तौ घात लगाये नहीं बैठीहै ॥ १२ ॥ हमारी इस सैनामें बालक या वृद्ध होनेंके कारण जो कोईभी साररहित ज्ञातहो उसको किष्किन्धा पुरीमेंही छोड़ चलो; कारणकि हमारा यह. लंकाका. समरकार्य अत्यन्तही घोर होता हुआ जान पड़ताहै, इस लिये विक्रम सम्पन्न सैनाकेही सहित वहां

❋ मूलमें विष मिलानेंकी कथा नहीं है. यह टीकाकारका अभिप्राय है ॥

इसके उपरान्त सुन्दर काण्डहैं जिसकी आदिमे यह श्लोकहै इसके उपरान्त शत्रुओंके मारनेंवाले महावीरजी चारणोंके चलनेंके मार्गमें रावणसे हरी हुई जानकीजीको ढूंडनेंकी इच्छा करते हुये ॥ ७ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ७ ॥

दोहा—श्रीरघुपतिके दास शुभ, जे श्रीमारुतवीर ॥ कृपा अनुग्रह कर हरो, महा कठिन मम पीर ॥ १ ॥
जिमि सीता सुधि लैनको, छिनमें चले सुजान ॥ तिमि ज्वालाप्रसादकी पीर मिटाओ आन ॥ २ ॥
प्रभु तुम सब जानत सदा, नित प्रति अगम अगाध ॥ कृपा अनुग्रह कीजिये, दूर करो अपराध ॥ ३ ॥

अतःपरंसुंदरकांडंतस्यायमाद्यःश्लोकः ॥ ततोरावणनीतायाःसीतायाःशत्रुकर्षणः ॥ इयेषपदमन्वेष्टुंचारणाचरितेपथि ॥ १ ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥ ७ ॥

हौं सेवक तव चरणको, नित अनन्य हनुमान ॥ क्यों नहि टारत कष्ट अति, तुम्हैं रामकी आन ॥ ४ ॥
आवहु दुःख मिटायकर, सुखी करहु निज दास ॥ तव गुण गावहुं मैं सदा, कीजिय नित्य हुलास ॥ ५ ॥
महावीर शंकट हरन, करन सकल आनंद ॥ तुम्हैं रामकी आन मम, काटहु सब दुख फंद ॥ ६ ॥
दास जानकर कृपा कर, अपनी ओर निहार ॥ प्रभु ज्वालाप्रसादके दीजे शंकट टार ॥ ७ ॥

इति किष्किन्धाकाण्ड समाप्त।

इदं भाषानुवादसमेतं रामायणकिष्किंधाकाण्डं 'खेमराज—श्रीकृष्णदास' इत्यनेन मुम्बय्यां स्वकीयश्रीवेङ्कटेश्वर मुद्रायन्त्रालयेङ्कित्वा प्रसिद्धिं प्रापितम् शालिवाहन शके १८१५ संवत् १९५०

अपने आश्रमके स्थान गुफा और पर्वतके शिखरोंमेंसे बाहर आये॥ २२ ॥ तिसके पीछे धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी वानरराज सुग्रीव और लक्ष्मणजीसे सुपूजितहो दक्षिण दिशाको यात्रा करते हुए ॥ २३ ॥ शत २ सहस्र २ कोटि २ अरब २ वानरोंकी सैना श्रीरामचंद्रजीके साथ चली ॥ २४ ॥ उस कालमें हर्षित, कौतुक युक्त और सुग्रीव पालित वह बड़ी भारी वानरी सैना श्रीरामचंद्रजीके पीछे २ चली ॥२५॥ कोई २ वानर सैनाकी रक्षा करनेंके लिये चारों ओर कूदते फांदते व गर्जन करते हुए आगे लगे हुए फल मूलादिकी शुद्धाशुद्धपरीक्षा करनेके लिये आगे बढे,कोई सिंहनाद कोई सामान्य नाद करके दक्षिण दिशाकी ओर चले ॥ २६ ॥ वह वानरगमन करनेंके समय सुगंधि युक्त मधुर फल भक्षण करते, और मंजरी

ततोवानरराजेनलक्ष्मणेनचपूजितः ॥ जगामरामोधर्मात्मासर्सैन्योदक्षिणांदिशम् ॥ २३ ॥ शतैःशतसहस्रैश्चकोटिभिश्चायुतैरपि ॥ वारणाभैश्चहरिभिर्ययौपरिवृतस्तदा॥ २४ ॥ तंयांतमनुयांतीसामहतीहरिवाहिनी ॥ हृष्टाःप्रमुदिताःसर्वेसुग्रीवेणाभिपालिताः ॥२५॥ आप्लवंतःप्लवंतश्चगर्जंतश्चप्लवंगमाः ॥ क्ष्वेलंतोनिनदंतश्चजग्मुर्वैदक्षिणांदिशम्॥२६॥ भक्षयंतःसुगंधीनिमधूनिचफलानिच ॥ उद्वहंतोमहावृक्षान्मंजरीपुंजधारिणः ॥ २७ ॥ अन्योन्यंसहसादृप्तानिर्वहंतिक्षिपंतिच ॥ पतंतश्चोत्पतंत्यन्येपातयंत्यपरेपरान् ॥ २८ ॥ रावणोनोनिहंतव्यःसर्वेचरजनीचराः ॥ इतिगर्जंतिहरयोराघवस्यसमीपतः ॥ २९ ॥ पुरस्तादृषभोनीलोवीरःकुमुदएवच ॥ पंथानंशोधयंतिस्मवानरैर्बहुभिःसह ॥ ३० ॥ मध्येतुराजासुग्रीवोरामोलक्ष्मणएवच ॥ बलिभिर्बहुभिर्भीमैर्वृतःशत्रुनिबर्हणः ॥ ३१ ॥

पुष्प शोभित महा वृक्षोंको उखाड २ अपने ऊपर लादकर ले चले॥२७॥कोई२गर्व्वित होकर एक दूसरेको उठाकर ले चलते. और कंधेसे पृथ्वीपर गिराने लगे। कोई २ क्रम २ से चलनें लगे, और कोई ऊंचेमें गमन करते हुए दूसरोंको पृथ्वीपर गिराने लगे ॥ २८ ॥ रावण व और दूसरे समस्त राक्षसोंको हम मार डालेंगे, वानरलोग श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख वारंवार यह कहकर गर्जन करनें लगे ॥ २९ ॥ महावीर ऋषभ गन्धमादन, और नील बहुत सारे वानरोंके साथ मार्गोंको शोध करते हुए सैनाके आगे २ चलनें लगे ॥ ३० ॥ शत्रुओंके संहार करनेंवाले श्रीरामचंद्र लक्ष्मण

तपनि वंश अवतंश प्रभु, सुख शोभा आगार ॥ १ ॥
दोहा–भक्तन मन आनंद करन, दुष्टन मारनहार ॥ चढ़ि श्रीराजकुमार ॥ २ ॥
जनकसुताके टारि दुःख, रावण करि संहार ॥ सबकी सत संग पुष्प कहि, वंदि राम रघुराज ॥ ३ ॥
अवधपुरीमें आयकर, ग्रहणकियो जिमिराज ॥ सो सब भाषामें कहब, वास करै निर्द्वन्द ॥ ४ ॥
सेठ शिरोमणि गुणसदन, सज्जन जन आनंद ॥ खेमराज गृह श्री सदा, वास करहु सब आज ॥ ५ ॥
शिव शक्ति सुर शेष शशि, सहित वाणि गणराज ॥ जन ज्वालाप्रसाद मन, उत्तरदेते हुए ॥ १ ॥ हनुमाननें समस्त

श्रीरामचंद्रजी हनुमानजीके यथावत कहे हुए इन वचनोंको श्रवणकर अतिशय प्रसन्नहो इस प्रकारसे उत्तरमब्रवीत् ॥१॥
॥ श्रुत्वाहनूमतोवाक्यंयथावदभिभाषितम् ॥रामःप्रीतिसमायुक्तोवाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥१॥
श्रीरघुवीरायनमोनमः॥ ॥ कृतंहनूमताकार्यंसुमहद्भुविदुर्लभम् ॥ मनसापियदन्येननशक्यंधरणीतले॥ २ ॥नहितंपरिपश्यामियस्तरेतमहोदधि
म् ॥ अन्यत्रगरुडाद्वायोरन्यत्रचहनूमतः॥ ३ ॥ देवदानवयक्षाणांगंधर्वोरगरक्षसाम् ॥ अप्रधृष्यांपुरींलंकांरावणेनसु
रक्षिताम्॥४॥प्रविष्टःसत्वमाश्रित्यजीवन्कोनामनिष्क्रमेत् ॥ कोविशेत्सुदुराधर्षांराक्षसैश्चसुरक्षिताम् ॥ ५ ॥ योवीर्य
बलसंपन्नोनसमःस्याद्धनूमतः ॥ भृत्यकार्यंहनुमतासुग्रीवस्यकृतंमहत् ॥ एवंविधायस्वबलंसदृशंविक्रमस्यच ॥ ६ ॥
लोकोंसे न होनेंके योग्य जो बड़ा भारी कार्य कियाहै; ऐसा कार्य पृथ्वीपर दूसरेसे होना तो दूर रहै, कोई मनसेभी नहीं कर सकता ॥ २ ॥
गरुड़, वायु, और हनुमान, इन तीन जनोंके सिवाय और किसी दूसरेकी गति हम ऐसी नहीं देखते जो महा सागरको लांघ जाय ॥ ३ ॥ देव,
दानव, यक्ष, गन्धर्व, उरग, व राक्षस लोगोंसेभी अजेय उस रावणसे पाली जातीहुई लंका पुरीमें ॥ ४ ॥ बल सहित प्रवेश करकै. कौन जीवित रह
कर वहांसे चला आ सकताहै लंकापुरी राक्षस लोगोंसे रक्षित होनेके कारण जैसीकि प्रवेशकरनेंके योग्य होगई है ॥ ५ ॥ सो वीर्यवान हनुमा
नजीके अतिरिक्त और किसमें सामर्थ है कि जो वहां प्रवेश करसकै? इस प्रकारसे अपने विक्रमके योग्य बल प्रकाश करकै हनुमानने सुग्रीवजीका

भयंकर शब्द करते हुए महा सागरकी नांईं शब्द करती क्रमसे सह्य पर्वतकी प्रथम सीमापर आय पहुंची; श्रीरामचंद्रजीके पार्श्वमें वह कपि कुंजर
वानर गण॥४०॥श्रेष्ठ सारथिसे चलाये जाकर श्रेष्ठ घोड़ोंकी समान छलांग मारकर शीघ्रतासे गमन करनेंलगे। उस काल अंगद व हनुमानके ऊपर
चढे हुए वह पुरुषश्रेष्ठ श्रीराम लक्ष्मण ॥ ४१ ॥ राहु और केतुसे छुए हुए सूर्य चंद्रमाकी समान शोभा धारण करते हुए। फिर वानरराज
सुग्रीव, और लक्ष्मणजीसे सुपूजित होकर ॥ ४२ ॥ धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी इस प्रकारसे सेना सहित दक्षिण दिशाको चले फिर भविष्यत् कर्मका
तत्त्व जाननेंवाले अंगदजीके कंधेपर सवार लक्ष्मणजी शुभ वाणीसे ॥ ४३ ॥ परिपूर्ण अर्थयुक्त वचन श्रीरामचंद्रजीसे बोले हे रघुनाथ! हरीहुई वैदेही

निःससर्पमहाघोरंभीमघोषमिवार्णवम् ॥ तस्यदाशरथेःपार्श्वेशूरास्तेकपिकुंजराः॥४०॥तूर्णमापुप्लुवुःसर्वेसदश्वाइवचो
दिताः ॥ कपिभ्यामुह्यमानौतौशुशुभातेनरर्षभौ ॥ ४१ ॥ महद्भ्यामिवसंस्पृष्टौग्रहाभ्यांचंद्रभास्करौ ॥ ततोवानर
राजेनलक्ष्मणेनसुपूजितः ॥ ४२ ॥ जगामरामोधर्मात्माससैन्योदक्षिणांदिशम् ॥ तमंगदगतोरामंलक्ष्मणःशुभया
गिरा ॥ ४३ ॥ उवाचपरिपूर्णार्थंपूर्णार्थप्रतिभानवान् ॥ हृतामवाप्यवैदेहींक्षिप्रंहत्वाचरावणम् ॥ ४४ ॥ समृद्धार्थः
समृद्धार्थामयोध्यांप्रतियास्यसि ॥ महांतिचनिमित्तानिदिविभूमौचराघव ॥ ४५ ॥ शुभानितवपश्यामिसर्वाण्ये
वार्थसिद्धये ॥ अनुवातिशिवोवायुःसेनांमृदुहितःसुखः ॥ ४६ ॥ पूर्णवल्गुस्वराश्चेमेप्रवदंतिमृगद्विजाः ॥ प्रसन्नाश्च
दिशःसर्वाविमलश्चदिवाकरः ॥ ४७ ॥ उशनाचप्रसन्नार्चिरनुत्वांभार्गवोगतः ॥ ब्रह्मराशिर्विशुद्धश्चशुद्धाश्चपरम
र्षयः ॥ अर्चिष्मंतःप्रकाशंतेध्रुवंसर्वेप्रदक्षिणम् ॥ ४८ ॥

जीको पाय शीघ्रतासे रावणको मार॥४४॥आप पूर्णमनोरथ हो धन जनसे पूर्ण अयोध्याको लौट जांयगे, हे राघव! पृथ्वी और आकाशमें हम बड़े
भारी निमित्त ॥ ४५ ॥ शुभ करनेंवाले और आपके कार्यको सिद्धि बतानेवाले देखतेहैं। यह देखिये मन्द, शीतल, सुगन्धित अनुकूल पवन, से
नाकी सुख देनेके लिये चलरहाहै ॥ ४६ ॥ समस्त मृग पक्षी गण वियोग रहित श्रवण सुखदायी स्वरसे शब्द कर रहेहैं। सब दिशायें प्रसन्नहैं
दिवाकर विमल किरणोंसें प्रकाश कर रहेहैं ॥ ४७ ॥ प्रसन्न किरणवाले भृगुनंदन शुक्रजीभी आपके पीछेहैं! देखिये आकाश, मेघ इत्यादिकी मली

भेंटते हुए ॥ १४ ॥ रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ और फिर क्षणभरतक चिन्ता करके कपिराज सुग्रीवजीके सन्मुखही फिर यह वचन बोले ॥ १५ ॥ कि हम सर्व प्रकारसे सीताजीके ढूंढ़नेमें यत्नकरके यद्यपि कार्य सिद्धिकरचुकेहैं परन्तु इस समुद्रको देखकर फिर हमारे मनका उत्साह टूटा जाताहै ॥ १६ ॥ यह आयेहुए वानरगण किस प्रकारसे दुष्पार अतिजलवाले समुद्रके दक्षिणपार पहुंचेंगे ॥ १७ ॥ यद्यपि, सीताजी लंकापुरीमें हैं, ऐसा वृत्तान्त हमारे निकट कहा गयाहै! परन्तु वानर लोगोंकें समुद्र पार जानेंका, क्या उपायहै, इस पूछनेंका क्या उत्तर होगा?॥ १८ ॥ शत्रुओंके मारनेंवाले शोकसे संतापित श्रीरामचंद्रजी महात्मा हनुमानजीसे ऐसा कह फिरकुछ चिन्ता करनेंलगे ॥ १९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥ तिसके पीछे हनुमानजी शोकसे संतापित हुए दशरथजीके पुत्र श्रीरामचंद्रजीसे इस प्रकारके शोकनाश करनेंवाले वचन कहनें लगे ॥ १ ॥ हेवीर! आप किस कारणसे साधारण मनुष्योंकी समान ऐसा संताप करतेहैं? अब आप ऐसा संताप न कीजिये;जिसप्रकार उपकार न माननेंवाला पुरुष दूसरेके साथ सौहृद छोड़ देताहै. वैसेही आप इस वृथा संतापको त्याग कीजिये ॥ २ ॥ हे रघुनंदन! जबकि शत्रुका समस्त वृत्तान्त और वासस्थान जानागयाहै तब तौ फिर हम आपके संतापका कोईभी कारण

ध्यात्वापुनरुवाचेदंवचनंरघुसत्तमः॥ हरीणामीश्वरस्यापिसुग्रीवस्योपशृण्वतः ॥ १५ ॥ सर्वथासुकृतंतावत्सीतायाः परिमार्गणम् ॥ सागरंतुसमासाद्यपुनर्नष्टंमनोमम ॥ १६ ॥ कथंनामसमुद्रस्यदुष्पारस्यमहांभसः ॥ हरयोदक्षिणंपारंगमिष्यंतिसमागताः ॥ १७ ॥ यद्यप्येषतुवृत्तांतोवैदेह्यागदितोमम ॥ समुद्रपारगमनेहरीणांकिमिवोत्तरम् ॥ १८ ॥ इत्युक्त्वाशोकसंभ्रांतोरामःशत्रुनिबर्हणः ॥ हनूमंतंमहाबाहुस्ततोध्यानमुपागमत् ॥ १९ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आदि०युद्धकांडेप्रथमःसर्गः ॥ १ ॥ ॥ तंतुशोकपरिद्यूनंरामंदशरथात्मजम् ॥ उवाचवचनंश्रीमान्सुग्रीवःशोकनाशनम् ॥ १ ॥ किंत्वयातप्यतेवीरयथान्यःप्राकृतस्तथा ॥ मैवंभूस्त्यजसंतापंकृतघ्नइवसौहृदम् ॥ २ ॥ संतापस्यचतेस्थानंनहिपश्यामिराघव ॥ प्रवृत्तावुपलब्धायांज्ञातेचनिलयेरिपोः ॥ ३ ॥

ऋक्ष. वानर और गोपुच्छ वानरोंके कर चरणसे उठी हुई धूलकी राशिनें ॥ ५६ ॥ सूर्यकी शोभाको ढककर समस्त दक्षिण दिशाको
भयंकर अंधकारसे छाय लिया ॥ पर्वत वन आकाश सहित वह वानर वाहिनीं ॥ ५७ ॥ दक्षिणदिशाको गमन करनेंलगीं. जैसे मेघमाला
आकाशको छाय लेतीहै, जब बहुत योजनोंतक व निरन्तर वानरोंकी सेना उतरनें लगी ॥ ५८ ॥ तब उनके खलभलानेंसे नदियां स्वभाविक
गतिको छोड़ विपरीत गतिको वहतीथीं। इस प्रकारसे यह बड़ी भारी सेना विमल वारि पूर्ण सरोवर, वृक्षपूर्ण पर्वत, ॥ ५९ ॥ समान भूमि
प्रदेश और फल फूलं युक्त वनोंके बीचमें प्रवेश करती हुई, ऊंचीनीची, तिर्छी, सीधी सब ओरको सब प्रकारसे जातीथी ॥ ६० ॥ बड़े भारी

भीममंतर्दधेलोकंनिवार्यसवितुःप्रभाम् ॥ सपर्वतवनाकाशंदक्षिणांहरिवाहिनी ॥ ५७ ॥ छादयंतीययौभीमाद्यामिवां
बुदसंततिः ॥ उत्तरंत्याश्वसेनायाःसततंबहुयोजनम् ॥ ५८ ॥ नदीस्रोतांसिसर्वाणिसस्यंदुर्विपरीतवत् ॥ सरांसिवि
मलांभांसिद्रुमाकीर्णांश्चपर्वतान् ॥ ५९ ॥ समान्भूमिप्रदेशांश्चवनानिफलवंतिच ॥ मध्येनचसमंताच्चतिर्यक्चाधश्चसा
विशत् ॥ ६० ॥ समावृत्यमहींकृत्स्नांजगाममहतीचमूः ॥ तेहृष्टवदनाःसर्वेजग्मुर्मारुतरंहसः ॥ ६१ ॥ हरयोराघ
वस्यार्थेसमारोपितविक्रमाः ॥ हर्षवीर्यबलोद्रेकान्दर्शयंतःपरस्परम् ॥ ६२ ॥ यौवनोच्छेकजाद्दर्पाद्विविधांश्चक्रुर
ध्वनि ॥ तत्रकेचिद्द्रुतंजग्मुरुत्पेतुश्चतथापरे ॥ ६३ ॥ केचित्किलकिलांचक्रुर्वानरावनगोचराः ॥ प्रास्फोटयंश्चपुच्छा
निसन्निजघ्नुःपदान्यपि ॥ ६४ ॥

पृथ्वीके भागको ढककर वह बड़ी भारी सैना गमन करनें लगी उस कालमें वायुकी समान वेगवान उन वानरोंके मुखसे हर्षका लक्षण प्रगट
हो रहाथा ॥ ६१ ॥ और वह सब वानर "श्रीरामचंद्रजीके अर्थ संग्राम करेंगे" कहकर विक्रम और मार्गमें परस्पर हर्ष वीर्य और बलको दिखा
तेथे ॥ ६२ ॥ और यौवनोचित अनेक प्रकारके दर्प चिह्न दिखायकर क्रूर ध्वनि करते व क्रीड़ा करतेथे, उन गजकी समान वानरोंमें कोई २
बड़ी शीघ्रतासे चलते, और कोई २ आकाशमार्गमें गमन करनेंलगे ॥ ६३ ॥ और कोई २ हर्ष सहित रावणको सुनानेंके लिये किल

उस लंकापुरीके रूंधनेंको समर्थ नहीं होसकते ॥ १२ ॥ आप यह निश्चयही जानलीजिये कि लंकातक समुद्रके ऊपर पुल बंध जातेही उसपरसे होकर समस्त सैना पार उतर जायगी; और फिर विजयकी प्राप्ति होनेमेंभी कुछ सन्देह नहीं कारण कि यह समस्त काम रूपी वानर संग्राम करनेंमे बड़े चतुरहैं ॥ १३ ॥ हे महाराज! आप इस सर्व विनाशिनी विकल बुद्धिको छोड़ दीजिये, कारण कि पृथ्वीपर शोकहीहै जो मनुष्यके वीर्यको नष्ट किया करताहै ॥ १४ ॥ जो कार्य शूरताका अवलम्बन करके कियाजाताहै वह तुरंत शूरताका किया कार्य करनेवालेको भूषण होजाताहै ॥ १५ ॥ कारण कि नष्ट होंने या सोयजानेंपर आप सरीखे महात्मा शूर पुरुष गणोंकाभी नाश करनेंको शोकही कारणहै । इस कारण

सेतुबंधःसमुद्रेचयावल्लंकासमीपतः॥ सर्वंतीर्णंचमेसैन्यंजितमित्युपधारय॥तथाहिसमरेवीराहरयःकामरूपिणः१३॥
तदलंविक्लवांबुद्धिंराजन्सर्वार्थनाशनीम्॥ पुरुषस्यहिलोकेस्मिन्शोकःशौर्यापकर्षणः॥१४॥यत्तुकार्यंमनुष्येणशौटीर्य
मवलंब्यताम् ॥ तदलंकरणायैवकर्तुर्भवतिसत्वरम् ॥ १५ ॥ अस्मिन्कालेमहाप्राज्ञसत्त्वमातिष्ठतेजसा ॥ शूराणांहि
मनुष्याणांत्वद्विधानांमहात्मनाम् ॥ विनष्टेवाप्रणष्टेवाशोकःसर्वार्थनाशनः ॥ १६ ॥ तत्त्वंबुद्धिमतांश्रेष्ठःसर्वशास्त्रा
र्थकोविदः ॥ मद्विधैःसचिवैःसार्धमरिंजेतुंसमर्हसि ॥ १७ ॥ नहिपश्याम्यहंकंचित्त्रिषुलोकेषुराघव ॥ गृहीतधनुषो
यस्तेतिष्ठेदभिमुखोरणे ॥१८॥ वानरेषुसमासक्तंनतेकार्यंविपत्स्यते॥अचिराद्द्रक्ष्यसेसीतांतीर्त्वासागरमक्षयम्॥१९॥

हे महाप्राज्ञ! ऐसे समय आप महात्मा अपने तेज बलसे शूरता और धीरताका ग्रहण करके वही कीजिये कि जो ऐसे समयमें मनुष्य किया करतेहैं ॥ १६ ॥ आप बुद्धिमान लोगोंमें श्रेष्ठहैं और सब शास्त्रोंके अर्थभी भली भांतिसे जानतेहैं, फिर हमैं और अधिक कहनेंकी क्या आवश्यकताहै; हम समान मंत्री लोगोंके साथ रहनेंपर आप अवश्यही शत्रुको जीतलेंगे ॥ १७ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! हम तीनोंलोकोंके मध्यमें ऐसा किसीको नहीं देखते कि जो आपके धनुष धारण कर संग्राममें खड़े होनेंपर आपके सामने खड़ा हो सके ॥ १८ ॥ आप वानर गणोंको जिस कार्यका भार देंगे, उस कार्यका किसीप्रकार नाश नहीं होगा, हम समस्तही इस अक्षय समुद्रके पार होकर देवी जानकीजीको ले आवेंगे ॥ १९ ॥

तिलक, आम, अशोक, सिन्धुवार, तिमिष, करवीरादि वृक्ष वानर गण चलते हुए तोड़ते जातेथे ॥ ७२ ॥ कोई २ अशोक, करञ्ज, प्लक्ष, न्यग्रोध, जामन, आमला, और पुन्नागादि वृक्षोंको तोडते उखाड़ते चलतेथे ॥ ७३ ॥ पत्थरोंपर लगे हुए अनेक जातिके वन वृक्ष वायुके वेगसे चलायमान होकर अपने पुष्पोंको पृथ्वीके ऊपर बखेर रहेथे ॥ ७४ ॥ स्पर्श करनेंसे सुखका देनें वाला सुशीतल चन्दन सुगन्धि युक्त वन वायु वहनें लगा, और भ्रमरगण उस सुरभि सुगन्धिसे मोहित होकर मधुके प्राप्त करनेंकी लालसा किये आकाशमेंही अपनी चेष्टा प्रकाशित करनेंलगे ॥७५॥ परन्तु यह पर्वतराज सह्य अनेक धातुओंकेही द्वारा विशेष करके शोभायमान होरहाथा. उस कालमें उन समस्त धातुओंकी रेणुनें पवनसे चला

अशोकांश्चकरंजांश्चप्लक्षन्यग्रोधपादपान् ॥ जंबुकामलकान्नागान्भंजंतिस्मप्लवंगमाः ॥ ७३ ॥ प्रस्तरेषुचरम्येषुविविधाःकाननद्रुमाः ॥ वायुवेगप्रचलिताःपुष्पैरवकिरंतितान् ॥ ७४ ॥ मारुतःसुखसंस्पर्शोवातिचंदनशीतलः ॥ षट्पदैरनुकूजद्भिर्वनेषुमधुगंधिषु ॥ ७५ ॥ अधिकंशैलराजस्तुधातुभिस्तुविभूषितः ॥ धातुभ्यःप्रसृतोरेणुर्वायुवेगेनघट्टितः ॥ ७६ ॥ सुमहद्वानरानीकंछादयामाससर्वतः ॥ गिरिप्रस्थेषुरम्येषुसर्वतःसंप्रपुष्पिताः ॥ ७७ ॥ केतक्यःसिंदुवाराश्चवासंत्यश्चमनोरमाः ॥ माधव्योगंधपूर्णाश्चकुंदगुल्माश्चपुष्पिताः ॥ ७८ ॥ चिरिबिल्वामधूकाश्चवंजुलाबकुलास्तथा ॥ रंजकास्तिलकाश्चैवनागवृक्षाश्चपुष्पिताः ॥ ७९ ॥ चूताःपाटलिकाश्चैवकोविदाराश्चपुष्पिताः ॥ मुचुलिंदार्जुनाश्चैवशिंशपाःकुटजास्तथा ॥ ८० ॥ हिंतालास्तिनिशाश्चैवचूर्णकानीपकास्तथा ॥ नीलाशोकाश्चसरलाअंकोलाःपद्मकास्तथा ॥ ८१ ॥ प्रीयमाणैःप्लवंगैस्तुसर्वेपर्याकुलीकृताः ॥ वाप्यस्तस्मिन्गिरौरम्याःपल्वलानितथैवच ॥ ८२ ॥

यमान होकर ॥ ७६ ॥ उस बड़ीभारी वानर सैनाको ढकलिया. कारणकि उस पर्वतपर सब ओरसे रमणीक और फूली हुई ॥ ७७ ॥ केतकी, सिन्धुवार, वासन्ती, सुगन्धिपूर्ण माधवी कुन्द जोकि फूल रहाथा ॥ ७८ ॥ चिरंबिल्व, मधुक, वञ्जुल, अर्थात् स्थलपद्म, बकुल, रंजक, तिलक, पुष्पित नागकेशर ॥ ७९ ॥ आम, पाटली, अर्थात् गुलाब कोविदार फूले हुएथे. मुचुलिन्द, अर्ज्जुन, शिंशपा, कुटज आदि वृक्ष फूले हुए महक रहेथे ॥ ८० ॥ हिन्ताल, तिनिश, चूर्णक, कदम्ब, नील, अशोक, सारवू, अंकोल, पद्मक ॥ ८१ ॥ आदि सब वृक्षोंको देखकर वानरोंनें छिन्न भिन्न

सबही भांति इस समुद्रके पार जाय सकतेहैं ॥ २ ॥ जबसे तुमको वहांसे आये हमनें देखाहै तबसे कई एक बातोंको जाननेंके लिये हमारी इच्छा हुईहै. सो तुम हमारे निकट वह सब वर्णन करोकि; उस गमन करनेंके अयोग्य लंकापुरीमें कितने किलेहैं? ॥ ३ ॥ राक्षस रावणके यहां सेना कितनीहै? द्वारोंपरके दुर्ग किस प्रकारकेहैं? वहां पर खुदीहुई परिखा परिघ, और पृथ्वीके भीतर अटारियें हैं या नहीं? राक्षस लोगोंके रहनेंके स्थान कैसेहैं॥ ४ ॥ तुम दर्शन करने, वर्णन करने दोनों बातोंमेंही अत्यन्त चतुरहो, इस कारण लंकामें जो कुछ तुमनें देखाहो वह निःशंक चित्तसे हमारे निकट यथार्थ वर्णन करो ॥५॥ तब वचन बोलनेंमें चतुर पवनकुमार हनुमानजी श्रीरामचंद्रजीके यह वचन सुनकर फिर उनसे बोले ॥ ६ ॥

कतिदुर्गाणिदुर्गायालंकायास्तद्ब्रवीष्वमे ॥ ज्ञातुमिच्छामितत्सर्वंदर्शनादिववानर ॥ ३ ॥ बलस्यपरिमाणंचद्वारदुर्गक्रियामपि ॥ गुप्तिकर्मचलंकायारक्षसांसदनानिच ॥ ४ ॥ यथासुखंयथावच्चलंकायामसिदृष्टवान् ॥ सर्वमाचक्ष्वतत्त्वेनसर्वथाकुशलोह्यसि ॥ ५ ॥ श्रुत्वारामस्यवचनंहनुमान्मारुतात्मजः ॥ वाक्यंवाक्यविदांश्रेष्ठोरामंपुनरथाब्रवीत् ॥ ६ ॥ श्रूयतांसर्वमाख्यास्येदुर्गकर्मविधानतः ॥ गुप्तापुरीयथालंकारक्षिताचयथाबलैः ॥ ७ ॥ राक्षसाश्चयथास्निग्धारावणस्यचतेजसा ॥ परांसमृद्धिंलंकायाःसागरस्यचभीमताम् ॥ ८ ॥ विभागंचबलौघस्यनिर्देशंवाहनस्यच ॥ एवमुक्त्वाकपिश्रेष्ठःकथयामासतत्त्ववित् ॥ ९ ॥ हृष्टप्रमुदितालंकामत्तद्वीपसमाकुला ॥ महतीरथसंपूर्णारक्षोगणनिषेविता ॥ १० ॥

हेराजन्! वह लंकापुरी गुप्त भावसे राक्षसों करके जिस प्रकारसे रक्षित होतीहै वह हम सब कहतेहैं आप श्रवण करें ॥ ७ ॥ राक्षस लोग रावणके तेजसे सावधानहो परम समृद्धि पायकर स्नेह सहित जिस प्रकार लंकाकेमध्यमें वास करतेहैं वह समुद्रकी भयानकता ॥ ८ ॥ सैना समूहका विभाग. उनके वाहनोंकी गिनती. और कर्मादिका यथावत् वर्णन करतेहैं, आप श्रवण करें । वानरश्रेष्ठ हनुमानजी यह कहकर वहांके रत्ती २ जाने समाचारोंको कहनें लगे ॥ ९ ॥ लंकापुरी सदाही हर्षसे परिपूर्ण, मतवाले हाथियोंसे विराजमान अनेक स्थानोंमें रथोंसे सुशोभित, राक्षस

वानरश्रेष्ठोंसे परिपूर्ण होकर जड़हन धान्यसे पूर्ण खेतकी समान शोभायमान होनें लगे * ॥ ९१ ॥ तिसके पीछे कमललोचन श्रीरामचंद्रजी
सह्य और मलय गिरिको नांघकर महेन्द्राचलपर आये। अनेक प्रकारके वृक्षोंसे भूषित उसके शिखर पर चढ़े ॥ ९२ ॥ दशरथ कुमार
श्रीरामचंद्रजी उसके शिखर पर चढ़ कच्छप मीनों इत्यादिजीवोंसे पूर्ण जलनिधि (समुद्र) को देखते हुए ॥ ९३ ॥ तब श्रीरामचंद्रजी व और
सबनें सह्य और मलय महापर्वतोंको लांघकर भयंकर शब्दयुक्त समुद्र देखा ॥ ९४ ॥ तब रमण करनेंवालोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी पर्वतश्रेष्ठसे नीचे
उतरकर सुग्रीव और लक्ष्मणजीके साथ अति शीघ्रतासे समुद्रके उत्तम वेला वनमें आये ॥ ९५ ॥ वहां पर आयकर श्रीरामचंद्रजीनें देखाकि
समुद्रके किनारेवाले पहाड़ोंकी तली सदा समुद्रके प्रवाहसे धौत होतीहै, श्रीरामचंद्रजी जनरहित तीरभूमि देखकर कहने लगे ॥ ९६ ॥

महेंद्रमथसंप्राप्यरामोराजीवलोचनः॥ आरुरोहमहाबाहुःशिखरंद्रुमभूषितम्॥९२॥ततःशिखरमारुह्यरामोदशरथात्म
जः ॥ कूर्ममीनसमाकीर्णमपश्यत्सलिलाकुलम् ॥ ९३ ॥ तेसह्यंसमतिक्रम्यमलयंचमहागिरिम् ॥ आसेदुरानुपूर्व्ये
णसमुद्रंभीमनिःस्वनम् ॥ ९४ ॥ अवरुह्यजगामाशुवेलावनमनुत्तमम् ॥ रामोरमयतांश्रेष्ठःससुग्रीवःसलक्ष्मणः ॥९५॥
अथधौतोपलतलांतोयौघैस्सरसोत्थितैः॥ वेलामासाद्यविपुलांरामोवचनमब्रवीत्॥९६॥एतेवयमनुप्राप्ताःसुग्रीववरुणा
लयम् ॥ इहेदानींविचिंतासायानःपूर्वमुपस्थिता ॥ ९७ ॥ अतःपरमतीरोयंसागरःसरितांपतिः ॥ नचायमनुपायेनश
क्यस्तरितुमर्णवः ॥ ९८ ॥ तदिहैवनिवेशोस्तुमंत्रःप्रस्तूयतामिह ॥ यथेदंवानरबलंपरंपारमवाप्नुयात् ॥ ९९ ॥

हे बन्धु सुग्रीव! देखते २ हम सब समुद्रके किनारेपर आय पहुंचे; इस समय समुद्र पार जानेके विषयमें वह चिन्ता हमारे मनमें इस समुद्रको
देखकर उदित हुई है कि जो पहलेभी उदय नहीं हुईथी ॥९७॥इस विशाल समुद्रका दूसरा किनारा दृष्टि नहीं आता; विना किसी श्रेष्ठ उपायके
किये इस समुद्रका उतरना कुछ सहज बात नहीं है ॥ ९८ ॥ हमारे विचारमें तो यह आताहै कि यहीं पर वानरोंकी सैनाका ठहरजाना उचित

* सजेउ जब प्रभुको कटक अपार ॥ चौंकि सिद्ध मुनि जगेउ डगेउ महि अहि सहिसक्यो नभार ॥ फरकेउ वाम अंग भुज सियके रावणहूंके धाम ॥ इत भये मंगल शकुन हरप उत हरप शोक पर नाम ॥ चूमतिजात विजय पद पगपग सुर डर हुलसन घोर ॥ रह्योपूरि धुनि सूर्य जयति जय कोशलराजकिशोर ॥

अति बड़े २ कंचनके अनेक खंभों और वेदिकाओंसे शोभायमानहै॥१८॥हे श्रीरामचंद्रजी! रावण युद्धाभिलाषी होकर बल देखनेके लिये प्रमाद रहित और सावधान व अक्षुभित होकर इस संक्रमके निकट शत्रुसे लडनेको तैयार हो जाता है ॥ १९ ॥ राक्षसराज रावणकी राजधानी लंकापुरी पर्वतके शिखरपर वसीहुई है, विना किसीका अवलम्बन किये उस पर चढना होताहै। वह देवता लोगोंके दुर्गकी समान अतिशय दुर्गमहैं। उसमें नदीदुर्ग, गिरि दुर्ग और प्रकारके कृत्रिम दुर्ग विराजमानहैं वहांपर देवता लोगभी तो जानेंका साहस नहीं करते ॥ २० ॥ हेराघव! यह लंका पुरी पार जानेंके अयोग्य समुद्रके उस पार वसी हुई हैजलका दुर्ग रहनेंसे वहांपर नांवमें आने जानेको भी मार्ग नहीं है. इस

स्वयंप्रकृतिमापन्नोयुयुत्सूरामरावणः ॥ उत्थितश्चाप्रमत्तश्चबलानामनुदर्शने ॥ १९ ॥ लंकापुनर्निरालंबादेवदुर्गाभयावहा ॥ नादेयंपार्वतंचान्यंकृत्रिमंचचतुर्विधम् ॥ २० ॥ स्थितापारेसमुद्रस्यदूरपारस्यराघव ॥ नौपथश्चापिनास्त्यत्रनिरुद्देशश्चसर्वशः ॥ २१ ॥ शैलाग्रेरचितादुर्गासापूर्देवपुरोपमा ॥ वाजिवारणसंपूर्णालंकापरमदुर्जया ॥ २२ ॥ परिखाश्चशतघ्न्यश्चयंत्राणिविविधानिच ॥ शोभयंतिपुरींलंकांरावणस्यदुरात्मनः ॥ २३ ॥ अयुतंरक्षसामत्रपूर्वद्वारंसमाश्रितम् ॥ शूलहस्तादुराधर्षाःसर्वेखड्गाग्रयोधिनः ॥ २४ ॥ नियुतंरक्षसामत्रदक्षिणद्वारमाश्रितम् ॥ चतुरंगेणसैन्येनयोधास्तत्राप्यनुत्तमाः ॥ २५ ॥

कारण आजतक उस पुरीकी कोई भी विशेष वार्त्ता नहीं जानता ॥ २१ ॥पर्वतके शिखर अनेक दुर्गोंके बने रहनेसे अश्व गजसे परिपूर्ण अमरावतीकी समान यह लंका नगरी शत्रुओंकरके बडे दुःखसे जीतनेके योग्यहै ॥ २२ ॥ महाराज! परिघा. शतघ्नी (तोप) व और बहुत सारे यंत्र उस दुरात्मा रावणकी लंकापुरीको शोभायमान किये हुए हैं ॥ २३ ॥उस पुरीके पूरववाले फाटकपर शूल हाथमें लिये बडे दुर्जय दशहजार राक्षस रात्रि दिन युद्ध करनेंके लिये तैयार रहते हैं, वह खड्ग युद्ध करनेंमें बडे चतुरहैं ॥ २४ ॥ दक्षिणके द्वारपर लाख राक्षस रहतेहैं; और वहांपर

समुद्रको देखनेलगी ॥८॥ अति कठिनसे पार जानेके अयोग्य राक्षस सेवित समुद्रको देखते हुए, वानरयूथपगण वहां बैठेथे ॥ ९ ॥ जो उदधि समुद्र बडे २ नाके और घडियालोंकें रहनेके कारण भयंकर हो रहाथा प्रदोष कालके समय जब उसमें फेन आजाताहै, तब ऐसा जान पडता है मानो हँसरहाहै; और जब यह अपनी तरंगोंका विस्तार करताहै, तब यही उसका नृत्यभाव जाना जाया करताहै ॥ १० ॥ इस समय चंद्रमाके उदय होनेसे समुद्रका जल बढ़नें लगा और चंद्रमाका प्रतिबिम्ब उसके वक्षस्थलमें शोभायमान होनेंलगा । यह समुद्र पातालकी समान भयंकर उसके इधर उधर तिमिङ्गिल मत्स्य शोभा देरहेथे ॥ ११ ॥ उस कालमें महासागर तरंगोंके अग्रभागसे मानो फेन रूप चन्दनको पीस रहाथा और चंद्रमा अपनी किरण समूहोंसे उसको ग्रहण करके दिगङ्गनाओंके अंगोंमें लेपनकर रहाथा। यह सागर प्रकाशित फण

दूरपारमसंबाधंरक्षोगणनिषेवितम् ॥ पश्यंतोवरुणावासंनिषेदुर्हरियूथपाः ॥ ९ ॥ चंडनक्रग्राहघोरंक्षपादौदिवसक्ष
ये ॥ हसंतमिवफेनौघैर्नृत्यंतमिवचोर्मिभिः ॥ १० ॥ चंद्रोदयेसमुद्भूतंप्रतिचंद्रसमाकुलम् ॥ चंडानिलमहाग्राहैः कीर्णं
तिमितिमिंगिलैः ॥ ११ ॥ दीप्तभोगैरिवाकीर्णंभुजंगैर्वरुणालयम् ॥ अवगाढंमहासत्त्वैर्नानाशैलसमाकुलम् ॥ १२ ॥
सुदुर्गंदुर्गमार्गंतमगाधमसुरालयम् ॥ मकरैर्नागभोगैश्चविगाढावातलोलिताः ॥ १३ ॥ उत्पेतुश्चनिपेतुश्चप्रहृष्टाजलराश
यः ॥ अग्निचूर्णमिवाविद्धंभास्वरांबुमहोरगम् ॥ सुरारिनिलयंघोरंपातालविषयंसदा ॥ १४ ॥ सागरंचांबरप्रख्यमं
बरंसागरोपमम् ॥ सागरंचांबरंचेतिनिर्विशेषमदृश्यत ॥ १५ ॥

वाले सर्पोंसे युक्त व और जलचर जीवोंसे भरे अनेक पर्वतोंसे व्याप्त ॥ १२ ॥ होनेके कारण मार्गरहित सब किसीके जानेके अयोग्य, और असुर लोगोंके वास करनेकी भूमिहै, मत्स्य नाके और नागादिके भोगका स्थान उन्हीं जीवोंके पवनके संयोगसे चलायमान होनेंके कारण ॥ १३ ॥ जलराशि कभी ऊपरको उठताथा कभी फिर नीचेको चलाजाताथा, समुद्रमें भयंकराकार जलसर्प जो रहतेथे उनके फणोंकी मणिकी किरण जो जलपर छिटकती उससे ऐसा जान पडताथा कि मानो किसीने जलके ऊपर अग्निकी चिनगारियें वखेर दीहैं, ऐसा समुद्र घोर असुरोंके रहनेका पाताल तौ स्थानही था ॥ १४ ॥ समुद्र आकाशकी समान और आकाश समुद्रकी समान होनेंसे सागर और आकाश विशेष रहित होनेंसे

हे महाराज! इस समय आप बडे २ सैनापतियोंको ऐसी आज्ञा देकरशीघ्रही शुभ मुहूर्तमें युद्ध यात्रा करनेंके लिये तैयारियें कीजिये ॥ ३४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे तृतीयःसर्गः ॥ ३ ॥ सत्य पराक्रम श्रीमहातेजमान् श्रीरामचंद्रजी हनुमानजी करके यथा वत कहे इन समस्त वाक्योंको आदिसे अंततक सुनकर इस प्रकारसे बोले ॥ १ ॥ हे हनुमान्! हम उस भयंकर स्वरूप राक्षसकी लंका पुरी शीघ्रही विध्वंस कर डालेंगे, यह जो तुमनें कहा, यह समस्तही हमको सत्य जान पड़ताहै ॥ २ ॥ हे सुग्रीव! तुम इसी मुहूर्तमें युद्धकी यात्रा करनेंके लिये तैयारहो जाओ, कारणकि सूर्य भगवान इस समय, मध्य आकाशमें टिकेहैं; और ऐसे विजय देंनेवाले अभिजित मुहूर्तमें. यात्रा

एवमाज्ञापयक्षिप्रंबलानांसर्वसंग्रहम् ॥ मुहूर्तेनतुयुक्तेनप्रस्थानमभिरोचय ॥ ३४ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेतृतीयःसर्गः ॥ ३ ॥ ॥४॥ ॥ श्रुत्वाहनूमतोवाक्यंयथावदनुपूर्वशः ॥ ततोब्रवीन्महातेजारामःसत्यपराक्रमः ॥ १ ॥ यन्निवेदयसेलंकांपुरींभीमस्यरक्षसः ॥ क्षिप्रमेनांवधिष्यामिसत्यमेतद्ब्रवीमिते ॥ २ ॥ अस्मिन्मुहूर्तेसुग्रीवप्रयाणमभिरोचय ॥ युक्तोमुहूर्तोविजयेप्राप्तोमध्यंदिवाकरः ॥ ३ ॥ सीतांहृत्वातुतद्यातुक्वासौयास्यतिजीवितः ॥ सीताश्रुत्वाभियानंमेआशामेष्यतिजीविते ॥ जीवितांतेऽमृतंस्पृष्ट्वापीत्वामृतमिवातुरः ॥ ४ ॥ उत्तराफाल्गुनीह्यद्यश्वस्तुहस्तेनयोक्ष्यते ॥ अभिप्रयामसुग्रीवसर्वानीकसमावृताः ॥ ५ ॥

करना बहुत ही ठीकहै ॥ ३ ॥ तौ हम इस विजय मुहूर्तमें यात्राकरेंगे. तौ रावण किसी प्रकारसेभी अपने जीवनकी रक्षा करनेंमें समर्थ न होगा जिसप्रकार विष पानकरके आतुर मनुष्य, मृत्युके समयमें अमृतकी समान औषधीके स्पर्श करनेंसेभी अपने जीवनकी आशा करताहै, वैसेही, हम युद्ध यात्रा करनेंके लिये चलदिये, जानकीजीभी यह समाचार पाय जीवनकी आशा न छोड़ देंगी ॥ ४ ॥ चंद्रमाके इस समय उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें टिकनेंसे हमारा सिद्ध देनें वाला यह ग्रह हुआहै, परन्तु कलको इसका हस्तके सहित योग होंनेसे यह हमारा निधन नक्षत्र हो जायगा कारणकि पुनर्वसु नक्षत्रमें हमारा जन्म हुआथा। इसलिये हे सुग्रीव! हम समस्त सैनाको साथलेकर, आजही युद्धके लिये यात्रा करेंगे ॥ ५ ॥

वानर पुङ्गव मैन्द और द्विविद उस सैनाकी रक्षा करनेंके लिये उसके चारों ओर घूमनें लगे॥२॥जब सब सैना नद नदीपति समुद्रके तीर पर इस प्रकार टिकगई तब श्रीरामचंद्रजी अपनी बगलमें बैठे हुए लक्ष्मणजीसे बोले ॥३॥वत्स लक्ष्मण! ज्यों ज्यों काल चला जाताहै, त्यों त्यों शोकभी बीतता जाताहै, परन्तु हमारे लिये तौ यहबात विपरीतसी जान पड़तीहै, क्योंकि सीताजीके न देखनेंसे हमारा शोक दिन २ बढ रहाहै घटता नहीं ॥ ४ ॥ इस कारण हमें दुःख नहीं है, कि हमारी प्यारी दूरहैं, और इस कारणभी हमको दुःख नहीं होता कि उनको रावण हरण कर ले गयाहै; परन्तु धीरे २ उनका जीवन, जो क्षीण होता जाताहै; बस दुःख एक इसी कारणसे है ॥ ५ ॥ हे पवन! हे समीर! जहांपर जानकीजी हैं तुमभी वहीं पर जाओ, वरन उनका शरीर स्पर्श करके फिर आनकर तुम हमारा अंग छूना। जो तुम ऐसा करो तौ जिस प्रकार गरमीके तापसे नेत्रोंकी ज्योति

मैंदश्चद्विविदश्चोभौतत्रवानरपुंगवौ॥ विचेरतुश्चतांसेनांरक्षार्थंसर्वतोदिशम्॥२॥निविष्टायांतुसेनायांतीरेनदनदीपते॥ पार्श्वस्थंलक्ष्मणंदृष्ट्वारामोवचनमब्रवीत् ॥ ३ ॥ शोकश्चकिलकालेनगच्छताह्यपगच्छति ॥ ममचापश्यतःकांतामहन्यहनिवर्धते ॥ ४ ॥ नमेदुःखंप्रियादूरेनमेदुःखंहृतेतिच ॥ एतदेवानुशोचामिवयोस्याह्यतिवर्तते ॥ ५ ॥ वाहिवात यतःकांतांतांस्पृष्ट्वामामपिस्पृश ॥ त्वयिमेगात्रसंस्पर्शश्चंद्रेदृष्टिसमागमः ॥ ६ ॥ तन्मेदहतिगात्राणिविषंपीतमिवाशये ॥ हानाथेतिप्रियासामांह्रियमाणायदब्रवीत् ॥ ७ ॥ तद्वियोगेंधनवतातच्चिंताविमलार्चिषा ॥ रात्रिंदिवंशरीरंमेदह्यतेमदनाग्निना ॥ ८ ॥ अवगाह्यार्णवंस्वप्स्येसौमित्रेभवताविना ॥ एवंचप्रज्वलन्कामोनमांसुप्तंजलेदहेत् ॥ ९ ॥

खोये हुए मनुष्यको चंद्रमाके देखनेंसे फिर दृष्टि मिल जातीहै, प्यारीको स्पर्श करके जो तुम हमको स्पर्श करोगे, तौ सीताजीके शोकसे संतापित हुआ जो हमारा शरीरहै वह शीतल हो जायगा ॥ ६ ॥ जिस समय कि उनको रावणनें हरण कियाथा, उस समय जो उन्होंनें 'हानाथ!' यह कहकर जो हमको पुकाराथा; सो वही शब्द हमारे मनमें इस समय विषवत् टिका हुआ हमारे शरीरको दग्ध कर रहाहै ॥ ७ ॥ हे लक्ष्मण हमारा शरीर दिन रात कामानलमें भस्म होरहाहै; प्यारीका जो विरहहै; वही तौ उस अग्निमें मानों काठ पड रहाहै और उनके विरहकी जो चिन्ताहै वही मानों इस अग्निकी निर्मल शिखाहै ॥ ८ ॥ हे लक्ष्मण! तुम यहींपर रहो; हम इकलेही समुद्रमें प्रवेश करके सोये रहतेहैं, कारणकि

पर जाना उचितहै ॥ १३ ॥ शत सहस्र महाबलवान वानर सिंह इस महासागरकी समान वानर सैनाको लेकर चलें ॥ १४ ॥ पर्वताकार गज महा बलवान गवय और गवाक्ष मदगर्वित गो वृषभकी समान सैनाके आगे २ चलें ॥ १५ ॥ कूदनेवालोंमें अग्रगण्य वानरश्रेष्ठ ऋषभ दक्षिण दिशाकी रक्षा करते हुए वानर सैनाके साथ चलें ॥ १६ ॥ मतवाले हाथीकी समान दुर्जेय वेगवान गन्धमादन नाम वानर सैनाके सहित बांईओरकी रक्षा करताहुआ गमन करै ॥ १७ ॥ जिस प्रकार देवराज इन्द्रजी ऐरावत हाथीपर सवार होकर चलतेहैं वैसेही हम हनुमान जीके कंधेपर चढ़कर समस्त सैनाको हर्ष उत्पन्न कराते सैनाके बीचमें चलेंगे ॥ १८ ॥ और सार्वभौम नामक हाथीपर चढ धनाधिपति यक्ष

सागरौघनिभंभीममग्रानीकंमहाबलाः ॥ कपिसिंहाःप्रकर्षंतुशतशोथसहस्रशः ॥ १४ ॥ गजश्चगिरिसंकाशोगव यश्चमहाबलः ॥ गवाक्षश्चाग्रतोयातुगवांदृप्तइवर्षभः ॥ १५ ॥ यातुवानरवाहिन्यावानरःप्लवतांपतिः ॥ पालयन्द क्षिणंपार्श्वमृषभोवानरर्षभः ॥ १६ ॥ गंधहस्तीवदुर्धर्षस्तरस्वीगंधमादनः ॥ यातुवानरवाहिन्याःसव्यंपार्श्वमधिष्ठि तः ॥ १७ ॥ यास्यामिबलमध्येहंबलौघमभिहर्षयन् ॥ अधिरुह्यहनूमंतमैरावतमिवेश्वरः ॥ १८ ॥ अंगदेनैषसंया तुलक्ष्मणश्चांतकोपमः ॥ सार्वभौमेनभूतेशोद्रविणाधिपतिर्यथा ॥ १९ ॥ जांबवांश्चसुषेणश्चवेगदर्शीचवानरः ॥ ऋक्ष राजोमहाबाहुःकुक्षिंरक्षंतुतेत्रयः ॥ २० ॥ राघवस्यवचःश्रुत्वासुग्रीवोवाहिनीपतिः ॥ व्यादिदेशमहावीर्योवानरान्वा नरर्षभः ॥ २१ ॥ तेवानरगणाःसर्वेसमुत्पत्यमहौजसः ॥ गुहाभ्यःशिखरेभ्यश्चआशुपुप्लुविरेतदा ॥ २२ ॥

राज कुबेरजीकी समान यमराजकी समान कोप किये अंगदजीकी पीठपर चढकर लक्ष्मणजी हमारे साथ २ चलें ॥ १९ ॥ ऋक्षराज जाम्ब्वान्, महाबाहु सुषेण और वेगदर्शी यह तीन सैनाके पीठकी रक्षा करते चलें ॥ २० ॥ जिस प्रकार तेजस्वी वरुणजी सब लोकके पश्चार्द्धकी रक्षा करतेहैं, वैसेही कपिराज सुग्रीव सैनाके जघन देशकी रक्षा करें, वानर श्रेष्ठ महाबलवान् सैनापति सुग्रीवजी श्रीरामचंद्रजीके यह वचन सुनकर वानर लोगोंको श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञानुसार कार्य करनेको आज्ञा देतेहुए ॥ २१ ॥ आज्ञा पातेही वह महाबलवान् वानरगण उछल २ कूद २

चन्द्रकला जिस प्रकार शरत्कालमें सुनील मेघ मालाको भेदन करकै उदित होतीहै, वैसेही जानकीजी हमारे भुजबलसे दुर्द्धर्ष राक्षसोंको दलन
करके प्रकाशित होंगी ॥ १७ ॥ हेलक्ष्मणजी! एक तौ प्राणप्यारी जानकीजी स्वभावसेही दुर्बलहैं; तिसके ऊपर देश कालके शोक व उपास
को पाय कर औरभी अधिक दुर्बल होगई होंगी॥१८॥ या कितनें दिनोंमें हम उस दुरात्मा राक्षस रावणके वक्षस्थलमें बाण मारकर जानकीजीको प्राप्त
कर सकेंगे और अपना शोक दूर करैंगे ॥ १९ ॥ सुरसुन्दरी समान पतिव्रता जानकीजी कब उत्कंठित हो हमारे गलेसे लगकर आनंदके आंसू
वहामेंगी?॥ २० ॥ नहीं जानते कि सीताजीके वियोगसे उत्पन्न हुआ यह घोर शोक मलीन वस्त्रकी नांई कब हम छोड़ेंगे? ॥२१॥ बुद्धिमान् रामचं

अविक्षोभ्याणिरक्षांसिसाविधूयोत्पतिष्यति ॥ विधूयजलदान्नीलान्शशिलेखाशरत्स्विव ॥ १७ ॥ स्वभावतनुकानू
नंशोकेनानशनेनच ॥ भूयस्तनुतरासीतादेशकालविपर्ययात् ॥ १८ ॥ कदानुराक्षसेंद्रस्यनिधायोरसिसायकान्॥
शोकंप्रत्याहरिष्यामिशोकमुत्सृज्यमानसम् ॥ १९ ॥ कदानुखलुमेसाध्वीसीताऽमरसुतोपमा ॥ सोत्कंठाकंठमा
लंब्यमोक्ष्यत्यानंदजंजलम् ॥ २० ॥ कदाशोकमिमंघोरंमैथिलीविप्रयोगजम् ॥ सहसाविप्रमोक्ष्यामिवासःशुक्लेतरं
यथा ॥ २१ ॥ एवंविलपतस्तस्यतत्ररामस्यधीमतः ॥ दिनक्षयान्मंदवपुर्भास्करोस्तमुपागतः ॥ २२ ॥ आश्वासि
तोलक्ष्मणेनरामःसंध्यामुपासत ॥ स्मरन्कमलपत्राक्षींसीतांशोकाकुलीकृतः ॥२३॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०युद्धकांडे
पंचमःसर्गः ॥ ५ ॥ ॥ लंकायांतुकृतंकर्मघोरंदृष्ट्वाभयावहम् ॥ राक्षसेंद्रोहनुमताशक्रेणेवमहात्मना ॥ अब्रवीद्राक्षसा
न्सर्वान्ह्रियाकिंचिदवाङ्मुखः ॥१॥ धर्षिताचप्रविष्टाचलंकादुष्प्रसहापुरी ॥ तेनवानरमात्रेणदृष्टासीताचजानकी॥२॥

द्रजी सीताजीके शोकमें अधीर होकर इस प्रकारसे विलाप करनें लगे। इस ओर दिनका अंत जान भगवान भास्कर हीनकांतिहो अस्ताचलको गमन
करते हुए ॥२२॥ यद्यपि रामचंद्रजी सीताजीके शोकसे अति संतापित होरहेथे, परन्तु लक्ष्मणजीके समझानें बुझानेंसे सावधानहो सन्ध्या वन्दनादिमें
अपना मन लगाते हुए ॥ २३ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०यु०पंचमः सर्गः॥५॥इस ओर राक्षसोंका स्वामी रावण लंकाके मध्यमें महाबलवान इन्द्रजीकी
समान हनुमानजीका किया वह घोर भयानक कार्य देख लाजके मारे कुछेक शिर झुकाकर राक्षसोंसे कहनें लगा ॥१॥कि देखो केवल एकही वानरनें

और वानरराज सुग्रीवजी बलशाली और भयंकरमूर्त्ति वानर गणोंके साथ उनके मध्य भागमें गमन करनें लगे ॥ ३१ ॥ महावलवान् शतवलि दशकिरोड वानरसैनाको संगलिये अकेलाही उस समस्त वानर सैनाकी रक्षा करनें लगा ॥ ३२ ॥ एक अरव वानरोंकी सैना संगलिये महावल वान् केशरी, पनस, गज, और अर्क उस सैनाके एक पार्श्वकी रक्षा करते हुए चले ॥ ३३ ॥ सुषेण और जाम्ववान्, असंख्यरीछोंकी सैनाको संग लिये सैनाके मध्यमें टिके सुग्रीवजीको आगे करके सैनाके पश्चात् भागकी रक्षा करते जातेथे ॥ ३४ ॥ पीछे वानरकी सैना चलते २ चारों ओरके नगरोंमें पीडा करके वहां उपद्रव न मचावे,इसकारण कूदनें फांदनेंवालोंमें श्रेष्ठ वानर पुङ्गव महावल सैनापति नील सर्व प्रकारसे उनको रोकता

हरिःशतबलिर्वीरःकोटिभिर्दशभिर्वृतः ॥ सर्वामेकोह्यवष्टभ्यररक्षहरिवाहिनीम् ॥ ३२ ॥ कोटीशतपरीवारःकेसरीपन सोगजः ॥ अर्कश्चबहुभिःपार्श्वमेकंतस्याभिरक्षति ॥ ३३ ॥ सुषेणोजांबवांश्चैवऋक्षैर्बहुभिरावृतौ ॥ सुग्रीवंपुरतःकृत्वा जघनंसंररक्षतुः ॥ ३४ ॥ तेषांसेनापतिर्वीरोनीलोवानरपुंगवः ॥ संयतश्चरतांश्रेष्ठस्तद्बलंपर्यवारयत् ॥ ३५ ॥बलीमुखः प्रजंघश्चजंभोथरभसःकपिः ॥ सर्वतश्चययुर्वीरास्त्वरयंतःप्लवंगमान् ॥ ३६ ॥ एवंतेहरिशार्दूलागच्छंतिबलदर्पिताः ॥ अपश्यंतगिरिश्रेष्ठंसह्यंगिरिशतायुतम् ॥ ३७ ॥ सरांसिचसुफुल्लानितटाकानिवराणिच ॥ रामस्यशासनंज्ञात्वाभी मकोपस्यभीतवत् ॥ ३८ ॥ वर्जयन्नगराभ्याशांस्तथाजनपदानपि ॥ सागरौघनिभंभीमंतद्वानरबलंमहत् ॥ ३९ ॥

हुआ चला ॥ ३५ ॥ बलीमुख*प्रजङ्घ, जम्भ रभस+यह शीघ्रतासे चलनेके लिये सब सैनाको उत्साहित करनें लगे ॥ ३६ ॥ इस प्रकारसे वीर्यवान वानरोंकी सैनाने जाते २ अनेक प्रकारके वृक्षोंसे शोभित पर्वतश्रेष्ठ सह्य पर्वत देखा (यहां प्रथम विश्राम) और खिले हुए कमल फूलोंसे शोभायमान सरोवर और श्रेष्ठ तडागभी इस सैनाने देखे परन्तु भयंकर कोप करनेंवाले श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञा जान डरकेमारे ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ वानर लोग नगर और जनपदके निकटभी न जाते । महा सागरकी समान भयानक वह वानरोंकी बड़ी भारी सेना ॥ ३९ ॥

* किसी २ मूल ग्रन्थमें "वलीमुख" के वदले "दरीमुख" यह पाठ दृष्टि आताहै ॥ + दो एक मूल ग्रंथोमें "रभस" के वदले "सरभ" यह नामान्तर देखा जाताहै ॥

रताहै उसकोही मध्यम पुरुष कहतेहैं ॥९॥ गुण दोषका विचार या देवताकाआश्रय ग्रहण न करके 'मैं अकेलाही इस कार्यको कर लूंगा यह निश्चय करता हुआ कार्य करनें लगताहै वह अधम पुरुष कहा जाताहै ॥१०॥जिस प्रकार पुरुषोंके मध्यमें उत्तम मध्यम और अधम यह तीन विभागहैं मंत्री लोगोंके मंत्र निर्णय करनेंके विषयमेंभी वैसेही, उत्तम, मध्यम, और अधम यह तीन विभागहैं ॥ ११ ॥ जिस सलाहमें सब एकमत होकर नीति शास्त्रके अनुसार सब सम्मति किया करते हैं; उसे उत्तम मंत्र कहतेहैं ॥ १२ ॥ जहां पर प्रथम मंत्रियोंकी अलग २ माति होकर विचार किया जाताहै और फिर पीछेसे कार्यके समय फिर सबकी सम्मति एक होजातीहै वही मध्यम मंत्र कहलाताहै ॥ १३ ॥ और जिसमंत्रणामें सबका

गुणदोषौननिश्चित्यत्यक्त्वादैवव्यपाश्रयम् ॥ करिष्यामीतियःकार्यमुपेक्षेत्सनराधमः ॥ १० ॥ यथेमेपुरुषानित्यमुत्तमाधममध्यमाः ॥ एवंमंत्रोपिविज्ञेयउत्तमाधममध्यमाः॥ ॥ ११ ॥ ऐकमत्यमुपागम्यशास्त्रदृष्टेनचक्षुषा ॥ मंत्रिणोयत्रनिरतास्तमाहुर्मंत्रमुत्तमम् ॥ १२ ॥ बह्वीरपिमतीर्गत्वामंत्रिणामर्थनिर्णयः ॥ पुनर्यत्रैकतांप्राप्तःसमंत्रो मध्यमःस्मृतः ॥ १३ ॥ अन्योन्यमतिमास्थाययत्रसंप्रतिभाष्यते ॥ नचैकमत्येश्रेयोस्तिमंत्रःसोऽधमउच्यते ॥ १४ ॥ तस्मात्सुमंत्रितंसाधुभवंतोमतिसत्तमाः ॥ कार्यंसंप्रतिपद्यंतामेतत्कृत्यंमतंमम ॥ १५ ॥ वानराणांहिधीराणांसहस्रैः परिवारितः ॥ रामोऽभ्येतिपुरींलंकामस्माकमुपरोधकः ॥ १६ ॥ तरिष्यतिचसुव्यक्तंराघवःसागरंसुखम् ॥ तरसायुक्तरूपेणसानुजःसबलानुजः ॥ १७ ॥

अलग २ मत होनेंसे मंत्रिगण विरुद्धभाषीहो, और कभी एकमतिहोजाँय, तोभी उसका परिणाम मंगलदाई नहीं होता, ऐसी परामर्श अधम मंत्र कहलातीहै ॥ १४ ॥ हे मंत्रिगण! तुम सब मंत्रणा कार्यमें पंडितहो; जो कर्तव्य और श्रेष्ठहो उसको एक मतावलम्बी होकर स्थिर करो; बस वही हमारा कर्तव्य होगा ॥ १५ ॥ विचार करके देखो, कि रामचंद्र असंख्य वानरोंकी सैना साथ लेकर लंकाके ऊपर चढ़ाई करनें आयरहे हैं ॥ १६ ॥ वह रघुनंदन रामचंद्र सगरके वंशमें उत्पन्न हुएहैं इस्से निश्चयही जान पड़ताहै कि वह तपोबल अथवा दिव्य अस्त्र

नतासे रहित होकर विमल होगयाहै,इस कारण ब्रह्मर्षि और परमर्षि गण ध्रुवकी प्रदक्षिणा करतें विमल किरणोंका प्रकाश प्रगटाते उदय हुएहैं॥४८॥ महात्मा इक्ष्वाकु गणोंके पितामह राजर्षि त्रिशंकुजी, विश्वामित्रजीके बनाये सप्तर्षि मंडलके बीचमें पुरोहित वशिष्ठजीके साथ विमल दीप्ति प्रकाशित कर रहेहैं ॥ ४९ ॥ और इक्ष्वाकुलोगोंका परमहितकारी विमल व उपद्रव रहित विशाखा नक्षत्रभी वैसेही प्रकाशित होरहा है ॥ ५० ॥ यह देखिये राक्षस लोगोंके हितका करनेंवाला निर्ऋतिदैवत मूलनक्षत्रभी झुके हुए दंडाकार उदय हुए धूमकेतु ग्रहसे स्पर्शित हो पीड़ा और संताप पाय रहाहै ॥ ५१ ॥ महाराज! इन सब बातोंको देख भालकर जान पड़ताहै कि राक्षसोंको विनाश करनेहींके लिये यह सब निमि

त्रिशंकुर्विमलोभातिराजर्षिःसपुरोहितः ॥ पितामहःपुरोस्माकमिक्ष्वाकूणांमहात्मनाम् ॥ ४९ ॥ विमलेचप्रकाशेतेविशाखेनिरुपद्रवे ॥ नक्षत्रंपरमस्माकमिक्ष्वाकूणांमहात्मनाम् ॥ ५० ॥ नैर्ऋतंनैर्ऋतानांचनक्षत्रमतिपीड्यते ॥ मूलोमूलवतास्पृष्टोधूप्यतेधूमकेतुना ॥ ५१ ॥ सर्वंचैतद्विनाशायराक्षसानामुपस्थितम् ॥ कालेकालगृहीतानांनक्षत्रंग्रहपीडितम् ॥ ५२ ॥ प्रसन्नाःसुरसाश्चापोवनानिफलवंतिच ॥ प्रवांतिनाधिकागंधायथर्तुकुसुमाद्रुमाः ॥ ५३ ॥ व्यूढानिकपिसैन्यानिप्रकाशंतेधिकंप्रभो ॥ देवानामिवसैन्यानिसंग्रामेतारकामये ॥ एवमार्यसमीक्ष्यैतत्प्रीतोभवितुमर्हसि ॥ ५४ ॥ इतिभ्रातरमाश्वास्यहृष्टःसौमित्रिरब्रवीत् ॥ अथावृत्यमहींकृत्स्नांजगामहरिवाहिनी ॥ ५५ ॥ ऋक्षवानरशार्दूलैर्नखदंष्ट्रायुधैरपि ॥ कराग्रैश्चरणाग्रैश्चवानरैरुद्धतंरजः ॥ ५६ ॥

त्त उदय हुएहैं; कारण कि जिसकी मृत्यु निकट आजातीहै, उसकोही नक्षत्र और गृहोंकी पीड़ा होती है॥ ५२ ॥ सरोवरोंका जल मधुर और विमलहै,समस्त वृक्ष अकालमें फल उठेहैं; समस्त वृक्षोंके अकालमें फूलनेंसे उनकी सुगन्धि उनकी ऋतुसेभी अधिक हुईहै ॥ ५३ ॥ हे प्रभो! इस व्यूहाकारसे सजी हुई वानरोंकी सैनानें तारकासुरसे संग्राम करनेंमें रत देवसैनाके समान अधिक शोभा धारणकीहै। हे आर्य! आप यह समस्त शुभ निमित्त देखकर प्रसन्नताको प्राप्त होवें ॥५४॥ सुमित्रानंदन लक्ष्मणजीनें इस प्रकारसे कहकर श्रीरामचंद्रजीको समझाया तिसके पीछे वह वानरोंकी सेना, पृथ्वीके बड़ेभारी भागको ढककर गमन करनेंलगी ॥ ५५ ॥ उस कालमें नख दाँतोंको आयुध बनाये उन

दरी आपको स्त्री बनानेंके लियेदी ॥ ७ ॥ कुम्भीनसीके प्यारे स्वामी वीर्यवान अजीत दानवोंके स्वामी मधुके सहित युद्ध करके आपनें उसको अपनें वशमें किया ॥ ८ ॥ हे महाबाहो! आपनें पातालमें गमन करके नागोंको जीत लियाहै । और वासुकि, तक्षक, शंख और जटी इत्यादि सब नाग गण आपके वशमें आय गयेहैं ॥ ९ ॥ फिर अक्षय बलवान शूर और वरदान पाये कालकेय दानवोंसे आपने वर्ष भरतक युद्धकर उनको परास्त कियाहै ॥ १० ॥ हेशत्रुदमनकारी ! हेराक्षसनाथ ! फिर आपनें उनको अपने वशमें करके उनके निकटसे अनेक मायाकी विद्या ग्रहणकी ॥ ११ ॥ हेमहाभाग ! आपनें रणभूमिमें चतुरंगिणी सेनाके सहित शूर और महाबलवान् जलनाथ वरुणके पुत्रोंको

दानवेंद्रोमहाबाहोवीर्योत्सिक्तोदुरासदः ॥ विगृह्यवशमानीतःकुंभीनस्याःसुखावहः ॥ ८ ॥ निर्जितास्तेमहाबाहोना
गागत्वारसातलम् ॥ वासुकिस्तक्षकःशंखोजटीचवशमाहृताः ॥ ९ ॥ अक्षयाबलवंतश्चशूरालब्धवराःपुनः ॥ त्वयासं
वत्सरेयुद्धासमरेदानवाविभो ॥ १० ॥ स्वबलंसमुपाश्रित्यनीतावशमरिंदम ॥ मायाश्चाधिगतास्तत्रबह्वयोवैराक्षसा
धिप ॥ ११ ॥ शूराश्चबलवंतश्चवरुणस्यसुतारणे ॥ निर्जितास्तेमहाभागचतुर्विधबलानुगाः ॥ १२ ॥ मृत्युदंडमहा
ग्राहंशाल्मलीद्रुममंडितम् ॥ कालपाशमहावीचिंयमकिंकरपन्नगम् ॥ १३ ॥ महाज्वरेणदुर्धर्षंयमलोकमहार्णवम् ॥
अवगाह्यत्वयाराजन्यमस्यबलसागरम् ॥ १४ ॥ जयश्चविपुलःप्राप्तोमृत्युश्चप्रतिषेधितः ॥ सुयुद्धेनचतेसर्वेलो
कास्तत्रसुतोषिताः ॥ १५ ॥ क्षत्रियैर्बहुभिर्वीरैःशक्रतुल्यपराक्रमैः ॥ आसीद्वसुमतीपूर्णामहद्भिरिवपादपैः ॥ १६ ॥

पराजित कियाहै ॥ १२ ॥ हेराजन्! आपने मृत्यु दंड रूप महानाकोंसे युक्त. यातना रूप शाल्मली द्रुम मंडित काल पाश रूप महातरंगसे पूर्ण यम किंकर रूप पन्नग परिपूर्ण ॥ १३ ॥ महाज्वरके होनेंसे किसीके न सहनें योग्य यम बलके सागर यमलोक रूप महा सागरमें स्नान करके ॥ १४ ॥ विपुल जयको प्राप्त हुएहैं, और आपनें मृत्युकोभी रोकदिया; हेमहाराज ! वहांपर आपका उत्तम युद्ध देखकर समस्त लोक सन्तुष्ट हुएथे ॥ १५ ॥ जिस प्रकार वृक्षोंकी राशिसे पृथ्वी परिपूर्ण होजातीहै, वैसेही पूर्व समयमें देवेन्द्रकी समान पराक्रमवाले बहुत सारे

किला शब्द करते, कोई २ पूंछ फटकारनें लगे, कोई २ पृथ्वीपर चरण मारनें लगे ॥ ६४ ॥ और कोई २ बाहें फैलायकर वृक्ष और पर्वतोंको उखाड़नें व तोडनें लगे, पर्वताकार कुछेक वानरगण पर्वतोंके शृङ्गोंपर चढकर ॥ ६५ ॥ महानाद करके हँसते क्रीड़ा करनें लगे, कोई २ हँसते हुए विक्रम प्रकाश करके प्रबल वेगसे बहुत सारी कोमल वेलोंको तोड़ पृथ्वीपर गिराते ॥ ६६ ॥ जँभाई लेते विक्रमसे वृक्षादिकोंको उखाड़ २ फेंक २ उनसे क्रीड़ा करनेंलगे । उन अनेक स्थानसे आये हुए, सहस्रों, लक्षों, करोड़ों, अर्बों, खर्वों ॥ ६७ ॥ घोररूपी वानरोंसे पृथ्वी पूर्णहोगई । वह वानरोंकी बडी भारी सैना दिन रात चली जातीथी ❋ ॥ ६८ ॥ हर्ष प्रमुदित. युद्धाभिलाषी और सुग्रीवजीसे पालित सर्व वानरगण

भुजान्विक्षिप्यशैलांश्चद्रुमानन्येबभंजिरे ॥ आरोहंतश्चशृंगाणिगिरीणांगिरिगोचराः ॥ ६५ ॥ महानादान्प्रमुंचंतिक्ष्वे
डामन्येप्रचक्रिरे ॥ ऊरुवेगैश्चममृदुर्लताजालान्यनेकशः ॥ ६६ ॥ जृंभमाणाश्चविक्रांताविचिक्रीडुःशिलाद्रुमैः ॥ ततः
शतसहस्रैश्चकोटिभिश्चसहस्रशः ॥ ६७ ॥ वानराणांसुघोराणांश्रीमत्परिवृतामही ॥ सास्मयातिदिवारात्रंमहती
हरिवाहिनी ॥ ६८ ॥ प्रहृष्टमुदिताःसर्वेसुग्रीवेणाभिपालिताः ॥ वानरास्त्वरितायांतिसर्वेयुद्धाभिनंदिनः ॥ प्रमो
क्षयिषवःसीतांमुहूर्तंकापिनावसन् ॥ ६९ ॥ ततःपादपसंबाधंनानावनसमायुतम् ॥ सह्यपर्वतमासाद्यवानरास्तेस
मारुहन् ॥ ७० ॥ काननानिविचित्राणिनदीप्रस्रवणानिच ॥ पश्यन्नपिययौरामःसह्यस्यमलयस्यच ॥ ७१ ॥ चंपकां
स्तिलकांश्चूतान्प्रसेकान्सिंदुवारकान् ॥ तिनिशान्करवीरांश्चभंजंतिस्मप्लवंगमाः ॥ ७२ ॥

शीघ्रतासे चले जातेथे । सीताजीके छुड़ानेंकी उनको इतनी शीघ्रताथी कि एक मुहूर्त्तभी इन लोगोंनें कहीं विश्राम न लिया ॥ ६९ ॥ अनन्तर उन वानर लोगोंनें सन्मुखही विविधवन शोभित अनेक प्रकारके वृक्षोंसे युक्त सह्यपर्वत देखा और उस पर चढगये ॥ ७० ॥ और श्रीरामचंद्रजी भी विचित्रकानन युक्त सह्य व मलय दोनों पर्वतोंकी नदियां व झरनें देखते भालते चले जातेथे ॥ ७१ ॥ उन पर्वतोंपर लगेहुए चम्पक,

❋ यह दूसरा निवास हुआ ॥ दिन रातमें एक पहर विश्राम यह तीसरा निवास हुआ ॥

हेमहाराज! आप नर वानर रूप साधारण जनसे जो विपदकी शंका करतेहैं यह नितान्त अनुचित बातहै क्योंकि आप निश्चयही रामका
संहार कर डालेंगे ॥ २५ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० सप्तमःसर्गः ॥ ७ ॥ तिसके पीछे नीले मेघकी समान कान्तिवाला वीर सेनापति प्रहस्त
नामक राक्षस हाथ जोड़कर रावणसे बोला ॥ १ ॥ कि महाराज! दो मनुष्य और वानरोंकी तौ बातही क्याहै हम तौ रण भूमिमें देवता, दानव,
गन्धर्व, पिशाच, और सर्प गणोंकोभी पराजित कर सकते हैं ॥ २ ॥ हम लोग भोगके वश होकर जिस समय मतवाले होरहेथे; और विप
दके आजानेंकीभी उस समय कोई शंका नहींथी; इस कारणसेही हनुमान हम लोगोंको धोखा देगया; जो ऐसा नहोता; तौ हम लोगोंके जीवित
रहते वह वनचारी वानर किसी प्रकारसे जीता हुआ यहांसे नहीं जायसकता ॥ ३ ॥ जो हो आप आज्ञा कीजिये हम अभी आपकी आज्ञासे, शैल

राजन्नापद्युक्तेयमागताप्राकृताज्जनात् ॥ हृदिनैवत्वयाकार्यात्वंवधिष्यसिराघवम् ॥ २५ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०
आ०युद्धकांडेसप्तमःसर्गः ॥ ७ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ततोनीलांबुदप्रख्यःप्रहस्तोनामराक्षसः ॥ अब्रवीत्प्रांजलिर्वाक्यं
शूरःसेनापतिस्तदा ॥ १ ॥ देवदानवगंधर्वाःपिशाचपतगोरगाः ॥ सर्वेधर्षयितुंशक्याःकिंपुनर्मानवौरणे ॥ २ ॥
सर्वेप्रमत्ताविश्वस्तावंचितास्महनूमता ॥ नहिमेजीवतोगच्छेज्जीवन्सवनगोचरः ॥ ३ ॥ सर्वांसागरपर्यंतांसशैलव
नकाननाम् ॥ करोम्यवानरांभूमिमाज्ञापयतुमांभवान् ॥ ४ ॥ रक्षांचैवविधास्यामिवानराद्रजनीचर ॥ नागमि
ष्यतितेदुःखंकिंचिदात्मापराधजम् ॥ ५ ॥ अब्रवीत्तमसंक्रुद्धोदुर्मुखोनामराक्षसः ॥ इदंनक्षमणीयंहिसर्वेषांनःप्रधर्ष
णम् ॥ ६ ॥ अयंपरिभवोभूयःपुरस्यांतःपुरस्यच ॥ श्रीमतोराक्षसेंद्रस्यवानरेंद्रप्रधर्षणम् ॥ ७ ॥

कानन युक्त इस पृथ्वीको वानर रहित कर देंगे ॥ ४ ॥ हमही सब राक्षसोंकी रक्षा वानरोंके भयसे करेंगे आप निश्चिन्त रहैं; सीताजीका हरण करनेसें
आपके ऊपर कोई विपद न पड़ैगी ॥ ५ ॥ तिसके पीछे दुर्मुख नामक राक्षस बड़ा क्रोधकरकै रावणसे बोला, हेमहाराज! केवल एकही वानर
आकर हमारा सबका अपमान कर गयाहै; सो इसको हम किसो प्रकारसे नहीं सह सकते ॥ ६ ॥ हम लोग अपना अपमान होना किसी प्रकारसे
सहनकरभी लेते, परन्तु नगरी और अंतःपुरका दाहन करकै उस वानरनें राक्षसराजाका जो अपमान कियाहै, वह नितान्तही असह्यहै उसको

कर डाला उस रमणीक पर्वतपर रमणीक सरोवर और छोटी २ तलैयां ॥ ८२ ॥ चक्रवाकोंसे युक्त कारण्डवनिषेवित प्लुव अर्थात् जल मुरगावीं, व क्रौञ्चयुक्त वराह मृगोंसे सेवित ॥ ८३ ॥ स्थान २ में भयानक व्याघ्र, रीछ, और सिंह क्रीडा कर रहेहैं और भयंकराकार बहुत सारे सर्पोंसे युक्त वहांकी वापियें थीं ॥ ८४ ॥ वहाँके समस्त सरोवर सुगन्धि पूर्ण, फूले कमल, कुमुद, व और दूसरे जलवाले फूलोंसे शोभित थे ॥ ८५ ॥ पर्वतोंके शिखरपर अनेक प्रकारके पक्षी बैठेहुए बराबर मधुर स्वरसे गान कर रहेथे, वानरगण इन समस्त सरोवरोंमें नहाय और जल पीकर फिर खेल करनेंलगे ॥ ८६ ॥ समस्त वानर पर्वतोंके शिखर एक दूसरेको ढकेलनें और वृक्षोंके अमृत समान मीठे फल व सुगन्धित

चक्रवाकानुचरिताःकारंडवनिषेविताः ॥ प्लुवैःक्रौंचैश्चसंकीर्णावराहमृगसेविताः ॥ ८३ ॥ ऋक्षैस्तरक्षुभिःसिंहैःशार्दूलै श्चभयावहैः ॥ व्यालैश्चबहुभिर्भीमैःसेव्यमानाःसमंततः ॥ ८४ ॥ पद्मैःसौगंधिकैःफुल्लैःकुमुदैश्चोत्पलैस्तथा ॥ वारिजै र्विविधैःपुष्पैरम्यास्तत्रजलाशयाः ॥ ८५ ॥ तस्यसानुषुकूजंतिनानाद्विजगणास्तथा ॥ स्नात्वापीत्वोदकान्यत्रजलेक्री डंतिवानराः ॥ ८६ ॥ अन्योन्यंप्लावयंतिस्मशैलमारुह्यवानराः ॥ फलान्यमृतगंधीनिमूलानिकुसुमानिच ॥ ८७ ॥ बभंजुर्वानरास्तत्रपादपानांमदोत्कटाः ॥ द्रोणमात्रप्रमाणानिलंबमानानिवानराः ॥ ८८ ॥ ययुःपिबंतःस्वस्थास्तेमधू निमधुपिंगलाः ॥ पादपानवभंजंतोविकर्षंतस्तथालताः ॥ ८९ ॥ विधमंतोगिरिवरान्प्रययुःप्लवगर्षभाः ॥ वृक्षेभ्योन्ये तुकपयोनंदंतोमधुदर्पिताः ॥ ९० ॥ अन्येवृक्षान्प्रपद्यंतेप्रपिबंत्यपिचापरे ॥ बभूववसुधातैस्तुसंपूर्णाहरिपुंगवैः ॥ यथाकलमकेदारैःपक्वैरिववसुंधरा ॥ ९१ ॥

पुष्प तोड़कर खाय २ फेंकनें लगे ❀ ॥ ८७ ॥ वानर लोग मदोन्मत्त होकर अनेक प्रकारके वृक्षोंको तोड़नें लगे, और बहुत सारे द्रोण, प्रमाण लट कते हुए मधुफल खानें लगे ॥ ८८ ॥ मधुकी समान पिङ्गल वह वानरश्रेष्ठगण मधुपान करतेहुए वृक्षोंको तोड़ते; लताओंको घसीटनें लगे ॥ ८९ ॥ और पर्वतके सम्पूर्ण शिखरोंको कम्पायमान करते हुए वह वानरश्रेष्ठ गमन करनें लगे। कोई २ वानर मधुपान करनेंसे तृप्त होकर वृक्षोंपर चढ २ गर्जने लगे ॥ ९० ॥ उनमें कोई २ वानरगण वृक्षोंपरसे उतर रहेथे और कोई वृक्षोंपर चढ़ रहेथे उस कालमें वह देश

❀यह चौथा विश्रामहुआ ॥

दा, धनु, बाण और खड्ग इत्यादि अस्त्र शस्त्र ले सज सजायकर उनके निकट जांयगे ॥ १६ ॥ और अलग २ दल बांध आकाशमें टिककर शि
ला शस्त्रादि वर्षाय २ उस वानर सैनाको घायलकर मृत्युके वशमें कर देंगे ॥ १७ ॥ हेमहाराज! इस प्रकारका कार्य करनेंसे राम लक्ष्मण अव
श्यही हमारी इस अनीतिके चक्रमें पड़ जांयगे; तिसके पीछे जब वानर सैनाका नाश होजायगा,तब यह दोनोंजन अपने आपही मरजांयगे॥१८॥
जब इस राक्षसने ऐसा कहा तो प्रतापशाली वीर्यवान कुम्भकर्णका बेटा निकुम्भ क्रोधित हो सब लोकोंके रुवानेंवाले रावणसे बोला ॥ १९ ॥
कि आप सब जन यहीं पर महाराज रावणके साथ निश्चिन्त मनसे रहैं हम अकेलेही जाकर रामचंद्रके सहित लक्ष्मणको मारडालेंगे ॥ २० ॥

आकाशेगणशःस्थित्वाहत्वातांहरिवाहिनीम् ॥ अश्मशस्त्रमहावृष्ट्याप्रापयामयमक्षयम् ॥ १७ ॥ एवंचेदुपसर्पे
तामनयंरामलक्ष्मणौ ॥ अवश्यमपनीतेनजहतामेवजीवितम् ॥ १८ ॥ कौंभकर्णिस्ततोवीरोनिकुंभोनामवीर्य
वान् ॥ अब्रवीत्परमक्रुद्धोरावणंलोकरावणम् ॥ १९ ॥ सर्वेभवंतस्तिष्ठंतुमहाराजेनसंगताः ॥ अहमेकोहनिष्या
मिराघवंसहलक्ष्मणम् ॥ २० ॥ सुग्रीवंसहनूमंतंसर्वांश्चैवात्रवानरान् ॥ ततोवज्रहनुर्नामराक्षसःपर्वतोपमः ॥ २१ ॥
क्रुद्धः परिलिहन्सृक्कांजिह्वयावाक्यमब्रवीत् ॥ स्वैरंकुर्वंतुकार्याणिभवंतोविगतज्वराः ॥ २२ ॥ एकोहंभक्षयिष्या
मितांसर्वांहरिवाहिनीम् ॥ स्वस्थाःक्रीडंतुनिश्चिंताःपिबंतुमधुवारुणम् ॥ २३ ॥ अहमेकोवधिष्यामिसुग्रीवंसहल
क्ष्मणम् ॥ सांगदंचहनूमंतंसर्वांश्चैवात्रवानरान् ॥ २४ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० युद्धकांडेअष्टमःसर्गः॥ ८ ॥ ७ ॥

और सुग्रीव हनुमानके साथ उस वानरोंकी सैनाका भी संहार कर डालेंगे तिसके पीछे पर्वताकार वज्रहनु नाम राक्षस ॥२१॥ क्रोधके मारे जीभसे
अधरोंको चाटता हुआ बोला, कि तुमलोग आलस्य छोड अपना२कार्य सिद्ध करनेंके लिये शीघ्रताकरो॥२२॥और कहीं न जाओ; लो हम अकेलेही
उन वानरोंकी सैनाको भक्षण किये आतेहैं । आप सब लोग सावधान और निश्चिन्त होकर वारुणी और मधुपान करके विहार कीजिये ॥ २३ ॥
हम अकेलेही राम लक्ष्मण और सुग्रीव अंगद हनुमानादि समस्त वानरोंका संहार कर डालेंगे ॥२४॥ इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०यु०अष्टमःसर्गः॥ ८॥

हे, और यह वानरोंकी सैना जिस प्रकारसे समुद्रके पार होजाय, ऐसी मंत्रणा तुमलोग स्थिरकरो ॥ ९९ ॥ सीताजीके हरणसे पीड़ित महाबाहु सीतापति महासागरके निकट पहुँच कर सुग्रीवको इस प्रकारसे सैनाके टिकनेंकी आज्ञा देतेहुए ॥ १०० ॥ उन्होंनें सुग्रीवसे कहा हेकपि श्रेष्ठ! इस वेला भूमिमेंही सैनाको टिकादो कारणकि समुद्रके पार होंनेके विषयमें परामर्श करनेंका समय आन पहुँचाहै ॥ १०१ ॥ अपनी सैनाको छोडकर कहीं कोई नहीं जाय; कारणकि यहांपर राक्षसोंकी नियत कीहुई अनेक गुप्त सेना है, शूर वानर लोग सैनाके निवास स्थानके बाहर घूमते हुए ऐसे भयसे इस सेनाकी रक्षा करें ॥ २ ॥ सुग्रीवजी श्रीलक्ष्मणजीनें श्रीरामचंद्रजीके यह वचन सुनकर, उस वृक्षपूर्ण समुद्रके किनारे पर समस्त सेनाको टिकाया ॥ ३ ॥ उस समय महासागरके समीप टिकीहुई वह वानरसैना मधु पिङ्गलवर्ण जलसें पूर्ण दूसरे महासागर की समान शोभायमान होनेंलगी ॥ ४ ॥ तिसके पीछे वह वानरश्रेष्ठ गण वेलावनको प्राप्त हो उसी स्थानमें टिककर समुद्रके दूसरी पार जानें की अभिलाषा करनेंलगे ॥ ५ ॥ उस समय वानरसैनासमूहकी चिल्लाहटका शब्द समुद्रके महानादके शब्दको लोप करके श्रवणगोचर होनें लगा ॥ ६ ॥ सुग्रीवजीसे पालित वह वानरवाहिनी ऋक्ष वानर और गोपुच्छ इन तीन भागोंमें बँटकर श्रीरामचंद्रजीका कार्य सिद्ध करनेको यत्नवतीहुई ॥ ७ ॥ समुद्रके किनारे पर टिकी वह वानर अनी सैना पवनवेगसे चलायमान होनेके कारण अति तरंगे उठते हुए

इतीवसमहाबाहुःसीताहरणकर्शितः ॥ रामःसागरमासाद्यवासमाज्ञापयत्तदा ॥ १०० ॥ सर्वाःसेनानिवेश्यंतांवेलायां हरिपुंगव॥संप्राप्तोमंत्रकालोनःसागरस्येहलंघने ॥ १॥ स्वांस्वांसेनांसमुत्सृज्यमाचकश्चित्कुतोव्रजेत्॥गच्छंतुवानराः शूराज्ञेयंछन्नंभयंचनः ॥ २ ॥ रामस्यवचनंश्रुत्वासुग्रीवःसहलक्ष्मणः ॥ सेनांनिवेशयत्तीरेसागरस्यद्रुमायुते ॥ ३ ॥ विरराजसमीपस्थंसागरस्यचतद्बलम् ॥ मधुपांडुजलःश्रीमान्द्वितीयइवसागरः ॥ ४ ॥ वेलावनमुपागम्यततस्तेहरिपुंगवाः ॥ निविष्टाश्चपरंपारंकांक्षमाणामहोदधेः ॥ ५ ॥ तेषांनिविशमानानांसैन्यसन्नाहनिःस्वनः॥अंतर्धायमहानादमर्णवस्यप्रशुश्रुवे ॥ ६ ॥ सावानराणांध्वजिनीसुग्रीवेणाभिपालिता ॥ त्रिधानिविष्टामहतीरामस्यार्थपराऽभवत् ॥ ७ ॥
सामहार्णवमासाद्यहृष्टावानरवाहिनी ॥ वायुवेगसमाधूतंपश्यमानामहार्णवम् ॥ ८ ॥

किस प्रकार जीतनेका साहस करते हो॥ १० ॥ पहले किसने जान पायाथा कि हनुमान नदनदीपति घोर समुद्रको लांघकर दो मुहूर्त्तके मध्य इस लंकामें चला आवेगा क्या तुम लोगोंमेंसे पहले किसीनें इस बातका अनुभव कियाथा?॥ ११ ॥ हे निशाचरगण! शत्रुलोगोंकी वीर्यशाली अगणित भयंकर सैनाहै, सो ऐसे शत्रुओंकी सहसा अवज्ञा [वेपरवाही] करना उचित नहींहै ॥ १२ ॥ उन यशस्वी रामचंद्रनेही पहले राक्षस राजका कौन भारी अपकार कियाथा कि जिस्से यह जनस्थानसे उनकी भार्याको हरण करके लेआये! ॥ १३ ॥ यदि कहोकि "राम चंद्रने खरको मारडालाहै" परन्तु खरनें तो प्रथमही श्रीरामचंद्रजीका अपकार किया कि जिस्से वह मारागया; इसी

समुद्रंलंघयित्वातुघोरंनदनदीपतिम् ॥ गतिंहनूमतोलोकेकोविद्यात्तर्कयेतवा ॥११॥ बलान्यपरिमेयानिवीर्याणिचनि शाचराः ॥ परेषांसहसावज्ञानकर्तव्याकथंचन ॥ १२ ॥ किंचराक्षसराज्यस्यरामेणापकृतंपुरा ॥ आजहारजनस्था नाद्यस्यभार्यांयशस्विनः ॥ १३ ॥ खरोयद्यतिवृत्तस्तुसरामेणहतोरणे ॥ अवश्यंप्राणिनांप्राणारक्षितव्यायथाबल म् ॥ १४ ॥ एतन्निमित्तंवैदेहीभयंनःसुमहद्भवेत् ॥ आहृतासापरित्याज्याकलहार्थेकृतेनुकिम् ॥ १५ ॥ नतुक्षमंवीर्य वतातेनधर्मानुवर्तिना ॥ वैरंनिरर्थकंकर्तुंदीयतामस्यमैथिली ॥ १६ ॥ यावन्नसगजांसाश्वांबहुरत्नसमाकुलाम् ॥ पुरींदारयतेबाणैर्दीयतामस्यमैथिली ॥ १७ ॥

कारणसे हम खरके मारनेमें रामचंद्रजीका कोई दोष नहीं देखते कारणकि सामर्थ्यके अनुसार अपनी रक्षा करना सब प्राणियोंका कर्त्तव्यहै ॥१४॥ सो खर दूषणादिके वधका बदला लेनेके लियेही सीताजीका हरण कियागयाहै, परन्तु हम लोगोंपर अब बहुतही शीघ्र सीताके हरणसे उत्पन्न हुई विपद आनकर पड़ेगी, इस कारण इस आनेंवाली विपदका हेतुविना झगड़ेके जानकीको त्यागही देना उचितहै। क्योंकि जिसके परिणाममें क्लेश उपस्थित हो उस कार्यको करनेंकी आवश्यकताही क्याहै ॥१५॥ रामचंद्रजी अतिशय वीर्यवान और धार्मिकहैं, विनाकारण उनके साथ वैरभाव करनेंकी आवश्यकता क्याहै? हे राजन्! हमारी यह विनतीहै कि श्रीरामचंद्रजीको सीता देदीजिये ॥ १६ ॥ रामचंद्र जबतक हाथी घोड़ोंसे परिपू

एकहीसे जान पडतेथे ॥ १५ ॥ समुद्रमें आकाशका प्रतिबिम्ब और आकाशमें समुद्रकी ऊंची लहरोंका जल मिलजानेसे और दोनों ही तुल्य
रूप नक्षत्र दीप्त और रत्नज्योतिके रहनेसे दोनोंही एक से जान पडते थे ॥ १६ ॥ आकाशमें मेघमाला समुद्रमें तरंग माला, इसलिये आका
शमें समुद्र और समुद्रमें आकाश मिला हुआथा ॥ १७ ॥ प्रबल तरंगोंके उठनेसे महाकाशमें महाभेरीको बराबर भयंकर शब्द होरहाथा
क्योंकि समुद्र लहरोंके उठनेसे शब्द करताथा और फिर वह लहरें आकाशमें एक दूसरीसे टकराकर शब्द करतीथीं इस्से भी समुद्र और आ
काशकी समता पाई गई ॥ १८ ॥ जलजीवसमाकुल जलनिधिका जल पवनके द्वारा चलायमान होकर सब रत्न अपनी लहरोंके द्वारा ऊपरको

संपृक्तंनभसाप्यंभःसंपृक्तंचनभोंऽभसा ॥ताद्दग्रूपेस्मद्दश्येतेतारारत्नसमाकुले॥१६॥समुत्पतितमेघस्यवीचिमालाकुल
स्यच ॥ विशेषोनद्वयोरासीत्सागरस्यांबरस्यच ॥१७॥ अन्योन्यैराहताःसक्ताःसस्वनुर्भीमनिःस्वनाः ॥ ऊर्मयःसिंधु
राजस्यमहाभेर्यइवांबरे ॥ १८ ॥ रत्नौघजलसन्नादंविषक्तमिववायुना ॥ उत्पतंतमिवक्रुद्धंयादोगणसमाकुलम् ॥१९॥
दद्दशुस्तेमहात्मानोवाताहतजलाशयम् ॥ अनिलोद्धूतमाकाशेप्रलपंतमिवोर्मिभिः ॥ १२० ॥ ततोविस्मयमापन्नाह
रयोदद्दशुःस्थिताः ॥ भ्रांतोर्मिजालसन्नादंप्रलोलमिवसागरम् ॥ १२१ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० युद्धकांडेचतुर्थः
सर्गः ॥ ४ ॥ ॥७॥ सातुनीलेनविधिवत्स्वारक्षासुसमाहिता ॥ सागरस्योत्तरेतीरेसाधुसाविनिवेशिता ॥ १ ॥

उछाल रहाथा कि जिस्से ऐसा जान पड़ताथा कि महासागर क्रोधित होकर मानो इन रत्नोंको फेंक रहाथा ॥ १९ ॥ वह महात्मा पवनसे
चलायमान समुद्रके जलको पवनके संयोगसे आकाशमें उठता देखते हुए कि जैसे समुद्र कुछ प्रलाप वचन कह रहाहै ॥ १२० ॥
इस प्रकारसे वह महाबलवान वानरगण चिन्तायुक्त होकर वारि विक्रम और जल शब्दसे परिपूर्ण महासागर और पवन कंपित
तरंग, विहँसित आकाशको देखनेलगे ॥ १२१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥ ॥
वह वानरोंकी समस्त सैना सेनापति नील करके समुद्रके तीरपर टिकाई जाकर विधि विधानसे रक्षित होंने लगी ॥ १ ॥

कर्मकारी और श्रेष्ठ महाद्युतिमान् विभीषणजी ॥ १ ॥ शैल, शृङ्ग, समूहसदृश पर्वत शिखरकी समान ऊंचे सुविभक्त, बड़े, दर, दिवार दालानसे युक्त, महाजनोंसे पूर्ण ॥ २ ॥ बुद्धिमान बड़े २ शरीरवाले अनुरागी हितकारी और कार्य साधनमें समर्थ राक्षसोंसे घेरे जाकर सब भांतिसे रक्षित ॥ ३ ॥मतवाले हाथियोंके शांस लेंनेसे व्याकुल पवन,शंख शब्दकी समान वाजे आदिके बड़े भारी शब्दसे परिपूर्ण तुरहीके बजनेंसे निनादित ॥ ४ ॥ स्त्रीजनोंसे पूर्ण, रात्रिके शेष होनेंसे प्रकाशित राजमार्ग, उत्तमभूषणभूषित, तपाये हुए सुवर्णके बनें द्वारोंसे शोभित ॥ ५ ॥ गन्धर्व औ देवगणोंके स्थानोंकी समान, नाग भवनकी समान रत्न समूहसे परिपूर्ण मन्दिरमें ॥ ६ ॥ महा मेघमें सूर्यका प्रवेश करनेंसे जैसी शोभा

शैलाग्रचयसंकाशंशैलशृंगमिवोन्नतम् ॥ सुविभक्तमहाकक्षंमहाजनपरिग्रहम् ॥ २ ॥ मतिमद्भिर्महामात्रैरनुरक्तैर
धिष्ठितम् ॥ राक्षसैराप्तपर्याप्तैःसर्वतःपरिरक्षितम् ॥ ३ ॥ मत्तमातंगनिःश्वासैर्व्याकुलीकृतमारुतम् ॥ शंखघोषमहा
घोषंतूर्यसंबाधनादितम् ॥ ४ ॥ प्रमदाजनसंबाधंप्रजल्पितमहापथम् ॥ तप्तकांचननिर्यूहंभूषणोत्तमभूषितम् ॥ ५ ॥
गंधर्वाणामिवावासमालयंमरुतामिव ॥ रत्नसंचयसंबाधंभवनंभोगिनामिव ॥ ६ ॥ तंमहाभ्रमिवादित्यस्तेजोविस्तृ
तरश्मिवान् ॥ अग्रजस्यालयंवीरःप्रविवेशमहाद्युतिः ॥ ७ ॥ पुण्यान्पुण्याहघोषांश्चवेदविद्भिरुदाहृतान् ॥ शुश्राव सु
महातेजाभ्रातुर्विजयसंश्रितान्॥८॥पूजितान्दधिपात्रैश्चसर्पिर्भिःसुमनोक्षतैः॥मंत्रवेदविदोविप्रान्ददर्शसमहाबलः ॥९॥
सपूज्यमानोरक्षोभिर्दीप्यमानंस्वतेजसा ॥ आसनस्थंमहाबाहुर्ववंदेधनदानुजम् ॥ १० ॥

होतीहै वैसेही शोभाको धारण करते हुए अपनें बड़े भाई रावणके द्युतिमान भवनमें वीरश्रेष्ठ विभीषणजी प्रवेश करते हुए ॥ ७ ॥ वहांपर प्रवेश करते हुए विभीषणजीनें वेदवादी राक्षस विप्रोंसे उच्चारित पुण्य रूप पवित्र पुण्याहशब्द अपने भ्राताकी विजय सूचकतामें सुना ॥ ८ ॥ विभीषणजीनें देखा, वेद मंत्र जाननेंवाले महाबलवान ब्राह्मण लोग, पुष्प, अक्षत, घृत और दधिसे पूजे गयेहैं ॥ ९ ॥ तिसके पीछे अपने तेजसे प्रदीप्त राक्षस लोगोंसे पूजित महाबाहु विभीषणजीनें सिंहासनपर बैठे हुए कुबेरके छोटे भाई रावणको प्रणाम किया॥१०॥

जब हम जलमें प्रवेशकर शयन करेंगे, तौ प्रज्वलित कामानल वहां हमें दग्ध नहीं करसकेगा ॥ ९ ॥ वह वामोरू सीताजी और हम यह दोनोंही एक पृथ्वीपरहैं हेलक्ष्मण! बस अबतक हम इसी आशासेही जीवन धारण कियेहैं ॥ १० ॥ जिस प्रकार जलसे पूर्ण खेत जब सूख जाताहै; तब उसमेंके जमे हुए धान, उस खेतकी जल पूर्ण अवस्थाके वशहो कदाचित् जीवितभी रहतेहैं, वैसेही " सीता जीवन धारण कियेहैं।" यही सुनकर हम जीवन धारण किये हुएहैं ॥ ११ ॥ हाय ! कितने दिनमें शत्रुको जीतकर कमल नेत्रवाली धन धान्य युक्त राज्यलक्ष्मीकी समान श्रीमती उन जानकीजीका दर्शन हम पावेंगे ॥ १२ ॥ हाय! रोगीपुरुषके रसायन पीनेंकी समान कब उन सुन्दर दर्शनवाली जानकीजीका

बह्वेतत्कामयानस्यशक्यमेतेनजीवितुम् ॥ यदहंसानवामोरूरेकांधरणिमाश्रितौ ॥ १० ॥ केदारस्येवकेदारःसोदकस्यनिरूदकः ॥ उपस्नेहेनजीवामिजीवंतींयच्छृणोमिताम् ॥ ११ ॥ कदानुखलुसुश्रोणींशतपत्रायतेक्षणाम् ॥ विजित्यशत्रून्द्रक्ष्यामिसीतांस्फीतामिवश्रियम् ॥ १२ ॥ कदासुचारुदंतोष्ठंतस्याःपद्ममिवाननम् ॥ ईषदुन्नाम्यपास्यामिरसायनमिवातुरः ॥ १३ ॥ तौतस्याःसहितौपीनौस्तनौतालफलोपमौ ॥ कदानुखलुसोत्कंपौहसंत्यामांभजिष्यतः ॥ १४ ॥ सानूनमसितापांगीरक्षोमध्यगतासती ॥ मन्नाथानाथहीनेवत्रातारंनाधिगच्छति ॥ १५ ॥ कथंजनकराजस्यदुहितामम चप्रिया ॥ राक्षसीमध्यगाशेतेस्नुषादशरथस्यच ॥ १६ ॥

मुखकमल झुकाकर हम अधरसुधा पियेंगे? ॥ १३ ॥ कितनें दिनोंमें वह जानकीजी हँसती हुई ताल फलके समान पीन व ऊंचे स्तनयुगल कम्पायमान करके हमको भली भांति भेंटकर तृप्त करेंगी ॥ १४ ॥ वह श्याम नयनवाली जनककुमारी जानकीजी हम समान स्वामीके रहते राक्षसोंके वशमेंहो अनाथकी समान किसीकोभी अपना छुटानेंवाला नहीं पातीहैं॥१५॥हाय! कैसे दुःखकी बातहै, राजर्षि जनककी लडैती पुत्री महाराजाधिराज दशरथजीकी पुत्रवधू और हमारी प्राणसम प्यारी भार्या होकरभी जानकीजी किस प्रकारसे राक्षसोंके बीचमें शयन करती होंगी॥१६॥

चारों ओर शोर करतेहैं, और कभी २ उनके झुन्डके झुन्ड विमानोंके ऊपर बैठ "काँय काँय" शब्द करते दिखाई देते हैं ॥ १९ ॥ गृध्र पीडित होकर पुरीके ऊपरी भागमें गिरा करतेहैं, और शृगालियां सन्ध्याके समय पुरीके निकट आनकर चिल्लाया करती हैं ॥ २० ॥ पुरीके द्वारपर व्याघ्रादि मांस खानेवालोंका चौपायोंके गिरनेके शब्दकी समान बडा भारी घोर शब्द सुनाई आया करताहै ॥ २१ ॥ हे वीर! आये हुए रामचंद्रको सीताजीका दे देनाही इन दुर्निमित्तोंकी शांतिका यथार्थ उपाय (प्रायश्चित्त) जान पडताहै ॥ २२ ॥ हे राजन्! लोभ अथवा मोहसे यदि कोई विरुद्ध बात हमारे मुखसे उच्चारण कीगई हो तौ आप हमारा दोष क्षमाकर दीजिये ॥ २३ ॥ सीताजीके हरणसे दुर्निमित्त आजकल दिखाई देते

गृध्राश्चपरिलीयंतेपुरीमुपरिपीडिताः ॥ उपपन्नाश्चसंध्येद्रेव्याहरंत्यशिवंशिवाः ॥ २० ॥ क्रव्यादानांमृगाणांचपुरी
द्वारेषुसंघशः ॥ श्रूयतेविपुलाघोषाःसविस्फूर्जितनिःस्वनाः ॥ २१ ॥तदेवंप्रस्तुतेकार्येप्रायश्चित्तमिदंक्षमम् ॥ रोचयेवी
रवैदेहीराघवायप्रदीयताम् ॥ २२ ॥ इदंचयदिवामोहाल्लोभाद्वाव्याहृतंमया ॥ तत्रापिचमहाराजनदोषंकर्तुमर्हसि
॥ २३ ॥ अयंहिदोषःसर्वस्यजनस्यास्योपलक्ष्यते ॥ रक्षसांराक्षसीनांचपुरस्यांतःपुरस्यच ॥ २४ ॥ प्रापणेचास्यमं
त्रस्यनिवृत्ताःसर्वमंत्रिणः ॥ अवश्यंचमयावाच्यंयद्दृष्टमथवाश्रुतम् ॥ संविधाययथान्यायंतद्भवान्कर्तुमर्हति ॥ २५ ॥
इतिस्वमंत्रिणांमध्येभ्राताभ्रातरमूचिवान् ॥ रावणंरक्षसांश्रेष्ठंपथ्यमेतद्विभीषणः ॥ २६ ॥ हितंमहार्थंमृदुहेतु
संहितंव्यतीतकालायतिसंप्रतिक्षमम् ॥ निशम्यतद्वाक्यमुपस्थितज्वरःप्रसंगवानुत्तरमेतदब्रवीत् ॥ २७ ॥

हैं; यह इन सब जनोंके और राक्षस, राक्षसी, अन्तःपुर व समस्त लंकापुरीकेही लिये बुरे जान पडतेहैं ॥ २४ ॥ यद्यपि भयके मारे कोई मंत्री आपके निकट इस सलाहको न उठासके, तथापि हमनें जो कुछदेखा या सुनाहै वह अवश्यही आपके निकट प्रगट करदेना कर्तव्यहै अब जैसा कुछ उचित जान पडे वैसा आप कीजिये ॥ २५ ॥ भ्राता विभीषण राक्षसोंके बीचमें बडे भ्राता राक्षस श्रेष्ठ रावणसे उसके व अपने मंत्रियोंके सामने इस प्रकारसे शुभदायक वचन कहकर चुप होरहे ॥ २६ ॥तव सीताकामी लंकापति रावण विभीषणजीके इस प्रकार न्याय युक्त

आकर इस अजेय लंकापुरीको व्याकुल कर दिया और वह इस पुरीमें प्रवेश करके जनककुमारी जानकीजीकोभी देख गया, और ह माराभी अपमान करनेंमें उसनें कुछ कसर नहीं की ॥ २ ॥ हनुमाननें अकेलेही देवीका बड़ा भारी मन्दिर तोड़ ताड़ डाला, और उसनें बड़ेर राक्षसोंका संहार करके इस लंकापुरीको फूंक फांक कर मलीन करदिया ॥ ३ ॥ जो हो, अब तुम सब बताओ कि हम तुम्हारे लिये किस कार्यका प्रारंभ करें? और यहभी कहोकि इस समय तुम सबकोभी कौनकर्म करना उचितहै तिस कर्मका परिणाम वाञ्छनीयहो ऐसा कोई उपा य इस समय तुम लोग बताओ ॥ ४ ॥ इस समय रामचंद्रके विरुद्धाचरणमें सलाह करना ठीकहै, कारण कि पंडित लोग मंत्रणा करनेंहीको विजय

प्रासादोधर्षितश्चैत्यःप्रवराराक्षसाहताः ॥ आविलाचपुरीलंकासर्वाहनुमताकृता ॥ ३ ॥ किंकरिष्यामिभद्रंवः किंवोयुक्तमनंतरम् ॥ उच्यतांनःसमर्थंयत्कृतंचसुकृतंभवेत् ॥ ४ ॥ मंत्रमूलंचविजयंप्रवदंतिमनस्विनः ॥ तस्माद्वैरोचयेमंत्रंरामप्रतिमहाबलाः ॥ ५ ॥ त्रिविधाःपुरुषालोकेउत्तमाधममध्यमाः ॥ तेषांतुसमवेतानांगुण दोषौवदाम्यहम् ॥ ६ ॥ मंत्रस्त्रिभिर्हिसंयुक्तःसमर्थैर्मंत्रनिर्णये ॥ मित्रैर्वापिसमानार्थैर्बांधवैरपिवाधिकैः ॥ ७ ॥ स हितोमंत्रयित्वायःकर्मारंभान्प्रवर्तयेत् ॥ दैवेचकुरुतेयत्नंतमाहुःपुरुषोत्तमम् ॥ ८ ॥ एकोर्थंविमृशेदेकोधर्मेप्रकुरुते मनः ॥ एकःकार्याणिकुरुतेतमाहुर्मध्यमंनरम् ॥ ९ ॥

प्राप्तिका मूल बतलातेहैं ॥ ५ ॥ पृथ्वीमें, उत्तम, मध्यम अधम, यह तीन प्रकारके पुरुष दृष्टि आया करतेहैं, सो इस समय हम उन समस्त समवेत पुरुषोंके गुण दोष वर्णन करतेहैं तुम लोग सुनो॥६॥ जो पुरुष हितकारी और मंत्रके निर्णय करनेंमें समर्थ मंत्रिलोगोंके साथ कार्यके विषयमें परामर्श करताहै; अथवा बराबर अपना दुःख सुख भोगनेंवाले मित्र और बन्धु बान्धवोंके साथ॥७॥ परामर्श करके, देवताकी सहायता पानेंका यत्न कर कार्यका आरंभ करताहै; पंडितलोग ऐसे पुरुषको उत्तम पुरुष कहा करतेहैं॥८॥ जोपुरुष इकलाही धर्म और अर्थका विचार करके अकेलाही कार्यका आरंभ क

रावणके आगे २ चले ॥ ५ ॥ बहुत सारे विकट वेशधारी अनेक भूषण पहरे राक्षसलोग रावणके अगल बगल पश्चाद्भागकी रक्षा करते हुए चले ॥ ६ ॥ महारथी गण रथपर सवार होकर व और दूसरे राक्षस शस्त्रसहित कोई हाथीपर कोई दिव्य घोडोंपर सवार होकर रावणके साथ २ जानें लगे ॥ ७ ॥ व कोई २ राक्षस गदा, परिघ, शक्ति, तोमर, फरशा,नालादि, अस्त्र लेकर रावणके साथ चले उस समय हजारों तुरेही बजने लगीं ॥ ८ ॥ जब राक्षस रावण सभामें जानेंके लिये निकला उस समय चारों ओरसे हजार २ तुरेही, और शंखोंके शब्दका बड़ाभारी घोर शब्द होंने लगा, रथका शब्द होने लगा ॥ ९ ॥ महारथी रावण अपने रथका शब्द चारों ओरको सुनाता अनेक प्रकारकी शोभा युक्त राज

नानाविकृतवेषाश्चनानाभूषणभूषिताः ॥ पार्श्वतःपृष्ठतश्चैनंपरिवार्यययुस्तदा ॥ ६ ॥ अनूत्पेतुर्दशग्रीवमाक्रीडद्भिश्चवाजिभिः ॥ ७ ॥ गदापरिघहस्ताश्चशक्तितोमरपाणयः ॥ ततस्तूर्यसहस्राणांसंजज्ञेनिःस्वनोमहान् ॥ ८ ॥ तुमुलःशंखशब्दश्चसभांगच्छतिरावणे ॥ सनेमिघोषेणमहान्सहसाभिनिनादयन् ॥ ९ ॥ राजमार्गंश्रियाजुष्टंप्रतिपेदेमहारथः॥विमलंचातपत्रंचप्रगृहीतमशोभत ॥ १० ॥ पांडुरंराक्षसेंद्रस्यपूर्णस्ताराधिपोयथा ॥ हेममंजरिगर्भंचशुद्धस्फटिकविग्रहे ॥ ११ ॥ चामरव्यजनेतस्यरेजतुःसव्यदक्षिणे ॥ तेकृतांजलयःसर्वेरथस्थंपृथिवीस्थिताः ॥ १२ ॥ राक्षसाराक्षसश्रेष्ठंशिरोभिस्तंववंदिरे ॥ राक्षसैःस्तूयमानःसन्जयाशीर्भिररिंदमः ॥ १३ ॥ आससादमहातेजाःसभांविरचितांतदा ॥ सुवर्णरजतास्तीर्णांविशुद्धस्फटिकांतराम् ॥ १४ ॥

मार्गमें जाय पहुंचा राक्षसराज रावणके मस्तक पर श्वेत वर्णका प्रकाशमान छत्र ॥ १० ॥ विमल पौर्णमासीके चंद्रमाकी समान शोभा धारण करता हुआ सुवर्णसे बने तथा युक्तिसे शुद्ध स्फटिकमणिकी समान ॥ ११ ॥ दो चमर पंखे उजले उसकी बांई और दाहिनी बगलमें शोभित होरहेथे मार्गमें बहुत सारे राक्षस गण रथके समीप हाथ जोडे खड़े हुएथे ॥ १२ ॥ वह सब राक्षसश्रेष्ठ रावणको झुक २ कर शिर नवाय २ प्रणाम करते इस प्रकार राक्षसोंसे स्तुति किया जाता हुआ, और विजयके लिये आशीर्वाद सुनता हुआ शत्रुदमनकारी रावण ॥ १३ ॥ विश्वकर्माकी बनाई हुई सभामें पहुंचा; यह सभा सुनहरी रूपहरी विस्तरोंसे शोभित थी, और विशुद्ध स्फटिकमणियोंसे शोभायमान ॥ १४ ॥

बलसे, किसी प्रकारसेभीहो अनुज लक्ष्मण और समस्त वानरोंकी सेनाके सहित समुद्रके पार आजांयगे ॥ १७ ॥ जबकि उनके दलवाले एकही वानरनें यहां आयकर ऐसा कार्य निर्वाह किया परन्तु रामचंद्र या तौ बाणोंसे समुद्रको सुखाय देंगे, या उसके ऊपर पुल बनावेंगे अथवा और कोई उपाय ग्रहणकर समुद्रके पार आय वानरोंके साथ जब लंकामें आवें उस काल हमारी पुरी और सैनाका जिस्से मंगलहो, सो ऐसे उपायको तुम लोग विचारकर स्थिर करो॥१८॥इ० श्रीम० वा० आ०यु० षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥वह महाबलवान् राक्षसगण राक्षसोंके स्वामी रावणसे इस प्रकार कहे जाकर सबही हाथ जोड़कर कहनें लगे ॥ १ ॥ महाराज शत्रुकी ओरका बलाबल विनाजानें सलाह करना निर्बोधका कार्यहै । राजन् ! आपके

समुद्रमुच्छोषयतिवीर्येणान्यत्करोतिवा ॥ तस्मिन्नेवंविधेकार्येविरुद्धोवानरैःसह ॥ हितंपुरेचसैन्येचसर्वसंमंत्र्यतांम
म ॥ १८ ॥ ॥इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०युद्धकांडेषष्ठःसर्गः ॥ ६ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ इत्युक्ताराक्षसेंद्रेणराक्षसास्तेमहाबलाः ॥
ऊचुःप्रांजलयःसर्वेरावणंराक्षसेश्वरम् ॥ १ ॥ द्विषत्पक्षमविज्ञायनीतिबाह्यास्त्वबुद्धयः ॥ राजन्परिघशक्त्यृष्टिशूलपाट्टि
शकुंतलम् ॥ २ ॥ सुमहन्नोबलंकस्माद्विषादंभजतेभवान् ॥ त्वयाभोगवतींगत्वानिर्जिताःपन्नगायुधि ॥ ३ ॥ कैलासशि
खरावासीयक्षैर्बहुभिरावृतः ॥ सुमहत्कदनंकृत्वावश्यस्तेधनदःकृतः ॥ ४ ॥ समहेश्वरसख्येनश्लाघमानस्त्वयाविभो ॥
निर्जितःसमरेरोषाल्लोकपालोमहाबलः ॥ ५ ॥ विनिपात्यचयक्षौघान्विक्षोभ्यविनिगृह्यच ॥ त्वयाकैलासशिखराद्वि
मानमिदमाहृतम् ॥ ६ ॥ मयेनदानवेंद्रेणत्वद्भयात्सख्यमिच्छता ॥ दुहितातवभार्यार्थेदत्ताराक्षसपुंगव ॥ ७ ॥

पास मुद्गर, शूल शक्ति ऋष्टि पटाधारी ॥ २ ॥ बडी भारी सैना है फिर आप किस कारणसे विषाद करते हैं? आपनें पातालमें जायकर सर्पोंको युद्धमें जीत लियाहै ॥ ३ ॥ कैलाशके शिर पर रहनेंवाले बहुत सारे यक्षोंके सहित कुबेरसे बड़ाभारी संग्राम करके उसको आपनें अपने वशमें कियाहै ॥ ४ ॥ हे महाराज! जो अपनेको महेश्वरका सखा कहकर अपनी बड़ाई किया करते हैं आपनें रोषमें भरकर रणभूमिमें इन लोकपालोंकोभी जीता ॥ ५ ॥ और पराजित कर यक्षोंको जीत दंडदे, उनमेंसे अनेकोंको मार डालकर कैलाश वनसे आप यह पुष्पक विमान ले आये ॥ ६ ॥ हे राक्षसोंके स्वामी! दानवनाथ मयनें आपके भयकी शंकाकर आपके सहित मित्रता करनेंकी वासनासे अपनी कन्या मन्दो

है; इसी प्रकार पैदलही सभामें प्रवेश करते हुए ॥ २२ ॥ वहां पहुंचकर उन्होंने राजाके चरणोंका वंदन किया, तब रावणनेभी जन राक्षसोंका अत्यन्त सन्मान किया, फिर रावणकी आज्ञा पाकर कोई कुरसीपर कोई विछोनोंपर व कोई ऐसेही भूमिपर बैठ गये ॥ २३ ॥ राक्षस गण राजाकी आज्ञाके अनुसार सभाके बीचमें पहुंचकर यथायोग्य रावणकी स्तुति करनेंलगे ॥ २४ ॥ मंत्रके जाननेंमें चतुर मंत्रीलोग और गुण वान सर्व शास्त्रोंके जाननेंवाले बुद्धि लोचन शत २ सहकारी मंत्रीगण व प्रधानादि यथाक्रमसे उस सभामें आये ॥ २५ ॥ इस प्रकार उस सुवर्ण मय रमणीक राक्षसोंके स्वामी रावणकी सभामें मंत्र स्थिर करनेंके लिये क्रम २ से अनेक वीरगणभी झुन्डके झुन्ड, उस सभामें आन पहुंचे ॥ २६॥

राज्ञःपादौगृहीत्वातुराज्ञातेप्रतिपूजिताः॥पीठेष्वन्येबृसीष्वन्येभूमौकेचिदुपाविशन् ॥२३॥तेसमेत्यसभायांवैराक्षसारा जशासनात्॥यथार्हमुपतस्थुस्तेरावणंराक्षसाधिपम्॥२४॥मंत्रिणश्चयथामुख्यानिश्चितार्थेषुपंडिताः॥अमात्याश्चगुणो पेताःसर्वज्ञाबुद्धिदर्शनाः ॥२५॥ समीयुस्तत्रशतशःशूराश्चबहवस्तथा ॥ सभायांहेमवर्णायांसर्वार्थस्यसुखायवै ॥ २६॥ ततोमहात्माविपुलंसुयुग्यंरथंवरंहेमविचित्रितांगम् ॥ शुभंसमास्थाययौयशस्वीविभीषणःसंसदमग्रजस्य ॥ २७ ॥ सपूर्वजायावरजःशशंसनामाथपश्चाच्चरणौववंदे ॥ शुकःप्रहस्तश्चतथैवतेभ्योददौयथार्हंपृथगासनानि ॥ २८ ॥ सुव र्णनानामणिभूषणानांसुवाससांसंसदिराक्षसानाम् ॥ तेषांपरार्ध्यागुरुचंदनानांस्रजांचगंधाःप्रववुःसमंतात् ॥ २९ ॥ नचुक्रुशुर्नानृतमाहकश्चित्सभासदोनापिजजल्पुरुच्चैः ॥ संसिद्धार्थाःसर्वएवोग्रवीर्याभर्तुःसर्वेददृशुश्चाननंते ॥ ३० ॥

तिसके पीछे यशस्वी महात्मा विभीषणजी शोभायमान घोड़ोंसे युक्त सुवर्णसे चित्रित मंगल चिह्नोंसे शोभित अति बड़े रथपर चढ़कर अपने बड़ेभाईकी सभामें आये ॥ २७ ॥ विभीषणनें सभामें प्रवेश करके निज नाम सबको सुनाय अपने बड़े भाईके चरणोंमें प्रणाम किया । शुक और प्रहस्त यह दोनों सभामें आये हुए सभासदोंको अलग २ आसन देने लगे ॥ २८ ॥ उसकालमें सुनहरी और विविध मणि भूषण धारी, श्रेष्ठ भूषण पहरे सभामें विराजमान उन सब राक्षसोंके शरीरोंमें लगे श्रेष्ठ अगर चंदनकी गंध व फूलमालाओंकी सुगन्धि सभामें चारों ओर महकनेंलगी ॥ २९ ॥ सभामें बैठे हुए सबही चुपचापथे, किसीके मुखसे कोई बात या मिथ्या बात नहीं उच्चारण होती, और ऊंचे स्वरसे किसी

वीर क्षत्रियोंसे यह पृथ्वी परिपूर्ण होगईथी ॥ १६ ॥ अधिक क्या कहैं,यह रामचंद्र, बल वीर्य,उत्साह या गुणमें उन क्षत्रियोंकी समान नहीं है कि जिन अजेय क्षत्रियोंको आपने पहले सरलतासे रणमें संहार करडालाथा फिर रामके लिये क्या सोच विचार ॥१७॥हेमहाराज! आपको कष्ट करनेंकी कुछ आवश्यकता नहीं आप स्थिर रहिये;आप जान लीजिये कि अकेला इन्द्रजीतही समस्त वानरोंकी सैनाका विनाश कर देगा॥१८॥विशेष करके इन मेघनादनें दिव्य यज्ञका आरंभ करके आशुतोष श्री शिवजीका संतोष साधन करके उनसे दुर्लभ वर लाभ कियाहै ॥ १९ ॥ यह वीरही शक्ति तोमर रूप मीन सेवित विकीर्ण अस्त्ररूप शैवाल पूर्ण गजरूप कच्छप और अश्वरूप भेक संकुल ॥ २० ॥ रुद्र और आदित्य रूप महाग्राह

तेषांवीर्यगुणोत्साहैर्नसमोराघवोरणे ॥ प्रसह्यतेत्वयाराजन्हताःसमरदुर्जयाः ॥ १७ ॥ तिष्ठवाकिंमहाराजश्रमेणतव वानरान् ॥ अयमेकोमहाराजइंद्रजित्क्षपयिष्यति ॥ १८ ॥ अनेनचमहाराजमाहेश्वरमनुत्तमम् ॥ इष्ट्वायज्ञंवरोलब्धो लोकेपरमदुर्लभः ॥ १९ ॥ शक्तितोमरमीनंचविनिकीर्णास्त्रशैवलम् ॥ गजकच्छपसंबाधमश्वमंडूकसंकुलम् ॥ २० ॥ रुद्रादित्यमहाग्राहंमरुद्वसुमहोरगम् ॥ रथाश्वगजतोयौघंपदातिपुलिनंमहत् ॥ २१ ॥ अनेनहिसमासाद्यदेवानां बलसागरम् ॥ गृहीतोदैवतपतिर्लंकांचापिप्रवेशितः ॥ २२ ॥ पितामहनियोगाच्चमुक्तःशंबरवृत्रहा ॥ गतस्त्रिविष्टपं राजन्सर्वदेवनमस्कृतः ॥२३॥ तमेवत्वंमहाराजविसृजेन्द्रजितंसुतम् ॥ यावद्वानरसेनांतांसरामांनयतिक्षयम् ॥ २४ ॥

समाकुल, वायु. और वसुगण रूप महासर्प युक्त. रथ, अश्व. और गजरूप जलराशि पूर्ण और पदाति रूप बड़ी भारी पुलिनसे युक्त ॥२१॥ यही देव सेनारूप महासागरको प्राप्तहो देवराज इन्द्रको बांधकर लंकामें लेआयाथा॥२२॥हेराजन्! फिर मेघनादनें पितामह ब्रह्माजीके कहनेंसे उन सर्वदेवके नमस्कार करनें योग्य शम्बर और वृत्रासुरके मारनेंवाले इन्द्रको छोड़ दिया, और देवताओंका राजा इन्द्रभी छूटकर स्वर्गको चला गयाथा ॥२३॥ हेमहाराज आप इन्द्रजीतको इस कार्यका भार देदीजिये वस निश्चय रखिये कि यह इन्द्रजीतही राम और समस्त वानरोंकी सैनाका नाश कर देगा॥२४॥

हित अहित इन सब बातोंको भलीभांतिसे जान लेना तुमको उचितहै ॥७॥ हम भलीभांति जानते हैं कि तुम परस्पर सलाह करके जो कार्य किया करते हो वह कदापि निष्फल नहीं होताहै क्योंकि पहले बहुत कार्य हमनें तुम्हारी सम्मत्तिसे सिद्ध किये हैं ॥ ८ ॥ अधिक क्या कहैं इन्द्र जिस प्रकार चन्द्रमा ग्रह, नक्षत्र और मरुद्गणसे सेवित होकर स्वर्गके सुखका भोग किया करते हैं, वैसेही तुम्हारी अनुकूलतासे हम लंकापुरीका राज्य करतेहैं ॥ ९ ॥ इस संकटके समय हम तुम लोगोंसे सहायताकी प्रार्थना करते हैं हमारे पिछले भाई कुंभकर्ण सोय रहेथे, इस लिये विना उनके जागे हमने तुम सबसे भी कुछ नहीं कहा ॥ १० ॥ शस्त्र धारियोंमें श्रेष्ठ वह कुम्भकर्ण छै माससे सोय रहेथे सो यह आज जागकर सभामें

सर्वकृत्यानियुष्माभिःसमारब्धानिसर्वदा ॥ मंत्रकर्मनियुक्ताननिजातुविफलानिमे॥८॥ ससोमग्रहनक्षत्रैर्मरुद्भिरिववासवः ॥ भवद्भिरहमत्यर्थंवृतश्रियमवाप्नुयाम् ॥ ९ ॥ अहंतुखलुसर्वान्वःसमर्थयितुमुद्यतः ॥ कुंभकर्णस्यतुस्वप्नान्नेममर्थंमचोदयम् ॥ १० ॥ अयंहिसुप्तःषण्मासान्कुंभकर्णोमहाबलः ॥ सर्वशस्त्रभृतांमुख्यःसहेदानींसमुत्थितः ॥११ ॥ इयंचदंडकारण्याद्रामस्यमहिषीप्रिया ॥ रक्षोभिश्चरितोद्देशादानीताजनकात्मजा ॥ १२ ॥ सामेनशय्यामारोढुमिच्छत्यलसगामिनी ॥ त्रिषुलोकेषुचान्यामेनसीतासदृशीतथा ॥ १३ ॥ तनुमध्यापृथुश्रोणीशरदिंदुनिभानना ॥ हेमबिंबनिभासौम्यामायेवमयनिर्मिता ॥ १४ ॥ सुलोहिततलौश्लक्ष्णौचरणौसुप्रतिष्ठितौ ॥ दृष्ट्वाताम्रनखौतस्यादीप्यतेमेशरीरजः ॥ १५ ॥

आये हैं, इसलिये हमने जिसकार्यको कियाहै; आज वह समस्त तुमलोगोंसे कहते हैं ॥ ११ ॥ कि हम राक्षस गणोंके घूमनेके स्थान दंडक वनसे रामचंद्रकी प्यारी नारी जनककुमारी सीताको हरण करकेले आये हैं ॥ १२ ॥ वह अलसगामिनी हमारी शेज पर नहीं आना चाहती। इस त्रिलोकीमें सीताके समान हमारा मन हरण करनें वाली और कोई नहीं है ॥ १३ ॥ उसकी कमर पतलीहै पश्चात्भाग मोटाहै वदन मंडल शरद ऋतुके चंद्रमाकी समान है, वह देखनेमें सुवर्णसे बनीहुई भूमि और मयकी बनाई हुई मायाके समान जान पड़ती हैं॥ १४ ॥ उनके चरणतल लाल वर्ण और कोमल हैं, उनके नखोंकी अरुण दीप्ति हैकि जिसके देखनेहीसे हमारे अंगमें अनंगके बाण लगेहैं ॥ १५ ॥

हम नहीं सह सकते ॥ ७ ॥ महाराज ! आप अभी आज्ञा दीजिये; हम इसी मुहूर्त्तमें गमन करके अकेलेही उन वानरोंकी इतिश्री करदें । वह वानरगण भयानक समुद्र, आकाश और पातालमें प्रवेश करकेभी अपनी रक्षा करनेंको समर्थ नहोंगे ॥ ८ ॥ तिसके पीछे महा बलवान राक्षस वज्रदंष्ट्र अत्यन्त क्रोधातुर होकर मांस व रुधिरसे सनाहुआ बड़ाभारी परिघ ग्रहण करके बोला ॥ ९ ॥ कि राम लक्ष्मणके जीवित रहते उस तपस्वी दीनस्वभाव हनुमानका प्राण विनाश करनेंसे हमको क्या फल होगा? ॥ १० ॥ हेमहाराज! अब हम अकेलेही उस वानरी सैनाको खल बलायकर इस परिघसे राम लक्ष्मण और सुग्रीवका नाश करके लौट आमेंगे ॥ ११ ॥ हेराजन्! आपसे विनतीहै; कि इस समय आप हमारी

अस्मिन्मुहूर्तेंगत्वैकोनिवर्तिष्यामिवानरान् ॥ प्रविष्टान्सागरंभीममंबरंवारसातलम् ॥ ८ ॥ ततोब्रवीत्सुसंक्रुद्धोवज्रदंष्ट्रोमहाबलः ॥ प्रगृह्यपरिघंघोरंमांसशोणितदूषितम् ॥ ९ ॥ किंनोहनूमताकार्यंकृपणेनतपस्विना ॥ रामेतिष्ठतिदुर्धर्षेसुग्रीवेपिसलक्ष्मणे ॥ १० ॥ अद्यरामंससुग्रीवंपरिघेणसलक्ष्मणम् ॥ आगमिष्यामिहत्वैकोविक्षोभ्यहरिवाहिनीम् ॥ ११ ॥ इदंममापरंवाक्यंशृणुराजन्यदीच्छसि ॥ उपायकुशलोह्येवजयेच्छत्रूनतंद्रितः ॥ १२ ॥ कामरूपधराः शूराःसुभीमाभीमदर्शनाः ॥ राक्षसानांसहस्राणिराक्षसाधिपनिश्चिताः ॥ १३ ॥काकुत्स्थमुपसंगम्यविभ्रतंमानुषंवपुः ॥ सर्वेह्यसंभ्रमाभूत्वाब्रुवंतुरघुसत्तमम् ॥ १४ ॥ प्रेषिताभरतेनैवभ्रात्रातवयवीयसा ॥ सहिसेनांसमुत्थाप्यक्षिप्रमेवोपयास्यति ॥ १५ ॥ ततोवयमितस्तूर्णंशूलशक्तिगदाधराः ॥ चापबाणासिहस्ताश्चत्वरितास्तत्रयामहे ॥ १६ ॥

एक और बात सुनें; आप जान रक्खें कि जो उपाय करनेंमें चतुर और उद्योगीहै विजय लक्ष्मी उनकेही हाथमें रहतीहै, अर्थात्वही लोग शत्रुको जीतलेतेहैं ॥ १२ ॥ कामरूपधारी भयंकराकार शूर बहुत राक्षस लग भग तीन सहस्रके एक निश्चयकर ॥ १३ ॥ मनुष्य रूप धार रघुवंश कुलमणि श्रीरामचंद्रजीके निकट पहुंचकर बड़ी सावधानीके साथ कहैं कि ॥ १४ ॥ " हम सबको तुम्हारे पास तुम्हारे छोटे भाई भरतजीनें भेजाहै " यह श्रवणकर श्रीरामचंद्र सेनाको छोड़ वहीं बहुतही शीघ्र हमारी सेनाके साथ मिल जॉयगे ॥ १५ ॥ तिसके पीछे हमभी शूल, शक्ति, ग

पहुंचे ॥ २४ ॥ जिस्से कि इस समय सीताको नलौटाना पड़े, और रामलक्ष्मणका विनाशभी होजाय, ऐसी उचित मंत्रणा इस समय तुम लोग
विचारो ॥ २५ ॥ विशेषतः इतनी बाततौ निःसन्देहही याद रक्खो कि युद्ध होंनेपर उसमें जयतौ हमारीही होगी कारणकि वानर लोग समुद्रके
पार आय हमको जीतनेंमें समर्थ नहीं हैं; व और किसी दूसरेकी सामर्थ्यभी जगत्में हम नहीं देखते कि जो समुद्र उतरकर यहां लड़नें आवे॥ २६ ॥
तब कामी बड़े भाईके करुणा सहित ऐसे वचन सुनकर मध्यम भ्राता कुम्भकर्ण अतिशय क्रोधितहो कहनें लगा ॥ २७ ॥ हेबड़े भाईसाहब!
आप जबकि राम लक्ष्मणके निकटसे बलपूर्वक जानकीको हरण कर लाये, तब हम लोगोंके सहित विचार न करके स्वयंही आपनें एक क्षण
भरमें इस बातका विचारकर लिया होगा। अतएव यमुनानें पृथ्वीमें उतरनेंके समय जिसप्रकार पहले अपने कुण्डोंको पूर्णकर फिर समुद्रको

अदेयाचयथासीतावध्यौदशरथात्मजौ ॥ भवद्भिर्मंत्र्यतांमंत्रःसुनीतंचाभिधीयताम् ॥ २५ ॥ नहिशक्तिंप्रपश्या
मिजगत्यन्यस्यकस्यचित् ॥ सागरंवानरैस्तीर्त्वानिश्चयेनजयोमम ॥ २६ ॥ तस्यकामपरीतस्यनिशम्यप
रिदेवितम् ॥ कुंभकर्णःप्रचुक्रोधवचनंचेदमब्रवीत् ॥ २७ ॥ यदातुरामस्यसलक्ष्मणस्यप्रसह्यसीताखलुसाइहा
हृता ॥ सकृत्समीक्ष्यैवसुनिश्चितंतदाभजेतचित्तंयमुनेवयामुनम् ॥ २८ ॥ सर्वमेतन्महाराजकृतमप्रतिमंतव ॥ वि
धीयेतसहास्माभिरादावेवास्यकर्मणः ॥ २९ ॥ न्यायेनराजकार्याणियःकरोतिदशानन ॥ नससंतप्यतेपश्चान्नि
श्चितार्थमतिर्नृपः ॥ ३० ॥ अनुपायेनकर्माणिविपरीतानियानिच ॥ क्रियमाणानिदुष्यंतिहवींष्यप्रयतेष्विव ॥ ३१ ॥

परिपूर्णकर समुद्रके जलसे अपनी उन्नतिको नहीं प्राप्त किया, वैसेही आपनें जो चलायमान चित्तका कार्य कियाहै, सो उसके परिणामके समय हम
लोगोंकी सलाहसे अब क्या कल्याण होगा? ॥ २८ ॥ हेराजन्! ऐसे कार्यको करनेंके पहले हम सब लोगोंसे आपको सलाह लेना ठीकथा, परन्तु
आपनें ऐसा न करके राम लक्ष्मणके विनाजाने उनको धोखा देकर जानकीको हरणकर ले आये;यह कार्य आपनें अत्यन्त अनुचित कियाहै॥२९॥
हेदशानन !जो राजा कर्त्तव्य कार्यके विषयमें परामर्श स्थिर करके न्यायानुसार कार्य करतेहैं; उनको पीछेसे कभी संताप नहीं भोगना पड़ता॥३०॥
यदि सलाह विनास्थिर किये जो कार्य किये जातेहैं,वह कार्य पशु हिंसादि यज्ञ प्रयुक्त हव्य पदार्थकी समान वह कष्टके कारण होजाते हैं ॥ ३१ ॥

तिसके पीछे कुम्भकर्णका बेटा निकुम्भ, रभस, महाबलवान् सूर्यशत्रु, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, महापार्श्व, महोदर, ॥१॥ अग्निकेतु, अजेय, रश्मिकेतु राक्षस इन्द्रशत्रु, तेजस्वी महाबलवान रावणका बेटा इन्द्रजीत ॥ २ ॥ प्रहस्त, विरूपाक्ष, महाबलवान वज्रदंष्ट्र, धूम्राक्ष, निकुंभ, दुर्मुख नाम राक्षस॥३॥ परिघ, पटा, शूल, कांशी, शक्ति, परशा, धनुष, सुवर्णके फलके लगे हुए बाण; अत्यन्त द्युतिमान खड्ग ॥ ४ ॥ इत्यादि अस्त्र शस्त्र धारण कर परम क्रोध युक्त खड़े होकर महातेजस्वी अग्निकी समान प्रज्वलितहो यह सब राक्षस रावणसे बोले ॥ ५ ॥ कि हम आजही रामचन्द्र लक्ष्मण सुग्रीव, और उस लंकाके जलानेवाले दीन स्वभाव हनुमानका प्राणभी संहार कर डालेंगे ॥ ६ ॥ तब विभीषण अस्त्रधारी उन वीर पुरुषोंको

ततोनिकुंभोरभसःसूर्यशत्रुर्महाबलः ॥ सुप्तघ्नोयज्ञकोपश्चमहापार्श्वमहोदरौ ॥ १ ॥ अग्निकेतुश्चदुर्धर्षोरश्मिकेतुश्चराक्षसाः ॥ इंद्रशत्रुश्चबलवांस्ततोवैरावणात्मजः ॥ २ ॥ प्रहस्तोथविरूपाक्षोवज्रदंष्ट्रोमहाबलः ॥ धूम्राक्षोथनिकुंभश्चदुर्मुखश्चैवराक्षसाः ॥ ३ ॥ परिघान्पट्टिशाञ्छूलान्प्रासान्शक्तिपरश्वधान् ॥ चापानिचसुबाणानिखड्गांश्चविपुलांबुभान् ॥ ४ ॥ प्रगृह्यपरमक्रुद्धाःसमुत्पत्यचराक्षसाः ॥ अब्रुवन्रावणंसर्वेप्रदीप्ताइवतेजसा ॥ ५ ॥ अद्यरामंवधिष्यामःसुग्रीवंचसलक्ष्मणम् ॥ कृपणंचहनूमंतंलंकायेनप्रधर्षिता ॥ ६ ॥ तान्गृहीतायुधान्सर्वान्वारयित्वाबिभीषणः ॥ अब्रवीत्प्रांजलिर्वाक्यंपुनःप्रत्युपवेश्यतान् ॥ ७ ॥ अप्युपायैस्त्रिभिस्तातयोर्थःप्राप्तुंनशक्यते ॥ तस्यविक्रमकालांस्तान्युक्तानाहुर्मनीषिणः ॥ ८ ॥ प्रमत्तेष्वभियुक्तेषुदैवेनप्रहतेषुच ॥ विक्रमास्तातसिध्यंतिपरीक्ष्याविधिनाकृताः ॥ ९ ॥ अप्रमत्तंकथंतंतुविजिगीषुंबलेस्थितम् ॥ जितरोषंदुराधर्षंतंधर्षयितुमिच्छथ ॥ १० ॥

रोककर उन सबको अपने २ आसनोपर बैठनेके लिये कह, विज्ञ विभीषण हाथ जोडकर रावणसे बोले ॥ ७ ॥ हे प्रभो! साम, दान, व भेद इन तीन उपायोंसे जो कार्य सिद्ध नहीं किया जाय सके, तब नीति शास्त्रके जाननेवालोंने उस कार्यके सिद्ध करनेके लिये विक्रम प्रगट करना अर्थात् दंड देना लिखाहै ॥ ८ ॥ शत्रुओंकी अवस्थाको देख असावधान, आलस्यी और रोगादिकसे पीडित शत्रुके प्रति विधिवत् दंड प्रकाश करनेसे वह शत्रुवशमें होजाताहै ॥ ९ ॥ परन्तु तुम लोग उन प्रमाद विहीन जयाभिलाषी देवसहाय क्रोधको जीते हुए और अजेय रामचंद्रको

को संहार, हम वानर दलके यूथप लोगोंकोभी भक्षणकर जांयगे॥३९॥इससमय आप सावधान चित्त होकर सुख सहित अपने हित कार्यको साधन करनें में रत होजाइये, और वारुणी पान करके इच्छानुसार विहार कीजिये; जब हम रामचंद्रका संहार कर डालेंगे तब सीता सदाके लिये आपके वश होजाय गी ॥४०॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे द्वादशः सर्गः ॥१२॥ तिसके पीछे महाबलवान् महापार्श्व रावणको क्रोधायमान देखकर एक मुहूर्त्त भरतक चिन्ताकर हाथ जोड़ रावणसे बोला ॥१॥ कि हे महाराज! आप जो रामचंद्रके आश्रममें प्रवेश करके उनकी स्त्रीको हरण करके ले आयेहैं, यह कार्य तौ आपके योग्यही हुआहै परन्तु जो पुरुष मृग और सर्पोंसे सेवित वनमें प्रवेश करके मधुको प्राप्त हो

रमस्वकामंपिबचाग्र्यवारुणींकुरुष्वकार्याणिहितानिविज्वरः ॥ मयातुरामेगमितेयमक्षयंचिरायसीतावशगाभविष्यति ॥ ४० ॥ इत्यार्षेश्री० वा० आ० यु० द्वादशःसर्गः ॥ १२ ॥ ॥ ७ ॥ रावणंक्रुद्धमाज्ञायमहापार्श्वोमहाबलः ॥ मुहूर्तमनुसंचिंत्यप्रांजलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥ यःखल्वपिवनंप्राप्यमृगव्यालनिषेवितम् ॥ नपिबेन्मधुसंप्राप्यसनरोबालिशोभवेत् ॥ २ ॥ ईश्वरस्येश्वरःकोस्तितवशत्रुनिबर्हण ॥ रमस्वसहवैदेह्याशत्रूनाक्रम्यमूर्धसु ॥ ३ ॥ बलात्कुक्कुटवृत्तेनप्रवर्तस्वमहाबल ॥ आक्रम्याक्रम्यसीतांवैतांभुंक्ष्वचरमस्वच ॥ ४ ॥ लब्धकामस्यतेपश्चादागमिष्यतिकिंभयम् ॥ प्राप्तमप्राप्तकालंवासर्वंप्रतिविधास्यते ॥ ५ ॥

करभी उसको न पिये वह, बड़ा मूर्ख है ॥ २ ॥ यदि आप कहें कि परनारीके भोग करनेंसे ईश्वरकी आज्ञाके विपरीत कार्य करना होताहै और इस्से अधिकभी होताहै, परन्तु आपको भय क्याहै? क्योंकि आप धर्मके प्रवर्तक यमादि ईश्वर गणोंकेभी ईश्वरहैं;इस कारण इस समय शत्रुलोगोंके मस्तकपर पांव धरकर आप सीताके साथ विहार कीजिये ॥ ३ ॥ हे महाबलवान्! यदि विहार करनेंके समय सीता आपके अनुकूल नहो तौ आप मुर्गेकी प्रवृत्ति धारण करके वारंवार बल प्रकाशकर उसको भोगकर विहार कीजिये ॥ ४ ॥ हे महाराज! जहां सीता आपके वशमें हुई, फिर पीछेसे किसी भयके आपपर आनेंकी कोई संभावना नहीं; यदि समयानुसार कोई भय आवेभी तौ उसको रोक दिया जायगा ॥ ५ ॥

र्ण अनेक रत्नोंसे युक्त इस लंकापुरीको बाणोंसे छिन्न भिन्न न करैं आप उस्से पहलेही जानकीको रामचंद्रके हाथमें सौंपदो ॥ १७ ॥ जबतककि वह घोर बड़ी भारी अजेय वानरोंकी सैना हमारी लंकापुरीको छिन्न भिन्नन करै, तिस्से पहलेही रामचंद्रजीको आप सीताजी लौटादें ॥ १८ ॥ हे महाराज! जो आप अपनी राजीसे उन रामचंद्रकी स्त्री सीताजीको उन्हें नलौटा देंगे, तौ यह लंकापुरी नष्ट हो जायगी, और महावीर्यवान यह राक्षसभी मारे जांयगे ॥ १९ ॥ हम तौ बंधु होनेसे आपके हितकीही कहतेहैं, सो आप हमारे वचन मानकर सीताको रामचंद्रके हाथमें समर्पण कर दीजिये॥ २० ॥ हे महाराज! वह राजकुमार रामचंद्र जबतक आपका वधकरनेंके लिये सूर्यकी किरणोंके समान प्रकाशित व चमकते फलके, पंख

यावत्सुघोरामहतीदुर्धर्षाहरिवाहिनी ॥ नावस्कन्दतिनोलंकांतावत्सीताप्रदीयताम् ॥१८॥ विनश्येद्धिपुरीलंकाशूराः सर्वेंचराक्षसाः ॥ रामस्यदीयतांपत्नीनस्वयंयदिदीयते ॥ १९ ॥ प्रसादयेत्वांबंधुत्वात्कुरुष्ववचनंमम ॥ हितंतथ्यंत्वहंब्रूमिदीयतामस्यमैथिली ॥ २० ॥ पुराशरत्सूर्यमरीचिसन्निभान्नवाग्रपुंखान्सुदृढान्नृपात्मजः ॥ सृजत्यमोघान्विशिखान्वधायतेप्रदीयतांदाशरथायमैथिली ॥ २१ ॥ त्यजाशुकोपंसुखधर्मनाशनंभजस्वधर्मरतिकीर्तिवर्धनम् ॥ प्रसीदजीवेमसपुत्रबांधवाःप्रदीयतांदाशरथायमैथिली ॥ २२ ॥ बिभीषणवचःश्रुत्वारावणोराक्षसेश्वरः ॥ विसर्जयित्वातान्सर्वान्प्रविवेशस्वकंगृहम् ॥ २३ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० युद्ध० नवमःसर्गः ॥९॥ छ॥ ततःप्रत्युषसिप्राप्तेप्राप्तधर्मार्थनिश्चयः ॥ राक्षसाधिपतेर्वेश्मभीमकर्माबिभीषणः ॥ १ ॥

लगे, अमोघ बाण न छोड़े;तिसके पहलेही जानकी आप उन्हें देदें ॥ २१ ॥ हे महाराज ! सुख और धर्मके नाश करनेवालें क्रोधका आप परित्याग कर दीजिये ! जिसकी सेवा करनेंसे लोकानुराग और कीर्तिकी वृद्धि होती है, आप उसकाही आश्रय ग्रहण करें; आप प्रसन्न होकर समझलें कि जानकीको आप उन्हें देदेंगे तौ हम सब अपने स्त्री पुत्रादिकोंके संग सुखसे समय विताय सकेंगे ॥ २२ ॥ राक्षसोंका स्वामी रावण विभीषणके ऐसे वचन श्रवण कर सबको विदादे अपने रनवासवाके भवनमें चलागया ॥ २३ ॥ इ० श्रीम०वा०आ०यु०नवमः सर्गः ॥ ९ ॥ महा तेजस्वी किरण युक्त सूर्य जिसप्रकार आकाशमें प्रकाशित होतेहैं, वैसेही दूसरे दिन प्रभात कालको धर्मार्थके तत्त्व जाननेवाले भयंकर

स्त्रीके ऊपर बलकर उस्से भोग करेगा, तौ तेरा मस्तक निश्चयही शतखंड होजायगा ॥ १४ ॥ हम उसी ब्रह्म शापसे भीत होकर उन विदेहराज नंदिनी सीताको अपनी शुभ शेजपर चढानेंकी चेष्टा नहीं करते ॥ १५ ॥हमारा वेग समुद्र तुल्य और गति वायुकी समानहै, सो हमारे विक्रमको न जान करही राम लंकाकी ओरको चढ़नेंकी चेष्टा करते हैं ॥ १६ ॥ हमारे पर्वतकी गुहामें सोते हुए सिंह और क्रोधित यमराजकी समान विराजमान रहनेसे ऐसा कौनहै जो हमारा विश्राम तोडनेंका साहस कर सकताहै ? ॥ १७ ॥ रामचंद्रनें संग्राममें दो जीभवाले सर्पोंकी समान हमारे धनुषसे छूटे हुए बाण नहीं देखेहैं, इसी कारणसे वह हमारे निकट आय रहेहैं ॥ १८ ॥ जिस प्रकार उल्कासमूहसे गतिवाले हाथीको दग्ध

इत्यहंतस्यशापस्यभीतःप्रसभमेवताम् ॥ नारोहयेबलात्सीतांवैदेहींशयनेशुभे ॥ १५ ॥ सागरस्येवमेवेगोमारुतस्येवमेगतिः ॥ नैतद्दाशरथिर्वेदह्यासादयतितेनमाम्॥१६॥ कोहिसिंहमिवासीनंसुप्तंगिरिगुहाशये ॥क्रुद्धंमृत्युमिवासीनंसंबोधयितुमिच्छति॥१७॥नमत्तोनिर्गतान्बाणान्द्विजिह्वान्पन्नगानिव ॥ रामःपश्यतिसंग्रामेतेनमामभिगच्छति ॥१८॥ क्षिप्रंवज्रसमैर्बाणैःशतधाकार्मुकच्युतैः ॥ राममादीपयिष्यामिउल्काभिरिवकुंजरम् ॥१९॥ तच्चास्यबलमादास्येबलेनमहतावृतः॥ उदितःसविताकालेनक्षत्राणांप्रभामिव॥२०॥नवासवेनापिसहस्रचक्षुषायुधास्मिशक्योवरुणेनवापुनः॥ मयात्वियंबाहुबलेननिर्जितापुरापुरीवैश्रवणेनपालिता ॥२१॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०यु०त्रयोदशःसर्गः ॥१३॥ छ ॥

निशाचरेंद्रस्यनिशम्यवाक्यंसकुंभकर्णस्यचगर्जितानि ॥ विभीषणोराक्षसराजमुख्यमुवाचवाक्यंहितमर्थयुक्तम् ॥१॥

किया जाताहै, वैसेही हम वज्रतुल्य बाण धनुषसे वर्षाकर रामचंद्रको भस्म कर डालेंगे ॥ १९ ॥ जिस प्रकार सूर्यके उदय होनेसे समस्त तारा गणोंकी ज्योति जाती रहतीहै, वैसेही हम अपनी सेनाके सहित जायकर रामचंद्रकी सेनाका नाश कर डालेंगे ॥ २० ॥ अधिक क्या कहैं सहस्रलोचन बलवान् इन्द्र और वरुणभी हमको परास्त नहीं करसकते, और अधिक करके पहलेही हमनें इस कुवेरपालित लंकापुरीको अपने बाहुबलसे अपने वश कियाथा ॥ २१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे त्रयोदशःसर्गः ॥ १३ ॥

राक्षसराज रावणके वचन और कुम्भकर्णके गर्जनायुक्त वचन सुनकर महात्मा बिभीषणजी रावणके ऐसे हितकारी और अर्थयुक्त वचन

और रावणनेंभी विभीषणजीको सदाचारानुरूप, आशीर्वाद देकर आसन ग्रहण करनेको कहा, राजाज्ञा पातेही विभीपणजी सुवर्णके आसनपर बैठ गये ॥ ११ ॥ महात्मा विभीषणजी, एकान्त जन रहित, केवल मंत्रियोंकेही जानें योग्य स्थानमें बैठे अपने बडे भाई रावणको हितकारी व अर्थयुक्त वचन कहनेंलगे ॥ १२ ॥ प्रथम यथा क्रमसे बडे भाईकी आदर मर्यादाकर देशकाल ऊंच नीच जाननेंमें कुशल विभीषणजी यह बोले ॥ १३ ॥ हे शत्रुओंके तपानेंवाले! जबसे सीताजी इस लंकापुरीमें आई हैं, तबसेही अनेक प्रकारके अशुभ सूचक दुर्निमित्त दिखाई देतेंहैं ॥ १४ ॥ इस समय मंत्र पूर्वक अग्नि आहुति पायकरभी अपने तेजसे नहीं बढता । अधिक क्या कहैं, कि प्रदीप्त करनेंके

सराजदृष्टिसंपन्नमासनंहेमभूषितम् ॥ जगामसमुदाचारंप्रयुज्याचारकोविदः॥११॥ सरावणंमहात्मानंविजनेमंत्रिसन्निधौ ॥ उवाचहितमत्यर्थंवचनंहेतुनिश्चितम् ॥१२॥ प्रसाद्यभ्रातरंज्येष्ठंसांत्वेनोपस्थितक्रमः ॥ देशकालार्थसंवादिदृष्टलोकपरावरः॥१३॥यदाप्रभृतिवैदेहीसंप्राप्तेहपरंतप ॥ तदाप्रभृतिदृश्यंतेनिमित्तान्यशुभानिनः ॥ १४ ॥ सस्फुलिंगः सधूमार्चिःसधूमकलुषोदयः ॥ मंत्रसंधुक्षितोप्यग्निर्नसम्यगभिवर्धते ॥ १५ ॥ अग्निष्टेष्वग्निशालासुतथाब्रह्मस्थलीषुच ॥ सरीसृपाणिदृश्यंतेहव्येषुचपिपीलिकाः ॥ १६ ॥ गवांपयांसिस्कन्नानिविमदावरकुंजराः ॥ दीनमश्वाःप्रहेषंतेनवग्रासाभिनंदिनः ॥ १७॥ खरोष्ट्राश्वतराराजन्भिन्नरोमाःस्रवंतिच ॥ नस्वभावेवतिष्ठंतेविधानैरपिचिंतिताः ॥ १८ ॥ वायसाः संघशःक्रूराव्याहरंतिसमंततः ॥ समवेताश्चदृश्यंतेविमानाग्रेषुसंघशः ॥ १९ ॥

समय उसमेंसे धुआं निकलताहै. चिनगारियें उडती हैं, और शिखामें बराबर धूम निकलताही रहताहै ॥ १५ ॥ हे महाराज! अग्नि होमशाला और वेद पढनेके स्थानोंमें सर्पादि दिखाई देते, और हवन करनेंके लिये जो खीरादि बनाई जातीहैं; उनमें चैंटियें चढी हुई दिखाई देती हैं ॥ १६ ॥ गौओंका दूध सूखगयाहै, श्रेष्ठ गज मदविहीन होगयेहैं; और घोडे यथेष्ट आहार पाकरभी भूखेकी समान और चारा पानेंकी आशामें दीनभावसे शब्द करते हैं ॥ १७ ॥ हेराजन्! गधे, ऊंट, खच्चड, रोम ऊंचे कर २ के आंसू डाल २ रोय रहेहैं; चिकित्सा शास्त्रके द्वारा यद्यपि उनकी औषधीभी भली भांति की जाती है,परन्तु तथापि वे अपनें स्वभाव पर नहीं आते ॥ १८ ॥ क्रूर स्वभाववाले कौवे दल बांध २ कर

तत्त्वको भली भांति जाननेंवाले विभीषणभी प्रहस्तके अमंगलकारी वचन सुनकर यह अर्थयुक्त वचन बोले ॥ ९ ॥ हेप्रहस्त ! राक्षसराज
महोदर कुंभकर्ण और तुम यह जो वृथा गाल बजातेहो कि हम रामचंद्रको जीत लेंगे, परन्तु अधार्मिकके स्वर्ग गमन करनेंकी समान तुम
लोग कोईभी इस कार्यके करनेंको समर्थ नहीं होगे ॥ १० ॥ प्रहस्त ! जिसको जहाजकी सहायता नहीं ऐसे पुरुषके समुद्र पार जानेंकी समान
तुम हम अथवा समस्त राक्षस गणोंसे किस प्रकारसे उन अर्थविशारद श्रीरामचंद्रजीका वध हो सकताहै ? ॥ ११ ॥ अधिक करके यह इक्ष्वाकु
कुलनंदन महारथी श्रीरामचंद्रजी अतिशय धार्मिकहैं ! प्रहस्त ! हमारी बात तौ दूर रहै ! ऐसे सब कार्यमें सामर्थवान पुरुषके संग्राममें देवता

प्रहस्तराजाचमहोदरश्चत्वंकुंभकर्णश्चयथार्थजातम् ॥ ब्रवीतरामंप्रतितन्नशक्यंयथागतिस्वर्गमधर्मबुद्धेः ॥ १० ॥
वधस्तुरामस्यमयात्वयाचप्रहस्तसर्वैरपिराक्षसैर्वा ॥ कथंभवेदर्थविशारदस्यमहार्णवंतर्तुमिवाप्लवस्य ॥ ११ ॥ धर्म
प्रधानस्यमहारथस्यइक्ष्वाकुवंशप्रवरस्यराज्ञः ॥ पुरोस्यदेवाश्चतथाविधस्यकृत्येषुशक्तस्यभवंतिमूढाः ॥१२॥ तीक्ष्णा
नतावत्तवकंकपत्रादुरासदाराघवविप्रमुक्ताः ॥ भित्त्वाशरीरंप्रविशंतिबाणाःप्रहस्ततेनैवविकत्थसेत्वम् ॥१३॥ भित्त्वा
नतावत्प्रविशंतिकायंप्राणांतिकास्तेशनितुल्यवेगाः ॥ शिताःशराराघवविप्रमुक्ताःप्रहस्ततेनैवविकत्थसेत्वम् ॥ १४ ॥
नरावणोनातिबलस्त्रिशीर्षोनकुंभकर्णस्यसुतोनिकुंभः ॥ नचेंद्रजिद्दाशरथिंप्रवोढुंत्वंवारणेशक्रसमंसमर्थाः ॥ १५ ॥
देवांतकोवापिनरांतकोवातथातिकायोतिरथोमहात्मा ॥ अकंपनश्चापिसमानसारःस्थातुंनशक्तायुधिराघवस्य ॥१६॥

लोगभी मूढकी समान हो जातेहैं ॥१२॥ प्रहस्त ! जबतक रामचंद्रजीके छोडे हुए तेज और अमोघ बाणोंने तुम्हारे शरीरको भेदकर उसमें
प्रवेश नहीं कियाहै, तबतक तुम राक्षसराजके सन्मुख वृथा बकवाद करतेहो ॥ १३ ॥ अबतकभी श्रीरामचंद्रजीकी बांहोंसे छूटे हुए प्राण हरण
कारी वज्रतुल्य वेगशाली तीखे बाण तुम्हारे शरीरको भेदकर फिर उनके तरकसमें जायकर नहीं प्रवेशे हैं; प्रहस्त ! इसी कारणसे तुम इसी
भांति अपनी बडाई मारतेहो ॥ १४ ॥ प्रहस्त ! बलवान राक्षसराज रावण, त्रिशीर्ष, मेघनाद, तुम, कुम्भकर्ण, अथवा उसका पुत्र निकुम्भ
तुम लोग कोईभी रणभूमिमें इन इन्द्रकी समान विक्रमी रामचंद्रजीका विक्रम सहन करनेंको समर्थ नहीं होगे ॥ १५ ॥ देवान्तक, नरान्तक,

महा अर्थ समन्वित, हेतुगर्भ, वर्त्तमान व भविष्यकालमें शुभकारी यह वचन सुन क्रोध करके उत्तर देता हुआ ॥ २७ ॥ हम किसीके निकट सेभी भयका कारण नहीं देखतेहैं, रामचंद्र किसी प्रकार जानकीजीको प्राप्त नहीं होसकेंगे कारणकि वह लक्ष्मणके बड़े भाई रामचंद्र इन्द्रादि देव गणोंके साथ मिलकरभी रणभूमिमें हमारे सामनें नहीं टिक सकेंगे ॥ २८ ॥ रणभूमिमें प्रचंड पराक्रम करनेंवाला सुरसैनाका नाशकारी महाबलवान रावण हितकी कहनेंवाले भ्राता विभीषणको यह कहकर विदा करता हुआ ॥ २९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे दशमः सर्गः ॥ १० ॥ पापचारी राक्षसराज रावण भार्याहरणका पाप कर्म करनेवाला

भयंनपश्यामिकुतश्चिदप्यहंनराघवःप्राप्स्यतिजातुमैथिलीम् ॥ सुरैःसहेंद्रैरपिसंगरेकथंममाग्रतःस्थास्यतिलक्ष्मणाग्रजः ॥ २८ ॥ इत्येवमुक्त्वासुरसैन्यनाशनोमहाबलःसंयतिचंडविक्रमः ॥ दशाननोभ्रातरमाप्तवादिनंविसर्जयामासतदाविभीषणम् ॥ २९ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आदि०युद्धकांडेदशमःसर्गः ॥ १० ॥ ॥ छ ॥ ॥ सबभूवकृशोराजामैथिलीकाममोहितः ॥ असन्मानाच्चसुहृदांपापःपापेनकर्मणा ॥ १ ॥ अतीवकामसंपन्नोवैदेहीमनुचिंतयन् ॥ अतीतसमयेकालेतस्मिन्वैयुधिरावणः ॥ अमात्यैश्चसुहृद्भिश्चप्राप्तकालममन्यत ॥ २ ॥ सहेमजालविततंमणिविद्रुमभूषितम् ॥ उपगम्यविनीताश्वमारुरोहमहारथम् ॥ ३ ॥ तमास्थायरथश्रेष्ठंमहामेघसमस्वनम् ॥ प्रययौरक्षसांश्रेष्ठोदशग्रीवःसभांप्रति ॥ ४ ॥ असिचर्मधरायोधाःसर्वायुधधरास्ततः ॥ राक्षसाराक्षसेंद्रस्यपुरस्तात्संप्रतस्थिरे ॥ ५ ॥

विभीषणादि सुहृदगणोंका निरादर करके जानकीजीकी कामनासे अत्यन्त मोहितहो दुर्बल होनें लगा ॥ १ ॥ काममोहित और निरन्तर जानकीजीका स्मरण करता हुआ समयको बीत जाता हुआ देखकर उस काल विभीषणके सिवाय और सब सुहृद व मंत्रियोंके सहित मन लगाय; उसके विषयमें सलाह करनेंका अवसर आया जान ॥ २ ॥ सुवर्णकी जालियोंसे विभूषित, मूंगे मणिसे शोभायमान अच्छे सीखे सिखाये घोड़े जिसमें जुतरहे ऐसे महा रथमें सवार होता हुआ ॥ ३ ॥ और उसमेघकी समान शब्द करते हुए श्रेष्ठ रथपर चढ़कर वह दशवदन राक्षस श्रेष्ठ रावण सभाकी ओर गमन करनें लगा ॥ ४ ॥ उस समय सर्व अस्त्रशस्त्रोंको धारण किये बहुत सारे राक्षस ढाल तलवार ग्रहण करके राक्षस

बृहस्पतिजीके तुल्य बुद्धिमान विभीषणजीके यह उदार वचन सुनकर राक्षसश्रेष्ठ महाबलवान मेघनाद कहने लगा ॥ १ ॥ हे कनिष्ठ तात! आप डरेहुएकी समान किस कारणसे ऐसे अनर्थ कारी वचन, कह रहे हैं पौलस्त्य कुलमें जन्म लेनेंवालेकी बात तौ दूररहै, सहज दुर्बल मनुष्य कुलमें जन्मा हुआ मनुष्यभी ऐसा नहींकरैगा, और नऐसा कार्य करैगा ॥२॥ इस कुलमें एक केवल छोटे चचा बिभीषणही, बलवीर्य पराक्रम धीरता शूरता और तेजहीन पुरुष उत्पन्न हुएहैं॥३॥ हे डरपोक!आप यह क्या मर्यादा दिखातेहैं? हमारा तौ केवल एकही साधारण राक्षस उन दो राजकुमारोंको मारडालेगा ॥ ४ ॥ आप जानतेहीहैं कि देवराज इन्द्र त्रिलोकका राजाहै; परन्तु हम उसको बांधकर पृथ्वी पर ले आये

बृहस्पतेस्तुल्यमतेर्वचस्तन्निशम्य्यतनेनबिभीषणस्य॥ततोमहात्मावचनंबभाषेतत्रेंद्रजिन्नैर्ऋतयूथमुख्यः॥१॥किंनाम
तेतातकनिष्ठवाक्यमनर्थकंवैबहुभीतवच्च॥ अस्मिन्कुलेयोपिभवेन्नजातःसोपीदृशंनैववदेन्नकुर्यात्॥२॥ सत्त्वेनवीर्येण
पराक्रमेणधैर्येणशौर्येणचतेजसाच ॥ एकःकुलेस्मिन्पुरुषोविमुक्तोविभीषणस्तातकनिष्ठएषः ॥ ३ ॥ किंनामतौमा
नुषराजपुत्रावस्माकमेकेनहिराक्षसेन ॥ सुप्राकृतेनापिनिहंतुमेतौशक्यौकुतोभीषयसेस्मभीरो ॥ ४ ॥ त्रिलोकना
थोननुदेवराजःशक्तोमयाभूमितलेनिविष्टः ॥ भयार्पिताश्चापिदिशःप्रपन्नाःसर्वेतदादेवगणाःसमग्राः ॥ ५ ॥ ऐरावतो
निःस्वनमुन्नदन्सनिपातितोभूमितलेमयातु॥ विकृष्यदंतौतुमयाप्रसह्यवित्रासितादेवगणासमग्राः॥६॥ सोहंसुराणा
मपिदर्पहंतादैत्योत्तमानामपिशोकहर्ता ॥ कथंनरेंद्रात्मजयोर्नशक्तोमनुष्ययोःप्राकृतयोःसुवीर्यः ॥ ७ ॥

व देवता लोग इस भयंकर वृत्तान्तको देख भयभीत हो दशों दिशाओंको भागगये ॥ ५ ॥ फिर हमने बलपूर्वक ऐरावत हाथीके दोनों दांत उखाड़ लिये; उस समयमें वह इन्द्रका हाथी आर्त नाद करता हुआ पृथ्वीपर गिरा तिस समय हमारा यह पराक्रम देखकर समस्त देवता लोगोंनें भय पाया ॥ ६ ॥ हमनें देवता लोगोंका गर्व हरण कियाहै, और रणभूमिमें दैत्योंका नाश करकै उनकी स्त्रियोंको शोक उत्पन्न करायाहै; इस कारण ऐसे वीर्यशाली होकरभी किस कारण हम इन साधारण मनुष्य राजपुत्र राम लक्ष्मणसे युद्ध करनेंको समर्थ न होंगे ? ॥ ७ ॥

उजला व सुनहरी चँदोवा ऊपर तनरहाथा, और छःसो पिशाच उस प्रभावाली सभाकी सदां गुप्तभावसे रक्षा कर रहेथे ॥ १५ ॥ ऐसी विश्वकर्माकी बनाई सभामें महातेजस्वी रावण प्रवेश करता हुआ । तिसमें वैदूर्य मणिसे प्रियका नाम मृगका अतिकोमल चर्म लग रहाथा ॥ १६ ॥ ऐसे सीढ़ी लगेहुए परमासन पर रावण बैठा । तिसके पीछे रावण बहुतसे पराक्रमवान दूतोंको आज्ञा देनें लगा ॥ १७ ॥ कि तुमलोग लंकाके रहनेंवाले राक्षसोंको बहुतही शीघ्र हमारे पास ले आओ; कारणकि शत्रु लोगोंके साथ बड़े भारी कार्यमें हमको अड़ना पड़ेगा ॥ १८ ॥ दूतलोग राक्षसोंके स्वामी रावणकी ऐसी आज्ञा पाय कर लंकावासी राक्षसोंके स्थानोंमें प्रवेश करतेहुए विहारमें रत, शयन

विराजमानोवपुषारुक्मपट्टोत्तरच्छदाम् ॥ तांपिशाचशतैःषड्भिरभिगुप्तांसदाप्रभाम् ॥ १५ ॥ प्रविवेशमहातेजाःसुकृतांविश्वकर्मणा ॥ तस्यांसवैदूर्यमयंप्रियकाजिनसंवृतम् ॥ १६ ॥ महत्सोपाश्रयंभेजेरावणःपरमासनम् ॥ ततःशशासेश्वरवद्दूतॉंल्लघुपराक्रमान् ॥ १७ ॥ समानयतमेक्षिप्रमिहैतान्राक्षसानिति ॥ कृत्यमस्ति महज्जानेकर्तव्यमितिशत्रुभिः ॥ १८ ॥ राक्षसास्तद्वचःश्रुत्वालंकायांपरिचक्रमुः ॥ अनुगेहमवस्थायविहारशयनेषुच ॥ १९ ॥ उद्यानेषुचरक्षांसिचोदयंतोह्यभीतवत् ॥ तेरथांतचराएकेदृप्तानेकेदृढान्हयान् ॥ नागानेकेऽधिरुरुहुर्जग्मुश्चैकेपदातयः ॥ २० ॥ सापुरीपरमाकीर्णारथकुंजरवाजिभिः ॥ संपतद्भिर्विरुरुचेगरुत्मद्भिरिवांबरम् ॥ २१ ॥ तेवाहनान्यवस्थाययानानिविविधानिच ॥ सभांपद्भिःप्रविविशुःसिंहागिरिगुहामिव ॥ २२ ॥

किये हुए ॥ १९ ॥ उद्यानमें क्रीड़ाकरते हुए राक्षस लोगोंके निकट राक्षसेश्वर रावणकी आज्ञाका प्रचार करते हुए निडर होकर लंकामें घूमनें लगे, राक्षस लोग राक्षसनाथ रावणकी आज्ञाको जानकर कोई मनोहर रथपर चढ कोई अलग घोड़ेपर सवारहो, कोई हाथीपर चढ़ और कोई पैदलही चलनें लगे ॥ २० ॥ उसकालमें लंकापुरी, रथ, कुंजर और अश्व गणोंसे समाकीर्णहो गिरते हुए पक्षियोंसे व्याप्त आकाशमंडलकी समान शोभायमान हुई ॥ २१ ॥ तिसके पीछे समस्त सभाके द्वार पर पहुंच अपनी २ सवारियें छोड़. सिंह जिस प्रकार पर्वतकी गुफामें प्रवेश करता

जाना चाहतेहैं॥१३॥हे बडे भाई साहब! आपसे अधिक और क्या कहैं. धन, रत्न, वसन, भूषण, और मणिके सहित रामचंद्रजीको तुम सीता दे डालो, ऐसा होजाय तौ तुम स्वच्छन्द होकर अपनी इस लंकापुरीमें वसे रहौ॥ १४॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० यु० पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥ जब धर्मात्मा विभीषणजीनें इस प्रकार अर्थ युक्त हितकारी वचन कहे तब रावणनें कालप्रेरितकी समान उनको यह कठोर वचन कहे ॥ १ ॥ शत्रु अथवा क्रोधित सर्पके साथ एकत्र वास करले, परन्तु नाम मात्रके मित्र और शत्रुकी सेवा करनेंवाले इस प्रकारके मित्रके साथ कभी वास नहीं करना योग्यहै ॥ २ ॥ हे विभीषण त्रिलोकमें कौनसी बातको हमनहीं जानतेहैं, हम जातिवालोंका यह स्वभाव भली भांति जानतेहैं, कि

धनानिरत्नानिसुभूषणानिवासांसिदिव्यानिमणींश्चचित्रान् ॥ सीतांचरामायनिवेद्यदेवींवसेमराजन्निहवीतशोकाः ॥ १४ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेपंचदशःसर्गः ॥ १५ ॥ ॥ ७ ॥ सुनिविष्टंहितं वाक्यमुक्तवंतंविभीषणम् ॥ अब्रवीत्परुषंवाक्यंरावणःकालचोदितः ॥ १ ॥ वसेत्सहसपत्नेनक्रुद्धेनाशीविषेणच ॥ नतुमित्रप्रवादेनसंवसेच्छत्रुसेविना २ ॥ जानामिशीलंज्ञातीनांसर्वलोकेषुराक्षस ॥ हृष्यंतिव्यसनेष्वेतेज्ञातीनांज्ञातयःसदा ॥ ३ ॥ प्रधानंसाधकंवैद्यंधर्मशीलंचराक्षस ॥ ज्ञातयोप्यवमन्यंतेशूरंपरिभवंतिच ॥ ४ ॥ नित्यमन्योन्यसंहृष्टाव्यसनेष्वाततायिनः ॥ प्रच्छन्नहृदयाघोराज्ञातयस्तुभयावहाः ॥ ५ ॥ श्रूयंतेहस्तिभिर्गीताःश्लोकाःपद्मवनेपुरा॥ पाशहस्तान्नरान्दृष्ट्वाशृणुष्वगदतोमम ॥ ६ ॥

बिरादरीमें एक आदमी पर विपद पडनेसे दूसरे आनंदित होतेहैं ॥ ३ ॥ विभीषण! जातिवाले लोग,—इसमेंभी प्रधान पंचगण, विद्वान धार्मिक और वीर पुरुषोंका निरादर करतेहैं और उनको परास्त करनेंके लिये वह लोग सदाही छिद्र ढूंड़ा करतेहैं ॥ ४ ॥ जातिसे अधिक भयानक और कौनहै! इन बिरादरीके मनका भाव जानना अतिकठिनहै यह जातिरूपी आततायीगण परस्परमें विपद आई हुई देखकर परस्पर हर्ष प्रकाश किया करतेहैं ॥ ५ ॥ बहुत दिन हुए कुछ हाथी पद्मवनमें भ्रमण कर रहेथे उस कालमें उन्होंनें कई एक हाथी सवार देखे कि

के मुखसे कोई बात नहीं निकलतीथी। कारणकि वह उग्रवीर्यवाले राक्षस लोग पूर्ण मनोरथ होकरही मानों अपने स्वामी रावणका मुखदेख रहेथे॥३०॥ तिस कालमें उस सभामें विराजमान शस्त्रधारी सुन्दर चित्त राक्षस गणोंके बीचमें बैठा हुआ चिन्ता शील रावण सभाके मध्य वसु गणोंके बीचमें बैठे हुए इन्द्रकी समान शोभा धारण करता हुआ ॥ ३१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥ तिसके पीछे संग्राममें जीतनेंवाला रावण समस्त सभाको देखकर सेनापति प्रहस्तको इस प्रकारसे आज्ञादेता हुआ ॥ १ ॥ हे सेनापते! अस्त्र शास्त्रके जाननेंवाले रथ. अश्व. गज. और पैदल. यह चार प्रकारके योधालोग जिस्से कि अति सावधानीसे नगरकी रक्षाकरें तुम उनको वैसाही

सरावणःशस्त्रभृतांमनस्विनांमहाबलानांसमितौमनस्वी ॥ तस्यांसभायांप्रभयाचकाशेमध्येवसूनामिववज्रहस्तः ॥ ॥ ३१ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०यु०एकादशःसर्गः ॥ ११ ॥ ॥ छ ॥ ॥ सतांपरिषदंकृत्स्नांसमीक्ष्यसमितिंजयः ॥ प्रबोधयामासतदाप्रहस्तंवाहिनीपतिम् ॥ १ ॥ सेनापतेयथातेस्युःकृतविद्याश्चतुर्विधाः ॥ योधानगररक्षायांतथाव्या देष्टुमर्हसि ॥ २ ॥ सप्रहस्तःप्रणीतात्माचिकीर्षन्राजशासनम् ॥ विनिक्षिप्यबलंसर्वंबहिरंतश्चमंदिरे ॥ ३ ॥ ततोवि निक्षिप्यबलंसर्वंनगरगुप्तये ॥ प्रहस्तःप्रमुखेराज्ञोनिषसादजगादच ॥ ४ ॥ विहितंबहिरंतश्चबलंबलवतस्तव ॥ कुरु ष्वाविमनाःक्षिप्रंयदभिप्रेतमस्तिते ॥ ५ ॥ प्रहस्तस्यवचःश्रुत्वाराजाराज्यहितैषिणः ॥ सुखेप्सुःसुहृदांमध्येव्याज हारसरावणः ॥ ६ ॥ प्रियाप्रियेसुखेदुःखेलाभालाभेहिताहिते ॥ धर्मकामार्थकृच्छ्रेषुयूयमर्हथवेदितुम् ॥ ७ ॥

उपदेश दो, कारणकि हमने दूतोंके मुखसे सुनाहे कि रामचंद्र समुद्रके तीर पर आगये ॥२॥ सावधान चित्त प्रहस्त राजाकी आज्ञा पालन करनें के लिये. राजपुरीके भीतर और बाहर यथा विधानसे सैनाको स्थापित करता हुआ॥ ३ ॥ तिसके पीछे नगरकी रक्षाके लिये अलग २ सैना नियत करके फिर सन्मुख आयकर प्रहस्त यह बोला ॥ ४॥ हे राजन्! आपकी आज्ञानुसार हमने सब कार्य किया बलवान राक्षसोंकी सेना नगरीके भीतर बाहर रक्षा करनेंको स्थापित कर दीगई, इस समय मनकी घवडाहट छोडकरकर्त्तव्य कार्य जो कुछ हो उसको शीघ्र कीजिये॥ ५ ॥ सुखका चाहने वाला राजा रावण हित चाहने वाले प्रहस्तके वचन सुन सब सुहृद गणोंको पुकारकर यह बोला ॥ ६ ॥ कि विपदके समय प्रिय अप्रिय सुख दुःख हानि लाभ

उसके अन्तःकरणमें नहीं जमती ॥ ११ ॥ शरदकालका मेघ जिस प्रकार गर्जता और वर्षताहै, परन्तु उससे किसी प्रकारभी पृथ्वी नहीं भीजती वैसेही दुर्जनके साथ कितनीही मित्रता प्रगट की जाय वह वास्तवमें किसीफलकी न देनेवाली होकर केवल वृथा गर्जनें और वर्षनेंकी तुल्य होतीहै ॥ १२ ॥ जिसप्रकार भौंरा प्यासा होकर पुष्पोंसे इच्छानुसार मधु पानकर परितृप्त होनें पर फिर उन पुष्पोंपर क्षण भरके लियेभी नहीं बैठता इसीप्रकार दुर्जनके साथ मित्रता करनेंसे वह केवल अपनाही कार्य निकाल लेताहै. विभीषण! तुमभी ऐसेहीहो ॥ १३ ॥ जिसप्रकार मधु लोभी भौंरा कांशफूल पर आप विशेष यत्नकरनेंपरभी मधुको नहीं प्राप्तहोता, वैसेही दुर्जनके साथ मित्रता करनेंसे उसके पाससे कोई फल

यथाशरदिमेघानांसिंचतामपिगर्जताम्॥ नभवत्यंबुसंक्लेदस्तथानार्येषुसौहृदम् ॥ १२ ॥ यथामधुकरस्तर्षाद्रसंविंदन्न तिष्ठति॥ तथात्वमापितत्रैवतथानार्येषुसौहृदम्॥ १३ ॥यथामधुकरस्तर्षात्काशपुष्पंपिबन्नपि॥ रसमत्रनविंदेततथाना र्येषुसौहृदम् ॥ १४ ॥ यथापूर्वंगजःस्नात्वागृह्यहस्तेनवैरजः ॥ दूषयत्यात्मनोदेहंतथानार्येषुसौहृदम् ॥ १५ ॥ योऽन्यस्त्वेवंविधंब्रूयाद्वाक्यमेतन्निशाचर ॥ अस्मिन्मुहूर्तेनभवेत्त्वांतुधिक्कुलपांसन ॥ १६ ॥ इत्युक्तःपरुषंवाक्यं न्यायवादीबिभीषणः ॥ उत्पपातगदापाणिश्चतुर्भिःसहराक्षसैः ॥ १७ ॥ अब्रवीच्चतदावाक्यंजातक्रोधोबिभीषणः ॥ अंतरिक्षगतःश्रीमान्भ्रातावैराक्षसाधिपम् ॥ १८ ॥

नहीं प्राप्त होता ॥ १४ ॥जिसप्रकार हाथी प्रथम जलमें स्नान करके फिर शुन्डसे धूरि फेंककर स्नानकृत निर्मलताका नाश करके अपने गातको मलीन करताहै, वैसेही दुर्ज्जनके साथ मित्रता करनेंसे वह अपना कार्यसिद्ध करलेनेपर स्वयंही पहले स्नेहको भूलकर मित्रताका नाश करले ताहै ॥ १५ ॥ हे कुलकलंक! तुझसे और अधिक क्या कहैं? तेरे जीवनको धिक्कारहै तू हमारा सगाभाई होंनेहीके कारण ऐसी बात कह कर अबतक जीवितहै,नहीं तो और कोई ऐसा कहता तो अबतक उसका हमनेंनाश कर दियाहोता॥१६॥न्याय वचन कहनें वाले बिभीषणजी रावण करके इस प्रकार घोर वचनोंसे निन्दित होंनें पर गदा ग्रहण करके अपने चारमंत्रियोंके सहित आकाशमें उछल गये ॥ १७ ॥ और अत्यन्त क्रोधित होकर

वह प्रकाशमान अग्निकी समान दीप्तिमान और सूर्य किरणके समान प्रभायुक्तहैं उनकी आंख ऊंचीहैं, दोनो नेत्र सुन्दर और वदन रमणीकहैं॥१६॥ जिसके देखते ही हम उसके वशहो कामके पाले पडे हैं । इस विषयमें क्रोध व हर्ष बराबर होनेसे कुवर्ण हो जाते ॥ १७ ॥ व शोक संताप सदा होनेसे कामने हमको बहुत सतायाहै । उस स्त्री सीतानें हमसे एक वर्षकासमय माँगाहै ॥१८॥ वह विशाल नेत्र वाली जानकी अपने स्वामी रामचंद्र की राह परख रही है वह सुन्दर नेत्रवाली उस सीताकी प्रतिज्ञा हमने मानलीहै ॥ १९ ॥ इस समय हम मार्ग चलनेसे थके हुए घोडेकी समान कामकी ताडनासे अत्यन्त चलायमान हो गयेहैं । और वनवासी वानर गण किस प्रकारसे इस अक्षोभ्य समुद्रको तरेंगे ॥ २० ॥

हुताग्निरर्चिःसंकाशामेनांसौरीमिवप्रभाम् ॥ उन्नसंविमलंवल्गुवदनंचारुलोचनम् ॥ १६ ॥ पश्यंस्तदवशस्तस्याः कामस्यवशमेयिवान् ॥ क्रोधहर्षसमानेनदुर्वर्णकरणेनच ॥ १७ ॥ शोकसंतापनित्येनकामेनकलुषीकृतः ॥ सातुसं वत्सरंकालंमामयाचतभामिनी॥१८॥प्रतीक्षमाणाभर्तारंराममायतलोचना ॥ तन्मयाचारुनेत्रायाःप्रतिज्ञातंवचःशुभ म्॥ १९ ॥ श्रांतोहंसततंकामाद्यातोहयइवाध्वनि ॥ कथंसागरमक्षोभ्यंतरिष्यंतिवनौकसः ॥ २० ॥ बहुसत्वझषा कीर्णंतौवादशरथात्मजौ ॥ अथवाकपिनैकेनकृतंनःकदनंमहत् ॥ २१ ॥ दुर्ज्ञेयाःकार्यगतयोब्रूतयस्ययथामति ॥ मानुषान्नोभयंनास्तितथापितुविमृश्यताम् ॥ २२ ॥ तदादेवासुरेयुद्धेयुष्माभिःसहितोऽजयम् ॥ तेमेभवंतश्चतथासु ग्रीवप्रमुखान्हरीन् ॥ २३ ॥ परेपारेसमुद्रस्यपुरस्कृत्यनृपात्मजौ ॥ सीतायाःपदवींप्राप्यसंप्राप्तौवरुणालयम् ॥ २४ ॥

और दशरथके पुत्र राम लक्ष्मणही बहुत मत्स्य व्यालोंसे युक्त किस प्रकारसे इसके पारहोंगे । अथवा जबकि एकही वानरनें इतना बड़ा हमारा अपमान किया ॥ २१ ॥ तब किस प्रकारसे उनके कार्यकी शांतिजानी जासकतीहै सो तुम लोग कहो; यद्यापि मनुष्योंसे हमको किसी प्रकारसे भयकी संभावना नहीं है, तथापि इस विषयमें जो कुछ कर्तव्यहै वह तुम लोग स्थिर करो ॥ २२ ॥ हमनें पहले देवासुर संग्राममें तुम लोगोंकी जय लक्ष्मी पाईथी, इस कारण आय पहुंचे हुए कार्यमें तुमलोग सहायता करो । कारणकि हमनें जानलियाहै कि सुग्रीवादि वानरोंको संग लिये ॥ २३ ॥ वह नृपकुमार राम लक्ष्मण समुद्रके उत्तर किनारेपर वह सीताका समाचार अपने दूतके मुखसे पाय समुद्रके उस पार आय

तौं उसको क्षमाकरदीजिये ॥ २५ ॥ लीजिये हम जाते हैं, आप हमको विदा देकर सुख प्राप्त कीजिये और राक्षसोंके सहित यह लंकापुरीभी सर्व प्रकारसे आपकी रक्षाकरै॥२६॥ हम तौ मंगलकी कामनासे आपको रोकते थे, परन्तु आपनें हमारे कहनेको न माना,महाराज! आयु वीत जानें पर लोग जिस प्रकार कालके वश होकर अपने इष्ट मित्रोंके कहे हुए वचनोंको किसी प्रकारसे नहीं मानते; हे राक्षसनाथ! अब तुम्हारीभी वही दशा आय पहुँची है, जो ऐसा न होता तौ हम सरीखे सुहृद लोगोंके वचनोंका ऐसा अनादर क्यों कियाजाता? ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥ विभीषण राक्षसराज रावणको इस प्रकार घोर वचन कहकर

निवार्यमाणस्यमयाहितैषिणानरोचतेतेवचनंनिशाचर ॥ परांतकालेहिगतायुषोनराहितंनगृह्णंतिसुहृद्भिरीरितम् ॥ २६ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०युद्धकाण्डेषोडशःसर्गः ॥ १६ ॥ इत्युक्त्वापरुषंवाक्यंरावणंरावणानुजः ॥ आजगाममुहूर्तेनयत्ररामःसलक्ष्मणः ॥ १ ॥ तंमेरुशिखराकारंदीप्तामिवशतह्रदाम् ॥ गगनस्थंमहीस्थास्तेदद्दृशुर्वानराधिपाः ॥ २ ॥ तेचाप्यनुचरास्तस्यचत्वारोभीमविक्रमाः ॥ तेपिवर्मायुधोपेताभूषणोत्तमभूषिताः ॥ ३ ॥ सचमेघाचलप्रख्योवज्रायुधसमप्रभः ॥ वरायुधधरोवीरोदिव्याभरणभूषितः॥४॥ तमात्मपंचमंदृष्ट्वासुग्रीवोवानराधिपः ॥ वानरैःसहदुर्धर्षश्चिंतयामासबुद्धिमान् ॥ ५ ॥ चिंतयित्वामुहूर्तंतुवानरांस्तानुवाचह ॥ हनूमत्प्रमुखान्सर्वानिदंवचनमुत्तमम् ॥ ६ ॥ एषसर्वायुधोपेतश्चतुर्भिःसहराक्षसैः ॥ राक्षसोऽभ्येतिपश्यध्वमस्मान्हंतुंनसंशयः ॥ ७ ॥

जिस स्थानमें श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके सहित विराजमानथे एक मुहूर्तभरमें वहां पहुँच गये ॥ १ ॥ वानरयूथपोंने पृथ्वीपरसे आकाशमें टिके हुए तेजसे प्रकाशमान सुमेरु पर्वतके शिखरकी समान उन विभीषणजीको देखा ॥ २ ॥ कवच बख्तर और शस्त्रधारी उत्तम भूषण भूषित पराक्रमशाली चार मंत्रियोंके सहित ॥ ३ ॥ उन मेघ और पर्वतकी समान, वज्रकी समान जिनके अंग प्रकाशमान श्रेष्ठ आयुध धारण किये दिव्य भूषण वस्त्रधारी॥४॥बुद्धिमान वानरराज सुग्रीवजी इन पांचजनोंको देख कर समस्त वानर गणोंके सहित चिन्ता करनें लगे॥५॥सुग्रीवजी इस प्रकार एक मुहूर्त भरतक चिन्ता करके हनुमानादि वानरोंसे यह उत्तम वचन बोले॥६॥यह देखो हमको निश्चय जान पड़ताहै कि यह सब अस्त्र शस्त्रधारी

जो प्रथम करनें लायक कार्योंको पीछे और पीछे करनें लायक कार्योंको पहले कर डालतेहैं, वह राजा नीति और अनीतिको कुछभी नहीं जानता है॥३२॥हेमहाराज! राजाके पास अधिक सैना रहनेंहीसे विजय होतीहै,ऐसा नहींहै,परन्तु पक्षियोंनें जिसप्रकार स्वामिकार्तिकके किये रन्ध्रसे क्रौञ्च पर्वतको उलंघन कियाथा, वैसेही शत्रु राजा लोगभी अपने शत्रुके कार्ममें छिद्र देखतेही उसको कुछ नहीं समझतेहैं ॥ ३३ ॥ आपने परिणामका फल न विचार कर प्रबलकी स्त्रीके हरनेंका यह जो महा पापका कार्य कियाहै, तिससे विषका मिला हुआ मांस भोजन करतेही भोजन करनेंवालेके प्राणोंका विनाश कर डालताहै, वैसेही श्रीरामचंद्रजीनें उस समय जो आपके प्राणोंका संहार नहीं किया, यही आपके परम भाग्यकी बात

यःपश्चात्पूर्वकार्याणिकर्माण्यभिचिकीर्षति ॥ पूर्वंचापरकार्याणिसनवेदनयानयौ ॥ ३२ ॥ चपलस्यतुकृत्येषुप्रसमीक्ष्याधिकंबलम् ॥ छिद्रमन्येप्रपद्यंतेक्रौंचस्यखमिवद्विजाः ॥ ३३ ॥ त्वयेदंमहदारब्धंकार्यमप्रतिचिंतितम् ॥ दिष्ट्यात्वांनावधीद्रामोविषमिश्रमिवामिषम् ॥ ३४ ॥ तस्मात्त्वयासमारब्धंकर्मह्यप्रतिमंपरैः ॥ अहंसमीकरिष्यामि हत्वाशत्रूंस्तवानघ ॥ ३५ ॥ अहमुत्सादयिष्यामिशत्रूंस्तवनिशाचर ॥ यदिशक्रविवस्वंतौयदिपावकमारुतौ ॥ तावहंयोधयिष्यामिकुबेरवरुणावपि ॥ ३६ ॥ गिरिमात्रशरीरस्यमहापरिघयोधिनः ॥ नर्दतस्तीक्ष्णदंष्ट्रस्यबिभीयाद्वैपुरंदरः ॥ ३७ ॥ पुनर्मांसद्वितीयेनशरेणनहनिष्यति ॥ ततोहंतस्यपास्यामिरुधिरंकाममाश्वस ॥ ३८ ॥ वधेनवैदाशरथेःसुखावहंजयंतवाहर्तुमहंयतिष्ये ॥ हत्वाचरामंसहलक्ष्मणेनखादामिसर्वान्हरियूथमुख्यान् ॥ ३९ ॥

है ॥ ३४ ॥ परन्तु जबकि तुमनें इस अनुचित कार्यको करहीडाला, और शत्रुओंके सहित समर करनेंका विचार कर लिया, तब हमी उन शत्रुओंका संहार करके इस कार्यकी शान्ति करेंगे ॥ ३५ ॥ यदि इन्द्र, सूर्य,अग्नि, पवन, कुबेर, और वरुण तुम्हारे साथ शत्रुताई करें,तौभी हम उनके सहित संग्राम करनेंमें विमुख न होकर उन तुम्हारे शत्रुओंको मारही डालेंगे ॥ ३६ ॥तब वह हमारा यह पर्वताकार शरीर और तीक्ष्ण डाढें देखकर गर्जना सुनकर इन्द्रभी भयको प्राप्त होजायगा ॥ ३७॥ आप निश्चिन्त रहिये,रामचंद्र एक बाण छोडकर दूसरा बाण न छोड़नें पावेंगे;कि हम उनका रुधिर पान करलेंगे॥३८॥हम दशरथ कुमार राम लक्ष्मणका नाश करकै आपके प्रीति उपजानेंवाली विजयके लिये यत्न करेंगे और लक्ष्मणके सहित रामचंद्र

तिरस्कार कियाहै हम इसी कारणसे पुत्र परिवारको त्यागकर श्रीरामचंद्रजीकी शरणमें आयेहैं ॥ १६ ॥ महात्मा श्रीरामचंद्रजी सर्व लोकोंके शरण देनें वालेहैं; इस कारण आप महात्मा श्रीरामचंद्रजीसे निवेदनकरें कि विभीषण आयेहैं ॥ १७ ॥ तब वानरराज सुग्रीवजी विभीषणके वचन सुनकर शीघ्रही श्रीराम लक्ष्मणजीके निकट गये और क्रोधसहित कहनें लगे ॥ १८ ॥ हमको जान पड़ताहै, कि शत्रुकी ओरका कोई भेदिया असावधानीसे हमारी सेनामें प्रवेशकर आयाहै; इस कारण अवसर पानेंसे उल्लू जिस प्रकार कौओंको मार डालताहै, ऐसेही यह हम लोगोंको मारडालेगा ॥ १९ ॥ हे शत्रुतापन! जिस्से वानरलोगोंका मंगल हो!आप इसी प्रकारसे कार्य अकार्यका विचार सेना सन्निवेश, उनको शिक्षा

निवेदयतमांक्षिप्रंराघवायमहात्मने ॥ सर्वलोकशरण्यायविभीषणमुपस्थितम् ॥ १७ ॥ एतत्तुवचनंश्रुत्वासुग्री
वोलघुविक्रमः ॥ लक्ष्मणस्याग्रतोरामंसंरब्धमिदमब्रवीत् ॥ १८ ॥ प्रविष्टःशत्रुसैन्यंहिप्राप्तःशत्रुरतर्कितः ॥ नि
हन्यादंतरंलब्ध्वाउलूकोवायसानिव ॥ १९ ॥ मंत्रेव्यूहेनयेचारेयुक्तोभवितुमर्हसि ॥ वानराणांचभद्रंतेपरेषांचपरं
तपः ॥ २० ॥ अंतर्धानगताह्येतेराक्षसाःकामरूपिणः ॥ शूराश्चनिकृतिज्ञाश्चतेषांजातुनविश्वसेत् ॥ २१ ॥ प्रणिधीरा
क्षसेंद्रस्यरावणस्यभवेदयम् ॥ अनुप्रविश्यसोस्मासुभेदंकुर्यान्नसंशयः ॥ २२ ॥ अथवास्वयमेवैषच्छिद्रमासाद्यबु
द्धिमान् ॥ अनुप्रविश्यविश्वस्तेकदाचित्प्रहरेदपि ॥ २३ ॥ मित्राटविबलंचैवमौलभृत्यबलंतथा ॥ सर्वमेतद्बलंग्राह्यंव
र्जयित्वाद्विषद्बलम् ॥ २४ ॥

देना. और शत्रु लोगोंकी सैनाका वृत्तान्त जाननेंके लिये दूत नियत कीजिये, इस्से अवश्य आपका मंगल होगा ॥ २० ॥ राक्षस लोग कामरूपी और अतिशय बलवान होते हैं, वह लोग गुप्तभावसे टिककर कूट उपायसे दूसरेका बुरा किया करतेहैं, इसलिये उन लोगोंके ऊपर विश्वास करना हम ठीक नहीं समझते ॥ २१ ॥ हमको तो यह विश्वास होताहै कि यह राक्षसराज रावणका गुप्त भेदिया है; यह हम लोगोंके बीचमें प्रवेश करकै निःसन्देह हम लोगोंमें परस्पर भेद डलवा देंगे ॥ २२ ॥ अथवा जबकि हम इसका विश्वास करकै जैसेही कि असावधान होंगे वैसेही यह बुद्धिमान हम लोगोंको मार डालेंगे ॥ २३ ॥ यदि कहो कि आया हुआ राक्षस जो कोईभी हो सेनाके बीचमें आनेहीसे हमारे बलकी वृद्धि करेगा

फिर आपके पास तो बलकीभी कमती नहींहै कारण कि महाबलवान कुम्भकर्ण और इन्द्रजीत हमारे सहायक हैं, तब तो हम वज्र हाथमें लिये इन्द्रकोभी पराजित कर सकतेहैं ॥ ६ ॥ हे राजन्! नीतिशास्त्रके जाननेंवाले पंडित लोगोंनें कार्यकी सिद्धिके लिये साम, दान, भेद, दंड यह चार प्रकारके उपाय स्थिर कियेहैं, तिसमें पिछले उपाय अर्थात् दंडको हम श्रेष्ठ मानतेहैं ॥ ७ ॥ हे महाबलवान! आपके शत्रुलोग जब इस लंकापुरीमें आजाँयगे तो इसमें कोई संशय न समझिये कि हम शस्त्रके प्रतापसे उनको अपनें वशमें करलेंगे ॥ ८ ॥ तब राक्षसराज रावण महापार्श्वके गर्व सहित यह वचन सुनकर उसकी प्रशंसा करताहुआ बोला ॥ ९ ॥ हे महापार्श्व ! तुमनें जो कुछ कहा, वह सबही सत्य २ है,

कुंभकर्णःसहास्माभिरिंद्रजिच्चमहाबलः ॥ प्रतिषेधयितुंशक्तौसवज्रमपिवज्रिणम् ॥६॥ उपप्रदानंसांत्वंवाभेदंवाकुशलैः कृतम् ॥ समतिक्रम्यदंडेनसिद्धिमर्थेषुरोचये ॥७॥ इहप्राप्तान्वयंसर्वाञ्छत्रूंस्तवमहाबल ॥ वशंशस्त्रप्रतापेनकरिष्यामोनसंशयः ॥ ८ ॥ एवमुक्तस्तदाराजामहापार्श्वेनरावणः ॥ तस्यसंपूजयन्वाक्यमिदंवचनमब्रवीत् ॥९ ॥ महापार्श्वप्रवदतोरहस्यंकिंचिदात्मनः ॥ चिरवृत्तंतदाख्यास्येयदवाप्तंपुरामया ॥ १० ॥ पितामहस्यभवनंगच्छंतींपुंजिकस्थलीम् ॥ चंचूर्यमाणामद्राक्षमाकाशेग्निशिखामिव ॥ ११ ॥ साप्रसह्यमयाभुक्ताकृताविवसनाततः ॥ स्वयंभूभवनंप्राप्तालोलितानलिनीयथा ॥ १२ ॥ तच्चतस्यतथामन्येज्ञानमासीन्महात्मनः ॥ अथसंकुपितोवेधामामिदंवाक्यमब्रवीत् ॥ १३ ॥ अद्यप्रभृतियामन्यांबलान्नारींगमिष्यसि ॥ तदातेशतधामूर्धाफलिष्यतिनसंशयः ॥ १४ ॥

परन्तु जिस लिये जानकीको हमनें अबतक बलसे नहीं भोगा; उसका कोई गुप्त कारणहै; सो इसमें जो कुछ रहस्यहै, वह हम अभी तुमसे कहते हैं॥ १० ॥ हमनें एक दिन पुञ्जिकस्थली नाम एक अप्सराको ब्रह्माजीके निकट जाते देखा, इस अप्सराका शरीर अग्निकी शिखाके समान चमकताथा ॥ ११ ॥ वह हमको देखतेही मानों आकाशमें मिलती हुईसी जानें लगी, तब हमनें बल पूर्वक उसे उसी समय नंगी करके भोगा, तब वह अप्सरा कमलनीकी समान कांपती हुई ब्रह्माजीके निकट पहुंची ॥ १२ ॥और ऐसा जान पड़ताहै, कि उसने ब्रह्माजीके निकट अपनी इस दुरअवस्थाकाभी सब वृत्तान्त कहादी होगा; तब ब्रह्माजीनें अत्यन्त क्रोधित होकर हमको यह शाप दिया ॥ १३ ॥ हे अधम ! यदि आजसे तू किसी

तिसके पश्चात् सर्व शास्त्रोंके जाननेंवाले मंत्री श्रेष्ठ हनुमानजी यह अर्थयुक्त मिताक्षर मधुर सन्दर्भ व श्रवण सुखकारी वचन कहनें लगे ॥ ५० ॥ कि हे वचन बोलनें वालोंमें श्रेष्ठ! आप अत्यन्त बुद्धि शक्ति सम्पन्न और समस्त शास्त्रोंके अर्थको निरूपण करनेंमें समर्थ हैं, हमको जान पडताहै कि यदि सुर सचिव बृहस्पतिजीभी परामर्श देनेंवाले हों तो वहभी आपको परामर्श नहीं दे सकते; वही क्या वरन कोई भी आपके वचनोंका अनादर नहीं कर सकता ॥ ५१ ॥ हे राजन्! हम तर्क करनेमें कुशल, मंत्रि पद वाच्य, अतिशय बुद्धिमान् या इच्छानुसार ऐसा नहीं करतेहैं, परन्तु इस बडे भारी कार्यके उपस्थित होनेंसे जब आपने सन्मान देकर पूछा तब हम आपके गौरवसे यह वचन कहते हैं ॥ ५२ ॥ हे महाराज! आपके अंगदादि मंत्री लोगोंनें विभीषणके दोष गुणकी परीक्षा करनेंके विषयमें, जो कुछ कहा इसमें दोषभी अनेकहैं।

अथसंस्कारसंपन्नोहनूमान्सचिवोत्तमः ॥ उवाचवचनंश्लक्ष्णमर्थवन्मधुरंलघु ॥ ५० ॥ नभवंतंमतिश्रेष्ठंसमर्थं वदतांवरम् ॥ अतिशाययितुंशक्तोबृहस्पतिरपिब्रुवन् ॥ ५१ ॥ नवादान्नापिसंघर्षान्नाधिक्यान्नचकामतः ॥ वक्ष्यामिवचनंराजन्यथार्थंरामगौरवात् ॥ ५२ ॥ अर्थानर्थनिमित्तंहियदुक्तंसचिवैस्तव ॥ तत्रदोषंप्रपश्यामिक्रियानह्युपपद्यते ॥ ५३ ॥ ऋतेनियोगात्सामर्थ्यमवबोद्धुंनशक्यते ॥ सहसाविनियोगोपिदोषवान्प्रतिभातिमे ॥ ५४ ॥ चारप्रणिहितंयुक्तंयदुक्तंसचिवैस्तव ॥ अर्थस्यासंभवात्तत्रकारणंनोपपद्यते ॥ ५५ ॥ अदेशकालेसंप्राप्त इत्ययंयद्विभीषणः ॥ विवक्षातत्रमेऽस्तीयंतांनिबोधयथामति ॥ ५६ ॥

विशेषता इस समय विभीषणके चरित्रादिकी परीक्षा करना ठीक नहीं हो सकेगा ॥ ५३ ॥ विभीषणको यहांपर बुलाकर उसका वृत्तान्त पूछनेकें अतिरिक्त उसके मनका भाव और बल व वीर्यादिका विषय कुछभी नहीं जाना जाय सकता, परन्तु सहसा आपके समीपभी उसको लाना अनुचित है ॥ ५४ ॥ दूत भेजनेंके संबंधमें आपके मंत्रियोंनें जो कुछ कहाहै, सो विना प्रयोजन हुए इसकीभी हम कुछ आवश्यकता नहीं देखते ॥ ५५ ॥ और जाम्बवान्जीनें जो "विभीषण राक्षस राजको शंकटमें पतित देखकरभी जबकि कुछ अवसरमें उसके अधिकारसे हमारे अधिकारमें आयाहै।" इत्यादि कहाहै; परन्तु विभीषण अनवसरमें जो रावणको परित्याग करके जिस कारणसे यहां आयाहै, उसके संबंधमें हम कुछ कहना

कहनें लगे ॥ १ ॥ हेमहाराज! आप किसलिये यह वक्षस्थल रूप फण, चिन्ता रूप विष, हास्य रूप तीक्ष्ण दंत, पंचाङ्गुलि रूप पांच शिर वाले बडे भारी सीता रूप सर्पको यहां पर लेआयेहैं? ॥ २ ॥ हेराजन्! जबतक पर्वतके शिखरकी समान और नख दांतको आयुध बनाये वानर गण लंकापुरीको न घेरलें,तिस्से प्रथमही आप श्रीरामचंद्रजीको सीता समर्पणकरदें॥३॥जबतक श्रीरामचंद्रजीके छोडे हुए वज्र समान और वायुकी समान वेगवान बाण राक्षस श्रेष्ठोंके मस्तकोंको न काट डालें तिससे प्रथमही आप रामचंद्रजीको जानकी देदें ॥४ ॥हे महाराज! जिस समय रामचंद्रजी युद्ध करेंगे, उस समय कुम्भकर्ण महापार्श्व, महोदर, अथवा अतिशय यह लोग कोईभी उनके सामनें खड़े नहोसकेंगे ॥ ५ ॥ यदि रामचंद्रजी

वृतोहिबाह्वंतरभोगराशिश्चिंताविषःसुस्मिततीक्ष्णदंष्ट्रः॥ पंचांगुलीपंचशिरोऽतिकायःसीतामहाहिस्तवकेनराजन्॥२॥
यावन्नलंकांसमभिद्रवंतिवलीमुखाःपर्वतकूटमात्राः ॥ दंष्ट्रायुधाश्चैवनखायुधाश्चप्रदीयतांदाशरथायमैथिली ॥ ३ ॥
यावन्नगृह्णंतिशिरांसिबाणारामेरिताराक्षसपुंगवानाम् ॥ वज्रोपमावायुसमानवेगाःप्रदीयतांदाशरथायमैथिली ॥४ ॥
नकुंभकर्णेंद्रजितौचराजंस्तथामहापार्श्वमहोदरौवा ॥ निकुंभकुंभौचतथातिकायःस्थातुंसमर्थायुधिराघवस्य ॥ ५ ॥
जीवंस्तुरामस्यनमोक्ष्यसेत्वंगुप्तःसवित्राप्यथवामरुद्भिः॥ नवासवस्यांकगतोनमृत्योर्नभोनपातालमनुप्रविष्टः॥६ ॥
निशम्यवाक्यंतुविभीषणस्यततःप्रहस्तोवचनंबभाषे ॥ ननोभयंविद्मनदैवतेभ्योनदानवेभ्योप्यथवाकदाचित्॥७॥
नयक्षगंधर्वमहोरगेभ्योभयंनसंख्येपतगोरगेभ्यः ॥ कथंनुरामाद्भविताभयंनोनरेंद्रपुत्रात्समरेकदाचित ॥ ८ ॥
प्रहस्तवाक्यंत्वहितंनिशम्यविभीषणोराजहितानुकांक्षी ॥ ततोमहार्थंवचनंबभाषेधर्मार्थकामेषुनिविष्टबुद्धिः ॥ ९ ॥

लंकामें आय पहुंचें तब चाहे आपकी रक्षा सूर्य और समस्त देवगणभी करें अथवा इन्द्र व यमका आश्रय ग्रहण करनें या आकाश पातालमें प्रवेश करनें परभी यहांसे तुम जीते हुए नहीं निकल सकोगे॥ ६ ॥ तिसके पीछे प्रहस्त विभीषणके ऐसे वचन सुनकर बोला कि "संग्रामके होनें पर हम कदाचित् न देव दानवोंसे भय करतेहैं ॥ ७॥ अधिक क्या कहैं जब कि, यक्ष गन्धर्व, उरग, अथवा पतंग श्रेष्ठ गणसेभी हमको भयकी संभावना नहीं, तब भला मनुष्य रामचंद्रसे हमको कौन भय होसकताहै "॥ ८ ॥ राजाके हित चाहनेंवाले, व धर्म, अर्थ, काम, इस त्रिवर्गके

का कोई लक्षण नहीं दिखाई देता; इस कारण उसके चरित्र संबंधमें हमको तो कोईभी संदेह नहीं है ॥ ६२ ॥ जिसके अंतःकरणमें कपट भरा होताहै, वह सावधान और अशंक होकर किसीप्रकारसे वचन नहीं कह सकता। सो हेमहाराज! जो विभीषण शठ होता तो कभी शंकारहित और सावधानीसे आपके निकट नहीं आय सकता,और उसके वचनोंमेंभी कोई दोष नहीं पायाजाता अत एव हमको तो उसके प्रति कोई सन्देह नहीं है॥६३॥ मनका भाव छिपानेंको कितनीही चेष्टा की जावे, परन्तु वह किसी प्रकारसे नहीं छिपसकती, कारणकि अंतःकरण शठतासे पूर्णहो या श्रेष्ठहो, वह सहसा प्रकाशित होहीजाताहै ॥ ६४ ॥ हेकार्य जाननेवालोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी! देशकालके संबंधमें विचार करके जो कार्य कियाहै, उसका परिणाम अवश्यही सफल होताहै, इस कारण, इन विभीषणका आना सफलहै ॥ ६५ ॥ कारणकि यह विभीषण आपको रावणके वधमें उद्यो

अशंकितमतिःस्वस्थोनशठःपरिसर्पति ॥ नचास्यदुष्टवागस्तितस्मान्मेनास्तिसंशयः ॥ ६३ ॥ आकारश्छाद्यमानोपि नशक्योविनिगूहितुम् ॥ बलाद्धिविवृणोत्येवभावमंतर्गतंनृणाम् ॥ ६४ ॥ देशकालोपपन्नंचकार्यंकार्यविदांवर ॥ सफलं कुरुतेक्षिप्रंप्रयोगेणाभिसंहितम् ॥ ६५ ॥ उद्योगंतवसंप्रेक्ष्यमिथ्यावृत्तंचरावणम् ॥ वालिनंचहतंश्रुत्वासुग्रीवंचाभिषे चितम् ॥ ६६ ॥ राज्यंप्रार्थयमानस्तुबुद्धिपूर्वमिहागतः ॥ एतावत्तुपुरस्कृत्यविद्यतेतस्यसंग्रहः ॥ ६७ ॥ यथाशक्ति मयोक्तंतुराक्षसस्यार्जवंप्रति ॥ प्रमाणंत्वंविशेषस्यश्रुत्वाबुद्धिमतांवर ॥ ६८॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० युद्धकाण्डे सप्तदशःसर्गः ॥ १७॥ ॥छ॥ अथरामःप्रसन्नात्माश्रुत्वावायुसुतस्यह ॥ प्रत्यभाषतदुर्धर्षः श्रुतवानात्मनिस्थितम् ॥ १ ॥

गी देख, रावणको बलगर्वित और पापकार्यमें लगा हुआ देख, वालिका नाश और सुग्रीवको राज्य पाये जान ॥ ६६ ॥ जिस प्रकारका वालिको मारकर आपने सुग्रीवको राज्य दियाहै वैसेही रावणका विनाश करके आप उसकोही लंकाका राज्यदेदेंगे, यही आशा करके विभीषण आपकी शरणमें आयेहैं; अतएव आदर मानसहित इनका ग्रहण करनाही कर्तव्यहै ॥६७॥हे बुद्धिमान्! हमनें विभीषणके चरित्रकी सरलताके संबंधमें अपनी शक्तिके अनुसार जो कुछ कहा, वह समस्तही आपनें श्रवण किया,अब जो कुछ कहना कर्तव्यहो वह आप लोग कीजिये ॥ ६८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा मायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये यु० सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥ तिसके पीछे सर्व शास्त्रोंके जाननेंवाले अजीत श्रीरामचंद्रजी यत्न

अतिकाय, अतिरथ, और अकम्पन, इनमेंसे कोईभी श्रीरामचंद्रजीके संग युद्ध करनेंका साहस न करेंगे ॥ १६ ॥ अधिक क्या कहैं हमारे राजाही कुबुद्धिके वश हुएहैं, और तुमही लोग इनके मित्ररूपी अमित्रहो,और तुम लोगों कीही सलाहसे राक्षस कुलका नाशहो जायगा ॥१७॥ हमारा तुम सबसे यही कहनाहै कि अनन्तबलयुक्त शरीरधारी हजार शिरवाले महा बलवान सर्पोंके मुखमें फँसे हुए रावणको किसीप्रकार मुख से निकलना बताओ अर्थात् रामचंद्रजी इन्हें माराही चाहते हैं, तुम लोग बचाओ ॥ १८ ॥ जिसप्रकार किसी पुरुषको भूत लगनेंपर उसके सुहृद लोग केश ग्रहणादिरूप दंड देकर उसकी रक्षा करतेहैं ऐसेही तुम सब लोगोंको मिलकर रावणकी रक्षा करनी चाहिये ॥ १९ ॥ प्रहस्त! सुचरित्र

अयंचराजाव्यसनाभिभूतोमित्रैरमित्रप्रतिमैर्भवद्भिः॥अन्वास्यतेराक्षसनाशनार्थैतीक्ष्णःप्रकृत्याह्यसमीक्ष्यकारी १७॥ अनंतभोगेनसहस्रमूर्ध्नानागेनभीमेनमहाबलेन ॥ बलात्परिक्षिप्तमिमंभवंतोराजानमुत्क्षिप्यविमोचयंतु ॥ १८ ॥ यावद्धिकेशग्रहणात्सुहृद्भिःसमेत्यसर्वैःपरिपूर्णकामैः ॥ निगृह्यराजापरिरक्षितव्योभूतैर्यथाभीमबलैर्गृहीतः ॥ १९ ॥ सुवारिणाराघवसागरेणप्रच्छाद्यमानस्तरसाभवद्भिः ॥ युक्तस्त्वयंतारयितुंसमेत्यकाकुत्स्थपातालमुखेपतन्सः ॥ २० ॥ इदंपुरस्यास्यसराक्षसस्यराज्ञश्चपथ्यंससुहृज्जनस्य ॥ सम्यग्घिवाक्यंस्वमतंब्रवीमिनरेंद्रपुत्रायददातुमैथिलीम् ॥ ॥ २१ ॥ परस्यवीर्यंस्वबलंचबुद्ध्वास्थानंक्षयंचैवतथैववृद्धिम् ॥ तथास्वपक्षेप्यनुमृश्यबुद्ध्यावदेत्क्षमंस्वामिहितंसमंत्री ॥ २२ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेचतुर्दशःसर्गः ॥ १४ ॥ छ ॥

रूप जलपूर्ण रामचंद्ररूप समुद्रकी तरंगसे ढका हुआ, काकुत्स्थ रूप पातालमें यह रावण गिराही चाहताहै, सो इस राक्षसकी यत्नसे तुमलोग रक्षाकरलो ॥ २० ॥ हम इस लंका पुरीके राक्षस राजके व इनके सुहृद और सबही राक्षसोंके हितार्थ कहते हैं कि—राक्षसराज श्रीरामचंद्रजीको सीताजी देडालें ॥ २१ ॥ जो मंत्री विचार करके, शत्रुकी औरका अपनी ओरका वीर्य और बल क्षय, इन बातोंके विषयमें भलीभांति शोच विचार और परामर्श करके अपने स्वामीको हितकी बात कहतेहैं वही यथार्थ मंत्रीहैं॥२२॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा०आ०यु०चतुर्दशःसर्गः॥१४॥

कालतक वृद्धजनोंकी सेवा किये, और शास्त्रोंके विना पढ़े सुने कोईभी ऐसे वचन कहनेंको समर्थ नहीं हो सकता ॥ ८ ॥ सुग्रीवजीनें
विभीषणका एक दोष जो बताया कि इसनें अपने भाईको छोड़ दियाहै,तिसका संबंधभी सर्वभूपसाधारण प्रत्यक्ष सर्वलोकप्रसिद्ध और प्रथमसे
सूक्ष्मतर औरभी कुछ कहनाहै ॥ ९ ॥ पंडित लोग–जाति और निकटरहनेंवाले दूसरे राजाकोही शत्रु बतायकर कीर्तन किया करते हैं, कारण
कि संकट पड़नेंसे, यही लोग राजाका नाश करनेंकी चेष्टा किया करते हैं,हे लक्ष्मण! रावणका भ्राता विभीषणभी राक्षसोंके स्वामी रावणको संक
टमें पड़ा हुआ देखकर उसका नाश करानेंके लियेही यहां पर आया है। जबकि यह विभीषण अपनी जातिके शत्रु रावणके भयसे यहां पर आया
है, यदि यह अपनेभाईसे प्रीतिकर उसके प्रेरणाकिये यहां पर आते तोकोई विश्वासघातकता दोषोंकी सम्भावना होसकती, यह तो पापचारी

अस्तिसूक्ष्मतरंकिंचिद्यथात्रप्रतिभातिमा ॥ प्रत्यक्षंलौकिकंचापिवर्ततेसर्वराजसु ॥ ९ ॥ अमित्रास्तत्कुलीनाश्चप्रा
तिदेश्याश्चकीर्तिताः ॥ व्यसनेषुप्रहर्तारस्तस्मादयमिहागतः ॥ १० ॥ अपापास्तत्कुलीनाश्चमानयंतिस्वकान्हि
तान् ॥ एषप्रायोनरेंद्राणांशंकनीयस्तुशोभनः ॥११॥ यस्तुदोषस्त्वयाप्रोक्तोह्यादानेरिबलस्यच ॥ तत्रतेकीर्तयिष्यामि
यथाशास्त्रमिदंशृणु ॥१२॥ नवयंतत्कुलीनाश्चराज्यकांक्षीचराक्षसः ॥ पंडिताहिभविष्यंतितस्माद्ग्राह्योविभीषणः ॥१३॥

अपने भ्राताके आचरणसे विरुद्ध होंनेके कारण उससे निकाले जाकर यहां आये हैं इस कारण हम इनमें किसी प्रकारकाभी दोष नहीं
देखते ॥ १० ॥ जातिवाले लोग चाहै कितनेही निष्पाप हों परन्तु अपना हितसाधनेंकी सदाही चेष्टा किया करते हैं; इस कारण जातिवाले
लोग हितकारी होंने परभी राजाके शंका दिलानेंवाले होते ही हैं ॥ ११ ॥ हे सुग्रीव! तुमनें शत्रुकी सैना साथ रखनेंमें जो दोष बतायेहैं, हम उसके
संबंधमेंभी यह नीतिशास्त्र सम्मत उत्तर देतेहैं, तुम सुनो ॥ १२ ॥ हम विभीषणके जातिवाले नहीं हैं, इस कारण वह हमारा नाश करके
हमारा राज्य अधिकार करनेंको यहां नहीं आयेहैं; वरन अपने भ्राताका विनाश कराय उसका राज्य पानेंकी आशासे हमारे पास आये
हैं हमको ज्ञात होताहै कि विभीषण कार्य अकार्यके विचार करनेंमें समर्थ हैं इस कारण इनका ग्रहण करनाही योग्यहै ॥ १३ ॥

धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ विभीषणजी इन्द्रके समान अजेय महातेजस्वी इन्द्रजीतके यह वचन सुनकर महाअर्थयुक्त वचन कहनेंलगे ॥८॥ हे पुत्र ! तुम कार्य अकार्यका विचार करनेंमें अत्यन्त अज्ञानीहो कारण कि अवतक तुम्हारी बुद्धि बालककी समान पकी नहींहैं; इस कारण तुम अपना नाश करनेंके अर्थही ऐसे प्रलाप वचन कह रहेहो॥ ९ ॥ मेघनाद ! तुम नाममात्रको रावणके पुत्र और अत्यन्त सुहृदहो, परन्तु वास्तवमें तुम इनके परमशत्रुहो कारण कि राक्षसराजको घोर विपदमें पडे हुए देखकरभी तुम उनको निवारण नहीं करते ॥ १० ॥ इन्द्रजीत ! तुमने जो खोटे मंत्रके

अथेंद्रकल्पस्यदुरासदस्यमहौजसस्तद्वचनंनिशम्य ॥ ततोमहार्थंवचनंबभाषेविभीषणःशस्त्रभृतांवरिष्ठः ॥ ८ ॥
नतातमंत्रेतवनिश्चयोस्तिबालस्त्वमद्याप्यविपक्कबुद्धिः ॥ तस्मात्त्वयाप्यात्मविनाशनायवचोऽर्थहीनंबहुविप्रलप्त
म् ॥ ९ ॥ पुत्रप्रवादेनतुरावणस्यत्वमिंद्रजिन्मित्रमुखोसिशत्रुः ॥ यस्येदृशंराघवतोविनाशंनिशम्यमोहादनुमन्यसेत्व
म् ॥ १० ॥ त्वमेववध्यश्चसुदुर्मतिश्चसचापिवध्योयइहानयत्त्वाम् ॥ बालंदृढंसाहसिकंचयोऽद्यप्रावेशयन्मंत्रकृतां
समीपम् ॥ ११ ॥ मूढोऽप्रगल्भोऽविनयोपपन्नस्तीक्ष्णस्वभावोल्पमतिर्दुरात्मा॥ मूर्खस्त्वमत्यंतसुदुर्मतिश्चत्वामिंद्रजि
द्बालतयाब्रवीषि ॥ १२ ॥ कोब्रह्मदंडप्रतिमप्रकाशानर्चिष्मतःकालनिकाशरूपान् ॥ सहेतबाणान्यमदंडकल्पान्सम
क्षमुक्तान्युधिराघवेण ॥ १३ ॥

यह वचन कहे, तिससे हमारे मतसे तुम मार डालनेके योग्यहो और जिसनें ऐसे चपल चित्त बालकको यहां लाकर मंत्रियोंके बीचमें परामर्श करनेंको बुलाया, उसकोभी मार डालना उचितहै ॥ ११ ॥ हे मेघनाद ! तुम कार्य अकार्यका विचार नहीं जानते, बडे बोलनेंवाले विनय रहित तीक्ष्ण स्वभाव अदीर्घदर्शी, मूर्ख, दुर्मति और दुरात्माहो; इसी कारणसे बालककी समान ऐसा कहतेहो ॥ १२ ॥ जब श्रीरामचंद्रजी रण भूमिमें खडे होकर ब्रह्मदंडकी समान, व कालाग्निकी समान प्रकाशित तीखे बाण छोडेंगे, तब उन बाणोंको कौन सहनेंमें समर्थ होगा यह हम

विशारद श्रीरामचंद्रजीसे ऐसा कहकर मौन हुए ॥ २० ॥ श्रीरामचंद्रजी वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजीके यह वचन सुन एक क्षणभर चिन्ताकरके वानरराज सुग्रीवजीसे यह शुभ वचन बोले ॥२१॥ हे सुग्रीव! राक्षस विभीषण दुष्टहो अथवा भलाहो, परन्तु यह हमारा कुछभी बुरा नहींकर सकता ॥२२॥ हे वानरराज! एक साधारण राक्षस विभीषणकी क्या चलाई, यदि हम इच्छा करैं तो क्षणभरमेंही पृथ्वीके समस्त पिशाच, दानव, यक्ष, और राक्षसोंके उंगलीके पोरू ऐसेही संहार कर सकतेहैं ॥ २३ ॥ और तुमनें शत्रुसेनाके ग्रहण करनेंमें जो दोष बतायाहै, इसके संबंधमें हमनें एक इतिहास सुनाहै; वह तुम्हैं सुनातेहैं, कि एक समय कोई व्याधा अपनी स्त्रीको घरसे निकालकर कबूतरके घोसलेसे युक्त एक पेड़के नीचे आया और उस समय वर्षा होरहीथी महाशीत पड़ रहाथा उस कबूतरकी कबूतरीको उसने पहले जंगलमें पकड़ लियाथा भूख प्यास और जाड़ेसे

ससुग्रीवस्यतद्वाक्यंरामःश्रुत्वाविमृश्यच ॥ ततःशुभतरंवाक्यमुवाचहरिपुंगवम् ॥ २१ ॥ सदुष्टोवाप्यदुष्टोवाकिमेषरजनीचरः ॥ सूक्ष्ममप्यहितंकर्तुंममशक्तःकथंचन ॥२२॥ पिशाचान्दानवान्यक्षान्पृथिव्यांचैवराक्षसान् ॥ अंगुल्यग्रेणतान्हन्यामिच्छन्हरिगणेश्वर ॥ २३ ॥ श्रूयतेहिकपोतेनशत्रुःशरणमागतः ॥ अर्चितश्चयथान्यायंस्वैश्चमांसैर्निमंत्रितः ॥ २४ ॥ सहितंप्रतिजग्राहभार्याहर्तारमागतं ॥ कपोतोवानरश्रेष्ठकिंपुनर्मद्विधोजनः ॥ २५ ॥ ऋषेःकण्वस्यपुत्रेणकंडुनापरमर्षिणा ॥ शृणुगाथापुरागीताधर्मिष्ठासत्यवादिना ॥ २६ ॥

व्याधा व्याकुलथा कबूतरनें आश्रममें आये हुए उस शत्रुको शीतसे आरत देख अग्नि लाय शीत निवारण कर साध्यानुसार उसकी सेवा करकै पीछे उसकी क्षुधा निवारण करनेंको अपना मांसतक देदेताहुआ अर्थात् उस अग्निमें कूद पड़ा और शरणागत वत्सलताके कारण विमानमें बैठ स्वर्गको गया यह देख व्याधेको ज्ञान हुआ तब वह कबूतरीको छोड़ तप करने गया और कबूतरीभी उसी अग्निमें प्राण त्याग स्वर्गको गई ॥ २४ ॥ हेवानरश्रेष्ठ सुग्रीव! जबकि जड़जीवनेंभी भार्याके मार डालनेंवाले शरणमें आये शत्रुका निरादर न करके यथा विधिसे उसका सन्मानही किया, फिर भला हम क्षत्रिय होकर किस प्रकारसे शरणमें आये शत्रुका अनादर करैं ॥ २५ ॥ प्रथम महर्षि कण्वजीके पुत्र सत्यवादी महर्षि

जिनके हाथमें फंदेभीथे उन हाथियोंने इनको देखकर विरादरी वालोंके संबंधमें कुछ श्लोक कहेथे जो कि तुमसे वर्णन करते हैं * ॥ ६ ॥ उन्होंने कहाथा कि हम अग्नि, पाश, अथवा और शस्त्रोंके देखनेंसे नहीं डरते, परन्तु इन स्वार्थपर जातिवाले लोगोंको देखकर हमें अत्यन्त भय लगताहै ॥ ७ ॥ कारण कि यह जातिवालेही हाथी पकड़नेंवालोंको बताय देतेहैं; इसही कारणसे कहते हैं समस्त भय और समस्त कष्टोंके जातिवाले कारणहैं ॥ ८ ॥ हमनें सैकड़ों वार देखाहै कि जगत्में जितनेप्रकारके भयहैं, उनमें जातिवालोंसे भय होताहै,उसकाही परिणाम विशेष कष्टभारी होताहै,जैसे गायोंमें हव्य कव्यादिके लिये दुग्ध, स्त्रियोंमें चंचलता. और ब्राह्मण लोगोंमें तपस्या होतीहै, इसी प्रकार निःसन्देह जाति वाले लोगोंसे सदा भय रहताही है ॥ ९ ॥ हे बिभीषण! हमनें जो शत्रु गणोंको पराजित करके अतुलनीय ऐश्वर्य प्राप्तकिया है, व तीनों लोक हमारा

नाग्निर्नान्यानिशस्त्राणिननःपाशाभयावहाः ॥ घोराःस्वार्थप्रयुक्तास्तुज्ञातयोनोभयावहाः ॥ ७ ॥ उपायमेतेवक्ष्यंतिग्रहणेनात्रसंशयः ॥ कृत्स्नाद्भयाज्ज्ञातिभयंसुकृष्टंविदितंचनः ॥ ८ ॥ विद्यतेगोषुसंपन्नंविद्यतेज्ञातितोभयम् ॥ विद्यतेस्त्रीषुचापल्यंविद्यतेब्राह्मणेतपः ॥ ९ ॥ ततोनेष्टमिदंसौम्ययदहंलोकसत्कृतः ॥ ऐश्वर्यमभिजातश्चरिपूणांमूर्ध्निचास्थितः ॥ १० ॥ यथापुष्करपत्रेषुपतितास्तोयबिंदवः ॥ नश्लेषमभिगच्छंतितथानार्येषुसौहृदम् ॥ ११ ॥

आदर करतेहैं. सो हे सौम्य! हम जानतेहैं कि हमारा यह सौभाग्य तुम्हारे असंतोषका अत्यन्तही कारण हुआहै ॥ १० ॥ जैसे कमलके पत्तेपर जलकी बूंदें गिरनें पर वह किसी प्रकार उसपत्रपर नहीं ठहर सकती हैं, वैसेही क्रूर स्वभाववाले पुरुषके साथ मित्रता करनेंसे वह मित्रता किसी प्रकार

---

* जाति वालोंके सम्बन्धमें एक औरभी किंवदन्ती प्रसिद्धहै कि एक समय एक सघनवनमें होकर कई एक गाडियें जाय रहीथीं इन सब गाडियोंमें केवल कुल्हाडियें भरी हुईथीं। जिनको देखकर वनके वृक्ष अतिघबडाये और बोले कि अब एक वृक्षभी इस वनका न बचेगा हा! हमारे भाग्यही ऐसे हैं, उस समय किसी दूसरे वृक्षनें कहा कि भाई जबतक हमारे जातिवाले इन कुल्हाडियोंकी सहायता नहीं करते, तब तक कुछ यह हमारा नहीं कर सकतीं। अर्थात् जब हमारी जातिवाले वृक्षोंके बेटे इन कुल्हाडियोंमें पडेंगे तब यह हमको काटनेंमें समर्थ होंगी। बस जातिवालेही समस्त अनर्थके मूलहैं।

आपकी शरण आया" यह वचन कहकर हमारी शरणमें आवैगा, वह कोईभी क्यों नहो; हम उसी समय उसको अभय दान देदेंगे ❋॥३३॥ हे वानरश्रेष्ठ सुग्रीव! आया हुआ पुरुष विभीषणहो, अथवा स्वयं रावणहीहो, तथापि हम अभयप्रदान करतेहैं कि तुम शीघ्र उसको हमारे निकट लेआओ ॥ ३४ ॥ वानरराज सुग्रीवजी श्रीरामचंद्रजीके ऐसे वचन सुनकर सौहार्दभावसे परिपूरितहो इस प्रकार श्रीराघवजीको उत्तर देते हुए ॥ ३५ ॥ हे धर्मज्ञ! आप वीर्यवान और राजसमूहोंके शिरोमणि स्वरूपहैं, इस कारण साधुसेवित मार्गका आश्रय लेकर आप इस प्रकारकी कल्याणजनक आज्ञा देंगे; इसमें विचित्रताही क्याहै? ॥ ३६ ॥ एकतो परम चतुर हनुमानजीनें भावरूप और अनुमानसे विभीषणके

आनयैनंहरिश्रेष्ठदत्तमस्याभयंमया ॥ विभीषणोवासुग्रीवयदिवारावणःस्वयम् ॥ ३४ ॥ रामस्यतुवचःश्रुत्वासुग्रीवः प्लवगेश्वरः ॥ प्रत्यभाषतकाकुत्स्थंसौहार्देनाभिपूरितः ॥ ३५ ॥ किमत्रचित्रंधर्मज्ञलोकनाथशिखामणे ॥ यत्त्वमार्यं प्रभाषेथाःसत्ववान्सत्पथेस्थितः ॥ ३६ ॥ ममचाप्यंतरात्मायंशुद्धंवेत्तिविभीषणम् ॥ अनुमानाच्चभावाच्चसर्वतःसुपरीक्षितः॥३७॥तस्मात्क्षिप्रंसहास्माभिस्तुल्योभवतुराघव॥विभीषणोमहाप्राज्ञःसखित्वंचाभ्युपैतुनः ॥३८॥ ततस्तुसुग्रीववचोनिशम्यतद्धरीश्वरेणाभिहितंनरेश्वरः ॥ विभीषणेनाशुजगामसंगमंपतत्रिराजेनयथापुरंदरः ॥ ३९ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० यु० अष्टादशःसर्गः ॥ १८ ॥ ॥ ७॥

चरित्रकी परिक्षाकी दूसरे आपके वचन सुनकर अब हमारा अंतःकरणभी विभीषणको शुद्ध स्वभाव समझताहै ॥ ३७ ॥ इस कारण हेश्रीरामचंद्रजी! महाप्राज्ञ विभीषणजी हमारे तुल्य होवें, और हम लोगोंके साथ उनकी मित्रताई स्थापित कराई जावे ॥ ३८ ॥ तब नरेन्द्रजीभी सुग्रीवजीके यह पुनीत वचन सुनकर इन्द्र जिसप्रकार पक्षिराज गरुडजीके साथ शोभायमान हुएथे, वैसेही राक्षसराज विभीषणके साथ मिलकर शोभायमान हुए ॥ ३९ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० युद्धकांडे अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

*दोहा-शरणागतको जे तजहिं, निज अनहित अनुमान । ते नर पामर पापमय, तिनहि विलोकत हान ॥ चौपाई-कोटि विप्र वध लागहिं जाहू । आये शरण तजौं नहिं ताहू ॥

आकाशमें टिक कर अपनें भ्राता राक्षसराज रावणसे कहनें लगे ॥१८॥ हेमहाराज! आप बड़े भ्राता होनेंके कारण पिताकी समान माननें लायकहैं,इस लिये आप जो कुछभी कहैं वह समस्तही हमको सहन करलेना चाहिये, परन्तु आप धर्मका मार्ग परित्याग करके परदारहरणादि रूप घोर अधर्मके आचरण करनेलगेहैं इसी कारणसे बडे भाई होंनेपरभी आज हम आपके यह घोर वचन न सह सके ॥ १९ ॥ हेवीर! हमनें हितक कामनासे तुमको हितकी वार्त्ता कहीथी परन्तु कालके वशको प्राप्त होकर तुमनें हमारे वचन नहीं सुने,यथार्थमें जिस पुरुषकी मृत्यु निकट आतीहै, उसकी यही दशा होतीहै जो तुम्हारीहै ॥ २० ॥ हे महाराज! सदा मीठी बात कहनेंवाले अनेकहैं, परन्तु श्रवण करनेंको अप्रिय और परिणाम मैं शुभदायक वचनोंके कहनें वाले और श्रवण करनेंवाले दोनोंही दुर्लभ हैं ॥ २१ ॥ जिस प्रकार घरमें आग लग जानें पर फिर उसकी आग

सत्वंभ्रांतोसिमेराजन्ब्रूहिमांयद्यदिच्छसि ॥ ज्येष्ठोमान्यःपितृसमोनचधर्मपथेस्थितः ॥ इदंहिपरुषंवाक्यंनक्षमाम्य ग्रजस्यते ॥ १९ ॥ सुनीतंहितकामेनवाक्यमुक्तंदशानन ॥ नगृह्णंत्यकृतात्मानःकालस्यवशमागताः ॥ २० ॥ सुलभाःपु रुषाराजन्सततंप्रियवादिनः॥अप्रियस्यचपथ्यस्यवक्ताश्रोताचदुर्लभः ॥ २१ ॥ बद्धंकालस्यपाशेनसर्वभूतापहारिणः ॥ ननश्यंतमुपेक्षेत्वांप्रदीप्तंशरणंयथा ॥२२॥ दीप्तपावकसंकाशैःशितैःकांचनभूषणैः॥नत्वामिच्छाम्यहंद्रष्टुंरामेणनिहतं शरैः ॥ २३ ॥ शूराश्चबलवंतश्चकृतास्त्राश्चनरारणे ॥ कालाभिपन्नाःसीदंतियथावालुकसेतवः ॥ २४ ॥ तन्मर्षयतुयच्चोक्तं गुरुत्वाद्धितमिच्छता ॥ आत्मानंसर्वथारक्षपुरींचेमांसराक्षसाम्॥स्वस्तितेऽस्तुगमिष्यामिसुखीभवमयाविना॥ २५ ॥

बुझानेंमें आलस्य नहीं करना चाहिये, वैसेही आपको सब प्राणियोंके नाशकरनें वाले कालकी फांसीमें बँधकर नष्ट होते देखकरही हमनें ऐसे हितकारी वचन कहेथे ॥ २२ ॥ महाराज! हम तुम्हें रामचंद्र करके प्रदीप्त अग्निकी समान सुवर्णभूषित तीखे बाणोंसे मरा हुआ देखनेकी इच्छा नहीं करते इसी कारणसे हमनें इस प्रकारके हित वचन कहेथे ॥ २३ ॥ रेतेका पुल चाहे कितनाही दृढ़ क्यों न होवे, वर्षा कालके आतेही वह टूट जाताहै, वैसेही पुरुष कितनाही बलवान अस्त्रका जाननेंवाला और शूर क्यों नहो कालके आनेही पर उसका विनाश होजाताहै ॥ २४ ॥ हे महाराज! जो कुछभी हो तुम स्वामी हो गुरुहो हमने आपके हितकी कामनासे जो कुछभी कहाहै यदि उसमें कोई अपराध आपने पायाहो

श्रीरामचंद्रजीनें जब ऐसा कहा तब राजा विभीषण रावणका बल विस्तारसहित वर्णन करनें लगे ॥ ८ ॥ हे राजकुमार! ब्रह्माजीके वरदानके प्रभावसे रावण,—गन्धर्व, उरग और पक्षी इत्यादिक सबसेही अवध्यहै ॥ ९ ॥ रावणसे छोटा वीर्यवान महा तेजस्वी और युद्धमें देवराज इन्द्रजीके समान पराक्रमी कुम्भकर्ण नामक हमारा एक और बडा सहोदरहै ॥ १० ॥ हे रघुनंदन! कैलास पर्वतपर मणिभद्रनामक महादेवजीके गणको युद्ध करके हरायाथा, वही प्रहस्त नामक राक्षस रावणका सैनापतिहै; कदाचित् इसका नाम आपने सुनाही होगा ॥ ११ ॥ गोधारूप अंगुलीत्राण धारी इन्द्रजीत मेघनाद कवचविहीन होकरभी धनुष बाण हाथमें ले रणभूमिमें टिका रहकर इच्छानुसार अदृश्यभी होसकताहै ॥ १२ ॥

अवध्यःसर्वभूतानांगंधर्वोरगपक्षिणाम् ॥ राजपुत्रदशग्रीवोवरदानात्स्वयंभुवः ॥ ९ ॥ रावणानंतरोभ्रातामम ज्येष्ठश्चवीर्यवान् ॥ कुंभकर्णोमहातेजाःशक्रप्रतिबलोयुधि ॥ १० ॥ रामसेनापतिस्तस्यप्रहस्तोयदितेश्रुतः ॥ कैलासेयेनसमरेमणिभद्रःपराजितः ॥ ११ ॥ बद्धगोधांगुलित्रश्चअवध्यकवचोयुधि ॥ धनुरादाययस्तिष्ठन्नदृश्योभवतींद्रजित् ॥ १२ ॥ संग्रामेसुमहद्व्यूहेतर्पयित्वाहुताशनम् ॥ अंतर्धानगतःश्रीमानिंद्रजिद्धंतिराघव ॥ १३ ॥ महोदरमहापार्श्वौ राक्षसश्चाप्यकंपनः ॥ अनीकपास्तुतस्यैतेलोकपालसमायुधि ॥ १४ ॥ दशकोटिसहस्राणिरक्षसांकामरूपिणाम् ॥ मांसशोणितभक्ष्याणांलंकापुरनिवासिनाम् ॥ १५ ॥ सतैस्तुसहितोराजालोकपालानयोधयत् ॥ सहदेवैस्तुतेभग्नारावणेनदुरात्मना ॥ १६ ॥

हे राघव! इन्द्रजित् यज्ञद्वारा हुताशनको तृप्त करताहुआ अत्यन्त बड़ी व्यूहयुक्त रण भूमिसे अन्तर्ध्यान होकर अन्तरिक्षमें अदृश्य भावसे शत्रुओंके ऊपर प्रहार किया करता है ॥१३॥ जो कि युद्धमें बल लोकपालोंकी समान प्रगट किया करते हैं ऐसे महोदर, महापार्श्व, और अकम्पन इत्यादि राक्षसगण रावणके सैनापति हैं ॥ १४ ॥ हे महाराज! राक्षसराजा रावण; मांस रुधिर भक्षण करनेंवाले इच्छानुसार रूप धारण करनेंवाले एक अरब महाबलवान राक्षसोंके साथ लंकापुरीमें रहताहै ॥१५॥ उन राक्षसोंको साथ लेकर दुरात्मा रावणनें देवता लोगोंके साथ युद्ध

राक्षस हम लोगोंका प्राणनाश करनेंही के लिये चारराक्षसोंके साथ यहांपर आया है॥७॥सुग्रीवजीके ऐसे वचन सुनकर यह समस्त वानर श्रेष्ठ वृक्ष और पर्वतादि ग्रहण करके यह बोले॥८॥किहे महाराज! आप शीघ्रही इन दुरात्मा लोगोंका वध करनेके लिये हमको आज्ञा दीजिये हम बहुतही शीघ्र इन पांचों का नाश करके पृथ्वीपर गिरा देंगे॥९॥जब वानर लोगोंनें परस्पर इस प्रकारसे कहा तब विभीषणजीनें समुद्रके उत्तरतीर पर पहुँच क्षण भरतक विश्राम ले आकाशमें ही टिके ॥१०॥ उन दीर्घदर्शी सुग्रीव और दूसरे वानर गणोंको पुकारकर दीर्घ व गंभीर स्वरसे कहा ॥११॥राक्षसगणोंका स्वामी रावण नामक दुराचारी एकराक्षसहै,हम उसके छोटे भाईहैं और हमारा नाम विभीषणहै ॥ १२ ॥ वही दुरात्मा जटायुको मारकर जन स्थानसे जनक लड़ेती

सुग्रीवस्यवचःश्रुत्वासर्वेतेवानरोत्तमाः॥ शालानुद्यम्यशैलांश्चइदंवचनमब्रुवन् ॥ ८ ॥ शीघ्रंव्यादिशनोराजन्वधायैषां दुरात्मनाम् ॥ निपतंतिहतायावद्धरण्यामल्पचेतनाः ॥ ९ ॥ तेषांसंभाषमाणानामन्योन्यंसविभीषणः ॥ उत्तरंतीरमासाद्यखस्थएवव्यतिष्ठत ॥ १० ॥ सउवाचमहाप्राज्ञःस्वरेणमहतामहान् ॥ सुग्रीवंतांश्चसंप्रेक्ष्यखस्थएवविभीषणः॥ ११ ॥ रावणोनामदुर्वृत्तोराक्षसोराक्षसेश्वरः ॥ तस्याहमनुजोभ्राताविभीषणइतिश्रुतः ॥ १२ ॥ तेनसीताजनस्थानाद्धृताहत्वाजटायुषम्॥रुद्धाचविवशादीनाराक्षसीभिःसुरक्षिता॥ १३ ॥ तमहंहेतुभिर्वाक्यैर्विविधैश्चन्यदर्शयम् ॥ साधुनिर्यात्यतांसीतारामायेतिपुनःपुनः ॥ १४ ॥ सचनप्रतिजग्राहरावणःकालचोदितः ॥ उच्यमानंहितंवाक्यंविपरीतइवौषधम् ॥ १५ ॥सोहंपरुषितस्तेनदासवच्चावमानितः ॥ त्यक्त्वापुत्रांश्चदारांश्चराघवंशरणंगतः ॥ १६ ॥

सीताजीको हरण करके लेगयाहै । क्रूर स्वभाववाली राक्षसियोंसे रक्षित होकर जानकीजी उसके अधिकारमें दीनभावसे वास करतीहैं ॥ १३ ॥ हमनें " श्रीरामचंद्रजीको जानकी दे डालिये, इत्यादि बहुतसे नीतियुक्त वचन कह २ कर रावणसे वारंवार विनयकीथी ॥ १४ ॥ परन्तु मृत्यु जिसकी निकट आईहै ऐसा पुरुष जिस प्रकार औषधिका सेवन नहीं करता, ऐसेही, मृत्युकाल निकट आनेंसे उसने हमारे हितकारी वचनोंको ग्रहण नहीं किया ॥१५॥ वचन मानलेना तौ दूर रहा, हमको उसनें अनेक प्रकारके कटुवचन कहकर दासकी समान उसनें हमारे साथ वर्ताव कियाहै

अधिक क्या कहैं; हम इनके व्यवहारसे अत्यन्त सन्तुष्ट हुएहैं ॥ २५ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें इस प्रकारसे आज्ञादी तब सुमित्रको पुत्र लक्ष्मण जीनें उस आज्ञाके अनुसार वानरयूथप गणोंके बीचमें विभीषणको राज्य पदपर अभिषिक्त किया ॥ २६ ॥ विभीषणके ऊपर श्रीरामचंद्रजी की ऐसी प्रसन्नता देखकर वानरगण किल किला शब्द करके महात्मा विभीषणजीकी बड़ाई करनेंलगे ॥ २७ ॥ तब हनुमान और सुग्रीवजी विभीषणजीसे बोले कि हम लोग किस प्रकारसे अपनी सर्व वानरोंकी सैनाके सहित इस अक्षोभ्य वरुणालय महासमुद्रके पार उतरेंगे ॥ २८ ॥ तुम इसका कोई उपाय बताओ कि जिस्से हम सर्व सेनाके सहित नद नदीके पति वरुणजीके स्थान समुद्रके पार उतर जांय ॥ २९ ॥ जब

एवमुक्तस्तुसौमित्रिरभ्यषिंचद्विभीषणम् ॥ मध्येवानरमुख्यानांराजानंराजशासनात्॥२६॥ तंप्रसादंतुरामस्यदृष्ट्वास द्यःप्लवंगमाः ॥ प्रचुकुशुर्महात्मानंसाधुसाध्वितिचाब्रुवन् ॥ २७ ॥ अब्रवीच्चहनूमांश्चसुग्रीवश्चविभीषणम् ॥ कथंसा गरमक्षोभ्यंतरामवरुणालयम् ॥ सैन्यैःपरिवृताःसर्वेवानराणांमहौजसाम् ॥ २८ ॥ उपायैरभिगच्छामयथानदनदी पतिम् ॥ तरामतरसासर्वेससैन्यावरुणालयम् ॥ २९ ॥ एवमुक्तस्तुधर्मात्माप्रत्युवाचविभीषणः ॥ समुद्रंराघवो राजाशरणंगंतुमर्हति ॥ ३० ॥ खानितःसगरेणायमप्रमेयोमहोदधिः ॥ कर्तुमर्हतिरामस्यज्ञातेःकार्यंमहोदधिः॥३१॥ एवंविभीषणेनोक्तंराक्षसेनविपश्चिता ॥ आजगामाथसुग्रीवोयत्ररामःसलक्ष्मणः ॥ ३२ ॥ ततश्चाख्यातुमारेभेविभी षणवचःशुभम् ॥ सुग्रीवोविपुलग्रीवःसागरस्योपवेशनम् ॥ ३३ ॥

इस प्रकार महात्मा विभीपणजीसे कहागया तब वह बोले कि महाराजाधिराज रामचंद्रजी समुद्रकी शरणमें जांय यही हमें उचित जान पड़ता है ॥ ३० ॥ कारणकि शरण जानेसे यह अप्रमाण जलवाला महामति समुद्र सगर वंशमें अपनी उत्पत्तिमान श्रीरामचंद्रजीको अपने पार जाने का अवश्यही इनका कार्य सिद्ध कर देगा ॥ ३१ ॥ इसके पीछे पंडितश्रेष्ठ राक्षसनाथ विभीषणकरके इस प्रकार कहे जाकर वानर सुग्रीवजी लक्ष्मण जीके सहित रामचंद्रजीके निकट गये ॥३२॥ फिर बड़ी गरदनवाले सुग्रीवजी श्रीरामचंद्रजीके निकट पहुँचकर विभीषणजीके कहे वह शुभवचन जोकि

परन्तु यह बात नीति विरुद्ध है, कारण कि पंडित लोगोंनें कहाहै कि युद्धके समय "अपने मित्र प्रेरित और वर्षाकालमें भृतिद्वारा संग्रहीत और अपने बंधुओंका बल यह त्रिविध बल ग्रहण करले" परन्तु शत्रुकी सेनाको कभी ग्रहण न करे ॥ २४ ॥ यह आया हुआ पुरुष आपके शत्रु राक्षसराज रावणका भाई है; जातिमें राक्षसहै । और शत्रुपक्षसेही इसनें आगमन कियाहै फिर भला यह किस प्रकार विश्वास करनें योग्यहै ॥ २५ ॥ राक्षसोंके स्वामीका छोटा भाई यह बिभीषण चार राक्षसोंके साथ आपकी शरणागतमें आयाहै॥ २६॥ परन्तु आप निश्चयही जानेंकि यह बिभीषण रावणका पठाया आयाहै हे क्षमाशील ! जो कुछभीहो, हमारी, सम्मतिमें तो इस रावणके पठाये हुए

प्रकृत्याराक्षसोह्येषभ्रातामित्रस्यवैप्रभो ॥ आगतश्चरिपुःसाक्षात्कथमस्मिंश्चविश्वसेत् ॥ २५ ॥ रावणस्यानुजोभ्राता विभीषणइतिश्रुतः ॥ चतुर्भिःसहरक्षोभिर्भवंतंशरणंगतः ॥ २६ ॥ रावणेनप्रणीतंहितमवेहिविभीषणम् ॥ तस्याहंनिग्रहं मन्येक्षमंक्षमवतांवर॥२७॥राक्षसोजिह्मयाबुद्ध्यासंदिष्टोऽयमिहागतः॥प्रहर्तुंमाययाछन्नोविश्वस्तेत्वयिचानघ॥२८॥ वध्यतामेषतीव्रेणदंडेनसचिवैःसह ॥ रावणस्यनृशंसस्यभ्राताह्येषविभीषणः ॥ २९ ॥ एवमुक्त्वातुतंरामंसंरब्धोवाहिनी पतिः ॥ वाक्यज्ञोवाक्यकुशलंततोमौनमुपागमत् ॥३०॥सुग्रीवस्यतुतद्वाक्यंश्रुत्वारामोमहाबलः ॥ समीपस्थानुवाचे दंहनुमत्प्रमुखान्कपीन् ॥ ३१ ॥ यदुक्तंकपिराजेनरावणावरजंप्रति ॥ वाक्यंहेतुमदत्यर्थंभवद्भिरपिचश्रुतम् ॥ ३२ ॥

बिभीषणको आप दंडही दीजिये ॥ २७ ॥ यह कुटिलबुद्धि मायावी राक्षस प्रथम आपको अपना विश्वास कराय, यहांपर विराजमान रह फिर समय पाय आपपर प्रहार करनेंके निमित्तही रावणका भेजा हुआ यहां पर आयाहै ॥ २८ ॥ हेमहाराज ! यह क्रूर बिभीषण रावणका भाई है; इस कारण शीघ्रही तीक्ष्ण दंड विधान करके इसके चारों मंत्रियोंके साथ इसको मरवाडालिये ॥ २९ ॥ वाक्य विशारद सेनापति सुग्रीवजी क्रोधमें भर वाक्यकुशल श्रीरामचंद्रजीसे यह कहकर मौन धारण करते हुए ॥ ३० ॥ महाबलवान श्रीरामचंद्रजी सुग्रीवजीके ऐसे वचन सुनकर समीपमें बैठे हुए हनुमानादि वानरगणोंसे यह वचन बोले ॥ ३१ ॥ वानरराज सुग्रीवजीनें रावणके छोटे भाई बिभीषणके विषयमें जो युक्ति युक्त

तिसके पीछे शार्दूल नामक कोई बलवान राक्षस समुद्रके तीर टिकी हुई सुग्रीव पालित इस वानरोंकी सैनाके निकट आय सबसेना भली भांतिसे देखता हुआ ॥ १ ॥ यह दुरात्मा राक्षसराज रावणका दूत सब सेनाको भली भांति देख बड़ी शीघ्रतासे लंकाको गया, ॥ २ ॥ और वहां पहुंचकर राजा रावणसे कहता हुआ; कि वानर और रीछोंकी सैनाका समूह लंकापर आगया ॥ ३ ॥ महाराज! यह सैना अप्रमाण और अगाध दूसरे समुद्रहीकी समान उमड़ आईहै और महाराज दशरथजीके पुत्र राम लक्ष्मण दोनों भाई ॥ ४ ॥ उत्तम रूपसम्पन्न सीताजीके लिये यहांपर आये हैं। यह दोनों महातेजस्वी समुद्रके तीर सेनाके सहित टिके हुए हैं ॥ ५ ॥ महाराज! उनकी समस्त सैना दशयोजनकी लंबाई,

ततोनिविष्टांध्वजिनींसुग्रीवेणाभिपालिताम् ॥ ददर्शराक्षसोऽभ्येत्यशार्दुलोनामवीर्यवान् ॥१॥ चारोराक्षसराजस्यरावणस्यदुरात्मनः ॥ तांदृष्ट्वासर्वतोव्यग्रांप्रतिगम्यसराक्षसः ॥२॥ आविश्यलंकांवेगेनराजानमिदमब्रवीत् ॥ एषवैवानरर्क्षौघोलंकांसमभिवर्तते ॥ ३ ॥ अगाधश्चाप्रमेयश्चद्वितीयइवसागरः ॥ पुत्रोदशरथस्यैमौभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ ४ ॥ उत्तमौरूपसंपन्नौसीतायाःपदमागतौ ॥ एतौसागरमासाद्यसन्निविष्टौमहाद्युते ॥५॥ बलंचाकाशमावृत्यसर्वतोदशयोजनम् ॥ तत्त्वभूतंमहाराजक्षिप्रंवेदितुमर्हसि॥६॥तवदूतामहाराजक्षिप्रमर्हंतिवेदितुम्॥उपप्रदानंसांत्वंवाभेदोवात्रप्रयुज्यताम् ॥ ७ ॥ शार्दूलस्यवचःश्रुत्वारावणोराक्षसेश्वरः ॥ उवाचसहसाव्यग्रःसंप्रधार्यार्थमात्मनः ॥ शुकंसाधुतदारक्षोवाक्यमर्थविदांवरम् ॥ ८ ॥ सुग्रीवंब्रूहिगत्वाशुराजानंवचनान्मम ॥ यथासंदेशमक्लीबंश्लक्ष्णयापरयागिरा ॥९॥

दशयोजनकी चौडाई; व १२९ योजनकी ऊँचाई में पड़ी हुई है। आप हमारे वचनोंको सत्य विचारकर शीघ्रही उसका वृत्तान्त जानलें ॥ ६ ॥ हे राजन्! शीघ्र दूत लोगोंको भेजियेकि वह लोग इस वातको जान आवैं किशत्रुको पराजित करनेंके लिये साम या भेद कौनसा उपाय ग्रहण करना चाहिये ॥ ७ ॥ शार्दूलके वचन सुनकर राक्षसोंका स्वामी रावण, अपना उस कालके लिये उचितकार्य स्थिर करता शुकनामक एक कार्यके जाननेंवाले राक्षससे यह अर्थयुक्त वचन बोला ॥ ८ ॥ हे शुक! तुम बहुत शीघ्र सुग्रीवके निकट जाओ, और हमारे वचनानुसार हम जिस प्रकारसे

चाहतेहैं, आप लोग स्थिरचित्तसे उसको श्रवण करें ॥ ५६ ॥ आपके व रावणके दोष गुण विचार, अधार्म्मिक रावणके समीपसे जो अत्यन्त धर्मात्मा आपके निकट बिभीषण आये तौ आपके निकटका यह देश सुदेशहै,और ऐसेही धर्मात्मा पुरुषके निकट पहुँचानेंवाला कालभी श्रेष्ठ कालहै, यह कुछभी कुदेश व कुकाल नहींहै ॥ ५७ ॥ कारण कि रावणमें दौरात्म और आपको गुणवान और अधिकविक्रमसम्पन्न देख जो बिभीषण आपके निकट आयाहै,इस्से तौ उसका अधिक बुद्धिमानीहीका कार्य हुआहै ॥ ५८ ॥ अज्ञात कुलशील दूतके द्वारा बिभीषणका वृत्तान्त जाननेंके विषयमें जो कुछ मैन्दनें कहाहै,हमनें इसके संबंधमें भी जो कुछ विचार करके सिद्धान्त कियाहै,वहभी आपलोग सुनें ॥ ५९॥ हे महाराज! बिभीषण बुद्धिमानहै, इसकारण अज्ञात कुल शील किसी पुरुषके सहसा उनसे कुछ पूछनेंपर,उसके मनमें कोई शंका अवश्य होगी। फिर सुख

एषदेशश्चकालश्चभवतीहयथातथा ॥ पुरुषात्पुरुषंप्राप्यतथादोषगुणावपि ॥ ५७ ॥ दौरात्म्यंरावणेदृष्ट्वाविक्रमंचत थात्वयि ॥ युक्तमागमनंह्यत्रसदृशंतस्यबुद्धितः ॥ ५८ ॥ अज्ञातरूपैःपुरुषैःसराजन्पृच्छ्यतामिति ॥ यदुक्तमत्रमेप्रे क्षाकाचिदस्तिसमीक्षिता ॥ ५९ ॥ पृच्छ्यमानोविशंकेतसहसाबुद्धिमान्वचः ॥ तत्रमित्रंप्रदुष्येतमिथ्यापृष्टंसुखा गतम् ॥ ६० ॥ अशक्यंसहसाराजन्भावोबोद्धुंपरस्यवै ॥ अंतरेणस्वरैर्भिन्नैर्नैपुण्यंपश्यतांभृशम् ॥ ६१ ॥ नत्वस्य ब्रुवतोजातुलक्ष्यतेदुष्टभावता ॥ प्रसन्नंवदनंचापितस्मान्मेनास्तिसंशयः ॥ ६२ ॥

पानेंकी लालसासे जो आपके साथ वह मित्रता करने आयाहै वह दूषित होजायगी, कारणकि बुद्धिमान पुरुषसे कोई बात पूछनेंपर सहसा उसके मनमें शंका होजातीहै, वास्तवमें आयाहुआ पुरुष मित्रहो तौ मिथ्या अनुसन्धान करनेंसे उसके मनमें अन्तर पड़नेंकी संभावनाहै। और यहभी कुछ बात नहीं कि प्रश्न करतेही किसीकी भाव गति जानलीजावे ॥ ६० ॥ हे राजन्! शत्रुके मनका भाव सरलतासे एक साथही जान लेना अत्यन्त कठिनहै; इस कारण कुछ दिन बिभीषणको यहां रखकर उसका व्यवहार देखिये; बस उसकी बातोंसेही उसका अभिप्राय प्रगट होजा यगा; चलाये हुए बाण समूहसे जिसप्रकार वीरोंकी वीरता जानली जातीहै,वैसेही व्यवहार करनेंसे पुरुषकी प्रकृति(आदत)जानली जाती है॥६१॥जो कुछभीहो हमनें तौ जहांतक परीक्षा कीहै, तिस्से तौ बिभीषणके वाक्यादिमें कोई खोटा आशय जाना नहीं गया, और उसके मुखपरभी अप्रसन्नता

को घूंसोंसे मारना प्रारंभ किया। वानरगण शुककी इस प्रकारसे दुरवस्था करनें लगे, कारणकि वह इनके वशमें पड़गयाथा ॥ १६ ॥ फिर वानरोंनें बलसे आकाशमेंसे पृथ्वीपर उसको उतारा, और मार धाड़करनें लगे, तब शुक अत्यन्त पीड़ित होकर बोला ॥ १७ ॥ किहे श्रीरामचंद्रजी! आप निवारण कीजिये, कहीं ऐसा नहो कि यह वानरगण मुझ दूतको प्राणोंसे मारडालें, विशेषकरके जो दूत शत्रुके वशमें पड़कर अपना छुटकारा करनेंके लिये स्वामीका सन्देश छिपाया और कालोचित अपने गढ़े हुए अनुरागयुक्त वचन कहे, हेमहाराज ! ऐसाही दूत मारडालनेंके योग्यहै ॥ १८ ॥ तब करुणामय श्रीरामचंद्रजी शुकके वचन और विलाप सुनकर, शुकको मार डालनें पर उतारु वानर यूथ गणोंसे

गगनाद्भूतलेचाशुप्रतिगृह्यावतारितः॥ वानरैःपीड्यमानस्तुशुकोवचनमब्रवीत् ॥१७॥ नदूतान्घ्नंतिकाकुत्स्थवार्यतां साधुवानराः॥यस्तुहित्वामतंभर्तुःस्वमतंसंप्रधारयेत्॥अनुक्तवादीदूतःसन्सदूतोवधमर्हति॥१८॥शुकस्यवचनंरामःश्रुत्वातुपरिदेवितम् ॥उवाचमावधिष्टेतिघ्नतःशाखामृगर्षभान्॥१९॥ सचपत्रलघुर्भूत्वाहरिभिर्दर्शितेऽभये॥अंतरिक्षेस्थितोभूत्वापुनर्वचनमब्रवीत्॥ २० ॥ सुग्रीवसत्त्वसंपन्नमहाबलपराक्रम॥ किंमयाखलुवक्तव्योरावणोलोकरावणः॥२१॥ सएवमुक्तःप्लवगाधिपस्तदाप्लवंगमानामृषभोमहाबलः॥ उवाचवाक्यंरजनीचरस्यचारंशुकंशुद्धमदीनसत्त्वः ॥२२॥ नमेऽसिमित्रंनतथानुकंप्योनचोपकर्तासिनमेप्रियोसि॥ अरिश्चरामस्यसहानुबंधस्ततोसिवालीववधार्हवध्यः॥२३॥

बोले कि तुम लोग दूतके प्राण मतलो ॥ १९ ॥ तब दूत शुक राक्षस वानरोंके भयसे भीतहो छोटा आकार बनाय आकाशमें टिक वहींसे फिर यह कहनें लगा ॥ २० ॥ हेमहाबलवान—पराक्रम—सत्वसम्पन्न सुग्रीवजी ! हम लौटकर लोकोंके रुवानेंवाले रावणसे क्याकहें ? वह आप हमसे कह दीजिये ॥ २१ ॥ वानरगणोंके स्वामी महाबलवान सतोगुणी हरीश्वर सुग्रीवजी इस प्रकारसे पूछे जाकर राक्षसराज रावणसे कहनेंके लिये अदीनभावयुक्त राक्षस दूत शुकसे यह बोले ॥ २२ ॥ कि हे शुक ! तुम रावणसे यह कहनाकि, हेरावण!तुम हमारे मित्र, उपकारी प्रिय, अथवा दयाके पात्र नहींहो, वरन परिवारके सहित श्रीरामचंद्रजीसे शत्रुता करनेंके कारण तुमकोभी वालिकी समान मारडालना उचितहै ॥ २३ ॥

सहित पवनकुमार हनुमानजीके वचन सुनकर अतिशय प्रसन्नता प्राप्त करतेहुए यह उत्तर देते हुएकि ॥ १ ॥ हे वानरगण! तुम लोग हमारा हित सिद्ध करनेंके लिये यत्न करतेहो, इस कारण विभीषणके संबंधमें हमको जो कुछ कहनाहै, वह समस्तही तुम्हारे समीप वर्णन करतेहैं; श्रवणकरो ॥ २ ॥ जबकि बिभीषण मित्रता करनेंके लिये, हमारी शरणमें आयाहै, तव तो चाहे उसमें अत्यन्त दोषभीहों तथापि हम उसको नहीं त्याग सकते; अधिक करके ऐसा आचरण करने अर्थात् शरणागतको शरण न देनेंसे साधुलोगोंके निकट निन्दनीयहोना पड़ताहै ❋ ॥ ३ ॥ तिसके पीछे वानर राज सुग्रीवजी, श्रीरामचंद्रजीके वचन सुनकर मनमें अनेक भांतिके तर्क और परामर्श करते विभीषणजीके चरित्रमें दोष दिखलानेंवाले यह हितकारी वचन बोले ॥ ४ ॥ यह निशाचर अच्छे चरित्रवालाहो, या वुरे चरित्र वालाहो, जवकि यह

ममापिचविवक्षास्तिकाचित्प्रतिविभीषणम् ॥ श्रोतुमिच्छामितत्सर्वंभवद्भिःश्रेयसिस्थितैः ॥ २ ॥ मित्रभावेनसंप्राप्तं नत्यजेयंकथंचन ॥ दोषोयद्यपितस्यस्यात्सतामेतदगर्हितम् ॥ ३ ॥ सुग्रीवस्त्वथतद्वाक्यमाभाष्यचविमृश्यच ॥ ततःशुभतरंवाक्यमुवाचहरिपुंगवः ॥ ४ ॥ सदुष्टोवाप्यदुष्टोवाकिमेषरजनीचरः ॥ ईदृशंव्यसनंप्राप्तंभ्रातरंयःपरित्यजेत् ॥ ५ ॥ कोनामसभवेत्तस्ययमेषनपरित्यजेत् ॥ वानराधिपतेर्वाक्यंश्रुत्वासर्वानुदीक्ष्यतु ॥ ६ ॥ ईषदुत्स्मयमानस्तुलक्ष्मणंपुण्यलक्षणम् ॥ इतिहोवाचकाकुत्स्थोवाक्यंसत्यपराक्रमः ॥ ७ ॥ अनधीत्यचशास्त्राणिवृद्धाननुपसेव्यच ॥ नशक्यमीदृशंवक्तुंयदुवाचहरीश्वरः ॥ ८ ॥

अपने भ्राताको ऐसे संकटमें पड़ा देखकर उसे छोड़ यहां चलाआया ॥ ५ ॥ तव विपदमें पड़ा हुआ देखकर बिभीषण जिसका त्यागन करे ऐसा हम उसका कोई अन्तरंग मित्र नहीं देखते हे महाराज! बिभीषण इस समय आपकी शरणमें आताहै, परन्तु किसी विपदमें हम लोगों के पड़तेही यह उसी समय हमको त्यागकर यहांसे चला जायगा वानरनाथ सुग्रीवजीका वचन सुन सबकी ओर निहार ॥ ६ ॥ सत्यपराक्रम काकुत्स्थ श्रीरामचंद्रजी मुस्कुराकर पुण्यलक्षण लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ७ ॥ हे लक्ष्मण! वानरराज सुग्रीवजीनें जो कुछ कहाहै, वह विना बहुत

❋ शिबिराजानें अपना प्राण देकर कबूतरको बचाया, और दधीचिनें देवतालोगोंको शरणदी जान अपने शरीरकी अस्थि देदी ॥

वहांपर न जाना चाहिये, इस कारण इसका बांधलेना उचितहै, हमें तौ यही अच्छा लगताहै ॥ ३० ॥ जब अंगदजीनें ऐसा कहा तब वानरराज सुग्रीवजीकी आज्ञासें वानर लोगोंनें कूद उसको पकड़कर बांधलिया जब वानरोंनें पकड़ा तब वह अनाथकी समान रोदन करने लगा ॥ ३१ ॥ उस समय वह राक्षस प्रचंड वानरवीरोंकरके इस प्रकार मार खाय बड़ेशब्दसे दशरथकुमार महात्मा श्रीरामचंद्रजीको पुकारता हुआ रोनें लगा " कि हेरघुनंदन! वानर लोगोंनें बल पूर्वक मेरे पंख उखाड़ डाले; औरनेत्र फोड़नेंके लिये तैयार हुएहैं ॥ ३२ ॥ आप इन लोगोंको रोकिये; नहीं तौ ऐसा करनेंसेमैं मर जाऊंगा, तौ मैंने अपने जन्मके समयसे मृत्युके समयतक जितनें पाप कियेहैं, आपही उन समस्त पापके फलको पावेंगे ॥ ३३॥

ततोराज्ञासमादिष्टाःसमुत्पत्यवलीमुखाः ॥ जगृहुश्चबबंधुश्चविलपंतमनाथवत् ॥ ३१ ॥ शुकस्तुवानरैश्चंडैस्तत्रतैः संप्रपीडितः ॥ व्याचुक्रोशमहात्मानंरामंदशरथात्मजम् ॥ लुप्येतेमेबलात्पक्षौभिद्येतेमेतथाक्षिणी ॥ ३२ ॥ यांचरात्रिंमरिष्यामिजायेरात्रिंचयामहम् ॥ एतस्मिन्नंतरेकालेयन्मयाह्यशुभंकृतम् ॥ सर्वंतदुपपद्येथाजह्यांचेद्यदिजीवितम् ॥ ३३ ॥ नाघातयत्तदारामःश्रुत्वातत्परिदेवितम् ॥ वानरानब्रवीद्रामोमुच्यतांदूतआगतः ॥ ३४ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०यु०विंशःसर्गः ॥ २० ॥ ॥ ६॥ ॥ ततःसागरवेलायांदर्भानास्तीर्यराघवः ॥ अंजलिंप्राङ्मुखःकृत्वाप्रतिशिश्येमहोदधेः ॥ १ ॥ बाहुंभुजंगभोगाभमुपधायारिसूदनः ॥ जातरूपमयैश्चैवभूषणैर्भूषितंसदा ॥ २ ॥ मणिकांचनकेयूरमुक्ताप्रवरभूषणैः ॥ भुजैःपरमनारीणामभिमृष्टमनेकधा ॥ ३ ॥

उस समय परम दयालु श्रीरामचंद्रजीनें ऐसी व्यथा सुनकर उसके जीवनकी रक्षाकी और वानर लोगोंको उसके मारनेंका निषेध करके आये हुए दूतको छोड देनेकी आज्ञादी ॥ ३४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि काव्ये युद्धकांडे विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥ तदनन्तर दशरथकुमार श्रीरामचंद्रजी समुद्रके तीर कुशा बिछायकर उनके ऊपर समुद्रसे वर प्रार्थना करनेंकी अभिलाषसे हाथ जोड़कर पूर्वमुख हो बैठे ॥ १ ॥ हाय! शत्रुओंके नाश करनेंवाले श्रीरामचंद्रजीकी जो भुजायें सुवर्णके गहनोंसे विभूषित होतीं, वही भुजंग, भोग, सदृश भुजा श्रीरामचंद्रजीके शिरके नीचे तकियेका कार्य कर रहीं है॥ २ ॥ जिनकी मणिकाञ्चनमय केयूर मुक्ता व और दूसरे भूषणोंसे युक्त

यह वात प्रसिद्धहै कि भाई लोग परस्पर मिलकर अव्याकुल चित्त और सन्तुष्ट मनसे वास करतेहैं; परन्तु कालक्रमसे सबकी राज्यलाभलालसा व लवती होनेंपर परस्पर भेद पड़जाताहै। तिसके पीछे जातिवालोंकी रीति जिसप्रकारसे चली आईहै, उसके अनुसारही युद्ध कुलाहल और परस्पर भेद पड़जाताहै, इस कारण बोध होताहै कि विभीषण अबतक रावणकेसाथ सुहृदतासे वास करताथा, अब किसी कारण वश शत्रुता होनेंपर उस का विनाश करके उसका राज्य पानेंकी आशासे हमारी शरणागत हुआहै इस कारण विभीषणका ग्रहण करनाही उचितहै ॥ १४ ॥ हे वत्स! जो तु म ऐसी शंका करो, कि भरतनें राज्य पायकरभी किस कारणसे उसे ग्रहण न किया; परन्तु हे लक्ष्मण! पृथ्वीपर भरतकी समान निर्लोभी भ्राता और हमारी समान पिताके वचन माननेंवाला पुत्र, और तुम्हारी समान सर्व यत्नसे सब प्रकारका सुख छोड़ छाड़कर, मित्रकार्यको साधन

अव्यग्राश्चप्रहृष्टाश्चतेभविष्यंतिसंगताः ॥ प्रणादश्चमहानेषोऽन्योन्यस्यभयमागतम् ॥ इतिभेदंगमिष्यंतितस्मात्प्राप्तोविभीषणः ॥ १४ ॥ नसर्वेभ्रातरस्तातभवंतिभरतोपमाः ॥ मद्विधावापितुःपुत्राःसुहृदोवाभवद्विधाः ॥ १५॥ एवमुक्तस्तुरामेणसुग्रीवःसहलक्ष्मणः ॥ उत्थायेदंमहाप्राज्ञःप्रणतोवाक्यमब्रवीत् ॥ १६ ॥ रावणेनप्रणिहितंतमवेहिनिशाचरम् ॥ तस्याहंनिग्रहंमन्येक्षमंक्षमवतांवर ॥ १७ ॥ राक्षसोजिह्मयाबुद्ध्यासंदिष्टोयमिहागतः ॥ प्रहर्तुंत्वयिविश्वस्तेविश्वस्तेमयिवानघ ॥ १८ ॥ लक्ष्मणेवामहाबाहोसवध्यःसचिवैःसह ॥ रावणस्यनृशंसस्यभ्राताह्येषविभीषणः ॥ १९ ॥ एवमुक्त्वारघुश्रेष्ठंसुग्रीवोवाहिनीपतिः ॥ वाक्यज्ञोवाक्यकुशलंततोमौनमुपागमत् ॥ २० ॥

करनेंवाले सुहृद अत्यन्त दुर्लभहैं ॥ १५ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें सुग्रीव व लक्ष्मणजीसे यह वार्ता कही तब बुद्धिमान सुग्रीवजी खड़ेहो प्रणाम कर यह बोले ॥ १६ ॥ हे क्षमाशीला ऐसा समझमें आताहै कि रावणनेंही इस राक्षसको यहांपर भेजाहै। इस कारण हमारी सम्मतिसे तौ इसका मारडालनाही उचितहै ॥ १७ ॥ हे पापरहित! यह कुटिल बुद्धिवाला राक्षस रावणके द्वारा पठाया जाकर आपके हमारे, व सैनाका विनाश करनेंही के लिये यहांपर आयाहै। यह विश्वासमें डालकर हमारे ऊपर प्रहारकरैगा ॥ १८ ॥ यह लक्ष्मणजीकेही ऊपर चोट चलावेगा; इस कारण रावणका भ्राता यह क्रूर विभीषण मंत्रिलोगोंके साथ वध करडालनेंहीके योग्यहै ॥ १९ ॥ वचन बोलनेंमें चतुर सैनापति वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजी, वाक्य

करभी उनका दर्शन न दिया ॥ १२ ॥ तब श्रीरामचंद्रजीनें समुद्रकेऊपर बड़ा क्रोध किया; उनके नेत्र लाल हो आये, और तब वह निकट बैठे हुए अपने छोटे भाई सुलक्षणयुक्त लक्ष्मणजीसे यह बोले ॥ १३ ॥ जबकि समुद्रनें तीन दिनतक इस प्रकार विनती करने परभी हमको दर्शन नदिया, तब इस्सेतौ उसका गर्व करनाही पाया जाताहै हम भलीभांति जानतेहैं कि शान्ति,क्षमा सरलवृत्ति और प्रियवचन बोलना ॥१४॥ इत्यादि जो साधु लोगोंके गुणहैं; यह गुणरहित दोष युक्त दुर्जनोंकेसन्मुख प्रयोग करनेंसे उसकी असामर्थताको जताते हैं । अर्थात् गुण रहित पुरुषोंके प्रति इन गुणोंका प्रकाश करना निष्फलहै । जोकोई गुण न होंने परभी लोगोंके निकट अपनी शूरता इत्यादिकी, प्रशंसा

समुद्रस्यततःक्रुद्धोरामोरक्तांतलोचनः ॥ समीपस्थमुवाचेदंलक्ष्मणंशुभलक्षणम् ॥ १३ ॥ अवलेपःसमुद्रस्य नदर्शयतियःस्वयम् ॥ प्रशमश्चक्षमाचैवआर्जवंप्रियवादिता ॥ १४ ॥ असामर्थ्यफलाह्येतेनिर्गुणेषुसतांगुणाः ॥ आत्मप्रशंसिनंदुष्टंधृष्टंविपरिधावकम् ॥ १५ ॥ सर्वत्रोत्सृष्टदंडंचलोकःसत्कुरुतेनरम् ॥ नसाम्नाशक्यतेकीर्तिर्नसा म्नाशक्यतेयशः ॥१६॥ प्राप्तंलक्ष्मणलोकेस्मिन्जयोवारणमूर्धनि ॥ अद्यमद्बाणनिर्भग्नैर्मकरैर्मकरालयम् ॥१७॥ नि रुद्धतोयंसौमित्रेप्लवद्भिःपश्यसर्वतः ॥ भोगिनांपश्यभोगानिमयाभिन्नानिलक्ष्मण ॥ १८ ॥ महाभोगानिमत्स्यानां करिणांचकरानिह ॥ सशंखशुक्तिकाजालंसमीनमकरंतथा ॥ १९ ॥

करे और अपना गुण सबसे कहनेके लिये इधर उधर दौडता फिरै ॥१५॥ और दंड देनेका प्रयोजन नहोंने परभी जो लोगोंको तीक्ष्ण दंड दियाकरै ऐसे पुरुषका बुरे चरित्रवाले और अहंकारी लोगही सत्कार कियाकरतेहैं । प्रथम उपाय समझानें बुझानेंसे न कीर्ति मिलती, न सब ओर यश फलताहै ॥ १६ ॥ हे लक्ष्मण अधिक कहांतक कहैं कि शान्त स्वभावहोनेंसे रणभूमिमें जयकी प्राप्तिभी नहीं होसकती हे लक्ष्मण ! इस्से आज ही हमारे चलाये हुए बाणोंसे मरे कटे मत्स्योंसे युक्त मकरालय ॥ १७ ॥ समुद्रकी जलराशिको सब जगह ढकाहुआ देखोगे हेसुमित्रानंदन लक्ष्मण! मेरे बाणोंसे विदीर्ण अनेक सर्पोंके शरीरभी तुम देखोगे ॥ १८ ॥ सर्प और मत्स्यगणोंके बड़े २ भारी शरीर व जलके हाथियोंकी कटी

कण्डुजीनें जो कुछ धर्मयुक्त गाथा गाईथीं; हम उन्हें कहतेहैं तुम सुनो ॥ २६ ॥ हे शत्रुओंके तपानेंवाले सुग्रीवजी ! " चाहे शत्रु क्यों नहो, परन्तु हाथ जोड़ दीनभावसे अपने घरमें आयकर प्रार्थना करे तौ धर्मरक्षाके लिये उसको नहीं मारना चाहिये ॥ २७ ॥ शत्रु आतुरहो, या अहंकार युक्तहो, परन्तु कातरभावसे उसके शरण आनेंपर प्राण देकरभी उसकी रक्षा करना उचितहै, ऐसा करनेंहीसे यथार्थ धार्मिकपनका कार्य होताहै ॥ २८ ॥ परन्तु, यदि, भय, मोह अथवा इच्छानुसारही हो, अपनी शक्तिके अनुसार जो शरणागतकी रक्षा नहीं करता, तौ पाप ग्रसित होकर उसको सब लोकमें निंदाका पात्र बनना पड़ताहै ॥ २९ ॥इस प्रकारसे शरणागतकी रक्षा न करनेंपर यदि वह शरणागत किसी

बद्धांजलिपुटंदीनंयाचंतंशरणागतम् ॥ नहन्यादानृशंस्यार्थमपिशत्रुंपरंतप ॥ २७ ॥ आर्तोवायदिवादृप्तःपरेषांशरणं गतः ॥ अरिःप्राणान्परित्यज्यरक्षितव्यःकृतात्मना ॥ २८ ॥ सचेद्भयाद्वामोहाद्वाकमाद्वापिनरक्षति ॥ स्वयाशक्त्या यथान्यायंतत्पापंलोकगर्हितम् ॥ २९ ॥ विनष्टःपश्यतस्तस्यरक्षिणःशरणंगतः ॥ आदायसुकृतंतस्यसर्वंगच्छेदरक्षि तः ॥ ३० ॥ एवंदोषोमहानत्रप्रपन्नानामरक्षणे ॥ अस्वर्ग्यंचायशस्यंचबलवीर्यविनाशनम् ॥ ३१ ॥ करिष्यामिय थार्थंतुकण्डोर्वचनमुत्तमम् ॥ धर्मिष्ठंचयशस्यंचस्वर्ग्यंस्यात्तुफलोदये ॥ ३२ ॥ सकृदेवप्रपन्नायतवास्मीतिचयाचते ॥ अभयंसर्वभूतेभ्योददाम्येतद्व्रतंमम ॥ ३३ ॥

प्रकारसे नाशको प्राप्त होजाय, तौ वह नाशको प्राप्त हुआ पुरुष उस रक्षा न करनेंवालेके पुण्यका भागी होकर स्वर्गमें चला जाताहै । " ॥ ३० ॥ हेसुग्रीव ! शरणागतकी रक्षा न करनेंसे अवश्यही वीर्यहीनकी समान खोटे यशको प्राप्तकर पवित्र स्वर्गसें भ्रष्ट होना पड़ताहै ॥ ३१ ॥ इस कारण हम उन महर्षि कण्डुके धर्मयुक्त यशके बढ़ानें और स्वर्गके प्राप्त करानेंवाले श्रेष्ठ उपदेश वचन यथावत् प्रतिपालन करेंगे, जिस्सेकि हमको विशेष फल प्राप्त होगा ॥ ३२ ॥ हेसुग्रीव! हमारा सबसे बड़ा संकल्प यहीहै कि जो केवल एकही वार "मैं

समस्त बाणश्रेष्ठ महावेगसे समुद्रके जलमें पैठ गये, जिस्से समुद्रके रहनें वाले सर्पगण त्रासित होगये ॥ २७ ॥ उस काल मछली मकरादि प्राणियोंसे युक्त समुद्रका बड़ा भारी वेग, प्रचंड पवनके लगनेंसे अत्यन्त भयंकर शब्द करनें लगा ॥ २८ ॥ समुद्रमें सब ओरसे तरंगोंके बडे २ समूह उठे, व स्थान २ पर सर्पोंके ढेरके ढेर छितरानें लगे, सब ओरसे धूम उठकर लहर आनें लगी इस भांति अतिशीघ्र ऐसा समुद्रका रूप होगया ॥ २९ ॥ ऐसी अवस्थामें सर्पगण व्यथित होगये और उनके नेत्र व मुखमंडल प्रदीप्त हो आये व उस समय पातालके रहनें वाले नाग लोगों तकके त्रासकी सीमा न रही ॥ ३० ॥ समुद्रमें विन्ध्य और मन्दराचल पर्वतकी समान हजार २ तरंगे उठनें लगीं व उनमें नाके व

तोयवेगःसमुद्रस्यसमीनमकरोमहान् ॥ सबभूवमहाघोरःसमारुतरवस्तथा ॥ २८ ॥ महोर्मिजालचलितःशंखजालसमावृतः ॥ सधूमःपरिवृत्तोर्मिःसहसासीन्महोदधिः ॥ २९ ॥ व्यथिताःपन्नगाश्चासन्दीप्तास्यादीप्तलोचनाः ॥ दानवाश्चमहावीर्याःपातालतलवासिनः ॥ ३० ॥ ऊर्मयःसिंधुराजस्यसनक्रमकरास्तथा ॥ विंध्यमंदरसंकाशाःसमुत्पेतुःसहस्रशः ॥ ३१ ॥ आघूर्णिततरंगौघःसंभ्रांतोरगराक्षसः ॥ उद्वर्तितमहाग्राहःसघोषोवरुणालयः ॥ ३२ ॥ ततस्तुतंराघवमुग्रवेगंप्रकर्षमाणंधनुरप्रमेयम् ॥ सौमित्रिरुत्पत्यविनिःश्वसंतंमामेतिचोक्त्वाधनुराललंबे ॥ ३३ ॥ एतद्विनापिह्युदधेस्तवाद्यसंपत्स्यतेवीरतमस्यकार्यं ॥ भवद्विधाःक्रोधवशंनयांतिदीर्घंभवान्पश्यतुसाधुवृत्तम् ॥ ३४ ॥

मत्स्य आदि बहुतसे जल जन्तुभी उछलनें लगे ॥ ३१ ॥ क्रमसे समुद्रकीतरंगें बराबर उछलनें लगीं नाग राक्षसादिके घबड़ानेंसें घड़ियालोंके उफन जानेंसे समुद्रमें महाघोर शब्द होंने लगा ॥ ३२ ॥ तिसके पीछे रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी लंबी श्वास लेकर जिस समय बड़े भारी धनुषको खेंचनें लगे उस समय लक्ष्मणजीनें झट पट आगे बढ़कर यह धनुष हमें दीजि यह कह निवारण कर इस रामचंद्रजीके धनुषको ग्रहण किया ॥ ३३ ॥ उस समय लक्ष्मणजी बोले कि हे प्रभो! जबकि समुद्रके प्रति बाण न चलाकर और प्रकारसे आपका कार्य सिद्ध हो सकताहै; तब फिर ऐसे कठिन कार्यका क्या प्रयोजनहै? हम आपसे कहतेहैं कि आपसरीखे महात्मा पुरुष क्रोधके वश होना कदापि कर्तव्य नहीं है। आप अपनी

रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीनें जब इस प्रकारसे अभय दान दिया, तब महापंडित रावणके लघु भ्राता विभीषणजी पृथ्वीकी ओर देखतेहुए ॥ १ ॥ आकाशसे अपने चार मंत्रियोंके साथ हर्षितहो भूमिपर उतरे, और अपने चारों मंत्रियोंके साथ भक्तिभावसे श्रीरामचंद्रजीके निकट आये ॥ २ ॥ फिर अपने चारों राक्षसोंके साथ उनके चरणोंमें गिरकर विभीषणजी श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ ३ ॥ विभीषणजीनें युक्तियुक्त धर्म संगत, व प्रसन्नता उपजानेंवाले वचन श्रीरामचंद्रजीसे कहे, कि हम रावणके सगे छोटे भाई उस्से अपमानित होकर ॥ ४ ॥ लंका, मित्र और धनादि समस्त परित्याग करके आपको सर्व प्राणियोंका शरण देनेंवाला देखकर आपकी शरणमें आयाहूं * ॥ ५ ॥ अब हमारा जीवन,

राघवेणाभयेदत्तेसन्नतोरावणानुजः ॥ विभीषणोमहाप्राज्ञोभूमिंसमवलोकयत् ॥ १ ॥ खात्पपातावनिंहृष्टोभक्तैरनुचरैःसह ॥ सतुरामस्यधर्मात्मानिपपातविभीषणः ॥ २ ॥ पादयोर्निपपाताथचतुर्भिःसहराक्षसैः ॥ अब्रवीच्चतदावाक्यं रामंप्रतिविभीषणः ॥ ३ ॥ धर्मयुक्तंचयुक्तंचसांप्रतंसंप्रहर्षणम् ॥ अनुजोरावणस्याहंतेनचास्त्यवमानितः ॥ ४ ॥ भवंतंसर्वभूतानांशरण्यंशरणंगतः ॥ परित्यक्तामयालंकामित्राणिचधनानिच ॥ ५ ॥ भवद्गतंहिमेराज्यंजीवितंचसुखानिच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वारामोवचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥ वचसासांत्वयित्वैनंलोचनाभ्यांपिबन्निव ॥ आख्याहिममतत्त्वेनराक्षसानांबलाबलम् ॥७॥ एवमुक्तंतदारक्षोरामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ रावणस्यबलंसर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥८॥

सुख, और राज्यलाभ समस्त आपकेही आधीनहै । विभीषणके यह वचन सुनकर श्रीरामचंद्रजी बोले ॥ ६ ॥ मानों समझातेहुए व नेत्रोंसे पानहीं करतेसे बोले कि हे विभीषण! प्रथम तुम राक्षसोंका बलाबल सब यथार्थ २ हमारे निकट वर्णन करो ॥ ७ ॥ अक्लिष्ट कर्म करनेंवाले

---

* शरण हरण भय जस उदार श्रवणनि सुनि आयो इतै । मै कृपालु दशभाल बंधुलघु निपट निरादरधार ॥ श्र० ॥ निशिचर कुल कर तूति अधम अघ जानु न सपनेहुं शुभाचार ॥ श्र० ॥ भव रुज ग्रसित त्रासित छिन पल पल दीन हीन मति सब प्रकार ॥ श्र० ॥ गद२ प्रेम खस्यो महि टेरत पाहि २ करुणाअगार ॥ श्र० ॥ सूरज दीन दयालुहि भायउ मेटि सब विपति भार ॥ श्र० ॥

दशों दिशाओंको अंधकारने छाय लिया लोक इत्यादिक कुछभी नहीं देखने लगे, सरोवरोंके सहित समस्त नदियें खल बलाय उठीं ॥ ७ ॥ नक्षत्र गणोंके साथ सूर्य चंद्रमाकी तिरछी गति होगई। आकाश मंडल सूर्य नारायणकी किरणोंसे युक्त होनेपरभी अंधकारसे छा यगया ॥ ८ ॥ अन्तरिक्षमें बडे शब्दसे युक्त होकर वारंवार वज्रपात होनें लगा और आकाश मंडल शत २ उल्कापातोंसे प्रकाशमान हो गया ॥ ९ ॥ भयानक पवनके वेगसे वृक्ष टूटकर गिरने लगे, व वारंवार अति शीघ्रतासे वादल इधर उधर उड़कर जाने लगे ॥ १० ॥ बडे २ पर्वतोंको टकराता हुआ पवन उनके कंगूरोंको गिरानें लगा चारों ओर दामिनीकी आग प्रगट होनेसे ॥ ११ ॥ वारंवार वज्र गिरनें

तमश्चलोकमावव्रेदिशश्चनचकाशिरे ॥ प्रतिचुक्षुभिरेचाशुसरांसिसरितस्तदा ॥७॥ तिर्यक्चसहनक्षत्रैःसंगतौचंद्रभास्करौ ॥ भास्करांशुभिरादीप्तंतमसाचसमावृतम् ॥ ८ ॥ प्रचकाशेतदाकाशमुल्काशतविदीपितम् ॥ अंतरिक्षाच्चनिर्घातानिर्जग्मुरतुलस्वनाः ॥ ९ ॥ वपुःप्रकर्षेणववुर्दिव्यमारुतपंक्तयः ॥ बभंजचतदावृक्षान्जलदानुद्वहन्मुहुः ॥ १० ॥ आरुजंश्चैवशैलाग्राञ्छिखराणिबभंजच ॥ दिविचस्पृशमहावेगाःसंहताःसमहास्वनाः ॥ ११ ॥ मुमुचुर्वैद्युतानग्नींस्तेमहाशनयस्तदा॥ यानिभूतानिदृश्यानिचुक्रुशुश्चाशनेःसमम् ॥ १२॥ अदृश्यानिचभूतानिमुमुचुर्भैरवस्वनम् ॥ शिश्यिरेचाभिभूतानिसंत्रस्तान्युद्विजंतिच ॥ १३ ॥ संप्रविव्यथिरेचापिनचपस्पंदिरेभयात् ॥ सहभूतैःसतोयोर्मिःसनागःसहराक्षसः ॥१४॥ सहसाभूत्ततोवेगाद्भीमवेगोमहोदधिः॥योजनंव्यतिचक्रामवेलामन्यत्रसंप्लवात् ॥ १५ ॥

लगा उसके साथही साथ जितनें प्राणी दिखलाई देतेथे वह समस्तवज्रसे उत्पन्न हुए शब्दके साथ चिंघाडकर उठे ॥ १२ ॥ और जो प्राणी अदृश्यथे वहभी सब इस भयंकर वज्रके शब्दको सुन भयके मारे कंपितशरीर होकर भयंकर शब्द करतेहुये ऐसे व्याकुलकी नांई जहां तहां लेट रहे ॥ १३ ॥ व्यथित हृदय होनेंके कारण उनमें चलनें फिरनेंकी कुछभी सामर्थ्य नहीं रही; सब जहांके तहां स्पन्दनविहीनहो पडे रहे फिर समस्त प्राणियोंके साथ, व तरंग, नाग, और राक्षसोंके सहित ॥ १४॥ समुद्रोंकी तरंगोंनें विकटाकार रूप धारण किया, सहसा समुद्रका वेग इतना भयानक होगया कि जहां सदा वेलाभूमितक जलजायाकरताथा उस सीमाको उल्लंघनकर विनाही प्रलयकालके आये चारकोसतक दूर चला गया ॥१५॥

कियाथा लोकपालगण राक्षस लोगोंका असह्य तेज न सहन करके भागगयेथे ॥ १६ ॥ रामचंद्रजी विभीषणके मुखसे इस वचनको सुनकर और रावणके बलाबलको जान मनही मन चिन्ताकर बोले ॥ १७ ॥ हे विभीषण! तुमने रावणकी जितनी सेनाहै उसको बताया वह हमनें तत्त्वसे सब जाना ॥ १८ ॥ जो कुछभी हो तुम निश्चय जानो कि हम प्रहस्त और इन्द्रजीतके सहित रावणका संहार करके तुमको लंकाका राज्य देदेंगे ॥ १९ ॥ यद्यपि रावण पाताल अथवा ब्रह्मलोकमेंभी चलाजाय तथापि वह जीवित रहते हमसे छुटकारा पानेंको समर्थ नहींहोगा ॥ २० ॥ हम लक्ष्मण आदि तीन भ्राताओंकी शपथ करके कहते हैं कि पुत्र और बंधुबान्धवगणोंके सहित रावणका विनाश किये विना हम

विभीषणस्यतुवचस्तच्छ्रुत्वारघुसत्तमः ॥ अन्वीक्ष्यमनसासर्वमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १७ ॥ यानिकर्मापदाना निरावणस्यविभीषण ॥ आख्यातानिचतत्त्वेनह्यवगच्छामितान्यहम् ॥ १८ ॥ अहंहत्वादशग्रीवंसप्रहस्तंसहात्मजम् ॥ राजानंत्वांकरिष्यामिसत्यमेतच्छृणोतुमे ॥१९॥ रसातलंवाप्रविशेत्पातालंवापिरावणः ॥ पितामहसकाशंवानमेजीवन्विमोक्ष्यते॥२०॥अहत्वारावणंसंख्येसपुत्रजनबांधवम् ॥ अयोध्यांनप्रवेक्ष्यामित्रिभिस्तैर्भ्रातृभिःशपे॥२१॥ श्रुत्वातुवचनंतस्यरामस्याक्लिष्टकर्मणः॥ शिरसावंद्यधर्मात्मावक्तुमेवप्रचक्रमे॥२२॥राक्षसानांवधेसाह्यंलंकायाश्चप्रधर्षणे॥ करिष्यामियथाप्राणंप्रवेक्ष्यामिचवाहिनीम् ॥ २३ ॥ इतिब्रुवाणंरामस्तुपरिष्वज्यबिभीषणम् ॥ अब्रवील्लक्ष्मणंप्रीतःसमुद्राज्जलमानय ॥ २४ ॥ तेनचेमंमहाप्राज्ञमभिषिंचविभीषणम् ॥ राजानंरक्षसांक्षिप्रंप्रसन्नेमयिमानद ॥ २५ ॥

अयोध्यापुरीको न जांयगे ॥ २१ ॥ अमानुषकर्मकारी श्रीरामचंद्रजीके वचन सुनकर धर्मात्मा विभीषणजी शिर झुकाय रामचंद्रजीके दोनो चरणोंकी वंदना करके कहने लगे॥२२॥ रावणकी सेनाके आतेही सबसे प्रथम हम उसमें प्रवेश करके राक्षसगणोंका वध और सबसे लंकाके विध्वंस करनेमें यथा साध्य आपकी सहायता करेंगे ॥ २३ ॥ जब विभीषणजीनें इस प्रकारसे कहा तब श्रीरामचंद्रजी प्रसन्नता प्राप्त करके उनको भेंटकर लक्ष्मणजीको समुद्रके जल लानेंकी आज्ञा देकर कहा॥२४॥हे महानद! समुद्रके जलसे अभिषेक करके महाप्राज्ञ विभीषणको राजा बनानाही हमारा अभिप्राय है

पवन, आकाश, जल और अग्नि, यह समस्तही अपने २ स्वभावके वश होकर रहतेहैं ॥ २३ ॥ हे शुद्धस्वभाव! हम स्वभावसेही अगाध और लांघनेंके अयोग्यहैं, यदि लोग सहजसेही हमारे पार चले जायसकें, अथवा हममें थोड़ा जल होजाय तो आपही बतलाइये, कि ऐसा होनेंसे हमारे स्वभावमें अंतर पाया या नहीं? ॥ २४ ॥ हे राजकुमार! हम कामनाके हेतु लोभके अर्थ अथवा भयसे युक्तहो कभीभी नाके और मत्स्योंसे युक्त अपनी जलराशिको नहीं रोक सकते ॥ २५ ॥ हे प्रभो! आपकी जैसी इच्छाहै हम भी वही करनेंको तैयार हैं और जो आप करेंगे उसको भलीभांतिसे सहन करनेंकोभी हम राजीहैं, आपकी सैना जिस समय पार जायगी, उस समय जलके जीव उस सैनाको भक्षण न

तत्स्वभावोममाप्येषयदगाधोहमप्लवः ॥ विकारस्तुभवेद्गाधएतत्तेप्रवदाम्यहम् ॥ २४ ॥ नकामान्नचलोभाद्वा न भयात्पार्थिवात्मज ॥ रागान्नक्राकुलजलंस्तंभयेयंकथंचन ॥ २५ ॥ विधास्येयेनगंतासिविषहिष्येप्यहंतथा ॥ नग्राहाविधमिष्यंतियावत्सेनातरिष्यति ॥ हरीणांतरणेरामकरिष्यामियथास्थलम् ॥ २६ ॥ तमब्रवीत्तदारामः शृणुमेवरुणालय ॥ अमोघोयंमहाबाणःकस्मिन्देशेनिपात्यताम् ॥ २७ ॥ रामस्यवचनंश्रुत्वातंचदृष्ट्वामहाशरम् ॥ महोदधिर्महातेजाराघवंवाक्यमब्रवीत् ॥ २८ ॥ उत्तरेणावकाशोस्तिकश्चित्पुण्यतरोमम ॥ द्रुमकुल्यइतिख्यातो लोकेख्यातोयथाभवान् ॥ २९ ॥ उग्रदर्शनकर्माणोबहवस्तत्रदस्यवः ॥ आभीरप्रमुखाःपापाःपिबंतिसलिलंमम ॥ ३० ॥

करेंगे; अधिक कहांतक कहैं आपकी वानरी सैनाके पार होनेंके समय यह जलराशि बीच २ में उनको उत्तम स्थल दिखलावेगी ॥ २६ ॥ तब श्रीरामचंद्रजी बोले कि, हे समुद्र! हमारा यह बाण अमोघहै, निरर्थक नहीं होता इस कारण किस स्थानमें इसको चलावें सो तुम बताओ ॥ २७ ॥ श्रीरामचंद्रजीके यह वचन सुनकर और उनके हाथमें महाभयंकर बाण देखकर समुद्र महातेजस्वी श्रीरामचंद्रजीसे बोला ॥ २८ ॥ कि जिसप्रकारसे आप, लोगोंमें विख्यातहैं, वैसेही यहां से उत्तर दिशामें द्रुमकुल्य नामक हमारा कोई सुविख्यात पुण्य स्थान है ॥ २९ ॥ वहांपर उग्रस्वभावयुक्त क्रूर कर्म करनेंवाले पापचारी बहुतसे आभीर चोर वास करते हुए हमारा जलपान कि

समुद्र पार जानेके संबंधमें थे यथावत श्रीरामचंद्रजीसे निवेदन किये ॥ ३३ ॥ इन वचनोंको श्रवण करते ही स्वभावसेही धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीनें भी मान्यकिया और महातेजस्वी श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी वानरराज सुग्रीवजीसे बोले ॥ ३४ ॥ कारण कि इन दोनों जनोंको सत्क्रिया करनेंके योग्य समझाहै, हे लक्ष्मण! विभीषणकी परामर्श हमकोभी अच्छी लगतीहै ॥ ३५ ॥ हे सुग्रीव! तुम पंडितहो और सलाह देनेंमें चतुर हो इस कारण तुम दोनौं जन सलाह करकै जोकुछ तुम्हारा मतहो वह हमसे प्रकाशकरो ॥ ३६ ॥ तव वीरश्रेष्ठ लक्ष्मण और सुग्रीवजी इस प्रकारसे कहे जाकर उस समयके अनुसार उचित वचन बोले ॥ ३७ ॥ कि हेनरव्याघ्र! विभीषणजीनें इस समय जो सारवान सुन्दर परामर्श दियाहै, वह

प्रकृत्याधर्मशीलस्यरामस्यास्यप्यरोचत ॥ सलक्ष्मणंमहातेजाःसुग्रीवंचहरीश्वरम् ॥ ३४ ॥ सत्क्रियार्थंक्रियादक्षं स्मितपूर्वमभाषत ॥ विभीषणस्यमंत्रोयंममलक्ष्मणरोचते ॥ ३५ ॥ सुग्रीवःपंडितोनित्यंभवान्मंत्रविचक्षणः ॥ उभाभ्यांसंप्रधार्यार्थंरोचतेयत्तदुच्यताम् ॥ ३६ ॥ एवमुक्तौततोवीरावुभौसुग्रीवलक्ष्मणौ ॥ समुदाचारसंयुक्तमिदंवचनमूचतुः ॥ ३७ ॥ किमर्थंनौनरव्याघ्रनरोचिष्यतिराघव ॥ विभीषणेनयत्तूक्तमस्मिन्कालेसुखावहम् ॥ ३८ ॥ अबद्ध्वा सागरेसेतुंघोरेऽस्मिन्वरुणालये ॥ लंकानासादितुंशक्यासेंद्रैरपिसुरासुरैः ॥ ३९ ॥ विभीषणस्यशूरस्ययथार्थंक्रियतां वचः ॥ अलंकालात्ययंकृत्वासागरायनियुज्यताम् ॥ यथासैन्येनगच्छामपुरींरावणपालिताम् ॥४०॥ एवमुक्तःकुशास्तीर्णेतीरेनदनदीपतेः ॥ संविवेशतदारामोवेद्यामिवहुताशनः॥४१॥ इत्याश्रीम०वा०आ०यु०एकोनविंशःसर्गः ॥१९॥

भला किसकारणसे हमें अप्रीति कर होगा ॥ ३८ ॥हम लोगोंको विश्वासहै कि इस महासमुद्र पर विना सेतु बांधे देवता लोगोंके साथ सुरपति इन्द्रजीभी लंकामें प्रवेश करनेकी सामर्थ्य नहीं रखते हैं ॥ ३९ ॥ इस कारण अब कुछभी विलम्ब करनेंकी आवश्यकता नहीं है, शीघ्र महात्मा विभीषणजीके वचन पालनमें तैयार होकर आप समुद्रकी शरण जाइये, और जिस्से हम लोग सब सेनाके सहित रावण पालित लंकापुरीमें उपस्थित होसकें इसकी चेष्टा कीजिये ॥ ४० ॥ जब श्रीरामचंद्रजीसे ऐसा कहा गया तो वह श्रीरामचंद्रजी वेदीके बीचमें स्थापित हुई अग्निके समान नदनदीपति समुद्रके तीर कुश बिछायकर समुद्रके तीर पर बैठ गये ॥ ४१ ॥ इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०युद्धकाण्डे एकोनविंशःसर्गः ॥ १९ ॥

औषधि युक्त स्नेहपूर्ण क्षीर सहित सुगन्धित वृक्षोंसे यह स्थान परिपूर्ण होगा ॥ ३८ ॥ श्रीरामचंद्रजीसे वरदान पायकर यह स्थान अनेक
गुणोंका आधार हुआ, और उसके समस्त मार्गभी यात्रियोंके लिये सुखदायक हुए ॥ ३९ ॥ जब उन चोरोंका देश इस प्रकारसे जलबल शुष्क
होगया, तब उस स्थानपर नद नदियोंके पति समुद्रनें सर्व शास्त्रोंका मर्म जाननेंवाले श्रीरामचंद्रजीसे यह वचन कहे ॥ ४० ॥ हेसौम्य ! यह
नल नाम वानर श्रीमान् विश्वकर्माका प्यारा पुत्रहै; इसनें अपने पितासे सर्ववस्तुओंके जाननेंकी सामर्थका वर पायाहै ॥ ४१ ॥ इस कारण अपने
पिताकी समान सामर्थ्ययुक्त अतिउत्साही यह वानर हमारे ऊपर सेतु (पुल) बनावै हम उसको धारण किये रहेंगे * ॥ ४२ ॥ यह कहकर

एवमेतैश्चसंयुक्तोबहुभिःसंयुतोमरुः ॥ रामस्यवरदानाच्चशिवःपंथाबभूवह ॥ ३९ ॥ तस्मिन्दग्धेतदाकुक्षौसमुद्रःसरि
तांपतिः ॥ राघवंसर्वशास्त्रज्ञमिदंवचनमब्रवीत् ॥ ४० ॥ अयंसोम्यनलोनामतनयोविश्वकर्मणः ॥ पित्रादत्तवरःश्री
मान्प्रीतिमान्विश्वकर्मणः ॥४१॥ एषसेतुंमहोत्साहःकरोतुमयिवानरः ॥ तमहंधारयिष्यामियथाह्येषपितातथा॥४२॥
एवमुक्त्वोदधिर्नष्टःसमुत्थायनलस्ततः ॥ अब्रवीद्वानरश्रेष्ठोवाक्यंरामंमहाबलम् ॥ ४३ ॥ अहंसेतुंकरिष्यामिविस्तीर्णे
मकरालये ॥ पितुःसामर्थ्यमासाद्यतत्त्वमाहमहोदधिः ॥ ४४ ॥ दंडएवपरोलोकेपुरुषस्येतिमेमतिः ॥ धिक्क्षमामकृ
तज्ञेषुसांत्वंदानमथापिवा॥४५॥अयंहिसागरोभीमःसेतुकर्मदिदृक्षया ॥ ददौदंडभयाद्गाधंराघवायमहोदधिः ॥४६॥

समुद्र अन्तर्ध्यान होगया, तिसके पीछे वानरश्रेष्ठ नलनें खड़े होकर महाबलवान श्रीरामचंद्रजीसे यह वचन कहे ॥ ४३ ॥ कि हेमहाराज !
समुद्रनें जो कुछ कहा वह समस्तही सत्यहै, हम पिताके वरदानके प्रभावसे इस बड़े भारी विस्तारवाले मत्स्योंके स्थान समुद्रके ऊपर सेतु बना
वेंगे ॥ ४४ ॥ हमारी तौ यह संभावनाहै कि संसारमें और दूसरे उपायोंकी बराबरीसे एक दंडही सबसे बड़ा उपायहै । उपकार न माननेंवाले पुरु
षके प्रति क्षमा, शान्त वचन, या दान किसीसेभी काम नहीं निकलता; इस कारणसे जो उपकार न माननेंवाले पुरुषको क्षमा, अथवा दान
देताहै; उसको धिक्कारहै ॥ ४५ ॥ अतएव ऐसे पुरुषको तौ दंडही देना उचितहै । देखिये कि इस भयंकर रूपवाले सागरनेही दंडके भयहीसे

* नलको वरदानथा कि जो वस्तु छूकर पानीमें डालैंगे वह जहांकी तहां तैसेही जलके ऊपर स्थित रहैगी ॥

कहतेहैं; उसमें किसी प्रकारका अंतर नपडे और अकातर चित्तसे मधुर और पुरुषोचित वचनोंसे उन वानरराज सुग्रीवसे यह हमारा कहा हुआ सन्देश कह आओ ॥ ९ ॥ उनसे कहनाकि हे वानरनाथ ! रामचंद्रकी सहायता करनें पर कुछ तुम्हारी धन संपत्ति बढनेंकी संभावना नहीं. और जो उनकी सहायता न करोगे तौ कुछ हानि नहीं होगी; विशेष करके तुम महाराजकुलमें उत्पन्न हुए ऋक्षरजस वानरराजके पुत्रहो; और तुम स्वयंभी महाबलवानहो इसलिये हमारे भाईकी समानहो । इसलिये रामचंद्रजीके सहायक होकर हमारे विरुद्ध अस्त्र शस्त्र धारण करना तुमको उचित नहीं है ॥ १० ॥ हे सुग्रीव! हम बुद्धिमान् दशरथके पुत्र रामचंद्रजीकी स्त्री हरणकर लाये इसमें तुम्हारी क्या हानिहै जो कुछभी हो अब तुम किष्किन्धाको लौट जाओ ॥११॥तुम निश्चय जान रक्खो कि तुम्हारे वानरगण किसी प्रकारसे लंकाके

त्वंवैमहाराजकुलप्रसूतोमहाबलश्चर्क्षरजःसुतश्च ॥ नकश्चनार्थस्तवनास्त्यनर्थस्तथापिमेभ्रातृसमोहरीश ॥ १० ॥ अहंयद्यहरंभार्यांराजपुत्रस्यधीमतः ॥ किंतत्रतवसुग्रीवकिष्किंधांप्रतिगम्यताम् ॥ ११ ॥ नहीयंहरिभिर्लंकाप्राप्तुंशक्याकथंचन ॥ देवैरपिसगंधर्वैःकिंपुनर्नरवानरैः ॥१२॥ सतदाराक्षसेंद्रेणसंदिष्टोरजनीचरः ॥ शुकोविहंगमोभूत्वातूर्णमाप्लुत्यचांबरम् ॥ १३ ॥ सगत्वादूरमध्वानमुपर्युपरिसागरम् ॥ संस्थितोह्यंबरेवाक्यंसुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥ १४ ॥ सर्वमुक्तंयथादिष्टंरावणेनदुरात्मना ॥ तत्प्रापयंतंवचनंतूर्णमाप्लुत्यवानराः ॥ १५ ॥ प्रापद्यंततदाक्षिप्रंलोप्तुंहंतुंचमुष्टिभिः ॥ सर्वैःप्लवंगैःप्रसभंनिगृहीतोनिशाचरः ॥ १६ ॥

अधिकार कर लेनेमें समर्थ नहीं होंगे। सुग्रीव! नर वानरोंकी बाततो जानेंही दो? देवगण या गन्धर्वगणभी परस्पर मिलकर लंकामें प्रवेश नहीं कर सकतेहैं ॥ १२ ॥ राक्षसराज रावणकी यह आज्ञा सुनकर राक्षस शुक पक्षीका रूप धारण करके शीघ्रतासे आकाशको उड़गया ॥ १३ ॥ इसके पीछे समुद्रके ऊपर आकाश मार्गमें बहुत दूर चलकर वानरोंकी सैनाके निकट पहुंच आकाशमें टिकेही टिके वह वचन सुग्रीवजीसे कहे ॥ १४॥ दुरात्मा रावणनें जो वचन कहेथे वैसेही समस्त वचन उसनें सुग्रीवजीसे कहे; राक्षस शुक इस प्रकारसे कह रहाथा कि वानरोंनें ताक और आकाशमें कूदकर उसको पकड़ लिया ॥ १५ ॥ कोई २ उस राक्षसको काटनेंफाड़नेंके लिये तैयार हुए और किसी २नें प्राण संहार करनेंके लिये उस

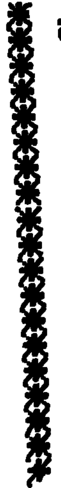

चारों ओरसे लानें लगे ॥ ५४ ॥ वह वानर अनेक स्थानोंसे ताल दाड़िम (दारमी)नारियल बहेड़ा करील बकुल और नींब आदि समस्त वृक्षोंको सब ओरसे तोड़ उखाड़ कर ले आये ॥ ५५ ॥ हाथियोंके समान आकारवाले बड़े २ पर्वतखंड और पर्वतोंको उखाड़कर कलोंके द्वारा उनको समुद्रके तीरपर लेआये ॥ ५६ ॥ जब वानरगण वार २पर्वतोंको समुद्रमें फेंकतेथे तब समुद्रका जल उफन कर बराबर आकाशको चला जाता और फिर नीचे गिर जाताथा ॥ ५७ ॥ इसप्रकार चारों ओरसे पत्थरोंके पड़नेंसे समुद्रका जल खलबलाय गया। और बहुतसे वानरोंनें १०० शत योजनका लंबा सूत समुद्रके इस पारसे उस पारतक सिधाई टेढ़ाई की परीक्षा करनेंके लिये थामा ॥ ५८ ॥ जो कुछहो इस प्रकारसे महा

तालान्दाडिमगुल्मांश्चनारिकेलबिभीतकान्॥करीरान्बकुलान्निंबान्समाजह्रुरितस्ततः॥५५॥ हस्तिमात्रान्महाकायाः पाषाणांश्चमहाबलाः ॥ पर्वतांश्चसमुत्पाट्ययंत्रैःपरिवहंतिच॥५६॥प्रक्षिप्यमाणैरचलैःसहसाजलमुद्धतम् ॥ समुत्ससर्प चाकाशमवासर्पत्ततः पुनः ॥५७॥ समुद्रंक्षोभयामासुर्निपतंतःसमंततः ॥ सूत्राण्यन्येप्रगृह्णंतिह्यायतंशतयोजनम्॥५८॥ नलश्चक्रेमहासेतुंमध्येनदनदीपतेः ॥ सतदाक्रियतेसेतुर्वानरैर्घोरकर्मभिः ॥ ५९ ॥ दंडानन्येप्रगृह्णंतिविचिन्वंतितथा परे ॥ वानरैःशतशस्तत्ररामस्याज्ञापुरःसरैः ॥ ६० ॥ मेघाभैःपर्वताभैश्चतृणैःकाष्ठैर्बबंधिरे ॥ पुष्पिताग्रैश्चतरुभिःसे तुंबध्नंतिवानराः॥६१॥ पाषाणांश्चगिरीप्रख्यान्गिरीणांशिखराणिच॥ दृश्यंतेपरिधावंतोगृह्यदानवसन्निभाः ॥६२॥

वीर नल विचित्र कर्म करनेंवाले वानरोंके साथ समुद्रपर पुल बांधनेलगे ॥ ५९ ॥ कोई २ वानर दंड ग्रहण करके अपने आधीन हुए वानरोंसे कार्य करानें लगे; और कोई इधर उधर वृक्षादिकोंको ढूंड़नें लगे, इस प्रकार श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञासे सैकड़ों हजारों वानर ॥ ६० ॥ जितना आकार मेघ और पर्वतोंकी समानथा तृण काठ और फूले हुए वृक्ष व पत्थरोंसे सेतु बांधनेंका प्रारंभ करनें लगे ॥ ६१ ॥ हाथीकी समान आकारवाले बहुत सारे वानरगण पर्वतकी समान बड़े पत्थरोंके खंड और पर्वतोंके शिखर ग्रहण करते हुए पुलके सन्मुखको दौड़नें लगे ॥ ६२ ॥

हे राक्षसेश्वर! हम बहुतही शीघ्र बडी भारी सैनाके साथ भ्राता और बन्धु बांधओंके साथ तुम्हारा नाश करके तुम्हारी लंकापुरीको भस्म करडा लेंगे ॥ २४ ॥ हे रावण! जो इन्द्रादि देवगणभी तुम्हारी रक्षा करैं, अथवा तुम सूर्यके मार्गमें चले जाओ; या पातालमें प्रवेश कर जाओ, वा महादेवजीके चरणोंका आश्रयलो तथापि श्रीरामचंद्रजीसे तुम्हारा छुटकारा नहीं होसकता, तुम अपनेंको अपने छोटे भ्रातासहित मृतकही समझो ॥२५॥ जो तुम्हें बचानेंमें समर्थहो, हम त्रिलोकी में ढूंढ़भाल करकेभी किसी राक्षस, पिशाच, गन्धर्व या असुर लोगोंमेंभी ऐसा किसीको नहीं देख पाते ॥२६॥ तुम जरायुक्त वृद्धगृध्रराज जटायुको मार करके अपनेको बलवान समझकर गर्व न करो, जो तुममें बल होता तो तुम श्रीरामचंद्रजीके आ

निहन्म्यहंत्वांससुतंसबंधुंसज्ञातिवर्गंरजनीचरेश ॥ लंकांचसर्वांमहताबलेनसर्वैःकरिष्यामिसमेत्यभस्म ॥ २४ ॥ न मोक्ष्यसेरावणराघवस्यसर्वैःसहेंद्रैरपिमूढगुप्तः ॥ अंतर्हितःसूर्यपथंगतोपितथैवपातालमनुप्रविष्टः ॥ गिरीशपादांबुजसंगतोवाहतोसिरामेणसहानुजस्त्वम्॥ २५ ॥ तस्यतेत्रिषुलोकेषुनपिशाचंनराक्षसम् ॥ त्रातारंनानुपश्यामिनगंधर्वंनचासुरम् ॥ २६ ॥ अवधीस्त्वंजरावृद्धंगृध्रराजंजटायुषम् ॥ किंनुतेरामसान्निध्येसकाशेलक्ष्मणस्यच ॥ हृतासीताविशालाक्षीयांत्वंगृह्यनबुध्यसे ॥२७॥ महाबलंमहात्मानंदुराधर्षंसुरैरपि ॥ नबुध्यसेरघुश्रेष्ठंयस्तेप्राणान्हरिष्यति ॥२८॥ ततोब्रवीद्वालिसुतोप्यंगदोहरिसत्तम ॥ नायंदूतोमहाप्राज्ञचारकःप्रतिभातिमे ॥ २९ ॥ तुलितंहिबलंसर्वमनेनतवतिष्ठता ॥ गृह्यतांमागमल्लंकामेतद्धिममरोचते ॥ ३० ॥

श्रममें न रहनेंपर चोरके समान जानकीको हरण करके न लाते, वरन उनके सन्मुखसे हरण करते ॥ २७ ॥ हे रावण! जो तुम्हारे प्राणोंको हरण करेंगे तुम उन देवता लोगोंसेभी अजीत महात्मा महाबलवान रघुश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीको नहीं जानतेहो इसी कारणसे तुमनें ऐसा कार्य कियाहै ॥ २८॥ इसके पीछे कपिश्रेष्ठ वालिके पुत्र अंगदजी बोलेकि हेमहाप्राज्ञ! यह निशाचर रावणका दूत नहीं है, वरन हमको तो यह गुप्त भेदिया मालूम होताहै ॥२९॥ इस राक्षसनें यहां पर आकर हमारी सब सेना और व्यूहको भली भांतिसे जांचलिया, इस कारण लंकाके वृत्तान्त जनानेंके लिये यह

गण आकाशमें टिके रहकर यह अद्भुत व्यापार सेतुका देखकर परम सन्तुष्ट हुए ॥ ७१ ॥ नलके बनाये चालीस कोश चौड़े, व चारसौ कोशके लंबे, इस दुष्कर पुलको देखकर देवता और गन्धर्वगण अतिविस्मित हुए ॥ ७२ ॥ कार्यसिद्धिकी सूचना जानकर वानरगण आनंदके मारे कूदनें लगे, व कोई २ अति जोरसे कूदकर गर्जनें लगे अचिन्तनीय अद्भुत व रोमहर्षण ॥ ७३ ॥ इस सेतुके बंधनेंको देखकर, सब प्राणी मोहित होगये महाबलवान लाखों करोडों वानरगण इस प्रकारसे ॥ ७४ ॥ सेतु बांधकर समुद्रकी दूसरी पार चले गये। अतिविशाल अच्छी तरहसे बनायाहुआ शोभायमान सुन्दर समानभूमियुक्त अच्छा चिकना सेतु ॥ ७५ ॥ समुद्रके केशविन्यास करनेंकी समान शोभा प्राप्त करनें

दशयोजनविस्तीर्णंशतयोजनमायतम् ॥ ददृशुर्देवगंधर्वानलसेतुंसुदुष्करम् ॥ ७२ ॥ आप्लवंतःप्लवंतश्चगर्जंतश्चप्लवंगमाः ॥ तमचिंत्यमसह्यंचह्यद्भुतंलोमहर्षणम् ॥ ७३ ॥ ददृशुःसर्वभूतानिसागरेसेतुबंधनम् ॥ तानिकोटिसहस्राणिवानराणांमहौजसाम्॥७४॥ बध्नंतःसागरेसेतुंजग्मुःपारंमहोदधेः ॥ विशालःसुकृतःश्रीमान्सुभूमिःसुसमाहितः॥७५॥अशोभतमहान्सेतुःसीमंतइवसागरे ॥ ततःपारेसमुद्रस्यगदापाणिर्विभीषणः ॥ ७६ ॥ परेषामभियानार्थमतिष्ठत्सचिवैःसह॥ सुग्रीवस्तुततःप्राहरामंसत्यपराक्रमम्॥ ७७ ॥ हनूमंतंत्वमारोहअंगदंत्वथलक्ष्मणः ॥ अयंहिविपुलोवीरसागरोमकरालयः ॥ ७८ ॥ वैहायसौयुवामेतौवानरौधारयिष्यतः ॥ अग्रतस्तस्यसैन्यस्यश्रीमान्रामःसलक्ष्मणः ॥ ७९ ॥ जगामधन्वीधर्मात्मासुग्रीवेणसमन्वितः ॥ अन्येमध्येनगच्छंतिपार्श्वतोन्येप्लवंगमाः ॥ ८० ॥

लगा, तिसके पीछे गदा हाथमें लिये समुद्रके दूसरी पार विभीषणजी ॥ ७६ ॥ अपने मंत्रियोंके साथ शत्रुलोगोंका संवाद और उनका माया कार्य जाननेंके लिये घूमनें लगे। इस ओर वानरराज सुग्रीवजी सत्यपराक्रमवान् श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ ७७ ॥ कि हे वीर! यह मध्यवर्ती समुद्रका मार्ग बहुत दूरतक है, इस कारण आप हनुमानजीकी, और लक्ष्मणजी अंगदजीकी पीठपर चढलें ॥ ७८ ॥ आकाशमें चलनेंवाले यह दोनों वीर आप दोनों जनोंको सवार कराकर ले जांयगे। इस प्रकार इस सैनाके आगे २ श्रीरामचंद्र व लक्ष्मणजी अंगद हनुमानकी पीठपर चढे ॥ ७९ ॥ धनुष धारण किये धर्मात्मा सुग्रीवजीके साथ चलनेंलगे वानरोंमेंसे कोई २ बीचमें, और कोई२पीछे२इधर उधर जानें लगे ॥८०॥

बाहोंको अनेकवार परम रूपवती स्त्रियोंनें वारंवार दवाया, व सहेलीयाथा ॥ ३ ॥ जिनके अंग चंदन और अगर इत्यादि सुगन्धित । द्रव्यसे लिप्त रहते, जो प्रभात कालीन सूर्यकी समान अरुण वर्णके कुंकुमसे चर्चित रहते ॥ ४ ॥ जो सीताजीके साथ सुन्दर सेजपर शयन करते, उनको इस समय तक्षकके गंगाजल सेवित सम्भोगकी समान भोग करनापड़ताहै ॥ ५ ॥ जो युद्धके समय यमराजकी समान भयंकर, जो शत्रुओंका शोक बढ़ानें वाले, और इष्ट मित्रोंके आनंद अत्यन्तको उछलानें वालेहैं आज वही समुद्रके तीर पर पड़ेहैं ॥ ६ ॥ जिनका दहना हाथ परिघकी तुल्य, वांया हाथ बाण छोड़नेंसे प्रत्यंचाके आघात चिह्नसे युक्त ॥ ७ ॥ व जिन भुजाओंसे हजारों गोदान किये गयेहैं आज वही

चंदनागुरुभिश्चैवपुरस्तादभिसेवितम् ॥ बालसूर्यप्रकाशैश्चचंदनैरुपशोभितम् ॥ ४ ॥ शयनेचोत्तमांगेनसीतायाः शोभितंपुरा ॥ तक्षकस्येवसंभोगंगंगाजलनिषेवितम् ॥ ५ ॥ संयुगेयुगसंकाशंशत्रूणांशोकवर्धनम् ॥ सुहृदांनंदनंदीर्घसागरांतव्यपाश्रयम् ॥ ६ ॥ अस्यताचपुनःसव्यंज्याघातविहतत्वचम् ॥ दक्षिणोदक्षिणंबाहुंमहापरिघसन्निभम् ॥ ७ ॥ गोसहस्रप्रदातारंत्घुपधायभुजंमहत् ॥ अद्यमेतरणंवाथमरणंसागरस्यवा ॥ ८ ॥ इतिरामोधृतिंकृत्वामहाबाहुर्महोदधिम् ॥ अधिशिश्येचविधिवत्प्रयतोऽत्रस्थितोमुनिः ॥ ९ ॥ तस्यरामस्यसुप्तस्यकुशास्तीर्णेमहीतले ॥ नियमादप्रमत्तस्यनिशास्तिस्रोऽभिजग्मतुः ॥ १० ॥ सत्रिरात्रोषितस्तत्रनयज्ञोधर्मवत्सलः ॥ उपासततदारामः सागरंसरितांपतिम् ॥ ११ ॥ नचदर्शयतेरूपंमंदोरामस्यसागरः ॥ प्रयतेनापिरामेणयथार्हमभिपूजितः ॥ १२ ॥

दोनों कर तकियेका कार्य कर रहेहैं ! यातो । तीन दिनतक निरशनव्रत करके समुद्रको उतरहीं जांयगे जो समुद्र न उतरनें देगा तो इसका मरणही होगा ॥ ८ ॥ यह विचार कर महाबाहु श्रीरामचंद्रजी समुद्र उतरने पर दृढ़ विश्वास बांध मौनव्रत धारणकर तीर्थोंपवासकी रीतिसे विना कुछ खाये पिये मौनावलम्बन करके लेटरहे ॥ ९ ॥ कुशकी शेजपर शयन करके नियम धारण पूर्वक पृथ्वीपर लेटे २ श्रीरामचंद्रजीनें तीन रात्रि बिताईं ॥ १० ॥ नीति विशारद धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीनें इस प्रकारसे तीन रात्रि वास करके नदीपति समुद्रकी उपासनाकी ॥ ११ ॥ यद्यपि इस प्रकार परम पवित्रतासे श्रीरामचंद्रजीनें समुद्रकी पूजाकी, परन्तुमहामन्दमति नदीपति समुद्रनें इस भांति श्रीरामचंद्रजीसे पूजा पाय

देखतेहैं, सैना विभागसे व्यूह रचना करके टिकै ॥ २ ॥ रीछ, वानर, और राक्षस गणोंके विनाश रूप अतिघोर लोकक्षयकारी अशुभ निमित्त देखतेहैं, पृथ्वी कम्पायमान हो कि जिस्से बड़ा भारी नाश राक्षसोंकी सैनाका होगा ॥ ३ ॥ यह देखो पवन विरुद्धभावयुक्तहो धूलके सहित चल रहीहै; पृथ्वी कम्पायमान हो रहीहै, पर्वताग्र चलायमानहैं, वृक्ष अचानक टूटरकर गिर रहेहैं ॥ ४ ॥ गिद्ध, गीदड़, बाज आदि मांसभक्षी जीवोंके वर्ण समान धौले रंगवाले मेघ अत्यन्त कठोर शब्दसे गर्जन करके रुधिरकी बूंदोंके मिले हुए जलकी वर्षा करतेहैं ॥ ५ ॥ संध्या समय लाल चंदनकी समान अत्यन्त घोर लाल वर्ण होगयाहै. और सूर्य मंडलसे प्रकाशमान अंगारे गिरतेहैं ॥ ६ ॥ जिनको देखकर क्रूर स्वभाववाले पशु पक्षीगण सूर्यके सामनेंको मुखकर

वाताश्चकलुषावांतिकंपतेचवसुंधरा ॥ पर्वताग्राणिवेपंतेपतंतिचमहीरुहाः ॥ ४ ॥ मेघाःक्रव्यादसंकाशाःपरुषाःपरुषस्वनाः ॥क्रूराःक्रूरंप्रवर्षंतिमिश्रंशोणितबिंदुभिः ॥ ५ ॥ रक्तचंदनसंकाशासंध्यापरमदारुणा ॥ ज्वलतःप्रपतत्येतदादित्यादग्निमंडलम् ॥ ६ ॥ दीनादीनस्वराःक्रूराःसर्वतोमृगपक्षिणः ॥ प्रत्यादित्यंविनर्दंतिजनयंतोमहद्भयम् ॥ ७ ॥ रजन्यामप्रकाशस्तुसंतापयतिचंद्रमाः ॥ कृष्णरक्तांशुपर्यंतोलोकक्षयइवोदितः ॥ ८ ॥ ह्रस्वोरूक्षोऽप्रशस्तश्चपरिवेषस्तुलोहितः ॥ आदित्येविमलेनीलंलक्ष्मलक्ष्मणदृश्यते ॥९॥ रजसामहताचापिनक्षत्राणिहतानिच॥ युगांतमिवलोकानांपश्यशंसंतिलक्ष्मण ॥१०॥ काकाःश्येनास्तथानीचागृध्राःपरिपतंतिच ॥ शिवाश्चाप्यशुभान्नादान्नदंतिसुमहाभयान् ॥ ११ ॥

लोकक्षयकरंभीमंभयंपश्याम्युपस्थितम् ॥ प्रबर्हणंप्रवीराणामृक्षवानररक्षसाम् ॥ ३ ॥

दीनभाव और करुणाभरी वाणीसे वारंवार शब्दकर रहेहैं. हे लक्ष्मण !हमारे अंतःकरणमें अत्यन्त भय उत्पन्न होताहै ॥ ७ ॥ रात्रिमें पहलेकी समान चंद्रमाका उदय नहीं होता, वरन वह लाल और काली किरणोंसे युक्त और पोषके सहित उदित होताहै ॥ ८ ॥ निर्मल सूर्यमंडलमें नीले वर्णके दाग दिखाई देतेहैं, हे लक्ष्मण! सूर्यके वाहरी भागमें छोटा शुष्क लाल घेरा बन गया ॥ ९ ॥ हे लक्ष्मण ! प्रबल धूरीके उडनेंसे नक्षत्रगण ढककर दृष्टि नहीं आते इन सबको देखकर बोध होताहै कि युगान्तका समय आगयाहै ॥ १० ॥ कौए, बाज, और गिद्धगण सहसा ऊपरसे गिरते हैं; शृगाल इत्यादि जलजन्तुगण भय उत्पन्न करानेवाला बड़ाभारी भयंकर शब्द कर रहे हैं ॥ ११ ॥

हुई शुन्डैं देखोगे, शंख सहित, सीपी जालसे युक्त मछली, व मकरोंकेसाथ ॥ १९ ॥ इस समुद्रको आजही महायुद्ध करके हम शोष लेंगे हमको क्षमा गुणका आधार देखकर मकरालय समुद्र ॥ २० ॥ हमको मनमें अतिशय कापुरुप समझताहै; इस कारण क्षमाका अवलंबन करनेंसे समुद्र हमारे पर अपना गर्व प्रकाश करताहै । इससे इस क्षमाको व हमको भी धिक्कारहै ! सामकाही अवलंबन करनेंसे समुद्र अबतक हमारे निकट न आया ॥ २१ ॥ हे लक्ष्मण ! अब तुम हमारा धनुष व विषधर सर्पोंकी समान विषवत बाण शीघ्र यहां पर ले आओ, कि हम समुद्रको सुखा डालें कि जिस्से वानरगण पैदलही समुद्रके पार उतरजावें ॥ २२ ॥ जो समुद्र किसीके लांघनें योग्य नहींहै, जो समुद्र बड़ी२

अद्ययुद्धेनमहतासमुद्रंपरिशोषये ॥ क्षमयाहिसमायुक्तंमामयंमकरालयः॥२०॥ असमर्थंविजानातिधिक्क्षमामीदृशे
जने ॥ नदर्शयतिसाम्नामेसागरोरूपमात्मनः॥२१॥चापमानयसौमित्रेशरांश्चाशीविषोपमान्॥समुद्रंशोषयिष्यामिप
द्भ्यांयांतुप्लवंगमाः॥२२॥अद्याक्षोभ्यमपिक्रुद्धःक्षोभयिष्यामिसागरम् ॥ वेलासुकृतमर्यादंसहस्रोर्मिसमाकुलम्॥२३॥
निर्मर्यादंकरिष्यामिसायकैर्वरुणालयम् ॥ महार्णवंक्षोभयिष्येमहादानवसंकुलम्॥२४॥ एवमुक्त्वाधनुष्पाणिःक्रोधवि
स्फारितेक्षणः ॥ बभूवरामोदुर्धर्षोयुगांताग्निरिवज्वलन्॥२५॥संपीड्यचधनुर्घोरंकंपयित्वाशनैर्जगत्॥मुमोचविशिखा
नुग्रान्वज्रानिवशतक्रतुः॥२६॥तेज्वलंतोमहावेगास्तेजसासायकोत्तमाः॥प्रविशंतिसमुद्रस्यजलंवित्रस्तपन्नगम्॥२७॥

तरंगोंसे युक्तहै, और जिसकी सीमा किनारेकी भूमितक नियतहै हम आज क्रोधित होकर उसी समुद्रको खलबलादेंगे ॥ २३॥ हम बाणोंको चलायकर महा समुद्रकी सीमाको स्थिर नहीं रक्खेंगे, महादानवोंके रहनेंके स्थान इस समुद्रको हम अवश्य शुष्ककर डालेंगे ॥ २४ ॥ रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीनें यह कहकर धनुष धारण किया, व क्रोधके मारे उनके नेत्र फड़कनें लगे; और उस काल श्रीरामचंद्रजी प्रज्वलित प्रलयकी अग्निके समान दुर्द्धर्ष होगये ॥ २५ ॥ तिसके पीछे श्रीरामचंद्रजी बडेभारी धनुषपर रोदा चढायकर उसकी फटकारसे समस्त जगत्को कम्पित करके इन्द्रजी जिस प्रकार वज्र चलातेहैं, वैसेही प्रचंड बाणोंकोछोड़नें लगे ॥ २६ ॥ श्रीरामचंद्रजीके धनुषसे छूटे हुए तेज प्रदीप्त वह

वेगसे अत्यन्त पीडित होकर वारंवार कंपायमान होने लगी ॥ २ ॥ लंकामें टिके हुए भयंकर राक्षसोंके भयंकर कुलाहलका शब्द और भेरी मृदंगोंका शब्द इन समस्त वानरोंने सुन ॥ ३ ॥ और इसको सुनकर वह यहांतक हर्षित हुए कि वह किसी प्रकारसे उन राक्षसोंके शब्दको न सहनकर सके और बड़ाभारी उत्कंठ शब्द करनें लगे ॥ ४ ॥ तिस समय राक्षस लोगोंने आकाशमे मेघ गर्जनेकी समान वानर लोगोंका उत्कट गर्जना सुना, और कांप उठे ॥ ५ ॥ इसी समय दशरथ कुमार श्रीरामचंद्रजी ध्वजा पताकाओंसे शोभित लंकापुरीको देखकर सीताजीके लिये मनही मन अतिदुःखित हुए ॥ ६ ॥ कि इस समय वह मृगनयनी सीताजी रावणके घरमें रोकी हुई हैं; मंगल ग्रहसे ग्रसी हुई रोहिणी नक्षत्रके समान

ततःशुश्रुवुराक्रुष्टंलंकायांकाननौकसः ॥ भेरीमृदंगसंघुष्टंतुमुलंलोमहर्षणम् ॥३॥ बभूवुस्तेनघोषेणसंहृष्टाहरियूथपाः ॥ अमृष्यमाणास्तद्घोषंविनेदुर्घोषवत्तरम् ॥४॥ राक्षसास्तत्प्लवंगानांशुश्रुवुस्तेपिगर्जितम् ॥ नर्दतामिवदृप्तानांमेघानाम् अम्बरेस्वनम् ॥ ५ ॥ दृष्ट्वादाशरथिर्लंकांचित्रध्वजपताकिनीम् ॥ जगाममनसासीतांदूयमानेनचेतसा ॥ ६ ॥ अत्रसा मृगशावाक्षीरावणेनोपरुध्यते ॥ अभिभूताग्रहेणेवलोहितांगेनरोहिणी ॥ ७ ॥ दीर्घमुष्णंचनिःश्वस्यसमुद्वीक्ष्यचलक्ष्मणम् ॥ उवाचवचनंवीरस्तत्कालहितमात्मनः ॥ ८ ॥ आलिखंतीमिवाकाशमुत्थितांपश्यलक्ष्मण ॥ मनसेवकृतांलंकांनगाग्रेविश्वकर्मणा ॥ ९ ॥ विमानैर्बहुभिर्लंकासंकीर्णारचितापुरा ॥ विष्णोःपदमिवाकाशंछादितंपांडुभिर्घनैः ॥ १० ॥ पुष्पितैःशोभितालंकावनैश्चित्ररथोपमैः ॥ नानापतगसंघुष्टफलपुष्पोपगैःशुभैः ॥ ११ ॥

जानकीजीकी शोचनीय अवस्था होगी ॥ ७ ॥ तब महावीर श्रीरामचंद्रजी लंबे २ श्वास लेकर लक्ष्मणजीके सन्मुख दृष्टि करकै, उस कालके हितकर वचन उनसे बोले ॥ ८ ॥ हे लक्ष्मण! निहारकर देखो कि विश्वकर्माजीनें पर्वत त्रिकूटके ऊपर इस लंकापुरीको बनायाहै, कि जिस्से ऐसा जान पडताहै, कि विश्वकर्माजीनें इस पुरीको मानों अपने मनहींसे बनायाहै, इसकी शोभा देखकर यह समझमें आताहै कि मानों आकाशमें कुछ तसवीरसे खिंची हुई हैं ॥ ९ ॥ देखो लंकानगरी सप्त भूमिक महलोंसे युक्त विमानोंसे युक्त होकर श्वेतवर्णके मेघसे ढके विष्णुजीके पद आकाशकी समान शोभायमान होरहीहै ॥ १० ॥ इस लंका नगरीमें अनेक प्रकारके चित्ररथवनकी समान, अनेक पुष्पवन

सदाकी साधुकी वृत्तिकी ओर एकवार दृष्टि कीजिये ॥ ३४ ॥ यह देखिये अंतारिक्षमें अन्तर्हित हुए ब्रह्मर्षि और सुरर्षि गण "हा कष्ट!" इस दारुण शब्दसे कष्ट प्रकाश करते हुए (मा) (मा) अर्थात् ऐसा मतकरो ऐसा मतकरो यह शब्द कह कहकर आपको निवारण कर रहे हैं ॥ ३५ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥ तब रघुश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी समुद्रको लक्ष बनाय यह अति दारुण वचन बोले कि "हम आज पातालके सहित इस समुद्रको सुखा डालेंगे" ॥ १ ॥ फिर श्रीरामचंद्रजी समुद्रसे बोले कि हमारे बाणोंके द्वारा तुम्हारा जलजन्तुओंके साथ सूख जायगा, व तुम्हारे भंडारमें बडीभारी धूरि उडेगी ॥ २ ॥ हे समुद्र! हमारे धनुषसे बराबर बाण छूटनेपर

अंतर्हितैश्चापितथांऽतरिक्षेब्रह्मर्षिभिश्चैवसुरर्षिभिश्च ॥ शब्दःकृतःकष्टमितिब्रुवद्भिर्मामेतिचोक्त्वामहतास्वरेण ॥ ३५॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०यु०एकविंशःसर्गः ॥२१ ॥ अथोवाचरघुश्रेष्ठःसागरंदारुणंवचः ॥ अद्याहंशोषयिष्यामिसपातालंमहार्णवम् ॥ १ ॥ शरनिर्दग्धतोयस्यपरिशुष्कस्यसागर ॥ मयानिहतसत्वस्यपांसुरुत्पद्यतेमहान् ॥ २ ॥ मत्कार्मुकनिसृष्टेनशरवर्षेणसागर ॥ परंतीरंगमिष्यंतिपद्भिरेवप्लवंगमाः ॥ ३ ॥ विचिन्वन्नाभिजानासिपौरुषंनापिविक्रमम् ॥ दानवालयसंतापंमत्तोनामगमिष्यसि ॥ ४ ॥ ब्राह्मेणास्त्रेणसंयोज्यब्रह्मदंडनिभंशरम् ॥ संयोज्यधनुषिश्रेष्ठेविचकर्षमहाबलः ॥ ५ ॥ तस्मिन्विकृष्टेसहसाराघवेणशरासने ॥ रोदसीसंपफालेवपर्वताश्चचकंपिरे ॥ ६ ॥

जब तुम्हारा जल सूख जायगा, तब वानरगण पैदलही तुम्हारे पार उतर जांयगे ॥ ३ ॥ हे दानवोंके स्थान समुद्र! तुम हमारे पौरुष और विक्रमको नहीं जानतेहो! जो कुछभीहो, परन्तु अब हमारे प्रभावके मर्मको तुम समझ सकोगे ॥ ४ ॥ महाबलवान् श्रीरामचंद्रजीनें इस प्रकारसे कहकर ब्रह्मदंड नामक बाणको ब्राह्ममंत्रसे अभिमंत्रित किया, और उसको बडे भारी धनुषपर चढाकर खेंचनेलगे ॥ ५ ॥ जिस समय महाबलवान् श्रीरामचंद्रजीनें बाणको खेंचा उस समय पृथ्वी मानों फटनें लगी, और स्वर्ग विदीर्णसा होंने लगा, सब पर्वत कंपायमान होनेलगे ॥ ६ ॥

वानरगण पर्वतोंके शिखर और बड़े २ वृक्षोंको ग्रहण करके मानों लंका नगरीको विध्वंश करनेंको अभिलाषासेही उस पर चढ़ाई करते हुए ॥२०॥ उस समय वह वानरगण ऐसे उत्साहित हुए कि उन लोगोंनें मनमें विचारा कि यातो पर्वतोंके शिखर चलायकर लंकाको चूर्ण कर देंगे, अथवा घूंसे मार २ कर उसके धवरहरोंको तोड़ ताड़ डालेंगे, यह विचार कर वानरगण आनंदमें आधीर होगये ॥ २१ ॥ इसके पीछे महातेजस्वी श्रीरामचंद्रजी, वानरराज सुग्रीवजीसे यह बोलेकि हे सखे ! अवतौ सब सैना यथा स्थानमें टिक गई इस कारण अब इस रावणके दूत शुकको छोड़ देना चाहिये ॥ २२ ॥ महाबलवान वानरोंके राजा सुग्रीवजीनें श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञानुसार राक्षसराज रावणके दूत शुकको छोड़

प्रगृह्यगिरिशृंगाणिमहतश्चमहीरुहान् ॥ आसेदुर्वानरालंकांमिमर्दयिषवोरणे ॥ २० ॥ शिखरैर्विकिरामैनांलंकांमुष्टि भिरेववा ॥ इतिस्मदधिरेसर्वेमनांसिहरिपुंगवाः ॥ २१ ॥ ततोरामोमहातेजाःसुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥ सुविभक्तानि सैन्यानिशुकएषविमुच्यताम् ॥ २२ ॥ रामस्यतुवचःश्रुत्वावानरेंद्रोमहाबलः ॥ मोचयामासतंदूतंशुकंरामस्यशास नात् ॥ २३ ॥ मोचितोरामवाक्येनवानरैश्चनिपीडितः ॥ शुकःपरमसंत्रस्तोरक्षोधिपमुपागमत् ॥ २४ ॥ रावणःप्रहस न्नेवशुकंवाक्यमुवाचह ॥ किमिमौतेसितौपक्षौलूनपक्षश्चदृश्यसे ॥ २५ ॥ कच्चिन्नानेकचित्तानांतेषांत्वंवशमागतः ॥ ततःसभयसंविग्नस्तेनराज्ञाभिचोदितः ॥ वचनंप्रत्युवाचेदंराक्षसाधिपमुत्तमम् ॥ २६ ॥ सागरस्योत्तरेतीरेऽब्रुवंते वचनंतथा ॥ यथासंदेशमक्लिष्टंसांत्वयन्श्लक्ष्णयागिरा ॥ २७ ॥

देते हुए ॥ २३ ॥ श्रीरामचंद्रजीके कहनेंसे छुटकारा पाय वानरोंसे सताया हुआ शुक अतित्रासितहो राक्षसराज रावणके निकट उपस्थित हुआ ॥ २४ ॥ राक्षसोंका स्वामी रावण शुकको आया हुआ देख कुछेक हँसकर उस्से बोला कि यह क्या ? तुम्हारे श्वेत पंख उखड़ गये इनकी यह दशा कैसे हुई ? ॥ २५ ॥ कहीं तुम उन चंचलचित्त वानर लोगोंके वशमें तो नहीं पड़ गयेथे ? इस प्रकार पूछे जाने पर, राजकुमार श्रीराम चंद्रजीके कहनेंसे छूटा भयभीत शुक राक्षसपति रावणको यह उत्तर देता हुआ ॥ २६ ॥ शुक बोलाकि. महाराज ! हम समुद्रके उत्तर तीर जायकर प्रथम मधुर वचनोंसे वानर गणोंको समझानेंके लिये जिस प्रकारसे आपनें कहा था, वैसेही आपके आज्ञा किये वह वीरोचित वचन

शत्रुओंके मारनेवाले रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी नदनदीपति समुद्रको चलायमान होते देखकरभी, आप चलायमान न हुए और अस्त्रका न लौटाते हुए अथवा, अपना अपना अस्त्र परित्याग नहीं करते हुए ॥ १६ ॥ फिर सूर्य भगवान जिसप्रकार उदयाचल सुमेरुके बीचों बीचमें उदय होकर शोभायमान होतेहैं, वैसेही समुद्रके बीचों बीचसे समुद्र उठकर शोभाको प्राप्त हुआ ॥ १७ ॥ इसके साथहीसाथ प्रदीप्तवदन सर्पगण मुख फैलाये दृष्टि आये समुद्रका आकार चिकनी वैदूर्य मणिकी समानथा, व उसका शरीर तपाये हुए सुवर्णके भूषणोंसे शोभितथा ॥ १८ ॥ समुद्रके गलेमें रत्नोंकी माला विचित्र वस्त्र पहरे हुए, उसके नेत्र फूले हुए कमल दलको तुल्य और शिरपर अनेक प्रकारके फूलोंकी माला शोभायमान होर

तंतथासमतिक्रांतंनातिचक्रामराघवः ॥ तमुद्धतममित्रघ्नोरामोनदनदीपतिम्॥१६॥ ततोमध्यात्समुद्रस्यसागरःस्वय
मुत्थितः ॥ उदयाद्रिमहाशैलान्मेरोरिवदिवाकरः॥१७॥ पन्नगैःसहदीप्तास्यैःसमुद्रःप्रत्यदृश्यत ॥ स्निग्धवैदूर्यसंकाशो
जांबूनदविभूषणः ॥१८॥ रत्नमाल्यांबरधरःपद्मपत्रनिभेक्षणः ॥ सर्वपुष्पमयींदिव्यांशिरसाधारयन्स्रजम् ॥ १९ ॥ जा
तरूपमयैश्चैवतपनीयविभूषणैः ॥ आत्मजानांचरत्नानांभूषितोभूषणोत्तमैः ॥ २० ॥ धातुभिर्मंडितःशैलोविविधैर्हि
मवानिव ॥ आघूर्णिततरंगौघःकालिकानिलसंकुलः ॥ २१ ॥ गंगासिंधुप्रधानाभिरापगाभिःसमावृतः ॥ सागरःसमु
पक्रम्यपूर्वमामंत्र्यवीर्यवान् ॥ अब्रवीत्प्रांजलिर्वाक्यंराघवंशरपाणिनम् ॥ २२ ॥ पृथिवीवायुराकाशमापोज्योतिश्च
राघव ॥ स्वभावेसौम्यतिष्ठंतिशाश्वतंमार्गमाश्रिताः ॥ २३ ॥

हीथीं ॥ १९ ॥ उसके सब भूषण उत्तम सुवर्णके थे, उन गहनोंमें वही रत्न जड़ेथे जो कि समुद्रके गर्भसे उत्पन्न हुएथे ॥ २० ॥ उसकाल सर्व धातु करके भूषित हिमवान पर्वतकी समान समुद्र शोभायमान हुआ, और उसकी तरंगोंके समूह इधर उधर उठकर व गिरकर बादलोंको स्प र्शते और हवाके झोके उसमें लगते ॥ २१ ॥ गंगासिन्धु इत्यादि समस्त नदियें समुद्रको चारों ओरसे घेरे हुईथी, देखते २ सागर श्रीरामचंद्र जीके निकट आनेको आगे बढ़ा और धनुष धारण किये हुए रावणके शत्रु श्रीरामचंद्रजीसे हाथ जोड़कर बोला ॥२२॥ हे श्रीरामचंद्रजी! पृथ्वी,

कि यदि देव दानव और गन्धर्वगण एक साथ मिलकर हमारे साथ युद्ध करैं, अथवा त्रिलोकीके सब रहनेंवाले भी विरुद्ध होजांय तथापि हम भय पायकर कभी जानकीको रामके समर्पण न करेंगे ॥ ३६ ॥ * अहो! ऐसा शुभ समय कब आय पहुँचेगा कि जिस समय मतवाले भ्रमरगण जिसप्रकार फूले हुए वृक्षके सामनेंको दौडतेहैं, वैसेही हमारे बाण उन रामचंद्रके सन्मुख दौड़ेंगे ॥ ३७ ॥ कब हमारे धनुषसे छूटे हुए प्रदीप्त बाणोंसे अंगमें रुधिर लगे हुए उन रामको हम अपने बाणोंसे जला डालेंगे, कि जिसप्रकार उल्का हाथीको जलातीहै ॥ ३८ ॥ हे शुक! हम निश्चय कहतेहैं कि जिसप्रकार सूर्य उदय होकर छोटे २ तारा गणोंका तेज हरण कर लेतेहैं; वैसेही हमभी बड़ीभारी सैना साथ लेकर

यदिमांप्रतियुद्धयेरन्देवगंधर्वदानवाः ॥ नैवसीतांप्रदास्यामिसर्वलोकभयादपि ॥ ३६ ॥ कदासमभिधावंतिमामकाराघवंशराः ॥ वसंतेपुष्पितंमत्ताभ्रमराइवपादपम् ॥ ३७ ॥ कदाशोणितदिग्धांगंदीप्तैःकार्मुकविच्युतैः ॥ शरैरादीपयिष्यामिउल्काभिरिवकुंजरम् ॥ ३८ ॥ तच्चास्यबलमादास्येबलेनमहतावृतः ॥ ज्योतिषामिवसर्वेषांप्रभामुद्यन्दिवाकरः ॥ ३९ ॥ सागरस्येवमेवेगोमारुतस्येवमेबलम् ॥ नचदाशरथिर्वेदतेनमांयोद्धुमिच्छति ॥ ४० ॥ नमेतूणीशयान्बाणान्सविषानिवपन्नगान् ॥ रामःपश्यतिसंग्रामेतेनमांयोद्धुमिच्छति ॥ ४१ ॥ नजानातिपुरावीर्यंममयुद्धेसराघवः ॥ ममचापमयींवीणांशरकोणैःप्रवादिताम् ॥ ४२ ॥

रामचंद्रकी अल्प साधारण सैनाका नाश कर डालेंगे ॥ ३९ ॥ अधिक क्या कहैं; हमारा वेग समुद्रकी तुल्य और बल पवनकी समानहै; हमको तो ऐसा जान पड़ताहै कि राम हमारे बलाबलको कुछभी नहीं जानते, इसी कारणसे वह हमारे साथ युद्ध करनेंका साहस करतेहैं ॥ ४० ॥ रामचंद्रनें हमारे विषधर सर्पकी समान चलाये हुए बाणोंकी विकट मूर्ति नहीं देखीहै इसी कारणसे वह हमारे साथ युद्ध करनेंका साहस करतेहैं ॥ ४१ ॥ रामचंद्रनें कभी हमारे साथ युद्ध नहीं कियाहै, इस कारण वह हमारे वीर्यको नहीं जानते; जबकि युद्धके समय हमारी चापमई

* कवित्त ॥ जान देहौं लंक निरशंक सब जान देहौं जान देहौं वसन कुबेर बेगवानकी ॥ जान देहौं सुभट विकटकट जान देहौं, जान देहौं सकल समाज रज धानक ॥ कुंभ औ निकुंभ रघुनाथकों न जान देहौं जान देहौं हाथी रथ प्यारीतू समानकी। जान देहौं सकल शरीर पीर जान देहौं जान देहौं जान पै न जान देहौं जानकी ॥ १ ॥

याकरतेहैं ॥ ३० ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! उन पापकर्म करने वालोंके जल छूनेसे जो पाप होताहै उसको हम नहीं सहन कर सकतेहैं, इस कारण यह श्रेष्ठ बाण उस स्थानमें छोड़कर आप सफल करैं ॥ ३१ ॥ तब दयानिधि रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीनें महात्मा जलनिधिके वचन सुन उसके बताये हुए स्थानमें वही प्रदीप्त बाण वहांपर छोड़ा ॥ ३२ ॥ वह वज्रकी अग्निके समान प्रदीप्त बाण जिस स्थानमें गिराथा वह स्थान तबसे पृथ्वीपर मरु कान्तार नामसे विख्यात हुआहै ॥ ३३ ॥ जिस समय वह बाण गिरा तब उस बाणकी चोटसे पृथ्वी पीड़ित होकर घोरशब्द करनें लगी उस समय शतधार होकर पातालसे पृथ्वीपर जल निकलनें लगा ॥ ३४ ॥ यह जल कुएके आकारमें बदलकर "व्रण" नामसे विख्यात

तैर्नतत्स्पर्शनंपापंसहेयंपापकर्मभिः ॥ अमोघःक्रियतांरामअयंतत्रशरोत्तमः ॥ ३१ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वासागरस्य महात्मनः ॥मुमोचतंशरंदीप्तंपरंसागरदर्शनात् ॥ ३२ ॥ तेनतन्मरुकांतारंपृथिव्यांकिलविश्रुतम् ॥ निपातितःशरोयत्र वज्राशनिसमप्रभः ॥ ३३ ॥ ननादचतदातत्रवसुधाशल्यपीडिता ॥ तस्माद्व्रणमुखात्तोयमुत्पपातरसातलात् ॥ ३४ ॥ सबभूवतदाकूपोव्रणइत्येवविश्रुतः ॥ सततंचोत्थितंतोयंसमुद्रस्येवदृश्यते ॥ ३५ ॥ अवदारणशब्दश्चदारुणःसमपद्यत ॥ तस्मात्तद्बाणपातेनअपःकुक्षिष्वशोषयत् ॥ ३६ ॥ विख्यातंत्रिषुलोकेषुमरुकांतारमेवच ॥ शोषयित्वातुतंकुक्षिंरामोदशरथात्मजः ॥ वरंतस्मैददौविद्वान्मरवेऽमरविक्रमः ॥ ३७ ॥ पशव्यश्चाल्परोगश्चफलमूलरसायुतः ॥ बहुस्नेहोबहुक्षीरःसुगंधिर्विविधौषधिः ॥ ३८ ॥

हुआ। यह निकलती हुई जलराशि समुद्रके समान दिखाई देने लगी ॥ ३५ ॥ उस बाणके घोर शब्दसे पृथ्वीमें प्रवेश करनेंपर रहनें वालोंकी जिसपर जीविकाथी उन सरोवर व तड़ागादिका समस्त जल सूखगया ॥ ३६ ॥ उस समयसे वह स्थान (मरु कान्तार) नामसे प्रसिद्ध हुआ कमललोचन श्रीअमरविक्रम दशरथसुत श्रीरामचंद्रजीनें इस स्थानको सुखायकर पीछे उस मरुभूमिको वर दियाकि ॥ ३७ ॥ इस स्थानमें विशेष करके रोग नहीं हुआ करेंगे यह पशुगणोंके चरनेंको अनुकूल होगा अधिक करके फल मूल व रसपूर्ण अनेक भांतिके

सखाहैं, और जो वानरलोग सैनाके आगे चलनेवालेहैं, और जो वानरगण शूर होंनेके कारण विख्यातहैं ॥ ५ ॥ और जिसप्रकार उस महार्णव समुद्रके ऊपर पुल बँध गयाहै, वह महाबलवान वानरगण जिसप्रकारसे टिके हुएहैं ॥ ६ ॥ और महा बलवान रामचंद्र लक्ष्मणका उद्योग वीर्य बल आदिका वृत्तान्त भली भांतिसे तुम दोनों जान आओ ॥७॥ और उन महातेजस्वी वानरोंका सेनापति कौनहै, यहभी तुम दोनों भली भांति जानकर शीघ्रही यहांपर चले आओ ॥ ८ ॥ मंत्री शुक और शारण इस प्रकार रावणकी आज्ञा पाय वानररूप धारण कर बलवान वानरोंकी सैनामें प्रवेश करते हुए ॥ ९ ॥ वह दोनों अचिन्त्यनीय रूयें खड़े करनेंवाली वानरोंकी सैना देखकर उसकी गिनती नहीं करसके ॥ १० ॥ कारण

सचसेतुर्यथाबद्धःसागरेसलिलार्णवे ॥ निवेशंचयथातेषांवानराणांमहात्मनाम् ॥ ६ ॥ रामस्यव्यवसायंचवीर्यंप्रहरणानिच ॥ लक्ष्मणस्यचवीरस्यतत्त्वतोज्ञातुमर्हथः ॥ ७ ॥ कश्चसेनापतिस्तेषांवानराणांमहात्मनाम् ॥ तच्चज्ञात्वा यथातत्त्वंशीघ्रमागंतुमर्हथः ॥ ८ ॥ इतिप्रतिसमादिष्टौराक्षसौशुकसारणौ ॥ हरिरूपधरौवीरौप्रविष्टौवानरंबलम् ॥ ९ ॥ ततस्तद्वानरंसैन्यमचिंत्यंलोमहर्षणम् ॥ संख्यातुंनाध्यगच्छेतांतदातौशुकसारणौ ॥ १० ॥ तत्स्थितं पर्वताग्रेषुनिर्झरेषुगुहासुच ॥ तरमाणंचतीर्णंचतर्तुकामंचसवशः ॥११॥ निविष्टंनिविशच्चैवभीमनादंमहाबलम् ॥ तद्बलार्णवमक्षोभ्यंददृशातेनिशाचरौ ॥१२॥ तौददर्शमहातेजाःप्रतिच्छन्नौविभीषणः॥आचचक्षेसरामायगृहीत्वाशुकसारणौ ॥ १३ ॥ तस्यैतौराक्षसेंद्रस्यमंत्रिणौशुकसारणौ ॥ लंकायाःसमनुप्राप्तौचारौपरपुरंजय ॥ १४ ॥

कि इस समय वह असंख्य वानर सैना समुद्रके पार होकर कुछ पर्वतोंके शिखरपर कुछ झरनोंमें कुछ पर्वतोंकी गुफाओंमें और कुछ समुद्रके किनारे वन उपवनोंमें पड़ीथी, कुछ सैना समुद्रके पार हो रहीथी, कुछ पार होगईथी और कुछ पार होनेंकी तैयारी कर रहीथी ॥ ११ ॥ कुछ सैना व्यूहमें चली आईथी कुछ आय रहीथी, इस प्रकारसे घोर शब्दकर गरजती हुई वह सैना सब जगह छाय रहीथी। दोनों राक्षसोंनें इस अक्षोभ्य वानरी सैनाको समुद्रके समान देखा ॥ १२ ॥ वह दोनोंजने वानरोंकी सैना देखते हुए इधर उधर घूम रहेथे कि इतनेमें महातेजमान विभीषणजीनें उन लोगोंको देखा और उनको पकड़कर श्रीरामचंद्रजीके पास लेजाय कर कहा ॥ १३ ॥ विभीषणजी बोले कि

अपने ऊपर पुल बंधवानेंके लिये आप रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीको स्थान देदिया ॥ ४६ ॥ जो कुछभी हो समुद्रनें ठीकही कहाहै कारणकि उसके कहनेंसे हमको याद आताहै, कि पहले मन्दर पर्वतपर विश्वकर्माजीनें हमारी माताको हेदेवि! तुम्हारा पुत्र हमारेही समान उत्पन्न होगा, यह वरदान दियाथा ॥ ४७ ॥ सो हम उनही महात्मा विश्वकर्माजीके औरसपुत्र उनकीही समान सब कुछ बनानेमें चतुरहैं। आप लोगोंके न पूछनें पर हमनें आपसे अपने गुण नहीं कथन कियेथे, कारणकि अपने मुखसे अपनी बड़ाई करना महालाजकी बातहै ॥ ४८ ॥ हम निश्चयही समुद्रके ऊपर पुल बनाय सकेंगे इस कारण आजही वानर लोगोंको इस पुलकी तैयारी करनेंकी आज्ञा दीजिये ॥ ४९ ॥ तिसके

ममामातुर्वरोदत्तोमंदरेविश्वकर्मणा ॥ मयातुसदृशःपुत्रस्तवदेविभविष्यति ॥ ४७ ॥ औरसस्तस्यपुत्रोहंसदृशोविश्वकर्मणा ॥ नचाप्याहमनुक्तोवःप्रब्रूयामात्मनोगुणान् ॥ ४८ ॥ समर्थश्चाप्यहंसेतुंकर्तुंवैवरुणालये ॥ तस्मादद्यैवबध्नंतुसेतुंवानरपुंगवाः ॥ ४९ ॥ ततोविसृष्टारामेणसर्वतोहरिपुंगवाः ॥ उत्पेतुर्महारण्यंहृष्टाःशतसहस्रशः॥५० ॥ तेनगान्नगसंकाशाःशाखामृगगणर्षभाः ॥ बभंजुःपादपांस्तत्रप्रचकर्षुश्चसागरम् ॥ ५१ ॥ तेसालैश्चाश्वकर्णैश्चधवैर्वंशैश्चवानराः ॥ कुटजैरर्जुनैस्तालैस्तिलकैस्तिनिशैरपि॥५२॥बिल्वकैःसप्तपर्णैश्चकर्णिकारैश्चपुष्पितैः ॥ चूतैश्चाशोकवृक्षैश्चसागरंसमपूरयन् ॥ ५३ ॥ समूलांश्चविमूलांश्चपादपान्हरिसत्तमाः ॥ इंद्रकेतूनिवोद्यम्यप्रजह्रुर्वानरास्तरून् ॥५४ ॥

पीछे श्रीरामचंद्रजी करके प्रेरित असंख्य वानरश्रेष्ठगण हर्षित मन कूदते फांदते महावनमें प्रवेश करते हुए ॥ ५० ॥ फिर वह पर्वतोंकी समान आकारवाले वानर यूथपतिगण पर्वतोंके शिखर और वृक्षोंको उखाड २ समुद्रके किनारेपर लानेंलगे ॥ ५१ ॥ उन वानरगणोंनें, शाल अश्वकर्ण धव कुटज अर्ज्जुन ताल तिलक तिनिश ॥ ५२ ॥ बेल सतपत्री फूलाहुआ कठचम्पा आम अशोक इत्यादि वृक्षोंसे समुद्रके किनारेकी भूमि परिपूर्ण कर डाली ॥ ५३ ॥ इस प्रकारसे वह वानर गण जड़ सहित और जड़ रहित वृक्षोंको ग्रहण करके इन्द्रध्वजकी समान

करनेंके कारण सुग्रीवादिकोंसे मार पानेंके योग्यहैं, तथापि इन लोगोंपर अत्याचार न करके इन्हें छोड़ही देना उचितहै ॥२१॥ श्रीरामचंद्रजी विभीषणसे यह कहकर फिर शुक और सारणसे कहने लगे। तुम दोनों जने लंकामें जायकर कुवेरके छोटे भाई रावणसे जैसा हम कहैं वह समस्तह यथार्थ २ कह देना ॥ २२ ॥ कि तुम जिस बलका आश्रय लेकर हमारी प्राणप्यारी स्त्री सीताको हरण करके लेगये हो इस समय सेना और बन्धु बान्धवोंके सहित तुम अपना वही बल दिखाओ ॥ २३ ॥ तुम कल प्रातःकालही फाटक शोभित और प्राचीर वेष्टित लंका नगरी और समस्त राक्षसोंकी सेनाको हमारे बाण समूह द्वारा विध्वंशित होते देखोगे ॥२४॥वज्र हाथमें लिये देवताओंके स्वामी इन्द्रजी जिस प्रकार दानव लोगोंके

प्रविश्यमहतींलंकांभवद्भ्यांधनदानुजः ॥ वक्तव्योरक्षसांराजायथोक्तंवचनंमम ॥ २२ ॥ यद्बलंत्वंसमाश्रित्यसीतांमेहृतवानसि ॥ तद्दर्शययथाकामंससैन्यश्चसबांधवः ॥ २३ ॥ श्वःकाल्येनगरींलंकांसप्राकारांसतोरणाम् ॥ रक्षसांचबलंपश्यशरैर्विध्वंसितंमया ॥ २४ ॥ क्रोधंभीममहंमोक्ष्येससैन्येत्वयिरावण ॥ श्वःकाल्येवज्रवान्वज्रंदानवेष्विववासवः ॥ २५ ॥ इतिप्रतिसमादिष्टौराक्षसौशुकसारणौ ॥ जयेतिप्रतिनंद्यैनंराघवंधर्मवत्सलम् ॥ २६ ॥ आगम्यनगरींलंकामब्रूतांराक्षसाधिपम् ॥ विभीषणगृहीतौतुवधार्थंराक्षसेश्वर ॥ २७ ॥ दृष्ट्वाधर्मात्मनामुक्तौरामेणामिततेजसा ॥ एकस्थानगतायत्रचत्वारःपुरुषर्षभाः ॥ २८ ॥ लोकपालसमाःशूराःकृतास्त्रादृढविक्रमाः ॥ रामोदाशरथिःश्रीमाँल्लक्ष्मणश्चविभीषणः ॥ २९ ॥

ऊपर वज्र छोड़तेहैं; वैसेही हम कल प्रभातको तुम्हारे ऊपर अपना क्रोध छोड़ेंगे ॥ २५ ॥ राक्षस शुक और सारणको जब इस प्रकारसे आज्ञादी; तब वह धर्मवत्सल रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीसे " आपकी जयहो " कहकर ॥ २६ ॥ लंकानगरीमें आये और राक्षसराज रावणसे कहनें लगे हेराक्षसेश्वर! जैसेही हमनें वानरोंकी सैनामें प्रवेश किया। वैसेही हमको विभीषणनें वध करनेंके लिये पकडा ॥ २७ ॥ तब हमको पकडे हुए देखकर अमित तेजस्वी धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीनें हमको छुड़ादिया कि जहां एकही स्थानपर चार पुरुष श्रेष्ठ ॥ २८ ॥ सर्व अस्त्र शस्त्रोंके जाननें वाले, शूर. दृढ़ विक्रमवान लोकपालोंकी समान शूर, दशरथ कुमार श्रीरामचंद्रजी श्रीमान् लक्ष्मण, और विभीषण ॥ २९ ॥

उस कालमें पर्वतोंके शिखर और पर्वतोंके खंड बराबर पड़नेंसे समुद्रमें घोर शब्द होंनें लगा ॥ ६३ ॥ पवननंदन हनुमानजी सरलतासे, जो शैल उठायकर लाते और पुलके ऊपर डालदेते, विश्वकर्माके पुत्र नल लीलापूर्वक बाँये हाथसे उस पुलका समस्त कार्य आरंभ करनें लगे, इस प्रकारसे पर्वताकार शीघ्र कर्मकारी वानरोंनें अत्यन्त आनंदके सहित पहले दिन चौदह योजन लंबा पुल बनायाथा ॥ ६४ ॥ भयंकराकार महाबल वानरोंनें दूसरे दिन इस प्रकार शीघ्रता प्रगट करके उन वानरोंनें और नया बीस योजन सेतु निर्माण किया ॥ ६५ ॥ तीसरे दिवस शीघ्र कर्मकारी पर्वताकार वानर लोगोंने इक्कीस योजन और अधिक बनाया ॥ ६६ ॥ उन महा वेगवाले वानरोंने चौथे दिन बाईस योजन सेतु और अधिक बनाया ॥ ६७ ॥ पांचमें दिन उन शीघ्र कर्मकारी वानरोंने तेईस योजन पुलको और बनाया, कि जिस्से चार शत कोशका लंबा पुल बनगया, और लंकाके नीचे वेला भूमिमें वह पुल उन वानरोंनें मिलादिया ॥ ६८ ॥ इस प्रकारसे विश्वकर्माके पुत्र बलशाली वानरश्रेष्ठ नलनें अपने पिताकी समान चतुरता दिखायकर समुद्रके ऊपर सेतु बांधा ॥ ६९ ॥ मत्स्यादि जीवोंके स्थान समुद्रके ऊपर नलका बनाया, वह अच्छी बनावटका पुल आकाशवाले देव मार्गकी समान शोभायमान होनेंलगा ॥ ७० ॥ उसी समय, देवता, गन्धर्व, सिद्ध. और महर्षि

शिलानांक्षिप्यमाणानांशैलानांतत्रपात्यताम् ॥ बभूवतुमुलःशब्दस्तदातस्मिन्महोदधौ ॥ ६३ ॥ कृतानिप्रथमेनाह्नायोजनानिचतुर्दश ॥ प्रहृष्टैर्गजसंकाशैस्त्वरमाणैःप्लवंगमैः ॥ ६४ ॥ द्वितीयेनतथैवाह्नायोजनानितुविंशतिः ॥ कृतानिप्लवगैस्तूर्णंभीमकायैर्महाबलैः ॥ ६५ ॥ अह्नातृतीयेनतथायोजनानितुसागरे ॥ त्वरमाणैर्महाकायैरेकविंशतिरेवच॥६६॥चतुर्थेनतथाचाह्नाद्वाविंशतिरथापिवा ॥ योजनानिमहावेगैःकृतानित्वरितैस्ततः॥६७॥पंचमेनतथाचाह्नाप्लवगैःक्षिप्रकारिभिः ॥ योजनानित्रयोविंशत्सुवेलमधिकृत्यवै ॥ ६८ ॥ सवानरवरःश्रीमान्विश्वकर्मात्मजोबली ॥ बबंधसागरेसेतुंयथाचास्यपितातथा ॥६९॥ सनलेनकृतःसेतुःसागरेमकरालये ॥ शुशुभेसुभगःश्रीमान्स्वातीपथइवांबरे ॥ ७० ॥ ततोदेवाःसगंधर्वाःसिद्धाश्चपरमर्षयः ॥ आगम्यगगनेतस्थुर्द्रष्टुकामास्तदद्भुतम् ॥ ७१ ॥

याहै तुम इसी कारणसे अत्यन्त पीड़ित होकर सीताको लौटानेंकी अभीसे परामर्श देतेहो ॥ ३ ॥ विशेष करके हमारे शत्रु लोगोंमें ऐसी किसकी सामर्थ्य है कि जो रणभूमिमें हमको जीतसके यह कठोर वचन कहकर राक्षसोंका स्वामी रावण ॥ ४ ॥ हिमवानकी समान ऊंचे श्वेत श्रीमान् धवरहरके शिखर पर चढ़गया। यह धवरहर कई तालके वृक्षोंको ऊपर नीचे करनेंसेभी बहुत ऊंचाथा ॥ ५ ॥ क्रोधमूर्छित रावण उन दोनों दूतोंके साथ उस धवरहरे पर चढ़कर, समुद्र, पर्वत, और वनतक ॥ ६ ॥समस्त पृथ्वीको वानरोंसे पूर्ण देखता हुआ। उन अपार सहन करनेंके अयोग्य महाबलवान वानरोंकी सेनाको विश्राम करते हुए ॥ ७ ॥ देखकर राक्षसोंका स्वामी राजा रावण सारणसे पूछता हुआ कि इन वानर

कोहिनामसपत्नोमांसमरेजेतुमर्हति ॥ इत्युक्त्वापरुषंवाक्यंरावणोराक्षसाधिपः ॥ ४ ॥ आरुरोहततःश्रीमान्प्रासादं हिमपांडुरम् ॥ बहुतालसमुत्सेधंरावणोथदिदृक्षया ॥५॥ ताभ्यांचराभ्यांसहितोरावणःक्रोधमूर्च्छितः ॥ पश्यमानःस मुद्रंतंपर्वतांश्चवनानिच ॥ ६ ॥ ददर्शपृथिवीदेशंसुसंपूर्णप्लवंगमैः ॥ तदपारमसह्यंचवानराणांमहाबलम् ॥ ७ ॥ आलो क्यरावणोराजापरिपप्रच्छसारणम् ॥ एषांकेवानरामुख्याःकेशूराःकेमहाबलाः ॥ ८ ॥ केपूर्वमभिवर्ततेमहोत्साहाः समंततः ॥ केषांश्रृणोतिसुग्रीवःकेवायूथपयूथपाः ॥९॥ सारणाचक्ष्वमेसर्वंकिंप्रभावाःप्लवंगमाः ॥ सारणोराक्षसेंद्रस्य वचनंपरिपृच्छतः ॥ १० ॥ आबभाषेऽथमुख्यज्ञोमुख्यांस्तत्रवनौकसः ॥ एषयोऽभिमुखोलंकांनर्दंस्तिष्ठतिवानरः ॥ ११ ॥ यूथपानांसहस्रेणशतेनपरिवारितः ॥ यस्यघोषेणमहतासप्राकारासतोरणा ॥ १२ ॥

लोगोंमें कौन २ प्रधानहै? कौन वीरहैं? और कौन २ महा बलवानहैं? ॥८॥और कौन २ वानरगण अत्यन्त उत्साहयुक्त होकर सर्व प्रकारसे वानर सैना अग्रभागमेंकी रक्षा करतेहैं? और सुग्रीवके मंत्री कौन वानरहैं ? और वह कौन २ वानर गणहैं, जो यूथनाथोंकेभी यूथपतिहैं? ॥ ९ ॥ और उन लोगोंका पराक्रम कैसाहै, हेसारण! तुम यह समस्त वृत्तान्त हमारे निकट ठीक २ वर्णन करो, जब राक्षसोंके स्वामी रावणनें ऐसा पूछा तब सारण ॥ १० ॥ जो कि समस्त मुख्य अमुख्य वानरोंको जानताथा मुखिया २ वानरोंके नाम धाम और बल विक्रमको बतानें लगा कि जो वानर लंकाके सन्मुखको गर्जन करता हुआ खड़ाहै ॥ ११ ॥ यह शतसहस्र वानरोंका यूथपति है; इसके गर्जनेंसे बड़ी भारी चाहर दिवारी

बहुतसे वानर जलमें पैरते हुए बहुतसे पुलके ऊपर होकर चले, और कोई २ गरुड़जीकी समान चतुरता प्रगट करके, आकाश मार्गमेंही गमन करनें लगे ॥ ८१ ॥ वानरोंकी सेनामें पुलकें ऊपर गमन करनेंके समय इस प्रकारका बडा भारी शब्द कियाकि; जिस्से उन्होंनें इस अपने शब्दसे समुद्रके भयंकर उछलनेंके शब्दकोभी मूंद लिया ॥ ८२ ॥ इस प्रकारसे वानरगण नलके बनाये सेतुकी सहायतासे समुद्रके पार हुए, और वहां पहुंचकर सुग्रीवजीनें उनको अधिक फल मूल पूर्ण समुद्रके किनारेपर टिकाया ॥ ८३ ॥ सिद्ध देवता लोग रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीका यह अद्भुत दुष्कर कर्म देखकर सहसा आकाश मार्गमें प्रगट हो, मंदाकिनीके पवित्रजलको वर्षायकर अलग२श्रीरामचंद्रजीका अभिषेक करनेंलगे ॥ ८४ ॥

सलिलंप्रपतंत्यन्येमार्गमन्येप्रपेदिरे ॥ केचिद्वैहायसगताःसुपर्णाइवपुप्लुवुः ॥ ८१ ॥घोषेणमहताघोषंसागरस्यसमुच्छ्रितम् ॥ भीममंतर्दधेभीमातरंतीहरिवाहिनी ॥ ८२ ॥ वानराणांहिसातीर्णावाहिनीनलसेतुना ॥ तीरेनिविविशेराज्ञा बहुमूलफलोदके ॥८३॥ तदद्भुतंराघवकर्मदुष्करंसमीक्ष्यदेवासहसिद्धचारणैः ॥ उपेत्यरामंसहसामहर्षिभिस्तमभ्यषिंचन्सुशुभैर्जलैःपृथक् ॥ ८४ ॥ जयस्वशत्रून्नरदेवमेदिनींससागरांपालयशाश्वतीःसमाः ॥ इतीवरामंनरदेवसत्कृतंशुभैर्वचोभिर्विविधैरपूजयन् ॥ ८५ ॥इत्यार्षेश्री०वा०आ०यु०द्वाविंशःसर्गः॥२२॥ ॥ छ ॥ ॥ निमित्तानिनिमित्तज्ञो दृष्ट्वालक्ष्मणपूर्वजः ॥ सौमित्रिंसंपरिष्वज्यइदंवचनमब्रवीत् ॥ १ ॥ परिगृह्योदकंशीतंवनानिफलवंतिच ॥ बलौघंसंविभज्येमंव्यूह्यतिष्ठेमलक्ष्मण ॥ २ ॥

और बोले, " हे नरदेव ! आप शत्रु लोगोंको पराजित करके बहुत कालतक इस सागर सहित पृथ्वीका पालन करो" इस प्रकार अनेक शुभ वचन कह २ कर उन राजश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीको आशीर्वाद देनें लगे॥८५॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे द्वाविंशः सर्गः॥ २२ ॥ सर्व कारणोंके जाननेंवाले लक्ष्मणजीके बड़े भाई श्रीरामचंद्रजी अनेक भांतिके बहुविध अघोर सगुन देखकर सुमित्राजीके पुत्र लक्ष्मणजीको हृदयसे लगाय यह बोले ॥ १ ॥ कि हे लक्ष्मण ! जिस स्थानमें शीतलजल और फलवाले वृक्ष हों उसी स्थानमें ऋक्ष, गोपुच्छ और सब वानरोंकी

अभिलाष किये, बड़ी भारी सेनाके साथ वालिसुत अंगदजीके पीछे टिका हुआहै ॥ २१॥ हे महाराज! यह चन्दनवन निवासी जो कि अपने अंगोंको थाम २ हर्षित होकर नाद करतेहैं। यह समस्त वानर इसी वीर नलके पीछे २ चलतेहैं ॥ २२ ॥ यह समस्त वानर अपने यूथप नलके साथ इक लेही लंकाको मसलना चाहतेहैं; वह वानर नल कहताहै कि मैंही लंकाको विध्वंश करूंगा, और यह चांदीके रंगका चपल, भयंकर विक्रमकारी॥२३॥ बुद्धिमान, व शूर श्वेत, वानर त्रिलोकीमें विख्यात है देखिये कि यह कैसी शीघ्रतासे सुग्रीवजीके पास जाताहै और फिर लौट आताहै ॥ २४ ॥ जिसको युद्धमें आगे बढ़ते हुए देखकर वानरोंकी सैनाके आनंदकी सीमा नहीं रहती। यह वानर पूर्वकालमें गोमती नदीके तीर रमणीक पर्वतपर

येतुविष्टभ्यगात्राणिक्ष्वेडयंतिनदंतिच ॥ यएनमनुगच्छंतिवीराश्चंदनवासिनः ॥ २२ ॥ एषैवाशंसतेलंकांस्वेनानीकेनमर्दितुम् ॥ श्वेतोरजतसंकाशश्चपलोभीमविक्रमः ॥ २३ ॥ बुद्धिमान्वानरःशूरस्त्रिषुलोकेषुविश्रुतः॥ तूर्णंसुग्रीवमागम्यपुनर्गच्छतिवानरः ॥ २४ ॥ विभजन्वानरींसेनामनीकानिप्रहर्षयन् ॥ यःपुरागोमतीतीरेरम्यंपर्येतिपर्वतम् ॥ २५ ॥ नाम्नासंरोचनोनामनानानगयुतोगिरिः ॥ तत्रराज्यंप्रशास्त्येषकुमुदोनामयूथपः ॥ २६ ॥ योसौशतसहस्राणिसहर्षंपरिकर्षति ॥ यस्यवालाबहुव्यामादीर्घलांगूलमाश्रिताः ॥ २७ ॥ ताम्राःपीताःसिताःश्वेताःप्रकीर्णाघोरदर्शनाः ॥ अदीनोवानरश्चंडःसंग्राममभिकांक्षति ॥ एषैवाशंसतेलंकांस्वेनानीकेनमर्दितुम् ॥ २८ ॥ यस्त्वेषसिंहसंकाशःकपिलोदीर्घकेसरः ॥ निभृतःप्रेक्षतेलंकांदिधक्षन्निवचक्षुषा ॥ २९ ॥

वास करताथा ॥ २५॥ अब संयोजन नाम पर्वतपर जोकि बहुत पर्वतोंसे घिरा हुआहै यह कुमुद नामक वानर यूथप राज्य करताहै ॥ २६ ॥ और यह सहस्र कोटि आठ लाख वानरोंको हर्षसहित खेंचता हुआ चला आताहै, व जिसके बाल बहुत लंबे हैं, और बड़ीभारी पूंछके इधर उधर लटकते हैं ॥ २७॥ उनमें कुछ ताम्ररंगवाले, कुछ पीले कुछ बहुतही श्वेत इस्से अत्यन्तही भयंकर लगतेहैं, इस वानरका चंड नामहै, यह सदा प्रसन्नचित्त रहकर युद्ध करनेंकी अभिलाष किया करताहै, हे महाराज! यह वीर भी केवल अपनीही सैनाकी सहायतासे लंकाको मर्दन करना चाहताहै ॥ २८ ॥ और यह जोसिंह समान पिंगल वर्ण बड़े केशरवाले वानरको आप देखतेहैं, इसके नेत्र मानों लंकाको दग्ध करनेंहीकेलिये तैयार

हे लक्ष्मण! इन सब उत्पाती चिह्नोंको देखकर हमको निश्चय ज्ञान पड़ता है कि यहांकी पृथ्वी बहुतही शीघ्र वानर और राक्षस गणोंके छोडे हुए पर्वत शूल और अस्त्र इत्यादि खड्गोंसे ढककर और मरे हुए वीरोंकी मांस व रुधिर गिरनेसे धूल रहित हो कीचमें पूर्ण हो जायगी ॥ १२ ॥ इस कारण हम आजही वानर गणोंके साथ अतिशीघ्र रावणसे पाली जाती हुई अजीत लंका पुरीमें चले जांयगे ॥ १३ ॥ संग्राममें शत्रुओंका निरादर करनेवाले लोकोंको आनंद देनेंवाले विभु श्रीरामचंद्रजी यह कहकर हाथमें धनुष धारण करके सबसे आगे लंकाकी ओरको चले ॥ १४ ॥ विभीषण, सुग्रीव और दूसरे वानरगणभी अतिभारी शब्द करते हुए श्रीरामचंद्रजीके पीछे २ शत्रुका कुल

शैलैःशूलैश्चखड्गैश्चविमुक्तैःकपिराक्षसैः ॥ भविष्यत्यावृताभूमिर्मांसशोणितकर्दमा ॥१२॥ क्षिप्रमद्यैवदुर्धर्षांपुरींरावणपालिताम् ॥ अभियामजवेनैवसर्वैर्हरिभिरावृताः ॥ १३॥ इत्येवमुक्त्वाधन्वीसरामःसंग्रामधर्षणः ॥ प्रतस्थेपुरतोरामो लंकामभिमुखोविभुः ॥ १४ ॥ सविभीषणसुग्रीवाःसर्वेतेवानरर्षभाः ॥ प्रतस्थिरेविनर्दंतोधृतानांद्विषतांवधे ॥ १५ ॥ राघवस्यप्रियार्थंतुसुतरांवीर्यशालिनाम् ॥ हरीणांकर्मचेष्टाभिस्तुतोषरघुनंदनः ॥ १६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणे वाल्मीकीयेआ०यु०त्रयोविंशःसर्गः ॥२३॥ ॥छ॥ ॥ सावीरसमितीराज्ञाविरराजव्यवस्थिता ॥ शशिनाशुभनक्षत्रापौर्णमासीवशारदी ॥ १ ॥ प्रचचालचवेगेनत्रस्ताचैववसुंधरा ॥ पीड्यमानाबलौघेनतेनसागरवर्चसा ॥ २ ॥

निर्मूल करनेंको चले ॥ १५ ॥ रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी श्रीजानकीजीके उद्धारके लिये वीर्यवान वानरगणोंका ऐसा कार्य और यत्न देखकर अतिशय सन्तुष्ट करते हुए ॥ १६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥ इस प्रकारसे वह आये हुए समस्त वानर वीरलोग राजकुमार श्रीरामचंद्रजी करके व्यूहमें स्थापित होकर शोभित नक्षत्रराजि विराजित शरद कालीन पूर्णमासीकी रात्रिके समान शोभा धारण करते हुए ॥ १ ॥ वहांकी पृथ्वी समुद्रकी समान प्रकाशित उस रामचंद्रजीकी सैनाके

नाम वानर यूथपहै ॥ ३९ ॥ एक लक्ष पचास हजार यूथप इस वानरकी पूजाकिया करते हैं, कि जिन वानरोंके यूथ पृथक् पृथक् हैं ॥ ४० ॥ जो
वीर बड़ी भारी भयंकर पराक्रमकारी वानरोंकी सैनाके बीचमें रहकर समुद्रके तीर टिके दूसरे सूर्यकी समान शोभा विस्तार कर रहा है ॥ ४१ ॥
यह मेघकी समान विनत नामक यूथपति घूमता हुआ सदा नदियोंमें श्रेष्ठ वेणा नदीका जल पिया करताहै ॥ ४२ ॥ साठ लाख वानर इस वी
रके आधीनमें सैनापतिका कार्य करते हैं। यह देखिये क्रथन नामक यूथपति आपको युद्ध करनेंके लिये पुकार रहाहै ॥ ४३ ॥ हे महाराज ! इस
वीरके आधीनमें जो समस्त बल विक्रम शाली यूथपति हैं; उनमेंसे प्रत्येकके आधीनमें वैसेही वानरोंकी बलवान सेनाहै, व जिसके शरीरका गेरु

एनंशतसहस्राणांशतार्धंपर्युपासते॥यूथपायूथपश्रेष्ठंयेषांयूथानिभागशः॥४०॥यस्तुभीमांप्रवल्गंतींचमूंतिष्ठतिशोभय
न्॥स्थितांतीरेसमुद्रस्यद्वितीयइवसागरः॥४१॥ एषदर्दुरसंकाशोविनतोनामयूथपः॥पिबंश्चरतियोवेणांनदीनामुत्तमां
नदीम्॥४२॥ षष्टिःशतसहस्राणिबलमस्यप्लवंगमाः॥त्वामाह्वयतियुद्धायक्रथनोनामवानरः॥४३॥ विक्रांताबलवंतश्चय
थायूथानिभागशः॥ यस्तुगैरिकवर्णाभंवपुःपुष्यतिवानरः॥४४॥अवमत्यसदासर्वान्वानरान्बलदर्पितः॥ गवयोनामते
जस्वीत्वांक्रोधादभिवर्तते॥४५॥ एनंशतसहस्राणिसप्ततिःपर्युपासते॥ एषैवाशंसतेलंकांस्वेनानीकेनमर्दितुम् ॥४६॥
एतेदुष्प्रसहावीरायेषांसंख्यानविद्यते॥ यूथपायूथपश्रेष्ठास्तेषांयूथानिभागशः॥ ४७ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०यु०ष
ड्विंशःसर्गः॥ २६ ॥ ॥ ७॥ तांस्तुतेसंप्रवक्ष्यामिप्रेक्षमाणस्ययूथपान् ॥ राघवार्थेपराक्रांतायेनरक्षंतिजीवितम् ॥ १ ॥

आवर्ण है; और अपनी देहको पुष्ट कर रहाहै ॥ ४४ ॥ यह तेजस्वी गवय नामक वानर क्रोधमें भर आपके सहित युद्धकरनेंको तैयार हुआहै, हे
महाराज ! यह गवय ऐसा बलके घमंडमें है कि और किसी वानरको वीरही नही समझता ॥ ४५ ॥इसके आधीनमें जो सत्रह लाख वानरोंके यूथपहैं;
यह उनकी ही सहायतासे लंकाको विध्वंश करनेकी इच्छा करतेहैं ॥ ४६ ॥ हे महाराज! इन सहनेके अयोग्य वानर वीरोंकी गिनती नहीं करीजा
सकती कारण कि इनमें जो बडे२यूथपति हैं फिर उनमे भी प्रत्येकके आधीनमे अनेक यूथनाथ हैं; और फिर उन यूथ पतियोंके आधीनमे भी अलग
सैना है॥४७॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे षड्विंशः सर्गः॥ २६ ॥ सारण फिर बोला कि हेराजन् आप जो यह समस्त

हैं, इन पुष्पवनोंके समस्त वृक्ष अनेक भांतिके फल पुष्प और पक्षियोंसे युक्तहैं ॥ ११ ॥ हे लक्ष्मण! यह देखो! सुशीतल मन्द पवनके झोके वृक्षोंकी डालियोंको हिलाय रहेहैं, पक्षीगण मतवाले होकर उनपर बैठे हुएहैं सुंदर वायु वेगकरके चलायमान होनेंके डरसे मानों भौंरे घवडा कर फूलोंमें घुसे बैठतेहैं; कोकिलगण मानो वसन्तकोही मनमें आया हुआ समझकर अपनी "कुऊ॥" कुऊ॥ का प्रचार कररहीहैं ॥ १२ ॥ इस प्रकार दशरथ कुमार श्रीरामचंद्रजीनें लक्ष्मणजीसे कहकर शास्त्रमें कहे हुए कर्मके अनुसार, वानर सैनाको यथायोग्य स्थानमें टिका दिया ॥ १३ ॥ फिर श्रीरामचंद्रजीनें सब सैनाको आज्ञादी कि पुरुष व्यूहके मध्यमें नील सहित अंगदजी अपनी सेनाके साथ अव

पश्यमत्तविहंगानिप्रलीनभ्रमराणिच ॥ कोकिलाकुलखंडानिदोधवीतिशिवोऽनिलः ॥१२॥ इतिदाशरथीरामोलक्ष्मणं
समभाषत ॥ बलंचतत्रविभजच्छास्त्रदृष्टेनकर्मणा ॥ १३ ॥ शशासकपिसेनांतांबलादादायवीर्यवान् ॥ अंगदः
सहनीलेनतिष्ठेदुरसिदुर्जयः ॥ १४ ॥ तिष्ठेद्वानरवाहिन्यावानरौघसमावृतः ॥ आश्रितोदक्षिणंपार्श्वमृषभोनामवा
नरः ॥ १५ ॥ गंधहस्तीवदुर्धर्षस्तरस्वीगंधमादनः ॥ तिष्ठेद्वानरवाहिन्याःसव्यंपक्षमधिष्ठित ॥ १६ ॥ मूर्ध्निस्था
स्याम्यहंयत्तोलक्ष्मणेनसमन्वितः ॥ जांबवांश्चसुषेणश्चवेगदर्शीचवानरः ॥ १७ ॥ ऋक्षमुख्यामहात्मानःकु
क्षिंरक्षंतुतेत्रयः ॥ जघनंकपिसेनायाःकपिराजाऽभिरक्षतु ॥ पश्चार्धमिवलोकस्यप्रचेतास्तेजसावृतः ॥ १८ ॥ सुवि
भक्तमहाव्यूहामहावानररक्षिता ॥ अनीकिनीसाविबभौयथाद्यौःसाभ्रसंप्लवा ॥ १९ ॥

स्थान करैं ॥ १४ ॥ और इस वानर सैनाके दाहिनी ओर वानरश्रेष्ठ ऋषभ नामक वानर अवस्थान करै ॥ १५ ॥ तथा मदोन्मत्त हाथीके समान दुर्धर्ष गन्धमादन वानर सैना गणोंके साथ इस सैनाके वांई ओर ठहरैं ॥ १६ ॥ और हम लक्ष्मणजीके सहित सावधान होकर सबसे आगे रहेंगे, वानर श्रेष्ठ महाबलवान जाम्बवान,सुषेण और वेगदर्शी ॥ १७ ॥ यह ऋक्षोंमें मुख्य तीन जने कुक्षिकी रक्षा करेंगे। वरुणजी जिस प्रकार अपने तेजसे पृथ्वीके पिछले अर्द्ध भागकी रक्षा करतेहैं; वैसेही वानरराज सुग्रीवजी इस सैना समूहके जघन देशकी रक्षा करें ॥ १८ ॥ वीरश्रेष्ठ वानरगणोंसे रक्षित यह वानरवाहिनी इस प्रकारसे व्यूह मध्यमें स्थापित, और बँटकर घन घोर घटासे घिरे हुए आकाशकी समान शोभायमान हुई ॥१९॥

पीनेंका उसका अभ्यास है, समस्त रीछोंके अधिपति इसका नाम धूम्र है ॥ ९ ॥ पर्वतकी समान आकारवाले इसके छोटे भ्राताकी ओर आप निहारिये यह भी रूप और पराक्रममें अपने भ्राताकी समानही है ॥ १० ॥ इसका नाम जाम्बवान् है यह महायूथपतियोंका यूथपति सद्गुरुका उपासक है इसका स्वभाव यद्यपि शान्त है और यह अपने बडे भाईकी आज्ञामें रहता भी है परन्तु इसके प्रति शस्त्र चलानेहींसे यह उसको सहन नहीं कर सकता है॥ ११॥इस जाम्बवान्के साथ बुद्धिमान देवराज इन्द्रजीनें मित्रता स्थापनकी है, जब देवासुर संग्राम हुआथा; तब जाम्बवान्नें । इन्द्रकी भारी सहायताकर उनसे अनेक वर पाये हैं ॥ १२ ॥ उन्होंनें उस युद्धमें पर्वतके अग्र भागपर चढ महामेघकी समान बहुतही शिलाओंकी

यवीयानस्यतुभ्रातापश्यैनंपर्वतोपमम् ॥ भ्रात्रासमानोरूपेणविशिष्टश्चपराक्रमे ॥ १० ॥ सएषजांबवान्नाममहायूथप
यूथपः ॥ प्रशांतोगुरुवर्तीचसंप्रहारेष्वमर्षणः ॥ ११ ॥ एतेनसाह्यंतुमहत्कृतंशक्रस्यधीमता ॥ देवासुरेजांबवतालब्धा
श्चबहवोवराः ॥ १२ ॥ आरुह्यपर्वताग्रेभ्योमहाभ्रविपुलाःशिलाः ॥ मुंचंतिविपुलाकारानमृत्योरुद्विजंतिच ॥ १३॥ राक्ष
सानांचसदृशाःपिशाचानांचरोमशाः ॥ एतस्यसैन्याबहवोविचरंत्यमितोजसः ॥ १४ ॥ यएनमभिसंरब्धंप्लवमान
मवस्थितम् ॥ प्रेक्षंतेवानराःसर्वेस्थितंयूथपयूथपम् ॥ १५ ॥ एषराजन्सहस्राक्षंपर्युपास्तेहरीश्वरः ॥ बलेनबलसंयुक्तो
रंभोनामैषयूथपः ॥ १६ ॥ यःस्थितंयोजनेशैलंगच्छन्पार्श्वेनसेवते ॥ ऊर्ध्वंतथैवकायेनगतःप्राप्नोतियोजनम् ॥ १७ ॥
यस्मात्तुपरमंरूपंचतुष्पात्सुनविद्यते ॥ श्रुतःसन्नादनोनामवानराणांपितामहः ॥ १८ ॥

वर्षा करके घोर गर्जन कियाथा और मृत्युसें कुछ भय नहीं खाया ॥ १३ ॥ इनकी सेनाके शरीर राक्षस और पिशाचोंकी तुल्य रोमवाले हैं, उस सेनाकी कुछ गिनती नहीं हो सकती और इनका बल भी अमितहै॥ १४॥देखिये इन जाम्बवानको यह क्रोध किये व तड़कते हुए निहार रहे हैं ॥हे राजन्! यह कि जिसको सब वानर देखते हैं ॥ १५ ॥ हे राजन् यह वानरनाथ इन्द्रकी पूजा करने वालाहै । यह देखिये बड़ीभारी सेनाको साथ लिये हुए यही रंभ नामक यूथप वानर है ॥ १६ ॥ महाराज जो वानर पर्वतपर रहनेके समय एक योजन चलनेके समय बगलसे एक योजन आगे चरणोंसें एक योजन व ऊपरको अपने शरीरसे एक योजन बढ़कर चलता है॥ १७॥चौपायोंमें इसकी समान भयंकर मूर्त्ति और किसी

आरंभ करता हुआ ॥ २७ ॥ परन्तु वानर लोगोंने हमको देखतेही क्रोधायमानहो ऊपर आकाशमें छलांग मारकर हमको पकड़ लिया; और वह हमारे सब पंख उखाड़नें और घूंसोंसे हमारे प्राण तक निकालनेंको तैयार हुए ॥ २८ ॥ उन वानरोंनें न तौ हमसे कोई बात पूछी; न हमें कोई प्रश्नही करनें दिया; कारण कि वह वनचारी वानर स्वभावसे क्रोधी होतेहैं. और विना कुछ सोचे विचारे शीघ्रतासे कार्य किया करते हैं; इस कारणसे प्रथमही वह हमको मार लगानें लगे ॥ २९ ॥ तिसके पीछे जिनके हाथमें विराध कवन्ध और खरका प्राण संहार कियाहै और जो सुग्रीवके साथ सीताजीको ढूंढ़नेंको निकलेहैं, उनको हमनें देखा ॥ ३० ॥ वह समुद्रमें पुल बांध उसके द्वारा खारी सिन्धुके पार

क्रुद्धैस्तैरहमुत्प्लुत्यदृष्टमात्रःप्लवंगमैः ॥ गृहीतोस्म्यपिचारब्धोहंतुंलोष्टुंचमुष्टिभिः॥ २८॥ नतेसंभाषितुंशक्याःसंप्रश्नोत्रनविद्यते ॥ प्रकृत्याकोपनास्तीक्ष्णावानराराक्षसाधिप ॥ २९ ॥ सचहंताविराधस्यकबंधस्यखरस्यच ॥ सुग्रीवसहितोरामःसीतायाःपदमागतः ॥ ३० ॥ सकृत्वासागरेसेतुंतीर्त्वाचलवणोदधिम् ॥ एषरक्षांसिनिर्धूयधन्वीतिष्ठतिराघवः ॥ ३१ ॥ ऋक्षवानरसंघानामनीकानिसहस्रशः ॥ गिरिमेघनिकाशानांछादयंतिवसुंधराम् ॥ ३२ ॥ राक्षसानांबलौघस्यवानरेंद्रबलस्यच ॥ नैतयोर्विद्यतेसंधिर्देवदानवयोरिव ॥ ३३ ॥ पुराप्राकारमायांतिक्षिप्रमेकतरंकुरु॥सीतांचास्मैप्रयच्छाशुयुद्धंवापिप्रदीयताम् ॥ ३४ ॥ शुकस्यवचनंश्रुत्वारावणोवाक्यमब्रवीत् ॥ रोषसंरक्तनयनोनिर्दहन्निवचक्षुषा ॥ ३५ ॥

आये हैं। मानों वह राक्षस कुल निर्मूल करनेंकी वासनासेही धनुष धारण करके लंकामें आय पहुँचेहैं ॥ ३१ ॥ पहाड़ी मेघोंकी समान उनकी वानर और रीछोंकी इतनी सैनाहै कि जिसके देखनेंसे ज्ञात होताहै कि इसने सब पृथ्वीको ढक रक्खाहै ॥ ३२ ॥ हे महाराज ! आपकी और वानरराजसुग्रीवजीकी सैनाके बीचमें देव गणोंके साथ दानव लोगोंकी समान परस्पर सन्धि होनेंकी कोई संभावना नहीं ॥ ३३ ॥ इसकारण यातौ आप बहुत शीघ्र श्रीरामचंद्रजीको सीता समर्पण करदें अथवा उनके साथ युद्ध करैं अतएव इन दो कार्योंमेंसे आप एक करैं॥ ३४॥ शुकके ऐसे वचन सुनकर रावणके दोनों नेत्र अत्यन्त लाल होगये, और उन नेत्रोंसे रावण शुकको जलाता हुआसा शुकसे बोला ॥ ३५ ॥

यह वानर बडी भारी वानरी सैनाका सैनापतिहै यह गंगाके पीछेके भागवाले उशीर वीज, और पर्वत श्रेष्ठ मन्दरपर रहकर यह परम प्रसन्नता प्राप्त किया करताहै ॥ २७ ॥ देवराज इन्द्रजी जिस प्रकार अमरावतीमें वास किया करतेहैं, वैसेही यह वानरश्रेष्ठ वहां रमण किया करताहै ॥ २८ ॥ जो कि वीर्य विक्रमसे गर्वित और अमित बलशाली है; यह वानर उन्हीं सब महात्मा वानरोंका प्रेरकहै ॥ २९ ॥ हे राजन्! यह दुर्द्धर्ष प्रमाथी नामक यूथपहै, जिसको कि पवनसे उठे हुए मेघकी समान आप चलते हुए देखतेहैं ॥ ३० ॥ और जिसके साथ वानरोंकी सैना, क्रोध करती वेगसे चलती पवनसे कम्पायमान अरुण रंगकी आप देखतेहैं ॥ ३१॥ जिस सैनाके चारों ओर आप वानरोंकी उडाई हुई लाल

हरीणांवाहिनीमुख्योनदींहैमवतीमनु ॥ उशीरबीजमाश्रित्यमंदरंपर्वतोत्तमम् ॥ २७ ॥ रमतेवानरश्रेष्ठोदिविशक्र इवस्वयम् ॥ एनंशतसहस्राणांसहस्रमभिवर्तते ॥ २८ ॥ वीर्यविक्रमदृप्तानांनर्दतांबाहुशालिनाम् ॥ सएषनेताचैतेषां वानराणांमहात्मनाम् ॥ २९ ॥ सएषदुर्धरोराजन्प्रमाथीनामयूथपः ॥ वातेनेवोद्धतंमेघंयमेनमनुपश्यसि ॥ ३० ॥ अनीकमपिसंरब्धंवानराणांतरस्विनाम् ॥ उद्धूतमरुणाभासंपवनेनसमंततः ॥ ३१ ॥ विवर्तमानंबहुशोयत्रैतद्बहुलं रजः ॥ एतेसितमुखाघोरागोलांगूलामहाबलाः ॥ ३२ ॥ शतंशतसहस्राणिदृष्ट्वावैसेतुबंधनम् ॥ गोलांगूलंमहाराज गवाक्षंनामयूथपम् ॥ ३३ ॥ परिवार्याभिनर्दंतेलंकांमर्दितुमोजसा ॥ भ्रमराचरितायत्रसर्वकालफलद्रुमाः ॥ ३४ ॥ यंसूर्यस्तुल्यवर्णाभमनुपर्येतिपर्वतम् ॥ यस्यभासासदाभांतितद्वर्णामृगपक्षिणः ॥ ३५ ॥

रज देखतेहैं, और हे महाराज! यह उजले मुखके महाबली गोपुच्छ नाम महाबलवान ॥ ३२ ॥ वानर जो कि अब्बौं सेतु बंधपर दिखाई देते हैं; हे महाराज! बस इन्हीं गोपुच्छ वानरोंका महाराज यह गवाक्ष नामक यूथपहै ॥ ३३ ॥ देखिये इसी गवाक्ष यूथपको घेरे हुए सब गोपुच्छ वानर लंकाको मर्दन करना चाहतेहैं; और गर्ज रहेहैं। जहांपर भौंरे सदा जाया करते और जहां वृक्षोंमें सदा फल लगे रहतेहैं ॥३४॥ सूर्य जिसको अपनी स्थान वर्णवाला समझकर. प्रतिदिन जिस पर्वतकी प्रदक्षिणा किया करतेहैं; और जिस पर्वतकी अरुण कांतिसे जहांके सब पक्षी

वीणा बाणसे बजैगी, तब फिर हमको पहचाननेंके लिये रामचंद्रको चिन्तानहीं करनी पड़ैगी ॥ ४२ ॥ ॥ अतएव उस धनुप रूपी वीणाको हम, प्रत्यश्चा शब्दरूप रण शंकुल शब्दयुक्त दुःखी लोगोंके गान सहित बाणोंके शब्दकी सन्नाहट होती हुई शत्रु सेनारूपी नदीमें स्नान कर समरमें बजामेंगे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ हे शुक! अब अधिक कहनेंकी कुछ आवश्यकता नहीं है हजार आंखवाला इन्द्र अथवा वरुण हमको कोई भी युद्धमें नहीं जीत सकता; यमअथवा स्वयं कुबेरभी हमारे बाणकी अग्निके सामनें समरमें खड़े नहीं होसकते॥ ४५ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० चतुर्विंशः सर्गः॥२४॥दशरथजीके पुत्र श्रीरामचंद्रजी अपनी सेनाके सहित महासमुद्रके पार होकर लंकामें आयेहैं; इस वृत्तान्तको सुनकर रावण शुक शारण

ज्याशब्दतुमुलांघोरामार्तगीतमहास्वनाम् ॥ नाराचतलसन्नादांनदीमहितवाहिनीम् ॥ ४३ ॥ अवगाह्यमहारंगं वादयिष्याम्यहंरणे ॥ ४४ ॥ नवासवेनापिसहस्रचक्षुषायुद्धेस्मिशक्योवरुणेनवास्वयम् ॥ यमेनवाधर्षयितुंशरा ग्निनामहाहवेवैश्रवणेनवास्वयम् ॥ ४५ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकाण्डेचतुर्विं शःसर्गः ॥ २४ ॥ ॥ छ ॥ सबलेसागरंतीर्णेरामेदशरथात्मजे ॥ अमात्यौरावणःश्रीमानब्रवीच्छुकसारणौ ॥ १ ॥ समग्रंसागरंतीर्णंदुस्तरंवानरंबलम् ॥ अभूतपूर्वंरामेणसागरेसेतुबंधनम् ॥ २ ॥ सागरेसेतुबंधंतंनश्रद्दध्यांकथंचन ॥ अवश्यंचापिसंख्येयंतन्मयावानरंबलम् ॥ ३ ॥ भवंतौवानरंसैन्यंप्रविश्यानुपलक्षितौ ॥ परिमाणंचवीर्यंचयेचमुख्याः प्लवंगमाः ॥ ४ ॥ मंत्रिणोयेचरामस्यसुग्रीवस्यचसंगताः ॥ येपूर्वमभिवर्ततेयेचशूराःप्लवंगमाः ॥ ५ ॥

नामक अपने दो मंत्रियोंको बुलायकर कहनें लगा ॥ १॥ कि रामचंद्रनें समुद्रके ऊपर पुल बांध लिया कि जिसके ऊपर होकर समस्त वानर सैना बड़ी कठिनसे पार होनेंके योग्य समुद्रके पार चली आई; हमनें कभी ऐसा काम किसीको करते हुए नहीं देखा ॥ २ ॥ रामनें साधारण मनुष्य होकर सेतु बांध लियाहै; यह बात किसी प्रकारसे विश्वाश करनेंके योग्य नहींहै, जो कुछभी हो अब हमको यह जान लेना बहुतही आवश्यकीय बातहै; कि रामचंद्रके साथ कितनी सैना आईहै ॥ ३ ॥ इस कारण तुम दोनों जन गुप्त रूपसे वानरोंकी सैनामें प्रवेश करके उस वानर सैनाकी संख्या, और उसके बल वीर्यका पता लगाओ ॥ ४ ॥ जो समस्त वानरोंके यूथपहैं और जो रामचंद्रके मंत्रीहैं, और जो वानरगण सुग्रीवके

करताहै, हेराजन्! यह समस्त पृथ्वीपर विख्यात हुआ शतबलिनाम वानर यूथपहै ॥ ४४ ॥ हेमहाराज! यह वीर शतबली, ऐसा विक्रमी बलवान और पौरुष युक्तहै, कि इसनें अपनी सैनाहीसे लंका मर्दन करनेंका विचार स्थिर कर रक्खाहै ॥ ४५ ॥ गज, गवाक्ष, गवय, नल, और नील इत्यादि वानरगण समस्तही प्राणोंका मोह छोड़कर श्रीरामचंद्रजीका प्रिय करनेंके लिये ॥ ४६ ॥ एक २ योधा शत २ करोड़ वानरोंकी सैना संग लिये आयेहैं, सब विन्ध्याचलके रहनेंवाले और दूसरे वानर गणभी जो लघु विक्रमीहैं; और बहुत होंनेके कारण जिनकी गिनती नहीं हो सकती ॥ ४७ ॥ हे महाराज! इन सबही वीर गणोंकी देह महापर्वतकी समान है, सबही महाप्रभाववाले, और सबही शिला वर्षाय

एषैवाशंसतेलंकांस्वेनानीकेनमर्दितुम् ॥ विक्रांतोबलवाञ्च्छूरःपौरुषेस्वेव्यवस्थितः ॥ ४५ ॥ रामप्रियार्थंप्राणानांदयां नकुरुतेहरिः ॥ गजोगवाक्षोगवयोनलोनीलश्चवानरः ॥ ४६ ॥ एकैकमेवयोधानांकोटिभिर्दशभिर्वृतः ॥ तथान्येवानरश्रे ष्ठाविंध्यपर्वतवासिनः ॥ नशक्यंतेबहुत्वात्तुसंख्यातुंलघुविक्रमाः ॥ ४७ ॥ सर्वेमहाराजमहाप्रभावाःसर्वेमहाशैलनि काशकायाः ॥ सर्वेसमर्थाःपृथिवींक्षणेनकर्तुंप्रविध्वस्तविकीर्णशैलाम् ॥ ४८ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीये आ०युद्धकांडेसप्तविंशःसर्गः ॥ २७ ॥ सारणस्यवचःश्रुत्वारावणंराक्षसाधिपम् ॥ बलमादिश्यतत्सर्वंशुकोवाक्यम थाब्रवीत् ॥ १ ॥ स्थितान्पश्यसियानेतान्मत्तानिवमहाद्विपान् ॥ न्यग्रोधानिवगांगेयान्सालान्हैमवतानिव ॥ २ ॥ एतेदुष्प्रसहाराजन्बलिनःकामरूपिणः ॥ दैत्यदानवसंकाशायुद्धेदेवपराक्रमाः ॥ ३ ॥

कर क्षण कालमें सारी पृथ्वीको ढक सकतेहैं ॥ ४८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्ध० सप्तविंशःसर्गः ॥ २७ ॥ सारणके वचन सुनकर राक्षसपति रावण शुकसे श्रीरामचंद्रजीकी सेनाका समाचार पूछता हुआ; तब शुक बोला ॥ १ ॥ हेराजन्! आप जिनको मतवाले महागजोंकी समान गंगाके तीरवाले वट वृक्षोंकी समान, और हिमवान पर्वतपर उपजे हुए शाल वृक्षकी समान देख तेहैं॥२॥यह समस्तही सहनेंके अयोग्य बलवान और कामरूप धारण करनेंवाले हैं; यह युद्धमें देवगणोंकी समान पराक्रम प्रगट करनेंवाले हैं ॥३॥

हेशत्रुओंके तपानें वाले! यह दो निशाचर राक्षसराज रावणके मंत्री, शुक सारण नामक लंकामें, वास करतेहैं; यह दोनों दूत बनकर यहां आयेहैं ॥ १४ ॥ यह दोनों राक्षस श्रीरामचंद्रजीको देखतेही अत्यन्त भयभीत हुए, और अपने जीवनकी आशाको जलांजलि देते हुए; व हाथ जोड़कर श्रीरामचंद्रजीसे यह वचन बोले ॥ १५ ॥ हे सौम्य राक्षसोंके राजा रावण करके प्रेरितहो आपकी सेना संख्या जाननेंके लिये यहां पर आयेहैं ॥ १६ ॥ प्राणियोंके हितकारी शूर दशरथकुमार श्रीरामचंद्रजी. इन दोनों राक्षसोंके करुणासहित वचन सुन मन्द २ हँस कर यह बोले कि ॥ १७ ॥ जो तुम लोगोंनें हमारी समस्त सेना देख लीहो, मंत्रियोंके सहित सुग्रीवजीका व हमारा बलवीर्यभी यदि तुम

तौदृष्ट्वाव्यथितौरामंनिराशौजीवितेतथा ॥ कृतांजलिपुटौभीतौवचनंचेदमूचतुः ॥ १५ ॥ आवामिहागतौसौम्यरावणप्रहितावुभौ ॥ परिज्ञातुंबलंसर्वंतदिदंरघुनंदन ॥ १६ ॥ तयोस्तद्वचनंश्रुत्वारामोदशरथात्मजः ॥ अब्रवीत्प्रहसन्वाक्यंसर्वभूतहितेरतः ॥ १७ ॥ यदिदृष्टंबलंसर्वंवयंवासुसमाहिताः ॥ यथोक्तंवाकृतंकार्यंछंदतःप्रतिगम्यताम् ॥ १८ ॥ अथकिंचिददृष्टंवाभूयस्तद्द्रष्टुमर्हथः ॥ विभीषणोवाकात्स्न्येनपुनःसंदर्शयिष्यति ॥ १९ ॥ नचेदंग्रहणंप्राप्यभेतव्यंजीवितंप्रति ॥ न्यस्तशस्त्रौगृहीतौचनदूतौवधमर्हतः ॥ २० ॥ प्रच्छन्नौचविमुंचेमौचारौरात्रिंचरावुभौ ॥ शत्रुपक्षस्यसततंविभीषणविकर्षिणौ ॥ २१ ॥

जान चुकेहो, अथवा रावणनें जिस प्रकार कह दियाथा उससेभी सिवाय यदि तुम लोगोंनें कुछ काम कियाहो, तौ हम उन सबको क्षमा करतेहैं, तुम निर्विघ्न यहांसे चले जाओ ॥ १८ ॥ यदि कोई बात देखनेंको बाकी रह गईहो उसकोभी देख जाओ; अथवा यह बिभीषण फिरसे तुमको समस्त दिखादेंगे ॥ १९ ॥ तुम दोनों हमारे वशमें पड़नेंके कारण अपने जीवनकी आशा नछोड़ो; कारणकि तुम लोग दूत शस्त्रविहीन और शरणमें आनेंके कारण किसी भांतिसे मार डालनेंके योग्य नहींहो ॥ २० ॥ जो कुछ भी हो. बिभीषण! यद्यपि शुक सारण कपटरूपसे हमारी सेनामें प्रवेश

यह जाय सकताहै॥ ११॥बालकपनमें एकदिन यह वीर उदय होते हुए सूर्य भगवानको देखकर विना सूर्यको हरण किये पृथ्वीपरके किसी फलसे हमारी भूंख न मिटैगी" मनही मन यह विचारकर बलसे दर्पितहो तीन हजार योजन ऊपरको कूद गया, यह सूर्य मंडल पर पहुंच गया था ॥ १२ ॥ १३ ॥ परन्तु देव ऋषि और राक्षसोंसे धर्षित न होनेंके योग्य उन सूर्य भगवानको न प्राप्त होकर इन्द्रजीके वज्र मारनेंसे यह उदयाचलपर गिर पड़ा ॥ १४ ॥ हेमहाराज ! पहले इस वीरकी हनु (ठोड़ी) अत्यन्त दृढ़थी परन्तु शिलापर गिरनेंसे इनकी एक हनु कुछ एक टूट जानेंसे, इसी कारणसे यह वीर्य पहले वृत्तान्तके अनुसार हनुमान नामसे विख्यात हुआहै ॥ १५ ॥ वानरोंका संग होनेंसे यद्यपि हमनें इस वानरको

उद्यंतंभास्करंदृष्ट्वाबालःकिलबुभुक्षितः ॥ त्रियोजनसहस्रंतुअध्वानमवतीर्यहि ॥१२॥ आदित्यमाहरिष्यामिनमेक्षुत्प्रतियास्यति ॥ इतिनिश्चित्यमनसापुप्लुवेबलदर्पितः ॥ १३ ॥ अनाधृष्यतमंदेवमपिदेवर्षिराक्षसैः ॥ अनासाद्यैवपतितोभास्करोदयनेगिरौ ॥ १४ ॥ पतितस्यकपेरस्यहनुरेकाशिलातले ॥ किंचिद्भिन्नादृढहनुर्हनूमानेषतेनवै ॥ १५ ॥ सत्यमागमयोगेनममैषविदितोहरिः ॥ नास्यशक्यंबलंरूपंप्रभावोवानुभाषितुम् ॥ १६ ॥ एषआशंसतेलंकामेकोमथितुमोजसा ॥ येनजाज्वल्यतेसौवैधूमकेस्तुस्तवाद्यवै ॥ लंकायांनिहितश्चापिकथंविस्मरसेकपिम् ॥१७॥ यस्यैषोनंतरः शूरःश्यामःपद्मनिभेक्षणः ॥ इक्ष्वाकूणामतिरथोलोकेविश्रुतपौरुषः ॥ १८ ॥

जानलियाहै, परन्तु इसका बलरूप और प्रभाव वर्णन करनेंकी मुझमें सामर्थ्य नहीं है, हमको तौ यह जान पड़ताहै, कि यही वीर अकेला लंकापुरीका नाश करनेंकी शक्ति रखताहै ॥ १६ ॥ हे राजन् ! पहले जिस वीरनें आपके प्रतापसे रोकी हुई अग्निको प्रज्वलित करके उसको लंकामेंही छोड़ाथा, भला फिर आप किस कारणसे अब उस हनुमान वीरको भूलतेहैं ? यह वीर अकेलाही लंका मथ्यहै ॥ ३ ॥ ... श्यामवर्ण कमललोचन वीर बैठे हुएहैं, यह सबही ...

व महा तेजमान महेन्द्र समान विक्रम शाली सुग्रीवजी केवल यही चारों फाटक और चाहर दिवारीसे युक्त लंकापुरीको ॥ ३० ॥ विना और दूसरे वानरोंकी सहायता लिये त्रिकूट पर्वतसे उखाड़ सकतेहैं, व दूसरे स्थानपर स्थापित कर सकतेहैं, जिस प्रकारका हमनें श्रीरामचंद्रजीका रूप देखा, और उनके बाण समूहका परिचय लिया तिस्से और तीन जनोंका प्रयोजन नहीं; ॥ ३१ ॥ केवल इकले श्रीरामचंद्रजीही लंकापुरीको छिन्न भिन्न कर सकते हैं। हेमहाराज! जैसा मैंनें देखा;उस्से तो यही जान पड़ाकि राम लक्ष्मण और सुग्रीव करके रक्षित उस वानरोंकी सेनाको समस्त देवता व असुर लोगभी नहीं जीत सकते ॥ ३२ ॥ हेराजन्! वह महाबलवान वानरोंकी समस्त सेना रण करनेंमें चतुरहैं; उसके समस्त वानर यह

सुग्रीवश्चमहातेजामहेंद्रसमविक्रमः ॥ एतेशक्ताःपुरींलंकांसप्राकारांसतोरणाम् ॥ ३० ॥ उत्पाट्यसंक्रामयितुंसर्वे तिष्ठंतुवानराः ॥ यादृशंतद्धिरामस्यरूपंप्रहरणानिच ॥ ३१ ॥ वधिष्यतिपुरींलंकामेकस्तिष्ठंतुतेत्रयः ॥ रामलक्ष्मणगुप्तासासुग्रीवेणचवाहिनी ॥ बभूवदुर्धर्षतरासर्वैरपिसुरासुरैः ॥ ३२ ॥ प्रहृष्टयोधाध्वजिनीमहात्मनांवनौकसां संप्रतियोद्धुमिच्छताम् ॥ अलंविरोधेनशमोविधीयतांप्रदीयतांदाशरथायमैथिली ॥ ३३ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणे वाल्मी०आदिकाव्येयुद्धकांडेपंचविंशःसर्गः ॥ २५ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ तद्वचःसत्यमक्लीबंसारणेनाभिभाषितम् ॥ निशम्यरावणोराजापर्यभाषतसारणम् ॥ १ ॥ यदिमामभियुंजीरन्देवगंधर्वदानवाः ॥ नैवसितामहंदद्यांसर्वलोकभयादपि ॥ २ ॥ त्वंतुसौम्यपरित्रस्तोहरिभिःपीडितोभृशम् ॥ प्रतिप्रदानमद्यैवसीतायाःसाधुमन्यसे ॥ ३ ॥

राह परख रहेहैं कि कब युद्धहो, इस कारण उनसे विरोध करनेंकी कुछ आवश्यकता नहींहै, आप दशरथके पुत्र श्रीरामचंद्रजीको जानकी देकर उनके साथ संधि कर लीजिये॥ ३३ ॥ इ० श्रीम०वा०आ०यु०पंचविंशःसर्गः॥ २५ ॥ राक्षसराज रावण शारण भाषित यह सत्य और वीरोचित वचन सुनकर उससे बोला ॥ १ ॥ कि यदि देव दानव और गन्धर्वगण एकसाथ मिलकर हमारे साथ युद्धकरें अथवा त्रिलोकीके रहनें वालेभी समस्त हमसे विरुद्ध होजांय तथापि हम भय पायकर कभी जानकीको रामचंद्रके समर्पण न करेंगे ॥ २ ॥ हे सौम्य! वानर लोगोंनें तुमको बहुतही सता

श्रीमताराजराजेनलंकायामभिषेचितः ॥ त्वामसौप्रतिसंरब्धोयुद्धायैषोभिवर्तते ॥ २७ ॥ यंतुपश्यसितिष्ठंतंमध्येगिरिमिवाचलम् ॥ सर्वशाखामृगेंद्राणांभर्तारममितौजसम् ॥ २८ ॥ तेजसायशसाबुध्द्याबलेनाभिजनेनच ॥ यःकपीनतिबभ्राजहिमवानिवपर्वतः ॥ २९ ॥ किष्किंधांयःसमध्यास्तेदुर्गांसगहनद्रुमाम् ॥ दुर्गांपर्वतदुर्गम्यांप्रधानैःसहयूथपैः ॥ ३० ॥ यस्यैषाकांचनीमालाशोभतेशतपुष्करा ॥ कांतादेवमनुष्याणांयस्यांलक्ष्मीःप्रतिष्ठिता ॥ ३१ ॥ एतांमालांचतारांचकपिराज्यंचशाश्वतम् ॥ सुग्रीवोवालिनंहत्वारामेणप्रतिपादितः ॥ ३२ ॥ शतंशतसहस्राणांकोटिमाहुर्मनीषिणः ॥ शतंकोटिसहस्राणांशंकुरित्यभिधीयते ॥ ३३ ॥ शतंशंकुसहस्राणांमहाशंकुरितिस्मृतः ॥ महाशंकुसहस्राणांशतंवृंदमिहोच्यते ॥ ३४ ॥ शतंवृंदसहस्राणांमहावृंदमितिस्मृतम् ॥ महावृंदसहस्राणांशतंपद्ममिहोच्यते ॥ ३५ ॥

सोंके साथ वीर रामचंद्रजीकी बांई बगलमें इनके पक्षमें होकर बैठेहैं; वही राजा विभीषणहैं ॥ २६ ॥ हे राजन् ! विभीषण राजराजेश्वर श्रीरामचंद्रजी करके लंकाके राज्यमें अभिषेकित होकर आपके साथ युद्ध करनेंकी कामनासे क्रोधमें भरे हुए बैठेहैं ॥ २७ ॥ जिनको आप अटल पर्वतकी समान बीचमें बैठे हुए देखतेहैं यह सब वानरोंके राजाहैं; इनके बलका कुछ परिणामही नहीं ॥ २८ ॥ यह तेज यश बुद्धि और बलके प्रभावसे, पर्वतोंके मध्यमे हिमवान पर्वतकी समान समस्त वानरोंसे अधिक शोभायमान होतेहैं ॥ २९ ॥ हे राजन् ! यह प्रधानवीर यूथपति लोगोंके साथ किष्किन्धामें पर्वतके दुर्गवाली वृक्षयुक्त व कोई और जहां न पहुंचसकै, ऐसी गुहामें वानर यूथपोंके साथ रहतेहैं ॥ ३० ॥ और देवता व मनुष्य लोगोंकी प्रार्थनीया लक्ष्मी जिसमें सदा टिकी रहती है, वह शतपुष्पीके पुष्पवाली कांचनमयी माला जिनके गलेमें शोभायमान हो रहीहै ॥ ३१ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें वीरश्रेष्ठ वालिका प्राण संहार करकै, यह माला वालिकी स्त्री तारा, और किष्किन्धाका राज्य यह समस्तही इन सुग्रीवको दियाहै ॥ ३२ ॥ हे महाराज ! संख्या के जाननेंवाले पंडित लोग शत गुणीत शत सहस्रसे एक करोड़ सहस्र कोटिसे अंक कहतेहैं ॥ ३३ ॥ [illegible] महा अंक सहस्रसे एक वृन्द ॥ ३४ ॥ सहस्र वृन्दक [illegible] ॥

और फाटकोंसे युक्त ॥ १२ ॥ व सर्व शैल, वन कानन सहित लंका पुरी कंपायमान होरहीहै, और जो वानर शाखामृगोंका अधिपति महात्मा सुग्रीवजीकी ॥ १३ ॥ सेनाके आगे खड़ा हुआहै, यह नील नाम वीर यूथपोंका स्वामीहै । और यह जो वीर्यवान वानर दोनों बाहें उठाये मनुष्योंकी समान पृथ्वीपर चरण धरता हुआ चला आताहै ॥ १४ ॥ जो वारंवार लंकाकी ओर देखकर जँभाई लेताहै, और कोपके मारे जिसकी दृष्टि कुटिल, होगई है, व जो वानर आकाशमें पर्वतके शृंगकी समान ऊंचा और कमलरजकी समान पीत जिसकी देहका रंगहै ॥ १५ ॥ और जोकि क्रोधमें भरनेके कारण वारंवार अपनी पूंछको फटकार रहाहै जिसकी पूंछके शब्दसे दशों दिशाएं गूंज रहीहैं ॥ १६ ॥ हेमहाराज ?

लंकाप्रतिहतासर्वासशैलवनकानना॥सर्वशाखामृगेंद्रस्यसुग्रीवस्यमहात्मनः ॥ १३ ॥ बलाग्रेतिष्ठतेवीरोनीलोनामै षयूथपः॥ बाहूप्रगृह्ययःपद्भ्यांमहींगच्छतिवीर्यवान् ॥ १४ ॥ लंकामभिमुखःकोपादभीक्ष्णंचविजृंभते ॥ गिरिशृं गप्रतीकाशःपद्मकिंजल्कसन्निभः ॥ १५ ॥ स्फोटयत्यतिसंरब्धोलांगूलंचपुनःपुनः ॥ यस्यलांगूलशब्देनस्वनंतिप्रतिशो दश ॥ १६ ॥ एषवानरराजेनसुग्रीवेणाभिषेचितः ॥ युवराजोंगदोनामत्वामाह्वयतिसंयुगे ॥ १७ ॥ वालिनःसदृशः पुत्रःसुग्रीवस्यसदाप्रियः ॥ राघवार्थेपराक्रांतःशक्रार्थेवरुणोयथा ॥ १८ ॥ एतस्यसामतिःसर्वायदृष्टाजनकात्मजा ॥ हनूमतावेगवताराघवस्यहितैषिणा ॥ १९ ॥ बहूनिवानरेंद्राणामेषयूथानिवीर्यवान् ॥ परिगृह्याभियातित्वांस्वे नानीकेनमर्दितुम् ॥ २० ॥ अनुवालिसुतस्यापिबलेनमहतावृतः ॥ वीरस्तिष्ठतिसंग्रामेसेतुहेतुरयंनलः ॥ २१ ॥

वानरराज सुग्रीव करके युवराज पदपर अभिषेकित यह युवराज अंगद आपको युद्ध करनेके लिये पुकार रहेहैं ॥ १७ ॥ हेमहाराज! वरुणजी जिस प्रकार इन्द्रके लिये पराक्रम प्रकाश करतेहैं; ऐसेही सुग्रीवके प्रिय और अपने पिताकी समान पराक्रमवान यह वालिकुमार अंगदभी श्रीरामचंद्रजीके लिये पराक्रम प्रगट करनेको तैयार हुआहै ॥ १८ ॥ श्रीरामचंद्रजीके हितकारी वेगवान हनुमानजी जो यहां पर आय लंकामें जो जानकीजीको देख गयेथे; उन्होंने सब कार्य इन अंगदजीही की सलाहसे कियेथे ॥ १९ ॥ यह वीर्यवान अंगद असंख्य वानर यूथप गणोंके साथ आपका संहार करनेंहीके लिये सैना समेत आगे बढ़ा आताहै ॥ २० ॥ जिस वीरनें समुद्रके ऊपर सेतु बांधाहै, यह वही नलनाम वानर संग्रामका

लक्ष्मणजीको ॥ १ ॥ और श्रीरामचंद्रजीके समीप बैठेहुए अपने भ्राता विभीषणको व भयंकर पराक्रमकारी वानरराज सुग्रीवजीको बैठे देख ॥ २ ॥ व उनके निकट इन्द्रके औरसपुत्र वालिकुमार महावीर अंगद, हनुमान, और अजीत जाम्बवान् ॥ ३ ॥ व उनकी बगलमें सुषेण कुमुद, नील, नल, गज, गवाक्ष, शरभ, मैन्द और द्विविद ॥ ४ ॥ इत्यादि वानर गणोंको देखतेही रावण कुछ उदासभी हुआ; और फिर उदासीन ताके आकारको छिपानेको यथार्थ वचन कहनें वाले, शुक, सारण दोनों निशाचरोंको बहुतही धिक्कारता हुआ निन्दा करनें लगा ॥ ५ ॥ राक्षस राज रावण सामनें बैठे प्रणाम करते हुए उन दोनों राक्षसोंसे रोष सहित गदगद वाणीसे यह वचन बोला ॥ ६ ॥ तुम लोगोंने जो वचन हमसे

समीपस्थंचरामस्यभ्रातरंचविभीषणम् ॥ सर्ववानरराजंचसुग्रीवंभीमविक्रमम् ॥ २ ॥ अंगदंचापिबलिनंवज्रहस्तात्मजात्मजम् ॥ हनूमंतंचविक्रांतंजांबवंतंचदुर्जयम् ॥ ३ ॥ सुषेणंकुमुदंनीलंनलंचप्लवगर्षभम् ॥ गजंगवाक्षंशरभंमैंदंचद्विविदंतथा ॥ ४ ॥ किंचिदाविग्नहृदयोजातक्रोधश्चरावणः ॥ भर्त्सयामासतौवीरौकथांतेशुकसारणौ ॥ ५ ॥ अधोमुखौतौप्रणतावब्रवीच्छुकसारणौ ॥ रोषगद्गदयावाचासंरब्धंपरुषंतथा ॥ ६ ॥ नतावत्सदृशंनामसचिवैरुपजीविभिः ॥ विप्रियंनृपतेर्वक्तुंनिग्रहेप्रग्रहेप्रभोः ॥ ७ ॥ रिपूणांप्रतिकूलानांयुद्धार्थमभिवर्तताम् ॥ उभाभ्यांसदृशंनामवक्तुमप्रस्तवेस्तवम् ॥ ८ ॥ आचार्योगुरवोवृद्धावृथावांपर्युपासिताः ॥ सारंयद्राजशास्त्राणामनुजीव्यंनगृह्यते ॥ ९ ॥ गृहीतोवानविज्ञातोभारोज्ञानस्यवाह्यते ॥ ईदृशैःसचिवैर्युक्तोमूर्खैर्दिष्ट्याधराम्यहम् ॥ १० ॥

कहे, यह उपजीवी मंत्रियोंको किसी प्रकारसे कहनें कर्त्तव्य नहीं हैं, और अपनें स्वामीके प्रति निग्रह या अनुग्रह करनाभी योग्य मंत्रीका कार्य नहीं है ॥ ७ ॥ तुम लोगोंनें विना पूछेजानें परभी जोकि युद्धकरनेंके लिये आये श्रेष्ठशत्रुके बलकी श्रेष्ठताका वर्णन किया, क्या यह राक्षस राजके मंत्रीका उचित कार्य हुआहै? ॥ ८ ॥ हम समझ गये कि तुम दोनों जनोंनें; आचार्य, गुरु, और वृद्ध लोगोंकी वृथा पूजा कीहै, कारणकि तुम लोगोंको जो सीखनी चाहियेथी वैसी सार राजनीति तुमनें अभीतक नहीं सीखीहै ॥ ९ ॥ यदि कुछ राजनीतिका मर्म समझभी गयेहो परन्तु तुम लोगोंनें उसको ग्रहण नहीं कियाहे मूर्ख पुरुषके समान तुम केवल शास्त्रके भारको धारण कियेहो हमारा कैसा भाग्यहै कि हम ऐसे अयोग्य

होकर एकाग्र चित्तसे इधरको देख रहेहैं ॥ २९ ॥हे राजन्! यह रंभनामे यूथपहै विन्ध्याचल, कृष्णाचल और सह्य इन तीन मनोहर पर्वतोंमें इसके रहनेका स्थानहै॥ ३० ॥ इस वानर श्रेष्ठके संग २ में दशलाख तीस असंख्य अतिभयंकर रूपवाली ॥ ३१ ॥ घोर विक्रमकारी वानरोंकी सैना चला करती है यहभी अपने ही वानरोंके तेज प्रभावसे लंकाको मर्दन किया चाहता है ॥३२॥और यह जो अपने कानोंको सकोड़ता और वारंवार जंभाई लेरहाहै जिसको अपनी मृत्युका भय नहीं है; और यह अपनी सेनाकी सहायताभी नहीं प्रार्थना करताहै ॥ ३३ ॥ क्रोधके मारे जिसका सर्व शरीर कांप रहाहै, और जो बलवान अपनी पूंछको नचाय २ तिरछाहोकर देख २ सिंह नाद कररहाहै ॥ ३४ ॥ जोकि अपनी वीरताईके गर्व

विंध्यंकृष्णगिरिंसह्यंपर्वतंचसुदर्शनम् ॥ राजन्सततमध्यास्तेसरंभोनामयूथपः ॥ ३० ॥ शतंशतसहस्राणांत्रिंशच्चहरिपुंगवाः ॥ ३१ ॥ यंयांतंवानराघोराश्चंडाश्चंडपराक्रमाः॥ परिवार्यानुगच्छंतिलंकांमर्दितुमोजसा ॥३२॥ यस्तुकर्णौविवृणुतेजृंभतेचपुनःपुनः ॥ नतुसंविजतेमृत्योर्नचसेनांप्रधावति ॥ ३३ ॥ प्रकंपतेचरोषेणतिर्यक्च पुनरीक्षते ॥ पश्यलांगूलविक्षेपंक्ष्वेडत्येषमहाबलः ॥ ३४ ॥ महौजसावीतभयोरम्यंसाल्वेयपर्वतम् ॥ राजन्सततमध्यास्तेशरभोनामयूथपः ॥ ३५ ॥ एतस्यबलिनःसर्वेविहारानामयूथपाः ॥ राजञ्छतसहस्राणिचत्वारिंशत्तथैवच ॥ ३६ ॥ यस्तुमेघइवाकाशंमहानावृत्यतिष्ठति ॥ मध्येवानरवीराणांसुराणामिववासवः ॥ ३७ ॥ भेरीणामिवसन्नादोयस्यैषश्रूयतेमहान् ॥ घोषःशाखामृगेंद्राणांसंग्राममभिकांक्षताम् ॥ ३८ ॥ एषपर्वतमध्यास्तेपारियात्रमनुत्तमम् ॥ युद्धेदुष्प्रसहोनित्यंपनसोनामयूथपः ॥ ३९ ॥

से सदा निडर रहताहै; और रमणीक साल्वेयनाम पर्वतपर जो रहताहै हे राजन्! इस बडे भारी यूथपका नाम शरभ है॥ ३५ ॥ हे राजन्! इस शरभके एक लक्ष चालीस विहार यूथप हैं ॥ ३६ ॥ मेघ जिस प्रकारआकाशको ढंककर स्थित होते हैं उन मेघोंकीही समान जो वानर देवताओंके बीचमें इन्द्रजीकी समान आकाशको ढककर बैठता है ॥ ३७ ॥ भेरी बजनेंके शब्दकी समान जिसके पीछे चलनेंवाले युद्धकी आशा लगाये वानरोंका गर्जन बराबर सुनाई आताहै ॥ ३८ ॥ यह परिपात्र पर्वतश्रेष्ठ पर सदा रहा करताहै, और युद्धमें सहनें योग्य नहीं है। यह पनस

कर रावणकी बन्दना हाथजोड करते हुए ॥ १७ ॥ फिर राक्षसराज रावण उन भयविहीन, शूर विश्वासी दूतोंसे बोला ॥ १८ ॥ कि तुम लोग रामचंद्र और परम प्रसन्नता सहित जो मंत्री लोग उनके संग आयेहैं,उनके कार्य व मनकी बात जाननेंके लिये यहांसे शीघ्र ही वहां पर जाओ ॥ १९ ॥ हमारे शत्रु लोग किस प्रकारसें सोतेहैं? और जागते रहकर क्याकरते हैं? और अब आगेको क्या करैंगे? यह बातें तुम लोग बड़ी सावधानीके साथ भलीभांती जान बूझकर यहां चले आओ ॥ २० ॥ कारणकि चतुर राजा लोग दूतोंकी सहायतासे शत्रु लोगोंकी अवस्था जानकर रणभूमिमें सरलतासे उनको भगाय देतेहैं ॥ २१ ॥ दूत गण "जो आज्ञा" कह और शार्दूलको आगे कर हर्षित अंतःकरणसे राक्षसराज रावणकी प्रदक्षिणा

तानब्रवीत्ततोवाक्यंरावणोराक्षसाधिपः ॥ चरान्प्रत्यायिकाञ्छूरान्धीरान्विगतसाध्वसान् ॥१८॥ इतोगच्छतरामस्य व्यवसायंपरीक्षितुम् ॥ मंत्रेष्वभ्यंतरायेऽस्यप्रीत्यातेनसमागताः ॥ १९ ॥ कथंस्वपितिजागर्तिकिमद्यचकरिष्यति ॥ विज्ञायनिपुणंसर्वमागंतव्यमशेषतः ॥ २० ॥ चारेणविदितःशत्रुःपंडितैर्वसुधाधिपैः ॥ युद्धेस्वल्पेनयत्नेनसमासाद्यनिरस्यते ॥२१॥ चारास्तुतेतथेत्युक्त्वाप्रहृष्टाराक्षसेश्वरम्॥शार्दूलमग्रतःकृत्वाततश्चक्रुःप्रदक्षिणम् ॥ २२ ॥ततस्तंतुमहात्मानंचाराराक्षससत्तमम् ॥ कृत्वाप्रदक्षिणंजग्मुर्यत्ररामःसलक्ष्मणः॥२३॥ तेसुवेलस्यशैलस्यसमीपेरामलक्ष्मणौ ॥ प्रच्छन्नाददृशुर्गत्वाससुग्रीवविभीषणौ ॥ २४ ॥ प्रेक्षमाणाश्चमूंतांचबभूवुर्भयविह्वलाः ॥ तेतुधर्मात्मनादृष्टाराक्षसेंद्रेणराक्षसाः ॥ २५ ॥ विभीषणेनतत्रस्थानिगृहीतायदृच्छया ॥ शार्दूलोग्राहितस्त्वेकःपापोयमितिराक्षसः ॥ २६ ॥

करनें लगे ॥ २२ ॥ फिर वह राक्षसश्रेष्ठ महोदरकी प्रदक्षिणा करके जहां पर श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके सहित विराजमानथे उस स्थानमें गमन करतेहुए ॥ २३ ॥ दूत लोगोंनें गमन कर सुवेल पर्वतके समीपमें गुप्तभावसे टिककर श्रीरामचंद्रजीके सहित लक्ष्मण सुग्रीव, और विभीषणको देखा ॥ २४ ॥ और इस बड़ी भारी वानरोंकी सैनाको देखतेही यह दूतगण भयके मारे अत्यन्त विह्वल होगये; परन्तु उन राक्षसोंको देखकर धर्मात्मा राक्षसोंके राजा ॥ २५ ॥ विभीषणजीनें बन्दरोंसे उनको इच्छा पूर्वक पकड़वाय लिया, और "पापाशय" कहकर, उनमेंसे

पराक्रम वाले यूथप देखते हैं; उनको अपने जीवनका कुछ भी माया मोह नहीं है;वह श्रीरामचंद्रजीके लिये पराक्रम प्रकाश करके अपना जीवन देदे नेको तैयार हुए हैं;अब हम इन सबका समाचार आपसे कहते हैं॥ १ ॥ जिसकी पूंछके अत्यन्त चिकने, लम्बे लाल पीले उजले और अत्यन्त श्वेत वाल इधर उधर छिटके हुए हैं ॥२॥ और इधर उधर छिटकनेके कारण सूर्य किरणकी समान प्रकाशित होरहे हैं; और भूमि स्पर्श करते चलतेहैं जिसके बलका कुछ परिणाम नहीं यह वानर हरनामसे विख्यात है॥३॥ इसके ही पीछे सैकडों हजारों वानरसैना वृक्षोंको धारण किये चलती है इन सबकी कामना लंकापर चढ़ाई करनेकी है ॥ ४ ॥ यह सबही यूथपति वानरराज सुग्रीवजीके किङ्कर युद्ध करनेके लिये आये हैं। महा

स्निग्धायस्यबहुव्यामादीर्घलांगूलमाश्रिताः ॥ ताम्राःपीताःसिताःश्वेताःप्रकीर्णाघोरकर्मणः ॥ २ ॥ प्रगृहीताः प्रकाशंतेसूर्यस्येवमरीचयः ॥ पृथिव्यांचानुकृष्यंतेहरोनामैषवानरः ॥ ३ ॥ यंपृष्ठतोनुगच्छंतिशतशोथसहस्र शः ॥ वृक्षानुद्यम्यसहसालंकारोहणतत्पराः ॥ ४ ॥ यूथपाहरिराज्यस्यकिंकराःसमुपस्थिताः ॥ नीलानिवमहामेघां स्तिष्ठंतोयांस्तुपश्यसि ॥ ५ ॥ असितांजनसंकाशान्युद्धेसत्यपराक्रमान् ॥ असंख्येयाननिर्देशान्परंपारमिवो दधेः ॥ ६ ॥ पर्वतेषुचयेकेचिद्विषयेषुनदीषुच ॥ एतेत्वामभिवर्तंतेराजन्नृक्षाःसुदारुणाः ॥ ७ ॥ एषांमध्येस्थि तोराजाभीमाक्षोभीमदर्शनः॥ पर्जन्यइवजीमूतैःसमंतात्परिवारितः ॥ ८ ॥ ऋक्षवंतंगिरिश्रेष्ठमध्यास्तेनर्मदांपिबन् ॥ सर्वर्क्षाणामधिपतिर्धूम्रोनामैषयूथपः ॥ ९ ॥

मेघकी समान नील वर्णके खडे हुए जिन वानरोंको आप देखते हैं ॥ ५ ॥ उनका रंग अंजनकी समान है और युद्धमें यह सत्य पराक्रम के करने वालेहैं, और समुद्रके तीरवाली वालूके कणोंकी समान इनकी संख्याका पार नहीं पाया जाता ॥ ६ ॥ यह पर्वत नद नदी इत्यादि में वास किया करते हैं हे राजन्! देखिये, यह जो दारुण रीछ सब आपकी ओरको देख रहे हैं ॥ ७ ॥ हे राजन्! इनके बीचमें ही इनका यूथप बैठा हुआ है; वह देखनेंमे भयंकर आकार है; और उसके दोनों नेत्र भी भयंकर हैं; आकाश जिस प्रकार सबभांति मेघमालासे ढककर शोभायमान होताहै; वैसेही यह यूथपति अपूर्व शोभासे सुशोभित है ॥ ८ ॥ पर्वतोंमें श्रेष्ठ ऋक्षवान पर्वतपर इसका वास और सदा नर्मदा नदीके निर्मल जल

उन बलवान वानरश्रेष्ठोंके बलाबलका विचार करना दूत लोगोंको साध्य नहीं ॥ ५ ॥ हे राजन्! पर्वताकार वानरगण चारों ओरसे मार्गोंकी इस प्रकारसे रक्षा करतेहैं, कि उन वानर श्रेष्ठोंके बलाबलका विचार करनातो दूर रहै, हम उनसे कोई प्रश्न या बात चीत कुछभी न करसके ॥ ६ ॥ हम लोग घूमते२ जब रामचंद्रजीकी सैनामें पहुंच गये,तब विभीषणजीके साथ रहनेंवाले चार मंत्री राक्षसोंनें हमको पहँचान लिया, और पहँचान कर उन्होंनें हमें पकड़ बांधकर सेनामें इधर उधर घुमाया ॥ ७ ॥ बांधकर लेजानें व घुमानेंके समय वानरोंकी सैनाने हमको जांघ, मूका, दन्त, लातसे भली भांति मार कूटकर काटा व डराया ॥ ८ ॥ इस प्रकारसे सब कहीं घुमाय २ फिर वह हमको रामचंद्रजीके पास लेगये; उस समय

नापिसंभाषितंशक्याःसंप्रश्नोत्रनलभ्यते ॥ सर्वतोरक्ष्यतेपंथावानरैःपर्वतोपमैः ॥ ६ ॥ प्रविष्टमात्रेज्ञातोहंबलेतस्मि न्विचारिते ॥ बलाद्गृहीतोरक्षोभिर्बहुधाऽस्मिविचारितः ॥ ७ ॥ जानुभिर्मुष्टिभिर्दंतैस्तलैश्चाभिहतोभृशम् ॥ परिणी तोस्मिहरिभिर्बलमध्येअमर्षणैः ॥ ८ ॥ परिणीयचसर्वत्रनीतोहंरामसंसदि ॥ रुधिरस्राविदीनांगोविह्वलश्चलितेंद्रि यः॥ ९ ॥ हरिभिर्वध्यमानश्चयाचमानःकृतांजलिः ॥ राघवेणपरित्रातोमामेतिचयदृच्छया ॥ १० ॥ एषशैलशिला भिस्तुपूरयित्वामहार्णवम् ॥ द्वारमाश्रित्यलंकायारामस्तिष्ठतिसायुधः ॥ ११ ॥ गरुडव्यूहमास्थायसर्वतोहरिभि र्वृतः ॥ मांविसृज्यमहातेजालंकामेवातिवर्तते ॥ १२ ॥ पुरप्राकारमायातिक्षिप्रमेकतरंकुरु ॥ सीतांवापिप्रय च्छाशुयुद्धंवापिप्रदीयताम् ॥ १३ ॥

अत्यन्त मार पड़नेंके कारण हमारा शरीर लोहू लुहान होरहाथा, व इन्द्रियें विचलित होंनेके कारण हम विह्वल होरहेथे ॥ ९ ॥ जब कि वानर गण हमारे प्राण लेनेंको तैयार हुए उस समय हम सबनें हाथ जोड़कर रामचंद्रजीसे प्राणोंकी भीख मांगी,तब उन्होंने दया करकै हमैं छुड़ाय दि या और कहा॥१०॥"हे दूतगण! तुम राक्षस राजके निकट पहुंचकर उस्से कहना कि रामचंद्र पर्वत और शिलाओंके द्वारा समुद्रमें सेतु बांधकर लंकाके द्वारपर शस्त्र सहित टिके हुएहैं ॥ ११॥ वह गरुड़ व्यूह बनाये और वानरोंसे वेष्टित होकर युद्धकी राह परख रहेहैं; उन्होंनें हमको तौ छोड़ दिया, परन्तु लंकाको वह घेरेही पड़ेहैं ॥ १२ ॥ अब या तौ उन रामचंद्रके साथ युद्ध कीजिये, अथवा उन्हें सीता लौटा दीजिये, कारण

की नहीं देखी जाती यह वानरोंका पितामह सन्नादन नामक यूथपति है, कदाचित् इसका नाम तौ आपने सुनाही होगा ॥ १८ ॥ इसने बुद्धिमान इन्द्रजीसे संग्राम करकै जय प्राप्तिकी थी, यह वही सन्नादन नाम यूथपोंका भी यूथपहै ॥१९॥ और यह जो वानर युद्धके समय इन्द्रके समान पराक्रमी दिखाई देताहै यह गन्धर्वकी कन्यामें अग्निसे उत्पन्न हुआहै ॥२०॥ जब कि देवासुर संग्राम हुआ तब यह वानर देवता लोगोंकी ओरसे लड़नको खड़ा हुआथा, और जहांपर कुबेरजीकी राजधानी अलकापुरीहै वही स्थान इसका विहार स्थानहै ॥ २१ ॥ तुम्हारे भ्राता कुबेरजी जिस प्रकार बहु किन्नरसेवित पर्वतोंपर विहार किया करतेहैं; यह वानर उनके विहार करनेमें बड़ा सुख देताहै ॥ २२ ॥ और वनमें श्रेष्ठ बलवान

येनयुद्धंतदादत्तंरणेशक्रस्यधीमता ॥ पराजयश्चनप्राप्तःसोयंयूथपयूथपः ॥ १९ ॥ यस्यविक्रममाणस्यशक्रस्येवपराक्रमः ॥ एषगंधर्वकन्यायामुत्पन्नःकृष्णवर्त्मना ॥ २० ॥ तदादेवासुरेयुद्धेसाह्यार्थंत्रिदिवौकसाम् ॥ यत्रवैश्रवणोराजाजंबूमुपनिषेवते ॥ २१ ॥ योराजापर्वतेन्द्राणांबहुकिन्नरसेविनाम् ॥ विहारसुखदोनित्यंभ्रातुस्तेराक्षसाधिप ॥२२॥ तत्रैषरमतेश्रीमान्बलवान्वानरोत्तमः ॥ युद्धेष्वकत्थनोनित्यंक्रथनोनामयूथपः ॥ २३ ॥ वृतःकोटिसहस्रेणहरिणांसमवस्थितः ॥ एषैवाशंसतेलंकांस्वेनानीकेनमर्दितुम् ॥ २४ ॥ योगंगामनुपर्येतित्रासयन्गजयूथपान् ॥ हस्तिनांवानराणांचपूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ २५ ॥ एषयूथपतिर्नेतागर्जन्गिरिगुहाशयः ॥ गजान्रोधयतेवन्यानारुजंश्चमहीरुहान् ॥२६॥

वहींपर । वैसेही विहार किया करताहै, युद्ध करनेमें इसकी समान और कोई वीर दिखाई नहीं देता, इस यूथपति वानरका नाम क्रथन है ॥ २३ ॥ इसके आधीनमें करोड हजार वानरोंकी सैना रहतीहै; यह वीरभी केवल अपनी सेनासेही लंका नगरीको मर्दन करनेकी इच्छा करताहै ॥ २४ ॥ जो वानर राजरूपी शम्बसादन असुरके साथ वानर श्रेष्ठ केशरीका संग्राम हुआ जान, और वही वैर याद करकै गंगाके समीप टिके हुए गजयूथोंको त्रासित किया करताहै इस सैनापतिको आप देखिये ॥ २५ ॥ हे महाराज! यहां यूथपति जब तक पर्वतकी गुहामें शयन करकै गर्जन किया करताहै, उस समय गजयूथप गण दूरसे इसके उस भयंकर शब्दको सुनकर खडे हो जातेहैं; और पेड़भी टूट जाते हैं ॥ २६ ॥

के दूसरे पुत्र हनुमान वानरनें अकेलेही सब राक्षसोंका अनादर कर डालाथा ॥२१॥ वीर्यवान सुषेण जो कि धर्मात्मा धर्मका पुत्रहै, वहभी यहां आयाहै, और सरल स्वभाव युक्त चंद्रमाका पुत्र दधिमुख वानरभी इस सैनामें हैं ॥ २२ ॥ यहांपर सुमुख, दुर्मुख और वेगदर्शी नामक यह तीन वानरभी आयेहैं उनको देखनेंसेही ज्ञात होताहै कि मानो विधाताने वानर रूपसें साक्षात् मृत्युकोही रचडालाहै ॥ २३ ॥ अग्निका पुत्र नील स्वयं इस सैनाका सेनापति होकर आयाहै । और पवनपुत्र विख्यात हनुमानभी इस सैनामें टिका हुआहै ॥ २४ ॥ इन्द्रका नाती वालिका पुत्र अंगदभी अश्विनी कुमारके पुत्र महाबली मैन्द व द्विविदभी इस वाहिनीमें हैं ॥ २५ ॥ और कालान्तक यम सदृश वैवस्वतादि यमके पांच पु

सुषेणश्चात्रधर्मात्मापुत्रोधर्मस्यवीर्यवान् ॥ सौम्यःसोमात्मजश्चात्रराजन्दधिमुखःकपिः ॥ २२ ॥ सुमुखोदुर्मुख
श्चात्रवेगदर्शीचवानरः ॥ मृत्युर्वानररूपेणनूनंसृष्टःस्वयंभुवा ॥ २३ ॥ पुत्रोहुतवहस्यात्रनीलःसेनापतिःस्वय
म् ॥ अनिलस्यतुपुत्रोत्रहनूमानितिविश्रुतः ॥ २४ ॥ नप्ताशक्रस्यदुर्धर्षोबलवानंगदोयुवा ॥ मैंदश्चद्विविदश्चो
भौबलिनावश्विसंभवौ ॥ २५ ॥ पुत्रावैवस्वतस्याथपंचकालांतकोपमाः ॥ गजोगवाक्षोगवयःशरभोगंधमादनः ॥
॥ २६ ॥ दशवानरकोट्यश्चशूराणांयुद्धकांक्षिणाम् ॥ श्रीमतांदेवपुत्राणांशेषंनाख्यातुमुत्सहे ॥ २७ ॥ पुत्रोदशरथ
स्यैषसिंहसंहननोयुवा ॥ दूषणोनिहतोयेनखरश्चत्रिशिरास्तथा ॥ २८ ॥ नास्तिरामस्यसदृशोविक्रमेभुविकश्चन॥
विराधोनिहतोयेनकबंधश्चांतकोपमः ॥ २९ ॥

त्र, गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, और गन्धमादन यह सबही वीर यहांपर टिके हुएहैं ॥ २६ ॥ देवताओंके पुत्र और जो दशकोटि शूर श्रीमान् वानरगण जो युद्धकी कामना करके लंकामें आयेहैं, उनके विषयको हमसे कहकर पूरा नहीं किया जायगा ॥ २७ ॥ जो युवा अवस्थाके हैं, वीरकुलमें प्रथम गिनेंजानेंके योग्य वे दशरथमहाराजके पुत्रहैं, [illegible] हाथसे खर दूषण और त्रिशिराका संहार हुआहै ॥ २८ ॥ अधिक क्या कहैं! उन श्रीरामचंद्रजीकी समान [illegible] ॥ अब या तौ [illegible]सीका पराक्रम नहीं देखा जाताहै, उन्होंनें युद्धमें अजीत विराध

अरुण वर्णकेही दृष्टि आते ॥ ३५ ॥ हे महाराज ! जिस रमणीक पर्वतपर सदा महर्षि लोग रहा करतेहैं, और उसको नहीं त्याग करते; और जहां सर्व कामनावाले वृक्ष सर्व फलोंसे युक्त ॥ ३६ ॥ व जिस पर्वत श्रेष्ठपर बडे मोलके मधु आदि मीठे २ पदार्थ उत्पन्न होते, हे राजन् तिसही सुवर्णके पर्वत ॥ ३७ ॥ मुख्यपर वानरोंमें मुख्य केशरी नाम यूथप रहताहै ॥ साठ हजार रमणीक काञ्चन पर्वतोंके मध्यमें॥३८॥ सोवर्णि मेरू नामक जो सबसे बड़ा पर्वतहै, पाप रहित जैसे राक्षसोंमें आपहैं पीले रंगके और बहुत श्वेत व बहुत ताम्रवत अरुणमुख वाले, और मधुकी समान पीले रंगवाले ॥ ३९ ॥ वानर इस पर्वत पर वसतेहैं, इन सबके बडे तीक्ष्ण दंत, और नख आयुधहैं; सिंहकी

यस्यप्रस्थंमहात्मानोनत्यजंतिमहर्षयः ॥ सर्वकामफलावृक्षाःसर्वेफलसमन्विताः ॥ ३६ ॥ मधूनिचमहार्हाणियस्मि न्पर्वतसत्तमे ॥ तत्रैषरमतेराजन्रम्येकांचनपर्वते ॥३७॥ मुख्योवानरमुख्यानांकेसरीनामयूथपः ॥ षष्टिर्गिरिसहस्रा णिरम्याःकांचनपर्वताः ॥३८॥ तेषांमध्येगिरिवरस्त्वमिवानघरक्षसाम् ॥ तत्रैकेकपिलाःश्वेतास्ताम्रास्यामधुपिंगलाः ॥ ३९ ॥निवसंत्यंतिमगिरौतीक्ष्णदंष्ट्रानखायुधाः ॥ सिंहाइवचतुर्दंष्ट्राव्याघ्राइवदुरासदाः ॥ ४० ॥ सर्वेवैश्वानरसमाज्व लदाशीविषोपमाः ॥सुदीर्घांचितलांगूलामत्तमातंगसन्निभाः ॥४१॥ महापर्वतसंकाशामहाजीमूतनिःस्वनाः ॥ वृत्तपिंग लनेत्राहिमहाभीमगतिस्वनाः ॥ ४२ ॥ मर्दयंतीवतेसर्वेतस्थुर्लंकासमीक्ष्यते ॥ एषचैषामधिपतिर्मध्येतिष्ठतिवीर्य वान् ॥ ४३ ॥ जयार्थीनित्यमादित्यमुपतिष्ठतिवीर्यवान् ॥ नाम्नापृथिव्यांविख्यातोराजन्शतबलीतियः ॥ ४४ ॥

समान चौदन्ते, व्याघ्रकी समान बडे स्वभाव युक्त ॥ ४० ॥ सब अग्निकी समान देदीप्यमान तीक्ष्ण विषवाले विषधर सर्पोंकी समान बडी भारी और चौडी पूछवाले ॥ ४१ ॥ मतवाले हाथी महापर्वत और महामेघकी समान पिंगल वर्ण गोल नेत्रयुक्त महाभयं कर गतिवाले और भयंकर शब्द करनेंवाले जो वानर वास करतेहैं ॥ ४२ ॥ देखिये; मानो वही सब वानरगण यह लंकाको मर्दन करनेंके लिये आय रहेहैं । इनके बीचमें इनका वीर्यवान यूथप टिका हुआहै ॥ ४३ ॥ और वह नित्य राज्यकी कामना करके सूर्य भगवानकी पूजा किया

रावणनें मंत्रियोंसे कहला भेजा कि हे मंत्रिगण! अब हमारे मंत्रणा करनेंका समय आय पहुंचाहै; इसलिये शीघ्रही सावधान होकर तुम यहांपर आओ॥३॥राक्षसराज रावणकी आज्ञा जानकर मंत्रिलोग शीघ्रही वहांपर आय पहुंचे तव लंकापति रावण उन राक्षस मंत्रिलोगोंके सहित मंत्रणा करनें लगा ॥ ४ ॥ और जब मंत्रणाका कार्य पूरा होगया, तब मंत्रिलोगोंको विदा देकर दुद्धर्ष रावण अपने स्थानको चलागया ॥ ५ ॥ तिसके पीछे राक्षसनाथ मायावी रावण महावलवान महादुष्ट विद्युज्जिह्वनाम राक्षसको साथ ले जहां रामप्यारी श्रीजानकीजी थीं वहांपर जानेंकी इच्छा

मंत्रिणःशीघ्रमायांतुसर्वेवैसुसमाहिताः ॥ अयंनोमंत्रकालोहिसंप्राप्तइतिराक्षसाः ॥३॥ तस्यतच्छासनंश्रुत्वामंत्रिणोऽभ्यागमन्द्रुतम् ॥ ततःसमंत्रयामासराक्षसैःसचिवैःसह ॥ ४ ॥ मंत्रयित्वातुदुर्धर्षःक्षमंयत्तदनंतरम् ॥ विसर्जयित्वासचिवान्प्रविवेशस्वमालयम् ॥ ५॥ ततोराक्षसमादायविद्युज्जिह्वंमहाबलम् ॥ मायाविनंमहामायंप्राविशद्यत्रमैथिली ॥ ६ ॥ विद्युज्जिह्वंचमायाज्ञमब्रवीद्राक्षसाधिपः॥ मोहयिष्यावहेसीतांमाययाजनकात्मजाम् ॥ ७॥ शिरोमायामयंगृह्यराघवस्यनिशाचर ॥ मांत्वंसमुपतिष्ठस्वमहच्चसशरंधनुः ॥ ८ ॥ एवमुक्तस्तथेत्याहविद्युज्जिह्वोनिशाचरः ॥ दर्शयामासतांमायांसुप्रयुक्तांसरावणे ॥ ९ ॥ तस्यतुष्टोऽभवद्राजाप्रददौचविभूषणम् ॥ अशोकवनिकायांचसीतादर्शनलालसः ॥ १० ॥

******

करता हुआ ॥ ६ ॥ जानेंके समय रावण भली भांति मायाके जाननेंवाले विद्युज्जिह्व नामक राक्षससे बोला कि हे निशाचर! आओ हम दोनों जनें मायाके बलसे जनककुमारी सीताजीको मोहित करें ॥ ७ ॥ इसलिये तुम मायाविरचित श्रीरामचंद्रजीका मस्तक और एक बाण सहित धनुष ग्रहण करके सीताके समीप हमारे पास आना ॥ ८ ॥ तब [illegible] विद्युज्जिह्व राक्षसनें रावणके वचनोंको मान माया विस्तार करके उसको रामचंद्रका मायामय कटा हुआ शिर दिखाया ॥ ९ ॥ [illegible] और [illegible] । रावण बहुत सन्तुष्ट हुआ और पारितोषिक स्वरूप [illegible]

इन [illegible] तब [illegible]रोड़ हजार, शंकु सहस्र, और शत वृन्द ॥ ४ ॥ औ[illegible]या जाय तो
न्धाके रहने वाले सुग्रीवके मंत्री यह वानरगण देवता और गन्धर्वके वार्यसे वानरोंकी जातिमें उत्पन्न हुएहैं; और यह इच्छानुसार [illegible] समुद्र
करनें वालेहैं ॥ ५ ॥ देवताओंकी समान दोनों एकहीसे रूपवाले मैन्द और द्विविद नामक जो वानर आप देखतेहैं इसकी समान पुरुष लंघन
वाला और कोई नहींहै ॥ ६ ॥ कारणकि ब्रह्माजीकी आज्ञासे इन दोनों वानरोंने अमृतपान कियाहै; इस समय यह दोनोंभी अपने प्रतापसे
लंकाके उखाड़नेंका यत्न कर रहेहैं ॥७॥ मदान्ध हाथीकी समान जिस वानरको तुम खड़े देखतेहो, इस वीरने क्रोधित होकर बल पूर्वक समुद्र

एषांकोटिसहस्राणिनवपंचचसप्तच ॥ तथाशंकुसहस्राणितथावृंदशतानिच ॥ ४ ॥ एतेसुग्रीवसचिवाःकिष्किंधानि
लयाःसदा ॥ हरयोदेवगंधर्वैरुत्पन्नाःकामरूपिणः ॥ ५ ॥ यौतौपश्यसितिष्ठंतौसमानौदेवरूपिणौ ॥ मैंदश्चद्विविद
श्चैवताभ्यांनास्तिसमोयुधि ॥६॥ ब्रह्मणासमनुज्ञाताअमृतप्राशिनावुभौ ॥ आशंसेतेयथालंकामेतौमर्दितुमोजसा॥७॥
यंतुपश्यसितिष्ठंतंप्रभिन्नमिवकुंजरम् ॥ योबलात्क्षोभयेत्क्रुद्धःसमुद्रमपिवानरः ॥ ८ ॥ एषोऽभिगंतालंकायांवैदेह्या
स्तवचप्रभो ॥ एनंपश्यपुरादृष्टंवानरंपुनरागतम् ॥ ९ ॥ ज्येष्ठःकेसरिणःपुत्रोवातात्मजइतिश्रुतः ॥ हनूमानितिविख्या
तोलंघितोयेनसागरः ॥ १० ॥ कामरूपोहरिश्रेष्ठोबलरूपसमन्वितः ॥ अनिवार्यगतिश्चैवयथासततगःप्रभुः ॥ ११ ॥

कोभी खलबलाय डालताहै ॥ ८ ॥ हेराजन् जो लंकामें प्रवेश करके जानकीजीका और आपका पता लगा गयाथा, आपनें इसको पहलेभी
देखाहै, परन्तु देखिये । अब यह फिर आयाहै ॥ ९ ॥ यह केशरीका बड़ा बेटा पवनकुमारके नामसे विख्यातहै, इसका दूसरा नाम हनुमानहै;
यही समुद्रको लांघकर जानकीके देखनेको यहां आयाथा ॥ १० ॥ हे प्रभो! यह इच्छानुसार रूप धारण करनेंवाला वानरोंमें श्रेष्ठ और रूप
बल सम्पन्नहै, जिस प्रकार पवनकी गति कोई नहीं रोक सकता, वैसेही उनकी गति नहीं रुकसकती इस कारण जहां इच्छाहो वहां पर

और जिस समय सूर्य अस्ताचलको चले, उसी समय उन्होंने [illegible]
वहां [illegible] ॥ ११ ॥ [illegible]

इति श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणे भाषाटीकासमेते आरण्यकाण्डं संपूर्णम्

[illegible] ...या जाय तो

अंतरयह, और [illegible] हे महाराज ! धर्म जिस्से कभी चलायमान नहीं होता, एक समुद्र धर्मका उल्लंघन नहीं करते, वेदविदगणोंके अग्रणीय जो वीर ब्रह्मअस्त्र और समस्त वेद जाने हुएहैं ॥ १९ ॥ जो अपने बाणोंको छो[illegible] आकाश मंडलको भिन्न और पृथ्वीको विदारण कर सकतेहैं; जिनका पराक्रम इन्द्रकी समान, और क्रोध मृत्युकी समान भयानकहै ॥ २० ॥ और जनस्थानसे आप इनकीही भार्या सीताको हरण करके ले आयेहैं, यह वही रामचंद्रजी आपसे युद्ध करनेंके लिये यहां पर आयेहैं ॥ २१ ॥ श्रीरामचंद्रजीकी दाहिनी और यह जो विशुद्ध कांचन वर्ण चौडी छाती वाले अरुणनयन आकुञ्चित, नील, केश दाम, भूषित (काले घुंघरारे

यस्मिन्नचलतेधर्मोयोधर्मंनातिवर्तते॥योब्राह्ममस्त्रंवेदांश्चवेदवेदविदांवरः ॥१९॥ योभिंद्याद्गगनंबाणैर्मेदिनींवापिदारयेत् ॥ यस्यमृत्योरिवक्रोधःशक्रस्येवपराक्रमः॥२०॥ यस्यभार्याजनस्थानात्सीताचापिहृतात्वया॥सएषरामस्त्वांराजन्योद्धुंसमभिवर्तते ॥ २१ ॥ यस्यैषदक्षिणेपार्श्वेशुद्धजांबूनदप्रभः ॥ विशालवक्षास्ताम्राक्षोनीलकुंचितमूर्धजः ॥ २२ ॥ एषोहिलक्ष्मणोनामभ्रातुःप्रियहितेरतः ॥ नयेयुद्धेचकुशलःसर्वशस्त्रभृतांवरः ॥ २३ ॥ अमर्षीदुर्जयोजेताविक्रांतश्चजयीबली ॥ रामस्यदक्षिणोबाहुर्नित्यंप्राणोबहिश्चरः ॥ २४ ॥ नह्येषराघवस्यार्थेजीवितंपरिरक्षति ॥ एषैवाशंसतेयुद्धेनिहंतुंसर्वराक्षसान् ॥ २५ ॥ यस्यसव्यमसौपक्षंरामस्याश्रित्यतिष्ठति ॥ रक्षोगणपरिक्षिप्तोराजाह्येषविभीषणः ॥२६॥

वालोंसे शोभायमान) वीरको जो आप देखते हैं ॥ २२ ॥ यही श्रीरामचंद्रजीका हित करनेंमें रत उनके छोटे भाई लक्ष्मणनामकहैं । नीतिशास्त्र और युद्धविद्या इन दोनों बातोंमें यह बडे चतुरहैं शस्त्र धारियोंमें श्रेष्ठहैं ॥ २३ ॥ इनको रणमें कोई नहीं जीत सकता, श्रीरामचंद्रजीका अपकार करनेंवालेके ऊपर यह क्षमा नहीं करते; सबको जीतनेंवाले, विक्रमवान, महाबली, श्रीरामचंद्रजीके मानों दहिनें हाथ व बाहरके प्राण समानहैं ॥ २४ ॥ यह लक्ष्मण अपने भ्राता श्रीरामचंद्रजीके हितकारी कार्यमें ऐसे अनुरागीहैं, कि इनके लिये अपने प्राणोंका भी त्यागनेंका मोह भी नही करते हे महाराज ! यह वीरभी इकलेही सर्व राक्षसोंका संहार करनेंके लिये कहतेहैं ॥ २५ ॥ चर आपने मंत्री राक्ष

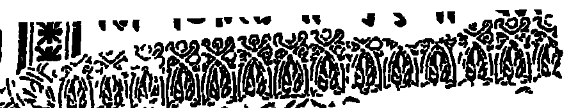

नेंसे एक महावृन्द, और हजार महावृन्दको सौसे गुणा करनेंसे पद्म कहलाताहे ॥ ३५ ॥ जो हजार पद्मको शतसे गुणा किया जाय तौ एक महापद्म होताहे, हजार महापद्मको शतसे गुणाकरनेंसे एक खर्व होताहे ॥ ३६ ॥ सहस्र खर्वको शतद्वारा गुणन करनेंसे एक समुद्र होताहे, और हजार समुद्रको शतसे गुणा करनेंसे एक महोघ कहलाता हे ॥ ३७ ॥ इस गणिंतसे सहस्र महाकरोड सौशंकु हजार महाशंकु सहस्र कोटि, शत २ शंकु व हजार महापद्म, शत वृन्द, ॥ ३८ ॥ हजार महावृन्द, और शत वृन्द व हजार महापद्म, और शत खर्व ॥ ३९ ॥ और शत समुद्र, शत महोघ, करोड महोघ, और करोड समुद्र ॥ ४० ॥ इतनी तो सेना विभीषण वीरके साथ लिये, और अपनें मंत्रियोंको साथ

शतंपद्मसहस्राणांमहापद्ममितिस्मृतम् ॥ महापद्मसहस्राणांशतंखर्वमिहोच्यते ॥ ३६ ॥ शतंखर्वसहस्राणांसमुद्रमभिधीयते ॥ शतंसमुद्रसाहस्रंमहौघमितिविश्रुतम् ॥ ३७ ॥ एवंकोटिसहस्रेणशंकूनांचशतेनच ॥ महाशंकुसहस्रेणतथावृंदशतेनच ॥ ३८ ॥ महावृंदसहस्रेणतथापद्मशतेनच ॥ महापद्मसहस्रेणतथाखर्वशतेनच ॥ ३९ ॥ समुद्रेणचतेनैवमहौघेनतथैवच ॥ एषकोटीमहौघेनसमुद्रसदृशेनच ॥ ४० ॥ विभीषणेनवीरेणसचिवैःपरिवारितः ॥ सुग्रीवोवानरेंद्रस्त्वांयुद्धार्थमनुवर्तते ॥ महाबलवृतोनित्यंमहाबलपराक्रमः ॥ ४१ ॥ इमांमहाराजसमीक्ष्यवाहिनीमुपस्थितांप्रज्वलितग्रहोपमाम् ॥ ततःप्रयत्नःपरमोविधीयतांयथाजयःस्यान्नपरैःपराभवः ॥ ४२ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेअष्टाविंशःसर्गः ॥ २८ ॥ ॥ छ ॥ शुकेनतुसमादिष्टान्दृष्ट्वासहरियूथपान् ॥ लक्ष्मणंचमहावीर्यंभुजंरामस्यदक्षिणम् ॥ १ ॥

लिये वानरेन्द्र सुग्रीवजी आपको युद्ध करनेंके लियें पुकारते हैं, यह बड़ी शक्तियुक्त महाबलवान् और महा पराक्रमी हैं ॥ ४१ ॥ हेमहाराज! प्रज्वलित ग्रहकी समान इस आई हुई वानरोंकी सैनाको देखकर जिस्से उसका उपायहो, और शत्रुलोग कहीं हमको जीतकर विजयी न होजांय इस बातका आप विशेष यत्न करें ॥ ४२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे अष्टविंशः सर्गः ॥ २८ ॥ तिसके पीछे दशानन शुकके मुखसे सैना गणोंके भुजवीर्यका समाचार पाय और श्रीरामचंद्रजीके दक्षिण बाहुस्वरूप महाबलवान

किष्किंधाकांड ४

मूर्ख मंत्रियोंसेयुक्त होकरभी इस राज्यका भार बराबर उठाये हुएहैं ॥ १० ॥ जो कुछभीहो हमको कठोर वचन कहते हुए तुमको प्राणोंकी शंका नहीं हुई । कारणकि शुभ और अशुभ हमारी आज्ञाको पाय जीभ सबही कुछ कह जातीहै फिर ऐसे राजाको अशुभ वचन कहनें क्या उचितहै? ॥ ११ ॥ वनमें आग लाग जानेंपर चाहें वृक्ष किसीप्रकारसे कुछ जीवित भी रह जांय परन्तु राजाका द्रोह करनेवाले (बागी) अपराधी लोग किसीप्रकारसे जीवित नहीं रह सकते ॥ १२ ॥ यदि तुम्हारे पहले किये हुए उपकारोंको स्मरण करके हमारा क्रोध कुछेक कोमल न होजाता तो इसही घडी शत्रुके ओरकी प्रशंसा करनेंवाले तुम दोनों पापचारियोंको हम मारडालते ॥ १३ ॥ तुम लोग जैसे

किंनुमृत्योर्भयंनास्तिमांवक्तुंपरुषंवचः ॥ यस्यमेशासतोजिह्वाप्रयच्छतिशुभाशुभम् ॥ ११॥ अप्येवदहनंस्पृष्ट्वावनेतिष्ठंतिपादपाः ॥ राजदंडपरामृष्टास्तिष्ठंतेनापराधिनः ॥१२॥ हन्यामहंत्विमौपापौशत्रुपक्षप्रशंसिनौ ॥ यदिपूर्वोपकारैर्मेक्रोधोनमृदुतांव्रजेत् ॥ १३ ॥ अपध्वंसतनश्यध्वंसन्निकर्षादितोमम ॥ नहिवांहंतुमिच्छामिस्मराम्युपकृतानिवाम् ॥ हतावेवकृतघ्नौद्वौमयिस्नेहपराङ्मुखौ ॥१४॥ एवमुक्तातुसव्रीडौतौदृष्ट्वाशुकसारणौ॥ रावणंजयशब्देनप्रतिनंद्याभिनिःसृतौ ॥१५॥ अब्रवीच्चदशग्रीवःसमीपस्थंमहोदरम् ॥ उपस्थापयमेशीघ्रंचारानितिनिशाचरः ॥ महोदरस्तथोक्तस्तुशीघ्रमाज्ञापयच्चरान् ॥१६॥ ततश्चाराःसंत्वरिताःप्राप्ताःपार्थिवशासनात् ॥ उपस्थिताःप्रांजलयोवर्धयित्वाजयाशिषः॥१७॥

कृतघ्नहो और हमारे प्रति स्नेहहीन होगये हो, तिस्से तुम निश्चय ही मार डालनेंके योग्य हो परन्तु तुम्हारे पहले किये हुए उपकारोंका स्मरण करके हमने तुम्हें नहीं मारा अच्छा जो हुआ सो हुआ अब तुम दोनों हमारे निकटसे दूरहो जाओ और फिर कभी हमारी सभामें प्रवेश न करना ॥ १४ ॥ जब रावणनें शुक सारणसे ऐसा कहा, तब वह दोनों जन जय शब्द द्वारा रावणको प्रणाम करके लज्जित भावसे सभासे उठकर बाहर निकल गये ॥ १५ ॥ इनदोनोंके चले जानें पर रावणनें " दूत लोगोंको शीघ्र हमारे निकट ले आओ" समीप बैठे हुए महोदरको यह आज्ञादी । महोदरभी दूत लोगोंको शीघ्रही रावणके पास जानेंका आदेश देता हुआ ॥ १६॥तब दूतगण राजाकी आज्ञा सुन शीघ्र वहां आय "जयहो"ऐसा आशीर्वाद

हरित काला वृक्षोंसे ढेरके ढेर फूलोंके गिरनेंसे अधिक तर शोभा पा रहा है॥८॥ पुष्प भारसे शोभित सब तरु शिखर पुष्पिताग्र लता वेलोंसे घिरनेके कारण परम शोभा धारण कर रहे हैं ॥ ९ ॥ हे सुमित्रासुवन! इस समय इस स्थानमें पंच बाणका जगानेंवाला वसंत काल वर्त्तमान है, सुखदाय क समीर सन सन करके मन्द २ चल रही है, मनोहर मधु मास (चैत्र) मधुर सुगंधिके सहित आया हुआ है, वृक्षोंके शिखर फूल फलसे शोभित होरहे हैं, इसकारणसे यह स्थान कैसा मनोहर हो गया है ॥ १० ॥लक्ष्मण! देखो जिस प्रकारसे जलधर गण जलकी वर्षा करते हैं, वैसेही पुष्प वर्षण कारी बनोंका कैसा अपूर्व मनोहर रूप प्रकाशित हो रहाहै ॥ ११ ॥ मनोहर पत्थरोंके ऊपर उगे हुये वृक्ष पवनके वेगसे कंपायमान

पुष्पभारसमृद्धानिशिखराणिसमंततः ॥ लताभिःपुष्पिताग्राभिरुपगूढानिसर्वतः ॥ ९ ॥ सुखानिलोऽयंसौमित्रेकालः प्रचुरमन्मथः ॥ गंधवान्सुरभिर्मासोजातपुष्पफलद्रुमः ॥ १० ॥ पश्यरूपाणिसौमित्रेवनानांपुष्पशालिनाम् ॥सृजतां पुष्पवर्षाणिवर्षंतोयमुचामिव ॥ ११ ॥ प्रस्तरेषुचरम्येषुविविधाःकाननद्रुमाः ॥ वायुवेगप्रचलिताःपुष्पैरवकिरंति गाम् ॥ १२ ॥ पतितैःपतमानैश्चपादपस्थैश्चमारुतः ॥ कुसुमैःपश्यसौमित्रेक्रीडतीवसमंततः ॥ १३ ॥ विक्षिपन्विविधाःशाखानगानांकुसुमोत्कटाः ॥ मारुतश्चलितःस्थानैःषट्पदैरनुगीयते ॥ १४ ॥ मत्तकोकिलसन्नादैर्नर्तयन्निव पादपान् ॥ शैलकंदरनिष्क्रांतःप्रगीतइवचानिलः॥ १५ ॥

हो पृथ्वीके ऊपर फूलोंके ढेरके ढेर छोड उसको ढके लेते हैं ॥ १२ ॥हे भइया! देखो वृक्षोके ऊपरसे बहुतसे फूल गिर पडे हैं और बहुत फल चारोंओर गिर रहे हैं इससे ऐसा जान पडता है मानों पवन उन फूलोंकी राशिसे विहार कर रहा है ॥ १३ ॥ और पवन बहु कुसुम शाली वृक्षोंकी शाखाओंको इधर उधर कंपायमान कर रहा है, इसलिये मधुपानमत्त भ्रमरगण अपनें २ स्थानसे खसक कर पवनका पीछा करते हैं ॥ १४ ॥ और पवन, मतवाले कोकिल कुलके कलरव रूप मृदंगकी ध्वनिसे नृत्य सीखकर पर्वतकी कंदराओंसे निकलनेंके समय मानों गान कर रहा है॥१५॥

दूतोंके सरदार शार्दूलको बंधवाया ॥ २६ ॥ परन्तु वानर लोगोंसे मारडाले जाते हुए देखकर उस दूतको श्रीरामचंद्रजीनें छुटाय दिया, व इसी प्रकार और दूसरे राक्षस दूतोंकोभी सौम्य स्वभाव श्रीरामचंद्रजीनें छुटायदिया ॥ २७ ॥ इस प्रकारसे वह राक्षसदूत विपुल विक्रमकारी वानरोंके हाथसे भलीभांति पीट कुटकर. लंबी २ श्वास लेते हुए चेतना रहित की समान फिर लंका पुरीमें आये ॥ २८ ॥ तिसके पीछे महा बलवान नित्य बाहर घूमनेंवाले निशाचर वह दूतगण रावणके समीप पहुंच कर, सुवेल शैलके निकट टिकी हुई श्रीरामचंद्रजीकी सैनाके समाचार कहनें लगे ॥ २९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे एकोनत्रिंशःसर्गः ॥ २९ ॥ तिसके पीछे दूत लोगोंनें सुवेल पर्वतके

मोक्षितःसोपिरामेणवध्यमानःप्लवंगमैः ॥ अनृशंसेनरामेणमोक्षिताराक्षसाःपरे ॥ २७ ॥ वानरैरर्दितास्तेतुविक्रांतैर्लघुविक्रमैः॥पुनर्लंकामनुप्राप्ताःश्वसंतोनष्टचेतसः॥२८॥ततोदशग्रीवमुपस्थितास्तेचाराबहिर्नित्यचरानिशाचराः ॥ गिरेःसुवेलस्यसमीपवासिनंन्यवेदयन्रामबलंमहाबलाः॥२९॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०युद्धकाण्डेएकोनत्रिंशःसर्गः ॥२९॥

ततस्तमक्षोभ्यबलंलंकाधिपतयेचराः ॥ सुवेलेराघवंशैलेनिविष्टंप्रत्यवेदयन् ॥ १ ॥ चाराणांरावणःश्रुत्वाप्राप्तंराममंमहाबलम् ॥ जातोद्वेगोभवत्किंचिच्छार्दूलंवाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥ अयथावच्चतेवर्णोदीनश्चासिनिशाचर ॥ नासिकच्चिदमित्राणांक्रुद्धानांवशमागतः ॥ ३ ॥ इतितेनानुशिष्टस्तुवाचंमंदमुदीरयन् ॥ तदाराक्षसशार्दूलंशार्दूलोभयविक्लवः॥ ॥ ४ ॥ नतेचारयितुंशक्याराजन्वानरपुंगवाः ॥ विक्रांताबलवंतश्चराघवेणचरक्षिताः ॥ ५ ॥

निकट पहुंचकर श्रीरामचंद्रजीकी अचल सैनाका जो समाचार पायाथा वह समस्त रावणसे निवेदन किया ॥ १ ॥ राक्षसराज रावण दूतोंके मुखसे श्रीरामचंद्रजीकी सैनाका लंकामें आना सुन भीतरेसे बहुतही उदास हुआ और उसी समय शार्दूलनाम दूतसे बोला ॥ २ ॥ अरे निशाचर ! तू विवर्ण और दीनकी समान हो रहाहै, इसका कारण क्या ! शत्रुओंनें बलसहित क्रोधित होकर कहीं तुझे अपने वशमें तो नहीं कर लियाथा ? जो कुछभी हुआ वह समस्तही हमसे ठीक २ वर्णन कर ॥ ३ ॥ भयके मारे व्याकुल शार्दूल इस प्रकारसे पूछे जानेंपर राक्षस शार्दूल रावणको मन्द २ वचनोंसे उत्तर देता हुआ ॥ ४ ॥ हे महाराज ! रामचंद्रसे रक्षित उन अमित विक्रमकारी

कुक्कुट हर्षित होकर कल निनाद करकै हमको शोचनीय और शोकातुर कर देताहै ॥ २४ ॥ पहले जब हम प्रियाके सहित एक आश्रममें रहतेथे, उस समय यह कोकिल कलनादसे हमको पुकार कर अत्यानंद देताथा ॥ २५ ॥ यह देखो! चित्र विचित्र अनेक प्रकारके पक्षी विविध भांतिके शब्दोंसे ध्वनि करते हुये चारों ओर वृक्ष लता और पौधोंपर उड २ कर बैठते हैं ॥ २६ ॥ भइया यह देखो! अनेक जातिके पक्षी और भ्रमर अपने २ जोडेके साथ मिल और हर्षित होकर झुंडके झुंड घूम रहेहैं॥२७॥इस पम्पाके किनारे पर पक्षियोंके झुंडके झुंड जलमुरगी व कोकिला की बोलीके समान बोल आनंदित होते हैं॥२८॥ यह सब वृक्ष भ्रमरगणोंके गुंजार करनेंसे मानों बोल रहेहैं व इसी कारणसे हमको कामोदीत

श्रुत्वैतस्यपुराशब्दमाश्रमस्थाममप्रिया ॥ मामाहूयप्रमुदितापरमंप्रत्यनंदत ॥२५॥एवंविचित्राःपतगानानारावविराविणः ॥ वृक्षगुल्मलताःपश्यसंपतंतिसमंततः ॥ २६ ॥ विमिश्राविहगाःपुंभिरात्मव्यूहाभिनंदिताः ॥ भृंगराजप्रमुदिताःसौमित्रेमधुरस्वराः ॥ २७ ॥ अस्याःकूलेप्रमुदिताःसंघशःशकुनास्त्विह ॥ दात्यूहरतिविक्रंदैःपुंस्कोकिलरुतैरपि ॥ २८ ॥ स्वनंतिपादपाश्चेमेममानंगप्रदीपकाः ॥ अशोकस्तबकांगारःषट्पदस्वननिःस्वनः ॥ २९ ॥ मांहिपल्लवताम्रार्चिर्वसंताग्निःप्रधक्ष्यति ॥ नहितांसूक्ष्मपक्ष्माक्षींसुकेशींमृदुभाषिणीम् ॥ ३० ॥ अपश्यतोमेसौमित्रेजीवितेऽस्तिप्रयोजनम् ॥ अयंहिरुचिरस्तस्याःकालोरुचिरकाननः ॥ ३१ ॥ कोकिलाकुलसीमांतोदयितायाममानघ ॥ मन्मथायाससंभूतोवसंतगुणवर्धितः ॥ ३२ ॥ अयंमांधक्ष्यतिक्षिप्रंशोकाग्निर्नचिरादिव ॥ अपश्यतस्तांवनितांपश्यतोरुचिरान्द्रुमान् ॥ ३३ ॥

कराते हैं अशोकके पत्ते अंगारोंकी समान, भ्रमर गुंजार बडे शब्दकी समान ॥ २९ ॥ नये २ पत्ते अरुण रंगकी ज्वालाके समान हो वसंत ऋतु अग्निवन मानों हमको भस्म करैगा। अब सूक्ष्म पलक नेत्रा,सुकेशी,व मीठे वचन बोलनें वाली ॥ ३० ॥ जानकीजीके विना देखे हमारे जीवित रहनेंका क्या प्रयोजन है कारण कि यह सुन्दर वन युक्त वसंत समय ॥ ३१ ॥ कोकिलका शब्द जिसका डांड है वह हमें और जानकीजीको एक संगसाथ रहनेंसे सुखदायी होता फिर कामके प्रयासों समेत वसंतके गणोंसे बढा॥३२॥यह शोकानल अति शीघ्र हमको भस्म कर देगा

कि अब वह कोटकी भीतके पास आयाही चाहता है [illegible] राक्षसोंका स्वामी रावण शार्दूलके मुखसे यह वचन सुनकर मनमें एक क्षण भरकी चिन्ता करके यह महत् वचन बोला ॥ १४ ॥ कि [illegible] दानव, या गंधर्वगण हमारे विरुद्ध युद्ध करनेंको खड़े होजांय, या त्रिलोकीके रहनेवालेभी हमारे विरुद्ध होजायँ, तथापि हम भीत होकर सीता रामचंद्रको नहीं देंगे ॥ १५ ॥ यह कहकर महातेजस्वी रावण फिर कहनें लगा कि तुम लोग हमारी आज्ञा पाय दूतभावसे सब कहीं घूमेंहो; इसकारण बताओ तो वानरोंमें कौन २ वीरहैं! ॥ १६ ॥ और यहभी बताओकि न सहनें योग्य वह वानर गण किसके पुत्रहैं! किसके पोते हैं! उनके शरीरकी कांति कैसीहै! और उनमें कौन २ शूर विख्यातहैं ॥ १७ ॥

मनसातत्तदाप्रेक्ष्यतच्छ्रुत्वाराक्षसाधिपः ॥ शार्दूलंसुमहद्वाक्यमथोवाचसरावणः ॥ १४ ॥ यदिमांप्रतियुद्ध्येयुर्देवगंधर्वदानवाः ॥ नैवसीतांप्रदास्यामिसर्वलोकभयादपि ॥ १५ ॥ एवमुक्त्वामहातेजारावणःपुनरब्रवीत् ॥ चरिताभवतासेनाकेत्रशूराःप्लवंगमाः ॥ १६ ॥ किंप्रभाःकीदृशाःसौम्यवानरायेदुरासदाः ॥ कस्यपुत्राश्चपौत्राश्चतत्त्वमाख्याहिसुव्रत ॥ १७ ॥ तथात्रप्रतिपत्स्यामिज्ञात्वातेषांबलाबलम् ॥ अवश्यंखलुसंख्यानंकर्तव्यंयुद्धमिच्छता ॥ १८ ॥ अथैवमुक्तःशार्दूलोरावणेनोत्तमश्चरः ॥ इदंवचनमारेभेवक्तुंरावणसन्निधौ ॥१९॥ अथर्क्षरजसःपुत्रोयुधिराजन्सुदुर्जयः ॥ गद्गदस्याथपुत्रोत्रजांबवानितिविश्रुतः ॥ २० ॥ गद्गदस्याथपुत्रोऽन्योगुरुपुत्रःशतक्रतोः ॥ कदनंयस्यपुत्रेणकृतमेकेनरक्षसाम् ॥ २१ ॥

क्योंकि यह सुनकर हम उनका बलाबल जान पीछेसे उनके प्रति विधानका यत्न करेंगे, कारण कि जयकी इच्छा करनेंवाले राजाको प्रथम शत्रु सैनाकी संख्या जान लेनी, और इनका बलाबल जान लेना अवश्य कर्तव्यहै ॥ १८ ॥ दूतश्रेष्ठ शार्दूलसें रावणनें पूछा तब रावणके निकट उसनें यह वचन कहनें आरंभ किये ॥ १९ ॥ हे महाराज! उस सैनामें ऋक्षराजका पुत्र अजीत गदगद उसका पुत्र जाम्बवान्, जोकि समरमें अति अजेयहै ॥ २० ॥ गदगदका दूसरा पुत्र केशरीनाम, वानरभी यहांहै, और इन्द्रजीके गुरु बृहस्पतिजीका पुत्र धूम्रनामभी इस सैनामें है, जिसके शरीर

नकीजीके यह चैत्रमास हमको तो बडाही दुष्कर जान पडताहै ॥ ४१ ॥ क्योंकि इस समयमें पशु पक्षियोंकी योनियेंभी प्रियानुराग प्रगट करतीहैं; देखो लक्ष्मण ! यह मोरनियें कामसे पीडितहो मोरोंके पास दौडी जाती हैं ॥ ४२ ॥ हाय ! यदि वह विशालनेत्रवाली देवी जानकीजी इस समय न हरी जातीं, तो वहभी मदनसे चंचलायमान मन होकर हमारे निकट प्राप्त होनेंकी वासना करतीं ॥ ४३ ॥ इस वसंतके समयमें पुष्प भारसे छाये वन समूहोंके सब पुष्प हमारे जान तो अतिशय निष्फल होरहेहैं॥ ४४ ॥ वृक्षोंके अति सुन्दर मनोहर पुष्प भ्रमर गणोंके सहित पृथ्वीपर गिर रहेहैं पर विना सीताके हमारे लेखे व्यर्थहैं ॥ ४५ ॥ हमारे चित्तको मतवाला करनेंवाले पक्षी गण हर्षित होकर झुंड २ कलरव करके कल ध्वनि कर

पश्यलक्ष्मणसंरागस्तिर्यग्योनिगतेष्वपि ॥ अधुनाशिखिनीकामाद्भर्तारमभिवर्तते ॥ ४२ ॥ ममाप्येवंविशालाक्षी जानकीजातसंभ्रमा ॥ मदनेनाभिवर्तेतयदिनापहृताभवेत् ॥ ४३ ॥ पश्यलक्ष्मणपुष्पाणिनिष्फलानिभवंतिमे ॥ पुष्पभारसमृद्धानांवनानांशिशिरात्यये ॥ ४४ ॥ रुचिराण्यपिपुष्पाणिपादपानामतिश्रिया ॥ निष्फलानिमहींयांतिसमंमधुकरोत्करैः ॥ ४५ ॥ नदंतिकामंशकुनामुदिताःसंघशःकलम् ॥ आह्वयंतइवान्योन्यंकामोन्मादकराम म ॥ ४६ ॥ वसंतोयदितत्रापियत्रमेवसतिप्रिया ॥ नूनंपरवशासीतासापिशोचत्यहंयथा ॥ ४७ ॥ नूनंनतुवसंतस्तंदेशंस्पृशतियत्रसा ॥ कथंह्यसितपद्माक्षीवर्तयेत्सामयाविना ॥ ४८ ॥ अथवावर्ततेतत्रवसंतोयत्रमेप्रिया ॥ किंकरिष्यतिसुश्रोणीसातुनिर्भर्त्सितापरैः ॥ ४९ ॥ श्यामापद्मपलाशाक्षीमृदुभाषाचमेप्रिया ॥ नूनंवसंतमासाद्यपरित्यक्ष्यतिजीवितम् ॥ ५० ॥

रहेहैं ॥ ४६ ॥ हाय! जबकि यहां वसंतहै, तबतो उन प्राणप्यारीके निकट भी वसंतका उदय हुआ होगा। इस कारण हम विना, हमारी समान वहभी निःसन्देह कातर और शोकसे व्याकुल हुई होंगी ॥ ४७ ॥ यदि वहां वसंतका उदय नभीहुआहो तथापि वह नलिनीनयनी हमारे विना वहां किस प्रकारसे रहती होंगी ॥ ४८ ॥ अथवा यदि उस स्थानमें वसंत विद्यमानभी हो तथापि वह सुश्रोणी सीता शत्रुओंसे भयभीता होकर क्या करेंगी? सो कुछ हमारी समझमें नहीं आता ॥ ४९ ॥ हाय! वह श्यामा, कमल दलकी समान नेत्रयुक्त मृदुभाषण करनेंवाली जनकनंदिनीजी,

और यमराजकी समान कवन्धका [illegible] ॥ १२ ॥ तब [illegible] कोईभी पुरुष श्रीरामचंद्रजीके गुणग्राम वर्णन करनेंको समर्थ नहीं है;
उन्होंनें जनस्थानमें आगमन करके अन[illegible] देवता[illegible]हैं, वैसेही यह वीर पुरुष लक्ष्मणजी रामचंद्रजीके एक ओर बैठे शोभाको
प्राप्त हुएहैं, हमारा विश्वासहै कि इनके बाण चलानेंपर इन्द्रके जीवन रक्षा होंनेमेंभी सन्देहहै फिर और दूसरोंकी तो गिनती क्या है ॥ ३० ॥ ३१ ॥
सूर्यके दो पुत्र श्वेत व ज्योतिर्मुख नामक यहां हैं, और वरुणका पुत्र हेमकूट नाम वानरभी इस वाहिनीमें आयाहै ॥ ३२ ॥ विश्वकर्माका पुत्र
वानरश्रेष्ठ नल और अति विक्रमयुक्त वेगवान वसुका पुत्र दुर्धरभी यहांपरहै ॥ ३३ ॥ श्रीरामचंद्रजीसे लंकाका राज्य पायकर उसका हित साधन

वक्तुंनशक्तोरामस्यगुणान्कश्चिन्नरःक्षितौ ॥ जनस्थानगतायेनतावंतोराक्षसाहताः ॥ ३० ॥ लक्ष्मणश्चात्रधर्मात्मामा
तंगानामिवर्षभः ॥ यस्यबाणपथंप्राप्यनजीवेदपिवासवः ॥ ३१ ॥ श्वेतोज्योतिर्मुखश्चात्रभास्करस्यात्मसंभवौ ॥ व
रुणस्याथपुत्रोथहेमकूटःप्लवंगमः॥३२॥विश्वकर्मसुतोवीरोनलःप्लवगसत्तमः॥विक्रांतोवेगवानत्रवसुपुत्रःसदुर्धरः ॥३३॥
राक्षसानांवरिष्ठश्चतवभ्राताविभीषणः ॥ प्रतिगृह्यपुरींलंकांराघवस्यहितेरतः ॥ ३४ ॥ इतिसर्वंसमाख्यातंतथावैवान
रंबलम् ॥ सुवेलेधिष्ठितंशैलेशेषकार्येभवान्गतिः ॥ ३५ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आदिकाव्येयुद्धकांडेत्रिंशःसर्गः ॥ ३० ॥
ततस्तमक्षोभ्यबलंलंकायांनृपतेश्चराः ॥ सुवेलेराघवंशैलेनिविष्टंप्रत्यवेदयन् ॥ १ ॥ चाराणांरावणःश्रुत्वाप्राप्तंरामं
महाबलम् ॥ जातोद्वेगोऽभवत्किंचित्सचिवानिदमब्रवीत् ॥ २ ॥

करनेंकी वासनासे आपके भ्राता राक्षसशार्दूल बिभीषणजी वहांपर विराजमान हैं ॥ ३४ ॥ हमनें सुवेल शैलपर टिककर वानर सैनाके समाचार
जो कुछ जानेहैं, वह आपसे कह सुनाये; इसके पीछे अब जो कुछ कर्त्तव्यहो वह आप कीजिये ॥ ३५ ॥ इ० श्रीम० वा० यु० त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥
इस प्रकार सुवेल पर्वतपर लंकाके मध्यमें टिके हुए श्रीरामचंद्रजी और उनकी सैनाको राक्षसनाथ रावणको उसके दूतोंने बताया ॥ १ ॥
राक्षसोंका स्वामी रावणने दूतोंके मुखसे श्रीरामचंद्रजीका समाचार पाय अत्यन्त व्याकुल होकर मंत्री लोगोंको बुलाया ॥ २ ॥

यह अशोक वृक्ष कामी जनोंको अत्यन्तही शोकका बढानेवाला होता है देखो मानों यह पवनसे कंपित अपने पत्रोंद्वारा हमको डरपाताहुआ खडा है ॥ ५९ ॥ हे लक्ष्मण! यह फूला हुआ आमका वृक्ष मानों कामके रससे आसक्त, व अंगराग लगाये हुये मनुष्य की समान ही खडा है सो तुम देखो॥६०॥हे पुरुष सिंह लक्ष्मण! यह देखो! इस पंपाके तीर वाले विचित्र बनमें किन्नर लोग जिधर तिधर विचरण करते हुये घूम रहे हैं ॥ ६१ ॥ फिर यहां पर यह सुगन्धित कमल जलमें तरुण सूर्यकी समान शोभा विस्तार कर रहे हैं॥६२॥यह प्रसन्नसलिला पंपा सुगन्धि युक्त नील अरुण कमलसे और हंस कारण्डव इत्यादि जलचर पक्षियोंसे व्याप्त होकर शोभा पारहा है ॥ ६३ ॥ जलमें जो कमल फूल तरुण सूर्यकी समान शोभा विस्तार

कामिनामयमत्यंतमशोकःशोकवर्धनः ॥ स्तबकैःपवनोत्क्षिप्तैस्तर्जयन्निवमांस्थितः ॥ ५९ ॥ अमीलक्ष्मण दृश्यंतेचूताःकुसुमशालिनः ॥ विभ्रमोत्सिक्तमनसःसांगरागानराइव ॥ ६० ॥ सौमित्रेपश्यपंपायाश्चित्रासुवनराजिषु ॥ किन्नरानरशार्दूलविचरंतियतस्ततः ॥ ६१ ॥ इमानिशुभगंधीनिपश्यलक्ष्मणसर्वशः ॥ नलिनानिप्रकाशंतेजलेतरुणसूर्यवत् ॥ ६२ ॥ एषाप्रसन्नसलिलापद्मनीलोत्पलायुता ॥ हंसकारंडवाकीर्णापंपासौगंधिकायुता ॥ ६३ ॥जलेतरुणसूर्याभैःषट्पदाहतकेसरैः ॥ पंकजैःशोभतेपंपासमंतादभिसंवृता ॥ ६४ ॥ चक्रवाकयुतानित्यंचित्रप्रस्थवनांतरा ॥ मातंगमृगयूथैश्चशोभतेसलिलार्थिभिः ॥ ६५ ॥ पवनाहतवेगाभिरूर्मिभिर्विमलेंभसि ॥ पंकजानिविराजंतेताड्यमानानिलक्ष्मण ॥ ६६ ॥ पद्मपत्रविशालाक्षींसततंप्रियपंकजाम् ॥ अपश्यतोमेवैदेहींजीवितंनाभिरोचते ॥ ६७ ॥

कर रहे हैं, सो भ्रमरोंके समूह उनकी थँगोंलों पर बैठे हैं, यह पंपा सरोवर चारों ओर कमल फूलोंके छा जानेंसे अपूर्व शोभा प्रगट कर रहा है ॥ ६४ ॥ इस पंपाकी बगलवाले विचित्र वन, बराबर चक्रवाकोंके झुण्डोंसे, और पानी पीनेंके अभिलाषी हाथियोंके दलसे युक्त होकर शोभा पाते हैं॥६५॥ देखो लक्ष्मण! इसके विमल जलमें पवनसे उत्पन्न हुई लहरोंके द्वारा ताडित होकर यह कमल फूल नर्तकीके समान विराजमान हैं ॥ ६६ ॥ हे लक्ष्मण! इस समय पद्म पलाश नेत्र वाली प्रियपंकजा जनकसुताके विना देखे हम अब जीवन धारण करनेंका अभिलाष नहीं करते ॥ ६७ ॥

गहने इत्यादि देकर सीताजीके दर्शनकी लालसा [illegible] को गया ॥ १० ॥ कुवरक छोटे भाइ बली रावणने अशोक वनमे [illegible] बहुतसे करके दूरसेही शोकसे कर्षित अपने स्वामी श्रीरामचंद्रजीको [illegible] करती हुई, और अदीनताके योग्य होकरभी दीनकी समान नीचेको मुख किये पृथ्वीपर बैठी हुई जनकनंदिनी जानकीजीको देखा ॥ ११ ॥ १२ ॥ कि जिनको चारों ओरसे राक्षसियें घेरे हुएथीं, तिसके पीछे कुछ एक आगे बढकर रावण हर्षसहित अपना नाम कहताहुआ ॥ १३ ॥ बडी ढीठता पूर्वक जानकीजीसे यह वचन बोला, हे भद्रे ! हमारे बहुत विधि समझानें बुझानेंपरभी तुम जिसका आश्रयकर हमारे वचनोंका अनादर करती हो ॥ १४ ॥ तुम्हारे वही खरके मार डालनेंवाले स्वामी

नैर्ऋतानामधिपतिःसंविवेशमहाबलः ॥ ततोदीनामदीनार्हांददर्शधनदानुजः ॥ ११ ॥ अधोमुखींशोकपरामुपविष्टांमही तले ॥ भर्तारंसमनुध्यांतीमशोकवनिकांगताम् ॥ १२ ॥ उपास्यमानांघोराभीराक्षसीभिरदूरतः ॥ उपसृत्यततःसीतां प्रहर्षनामकीर्तयन् ॥ १३ ॥ इदंचवचनंधृष्टमुवाचजनकात्मजाम् ॥ सांत्व्यमानामयाभद्रेयमाश्रित्यविमन्यसे ॥१४॥ खरहंतासतेभर्ताराघवःसमरेहतः ॥ छिन्नंतेसर्वथामूलंदर्पश्चनिहतोमया ॥ १५ ॥ व्यसनेनात्मनःसीतेममभार्याभवि ष्यसि ॥ विसृजैतांमतिंमूढेकिंमृतेनकरिष्यसि ॥ १६ ॥ भवस्वभद्रेभार्याणांसर्वासामीश्वरीमम ॥ अल्पपुण्येनिवृत्ता र्थेमूढेपंडितमानिनि ॥ शृणुभर्तृवधंसीतेघोरंवृत्रवधंयथा ॥ १७ ॥ समायातःसमुद्रांतंहंतुंमांकिलराघवः ॥ वानरें द्रप्रणीतेनबलेनमहतावृतः ॥ १८ ॥

रामचंद्र समरमें मारे गये, इस कारण अब तुम्हारी जड़ही कटगई, और गर्वभी मैंने तुम्हारा तोडा ॥ १५ ॥ हे मूढे जनकनंदिनी ! अब इस समय उस मरे हुए पतिको लेकर क्या करोगी ? इस कारण इस आये हुए विपदकालमें इस दुर्बुद्धिको छोडकर तुम हमारी भार्या बनो ॥ १६ ॥ हेअल्पपुण्यवाली पंडितमानिनि मूढ़े जानकी ! तुम इतनें दिनसे जिन रामचंद्रकी आशामें दिन बिताय रहीथीं अब तुम्हारी उस आशाका अंत होगया, इस कारण हेभद्रे ! अब तुम सब स्त्रियोंके बीचमें पटरानी होकर दिन बिताओ ॥१७॥ हेसीते ! दारुण वृत्रासुरके वधकी समान तुम अपने स्वामीके वधका वृत्तान्त सुनो, रामचंद्र हमको मार डालनेंके लिये समुद्र पार वानरोंके स्वामी सुग्रीवकी बड़ी भारी सैनाके संग आये ॥१८॥

पंपाके किनारे पर कुसुमित मालती, मल्लिका, कँवल, कंदेला ॥७६॥ केतकी, सिन्दुवार, चमेली, विजोरा, नींबू, पुरैन, कुन्द, ॥ ७७ ॥ चिलोलु, महुआ, अशोक, वकुल, चम्पा, तिलक, नाग वृक्ष ॥ ७८ ॥ नीलकमल, फूलाहुआ अनिल, शोक, लोध्र, सिंहकेशर, पिंजर, गिरिपृष्ठ ॥ ७९ ॥ अंकोल, कुरंट, चूर्णक, नींब, आम, पाटलि, फूलाहुआकोविदार ॥ ८० ॥ मुचकुन्द, अर्जुन, केतकी, दूसरी जातिकी शतावरी, शिरस, खैर, शीसम, यहभी पहाडके शृंगोंपर दिखलाई देतेहैं ॥ ८१ ॥ शाल, टेसू, लाल कुरबक, तिनिश, नक्तमाल, चन्दन, स्यन्दन, ॥ ८२ ॥

केतक्यःसिंदुवाराश्चवासंत्यश्चसुपुष्पिताः ॥ मातुलिंगाश्चपूर्णाश्चकुंदगुल्माश्चसर्वशः ॥ ७७ ॥ चिरिबिल्वामधूकाश्चवंजुलाबकुलास्तथा ॥ चंपकास्तिलकाश्चैवनागवृक्षाश्चपुष्पिताः ॥ ७८ ॥ पद्मकाश्चैवशोभंतेनीलाशोकाश्चपुष्पिताः ॥ लोध्राश्चगिरिपृष्ठेषुसिंहकेसरपिंजराः ॥ ७९ ॥ अंकोलाश्चकुरंटाश्चचूर्णकाःपारिभद्रकाः ॥ चूताःपाटलयश्चापिकोविदाराश्चपुष्पिताः ॥ ८० ॥ मुचुकुंदार्जुनाश्चैवदृश्यंतेगिरिसानुषु ॥ केतकोद्दालकाश्चैवशिरीषाःशिंशपाधवाः ॥ ८१ ॥ शाल्मल्यःकिंशुकाश्चैवरक्ताःकुरबकास्तथा ॥ तिनिशानक्तमालाश्चचंदनाःस्यंदनास्तथा ॥ ८२ ॥ हिंतालास्तिलकाश्चैवनागवृक्षाश्चपुष्पिताः ॥ पुष्पितान्पुष्पिताग्राभिर्लताभिःपरिवेष्टितान् ॥ ८३ ॥ द्रुमान्पश्येहसौमित्रेपंपायारुचिरान्बहून् ॥ वातविक्षिप्तविटपान्यथासन्नान्द्रुमानिमान् ॥ ८४ ॥ लताःसमनुवर्ततेमत्ताइववरस्त्रियः ॥ पादपात्पादपंगच्छञ्छैलाच्छैलंवनाद्वनम् ॥ ८५ ॥ वातिनैकरसास्वादसंमोदितइवानिलः ॥ केचित्पर्याप्तकुसुमाःपादपामधुगंधिनः ॥ ८६ ॥

दूसरी जातिके तिलक, फूले हुये नाग वृक्ष, यह सब वृक्ष फूलरहेहैं व इनके अग्र भागमें फूलीहुई वेलें लिपट रहीहैं. इस्से यह अति शोभित होरहे हैं ॥ ८३ ॥ हे लक्ष्मण! देखो पंपाके किनारे यह अति चित्र विचित्र, विविध भांतिके वृक्ष देखो, कि इनकी डालियां पवनके लगनें से कैसी हिल रही हैं, और उनसे कैसी शोभा होतीहै ॥ ८४ ॥ वृक्षोंमें वेलें लिपट रहीहैं, जैसे कामसे उत्पन्न हो श्रेष्ठ स्त्रियें अपने २ पतिको चिपट जातीहैं, और देखो कि पवन इस वृक्षसे उस वृक्षको इस पर्वतसे उस पर्वतको एक बनसे दूसरेबनको जाकर ॥ ८५ ॥ बहुत सारा रस चख आनन्दित होकर महक

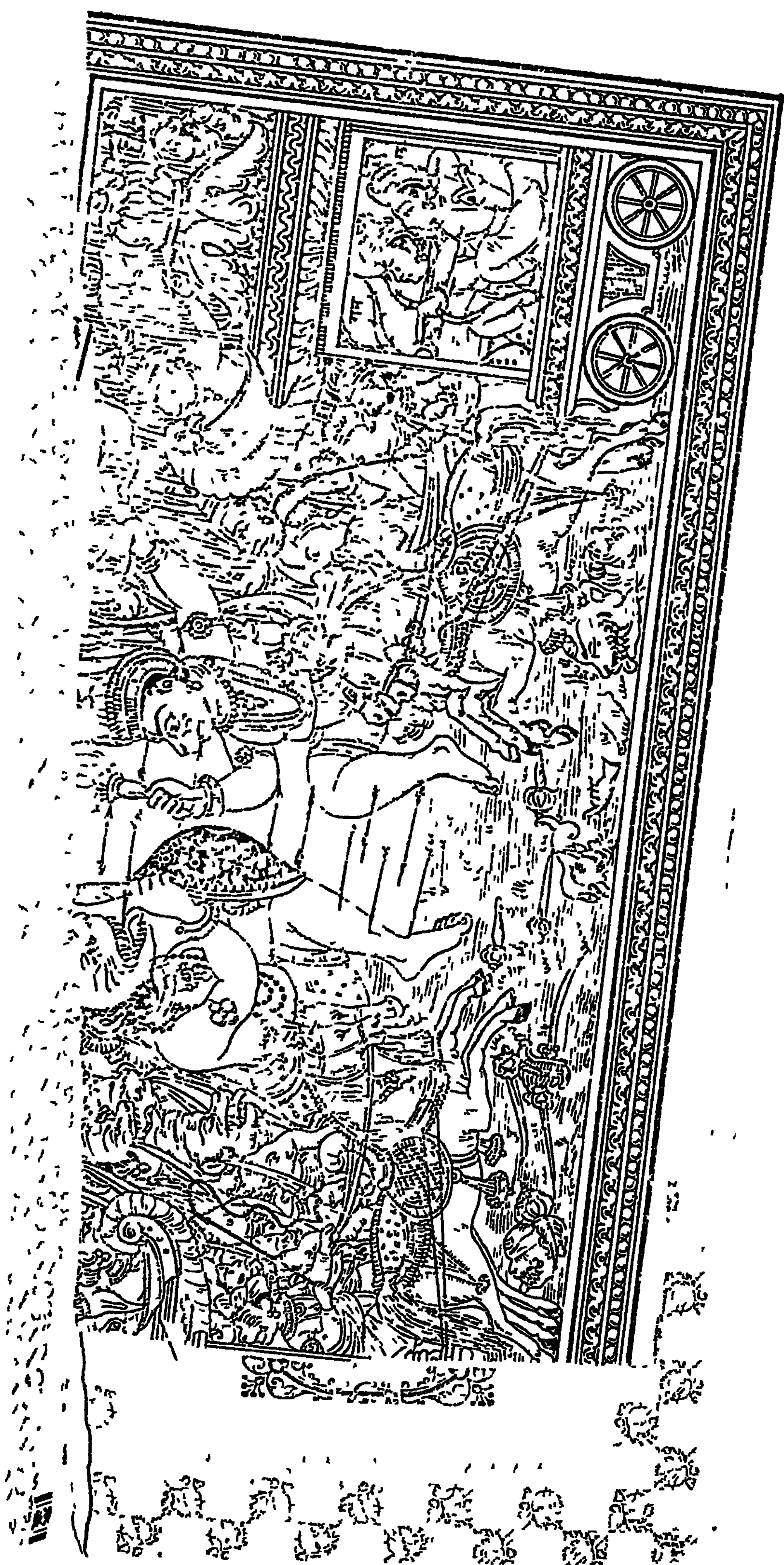

वाले इसके गुणोंका समूह, जो पृथ्वीपर विख्यातहै सो यह ठीक ही ठीकहै ॥ ९४ ॥ हे लक्ष्मण! हम यदि इस स्थानमें उन पतिव्रता सीताजीके दर्शन पाते तो इन्द्रपुरी व अयोध्याका लालच न करके इस स्थानमेंही बास करते ॥ ९५ ॥ हे लक्ष्मण! जो हम तुम्हारे साथ इन रमणीक हरे भरे क्षेत्रोंमें वासकरें तो हमारी और जगह वास करनेकी वासना नरहै ॥ ९६ ॥ विविध भांतिके पुष्प समूह और विविध वर्णके यह वृक्ष, इस वनमें विना प्राणप्यारीके हमको विविध भांतिकी चिन्ता उत्पन्न करातेहैं ॥ ९७ ॥ हे लक्ष्मण! शीतल जल युक्त, कमल सहित, चकई चकवा, जल मुरगी और बत्तक आदि सेवित इस पंपाको देखो॥ ९८॥ करांकुल, जलबुड्डी, आदि जलचर पक्षियोंसे सेवित व किनारे २ और दूसरे पक्षियोंके

यदिदृश्येतसासाध्वीयदिचेहवसेमहि ॥ स्पृहयेयंनशक्रायनायोध्यायैरघूत्तम ॥ ९५ ॥ नह्येवंरमणीयेषुशाद्वलेषुतयासह ॥ रमतोमेभवेच्चिंतानस्पृहान्येषुवाभवेत् ॥ ९६ ॥ अमीहिविविधैःपुष्पैस्तरवोविविधच्छदाः ॥ काननेऽस्मिन्विनाकांतांचितामुत्पादयंतिमे ॥ ९७ ॥ पश्यशीतजलांचेमांसौमित्रेपुष्करायुताम् ॥ चक्रवाकानुचरितांकारंडवनिषेविताम् ॥ ९८ ॥ प्लवैःक्रौंचैश्चसंपूर्णांमहामृगनिषेविताम् ॥ अधिकंशोभतेपंपाविकूजद्भिर्विहंगमैः ॥ ९९ ॥ दीपयंतीवमेकामंविविधामुदिताद्विजाः ॥ श्यामांचंद्रमुखींस्मृत्वाप्रियांपद्मनिभेक्षणाम् ॥ पश्यसानुषुचित्रेषुमृगीभिःसहितान्मृगान् ॥ १०० ॥ मांपुनर्मृगशावाक्ष्यावैदेह्याविरहीकृतम् ॥ व्यथयंतीवमेचित्तंसंचरंतस्ततस्ततः ॥ १ ॥ अस्मिन्सानुनिरम्येहिमत्तद्विजगणाकुले ॥ पश्येयंयदितांकांतांततःस्वस्तिभवेन्मम ॥ २ ॥

बोलनेसे यह पंपा अधिक शोभायमान होरहीहै ॥ ९९ ॥ यह प्रमुदित विविध भांतिके पक्षी हमें उन पंकजनयनी, चंद्रमुखी श्यामा* जनकनंदिनी, प्रिया जानकीजीकी याद दिलातेहैं। और देखो! इन विचित्र पर्वतके कंगूरों पर मृग गण हरणियोंके साथ ॥ १०० ॥ इधर उधर विहार करके मृगशावक नयनी वैदेहीके विरहमें हमको व्यथित कर रहेहैं ॥ १०१ ॥ यदि हम मतवाले पक्षियोंसे पूर्ण इस मनोहर कंगूरे पर उन प्राणप्यारीका

* जो नारी शीतकालमें ऊष्ण और ऊष्ण कालमें शीतल होती है और जिसके सर्वाङ्ग निन्दारहित हों उसको श्यामाकहतेहैं ॥

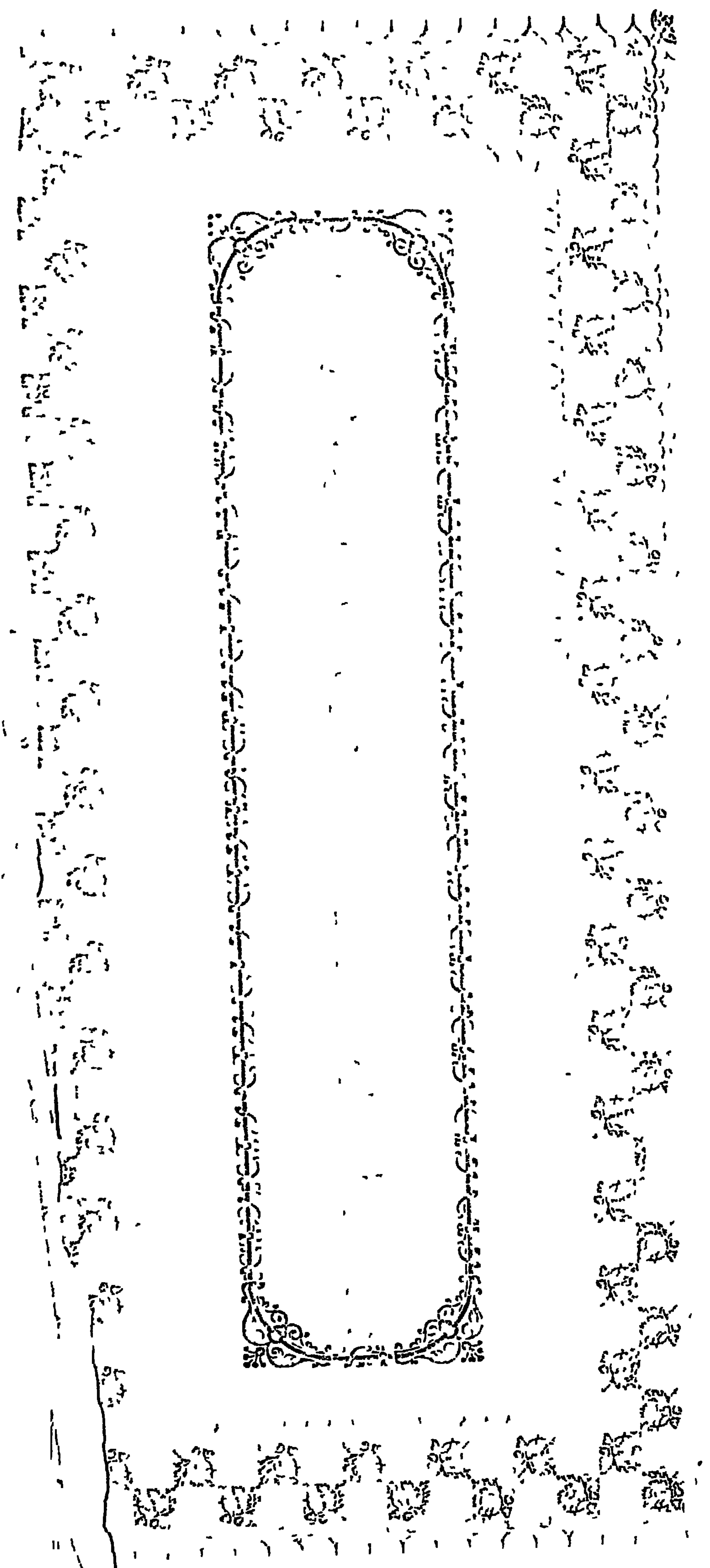

होकर वचनामृत वर्षाकर हमको सुखी करतीं ॥ १११ ॥ हे राजकुमार लक्ष्मणजी ! जबकि हम अयोध्याको लौटेंगे तब मनस्विनी कौश
ल्याजी " सीता कहांहैं ? " यह पूछैंगी तब हम उनसे क्या कहेंगे? ॥११२॥ हे लक्ष्मण ! इस समय तुम निश्चय जानो कि हम सीताके विना कभी
जीवन धारण करनेंको समर्थ नहीं होंगे, इसलिये हमारा मरण निश्चयजान तुम अयोध्याजीको चले जाकर, भरतजीके साथ मिलो ॥ ११३ ॥ महा
त्मा श्रीरामचंद्रजीनें इस प्रकार अनाथकी समान जब विलाप करना आरंभ किया, तब लक्ष्मणजीनें उनसे अर्थ युक्त वचन कहने आरंभ
किये ॥ ११४ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! आप शोकका त्याग कीजिये आप पुरुषोत्तमहैं इसलिये आपको शोक करना उचितनहीं हैं. आपसरीखे

किंनुवक्ष्याम्ययोध्यायांकौसल्यांहिनृपात्मज ॥ क्वसास्नुषेतिपृच्छंतींकथंचापिमनस्विनीम् ॥ १२ ॥ गच्छलक्ष्म
णपश्यत्वंभरतंभ्रातृवत्सलम् ॥ नह्यहंजीवितुंशक्तस्तामृतेजनकात्मजाम् ॥ १३ ॥ इतिरामंमहात्मानंविलपंतमनाथ
वत् ॥ उवाचलक्ष्मणोभ्रातावचनंयुक्तमव्ययम् ॥ १४ ॥ संस्तंभरामभद्रंतेमाशुचःपुरुषोत्तम ॥ नेदृशानांमतिर्मं
दाभवत्यकलुषात्मनाम् ॥ १५ ॥ स्मृत्वावियोगजंदुःखंत्यजस्नेहंप्रियेजने ॥ अतिस्नेहपरिष्वंगाद्वर्तिरार्द्रापिदह्य
ते ॥ १६ ॥ यदिगच्छतिपातालंततोऽभ्यधिकमेववा ॥ सर्वथारावणस्तातनभविष्यतिराघव ॥ १७ ॥ प्रवृत्तिर्लभ्यतां
तावत्तस्यपापस्यरक्षसः ॥ ततोहास्यतिवासीतांनिधनंवागमिष्यति ॥ १८ ॥ यदियातिदितेर्गर्भंरावणःसहसीतया ॥
तत्राप्येनंहनिष्यामिनचेद्दास्यतिमैथिलीम् ॥ १९ ॥

न्यायवान, धीरवान, निष्पाप पुरुषोंमें ऐसी शोक बुद्धिका होना सब भांतिसे असंभवहै ॥ ११५ ॥ विरहसे उत्पन्न हुआ दुःख और प्रियजनके
प्रति स्नेहको छोड दीजिये देखिये अतिशय स्नेह युक्त अर्थात् तेलमें पडनेंसे गीली बत्तीभी जल जाती है ॥११६॥ यदि रावण पातालमें वा उससेभी
अधिक गुप्तदेशमें भागजाय, तथापि कदापि वह जीवित नहीं रहसकता ॥ ११७ ॥ वह पापमतिवाला राक्षस कहां रहताहै? और उसकी क्या
इच्छाहै? पहले इस बातको आप जान लीजिये, तब इसके पीछे यातो वह सीताको छोडही देगा अथवा मारा जायगा ॥ ११८ ॥ यदि
रावण जानकीजीको न देगा तब वह सीताजीके सहित चाहै दैत्य माता दितिके गर्भमें चला जाय तोभी हम उसको निःसन्देह मारडालेंगे ॥ ११९ ॥

दोहा—सीता ढूंढन चित दिये , बाण विराजत हाथ ॥ श्यामवरणदुखहरणभव, वंदौं श्रीरघुनाथ ॥ १ ॥

श्रीरामचंद्राभ्यां मनः जब इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके सहित पद्म, उत्पल, और मछलियोंसे परिपूर्ण उस परम मनोहर पुष्करिणी पर गये तब उनकी इंद्रियें व्याकुल होगईं, उस समय वह बहु भांतिसे विलाप करनें लगे ॥ १ ॥ और फिर जब उस पंपासरोवरको भली भांति देखा, तब हर्षमें भरनेंके कारण उनकी इन्द्रियां कांपनें लगीं, और वह कामदेवके वशहो लक्ष्मणजीसे बोले ॥ २ ॥ हे सुमित्राकुमार! देखो, देखो, वैदूर्यमणिकी समान स्वच्छ जलवाली पंपा, खिले हुये कमल और कमल पत्र व विविध भांति वृक्षोंके विराजित होनें पर कैसी शोभित होती है ॥ ३ ॥ देखो लक्ष्मण!

श्रीसीतारामचंद्राभ्यांनमः ॥ ॥ सतांपुष्करिणींगत्वापद्मोत्पलझषाकुलाम् ॥ रामःसौमित्रिसहितोविललापाकुलेंद्रियः ॥ १ ॥ तत्रदृष्ट्वैवतांहर्षादिंद्रियाणिचकंपिरे ॥ सकामवशमापन्नःसौमित्रिमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥ सौमित्रेशोभते पंपावैदूर्यविमलोदका ॥ फुल्लपद्मोत्पलवतीशोभिताविविधैर्द्रुमैः ॥ ३ ॥ सौमित्रेपश्यपंपायाःकाननंशुभदर्शनम् ॥ यत्रराजंतिशैलावाद्रुमाःसशिखराइव ॥ ४ ॥ मांतुशोकाभिसंतप्तमाधयःपीडयंतिवै ॥ भरतस्यचदुःखेनवैदेह्याहरणेनच ॥ ५ ॥ शोकार्तस्यापिमेपंपाशोभतेचित्रकानना ॥ व्यवकीर्णाबहुविधैःपुष्पैःशीतोदकाशिवा ॥ ६ ॥ नलिनैरपि संछन्नाह्यत्यर्थशुभदर्शना ॥ सर्पव्यालानुचरितामृगद्विजसमाकुला ॥ ७ ॥ अधिकंप्रविभात्येतन्नीलपीतंतुशाद्वलम् ॥ द्रुमाणांविविधैःपुष्पैःपरिस्तोमैरिवार्पितम् ॥ ८ ॥

पंपाके निकट वाले वन कैसे मनोहर दिखलाई देते हैं, और वहां ऊंचेशिखरवाले शैल और वृक्ष कैसे मनोहर रूपसे विराज रहे हैं ॥ ४ ॥ तुम विचार करके देखोकि हमारा हृदय राज्य भ्रष्ट होनेंसे, भरतजीके जटावल्कलादि धारण करनेंसे, व सीताजीका हरण हो जानेंके शोकसे बहुत ही सन्तापित है और इससे मनको पीडाभी होती है, और माता पिताके छूटनेंकाभी महा दुःख है ॥ ५ ॥ तथापि शीतल जल वाली अनेक प्रकारके पुष्पोंसे शोभित, विचित्र कानन युक्त यह पंपा हमारे मनको हरणकरके सुख और शांति देरही है ॥ ६ ॥ यह पंपा सरोवर कमल फूलोंसे व उनके पत्रोंसे छा रहा है इसका दर्शन बडाही मनोहर है, इस पर सर्प, व्याल, मृग, व पक्षीगण सदाही घूमा करते हैं ॥ ७ ॥ इसका नीला पीला व

अद्भुत दर्शन श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मण दोनोंजनें ऋष्यमूक पर्वतके निकट विचरण कर रहेथे, कि उसी समय वानर गणोंके राजा सुग्रीवजीनें ऋष्य मूकको और घूमते २ इन दोनों जनोंको देखा, वह उनको देख त्रास युक्त हो भोजनादिकी चेष्टासे विरत हुए ॥ १२८॥ श्रीराम लक्ष्मणजीभी उसी स्थानमें घूमनें लगे गज तुल्य मंद चाल चलनेंवाले महात्मा वह शाखामृग उस स्थानमें घूमकर चिन्तायुक्त और भयसे अति भीतहो उन राम लक्ष्मणजीको देख अति विषादको प्राप्त हुए ॥ १२९ ॥ उस वानरगणोंकरके सेवनीय मतंगमुनिके शापसे वालि जिसमें प्रवेश नहीं कर सकताथा,ऐसे पुण्याश्रममें वानर सुग्रीवादि वहां सदा रहाकरतेथे। इस समय महावीर्यवान् श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीको वहां आता

तावृष्यमूकस्यसमीपचारीचरन्ददर्शाद्भुतदर्शनीयौ ॥ शाखामृगाणामधिपस्तरस्वीवितत्रसेनैवविचेष्टचेष्टम् ॥ २८॥
सतौमहात्मागजमंदगामीशाखामृगस्तत्रचरंश्चरंतौ ॥ दृष्ट्वाविषादंपरमंजगामचिंतापरीतोभयभारभग्नः ॥ २९ ॥
तमाश्रमंपुण्यसुखंशरण्यंसदैवशाखामृगसेवितांतम् ॥ त्रस्ताश्चदृष्ट्वाहरयोविजग्मुर्महौजसौराघवलक्ष्मणौतौ॥१३०॥
इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेप्रथमःसर्गः ॥ १॥ ॥ छ॥ ॥ तौतुदृष्ट्वामहात्मानौ
भ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ वरायुधधरौवीरौसुग्रीवःशंकितोऽभवत् ॥ १ ॥ उद्विग्नहृदयःसर्वादिशःसमवलोकयन् ॥ नव्यति
ष्ठतकस्मिंश्चिद्देशेवानरपुंगवः ॥ २ ॥ नैवचक्रेमनःस्थातुंवीक्ष्यमाणौमहाबलौ ॥ कपेःपरमभीतस्यचित्तंव्यवससादह
॥ ३ ॥ चिंतयित्वासधर्मात्माविमृश्यगुरुलाघवम् ॥ सुग्रीवःपरमोद्विग्नःसर्वैस्तैर्वानरैःसह ॥ ४ ॥

हुआ देखकर वह शाखामृग अतिशय भीत और त्रासित हुए ॥ १३० ॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० किष्किन्धाकांडे प्रथमःसर्गः ॥१॥ उन अति श्रेष्ठ आयुध धारण किये हुए महात्मा श्रीराम लक्ष्मण दोनोंभाइयोंको देखकर वानरराज सुग्रीव अत्यन्त भय पाय गये ॥ १ ॥ वह वानरवर व्याकुलचित्तहो दशों दिशाओंमें देखते किसी एक स्थानमें स्थिर होकर न टिक सके ॥ २ ॥ उन महाबलवान दोनों वीरोंको देख कर सुग्रीवजीनें वहां ठहरनेंकी इच्छा नकी उन अति डरे हुए कपि श्रेष्ठका चित्त अत्यन्त विषादको प्राप्त हुआ ॥ ३ ॥वह धर्मात्मा सुग्रीवजी परम

हे लक्ष्मण। और देखो यह पवन सब शाखाओंको कंपायमान करके मानों सब वृक्षोंको बांध देता है ॥ १६ ॥ यह पवन चन्दनकी समान शीतल और सुख स्पर्श व महकताहुआ पुण्य रूप होकर प्राणियोंका आश्रयधारण करता है ॥ १७ ॥ यह देखो मधुगंध युक्त वनमें पवन करके हिल नेंसे सब वृक्ष, गुंजार करते हुये भौंरोंके द्वारा मनोहर शब्द कर रहे हैं ॥ १८ ॥ फिर पर्वत अपनें ऊपर उत्पन्न मनोरम महा वृक्षोंके द्वारा मानों शिखर युक्त होकर विराजमान हो रहे हैं ॥ १९ ॥ वृक्षोंकी फुनगियां फूलोंके द्वारा ढक जानेंसे और उनके ऊपर भौंरोंके गुंजार करनें, व पवन वेगके कारण उनके चलायमान होनेंसे ऐसा जानपडता है मानों सब वृक्षोंने एक वारही नृत्य गीत आरंभ कर दियाहै॥२०॥

तेनविक्षिपतात्यर्थंपवनेनसमंततः॥अमीसंसक्तशाखाग्राग्रथिताइवपादपाः॥ १६ ॥ सएवसुखसंस्पर्शोवातिचंदनशीतलः॥गंधमभ्यवहन्पुण्यंश्रमापनयनोऽनिलः॥१७॥अमीपवनविक्षिप्ताविनदंतीवपादपाः॥ षट्पदैरनुकूजद्भिर्वनेषुमधुगंधिषु ॥ १८ ॥ गिरिप्रस्थेषुरम्येषुपुष्पवद्भिर्मनोरमैः ॥ संसक्तशिखराःशैलाविराजंतिमहाद्रुमैः ॥ १९ ॥ पुष्पसंछन्नशिखरामारुतोत्क्षेपचंचलाः ॥ अमीमधुकरोत्तंसाःप्रगीताइवपादपाः ॥ २० ॥ सुपुष्पितांस्तुपश्यैतान्कर्णिकारान्समंततः ॥ हाटकप्रतिसंछन्नान्नरान्पीतांबरानिव ॥ २१ ॥ अयंवसंतःसौमित्रेनानाविहगनादितः ॥ सीतयाविप्रहीणस्यशोकसंदीपनोमम ॥ २२ ॥ मांहिशोकसमाक्रांतंसंतापयतिमन्मथः ॥ हृष्टंप्रवदमानश्चसमाह्वयतिकोकिलः ॥ २३ ॥ एषदात्यूहकोहृष्टोरम्येमांवननिर्झरे ॥ प्रणदन्मन्मथाविष्टंशोचयिष्यातिलक्ष्मण ॥ २४ ॥

देखो लक्ष्मण। कठचम्पेके वृक्ष पीत फूलोंसे छाये रहनेके कारण ऐसे जान पडते हैं मानों वह सुवर्णके गहने पहने पीताम्बरधारी वृक्षोंकी समान शोभा पारहेहैं ॥ २१ ॥ हे लक्ष्मण। इस वसंतकालमें अनेक भांतिके पक्षी गण मनोहर ध्वनि कर रहे हैं तिससे हमारा सीताजीका विरह दुःख एक वारही उकसा आताहै॥ २२ ॥ इस समय हम जानकी की विरहानलमें महा संतप्त होरहेहैं तिसके ऊपर यह पंचवाण अतिशय पीडा दे रहाहै और कोकिल कलकंठसे ध्वनि करके मानों हमारे प्रति अपना साहस दिखारहेहीहैं ॥ २३ ॥ यह देखो मनोरम वनके झरनोंमें सब जल

सब वानर गण भयका त्याग करैं कारण कि यह मलयाचल पर्वत है यहांपर वालिके भयकी कोई संभावना नहीं ॥१४॥हेवानरश्रेष्ठ! आप जिसके भयकी शंका करके व्याकुल चित्त होते हैं उस दुर्दर्शन क्रूर स्वभाववाले वालिको हम यहां नहीं देखते हैं ॥ १५ हे सौम्य! जिस पापकर्म करनें वाले अपने बडे भाईसे आपको डर है वह दुष्टात्मावालि यहां पर नहीं है इसलिये उस करके कोई भयका कारणभी हम नहीं देखते हैं ॥ १६ ॥ हे कपीश्वर! आप वानर जातिहैं उसी लघुचित्तताके कारण आप अपनीबुद्धिको स्थिर नहीं कर सकतेहैं ॥ १७ ॥ बुद्धि और विज्ञान युक्तहो संकेतमात्रसे आपको सब काम करलेने चाहिये राजा कुबुद्धिका आश्रयकरके सर्व जीवकी रक्षा नहीं कर सकता ॥ १८ ॥ सुग्रीवजी हनुमान्‌जीके यह

संभ्रमस्त्यज्यतामेषसर्वैर्वालिकृतेमहान् ॥ मलयोऽयंगिरिवरोभयंनेहास्तिवालिनः ॥ १४ ॥ यस्मादुद्विग्नचेतास्त्वं विद्रुतोहरिपुंगव ॥ तंक्रूरदर्शनंक्रूरंनेहपश्यामिवालिनम् ॥ १५ ॥ यस्मात्तवभयंसौम्यपूर्वजात्पापकर्मणः ॥ सनेहवा लीदुष्टात्मानतेपश्याम्यहंभयम् ॥ १६ ॥ अहोशाखामृगत्वंतेव्यक्तमेवप्लवंगम ॥ लघुचित्ततयात्मानंनस्थापयसियो मतौ ॥ १७ ॥ बुद्धिविज्ञानसंपन्नइंगितैःसर्वमाचर ॥ नह्यबुद्धिंगतोराजासर्वभूतानिशास्तिहि ॥ १८ ॥ सुग्रीवस्तुशुभं वाक्यंश्रुत्वासर्वंहनूमतः ॥ ततःशुभतरंवाक्यंहनूमंतमुवाचह ॥ १९ ॥ दीर्घबाहूविशालाक्षौशरचापासिधारिणौ ॥ कस्यनस्याद्भयंदृष्ट्वाह्येतौसुरसुतोपमौ ॥ २० ॥ वालिप्रणिहितावेवशंकेऽहंपुरुषोत्तमौ ॥ राजानोबहुमित्राश्चविश्वा सोनात्रहिक्षमः ॥ २१ ॥ अरयश्चमनुष्येणविज्ञेयाश्छन्नचारिणः ॥ विश्वस्तानामविश्वस्ताश्छिद्रेषुप्रहरंत्यपि ॥ २२ ॥

शुभकारी वचन सुनकर उनसे अति हितकारी वचन कहते हुये॥१९॥हनुमन्! दीर्घबाहु युक्त बडी२आंखोंवाले शर चाप खड्ग धारण किये हुये शूर पुत्र सम इन दोनों वीरोंको देखकर किसको भय उपस्थित नहीं होगा॥२०॥हम जानते हैं कि यह दो पुरुषश्रेष्ठ वालिके ही भेजे हुये यहां आये हैं क्योंकि राजा लोगोंके बहुत सारे मित्र हुआ करते हैं इस कारण इसविषयमें विश्वास न करना चाहिये॥२१॥मनुष्योंको अवश्य जानना कर्तव्य है, कि शत्रु लोग गुप्त भेदसे घूमा करतेहैं अविश्वासी वह शत्रुगण विश्वासी पुरुषोंको समय पातेही मार डालतेहैं ॥ २२ ॥

प्राणप्यारी जानकीको विना देखे इन सुन्दर वृक्षोंकें देखनेंसे ॥ ३३ ॥ यह काम वढताही जायगा, तिसपर विना देखे जानकीके यह हमको शोक ही उपजाता है ॥ ३४ ॥ यह वसंतकाल देखते ही देखते ठंडी पवन चलाय स्वेदको वंद करताहै और मृग शावकनयनी श्रीजानकीजीकी चिन्ता और शोकके मारे व्याकुल कराय हमको ॥ ३५ ॥ बहुत ही संतापित करता है और ऐसेही चित्ररथ नामक वनका यह महा क्रूर पवन भी हमको तपाता है । और यह मोर नाचते हुये इधर उधर शोभायमान होरहे हैं ॥ ३६ ॥ मानों स्फटिक मणियोंके झरोखोंमें बैठे हुये अपने पंख पवनसे हिला झुला रहेहैं यह सब अपनी २ मोरनियोंके साथ उन्मत्त हो रहेहैं ॥ ३७ ॥ यह सब मोर कामदेवसे व्याकुल हुए हमको अधिक

ममायमात्मप्रभवोभूयस्त्वमुपयास्यति ॥ अदृश्यमानावैदेहीशोकंवर्धयतीहमे ॥ ३४ ॥ दृश्यमानोवसं
तश्चस्वेदसंसर्गदूषकः ॥ मांहिसामृगशावाक्षीचिंताशोकबलात्कृतम् ॥ ३५ ॥ संतापयतिसौमित्रेक्रूरश्चैत्रवना
निलः ॥ अमीमयूराःशोभंतेप्रनृत्यंतस्ततस्ततः ॥ ३६ ॥ स्वैःपक्षैःपवनोद्धूतैर्गवाक्षैःस्फाटिकैरिव ॥ शिखिनीभिःप
रिवृतास्तएतेमदमूर्छिताः ॥ ३७ ॥ मन्मथाभिपरीतस्यममन्मथवर्धनाः ॥ पश्यलक्ष्मणनृत्यंतंमयूरमुपनृत्यति ॥ ३८ ॥
शिखिनीमन्मथार्तैषाभर्तारंगिरिसानुनि ॥ तामेवमनसारामांमयूरोप्यनुधावति ॥ ३९ ॥ वितत्यरुचिरौपक्षौरुतैरु
पहसन्निव ॥ मयूरस्यवनेनूनंरक्षसानहृताप्रिया ॥ ४० ॥ तस्मान्नृत्यतिरम्येषुवनेषुसहकांतया ॥ ममत्वयंवि
नावासःपुष्पमासेसुदुःसहः ॥ ४१ ॥

काम बढाते हैं हे लक्ष्मण! देखो इस नृत्य करते हुये मोरके पास ॥ ३८ ॥ कामसे व्याकुल हुई मुरैलिया कैसी पर्वतों परके कंगूरों पर नाच रहीहैं । उन्हीं मोरनियोंके निकट मनसे मोरभी दौडताहै ॥ ३९ ॥ फिर पंख फैलाय खडा होजाताहै. कुछ विलम्बमें अपनी बोली बोल मानों उस मोरनीको हँसाताहै । हम जानते हैं कि जिस वनमें हमारी प्राणजीवनी हरीगई हैं, उस वनमें मोर नहींथे ॥ ४० ॥ इसीकारण यह मोर अपनी स्त्रीके साथ इस रमणीक वनमें नाचताहै, यदि इसके सन्मुख जानकीजी हरी जातीं तो शोकके कारण इसको नाचनेंकी याद नरहती । हेलक्ष्मण ! विनाजा

शठ बुद्धिका आश्रय करके कपिरूप छोड भिक्षुकका रूप धारण किया ॥ २ ॥ तिसके पीछे हनुमानजी मनोहर और विनीत होकर उनके निकट जा प्रणाम करके उन दोनों भ्राताओंसे बोले ॥ ३ ॥ प्रथमतो उन दोनों वीरोंकी बडी प्रशंसाकी, और फिर वानरोत्तम हनुमानजीनें विधि विधानसे उनकी पूजा भी की ॥ ४ ॥ फिर मृदुभावसे उन सत्य पराक्रम दोनो वीरोंसे कहनें लगे कि आप राजर्षि सदृश, और देव तुल्य व्रतधारी तपस्वी और ब्रह्मचारियोंमें अग्रणीय ॥ ५ ॥ इन सब मृग और दूसरे बनचारियोंको भयभीत करते हुये किस कारणसे यहां पर आये हैं ॥ ६ ॥ आप लोग पंपाके तीर वाले वृक्षोंको चारों ओरसे देखकर इस पुण्य जल वाली नदीकी शोभाको बढा रहे हो॥ ७ ॥ आप लोग कृतकार्य, धैर्यवान्

ततः सहनुमान्वाचाश्लक्ष्णयासुमनोज्ञया ॥ विनीतवदुपागम्यराघवौप्रणिपत्यच ॥ ३ ॥ आबभाषेचतौवीरौयथाव
त्प्रशशंसच ॥ संपूज्यविधिवद्वीरौहनुमान्वानरोत्तमः ॥ ४ ॥ उवाचकामतोवाक्यंमृदुसत्यपराक्रमौ ॥ राजर्षिदेवप्र
तिमौतापसौसंशितव्रतौ ॥ ५ ॥ देशंकथमिमंप्राप्तौभवंतौवरवर्णिनौ ॥ त्रासयंतौमृगगणानन्यांश्चवनचारिणः ॥ ६ ॥
पंपातीररुहान्वृक्षान्वीक्षमाणौसमंततः ॥ इमांनदींशुभजलांशोभयंतौतरस्विनौ ॥ ७ ॥ धैर्यवंतौसुवर्णाभौकौयुवांची
रवाससौ ॥ निःश्वसंतौवरभुजौपीडयंताविमाः प्रजाः ॥ ८ ॥ सिंहविप्रेक्षितौवीरौमहाबलपराक्रमौ ॥ चक्रचापनिभेचा
पेगृहीत्वाशत्रुनाशनौ ॥ ९ ॥ श्रीमंतौरूपसंपन्नौवृषभश्रेष्ठविक्रमौ ॥ हस्तिहस्तोपमभुजौद्युतिमंतौनरर्षभौ ॥ १० ॥
प्रभयापर्वतेंद्रोऽसौयुवयोरवभासितः ॥ राज्यार्हावमरप्रख्यौकथंदेशमिहागतौ ॥ ११ ॥

सुवर्ण कांति चीर पहरे बडी बाहों वाले और ऊंधी श्वासें लेते हुये कौन हैं जो अपना अपूर्व रूप दिखा इन वनवासिनि प्रजा ओंको पीडा देते हो॥८॥ आपका देखना सिंहकी समान है आप महाबलवान् और महापराक्रम युक्त हैं; और आप दोनों जनोंके इन्द्र धनुषकी समान धनुष देखकर ज्ञात होता है कि आप देखतेही शत्रुओंका नाश करेंदेंगे॥ ९ ॥हम देखते हैं कि आप श्रीमान् रूपसम्पन्न वृषभ तुल्य पराक्रम करनेंवाले हाथीकी शुंड समान चढा उतारवाली लंबी भुजायें धारण किये द्युतिमान् नरश्रेष्ठ ॥१०॥ आपदोनों जनोंकी प्रभासे यह पर्वत प्रकाशित हो रहाहै और दोनोंही

वसंत कालको प्राप्त होकर हमारे विरहमें निश्चयही प्राण त्यागदेंगी इसमें कोई संदेह नहींहै ॥५०॥ हमनें बुद्धिसे, हृदयसे निश्चय कियाहै कि हमारे विरहमें वह साध्वी पतिव्रता सीताजी कभी जीवित नहीं रहसकैंगी॥५१॥जानकीजीके हृदयका भाव निश्चयही हमारे प्रति स्थापितहै,और हमारा भावभी निश्चयही सीताजीके प्रति लगाहुआहै ॥ ५२ ॥ यह पुष्प गंध वहन करनेवाला सुशीतल व स्पर्शसे सुख उपजानेंवाला वायु स्त्रीकी चिन्ता करते हुये हमारे वास्ते अग्निकी समान उष्ण लगताहै ॥ ५३ ॥ पहले सीताजीके साथ रहते जिसको सदाही हम परम मित्र समझतेथे, इस समय सीताजीके विना वही समीर हमको शोक उत्पन्न करानेंवाला होरहाहै ॥ ५४ ॥ सीताजीके संयोग समयमें इस काक पक्षीनें आकाशमें

दृढंहिहृदयेबुद्धिर्ममसंपरिवर्तते ॥ नालंवर्तयितुंसीतासाध्वीमद्विरहंगता ॥ ५१ ॥ मयिभावोहिवैदेह्यास्तत्त्वतोविनिवेशितः ॥ ममापिभावःसीतायांसर्वथाविनिवेशितः ॥ ५२ ॥ एषपुष्पवहोवायुःसुखस्पर्शोहिमावहः ॥ तांविचिंतयतःकांतांपावकप्रतिमोमम ॥ ५३ ॥ सदासुखमहंमन्येयंपुरासहसीतया ॥ मारुतःसविनासीतांशोकसंजननोमम ॥ ५४ ॥ तांविनाथविहंगोऽसौपक्षीप्रणदितस्तदा ॥ वायसःपादपगतःप्रहृष्टमभिकूजति ॥ ५५ ॥ एषवैतत्रवैदेह्याविहगःप्रतिहारकः ॥ पक्षीमांतुविशालाक्ष्याःसमीपमुपनेष्यति॥५६॥पश्यलक्ष्मणसंनादंवनेमदविवर्धनम् ॥ पुष्पिताग्रेषुवृक्षेषुद्विजानामवकूजताम् ॥ ५७॥ विक्षिप्तांपवनेनैतामसौतिलकमंजरीम् ॥ षट्पदःसहसाभ्येतिमदोद्धूतामिवप्रियाम् ॥५८॥

उडकर अपनी कठोर बोली बोल जानकीजीके वियोगकी सूचना दीथी अब इस समय जबकि उनका वियोग होरहाहै, तब यह पक्षी प्रसन्नतासे वृक्ष पर बैठा फिर उनके मिलनेंको जतारहाहै ॥ ५५॥ इसलिये इस विहंगमनेंही सीताजीको हरण कर लियाहै, और फिर यही पक्षी हमारे साथ उन विशालनयना जानकीजीका मिलन करादेगा ॥ ५६ ॥ हे लक्ष्मण ! यह सुनो, फूले हुये वृक्षकी फुलगीपर बैठे कूजन करके यह पक्षिगण मदनानंद बढानेंवाला मधुर शब्द कर रहे हैं ॥ ५७ ॥ देखो यह सब भ्रमर तिलक मंजरीके ऊपर बैठ परम सुखसे मधु पीरहेथे, सो अचानक पवनसे ताडित होकर फिर वेग सहित तिलक मंजरीके निकट जा रहेहैं जैसे कोई मदसे कंपायमान अपनी प्रियाके निकट पहुँचता है ॥ ५८ ॥

रहेहैं, परन्तु आपलोग हमसे क्यों नहीं भाषण करते? ॥ १९ ॥ हे वीरो ! इस समय हमारा आप परिचय श्रवण करें; सुग्रीव नामक एक धर्मात्मा श्रेष्ठ वानरहै वह अपने बडे भाईसे निकाले जाकर त्रासित व दुःखितहोकर इस समस्त पृथ्वीपर भ्रमण किया करतेहैं ॥ २० ॥हम हनुमान नाम वानर उन वानरराज महात्मा सुग्रीवजीके भेजे हुए आपके पासआये हैं॥ २१ ॥ उन धर्मात्मा सुग्रीवजीनें आपके सहित मित्रता करनेंकी इच्छाकीहै, हम पवनके पुत्र उन सुग्रीवजीके मंत्री और साथीहैं ॥ २२ ॥ हम कामचारी और इच्छानुसार चलनेंवाले सुग्रीवजीकी प्रियका मनासे भिक्षुकके रूपसे गुप्त वेषमें आपके निकट आयेहैं ॥ २३ ॥ वचनकेजाननेंवाले और बोलनेमें चतुर हनुमानजी श्रीराम लक्ष्मणजी दोनों

सुग्रीवोनामधर्मात्माकश्चिद्वानरपुंगवः ॥वीरोविनिकृतोभ्रात्राजगद्भ्रमतिदुःखितः॥२०॥प्राप्तोऽहंप्रेपितस्तेनसुग्रीवेणमहात्मना ॥ राज्ञावानरमुख्यानांहनुमान्नामवानरः ॥ २१ ॥ युवाभ्यांसहिधर्मात्मासुग्रीवःसख्यमिच्छति ॥ तस्यमांसचिवंवित्तंवानरंपवनात्मजम् ॥ २२ ॥ भिक्षुरूपप्रतिच्छन्नंसुग्रीवप्रियकारणात् ॥ ऋष्यमूकादिहप्राप्तंकामदंकामचारिणम् ॥ २३ ॥ एवमुक्त्वातुहनुमांस्तौवीरौरामलक्ष्मणौ ॥ वाक्यज्ञोवाक्यकुशलःपुनर्नोवाचकिंचन ॥ २४॥ एतच्छ्रुत्वावचस्तस्यरामोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ प्रहृष्टवदनःश्रीमान्भ्रातरंपार्श्वतःस्थितम् ॥ २५ ॥ सचिवोऽयंकपीन्द्रस्यसुग्रीवस्यमहात्मनः ॥ तमेवकांक्षमाणस्यममांतिकमिहागतः ॥ २६ ॥ तमभ्यभाषसौमित्रेसुग्रीवसचिवंकपिम् ॥ वाक्यज्ञंमधुरैर्वाक्यैःस्नेहयुक्तमरिंदमम् ॥ २७ ॥ नानृग्वेदविनीतस्यनायजुर्वेदधारिणः ॥ नासामवेदविदुषःशक्यमेवंविभाषितुम् ॥ २८ ॥

वीरोंसे ऐसा कहकर फिर कुछ न बोले ॥ २४ ॥ श्रीमान् रामचंद्रजी उनकेयह वचन सुन प्रफुल्ल वदन हुये और बगलमें खडेहुये अपने भ्राता लक्ष्मणजीसे बोले ॥ २५ ॥ कि यह हनुमान महात्मा कपिराज सुग्रीवजीकेमंत्रीहैं, व उन्हींका प्रिय करनेंकी कामनासे यह हमारे पास आयेहैं ॥२६॥ हे लक्ष्मण! सुग्रीवजीके सचिव वाक्यविशारद शत्रुओंका नाश करनें वाले इन कपिश्रेष्ठसे तुम मधुर वचनोंके साथ वार्त्ताकरो ॥ २७ ॥ तुम यह भी जानलो कि जिस पुरुषनें ऋग्वेद नहीं पढा यजुर्वेद अथवा सामवेद नहींपढा वह पुरुष कभी ऐसे वचन कहनेंमें समर्थ नहीं होसकता कि जैसे वचन

अहो! कामकी कैसी कुटिलता है! देखो जिनके साथ वियोग होगया और जिनका मिलना अति दुर्लभ है सो यह कुटिलता, उनही कल्याणके वचन कहनेवाली कल्याणी प्रियाकी बार२याद दिलाती है॥६८॥अहो! हम इस कठिन मदनकोभी धारण करसक्ते! किन्तु यह फूले हुये वृक्ष और वसंत बहुत पीडित करता है, इसलिये हम बहुतही सामर्थहीन हो गये हैं ॥ ६९ ॥ उन जानकीजीके साथ रहकर जिनको हम परम रमणीय समझतेथे, उस समय सीताके विरहमें वही हमको अत्यन्त अप्रिय लगते हैं ॥ ७० ॥ यह कमल दल यद्यपि कामके जगानेंवालेभी हैं तथापि सीताजीके नेत्रोंकी समता, धारण करते हैं, यह समझ कर हमारे नेत्र उनके दर्शनमें मन लगाये हैं ॥ ७१ ॥ दूसरे वृक्षोंके मध्यमें हो बाहर निकलकर कमलकेश

अहोकामस्यवामत्वंयोगतामपिदुर्लभाम् ॥ स्मारयिष्यतिकल्याणींकल्याणतरवादिनीम् ॥ ६८ ॥ शक्योधारयितुंकामोभवेदभ्यागतोमया ॥ यदिभूयोवसंतोमांनहन्यात्पुष्पितद्रुमः ॥ ६९ ॥ यानिस्मररमणीयानितयासहभवंतिमे ॥ तान्येवारमणीयानिजायंतेमेतयाविना ॥ ७० ॥ पद्मकोशपलाशानिद्रष्टुंदृष्टिर्हिमन्यते ॥ सीतायानेत्रकोशाभ्यांसदृशानीतिलक्ष्मण॥७१॥पद्मकेसरसंसृष्टोवृक्षांतरविनिःसृतः ॥ निःश्वासइवसीतायावातिवायुर्मनोहरः॥७२॥ सौमित्रेपश्यपंपायादक्षिणेगिरिसानुषु ॥ पुष्पितांकर्णिकारस्ययष्टिंपरमशोभिताम् ॥ ७३ ॥ अधिकंशैलराजोऽयंधातुभिस्तुविभूषितः ॥ विचित्रंसृजतेरेणुंवायुवेगविघट्टितम् ॥ ७४ ॥ गिरिप्रस्थास्तुसौमित्रेसर्वतःसंप्रपुष्पितैः ॥ निष्पत्रैःसर्वतोरम्यैःप्रदीप्ताइवकिंशुकैः ॥ ७५ ॥ पंपातीररुहाश्चेमेसंसिक्तामधुगंधिनः ॥ मालतीमल्लिकापद्मकरवीराश्चपुष्पिताः ॥ ७६ ॥

रको छू करके सीताजीके श्वास पवनके समान यह मनोरम समीर वह रही है ॥ ७२ ॥ हे लक्ष्मण! पंपाकी दक्षिण तरफको देखोकि गिरिशृङ्गोंके ऊपर कठ चंपाके वृक्षोंकी फूली हुई शोभायमान शाखायें कैसी मनोहर दीख रहीं हैं ॥ ७३ ॥ यह पर्वतराज विविध भांतिकी गेरू आदि धातुओं से विभूषित होकर वायु वेगसे उठाहुआ विचित्र रेणुजाल विस्तार कर रहा है ॥ ७४ ॥ गिरिकी सब स्थलियां पल्लवहीन सब भांतिसे खिले हुये टेसूके वृक्षोंसे प्रदीप्त अग्निकी समान शोभित होरही हैं ॥ ७५ ॥ पंपाके तीर वाले मधुगन्धि वृक्ष इसके जलसे सींचे जाकर सदा बढते रहते हैं. इस

हम लोग जानते हैं और उन्ही कपिश्रेष्ठ सुग्रीवजीको हम खोजते हैं॥ ३७ ॥ हे वानरश्रेष्ठ ! सुग्रीवजी जो कुछ कहेंगे हम तुम्हारे वचनोंका गौरव करके वैसेही करेंगे इसमें कुछभी सन्देह नहीं है॥ ३८ ॥ इसके पीछे कपिश्रेष्ठ पवनपुत्र हनुमानजी लक्ष्मणजीके यह वचन सुन करके अत्यन्त हर्षित हुये, और जयकी सिद्धिके विषयमें मनको समाधानकर सुग्रीव और श्रीरामचन्द्रजीमें मित्रता करानेंकी इच्छा करते हुये ॥ ३९ ॥ इत्यार्षे श्री० वा० आ० किष्किन्धाकांडे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥ हनुमान्जी श्रीलक्ष्मणजीके वह मधुर भावभरे वचन श्रवण करके अत्यन्त हर्षित चित्त हुये और मनही मनमें इन्होंने सुग्रीवजीके कार्यकीसिद्धि जानी ॥ १ ॥ और विचारा कि महात्मा सुग्रीवजीको राज्य प्राप्त

यथाब्रवीषिहनुमन्सुग्रीववचनादिह ॥ तत्तथाहिकरिष्यावोवचनात्तवसत्तम ॥ ३८ ॥ तत्तस्यवाक्यंनिपुणंनिशम्य प्रहृष्टरूपःपवनात्मजःकपिः ॥ मनःसमाधायजयोपपत्तौसख्यंतदाकर्तुमियेषताभ्याम् ॥ ३९ ॥ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेतृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ततःप्रहृष्टोहनुमान्कृत्य वानितितद्वचः ॥ श्रुत्वामधुरभावंचसुग्रीवंमनसागतः ॥ १ ॥ भाव्योराज्यागमस्तस्यसुग्रीवस्यमहात्मनः ॥ यदयं कृत्यवान्प्राप्तःकृत्यंचैतदुपागतम् ॥ २ ॥ ततःपरमसंहृष्टोहनूमान्प्लवगोत्तमः ॥ प्रत्युवाचततोवाक्यंरामंवाक्यवि शारदम् ॥ ३ ॥ किमर्थंचवनंघोरंपंपाकाननमंडितम् ॥ आगतःसानुजोदुर्गंनानाव्यालमृगायुतम् ॥ ४ ॥ तस्य तद्वचनंश्रुत्वालक्ष्मणोरामचोदितः ॥ आचचक्षेमहात्मानंरामंदशरथात्मजम् ॥ ५ ॥ राजादशरथोनामद्युतिमान्ध मवत्सलः ॥ चातुर्वर्ण्यंस्वधर्मेणनित्यमेवाभिपालयन् ॥ ६ ॥

होनेंकी विलक्षण संभावना है क्योंकि यह कृतकार्य दोनों वीर अचानकयहां पर आय पहुंचे हैं, और इनके साथ मित्रताई होनेंकीभी पूरी२आशा है अनन्तर वानरोंमें श्रेष्ठ हनुमानजी अत्यन्त हृष्ट होकर वचन बोलनेंमें कुशल श्रीरामचन्द्रजीसे कहनें लगे॥२॥ ३ ॥ कि आप अपनें छोटे भाईके साथ पंपाके कानन शोभित, दुर्गम अनेक प्रकारके हिंसक जन्तु ओंसे परिपूर्ण घोर वनमें किस कारणसे आये हैं? ॥ ४ ॥ हनुमान्जीके यह वचन श्रवण करके, श्रीलक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीके आदेशसे पवनपुत्रको सब बतानेंलगे॥५॥कि अयोध्यानगरमें दशरथजीनामक धर्मवत्सल द्युतिमान ए

ताहै, पंपाके किनारेवाले किसी २ वृक्षकी शाखा अधिक पुष्पयुक्त होनेंके कारण सुशोभित हो सुगन्धित होरही हैं ॥ ८६ ॥ और कोई कुछे क निकली हुई कलियोंकी मंजरीसे श्याम वर्णकी समान शोभा पारहे हैं यह फूल मीठेहैं, यह स्वाद युक्त हैं, यह फूल खिलाहुआहै ॥ ८७ ॥ इस प्रकार समझ और अनुरागी होकर भ्रमर गण उड २ कर पुष्पों पर बैठते हैं और रसलेकर उडके और फूलों पर बैठ जातेहैं, इसप्रकारसे मधुके लोभी मधुकर पंपाके तीर वाले वृक्षोंपर बैठते उठतेहैं ॥ ८८ ॥ देखो तो इस भूमिपर कैसे फूल बिछेहैं, इस कारण यह सुख सहित शयन करनेंके योग्यहै यह पुष्प अपने आप गिरेहैं, किसीनें तोडकर नहीं गिराये, परन्तु ऐसे गिरेहैं, मानों शयन करनेंके लिये सेज बिछाई गईहै ॥ ८९ ॥ इस

केचिन्मुकुलसंवीताःश्यामवर्णाइवाबभुः ॥इदंमृष्टमिदंस्वादुप्रफुल्लमिदमित्यपि ॥ ८७ ॥ रागरक्तोमधुकरःकुसुमेष्वेवलीयते ॥ निलीयपुनरुत्पत्यसहसान्यत्रगच्छति ॥ मधुलुब्धोमधुकरःपंपातीरद्रुमेष्वसौ ॥ ८८ ॥ इयंकुसुमसंघातैरुपस्तीर्णासुखाकृता ॥ स्वयंनिपतितैर्भूमिःशयनप्रस्तरैरिव ॥ ८९ ॥ विविधाविविधैःपुष्पैस्तैरेवनगसानुषु ॥ विस्तीर्णाःपीतरक्ताभाःसौमित्रेप्रस्तराःकृताः ॥ ९० ॥ हिमांतेपश्यसौमित्रेवृक्षाणांपुष्पसंभवम् ॥ पुष्पमासेहितरवः संघर्षादिवपुष्पिताः ॥ ९१ ॥ आह्वयंतइवान्योन्यंनगाःषट्पदनादिताः ॥ कुसुमोत्तंसविटपाःशोभंतेबहुलक्ष्मण ॥९२॥ एषकारंडवःपक्षीविगाह्यसलिलंशुभम् ॥ रमतेकांतयासार्धंकाममुद्दीपयन्निव ॥ ९३ ॥ मंदाकिन्यास्तुयदिदंरूपमेतन्मनोहरम् ॥ स्थानेजगतिविख्याताग्गुणास्तस्यामनोरमाः ॥ ९४ ॥

पर्वतके सब कँगूरोंपर पीले लाल इत्यादि विविध भांतिके पुष्प समूह द्वारा विविध भांतिकी चादरसी बिछरही हैं ॥ ९० ॥ हे लक्ष्मण! हिमके अंत वसंतकालमें वृक्ष गणोंकी पुष्पोत्पत्ति देखो! मानों सब वृक्ष एक दूसरेको पुकार २ पुष्प उत्पन्न कररहे हैं ॥ ९१ ॥ वृक्ष समूहोंकी फूलभरी शाखायें भौंरोंकी गुंजारसे परस्पर पुकार २ मानों शोभा विस्तार कररही हैं ॥ ९२ ॥ देखो लक्ष्मण! यह कारण्डव पक्षी इस विमल जलमें डुबकी मार कामदेवको जगाताही हुआ मानों अपनी स्त्रीके सहित रमण कररहाहै ॥ ९३ ॥ मन्दाकिनीकी समान पम्पाका यह रूप और मनको रमानें

जीका और उनकी सामर्थ्यका वर्णनकर हमसे कहा कि ॥ १५ ॥ वह वानरनाथ महावीर्यवान सुग्रीवजीही तुम्हारी भार्याके हरण करनेंवालेको जानते होंगे वह कवन्ध राक्षस दनु हमसे ऐसा कह दिव्य रूपसे दीप्तिमानहो स्वर्गको चला गया ॥ १६॥ हे हनुमन्! इस प्रकार तुम्हारे पूछनेंसे जो कुछ वृत्तान्तथा सो सब यथार्थही कहदिया, अब हमनें व श्रीरामचंद्रजीनें सुग्रीवजीकी शरण ग्रहणकी ॥ १७ ॥ जो श्रीरामचंद्रजी पहले बहुतसा धनादि दान करकै बहुतसे यशको प्राप्त हुएहैं जो पहले लोकोंके नाथथे वही इस समय सुग्रीवजीका आश्रय ग्रहण करतेहैं ॥ १८ ॥ सीता जिनकी पुत्रवधू और जोकि लोकोंके शरण देनेंवाले और धर्मवत्सलथे उन्हीं लोकगणोंका आश्रय देनेवाले दशरथजीके पुत्र श्रीरामचंद्रजी सुग्रीवजीकी

सज्ञास्यतिमहावीर्यस्तवभार्यापहारिणम् ॥ एवमुक्त्वादनुःस्वर्गंभ्राजमानोदिवंगतः ॥ १६ ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातंयाथातथ्येनपृच्छतः ॥ अहंचैवचरामश्चसुग्रीवंशरणंगतौ ॥ १७ ॥ एषदत्वाचवित्तानिप्राप्यचानुत्तमंयशः ॥ लोकनाथःपुराभूत्वासुग्रीवंनाथमिच्छति ॥ १८ ॥ सीतायस्यस्नुषाचासीच्छरण्योधर्मवत्सलः ॥ तस्यपुत्रःशरण्यस्यसुग्रीवंशरणंगतः ॥ १९ ॥ सर्वलोकस्यधर्मात्माशरण्यःशरणंपुरा ॥ गुरुर्मेराघवःसोऽयंसुग्रीवंशरणंगतः ॥ २० ॥ यस्यप्रसादेसततंप्रसीदेयुरिमाःप्रजाः॥सरामोवानरेंद्रस्यप्रसादमभिकांक्षते॥२१॥येनसर्वगुणोपेताःपृथिव्यांसर्वपार्थिवाः ॥ मानिताःसततंराज्ञासदादशरथेन वै ॥ २२ ॥ तस्यायंपूर्वजःपुत्रस्त्रिषुलोकेषुविश्रुतः ॥ सुग्रीवंवानरेंद्रंतुरामःशरणमागतः ॥ २३ ॥ शोकाभिभूतेरामेतुशोकार्तेशरणंगते ॥ कर्तुमर्हतिसुग्रीवःप्रसादंसहयूथपैः ॥ २४ ॥

शरण लेतेहैं ॥ १९ ॥ जो धर्मात्मा पहले लोकोंके आश्रय देनेंवाले और शरण देनेंवालेथे सो वही श्रीरामचंद्रजी अब सुग्रीवजीकी शरण लेतेहैं ॥ २० ॥ जिनकी प्रसन्नतासे समस्त लोक प्रसन्न होजातेथे, वही श्रीरामचंद्रजी अब वानरराज सुग्रीवजीकी शरण ग्रहण करतेहैं ॥ २१ ॥ पूर्व समयमें राजा दशरथजीनें जिन गुण युक्त पृथ्वीनाथोंका सन्मान कियाथा ॥ २२ ॥ उनकेही सर्व लोकमें विख्यात ज्येष्ठ पुत्र श्रीरामचंद्रजी वानरेन्द्र सुग्रीवजीकी शरण लेतेहैं ॥ २३ ॥ यह श्रीरामचंद्रजी इस समय अपनी प्रियाके शोकसे व्याकुल होकर सुग्रीवजीकी शरणमें आयेहैं; इस

दर्शन पावें तबही हमको शान्ति और सुखकी प्राप्तिहोसकतीहै ॥ १०२ ॥ हे लक्ष्मण ! यदि वह सुमध्यमा पतिव्रता जानकीजी हमारे साथ इस पंपाकी पवन सेवन करें तबही हम जीवन धारण करनेंको समर्थ होवें ॥ १०३ ॥ हे लक्ष्मण ! कमलकी सुगन्धि वहन करनेंवाले, शोक विनाशन इसपंपाके पुण्यवान पवनकू धन्य पुरुषही सेवाकरते है ॥ १०४ ॥ वह श्यामा, कमलनयनी जनककुमारी सीताजी हमारे विरहमें अवश होकर प्राण धारण करनेंमें कभी समर्थ नहींहोंगी ॥ १०५ ॥ हाय! वह धर्मशील, सत्यवादी, महाराज जनकजी जब सभाके बीचमें हमसे सीताजीकी कुशल पूछेंगे तब हम उनसे क्या कहैंगे ॥ १०६ ॥ हम अतिशय मंदभागीहैं, पिताजीने हमको वनमें पठाया तब सीताजी

जीवेयंखलुसौमित्रेमयासहसुमध्यमा ॥ सेवेतयदिवैदेहीपंपायाःपवनंशुभम् ॥ ३ ॥ पद्मसौगंधिकवहंशिवंशोकविनाशनम् ॥ धन्यालक्ष्मणसेवंतेपंपायावनमारुतम् ॥ ४ ॥ श्यामापद्मपलाशाक्षीप्रियाविरहितामया ॥ कथंधारयतिप्राणान्विवशाजनकात्मजा ॥५॥ किंनुवक्ष्यामिधर्मज्ञंराजानंसत्यवादिनम् ॥ जनकंपृष्टसीतंतंकुशलंजनसंसदि॥६॥ यामामनुगतामंदंपित्राप्रस्थापितंवनम् ॥ सीताधर्मसमास्थायक्वनुसावर्ततेप्रिया ॥ ७ ॥ तयाविहीनःकृपणःकथंलक्ष्मणधारये ॥ यामामनुगताराज्याद्भ्रष्टंविहतचेतसम् ॥ ८ ॥ तच्चार्वंचितपद्माक्षंसुगंधिशुभमव्रणम् ॥ अपश्यतोमुखंतस्याःसीदतीवमतिर्मम ॥ ९ ॥ स्मितहास्यांतरयुतंगुणवन्मधुरंहितम् ॥ वैदेह्यावाक्यमतुलंकदाश्रोष्यामिलक्ष्मण ॥ ११० ॥ प्राप्यदुःखंवनेश्याममांमन्मथविकर्शितम् ॥ नष्टदुःखेवहृष्टेवसाध्वीसाध्वभ्यभाषत ॥ ११ ॥

हमारे साथ २ आई । हा! इस प्रकारके पतिव्रत धर्ममें टिकी हुई सीताजी इस समय कहांहै ॥ १०७ ॥ हाय लक्ष्मण ! हम राज्यभ्रष्ट और हतबुद्धि होकर वनको आये, सो उस समय जो जानकीजी हमारे साथ२ आईथीं उन सीताजीके विना इस समय दीन होकर हम किस प्रकारसे प्राण धारण करनेको समर्थ हों ॥ १०८ ॥ उन सीताजीका कमल समान मनोहर सीतला आदिके दागोंसे रहित सुगन्धि मुख कमल न देख पाकर हमारा मन मोहके वशहो व्याकुल हुआ जाताहै ॥ १०९ ॥ हे लक्ष्मण ! उन सीताजीका मुसकान सहित गुण युक्त सुमधुर हितकारी अतुल वचनामृत कभी हम फिरभी श्रवण कर सकेंगे? ॥ ११० ॥ वह सर्व सुलक्षणवाली श्यामा साध्वी वनमें हमको प्राप्त होकर दुःखके समयभी सुखिनी

तिसके पीछे महापंडित पवनपुत्र हनुमान्जी उन दोनों रघुवीरोंको लेकर सुग्रीवजीके पास चले॥३३॥ भिक्षुकका रूप छोड़ वानर रूप धारण कर अपनी पीठपर दोनों वीरोंको चढाय सुग्रीवजीके निकट गमन करनेंलगे ॥ ३४ ॥ वह विपुल यशस्वी कार्य वीर अमित पराक्रम और विमल चित्त पवन पुत्र कृतकृत्य की समान हर्षित हो श्रीराम लक्ष्मण सहित उस गिरिवर पर जापहुँचे॥३५॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० किष्किन्धाकांडे चतुर्थःसर्गः॥४॥ हनुमानजी ऋष्यमूक पर्वतपरसे मलयाचलपर जाय सुग्रीवजीसे श्रीराम लक्ष्मणजीकी आगमन वार्ता निवेदन करके कहनें लगे ॥ १ ॥

ततःससुमहाप्राज्ञोहनूमान्मारुतात्मजः ॥ जगामादायतौवीरौहरिराजायराघवौ ॥ ३३ ॥ भिक्षुरूपंपरित्यज्यवानरं रूपमास्थितः ॥ पृष्ठमारोप्यतौवीरौजगामकपिकुंजरः ॥ ३४ ॥ सतुविपुलयशाःकपिप्रवीरःपवनसुतःकृतकृत्य वत्प्रहृष्टः ॥ गिरिवरमुरुविक्रमःप्रयातःसशुभमतिःसहरामलक्ष्मणाभ्याम् ॥ ३५ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रा०वाल्मीकीये आदि० किष्किंधाकांडेचतुर्थःसर्गः ॥ ४ ॥ ऋष्यमूकात्तुहनुमान्गत्वातंमलयंगिरिम् ॥ आचचक्षेतदावीरौकपि राजायराघवौ ॥ १ ॥ अयंरामोमहाप्राज्ञसंप्राप्तोदृढविक्रम ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्रारामोऽयंसत्यविक्रमः ॥ २ ॥ इक्ष्वा कूणांकुलेजातोरामोदशरथात्मजः ॥ धर्मेनिगदितश्चैवपितुर्निर्देशकारकः॥३॥राजसूयाश्वमेधैश्चवह्निर्येनाभितर्पितः॥ दक्षिणाश्चतथोत्सृष्टागावःशतसहस्रशः ॥ ४ ॥ तपसासत्यवाक्येनवसुधातेनपालिता ॥ स्त्रीहेतोस्तस्यपुत्रोऽयंरा मोऽरण्यंसमागतः ॥ ५ ॥

कि यही महापंडित सत्य पराक्रम विपुल वीर्य शाली श्रीरामचंद्रजी हैं यह भ्राता लक्ष्मणजीके साथ इस स्थानमें आये हैं ॥ २ ॥ इन श्रीरामचं द्रजी ने इक्ष्वाकुओंके विशुद्ध वंशमें दशरथजीके औरससे जन्म ग्रहण कियाहै, यह अपनें धर्मको पालनेके लिये आज्ञा पाकर उसके पालन करनेंमें यत्नवान हुये हैं ॥ ३ ॥ उन नृपतिश्रेष्ठ दशरथजीनें राजसूय और अश्वमेधादि यज्ञोंमें अग्निको तृप्त किया, और उन यज्ञोंमें सैकडों हजारों गायें और मणियें दक्षिणादीं॥४॥उन्होंने तपस्या और सत्यवचनद्वारा पृथ्वीका पालन किया उनकी स्त्रीके लिये उनके पुत्र यह श्रीरामचं

हे आर्य! आप मनकी दीनताको छोडकर स्वस्थ हूजिये आप तो जानते ही हैं कि नष्ट कार्य विना यत्न किये कभी सिद्ध नहीं होता ॥ १२० ॥ हे आर्य! उत्साहही बलवान् है उत्साहसे अधिक श्रेष्ठबल और कुछभी नहीं है इससंसारमें उत्साहको कुछभी दुर्लभ नहीं है इसलिये उत्साहका अवश्य ही आसरा लेना चाहिये ॥ १२१ ॥ उत्साह युक्त पुरुषगण कभी नहीं घवडाते, इसलिये हम केवल उत्साहकाही अवलंबन करके जानकीजीको फिर प्राप्त करलेंगे। इसमें कुछभी संदेह नहींहै ॥ १२२ ॥ आप महात्मा और कृत्यविद्हैं सो आप अपनें आत्म स्वरूपको क्यों नहीं जानते इसलिये शोकको त्याग करके यह कामी पुरुषोंकीसी वृत्ति छोड दीजिये ॥ १२३ ॥ जब श्रीलक्ष्मणजीनें इस प्रकारसे समझाया बुझाया तब

स्वास्थ्यंभद्रभजस्वार्यत्यज्यतांकृपणामतिः ॥ अर्थोहिनष्टकार्यार्थैरयत्नेनाधिगम्यते ॥ १२० ॥ उत्साहोबलवाना र्यनास्त्युत्साहात्परंबलम् ॥ सोत्साहस्यहिलोकेषुनकिंचिदपिदुर्लभम् ॥ २१ ॥ उत्साहवंतःपुरुषानावसीदंतिकर्मसु ॥ उत्साहमात्रमाश्रित्यप्रतिलप्स्यामजानकीम् ॥ २२ ॥ त्यज्यतांकामवृत्तत्वंशोकंसंन्यस्यपृष्ठतः ॥ महात्मानंकृता त्मानमात्मानंनावबुध्यसे ॥२३॥ एवंसंबोधितस्तेनशोकोपहतचेतनः॥त्यज्यशोकंचमोहंचरामोधैर्यमुपागमत्॥२४॥ सोऽभ्यतिक्रामदव्यग्रस्तामचिंत्यपराक्रमः ॥ रामःपंपांसुरुचिरांरम्यांपारिप्लवद्रुमाम् ॥ २५ ॥ निरीक्षमाणःसह सामहात्मासर्ववनंनिर्झरकंदरंच ॥ उद्विग्नचेताःसहलक्ष्मणेनविचार्यदुःखोपहतःप्रतस्थे ॥ २६ ॥ तंमत्तमातंगविला सगामीगच्छंतमव्यग्रमनामहात्मा ॥ सलक्ष्मणोराघवमिष्टचेष्टोररक्षधर्मेणबलेनचैव ॥ २७॥

शोकसे हतचित्त हुए श्रीरामचंद्रजीनें शोक और मोहको छोडकर धीर्य धारण किया ॥१२४॥ तब अचिन्त्य पराक्रम श्रीरामचंद्रजी अव्यग्र चित्तसे उस वृक्ष समूहसे परिपूर्ण मनोरम पंपासरको घूम २ देखने लगे ॥१२५॥ तिसके पीछे महात्मा श्रीरामचंद्रजी वनस्थली, झरने,व कंदराओंको अवलो कन करते२ लक्ष्मणजीके सहित उद्विग्नचित्तहो उन सबका विचार करते सीताजीके दुःखसे उपहत चित्तहो आगे चले ॥ १२६ ॥ सुस्थिर चित्त महात्मा मत्त मातंगकी समान चाल चलनेंवाले लक्ष्मणजी श्रीरामचंद्रजीका इष्ट विचार करते हुए धर्मके बलसे उनकी रक्षा करनेंलगे ॥१२७॥

पुष्पादि द्वारा उस दीप्तिमान अग्निकी पूजा कर॥१४॥श्रीरामचन्द्रजी और सुग्रीवजीके बीचमें उस अग्निको धर दिया तब वह दोनों जन दीप्तिमान अग्निकी प्रदक्षिणा करने लगे॥१५॥ तिसके पीछे श्रीरामचंद्रजी और सुग्रीवजी दोनों परम प्रसन्नतासे मित्र होगये फिर वानरेन्द्र व नरेन्द्र दोनों ॥ १६ ॥ परस्पर एक दूसरेको देखकर तृप्त नहीं होतेथे । "आप हमारे प्रियसखा व हृदयनिवासीहैं. हमारा व आपका सुख दुःख एकहै" सुग्रीवजीनें हर्षित होकर यह वचन श्रीरामचंद्रजीसे कह एक साखूकी शाखा जो अनेक पुष्प पत्रोंसे भूषितथी अपने हाथोंसें तोड॥१७॥१८॥भूमिपर बिछादी तब सुग्रीवजी स्वयं श्रीरामचंद्रजीके साथ उसी शाखापर बैठे और लक्ष्मणजीके लिये हर्षित होकर पवनपुत्र हनुमान्‌जीनें ॥ १९ ॥ परम पुष्पित चंदन

तयोर्मध्येतुसुप्रीतोनिदधौसुसमाहितः॥ततोऽग्निंदीप्यमानंतौचक्रतुश्चप्रदक्षिणं॥१५॥सुग्रीवोराघवश्चैववयस्यत्वमुपागतौ ॥ ततःसुप्रीतमनसौतावुभौहरिराघवौ ॥ १६ ॥ अन्योन्यमभिवीक्षंतौनतृप्तिमभिजग्मतुः ॥ त्वंवयस्योसिहृद्योमेएकंदुःखंसुखंचनौ॥ १७ ॥ सुग्रीवोराघवंवाक्यमित्युवाचप्रहृष्टवत् ॥ ततःसुपर्णबहुलांभङ्क्त्वाशाखांसुपुष्पिताम्॥१८॥ सालस्यास्तीर्यसुग्रीवोनिषसादसराघवः ॥ लक्ष्मणायाथसंहृष्टोहनुमान्मारुतात्मजः ॥ १९ ॥ शाखांचंदनवृक्षस्यददौपरमपुष्पिताम् ॥ ततःप्रहृष्टःसुग्रीवःश्लक्ष्णंमधुरयागिरा ॥ २० ॥ प्रत्युवाचतदारामंहर्षव्याकुललोचनः ॥ अहंविनिकृतोरामचरामीहभयार्दितः॥ २१ ॥हृतभार्योवनेत्रस्तोदुर्गमेतदुपाश्रितः ॥ सोहंत्रस्तोवनेभीतोवसाम्युद्भ्रांतचेतनः ॥ ॥ २२ ॥ वालिनानिकृतोभ्रात्राकृतवैरश्चराघव ॥ वालिनोमेमहाभागभयार्तस्याभयंकुरु ॥ २३ ॥

वृक्षकी शाखा बैठनेंको दी तत्पश्चात् प्रसन्न हर्षितहो सुग्रीवजी मधुर वाणीसे ॥ २० ॥ प्रफुल्ललोचन श्रीरामचंद्रजीसे बोले. कि हे श्रीरामचंद्रजी! हम घरसे खदेडे जाकर भयभीतहो भ्रमणकिया करतेहैं ॥ २१ ॥ हमारी स्त्रीभी हरलीगईहै, इसी कारण हम त्रासित होकर इस दुर्गम वनमें वास करतेहैं, हमारा चित्त क्षणमात्रको अविचलित नहींहोता, रातदिन डरके मारे व्याकुल रहा करतेहैं ॥ २२ ॥ हे राघव ! वालिनें हमारे साथ वैर

व्यग्र चित्तसे ऊंच नीचका विचार कर सब वानरोंके साथ ॥ ४ ॥श्रीरामलक्ष्मण दोनों भाईयोंको देख बडी ऊबके साथ अपने मंत्रियोंसे कहने लगे ॥ ५ ॥ यह दोनों वीर निश्चयही वालिके भेजे हुये चीर वसन पहर, वह रूप बना यहांपर आकर घूमरहेहैं ॥ ६ ॥ इसके पीछे सुग्रीवजीके साथी उन धनुषधारी श्रीराम लक्ष्मणजीको देखकर उस गिरिके तटसे और दूसरे पर्वतके शिखरपर चले गये ॥७॥ उन्मेंसे बडे२ वानरगण यूथपतिके निकट जाकर उनको घेरकर खडे हुये ॥ ८ ॥ एक दूसरे का सुख दुःख भोग करने वाले वह वानर गण पर्वतके कँगूरोंको कंपित करते

ततःससचिवेभ्यस्तुसुग्रीवःप्लवगाधिपः ॥ शशंसपरमोद्विग्नःपश्यंस्तौरामलक्ष्मणौ ॥ ५ ॥ एतौवनमिदंदुर्गंवालिप्रणिहितौध्रुवम् ॥ छद्मनाचीरवसनौप्रचरंताविहागतौ ॥ ६ ॥ ततःसुग्रीवसचिवादृष्ट्वापरमधन्विनौ ॥ जग्मुर्गिरितटात्तस्मादन्यच्छिखरमुत्तमम् ॥ ७ ॥ तेक्षिप्रमभिगम्याथयूथपायूथपर्षभम् ॥ हरयोवानरश्रेष्ठंपरिवार्योपतस्थिरे ॥ ८ ॥ एवमेकायनगताःप्लवमानागिरेर्गिरिम् ॥ प्रकंपयंतोवेगेनगिरीणांशिखराणिच ॥ ९ ॥ ततःशाखामृगाःसर्वेप्लवमानामहाबलाः ॥ बभंजुश्चनगांस्तत्रपुष्पितान्दुर्गमाश्रितान् ॥ १० ॥ आप्लवंतोहरिवराःसर्वतस्तंमहागिरिम् ॥ मृगमार्जारशार्दूलांस्त्रासयंतोययुस्तदा ॥ ११ ॥ ततःसुग्रीवसचिवाःपर्वतेंद्रेसमाहिताः ॥ संगम्यकपिमुख्येनसर्वेप्रांजलयःस्थिताः ॥ १२ ॥ ततस्तुभयसंत्रस्तंवालिकिल्बिषशंकितम् ॥ उवाचहनुमान्वाक्यंसुग्रीवंवाक्यकोविदः ॥ १३ ॥

हुये येक शिखरसे दूसरे शिखर पर कूद फांद करनें लगे ॥ ९ ॥ तिसके पीछे वह महाबलवान छलाँग मार २ कर उस पर्वत परके जमे हुये फूले फले वृक्षोंको उखाडने लगे॥ १०॥अनन्तर वह बडे २ महाबलवानकपि गण उस महापर्वतके सब स्थानोंमें मृग, बिलाव,बाघादिकोंको त्रास उपजाकर कूद फांद कर चलनें लगे ॥ ११ ॥ फिर सुग्रीवजीके मुख्य २साथी जोकि मंत्रीथे वह कपिश्रेष्ठ सुग्रीवके सन्मुख जा हाथ जोडकर खडे होगये ॥ १२ ॥ तब वचन बोलनेमें चतुर हनुमान्जी वालिके डरसे अनिष्ट की शंका करते हुये भयभीत सुग्रीवजीसे बोले ॥ १३ ॥

हमारा शत्रु बडाभाई वालि जिस्से हमको मारनहींसके आप ऐसाउपाय कर दीजिये ॥ ३० ॥ इन श्रीरामचंद्र और सुग्रीवजीकी मित्रताई होनेंके समयमें जानकीके वालिके और राक्षसोंके, कमल, सुवर्ण और अग्निकी समान वांये नेत्र एक वारही फडकनें लगे ॥ ३१ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे पंचमःसर्गः ॥ ५ ॥ तिसके पीछे सुग्रीवजी प्रसन्न होकर फिर श्रीरामचंद्रजीसे कहनेंलगे कि हे श्रीरामचंद्रजी हम आपका वृत्तान्त जानतेंहैं हमारे श्रेष्ठमंत्री और तुम्हारे सेवक ॥ १ ॥ हनुमान्‌जीनें हमें यह सब बतलादियाहै कि जिस निमित्त आप भ्राता लक्ष्मणजीके सहित वनमें आकर वास करतेंहैं ॥ २ ॥आपकी भार्या मिथलेशकुमारी जानकीजीको राक्षस हरणकर

सीताकपींद्रक्षणदाचराणांराजीवहेमज्वलनोपमानि ॥ सुग्रीवरामप्रणयप्रसंगेवामानिनेत्राणिसमंस्फुरंति ॥ ३१ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेपंचमःसर्गः ॥ ५ ॥ ॥ छ ॥ ॥ पुनरेवाब्रवीत्प्रीतो राघवंरघुनंदनम् ॥ अयमाख्यातितेरामसेवकोमंत्रिसत्तमः ॥ १ ॥ हनूमान्यन्निमित्तंत्वंनिर्जनंवनमागतः ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्रावसतश्चवनेतव ॥ २ ॥ रक्षसापहृताभार्यामैथिलीजनकात्मजा ॥ त्वयावियुक्तारुदतीलक्ष्मणेनचधीमता ॥ ३ ॥ अंतरंप्रेप्सुनातेनहत्वागृध्रंजटायुषम् ॥ भार्यावियोगजंदुःखंप्रापितस्तेनरक्षसा ॥ ४ ॥ भार्यावियोगजंदुःखंनचिरात्त्वंविमोक्ष्यसे ॥ अहंतामानयिष्यामिनष्टांदेवश्रुतीमिव ॥ ५ ॥ रसातलेवावर्ततींवर्ततींवानभस्तले ॥ अहमानीयदास्यामितवभार्यामरिंदम ॥ ६ ॥

लेगया आप और धीमान् लक्ष्मणजीके न रहनेपर रुदन करतीहुई सीताजीको वह लेगया ॥ ३ ॥ वह तो अवसर देखही रहाथा जैसेही आप दोनों जन दूरगये वैसेही वह उनको लेगया, कुछ दूर ले जानेंके पीछे उसे गृध्रराज जटायु मिले. और उन्होंने सीता हरणका विरोध किया, तब राक्षस उनको संहार सीताजीको लेगया, और आपको भार्यावियोगदुःख देदिया ॥ ४ ॥ जो हुआ सो हुआ परन्तु अब हम थोडेही कालमें यह आपका भार्यावियोग दुःख दूरकरेंगे, हम नष्ट हुई देवश्रुतिके समान सीताजीको उद्धार करके आपके निकट लेआमेंगे इसमें कुछ संदेह नहींहै ॥५॥६॥

वालि कार्य करनेंमें बडा कुशल है, वह इस बातको भली प्रकार करसकताहै, अर्थात् हमें मार डालनें सकता है, क्योंकि राजालोग बहुदर्शी और उपायोंके जाननें वाले होतें हैं; इसलिये मनुष्योंको चाहिये कि प्राकृत वेशमें उनके आशय को जानें॥ २३ ॥ कपिवर! स्वाभाविक वेशसे जाकर उन दोनों जनोंके समाचार रूप और बोल चालसे भली भांति जानकर आओ ॥ २४ ॥ तुम हर्षित मनसे जाकर प्रशंसा व इङ्गितसे उनको विश्वासमें लाकर उनके मनका भाव जान लेना ॥ २५ ॥ हे वानरवर! तुम हमारी ओरको मुखकर, उनके धनुष धारण करके यहां आनेंका कारण और प्रयोजन जान आओ ॥ २६ ॥ ऐसा करनेंसे यदि यह लोग विशुद्धभाव युक्त होंगे तोभी तुमको अवश्य ज्ञात हो जायगा, और भाषणव

कृत्येषुवालीमेधावीराजानोबहुदर्शिनः ॥ भवंतिपरहंतारस्तेज्ञेयाः प्राकृतैर्नरैः ॥ २३ ॥ तौत्वयाप्राकृतेनेवगत्वाज्ञेयौप्लवंगम ॥ इंगितानांप्रकारैश्चरूपव्याभाषणेनच ॥ २४ ॥ लक्षयस्वतयोर्भावंप्रहृष्टमनसौयदि ॥ विश्वासयन्प्रशंसाभिरिंगितैश्चपुनःपुनः ॥ २५ ॥ ममैवाभिमुखंस्थित्वापृच्छत्वंहरिपुंगव ॥ प्रयोजनंप्रवेशस्यवनस्यास्यधनुर्धरौ ॥ २६ ॥ शुद्धात्मानौयदित्वेतौजानीहित्वंप्लवंगम ॥ व्याभाषितैर्वारूपैर्वाविज्ञेयादुष्टताऽनयोः ॥ २७ ॥ इत्येवंकपिराजेनसंदिष्टोमारुतात्मजः ॥ चचारगमनेबुद्धिंयत्रतौरामलक्ष्मणौ ॥ २८ ॥ तथेतिसंपूज्यवचस्तुतस्यकपेः सुभीतस्यदुरासदस्य ॥ महानुभावौहनुमान्ययौतदासयत्ररामोतिबलीसलक्ष्मणः ॥ २९ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेद्वितीयःसर्गः ॥ २ ॥ ॥ छ ॥ वचोविज्ञायहनुमान्सुग्रीवस्यमहात्मनः ॥ पर्वतादृष्यमूकात्तुपुप्लुवेयत्रराघवौ ॥ १ ॥ कपिरूपंपरित्यज्यहनुमान्मारुतात्मजः ॥ भिक्षुरूपंततोभेजेशठबुद्धितयाकपिः ॥ २ ॥

रूपादि द्वारा यदि वह दुष्ट भाव रखते होंगे तो वहभी सब समझ पडैगा२७कपिराज सुग्रीवजीसे इस प्रकार आज्ञा पाकर पवन पुत्र हनुमान्जी श्रीराम लक्ष्मणजीके निकट जानेंको मन करते हुये ॥ २८ ॥ महानुभव कपिवर हनुमानजी उन अतिभीत दुर्द्धर्ष सुग्रीवजीके वचन मान जहां श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके सहित विचरतेथे उस स्थानमें गमन करते हुये॥ २९ ॥इ० श्री० वा० आ० किष्किन्धाकांडे द्वितीयः सर्गः॥ २ ॥ हनुमान्जी महात्मा सुग्रीवजीके वचन सुनकर ऋष्यमूक पर्वतसे राम लक्ष्मणजीके निकट गमन करते हुये ॥ १ ॥ जब हनुमान्जी चले तो इन्होंनें

श्रीरामचंद्रजी वस्त्र और गहने देख व ग्रहण कर कुहरसे ढके चंद्रमाकी समान अश्रुयुक्तहो रुद्धकंठहुये॥१६॥ सीताजीके स्नेहसे उत्पन्न आंसुओंसे दूषित हो हा प्रिये! कहकर धीरज छोड पृथ्वीपर गिर पडे ॥ १७ ॥श्रीरामचन्द्रजी उन उत्तम गहनोंको वार २ हृदयमें लगा बिलमें बैठे क्रोधित सर्पकी समान ऊंधे २ श्वास छोडनें लगे ॥ १८ ॥ तिसके पीछे जब आंसुओंका वेग कम हुआ तो बगलमें बैठे हुये लक्ष्मणजीको देख शोकके वेगसे श्रीरामचन्द्रजी औरभी विलाप करनें लगे ॥ १९ ॥ वह बोले देखो लक्ष्मण! जब जानकीजी हरणकी जातीथीं तब उन्होंनें यह उत्तरीय और यह भूषण पृथ्वीपर फेंक दियेथे ॥ २० ॥ हरणके समय सीताजीनें हरी घासवाली भूमिपर यह भूषण अपनें अंगोंसे निकालकर डाल दिये हैं!देखो

ततोगृहीत्वावासस्तुशुभान्याभरणानिच ॥ अभवद्बाष्पसंरुद्धोनीहारेणेवचंद्रमाः ॥१६॥ सीतास्नेहप्रवृत्तेनसतुबाष्पेणदूषितः ॥ हाप्रियेतिरुदन्धैर्यमुत्सृज्यन्यपतत्क्षितौ ॥ १७ ॥ हृदिकृत्वासबहुशस्तमलंकारमुत्तमम् ॥ निःश्वासभृशंसर्पोबिलस्थइवरोषितः ॥ १८ ॥ अविच्छिन्नाश्रुवेगस्तुसौमित्रिंप्रेक्ष्यपार्श्वतः ॥ परिदेवयितुंदीनंरामःसमुपचक्रमे ॥ १९ ॥ पश्यलक्ष्मणवैदेह्यासंत्यक्तंह्रियमाणया ॥ उत्तरीयमिदंभूमौशरीराद्भूषणानिच ॥ २० ॥ शाद्वलिन्यांध्रुवंभूम्यांसीतयाह्रियमाणया ॥ उत्सृष्टंभूषणमिदंतथारूपंहिदृश्यते ॥ २१ ॥ एवमुक्तस्तुरामेणलक्ष्मणोवाक्यमब्रवीत् ॥ नाहंजानामिकेयूरेनाहंजानामिकुंडले ॥ २२॥नूपुरेत्वभिजानामिनित्यंपादाभिवंदनात् ॥ ततस्तुराघवोवाक्यंसुग्रीवमिदमब्रवीत्॥२३॥ब्रूहिसुग्रीवकंदेशंह्रियंतीलक्षितात्वया॥रक्षसारौद्ररूपेणममप्राणप्रियाहृता॥२४॥

यह सब वैसेके वैसेही हैं, कुछ मलीन नहीं हुये ॥ २१ ॥ इस रीतिसें रामचंद्रनें लक्ष्मणजीसें कहा, तब लक्ष्मणजी कहने लगे कि, मैं जानकीजीके बाहु भूषण जानता नहीं हूं और कर्णकुंडलभी नहीं जानताहूं ॥ २२ ॥ परंतु नित्य प्रति श्रीजानकीजीके चरणोंका नमस्कार करनेंसे उन्होंके पाद भूषण नूपुरको मात्र जानताहूं तब श्रीरामचन्द्रजी सुग्रीवजीसे बोले ॥ २३ ॥ कि हे सुग्रीवजी! तुमने उन हरण की जाती हुई को कहां देखा? और किस स्थानमें उग्ररूपी राक्षस हमारीप्राण प्रिया सीताजीको हरण करके ले गया सो तुम बताओ ॥ २४ ॥

जन आप राज्य करनेंके समान यहां पर कैसे आये? ॥ ११ ॥आप दोनों जनोंके नयन कमल दलको समानहैं और आप दोनों वीर जटा मंडल धारण कियेहैं; परस्पर एक दूसरेसे मिलता हुआ रूप धारण किये हमारो समझमें देवता ओंकी समान आप यहां पर आयेहो ॥ १२ ॥ अथवा आपलोग चंद्रमा सूर्यतो नहींहैं? जो देवलोकसे अपनी इच्छानुसार मनुष्य लोकमें आयेहैं आपलोग विशाल वक्षस्थल सहित मनुष्यों का रूप धारण किये कोई देवहीहो ॥ १३ ॥ आपदोनों वीरोंके कंधे सिंहकी समानहैं, मानों वीररसही दोरूप धारण कर आयाहै? आपमानों मद युक्त वृषभहीहो वाहें आपकी लंबी, गोल, और परिघाकारहैं ॥ १४॥आप सब भूषण धारण करनेंके योग्य किस कारणसे भूषण धारण नहीं

पद्मपत्रेक्षणौवीरौजटामंडलधारिणौ ॥ अन्योन्यसदृशौवीरौदेवलोकादिहागतौ ॥ १२ ॥ यदृच्छयेवसंप्राप्तौचंद्र सूर्यौवसुंधराम् ॥ विशालवक्षसौवीरौमानुषौदेवरूपिणौ ॥ १३ ॥ सिंहस्कंधौमहोत्साहौसमदाविवगोवृषौ ॥ आ यताश्चसुवृत्ताश्चबाहवःपरिघोपमाः ॥ १४ ॥ सर्वभूषणभूषार्हाः किमर्थंनविभूषिताः ॥ उभौयोग्यावहंमन्येरक्षितुं पृथिवीमिमाम् ॥ १५ ॥ ससागरवनांकृत्स्नांविंध्यमेरुविभूषिताम् ॥ इमेचधनुषीचित्रेश्लक्ष्णेचित्रानुलेपने ॥ १६ ॥ प्रकाशेतेयथेंद्रस्यवज्रेहेमविभूषिते ॥ संपूर्णाश्चाशितैर्बाणैस्तूणाश्चशुभदर्शनाः ॥ १७ ॥ जीवितांतकरैर्घोरैर्ज्वलद्भि रिवपन्नगैः ॥ महाप्रमाणौविपुलौतप्तहाटकभूषणौ ॥ १८ ॥ खड्गावेतौविराजेतेनिर्मुक्तभुजगाविव ॥ एवंमां परिभाषंतंकस्माद्वैनाभिभाषथः ॥ १९ ॥

कर रहेहैं? हम आप दोनों जनोंको ऐसा समझतेहैं कि आप इस पृथ्वीकी रक्षा करनेंके योग्यहैं ॥ १५ ॥ वन, सागर, विन्ध्यहिमालयादि पर्वत सहित भूमिका पालन करनेंके योग्य आपहैं, यह जो दो धनुष आपधारण कियेहैं, यह भी चित्र विचित्र, सचिक्कण और चित्र विचित्र चन्दना द्यनुलेपनयुक्तहैं ॥ १६ ॥ यह आपके धनुष वज्रधारी इन्द्रके धनुषकी समान प्रकाशित होतेहैं, और आप दोनों जनोंके तरकशभी तीखे नारा चोंसे भरपूरहैं ॥ १७ ॥ जितने इनमें बाणहैं, यह शत्रुको स्पर्श करतेही प्राण लेनें वालेहैं और प्रज्वलित सर्पकी समान दीप्ति वाले बडे लंबे चौडे तपाये हुये सुवर्णसे भूषित जिनमें कब्जे लगे ॥ १८ ॥ यह खड्ग विराजमानहैं मानों केचली छोडे हुए सर्प हैं । फिर हम आपसे इस प्रकार कह

लेना उचित नहीं है ॥ ५ ॥ हमकोभी स्त्रीके हर जानेंसे उत्पन्न महाःदुख प्राप्त हुआहै, तथापि हमनें धीर्यका परित्याग करके शोकका आश्रय नहीं लिया ॥ ६ ॥ हमनें अतिनीच वानरजाति होकरभी शोक नहीं किया, फिर आप तो महात्मा विनीत, और धीरजवान पुरुषहैं, सो आप तो कभीभी शोक नहीं करेंगे, इसमें अधिक कहनाही क्या ॥ ७ ॥ आप शोकसे निकला हुआ अश्रुजल, अपनें धीरज और बलसे रोकिये, कारण कि पराक्रमी पुरुषोंकी मर्यादा और धारणा शक्ति आप त्याग करनेंके योग्य नहीं हैं ॥ ८ ॥ धीरजवान पुरुष, विपदके समयमें धनकी कमताईमें, भयके समय वा प्राणशंका उपस्थित होनेंपरभी अपनी बुद्धिसे विचारकर कार्य करनेंसे कभी व्याकुल नहीं होते ॥ ९ ॥ जो मूढ पुरुष नित्य

मयापिव्यसनंप्राप्तंभार्याविरहजंमहत् ॥ नाहमेवंहिशोचामिधैर्यंनचपरित्यजे ॥ ६ ॥ नाहंतामनुशोचामिप्राकृतो
वानरोपिसन् ॥ महात्माचविनीतश्चकिंपुनर्धृतिमान्महान् ॥ ७ ॥ बाष्पमापतितंधैर्यान्निगृहीतुंत्वमर्हसि ॥ मर्यादा
सत्त्वयुक्तानांधृतिंनोत्स्रष्टुमर्हसि ॥ ८ ॥ व्यसनेवार्थकृच्छ्रेवाभयेवाजीवितांतगे ॥ विमृशंश्चस्वयाबुद्ध्याधृतिमान्नाव
सीदति ॥ ९ ॥ बालिशस्तुनरोनित्यंवैक्लव्यंयोनुवर्तते ॥ समज्जत्यवशःशोकेभाराक्रांतेवनौर्जले ॥ १० ॥ एषोऽञ्ज
लिर्मयाबद्धःप्रणयात्त्वांप्रसादये ॥ पौरुषंश्रयशोकस्यनांतरंदातुमर्हसि ॥ ११ ॥ येशोकमनुवर्ततेनतेषांविद्यतेसुखम् ॥
तेजश्चक्षयतेतेषांनत्वंशोचितुमर्हसि ॥ १२ ॥ शोकेनाभिप्रपन्नस्यजीवितेचापिसंशयः ॥ सशोकंत्यजराजेंद्रधैर्यमा
श्रयकेवलम् ॥ १३ ॥ हितंवयस्यभावेनब्रूमिनोपदिशामिते ॥ वयस्यतांपूजयन्मेनत्वंशोचितुमर्हसि ॥ १४ ॥

ही विकलाईका आश्रय लेता है, वह पुरुष बोझसे लदी नौकाकी समान अवश्यही शोकके जलमें डूबजाताहै ॥ १० ॥ यह हम आपके निकट हाथ जोड़कर कहते हैं कि आप प्रसन्न होवें, और पौरुषका आश्रय करके अपने अंतरमें शोकको बैठनेंका अवकाश नदें ॥ ११ ॥ जो पुरुष शोक किया करतेहैं उनको सुख नहीं होता वरन उनका तेजभी क्षीण हो जाताहै, इसलिये आप शोकका परित्याग कीजिये ॥ १२ ॥ हे राजेन्द्र ! अत्यन्त शोक करनेंवाले मनुष्योंके जीवनमेंभी संशय होजाताहै इसलिये आप शोकको छोड करके धीरज धारण कीजिये ॥ १३ ॥ हम मित्रभावसेही हितकी बात कहतेहैं कुछ आपको उपदेश नहीं देते. सो आप हमारी मित्रताईका आदर करके केवल धीरजका आश्रय ग्रहण

इन्होंने कहे ॥ २८ ॥ हम समझतेहैं कि इन वानर श्रेष्ठनें निश्चय समस्त व्याकरण शास्त्र पढाहै, क्योंकि यह हमारे साथ बहुत देरसे गीर्वाण भाषा बोल रहेहैं, परन्तु उसमें इन्होंनें एकभी दूषित शब्द प्रयोग नहीं किया ॥ २९ ॥ उनके मुख, नेत्र, ललाट अथवा भौंह आदि और अंगोंमें बोलनेंके समय कोई दोष नहीं पाया जाता ॥ ३० ॥ इनके वचन विस्तारसे होते हैं, सन्देह युक्तनहीं होते इन्होंने साफ २ मध्यम स्वरमें बिना देर लगाये हुये अन्तरमें टिके हुये कंठ गत सब वचन कहे हैं ॥ ३१ ॥ इन्होंनें संस्कार युक्त अविलम्बित अद्भुत कल्याणदायिनी हृदय हरणकरनेंवाली मनोहर वाणी

नूनंव्याकरणंकृत्स्नमनेनबहुधाश्रुतम् ॥ बहुव्याहरताऽनेननकिंचिदपशब्दितम् ॥ २९ ॥ नमुखेनेत्रयोश्चापिललाटेचभ्रुवोस्तथा ॥ अन्येष्वपिसर्वेषुदोषःसंविदितःक्वचित् ॥ ३० ॥ अविस्तरमसंदिग्धमविलंबितमव्यथम् ॥ उरस्थंकंठगंवाक्यंवर्ततेमध्यमस्वरम् ॥ ३१ ॥ संस्कारक्रमसंपन्नामद्भुतामविलंबिताम् ॥ उच्चारयतिकल्याणींवाचंहृदयहर्षिणीम् ॥ ३२ ॥ अनयाचित्रयावाचात्रिस्थानव्यंजनस्थया ॥ कस्यनाराध्यतेचित्तमुद्यतासेररेरपि ॥ ३३ ॥ एवंविधोयस्यदूतोनभवेत्पार्थिवस्यतु ॥ सिध्यंतिहिकथंतस्यकार्याणांगतयोऽनघ ॥ ३४ ॥ एवंगुणगणैर्युक्तायस्यस्युःकार्यसाधकाः ॥ तस्यसिध्यंतिसर्वेऽर्थादूतवाक्यप्रचोदिताः ॥ ३५ ॥ एवमुक्तस्तुसौमित्रिःसुग्रीवसचिवंकपिम् ॥ अभ्यभाषतवाक्यज्ञोवाक्यज्ञंपवनात्मजम् ॥ ३६ ॥ विदितानोगुणाविद्वन्सुग्रीवस्यमहात्मनः ॥ तमेवचावांमार्गावःसुग्रीवंप्लवगेश्वरम् ॥ ३७ ॥

उच्चारण की है ॥ ३२ ॥ छाती,कंठ,शिर इन तीन स्थानोंसे निकली हुई इनकी विचित्र वाणी हाथसे खड्ग उठाये हुये शत्रुका चित्तभी श्रवण करतेही प्रसन्न करदे ॥ ३३ ॥ हे लक्ष्मण! जिस राजाके ऐसे श्रेष्ठ दूत हैं उन राजाके सब कार्य क्यों न सिद्ध होंगे॥ ३४ ॥ जिनके इस प्रकारके गुण वान् कार्यका साधन करनेंवाले दूत विद्यमान हों, उनके सब कार्य निःसन्देह सिद्ध होजाते हैं ॥ ३५ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीनें इस प्रकारसे कहा तो वचन बोलनेंमें चतुर लक्ष्मणजी पवनपुत्र सुग्रीवजीके मंत्री हनुमानजीसे कहने लगे ॥ ३६ ॥ हे बुधवर! महात्मा सुग्रीवजीके गुण

चंद्रजीने जो प्रतिज्ञाकी है वह अव पूरी हुई ॥ २३ ॥ इस प्रकारसे एकान्त में मिलकर नर और वानर दोनों अपने सुख दुःख प्रगट करते हुये॥२४॥
नृप गणोंके अधीश्वर महानुभाव श्रीरामचन्द्रजीके वचन सुनकर वानरप्रधान सुग्रीवजी मनही मनमें विचार करनेंलगे कि अव निः
संदेह हमारा कार्य सिद्ध होगया ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥
जव श्रीरामचंद्रजीनें प्रसन्न होकर ऐसे वचन कहे तो सुग्रीवजी हर्षित होकर वीर वर लक्ष्मणजीके वडेभ्राता श्रीरामचंद्रजीसे वोले ॥१॥ कि अव हम निः
सन्देह सर्व प्रकारसे देवतागणोंके अनुगृहीत हुये,क्योंकि आप समान गुणवान पुरुष के साथ हमारी मित्रता हुई ॥२॥ हे शुद्धात्मा! प्रभो! जव आप

एवमेकांतसंपृक्तौततस्तौनरवानरौ ॥ उभावन्योन्यसदृशंसुखंदुःखमभाषताम् ॥ २४ ॥ महानुभावस्यवचोनिशम्य
हरिर्नृपाणामधिपस्यतस्य ॥ कृतंसमेनेहरिवीरमुख्यस्तदाचकार्यंहृदयेनविद्वान् ॥ २५ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणे
वाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेसप्तमःसर्गः ॥ ७ ॥ परितुष्टस्यसुग्रीवस्तेनवाक्येनहर्षितः ॥ लक्ष्मणस्याग्रजं
शूरमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १ ॥ सर्वथाहमनुग्राह्योदेवतानांनसंशयः ॥ उपपन्नोगुणोपेतःसखायस्यभवान्मम ॥ २ ॥
शक्यंखलुभवेद्रामसहायेनत्वयानघ ॥ सुरराज्यमभिप्राप्तुंस्वराज्यंकिमुतप्रभो ॥ ३ ॥ सोहंसभाज्योबंधूनांसुहृदांचै
वराघव ॥ यस्याग्निसाक्षिकंमित्रंलब्धंराघववंशजम् ॥ ४ ॥ अहमप्यनुरूपस्तेवयस्योज्ञास्यसेशनैः ॥ नतुवक्तुंसमर्थो
हंत्वयिआत्मगतान्गुणान्॥५॥महात्मनांतुभूयिष्ठंत्वद्विधानांकृतात्मनाम्॥निश्चलाभवतिप्रीतिर्धैर्यमात्मवतांवर॥६॥

सहाय हैं तव तो देवताओंका राज्य लेनेंमेंभी समर्थ हैं, हमारा अपना राज्य लेना तो एक अति साधारण वात है ॥३॥ हे राघव! जव कि हमनें रघुवंशमें
उत्पन्न हुये पुरुषसे अग्निके सन्मुख मित्रता प्राप्त की तव अवश्य ही हम अपने बन्धु बान्धव और सुहृदगणोंके प्रीतिपात्र और माननीय हुये,
इसमें कुछ संदेह नहीं है ॥ ४ ॥ और हमकोभी आप अपना योग्य ही मित्र समझिये,हमारे अंतःकरणमें आपके प्रति जिस प्रकारका स्नेह भाव
उदय हुआहै उसको हम कहने और प्रगट करनेंमें समर्थ नहीं हैं ॥ ५ ॥ हे इन्द्रिय जीतनेंवालोंमें प्रथम गिनेजानेंके योग्य! आप सरीखे कृत विद्य म

क राजा हुये, वह अपनें धर्मके अनुसार नित्यही चारों वर्णकी प्रजाका पालन करते रहते॥६॥उनका द्वेष करनेंवाला कोई नहीं हुआ,उनके प्रति किसीनें वैरभाव नहीं प्रकाश किया वह दूसरे ब्रह्माजीकी समान समस्त जीवोंका पालन और रक्षा करते॥७॥उन्होंने बहुतर२दक्षिणा सहित अनेक अग्निष्टोमादि यज्ञ किये। यह रामचंद्रजी लोकमें विख्यात उनके प्रथम पुत्रहैं ॥ ८ ॥यह समस्त प्राणियोंको शरण देनेंवाले और पिताकी आज्ञाका पालन करनेंवालेहैं, दशरथजीके यह सबमें बडे पुत्र व गुणवानहैं ॥ ९ ॥ सब राजलक्षणों करके युक्त और समस्त राज्य सम्पद् विशिष्टहैं । यह राज्यभ्रष्ट होकर हमारे साथ वनमें वास करनेंके लिये यहांपर आयेहैं॥ १० ॥ जिस प्रकार महातेजमान सूर्य नारायण प्रभाके सहित अस्ताचलचूडावलंवी

नद्वेष्टाविद्यतेतस्यसतुद्वेष्टिनकंचन॥सतुसर्वेषुभूतेषुपितामहइवापरः॥७॥अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्टवानाप्तदक्षिणैः ॥ तस्यायंपूर्वजःपुत्रोरामोनामजनैःश्रुतः ॥ ८॥ शरण्यःसर्वभूतानांपितुर्निर्देशपारगः॥ज्येष्ठोदशरथस्यायंपुत्राणांगुणवत्तरः ॥ ९ ॥ राजलक्षणसंयुक्तःसंयुक्तोराज्यसंपदा॥राज्याद्भ्रष्टोमयावस्तुंवनेसार्धमिहागतः॥१०॥ भार्ययाचमहाभागसीतयाऽनुगतोवशी ॥ दिनक्षयेमहातेजाःप्रभयेवदिवाकरः ॥ ११ ॥ अहमस्यावरोभ्रातागुणैर्दास्यमुपागतः ॥ कृतज्ञस्यबहुज्ञस्यलक्ष्मणोनामनामतः ॥ १२ ॥ सुखार्हस्यमहार्हस्यसर्वभूतहितात्मनः॥ ऐश्वर्येणविहीनस्यवनवासेरतस्यच ॥ १३ ॥ रक्षसाऽपहृताभार्यारहितेकामरूपिणा ॥ तच्चनज्ञायतेरक्षःपत्नीयेनास्यवाहृता ॥ १४ ॥ दनुर्नामदितेःपुत्रःशापाद्राक्षसतांगतः ॥ आख्यातस्तेनसुग्रीवःसमर्थोवानराधिपः ॥ १५॥

होतेहैं वैसेही यह प्रिया भार्या सीताके सहित इस स्थानमें आयेथे ॥ ११ ॥हम इनके छोटे भाई हैं यह कृतज्ञ और बहुज्ञहैं इनके गुणगणोंसे वश होकर इनकी सेवा किया करतेहैं और लक्ष्मण हमारा नामहै ॥ १२ ॥ यह सुख भोगनेंके योग्य,राज्य पानेंके लायक,सर्व जीवोंके हितकारी ऐश्वर्यसे विहीन वनवासमें निरत ॥ १३ ॥ इन श्रीरामचंद्रजीकी भार्या कामरूपी राक्षस करके हरीगई हैं जिस राक्षसनें सीताको हरण कियाहै उसको अभीतक हमनें नहीं जान पायाहै ॥ १४ ॥ दनु नामक दितिका एक पुत्र शापके वशसे कवन्धराक्षस हुआथा, उस राक्षसनेंही वानरपति सुग्रीव

जब सुप्रसन्नमन सागरकी समान गंभीर स्वभाव युक्त, श्रीरामचन्द्रजीको शाल पुष्प परिपूर्ण उस गिरिवरपर बैठा हुआ देखकर॥१५॥सुग्रीवजी हर्षित हो मधुर हितकारी वचनोंसे प्रेम और हर्षमें भरनेके कारण व्याकुल होकर श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ १६ ॥ कि हम अपने भ्रातासे अपकारको प्राप्तहो भार्याको खोय और भयसे कातर होकर ऋष्यमूक पर्वतपर विचरतेहैं ॥ १७ ॥ सो यहांपरभी हम उस वालिके भयसे त्रासित और भयसे चेतना रहित रहा करतेहैं, कारण कि हमारे भ्राता वालिनें गृहसे हमको निकाल अबतकभी हमसे वैर नहीं छोडा ॥ १८ ॥ हे सर्व लोकोंको अभय देनेवाले ! हम वालिके भयसे महा आरत और अनाथ होगयेहैं सो हमारे ऊपर आप प्रसन्न हूजिये॥१९॥

सुखोपविष्टंरामंतुप्रसन्नमुदधिंयथा ॥ सालपुष्पावसंकीर्णेतस्मिन्गिरिवरोत्तमे ॥ १५ ॥ ततःप्रहृष्टःसुग्रीवःश्लक्ष्णया शुभयागिरा ॥ उवाचप्रणयाद्रामंहर्षव्याकुलिताक्षरम् ॥ १६ ॥ अहंविनिकृतोभ्रात्राचराम्येषभयार्दितः ॥ ऋष्यमूकंगिरिवरंहृतभार्यःसुदुःखितः ॥ १७॥ सोऽहंत्रस्तोभयेमग्नोवनेसंभ्रांतचेतनः॥ वालिनानिकृतोभ्रात्राकृतवैरश्चराघव ॥ १८ ॥ वालिनोमेभयार्तस्यसर्वलोकाभयंकर ॥ ममापित्वमनाथस्यप्रसादंकर्तुमर्हसि ॥ १९ ॥ एवमुक्तस्तुतेजस्वीधर्मज्ञोधर्मवत्सलः ॥ प्रत्युवाचसकाकुत्स्थःसुग्रीवंप्रहसन्निव ॥ २० ॥ उपकारफलंमित्रमपकारोरिलक्षणम् ॥ अद्यैवतंवधिष्यामितवभार्यापहारिणम् ॥ २१ ॥ इमेहिमेमहाभागपत्रिणस्तिग्मतेजसः ॥ कार्तिकेयवनोद्भूताःशराहेमविभूषिताः ॥ २२ ॥ कंकपत्रपरिच्छन्नामहेंद्राशनिसंनिभाः॥ सुपर्वाणःसुतीक्ष्णाग्राःसरोषाभुजगाइव ॥ २३ ॥ वालिसंज्ञममित्रंतेभ्रातरंकृतकिल्बिषम् ॥ शरैर्विनिहतंपश्यविकीर्णमिवपर्वतम् ॥ २४ ॥

जब सुग्रीवजीनें ऐसा कहा तो धर्मज्ञ धर्मवत्सल तेजस्वी श्रीरामचंद्र हँसते हुए उनसे बोले ॥ २० ॥ उपकार करनेंहीसे मित्र और अपकार करनेंहीसे शत्रु होताहै तुमसे फिर कहतेहैं कि हम आजही तुम्हारी भार्याके हरण करनेंवाले उस वालिको मार डालेंगे ॥ २१ ॥ हे महाभाग! हमारे यह कार्त्तिकेय वनसे उत्पन्न सुवर्ण भूषित तीखे बाण देखो ॥ २२ ॥कि जिनकी शिखा व नली चीलहके पंखोंकी समान बनीहैं ऐसे इन्द्रके वज्रकी समान सुपर्वा तीखे फलक युक्त और क्रोध सहित सर्पकी समान यह बाणहैं ॥ २३ ॥ हम तुम्हारी भार्याके हरनेंवाले पापी शत्रु भ्राता

लिये सब यूथोंके सहित सुग्रीवजीको रामचंद्रजीके प्रति प्रसन्न होकर इनके सब कार्य अवश्यही करना चाहिये॥ २४ ॥ वाक्यविशारद हनुमानजी लक्ष्मणजीके वह रोरो करकै कहेहुये वचन सुनकर यह उत्तर देते हुये ॥ २५ ॥ कि जितेन्द्रिय, बुद्धिमान् ऐसे महात्मा पुरुषके साथ सुग्रीव जीको अवश्य मिलना चाहिये, क्योंकि ऐसे लोग निःसंदेह भाग्यसेही निकट आतेहैं ॥ २६ ॥ वह सुग्रीवजीभी राज्यभ्रष्टहैं, और वालिके साथ वैर बँधनेंसे उस करकै सताये और भयभीत रह वनमें वास करतेहैं इसी कारणसे वालिनें उनकी स्त्रीकोभी हरण कर लियाहै ॥ २७ ॥ वह सूर्यपुत्र सुग्रीवजी हम लोगोंके साथ मिलकर सीताजीके ढूँढनेंमें अवश्यही आपकी सहायता करैंगे ॥ २८ ॥ हनुमानजी सुमधुर और कोमल वचनोंसे

एवंब्रुवाणंसौमित्रिंकरुणंसाश्रुपातनम् ॥ हनूमान्प्रत्युवाचेदंवाक्यंवाक्यविशारदः ॥ २५ ॥ ईदृशाबुद्धिसं पन्नाजितक्रोधाजितेंद्रियाः ॥ द्रष्टव्यावानरेंद्रेणदिष्ट्यादर्शनमागताः ॥ २६ ॥ सहिराज्याच्चविभ्रष्टः कृतवैरश्चवा लिना ॥ हृतदारोवनेत्रस्तोभ्रात्राविनिकृतोभृशम् ॥ २७ ॥ करिष्यतिससाहाय्यंयुवयोर्भास्करात्मजः ॥ सुग्रीवः सहचास्माभिःसीतायाःपरिमार्गणे ॥ २८ ॥ इत्येवमुक्त्वाहनुमान्श्लक्ष्णंमधुरयागिरा ॥ बभाषेसाधुगच्छामःसुग्रीव मितिराघवम् ॥ २९ ॥ एवंब्रुवंतंधर्मात्माहनूमंतंसलक्ष्मणः ॥ प्रतिपूज्ययथान्यायमिदंप्रोवाचराघवम् ॥ ३० ॥ कपिःकथयतेहृष्टोयथायंमारुतात्मजः ॥ कृत्यवान्सोपिसंप्राप्तःकृतकृत्योऽसिराघव ॥ ३१ ॥ प्रसन्नमुखवर्णश्चव्यक्तं हृष्टश्चभाषते ॥ नानृतंवक्ष्यतेवीरोहनूमान्मारुतात्मजः ॥ ३२ ॥

यह सब वार्त्ता कह श्रीरामचंद्रजीसे बोले कि हे वीर ! अब हम सुग्रीवजीके पासको चलेंगे ॥ २९ ॥ जब हनुमानजीनें ऐसा कहा तब धर्मात्मा लक्ष्मणजी हनुमानजीकी यथायोग्य प्रशंसा कर श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ ३०॥हे राघव ! यह वानर पवनपुत्र जिस प्रकारसे हर्षित होकर बात कहतेहैं इस्से ज्ञात होताहै कि सुग्रीवजीभी कुछ कार्य आपसे करावेंगे इसलिये समझ पडताहै कि आपकाभी सब कार्य सिद्ध होजायगा ॥ ३१ ॥ पवनकुमार हनुमानजी जिस प्रकारसे हर्षित होकर प्रसन्न वदनसे वार्त्ता कर रहेहैं इससे ज्ञात होताहै कि इन्होंनें कभी झूंठ नहीं बोला ॥ ३२ ॥

उसने हमारी प्राणसेभी अधिक प्यारी स्त्रीको हरण करकै हमारे सब इष्ट मित्रोंको बांध रक्खाहै ॥ ३३ ॥ हे राघव! वह दुष्टात्मा हमारा नाश करनेंके लिये अनेकवार यत्न कर चुकाहै परन्तु हमको मारनेंके लिये उसके भेजे हुए सब वानरोंको हमने मार डालाहै ॥ ३४ ॥ हम उसी हेतुसे आपको देखकर शंका करके आपके निकट आनेंमें डरेथे क्योंकि भयसे सब पुरुष डरा करतेहैं ॥ ३५ ॥ केवल हनुमानादि वानर गण हमारी सहायता करतेहैं इसही कारणसे हम अतिशय कष्टमें पडकरभी प्राण धारण किये हुयेहैं ॥ ३६ ॥ यह हमारे स्नेही मित्र वानरगण हमारी सब प्रकारसे रक्षा करतेहैं यह लोग हमारे बैठनें पर बैठते और हमारे कहींको चलनें पर चलते हैं ॥ ३७ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! बहुत

हृताभार्याचमेतेनप्राणेभ्योऽपिगरीयसी ॥ सुहृदश्चमदीयायेसंयताबंधनेषुते ॥ ३३ ॥ यत्नवांश्चसदुष्टात्मामद्विनाशायराघव ॥ बहुशस्तत्प्रयुक्तश्चवानराहिहतामया ॥ ३४ ॥ शंकयात्वेतयाहंचदृष्ट्वात्वामपिराघव ॥ नोपसर्पाम्यहंभीतोभयेसर्वेहिबिभ्यति ॥ ३५ ॥ केवलंहिसहायामेहनुमत्प्रमुखास्त्विमे ॥ अतोहंधारयाम्यद्यप्राणान्कृच्छ्रगतोपिसन् ॥ ३६ ॥ एतेहिकपयःस्निग्धामांरक्षतिसमंततः ॥ सहगच्छंतिगंतव्येनित्यंतिष्ठंतिचास्थिते ॥ ३७ ॥ संक्षेपस्त्वेषमेरामकिमुक्त्वाविस्तरंहिते ॥ समेज्येष्ठोरिपुर्भ्रातावालीविश्रुतपौरुषः ॥ ३८ ॥ तद्विनाशेपिमेदुःखंप्रमृष्टंस्यादनंतरम् ॥ सुखंमेजीवितंचैवतद्विनाशनिबंधनम् ॥ ३९ ॥ एषमेरामशोकांतःशोकार्तेननिवेदितः ॥ दुःखितःसुखितोवापिसख्युर्नित्यंसखागतिः ॥ ४० ॥ श्रुत्वैतच्चवचोरामःसुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥ किंनिमित्तमभूद्वैरंश्रोतुमिच्छामितत्त्वतः ॥ ४१ ॥

कहनेंसे क्याहै । हमनें अपना सबही वृत्तान्त संक्षेपसे कहदिया, हमारे शत्रु और बडे भाई वालिका पौरुष अत्यन्त विख्यातहै ॥ ३८ ॥ उसका नाश होनेंसे हमारा दुःखभी नाशको प्राप्तहोगा, उसका वध होनेंहीमें सुख और जीवन संचारकी आशा हो सकती है ॥ ३९ ॥ हमनें शोकसे पीडित होकर जो अपने शोकके नाश करनेंका उपाय बताया है, बस इस्से हमारा दुःख जा सकताहै, दुःखितही हो, वा सुखितही हो, मित्रही मित्रकी गति होजाताहै ॥ ४० ॥ सुग्रीवजीके ऐसे वचन सुनकर श्रीरामचंद्रजी बोले कि. तुम्हारा वैर वालिसे किस कारण हुआ सो उस

द्रजी वनमें आयेहैं ॥ ५ ॥ तवसे यह महात्मा बराबर वनमें वास करतेथे कि किसी समय रावण आकर इनकी भार्याको हरण कर लेगया ॥६॥ यह श्रीराम लक्ष्मणजी पूजनीय जनोंमें अग्रणीय हैं यह दोनों जनें आपके सहित मित्रता करनेंकी वासनासे यहां आये हैं ॥ ७ ॥ कपिराज सुग्रीवजी हनुमानजीके वचन सुनकर प्रीति पूर्वक प्रफुल्ल देहसे श्रीरामचंद्रजीसें बोले ॥ ८ ॥कि आप धर्मशील विनीत सबके वत्सल और महा तपस्वी हैं महात्मा हनुमान्जीने आपके समस्त गुण हमको बतायेहैं ॥ ९ ॥ हे राघव! हम वानर हैं हमारे साथ आपनें जो मित्रता करनेंकी वासनाकी है यह हमारा सत्कार और परम लाभ ही है ॥१०॥ यदि हमारे सहित मित्रताई करनेंकी आप वासना करते हों तो हम अपनें दोनों हाथ पसारते हैं

तस्यास्यवसतोऽरण्येनियतस्यमहात्मनः॥रावणेनहृताभार्यासत्वांशरणमागतः॥६॥ भवतासख्यकामौतौभ्रातरौरा
मलक्ष्मणौ॥ प्रगृह्यचार्चयस्वैतौपूजनीयतमावुभौ ॥७॥ श्रुत्वाहनूमतोवाक्यंसुग्रीवोवानराधिपः ॥ दर्शनीयतमोभू
त्वाप्रीत्योवाचचराघवम् ॥ ८ ॥ भवान्धर्मविनीतश्चसुतपाःसर्ववत्सलः ॥ आख्यातावायुपुत्रेणतत्त्वतोमेभवद्गु
णाः॥ ९ ॥ तन्ममैवैषसत्कारोलाभश्चैवोत्तमःप्रभो ॥ यत्त्वमिच्छसिसौहार्दंवानरेणमयासह ॥ १० ॥ रोचतेयदिमे
सख्यंबाहुरेषप्रसारितः ॥ गृह्यतांपाणिनापाणिर्मर्यादाबध्यतांध्रुवा ॥ ११ ॥ एतत्तुवचनंश्रुत्वासुग्रीवस्यसुभाषितम् ॥
संप्रहृष्टमनाहस्तंपीडयामासपाणिना ॥ १२ ॥ हृष्टःसौहृदमालंब्यपर्यष्वजतपीडितम् ॥ ततोहनूमान्संत्यज्यभिक्षुरू
पमरिंदमः ॥ १३ ॥ काष्ठयोःस्वेनरूपेणजनयामासपावकं ॥ दीप्यमानंततोवह्निंपुष्पैरभ्यर्च्यसत्कृतम् ॥ १४ ॥

आप हमको अपनें कर कमलसे ग्रहण करके निश्चिन्त हो मित्रतारूपकी मर्यादा स्थापित कीजिये ॥ ११ ॥ श्रीरामचंद्रजी सुग्रीवके यह सुखकर वचन सुनकर अत्यन्त हर्षित हुये और अपनें हाथसे सुग्रीवजीका हाथ पकडा ॥ १२ ॥ तब सुग्रीवजीभी सीताजीके वियोगसे पीडित श्रीराम चंद्रजीसे भलीभांति मिले भेंटे तिसके पीछे शत्रुओंके दमन करनेंवाले हनुमान्जीनें भिक्षुकका रूप त्याग दिया जोकि उन्होंने सुग्रीवको विश्वास दिलानेंके लिये फिर धारण कियाथा ॥ १३ ॥ भिक्षुकका रूप त्याग हनुमान्जी दो काष्ठको ले आये और घिसकर उनमेंसे अग्नि निकाली फिर

फिर दुन्दुभीका पुत्र हुआ ॥ ४ ॥ एक समय जब यह दानव पहले मयका पुत्रथा,
तेजस्वी दनुपुत्रके साथ स्त्रीके निमित्त वालिका वैर हुआथा, वालिको रण करनेके लिये पुकारनें लगा ॥ ५ ॥ हमा
कि रात्रिके कालमें सब सोरहेथे कि वही मायावी किष्किन्धापुरीके द्वारपर आकर वेग सहित बाहरको चले ॥ ६ ॥ वह वहांसे झपट
रे भ्राता वालि उस समय सोतेथे, उसका भयंकर शब्द सुन और उसके न सह सकनेंपर और हमनें उनको निवारण किया ॥ ७ ॥ परन्तु
क्रोधके वशमें हो उस असुरश्रेष्ठको मारनेंके लिये तैयार हुये, तिसके पीछे समस्त स्त्रियोंने सुहृदता के स्नेहसे हमभी उन
महाबलि वालिनें किसीकी एक बात न सुनी, और संग्राम करनेंके लिये चल दिये, और महा बलवान होनेंके कारण
नर्दतिस्मसुसंरब्धोवालिनंचाह्वयद्रणे ॥ ५ ॥ प्रसुप्तस्तुममभ्रातानर्दतोभैरव
सतुसुप्तेजनेरात्रौकिष्किंधाद्वारमागतः ॥ वार्यमाणस्ततःस्त्री
स्वनम् ॥ श्रुत्वानममृषेवालीनिष्पपातजवात्तदा ॥ ६ ॥ सतुवैनिःसृतःक्रोधात्तंहंतुमसुरोत्तमम् ॥ ततोऽहमपिसौहार्दान्निःसृतोवालिनासह ॥ ८ ॥
भिर्मयाचप्रणतात्मना ॥ ७ ॥ सतुनिर्धूयताःसर्वानिर्जगाममहाबलः ॥ प्रकाशोऽपिकृतोमार्गश्चंद्रेणो
सतुमेभ्रातरंदृष्ट्वामांचदूरादवस्थितम् ॥ ९ ॥ तस्मिन्द्रवतिसंत्रस्तेह्यावांद्रुततरंगतौ ॥ प्रविवेशासुरोवेगादावामासाद्यविष्ठितौ ॥ ११ ॥ तंप्र
द्गच्छतातदा ॥ १० ॥ सतृणैरावृतंदुर्गंधरण्याविवरंमहत् ॥ इहतिष्ठाद्यसुग्रीवबिलद्वारिसमाहि
विष्टंरिपुंदृष्ट्वाबिलंरोषवशंगतः ॥ मामुवाचततोवालीवचनंक्षुभितेंद्रियः ॥ १२ ॥
तः ॥ यावदत्रप्रविश्याहंनिहन्मिसमरेरिपुम् ॥ १३ ॥
उनके पीछे २ दूरसे आता हुआ देखकर ॥ ९ ॥ भयभीतहो वेग सहि
के पीछे २ चलेगये ॥ ८ ॥ वह असुर हमारे भ्राता वालिको व हमको क्योंकि निशानाथके उदय
त भागनेलगा, जब वह त्रासितहोकर वेग सहित दौडा तब हम दोनोंजनेभी उसके पीछे २ वेगयुक्तहो दौडे, और बडे खोहमें प्रवेश
होनेंसे उस समय चांदनी खिल रहीथी ॥ १० ॥ वह राक्षस भागते २ पृथ्वीके तृणोंकरकै छायेहुये येक दुर्गम हमारे भ्राता वालि क्रोधसे मूर्च्छित
करगया, तब हम दोनों भाई उस गुफाके आगे खडे रहे, ॥ ११ ॥ उस शत्रुको गुफामें बैठाहुआ देख तबतक तुम यहींपर खडे रहना ॥ १३ ॥
हो हमसे बोले ॥ १२ ॥ कि हे सुग्रीव! जबतक हम इस शत्रुका संहार करके न फिरैं

कियाहै, वह हमारा बडा भाईहै, हे महाभाग ! हम वालिके भयसे भीतहुयेहैं, सो आप हमारा उस भयसे उद्धार कीजिये ॥ २३ ॥
हे काकुत्स्थ! जिस्से वालिकरके हमको कुछभी भय न रहै वैसाही उपाय करना आपको सबभांति उचितहै, जब सुग्रीवजीने यह कहा, तब धर्मज्ञ,
तेजस्वी, धर्मवत्सल, ॥ २४ ॥ काकुत्स्थकुलतिलक श्रीरामचंद्रजी हँसकर सुग्रीवजीसे बोले, कि हे कपिवर! हमारे साथ मित्रता करनेमें
तुम्हारा विशेष उपकार होगा यह हम भलीभांति जानतेहैं ॥ २५ ॥इस्में कुछ संदेह नहींहै कि तुम्हारी भार्याके हरण करनेवाले वालिको

कर्तुमर्हसिकाकुत्स्थभयंमेनभवेद्यथा ॥ एवमुक्तस्तुतेजस्वीधर्मज्ञोधर्मवत्सलः ॥ २४ ॥ प्रत्यभाषतकाकुत्स्थःसुग्री
वंप्रहसन्निव ॥ उपकारफलंमित्रंविदितंमेमहाकपे ॥ २५ ॥ वालिनंतंवधिष्यामितवभार्यापहारिणम् ॥ अमोघाः
सूर्यसंकाशाममेमेनिशिताःशराः ॥ तस्मिन्वालिनिदुर्वृत्तेनिपतिष्यंतिवेगिताः ॥ कंकपत्रप्रतिच्छन्नामहेंद्राशनिसं
निभाः ॥ २७ ॥ तीक्ष्णाग्राऋजुपर्वाणःसरोषाभुजगाइव ॥ तमद्यवालिनंपश्यतीक्ष्णैराशीविषोपमैः ॥ २८ ॥
शरैर्विनिहतंभूमौप्रकीर्णमिवपर्वतम् ॥ सतुतद्वचनंश्रुत्वाराघवस्यात्मनोहितम् ॥ सुग्रीवःपरमप्रीतःपरमंवाक्य
मब्रवीत् ॥ २९ ॥ तवप्रसादेननृसिंहवीरप्रियांचराज्यंचसमाप्नुयामहम् ॥ तथाकुरुत्वंनरदेववैरिणंयथानहिंस्या
त्सपुनर्ममाग्रजम् ॥ ३० ॥

हम मार डालेंगे, देखो,हमारे, यह सूर्यकी प्रभाके तुल्य तीक्ष्ण फलकयुक्त अमोघ बाण ॥ २६ ॥ उस दुष्ट वालिके ऊपर वेगसहित गिरेंगे और
वह शायक कंकपत्रलगे, इन्द्रके वज्रकी समान ॥ २७ ॥ अति तेज सीधे क्रोधायमान भुजंगके समान वालिको डसैंगे, तुम अब वालिको तीक्ष्ण
और विष समान ॥२८॥ बाणोंसे मरकर दूसरे पर्वतकी समान पृथ्वीपर गिरा हुआ देखोगे, अपना हित करनेवाले श्रीरामचंद्रजीके वचन सुन
सुग्रीवजी परम प्रसन्न होकर उनसे कहनें लगे ॥ २९ ॥ कि हे नरसिंहवीर ! हम आपके प्रसादसे राज्य और भार्याको प्राप्त करैंगे, हे नरदेव !

कि इतनेंमें वालि उस रिपुदानवको संहार करके घर आगये,और हमको राज्यसिंहासन पर बैठे देखकर क्रोधसे लाल २ नेत्र कर लिये॥२२॥तब उस समय उसनें हमारे मंत्रियोंको बँधुआकर उनका कठोर वचनोंसे तिरस्कारकरनें लगा हे राघव! यद्यपि हममें इतना बल था कि उस पापाचारी वालिको बांधलें ॥ २३॥ परन्तु भ्राताकी प्रतिष्ठा मान हमारी बुद्धि ऐसी न हुई कि हम उन्हें बँधुआकरें जब वह अपने शत्रुको मारकर पुरमें प्रवेश करते हुए ॥२४॥तब हमनें सन्मान करके उन महात्माके चरण ग्रहण कर प्रणाम किया,परन्तु न तो वह प्रसन्नही हुये और न हमको आशिर्वादही दिया॥२५॥ हमनें वार २ उनके चरणोंमें अपना मुकुट सहित मस्तक धर कर प्रणाम किया परन्तु वालि क्रोधके वश हो किसी प्रकारसेभी हमारे ऊपर

आजगामरिपुंहत्वादानवंसतुवानरः ॥ अभिषिक्तंतुमांदृष्ट्वाक्रोधात्संरक्तलोचनः ॥ २२ ॥ मदीयान्मंत्रिणोबद्ध्वा परुषंवाक्यमब्रवीत् ॥ निग्रहेचसमर्थस्यतंपापंप्रतिराघव ॥ २३ ॥ नप्रावर्ततमेबुद्धिर्भ्रातृगौरवयंत्रिता ॥ हत्वाशत्रुं समेभ्राताप्रविवेशपुरंतदा ॥ २४ ॥ मानयंस्तंमहात्मानंयथावच्चाभिवादयम् ॥ उक्ताश्चनाशिषस्तेनप्रहृष्टेनांतरात्मना ॥ २५ ॥ नत्वापादावहंतस्यमुकुटेनास्पृशंप्रभो ॥ अपिवालीममक्रोधान्नप्रसादंचकारसः ॥ २६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेनवमःसर्गः ॥ ९ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ततःक्रोधसमाविष्टंसंरब्धंतमुपागतम् ॥ अहंप्रसादयांचक्रेभ्रातरंहितकाम्यया ॥ १ ॥ दिष्ट्यासिकुशलीप्राप्तोनिहतश्चत्वयारिपुः॥ अनाथस्यहिमेनाथस्त्वमेकोनाथनंदन ॥ २ ॥ इदंबहुशलाकंतेपूर्णचंद्रमिवोदितम् ॥ छत्रंसवालव्यजनंप्रतीच्छस्वमयाधृतम् ॥ ३ ॥ आर्तस्तस्यबिलद्वारिस्थितःसंवत्सरंनृप ॥ दृष्ट्वाचशोणितंद्वारिबिलाच्चापिसमुत्थितम् ॥ ४ ॥

प्रसन्न न हुआ ॥ २६ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०कि० नवमःसर्गः ॥ ९ ॥ तब हम उनके व अपने हितकी कामनासे, वेगसे आये हुए क्रोधसे भरकर बैठे अपने भ्राताको प्रसन्न करनें लगे ॥ १ ॥ हे अनाथोंकी रक्षाकरनेंवाले ! बडे भाग्यकी बातहै कि आप शत्रुका संहार करके कुशल सहित फिर अपने गृहको आयेहैं। हम अनाथहैं, हमारे तो एकआपही नाथहैं ॥ २ ॥ यह पूर्ण चंद्रमाकी समान दीतिमान बहुशलाका युक्त छत्र और चँवर जो कि इतने दिनों हम धारण करतेथे. सो अब इनको आप धारण कीजिये ॥ ३ ॥ हे नृपवर ! हम उस बिलके द्वारपर एक

हे श्रीरामचंद्रजी! हमारा यह वचन आप सत्यही जानें इन्द्रके सहित सुरगण व समस्त असुरगण कोईभी जानकीजीको नहीं छिपासकेगा ॥ ७ ॥ हे महाबाहु! आपकी भार्याको विषकी समान पचानें को कोईभी समर्थ नहीं होगा, हम निश्चय ही उनको ले आवेंगे, इसलिये आप शोक छोड दीजिये॥ ८॥ हम अनुमानसे समझते हैं कि वह दुष्टाचारी रावण जब उनको हरण करके लिये जा रहाथा, तब हमनें उनको देखाथा, कदाचित् वही जनककुमारी होंगी ॥ ९ ॥ उस समय वह राम! राम! और लक्ष्मण! यह कहकर बडे शब्दसे रो रहीथीं उस समय वह रावणके वशमें पडी पन्नगराज वधूकी समान प्रगटहोरहींथी ॥ १० ॥ उस समय हम और हमारे चार मंत्रियोंको पर्वत पर बैठे देख उन्होंनें अपना उत्तरीय वस्त्र और उत्तम २

इदंतथ्यंममवचस्त्वमवेहिचराघव ॥ नशक्यासाजरयितुमपिसेंद्रैःसुरासुरैः ॥ ७ ॥ तवभार्यांमहाबाहोभक्ष्यंविषकृतंयथा ॥ त्यजशोकंमहाबाहोतांकांतामानयामिते ॥ ८ ॥ अनुमानात्तुजानामिमैथिलीसानसंशयः ॥ ह्रियमाणामयादृष्टारक्षसारौद्रकर्मणा॥९॥ क्रोशंतीरामरामेतिलक्ष्मणेतिचविस्वरम् ॥ स्फुरंतीरावणस्यांकेपन्नगेंद्रवधूर्यथा ॥१०॥ आत्मनापंचमंमांहिदृष्ट्वाशैलतलेस्थितम् ॥ उत्तरीयंतयात्यक्तंशुभान्याभरणानिच ॥ ११ ॥ तान्यस्माभिर्गृहीतानिनिहितानिचराघव ॥ आनयिष्याम्यहंतानिप्रत्यभिज्ञातुमर्हसि ॥ १२ ॥ तमब्रवीत्ततोरामःसुग्रीवंप्रियवादिनम् ॥ आनयस्वसखेशीघ्रंकिमर्थंप्रविलंबसे ॥ १३ ॥ एवमुक्तस्तुसुग्रीवःशैलस्यगहनांगुहाम् ॥ प्रविवेशततःशीघ्रंराघवप्रियकाम्यया ॥ १४ ॥ उत्तरीयंगृहीत्वातुसतान्याभरणानिच ॥ इदंपश्येतिरामायदर्शयामासवानरः ॥ १५ ॥

कुछ गहने छोडे ॥ ११ ॥ हमनें उन सब आभूषणादिकोंको उठाकर धर रक्खाहै! हम उन सबको लातेहैं आप उन सबको पहँचान लीजिये ॥ १२ ॥ जब सुग्रीवजीनें ऐसा कहा तो प्रियबोलनेंवाले श्रीरामचंद्रजी सुग्रीवजीसे बोले कि हेसखे! विलम्ब क्यों करतेहो? उनको शीघ्रले आओ ॥ १३ ॥ श्रीरामचंद्रजीसे इस प्रकार कहे जाकर सुग्रीवजी उनका प्रिय करनेंकी कामनासे शैलकाननसे शीघ्र पर्वतकी कंदरामें प्रवेश करते हुये ॥ १४ ॥ वानरनाथनें शीघ्र उत्तरीय वस्त्र और वह सब गहने ले यह देखिये! यह कहकर शीघ्र रामचंद्रजीको दिखाये ॥ १५ ॥

कि तुम
श्चात् सब प्रजा और मंत्रि व और नौकर चाकरोंको बुलाकर ॥ १२ ॥ सब सुहृदगणोंके मध्यमें हमको अत्यन्त दुर्वचन कहने लगे कि तुम
सब लोग जानते हो कि पहले मायावी नामक महा असुर रात्रिमें यहां आयाथा ॥ १३ ॥ उसने क्रोधित और युद्धकांक्षी होकर हमको पुकारा
उसका पुकारना सुनकर हम राजगृहसे बाहर निकले ॥ १४ ॥ और हमारे पीछे २ यह दारुण हमारे भाई भी चले उस रात्रिमें हमदोनों जनों
को वह महाबलवान असुर देखकर ॥ १५॥ भयके मारे त्रासित हो भाग चला तब हम भी बराबर उसके पीछे२दौडे गये, तब वह बड़े वेगसे भागते २
एक बिलमें प्रवेश कर गया ॥१६॥ तब उस दुष्ट व कठोर चित्तको एडी गुफामें घुसा हुआ देखकर हमनें इस अति क्रूर दर्शन अपने भाईसे कहा ॥ १७॥

मांसमाह्वयतक्रुद्धोयुद्धाकां
मामाहसुहृदांमध्येवाक्यंपरमगर्हितम् ॥ विदितंवोमयारात्रौमायावीसमहासुरः ॥ १३ ॥
क्षीतदापुरा ॥ तस्यतद्भाषितंश्रुत्वानिःसृतोऽहंनृपालयात् ॥ १४ ॥ अनुयातश्चमांतूर्णमयंभ्रातासुदारुणः ॥ सतुदृष्ट्वैव
मांरात्रौसद्वितीयंमहाबलः ॥ १५ ॥ प्राद्रवद्भयसंत्रस्तोवीक्ष्यावांसमुपागतौ ॥ अभिद्रुतस्तुवेगेनविवेशसमहाबिल
म् ॥ १६ ॥ तंप्रविष्टंविदित्वातुसुघोरंसुमहद्बिलम् ॥ अयमुक्तोथमेभ्रातामयातुक्रूरदर्शनः ॥ १७ ॥ अहत्वानास्तिमेश
क्तिःप्रतिगंतुमितःपुरीम् ॥ बिलद्वारिप्रतीक्षत्वंयावदेनंनिहन्म्यहम् ॥ १८ ॥ स्थितोऽयमितिमत्वाहंप्रविष्टस्तुदुरासदम्
तंमेमार्गयतस्तत्रगतःसंवत्सरस्तदा ॥ १९ ॥ सतुदृष्टोमयाशत्रुरनिर्वेदाद्भयावहः ॥ निहतश्चमयासद्यःससर्वैःसहबं
धुभिः ॥ २० ॥ तस्यैवचप्रवृत्तेनरुधिरौघेणतद्बिलम् ॥ पूर्णमासीद्दुराक्रामंस्तनतस्तस्यभूतले ॥ २१ ॥ सूदयित्वा
तुतंशत्रुंविक्रांतंतमहंसुखम् ॥ निष्क्रामंनेहपश्यामिबिलस्यपिहितंमुखम् ॥ २२ ॥

इस असुरको विनामारे हम नहीं जायँगे, सो जबतक हम इसको मार कर आवें तबतक तुम इस गुफाके द्वार पर हमारी राह देखते रहना ॥ १८ ॥
हम यह जानकर कि सुग्रीव तो द्वारपर खडेही हैं उस दुर्गम बिलमें घुसे सो वहांपर उसे ढूंढते ढूंढते ही हमें एक वर्ष लगगया ॥ १९ ॥ संवत्सर
वीतनेंके पीछे मारे डरके व्याकुल वह हमें मिला, बस हमनें देखतेही उसको बन्धु बान्धवों सहित मार डाला ॥ २० ॥ संहार करनें के समय वह
ऐसा चिल्लाया कि उस्से और उसके मुखसे निर्गत रुधिर धारसे वह गुफा पूर्ण होगई ॥ २१ ॥ उस महाबलवान् शत्रुको संहार करके जब हम सुख

और वह राक्षस कहां वास करता है कि जिसके करनेंसे हम पर बडी विपद पडी है, और उसकेही निमित्त हम सब राक्षसोंका संहार करेंगे ॥ २५ ॥ उसनें जनकसुताको हरण कर हमको क्रोध उपजाया, मानो अपनी मृत्युका बंद द्वार आपही खोल लिया ॥ २६ ॥ हे कपिपते! जिस राक्षसनें हमारी प्यारी भार्याका अपमान कर उनको वनसे हरण कर लिया है, तुम उस राक्षसका नाम बताओ, हम उस शत्रुका आज संहार कर यमपुरीमें पठामेंगे ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥ वानरराज सुग्रीवजी श्रीरामचन्द्रजीके यह आरत वचन श्रवण कर हाथ जोड आंसू भर गद्गद स्वरसे उनसे कहनें लगे ॥ १ ॥

क्ववावसतितद्रक्षोमहद्व्यसनदंमम ॥ यन्निमित्तमहंसर्वान्नाशयिष्यामिराक्षसान् ॥ २५ ॥ हरतामैथिलींयेनमां चरोषयताध्रुवम् ॥ आत्मनोजीवितांतायमृत्युद्वारमपावृतम् ॥ २६ ॥ ममदयिततमाहृतावनाद्रजनिचरे णविमथ्ययेनसा ॥ कथयममरिपुंतमद्यवैप्लवगपतेयमसंनिधिंनयामि ॥ २७ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीये आदिकाव्येकिष्किंधाकांडेषष्ठःसर्गः ॥ ६ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ एवमुक्तस्तुसुग्रीवोरामेणार्तेनवानरः ॥ अब्रवीत्प्रांजलि र्वाक्यंसबाष्पंबाष्पगद्गदः ॥ १ ॥ नजानेनिलयंतस्यसर्वथापापरक्षसः ॥ सामर्थ्यंविक्रमंवापिदौष्कुलेयस्यवाकुल म् ॥ २ ॥ सत्यंतुप्रतिजानामित्यजशोकमरिंदम ॥ करिष्यामितथायत्नंयथाप्राप्स्यसिमैथिलीम् ॥ ३ ॥ रावणं सगणंहत्वापरितोष्यात्मपौरुषम् ॥ तथास्मिकर्तानचिराद्यथाप्रीतोभविष्यसि ॥ ४ ॥ अलंवैक्लव्यमालंब्यधैर्यमा त्मगतंस्मर ॥ त्वद्विधानांनसदृशमीदृशंबुद्धिलाघवम् ॥ ५ ॥

कि हे श्रीरामचंद्रजी! हम उस पापमति, और बुरे कुलमें उत्पन्न उस राक्षसका स्थान, कुल, विक्रम, या उसकी सामर्थ्यको कुछभी नहीं जानते हैं ॥ २ ॥ परन्तु हे अरिन्दम! हम सत्य करके प्रतिज्ञा करते हैं कि जिससे जानकीजी प्राप्त होजावें, हम वैसा करनेंमें सब भांति यत्न करेंगे, इस लियें आप शोक छोड़दीजिये ॥ ३ ॥ रावणको वंश सहित संहारकर आपके पौरुषका विस्तार कर आप जिस्से शीघ्र प्रसन्न और संतुष्ट होवें, हम वही कार्य करेंगे ॥ ४ ॥ आप इतने विकल न हूजिये अपने धीरजका आश्रय लीजिये आप समान पुरुषोंको हम इस प्रकारकी लघुताका आश्रय

चारी वालिके ऊपर क्रोधमें भरकर गिरेंगे ॥ ३२ ॥ हम जबतक तुम्हारी भार्याको हरण करनेवाले उस वालिको नहीं देख पातेहैं, तभीतक वह कुचरित्र पापाचारी जीवित रहैगा ॥ ३३ ॥ हम अनुमानसे देखतेहैं कि तुम शोक सागरमें डूब रहेहो, हम तुमको इस शोक सागरसे उद्धार करेंगे और तुमको फिर तुम्हारा राज्य प्राप्त होजायगा ॥ ३४ ॥ श्रीरामचंद्रजीके हर्ष और पौरुषके बढानेवाले वचन सुनकर सुग्रीव जी परम प्रसन्नहो बडे अर्थ युक्त वचन बोले ॥ ३५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किंधाकांडे दशमःसर्गः ॥ १० ॥ श्रीरामचंद्रजीके हर्ष और पौरुषार्थके बढानें वाले वचन सुनकर सुग्रीव जी उनकी पूजाकर प्रशंसा करतेहुये ॥ १ ॥ कि आप क्रोधितहोकर रु

यावत्तंनहिपश्येयंतवभार्यापहारिणम् ॥ तावत्सजीवेत्पापात्मावालीचारित्रदूषकः ॥ ३३ ॥ आत्मानुमानात्पश्यामिमग्नस्त्वंशोकसागरे ॥ त्वामहंतारयिष्यामिबाढंप्राप्स्यसिपुष्कलम् ॥ ३४ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाहर्षपौरुषवर्धनम् ॥ सुग्रीवःपरमप्रीतःसुमहद्वाक्यमब्रवीत् ॥ ३५ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०कि०कां०दशम० सर्गः ॥ १० ॥ रामस्यवचनंश्रुत्वाहर्षपौरुषवर्धनम् ॥ सुग्रीवःपूजयांचक्रेराघवंप्रशशंसच ॥ १ ॥ असंशयंप्रज्वलितैस्तीक्ष्णैर्मर्मातिगैःशरैः ॥ त्वंदहेःकुपितोलोकान्युगांतइवभास्करः ॥ २ ॥ वालिनःपौरुषंयत्तद्यच्चवीर्यंधृतिश्चया ॥ तन्ममैकमनाःश्रुत्वाविधत्स्वयदनंतरम् ॥ ३ ॥ समुद्रात्पश्चिमात्पूर्वंदक्षिणादपिचोत्तरम् ॥ क्रामत्यनुदितेसूर्येवालीव्यपगतक्लमः ॥ ४ ॥ अग्राण्यारुह्यशैलानांशिखराणिमहांत्यपि ॥ ऊर्ध्वमुत्पात्यतरसाप्रतिगृह्णातिवीर्यवान् ॥ ५ ॥

धिरके प्यासे प्रज्वलित सुतीक्ष्ण मर्मभेदी बाणोंसे निश्चयही प्रलयकालीन सूर्य भगवानकी समान सम्पूर्ण लोकोंको भस्मकर सकतेहैं ॥ २ ॥ प्रथम आप वालिका पौरुष धीरता और वीर्य हमसे सावधान चित्त होकर श्रवण करलीजिये, फिर जैसा उचित हो समझ बूझकर कीजिये ॥ ३ ॥ वालि सूर्योदयके प्रथमही पश्चिम समुद्रसे पूर्व और दक्षिण समुद्र और उत्तर समुद्रके किनारे तक घूमआताहै, परन्तु इतना चलनेंसेभी वह कुछ नहीं थकता॥४॥वह महावीर्यवान् वालि पर्वतोंके अग्रभाग पर चढकर शिखरोंकोउखाडकर ऊपरको उछालदेताहै और फिर उनको हाथसे पकड लेताहै५॥

कीजिये ॥ १४ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें सुग्रीवके इस प्रकार सुमधुर समझानें वाले वचन सुनकर वस्त्रके सिरेसे अपना अश्रु परिपूर्ण वदन पोंछडाला ॥ १५ ॥ लोकनाथ काकुत्स्थकुलतिलक श्रीसुग्रीवजीके वचनोंसे अपनी प्रकृतिमें टिक धीरज धारण करते हुये और वानर वा सुग्रीवजीको हृदयसे लगाय मिले और कहनें लगे ॥ १६ ॥ हे सुग्रीव ! स्नेह युक्त हितकारी चतुर सखाको जो कर्तव्य और उचितहै, वह समस्तही तुमनें किया ॥ १७ ॥ तुम्हारे समझानेंने हमें स्वस्थ और अपनी प्रकृतिपर स्थिर किया विशेष करके ऐसे समयमें तुम्हारी समान बन्धु मिलनें महादुर्लभहैं ॥ १८ ॥ परन्तु तुम घोर दुरात्मा रावणके संहार करनें और जनककुमारीका खोज करनेंके लिये विशेष यत्नकरो ॥ १९ ॥ और

मधुरंसांत्वितस्तेनसुग्रीवेणसराघवः ॥ मुखमश्रुपरिक्लिन्नंवस्त्रांतेनप्रमार्जयत् ॥ १५ ॥ प्रकृतिस्थस्तुकाकुत्स्थःसुग्रीववचनात्प्रभुः ॥ संपरिष्वज्यसुग्रीवमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १६ ॥ कर्तव्यंयद्वयस्येनस्निग्धेनचहितेनच ॥ अनुरूपंचयुक्तंचकृतंसुग्रीवतत्त्वया ॥ १७ ॥ एषचप्रकृतिस्थोऽहमनुनीतस्त्वयासखे ॥ दुर्लभोहीदृशोबंधुरस्मिन्कालेविशेषतः ॥ १८ ॥ किन्तुयत्नस्त्वयाकार्योमैथिल्याःपरिमार्गणे ॥ राक्षसस्यचरौद्रस्यरावणस्यदुरात्मनः ॥ १९ ॥ मयाचयदनुष्ठेयंविस्रब्धेनतदुच्यताम् ॥ वर्षास्विवचसुक्षेत्रेसर्वसंपद्यतेतव ॥ २० ॥ मयाचयदिदंवाक्यमभिमानात्समीरितम् ॥ तत्त्वयाहरिशार्दूलतत्त्वमित्युपधार्यताम् ॥ २१ ॥ अनृतंनोक्तपूर्वंमेनचवक्ष्येकदाचन ॥ एतत्तेप्रतिजानामिसत्येनैवशपाम्यहम् ॥ २२ ॥ ततःप्रहृष्टःसुग्रीवोवानरैःसचिवैःसह ॥ राघवस्यवचःश्रुत्वाप्रतिज्ञातंविशेषतः ॥ २३ ॥

हमभी विश्वासी चित्तसे जिस कार्यको करें वहभी तुम हमसे कहो, क्योंकि वर्षाकालके समय अच्छेखेतमें बीज बोये हुयेकी समान तुम्हारेभी सब विचार सफलहैं ॥ २० ॥ हे वानरशार्दूल ! हमनें जो अभिमानसे तुमसे कहाकि हम वालिको मारही डालेंगे,इस वाक्यको भी तुम सत्यही सत्य जानो ॥ २१ ॥ हमनें पहले कभी मिथ्या वचन नहीं बोला,और न कभी आगेको बोलेंगे हमनें अब सत्यही सत्य तुमसे प्रतिज्ञा और शपथकी ॥ २२ ॥ तिसके पीछे सुग्रीवजीनें हर्षित हो श्रीरामचंद्रजीके वचन सुनकर अपनें बडे २ मंत्रियोंके साथ भली भांति अपनें मनमें समझ लिया कि श्रीराम

शिलायें पृथ्वीपर फेंक २ कर सिंहनाद करनें लगा ॥ १५ ॥ तब श्वेत जलधर तुल्य सौम्य, प्रीतिका उपजानेंवाला आकार धारणकर हिमवानजी अपने एक शिखरापर खडे होकर दुन्दुभिसे बोले ॥ १६ ॥ हे धर्मवत्सल दुन्दुभे ! तुम हमको क्लेश नदो जो लोग रण कार्यको कुछभी नहीं जानते हमतो उन तपस्वियोंके आश्रयदाताहैं ॥ १७ ॥ बुद्धिमान् गिरिराज हिमवानके ऐसे वचन सुनकर दुन्दुभीक्रोधसे लाल २ नेत्रकर उनसे बोला ॥ ॥ १८ ॥ यदि तुम हमारे साथ युद्ध करनेंमें असमर्थहो, और हमारे भयसे उद्यम विहीन हो तौ हम युद्ध करनेकी इच्छा किये हुयेसे कौन पुरुष युद्ध कर सकताहै, तुम उसको हमें बतादो ॥ १९ ॥ वचन बोलनेंमें चतुर धर्मात्मा हिमाचलजी, उसके ऐसे वचन सुनकर उस

ततःश्वेतांबुदाकारःसौम्यःप्रीतिकराकृतिः॥हिमवानब्रवीद्वाक्यंस्वएवशिखरेस्थितः॥१६॥क्लेष्टुमर्हसिमांनत्वंदुंदुभेधर्म
वत्सल॥रणकर्मस्वकुशलस्तपस्विशरणोह्यहम्॥ १७॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वागिरिराजस्यधीमतः॥ उवाचदुंदुभिर्वाक्यं
क्रोधात्संरक्तलोचनः॥ १८॥यदियुद्धेऽसमर्थस्त्वंमद्भयाद्वानिरुद्यमः॥ तमाचक्ष्वप्रदद्यान्मेयोहियुद्धंयुयुत्सतः ॥१९॥
हिमवानब्रवीद्वाक्यंश्रुत्वावाक्यविशारदः ॥ अनुक्तपूर्वंधर्मात्माक्रोधात्तमसुरोत्तमम् ॥ २० ॥ वालीनाममहाप्राज्ञ
शक्रपुत्रःप्रतापवान् ॥ अध्यास्तेवानरःश्रीमान्किष्किंधामतुलप्रभाम्॥ २१॥ ससमर्थोमहाप्राज्ञस्तवयुद्धविशारदः॥
द्वंद्वयुद्धंसदातुंतेनमुचेरिववासवः॥ २२ ॥ तंशीघ्रमभिगच्छत्वंयदियुद्धमिहेच्छसि ॥ सहिदुर्मर्षणोनित्यंशूरःसमर
कर्मणि ॥ २३ ॥ श्रुत्वाहिमवतोवाक्यंकोपाविष्टःसदुंदुभिः ॥ जगामतांपुरींतस्यकिष्किंधांवालिनस्तदा ॥ २४ ॥

क्रोधसे मतवाले असुरश्रेष्ठसे बोले ॥ २० ॥ हे महाप्राज्ञ! वालि नामक इन्द्रका पुत्र बडा प्रतापी वानर है, वह अतुल प्रभावाली किष्किन्धा नाम नगरीमें वास करता है वह महा प्राज्ञ वालि तुम्हारे साथ युद्ध करनेकी सामर्थ्य रखता है जिस प्रकार नमुचि दैत्यके साथ इन्द्रनें युद्ध कियाथा, ऐसेही वालि तुम्हारे साथ द्वंद्व युद्ध करेगा ॥२१॥ २२॥ यदि तुमको युद्ध करनेंकी इच्छा हो तो तुम शीघ्रही उसके निकट चले जाओ वह समर कर्ममें कुशल, शूर, और अतिशय तेजस्वी है॥ २३॥ जब हिमाचलजोनें ऐसा कहा तो दुन्दुभी क्रोध युक्त हो अतिशीघ्रताके सहित बालिकी

हात्मा गणोंमें सखा ओंकी निश्चल प्रीति होगी, इसमें संदेहही क्याहै? ॥ ६ ॥ साधु मित्र लोग, साधुसखाओंके, सुवर्ण, चांदी व और दूसरे उत्तम २ गहने आदिको अपना देखकर अलग नहीं देखते, वरन भेदरहित होकर परस्परही समझते हैं, कि यह अपना है सो उनका, और उनका है सो हमारा ॥ ७ ॥ धनवान्ही हों; वा निर्धनहों; दुःखीहो वा सुखीहो अथवा दोष रहितहो, परन्तु मित्र मित्रहीको परमगति समझते हैं ॥ ८ ॥ हे पाप रहित! जो परस्पर एक स्नेहहीको देखते हैं वह परस्पर मित्रके लिये धनको छोड सुखसे मुँह मोड, और देशतकसे रिश्ता तोड मित्रके अनुसार वर्तावकरते हैं, और उसे कभी नहीं छोडते हैं ॥ ९ ॥ सुग्रीवजीके यह वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी, उत्फुल्लकान्ति धारण किये हुये, इन्द्र समान

रजतंवासुवर्णंवाशुभान्याभरणानिच ॥ अविभक्तानिसाधूनामवगच्छंतिसाधवः ॥ ७ ॥ आढ्योवापिदरिद्रोवादुःखितः सुखितोपिवा ॥ निर्दोषश्चसदोषश्चवयस्यःपरमागतिः ॥ ८ ॥ धनत्यागःसुखत्यागोदेशत्यागोपिवाऽनघ ॥ वयस्यार्थेप्रवर्ततेस्नेहंदृष्ट्वातथाविधम् ॥ ९ ॥ तत्तथेत्यब्रवीद्रामःसुग्रीवंप्रियदर्शनम् ॥ लक्ष्मणस्याग्रतोलक्ष्म्यावासवस्येवधीमतः ॥ १० ॥ ततोरामंस्थितंदृष्ट्वालक्ष्मणंचमहाबलम् ॥ सुग्रीवःसर्वतश्चक्षुर्वनेलोलमपातयत् ॥ ११ ॥ सददर्शततः सालमविदूरेहरीश्वरः ॥ सुपुष्पमीषत्पत्राढ्यंभ्रमरैरुपशोभितम् ॥ १२ ॥ तस्यैकांपर्णबहुलांशाखांभंक्त्वासुशोभिताम् ॥ रामस्यास्तीर्यसुग्रीवोनिषसादसराघवः ॥ १३ ॥ तावासीनौततोदृष्ट्वाहनूमानपिलक्ष्मणम् ॥ शालशाखांसमुत्पाट्यविनीतमुपवेशयत् ॥ १४ ॥

धीमान् लक्ष्मणजीके सन्मुख उन प्रिय दर्शन वानरराजसे बोले कि हे सखे निःसंदेह यह जो आपनें कहा सबही यथार्थ है ॥ १० ॥ तिसके पीछे सुग्रीवजीनें, श्रीरामचन्द्रजी और महाबलवान् लक्ष्मणजीको पृथ्वीपर बैठा हुआ देख चंचलभावसे चारों ओर दृष्टि डाली ॥ ११ ॥ तब वानर श्रेष्ठनें देखा कि उत्तम पुष्प, और कुछेक पत्तोंसे युक्त भ्रमर गणोंसे सुशोभित समीपही एक शालका वृक्ष लगा है ॥ १२ ॥ उस वृक्षकी बहुत पत्तोंवाली एक शाखा तोड श्रीरामचन्द्रजीके लिये आसन बना उनके सहित उसपर आपभी बैठे ॥ १३ ॥ सुग्रीव और श्रीरामचन्द्रजीको बैठा हुआ देखकर हनुमान्जीनेंभी लक्ष्मणजीके लिये एक शाल शाखा तोड आसन बना दिया और उसपर विनीत भावसे लक्ष्मणजीको बैठाया॥ १४॥

तुमसे युद्ध कर लेंगे । और तुम सब वानर गणोंसे मिल भेंटलो और सब सुहृदोंकोभी आदर मानसे प्रसन्न कर आओ॥ ३४ ॥ किष्किन्धा पुरीको चारों ओरसे देखभाल लो और अपनें पुत्रोंमेंसे किसीको राज्य सिंहासनभी देदो, क्योंकि हम तुम्हारा सब अहंकार तोड तुमको मार डालेंगे॥३५॥ जो पुरुष, मत्त, प्रमत्त, भागेहुये, आयुधरहित, दुबले और तुम्हारी समानमदसे मोहित पुरुषको मारता है वह गर्भहत्याके पापको प्राप्त होता है इस कारण इस समय हम तुमको नहीं मारते हैं ॥ ३६ ॥ यह श्रवण कर हँसता हुआ वालि उस क्रोधमें भरे मन्दमति असुरसे बोला कि यहलो हमनें तारा आदि स्त्रियोंको त्याग किया ॥ ३७ ॥ यदि तुम संग्राम करनेंमेंनिडरहो, तब तो हमको मतवाला मत समझो, कारण कि यह स्त्रियों

सुहृष्टांकुरुकिंष्किधांकुरुष्वात्मसमंपुरे ॥ क्रीडस्वचसमंस्त्रीभिरहंतेदर्पशासनः ॥ ३५ ॥ योहिमत्तंप्रमत्तंवाभग्नंवारहितं कृशम् ॥ हन्यात्सभ्रूणहालोकेत्वद्विधंमदमोहितम् ॥ ३६ ॥ सप्रहस्याब्रवीन्मंदंक्रोधात्तमसुरेश्वरम् ॥ विसृज्यताः स्त्रियःसर्वास्ताराप्रभृतिकास्तदा ॥ ३७ ॥ मत्तोऽयमितिमामंस्थायद्यभीतोसिसंयुगे ॥ मदोयंसंप्रहारेस्मिन्वीरपा नंसमर्थ्यताम् ॥ ३८ ॥ तमेवमुक्त्वासंक्रुद्धोमालामुत्क्षिप्यकांचनीम् ॥ पित्रादत्तांमहेंद्रेणयुद्धायव्यवतिष्ठत ॥ ३९ ॥ विषाणयोर्गृहीत्वातंदुंदुभिंगिरिसंनिभम् ॥ अविध्यततदावालीविनदन्कपिकुंजरः ॥ ४० ॥ वालीव्यापादयांचक्रे ननर्दचमहास्वनम् ॥ श्रोत्राभ्यामथरक्तंतुतस्यसुस्रावपात्यतः ॥ ४१ ॥ तयोस्तुक्रोधसरंभात्परस्परजयैषिणोः ॥ युद्धंसमभवद्घोरंदुंदुभेर्वालिनस्तदा ॥ ४२ ॥

करकै उपजा हुआ मद युद्धमें बल होनेके अर्थ वीरोंके मदपानकी समानजानो ॥ ३८ ॥ उस असुरसे इस प्रकार कह कर, वालि अपने पिता इंद्र की दी हुई जय देनेंवाली काञ्चनमय माल गलेमें पहर कर युद्ध करनेंकेलिये तैयार होगया ॥ ३९ ॥ कपिश्रेष्ठ वालिनें उस पर्वत समान दुन्दुभी के दोनों सींग पकड घोर शब्द कर उसको ढकेल कर गिरा दिया॥ ४० ॥वालि दुन्दुभीको गिराकर सिंहनाद करकै गर्जनेंलगा। वालिनें दुन्दुभीको इतनें बलसे गिराया कि उसके कानोंसे रुधिर वहनें लगा ॥ ४१ ॥ फिर परस्पर जीतनेकी इच्छा किये वालि और दुन्दुभीका क्रोधमें भरनेके

वालिको इन्हीं अपनें बाणोंसे पर्वतकी समान गिराकर मार डालेंगे सोतुम देखोहीगे ॥२४॥ वाहिनी सेनाके पति सुग्रीवजी श्रीरामचंद्रजीके ऐसे वचन सुन अतुल हर्ष प्राप्तकर साधु ! साधु ! कह श्रीरामचंद्रजीकी बडाईकरनेंलगे ॥ २५ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! हम शोकके मारे व्याकुलहैं और आप शोकसे पीडित पुरुषोंकी गतिहैं, सो आपको हम अपना मित्र जानकर अपना दुःख प्रगट करतेहैं ॥ २६ ॥ आपनें अपना हाथदे अग्निको शाखी करके हमको अपना मित्र बनायाहै सो हम सत्यही सत्य कहतेहैं कि आप हमारे प्राणोंसेभी अधिक प्यारे माननीयेहैं ॥ २७ ॥ हम अपना विश्वासी मित्र समझकर आपसे अपना सब वृत्तान्त कहतेहैं, क्योंकि अपना वृत्तान्त आपके निकट कहनेंसे हमारे मनका दुःख बहुत हलका

राघवस्यवचःश्रुत्वासुग्रीवोवाहिनीपतिः ॥ प्रहर्षमतुलंलेभेसाधुसाध्वितिचाब्रवीत् ॥ २५ ॥ रामशोकाभिभूतोऽहं शोकार्तानांभवान्गतिः ॥ वयस्यइतिकृत्वाहित्वय्यहंपरिदेवये ॥ २५ ॥ त्वंहिपाणिप्रदानेनवयस्योमेऽग्निसाक्षिकम् ॥ कृतःप्राणैर्बहुमतःसत्येनचशपाम्यहम् ॥ २७ ॥ वयस्यइतिकृत्वाचविस्रब्धःप्रवदाम्यहम् ॥ दुःखमंतर्गतंतन्मे मनोहरतिनित्यशः ॥ २८ ॥ एतावदुक्त्वावचनंबाष्पदूषितलोचनः ॥ बाष्पदूषितयावाचानोच्चैःशक्नोतिभाषितुम् ॥ २९ ॥ बाष्पवेगंतुसहसानदीवेगमिवागतम् ॥ धारयामासधैर्येणसुग्रीवोरामसंनिधौ ॥ ३० ॥ सनिगृह्यतुतं बाष्पंप्रमृज्यनयनेशुभे ॥ विनिःश्वस्यचतेजस्वीराघवःपुनरूचिवान् ॥ ३१ ॥ पुराहंवालिनारामराज्यात्स्वादवरोपितः ॥ परुपाणिचसंश्राव्यनिर्धूतोऽस्मिबलीयसा ॥ ३२ ॥

होजाताहै ॥ २८ ॥ इस प्रकारसे कहते २ सुग्रीवजीके नेत्रोंमें आंसू आगये और उनकी वाणी कफसे दूषित होगई जिस्से कि फिर वह ऊंचे स्वरसे कुछ न बोलसके ॥ २९ ॥ वानरराज सुग्रीवजीनें नदीके वेगकी समान आये हुए आंसुओंके वेगको सहसा अपने धीरजसे धारण कर लिया क्योंकि उन्होंने श्रीरामचंद्रजीके निकट बैठकर रोना उचित न जाना॥३०॥तेजस्वी वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजी आंसुओंका वेग रोक दोनों नेत्रोंको पोछ श्री रामचंद्रजीसे बोले ॥३१ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! पहले बलवान् वालिनें हमको हमारे राज्यसे भ्रष्टकर कठोर वचन सुनाकर घरसे निकाल दिया॥३२॥

पृथ्वी पर पडाहै ॥ ५१ ॥ उन्होनें तपोबलसे जान लिया कि यह कार्य वालि वानरका किया हुआहै। तब उन्होंनें उसकें फेंकनेवाले वानरको महाघोर शापदिया॥ ५२ ॥ कि जिस वानरनें हमारा आश्रित यह वन रुधिर वहानेंसे दूषित कियाहै, वह यहां पर नहीं आसकैगा और जो आवैगा तो तत्क्षण मर जायगा ॥ ५३ ॥ असुरकी देह फेंककर जिसनें हमारे आश्रमके वहुतसे वृक्ष तोड डालेहैं, वह यदि हमारे आश्रममें प्रवेश करैगा। वरन इस आश्रमके चारों ओर किनारे २ चार कोशकेघेरमें ॥ ५४ ॥ भी वह दुर्बुद्धि आजायगा तो भी निश्चयही प्राणत्याग करैगा। उसका सखा या मंत्री जो कोईभी हमारे वनमें वास करेगा ॥ ५५ ॥ उनके प्राणकाभी नाश हो जायगा। वह लोग यहांपर वास

सतुविज्ञायतपसावानरेणकृतंहितत् ॥ उत्ससर्जमहाशापंक्षेप्तारंवानरंप्रति ॥ ५२ ॥ इहतेनाप्रवेष्टव्यंप्रविष्टस्यवधो भवेत् ॥ वनंमत्संश्रयंयेनदूषितंरुधिरस्रवैः ॥ ५३ ॥ क्षिपतापादपाश्चेमेसंभग्नाश्चासुरींतनुम् ॥ समंतादाश्रमंपूर्णयोजनंमामकंयदि ॥ ५४ ॥ आक्रमिष्यतिदुर्बुद्धिर्व्यक्तंसनभविष्यति ॥ येचास्यसचिवाःकेचित्संश्रितामामकंवनम् ॥ ५५ ॥ नचतैरिहवस्तव्यंश्रुत्वायांतुयथासुखम् ॥ तेपिवायदितिष्ठंतिशपिष्येतानपिध्रुवम् ॥ ५६ ॥ वनेस्मिन्मामकेनित्यंपुत्रवत्परिरक्षिते ॥ पत्रांकुरविनाशायफलमूलाभवायच ॥ ५७ ॥ दिवसश्चाद्यमर्यादायंद्रष्टाश्वोस्मिवानरम् ॥ बहुवर्षसहस्राणिसवैशैलोभविष्यति ॥ ५८ ॥ ततस्तेवानराःश्रुत्वागिरंमुनिसमीरिताम् ॥ निश्चक्रमुर्वनात्तस्मात्तान्दृष्ट्वावालिरब्रवीत् ॥ ५९ ॥

नहीं करनें पावेंगे। सो वह हमारे वचन सुनकर कहीं और वसनेंकोचले जांय, यदि वह लोग यहां वास करैंगे तो हम उनकोभी यही शाप देवेंगे ॥ ५६ ॥ कारणकि इस वनकी रक्षा हम नित्यही पुत्रवत् करते हैं,और जो कोई वालिकी ओरका वानर यहांपर रहेगा, तो उसके रहनेंसे पत्र अंकुरका विनाश होगा, और फल मूलादिभी नहीं रहैंगे ॥ ५७ ॥आजके दिनतक हमारे शापकी मर्यादाहै; प्रभात होतेही वालिकी ओरके जिस किसी वानरकोभी यहांपर हम देखेंगे; तो वह बन्दर हजारों वर्षतक यहां पर पर्वत होकर रहैगा ॥ ५८ ॥ तिसके पीछे उस वनके रहनें वाले सब वानर गण मुनिजीके यह वचन सुनकर वहांसे चलेगये; तब उनकों वहांसे निकल आये हुये देखकर वालि बोला ॥ ५९ ॥

को हम यथार्थ रूपसे श्रवण करनेंकी इच्छा करते हैं ॥ ४१ ॥ हे वानरवर! तुम्हारे बीचमें वैर होनेंका कारण सुन बलाबल विचारकर फिर तुम्हारा कार्य करेंगे ॥ ४२ ॥ तुम्हारा अपमान सुनकर हमारा कोप बलवानहो हृदयकम्पनकारी वर्षाकालीन वारिवेगकी समान बढता जाताहै ॥ ४३ ॥ हम जबतक धनुष नहीं चढाते हैं तबतक तुम हर्षित चित्तसे सब वृत्तान्त कहदो जैसेही किं हम बाण छोडेंगे वैसेही तुम्हारा रिपु मर जायगा, इस बातको निःसंदेह ठीक २ कर जानो ॥ ४४ ॥ महात्मा श्रीरामचंद्रजीसे इस प्रकार कहे जाकर सुग्रीवजी अपने चार मंत्रियों सहित अतुलित हर्ष प्राप्त करतेहुये ॥ ४५ ॥ तिसके पीछे सुग्रीवजीनें प्रसन्न वदन हो रामचंद्रजीसे वालिसे वैर होनेंका

सुखंहिकारणंश्रुत्वावैरस्यतववानर ॥ आनंतर्याद्विधास्यामिसंप्रधार्यबलाबलम् ॥ ४२ ॥ बलवान्हिममामर्षःश्रुत्वा त्वामवमानितम् ॥ वर्धतेहृदयोत्कंपीप्रावृड्वेगइवांभसः ॥ ४३ ॥ हृष्टःकथयविस्रब्धोयावदारोप्यतेधनुः ॥ सृष्टश्चहि मयाबाणोनिरस्तश्चरिपुस्तव ॥ ४४ ॥ एवमुक्तस्तुसुग्रीवःकाकुत्स्थेनमहात्मना ॥ प्रहर्षमतुलंलेभेचतुर्भिःसहवा नरैः ॥ ४५ ॥ ततःप्रहृष्टवदनःसुग्रीवोलक्ष्मणाग्रजे ॥ वैरस्यकारणंतत्त्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ ४६ ॥ इत्यार्षेश्री मद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेऽष्टमःसर्गः ॥ ८ ॥ वालीनाममममभ्राताज्येष्ठःशत्रुनिषूदनः ॥ पितुर्बहुमतोनित्यंममचापितथापुरा ॥ १ ॥ पितर्युपरतेतस्मिञ्ज्येष्ठोऽयमितिमंत्रिभिः ॥ कपीनामीश्वरोराज्ये कृतःपरमसंमतः ॥ २ ॥ राज्यंप्रशासतस्तस्यपितृपैतामहंमहत् ॥ अहंसर्वेषुकालेषुप्रणतःप्रेष्यवत्स्थितः ॥ ३ ॥ माया वीनामतेजस्वीपूर्वजोदुंदुभेःसुतः ॥ तेनतस्यमहद्वैरंवालिनःस्त्रीकृतंपुरा ॥ ४ ॥

कारण वर्णन करना आरंभ किया ॥ ४६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडेऽष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥ वालिनामक शत्रुओंका विनाशक हमारा बडाभाई पिताका और जबतक वैर न हुआथा तबतक हमाराभी अत्यन्त प्रियथा ॥ १ ॥ जब पिताजीकी मृत्यु हुई तब वालिको बडा पुत्र समझ मंत्रियोंने परस्पर सम्मतिकर उसको वानरोंका राजा बनाया ॥ २ ॥ वह पिता पितामहादिकोंका राज्य पालन करनें लगे, हम उनके निकट दासकी समान विनीत भावसे रहनें लगें ॥ ३ ॥ पहले किसी समयमें मायावी नामक

हे नृपवर ! यह हमनें आपसे वालिके अद्भुत महावीर्यका वर्णन किया सो आप उस वालिको संग्रामके मध्य किस प्रकारसे संहार करनेंमें समर्थ होंगे?॥ ६८॥ सुग्रीवजीनें जब ऐसा कहा तो लक्ष्मणजी हँसकर सुग्रीवजीसे बोले कि । श्रीरामचंद्रजी कौनसे कर्मको कर डालें कि जिस्से तुमको वालिके वधका विश्वास होजाय? ॥ ६९ ॥ सुग्रीवजी बोले कि पहले वालि इन शालके वृक्षोंमेंसे एकको पकड जब चाहताथा तब एकही बारमें बार म्बार सब वृक्षोंको हिला देताथा ॥ ७० ॥ सो रामचंद्रजी यदि एक बाणसे इनमेंका कोई वृक्षभी तोड डालें तबही हम इनका विक्रम देखकर वालि को मरा हुआ समझें ॥ ७१ ॥ और यदि उस मरे हुए भैंसेकी इन सब अस्थियोंको एक चरणसे उठाकर शीघ्रता सहित श्रीरामचँद्रजी दोशत

एतदस्यासमंवीर्यंमयारामप्रकाशितम् ॥ कथंतंवालिनंहंतुंसमरेशक्ष्यसेनृप ॥ ६८ ॥ तथाब्रुवाणंसुग्रीवंप्रहसँल्लक्ष्मणो ऽब्रवीत् ॥ कस्मिन्कर्मणिनिर्वृत्तेश्रद्दध्यावालिनोवधम्॥६९॥तमुवाचाथसुग्रीवःसप्तसालानिमान्पुरा॥ एवमेकैकशोवा लीविव्याधाथसचासकृत्॥७०॥रामोनिर्दारयेदेषांबाणेनैकेनचद्रुमम्॥वालिनंनिहतंमन्येदृष्ट्वारामस्यविक्रमम् ॥७१॥ हतस्यमहिषस्यास्थिपादेनैकेनलक्ष्मण ॥ उद्यम्यप्रक्षिपेच्चापितरसाद्वेधनुःशते ॥ ७२ ॥ एवमुक्त्वातुसुग्रीवोरामंरक्तांत लोचनः॥ ध्यात्वामुहूर्तंकाकुत्स्थंपुनरेववचोऽब्रवीत् ॥ ७३ ॥ शूरश्चशूरमानीचप्रख्यातबलपौरुषः ॥ बलवान्वानरो वालीसंयुगेष्वपराजितः ॥ ७४ ॥ दृश्यंतेचास्यकर्माणिदुष्कराणिसुरैरपि ॥ यानिसंचिंत्यभीतोऽहंऋष्यमूकमुपा श्रितः ॥ ७५ ॥ तमजय्यमधृष्यंचवानरेंद्रममर्षणम् ॥ विचिंतयन्नमुंचामिऋष्यमूकममुंत्वहम् ॥ ७६ ॥

धनुषकी दूरी परभी फेंकदे तोभी हम वालिको मरा हुआ समझें ॥ ७२ ॥ रक्तवर्ण लोचनवाले सुग्रीवजी लक्ष्मणजीसे ऐसा कह, श्रीरामचंद्रजी वालिको मारसकेंगे या नहीं ऐसी चिन्ता करकै फिर श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ ७३ ॥ शूरश्रेष्ठ वालि, वीरश्रेष्ठ पुरुषकेही साथ युद्ध करनेंका अभिलाष किया करताहै, उसका वीर्य बल लोकमें प्रसिद्धहै, वह अत्यन्त बलवान् और युद्धमें जीतनेंके अयोग्यहै॥ ७४ ॥ उसके सब कार्य देवता ओंकोभी दुष्कर दृष्टि आतेहैं। उन्हीं सब कार्योंकी चिन्तना करते हुए हम ऋष्यमूकपर्वत परभी अत्यन्त भीत और चिन्तना युक्त रहतेहैं॥ ७५ ॥ उस अजेय, ढिठाई करनेंसे बाहर और सहन करनेंके अयोग्य वालिकी चिन्तना करते हुये हम ऋष्यमूक पर्वतको नहीं छोड सकतेहैं ॥ ७६ ॥

हमनें उनके साथ बिलमें जानेके लिये प्रार्थना की परन्तु उन्होंनें अपना चरण भूमिमें मार (अर्थात् चरणकी सौगन्धदिला,) हमको साथले चलनेंसे रोका, और आप उस बिलमें प्रवेश कर गये ॥ १४ ॥ जब वह बिलमें प्रवेश करगये तब हमको बिलके द्वारे पर खडे २ एक वर्षसेभी अधिक काल बीतगया ॥ १५ ॥ जब इस प्रकार एक वर्ष बीतगया तब हमनें जाना कि हमारे भाई विनाशको प्राप्तहुये हमारा चित्तभी स्नेहके मारे अत्यन्त चंचल होगया और हम अनिष्टकी शंका करनेंलगे ॥ १६ ॥ तथापि हम वहां खडेही रहे तब कुछदिन पीछे उस बिलसे, फेन सहित रुधिर निकलते हुये देखकर हम अत्यन्त दुःखित हुये ॥१७॥ तब गर्जना करनेवाले असुरगणोंका घोर शब्द हमको सुनाई आया

मयात्वेतद्वचःश्रुत्वायाचितःसपरंतपः ॥ शापयित्वासमांपद्भ्यांप्रविवेशबिलंततः ॥ १४ ॥ तस्यप्रविष्टस्यबिलं साग्रःसंवत्सरोगतः ॥ स्थितस्यचबिलद्वारिसकालोव्यत्यवर्तत ॥ १५ ॥ अहंतुनष्टंतंज्ञात्वास्नेहादागतसंभ्रमः ॥ भ्रातरंनप्रपश्यामिपापशंकिचमेमनः ॥ १६ ॥ अथदीर्घस्यकालस्यबिलात्तस्माद्विनिःसृतम् ॥ सफेनंरुधिरंदृष्ट्वाततोऽहंभृशदुःखितः ॥ १७ ॥ नर्दतामसुराणांचध्वनिर्मेश्रोत्रमागतः ॥ नरतस्यचसंग्रामेक्रोशतोपिस्वनोगुरोः ॥ १८ ॥ अहंत्ववगतोबुद्ध्याचिह्नैस्तैर्भ्रातरंहतम् ॥ पिधायचबिलद्वारंशिलयागिरिमात्रया ॥ १९ ॥ शोकार्तश्चोदकंकृत्वा किष्किंधामागतःसखे ॥ गूहमानस्यमेतत्त्वंयत्नतोमंत्रिभिःश्रुतम् ॥ २० ॥ ततोऽहंतैःसमागम्यसमेतैरभिषेचितः ॥ राज्यंप्रशासतस्तस्यन्यायतोममराघव ॥ २१ ॥

परन्तु संग्राममें गयेहुये अपने बडे भाई साहब वालिका हमको कोई शब्द न सुनपडा ॥ १८ ॥ हमनें इन चिह्नोंसे जानाकि हमारे भाई साहब मारे गये, तब इस कारणसे एक पर्वताकार शिला उस गुफाके द्वारपर अडादी ॥ १९ ॥ और शोकार्त्त चित्तसे उनकी जलक्रिया करके हम किष्किन्धामें आये यद्यपि हमनें वालिके वधकी वार्त्ता बहुतही छिपाई, परन्तु मंत्री लोगोंनें उसको किसी प्रकारसे जानलिया ॥ २० ॥ तिसके पीछे उन सब मंत्रियोंनें मिलकर हमारी इच्छा न रहतेभी हमको राज्यपर बैठाल दिया, हम यथान्यायसे राज्यका पालन करतेथे ॥ २१ ॥

तनुको पैरके अंगूठेसे वीर्यवान् श्रीरामचंद्रजीनें उठाय कर फेंका ॥ ८५ ॥ तो इसको देखकर सुग्रीवजी फिर बोले ! वानर गणोंके और लक्ष्मण जीके आगे दीप्तिमान सूर्य नारायणकी समान श्रीरामचंद्रजीसे सुग्रीवजी फिर यह अर्थ युक्त वचन बोले ॥ ८६ ॥ हे सखे ! पहले यह देह गीला और मांस सहितथा, तब उस समय हमारे भाई वालिनें बडे परिश्रमसे यह देह उठाकर फेंकाथा ८७ ॥ हे रघुनंदन ! यह देह इस समय मांसहीन, लघु और तृण तुल्यहै, सो उसको आपने हर्ष युक्तहो विना परिश्रमके उठाकर फेंक दिया ॥ ८८ ॥ हे राघव ! सो इस फेंकनेंसे आपका बल

क्षिप्तंदृष्ट्वाततःकायंसुग्रीवःपुनरब्रवीत् ॥ लक्ष्मणस्याग्रतोरामंतपंतमिवभास्करम् ॥ हरीणामग्रतोवीरमिदंवचनमर्थव
त्॥८६॥आर्द्रःसमांसप्रत्यग्रःक्षिप्तःकायःपुरासखे॥ परिश्रांतेनमत्तेनभ्रात्रामेवालिनातदा॥८७॥लघुःसंप्रतिनिर्मांसस्तृ
णभूतश्चराघव ॥ क्षिप्तएवंप्रहर्षेणभवतारघुनंदन॥८८॥नात्रशक्यंबलंज्ञातुंतववातस्यवाधिकम् ॥ आर्द्रंशुष्कमितिह्येत
त्सुमहद्राघवांतरम् ॥ ८९ ॥ सएवसंशयस्ताततवतस्यचयद्बलम् ॥ सालमेकंविनिर्भिद्यभवेद्व्यक्तिर्बलाबले ॥ ९० ॥
कृत्वैतत्कार्मुकंसज्यंहस्तिहस्तमिवापरम् ॥ आकर्णपूर्णमायम्यविसृजस्वमहाशरम् ॥ ९१ ॥ इमंहिसालंप्रहितस्त्व
याशरोनसंशयोऽत्रास्तिविदारयिष्यति ॥ अलंविमर्शेनममप्रियंध्रुवंकुरुष्वराजन्प्रतिशापितोमया ॥ ९२ ॥

अधिक या वालिका बल अधिकहै यह नहीं जानागया । क्योंकि गीली और सूखी वस्तुके बोझमें बडा भारी अंतर होताहै ॥ ८९ ॥ अभी आपके और वालिके बल जाननेंके विषयमें संशय रही । जोहो, जिस समयकि आप इनमेंसे एकभी शालके वृक्षको तोड डालेंगे, तो बलाबल सब जाना जायगा ॥ ९० ॥ आप इस हाथीकी शूंडके समान धनुषपर रोदा चढा कर कानतक खींच महाशर छोडिये ॥ ९१ ॥ आपका छोडा हुआ बाण निश्चयही इस शालके वृक्षको तोड डालेगा इसमें कुछ संदेह नहींहै । और इसविषयमें कुछ विचार करनेंकाभी प्रयोजन नहीं, क्योंकि आप

वर्षतक खडे रहे इस्से बहुत कातर होगये, फिर बिलसे उत्पन्न हुई शोणितकी धार अवलोकन करके ॥ ४ ॥ शोक और घबडाहटसे हमारा हृदय अत्यन्त चंचल हुआ और सब इन्द्रियेंभी अत्यन्त व्याकुल होआईं तब हम पर्वतके शिखरसे गुफाका द्वार रोककर ॥ ५ ॥ उस स्थानसे फिर आकर किष्किन्धामें चले आये मंत्रियोंनें और पुरके लोगोंनें हमको अत्यन्त विषादित देखकर ॥ ६ ॥ राज्यसिंहासनपर बैठालदिया, परन्तु राज्यसिंहासनपर बैठनेंकी हमारी इच्छा नहींथी । जोहो आप हमारे इस अपराधको क्षमा कीजिये, आप अबभी पहलेहीकी समान राजाहैं और जैसे प्रथम हम आपके सेवकथे वैसेही अबभीहैं ॥ ७ ॥और हम जो राज्य सिंहासन पर बैठाये गये,यह बात तो आपके न होनें

शोकसंविग्नहृदयोभृशंव्याकुलितेंद्रियः ॥ अपिधायबिलद्वारंशैलशृंगेणतत्तदा ॥ ५ ॥ तस्माद्देशादपाक्रम्यकिष्किंधां प्राविशंपुनः ॥ विषादात्त्विहमांदृष्ट्वापौरैर्मंत्रिभिरेवच ॥ ६ ॥ अभिषिक्तोनकामेनतन्मेक्षंतुंत्वमर्हसि ॥ त्वमेवराजा मानार्हःसदाचाहंयथापुरा ॥ ७ ॥ राजभावेनियोगोऽयंममत्वद्विरहात्कृतः ॥ सामात्यपौरनगरंस्थितंनिहतकंटकम् ॥ ८ ॥ न्यासभूतमिदंराज्यंतवनिर्यातयाम्यहम् ॥ माचरोषंकृथाःसौम्यममशत्रुनिषूदन ॥ ९ ॥ याचेत्वां शिरसाराजन्मयाबद्धोऽयमंजलिः ॥ बलादस्मिन्समागम्यमंत्रिभिःपुरवासिभिः ॥ १० ॥ राज्यभावेनियुक्तोऽहं शून्यदेशजिगीषया ॥ स्निग्धमेवंब्रुवाणंमांसविनिर्भर्त्स्यवानरः ॥ ११ ॥ धिक्त्वामितिचमामुक्त्वाबहुतत्तदुवाचह ॥ प्रकृतीश्चसमानीयमंत्रिणश्चैवसंमतान् ॥ १२ ॥

पर थी, जैसे आप मंत्रियोंको छोड गयेथे वैसेही सब मंत्रीभी अबतक हैं,और राज्यमें शत्रुभी कोई नहीं है ॥ ८ ॥ हमारे पास तो आपका यह राज्य मानो थातीकी भाँति रक्खारहा अब आप इसको लेलें । हे शत्रुनिषूदन सौम्य! हमारे ऊपर अब आप रोष न करें॥ ९ ॥ हे राजन्! हम आपके आगे हाथ जोड शिर झुकाकर यह प्रार्थना करते हैं, कि मंत्रि और पुरवासियोंनें बलात्कार ॥ १० ॥ हमको राज्य करनेंमें लगा दियाथा, इस कारण से कि आपके न रहनेंपर शूने देशमें कोई शत्रु चढ न आवे और इसे जीत न ले, हे श्रीरामचंद्रजी!हमनें विनीतभावसे ऐसे ऐसे मधुर वचन कहे पर उन हमारे बडे भ्राताने हमारा बडा अपमान कर ॥ ११ ॥ तुझको धिक्कार है, तुझको धिक्कार है; वारंवार ऐसे कठोर वचन कहे तत्प

द्रजीसे बोले ॥ ७ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! आप वालिको मार डालेंगे, इसमें संदेहही क्याहै, क्योंकि आप इन्द्रके सहित सब देवताओंकाभी संहार संग्राममें कर सकतेहैं। फिर वालि विचारा तो है ही क्या? ॥ ८ ॥ आपनें एकही बाणसे सप्तताल तोडे और पर्वतकी भूमि फोड डाली; इसलिये रणमें आपके आगे कौन पुरुष ठहर सकताहै? ॥ ९ ॥ इन्द्र और वरुणकेतुल्य आपको सुहृद पाय आज हमारा शोक वीता; और उत्तम प्रीति उत्पन्न हुई ॥ १० ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! यह हम आपके हाथ जोडतेहैं कि आप हमारी प्रसन्नताके लिये वैरीरूप हमारे भ्राताको मार डालिये ॥ ११ ॥ महाप्राज्ञ श्रीरामचंद्रजी, लक्ष्मणजीकी समान प्रियतम, प्रियदर्शन सुग्रीवजीको भेंटकर कहनें लगे॥ १२॥ हे सुग्रीव ! अब यहांसे शीघ्रही

सेंद्रानपिसुरान्सर्वांस्त्वंबाणैःपुरुषर्षभ ॥ समर्थःसमरेहंतुंकिंपुनर्वालिनंप्रभो ॥ ८ ॥ येनसप्तमहातालागिरिर्भूमिश्चदारिता ॥ बाणेनैकेनकाकुत्स्थस्थातातेकोरणाग्रतः॥९॥अद्यमेविगतःशोकःप्रीतिरद्यपरामम॥ सुहृदंत्वांसमासाद्यमहेंद्रवरुणोपमम् ॥ १० ॥ तमद्यैवप्रियार्थंमेवैरिणंभ्रातृरूपिणम् ॥ वालिनंजहिकाकुत्स्थमयाबद्धोऽयमंजलिः ॥ ११ ॥ ततो रामःपरिष्वज्यसुग्रीवंप्रियदर्शनम्॥प्रत्युवाचमहाप्राज्ञोलक्ष्मणानुगतंवचः॥१२॥अस्माद्गच्छामिकिष्किंधांक्षिप्रंगच्छत्वमग्रतः ॥ गत्वाचाह्वयसुग्रीववालिनंभ्रातृगंधिनम् ॥ १३ ॥ सर्वेतेत्वरितंगत्वाकिष्किंधांवालिनःपुरीं ॥ वृक्षैरात्मानमावृत्यह्यतिष्ठन्गहनेवने ॥ १४ ॥ सुग्रीवोऽप्यनदद्घोरंवालिनोह्वानकारणात् ॥ गाढंपरिहितोवेगान्नादैर्भिंदन्निवांबरम् ॥ १५ ॥ तंश्रुत्वानिनदंभ्रातुःक्रुद्धोवालीमहाबलः ॥ निष्पपातसुसंरब्धोभास्करोऽस्ततटादिव ॥ १६ ॥ ततः सुतुमुलंयुद्धंवालिसुग्रीवयोरभूत् ॥ गगनेग्रहयोर्घोरंबुधांगारकयोरिव ॥ १७॥

किष्किन्धा पुरीको चलो और तुम आगे २ गमन करके उस अपने भाई वालिको पुकारो॥१३॥यह कहकर श्रीरामचंद्रजी व और भी सब वानर किष्किन्धा पुरीमें जाय वृक्षोंसे देह छिपाय सघन वनमें खडे हो गये ॥१४॥सुग्रीवजी अपने वस्त्रोंको कस कर पहर वालिके पुकारनेंके लिये घोर शब्द करनें लगे मानों आकाशको भेदन करतेही हुये घोर शब्दकर रहेथे॥१५॥अपने भाई सुग्रीवका वह गर्जना सुन महा बलवान वालि क्रोधसे अधीरहो अस्ताचलके समीप से निकलते हुये सूर्यनारायणकी समान बडे वेगसहित अपने पुरसे निकला ॥१६॥ तिसके पीछे आकाशतलमें बुध और मंगल ग्र

पूर्वक गुफाके बाहेर को आरहेथे तब उस समय देखाकि गुफाका द्वार बंद पडा है ॥२२॥ तब हम "भइया सुग्रीव! सुग्रीव" कह कर जोरसे पुकारने लगे परन्तु उस समय कुछ उत्तर न पाकर हम बडे दुःखी हुये॥२३॥फिर हम बहुत सारे चरण प्रहारोंके द्वारा उस शिलाको ढकेल उस गुफासे निकल नगरमें आये हैं॥२४॥यह सुग्रीव भायपन का स्नेह भुलाकर राज्यके लोभ से हमको गुफामें बंदकर आया इससे हमको अत्यन्त क्रोध हुआ है ॥ २५॥ वानर राज निर्भय वालिने ऐसा कहकर एक मात्र धोती पहराकर हमको घरसे निकालदिया ॥२६॥ हे श्रीरामचंद्रजी! हमारी स्त्रीको हरण करके उस वालिने हमको बहुत ही मारदी उस वालिके ही भयसे समुद्र वन युक्त यह समस्त पृथ्वी हम घूमते थे ॥ २७ ॥ हम अपनी स्त्रीके हरण होजानेंके

विक्रोशमानस्यतुमेसुग्रीवेतिपुनपुनः ॥ यतःप्रतिवचोनास्तिततोऽहंभृशदुःखितः ॥ २३ ॥ पादप्रहारैस्तुमयाबहुभिः परिपातितम् ॥ ततोऽहंतेननिष्क्रम्यपथापुरमुपागतः ॥ २४ ॥ तत्रानेनास्मिसंरुद्धोराज्यंमृगयतात्मनः ॥ सुग्रीवेणनृशंसेनविस्मृत्यभ्रातृसौहृदम् ॥ २५ ॥ एवमुक्त्वातुमांतत्रवस्त्रेणैकेनवानरः ॥ तदानिर्वासयामासवालीविगतसाध्वसः ॥ २६ ॥ तेनाहमपविद्धश्चहृतदारश्चराघव ॥ तद्भयाच्चमहींसर्वांक्रांतवान्सवनार्णवाम् ॥ २७ ॥ ऋष्यमूकं गिरिवरंभार्याहरणदुःखितः ॥ प्रविष्टोऽस्मिदुराधर्षवालिनःकारणांतरे ॥ २८ ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातंवैरानुकथनंमहत् ॥ अनागसामयाप्राप्तंव्यसनंपश्यराघव ॥ २९ ॥ वालिनश्चभयात्तस्यसर्वलोकभयापह ॥ कर्तुमर्हसिमेवीरप्रसादं तस्यनिग्रहात् ॥ ३० ॥ एवमुक्तःसतेजस्वीधर्मज्ञोधर्मसंहितम् ॥ वचनंवक्तुमारेभेसुग्रीवंप्रहसन्निव ॥ ३१ ॥ अमोघाःसूर्यसंकाशानिशितामेशराइमे ॥ तस्मिन्वालिनिदुर्वृत्तेपतिष्यंतिरुषान्विताः ॥ ३२ ॥

दुःखसे महा दुःखित इस ऋष्यमूक पर्वतपर चले आये! क्योंकि यहां पर मतंगजीके शापसे वालि नहीं आसकता ॥ २८ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! हमनें आपसे वालिसे वैरभाव होनेंका समस्त ही कारण कह सुनाया; देखिये इस्में हमारा कुछभी अपराध नहीं है वरन हम विना अपराधही यह महा दुःख पारहेहैं॥२९॥हे सर्व लोकको अभय देनेंवाले! वालिको मार कर उसके भयसे भीत और व्याकुल हमारे ऊपर आप प्रसन्न हूजिये॥३०॥वह तेजस्वी धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी वह धर्म साने वचन सुन हँसकर बोले ॥३१॥ हे सुग्रीव ! हमारे यह तीखे सूर्यसमान प्रकाशित अमोघ बाण उस दुरा

आपका क्या कार्य हुआ? ॥ २६ ॥ हे राघव! जो उसी समय आप कह देतेकि हम वालिको न मारेंगे, तोही अच्छाथा कारण कि फिर हम यहांसे वहां क्यों जाते ॥ २७ ॥ जब महात्मा सुग्रीवजीने इस प्रकार दीनवचन कहे तब श्रीरामचंद्रजी करुणा कर उनसे बोले ॥ २८ ॥ हे सुग्रीव ! तुम क्रोधको त्यागन करो, जिसकारणसे हमनें बाण न चलाया उस कारणको तुम सुनो ॥ २९ ॥ वस्त्राभूषण, वेष, प्रमाण और चालसे तुम दोनोंमें परस्पर एकहोनेंके कारण कुछभी अंतर नहीं देख पडताथा ॥ ३० ॥ स्वर, वचन, कान्ति और विक्रममेंभी तुम दोनों जन समान थे इससे हमने उस समय न जाना कि कौन वालि और कौन सुग्रीवहैं ॥ ३१ ॥ हेवानरश्रेष्ठ ! इसी कारणसे हम रूप और समानता के दिखावसे

तामेववेलांवक्तव्यंत्वयाराघवतत्त्वतः ॥ वालिनंननिहन्मीतिततोनाहमितोव्रजे ॥ २७॥ तस्यचैवंब्रुवाणस्यसुग्रीवस्य महात्मनः ॥ करुणंदीनयावाचाराघवःपुनरब्रवीत् ॥ २८ ॥ सुग्रीवश्रूयतांतातक्रोधश्चव्यपनीयताम् ॥ कारणंयेन बाणोऽयंसमयानाविसर्जितः॥२९॥अलंकारेणवेषेणप्रमाणेनगतेनच ॥ त्वंचसुग्रीववालीचसदृशौस्थःपरस्परम् ॥ ३० ॥ स्वरेणवर्चसाचैवप्रेक्षितेनचवानर ॥ विक्रमेणचवाक्यैश्चव्यक्तिंवांनोपलक्षये ॥ ३१ ॥ ततोऽहंरूपसादृश्यान्मोहितो वानरोत्तम ॥ नोत्सृजामिमहावेगंशरंशत्रुनिबर्हणम् ॥ ३२ ॥ जीवितांतकरंघोरंसादृश्यात्तुविशंकितः ॥ मूलघातो ननौस्याद्धिद्वयोरितिकृतोमया ॥ ३३ ॥ त्वयिवीरविपन्नेहिअज्ञानाल्लाघवान्मया ॥ मौढ्यंचममबाल्यंचख्यापितंस्या त्कपीश्वर ॥ ३४ ॥ दत्ताभयवधोनामपातकंमहदद्भुतम् ॥ अहंचलक्ष्मणश्चैवसीताचवरवर्णिनी ॥ ३५ ॥

मोहितहो महावेगवान् शत्रुविनाशकारी बाण न चलासके ॥ ३२ ॥ तुम दोनोंका एकसारूपही देखनेके कारण शंकितहो, प्राणोंका अंत करनें वाला घोर बाण छोडनेको हम असमर्थ हुये। यदि तुम दोनोंकी सदृश्यताके हेतुसे तुम्हारेही बाण लगजाय, तो बस मूलकाही विनाश होजाय, अर्थात् न हमें सीता मिलें न तुम्हें राज्य, बस यही बात हमारी शंकामें मूलकारण हुई ॥ ३३ ॥ हे कपीश्वर ! अज्ञानता और बडी शीघ्रतासे यदि कहीं तुम्हारेही बाण लग जाता, तब हमारी मूर्खता, और बालकताका निःसन्देह सब जगह प्रचार होजाता ॥ ३४ ॥ हे वानर ! अभयदान देकर यदि फिर उसकाही वध कियाजाय तो बडा भारी अद्भुत पातक होताहै ।यहभी तुम मानलो कि, हम, लक्ष्मण, और श्रेष्ठ वर्णवाली सीताजी ॥३५॥

वालिनें अपना बल प्रकाश करनेंके लिये,वनमें लगे हुए बहुतेरे सारवान् वृक्षोंको उखाडकर चूर्णकरदिया॥६॥कैलास पर्वतके शिखरकी समान दुन्दुभी नामक वीर्यवान् महिष हजार हाथियोंका बल अपने शरीरमें धारण करताथा॥७॥ वीर्यके मदसे मतवाला वन, और वरदान पानेके कारण मोहितहो वह महाकाय दुन्दुभी समुद्रके निकटगया, ॥ ८ ॥ वह रत्नाकर समुद्रकी तरंगोंको रोक समुद्रसे बोला कि तुम हमको युद्धदानदो ॥ ९ ॥ तब धर्मात्मा महा बलवान् समुद्रनें उठकर, उस बलसे मतवाले दुष्टकालप्रेरित असुरसे कहा ॥ १० ॥ हे युद्धविशारद ! तुम्हारे साथ युद्ध करनेंकी हममें

बहवःसारवंतश्चवनेषुविविधाद्रुमाः ॥ वालिनातरसाभग्नाबलंप्रथयतात्मनः ॥ ६ ॥ महिषोदुंदुभिर्नामकैलासशिखरप्रभः ॥ बलंनागसहस्रस्यधारयामासवीर्यवान् ॥ ७ ॥ सवीर्योत्सेकदुष्टात्मावरदानेनमोहितः ॥ जगामसमहाकायःसमुद्रंसरितांपतिम् ॥ ८ ॥ उर्मिमंतमतिक्रम्यसागरंरत्नसंचयम् ॥ ममयुद्धंप्रयच्छेतितमुवाचमहार्णवम् ॥ ९ ॥ ततःसमुद्रोधर्मात्मासमुत्थायमहाबलः ॥ अब्रवीद्वचनंराजन्नसुरंकालचोदितम् ॥ १० ॥ समर्थोनास्मितेदातुंयुद्धंयुद्धविशारद ॥ श्रूयतांत्वभिधास्यामियस्तेयुद्धंप्रदास्यति ॥ ११ ॥ शैलराजोमहारण्येतपस्विशरणंपरम् ॥ शंकरश्वशुरोनाम्नाहिमवानितिविश्रुतः॥१२॥महाप्रस्रवणोपेतोबहुकंदरनिर्झरः॥ससमर्थस्तवप्रीतिमतुलांकर्तुमर्हति ॥ १३ ॥ तंभीतमितिविज्ञायसमुद्रमसुरोत्तमः ॥ हिमवद्वनमागम्यशरश्चापादिवच्युतः ॥ १४ ॥ ततस्तस्यगिरेःश्वेतागजेंद्रप्रतिमाःशिलाः ॥ चिक्षेपबहुधाभूमौदुंदुभिर्विननादच ॥ १५ ॥

सामर्थ्य नहींहै, हां जो पुरुष तुम्हारे साथ युद्ध करेगा, उसको बतलातेहैं श्रवणकरो ॥ ११ ॥ महा अरण्यमें हिमवान नामसे विख्यात तपस्वियोंको आश्रय देनेवाले, शिवजीके श्वशुर एक पर्वत राजहैं ॥ १२ ॥ उसगिरिमें बहुतसे झरने, कन्दरा, और सोते विद्यमानहैं। सो वह गिरिराज तुमको प्रसन्न करनें में समर्थ होंगे, अर्थात् तुमसे युद्ध करसकैंगे ॥ १३ ॥वह असुर श्रेष्ठ समुद्रको अपनेंसे डरा हुआ जानकर धनुषसे छूटेहुये बाणकी समान शीघ्रताके सहित सीधा हिमालयकें वनमे पहुँचा ॥ १४ ॥ और उन पर्वतराजपर पहुँच उनकी ऐरावत हस्तीके तुल्य सफेद

दृढ गरदनवाले सुग्रीवजीभी महाकालमहात्मा श्रीराम लक्ष्मणजीके आगे २ चलनें लगे ॥ ३ ॥ फिर पीछे वीर हनुमान और वीर्यवान् नल
नील, और महातेजस्वी तार यह चार वानर सुग्रीवजीके सेनापति और मंत्रीभी चले ॥ ४ ॥ यह सब मार्गमें फूलोंके भारसे झुके पेड, स्वच्छ
जल वहनेंवाली नदियां और तडाग देखते जातेथे ॥ ५ ॥ कंदरायें, पर्वत,झरने,और गुफा बडे२शिखर और प्रिय दर्शन दरें देखते हुये ॥ ६ ॥ वैदूर्य
मणिके समान विमल जल बहते, फूले हुये कमल फूलोंसे युक्त, शोभायमान तड़ाग मार्गमें देखते जातेथे ॥ ७ ॥ कारंडव, सारस, हंस, वंजुल

अग्रतस्तुययौतस्यराघवस्यमहात्मनः॥सुग्रीवःसंहतग्रीवोलक्ष्मणस्यमहाबलः॥३॥पृष्ठतोहनुमान्वीरोनलोनीलश्चवी
र्यवान्॥ तारश्चैवमहातेजाहरियूथपयूथपः॥४॥तेवीक्षमाणावृक्षांश्चपुष्पभारावलंबिनः ॥ प्रसन्नांबुवहाश्चैवसरितःसाग
रंगमाः ॥५॥ कंदराणिचशैलांश्चनिर्दराणिगुहास्तथा ॥ शिखराणिचमुख्यानिदरीश्चप्रियदर्शनाः ॥ ६ ॥ वैदूर्यविम
लैस्तोयैःपद्मैश्चाकोशकुड्मलैः ॥ शोभितान्सजलान्मार्गेतटाकांश्चावलोकयन् ॥ ७ ॥ कारंडैःसारसैर्हंसैर्वंजुलैर्जलकु
क्कुटैः ॥ चक्रवाकैस्तथाचान्यैःशकुनैःप्रतिनादितान् ॥ ८ ॥ मृदुशष्पांकुराहारान्निर्भयान्वनचारिणाम् ॥ चरतांसर्व
तःपश्यन्स्थलीषुहरिणान्स्थितान् ॥ ९ ॥ तटाकवैरिणश्चापिशुक्लदंतविभूषितान् ॥ घोरानेकचरान्वन्यान्द्विरदा
न्कूलघातिनः ॥ १० ॥ मत्तान्गिरितटोद्घुष्टान्पर्वतानिवजंगमान् ॥ वानरान्द्विरदप्रख्यान्महीरेणुसमुक्षितान् ॥११॥
वनेवनचरांश्चान्यान्खेचरांश्चविहंगमान् ॥ पश्यंतस्त्वरिताजग्मुःसुग्रीववशवर्तिनः ॥ १२ ॥ तेषांतुगच्छतांतत्रत्व
रितंरघुनंदनः ॥ द्रुमषंडवनंदृष्ट्वारामःसुग्रीवमब्रवीत् ॥ १३ ॥

जलकुक्कुट, चक्रवाक इत्यादि पक्षी मधुर बोल रहेथे ॥ ८ ॥ कोमल घास व अंकुर चरकर निर्भयहो वनमें फिरनेवाले, वनस्थलियोंमें बहुत सारे
हरिण इन्होंने बैठे हुये देखे ॥९॥ तडागोंके शत्रु और श्वेत दातोंसे भूषित, घोररूप, नदियोंके करारे गिरानेंवाले बनैले हाथीभी जाते२देखे ॥ १० ॥
जल वमनवाले पर्वतोंके तीर किलकिलाते चर पर्वताकार हाथियोंकी नांई रेणु उडाते प्राकृत वानरभी जाते २ देखे ॥११॥ और दूसरे वनमें च
रनेवाले जीवगणोंको, व आकाशमें चरनेंवाले पक्षियोंको देखते सुग्रीवजीके वशवर्त्ती सब वानर चलेजातेथे ॥१२॥ वह वानर जबकि बडे वेगसे चल

किष्किन्धा नाम नगरीमें आया ॥ २४ ॥ उस असुरनें वर्षाकालके समय आकाशमें जलपूर्ण महा मेघकी समान तेज सींग युक्त अपना महाभयान क रूप धारण किया ॥ २५ ॥ फिर महाबलवान् दुन्दुभी किष्किन्धाके द्वार पर आ भूमिको कंपाता हुआ नगाडेके शब्द समान सिंह नाद करनें लगा ॥ २६ ॥ वह दर्पमें भरे मतवाले हाथीकी समान किष्किन्धाके द्वार वाले वृक्ष तोड और अपनें खुरोंसे भूमिको विदीर्ण कर सींगोंसे खोदनें लगा ॥ २७ ॥ उस समयमें वालि रनवासमें स्त्रियोंके निकट बैठाथा, वह उस शब्दको न सहन कर तारागणोंके सहित चन्द्रमाकी समान सब स्त्रियोंके साथ बाहर चला आया ॥ २८ ॥ समस्त वनचारियोंका, और वानर गणोंका राजा वालि दुन्दुभीसे स्पष्ट २ बोला ॥ २९ ॥ हे महाबल

धारयन्माहिषंवेषंतीक्ष्णशृंगोभयावहः ॥ प्रावृषीवमहामेघस्तोयपूर्णोनभस्तले ॥ २५ ॥ ततस्तुद्वारमागम्यकिष्किंधायामहाबलः ॥ ननर्दकंपयन्भूमिंदुंदुभिर्दुंदुभिर्यथा ॥ २६ ॥ समीपजान्द्रुमान्भंजन्वसुधांदारयन्खुरैः ॥ विषाणेनोल्लिखन्दर्पात्तद्वारंद्विरदोयथा ॥ २७ ॥ अंतःपुरगतोवालीश्रुत्वाशब्दममर्षणः ॥ निष्पपातसहस्त्रीभिस्ताराभिरिवचंद्रमाः ॥ २८ ॥ मितंव्यक्ताक्षरपदंतमुवाचसदुंदुभिम् ॥ हरीणामीश्वरोवालीसर्वेषांवनचारिणाम् ॥ २९ ॥ किमर्थंनगरद्वारमिदंरुद्ध्वाविनर्दसे ॥ दुंदुभेविदितोमेऽसिरक्षप्राणान्महाबल ॥ ३० ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वावानरेंद्रस्यधीमतः ॥ उवाचदुंदुभिर्वाक्यंक्रोधात्संरक्तलोचनः ॥ ३१ ॥ नत्वंस्त्रीसंनिधौवीरवचनंवक्तुमर्हसि ॥ ममयुद्धंप्रयच्छाद्यततोज्ञास्यामितेबलम् ॥ ३२ ॥ अथवाधारयिष्यामिक्रोधमद्यनिशामिमाम् ॥ गृह्यतामुदयःस्वैरंकामभोगेषुवानर ॥ ३३ ॥ दीयतांसंप्रदानंचपरिष्वज्यचवानरान् ॥ सर्वशाखामृगेंद्रस्त्वंसंसाधयसुहृज्जनम् ॥ ३४ ॥

वान् दुन्दुभे! तुम किस कारणसे इन नगरके द्वारको रोके हुये गर्जना कर रहे हो? तुम हमारा बल भली भांति जानते हो, इस कारणसे इस समय अपनें प्राणोंकी रक्षा करो ॥ ३० ॥ वानरश्रेष्ठ बुद्धिमान वालिके ऐसे वचन सुनकर लाल २ नेत्र कर दुन्दुभी वालिसे बोला॥ ३१ ॥ हे वीर! तुम अपनी स्त्रियोंके निकटही अपनी बडाईके वचन कह रहे हो; आज हमारे साथ युद्ध करो;तब तुम्हारा बल जाना जायगा ॥३२॥ अथवा अब हम रात्रि कालमें अपनें क्रोधको रोके रहते हैं, तबतक तुम सूर्यके उदय होनेंतक काम भोगमें आसक्त हो इन स्त्रियोंके सहित रात्रि बिताओ ॥३३॥प्रभात हम

आया करती है और दिव्य गन्धभी यहांसे आती रहती है ॥ २२ ॥ इस आश्रममें तीन अग्निभी दीप्तिमानरहते हैं इ
व बाजोंकी धर निहारियेकि कपोतके रंगका धूसरवर्णवाला धुआं इन सबवृक्षोंमें छाय रहाहै ॥ २३ ॥ मेघोंसे घिरे हुये वैदूर्यमणिके पर्वतोंकी समान धूम
युक्त होनेके कारण यह वृक्ष प्रकाशमान हो रहे हैं ॥ २४ ॥ हेधर्मात्मन् ! आप लक्ष्मणजीके सहित सावधान चित्तसे हाथ जोडकर इन मुनि
जनोंके लिये प्रणाम कीजिये ॥ २५ ॥ हेश्रीरामचंद्रजी ! जो पुरुष इन सिद्धात्मा ऋषिलोगोंको प्रणाम करता है, उसके शरीरमें किंचित्मात्र
पाप नहीं ठहर सकता ॥ २६ ॥ जब सुग्रीवजीने ऐसा कहा, तब श्रीरामचंद्रजीनें लक्ष्मणजीके सहित हाथ जोडकर उन महात्मा मुनिजनोंके

त्रेताग्नयोऽपिदीप्यंतेधूमोह्येषप्रदृश्यते ॥ वेष्टयन्निववृक्षाग्रान्कपोतांगारुणोघनः ॥ २३ ॥ एतेवृक्षाःप्रकाशंते
धूमसंसक्तमस्तकाः ॥ मेघजालप्रतिच्छन्नावैदूर्यगिरयोयथा ॥ २४ ॥ कुरुप्रणामंधर्मात्मंस्तेषामुद्दिश्यरा
घव ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्राप्रयतःसंहतांजलिः ॥ २५ ॥ प्रणमंतिहियेतेषामृषीणाभावितात्मनाम् ॥ नतेषामशुभंकिंचिच्छ
रीरेरामविद्यते ॥ २६ ॥ ततोरामःसहभ्रात्रालक्ष्मणेनकृतांजलिः ॥ समुद्दिश्यमहात्मानस्तानृषीनभ्यवादयत् ॥ २७ ॥
अभिवाद्यचधर्मात्मारामोभ्राताचलक्ष्मणः ॥ सुग्रीवोवानराश्चैवजग्मुःसंहृष्टमानसाः ॥ २८ ॥ तेगत्वादूरमध्वानंत
स्मात्सप्तजनाश्रमात् ॥ ददृशुस्तांदुराधर्षांकिष्किंधांवालिपालिताम् ॥ ततस्तुरामानुजरामवानराःप्रगृह्यशस्त्राण्यु
दितोग्रतेजसः ॥ पुरींसुरेशात्मजवीर्यपालितांवधायशत्रोःपुनरागतास्त्विह ॥ ३० ॥ इ० श्रीम० वा० आ० किष्किंधाकांडे
त्रयोदशःसर्गः ॥ १३ ॥ ॥ ७ ॥ ॥

लिये प्रणाम किया ॥ २७ ॥ उनको प्रणाम कर धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी भ्राता लक्ष्मण, सुग्रीव व औरभी सब वानर हर्षित होकर गमन
करनें लगे ॥ २८ ॥ वह सब जन सप्तजन आश्रमसे दूर आकर वालिकी पाली हुई उस दुर्द्धर्ष किष्किन्धा नगरीमें पहुँचे ॥ २९ ॥
फिर श्रीराम, लक्ष्मण, और वानरगण अपने २ उग्र तेजवाले अस्त्र शस्त्रोंको धारण कर शत्रुको मार डालनेंके लिये इंद्र पुत्रकी प्रतिपालित
किष्किन्धा नगरीमें दूसरी बार आये ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकोये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

कारण महाघोर संग्राम आरंभ हुआ ॥ ४२ ॥ इंद्रतुल्य पराक्रमशालीवालि, लात, घूंसा, जांघ, शिला, और वृक्षोंके द्वारा युद्ध करनें लगा॥४३॥ इस प्रकारसे वानर और असुरका युद्ध होने लगा। युद्ध होते २ असुरका बल क्षीण होता और वालिका बल बढता जाताथा ॥ ४४ ॥ तब वालिनें दुन्दुभीको पकडकर पृथ्वीपर पटक दिया, उस प्राण विनाशक युद्धमें दुन्दुभी वालि करकै चूर्ण करडाला गया ॥ ४५ ॥ दुन्दुभी के नाक कान आदिसे बहुतसा रुधिर निकलने लगा. वह महाबाहु असुर पृथ्वीपर गिरकर प्राण त्यागन करदेता हुआ ॥ ४६ ॥ वालिनें

अयुध्यततदावालीशक्रतुल्यपराक्रमः ॥ मुष्टिभिर्जानुभिःपद्भिःशिलाभिःपादपैस्तथा ॥ ४३ ॥ परस्परंघ्नतोस्तत्र वानरासुरयोस्तदा ॥ आसीद्धीनोऽसुरोयुद्धेशक्रसूनुर्व्यवर्धत ॥ ४४ ॥ तंतुदुंदुभिमुद्यम्यधरण्यामभ्यपातयत् ॥ युद्धेप्राणहरेतस्मिन्निष्पिष्टोदुंदुभिस्तदा ॥ ४५ ॥ स्रोतोभ्योबहुरक्तंतुतस्यसुस्रावपात्यतः ॥ पपातचमहाबाहुः क्षितौपंचत्वमागतः ॥ ४६ ॥ तंतोलयित्वाबाहुभ्यांगतसत्त्वमचेतनम् ॥ चिक्षेपवेगवान्वालीवेगेनैकेनयोजनम् ॥ ४७॥ तस्यवेगप्रविद्धस्यवक्रात्क्षतजबिंदवः ॥ प्रपेतुर्मारुतोत्क्षिप्तामतंगस्याश्रमंप्रति॥४८॥तान्दृष्ट्वापतितांस्तत्रमुनिःशोणितविप्रुषः ॥ क्रुद्धस्तस्यमहाभागचिंतयामासकोन्वयम्॥४९॥येनाहंसहसास्पृष्टःशोणितेनदुरात्मना॥कोऽयंदुरात्मादुर्बुद्धिरकृतात्माचबालिशः ॥ ५० ॥ इत्युक्त्वासविनिष्क्रम्यददर्शमुनिसत्तमः ॥ महिषंपर्वताकारंगतासुंपतितंभुवि ॥ ५१॥

उस विगत प्राण और चेतना रहित असुरको अपनी बाहोंसे पकड औरघुमाकर एकवारही एक योजनके अंतर पर फेंक दिया॥ ४७॥वह जब वेग सहित फेंका जारहाथा, तब उसके मुखसे रुधिरकी बूंदें पवनके सहारेसेछिटक कर मतंग मुनिके आश्रमपर गिरीं ॥ ४८ ॥ हे महाभाग! मुनिश्रेष्ठ मतंगजी अपनें आश्रम पर रुधिरकी बूंदे गिरी हुई देख विचारनें लगेकि यह कौनहै? ॥४९॥ कि जिसने हमको रुधिरसे भिगो दिया! वह दुर्बुद्धि मूढ, और अज्ञान पुरुष कौनहै? ॥ ५० ॥ यह कहकर मुनिवरजीनें बाहर निकल कर देखा तो एक पर्वताकार भैंसा विगत प्राण होकर

परन्तु आज एकही वाण द्वारा रण स्थलमें वह विनाश करदेंगे, हे सुग्रीव! आज तुम भ्राताऋपी शत्रुको शीघ्र हमें दिखादो ॥११॥ वह आज हमारे वाणसे घायल होकर वनमें धूलके ऊपर गिरकर छटपटावेगा, यदि इतने परभी उसके प्राण रहजांय, अर्थात् वह जीता हुआ वचकर फिर तुम्हें दीख पडे ॥ १२ ॥ तब तुम इस स्थानसे चले जाना, और हमारी निन्दा करना या हमको धिक्कारदेना, हमने केवल एकही वाणसे तुम्हारे सन्मुख सात ताल वृक्ष तोड डाले ॥ १३ ॥ तिससे तुम जानलो कि वालि हमारे वाणसे मराहुआ धराहै, हमनें प्रथम कष्टमें पडनेंसेभी कभी मिथ्या वचन नहीं बोला ॥ १४ ॥ कारणकि धर्मका लोभ हमको वहुतहीहै । इस्से मिथ्या नहीं कहते, हम निःसंदेह अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करेंगे तुम भ्रम व शोकको

एकेनाहंप्रमोक्ष्यामिबाणमोक्षेणसंयुगे ॥ ममदर्शयसुग्रीववैरिणंभ्रातृरूपिणम् ॥ ११ ॥ वालीविनिहतोयावद्वनेपांसुषुचेष्टते ॥ यदिदृष्टिपथंप्राप्तोजीवन्सविनिवर्तते ॥ १२ ॥ ततोदोषेणमागच्छेत्सद्योगर्हेच्चमांभवान् ॥ प्रत्यक्षंसप्तेतालामयाबाणेनदारिताः ॥ १३ ॥ ततोवेत्सिबलेनाद्यवालिनंनिहतंरणे ॥ अनृतंनोक्तपूर्वंमेचिरंकृच्छ्रेपितिष्ठता ॥ १४ ॥ धर्मलोभपरीतेननचवक्ष्येकथंचन ॥ सफलांचकरिष्यामिप्रतिज्ञांजहिसंभ्रमम् ॥ १५ ॥ प्रसूतंकलमक्षेत्रंवर्षेणेवशतक्रतुः ॥ तदाह्वाननिमित्तंचवालिनोहेममालिनः ॥ १६ ॥ सुग्रीवकुरुतंशब्दंनिष्पतेद्येनवानरः ॥ जितकाशीजयश्लाघीत्वयाचाधर्षितःपुरात् ॥ १७ ॥ निष्पतिष्यत्यसंगेनवालीसप्रियसंयुगः ॥ रिपूणांधर्षितंश्रुत्वामर्षयंतिनसंयुगे ॥ १८ ॥ जानंतस्तुस्वकंवीर्यंस्त्रीसमक्षंविशेषतः ॥ सतुरामवचःश्रुत्वासुग्रीवोहेमपिंगलः ॥ १९ ॥

छोडो ॥१५॥ जैसे इन्द्रजी वर्षा करके धान्यके खेतोंको फलवान् करतेहैं ऐसेही हम पराक्रम करेंगे। इसलिये हे सुग्रीव! उस सुवर्ण माला धारण किये हुए वालिको पुकारो ॥ २६ ॥ और तुम ऐसा शब्द करोकि जिस्से वालि क्रोधयुक्त होकर शीघ्रही बाहर चला आवे । क्योंकि वालि विजयको सदाही चाहताहै, और बडाईके पानेंको इच्छाकिये सदाही घूमा करताहै और पहले कभी तुम उसको पराजितभी नहीं कर सकेहो इस कारणसे वह शब्द सुन शीघ्रही आवैगा इसमें कोई संदेह नहीं ॥ १७ ॥ इस्से तुम्हारा पुकारना श्रवण करतेही वालि तुरंत आवैगा, क्योंकि वह अत्यन्तही रणप्रियहै इसके अतिरिक्त समरमें शत्रुका गर्जना सुनकर वाली नहीं सहसकेगा॥१८॥जो अपने वीर्यको जानते हैं। वह शत्रुका गर्जन विशेष करके स्त्रियोंके

किंभवंतःसमस्ताश्चमतंगवनवासिनः ॥ मत्समीपमनुप्राप्ताअपिस्वस्तिवनौकसाम् ॥ ६० ॥ ततस्तेकारणंसर्वंतथाशा
पंचवालिनः ॥ शशंसुर्वानराःसर्वेवालिनेहेममालिने ॥ ६१ ॥ एतच्छ्रुत्वातदावालीवचनंवानरेरितम् ॥ समहर्षिंस
मासाद्ययाचतेस्मकृतांजलिः ॥ ६२ ॥ महर्षिस्तमनादृत्यप्रविवेशाश्रमंप्रति ॥ शापधारणभीतस्तुवालीविह्वलतांग
तः ॥ ६३ ॥ ततःशापभयाद्भीतोऋष्यमूकंमहागिरिम् ॥ प्रवेष्टुंनेच्छतिहरिर्द्रष्टुंवापिनरेश्वर ॥ ६४ ॥ तस्याप्रवेशंज्ञा
त्वाहमिदंराममहावनम् ॥ विचरामिसहामात्योविषादेनविवर्जितः ॥ ६५ ॥ एषोऽस्थिनिचयस्तस्यदुंदुभेःसंप्रकाश
ते ॥ वीर्योत्सेकान्निरस्तस्यगिरिकूटनिभोमहान् ॥ ६६ ॥ इमेचविपुलाःसालाःसप्तशाखावलंबिनः ॥ यत्रैकं
घटतेवालीनिष्पत्रयितुमोजसा ॥ ६७ ॥

मातंग वनके रहनेंवाले तुम सब लोग किस निमित्तसे हमारे निकट आयेहो सब वनवासी कुशलसहित तो हैं? ॥ ६० ॥ उन सब वानरोंनें सुवर्ण मालाधारी वालिसे वह समस्त कारण कह सुनाया और यहभी बतादिया कि आपको मुनिजीनें शाप दियाहै ॥ ६१ ॥ वालि वानर गणोंके वचन सुनकर महर्षि मतंगजीके निकटजा हाथ जोड उनको प्रसन्न करनें लगा ॥ ६२ ॥ परन्तु महर्षिजी उसकी बातोंको एक न सुनकर अपने आश्रममें चलेगये, और वालि शापके भयसे अत्यन्त विह्वलहोगया ॥ ६३ ॥ हे नरनाथ श्रीरामचंद्रजी! फिर वालि शापके भयसे भीत होकर कभी महागिरि ऋष्यमूक पर्वतपर प्रवेश करनेंकी इच्छा नहीं करता, वरन इस पर्वतको कभी देखनेंभी नहीं आता ॥ ६४ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! इस वनमें उसका आना नहीं हो सकता यह जानकर हम विषादरहितहो मंत्रियोंके साथ इस वनमें वास करते हैं ॥ ६५ ॥ यह देखिये! उस मदोन्मत्त, गत प्राण महा असुर दुन्दुभिकी बडी २ हड्डियोंका ढेर गिरि शिखर की तुल्य यहां प्रकाशित हो रहाहै जिसको वालिनें अपनेवीर्यकी वृद्धिसे यहां उठाकर फेंक दियाथा ॥ ६६ ॥ यह जो सात शालके वृक्ष बहुत शाखाओं करके युक्त एकही जगह छता बाँधकर जमेंहैं, सो कभी २ वालि अपने बलवीर्यको प्रगट करनेंके लिये एक वृक्षकी जड पकड हिलाता तो यह सातों वृक्ष हिल जातेथे ॥ ६७ ॥

होताथा कि जिस प्रकार किसी कुंडसे कमल फूल तोड लिये जांय, और कमलकी डंडियें ऊपर चमकनें लगें ॥ ४ ॥ वह सहनेंके अयोग्य शब्द श्रवण करवालि पैर धरनेंसे मानों पृथ्वीको फाडताही हुआसा बडे वेगसे बाहेरको चला ॥ ५ ॥ तब तारा वालिको लिपटकर, सौहार्द दिखाती भयके मारे व्याकुलहो आगेकी भलाईके लिये यह वचन बोली ॥६॥ हे वीरवर! नदीके वेगकी समान आये हुये इस क्रोधको आप त्यागकर दीजिये जिस प्रकार शयनसे प्रातःकाल उठकर रात्रिकी धारणकी हुई फूलमाला लोग त्याग करदेते हैं ॥ ७ ॥ हे वीरेन्द्र! आप कल प्रातःकालही संग्राम करलीजियें, क्योंकि आपका शत्रु अत्यन्त लघुहै, और इस समय युद्ध न करनेंसे किसी प्रकारकी तुम्हारी छुटाई भी तो नहीं

शब्दंदुमर्षणंश्रुत्वानिष्पपाततततोहरिः ॥ वेगेनचपदन्यासैर्दारयन्निवमेदिनीम् ॥ ५ ॥ तंतुतारापरिष्वज्यस्नेहाद्दर्शितसौहृदा ॥ उवाचत्रस्तसंभ्रांताहितोदर्कमिदंवचः ॥ ६ ॥ साधुक्रोधमिमंवीरनदीवेगमिवागतम् ॥ शयनादुत्थितःकाल्यंत्यजभुक्तामिवस्रजम् ॥ ७॥ काल्यमेतेनसंग्रामंकरिष्यसिचवानर ॥ वीरतेशत्रुबाहुल्यंफल्गुतावानविद्यते ॥ ८ ॥ सहसातवनिष्क्रामोममतावन्नरोचते ॥ श्रूयतामभिधास्यामियन्निमित्तंनिवार्यते ॥ ९ ॥ पूर्वमापतितःक्रोधात्सत्वामाह्वयतेयुधि ॥ निष्पत्यचनिरस्तस्तेहन्यमानोदिशोगतः॥ १० ॥ त्वयातस्यनिरस्तस्यपीडितस्यविशेषतः ॥ इहैत्यपुनराह्वानंशंकांजनयतीवमे ॥ ११ ॥ दर्पश्चव्यवसायश्चयादृशस्तस्यनर्दतः ॥ निनादस्यचसंरंभोनैतदल्पंहिकारणम् ॥ १२ ॥

होतीहै ॥ ८ ॥ आप जो सहसाही बाहेर युद्ध करनेंके लिये जाते हैं सो हमारी सम्मतिमें यह ठीक नहीं और जिस कारणसे हम रोकती हैं वह भी श्रवण कीजिये ॥ ९ ॥ यही सुग्रीव पहले महा क्रोधकर तुम्हें युद्धके लिये पुकारकर तुम्हारे आघातसे समरमें विमुख किस अवस्थाको प्राप्त हो भागाथा ॥ १० ॥ वह ऐसा समरविमुख और बहुत मार पाकरभी यहां आकर फिर तुम्हें पुकारताहै इस्से हमको शंका होती है ॥ ११ ॥ इस समय उसका जिस प्रकारका अहंकार, वर्ताव और घोर गर्जन श्रवण करनेंसे ज्ञात होताहै कि अल्प कारणसे कदापि वह यहां

हम हनुमानादि पांच मंत्रियोंके साथ जोकि हममें प्रीति रखतेहैं उद्विग्न और शंकितहो इस महावनमें विचरण करतेहैं ॥ ७७ ॥ हे मित्रवत्सल पुरुषश्रेष्ठ ! आप वांछनीय उत्तम मित्रहैं, हिमालयकी समान सार युक्त जानकर हमने आपका आश्रय लियाहै ॥ ७८ ॥ हे राघव ! हम उस बल शाली दुष्ट अपने भ्राता वालिका बल जानतेहैं परन्तु समरमें आपका वीर्य कैसाहै? इसको हम अभी नहीं जानते,इस कारणसे वालिके मारनेंमें दुवधा समझतेहैं ॥ ७९ ॥ न हम आपकी तुलना वालिकी बराबर करतेहैं न आपका निरादर करतेहैं, न भय दिखातेहैं, परन्तु उस वालिके भयंकर कर्मोंको विचार हम अत्यन्त कातर होतेहैं ॥ ८० ॥ परन्तु हे श्रीरामचंद्रजी ! आपकी वाणी, धीरता और आकृतिहीसे आपकी वीरशालिताका

उद्विग्नःशंकितश्चाहंविचरामिमहावने ॥ अनुरक्तैःसहामात्यैर्हनुमत्प्रमुखैर्वरैः ॥ ७७ ॥ उपालब्धंचमेश्लाघ्यंसन्मित्रंमित्रवत्सल ॥ त्वामहंपुरुषव्याघ्रहिमवंतमिवाश्रितः॥७८॥ किंतुतस्यबलज्ञोऽहंदुर्भ्रातुर्बलशालिनः ॥ अप्रत्यक्षंतुमेवीर्यंसमरेतवराघव ॥ ७९ ॥ नखल्वहंत्वांतुलयेनावमन्येनभीषये ॥ कर्मभिस्तस्यभीमैश्चकातर्यंजनितंमम ॥ ८० ॥ कामंराघवतेवाणीप्रमाणंधैर्यमाकृतिः ॥ सूचयंतिपरंतेजोभस्मच्छन्नमिवानलं ॥ ८१ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वासुग्रीवस्यमहात्मनः ॥ स्मितपूर्वमतोरामःप्रत्युवाचहरिंप्रति ॥ ८२ ॥ यदिनप्रत्ययोऽस्मासुविक्रमेतववानर ॥ प्रत्ययंसमरेश्लाघ्यमहमुत्पादयामिते ॥ ८३ ॥ एवमुक्त्वातुसुग्रीवंसांत्वयँल्लक्ष्मणाग्रजः ॥ राघवोदुंदुभेःकायंपादांगुष्ठेनलीलया ॥ ८४ ॥ तोलयित्वामहाबाहुश्चिक्षेपदशयोजनम् ॥ असुरस्यतनुंशुष्कांपादांगुष्ठेनवीर्यवान् ॥ ८५ ॥

प्रमाण मिलताहै, यह सबही गुण राखसे ढकी हुई अग्निकी समान आपके तेजकी सूचना करतेहैं ॥ ८१ ॥ श्रीरामचंद्रजी महात्मा सुग्रीवजीके यह वचन सुन मंद मुसकाय उनसे कहनें लगे ॥ ८२ ॥ हे वानर नाथ ! यदि हमारे पराक्रममें तुम्हारा विश्वास नहींहै तो हम शीघ्रही समरके विषय उत्तम विश्वास उत्पन्न कराये देतेहैं ॥ ८३ ॥ लक्ष्मणजीके बडे भाई श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कह सुग्रीवजीको समझाय और अपने पैरके अँगूठेसे दुन्दुभीका देह लीला पूर्वक ॥ ८४ ॥ महाबाहु रामचंद्रजीनें उठाकर दशयोजन अर्थात् चालीस कोसपर फेंक दिया इस प्रकार उस सूखे हुये असुरके

यहैं तुम उनके साथ विरोध कर मंगल न पाओगे । हे वीर ! हम कुछ तुम्हारी निन्दा नहीं करतीहैं ॥ २२ ॥ वरन हितकारी वचन कहतीहैं सो तुम श्रवण करके वैसाही करो वह यह कि तुम शीघ्रतासे सुग्रीवको युवराजपदवी देदो ॥ २३ ॥ हे वीरेन्द्र ! तुम छोटे भाईके साथ विरोध न करो हमारी तो यह इच्छाहै कि तुम्हारी और श्रीरामचंद्रजीकी प्रीति होजाय ॥ २४ ॥ और दूसरे हमारी यहभी इच्छाहै कि वैरभाव त्यागकर सुग्रीवके ऊपर तुम प्रसन्न होजाओ,क्योंकि यह सुग्रीव तुम्हारा छोटा भाईहै, इस्से तुम्हें अवश्यही इसका लालन पालन करना चाहिये; सो ऐसा करनेंसे तुम्हारा मंगल होगा ॥ २५ ॥ सुग्रीव ऋष्यमूकपे रहै, अथवा यहांपे रहै, वह आपका बन्धुहीहै,इस समस्त पृथ्वीपर उसकी समान

श्रूयतांक्रियतांचैवतववक्ष्यामियद्धितम् ॥ यौवराज्येनसुग्रीवंतूर्णंसाध्वभिषेचय ॥२३॥ विग्रहंमाकृथावीरभ्रात्राराजन्यवीयसा ॥ अहंहितेक्षमंमन्येतेनरामेणसौहृदम्॥२४॥सुग्रीवेणचसंप्रीतिंवैरमुत्सृज्यदूरतः ॥लालनीयोहितेभ्रातायवीयानेषवानरः ॥ २५ ॥ तत्रवासन्निहस्थोवासर्वथाबंधुरेवते ॥ नहितेनसमंबंधुंभुविपश्यामिकंचन ॥ २६ ॥ दानमानादिसत्कारैःकुरुष्वप्रत्यनंतरम् ॥ वैरमेतत्समुत्सृज्यतवपार्श्वेसतिष्ठतु ॥ २७ ॥ सुग्रीवोविपुलग्रीवोमहाबंधुर्मतस्तव ॥ भ्रातृसौहृदमालंब्यनान्यागतिरिहास्तिते ॥ २८ ॥ यदितेमत्प्रियंकार्यंयदिचावैषिमांहिताम् ॥ याच्यमानःप्रियत्वेनसाधुवाक्यंकुरुष्वमे ॥ २९ ॥ प्रसीदपथ्यंशृणुजल्पितंहिमेनरोषमेवानुविधातुमर्हसि ॥ क्षमोहितेकोशलराजसूनुनानविग्रहःशक्रसमानतेजसा ॥ ३० ॥

आपका बन्धु हम दूसरा नहीं देखतीहैं ॥ २६ ॥ इस कारण वैरभाव छोडकर दान मानादि द्वारा सत्कार कर उसको ग्रहण कीजिये, फिर वह स्वयंही वैर छोड तुम्हारे निकट रहने लगेगा॥ २७ ॥ बडी गरदनवाला सुग्रीव तुम्हारा परम बन्धुहै; सो आप उसके साथ सुहृदता स्थापन कर लीजिये; इसके सिवाय तुम्हारी दूसरी गति हम नहीं देखतीं ॥२८॥ यदि तुम हमको अपना हित करनेंवाली जानतेहो, यदि हमारा प्रिय कार्य करना तुम चाहतेहो; तो हम अपना प्रिय कार्य समझकर जो कुछ तुमसे प्रार्थना करतीहैं उन हमारे वचनोंको आप क्षमाकरें ॥ २९ ॥ हे वीरेन्द्र ! तुम हमारे हितकारी वचन श्रवणकर और क्रोधके वशमें न पडो; व इन्द्रतुल्य तेजसम्पन्न उन कौशलराजपुत्रोंके साथ विरोध करनेंसे तुम्हारा कल्याण नहीं होगा ॥३०॥

सौगन्ध करके हमसे मित्रता करनेंमें नियुक्त हुएहैं ॥ १२ ॥ जिस प्रकारसे तेजसमूहके मध्यमें दिवाकर, पर्वतके समूहके मध्यमें हिमवान्; और चौपायोंके मध्यमें केशरी सिंहहै. वैसेही आप मनुष्योंमें विक्रम करनेंके विषयमें श्रेष्ठहैं। इसमें कुछभी संदेह नहींहैं ॥ १३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे एकादशःसर्गः ॥११॥ सुग्रीवजीके कहे हुए ऐसे वचन सुनकर महा तेजमान श्रीरामचंद्रजीनें उनको विश्वास दिलानेंके लिये धनुष ग्रहण किया ॥ १ ॥ मानप्रद श्रीरामचंद्रजीनें उस घोरतर धनुषपर एक बाण चढा उसके शब्दसे दशों दिशाओंको पूर्ण करके शालके वृक्षके ऊपर वह बाण छोडा॥२॥ सुवर्णकी समान चमकता हुआ वह बाण बलवान् श्रीरामचंद्रजीके द्वारा चलाया जाक

यथाहितेजस्सुवरःसदारविर्यथाहिशैलोहिमवान्महाद्रिषु ॥ यथाचतुष्पत्सुचकेसरीवरस्तथानराणामसिविक्रमेवरः ॥१३॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०किष्किंधाकांडे एकादशःसर्गः ॥ ११ ॥ ॥ छ ॥॥ एतच्चवचनंश्रुत्वासुग्रीवस्यसुभाषितम् ॥ प्रत्ययार्थंमहातेजारामोजग्राहकार्मुकम् ॥ १ ॥ सगृहीत्वाधनुर्घोरंशरमेकंचमानदः ॥ सालमुद्दिश्यचिक्षेपपूरयन्सरवैर्दिशः ॥ २ ॥ सविसृष्टोबलवताबाणःस्वर्णपरिष्कृतः ॥ भित्त्वातालान्गिरिप्रस्थंसप्तभूमिंविवेशह ॥ ३ ॥ सायकस्तुमुहूर्तेनतालान्भित्त्वामहाजवः ॥ निष्पत्यचपुनस्तूर्णंतमेवप्रविवेशह ॥ ४ ॥ तान्दृष्ट्वासप्तनिर्भिन्नान्सालान्वानरपुंगवः ॥ रामस्यशरवेगेनविस्मयंपरमंगतः ॥ ५ ॥ समूर्ध्नान्यपतद्भूमौप्रलंबीकृतभूषणः ॥ सुग्रीवःपरमप्रीतोराघवायकृतांजलिः ॥ ६ ॥ इदंचोवाचधर्मज्ञंकर्मणातेनहर्षितः ॥ रामंसर्वास्त्रविदुषांश्रेष्ठंशूरमवस्थितम् ॥ ७ ॥

र सात तालके वृक्षोंको तोडता, पर्वतको फोड़ता भूमिमें प्रवेश करगया॥३॥ वह सायक महावेगसे सातो वृक्षोंको तोडकर घूमघाम फिर तरकसमें आन कर प्राप्तहुआ ॥ ४ ॥ वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजी श्रीरामचंद्रजीके बाण वेगसे सात तालके वृक्षोंको टूटा हुआ देखकर परम विस्मयको प्राप्तहुए ॥ ५ ॥ तब सुग्रीवजीके मालादि सब भूषण खसक पडे, उन्होंनें पृथ्वीपर गिर शिर झुका श्रीरामचंद्रजीको प्रणाम किया, और श्रीरामचंद्रजीके ऊपर प्रीति प्रगटाय हाथ जोड कर खडे होगये ॥६॥ सुग्रीवजी श्रीरामचंद्रजीका यह कर्म देखकर प्रसन्नहो, सर्वशास्त्र विशारद वीरवर धर्मज्ञ श्रीरामचं

अत्याचार नहीं करेंगे केवल वृक्षोंके प्रहारसे और घूसोंसे उन्हैं मारेंगे जिस्से वह पीडित हो अपनी गुफाको चला जायगा ॥ ८ ॥ हे तारे! वह दुरात्मा हमारा हंकार और प्रहारादि नहीं सह सकैगा इसमें कुछ संदेह नहीं, कि तुमनें हमारी बुद्धिकी सहायता करके सुहृदता दिखाई॥९॥ तुमको हमारे प्राणोंकी शपथ है कि तुम इन सब स्त्रियोंके साथ लौट जाओ, हम रणस्थलमें भ्राताको केवल जीतही कर लौट आमेंगे, और उसे प्राणोंसे नहीं मारेंगे ॥ १० ॥ प्रियवादिनी दक्षिणा नायका तारा वालिको भेंटकर उसकी प्रदक्षिणाकर रोते २ वहांसे लौटी ॥ ११ ॥ शोकसे मोहित हुई, स्वस्तिके मंत्र जाननेंवाली तारा विजयकी इच्छा किये स्वस्त्ययन करके सब स्त्रियोंके साथ अन्तःपुरमें चली गई ॥ १२ ॥ जब सब स्त्रियोंके

नमेगर्वितमायस्तंसहिष्यतिदुरात्मवान् ॥ कृतंतारेसहायत्वंदर्शितंसौहृदंमयि ॥ ९ ॥ शापितासिममप्राणैर्निवर्त
स्वजनेनच ॥ अलंजित्वानिवर्तिष्येतमहंभ्रातरंरणे ॥ १० ॥ तंतुतारापरिष्वज्यवालिनंप्रियवादिनी ॥ चकाररुदती
मंदंदक्षिणासाप्रदक्षिणम् ॥ ११ ॥ ततःस्वस्त्ययनंकृत्वामंत्रविद्विजयैषिणी ॥ अंतःपुरंसहस्त्रीभिःप्रविष्टाशोकमोहिता
॥ १२ ॥ प्रविष्टायांतुतारायांसहस्त्रीभिःस्वमालयम् ॥ नगर्यान्निर्ययौक्रुद्धोमहासर्पइवश्वसन् ॥ १३ ॥ सनिःश्वस्यम
हारोषोवालीपरमवेगवान् ॥ सर्वतश्चारयन्दृष्टिंशत्रुदर्शनकांक्षया ॥ १४ ॥ सददर्शततःश्रीमान्सुग्रीवंहेमपिंगलम् ॥
सुसंवीतमवष्टब्धंदीप्यमानमिवानलम् ॥ १५ ॥ तंसदृष्ट्वामहाबाहुःसुग्रीवंपर्यवस्थितम् ॥ गाढंपरिदधेवासोवाली
परमकोपनः ॥ १६ ॥ सवालीगाढसंवीतोमुष्टिमुद्यम्यवीर्यवान् ॥ सुग्रीवमेवाभिमुखोययौयोद्धुंकृतक्षणः ॥ १७ ॥

साथ तारा अपने घरमें चली गई, तब वालि क्रोधित हुये महासर्पकी समान श्वास लेता हुआ नगरीसे बाहर निकला ॥ १३ ॥ वानरराज वालिनें लंबे २ श्वास लेकर बडे वेगसे आय रोषमें भर शत्रुको देखनेंकी वासनासे चारों ओरको दृष्टि डाली ॥ १४ ॥ तिसके पीछे श्रीमान् वालिनें सुवर्णसम पिंगलनेत्र, कच्छ, कसकर बाँधे हुये, पृथ्वीपर दृढरूपसे खडे देदीप्यमान अनलतुल्य सुग्रीवजीको देखा ॥ १५ ॥ महाबलवान् परम क्रोधित वालि सुग्रीवजीको इस प्रकारसे खडा देख आपभी वस्त्रोंको कसकर पहन लेता हुआ ॥ १६ ॥ वीर्यवान् वालि कच्छ बाँध मुक्का उठाय सुग्रीवजीके सन्मुख

हकी समान वालि और सुग्रीवका घोर तुमुल युद्ध होने लगा ॥१७॥ दोनोंभाई क्रोधसे अधीरहो वज्र तुल्य चपेट और वज्रतुल्य घूसोंके प्रहारसे परस्पर चोट चलानेलगे ॥१८॥ तब श्रीरामचंद्रजी धनुष धारण कर एकही प्रकारका रूप धारण किये हुये दो अश्विनी कुमारोंकी समान दोनों भाइयोंको अवलोकन करनें लगे ॥१९॥ जबतक श्रीरामचंद्रजीनें भली भांति यह नपहचाना कि इनमें कौन वालि और कौन सुग्रीवहै तब तक वह प्राणनाश कारी बाण न चलाया॥२०॥रामचंद्रजी तो इस विचारमें थे कि इतनेंहीमें सुग्रीवजी वालिसे हारकर भागे वह श्रीरामचंद्रजीको न देख पाकर ऋष्यमूक पर्वतकी ओर दौडनें लगे ॥ २१ ॥ वालिभी क्रोधमें भरकर पीछे ही पीछेदौडा तब थके हुये सुग्रीवजी उसके प्रहारसे जर्जर और रुधिरमें डूबकर

तलैरशनिकल्पैश्चवज्रकल्पैश्चमुष्टिभिः ॥ जघ्नतुःसमरेऽन्योन्यंभ्रातरौक्रोधमूर्छितौ ॥ १८ ॥ ततोरामोधनुष्पाणिस्ता वुभौसमुदैक्षत ॥ अन्योन्यसदृशौवीरावुभौदेवाविवाश्विनौ ॥ १९ ॥ यन्नावगच्छत्सुग्रीवंवालिनंवापिराघवः ॥ ततो नकृतवान्बुद्धिंमोक्तुमंतकरंशरम् ॥ २० ॥ एतास्मिन्नंतरेभग्नःसुग्रीवस्तेनवालिना ॥ अपश्यन्राघवंनाथमृष्यमूकंप्र दुद्रुवे ॥ २१ ॥ क्लांतोरुधिरसिक्तांगःप्रहारैर्जर्जरीकृतः ॥ वालिनाभिद्रुतःक्रोधात्प्रविवेशमहावनम् ॥ २२ ॥ तंप्रविष्टवं नंदृष्ट्वावालीशापभयात्ततः ॥ मुक्तोह्यसित्वमित्युक्त्वासनिवृत्तोमहाबलः ॥ २३ ॥ राघवोपिसहभ्रात्रासहचैवहनूमता॥ तदेववनमागच्छत्सुग्रीवोयत्रवानरः ॥ २४ ॥ तंसमीक्ष्यागतंरामंसुग्रीवःसहलक्ष्मणम् ॥ ह्रीमान्दीनमुवाचेदंवसुधा मवलोकयन् ॥ २५॥ आह्वयस्वेतिमामुक्त्वादर्शयित्वाचविक्रमम् ॥ वैरिणाघातयित्वाचकिमिदानींत्वयाकृतम् ॥२६॥

महावनमें प्रवेश करते हुये ॥ २२ ॥ महाबलवान् वालि उसवनमें सुग्रीवको पैठा हुआ देख शापके भयसे वहां नहीं जासका और बोला; जावो अब तुम बच गये । यह कह वहांसे लौट आया ॥ २३ ॥ श्रीरामचंद्रजी भी लक्ष्मण और हनुमानजीके सहित जहांपर सुग्रीवथे उसी वनमें प्रवेश करते हुये ॥ २४ ॥ सुग्रीवजी, लक्ष्मणके सहित श्रीरामचंद्रजीको आगमन करते हुये देखकर लज्जित हो नीचा मस्तक किये दीन वचनसे बोले ॥ २५॥ आपनें विक्रम दिखा और "वालिको युद्धके लिये पुकारो"ऐसा कहकर कुछभी न किया शत्रुसे हमको बडी मार दिलवाई, इस्से

तब राजपुत्र वीर्यवान् श्रीरामचंद्रजी अपनी आज्ञामें टिके हुये कपिराजका भलीभांति उद्योग देख हर्षके हेतु खिले हुये नील कमलकी समान प्रफुल्लित होगये ॥ ३४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे अष्टत्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥ सुग्रीवजीनें हाथ जोडकर जब इस प्रकारसे कहा तब धार्मिक श्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी; दोनों भुजा पसार उनसे मिलकर बोले ॥ १ ॥ कि यदि देवराज इन्द्रजी जल वर्षातेहैं तो कुछ आश्चर्य नहीं, सहस्रकिरणवाले सूर्य भगवान जो अपनी किरणोंसे आकाशके अंधकारको दूरकर उसे प्रकाशित करतेहैं, इसमें कुछ आश्चर्य नहीं ॥ २ ॥ और इसमेंभी कुछ आश्चर्य नहीं कि चंद्रमा जो अपनी विमल किरणोंसे आकाशको निर्मल

ततःसमुद्योगमवेक्ष्यवीर्यवान्हरिप्रवीरस्यनिदेशवर्तिनः॥बभूवहर्षाद्वसुधाधिपात्मजःप्रबुद्धनीलोत्पलतुल्यदर्शनः॥३४॥
इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०किष्किंधाकांडेअष्टत्रिंशःसर्गः ॥ ३८ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ इतिब्रुवाणंसुग्रीवंरामोधर्मभृतांवरः॥
बाहुभ्यांसंपरिष्वज्यप्रत्युवाचकृतांजलिम् ॥ १ ॥ यदिंद्रोवर्षतेवर्षनतच्चित्रंभविष्यति ॥ आदित्योसौसहस्रांशुःकुर्या
द्वितिमिरंनभः ॥ २ ॥ चंद्रमारजनींकुर्यात्प्रभयासौम्यनिर्मलाम् ॥ त्वद्विधोवापिमित्राणांप्रीतिंकुर्यात्परंतप ॥ ३ ॥
एवंत्वयिनतच्चित्रंभवेद्यत्सौम्यशोभनम् ॥ जानाम्यहंत्वांसुग्रीवसततंप्रियवादिनम् ॥ ४ ॥ त्वत्सनाथःसखेसंख्येजे
तास्मिसकलानरीन् ॥ त्वमेवमेसुहृन्मित्रंसाहाय्यंकर्तुमर्हसि ॥ ५ ॥ जहारात्मविनाशायमैथिलींराक्षसाधमः ॥
वंचयित्वातुपौलोमीमनुह्लादोयथाशचीम् ॥ ६ ॥

करतेहैं। ऐसेही तुम्हारी समान सात्विक पुरुष जो मित्रगणोंकी प्रीति साधन करेंगे इसमें विचित्रताही क्याहै ? ॥ ३ ॥ हे सुग्रीव! तुमसे जो शुभकारी कार्य होगा तो इसमें कुछ आश्चर्य नहींहै। हे सुग्रीव! हम जानतेहैं कि तुम सदाही प्रिय बोलनेवालेहो ॥ ४ ॥ हम तुम्हारे साथ मिलकर समरमें समस्त शत्रुगणोंके जीतनेंको समर्थ होंगे, तुम हमारे सुहृद और मित्रहो; इसलिये हमारी सहाय करना तुम्हारा सबसे बडा कर्तव्यहै ॥५॥ इस राक्षसने अपना नाश करनेके लिये जानकीको हरण कियाहै अनुह्लाद पहले जिस प्रकार छलसे पौलोमी शचीको हरण करके नाशको प्राप्त

सबही तुम्हारेहैं; और तुम्हारेही आधीनहैं, क्योंकि इस वनमें तुमहीं हमारे एक मात्र रक्षाके करनेंवालेहो, इसलिये तुम फिर युद्ध करनेंको जाओ और कुछ शंका न करो ॥३६॥ तुम इसही मुहूर्त देखोगे कि वालि हमारे बाणसे घायल होकर पृथ्वीमें गिरकर छटपटाताहै ॥ ३७ ॥ हे वानर श्रेष्ठ! तुम कोई चिह्न धारण किये जाओ कि जिस्से द्वन्द्व युद्ध करनेंके समय हम तुमको पहचानलें ॥ ३८ ॥ हे लक्ष्मण! तुम यह सुन्दर खिली हुई गजपुष्पी उखाड़कर इन महात्मा सुग्रीवजीके गलेमें पहरादो ॥ ३९ ॥ तिसके पीछे महात्मा लक्ष्मणजीनें पर्वतके तटपर उत्पन्न हुई कुसुमराशि युक्त गजपुष्पलता लाकर सुग्रीवजीके गलेमें डालदी॥ ४०॥तब सुग्रीवजी उन कंठलता द्वारा, बगलोंकी मालासे सुशोभित संध्याकालके

त्वदधीनावयंसर्वेवनेऽस्मिन्शरणंभवान् ॥ तस्माद्युध्यस्वभूयस्त्वंमामाशंकीश्चवानर॥३६॥ एतन्मुहूर्तेतुमयापश्यवालिनमाहवे ॥ निरस्तमिषुणैकेनचेष्टमानंमहीतले ॥ ३७ ॥ अभिज्ञानंकुरुष्वत्वमात्मनोवानरेश्वर ॥ येनत्वामभिजानीयांद्वंद्वयुद्धमुपागतम् ॥ ३८ ॥ गजपुष्पीमिमांफुल्लामुत्पाट्यशुभलक्षणाम् ॥ कुरुलक्ष्मणकंठेऽस्यसुग्रीवस्यमहात्मनः ॥ ३९ ॥ ततोगिरितटेजातामुत्पाट्यकुसुमायुताम् ॥ लक्ष्मणोगजपुष्पींतांतस्यकंठेव्यसर्जयत् ॥ ४० ॥ सतयाशुशुभेश्रीमाँल्लतयाकंठसक्तया ॥ मालयेवबलाकानांससंध्यइवतोयदः ॥ ४१ ॥ विभ्राजमानोवपुषारामवाक्यसमाहितः ॥ जगामसहरामेणकिष्किंधांपुनरापसः ॥ ४२ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० किष्किंधाकांडेद्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥ ७ ॥ ऋष्यमूकात्सधर्मात्माकिष्किंधांलक्ष्मणाग्रजः ॥ जगामसहसुग्रीवोवालीविक्रमपालिताम् ॥ १ ॥ समुद्यम्यमहच्चापंरामःकांचनभूषितम् ॥ शरांश्चादित्यसंकाशान्गृहीत्वारणसाधकान् ॥ २ ॥

जलधरकी समान शोभायमान होनें लगे ॥ ४१ ॥ सुग्रीवजी, श्रीरामचंद्रजीके वचनोंपर ध्यान देकर अपनी देहसे दिपनें लगे और श्रीरामचन्द्रजीके साथ किष्किन्धापुरीको चले ॥ ४२ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे द्वादशःसर्गः ॥ १२ ॥ वह धर्मात्मा लक्ष्मणके बडे भ्राता श्रीरामचंद्रजी सुग्रीवके सहित वालिके विक्रमसे पाली जातीहुई किष्किन्धा पुरीको गमन करते हुये ॥ १ ॥ श्रीरामचन्द्रजी सुवर्ण भूषित बडा धनुष उठाकर आदित्यतुल्य रणमें कार्यको सिद्ध करनेंवाले बाण ग्रहण करके गमन करनेंलगे ॥ २ ॥

जाय हाथ जोडकर खडे होगये ॥ १६ ॥ सुग्रीवजीको हाथ जोडे हुये देख कर सब वानरगणभी श्रीरामचन्द्रजीको हाथ जोडकर खडे हुये तब सब वानर और सुग्रीवजीको हाथ जोड खडे हुये देख श्रीरामचन्द्रजी पंकज कलियोंसे युक्त तडागकी समान ॥ १७ ॥ वानरराजकी बडी सेनाको देख सुग्रीवजीके प्रति प्रसन्न हुये । और चरणपर खडे हुये वानरनाथ सुग्रीवको श्रीरामचंद्रजीने उठाया ॥ १८ ॥ और अति आदरमान करके प्रेम सहित उनसे मिले, धर्मात्मा रामचंद्रजीनें सुग्रीवसे भेंटकर बैठनेको कहा ॥ १९ ॥ और जब सुग्रीवभी बैठगये तब श्रीरामचन्द्रजी, उनसे बोले कि धर्म, अर्थ, और कामका जो समय २ पर सेवन ॥ २० ॥ विभाग करकै किया करता है, हे वीर! वानरश्रेष्ठ! वही राजा कहाता है । और जो ध

कृतांजलौस्थितेतस्मिन्वानराश्चाभवंस्तथा ॥ तटाकमिवतंदृष्ट्वारामःकुड्मलपंकजम् ॥१७॥ वानराणांमहत्सैन्यंसुग्रीवेप्रीतिमानभूत् ॥ पादयोःपतितंमूर्ध्नातमुत्थाप्यहरीश्वरम् ॥ १८॥ प्रेम्णाचबहुमानाच्चराघवःपरिषस्वजे ॥ परिष्वज्यचधर्मात्मानिषीदेतिततोऽब्रवीत् ॥१९॥ निषण्णंतंततोदृष्ट्वाक्षितौरामोब्रवीत्ततः ॥धर्ममर्थंचकामंचकालेयस्तुनिषेवते॥२०॥विभज्यसततंवीरसराजाहरिसत्तम ॥ हित्वाधर्मंतथार्थंचकामंयस्तुनिषेवते ॥ २१ ॥ सवृक्षाग्रेयथासुप्तःपतितःप्रतिबुध्यते ॥ अमित्राणांवधेयुक्तोमित्राणांसंग्रहेरतः ॥ २२॥ त्रिवर्गफलभोक्ताचराजाधर्मेणयुज्यते ॥ उद्योगसमयस्त्वेषप्राप्तःशत्रुनिषुदन॥२३॥ संचिंत्यतांहिपिंगेशहरिभिःसहमंत्रिभिः ॥ एवमुक्तस्तुसुग्रीवोरामंवचनमब्रवीत् ॥२४॥ प्रनष्टाश्रीश्चकीर्तिश्चकपिराज्यंचशाश्वतम् ॥ त्वत्प्रसादान्महाबाहोपुनःप्राप्तमिदंमया ॥ २५ ॥

र्मको त्याग करके अर्थ और कामकी सेवा करता है ॥ २१ ॥ वह इस तरहसे जागता है; कि जिस प्रकार वृक्षकी फुलंचीपर सोता हुआ जब गिरता है तभी जागता है; अमित्रोंके वधमें युक्त, मित्रोंके संग्रह करनेमें रत॥२२॥राजा त्रिवर्गकी अर्थात् धर्म अर्थ और कामकी सेवा करता है वही धर्मसे संयुक्त होता है । हे शत्रुदमनकारी! सीताके ढूँढनेके लिये उद्योग करनेका यह समय आ गया है ॥ २३ ॥ सो तुम सब मंत्रिगणोंके सहित इस विपयमें सलाह करो सुग्रीवजी इस प्रकार कहे जाकर श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ २४ ॥ हे महाबाहो! आपके प्रसादसे हमनें नष्ट हुई, राज्यलक्ष्मी

रहेथे तब श्रीरामचंद्रजी वृक्षोंसे परिपूर्ण एक वृक्ष झुंडको देखकर सुग्रीवजीसे बोले ॥ १३ ॥ इस वृक्ष झुंडके चारों ओर वृक्षोंका समूह लगाहै सो यह मिलेहुये वादलोंकी समूहोंके तुल्य प्रकाशमान होताहै ॥ १४ ॥ हे सखे ! यह सब क्याहै ? इसके जाननेंके लिये हमें बडा कौतूहल उत्पन्न हुआ है, सो तुम हमारे इस कौतूहलको दूरकरो ॥१५॥ महात्मा श्रीरामचंद्रजीका यह वचन सुनकर सुग्रीवजी मार्गमें ही चलते २ उस वडे व नका वृत्तान्त वर्णन करनें लगे ॥ १६ ॥ हे राघव ! श्रमका विनाश करनेंहारा वडे विस्तारवाला उद्यान और वन युक्त, स्वादुफल और जलयुक्त यह आश्रम ॥ १७ ॥ जो दृष्टि आताहै, इसमें सप्तजन नामक दृढव्रत धारण करनेंवाले सात मुनि रहा करतेथे; यह सातों ऋषि नीचेको शिर किये

एषमेघइवाकाशेवृक्षषंडःप्रकाशते ॥ मेघसंघातविपुलंपर्यंतकदलीवृतम् ॥ १४ ॥ किमेतज्ज्ञातुमिच्छामिसखेकौतूहलं मम ॥ कौतूहलापनयनंकर्तुमिच्छाम्यहंत्वया ॥ १५ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाराघवस्यमहात्मनः ॥ गच्छन्नेवाचचक्षे थसुग्रीवस्तन्महद्वनम् ॥ १६ ॥ एतद्राघवविस्तीर्णमाश्रमंश्रमनाशनम्॥उद्यानवनसंपन्नंस्वादुमूलफलोदकम् ॥ १७॥ अत्रसप्तजनानाममुनयःशंसितव्रताः ॥ सप्तैवासन्नधःशीर्षानियतंजलशायिनः ॥ १८ ॥ सप्तरात्रेकृताहारावायुना चलवासिनः ॥ दिवंवर्षशतैर्याताःसप्तभिःसकलेवराः ॥ १९ ॥ तेषामेतत्प्रभावेणद्रुमप्राकारसंवृतम् ॥ आश्रमंसुदु राधर्षमपिसेंद्रैःसुरासुरैः ॥ २० ॥ पक्षिणोवर्जयंत्येतत्तथान्येवनचारिणः ॥ विशंतिमोहाद्येप्यत्रननिवर्ततितेपुनः ॥ ॥ २१ ॥ विभूषणरवाश्चात्रश्रूयंतेसकलाक्षराः ॥ तूर्यगीतस्वनश्चापिगंधोदिव्यश्चराघव ॥ २२ ॥

रात्रि दिन जलमें रहते ॥ १८ ॥ यह मुनिलोग सातवें रोज केवल पवनका आहार करतेथे, और अचल वास करते, इस प्रकारसे वह मुनिगण सा तसौ वर्षतक तपस्या कर अपने २ शरीर सहित स्वर्गको चलेगये ॥१९॥ उन मुनिलोगोंकेही प्रभावसे यह आश्रम वृक्षोंके कोटसे घिराहुआहै इस आश्रममें इन्द्रके सहित सुर और असुर गणभी कुछ उपद्रव नहीं करसकते ॥ २० ॥ पक्षी या दूसरे वनचारी जीवगण इस आश्रमके भीतर नहीं जाते और जोकोई मोहके वशहो इसमें चलाभी जाय सो वह वहांसे लौट नहीं सकता॥२१॥यहांसे अप्सराओंके मधुरगीत और गहनोंके शब्द,

उन्होंनें वह समस्त ओषधियें और मूल फल जोकि यज्ञ भूमिसे तोड लायेथे, सुग्रीवको देकर कहा ॥ ३५ ॥ महाराज ! आपकी आज्ञा पालन करनेंके हेतु पृथ्वी भरके समस्त वानरगण, पर्वत, वन, और नदियोंको नांघते हुए यहांपर चले आतेहैं ॥ ३६ ॥ जब उन वानरोंने ऐसा कहा, तो वानरनाथ सुग्रीवजीनें हर्षित और प्रसन्न होकर उनके दिये हुए सब उपहारके पदार्थ ग्रहण किये ॥ ३७ ॥ इ० श्रीम० वाल्मीकिये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडेसप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥ वानरनाथ सुग्रीवजीनें उन सबके दिये समस्त उपहार ग्रहण करके,

तेगृहीत्वौषधीःसर्वाःफलमूलंचवानराः ॥ तंप्रतिग्राहयामासुर्वचनंचेदमब्रुवन् ॥ ३५ ॥ सर्वेपरिसृताःशैलाःसरितश्चव नानिच ॥ पृथिव्यांवानराःसर्वेशासनादुपयांतिते ॥ ३६ ॥ एवंश्रुत्वाततोहृष्टःसुग्रीवःप्लवगाधिपः ॥ प्रतिजग्राहचप्रीतस्तेषांसर्वमुपायनम् ॥ ३७ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० कि० कां० सप्तत्रिंशःसर्गः ॥ ३७ ॥ ॥ प्रतिगृह्यचतत्सर्वमुपायनमुपाहृतम् ॥ वानरान्सांत्वयित्वाचसर्वानेवव्यसर्जयत् ॥ १ ॥ विसर्जयित्वासहरीन्सहस्रान्कृतकर्मणः ॥ मेनेकृतार्थमात्मानंराघवंचमहाबलम् ॥ २ ॥ सलक्ष्मणोभीमबलंसर्ववानरसत्तमम् ॥ अब्रवीत्प्रश्रितंवाक्यंसुग्रीवंसंप्रहर्षयन् ॥ ३ ॥ किष्किंधायाविनिष्क्रामयदितेसौम्यरोचते ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वालक्ष्मणस्यसुभाषितम् ॥ ४ ॥ सुग्रीवःपरमप्रीतोवाक्यमेतदुवाचह ॥ एवंभवतुगच्छामस्थेयंत्वच्छासनेमया ॥ ५ ॥ तमेवमुक्त्वासुग्रीवोलक्ष्मणंशुभलक्षणम् ॥ विसर्जयामासतदाताराद्याश्चैवयोषितः ॥ ६ ॥

व प्रशंसाकर उन सबको बिदा किया ॥ १ ॥ उन हजार २ कार्य किये हुए वानरगणोंको विदा देकर अपनेंको और महाबलवान श्रीरामचन्द्रजीको सुग्रीवजी कृतार्थ समझते हुए ॥ २ ॥ अनन्तर लक्ष्मणजी सुग्रीवको हर्षित देखकर; उन महाबलवान वानरोंके पति सुग्रीवजीसे मधुर वचन बोले ॥ ३ ॥ हे सौम्य ! यदि तुम्हारी इच्छा हो तो हम इस समयकिष्किन्धासे चले जाँय । लक्ष्मणजीके ऐसे सुवचन सुनकर ॥ ४ ॥ सुग्रीवजी परम प्रसन्न होकर उनसे बोले कि आप चलिये हम सबभी आपकी आज्ञाके आधीन हैं ॥ ५ ॥ शुभ लक्षण सम्पन्न लक्ष्मणजीसे ऐसा

वह सब जन वालिकी किष्किन्धा पुरीमें शीघ्रतासे पहुँच अपने २ शरीरोंको वृक्षोंसे छिपाकर सघन वनमें खडे होगये ॥१॥ बडी गर्दनवाले और वनको देख प्रसन्नहोनहार सुग्रीवजी चारों ओर दृष्टि डाल बडाकोपकर ॥ २ ॥ सहायसे स्थितहो अत्यन्त घोर गर्जनकर वालिको संग्राम करनेंके लिये पुकारनें लगे, उनकी नादसे आकाश मंडल मानों फटा जाताथा ॥ ३ ॥ वायुके वेगसे चलायमान महा मेघकी समान गर्जकर बाल सूर्य सदृश सिंहसम गतिवाले सुग्रीवजी ॥ ४ ॥ श्रीरामचंद्रजीको कार्य करनेंमें चतुर देखकर बोले कि हे महाराज! वानरोंके बन्धनसे घिरी, तपाये हुये सुवर्णसे भूषित ॥ ५ ॥ और मंत्रादि युक्त वालिकी किष्किन्धा पुरीमें हम लोग पहुँच गये हेवीर! आपनें पहले वालिका वध करनेंके

सर्वेतेत्वरितंगत्वाकिष्किंधांवालिनःपुरीम् ॥ वृक्षैरात्मानमावृत्यव्यतिष्ठन्गहनेवने ॥ १ ॥ विसार्यसर्वतोदृष्टिंका ननेकाननप्रियः ॥ सुग्रीवोविपुलग्रीवःक्रोधमाहारयद्भृशम् ॥ २ ॥ ततस्तुनिनदंघोरंकृत्वायुद्धायचाह्वयत् ॥ परिवारैः परिवृतोनादैर्भिदन्निवांबरम् ॥ ३ ॥ गर्जन्निवमहामेघोवायुवेगपुरःसरः ॥ अथबालार्कसदृशोदृप्तसिंहगतिस्ततः ॥ ॥ ४ ॥ दृष्ट्वारामंक्रियादक्षंसुग्रीवोवाक्यमब्रवीत् ॥ हरिवागुरयाव्याप्तांतदाकांचनभूषणाम् ॥ ५ ॥ प्राप्ताःस्मध्वजयं त्राढ्यांकिष्किंधांवालिनःपुरीम् ॥ प्रतिज्ञायाकृतावीरत्वयावालिवधेपुरा ॥ ६ ॥ सफलांकुरुतांक्षिप्रंलतांकालइवाग तः ॥ एवमुक्तस्तुधर्मात्मासुग्रीवेणसराघवः ॥ ७ ॥ तमेवोवाचवचनंसुग्रीवंशत्रुसूदनः ॥ कृताभिज्ञानचिह्नस्त्वम नयागजसाह्वया ॥ ८ ॥ लक्ष्मणेनसमुत्पाट्यएषाकंठेकृतातव ॥ शोभसेप्यधिकंवीरलतयाकंठसक्तया ॥ ९ ॥ विपरीतइवाकाशेसूर्योनक्षत्रमालया ॥ अद्यवालिसमुत्थंतेभयंवैरंचवानर ॥ १० ॥

लिये जो प्रतिज्ञा कीहै ॥६॥ उसको आप शीघ्र पूर्ण कीजिये जिस प्रकार फलनें फूलनेंका समय आकर वृक्षलताओंको पुष्प फलसे पूर्ण कर देता है। जब धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीसे सुग्रीवजीनें ऐसा कहा ॥७॥ तब शत्रुओंका संहार करनें वाले श्रीरामचंद्रजी उनसे बोलेकि गजवेल धारण कराय तुम्हारी देहमें जो पहँचान ॥ ८ ॥ लक्ष्मणजीने बनाईहै, उस गजलताके धारण करनेंसे तुम्हारी ग्रीवा औरभी शोभित होतीहै ॥ ९ ॥ जैसे कभी आकाशमें नक्षत्रोंकी मालाके निकट आजानेंसे सूर्य भगवान् शोभायमान होतेहैं आज इस समयतकतो वालिके द्वारा की हुई शत्रुता और भय तुमको प्राप्तहै॥१०॥

प्रतिपालन करनेंके लिये समस्त वानरगण शीघ्रतासे वेगभरी चाल चलकर समस्त वानरोंको लेआवें ॥ १५ ॥ पवनकुमार हनुमानजीनें सुग्रीवजीके यह वचन सुनकर सब दिशाओंमें विक्राल वानर भेजदिये ॥ १६ ॥ कपिनाथके भेजे हुये वानरगण पक्षी और नक्षत्रोंके मार्गका अवलंबन करके आकाशस्थलमें उसी क्षण गमन करनें लगे ॥ १७ ॥ बडे२मुख्य वानर लोग समस्त वानरोंको श्रीरामचंद्रजीका कार्य साधन करनेंके हेतु समुद्र, वन, और सरोवरोंपर भेजनें लगे ॥ १८ ॥ दंडआदि देनेमें मृत्युपतितुल्य वानरराज सुग्रीवकी आज्ञा श्रवण कर

तस्यवानरराजस्यश्रुत्वावायुसुतोवचः॥दिक्षुसर्वासुविक्रांतान्प्रेषयामासवानरान्॥ १६ ॥तेपदंविष्णुविक्रांतंपतत्रिज्योतिरध्वगाः॥ प्रयाताःप्रहिताराज्ञाहरयस्तुक्षणेनवै ॥ १७ ॥ तेसमुद्रेषुगिरिषुवनेषुचसरस्सुच ॥ वानरावानरान्सर्वान्रामहेतोरचोदयन्॥ १८ ॥मृत्युकालोपमस्याज्ञांराजराजस्यवानराः ॥ सुग्रीवस्याययुःश्रुत्वासुग्रीवभयशंकिताः॥१९॥ ततस्तेंजनसंकाशागिरेस्तस्मान्महाबलाः ॥ तिस्रःकोट्यःप्लवंगानांनिर्ययुर्यत्रराघवः ॥ २० ॥ अस्तंगच्छतियत्रार्कस्तस्मिन्गिरिवेररताः ॥ संतप्तहेमवर्णाभास्तस्मात्कोट्योदशच्युताः ॥ २१ ॥ कैलासशिखरेभ्यश्चसिंहकेसरवर्चसाम् ॥ ततःकोटिसहस्राणिवानराणांसमागमन् ॥२२॥फलमूलेनजीवंतोहिमवंतमुपाश्रिताः॥तेषांकोटिसहस्राणांसहस्रंसमवर्तत ॥ २३ ॥ अंगारकसमानानांभीमानांभीमकर्मणाम् ॥ विंध्याद्वानरकोटीनांसहस्राण्यपतन्द्रुतम् ॥ २४ ॥

सब वानर शंकितहो प्रस्थान करते हुए ॥ १९ ॥ तिसके पीछे उस अंजनगिरिसे तीन करोड महा बलवान् वानर आयकर श्रीरामचंद्रजीके निकट गये ॥ २० ॥ और जिस पर्वत पर सूर्य नारायण अस्त होजातेहैं; उसस्थानके रहनेवाले तपाये हुए सुवर्ण की समान वर्ण युक्त दश करोड वानर आये ॥ २१ ॥ कैलास पर्वतके शिखरोंपरसे, सिंह केशर तुल्यवर्ण वाले हजार करोड वानर आपहुँचे ॥ २२ ॥ हिमालय पर्वत पर रहनें वाले,फल मूल भक्षण कारी करोड हजार वानर किष्किन्धामें आये॥२३॥ अंगार तुल्य वर्ण युक्त विकटाकार भयंकर कर्मकारी कोटि सहस्र वानर

सामने सुनकर कभी चुप चाप नहीं बैठे रहते । ऐसे श्रीरामचंद्रजीके वचन सुनकर सुवर्णके समान वर्णवाले सुग्रीवजी ॥ १९ ॥
भयंकर शब्दसे आकाशमंडलको मानों भेदन करतेही हुये गर्जन करनें लगे । उस शब्दसे त्रासित और प्रभाहीन होकर गाय बैल
इधर उधर भागनें लगे ॥ २० ॥ जैसे राजाकी ओरसे कुछ दोप होनेंपर कुलकी स्त्रियें तित्तर वित्तर हो फिरती हैं । संग्राम भूमिसे भागे हुये
घोडोंकी समान सब मृग गण भागनें लगे ॥ २१ ॥ और क्षीण पुण्य ग्रहगणोंकी समान आकाशमें उडते हुये पक्षी पृथ्वीमें गिरनें लगे ॥ २२ ॥
तिसके पीछे पवनसे चलायमान होनेंके कारण चंचल तरंगै जिसमें उठती हों ऐसे नदियोंके पति समुद्रकी तुल्य, सूर्यपुत्र सुग्रीवजी, श्रीरा

ननर्दक्रूरनादेनविनिर्भिदन्निवांबरम् ॥ तत्रशब्देनवित्रस्तागावोयांतिहतप्रभाः ॥ २० ॥ राजदोषपरामृष्टाःकुलस्त्रिय
इवाकुलाः ॥ द्रवंतिचमृगाःशीघ्रंभग्नाइवरणेहयाः ॥ २१ ॥ पतंतिचखगाभूमौक्षीणपुण्याइवग्रहाः ॥ २२ ॥ ततः
सजीमूतकृतप्रणादोनादंह्यमुंचत्त्वरयाप्रतीतः ॥ सूर्यात्मजःशौर्यविवृद्धतेजाःसरित्पतिर्वानिलचंचलोर्मिः ॥ २३ ॥
इत्यार्षेश्री०वा०आदिकाव्येकिष्किंधाकांडेचतुर्दशःसर्गः ॥ १४ ॥ ७ ॥ ॥ अथतस्यनिनादंतंसुग्रीवस्यमहात्म
नः ॥ शुश्रावांतःपुरगतोवालीभ्रातुरमर्षणः ॥ १ ॥ श्रुत्वातुतस्यनिनदंसर्वभूतप्रकंपनम् ॥ मदश्चैकपदेनष्टःक्रोध
श्चापादितोमहान् ॥ २ ॥ ततोरोषपरीतांगोवालीसकनकप्रभः ॥ उपरक्तइवादित्यःसद्योनिष्प्रभतांगतः ॥ ३ ॥
वालीदंष्ट्राकरालस्तुक्रोधाद्दीप्ताग्निलोचनः ॥ भात्युत्पतितपद्माभःसमृणालइवह्रदः ॥ ४ ॥

मचंद्रजीके वचनोंका विश्वास कर अपनी शूरतासे वर्द्धित तेज होकर मेघकी समान गर्ज २ घोर शब्द करनें लगे ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा
मायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे चतुर्दशःसर्गः ॥ १४ ॥ उस समय वालि रनवासमें अपनी स्त्रियोंके बीचमें बैठाथा । उससे
महात्मा सुग्रीवजीका घोर गर्जना सुनकर न सहागया ॥ १ ॥ सर्व प्राणियोंका कंपायमान करनेंवाला वह नाद सुनकर एकवारही वालिका सब
मद नष्ट होगया और महा क्रोधितहुआ ॥ २ ॥ सुवर्णकी समान दीप्तिशाली वालि क्रोधसे परिपूर्ण होकर राहुसे ग्रसे हुये सूर्यकी समान प्रभाहीन होग
या ॥ ३ ॥ क्रोधके मारे दांत बाहर निकल आनेंसे कराल आकारवाले वालिके नेत्र जलती हुई अग्निके समान होगये, उस समय वह ऐसा ज्ञात

ऐसे वचन कहनेको समर्थ होसकताहै? ॥ १७ ॥ हे कपिवर ! क्या विक्रममें, क्या बलमें, सब भांतिसे रामचंद्रजीको समानहीं सहाय भाग्यसेही प्राप्त हुईहै॥१८॥परन्तु हेवीर!तुम हमारे साथ शीघ्रही इस स्थानसे चलकर;स्त्री हर जानेके दुःखसे महाकातर श्रीरामचंद्रजीको सन्तोष प्राप्त कराओ१९ हे सखे ! शोकसे व्याकुल श्रीरामचंद्रजीके वचन सुनकर, हमनें जोकुछ कठोर वचन कहेहैं वह तुम क्षमा करो ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे षट्त्रिंशःसर्गः ॥ ३६ ॥ सुग्रीव महात्मा लक्ष्मणजीसे इस प्रकार कहे जाकर एक ओर खडे

सदृशश्चासिरामेणविक्रमेणबलेनच ॥ सहायोदैवतैर्दत्तश्चिरायहरिपुंगव ॥ १८ ॥ किंतुशीघ्रमितोवीरनिष्क्रमत्वंमया सह ॥ सांत्वयस्ववयस्यंचभार्याहरणदुःखितम् ॥१९॥ यच्चशोकाभिभूतस्यश्रुत्वारामस्यभाषितम् ॥ मयात्वंपरुषाण्युक्तस्तत्क्षमस्वसखेमम ॥ २० ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० कि० कां० षट्त्रिंशःसर्गः ॥३६॥ ॥ ७ ॥ एवमुक्तस्तु सुग्रीवोलक्ष्मणेनमहात्मना ॥ हनूमंतंस्थितंपार्श्वेवचनंचेदमब्रवीत् ॥ १ ॥ महेंद्रहिमवद्विंध्यकैलासशिखरेषुच ॥ मंदरेपांडुशिखरेपंचशैलेषुयेस्थिताः ॥ २ ॥ तरुणादित्यवर्णेषुभ्राजमानेषुनित्यशः ॥ पर्वतेषुसमुद्रांतेपश्चिमस्यांतुये दिशि ॥ ३ ॥ आदित्यभवनेचैवगिरौसंध्याभ्रसन्निभे ॥ पद्माचलवनंभीमाःसंश्रिताहरिपुंगवाः ॥ ४ ॥ अंजनांबुदसंकाशाःकुंजरेंद्रमहौजसः ॥ अंजनेपर्वतेचैवयेवसंतिप्लवंगमाः ॥ ५ ॥ महाशैलगुहावासावानराःकनकप्रभाः ॥ मेरुपार्श्वगताश्चैवयेचधूम्रगिरिंश्रिताः ॥ ६ ॥

हुये हनुमानजीसे बोले ॥ १ ॥ महेन्द्राचल, हिमालय और कैलास पर्वतके शिखर पर और मन्दराचल पाण्डु शिखर; व पंच शैलपर जो वानर रहतेहों ॥ २ ॥ पश्चिमकी ओर तरुण सूर्य तुल्य वर्ण वाले नित्य दीप्यमान समुद्रके अन्तवाले पर्वतों पर जो टिक रहेहों ॥ ३ ॥ सन्ध्याकालमें उदय हुये मेघकी समान उदयाचल और अस्ताचल और पद्माचल पर जो भयंकर आकारवाले वानर गण वास करतेहैं ॥ ४ ॥ और अंजन पर्वत परके रहने वाले अंजन वर्णके मेघकी तुल्य गजेन्द्र तुल्य बलशाली जोवानर रहतेहैं ॥ ५ ॥ और महाशैलकी गुहामें रहने वाले कनक समान

परनहीं आया॥१२॥हम विचार करती हैं कि सुग्रीव विनासहायके इससमय यहां नहीं आया,वरन वह एक बडाभारी सहायकपाय यहां आकर गर्जरहाहै और सुग्रीव स्वभावसेही बुद्धिमान् और चतुर वानरहै; उसनें विना बलवीर्यकी परीक्षा किये कभी किसीसे मित्रता नकी होगी॥१३॥१४॥हे वीरवर! हमनें पहलेही कुमार अंगदसे जो वृत्तान्त सुनाहै; वही हितकर वचन कहतीहैं, तुम श्रवण करो॥ १५ ॥ कि कुमार अंगद कहीं वनको घूमनेंके लिये चला गयाथा, वहांपर दूतोंनें उस्से आकर निवेदन किया ॥ १६ ॥ उन्होंनें कहा कि अयोध्याके राजा इक्ष्वाकु कुल उत्पन्न महाराज दशरथ जीके पुत्र श्रीराम लक्ष्मणजी वनको आयेहैं ॥ १७ ॥ सुग्रीवजीका प्रिय कार्य साधन करनेंके लिये वह दोनों दुर्द्धर्ष वीर तैयार हुएहैं, वही संग्राम

नासहायमहंमन्येसुग्रीवंतमिहागतम् ॥ अवष्टब्धसहायश्चयमाश्रित्यैषगर्जति ॥ १३ ॥ प्रकृत्यानिपुणश्चैवबुद्धिमां श्चैववानरः ॥ नापरीक्षितवीर्येणसुग्रीवःसख्यमेष्यति ॥ १४ ॥ पूर्वमेवमयावीरश्रुतंकथयतोवचः ॥ अंगदस्यकु मारस्यवक्ष्याम्यद्यहितंवचः ॥ १५ ॥ अंगदस्तुकुमारोऽयंवनांतमुपनिर्गतः ॥ प्रवृत्तिस्तेनकथिताचारैरासीन्निवेदि ता ॥ १६ ॥ अयोध्याधिपतेःपुत्रौशूरौसमरदुर्जयौ ॥ इक्ष्वाकूणांकुलेजातौप्रस्थितौरामलक्ष्मणौ ॥ १७ ॥ सुग्रीव प्रियकामार्थंप्राप्तौतत्रदुरासदौ ॥ सतेभ्रातुर्हिविख्यातःसहायोरणकर्मणि ॥ १८ ॥ रामःपरबलामर्दीयुगांताग्निरिवो त्थितः ॥ निवासवृक्षःसाधूनामापन्नानांपरागतिः ॥ १९ ॥ आर्तानांसंश्रयश्चैवयशसश्चैकभाजनम् ॥ ज्ञानविज्ञानसंप न्नोनिदेशेनिरतःपितुः ॥ २० ॥ धातूनामिवशैलेंद्रोगुणानामाकरोमहान् ॥ तत्क्षमोनविरोधस्तेसहतेनमहात्म ना ॥ २१ ॥ दुर्जयेनाप्रमेयेणरामेणरणकर्मसु ॥ शूरवक्ष्यामितेकिंचिन्नचेच्छाम्यभ्यसूयितुम् ॥ २२ ॥

स्थलमें सुग्रीवके बडे सहाय बनेहैं ॥ १८ ॥ वही रामचंद्रजी प्रलयकालकी अग्निके समान शत्रुओंके विनाश करनेंके लिये उठेहैं; वह साधु ओंके आश्रयदाता वृक्ष, और दुःखी जनोंके परम गतिहैं ॥ १९ ॥ वह आरत जनोंको अभय देनेंवाले, यशके भाजन, ज्ञान और विज्ञान युक्त पिताकी आज्ञामें रतहैं ॥ २० ॥ जिस प्रकार शैलराज हिमवान् धातुसमूहोंके आकारहैं, वैसेही श्रीरामचंद्रजीको गुण समूहकी महाखान जानों सो उन महात्मा श्रीरामचंद्रजीसे विरोध करके तुम्हारा भला नहीं होगा ॥ २१ ॥ हे शूर ! श्रीरामचंद्रजी रणकालमें अजीत और अप्रमे

और सैकडों करोड़ वानरों की सेना आवैगी ॥ २२ ॥ हे लक्ष्मण ! आपका क्रोधसे दीप्तिमान मुख और अरुणारे दोनों नेत्र देखकर वानरराजकी सब
स्त्रियां शान्तिको नहीं प्राप्त कर सकतीं और सबही शंकित होरहीहैं ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० किष्किन्धाकांडे पंचत्रिंशः
सर्गः॥३५॥जब तारानें विनीत भावसे इस प्रकारके धर्म संगत वचन कहे तब लक्ष्मणजी मृदुभावको धारणकर उनके वचन ग्रहण करते हुए॥ १ ॥
जब लक्ष्मणजीनें ताराके वचन मान क्रोध त्याग करदिया तब सुग्रीवजीनेंभी गीले वस्त्रकी समान बडा भारी भय त्याग दिया, जोकि उन्हें लक्ष्मण
जीसे प्राप्त हुआथा ॥ २ ॥ फिर वानरराज सुग्रीवजीनें कंठमें पडी मादक गुणवाली अपनी विचित्रमाला तोड डाली; कि जिसके तोडतेही मद

तवहिमुखमिदंनिरीक्ष्यकोपात्क्षतजसमेनयनेनिरीक्षमाणाः ॥ हरिवरवनितानयांतिशांतिंप्रथमभयस्यहिशंकिताः
स्मसर्वाः ॥ २३ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणे०वा०आ०किष्किंधाकांडेपंचत्रिंशःसर्गः ॥ ३५ ॥ ॥ छ ॥ ॥इत्युक्तस्तारया
वाक्यंप्रश्रितंधर्मसंहितम् ॥ मृदुस्वभावःसौमित्रिःप्रतिजग्राहतद्वचः ॥ १ ॥ तस्मिन्प्रतिगृहीतेतुवाक्येहरिगणेश्वरः ॥ल
क्ष्मणात्सुमहत्त्रासंवस्त्रंक्लिन्नमिवात्यजत् ॥ २ ॥ ततःकंठगतंमाल्यंचित्रंबहुगुणंमहत् ॥ चिच्छेदविमदश्चासीत्सुग्रीवो
वानरेश्वरः॥ ३ ॥ सलक्ष्मणंभीमबलंसर्ववानरसत्तमः ॥ अब्रवीत्प्रश्रितंवाक्यंसुग्रीवःसंप्रहर्षयन् ॥ ४ ॥ प्रनष्टाश्रीश्चकी
र्तिश्चकपिराज्यंचशाश्वतम्॥रामप्रसादात्सौमित्रेपुनश्चाप्तमिदंमया ॥५॥कःशक्तस्तस्यदेवस्यख्यातस्यस्वेनकर्मणा
॥तादृशंप्रतिकुर्वीतअंशेनापिनृपात्मज॥ ६ ॥सीतांप्राप्स्यतिधर्मात्मावधिष्यतिचरावणम् ॥ सहायमात्रेणमयाराघवः
स्वेनतेजसा ॥ ७ ॥ सहायकृत्यंकिंतस्ययेनसप्तमहाद्रुमाः ॥ गिरिश्चवसुधाचैवबाणेनैकेनदारिताः ॥ ८ ॥

रहित होगये ॥ ३ ॥ तदनन्तर वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजी महाबलवान् लक्ष्मणजीको हर्षित कराते हुए विनीत वाणीसे कहनें लगे ॥ ४ ॥ हे सुमित्रा
नंदन ! हमनें, स्त्री,कीर्ति, वानरोंका राज्य जोकि छुटगयाथा, श्रीरामचन्द्रजीके प्रसादसे इन सबको फिर प्राप्त किया ॥ ५ ॥ हे राजकुमार! कौन
पुरुष सुकर्म द्वारा विख्यात देव स्वरूप उन श्रीरामचंद्रजीके उपकारके किसी अंशकाभी बदला देनेंमें समर्थ होगा? ॥ ६ ॥ धर्मात्मा श्रीरामचं
द्रजी हमारी सहायता केवल नाममात्रसे प्राप्तकर अपने तेजसेही रावणको संहार सीताजीको प्राप्त होवेंगे ॥ ७ ॥ जिन्होनें केवल एक बाणसेही सात

उस समय तारानें वालिसे इस प्रकारके हितकर वचन कहे परन्तु विनाशके समय कालसे ग्रसेहुए वालिको वह वचन कुछभी नभाये॥३१॥ सच कहाहै, कि "विनाशकाले विपरीतबुद्धिः" इ०श्रीम० वा० कि० पंचदशःसर्गः॥ १५ ॥चन्द्रवदनी तारानें जब वालिसे इस प्रकार कहा,तो वह ताराको धिक्कारता हुआ ऐसे वचन बोला॥१॥हे श्रेष्ठ मुख वाली!हमारा भ्राता हमारा बडा शत्रुहै और फिर इस समय गर्वसहित गर्जन कर रहाहै तब भला हम किस प्रकारसे इसके गर्जनको सहलें ॥२॥ जो लोग शत्रुकरके कभी नहीं जीते गये और जो शूर रणस्थलसे विना शत्रुके जीते कभी नहीं लोटें हे भीरु! उनके लिये अपमानका सहन करना मरनेंसेभी अधिक जानो ॥ ३ ॥ रणस्थलमें युद्धाभिलाषी हीनग्रीव सुग्रीव का गर्व सहित गर्जना हम किसी

तदाहितारहितमेववाक्यंतंवालिनंपथ्यमिदंबभाषे ॥ नरोचतेतद्वचनंहितस्यकालाभिपन्नस्यविनाशकाले ॥ ३१ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेपंचदशःसर्गः ॥ १५ ॥ तामेवंब्रुवतींतारांताराधिपनिभाननाम् ॥ वालीनिर्भर्त्सयामासवचनंचेदमब्रवीत् ॥ १ ॥ गर्जतोस्यसुसंरब्धंभ्रातुःशत्रोर्विशेषतः ॥ मर्षयिष्यामिकेनापिकारणेनवरानने ॥ २ ॥ अधर्षितानांशूराणांसमरेष्वनिवर्तिनाम् ॥ धर्षणामर्षणंभीरुमरणादतिरिच्यते ॥ ३ ॥ सोढुंनचसमर्थोहंयुद्धकामस्यसंयुगे ॥ सुग्रीवस्यचसंरंभंहीनग्रीवस्यगर्जितम् ॥ ४ ॥ नचकार्योविषादस्तेराघवंप्रतिमत्कृते ॥ धर्मज्ञश्चकृतज्ञश्चकथंपापंकरिष्यति ॥ ५ ॥ निवर्तस्वसहस्त्रीभिःकथंभूयोनुगच्छसि ॥ सौहृदंदर्शितंतावन्मयिभक्तिस्त्वयाकृता ॥ ६ ॥ प्रतियोत्स्याम्यहंगत्वासुग्रीवंजहिसंभ्रमम् ॥ दर्पंचास्यविनेष्यामिनचप्राणैर्वियोक्ष्यते ॥ ७ ॥ अहंह्याजिस्थितस्यास्यकरिष्यामियदीप्सितम् ॥ वृक्षैर्मुष्टिप्रहारैश्चपीडितःप्रतियास्यति ॥ ८ ॥

प्रकार नहीं सहसकते ॥ ४ ॥ हे प्रिये! श्रीरामचंद्रजीके कार्य्योंको विचार कर हमारे लिये विषाद करना तुमको उचित नहीं है क्योंकि वह धर्मके जाननेवाले और कृतज्ञ हैं वह कभी पापका कार्य नहीं करेंगे ॥ ५ ॥ तुम और सब स्त्रियोंके सहित लौट जाओ हमारे पीछे २ न आओ हमारे प्रति तुम्हारी सुहृदता और भक्ति जितनी चाहिये उतनी दिखाई जाचुकी ॥ ६ ॥ हम संग्राममें जा सुग्रीवके सहित युद्ध कर उसका दर्प चूर्ण करेंगे परन्तु उसको प्राणोंसे नहीं मारेंगे सो तुम उसके मरनेंकी शंका छोड दो ॥ ७ ॥ हम रणमें खडे हुये सुग्रीवके प्रति विशेष

सो यह वानर, उसको भूले नहीं हैं ॥ ४ ॥ हे परवीरनाशी ! रामचंद्रजीके प्रसादसे सुग्रीवजीनें कीर्ति, स्थिर राज्य, रुमा और हमको प्राप्त किया है ॥ ५ ॥ बहुत दिन दुःख भोगनेंके उपरान्त, अति उत्तम सुख पाकर विश्वामित्रजीकी समान इन्होंनें आये हुए समयको न जाना ॥ ६ ॥ इन माननीय धर्मात्मा महर्षि विश्वामित्रजीनें घृताची अप्सरापर अनुरागीहोकर दशवर्ष वीतते हुए नहीं जानेथे ॥ ७ ॥ जबकि कालके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी धर्मात्मा विश्वामित्रजीनें प्राप्त कालको नहीं जाना तब स्वभावसेही नीच जातिकी तो बातही क्याहै ? ॥ ८ ॥ हे लक्ष्मणजी ! देहधर्ममें टिके हुए, थके हुए कामभोगसे अतृप्त जनका अपराध आप श्रीरामचंद्रजीसे क्षमा कराइये ॥ ९ ॥ हे लक्ष्मण ! आप नीच

रामप्रसादात्कीर्तिंचकपिराज्यंचशाश्वतम् ॥ प्राप्तवानिहसुग्रीवोरुमांमांचपरंतप ॥ ५ ॥ सुदुःखशयितःपूर्वंप्राप्येदंसुखमुत्तमम् ॥ प्राप्तकालंनजानीतेविश्वामित्रोयथामुनिः ॥ ६ ॥ घृताच्यांकिलसंसक्तोदशवर्षाणिलक्ष्मण ॥ अहोमन्यतधर्मात्माविश्वामित्रोमहामुनिः ॥ ७ ॥ सहिप्राप्तंनजानीतेकालंकालविदांवरः ॥ विश्वामित्रोमहातेजाःकिंपुनर्यः पृथग्जनः ॥ ८ ॥ देहधर्मंगतस्यास्यपरिश्रांतस्यलक्ष्मण ॥ अवितृप्तस्यकामेषुरामःक्षंतुमिहार्हति ॥ ९ ॥ नचरोषवशंतातगंतुमर्हसिलक्ष्मण ॥ निश्चयार्थमविज्ञायसहसाप्राकृतोयथा ॥ १० ॥ सत्त्वयुक्ताहिपुरुषास्त्वद्विधाःपुरुषर्षभ ॥ अविमृश्यनरोषस्यसहसायांतिवश्यताम् ॥ ११ ॥ प्रसादयेत्वांधर्मज्ञसुग्रीवार्थंसमाहिता ॥ महान्रोषससमुत्पन्नःसंरंभस्त्यज्यतामयम् ॥ १२ ॥ रुमांमांचांगदंराज्यंधनधान्यपशूनिच ॥ रामप्रियार्थंसुग्रीवस्त्यजेदितिमतिर्मम ॥ १३ ॥ समानेष्यतिसुग्रीवःसीतयासहराघवम् ॥ शशांकमिवरोहिण्याहत्वातंराक्षसाधमम् ॥ १४ ॥

पुरुषकी समान विना निश्चित अर्थ जाने हुए सहसा क्रोधके वश न होवें ॥ १० ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! आपकी समान सतोगुणविशिष्ट पुरुष विना विचारे क्रोधके वश नहीं होजाते ॥ ११ ॥ हे धर्मके जाननेंवाले ! हम नम्रता सहित सुग्रीवके लिये आपको प्रसन्न कराती हैं; सो आप इस उत्पन्न हुए महा क्रोधको छोड दीजिये ॥ १२ ॥ हमको जान पडताहै कि यह सुग्रीव श्रीरामचंद्रजीके लिये रुमाको, हमको, अंगदको,राज्य, धन, धान्य, और पशु इत्यादि समस्तकोही परित्याग करदेंगे ॥ १३ ॥ सुग्रीव उस अधम राक्षसको मारकर रोहिणीके सहित चन्द्रमाकी समान सीताजीके

हुए सुग्रीवसे बोले ॥ ६ ॥ श्रेष्ठकुलमें उत्पन्न, अगाध बुद्धि सम्पन्न जितेन्द्रिय, दयावान्, कृतज्ञ और सत्यवादी राजाही लोकमें पूजे जाते
हैं ॥ ७ ॥ जो राजा अधर्ममें टिका हुआ उपकारी मित्रकी प्रतिज्ञा पूरण नहीं करताहै उससे अधिक निठुर पुरुष और कौनहै ॥ ८ ॥ पुरुष गण
एक अश्वके लिये मिथ्या कहनेंसे; सौ घोडोंके मारनेंका दोष प्राप्त करतेहैं; और एक गौके मिथ्या कहनेंसे सहस्र गोवधके दोषी, और पुरुषके वि
पयमें मिथ्या कहनेसे अपने और स्वजनोंके विनाशका दोष प्राप्त करतेहैं ॥ ९ ॥ हे वानरश्रेष्ठ! प्रथम मित्रसे उपकार प्राप्त होकर जो पुरुष
मित्रगणोंका प्रत्युपकार नहीं करते, वह पुरुष कृतघ्न और सर्वजीवोंसे मार डालनेंके योग्य होतेहैं ॥ १० ॥ हे वानर! सर्वलोकनमस्कृत

सत्वाभिजनसंपन्नःसानुक्रोशोजितेंद्रियः ॥ कृतज्ञःसत्यवादीचराजालोकेमहीयते ॥ ७॥ यस्तुराजास्थितोऽधर्मेमि
त्राणामुपकारिणां ॥ मिथ्याप्रतिज्ञांकुरुतेकोनृशंसतरस्ततः ॥ ८ ॥ शतमश्वानृतेहंतिसहस्रंतुगवानृते ॥ आत्मानं
स्वजनंहंतिपुरुषःपुरुषानृते ॥९॥ पूर्वंकृतार्थोमित्राणांनतत्प्रतिकरोतियः ॥ कृतघ्नःसर्वभूतानांसवध्यःप्लवगेश्वर:॥१०॥
गीतोऽयंब्रह्मणाश्लोकःसर्वलोकनमस्कृता॥दृष्ट्वाकृतघ्नंक्रुद्धेनतन्निबोधप्लवंगमः ११॥गोघ्नेचैवसुरापेचचौरेभग्नव्रतेतथा॥
निष्कृतिर्विहितासद्भिःकृतघ्नेनास्तिनिष्कृतिः ॥ १२ ॥ अनार्यस्त्वंकृतघ्नश्चमिथ्यावादीचवानर ॥ पूर्वंकृतार्थोरामस्य
नतत्प्रतिकरोषियत् ॥ १३ ॥ ननुनामकृतार्थेनत्वयारामस्यवानर ॥ सीतायामार्गणेयत्नःकर्तव्यःकृतमिच्छता ॥१४॥
सत्वंग्राम्येषुभोगेषुसक्तोमिथ्याप्रतिश्रवः ॥ नत्वांरामोविजानीतेसर्पंमंडूकराविणम् ॥ १५ ॥

ब्रह्माजीनें कृतघ्न पुरुषको देख क्रोधित होकर पहले यह श्लोक गायाथा कि ॥ ११ ॥ गौके मारनेंवाले, मदिरा पान करनेवाले, चोर, व्रतको
तोडनें वाले इन सबका उद्धार सज्जनोंने कहाहै, परन्तु कृतघ्न पुरुषका उद्धार किसी प्रकारसे नहीं हो सकता ॥ १२ ॥ हे वानर! तुम अनार्य,
कृतघ्न और मिथ्यावादो बने जातेहो क्योंकि तुमनें पहले कृतार्थ होकर उसका प्रतिकार नहीं किया ॥ १३ ॥ जिस्से कि तुम्हारा कार्य सिद्ध
होगयाहै इस कारणसे अब तुमको सीताजीके ढूँढनेंमें यत्न करना अवश्यकीयहै ॥ १४ ॥ तुम इस समय मिथ्यावादी होकर ग्रामीण भोग सुखमें

कीर्ति, और कुलके क्रमसे चले आये हुये कपिराजकोभी प्राप्त कियाहै ॥२५॥ हे देव! जीतनेंवालोंमें श्रेष्ठ! तुम्हारे प्रसादसे प्रसन्न आपके लक्ष्मणजीके किये उपकारका जो प्रत्युपकार न करे वह पुरुषोंके मध्यमें दूषित गिना जाता है ॥ २६ ॥ हे परवीरनाशी! यह सैकडों हजारों बडे २ वानर पृथ्वीपर रहनेंवाले समस्त महाबलवान् वानरोंको लेकर यहां उपस्थित हुये हैं ॥ २७ ॥ शूरश्रेष्ठ घोर दर्शन वानर ऋक्ष और गोपुच्छ स वही वन और पर्वतों परके दुर्गम मार्ग जाननेवाले हैं ॥ २८ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी! देव और गन्धर्वोंके पुत्र कामरूपी वानरगण अपनी सेना गणोंके साथ मार्गमें टिक रहे हैं ॥ २९ ॥ हे शत्रुविनाशन! इन सेनापति वानरोंके साथ, शत २,सहस्र२, कोटि२,अयुत २, शंकु२ (सौहजारका लाख

तवदेवप्रसादाच्चभ्रातुश्चजयतांवर ॥ कृतंनप्रतिकुर्याद्यःपुरुषाणांहिदूषकः॥ २६॥ एतेवानरमुख्याश्चशतशःशत्रुसूदन॥ प्राप्ताश्चादायबलिनःपृथिव्यांसर्ववानरान् ॥ २७॥ ऋक्षाश्चवानराःशूरागोलांगूलाश्चराघव ॥ कांतारवनदुर्गाणामभि ज्ञाघोरदर्शनाः ॥ २८ ॥ देवगंधर्वपुत्राश्चवानराःकामरूपिणः ॥ स्वैःस्वैःपरिवृताःसैन्यैर्वर्ततेपथिराघव ॥ २९ ॥ शतैः शतसहस्रैश्चवर्ततेकोटिभिस्तथा ॥ अयुतैश्चावृतावीरशंकुभिश्चपरंतप ॥ ३० ॥ अर्बुदैरर्बुदशतैर्मध्यैश्चांत्यैश्चवानराः॥ समुद्राश्चपरार्धाश्चहरयोहरियूथपाः ॥ ३१ ॥ आगमिष्यंतितेराजन्महेंद्रसमविक्रमाः ॥ मेघपर्वतसंकाशामेरुविं ध्यकृतालयाः ॥ ३२ ॥ तेत्वामभिगमिष्यंतिराक्षसंयोद्धुमाहवे ॥ निहत्यरावणंयुद्धेह्यानयिष्यंतिमैथिलीम् ॥ ३३ ॥

सौलाखका करोड,दश हजारका अयुत,करोड लाखका शंकुहोताहै) ॥३०॥अर्बुद, सौ अर्बुद, मध्य मध्य और अन्त्य २ समुद्र २ परार्द्ध २ संख्या वाले वानर गणोंसे परिवृत (हजार शंकुका एक अरब, दश अरबका एक मध्य दश मध्यका एक अन्त्य बीस अन्त्यका एक समुद्र तीस समुद्रका एक परार्द्ध होताहै) ॥ ३१ ॥ वानरगण मेघ और पर्वतकी समान मेरु और विन्ध्याचलके रहनेवाले, इन्द्रकी समान विक्रमकारी, यहांपर ... जीके खोजनें जांयगे, व राक्षसोंके साथ युद्ध करके रावणको मार जानकीको आपके निकट ले आवेंगे ॥ ३२ ॥

आपकी बुद्धि अबतक कामतंत्रके रसको नहीं जानती क्योंकि " दिनादशके अलबेले ललाहो " इसी कारणसे आप क्रोधके
वश हुये हैं कासमें आसक्त हुये मनुष्य गण देश काल और अर्थ किसीकी परवाह नहीं करते ॥ ५५ ॥ सो आपके भ्राता हमारे
निकट तुम्हारे डरसे छिपे हुयेहैं इसलिये कामसे आसक्त और काम के वश होनेसें लज्जाहीन वानर वंशोंके नाथका अपराध आप क्षमा
करदें ॥ ५६ ॥ जिनका चित्त धर्म और तपस्या करनेमें ही केवल लगा रहता है; ऐसे महर्षि गणभी मोहित होकर कामके वश हो जाते हैं। फिर
सुग्रीव तो वानर जाति तिसपर स्वभावसे ही चंचल चित्त और राजा इस लिये इसका काम भोगमें आसक्त होना कुछ आश्चर्यकी वात नहींहै ॥५७॥

नकामतंत्रेतवबुद्धिरस्तित्वंवैयथामन्युवशंप्रपन्नः ॥ नदेशकालौहियथार्थधर्मावेक्षतेकामरतिर्मनुष्यः ॥ ५५ ॥ तं
कामवृत्तंममसन्निकृष्टंकामाभियोगाच्चविमुक्तलज्जम् ॥ क्षमस्वतावत्परवीरहंतस्त्वद्भ्रातरंवानरवंशनाथम् ॥ ५६ ॥
महर्षयोधर्मतपोभिरामाःकामानुकामाःप्रतिबद्धमोहाः ॥ अयंप्रकृत्याचपलःकपिस्तुकथंनसज्येतसुखेषुराजा ॥५७॥
इत्येवमुक्त्वावचनंमहार्थंसावानरीलक्ष्मणमप्रमेयम् ॥ पुनःसखेदंमदविह्वलाक्षीभर्तुर्हितंवाक्यमिदंबभाषे ॥५८॥ उद्यो
गस्तुचिराज्ञप्तःसुग्रीवेणनरोत्तम ॥ कामस्यापिविधेयेनतवार्थप्रतिसाधने ॥ ५९ ॥ आगताहिमहावीर्याहरयःकामरू
पिणः ॥ कोटीशतसहस्राणिनानानगनिवासिनः ॥ ६० ॥ तदागच्छमहाबाहोचारित्रंरक्षितंत्वया ॥ अच्छलंमित्रभावे
नसतांदारावलोकनम् ॥ ६१ ॥ तारयाचाप्यनुज्ञातस्त्वरयावापिचोदितः ॥ प्रविवेशमहाबाहुरभ्यंतरमरिंदम ॥ ६२ ॥

मद भरनेके कारण आलस्ययुक्त हुई आँखवाली वानरी तारा अतुल बुद्धिमान लक्ष्मणजीसे ऐसा कह कर फिर अपने पतिका हित करनेवाले यह
वचन बोली ॥ ५८ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! यद्यपि सुग्रीव कामासक्त हो रहाहै तौभी उसने आपका कार्य साधन करनेके लिये पहलेहीसे आज्ञा
देदीहै ॥५९॥ विविध पर्वत वासी कामरूपी सहस्र २ करोड़ २ महावीर्यवान वानरगण यहांपर आय चुके हैं ॥ ६० ॥ हे महाबाहो ! आपनें अंतः
पुरमें प्रवेश न करकै सदाचारकी रक्षाको है अब आप इस समय रनवासमें प्रवेश करिये क्योंकि छल रहित मित्रभावसे मित्रकी स्त्री
देखने में कभी अधर्म नहीं होता ॥ ६१ ॥ शत्रुनाशक लक्ष्मणजी ताराकी अनुमति व शीघ्रता पाकर अंतःपुरमें प्रवेश करते हुये ॥६२॥

कह सुग्रीवजीनें तारा आदि स्त्रियोंको गृहमें जानेंके लिये विदा किया॥६॥तव सुग्रीवनें " यहां आओ२" यह कहकर ऊंचे स्वरसे वानरोंको पुकारा, उनके वचन सुनकर वानरगण शीघ्र वहांपर आ पहुंचे ॥ ७ ॥ तारादि स्त्रियोंको देखनेंके योग्य वे वानरगण हाथ जोड खडे होगये तव सूर्य स मान प्रभावाले सुग्रीवजीनें उनसे कहा ॥ ८ ॥ तुम शीघ्रतासे हमारी परम मनोहर पालकी ले आओ । सुग्रीवजीके वचन सुन शीघ्र विक्रम क रनें वाले वानर ॥ ९ ॥ उनकी परम मनोहर शिविका ले आये, तव वानरनाथ सुग्रीवजीनें शिविकाको आयाहुआ देखकर ॥ १० ॥ लक्ष्मणजीसे कहा कि आप इसपर सवार हो जाइये ॥ यह कहकर उस सूर्यकी समानप्रभावाली सुवर्णकी शिविकापर सुग्रीवजी ॥ ११ ॥ लक्ष्मणजीके सहित

एहीत्युच्चैर्हरिवरान्सुग्रीवःसमुदाहरत् ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाहरयःशीघ्रमाययुः ॥ ७ ॥ बद्धांजलिपुटाःसर्वेयेस्युःस्त्रीदर्शनक्षमाः॥तानुवाचततःप्राप्तान्राजार्कसदृशप्रभः ॥ ८ ॥ उपस्थापयतक्षिप्रंशिविकांममवानराः॥ श्रुत्वातुवचनंतस्यहरयःशीघ्रविक्रमाः ॥ ९ ॥ समुपस्थापयामासुःशिविकांप्रियदर्शनाम् ॥ तामुपस्थापितांदृष्ट्वाशिबिकांवानराधिपः ॥१०॥ लक्ष्मणारुह्यतांशीघ्रमितिसौमित्रिमब्रवीत् ॥इत्युक्त्वाकांचनंयानंसुग्रीवःसूर्यसन्निभम्॥११॥बहुभिर्हरिभिर्युक्तमारुरोहसलक्ष्मणः ॥ पांडुरेणातपत्रेणध्रियमाणेनमूर्धनि ॥ १२ ॥ शुक्लैश्चवालव्यजनैर्धूयमानैःसमंततः ॥ शंखभेरीनिनादैश्चवंदिभिश्चाभिनंदितः ॥ १३ ॥ निर्ययौप्राप्यसुग्रीवोराज्यश्रियमनुत्तमाम् ॥ सवानरशतैस्तीक्ष्णैर्बहुभिःशस्त्रपाणिभिः ॥ १४ ॥ परिकीर्णोययौतत्रयत्ररामोव्यवस्थितः ॥ सतंदेशमनुप्राप्यश्रेष्ठंरामनिषेवितम् ॥ १५ ॥ अवातरन्महातेजाःशिविकायाःसलक्ष्मणः ॥ आसाद्यचततोरामंकृतांजलिपुटोऽभवत् ॥ १६ ॥

सवार हुये; वहुतसे वानर उस पालकीको उठाये हुयेथे । सुग्रीवजीके ऊपर श्वेत वर्णका छत्र लगाया गया ॥ १२ ॥ और शुक्ल वालोंका चमरभी चारों ओरसे होताथा । शंख भेरियोंके नादका शब्द होताथा वंदीगण स्तुति करतेथे ॥ १३ ॥ सुग्रीवजी अत्युत्तम राजलक्ष्मीको प्राप्त होकर शत शत महावलवान् वानरगण कि जिनके हाथमें वडे पैने २ शस्त्रथे ॥ १४ ॥ घेरे जाकर श्रीरामचन्द्रजीके निकट गमन करनेलगे। राम करके सेवित उत्तम स्थानमें गमन करके ॥ १५ ॥ महातेजवान सुग्रीवजी लक्ष्मणजीके सहित शिविकापरसे उतर श्रीरामचन्द्रजीके निकट

जपुत्रकी प्रसन्नताकी दृष्टिके हेतु महाअर्थयुक्त समझानें बुझानेंके वचन प्रेम सहित ढिठाईसे कहनें लगी ॥ ४० ॥ हे राजकुमार! आपके क्रोधका क्या कारण है? कौन पुरुष आपकी आज्ञामें नहीं टिका हुआ है? कौन जन सूखे वृक्षोंको जलानेंवाली अग्निमें शंका रहित चित्त होकर गिराहै॥४१॥ लक्ष्मणजी ताराके प्रेम सहित सान्त्वना वाक्य सुनकर प्रणयके दिखानेंवाले निःशंक भावसे बोले ॥ ४२ ॥ तुम्हारा पति धर्म और अर्थका लोप करके वेगही कामासक्त होरहा है; सो तुम उसके हितकारी कार्यमें लगी रहकर क्या इस बातको नहीं जानती हो ॥ ४३ ॥ वह राज्यकी रक्षा क रनेंके लिये चिंता नहीं करता; और हम लोग जो शोकसे व्याकुल हो रहे हैं इसकोभी नहीं विचारता उसनें राज्यकी रक्षा करनेंके लिये एक साधारण

किंकोपमूलंमनुजेंद्रपुत्रकस्तेनसंतिष्ठतिवाङ्निदेशे ॥ कःशुष्कवृक्षंवनमापतंतंदवाग्निमासीदतिनिर्विशंकः ॥ ४१ ॥ सत स्यावचनंश्रुत्वासांत्वपूर्वमशंकितः॥भूयःप्रणयदृष्टार्थंलक्ष्मणोवाक्यमब्रवीत् ॥४२॥किमयंकामवृत्तस्तेलुप्तधर्मार्थसंग्र हः ॥ भर्ताभर्तृहितेयुक्तेनचैवमवबुध्यसे ॥ ४३ ॥ नचिंतयतिराज्यार्थंसोस्माञ्छोकपरायणान् ॥ सामान्यपरिषत्तारेका ममेवोपसेवते ॥ ४४ ॥ समासांश्चतुरःकृत्वाप्रमाणंप्लवगेश्वरः ॥ व्यतीतांस्तान्मदोदग्रोविहरन्नावबुध्यते ॥ ४५ ॥ नहिधर्मार्थसिद्ध्यर्थंपानमेवप्रशस्यते ॥ पानादर्थश्चकामश्चधर्मश्चपरिहीयते ॥ ४६ ॥ धर्मलोपोमहांस्तावत्कृते ह्यप्रतिकुर्वतः ॥ अर्थलोपश्चमित्रस्यनाशेगुणवतोमहान् ॥ ४७ ॥ मित्रंह्यर्थगुणश्रेष्ठंसत्यधर्मपरायणम् ॥ तदयं तुपरित्यक्तंनतुधर्मेव्यवस्थितम् ॥ ४८ ॥

सभा बनारक्खी है और आप केवल काम भोगमेंही लगा रहता है ॥ ४४ ॥ कपीश्वरनें हमारे कार्य करनेंके लिये चारमासको अवधि बांधकर प्रति ज्ञाकी; सो वह उस प्रतिज्ञाको तोड व इस अवधिको नांघकरभी कामके विहारमें ऐसा आसक्त हो रहा है; कि अपनी प्रतिज्ञा व हमारे कार्यको कु छभी नहीं जानता ॥ ४५ ॥ धर्म और अर्थकी सिद्धके लिये मधुमदादि पानकरना ठीक नहीं है क्योंकि इसको पानकरनेंके हेतु धर्म और अर्थ दोनोंका नाश होजाता है ॥ ४६ ॥ उपकार करनेंवालेके साथ प्रत्युपकार न करनेंसे धर्म लोप होजाता है; और जब गुणवान मित्रका कार्य ना शको प्राप्त हो जाता है तब कृतज्ञके अर्थकाभी लोप होजाता है ॥ ४७ ॥ मित्रका कार्य साधन करना और सत्य धर्म परायणता इन दोनोंको छोड

विन्ध्याचल पर्वतसे शीघ्र २ आगमन करनेंलगे ॥ २४ ॥ क्षीर समुद्रकी वेला भूमिमें टिके तमाल वनवासी नारियल खानेंवाले असंख्य वानर गण आनें लगे ॥ २५ ॥ वन, गुफा, और नदियोंके समूहसे महा बलवान् वानरी सेना, मानों सूर्य नारायणको पानही करती हुई सी आनें लगी॥२६॥ हनुमानजीके भेजे हुए जो समस्त वानर गण कपिसेनाको शीघ्रता करानेंके लिये गयेथे, उन्होंनें हिमालय पर्वत पर महेश्वर यज्ञवाट स्थित भगवद्धाम महा वृक्षके दर्शन किये ॥ २७ ॥ पहले उस महा पर्वत पर समस्त देवताओंका मन संतुष्ट करनें वाला महेश्वर दैवत मनोहर, अश्वमेध यज्ञ हुआथा ॥ २८॥ तिस यज्ञमें बहुत सारे अन्नादिकके पडनेंसे उत्पन्न हुए अमृत तुल्य स्वादु युक्त फल मूल वानर गणोंने उस स्थानपर देखे॥२९॥

क्षीरोदवेलानिलयास्तमालवनवासिनः ॥ नारिकेलाशनाश्चैवतेषांसंख्यानविद्यते ॥ २५ ॥ वनेभ्योगह्वरेभ्यश्चसरिद्भ्यश्चमहाबलाः ॥ आगच्छद्वानरीसेनापिबंतीवदिवाकरम् ॥ २६ ॥ येतुत्वरयितुंयातावानराःसर्ववानरान् ॥ तेवीरा हिमवच्छैलेददृशुस्तंमहाद्रुमम्॥२७॥तस्मिन्गिरिवरेपुण्येयज्ञोमाहेश्वरःपुरा॥सर्वदेवमनस्तोषोबभूवसुमनोरमः॥२८॥ अन्ननिस्यंदयातानिमूलानिचफलानिच॥अमृतस्वादुकल्पानिददृशुस्तत्रवानराः॥२९॥तदन्नसंभवंदिव्यंफलमूलंमनोहरम् ॥ यःकश्चित्सकृदश्नातिमासंभवतितर्पितः ॥३०॥ तानिमूलानिदिव्यानिफलानिचफलाशनाः ॥ औषधानिच दिव्यानिजगृहुर्हरिपुंगवाः ॥३१॥ तस्माच्चयज्ञायतनात्पुष्पाणिसुरभीणिच ॥ आनिन्युर्वानरागत्वासुग्रीवप्रियकारणात् ॥ ३२ ॥ तेतुसर्वेहरिवराःपृथिव्यांसर्ववानरान् ॥ संचोदयित्वात्वरितंयूथानांजग्मुरग्रतः ॥ ३३ ॥ तेतुतेनमुहूर्तेनकपयःशीघ्रचारिणः ॥ किष्किंधांत्वरयाप्राप्ताःसुग्रीवोयत्रवानरः ॥ ३४ ॥

जो पुरुप उस अन्नसे उत्पन्न हुए उन फल मूलोंको भक्षण करै तो वहएक मासतक आहार न करकै भी तृप्तही रहताहै ॥ ३० ॥ फल मूल भक्षण करनेंवाले उन प्रधान २ वानरोंनें वह सब दिव्य फल मूल लिये और अनेक प्रकारकी ओपधियें भी जो वहांपर लगी हुईथी ग्रहणकी ॥ ३१ ॥ कपिगण सुग्रीवको संतोपित करनेंके लिये उस यज्ञस्थानसे सुगन्धिवान और मनोहर फूलभी लेते आये॥३२॥ वह समस्त कपिश्रेष्ठ पृथ्वीके समस्त वानरोंको लेकर सब यूथोंके आगे आने लगे ॥ ३३ ॥ वह शीघ्रगामीवानरोंके झुन्ड मुहूर्त मध्यमें किष्किन्धामें जहां सुग्रीवजीथे आय पहुँचे ॥३४॥

वाले बहुत स्त्रीरत्न देखते हुये ॥ २२॥ उनमें कोई २ उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई, उत्तम माला, व उत्तम भूषण वसन धारण किये हुये, माला गूंथनेमें लग रहींथी ॥ २३ ॥ श्रीरामचंद्रजीके छोटे भाई लक्ष्मणजीनें सुग्रीवजीके सुख भोगमें परितृप्त, व्यग्रतारहित और अत्युत्तम भूषणधारी नौकर चाकरोंको देखा ॥ २४ ॥ फिर श्रीमान् सुमित्राकुमार लक्ष्मणजी नूपुरधुन सुनकर व औरभी गहनें आदिकोंके शब्द सुन लज्जित हुये ॥ २५ ॥ वह गहनोंका शब्द श्रवण करके रोषके वेगसे अत्यन्त कुपित हुये और शब्दसे दशोंदिशा पूरित करते हुये प्रत्यंचाकी टंकार करनें लगे जिस्से कि स्त्रियोंके भूषणोंका शब्द बंदहो ॥ २६ ॥ उस रनवासमें प्रवेश करनेंके हेतु आचारको आगे किये हुये लक्ष्मणजी, श्रीरामचंद्रजीके कार्यमें सुग्री

दृष्ट्वाभिजनसंपन्नास्तत्रमाल्यकृतस्रजः ॥ वरमाल्यकृतव्यग्राभूषणोत्तमभूषिताः ॥ २३ ॥ नातृप्तान्नातिचव्यग्रान्नानुदात्तपरिच्छदान् ॥ सुग्रीवानुचरांश्चापिलक्षयामासलक्ष्मणः ॥ २४ ॥ कूजितंनूपुराणांचकांचीनांनिःस्वनंतथा ॥ सनिशम्यततःश्रीमान्सौमित्रिर्लज्जितोऽभवत् ॥ २५ ॥ रोषवेगप्रकुपितःश्रुत्वाचाभरणस्वनम् ॥ चकारज्यास्वनंवीरोदिशःशब्देनपूरयन् ॥ २६ ॥ चारित्रेणमहाबाहुरपकृष्टःसलक्ष्मणः ॥ तस्थावेकांतमाश्रित्यरामकोपसमन्वितः ॥ २७ ॥ तेनचापस्वनेनाथसुग्रीवःप्लवगाधिपः ॥ विज्ञायागमनंत्रस्तःसचचालवरासनात् ॥ २८ ॥ अंगदेनयथामह्यंपुरस्तात्प्रतिवेदितम् ॥ सुव्यक्तमेषसंप्राप्तःसौमित्रिर्भ्रातृवत्सलः ॥ २९ ॥ अंगदेनसमाख्यातोज्यास्वनेनचवानरः ॥ बुबुधेलक्ष्मणंप्राप्तंमुखंचास्योपशुष्यत ॥ ३० ॥ ततस्तारांहरिश्रेष्ठःसुग्रीवःप्रियदर्शनाम् ॥ उवाचहितमव्यग्रस्त्राससंभ्रांतमानसः ॥ ३१ ॥

वकी अप्रवृत्तिके हेतु कोप युक्त होकर आगे रनवासमें न बढकर एकान्तस्थानमें खडे रहे ॥ २७ ॥ कपिराज सुग्रीवजी उस धनुपकी टंकारको श्रवणकर त्रासितहो लक्ष्मणजीका आगमन जान अपने श्रेष्ठ आसनसे उठ खडे हुये ॥ २८ ॥ उन्होंनें विचाराकि अंगदजीनें जैसे पहले हमें इनके आगमनको बतायाथा सो इस समय भ्रातावत्सल लक्ष्मणजीका आगमन हमनें भली भांति जाना ॥ २९ ॥ अंगदजी करके कहे हुये सुग्रीवजी, धनुषकी टंकारके शब्दसे लक्ष्मणजीका आगमन जान विवर्णमुख होगये ॥ ३० ॥ फिर वानरश्रेष्ठ व्यग्रता रहित सुग्रीवजी त्रासके

वर्णवाले वानर समूह और मेरुपर्वतके पार्श्वमें रहनें वाले;और धूमा गिरिपररहने वाले कपि वृन्द ॥ ६ ॥ और महारुण पर्वतके रहनेवाले, तरुण सूर्यकी समान प्रभावाले मधुपान कारी; भयंकर विक्रम करनेवाले वानर समूह ॥ ७ ॥ और सुगन्धि युक्त सुरम्य वनमें और तपस्वी गणोंके आश्रम वाले मनोहर वडे २ सव ओरके, बनोंमें जो वानर वसतेहों ॥ ८ ॥ अधिक क्या कहैं; वरन पृथ्वीपर जितने वानर वसतेहों तुम उन सबको, शीघ्र चलनेवाले, सामदानादिकी विधि जाननेवाले, वानरोंके द्वारा शीघ्रही इस स्थानपर बुलालो ॥ ९ ॥ यद्यपि हम जानतेहैं कि प्रथम वानरोंको बुलानेके लिये महावेगवान वानरगण भेजे गयेहैं; तथापिउनको शीघ्रता करानेके लिये और २ मुख्य २ वानरोंको भेजो ॥ १० ॥

तरुणादित्यवर्णाश्चपर्वतेयेमहारुणे ॥ पिबंतोमधुमैरेयंभीमवेगाःप्लवंगमाः ॥ ७ ॥ वनेषुचसुरम्येषुसुगंधिषुमहत्सुच ॥ तापसाश्रमरम्येषुवनांतेषुसमंततः ॥ ८ ॥ तांस्तांस्त्वमानयक्षिप्रंपृथिव्यांसर्ववानरान् ॥ सामदानादिभिःकल्पैर्वानरैर्वेगवत्तरैः ॥ प्रेषिताःप्रथमंयेचमयाज्ञातामहाजवाः ॥ त्वरणार्थंतुभूयस्त्वंसंप्रेषयहरीश्वरान् ॥ १० ॥ येप्रसक्ताश्चकामेषुदीर्घसूत्राश्चवानराः ॥ इहानयस्वतान्शीघ्रंसर्वानेवकपीश्वरान् ॥ ११ ॥ अहोभिर्दशभिर्येचनागच्छंतिममाज्ञया॥ हंतव्यास्तेदुरात्मानोराजशासनदूषकाः॥ १२ ॥ शतान्यथसहस्राणिकोट्यश्चममशासनात् ॥ प्रयांतुकपिसिंहानांनिदेशेममयेस्थिताः ॥ १३ ॥ मेघपर्वतसंकाशाश्छादयंतइवांबरम् ॥ घोररूपाःकपिश्रेष्ठायांतुमच्छासनादितः ॥ १४ ॥ तेगतिज्ञागतिंगत्वापृथिव्यांसर्ववानराः ॥ आनयंतुहरीन्सर्वांस्त्वरिताःशासनान्मम ॥ १५ ॥

जो २ वानर काम भोगमें आसक्त और वडे आलसीहैं उन सबकोही शीघ्रहीयहांपर लेआओ ॥ ११ ॥ हमारी आज्ञासे जो वानर लोग दशदिनके वीचमें यहांपर नहीं आजॉयगे; हम उन राजाज्ञाके न माननेंवाले दुरात्मावानरोंको मारडालेंगे ॥ १२ ॥ जो कपिश्रेष्ठ हमारी आज्ञामें टिके हुयेहैं वह सब सहस्र २ कोटि २ वानर हमारी आज्ञासे अभी चले जांय विलंबन करें ॥ १३ ॥ हमारी आज्ञाका प्रतिपालन करनेंके हेतु घोररूप मेघ और पर्वतोंकी समान वानरश्रेष्ठगण मानों आकाश मंडलको छायलेते हुयेउन वानरोंको शीघ्रता करानेंके लिये यहांसे जांय ॥ १४ ॥ हमारी आज्ञा

दशरथकुमार लक्ष्मणजीको क्रोधसे लम्बे २ श्वास लेते हुए देखकर कपिगण त्रासित होगये और इनको रोक न सके ॥ ३॥ श्रीमान् लक्ष्मणजीनें
वह दिव्यरत्नमयी दिव्य रत्नसे बनी; फूले हुए वनवाली रमणीक गुफा देखी, ॥ ४ ॥ वह बडे २ धवरहरे और अटा अटारियोंसे अनेक विधिके
रत्नोंसे, और सर्वदा उत्पन्न होते हुए वृक्षोंके समूहसे परिशोभित होतीथी ॥ ५ ॥ और इच्छानुसार रूप धारण करनेंवाले, वस्त्राभूषण पहरे,
माला व अम्बरधारी प्रियदर्शन देव और गन्धर्वपुत्र वानर गणोंसे शोभायमानथी ॥ ६ ॥ चन्दन अगर और कमल आदि फूलोंकी सुगन्धिसे सुग

निःश्वसंतंतुतंदृष्ट्वाक्रुद्धंदशरथात्मजम् ॥ बभूवुर्हरयस्त्रस्तानचैनंपर्यवारयन् ॥ ३ ॥ सतांरत्नमयींदिव्यांश्रीमान्पु
ष्पितकाननाम् ॥ रम्यांरत्नसमाकीर्णांददर्शमहतींगुहाम् ॥ ४ ॥ हर्म्यप्रासादसंबाधांनानारत्नोपशोभिताम् ॥ स
र्वकामफलैर्वृक्षैःपुष्पितैरुपशोभिताम् ॥ ५ ॥ देवगंधर्वपुत्रैश्चवानरैःकामरूपिभिः ॥ दिव्यमाल्यांबरधरैःशोभितां
प्रियदर्शनैः ॥ ६ ॥ चंदनागुरुपद्मानांगंधैःसुरभिगंधिताम् ॥ मैरेयाणांमधूनांचसंमोदितमहापथाम् ॥ ७ ॥ विंध्य
मेरुगिरिप्रख्यैःप्रासादैर्नैकभूमिभिः ॥ ददर्शगिरिनद्यश्चविमलास्तत्रराघवः ॥ ८ ॥ अंगदस्यगृहंरम्यंमैंदस्याद्वि
विदस्यच ॥ गवयस्यगवाक्षस्यगजस्यशरभस्यच ॥ ९ ॥ विद्युन्मालेश्चसंपातेःसूर्याक्षस्यहनूमतः ॥ वीरबाहोःसु
बाहोश्चनलस्यचमहात्मनः॥१०॥कुमुदस्यसुषेणस्यतारजांबवतोस्तथा॥दधिवक्रस्यनीलस्यसुपाटलसुनेत्रयोः॥११॥
एतेषांकपिमुख्यानांराजमार्गेमहात्मनाम् ॥ ददर्शगृहमुख्यानिमहासाराणिलक्ष्मणः ॥ १२ ॥ पांडुराभ्रप्रकाशा
निगंधमाल्ययुतानिच ॥ प्रभूतधनधान्यानिस्त्रीरत्नैः शोभितानिच ॥ १३ ॥

न्धित; उसके मार्गोंमें मदिरा और मधु पीनेवाले लोग घूम रहेथे ॥ ७ ॥ लक्ष्मणजीनें उस स्थानमें विन्ध्याचल और मेरु पर्वतकी तुल्य बहुत सारे
भूमि धवरहरे और विमल जलवाली नदियोंके समूह देखे॥ ८॥ आगे चले तो अंगदजीका रमणीक गृह देख और मैन्द,द्विविद,गवय, गवाक्ष,गज, शर
भ ॥९॥ विन्दुमाली, सम्पाति, सूर्याक्ष,हनुमान, वीरबाहु, सुबाहु, महात्मा नल ॥१०॥कुमुद, सुषेण, तार, जाम्बवान, दधिवक्र, नील, सुपाटल, सुने
त्र, ॥ ११ ॥इन सब मुख्य २वानरोंके अति विचित्र गृह महात्मा लक्ष्मणजीनें राजमार्गपर चलते हुये देखे ॥ १२ ॥ यह सब गृह श्वेतवर्णके बाद

तालके वृक्ष व पर्वत और पृथ्वीको विदीर्ण करदिया; उनको किसी की सहायताका क्या प्रयोजनहै? ॥ ८ ॥ हे लक्ष्मण ! जिनके धनुषकी टंकारके शब्दसे सशैल पृथ्वी कम्पितहोजातीहै; उनको किसीकी सहायका क्याप्रयोजनहै? ॥ ९ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! नरवर रामचन्द्रजी जब अपने वैरी रावण का वध करनेंके लिये गमन करेंगे तब हमभी उनके पीछे २ चले जाँयगे ॥ १० ॥ हम उनके दासहैं; सो विश्वास और प्रेमके हेतु यदि कोई अपराध कियाभी हो तब इस आज्ञामें रहनेवालेका अपराध क्षमा करनाचाहिये क्योंकि जिस दाससे अपराध नहीं होता ऐसा दास तो कहीं मिलताही नहीं ॥ ११ ॥ महात्मा सुग्रीवजीनें जब यह वचन कहे; तब उनको सुनकर लक्ष्मणजी प्रसन्न हुये; और स्नेह सहित उनसे बोले ॥ १२ ॥

धनुर्विस्फारयाणस्ययस्यशब्देनलक्ष्मण ॥ सशैलाकंपिताभूमिःसहायैःकिंनुतस्यवै ॥ ९ ॥ अनुयात्रांनरेंद्रस्यकरिष्येऽहंनरर्षभ ॥ गच्छतोरावणंहंतुंवैरिणंसपुरःसरम्॥ १० ॥यदिकिंचिदतिक्रांतंविश्वासात्प्रणयेनवा॥ प्रेष्यस्यक्षमितव्यंमेनकश्चिन्नापराध्यति॥११॥इतितस्यब्रुवाणस्यसुग्रीवस्यमहात्मनः ॥ अभवल्लक्ष्मणःप्रीतःप्रेम्णाचेदमुवाचह॥१२॥ सर्वथाहिममभ्रातासनाथोवानरेश्वर ॥ त्वयानाथेनसुग्रीवप्रश्रितेनविशेषतः ॥ १३ ॥ यस्तेप्रभावःसुग्रीवयच्चतेशौचमीदृशम् ॥ अर्हस्त्वंकपिराज्यस्यश्रियंभोक्तुमनुत्तमाम् ॥ १४ ॥ सहायेनतुसुग्रीवत्वयारामःप्रतापवान् ॥ वधिष्यतिरणेशत्रूनचिरान्नात्रसंशयः॥१५॥धर्मज्ञस्यकृतज्ञस्यसंग्रामेष्वनिवर्तिनः॥उपपन्नंचयुक्तंचसुग्रीवतवभाषितम्॥ १६॥ दोषज्ञःप्रतिसामर्थ्येकोन्योभाषितुमर्हति ॥ वर्जयित्वाममज्येष्ठंत्वांचवानरसत्तम ॥ १७ ॥

वानरनाथ ! हमारे भ्राता तुमको विनीत और सहाय प्राप्त होकर सर्वथा सनाथ हुएहैं ॥ १३ ॥ हे सुग्रीव ! जिस प्रकारका तुम्हारा प्रभाव और सरल भावहै; इस्से तुम कपिराज लक्ष्मीको भोगनेंके लिये बहुतही योग्यहो इसमें कुछ संदेह नहीं ॥ १४ ॥ श्रीरामचन्द्रजी तुमको सहाय पाकर प्रतापवान हुएहैं इस्से वह निःसंदेह शीघ्रही शत्रुका नाश करनें मेंसमर्थ होंगे ॥१५॥ हे सुग्रीव ! तुम धर्मज्ञ, कृतज्ञ हो और संग्राममें विमुख होनेवाले नहींहो, सो इस प्रकारके तुम्हारे वचन ठीकहीहैं ॥ १६ ॥ हमारे बडे भाई श्रीरामचंद्रजीके और तुम्हारे सिवाय कौन विद्वान् पुरुष

पूरा नहीं किया ॥ ८ ॥ जब सुग्रीवजीनें इस प्रकार कहा, तो मंत्रिगणोंमें श्रेष्ठ हनुमानजी अपने तर्कसे बोले हुये मंत्रियोंके बीचमें बोले ॥ ९ ॥ हे कपिगणेश्वर ! आप जो उत्तम उपकारको नहीं भूलते यह कुछ आश्चर्यकी बात नहींहै क्योंकि महात्मा लोगोंका स्वभावही ऐसा होताहै॥१०॥ श्रीरामचन्द्रजीनें भयको छोड करके दूरसेही आपका प्रिय कार्य करनेंके लिये इन्द्र तुल्य पराक्रमशाली वालिको मारडाला ॥ ११ ॥ इसलिये श्रीरामचन्द्रजी प्रेमके हेतुसेही आपके प्रति क्रोधित हुएहैं, इसमें कुछभी संदेह नहींहै; उस प्रेमके कोपके हेतुही उन्होंने इन लक्ष्मीवान लक्ष्मणजी को आपके पास भेजाहै॥१२॥हे कालके जाननेंवालोंमें श्रेष्ठ! आपने भोगके समय मतवाले होकर समयको नहीं जाना, इस समय आप देखिये कि

सुग्रीवेणैवमुक्तेतुहनूमान्हरिपुंगवः ॥ उवाचस्वेनतर्केणमध्येवानरमंत्रिणाम् ॥ ९ ॥ सर्वथानैतदाश्चर्ययत्त्वंहरिगणेश्वर ॥ नविस्मरस्यविस्रब्धमुपकारंकृतंशुभम् ॥ १० ॥ राघवेणतुवीरेणभयमुत्सृज्यदूरतः ॥ त्वत्प्रियार्थंहतोवालीशक्रतुल्यपराक्रमः ॥ ११ ॥ सर्वथाप्रणयात्क्रुद्धोराघवोनात्रसंशयः ॥ भ्रातरंसंप्रहितवाँल्लक्ष्मणंलक्ष्मिवर्धनम् ॥ १२ ॥ त्वंप्रमत्तोनजानीषेकालंकालविदांवर ॥ फुल्लसप्तच्छदश्यामाप्रवृत्तातुशरच्छुभा ॥ १३ ॥ निर्मलग्रहनक्षत्राद्यौःप्रनष्टबलाहका ॥ प्रसन्नाश्चदिशःसर्वाःसरितश्चसरांसिच ॥ १४ ॥ प्राप्तमुद्योगकालंतुनावैषिहरिपुंगव ॥ त्वंप्रमत्तइतिव्यक्तंलक्ष्मणोऽयमिहागतः ॥ १५ ॥ आर्तस्यहृतदारस्यपरुषंपुरुषांतरात् ॥ वचनंमर्षणीयंतेराघवस्यमहात्मनः ॥ १६ ॥ कृतापराधस्यहितेनान्यत्पश्याम्यहंक्षमम् ॥ अंतरेणांजलिंबद्ध्वालक्ष्मणस्यप्रसादनात् ॥ १७ ॥

सीताजीके ढूंढनेंका काल सुशोभित शरदऋतु आईहै; इसलिये खिलेहुए शतावरीके वृक्षोंसे पृथ्वी शोभायमान होरहीहै ॥ १३ ॥ आकाश मंडलमें ग्रह नक्षत्र सब निर्मल होगये; मेघ जहांके तहां विलाय गये, दिक् सरित, और समस्त सरोवर प्रसन्न होगयेहैं ॥ १४ ॥ हे कपिश्रेष्ठ ! सीताजीके ढूंढनेंके निमित्त उद्योग करनेंका समय आगया; और उसको आपने अबतक नहीं जाना; आपतो भोगसुखमेंही मतवालेहैं बस इसी कारणसे लक्ष्मणजी यहां पर आयेहैं ॥ १५ ॥ हृतभार्या, इसलिये अत्यन्त कातर महात्मा श्रीरामचंद्रजीके पुरुषान्तर (लक्ष्मणजी) से सुने हुये कठोर वचन आप सहन करें ॥ १६ ॥ आपनें अपराध कियाहै; इसलिये हाथ जोडकर लक्ष्मणजीकी प्रसन्नताके सिवाय और किसी कार्यसे हम

सहित श्रीरामचन्द्रजीको ले आवेंगे ॥ १४ ॥ लंकामें रावणके पास इस समय एक अरब नव्वे सहस्र राक्षसोंकी सेना है ॥ १५ ॥ उन समस्त दुर्द्धर्ष कामरूपी सेनाको विना मार डाले सीताके हरण करनेंवाले रावणका वध न होसकेगा ॥ १६ ॥ हे लक्ष्मणजी! सुग्रीव विना सहायके प्राप्त हुये उस सेना और विशेष करके उस क्रूर कर्म करनेंवाले रावणको मारनेंमें समर्थ न होंगे ॥ १७ ॥ उन देश कालके जाननेंवाले वालिनें हमसे यह सब वार्ता कहीथी, सो हमनें जैसी उनसे सुनी तैसेही कहती हैं; और उसके बलको हम जानती नहीं हैं ॥ १८ ॥ आपकी सहाय करनेंके वास्ते सेना

शतकोटिसहस्राणिलंकायांकिलरक्षसाम् ॥ अयुतानिचषट्त्रिंशत्सहस्राणिशतानिच ॥ १५ ॥ अहत्वातांश्चदुर्धर्षान्राक्ष
सान्कामरूपिणः ॥ अशक्यंरावणंहंतुंयेनसामैथिलीहृता ॥ १६ ॥ तेनशक्यारणेहंतुमसहायेनलक्ष्मण ॥ रावणः
क्रूरकर्माचसुग्रीवेणविशेषतः ॥ १७ ॥ एवमाख्यातवान्वालीसह्यभिज्ञोहरीश्वरः ॥ आगमस्तुनमेव्यक्तःश्रवात्तस्य
ब्रवीम्यहम् ॥ १८ ॥ त्वत्सहायनिमित्तंहिप्रेषिताहरिपुंगवाः ॥ आनेतुंवानरान्युद्धेसुबहून्हरिपुंगवान् ॥ १९ ॥ तांश्च
प्रतीक्षमाणोयंविक्रांतान्सुमहाबलान् ॥ राघवस्यार्थसिद्ध्यर्थंननिर्यातिहरीश्वरः ॥२० ॥ कृतासुसंस्थासौमित्रेसुग्रीवे
णपुरायथा ॥ अद्यतैर्वानरैःसर्वैरागंतव्यंमहाबलैः ॥ २१ ॥ ऋक्षकोटिसहस्राणिगोलांगूलशतानिच ॥ अद्यत्वामुप
यास्यंतिजहिकोपमरिंदम ॥ कोट्योनेकास्तुकाकुत्स्थकपीनांदीप्ततेजसाम् ॥ २२ ॥

बुलानेंके लिये प्रधान २ वानरगण भेजे गये हैं; वह लोग युद्धमें कुशल बहुतसे वीर्यवान वानरगणोंको दिशा विदिशाओंसे लेआमेंगे ॥ १९ ॥ यह कपीश्वर उन सब महाबलवान वानर गणोंकी राह देखरहेहैं; उन सबके विनाआये श्रीरामचन्द्रजीकी कार्य सिद्धिके लिये यह नहीं निकलतेथे ॥ २० ॥ सुग्रीवजीनें पहले जिस प्रकारकी सुव्यवस्था कीहै "कि एक पक्षमें जो वानर न आया वह मारडाला जायगा" सो इस्से अब समस्त महाबल वान् वानर सैना आयाही चाहतीहै ॥२१॥ हे शत्रुनाशी! आप क्रोध परित्यागकरें; अतिशीघ्र आज ही हजार २ करोड़ २ ऋक्ष, सौ करोड़ गोपुच्छ,

जब सुग्रीव जागरित होगये तब अंगदजीके मुखसे समस्त वचन सुनकर परामर्श देनेमें चतुर व प्रियदर्शन दो मंत्री सुग्रीवजीके पास आये ॥ ४२ ॥ वह प्रभाव शाली चतुर, धर्म, और अर्थके विषयमें ऊंच नीच कहनेंके निमित्त आये हुये दोनों मंत्री लक्ष्मणजीके आनेंके विषयमें कहनें लगे ॥ ४३ ॥ वह दोनों मंत्री अर्थयुक्त वचनोंसे सुग्रीवको प्रसन्न करके बोले, कि जिसप्रकार सुरपतिको देवतागण प्रसन्न करते हैं॥४४॥हे राजन्! आपको राज्य दिलानेवाले वह त्रिलोकीका राज्य करने योग्य महाभाग सत्यप्रतिज्ञ, दोनों भाई श्रीराम लक्ष्मणजी मनुष्यभावको प्राप्त हुये हैं (अर्थात् मनुष्य नहीं ईश्वर हैं) ॥ ४५ ॥ उन दोनोंमेंसे एक जन लक्ष्मणजी धनुष धारण करके पुरीके द्वारपर खडे हुये हैं, उनकेही निमित्त वानरगण भात

अथांगदवचःश्रुत्वातेनैवचसमागतौ ॥ मंत्रिणौवानरेंद्रस्यसंमतोदारदर्शनौ ॥ ४२ ॥ यक्षश्चैवप्रभावश्चमंत्रिणावथधर्मयोः ॥ वक्तुमुच्चावचंप्राप्तंलक्ष्मणंतौशशंसतुः ॥ ४३ ॥ प्रसादयित्वासुग्रीवंवचनैःसार्थनिश्चितैः ॥ आसीनंपर्युपासीनौयथाशक्रंमरुत्पतिम् ॥ ४४ ॥ सत्यसंधौमहाभागौभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ मनुष्यभावंसंप्राप्तौराज्यार्हौराज्यदायिनौ ॥ ४५ ॥ तयोरेकोधनुष्पाणिर्द्वारितिष्ठतिलक्ष्मणः ॥ यस्यभीताःप्रवेपंतोनादान्मुंचंतिवानराः ॥ ४६ ॥ सएषराघवभ्रातालक्ष्मणोवाक्यसारथिः ॥ व्यवसायरथःप्राप्तस्तस्यरामस्यशासनात् ॥ ४७ ॥ अयंचतनयोराजंस्ताराया दयितोंगदः ॥ लक्ष्मणेनसकाशंतेप्रेषितस्त्वरयानघ ॥४८॥ सोयंरोषपरीताक्षोद्वारितिष्ठतिवीर्यवान् ॥ वानरान्वानरपतेचक्षुषानिर्दहन्निव॥४९॥तस्यमूर्ध्नाप्रणामंत्वंसपुत्रःसहबांधवः॥गच्छशीघ्रंमहाराजरोषोह्यद्योपशाम्यताम् ॥५०॥

और कम्पित होकर शब्द कर रहे हैं ॥ ४६ ॥ वह यह श्रीरामचन्द्रजीके भ्राता लक्ष्मणजी कि जो अपने बडे भाईके वचनकोही सारथि बना और कर्त्तव्य अर्थके निश्चय रूप रथपर श्रीरामचन्द्रजीके वचन मान यहांपर आये हैं ॥ ४७॥ हे राजन्! यह ताराके पुत्र अंगदजी उन्ही लक्ष्मणजीके भेजे हुये तुम्हारे पास अति शीघ्र आये हैं॥४८॥वह लक्ष्मणजीही क्रोधसे लाल नेत्र किये मानों अपनी लोचनाग्निसे वानरगणको जलातेही हुये द्वारपर खडे हैं॥४९॥हे राजन्! आप इस समय पुत्र और बान्धव गणोंके सहित शीघ्र जाकर मस्तक झुकाकर प्रणाम करके उनके रोषको शान्त कीजिये॥५०॥

आसक्त हो रहेहो; महाराज श्रीरामचंद्रजी तुम दुष्ट स्वभाववाले मेंडककी बोली बोलते सर्पकी समानको नहीं जानतेथे ॥ १५ ॥ करुणामयमहाभाग महात्मा रामचंद्रजीनें वानरोंमें नीच, पाप करनेंवाले तुमको वानरोंका राज्य दियाहै ॥ १६ ॥ यदि तुम महात्मा श्रीरामचंद्रजीका किया हुआ उपकार न मानोंगे तो शीघ्रही उनके बाणसे मारे जाकर वालिको देखोगे ॥ १७ ॥ हे सुग्रीव ! जिस बाणसे वालि मारागयाहै, वही बाण अब श्रीरामचंद्रजीके हाथमेंहै; इसलिये तुम प्रतिज्ञाका पालन करके वालिके मार्गका अनुसरण न करो ॥ १८ ॥ तुम श्रीरामचंद्रजीके धनुषसे छूटे हुये वज्र तुल्य बाणोंको न देखो, क्योंकि उन बाणोंका दर्शन करनेंसे सुखी होकर भोग सुख अनुभव करसकोगे; इसलिये श्रीरामचं

महाभागेनरामेणपापःकरुणवेदिना ॥ हरीणांप्रापितोराज्यंत्वंदुरात्मामहात्मना ॥ १६ ॥ कृतंचेन्नातिजानीषेराघवस्यमहात्मनः ॥ सद्यस्त्वंनिशितैर्बाणैर्हतोद्रक्ष्यसिवालिनम् ॥ १७ ॥ नससंकुचितःपंथायेनवालीहतोगतः ॥ समये तिष्ठसुग्रीवमावालिपथमन्वगाः ॥ १८ ॥ ननूनमिक्ष्वाकुवरस्यकार्मुकाच्छरांश्चतान्पश्यसिवज्रसन्निभान् ॥ ततःसुखं नामनिषेवसेसुखीनरामकार्यंमनसाप्यवेक्षसे ॥ १९ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडे चतुस्त्रिंशःसर्गः॥३४॥तथाब्रुवाणंसौमित्रिंप्रदीप्तमिवतेजसा ॥ अब्रवील्लक्ष्मणंतारातारााधिपनिभानना॥१॥नैवंलक्ष्मण वक्तव्योनायंपरुषमर्हति ॥ हरीणामीश्वरःश्रोतुंतववक्राद्विशेषतः ॥२॥ नैवाकृतज्ञःसुग्रीवोनशठोनापिदारुणः॥नैवानृत कथोवीरनजिह्मश्चकपीश्वर ॥३॥ उपकारंकृतंवीरोनाप्ययंविस्मृतःकपिः ॥ रामेणवीरसुग्रीवोयदन्यैर्दुष्करंरणे ॥४॥

द्रजीका कार्य तुम अग्रहण न करो ॥ १९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे चतुस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३४ ॥ तेजसे देदीप्यमान लक्ष्मणजीनें जब इस प्रकारसे कहा तब चंद्रमुखीतारा लक्ष्मणजीसे बोली ॥ १ ॥ हेलक्ष्मण! इन सुग्रीवसे कर्कश वचन कहना आपको उचित नहीं है यह कपीश्वर आपके मुखसे इस प्रकारके वचन श्रवण करनेंके योग्य नहीं हैं ॥ २ ॥ हे वीर! यह सुग्रीव, अकृतज्ञ, शठ, दारुण मिथ्यावादी और छलकारी नहीं हैं ॥ ३ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें रणस्थलमें जो उपकार किया है; वह औरसे होनेंके अयोग्यहै;

कार और सबही सिंहकी समान भयंकर डाढवाले दृष्टि आतेथे ॥ २४ ॥ किसीमें दश हाथीका किसीमें शत हस्तीका और किसीमें हजार हस्तियोंका बलथा इन सब वानरोंकी एकसीही कान्तिथी ॥ २५ ॥ जब यह बाहर आये तो क्रोधित हुये लक्ष्मणजी उन वृक्षधारी महाबलवान वानरोंसे व्याप्त किष्किन्धा नगरीको देखते हुये ॥ २६ ॥ तब महावीर्यवान समस्त वानर दुर्ग कोटकी बाहर दिवारी से बाहर परिखाके पार आकर प्रकाशित भावसे लडनेको खडे होगये ॥ २७ ॥ जितेन्द्रिय वीरवर लक्ष्मणजी सुग्रीवका प्रमाद और अपने भ्राता श्रीरामचंद्रजीके कार्यको विचार कर बहुत क्रोध करते हुये ॥ २८ ॥ लंबे २ और गर्म २ श्वास ले क्रोधके मारे लाल २ नेत्र होनेसे नर

दशनागबलाःकेचित्केचिद्दशगुणोत्तराः॥ केचिन्नागसहस्रस्यबभूवुस्तुल्यवर्चसः॥२५॥ततस्तैःकपिभिर्व्याप्तांद्रुमहस्तैर्महाबलैः॥ अपश्यल्लक्ष्मणःक्रुद्धःकिष्किंधांतांदुरासदां॥२६॥ ततस्तेहरयःसर्वेप्राकारपरिखांतरात् ॥ निष्क्रम्योदग्रसत्त्वास्तुतस्थुराविष्कृतंतदा ॥ २७ ॥ सुग्रीवस्यप्रमादंचपूर्वजस्यार्थमात्मवान् ॥ दृष्ट्वाक्रोधवशंवीरःपुनरेवजगाम सः ॥ २८ ॥ सदीर्घोष्णमहोच्छ्वासःकोपसंरक्तलोचनः ॥ बभूवनरशार्दूलःसधूमइवपावकः ॥ २९ ॥ बाणशल्यस्फुरज्जिह्वःसायकासनभोगवान् ॥ स्वतेजोविषसंभूतःपंचास्यइवपन्नगः ॥ ३० ॥ तंदीप्तमिवकालाग्निंनागेंद्रमिवकोपितम् ॥ समासाद्यांगदस्त्रासाद्विषादमगमत्परम् ॥ ३१ ॥ सोंगदंरोषताम्राक्षःसंदिदेशमहायशाः ॥ सुग्रीवःकथ्यतांवत्समभागमनमित्युत॥३२॥एषरामानुजःप्राप्तस्त्वत्सकाशमरिंदम॥ भ्रातुर्व्यसनसंतप्तोद्वारितिष्ठतिलक्ष्मणः॥३३॥

श्रेष्ठ लक्ष्मणजी धूमसहित अग्निकी समान प्रकाशित होनेलगे ॥ २९ ॥ फल लगे हुये बाण और लप लपाती हुई प्रज्वलित जीभ धारण किये विषभरे पांचशिरवाले भुजंगकी समान वह प्रकाशमान हुये ॥ ३० ॥ कालाग्निकी समान प्रदीप्त, और क्रोध किये हाथीके समान प्रकाशमान, लक्ष्मणजीको देखकर अंगदजी अत्यंत शोकातुर हुये ॥ ३१ ॥ महा यशस्वी लक्ष्मणजीने क्रोधके मारे लाल २ नेत्र कर अंगदजीको आज्ञादी कि हे वत्स! हमारे आनेकी वार्ता सुग्रीवसे निवेदन करो ॥ ३२ ॥ उनसे कहना कि हे शत्रुनाशक!

लक्ष्मणजीनें वहां प्रवेश करके महामूल्यका विछौना विछेहुये कांचनके बने आसनपर सुग्रीवको बैठे देखा ॥ ६३ ॥ दिव्य भूषण पहरे अति दिव्य रूपवान अति यशस्वी दिव्य माला और दिव्य वस्त्र धारण किये इन्द्रकीसमान दुर्जय ॥ ६४ ॥ दिव्यमाला व दिव्याभरण इत्यादि पहरे स्त्रियों करके चारोंओरसे सेवित, कपिराज सुग्रीवको लक्ष्मणजीनें देखा तो वह लाल नेत्र अन्तककी समान हो गये ॥६५॥ श्रेष्ठ हेम वर्ण, विशाल नेत्र, आसन पर बैठे वीरवर सुग्रीवनें रुमाको चिपटाये महावीर्यवान विशाल नेत्र वाले लक्ष्मणजीको देखा ॥ ६६॥ इ०श्री० वा० आ० कि० त्रयस्त्रिंशः सर्गः॥३३॥ उन अवारित क्रोध किये पुरुषश्रेष्ठ लक्ष्मणजीको अन्तःपुरमें आये हुये देख सुग्रीवजी अत्यन्त व्यथित हुये ॥ १ ॥ तेजसे देदीप्यमान क्रोधान्वि

ततःसुग्रीवमासीनंकांचनेपरमासने॥महार्हास्तरणोपेतेददर्शादित्यसन्निभम्॥६३॥दिव्याभरणचित्रांगंदिव्यरूपंयशस्विनम् ॥ दिव्यमाल्यांबरधरंमहेंद्रमिवदुर्जयम् ॥ ६४॥दिव्याभरणमालाभिःप्रमदाभिःसमंततः॥संरब्धतररक्ताक्षोबभूवांतकसन्निभः ॥६५॥ रुमांतुवीरःपरिरभ्यगाढंवरासनस्थोवरहेमवर्णः ॥ ददर्शसौमित्रिमदीनसत्वंविशालनेत्रःसविशालनेत्रम् ॥ ६६ ॥ इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०कि०कां०त्रयस्त्रिंशःसर्गः ॥३३॥ तमप्रतिहतंक्रुद्धंप्रविष्टंपुरुषर्षभम् ॥ सुग्रीवोलक्ष्मणंदृष्ट्वाबभूवव्यथितेंद्रियः ॥ १ ॥ क्रुद्धंनिःश्वसमानंतंप्रदीप्तमिवतेजसा ॥ भ्रातुर्व्यसनसंतप्तंदृष्ट्वादशरथात्मजम् ॥ २ ॥ उत्पपातहरिश्रेष्ठोहित्वासौवर्णमासनम् ॥ महान्महेंद्रस्ययथास्वलंकृतइवध्वजः ॥ ३॥ उत्पतंतमनूत्पेतूरुमाप्रभृतयःस्त्रियः ॥ सुग्रीवंगगनेपूर्णचंद्रंतारागणाइव ॥४ ॥ संरक्तनयनःश्रीमान्संचचारकृतांजलिः ॥ बभूवावस्थितस्तत्रकल्पवृक्षोमहानिव ॥५॥ रुमाद्वितीयंसुग्रीवंनारीमध्यगतंस्थितं ॥ अब्रवील्लक्ष्मणःक्रुद्धःसतारंशशिनंयथा ॥ ६ ॥

त अपने भाईकी दुःखानलसे संतापित दशरथकुमार लक्ष्मणजीको लंबे२श्वास लेते हुये देखकर॥२॥कपिश्रेष्ठ सुग्रीवजी अपना स्वर्णासन त्यागकर इन्द्रकी अलंकृत ध्वजाके समान उठ खड़े हुये ॥३॥ सुग्रीवजीके उठनेपर रुमा इत्यादि सब स्त्रियें खडी होगईं; जिस प्रकार गगन मंडलमें चंद्रमाके निकल आनपर तारागण उसके चारों ओर शोभित होतेहैं ॥ ४ ॥ श्रीमान् अरुणनेत्र सुग्रीवजी हाथ जोड महान् कल्पवृक्षकी समान खडे रहगये ॥ ५ ॥ क्रोधित हुए लक्ष्मणजी नक्षत्रोंके बीचमें टिके हुये चंद्रमाकी समान रुमाके सहित नारियोंके बीचमें खडे

ताका वर्ताव करके पहलेकी समान प्रसन्न हो जाओ ॥ ७ ॥ तुम रूखेवचनोंको छोड करके समयका उल्लंघन करनेंवाले सुग्रीवको समझाते बुझाते हुये हितकर वचन कहना ॥ ८ ॥ जब रामचंद्रजीनें ऐसा कहा तो पुरुषश्रेष्ठ, परवीर घाती, वीरवर लक्ष्मणजी अपने बडे भाईकी आज्ञासे किष्किन्धापुरीमें प्रवेश करते हुये ॥ ९ ॥ फिर शुभमति बुद्धिमान भ्राताका हित करनेंमें रत लक्ष्मणजीनें कोप प्रगट करते हुये कपिराज सुग्रीवके भवनमें प्रवेश किया ॥ १० ॥ मन्दराचल पर्वतकी तुल्य लक्ष्मणजी इन्द्रके धनुषकी समान कालान्तक, यमकी समान पर्वतके शिखरकी तुल्य धनुष धारण करके गमन करते हुये ॥ ११ ॥ मनमें विचाराकि जैसे उत्तर प्रत्युत्तर भाई साहबनें सुग्रीवसे कहनेंको कहेहैं; उन्हीके

सामोपहितयावाचारूक्षाणिपरिवर्जयन् ॥ वक्तुमर्हसिसुग्रीवंव्यतीतंकालपर्यये ॥ ८ ॥ सोऽग्रजेनानुशिष्टार्थोयथावत्पुरुषर्षभः ॥ प्रविवेशपुरींवीरोलक्ष्मणःपरवीरहा ॥ ९ ॥ ततः शुभमतिःप्राज्ञोभ्रातुःप्रियहितेरतः ॥ लक्ष्मणःप्रतिसंरब्धोजगामभवनंकपेः ॥१०॥ शक्रबाणासनप्रख्यंधनुःकालांतकोपमम् ॥ प्रगृह्यगिरिशृंगाभंमंदरःसानुमानिव ॥११॥ यथोक्तकारीवचनमुत्तरंचैवसोत्तरम् ॥ बृहस्पतिसमोबुद्धयामत्वारामानुजस्तदा ॥ १२ ॥ कामक्रोधसमुत्थेनभ्रातुःक्रोधाग्निनावृतः ॥ प्रभंजनइवाप्रीतःप्रययौलक्ष्मणस्ततः ॥ १३ ॥ सालतालाश्वकर्णांश्चतरसापातयन्बलात् ॥ पर्यस्यन्गिरिकूटानिद्रुमानन्यांश्चवेगितः ॥ १४ ॥ शिलाश्चशकलीकुर्वन्पद्भ्यांगजइवाशुगः ॥ दूरमेकपदंत्यक्त्वाययौकार्यवशाद्द्रुतम् ॥ १५ ॥

अनुसार कार्य करना उचितहै, यही विचार बृहस्पतिजीके समान बुद्धिमान लक्ष्मणजीनें सब उत्तर शोचलिये ॥ १२ ॥और उसही मध्यमें अपने बडे भ्राताकी कामक्रोधाग्निसे युक्त लक्ष्मणजी बडे वेगसे चले, अति वेगसे चलनेंके कारण वृक्षोंको तोडते चले जातेथे ॥ १३ ॥ वेगवान लक्ष्मणजी शाल, ताल, अश्वकर्ण इत्यादि वृक्षोंको गिराते जाते और पर्वतके शृंगोंको तोडते उखाड़ते इधर उधर फेंकते जाते ॥१४॥ वह पर्वतकी शिला ओंको अपनें दोनों चरणोंसे खंड २ करते, दूर २ पर चरण धरते, कार्यके वशहो अति शीघ्रतासे चलनें लगे; उस समय ऐसा ज्ञात होताथा कि मानों कोई

देनेंसे धर्मकी रक्षा नहीं होती॥४८॥ हे तारे! तुम कार्यके निश्चयको भली भांतिसे जानती हो,सो इस उपस्थित कार्यके लिये जो कुछ करना उचित हो, वही किया चाहिये, बस यही बात तुम सुग्रीवसे जाकर कहो ॥ ४९ ॥ तारा, लक्ष्मणजीके वह धर्मार्थसंबंधयुक्त मधुर वचन सुनकर सुग्रीवसे कालको उल्लंघन होनेंके हेतु विश्वास युक्त वंचन बोली ॥ ५० ॥ हे राजेन्द्रकुमार! मित्रके योग्य कार्य तो अभी नहीं बीता है, इस कारणसे आपके कोपका समय अभी नहीं आपहुँचाहै और अपनेके ऊपर आपको क्रोध करना कर्त्तव्यभी नहीं है।आपका प्रयोजन साधन करनेंकी इच्छा किये अपने मित्रका कोई अपराधभी होजाय तोभी आप उसे सहलेंनेके योग्यहैं॥५१॥हे कुमार! आप गुणवान हैं इसलिये हीन पुरुषके ऊपर आपका

तदेवंप्रस्तुतेकार्येकार्यमस्माभिरुत्तरम् ॥ तत्कार्यंकार्यतत्त्वज्ञेत्वमुदाहर्तुमर्हसि ॥ ४९ ॥ सातस्यधर्मार्थसमाधियुक्तं निशम्यवाक्यंमधुरस्वभावम् ॥ तारागतार्थेमनुजेंद्रकार्येविश्वासयुक्तंतमुवाचभूयः ॥ ५० ॥ नकोपकालःक्षिति पालपुत्रनचापिकोपःस्वजनेविधेयः ॥ त्वदर्थकामस्यजनस्यतस्यप्रमादमप्यर्हसिवीरसोढुम् ॥ ५१ ॥ कोपंकथं नामगुणप्रकृष्टःकुमारकुर्यादपकृष्टसत्त्वे ॥ कस्त्वद्विधःकोपवशंहिगच्छेत्सत्वावरुद्धस्तपसःप्रसूतिः॥ ५२ ॥ जाना मिकोपंहरिवीरबंधोर्जानामिकार्यस्यचकालसंगम् ॥ जानामिकार्यंत्वयियत्कृतंनस्तच्चापिजानामियदत्रकार्यम् ॥ ॥५३॥ तच्चापिजानामितथाविषह्यंबलंनरश्रेष्ठशरीरजस्य॥जानामियस्मिंश्चजनेऽवबद्धंकामेनसुग्रीवमसक्तमद्य ॥५४॥

क्रोध करना अनुचित है आप सरीखे पुरुष गण सतोगुणसे क्रोधको वश किये हुये तपस्या पर आधार रखते हैं; इसलिये किस प्रकारसे आप क्रोध के वशमें हो सकते हैं ॥ ५२ ॥ उस वानरबन्धुके ऊपर क्रोधका कारण हम जानती हैं और हम यह भी जान चुकीहैं कि सीताके ढूंढनेका समय आगया है; और आपने हम लोगोंको जो कार्य कियाहै; और आपके प्रति हम लोगोंका जो कर्तव्य है उसकोभी हम जानती हैं ॥५३॥ अबतक आपके क्रोध करनेंका कारण नहीं हुआ है; यह भी हम जानती हैं; हेनरश्रेष्ठ ! कामदेवका सहन करनेके अयोग्य जो बल है, उसको भी हम जानतीहैं सुग्रीव जो स्त्रीजनोंके प्रति काममें लगे हुये व और कार्योंके करनेमें अनुरागी नहींहै यहभी ज्ञातहै ॥ ५४ ॥

॥

का समय है, सो यह चार मासभी बीत गये तथापि वह विहारके सुखमें आसक्त होकर हमारी प्रतिज्ञाको नहीं जानता ॥ ७८ ॥ वह सुग्रीव अपने मंत्री और इष्ट मित्र गणोंके सहित मधुपानमें मत्त होकर हमारे ऊपर दया नहीं प्रगट करते ॥ ७९ ॥ हे महाबलवान ! हे वीरश्रेष्ठ ! इस समय तुम जाकर सुग्रीवसे हमारे क्रोधका रूप निवेदन करो और यह सब कठोरवचनभी उनसे कहदेना ॥ ८० ॥ जिस मार्गमें मारा जाकर वालि गयाहै; वह मार्ग कुछ इस समय छोटा नहीं होगयाहै; वह सबही भांतिसे हमारे वशमें है । हे सुग्रीव ! तुम अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार कार्य करो अपने भाई वालिकी राहमें न जाओ ॥ ८१ ॥ हमनें रणस्थलमें केवल एकही बाणसे वालिको मार डाला, परन्तु तुम जो सत्यसे भ्रष्ट

सामात्यपरिषत्क्रीडन्पानमेवोपसेवते ॥ शोकदीनेषुनास्मासुसुग्रीवःकुरुतेदयाम् ॥ ७९ ॥ उच्यतांगच्छसुग्रीवस्त्वयावीरमहाबल ॥ ममरोषस्ययद्रूपंब्रूयाश्चैनमिदंवचः ॥ ८० ॥ नससंकुचितःपंथायेनवालीहतोगतः ॥ समयेतिष्ठसुग्रीवमावालिपथमन्वगाः ॥ ८१ ॥ एकएवरणेवालीशरेणनिहतोमया ॥ त्वांतुसत्यादतिक्रांतंहनिष्यामिसबांधवम् ॥ ८२ ॥ यदेवंविहितेकार्येयद्धितंपुरुषर्षभ ॥तत्तद्ब्रूहिनरश्रेष्ठत्वराकालव्यतिक्रमः ॥ ८३ ॥ कुरुष्वसत्यंममवानरेश्वरप्रतिश्रुतंधर्ममवेक्ष्यशाश्वतम् ॥ मावालिनंप्रेतगतोयमक्षयेत्वमद्यपश्येर्ममचोदितःशरैः ॥ ८४ ॥ सपूर्वजंतीव्रविवृद्धकोपंलालप्यमानंप्रसमीक्ष्यदीनम् ॥ चकारतीव्रांमतिमुग्रतेजाहरीश्वरेमानववंशवर्धनः ॥ ८५ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेत्रिंशःसर्गः ॥ ३० ॥ ॥ छ ॥

हुए तो तुमको हम बन्धु बान्धवों सहित मार डालेंगे ॥ ८२ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! इस विषयमें और भी करनें लायक कार्य जोकि हितकारी हों वह २ सब उनसे कह देना क्योंकि इस शीघ्रतासे करने योग्य कार्यमें विलंब होगयाहै ॥ ८३ ॥ और यहभी कह देना कि हे वानरेश्वर ! नित्य, धर्म, दर्शन करकै जो प्रतिज्ञा तुमनें की है उसको तुम पूराकरो देखो ! कहीं तुम हमारे छोडे हुए बाणसे मरकर वालिको मत देखना ॥ ८४ ॥ वह मानववंशके बढानेंवाले उग्र तेजवान लक्ष्मणजी; यह देखकरकि बडे भाई साहबका क्रोध अत्यन्त बढता जाताहै और यह दीन भावसे विलाप कर रहेहैं सुग्रीवके प्रति अत्यन्त क्रोधित हुए ॥ ८५ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे त्रिंशःसर्गः॥३०॥

मारे चंचलचित्तहो प्रियदर्शनवाली तारासे कहनें लगे ॥ ३१ ॥ हे शुभे श्रीरामचंद्रजीके छोटे भाई लक्ष्मणजी स्वभावसे मृदुलचित्तहैं सो इसका क्या कारणहै कि यह क्रोधित होकर यहां आयेहैं सो तुम कहो? ॥ ३२ ॥ हे अनिन्दिते ! कुमारके रोषका कौन कारण दृष्टि आताहै? क्योंकि नरश्रेष्ठ लक्ष्मणजी कभी अकारण क्रोध नहीं करते ॥ ३३ ॥ हमने यदि उन लोगोंका कोई अपराध किया हो और यदि तुम समझती हो; तो उसको शीघ्र बुद्धिसे विचार कर हमसे कहो ॥ ३४ ॥ अथवा हे भामिनि! तुम स्वयंही उनके दर्शनकर और समझानें बुझानेंका वचन कह उन्हें प्रसन्न करो ॥ ३५ ॥ विशुद्धात्मा लक्ष्मणजी तुमको देखतेही क्रोध छोड देंगे, क्योंकि महात्मा लोग स्त्रियोंके निकट दारुण क्रोध नहीं करते

किंनुरुट्कारणंसुभ्रुप्रकृत्यामृदुमानसः ॥ सरोषइवसंप्राप्तोयेनायंराघवानुजः ॥ ३२ ॥ किंपश्यसिकुमारस्यरोषस्थानमंनिंदिते ॥ नखल्वकारणेकोपमाहरेन्नरपुंगवः ॥३३॥ यद्यस्यकृतमस्माभिर्बुध्यसेकिंचिदप्रियम् ॥ तद्बुद्ध्यासंप्रधार्याशुक्षिप्रमेवाभिधीयताम् ॥३४॥ अथवास्वयमेवैनंद्रष्टुमर्हसिभामिनि ॥ वचनैःसांत्वयुक्तैश्चप्रसादयितुमर्हसि॥३५॥ त्वद्दर्शनेविशुद्धात्मानस्मकोपंकरिष्यति ॥ नहिस्त्रीषुमहात्मानःक्वचित्कुर्वंतिदारुणम् ॥ ३६ ॥ त्वयासांत्वैरुपक्रांतंप्रसन्नेंद्रियमानसम् ॥ ततःकमलपत्राक्षंद्रक्ष्याम्यहमरिंदमम् ॥ ३७ ॥ साप्रस्खलंतीमदविह्वलाक्षीप्रलंबकांचीगुणहेमसूत्रा ॥ सलक्षणालक्ष्मणसन्निधानंजगामतारानमितांगयष्टिः ॥ ३८ ॥ सतांसमीक्ष्यैवहरीशपत्नींतस्थावुदासीनतयामहात्मा ॥ अवाङ्मुखोभून्मनुजेंद्रपुत्रःस्त्रीसन्निकर्षाद्विनिवृत्तकोपः ॥ ३९ ॥ सापानयोगाच्चनिवृत्तलज्जादृष्टिप्रसादाच्चनरेंद्रसूनोः ॥ उवाचताराप्रणयप्रगल्भंवाक्यंमहार्थंपरिसांत्वरूपम् ॥ ४० ॥

हैं ॥ ३६ ॥ जब तुम समझा बुझाकर उनको प्रसन्न करलोगी, तिसके पीछे हम कमल दल समान नेत्र वाले शत्रुनाशी लक्ष्मणजीके दर्शन करेंगे ॥ ३७ ॥ तब विह्वलनेत्रा, महामतवाली चाल चलती, मद पान करनेंसे विह्वल नेत्र हुई, और श्रेष्ठ लक्षणवाली तारा सुवर्णकी लम्बी क्षुद्रघंटिका पहरे लक्ष्मणजीके निकट गयी ॥ ३८ ॥ मनुजराजकुमार महात्मा लक्ष्मणजी वानरराजकी स्त्री ताराको देखकर स्त्रीकी निकटताके हेतु क्रोध रहित हो नीचे मुखकर खडे होगये ॥ ३९ ॥ तारा मदिरापान करनेंके कारण मतवाली होरहीथी इस कारण लज्जाहीन होकर; रा

यात्राकी उपयोगी तैयारियोंको करते अबतक सुग्रीव दृष्टि नहीं आते ॥६१॥इस समय पर्वतके शिखरोंपर असन; सतावरी, कोविदार, दुपहरिया, व श्याम आदि तरुगण फूले हुए दृष्टि आतेहैं ॥ ६२ ॥ हे लक्ष्मण ! देखो! इस समय हंस, सारस, चक्रवाक और कुरर आदि पक्षी नदियोंकी रेतियोंमें बैठेहैं ॥ ६३ ॥ हम प्राणप्यारी सीताजीको न देखनेसे और उनकेशोकसे अत्यन्त आरत होगयेहैं; इसलिये हमारे लिये तो यह वर्षाका चौमासा मानों चारसौ वर्षकी समान वीताहै * ॥६४॥ प्राणजीवनी भार्यासीताजी भयंकर दंडकारण्यको उद्यानकी समान जान करके चकवीकी नांई वन आनेके समय हमारे पीछे२आईथीं॥६५॥हे लक्ष्मण! प्रिया विहीन राज्यहराये दुःख आरत वनमें निकाले हुये हमपर सुग्रीव क्यों नहीं कृपा करते६६

असनाःसप्तपर्णाश्चकोविदाराश्चपुष्पिताः ॥ दृश्यंतेबंधुजीवाश्चश्यामाश्चगिरिसानुषु ॥ ६२ ॥ हंससारसचक्राह्वैःकुररैश्चसमंततः ॥ पुलिनान्यवकीर्णानिनदीनांपश्यलक्ष्मण ॥ ६३ ॥ चत्वारोवार्षिकामासागतावर्षशतोपमाः ॥ ममशोकाभितप्तस्यतथासीतामपश्यतः ॥ ६४ ॥ चक्रवाकीवभर्तारंपृष्ठतोऽनुगतावनम् ॥ विषमंदंडकारण्यमुद्यानमिवचांगना ॥ ६५ ॥ प्रियाविहीनेदुःखार्तेहृतराज्येविवासिते ॥ कृपांनकुरुतेराजासुग्रीवोमयिलक्ष्मण ॥६६॥ अनाथोहृतराज्योऽयंरावणेनचधर्षितः ॥ दीनोदूरगृहःकामीमांचैवशरणंगतः ॥ ६७ ॥ इत्येतैःकारणैःसौम्यसुग्रीवस्यदुरात्मनः ॥ अहंवानरराजस्यपरिभूतःपरंतपः ॥ ६८ ॥ सकालंपरिसंख्यायसीतायाःपरिमार्गणे ॥ कृतार्थःसमयंकृत्वादुर्मतिर्नावबुध्यते ॥ ६९ ॥

यह अनाथ राज्य खोय, रावणसे पीडित दीन, घरसे निकाले हुये कामी रामनें हमारी शरण ग्रहणकीहै॥ ६७ ॥ यही कारण विचार कर दुरात्मा सुग्रीव तुच्छ व पराजित समझ कर हमारा निरादर करताहै ॥ ६८ ॥सीताजीके ढूंढनेंके समयका स्थिरकर और प्रतिज्ञाकर वह दुर्मति

* जानकी विन जीवन अति भारी ॥ अस्ताई ॥ पल पखवाडे घडी महीने, दिवसवर्ष सम वीतें रात्रिकाल युगसे लागतहै यह गति भई हमारी ॥ अवल जान घर जनते न्यारे लख यह काम सतावै । ताहूपर सुग्रीव विरतहो हमरी सुरत विसारी ॥ जानकी० ॥ विमलाकाश सरोवर निर्मल भये शरदके आये । या अवसर मोहिं मैन सतावे सुमन बाणकर धारी ॥ जानकी० ॥ वरषत नीर नेत्रसों अविरल नेह महा दुख दाई । जनक लडैतीके विन देखे, है वलदेव दुखारी॥ जानकी० ॥

रकी समान उजले सुगन्धित चंदनादि वस्तु, और हारोंसे युक्त अति धन धान्यसे भरेपुरे व स्त्रीरूपी रत्नोंसे शोभायमानथे॥ १३ ॥ इस सब गृहोंके मध्यमें कुछेक अरुण व श्वेतरंग वाले पर्वतसे घिरे जानेंके कारण मूढ व्यक्तिके प्रवेश करनेंके अयोग्य इन्द्र भवनकी सदृश सुग्रीवजीके गृहको लक्ष्मणजीने देखा ॥ १४ ॥ कैलासके शिखरकी समान श्वेतवर्ण धवरहरे और सर्वकालमें फलउत्पन्न कारी पुष्पित वृक्षोंसे परिशोभित १५॥ व इनके अतिरिक्त औरभी इन्द्रके दिये धनादि और श्याम मेघघटाकी समान कल्पवृक्षादिसे शोभितथा इसकारण कि इन तरुवरोंकी छाया बडी शीतलकारिणी होतीथी ॥ १६ ॥ उस घरके द्वारपर बलवान हाथमें अस्त्र शस्त्र लिये हुये वानरगण खडेथे; उसका गुम्बज दिव्यमालासे ढका

पांडुरेणतुशैलेनपरिक्षिप्तंदुरासदम् ॥ वानरेंद्रगृहंरम्यंमहेंद्रसदनोपमम् ॥ शुक्लैःप्रासादशिखरैः कैलासशिखरोपमैः ॥
सर्वकामफलैर्वृक्षैःपुष्पितैरुपशोभितम् ॥ १५ ॥ महेंद्रदत्तैःश्रीमद्भिर्नीलजीमूतसान्निभैः ॥ दिव्यपुष्पफलैर्वृक्षैःशीतच्छा
यैर्मनोरमैः ॥ १६ ॥ हरिभिःसंवृतद्वारंबलिभिःशस्त्रपाणिभिः ॥ दिव्यमाल्यावृतंशुभ्रंतप्तकांचनतोरणम् ॥ १७ ॥
सुग्रीवस्यगृहंरम्यंप्रविवेशमहाबलः ॥ अवार्यमाणःसौमित्रिर्महाभ्रमिवभास्करः ॥ १८ ॥ ससप्तकक्ष्याधर्मात्माया
नासनसमावृताः ॥ ददर्शसुमहद्गुप्तंददर्शांतःपुरंमहत् ॥ १९ ॥ हैमराजतपर्यंकैर्बहुभिश्चवरासनैः ॥ महार्हास्तरणोपेतै
स्तत्रतत्रसमावृतम् ॥ २० ॥ प्रविशन्नेवसततंशुश्रावमधुरस्वनम् ॥ तंत्रीगीतसमाकीर्णसमतालपदाक्षरम् ॥ २१ ॥ बह्वी
श्चविविधाकाराःरूपयौवनगर्विताः ॥ स्त्रियःसुग्रीवभवनेददर्शसमहाबलः ॥ २२ ॥

हुआ और सुवर्ण व तपाये हुये सुवर्णसे बना ॥ १७ ॥ जिस प्रकार सूर्य भगवान् महा मेघमें प्रवेश करतेहैं वैसेही महा बलवान् लक्ष्मणजी सुग्रीवके मनोहर गृहमें प्रवेश करते हुये; और किसी वानरनें उनको नहीं रोका ॥ १८ ॥ धर्मात्मा लक्ष्मणजी सुग्रीवकी सवारियें व आसनसे युक्त सात फाटक नांघकर शयन गृहके अंतःपुरमें पहुँचे ॥ १९ ॥ उस अंतःपुरके अनेक स्थानोंमें महा मूल्यवान विस्तरोंसे विशिष्ट बहुत सारे उत्तम२ आसन और सुवर्ण चांदीसे बनेहुये अनेक पर्यङ्कभी पडेथे ॥ २० ॥ उस अंतःपुरमें प्रवेश करतेही लक्ष्मणजीनें बराबर अक्षरवाला समताल सहित वीणा आदि बाजोंसें उत्पन्न हुआ मधुर स्वर श्रवण किया ॥ २१ ॥महाबलवान् लक्ष्मणजी सुग्रीवके गृहमें रूप यौवन सम्पन्न अनेक आकार

श्वेत वासनोंकी समान हैं इस कारणसे इस समय रात्रि वस्त्र धारण कियेहुये अच्छे लक्षणवाली स्त्रीकी समान विराजमान है ॥ ४६ ॥ इस समय सारसगण पकेहुये धानोंकी बालें खाय, हर्षित होकर पवनसे चलायमान मालाकी समान वेग सहित आकाशमें उडे जारहे हैं ॥ ४७ ॥ इस समय इस महा कुंडके जलमें एक हंस सो रहा है, और उसही सरोवरमें बहुत सारे बबूलेभी शोभा पारहेहैं; इससे ऐसी शोभा हो रही है; मानों रात्रिके समय नक्षत्रगणोंसे युक्त मेघ सहित आकाशमें पूर्ण चन्द्रमा निकले हुये शोभा पारहे हैं॥४८॥ इस शरद कालमें हंसगण वापियोंके चंद्रहार स्वरूप;खिले हुये कमल फूल मानों उनकी माला हैं सो इन वस्तुओंसे शोभित होनेंकेकारण वह वापियें विभूषितउत्तमस्त्रियोंकी समान उत्तम शोभाधारण

विपक्वशालिप्रसवानिभुक्त्वाप्रहर्षितासारसचारुपंक्तिः ॥ नभःसमाक्रामतिशीघ्रवेगावातावधूताग्रथितेवमाला ॥ ४७॥
सुप्तैकहंसंकुमुदैरुपेतंमहाह्रदस्थंसलिलंविभाति॥घनैर्विमुक्तंनिशिपूर्णचंद्रंतारागणाकीर्णमिवांतरिक्षम् ॥४८॥ प्रकीर्ण
हंसाकुलमेखलानांप्रबुद्धपद्मोत्पलमालिनीनाम् ॥ वाप्युत्तमानामधिकाद्यलक्ष्मीर्वरांगनानामिवभूषितानाम् ॥ ४९ ॥
वेणुस्वरव्यंजिततूर्यमिश्रःप्रत्यूषकालेनिलसंप्रवृत्तः ॥ संमूर्च्छितोगह्वरगोवृषाणामन्योन्यमापूरयतीवशब्दः ॥ ५० ॥
नवैर्नदीनांकुसुमप्रहासैर्व्याधूयमानैर्मृदुमारुतेन ॥ धौतामलक्षौमपटप्रकाशैःकूलानिकाशैरुपशोभितानि ॥ ५१ ॥
वनप्रचंडामधुपानशौंडाःप्रियान्विताःषट्चरणाःप्रहृष्टाः ॥ वनेषुमत्ताःपवनानुयात्रांकुर्वंतिपद्मासनरेणुगौराः ॥ ५२ ॥
जलंप्रसन्नंकुसुमप्रहासंक्रौंचस्वनंशालिवनंविपक्वम् ॥ मृदुश्चवायुर्विमलश्चचंद्रःशंसंतिवर्षव्यपनीतकालम् ॥ ५३ ॥

किये हुयेहैं ॥४९॥ प्रभातकालमें बाँसोंका शब्द रूप नगाडेद्वारा मिला, पवनका किया हुआ शब्द गुफाओंकी ध्वनि और वनैले बैलोंके शब्दसे मिलकर मानों परस्पर एक दूसरेके शब्दको बढा रहाहै॥५०॥जिनमें धोये हुए विमल महीन कपडेकी तुल्य खिले हुए फूल हैं,ऐसी हँसती हुई व मन्द कम्पायमान नई काशके समूहोंसे नदियोंके किनारे शोभायमान हो रहेहैं॥५१॥ वनके मध्य मधुपान करनेंमें चतुर मतवाले हर्षित भ्रमर गण, कमल फूल और आसन पुष्पके परागसे रँग, गौरवर्णहो सुगन्धिके लोभसे पवनमें उडे जारहेहैं ॥५२ ॥ निर्मल जल, खिले हुए फूलोंके समूह, क्रौंचका शोर,

आपका मंगल कार्य नहीं देखते ॥ १७ ॥ राजकार्यमें नियुक्त मंत्री लोगोंको उचितहै कि राजासे अवश्यही हितकर वचन कहैं; इस कारणसेही भय छोडकर हमनें यह निश्चित वचन आपसे कहे ॥ १८ ॥ श्रीरामचन्द्रजी क्रोधित हो धनुष चढाकर देव, असुर और गन्धर्वोंके सहित समस्त जगत् अपनें वशमें रख सकतेहैं ॥ १९ ॥ विशेष करके पहला उपकार स्मरण किये हुये कृतज्ञ पुरुष जिनको फिरभी प्रसन्न करना होगा; सो ऐसे पुरुषोंपर क्रोध करना उचित नहींहै ॥ २० ॥ हे राजन्! आप पुत्र और इष्ट मित्रोंके सहित मस्तक झुका प्रणामकरके अपनी प्रतिज्ञामें टिकिये कि जैसे स्त्रीका कल्याण पतिके अधीनमें रहनेंहीसे होताहै॥ २१ ॥ हे कपीन्द्र! श्रीराम और उनके भाई श्रीलक्ष्मणजीकी आज्ञाको

नियुक्तैर्मंत्रिभिर्वाच्योह्यवश्यंपार्थिवोहितम् ॥ इतएवभयंत्यक्त्वाब्रवीम्यवधृतंवचः ॥ १८ ॥ अभिक्रुद्धःसमर्थोहिचापमुद्यम्यराघवः ॥ सदेवासुरगंधर्ववशेस्थापयितुंजगत् ॥ १९ ॥ नसक्षमःकोपयितुंयःप्रसाद्यःपुनर्भवेत् ॥ पूर्वोपकारंस्मरताकृतज्ञेनविशेषतः ॥ २० ॥ तस्यमूर्ध्नाप्रणम्यत्वंसपुत्रःससुहृज्जनः ॥ राजंस्तिष्ठस्वसमयेभर्तुर्भार्येवतद्वशे ॥ २१ ॥ नरामरामानुजशासनंत्वयाकपींद्रयुक्तंमनसाप्यपोहितुम् ॥ मनोहितेज्ञास्यतिमानुषंबलंसराघवस्यास्यसुरेंद्रवर्चसः ॥ २२ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०किष्किंधाकांडेद्वात्रिंशःसर्गः ॥ ३२ ॥ ७ ॥ अथप्रतिसमादिष्टोलक्ष्मणःपरवीरहा ॥ प्रविवेशगुहांरम्यांकिष्किंधांरामशासनात् ॥ १ ॥ द्वारस्थाहरयस्तत्रमहाकायामहाबलाः ॥ बभूवुर्लक्ष्मणंदृष्ट्वासर्वेप्रांजलयःस्थिताः ॥ २ ॥

मनके द्वाराभी उल्लंघन करना आपका कर्त्तव्य नहींहै; और आपका मन वालि वधके हेतु इन्द्र तुल्य पराक्रम शाली श्रीरामचन्द्रजीके अमानुषिक बलको तो जानताहीहै ॥ २२ ॥ इ० वा० आ० कि० द्वात्रिंशःसर्गः ॥ ३२ ॥ हनुमानजीनें तो इस प्रकारसे सुग्रीवको समझाया बुझाया, तब पर वीर विनाशी लक्ष्मणजी अंगदजीके द्वारा सुग्रीवकी आज्ञाको प्राप्तकर श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञा पालन करनेंके हेतु मनोहर गुहामें वसी किष्किन्धा पुरीमें प्रवेश करते हुए ॥ १ ॥ द्वार पर खडे हुए महा बलवान् समस्त वानर लक्ष्मणजीको देख हाथ जोडकर खडे होगये ॥ २ ॥

खडे हुए चक्रवाकोंके झुन्डसहित विहार करसहेहैं ॥ ३१ ॥ मतवालेहाथियोंके झुन्डमें, घमंडी वृषभोंमें, और नदियोंके निर्मल जलमें शरद लक्ष्मी खंड २ होकर शोभायमान होरहीहै ॥ ३२ ॥ आकाश मंडलको वादलोंसे छूटाहुआ देख, वनोंमें भूषण रूप पंख पसार, प्रियामें अनुराग शून्य शोभाशून्य और उत्सव शून्य होकर समस्त मोर गण ध्यान कर रहेहैं ॥३३॥ मन हरण करनेंवाली सुगन्ध, बहुत सारे सुवर्णकी समान रंगके उजले आसन वृक्षोंकी डालियें फूलोंके भारसे झुककर वनस्थलीको महाशोभायमान कर रहीं हैं ॥ ३४ ॥ तडाग प्रिय, अपनी २प्यारी हथनियों के साथ रहनेंवाले, वनवासी फूलोंके सूँघनें वाले, मदके भारसे आलसीहुये, मदसे उत्कट गजेन्द्र समूहोंकी गति अति धीमी पड गई है ॥ ३५ ॥

मदप्रगल्भेषुचवारणेषुगवांसमूहेषुचदर्पितेषु ॥प्रसन्नतोयासुचनिम्नगासुविभातिलक्ष्मीर्बहुधाविभक्ता॥३२॥नभःसमी
क्ष्यांबुधरैर्विमुक्तंविमुक्तबर्हाभरणावनेषु ॥ प्रियास्वरक्ताविनिवृत्तशोभागतोत्सवाध्यानपरामयूराः ॥३३॥ मनोज्ञगंधैः
प्रियकैरनल्पैःपुष्पाग्रभारावनताग्रशाखैः॥सुवर्णगौरैर्नयनाभिरामैरुद्द्योतितानीववनांतराणि॥३४॥प्रियान्वितानांन
लिनीप्रियाणांवनप्रियाणांकुसुमोद्गतानाम् ॥ मदोत्कटानांमदलालसानांगजोत्तमानांगतयोऽद्यमंदाः ॥ ३५ ॥ व्य
क्तंनभःशस्त्रविधौतवर्णंकृशप्रवाहानिनदीजलानि ॥ कल्हारशीताःपवनाःप्रवांतितमोविमुक्ताश्चदिशःप्रकाशाः ॥ ३६ ॥
सूर्यातपक्रामणनष्टपंकाभूमिश्चिरोद्घाटितसांद्ररेणुः॥अन्योन्यवैरेणसमायुतानामुद्योगकालोऽद्यनराधिपानाम् ३७
शरद्गुणाप्यायितरूपशोभाःप्रहर्षिताःपांसुसमुत्थितांगाः ॥ मदोत्कटाःसंप्रतियुद्धलुब्धावृषागवांमध्यगतानदंति ॥३८

आकाश मण्डलका वर्ण विमल असिके तुल्य हो गया है, नदियोंके जलका प्रवाह अत्यन्त घट गया है; पवन कमल फूलकी गन्धसे युक्त और शीतल होकर चलती है; सब दिशायें अंधकारसे छूटकर प्रकाशित होरहीं हैं ॥ ३६ ॥ सूर्य नारायणकी धूपका ताप लगनेंसे पृथ्वीपर की कीचडका नाश हो गया, धूल उडनें लगी यह शरदऋतु परस्पर वैर किये हुये नृपति लोगोंकी चढाई करनेंका समय है ॥ ३७ ॥ इस समय शरदके गुणसे बैलोंका रूप और शोभा बढ जाती है, बडे प्रसन्न,धूरियुक्त अंगवाले, मदमत्त वृषभ इस समय युद्धकी इच्छा करे हुये गा

हे राजन्! धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजीनें जिस प्रकारसे आपका कार्य साधन किया है, आप सत्यनिष्ठ हो सावधानचित्तसे उनकी प्रतिज्ञाका पालन कीजिये॥५१॥इ० श्री० वा० आ० किष्किन्धाकांडे एकत्रिंशः सर्गः॥ ३१॥अंगदजीके वचन सुन उन मंत्रिगणोंके सहित सुग्रीवजी सचिव गणोंके सहित कोपायमान लक्ष्मणजीको प्रसन्न करनेके लिये आसनसे खडे होगये ॥ १ ॥ मंत्रके विषयमें निष्ठावान मंत्र कुशल सुग्रीवजी गुरु लघु विचार कर मंत्र जाननेंवाले मंत्रियोंसे कुछ न बोले ॥ २ ॥ हमनें कोई दुष्ट वचन नहीं कहा; और कोई दुष्ट कार्य नहीं किया; फिर श्रीरामचन्द्रजीके भ्राता लक्ष्मणजी किस निमित्त कुपित हुये हैं! इस बातकी हमें बडी चिंताहै ॥ ३ ॥ हम जानते हैं कि हमारे असुहृद् दोषोंकें ढूंढनेवाले शत्रु लोगोंनें हमारे

यथाहिरामोधर्मात्मातत्कुरुष्वसमाहितः ॥ राजंस्तिष्ठस्वसमयेभवसत्यप्रतिश्रवः ॥ ५१ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणे वा०आ०किष्किंधाकांडेएकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥ छ ॥ अंगदस्यवचःश्रुत्वासुग्रीवःसचिवैःसह ॥ लक्ष्मणंकुपितंश्रुत्वा मुमोचासनमात्मवान् ॥ १ ॥ सचतानब्रवीद्वाक्यंनिश्चित्यगुरुलाघवम् ॥ मंत्रज्ञान्मंत्रकुशलोमंत्रेषुपरिनिष्ठितः ॥ २ ॥ नमेदुर्व्याहृतंकिंचिन्नापिमेदुरनुष्ठितम् ॥ लक्ष्मणोराघवभ्राताक्रुद्धःकिमितिचिंतये ॥ ३ ॥ असुहृद्भिर्ममामित्रैर्नित्यमंतरदर्शिभिः ॥ ममदोषानसंभूतान्श्रावितोराघवानुजः ॥ ४ ॥ अत्रतावद्यथाबुद्धिःसर्वैरेवयथाविधि ॥ भावस्यनिश्चयस्तावद्विज्ञेयोनिपुणंशनैः ॥ ५ ॥ नखल्वस्तिममत्रासोलक्ष्मणान्नापिराघवात् ॥ मित्रंत्वस्थानकुपितंजनयत्येवसंभ्रमम् ॥ ६ ॥ सर्वथासुकरंमित्रंदुष्करंप्रतिपालनम् ॥ अनित्यत्वात्तचित्तानांप्रीतिरल्पेपिभिद्यते ॥ ७ ॥ अतोनिमित्तंत्रस्तोहंरामेणतुमहात्मना ॥ यन्ममोपकृतंशक्यंप्रतिकर्तुनतन्मया ॥ ८ ॥

दोष निःसन्देह रामानुज लक्ष्मणजीसे कहे हैं॥ ४ ॥ इस विषयमें यथाविधि और यथाबुद्धि तुम सब लोग विचार करो कि यही बात है; अथवा कुछ और ॥ ५ ॥ हमको श्रीरामचन्द्र व लक्ष्मणजीसे कुछ भय नहीं है; परन्तु विना अपराधसे कोपित हुये मित्रसेही भय हुआ करता है॥ ६॥ मित्रताई करना सदाही सरल है. परन्तु मित्रताका निवाहनाही बडा कठिन कार्य है; क्योंकि चित्तकी अतिस्थिरतासे हुये अल्प कारणसे प्रीतिमें भेद पड जाता है ॥ ७ ॥ इस निमित्त ही हम महात्मा श्रीरामचन्द्रजीसे त्रासितहुये हैं; क्योंकि जो प्रत्युपकार करनेको हम समर्थहैं; वह अवतक हमनें

श्रीरामचंद्रजीको देखकर उनका विषाद दूर करनेंके लिये अतिदीनतासे बोले ॥ १५ ॥ हे आर्य ! आप आत्म पौरुषको पराजितकर, और कामके वशहो क्या कर्म करतेहैं? आप शोक करके चित्तकी एकाग्रता दूरकररहेहैं, ऐसे समयमें आप समाधि योगकर समस्त दुःखोंका नाशकी जिये ॥ १६ ॥ हे प्रभो ! आप धीरज धारण करके शौच स्नानादिक्रिया योगकर मनको निर्मल कर लीजिये; और यथाकालमें समाधि योगके अनुगतहो सब कार्योंका समाधान कीजिये ॥ १७ ॥ हे नरनाथ ! जानकीजी आपसेही सनाथ होसकतीहैं; वह दूसरेसे कभी सनाथ नहीं हो सकती; क्योंकि प्रज्वलित अग्निकी ज्वालाको प्राप्त होकर कौन नहीं दग्ध होता अर्थात् अग्निवत् जानकीजीकी ज्वालासे रावण का

किमार्यकामस्यवशंगतेनकिमात्मपौरुष्यपराभवेन ॥ अयंह्रियासंह्रियतेसमाधिःकिमत्रयोगेननिवर्ततेन ॥ १६ ॥
क्रियाभियोगंमनसःप्रसादंसमाधियोगानुगतंचकालम्॥ साहायसामर्थ्यमदीनसत्त्वःस्वकर्महेतुंचकुरुष्वतात॥१७॥
नजानकीमानववंशनाथत्वयासनाथासुलभापरेण ॥ नचाग्निचूडांज्वलितामुपेत्यनदह्यतेवीरवरार्हकश्चित् ॥ १८ ॥
सलक्षणंलक्ष्मणमप्रधृष्यंस्वभावजंवाक्यमुवाचरामः ॥ हितंचपथ्यंचनयप्रसक्तंससामधर्मार्थसमाहितंच ॥ १९ ॥
निःसंशयंकार्यमवेक्षितव्यंक्रियाविशेषोप्यनुवर्तितव्यः ॥ नतुप्रवृद्धस्यदुरासदस्यकुमारवीर्यस्यफलंचचिंत्यम्॥२०॥
अथपद्मपलाशाक्षींमैथिलीमनुचिंतयन् ॥ उवाचलक्ष्मणंरामोमुखेनपरिशुष्यता ॥ २१ ॥ तर्पयित्वासहस्राक्षःसलि
लेनवसुंधराम् ॥ निर्वर्तयित्वासस्यानिकृतकर्माव्यवस्थितः ॥ २२ ॥

नाश होजायगा ॥ १८ ॥ श्रीरामचन्द्रजी लक्षण युक्त दुर्द्धर्ष लक्ष्मणजीसे तत्त्वार्थ, नीतिसम्मत, पथ्य और हितकारी व धर्मयुक्त वचन बोले ॥ ॥ १९ ॥ हे लक्ष्मण कुमार ! तुमने जो कहाहै उस कर्म योग व ज्ञान योगका निश्चयही साधन करना उचितहै अति दुःखसे वृद्धिको प्राप्त हुए सहन करनेंके अयोग्य इस अपने वीर्य बलके फलकीभी अवश्य चिंता करनी चाहिये ॥२०॥ फिर कमलदल नेत्रवाली जानकीजीका स्मरण कर के रामचन्द्रजीका मुख विवर्ण होगया, और वह लक्ष्मणजीसे बोले ॥२१॥ इन्द्रजी, वर्षाकी धारासे पृथ्वीको तृप्तकर अन्न उपजानेंके कार्यको पूराकर

श्रीरामचंद्रजीके छोटे भाई लक्ष्मण अपने भ्राताके संतापसे संतापितहो तुम्हारे पास आय द्वार पर खडे हैं ॥ ३३ ॥ हेपरवीर घाती! यदि तुम्हारी रुचि होय तो उनके वचनका प्रतिपालनकरो। हे वत्स! इतनी बात कहकर तुम वहांसे लौट आना ॥ ३४॥ अंगद लक्ष्मणजीके यह वचन सुन शोकोपहतचित्तहो अपने चचा सुग्रीवसे जाकर बोले कि हे तात! रामचंद्रजीके छोटे भाई लक्ष्मणजी यहां आये हैं ॥ ३५॥ कार्य करने में चतुर अंगदजी लक्ष्मणजीके तीव्र वचनोंसे दीन वदन और भ्रान्तचित्त हो सुग्रीवके निकट जाकर पहले उनके चरणोंकी वंदना करते हुये ॥ ३६ ॥ उग्र तेजवान अंगदजीने सुग्रीवजीके दोनों चरण ग्रहण करके फिर

तस्यवाक्यंयदिरुचिःक्रियतांसाधुवानरः ॥ इत्युक्त्वाशीघ्रमागच्छवत्सवाक्यमरिंदम ॥ ३४ ॥ लक्ष्मणस्यवचः श्रुत्वाशोकाविष्टोगदोब्रवीत् ॥ पितुःसमीपमागम्यसौमित्रिरयमागतः ॥ ३५ ॥ अथांगदस्तस्यसुतीव्रवाचा सभ्रांतभावःपरदीनवक्त्रः ॥ निर्गत्यपूर्वंनृपतेस्तरस्वीततोरुमायाश्चरणौववंदे ॥ ३६॥ संगृह्यपादौपितुरुग्रतेजाजग्राहमातुःपुनरेवपादौ॥पादौरुमायाश्चनिपीडयित्वानिवेदयामासततस्तदर्थम्॥३७॥ सनिद्राक्लांतसंवीतोवानरोनविबुद्धवान् ॥ बभूवमदमत्तश्चमदनेनचमोहितः ॥ ३८ ॥ ततःकिलकिलांचक्रुर्लक्ष्मणंप्रेक्ष्यवानराः ॥ प्रसादयंतस्तंक्रुद्धंभयमोहितचेतसः ॥ ३९ ॥ तेमहौघनिभंदृष्ट्वावज्राशनिसमस्वनम् ॥ सिंहनादंसमंचक्रुर्लक्ष्मणस्यसमीपतः॥ ४० ॥ तेनशब्देनमहताप्रत्यबुध्यतवानरः ॥ मदविह्वलताम्राक्षोव्याकुलःस्रग्विभूषणः ॥ ४१ ॥

रुमाके चरणोंमें प्रणामकर लक्ष्मणजीके आनेकी वार्त्ता कही ॥ ३७ ॥ वह मदनमोहित मदमत्त वानर सुग्रीव निद्रासे क्लान्तचित्त होनेके कारण अंगदजीके वचन और प्रणामको न जान सका॥ ३८॥ फिर भय मोहित वानर गण लक्ष्मणजीको क्रोधित देखकर उनको प्रसन्न करते २ किलकिला शब्द कर उठे ॥ ३९ ॥ उन वानरलोगोंने लक्ष्मणजीको देखकर सुग्रीवके निकट जाय उनको जगानेके लिये वज्रतुल्य और महा समुद्रके महा तरंगकी समान भयंकर शब्द करना प्रारंभ किया ॥ ४० ॥ उस बडे भारी शब्दसे वानरराज सुग्रीवकी नींद टूटी, उस समय मारे मदके उनके नेत्र अरुण होरहे और माला आदि गहने खस रहेथे वह बहुत व्याकुल चित्तहो जाग पडे ॥ ४१ ॥

को देखते भालते रहो ॥ ३२ ॥ जो जो वानर लोग एक पखवाडेके बीचमें इस स्थानमें नहीं आवेगा; उसे बिना विचारे प्राणदंड देदो ॥ ३३ ॥
हमारी आज्ञाके वशमें टिके वृद्ध वानर गणोंके निकट तुमही अंगदके साथ चले जाओ. वानरश्रेष्ठ वीर्यवान् सुग्रीवजी इस प्रकारकी व्यवस्था क
रके राजमंदिरमें प्रवेश करते हुये ॥ ३४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे श्रीवाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे एकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥
इधरतो सुग्रीव राजमंदिरमें गये उधर गगन मंडल मेघ रहित हुआ और, वर्सातकी रातोंके वीत जानेपर श्रीरामचंद्रजी काम शोकसे पीडित
हुये ॥ १ ॥ वह आकाश मंडल निर्मल, विमल चंद्र मंडलकी चांदनीसे युक्त शरद ऋतुकी रात्रि देख ॥ २ ॥ जनककुमारी सीताको हरा हुआ,

त्रिपंचरात्राद्दूर्ध्वंयःप्राप्नुयादिहवानरः ॥तस्यप्राणांतिकोदंडोनात्रकार्याविचारणा ॥ ३३ ॥ हरींश्चवृद्धानुपयातुसांग
दोभवान्ममाज्ञामधिकृत्यनिश्चितम् ॥ इतिव्यवस्थांहरिपुंगवेश्वरोविधायवेश्मप्रविवेशवीर्यवान् ॥ ३४ ॥ इत्यार्षे
श्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेएकोनत्रिंशःसर्गः ॥ २९ ॥ ॥ छ ॥ गृहंप्रविष्टेसुग्रीवेविमुक्ते
गगनेघनैः ॥ वर्षरात्रेस्थितोरामःकामशोकाभिपीडितः ॥ १ ॥ पांडुरंगगनंदृष्ट्वाविमलंचंद्रमंडलम् ॥ शारदींरजनीं
चैवदृष्ट्वाज्योत्स्नानुलेपनाम् ॥२॥ कामवृत्तंचसुग्रीवंनष्टांचजनकात्मजाम् ॥ दृष्ट्वाकालमतीतंचमुमोहपरमातुरः ॥ ३॥
सतुसंज्ञामुपागम्यमुहूर्तान्मतिमान्नृपः ॥ मनःस्थामपिवैदेहींचिंतयामासराघवः ॥ ४॥ दृष्ट्वाचविमलंव्योमगतविद्यु
द्वलाहकम् ॥ सारसारवसंघुष्टंविललापार्तयागिरा ॥ ५॥ आसीनःपर्वतस्याग्रेहेमधातुविभूषिते ॥ शारदंगगनं
दृष्ट्वाजगाममनसाप्रियाम् ॥ ६ ॥

सुग्रीवको कामासक्त और कालको वीतजाता हुआ देख अत्यन्त कातर और मोहित हुये ॥ ३ ॥ अनन्तर मतिमान नृपति श्रीरामचंद्रजी एक
मुहूर्त्त भरमें चित्तकी सावधानताको प्राप्तकर, जानकीजीकी चिंता करनें लगे, क्योंकि वही बराबर इनके मनमें बसी रहतीथीं ॥ ४ ॥ आकाश
मंडल मेघ और विजलीसे रहित होनेके कारण विमल हुआ, और सरोवरोंमें सारसकी पुकार सुन श्रीरामचंद्र अति आरत वाणीसे विलाप करनें
लगे ॥ ५ ॥ वह हेम धातु विभूषित पर्वतके अग्रभागमें बैठ शरदऋतुका आकाश देख मनहीं मनमें प्रियाका ध्यान करने लगे ॥ ६ ॥

मतवाला हाथी तोडता फोडता चला आताहै ॥ १५ ॥ इक्ष्वाकुश्रेष्ठ लक्ष्मणजीनें बडे २ पर्वतोंके वीचमें बसी हुई सेना समूहसे परिपूर्ण दुर्गम
कपिराज पुरी किष्किन्धा नगरीको देखा ॥ १६ ॥ सुग्रीवके ऊपर क्रोध करनेंसे लक्ष्मणजीके अधर फडकनें लगे; उन्होंनें किष्किन्धा नगरीके
बाहर घूमते हुये बहुतसे बडे २ बन्दरोंको देखा ॥ १७ ॥ कुंजरकी समान वानरगणोंनें पुरुषश्रेष्ठ लक्ष्मणजीको क्रोधित देख भयभीतहो पर्वतों
पर जाय बडे २ पर्वतोंके शिखर और वृक्ष ग्रहण कर लिये और खडे होगये ॥ १८ ॥ लक्ष्मणजी उन वानर गणोंको आयुध ग्रहण किये हुये
देखकर बहुत लकडी डालनेंसे प्रज्वलित हुई अग्निके समान दूने क्रोधित होगये ॥ १९ ॥ शत २ वानर गण प्रलयकालकी मृत्युके समान लक्ष्म

तामपश्यद्बलाकीर्णांहरिराजमहापुरीम् ॥ दुर्गामिक्ष्वाकुशार्दूलःकिष्किंधांगिरिसंकटे ॥ १६ ॥ रोषात्प्रस्फुरमाणोष्ठः
सुग्रीवंप्रतिलक्ष्मणः ॥ ददर्शवानरान्भीमान्किष्किंधायांबहिश्चरान् ॥ १७ ॥ तंदृष्ट्वावानराःसर्वेलक्ष्मणंपुरुषर्ष
भम् ॥ शैलशृंगाणिशतशःप्रवृद्धांश्चमहीरुहान् ॥ जगृहुःकुंजरप्रख्यावानराःपर्वतांतरे ॥ १८ ॥ तान्गृहीतप्रहरणान्सर्वा
न्दृष्ट्वातुलक्ष्मणः ॥ बभूवद्विगुणंक्रुद्धोबह्विंधनइवानलः ॥ १९ ॥ तंतेभयपरीतांगाःक्षुब्धंदृष्ट्वाप्लवंगमाः ॥ कालमृत्यु
युगांताभंशतशोविद्रुतादिशः ॥ २० ॥ ततःसुग्रीवभवनंप्रविश्यहरिपुंगवाः ॥ क्रोधमागमनंचैवलक्ष्मणश्चन्यवेदयन्
॥ २१ ॥ तारयासहितःकामीसक्तःकपिवृषस्तदा ॥ नतेषांकपिसिंहानांशुश्राववचनंतदा ॥ २२ ॥ ततःसचिवसं
दिष्टाहरयोरोमहर्षणाः ॥ गिरिकुंजरमेघाभानगरान्निर्ययुस्तदा ॥ २३ ॥ नखदंष्ट्रायुधाःसर्वेवीराविकृतदर्शनाः ॥ सर्वे
शार्दूलदंष्ट्राश्चसर्वेविवृतदर्शनाः ॥ २४ ॥

णजीको अत्यन्त क्रोधित देखकर चारों ओर भाग खडे हुये ॥ २० ॥ उनमेंसे प्रधान २ वानरोंनें सुग्रीवके भवनमें प्रवेश करके लक्ष्मणजीके
क्रोधमें भरकर आनेंका समस्त वृत्तान्त निवेदन किया ॥ २१ ॥ कामसे आसक्त हुआ सुग्रीव उस समय ताराके सहित मिलकर सुखभोग
रहाथा; उसने उन कपिश्रेष्ठोंके वह वचन नहीं सुने ॥ २२ ॥ जब सुग्रीव कुछ न बोले तब मंत्रियोंकी आज्ञासे पर्वत व हाथियोंकी
अनुहार मेघ समान वानरगण रोम फुलाकर लक्ष्मणजीके रोकनेंके लिये किष्किन्धापुरीसे निकले ॥ २३ ॥ वह सबही वानर विकटा

सो अब जानकी जीके ढूंडने भालने रूप श्रीरामचंद्रजीका कार्य पूरा कीजिये ॥ १५ ॥ समयके जाननेवाले रामचंद्र तुमसे नहीं कहेंगे कि अब समय बीतताहै यद्यपि वह महात्मा श्रीरामचंद्रजी शीघ्रही अपने कार्यको साधन करनेंकी इच्छा करते हैं परन्तु आपके वश हो वह विलंब कर रहे हैं॥ १६॥आपके इस बडे कुल राज्यकी प्राप्तिके हेतु और दीर्घ कालके बन्धु उन श्रीरामचंद्रजीका अतुल प्रभावहै और वह गुण गणोंसे अनुपम हैं ॥१७॥हे कपिनाथ! उन्होंने पहले ही आपका कार्य पूरा कर दियाहै सो इस समय आप उनका कार्य करनेके लिये वानर गणोंको आज्ञा दीजिये ॥१८॥ प्रेरणाके विना स्वयंही विचार कर कार्य करनेसे, समयका उल्लंघन नहीं होता, जो कार्य कि आज्ञा किये जानें, अर्थात् प्रेरणा होनेंपर कियाजाता

नचकालमतीतंतेनिवेदयतिकालवित् ॥ त्वरमाणोपिसप्राज्ञस्तवराजन्वशानुगः ॥ १६ ॥ कुलस्यहेतुःस्फीतस्यदीर्घबंधुश्चराघवः ॥ अप्रमेयप्रभावस्यस्वयंचाप्रतिमोगुणैः ॥ १७ ॥ तस्यत्वंकुरुवैकार्यंपूर्वंतेनकृतंतव ॥ हरीश्वरकपिश्रेष्ठानाज्ञापयितुमर्हसि ॥ १८ ॥ नहितावद्भवेत्कालोव्यतीतश्चोदनादृते ॥ चोदितस्यहिकार्यस्यभवेत्कालव्यतिक्रमः ॥ १९ ॥ अकर्तुरपिकार्यस्यभवान्कर्ताहरीश्वर ॥ किंपुनःप्रतिकर्तुस्तेराज्येनचवधेनच ॥ २० ॥ शक्तिमानतिविक्रांतोवानरर्क्षगणेश्वर ॥ कर्तुंदाशरथेःप्रीतिमाज्ञायांकिंनुसज्जसे ॥ २१ ॥ कामंखलुशरैःशक्तःसुरासुरमहोरगान् ॥ वशेदाशरथिःकर्तुंत्वत्प्रतिज्ञामवेक्षते ॥ २२ ॥ प्राणत्यागाविशंकेनकृतंतेनमहत्प्रियम् ॥ तस्यमार्गामवैदेहींपृथिव्यामपिचांबरे ॥ २३ ॥

है, वह कार्य होजानें परभी उस कार्यका काल व्यतीत हो जाता है इस्से हुआ न हुआ बराबर है ॥ १९ ॥ हे वानरनाथ! यदि आपका कोई पुरुष उपकार न करै तोभी आप उसका उपकार किया करते हैं; फिर श्रीरामचन्द्रजीनें तो वालिको मार करके आपको राज्य प्रदान किया है; सो आप जो उनका उपकार करेंगे उसमें कहनाही क्या! ॥ २० ॥ आप वानर और रीछोंके राजा हैं; और श्रीरामचन्द्रजी शक्तिमान और अतिशय विक्रम शाली हैं आप श्रीरामचन्द्रजीकी प्रसन्नताके हेतु उनका कार्य करनेंके लिये क्यों तैयार नहीं होते? ॥ २१ ॥ दशरथकुमार श्रीरामचन्द्रजी सुर असुर और भुजंगोंकोभी अपनें वशमें करनेंको समर्थ हैं; वह तो केवल आपकी प्रतिज्ञाको परखते हैं ॥ २२ ॥ उन्होंनें प्राण त्याग न करनेंकी आ

श्रीरामचन्द्रजीके छोटे भाई लक्ष्मणजी, अगाध वीर्य कामसे उत्पन्न हुये शोकसे युक्त नरेन्द्रपुत्र राजकुमार श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ १ ॥ वह वानर साधु लोगोंके चरित्र पर नहीं टिकेगा, वह मित्रताका मूल राज्यलाभरूप फलभी मनमें न समझेगा, और वानर राज्य, लक्ष्मीकोभी भोग नहीं करेगा और उसकी बुद्धि प्रतिज्ञाके प्रतिपालन करनेंमेंभी आगे नहीं बढेगी ॥ २ ॥ वह अपनी नीतिक्षय होजानेंके कारणसे स्त्री आदिकोंके सुखमें आसक्त होगयाहै आपको प्रसन्नताके हेतु उसकी यह बुद्धि नहीं होगी कि उनका प्रत्युपकार करे वह इस समय मरकर वालिको देखे ! इस दुष्टबुद्धि सुग्रीवको राज्य देना कुछ उचित नहीं हुआ ॥ ३ ॥ हमारे क्रोधका वेग उकसा आताहै, कि जिसके धारण करनेंमें हम समर्थ नहीं हैं आज हम उस मिथ्या

सकामिनंदीनमदीनसत्त्वंशोकाभिपन्नंसमुदीर्णकामम् ॥ नरेंद्रसूनुर्नरदेवपुत्रंरामानुजःपूर्वजमित्युवाच॥१॥नवानरः स्थास्यतिसाधुवृत्तेनमन्यतेकर्मफलानुषंगान् ॥ नभोक्ष्यतेवानरराज्यलक्ष्मींतथाहिनातिक्रमतेऽस्यबुद्धिः ॥ २ ॥ मतिक्षयाद्ग्राम्यसुखेषुसक्तस्तवप्रसादात्प्रतिकारबुद्धिः ॥ हतोऽग्रजंपश्यतुवीरवालिनंनराज्यमेवंविगुणस्यदेहम्॥३॥ नधारयेकोपमुदीर्णवेगंनिहन्मिसुग्रीवमसत्यमद्य ॥ हरिप्रवीरैःसहवालिपुत्रोनरेंद्रपुत्र्याविचयंकरोतु ॥ ४ ॥ तमात्तबाणासनमुत्पतंतंनिवेदितार्थंरणचंडकोपम् ॥ उवाचरामःपरवीरहंतास्ववीक्षितंसानुनयंचवाक्यम् ॥ ५ ॥ नहिवैत्वद्विधोलोकेपापमेवंसमाचरेत् ॥ कोपमार्येणयोहंतिसवीरःपुरुषोत्तमः ॥ ६ ॥ नेदमत्रत्वयाग्राह्यंसाधुवृत्तेनलक्ष्मण ॥ तांप्रीतिमनुवर्तस्वपूर्ववृत्तंचसंगतम् ॥ ७ ॥

वादी सुग्रीवको मार करके अंगदको राज्य दे देंगे, वह वालि पुत्र मुख्य २वानरगणोंके सहित सीताजीको खोजेंगे ॥ ४ ॥ इतना कह और धनुष धारण करके लक्ष्मणजी खडे होगये, तब परवीरघाती श्रीरामचंद्रजी रणस्थलमें प्रचंड कोपशाली लक्ष्मणजीकी ओर देखकर उनको नम्र करते हुये बोले ॥ ५ ॥ हे लक्ष्मणजी ! तुम सरीखे पुरुष मित्रवध रूप पापका आचरण नहीं करते; जो पुरुष उचित ज्ञानसे कोपका संहार कर डालताहै; वही वीर और पुरुषोंकें मध्यमें श्रेष्ठहै॥ ६ ॥ हे लक्ष्मण! वह मित्रघातरूप अकार्य तुमको करना उचित नहीं है, तुम सुग्रीवके प्रति साधु

हे महाराज ! आपनें जो कुछ कहा;उस सबकोही सुग्रीवजी करेंगे, इस समय आप शरदकालको परखतें हुये इस वर्षा कालको विता दीजिये॥६६॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे अष्टाविंशःसर्गः॥२८॥विगत विद्युत और विगतवारिद,सारस समूहसे निनादित मनोहर चांदनीसे अनुलिप्त विमल आकाशको अवलोकन करकै सुग्रीवके निकट हनुमानजी गये ॥ १ ॥ सुग्रीव अत्यन्त समृद्धिशाली होकर धर्म और अर्थको इकट्ठा करनेंके विषय में शिथिल और असत पुरुषोंके मार्ग अर्थात् काम वृत्ति में अत्यन्त आसक्तचित्त ॥ २ ॥ और सब कार्यों में निवृत्त वालिके मारनेंमें कृतकार्य हुये, समस्त इष्ट और मनोरथ लाभ किये हुये राज्यको प्राप्त कर ॥ ३ ॥ अपनी स्त्री रुमा और

यदुक्तमेतत्तवसर्वमीप्सितंनरेंद्रकर्तानचिराद्धरीश्वरः॥शरत्प्रतीक्षःक्षमतामिदंभवान्जलप्रपातंरिपुनिग्रहेधृतः॥ ६६ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०किष्किंधाकांडेअष्टाविंशःसर्गः ॥ २८ ॥ ॥ ७ ॥ समीक्ष्यविमलंव्योमगतविद्युद्बलाहकम् ॥ सारसाकुलसंघुष्टंरम्यज्योत्स्नानुलेपनम् ॥ १ ॥ समृद्धार्थंचसुग्रीवंमंदधर्मार्थसंग्रहम् ॥ अत्यर्थंचासतांमार्गमेकांतगतमानसम् ॥ २ ॥ निवृत्तकार्यंसिद्धार्थंप्रमदाभिरतंसदा ॥ प्राप्तवंतमभिप्रेतान्सर्वानेवमनोरथान् ॥ ३ ॥ स्वांचपत्नीमभिप्रेतांतारांचापिसमीप्सिताम् ॥ विहरंतमहोरात्रंकृतार्थंविगतज्वरम् ॥ ४ ॥ क्रीडंतमिवदेवेशंगंधर्वाप्सरसांगणैः ॥ मंत्रिषुन्यस्तकार्यंचमंत्रिणामनवेक्षकम् ॥ ५ ॥ उच्छिन्नराज्यसंदेहंकामवृत्तमिवस्थितम् ॥ निश्चितार्थोऽर्थतत्त्वज्ञःकालधर्मविशेषवित्॥६॥प्रसाद्यवाक्यैर्विविधैर्हेतुमद्भिर्मनोरमैः॥वाक्यविद्वाक्यतत्त्वज्ञंहरीशंमारुतात्मजः ॥ ७॥

वांछा करनें योग्य ताराको प्राप्त करकै व्यथा रहित हो ॥ ४ ॥ अप्सरागणोंके सहित देवराज इन्द्रकी समान दिन रात विहार करतेंहैं सब राज्य भार मंत्रि लोगोंके ऊपर छोड करके फिर उसको देखतेभी नहीं ॥ ५ ॥ वह मंत्रीगणोंकी कार्यकी चतुरतासे राज्यके पालन करनेंके विषयमें संदेह न करके कामवृद्धकी नाई टिके हुयेहैं ऐसे सुग्रीवको देख अर्थतत्त्वके जाननेंवाले सब अर्थोंको निश्चित किये कालोचित धर्मतत्त्वको जानने वाले ॥ ६ ॥ वाक्यविशारद श्रीहनुमानजी प्रीति युक्त मनोहर वचनोंसे वाक्य तत्त्वके जाननेंवाले

सुग्रीव कृतार्थहो इस समय उसको यादकर नहीं जागता ॥ ६९ ॥ तुम हमारे वचन सुन किष्किन्धा नगरीमें गमन कर उस मूर्ख व स्त्रीके सुखमें आसक्त वानर सुग्रीवसे कहना ॥ ७० ॥ कि जो पुरुष कार्यार्थी होकर आये हुए, और प्रथम अपना उपकार किये हुए पुरुषको आशा देकर फिर उसका कार्य पूरा नहीं करता वह इस लोकमें अधमपुरुष कहा जाताहै ॥ ७१ ॥ अच्छाहो, वा बुराहो, जो वचन दिया गयाहै; ऐसे वचनको जो पुरुष सत्य रूपमें ग्रहण करतेहैं, वही निःसंदेह वीर औरपुरुषोंमें श्रेष्ठहैं ॥ ७२ ॥ जो लोग अपना काम निकाल लेते, और जिस का कार्य सिद्ध नहीं हुआहै ऐसे मित्रके कार्य वा उपकारको साधन नहींकरते; उनके मरनें पर मांसके खाने वाले जन्तु गणभी उनके मांसको

सकिष्किंधांप्रविश्यत्वंब्रूहिवानरपुंगवम् ॥ मूर्खंग्राम्यसुखेसक्तंसुग्रीवंवचनान्मम ॥ ७० ॥ अर्थिनामुपपन्नानांपूर्वंचाप्युपकारिणाम् ॥ आशांसंश्रुत्ययोहंतिसलोकेपुरुषाधमः ॥ ७१ ॥ शुभंवायदिवापापंयोहिवाक्यमुदीरितम् ॥ सत्येनपरिगृह्णातिसवीरःपुरुषोत्तमः ॥ ७२ ॥ कृतार्थाह्यकृतार्थानांमित्राणांनभवंतिये ॥ तान्मृतानपिक्रव्यादाःकृतघ्नान्नोपभुजते ॥ ७३ ॥ नूनंकांचनपृष्ठस्यविकृष्टस्यमयारणे ॥ द्रष्टुमिच्छसिचापस्यरूपंविद्युद्गणोपमम् ॥ ७४ ॥ घोरंज्यातलनिर्घोषंक्रुद्धस्यममसंयुगे ॥ निर्घोषमिववज्रस्यपुनःसंश्रोतुमिच्छसि ॥ ७५ ॥ काममेवंगतेप्यस्यपरिज्ञातेपराक्रमे ॥ त्वत्सहायस्यमेवीरनचिंतास्यान्नृपात्मज ॥ ७६ ॥ यदर्थमयमारंभःकृतःपरपुरंजय ॥ समयंनाभिजानातिकृतार्थःप्लवगेश्वरः ॥ ७७ ॥ वर्षासमयकालंतुप्रतिज्ञायहरीश्वरः ॥ व्यतीतांश्चतुरोमासान्विहरन्नावबुध्यते ॥ ७८ ॥

नहीं खाते ॥ ७३ ॥ तुम निश्चयही संग्रामस्थलमें, हमसे खेंचे हुए सुवर्णकी पीठ वाले और बिजलीकी समान गुण युक्त धनुषका रूप देखनेंकी इच्छा करते हो ॥ ७४ ॥ तुम फिर यह श्रवण करनें की इच्छा करते होकि हम संग्रामभूमिमें क्रोधित हो वज्रके शब्दकी समान प्रत्यंचाकी घोर टंकार करें ॥ ७५ ॥ जब कि हम उसका सब बल जानतेहैं; और वह तुम्हारे सहाय युक्त हमारे पराक्रमकोभी जान्ताहै तौभी उस सुग्रीवको यह चिन्ता नहीं कि यह वालिकी तरह मुझे मार डालेंगे बडे आश्चर्य की बातहै ॥ ७६ ॥ हे पराये पुरको जीतनेंवाले लक्ष्मण ! वानरराज सुग्रीव कृतार्थ होकर किस कारण इस समय वालिके वध और इस मित्रताईको स्मरण नहीं करते हैं ॥ ७७ ॥ वर्षाके वीतनेपरही प्रतिज्ञाके पूर्ण करनें

॥

तकी गुफाओंमें टूटे हुए डोरेवाले हारकी समान छितराकर गिर रहाहै ॥ ४९ ॥ पर्वतोंके विपुल वेगवान झरनें गिरिशृङ्गोंकी तली धोते हुए गिरकर महा गुफाओंमें मुक्तासमूहकी समान रोके जातेहैं ॥ ५० ॥ स्वर्गीय स्त्रीगणोंके रति कार्यके मर्दनसे टूटकर अतुल मोतियोंके हारकी समान चारों ओर जल धारा गिर रहीहैं ॥ ५१ ॥ पक्षियोंके घोंसलोंमें चलेजानेंसे और कमल फूलोंके वंद होनेंसे मालती पुष्पके खिलनेंसे, सूर्यका उदय अस्त जाना जाताहै; नहीं तो बराबर वादलोंके छाये रहनेंसे सूर्यभगवान्‌का उदय अस्त नहीं जाना जासकता ॥ ५२ ॥ इस कालमें नृपति लोगोंकी यात्रा बंद हो रहीहै, जो किसी राजाकी सेना किसी शत्रुपर चढ चलीथी वहभी मार्गमें जहां की तहां रही। और वैर व मार्ग

शीघ्रंप्रवेगाविपुलाःप्रपातानिर्धौतशृंगोपतलागिरीणाम् ॥ मुक्ताकलापप्रतिमाःपतंतोमहागुहोत्संगतलैर्ध्रियंते॥५०॥सुरतामर्दविच्छिन्नाःस्वर्गस्त्रीहारमौक्तिकाः ॥ पतंतिचातुलादिक्षुतोयधाराःसमंततः ॥५१॥विलीयमानैर्विहगैर्निमीलद्भिश्चपंकजैः ॥ विकसंत्याचमालत्यागतोऽस्तंज्ञायतेरविः ॥ ५२ ॥ वृत्तायात्रानरेंद्राणांसेनापथ्येववर्तते ॥ वैराणिचैवमार्गाश्चसलिलेनसमीकृताः ॥ ५३ मासिप्रोष्ठपदेब्रह्मब्राह्मणानांविवक्षताम् ॥ अयमध्यायसमयःसामगानामुपस्थितः ॥ ५४ ॥ विवृत्तकर्मायतनोनूनंसंचितसंचयः ॥ आषाढीमभ्युपगतोभरतःकोशलाधिपः ॥ ५५ ॥ नूनमापूर्यमाणायाःसरय्वावर्धतेरयः ॥ मांसमीक्ष्यसमायांतमयोध्यायाइवस्वनः ॥ ५६ ॥ इमाःस्फीतगुणावर्षाःसुग्रीवःसुखमश्नुते ॥ विजितारिःसदारश्चराज्येमहतिचास्थितः ॥ ५७ ॥

जलनें सबको समान कर दिया ॥ ५३ ॥ वेद पढनेंकी अभिलाषा किये साम जाननेंवाले ब्राह्मणोंका यह भाद्रपद रूप वेद पढनेंका समय आ पहुंचाहै ॥५४॥ कौशलाधिपति भरतजी अब करलेनें आदिके सब कार्योंसे निवट, जीवन साधन करनेंकी समस्त वस्तुयें एकत्र कर आषाढी पूर्णिमासे कुछ विशेष अनुष्ठान करने लगे होंगे ॥ ५५ ॥ इस समय सरयूनदी वर्षाके जलसे पूर्ण होगई होगी; इस समय सरयू नदीका वेग ऐसा बढता होगा; कि जैसे हमको आये देख अयोध्यावासी प्रजा कुलाहल करैगी॥५६॥वर्षाके गुणसमूह भली भांति प्रकाशित हो रहेहैं।इस समय सुग्रीव विजय

पके हुए धानोंका वन, मन्द पवन, और विमल चंद्रमा, यह सब वर्षाका जाना और शरद ऋतुका आना बता रहेहैं ॥ ५३ ॥ इस समय प्रभात कालमें अपनें पतियों करके भोगी जानेंसे आलस्य पाई हुई कामनियोंकी समान, मीन रूप तगडी धारण किये नदी वधूटियोंकी गति मन्द होग ईहै ॥५४॥चक्रवाक व शिवार युक्त काश रूपी वसन पहरे हुए नदियोंके मुख पत्र रेखा युक्त और रोचन लगाये वधूटियोंके मुखकी समान शोभा धारण किये हुएहैं ॥ ५५ ॥प्रफुल्ल बाण और आसन पुष्पोंसे चित्र विचित्र हर्षित भ्रमरोंकी गुंजारसे गुंजायमान, वनोंमें प्रचंड धनुष धारण किये कामदेव विरही जनोंको दंड देनेके लिये अत्यन्त प्रचंड होगया ॥ ५६ ॥मेघ अति वृष्टिसे सब लोकोंको संतुष्ट कर, नदी तडागोंको पूर्ण और वसु

मीनोपसंदर्शितमेखलानांनदीवधूनांगतयोद्यमंदाः॥कांतोपभुक्तालसगामिनीनांप्रभातकालेष्विवकामिनीनाम्॥५४॥
सचक्रवाकानिसशैवलानिकाशैर्दुकूलैरिवसंवृतानि ॥ सपत्ररेखाणिसरोचनानिवधूमुखानीवनदीमुखानि ॥ ५५ ॥
प्रफुल्लबाणासनचित्रितेपुप्रहृष्टपट्पादनिकूजितेपु ॥ गृहीतचापोद्यतदंडचंडःप्रचंडचापोऽद्यवनेषुकामः ॥ ५६ ॥ लो
कंसुवृष्ट्यापरितोपयित्वानदीस्तटाकानिचपूरयित्वा ॥ निष्पन्नसस्यांवसुधांचकृत्वात्यक्त्वानभस्तोयधराःप्रनष्टाः५७
दर्शयंतिशरन्नद्यःपुलिनानिशनैःशनैः ॥ नवसंगमसव्रीडाजघनानीवयोषितः ॥ ५८ ॥ प्रसन्नसलिलाःसौम्यकुररा
भिविनादिताः ॥ चक्रवाकगणाकीर्णाविभांतिसलिलाशयाः ॥ ५९ ॥ अन्योन्यबद्धवैराणांजिगीपूणांनृपात्मज ॥
उद्योगसमयःसौम्यपार्थिवानामुपस्थितः ॥ ६० ॥ इयंसाप्रथमायात्रापार्थिवानांनृपात्मज ॥ नचपश्यामिसुग्री
वमुद्योगंचतथाविधम् ॥ ६१ ॥

धाको धान्यसे पूरित कर, उस समय आकाश मंडलको त्याग चले गयेहै ॥ ५७ ॥ इस समय नदियें धीरे २ अपने किनारे दिखातीहैं, जैसे नवीन आई हुई वधुयें नये संगमसे लज्जाशीलहो अपने २ पतिको अपने जांघादिअंग सहजसे दिखा देतीहैं ॥ ५८ ॥ हे सौम्य! निर्मल जलवाले सारसोंके शब्दसे शब्दायमान चक्रवाकोंसे पूर्ण समस्त जलसे शोभायमान होरहेहैं ॥ ५९ ॥ हे राजकुमार ! परस्पर वैर रखनेंवाले और एक दूसरेके जीतनेंका अभिलाष किये राजा लोगोंके उद्योग करनेंका यह समय आगयाहै ॥ ६० ॥ राजालोगोंकी यात्रा करनेंका यही प्रथम समयहै, परन्तु

शब्द और नृत्यसे मद्यपान करनेंके स्थानकी समान जान पडतीहै॥३४॥मोतीकी समान गिरा, पत्तोंपर लगा इन्द्रका दिया निर्मल जल, पीले विवर्ण पंखवाले प्यासे पक्षीगण हर्षित होकर पान कर रहेहैं ॥ ३५ ॥ भ्रमर ध्वनि रूप मधुर, गीत और उसमें वानरोंकी ध्वनि कंठताल, मेघ शब्द मृदंग ध्वनि, इस प्रकारसे वनमें मानों संगीत होना प्रारंभ हुआहै ॥३६॥ कभी नृत्य करके कभी शब्द करके कभी वृक्षकी डालियों पर बैठ करके कभी लंबे पंखोंको भूषण रूप विस्तार करके मोरगण वनस्थलमें संगीत कर रहेहैं॥३७॥ वानरगण मेघोंके शब्दसे बहुत दिनोंसे ग्रहण की हुई निद्राको परित्याग करके जागरितहो, अनेक प्रकारका रूप धार व अनेक प्रकारका शब्द करके नये जलकी धारासे पीडितहो किल २ कर रहेहैं ॥ ३८ ॥ सम

मुक्तासमाभंसलिलंपतद्वैसुनिर्मलंपत्रपुटेषुलग्नम् ॥ हृष्टाविवर्णच्छदनाविहंगाःसुरेंद्रदत्तंतृषिताःपिबंति ॥ ३५ ॥ षट्पादतंत्रीमधुराभिधानंप्लवंगमोदीरितकंठतालम् ॥ आविष्कृतंमेघमृदंगनादैर्वनेषुसंगीतमिवप्रवृत्तम् ॥ ३६ ॥ क्वचित्प्रनृत्तैःक्वचिदुन्नदद्भिःक्वचिच्चवृक्षाग्रनिषण्णकायैः ॥ व्यालंबबर्हाभरणैर्मयूरैर्वनेषुसंगीतमिवप्रवृत्तम् ॥३७॥ स्वनैर्घनानांप्लवगाःप्रबुद्धाविहायनिद्रांचिरसंनिरुद्धाम् ॥ अनेकरूपाकृतिवर्णनादानवांबुधाराभिहतानदंति ॥३८॥ नद्यःसमुद्राहितचक्रवाकास्तटानिशीर्णान्यपवाहयित्वा ॥ दृप्तानवप्रावृतपूर्णभोगाद्दृतंस्वभर्तारमुपोपयंति ॥ ३९ ॥ नीलेषुनीलानववारिपूर्णामेघेषुमेघाःप्रतिभांतिसक्ताः ॥ दवाग्निदग्धेषुदवाग्निदग्धाःशैलेषुशैलाइवबद्धमूलाः ॥ ४० ॥ प्रमत्तसन्नादितबर्हिणानिसशक्रगोपाकुलशाद्वलानि ॥ चरंतिनीपार्जुनवासितानिगजाःसुरम्याणिवनांतराणि ॥ ४१ ॥

स्त नदियें, चक्रवाक समूहको अपने किनारोंसे हटातीं और अपने ढहेहुए करारोंको जल वेगसे वहाती;वर्षाके जलसे पूर्ण होनेंके कारण मदान्धहो भोग करानें की इच्छासे अपने स्वामी समुद्रके निकट चली जाती हैं ॥३९॥ नील मेघोंके समूहमें आसक्त, नील जल भरे बादल, दावाग्निसे दग्ध हुये पहाडोंमें दावाग्नि दग्ध सब पर्वत एक दूसरे की जडमें बँधेहुयेसे ज्ञात होतेहैं ॥ ४० ॥ इस कालमें नीप और अर्जुनके पुष्पकी सुगन्धिसे वसे हुए वनके रमणीक थलोंमें मोर मतवाले होकर नाच रहेहैं । हरी घास पर वीरवहूटियां शोभा पाय रहीहैं; और हाथीभी इधर उधर झूम २ कर

योंके बीचमें खडे शब्द करते हैं ॥ ३८ ॥ कामके व्याप्त होनेसे जिनका अनुराग बढ गया है, ऐसी अपनी परिवारके सहित धीरे २ गमन करनें वाली हथिनी वनमें मतवाले चलते हुये अपने पतिके पीछे, घेरती हुई चलती हैं॥३९॥अपने सुन्दर पंख रूप भूषणका त्याग किये, मोरगण नदी के किनारोंपर रहनेवाले सारसोंसे धमकी पाकर दीनमलीन हो चलेजाते हैं॥ ४० ॥ गजेन्द्र गणोंके गलफुओंको भेदकर मदकी धार निकल रही है वह गजराज खिले हुये कमल फूलोंसे युक्त सरोवरमें बैठे हुये कारण्डव और चक्रवाकोंको पीडित करके जल पीरहे हैं ॥ ४१ ॥ सारस गणोंके श ब्दसे शब्दायमान, कीचड रहित, वालुकासे पूर्ण बैल गायोंसे युक्त नदियोंके समूहमें हंसगण हर्षित होकर कूदते फांदते हैं ॥ ४२ ॥ इस समय नदी

समन्मथातीव्रतरानुरागाकुलान्वितामंदगतिःकरेणूः ॥ मदान्वितंसंपरिवार्ययांतंवनेषुभर्तारमनुप्रयाति ॥ ३९ ॥ त्य क्त्वावराण्यात्मविभूषितानिबर्हाणितीरोपगतानदीनाम् ॥ निर्भर्त्स्यमानाइवसारसौघैःप्रयांतिदीनाविमनामयूराः४० वित्रास्यकारंडवचक्रवाकान्महारवैर्भिन्नकटागजेंद्राः॥सरस्सुबुद्धांबुजभूषणेषुविक्षोभ्यविक्षोभ्यजलंपिबंति ४१॥व्य पेतपंकासुसवालुकासुप्रसन्नतोयासुसगोकुलासु॥ससारसारावविनादितासुनदीषुहंसानिपतंतिहृष्टाः ॥४२॥नदीघनप्र स्रवणोदकानामतिप्रवृद्धानिलबर्हिणानाम् ॥ प्लवंगमानांचगतोत्सवानांध्रुवंरवाःसंप्रतिसंप्रनष्टाः ॥ ४३ ॥ अनेकवर्णाः सुविनष्टकायानवोदितेष्वंबुधरेषुनष्टाः ॥ क्षुधार्दिताघोरविषाबिलेभ्यश्चिरोषिताविप्रसरंतिसर्पाः ॥ ४४ ॥ चंचच्चंद्र करस्पर्शहर्षोन्मीलिततारका ॥ अहोरागवतीसंध्याजहातुस्वयमंबरम् ॥ ४५ ॥ रात्रिःशशांकोदितसौम्यवक्त्राता रागणोन्मीलितचारुनेत्रा ॥ ज्योत्स्नांशुकप्रावरणाविभातिनारीवशुक्लांशुकसंवृतांगी ॥ ४६ ॥

मेघ, झरनें, जल अति बढा हुआ पवन, मोर, और उत्सव रहित वानरोंका शब्द बंद हो गया है ॥ ४३ ॥ इस समय अनेक वर्ण वाले और नये मेघोंके उदय होनेंपर जो चल फिर नहीं सकतेथे, इस कारण मृतककी तुल्य घोर विषधर बहुत दिनोंसे भूखे सर्पगण, बिलसे निकलकर घूम रहे हैं ॥ ४४ ॥ इस समय शोभायमान चन्द्रमाकी किरणोंका स्पर्श होनेंसे, तारा रूप नेत्र पुतलियोंके तारे धारण किये हर्षवती सन्ध्या आकाश [illegible] ॥ ४५ ॥ स समय उदय [illegible]आ चन्द्रमा रात्रिके मुखकी समान; तारागण खुले हुये मनोहर नेत्रोंकी समान और चांदनी

भयंकर नाद करनेवाले मेघगण रणमें खडेहुये मतवाले हाथियोंकी समान गर्जना कर रहेहैं ॥ २० ॥ जिनके तृणयुक्त सब स्थान वर्षाके जलसे तृप्त होगयेहैं और जिनमें मोर सदासेही नाच रहेहैं और मेघगण अतिवर्षा करके अब थम रहेहैं, सो ऐसे वन अपराह्न कालमें अधिक शोभा धारण किये हुयेहैं, ॥ २१ ॥ उस कालमें बकमाला युक्त सब मेघ बहुत सारे पानीका बोझ लादे हुये पर्वतोंके बडे २ शृङ्गो पर वार २ विश्राम करके फिर चले जातेहैं ॥ २२ ॥ गर्भ धारण करनेके लिये मेघके प्रति काम युक्त बक पंक्ति हर्षवतीहो वायुसे कंपायमान श्रेष्ठ श्वेत कमल फूलोंकी मालाके समान मनोहर आकाशके गलेमें पडकर शोभा पारहीहै ॥ २३ ॥ इस समयमें नई उत्पन्न हुई इन्द्रवधू, वीरबहूटियोंके मध्यमें पडनेसे चित्रित

वर्षोदकाप्यायितशाद्वलानिप्रवृत्तनृत्तोत्सवबर्हिणानि ॥ वनानिनिर्वृष्टबलाहकानिपश्यापराह्णेष्वधिकंविभांति॥२१॥ समुद्वहंतःसलिलातिभारंबलाकिनोवारिधरानदंतः ॥ महत्सुशृंगेषुमहीधराणांविश्रम्यविश्रम्यपुनःप्रयांति ॥ २२ ॥ मेघाभिकामापरिसंपतंतीसंमोदिताभातिबलाकपंक्तिः ॥ वातावधूतावरपौंडरीकीलंबेवमालारुचिरांबरस्य ॥२३॥ बालेंद्रगोपांतरचित्रितेनविभातिभूमिर्नवशाद्वलेन ॥ गात्रानुपृक्तेनशुकप्रभेणनारीवलाक्षोक्षितकंबलेन ॥२४॥ निद्राशनैःकेशवमभ्युपैतिद्रुतंनदीसागरमभ्युपैति ॥ हृष्टाबलाकाघनमभ्युपैतिकांतासकामाप्रियमभ्युपैति ॥ २५ ॥ जातावनांताःशिखिसुप्रनृत्ताजाताःकदंबाःसकदंबशाखाः ॥ जातावृषागोषुसमानकामाजातामहीसस्यवनाभिरामा ॥२६॥ वहंतिवर्षंतिनदंतिभांतिध्यायंतिनृत्यंतिसमाश्वसंति ॥ नद्योघनामत्तगजावनांताःप्रियाविहीनाःशिखिनःप्लवंगमाः ॥२७॥

तृणोंसे ढकी हुई भूमि, मध्य २ में लाखके रंगकी विन्दियां लगाय श्वेत वर्णका कम्बल ओढे स्त्रीकी समान शोभितहै ॥ २४ ॥ इस वर्षाकालमें क्रम २ निद्रा केशवको और नदियें द्रुतवेगसे सागरको, बकपांति हर्षित होकर मेघको, और कामनी स्त्रियां अपने प्रीतम पतिको प्राप्त होती हैं ॥ २५ ॥ इस समय बनोंमें मोर नाच रहेहैं, कदमके पेडोंकी डालियोंमें पुष्प खिल रहेहैं, वृषभ गाइयोंके ऊपर कामातुर हो रहेहैं, और मही अनाज और वनसे मनोहर होगईहै ॥ २६ ॥ इस समय नदियां वही जातीहैं. मतवाले हाथी गर्ज रहेहैं, वन चमक रहेहैं प्यारीके विरहमें विरही

अब सिद्ध काम हुए ॥ २२ ॥ हे राजकुमार ! मेघगण धीर गंभीर शब्दयुक्त पर्वत व नदियोंके समीप आय २ जल वर्षायर अब थकगयेहैं॥२३॥ नीले कमलकी पखडियोंके समान श्याम रंगके मेघ सब दिशाओंको श्याम रंग मय करते हुए मद रहित हाथीकी समान शान्त वेगसे चलनें लगे ॥ २४ ॥ कुटज और अर्जुन पुष्पकी सुगन्धि वाला जल अपने गर्भमेंसे वर्षाय पवनसे उठे हुए वादल, विचरण करके अब शान्त होगयेहैं॥२५॥ हे पापरहित लक्ष्मण! मेघ मातंग मोर और झरनें इन सबका शब्द एकवारही वंद होगयाहै ॥ २६ ॥ महा मेघके समूहोंसे धुए हुए विचित्र कँगूरे पर्वतोंके समूह चन्द्रमाकी किरणोंके पडनेंसे शोभायमान होरहेहैं; ॥ २७॥इस समय शतावरीके वृक्षोंकी डालियोंमें, ताराचन्द्र और सूर्यकी प्रभामें;

दीर्घगंभीरनिर्घोषाःशैलद्रुमपुरोगमाः ॥ विसृज्यसलिलंमेघाःपरिशांतानृपात्मज॥२३॥ नीलोत्पलदलश्यामाःश्यामीकृत्वादिशोदश ॥ विमदाइवमातंगाःशांतवेगाःपयोधराः॥२४॥जलगर्भामहामेघाःकुटजार्जुनगंधिनः॥चरित्वाविरताःसौम्यवृष्टिवाताःसमुद्यताः॥२५॥ घनानांवारणानांचमयूराणांचलक्ष्मण॥नादःप्रस्रवणानांचप्रशांतःसहसानघ ॥२६॥ अभिवृष्टामहामेघैर्निर्मलाश्चित्रसानवः ॥ अनुलिप्ताइवाभांतिगिरयश्चंद्ररश्मिभिः ॥२७॥ शाखासुसप्तच्छदपादपानांप्रभासुतारार्कनिशाकराणाम् ॥ लीलासुचैवोत्तमवारणानांश्रियंविभज्याद्यशरत्प्रवृत्ता ॥ २८ ॥ संप्रत्यनेकाश्रयचित्रशोभालक्ष्मीशरत्कालगुणोपपन्ना ॥ सूर्याग्रहस्तप्रतिबोधितेषुपद्माकरेष्वभ्यधिकंविभाति ॥ २९ ॥ सप्तच्छदानांकुसुमोपगंधीषट्पादवृंदैरनुगीयमानः ॥ मत्तद्विपानांपवनानुसारीदर्पंविनेष्यन्नधिकंविभाति ॥ ३० ॥ अभ्यागतैश्चारुविशालपक्षैःस्मरप्रियैःपद्मरजोवकीर्णैः ॥ महानदीनांपुलिनोपयातैःक्रीडंतिहंसाःसहचक्रवाकैः ॥ ३१ ॥

उत्तम गजेन्द्र गणोंकी लीलामें, अपनी लक्ष्मीका भाग करके शरत्काल आ पहुँचाहै ॥ २८ ॥ इस समय शरत्कालकी गुण युक्त लक्ष्मीकी शोभानें अनेक वस्तुओंमें आश्रय लियाहै; वह लक्ष्मी सूर्य नारायणकी पहली किरणसे खिले हुए कमल फूलोंमें अधिक शोभायमान होरहीहै॥२९॥ यह शरतकाल शतावरीके फूलोंको सुगन्धि युक्त करता, भ्रमर गणोंमें ध्वनि उपजाता, पवनके पीछे २ चलता, मतवाले हाथियोंका दर्प चूर्ण करके अधिक शोभित होरहाहै ॥ ३० ॥ इस समय हंसगण, मनोहरविशाल पंखवाले, कामप्रिय, पद्मपरागसे सने, महा नदियोंके किनारों पर

अलंकृत करतेहैं ॥ ४ ॥ सन्ध्या समयकी ललाईसे और अंतभागमें श्वेतवर्ण स्निग्ध मेघरूप छिन्न वस्त्रोंनें, मानों आकाशके घाव स्थानोंमें पट्टी बाँध रक्खी है ॥ ५ ॥ मन्द पवन रूप निःश्वास युक्त सन्ध्याकी ललाई मानों चन्दन लगाये हुये है, श्वेतवर्णके मेघोंसे युक्त आकाश मानों कामातुर होगयासा जान पडता है ॥ ६ ॥ ग्रीष्मके तापसे महाकष्टित नये पानीके छिडके जानेसे, शोकसे संतापित यह पृथ्वी, सीताजीकी समान आंसू छोडती है ॥ ७ ॥ मेघके उदरसे निकले हुये, कपूर लगे जलकी समान, शीतल, और केतकीकी सुगन्धि युक्त पवन अँजलि द्वारा पान करनेंके योग्य होगया है ॥ ८ ॥ उस पर्वतपर अर्जुनके सब वृक्ष कुसुमित होगये हैं केतकीकी सुगन्धिसे सुगन्धि युक्त और सुग्रीवकी समान

संध्यारागोत्थितैस्ताम्रैरंतेष्वपिचपांडुभिः॥स्निग्धैरभ्रपटच्छेदैर्बद्धव्रणमिवांबरम्॥५॥मंदमारुतनिःश्वासंसंध्याचंदनरंजितम् ॥आपांडुजलदंभातिकामातुरमिवांबरम्॥६॥एषाधर्मपरिक्लिष्टानववारिपरिप्लुता॥सीतेवशोकसंतप्तामहीबाष्पंविमुंचति॥७॥ मेघोदरविनिर्मुक्ताःकर्पूरदलशीतलाः ॥ शक्यमंजलिभिःपातुंवाताःकेतकगंधिनः ॥८॥ एषफुल्लार्जुनःशैलःकेतकैरभिवासितः ॥ सुग्रीवइवशांतारिर्धाराभिरभिषिच्यते ॥ ९ ॥ मेघकृष्णाजिनधराधारायज्ञोपवीतिनः ॥ मारुतापूरितगुहाःप्राधीताइवपर्वताः ॥ १० ॥ कशाभिरिवहैमीभिर्विद्युद्भिरभिताडितम् ॥ अंतस्तनितनिर्घोषंसवेदनमिवांबरम् ॥ ११॥ नीलमेघाश्रिताविद्युत्स्फुरंतीप्रतिभातिमे ॥ स्फुरंतीरावणस्यांकेवैदेहीवतपस्विनी ॥ १२ ॥ इमास्तामन्मथवतांहिताःप्रतिहतादिशः ॥ अनुलिप्ताइवघनैर्नष्टग्रहनिशाकराः ॥ १३ ॥

शत्रुरहित होकर जलकी धारसे अभिषेकित होरहेहैं ॥ ९ ॥ मेघरूप चीर वल्कल धारी, धारारूप यज्ञोपवीत युक्त, गुहाके मुखमें पवन शब्द युक्त सब पर्वत, वेदाध्ययन करनेंवाले बटुक गणोंकी समान शोभायमान हो रहे हैं ॥ १० ॥ इस वर्षाकालमें आकाशस्थल बीजलीरूप सुवर्णके कोडेसे ताडित होकर हृदयमें वेदना पाय घोर शब्द कर रहाहै ॥ ११ ॥ हम विचार करते हैं कि नीलमेघकी गोदीमें बैठी हुई बिजली चमक कर रावणके अंकमें बैठी कृपा करनेंके योग्य तपस्विनी जानकीजीके समान प्रकाशित हो रही है ॥ १२ ॥ यह सब दिशायें मेघोंसे छा रही हैं; इसलिये तारागण और चन्द्रादि छिप गये हैं इसलिये इस समय यह सब दिशायें कामीगणोंको सुखकी देनेवाली होगईहैं ॥ १३ ॥

जो सारस तुल्य शब्द करनेंवाली, सारस गणोंके शब्द सुनकर आश्रममें आनंदित होती, वह इस समय किस प्रकारसे मन वहलातीहोंगी? ॥ ७ ॥ वह मृगशावक नयनी सुवर्णके पुष्प सदृश, पुष्प युक्त आसनके वृक्षोंको देखकर, हमको विनादेखे किस प्रकारसे मन मुदित करतीं होंगी ॥ ८ ॥ जो मधुर भाषण करनेंवाली श्री जानकीजी प्रथम कलहंसोंके शब्दको श्रवण कर जागतीथीं, वह सर्वांगश्रेष्ठ इस समय किस प्रकारसे आनंदको प्राप्त करती होंगी? ॥ ९ ॥ वह कमलदलकी समान आंखोवाली जानकीजी चक्रवाकोंका कलशब्द श्रवण करके किस प्रकारसे जीवन धारण करनेंको समर्थ होंगी? ॥ १० ॥ हम उन मृगनयनीके विना, सरोवर, नदियें, वापी, वन और काननमें विचरण करके कुछभी सुख प्राप्त करनेंमें

सारसारवसंनादैःसारसारावनादिनी ॥ याश्रमेरमतेबालासाद्यमेरमतेकथम् ॥ ७ ॥ पुष्पितांश्चासनान्दृष्ट्वाकांचनानिवनिर्मलान् ॥ कथंसारमतेबालापश्यंतीमामपश्यती ॥ ८ ॥ यापुराकलहंसानांकलेनकलभाषिणी ॥ बुध्यते चारुसर्वांगीसाद्यमेरमतेकथम् ॥ ९ ॥ निःस्वनंचक्रवाकानांनिशम्यसहचारिणाम् ॥ पुंडरीकविशालाक्षीकथमेषा भविष्यति ॥ १० ॥ सरांसिसरितोवापीःकाननानिवनानिच ॥ तांविनामृगशावाक्षींचरन्नाद्यसुखंलभे ॥ ११ ॥ अपितांमद्वियोगाच्चसौकुमार्याच्चभामिनीम् ॥ सुदूरंपीडयेत्कामःशरद्गुणनिरंतरः ॥ १२ ॥ एवमादिनरश्रेष्ठोविललापनृपात्मजः ॥ विहंगइवसारंगःसलिलंत्रिदशेश्वरात् ॥ १३ ॥ ततश्चंचूर्यरम्येषुफलार्थीगिरिसानुषु ॥ ददर्शपर्युपावृत्तोलक्ष्मीवाँल्लक्ष्मणोऽग्रजम् ॥ १४ ॥ सचिंतयादुःसहयापरीतंविसंज्ञमेकंविजनेमनस्वी ॥ भ्रातुर्विषादात्त्वरितोतिदीनःसमीक्ष्यसौमित्रिरुवाचदीनम् ॥ १५ ॥

समर्थ नहीं होतेहैं ॥ ११ ॥ एकतो हमारा विरह, दूसरे सुकुमारताके हेतु अपने साथ शरदके गुणोंसे नित्य प्रकृत कामदेव उनको अतिशय पीडा देता होगा ॥ १२ ॥ सारंग नामक चातक पक्षी इन्द्रजीसे जिस प्रकार कातर होकर जलकी प्रार्थना करताहै, वैसेही राजकुमार श्रीरामचंद्रजी अनेक भांतिके विलाप करनें लगे ॥ १३ ॥ फिर लक्ष्मीयुक्त लक्ष्मणजी जोकि भाईके दुःखसे दुःखी, फलोंको लानेंके लिये पर्वतोंके कँगूरों पर गयेथे, लौट आकर अपने वडे भाई साहवको देखते हुये ॥ १४ ॥ मनस्वी लक्ष्मणजी अति शीघ्रतासे दुस्सह चिन्तायुक्त ज्ञानहीन और अतिदीन

किस प्रकार आपके हाथसे मरेगा? ॥ ३६ ॥ आप अपने मानसक्षेत्रसे शोकवृक्ष जडसे उखाड डालिये और व्यवसाय बुद्धि स्थिर कीजिये, ऐसा करनेंसे आप सपरिवार रावणका संहार करनेंको समर्थ होसकेंगे ॥ ३७ ॥ हे रघुवीर ! आप वन सागर और पर्वतोंके सहित इस पृथ्वीको उलट पलट कर सकतेहैं; फिर रावणका मारना तो एक साधारण बातहै ॥ ३८ ॥ अब वर्षाकाल आगयाहै; सो इसके बीतनेंपर आप शरत्कालके आनेंकी बाट देखिये, जैसेही शरत्काल आया कि रावणको उसकी सेना, व राज्य सहित वध कर डालिये ॥ ३९ ॥ हम भस्म से ढकी हुई अग्निको आहुति देकर प्रदीप्त करनेंकी समान आपके सोते हुये वीर्यको उकसातेहैं ॥ ४० ॥ लक्ष्मणजीके शुभकारी हितकारी उन वचनोंका आदर करके सुहृद और

समुन्मूलयशोकंत्वंव्यवसायंस्थिरीकुरु॥ततःसपरिवारंतंराक्षसंहंतुमर्हसि॥३७॥ पृथिवीमपिकाकुत्स्थससागरवनाचलाम् ॥परिवर्तयितुंशक्तःकिंपुनस्तंहिरावणम्॥३८॥शरत्कालंप्रतीक्षस्वप्रावृट्कालोयमागतः॥ततःसराष्ट्रंसगणंरावणंतंवधिष्यसि॥३९॥अहंतुखलुतेवीर्यंप्रसुप्तंप्रतिबोधये॥ दीप्तैराहुतिभिःकालेभस्मच्छन्नमिवानलम् ॥४०॥ लक्ष्मणस्यहितद्वाक्यंप्रतिपूज्याहितंशुभम् ॥ राघवःसुहृदंस्निग्धमिदंवचनमब्रवीत् ॥ ४१ ॥ वाच्यंयदनुरक्तेनस्निग्धेनचहितेनच ॥ सत्यविक्रमयुक्तेनतदुक्तंलक्ष्मणत्वया ॥ ४२ ॥ एषशोकःपरित्यक्तःसर्वकार्यावसादकः ॥ विक्रमेष्वप्रतिहतंतेजःप्रोत्साहयाम्यहम् ॥ ४३ ॥ शरत्कालंप्रतीक्षिष्येस्थितोस्मिवचनेतव ॥ सुग्रीवस्यनदीनांचप्रसादमनुपालयन् ॥ ४४ ॥ उपकारेणवीरस्तुप्रतिकारेणयुज्यते ॥ अकृतज्ञोप्रतिकृतोहंतिसत्त्ववतांमनः॥ ४५ ॥

स्नेही लक्ष्मणजीसे श्रीरामचन्द्रजी बोले ॥ ४१ ॥ हे लक्ष्मण! तुमनें अनुरक्त, स्निग्ध, हितकर, और सत्यविक्रमी लोगोंकी समानही वचन यथार्थही कहे ॥ ४२ ॥ यह लो, हमनें समस्त कार्योंके विनाश करनेंवाले शोकको परित्यागकर, विक्रमके विषयमें रुके हुए तेजको उत्साहित किया ॥ ४३ ॥ हम सुग्रीव और सब नदियोंकी प्रसन्नता करते हुए (अर्थात् सुग्रीवभी बहुत दिनोंके दुःखपाये हुए विश्राम पालेंगे और नदियेंभी बरसात बीतनें पर उतर जायँगी) तुम्हारे, वचनको मान शरदकालकी बाट देखते हैं॥ ४४ ॥ वीर पुरुषोंके साथ जो कुछभी उपकार किया जाताहै; तो

शंका न करके आपका बडा भारी कार्य किया है; इसलिये हम पृथ्वी व आकाशमें जहां कहींभीहों जानकीजीको ढूंढ लावेंगे ॥ २३ ॥ देव, दानव गन्धर्व, असुर, मरुद्गण, और यक्षगण सबही रणमें रामचन्द्रजीसे भय करते हैं, फिर उनसे राक्षसगण क्यों भय नहीं करेंगे? ॥ २४ ॥ इस प्रकार के शक्ति युक्त श्रीरामचन्द्रजीनें पहलेही आपका उपकार किया है, इस लिये हे कपिराज! इस समय सब प्रकारसे आपको उनका उपकार करना उचित है ॥ २५ ॥ हे कपीन्द्र! आपकी आज्ञासे हम वानरोंके मध्यमें, किसकी गति पृथ्वी के नीचे, जलमें, अथवा आकाशमें न होगी? ॥२६॥ हे अनघ! करोडों दुर्द्धर्ष वानर आपके वशमें हैं; सो आप आज्ञा दीजिये कि कौन किस स्थानमें जाय? ॥ २७ ॥ यथाकालमें उत्तम रूपसे विरूपित हनुमा

देवदानवगंधर्वाअसुराःसमरुद्गणाः॥नचयक्षाभयंतस्यकुर्युःकिमिवराक्षसाः ॥२४॥ तदेवंशक्तियुक्तस्यपूर्वंप्रतिकृतस्त
था ॥ रामस्यार्हसिपिंगेशकर्तुंसर्वात्मनाप्रियम् ॥ २५ ॥ नाधस्तादवनौनाप्सुगतिर्नोपरिचांबरे ॥ कस्यचित्सज्ज
तेऽस्माकंकपीश्वरतवाज्ञया ॥ २६ ॥ तदाज्ञापयकःकिंतेकुतोवापिव्यवस्यतु ॥ हरयोह्यप्रधृष्यास्तेसंतिकोट्यग्रतो
नघ ॥२७॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाकालेसाधुनिरूपितम् ॥ सुग्रीवःसत्त्वसंपन्नश्चकारमतिमुत्तमाम् ॥ २८ ॥ संदिदेशातिम
तिमान्नीलंनित्यकृतोद्यमम् ॥ दिक्षुसर्वासुसर्वेषांसैन्यानामुपसंग्रहे ॥ २८ ॥ यथासेनासमग्रामेयूथपालाश्चसर्वशः ॥
समागच्छंत्यसंगेनसेनाग्र्येणतथाकुरु ॥ ३० ॥ येत्वंतपालाप्लवगाःशीघ्रगाव्यवसायिनः ॥ समानयंतुतेशीघ्रंत्वरि
ताःशासनान्मम ॥ ३१ ॥ स्वयंचानंतरंकार्यंभवानेवानुपश्यतु ॥ ३२ ॥

नजीके यह वचन सुनकर बुद्धिमान सुग्रीवजीनें उन वचनोंमें उत्तम मति की ॥ २८ ॥ उस समय मतिमान सुग्रीवजीनें नित्य हितकारी और उद्यमशील नील वीरको समस्त दिशाओंसे सेना इकट्ठी करनेंके लिये आज्ञा दी ॥ २९ ॥ सुग्रीवनें कहा कि–जिससे समस्त यूथपाल गण अपने२सेनापतियोंके सहित अपनी समस्त सेना ले यहांपर चले आवें; तुमको ऐसा यत्न करना चाहिये ॥ ३० ॥ उनमेंसे जोकि शीघ्र चलनेंवाले सब दिशाओंको जाननेंवाले और दृढ संकल्प करनेंवाले हैं; उनको तुम बहुतही शीघ्र हमारे पास भेज देना ॥ ३१ ॥ और तुम स्वयं सेनापति आदिकों

भित होरहेहैं ॥ १७ ॥ वानीर, तिमिद, बकुल, केतक, हिन्ताल, तिनिश, नीप, वेत, कृतमालक आदि वृक्ष शोभायमानहैं ॥ १८ ॥ यह नदी किनारों पर लगे हुये अनेक प्रकारके वृक्षोंसे सब जगह ऐसी शोभायमानहै जैसे वस्त्राभूषण धारण किये हुये युवास्त्री शोभा पाती हैं ॥१९॥ अनेक रत्नों करकै युक्त यह नदी शत २ पक्षियोंके शब्दसे शब्दायमान और परस्पर अनुराग करते हुये चकवा चकवियोंसे सुशोभित हो रही है ॥२०॥ फिर यह नदी हंस और सारसों के द्वारा सेवित होनेंसे अनेक प्रकारके रत्नोंसे विभूषित हो अपने रमणीक किनारोंसे मानो हँसही रही है ॥ २१ ॥ इस नदीमें किसी २ जगह नीले कमल कहीं २ लाल कमल और कहीं २ दिव्य शुक्ल वर्ण वाले कुसुदके फूलोंसे शोभा होरही है ॥ २२ ॥ यह रमणीया

वानीरैस्तिमिदैश्चैवबकुलैःकेतकैरपि ॥ हिंतालैस्तिनिशैर्नीपैर्वेतसैःकृतमालकैः ॥ १८ ॥ तीरजैःशोभिताभातिनाना रूपैस्ततस्ततः ॥ वसनाभरणोपेताप्रमदेवाभ्यलंकृता ॥१९॥ शतशःपक्षिसंघैश्चनानानादविनादिता ॥ एकैकमनुरक्तैश्चचक्रवाकैरलंकृता ॥ २० ॥ पुलिनैरतिरम्यैश्चहंससारससेविता ॥ प्रहसंत्येवभात्येषानानारत्नसमन्विता ॥ २१ ॥ क्वचिन्नीलोत्पलैश्छन्नाभातिरक्तोत्पलैःक्वचित् ॥ क्वचिदाभातिशुक्लैश्चदिव्यैःकुमुदकुड्मलैः ॥२२॥ पारिप्लवशतैर्जुष्टाबर्हिक्रौंचविनादिता ॥ रमणीयानदीसौम्यमुनिसंघनिषेविता ॥२३॥ पश्यचंदनवृक्षाणांपंक्तीःसुरुचिराइव ॥ ककुभानांचदृश्यंतेमनसैवोदिताःसमम् ॥ २४ ॥ अहोसुरमणीयोयंदेशःशत्रुनिषूदन ॥ दृढंरंस्यावसौमित्रेसाध्वत्रनिवसावहे ॥ २५ ॥ इतश्चनातिदूरेसाकिष्किंधाचित्रकानना ॥सुग्रीवस्यपुरीरम्याभविष्यतिनृपात्मज ॥२६॥ गीतवादित्रनिर्घोषःश्रूयतेजयतांवर ॥ नदतांवानराणांचमृदंगाडंबरैःसह ॥ २७ ॥

सौम्यदर्शन नदी शत २ जल पक्षी मोर और क्रौंचोंके कलरवसे शब्दायमान होकर मुनि गणोंसे सेवित होतीहै ॥ २३ ॥ देखो यह स्थलमें चंदन के पुष्पोंकी लंगार और दशो दिशा मानो सब हमारे मनकेअनुसारही उदित होकर शोभा पारही हैं ॥ २४ ॥अहो लक्ष्मण! यह क्या परम रमणीय स्थानहै हे परवीरघाती! आओ हम इस स्थानमें परम सुखसे वास करें ॥ २५ ॥ हे राजकुमार!सुग्रीवजीकी मनको रमण करनेंवाली पुरी चित्र विचित्र काननवाली किष्किन्धा यहांसें निकटही वसतीहै॥२६॥हे विजयिश्रेष्ठ ! यह सुनो शब्द करनें वाले वानरोंकी मृदंग ध्वनिके

वानरपतिको ॥ ७ ॥ समझाय बुझाय प्रसन्न कर सत्य युक्त साधक साम, धर्म, अर्थ व नीतियुक्त प्रेम प्रीति सम्पन्न विश्वास निश्चय किये वचन ॥ ८ ॥ सुग्रीवजीके निकट जाकर हनुमानजी बोले कि आपने राज्य यश और कुलसे चली आई हुई विपुल राज्यलक्ष्मी प्राप्त कीहै ॥ ९ ॥ इस समय मित्र गणोंका शेष कार्य साधन करनेंके कर्त्तव्यका यत्न करना आपको उचितहै । जो काल जाननेवाला पुरुष मित्रलोगोंको सदाही साधुताके भावसे वर्त्तता है ॥ १० ॥ उसका राज्य कीर्ति और प्रताप वृद्धिको प्राप्त होताहै । जिसका खजाना, सेना और इन्द्रियादि युक्त देह और दंड मित्रोंके सहित समान हैं वह पुरुष बडे राज्यको भोगता है ॥ ११ ॥ इस कारण अच्छे

हितंतथ्यंचपथ्यंचसामधर्मार्थनीतिमत् ॥ प्रणयप्रीतिसंयुक्तंविश्वासकृतनिश्चयम् ॥ ८ ॥ हरीश्वरमुपागम्यहनूमान्वाक्यमब्रवीत् ॥ राज्यंप्राप्तंयशश्चैवकौलीश्रीरभिवर्धिता ॥ ९ ॥ मित्राणांसंग्रहःशेषस्तद्भवान्कर्तुमर्हति ॥ योहिमित्रेषुकालज्ञःसततंसाधुवर्तते ॥ १० ॥ तस्यराज्यंचकीर्तिश्चप्रतापश्चापिवर्धते ॥ यस्यकोशश्चदंडश्चमित्राण्यात्माचभूमिप ॥ समान्येतानिसर्वाणिसराज्यंमहदश्नुते ॥ ११ ॥ तद्भवान्वृत्तसंपन्नःस्थितःपथिनिरत्यये ॥ मित्रार्थमभिनीतार्थंयथावत्कर्तुमर्हति ॥ १२ ॥ संत्यज्यसर्वकर्माणिमित्रार्थेयोनवर्तते ॥ संभ्रमाद्विकृतोत्साहःसोऽनर्थेनावरुध्यते ॥ १३ ॥ योहिकालव्यतीतेषुमित्रकार्येषुवर्तते ॥ सकृत्वामहतोप्यर्थान्नमित्रार्थेनयुज्यते ॥ १४ ॥ तदिदंमित्रकार्यंनःकालातीतमरिंदम ॥ क्रियतांराघवस्यैतद्वैदेह्याःपरिमार्गणम् ॥ १५ ॥

चरित्र वाले आप हानि रहित मार्गमें टिक कर जानाहुआ मित्रका कार्य यथाविधिसे कीजिये ॥ १२ ॥ जो मनुष्य समस्त कार्यको परित्याग करकै मित्रके कार्यको करनेंमें यत्नवान नहींहोता वह उत्साह विहीन और चंचल चित्त होकर अनर्थकी परम्परासे रुकजाताहै॥ १३ ॥ जो समय को विताकर मित्रका कार्य करतेहैं वह चाहें बडे भारी अर्थकोभी साधन करदें परन्तु कालके वीतनें से वह विना हुयेही की समान है इसलिये समय वीतनें पर कार्य का करना न करना बराबर है ॥१४॥ इसलिये हे शत्रु वीरोंको मारनेंवाले! अब समय वीताही चाहताहै

शोभा पानें लगी ॥ ४१ ॥ अभिषेकका सब वृत्तान्त श्रीरामचंद्रजीसे कह कपि सेनापति महावीर्यवान् सुग्रीवजी, अपनी स्त्री रुमाको प्राप्त होकर सुरराजकी समान वानरराज्यपर स्थापित हुये॥ ४२॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे षड्विंशःसर्गः ॥ २६ ॥
सुग्रीवजीके अभिषेक होजानेपर श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञाले सबवानरोंके सहित जब किष्किन्धा पुरीमें चलेगये तब श्रीरामचंद्रजी अपने भ्राताके सहित प्रस्रवण पर्वत पर चले गये ॥ १ ॥ यह पर्वत शार्दूल मृग गणोंके शब्दसे युक्त और भयंकर गर्जन करने वाले सिंहोंके झुन्डोंसे भरपूर अनेक प्रकारकी झाडी लता और वृक्षोंसे परिपूर्ण ॥ २ ॥ रीछ, वानर, गोपुच्छ और बिलावादि करके सेवित मेघ

निवेद्यरामायतदामहात्मनेमहाभिषेकंकपिवाहिनीपतिः ॥ रुमांचभार्यामुपलभ्यवीर्यवानवापराज्यंत्रिदशाधिपो यथा ॥ ४२ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेषड्विंशःसर्गः ॥ २६ ॥ ७५ ॥ अभिषिक्ते तुसुग्रीवेप्रविष्टेवानरेगुहाम्॥ आजगामसहभ्रात्रारामःप्रस्रवणंगिरिम् ॥ १ ॥ शार्दूलमृगसंघुष्टंसिंहैर्भीमरवैर्वृतम् ॥ नानागुल्मलतागूढंबहुपादपसंकुलम् ॥२ ॥ ऋक्षवानरगोपुच्छैर्मार्जारैश्चनिषेवितम् ॥ मेघराशिनिभंशैलंनित्यंशुचिकरं शिवम्॥ ३ ॥तस्यशैलस्यशिखरेमहतीमायतांगुहाम् ॥ प्रत्यगृह्णतवासार्थंरामःसौमित्रिणासह ॥४ ॥कृत्वाचसमयंरामः सुग्रीवेणसहानघः॥कालयुक्तंमहद्वाक्यमुवाचरघुनंदनः ॥ ५ ॥ विनीतंभ्रातरंभ्रातालक्ष्मणंलक्ष्मिवर्धनम् ॥ इयंगिरिगुहारम्याविशालायुक्तमारुता ॥ ६ ॥अस्यांवत्स्यामसौमित्रेवर्षरात्रमरिंदम॥गिरिशृंगमिदरम्यमुत्तमंपार्थिवात्मज ॥७॥

राशि तुल्य दृष्टि आनें वाला पवित्र करनेंवाला कल्याण कर और शोभायमान था ॥ ३ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें लक्ष्मणजीके सहित उस पर्वतके शिखरपर येक बडी लम्बी चौडी गुफा अपने वास करनेंके लिये स्वीकारकी ॥ ४ ॥ विमलात्मा रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी सुग्रीवसें वर्षाभर इस पर्वतपर रहनेंका नियमकर कालोचित महा वचन ॥ ५ ॥ विनीतलक्ष्मीके बढानेंवाले भ्राता लक्ष्मणजीसें बोले कि यह पर्वतकी गुफा बहुत बडी है और इसमें चारोंओरसे पवन आतीहै ॥ ६ ॥ हे शत्रुघातीलक्ष्मण! अब चौमासे भर यहीं बसेंगे हे राजकुमार! यह पर्वतका शृङ्

करके वह बडा भारी राज्य पाय अपनी स्त्रियोंके साथ विविध भांतिके सुख भोगोंमें आसक्त होरहेहैं ॥ ५७ ॥ हे लक्ष्मण! परन्तु हमारी प्यारी हरी गईहैं; और हमारा बडाभारी राज्यभी छूट गया, सो जलसे कटते हुए नदीके किनारेकी समान इस समय हम कष्टितहैं ॥ ५८ ॥ हमारा शोक अति बडाहै, वर्षा अतिशय दुर्गमहै; रावण महाशत्रुहै; यह सबही हमको बडे अपार ज्ञात होतेहैं ॥ ५९ ॥ इस वर्षाहीके कारण शत्रुपर चढाई नहीं की जाती; क्योंकि मार्ग सब अति दुर्गम हो रहेहैं इस्से सुग्रीवजीनें सीताजीके ढूंढ भालनेंके विषयमें हमसे कहाभीथा परन्तु तब हमनें उनसे कुछभी न कहा ॥ ६० ॥ और सुग्रीव अत्यन्त कष्ट पाकर अपनी स्त्रियोंसेमिलेहैं, और हमारा कार्य अत्यन्त भारी थोडे समयमें नहीं होगा, इसी

अहंतुहृतदारश्चराज्याच्चमहतश्च्युतः ॥ नदीकूलमिवक्लिन्नमवसीदामिलक्ष्मण ॥ ५८ ॥ शोकश्चममविस्तीर्णोवर्षाश्चभृशदुर्गमाः ॥ रावणश्चमहाञ्छत्रुरपारःप्रतिभातिमे ॥ ५९ ॥ अयात्रांचैवदृष्ट्वेमांमार्गांश्चभृशदुर्गमान् ॥ प्रणतेचैवसुग्रीवेनमयाकिंचिदीरितम् ॥ ६० ॥ अपिचापिपरिक्लिष्टंचिराद्दारैःसमागतम् ॥ आत्मकार्यगरीयस्त्वाद्वक्तुंनेच्छामिवानरम् ॥ ६१ ॥ स्वयमेवहिविश्रम्यज्ञात्वाकालमुपागतम् ॥ उपकारंचसुग्रीवोवेत्स्यतेनात्रसंशयः ॥ ६२ ॥ तस्मात्कालप्रतीक्षोऽहंस्थितोस्मिशुभलक्षण ॥ सुग्रीवस्यनदीनांचप्रसादमभिकांक्षयन् ॥ ६३ ॥ उपकारेणवीरोहिप्रतीकारेणयुज्यते ॥ अकृतज्ञोप्रतिकृतोहंतिसत्त्ववतांमनः ॥ ६४ ॥ अथैवमुक्तःप्रणिधायलक्ष्मणःकृताञ्जलिस्तत्प्रतिपूज्यभाषितम् ॥ उवाचरामंस्वभिरामदर्शनंप्रदर्शयन्दर्शनमात्मनःशुभम् ॥ ६५ ॥

कारण हम उनसे कुछ कहनेंकी इच्छा नहीं करते ॥ ६१ ॥ इसमें कुछ संदेह नहींहै कि सुग्रीव विश्राम करके आपही समयको आया जान उपकारका स्मरण करैगा ॥ ६२ ॥ इसलिये हे लक्ष्मण ! हम सब नदियोंकी और सुग्रीवकी प्रसन्नताको चाहते यहां पर कालकी प्रतीक्षा किये टिके हुएहैं ॥ ६३ ॥ वीर लोग उपकार करनेंवालेका अवश्यही प्रत्युपकार किया करतेहैं और जो उपकारको प्राप्त होकर उसको नहीं मानते तो वीरगणोंका मन असन्तुष्ट होजाताहै; क्योंकि कोई किसीके साथ उपकार करनेंका उत्साह नहीं करते ॥६४॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें लक्ष्मणजीसे इस प्रकार कहा; तो वह हाथ जोड उन वचनोंका आदर करते हुए अपना विश्वास उनपर प्रगट करके मनकी जाननेंवाले श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥६५॥

महा बलवान् वीर्यवान सुग्रीवजी फिर अपने भ्राताके रनवासमें गये, तब उन भीम विक्रम करनें वाले वानर श्रेष्ठ सुग्रीवजीको देख ॥ २२ ॥ सब इन्द्र तुल्य बन्दरों व सुहृदोंनें उनको राज्य पर स्थापित किया और सुवर्णकी डंडी लगा हुआ श्वेत छत्र उनके लिये ले आये ॥२३॥ और केशोंके दो शुक्ल चमर लाये, उनमेंभी सुवर्णकी डंडी लगीथीं; अनेक प्रकारके रत्न,समस्तबीज, और सब औषधियें एकत्रित कीं ॥ २४ ॥ क्षीर वाले वृक्षोंके अंकुर सब भांतिके फूल शुक्ल वस्त्र, शुक्लही उबटन ॥ २५ ॥ सुगंधि युक्त हार, स्थलकमल, दिव्य चंदन, विविध भांतिकी सुगन्धें ॥ २६ ॥ अक्षत,

भ्रातुरंतःपुरंसौम्यंप्रविवेशमहाबलः ॥ प्रविष्टंभीमविक्रांतंसुग्रीवंवानरर्षभम् ॥ २२ ॥ अभ्यषिंचंतसुहृदःसहस्राक्ष मिवामराः ॥ तस्यपांडुरमाजह्रुश्छत्रंहेमपरिष्कृतम् ॥ २३ ॥ शुक्लेचवालव्यजनेहेमदंडेयशस्करे ॥ तथारत्नानिसर्वा णिसर्वबीजौषधानिच ॥२४॥ सक्षीराणांचवृक्षाणांप्ररोहान्कुसुमानिच ॥ शुक्लानिचैववस्त्राणिश्वेतंचैवानुलेपनम् ॥२५॥ सुगंधीनिचमाल्यानिस्थलजान्यंबुजानिच ॥ चंदनानिचदिव्यानिगंधांश्चविविधान्बहून् ॥ २६ ॥ अक्षतंजातरूपंचप्रि यंगुमधुसर्पिषी ॥ दधिचर्मचवैयाघ्रंपराध्यौंचाप्युपानहौ ॥२७॥ संमालंभनमादायगोरोचनंमनःशिलाम् ॥ आजग्मु स्तत्रमुदितावराःकन्याश्चषोडश ॥ २८ ॥ ततस्तेवानरश्रेष्ठमभिषेक्तुंयथाविधि ॥ रत्नैर्वस्त्रैश्चभक्ष्यैश्चतोषयित्वाद्विजर्ष भान् ॥ २९ ॥ ततःकुशपरिस्तीर्णंसमिद्धंजातवेदसम् ॥ मंत्रपूतेनहविषाहुत्वामंत्रविदोजनाः ॥ ३० ॥ ततोहेमप्रतिष्ठा नेवरास्तरणसंवृते ॥ प्रासादशिखरेरम्येचित्रमाल्योपशोभिते ॥ ३१ ॥

सुवर्ण, प्रियङ्गु, मधु, सरसों, दही, व्याघ्रचर्म, बडे मोलकी दोनों उपानह, (जूता)॥ २७ ॥ और समालम्भन नामक अनुलेपन गोरोचन, मेनशिल; इत्यादि अभिषेककी सामग्रियें लाईं जानें लगीं फिर सुलक्षण युक्त सोलह कन्या हर्षित होकर अभिषेकके स्थानमें आईं ॥ २८ ॥फिर वानर श्रेष्ठका अभिषेक करानेंके लिये रत्न वस्त्र और भोजनसे,श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको संतोषित किया गया ॥ २९ ॥तत्पश्चात् वेदशास्त्रज्ञ जनोंनें किनारेपर कुश बिछाय प्रदीप्त अग्निमें मंत्र पढ २ कर घृतकी आहुतिदी ॥ ३० ॥ पीछे जब होम होगया तब सुवर्ण युक्त श्रेष्ठ बिछौनोंसे बिछाहुआ चित्र और मालाओंसे

फिर रहेहैं ॥ ४१ ॥ भ्रमर गण हर्षित होकर नये जलकी धारासे पुष्परसविहीन कमल फूलोंको त्याग, पुष्परस सहित कदम्बके नये पुष्पोंको
पान कर रहेहैं ॥ ४२ ॥ इस कालके समय वनमें गजेन्द्र गण मत्त, वृषभगण मुदित, सिंहगण अतिशय पराक्रम कर रहेहैं; पर्वत मनोहर हैं नृपति
गण उद्योग विहीन हैं । और इन्द्रजी मेघोंसे क्रीडा करनेमें लग रहेहैं॥४३॥महाजलकी धार वाले गगनमें फैले हुए मेघगण समस्त समुद्रोंमें शब्द
उठा रहेहैं, और नदी तडाग सरोवर वापियोंको पूर्ण करते पृथ्वीके ऊपर जल बहा रहेहैं ॥ ४४ ॥ इस कालमें अति वेग सहित वर्षाकी धार गिरतीहै
पवनभी अति वेगसे चलतीहै नदियें किनारोंको तोडती फाडती कुमार्गमें दहाडती चली जातीहैं॥४५॥मनुष्यगण जिस प्रकारसे राजाको स्नान कराते

नवांबुधाराहतकेसराणिध्रुवंपरिष्वज्यसरोरुहाणि ॥ कदंबपुष्पाणिसकेसराणिनवानिहृष्टाभ्रमराःपिबंति ॥ ४२ ॥
मत्तागजेंद्रामुदितागवेंद्रावनेषुविक्रांततरामृगेंद्राः ॥ रम्यानगेंद्राःनिभृतानरेंद्राःप्रक्रीडितोवारिधरैःसुरेंद्रः ॥ ४३ ॥ मे
घाःसमुद्भूतसमुद्रनादामहाजलौघैर्गगनावलंबाः ॥ नदीस्तटाकानिसरांसिवापीर्महींचकृत्स्नामपवाहयंति ॥ ४४ ॥
वर्षप्रवेगाविपुलाःपतंतिप्रवांतिवाताःसमुदीर्णवेगाः ॥ प्रनष्टकूलाःप्रवहंतिशीघ्रंनद्योजलंविप्रतिपन्नमार्गाः ॥ ४५ ॥
नरैर्नरेंद्राइवपर्वतेंद्राःसुरेंद्रनीतैःपवनोपनीतैः ॥ घनांबुकुंभैरभिषिच्यमानारूपंश्रियंस्वामिवदर्शयंति ॥ ४६ ॥ घनोप
गूढंगगनंनतारानभास्करोदर्शनमभ्युपैति ॥ नवैर्जलौघैर्धरणीवितृप्तातमोविलिप्तानदिशःप्रकाशाः॥४७॥महांतिकूटा
निमहीधराणांधाराविधौतान्यधिकंविभांति ॥ महाप्रमाणैर्विपुलैःप्रपातैर्मुक्ताकलापैरिवलंबमानैः ॥ ४८ ॥ शैलोपल
प्रस्खलमानवेगाःशैलोत्तमानांविपुलाःप्रपाताः ॥ गुहासुसन्नादितबर्हिणासुहाराविकीर्यंतइवावभांति ॥ ४९ ॥

हैं, वैसेही इन्द्रजीके दिये पवन करके आये मेघरूप घोडोंके द्वारा स्नान करकेपर्वत गण मानों अपना रूप और श्री दिखलातेहैं॥४६॥इस कालमें मेघोंसे
ढके हुए आकाशमें तारागण और सूर्यके दर्शन नहीं होतेहैं; धरणी नवीनजलकी धारासे तृप्त होगई सब दिशाओंमें अंधकार छा जानेके कारण उनमें
कुछभी प्रकाश विदित नहीं होता॥४७॥पर्वतोंके बडे२शिखर जलधाराके गिरनेसे धोये जाकर और महाप्रभाववाले विपुल लंबे मोती रूप झर
नोंके द्वारा अधिक शोभायमान होरहेहैं ॥ ४८ ॥ पर्वतोंके बडे २ झरनोंका पानी चटानोंपर वेग सहित वहताहुआ मोरोंके शब्दसे युक्त पर्व

हे श्रीरामचंद्रजी ! आपके प्रसादसे इन सुग्रीवजीनें बडे २ दांत वाले बल और ऐश्वर्य सम्पन्न महात्मा वानर लोगोंका यह पितामहादिकोंका राज्य प्राप्त किया ॥४॥ हे प्रभो! आपके कृपासे महात्मा लोगोकोभी दुष्प्राप्य यह राज्य इन्हैं मिला, इसलिये अब यह आपकी आज्ञा पाय अपनी सुन्दर किष्किन्धा नगरीमें प्रवेशकर ॥ ५ ॥ सब सुहृद गणोंके साथ समस्त कार्य सम्पन्न करेंगे फिर वह विविध भांतिकी सुगन्धि और औषधियोंसे विधि विधान सहित स्नान कर ॥ ६ ॥ रत्न मालादि द्वारा भली भांतिसे आपको पूजेंगे, सो इसलिये आप कृपा करके इस रमणीक गिरि गुहामें वसी किष्किन्धापुरीको चलिये ॥ ७ ॥ और स्वामी संबंध बांधकर इन सब वानरोंको हर्षित कीजिये शत्रु दमनकारी खरारी श्रीरामचंद्रजीसे जब

भवत्प्रसादात्काकुत्स्थपितृपैतामहंमहत् ॥ वानराणांसुदंष्ट्राणांसंपन्नबलशालिनाम् ॥ ४ ॥ महात्मनांसुदुष्प्रापंप्रा
प्तंराज्यमिदंप्रभो ॥ भवतासमनुज्ञातःप्रविश्यनगरंशुभम् ॥ ५ ॥ संविधास्यतिकार्याणिसर्वाणिससुहृद्गणः ॥ स्ना
तोयंविविधैर्गंधैरौषधैश्चयथाविधि ॥ ६ ॥ अर्चयिष्यतिमाल्यैश्चरत्नैश्चत्वांविशेषतः ॥ इमांगिरिगुहांरम्यामभिगंतुं
त्वमर्हसि ॥ ७ ॥ कुरुष्वस्वामिसंबंधंवानरान्संप्रहर्षय ॥ एवमुक्तोहनुमताराघवःपरवीरहा ॥ ८ ॥ प्रत्युवाचहनूमं
तंबुद्धिमान्वाक्यकोविदः ॥ चतुर्दशसमाःसौम्यग्राममंवायदिवापुरम् ॥ ९ ॥ नप्रवेक्ष्यामिहनुमन्पितुर्निर्देशपारगः ॥
सुसमृद्धांगुहांदिव्यांसुग्रीवोवानरर्षभः ॥ १० ॥ प्रविष्टोविधिवद्वीरःक्षिप्रंराज्येभिषिच्यताम् ॥ एवमुक्त्वाहनूमंतंरा
मःसुग्रीवमब्रवीत् ॥ ११ ॥ वृत्तज्ञोवृत्तसंपन्नमुदारबलविक्रमम् ॥ इममप्यंगदंवीरंयौवराज्येभिषेचय ॥ १२ ॥

हनुमानजीनें ऐसा कहा तो ॥ ८ ॥ आति बुद्धिमान वाक्य विशारद श्रीरामचंद्रजी हनुमानजीसे बोले कि हे साधो ! हम चौदह वर्षतक ग्राम या नगरमें ॥ ९ ॥ प्रवेश नहीं करेंगे, क्योंकि हमको पिताजीकी ऐसीही आज्ञाहै और हम उस आज्ञाके वशहैं । उस समृद्धि शाली दिव्य गुहामें वानर श्रेष्ठ सुग्रीव ॥ १० ॥ प्रवेश करें और तुम सब शीघ्रही विधि पूर्वक उनको राज्यपर अभिषेकित करो श्रीरामचंद्रजीनें हनुमानजीसे ऐसा कह फिर सुग्रीवसे कहा ॥ ११ ॥ कि तुम लोकाचारके जाननें वालेहो; इसलिये इन बल विक्रमशाली वीर अंगदको युवराज पदवी देदेना ॥ १२ ॥

गण ध्यान कर रहेहैं, मोरगण नाच रहेहैं और वानर गण आशायुक्तहो श्वास ले रहेहैं ॥ २७ ॥ नवीन झरनोपर हाथी, केतकी, पुष्पकी सुगन्धि सूंघकर मतवाले, हृष्ट और जल गिरनेंके शब्दसे आकुलितहो मोरगणोंके सहित शब्द करतेहैं ॥ २८ ॥ कदम्बकी डालीपर अनुरागी हुये भौरोंके झुन्ड जलकी धारा गिरनेंसे आहतहो पहले क्षणका इकट्ठा कियाहुआ गाढ पुष्परस रूप मद परित्याग किये देतेहैं ॥ २९ ॥ जामनके वृक्षकी डालियें अंगार चूर्ण समूह तुल्य अधिकरसवाले फलके समूहसे, भ्रमर गणोंसे पीजातीहुईसी प्रकाशमान होरहीहैं ॥ ३० ॥ वि

प्रहर्षिताःकेतकिपुष्पगंधमाघ्रायमत्तावननिर्झरेषु ॥ प्रपातशब्दाकुलितागजेंद्राःसार्धमयूरैःसमदानदंति ॥ २८ ॥ धारानिपातैरभिहन्यमानाःकदंबशाखासुविलंबमानाः ॥ क्षणार्जितंपुष्परसावगाढंशनैर्मदंषट्चरणास्त्यजंति ॥ २९ ॥ अंगारचूर्णोत्करसंनिकाशैःफलैःसुपर्याप्तरसैःसमृद्धैः ॥ जंबूद्रुमाणांप्रविभांतिशाखानिपीयमानाइवषट्पदौघैः ॥ ३० ॥ तडित्पताकाभिरलंकृतानामुदीर्णगंभीरमहारवाणाम् ॥ विभांतिरूपाणिबलाहकानांरणोत्सुकानामिववानराणाम् ॥ ३१ ॥ मार्गानुगःशैलवनानुसारीसंप्रस्थितोमेघरवंनिशम्य ॥ युद्धाभिकामःप्रतिनादशंकीमत्तोगजेंद्रःप्रतिसंनिवृत्तः ॥ ३२ ॥ क्वचित्प्रगीताइवषट्पदौघैःक्वचित्प्रनृत्ताइवनीलकंठैः ॥ क्वचित्प्रमत्ताइववारणेंद्रैर्विभांत्यनेकाश्रयिणोवनांताः ॥ ३३ ॥ कदंबसर्जार्जुनकंदलाढ्यावनांतभूमिर्मधुवारिपूर्णा ॥ मयूरमत्ताभिरुतप्रनृत्तैरापानभूमिप्रतिमाविभाति ॥ ३४ ॥

द्युत रूप पताकासे अलंकृत गंभीर महाशब्द युक्त मेघ गण रण करनेको तैयार हाथियोंकी समान शोभित होतेहैं ॥३१॥ पर्वत वनके चलनेवाले अपने मार्गमें टिके हुए युद्धकी कामना किये गजेन्द्रगण, मेघका गर्जना सुन, दूसरे शत्रु हाथीके गर्जनेंकी शंकाकर युद्ध करनेंके लिये लौट रहे हैं ॥ ३२ ॥ किसी २ जगह भ्रमरगण गुंजार कररहेहैं, कहीं मोर नाच रहेहैं, कहीं हाथियोंके झुन्ड मतवाले होकर शोभा पारहेहैं, इस प्रकारसे समस्त वन इन सब वस्तुओंसे प्रकाशित होतेहैं ॥ ३३ ॥ कदम्ब, सर्ज्ज, अर्ज्जुन, कन्दलयुक्त मधु समान वारिसे पूर्ण वनभूमि मदमाते मोरोंके

॥

रखकर महा दुःखित हो विलाप करनें लगी। हा वानर महाराज! हा हमारेप्यारे! ॥ ४० ॥ हा महाबाहो! हा हमारे प्रिय! तुम हमको देखो! यह सब वानरगण शोकसे पीडित हो रहे हैं, सो तुम इन सबको क्यों नहीं देखतेहो? ॥ ४१ ॥ हे मानद! यद्यपि प्राण छूट गये हैं परन्तु तौ भी मानो तुम्हारा मुख हर्षितही होरहा है और जीवितकी समान अस्त होते हुये सूर्यकी भांति जान पड़ता है ॥ ४२ ॥ हे वानर राज! यह रामरूपकाल तुमको परलोकमें ले जानेंके लिये खेंच रहा है, इन रामचन्द्रजीनें रणस्थलमें एकही बाणको चलाय, इन सब वानरियोंके सहित हमको विधवा कर दिया ॥ ४३ ॥ हे राजेन्द्र! यह समस्त वानरियें झपटकर चलना नहींजानती हैं, यह पैदलही, इतनी दूर दौडी चली आई हैं, सो क्या इनको

हामहार्हमहाबाहोहाममप्रियपश्यमाम् ॥ जनंनपश्यसीमंत्वंकस्माच्छोकाभिपीडितम् ॥ ४१ ॥ प्रहृष्टमिहतेवक्रंगतासोरपिमानद ॥ अस्तार्कसमवर्णंचदृश्यतेजीवतोयथा ॥ ४२ ॥ एषत्वांरामरूपेणकालःकर्षतिवानर ॥ येनस्मविधवाःसर्वाःकृताएकेषुणारणे ॥ ४३ ॥ इमास्तास्तवराजेंद्रवानर्योऽप्लवगास्तव ॥ पादैर्विकृष्टमध्वानमागताःकिंनबुध्यसे ॥ ४४ ॥ तवेष्टानन्नुचैवेमाभार्याश्चंद्रनिभाननाः ॥ इदानींनेक्षसेकस्मात्सुग्रीवंप्लवगेश्वर ॥ ४५ ॥ एतेहिसचिवाराजंस्तारप्रभृतयस्तव ॥ पुरवासिजनश्चायंपरिवार्यविषीदति ॥ ४६ ॥ विसर्जयैनान्सचिवान्यथापुरमरिंदम ॥ ततः क्रीडामहेसर्वावनेषुमदनोत्कटाः ॥ ४७ ॥ एवंविलपतींतारांपतिशोकपरीवृताम् ॥ उत्थापयंतिस्मतदावानर्यःशोककर्शिताः ॥ ४८ ॥ सुग्रीवेणततःसार्धंसोंगदःपितरंरुदन् ॥ चितामारोपयामासशोकेनाभिप्लुतेंद्रियः ॥ ४९ ॥

तुम नहीं देखतेहो? ॥ ४४ ॥ हे कपि श्रेष्ठ! यह सब चन्द्रवदना भार्या इष्ट चाहनें वाली हैं, सो तुम इनको और सुग्रीवको क्यों नहीं देखते हो४५॥ हे राजन्! यह तारा इत्यादि महिषी गण सचिव लोग और पुरवासी तुमको घेरे हुये विषादित होरहे हैं सो तुम इनको क्यों नहीं देखते॥४६॥ हे शत्रुनाशक! आप सब मंत्रियोंको विदा दीजिये; फिर हम तुम सब मिलकर कामसे मत्तहो यहां विहार करेंगे ॥ ४७ ॥ पतिशोकसे व्याकुल हुई तारानें जब इस प्रकारसे विलाप किया, तब शोकसे आरत हुई, और वानरियोंनें उसको उठाया ॥ ४८ ॥ फिर सुग्रीवजीके साथ अंगदजीनें रोतेर

हे लक्ष्मण! कहीं २ नदीवारिके संयोगसे उत्पन्न हुई वाफयुक्त वर्षाके आनेंसे समुत्सुक पर्वतके शृङ्गोंपर, पुष्पित कुटजवृक्ष सीताके शोकसे उत्पन्न हमको कामोद्दीपन कराते हुये टिके हैं, ॥ १४ ॥ हे लक्ष्मण! इस वर्षाकालमें धूल उडनी बंद होगई है वायु पालायुक्त हो चलता है, ग्रीष्म कालके समस्त दोष दूर हो शान्तिको प्राप्त होजातेहैं; राजाओंकी यात्रा बंद होगई और परदेशी मनुष्य अपनी प्यारीके विरहमें रहनेंसे असमर्थहो अपने २ देशको चले आतेहैं ॥ १५ ॥ इस समयमें सब चक्रवाक अपनी २ प्यारी चकवीके सहित बसनेंके लिये मानस सरोवरपर चले जाते हैं । और इस समय बराबर वर्षा होनेंके कारणसे रथादि सवारियोंका चलनाभी बंद होगया है ॥ १६ ॥ इस समयमें कहीं

क्वचिद्बाष्पाभिसंरुद्धान्वर्षागमसमुत्सुकान् ॥ कुटजान्पश्यसौमित्रेपुष्पितान्गिरिसानुषु ॥ ममशोकाभिभूतस्य कामसंदीपनान्स्थितान् ॥ १४ ॥ रजःप्रशांतंसहिमोद्यवायुर्निदाघदोषप्रसराःप्रशांताः ॥ स्थिताहियात्रावसुधाधिपानांप्रवासिनोयांतिनराःस्वदेशान् ॥ १५ ॥ संप्रस्थितामानसवासलुब्धाःप्रियान्विताःसंप्रतिचक्रवाकाः ॥ अभीक्ष्णवर्षोदकविक्षतेषुयानानिमार्गेषुनसंपतंति ॥ १६ ॥ क्वचित्प्रकाशंक्वचिदप्रकाशंनभःप्रकीर्णांबुधरंविभाति ॥ क्वचित्क्वचित्पर्वतसंनिरुद्धंरूपंयथाशांतमहार्णवस्य ॥ १७ ॥ व्यामिश्रितंसर्जकदंबपुष्पैर्नवंजलंपर्वतधातुताम्रम् ॥ मयूरकेकाभिरनुप्रयातंशैलापगाःशीघ्रतरंवहंति ॥ १८ ॥ रसाकुलंषट्पदसंनिकाशंप्रभुज्यतेजंबुफलंप्रकामम् ॥ अनेकवर्णंपवनावधूतंभूमौपतत्याम्रफलंविपक्वम् ॥ १९ ॥ विद्युत्पताकाःसबलाकमालाःशैलेंद्रकूटाकृतिसंनिकाशाः ॥ गर्जंतिमेघाःसमुदीर्णनादामत्तागजेंद्राइवसंयुगस्थाः ॥ २० ॥

प्रकाशहै कहीं अप्रकाशहै क्योंकि आकाश मंडल मेघ समूहसे छारहाहै और कहीं पर्वतोंसे संरुद्ध हो रहाहै इसलिये तरंगहीन महासमुद्रकी समान शोभायमानहै ॥ १७ ॥ साखू और कदम्बके फूलोंसे युक्त, पर्वतकी धातुओंसे मिश्रित, ताम्रवर्ण मोरोंकी बोलीसे शब्दायमान, पहाडी नदियें शीघ्रतासे वही जातीहैं ॥ १८ ॥ इस समयमें सब जीवगण रसयुक्त भ्रमरोंकी समान, अनेक जम्बूफलोंको भक्षण करतेहैं; और पवनसे, संचालित अनेक वर्णके पकेहुये आमफल पृथ्वीपर गिर रहेहैं ॥ १९ ॥ विजलीरूप पताका लगाये और वगलोंकी पंक्तियुक्त माला पहरे, शैल शिखर तुल्य

किये गयेथे, पक्षियोंके आकार वन रहेथे, ॥ २२ ॥ वह सुघटित चित्रितपैदल सिपाहियोंसे भूषितथी, सिद्ध लोगोंके विमान की समान उसमें जालिये और झड़ोखे लग रहेथे, और प्रवेश करनेंके लियें सुन्दर द्वार बनेथे उसके सबही अंग सुडौलथे; वह बडी लंबी चौडीथी; कारीगरोंनें उसको काठका बनायाथा, और शोभाके लिये उसके भीतर एक क्रीडा पर्वत भी बन रहाथा, शिल्पियोंनें उसमें अपनी अति महीन, मनोहर कारीगरी दिखाईथी॥२३॥२४॥ बहु मूल्यवान भूषण व हार और चित्र विचित्र फूलोंकेधरनेंसे वह शिविका शोभितथी, वन व कन्दरादिक सबही उसमें रचीगई थीं, रक्त चंदनके कामसे वह सब जगह सजाई गईथी ॥ २५ ॥ पद्मादि पुष्पोंके हजारों हार उसमें टंग रहेथे, और लटक रहेथे, इस्से वह

आचितांचित्रपत्तीभिःसुनिविष्टांसमंततः ॥ विमानमिवसिद्धानांजालवातायनायुताम् ॥ २३ ॥ सुनियुक्तांविशालांचसुकृतांशिल्पिभिःकृताम् ॥ दारुपर्वतकोपेतांचारुकर्मपरिष्कृताम् ॥ २४ ॥ वराभरणहारैश्चचित्रमाल्योपशोभिताम् ॥ गुहागहनसंछन्नांरक्तचंदनभूषिताम् ॥ २५ ॥ पुष्पाढ्यैःसमभिच्छन्नांपद्ममालाभिरेवच ॥ तरुणादित्यवर्णाभिर्भ्राजमानाभिरावृताम् ॥ २६ ॥ ईदृशींशिबिकांदृष्ट्वारामोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ क्षिप्रंविनीयतांवालीप्रेतकार्यंविधीयताम् ॥ २७ ॥ ततोवालिनमुद्यम्यसुग्रीवःशिबिकांतदा ॥ आरोपयतविक्रोशन्नंगदेनसहैवतु ॥ २८ ॥ आरोप्यशिबिकांचैववालिनंगतजीवितम् ॥ अलंकारैश्चविविधैर्माल्यैर्वस्त्रैश्चभूषितम् ॥ २९ ॥ आज्ञापयत्तदाराजा सुग्रीवःप्लवगेश्वरः ॥ और्ध्वदेहिकमार्यस्यक्रियतामनुकूलतः ॥ ३० ॥

प्रातःकालीन सूर्य नारायणके समान प्रकाशित हो रहीथी ॥ २६ ॥ ऐसी शिविका अवलोकन करकै श्रीरामचन्द्रजीनें लक्ष्मणजीसे कहा कि शीघ्र वालिको इस शिविका अर्थात् (पालकी) पर चढाकर इसका प्रेत कार्य व दाह कार्य कराया जाय ॥२७॥ अंगदके सहित सुग्रीवजीने रोते २ वालिको उठाय उस पालकी पर लिटाया ॥ २८ ॥ गतप्राण वालिको विविध भांतिके उत्तमहार, वस्त्र, पुष्प, और गहनोंसे सजायकर उस शिविका पर चढाया ॥ २९ ॥ वानरराज सुग्रीवजीनें यह अनुमतिकीथी कि हमारे भाई वालिकी क्रिया विधि विधानसे की जाय,उ

वेभी अवश्यही उसका प्रत्युपकार करतेहैं; इस्से निश्चयहै कि सुग्रीव हमसे उपकार पाकर प्रत्युपकार करेंगे यदि अकृतज्ञ होकर वह प्रत्युपकार न करें तो उन महात्मा गणोंका मन (जिनके साथ पहले उपकार किया गयाहो) अर्थात् मित्रादि नाशको प्राप्त होजातेहैं ॥ ४५ ॥ फिर लक्ष्मण जी श्रीरामचन्द्रजीके वचन ठीक २ समझकर अपनी शोभित बुद्धि दिखाते हुए मनोज्ञ श्रीरामचन्द्रजीसे हाथ जोड कहनें लगे ॥ ४६ ॥ हेनरेन्द्र! आपनें जो कहा यही मेराभी मतहै; वानर वर सुग्रीव शीघ्रही सहायताकरनेंमें नियुक्त होंगे आप वर्षाकालको विताते हुए शरद कालकी राह परखिये वर्षाकाल वीतनें पर शत्रुका वध करना ॥ ४७ ॥ आप कोपको नियमित किये हुये हमारे सहित एकत्र वासकर वर्षा

तदेवयुक्तंप्रणिधायलक्ष्मणःकृतांजलिस्तत्प्रतिपूज्यभाषितम् ॥ उवाचरामंस्वभिरामदर्शनंप्रदर्शयन्दर्शनमात्मनः शुभम् ॥४६ ॥ यथोक्तमेतत्तवसर्वमीप्सितंनरेंद्रकर्तानचिरात्तुवानरः ॥ शरत्प्रतीक्षःक्षमतामिमंभवान्जलप्रपातंरिपुनिग्रहेधृतः ॥४७॥नियम्यकोपंपरिशाल्यतांशरत्क्षमस्वमासांश्चतुरोमयासह॥ वसाचलेस्मिन्मृगराजसेवितेसंवर्तयन्शत्रुवधेसमर्थः ॥ ४८ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०किष्किंधाकांडेसप्तविंशःसर्गः ॥२७॥ ॥ ७॥ सतदावालिनंहत्वासुग्रीवमभिषिच्यच ॥ वसन्माल्यवतःपृष्ठेरामोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ १ ॥ अयंसकालःसंप्राप्तःसमयोऽद्यजलागमः ॥ संपश्यत्वंनभोमेघैःसंवृतंगिरिसंनिभैः ॥ २ ॥ नवमासधृतंगर्भंभास्करस्यगभस्तिभिः ॥ पीत्वारसंसमुद्राणांद्यौःप्रसूतेरसायनम् ॥ ३ ॥ शक्यमंबरमारुह्यमेघसोपानपंक्तिभिः ॥ कुटजार्जुनमालाभिरलंकर्तुंदिवाकरः ॥ ४ ॥

कालके चौमासेको विता शरद समयकी राह परखिये । आप अवश्यही शत्रुके मार डालनेंमें समर्थ हैं । इस समय आप मृगराज सेवित इस पर्वत पर वास कीजिये ॥ ४८ ॥ इ० श्री० वा० आ० कि० सप्तविंशः सर्गः ॥२७॥ तब श्रीरामचन्द्रजी वालिको मारकर सुग्रीवको राज्य दे माल्यवान पर्वतपर वसकर लक्ष्मणजीसे कहनें लगे ॥ १ ॥ यहलो वर्षाकाल आ पहुंचा देखो! पर्वतोंके समान मेघोंके समूहोंसे आकाश मण्डल ढकगया ॥२॥ स्वर्गस्थली; समुद्रका जल रूपरस, सूर्यकी किरणोंके द्वारा पीकर, कार्तिकादि नव मासतक गर्भधारण करके लोकोंका जीवन स्वरूप जलरूप रसायन छोडती है ॥ ३ ॥ सूर्यभगवान आकाशमें आरोहण करके कूटज और अर्जुन मालाकी समान मेघसोपान, श्रेणीसे उस गगन मण्डलको

सीके नियोग करनेमें ईश्वर नहींहै सब लोक पहले किये हुये कर्मोंके वशहोस्थिति कर रहेहैं ॥५॥ काल रूप ईश्वर कालको अर्थात् जन्म मरणादिरूप व्यवस्थाको उल्लंघन नहीं कर सकता भगवान् काल कभी हीन नहीं होते पहले किये हुये कर्म प्राप्तको कोई जीव देवतादिकोंको भी उल्लंघन नहीं कर सकता अर्थात् जो उत्पत्ति योगसे उत्पन्न होताहै जो नष्टवानहै सो नष्ट होजाताहै ॥ ६ ॥ काल किसीसे बंधुता नहीं रखता अर्थात् काल प्राप्त होनें पर सबही को संहार करता है कालका हेतु नहीं कालके ऊपर किसीका पराक्रम नहीं चल सकता अर्थात् महापराक्रमशाली पुरुष भी कालको प्राप्त हो मर जाताहै काल किसीसे मित्र या जातिका सम्बन्ध नहीं रखता और कालहीके कारणसे काल किसीके वशमें नहीं रहता है ॥ ७ ॥ धर्म अर्थ और काम कालके परिपाक स्वरूप होकर कालचक्रके आधीनहोरहेहैं सो इसको विवेकवान जन देखते रहते हैं * ॥ ८ ॥

नकालःकालमत्येतिनकालःपरिहीयते ॥ स्वभावंचसमासाद्यनकिंचिदतिवर्तते ॥ ६ ॥ नकालस्यास्तिबंधुत्वंनहेतुर्न पराक्रमः ॥ नमित्रज्ञातिसंबंधःकारणंनात्मनोवशः ॥ ७ ॥ किंतुकालपरीणामोद्रष्टव्यःसाधुपश्यता ॥ धर्मश्चार्थश्चकामश्चकालक्रमसमाहिताः ॥ ८ ॥ इतःस्वांप्रकृतिंवालीगतःप्राप्तःक्रियाफलम् ॥ सामदानार्थसंयोगैःपवित्रंप्लवगेश्वरः ॥ ९ स्वधर्मस्यचसंयोगाज्जितस्तेनमहात्मना ॥ स्वर्गःपरिगृहीतश्चप्राणानपरिरक्षता ॥ १० ॥ एषावैनियतिःश्रेष्ठायांगतो हरियूथपः ॥ तदलंपरितापेनप्राप्तकालमुपास्यताम् ॥ ११ ॥ वचनांतेतुरामस्यलक्ष्मणःपरवीरहा ॥ अवदत्प्रश्रितं वाक्यंसुग्रीवंगतचेतसम् ॥ १२ ॥

यह वानरराज वालि साम, दान, और अर्थके संयोगसे पवित्र क्रिया फलको प्राप्त यहांसे अपनी प्रकृतिमें चला गयाहै ॥ ९ ॥ महात्मा वालिनें कालधर्मको प्राप्त होकर स्वर्गको लाभ कियाहै, इसलिये निजधर्मसे संयोग होनेंके हेतु उसनें निःसन्देह जय पाईहै ॥ १० ॥ वानरराजवालि जिसको प्राप्त हुआहै; वह सर्वोपरि श्रेष्ठ कालहै, इसलिये संताप करनेंका कुछ प्रयोजन नहींहै ॥ इस समय कालोचित कर्तव्य कर्म तुमको करनें चाहिये ॥ ११ ॥ जब श्रीरामचंद्रजी यह वचन कहचुके तब परवीरघाती लक्ष्मणजी चेतना रहित वानरप्रभु सुग्रीवसे बोले ॥ १२ ॥

* तो पै काल अचानक टूटैगा (सावित्री सत्यवान) ॥

सहित गीत और बाजा बजानेका शब्द सुनाई आताहै ॥ २७ ॥ कपिवर सुग्रीवजी राज्य और स्त्री और महत् राज्यलक्ष्मी प्राप्त करके सुहृदगणों के सहित प्रीति और महा आनंद प्राप्त करेंगे ॥ २८ ॥ यह कहकर श्रीरामचन्द्रजी गुहा और कुंज युक्त उस प्रस्रवण पर्वतपर लक्ष्मणजीके सहित वास करनें लगे ॥ २९ ॥ उस बहुत द्रव्य संपन्न, सुखाकर पर्वतपर वासकरके श्रीरामचन्द्रजीको कुछभी प्रसन्नता न हुई ॥ ३० ॥ प्राणसेभी अधिक प्यारी उन हरी हुई भार्या सीताजीको जब याद करते, और विशेषकरके उस समय जब कि उदयाचलपर उदित होते हुये निशानाथ चंद्रमाको अवलोकन करते ॥ ३१ ॥ तब सीताजीसे उत्पन्न हुए शोकके आंसुओंसे हतबुद्धिहो श्रीरामचन्द्रजी, सुखकी सेजपर शयन करकेभी

लब्ध्वाभार्यांकपिवरःप्राप्यराज्यंसुहृद्वृतः॥ध्रुवंनंदतिसुग्रीवःसंप्राप्यमहतींश्रियम् ॥ २८ ॥ इत्युक्त्वान्यवसत्तत्रराघवः सहलक्ष्मणः ॥ बहुदृश्यदरीकुंजेतस्मिन्प्रस्रवणेगिरौ ॥ २९ ॥ सुसुखेहिबहुद्रव्येतस्मिन्हिधरणीधरे ॥ वसतस्तस्यरामस्यरतिरल्पापिनाभवत् ॥ ३० ॥ हृतांहिभार्यांस्मरतःप्राणेभ्योपिगरीयसीम् ॥ उदयाभ्युदितंदृष्ट्वाशशांकंस विशेषतः ॥ ३१ ॥ आविवेशनतंनिद्रानिशासुशयनंगतम् ॥ तत्समुत्थेनशोकेनबाष्पोपहतचेतनम् ॥ ३२ ॥ तंशोचमानंकाकुत्स्थंनित्यंशोकपरायणम् ॥ तुल्यदुःखोब्रवीद्भ्रातालक्ष्मणोनुनयंवचः ॥ ३३ ॥ अलंवीरव्यथांगत्वानत्वं शोचितुमर्हसि॥शोचतोह्यवसीदंतिसर्वार्थाविदितंहिते॥३४ ॥भवान्क्रियापरोलोकेभवान्देवपरायणः॥आस्तिकोधर्मशीलश्चव्यवसायीचराघव॥३५॥नह्यव्यवसितःशत्रुंराक्षसंविशेषतः॥समर्थस्त्वंरणेहंतुंविक्रमेजिह्मकारिणम् ॥ ३६ ॥

रात्रिमें निद्रा प्राप्त नहीं कर सकतेथे ॥ ३२ ॥ नित्य शोकपरायण श्रीरामचन्द्रजीको शोक करते देखकर उनकीही समान दुःखी लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीसे विनय सहित वचन बोले ॥ ३३ ॥ हे वीरवर! आप व्यथितहोकर शोक न कीजिये; कारण यह कि आप जानतेहैं, कि शोक करनें वाले लोग सदा कष्टही पाया करतेहैं ॥ ३४ ॥ हे रघुनंदन! आप लोकमें नित्यही कर्मके अनुष्ठान करनेंवाले, देवपरायण आस्तिक, धर्मशील, और उद्यमशालीहैं ॥ ३५ ॥ जो आप किसी प्रकारका उद्योग न करके अपना चित्त ऐसाही व्याकुल किये रहेंगे तो वह कपटाचारी राक्षस रावण संग्राममें

॥

हे राजपुत्र ! आप महात्मा होनेंसे कदाचित् विचार करें कि स्त्रीके मारनेंसे हमको स्त्रीहत्यासे उत्पन्न पाप लग सकताहै, परन्तु यह पाप आपको कदापि नहीं लग सकेगा क्योंकि इस तारा और वालिकी आत्माको आप एकही समझिये, इसलिये आपको स्त्री वध करनेंका पाप नहीं लगेगा॥३७॥ आप जानतेहैं कि शास्त्रोंके प्रयोग और वेदोंके वचनोंसे स्त्री और पुरुषकी आत्मा अलग २ नहीं हो सकतीहै इसलिये ज्ञानी लोग कहा करतेहैं कि स्त्रीके दानसे अधिक लोकमें और कोई दान नहींहै ॥३८॥ हे वीर! आप धर्मको विचार हमको संहार वालिको स्त्रीका दान कीजिये जिस्से कि आपको स्त्री दान करनेंका फल प्राप्त होगा और स्त्रीहत्याका पाप फिर किस प्रकारसे आपको लग सकताहै॥३९॥ हम अनाथाहैं ! इस्से अति

यच्चापिमन्येतभवान्महात्मास्त्रीघातदोषस्तुभवेतमह्यम् ॥ आत्मेयमस्येतिहिमांजहित्वंनस्त्रीवधःस्यान्मनुजेंद्रपुत्र ॥
॥ ३७॥ शास्त्रप्रयोगाद्विविधाच्चवेदादनन्यरूपाःपुरुषस्यदाराः ॥ दारप्रदानाद्धिनदानमन्यत्प्रदृश्यतेज्ञानवतांहिलोके
॥ ३८॥ त्वंचापिमांतस्यममप्रियस्यप्रदास्यसेधर्ममवेक्ष्यवीर ॥ अनेनदानेननलप्स्यसेत्वमधर्मयोगंममवीरघातात्
॥ ३९ ॥ आर्तामनाथामपनीयमानामेवंगतांनार्हसिमामहंतुम् ॥ अहंहिमातंगविलासगामिनाप्लवंगमानामृषभे
णधीमता ॥ ४० ॥ विनावराहोंत्तमहेममालिनाचिरंनशक्ष्यामिनरेंद्रजीवितुम् ॥ इत्येवमुक्तस्तुविभुर्महात्माता
रांसमाश्वास्यहितंबभाषे ॥ ४१ ॥ मावीरभार्येविमतिंकुरुष्वलोकोहिसर्वोविहितोविधात्रा ॥ तंचैवसर्वंसुखदुः
खयोगंलोकोब्रवीत्तेनकृतंविधात्रा ॥ ४२ ॥

पीडित अनाथ पतिके आलिंगनसे छुटाकर और जगह ले आई गई, और आरतहैं सो हमको वध न करना आपका बडा अनुचित कर्महै ! क्योंकि हम मातंग सम विलासगामी, वानरश्रेष्ठ बुद्धिमान् ॥ ४० ॥ इन्द्रकी दी हुई सुवर्णकी माला धारण किये हुये वालिके विना जीवन धारण नहीं करसकती महात्मा विभु श्रीरामचंद्रजीसे जब ताराने ऐसा कहा तब श्रीरामचंद्रजी उसको समझाते हुए हितकारी वचन बोले ॥ ४१ ॥ हे वीरभार्ये! तुम उदास न होवो यह सब लोक ब्रह्माजीके बनाये हुए हैं । यहभी जानलो सबही कहतेहैं कि समस्त सुख दुःख संयोग वियोग, यह सब ब्रह्माजीही

अति रमणीकहै ॥ ७ ॥ यह श्वेत काली और लाल वर्णोंकी शिलाओंसे शोभायमान है अनेक प्रकारके धातु द्रव्य इसमें पूर्ण हैं और नदीके मेढक भी इसमें हैं ॥ ८ ॥ विविध वृक्षोंके समूह से मनोहर विचित्र लता युक्त नाना विधि विहंगम व उत्तमोत्तम मोरोंके शब्दसे शब्दायमान॥९॥और खिली हुई मालती कुन्द, गुल्म, सिन्दुवार, शिरस, कदम्ब, अर्जुन, सर्जादि वृक्षोंसे सुशोभित हैं ॥१०॥खिले हुये कमल फूलोंसे भूपित यह जलाशय पानीके वढनेसे हमारी गुहाके धोरेही हो जायगा॥ ११॥ यह गुफा पूर्वकी ओरको नीची है इस कारण वास करनेमें वडा सुख देगी और पश्चिमकी ओर को ऊंची है सो वर्षा होनेपर पवनकी झकझोरसे इसमें जल भी नहीं आनें पावेगा ॥ १२ ॥हे लक्ष्मण! गुहाके द्वारपर नीचेमें शोभायमान लम्बी

श्वेताभिःकृष्णताम्राभिःशिलाभिरुपशोभितम् ॥ नानाधातुसमाकीर्णंनदीदर्दुरसंयुतम् ॥ ८ ॥ विविधैर्वृक्षषंडैश्चचारुचित्रलतायुतम् ॥ नानाविहगसंघुष्टंमयूरस्वरनादितम् ॥ ९ ॥मालतीकुंदगुल्मैश्चसिंदुवारैःशिरीषकैः ॥ कदंबार्जुनसर्जैश्चपुष्पितैरुपशोभितम्॥ १० ॥ इयंचनलिनीरम्याफुल्लपंकजमंडिता ॥ नातिदूरेगुहायानौभविष्यतिनृपात्मज ॥११॥ प्रागुदक्प्रवणेदेशेगुहासाधुभविष्यति ॥ पश्चाच्चैवोन्नतासौम्यविवातेयंभविष्यति ॥ १२ ॥ गुहाद्वारेचसौमित्रेशिलासमतलाशिवा ॥ कृष्णाचैवायताचैवभिन्नांजनचयोपमा॥१३ ॥ गिरिशृंगमिदंतातपश्यचोत्तरतःशुभम् ॥ भिन्नांजनचयाकारमंभोधरमिवोदितम् ॥ १४ ॥ दक्षिणस्यामपिदिशिस्थितंश्वेतमिवांवरम् ॥ कैलासशिखरप्रख्यंनानाधातुविराजितम् ॥१५॥ प्राचीनवाहिनींचैवनदींभृशमकर्दमाम्॥गुहायाःपरतःपश्यत्रिकूटेजाह्नवीमिव ॥१६॥ चंदनैस्तिलकैःसालैस्तमालैरतिमुक्तकैः ॥ पद्मकैःसरलैश्चैवअशोकैश्चैवशोभिताम् ॥ १७ ॥

चौडी अलग अंजनकी समान काली शिला पडीहै ॥ १३ ॥ हे वत्स लक्ष्मण! यह देखो उत्तरकी ओर अंजनके ढेरकी तुल्य उदित मेघकी समान सुशोभित पर्वतकी शिखर विराजमानहै॥१४॥ दक्षिणके ओर भी कैलासपर्वतके शिखरकी समान श्वेत मेघोंकी तुल्य अनेक प्रकारकी धातुओंसे रँगा हुआ यह गिरिशृंग शोभा पारहा है ॥ १५ ॥ यह देखो गुहाके अग्रभागमे चित्रकूट पर्वतके निकट वहती हुई नदीके समान कीचड रहित पूर्ववाहिनी मन्दाकिनी नामक नदी वहती है ॥ १६ ॥ इसके तटपर चंदन, तिलक, शाल, तमाल अति मुक्तक, पद्मक और अशोक वृक्ष शो

गे, और यह समस्त वानरगण आपकी इच्छामें रह कर सीताजीको खोजेंगे ॥ २२ ॥ हेमनुजेन्द्रनंदन! हमारे विद्यमान न रहनेंसेभी, यह वानर लोग आपके समस्त कार्यका साधन करेंगे।सो हम कुलनाशक जीवन धारण करनेंके अयोग्य पाप करनेंवालेको आप मरनेकी आज्ञा दीजिये ॥ २३ ॥ सुग्रीवजीनें अत्यन्त कातर होकर जब इस प्रकारसे कहा तब शत्रुओंके तपानेंवाले श्रीरामचंद्रजी अश्रुपूर्ण नेत्र होकर एक मुहूर्ततक उदासरहे ॥ २४ ॥ उस समय पृथ्वीकी समान क्षमावान्. भुवनके रक्षा करता श्रीरामचंद्रजी,शोकके मारे उत्सुक हुई अतिशय दुःखमें डूबी रोतीहुई ताराके प्रति वारंवार दृष्टि करनें लगे ॥ २५ ॥ तब मुख्य २ मंत्रियोंनें उदार बुद्धि, कपिराजपत्नी सुन्दर नेत्रवाली ताराको वालिकी देहसे लिपटे हुये पडे देख उसको

कृत्स्नंतुतेसेत्स्यतिकार्यमेतन्मय्यप्यतीतेमनुजेंद्रपुत्र ॥ कुलस्यहंतारमजीवनार्हंरामानुजानीहिकृतागसंमाम्॥२३॥ इत्येवमार्तस्यरघुप्रवीरःश्रुत्वावचोवालिजघन्यजस्य ॥ संजातबाष्पःपरवीरहंतारामोमुहूर्तंविमनाबभूव ॥ २४ ॥ तस्मिन्क्षणेऽभीक्ष्णमवेक्षमाणःक्षितिक्षमावान्भुवनस्यगोप्ता ॥ रामोरुदंतींव्यसनेनिमग्नांसमुत्सुकःसोथददर्शताराम् ॥ २५ ॥ तांचारुनेत्रांकपिसिंहनाथांपतिंसमाश्लिष्यतदाशयानाम् ॥ उत्थापयामासुरदीनसत्त्वांमंत्रिप्रधानाःकपिराजपत्नीम् ॥ २६ ॥ साविस्फुरंतीपरिरभ्यमाणाभर्तुःसमीपादपनीयमाना ॥ ददर्शरामंशरचापपाणिंस्वतेजसासूर्यमिवज्वलंतम् ॥ २७ ॥ सुसंवृतंपार्थिवलक्षणैश्चतंचारुनेत्रंमृगशावनेत्रा ॥ अदृष्टपूर्वंपुरुषप्रधानमयंसकाकुत्स्थइतिप्रजज्ञे ॥ २८ ॥ तस्येंद्रकल्पस्यदुरासदस्यमहानुभावस्यसमीपमार्या ॥ आर्तातितूर्णंव्यसनंप्रपन्नाजगामतारापरिविह्वलंती ॥ २९ ॥

पृथ्वीपरसे उठाया ॥ २६ ॥ जब मंत्रीलोग पतिके निकटसे उसको लियेआतेथे. तब तारा हाथ पैर छट पटाकर पतिके निकट जानेकी इच्छा करनें लगी; और जब मंत्री उसको श्रीरामचंद्रजीके निकट लेही आये, तब अपनें तेजसे दीप्तिमान दिवाकरकी समान श्रीरामचंद्रजीको देखा ॥ २७ ॥ मृगनयनी तारा, सुन्दरनेत्रवाले, पहले कभी न देखे हुये सर्वलक्षणसम्पन्न पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीको देखकर यह वही रघुवीर रामचंद्रजीहैं, यह जानती हुई ॥ २८ ॥ अति दुःखित तारा उन दुर्द्धर्ष इन्द्रतुल्य पराक्रमवान् महानुभव श्रीरामचंद्रजीके निकट आरत और विह्वल होकर

शोभित रमणीय प्रासादके शिखापर ॥ ३१ ॥ श्रेष्ठ सिंहासन पर पूर्वको मुख करवाय सुग्रीवजीको बैठाय विविध मंत्र पढकर सबनदी,नद, व अनेक प्रकारके तीर्थोंसे ॥ ३२ ॥ और सब समुद्रोंसे विमल जल लालाकर सबवानर श्रेष्ठोंनें स्वर्णके कलशोंमें भरदिया ॥ ३३ ॥ पवित्र वृषभके सींगोंमें सुवर्णके कलशोंमें भरकर लायर शास्त्रके दिखाये मार्गानुसार, और महर्षियोंकी बताई हुई विधिके समान ॥ ३४ ॥गय, गवाक्ष, गवय,शरभ,गन्ध मादन, मैन्द, द्विविद, हनुमान और जाम्बवान॥३५॥इन्होंनें विमल सुगन्धियुक्त जलसे सुग्रीवजीको स्नान कराया जैसे आठों वसु इन्द्रजीको स्नान करातेहैं ॥ ३६ ॥ जब इस प्रकारसे सुग्रीवजीका अभिषेक होगया तबप्रधान २ सैकडों हजारों वानर गण हर्षितहो आनन्द ध्वनि करनें

प्राङ्मुखंविधिवन्मंत्रैःस्थापयित्वावरासने ॥ नदीनदेभ्यःसंहृत्यतीर्थेभ्यश्चसमंततः ॥ ३२ ॥ आहृत्यचसमुद्रेभ्यःसर्वेभ्योवानरर्षभाः ॥ अपःकनककुंभेषुनिधायविमलंजलम् ॥ ३३ ॥ शुभैर्ऋषभशृंगैश्चकलशैश्चैवकांचनैः ॥ शास्त्रदृष्टेनविधिनामहर्षिविहितेनच ॥ ३४ ॥ गजोगवाक्षोगवयःशरभोगंधमादनः ॥ मैंदश्चद्विविदश्चैवहनूमान्जांबवांस्तथा ॥ ३५ ॥ अभ्यर्षिंचंतसुग्रीवंप्रसन्नेनसुगंधिना ॥ सलिलेनसहस्राक्षंवसवोवासवंयथा ॥ ३६ ॥ अभिषिक्तेतुसुग्रीवेसर्वेवानरपुंगवाः ॥ प्रचुक्रुशुर्महात्मानोहृष्टाःशतसहस्रशः ॥ ३७ ॥ रामस्यतुवचःकुर्वन्सुग्रीवोवानरेश्वरः ॥ अंगदंसंपरिष्वज्ययौवराज्येभ्यषेचयत् ॥३८॥अंगदेचाभिषिक्तेतुसानुक्रोशाःप्लवंगमाः ॥ साधुसाध्वितिसुग्रीवंमहात्मानोह्यपूजयन् ॥ ३९ ॥ रामंचैवमहात्मानंलक्ष्मणंचपुनःपुनः ॥ प्रीताश्चतुष्टुवुःसर्वेतादृशेतत्रवर्तिनि ॥ ४० ॥ हृष्टपुष्टजनाकीर्णापताकाध्वजशोभिता ॥ बभूवनगरीरम्याकिष्किंधागिरिगह्वरे ॥ ४१ ॥

लगे ॥ ३७ ॥ वानरराज सुग्रीवजीनें श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञा प्रतिपालनकरके अंगदजीको भेंट युवराज पदवी पर अभिषिक्त किया ॥ ३८ ॥ जब अंगदजीभी युवराजकी पदवीपर अभिषिक्त होचुके तब महात्मा वानर गण हर्षकी ध्वनि करके "बहुत अच्छा, बहुत अच्छा" शब्द कर सुग्रीवजीकी बडाई करनें लगे॥३९॥ जब सुग्रीव और अंगदजीका अभिषेक होगया;तब सब कपिगण प्रसन्न होकर महात्मा श्रीराम लक्ष्मणजीकी स्तुति करनें लगे ॥४०॥गिरि गुहामें वसीहुई किष्किन्धा पुरी हृष्टपुष्ट जनोंके चलनेंफिरनें और ध्वजा पताका ओंसे सुशोभित होकर मनोरम रूप बना

जबकि वालि युद्धमें हमको मारना प्रारंभ करता और हम जब भागकर रोया और चिल्लाया करते,तब वह हमसे समझा बुझाकर कहते कि जाओ, ऐसा कार्य फिर मत करना परंतु हमको वध नहीं करते ॥ ११ ॥ महात्मा वालिने अपनी श्रेष्ठताकी बडाई; और भायपनकी रक्षा की परंतु हमनें निःसंदेह काम क्रोध और वानरता दिखाई है ॥ १२ ॥ देवराज इन्द्रजी विश्वकर्माके पुत्र विश्वरूप ❋ ब्राह्मणको वध करके जिस प्रकार पाप को प्राप्त हुएथे हमनेंभी भ्राताका वध कर वैसेही; यह दीनताके अयोग्य; तर्जनीय, दर्शनके अयोग्य, कामनाके अयोग्य, भ्रातृवधरूप, पाप बटो

द्रुमशाखावभग्नोहंमुहूर्तंपरिनिष्टनन् ॥ सांत्वयित्वात्वनेनोक्तोनपुनःकर्तुमर्हसि ॥ ११ ॥ भ्रातृत्वमार्यभावश्चधर्मश्चानेनरक्षितः ॥ मयाक्रोधश्चकामश्चकपित्वंचप्रदर्शितम् ॥ १२ ॥ अचिंतनीयंपरिवर्जनीयमनीप्सनीयंस्वनवेक्षणीयम् ॥ प्राप्तोस्मिपाप्मानमिदंवयस्यभ्रातुर्वधात्त्वाष्ट्रवधादिवेंद्रः ॥ १३ ॥ पाप्मानमिंद्रस्यमहीजलंचवृक्षाश्चकामंजगृहुःस्त्रियश्च ॥ कोनामपाप्मानमिमंसहेतशाखामृगस्यप्रतिपत्तुमिच्छेत् ॥ १४ ॥ नार्हामिसंमानमिमंप्रजानांनयौवराज्यंकुतएवराज्यम् ॥ अधर्मयुक्तंकुलनाशयुक्तमेवंविधंराघवकर्मकृत्वा ॥ १५ ॥ पापस्यकर्तास्मिविगर्हितस्यक्षुद्रस्यलोकापकृतस्यलोके ॥ शोकोमहान्मामभिवर्ततेऽयंवृष्टेर्यथानिम्नमिवांबुवेगः ॥ १६ ॥

रा ॥ १३॥ पृथ्वी, जल, वृक्ष, और स्त्रियोंनें इन्द्रजीके उस पापको ग्रहणकियाथा, परंतु हम वानरजातिका पाप कौन ग्रहण करनेंकी इच्छा करैगा ॥ १४ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! इस प्रकारका अयुक्तकुलनाशक कर्म करके हम तो प्रजागणोंका सन्मान और युवराज्यपदवीकेभी योग्य नहीं हैं; फिर भला, राज्यप्राप्तिके योग्य हम कैसे हो सकतेहैं? ॥ १५ ॥ वृष्टिसे वर्षे हुये जलका वेग जिस प्रकार नीचे ही की ओरको गिरताहै, वैसेही अतिनीच पापकारी; लोकोंके अपकार करनेंवाला हमारा यह महान् शोक वेग हममें स्थिर हुआ है ॥ १६ ॥

❋ जब विश्वरूपको इन्द्रनें अपना पुरोहित किया, और पीछे उसे राक्षसोंसे मिला देख मारडाला तब इन्द्रको ब्रह्महत्या लगी तब ब्रह्माजीने उसे चार जगह बांटा, पृथ्वीको दिया जिस्से यह जहां तहां ऊसर होगई, वृक्षोंको एक भाग दिया जो गोंदरूप हुआ कीकडका गोंद छोड बाकी गोंद अशुद्धहैं;जलको एक भाग दिया जो काई रूपहै, एक भाग स्त्रीको दिया जो महीनेके महीने रजस्वला होकर छूनेंके अयोग्य होती हैं ।

यह तुम्हारे बडे भाई वालिका पुत्रहै विक्रम शालीभी तुम्हारी समानहै; इसलिये उदार आत्मा अंगद सब भांतिसें युवराज पदवीके योग्यहैं ॥१३॥ हे सौम्य ! जिसमें वर्षा होतीहै ऐसा जो चौमासाहै, तो उसमें जलका वर्षानें वाला यह श्रावण मास पहलाहै ! ॥ १४ ॥ इसलिये इस समय सीताजीके खोजनेंकी तैयारी नहीं होगी इसलिये तुम अपनी पुरीमें प्रवेश करो; और हम लक्ष्मणजीके सहित इस पर्वत पर वास करतेहैं ॥ १५ ॥ हे सौम्य ! यह गिरिगुहा पवनयुक्त, मनोहर, विशाल, जलयुक्त, और बहुत सारे कमल जिस नीरमें खिले हुए ऐसे जलाशयोंसे शोभितहै, इसलिये यह सब भांतिसे हमारे वास करने योग्यहै ॥ १६ ॥ जब कार्तिक मास लगै तब तुम रावणका नाश होनेंके लिये यत्न करना हे सौम्य ! इसलिये

ज्येष्ठस्यहिसुतोज्येष्ठःसदृशोविक्रमेणच ॥ अंगदोयमदीनात्मायौवराज्यस्यभाजनम् ॥ १३ ॥ पूर्वोयंवार्षिकोमा
सःश्रावणःसलिलागमः ॥ प्रवृत्ताःसौम्यचत्वारोमासावार्षिकसंज्ञिताः ॥ १४ ॥ नायमुद्योगसमयःप्रविशत्वंपुरींशु
भाम् ॥ अस्मिन्वत्स्याम्यहंसौम्यपर्वतेसहलक्ष्मणः ॥ १५ ॥ इयंगिरिगुहारम्याविशालायुक्तमारुता ॥ प्रभूतसलि
लासौम्यप्रभूतकमलोत्पला ॥ १६ ॥ कार्तिकेसमनुप्राप्तेत्वंरावणवधेयत ॥ एषनःसमयःसौम्यप्रविशत्वंस्वमालय
म् ॥ १७ ॥ अभिषिंचस्वराज्येचसुहृदःसंप्रहर्षय ॥ इतिरामाभ्यनुज्ञातःसुग्रीवोवानरर्षभः ॥ १८ ॥ प्रविवेशपुरींर
म्यांकिष्किंधांवालिपालिताम् ॥ तंवानरसहस्राणिप्रविष्टंवानरेश्वरम् ॥ १९ ॥ अभिवार्यप्रविष्टानिसर्वतःप्लवगेश्व
रम् ॥ ततःप्रकृतयःसर्वादृष्ट्वाहरिगणेश्वरम् ॥ २० ॥ प्रणम्यमूर्ध्नापतितावसुधायांसमाहिताः ॥ सुग्रीवःप्रकृतीःस
र्वाःसंभाष्योत्थाप्यवीर्यवान् ॥ २१ ॥

अब तुम अपनी पुरीको चले जाओ॥ १७ ॥ तुम राज्यपर स्थापित होकर सुहृद गणोंके हर्षको बढाओ; वानर श्रेष्ठ सुग्रीव श्रीरामचंद्रजीसे ऐसी आज्ञा पाकर ॥१८॥ वालिपालित मनोरम किष्किन्धा पुरीमें प्रवेश करते हुए वानरेन्द्र सुग्रीवजी जब कि किष्किन्धा पुरीमें प्रवेश करते हुए तब सहस्र २ वानरोंनें उनको घेरे हुए पुरीमें प्रवेश किया ॥१९॥ फिर समस्त प्रजाके लोग वानर श्रेष्ठ सुग्रीवजीको पुरीमें आये हुये देखकर ॥ २० ॥ मस्तक झुका पृथ्वीमें गिरकर प्रणाम करते हुए तब सुग्रीवजीने प्रेम सहित कुशल पूछ २ कर उन सबको उठाया ॥ २१ ॥

तुम्हारा ज्ञान स्नान किस प्रकारसे पूर्णहुआ॥२७॥देवराज इन्द्रनें संग्राममें सन्तुष्ट होकर जो सुवर्णकी माला तुमको दीथी, वह माला इस समय हम तुमको धारण किये नहीं देखती इसका कारण क्या है? ॥ २८ ॥ हे मानद! चारों ओर घूमते हुये सूर्यकी प्रभा जिस प्रकार अस्ताचलको नहीं परित्याग करती है, वैसेही प्राण निकल जानेंपरभी राजश्री आपको नहींछोडती है ॥ २९ ॥ हाय ! हमनें हितकारी जो वचन कहेथे उनको सुनकरभी आपने ग्रहण नहीं किया, इस समय युद्धस्थलमें निहत आपके सहित पुत्रवती हमभी विनाशको प्राप्त हुई ! हाय इस समय लक्ष्मी देवी हमको परित्याग कर गई ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीवाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥ अत्यन्त

याद्त्तादेवराजेनतवतुष्टेनसंयुगे॥ शातकौंभींप्रियांमालांतांतेपश्यामिनेहकिम्॥ २८ ॥राज्यश्रीर्नजहातित्वांगतासुमपिमानद ॥ सूर्यस्यावर्तमानस्यशैलराजमिवप्रभा ॥ २९ ॥ नमेवचःपथ्यमिदंत्वयाकृतंनचास्मिशक्ताहिनिवारणेतव ॥ हतासपुत्रास्मिहतेनसंयुगेसहत्वयाश्रीर्विजहातिमामपि ॥ ३० ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेत्रयोविंशःसर्गः ॥ २३ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ तामाशुवेगेनदुरासदेनत्वभिप्लुतांशोकमहार्णवेन ॥ पश्यंस्तदावाल्यनुजस्तरस्वीभ्रातुर्वधेनाप्रतिमेनतेपे ॥ १ ॥ सबाष्पपूर्णेनमुखेनपश्यन्क्षणेननिर्विण्णमनामनस्वी ॥ जगामरामस्यशनैःसमीपंभृत्यैर्वृतःसंपरिदूयमानः ॥ २ ॥ सतंसमासाद्यगृहीतचापमुदात्तमाशीविषतुल्यबाणम् ॥ यशस्विनंलक्षणलक्षितांगमवस्थितंराघवमित्युवाच ॥ ३ ॥ यथाप्रतिज्ञातमिदंनरेंद्रकृतंत्वयादृष्टफलंचकर्म ॥ ममाद्यभोगेषुनरेंद्रसूनोमनोनिवृत्तंहतजीवितेन ॥ ४ ॥

वेगशाली अति कठिनसे तरने योग्य अतुल शोक समुद्रमें डूबती हुई ताराको विलाप करते देखकर वालिके छोटे भाई सुग्रीव अपने भ्राताके मारे जानेंसे अत्यन्त सन्तापको प्राप्त हुये ॥ १ ॥ ताराको रोतीहुई निहार मनस्वी सुग्रीवजी अत्यन्त दुःखित और खिन्न मनहो सब नौकर चाकरोंके साथ धीरे २ श्रीरामचन्द्रजीके समीप चले ॥ २ ॥ सुग्रीवजी वहां पहुँचकर उग्र भुजंग समान बाण युक्त शरासनधारी शास्त्रोंमें कहे हुये लक्षणों करके सहित यशस्वी रामचन्द्रजीको बैठे हुए देखकर बोले ॥ ३ ॥ हे नरनाथ! आपनें जो प्रतिज्ञा कीथी, उसको तो

शोकके मारे व्याकुल इन्द्रिय होकर वालिको चिताके ऊपर धर दिया ॥ ४९ ॥ तिसके पीछे विकलेंद्रिय अंगदजीनें विधि पूर्वक लंबे मार्गमें
गमन करनें वाले अपने पिता वालिको अग्नि प्रदानकर उनकी प्रदक्षिणा की ॥ ५० ॥ वानरश्रेष्ठगण विधि पूर्वक वालिका सत्कार करके जल
क्रिया करनेंके लिये पवित्र और निर्मल जलवाली नदीपर गये ॥ ५१ ॥ वहां पहुँच अंगदजीको आगेकर सुग्रीव तारा इत्यादि सबही वालिके अर्थ
जल देनें लगे ॥ ५२ ॥ महा बलवान् श्रीरामचंद्रजीनें सुग्रीवहीकी समान शोककर उनकेही साथ दीन भावसे वालिका प्रेतकार्य कराया ॥ ५३ ॥
फिर अति बलवान् श्रीरामचंद्रजीके एक बाणसे निहत प्रदीप्त अग्नि तुल्य तेजस्वी वालिको अग्नि द्वारा प्रदीप्ति और दग्ध करके सुग्री

ततोऽग्निंविधिवद्दत्त्वासोपसव्यंचकारह ॥ पितरंदीर्घमध्वानंप्रस्थितंव्याकुलेंद्रियः ॥ ५० ॥ संस्कृत्यवालिनंतंतुवि
धिवत्प्लवगर्षभाः ॥ आजग्मुरुदकंकर्तुंनदींशुभजलांशिवाम् ॥ ५१ ॥ ततस्तेसहितास्तत्रअंगदंस्थाप्यचाग्रतः ॥ सुग्री
वतारासहिताःसिषिचुर्वानराजलम् ॥ ५२ ॥ सुग्रीवेणेवदीनेनदीनोभूत्वामहाबलः ॥ समानशोकःकाकुत्स्थःप्रेतकार्या
ण्यकारयत् ॥ ५३ ॥ ततोथतंवालिनमग्र्यपौरुषंप्रकाशमिक्ष्वाकुवरेषुणाहतम् ॥ प्रदीप्यदीप्ताग्निसमौजसंतदासल
क्ष्मणंराममुपेयिवान्हरिः ॥ ५४ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेपंचविंशःसर्गः२५
ततःशोकाभिसंतप्तंसुग्रीवंक्लिन्नवाससम् ॥ शाखामृगमहामात्राःपरिवार्योपतस्थिरे ॥ १ ॥ अभिगम्यमहाबाहुंराममक्लिष्टकारिणम् ॥ स्थिताःप्रांजलयःसर्वेपितामहमिवर्षयः ॥ २ ॥ ततःकांचनशैलाभस्तरुणार्कनिभाननः ॥ अब्रवी
त्प्रांजलिर्वाक्यंहनूमान्मारुतात्मजः ॥ ३ ॥

वजी श्रीराम लक्ष्मणके निकट आये ॥ ५४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे पंचविंशः सर्गः ॥ २५ ॥
वालिकी दाह क्रियाकर शोककी आगसे संतापित हुए उदास मन सुग्रीवजी जब रामचंद्रजीके निकट आये, तब बडे २ वानर चारोंओरसे
उनको घेरकर खडे हुए ॥ १ ॥ सब वानर लोग महाबाहु सरलतासे कर्म करनें वाले श्रीरामचंद्रजीके निकट, ब्रह्माजीके समीपवर्ती ऋषियोंकी
समान हाथ जोडे खडे रहे ॥ २ ॥ फिर तरुण सूर्यकी समान लाल मुख वाले सुवर्णके पर्वतकी तुल्य पवनपुत्र हनुमानजी हाथ जोडकर बोले॥३॥

हमारा हृदय अत्यन्त कठिन और लोहेका बना हुआ है ॥ १० ॥ जो लोहेका बना हुआ न होता तो प्राणप्यारे स्वामीको मरा हुआ देखकर
अबतक शत खंड होजाता हाय हमारे प्रिय स्वामी स्वभावसेही हमकोप्रिय व सुहृद ॥ ११ ॥ संग्राम करनेमें पराक्रमवान शूर वहभी
मृत्युको प्राप्त हुये जो नारी पतिहीना है वह पुत्रवती भी होय तौभी उसे ॥१२॥ पंडित गण विधवाही कहते हैं चाहै उसको कितनाही धन धान्य
हो हे वीर! अपने ही अंगोंसे निकले रुधिरके घेरमें तुम सोते हो ❋ ॥१३॥ मानों वीरवधुओंके समान रंगवाले अपनी शय्यापरही शयन कियेहो।
हे वानरनाथ! तुम्हारे अंगोंमें धूल और रुधिर जहां तहां लग रहा है ॥१४॥इसकारण हम अपनी दोनों बाहोंसे तुमको लिपट नहीं सकतीं; इस अति
दारुण शत्रुतामें सुग्रीव कृतार्थ होगये ॥ १५ ॥ क्योंकि श्रीरामचन्द्रजीके छूटे हुये एकही बाणसे जिसका भय दूर होगया, हम उसी हृदयमें ल
भर्तारंनिहतंदृष्ट्वायन्नाद्यशतधाकृतम् ॥ सुहृच्चैवचभर्ताचप्रकृत्याचममप्रियः ॥ ११ ॥प्रहारेचपराक्रांतःशूरःपंचत्वमाग
तः॥पतिहीनातुयानारीकामंभवतुपुत्रिणी ॥१२॥ धनधान्यसमृद्धापिविधवेत्युच्यतेबुधैः॥ स्वगात्रप्रभवेवीरशेषेरुधिर
मंडले॥१३॥कृमिरागपरिस्तोमेस्वकीयेशयनेयथा॥रेणुशोणितसंवीतंगात्रंतवसमंततः॥१४॥परिरब्धुंनशक्नोमिभुजा
भ्यांप्लवगर्षभ॥कृतकृत्योद्यसुग्रीवोवैरेस्मिन्नतिदारुणे॥१५॥यस्यरामविमुक्तेनहृतमेकेषुणाभयम्॥शरेणहृदिलग्नेनगा
त्रसंस्पर्शनेतव ॥ १६ ॥ वार्यामित्वांनिरीक्षंतीत्वयिपंचत्वमागते ॥ उद्बबर्हशरंनीलस्तस्यगात्रगतंतदा ॥ १७ ॥
गिरिगह्वरसंलीनंदीप्तमाशीविषंयथा ॥ तस्यनिष्कृष्यमाणस्यबाणस्यापिबभौद्युतिः ॥ १८ ॥
गे हुये बाणके कारण तुम्हारे अंग स्पर्श नहीं कर सकतीं ॥ १६ ॥ हाय क्या कष्ट है! कि तुमारे मरनें परभी हम तुमको हृदयसे न लगा स
कें। तारा इस प्रकारसे विलाप कर रहीथी कि नीलवीरनें वालिके हृदयसे बाण निकाला ॥ १७ ॥ वह बाण इस भांति निकला जैसे गिरि गुहा

❋ जहँ पिय तहीं सबै सुख साज ॥ पिय विहीन सुरपुरको सुख सखि आवे कौने काज। पिया विना धन धाम काम किमि जर जाओ यहराज ॥ पियाबिन तिय चाहै सुख संपति परै तासु परगाज॥ विधवा होय सजावत तनुको लागत जाहि न लाज ॥ तापर दुःख पड़ैगो अतिहीजाय कहाँ सों भाज ॥ मिश्र यही कर्त्तव्य सबनको राम भजो शिरताज॥ ना हित पर मँझ धार सिन्धु बिच डूबहि सकल समाज ॥

समें किसी प्रकारका भेद न पडनें पावे॥ ३० ॥ विविध भांतिके बहुत सारेरत्नोंकी वखेर करते २ वानर गण आगे २ चलें, और उनके पीछे २ शिविका चलै ॥ ३१ ॥ हे वानर गण ! जिस प्रकारसे पृथ्वीमें राजा लोगोंकी महान धन सम्पत्ति देखी जाती है, वैसेही हमारे भाई वालिकी सत्क्रियाका निर्वाह होवै ॥३२॥ ऐसी आज्ञाको प्राप्त कर तार आदि वानर अंगदजीको आगे लेकर, जैसा सुग्रीवजीनें कहाथा वैसेही क्रिया करनेंका प्रारंभ करनें लगे, जैसे महाराजाधिराजोंकी क्रिया की जाती है॥ ३३ ॥ सब वानर गण रोते चिल्लाते पुकारते अपने परम वन्धु स्नेही मित्रके कारण चले जातेथे। तिनके पीछे वानरियें जोकि वालिके वशमें थीं चलीं ॥ ३४ ॥ जिनका प्राणपति मरगयाथा, ऐसी तारा इत्यादिक वानरी गण "वीर! वीर! प्यारे! प्या

विश्राणयंतोरत्नानिविविधानिबहूनिच ॥ अग्रतःप्लवगायांतुशिबिकातदनंतरम् ॥ ३१ ॥ राज्ञामृद्धिविशेषाहिदृश्यं तेभुवियादृशाः ॥ तादृशैरिहकुर्वंतुवानराभर्तृसत्क्रियाम् ॥ ३२ ॥ तादृशंवालिनःक्षिप्रंप्राकुर्वन्नौर्ध्वदेहिकम् ॥ अंगदं परिरभ्याशुतारप्रभृतयस्तथा ॥ ३३ ॥ क्रोशंतःप्रययुःसर्वेवानराहतबांधवाः ॥ ततःप्रणिहिताःसर्वावानर्योस्यवशानुगाः ॥ ३४ ॥ चुक्रुशुर्वीरवीरेतिभूयःक्रोशंतिताःप्रियम् ॥ ताराप्रभृतयःसर्वावानर्योहतबांधवाः ॥ ३५ ॥ अनुजग्मुश्चभर्तारंक्रोशंत्यःकरुणस्वनाः ॥ तासांरुदितशब्देनवानरीणांवनांतरे ॥ ३६ ॥ वनानिगिरयश्चैवविक्रोशंतीवसर्वतः ॥ पुलिनेगिरिनद्यास्तुविविक्तेजलसंवृते ॥ ३७ ॥चितांचक्रुःसुबहवोवानरावनचारिणः ॥ अवरोप्यततःस्कंधाच्छिबिकांवानरोत्तमाः ॥ ३८ ॥ तस्थुरेकतमाश्रित्यसर्वेशोकपरायणाः ॥ ततस्तारापतिंदृष्ट्वाशिबिकातलशायिनम् ॥३९॥ आरोप्यांकेशिरस्तस्यविललापसुदुःखिता ॥ हावानरमहाराजहानाथममवत्सल ॥ ४० ॥

रे" शब्द करके रोदन करनें लगीं ॥ ३५ ॥ वह सब करुणा भरे शब्दसेरोतेर पीछेर चलीं उन वानरियोंके रोने और चिल्लानेंके शब्दसे उस वनमें के मानों३६॥सब वन और पर्वत रोदन करनें लगे, इस प्रकारसे गमन करपर्वतके नीचे बहती हुई नदीके तीरमें कि जहांसे जल निकटहीथा ॥३७॥ ऐसे निर्जन स्थानमें वनचारी वानरोंने चिता बनाई, उन वानर श्रेष्ठोंनें अपने कन्धोंसे शिविका चिताके निकटही उतार दी ॥ ३८ ॥ और शोकके मारे व्याकुल हो सबके सब एकान्तमें खडे हो रहे, तब तारा अपने पतिको शिविका पर पडा हुआ देखकर ॥ ३९ ॥ उसका शिर अपनी गोदीमें ॥

कर भयंकराकार होगये और उसका प्राण वायु निकल गया ॥ २४ ॥फिर समस्त वानर और वानरपतिगण ऊंचे स्वरसे विलाप और परि
ताप करनें लगे ॥ २५ ॥ जब वानरनाथ वालि स्वर्गको चलागया तब किष्किन्धा नगरी और वहांकी समस्त फुलवाडियां व पर्वत शूने
होगये ॥ २६ ॥ वानरश्रेष्ठ गन्धर्वगणोंका पराजय करनेवाला वालिमहात्मा जब मारागया तब समस्त वानर गण प्रभाहीन होगये जिस महा
त्मा वालिनें गन्धर्वके साथ महायुद्ध कियाथा ॥ २७ ॥ उस गन्धर्वकानाम गोलभथा, उस महा बलवानसे पंद्रह वर्षतक विना दिन रात्रिमें विश्राम
लिये वालिने घोर युद्ध किया ॥ २८ ॥ फिर सोलहे वर्षमें वालिनें उसको माराथा, कराल डाढवाले वालिनें उस दुर्विनीत गन्धर्वको मार कर॥ २९ ॥

ततोविचुक्रुशुस्तत्रवानराहतयूथपाः ॥ परिदेवयमानास्तेसर्वेप्लवगसत्तमाः ॥ २५ ॥ किष्किंधाह्यभवच्छून्याचस्वर्गते
वानरेश्वरे ॥ उद्यानानिचशून्यानिपर्वताःकाननानिच ॥ २६ ॥ हतेप्लवगशार्दूलेनिष्प्रभावानराःकृताः ॥ येनदत्तं
महद्युद्धंगंधर्वस्यमहात्मनः ॥ २७ ॥ गोलभस्यमहाबाहोर्दशवर्षाणिपंचच ॥ नैवरात्रौनदिवसेतद्युद्धमुपशाम्य
ति ॥ २८ ॥ ततःषोडशमेवर्षेगोलभोविनिपातितः ॥ तंहत्वादुर्विनीतंतुवालीदंष्ट्राकरालवान् ॥ २९ ॥ सर्वाभयंकरो
स्माकंकथमेषनिपातितः ॥ ३० ॥ हतेतुवीरेप्लवगाधिपेतदावनेचरास्तत्रनशर्मलेभिरे ॥ वनेचराःसिंहयुतेमहावने
यथाहिगावोनिहतेगवांपतौ ॥ ३१ ॥ ततस्तुताराव्यसनार्णवप्लुतामृतस्यभर्तुर्वदनंसमीक्ष्यसा ॥ जगामभूमिंपरिरभ्य
वालिनंमहाद्रुमंछिन्नमिवाश्रितालता ॥ ३२ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०कि०द्वाविंशःसर्गः ॥ २२ ॥ ॥ ७१ ॥ ॥

हमारा सब काम महा भयसे उद्धार कियाथा। हाय! वह वालि क्यों मारागया ॥ ३० ॥ जिस प्रकार सिंहयुक्त महावनमें गोयूथपति मरजाय
तब वहांपर गायें सुख नहीं पातीं ऐसेही वानरनाथ वालिके मरजानेंसे वानरगण किसी प्रकारसे सुख न पासकें ॥ ३१ ॥
तब तारा महादुःखके समुद्रमें डूबकर अपने मृतक स्वामीका मुख निहार जैसे आश्रित लता छिन्नमहावृक्षको चिपट कर पृथ्वीमें गिरतीहै. वैसेही
वालिको लिपटाय भूमिपर गिरी ॥ ३२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

हे सुग्रीव ! तुम तारा और अंगदके साथ इस समय वालिके प्रेत कार्यकी क्रिया आरंभ कर पहले दाह कर्म निर्वाह करो॥१३॥नौकर चाकरोंको आज्ञादो कि वह वालिकी दाह क्रिया करनेके लिये सूखे बहुत सारे दिव्य, चंदनादि काष्ठ ले आवें ॥ १४ ॥ तुम इस समय दीन अंगदको समझाओ बुझाओ तुम स्वयं इस समय मूढ बुद्धि न करो, और इस समय यह पुरीअपनेही आधीन जानो ॥ १५ ॥ इस समय, माला, और विविध प्रकारके वस्त्र, घृत तेल, और गन्धादि, जिस २ वस्तुका प्रयोजनहो वह सब अंगदलावें ॥ १६ ॥ हे सचिव तार ! तुम शीघ्र जाकर शिविका ले आओ शीघ्रता करना इस समय विशेष भांतिसे गुणका कार्य जानना (अथार्तशिविका शीघ्रले आओगे तो अच्छा होगा)॥१७॥शिविकाको वहन करनेंके

कुरुत्वमस्यसुग्रीवप्रेतकार्यमनंतरम् ॥ तारांगदाभ्यांसहितोवालिनोदहनंप्रति ॥ १३ ॥ समाज्ञापयकाष्ठानिशुष्काणि चबहूनिच ॥ चंदनानिचदिव्यानिवालिसंस्कारकारणात् ॥ १४ ॥ समाश्वासयदीनंत्वमंगदंदीनचेतसम् ॥ माभूर्बालिशबुद्धिस्त्वंत्वदधीनमिदंपुरम् ॥ १५॥ अंगदस्त्वानयेन्माल्यंवस्त्राणिविविधानिच ॥ घृतंतैलमथोगंधान्यच्चात्रसमनंतरम् ॥ १६ ॥ त्वंतारशिबिकांशीघ्रमादायागच्छसंभ्रमात् ॥ त्वरागुणवतीयुक्ताह्यस्मिन्कालेविशेषतः ॥ १७॥ सज्जीभवंतुप्लवगाःशिबिकावाहनोचिताः ॥ समर्थाबलिनश्चैवनिर्हरिष्यंतिवालिनम् ॥१८॥ एवमुक्त्वाथसुग्रीवंसुमित्रानंदवर्धनः ॥ तस्थौभ्रातृसमीपस्थोलक्ष्मणःपरवीरहा ॥ १९ ॥ लक्ष्मणस्यवचःश्रुत्वातारःसंभ्रांतमानसः ॥ प्रविवेशगुहांशीघ्रंशिबिकासक्तमानसः ॥२०॥ आदायशिबिकांतारःसतुपर्यापतत्पुनः ॥ वानरैरुह्यमानांतांशूरैरुद्वहनोचितैः॥२१॥ दिव्यांभद्रासनयुतांशिबिकांस्यंदनोपमाम् ॥ पक्षिकर्मभिराचित्रांद्रुमकर्मविभूषिताम् ॥ २२ ॥

योग्य वानर गण बलवान वालिको उठानेंके लिये तैयार होवें ॥ १८ ॥ सुमित्राजीके आनंद बढानें वाले, परवीर घाती लक्ष्मणजी सुग्रीवसे यह कहकर अपने भाईके निकट खडे रहे ॥ १९ ॥ सचिव श्रेष्ठ तार, लक्ष्मणजीके यह वचन सुनकर शिविका लानेंके लिये शीघ्रतासे गुहामें प्रवेश करता हुआ॥ २० ॥ वह तार उसके उठानेंके योग्य शूर वानर गण करके उठाई हुई पालकीको लेकर फिर उस स्थानमें आया जहां श्रीरामचन्द्रजीथे ॥ २१ ॥ वह पालकी बहुतही उत्तमथी, उसमें बैठनेंके लिये अच्छेरआसन बनेथे, यह दिव्य और रथके तुल्यथी । उत्तम चित्रित काम इसमें

लक्ष्मी और आनंदित यश समस्तही परित्याग करते हैं ॥ ६॥ हे वीर! हम इस मरणावस्थामें जो कुछ कहते हैं वह दुष्कर होनेसें भी तुमको अवश्य
करना चाहिये क्योंकि ऐसे समयकी बात सब कोई मानते हैं ॥ ७ ॥ सुखके योग्य और सुखसेही पालनकर बडे हुये बुद्धिमान् बालक
अंगदको देखो कि जो रोताहुआ पृथ्वीपर पडाहै ॥ ८ ॥सो हमारे प्राणसेभी अधिक प्यारे गुणवान् इस पुत्रको अपने पुत्रकी समान
पालन करना, पहले जिस प्रकार हम इसके समस्त प्रयोजन सिद्धकरतेथे वैसेही अब तुम करते रहना ॥ ९ ॥ हे वानरेश्वर! जैसे प्रथम हम
इसके सब प्रकारसे पिता, दाता, परित्राता, रक्षक और भयमें अभय देनेवालेथे, वैसेही इस समय तुम हो, कारण कि पिता और पितृव्य समानही

अस्यांत्वहमवस्थायांवीरवक्ष्यामियद्वचः ॥ यद्यप्यसुकरंराजन्कर्तुमेवत्वमर्हसि ॥ ७ ॥ सुखार्हंसुखसंवृद्धंबालमेनम
बालिशम् ॥ बाष्पपूर्णमुखंपश्यभूमौपतितमंगदम् ॥ ८ ॥ ममप्राणैःप्रियतरंपुत्रंपुत्रमिवौरसम् ॥ मयाहीनमही
नार्थंसर्वतःपरिपालय ॥ ९ ॥ त्वमप्यस्यपितादातापरित्राताचसर्वशः ॥ भयेष्वभयदश्चैवयथाहंप्लवगेश्वर ॥ १० ॥
एषतारात्मजःश्रीमांस्त्वयातुल्यपराक्रमः ॥ रक्षसांचवधेतेषामग्रतस्तेभविष्यति ॥ ११ ॥ अनुरूपाणिकर्माणिवि
क्रम्यबलवान्रणे ॥ करिष्यत्येषतारेयस्तेजस्वीतरुणोंगदः ॥ १२ ॥ सुषेणदुहिताचेयमर्थसूक्ष्मविनिश्चये ॥ औत्पा
तिकेचविविधेसर्वतःपरिनिष्ठिता ॥ १३ ॥ यदेषासाध्वितिब्रूयात्कार्यंतन्मुक्तसंशयम्॥नहितारामतंकिंचिदन्यथापरि
वर्तते ॥ १४ ॥ राघवस्यचतेकार्यंकर्तव्यमविशंकया ॥ स्यादधर्मोह्यकरणेत्वांचहिंस्यादमानितः ॥ १५ ॥

हैं ॥ १० ॥ तुम्हारी तुल्यपराक्रमवान् यह श्रीमान् ताराकुमार अंगदराक्षसोंके वध करनेंके समय तुम्हारे आगे २ चलेगा ॥ ११ ॥ यह तेजस्वी
युवा तारापुत्र बलवान अंगद रणमें विक्रम प्रगट करके हमारीही समान समस्त कार्य करैगा ॥ १२ ॥ और सुषेणकी पुत्री तारा सूक्ष्मार्थके निर्ण
य करने, वा उत्पाती कामोंका विचार करनेंमें बडी निपुण है ॥ १३ ॥यह साध्वी जो कुछ कहै, उसको तुम संशयरहित होकर करना, देखो! इस ता
राकी सम्मति कभी अन्यथा न जाय ॥ १४ ॥ तुम निःशंकचित्त होकर श्रीरामचन्द्रजीके कार्यकी साधना करना, यदि न करोगे तो अधर्म होगा

करतेहैं ॥ ४२ ॥ इन तीनों लोकोंकी सृष्टि करके ब्रह्माजीनेंही इनकी सब विधि नियत कीहै, सो सब लोक उस विधिकेही वशमें रहतेहैं और किसी प्रकारसेभी उस विधिका उल्लंघन करनेंको समर्थ नहीं होते, जब तुम्हारा पुत्र युवराजपदवीको प्राप्त होगा, तिस्से तुम फिरभी वालिकी संयोग जनित प्रीतिको प्राप्त होगी और सुख भोग करती रहोगी ॥ ४३ ॥ विधाताने शूरलोगोंका विधानही इस प्रकारसे निर्माण कियाहै; तुम समझ लो कि वीरोंकी स्त्रियां कभी विलाप नहीं करतीं प्रभावशाली और परवीरके हनन करनेवाले महात्मा श्रीरामचंद्रजीने जब इस प्रकारसे समझाया तब सुवेश धारिणी वीरनारी तारानें विलाप करना छोड दिया॥४४॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४॥

त्रयोपिलोकाविहितंविधानंनातिक्रमंतेवशगाहितस्य॥प्रीतिंपरांप्राप्स्यसितांतथैवपुत्रश्चतेप्राप्स्यतियौवराज्यम्४३॥ धात्राविधानंविहितंतथैवनशूरपत्न्यःपरिदेवयंति ॥ आश्वासित्रातेनमहात्मनातुप्रभावयुक्तेनपरंतपेन॥ सावीरपत्नी ध्वनतासुखेनसुवेषरूपाविरराम तारा॥४४॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवा०आ०किष्किंधाकांडेचतुर्विंशःसर्गः ॥ २४ ॥

ससुग्रीवंचतारांचसांगदांसहलक्ष्मणः ॥ समानशोकःकाकुत्स्थःसांत्वयन्निदमब्रवीत् ॥ १ ॥ नशोकपरितापेनश्रेयसायुज्यतेमृतः ॥ यदत्रानंतरंकार्यंतत्समाधातुमर्हथ ॥ २ ॥ लोकवृत्तमनुष्ठेयंकृतंवोबाष्पमोक्षणम् ॥ नकालादुत्तरंकिंचितपरंकर्मउपासितुम् ॥ ३ ॥ नियतिःकारणंलोकेनियतिःकर्मसाधनम् ॥ नियतिःसर्वभूतानांनियोगेष्विह कारणम् ॥ ४ ॥ नकर्ताकस्यचित्कश्चिन्नियोगेनापिचेश्वरः ॥ स्वभावेवर्ततेलोकस्तस्यकालःपरायणम् ॥ ५ ॥

सुग्रीव,तारा,और अंगद इन समान शोक सम्पन्न उन लक्ष्मण सहित श्रीरामचंद्रजी सबको समझानेके योग्य यह वचन बोले ॥ १ ॥ जिस्से मृतक जनका भला होवे तुम सबको वही करना चाहिये इसलिये शोक और संतापसे कुछ प्रयोजन नहीं अब तुम सब वालिकी पारलौकिक क्रियाओंको करो ॥ २ ॥ लोकाचारकी रीतिको अवश्य करना चाहिये, इसलिये रो पीटकर तुम सबनें लोकरीतको पाला किन्तु काल उल्लंघन करनेके लिये,तुम्हारे किसी कर्मका साधन न होगा क्योंकि कालको उल्लंघन करनेंमें कोई समर्थ नहीं हो सकता ॥३॥ नियति अर्थात् कालही लोकके उत्पन्न करनेका कारण है कालही कर्म साधन करनेका कारणहै और कालही सब प्राणियोंके नियोग करनेंमें कारण है ॥४॥ कोईभी किसीका कर्त्ता नहींहै कोईभी कि

जिनवानरेन्द्रके जीवन समयमें शत२सहस्र २अर्बुद २ वानर इनकी आशा बांधकर जीवन धारण करतेथे. यह वही वानरश्रेष्ठ इस समय कालकवल में पतित होतेहैं ॥ ६ ॥ जब कि यह नीतिशास्त्र द्वारा राजकार्य देखकरसाम, दाम, क्षमादि परायण होकर धर्मजितोंके मार्गको प्राप्त हुये, तुम फिर इनके लिये शोक क्यों करतीहो? ॥ ७ ॥ हे निन्दारहितचरितवाली! समस्त वानर गण तुम्हारे पुत्र अंगद और वानर पतिका समस्त राज्य, तुम्हारेही वशमें होगा, इसमें कुछभी संदेह नहींहै ॥ ८ ॥ इसलियेइन शोकसे संतापित अंगदजीको और सुग्रीवजीको कुछ आज्ञा दीजिये; तुम करके प्रेरितहो यह अंगद यहांका राज्य करें ॥ ९ ॥ यहअंगद पुत्र तुम्हारा विद्यमानहै इसीलिये तुम शोक न करो और

यस्मिन्हरिसहस्राणिशतानिनियुतानिच ॥ वर्तयंतिकृताशानिसोयंदिष्टांतमागतः ॥ ६ ॥ यदयंन्यायदृष्टार्थः सामदानक्षमापरः ॥ गतोधर्मजितांभूमिंनैनंशोचितुमर्हसि ॥ ७ ॥ सर्वेचहरिशार्दूलाःपुत्रश्चायंतवांगदः ॥ हर्यृक्षपतिराज्यंचत्वत्सनाथमनिंदिते ॥ ८ ॥ ताविमौशोकसंतप्तौशनैःप्रेरयभामिनि ॥ त्वयापरिगृहीतोयमंगदःशास्तुमेदिनीम् ॥ ९ ॥ संततिश्चयथादृष्टाकृत्यंयच्चापिसांप्रतम् ॥ राज्ञस्तत्क्रियतांसर्वमेषकालस्यनिश्चयः ॥ १० ॥ संस्कार्यो हरिराजस्तुअंगदश्चाभिषिच्यताम् ॥ सिंहासनगतंपुत्रंपश्यंतीशांतिमेष्यसि ॥ ११ ॥ सातस्यवचनंश्रुत्वाभर्तृव्यसनपीडिता ॥ अब्रवीदुत्तरंताराहनूमंतमवस्थितम् ॥ १२ ॥ अंगदप्रतिरूपाणांपुत्राणामेकतःशतम् ॥ हतस्याप्यस्यवीरस्यगात्रसंश्लेषणंपरम् ॥ १३ ॥

वालिकी समस्त क्रिया इन अंगदको करनी चाहिये, क्योंकि इस समय इन सब कर्मोंका करनाहीं ठीक २ होगा ॥ १० ॥ वानरराज वालिका अग्निसंस्कार करके अंगदका राज्याभिषेक कीजिये इसमें कुछ संदेह नहीं है. कि जब आप अपने पुत्रको सिंहासन पर बैठे देखेंगी तब अवश्यही शान्ति प्राप्त करेंगी ॥ ११ ॥ हनुमानजीके यहवचन सुनकर स्वामीके मरणसे अति दुःखित तारा वहां खडे हुये हनुमानजीसे बोली ॥ १२ ॥ अंगदकी समान शतपुत्रोंसे अधिक इन प्राण दिये वीरश्रेष्ठ हमारे स्वामीका शरीर स्पर्श करना निःसंदेह हमारे लिये

शीघ्र जा पहुंची ॥२९॥शोकके मारे चंचल स्वभावसम्पन्न मनस्विनी तारा शुद्धभावयुक्त, रणस्थलमें उत्कर्ष कर्म करनें वाले श्रीरामचंद्रजीके समीप कहनें लगी ॥ ३० ॥ आप दुर्द्धर्ष, आपके गुण किसीके प्रमाण करनेंके योग्यनहीं, इन्द्रियोंको वशमें रखनेंवाले; उत्तम धर्म युक्त सावधान उदार कीर्ति, पृथ्वीके तुल्य क्षमा करनेंवाले और दिव्य देह अरुणनयन ॥ ३१ ॥आपके अंग अतिशय दृढ आप महाबलवान् धनुष बाण धारण करनेंवाले दिव्य शरीरधारी लक्ष्मीयुक्त राज्य छोड अपने अंगसे उत्पन्न मंगल कर्म युक्तहो ॥३२॥ आपनें जिस बाणसे हमारे प्राण सम प्यारे पति वालिको माराहै, उसी बाणसे आप हमकोभी मार डालिये, इस बाणसे मरनेंके कारण हम उनके निकट पहुंच जांयगी, क्योंकि हमारे प्राणपति हमारे विना

तंसासमासाद्यविशुद्धसत्त्वंशोकेनसंभ्रांतशरीरभावा॥मनस्विनीवाक्यमुवाचताराराममंरणोत्कर्षणलब्धलक्ष्यम्॥३०॥
त्वमप्रमेयश्चदुरासदश्चजितेंद्रियश्चोत्तमधर्मकश्च ॥ अक्षीणकीर्तिश्चविचक्षणश्चक्षितिक्षमावान्क्षतजोपमाक्षः ॥ ३१ ॥
त्वमात्तबाणासनबाणपाणिर्महाबलःसंहननोपपन्नः ॥ मनुष्यदेहाभ्युदयंविहायदिव्येनदेहाभ्युदयेनयुक्तः ॥ ३२ ॥
येनैवबाणेनहतःप्रियोमेतेनैवबाणेनहिमांजहीहि ॥ हतागमिष्यामिसमीपमस्यनमांविनावीररमेतवाली ॥३३॥ स्वर्गे
पिपद्मामलपत्रनेत्रसमेत्यसंप्रेक्ष्यचमामपश्यन् ॥ नह्येषउच्चावचताम्रचूडाविचित्रवेषाप्सरसोभजिष्यत् ॥ ३४ ॥
स्वर्गेपिशोकंचविवर्णतांचमयाविनाप्राप्स्यतिवीरवाली॥रम्येनगेंद्रस्यतटावकाशेविदेहकन्यारहितोयथात्वम्॥३५॥
त्वंवेत्थतावद्वनिताविहीनःप्राप्नोतिदुःखंपुरुषःकुमारः ॥ तत्त्वंप्रजानन्जहिमांनवालीदुःखंममादर्शनजंभजेत ॥ ३६ ॥

दूसरी स्त्रीसे रमण नहीं करते॥ ३३ ॥ हे अमलकमलदलनेत्र ! हमारे प्राणनाथ स्वर्गमें पहुंच हमको न देखकर अनेक प्रकारके फूल मणि और मुक्ता आदिकोंसे जूडागूंथे विचित्र अप्सराओंकोभी भजना न करेंगे॥३४॥ हे वीर! आप जिस प्रकारसे जानकीके विरहमें दुःखितहो हिमालयके मनो हर निम्नदेशमेंभी रमण नहीं करते वैसेही हमारे विना वालि स्वर्गमें शोकके मारे निःसंदेह पीले पड जांयगे ॥ ३५ ॥ आप जानतेहैं कि स्त्रीके विना कुमार पुरुष दुःखको प्राप्त होताहै, सो यह जानकर आप हमको मार डालिये क्योंकि फिर वालिको हमारे न देखनेंका दुःख न मिलैगा ॥ ३६ ॥

॥ -

शोक संतापित हृदयसे वैधव्ययंत्रणाका भोग करैंगी , इसमें कुछ संदेह नहींहै ॥ १६ ॥ हे वत्स अंगद! तुम्हारे कनिष्ठ तात सुग्रीव इस समय
क्रोधसे मूर्च्छित होरहेहैं. हम नहीं कह सकतीं कि तुम कुमार उन सुग्रीवसे सुखके योग्य होकर किस प्रकारकी दुरावस्थाको भोगोगे ॥ १७ ॥
हे वत्स पुत्र! इस समय तुम अपनें धर्मवत्सल पिताको भली भांतिसे देखलो, क्योंकि इस समयसे उनका दर्शन महादुर्लभ हो जायगा॥ १८॥
हे नाथ! हे वीरश्रेष्ठ! इस समय तुम सदाके लिये परदेशको जातेहो इसलिये इस अपने पुत्रको समझाते बुझाते जाओ और हमारे प्रति कुछ आज्ञा
करके पुत्रका मस्तक सूंघिये! ॥ १९ ॥ तुम्हें मारकर श्रीरामचंद्रजीनें बडा भारी कर्म किया,वह ऐसा करके उस प्रतिज्ञासे उऋण हुये जो उन्होंनें सुग्रीव

लालितश्चांगदोवीरःसुकुमारःसुखोचितः ॥ वत्स्यतेकामवस्थांमेपितृव्येक्रोधमूर्च्छिते ॥ १७॥ कुरुष्वपितरंपुत्रसुदृष्टं
धर्मवत्सलम् ॥ दुर्लभंदर्शनंतस्यतववत्सभविष्यति ॥ १८॥ समाश्वासयपुत्रंत्वंसंदेशंसंदिशस्वमे ॥ मूर्ध्निचैनंसमाघ्रा
यप्रवासंप्रस्थितोह्यसि ॥ १९ ॥ रामेणहिमहत्कर्मकृतंत्वामभिनिघ्नता ॥ आनृण्यंतुगतंतस्यसुग्रीवस्यप्रतिश्रवे ॥२०॥
सकामोभवसुग्रीवरुमांत्वंप्रतिपत्स्यसे ॥ भुंक्ष्वराज्यमनुद्विग्नःशस्तोभ्रातारिपुस्तव ॥ २१ ॥ किंमामेवंप्रलपतींप्रि
यांत्वंनाभिभाषसे ॥ इमाःपश्यवराबह्वीर्भार्यास्तेवानरेश्वर ॥ २२ ॥ तस्याविलपितंश्रुत्वावानर्यःसर्वतश्चताः ॥
परिगृह्यांगदंदीनादुःखार्ताःप्रतिचुक्रुशुः ॥ २३ ॥ किमंगदंसांगदवीरबाहोविहाययातोसिचिरंप्रवासम् ॥ नयुक्तमेवं
गुणसंनिकृष्टंविहायपुत्रंप्रियचारुवेषम् ॥ २४ ॥

के साथ कीथी हे सुग्रीव!तुम्हारे शत्रु भ्राता अब मारे गये,इस समय तुम सफलमनोरथहो रुमाको प्राप्त करो,और उद्विग्नता छोडकर राज्य भोगो।२०॥२१
हे वानरेश्वर! हम आपकी प्रियभार्या आपके सन्मुखही रोदन कर रही हैं,सो तुम हमसे क्यों नहीं बोलते।यह देखिये तुम्हारी औरभी बहुतसारी स्त्रियां य
हां आकर विलाप कर रहीं हैं॥२२ ॥ वे वानरी ताराके इस भांति विलाप कलाप सुन और दूसरी वानरियें अंगदको ग्रहणकर दुःखित हो रोदन क
रनें लगीं ॥ २३ ॥ हे अंगदधारिन् वीरवर! इस गुण युक्त सुन्दरबाजूबंद वाले अंग प्रिय पुत्र अंगदको परित्याग करके तुम सदाके लिये विदेश

सहोदर भ्राताका मारा जानाही जिसके शरीरके अन्यान्यभाग,व लोमहैं,और सहोदर भाईके विनाशसे उत्पन्न हुआ संताप जिसके हाथ, नेत्र, शिर, और दंतहैं, वह मतवाला पापमय महाहाथी, नदीके किनारेकी समान हमको बोझसे गिराये देताहै ॥१७ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ! पीला सुवर्ण अग्निके मध्यमें तपायेजानेंसे नौसादरके द्वारा जिस प्रकार मैलको परित्याग कर देताहै.वैसेही इस असह पापके द्वारा जन्म जन्मांतरोंमें बटोरा हुआ हमारा पुण्य दूर होरहाहै ॥ १८ ॥ हे रामचंद्रजी ! अंगदजीके शोक संताप करनेंसे महा बलवान् वानरश्रेष्ठ गणोंके इसकुलका आधा भाग तो नाशको प्राप्त हुआ, और आधा भाग हमारे पास जीवितरहा, ऐसा हम विचार करतेहैं. ॥ १९ ॥ हेवीरवर ! पुत्रका होना सुलभहै, अपने सब सुजन सुलभ

सोदर्यघातापरगात्रवालःसंतापहस्ताक्षिशिरोविषाणः ॥ एनोमयोमामभिहंतिहस्तीदृप्तोनदीकूलमिवप्रवृद्धः ॥ १७ ॥
अहोबतेदंनृवराविषह्यंनिवर्ततेमेहृदिसाधुवृत्तम् ॥ अग्नौविवर्णपरितप्यमानंकिट्टंयथाराघवजातरूपम् ॥ १८ ॥ महा
बलानांहरियूथपानामिदंकुलंराघवमन्निमित्तम् ॥ अस्यांगदस्यापिचशोकतापादर्धस्थितप्राणमितीवमन्ये ॥ १९ ॥
सुतःसुलभ्यःसुजनःसुवश्यःकुतस्तुपुत्रःसदृशोंगदेन ॥ नचापिविद्येतसवीरदेशोयस्मिन्भवेत्सोदरसंनिकर्षः ॥ २० ॥
अद्यांगदोवीरवरोनजीवेज्जीवेतमातापरिपालनार्थम् ॥ विनातुपुत्रंपरितापदीनासानैवजीवेदितिनिश्चितंमे ॥ २१ ॥
सोहंप्रवेक्ष्याम्यतिदीप्तमग्निंभ्रात्राचपुत्रेणचसख्यमिच्छन् ॥ इमेविचेष्यंतिहरिप्रवीराःसीतांनिदेशेपरिवर्तमानाः ॥ २२ ॥

वशमें हो सकतेहैं, परन्तु अंगदकी समान गुणवान पुत्र कहां प्राप्त होगा?क्योंकि यह रो २कर अपने प्राणद रहेहैं और ऐसा देशभी कहीं नहीं हैं; जहांपर हम अपने उन भ्राता वालिको प्राप्त कर सकेंगे ॥२० ॥ इस समय वालिके विना हम जीवन धारण नहीं कर सकतेहैं । हां तारा यदि जीवित रहें, तो वह केवल अंगदका प्रतिपालन करनेंहीके लिये बचेंगी । परन्तु पुत्रके विना वहभी कदापि न जियेंगी, यही हमारा स्थिर निश्चयहै ॥ २१ ॥ इसलिये हम इस पापी जीवनको रखनेंकी इच्छा कदापि नहीं करते । हम अपने भ्राता वालि और अंगदजीसे मित्रताईकी इच्छा करके अग्निमें प्रवेश करें

॥

तारानें देखा ॥ २६ ॥ इन सबको लांघ रणस्थलमें गिरे अपनेंस्वामीको देखकर व्यथित और उद्विग्नहो तारा गिर पडी ॥ २७ ॥
फिर तारा सोते हुएकी समान उठकर "हा आर्यपुत्र!" ऐसा कह पतिको मृत्युके पाशसे बँधा देख रोने लगी ॥ २८ ॥ सुग्रीवजी कुररीकी समान
रोती हुई ताराको और उसके पुत्र अंगदको देख विषादके मारे महा समुद्रमें डूबगये ॥ २९ ॥ इ० श्रीम० वा० आ०कात्यायनकुमार पंडित
ज्वालाप्रसादमिश्रकृत भाषानुवादे किष्किन्धाकांडे एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥ चंद्रवदनी तारा श्रीरामचंद्रजीके धनुषसे छूटे प्राण विनाशी बाणसे
मरे हुए देख अपने पति ॥ १ ॥ वालिके निकट जाकर बाणसे हत हुए उस कुंजरकी समान गिरे हुएसे लिपट भली भांति मिली ॥ २ ॥ फिर
तानतीत्यसमासाद्यभर्तारंनिहतंरणे ॥ समीक्ष्यव्यथिताभूमौसंभ्रांतानिपपातह ॥ २७ ॥ सुप्तेवपुनरुत्थायआर्यपुत्रे
तिवादिनी ॥ रुरोदसापतिंदृष्ट्वासंवीतंमृत्युदामभिः ॥२८॥ तामवेक्ष्यतुसुग्रीवःक्रोशंतींकुररीमिव ॥ विषादमगमत्कष्टं
दृष्ट्वाचांगदमागतम् ॥ २९ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० किष्किंधाकांडेएकोनविंशःसर्गः ॥ १९ ॥ छ ॥ रामचापवि
सृष्टेनशरेणांतकरेणतम् ॥ दृष्ट्वाविनिहतंभूमौताराताराधिपानना ॥१॥ सासमासाद्यभर्तारंपर्यष्वजतभामिनी॥इषुणा
भिहतंदृष्ट्वावालिनंकुंजरोपमम् ॥ २ ॥ वानरंपर्वतेंद्राभंशोकसंतप्तमानसा ॥ तारातरुमिवोन्मूलंपर्यदेवयतातुरा ॥ ३ ॥
रणेदारुणविक्रांतप्रवीरप्लवतांवर ॥ किमिदानींपुरोभागामद्यत्वंनाभिभाषसे ॥ ४ ॥ उत्तिष्ठहरिशार्दूलभजस्वशय
नोत्तमम् ॥ नैवंविधाःशेरतेहिभूमौनृपतिसत्तमाः ॥ ५ ॥ अतीवखलुतेकांतावसुधावसुधाधिप ॥ गतासुरपितांगात्रै
र्मांविहायनिषेवसे ॥ ६ ॥ व्यक्तमद्यत्वयावीरधर्मतःसंप्रवर्तता ॥ किष्किंधेवपुरीरम्यास्वर्गमार्गेविनिर्मिता ॥ ७ ॥
पर्वतकी समान दीप्तिमान पडे हुए वृक्षकीनांई वालिको देखकर शोक और संतप्त हृदयसे विलाप करने लगी ॥ ३ ॥ हे दारुणविक्रम! वानर
श्रेष्ठ, वीरवर! इस समय तुम अत्यन्त अपराधिनी हमसे क्यों नहीं बोलते हो? ॥ ४ ॥ हे वानरश्रेष्ठ! उठकर उत्तम सेजपर शयन करो. नृपश्रेष्ठ
इस प्रकार पृथ्वीके ऊपर शयन नहीं करतेहैं ॥ ५ ॥ हे वसुधादिप! यह पृथ्वी तुमको अत्यन्त प्यारीहै. क्योंकि हमको छोडकरभी तुम
शरीरसे पृथ्वीको चिपटाये हुएहो ॥ ६ ॥ हे वीर! हम जान गई कि तुम यहां धर्म और शास्त्रके अनुसारही चलतेथे. इससे कोई दूसरी अति

आपने कार्यद्वारा पूरा करदिया, परन्तु अब हम इस निंदनीय जीवनके भोग करनेकी इच्छा नहीं करते ॥ ४ ॥ वालि हमारे भाईके मरजानेंसे यह तारा अंगद, और पुरवासी लोग दुःखित व संतप्त होकर रोदन कर रहेहैं इसलिये राज्यके लाभ करनेंको हमारा मन सुख शान्ति प्राप्त नहीं करता ॥ ५ ॥ क्रोधके कारण, वैर अमर्षके हेतु, धर्षणा और अपमानता होनेसे पहले भ्राताका वध हमारी मतिके अनुकूलथा। परन्तु हे इक्ष्वाकु श्रेष्ठ! वानरराज वालिके मारेजानेंसे इस समय हम अत्यन्तही तीव्रतासे संतापित होरहेहैं ॥ ६ ॥ उस पर्वतश्रेष्ठ ऋष्यमूक शैलपर वासकर, जैसे तैसे जीविका निर्वाह करना हम अच्छा समझते हैं, परन्तु भइयाको मारकर स्वर्ग प्राप्त होनाभी हमें अच्छा नहीं लगता ॥ ७ ॥ इन मतिमान्

अस्यांमहिष्यांतुभृशंरुदंत्यांपुरेऽतिविक्रोशतिदुःखतप्ते ॥ हतेनृपेसंशयितेंगदेचनरामराज्येरमतेमनोमे ॥ ५ ॥ क्रो
धादमर्षादतिविप्रधर्षाद्भ्रातुर्वधोमेनुमतःपुरस्तात् ॥ हतेत्विदानींहरियूथपेस्मिन्सुतीक्ष्णमिक्ष्वाकुवरप्रतप्स्ये ॥ ६ ॥
श्रेयोद्यमन्येममशैलमुख्येतस्मिन्हिवासश्चिरमृष्यमूके ॥ यथातथावर्तयतःस्ववृत्त्यानेमंनिहत्यत्रिदिवस्यलाभः ॥
॥ ७ ॥ नत्वांजिघांसामिचरेतियन्मामयंमहात्मामतिमानुवाच ॥ तस्यैवतद्रामवचोनुरूपमिदंवचःकर्मचमेनुरूपम्
॥ ८ ॥ भ्राताकथंनाममयागुणस्यभ्रातुर्वधंरामविरोचयेत ॥ राज्यस्यदुःखस्यचवीरसारंविचिंतयन्कामपुरस्कृतोपि
॥ ९ ॥ वधोहिमेमतोनासीत्स्वमाहात्म्यव्यतिक्रमात् ॥ ममासीद्बुद्धिदौरात्म्यात्प्राणहारीव्यतिक्रमः ॥ १० ॥

महात्मानें हमसे कहाथा, कि हम तुमको मारनेंकी इच्छा नहीं रखते हैं; तुम जहां इच्छाहो वहां चले जाओ, यह उनके वचन उन्हीं महात्माके योग्यथे।परन्तु यह हमारे वचन और भ्राताके मारनेंका कर्म करानेंवाली दुष्ट बुद्धि हमारे लायक हुई. कि हम नीचनें उनको मारही डाला॥ ८ ॥ काम भोगमें अत्यन्त शक्तिमान हमनें भ्राता होकर भी राज्य और उसके सुखका, व भ्राताके वधरूप दुःखका अंतर न विचारा! हाय! महागुण संपन्न भाईका वध किस प्रकारसे सम्मत और रुचिकर हो सकताहै॥ ९ ॥हाय! अपनें बडेपनका उल्लंघन होना विचार हमारा वध करनेंको, उन महात्माकी इच्छा नथी;परन्तु भ्राताके प्राण हरनेंवाले हम नीचनें बुद्धिकी दुष्टताके हेतु, निःसंदेह उस महात्माको उल्लंघन करदिया ॥ १० ॥

॥

वालिको देख भागते हुए वानरोंके निकट गमन करके कहने लगी ॥७॥ हे वानरगण ! तुम लोग जिस राजसिंहके आगे होकर युद्ध करतेथे. इस समय उसको त्याग चित्तमें भ्रमितहो क्यों भागे जातेहो? ॥ ८ ॥ राज्यकेलिये उन वानर राजके क्रूर भ्राता सुग्रीवजीसे भेजे जाकर श्रीरामचंद्रजीनें दूर खडेहो दूर जानें वाले बाणसे क्या उन वानरराज वालिको मार डाला?॥९॥कपिकी स्त्रीके वचन सुनकर कामरूपी वानर गण वालिकी स्त्री तारासे कालोचित प्रबोध वचन कहनें लगे ॥ १० ॥ हे तारे ! आपका शत्रु अभी जीवितहै इसलिये आप लौटजाकर अंगदकी रक्षा और पालन कीजिये का ल,राम रूप धर वालिको अपने पुरमें लिये जाताहै ॥ ११ ॥ वालिके द्वारा छोडे हुए बहुतसारे वृक्ष और शिलाओंको व्यर्थ करके श्रीरामचंद्रजीनें

वानरराजसिंहस्ययस्ययूयंपुरःसराः ॥तंविहायसुवित्रस्ताःकस्माद्द्रवतदुर्गताः॥ ८ ॥ राज्यहेतोःसचेद्भ्राताभ्रात्राक्रूरेणप्रातितः ॥ रामेणप्रसृतैर्दूरान्मार्गणैर्दूरपातिभिः ॥ ९ ॥ कपिपत्न्यावचःश्रुत्वाकपयःकामरूपिणः ॥ प्राप्तकालमविश्लिष्टमूचुर्वचनमंगनाम् ॥१०॥ जीवपुत्रेनिवर्तस्वपुत्रंरक्षस्वचांगदम् ॥ अंतकोरामरूपेणहत्वानयतिवालिनम् ॥११॥ क्षिप्रान्वृक्षान्समाविध्यविपुलाश्चतथाशिलाः ॥ वालीवज्रसमैर्बाणैर्वज्रेणेवनिपातितः ॥ १२ ॥ अभिभूतमिदंसर्वंविद्रुतंवानरंबलम् ॥ अस्मिन्प्लवगशार्दूलेहतेशक्रसमप्रभे ॥ १३ ॥ रक्ष्यतांनगरीशूरैरंगदश्चाभिषिच्यताम् ॥ पदस्थंवालिनःपुत्रंभजिष्यंतिप्लवंगमाः ॥ १४ ॥ अथवारुचितंस्थानमिहतेरुचिरानने ॥ आविशंतिचदुर्गाणिक्षिप्रमद्यैववानराः ॥ १५ ॥ अभार्याःसहभार्याश्चसंत्यत्रवनचारिणः ॥ लुब्धेभ्योविप्रलब्धेभ्यस्तेभ्योनःसुमहद्भयम् ॥ १६ ॥

इन्द्रकी समान वालिको वज्र तुल्य बाणके प्रहारसे मार डाला ॥ १२ ॥ हे वानरराजप्रिये ! जब इन्द्र समान वह वानरराज वालि मारे गये; तब यह समस्त वानर गण श्रीरामचंद्रजीके बलसे भीत होकर चारोंओरको भागतेहैं ॥ १३ ॥ इस समय आप वीर गणोंसे नगरीकी रक्षा करके अंगदकी राज्य सिंहासन पर बैठाल दीजिये, जब वह राज्यपर बैठ जायँगे तो सब वानर गण इन वालिपुत्रकी सेवा करेंगे ॥ १४ ॥ हे सुमुखी ! अथवा यह स्थान तुमको अच्छा न लगेगा तो सुग्रीवादि वानरगण शीघ्रतासे इस स्थानमें और किले आदिकमें प्रवेश करेंगे ॥ १५ ॥ जब यह लोग किलेमें चले जांयगे, तो भार्याहीन वा भार्यासहित टिके हुए जो वनचारी वानरगण इस स्थानमें टिकेहैं उनको सुग्रीवादि वानर गणोंसे महा भय प्राप्त

में टिका हुआ सर्प निकलता है, उस बाणके निकलनेके समय प्रभाभीहुई ॥ १८ ॥ जिस प्रकार अस्ताचलके ऊपर उदय हुई सूर्य नारायणकी द्युतिशोभायमान होती है। तत्पश्चात् वालिके सब आहतस्थानोंमें रुधिरका प्रवाह निकला ॥ १९ ॥ जैसे धराधरसे तांबा और गेरूसे मिलकर जल धारा निकलती है, रणकी धूलमें लोटते हुये अपने पतिको॥ २० ॥नेत्रवारिसे तारा धोती हुई, और सब अंगोंमें रक्त लगे मृतक पतिको देख॥२१॥ तारा पिंगल नेत्र निज सुत अंगदसे कहनें लगी कि हे बेटा! अंतकालके समयको प्राप्त हुये अपनें पिताकी अतिदारुण अवस्थाको देखो ॥ २२ ॥ जो शत्रुता बलात्कारसे इन्होंनें की यह उसी कर्मका फल है, हे पुत्र! प्रातःकालीन सूर्य भगवानके समान ज्वलित देह, और यमसदनको जाते हुये

अस्तमस्तकसन्नद्धरश्मेर्दिनकरादिव ॥ पेतुःक्षतजधारास्तुव्रणेभ्यस्तस्यसर्वशः ॥ १९ ॥ ताम्रगैरिकसंपृक्ताधाराइवधराधरात् ॥ अवकीर्णविमार्जंतीभर्तारंरणरेणुना ॥ २० ॥अस्रैर्नयनजैःशूरंसिषेचास्त्रसमाहतम् ॥ रुधिरोक्षितसर्वांगंदृष्ट्वाविनिहतंपतिम् ॥ २१ ॥ उवाचतारापिंगाक्षंपुत्रमंगदमंगना ॥ अवस्थांपश्चिमांपश्यपितुःपुत्रसुदारुणाम् ॥ २२ ॥ संप्रसक्तस्यवैरस्यगतोंतःपापकर्मणा ॥ बालसूर्योज्ज्वलतनुंप्रयातंयमसादनम्॥२३॥अभिवादयराजानंपितरंपुत्रमानदम् ॥ एवमुक्तःसमुत्थायजग्राहचरणौपितुः ॥ २४ ॥ भुजाभ्यांपीनवृत्ताभ्यामंगदोहमितिब्रुवन् ॥ अभिवादयमानंत्वामंगदंत्वंयथापुरा ॥ २५ ॥ दीर्घायुर्भवपुत्रेतिकिमर्थंनाभिभाषसे ॥ अहंपुत्रसहायात्वामुपासेगतचेतनम् ॥ सिंहेनपातितंसद्योगौःसवत्सेवगोवृषम् ॥ २६ ॥ इष्ट्वासंग्रामयज्ञेनरामप्रहरणांभसा ॥ तस्मिन्नवभृथेस्नातःकथंपत्न्यामयाविना ॥ २७ ॥

अपने पिताजीको भली भांति देखलो ॥ २३ ॥ हे पुत्र! तुम मान देनेवाले राजा अपने पिताको प्रणाम करो, ऐसा सुनकर व उठ पिताजीके चरणोंको ग्रहण कर ॥ २४ ॥ और गोल दोनों बाहोंसे चरण थामकर कहा, किमैं अंगदहूं जिस प्रकार पहले प्रणाम करनेंपर आप कहतेथे कि, 'दीर्घायु होवो ' यह कहकर अब आशीर्वाद क्यों नहीं देते? फिर तारानें कहाकि सिंहसे मारे हुये वृषभको देख बचा सहित गायके समान मृत्युको प्राप्त हुये तुम्हारे निकट अपने पुत्रके सहित हम बैठी हैं ॥२५॥२६॥ तुम संग्राम यज्ञ पूर्णकर चुके हो. इस समय पत्नीके विना रामके अस्त्ररूप वारि द्वारा

अपने वधकी वांछा कर ॥ ५९ ॥ भ्राता सुग्रीवके साथ द्वंद्व युद्ध करनें लगे । वानरराज वालि रामचंद्रजीसे यह कह चुप होरहा ॥ ६० ॥ तब श्रीरामचंद्रजी धर्मार्थसंयुक्त साधु समस्त वचनोंसे ब्रह्मज्ञानी वालिको समझाने लगे ॥ ६१ ॥ हे वानरश्रेष्ठ वालि ! हमनें गुप्त वध रूप अकार्य कियाहै,ऐसा तुम कभी मत समझना, और ऐसाभी न समझना कि तुमको हमने इसलिये माराहै; कि तुमनें अपने भाईकी स्त्रीको हर लियाहै,क्योंकि हम तुमसे अधिक परिशोधित बुद्धि द्वारा धर्म और शास्त्रानुसार कार्य करतेहैं, बस यही बात तुमभी समझो ॥ ६२ ॥ जो पुरुष दंडपानें योग्य

सुग्रीवेणसहभ्रात्राद्वंद्वयुद्धमुपागतः ॥ इत्युक्त्वावानरोराममंविरराम‌हरीश्वरः ॥ ६० ॥ सतमाश्वासयद्रामोवालिनंव्यक्तदर्शनम् ॥ साधुसंमतयावाचाधर्मतत्त्वार्थयुक्तया ॥ ६१ ॥ नवयंभवताचिंत्यानाप्यात्माहरिसत्तम ॥ वयंभवद्विशेषेणधर्मतःकृतनिश्चयाः ॥ ६२ ॥ दंडचेयःपातयेद्दंडंदंडचोयश्चापिदंडयते ॥ कार्यकारणसिद्धार्थावुभौतौनावसीदतः ॥ ६३ ॥ तद्भवान्दंडसंयोगादस्माद्विगतकल्मषः ॥ गतःस्वांप्रकृतिंधर्म्यांदंडदिष्टेनवर्त्मना ॥ ६४ ॥ त्यजशोकंचमोहंचभयंचहृदयेस्थितम् ॥ त्वयाविधानंहर्यग्र्यनशक्यमतिवर्तितुम् ॥ ६५ ॥ यथात्वय्यंगदोनित्यंवर्ततेवानरेश्वर ॥ तथावर्ततसुग्रीवेमयिचापिनसंशयः ॥ ६६ ॥ सतस्यवाक्यंमधुरंमहात्मनःसमाहितंधर्मपथानुवर्तितत् ॥ निशम्यरामस्यरणावमर्दिनोवचःसुयुक्तंनिजगादवानरः ॥ ६७ ॥

जनको दंडदेताहै, और दंडपानें लायक जन जिस करके दंड पाताहै उसकी कार्य सिद्धि और कारण सिद्धि विनाशको नहीं प्राप्तहोती ॥ ६३ ॥ इसलिये दंड पाकर तुम पापसे छूटगये और दंडसे बताये हुए मार्ग द्वारा तुम अपने धर्म संयुक्त मार्गको प्राप्त होगये ॥ ६४ ॥ हे वानरश्रेष्ठ ! तुम अपने हृदयमें टिका हुआ शोक और मोह दूर करदो; क्योंकि पहले किये हुए कर्मोंको तुम उल्लंघन करनेंमें समर्थ नहीं हो सकते ॥ ६५ ॥ जिस प्रकारसे अंगदमें तुम भाव रखतेथे. वही भाव हमारा और सुग्रीवका उसमें रहैगा; इसमें कुछ संदेह नहीं है ॥ ६६ ॥ वालि, उन महात्मा

फिर तारा कपिराज बालिका मुख चुम्बन करती जगविख्यात अपने मृतक स्वामीसे कहने लगी ॥ १ ॥ हे वीरश्रेष्ठ! तुम हमारे वचन न सुनकर पथरीली वा दुःख देनेंवाली पृथ्वीपर शयन कर रहे हो॥२॥हे वानर नाथ!हम जानती हैं कि पृथ्वी तुमको हमसे अधिक प्यारी है क्योंकि उसको चिपट कर शयन कर रहे हो और हमसे बोलतेतक नहीं ॥३॥यह राम रूप विधि सुग्रीवके वश में होगया वह सुग्रीव आजही अपनी भार्यासे मिल जायगा इसलिये सुग्रीवही विक्रमवान् और साहसी जान पडताहै ॥ ४ ॥ जो बडे२ ऋच्छ और मुख्य२वानरगण बलवान् आपकी सेवा करतेथे उनका और शोक करते हुये अंगदका रोदन ॥५॥ और हमारा यह विलाप श्रवण करके तुम क्यों नहीं जागते हो हेवीर! जिस पर तुम संग्रा

ततःसमुपजिघ्रंतीकपिराजस्यतन्मुखम् ॥ पतिंलोकश्रुतातारामृतंवचनमब्रवीत् ॥ १ ॥ शेषेत्वंविषमेदुःखमकृत्वाव
चनंमम ॥ उपलोपचितेवीरसुदुःखेवसुधातले ॥ २ ॥ मत्तःप्रियतरानूनंवानरेंद्रमहीतव ॥ शेषेहितांपरिष्वज्यमांचन
प्रतिभाषसे ॥ ३ ॥ सुग्रीवस्यवशंप्राप्तोविधिरेषभवत्यहो ॥ सुग्रीवएवविक्रांतोवीरसाहसिकप्रिय ॥ ४ ॥ ऋक्षवानरमु
ख्यास्त्वांबलिनंपर्युपासते ॥ तेषांविलपितंकृच्छ्रमंगदस्यचशोचतः ॥ ५ ॥ ममचेमागिरःश्रुत्वाकिंत्वंनप्रतिबुध्यसे॥
इदंतद्वीरशयनंतत्रशेपेहतोयुधि ॥ ६ ॥ शायितानिहतायत्रत्वयैवरिपवःपुरा ॥ विशुद्धसत्त्वाभिजनप्रिययुद्धमम
प्रिय ॥ ७ ॥ मामनाथांविहायैकांगतस्त्वमसिमानद ॥ शूरायनप्रदातव्याकन्याखलुविपश्चिता ॥ ८ ॥ शूरभार्यांहतां
पश्यसद्योमांविधवांकृताम् ॥ अवभग्नश्चमेमानोभग्नामेशाश्वतीगतिः ॥ ९ ॥ अगाधेचनिमग्नास्मिविपुलेशोकसागरे॥
अश्मसारमयंनूनमिदंमेहृदयंदृढम् ॥ १० ॥

ममें मरकर शयन किये हो यह वह स्थलहै ॥६॥ कि जहां तुम्हारे हाथोंसे मरकर शत्रुगण शयन किया करतेथे हे विशुद्धबलयुक्त लोकोंके व युद्धके प्रियकारी हमारे प्यारे॥ ७॥ हमारा आदर मान करनेवाले हम अनाथ हैं सो तुम हमको छोडकर कहां चले जातेहो पंडित लोगों को उचित है कि शूर पुरुपको अपनी कन्या न विवाहै ॥ ८ ॥ क्यों कि देखो शूरकी भार्या हम शीघ्र ही विधवा हुई हाय हमारा मानभी गया और अधिक स्थिर सुख भी विनाशको प्राप्त हुआ ॥ ९ ॥ हम इस समय अगाध विपुल शोक सागरमें डूब गई हम जानती हैं कि

चाहिये, और न कुप्यारे वचन कहै, क्योंकि यह राजालोग देवता, और मनुष्यके रूपमें पृथ्वीपर फिरा करतेहैं ॥ ४३ ॥ तुम धर्मका मार्ग न जानकर केवल क्रोधके वशहो पितापितामहादिकोंके धर्ममें टिके हुये हमारी निन्दा करते हो ॥ ४४ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा, तब वालि अपने कहे हुये पहले कठोर वचनोंका पछतावा कर व्यथित होनें लगा; और भली भांतिसे धर्मके तत्त्वको जानकर फिर रामचंद्रजीमें दोष बुद्धि नहीं करता हुआ ॥ ४५ ॥तब उसनें हाथ जोडकर श्रीरामचंद्रजीसे कहा कि हे नरश्रेष्ठ ! इस बातमें कुछ संशय नहीं कि आपनें हमसे जो कुछ कहा वह सब सत्यही सत्यहै ॥ ४६ ॥ श्रेष्ठ पुरुषके आगे नीच पुरुष बोलनें को समर्थ नहीं होता, हमनें पहले अज्ञानताके मारे जो वचन

त्वंतुधर्ममविज्ञायकेवलंरोषमास्थितः ॥ विदूषयसिमांधर्मेपितृपैतामहेस्थितम् ॥ ४४ ॥ एवमुक्तस्तुरामेणवाली प्रव्यथितोभृशम् ॥ नदोषंराघवेदध्यौधर्मेऽधिगतनिश्चयः ॥ ४५ ॥ प्रत्युवाचततोरामंप्रांजलिर्वानरेश्वरः ॥ यत्त्वमात्थनरश्रेष्ठतत्तथैवनसंशयः ॥ ४६ ॥ प्रतिवक्तुंप्रकृष्टेहिनापकृष्टस्तुशक्नुयात् ॥ यदयुक्तंमयापूर्वंप्रमादाद्वाक्यमप्रियम् ॥ ४७ ॥ तत्रापिखलुमांदोषंकर्तुंनार्हसिराघव ॥ त्वंहिदृष्टार्थतत्त्वज्ञःप्रजानांचहितेरतः ॥ ४८ ॥ कार्यकारणसिद्धौचप्रसन्नाबुद्धिरव्यया ॥ ४९ ॥ मामप्यवगतंधर्माद्व्यतिक्रांतपुरस्कृतम् ॥ धर्मसंहितयावाचाधर्मज्ञपरिपालय ॥ ५० ॥ बाष्पसंरुद्धकंठस्तुवालीसार्तरवःशनैः ॥ उवाचरामंसंप्रेक्ष्यपंकलग्नइवद्विपः ॥ ५१ ॥ नचात्मानमहंशोचेनतारांनापिबांधवान् ॥ यथापुत्रंगुणज्येष्ठमंगदंकनकांगदम् ॥ ५२ ॥

कहेथे ॥ ४७ ॥ सो उनसे आप कुछ दोष न ग्रहण करें आप प्रमाणित धर्मादितत्त्वके यथार्थही विचार करताहैं, और इसमें भी कुछ संदेह नहीं कि आप प्रजागणोंका हित करनेंमें निरतभीहैं ॥ ४८ ॥ इसमें कुछ संशय नहीं कि आपकी स्थिर बुद्धि कार्य कारणके सिद्ध करनेंमें निपुणहै ॥ ४९ ॥ हे धर्मज्ञ! हम धर्म उल्लंघन करनेंवाले पुरुषोंके अग्रणीय और पापीहैं सो आप धर्मयुक्त वचनोंसे हमको उत्तम लोक देकर प्रतिपालन कर लीजिये ॥ ५० ॥ वालि दल २ में फँसे हुये हाथी की समान आरत स्वरसे श्रीरामचंद्रजीसे दीन वचन बोला उस समय उसका कंठ आंसुओंसे रुक गयाथा ॥ ५१ ॥ हम अपनें लिये, ताराकें लिये, और वानर गणोंके लिये शोक नहीं करते, हमतो केवल सोनेके बाजू पहरे

तव अपनी अपमानता और धर्मभ्रष्ट होनेसे यह रामचन्द्रजी तुमको मारभी डालेंगे ॥ १५ ॥ हे सुग्रीव ! यह दिव्यकाञ्चनीयमाला तुम पहरलो, इसमें अतिउत्तम विजयलक्ष्मी वास करती है, सो हम मरे हुयेभी इस मालाको पहरे रहैंगे तो इसकी श्री जाती रहैगी, इस कारण तुम इसको अभी धारण करलो ॥ १६ ॥ जब वालिनें भायपनके मारे स्नेहयुक्त हो ऐसा कहा तब सुग्रीवजी हर्ष परित्याग करके राहुसे ग्रसे हुये चन्द्रमाकी समान मलीन मूर्ति होगये ॥ १७ ॥ सुग्रीवजीनें स्थिरचित्तसे वालिके कहे हुयेवचनोंके अनुसार कार्यकर उसकी आज्ञा लेकर वह काञ्चनीमाला पहरली ॥ १८ ॥ मृत्युके निकट पहुंचा वालि वह काञ्चनीमाला सुग्रीवकोदे आगे खडे हुये अपने पुत्र अंगदसे स्नेहके वशहो कहने लगा ॥ १९ ॥

इमांचमालामाधत्स्वदिव्यांसुग्रीवकांचनीम् ॥ उदाराश्रीःस्थिताह्यस्यांसंप्रजह्यान्मृतेमयि ॥ १६ ॥ इत्येवमुक्तः सुग्रीवोवालिनाभ्रातृसौहृदात् ॥ हर्षंत्यक्त्वापुनर्दीनोग्रहग्रस्तइवोडुराट् ॥ १७ ॥ तद्वालिवचनाच्छांतःकुर्वन्युक्तमतंद्रितः ॥ जग्राहसोभ्यनुज्ञातोमालांतांचैवकांचनीम् ॥१८॥ तांमालांकांचनींदत्वादृष्ट्वाचैवात्मजंस्थितम् ॥ संसिद्धःप्रेत्यभावायस्नेहादंगदमब्रवीत् ॥ १९ ॥ देशकालौभजस्वाद्यक्षममाणःप्रियाप्रिये ॥ सुखदुःखसहःकालेसुग्रीववशगोभव ॥ २० ॥ यथाहित्वंमहाबाहोलालितःसततंमया ॥ नतथावर्तमानंत्वांसुग्रीवोबहुमन्यते॥ २१ ॥ नास्यामित्रैर्गतंगच्छेर्माशत्रुभिररिंदम॥भर्तुरर्थपरोदांतःसुग्रीववशगोभव॥२२ ॥नचातिप्रणयःकार्यःकर्तव्योऽप्रणयश्चते॥उभयंहिमहादोषंतस्मादंतरदृग्भव॥२३॥इत्युक्त्वाथविवृत्ताक्षःशरसंपीडितोभृशम् ॥ विवृतैर्दशनैर्भीमैर्बभूवोत्क्रांतजीवितः ॥ २४॥

तुम प्रिय अप्रिय वचन सहते, देश कालके अनुसार सुख दुःख भुगतते इन सुग्रीवके वश होवो ॥ २० ॥ हे महाबाहो ! पहले हम जिस प्रकार तुम्हारे अपराध करने परभी तुम्हारा लालन पालन करतेथे सो यदि अबभी वैसेही अपराध करोगे तो सुग्रीव तुमको अधिक प्यार नहीं करेंगे इसलिये सब भांतिसे इन सुग्रीवजीकी सेवा करना ॥ २१ ॥ हेअरिन्दम ! तुम इनके अमित्र वा शत्रुके साथ न मिलना सुग्रीवही तुम्हारे ईश्वर और पालन करता हैं सो तुम शांत हो इनके वशमें रहना ॥२२॥अब तुम इनसे अतिस्नेह न करना और न शत्रुता क्योंकि यह दोनोंही महा दोषकी खानिहैं; इसलिये इन दोनोंके मध्यमें होकर तुम चलते रहना ॥२३॥इस प्रकार कहते हुए बाणसे पीडित वालिके नेत्र दांत घूमने और निकल

ग कर सकते हैं ॥ २७ ॥ इन सब धर्म संयुक्त बडे कारणोंके समूहके निमित्त हमनें तुमको दंड दिया है सो तुमभी इसको उचितही समझो॥२८॥ तुमको दंड देना सब भांतिसेही धर्मानुसार ज्ञात होता है।और मित्रका उपकार करनाभी धर्मचारी पुरुषोंको अवश्यही कर्तव्य है ॥ २९ ॥ सो तुमको दंड देकर हमने धर्महीका वर्ताव कियाहै महात्मा मनुजीके चारित्रवान दो श्लोक हमने सुन रक्खे हैं सो उनको हमनें तथा सबही धर्म कुशल जनोंनें ग्रहण कियाहै ॥ ३० ॥ उनश्लोकोंका अर्थ यहहै कि पाप करने वाले मनुष्य गण राज दंड ग्रहण करकै सुकृति करनेवाले पुरुषोंकी समान निर्मल होकर स्वर्गमें गमन करते हैं ॥ ३१ ॥ हम पापी हैं इसलिये हमको पाप दंड दीजिये,

तदेभिःकारणैःसर्वैर्महद्भिर्धर्मसंश्रितैः ॥ शासनंतवयद्युक्तंतद्भवाननुमन्यताम् ॥ २८ ॥ सर्वथाधर्मइत्येवद्रष्टव्यस्तवनिग्रहः ॥ वयस्यस्योपकर्तव्यंधर्ममेवानुपश्यता ॥ २९ ॥ शक्यंत्वयापितत्कार्यंधर्ममेवानुवर्तता ॥ श्रूयतेमनुनाभीतौश्लोकौचारित्रवत्सलौ ॥ गृहीतौधर्मकुशलैस्तथातच्चरितंमया॥ ३० ॥ राजभिर्धृतदंडाश्चकृत्वापापानिमानवाः ॥ निर्मलाःस्वर्गमायांतिसंतःसुकृतिनोयथा ॥ ३१ ॥ शासनाद्वापिमोक्षाद्वास्तेनःपापात्प्रमुच्यते ॥ राजात्वशासन्पापस्यतदवाप्नोतिकिल्बिषम् ॥ ३२ ॥ आर्येणममर्मांधात्राव्यसनंघोरमीप्सितम् ॥ श्रमणेनकृतेपापेयथापापंकृतंत्वया ॥ ३३ ॥ अन्यैरपिकृतंपापंप्रमत्तैर्वसुधाधिपैः ॥ प्रायश्चित्तंचकुर्वंतितेनतच्छाम्यतेरजः ॥ ३४ ॥

यह कहकर जो पापी राजाके निकट चला जाय, उसको राजा दंड दे अथवा न देकर कृपा दिखा छोडदे तौ उन दोनों बातोंसे पापी तो अपने पापसे छूटगया, परन्तु छोड देनेंसे उस पापका भागी राजा होताहै। इसलिये हमनें तुमको दंड दिया ॥ ३२ ॥ जैसा कि पाप तुमनें कियाहै; वैसाही पाप एक समय किसी श्रमण (आर्हत संन्यासी) नें कियाथा. कि जिसको हमारे पुरुषा मान्धाताजीनें घोर दंड दिया ॥ ३३ ॥ और राजा लोगोंने भी प्रथम पापियोंको दंड दियाहै, अधिक क्या कहें, पाप करने वाले पुरुष आपही पापका प्रायश्चित्त करके शुद्ध हुआ करते हैं ॥ ३४ ॥

श्रेष्ठ है ॥ १३ ॥ स्त्री होनेंके कारणसे हम सुग्रीव या अंगदजीकीस्वामिनी अथवा राज्य योग्य नहीं हो सकतीं इन हमारे स्वामीके पीछे अंगदके कनिष्ठ तात सुग्रीव ही समस्त राज्य कार्यके स्वामी होंगे ॥१४॥हे हनुमान! हम अंगदको राज्य पर अभिषिक्त करें इस प्रकारकी बुद्धि करना कदापि कर्तव्य नहीं है क्योंकि पिताही पुत्रका बन्धु है माता बन्धुनहीं हो सकती॥१५॥वानर राजके आश्रय विना इस लोक वा परलोकमें हमारा मंगल करऔर कुछ भी नहींहै इन सन्मुख खडे हुये निहत वीर करके सेवित इसशय्याकी सेवा करना हमारे लिये निःसंदेह अति श्रेयस्कर है॥१६॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे एकविंशः सर्गः॥२१॥मृत्युसेज पर पडे हुए वालिने चारों ओर निहारते २

नचाहंहरिराज्यस्यप्रभवाम्यंगदस्यवा ॥ पितृव्यस्तस्यसुग्रीवःसर्वकार्येष्वनंतरः ॥ १४ ॥ नह्येषाबुद्धिरास्थेयाह नूमन्नंगदंप्रति ॥ पिताहिबंधुःपुत्रस्यनमाताहरिसत्तम ॥ १५ ॥ नहिममहरिराजसंश्रयात्क्षमतरमस्तिपरत्रचेहवा॥ अभिमुखहतवीरसेवितंशयनमिदंममसेवितुंक्षमं ॥ १६॥ इत्यार्षे॰श्रीमद्रा॰वा॰आ॰कि॰एकविंशःसर्गः ॥ २१ ॥ वीक्ष्यमाणस्तुमंदासुःसर्वतोमंदमुच्छ्वसन् ॥ आदावेवतुसुग्रीवंददर्शानुजमग्रतः ॥ १ ॥ तंप्राप्तविजयंवालीसुग्रीवं प्लवगेश्वरम् ॥ आभाष्यव्यक्तयावाचासस्नेहमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥ सुग्रीवदोषेणनमांगंतुमर्हसिकिल्बिषात् ॥ कृष्य माणंभविष्येणबुद्धिमोहेनमांबलात् ॥ ३ ॥ युगपद्विहितंतातनमन्येसुखमावयोः ॥ सौहार्दंभ्रातृयुक्तंहितदिदंजात मन्यथा ॥ ४ ॥ प्रतिपद्यत्वमद्यैवराज्यमेषांवनौकसाम् ॥ मामप्यद्यैवगच्छंतंविद्धिवैवस्वतक्षयम् ॥ ५ ॥जीवितंच हिराज्यंचश्रियंचविपुलांतथा ॥ प्रजहाम्येपवैतूर्णमहंचागर्हितंयशः ॥ ६ ॥

मंद२श्वासलेअंगदके आगे खडे हुए सुग्रीवजीको देखा॥१॥वालि विजय प्राप्त किये उन वानर वर सुग्रीवजीसे स्नेह सहित यह वचन बोला॥२॥हे सुग्रीव! पहले किये हुए रोषके कारण इस समय वा आगेको हमारे प्रति दोप बुद्धिका तुम परित्याग करदेना॥३॥हम दोनो भाइयोंमें एकवारही भाय पनकासुख और राज्य सुख नहीं रहा वरन इसके विपरीत वैर भाव रहा विधाताने राज्यसुख हम तुमको एक साथ सुख भोगना नहीं लिखाथा॥४॥तुम इस समय इन वनवासी लोगोंके राजा होवो और हम इस समय यमपुरको जाते हैं इसमें अब कुछभी विलंब नहीं है॥५॥हम इस समय जीवन राज्य विपुल राज्य

ग कर सकते हैं ॥ २७ ॥ इन सब धर्म संयुक्त बडे कारणोंके समूहके निमित्त हमनें तुमको दंड दिया है सो तुमभी इसको उचितही समझो॥२८॥ तुमको दंड देना सब भांतिसेही धर्मानुसार ज्ञात होता है।और मित्रका उपकार करनाभी धर्मचारी पुरुषोंको अवश्यही कर्तव्य है ॥ २९ ॥ सो तुमको दंड देकर हमने धर्महीका वर्ताव कियाहै महात्मा मनुजीके चारित्रवान दो श्लोक हमने सुन रक्खे हैं सो उनको हमनें तथा सबही धर्म कुशल जनोंनें ग्रहण कियाहै ॥ ३० ॥ उनश्लोकोंका अर्थ यहहै कि पाप करने वाले मनुष्य गण राज दंड ग्रहण करकै सुकृति करनेवाले पुरुषोंकी समान निर्मल होकर स्वर्गमें गमन करते हैं ॥ ३१ ॥ हम पापी हैं इसलिये हमको पाप दंड दीजिये,

तदेभिःकारणैःसर्वैर्महद्भिर्धर्मसंश्रितैः ॥ शासनंतवयद्युक्तंतद्भवाननुमन्यताम् ॥ २८ ॥ सर्वथाधर्मइत्येवद्रष्टव्यस्तवनिग्रहः ॥ वयस्यस्योपकर्तव्यंधर्ममेवानुपश्यता ॥ २९ ॥ शक्यंत्वयापितत्कार्यंधर्ममेवानुवर्तता ॥ श्रूयतेमनुनाभीतौश्लोकौचारित्रवत्सलौ ॥ गृहीतौधर्मकुशलैस्तथातच्चरितंमया॥ ३० ॥ राजभिर्धृतदंडाश्चकृत्वापापानिमानवाः ॥ निर्मलाःस्वर्गमायांतिसंतःसुकृतिनोयथा ॥ ३१ ॥ शासनाद्वापिमोक्षाद्वास्तेनःपापात्प्रमुच्यते ॥ राजात्वशासन्पापस्यतदवाप्नोतिकिल्बिषम् ॥ ३२ ॥ आर्येणममर्मांधात्राव्यसनंघोरमीप्सितम् ॥ श्रमणेनकृतेपापेयथापापंकृतंत्वया ॥ ३३ ॥ अन्यैरपिकृतंपापंप्रमत्तैर्वसुधाधिपैः ॥ प्रायश्चित्तंचकुर्वंतितेनतच्छाम्यतेरजः ॥ ३४ ॥

यह कहकर जो पापी राजाके निकट चला जाय, उसको राजा दंड दे अथवा न देकर कृपा दिखा छोडदे तौ उन दोनों वातोंसे पापी तो अपने पापसे छूटगया, परन्तु छोड देनेंसे उस पापका भागी राजा होताहै । इसलिये हमनें तुमको दंड दिया ॥ ३२ ॥ जैसा कि पाप तुमनें कियाहै; वैसाही पाप एक समय किसी श्रमण (आर्हत संन्यासी) नें कियाथा. कि जिसको हमारे पुरुषा मान्धाताजीनें घोर दंड दिया ॥ ३३ ॥ और राजा लोगोंने भी प्रथम पापियोंको दंड दियाहै, अधिक क्या कहें, पाप करने वाले पुरुष आपही पापका प्रायश्चित्त करकै शुद्ध हुआ करते हैं ॥ ३४ ॥

जाते हो, सो यह अनंत अनुचित कर्म होता है॥ २४ ॥ हे महाबाहो!यदि हमनें कोई अपराधकियाहो, तब उसका विचारकरके क्षमा कर दीजिये। हे वानर—वंश—नाथ!देखिये,हम अपना शिर तुम्हारे चरणोंपर धरती हैं॥२५॥ निन्दा रहित तारा सब वानरियोंके सहित करुणाके वचन कह विलाप कर,वालिके निकटही बैठ मरणव्रत ग्रहणकर प्राण त्यागनेका निश्चय करती हुई ॥ २६ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० कि० विंशः सर्गः ॥ २० ॥
फिर आकाशसे गिरे तारेकी समान ताराको पृथ्वीपर पडा हुआ देखकर वानर यूथपति हनुमानजी, उसको धीरे २ समझाने बुझानें लगे ॥ १ ॥ समस्त जीवजन्तुगण अपने कर्मके हेतु शमादिगुण और रागादि रोषकृतकार्य करके परलोकमें बलात्कार शुभ और अशुभ फलकी प्राप्ति करतेहैं॥२॥

यद्यप्रियंकिंचिदसंप्रवार्यकृतंमयास्यात्तवदीर्घबाहो ॥ क्षमस्वमेतद्धरिवंशनाथव्रजामिमूर्ध्नातववीरपादौ ॥ २५ ॥ तथातुताराकरुणंरुदंतीभर्तुःसमीपेसहवानरीभिः ॥ व्यवस्यतप्रायमनिंद्यवर्णाउपोपवेषंभुवियत्रवाली ॥ २६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेविंशःसर्गः ॥ २० ॥ ॥ ॥ ॥ ततोनिपतितांतारां च्युतांतारामिवांबरात् ॥ शनैराश्वासयामासहनूमान्हरियूथपः ॥ १ ॥ गुणदोषकृतंजंतुःस्वकर्मफलहेतुकम् ॥ अव्यग्रस्तदवाप्नोतिसर्वंप्रेत्यशुभाशुभम् ॥ २ ॥ शोच्याशोचसिकंशोच्यंदीनंदीनानुकंपसे ॥ कश्चकस्यानुशोच्योस्तिदेहेस्मिन्बुद्बुदोपमे ॥ ३ ॥ अंगदस्तुकुमारोयंद्रष्टव्योजीवपुत्रया ॥ आयत्यांचविधेयानिसमर्थान्यस्यचिंतया ॥ ४ ॥ जानास्यनियतामेवंभूतानामागतिंगतिम् ॥ तस्माच्छुभंहिकर्तव्यंपंडितेनेहलौकिकम् ॥ ५ ॥

तुमभी पाप पुण्यरूपी कर्मकी फाँसीसे बँधी हुईहो, इसलिये स्वयं शोचेजानेके योग्य होकर तुम किसके लिये शोक करतीहो ? और कर्मानुसार फल पाय दीनहो किस दीनके ऊपर दया कर रहीहो,इस पानीके बबूलेकीतुल्य देहका कौन शोच करतीहो ? सो तुम हमें बताओ ॥ ३॥ यह तुम्हारे पुत्र कुमार अंगद जीवितहैं, तुम इनका लालन पालन करो, औरइस समय तुम अपने स्वामी वालिकी परलोकके लिये उचित क्रियाका यत्न करो ॥ ४ ॥ प्राणियोंकी सद्गति कुछ नियत नहींहै; इसलिये पंडित गण इस लोकमें लौकिक शुभ कर्मोंको किया करतेहैं ॥ ५ ॥

प्रकार धर्म, अर्थ, काम सहित हितकारी व कठोर वचन बोला ॥ १ ॥ उस वानरवरको प्रभाहीन सूर्यकी समान, जल रहित मेघकी समान, और बुझी हुई आगके समान वचन कह चुपहुये ॥ २ ॥ धर्म, अर्थ, गुण युक्त, उत्तम वानरनाथ वालिसे बहुतनिन्दा किये जानेंपरभी श्रीरामचंद्रजी बोले ॥ ३ ॥ धर्म, अर्थ, काम, लौकिक आचार इन सबको विनाजाने तुम बालककी समान हमारी निन्दा क्यों करतेहो ॥ ४ ॥ तुम आचार्य, समस्त, वृद्ध और बुद्धिमानोंके विना पूछे ही, वानर स्वभावही की चपलताके हेतु हमारी निन्दा करनेंकी इच्छा करते हो ॥ ५ ॥ हम इक्ष्वाकु वंशियोंके पूर्व पुरुष मनुजीनें, शैलवन और काननादि सहित यह पृथ्वी हम लोगोंको दी तिस्से इस पृथ्वीके जितनें मृग पक्षी व मनुष्यहैं, सब

तंनिष्प्रभमिवादित्यंमुक्ततोयमिवांबुदम् ॥ उक्तवाक्यंहरिश्रेष्ठमुपशांतमिवानलम् ॥ २ ॥ धर्मार्थगुणसंपन्नंहरीश्वर
मनुत्तमम् ॥ अधिक्षिप्तस्तदारामःपश्चाद्वालिनमब्रवीत् ॥ ३ ॥ धर्ममर्थंचकामंचसमयंचापिलौकिकम् ॥ अविज्ञाय
कथंबाल्यान्मामिहाद्यविगर्हसे ॥ ४ ॥ अपृष्ट्वाबुद्धिसंपन्नान्वृद्धानाचार्यसंमतान् ॥ सौम्यंवानरचांचल्यात्त्वंमांवक्तुमि
हेच्छसि ॥ ५ ॥ इक्ष्वाकूणामियंभूमिःसशैलवनकानना ॥ मृगपक्षिमनुष्याणांनिग्रहानुग्रहेष्वपि ॥ ६ ॥ तांपालय
तिधर्मात्माभरतःसत्यवानृजुः ॥ धर्मकामार्थतत्त्वज्ञोनिग्रहानुग्रहेरतः ॥ ७ ॥ नयश्चविनयश्चोभौयस्मिन्सत्यंचसु
स्थितम् ॥ विक्रमश्चयथादृष्टःसराजादेशकालवित् ॥८॥ तस्यधर्मकृतादेशावयमन्येचपार्थिवाः॥चरामोवसुधांकृत्स्नां
धर्मसंतानमिच्छवः ॥ ९ ॥ यस्मिन्नृपतिशार्दूलेभरतेधर्मवत्सले ॥ पालयत्यखिलांपृथ्वींकश्चरेद्धर्मविप्रियम् ॥ १० ॥

पर अनुग्रह और दंड करनेका अधिकार हमहींको है ॥ ६ ॥सत्यशाली, सरल स्वभाव, दंड और अनुग्रह करनें में निरत,धर्म, अर्थ व कामके तत्वको जाननेंवाले, धर्मात्मा भरतजी इस समय इस पृथ्वीका पालन करते हैं॥७॥जिसमें नीति विनय और सत्य देखा जाय वही देश काल ज्ञाता पुरुष राजा हो सकताहै, सो यह सब भरतजीमें हैं॥ ८ ॥हम व और दूसरे नृपति गण, उनसे धर्माचरण करनेंके निमित्त आज्ञा पाकर इस पृथ्वीपर विचरतेहैं ॥ ९ ॥ जबकि नृपतिश्रेष्ठ धर्मवत्सल भरतजी समस्त पृथ्वीका पालन कर रहेहैं, तब कौन पुरुष धर्मका अप्रिय साधन करनेंमें समर्थ

रमणीक पुरी स्वर्ग सम किष्किन्धा नगरीकी तुल्य तुमनें बनालीहै ॥७॥ हमनें वसन्तके समयमें जो विहार सुगंधित वनोंमें आपके साथ किये हैं. उन सबका आपने शेष करदिया॥ ८ ॥ हम निरानंद और निराश होकर सागरमें डूबीं,हे यूथपोंके नाथ!यह सब बातें आपहीके मर जानेंसे हुईं ॥९॥ हमारा हृदय बडा कठिन है, जो आपको पृथ्वीपर पडे देखकरभी मारे शोकके संतापित हो विदीर्ण होकर सहस्र खंड नहीं होजाता ॥ १० ॥ हे वानर नाथ! आपनें सुग्रीवकी स्त्रीको हरण करके उनको जो राज्यसे निकाल दिया आज उसी कार्यका यह फल प्राप्त हुआ ॥११॥ हमनें आपकी कुशलकी वांछाकर और हितैषीहो जो हितकारी वचन कहेथे सो आपनें कहा न मानकर हमारी निन्दा कीथी ॥ १२ ॥ हेआर्य! इस समय

यान्यस्माभिस्त्वयासार्धंवनेषुमधुगंधिषु ॥ विहृतानित्वयाकालेतेषामुपरमःकृतः ॥ ८ ॥ निरानंदानिराशाहंनिमग्ना शोकसागरे ॥ त्वयिपंचत्वमापन्नेमहायूथपयूथपे ॥ ९ ॥ हृदयंसुस्थितंमह्यंदृष्ट्वानिपतितंभुवि ॥ यन्नशोकाभिसंतप्तं स्फुटतेद्यसहस्रधा ॥ १० ॥ सुग्रीवस्यत्वयाभार्याहृतासचविवासितः ॥ यत्तत्तस्यत्वयाव्युष्टिःप्राप्तेयंप्लवगाधिप॥ ११ ॥ निःश्रेयसपरामोहात्त्वयाचाहंविगर्हिता॥यैषाब्रुवंहितंवाक्यंवानरेंद्रहितैषिणी॥१२ ॥रूपयौवनदृप्तानांदक्षिणानांचमा नद॥नूनमप्सरसामार्यचित्तानिप्रमथिष्यसि ॥१३॥कालोनिःसंशयोनूनंजीवितांतकरस्तव ॥ बलाद्येनावपन्नोसिसुग्री वस्यावशोवशी ॥ १४ ॥ अस्थानेवालिनंहत्वायुध्यमानंपरेणच ॥ नसंतप्यतिकाकुत्स्थःकृत्वाकर्मसुगर्हितम् ॥ १५ ॥ वैधव्यंशोकसंतापंकृपणाकृपणासती ॥ अदुःखोपचितापूर्ववर्तयिष्याम्यनाथवत् ॥ १६ ॥

हम समझती हैं कि आप रूप यौवन संपन्न अनुकूल नायका अप्सरा गणोंके चित्त मथोगे, इसमें कुछ संदेह नहीं ॥ १३ ॥ हे वीर! हमनें निश्चय जानाकि जीवनका अंत करनेंवाला काल निश्चयहै क्योंकि सुग्रीवके वश करके जिस कालनें तुम्हारे प्राण हरण कर लियेहैं ॥ १४ ॥ यद्यपि तुम सुग्रीवके साथ युद्ध करनेंमें लगरहेथे तथापि काकुत्स्थकुलतिलकजीनें अधर्मका अनुसरण करके तुम्हारा वध किया. और तिस परभी वह नहीं पछताते ॥ १५ ॥ इससे पहले हमनें कभी कोई दुःख नहीं पायाहै, सो इस समय हम अत्यन्त दीन अनाथ व कृपाके योग्य हो

॥

इस लिये तुमनें कामाचारीहो धर्मके मार्गको उल्लंघनकिया। उस भ्रातृभार्याकी धर्षणा करनेंके हेतु हमनें यह दंड तुमको दिया ॥ २० ॥ हे वा
नरवर! लोकोंके व्यवहारकी मर्यादाको उल्लंघन करनेंवाले लोक विमुख पुरुषको मारनेंके सिवाय हम और कोई दंड नहीं देखते ॥ २१ ॥ हम
श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न हुये, क्षत्रिय पापको नहीं सहसकते, सहोदरा भगिनी अथवा छोटे भ्राताकी स्त्रीसे ॥ २२ ॥ रमण करनेंवाले पुरुषको मार डाल
नाही ठीक दंड है महीपाल भरतजीनें हमको इसी प्रकारकी आज्ञाकीहै; सो हमनें उनकी आज्ञानुसारही कार्य किया है ॥ २३ ॥ तुमनें धर्मकी म
र्यादाको तोडा है; जो गुरु होकर धर्मकी मर्यादा तोडे; तौ परलोकमें धर्म पालक होकर उसकोभी विना दंड दिये नहीं छोड सकते ॥ २४ ॥

तद्व्यतीतस्यतेधर्मात्कामवृत्तस्यवानर ॥ भ्रातृभार्याभिमर्शेऽस्मिन्दंडोऽयंप्रतिपादितः ॥ २० ॥ नहिलोकविरुद्ध
स्यलोकवृत्तादपेयुषः ॥ दंडादन्यत्रपश्यामिनिग्रहंहरियूथप ॥ २१ ॥ नचतेमर्षयेपापंक्षत्रियोऽहंकुलोद्भवः ॥ औ
रसींभगिनींवापिभार्यांवाप्यनुजस्ययः ॥ २२ ॥ प्रचरेतनरःकामात्तस्यदंडोवधःस्मृतः ॥ भरतस्तुमहीपालोवयंत्वा
देशवर्तिनः ॥ २३ ॥ त्वंचधर्मादतिक्रांतःकथंशक्यमुपेक्षितुम् ॥ गुरुधर्मव्यतिक्रांतंप्राज्ञोधर्मेणपालयन् ॥ २४ ॥ भ
रतःकामयुक्तानांनिग्रहेपर्यवस्थितः ॥ वयंतुभरतादेशावधिंकृत्वाहरीश्वर ॥ त्वद्विधान्भिन्नमर्यादान्निग्रहीतुंव्यवस्थि
ताः ॥ २५ ॥ सुग्रीवेणचमेसख्यंलक्ष्मणेनयथातथा ॥ दारराज्यनिमित्तंचनिःश्रेयसकरःसमे ॥ २६ ॥ प्रतिज्ञाच
मयादत्तातदावानरसंनिधौ ॥ प्रतिज्ञाचकथंशक्यामद्विधेनानवेक्षितुम् ॥ २७ ॥

भरतजीनें कामाधीनहो स्वेच्छानुसार चलनेंवाले पुरुषोंको दंड देनेंकी व्यवस्थाकीहै; सो हम लोग उन भरतकी आज्ञा पालन करकै तुम्हारी स
मान धर्मकी मर्यादा तोडनेंवाले पुरुषोंको विनाश किये हैं ॥ २५ ॥जैसे लक्ष्मणजीके सहित हमारी मित्रताईहै, वैसेही सुग्रीवजीभी हमारे सखा हैं,
सो सुग्रीवजी हमारी मित्रतासे अपना राज्य व स्त्री पानेंकेलिये हमारे निकट आये हैं, यह वानर हमारा बडा प्रियकारीहै ॥ २६॥ और दूसरे हमनें स
व वानरोंके सहित प्रतिज्ञाभी कीहै कि तुम्हारा राज्य और तुम्हारी स्त्री तुम्हें दिलादेंगे। सो भला हम समान पुरुष प्रतिज्ञाको किस प्रकारसे त्या

होगी ? क्योंकि इन लोगोंनें पहले सुग्रीवादिसे बडा छल कियाहै ॥ १६ ॥ चारुहासिनी तारा थोडी दूर खडे हुए वानरोंके वचन श्रवण करके अपने योग्य वचन उनसे कहनें लगी ॥१७॥ उन महाभाग कपिश्रेष्ठ हमारे पतिके मर जानेंसे हमको पुत्र, राज्य, वा जीवनसे क्या प्रयोजनहै ॥ १८ ॥ जो हमारे पति श्रीरामचंद्रजीके छोडे हुए बाणसे मारे गयेहैं, हम उन्हीं महात्माके चरण कमलकी शरणमें गमन करेंगी ॥ १९ ॥ यह कहकर शोकसे विह्वल हुई तारा, रोते २ दौड दुःखके मारे दोनों हाथोंसे शिर और छातीको पीटनें लगी ॥ २० ॥ वह सती शीघ्रतासे चलते २ समरमें न भागनें वाले, भूमिमें गिरे, दैत्येन्द्रोंको मारनें वाले ॥२१॥ वज्र चलानेंवाले इन्द्रकी समान, पर्वत समूहोंको उखाड कर फेंकनेंवाले, महा प्रचंड पवन युक्त

अल्पांतरगतानांतुश्रुत्वावचनमंगना ॥ आत्मनःप्रतिरूपंसाबभाषेचारुहासिनी ॥ १७ ॥ पुत्रेणममकिंकार्यंराज्ये
नापिकिमात्मना ॥ कपिसिंहेमहाभागेतस्मिन्भर्तरिनश्यति ॥ १८ ॥ पादमूलंगमिष्यामितस्यैवाहंमहात्मनः ॥
योऽसौरामप्रयुक्तेनशरेणविनिपातितः॥१९॥एवमुक्त्वाप्रदुद्रावरुदतीशोकमूर्छिता ॥ शिरश्चोरश्चबाहुभ्यांदुःखेनसमभि
घ्नती ॥ २० ॥ साव्रजंतीददर्शाथपतिंनिपतितंभुवि ॥ हंतारंवानरेंद्राणांसमरेष्वनिवर्तिनाम् ॥ २१ ॥ क्षेप्तारंपर्वतेंद्राणां
वज्राणामिववासवम् ॥ महावातसमाविष्टंमहामेघौघनिःस्वनम् ॥ २२ ॥ शक्रतुल्यपराक्रांतंवृष्ट्वेवोपरतंघनम् ॥ न
र्दंतंनर्दतांभीमंशूरंशूरेणपातितम् ॥ २३ ॥ शार्दूलेनामिषस्यार्थेमृगराजमिवाहतम् ॥ २४ ॥ अर्चितंसर्वलोकस्यस
पताकंसवेदिकम् ॥ नागहेतोःसुपर्णेनचैत्यमुन्मथितंयथा ॥ २५ ॥ अवष्टभ्यावतिष्ठंतंददर्शधनुरूर्जितम् ॥ रामं
रामानुजंचैवभर्तुश्चैवतथानुजम् ॥ २६ ॥

महामेघकी समान घोर शब्द करनें वाले ॥ २२ ॥ इन्द्र तुल्य पराक्रमवान् बाण वृष्टि संयुक्त मेघकी समान वानरगणोंके मध्यमें श्रेष्ठ शूर भयंकर गर्जन करनेंवाले श्रीरामचंद्रजीसे गिराये ॥ २३ ॥ मांसके लिये व्याघ्र द्वारा मारे हुए हाथीके समान गिरे ॥ २४ ॥ सर्व लोकसे पूजित पताका सहित वैदिक मंत्रसे अर्चित अंतरमें भुजंग युक्त वामीको सर्पके निमित्त गरुडनें जैसे उन्मथित कियाहो ऐसे, विध्वंसित देवालयकी समान दुर्दशा ग्रस्त वालिको देखा ॥ २५ ॥ और भूमिमें खडे महाधनुष चढाये श्रीरामचंद्रजीके सहित लक्ष्मण और अपने पतिके छोटे भाई सुग्रीवको

वनवासी और फलोंके खानेवालेहैं सो हमारे फल मूलके ऊपर आप किसी प्रकार लोभ नहीं कर सकते ॥ ३१ ॥ नीति, विनय, अनुग्रह, निग्रह, इन चार वातोंके अतिरिक्त राजा लोग और किसी बातमें स्वेच्छाचारी नहीं होते ॥ ३२ ॥ आप स्वेच्छाचारी कोपनस्वभाव चंचलचित्त राजकार्योंमें अयोग्यहैं, जहां तहां धनुषसे बाण छोडते फिरतेहैं ॥ ३३ ॥ मनुष्योंके राजा होनेपरभी धर्ममें आपका आदर नहीं यथार्थ अर्थमें बुद्धि स्थिर नहींहै, वरन आप स्वेच्छाचारी होकर इन्द्रियगणोंके वशमें पड खिंचे फिरतेहैं ॥ ३४ ॥ हम विन अपराधीको बाणसे मार अति निन्द नीय कर्मका अनुष्ठान कर आप सज्जनोंके बीचमें क्या कहेंगे ? ॥ ३५ ॥राजघाती, ब्रह्मघाती, चोर, प्राणियोंको मारनेंवाला नास्तिक, परिवेत्ता ❋

नयश्चविनयश्चोभौनिग्रहानुग्रहावपि ॥ राजवृत्तिरसंकीर्णाननृपाःकामवृत्तयः ॥ ३२ ॥ त्वंतुकामप्रधानश्चकोपनश्चा नवस्थितः ॥ राजवृत्तेषुसंकीर्णःशरासनपरायणः ॥३३॥ नतेऽस्त्यपचितिर्धर्मेनार्थेबुद्धिरवस्थिता ॥ इंद्रियैःकामवृत्तः सन्कृष्यसेमनुजेश्वर ॥ ३४ ॥ हत्वाबाणेनकाकुत्स्थमामिहानपराधिनम् ॥ किंवक्ष्यसिसतांमध्येकर्मकृत्वाजुगुप्सि तम् ॥ ३५ ॥ राजहाब्रह्महागोघ्नश्चोरःप्राणिवधेरतः ॥ नास्तिकःपरिवेत्ताचसर्वेनिरयगामिनः ॥ ३६ ॥ सूचकश्च कदर्यश्चमित्रघ्नोगुरुतल्पगः ॥ लोकंपापात्मनामंतेगच्छंतेनात्रसंशयः ॥ ३७ ॥ अधार्यंचर्ममेसद्भीरोमाण्यस्थि चवर्जितम् ॥ अभक्ष्याणिचमांसानित्वद्विधैर्धर्मचारिभिः ॥ ३८॥ पंचपंचनखाभक्ष्याब्रह्मक्षत्रेणराघव ॥ शल्य कःश्वाविधोगोधाशशःकूर्मश्चपंचमः ॥ ३९ ॥

यह सब पुरुष नरकको जातेहैं ॥३६॥ चुगली करनेंवाला, कादर मित्रका मारनेंवाला गुरुतल्पग × यह लोगभी निःसंदेह पापियोंके लोकको जाते है ॥३७॥ हम लोगोंका चर्म आप लोगोंके धारण करनें योग्य नहीं हमारे रुवें और हड्डियेंभी सज्जन लोग नहीं ग्रहण करते; और मांसभी आप सरीखे धर्मचारी गणोंके अयोग्यहै; इस कारण राजाओंके आखेट धर्मका वहानाभी आप हमपर नहीं कर सकते ॥ ३८ ॥ हे राघव ! गैंडा, सई, गोह,

❋ बडे भाईका विवाह विनाही हुये छोटा जो विवाह कर लेताहै उसको परिवेत्ता कहतेहैं ॥ × गुरुकी स्त्रीको हरण करनेंवाला ।

रणजयी श्रीरामचंद्रजीके धर्म युक्त सावधान मधुर वचन सुनकर उनसे बोला ॥६७॥ हे इन्द्रकी समान भीमविक्रम श्रीरामचंद्रजी हमनें बाणके आघातसे
चेतना रहित और बुद्धिहीनहो जो कुछ दुर्वचन कहाहो सो आप प्रसन्न होकर हमारे उस अपराधको क्षमा करदीजिये ॥ ६८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा
मायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥ बाणसे पीडितहो वानरराज वालि श्रीरामचंद्रजीके हेतु युक्त वचन
सुन फिर कुछ उत्तर न देसका ॥ १ ॥ एक तो सुग्रीवजीके मारेहुए पत्थरोंकी चोट व वृक्षोंकी चोटसे वालिके अंग छिन्न भिन्न और घायल होरहेथे.
तिसपर श्रीरामचंद्रजीके बाणसे आहतहो दीर्घ श्वास लेताहुआ वह मरणान्तमें मोहको प्राप्त हुआ ॥ २ ॥ वालिकी भार्या तारानें रनवासमेंही यह

शराभितप्तेनविचेतसामयाप्रभाषितस्त्वंयदजानताविभो ॥ इदंमहेंद्रोपमभीमविक्रमप्रसादितस्त्वंक्षममेहरीश्व
र ॥ ६८ ॥ इ०श्री०वा०आ०कि०अष्टादशःसर्गः ॥ १८ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ सवानरमहाराजःशयानःशरपी
डितः ॥ प्रत्युक्तोहेतुमद्वाक्यैर्नोत्तरंप्रतिपद्यत ॥ १ ॥ अश्मभिःपरिभिन्नांगःपादपैराहतोभृशम् ॥ रामबाणेनचाक्रांतो
जीवितांतेमुमोहसः ॥२॥ तंभार्याबाणमोक्षेणरामदत्तेनसंयुगे ॥ हतंप्लवगशार्दूलंताराशुश्राववालिनम् ॥३॥ सासपुत्राऽ
प्रियंश्रुत्वावधंभर्तुःसुदारुणम् ॥ निष्पपातभृशंतस्मादुद्विग्नागिरिकंदरात् ॥ ४ ॥ येत्वंगदपरीवारावानराहिमहाब
लाः ॥ तेसकार्मुकमालोक्यरामंत्रस्ताःप्रदुद्रुवुः ॥५॥ साददर्शततस्त्रस्तान्हरीनापततोद्रुतम् ॥ यूथादिवपरिभ्रष्टान्मृ
गान्निहतयूथपान् ॥ ६ ॥ तानुवाचसमासाद्यदुःखितान्दुःखितासती ॥ रामवित्रासितान्सर्वाननुबद्धानिवेषुभिः ॥ ७ ॥

वार्त्ता सुनी कि वानरशार्दूल वालि संग्राम स्थलमें श्रीरामचंद्रजीके चलाये हुए बाणसे मारागया ॥ ३ ॥ पुत्रके सहित तारा पतिके मारे जानेंकी
दारुण वार्ता सुनकर उद्विग्न चित्तहो गिरि कंदरमें बसती हुई किष्किन्धापुरीसे सहसा चली ॥ ४ ॥ अंगदजीके सब जो महाबल रक्षा करनेंवालेथे
वह धनुष धारण किये श्रीरामचंद्रजीको देख भयके मारे भागने लगे ॥ ५ ॥ फिर तारानें देखा कि निहत यूथपति और यूथसे बिछुडे
हुए मृगगणोंकी नांई वानर गण डरकर भाग रहेहैं ॥ ६ ॥ दुःखिता तारा शरद्वारा शयन करते हुएकी समान श्रीरामचंद्रजी करके त्रासित

वचन बोला ॥ १४ ॥ अल्पतेज, अल्पप्राण, चेतना रहित, भूमिपातित वालि रणगर्वित श्रीरामचंद्रजीसे गर्वित वचन कहनें लगा ॥ १५ ॥ हेराम! आपके सहित हमनें सन्मुख युद्ध नहीं किया फिर भला आपने हमको मार कर किस गुणको प्राप्त किया हम सुग्रीवके साथ युद्ध करनेंमें लगे रहकर आपके द्वारा मारे गये ॥ १६ ॥ हे राम! आप करुणामय प्रजागणोंके हित में निरत, कुलीन, सत्वसम्पन्न, तेजस्वी, वेदविहितकर्मकारी ॥ १७ ॥ महोत्साही, दृढव्रतधारी, उचित अनुचित कालके जाननेवाले लज्जाशीलहैं पृथ्वीके सवही मनुष्य इस प्रकारसे कहकर आपका यश वखानते हैं ॥ १८ ॥ दम, शम, क्षमा, धर्म, धीरज, सत्यता और

सभूमावल्पतेजोसुर्निहतोनष्टचेतनः ॥ अर्थसंहितयावाचागर्वितंरणगर्वितम् ॥ १५ ॥ पराङ्मुखवधंकृत्वाकोऽत्रप्राप्तस्त्वयागुणः ॥ यदहंयुद्धसंरब्धस्त्वत्कृतेनिधनंगतः ॥ १६ ॥ कुलीनःसत्त्वसंपन्नस्तेजस्वीचरितव्रतः ॥ रामःकरुणवेदीचप्रजानांचहितेरतः ॥ १७ ॥ सानुक्रोशोमहोत्साहःसमयज्ञोदृढव्रतः ॥ इत्येतत्सर्वभूतानिकथयंतियशोभुवि ॥ १८ ॥ दमःशमःक्षमाधर्मोधृतिःसत्त्वंपराक्रमः ॥ पार्थिवानांगुणाराजन्दंडश्चाप्यपकारिषु ॥ १९ ॥ तान्गुणान्संप्रधार्याहमग्र्यंचाभिजनंतव ॥ तारयाप्रतिषिद्धःसन्सुग्रीवेणसमागतः ॥ २० ॥ नमामन्येनसंरब्धंप्रमत्तंवेद्धुमर्हसि ॥ इतितेबुद्धिरुत्पन्नाबभूवादर्शनेतव ॥ २१ ॥ सत्वांविनिहतात्मानंधर्मध्वजमधार्मिकम् ॥ जानेपापसमाचारंतृणैःकूपमिवावृतम् ॥ २२ ॥

पराक्रम व अपकारियोंको दंड देना यह समस्त राजा लोगोंके गुणहैं ॥ १९ ॥ सो हम आपमें यही समस्त गुण सुना करते थे और यह भी ज्ञातथा कि आप सत्कुलमें जन्मे हैं, यही कारण हुआकि ताराके रोकने पर भी हम सुग्रीवसे युद्ध करते हुये ॥ २० ॥ हम दूसरे के सहित यह विचार कर युद्ध में नियुक्त थे कि आप धर्मको छोडकर हमको क्यों मारनेंलगेहैं और इसी कारण वश आपकी ओरसे कुछ चिन्ता नकी हमारी बुद्धि आपके दर्शनसे पहले यह थी कि आप धर्मके प्रतिपालकहैं परन्तु अव यह बुद्धि जातीरही परन्तु हमने भली प्रकार चीन्ह लिया कि धर्मध्वज आप, अधार्मिक तृणोंसे ढके हुये अंधकूपकी समान, नष्टात्मा ॥ २१ ॥ २२ ॥

वालक अंगदके ही लिये शोक करतेहैं क्योंकि मैं तो भगवानसे मारा गया तारासे सुग्रीव प्रीति करैगा, वानर सेवा कर रह जांयगे, वस अंगदका कहीं ठीक नहीं ॥ ५२ ॥ जब वह बच्चाहीथा तबसे हमनें उसका लालन पालन किया, वह हमको न देखकर दीन भावको प्राप्तहो उस तडागकी समान सूख जायगा; कि जिसका जल हाथियोंनें पीलियाहो ॥ ५३ ॥ हेराम! ताराके गर्भसे उत्पन्न हमारे इकलौते, कच्ची बुद्धि युक्त महा बलवान अंगद वालककी आप रक्षा कीजिये; हे महाराज! कहीं मेरे पुत्रको कष्ट नहो ॥ ५४ ॥ सुग्रीवकी बुद्धि ऐसी वदल दीजिये कि वह अंगदसे प्रीति करनेंलगे। क्योंकि आप कार्य अकार्यके वीधनें में सबके सिखलानें और रक्षा करनेवाले हैं, इस कारण इनको आप भली भांतिसे पालते

सममादर्शनाद्दीनोबाल्यात्प्रभृतिलालितः ॥ तटाकइवपीतांबुरुपशोषंगमिष्यति ॥ ५३ ॥ बालश्चाकृतबुद्धिश्चएकपुत्रश्चमेप्रियः ॥ तारेयोरामभवतारक्षणीयोमहाबलः ॥ ५४ ॥ सुग्रीवेचांगदेचैवविधत्स्वमतिमुत्तमाम् ॥ त्वंहिगोप्ताचशास्ताचकार्याकार्यविधौस्थितः ॥ ५५ ॥ यातेनरपतेवृत्तिर्भरतेलक्ष्मणेचया ॥ सुग्रीवेचांगदेराजंस्तांचिंतयितुमर्हसि ॥ ५६ ॥ मद्दोषकृतदोषांतांयथातारांतपस्विनीम् ॥ सुग्रीवोनावमन्येततथावस्थातुमर्हसि ॥ ५७ ॥ त्वयाह्यनुगृहीतेनशक्यंराज्यमुपासितुम् ॥ त्वद्वशेवर्तमानेनतवचित्तानुवर्तिना ॥ ५८ ॥ शक्यंदिवंचार्जयितुंवसुधांचापिशासितुम् ॥ त्वत्तोऽहंवधमाकांक्षन्वार्यमाणोपितारया ॥ ५९ ॥

पोषते रहिये ॥ ५५ ॥ हे नरेश्वर! आप भरत और लक्ष्मणजीमें जिसप्रकारकी स्नेह बुद्धि रखतेहैं; वही बुद्धि सुग्रीव और अंगदके प्रति कीजिये ॥ ५६ ॥ हमनें दोष कियाहै, कहीं यह समझ कर ताराको दोष नदिया जाय, हे श्रीरामचंद्रजी! आप ऐसा कीजिये कि जिस्से शोचनीय उस स्त्रीको सुग्रीव प्रतिपालनकरे व निरादर न करै ॥ ५७ ॥ आपके वशमें रहकर आपके चित्तका अनुयायी और आपके अनुग्रहका भाजन होकर वह वानर राज्यको पालन कर सकता ॥ ५८ ॥ समस्त पृथ्वीको पालन कर सकता, और स्वर्गका राज्य भी करनेंमें निःसंदेह समर्थ हो सकताहै, फिर इस तुच्छ राज्यकी क्या चलाई । हे श्रीरामचंद्रजी! हम इसीलिये तारा करकै रोके जानेपरभी आपके हाथसे

कठोर कुंभकर्णपर प्रहार करनेंलगे ॥ २५ ॥ परन्तु कुंभकर्ण उन सब प्रहारोंको सुखका स्पर्श समझकर कुछभी पीडित नहीं हुआ, और उसनें महावेगसे ऋषभको अपनी बांहोंसे पकड़कर अपनी छातीमे लगालिया ॥ २६ ॥ वानर श्रेष्ठ ऋषभ कुंभकर्णकी बांहोंके प्रहारसे पीड़ित होकर उसी समय पृथ्वीपर गिर पड़ा उसके मुखसे बराबर रुधिरकी धारा बहनें लगी ॥ २७ ॥ उसके उपरान्त इन्द्रके शत्रु कुंभकर्णनें रणभूमिमें मूका मारकर शरभको जांघके प्रहारसे नीलको और लात मारकर गवाक्षके ऊपर प्रहार किया ॥ २८ ॥ यह सब वानर वीर अत्यन्त दारुण प्रहारसे मर्ममें घायल होकर गिरगये, उनके सब अंगोंमें रुधिरकी धारा बहनेंसे वह जड़कटे हुए टेसूके वृक्षकी समान पृथ्वीमें गिरपड़े ॥ २९ ॥ उन महाबलवान मुख्य२वानरोंके पृथ्वीपर

स्पर्शानिवप्रहारांस्तान्वेदयानोनविव्यथे ॥ ऋषभंतुमहावेगंबाहुभ्यांपरिषस्वजे ॥ २६ ॥ कुंभकर्णभुजाभ्यांतुपीडितोवानरर्षभः ॥ निपपातर्षभोभीमःप्रमुखागतशोणितः ॥ २७ ॥ मुष्टिनाशरभंहत्वाजानुनानीलमाहवे ॥ आजघानगवाक्षंतुतलेनेंद्ररिपुस्तदा ॥ २८ ॥ दत्तप्रहारव्यथितामुमुहुःशोणितोक्षिताः ॥ निपेतुस्तेतुमेदिन्यांनिकृत्ताइवाकिंशुकाः ॥ २९ ॥ तेषुवानरमुख्येषुपातितेषुमहात्मसु ॥ वानराणांसहस्राणिकुंभकर्णप्रदुद्रुवुः ॥ ३० ॥ तंशैलमिवशैलाभाःसर्वेतुप्लवगर्षभाः ॥ समारुह्यसमुत्पत्यददंशुःप्लवगर्षभाः ॥ ३१ ॥ तंनखैर्दशनैश्चापिमुष्टिभिर्बाहुभिस्तथा ॥ कुंभकर्णमहाबाहुंनिजघ्नुःप्लवगर्षभाः ॥ ३२ ॥ सवानरसहस्रैस्तुविचितःपर्वतोपमः ॥ रराजराक्षसव्याघ्रोगिरिरात्मरुहैरिव ॥ ३३ ॥ बाहुभ्यांवानरान्सर्वान्प्रगृह्यसमहाबलः ॥ भक्षयामाससंक्रुद्धोगरुडःपन्नगानिव ॥ ३४ ॥

गिरनेंसे असंख्य वानरोंकी सैना कुंभकर्णके सन्मुख दौड़ी ॥ ३० ॥ पर्वताकार वानरश्रेष्ठ गण छलांग मारकर पर्वताकर कुंभकर्णके शरीरपर सवार होकर वारंवार दांतोंसे उसको काटनें लगे ॥ ३१ ॥ वह वानरश्रेष्ठ गण, नख दन्त मूका और बांहोंसे महाबलवान कुंभकर्णको मारनेलगे ॥ ३२ ॥ उसकालमें पर्वताकार राक्षसश्रेष्ठ कुंभकर्ण हजारों वानरोंके लिपट जानेसे वृक्षराजि विराजित पर्वतश्रेष्ठकी समान ॥ ३३ ॥ गरुडजी जिसप्रकार सर्पोंको भक्षण करतेहैं, वैसेही वह महाबलवान कुंभकर्ण क्रोधमें भरकर अपनी बाहोंसे वानरोंको पकड़ २ कर खानेंलगा ॥ ३४ ॥

हे वानरशार्दूल! पछतावा करनेंसे कुछ प्रयोजन नहींहै, हमनें धर्मानुसारही तुम्हारा संहार कियाहै, क्योंकि हमभी धर्मशास्त्रके वशहैं, कुछ स्वाधीन नहींहैं ॥ ३५ ॥ हे कपिश्रेष्ठ! इस विषयमें औरभी कारणहैं; वह भी तुम्हें बतातेहैं, उनको सुनकर तुम मनमें उपजा हुआ क्रोध छोडदो॥ ॥ ३६ ॥ हे वानरश्रेष्ठ! नतो इसलिये कुछ हमारे मनको संतापहै, न कुछ क्रोधहीहै; क्योंकि बहुत सारे मांस खानेंवाले नरगण, जाल, फांसी; व विविध भांतिके कपट कर ॥ ३७ ॥ छिपकर, वा प्रगट होकर भागते और डरे हुये या विश्वास कर बैठे हुए बहुत मृगोंको पकडतेहैं ॥ ३८ ॥ जो राजा लोग सावधान या असावधान दुष्ट मृगोंको काननमें हनन करते हैं उनकोभी मनुष्य वध करनेंके समान अघ नहीं प्राप्त होता, चाहें मांस

तदलंपरितापेनधर्मतःपरिकल्पितः॥ वधोवानरशार्दूलनवयंस्ववशेस्थिताः ॥ ३५ ॥ शृणुचाप्यपरंभूयःकारणंहरिपुंगव॥ तच्छ्रुत्वाहिमहद्वीरनमन्युंकर्तुमर्हसि ॥ ३६ ॥ नमेतत्रमनस्तापोनमन्युर्हरिपुंगव॥ वागुराभिश्चपाशैश्चकूटैश्च विविधैर्नराः ॥ ३७ ॥ प्रतिच्छन्नाश्चदृश्याश्चगृह्णंतिसुबहून्मृगान् ॥ प्रधावितान्वावित्रस्तान्विस्रब्धानतिविष्ठितान्॥ ॥ ३८ ॥ प्रमत्तानप्रमत्तान्वानरामांसाशिनोभृशम् ॥ विद्ध्यंतिविमुखांश्चापिनचदोषोऽत्रविद्यते॥ ३९ ॥ यांतिराजर्षयश्चात्रमृगयांधर्मकोविदाः॥ तस्मात्त्वंनिहतोयुद्धेमयाबाणेनवानर ॥४०॥ अयुध्यन्प्रतियुध्यन्वायस्माच्छाखामृगोह्यसि ॥ ४१ ॥ दुर्लभस्यचधर्मस्यजीवितस्यशुभस्यच॥ राजानोवानरश्रेष्ठप्रदातारोनसंशयः ॥ ४२ ॥ तान्नहिंस्यान्नचाक्रोशेन्नाक्षिपेन्नाप्रियंवदेत्॥ देवामानुषरूपेणचरंत्येतेमहीतले ॥ ४३ ॥

के अर्थ वा यज्ञार्थ चाहें जिसके लिये मारें उन्हें कुछभी दोष नहीं होता॥ ३९ ॥ बहुत सारे धर्मके जाननेंवाले राजर्षि लोगोंनें शिकार खेलते २ अनेक बनैले मृग मार डालेहैं, व इसी कारणसे हमने तुमको बाण मारकर संहार किया। क्योंकि तुमभी तो शाखामृगहीहो॥४०॥चाहें तुम हमसे युद्ध करतेथे या न करतेथे परन्तु थे तो मृगही;इस्से हमने तुमको मारा ॥ ४१ ॥ हे वानरश्रेष्ठ! राजा लोग दुर्लभ और शुभकारी धर्म और जीवनतक दानकर देतेहैं इसमें कुछ संदेह नहीं ॥ ४२ ॥ राजालोगोंको न मारना चाहिये, उनके ऊपर क्रोध कर तर्जनादि न करना

र्णं उस शिखरके लगनेसे ॥ ४४ ॥ क्रोधके मारे अत्यन्त प्रज्वलितहो उठा और वेगसे वालिकुमार अंगदजीके ऊपर धाया ॥ ४५ ॥ महानाद करके कुंभकर्णने समस्त वानरोंको त्रासितकर अत्यन्त रोषसे वह शूल महा बलवान अंगदजीके ऊपर छोड़ा ॥ ४६ ॥ परन्तु युद्धविद्याविशारद कपि श्रेष्ठ अंगदजी उस शूलको आता हुआ देख अपने शरीरको छोडकर दूरको कूदगये, और उस शूलको व्यर्थ कर दिया ॥ ४७ ॥ तिसके पीछे वेगसे उछलकर वीरश्रेष्ठ अंगदजीनें कुंभकर्णकी छातीमें इस प्रकार जोरसे लातमारी कि पर्वतकी समान कुंभकर्णभी उस लातके लगनेंसे मूर्छित होगया ॥ ४८ ॥ विपुल बलशाली कुंभकर्णनें क्षणभरमें चेतना पाय हँसकर अंगदजीकी छातीमें एक मूकामारा, कि जिसके

कुंभकर्णःप्रजज्वालक्रोधेनमहतातदा ॥ सोऽभ्यधावतवेगेनवालिपुत्रममर्षणम् ॥४५॥ कुंभकर्णोमहानादस्त्रासयन्सर्वं वानरान्॥ शूलंससर्जवैरोषादंगदेतुमहाबलः॥४६॥तदापतंतंबलवान्युद्धमार्गविशारदः॥लाघवान्मोक्षयामासबलवान्व नरर्षभः॥४७॥उत्पत्यचैनंतरसातलेनोरस्यताडयत्॥सतेनाभिहतःकोपात्प्रमुमोहाचलोपमः॥४८॥ सलब्धसंज्ञोऽतिब लोमुष्टिंसंगृह्यराक्षसः ॥ अपहासेनचिक्षेपविसंज्ञःसपपातह॥४९॥तस्मिन्प्लवगशार्दूलेविसंज्ञेपतितेभुवि॥तच्छूलंसमुपा दायसुग्रीवमभिदुद्रुवे ॥ ५० ॥ तमापतंतंसंप्रेक्ष्यकुंभकर्णंमहाबलम् ॥ उत्पपाततदावीरःसुग्रीवोवानराधिपः ॥ ५१ ॥ सपर्वताग्रमुत्क्षिप्यसमाविध्यमहाबलः ॥ अभिदुद्राववेगेनकुंभकर्णंमहाबलम् ॥ ५२ ॥ तमापतंतंसंप्रेक्ष्यकुंभकर्णःप्ल वंगमम् ॥ तस्थौविवृत्तसर्वांगोवानरेंद्रस्यसंमुखः ॥ ५३ ॥

लगनेंसे वीरश्रेष्ठ अंगदजीभी मूर्छित होकर पृथ्वीमें गिरपड़े ॥ ४९ ॥ वानर शार्दूल अंगदजी जब पृथ्वीपर गिरकर मूर्छित होगये तब कुंभकर्ण शूल ग्रहण करके सुग्रीवजीके सन्मुख धाया ॥ ५० ॥ वीरश्रेष्ठ वानरराज सुग्रीवजी महा बलवान कुंभकर्णको आता हुआ देखकर आपही उछल गये ॥ ५१ ॥ वह महा बलवान सुग्रीवजी एक पर्वतको उखाड़कर महा बलवान कुंभकर्णके ऊपर चलाय स्वयं अतिवेगसे उसके ऊपरको दौडे ॥ ५२ ॥ परन्तु कुंभकर्ण वानरराज सुग्रीवजीको वीर दर्पसे आता हुआ देखकर, अपने हाथ पांव फैलाकर सुग्रीवजीके सन्मुख हुआ ॥५३॥

इस लिये तुमनें कामाचारीहो धर्मके मार्गको उल्लंघनकिया। उस भ्रातृभार्याकी धर्षणा करनेंके हेतु हमनें यह दंड तुमको दिया ॥ २० ॥ हे वानरवर! लोकोंके व्यवहारकी मर्यादाको उल्लंघन करनेंवाले लोक विमुख पुरुषको मारनेंके सिवाय हम और कोई दंड नहीं देखते ॥ २१ ॥ हम श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न हुये, क्षत्रिय पापको नहीं सहसकते, सहोदरा भगिनी अथवा छोटे भ्राताकी स्त्रीसे ॥ २२ ॥ रमण करनेंवाले पुरुषको मार डालनाही ठीक दंड है महीपाल भरतजीनें हमको इसी प्रकारकी आज्ञाकीहै; सो हमनें उनकी आज्ञानुसारही कार्य किया है ॥ २३ ॥ तुमनें धर्मकी मर्यादाको तोडा है; जो गुरु होकर धर्मकी मर्यादा तोडे; तौ परलोकमें धर्म पालक होकर उसकोभी विना दंड दिये नहीं छोड सकते ॥ २४ ॥

तद्व्यतीतस्यतेधर्मात्कामवृत्तस्यवानर ॥ भ्रातृभार्याभिमर्शेऽस्मिन्दंडोऽयंप्रतिपादितः ॥ २० ॥ नहिलोकविरुद्धस्यलोकवृत्तादपेयुषः ॥ दंडादन्यत्रपश्यामिनिग्रहंहरियूथप ॥ २१ ॥ नचतेमर्षयेपापंक्षत्रियोऽहंकुलोद्गतः ॥ औरसींभगिनींवापिभार्यांवाप्यनुजस्ययः ॥ २२ ॥ प्रचरेतनरःकामात्तस्यदंडोवधःस्मृतः ॥ भरतस्तुमहीपालोवयंत्वादेशवर्तिनः ॥ २३ ॥ त्वंचधर्मादतिक्रांतःकथंशक्यमुपेक्षितुम् ॥ गुरुधर्मव्यतिक्रांतंप्राज्ञोधर्मेणपालयन् ॥ २४ ॥ भरतःकामयुक्तानांनिग्रहेपर्यवस्थितः ॥ वयंतुभरतादेशावधिंकृत्वाहरीश्वर ॥ त्वद्विधान्भिन्नमर्यादान्निग्रहीतुंव्यवस्थिताः ॥ २५ ॥ सुग्रीवेणचमेसख्यंलक्ष्मणेनयथातथा ॥ दारराज्यनिमित्तंचनिःश्रेयसकरःसमे ॥ २६ ॥ प्रतिज्ञाचमयादत्तातदावानरसंनिधौ ॥ प्रतिज्ञाचकथंशक्यामद्विधेनानवेक्षितुम् ॥ २७ ॥

भरतजीनें कामाधीनहो स्वेच्छानुसार चलनेंवाले पुरुषोंको दंड देनेंकी व्यवस्थाकीहै; सो हम लोग उन भरतकी आज्ञा पालन करके तुम्हारी समान धर्मकी मर्यादा तोडनेंवाले पुरुषोंको विनाश किये हैं ॥ २५ ॥ जैसे लक्ष्मणजीके सहित हमारी मित्रताईहै, वैसेही सुग्रीवजीभी हमारे सखा हैं, सो सुग्रीवजी हमारी मित्रतासे अपना राज्य व स्त्री पानेंकेलिये हमारे निकट आये हैं, यह वानर हमारा बडा प्रियकारीहै ॥ २६ ॥ और दूसरे हमनें सब वानरोंके सहित प्रतिज्ञाभी कीहै कि तुम्हारा राज्य और तुम्हारी स्त्री तुम्हें दिलादेंगे। सो भला हम समान पुरुष प्रतिज्ञाको किस प्रकारसे त्या

अत्यन्त कुपित हुआ वह मुख फैलायकर सिंहनाद करनें लगा। इसके उपरान्त क्षण कालमें बिजलीकीं समान प्रकाशमान शूल ग्रहणकर व घुमाय उसनें वानर रीछोंके पति सुग्रीवजीका प्राण संहार करनेंके लिये उनके ऊपर चलाया ॥ ६१ ॥ कि इतनेहीमें पवनकुमार हनुमानजीनें मूर्छासे जाग अति वेगसे उछलकर कुंभकर्णकी भुजाओंके चलाये सुवर्णकी मालासे शोभित और पैने उस शूलको दोनों बाहोंसे पकडकर तोड डाला ॥६२॥ महावीर हनुमानजीने सौ भारके बने हुए उस कालेलोहेके शूलको अपनी जांघ पर रखकर लीला पूर्वक तोड़ डाला जिसको देखकर वानरोंके आनंदकी सीमा न रही ॥६३॥ हनुमानजीसे शूलको टूटा हुआ देखकर वानरोंकी सैना आनंदसे सिंहनाद करती हुई आगेको धाई ॥ ६४॥

तत्कुंभकर्णस्यभुजप्रणुन्नशूलंशितंकांचनदामयष्टिम् ॥ क्षिप्रंसमुत्पत्यनिगृह्यदोर्भ्यांबभंजवेगेनसुतोऽनिलस्य ॥ ६२ ॥
कृतंभारसहस्रस्यशूलंकालायसंमहत् ॥ बभंजजानुमारोप्यतदाहृष्टःप्लवंगमः ॥ ६३ ॥ शूलंभग्नंहनुमतादृष्ट्वावानरवा
हिनी ॥ हृष्टाननादबहुशःसर्वतश्चापिदुद्रुवे ॥ ६४॥ बभूवाथपरित्रस्तोराक्षसोविमुखोऽभवत् ॥ सिंहनादंचतेचक्रुः
प्रहृष्टावनगोचराः ॥ मारुतिंपूजयांचक्रुर्दृष्ट्वाशूलंतथागतम् ॥ ६५ ॥ सतत्तथाभग्नमवेक्ष्यशूलंचुकोपरक्षोधिपतिर्म
हात्मा ॥ उत्पाट्यलंकामलयात्सशृंगंजघानसुग्रीवमुपेत्यतेन ॥ ६६ ॥ सशैलशृंगाभिहतोविसंज्ञःपपातभूमौयुधि
वानरेंद्रः ॥ तंवीक्ष्यभूमौपतितंविसंज्ञंनेदुःप्रहृष्टायुधियातुधानाः ॥ ६७ ॥ समभ्युपेत्याद्भुतघोरवीर्यसकुंभकर्णोयु
धिवानरेंद्रम् ॥ जहारसुग्रीवमभिप्रगृह्ययथानिलोमेघमिवप्रचंडः ॥ ६८ ॥

त्रासितहोकर राक्षसभी युद्ध करनेंसे विमुख होगये, उनको देखकर वानर गण हर्षितहो वारंवार सिंहनाद करनें लगे, और शूलको टूटा हुआ देखकर हनुमानजीकी बड़ाई करनें लगे॥ ६५॥ राक्षसपति महाबलवान कुंभकर्ण शूलको इस प्रकारसे टूटा हुआ देखकर अत्यन्त क्रोधित हुआ और लंकाके समीप स्थित मलयाचलका एक शृङ्ग उखाड़कर सुग्रीवजीके निकट आय उससे इनके ऊपर प्रहार किया॥ ६६ ॥ वानरोंके राजा सुग्रीवजी उस पर्वतके शृङ्गोंसे अत्यन्त घायल और चेतना रहित होकर पृथ्वीमें गिर पड़े उनको मूर्छित होकर पृथ्वीमें पड़ा देख निशाचरगण आनंदसे सिंहनाद करनें लगे ॥ ६७॥ उसके उपरान्त प्रचंड पवन जिस प्रकारसे बादलोंको उड़ा कर ले जाता है वैसेही कुंभकर्ण अद्भुत वीर्यवान

तुमनें सुग्रीवका प्रिय करनें और अपनी स्त्री प्राप्त करनेंके लिये हमको मारडाला, यदि पहलेहीसे आप हमें जतादेते तो हम एक दिनके बीचमें निःसंदेह आपकी भार्या मैथिलीको ला देते ॥ ४९ ॥ हम निःसंदेह तुम्हारी भार्याके हरण करनेंवाले दुरात्मा राक्षस रावणको संग्राममें विनाहने उसके गलेमें रस्सा बाँधकर आपके निकट ले आते ॥ ५० ॥ मैथिली समुद्रके जलमें, वा पातालमें, अथवा जहां कहीं भी होती आपकी आज्ञा पाते ही जानकी आपके पास ले आते, जैसे मधु कैटभ दैत्य करके हरीहुई शुक्ल यजुर्वेदकी श्रुतिको हयग्रीवजी ले आयेथे ॥ ५१ ॥ यह तो ठीकही ठीक हुआ कि हमारे स्वर्ग जानें पर सुग्रीव राजा होंगे, परन्तु यह कार्य अत्यन्त अनुचित हुआ कि आपनें हमको अधर्मसे मार डा

सुग्रीवप्रियकामेनयदहंनिहतस्त्वया ॥ मामेवयदिपूर्वंत्वमेतदर्थमचोदयः ॥ मैथिलीमहमेकाह्नातवचानीतवान्भ
वेः ॥ ४९ ॥ राक्षसंचदुरात्मानंतवभार्यापहारिणम् ॥ कंठेबद्ध्वाप्रदद्यांतेऽनिहतंरावणंरणे ॥ ५० ॥ न्य
स्तांसागरतोयेवापातालेवापिमैथिलीम् ॥ आनयेयंतवादेशाच्छ्वेतामश्वतरीमिव ॥ ५१ ॥ युक्तंयत्प्राप्नुयाद्राज्यंसुग्री
वःस्वर्गतेमयि ॥ अयुक्तंयदधर्मेणत्वयाहंनिहतोरणे ॥ ५२ ॥ काममेवंविधोलोकःकालेनविनियुज्यते ॥ क्षमंचेद्भव
ताप्राप्तमुत्तरंसाधुचिंत्यताम् ॥ ५३ ॥ इत्येवमुक्त्वापरिशुष्कवक्त्रःशराभिघाताद्व्यथितोमहात्मा ॥ समीक्ष्यरामंरवि
सन्निकाशंतूष्णींबभौवानरराजसूनुः ॥ ५४ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०कि०सप्तदशःसर्गः ॥ १७ ॥ ॥ छ ॥ ॥
इत्युक्तःप्रश्रितंवाक्यंधर्मार्थसहितंहितं ॥ परुषंवालिनारामोनिहतेनविचेतसा ॥ १ ॥

ला ॥ ५२ ॥ एक दिन सबहीको कालके गालमें जानाहै, फिर इस्से हम मृत्युको प्राप्त हुए; तो क्या हुआ ? परन्तु आप हमको अधर्मसे वधकर जब राज्य प्राप्त करेंगे, और उस समय राज्य स्थित प्रजा गण प्रश्न करेंगे तो उनको आप क्या उत्तर देंगे? ॥ ५३ ॥ इस प्रकार बाणकी चोटसे व्यथित होकर वानरराज महात्मा वालिका मुख पीला पडगया और वह सूर्य समान तेजवान देखते २ मौनहोरहा ॥ ५४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे सप्तदशःसर्गः ॥ १७ ॥ श्रीरामचंद्रजीके द्वारा घायल, अचेतन वालि, श्रीरामचंद्रजीसे इस

कुम्भकर्णका सब शरीर फट जायगा और वह मरजायगा तब वानरराज सुग्रीवजीके समस्त वानरोंके आनंदकी सीमा न रहेगी ॥ ७५ ॥ अथवा हमारी इस प्रकारकी सहायताका क्या प्रयोजनहै? यह वानरराज सुग्रीवजी यदि असुर व सर्पोंके सहित देवता लोगोंसे पकड़े जाँय तथापि यह अपने आपहीसे अपनेको छुटालेंगे ॥ ७६ ॥ ऐसा जान पड़ताहै कि पर्वतके प्रहारसे अत्यन्त चोट खानेके कारण इन सुग्रीवजीका ज्ञान लोप हुआ होगा, इसी कारणसे स्वयं जो कुम्भकर्णसे रणस्थलमें वह पकडे गये हैं, ॥ ७७ ॥ इस बातको अबतक नहीं जान सकेहैं हमको निश्चय है कियह महात्मा सुग्रीवजी इसी मुहूर्तमें चेतनाको पाय अपना और वानर गणोंका जिस्से मंगल होगा उसकी चेष्टा करेंगे ॥ ७८ ॥ और जो अवश्यही हम

अथवास्वयमप्येषमोक्षंप्राप्स्यतिवानरः ॥ गृहीतोऽयंयदिभवेत्रिदशैःसासुरोरगैः ॥ ७६ ॥ मन्येनतावदात्मानंबुध्यते वानराधिपः ॥ शैलप्रहाराभिहतःकुंभकर्णेनसंयुगे ॥ ७७ ॥ अयंमुहूर्तात्सुग्रीवोलब्धसंज्ञोमहाहवे ॥ आत्मनोवानराणां चयत्पथ्यंतत्करिष्यति ॥ ७८ ॥ मयातुमोक्षितस्यास्यसुग्रीवस्यमहात्मनः ॥ अप्रीतिश्चभवेत्कष्टाकीर्तिनाशश्चशा श्वतः ॥ ७९ ॥ तस्मान्मुहूर्तंकांक्षिष्येविक्रमंमोक्षितस्यतु ॥ भिन्नंचवानरानीकंतावदाश्वासयाम्यहम् ॥ ८० ॥ इत्येवंचिंतयित्वाथहनूमान्मारुतात्मजः ॥ भूयःसंस्तंभयामासवानराणांमहाचमूम् ॥ ८१ ॥ सकुंभकर्णोथविवेशलंकां स्फुरंतमादायमहाहरिंतम् ॥ विमानचर्यागृहगोपुरस्थैःपुष्पाग्र्यवर्षैरभिपूज्यमानः ॥ ८२ ॥ लाजगंधोदवर्षैस्तुसे व्यमानःशनैःशनैः ॥ राजवीथ्यास्तुशीतत्वात्संज्ञांप्रापमहाबलः ॥ ८३ ॥

महा बलवान सुग्रीवजीको ऐसे कष्टसे छुटादें तो इनकी निरंतर कीर्त्तिका नाश होगा; और इसही कारणसे हमारे साथ अनबनाव होजानाभी संभव है ॥ ७९ ॥ इसलिये हम क्षणभर परखकर इन शत्रुसे छुटे हुए वीरका पराक्रम देखें । और इतने इस भागी हुई वानरोंकी सैनाको सम झावें बुझावें ॥ ८० ॥ पवनकुमार हनुमानजी इस प्रकारकी चिन्ता करके इस बड़ी भारी वानरोंकी सैनाको फिर समझा बुझाकर स्थापित करनें लगे ॥ ८१ ॥ इस ओर कुम्भकर्ण उन दीप्तिमान् महा वानर सुग्रीवजीको ग्रहण करके विमान, मार्ग, ग्रह, और फाटको पर बैठे हुए राक्षसों करके उत्तम पुष्पोंकी वर्षासे पूजितहो लंकामें प्रवेश करता हुआ ॥ ८२ ॥ तब अक्षत चंदन युक्त जलकी वर्षासे धीरे २ सींचे जानेंके कारण और

हो सकताहै? ॥ १० ॥ हम अति उत्तम अपने धर्ममें टिके रह भरतजीकी आज्ञा शिर पर धारण कर, धर्ममार्ग छोडनेंवाले पुरुषोंका विचार किया करतेहैं ॥ ११ ॥ तुमनें धर्मको क्लेश देकर निन्दनीय कर्म कियाहै ॥ तुम राजधर्मका अपमानकर उसमें नहीं टिके हुए अधिक कर कामाधीन हुएंहो ॥ १२ ॥ धर्ममें और अच्छे मार्गमें चलनेंवाले बडे भ्राता, पिता, और जो विद्या पढावै यह तीनोंजन पिताकी तुल्य होतेहैं ॥ १३ ॥ छोटाभाई पुत्र और गुणवान शिष्य इनतीनों जनोंको पुत्रकी तुल्य समझना चाहिये, इसमें धर्महीं कारणरूप गिना जाताहै ॥ १४ ॥हे वानर! सज्जनोंका परम धर्म अति सूक्ष्महै, सो हृदयमें टिका हुआ आत्मा शुभ अशुभ समस्तही जान सकताहै ॥ १५ ॥ तुम चपलस्वभाव, जन्मान्ध

तेवयंमार्गविभ्रष्टंस्वधर्मेपरमेस्थिताः ॥ भरताज्ञांपुरस्कृत्यनिंतयामोयथाविधि ॥ ११ ॥ त्वंतुसंक्लिष्टधर्मश्चकर्मणाचविगर्हितः ॥ कामतंत्रप्रधानश्चनास्थितोराजवर्त्मनि ॥ १२ ॥ ज्येष्ठोभ्रातापितावापियश्चविद्यांप्रयच्छति ॥ त्रयस्तेपितरोज्ञेयाधर्मेचपथिवर्तिनः ॥ १३ ॥ यवीयानात्मनःपुत्रःशिष्यश्चापिगुणोदितः ॥ पुत्रवत्तेत्रयश्चिंत्याधर्मश्चैवात्रकारणम् ॥ १४ ॥ सूक्ष्मःपरमविज्ञेयःसतांधर्मःप्लवंगम ॥ हृदिस्थःसर्वभूतानामात्मावेदशुभाशुभम् ॥ १५ ॥ चपलश्चपलैःसार्द्धवानरैरकृतात्मभिः ॥ जात्यंधइवजात्यंधैर्मंत्रयन्प्रेक्षसेनुकिम् ॥१६॥ अहंतुव्यक्ततामस्यवचनस्यब्रवीमिते ॥ नहिमांकेवलंरोषात्त्वंविगर्हितुमर्हसि॥१७॥तदेतत्कारणंपश्ययदर्थंत्वंमयाहतः ॥ भ्रातुर्वर्तसिभार्यायांत्यक्त्वाधर्मंसनातनम् ॥१८॥ अस्यत्वंधरमाणस्यसुग्रीवस्यमहात्मनः ॥ रुमायांवर्तसेकामात्स्नुषायांपापकर्मकृत्॥१९॥

और मूढहो, चपल बुद्धि जन्मान्ध वानरगणोंके सहित सलाह कर व उनके निकट उठनें बैठनेंसे तुमभी वैसेही होगयेहो ॥ १६ ॥तुम श्रवण करो कि हम यह वचन स्पष्ट प्रगट कर कहतेहैं, कि तुम केवल रोषमें भर हमारी निन्दा करतेहो सो यह तुमको उचित नहींहै॥१७॥हम तुमको यह भी बतलातेहैं कि जिस कारणसे हमनें तुमको माराहै तुम सनातन धर्मको छोड छोटे भ्राताकी स्त्रीसे रमण करते हो सो इसका विचार तुमही करलो कि यह बात उचित है वा अनुचित॥१८॥महात्मा सुग्रीवके जीवित रहते पापाचारी तुमनें उनकी स्त्री अपनी भ्रातावधूसे कामके अधीन हो रमणकिया १९॥

कुम्भकर्ण रुधिर उगलता हुआ शोभित हुआ ॥ ९० ॥ महावीर कुंभकर्णका आकार नीले अंजनकी समान काले रंगकाथा, सन्ध्या फूलनेंके रंगसे रँगे हुए मेघकी समान उसकी शोभा अनुपमथी; ऐसे अति भयंकर रूप निशाचरनें फिर युद्धभूमिमें चलनेंके लिये अभिलाष किया॥९१॥ वानरराज सुग्रीवजीके चले जानेंपर रौद्र मूर्त्ति इन्द्रका शत्रु कुम्भकर्ण दूसरी वार रणभूमिकी ओरको दौड़ा और अपनेंको आयुध हीन विचार कर एक मुद्गर इसनें ग्रहण किया ॥ ९२ ॥ इसके उपरान्त वह महाबलवान राक्षस कुंभकर्ण सहसा लंका पुरीसे निकल प्रलय समयके अग्नि जिस प्रकार प्रजा गणोंको भस्म करतेहैं, वैसेही वानरोंको भक्षण करनें लगा ॥ ९३ ॥ मांस रुधिरका लालची

नीलांजनचयप्रख्यःससंध्यइवतोयदः ॥ युद्धायाभिमुखोभीमोनमश्चक्रेनिशाचरः ॥ ९१ ॥ गतेचतस्मिन्सुरराजशत्रुः
क्रोधात्प्रदुद्रावरणायभूयः ॥ अनायुधोस्मीतिविचिंत्यरौद्रोघोरंतदामुद्गरमाससाद ॥ ९२ ॥ ततःसपुर्याःसहसाम
हात्मानिष्क्रम्यतद्वानरसैन्यमुग्रम् ॥ बभक्षरक्षोयुधिकुंभकर्णःप्रजायुगांताग्निरिवप्रवृद्धः ॥ ९३ ॥ बुभुक्षितःशोणित
मांसगृध्नुःप्रविश्यतद्वानरसैन्यमुग्रम् ॥ चखादरक्षांसिहरीन्पिशाचानृक्षांश्चमोहाद्युधिकुंभकर्णः ॥ यथैवमृत्युर्हरतेयुगां
तेसभक्षयामासहरींश्चमुख्यान् ॥ ९४ ॥ एकंद्वौत्रीन्बहून्क्रुद्धोवानरान्सहराक्षसैः ॥ समादायैकहस्तेनप्रचिक्षे
पत्वरन्मुखे ॥ ९५ ॥ संप्रस्रवत्तदामेदःशोणितंचमहाबलः ॥ वध्यमानोनगेंद्राग्रैर्भक्षयामासवानरान् ॥ ९६ ॥ ते
भक्ष्यमाणाहरयोरामंजग्मुस्तदागतिम् ॥ कुंभकर्णोभृशंक्रुद्धःकपीन्खादन्प्रधावति ॥ ९७ ॥

कुंभकर्ण भूंखा हुआथा इस कारणसे मोहके मारे ज्ञानहीन होकर उग्र वानरोंकी सैनामें प्रवेश करके, उसनें वानर, राक्षस, पिशाच या रीछोंमें जिसको पाया ॥ ९४ ॥ वह वीर कुंभकर्ण क्रोधके मारे एक दो तीन या इस्से अधिक वानर गणोंको राक्षसोंके सहित एक हाथसे उठाय अपने मुखमें डालनें लगा ॥ ९५ ॥ उस समय वसा (चरबी) और रुधिरकी धारा वहनेंसे उसका शरीर भीग गया, वानर गण पर्वतके शृङ्गोंसे उसको प्रहार करते जातेथे, तथापि उसनें वानरोंको भक्षण करनेंमें कोई कसर नहीं रक्खी ॥ ९६ ॥ इस प्रकारसे कुंभकर्णके क्रोधमें भरकर वानरोंके

खरगोश, शशा, और कछुआ, यह पांच पंचनख वाले जीव ब्राह्मण और क्षत्रियोंके भक्षण करनें योग्यहैं ॥ ३९ ॥ बुद्धिमान् लोग वानरका चमडा, हड्डी, और रुवेंको स्पर्श तक नहीं करते और मांस तो हमारा अभक्ष्यहैही सो हम उन्हीं पंचनखवाले वानरको आपनें किस कारणसे वध किया ? ॥ ४० ॥ हाय ! सर्व ज्ञान सम्पन्न तारानें हमको सत्य और हितकारी वचन कहेथे, परन्तु हम अज्ञान वश उसके वचनोंको न मानकर कालके कराल गालमें पडे ॥ ४१ ॥ हे श्रीरामचंद्र ! विधर्मी पतिको प्राप्त कर जिस प्रकार सुशील स्त्री सनाथ नहीं होती वैसेही आपको पाय पृथ्वी सनाथ नहीं हुई॥४२॥महाराज दशरथजी तो महात्मा पुरुष थे उनसे शठ पराया बुरा करने वाले नीच मिथ्या भाषी आपनें किस प्रकारसे जन्म ग्रह

चर्मचास्थिचमेरामनस्पृशंतिमनीषिणः॥अभक्ष्याणिचमांसानिसोऽहंपंचनखोहतः ॥४०॥तारयावाक्यमुक्तोऽहंसत्यं सर्वज्ञयाहितम् ॥ तदतिक्रम्यमोहेनकालस्यवशमागतः ॥ ४१ ॥ त्वयानाथेनकाकुत्स्थनसनाथावसुंधरा ॥ प्रमदा शीलसंपूर्णापत्येवचविधर्मणा ॥ ४२ ॥ शठोनैकृतिकःक्षुद्रोमिथ्याप्रश्रितमानसः ॥ कथंदशरथेनत्वंजातःपापोमहा त्मना ॥ ४३ ॥ छिन्नचारित्र्यकक्ष्येणसतांधर्मातिवर्तिना ॥ त्यक्तधर्मांकुशेनाहंनिहतोरामहस्तिना ॥ ४४ ॥ अशुभंचाप्ययुक्तंचसतांचैवविगर्हितम् ॥ वक्ष्यसेचेदृशंकृत्वासाद्भिःसहसमागतः ॥ ४५ ॥ उदासीनेषुयोऽस्मासुवि क्रमोऽयंप्रकाशितः॥अपकारिषुतेरामनैवंपश्यामिविक्रमम्॥ ४६ ॥दृश्यमानस्तुयुध्येथामयायुधिनृपात्मजः ॥अद्यवै वस्वतंदेवंपश्येस्त्वंनिहतोमया॥ ४७ ॥ त्वयाऽदृश्येनतुरणेनिहतोऽहंदुरासदः ॥ प्रसुप्तःपन्नगेनेवनरःपापवशंगतः॥४८॥

ण किया॥४३॥राम रूप हस्तीनें सज्जन लोगोंका धर्म उल्लंघन कर सदाचार की रस्सी तोड और धर्म रूप अंकुशको न मानकर हमको मार डाला॥४४॥ अशुभ, अयुक्त, सज्जनोंसे निन्दित कार्य कर, जब आप सज्जनसमाजमें बैठेंगे, तब उन लोगोंसे आप क्या कहेंगे ? ॥ ४५ ॥ हे राम ! आपनें हम उदासीन जनके ऊपर ऐसा विक्रम प्रकाश किया, परन्तु अपकारी पुरुषके ऊपर आपका पराक्रम दृष्टि नहीं आता ॥ ४६ ॥ हे राजकुमार ! यदि आप प्रगट होकर हमसे संग्राम करते तो अभी हमसे मारे जाकर निःसंदेह आप यमराजका भवन देखते ॥ ४७ ॥ हे राम ! मनुष्य लोग जिस प्रकार सोतेहुये सर्पको मार डालतेहैं आपनेंभी वैसेही अप्रगट रह कर अतिशय दुर्द्धर्ष हमको प्राणसे मारडाला ॥ ४८ ॥

वीर कुंभकर्ण मनुजवीर [illegible] स्वरसे निरादरके प्रगट करनें वाले वचन कहनें लगा ॥ १०५ ॥ जिसनें संग्रामभूमिमें सरलतासे जीत लियाहै, उस कुंभकर्णके साथ निर्भय युद्ध करके तुमनें आज बड़ी भारी वीरता प्रकाशकी ॥ १०६ ॥ जिस समय हम अस्त्र शस्त्र धारण करके साक्षात् मृत्युकी समान घूमतेहैं, उस समय हमारे साथ युद्ध करना तो एक ओर रहै, जो हमारे सामनें उस समय खड़ाभीहोजाय, वही धन्यवाद देनेंके योग्यहै ॥ १०७ ॥ कारणकि सब ओरसे देवताओंके बीचमें घिरे हुए ऐरावत हाथीपर सवार देवराज इन्द्रभी पहले कभी रणभूमिमें हमारे सामनें टिकनेंको समर्थ नहीं हुए ॥ १०८ ॥ परन्तु हेलक्ष्मण! तुमनें बालक होंने परभी आज अपने बल

अंतकस्याप्यकष्टेनयुधिजेतारमाहवे ॥ युध्यतामामभीतेनख्यापितावीरतात्वया ॥ ६ ॥ प्रगृहीतायुधस्येहमृत्योरि वमहामृधे ॥ तिष्ठन्नप्यग्रतःपूज्यःकिमुयुद्धप्रदायकः ॥ ७ ॥ ऐरावतंसमारूढोवृतःसर्वामरःप्रभुः ॥ नैवशक्रोपि समरेस्थितपूर्वःकदाचन ॥ ८ ॥ अद्यत्वयाहंसौमित्रेबालेनापिपराक्रमैः ॥ तोषितोगंतुमिच्छामित्वामनुज्ञाप्यराघ वम् ॥ ९ ॥ यत्तुवीर्यबलोत्साहैस्तोषितोऽहंरणेत्वया ॥ राममेवैकमिच्छामिहंतुंयस्मिन्हतेहतम् ॥ १० ॥ रामे मयात्रनिहतेयेन्येस्थास्यंतिसंयुगे ॥ तानहंयोधयिष्यामिस्वबलेनप्रमाथिना ॥ ११ ॥ इत्युक्तवाक्यंतद्रक्षःप्रोवाच स्तुतिसंहितम् ॥ मृधेघोरतरंवाक्यंसौमित्रिःप्रसहन्निव ॥ १२ ॥

और पराक्रमसे हमको सन्तुष्ट कर दियाहै, इसलिये हम तुम्हारी अनुमति लेकर रामचंद्रके निकट जानेंका अभिलाष करतेहैं ॥१०९॥ हम संग्राम भूमिमें तुम्हारे वीर्य बल और उत्साहसे परम संतोषको प्राप्त हुएहैं; इस कारण तुम्हें छोड़कर अब हम रामकेही मार डालनेंकी इच्छा करतेहैं कारणकि उसके मारे जानेंपर सैना सबही मरजायगी ॥ ११० ॥ रामचंद्रके मर जानेपर बचे बचाये जो कोईभी समरमें टिके रहेंगे, हम अपने प्रचंड बलसे युद्ध कर उनके मानकोभी मथ डालेंगे ॥ १११ ॥ जब कुंभकर्णनें स्तुति युक्त और घोर यह वचन कहे तो सुमित्राके पुत्र लक्ष्म

असज्जनहो परन्तु सज्जनोका वेश धारण किये हुये पापिष्ठी पावकतुल्य ढके हुये कपट धर्मसे छिपे हो हमने पहले न जाना कि आप ऐसे हैं ॥ २३ ॥ आपके राज्यमें या नगरमें हमनें कोई पाप वा बुरा आचरण नहीं किया फिर आपनें किस कारणसे हमें मारा ? हम नहीं जानते कि आप कौन हैं ॥ २४ ॥ हम नित्य फल मूल भोजन करनेवाले वनवासी वानर सुग्रीवसे युद्ध करतेथे कुछ आपको तो नहीं छेडाथा फिर आपनें क्यों हमें मारा? ॥ २५ ॥ हे राजन्! आप राजा दशरथजीके पुत्र प्रिय दर्शनहैं और आपमें धर्मानुसार चिह्नभी दृष्टि आतेहैं.कि जिस्से ज्ञात होताहै कि आप कभी अधर्म न करते होंगे ॥ २६ ॥ क्षत्रिय कुलमें उत्पन्न हुआ वेद जाननेंवाला इसलिये संशय रहित धर्म चिह्न धारण करके कौन पुरुष क्रूर

सतांवेषधरंपापंप्रच्छन्नमिवपावकम् ॥ नाहंत्वामभिजानामिधर्मच्छद्माभिसंवृतम् ॥ २३ ॥ विषयेवापुरेवातेयदा पापंकरोम्यहम् ॥ नचत्वामवजानेऽहंकस्मात्त्वंहंस्यकिल्बिषम् ॥ २४ ॥ फलमूलाशनंनित्यंवानरंवनगोचरम् ॥ मामिहप्रतियुध्यंतमन्येनचसमागतम् ॥ २५ ॥ त्वंनराधिपतेःपुत्रःप्रतीतःप्रियदर्शनः ॥ लिंगमप्यस्तितेराजन्दृश्यते धर्मसंहितम् ॥ २६ ॥ कःक्षत्रियकुलेजातःश्रुतवान्नष्टसंशयः ॥ धर्मलिंगप्रतिच्छन्नःक्रूरंकर्मसमाचरेत् ॥ २७ ॥ त्वंराघवकुलेजातोधर्मवानितिविश्रुतः ॥ अभव्योभव्यरूपेणकिमर्थंपरिधावसे ॥ २८ ॥ सामदानंक्षमाधर्मःसत्यंधृतिपराक्रमौ ॥ पार्थिवानांगुणाराजन्दंडश्चाप्यपकारिषु ॥२९॥ वयंवनचरारामभृगामूलफलाशिनः ॥ एषाप्रकृतिरस्माकंपुरुषस्त्वंनरेश्वर ॥ ३० ॥ भूमिर्हिरण्यंरूपंचनिग्रहेकारणानिच ॥ तत्रकस्तेवनेलोभोमदीयेषुफलेषुवा ॥ ३१ ॥

कर्मका आचरण करताहै? ॥ २७ ॥ रघुकुलमें आपनें जन्म लियाहै, संसारमें धर्मवान्के नामसे आप विख्यातहैं; फिर भला शुभ रूप धारण करके आपनें अधर्म कर्म क्यों किया ? ॥ २८ ॥ हे राजन् ! साम, दान, क्षमा, सत्य, धीरज और पराक्रम व शत्रुको दंड देना यह समस्त राजाओंके गुणहैं ॥ २९ ॥ हे नरेश्वर ! हम फल मूलके भोजन करनेंवाले वनचर पशु तुल्यहैं, हमारी बुद्धि पशुकी समान होजाय तो आश्चर्य नहीं परन्तु आप नगरवासी पुरुषहैं आपका ऐसा स्वभाव क्योंकर हुआ ॥३०॥ आप सोना, चांदी, इत्यादिकोंके ऊपरही विवाद व युद्ध कर सकतेहैं,हम

हाथोंके चपत लगाय२कर बड़ाभारी युद्ध आरंभ किया जिस प्रकार पर्वतसे झरने गिराकरतेहैं वैसेही कुंभकर्णका रुधिरसे भीगाहुआ शरीर बाणो
से अतिविद्ध होनेके कारण रुधिरके धाराओंको छोड़ने लगा अर्थात् उससे रुधिरकी धारें निकलने लगीं॥१२१॥उस समय वह वीर तीक्ष्णकोप और
रुधिरकी गंधसे मूर्छित होकर वानर राक्षस और रीछोंको भक्षण करता हुआ दौड़ने लगा॥१२२॥इसकेउपरान्त यमराजकेसमान भयंकर पराक्रमकारी
बलवान कुंभकर्णनें एक पर्वतका शृङ्ग उखाड श्रीरामचंद्रजीके मारनेंको चलाया परन्तु रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी फिर धनुष चढायकर सीधे चलने
वाले सात बाणोसे बीचमेंही उस पर्वतके शृङ्गको खंड २ कर देते हुए ॥ १२३ ॥ तिसके उपरान्त धर्मात्मा भरतजीके बडे भाई श्रीराम

सतीव्रेणचकोपेनरुधिरेणचमूर्छितः ॥ वानरान्राक्षसानृक्षान्खादन्सपरिधावति ॥ २२ ॥ अथशृंगंसमाविध्यभीमंभी
मपराक्रमः ॥ चिक्षेपराममुद्दिश्यबलवानंतकोपमः ॥ आप्राप्तमंतरारामःसप्तभिस्तमजिह्मगैः ॥ २३ ॥ ततस्तुरामो
धर्मात्मातस्यशृंगंमहत्तदा ॥ शरैःकांचनचित्रांगैश्चिच्छेदभरताग्रजः ॥ २४ ॥ तन्मेरुशिखराकारैर्द्योतमानमिव
श्रिया ॥ द्वेशतेवानराणांचपतमानमपातयत् ॥ २५ ॥ तस्मिन्कालेसधर्मात्मालक्ष्मणोराममब्रवीत् ॥ कुंभकर्णवधे
युक्तोयोगान्परिमृशन्बहून् ॥ २६ ॥ नैवायंवानरान्राजन्नविजानातिराक्षसान् ॥ मत्तःशोणितगंधेनस्वान्परांश्चैव
खादते ॥ २७ ॥ साध्वेनमधिरोहंतुसर्वतोवानरर्षभाः ॥ यूथपाश्चयथामुख्यास्तिष्ठंत्वस्मिन्समंततः ॥ २८ ॥

चंद्रजीनें सुवर्णकी फोंक लगे हुए बाणोंसे उसका बडा भारी कवच काट कर फेंक दिया ॥ १२४ ॥ अपनी कांतिसे मेरु पर्वतके शिखरकी समान
प्रकाशमान वह कवच पृथ्वीपर गिरा, और दो शत २०० वानर उसके नीचे दबगये ॥ १२५ ॥ उस समय धर्मात्मा लक्ष्मणजी स्वस्थ मनसे
कुंभकर्णके वध करनेंको बहुतसे उपाय सोचते विचारते श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ १२६ ॥ हे महाराज ! कुंभकर्णको इस समय वानर और राक्ष
सोंका कुछभी भेद ज्ञान नहीं है, देखिये ! यह रुधिरकी गन्धसे मतवाला होकर अपनी पराई दोनों सैनाके वीरोंको पकड २ कर खा रहाहै ॥ १२७॥
हे राजन् ! इस्से वानरश्रेष्ठगण इसके ऊपर चढ़ जावें; और प्रधान यूथपति इसके ऊपर चढ़कर इसको चारों ओरसे घेरे रहैं ॥ १२८ ॥

भरकर वह पर्वतका शृङ्ग अतिवेगसे पर्वत श्रेष्ठकी समान निशाचर कुंभकर्ण के मारा कि जिसके लगनेंसे वह अत्यन्त कातर और व्याकुल हुआ; और उसके अंग; रुधिर और वसा (चरबी) से भीगगये ॥१८॥ तब महावीर कुंभकर्णनें बिजलीके समान प्रकाशमान और शब्दित शूल घुमायकर पर्वत जिसप्रकार जलते हुए अग्निके शृङ्गको धारण करताहै, वैसेही वह शूल हनुमानजीकी बाहोंमे मारा उस समय ऐसा जान पड़ा मानो कुमारने शक्ति चलायकर क्रौञ्च पर्वतको फोड़ डाला ॥ १९ ॥ अत्यन्त दारुण प्रहारसे रणभूमिमें वानर वीर हनुमानजी अत्यन्त विह्वल हुए, उनके मुखसे अनिवारित रुधिरकी धारा वहनें लगी; और वह प्रलयकालीन मेघके गर्जनकी समान अत्यन्त भयंकर गर्जन करनेंलगे॥२०॥ राक्षसगण हनुमानजीको अचा

सशूलमाविध्यतडित्प्रकाशंगिरिर्यथाप्रज्वलिताग्निशृंगम् ॥ बाह्वंतरेमारुतिमाजघानगुहोचलंक्रौंचमिवोग्रशक्त्या ॥ १९ ॥ सशूलनिर्भिन्नमहाभुजांतरःप्रविह्वलःशोणितमुद्वमन्रुषा ॥ ननादभीमंहनुमान्महाहवेयुगांतमेघस्तनितस्वनोपमम् ॥ २० ॥ ततोविनेदुःसहसाप्रहृष्टारक्षोगणस्तंव्यथितंसमीक्ष्य ॥ प्लवंगमास्तुव्यथिताभयार्ताःप्रदुद्रुवुःसंयतिकुंभकर्णात् ॥ २१ ॥ ततस्तुनीलोबलवान्पर्यवस्थापयन्बलम् ॥ प्रविचिक्षेपशैलाग्रंकुंभकर्णायधीमते ॥ २२ ॥ तदापतंतंसंप्रेक्ष्यमुष्टिनाभिजघानह ॥ मुष्टिप्रहाराभिहतंतच्छैलाग्रंव्यशीर्यत ॥ सविस्फुलिंगंसज्वालंनिपपातमहीतले ॥ २३ ॥ ऋषभःशरभोनीलोगवाक्षोगंधमादनः ॥ पंचवानरशार्दूलाःकुंभकर्णमुपाद्रवन् ॥ २४ ॥ शैलैर्वृक्षैस्तलैःपादैर्मुष्टिभिश्चमहाबलाः ॥ कुंभकर्णमहाकायंनिजघ्नुःसर्वतोयुधि ॥ २५ ॥

नक इस प्रकार व्यथित देखकर हर्षसे सिंहनाद करनें लगे और वानरगण भयसे दुःखित हृदयहो कुंभकर्णके निकटसे भागनेंलगे ॥२१॥ तिसके पीछे भयंकर पराक्रमकारी वानर सेनापति नीलनें सैनाको सावधान करके कुंभकर्ण पर एक बड़ा भारी पर्वतका शृंग चलाया ॥ २२ ॥ दूरसे उस पर्वतके शृङ्गको आता हुआ देखकर बलवान कुंभकर्णने घूसा मारकर उसको चूर्ण करडाला देखते २ उस पर्वत शृङ्गमेसें चिनगारियें निकलनें लगीं और ज्वाला सहित उसके टुकड़े पृथ्वीपर गिरनेलगे ॥ २३ ॥ उस समय ऋषभ, शरभ, नील, गवाक्ष, और गन्धमादन यह पांच वानरश्रेष्ठ कुंभकर्णकी ओर धाये ॥ २४ ॥ यह पांचों वानर वृक्षोंके आघातसे, पर्वतोंके प्रहारसे चपतकी मारसे लातोंकी चोटसे, और मूकोंकी मारसे पर्वताकार

किरीटधारी, शत्रुनाशी कुंभकर्णको देख पाया ॥ १३७ ॥ इसके संगमें असंख्य राक्षसोंकी सैनाथी, वह क्रोधसहित वानरोंकी सैनाको खोजत फिरताथा, जिस प्रकार दिगपाल हस्ती क्रोधित होताहो; वैसेही यह राक्षस वीर सबको व्याकुल कर रहाथा ॥ १३८ ॥ उसका आकार विन्ध्याचल और मन्दराचल पर्वतकी समान था सुवर्णका बाजू वह पहरेहुएथा, उसके मुखसे अनिवारित रुधिरकी धारा गिर रहीथी जिसके देखनेसे वह वर्षा कालीन मेघकी समान जान पड़ताथा ॥१३९॥ जीभसे अपने रुधिर लगे दोनो गलफडोंको कुंभकर्ण वारंवार चाट रहाथा, वह यमराजकी समान आकार धारण किये बराबर वानरोंकी सैनाका संहार कर रहा था ॥ १४० ॥ पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीनें प्रज्वलित अग्निकी समान उस

सर्वान्समभिधावंतंयथारुष्टंदिशागजम् ॥ मार्गमाणंहरीन्क्रुद्धंराक्षसैःपरिवारितम् ॥ ३८ ॥ विंध्यमंदरसंकाशंकांचनांगदभूषणम् ॥ स्रवंतंरुधिरंवक्त्राद्वर्षमेघमिवोत्थितम् ॥ ३९ ॥ जिह्वयापरिलिह्यंतंसृक्किणीशोणितोक्षिते ॥ मृद्नंतंवानरानीकंकालांतकयमोपमम् ॥ १४० ॥ तंदृष्ट्वाराक्षसश्रेष्ठंप्रदीप्तानलवर्चसम् ॥ विस्फारयामासतदाकार्मुकंपुरुषर्षभः ॥ ४१ ॥ सतस्यचापनिर्घोषात्कुपितोराक्षसर्षभः ॥ अमृष्यमाणस्तंघोषमभिदुद्रावराघवम् ॥ ४२ ॥ ततस्तुधारोद्धतमेघकल्पंभुजंगराजोत्तमभोगबाहुः ॥ तमापतंतंधरणीधराभमुवाचरामोयुधिकुंभकर्णम् ॥ ४३ ॥ आगच्छरक्षोधिपमाविषादमवास्थितोहंप्रगृहीतचापः ॥ अवेहिमांराक्षसवंशनाशनंयस्त्वंमुहूर्ताद्भविताविचेताः ॥ १४४ ॥

उग्र मूर्त्तिवाले राक्षस कुंभकर्णको देख अपने धनुष पर टंकारदी॥१४१॥ परन्तु राक्षसश्रेष्ठ कुंभकर्ण उस धनुषकी टंकारको नही सहन करसका वरन वह दूना क्रोधकर श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख दौड़ा ॥ १४२ ॥ इसके उपरान्त भुजगराजसदृश बाहुयुगलशाली श्रीरामचंद्रजी कुंभकर्णको पवनसे उठायेहुए मेघकी समान आताहुआ देखके कहनें लगे ॥ १४३ ॥ हे राक्षसपति! तुम विषाद न करो! यह देखो हम धनुष हाथमें लिये खडे हुएहैं। हमकोही राक्षसोंके कुलका अंत करनेंवाला राम जानो हे वीर! तुम इसी मुहूर्तमें जीवविहीन होगये ॥ १४४ ॥

परन्तु वानरगण कुंभकर्ण करके उसके पातालकी समान मुखविवरमें डाले जाकर नाकके छेद और कानोंमें होकर निकलने लगे॥३५॥वह पर्वताकार राक्षसश्रेष्ठ अत्यन्त क्रोधित होकर वानरोंको भक्षण करता हुआ समस्त वानरोंकी सैनाको पटकरकर उसके अंग भंग करने लगा॥३६॥इस प्रकार राक्षस कुंभकर्ण रणभूमिमें मांस और रुधिरकी कीचड़ उठाय प्रलय कालके प्रदीप्त अग्नि समान वानरोंकी सैनाके बीचमे घूमनें लगा॥३७॥इन्द्रजी वज्रधारण करके जिसप्रकार शोभित होतेहैं, फांसी हाथमें लिये यमराज जिसप्रकार शोभायमान होतेहैं वैसेही शूल धारण करके कुंभकर्णकी चमत्कार शोभा हुई॥३८॥जिसप्रकार अग्नि ग्रीष्मऋतुमें ग्रीष्मके समयमें सूखे हुए वनको जलातेहैं, वैसेही कुंभकर्णभी वानरोंकी सैनाको भस्म करनें लगा ॥ ३९ ॥

प्रक्षिप्ताःकुंभकर्णेनवक्त्रेपातालसन्निभे ॥ नासापुटाभ्यांसंजग्मुःकर्णाभ्यांचैववानराः ॥ ३५ ॥ भक्षयन्भृशसंक्रुद्धोहरीन्पर्वतसन्निभः ॥ बभंजवानरान्सर्वान्संक्रुद्धोराक्षसोत्तमः ॥ ३६ ॥ मांसशोणितसंक्लेदांकुर्वन्भूमिंसराक्षसः ॥ चचारहरिसैन्येषुकालाग्निरिवमूर्छितः ॥ ३७ ॥ वज्रहस्तोयथाशक्रःपाशहस्तइवांतकः ॥ शूलहस्तोबभौयुद्धेकुंभकर्णोमहाबलः ॥ ३८ ॥ यथाशुष्काण्यरण्यानिग्रीष्मेदहतिपावकः ॥ तथावानरसैन्यानिकुंभकर्णोददाहसः ॥ ३९ ॥ ततस्तेवध्यमानास्तुहतयूथाःप्लवंगमाः ॥ वानराभयसंविग्नाविनेदुर्विकृतैःस्वरैः ॥ ४० ॥ अनेकशोवध्यमानाःकुंभकर्णेनवानराः ॥ राघवंशरणंजग्मुर्व्यथिताभिन्नचेतसः ॥ ४१ ॥ प्रभग्नान्वानरान्दृष्ट्वावज्रहस्तात्मजात्मजः ॥ अभ्यधावतवेगेनकुंभकर्णंमहाहवे ॥ ४२ ॥ शैलशृंगंमहद्गृह्यविनदन्ससुहुर्मुहुः ॥ त्रासयन्राक्षसान्सर्वान्कुंभकर्णपदानुगान् ॥ ४३ ॥ चिक्षेपशैलशिखरंकुंभकर्णस्यमूर्धनि ॥ सतेनाभिहतोमूर्ध्निशैलेनेंद्ररिपुस्तदा ॥ ४४ ॥

तब मोरचोंसे तितर वितर हुए वानरगण कुंभकर्णसे वध्यमान होकर भयके मारे उद्विग्न मनसे विकट नादकरनें लगे ॥ ४० ॥ इस प्रकारसे वानरगण कुंभकर्णसे मारे जाकर उत्साह रहित होगये, और अत्यन्त भीतहो व्यथित मनसे श्रीरामचंद्रजीकी शरणमें गये ॥ ४१ ॥ वालिकुमार अंगदजी महारणमें वानरोंको कुंभकर्णके डरसे भागा हुआ देखकर वेग सहित उसके सन्मुख दौड़े ॥ ४२ ॥ उन वीर वालिकुमार अंगदजीने बड़ा भारी पर्वतका शृंग ग्रहणकरके कुंभकर्णके अनुगामी सब राक्षसोंको त्रासित कर॥४३॥ वह पर्वताकार शिखर कुंभकर्णके मस्तकपर चलाया इन्द्रका शत्रु कुंभक

व्यथा उपजानेंको समर्थ नहीं हुए ॥ १५२ ॥ इन्द्रके शत्रु कुंभकर्णनें पानीकी धाराके समान वह समस्त बाण अपनें शरीरमें धारण करके अति
उग्र वेगवाले मुद्गरके प्रहारसे श्रीरामचंद्रजीके सब बाणोंका वेग निवारण कर दिया ॥ १५३ ॥ इसके उपरान्त कुंभकर्ण जिस्से देवताओंकी
सैनाभी भागगईथी उसी रुधिर लगे हुए उग्र वेगवान मुद्गरके प्रहारसे बड़ी भारी वानरोंकी सैनाको भगानें लगा ॥ १५४ ॥ यह देखकर श्रीरा
मचन्द्रजीनें वायव्य नामक श्रेष्ठ अस्त्र ग्रहणकर कुंभकर्णके ऊपर चलाय उस्से मुद्गरके सहित उसकी बांह काटडाली और कुंभकर्णभी बांह कट
जानेंसे कठोर शब्द करनें लगा ॥ १५५ ॥ पर्वतके शृङ्गकी समान मुद्गरयुक्त श्रीरामचन्द्रजीके बाणसे कटाहुआ वह हाथ वानरराज सुग्रीवजीकी

सवारिधाराइवसायकांस्तान्पिबन्शरीरेणमहेंद्रशत्रुः ॥ जघानरामस्यशरप्रवेगंव्याविध्यतंमुद्गरमुग्रवेगम् ॥५३॥
ततस्तुरक्षःक्षतजावलिप्तंवित्रासनंदेवमहाचमूनाम् ॥ व्याविध्यतंमुद्गरमुग्रवेगंविद्रावयामासचमूंहरीणाम् ॥ ५४ ॥
वायव्यमादायततोपरास्त्रंरामःप्रचिक्षेपनिशाचराय ॥ समुद्गरंतेनजहारबाहुंसकृत्तबाहुस्तुमुलंननाद ॥ ५५ ॥
सतस्यबाहुर्गिरिशृंगकल्पःसमुद्गरोराघवबाणकृत्तः ॥ पपाततस्मिन्हरिराजसैन्येजघानतांवानरवाहिनींच ॥५६॥
तेवानराभग्नहतावशेषाःपर्यंतमाश्रित्यतदाविषण्णाः ॥ प्रपीडितांगाददृशुःसुघोरंनरेंद्ररक्षोधिपसन्निपातम् ॥ ५७ ॥
सकुंभकर्णोस्त्रनिकृत्तबाहुर्महासिकृत्ताग्रइवाचलेंद्रः ॥ उत्पाटयामासकरेणवृक्षंततोभिदुद्रावरणेनरेंद्रम् ॥ ५८ ॥
तंतस्यबाहुंसहतालवृक्षंसमुद्यतंपन्नगभोगकल्पम् ॥ ऐंद्रास्त्रयुक्तेनजघानरामोबाणेनजांबूनदचित्रितेन ॥ ५९ ॥

सैनामें गिरा, कि जिस्से बहुतसी वानरोंकी सैना दबकर मरगई ॥ १५६ ॥ भागे हुए और बचे बचाये देहमें पीड़ा पाय वानरगण
व्याकुल वदनसे एक बगल खड़ेहो मनुष्योंमें इन्द्र श्रीरामचन्द्रजी और राक्षसोंमें इन्द्र कुंभकर्णका घोर संग्राम देखनें लगे ॥ १५७ ॥ इसके उपरान्त
बड़े भारी खड्गसे कटे हुए पर्वतकी समान श्रीरामचन्द्रजीके बाणसे हाथ कटा हुआ कुम्भकर्ण दूसरे हाथसे एक वृक्ष उखाड़कर नरेन्द्र श्रीरामचं
द्रजीकी ओर दौड़ा ॥ १५८ ॥ परन्तु श्रीरामचन्द्रजीनें सुवर्णसे चित्रित ऐन्द्रास्त्रसंयोजित बाणसे शालवृक्षके सहित सर्पके शरीरकी समान चढ़

महा २ वानरोंके भक्षण करनेंसे जिनके सर्वाङ्गोंमें वानरोंका रुधिर लगा हुआथा उस कुंभकर्णको सन्मुख खडा हुआ देखकर सुग्रीवजी कहनें लगे ॥ ५४ ॥ हेवीर! तुमनें हमारी ओरके प्रधान २ वीरोंको मारकर वीरताका परिचय दियाहै, हमारी बहुत सारी सैना तुमने भक्षणभी करली है, अधिक क्याकहैं तुमनें यह कार्य करके अनुपम यश प्राप्त कियाहै ॥ ५५ ॥ इसलिये इस समय तुम इन वानरोंको छोडदो, साधारण वानरोंके साथ युद्ध करनेंसे तुमको क्या फल मिलेगा ? हे राक्षस ! जो युद्धकी वासना हो तौ हम यह पर्वतका श्रृङ्ग चलाते हैं, तुम आज हमारे साथ युद्ध करो ॥ ५६ ॥ वानरराज सुग्रीवजीके वीरता धीरता युक्त ऐसे वचन सुनकर राक्षस शार्दूल कुंभकर्ण बोला ॥ ५७ ॥ तुम प्रजापति ब्रह्माजीके

कपिशोणितदिग्धांगंभक्षयंतंमहाकपीन् ॥ कुंभकर्णंस्थितंदृष्ट्वासुग्रीवोवाक्यमब्रवीत् ॥ ५४ ॥ पातिताश्चमयावी
राःकृतंकर्मसुदुष्करम् ॥ भक्षितानिचसैन्यानिप्राप्तंतेपरमंयशः ॥ ५५ ॥ त्यजतद्वानरानीकंप्राकृतैःकिंकरिष्यसि ॥
सहस्वैकंनिपातंमेपर्वतस्यास्यराक्षस ॥ ५६ ॥ तद्वाक्यंहरिराजस्यसत्त्वधैर्यसमन्वितम् ॥ श्रुत्वाराक्षसशार्दूलः
कुंभकर्णोऽब्रवीद्वचः ॥ ५७ ॥ प्रजापतेस्तुपौत्रस्त्वंतथैवर्क्षरजःसुतः ॥ धृतिपौरुषसंपन्नस्तस्माद्गर्जसिवानर ॥ ५८ ॥
सकुंभकर्णस्यवचोनिशम्यव्याविध्यशैलंसहसामुमोच ॥ तेनाजघानोरसिकुंभकर्णंशैलेनवज्राशनिसन्निभेन ॥ ५९ ॥
तच्छैलशृंगंसहसाविभिन्नंभुजांतरेतस्यतदाविशाले ॥ ततोविषेदुःसहसाप्लवंगारक्षोगणाश्चापिमुदाविनेदुः ॥ ६० ॥
सशैलशृंगाभिहतश्चुकोपननादरोषाच्चविवृत्यवक्त्रम् ॥ व्याविध्यशूलंचतडित्प्रकाशंचिक्षेपहर्यृक्षपतेर्वधाय ॥ ६१ ॥

पोते और ऋक्षराज वानरके पुत्रहो विशेष करकै तुममें धीरता और पौरुषहै; इसीलिये तुम ऐसा गर्जन करतेहो ॥ ५८ ॥ तिसके पीछे वानरराज सुग्रीवजीनें राक्षसराज रावणके छोटे भ्राता कुंभकर्णके ऐसे वचन सुनकर, उस पर्वतके शिखरको घुमाय कुंभकर्णके ऊपर चलाया, वज्र और अशनिके समान वह शैल श्रृङ्ग कुंभकर्णकी छातीमें लगा ॥ ५९ ॥ परन्तु वह पर्वतका श्रृङ्ग कुंभकर्णकी बड़ी छातीमें लगकर सहसा चूर्ण होगया, तिसके चूर्ण होंनेसे वानरगण शोकित हुए और राक्षस गण आनंदके मारे सिंहनाद करनें लगे ॥ ६० ॥ शैल श्रृङ्गकी ताड़नासे कुंभकर्ण

हमक्रोधित होकर इस विराध राक्षसको वाण मारतेहैं वस वाणके लगतेही यह प्राण छोडदेगा और पृथ्वी इसका रुधिर पियेगी ॥ २४ ॥ राज्यक कामना करते हुये भरतजीपर जो क्रोध हमको उत्पन्न हुवाथा सो वज्र धारण करनेवाले इन्द्रनें जिस प्रकार पर्वतोंपर वज्र छोडाथा उसी भांति मैंभी यह क्रोध विराधपर छोडताहूं ॥ २५ ॥ हमारी भुजाओंके वलोंके वेगसे वेगयुक्त होकर हमारे छोडे तीर उसके हृदयमें जाकर गडेंगे, उसका जीवन नाशको प्राप्त हो जायगा, और वह घूम २ कर पृथ्वीपर गिर जायगा॥२६॥इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०आरण्यकांडे द्वितीयःसर्गः ॥२॥ फिर वह विराध राक्षस अपने वचनके शोरसे समस्त वनको पूर्ण क रता हुआ यह वोला—जो मैं पूछताहूं सो वताओ, कि तुम कौनहो और

शरेणनिहतस्याद्यमयाक्रुद्धेनरक्षसः॥विराधस्यगतासोर्हिमहीपास्यतिशोणितम्॥२४॥राज्यकामेममक्रोधोभरतेयो बभूवह॥तंविराधेविमोक्ष्यामिवज्रीवज्रमिवाचले॥२५॥ममभुजवलवेगवेगितःपततुशरोस्यमहान्महोरसि॥ व्यप नयतुतनोश्चजीवितंपततुततश्चमहींविघूर्णितः ॥ २६ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०अ०द्वितीयःसर्गः ॥ २ ॥ अथोवा चपुनर्वाक्यंविराधःपूरयन्वनम् ॥ पृच्छतोममहिब्रूतंकौयुवांक्वगमिष्यतः ॥ १ ॥ तमुवाचततोरामोराक्षसंज्वलिता ननम्॥पृच्छंतंसुमहातेजाइक्ष्वाकुकुलमात्मनः ॥२॥ क्षत्रियौवृत्तसंपन्नौविद्धिनौवनगोचरौ॥ त्वांतुवेदितुमिच्छावः कस्त्वंचरसिदंडकान्॥३॥तमुवाचविराधस्तुरामंसत्यपराक्रमम्॥ हंतवक्ष्यामितेराजन्निबोधममराघव॥४॥ पुत्रः किलजवस्याहंमाताममशतह्रदा॥ विराधइतिमामाहुःपृथिव्यांसर्वराक्षसाः ॥ ५ ॥

कहांको जाओगे ॥ १ ॥ उस अंगारेके समान जलते वदनवाले राक्षसनें जव इस प्रकार पूछा तव महातेजवान् श्रीरामचंद्रजी इक्ष्वाकु कुलमें अपना जन्म वताकर कहने लगे ॥ २ ॥ कि हम क्षत्रियहैं और जो धर्म क्षत्रियोंके हैं वहभी हम सव करतेहैं, इस समय हम वनमें आयेहैं इस वातको तू जान; हम लोगभी तुझको जाननेकी इच्छा करतेहैं कि तू कौनहै ? और किस कारण इस दंडकारण्यमें विचरण करताहै ? ॥ ३ ॥ तिसके पीछे विराध राक्षस उन सत्यपराक्रम करनेवाले श्रीरामचंद्रजी से वोला कि राम! मैं अपना वृत्तान्त कहताहूं श्रवण करो ॥ ४ ॥ मैं जव नामक राक्षसका पुत्रहूं मेरी माताका नाम शतह्रदाहै इस पृथ्वीके वीच सव राक्षस हमको विराध नामसे पुकारा करतेहैं ॥ ५ ॥

मैंने तपस्या करके ब्रह्माजीके प्रसादसे किसी शस्त्रद्वारा हम न मारे जांय न हमारे अंगही कट टूटसकें न हम मारे जांय ऐसा वरदान पायाहै ॥ ६ ॥ अतएव तुम लोग युद्धकी वासना छोड शीघ्रतासे इस स्त्रीको यहीं पर त्याग कर जिस स्थानसे आये हो वहींको चले जाओ क्योंकि मैं तुम्हारा जीव नहीं लेना चाहता ॥ ७ ॥ तब रामचंद्रजी क्रोधसे लाल २ नेत्र कर उस पाप निरत विकटाकार राक्षसको यह उत्तर देते हुए—रे अधम ! तुझको धिक्कारहै तेरा आशय और इच्छा बहुत बुरीहै तू निश्चयही मृत्युको खोजताहै सो अभी उसको प्राप्त होगा खडाहो;जबतक तू जीता रहेगा तब तक तेरा निस्तार हमसे नहीं ॥ ८ ॥ ९ ॥ अनन्तर श्रीरामचंद्रजीनें अति शीघ्र धनुषपर बाणचढाकर बहुत सारे तेजवान् उस राक्षसको लक्ष्य करके

तपसाचाभिसंप्राप्ताब्रह्मणोहिप्रसादजा ॥ शस्त्रेणावध्यतालोकेऽच्छेद्याभेद्यत्वमेवच ॥ ६ ॥ उत्सृज्यप्रमदामेनाम नपेक्षौयथागतम् ॥ त्वरमाणोपलायेथांनवांजीवितमाददे ॥ ७ ॥ तंरामःप्रत्युवाचेदंकोपसंरक्तलोचनः ॥ राक्षसं विकृताकारंविराधंपापचेतसम् ॥ ८ ॥ क्षुद्रधिक्त्वांतुहीनार्थंमृत्युमन्वेषसेध्रुवम् ॥ रणेप्राप्स्यसिसंतिष्ठनमेजीवन्विमो क्ष्यसे ॥ ९ ॥ ततःसज्यंधनुःकृत्वारामःसुनिशितान्शरान् ॥ सुशीघ्रमभिसंधायराक्षसंनिजघानह ॥ १० ॥ धनु षाज्यागुणवतासप्तबाणान्मुमोचह ॥ रुक्मपुंखान्महावेगान्सुपर्णानिलतुल्यगान् ॥ ११ ॥ तेशरीरंविराधस्याभि त्त्वाबर्हिणवाससः ॥ निपेतुःशोणितादिग्धाधरण्यांपावकोपमाः ॥ १२ ॥ सविद्धोन्यस्यवैदेहींशूलमुद्यम्यराक्ष सः ॥ अभ्यद्रवत्सुसंक्रुद्धस्तदारामंसलक्ष्मणम् ॥ १३ ॥ सविनद्यमहानादंशूलंशक्रध्वजोपमम् ॥ प्रगृह्याशोभतत दाव्यात्ताननइवांतकः ॥ १४ ॥

छोडे ॥ १० ॥ उन्होंनें धनुषपर रोदा चढाय सुवर्णके पंखे लगे अतिवेगवान् गरुड और पवनकी समान शीघ्रगामी सात तीर चलाये ॥ ११ ॥ वह सातों बाण मोरकी पूंछके समान चित्र विचित्र विराधकी देहको भेदकर रुधिरमें लिपट अग्निकी समान चमकते हुये पृथ्वीपर गिरे ॥ १२ ॥ तब वह राक्षस बाणसे विंधकर विदेहराजकुमारी सीताजीको पृथ्वीपरबैठालकर शूल उठा क्रोधमें भर रामचंद्र व लक्ष्मणजीकी ओरको दौडा ॥१३॥ वह बहुतही चिल्लाता हुआ इन्द्रध्वजके समान शूल धारणकर मुख फैलाये यमराजकी समान शोभा धारण करता हुआ ॥ १४ ॥

उस राक्षसको आतादेख दोनों भाई उस यमराजकी समान विराधराक्षस पर दीप्तिमान बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ १५ ॥ तब उस अति भयानक राक्षसनें हँसकर खडे हो जँभाई ली, जब कि उसनें जँभाईली तब उसके शरीरसे वह सब शीघ्रगामी बाण निकलकर पृथ्वीपर गिर पडे ॥ १६ ॥ तिसके पीछे वह विराध राक्षस बहुतही दुःखको प्राप्तहोकरभी ब्रह्माजीके वरदान देनेसे मरा नहीं और जीता रहा व शूल उठा कर श्रीराम लक्ष्मणके सामनेको दौडा ॥ १७ ॥ उस कालमें वह वज्रसमान शूलका अग्रभाग आकाशको छूता अग्निकी समान रूप धारण करता हुआ। तब शस्त्र धारण करनें वालोंमें श्रेष्ठ रामचंद्रजीनें दोबाणोंसे उस शूलको काट डाला ॥ १८ ॥ जिस प्रकार वज्रसे कटकर

अथतौभ्रातरौदीप्तंशरवर्षंववर्षतुः ॥ विराधेराक्षसेतस्मिन्कालांतकयमोपमे ॥ १५ ॥ सप्रहस्यमहारौद्रःस्थित्वाऽजृंभतराक्षसः ॥ जृंभमाणस्यतेबाणाःकायान्निष्पेतुराशुगाः ॥ १६ ॥ स्पर्शात्तुवरदानेनप्राणान्संरोध्यराक्षसः ॥ विराधःशूलमुद्यम्यराघवावभ्यधावत ॥ १७ ॥ तच्छूलंवज्रसंकाशंगगनेज्वलनोपमम् ॥ द्वाभ्यांशराभ्यांचिच्छेदरामः शस्त्रभृतांवरः ॥१८॥ तद्रामविशिखैश्छिन्नंशूलंतस्यापतद्भुवि ॥ पपातशनिनाच्छिन्नंमेरोरिवशिलातलम् ॥ १९ ॥ तौ खड्गौक्षिप्रमुद्यम्यकृष्णसर्पाविवोद्यतौ ॥ तूर्णमापेततुस्तस्यतदाप्रहरतांबलात् ॥ २० ॥ सवध्यमानःसुभृशंभुजाभ्यां परिगृह्यतौ ॥ अप्रकंप्यौनरव्याघ्रौरौद्रःप्रस्थातुमैच्छत ॥ २१ ॥ तस्याभिप्रायमाज्ञायरामोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ वहत्वयमलंतावत्पथानेनतुराक्षसः ॥ २२ ॥

मेरु पर्वतकी बडी शिला पृथ्वीपर गिरै वैसेही श्रीरामचंद्रजीके बाणसेटुकडे २ होकर विराध राक्षसका शूल पृथ्वीपर गिर पडा ॥ १९ ॥ जब उसका शूल कट गया तब राम और लक्ष्मण अति शीघ्र काटनेंकोतैयार काले नागकी समान दो खड्ग ले उसके सामनेको दौडे और उसके समीप जा बल वीर्यसे खड्ग उसके ऊपर प्रहार करने लगे॥२०॥तबवह राक्षस उन दोनों नर श्रेष्ठों करके अधमरासा होकर अपनें दोनों हाथोंसे दोनोंको पकड़ यह सोचने लगा कि इनको कहीं दूर ले जाकरपटक २ मारडालूं॥२१॥तबतकभी उस राक्षसका शरीर नहीं कांपा तिसकेपीछे श्रीरामचंद्रजी उस राक्षसके मनकी बातको जानकर लक्ष्मणजीसे बोले कि भला होगा यह राक्षस अपनें कंधोंपर चढाकर इस मार्गमें चले ॥२२॥

हे सुमित्रानंदन! यह राक्षस जहां हमको ले जानेकीइच्छा करताहै वहां ले जावै। क्योंकि वह जिस रास्तेपर हमें लिये जाताहै वही हमारे जानेका मार्गहै ॥ २३ ॥ उस अतिबलवान् विराधराक्षसनें अपने बल द्वारा राम और लक्ष्मणको दो बालकोंकी समान अपनें दोनों कंधोंपर उठा लिया॥२४॥ फिर वह उन दोनों जनोंकोकंधोंपर बैठाल कर भयानक बनकी ओर चिल्लाता हुआ वह निशाचर दौडने लगा॥२५॥ फिर वह राक्षस अनेक २ भांतिके वृक्ष लगे, विविध प्रकारके पक्षियोंके समूहसे मनोहर शृगालों करके युक्त चीते व्याघ्रों सर्पोंसे भरे और महा मेघकी समान निबिड वनमें प्रवेश करता हुआ ॥ २६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे तृतीयः सर्गः ॥३ ॥

यथावेच्छतिसौमित्रेतथावहतुराक्षसः ॥ अयमेवहिनःपंथायेनयातिनिशाचरः ॥ २३ ॥ सतुस्वबलवीर्येणसमुत्क्षिप्य निशाचरः ॥ बालाविवस्कंधगतौचकारातिबलोद्धतः ॥ २४ ॥ तावारोप्यततःस्कंधंराघवौरजनीचरः ॥ विराधोविनदन्घोरंजगामाभिमुखोवनम् ॥ २५ ॥ वनंमहामेघनिभंप्रविष्टोद्रुमैर्महद्भिर्विविधैरुपेतम् ॥ नानाविधैःपक्षिकुलैर्विचित्रंशिवायुतंव्यालमृगैर्विकीर्णम् ॥ २६ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेतृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥ ॥ ह्रियमाणौतुकाकुत्स्थौदृष्ट्वासीतारघूत्तमौ ॥ उच्चैःस्वरेणचुक्रोशप्रगृह्यसुमहाभुजौ ॥ १ ॥ एषदाशरथीरामःसत्यवाञ्छीलवाञ्शुचिः ॥ रक्षसारौद्ररूपेणह्रियतेसहलक्ष्मणः ॥ २ ॥ मामृक्षाभक्षयिष्यंतिशार्दूलद्वीपिनस्तथा ॥ मांहरोत्सृजकाकुत्स्थौनमस्तेराक्षसोत्तम ॥ ३ ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वावैदेह्यारामलक्ष्मणौ ॥ वेगंप्रचक्रतुर्वीरौवधेतस्यदुरात्मनः ॥ ४ ॥

जब विराध रघुनंदन रामचंद्र और लक्ष्मणजीको हरण करके ले चला यह देखकर सीताजी अपनी बडी २ बाहें उठाकर बडे जोरसे रोय २ विलाप करनें लगीं ॥ १ ॥ और बोलीं कि हा! यह भयंकर आकारवाला राक्षस साधु स्वभाववाले, सत्यमें रत, पवित्र, दशरथकुमार श्रीरामचंद्र व लक्ष्मणजीको हरे लिये जाताहै ॥ २ ॥ कोई चीता व व्याघ्रभेडिया इकली पाकर हमको खा जायगा तिससे हे राक्षसोंमें श्रेष्ठ! हम तुमको नमस्कार करतीहैं कि तुम इन दोनोंको छोडदो हमें खालो ॥३॥ बल वीर्यवाले रामचंद्र और लक्ष्मणजीनें जानकीजीके ऐसे दीन वचन

सुनकर उस दुरात्मा विराधके मार डालनेंमें बडी जलदीकी ॥ ४ ॥सुमित्रानंदन लक्ष्मणजीनें उस भयानक राक्षसका बांया हाथ और श्री रामचंद्रजीनें शीघ्रतासे उसका दहना हाथ तोड डाला ॥ ५ ॥ जब दोनोंहाथ टूट गये तब मेघ वर्ण विराध भग्नचित्तहो मूर्छाको प्राप्त होकर उसी समय पृथ्वीमें गिर पडा तब ऐसा बोध हुआ मानों कोई पर्वतवज्रकी चोटसे फटकर पृथ्वीपर गिरा ॥ ६ ॥ जब वह गिर गया तब श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजीनें लात मुक्की घूसोंसे उसको खूब मारा और वारंवार पृथ्वीपर उठा २ कर पटकनें लगे और फिर बहुतही घसीटा ॥ ७ ॥ वह विराध पहलेभी रामचंद्रजीकेबहुत बाणोंसे विधा और खड्गके प्रहारसे शरीर छिन्न भिन्नभी हुआथा और इस समय वार २

तस्यरौद्रस्यसौमित्रिःसव्यंबाहुंबभंजह ॥ रामस्तुदक्षिणंबाहुंतरसातस्यरक्षसः ॥ ५ ॥ सभग्नबाहुःसंविग्नःपपा ताशुविमूर्छितः ॥ धरण्यांमेघसंकाशोवज्रभिन्नइवाचलः ॥ ६ ॥ मुष्टिभिर्बाहुभिःपद्भिःसूदयंतौतुराक्षसम् ॥ उद्यम्यो द्यम्यचाप्येनंस्थंडिलेनिष्पिपेषतुः ॥७॥ सविद्धोबहुभिर्बाणैःखड्गाभ्यांचपरिक्षतः ॥ निष्पिष्टोबहुधाभूमौनममारस राक्षसः ॥ ८ ॥ तंप्रेक्ष्यरामःसुभृशमवध्यमचलोपमम् ॥ भयेष्वभयदःश्रीमानिदंवचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥ तपसापु रुषव्याघ्रराक्षसोयंनशक्यते॥शस्त्रेणयुधिनिर्जेतुंराक्षसंनिखनावहे ॥१०॥ कुंजरस्येवरौद्रस्यराक्षसस्यास्यलक्ष्मण ॥ वनेस्मिन्सुमहच्छ्वभ्रंखन्यतांरौद्रवर्चसः ॥ ११ ॥ इत्युक्त्वालक्ष्मणंरामःप्रदरःखन्यतामिति ॥ तस्थौविराधमाक्र म्यकंठेपादेनवीर्यवान् ॥ १२ ॥

पृथ्वीपर पटकाभी गया परन्तु तौभी नहीं मरा क्योंकि ब्रह्माजीका वरदानथा ॥ ८ ॥ दीनको शरणदेनेवाले श्रीरामचंद्रजी पर्वतकी समान विराध राक्षसको सबही प्रकारसे अवध्य देख लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ९ ॥ हे पुरुष श्रेष्ठ ! इस राक्षसनें ऐसी तपस्याकीहै कि शस्त्रकी सहायतासे वींधकर इसको कोईभी नहीं जीत सकता, अतएव इसको जीता हुआही पृथ्वीमें गढाकर दाबे देतेहैं ॥ १० ॥ हे लक्ष्मण ! तुम इस समय हाथीकी समान प्रचंड स्वभाववाले इस राक्षसके लिये वनमें एक अति बडा गढा खोदो ॥ ११ ॥ वीर्यवान् लक्ष्मणजीको इस प्रकार गढा खोदनेंकी आज्ञा

देकर श्रीरामचंद्रजी अपनें चरणसे उस राक्षसका गला दाबकर खडे रहे ॥ १२ ॥ इस समय निशाचर विराध पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीके यह वचन श्रवण करके विनय सहित यह बोला ॥ १३ ॥ हे पुरुषसिंह ! मैं आपके इन्द्रतुल्य पराक्रमसेही अधमरा हो गयाहूं, हे नरश्रेष्ठ ! मैंनें अबतक अज्ञानसे आपको नहीं पहँचाना ॥ १४ ॥ हे तात ! इस समय जाना कि आप श्रीरामचंद्रजीहैं सती कौशल्याजी आपको पाकर श्रेष्ठ पुत्रवती हुईहैं और इन महाभाग्यवती जानकी और परम कीर्तिमान् लक्ष्मणजीकोभी मैंने भली भांति पहचान लिया ॥ १५ ॥ मैं पहले तुम्बुरु नाम गन्धर्वथा; विश्रवाके पुत्र कुबेरजीनें हमको शाप दिया बस उसी शापके वश हम यह पापी निशाचर योनिको प्राप्त हुए ॥ १६ ॥ जब

तच्छ्रुत्वाराघवेणोक्तंराक्षसःप्रश्रितंवचः ॥ इदंप्रोवाचकाकुत्स्थंविराधःपुरुषर्षभम् ॥ १३ ॥ हतोहंपुरुषव्याघ्रशक्रतुल्यबलेनवै ॥ मयातुपूर्वंत्वंमोहान्नज्ञातःपुरुषर्षभ ॥ १४ ॥ कौसल्यासुप्रजास्तातरामस्त्वंविदितोमया ॥ वैदेहीचमहाभागालक्ष्मणश्चमहायशाः ॥ १५ ॥ अभिशापादहंघोरांप्रविष्टोराक्षसींतनुम् ॥ तुंबुरुर्नामगंधर्वःशप्तोवैश्रवणेनहि ॥ १६ ॥ प्रसाद्यमानश्चमयासोब्रवीन्मांमहायशाः ॥ यदादाशरथीरामस्त्वांवधिष्यतिसंयुगे ॥ १७ ॥ तदाप्रकृतिमापन्नोभवान्स्वर्गंगमिष्यति ॥ अनुपस्थीयमानोमांसक्रुद्धोव्याजहारह ॥ १८ ॥ इतिवैश्रवणोराजारंभासक्तमुवाचह ॥ तवप्रसादान्मुक्तोहमभिशापात्सुदारुणात् ॥ १९ ॥ भुवनंस्वंगमिष्यामिस्वस्तिवोस्तुपरंतप ॥ इतोवसतिधर्मात्माशरभंगःप्रतापवान् ॥ २० ॥

उन्होंनें हमको शाप दिया तब मैंने बहुत विनय करके प्रसन्न किया तब महायशवाले वैश्रवणजीनें हमसे कहा कि जब दशरथजीके पुत्र रामचंद्रजी युद्धमें तुम्हारा वध करैंगे ॥ १७ ॥ तब फिर तुम गन्धर्वका शरीर पाकर स्वर्गमें आओगे, और शाप उन्होंने इसकारण दियाथा कि मैं समय पर उनकी सेवामें नहीं उपस्थित हुआथा तब उन्होंने अतिशय क्रोधारूढ होकर यह शाप दिया कि राक्षस होजा, ॥ १८ ॥ और उनकी सेवामें न पहुँचनेंका यह कारणथा कि मैं रंभा अप्सरापर मोहित हो रहाथा तब राजा वैश्रवणनें मुझको यह शापदिया, सो अब मैं तुम्हारे प्रसादसे इस घोर शापसे छूट गया ॥ १९ ॥ हे परंतप ! अब मैं अपनें स्थानको जाताहूं आपका भलाहो कि हमको इस शापसे छुटाया अब

ऐसा कीजिये कि यहांसे छैः कोशकी दूरीपर महाप्रतापी शरभंग नाम महात्मा रहतेहैं॥ २० ॥ उन महार्षिका तेज सूर्यके समानहै आप उनके पास शीघ्र जाइये वह आपका कल्याण शीघ्रही कहैंगे ॥ २१ ॥ हे रामचंद्रजी ! अब हमें गढेमें डालकर कुशलपूर्वक चले जाइये, गढेमें दब नाही मरनेंके पीछे राक्षसोंका सनातन धर्महै ॥ २२ ॥ जोकि मरनेंके पीछे गडहा खोदकर दाब दिये जातेहैं उनको अक्षय लोकोंकी प्राप्ति होतीहै, बाणसे पीडित महाबलवान विराध रामचंद्रजीसे यह कह ॥ २३ ॥ देहको त्यागकर स्वर्गको प्राप्त हुआ, श्रीरामचंद्रजीनें राक्षसके ऐसे वचन सुनकर लक्ष्मणजीको आज्ञादी ॥ २४ ॥ कि हे लक्ष्मण ! तुम इस वनके बीच प्रचंड हाथीकी समान भीम कर्म करने

अध्यर्धयोजनेतातमहर्षिःसूर्यसन्निभः॥तंक्षिप्रमभिगच्छत्वंसतेश्रेयोभिधास्यति ॥२१॥ अवटेचापिमांरामनिक्षि
प्यकुशलीव्रज ॥ रक्षसांगतसत्त्वानामेषधर्मःसनातनः ॥ २२ ॥ अवटेयेनिधीयंतेतेषांलोकाःसनातनाः ॥ एवमु
क्त्वातुकाकुत्स्थंविराधःशरपीडितः ॥ २३ ॥ बभूवस्वर्गसंप्राप्तोन्यस्तदेहोमहाबलः ॥ तच्छ्रुत्वाराघवोवाक्यंलक्ष्म
णंव्यादिदेशह ॥२४॥ कुंजरस्येवरौद्रस्यराक्षसस्यास्यलक्ष्मण ॥ वनेस्मिन्सुमहाञ्छ्वभ्रःखन्यतांरौद्रकर्मणः ॥२५॥
इत्युक्त्वालक्ष्मणंरामःप्रदरःखन्यतामिति ॥ तस्थौविराधमाक्रम्यकंठेपादेनवीर्यवान् ॥ २६ ॥ ततःखनित्रमादाय
लक्ष्मणःश्वभ्रमुत्तमम् ॥ अखनत्पार्श्वतस्तस्यविराधस्यमहात्मनः ॥ २७ ॥ तंमुक्तकंठमुत्क्षिप्यशंकुकर्णमहास्वन
म् ॥ विराधंप्राक्षिपच्छ्वभ्रेनदंतंभैरवस्वनम् ॥ २८ ॥ तमाहवेदारुणमाशुविक्रमौस्थिरावुभौसंयतिरामलक्ष्मणौ ॥
मुदान्वितौचिक्षिपतुर्भयावहंनदंतमुत्क्षिप्यबलेनराक्षसम् ॥ २९ ॥

वाले राक्षसके दाबनेको एक बहुत बडा गडहा खोदो ॥ २५ ॥ लक्ष्मणजीको गढहा खोदनेकी आज्ञा देकर वीर्यवान रामचंद्रजी स्वयंभी अपनें पैरसे विराधका गला दबाकर खड़े रहे ॥ २६ ॥ फिर लक्ष्मणजीनें खन्ता लेकर महात्मा विराधके निकटही एक बडा गढहा खोदा ॥ २७ ॥ फिर रामचंद्रजीनें गधेकेसे कान जिसमें लगे हुएहैं ऐसे विराधके मस्तक परसे अपना चरण हटालिया और उसको उठाकर उस गढेमें डाल दिया उस समय विराध अति घोर शब्दसे चिल्लानें लगा ॥ २८ ॥ युद्धमें दृढचित्त और सत्य विक्रम करनेवाले श्रीरामचं

द्रजी व लक्ष्मणजी दोनोंने हर्ष सहित विकटाकार उस बड़े राक्षसका संग्राममें पराजय करा, और अपनी भुजाओंके बलसे उठाकर उस रोते हुएको गढहेमें डालकर पाट दिया ॥ २९ ॥ सब कुछ जाननेमें चतुर वह दो नरश्रेष्ठ तीखे बाण व खड्गसे असुर विराधका संहार न होते देखकर बुद्धिके प्रभावसे गडहे में उसके मरनेका उपाय जानकर और उसमें ही उसको डालकर वध करते हुए ॥ ३० ॥ श्रीरामचंद्रजीनें जिस प्रकार अपनें प्रयोजनानुसार विराधको मृत्युके मुखमें डालनेका अभिलाष किया, काननचारी विराधनेंभी वैसेही अपने प्राण त्यागनेंकी काम नासे स्वयं रामचंद्रजीसे कहाथा कि तुम शस्त्रसे हमको नहीं मार सकोगे ॥ ३१ ॥ रामचंद्रजीने विराधके ऐसे वचन सुन उसको गढहेमें

अवध्यतांप्रेक्ष्यमहासुरस्यतौशितेनशस्त्रेणतदानरर्षभौ ॥ समर्थ्यचात्यर्थविशारदावुभौबिलेविराधस्यवधंप्रचक्रतुः ॥ ३० ॥ स्वयंविराधेनहिमृत्युमात्मनःप्रसह्यरामेणयथार्थमीप्सितः ॥ निवेदितःकाननचारिणास्वयंनमेवधःशस्त्रकृतोभवेदिति ॥ ३१ ॥ तदेवरामेणनिशम्यभाषितंकृतामतिस्तस्यबिलप्रवेशने ॥ बिलंचतेनातिबलेनरक्षसाप्रवेश्यमानेनवनंविनादितम् ॥ ३२ ॥ प्रहृष्टरूपाविवरामलक्ष्मणौविराधमुर्व्यांप्रदरेनिपात्यतम् ॥ ननंदतुर्वीतभयौमहावनेदिविस्थितौचंद्रदिवाकराविव ॥३३॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०आरण्यकांडेचतुर्थःसर्गः ॥ ४॥ ॥ ५ ॥हत्वातुतंभीमबलंविराधंराक्षसंवने ॥ ततःसीतांपरिष्वज्यसमाश्वास्यचवीर्यवान् ॥ १ ॥ अब्रवीद्भ्रातरंरामोलक्ष्मणंदीप्ततेजसम् ॥ कष्टंवनमिदंदुर्गंनचस्मोवनगोचराः ॥ २ ॥

दावनेका विचार किया, तिसके पीछे उस गढेमें डालनेंके समय विराध ऐसा घोर चिल्लायाकि उस शब्दसे सब वन और वह गढा एक साथही भर गया ॥ ३२ ॥ इस प्रकार महावनमें श्रीरामचंद्र व लक्ष्मणजी उस विराध राक्षसको पृथ्वीमें पाट पूटकर दोनोंही एक प्रकार हर्षसे भर खिलगये और भयहीन होकर उस समय वह दोनों जन आकाशमें उदय हुए सूर्य चंद्रमाकी समान दीप्तिमान होनें लगे ॥ ३३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे चतुर्थःसर्गः ॥ ४ ॥ तत्पश्चात् वीर्यवान् श्रीरामचंद्रजीनें भीमबलवाले राक्षसको मारकर सीताजीको प्रेम सहित लपटाय बहुत समझाया बुझाया ॥ १ ॥ और तेजसे दीप्तिमान अपने छोटे भाई लक्ष्मणजीसे बोले कि यह वन स्वभा

वसेही दुर्गम और कष्टका देनेवालाहै। इससे पहले कभी इस भांतिका वन हम लोगोंनें नहीं देखा ॥ २ ॥ तिससे शीघ्रही तपोधन शरभंग जीके आश्रमको चले चलो यह कहकर श्रीरामचंद्रजी शरभंगजीके आश्रमकी ओर को चले ॥ ३ ॥ वहां पहुँच कर तपोबलसे जिनकी आत्मा शुद्ध हुई है, देवताओंकेसा प्रभाव जिनमें है ऐसे महर्षि शरभंगजीके निकट एक बडे अचरजकी बात रामचंद्रजीनें देखी ॥ ४ ॥ कि सूर्यकी अग्निकी प्रभाके समान देवराज इन्द्र अपने शरीरकी प्रभासे प्रकाशित देवताओंके साथ श्रेष्ठ रथ पर चढेहैं ॥ ५ ॥ उनका रथ पृथ्वीमें न खडा होकर आकाशमार्गमें ही टिकाहै उनके सब गहनोंमेंसे चमक निकल रही और पहरनेंके वस्त्र बहुतही उजलेथे ॥ ६ ॥

अभिगच्छामहेशीघ्रंशरभंगंतपोधनम् ॥ आश्रमंशरभंगस्यराघवोभिजगामह ॥ ३॥ तस्यदेवप्रभावस्यतपसाभावितात्मनः॥ समीपेशरभंगस्यददर्शमहदद्भुतम्॥४॥विभ्राजमानंवपुषासूर्यवैश्वानरप्रभम् ॥ रथप्रवरमारूढमाकाशेविबुधानुगम् ॥ ५ ॥ असंस्पृशंतंवसुधांददर्शविबुधेश्वरम् ॥ संप्रभाभरणंदेवंविरजोंबरधारिणम् ॥ ६ ॥ तद्विधैरेव बहुभिःपूज्यमानंमहात्मभिः॥हरितैर्वाजिभिर्युक्तमंतरिक्षगतंरथम् ॥७॥ ददर्शदूरतस्तस्यतरुणादित्यसन्निभम्॥ पांडुराभ्रघनप्रख्यंचंद्रमंडलसन्निभम् ॥ ८ ॥ अपश्यद्विमलंछत्रंचित्रमाल्योपशोभितम् ॥ चामरव्यजनेचाग्र्येरुक्मदंडेमहाधने ॥ ९ ॥ गृहीतेवरनारीभ्यांधूयमानेचमूर्धनि ॥ गंधर्वामरसिद्धाश्चबहवःपरमर्षयः ॥ १० ॥

वैसेही वस्त्राभूषणोंसे सजे हुए औरभी अनेक महात्मा उनकी पूजाकररहेहैं रामचंद्रजीने दूरसे देखाकि इन्द्रका सूर्यकी समान प्रभावाला हरित वर्ण व श्याम वर्णके घोडे जिसमें जुतरहे ऐसा रथ अन्तरिक्षमें खडाहै ॥ ७ ॥ जिसकी दीप्ति दुपहरियाके सूर्यकी समान पाण्डु वर्णके बादलकी समानहै उज्वल चंद्र मंडलकी समान गोल ऐसे रथको श्रीरामचंद्रजीने देखा ॥ ८ ॥ उसमेंका छत्र बहुतही उज्वलहै उस पर चित्र विचित्र मालायें लटक रहीहैं फिर चामर व्यजन देखे जिनमें सुवर्णकी दंडी लग रहीथी जो बडे कीमती और बडे श्रेष्ठथे ॥ ९ ॥ दो उत्तम स्त्रियें छत्र और चमरको धारण किये इन्द्रजीके मस्तक पर घुमातीथीं बहुत सारे गंधर्व, देवता, सिद्ध, और परमर्षिगण एक साथ मिलकर॥१०॥

श्रेष्ठ वचनोंसे उन देवराज इन्द्रकी स्तुति कर रहेथे उस कालमें इन्द्रजी महर्षि शरभंगजीके साथ वार्त्तालाप करनेमें लगेहुए थे ॥ ११ ॥ श्रीरामचंद्रजी उन्हें देख उनके रथको बता भाई लक्ष्मणको अचरजके सहित वह दिखाकर कहने लगे ॥ १२ ॥ हे भइया! देखो, परम दीप्तिमान, श्रीयुक्त, सूर्यकी समान देदीप्यमान यह विचित्र रथ अन्तरिक्षमें टिकाहुआ शोभा पारहाहै ॥ १३ ॥ हमनें पहले जो शत यज्ञ करनेवाले इन्द्रजीके घोडोंकी जो वार्त्ता सुनीथी, सो यह अन्तरिक्षमें टिकेहुए, निश्चय वही घोडे होंगे ॥ १४ ॥ हे पुरुषसिंह! इस रथके चारों ओर जो सैकडो खड्ग हाथमें लिये, कुंडल पहरे युवा पुरुष खडेहै ॥ १५ ॥ जिन सबकीही छाती बडी चौडीहै, बाहें परिघकी

अंतरिक्षगतंदेवंगीर्भिरग्र्याभिरैडयन्॥ सहसंभाषमाणेतुशरभंगेनवासवे ॥११॥ दृष्ट्वाशतक्रतुंतत्ररामोलक्ष्मणमब्रवी
त् ॥ रामोथरथमुद्दिश्यभ्रातुर्दर्शयताद्भुतम् ॥१२॥ अर्चिष्मंतंश्रियाजुष्टमद्भुतंपश्यलक्ष्मण॥ प्रतपंतमिवादित्यमंतारि
क्षगतंरथम् ॥१३॥ येहयाःपुरुहूतस्यपुराशक्रस्यनःश्रुताः॥ अंतरिक्षगतादिव्यास्तइमहरयोध्रुवम्॥१४॥ इमेचपुरुष
व्याघ्रयेतिष्ठंत्यभितोदिशम् ॥ शतंशतंकुंडलिनोयुवानःखड्गपाणयः ॥ १५ ॥ विस्तीर्णविपुलोरस्काःपरिघायतबा
हवः॥ शोणांशुवसनाःसर्वेव्याघ्राइवदुरासदाः॥ १६॥ उरोदेशेषुसर्वेषांहाराज्वलनसंनिभाः॥ रूपंबिभ्रतिसौमित्रेपं
चविंशतिवार्षिकम्॥ १७॥ एतद्धिकिलदेवानांवयोभवतिनित्यदा॥ यथेमेपुरुषव्याघ्रादृश्यंतेप्रियदर्शनाः ॥ १८॥
इहैवसहवैदेह्यामुहूर्तंतिष्ठलक्ष्मण॥ यावज्जानाम्यहंव्यक्तंकएषद्युतिमान्रथे ॥ १९ ॥

समान विशाल हैं, पहरनेके कपडे जिनके लालहैं, जो लोग कि व्याघ्रकी समान दुर्द्धर्षहैं, अर्थात् उनके पास कोई नहीं जा सकता ॥ १६ ॥ जिन सबोंके ही गलेमें जलती हुई अग्निकी समान हार शोभा पारहेहैं और पचीस २ वर्षकीहीसी उमर जान पडतीहै ॥ १७ ॥ यह सब पुरुष श्रेष्ठ जिस प्रकार कि प्रियदर्शन जान पडतेहैं, वैसेही सब देवता गण ऐसे रूप व उमरवाले जान पडा करतेहैं, व इनका शरीर सदा ऐसाही रहता कि मानों पचीस वर्षहीकी अवस्थाहै ॥ १८ ॥ तिससे हे लक्ष्मण! वैदेहीजीके सहित यहां पर एक मुहूर्त्त भरतक तुम टिके रहो तबतक

कि हम स्पष्ट २ यह नजान आवें कि रथवाले द्युतिमान यह तेजस्वी पुरुष कौनहैं ? ॥ १९ ॥ लक्ष्मणजीसे यह कहकि तुम यहीं टिके रहो रामचंद्रजी शरभंगजीके आश्रमको गमन करने लगे ॥ २० ॥ श्रीरामचंद्रजीको आते हुए देखकर शचीनाथ इन्द्रजी शरभंगजीसे विदाले अनुचर देवताओंसे बोले ॥ २१ ॥ यह रामचंद्रजी इस ओरको चले आतेहैं, सो जबतक कि यह हमसे कुछ बोल सकें तिससे पहलेही तुम हमको और जगह ले चलो जिस्से यह हमको देख न सकें ॥ २२ ॥ इनको अभी और लोकोंके न करने योग्य बडा कठिन विशेष भारी कार्य करना पडेगा। जबकि यह राक्षसको जीतकर कृतकार्य होंगे तब इनके दर्शन करेंगे जो अभी दर्शन करें तो न मालूम रावण यह वृत्तान्त

तमेवमुक्त्वासौमित्रिमिहैवस्थीयतामिति॥अभिचक्रामकाकुत्स्थःशरभंगाश्रमंप्रति ॥२०॥ ततःसमभिगच्छंतंप्रेक्ष्य रामंशचीपतिः ॥ शरभंगमनुज्ञाप्यविबुधानिदमब्रवीत् ॥२१॥ इहोपयात्यसौरामोयावन्मांनाभिभाषते॥ निष्ठांनय तावत्तुततोमांद्रष्टुमर्हति ॥२२॥ जितवंतंकृतार्थंहितदाहमचिरादिमम्॥कर्मह्यनेनकर्तव्यंमहदन्यैःसुदुष्करम् ॥२३॥ अथवज्रीतमामंत्र्यमानयित्वाचतापसम् ॥ रथेनहययुक्तेनययौदिवमरिंदमः ॥ २४ ॥ प्रयातेतुसहस्राक्षेराघवःसप रिच्छदः॥ अग्निहोत्रमुपासीनंशरभंगमुपागमत् ॥ २५ ॥ तस्यपादौचसंगृह्यरामःसीताचलक्ष्मणः ॥ निषेदुस्तदनुज्ञा तालब्धवासानिमंत्रिताः ॥२६॥ ततःशक्रोपयानंतुपर्यपृच्छतराघवः ॥ शरभंगश्चतत्सर्वंराघवायन्यवेदयत्॥ २७॥

जानकर क्या कुछ उपद्रव कर उठावे ॥ २३ ॥ तिसके पीछे वज्रधारी इन्द्रजी महर्षि शरभंगजीसे आज्ञा ले और उनका विशेष सन्मान करके घोडे जुते हुए रथपर बैठकर स्वर्ग चलेगये ॥ २४ ॥ जब सहस्राक्ष इन्द्रजी चलेगये तब रामचंद्रजी भ्राता और भार्या सीताजीके सहित अग्निहोत्रमें बैठे हुए शरभंगजीके समीप आये॥ २५ ॥ राम लक्ष्मण और सीताजी सबनेही उनके दोनों चरण पकडे तब शरभंगजीने उनको टिकनेंके लिये स्थान बतादिया और भोजनादिके लिये निमंत्रणभी करदिया और बैठनेको कहा तब श्रीरामचंद्रजी सीताजी लक्ष्मणजी वहां पर बैठे ॥ २६ ॥ तिसके पीछे रघुनंदन रामचंद्रजीने शरभंगजीसे इन्द्रके वहां आनेका कारण पूछा तब शरभं

गजीने इन्द्रके आनेका सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥ २७ ॥ और बोले हे राघव ! यह वरदाता इन्द्रजी हमको ब्रह्मलोकमें लेजानेकी इच्छासे
यहां आयेथे हमने उग्र तप करके उस लोकको जीत लियाहै कि जिसका जीतना बिना परमात्माके भजन किये बहुत दुर्लभहै ॥ २८ ॥
परन्तु हे पुरुषसिंह श्रीरामचन्द्रजी ! आप निकटही आगयेहैं यह जानकर आप सरीखे प्रिय पाहुनेके साथ बिना मिले ब्रह्मलोकको नहीं
गया ॥ २९ ॥ हे पुरुषव्याघ्र ! आपही परम धर्मनिष्ठ और महात्माहैं सो हमारे मनमें यहहै कि आपसे मिलकर फिर स्वर्ग, या ब्रह्मलोक
कहींको चले जाँयगे ॥ ३० ॥ हे नरश्रेष्ठ ! हमने स्वर्ग और ब्रह्मलोक इत्यादि जितनें भर शुभ और अक्षय लोकहैं सबहीको जय कर लियाहै

मामेषवरदोरामब्रह्मलोकंनिनीषति ॥ जितमुग्रेणतपसादुष्प्रापमकृतात्मभिः ॥ २८ ॥ अहंज्ञात्वानरव्याघ्रवर्तमान
मदूरतः ॥ ब्रह्मलोकंनगच्छामित्वामदृष्ट्वाप्रियातिथिम् ॥ २९ ॥ त्वयाहंपुरुषव्याघ्रधार्मिकेणमहात्मना ॥ समा
गम्यगमिष्यामित्रिदिवंचावरंपरम् ॥ ३० ॥ अक्षयानरशार्दूलजितालोकामयाशुभाः ॥ ब्राह्म्याश्चनाकपृष्ठ्या
श्चप्रतिगृह्णीष्वमामकान् ॥ ३१ ॥ एवमुक्तोनरव्याघ्रःसर्वशास्त्रविशारदः ॥ ऋषिणाशरभंगेनराघवोवाक्यमब्रवी
त् ॥ ३२ ॥ अहमेवाहरिष्यामिसर्वाँल्लोकान्महामुने ॥ आवासंत्वहमिच्छामिप्रदिष्टमिहकानने ॥ ३३ ॥ राघवेणै
वमुक्तस्तुशक्रतुल्यबलेनवै ॥ शरभंगोमहाप्राज्ञःपुनरेवाब्रवीद्वचः ॥ ३४ ॥ इहराममहातेजाःसुतीक्ष्णोनामधार्मिकः॥
वसत्यरण्येनियतःसतेश्रेयोविधास्यति ॥ ३५ ॥

सो अपनी तपस्यासे जीते हुए वह सब लोकही हम आपके अर्पण करते हैं आप उनको ग्रहण कीजिये ॥ ३१ ॥ महर्षि शरभंगजीनें जब इस
प्रकार कहा तब सब शास्त्रोंके जाननेवाले पुरुषश्रेष्ठ रामचन्द्रजी उनसे बोले ॥ ३२ ॥ हे महामुने ! यदि आप कहैं तो जो लोक आपने जीतेहैं
हम उन सबको यहीं बुलादें परन्तु इस वनमें आपकी आज्ञा लेकर हम वसना चाहतेहैं सो बताइये कि कौनसे स्थानमें वासकरें ॥ ३३ ॥ इन्द्रकी
समान बलवान् रघुनंदन श्रीरामचन्द्रजीनें जब इस प्रकार कहा तब फिर महापंडित शरभंगजी बोले ॥ ३४ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! इस वनमें
सुतीक्ष्ण नामक परम तेजस्वी धार्मिक और जितेन्द्रिय एक महर्षि वास करतेहैं वह तुम्हारा भला करेंगे और रहनेको स्थानभी बतावेंगे ॥३५॥

और यह जो पुष्पों करके शोभित मन्दाकिनी नदी पूर्वकी ओर को वह रहीहै सो इसके किनारे २ ही चले जाइये बस महर्षि सुतीक्ष्णका आश्रम आजायगा ॥ ३६ ॥ हे पुरुषशार्दूल! वहां जानेका यह मार्ग दृष्टि आताहै हेतात! सर्प जिस प्रकार पुरानी केंचलीको छोड़कर चला जाताहै वैसेही हमभी इस समय यह पुराना देह छोड़ेंगे आप एक मुहूर्त्त तक हमारे ऊपर दृष्टि करके इस स्थानपर खडे रहिये ॥ ३७ ॥ यह कहकर परम तेजस्वी शरभंगजी यथाविधि अग्निमें ईंधन लगाय मंत्र पढ घृतसे आहुतिदे उसमें प्रवेश करते हुए ॥ ३८ ॥ भगवान् अग्निजीने क्षणमात्रमेंही उन महात्मा शरभंगजीके समस्त रुवें, केश, हड्डी, मांस रुधिर और पुरानी खाल इत्यादि जलाडाली ॥ ३९ ॥ तब शरभंगजी

इमांमंदाकिनींरामप्रतिस्रोतामनुव्रज ॥ नदीपुष्पोडुपवहांततस्तत्रगामिष्यसि॥३६॥ एषपंथानरव्याघ्रमुहूर्तंपश्यतात माम् ॥ यावज्जहामिगात्राणिजीर्णांत्वचमिवोरगः ॥ ३७ ॥ ततोग्निंससमाधायहुत्वाचाज्येनमंत्रवत् ॥ शरभंगोमहातेजाःप्रविवेशहुताशनम् ॥ ३८ ॥ तस्यरोमाणिकेशांश्चतदावह्निर्महात्मनः ॥ जीर्णांत्वचंतदस्थीनियच्चमांसंचशोणितम् ॥ ३९ ॥ सचपावकसंकाशःकुमारःसमपद्यत ॥ उत्थायाग्निचयात्तस्माच्छरभंगोव्यरोचत ॥ ४० ॥ सलोकानाहिताग्नीनामृषीणांचमहात्मनाम् ॥ देवानांचव्यतिक्रम्यब्रह्मलोकंव्यरोहत ॥ ४१ ॥ सपुण्यकर्माभुवनेद्विजर्षभःपितामहंसानुचरंददर्शह ॥ पितामहश्चापिसमीक्ष्यतंद्विजंननंदसुस्वागतमित्युवाच ॥ ४२ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेपंचमःसर्गः ॥ ५ ॥ ७ ॥ ॥

साक्षात् अग्निकी समान मूर्त्तिमान कुमारका रूप धारण कर अग्निके ढेरसे निकल कर शोभा पाने लगे। और उनका पहला रूप जाता रहा ॥ ४० ॥ तिसके पीछे वह अग्निहोत्र करनेवाले महात्मा ऋषिगणोंके और देवताओंके सब लोकोंको नांघकर ब्रह्मलोकको चले गये ॥४१॥ वहां जाकर पुण्य कर्म करनेवाले ब्राह्मणश्रेष्ठ शरभंगजी अनुचर वेष्टित पितामह ब्रह्माजीके दर्शन करतेहुये ब्रह्माजीनेभी उन द्विजश्रेष्ठके दर्शन कर उनको अपने धोरे बिठा कुशल प्रश्नकर सब वृत्तान्त पूछा ॥४२॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे पंचमः सर्गः॥५॥

शरभंगजी जब ब्रह्मलोकको चले गये, तब दंडकवनवासी मुनिगण इकट्ठे होकर तेजसे देदीप्यमान रामचंद्रजीकी शरणमें आये ॥ १ ॥ उनमें वैखानस जोकि प्रजापतिके नखोंसे उत्पन्न हुएथे, वालखिल्य जो रेतसे उत्पन्न हुएहैं कुछ सम्प्रक्षथे जो परमात्माके चरणोंके धोनेसे हुएथे कुछ मरीचिपथे जो सूर्य या चंद्रमाकी किरणकोही पीकर रहते कुछ अश्मंकुट्टथे, जो पत्थरसे कूट २ कर कच्चाही अन्न भक्षण करते, कुछ पत्राहार तापसथे जो केवल पत्तेही भोजन करते ॥ २ ॥ कुछ दन्तोलूखलीथे जिनके दांतही ओखलीकी समानथे कुछ उन्मज्जकथे जो सदा कंठतक जलमें डूबे रहते बहुत सारे गात्रशय्य थे जो बिना बिछाये पृथ्वी परही सोते, बहुत अशय्यथे जो सोतेही नहीं कुछ बिछातेही नहीं वैसेही पृथ्वीपर पडे रहतेथे, बहुत अनवकाशकथे, जिनको वेदाध्ययन और पूजा पाठ करनेसे छुट्टीही नहीं मिलतीथी ॥ ३ ॥ बहुतसे मुनि जला

शरभंगेदिवंप्राप्तेमुनिसंघाःसमागताः ॥ अभ्यगच्छंतकाकुत्स्थंरामंज्वलिततेजसम् ॥ १ ॥ वैखानसावालखिल्याः संप्रक्षालामरीचिपाः ॥ अश्मंकुट्टाश्चबहवःपत्राहाराश्चतापसाः ॥ २ ॥ दंतोलूखलिनश्चैवतथैवोन्मज्जकाःपरे ॥ गात्रशय्याअशय्याश्चतथैवानवकाशिकाः ॥ ३ ॥ मुनयःसलिलाहारावायुभक्षास्तथापरे ॥ आकाशनिलयाश्चैवतथास्थंडिलशायिनः ॥ ४ ॥ तथोर्ध्ववासिनोदांतास्तथार्द्रपटवाससः ॥ सजपाश्चतपोनिष्ठास्तथापंचतपोन्विताः॥५॥ सर्वेब्राह्म्याश्रियायुक्तादृढयोगसमाहिताः ॥ शरभंगाश्रमेराममभिजग्मुश्चतापसाः ॥ ६ ॥

हारीथे जो जलही पीकर रहते कुछ वायुभोजी जो केवल हवाही खाकर जीते, जो आकाशनिलयथे जो बिना ऊपर कुछ छाये हुये खुले मैदानमें पडे रहते कुछ स्थण्डिलशायी जो पृथ्वीहीपर पडे रहते ॥४॥ कुछ ऊर्ध्ववाहु जो कि सदा ऊपरही को हाथ उठाये रहते, कुछ दान्तथे जिनकी इन्द्रिय सदा अपने २ समय पर ही अपनी २ वासनाको चाहतीं, कुछ ऋषि ऐसेथे जो सदा गीले वस्त्र पहरे रहते ऐसे अर्द्धपट वासर, बहुत जपी जो सदा जप किया करते कुछ तपोनिष्ठथे जो सदा तपही किया करके भगवान्‌का ध्यान किया करते। कुछ पंचतपानुष्ठाईथे जो गरमियोंमें पंचाग्नितापा करतेथे ॥ ५ ॥ यह जितने भर ऋषि लोगथे सबपर ब्राह्मी श्री विराजमानथी, सबके चित्त दृढ योगाभ्यासमें लग रहेथे, यह

सब तपस्वी गण शरभंगजीके आश्रममें आकर रामचन्द्रजीके शरणापन्न हुए ॥ ६ ॥ इस प्रकार धर्मात्मा ऋषि लोग सब वहां आकर धार्मि
क श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीसे कुशल प्रश्न पूछकर बोले ॥ ७ ॥ हे परमधर्मज्ञ ! तुम रथी गणोंमें श्रेष्ठहो, इक्ष्वाकु कुलके मध्यमें प्रधानहो, इन्द्रजी
जिस प्रकार संसारकी रक्षा करतेहैं वैसेही तुमभी सब लोगोंके रक्षा करताहो ॥ ८ ॥ आप यश और विक्रम द्वारा तीनों लोकोंहीमें विख्यात
होगयेहैं पितृव्रतत्व सत्य वचन और सर्वांगसे पूर्ण धर्म तुममें टिकेहैं ॥ ९ ॥ हे महात्मन् ! आप धर्मके जाननेवाले और धर्म प्रियहैं, अतएव नाथ !
हम प्रार्थनावान् होकर आपसे जो कुछ कहें सो उसके लिये क्षमा करें ॥ १० ॥ हे नाथ ! जो राजा प्रजासे पैदावारीका छठवाँ हिस्सा

अभिगम्यचधर्मज्ञारामंधर्मभृतांवरम् ॥ ऊचुःपरमधर्मज्ञमृषिसंघाःसमागताः ॥ ७ ॥ त्वमिक्ष्वाकुकुलस्यास्यपृ
थिव्याश्चमहारथः ॥ प्रधानश्चापिनाथश्चदेवानांमघवानिव ॥ ८ ॥ विश्रुतस्त्रिषुलोकेषुयशसाविक्रमेणच ॥ पितृव्र
तत्वंसत्यंचत्वयिधर्मश्चपुष्कलः ॥ ९ ॥ त्वामासाद्यमहात्मानंधर्मज्ञंधर्मवत्सलम् ॥ अर्थित्वान्नाथवक्ष्यामस्तच्चनः
क्षंतुमर्हसि ॥ १० ॥ अधर्मःसुमहान्नाथभवेत्तस्यतुभूपतेः ॥ योहरेद्बलिषड्भागंनचरक्षतिपुत्रवत् ॥ ११ ॥ युंजानः
स्वानिवप्राणान्प्राणैरिष्टान्सुतानिव ॥ नित्ययुक्तःसदारक्षन्सर्वान्विषयवासिनः ॥ १२ ॥ प्राप्नोतिशाश्वतींरामकी
र्तिंसबहुवार्षिकीम् ॥ ब्रह्मणःस्थानमासाद्यतत्रचापिमहीयते ॥ १३ ॥ यत्करोतिपरंधर्मंमुनिर्मूलफलाशनः ॥
तत्रराज्ञश्चतुर्भागः प्रजाधर्मेणरक्षतः ॥ १४ ॥

लेतेहैं और फिरभी प्रजाको पुत्रकी समान पालन नहीं करतेहैं उन नरपतियोंको महा अधर्म होताहै ॥ ११ ॥ हे रामचन्द्रजी ! जो सदा यत्न
करके और सावधान होकर अपनें अधिकारमें वास करती हुई प्रजाको अपने प्राणोंकी समान, या प्राणोंसेभी अधिक प्रिय अपने पुत्रोंकी समान
सदा रक्षा करतेहैं ॥ १२ ॥ वह महीपाल इस लोकमें बहु वर्षव्यापिनी स्थाई कीर्त्ति प्राप्त करके अन्त समय ब्रह्मलोकमें जाकर विशेष आदर
मान पातेहैं ॥ १३ ॥ ऋषि मुनि लोग कंद मूल फल खाकर जो परम धर्म बटोरतेहैं, सो धर्मानुसार प्रजाकी रक्षा करनेवाले राजाको उस धर्मका

चौथा भाग प्राप्त होताहै ॥ १४ ॥ सो वही यह महान् वानप्रस्थ ऋषिगण जिनमें कि ब्राह्मणही अधिकहैं आप सा रखवाला पाकरभी नितान्त अनाथकी नांई राक्षसों करके मारे जातेहैं ॥ १५॥ विशुद्ध चित्तवाले मुनिगणोंके शरीर, समस्त वनमें अनेक प्रकारके भयानक राक्षसोंसे मारे जाकर जहां तहां पडेहैं ॥ १६॥ हम यह बात कुछ मिथ्या नहीं कहते आप स्वयंही आकर देख लीजिये कि पंपा और नदियों तथा मंदाकिनीके तीरपर वसनेवाले और चित्रकूट निवासी बहुत सारे मुनिलोग राक्षसोंसे महा दुःख पारहेहैं उन मुनिलोगोंका नाश हुआ जाताहै ॥ १७ ॥ भयंकर कर्म करनेवाले राक्षसगण तपस्वी लोगोंका नाश करतेहैं सो यह दुःख हम लोगोंपर नहीं सहा जाता ॥ १८ ॥ तिससे हे शरण्य! हम आश्रय लेनेंके

सोयंब्राह्मणभूयिष्ठोवानप्रस्थगणोमहान् ॥ त्वन्नाथोनाथवद्रामराक्षसैर्हन्यतेभृशम् ॥ १५ ॥ एहिपश्यशरीराणिमुनीनांभावितात्मनाम् ॥ हतानांराक्षसैर्घोरैर्बहूनांबहुधावने ॥ १६ ॥ पंपानदीनिवासानामनुमंदाकिनीमपि ॥ चित्रकूटालयानांचक्रियतेकदनंमहत् ॥ १७॥ एवंवयंनमृष्यामोविप्रकारंतपस्विनाम् ॥ क्रियमाणंवनेघोरंरक्षोभिर्भीमकर्मभिः ॥ १८ ॥ ततस्त्वांशरणार्थंचशरण्यंसमुपस्थिताः ॥ परिपालयनोरामवध्यमानान्निशाचरैः ॥ १९ ॥ परात्वत्तोगतिर्वीरपृथिव्यांनोपपद्यते ॥ परिपालयनःसर्वान्राक्षसेभ्योनृपात्मज ॥ २० ॥ एतच्छ्रुत्वातुकाकुत्स्थस्तापसानांतपस्विनाम् ॥ इदंप्रोवाचधर्मात्मासर्वानेवतपस्विनः ॥ २१ ॥ नैवमर्हथमांवक्तुमाज्ञाप्योहंतपस्विनाम् ॥ केवलेनस्वकार्येणप्रवेष्टव्यंवनंमया ॥ २२ ॥

लिये आपके निकट आयेहैं हे श्रीरामचन्द्रजी ! आप हम लोगोंकी रक्षा कीजिये । क्योंकि निशाचर गण हम लोगोंका नाश किये देतेहैं ॥ १९ ॥ हे राजकुमार ! इस पृथ्वीपर आपके सिवाय हमारी कोई गति नहींहै हे रघुकुलचूडामणि ! राक्षसोंके हाथसे हम सबकी आप रक्षा करें ॥ २० ॥ धर्मात्मा काकुत्स्थनंदन श्रीरामचन्द्रजी उन तपस्वी ऋषि लोगोंकी ऐसी विपद उनके मुखसे सुनकर सबसे बोले ❋ ॥ २१ ॥ कि हमसे इस प्रकार कहनेकी आपको कुछ आवश्यकता नहींहै, हम तो आप लोगोंकी आज्ञाके पालन करनेवालेहैं सो केवल आप अपनेही कार्य करनेंको हमें

❋ चौपाई—आरत वचन सुनत रघुनायक । बोले ३ रन धरे धनुशायक ॥

चाहे जिस वनको भेज दीजिये ॥२२॥ जबकि हम इस वनमें आयेहैं तब आप लोगोंको जो डर राक्षसोंसे है उसहीको मिटानेंके अर्थ व पिताजीकी आज्ञा पालनेंके लिये इन दोनों कार्योंके अतिरिक्त और कार्य करनेको हम नहीं आये ॥ २३ ॥ हम जो इस वनमें आयेहैं सो आप लोगोंके कार्यको साधन करनेंहीके लिये आयेहैं क्योंकि जो पिताजीहीकी आज्ञा पालन करनी होती तो किसी और ही तरफको चले जाते अब हमारा वनवास सफल होजायगा क्योंकि आपका कार्यभी सधैगा ॥ २४ ॥ हमनें वनमें तपस्वी लोगोंके शत्रु राक्षसोंके संहार करनेंका संकल्प कियाहै । तपोब लसे युक्त ऋषिलोग हमारे और हमारे भ्राताके बाहुबलको देखें ॥ २५ ॥ धर्मधुरन्धर वीर रामचन्द्रजी तपस्वी लोगोंको ऐसा वरदानदे उन लोगों

विप्रकारमपाक्रष्टुंराक्षसैर्भवतामिमम् ॥ पितुस्तुनिर्देशकरःप्रविष्टोहमिदंवनम् ॥ २३ ॥ भवतामर्थसिद्ध्यर्थमाग तोहंयदृच्छया ॥ तस्यमेऽयंवनेवासोभाविष्यतिमहाफलः ॥ २४ ॥ तपस्विनांरणेशत्रून्हंतुमिच्छामिराक्षसान् ॥ पश्यंतुवीर्यमृषयःसभ्रातुर्मेतपोधनाः ॥ २५ ॥ दत्वावरंचापितपोधनानांधर्मेधृतात्मासहलक्ष्मणेन ॥ तपोधनै श्चापिसहार्यदत्तःसुतीक्ष्णमेवाभिजगामवीरः ॥ २६ ॥ ॥ इत्यार्षश्रीम० वा० आ० आर० षष्ठःसर्गः ॥ ६ ॥ रामस्तुसहितोभ्रात्रासीतयाचपरंतपः ॥ सुतीक्ष्णस्याश्रमपदंजगामसहतैर्द्विजैः ॥ १ ॥ सगत्वादूरमध्वानंनदी स्तीर्त्वाबहूदकाः ॥ ददर्शविमलंशैलंमहामेरुमिवोन्नतम् ॥ २ ॥ ततस्तदिक्ष्वाकुवरौसततंविविधैर्द्रुमैः ॥ काननंतौविविशतुःसीतयासहराघवौ ॥ ३ ॥

की पूजा प्राप्तकर और उन्हें साथले लक्ष्मणके सहित सुतीक्ष्णऋषिके आश्रमकी ओर चले * ॥२६॥ इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०आर०षष्ठःसर्गः ॥६॥ शत्रुओंके तपानेवाले श्रीरामचंद्रजी भ्राता लक्ष्मण, सीता और ब्राह्मणोंके साथ सुतीक्ष्णजीके आश्रममें आये ॥ १ ॥ शरभंगजीके आश्रम से बहुत दूर चलकर मार्गमें बहुत सारी जलवाली विविध नदियोंको उतरकर सुमेरुकी समान ऊंचे एक निर्मल पर्वतको देखते हुए ॥ २ ॥ तिसके पीछे इक्ष्वाकुके वंश बढानेवाले प्रधान दो रघुवीर सीताजीके सहित अनेक प्रकारके वृक्ष जिसमें विराज रहे ऐसे वनमें प्रवेश करते हुए ॥ ३ ॥

* दोहा ॥ निशिचर हीन करौं महि, भुज उठाय प्रण कीन ॥ सकल मुनिनके आश्रमन, जायजाय सुखदीन ॥

श्रीरामचंद्रजीनें उस घोर वनमें प्रवेश करके अनेक प्रकारके फल फूल वाले वृक्षोंके झुन्डसे घिरा हुआ जिसपर चीर और मालायें टँगरहीथीं ऐसा एक आश्रम देखा ॥ ४ ॥ फिर श्रीरामचन्द्रजीनें वहां तप करनेमें चित्त लगाये मलिन कमलके फूलोंकी माला धारण किये अथवा पाप दूर करनेंके निमित्त कमलासनसे बैठे हुये सुतीक्ष्णको देखकर उनसे यथाविधि संभाषण करके बोले ॥ ५ ॥ हे भगवन्! हमारा नाम रामचन्द्रहै आपके दर्शन करनेके लिये यहां आयेहैं; अतएव हे धर्मज्ञ! हे अक्षततपःप्रभावसम्पन्न महर्षे! आप हमसे बोलिये ॥ ६ ॥ तब वह अति धीर सुतीक्ष्णजी ऋषि धार्मिकश्रेष्ठ रामचंद्रजीकी ओर देखते हुये दोनों बाहोंसे पकड उनको हृदयसे लगाकर बोले ॥ ७ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! तुम भले आये? हे रघुश्रेष्ठ!

प्रविष्टस्तुवनंघोरंबहुपुष्पफलद्रुमम् ॥ ददर्शाश्रममेकांतेचीरमालापरिष्कृतम् ॥ ४ ॥ तत्रतापसमासीनंमलपंकजधारिणम् ॥ रामःसुतीक्ष्णंविधिवत्तपोधनमभाषत ॥ ५ ॥ रामोहमस्मिभगवन्भवंतंद्रष्टुमागतः ॥ तन्माभिवदधर्मज्ञमहर्षेसत्यविक्रम॥ ६ ॥ सनिरीक्ष्यततोधीरोरामंधर्मभृतांवरम् ॥ समाश्लिष्यचबाहुभ्यामिदंवचनमब्रवीत् ॥७॥ स्वागतंतेरघुश्रेष्ठरामसत्यभृतांवर ॥ आश्रमोयंत्वयाक्रांतःसनाथइवसांप्रतम् ॥ ८ ॥ प्रतीक्षमाणस्त्वामेवनारोहेहंमहायशः ॥ देवलोकमितोवीरदेहंत्यक्त्वामहीतले ॥ ९ ॥ चित्रकूटमुपादायराज्यभ्रष्टोसिमेश्रुतः ॥ इहोपयातःकाकुत्स्थदेवराजःशतक्रतुः ॥ १० ॥ उपागम्यचमेदेवोमहादेवःसुरेश्वरः ॥ सर्वाँल्लोकाञ्जितानाहममपुण्येनकर्मणा ॥ ११ ॥ तेषुदेवर्षिजुष्टेषुजितेषुतपसामया ॥ तत्प्रसादात्सभार्यस्त्वंविहरस्वसलक्ष्मणः ॥ १२ ॥

हे धार्मिकवर! आपके पदार्पण करनेसे आज यह आश्रम सफल हुआ ॥ ८ ॥ हे परमयशवाले श्रीरामचन्द्रजी! हे वीर! हम आपकेही दर्शनकी अभिलाषा किये इतने दिनतक पृथ्वीमें रहे और देवलोकको नहीं गये ॥ ९ ॥ हमनें इन्द्रसे यह भी सुना है कि आप राज्य छोडकर चित्रकूट में आएहैं। हे काकुत्स्थ! यहां देवराज इन्द्रके आनेंका यह प्रयोजनथा कि ॥ १० ॥ हमनें ऐसे पुण्य कर्म किये हैं कि जिनसे सब लोक जीतलिये सो देवोंके देव इन्द्रजी यही कहनें आयेथे कि आप इस लोकको छोडकर उन लोकोंमें वास कीजिये ॥ ११ ॥ सो हमें आपके दर्शनकी अभिलाषाथी इस्से वहां नहीं गये अब हम प्रसन्न होकर आपको वरदान देतेहैं कि आप हमारे प्रसादसे भ्राता लक्ष्मण और भार्या

सीताजीके सहित जो कि हमनें तपस्यासे पायेहैं उन सब देवर्षियोंकरके सेवित लोकोंमें आनन्द से वस कर काल व्यतीत कीजिये ॥ १२ ॥
पुरन्दर इन्द्रजी जिस प्रकार ब्रह्माजीसे बोलतेहैं वैसेही आत्मज्ञानी श्रीरामचन्द्रजी, कठोर तपके तेजसे प्रदीप्तमान सत्यवादी महर्षि सुती
क्ष्णजीसे बोले ॥ १३ ॥ हे महामुने! जब हम चाहेंगे तब आपही उन लोकोंको ग्रहण कर लेंगे इस समय हम यह प्रार्थना करते हैं कि इस
समय इस वनमें हमारे रहनेको आप स्थान बतादीजिये ॥ १४ ॥ गोतमवंशीय महात्मा शरभंगजीके मुखसे हमने यह बात सुनी है कि
आप सबही कुछ वृत्तान्त जानते हैं; और सब प्राणियों का हित साधन करनेमें रतहैं ॥ १५ ॥ जगत्प्रसिद्ध महर्षि सुतीक्ष्णजीसे जब राम

तमुग्रतपसंदीप्तंमहर्षिसत्यवादिनम् ॥ प्रत्युवाचात्मवान्रामोब्रह्माणमिववासवः ॥ १३ ॥ अहमेवाहरिष्या
मिस्वयंलोकान्महामुने ॥ आवासंत्वहमिच्छामिप्रदिष्टमिहकानने ॥ १४ ॥ भवान्सर्वत्रकुशलःसर्वभूतहिते
रतः ॥ आख्यातंशरभंगेनगौतमेनमहात्मना ॥ १५ ॥ एवमुक्तस्तुरामेणमहर्षिर्लोकविश्रुतः ॥ अब्रवीन्मधु
रंवाक्यंहर्षेणमहतायुतः ॥ १६ ॥ अयमेवाश्रमोरामगुणवान्रम्यतामिति ॥ ऋषिसंघानुचरितःसदामूलफलैर्यु
तः ॥ १७ ॥ इममाश्रममागम्यमृगसंघामहीयसः ॥ अहत्वाप्रतिगच्छंतिलोभयित्वाकुतोभयाः ॥ १८ ॥ नान्यो
दोषोभवेदत्रमृगेभ्योन्यत्रविद्धिवै ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्यमहर्षेर्लक्ष्मणाग्रजः ॥ १९ ॥

चन्द्रजीने ऐसा कहा तो वह अतिशय आनन्दित होकर मधुर वचन बोले ॥ १६ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी! यही आश्रम बहुतही श्रेष्ठ है, इसमें
अनेकानेक ऋषि लोग वसते हैं और कन्द मूल फल भी इस आश्रम में सब समय बहुत सारे मिला करते हैं अतएव तुम इस स्थानमें ही बसकर
विहार करो ॥ १७ ॥ इस आश्रममें अनेक बडे २ शरीर वाले मृग गण आकर निडर हो इधर उधर सबको अपने रूपसे लुभाते हुए
घूमा करते हैं, उनसे कोई नहीं बोलता, और फिर वहभी लौट जाते हैं ॥ १८ ॥ अतएव आप जानलें कि कुछ थोडा बहुत डर हैभी
वह केवल पशुगणोंका ही भय है इसके सिवाय इस स्थानमें और कोई भय नहीं है महर्षिके ऐसे वचन सुन श्रीरामचन्द्रजी ॥ १९ ॥

धनुष और शरग्रहण करके उनसे बोले कि हे महाभाग ! उन आये हुए मृगके झुण्डोंको ॥ २० ॥ अपने पैने धारवाले बाणोंसे हम संहार कर डालेंगे परन्तु ऐसा करनेसे आपको कष्ट होगा सो इस्से हमें बडा कष्ट होगा ॥ २१ ॥ यह वचन सुन ऋषिराज कुछ न बोले तब रामचन्द्रजीनें जाना कि मुनि मृगोंका वध नहीं चाहते तब उनसे बोले कि इस मृगबाधिक आश्रम पर बहुत दिनोंतक रहनेंकी हमारी इच्छा नहीं है यह कहकर रामचन्द्र सन्ध्या करनेंको गये ॥ २२ ॥ सायंकालकी सन्ध्या करके श्रीरामचन्द्रजी वहीं सुतीक्ष्णजीके आश्रम पर लक्ष्मण और जानकीजीके सहित बसे ॥ २३ ॥ तिसके पीछे सन्ध्या होनेके पश्चात् जब रात्रि होआई तब महात्मा

उवाचवचनंधीरोविगृह्यसशरंधनुः ॥ तानहंसुमहाभागमृगसंघान्समागतान् ॥ २० ॥ हन्यांनिशितधारेणशरेणानतपर्वणा ॥ भवांस्तत्राभिषज्येतकिंस्यात्कृच्छ्रतरंततः ॥२१॥ एतस्मिन्नाश्रमेवासंचिरंतुनसमर्थये ॥ तमेवमुक्त्वोपरमंरामःसंध्यामुपागमत् ॥ २२ ॥ अन्वास्यपश्चिमांसंध्यांतत्रवासमकल्पयत् ॥ सुतीक्ष्णस्याश्रमेरम्येसीतयालक्ष्मणेनच ॥ २३ ॥ ततःशुभंतापसयोग्यमन्नंस्वयंसुतीक्ष्णःपुरुषर्षभाभ्याम् ॥ ताभ्यांसुसत्कृत्यददौमहात्मासंध्यानिवृत्तौरजनींसमीक्ष्य ॥ २४ ॥ इत्यार्षेश्री० वा० आ० आरण्यकांडेसप्तमःसर्गः ॥ ७ ॥ ॥ रामस्तुसहसौमित्रिःसुतीक्ष्णेनाभिपूजितः ॥ परिणाम्यनिशांतत्रप्रभातेप्रत्यबुध्यत ॥ १ ॥ उत्थायचयथाकालंराघवःसहसीतया ॥ उपस्पृश्यसुशीतेनतोयेनोत्पलगंधिना ॥ २ ॥ अथतेऽग्निंसुरांश्चैववैदेहीरामलक्ष्मणौ ॥ काल्यंविधिवदभ्यर्च्यतपस्विशरणेवने ॥ ३ ॥

सुतीक्ष्णजीनें आपही तपस्वियोंके भोजन करनेंयोग्य अन्न उन दो पुरुष श्रेष्ठोंको प्रदान किया और बहुत भांतिसे आदर भी करते हुए ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० आ० सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥ श्रीरामचन्द्रजी सुतीक्ष्ण करके इस प्रकार पूजे जाकर लक्ष्मणजीके सहित वह रात्रि इसी आश्रमपर व्यतीत करके प्रभात होते ही जागे ॥१॥ और सीताजीके सहित यथाकालमें उठकर श्रीरामचन्द्रजीनें उस जलसे स्नान करा व हाथ पैर धो जोकि कमलोंकी सुवाससे युक्तथा ॥ २ ॥ फिर श्रीरामचन्द्र लक्ष्मण और वैदेहीजी देवताओंके कालोचित

विधानानुसार अग्नि आदि देवताओंकी पूजा उस तपस्वी सेवित वनमें करते हुए ॥ ३ ॥ और उदय होते हुए सूर्य भगवानके दर्शन कर निष्पापहो सुतीक्ष्णके निकट आकर विनीत मनोहर वचनसे बोले ॥ ४ ॥ हे भगवन्! आपके निकट पहुनई पाकर हम इस रात्रिमें यहां बहुत सुखसे बसे अब हम दण्डकारण्यमें जांयगे इस कारण आपकी अनुमति चाहते हैं क्योंकि यह ऋषि लोग हमको चलनेके अर्थ शीघ्रता करा रहे हैं॥५॥ दण्डकारण्यवासी पवित्र स्वभाववाले ऋषि लोगोंके समस्त आश्रम मण्डल दर्शन करनेके लिये हमारी इच्छा हुई है सो हम उनको शीघ्र देखेंगे ॥ ६ ॥ अब इच्छाहै कि आप आज्ञा दे दें तो हम इन सब बिना धुँवेवाली अग्निके समान प्रभायुक्त सत्यनिष्ठ तप करके जिन्होंनें

उदयंतंदिनकरंदृष्ट्वाविगतकल्मषाः ॥ सुतीक्ष्णमभिगम्येदंश्लक्ष्णंवचनमब्रुवन्॥४॥सुखोपिताःस्मभगवंस्त्वयापूज्येनपूजिताः ॥ आपृच्छामःप्रयास्यामोमुनयस्त्वरयंतिनः॥५॥त्वरामहेवयंद्रष्टुंकृत्स्नमाश्रममंडलम् ॥ ऋषीणांपुण्यशीलानांदंडकारण्यवासिनाम् ॥ ६ ॥ अभ्यनुज्ञातुमिच्छामःसहैभिर्मुनिपुंगवैः ॥ धर्मनित्यैस्तपोदांतैर्विशिखैरिवपावकैः ॥ ७ ॥ अविषह्यातपोयावत्सूर्योनातिविराजते ॥ अमार्गेणागतांलक्ष्मींप्राप्येवान्वयवर्जितः ॥ ८ ॥ तावदिच्छामहेगंतुमित्युक्त्वाचरणौमुनेः ॥ ववंदेसहसौमित्रिःसीतयासहराघवः ॥ ९ ॥ तौसंस्पृशंतौचरणावुत्थाप्यमुनिपुंगवः ॥ गाढमाश्लिष्यसस्नेहमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १० ॥ अरिष्टंगच्छपंथानंरामसौमित्रिणासह ॥ सीतयाचानयासार्धंछाययेवानुवृत्तया ॥ ११ ॥

अपनी इन्द्रियोंको जीत लिया है ऐसे मुनिश्रेष्ठोंके साथ चले जांय ॥ ७ ॥ अन्याय करके प्राप्त हुई लक्ष्मीको पाकर जिस प्रकार पुरुपान पुरुषोंके संबंध छोड मनुष्य असह हो उठता है, सो सूर्यका ताप वैसा असह न होते २ ॥८॥ हम यहां से चलने की वासना करते हैं श्रीरामचन्द्रजीनें यह कह कर लक्ष्मण और सीताजीके साथ सुतीक्ष्णजीके चरणोंकी वन्दनाकी ॥ ९ ॥ मुनिश्रेष्ठ सुतीक्ष्णजीनें चरण वन्दन करते हुए उन दोनों राम और लक्ष्मणजीको उठाकर गाढ आलिङ्गन किया और उनसे स्नेह साने वचन बोले ॥ १० ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी! लक्ष्मणजी और

छायाके समान साथ चलनेंवाली इन सीताजीके संग आप निर्विघ्न मार्गमें चले जांय ॥ ११ ॥ हे वीर ! योगमें जिनके चित्त लगे हुएहैं ऐसे दण्डकारण्यवासी इन सब ऋषियोंके रमणीय आश्रम देख आइये॥१२॥अनेक प्रकारके बहुत कंद मूल फल सहित फूले हुए वनोंमें जिनमें भलेर श्रेष्ठ मृग गण रहते हैं और पक्षियोंके झुन्डके झुन्ड भरेहैं॥१३॥जहां साफ जल वाली ताल तलैयोंमें कमल फूल रहेहैं और उन्हीं तालावों पर हंस और कारंडवादि पक्षी विराजरहेहैं ॥ १४ ॥ और इनके अतिरिक्त देखनेमें अति मनोहर पर्वतोंके झरने और जहां मोर शोर कर रहे

पश्याश्रमपदंरम्यंदंडकारण्यवासिनाम् ॥ एषांतपस्विनांवीरतपसाभावितात्मनाम् ॥ १२ ॥ सुप्राज्यफलमूला
निपुष्पितानिवनानिच ॥ प्रशस्तमृगयूथानिशांतपक्षिगणानिच ॥ १३ ॥ फुल्लपंकजखंडानिप्रसन्नसलिलानिच ॥ का
रंडवविकीर्णानितटाकानिसरांसिच ॥ १४ ॥ द्रक्ष्यसेदृष्टिरम्याणिगिरिप्रस्रवणानिच ॥ रमणीयान्यरण्यानिम
यूराभिरुतानिच ॥ १५ ॥ गम्यतांवत्ससौमित्रेभवानपिचगच्छतु ॥ आगंतव्यंचतेदृष्ट्वापुनरेवाश्रमंप्रति ॥ १६ ॥
एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वाकाकुत्स्थःसहलक्ष्मणः ॥ प्रदक्षिणंमुनिंकृत्वाप्रस्थातुमुपचक्रमे ॥ १७ ॥ ततःशुभतरेतूणी
धनुषीचायतेक्षणा ॥ ददौसीतातयोर्भ्रात्रोःखड्गौचविमलौततः ॥ १८ ॥ आबध्यचशुभेतूणीचापेचादायसस्वने ॥
निष्क्रांतावाश्रमाद्गंतुमुभौतौरामलक्ष्मणौ ॥ १९ ॥

हैं ऐसे वन भी आप देखेंगे ॥ १५ ॥ वत्स सौमित्रे ! गमन करो श्रीरामचन्द्रजी आपभी जांय, परन्तु इन सब आश्रमोंके दर्शन करके फिर भी इस स्थानमें आप लौट कर आवैं ॥ १६ ॥ जब सुतीक्ष्णजी यह बोले तब श्रीरामचन्द्रजीनें कहा कि ऐसाही होगा यह कहकर लक्ष्मणजीके साथ सुतीक्ष्णजीकी परिक्रमा कर जानेके लिये तैयार हुये ॥ १७ ॥ अनन्तर बडे २ नेत्रवाली सीताजीनें दोनों भाइयों को श्रेष्ठ तरकस धनुष और दो निर्मल खड्ग दिये जो कि रामचन्द्रजीने व लक्ष्मणजीनें खोलकर धर दियेथे ॥ १८ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजी व लक्ष्मणजी

दोनों शुभ तरकस बांध और दो शब्द सहित धनुष कांधेमें डाल यात्रा करनेके लिये आश्रमसे बाहर हुए ॥ १९ ॥ रूपवान् दोनों रघुवीरोंने महर्षि सुतीक्ष्णजीकी आज्ञा पाकर धनुष बाण धारण करके सीताजीके सहित शीघ्र यात्राकी ॥२०॥ इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०आ०अष्टमःसर्गः ॥८॥ रघुनंदन रामचंद्रजी जब सुतीक्ष्णजीकी आज्ञा लेकर यात्रा करते हुए तब सीताजी स्नेह साने मनोहर वचन श्रीरामचंद्रजीसे बोलीं ॥ १ ॥ यद्यपि आप अतिशय महात्माहैं परन्तु परम सूक्ष्म रूपसे विचार कर देखनेसे आप अधर्मको संचय करतेहैं इस समय कामजव्यसनसे निवृत्त होतेही यह अधर्म नहीं होगा ॥ २ ॥ कामज व्यसन तीन प्रकारके हैं मिथ्यावाक्य अर्थात् झूंठ बोलना व इससे भी परम भारी और दो

शीघ्रंतौरूपसंपन्नावनुज्ञातौमहर्षिणा ॥ प्रस्थितौधृतचापासीसीतयासहराघवौ ॥ २० ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ० आ०अष्टमःसर्गः॥ ८ ॥७॥ सुतीक्ष्णेनाभ्यनुज्ञातंप्रस्थितंरघुनंदनम् ॥ हृष्टयास्निग्धयावाचाभर्तारमिदमब्रवीत्॥ १ ॥ अधर्मंतुसुसूक्ष्मेणविधिनाप्राप्यतेमहान् ॥ निवृत्तेनचशक्योयंव्यसनात्कामजादिह ॥ २ ॥ त्रीण्येवव्यसनान्यद्य कामजानिभवंत्युत ॥ मिथ्यावाक्यंतुपरमंतस्माद्गुरुतरावुभौ ॥ ३ ॥ परदाराभिगमनंविनावैरंचरौद्रता ॥ मिथ्या वाक्यंनतेभूतंनभविष्यतिराघव ॥ ४ ॥ कुतोभिलषणंस्त्रीणांपरेषांधर्मनाशनम् ॥ तवनास्तिमनुष्येंद्रनचाभूत्तेकदा चन ॥ ५ ॥ मनस्यपितथारामनचैतद्विद्यतेक्वचित् ॥ स्वदारानिरतश्चैवनित्यमेवनृपात्मज ॥६ ॥ धर्मिष्ठःसत्यसंधश्च पितुर्निर्देशकारकः ॥ त्वयिधर्मश्चसत्यंचत्वयिसर्वंप्रतिष्ठितम् ॥ ७ ॥

पापहैं ॥ ३ ॥ परस्त्री गमन (पराई स्त्रीसे भोग करना) और विना वैरकेही वृथा प्राणीको मार डालना यह पाप बडे भारीहैं हे रघुनंदन ! आपने कभी मिथ्या वचन नहीं कहा न कभी आप आगेको कहैंगे॥ ४॥ हे नरश्रेष्ठ! और आप धर्मका नाश करनेंवाला परस्त्रीगमन नहीं करते सो हे नरनाथ! ना तो यह बात आपमें कभी हुई न होगी ॥ ५ ॥ आपने किसी कारण वश होकर मनके बीचमें भी पराई स्त्रीकी अभिलाषा नहीं की। हे राजकुमार! आप सदाही अपनी स्त्रीमें अनुरागी रहतेहैं॥६॥ आप धर्मात्मा और सच्ची प्रतिज्ञा करनेवालेहैं पिताजीकी आज्ञा आप

पालन कर रहेहैं धर्म और सत्य सब आपमेंही टिके हुएहैं ॥ ७ ॥ हे महाबाहो ! जो लोग जितेन्द्रियहै वह लोगही इन सब बातोंका पालन
कर सकतेहैं । हे शुभदर्शन ! सब प्राणी आपकी जितेन्द्रियताको जानतेहैं ॥ ८ ॥ परन्तु विना अपराध प्राणियोंकी हिंसा करनेका जो
यह भयानक तीसरा व्यसनहै इस समय वही व्यसन आपमें उपस्थित हुआहै ॥ ९ ॥ हेवीर ! आपने प्रतिज्ञाकीहै कि दंडकारण्यवासी ऋषि
लोगोंकी रक्षा करनेके लिये युद्धमें हम राक्षसोंके प्राण संहार करैंगे ॥ १० ॥ इसीकारण आपने धनुष बाण ग्रहण करके लक्ष्मण
सहित दण्डक नामसे जो वन विख्यातहै उसमेंको यात्रा की है ॥ ११ ॥ अतएव आपको यात्रा करते हुए देखकर और आपका अंगीकार पालन

तच्चसर्वंमहाबाहोसत्यंवोढुंजितेंद्रियैः ॥ तववश्येंद्रियत्वंचभूतानांशुभदर्शन ॥ ८ ॥ तृतीयंयदिदंरौद्रंपरप्राणा
भिहिंसनम् ॥ निर्वैरंक्रियतेमोहात्तच्चतेसमुपस्थितम् ॥ ९ ॥ प्रतिज्ञातस्त्वयावीरदंडकारण्यवासिनाम् ॥ ऋषीणां
रक्षणार्थायवधःसंयतिरक्षसाम् ॥ १० ॥ एतन्निमित्तंवचनंदंडकाइतिविश्रुतम् ॥ प्रस्थितस्त्वंसहभ्रात्राधृतबाण
शरासनः ॥ ११ ॥ ततस्त्वांप्रस्थितंदृष्ट्वाममचिंताकुलंमनः ॥ त्वद्वृत्तंचिंतयंत्यावैभवेन्निःश्रेयसंहितम् ॥ १२ ॥
नहिमेरोचतेवीरगमनंदंडकान्प्रति ॥ कारणंतत्रवक्ष्यामिवदंत्याःश्रूयतांमम ॥ १३ ॥ त्वंहिबाणधनुष्पाणिर्भ्रात्रास
हवनंगतः ॥ दृष्ट्वावनचरान्सर्वान्कच्चित्कुर्याःशरव्ययम् ॥ १४ ॥ क्षत्रियाणामिहधनुर्हुताशस्येंधनानिच ॥ समी
पतःस्थितंतेजोबलमुच्छ्रयतेभृशम् ॥ १५ ॥

रूप व्रत जानकर आपके पारलौकिक और ऐहिक सुखके विषयमें हमारे मनको बडी चिन्ता हो रहीहै ॥१२॥ हे वीर! दंडकारण्यका जाना
हमें अच्छा नहीं लगता सो इसका कारणभी कहतीहैं आप श्रवण करें ॥ १३ ॥ हे महाराज! आप धनुष बाण ग्रहण करके भाईके सहित
वनको जांयगे वहां पर जो आप किसी राक्षसको देख पावेंगे तो कहीं न कहीं अवश्यही बाण त्याग करैंगे ॥१४॥ निकट रक्खा हुआ काठ जैसे अ
ग्निके तेजको बढाताहै वैसेही यह धनुष जिसके पास रहताहै वहभी किसी न किसीपर चलायाही चाहताहै क्योंकि क्षत्रियोंके पास रहकर धनुष

उनके बलको बढाताहै ॥ १५ ॥ हे महाबाहो! पहले कोई मृग पक्षियों करके युक्त पुण्यमय वनके बीच एक सत्यमें टिके हुए पवित्र आचरण करनेवाले तपस्वी रहतेथे ॥ १६ ॥ शचीपति इन्द्रजी इन ऋषिको तपस्यामें विघ्न करनेके लिये योद्धाका वेष बनाय खड्ग हाथमें लेकर उनके आश्रममें आये ॥ १७ ॥ और उस आश्रममें उस तपोनिष्ठ पवित्र मुनिके पास धरोहरकी भांति यह खड्ग रख कर चले गये॥ १८ ॥ मुनि जी इस अस्त्रको पाकर इसकी रक्षा करनेके लिये बहुत यत्न करनेंमें लगे और विश्वासघातक न बनना पडे इस कारण इस अस्त्रको संगही लेकर वनमें घूमनें लगे ॥ १९ ॥ वह धरोहर वस्तुकी रक्षाकरनेंमें इतना यत्न करते कि जब कहींसे कंद मूल फल लेनेंके लिये जाते तोभी विना

पुराकिलमहाबाहोतपस्वीसत्यवाञ्छुचिः ॥ कस्मिंश्चिदभवत्पुण्येवनेरतमृगद्विजे ॥१६॥ तस्यैवतपसोविघ्नंकर्तुमिंद्रः शचीपतिः ॥ खड्गपाणिरथागच्छदाश्रमंभटरूपधृक् ॥ १७॥ तस्मिंस्तदाश्रमपदेनिहितःखड्गउत्तमः ॥ संन्यासविधिनादत्तःपुण्येतपसितिष्ठतः ॥ १८ ॥ सतच्छस्त्रमनुप्राप्यन्यासरक्षणतत्परः ॥ वनेतुविचरत्येवरक्षन्प्रत्ययमात्मनः ॥१९॥ यत्रगच्छत्युपादातुंमूलानिचफलानिच ॥ नविनायातितंखड्गंन्यासरक्षणतत्परः ॥२०॥ नित्यंशस्त्रंपरिवहन्क्रमेणसतपोधनः॥चकाररौद्रींस्वांबुद्धिंत्यक्त्वातपसिनिश्चयम् ॥२१॥ततःसरौद्राभिरतःप्रमत्तोधर्मकर्षितः ॥ तस्यशस्त्रस्यसंवासाज्जगामनरकंमुनिः ॥२२॥ एवमेतत्पुरावृत्तंशस्त्रसंयोगकारणम् ॥अग्निसंयोगवद्धेतुःशस्त्रसंयोगउच्यते ॥२३॥ स्नेहाच्चबहुमानाच्चस्मारयेत्वांतुशिक्षये ॥ नकथंचनसाकार्यागृहीतधनुषात्वया ॥ २४ ॥

इस खड्गके गमन नहीं करतेथे ॥ २० ॥ सदा खड्ग संग लिये फिरनेंसे सहज २ में मुनिका विश्वाश तप करनेंसे हट गया और उनका स्वभाव कठोर होगया ॥ २१ ॥ तिसके पीछे वह उसी शस्त्रसे प्राणियोंको मारने लगे और मतवालेसे होगये और अधर्मसे घिर शस्त्र साथ रखने से अंत समय नरक को गये ॥ २२ ॥ शस्त्रको पास रखनेंसे पहले ऐसा हुआथा इसही कारणसे पंडित लोग शस्त्र संयोगको अग्नि संयोगकी समान विकारका हेतु कहा करतेहैं ॥ २३ ॥ हे प्राणनाथ! हम आपसे बहुत स्नेह करतीहैं इस कारण आपको याद दिलादी कुछ हम आपको शिक्षा नहीं

करती। हे वीर! आप धनुष धारण करके ऐसा कार्य मत कीजिये॥२४॥ निरपराध दंडकवासी राक्षसोंको मारनेका विचार मत कीजिये हे वीर! विना अपराध किसी को भी वध करना आपको उचित नहीं है ॥ २५ ॥ वनमें विचरते हुए क्षत्रियोंका धनुष धारण करना निरपराध जीवोंको मारनेके लिये नहीं वरन दुःखी लोगोंकी रक्षाही करनेके लियेहै ॥ २६ ॥ वनवासोको क्या शस्त्रधारण करना उचितहै ? तपस्वियोंमें क्या क्षत्रियोंका स्वभाव शोभा पाताहै? कहां शस्त्र? कहां वन? कहां क्षत्रिय धर्म? कहां तप? यह सब कर्म एक दूसरेसे विरुद्धहैं इससे वनका ही धर्म यहां पर वर्तना चाहिये ॥ २७ ॥ बराबर शस्त्रका व्यवहार करनेसे बुद्धि कादर और मलीन होजातीहै जब आप अयोध्याजीको लौट चलें तब फिर

बुद्धिर्वैरंविनाहंतुंराक्षसान्दंडकाश्रितान् ॥ अपराधंविनाहंतुंलोकोवीरनमंस्यते ॥ २५ ॥ क्षत्रियाणांतुवीराणांवने षुनियतात्मनाम् ॥ धनुषाकार्यमेतावदार्तानामभिरक्षणम् ॥ २६ ॥ क्वचशस्त्रंक्वचवनंक्वचक्षात्रंतपःक्वच ॥ व्याविद्धमिदमस्माभिर्देशधर्मस्तुपूज्यताम् ॥ २७ ॥ कदर्यकलुषाबुद्धिर्जायतेशस्त्रसेवनात् ॥ पुनर्गत्वात्वयोध्यायांक्षत्रधर्मंचरिष्यसि ॥२८॥ अक्षयातुभवेत्प्रीतिःश्वश्रूश्वशुरयोर्मम ॥ यदिराज्यंहिसंन्यस्यभवेस्त्वंनिरतोमुनिः॥२९॥ धर्मादर्थःप्रभवतिधर्मात्प्रभवतेसुखम् ॥ धर्मेणलभतेसर्वंधर्मसारमिदंजगत् ॥ ३० ॥ आत्मानंनियमैस्तैस्तैःकर्षयित्वाप्रयत्नतः ॥ प्राप्यतेनिपुणैर्धर्मोनसुखाल्लभतेसुखम् ॥ ३१ ॥ नित्यंशुचिमतिःसौम्यचरधर्मंतपोवने ॥ सर्वंतुविदितंतुभ्यंत्रैलोक्यमपितत्वतः ॥ ३२ ॥

क्षत्रियोंके धर्मका आचरण कर लेना ॥ २८ ॥ आप राज्य परित्याग करके जो यहां पर ऋषियोंके धर्मका आचरण करेंगे तो हमारे श्वशुर दशरथजीकी प्रीतिभी आपमें अधिकहोगी। क्योंकि उन्होंनेभी यही आज्ञा दीहै कि मुनिवेष धारण कर वनमें वसो ॥ २९ ॥ धर्मसे ही अर्थका लाभ होताहै धर्मसे ही सुख उत्पन्न होताहै वरन धर्मसे ही सब कुछ प्राप्त होजाताहै इस कारण धर्महो संसारमें एक मात्र सार वस्तुहै अतएव आपभी धर्मका ही आचरण कीजिये ॥ ३० ॥ चतुर मनुष्य बहुत यत्नसे शरीरको कष्ट दे दुर्बल करके धर्मका लाभ करतेहैं; क्योंकि शारीरक सुख जनक उपायसे धर्म प्राप्त नहीं होता॥३१॥हे प्रियदर्शन! तुम सदा शुद्ध चित्त होकर, तपोवनमें करने योग्य जो

धर्मानुष्ठानहैं उनके करनेमें मन लगाओ त्रिभुवनके सूक्ष्मातुसूक्ष्म सब विषयही आपको विदितहैं तब फिर कौन धर्म विषयमें, आपको समझा सकताहै ? ॥ ३२ ॥ हमने केवल स्त्रियोंके स्वभावसे जो चंचलता होतीहै उसकेही वश होकर ऐसा कहा इस समय अनुज लक्ष्मणके साथ विचार करके जो उचित समझा जाय, विलंब न लगाकर उसको कीजिये ॥३३॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥ पतिकी भक्ति करनेवाली मैथिली जानकीजीके ऐसे वचन कहनेपर परम धर्मनिष्ठ रामचंद्रजी उनको सुनकर अपनेको भली भांति समाहत जान उत्तर देते हुए ॥ १ ॥ हे धर्मज्ञ देवि जानकी ! तुमने स्नेह वचनसे क्षत्रिय कुलका धर्म बताकर जो कुछ कहा वह सबही हितकारी और

स्त्रीचापलादेतदुपाहृतंमेधर्मंचवक्तुंतवकःसमर्थः ॥ विचार्यबुद्ध्यातुसहानुजेनयद्रोचतेतत्कुरुमाचिरेण ॥ ३३ ॥
इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० आरण्यकांडेनवमः सर्गः ॥ ९ ॥ वाक्यमेतत्तुवैदेह्याव्याहृतंभर्तृभक्तया ॥ श्रुत्वाधर्मे स्थितोरामःप्रत्युवाचाथजानकीम् ॥ १ ॥ हितमुक्तंत्वयादेविस्निग्धयासदृशंवचः ॥ कुलंव्यपदिशंत्याचधर्मज्ञेजनकात्मजे ॥ २ ॥ किंनुवक्ष्याम्यहंदेवित्वयैवोक्तमिदंवचः ॥ क्षत्रियैर्धार्यतेचापोनार्तशब्दोभवेदिति ॥ ३ ॥ तेचार्ता दंडकारण्येमुनयःसंशितव्रताः ॥ मांसीतेस्वयमागम्यशरण्यंशरणंगताः ॥ ४ ॥ वसंतःकालकालेषुवनेमूलफलाशनाः ॥ नलभंतेसुखंभीरुराक्षसैःक्रूरकर्मभिः ॥ ५ ॥ भक्ष्यंतेराक्षसैर्भीमैर्नरमांसोपजीविभिः ॥ तेभक्ष्यमाणासुनयोदंडकारण्यवासिनः ॥ ६ ॥

बहुत अच्छाहै ॥ २ ॥ किन्तु देवी ! कोई दुःखित होकर वचन न सुनावे इसही कारण क्षत्रिय लोग धनुष धारण करतेहैं सो यह वार्त्ता कहकर तुमने स्वयंही अपने प्रश्नका उत्तर देलियाहै फिर भला हम और क्या उत्तरदें ॥ ३ ॥ दंडकारण्यके रहनेवाले महातपस्वी ऋषि लोग दुःखित होकर स्वयंही यहां आकर हमको सबका शरण देनेवाला समझ हमारी शरण आये ॥ ४ ॥ अयि भीरु ! वह लोग नित्य फल मूल भक्षण करके वनमें वास करतेहैं परन्तु क्रूर कर्म करनेवाले राक्षसोंके उपद्रव करनेसे वह मुनिगण सुख नहीं पा सकते ॥ ५ ॥ इसके सिवाय राक्षस नर मांस

भोजी तो होतेहीहैं सो वैसे नरमांसोपजीवी भयंकर स्वभाववाले राक्षसोंसे अनेक मुनि लोग भक्षण किये गयेहैं ॥ ६ ॥ उनसे बचे कुचे दंडकारण्यवासी मुनि लोगोंने हमारे निकट आ हमसे यह सब दुःखका वृत्तान्त कहा तब हम उनके ऐसे वचन सुन ॥ ७ ॥ उनकी प्रतिष्ठा करते हुए उनसे बोले कि आप हम पर प्रसन्न हूजिये हमको बहुतही लज्जा आतीहै कि आपके ऐसे दुःखित वचन सुनें ॥ ८ ॥ क्योंकि आप लोग स्वभावसेही हम लोगोंके पूज्यहैं किन्तु इस समय आप हमारी शरणमें आये अनन्तर हमनें उनके सामनेही कहा कि हमें क्या करना होगा सो आज्ञा कीजिये ॥ ९ ॥ तब सबहीनें एकत्रहो मिलकर कहा राम ! दंडकारण्यमें बहुसंख्याक कामरूप निशाचरोंने एकत्र होकर अतिशय सताना आरंभ कियाहै ॥ १० ॥ आप उनके हाथोंसे हमारा उद्धार कीजिये । हे अनघ ! होम करनेके काल और पौर्णमासी अमावास्याके

अस्मानभ्यवपद्यैतेमामूचुर्द्विजसत्तमाः ॥ मयातुवचनंश्रुत्वातेषामेवमुखाच्च्युतम् ॥ ७ ॥ कृत्वावचनशुश्रूषांवाक्यमेतदुदाहृतम् ॥ प्रसीदंतुभवंतोमेह्रीरेषातुममातुला ॥ ८ ॥ यदीदृशैरहंविप्रैरुपस्थेयैरुपस्थितः ॥ किंकरोमीतिचमयाव्याहृतंद्विजसंनिधौ ॥ ९ ॥ सर्वैरेवसमागम्यवागियंसमुदाहृता ॥ राक्षसैर्दंडकारण्येबहुभिःकामरूपिभिः ॥ १० ॥ अर्दिताःस्मभृशंरामभवान्नस्तत्ररक्षतु ॥ होमकालेतुसंप्राप्तेपर्वकालेषुचानघ ॥ ११ ॥ धर्षयंतिस्मदुर्धर्षाराक्षसाःपिशिताशनाः॥राक्षसैर्धर्षितानांचतापसानांतपस्विनाम्॥१२॥ गतिंमृगयमाणानांभवान्नःपरमागतिः॥कामंतपःप्रभावेणशक्ताहंतुंनिशाचरान् ॥१३॥ चिरार्जितंनचेच्छामस्तपःखंडयितुंवयम्॥ बहुविघ्नंतपोनित्यंदुश्चरंचैवराघव ॥१४॥

दिन जब हम यज्ञ करने लगतेहैं ॥ ११ ॥ तब वह मांसके खानेवाले राक्षस लोग आयर कर हठ सहित यज्ञ विध्वंस करते और हमको सताते हैं अतएव इन राक्षसोंसे व्याकुल महा तपस्वी लोगोंको ॥ १२ ॥ आप बचाइये उन लोगोंको हम पराजित नहीं कर सकते तपमें रत ऋषिगण इस प्रकार राक्षसोंके दुःख फंदमें फँसकर छुटकारा पानेकी वासनासे आपको शरण लेतेहैं । आपही हम लोगोंके परम गतिहैं यद्यपि हम तपस्याके प्रभावसे स्वयंभी राक्षसोंका संहार कर सकतेहैं ॥ १३ ॥ तथापि बहुत कालकी बटोरी हुई तपस्याके क्षय करनेको हमारा अभिलाष नहीं होता। हे रघुनंदन ! तपस्या जैसे कि बहुत कष्टोंसे इकट्ठी होतीहै वैसेही इकट्ठा करनेके समय इसमें अनेक विघ्नभी होतेहैं ॥ १४ ॥

इसी कारणसे राक्षस लोग खाभी लेतेहैं पर हम उनको शाप देकर नहीं मारते क्योंकि तपका फल शाप देनेंसे नहीं रहता तिस्से दंडकारण्यवासी राक्षसोंसे सताये हुए हम लोगोंकी ॥ १५ ॥ भ्राता लक्ष्मणके सहित आप रक्षा करें क्योंकि आपही हमारे रक्षा करताहैं जब हमने मुनियोंके ऐसे वचन सुने तब उनसे कहा कि आप लोगोंका पालन हम सब प्रकारसे करेंगे ॥ १६ ॥ हे जानकि ! हमने दंडकारण्यवासी तपस्विगणोंकी यह वार्त्ता सुनकर उनकी रक्षा करनेकी प्रतिज्ञाकीहै सो प्राण रहते इस प्रतिज्ञाके पालन करनेमें किसी भांति विमुख नहीं होंगे ॥ १७ ॥ एक तो ऋषि गणोंके सामने प्रतिज्ञा फिर उसमें सत्यही हमाराभी परम अभीष्टहै । फिर भला हम इसके विपरीत कैसे कर सकतेहैं ? हे सीते! तुम्हें,

तेनशापंनमुंचामोभक्ष्यमाणाश्चराक्षसैः ॥ तदर्द्यमानान्रक्षोभिर्दंडकारण्यवासिभिः ॥ १५ ॥ रक्षकस्त्वंसहभ्रात्रा त्वन्नाथाहिवयंवने ॥ मयाचैतद्वचःश्रुत्वाकात्स्न्येंनपरिपालनम् ॥ १६ ॥ ऋषीणांदंडकारण्येसंश्रुतंजनकात्मजे ॥ संश्रुत्यचनशक्ष्यामिजीवमानःप्रतिश्रवम् ॥ १७ ॥ मुनीनामन्यथाकर्तुंसत्यमिष्टंहिमेसदा ॥ अप्यहंजीवितंजह्यांत्वांवासीतेसलक्ष्मणाम् ॥ १८ ॥ नतुप्रतिज्ञांसंश्रुत्यब्राह्मणेभ्योविशेषतः ॥ तदवश्यंमयाकार्यमृषीणां परिपालनम् ॥ १९ ॥ अनुक्तेनापिवैदेहिप्रतिज्ञायकथंपुनः ॥ ममस्नेहाच्चसौहार्दादिदमुक्तंत्वयावचः॥२०॥ परितुष्टोस्म्यहंसीतेनह्यनिष्टोनुशास्यते॥सदृशंचानुरूपंचकुलस्यतवशोभने ॥ सधर्मचारिणीमेत्वंप्राणेभ्योपिगरीयसी॥२१॥

लक्ष्मणको और अपने प्राणकोभी हम त्याग कर सकतेहैं॥ १८ ॥ परन्तु प्रतिज्ञा करके विशेषतः ब्राह्मणोंके विषयमें सो हम कभी त्याग नहीं कर सकते तिस्से ऋषि लोगोंका पालन करना हमारा परम कार्यहै ॥ १९ ॥ ऋषि लोगोंके न कहनेपरभी जब कि सबही भांतिसे उन लोगोंकी रक्षा करना हमारा आवश्यकीय कार्यहै, फिर भला प्रतिज्ञा करके किस प्रकार उस कार्यसे विमुखहों । जो हो हे सीते! तुमने हमारे प्रति स्नेह और सौहार्दसे जो वचन कहे सोभी हमने जाने ॥ २० ॥ इस्से हम बहुत संतुष्टहैं क्योंकि कोईभी कुप्यारे मनुष्यसे हितकारी वचन नहीं कहता । हे शोभने ! तुमने हमसे अपने वंशके लायक उचित वचनही कहेहैं तुम हमारी धर्म चारिणीहो, हम तुमको प्राणसेभी अधिक प्यारा समझतेहैं ॥२१॥

धनुष धारण किये हुए महानुभाव श्रीरामचंद्रजी जनकदुलारी सुकुमारी सीताजीसे इस प्रकारके वचन कहकर लक्ष्मणजीके सहित परम रमणीय तपोवनोंमें गमन करते हुए ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० आर० दशमः सर्गः ॥ १० ॥ उन दोनों भाइयोंनें जानकीजीके श्रीरामचंद्रजी आगे, सुशोभित सीताजी बीचमें और लक्ष्मणजी धनुष धारण करके पीछे २ जाने लगे ॥ १ ॥ सारस और चकवा, चकवी नदियोंके किनारे घूम रहे और सहित जानेके समय विविध भांतिके पर्वत, वन, नदी, तालाव आदि देखे ॥ २ ॥ चीता, वाघ आदिकोंके झुन्डके झुन्ड, सुविशाल शींग जिनके ऐसे मदसे कमल फूल फूले हुए जल मुरगावी आदिकों करके युक्त सरोवर देखे॥३॥

इत्येवमुक्त्वावचनंमहात्मासीतांप्रियांमैथिलराजपुत्रीम् ॥ रामोधनुष्मान्सहलक्ष्मणेनजगामरम्याणितपोवनानि ॥ २२ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०आरण्यकांडेदशमःसर्गः ॥ १० ॥ ॥ ७ ॥ अग्रतःप्रययौरामःसीतामध्येसुशोभना ॥ पृष्ठतस्तुधनुष्पाणिर्लक्ष्मणोनुजगामह ॥ १ ॥ तौपश्यमानौविविधान्शैलप्रस्थान्वनानिच ॥ नदीश्चविविधारम्याजग्मतुःसहसीतया ॥ २ ॥ सारसांश्चक्रवाकांश्चनदीपुलिनचारिणः ॥ सरांसिचसपद्मानियुतानिजलजैःखगैः ॥ ३ ॥ यूथबंधांश्चपृषतान्मदोन्मत्तान्विषाणिनः ॥ महिषांश्चवराहांश्चगजांश्चद्रुमवैरिणः ॥ ४ ॥ तेगत्वादूरमध्वानंलंबमानेदिवाकरे ॥ ददृशुःसहितारम्यंतटाकंयोजनायतम् ॥ ५ ॥ पद्मपुष्करसंबाधंगजयूथैरलंकृतम् ॥ सारसैर्हंसकादंबैःसंकुलंजलजातिभिः ॥ ६ ॥ प्रसन्नसलिलेरम्येतस्मिन्सरसिशुश्रुवे ॥ गीतवादित्रनिर्घोषोननुकश्चनदृश्यते ॥ ७ ॥

उन्मद भैंसे वराह और वृक्षोंके वैरी हाथी ॥ ४ ॥ देखते दिखाते चले तिसके पीछे जब दिवाकर अस्ताचल सन्मुखीन हुए तब रामचंद्र लक्ष्मण व सीताजीने बहुत दूर चलकर एक योजनमें विस्तार जिसका ऐसा एक तालाव देखा ॥ ५ ॥ इस तालावमें हाथियोंके झुन्डके झुन्ड नहा रहे बहुत सारे लाल और श्वेत कमल फूल खिल रहे जल पक्षी सारस और हंस कल्लोलें कर रहेथे ॥ ६ ॥ और इसका जल अति निर्मल था श्रीरामचंद्र लक्ष्मण व जानकीजीनें इस रमणीय सरोवरपर गीत और बाजेका शब्द सुना; परन्तु कोई गानें बजानेंवाला दिखाई न दिया ॥ ७ ॥

महारथी श्रीरामचंद्र और लक्ष्मणजी दोनों कौतूहलके वश होकर धर्मभृत् नामक ऋषिसे पूछते हुए ॥ ८ ॥ हे महर्षे ! यह बडे आश्चर्यका शब्द सुनकर हम सबकोही बडा कौतूहल हुआहे ! अतएव इस घटनाका सविशेष समस्त वर्णन कीजिये ॥ ९ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें इस प्रकार कहा तब धर्मात्मा ऋषि तत्क्षण इस सरोवरके प्रभावका वर्णन करने लगे ॥ १० ॥ ऋषि बोले हे रामचंद्रजी ! इस तडागका नाम पंचाप्सरहै इसमें सदा जल रहताहै कभी सूखता नहीं। महर्षि माण्डकर्णिनें तपोबलसे इसको बनायाहै ॥ ११ ॥ वह महामुनि माण्डकर्णि दश हजार वर्ष केवल पवन भोजन करते यहां रह कठोर तप करते रहे॥१२॥इस तपस्यासे इन्द्र, वरुण, कुबेर, अग्नि सूर्यादि देवता सब बहुतही व्यथित

ततःकौतूहलाद्रामोलक्ष्मणश्चमहारथः ॥ मुनिंधर्मभृतंनामप्रष्टुंसमुपचक्रमे ॥ ८ ॥ इदमत्यद्भुतंश्रुत्वासर्वेषांनोमहामुने ॥ कौतूहलंमहज्जातंकिमिदंसाधुकथ्यताम् ॥ ९ ॥ तेनैवमुक्तोधर्मात्माराघवेणमुनिस्तदा ॥ प्रभावंसरसःक्षिप्रमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ १० ॥ इदंपंचाप्सरोनामतटाकंसार्वकालिकम् ॥ निर्मितंतपसारामसुनिनामांडकर्णिना॥११॥ सहितेपेतपस्तीव्रंमांडकर्णिर्महामुनिः ॥ दशवर्षसहस्राणिवायुभक्षोजलाशये ॥ १२ ॥ ततःप्रव्यथिताःसर्वेदेवाःसाग्निपुरोगमाः ॥ अब्रुवन्वचनंसर्वेपरस्परसमागताः ॥ १३ ॥ अस्माकंकस्यचित्स्थानमेषप्रार्थयतेमुनिः ॥ इतिसंविग्नमनसःसर्वेतत्रदिवौकसः ॥ १४ ॥ ततःकर्तुंतपोविघ्नंसर्वदेवैर्नियोजिताः ॥ प्रधानाप्सरसःपंचविद्युच्चालितवर्चसः ॥ १५ ॥ अप्सरोभिस्ततस्ताभिर्मुनिर्दृष्टपरावरः ॥ नीतोमदनवश्यत्वंदेवानांकार्यसिद्धये ॥ १६ ॥ ताश्चैवाप्सरसःपंचमुनेःपत्नीत्वमागताः ॥ तटाकेनिर्मितंतासांतस्मिन्नंतर्हितंगृहम् ॥ १७ ॥

होकर परस्पर इकट्ठे होकर कहनें लगे ॥१३॥ यह ऋषि हममें से किसीका पद पानेंके लिये तप करतेहैं । इस प्रकार निश्चय करके देवताओंके अंतःकरण महा उद्विग्न होगये ॥ १४ ॥ तब उन सब देवताओंनें मिलकर उनके तपमें विघ्न करनेकी अभिलाषसे; बिजलीकी समान प्रभावाली पांच मुख्य अप्सराओंको भेजा ॥ १५ ॥ अप्सराओंनेभी देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये अपने और पराये विषयके जाननें वाले महर्षि माण्डकर्णिजीको मदनके मदसे मतवाला कर दिया ॥ १६ ॥ ऋषिजी उन पांचों अप्सराओंको अपनी स्त्रीकी भांति ग्रहण करके

उनके लिये इस सरोवरमें न दीखनेंवाला सुन्दर घर बनाया ॥ १७ ॥ पांचों अप्सरायें यथा सुखसे इस गृहमें वास करके तपके प्रभावसे युवा अवस्थाको प्राप्त हुए उन ऋषिका मन मुदित करनेंको उनके संग विहार करनें लगीं ॥ १८ ॥ मुनिजीके सहित विहार करती हुई उन अप्सरा गणोंकेही बाजे बजाने और गानेका यह शब्दहै, व उन्हींके गहनोंका यह मनोहर शब्द सुनाई देताहै ॥ १९ ॥ महायशवान श्रीराम चंद्रजी भ्राता लक्ष्मणजीके सहित विशुद्ध चित्त महर्षिजीकी इस कथाको सुन बडा अचरज पाते हुए ॥ २० ॥ और कैसे अचरजको बातहै यह कहते २ चारों ओर कुश चीर जिनमें पडे, ब्राह्मी शोभा समन्वित आश्रममंडल श्रीरामचंद्रजी देखते हुए ॥ २१ ॥ वह बहुत शीघ्र भ्रात।

तत्रैवाप्सरसःपंचनिवसंत्योयथासुखम् ॥ रमयंतितपोयोगान्मुनिंयौवनमास्थितम् ॥ १८ ॥ तासांसंक्रीडमाना नामेषवादित्रनिःस्वनः ॥ श्रूयतेभूषणोन्मिश्रोगीतशब्दोमनोहरः ॥ १९ ॥ आश्चर्यमितितस्यैतद्वचनंभाविता त्मनः ॥ राघवःप्रतिजग्राहसहभ्रात्रामहायशाः ॥ २० ॥ एवंकथयमानःसददर्शाश्रममंडलम् ॥ कुशचीरपरि क्षिप्तंब्राह्म्यालक्ष्म्यासमावृतम् ॥ २१ ॥ प्रविश्यसहवैदेह्यालक्ष्मणेनचराघवः ॥ तदातस्मिन्सकाकुत्स्थःश्रीमत्या श्रममंडले ॥ २२ ॥ उषित्वासुखंतत्रपूज्यमानोमहर्षिभिः ॥ जगामचाश्रमांस्तेषांपर्यायेणतपस्विनाम् ॥ २३ ॥ येषामुषितवान्पूर्वंसकाशेसमहास्त्रवित् ॥ क्वचित्परिदशान्मासानेकसंवत्सरंक्वचित् ॥ २४ ॥ क्वचिच्चचतुरोमासान्पं चषट्चपरान्क्वचित् ॥ अपरत्राधिकान्मासानध्यर्धमधिकंक्वचित् ॥ २५ ॥

लक्ष्मण और भार्या जानकीजीके सहित वन शोभासम्पन्न आश्रमोंमें प्रवेश करते हुए ॥ २२ ॥ जब वहां ऋषियोंनें कंद मूल फलोंसे उनकी पूजाकी तब रामचंद्रजी वहां सुखसे बसे, फिर बारी२ से रामचंद्रजी सबही ऋषियोंके आश्रमों पर गये और पूजा पाते हुए ॥ २३ ॥ वह महास्त्र वित् श्रीरामचंद्रजी पहले जिनके आश्रममें बसेथे, इस समय फिर उनके आश्रममें जाते हुए। वह किसी आश्रममें पूरे दश महीने, कहीं पूरे वर्ष भर ॥ २४ ॥ कहीं चार महीने कहीं पांच महीने कहीं छः महीने कहीं एक वर्षसेभी अधिक, कहीं पखवाडेसे अधिक कहीं तीन महीनें और

कहीं २ साढे तीन २ महीने ॥ २५ ॥ कहीं तीन मास, कहीं आठ महीनेतक रहे कहीं इस्से न्यूनाधिक रहे ऐसे तिन मुनियोंके आश्रमों पर श्रीरामचंद्रजी बसे ॥ २६ ॥ सबही जगह वह सुख सहित रहे; उन आश्रमोंमें वसते हुए ऋषि लोगोंकी अनुकूलतासे सीता सहित दश वर्ष श्रीरामचंद्रजीनें बितादिये ॥ २७ ॥ इस प्रकारसे धर्मके जाननेवाले श्रीरामचंद्रजी सीताके साथ सब पुण्य आश्रमोंमें घूम घाम कर फिर महर्षि सुतीक्ष्णजीके आश्रममें आये जहां मुनि गणोंनें उनकी बडी पूजाकी ॥ २८ ॥ वहां पर दुश्मनोंके मारनेवाले श्रीरामचंद्रजी कुछ एक दिन रहकर एक दिन विनय सहित उन महामुनि सुतीक्ष्णजीसे ॥ २९ ॥ श्रीरामचंद्रजी पूछते हुए, कि हे भगवन्! इस वनमें

त्रीन्मासानष्टमासांश्चराघवोन्यवसत्सुखम् ॥ तत्रसंवसतस्तस्यमुनीनामाश्रमेषुवै ॥ २६ ॥ रमतश्चानुकूल्येनययुः संवत्सरादश ॥ परिसृत्यचधर्मज्ञोराघवःसहसीतया ॥ २७ ॥ सुतीक्ष्णस्याश्रमपदंपुनरेवाजगामह ॥ सतमाश्रममागम्यमुनिभिःपरिपूजितः ॥ २८ ॥ तत्रापिन्यवसद्रामःकिंचित्कालमरिंदमः ॥ अथाश्रमस्थोविनयात्कदाचित्तंमहामुनिम् ॥ २९ ॥ उपासीनःसकाकुत्स्थःसुतीक्ष्णमिदमब्रवीत् ॥ अस्मिन्नरण्येभगवन्नगस्त्योमुनिसत्तमः ॥ ३० ॥ वसतीतिमयानित्यंकथाःकथयतांश्रुतम् ॥ नतुजानामितंदेशंवनस्यास्यमहत्तया ॥ ३१ ॥ कुत्राश्रमपदंरम्यंमहर्षेस्तस्यधीमतः ॥ प्रसादार्थंभगवतःसानुजःसहसीतया ॥ ३२ ॥ अगस्त्यमधिगच्छेयमभिवादयितुंमुनिम् ॥ मनोरथोमहानेषहृदिसंपरिवर्तते ॥ ३३ ॥ यदहंतंमुनिवरंशुश्रूषेयमपिस्वयम् ॥ इतिरामस्यसमुनिः श्रुत्वाधर्मात्मनोवचः ॥ ३४ ॥

मुनियोंमें श्रेष्ठ भगवान् अगस्त्यजी ॥ ३० ॥ वसतेहैं, यह बात हमनें बहुत ऋषि लोगोंसे सुनीहै परन्तु यह हमने अबतक नजान पाया कि उन महा तपस्वीजीके रहनेंका कौन वनहै? ॥ ३१ ॥ फिर यहभी नहीं जानते कि उन धीमान् महर्षिजीका उस वनमें रमणीक आश्रम कौनसाहै? उनके प्रसादके लिये लक्ष्मण और जानकीके सहित ॥ ३२ ॥ अगस्त्यजीके पास हम प्रणाम करनेको जाया चाहतेहैं। इस प्रकारका महा मनोरथ हमारे हृदयमें वर्त्त रहाहै ॥ ३३ ॥ वहां पर जाकर हम स्वयं मुनिराजजीकी सेवा करेंगे। इस प्रकार सुतीक्ष्णजीनें

धर्मात्मा रामचंद्रजीकी वाणी सुन ॥ ३४ ॥ दशरथजीके प्यारे दुलारे पुत्र श्रीरामचंद्रजीसे बोले कि हम लक्ष्मण सहित आपसे यह बतलानेको होथे कि ॥ ३५ ॥ आप लक्ष्मण व जनककुमारी सीताजीके सहित अगस्त्यजीके निकट जाइये, सो बडे भाग्यकी बातहै कि आपनेंही अपनें मुखसे यह वार्त्ता पूछी ॥ ३६ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! महर्षि अगस्त्यजी जिस वनमें रहतेहैं उसको हम बतातेहैं,—हे तात ! इस आश्रमसे दक्षिण दिशाकी ओर सोलह कोश मार्ग चले जाइये, तब अगस्त्यजीके भ्राताका आश्रम आपकी दृष्टि आवैगा ॥३७॥ इस आश्रमकी भूमि बडी व समा नहै यहां पिप्पलीके वृक्षोंका वन शोभित होरहाहै और नाना भांतिके पक्षी शब्द करतेहैं। ऐसे परम मनोहर और विविध भांतिके फल पुष्प

सुतीक्ष्णःप्रत्युवाचेदंप्रीतोदशरथात्मजम् ॥ अहमप्येतदेवत्वांवक्तुकामःसलक्ष्मणम् ॥ ३५ ॥ अगस्त्यमभिगच्छे
तिसीतयासहराघव ॥ दिष्ट्यात्विदानींमर्थेस्मिन्स्वयमेवब्रवीषिमाम् ॥ ३६ ॥ अयमाख्यामितेरामयत्रागस्त्यो
महामुनिः ॥ योजनान्याश्रमात्तातयाहिचत्वारिवैततः ॥ दक्षिणेनमहाञ्छ्रीमानगस्त्यभ्रातुराश्रमः ॥ ३७ ॥
स्थलीप्रायवनोद्देशेपिप्पलीवनशोभिते ॥ बहुपुष्पफलेरम्येनानाविहगनादिते ॥ ३८ ॥ पद्मिन्योविविधास्तत्रप्र
सन्नसलिलाशयाः ॥ हंसकारंडवाकीर्णाश्चक्रवाकोपशोभिताः ॥ ३९ ॥ तत्रैकांरजनींव्युष्यप्रभातेरामगम्यताम् ॥
दक्षिणांदिशमास्थायवनखंडस्यपार्श्वतः ॥ ४० ॥ तत्रागस्त्याश्रमपदंगत्वायोजनमंतरम् ॥ रमणीयेवनोद्देशे
बहुपादपशोभिते ॥ ४१ ॥ रंस्यतेतत्रवैदेहीलक्ष्मणश्चत्वयासह ॥ सहिरम्योवनोद्देशोबहुपादपसंयुतः ॥ ४२ ॥

युक्त वनके देशमें यह आश्रम प्रतिष्ठितहै ॥ ३८ ॥ वहां पर स्वच्छ वारिसे भरे बहुत सारे सरोवरहैं, हंस, कराकुल, चकवा, चकवी और सारस इत्यादि जलमें खेल किया करतेहैं ॥ ३९ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! उस आश्रममें आप एक रात्रि वास करके प्रभात होतेही उस आश्रमके निकटस्थ वनको करवटमें छोड दक्षिणकी ओरको गमन कीजिये ॥ ४० ॥ बस चार कोश मार्ग चलतेही विविध भांतिके वृक्षोंसे घिरा हुआ रमणीय वनमें हर्षित अगस्त्यजीके रहनेका आश्रम देखोगे ॥४१॥ सीता और लक्ष्मणजी तुम्हारे साथ वहां वास करके परम प्रसन्न होंगे,

क्योंकि वह अनेक प्रकारके वृक्षोंसे युक्त वन अतिरमणीयहै ॥ ४२ ॥ हे महामते । यदि महर्षि अगस्त्यजीके दर्शन करनेका अभिलाषहै तो आजही जानेका विचार कीजिये ॥ ४३ ॥ श्रीरामचंद्रजी सुतीक्ष्णमुनिके ऐसे वचन सुन उनको प्रणाम करके भ्राता लक्ष्मण और जानकीजीके सहित अगस्त्यजीके देखनेको प्रस्थान करतेहुए ॥ ४४ ॥ मार्गमें जानेकेसमय बहुत सारे विचित्र वन, बादलोंकी समान ऊंचे २ पहाड, नदी सरोवर सबही श्रीरामचंद्रजी देखते जातेथे ॥ ४५ ॥ इस प्रकार श्रीरामचंद्रजी सुतीक्ष्णजीके बताये हुए मार्गमें यथासुखसे गमन करके परम

यदिबुद्धिःकृताद्रष्टुमगस्त्यंतंमहामुनिम् ॥ अद्यैवगमनेबुद्धिंरोचयस्वमहामते ॥ ४३ ॥ इतिरामोमुनेश्श्रुत्वासहभ्रात्राभिवाद्यच ॥ प्रतस्थेगस्त्यमुद्दिश्यसानुजःसहसीतया ॥ ४४ ॥ पश्यन्वनानिचित्राणिपर्वतांश्चाभ्रसन्निभान् ॥ सरांसिसरितश्चैवपथिमार्गवशानुगान् ॥ ४५ ॥ सुतीक्ष्णेनोपदिष्टेनगत्वातेनपथासुखम् ॥ इदंपरमसंहृष्टोवाक्यंलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ ४६ ॥ एतदेवाश्रमपदंनूनंतस्यमहात्मनः ॥ अगस्त्यस्यमुनेर्भ्रातुर्दृश्यतेपुण्यकर्मणः ॥ ४७ ॥ यथाहीमेवनस्यास्यज्ञाताःपथिसहस्रशः ॥ सन्नताःफलभारेणपुष्पभारेणचद्रुमाः ॥ ४८ ॥ पिप्पलीनांचपक्वानांवनादस्माद्उपागतः ॥ गंधोयंपवनोत्क्षिप्तःसहसाकटुकोदयः ॥ ४९ ॥ तत्रतत्रचदृश्यंतेसंक्षिप्ताःकाष्ठसंचयाः ॥ लूनाश्चपरिदृश्यंतेदर्भावैदूर्यवर्चसः ॥ ५० ॥ एतच्चवनमध्यस्थंकृष्णाभ्रशिखरोपमम् ॥ पावकस्याश्रमस्थस्यधूमाग्रंसंप्रदृश्यते ॥ ५१ ॥

प्रसन्न और हर्षितहो लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ४६ ॥ कि निश्चयही पुण्य कर्म करनेवाले महात्मा अगस्त्यऋषिके भ्राताका यह आश्रम दिखलाई देताहै ॥ ४७ ॥ क्योंकि जिस प्रकारसे सुनाथा वैसेही मार्गमें इस वनमेंको आते २ फल और फूलोंके बोझसे झुकेहुए सैकडों हजारों पेड हमनें देखेहैं ॥ ४८ ॥ यह देखो पकेहुए पिप्पलोंके फलोंकी कडवी गन्ध पवन वेगसे वहीहुई चली आतीहै ॥४९॥ स्थान२में इकट्ठे किये हुए काठके बोझ और छिन्न वैदूर्यमणिके वर्णकी समान हरे कुशभी यहां देख पडतेहैं ॥ ५० ॥ आश्रममें स्थित हुई अग्निकी यह वही धूमशिखा,

कृष्णमेघयुक्त पर्वतके शिखरकी समान वनके बीच दृष्टि आतीहै ॥५१॥ और यह ब्राह्मण लोग स्वच्छ तीर्थके जलमें स्नान करके अपने लाये हुये फूलोंके समूहसे इष्ट देवताओंकी पूजा कर रहेहैं ॥५२॥ हे सौम्य! महर्षि सुतीक्ष्णजीके मुखसे जैसा श्रवण कियाथा उसीके अनुसार यहांपर सब कुछ देखकर हमको निश्चयही जान पडताहै कि यही अगस्त्यजीके भ्राताका आश्रमहै॥५३॥जिनमहर्षि अगस्त्यजीनें सब लोकोंका हित करनेकी कामनासे बल सहित साक्षात् मृत्युकी समान दैत्यको मारकर इस दक्षिण दिशाकोभी सबके बसने योग्य कियाहै ॥५४॥ ऐसा प्रसिद्धहै कि पहले एक समय महा असुर ब्राह्मणोंका घात करनेवाले वातापि और इल्वल नामक दो क्रूर कर्म करनेवाले भाई इकट्ठे इस वनमें वास करतेथे ॥५५॥ उन

विविक्तेषुचतीर्थेषुकृतस्नानाद्विजातयः ॥ पुण्योपहारंकुर्वंतिकुसुमैःस्वयमर्जितैः ॥५२ ॥ ततःसुतीक्ष्णवचनंयथासौम्यमयाश्रुतम् ॥ अगस्त्यस्याश्रमोभ्रातुर्नूनमेषभविष्यति ॥ ५३ ॥ निगृह्यतरसामृत्युंलोकानांहितकाम्यया ॥ यस्यभ्रात्राकृतेयंदिक्शरण्यापुण्यकर्मणा ॥ ५४ ॥ इहैकदाकिलक्रूरोवातापिरपिचेल्वलः ॥ भ्रातरौसहितावास्तांब्राह्मणघ्नौमहासुरौ ॥५५॥ धारयन्ब्राह्मणंरूपमिल्वलःसंस्कृतंवदन् ॥ आमंत्रयतिविप्रान्सश्राद्धमुद्दिश्यनिर्घृणः ॥ ५६ ॥ भ्रातरंसंस्कृतंकृत्वाततस्तंमेषरूपिणम् ॥ तान्द्विजान्भोजयामासश्राद्धदृष्टेनकर्मणा ॥ ५७॥ ततोभुक्तवतांतेषांविप्राणामिल्वलोऽब्रवीत् ॥ वातापेनिष्क्रमस्वेतिस्वरेणमहतावदन् ॥ ५८ ॥ ततोभ्रातुर्वचःश्रुत्वावातापिर्मेषवन्नदन् ॥ भित्त्वाभित्त्वाशरीराणिब्राह्मणानांविनिष्पतत् ॥ ५९ ॥ ब्राह्मणानांसहस्राणितैरेवंकामरूपिभिः ॥ विनाशितानिसंहत्यनित्यशःपिशिताशनैः ॥ ६० ॥

दोनोंमेंसे निर्दयी इल्वल जब श्राद्धका समय आवे तौ ब्राह्मणका वेष धर संस्कृत उच्चारण करके ब्राह्मणोंको निमंत्रण करै ॥५६॥ जब सब ब्राह्मण आजावें तब अपने भ्राता मेषरूपी वातापिको श्राद्धके कहे अनुष्ठानके अनुसार उत्तम रूपसे रांधकर सब ब्राह्मणोंको भोजन करादेवे ॥ ५७ ॥ तिसके पीछे जब ब्राह्मण भोजन कर चुकें इल्वल अति ऊंचे स्वरसे (वातापि ! निकल आओ) यह वचन कहता ॥ ५८॥ वातापि भ्राताका शब्द सुनकर मेंढेकी समान शब्द करता हुआ ब्राह्मणोंके शरीर फार २ निकल आता ॥ ५९ ॥ यह इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले मांस

भोजी असुर इस प्रकारसे प्रतिदिन परस्पर मिलकर सहस्र २ ब्राह्मणोंकी हत्या करते ॥ ६० ॥ यह देखकर महर्षि अगस्त्यजीनें देवताओंकी प्रार्थनाके वश होकर श्राद्धमें उस महा असुर वातापिको भक्षण करलिया, ऐसी बात प्रसिद्धहै ॥ ६१ ॥ जब श्राद्ध पूरा होगया इस प्रकारसे कहके ब्राह्मणोंके हाथ धुलानेंके लिये जल देकर " वातापि ! बाहर निकल आओ " यह कहकर इल्वल भ्राताको पुकारने लगा ॥६२॥ जब इल्वलनें बार २ अपने भाईको पुकारा तब यह देखकर मुनियोंमें श्रेष्ठ अगस्त्यजीनें हँसकर विप्रघाती इल्वलसे कहा ॥६३॥ हमनें तुम्हारे मेषरूपी भ्राता वातापिको पचा डाला, वह यमराजके गृहको चला गया सो अब उसको बाहर होनेकी सामर्थ्य कहां ? ॥ ६४ ॥ निशाचर इल्वल भाईके मरनेकी वार्त्ता

अगस्त्येनतदादेवैःप्रार्थितेनमहर्षिणा ॥ अनुभूयकिलश्राद्धेभक्षितःसमहासुरः ॥ ६१ ॥ ततःसंपन्नमित्युक्त्वादत्त्वा हस्तेवनेजनम् ॥ भ्रातरंनिष्क्रमस्वेतिइल्वलःसमभाषत ॥ ६२ ॥ सतदाभाषमाणंतुभ्रातरंविप्रघातिनम् ॥ अब्रवीत्प्रहसन्धीमानगस्त्योमुनिसत्तमः ॥ ६३ ॥ कुतोनिष्क्रमितुंशक्तिर्मयाजीर्णस्यरक्षसः ॥ भ्रातुस्तुमेषरूपस्यगतस्य यमसादनम् ॥ ६४ ॥ अथतस्यवचःश्रुत्वाभ्रातुर्निधनसंश्रितम् ॥ प्रधर्षयितुमारेभेमुनिंक्रोधान्निशाचरः ॥ ६५ ॥ सोऽभ्यद्रवद्द्विजेंद्रंतंमुनिनादीप्ततेजसा ॥ चक्षुषाऽनलकल्पेननिर्दग्धोनिधनंगतः ॥ ६६ ॥ तस्यायमाश्रमोभ्रातुस्तटाकवनशोभितः ॥ विप्रानुकंपयायेनकर्मेदंदुष्करंकृतम् ॥ ६७ ॥ एवंकथयमानस्यतस्यसौमित्रिणासह ॥ रामस्यास्तंगतःसूर्यःसंध्याकालोऽभ्यवर्तत ॥ ६८ ॥

सुन करके क्रोध युक्तहो महर्षि अगस्त्यजीके मारनेको तैयार हुआ॥६५॥ जैसेही वह मारनेको दौडा कि महर्षिजीनें प्रज्वलित अग्निकी समान दृष्टिसे एक वार देख दिया, बस देखनें मात्रसेही, वह भस्म होगया और प्राण त्यागन करदिये ॥६६॥ जिन्होंने ब्राह्मणगणोंके ऊपर दयाके वश होकर इस प्रकारका औरके न करने योग्य अनुष्ठान कियाथा उन अगस्त्यजीके महात्मा भाईकाही यह तडागमय शोभित आश्रमहै ॥ ६७ ॥ श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके साथ यह वार्त्ता कहतेही रहेकि इतनेमें भगवान् भास्कर अस्ताचलचूडावलम्बी हुए और संध्या होआई ॥ ६८ ॥

तब श्रीरामचंद्रजीनें भ्राता लक्ष्मणजीके सहित विधिवत् सायंकालकी संध्या समाप्त करके अगस्त्यजीके भाईके आश्रममें प्रवेश किया और अगस्त्यजीके भाईको प्रणाम किया ॥ ६९ ॥ और अगस्त्यजीके भाईनेंभी उनका भली भांति शिष्टाचार किया और कंद मूल फल खानेको दिये सो भोजनकर श्रीरामचंद्रजी एक रात्रि वहां पर बसे ॥७०॥ फिर जब रात बीत गयी और सूर्य नारायण निकल आये तब श्रीरामचंद्रजीने विदाकी प्रार्थना करते ऋषिसे निवेदन करते हुए॥७१॥कि हे भगवन् ! हम आपको प्रणाम करतेहैं हमने यहां बडे सुखसे यह रात्रि बिताई अब इस समय विदा दीजिये अब आपके बडे भाई गुरुदेव अगस्त्यजीके दर्शन करनेको हमारी अभिलाषा हुईहै ॥ ७२ ॥ यह कहकर ऋषिकी आज्ञा ले उनके

उपास्यपश्चिमांसंध्यांसहभ्रात्रायथाविधि ॥ प्रविवेशाश्रमपदंतमृषिंचाभ्यवादयत् ॥ ६९ ॥ सम्यक्प्रतिगृहीतस्तु मुनिनातेनराघवः ॥ न्यवसत्तांनिशामेकांप्राश्यमूलफलानिच ॥ ७० ॥ तस्यांरात्र्यांव्यतीतायामुदितेरविमंडले ॥ भ्रातरंतमगस्त्यस्यआमंत्रयतराघवः ॥ ७१ ॥ अभिवादयेत्वांभगवन्सुखमस्म्युषितोनिशाम् ॥ आमंत्रयेत्वांगच्छामिगुरुंतेद्रष्टुमग्रजम् ॥ ७२ ॥ गम्यतामितितेनोक्तोजगामरघुनंदनः ॥ यथोद्दिष्टेनमार्गेणवनंतच्चावलोकयन् ॥ ७३ ॥ नीवारान्पनसान्सालान्वंजुलांस्तिनिशांस्तथा ॥ चिरिबिल्वान्मधूकांश्चबिल्वानथचतिंदुकान् ॥७४॥ पुष्पितान्पुष्पिताग्राभिर्लताभिरुपशोभितान् ॥ ददर्शरामःशतशस्तत्रकांतारपादपान् ॥ ७५ ॥ हस्तिहस्तैर्विमृदितान्वानरैरुपशोभितान् ॥ मत्तैःशकुनिसंघैश्चशतशःप्रतिनादितान् ॥ ७६ ॥ ततोऽब्रवीत्समीपस्थंरामोराजीवलोचनः ॥ पृष्ठतोनुगतंवीरंलक्ष्मणंलक्ष्मिवर्धनम् ॥ ७७ ॥

आश्रमका वन देखते भालते सुतीक्ष्ण मुनिके बताए हुए आश्रमको जाते हुए ॥ ७३॥ जानेके समय वनके मध्यमें शत २ नीवार, पनस, शाल, वञ्जुल, तिनिश, चिरिबिल्व (नक्तमाल) मधूक, वेल॥७४॥ तिन्दुक इत्यादि वृक्ष परस्पर फूली फली लताओंसे शोभित सैकडों हजारों वृक्ष श्रीरामचंद्रजीनें देखे ॥ ७५ ॥ अनेक प्रकारके पक्षीगण मतवाले होकर उन वृक्षोंपर गुंजार कर रहेथे कुसुमित शिखर लता और वानरगणोंके निकट रहनेंसे वहां अतिशय शोभा होरही,और हाथियोंकी शूंडके आघातसे उन वृक्षोंकी टहनियां टूट फूट रहींथीं ॥ ७६ ॥ यह देखकर राजीवलोचन

श्रीरामचंद्रजी अपने पीछे आते हुए निकटवर्ती लक्ष्मीके बढानेवाले लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ७७ ॥ इन सब वृक्षोंके पत्ते जैसे चिकने दिखाई देतेहैं और मृगगण जैसे शान्तचित्त दृष्टि आतेहैं सो इन सब बातोंसे ज्ञात होताहै कि उन विशुद्धचित्त महर्षि अगस्त्यजीका आश्रम अब अधिक दूर नहींहै ॥ ७८ ॥ जिन्होंनें अनेक कर्म द्वारा लोकमें प्रसिद्ध अगस्त्य नाम पायाहै, उनही महर्षिजीका थके हुए लोगोंके श्रमका हरनेवाला यह आश्रम दिखाई देताहै ॥ ७९ ॥ यज्ञका धुवाँ वनमें छाय रहाहै वृक्षोंकी डालियोंपर चीर वस्त्र टँग रहेहैं; वैरको छोडे हुए सब मृग इधर उधर घूमरहेहैं। अनेक प्रकारके पक्षी मधुर २ नाद कर रहेहैं ॥ ८० ॥ जिन्होंने मनुष्योंका हित करनेकी कामनासे बल सहित जम ऐसे

स्निग्धपत्रायथावृक्षायथाक्षांतामृगद्विजाः ॥ आश्रमोनातिदूरस्थोमहर्षेर्भावितात्मनः ॥७८॥ अगस्त्यइतिविख्यातोलोकेस्वेनैवकर्मणा ॥ आश्रमोदृश्यतेतस्यपरिश्रांतश्रमापहः ॥ ७९ ॥ प्राज्यधूमाकुलवनश्चीरमालापरिष्कृतः ॥ प्रशांतमृगयूथश्चनानाशकुनिनादितः ॥ ८० ॥ निगृह्यतरसामृत्युंलोकानांहितकाम्यया ॥ दक्षिणादिक्कृतायेनशरण्यापुण्यकर्मणा ॥ ८१ ॥ तस्येदमाश्रमपदंप्रभावाद्यस्यराक्षसैः ॥ दिगियंदक्षिणात्रासाद्दृश्यतेनोपभुज्यते ॥ ८२ ॥ यदाप्रभृतिचाक्रांतादिगियंपुण्यकर्मणा ॥ तदाप्रभृतिनिर्वैराःप्रशांतारजनीचराः ॥ ८३ ॥ नाम्नाचेयंभगवतोदक्षिणादिक्प्रदक्षिणा ॥ प्रथितात्रिषुलोकेषुदुर्धर्षाक्रूरकर्मभिः ॥ ८४ ॥ मार्गंनिरोद्धुंसततंभास्करस्याचलोत्तमः ॥ संदेशंपालयंस्तस्यविंध्यशैलोनवर्धते ॥ ८५ ॥

असुरोंको जीतकर दक्षिण दिशाको सबके वास योग्य कर दियाहै ॥८१॥ और जिनके प्रभावसे राक्षस लोग त्रासित होकर इस दक्षिण दिशाके ओर केवल देखते और आते तो हैं; परन्तु किसीको पीडा नहीं दे सकते; उन्हीं पुण्य कर्म करनेवाले महर्षि अगस्त्यजीका यह आश्रमहै ॥ ८२ ॥ उन पवित्र वेत्ता अगस्त्यजीनें जबसे इस आश्रममें आकर वास कियाहै तबसे निशाचर लोग वैर छोडकर शान्तचित्तहोगये हैं ॥ ८३ ॥ भगवान् अगस्त्यजीकी यह दक्षिण दिशा आगस्त्यादिक् नामसे त्रिलोकीमें प्रसिद्ध होगईहै और उनके प्रभावसे क्रूर कर्म करनेवाले निशाचरगणोंके दबजानेंसे यह दिशा मुनिलोगोंके वास करनें योग्य होगईहै ॥ ८४ ॥ पर्वतोंमें श्रेष्ठ विन्ध्याचल उनकी आज्ञाका

प्रति पालनही करता हुआ, सूर्यका मार्ग रोकनेके लिये और निरन्तर नहीं बढता ❀ ॥ ८५॥ लोकोंके बीचमें विख्यात कर्म करनेवाले दीर्घायु महर्षि अगस्त्यजीका विनय युक्त मृगगण सेवित यही आश्रमहै॥८६॥जबकि हम सर्व लोकोंमें पूजित सदा साधु लोकोंका हित चाहनेंवाले साधु चरित्र इन महर्षि अगस्त्यजीके आश्रममें जांयगे, तब वह अवश्यही हमारा मंगल विधान करेंगे ॥ ८७ ॥ हे शुभदर्शन ! हम इसी आश्रममें रहकर महर्षि अगस्त्यजीकी आराधना करेंगे और वनवासका शेष समय यहीं बिता देंगे ॥ ८८॥ इस आश्रममें देवता गन्धर्व, तपस्या करके सिद्ध हुए महर्षि

अयंदीर्घायुषस्तस्यलोकेविश्रुतकर्मणः ॥ अगस्त्यस्याश्रमःश्रीमान्विनीतमृगसेवितः ॥ ८६ ॥ एषलोकार्चितःसा
धुर्हितेनित्यंरतःसताम् ॥ अस्मानधिगतानेषश्रेयसायोजयिष्यति ॥ ८७ ॥ आराधयिष्याम्यत्राहमगस्त्यंतंमहा
मुनिम् ॥ शेषंचवनवासस्यसौम्यवत्स्याम्यहंप्रभो ॥ ८८ ॥ अत्रदेवाःसगंधर्वाःसिद्धाश्चपरमर्षयः ॥ अगस्त्यंनि
यताहाराःसततंपर्युपासते ॥ ८९ ॥ नात्रजीवेन्मृषावादीक्रूरोवायदिवाशठः ॥ नृशंसःपापवृत्तोवामुनिरेषतथावि
धः ॥ ९० ॥ अत्रदेवाश्चयक्षाश्चनागाश्चपतगैःसह ॥ वसंतिनियताहाराधर्ममाराधयिष्णवः ॥ ९१ ॥ अत्रसिद्धामहा
त्मानोविमानैःसूर्यसन्निभैः ॥ त्यक्त्वादेहान्नवैर्देहैःस्वर्यांताःपरमर्षयः ॥ ९२ ॥

लोग निराहार रहकर सदाही अगस्त्यजीकी भलीभांति सेवा किया करते हैं॥ ८९ ॥ महर्षि अगस्त्यजीका प्रभाव ऐसाहै कि इनके आश्रममें झूंठ बोलनेवाला, शठ दुष्ट निर्लज्ज पापपरायण पुरुष किसी भांति जीता हुआ नहीं रह सकता ॥ ९० ॥ इस आश्रममें देव, यक्ष, नाग और पक्षी गण धर्मकी आराधना करनेंके लिये नियताहारी होकर वास करते हैं ॥ ९१ ॥ महात्मा महर्षि लोग इस आश्रममें सिद्धहो देह त्याग नवीन

❀ एक समय अगस्त्यजीका शिष्य विन्ध्याचल पर्वत सूर्यका मार्ग रोकनेके लिये अधिकतासे बढने लगा यह देख देवता बहुत भयभीतहो अगस्त्यजीकी शरण जाकर कहने लगे कि आप अपने शिष्यको इस दुर्घट कार्यके करनेसे निवारण कीजिये तब अगस्त्यजी विन्ध्याचलके निकट गये पर्वतने इन्हैं देखकर प्रणाम किया और चरण पकडे २ पूछा गुरु देव ! आज्ञा कीजिये कैसे आगमन हुआ अगस्त्यजी बोले जबतक हम लौटकर न आवें तवतक तुम योंही पडे रहो विन्ध्यने तथास्तु कहा तबसे अगस्त्यजी दक्षिणदिशामें आकर रहनेलगे और फिर उधर न गये विन्ध्याचल गुरु आज्ञासे आजतक लेट रहाहै ॥

देह धारण कर सूर्य तुल्य देदीप्यमान विमान में सवार हो स्वर्गको गयेहैं ॥ १२ ॥ जो समस्त पवित्र कर्म करनेंवाले प्राणीगण इस आश्रममें रहतेहैं वह देवताओंकी उपासना करके देवताओंके प्रसादसे देवत्व, यक्षत्व, और विविध राज्योंको प्राप्त होतेहैं ॥ १३ ॥ हे सुमित्राकुमार! हम इस समय उसही आश्रममें आय पहुँचेहैं। तुम पहले प्रवेश करके उन मुनिसे यह निवेदन करदोकि हम सीताके सहित उनके आश्रममें आयेहैं ॥ १४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे एकादशःसर्गः ॥ ११ ॥ ऐसा जब रामचंद्रजीनें कहा, तब उनके छोटे भइया लक्ष्मणजी आश्रममें प्रवेश करके अगस्त्यजीके शिष्यके समीप पहुँचकर कहने

यक्षत्वममरत्वंचराज्यानिविविधानिच ॥ अत्रदेवाःप्रयच्छंतिभूतैराराधिताःशुभैः ॥ १३ ॥ आगताःस्माश्रमपदंसौमित्रेप्रविशाग्रतः ॥ निवेदयेहमांप्राप्तमृषयेसहसीतया ॥ १४ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीये आरण्यकांडेएकादशःसर्गः ॥ ११ ॥ ॥ ७ ॥ सप्रविश्याश्रमपदंलक्ष्मणोराघवानुजः ॥ अगस्त्यशिष्यमासाद्यवाक्यमेतदुवाचह ॥१॥ राजादशरथोनामज्येष्ठस्तस्यसुतोबली॥रामःप्राप्तोमुनिंद्रष्टुंभार्ययासहसीतया॥२॥ लक्ष्मणोनामतस्याहंभ्रातात्ववरजोहितः ॥ अनुकूलश्चभक्तश्चयदितेश्रोत्रमागतः ॥ ३ ॥ तेवयंवनमत्युग्रंप्रविष्टाःपितृशासनात् ॥ द्रष्टुमिच्छामहेसर्वेभगवंतंनिवेद्यताम् ॥ ४ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वालक्ष्मणस्यतपोधनः ॥ तथेत्युक्त्वाग्निशरणंप्रविवेशनिवेदितुम् ॥ ५ ॥

लगे ॥ १ ॥ कि राजा दशरथजीके बडे पुत्र महाबलवान श्रीरामचन्द्रजी अपनी स्त्री सीताजीके साथ महर्षिजीके चरणोंका दर्शन करनेको आयेहैं ॥ २ ॥ और हमारा नाम लक्ष्मणहै, हम उनके हितकारी परम भक्त और उनके अनुकूल चलनेवाले उनके छोटे भाई हैं सो कदाचित् आपने हमारी वार्त्ता सुनीही होगी ॥ ३ ॥ हमने पिताजीकी आज्ञासे अतिभयंकर वनमें प्रवेश कियाहै और अब भगवान् अगस्त्यमुनिके दर्शन करनेकी हमको अभिलाष हुईहै, सो आप उनसे यह वृत्तान्त निवेदन कर दीजिये ॥४॥ वह तपोधन लक्ष्मणजीके यह वचन श्रवण कर उनसे आपका आना निवेदन करता हूं यह कह कर इस वार्त्ताको महर्षि अगस्त्यजीसे कहनेके निमित्त अग्निगृहमें प्रवेश करता हुआ ॥ ५ ॥

और वहां पहुँचकर हाथ जोड तपोवलसे प्रदीप्त मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजीसे रामचन्द्रजीके आनेका समाचार कहा ॥ ६ ॥ अगस्त्यजीका शिष्य लक्ष्मणजीके वचनके अनुसार कहने लगा कि अयोध्याजीके राजा दशरथ कुमार राम और लक्ष्मण ॥ ७ ॥ आपके आश्रममें अपनी भार्या सहित आयेहैं, वह शत्रुतापन आपकी सेवा करनें व देखनेके लिये यहां आयेहैं ॥ ८ ॥ सो इसमें जैसा कर्त्तव्यहो वही आज्ञा आप कीजिये, शिष्यके मुखसे रामचन्द्र व लक्ष्मणजीका आगमन सुन ॥ ९ ॥ और महा भाग्यवती सीताजीकीभी आगमनकी वार्त्ता सुन करके महर्षि अगस्त्यजी बोले, कि बडे भाग्यकी बातहै बहुत दिनोंपर श्रीरामचंद्रजी हमारे दर्शन करनेको यहां आयेहैं ॥ १० ॥ और मैंनेभी मनसे इनके समा

सप्रविश्यमुनिश्रेष्ठंतपसादुष्प्रधर्षणम् ॥ कृतांजलिरुवाचेदंरामागमनमंजसा ॥ ६ ॥ यथोक्तंलक्ष्मणेनैवशिष्योगस्त्यस्यसंमतः ॥ पुत्रौदशरथस्येमौरामोलक्ष्मणएवच ॥ ७ ॥ प्रविष्टावाश्रमपदंसीतयासहभार्यया ॥ द्रष्टुंभवंतमायातौशुश्रूषार्थमरिंदमौ॥८॥यदत्रानंतरंतत्त्वमाज्ञापयितुमर्हसि ॥ ततःशिष्यादुपश्रुत्यप्राप्तंरामंसलक्ष्मणं ॥९॥ वैदेहींचमहाभागामिदंवचनमब्रवीत ॥ दिष्ट्यारामश्चिरस्याद्यद्रष्टुंमांसमुपागतः ॥ १० ॥ मनसाकांक्षितंह्यस्यमयाप्यागमनंप्रति ॥ गम्यतांसत्कृतोरामःसभार्यःसहलक्ष्मणः ॥ ११ ॥ प्रवेश्यतांसमीपंमेकिमयंनप्रवेशितः ॥ एवमुक्तस्तुमुनिनाधर्मज्ञेनमहात्मना॥१२॥अभिवाद्याब्रवीच्छिष्यस्तथेतिनियतांजलिः ॥तदानिष्क्रम्यसंभ्रांतःशिष्योलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ १३॥ कोऽसौरामोमुनिंद्रष्टुमेतुप्रविशतुस्वयम् ॥ ततोगत्वाश्रमपदंशिष्येणसहलक्ष्मणः ॥ १४ ॥

गमकी आकांक्षा कीथी तिस्से आगे जाकर आदर मान सहित श्रीरामचन्द्रजीको भ्राता और स्त्री सहित ॥ ११ ॥ यहां लिवालाओ और अब तक तुम किस कारणसे उनको यहां नहीं लिवालाये, जब महात्मा धर्मज्ञ अगस्त्यजीनें इस प्रकार कहा ॥१२॥तो शिष्य कर जोडकर जो आज्ञा अभी लिवाये लाताहूं कह और प्रणाम करके तभी वहांसे बाहर आ आदर सहित लक्ष्मणजीसे बोला॥१३॥आपमें राम कौनसेहैं ? वह भगवान् अगस्त्यजीके दर्शन करनेके लिये आवें और स्वयं प्रवेश करें अनन्तर लक्ष्मण उस शिष्यके सहित वहां गये जहां श्रीरामचन्द्रजीथे ॥ १४ ॥

और उस शिष्यको जनककुमारी सीता व श्रीरामचन्द्रजीको दिखादिया, उस शिष्यने बडी नरमाईसे अगस्त्यजीके वचन श्रीरामचंद्रजीसे जाय कहे ॥ १५ ॥ यथा नियम भलीभांति आदर सत्कार करके श्रीरामचंद्रजीको लक्ष्मण व सीताजीके सहित आश्रममें प्रवेश कराया ॥ १६ ॥ उस आश्रममें प्रवेश करनेके समय श्रीरामचंद्रजीनें देखाकि परम शान्तस्वभाव हरिण चारों ओर बैठेहैं, ब्रह्मा, शिव ॥१७॥ विष्णु, इन्द्र, सूर्य, चंद्र, भग, कुबेर ॥ १८ ॥ धाता, विधाता, पवन, पाशहस्त महात्मा वरुण ॥१९॥ गायत्री, वसु, नागराज वासुकी

दर्शयामासकाकुत्स्थंसीतांचजनकात्मजाम्॥ तंशिष्यःप्रश्रितंवाक्यमगस्त्यवचनंब्रुवन् ॥ १५॥ प्रावेशयद्यथान्यायंसत्कारार्हंसुसत्कृतम्॥ प्रविवेशततोरामःसीतयासहलक्ष्मणः ॥ १६ ॥ प्रशांतहरिणाकीर्णमाश्रमंह्यवलोकयन् ॥ सतत्रब्रह्मणःस्थानमग्नेःस्थानंतथैवच॥१७॥विष्णोःस्थानंमहेंद्रस्यस्थानंचैवविवस्वतः॥ सोमस्थानंभगस्थानंस्थानंकौबेरमेवच॥ १८॥ धातुर्विधातुःस्थानंचवायोःस्थानंतथैवच ॥ स्थानंचपाशहस्तस्यवरुणस्यमहात्मनः ॥ १९ ॥ स्थानंतथैवगायत्र्यावसूनांस्थानमेवच ॥ स्थानंचनागराजस्यगरुडस्थानमेवच॥ २०॥ कार्तिकेयस्यचस्थानंधर्मस्थानंचपश्यति॥ ततःशिष्यैःपरिवृतोमुनिरप्यभिनिष्पतत्॥ २१॥ तंददर्शाग्रतोरामोमुनीनांदीप्ततेजसाम् ॥ अब्रवीद्वचनंवीरोलक्ष्मणंलक्ष्मिवर्धनम् ॥ २२ ॥ बहिर्लक्ष्मणनिष्क्रामत्यगस्त्योभगवानृषिः ॥ औदार्येणावगच्छामिनिधानंतपसामिदम्॥ २३ ॥ एवमुक्त्वामहाबाहुरगस्त्यंसूर्यवर्चसम् ॥ जग्राहापततस्तस्यपादौचरघुनंदनः ॥ २४॥

आदि सर्प, गरुड ॥ २० ॥ कार्त्तिकेय और धर्म, इन सबकी पूजाके निमित्त अलग २ स्थान बनें हुए एक २ करके श्रीरामचंद्रजीनें देखे मुनिअगस्त्यजीभी अपने शिष्योंके संग होमशालामेंसे निकले ॥ २१ ॥ वीर्यवान् श्रीरामचंद्रजी सब तपस्वियोंमें बडे तेजवान् अगस्त्यजीको सामनेसे आते देखकर लक्षण युक्त लक्ष्मणजीसे बोले ॥ २२ ॥ हे लक्ष्मण ! भगवान् अगस्त्यजी ऋषि कुटीसे बाहर निकलतेहैं इस समय हम उदारता युक्त होकर उन तप प्रकाशित ऋषिवरके निकट गमन करेंगे ॥ २३ ॥ ऐसा कहकर महाबाहु श्रीरामचंद्रजी कुटीसे बाहर आये

हुए सूर्यकी समान तेजवान महर्षि अगस्त्यजीके चरण छूकर प्रणाम करते हुए ॥ २४ ॥ धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मणजीके
सहित ऋषिजीके चरणोंकी वंदना करके करजोड उनके आगे खडे रहे ॥ २५ ॥ यह देखकर महर्षि अगस्त्यजीनें आदर सहित रामचन्द्र
जीको ग्रहण किया चरण पखारनेके लिये जल मंगवा दिया, आसन देकर बैठनेकी अनुमतिदी फिर कुशल प्रश्न किया ॥ २६ ॥ तिसके
पीछे अगस्त्यजीनें अग्निमें आहुति देकर उन आये हुए पाहुनोंको अर्घ्य दिया, और वानप्रस्थ धर्मके अनुसार आहार करनेकी सामग्रीदी ॥ २७ ॥
अनन्तर धर्मके जाननेवाले महर्षि अगस्त्यजी प्रथम स्वयं बैठ पीछे कर जोडकर बैठे हुए धर्मपंडित श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ २८ ॥ हे रामच

अभिवाद्यतुधर्मात्मातस्थौरामःकृतांजलिः ॥ सीतयासहवैदेह्यातदारामःसलक्ष्मणः ॥ २५ ॥ प्रतिगृह्यचकाकुत्स्थम
र्चयित्वासनोदकैः ॥ कुशलप्रश्नमुक्त्वाचआस्यतामितिसोब्रवीत् ॥ अग्निंहुत्वाप्रदायार्घ्यमतिथीन्प्रतिपूज्यच ॥
वानप्रस्थेनधर्मेणसतेषांभोजनंददौ ॥ २७ ॥ प्रथमंचोपविश्याथधर्मज्ञोमुनिपुंगवः ॥ उवाचराममासीनंप्रांजलिंधर्म
कोविदम् ॥ २८ ॥ अन्यथाखलुकाकुत्स्थतपस्वीसमुदाचरन् ॥ दुःसाक्षीवपरेलोकेस्वानिमांसानिभक्षयेत् ॥ २९ ॥
राजासर्वस्यलोकस्यधर्मचारीमहारथः ॥ पूजनीयश्चमान्यश्चभवान्प्राप्तःप्रियातिथिः ॥ ३० ॥ एवमुक्त्वाफलैर्मूलैः
पुष्पैश्चान्यैश्चराघवम् ॥ पूजयित्वायथाकामंततोगस्त्यस्तमब्रवीत् ॥ ३१ ॥ इदंदिव्यंमहच्चापंहेमवज्रविभूषि
तम् ॥ वैष्णवंपुरुषव्याघ्रनिर्मितंविश्वकर्मणा ॥ ३२ ॥

न्द्रजी ! तपस्वी यदि पाहुनेका सत्कार न करके उसके प्रति और कोई अन्यथा आचरण करे तो वह झूठी गवाही देनेवाले मनुष्यकी समान
परलोकमें अपना मांस भक्षण करताहै ॥ २९ ॥ फिर आप तो महारथी और सब लोकोंके धर्मचारी राजाहैं तिस पर आपने प्रिय अतिथि की
भांति हमारे आश्रममें आगमन कियाहै । अतएव आपकी पूजा और सन्मान करना हमारा सब भांतिसे कर्त्तव्यहै ॥ ३० ॥ यह कहकर महर्षि
जी फल, मूल, पुष्प, व औरभी उत्तम २ वनके पदार्थोंसे यथाभिलषित भांतिसे रामचंद्रजीकी पूजा करके फिर कहनें लगे ॥ ३१ ॥ हे पुरुष
श्रेष्ठ ! हमको यह विश्वकर्माका बनाया हुआ, स्वर्ण और वज्र मणिसे विभूषित दिव्य और बडा वैष्णव चाप ॥ ३२ ॥

और सूर्यकी समान प्रभासम्पन्न उत्तम बाण यह दोनों चीजें हमें ब्रह्माजीनें दीहैं और इन्द्रजीने दो तरकस जिनके बाण कभी नहीं निवडते हमको दियेहैं ॥ ३३ ॥ तीखे बाणोंसे परिपूर्ण और अग्निकी समान चमकते हुए यह उत्तम दो तरकस और यह स्वर्णमय कोश बद्ध खड्ग इन्द्रजीने हमको दियाहै ॥ ३४ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! पहले भगवान् विष्णुजीनें इस वैष्णव धनुकी सहायतासे युद्धमें महाबली छली असुरोंको संहार करके देवताओंको दीप्तिमती लक्ष्मी प्रदानकीथी ॥ ३५ ॥ हे मानद! वज्रधर इन्द्रजी जिस प्रकार वज्र धारण करतेहैं, तुमभी तैसेही पवित्र यश प्राप्त करनेंके अर्थ यह शर चाप खड्ग और दो तरकस ग्रहण करो ॥ ३६ ॥ महा तेजवान् भगवान् महर्षि अगस्त्यजी ऐसा कह कर महापण्डित

अमोघःसूर्यसंकाशोब्रह्मदत्तःशरोत्तमः ॥ दत्तोममर्महेंद्रेणतूणीचाक्षय्यसायकौ ॥ ३३ ॥ संपूर्णौनिशितैर्बाणैर्ज्वलद्भिरिवपावकैः॥महारजतकोशोयमसिर्हेमविभूषितः॥३४॥अनेनधनुषारामहत्वासंख्येमहासुरान् ॥ आजहारश्रियंदीप्तांपुराविष्णुर्दिवौकसाम् ॥३५॥ तद्धनुस्तौचतूणीचशरंखड्गंचमानद ॥ जयायप्रतिगृह्णीष्ववज्रंवज्रधरोयथा ॥३६॥ एवमुक्त्वामहातेजाःसमस्तंतद्वरायुधम् ॥ दत्वारामायभगवानगस्त्यःपुनरब्रवीत् ॥ ३७॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआरण्यकांडेद्वादशःसर्गः ॥ १२ ॥ रामप्रीतोस्मिभद्रंतेपरितुष्टोस्मिलक्ष्मण ॥ अभिवादयितुंयन्मांप्राप्तौस्थःसहसीतया ॥ १ ॥ अध्वश्रमेणवांखेदोबाधतेप्रचुरश्रमः ॥ व्यक्तमुत्कंठतेवापिमैथिलीजनकात्मजा ॥ २ ॥ एषाचसुकुमारीचखेदैश्चनविमानिता ॥ प्राज्यदोषंवनंप्राप्ताभर्तृस्नेहप्रचोदिता ॥ ३ ॥

प्रवीण रामचन्द्रजीको वह समस्त अतिश्रेष्ठ वैष्णव आयुध देकर फिर बोले ॥ ३७ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आ० द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥ हे श्रीरामचन्द्र! तुम जो सीता सहित हमको प्रणाम करनें आये हो इस्से हम तुम्हारे और लक्ष्मणके प्रति बहुतही प्रसन्न हुए हैं; तुम्हारा मंगल होवे ॥ १ ॥ यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि मार्ग चलनेकी थकावट से तुमको महा कष्ट हुआ है। जनककुमारी सुकुमारी जानकीजीभी विश्राम करना चाहती हैं ॥ २ ॥ यह बडी ही सुकुमार हैं; इन्होंने भला कभी काहेकोही कष्ट सहा होगा परन्तु पतिसे स्नेहके कारण इस

बडे कष्ट देनेवाले वनमें यह आई हैं ॥ ३ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! जानकीजीका मन जिसमें प्रसन्न रहे वही तुमको करना चाहिए, क्योंकि तुम्हारे साथ २ वनको आकर इन्होंनें बडा दुष्कर काम किया है ॥ ४ ॥ हे रघुनन्दन ! जबसे स्वयंभूकी उत्पत्ति हुई है तबसे स्त्रिओंका स्वभावही ऐसा है कि धनवान पुरुषको ग्रहण करती और दरिद्रको त्याग करती हैं ॥ ५ ॥ स्त्रियें बिजलीकी चपलता, अस्त्रोंकी तीक्ष्णता, गरुड और पवनकी शीघ्रताका अनुकरण करती हैं ॥ ६ ॥ परन्तु इन तुम्हारी भार्या जानकीजीमें इन सबमें से कोई दोष भी नहीं है । यह देवताओंके बीचमें अरुन्धती की समान प्रशंसनीय और कीर्तिवान हैं ॥ ७ ॥ हे शत्रुदमनकारी ! तुम सुमित्राकुमार और सीताजीके साथ जिस देशमें

यथैषारमतेरामइहसीतातथाकुरु ॥ दुष्करंकृतवत्येषावनेत्वामभिगच्छति ॥ ४ ॥ एषाहिप्रकृतिःस्त्रीणामासृष्टे रघुनंदन ॥ समस्थमनुरज्यंतेविषमस्थंत्यजंतिच ॥ ५ ॥ शतह्रदानांलोलत्वंशस्त्राणांतीक्ष्णतांतथा ॥ गरुडानिलयोःशैघ्र्यमनुगच्छंतियोषितः ॥ ६ ॥ इयंतुभवतोभार्यादोषैरेतैर्विवर्जिता ॥ श्लाघ्याचव्यपदेश्याचयथादेवेष्वरुंधती ॥ ७ ॥ अलंकृतोयंदेशश्चयत्रसौमित्रिणासह ॥ वैदेह्याचानयारामवत्स्यासित्वमरिंदम ॥ ८ ॥ एवमुक्तस्तुमुनिनाराघवःसंयतांजलिः ॥ उवाचप्रश्रितंवाक्यमृषिंदीप्तमिवानलम् ॥ ९ ॥ धन्योऽस्म्यनुगृहीऽतोस्मियस्यमेमुनिपुंगवः ॥ गुणैःसभ्रातृभार्यस्यगुरुर्नःपरितुष्यति ॥ १० ॥ किंतुव्यादिशमेदेशंसोदकंबहुकाननम् ॥ यत्राश्रमपदंकृत्वावसेयंनिरतःसुखम् ॥ ११ ॥ ततोऽब्रवीन्मुनिश्रेष्ठःश्रुत्वारामस्यभाषितम् ॥ ध्यात्वामुहूर्तंधर्मात्माततावाचवचःशुभम् ॥ १२ ॥

वास करोगे वही देश शोभायमान हो जायगा ॥ ८ ॥ जब ऋषिनें इस प्रकार कहा तब श्रीरामचन्द्रजीनें हाथ जोड विनीत वचनसे अग्नि समान तेजवान उन महर्षि अगस्त्यजीसे कहा ॥ ९ ॥ हे मुनिवर ! हमारे, हमारी भार्याके, और हमारे भ्राताके गुणोंसे जो आप प्रसन्न हुएहैं इससे मैं धन्य और अनुग्रह भाजन हुआ ॥ १० ॥ तिस्से आज्ञा कीजिये कि ऐसा कोई स्थानहै जहां वनभी बडा हो और जलभी सरलतासे प्राप्त हो जाया करे और यहां हम कुटी बनाकर स्वच्छन्दतासे वास कर सकें ॥ ११ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके वचन श्रवण करके धर्मात्मा

मुनिवर मुहूर्त भरतक चिंता करके शुभ वचन बोले ॥ १२ ॥ वत्स! इस स्थानसे आठ कोशके अन्तर पर पंचवटी नामक विख्यात एक अति सुन्दर स्थान है इस स्थानमें फल, मूल और जल बहुतायतसे मिलता है और अनेक प्रकारके पशुभी वहां वास करते हैं॥१३॥ तुम लक्ष्मणजीके साथ वहां जा और आश्रम बनाकर पिता दशरथजीका सत्य पालन करते हुए सुखसे वास करो॥१४॥ हे पापरहित! हम स्नेहके वश होनेके कारण तपके प्रभावसे तुम्हारा और दशरथजीका समस्त वृत्तान्त जानते हैं कारण, दशरथजीका हमसे बडा स्नेह था नहीं तो ऐसे वृत्तान्त जाननेकी क्या आवश्यकता थी॥ १५ ॥ और हम तपके प्रभावसे यहभी जानते हैं कि यह प्रतिज्ञा करके कि हमारे निकट आप बसेंगे, और फिर अब वासस्थानकी

इतोद्वियोजनेतातबहुमूलफलोदकः ॥ देशोबहुमृगःश्रीमान्पंचवट्याभिविश्रुतः॥१३॥तत्रगत्वाश्रमपदंकृत्वासौमित्रिणासह ॥ रमस्वत्वंपितुर्वाक्यंयथोक्तमनुपालयन् ॥ १४ ॥विदितोह्येषवृत्तांतोममसर्वस्तवानघ ॥ तपसश्चप्रभावेनस्नेहाद्दशरथस्यच॥ १५ ॥ हृदयस्थंचतेच्छंदोविज्ञातंतपसामया ॥ इहवासंप्रतिज्ञायमयासहतपोवने ॥ १६ ॥ अतश्चत्वामहंब्रूमिगच्छपंचवटीमिति ॥ सहिरम्योवनोद्देशोमैथिलीतत्ररंस्यते ॥ १७ ॥ सदेशःश्लाघनीयश्चनातिदूरेचराघव ॥ गोदावर्याःसमीपेचमैथिलीतत्ररंस्यते ॥ १८॥ प्राज्यमूलफलैश्चैवनानाद्विजगणैर्युतः ॥ विविक्तश्चमहाबाहोपुण्योरम्यस्तथैवच ॥ १९ ॥ भवानपिसदाचारःशक्तश्चपरिरक्षणे ॥ अपिचात्रवसन्नामतापसान्पालयिष्यसि ॥ २० ॥

वार्ता क्यों पूछते हैं? अर्थात् हमारे निकट राक्षस नहीं आसक्ते आप उनका मारना चाहते हैं इस कारण आप यहां रहना नहीं चाहते ॥१६॥ इसही कारण हम कहते हैं कि तुम पंचवटीको चले जाओ वह बनैला देश अति रमणीय है वहां सीताके मनकोभी सन्तोष होगा ॥ १७॥ पंचवटी बडाई करनेंके योग्य है और बहुत दूरभी नहीं है, इस गोदावरीके निकटही है मिथिलेशदुलारी वहां पर प्रसन्न होकर रहैंगी ॥ १८॥ हे महाबाहो! वह बहुत फल मूल करके युक्त अनेक भांतिके विहंगमोंसे परिपूर्ण पुण्यमय और निर्जन देश अति रमणीय है ॥ १९ ॥ तुमभी सदाचारी और रक्षाकार्य करनेमें समर्थ हो उस स्थानमें वास करकै तपस्वीलोगोंका पालन भली प्रकार कर सकोगे ॥ २० ॥

देवीर! यह जो महुयेके वृक्षोंका महावन दिखलाई देताहै उसके उत्तर ओर होकर तुमको जाना होगा, फिर उसके पीछे तुमको न्यग्रोध आश्रम प्राप्त होगा ॥२१॥ तिसके पीछे विशेष स्थानपर पहुँचनेसे तुमको एकपर्वत दिखाई देगा, उस पर्वतके कुछ दूर ही विख्यात पंचवटीका वन है वह सदाही फूला फला रहता है॥२२॥ श्रीअगस्त्यजीके ऐसे वचन श्रवण करके श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके सहित ऋषिका भली भांति आदर सत्कार करके उनसे विदा मांगते हुए ॥ २३ ॥ अगस्त्यजीकी आज्ञा पाकर दोनोंजन उनके चरणोंकी वन्दना करके सीताजीके साथ पंच

एतदालक्ष्यतेवीरमधूकानांमहावनम् ॥ उत्तरेणास्यगंतव्यंन्यग्रोधमपिगच्छता ॥ २१ ॥ ततःस्थलमुपारुह्यपर्वतस्याविदूरतः ॥ ख्यातःपंचवटीत्येवनित्यपुष्पितकाननः ॥ २२ ॥ अगस्त्येनैवमुक्तस्तुरामःसौमित्रिणासह ॥ सत्कृत्यामंत्रयामासतमृषिंसत्यवादिनम् ॥ २३ ॥ तौतुतेनाभ्यनुज्ञातौकृतपादाभिवंदनौ ॥ तमाश्रमंपंचवटींजग्मतुःसहसीतया ॥ २४ ॥ गृहीतचापौतुनराधिपात्मजौविषक्ततूणीसमरेष्वकातरौ ॥ यथोपदिष्टेनपथामहर्षिणाप्रजग्मतुःपंचवटींसमाहितौ ॥ २५ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेत्रयोदशःसर्गः ॥ १३ ॥ ॥ छ ॥ अथपंचवटींगच्छन्नंतरारघुनंदनः ॥ आससादमहाकायंगृध्रंभीमपराक्रमम् ॥ १ ॥ तंदृष्ट्वातौमहाभागौवनस्थंरामलक्ष्मणौ ॥ मेनातेराक्षसंपक्षिंब्रुवाणौकोभवानिति ॥ २ ॥ ततोमधुरयावाचासौम्ययाप्रीणयन्निव ॥ उवाचवत्समांविद्धिवयस्यंपितुरात्मनः ॥३॥

वटी आश्रमके लिये चले ॥ २४ ॥ समरमें न डरनेवाले दोनों नृपकुमार धनुष धारण कर और तरकस बांधकर महर्षि अगस्त्यजीनें जो मार्ग बता दियाथा अति सावधानसे उस मार्गके द्वारा पंचवटीकी यात्रा करते हुए ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आरण्यकांडे त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥ अनन्तर श्रीरामचन्द्रजीनें पंचवटीके मार्गमें जाते २ एक भयानक पराक्रमवान महाशरीरवाले गीधको देखा ॥ १ ॥ महाभाग श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणजी वनमें इस पक्षीको देख राक्षस समझ कर उससे पूछनें लगे, कि तुम कौन हो? ॥ २ ॥ गीध मधुर और प्यारे वचनोंसे

उनको प्रसन्न करके बोला, कि– वत्स! तुम हमको अपने पिताका मित्र समझो ॥ ३ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजीनें उसको पिताका मित्र जानकर पूजा करते हुए व्यग्र भावसे उसका कुल और नाम पूछा ॥ ४ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके वचन सुनकर गीध सब जीवोंकी उत्पत्तिका वर्णनाका प्रसंग वर्णन करके अपना कुल और नाम कहनें लगा ॥ ५ ॥ हे महाबाहो हे राघव! पूर्वकालमें जो कि प्रजापति हुएथे, हम क्रमशः उन सबका नाम बतलाते हैं आप श्रवण कीजिये ॥ ६ ॥ कर्दम उन सबमें बडेथे उनके बाद विकृत, शेष, संश्रय, वीर्यवान् बहुपुत्र ॥ ७ ॥ स्थाणु, मरी

सतंपितृसखंमत्वापूजयामासराघवः ॥ सतस्यकुलमव्यग्रमथपप्रच्छनामच ॥ ४ ॥ रामस्यवचनंश्रुत्वाकुलमात्मानमेवच ॥ आचचक्षेद्विजस्तस्मैसर्वभूतसमुद्भवम् ॥ ५ ॥ पूर्वकालेमहाबाहोयेप्रजापतयोभवन् ॥ तान्मेनिगदतः सर्वानादितःशृणुराघव ॥ ६ ॥ कर्दमःप्रथमस्तेषांविकृतस्तदनंतरम् ॥ शेषश्चसंश्रयश्चैवबहुपुत्रश्चवीर्यवान् ॥ ७ ॥ स्थाणुर्मरीचिरत्रिश्चक्रतुश्चैवमहाबल ॥ पुलस्त्यश्चांगिराश्चैवप्रचेताःपुलहस्तथा ॥ ८ ॥ दक्षोविवस्वानपरोऽरिष्टनेमिश्चराघवः ॥ कश्यपश्चमहातेजास्तेषामासीच्चपश्चिमः ॥ ९ ॥ प्रजापतेस्तुदक्षस्यबभूवुरितिविश्रुताः ॥ षष्टिर्दुहितरोरामयशस्विन्योमहायशः ॥ १० ॥ कश्यपःप्रतिजग्राहतासामष्टौसुमध्यमाः ॥ अदितिंचदितिंचैवदनूमापिचकालकाम् ॥ ११ ॥ ताम्रांक्रोधवशांचैवमनुंचाप्यनलामपि ॥ तास्तुकन्यास्ततःप्रीतःकश्यपःपुनरब्रवीत् ॥ १२ ॥ पुत्रांस्त्रैलोक्यभर्तॄन्वैजनयिष्यथमत्समान् ॥ अदितिस्तन्मनारामदितिश्चदनुरेवच ॥ १३ ॥

चि, अत्रि महाबलवान क्रतु, पुलस्त्य, अंगिरा, प्रचेता, पुलह ॥ ८ ॥ दक्ष, विवस्वान, अरिष्टनेमि यह क्रमसे उत्पन्न हुए महात्मा कश्यप उन सबमें छोटेथे ॥ ९ ॥ हे महायशवान् श्रीरामचन्द्रजी! उनमें दक्ष प्रजापतिके यशस्विनी लोकमें विख्यात साठ ६० कन्यायें उत्पन्न हुई ॥ १० ॥ उनमें अति सुन्दरी आठ कन्याओंका कश्यपजी विवाह करते हुए। उनके नाम अदिति, दिति, दनु, कालका, ॥ ११ ॥ ताम्रा, क्रोधवशा, मनु, व अनला, विवाह होजानें पर प्रसन्नहो कश्यपजी इन दक्षकन्याओंसे बोले ॥ १२ ॥ कि तुम हमारी समान त्रिलोकीका भरण

पोषण करनेंवाले पुत्र उत्पन्न करो यह सुन दिति अदिति दनु ॥१३॥ और कालका यह तो वैसे पुत्र प्राप्त करनेंके लिये अभिलाषिता हुई और शेष चारोंने पतिके कहनेंमें ध्यान न लगाया अदितिके तेंतीस ३३ देवता हुए ॥ १४ ॥ अदितिके गर्भमें १२ आदित्य ८ वसु ११ रुद्र २ अश्विनी कुमार उपजे। और दितिने भी बडे यशवान् दैत्य उत्पन्न किये ॥ १५ ॥ पहले वन और समुद्र सहित यह पृथ्वी उनहीकी थी। हे अरिन्दम! दनुने अश्वग्रीव नामक एक पुत्र उत्पन्न किया ॥ १६ ॥ और कालकानें नरक और कालक नामक दो पुत्र उत्पन्न किये क्रौञ्ची भासी

कालकाचमहाबाहोशेषास्त्वमनसोभवन् ॥ अदित्यांजज्ञिरेदेवास्त्रयस्त्रिंशदरिंदम ॥ १४ ॥ आदित्यावसवोरुद्राअश्विनौचपरंतप ॥ दितिस्त्वजनयत्पुत्रान्दैत्यांस्तातयशस्विनः ॥ १५ ॥ तेषामियंवसुमतीपुरासीत्सवनार्णवा ॥ दनुस्त्वजनयत्पुत्रमश्वग्रीवमरिंदम ॥ १६ ॥ नरकंकालकंचैवकालकापिव्यजायत ॥ क्रौञ्चींभासींतथाश्येनींधृतराष्ट्रींतथाशुकीम् ॥ १७ ॥ ताम्रातुसुषुवेकन्याःपंचैतालोकविश्रुताः ॥ उलूकाञ्जनयत्क्रौंचीभासीभासान्व्यजायत ॥ १८ ॥ श्येनीश्येनांश्चगृध्रांश्चव्यजायतसुतेजसः ॥ धृतराष्ट्रीतुहंसांश्चकलहंसांश्चसर्वशः ॥ १९ ॥ चक्रवाकांश्चभद्रंतेविजज्ञेसापिभामिनी ॥ शुकीनतांविजज्ञेतुनतायांविनतासुता ॥ २० ॥ दशक्रोधवशारामविजज्ञेप्यात्मसंभवाः ॥ मृगींचमृगमंदांचहरींभद्रमदामपि ॥ २१ ॥ मातंगीमथशार्दूलींश्वेतांचसुरभींतथा ॥ सर्वलक्षणसंपन्नांसुरसांकद्रुकामपि ॥ २२ ॥

श्येनी, धृतराष्ट्री और शुकी ॥ १७ ॥ ताम्रासे यह लोकविख्यात पांच कन्या जन्मी उसमें क्रौञ्चीसे उलूक पैदा हुए भासीसे भास जन्मे ॥ १८ ॥ श्येनीने अति तेजस्वी श्येन और गीधोंको प्रसव किया और धृतराष्ट्री से सब हंस ॥ १९ ॥ और चकवा चकवियोंको भी उसीनें उत्पन्न किया शुकी के नता कन्या हुई और नताके विनता उत्पन्न हुई ॥ २० ॥ हे राम! क्रोधवशाके दश कन्या उत्पन्न हुई उनके नाम यहहैं यथा—मृगी मृगमंदा, हरी, भद्रमदा ॥ २१ ॥ मातंगी, शार्दूली, श्वेता, सुरभी, सुरसा, कद्रुका यह सब कन्यायें शुभ लक्षण सम्पन्न थीं ॥ २२ ॥

हेनरश्रेष्ठ! समस्त मृग,मृगीसे उत्पन्न हुए और काले व सफेद रीछ सृमर चमरी आदि मृग मन्दाके जन्मे॥२३॥ भद्रमदानें इरावती नामक कन्या प्रसव की उसका पुत्र लोकपाल महा गज ऐरावत हुआ॥२४॥ सिंह वानर और गोपुच्छ गण हरीके उत्पन्न हुए शार्दूलीने व्याघ्रोंको प्रसव किया॥२५॥ हे पुरुषवर श्रीरामचंद्रजी! सब हाथी मातङ्गीके पुत्र हुए। श्वेताने दिग्गजोंको उत्पन्न किया ॥२६॥ सुरभीके दो कन्या हुईं, यशस्विनी रोहिणी और गन्धर्व्वी ॥ २७ ॥ रोहिणीने गौ बैल आदिकों को और गन्धर्वीनें अश्वोंको प्रसव किया हे राम! सुरसाने नागोंको प्रसव किया, और

अपत्यंतुमृगाःसर्वेंमृग्यानरवरोत्तम॥ ऋक्षाश्चमृगमंदायाःसृमराश्चमरास्तथा॥ २३॥ ततास्त्विरावतींनामजज्ञेभद्रमदासुताम्॥ तस्यास्त्वैरावतःपुत्रोलोकनाथोमहागजः॥ २४॥ हर्याश्चहरयोपत्यंवानराश्चतपस्विनः ॥ गोलांगूलाश्चशार्दूलीव्याघ्रांश्चाजनयत्सुतान् ॥२५॥ मातंग्यास्त्वथमातंगाअपत्यंमनुजर्षभ ॥ दिशागजंतुकाकुत्स्थश्वेताव्यजनयत्सुतान्॥ २६ ॥ ततोदुहितरौरामसुरभिर्देव्यजायत॥ रोहिणींनामभद्रंतेगंधर्वींचयशस्विनीम् ॥ २७ ॥ रोहिण्यजनयद्गावोगंधर्वीवाजिनःसुतान्॥ सुरसाजनयन्नागान्रामकद्रूश्चपन्नगान् ॥ २८॥ मनुर्मनुष्याञ्जनयत्कश्यपस्यमहात्मनः ॥ ब्राह्मणान्क्षत्रियान्वैश्याञ्छूद्रांश्चमनुजर्षभ ॥ २९ ॥ मुखतोब्राह्मणाजाताउरसःक्षत्रियास्तथा॥ ऊरुभ्यांजज्ञिरेवैश्याःपद्भ्यांशूद्राइतिश्रुतिः॥ ३० ॥ सर्वान्पुण्यफलान्वृक्षाननलापिव्यजायत ॥ विनताचशुकीपौत्रीकद्रूश्चसुरसास्वसा॥३१॥ कद्रूर्नागसहस्रंतुविजज्ञेधरणीधरान् ॥ द्वौपुत्रौविनतायास्तुगरुडोऽरुणएवच ॥ ३२॥ तस्माज्जातोहमरुणात्संपातिश्चममाग्रजः ॥ जटायुरितिमांविद्धिश्येनीपुत्रमरिंदम॥ ३३ ॥

कद्रुके सर्प उत्पन्न हुए ॥ २८ ॥ महात्मा कश्यपजीकी दूसरी स्त्री मनुसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र यह सब मनुष्य जन्मे ॥ २९ ॥ सो ऐसी कहावत चली आतीहै कि मुखसे ब्राह्मण, वक्षःस्थलसे क्षत्रिय जंघाओंसे वैश्य, और चरणोंसे शूद्रोंकी उत्पत्ति हुई ॥ ३० ॥ अनलानें परम श्रेष्ठ फल युक्त वृक्ष जनें, विनता शुकीकी पौत्री, और कद्रु सुरसाकी कन्या हुई ॥ ३१ ॥ उनमें कद्रुनें सहस्रों नाग पुत्र उत्पन्न किये यही सब पृथ्वीको धारण किये हुएहैं और विनताके दो पुत्र गरुड व अरुण हुए ॥ ३२ ॥ हम तिनही गरुडजीसे उत्पन्न हुएहैं, सम्पाति हमारे बडे

भाईहैं। हे अरिनाशक! हमारा नाम जटायु व हमारी माताका नाम श्येनी जानिये ॥ ३३ ॥ हे तात! यदि इच्छा होवे तो हम तुम्हारी वनमें वसने के समय सहायता करैं और जब तुम लक्ष्मणजीके सहित कहीं वनमें कंद, मूल, फल लेने जाया करोगे तो हम सीताजीकी रक्षा किया करेंगे ॥ ३४ ॥ रामचंद्रजी प्रफुल्लतासे जटायुको भेंट और उसकी पूजाकर उसको प्रणाम करते हुए, और पिताजीके साथ जो मित्रता उसकी थी सो उस जटायुके मुखसे वारंवार श्रवण करने लगे ॥ ३५ ॥ फिर वह बलवान जटायुके हाथमें सीताजीकी रक्षाका भार सौंपकर उसको साथले लक्ष्मणजीके सहित शत्रुओंको जलाते वनकी रक्षा करनेंके लिये सुप्रसिद्ध पंचवटीमें गमन करते हुए ॥ ३६ ॥ इत्यार्षे

सोहंवाससहायस्तेभविष्यामियदीच्छसि ॥ सीतांचताततरक्षिष्येत्वयियातेसलक्ष्मणे ॥ ३४ ॥ जटायुषंतुप्रतिपूज्यराघवोमुदापरिष्वज्यचसन्नतोऽभवत् ॥ पितुर्हिशुश्रावसखित्वमात्मवान्जटायुषासंकथितंपुनःपुनः ॥ ३५ ॥ सतत्रसीतांपरिदायमैथिलींसहैवतेनातिबलेनपक्षिणा ॥ जगामतांपंचवटींसलक्ष्मणोरिपून्दिधक्षन्सवनानिपालयन् ॥ ३६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेचतुर्दशःसर्गः ॥ १४ ॥ ततःपंचवटींगत्वानानाव्यालमृगायुताम् ॥ उवाचलक्ष्मणंरामोभ्रातरंदीप्ततेजसम् ॥ १ ॥ आगताःस्मयथोद्दिष्टंयंदेशंमुनिरब्रवीत् ॥ अयंपंचवटीदेशःसौम्यपुष्पितकाननः ॥ २ ॥ सर्वतश्चार्यतांदृष्टिःकाननेनिपुणोह्यसि ॥ आश्रमःकतरस्मिन्नोदेशेभवतिसंमतः ॥ ३ ॥ रमतेयत्रवैदेहीत्वमहंचैवलक्ष्मण ॥ तादृशोदृश्यतांदेशःसन्निकृष्टजलाशयः ॥ ४॥

श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे चतुर्दशःसर्गः ॥ १४ ॥ तिसके पीछे यह अनेक प्रकारके सर्प और पशुयुक्त पंचवटीमें गमन करके तेजसे प्रकाशमान भ्राता लक्ष्मणसे बोले ॥ १ ॥ हे सौम्य! महर्षि अगस्त्यजीनें जिसको बतायाथा अब हम उसी सदा फूले फले वन करके शोभायमान पंचवटीमें आगयेहैं ॥ २ ॥ आश्रम बनानेंके लायक स्थान निर्णय करनेंमें तुम भलीभांति चतुरहो तिस्से इस काननके चारों ओर दृष्टि डालिये कि कौनसे स्थानमें हमारे मनमाना आश्रम बनसकताहै ॥ ३ ॥ हेलक्ष्मण! जिसे स्थानमें तुम हम और जानकीजी विशेषप्रसन्नता

सहित रहसकें और जल भी जहां निकटही हो ऐसे स्थानको तुम खोजो ॥ ४ ॥ जिस जगह वन और जल दोनोंही रमणीय और पावनहों व ईंधन, पुष्प, कुश, जल जहां निकटही पाया जावे ऐसा स्थानदेखो ॥ ५ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें जब इस प्रकार कहा तब लक्ष्मणजीनें कर जोड कर सीताजीके सामने रामचंद्रजीसे कहा ॥ ६ ॥ हे भाई साहब! हम आपके विद्यमान रहते सैकडों वर्षतकभी स्वाधीन नहींहैं न कुछ विचार करही सकतेहैं और हमारा विचार ठीकभी नहींहै तिस्से अब आप स्वयंही मनोहर स्थान देख भाल हमको वहां आश्रम बनानेकी आज्ञा दीजिये ॥ ७ ॥ महाद्युतिमान श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके यह वचन सुन परम प्रसन्न हो विचार करके सर्व गुणों करके युक्त एक मनोहर स्थान खोज लेते

वनरामण्यकंयत्रजलरामण्यकंतथा ॥ सन्निकृष्टंचयस्मिंस्तुसमित्पुष्पकुशोदकम् ॥ ५ ॥ एवमुक्तस्तुरामेणलक्ष्मणः संयतांजलिः ॥ सीतासमक्षंकाकुत्स्थमिदंवचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥ परवानस्मिकाकुत्स्थत्वयिवर्षशतंस्थिते ॥ स्वयंतुरुचिरेदेशेक्रियतामितिमांवद ॥ ७ ॥ सुप्रीतस्तेनवाक्येनलक्ष्मणस्यमहाद्युतिः ॥ विमृशन्रोचयामासदेशंसर्वगुणान्वितम् ॥ ८ ॥ सतंरुचिरमाक्रम्यदेशमाश्रमकर्मणि ॥ हस्तेगृहीत्वाहस्तेनरामःसौमित्रिमब्रवीत् ॥ ९ ॥ अयंदेशः समःश्रीमान्पुष्पितैस्तरुभिर्वृतः ॥ इहाश्रमपदंरम्यंयथावत्कर्तुमर्हसि ॥ १० ॥ इयमादित्यसंकाशैःपद्मैःसुरभिगंधिभिः ॥ अदूरेदृश्यतेरम्यापद्मिनीपद्मशोभिता ॥ ११ ॥ यथाख्यातमगस्त्येनमुनिनाभावितात्मना ॥ इयंगोदावरीरम्यापुष्पितैस्तरुभिर्वृता ॥ १२ ॥

हुए ॥ ८ ॥ यह स्थान सब भांतिसे मनोहर और आश्रम बनानेंके लायक था वहां श्रीरामचंद्रजी पदार्पणकर अपने हाथसे लक्ष्मणजीका हाथ पकडकर बोले ॥ ९ ॥ यह स्थान परम श्रीसम्पन्न भूमि वहांकी बराबरहै और फूले हुए वृक्षोंसे घिराहुआहै तिस्से तुम इस स्थानमें वित्तानुसार पर्णकुटी बनाओ ॥ १० ॥ सूर्यकी समान उज्वल चित्त प्रसन्न करनेवाली सुगन्धि जिनमें आरहीहैं ऐसेकमलके फूलोंके सहित यह पुष्करणी यहांसे निकटही बहरहीहै॥ ११ ॥विशुद्धात्मा महर्षि अगस्त्यजीने जिस प्रकार कहाथा यह देखो वैसेही फुलाने वृक्षोंसे शोभित

गोदावरी दृष्टि आतीहै ॥ १२ ॥ वहां हंस और कारंडव बोल रहेहैं चकवा चकवी पक्षियोंसे शोभायमान यह नदी न यहांसे बडी दूरहै न बहुत निकटहीहै मृगोंके यूथके यूथ जहां घूम रहेहैं ॥ १३ ॥ खिले हुए वृक्षोंसे शोभित मोर गण जहां नाद कर रहेहैं बहुत गुफा जिनमें विद्यमान परम मनोहर देखनेमें दिव्य बड़े २ ऊंचे यह सब पहाड दिखाई देतेहैं ॥ १४ ॥ उन सब पहाडों के स्थान २ में सब हाथी सुवर्ण चांदी और ताम्र वर्ण की विचित्र रचना से सजे हुएकी समान शोभा पारहेहैं ॥१५॥ साल, ताल, तमाल, खजूर, कटहल, निवार, निमिश, पुन्नागसे शोभित॥१६॥आम, अशोक, तिलक, केतकी, और चंपा आदि पुष्प, गुल्म, लता इत्यादि वृक्षोंसे शोभाय मान॥१७॥स्यन्दन, चन्दन, कदंब, लुचकुच,

हंसकारंडवाकीर्णाचक्रवाकोपशोभिता ॥ नातिदूरेनचासन्नेमृगयूथनिपीडिता ॥ १३ ॥ मयूरनादितारम्याःप्रांशवोबहुकंदराः ॥ दृश्यंतेगिरयःसौम्याःफुल्लैस्तरुभिरावृताः ॥ १४ ॥ सौवर्णैराजतैस्ताम्रैर्देशेदेशेतथाशुभैः ॥ गवाक्षिताइवाभांतिगजाःपरमभक्तिभिः ॥ १५ ॥ सालैस्तालैस्तमालैश्चखर्जूरैःपनसैर्द्रुमैः ॥ नीवारैस्तिनिशैश्चैव पुन्नागैश्चोपशोभिताः ॥१६॥चूतैरशोकैस्तिलकैःकेतकैरपिचंपकैः॥ पुष्पगुल्मलतोपेतैस्तैस्तैस्तरुभिरावृताः ॥१७॥ स्यंदनैश्चंदनैर्नीपैःपनसैर्लकुचैरपि ॥ धवाश्वकर्णखदिरैःशमीकिंशुकपाटलैः ॥ १८ ॥ इदंपुण्यमिदंरम्यमिदंबहुमृगद्विजम् ॥ इहवत्स्यामसौमित्रेसार्धमेतेनपक्षिणा॥१९॥एवमुक्तस्तुरामेणलक्ष्मणःपरवीरहा ॥ अचिरेणाश्रमंभ्रातुश्चकारसुमहाबलः ॥ २० ॥ पर्णशालांसुविपुलांतत्रसंघातमृत्तिकाम् ॥ सुस्तंभांमस्करैर्दीर्घैःकृतवंशांसुशोभनाम् ॥ २१ ॥ शमीशाखाभिरास्तीर्यदृढपाशावपाशिताम् ॥ कुशकाशशरैःपर्णैःसुपरिच्छादितांतथा ॥ २२ ॥

धव, अश्वकर्ण, खैर, शमी, ढाक और पटल इन तरुवरोंसेभी घिरे हुएहैं ॥ १८ ॥ हे लक्ष्मण ! यह स्थान अतिशय पवित्र, अतिशय मनोहर, अनेक प्रकारके मृग और पक्षियोंसे परिपूर्णहै; सो जटायुके सहित इस स्थानपर हम वास करेंगे ॥ १९ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा तब श्रीलक्ष्मणजीनें बहुत शीघ्र रामचंद्रजीके रहनेके लिये परम श्रेष्ठ एक स्थान बनाया ॥ २० ॥ उसमें बडी भारी पर्णशाला बनाई, भीतें मिट्टीसे उठादीं सुन्दर थंभ गाड दिये, ऊपर लंबे २ बांस धरे ॥ २१ ॥ उन तिरछे बांसोंपर शमीकी डालियें काट २ कर छादीं फिर उन

॥ ३० ॥

शाखाओंको रस्सियोंसे अति दृढता सहित बांध दिया, कुश, कांश, और शर पत्रसे भलीभांति उसको छाकर बराबर करदिया ॥ २२ ॥ तिसपर
शमीकी डालियोंकी बतियें छा कसकर बांधदीं, ऐसा मनोहर स्थान लक्ष्मणजीनें श्रीरामचंद्रजीके रहनेके लिये बनाया ॥ २३ ॥ जब स्थान
बन चुका तो श्रीमान् लक्ष्मणजी गोदावरी नदीमें नहाकर वहांसे कमलके फूल और अनेक फल लेकर आश्रमको लौटे ॥ २४ ॥ फिर लक्ष्मण
जीनें फूलोंसे यथा विधि वास्तुशान्ति करके उस कुटीको पवित्रकर श्रीरामचंद्रजीको दिखाया ॥ २५ ॥ श्रीरघुनंदन रामचंद्रजी सीताके
सहित लक्ष्मणजीकी बनाई वह शुभदर्शन कुटी देखकर परम प्रसन्न हुए ॥ २६ ॥ और बहुतही हर्षमें भरकर दोनों बाहोंसे लक्ष्मणजीको स्नेह

समीकृततलांरम्यांचकारसुमहाबलः ॥ निवासंराघवस्यार्थेप्रेक्षणीयमनुत्तमम् ॥ २३ ॥ सगत्वालक्ष्मणःश्रीमा
न्नदींगोदावरींतदा ॥ स्नात्वापद्मानिचादायसफलःपुनरागतः ॥ २४ ॥ ततःपुष्पबलिंकृत्वाशांतिंचसयथाविधि ॥
दर्शयामासरामायतदाश्रमपदंकृतम् ॥ २५ ॥ सतंदृष्ट्वाकृतंसौम्यमाश्रमंसहसीतया ॥ राघवःपर्णशालायांहर्षमा
हारयत्परम् ॥ २६ ॥ सुसंहृष्टःपरिष्वज्यबाहुभ्यांलक्ष्मणंतदा ॥ अतिस्निग्धंचगाढंचवचनंचेदमब्रवीत् ॥ २७ ॥
प्रीतोस्मितेमहत्कर्मत्वयाकृतमिदंप्रभो ॥ प्रदेयोयन्निमित्तंतेपरिष्वंगोमयाकृतः ॥ २८ ॥ भावज्ञेनकृतज्ञेनधर्मज्ञे
नचलक्ष्मण ॥ त्वयापुत्रेणधर्मात्मानसंवृत्तःपितामम ॥ २९ ॥ एवंलक्ष्मणमुक्त्वातुराघवोलक्ष्मिवर्धनः ॥ तस्मिन्दे
शेबहुफलेन्यवसत्ससुखंसुखी ॥ ३० ॥

सहित अपनी छातीसे लगा लिया और बडे मनोहर प्रेमसने वचन बोले ॥ २७ ॥ हे कार्य करनेमें चतुर! हम तुमपर बहुतही प्रसन्न हुए
हैं तुमनें यह बडा भारी कार्य किया सो इस कार्यका तुमको इनाम देना चाहिये अतएव इसके बदलेहीमें हमनें तुमसे भेंटकी ॥ २८ ॥ हे लक्ष्मण
जी ! तुम्हारी समान विचारवान् सबका भाव जाननेंवाले, उपकार माननेंवाले, और धर्मके जाननेंवाले पुत्रके रहते राजा दशरथजीकी मृत्यु नहीं
हुई ॥ २९ ॥ लक्ष्मीके बढानेवाले श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणसे ऐसा कहकर परम सुखभोगमय बहु फल युक्त उस आश्रमपदमें वास करने लगे ॥ ३० ॥

वह धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मण करके सेवित होनेंपर देवलोकमें देवताकी समान वहां कुछ दिन वास करते हुए ॥ २१ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आर० पंचदशःसर्गः ॥ १५ ॥ महात्मा रामचंद्रजीके वहां सुखसे वास करतेश्शरत्काल वीता और सबका प्यारा हेमन्त समय आया ॥ १ ॥ एक समय रात्रि वीतकर प्रभात हुआ तो उस समय श्रीरामचंद्रजी स्नानकरनेंके लिये रमणीक गोदावरी नदीपर जाते हुए ॥ २ ॥ वीर्यवान् भ्राता लक्ष्मणजी सीताजीके साथ जलका कलश हाथमें लेकर उनके पीछे २ चलते हुए नम्रता से बोले ॥ ३ ॥ हे प्रिय बोलनेवाले ! जो इस समय आपको प्याराहै; यह वही हेमन्तकाल उपस्थित हुआहै । इस हेमन्तके समागमसेही शुभ

कंचित्कालंसधर्मात्मासीतयालक्ष्मणेनच ॥ अन्वास्यमानोन्यवसत्स्वर्गलोकेयथामरः ॥ २१ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा०आ०आर०पंचदशःसर्गः ॥ १५ ॥ ॥ ७ ॥ वसतस्तस्यतुसुखंराघवस्यमहात्मनः ॥ शरद्व्यपायेहेमंतऋतुरिष्टःप्रवर्तत ॥ १ ॥ सकदाचित्प्रभातायांशर्वर्यांरघुनंदनः ॥ प्रययावभिषेकार्थंरम्यांगोदावरींनदीम् ॥ २ ॥ प्रह्वःकलशहस्तस्तुसीतयासहवीर्यवान् ॥ पृष्ठतोनुव्रजन्भ्रातासौमित्रिरिदमब्रवीत् ॥ ३ ॥ अयंसकालःसंप्राप्तःप्रियोयस्तेप्रियंवद ॥ अलंकृतइवाभातियेनसंवत्सरःशुभः ॥ ४ ॥ नीहारपरुषोलोकःपृथिवीसस्यमालिनी ॥ जलान्यनुपभोग्यानिसुभगोहव्यवाहनः ॥ ५ ॥ नवाग्रयणपूजाभिरभ्यर्च्यपितृदेवताः ॥ कृताग्रयणकाःकालेसंतोविगतकल्मषाः ॥६॥ प्राज्यकामाजनपदाःसंपन्नतरगोरसाः ॥ विचरंतिमहीपालायात्रार्थंविजिगीषवः ॥ ७ ॥ सेवमानेदृढंसूर्येदिशमंतकसेविताम् ॥ विहीनतिलकेवस्त्रीनोत्तरादिक्प्रकाशते ॥ ८ ॥

संवत्सर मानों सजकरही मनोहर हुआहै ॥४॥ शरदीके प्रभावसे सबही लोगोंके शरीर रूखे होगये, और पृथ्वी अनाजोंसे भरपूर होरहीहै और अग्निही इस समय लोगोंको प्रिय लगतीहै शरदीसे पानी नहीं छुआ जाता ॥ ५ ॥ इस समय मनुष्य गण नये अनाजसे देवता और पित्रोंकी विशेष भांतिसे पूजा करके नवशस्य निमित्तक यज्ञ करते हुए निष्पाप हुएहैं ॥ ६ ॥ इस समय सब देशोंमें काम्यवस्तु; दही, दूध, गोरस आदि बहुत प्राप्त होताहै इस समय विजयकी इच्छा किये हुए राजा लोग देशोंमें घूमनेंके लिये यात्रा करतेहैं ॥ ७ ॥ दक्षिण दिशामें सूर्य भगवा

नका अधिक अनुराग होनेसे उत्तरदिशा तिलकहीन स्त्रीकी नांई शोभारहित होगईहै ॥ ८ ॥ एक तो हिमालय पर स्वभावसेही बहुत पाला पडताहै तिसपर अब सूर्य भगवान् उस्से बहुत दूर होगयेहैं; तिस्से हिमवानका हिमालय (पालेका घर) नाम ठीक २ होरहाहै ॥ ९ ॥ इस समय दुपहरियामें घूमना अच्छा लगताहै धूप लगनेसे सुख होताहै, इस समय सूर्य सबके सुख देनेंवाले, और छाया जल एकवारही नहीं सेवन किया जाता ॥ १० ॥ अब सूर्य नारायणका वह पहलासा तेज नहींहै। कुहरा पडने व पवन चलनेसे जाडा बहुतही अधिक पडताहै तिस जाडेके पडनेंसे जीवमात्रही जडीभूत होगये, तिससे सब ही वन सूनेसे जान पडतेहैं प्रभातकाल हिमग्रस्त होकर प्रकाशित

प्रकृत्याहिमकोशाढ्योदूरसूर्यश्चसांप्रतम् ॥ यथार्थनामसुव्यक्तंहिमवान्हिमवान्गिरिः ॥ ९ ॥ अत्यंतसुखसंचारा मध्याह्नेस्पर्शतःसुखाः ॥ दिवसाःसुभगादित्याश्छायासलिलदुर्भगाः ॥ १० ॥ मृदुसूर्याःसुनीहाराःपटुशीताःसमाहिताः ॥ शून्यारण्याहिमध्वस्तादिवसाभांतिसांप्रतम् ॥ ११ ॥ निवृत्ताकाशशयनाःपुष्यनीताहिमारुणाः ॥ शीतवृद्धतरायामास्त्रियामायांतिसांप्रतम् ॥ १२ ॥ रविसंक्रांतसौभाग्यस्तुषारारुणमंडलः ॥ निःश्वासांधइवादर्शश्चंद्रमानप्रकाशते॥१३॥ज्योत्स्नातुषारमलिनापौर्णमास्यांनराजते ॥ सीतेवचातपश्यामालक्ष्यतेनचशोभते ॥१४॥ प्रकृत्याशीतलस्पर्शोहिमविद्धश्चसांप्रतम् ॥ प्रवातिपश्चिमोवायुःकालेद्विगुणशीतलः ॥ १५ ॥

होताहै ॥ ११ ॥ पुष्य नक्षत्र युक्त इस पुष्य मासमें और पाला पडती हुई धूसर वर्ण इन दिनोंको रात्रिमें विना छाये हुए स्थानमें नहीं सोया जाता अब रात्रियों में शीत अधिक पडताहै ॥१२॥ जिस प्रकार श्वासकी वाफ लगनेंसे दर्पण अंधासा होजाताहै, वैसेही सुखसेव्यतादि सबही सौभाग्य इस समय सूर्यसे दबजानें और बरफके द्वारा किरणोंके ढक जानें और धूसरवर्ण होजानेंसे चंद्रमाकाभी अब प्रकाश नहींहैं॥१३॥तुषार करके मलीन होनेंसे चांदनी अब पूर्णमासीकी रात्रिमेंभी नहीं खिलती केवल दीखतीहै जैसे सीताजी धूमके लगनेंसे श्याम होगईहैं और शोभित नहीं होतीं ॥ १४ ॥ स्वभावतः शीतलता युक्त पछांदिया पवन अब हिमसे आवृत और उससे मिलकर दूना शीतलहो चल रहाहै ॥ १५ ॥

यव और गेहुओं करके पूर्ण ओस जिनमें पडी हुई ऐसे समस्त वन सूर्यके उदय होनेपर शब्द करते हुए सारस और क्रौञ्चादिक पक्षियोंसे व्याप्त होकर शोभा विस्तार करतेहैं ॥ १६ ॥ सुवर्णके वर्णवाले शालि समूह खजूरके फूलकी समान तन्दुल भरी हुई वालोंके लगनेसे कुछ एक झुके हुए विराजरहेहैं ॥ १७ ॥ सूर्य आकाशमें ऊँचे उठकर चन्द्रमाकी समान शीतल अल्प प्रकाशमय दृष्टि आतेहैं, क्योंकि इधर उधर फैली हुई उनकी किरणें पालेसे ढक रहीहैं ॥ १८ ॥ धूपका तेज सवेरे २ तो कुछ होताही नहीं दुपहर को कुछ एक सुखका देनेवाला होता

बाष्पच्छन्नान्यरण्यानियवगोधूमवंतिच ॥ शोभंतेभ्युदितेसूर्येनदद्भिःक्रौंचसारसैः ॥ १६ ॥ खर्जूरपुष्पाकृतिभिःशिरोभिःपूर्णतंडुलैः ॥ शोभंतेकिंचिदालंबाःशालयःकनकप्रभाः ॥ १७ ॥ मयूखैरुपसर्पद्भिर्हिमनीहारसंवृतैः ॥ दूरमभ्युदितःसूर्यःशशांकइवलक्ष्यते ॥ १८ ॥ अग्राह्यवीर्यःपूर्वाह्णेमध्याह्नेस्पर्शतःसुखः ॥ संसक्तःकिंचिदापांडुरातपःशोभतेक्षितौ ॥ १९ ॥ अवश्यायनिपातेनकिंचित्प्रक्लिन्नशाद्वला ॥ वनानांशोभतेभूमिर्निविष्टतरुणातपा ॥ २० ॥ स्पृशन्सुविपुलंशीतमुदकंद्विरदःसुखम् ॥ अत्यंततृषितोवन्यःप्रतिसंहरतेकरम् ॥ २१ ॥ एतेहिसमुपासीनाविहगाजलचारिणः ॥ नावगाहंतिसलिलमप्रगल्भाइवाहवम् ॥ २२ ॥ अवश्यायतमोनद्धानीहारतमसावृताः ॥ प्रसुप्ताइवलक्ष्यंतेविपुष्पावनराजयः ॥ २३ ॥

है और उसी समय वर्ण कुछ पीला पडजानेसे पृथ्वीमें शोभित होता है ॥ १९ ॥ प्रभातमें ओसकी बूंदोंके गिरनेसे हरी २ घास गीली होरहीहै उस घासपर सूर्यकी किरणें पडनेसे वन भूमिकी शोभाकी सीमा नहीं रहती ॥ २० ॥ वनैला हाथी अधिक प्यासा होनेपरभी शीतल जल छूतेही उसी समय शूंड खेंच लेताहै ॥ २१ ॥ डरपोक आदमी जिस प्रकार युद्धमें नहीं जाते, वैसेही यह जलचर पक्षीगण जलके समीप बैठे रह करभी किसी प्रकारसे जलमें डुबकी नहीं मारते ॥ २२ ॥ प्रसून शून्य वनश्रेणी रात्रिमें ओस और अंधकारसे ढक जाने और प्रभातको

कुहरके अंधेरेसे छिपजानेंपर ऐसी लगतीहै मानों सोयरहीहै ॥ २३ ॥ अब समस्त नदियें वाफसे ढकी हुईहैं, और उनके तीरका रेतभी पालेके पडनेंसे गीला होरहाहै; और शब्द करते हुए सारसोंके घूमनेंसे सब नदियें बहुतही शोभायुक्त हुईहैं ॥ २४ ॥ वर्फके गिरनें और सूर्यका तेज मंद होनेंसे, शीतके वशहो पर्वतोंके अग्रभागका जलभी प्रायः स्वादिष्ठ होगयाहै ॥ २५ ॥ अब जराके वश होजानेंसे पत्तोंके गिरजानें और पंखडियोंके टूट जानें व हिमग्रस्त होजानेंसे कमल फूलमें केवल डंडी मात्र रह गईहै अब कमलाकर सरोवर शोभा नहीं पाते ॥ २६ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ! इस दारुण हेमन्त कालमें धर्मात्मा भरतजी आपकी भक्तिके वशहो नगरमें रहकरभी दुःखका बोझ सहन करते हुए तपस्या करते

बाष्पसंछन्नसलिलारुतविज्ञेयसारसाः ॥ हिमार्द्रवालुकास्तीरैःसरितोभांतिसांप्रतम् ॥ २४ ॥ तुषारपतनाच्चैवमृदुत्वाद्भास्करस्यच ॥ शैत्यादगाग्रस्थमपिप्रायेणरसवज्जलम् ॥ २५ ॥ जराझर्झरितैःपत्रैःशीर्णकेसरकर्णिकैः ॥ नालशेषाहिमध्वस्तानभांतिकमलाकराः ॥ २६ ॥ अस्मिंस्तुपुरुषव्याघ्रकालेदुःखसमन्वितः ॥ तपश्चरतिधर्मात्मात्वद्भक्त्याभरतःपुरे ॥ २७ ॥ त्यक्त्वाराज्यंचमानंचभोगांश्चविविधान्बहून् ॥ तपस्वीनियताहारःशेतेशीतेमहीतले ॥ २८ ॥ सोपिवेलामिमांनूनमभिषेकार्थमुद्यतः ॥ वृतःप्रकृतिभिर्नित्यंप्रयातिसरयूंनदीम् ॥ २९ ॥ अत्यंतसुखसंवृद्धःसुकुमारोहिमार्दितः ॥ कथंत्वपररात्रेषुसरयूमवगाहते ॥ ३० ॥ पद्मपत्रेक्षणःश्यामःश्रीमान्निरुदरोमहान् ॥ धर्मज्ञःसत्यवादीचह्रीनिषेधोजितेंद्रियः ॥ ३१ ॥

होंगे ॥ २७ ॥ और राज्य मान और अनेक प्रकारके राज्योचित सुख छोडकर नियत समयपर आहार करके तपस्वीहो शीतल पृथ्वीपर शयन करते होंगे ॥ २८ ॥ वह निश्चय प्रति दिन इस समय निरालस्यहो मंत्री आदिकोंके साथ सरयू नदीमें नहानेंके लिये जाते होंगे ॥ २९ ॥ भरतजी स्वभावसेही सुकुमारहैं और परम सुखसे पलकर इतनें बडे हुएहैं । सो अब वह किस प्रकारसे पाला पडते हुये प्रभात कालमें सरयूके जलसे स्नान करते होंगे! ॥ ३० ॥ आर्य! वह कमलनेत्र, श्यामवर्ण, बडाई करके युक्त शोभावान सूक्ष्मोदर, धर्मज्ञ, सत्यवादी, सभामें बडे ढीठे जितेन्द्रिय ॥ ३१ ॥

प्रिय वचन बोलनेवाले शत्रुओंका दमन करनेवाले लंबी भुजाओंवाले लज्जाशील श्रीमान् भरतजी सब सुख भोगको जलांजलि देकर अंतःकरणसे आपकोही आश्रय किये हुएहैं ॥ ३२ ॥ हे वनवासिन् ! यद्यपि आपके भ्राता महात्मा भरतजी तापस धर्मका आश्रय करके वनवासी नहीं हुएहैं तथापि उन्होंने आपके अनुरूप कार्यकर स्वर्गको जीत लियाहै ॥ ३३ ॥ जगत्में जो यह कहावत चली आतीहै कि मनुष्योंमें पिताका भाव नहीं आता वरन माताहीका स्वभाव आताहै सो भरतजीनें इस कहावतके विरुद्ध किया क्योंकि उनमें कैकेयीका स्वभाव नहींहै॥३४॥परन्तु श्रीराजाधिराज महाराज दशरथजी जिसके स्वामी और साधु भरतजी जिसके पुत्र वह जननी कैकेयी किस प्रकारसे ऐसी क्रूर

प्रियाभिभाषीमधुरोदीर्घबाहुररिंदमः ॥ संत्यज्यविविधान्सौख्यानार्यसर्वात्मनाश्रितः ॥ ३२ ॥ जितःस्वर्गस्तवभ्रात्राभरतेनमहात्मना ॥ वनस्थमपितापस्येयस्त्वामनुविधीयते ॥ ३३ ॥ नपित्र्यमनुवर्ततेमातृकंद्विपदाइति ॥ ख्यातोलोकप्रवादोयंभरतेनान्यथाकृतः ॥ ३४ ॥ भर्तादशरथोयस्याःसाधुश्चभरतःसुतः ॥ कथंनुसांबाकैकेयीतादृशीक्रूरदर्शिनी ॥ ३५ ॥ इत्येवंलक्ष्मणेवाक्यंस्नेहाद्वदतिधार्मिके ॥ परिवादंजनन्यास्तमसहन्राघवोऽब्रवीत् ॥ ३६ ॥ नतेऽबामध्यमातातगर्हितव्याकदाचन ॥ तामेवेक्ष्वाकुनाथस्यभरतस्यकथांकुरु ॥ ३७॥ निश्चितैवहिमेबुद्धिर्वनवासेदृढव्रता ॥ भरतस्नेहसंतप्ताबालिशीक्रियतेपुनः ॥ ३८ ॥ संस्मराम्यस्यवाक्यानिप्रियाणिमधुराणिच ॥ हृद्यान्यमृतकल्पानिमनःप्रह्लादनानिच ॥ ३९ ॥

बुद्धिवाली हुई ? ॥ ३५ ॥ महात्मा लक्ष्मणजीनें जब भाईके स्नेहके वश हो इस प्रकार कहा तब श्रीरामचंद्रजी माता कैकेयीकी वह निन्दा न सहते हुए कहनें लगे ॥ ३६ ॥ हे भइया ! मँझली माता कैकेयीकी निन्दा मत करो तुम केवल इक्ष्वाकुनाथ भरतजीकेही गुणगणोंका बखान करो ॥ ३७ ॥ यद्यपि हमारी बुद्धि एक मात्र वनवासमें निश्चित और दृढव्रत हुईहै तथापि भरतजीके स्नेहके वश होकर बावरीसी होगईहै ॥ ३८ ॥ भरतजीकी प्रिय मधुर हृदयको अमृतकी नांई सिंचन करनेवाली मनको आह्लाद देनेवाली वार्त्ता वार २ हमारे मनमें स्मरण

होरहीहै ॥ ३९ ॥ नहीं जानते कि कितनें दिनोंमें फिर महात्मा भरतजी और शत्रुघ्नजीसे तुम्हारे सहित हम मिलेंगे ! ॥ ४० ॥ रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी इस प्रकारसे विलाप करते २ भ्राता लक्ष्मण और सीताके सहित गोदावरी नदीपर पहुंचकर स्नान करते हुए ॥ ४१ ॥ फिर सबनें गोदावरीके जलसे पितृगणोंको देवतोंको तर्पण करके उदित सूर्य व और दूसरे देवताओंका स्तोत्र किया ॥ ४२ ॥ भगवान् भूतनाथ पार्वती और नन्दिके सहित स्नान करके जिस प्रकारसे शोभाको प्राप्त होते हैं सीताजी और लक्ष्मणजीके सहित नहाकर श्रीरामचन्द्रजीनेंभी वैसेही शोभा धारण की ॥४३॥ इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०आर० षोडशः सर्गः ॥१६॥ श्रीरामचन्द्रजी, सीताजी, व लक्ष्मणजी तीनों जन स्नान करके गोदा

कदाह्यहंसमेष्यामिभरतेनमहात्मना ॥ शत्रुघ्नेनचवीरेणत्वयाचरघुनंदन ॥४०॥ इत्येवंविलपंस्तत्रप्राप्यगोदावरीं नदीम् ॥ चक्रेभिषेकंकाकुत्स्थःसानुजःसहसीतया॥ ४१ ॥ तर्पयित्वाथसलिलैस्तैःपितॄन्दैवतानपि ॥ स्तुवंतिस्मोदितंसूर्यंदेवताश्चतथानघाः ॥ ४२ ॥ कृताभिषेकःसरराजरामःसीताद्वितीयःसहलक्ष्मणेन ॥ कृताभिषेकस्त्वगराजपुत्र्यारुद्रःसनंदिर्भगवानिवेशः ॥४३॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आदिकाव्येआरण्यकांडेषोडशःसर्गः ॥ १६ ॥ ७॥

कृताभिषेकोरामस्तुसीतासौमित्रिरेवच ॥ तस्माद्गोदावरीतीरात्ततोजग्मुःस्वमाश्रमम् ॥१॥ आश्रमंतदुपागम्य राघवःसहलक्ष्मणः ॥ कृत्वापौर्वाह्णिकंकर्मपर्णशालामुपागमत् ॥ २ ॥ उवाससुखितस्तत्रपूज्यमानोमहर्षिभिः ॥ सरामःपर्णशालायामासीनःसहसीतया ॥ ३ ॥ विरराजमहाबाहुश्चित्रयाचंद्रमाइव ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्राचकार विविधाःकथाः ॥ ४ ॥ तदासीनस्यरामस्यकथासंसक्तचेतसः ॥ तंदेशंराक्षसीकाचिदाजगामयदृच्छया ॥ ५ ॥

वरीके तीरसे आश्रमको लौटे ॥ १ ॥ और श्रीरामचन्द्रजीनें आश्रममें पहुँच कर लक्ष्मणजीके साथ प्रथम कालकी सब क्रिया कर पर्णशाला में प्रवेश किया ॥ २ ॥ और महर्षि लोगों से पूजे जाकर वहां सुखसे वास करनेंलगे उस काल सीताजीके सहित पर्णशालामें आसीन होनेंसे ॥ ३ ॥ महाबाहु रामचन्द्रजी; चित्रा नक्षत्र युक्त चन्द्रमा की समान शोभा पानें लगे। तिसके पीछे भ्राता लक्ष्मणजीके सहित रामचन्द्रजीनें अनेक प्रकारकी कथा वार्त्ता आरंभ करदी ॥ ४ ॥ इस प्रकारसे बैठे रहकर कथा वार्त्ता कहनेंमें लगे हुयेहैं कि इतनेंही में कोई राक्षसी

अपनी इच्छासे घूमतीहुई वहां आई ॥ ५ ॥ यह राक्षसी दशवदन रावणकी बहनथी नाम इसका शूर्पणखा था वह देवताओंकी समान
रामचन्द्रजीके निकट आकर उनको देखती हुई ॥ ६ ॥ उसनें देखा कि रामचन्द्रजीका वदन प्रदीप्तमान है बाहें घुटनोंतक आती हैं दोनों नेत्र
कमलदलकी समान बडे हैं चाल हाथीकी समान है शिर पर जटा धारण किये हुयेहैं ॥ ७ ॥ अंग प्रत्यंग अति कोमल हैं बल विक्रम
अपार है! शरीर राजलक्षणों करके युक्त है! वर्ण नीले कमलकी समान श्यामता लिये हुयेहैं, कोटि मदनकी समान सुन्दर हैं ॥ ८ ॥ इस प्रकार
साक्षात् इन्द्रकी समान श्रीरामचन्द्र जीको देखकर राक्षसी कामसे मोहित हुई । श्रीरामचन्द्रजीका वदन मण्डल श्रेष्ठथा! राक्षसीका मुख खरा
बथा रामचन्द्रजीका मध्य देश गोलाकार व राक्षसीका उदर अति बृहत् था ॥ ९ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके दोनों नेत्र अति विशाल व राक्षसी
सातुशूर्पणखानामदशग्रीवस्यरक्षसः ॥ भगिनीराममासाद्यददर्शत्रिदशोपमम् ॥ ६॥ दीप्तास्यंचमहाबाहुंपद्मपत्रा
यतेक्षणम् ॥ गजविक्रांतगमनंजटामंडलधारिणम् ॥ ७ ॥ सुकुमारंमहासत्त्वंपार्थिवव्यंजनान्वितम् ॥ राममिंदीवर
श्यामंकंदर्पसदृशप्रभम् ॥ ८ ॥ बभूवेंद्रोपमंदृष्ट्वाराक्षसीकाममोहिता ॥ सुमुखंदुर्मुखीरामंवृत्तमध्यंमहोदरी ॥ ९॥
विशालाक्षंविरूपाक्षीसुकेशंताम्रमूर्धजा ॥ प्रियरूपंविरूपासासुस्वरंभैरवस्वना ॥ १० ॥ तरुणंदारुणावृद्धादक्षिणं
वामभाषिणी ॥ न्यायवृत्तंसुदुर्वृत्ताप्रियमप्रियदर्शना॥११॥शरीरजसमाविष्टाराक्षसीराममब्रवीत्॥जटीतापसवेषेण
सभार्यःशरचापधृक् ॥१२॥आगतस्त्वमिमंदेशंकथंराक्षससेवितम्॥ किमागमनकृत्यंतेतत्त्वमाख्यातुमर्हसि॥१३॥
की आंखें अति बुरीथीं रामचन्द्रके अति श्रेष्ठ घूंघर वाले बालथे और राक्षसी के केश ताम्रवर्ण थे! श्रीरामचन्द्र जी प्रिय रूपवान् और
राक्षसी महाभयानक रूपथी श्रीरामचंद्रजीका अति मधुर स्वरथा और राक्षसीका स्वर नितान्त कर्कश भीषण और भयंकरथा ॥१०॥ श्रीराम
चंद्रजी युवाथे, व राक्षसी महावृद्धाथी, श्रीरामचंद्रजी अति मधुर वचन बोलनेंवाले, व राक्षसी अत्यन्त कर्कशभाषिणी थी, श्रीरामचंद्रजी न्याय
वृत्त, और राक्षसी दुर्वृत्तथी, श्रीरामचंद्रजी देखनें में जैसे प्यारे थे ! वह राक्षसी देखनें में वैसीही कुप्यारीथी ॥ ११ ॥ ऐसी शूर्पणखा महाका
मातुर होकर श्रीरामचंद्रजीसे बोली कि तुम जटा रखाये तपस्वीका वेष धारे धनुप बाण लिये स्त्री सहित ॥ १२ ॥ किस कारणसे राक्षसोंसे

सेवित देशमें आयेहो तुम्हारे यहां पर आनेका क्या प्रयोजन है? सो यथार्थ कहो ॥ १३ ॥ शत्रुओंके तपानेवाले श्रीरामचंद्रजी राक्षसी शूर्पणखाकी यह वार्त्ता सुनकर सरलता सहित कुछ न छिपाते हुए सब वर्णन करने लगे ॥ १४ ॥ श्रीरामचंद्रजी बोले कि देवताओंकी समान विक्रमवान दशरथजी नामक एक राजाथे हम उनके ज्येष्ठ पुत्रहैं लोकमें हमारा नाम रामहै ॥ १५ ॥ और इनका नाम लक्ष्मणहै, यह हमारे आज्ञाकारी छोटे भ्राताहैं, और यह विदेहकुमारी हमारी भार्या हैं इनका सीता ऐसा नामहै ॥ १६ ॥ पिता और माता कैकेयीके कहनेंसे धर्मके लाभकी आशा और धर्मकी रक्षा करनेंके कारण वनमें वास करनेंके लिये हम इस स्थानमें आयेहैं ॥ १७ ॥ इस समय यह

एवमुक्तस्तुराक्षस्याशूर्पणख्यापरंतपः ॥ ऋजुबुद्धितयासर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ १४ ॥ आसीद्दशरथोनामराजा त्रिदशविक्रमः ॥ तस्याहमग्रजःपुत्रोरामोनामजनैःश्रुतः ॥ १५ ॥ भ्रातायंलक्ष्मणोनामयवीयान्मामनुव्रतः ॥ इयं भार्याचवैदेहीममसीतेतिविश्रुता ॥ १६ ॥ नियोगात्तुनरेंद्रस्यपितुर्मातुश्चयंत्रितः ॥ धर्मार्थंधर्मकांक्षीचवनंवस्तुमिहागतः ॥ १७ ॥ त्वांतुवेदितुमिच्छामिकस्यत्वंकासिकस्यवा ॥ त्वंहितावन्मनोज्ञांगीराक्षसीप्रतिभासिमे ॥ १८ ॥ इहवाकिंनिमित्तंत्वमागताब्रूहितत्त्वतः ॥ साब्रवीद्वचनंश्रुत्वाराक्षसीमदनार्दिता ॥ १९ ॥ श्रूयतांरामतत्त्वार्थंवक्ष्यामिवचनंमम ॥ अहंशूर्पणखानामराक्षसीकामरूपिणी ॥ २० ॥ अरण्यंविचरामीदमेकासर्वभयंकरा ॥ रावणोनाम मेभ्रातायदितेश्रोत्रमागतः ॥ २१ ॥ प्रवृद्धनिद्रश्चसदाकुंभकर्णोमहाबलः ॥ विभीषणस्तुधर्मात्मानतुराक्षसचेष्टितः ॥ २२ ॥

हमारी इच्छा तुमको जाननेंकी हुईहै, तुम कौनहो किसकी बेटीहो; और किसकी स्त्रीहो! हमें तो ऐसा जान पडताहै कि तुम राक्षसोंका मन मोहने वालीहो ॥ १८ ॥ और तुम किसलिये यहां आई हो सो सत्यही सत्य कहो! यह वचन सुनकर वह मदनसे आतुर हुई राक्षसी बोली ॥ १९ ॥ हे रामचंद्र! तुम ठीक २ हमारा परिचय सुनो हम कहती हैं; हम शूर्पणखा नामक कामरूपा राक्षसी ॥ २० ॥ सबको भय उपजाती हुई अकेली इस वनमें घूमा करतीहैं हमारे भइयाका नाम रावणहै सो कदाचित् तुमने उसका वृत्तान्त व नाम सुनाही होगा ॥ २१ ॥ हमारे और दो भाइयोंका नाम कुम्भकर्ण और विभीषणहै कुंभकर्ण अति बलवान्है और सदा सोताही रहता है और विभीषण परम धार्मिक है राक्षसोंके चरित्र उसमें नहीं हैं ॥ २२ ॥

खर और दूषण यह दोनोंभी हमारे भ्राता रणमें बडे वीर्यवान् और बलशाली लोकमें प्रसिद्ध हैं ॥ २३ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी! तुमको प्रथम देखते ही हम उन सबको छोड छाँड तुम्हारा अपूर्व रूप देख पुरुषोत्तम जान प्रेमके मारे अपना पति बनानेंके लिये यहां आईहैं ॥२४॥ हममें बडा पराक्रमहै; और बल होनेके कारण जहां इच्छा होतीहै वहीं स्वच्छन्दतासे घूमती रहती हूं।सो तुम सदाके लिये हमारे स्वामी बेना। इस सीताको लेकर क्या करोगे? ॥ २५ ॥ यह सीता विकटाकार और कुरूपाहै; किसी भांतिभी यह तुम्हारे योग्य नहींहै हमको देखो; हमहीं रूपके

प्रख्यातवीर्यौचरणेभ्रातरौखरदूषणौ॥२३॥तानहंसमतिक्रांतारामत्वापूर्वदर्शनात् ॥समुपेतास्मिभावेनभर्तारंपुरुषोत्तमम् ॥ २४ ॥अहंप्रभावसंपन्नास्वच्छंदबलगामिनी॥ चिरायभवभर्तामेसीतयाकिंकरिष्यसि ॥ २५ ॥ विकृताचविरूपाचनसेयंसदृशीतव ॥ अहमेवानुरूपातेभार्यारूपेणपश्यमाम् ॥ २६ ॥ इमांविरूपामसतींकरालांनिर्णतोदरीम् ॥ अनेनसहतेभ्रात्राभक्षयिष्यामिमानुषीम् ॥ २७ ॥ ततःपर्वतशृंगाणिवनानिविविधानिच ॥ पश्यन्सहमयाकामीदंडकान्विचरिष्यसि ॥ २८ ॥ इत्येवमुक्तःकाकुत्स्थःप्रहस्यमदिरेक्षणाम् ॥ इदंवचनमारेभेवक्तुंवाक्यविशारदः ॥ २९ ॥इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेसप्तदशःसर्गः ॥ १७ ॥ ॥ छ ॥ तांतुशूर्पणखांरामःकामपाशावपाशिताम् ॥ स्वेच्छयाश्लक्ष्णयावाचास्मितपूर्वमथाब्रवीत् ॥ १ ॥ कृतदारोस्मिभवतिभार्येयंदयितामम ॥ त्वद्विधानांतुनारीणांसुदुःखाससपत्नता ॥ २ ॥

हेतु तुम्हारी भार्या बननेंके लायकहैं॥२६॥हम तुम्हारे इस भ्राताके सहित इस मानवी, कुरूपा, असती, कराला और नतोदरी सीताको भक्षण कर जांयगी॥२७॥तुम काम भोग में तत्पर होकर हमारे सहित और पर्वतोंके शृङ्गोंको देखते हुए दंडकारण्यमें विचरण करोगे॥२८॥वचन बोलनेमें चतुर रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी यह वचन सुन ऊंचे स्वरसे हँसकर क्रूरनयना शूर्पणखासे बोले॥ २९ ॥इत्यार्षे श्रीम० वा० आ०आ० सप्तदशः सर्गः ॥१७॥ श्रीरामचंद्रजीनें उपहास करनेंके लिये हँस कर मधुर वचनसे उस कामके फंदमें फँसी शूर्पणखासे कहा ॥ १ ॥ अयि कल्याणी! हमारा

विवाह होगयाहै यह सीताजी हमारी स्त्रीहै । सो तुम सरीखी स्त्रियोंको सौतका होना बहुतही दुःखका विषय है ॥ २ ॥ परन्तु हमारे यह छोटे भ्राता लक्ष्मणजी सच्चरित्र श्रीमान् वीर्यवान् और प्रियदर्शनहैं । इनका विवाह अभी नहीं हुआहै अथवा अकृतदार इनके निकट स्त्री नहींहैं अथवा इन्होंनें स्त्री परिग्रह नहीं कियाहै ॥ ३ ॥ इन्होंनें पहले कभी स्त्रीका सुख नहीं भोगा है इसी कारण यह विवाहार्थी हुएहैं और विशेष करके यह युवाहैं तिस्से यह सब प्रकारसे तुम्हारे लायक स्वामी होंगे ॥ ४ ॥ हे बडे नेत्रोंवाली! सूर्यकी प्रभा जिस प्रकार सुमेरुक भजना करतीहै, तुमभी वैसेही सौत रहित होकर हमारे इन भाईकी स्वामीकी भांतिसे सेवा करो ॥ ५ ॥ वह कामसे मोहित हुई राक्षसी राम

अनुजस्त्वेषमेभ्राताशीलवान्प्रियदर्शनः ॥ श्रीमानकृतदारश्चलक्ष्मणोनामवीर्यवान् ॥ ३ ॥ अपूर्वीभार्ययाचार्थी तरुणःप्रियदर्शनः ॥ अनुरूपश्चतेभर्तारूपस्यास्यभविष्यति ॥ ४ ॥ एनंभजविशालाक्षिभर्तारंभ्रातरंमम ॥ असपत्नावरारोहेमेरुमर्कप्रभायथा ॥ ५ ॥ इतिरामेणसाप्रोक्ताराक्षसीकाममोहिता ॥ विसृज्यरामंसहसाततोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ ६ ॥ अस्यरूपस्यतेयुक्ताभार्याहंवरवर्णिनी ॥ मयासहसुखंसर्वान्दंडकान्विचरिष्यसि ॥ ७ ॥ एवमुक्तस्तुसौमित्रीराक्षस्यावाक्यकोविदः ॥ ततःशूर्पणखींस्मित्वालक्ष्मणोयुक्तमब्रवीत् ॥ ८ ॥ कथंदासस्यमेदासीभार्याभवितुमिच्छसि ॥ सोहमार्येणपरवान्भ्रात्राकमलवर्णिनी ॥ ९ ॥ समृद्धार्थस्यसिद्धार्थानुदितामलवर्णिनी ॥ आर्यस्यत्वंविशालाक्षिभार्याभवयवीयसी ॥ १० ॥

चंद्रजीके यह वचन सुनकर तुरन्त लक्ष्मणजीके निकट जाकर कहनें लगी॥६॥मैं सब स्त्रियोंसे अधिक सुन्दरहूं तिससे तुम्हारे इस रूप लायकही भार्या बनूंगी तुम हमारे सहित सुखपूर्वक समस्त वनोंमें विचरण करोगे ॥ ७ ॥ उस राक्षसीसे ऐसा सुन वचन बोलनेंमें चतुर सुमित्रानंदन लक्ष्मणजी मन्द मन्द हँसकर उस्से यह युक्तियुक्त वचन बोले ॥ ८ ॥ अयि कमलवर्णनि ! हम दासहैं फिर किस कारण तुम हमारी स्त्री बनकर दासी बननेंकी अभिलाषिणी हुईहो ! हम इन बडे भ्राता रामचन्द्रजीके दासहैं ॥ ९ ॥ हे विशालनेत्रवाली ! तुम सिद्धकामा, और आनन्दिता

होकर सर्व भावसे संपत्तिमान् हमारे बडे भ्राता आर्य श्रीरामचन्द्रजीकी दूसरी स्त्री बनो क्योंकि उनसे विवाह करनेंमें तुम्हारी विधि भली मिलेगी। उनका श्यामरंग तुम्हारे वर्णसे कुछ २ मिलता हुआहै। परन्तु हमारा तुम्हारा रंग कुछभी नहीं मिलता ॥ १० ॥ फिर जब इनसे विवाह कर लेगी तो यह कुरूपा, असती, भय उपजानेंवाली, कृशोदरी, और वृद्धा भार्याको त्याग करके तुममेंही अनुरागी हो जांयगे ॥११॥ अयि वरवर्णिनि! अयि वरारोहे! कौन चतुर पुरुषहै जो तुम्हारे इस श्रेष्ठ रूपका अनादर करके मानुषीमें अनुरागीहो ? ॥ १२ ॥ जब लक्ष्मणजीनें इस प्रकार कहा तो बडे पेटवाली सबलोकोंको डरावनेंवाली निशाचरी शूर्पणखा उस हँसीकी बातको न समझकर लक्ष्मणजीकी बातको सत्यही

एतांविरूपामसतींकरालांनिर्णतोदरीम् ॥ भार्यांवृद्धांपरित्यज्यत्वामेवैषभजिष्यति ॥११॥ कोहिरूपमिदंश्रेष्ठंसंत्यज्यवरवर्णिनि ॥ मानुषीषुवरारोहेकुर्याद्भावंविचक्षणः॥१२॥ इतिसालक्ष्मणेनोक्ताकरालानिर्णतोदरी॥ मन्यतेतद्वचः सत्यंपरिहासाविचक्षणा॥१३॥ सारामंपर्णशालायामुपविष्टंपरंतपम् ॥ सातयासहदुर्धर्षमब्रवीत्काममोहिता ॥१४॥ इमांविरूपामसतींकरालांनिर्णतोदरीम् ॥ वृद्धांभार्यामवष्टभ्यनमांत्वंबहुमन्यसे ॥ १५ ॥ अद्येमांभक्ष्ययिष्यामि पश्यतस्तवमानुषीम् ॥ त्वयासहचरिष्यामिनिःसपत्नायथासुखम् ॥ १६ ॥ इत्युक्त्वामृगशावाक्षीमलातसदृशेक्षणा ॥ अभ्यगच्छत्सुसंक्रुद्धामहोल्कारोहिणीमिव ॥ १७ ॥ तांमृत्युपाशप्रतिमामापतंतींमहाबलः ॥ निगृह्यरामः कुपितस्ततोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ १८ ॥

समझी ॥ १३ ॥ तिसके पीछे वह मोहित होकर पर्णकुटीमें सीताजीके साथ बैठे हुये शत्रुओंके तपानेंवाले अजेय श्रीरामचन्द्रजीसे कहनें लगी ॥ १४ ॥ कि तुम इस बुढिया कुरूपा कृशोदरी, भय उपजानेंवाली असती स्त्रीमें अनुरागी होकर हमारा आदर सन्मान नहीं करते ॥ १५ ॥ तिससे तुम्हारे सामनेंही इसी मुहूर्त्तमें हम इस मानुषीको भक्षण करेंगी और सौतहीन होकर यथा सुखसे घूमा करेंगी ॥ १६ ॥ यह कहकर जलते अंगारेकी समान चमकते हुये नेत्रोंवाली निशाचरी महा क्रोधमें भरकर हरिणके बच्चोंकी समान नेत्रहैं जिनके ऐसी सीताजीके सामनेको दौडी जैसे रोहिणीकी ओर उल्का धावमानहो ॥ १७ ॥ उस यमकी फांसीकी समान राक्षसीको सामने आते देखकर श्रीरामचन्द्रजी क्रोधमें

भर उसको रोक लक्ष्मणजीसे बोले ॥ १८ ॥ हे लक्ष्मण ! क्रूर स्वभाववाले ! दुष्टोंके साथमें हँसी करनाभी किसी भांति कर्त्तव्य नहींहै । देखो इस परिहासके होनेंसेही जानकीजीको अपने जीवनमें संदेह हुआहै॥१९॥हे पुरुषश्रेष्ठ ! इस समय तुम इस कामसे मत्त हुई बडे पेटवाली कुरूपिणी असती राक्षसीको औरभी कुरूप करदो ॥ २०॥ महाबलवान् श्रीलक्ष्मणजीनें श्रीरामचन्द्रजीके यह वचन सुनकर महाक्रोधितहो तलवार उठाकर उनके सामनेही राक्षसी शूर्पणखाके नाक कान काट डाले ॥२१॥ नाक कान कटायेहुए घोर स्वभाववाली वह राक्षसी उस समय विकट

क्रूरैरनार्यैःसौमित्रेपरिहासःकथंचन ॥ नकार्यःपश्यवैदेहींकथंचित्सौम्यजीवतीम् ॥ १९ ॥ इमांविरूपामसतीमतिमत्तांमहोदरीम् ॥राक्षसींपुरुषव्याघ्रविरूपयितुमर्हसि॥ २० ॥ इत्युक्तोलक्ष्मणस्तस्याःक्रुद्धोरामस्यपश्यतः ॥ उद्धृत्यखड्गंचिच्छेदकर्णनासेमहाबलः ॥ २१ ॥ निकृत्तकर्णनासातुविस्वरंसाविनद्यच ॥ यथागतंप्रदुद्रावघोराशूर्पणखावनम् ॥ २२॥ साविरूपामहाघोराराक्षसीशोणितोक्षिता ॥ ननादविविधान्नादान्यथाप्रावृषितोयदः ॥ २३॥ साविक्षरंतीरुधिरंबहुधाघोरदर्शना ॥ प्रगृह्यबहुगर्जंतीप्रविवेशमहावनम् ॥ २४ ॥ ततस्तुसाराक्षससंघसंवृतंखरंजनस्थानगतंविरूपिता ॥ उपेत्यतंभ्रातरमुग्रतेजसंपपातभूमौगगनाद्यथाशनिः ॥ २५ ॥

शब्दसे चिल्लातीहुई जहांसे आईथी उसी वनकी ओर शीघ्रतासे दौडी ॥२२॥ अति भयंकर शरीरवाली कुरूपा वह राक्षसी शरीरमें रुधिर लगाये हुए वर्षा कालीन बादरकी समान विविध प्रकारके शब्द करनें लगी॥२३॥तिसके पीछे वह बांहे उठाकर घावोंसे रुधिर बहाती—गर्जती हुई महा वनमें प्रवेश कर गई ॥ २४ ॥ वहां प्रवेश करके उसी कुरूप रूपसे राक्षसगणोंसे घेरे हुए जनस्थानवासी उग्र तेजवान् अपनें भाई खरके

निकट जाकर आकाशसे वज्रपातकी समान पृथ्वीमें गिरी ॥२५॥ रुधिर जिसके सब अंगोंमें लगा हुआ भय और मोहसे जिसका चित्त ठिकानें नहीं ऐसी उस खरकी बहिन राक्षसी शूर्पणखानें खरसे स्त्री और भ्राताके सहित श्रीरामचन्द्र जीका वनमें आना और उनसे अपने नाक कान काटे जानेंका सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषानुवादे आर० अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥ राक्षसगण खर अपनी बहनको कुरूपा, शरीरमें रुधिर लगा हुआ और पृथ्वीमें पडा हुआ देखकर क्रोधसे संतापित हो, बूझनें लगा ॥ १ ॥ खरनें कहा, उठकर बैठो, वृत्तान्त तो कहो, मूर्च्छा और चित्त की चपलताको छोडो, साफ़ २ कहो कि किसनें तुमको ऐसा विरूप

ततःसभार्यंभयमोहमूर्छितासलक्ष्मणंराघवमागतंवनम् ॥ विरूपणंचात्मनिशोणितोक्षिताशशंससर्वंभगिनीखरस्य सा ॥ २६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेअष्टादशःसर्गः ॥ १८ ॥ ॥ ७ ॥ ॥
तांतथापतितांदृष्ट्वाविरूपांशोणितोक्षिताम् ॥ भगिनींक्रोधसंतप्तःखरःपप्रच्छराक्षसः ॥ १ ॥ उत्तिष्ठतावदाख्याहिप्रमोहंजहिसंभ्रमम् ॥ व्यक्तमाख्याहिकेनत्वमेवंरूपाविरूपिता ॥ २ ॥ कःकृष्णसर्पमासीनमाशीविषमनागसम् ॥ तुदत्यभिसमापन्नमंगुल्यग्रेणलीलया ॥ ३ ॥ कालपाशंसमासज्यकंठेमोहान्नबुध्यते ॥ यस्त्वामद्यसमासाद्यपीतवान्विषमुत्तमम् ॥ ४ ॥ बलविक्रमसंपन्नाकामगाकामरूपिणी ॥ इमामवस्थांनीतात्वंकेनांतकसमागता ॥ ५ ॥ देवगंधर्वभूतानामृषीणांचमहात्मनाम् ॥ कोयमेवंमहावीर्यस्त्वांविरूपांचकारह ॥ ६ ॥

किया? ॥ २॥ किसनें सामने बैठे हुए, कुण्डली बाँधे हुए निरपराध विषधर काले सांपको खेलसेही उंगली के पोरुएसे छेडकर जगायाहै? ॥३ ॥ उसनें तेरे साथ कुत्सित व्यापार कर अब भयंकर विष पिया, अपने गलेमें कालकी फांसी डाली सो वह अज्ञानी इस बात को जो विपत्ति उसके ऊपर पडेगी उसको नहीं समझा है ॥ ४ ॥ बल विक्रम सम्पन्न यमराजकी समान चलनेवाली कामरूपिणी यमसमान तुम किसके पास गईथी, कि जिसनें तुम्हारी यह दशा की है? ॥ ५ ॥ देव गन्धर्व भूत और महात्मा ऋषि लोगोंमें कौन ऐसा वीर्यवान् है कि—जिसनें

तुमको विरूप किया है। ॥ ६ ॥ देवताओंमें पाकशासन सहस्रलोचन, इन्द्रके सिवाय, ब्राह्मणमें हम ऐसा और किसीको नहीं देखते जो हमारा अप्रिय कार्य करे ॥ ७ ॥ हंस जिस प्रकार जलसे मिले हुए दूधको अलग कर पीलेताहै आज हम भी प्राण हरणकारी तीरोंके समूहसे उसके शरीरसे प्राण अलग करेंगे, कि जिसनें तुमको विरूप किया है ॥ ८ ॥ समर में मुझ करके शरजालद्वारा छिन्न मर्म किस मरे हुए पुरुषका फेन सहित रुधिर पृथ्वीनें पीनेंकी इच्छा की है। ॥ ९ ॥ लडाईमें मुझ करके मारे हुए किस पुरुषके देहसे मांस नोच २ कर आनंद सहित चील गिद्धादि पक्षी खांयगे ॥ १० ॥ हम संग्राममें जिसके ऊपर चढाई करेंगे उस हतभागेको, क्या देवता, क्या गन्धर्व, क्या

नहिपश्याम्यहंलोकेयःकुर्यान्ममविप्रियम् ॥ अमरेषुसहस्राक्षंमहेंद्रंपाकशासनम् ॥ ७ ॥ अद्याहंमार्गणैःप्राणानादास्येजीवितांतगैः ॥ सलिलेक्षीरमासक्तंनिष्पिबन्निवसारसः ॥ ८ ॥ निहतस्यमयासंख्येशरसंकृत्तमर्मणः ॥ सफेनंरुधिरंकस्यमेदिनीपातुमिच्छति ॥ ९ ॥ कस्यपत्ररथाःकायान्मांसमुत्कृत्यसंगताः ॥ प्रहृष्टाभक्षयिष्यंतिनिहतस्यमयारणे ॥ १० ॥ तंनदेवानगंधर्वानपिशाचानराक्षसाः ॥ मायापकृष्टंकृपणंशक्तास्त्रातुंमहाहवे ॥ ११ ॥ उपालभ्यशनैःसंज्ञातंमेशंसितुमर्हसि ॥ येनत्वंदुर्विनीतेनवनेविक्रम्यनिर्जिता ॥ १२ ॥ इतिभ्रातुर्वचःश्रुत्वाक्रुद्धस्यचाविशेषतः ॥ ततःशूर्पणखावाक्यंसबाष्पमिदमब्रवीत् ॥ १३ ॥ तरुणौरूपसंपन्नौसुकुमारौमहाबलौ ॥ पुंडरीकविशालाक्षौचीरकृष्णाजिनांबरौ ॥ १४ ॥ फलमूलाशनौदांतौतापसौब्रह्मचारिणौ ॥ पुत्रौदशरथस्यास्तांभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ १५ ॥ गंधर्वराजप्रतिमौपार्थिवव्यंजनान्वितौ ॥ देवौवादानवावेतौनतर्कयितुमुत्सहे ॥ १६ ॥

पिशाच, क्या राक्षस, कोई भी उद्धार करनेंको समर्थ नहीं होगा ॥ ११ ॥ इस समय तुम सहज २ सावधान होकर हमसे कहो कि किस दुष्ट व्यक्तिनें वनमें पराक्रम प्रकाश करके तुमको पराजय किया है। ॥ १२ ॥ महा क्रोधित हुए अपनें भाई खरके यह वचन सुनकर शूर्पणखा आंसू पोंछती हुई बोली ॥ १३ ॥ कि तरुण, रूपसम्पन्न, सुकुमार, महाबलवान् कमलनयन चीर व मृग चर्म धारण किये ॥ १४ ॥ कन्द मूल फलके खानेवाले, जितेन्द्रिय, तपस्वी, ब्रह्मचारी राजा दशरथके दो पुत्र राम, व लक्ष्मण ॥ १५ ॥ वह देखनेंमें गन्धर्वराजकी समान

हम्ने दृष्टः है
और राजलक्षणोंकरके युक्त जान पडतेहैं। वह दोनों जन देव हैं; अथवा दानव इसका कुछ निश्चय नहीं हो सकता ॥ १६ ॥ हमने देखाहै
कि वहां पर उन दोनों जनोंके साथ एकरूपवती सब भूषण धारण किये हुए युवाअवस्थाको प्राप्त एक स्त्रीभीहै ॥ १७ ॥ उन दोनों भाइयोंने
मिलकर उस स्त्रीके कहनेसे, जैसे कोई अनाथ कुलटा स्त्रीकी दुर्दशा करताहै, वही दशा हमारी की अर्थात् नाक कान काट डाले ॥ १८ ॥
हम कुटिल चरित्रवाली उस स्त्रीका और उन दोनों जनोंका झाग सहित रुधिर समरमें पान करनेकी इच्छा करतीहैं ॥ १९ ॥ तुम हमारी यह
पहली अभिलाषा पूर्ण करो हम संग्राममें उस स्त्रीका और उन दोनों का खून पियेंगी ॥ २० ॥ जब शूर्पणखाने यह वचन कहे तब खर

ताभ्यामुभाभ्यांसंभूयप्रम
तरुणीरूपसंपन्नासर्वाभरणभूषिता॥ दृष्टातत्रमयानारीतयोर्मध्येसुमध्यमा ॥ १७ ॥
दामधिकृत्यताम् ॥ इमामवस्थांनीताहंयथाऽनाथाऽसतीतथा ॥ १८॥ तस्याश्चानृजुवृत्तायास्तयोश्चहतयोरहम् ॥
सफेनंपातुमिच्छामिरुधिरंरणमूर्धनि ॥ १९ ॥ एषमेप्रथमःकामःकृतस्तत्रत्वयाभवेत् ॥ तस्यास्तयोश्चरुधिरंपिबे
यमहमाहवे ॥ २० ॥ इतितस्यांब्रुवाणायांचतुर्दशमहाबलान् ॥ व्यादिदेशखरःक्रुद्धोराक्षसानंतकोपमान् ॥ २१ ॥
मानुषौशस्त्रसंपन्नौचीरकृष्णाजिनांबरौ ॥ प्रविष्टौदंडकारण्यंघोरंप्रमदयासह ॥ २२ ॥ तौहत्वातांचदुर्वृत्तामुपावर्तितुमर्हथ ॥
इयंचभगिनीतेषांरुधिरंममपास्यति ॥ २३ ॥ मनोरथोयमिष्टोस्याभगिन्याममराक्षसाः ॥ शीघ्रंसंपाद्यतां
गत्वातौप्रमथ्यस्वतेजसा ॥२४॥ युष्माभिर्निहतौदृष्ट्वातावुभौभ्रातरौरणे ॥इयंप्रहृष्टामुदितारुधिरंयुधिपास्यति॥२५॥

ने क्रोधित होकर महाबलवान् [१४] राक्षसोंको आज्ञादी कि ॥ २१ ॥ शस्त्र लगाए हुए चीर व मृगचर्म पहरे हुए, दो मनुष्य घोर दण्डका
रण्यमें स्त्रीसहित आये हैं ॥ २२ ॥ सो तुम उन दोनों जनोंको और उस दुष्टा स्त्रीको मार करके लौट आओ क्योंकि हमारी यह बहन उन
का रुधिर पियेगी ॥ २३ ॥ हे राक्षसो! तुम लोग शीघ्र जाकर बलसे उन दोनोंजनोंको संहार करके हमारी बहनका यह अभीष्ट मनोरथ पूरा
करो ॥ २४ ॥ तुमनें युद्धमें उन दोनों भाइयोंको मार डालाहै सो देखकर हमारी यह बहन अतिशय संतोषित और हर्षित होकर युद्धके

स्थलमें उनका रुधिर पियेगी ॥ २५ ॥ इस प्रकारकी आज्ञा पाकर यह चौदह राक्षस वायुसे चलायमान मेघकी समान शूर्पणखाके साथ जहां श्रीरामचन्द्रजीथे, उस स्थानकी यात्रा करते हुए ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आर० एकोनविंशःसर्गः ॥ १९ ॥ तिसके पीछे शूर्पणखा श्रीरामचन्द्रजीके आश्रममें आई, और राक्षसोंको सीताजीके सहित उन दोनों भ्राताओंको दिखा दिया ॥ १ ॥ उन राक्षसों नें पर्णशालामें महाबलवान् श्रीरामचन्द्रजीको श्रीसीताजीके सहित बैठा और लक्ष्मणजीसे सेवित देखा ॥ २ ॥ श्रीमान् रघुनन्दन रामचन्द्रजी इन राक्षसोंको आया हुआ देखकर दीप्तिसे तेजमान भ्राता लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ३ ॥ हे लक्ष्मण! एक घडीभर तुम सीताजीके निक

इतिप्रतिसमादिष्टाराक्षसास्तेचतुर्दश ॥ तत्रजग्मुस्तयासार्धंघनावातेरिताइव ॥ २६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेएकोनविंशःसर्गः ॥१९ ॥ ॥छ॥ ॥ ततःशूर्पणखाघोराराघवाश्रममागता॥ राक्षसानाचचक्षेतौभ्रातरौसहसीतया ॥ १ ॥ तेरामंपर्णशालायामुपविष्टंमहाबलम् ॥ ददृशुःसीतयासार्धंलक्ष्मणेनापिसेवितम् ॥ २ ॥ तांदृष्ट्वाराघवःश्रीमानागतांस्तांश्चराक्षसान् ॥ अब्रवीद्भ्रातरंरामोलक्ष्मणंदीप्ततेजसम् ॥ ३ ॥ मुहूर्तंभवसौमित्रेसीतायाःप्रत्यनंतरः ॥ इमानस्यावधिष्यामिपदवीमागतानिह ॥ ४ ॥ वाक्यमेतत्ततःश्रुत्वारामस्यविदितात्मनः ॥ तथेतिलक्ष्मणोवाक्यंराघवस्यप्रपूजयन् ॥ ५ ॥ राघवोपिमहच्चापंचामीकरविभूषितम् ॥ चकारसज्जंधर्मात्मातानिरक्षांसिचाब्रवीत् ॥ ६ ॥ पुत्रौदशरथस्यावांभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ प्रविष्टौसीतयासार्द्धंदुश्चरंदंडकावनम् ॥ ७ ॥ फलमूलाशनौदांतौतापसौब्रह्मचारिणौ ॥ वसंतौदंडकारण्येकिमर्थमुपहिंसथ ॥ ८ ॥

ट रहो। इतनेमें हम इस राक्षसीके पक्षपाती इन सब राक्षसोंको मार डालें ॥ ४ ॥ तब विदितात्मा लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीके वचन श्रवण करकै तथास्तु कह उनकी बात शिरमाथे चढाते हुए ॥ ५ ॥ व इधर धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रभी सुवर्णभूषित महाधनुषमें रोदा चढाय इन सब राक्षसोंसे बोले ॥ ६ ॥ हम दो भ्राता हैं, नाम हमारा राम व लक्ष्मण है राजा दशरथजीके पुत्र हैं; हम सीता सहित इस दुर्गम दण्डकारण्यमें आयेहैं ॥ ७ ॥ हम फल मूल खानेवाले अपनी इन्द्रियोंको जीतेहुएहैं तपस्वी और धर्मचारी होकर दण्डकारण्यमें वास करतेहैं,

सो तुम किसकारण हमारें उपर चढाई करते हो॥८॥ यदि कहो कि तुम तपस्वी होकर धनुप क्यों धारण किये हो तौ इसका उत्तर यह है कि तुम लोग पापात्मा हो सो महावनमें ऋषि लोगोंकी आज्ञासे हम तुमको विनाश करनेके लिये धनुप धारणकर यहां आयेहैं ॥ ९ ॥ सन्तुष्ट होकर इसी स्थानमें खडे रहो, और आगे न बढो; हे निशाचरगण! यदि प्राणोंका मोह होवे, और तुम इसका प्रयोजन समझते हो तौ यहांसे लौट जाओ हम किसीको नहीं मारेंगे ॥ १० ॥ ब्रह्मघाती, शूलधारी, भयंकर यह चौदह राक्षस श्रीरामचंद्रजीके यह वचन श्रवण करके महाक्रोधित हो बोले ॥ ११ ॥ सबही लाल २ नेत्र कर रामचंद्रके प्रति कठोर वचन कहते थे वह सब श्रीरामचंद्रजीके परा

युष्मान्पापात्मकान्हंतुंविप्रकारान्महाहवे ॥ ऋषीणांतुनियोगेनसंप्राप्तःसशरासनः ॥ ९॥ तिष्ठतैवात्रसंतुष्टानोपावर्तितुमर्हथ ॥ यदिप्राणैरिहार्थोवोनिवर्तध्वंनिशाचराः ॥ १० ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाराक्षसास्तेचतुर्दश ॥ ऊचुर्वाचंसुसंक्रुद्धाब्रह्मघ्नाःशूलपाणयः ॥११॥ संरक्तनयनाघोरारामंसंरक्तलोचनम्॥परुषामधुराभाषंहृष्टादृष्टपराक्रमम् ॥१२॥ क्रोधमुत्पाद्यनोभर्तुःखरस्यसुमहात्मनः ॥ त्वमेवहास्यसेप्राणान्सद्योस्माभिर्हतोयुधि ॥१३॥ काहितेशक्तिरेकस्यबहूनांरणमूर्धनि ॥ अस्माकमग्रतःस्थातुंकिंपुनर्योद्धुमाहवे ॥ १४॥ एभिर्बाहुप्रयुक्तैश्चपरिघैःशूलपट्टिशैः ॥ प्राणांस्त्यक्ष्यसिवीर्यंचधनुश्चकरपीडितम् ॥ १५ ॥ इत्येवमुक्त्वासंरब्धाराक्षसास्तेचतुर्दश ॥ उद्यतायुधनिस्त्रिंशारामम्मेवाभिदुद्रुवुः ॥ १६ ॥ चिक्षिपुस्तानिशूलानिराघवंप्रतिदुर्जयम् ॥ तानिशूलानिकाकुत्स्थःसमस्तानिचतुर्दश ॥ १७ ॥

क्रमको नहीं जानतेथे इससे हर्षयुतहो मधुर वचन बोलनेंवाले श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ १२ ॥ तुमने हमारे प्रभु महात्मा खरको क्रोध उपजायाहै, इस कारण अभी युद्धमें हमारे हाथसे मारे जाकर तुमको शीघ्रही प्राण छोडने पडेंगे ॥ १३ ॥ तुम इकले हो और हम बहुतहैं, इसलिये लडाईमें युद्ध करना तो दूर रहै हमारे सामनें भी तुम खडे नहीं हो सकोगे ॥ १४ ॥ हमारे इन बाहोंसे परिघ, शूल, और पटासे घायल होकर तुमको प्राण, वीर्य और हाथमें धारण किया हुआ धनुप त्याग करना पडेगा ॥ १५ ॥ यह चौदह राक्षस इस भांतिसे कहकर महाक्रोधित हो आयुध और खड्ग उठाकर श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख दौडे ॥१६॥ और यह सब दुर्जय अस्त्र शस्त्र शूलादि श्रीरामचंद्रजीके ऊपर चलानें

लगे । उन चौदह राक्षसोंके चलाये हुए शूल आदि श्रीरामचंद्रजीनें ॥ १७ ॥ चौदहही स्वर्ण भूषित बाणोंसे काटकर फेंक दिये । तत्पश्चात् महातेजवान् श्रीरामचंद्रजीनें सूर्यकी समान प्रभावाले बाण ग्रहणकर ॥ १८ ॥ उनको धनुष पर चढाय महा क्रोधवान् हो चौदह राक्षसोंको ताक कर शिलपशाणित नामक बाण ॥ १९ ॥ छोडे, जिस प्रकार इन्द्र वज्र छोडतेहैं । यह सब नाराच अति वेगसे राक्षसोंकी छातियोंमें प्रवेश कर रुधिरमें सन ॥ २० ॥ पृथ्वीमें गिरे जिस प्रकार बँमईमें से सांप निकला करतेहैं।राक्षसभी इन सब बाणोंसे छिन्न भिन्न हृदयहो पृथ्वीमें गिरे । जैसे जड कटे हुए वृक्ष भूमिमें गिर पडतेहैं ॥२१॥ वह राक्षस कलेजेमें बाण लगनेके कारण रुधिरमें सराबोर हो रहेथे, प्राण जाते रहेथे

तावद्भिरेवचिच्छेदशरैःकांचनभूषितैः ॥ ततःपश्यन्महातेजानाराचान्सूर्यसन्निभान् ॥ १८ ॥ जग्राहपरमक्रुद्धश्चतुर्दशशिलाशितान् ॥ गृहीत्वाधनुरायम्यलक्ष्यानुद्दिश्यराक्षसान् ॥१९॥ मुमोचराघवोबाणान्वज्रानिवशतक्रतुः ॥ तेभित्त्वारक्षसांवेगाद्वक्षांसिरुधिरप्लुताः ॥ २० ॥ विनिष्पेतुस्तदाभूमौवल्मीकादिवपन्नगाः ॥ तैर्भग्नहृदयाभूमौभिन्नमूलाइवद्रुमाः ॥२१॥ निपेतुःशोणितस्नाताविकृताविगतासवः ॥ तान्भूमौपतितान्दृष्ट्वाराक्षसीक्रोधमूर्च्छिता २२ ॥ उपगम्यखरंसातुकिंचित्संशुष्कशोणिता ॥ पपातपुनरेवार्तासनिर्यासेववल्लरी॥ २३ ॥ भ्रातुःसमीपेशोकार्ताससर्जनिनदंमहत् ॥ सस्वरंमुमुचेबाष्पंविवर्णवदनातदा ॥ २४ ॥ निपातितान्प्रेक्ष्यरणेतुराक्षसान्प्रधाविताशूर्पणखापुनस्ततः ॥ वधंचतेषांनिखिलेनरक्षसांशशंससर्वंभगिनीखरस्यसा ॥ २५ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेविंशतितमःसर्गः ॥ २० ॥

उनकी सूरतें बिगडगईथीं ऐसा उन राक्षसोंको गिरा हुआ देखकर राक्षसी शूर्पणखा क्रोधसे अधीरा होकर ॥ २२ ॥ अपने भाई खरके पास जा फिर कातरहो गिर पडी उस समय उसके शरीरका रक्त कुछेक सूख गयाथा इस कारण वह गोंद लगी लताके समान दृष्टि आतीथी ॥ २३॥ राक्षसी अपने भ्राता खरके निकट शोकसे पीड़ितहो घोर चिल्लाने लगी और उदासीन मुख व विकट शब्दसे रोने लगी ॥ २४ ॥ खरकी बहन शूर्पणखा राक्षसी राक्षसोंको माराहुआ देख वेगसे दौडआकर खरसे बोली कि राक्षस सब मारे गये ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा

मायणे आदिकाव्ये वाल्मीकीये आरण्यकांडे विंशतितमःसर्गः ॥ २० ॥ अनर्थके निमित्त आईहुई शूर्पणखाको फिर पृथ्वीमें पडा देखकर खर क्रोधमें भर फिर जोरसे कहनें लगा ॥ १ ॥ कि हमनें तुम्हारा प्रिय कार्य करनेंके लिये मांस खानेवाले, चौदह राक्षसोंको आज्ञादीहै सो अब फिर तुम किस कारणसे रो रहीहो? ॥ २ ॥ वह राक्षस जो कि हमनें भेजेहैं सब हमारे अनुरागी भक्त और सदाही हित करनेंवालेहैं वह किसीके मारेसे मरनेंवाले नहींहैं और सबही अंतःकरणसे हमारी आज्ञाका पालन करते रहतेहैं ॥ ३ ॥ फिर तुम किस कारण हानाथ कह वार २ चिल्लाकर सर्पकी समान लोट रहीहो सो इसका क्या कारणहै! उसको मैं जानना चाहताहूं ॥ ४ ॥ हमसा रक्षक होनेंपरभी तुम

सपुनःपतितांदृष्ट्वाक्रोधाच्छूर्पणखांपुनः ॥ उवाचव्यक्तयांवाचातामनर्थार्थमागताम् ॥ १ ॥ मयात्विदानींशूरास्तेराक्षसाःपिशिताशनाः ॥ त्वत्प्रियार्थंविनिर्दिष्टाःकिमर्थंरुद्यतेपुनः ॥ २ ॥ भक्ताश्चैवानुरक्ताश्चहिताश्चममनित्यशः ॥ हन्यमानानहन्यंतेननकुर्युर्वचोमम ॥३॥ किमेतच्छ्रोतुमिच्छामिकारणंयत्कृतेपुनः ॥हानाथेतिविनर्दंतीसर्पवच्चेष्टसेक्षितौ ॥ ४ ॥ अनाथवद्विलपसिकिंनुनाथेमयिस्थिते ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठमामैवंवैक्लव्यंत्यज्यतामिति ॥५॥ इत्येवमुक्तादुर्धर्षाखरेणपरिसांत्विता ॥ विमृज्यनयनेसास्रेखरंभ्रातरमब्रवीत् ॥ ६ ॥ अस्मीदानीमहंप्राप्ताहतश्रवणनासिका ॥ शोणितौघपरिक्लिन्नात्वयाचपरिसांत्विता ॥ ७॥ प्रेषिताश्चत्वयाशूराराक्षसास्तेचतुर्दश ॥ निहंतुंराघवंघोरंमत्प्रियार्थंसलक्ष्मणम् ॥ ८॥ तेतुरामेणसामर्षाःशूलपट्टिशपाणयः ॥ समरेनिहताःसर्वेसायकैर्मर्मभेदिभिः ॥ ९ ॥

किस कारण अनाथकी समान विलाप करतीहो! उठो और शोकका त्याग करो ॥ ५ ॥ खरनें जब इस प्रकार कहकर विशेष भांतिसे शूर्पणखाको समझाया बुझाया तब दुर्द्धर्ष शूर्पणखा आंसूभरे नेत्रोंको पोंछ बोली ॥ ६ ॥ कि हमारे नाक कान दोनोंही गयेहैं और मैं खूनसे भीज गईहूं इस अवस्थामें पहले की समान फिर तुम्हारे पास आईहूं और तुमने हमको बहुत समझाया बुझाया ॥ ७ ॥ परन्तु तुमनें जो हमारा प्रिय कार्य करनेंकी कामनासे लक्ष्मण सहित भयानक रामचंद्रको मार डालनेंके लिये जो वीर चौदह राक्षस भेजेथे ॥ ८ ॥ रामचंद्रनें मर्मभेदी

बाणोंको छोडकर शूल, पटा आदि, हाथमें लिये हुए क्रोधपरायण, उन सबही राक्षसोंको युद्धमें मारडाला॥९॥ अतिशय तेजस्वी राक्षसोंको क्षण भरमेंही पृथ्वी पर पडा हुआ देख और रामचंद्रका यह भारी कार्यदेख मुझको महा भय लगताहै॥१०॥मैं डरी हुईहूं, उत्कंठितहूं, और विषादित होकर सबही जगह भय देखती हुई तुम्हारी शरणमें आईहूं ॥११॥ तुम किस कारणसे हमारा उद्धार नहीं करते? हम विषाद रूप मगर और गोहोंसे भरे हुए तरङ्ग उठते हुए गंभीर शोक सागरमें डूब रहींहैं॥१२॥जो मांस खानेवाले राक्षस हमारे साथ तुमनें भेजेथे उन सबको रामचंद्रनें तीखे बाणोंसे मारडाला ॥१३॥ यदि हमारे ऊपर और उन सब राक्षसोंकी सन्तानोंके ऊपर तुमको दयाहो, यदि रामचंद्रसे युद्ध करनेकी शक्ति और

तान्भूमौपतितान्दृष्ट्वाक्षणेनैवमहाजवान् ॥ रामस्यचमहत्कर्ममहांस्त्रासोभवन्मम ॥ १० ॥ सास्मिभीता समुद्विग्नाविषण्णाचनिशाचर ॥ शरणंत्वांपुनःप्राप्तासर्वतोभयदर्शिनी ॥ ११ ॥ विषादनक्राध्युषितेपरित्रासोर्मिमालिनि ॥ किंमांनत्रायसेमग्नांविपुलेशोकसागरे ॥ १२ ॥ एतेचनिहताभूमौरामेणनिशितैःशरैः ॥ येचमेपदवींप्राप्ताराक्षसाःपिशिताशनाः ॥ १३ ॥ मयितेयद्यनुक्रोशोयदिरक्षःसुतेषुच ॥ रामेणयदिशक्तिस्तेतेजोवास्तिनिशाचर ॥ १४ ॥ दंडकारण्यनिलयंजहिराक्षसकंटकम्॥यदिराममामित्रघ्नंनत्वमद्यवधिष्यसि ॥१५ ॥तवचैवाग्रतःप्राणांस्त्यक्ष्यामि निरपत्रपा॥बुद्ध्याहमनुपश्यामिनत्वंरामस्यसंयुगे ॥ १६ ॥ स्थातुंप्रतिमुखेशक्तःसबलोपिमहारणे ॥ शूरमानीनशूरस्त्वंमिथ्यारोपितविक्रमः॥१७॥अपयाहिजनस्थानात्त्वरितःसहबांधवः॥जहित्वंसमरेमूढान्यथातुकुलपांसन॥१८॥

तेज तुममेंहो ॥ १४ ॥ तब तो राक्षस कुलके कण्टक रूप दंडकारण्यवासी रामचंद्रको आजही मारडालोयदि शत्रु ओंके मारनेवाले रामचंद्रको तुम आजही संहार न कर डालोगे ॥ १५॥ तो हम लाजरहित होकर तुम्हारे सामनेंही प्राण त्याग करेंगी क्योकि हमें अपनी बुद्धिसे जान पडता है कि तुम संग्राममें ॥ १६॥ रामचंद्रके सामने खडे न हो सकोगे यद्यपि तुम्हारे साथ चतुरंगिनी सेनाभी भारीहै और तुम अपनेको शूर कहकर अभिमानभी करतेहो किन्तु वास्तवमें तुम शूर नहीं हो और तुम्हारा विक्रमभी मिथ्या कहनेकेही लियेहै ॥ १७ ॥ हे मूढ ! हे कुलाधम,

तुम इस मुहूर्त्तही बन्धु बान्धव कुटुम्ब सहित इस जनस्थानसे भाग जाओ ॥ १८ ॥ नहीं तो राम और लक्ष्मणको संग्रा
संहार करो, राम लक्ष्मण मनुष्यहैं यदि उनको मारनेकीभी सामर्थ्य तुममें नहींहै तो हीनवीर्य दुर्बल होकर किस प्रकारसे यहां रह
सकोंगे ॥ १९ ॥ रामचंद्रके तेजसे निन्दितहो थोडेही समयमें तुम्हारा नाश हो जायगा । दशरथकुमार रामचंद्र स्वभावसेही अतिशय तेज
मानहैं ॥ २० ॥ और उनके भाई लक्ष्मणभी महावीर्यवानहैं कि जिन्होंनें हमारे नाक कान काट डालेहैं इस प्रकारसे वह बडे उदरवाली राक्षसी
बहुत भांतिसे विलाप कर॥२१॥अपने भ्राता खरके निकट शोकके मारे व्याकुलहो अचेतन होगई और दुःखसे व्याकुलहो दोनों हाथोंसे छाती पीटर

मानुषौतौनशक्तोषिहंतुंवैरामलक्ष्मणौ ॥ निःसत्त्वस्याल्पवीर्यस्यवासस्तेकीदृशस्त्विह ॥ १९॥ रामतेजोभिभूतो
हित्वंक्षिप्रंविनशिष्यसि ॥ सहितेजःसमायुक्तोरामोदशरथात्मजः ॥ २० ॥ भ्राताचास्यमहावीर्योयेनचास्मि
विरूपिता ॥ एवंविलप्यबहुशोराक्षसीप्रदरोदरी ॥ २१ ॥ भ्रातुःसमीपेशोकार्तानष्टसंज्ञाबभूवह ॥ कराभ्यामुद
रंहत्वारुरोदभृशदुःखिता ॥२२॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआ॰आरण्यकांडेएकविंशःसर्गः ॥२१॥ एवमा
धर्षितःशूरःशूर्पणख्याखरस्ततः ॥ उवाचरक्षसांमध्येखरःखरतरंवचः ॥ १॥ तवापमानप्रभवःक्रोधोयमतुलोमम ॥
नशक्यतेधारयितुंलवणांभइवोल्बणम् ॥२॥ नरामंगणयेवीर्यान्मानुषंक्षीणजीवितम् ॥ आत्मदुश्चरितैःप्राणान्हतो
योद्यविमोक्ष्यते ॥ ३ ॥ बाष्पःसंधार्यतामेषसंभ्रमश्चविमुच्यताम् ॥ अहंरामंसहभ्रात्रानयामियमसादनम् ॥ ४ ॥

कर रोनें लगी ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ॰ आर॰ एकविंशः सर्गः ॥२१॥ शूर्पणखानें जब क्रोधमें भरकर इस प्रकार खरका
तिरस्कार किया तब तेजस्वभाववाला शूरवीर खर राक्षसोंकी सभाके बीचमें उससे कठोर वचन कहने लगा ॥१॥ कि तुम्हारा अपमान होनेसे जो
क्रोध हमको हुआहै उसकी तुलना नहींहै घावमें छोडे हुए नमकीन जलकी समान इस क्रोधको धारण करनेंकी हममें शक्ति नहींहै ॥२॥ रामचंद्र
और लक्ष्मण तो मनुष्यहैं. हममें जो पराक्रमहै उससे हम रामको कुछ नहीं गिनते उस रामनें जो कुकर्म कियाहै उसके पापसे वह आजही
निहत होकर प्राण त्याग करेगा ॥ ३ ॥ इसकारण तुम रोना धोना छोड डरका त्याग करो हम अवश्यही रामके सहित लक्ष्मणको यमपुरीमें

पठावेंगे ॥ ४ ॥ अयि राक्षसि ! अब मरणोन्मुख रामचंद्रजी जब हमारे शरसे घायल होकर मर जायगा तब तुम उसका लाल २ गरम २ रुधिर पान करना ॥ ५ ॥ शूर्पणखा खरके मुखसे निकले हुए यह वचन सुन मोहसे अधिक हर्षमें भर फिर उस राक्षसश्रेष्ठ खरकी बडाई करनें लगी ॥ ६ ॥ जब निशाचरी शूर्पणखानें प्रथम निन्दाकी और फिर प्रशंसाकी तब तत्क्षण खर दूषण नामक अपने सेनापतिसे बोला॥ ७ ॥ कि हे शुभदर्शन ! जो सब भांतिसे हमारा प्रिय अनुष्ठान करनेंवालेहैं जो कभी युद्धमें पीठ नहीं दिखाते अति वेगवान् भयंकर चौदह हजार राक्षस ॥ ८ ॥ जो लोगोंकी हत्या करके सदा खेला करतेहैं जिनका पराक्रम भयानक और जिनका वर्ण नीले बादरकी समानहै ऐसे राक्षसोंको

परश्वधहतस्याद्यमंदप्राणस्यभूतले ॥ रामस्यरुधिरंरक्तमुष्णंपास्यसिराक्षसि ॥ ५ ॥ संप्रहृष्टावचःश्रुत्वाखरस्य वदनाच्च्युतम् ॥ प्रशशंसपुनर्मौर्ख्याद्भ्रातरंरक्षसांवरम् ॥ ६ ॥ तयापरुषितःपूर्वंपुनरेवप्रशंसितः ॥ अब्रवीद्दूषणं नामखरःसेनापतिंतदा ॥७॥ चतुर्दशसहस्राणिममचित्तानुवर्तिनाम् ॥ रक्षसांभीमवेगानांसमरेष्वनिवर्तिनाम् ॥८॥ नीलजीमूतवर्णानांलोकहिंसाविहारिणाम् ॥ सर्वोद्योगमुदीर्णानांरक्षसांसौम्यकारय ॥ ९ ॥ उपस्थापयमेक्षिप्रं रथंसौम्यधनूंषिच ॥ शरांश्चचित्रान्खड्गांश्चशक्तीश्चविविधाःशिताः ॥ १० ॥ अग्रेनिर्यातुमिच्छामिपौलस्त्यानां महात्मनाम् ॥ वधार्थंदुर्विनीतस्यरामस्यरणकोविद ॥११॥ इतितस्यब्रुवाणस्यसूर्यवर्णमहारथम् ॥ सदश्वैःशबलै र्युक्तमाचचक्षेथदूषणः ॥ १२ ॥ तंमेरुशिखराकारंतप्तकांचनभूषणम् ॥ हेमचक्रमसंबाधंवैदूर्यमयकूबरम् ॥ १३ ॥

सब प्रकारसे सजाकर हमारे सामनें लाओ ॥ ९ ॥ इसके सिवाय शीघ्र चलनेंवाला रथ, धनुष, विचित्र बाणसमूह तेजधारवाली अनेक भांति की शक्तियें और खड्गभी ले आओ ॥ १० ॥ हे रणपंडित ! महानुभव राक्षसोंके प्रथमही; हम महात्मा पुलस्त्यवंशसे उत्पन्न, जो रामचंद्र राक्षसोंको मारनेंके लिये आयेहैं उन दुर्विनीत रामचंद्रके वधार्थ संग्राममें जानेंकी इच्छा करतेहैं ॥ ११ ॥ खरनें जब इस प्रकार कहा तो दूषण तुरन्तही विचित्र वर्णवाले श्रेष्ठ घोडे जिसमें जुते हुए सूर्यकी समान चमकता हुआ रथ खरके समीप ले आया ॥ १२ ॥ इस रथका आकार मेरु

पर्वतकी समान सब गहनें इसमें तपाए हुए सुवर्णके लगेथे पहिये सुवर्णके बनेथे और दोनों गुम्मजभी वैदूर्य मणिके बनेथे ॥ १३ ॥ जिसमें मछली पुष्प, द्रुम, शैल, चन्द्रकान्त मणि यह सुवर्णके लगे हुएथे और सुवर्णकेही पक्षि और तारागणभी इस रथमें जड रहेथे ॥ १४ ॥ छोटी २ पेटिया, इसमें लगी हुईथीं खर क्रोधमें भरा हुआ, कुछभी विलम्ब न करके ध्वजा पताका युक्त अच्छे घोडों करके चलाये जाते हुए रथपर सवार हुआ ॥ १५ ॥ खरको सवार हुआ देखकर दूषणनें रथ चर्म आदि हथियार लिये, ध्वजा युक्त बडी सेनाको युद्धके लिये कूच करनेंकी आज्ञादी उसनें जब सब राक्षसोंसे इस प्रकार कहा ॥ १६ ॥ तब भयंकर चर्म ध्वजा युक्त वह राक्षसोंकी सेना महावेगसे महाकुलाहल मचाती हुई जन

मत्स्यैःपुष्पैर्द्रुमैःशैलैश्चंद्रकांतैश्चकांचनैः॥मांगल्यैःपक्षिसंघैश्चताराभिश्चसमावृतम् ॥१४॥ध्वजनिस्त्रिंशसंपन्नंकिंकिणीवरभूषितम् ॥ सदश्वयुक्तंसोमर्षादारुरोहखरस्तदा ॥ १५ ॥ खरस्तुतन्महत्सैन्यंरथचर्मायुधध्वजम् ॥निर्यातेत्यब्रवीत्प्रेक्ष्यदूषणःसर्वराक्षसान् ॥ १६ ॥ ततस्तद्राक्षसंसैन्यंघोरचर्मायुधध्वजम् ॥ निर्जगामजनस्थानान्महानादंमहाजवम् ॥ १७ ॥ मुद्गरैःपट्टिशैःशूलैःसुतीक्ष्णैश्चपरश्वधैः ॥ खड्गैश्चक्रैरथस्थैश्चभ्राजमानैःसतोमरैः ॥ १८ ॥शक्तिभिःपरिघैर्घोरैरतिमात्रैश्चकार्मुकैः ॥ गदासिमुसलैर्वज्रैर्गृहीतैर्भीमदर्शनैः ॥ १९ ॥ राक्षसानांसुघोराणांसहस्राणिचतुर्दश ॥ निर्यातानिजनस्थानात्खरचित्तानुवर्तिनाम् ॥ २० ॥ तांस्तुनिर्धावतोदृष्ट्वाराक्षसान्भीमदर्शनान् ॥ खरस्याथरथःकिंचिज्जगामतदनंतरम् ॥ २१ ॥ ततस्ताञ्छबलानश्वांस्तप्तकांचनभूषितान् ॥ खरस्यमतमाज्ञायसारथिःपर्यचोदयत् ॥ २२ ॥

स्थानसे चली ॥ १७ ॥ उस सेनामें राक्षस मुद्गर, पटा, तेजशूल, फरशे, खड्ग, चक्र, व तोमरादि शस्त्र धारण किये शोभायमान थे ॥ १८ ॥ शक्ति, परिघ, महा भयंकर धनुष, गदा, तलवार, मूसल और भयंकर अस्त्र शस्त्र ग्रहण कर राक्षस जनस्थानसे निकले ॥ १९ ॥ इस प्रकार खरके मनकी बात करनेंवाले बडे भयंकर स्वरूप चौदह हजार राक्षस जनस्थानसे बाहर हुए ॥ २० ॥ वह भयंकर राक्षस जब महा वेगसे दौडे तब इसको देखकर खरका रथभी कुछ तिनके निकटही पहुँचा ॥ २१ ॥ सारथिनें खरकी आज्ञा जानकर विचित्र वर्णवाले सुवर्णके गहनें पहनें

घोडोंको शीघ्रतासे चलाया ॥२२॥ उस समय रिपुघाती खरका चलताहुआ रथ अपनें शब्दसे सहसा दिशा विदिशाओंको भर देता हुआ ॥२३॥ अतिबलवान् वह बडे स्वरवाला खर क्रोधमें भर यमराजकी समान शत्रु संहार करनेंमें विशेष शीघ्रतायुक्त हो ओले वर्षानेंवाले महा मेघकी समान गर्जताहुआ सारथीसे बोला कि रथ जल्दी २ चलाओ ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आ० द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥ जब इस प्रकारके वह भयंकर राक्षसोंकी सेना युद्ध करनेंके लिये चली, तब गंधर्वकी समान धूसरवर्ण महा डरावने मेघ आकाशमें उठकर

संचोदितोरथःशीघ्रंखरस्यरिपुघातिनः ॥ शब्देनापूरयामासदिशःसप्रदिशस्तथा ॥ २३ ॥ प्रवृद्धमन्युस्तुखरःखर
स्वरोरिपोर्वधार्थंत्वरितोयथांतकः ॥ अचूचुदत्सारथिमुन्नदन्पुनर्महाबलोमेघइवाश्मवर्षवान् ॥ २४ ॥ इत्यार्षेश्रीम
द्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेद्वाविंशःसर्गः ॥ २२ ॥ ॥ छ ॥ तत्प्रयातंबलंघोरमशिवंशोणितो
दकम् ॥ अभ्यवर्षन्महाघोरस्तुमुलोगर्दभारुणः ॥ १ ॥ निपेतुस्तुरगास्तस्यरथयुक्तामहाजवाः ॥ समेपुष्पचिते
देशेराजमार्गेयदृच्छया ॥ २ ॥ श्यामंरुधिरपर्यंतंबभूवपरिवेषणम् ॥ अलातचक्रप्रतिमंप्रतिगृह्यदिवाकरम् ॥ ३ ॥
ततोध्वजमुपागम्यहेमदंडंसमुच्छ्रितम् ॥ समाक्रम्यमहाकायस्तस्थौगृध्रःसुदारुणः ॥ ४ ॥ जनस्थानसमीपेच
समाक्रम्यखरस्वनाः ॥ विस्वरान्विविधान्नादान्मांसादान्मृगपक्षिणः ॥ ५ ॥

कडा शब्द करके रुधिर मिला हुआ जल वर्षानें लगे ॥१॥ खरके रथमें जो तेज चलनेवाले घोडे जुत रहेथे वह राजमार्गमें चलनेंके समय सहसा कुल बिछी हुई बराबर हुई पृथ्वीमें गिर पडे ॥ २ ॥ सूर्य मंडलके चारों ओर श्यामवर्णका घेरा बन गया इस घेरका बाहरी भाग अरुण वर्ण और आकार अंगार चक्रकी समान गोलथा ॥ ३ ॥ इसके पीछे बडे आकारवाला भयंकर गिद्ध बडा ऊंचो सुवर्णकी रथकी ध्वजाके निकट आकर पंख उठाकर उसके ऊपर बैठ गया ॥ ४ ॥ विकट शब्दकारी, मांस खानेंवाले पशु पक्षीगण जनस्थानके समीप आकर भयंकर शब्द करके

चिल्लाने लगे ॥ ५ ॥ भयंकर सियार पूर्व दिशामें राक्षसोंका अमंगलदायक भयंकर घोर शब्द करने लगे ॥ ६ ॥ मतवाले हाथियोंकी समान भयंकर मूर्तिवाले मेघ जलको समान रुधिरकी वर्षा करके वहांके सब आकाशको एक वारही छालेते हुए ॥ ७ ॥ रुवें खडा करनेंवाला ऐसा घोर अंधकार छाया कि दिशा विदिशा समस्त एक साथही उस्से ढकगईं, फिर कुछभी दृष्टि न आया ॥ ८ ॥ संध्या खूनसे भीगे वस्त्रकी समान वर्ण धारण करके अकालमेंही प्रकाशित होगई भयंकर पशुपक्षीगणोने खरके सन्मुख मुख करके कठोर स्वरसे चिल्लाना आरंभ किया ॥ ९ ॥

व्याजह्रुरभिदीप्तायांदिशिवैभैरवस्वनम् ॥ अशिवंयातुधानानांशिवाघोरामहास्वनाः ॥ ६ ॥ प्रभिन्नगजसंकाशास्तोयशोणितधारिणः ॥ आकाशंतदनाकाशंचक्रुर्भीमांबुवाहकाः ॥ ७ ॥ बभूवतिमिरंघोरमुद्धतंरोमहर्षणम् ॥ दिशोवाप्रदिशोवापिसुव्यक्तंनचकाशिरे ॥ ८ ॥ क्षतजार्द्रसवर्णाभासंध्याकालंविनाबभौ ॥ खरंचाभिमुखंनेदुस्तदाघोरामृगाःखगाः ॥ ९ ॥ कंकगोमायुगृध्राश्चचुक्रुशुर्भयशंसिनः ॥ नित्याशिवकरायुद्धेशिवाघोरनिदर्शनाः ॥ १० ॥ नेदुर्बलस्याभिमुखंज्वालोद्गारिभिराननैः ॥ कबंधःपरिघाभासोदृश्यतेभास्करांतिके ॥ ११ ॥ जग्राहसूर्यंस्वर्भानुरपर्वणिमहाग्रहः ॥ प्रवातिमारुतःशीघ्रंनिष्प्रभोभूद्दिवाकरः ॥ १२ ॥ उत्पेतुश्चविनारात्रिंताराःखद्योतसप्रभाः ॥ संलीनमीनविहगानलिन्यःशुष्कपंकजाः ॥ १३ ॥

सफेद चील शियार और गिद्धगण खरको भय उपजाते हुए ऊंची आवाजसे शब्द करनेंलगे और युद्धमें जिनका बोलना महा अमंगलका उपजानेंवालाहे ऐसी शृगालियांभी भय उपजाती हुईं ॥ १० ॥ सनोक सामनें घोर शोर करनें लगीं सूर्यके निकट परिघाकार कबंध दिखलाई देनेलगा ॥ ११ ॥ महा ग्रह राहुनें विना अमावस्या और पर्वकालकेही सूर्यको ग्रस लिया पवन प्रचंड चलनें लगी सूर्यकी दीप्ति जाती रही ॥ १२ ॥ और रात्रि न होनें परभी तारागण पट वीजनेंकी समान चमककर उदय हुए तालावोंके कमल सूख गये मछलीभी सागर सरोवरोंमें हो लीन होगई

और पक्षीभी नाशको प्राप्त होगये ॥ १३ ॥ उस समय सब वृक्ष फल फूलों करके रहित होगये और विना पवनके चलनेंपरभी महा धूरि उडनें लगी बादल लाल होगये ॥ १४ ॥ उस काल मैंना पक्षी सिखाये हुए शब्दोंको त्याग करके (चीची कूचि इत्यादि) अर्थ रहित शब्द करनें लगे घोर भयावन उल्कायें यह कांप करके पृथ्वीपर गिरनें लगीं॥१५॥और वन उपवन और पर्वत सहित पृथ्वी कांपनें लगी धीमान् खर रथमें बैठकर गर्जन करनेलगा ॥ १६ ॥ खरकी बांई भुजा बहुतही कांपनें लगीं स्वर बिगड गया इस प्रकार इधर उधर देखते २ उसके दोनों नेत्रोंमें आंसू भर आये ॥ १७ ॥ उस खरके शिरमें वारंवार पीर होनें लगी तथापि मोहके मारे वह संग्राममें जानेसे नहीं लौटा इन सब रोमहर्षण

तस्मिन्क्षणेबभूवुश्चविनापुष्पफलैर्द्रुमाः ॥ उद्धूतश्चविनावातंरेणुर्जलधरारुणः ॥ १४ ॥ चीचीकूचीतिवाश्यंतोबभूवुस्तत्रसारिकाः ॥ उल्काश्चापिसनिर्घोषानिपेतुर्घोरदर्शनाः ॥ १५ ॥ प्रचचालमहीचापिसशैलवनकानना ॥ खरस्यचरथस्थस्यनर्दमानस्यधीमतः ॥ १६ ॥ प्राकंपतभुजःसव्यःस्वरश्चास्यावसज्जत ॥ सास्रासंपद्यतेदृष्टिःपश्यमानस्यसर्वतः ॥१७॥ ललाटेचरुजाजातानचमोहान्न्यवर्तत ॥ तान्समीक्ष्यमहोत्पातानुत्थितान्रोमहर्षणान् ॥ १८ ॥ अब्रवीद्राक्षसान्सर्वान्प्रहसन्सखरस्तदा॥महोत्पातानिमान्सर्वानुत्थितान्घोरदर्शनान् ॥१९॥ नाचिंतयाम्यहंवीर्याद्बलवान्दुर्बलानिव ॥ ताराअपिशरैस्तीक्ष्णैःपातयेयंनभस्तलात् ॥ २० ॥ मृत्युंमरणधर्मेणसंक्रुद्धोयोजयाम्यहम् ॥ राघवंतंबलोत्सिक्तंभ्रातरंचापिलक्ष्मणम् ॥२१॥ अहत्वासायकैस्तीक्ष्णैर्नोपावर्तितुमुत्सहे॥यन्निमित्तंतुरामस्यलक्ष्मणस्यविपर्ययः ॥ २२ ॥

महाउत्पातोंको उपस्थित हुआ देख ॥ १८ ॥ खर हँसता २ सब राक्षसोंसे बोला कि यह तो घोर दिखाई देनेवाले महाउत्पात इस समय हो रहेहैं इनको देखकर मैं ॥ १९ ॥ ऐसे कुछ नहीं समझता कि बलवान जिस प्रकार दुर्बलोंको नहीं गिनता वैसेही हमारे पराक्रमसे इन उत्पातोंको मनमें स्थान नहीं देते । जो हम क्रुद्ध होवें तो तीखे बाणोंसे आकाश मंडलसे तारागणोंकोभी पृथ्वीपर गिरादें॥ २० ॥ हम क्रोधित हों तो यमराजकीभी मृत्यु शोध लावें; इस्से हम बलसे दर्पित रामचंद्रको उसके भाई लक्ष्मण सहित ॥ २१ ॥ तीखे बाणोंके आघातसे विना मार

डाले हुए नहीं लौटेंगे । जिसके लिये रामचंद्र व लक्ष्मणकी विपरीत बुद्धि हुई और उन्होंनें इसके नाक कान काट डाले ॥ २२ ॥ ऐसी हमारी बहन शूर्पणखा भ्राताके सहित रामका रुधिर पीकर सफल मनोरथ होवे। और हमें पराजय होनेका कुछ डरही नहीं क्योंकि आजतक हम किसी संग्राममें पहले नहीं हारेहैं ॥ २३ ॥ सो तुम लोगोंको ज्ञातहीहै इस कारण हम मिथ्या नहीं कहते जो हम क्रुद्ध होजांय तौ मत्त ऐरावत हाथीपर असवार इन्द्रको ॥२४॥ यद्यपि रणके मध्य उसके हाथमें वज्रभी हो तथापि मार डालें फिर राम लक्ष्मणके मारनेंमें क्या बडी बातहै वह तो मनुष्यहैं यह कहकर खर गर्जने लगा जिसे श्रवणकर राक्षसोंकी बडीभारी फौज॥२५॥अतुलित हर्षित हुई, यद्यपि यमके फंदमें फँसीथी। इस ओर युद्धके देख

सकामाभगिनीमेऽस्तुपीत्वातुरुधिरंतयोः ॥ नकचित्प्राप्तपूर्वोमेसंयुगेषुपराजयः ॥ २३ ॥ युष्माकमेतत्प्रत्यक्षंनानृतंकथयाम्यहम् ॥ देवराजमपिक्रुद्धोमत्तैरावतगामिनम् ॥ २४ ॥ वज्रहस्तंरणेहन्यांकिंपुनस्तौचमानवौ ॥ सातस्य गर्जितंश्रुत्वाराक्षसानांमहाचमूः ॥ २५ ॥ प्रहर्षमतुलंलेभेमृत्युपाशावपाशिता ॥ समेयुश्चमहात्मानोयुद्धदर्शनकांक्षिणः॥ २६ ॥ ऋषयोदेवगंधर्वाःसिद्धाश्चसहचारणैः ॥ समेत्यचोचुःसहितास्तेन्योन्यंपुण्यकर्मणः ॥ २७ ॥ स्वस्तिगोब्राह्मणेभ्यस्तुलोकानांयेचसंमताः ॥ जयतांराघवोयुद्धेपौलस्त्यान्रजनीचरान् ॥ २८ ॥ चक्रहस्तोयथाविष्णुःसर्वानसुरसत्तमान् ॥ एतच्चान्यच्चबहुशोब्रुवाणाःपरमर्षयः ॥ २९ ॥ जातकौतूहलास्तत्रविमानस्थाश्चदेवताः ॥ ददृशुर्वाहिनींतेषांराक्षसानांगतायुषाम् ॥ ३० ॥

नेंकी वासनासे महात्मा लोग आये ॥ २६ ॥ उनमें ऋषिगण, देवगण गन्धर्वगण, व सिद्ध लोग सबही आये । वह पुण्य कर्म करनेंवाले वहां सबही एकत्र होकर परस्पर कहनें लगे ॥ २७ ॥ कि, गौ, ब्राह्मण सुखसे रहैं इसके सिवाय औरभी सब लोकसम्मत प्राणियोंका मंगल होवे और श्रीरघुनंदन श्रीरामचंद्रजी युद्धमें पुलस्त्य वंशी राक्षसोंको जीतें ॥ २८ ॥ जैसे चक्रधारी विष्णुजीनें समस्त असुरश्रेष्ठोंको जीताथा । परमर्षिगण ऐसे, व औरभी अनेक प्रकारके वचन परस्पर कहनें लगे ॥ २९ ॥ विमानमें बैठे हुए देवता लोग कौतूहलके वश होकर मृत्यु जिनकी

निकट आईहै ऐसे राक्षसोंको बडी सेनाको देखनें लगे ॥ ३० ॥ इस समय खर रथपर चढा हुआ सेनाके अगले भागमें हुआ, तब उसके अगल बगल श्येनगामी, पृथुश्याम, यज्ञ शत्रु, विहङ्गम, ॥ ३१ ॥ दुर्जय, परवीराक्ष, परुष, कालिकार्मुक, हेममाली, महामाली, सर्वास्य, और रुधिराशन। यह बारह महावीर राक्षस खरको घेरे हुए जातेथे ॥ ३२ ॥ महाकपाल, स्थूलाक्ष, प्रमाथ और त्रिशिरा, यह चार राक्षस दूषण सेनापतिके पीछे२चले जातेथे ३३ ॥ जिस प्रकार ग्रहजाल चंद्र और सूर्यको प्राप्त होताहै, वैसेही भीम वेग सुदारुण, महा बलवान् राक्षसगण संग्रामका अभिलाष किये हुए सहसा राजपुत्र रामचंद्र और लक्ष्मणजीके निकट पहुंचे ॥ ३४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकिये आदिकाव्ये आरण्यकांडे त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

रथेनतुखरोवेगात्सैन्यस्याग्राद्विनिःसृतः ॥ श्येनगामीपृथुग्रीवोयज्ञशत्रुर्विहंगमः ॥ ३१ ॥ दुर्जयःपरवीराक्षःपरुषः कालकार्मुकः ॥ हेममालीमहामालीसर्पास्योरुधिराशनः ॥ द्वादशैतेमहावीर्याःप्रतस्थुरभितःखरम् ॥ ३२ ॥ महाकपालःस्थूलाक्षःप्रमाथस्त्रिशिरास्तथा ॥ चत्वारएतेसेनाग्रेदूषणंपृष्ठतोऽन्वयुः ॥ ३३ ॥ साभीमवेगासमराभिकांक्षिणी सुदारुणाराक्षसवीरसेना ॥ तौराजपुत्रौसहसाभ्युपेतामालांग्रहाणामिवचंद्रसूर्यौ ॥ ३४ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेत्रयोविंशःसर्गः ॥ २३ ॥ ॥ छ ॥ ॥ आश्रमंप्रतियातेतुखरेखरपराक्रमे ॥ तानेवौत्पातिकान्रामःसहभ्रात्राददर्शह ॥ १ ॥ तानुत्पातान्महाघोरान्रामोदृष्ट्वात्यमर्षणः ॥ प्रजानामहितान्दृष्ट्वावाक्यंलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ २ ॥ इमान्पश्यमहाबाहोसर्वभूतापहारिणः ॥ समुत्थितान्महोत्पातान्संहर्तुंसर्वराक्षसान् ॥ ३ ॥ अमीरुधिरधारास्तुविसृजंतेखरस्वनाः ॥ व्योम्निमेघाविवर्ततेपरुषागर्दभारुणाः ॥ ४ ॥

इस भांति तीक्ष्ण पराक्रमवाला खर जब रामचंद्रजीके आश्रमकी ओर चला तब श्रीरामचंद्रजीनें भ्राता लक्ष्मणके सहित वह उत्पात जोकि खरके चलनेंके समय हुएथे वह सब देखे ॥ १ ॥ श्रीरामचंद्रजी प्रजागणोंके अमंगलकारी महाघोर इन सब उत्पातोंको देखकर अस्वस्थ चित्तसे लक्ष्मणजीसे बोले ॥ २ ॥ हे महाबाहो ! सब प्राणियोंके प्राणनाश करनें वाले यह बडे भारी उत्पात राक्षस कुलका संहार करनेंके लिये होरहेहैं सो तुम देखो ॥ ३ ॥ गर्दभकी समान धूसर वर्णवाले बादलोंका समूह इस आकाशमें इधर उधर दौडकर बडे शब्दसे गर्ज२रुधिर वर्षाताहै ॥ ४ ॥

हमारे सब बाणोंसे धुआं निकलताहै, सो यह युद्ध होनेंका आनंद मना रहेहैं; और स्वर्ण जिनकी पीठमें लगा हुआहै ऐसे धनुषभी विचलित हो रहेहैं ॥ ५ ॥ वनचर पक्षीगण जिस प्रकारसे शब्द करतेहैं इससे राक्षसोंको भय और प्राणसंशय आकर उपस्थित हुआहै ॥ ६॥ अब शीघ्रही महा युद्ध होगा, इसमें कुछभी संदेह नहींहै। परन्तु हे वीर! हमारा यह दहना हाथ वार २ फडककर हमारे जयकी सूचना करताहै ॥ ७ ॥ हे शूर! हमारी जय और शत्रुओंकी पराजय निकट आय पहुंचीहै, तुम्हारा वदनभी प्रसन्न और प्रभायुक्त देख पडताहै ॥ ८ ॥ हे लक्ष्मण! युद्ध करनेंके लिये तैयार हुए जिन पुरुषोंका मुख मलीन हो जाताहै, इससे उन लोगोंकी आयुका क्षय होताहै ॥ ९ ॥ राक्षसोंके घोर और

सधूमाश्चशराःसर्वेममयुद्धाभिनंदिताः ॥ रुक्मपृष्ठानिचापानिविचेष्टंतेविचक्षण ॥ ५ ॥ यादृशाइहकूजंतिपक्षिणो वनचारिणः ॥ अग्रतोनोभयंप्राप्तंसंशयोजीवितस्यच ॥ ६ ॥ संप्रहारस्तुसुमहान्भविष्यतिनसंशयः ॥ अयमाख्या तिमेबाहुःस्फुरमाणोमुहुर्मुहुः ॥७॥ सन्निकर्षेतुनःशूरजयंशत्रोःपराजयम् ॥ सुप्रभंचप्रसन्नंचतववक्त्रंहिलक्ष्यते॥८॥ उद्यतानांहियुद्धार्थंयेषांभवतिलक्ष्मण ॥ निष्प्रभंवदनंतेषांभवत्यायुःपरिक्षयः ॥ ९ ॥ रक्षसांनर्दतांघोषःश्रूयतेयंम हाध्वनिः ॥ आहतानांचभेरीणांराक्षसैःक्रूरकर्मभिः ॥१०॥ अनागतविधानंतुकर्तव्यंशुभमिच्छता ॥ आपदाशंक मानेनपुरुषेणविपश्चिता ॥११॥ तस्माद्गृहीत्वावैदेहींशरपाणिर्धनुर्धरः ॥ गुहामाश्रयशैलस्यदुर्गांपादपसंकुलाम्॥१२॥ प्रतिकूलितुमिच्छामिनहिवाक्यमिदंत्वया ॥ शापितोममपादाभ्यांगम्यतांवत्समाचिरम् ॥ १३ ॥

गंभीर गर्जनका यह शब्दभी अब सुनाई आताहै। व उन क्रूर कर्म करनेंवाले राक्षसोंके भेरीकी ध्वनिभी अब सुनाई आतीहै ॥१०॥ कल्याणके चाहनेवाले पंडित पुरुष विपत्तिकी शंका रहनेसे प्रथमही उस आनेवाली विपत्तिका ऐसा उपाय करतेहैं कि जिस्से वह विपत्ति निकट न आवै ॥ ११ ॥ इस कारण तुम धनुष धारण करके जानकीजीको ले वृक्षोंकरके युक्त दुर्गम पर्वतकी कन्दरामें चले जाओ ॥ १२ ॥ तुम हमारे इन वचनोंके प्रतिकूल आचरण मत करना। वत्स! हम तुमको अपने चरणोंकी सौगन्ध देतेहैं कि तुम शीघ्रही जानकीको लेकर गिरिगुहामें

चले जाओ ॥ १३ ॥ तुम शूर और बलवान्हो. निश्चय इन राक्षसोंको वधकर सकतेहो इसमें सन्देह नहींहै परन्तु हम आपही इन सर्व निशाचरोंके मार डालनेंकी इच्छा करतेहैं ॥ १४ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा तब लक्ष्मणजी सीताजीके सहित शर और चाप ग्रहण करके दुर्गम पर्वतकी कन्दरामें चले गये ॥ १५ ॥ जब जानकीजीके साथ लक्ष्मणजी पर्वतकी कन्दरामें चले गये, तब श्रीरामचंद्रजी बडे हर्षित हुए और कवच व बाण रघुनंदनजीनें ग्रहण किया ॥ १६ ॥ अग्निवर्ण वाले कवचके धारण करनेंसे श्रीरामचंद्रजी अन्धकारमध्यमेंसे उठे हुए महा अग्निकी समान जान पडनें लगे ॥ १७ ॥ तत्पश्चात् वीर्यवान् श्रीरामचंद्रजी धनुषको उठाय, बाणोंको ग्रहण कर प्रत्यंचाकी टंकारके शब्दसे दशोंदिशा

त्वंहिशूरश्चबलवान्हन्याएतान्नसंशयः ॥ स्वयंनिहंतुमिच्छामिसर्वानेवनिशाचरान् ॥ १४ ॥ एवमुक्तस्तुरामेणल
क्ष्मणःसहसीतया ॥ शरानादायचापंचगुहांदुर्गांसमाश्रयत् ॥ १५ ॥ तस्मिन्प्रविष्टेतुगुहांलक्ष्मणेसहसीतया ॥
हंतनिर्युक्तमित्युक्त्वारामःकवचमाविशत् ॥ १६ ॥ सतेनाग्निनिकाशेनकवचेनविभूषितः ॥ बभूवरामस्तिमिरेम
हानग्निरिवोत्थितः ॥ १७ ॥ सचापमुद्यम्यमहच्छरानादायवीर्यवान् ॥ संबभूवास्थितस्तत्रज्यास्वनःपूरयन्दि
शः ॥ १८ ॥ ततोदेवाःसगंधर्वाःसिद्धाश्चसहचारणैः ॥ समेयुश्चमहात्मानोयुद्धदर्शनकांक्षया ॥ १९ ॥ ऋषयश्चम
हात्मानोलोकेब्रह्मर्षिसत्तमाः ॥ समेत्यचोचुःसहितास्तेन्योन्यंपुण्यकर्मणः ॥२०॥ स्वस्तिगोब्राह्मणानांचलोकानांचे
तिसंस्थिताः ॥ जयतांराघवोयुद्धेपौलस्त्यान्रजनीचरान् ॥ २१ ॥ चक्रहस्तोयथायुद्धेसर्वानसुरपुंगवान् ॥ एवमुक्त्वा
पुनःप्रोचुरालोक्यचपरस्परम् ॥ २२ ॥

ओंको पूर्ण करते हुए भली भांतिसे दृढहो वहां खडे होगये ॥ १८ ॥ उस समय महात्मा देवगण, गन्धर्वगण, सिद्धगण, और चारण गण संग्राम देखनेंकी अभिलाषसे वहां आये ॥ १९ ॥ लोकमें जो ब्रह्मर्षि प्रसिद्धहैं वह सब महर्षिभी वहां आये वह सब पुण्य कर्म करनेंवाले एकत्र होकर परस्पर मिल कहनें लगे ॥ २० ॥ गौ, ब्राह्मण व और सब लोकोंका सब प्रकारसे मंगलहो और श्रीरामचंद्रजी युद्धमें पुलस्त्यवंशीय निशाचरोंको जीतें, ॥ २१ ॥ जिस प्रकार श्रीविष्णुजीनें चक्र हाथमें लेकर असुर श्रेष्ठोंको हरायाथा। इस प्रकार कहकर वह फिर परस्पर अवलोकन

करते हुए कहनेंलगे ॥ २२ ॥ कि भयंकर कर्म करनेंवाले राक्षस तो चौदह हजार [१४०००] हैं, और धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी इकलेहैं; सो इस्से कह नहीं सकते कि किस प्रकार युद्ध होगा ॥ २३ ॥ इस प्रकारसे राजर्षिगण, सिद्धगण, विद्याधरादि समस्त देवयोनि गण प्रधान २ ब्रह्मर्षिगण कौतूहलाकांत चित्त किये वहां खडेथे ॥ २४ ॥ महा तेजवान श्रीरामचंद्रजीको समर स्थलमें अकेला खड़ा देख, प्राणिमात्रही भयके मारे दुःखी हुए कि न जानें महाराजको आज कैसा परीश्रम पडेगा और कैसे इन १४००० हजार दुष्टोंसे लडेंगे ? ॥ २५ ॥ महात्मा रुद्रजी जब क्रोध करतेहैं और उनका रूप जैसा होजाताहै, वैसाही क्लेशरहित कर्म करनेंवाले श्रीरामचंद्रजीका रूप होगया जिसके समान विकराल

चतुर्दशसहस्राणिरक्षसांभीमकर्मणाम्॥एकश्चरामोधर्मात्माकथंयुद्धंभविष्यति ॥२३॥इतिराजर्षयःसिद्धाःसगणाश्च द्विजर्षभाः॥ जातकौतूहलास्तस्थुर्विमानस्थाश्चदेवताः ॥२४॥ आविष्टंतेजसारामंसंग्रामशिरसिस्थितम् ॥ दृष्ट्वासर्वाणिभूतानिभयाद्विव्यथिरेतदा ॥ २५ ॥ रूपमप्रतिमंतस्यरामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ बभूवरूपंक्रुद्धस्यरुद्रस्येवमहात्मनः ॥ २६ ॥ इतिसंभाष्यमाणेतुदेवगंधर्वचारणैः ॥ ततोगंभीरनिर्ह्रादंघोरचर्मायुधध्वजम् ॥ २७ ॥ अनीकंयातुधानानांसमंतात्प्रत्यपद्यत॥वीरालापान्विसृजतामन्योन्यमभिगच्छताम्॥२८॥ चापानिविस्फारयतांजृंभतांचाप्यभीक्ष्णशः ॥ विप्रघुष्टस्वनानांचदुंदुभींश्चाभिनिघ्नताम् ॥ २९ ॥ तेषांसुविपुलःशब्दःपूरयामासतद्वनम् ॥ तेनशब्देनवित्रस्ताास्त्रासितावनचारिणः ॥ ३० ॥ दुद्रुवुर्यत्रनिःशब्दंपृष्ठतोनावलोकयन ॥ तच्चानीकंमहावेगंरामंसमनुवर्तत ॥ ३१ ॥

रूप और नहींथा ॥२६ ॥ आकाशमें देव गन्धर्व और चारण लोग ऐसा कहही रहेहैं कि इतनेंमें महा गंभीर शब्द करती, अति घोर ढाल खड्गादि हथियार लिये ॥ २७ ॥ चारोंओरसे राक्षसोंकी सेना अनी वनी ठनी आ पहुँची, जो वीरपनेकी वार्त्ता आपसमें कर रहींथी ॥ २८ ॥ उस सेनाके कोई २ लोग धनुषकी प्रत्यंचा खेंच २ वजाते कोई वार २ जंभाई लेते कोई ऊँचे स्वरसे चिल्लाते और कोई नगाडोंकोही वजातेथे ॥ २९ ॥ इस सब सेनाके राक्षसोंका ऐसा घोर शब्द हुआ कि जिस्से वह वन भर गया और उस शब्दसे वनचारी पशु पक्षीभी घवडा गये ॥३०॥ और लौटकर पीछेको न देखतेहुए जिस जगह वह शब्द श्रवणगोचर न होवै वहांको भागे। व इसओर राक्षसी सेना धूम धामसे श्रीरामचंद्रजीके

निकट आय पहुँची ॥ ३१ ॥ उस सेनाके वीरगण अनेक प्रकारके हथियार धारण कियेथे, वह समुद्र समान उफनती चली आतीथी समरपंडित श्रीरघुनंदन रामचंद्रजीनें नेत्र डाल चारों ओर निहारातो॥३२॥युद्ध करनेंको खरकी सेना, उनकीसोंही चली आतीहै, तब श्रीरामचंद्रजीनें धनुष को उठाय, और तरकसमेंसे बाण समूहको ग्रहणकर ॥ ३३ ॥ राक्षस कुलका संहार करनेंके लिये महाक्रोध किया, उस समय श्रीरामचंद्रजीका ऐसा विकट स्वरूप होगया मानों प्रलयकालकी अग्निहो॥३४॥वन देवता लोग उनका वह तेजवान स्वरूप देखकर बडेही व्यथित हुए क्योंकि उन्हों ने वह भयावना रामचन्द्रजीका रूप काहेको देखाथा।परन्तु दक्षका यज्ञ विनाश करनेंको तैयार महादेवजीकी समान श्रीरामचन्द्रजीकी वह क्रोधभरी

धृतनानाप्रहरणंगंभीरंसागरोपमम् ॥ रामोपिचारयंश्चक्षुःसर्वतोरणपंडितः ॥ ३२ ॥ ददर्शखरसैन्यंतद्युद्धायाभिमुखोगतः॥ वितत्यचधनुर्भीमंतूण्याश्चोद्धृत्यसायकान् ॥ ३३ ॥ क्रोधमाहारयत्तीव्रंवधार्थंसर्वरक्षसाम् ॥ दुष्प्रेक्ष्यश्चाभवत्क्रुद्धोयुगांताग्निरिवज्वलन् ॥३४॥ तंदृष्ट्वातेजसाविष्टंप्राव्यथन्वनदेवताः ॥तस्यरुष्टस्यरूपंतुरामस्यदद्दृशेतदा ॥ दक्षस्येवक्रतुंहंतुमुद्यतस्यपिनाकिनः ॥ ३५ ॥ तत्कार्मुकैराभरणैरथैश्चतद्वर्मभिश्चाग्निसमानवर्णैः ॥ बभूवसैन्यंपिशिताशनानांसूर्योदयेनीलमिवाभ्रजालम् ॥ ३६ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०आरण्यकांडेचतुर्विंशःसर्गः ॥ २४ ॥

अवष्टब्धधनुंरामंक्रुद्धंतंरिपुघातिनम् ॥ ददर्शाश्रममागम्यखरःसहपुरःसरैः ॥ १ ॥ तंदृष्ट्वासगुणंचापमुद्यम्यखरनिःस्वनम् ॥ रामस्याभिमुखंसूतंचोद्यतामित्यचोदयत् ॥ २ ॥ सखरस्याज्ञयासूतस्तुरगान्समचोदयत् ॥ यत्ररामोमहाबाहुरेकोधुन्वन्धनुःस्थितः ॥ ३ ॥

मूर्त्ति उस समय उन सबनें देखीथी ॥ ३५ ॥ जैसे नीले रंगके बादर सूर्योदयमें शोभा पातेहैं। राक्षससेनाभी अग्नि सम वर्ण, कवच, रथ, आभरण और धनुष युक्त होकर उस काल वैसीही शोभा पाने लगी ॥ ३६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे चतुर्विंशःसर्गः ॥ २४ ॥ अपने साथियोंके साथ आश्रममें आकर खरनें शत्रुओंके मारनेंवाले श्रीरामचन्द्रजीको क्रोधमें भरे और धनुष ग्रहण किये देखा ॥१॥ ऐसा देखकर उसनें कठोर प्रत्यंचा युक्त धनुष उठाकर सारथिसे ऊंचे स्वरसे कहा कि रामचंद्रके सामनें रथ लेचलो ॥ २ ॥ सारथिनें खरकी आज्ञा

नुसार जहां महाबाहु श्रीरामचंद्रजी धनुषपर टंकार देते हुए इकले खडेथे वहांपर घोडोंको चलाया ॥३॥ खरको रामचंद्रजीके आगे जाता हुआ
देखकर उसके मंत्री श्येनगम्यादि बारह राक्षस उसके चारों ओर हो लिये ॥ ४ ॥ तब रथपर चढा हुआ खर दुर्विनीत राक्षसोंके बीचमें ऐसा
शोभित होताथा, जैसे ताराओंके बीचमें प्रदीप्त मंगल ग्रह शोभित होताहै ॥ ५ ॥ अनन्तर वह खर श्रीरामचंद्रजीके ऊपर युद्धमें हजार बाण
छोडकर महा शब्दसे चिल्लानें लगा ॥ ६ ॥ तिसके पीछे सब निशाचर क्रोधित होकर भयंकर धनुषधारी, निवारण करनेंके योग्य श्रीरामचंद्र
जीको ताककर विविध भांतिके शर वर्षानें लगे ॥ ७ ॥ वह राक्षस सेना, युद्धमें क्रोधितहो अनेक २ लोहेके मुन्दर, शूल, फांसी, तलवार, और

तंतुनिष्पतितंदृष्ट्वासर्वतोरजनीचराः ॥ मुंचमानामहानादंसचिवाःपर्यवारयन् ॥४॥ सतेषांयातुधानानांमध्येरथग
तःखरः ॥ बभूवमध्येताराणांलोहितांगइवोद्धतः ॥ ५ ॥ ततःशरसहस्रेणराममप्रतिमौजसम् ॥ अर्दयित्वामहाना
दंननादसमरेखरः ॥६॥ ततस्तंभीमधन्वानंक्रुद्धाःसर्वेनिशाचराः ॥ रामंनानाविधैःशस्त्रैरभ्यवर्षंतदुर्जयम् ॥ ७ ॥
मुद्गरैरायसैःशूलैःप्रासैःखड्गैःपरश्वधैः ॥ राक्षसाःसमरेशूरंनिजघ्नूरोषतत्पराः ॥ ८॥ तेबलाहकसंकाशामहाकायाम
हाबलाः ॥ अभ्यधावंतकाकुत्स्थंरथैर्वाजिभिरेवच ॥ ९ ॥ गजैःपर्वतकूटाभैरामंयुद्धेजिघांसवः॥ तेरामेशरवर्षाणि
व्यसृजन्रक्षसांगणाः ॥ १० ॥ शैलेंद्रमिवधाराभिर्वर्षमाणामहाघनाः ॥ सर्वैःपरिवृतोरामोराक्षसैःक्रूरदर्शनैः ॥११॥
तिथिष्विवमहादेवोवृतःपारिषदांगणैः ॥ तानिमुक्तानिशस्त्राणियातुधानैःसराघवः ॥ १२ ॥

फरसे आदिकसे श्रीरामचंद्रजीके ऊपर प्रहार करनेंलगे ॥ ८ ॥ फिर वह बडे २ शरीरवाले महाबलवान्, मेघ समान निशाचर गण,
रथ, घोडे, हाथियोंपर चढ २ युद्धमें श्रीरामचन्द्रजीको मार डालनेंके लिये उनके पीछे दौडे ॥ ९ ॥ उनसे कुछ राक्षस पर्वतोंके शृंग समान
आकारवाले हाथियोंपर चढकर श्रीरामचंद्रजीको युद्धमें मार डालनेंके लिये आयेथे, इस कारण वह सब रामचंद्रजीपर बाणोंकी वर्षा करनें
लगे॥१०॥जैसे मेघमाला पर्वतोंपर वर्षा करतीहै, वैसेही बाणवर्षा उन निशाचरोंने श्रीरामचंद्रजीके ऊपर की, सब राक्षसोंके मध्य जानकी जीवन
कैसे शोभित होतेथे॥११॥जैसे प्रदोषकी यामिनीयोंमें पार्षदोंके मध्य महादेवजी शोभित होतेहैं।राक्षसोंके चलाये अस्त्र शस्त्रश्रीरामचंद्रजीनें॥१२॥

अपने बाणोंके सहित ग्रहण किये, जैसे नदीयोंकी धाराओंको महोदधि ग्रहण करताहै यद्यपि श्रीरामचन्द्रजीके अंगमें अतिघोर वह अस्त्र शस्त्र लगेथे पर इससे उनको कुछ व्याधि न हुई ॥ १३ ॥ जैसे प्रकाशमान बहुतसे वज्रोंसे हिमालय पर्वतको पीडा नहीं होती।सर्व शरीरमें बाणोंके लगनेंसे रुधिर वहनेंसें श्रीरामचन्द्र ऐसे शोभित हुए ॥१४॥ जैसे संध्याकालीन बादरोंके बीचमें होनेसे सूर्य भगवान् शोभित होतेहैं। रघुनंदनजीकी यह अवस्था देख देव, गन्धर्व, और सिद्ध व परमर्षिगण बडे विषादित हुए ॥ १५ ॥ कारण कि अकेले रामचंद्रजीको सहस्रों निशाचर घेरे हुएथे। ऋषि आदिकोंकी यह अवस्था देख श्रीरामचंद्रजीनें महाक्रोध युक्तहो धनुषको जोरसे खेंच ॥ १६ ॥

प्रतिजग्राहविशिखैर्नद्योघानिवसागरः ॥ सतैःप्रहरणैर्घोरैर्भिन्नगात्रोनविव्यथे ॥ १३ ॥ रामःप्रदीप्तैर्बहुभिर्वज्रैरिवमहाचलः ॥ सविद्धःक्षतजादिग्धःसर्वगात्रेषुराघवः ॥ १४ ॥ बभूवरामःसंध्याभ्रैर्दिवाकरइवावृतः ॥ विषेदुर्देवगंधर्वाःसिद्धाश्चपरमर्षयः ॥ १५ ॥ एकंसहस्रैर्बहुभिस्तदादृष्ट्वासमावृतम् ॥ ततोरामस्तुसंक्रुद्धोमंडलीकृतकार्मुकः ॥ १६ ॥ ससर्जनिशितान्बाणाञ्छतशोथसहस्रशः ॥ दुरावारान्दुर्विषहान्कालपाशोपमान्रणे ॥ १७ ॥ मुमोचलीलयाकंकपत्रान्कांचनभूषणान् ॥ तेशराःशत्रुसैन्येषुमुक्तारामेणलीलया ॥ १८ ॥ आददूरक्षसांप्राणान्पाशाःकालकृताइव ॥ भित्त्वाराक्षसदेहांस्तांस्तेशरारुधिराप्लुताः ॥ १९ ॥ अंतरिक्षगतारेजुर्दीप्ताग्निसमतेजसः ॥ असंख्येयास्तुरामस्यसायकाश्चापमंडलात् ॥ २० ॥

शत २ सहस्र २ अति तीखे बाण छोडे वे सब बाण किसीके रोकनेंसे नहीं रुकते, वरन अनिवारथे सहन करनेंके योग्य नहींथे और देखनेंमें यमराजकी फांसीके समानथे ॥ १७ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें लीला पूर्वक सुवर्णसे चित्र विचित्र कंकपत्र युक्त बाण शत्रुकी सेनामें चलाये। वह सब बाण शत्रुकी सेनामें पहुँच २ ॥ १८ ॥ चलाई हुई यमकी फाँसियोंकी समान राक्षसोंका देह भेद व प्राण ग्रहण करके रुधिरके लगनेंसे लाल गेरुहुई॥१९॥आकाशमें जाकर जलती हुई अग्निकी समान शोभा पानें लगे, उस समय श्रीरामचन्द्रजीके चाप मंडलसे असंख्यों बाण छूटे ॥२०॥

श्रीरामचंद्रजी उन सब बाणोंसे राक्षसोंके शत २ शरासन और सहस्र २ शरासन, ध्वजाके अग्रभाग ढाल, कवच ॥ २१ ॥ हाथके
गहनों करके युक्त बाहु हाथियोंकी शुण्डके समान जंघाएँ सैकडों हजारों काट डालीं ॥ २२ ॥ इनके अतिरिक्त सुवर्णके कवच धारण किये घोडे
रथ और सारथी महावत् व सवारसहित हाथी घुडसवारसहित घोडे ॥ २३ ॥ इन सबको प्रत्यंचासे छूटे हुए श्रीरामचंद्रजीके बाणोंनें
छिन्न भिन्न किया, और पैदलोंकोभी संहार करके यमराजके भवनमें पहुंचाया ॥ २४ ॥ राक्षसगण, अग्रभाग जिनका महातीक्ष्णहै ऐसे
नालीक, नाराच, और विकर्ण समूहसे कट कुट कर भयंकर शब्द कर आरत पुकारने लगे ॥ २५ ॥ शुष्कवनश्रेणी जिस प्रकार अग्निको पाकर

विनिष्पेतुरतीवोग्रारक्षःप्राणापहारिणः ॥ तैर्धनूंषिध्वजाग्राणिचर्माणिकवचानिच ॥२१॥ बाहून्सहस्ताभरणानूरू
न्करिकरोपमान् ॥ चिच्छेदरामःसमरेशतशोथसहस्रशः ॥ २२ ॥ हयान्कांचनसन्नाहान्रथयुक्तान्ससारथीन् ॥
गजांश्चसगजारोहान्सहयान्सादिनस्तदा ॥ २३ ॥ चिच्छिदुर्बिभिदुश्चैवरामबाणागुणच्युताः ॥ पदातीन्समरेहत्वा
अनयद्यमसादनम् ॥ २४ ॥ ततोनालीकनाराचैस्तीक्ष्णाग्रैश्चविकर्णिभिः ॥ भीममार्तस्वरंचक्रुश्छिद्यमानानिशाच
राः ॥ २५ ॥ तत्सैन्यंविविधैर्बाणैरर्दितंमर्मभेदिभिः ॥ नरामेणसुखंलेभेशुष्कंवनमिवाग्निना ॥ २६ ॥ केचिद्भीम
बलाःशूराःप्रासान्शूलान्परश्वधान् ॥ चिक्षिपुःपरमक्रुद्धारामायरजनीचराः ॥ २७ ॥ तेषांबाणैर्महाबाहुःशस्त्राण्या
वार्यवीर्यवान् ॥ जहारसमरेप्राणांश्चिच्छेदचशिरोधरान् ॥ २८ ॥ तेछिन्नशिरसःपेतुश्छिन्नचर्मशरासनाः ॥ सुपर्ण
वातविक्षिप्ताजगत्यांपादपायथा ॥ २९ ॥

खूबही घूम २ कर जलतीहैं, वैसेही राक्षस सेनाभी श्रीरामचंद्रजीके मर्मभेदी बाणोंसे पीडित होकर सुख प्राप्त करनेंको समर्थ नहीं होसकी ॥२६॥
उस सेनाके कोई २ महाबलवान् शूरवीर राक्षस महा क्रोधित होकर श्रीरामचंद्रजीके ऊपर, प्रास, फरसे और शूल इत्यादि चलानेंलगे ॥२७॥
महाबाहु वीर्यवान् श्रीरामचंद्रजीनें अपनें बाणोंसे राक्षसोंके चलाये हुए अस्त्र शस्त्रोंको रोक उनके प्राण हरण करके उनके मस्तकभी धडसे
उडा देते हुए ॥ २८ ॥ गरुडजीके उडनेंके समय जो उनके पंखोंसे पवन निकलती जिस प्रकार उससे वृक्षसमूह पृथ्वीपर गिर जातेहैं वैसेही

राक्षसगण छिन्नमस्तकहो पृथ्वीपर गिरनेंलगे उनका धनुष और ढाल तलवारभी टूट टाट गई ॥ २९ ॥ बचे बचाये राक्षस श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसें घायल होनेके कारण व्याकुल हो मलीनभावसे खरकी शरणमें गये ॥ ३० ॥ यह देखकर दूषण महा क्रोधित होकर धनुष सँभाल भागे हुए राक्षसोंको धीर बँधाता हुआ क्रोधित कालकी समान रोष परायण श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख दौडा ॥ ३१ ॥ तब रणसे भागे हुए निशाचर गण दूषणका आसरा पाय लौटकर शाल, ताल, शिला, पाश, मुद्गर, और शूल इन सब आयुधोंको धारण कर श्रीरामचंद्रजीके सामने धाये ॥ ३२ ॥ उन राक्षसोंने संग्राममें आतेही शूल, मुद्गर, पाशादि, अस्त्र शस्त्रोंकी वर्षा श्रीरामचंद्रजीके ऊपर की । ३३॥ फिर वृक्षोंकी वर्षा और

अवशिष्टाश्चयेतत्रविषण्णास्तेनिशाचराः॥खरमेवाभ्यधावंतशरणार्थशराहताः॥३०॥ तान्सर्वान्धनुरादायसमाश्वास्यचदूषणः॥अभ्यधावत्सुसंक्रुद्धःक्रुद्धंक्रुद्धइवांतकः ॥३१॥निवृत्तास्तुपुनःसर्वेदूषणाश्रयनिर्भयाः॥ राममेवाभ्यधावंतसालतालशिलायुधाः॥३२॥ शूलमुद्गरहस्ताश्चपाशहस्तामहाबलाः ॥ सृजंतःशरवर्षाणिशस्त्रवर्षाणिसंयुगे ॥ ३३ ॥ द्रुमवर्षाणिमुंचंतःशिलावर्षाणिराक्षसाः ॥ तद्बभूवाद्भुतंयुद्धंतुमुलंरोमहर्षणम् ॥ ३४॥ रामस्यास्यमहाघोरंपुनस्तेषांचरक्षसाम् ॥ तेसमंतादभिक्रुद्धाराघवंपुनरार्दयन् ॥ ३५॥ ततःसर्वादिशोदृष्ट्वाप्रदिशश्चसमावृताः॥ राक्षसैःसर्वतःप्राप्तैःशरवर्षाभिरावृतः॥ ३६ ॥ सकृत्वाभैरवंनादमस्त्रंपरमभास्वरम् ॥ समयोजयद्गांधर्वंराक्षसेषुमहाबलः॥ ३७ ॥ ततःशरसहस्राणिनिर्ययुश्चापमंडलात् ॥ सर्वादशदिशोबाणैरापूर्यंतसमागतैः ॥ ३८ ॥

शिलाकी वृष्टि प्रारंभ होनेंपर तिस समय महाभयानक और घोर लोमहर्षण संग्राम होनें लगा ॥ ३४ ॥ उधरसे राक्षसगण श्रीरामचंद्रजी पर अस्त्र शस्त्र चलारहेथे इधरसे श्रीरामचंद्रजी राक्षसोंपर बाण वर्षा करतेथे यह देखकर राक्षसोंने फिर अस्त्र शस्त्रोंसे श्रीरामचंद्रजीको पीडित किया ॥ ३५ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें देखा कि सर्व दिशा विदिशा राक्षसोंसे भर गईहैं और हमभी उनके बाणोंसे ढक गयेहैं ॥ ३६ ॥ यह देख श्रीरामचंद्रजीनें बडा शब्दकर भयंकर राक्षसगणोंके ऊपर परम देदीप्यमान गान्धर्वास्त्र चलाया ॥ ३७॥ इस गान्धर्वास्त्रके चलानेके पीछे श्रीरामचंद्रजीके धनुषसे हजार २ बाण निकलनें लगे; उन निकलते हुए बाणोंसे समस्त दिशायें भरगई ॥ ३८ ॥

राक्षसगण इस समय यह नहीं देख सके कि कब श्रीरामचंद्रजी श्रेष्ठ और भयंकर शर ग्रहण करते कब छोडते और कब धनुषको आकर्षण करतेहैं परन्तु केवल उनके बाणोंसे महा व्यथित होनें लगे॥ ३९ ॥ श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे अन्धकार उत्पन्न होकर दिवाकर सहित आकाश मंडलको ढक लेता हुआ। परन्तु श्रीरामचंद्रजी बराबर शर धारा छोडते चले जातेथे ॥ ४० ॥ उस बाण धारासे अनेक २ राक्षस महा घायल हुए कोई २ गिरे हुए कोई२गिरते हुए दिखाई देतेथे ऐसे राक्षसोंसे पृथ्वी पूर्ण होगई ॥ ४१ ॥ रणभूमिमें सर्वत्रही सहस्र २ राक्षस पतित, छिन्न, भिन्न, विदारित और कंठगत प्राण दृष्टि आने लगे। श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे छिन्न भिन्न पगडी सहित मस्तक बाजू युक्त बाँह व अनेक २ भांतिके

नाददानंशरान्घोरान्विमुंचंतंशरोत्तमान् ॥ विकर्षमाणंपश्यंतिराक्षसास्तेशरार्दिताः ॥ ३९ ॥ शरांधकारमाकाशमावृणोत्सदिवाकरम् ॥ बभूवावस्थितोरामःप्रक्षिपन्निवताञ्छरान् ॥ ४० ॥ युगपत्पतमानैश्चयुगपच्चहतैर्भृशम् ॥ युगपत्पतितैश्चैवविकीर्णावसुधाभवत् ॥ ४१ ॥ निहताःपतिताःक्षीणाश्छिन्नाभिन्नाविदारिताः ॥ तत्रतत्रस्मदृश्यंतेराक्षसास्तेसहस्रशः ॥ ४२ ॥ सोष्णीषैरुत्तमांगैश्चसांगदैर्बाहुभिस्तथा ॥ ऊरुभिर्बाहुभिश्छिन्नैर्नानारूपैर्विभूषणैः ॥४३॥ हयैश्चद्विपमुख्यैश्चरथैर्भिन्नैरनेकशः ॥ चामरव्यजनैश्छत्रैर्ध्वजैर्नानाविधैरपि ॥ ४४ ॥ रामेणबाणाभिहतैर्विच्छिन्नैःशूलपट्टिशैः ॥ विच्छिन्नैःसमरेभूमिर्विस्तीर्णाभूद्भयंकरा ॥ ४५ ॥ तान्दृष्ट्वानिहतान्सर्वेराक्षसाःपरमातुराः ॥ नतत्रचलितुंशक्तारामंपरपुरंजयम् ॥ ४६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेपंचाविंशः सर्गः ॥ २५ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ दूषणस्तुस्वकंसैन्यंहन्यमानंविलोक्यच ॥ संदिदेशमहाबाहुर्भीमवेगान्दुरासदान् ॥ १ ॥

गहनें ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ अश्व, हस्ती, चमर, व्यजन, छत्र, व नाना प्रकारकी ध्वजाओंसे ॥ ४४ ॥ व शूल पटादि शस्त्रोंसे जोकि रामचंद्रजीके बाणोंसे कट २ टूट गयेथे यह पृथ्वी अति भयंकर होगई ॥ ४५ ॥ इस प्रकार बहुतसे राक्षसोंको मारे हुए व पृथ्वीमें पडे देख बचे बचाये राक्षसगण अतिशय कातर होकर शत्रुओंके जीतनेवाले श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख जानेको और समर्थ नहीं हुए ॥ ४६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे पंचविंशःसर्गः ॥ २५ ॥ महाबाहु दूषण अपनी सेनाको श्रीरामचंद्रजीसे माराहुआ देख

इन्द्रजीके वज्र चलानेंसे जिस प्रकार पर्वत पंख कटाकर नीचे गिरेथे, वैसेही वानरलोग राक्षसी मायासे मोहित होगये, इनका सब शरीर राक्षसके बाणोंसे फटगया और वह धीरे २ विकट स्वरसे शब्द करके रणभूमिमें गिरनें लगे ॥ ५२ ॥ उस समय वानरगणने सेनामें केवल इन्द्रजीतके छोड़े हुए अत्यन्त तीखे बाणोंको देखपाया; परन्तु मायाके बलसे छिपे हुए उस इन्द्रकेशत्रु मेघनादको न देखा कि कहां खड़ाहुआ बाणोंकी वर्षा करताहै ॥ ५३ ॥ इसके उपरान्त राक्षसपति महाबलवान इन्द्रजीत सूर्यकी समान गांसीलगे हुए बाणोंसे सब दिशाओंको छायलिया; और अत्यन्त पैंने बाणोंसे वानरोंको मारनेंभी लगा ॥ ५४ ॥ और प्रदीप्त अग्निकी समान अंगारे व चिनगारियोंसे युक्त शूल, निस्त्रिंश, और परशु

तेशक्रजिद्बाणविशीर्णदेहामायाहताविस्वरमुन्नदंतः ॥ रणेनिपेतुर्हरयोद्रिकल्पायथेंद्रवज्राभिहतानगेंद्राः ॥ ५२ ॥ तेकेवलंसंददृशुःशिताग्रान्बाणान्रणेवानरवाहिनीषु ॥ मायाविगूढंचसुरेंद्रशत्रुंनचात्रतंराक्षसमभ्यपश्यन् ॥ ५३ ॥ ततःसरक्षोधिपतिर्महात्मासर्वादिशोबाणगतैःशिताग्रैः ॥ प्रच्छादयामासरविप्रकाशैर्विदारयामासचवानरेंद्रान् ॥५४॥ सशूलनिस्त्रिंशपरश्वधानिव्याविद्धदीप्तानलसप्रभाणि ॥ सविस्फुलिंगोज्ज्वलपावकानिववर्षतीव्रंप्लवगेंद्रसैन्ये॥५५॥ ततोज्वलनसंकाशैर्बाणैर्वानरयूथपाः ॥ ताडिताःशक्रजिद्बाणैःप्रफुल्लाइवकिंशुकाः ॥ ५६ ॥ उदीक्षमाणागगनंकेचिन्नेत्रेषुताडिताः ॥ शनैर्विविशुरन्योन्यंपेतुश्चजगतीतले ॥ ५७ ॥ हनूमंतंचसुग्रीवमंगदंगंधमादनम् ॥ जांबवंतंसुषेणंचवेगदर्शिनमेवच ॥ ५८ ॥

इत्यादि सब आयुधोंको ग्रहण करके वानरराज सुग्रीवजीकी सैनाके ऊपर वह मेघनाद वर्षानें लगा ॥ ५५ ॥ इस प्रकार इंद्रके शत्रु मेघनादके बाणोंसे जब वानर गणोंका शरीर छिन्नभिन्न होकर रुधिरसे भीग गया तब वह समस्त वानर खिले हुए टेसूके वृक्षकी समान शोभायमान हुए ॥५६॥ उस समय कोई२वानर ऊपरको नेत्र उठाये आकाशकी ओर देख रहेथे; कि इतनेंमेंही बाण आनकर उनकी आंखोंमें लगा; तब वह परस्पर एक दूसरेका आश्रय लेनेलगे और कोई पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ५७ ॥ इसके उपरान्त हनुमान सुग्रीव अंगद गन्धमादन जाम्बवान सुषेण वेगदर्शी ॥५८॥

समय घाव रहित होगये और वानर वीर गणभी घावरहित हो उठ बैठे॥६९जिसप्रकार रात्रिके आनेसे समस्त जीव सोजातेहैं और रात्रि बीत जाने पर जाग उठते हैं वैसेही एक क्षणमें समस्त वानर रोगरहित होकर उठ बैठे और जो वानर रणमें मृतक हो गयेथे उन वानरोंकी भी देहोंमें प्राण आय गये॥ ७० ॥परन्तु उन महौषधियोंसे, राक्षस कोईभी नहीं जिया। कारण कि जबसे वानर और राक्षसों का युद्ध आरंभ हुआथा उस समयसे ही रावणकी आज्ञाके अनुसार परिमाण जाननेके लिये ॥ ७१ ॥ जो राक्षस रणमें वानरवीरोंसे मारे जातेथे वह समस्त राक्षसोके द्वारा तुरत ही समुद्रमें फेक दिये जातेथे फिर भला राक्षस कैसे जियें ॥ ७२ ॥ इसके उपरान्त जब सब समस्त वानर जी गये तब अत्यन्त वेग सम्प

सर्वेविशल्याविरुजाःक्षणेनहरिप्रवीराश्चहताश्चयेस्युः ॥ गंधेनतासांप्रवरौषधीनांसुप्तानिशांतेष्विवसंप्रबुद्धाः॥ ७० ॥ यदाप्रभृतिलंकायांयुध्यंतेहरिराक्षसाः ॥ तदाप्रभृतिमानार्थमाज्ञयारावणस्यच ॥ ७१ ॥ येहन्यंतेरणेतत्रराक्षसाः कपिकुंजरैः ॥ हताहतास्तुक्षिप्यंतेसर्वएवतुसागरे ॥ ७२ ॥ ततोहरिर्गंधवहात्मजस्तुतमोषधीशैलमुदग्रवेगः ॥ निनाय वेगाद्धिमवंतमेवपुनश्चरामेणसमाजगाम ॥ ७३ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रा०वा०आ०युद्धकांडेचतुःसप्ततितमःसर्गः ॥७४॥

ततोब्रवीन्महातेजाःसुग्रीवोवानरेश्वरः ॥ अर्थ्यंविज्ञापयंश्चापिहनूमंतमिदंवचः ॥ १ ॥ यतोहतःकुंभकर्णःकुमाराश्चनिषूदिताः ॥ नेदानीमुपनिर्हारंरावणोदातुमर्हति ॥ २ ॥ येयेमहाबलाःसंतिलघवश्चप्लवंगमाः ॥ लंकामभिपतंत्वाशुगृह्योल्काःप्लवगर्षभाः ॥ ३ ॥

न्न गन्धवहनंदन [पवनकुमार] वानरश्रेष्ठ हनुमानजी उस औषधि पर्वतको ग्रहणकरके वेगसे हिमालय पर्वतपर जहांका तहां स्थापन करके फिर श्रीरामचंद्रजीके निकट चले आये ॥ ७३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे चतुःसप्ततितमःसर्गः ॥ ७४ ॥ इसके उपरान्त वानरराज सुग्रीवजी किसी एक कार्यको विचार करके हनुमानजीसे यह कहते हुए॥ १ ॥ जब कि कुंभकर्ण मारा गया और रावणके पुत्र भी मारे गये तिस्परभी यह रावण अपनी लंकापुरीकी रक्षा करनेमें समर्थ होगा ऐसा तो हमें ज्ञात नहीं होता ॥२॥ इसलिये इन सब वानरोंमें जो महाबलवान् और शीघ्रविक्रमकारी वानरगणहैं वह वानर गण शीघ्रही मसालें हाथमें लेकर लंकापुरीको जलावें ॥ ३ ॥

अठारह बाणोंसे नीलको और नव बाणोंसे नलनाम वानरको दूरसेही खड़े रहकर रणभूमिमें मारा ॥ ४३ ॥ उस महावीर्यवाननें सात मर्म विदारी बाणोंसे नीलको वींधडाला और पांच बाणसे संग्रामभूमिमें गजको विद्ध किया ॥४४॥ इस प्रकारसे दश बाणोंसे जाम्बवानकोव फिर तीस बाणोंसे नलको मर्माहत किया; इसके उपरान्त वानरराज सुग्रीव, ऋषभ अंगद और द्विविदको तीक्ष्ण बाणोंसें मारकर मृतकतुल्य कर दिया ॥ ४५ ॥ इस प्रकारसे उस मेघनादनें अत्यन्त घोर वरदानसे प्राप्त तीक्ष्ण बाणोंसे इन वानरोंको मारा और समस्त वानरोंकोभी असंख्य बाणोंसें मारा ॥ ४६ ॥ क्रोधसें कालाग्निकी समान मूर्छितहो उस महा पराक्रमी मेघनादनें सूर्यकी समान प्रकाशित शीघ्रगामी भली भांतिसे चलाये हुए बाणोंसे ॥ ४७ ॥

सप्तभिस्तुमहावीर्योमैंदंमर्मविदारणैः ॥ पंचभिर्विशिखैश्चैवगजंविव्याधसंयुगे ॥ ४४ ॥ जांबवंतंतुदशभिर्नीलंत्रिंशद्भिरेवच ॥ सुग्रीवमृषभंचैवसोंगदंद्विविदंतथा ॥ ४५ ॥ घोरैर्दत्तवरैस्तीक्ष्णैर्निष्प्राणानकरोत्तदा ॥ अन्यानपितदामुख्यान्वानरान्बहुभिःशरैः ॥ ४६ ॥ अर्दयामाससंक्रुद्धःकालाग्निरिवमूर्छितः ॥ सशरैःसूर्यसंकाशैःसुमुक्तैःशीघ्रगामिभिः ॥ ४७ ॥ वानराणामनीकानिनिर्ममंथमहारणे ॥ आकुलांवानरींसेनांशरजालेनपीडिताम् ॥ ४८ ॥ हृष्टःसपश्यत्प्रीत्याददर्शक्षतजोक्षिताम् ॥ पुनरेवमहातेजाराक्षसेंद्रात्मजोबली ॥ ४९ ॥ संसृज्यबाणवर्षंचशस्त्रवर्षंचदारुणम् ॥ ममर्दवानरानीकंपरितस्त्विद्रजिल्लद्बली ॥ ५० ॥ स्वसैन्यमुत्सृज्यसमेत्यतूर्णमहाहवेवानरवाहिनीषु ॥ अदृश्यमानःशरजालमुग्रंववर्षनीलांबुधरोयथांबु ॥ ५१ ॥

वानरोंको एक बारही मर्दित कर डाला बाणोंसे पीड़ित होनेंके कारण व्याकुल और रुधिरसेभीगी हुई वानरोंकी सैनाको ॥ ४८ ॥ देखकर मेघनाद अत्यन्त हर्षित हुआ और फिर महातेजस्वी रावणका पुत्र मेघनाद ॥ ४९ ॥ दारुण शब्द और बाणोंकी वर्षा करके वानरोंकी सैनाको यह इन्द्रजीत सब प्रकारसे मर्दित कर कंपायमान करनें लगा ॥ ५० ॥ मेघनाद सहसा अपनी सैनाको छोड़कर वानरोंकी दृष्टिसे लोप होगया और अदृश्य रहकर नीला बादर जिस प्रकार जलकी वर्षा करताहै वैसेही वानरोंको ताककर उनके ऊपर अनिवारित बाणोंकी वर्षा करनें लगा ॥ ५१ ॥

यह कह कर हनुमानजीने शृङ्ग प्रस्तर, खण्ड, मातङ्ग और सुवर्ण आदि धातुओंके उस अनेक शिखरवाले और सहस्रों धातुओंसे प्रज्वलित
शृङ्ग सानु समन्वित उस पर्वतको सहसा ग्रहण करकै अतिवेगसे उखाड़ लिया ॥ ६३ ॥ गरुड़जीकी समान अति उग्र वेगवाले हनुमानजी उस
पर्वतशृङ्गको उखाड़ आकाशमें उछल गये और सुरेन्द्र व असुरगणोंके सहित समस्त लोकोंको त्रासित करते२ असंख्य आकाशचारियोंसें स्तुति
किये जाते हुए अतिवेगसे गमन करते हुए ॥ ६४ ॥ सूर्यकी समान रूप सम्पन्न वह वीर हनुमानजी सूर्यकी समान पर्वत ग्रहण करके सूर्यके
मार्गमें उपस्थित हो दूसरें सूर्यकी समान शोभाधारण करते हुए ॥ ६५ ॥ पर्वताकार हनुमानजी उस पर्वतको ग्रहण करकै अग्निकी ज्वालसे युक्त

सतस्यशृंगंसनगंसनागंसकांचनंधातुसहस्रजुष्टम् ॥ विकीर्णकूटंज्वलिताग्रसानुंप्रगृह्यवेगात्सहसोन्ममाथ ॥ ६३ ॥
सतंसमुत्पाट्यखमुत्पपातवित्रास्यलोकान्ससुरान्सुरेंद्रान् ॥ संस्तूयमानःखचरैरनेकैर्जगामवेगाद्गरुडोग्रवेगः ॥ ६४ ॥
सभास्कराध्वानमनुप्रपन्नस्तंभास्कराभंशिखरंप्रगृह्य ॥ बभौतदाभास्करसन्निकाशोरवेःसमीपेप्रतिभास्कराभः ॥ ६५ ॥
सतेनशैलेनभृशंरराजशैलोपमोगंधवहात्मजस्तु ॥ सहस्रधारेणसपावकेनचक्रेणखेविष्णुरिवार्पितेन ॥ ६६ ॥ तंवान
राःप्रेक्ष्यतदाविनेदुःसतानपिप्रेक्ष्यमुदाननाद ॥ तेषांसमुत्कृष्टरवंनिशम्यलंकालयाभीमतरंविनेदुः ॥ ६७ ॥ ततोमहा
त्मानिपपाततस्मिन्शैलोत्तमेवानरसैन्यमध्ये ॥ हर्युत्तमेभ्यःशिरसाभिवाद्यविभीषणंतत्रचसस्वजेसः ॥ ६८ ॥ ताव
प्युभौमानुषराजपुत्रौतंगंधमाघ्रायमहौषधीनाम् ॥ बभूवतुस्तत्रतदाविशल्यावुत्तस्थुरन्येचहरिप्रवीराः ॥ ६९ ॥

हाथमें सहस्र धार चक्र द्वारा शोभित विष्णुजीकी समान शोभायमान होनें लगे॥६६॥ उस कालमें लंकाके मैदान में खड़े हुए वानरगण उनको
देखकर सिंहनाद करने लगें और हनुमानजी भी उनको देखकर सिंहनाद कर उठे उस अत्यन्त दारुण शब्दको श्रवणकरकै लंका निवासी निशाचर
गणभी भयंकर घोर सिंहनाद करने लगे॥६७॥ इसके उपरान्त महाबलवान हनुमानजी पर्वतश्रेष्ठ त्रिकूटके ऊपर वानरोंकी सेनामें उतरकर मुख्य२ वा
नरोंको प्रणाम करकै बिभीषणजीको लिपटायकर मिले॥६८॥इस ओर मनुष्यराजकुमार राम और लक्ष्मणजी सब महौषधियोंकी सुगन्धि सूंघकर उसी

सैना निरुपाय और चेष्टा रहित होकर मोहको प्राप्त हुई ॥ १ ॥ तब बुद्धिमान लोगोंमें आगे गिनेजानेके योग्य विभीषणजी सबको ऐसा विषादित देखकर वानरराज सुग्रीवजीके वीरोंको अनुपम वचनोंसे समझानें बुझानें लगे ॥ २ ॥ हे वीरगण! तुम लोग डरो मत यह शोक करनेंका अवसर नहींहै, तुम जो इन्द्रजीतके बाणजालसे श्रीराम लक्ष्मणजीको व्याकुल और मृतक देखतेहो भगवान स्वयंभू ब्रह्माजीका सन्मानही करनेंके लिये श्रीराम लक्ष्मणजीनें ऐसा कियाहै ॥ ३ ॥ स्वयंभू ब्रह्माजीनें इन्द्रजीतको यह बड़ा भारी अमोघ (अव्यर्थ) वीर्य वाला ब्रह्मास्त्र दान कियाहै, यह दोनों राजकुमार इस अस्त्रकी मर्यादा रक्षा करनेंके लियेही ऐसी अवस्थाको प्राप्त होकर गिरे हैं, जो कुछभी हो

ततोविषण्णंसमवेक्ष्यसर्वंविभीषणोबुद्धिमतांवरिष्ठः ॥ उवाचशाखामृगराजवीरानाश्वासयन्नप्रतिमैर्वचोभिः ॥ २ ॥ माभैष्टनास्त्यत्रविषादकालोयदार्यपुत्रौह्यवशौविषण्णौ ॥ स्वयंभुवोवाक्यमथोद्वहंतौयत्सादिताविंद्रजितास्त्रजालैः ॥ ३ ॥ तस्मैतुदत्तंपरमास्त्रमेतत्स्वयंभुवाब्राह्मममोघवीर्यम् ॥ तन्मानयंतौयुधिराजपुत्रौनिपातितौकोऽत्रविषादकालः ॥ ४ ॥ ब्राह्ममस्त्रंततोधीमान्मानयित्वातुमारुतिः ॥ विभीषणवचःश्रुत्वाहनूमानिदमब्रवीत् ॥ ५ ॥ अस्मिन्नस्त्रहतेसैन्येवानराणांतरस्विनाम् ॥ योयोधारयतेप्राणांस्तंतमाश्वासयावहे ॥ ६ ॥ तावुभौयुगपद्वीरौहनूमद्राक्षसोत्तमौ ॥ उल्काहस्तौतदारात्रौरणशीर्षेविचेरतुः ॥ ७ ॥ भिन्नलांगूलहस्तोरुपादांगुलिशिरोधरैः ॥ स्रवद्भिःक्षतजंगात्रैःप्रस्रवद्भिःसमंततः ॥ ८ ॥

फिर इसमें शोक करनेंका या घबड़ानेंका क्या कारणहै ? ॥ ४ ॥ पवन कुमार हनुमानजी विभीषणजीके वचन सुनकर उनकाही कही ब्रह्मास्त्रकी मर्यादाको "यथार्थ है" ऐसा कहतेहुए बोले ॥५॥ हे राक्षसकुलतिलक! राक्षस वीर इन्द्रजीतके चलाये हुए ब्रह्मास्त्रसे लग भग हमारी समस्त सैना मारी गई है; इस समय जो वानर कि जीवितहैं उनको समझाना बुझाना हमारा कर्तव्यहै ॥ ६ ॥ इसके उपरान्त हनुमानजी और विभीषणजी यह दोनों वीर उस रात्रिमें मसाल हाथमें लेकर रणभूमिमें घूमनें लगे ॥७॥ उन्होंने रणभूमिमें घूमते हुए देखा कि हाथ जांघ, पैर, उंगली, मस्तक और पूंछ कटे हुए अनेक वानर रणभूमिमें पड़े हुए हैं; बहुत वानरोंके शरीरसे रुधिरकी धारा बहरहीहै; किसी २ वानरका भयके मारे पयःस्राव

ग्रीष्म कालमें दामिनीसे विराजित घटाकी समान प्रकाश पानेंलगे अग्नि लगनेंसे प्रकाशित समस्त गृह ॥ २२ ॥ दावाग्निसे प्रकाशित महापर्वतके शिखरोंकी समान शोभायमान होंनेलगे, समस्त विमानोंमें सोती हुई श्रेष्ठस्त्रियें अग्निसे जलती हुई ॥ २३ ॥ सब अंगोंसे गहना निकाल २ कर ऊंचे शब्दसे हाहाकार करके रोदन करनें लगीं ! अग्निसे जलाये समस्त भवन भी ॥ २४ ॥ इन्द्रके वज्रसे आहत हुए महापर्वतोंके शृङ्गोंकी समान गिरनें लगे वह भस्म हुए समस्त धवरहर दूरसे ऐसे प्रकाशित होतेथे ॥ २५ ॥ कि मानों जलते हुए हिमवान पर्वतके शिखर जल रहेहैं. ज्वालासे प्रज्वलित हर्म्यादिकोंके भस्म होनेंसे ॥ २६ ॥ फूले हुए पलाशके वृक्षोंसे पूर्ण रात्रिमें वह समस्त लंकानगरी ज्ञात होंने लगी।

विद्युद्भिरिवनद्धानिमेघजालानिधर्मगे ॥ ज्वलनेनपरीतानिगृहाणिप्रचकाशिरे ॥ २२ ॥ दावाग्निदीप्तानियथाशिखराणिमहागिरेः ॥ विमानेषुप्रसुप्ताश्चदह्यमानावरांगनाः ॥ २३ ॥ त्यक्ताभरणसंयोगाहाहेत्युच्चैर्विचुक्रुशुः ॥ तत्रचाग्निपरीतानिनिपेतुर्भवनान्यपि ॥ २४ ॥ वज्रिवज्रहतानीवशिखराणिमहागिरेः ॥ तानिनिर्दह्यमानानिदूरतःप्रचकाशिरे ॥ २५ ॥ हिमवच्छिखराणीवदह्यमानानिसर्वशः ॥ हर्म्याग्रैर्दह्यमानैश्चज्वालाप्रज्वलितैरपि ॥ २६ ॥ रात्रौसादृश्यतेलंकापुष्पितैरिवकिंशुकैः ॥ हस्त्यध्यक्षैर्गजैर्मुक्तैर्मुक्तैश्चतुरगैरपि ॥ बभूवलंकालोकांतेभ्रांतग्राहइवार्णवः ॥ २७ ॥ अश्वंमुक्तंगजोदृष्ट्वाक्कचिद्भीतोपसर्पति ॥ भीतोभीतंगजंदृष्ट्वाक्कचिदश्वोनिवर्तते ॥ २८ ॥ लंकायांदह्यमानायांशुशुभेचमहोदधिः ॥ छायासंसक्तसलिलोलोहितोदइवार्णवे ॥ २९ ॥ साबभूवमुहूर्तेनहरिभिर्दीपितापुरी ॥ लोकस्यास्यक्षयेघोरेप्रदीप्तेववसुंधरा ॥ ३० ॥

उस कालमें अध्यक्ष लोगोंनें अग्निके भयसे भीत होकर हाथी और घोड़ोंको उनके थान परसे खोल दिया, उस समय ऐसा जाना गया मानों लंका पुरी महा प्रलयमें घूमते हुए ग्राह मकरादिसे पूर्ण महा समुद्रकी समान होगई है ॥ २७ ॥ किसी स्थानमें हाथी घोड़ोंको खुला हुआ देखकर भागनें लगा और कहीं डरे हुए हाथियोंको देख घोड़ाही लौट पड़ता था ॥ २८ ॥ जबकि लंका नगरी इस प्रकारसे दग्ध होगई, तब अग्निकी शिखाओंकी परछांई समुद्रके जलमें पड़नेंसे समुद्र लाल समुद्रकी समान जान पड़ताथा ॥ २९ ॥ अधिक क्या कहैं वानर गणों करके दीप्तिमान

होगयाहै ॥ ८ ॥ पर्वताकार प्रधान २ वानरोंके गिरनेंसे रणभूमि परिपूर्ण होरहीहै और बहुतसारे अस्त्र शस्त्रभी टूटेफूटेहुए पड़ेहैं ॥ ९ ॥ सुग्रीव, अंगद, नील, शरभ, गन्धमादन, जाम्बवन्त सुषेण और वेगदर्शी ॥ १० ॥ मैन्द, नल ज्योतिर्मुख और द्विविद वानरोंकोभी हनुमान और विभीषण जीनें रणभूमिमें मृतक हुए देखा ॥ ११ ॥ इस संग्रामके मध्यम दिनके पांचमें भागमें अर्थात् छैः घड़ीमें ब्रह्माजीके अस्त्रसे रावणके पुत्र मेघना दनें सड़सठ करोड वानरोंको मार डालाथा; उन सबको उन दोनों वीरोंनें देखा ॥१२॥ हनुमानजी विभीषणजीके सहित समुद्रके प्रवाहकी समान विस्तारवाली भयंकर वानर सैनाकी यह दशा देखकर जाम्बवानको खोजनें लगे ॥ १३ ॥ बहुत ढूंढ भाल करनेंके पीछे शीघ्र बुझनेंवाली अग्निके

पतितैःपर्वताकारैर्वानरैरभिसंवृताम् ॥ शस्त्रैश्चपतितैर्दीप्तैर्ददृशातेवसुंधराम् ॥ ९ ॥ सुग्रीवमंगदंनीलंशरभंगंधमा दनम् ॥ जांबवंतंसुषेणंचवेगदर्शिनमेवच ॥ १० ॥ मैंदंनलंज्योतिमुखंद्विविदंचापिवानरम् ॥ विभीषणोहनूमांश्चद दृशातेहतान्रणे ॥ ११ ॥ सप्तषष्टिर्हताःकोट्योवानराणांतरस्विनाम् ॥ अह्नःपंचमशेषेणवल्लभेनस्वयंभुवः ॥ १२ ॥ सागरौघनिभंभीमंदृष्ट्वाबाणार्दितंबलम् ॥ मार्गतेजांबवंतंचहनूमान्सविभीषणः ॥ १३ ॥ स्वभावजरयायुक्तंवृद्धंशरशतै श्चितम् ॥ प्रजापतिसुतंवीरंशाम्यंतमिवपावकम् ॥ १४ ॥ दृष्ट्वासमभिसंक्रम्यपौलस्त्योवाक्यमब्रवीत् ॥ कच्चिदार्य शरैस्तीक्ष्णैर्नप्राणाध्वंसितास्तव ॥ १५ ॥ विभीषणवचःश्रुत्वाजांबवानृक्षपुंगवः ॥ कृच्छ्रादभ्युद्गिरन्वाक्यमिदंवच नमब्रवीत् ॥ १६ ॥ नैर्ऋतेंद्रमहावीर्यस्वरेणत्वाभिलक्षये ॥ विद्धगात्रःशितैर्बाणैर्नत्वांपश्यामिचक्षुषा ॥ १७ ॥

समान सेकड़ों हजारों बाणोंसे विंधेहुए जराग्रसित वृद्ध प्रजापतिके पुत्र वीर जाम्बवानको ॥ १४ ॥ देखकर पौलस्त्य विभीषणभी उनके समीप जायकर बोले कि हे आर्य ! इस दारुण तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षासे आपके कहीं चोट तौ नहीं लगी ॥ १५ ॥ विभीषणजीके वचन सुनकर ऋक्षश्रेष्ठ जाम्बवानजी अत्यन्त कष्टसे वचन उच्चारण कर कहनेंलगे ॥ १६ ॥ हे महावीर्यवान ! तीखे बाणोंसे हमारा शरीर ऐसा विद्ध हुआहै; कि हम आपको अपने नेत्रोंसे देखभी नहीं सकतेहैं; केवल आपका बोल सुनकर ही हम आपको राक्षसोंका स्वामी विभीषण मानते हैं ॥ १७ ॥

की हुई वह लंकापुरी एक मुहूर्त भरमें प्रलय कालमें प्रदीप्त हुई पृथ्वीकी समान भस्म होगई ॥ ३० ॥ उस कालमें अग्निसे संतापित धुएंसे व्याप्त और रुदन करती हुई राक्षसोंकी स्त्रियोंका शब्द सौ योजनसे सुनाई आनें लगा ॥ ३१ ॥ उस समय जले अध जले जो राक्षस भागकर लंकाके बाहर को आतेथे युद्ध करनेंके लिये वानर वृन्द उनके सन्मुख जायर कर उनको मारनें लगे॥३२॥उस कालमें वानर लोगोंके उद्योगसे और निशाचरगणोंके शब्दसे दशोंदिशा समुद्र, और समस्त पृथ्वी शब्दायमान होनें लगी ॥३३॥ इस ओर दोनों राज कुमार महात्मा श्रीराम लक्ष्मणजी घाव रहित व सावधान चित्तहो दोनोंनें श्रेष्ठ धनुष धारण किये ॥ ३४ ॥ उसके उपरान्त श्रीरामचंद्रजीनें जब अपनें बड़ेभारी उत्तम धनुषपर टंकोरदी तब राक्षस

नारीजनस्यधूमेनव्याप्तस्योच्चैर्विनेदुषः ॥ स्वनोज्वलनतप्तस्यशुश्रुवेशतयोजनम् ॥ ३१ ॥ प्रदग्धकायानपरान्रा क्षसान्निर्गतान्बहिः ॥ सहसाह्युत्पतंतिस्महरयोथयुयुत्सवः ॥ ३२ ॥ उद्घुष्टंवानराणांचराक्षसानांचनिःस्वनम् ॥ दिशो दशसमुद्रंचपृथिवींचव्यनादयत् ॥ ३३ ॥ विशल्यौचमहात्मानौतावुभौरामलक्ष्मणौ ॥ असंभ्रांतौजगृहतुस्तेउभे धनुषीवरे ॥ ३४ ॥ ततोविस्फारयामासरामश्चधनुरुत्तमम् ॥ बभूवतुमुलःशब्दोराक्षसानांभयावहः ॥ ३५ ॥ अशो भततदारामोधनुर्विस्फारयन्महत् ॥ भगवानिवसंक्रुद्धोभवोवेदमयंधनुः ॥ ३६ ॥ उद्घुष्टंवानराणांचराक्षसानांच निःस्वनम् ॥ ज्याशब्दस्तावुभौशब्दावतिरामस्यशुश्रुवे ॥ ३७ ॥ वानरोद्घुष्टघोषश्चराक्षसानांचनिःस्वनः ॥ ज्याश ब्दश्चापिरामस्यत्रयंव्यापदिशोदश ॥ ३८ ॥

लोगोंका भयावह कठोर शब्द होनें लगा ॥ ३५ ॥ जिस समय श्रीरामचंद्रजीनें बड़ेभारी धनुषपर टंकोरदी; तब उस समय वह संहार कालमें शब्द ब्रह्मात्मक वेदमय धनु विस्फारण कारी भगवान भवानी पतिकी समान जान पड़नें लगे॥ ३६ ॥ वानरोंके गर्जन करनें और राक्षसोंके रोदन करनेंका शब्द और श्रीरामचंद्रजीके धनुषकी टंकारका शब्द यह तीनों शब्द एक दूसरेको मूंद लेते हुएसे सुनाई देतेथे ॥ ३७ ॥ और वानर गणोंका गर्जना, निशाचर गणोंका रोना और श्रीरामचंद्रजीके धनुषके टंकोर यह तीनो शब्द दशों दिशाओंमें व्याप्त होगये॥ ३८ ॥

हे सुव्रत! जिनको पुत्र प्राप्त करके अंजनी सुपुत्रवती हुई है और पवन देव पुत्रवान् हुएहैं वह वानरश्रेष्ठ हनुमान् क्या जीवित हैं? ॥१८॥ जाम्बवानके वचन सुनकर बिभीषणजी बोले हे आर्य ! आप आर्यपुत्र श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजीको छोड़कर प्रथम किस कारणसे हनुमानजीका वृत्तान्त पूछते हैं? ॥ १९ ॥ आपने रघुनंदन, वानर सुग्रीवजी अथवा अंगदजीके प्रति स्नेहानुराग न दिखाकर हनुमानजीमें जो ऐसा स्नेह प्रकाश किया इसका कारण क्याहै ? ॥ २० ॥ बिभीषणजीके वचन सुनकर जाम्बवन्तजीनें कहा; हे राक्षसशार्दूल! हमनें जिस कारणसे और सबको छोड़कर केवल हनुमानजीका वृत्तान्त पूछा, उसका कारण श्रवण करो ॥ २१ ॥ यद्यपि यह वानरोंकी सेना मारी तो गई है, परन्तु वीर

अंजनासुप्रजायेनमातरिश्वाचसुव्रत ॥ हनूमान्वानरश्रेष्ठःप्राणान्धारयतेक्वचित् ॥ १८ ॥ श्रुत्वाजांबवतोवाक्यमुवाचेदंविभीषणः ॥ आर्यपुत्रावतिक्रम्यकस्मात्पृच्छसिमारुतिम् ॥ १९ ॥ नैवराजनिसुग्रीवेनांगदेनापिराघवे ॥ आर्यसंदर्शितःस्नेहोयथावायुसुतेपरः ॥ २० ॥ विभीषणःवचःश्रुत्वाजांबवान्वाक्यमब्रवीत् ॥ शृणुनैर्ऋतशार्दूलयस्मात्पृच्छामिमारुतिम् ॥ २१ ॥ अस्मिन्जीवतिवीरेतुहतमप्यहतंबलम् ॥ हनूमत्युज्झितप्राणेजीवंतोपिमृतावयम् ॥ २२ ॥ धरतेमारुतिस्तातमारुतप्रतिमोयदि ॥ वैश्वानरसमोवीर्येजीविताशाततोभवेत् ॥ २३ ॥ ततोवृद्धमुपागम्यविनयेनाभ्यवादयत् ॥ गृह्यजांबवतःपादौहनूमान्मारुतात्मजः ॥ २४ ॥ श्रुत्वाहनूमतोवाक्यंतदाविव्यथितेंद्रियः ॥ पुनर्जातमिवात्मानंमन्यतेप्लवगोत्तमः ॥ २५ ॥

श्रेष्ठ वानर हनुमानजीके जीवित रहते, हम किसीको भी मरा हुआ नहीं समझते परन्तु पवनकुमार हनुमानजीके मर जानेंसे हम लोग जीतेहुए भी मरेही हैं॥ २२ ॥ इस्से जो हनुमान जीवितहों तब हमें जीवनकी आशा होगी नहीं तो जीना क्याहै कारणकि वह पवनकी समान,समरमें वेगवान हैं और वीर्यमें अग्निको समान हैं हेतात ! हनुमानजीका जीना सुनकर फिर हमें जीनेंकी आशा होगी ॥ २३ ॥ तब महावीर हनुमानजी वृद्ध जाम्बवानके निकट जायकर उनके चरण पकड़ विनीत भावसे प्रणाम करके अपना नाम बतायकर बोले कि हम आपकी कृपासे जीतेहैं॥२४॥ तब हनुमानजीके वचन सुनकर रीछराज अत्यन्त कातर रहनेंपरभी आनन्दके मारे अत्यन्त हर्षित हो अपना दूसरा जन्म समझतेहुए ॥२५॥

श्रीरामचंद्रजीके धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे उस लंका पुरीके कैलास पर्वतके शिखरकी समान फाटक चूर्ण होकर पृथ्वीमें गिर पडे ॥ ३९ ॥
इस ओर विमान और गृहोंको गिरता हुआ व श्रीरामचंद्रजीके बाणोंको देख राक्षस श्रेष्ठोंमें भी कठोर युद्धकी तैयारियां होनें लगी ॥ ४० ॥
जब राक्षस श्रेष्ठ गण सिंहनाद करके संग्राम करनेंके लिये तैयार होनें लगे तब उस समय यह रात्रि कालरात्रिकी समान जान पड़नें लगी ॥ ४१ ॥
इसी अवसरमें महा बलवान् वानर सुग्रीवजीनें वानर श्रेष्ठोंको यह आज्ञादी कि "हे वानर गण ! तुम लोगोंमेंसे जो वानर जिस द्वारके निकटहो वही उसी द्वारपर युद्ध करै ॥ ४२ ॥ श्रेणी [मोरचा] पर उपस्थित रहकर भी जो हमारी आज्ञाका निरादर करैगा, राजाज्ञाके अनादर करनेंवाले उस

तस्यकार्मुकनिर्मुक्तैःशरैस्तत्पुरगोपुरम् ॥ कैलासशृंगप्रतिमंविकीर्णमभवद्भुवि ॥ ३९ ॥ ततोरामशरान्दृष्ट्वाविमानेषुगृहेषुच ॥ सन्नाहोराक्षसेंद्राणांतुमुलःसमपद्यत ॥ ४० ॥ तेषांसन्नह्यमानानांसिंहनादंचकुर्वताम् ॥ शर्वरीराक्षसेंद्राणांरौद्रीवसमपद्यत ॥४१॥ आदिष्टावानरेंद्रास्तेसुग्रीवेणमहात्मना ॥ आसन्नंद्वारमासाद्ययुध्यध्वंचप्लवंगमाः ॥४२॥ यश्चवोवितथंकुर्यात्तत्रतत्राप्युपस्थितः ॥ सहंतव्योभिसंप्लुत्यराजशासनदूषकः ॥ ४३ ॥ तेषुवानरमुख्येषुदीप्तोल्कोज्वलपाणिषु ॥ स्थितेषुद्वारमाश्रित्यरावणंक्रोधआविशत् ॥ ४४ ॥ तस्यजृंभितविक्षेपाद्व्यामिश्रावैदिशोदश ॥ रूपवानिवरुद्रस्यमन्युर्गात्रेष्वदृश्यत ॥ ४५ ॥ सकुंभंचनिकुंभंचकुंभकर्णात्मजावुभौ ॥ प्रेषयामाससंक्रुद्धोराक्षसैर्बहुभिःसह ॥ ४६ ॥ यूपाक्षःशोणिताक्षश्चप्रजंघःकंपनस्तथा ॥ निर्ययुःकौंभकर्णाभ्यांसहरावणशासनात् ॥ ४७॥ शशासचैवतान्सर्वान्राक्षसान्समहाबलान् ॥ राक्षसागच्छताद्यैवसिंहनादंचनादयन् ॥ ४८ ॥

वानरको निःसन्देह मार डालेंगे" ॥ ४३ ॥ इसके उपरान्त जब वह मुखियार वानर लूके हाथमें लिये सब द्वारोंको घेरेहुये खड़े रहे तब निशाचरराज रावणको अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हुआ ॥४४॥ जब रावणनें जंभाई ली तब दशोंदिशा कलुषित होगई और प्रलयकालीन रुद्रके रूपवान् क्रोधके समान रावणके शरीरमें भी क्रोधके चिह्न दिखाई देनें लगे ॥ ४५ ॥ तिसके उपरान्त निशाचरपति रावणनें क्रोधमें भरकर कुंभकर्णके पुत्र कुंभ और निकुंभको बहुत निशाचरोंके साथ युद्ध करनेंके लिये भेजा ॥ ४६ ॥ रावणकी आज्ञाके अनुसार, यूपाक्ष, शोणिताक्ष, प्रजङ्घ और कंपन नामक चार राक्षस इन कुंभकर्णके दो पुत्रोंके साथ चले ॥ ४७ ॥ तब उस समय रावणनें राक्षसोंका भय दूर करनेंके लिये सिंहनाद करके उन महाबल

इसके उपरान्त महातेजमान् जाम्बवानजी हनुमानजीसे बोले कि हेवानरश्रेष्ठ! आओ प्रथम इन सब वानरोंकी रक्षा करना तुम्हारा कर्तव्यहै ॥ २६॥ हेवीर! इस समय हम और किसीको नहीं देखते केवल तुमही इन लोगोंके परम सखा हो और तुम्हारा पराक्रमही इन लोगोंका उद्धार करनेमें यथेष्ट होगा, विशेष करकै इस समय तुम्हारे उस पराक्रम प्रकाश करनेंका समय आयाहै ॥ २७ ॥ रीछ और वानरवीरगणोंकी इस समस्त सैनाको हर्षित कराओ और पीड़ित हुए श्रीराम, व लक्ष्मणजीके अंगोंमेंसे वाण निकाल डालो ॥ २८ ॥ हे शत्रुदमनकारी हनुमान्! तुम इस समय महासमुद्रके पार बहुत दूरतक गमन करकै पर्वतश्रेष्ठ हिमालयपर पहुँचोगे ॥ २९ ॥ इसके आगे सुवर्णमय ऋषभनाम पर्वतश्रेष्ठहै; हे शत्रु

ततोब्रवीन्महातेजाहनूमंतंसजांबवान् ॥ आगच्छहरिशार्दूलवानरांस्त्रातुमर्हसि ॥ २६ ॥ नान्योविक्रमपर्याप्तस्त्वमे षांपरमःसखा ॥ त्वत्पराक्रमकालोयंनान्यंपश्यामिकंचन ॥ २७ ॥ ऋक्षवानरवीराणामनीकानिप्रहर्षय ॥ विशल्यौ कुरुचाप्येतौसादितौरामलक्ष्मणौ ॥ २८ ॥ गत्वापरममध्वानमुपर्युपरिसागरम् ॥ हिमवंतंनगश्रेष्ठंहनूमन्गंतुमर्ह सि ॥ २९ ॥ ततःकांचनमत्युग्रमृषभंपार्वतोत्तमम् ॥ कैलासशिखरंचात्रद्रक्ष्यस्यरिनिषूदन ॥ ३० ॥ तयोःशिखरयो र्मध्येप्रदीप्तमतुलप्रभम् ॥ सर्वौषधियुतंवीरद्रक्ष्यस्योषधिपर्वतम् ॥ ३१ ॥ तस्यवानरशार्दूलचतस्रोमूर्ध्निसंभवाः ॥ द्रक्ष्यस्योषधयोदीप्तादीपयंतीर्दिशोदश ॥ ३२ ॥ मृतसंजीवनींचैवविशल्यकरणीमपि ॥ सुवर्णकरणींचैवसंधानीं चमहौषधीम् ॥ ३३ ॥ ताःसर्वाहनुमन्गृह्यक्षिप्रमागंतुमर्हसि ॥ आश्वासयहरीन्प्राणैर्योज्यगंधवहात्मज ॥ ३४ ॥

दमनकारी! वहां पर तुम कैलासपर्वतके शिखरभी देखोगे ॥ ३० ॥ वहांपर इन दोनों शिखरोंके मध्यमें समस्त औषधियोंसे युक्त अतुल प्रभा युक्त और प्रदीप्त ओषधि पर्वत तुमको दिखाई देगा ॥ ३१ ॥ हे वानरशार्दूल! तुम उस पर्वतके शिखर पर चार प्रकारकी ओषधि देख पाओगे, तुम देखोगे कि वह अपने प्रभावसे दशों दिशाओंको प्रकाशमान कर रही होंगी ॥ ३२ ॥ उनके मृतसञ्जीवनी [मरे हुएको जिलानें वाली] विशल्यकरणी [अंगोंकी व्यथा दूर करनेंवाली] सुवर्णकरिणी, [घाव आदिकसे हुई विवर्णताको दूरकर अंग सुन्दर करतीहै] और सन्धानकरणी, [लगातेही घावको भर देती है] यह चार नामहैं ॥३३॥ हे गन्धवह [पवन] नन्दन हनुमान्! तुम इन सब औषधियोंको जितनी

वान् राक्षसोंसे कहा "हे निशाचर गण ! तुम सब इस रात्रिमेंही युद्ध करनेंके लिये जाओ" ॥ ४८ ॥ राक्षसगण राक्षसराज रावण करके इस प्रका
रसे युद्धमें भेजे जाकर आयुध उठाय वारंवार सिंहनाद करते हुए लंकासे निकले ॥ ४९ ॥ तब राक्षसोंकें धारण कियेहुए अलंकारोंसे और
शरीरोंके कांतिसें और वानरोने पकडेहुये उल्कासे आकाश प्रकाशित होगया ॥ ५० ॥ ऊपरसे चंद्रमा और तारागण व नीचे वानर राक्षसोंके
भूषणोंकी प्रकाशमय कांतिसे दोनों सैनाओंके बीचमें टिकाहुआ आकाश प्रदीप्तमान होगया ॥ ५१ ॥ चंद्रमाकी चांदनी गहनोंकी कांति

ततस्तुचोदितास्तेनराक्षसाज्वलितायुधाः ॥ लंकायांनिर्ययुर्वीराःप्रणदंतःपुनःपुनः ॥ ४९ ॥ रक्षसांभूषणस्था
भिर्भाभिःस्वाभिश्चसर्वशः ॥ चक्रुस्तेसप्रभंव्योमहरयश्चाग्निभिःसह ॥ ५० ॥ तत्रताराधिपस्याभाताराणांभातथै
वच ॥ तयोराभरणाभाचज्वलिताद्यामभासयत् ॥ ५१ ॥ चंद्राभाभूषणाभाचग्रहाणांज्वलिताचभा ॥ हरिरा
क्षससैन्यानिभ्राजयामाससर्वतः ॥ ५२ ॥ तत्रचार्धप्रदीप्तानांगृहाणांसागरःपुनः ॥ भाभिःसंसक्तसलिलश्चलोर्मिःशुशु
भेध्रुवम् ॥ ५३ ॥ पताकाध्वजसंयुक्तमुत्तमासिपरश्वधम् ॥ भीमाश्वरथमातंगंनानापत्तिसमाकुलम् ॥ ५४ ॥ दीप्तशूल
गदाखड्गप्रासतोमरकार्मुकम् ॥ तद्राक्षसबलंभीममंघोरविक्रमपौरुषम् ॥ ५५ ॥ ददृशेज्वलितप्रासंकिंकिणीशतनादि
तम् ॥ हेमजालाचितभुजंव्यावेष्टितपरश्वधम् ॥ ५६ ॥

और जलतेहुए भवनोंकी अग्नि;यह सब वानर और राक्षसोंको प्रकाशित करनें लगीं ॥ ५२ ॥ अग्निसे जलतेहुए गृहोंकी दीप्तिकी परछांई
जब समुद्रके जलमें पडी तब चंचल तरंग माला शोभित समुद्र और भी अधिक शोभायमान हुआ ॥ ५३ ॥ ध्वजा पताकासंयुक्त, उत्तम खड्ग,
फरसासहित, भयंकर घोड़े व हाथियोंके साथ अनेक प्रकारके पैदलोंके सहित ॥ ५४ ॥ प्रदीप्त शूल, गदा खड्ग, प्राश, तोमर, धनुष ऐसे राक्षसोंकी
घोर विक्रमकारी और पौरुषयुक्त सैनाको ॥ ५५ ॥ प्रकाशमान देखा वह सैना शत २ किङ्किणीनिनादित, प्रज्वलित कुठार और सुवर्ण भूषणसे

जलदी लासकते हो, उतनी जलदी लेआओ, और वानरोंको प्राणदान देकर इन लोगोंको आनंदित करो ॥ ३४ ॥ उस समय पवननंदन हनुमानजी जाम्बवन्तके वचन सुनकर पवनके वेगसे जिस प्रकार समुद्र उफनजाताहै, वैसेही प्रबल वेगसे आपभी उद्धतहो उठे ॥ ३५॥ इसके उपरान्त कूदनेंके लियेही जब यह त्रिकूट पर्वतके आगे खड़े हुए तब दूसरे पर्वतके समान जानपड़तेथे ॥ ३६ ॥ तिस काल वानरश्रेष्ठ हनुमानजीके पांवों द्वारा अत्यन्त पीड़ित होंनेसे वह पर्वत अपने स्थानमें रहनेंको असमर्थ हो टूटकर झुक पड़ा ॥ ३७ ॥ वानर श्रेष्ठ हनुमानजीके वेगसे पीड़ित होनेसे उस पर्वतके समस्त वृक्ष पृथ्वीपर गिर पड़े और उसके समस्त शिखर फटगये कि जिनसे अग्नि निकलनेंलगी और सब शृङ्गभी फट

श्रुत्वाजांबवतोवाक्यंहनूमान्मारुतात्मजः ॥ आपूर्यतबलोद्धर्षैर्वायुवेगैरिवार्णवः ॥३५॥ सपर्वततटाग्रस्थःपीडयन्पर्वतोत्तमम् ॥हनूमान्दृश्यतेवीरोद्वितीयइवपर्वतः ॥३६॥ हरिपादविनिर्भग्नोनिषसादसपर्वतः ॥ नशशाकतदात्मानंवोढुंभृशनिपीडितः॥३७॥तस्यपेतुर्नगाभूमौहरिवेगाच्चजज्वलुः ॥ शृंगाणिचव्यकीर्यंतपीडितस्यहनूमता ॥ ३८ ॥ तस्मिन्संपीड्यमानेतुभग्नद्रुमशिलातले ॥ नशेकुर्वानराःस्थातुंघूर्णमानेनगोत्तमे ॥ ३९ ॥ साघूर्णितमहाद्वाराप्रभग्नगृहगोपुरा ॥ लंकात्रासाकुलारात्रौप्रनृत्यंत्येवाभवत्तदा॥४०॥ पृथिवीधरसंकाशोनिपीड्यपृथिवीधरम् ॥ पृथिवींक्षोभयामाससार्णवां मारुतात्मजः ॥ ४१ ॥ पद्भ्यांतुशैलमाविध्यवडवामुखवन्मुखम् ॥ विवृत्योग्रंननादोच्चैस्त्रासयन्रजनीचरान् ॥ ४२ ॥ तस्यनानद्यमानस्यश्रुत्वानिनदमुत्तमम् ॥ लंकास्थाराक्षसव्याघ्रानशेकुःस्पंदितुंकचित् ॥ ४३ ॥

गये ॥ ३८ ॥ इस प्रकार पर्वतश्रेष्ठ त्रिकूटके सब वृक्ष टूट गये शिलाओंका चूरा होगया, और वह पर्वतभी पीड़ित होकर घूमनेंलगा; उस पर्वतके रहनेंवाले वानर लोग उस पर नहीं टिकसके ॥ ३९ ॥ लंकाके गृह और पुरद्वार टूट गये, और कंपायमान होनेलगे सबही शंकायुक्त हुए; उस समय ऐसा ज्ञात हुआ कि मानों राक्षसोंकी पुरी लंका नाच रहीहै ॥ ४० ॥ पर्वताकार वानरवीर पवनकुमार पर्वतको पीड़ित करके समस्त पृथ्वीको समुद्रके सहित चलायमान कर देते हुए ॥ ४१ ॥ हनुमानजी चरणके आघातसे पृथ्वीको विदीर्ण करके घोडीके मुखकी समान प्रदीप्त मुख फैलाय राक्षसोंको शंकित करके घोर गर्जन करनेंलगे ॥ ४२ ॥ लंकामें टिकेहुए राक्षसलोग अचानक कठोर गर्जन सुन

भूषित बाहु और प्रज्वलित भालेंसे युक्त ॥ ५६ ॥ महाशस्त्रोंको घुमाते हुए धनुष पर बाण चढ़ाते हुए, गन्धमाला व पवनकी मधुकमोहकेसं मोदित करते ॥ ५७ ॥ शूरगणोंके भरे रहनेसे अतिघोर महा मेघके गर्जनकी समान शब्द करती ऐसी दुर्द्धर्ष राक्षसोंकी सैना आई हुई देखकर ॥ ५८ ॥ वानरोंकी सैनानें विचलित होकर ऊंचे स्वरसे सिंहनाद किया। फिर उस राक्षसोंकी बड़ी भारी सैनाके वीचमें ॥ ५९ ॥ अतिवेगसे कूद पड़े कि जैसे पतंगे अग्निमें कूद पड़तेहैं तिन राक्षस लोगोंके भुजोंके व्यापारसे कंपायमान,किये गये वज्र व अशनिसें युक्त ॥ ६० ॥

व्याघूर्णितमहाशस्त्रंबाणसंसक्तकार्मुकम् ॥ गंधमाल्यमधूत्सेकसंमोदितमहानिलम् ॥ ५७ ॥ घोरंशूरजनाकीर्णमहां बुधरनिःस्वनम् ॥ तदृष्ट्वाबलमायातंराक्षसानांदुरासदम् ॥ ५८ ॥ संचचालप्लवंगानांबलमुच्चैर्ननादच ॥ जवेनाप्लुत्यच पुनस्तद्बलंरक्षसांमहत् ॥ ५९ ॥ अभ्ययात्प्रत्यरिबलंपतंगाइवपावकम् ॥ तेषांभुजपरामर्शव्यामृष्टपरिघाश नि ॥ ६० ॥ राक्षसानांबलंश्रेष्ठंभूयःपरमशोभत ॥ तत्रोन्मत्ताइवोत्पेतुर्हरयोथयुयुत्सवः ॥ ६१ ॥ तरुशैलैरभिघ्नं तोमुष्टिभिश्चनिशाचरान् ॥ तथैवापततांतेषांहरीणांनिशितैःशरैः ॥ ६२ ॥ शिरांसिसहसाजह्रूराक्षसाभीमविक्रमाः ॥ दशनैर्हृतकर्णाश्चमुष्टिभिर्भिन्नमस्तकाः ॥ शिलाप्रहारभग्नांगाविचेरुस्तत्रराक्षसाः ॥ ६३ ॥ तथैवाप्यपरेतेषांकपीनाम सिभिःशितैः ॥ प्रवरानभितोजघ्नुर्घोररूपानिशाचराः ॥ ६४ ॥

राक्षसोंकी सैना फिर अत्यन्त शोभित हुई। इसके उपरान्त युद्ध करनेंके लिये तैयार वानरलोग उन्मत्तकी समान ॥ ६१ ॥ वृक्ष शैल, मूकोंसे कूद २ कर निशाचरोंको मारनें लगे। तब उन कूद २ कर आते हुए वानरोंके तीक्ष्ण बाणोंसे ॥ ६२ ॥ भयंकरविक्रमकारी राक्षस लोग शिर काटनें लगे निशाचरलोग वानर लोगोंके दांतोंसे काटे जाकर कर्ण रहित मूकोंके मारनेंसे शिर रहित और शिलाओंके प्रहारसे अंग भंगहो उस रण भूमिमें विचरण करनेंलगे ॥६३॥ व दूसरी ओरसे घोर रूप निशाचर गणोंने भी तीक्ष्ण खड्गसे मुख्य२वानरोंका संहार करना आरंभ किया ॥ ६४ ॥

धनु, और वसुन्धराकी नाभि, अर्थात् सब प्राजापत्यस्थानोंको देखा ॥५६॥ [महावीर पवनकुमार हनुमानजीनें उस हिमालय पर विघ्नेश्वर (गणेशजी) नंदिकेश्वर, देवता लोगोंसे वेष्टित कुमार कार्तिकेय और कन्या गणोंके साथमें दीप्तिमती हैमवती (दुर्गाजीको) देखा] इसके उपरान्त हिमवत शिखर कैलास; जाम्बवन्तके बताये हुए वृक्ष पर्वत श्रेष्ठ सुवर्णका पर्वत देखकर सब औषधियोंसे प्रदीप्त औषधि पर्वत हनुमानजीनें देखा ॥ ५७ ॥ पवनकुमार हनुमानजी कूदकर अनलकी राशिके समान प्रदीप्त उस औषधिपर्वतपर पहुंचकर जाम्बवानकी बताईहुई सब महौषधियोंको खोजनेंलगे और इन औषधियोंको अग्निके समान प्रकाशमान देख हनुमानजी विस्मितभी हुए ॥ ५८ ॥ इस प्रकारसे महाकपि हनुमा

कैलासमुग्रंहिमवच्छिलांचतंवैवृषंकांचनशैलमग्र्यम् ॥ प्रदीप्तसर्वौषधिसंप्रदीप्तंददर्शसर्वौषधिपर्वतेंद्रम् ॥ ५७ ॥ सतंसमीक्ष्यानलराशिदीप्तंविसिस्मियेवासवदूतसूनुः ॥ आप्लुत्यतंचौषधिपर्वतेंद्रंतत्रौषधीनांविचयंचकार ॥ ५८ ॥ सयोजनसहस्राणिसमतीत्यमहाकपिः ॥ दिव्यौषधिधरंशैलंव्यचरन्मारुतात्मजः ॥ ५९ ॥ महौषध्यस्ततःसर्वास्तस्मिन्पर्वतसत्तमे ॥ विज्ञायार्थिनमायांतंततोजग्मुरदर्शनम् ॥ ६० ॥ सतामहात्माहनुमानपश्यंश्चुकोपरोषाच्चभृशंननाद ॥ अमृष्यमाणोग्निसमानचक्षुर्महीधरेंद्रंतमुवाचवाक्यम् ॥ ६१ ॥ किमेतदेवंसुविनिश्चितंतेयद्राघवेनासिकृतानुकंपः ॥ पश्याद्यमद्बाहुबलाभिभूतोविकीर्णमात्मानमथोनगेंद्र ॥ ६२ ॥

नजी हजार योजन मार्ग चलकर सब औषधियुक्त उस पर्वतपर पहुंचकर घूमनें लगे॥५९॥परन्तु उस पर्वतश्रेष्ठके ऊपर जो समस्त महौषधिथीं, वह यह समझकरकि हमको ढूंढ़नेंको कोई आयाहै सबही अदृश्य होगईं॥६०॥उन समस्त औषधियोंको न देख पायकर क्रोधके मारे हनुमानजीके दोनों नेत्र अग्निकी समान लाल होगये और वह उन औषधियोंका ऐसा कार्य न सहन करके वारंवार सिंहनाद करतेहुए उस पर्वतसे बोले ॥ ६१ ॥ हे पर्वत! तुम जो श्रीरामचंद्रजीके प्रति दया प्रगट नहीं करते यह कैसा कार्य तुमनें निश्चय कियाहै? यदि तुमनें अपनी सामर्थ्यपर भरोसा रखके कार्यमें ऐसी उदासीनता प्रकाश की तौ आज हमारे बाहुबलसे व्याकुल होकर तुम अपनेको रत्ती २ चूर्णहुआ देखोगे ॥ ६२ ॥

जायकर उठगये ॥ १ ॥ वेगवान् कंपननेंभी युद्ध करनेंके लिये अंगदको पुकारकर अपनी गदासे उनको मारा कि जिस्से अत्यन्त घायलहो
अंगदजी चलायमान होगये ॥ २ ॥ परन्तु तेजस्वी अंगदजीनें क्षण कालमेंही मूर्छासे जागकर एक पर्वतका शिखर उसके ऊपर चलाया कि उस
प्रहारके लगतेही कंपन अर्दित होकर पृथ्वीमें गिर पड़ा ॥ ३ ॥ कंपनको रणमें मराहुआ देखकर शोणिताक्ष अपने रथको चलाता हुआ निर्भयहो
शीघ्रतासे अंगदजीके समीप गया ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त अत्यन्त वेगसे अंगदजीके ऊपर तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करनेंलगा; वह कालकी अग्निके समान
सायक वीरश्रेष्ठ अंगदजीके शरीरमें विंधगये ॥ ५ ॥ राक्षसवीरनें वानरवीरके प्रति क्रमसे छुरे, क्षुरप्र, नाराच, वत्सदन्त, शिलीमुख, कर्णीशल्य

आहूयसोंगदंकोपात्ताडयामासवेगितः ॥ गदयाकंपनः पूर्वंसचचालभृशाहतः ॥ २ ॥ ससंज्ञांप्राप्यतेजस्वीचिक्षेपशि
खरंगिरेः ॥ अर्दितश्चप्रहारेणकंपनःपतितोभुवि ॥ ३ ॥ ततस्तुकंपनंदृष्ट्वाशोणिताक्षोहतंरणे ॥ रथेनाभ्यपतत्क्षिप्रं
तत्रांगदमभीतवत् ॥ ४ ॥ सोंगदंनिशितैर्बाणैस्तदाविव्याधवेगितः ॥ शरीरदारणैस्तीक्ष्णैःकालाग्निसमविग्रहैः ॥ ५ ॥
क्षुरक्षुरप्रनाराचैर्वत्सदंतैःशिलीमुखैः ॥ कर्णीशल्यविपाटैश्चबहुभिर्निशितैःशरैः ॥ ६ ॥ अंगदःप्रतिविद्धांगोवालिपुत्रः
प्रतापवान् ॥ धनुरुग्रंरथंबाणान्ममर्दतरसाबली ॥ ७ ॥ शोणिताक्षस्ततःक्षिप्रमसिचर्मसमाददे ॥ उत्पपाततदाक्रुद्धो
वेगवानविचारयन् ॥ ८ ॥ तंक्षिप्रतरमाप्लुत्यपरामृश्यांगदोबली ॥ करेणतस्यतंखड्गंसमाच्छिद्यननादच ॥ ९ ॥ तस्यां
सफलकेखड्गंनिजघानततोंगदः ॥ यज्ञोपवीतवच्चैनंचिच्छेदकपिकुंजरः ॥ १० ॥

और विपाट इत्यादिक अनेक प्रकारके बाण छोड़े प्रतापवान् बलशाली वालिकुमार अंगदके शरीरमें जब यह समस्त बाण लगे तब उन्होंनें
अत्यन्त वेगसे उस राक्षसका उग्र धनु और समस्त बाणोंको छिन्न भिन्न कर डाला ॥ ६ ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त शोणिताक्ष क्रोधमें भरकर शीघ्रतासे
ढाल तरवार ग्रहण कर विना विचारे वेगसे कूद पड़ा ॥ ८ ॥ तब विपुलबलशाली अंगदजीनें शीघ्रतासे छलांग मारकर उस राक्षसको पकड़ा
और उसके हाथसे बलपूर्वक ढाल तरवार छीन वारंवार सिंहनाद करनेंलगे ॥ ९ ॥ उसकाही खड्ग उसके वायें हाथपर इस प्रकारसे अंगदजीनें

यह कह कर हनुमानजीने शृङ्ग प्रस्तर, खण्ड, मातङ्ग और सुवर्ण आदि धातुओंके उस अनेक शिखरवाले और सहस्रों धातुओंसे प्रज्वलित शृङ्ग सानु समन्वित उस पर्वतको सहसा ग्रहण करके अतिवेगसे उखाड़ लिया ॥ ६३ ॥ गरुड़जीकी समान अति उग्र वेगवाले हनुमानजी उस पर्वतशृङ्गको उखाड़ आकाशमें उछल गये और सुरेन्द्र व असुरगणोंके सहित समस्त लोकोंको त्रासित करते२ असंख्य आकाशचारियोंसें स्तुति किये जाते हुए अतिवेगसे गमन करते हुए ॥ ६४ ॥ सूर्यकी समान रूप सम्पन्न वह वीर हनुमानजी सूर्यकी समान पर्वत ग्रहण करके सूर्यके मार्गमें उपस्थित हो दूसरें सूर्यकी समान शोभाधारण करते हुए ॥ ६५ ॥ पर्वताकार हनुमानजी उस पर्वतको ग्रहण करके अग्निकी ज्वालासे युक्त

सतस्यशृंगंसनगंसनागंसकांचनंधातुसहस्रजुष्टम् ॥ विकीर्णकूटंज्वलिताग्रसानुंप्रगृह्यवेगात्सहसोन्ममाथ ॥ ६३ ॥
सतंसमुत्पाट्यखमुत्पपातवित्रास्यलोकान्ससुरान्सुरेंद्रान् ॥ संस्तूयमानःखचरैरनेकैर्जगामवेगाद्गरुडोग्रवेगः ॥ ६४ ॥
सभास्कराध्वानमनुप्रपन्नस्तंभास्कराभंशिखरंप्रगृह्य॥बभौतदाभास्करसन्निकाशोरवेःसमीपेप्रतिभास्कराभः॥६५॥
सतेनशैलेनभृशंरराजशैलोपमोगंधवहात्मजस्तु ॥ सहस्रधारेणसपावकेनचक्रेणखेविष्णुरिवार्पितेन ॥ ६६ ॥ तंवान
राःप्रेक्ष्यतदाविनेदुःसतानपिप्रेक्ष्यमुदाननाद ॥ तेषांसमुत्कृष्टरवंनिशम्यलंकालयाभीमतरंविनेदुः ॥ ६७॥ ततोमहा
त्मानिपपाततस्मिन्शैलोत्तमेवानरसैन्यमध्ये ॥ हर्युत्तमेभ्यःशिरसाभिवाद्यविभीषणंतत्रचसस्वजेसः ॥ ६८ ॥ ताव
प्युभौमानुषराजपुत्रौतंगंधमाघ्रायमहौषधीनाम् ॥ बभूवतुस्तत्रतदाविशल्यावुत्तस्थुरन्येचहरिप्रवीराः ॥ ६९ ॥

हाथमें सहस्र धार चक्र द्वारा शोभित विष्णुजीकी समान शोभायमान होनें लगे॥६६॥ उस कालमें लंकाके मैदान में खड़े हुए वानरगण उनको देखकर सिंहनाद करने लगें और हनुमानजी भी उनको देखकर सिंहनाद कर उठे उस अत्यन्त दारुण शब्दको श्रवणकरके लंका निवासी निशाचर गणभी भयंकर घोर सिंहनाद करने लगे॥६७॥ इसके उपरान्त महाबलवान हनुमानजी पर्वतश्रेष्ठ त्रिकूटके ऊपर वानरोंकी सेनामें उतरकर मुख्य२ वानरोंको प्रणाम करके विभीषणजीको लिपटायकर मिले॥६८॥इस ओर मनुष्यराजकुमार राम और लक्ष्मणजी सब महौषधियोंकी सुगन्धि सूंघकर उसी

बलवान वानरवीरोंनेभी प्रबल राक्षसोंका संहार किया, एक २ जनके मारनेंको जैसेही तैयारहुआ कि वैसेही एक दूसरेनें आकर उसको ढकेल दिया कोई किसीको काटरहाथा कि दूसरेनें आनकर उसको काट खाया, कोई एक २ किसीकी निन्दाकररहाथा कि वैसेही एक तीसरेनें आकर उसका निरादर किया; किसीके युद्ध चाहनेंपर दूसरा उस्से युद्ध कर रहाहै कि इतनेहीमें कोई आयकर बोला कि हम युद्ध करेंगे "क्यों क्लेशदेतेहो! तुम यहां खड़े रहो" रणभूमिमे तिसकाल एक दूसरेसे ऐसा कह रहेथे ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ धीरे २ दोनोंओरका युद्ध अतिभयं कर हो उठा, राक्षस लोगोंके शस्त्र व्यर्थ होनेंलगे, उनके कवच आयुध समस्त छिन्न भिन्न होगये। राक्षसलोग बड़े २ भाले, मुष्टि, शूल, और तलवार उठाय रहगये ॥ ६७ ॥ "प्रावर्तत महारौद्रं युद्धं वानररक्षसाम् ॥ वानरान्दश सप्तेति राक्षसा जघ्नुराहवे" इस प्रकारसे वानर

घ्नंतमन्यंजघानान्यःपातयंतमपातयत् ॥ गर्हमाणंजगर्हान्योदशंतमपरोदशत् ॥ ६५ ॥ देहीत्यन्योददात्यन्यो ददामीत्यपरःपुनः ॥ किंक्लेशयसितिष्ठेतितत्रान्योन्यंबभाषिरे ॥ ६६ ॥ विप्रलंभितशस्त्रंचविमुक्तकवचायुधम् ॥ समु द्यतमहाप्रासंमुष्टिशूलासिकुंतलम् ॥ ६७ ॥ प्रावर्ततमहारौद्रंयुद्धंवानररक्षसाम् ॥ वानरान्दशसप्तेतिराक्षसाजघ्नु राहवे ॥ ६८ ॥ विप्रलंभितवस्त्रंचविमुक्तकवचध्वजम् ॥ बलंराक्षसमालंब्यवानराःपर्यवारयन् ॥ ६९ ॥ इ० श्री मद्रा० वा० आ० यु० पंचसप्ततितमःसर्गः ॥ ७५ ॥ ॥ छ ॥ ॥ प्रवृत्तेसंकुलेतस्मिन्वीरेघोरजनक्षये ॥ अंगदःकंपनंवीरमाससादरणोत्सुकः ॥ १ ॥

और राक्षसोंका महाघोर युद्ध होनेंलगा निशाचर लोग एकही वारमें सहस्र २ वानरोंको संहार करनेंलगे ॥ ६८ ॥ "राक्षसान्दशसप्तेति वानरास्त्वभ्यपातयन् । बलं राक्षसमालंब्य वानराः पर्यवारयन् ॥" और वानर. लोगभी इतनेही राक्षसोंको एक २ बाणसे रणभूमिमें मारते हुए और उनके वस्त्र फाड कवच तोड ध्वजा नष्ट करदी, उस युद्धमें वानरगण राक्षस लोगोंकी समान बलका आश्रय करके राक्षस लोगोंको निवारण करनेंलगे ॥ ६९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे भाषानुवादे पंचसप्ततितमः सर्गः ॥ ॥ ७५ ॥ जब इस प्रकारसे लोकक्षयकारी घोर कठोर संग्राम होनेंलगा तब महावीर अंगदजी युद्धका अभिलाप करके राक्षसवीर कंपनके सन्मुख

जब वानरराज सुग्रीवजीनें इस प्रकारसे आज्ञा दी तौ उसी दिन सूर्य छिपनेंके पीछे घोर रात्रिमें वानरश्रेष्ठगण मसालें हाथमें लेलेकर लंकाके सन्मुख गये ॥ ४ ॥ विरूपाक्ष राक्षसगण जोकि लंकाके द्वारकी रक्षा करतेथे वह सब वानरोंको लूके हाथमें लिये हुए देखकर घवड़ाये और वानरगणोंसे मार खाय कर भागगये ॥ ५ ॥ तब वानर लोगोंनें हर्षित अंतःकरणसे बाहर द्वारोंपर, अटारियोंपर, छज्जोंपर, विविध चर्या और धवरहरोंपर सबही जगह अग्नि लगादी ॥ ६ ॥ उस कालमें अग्निनें उन राक्षसोंके हजारों गृह भस्म कर दिये, और पर्वताकार समस्त धवरहर भस्महो पृथ्वीपर भयराय कर गिरनेंलगे ॥ ७ ॥ लंकाके स्थान २ में अगर, परम सुगन्धि युक्त चंदन, मुक्तामणि, उत्तम २ हीरे प्रवाल भस्म होंने लगे ॥ ८ ॥ अनेक प्रकारके क्षौम कौशेय, [रेशमीन] राङ्कव और उनके बने हुए वस्त्रादि भस्म होगये, आयुध व सुवर्णके पात्रभी जलकर मट्टीमें मिलगये ॥ ९ ॥ भांति २ अन्नादि धरनेंके स्थान घोड़ोंके व और दूसरेभी बहुत सारे अलंकार, हाथियोंके गलोंमें बांधनेंकी वस्तुयें और कमरमें बांधनेंके रस्से, रथोंके गहने, व भोजनादिके पात्र जो कुछभी बनेठने धरेथे ॥ १० ॥ योद्धागणोंके कवच वर्म इत्यादि, हाथी घोड़ोंके कवच, खड्ग, धनुष, प्रत्यंचा, बाण, भाला, अंकुश, शक्ति ॥ ११ ॥ उनके बनेहुए वस्त्र वालोंके बनेहुए चामरादि असंख्य व्याघ्रचर्म, अण्डजात मृग

ततोस्तंगतआदित्येरौद्रेतस्मिन्निशामुखे ॥ लंकामभिमुखाःसोल्काजग्मुस्तेप्लवगर्षभाः ॥ ४ ॥ उल्काहस्तैर्हरिगणैः सर्वतःसमभिद्रुताः ॥ आरक्षस्थाविरूपाक्षाःसहसाविप्रदुद्रुवुः ॥ ५ ॥ गोपुराट्टप्रतोलीषुचर्यासुविविधासुच ॥ प्रासादेषुचसंहृष्टाःससृजुस्तेहुताशनम् ॥ ६ ॥ तेषांगृहसहस्राणिददाहहुतभुक्तदा ॥ प्रासादाःपर्वताकाराःपतंतिधरणीतले ॥ ७ ॥ अगुरुर्दह्यतेतत्रपरंचैवसुचंदनम् ॥ मौक्तिकामणयःस्निग्धावज्रंचापिप्रवालकम् ॥ ८ ॥ क्षौमंचदह्यतेतत्रकौशेयंचापिशोभनम् ॥ आविकंविविधंचौर्णंकांचनंभांडमायुधम् ॥ ९ ॥ नानाविकृतसंस्थानंवाजिभांडपरिच्छदम् ॥ गजग्रैवेयकक्ष्याश्चरथभांडांश्चसंस्कृतान् ॥ १० ॥ तनुत्राणिचयोधानांहस्त्यश्वानांचचर्मच ॥ खङ्गाधनूंषिज्याबाणास्तोमरांकुशशक्तयः ॥ ११ ॥ रोमजंवालजंचर्मव्याघ्रजंचांडजंबहु ॥ मुक्तामणिविचित्रांश्चप्रासादांश्चसमंततः ॥ १२ ॥

भूषित बाहु और प्रज्वलित भालोंसे युक्त ॥ ५६ ॥ महाशस्त्रोंको घुमाते हुए धनुष पर बाण चढ़ाते हुए, गन्धमाला व पवनकी मधुकमोहकेसं मोदित करते ॥ ५७ ॥ शूरगणोंके भरे रहनेसे अतिघोर महा मेघके गर्जनकी समान शब्द करती ऐसी दुर्द्धर्ष राक्षसोंकी सैना आई हुई देखकर ॥ ५८ ॥ वानरोंकी सैनानें विचलित होकर ऊंचे स्वरसे सिंहनाद किया। फिर उस राक्षसोंकी बड़ी भारी सैनाके वीचमें अतिवेगसे कूद पड़े कि जैसे पतंगे अग्निमें कूद पड़तेहैं तिन राक्षस लोगोंके भुजोंके व्यापारसे कंपायमान किये गये वज्र व अशनिसें युक्त ॥ ५९ ॥ ६० ॥

व्याघूर्णितमहाशस्त्रंबाणसंसक्तकार्मुकम् ॥ गंधमाल्यमधूत्सेकसंमोदितमहानिलम् ॥ ५७ ॥ घोरंशूरजनाकीर्णंमहांबुधरनिःस्वनम् ॥ तद्दृष्ट्वाबलमायातंराक्षसानांदुरासदम् ॥ ५८ ॥ संचचालप्लवंगानांबलमुच्चैर्ननादच ॥ जवेनाप्लुत्यच पुनस्तद्बलंरक्षसांमहत् ॥ ५९ ॥ अभ्ययात्प्रत्यरिबलंपतंगाइवपावकम् ॥ तेषांभुजपरामर्शव्यामृष्टपरिघाशनि ॥ ६० ॥ राक्षसानांबलंश्रेष्ठंभूयःपरमशोभत ॥ तत्रोन्मत्ताइवोत्पेतुर्हरयोथयुयुत्सवः ॥ ६१ ॥ तरुशैलैरभिघ्नंतोमुष्टिभिश्चनिशाचरान् ॥ तथैवापततांतेषांहरीणांनिशितैःशरैः ॥ ६२ ॥ शिरांसिसहसाजह्रुराक्षसाभीमविक्रमाः ॥ दशनैर्हृतकर्णाश्चमुष्टिभिर्भिन्नमस्तकाः ॥ शिलाप्रहारभग्नांगाविचेरुस्तत्रराक्षसाः ॥ ६३ ॥ तथैवाप्यपरेतेषांकपीनामसिभिःशितैः ॥ प्रवरानभितोजघ्नुःघोररूपानिशाचराः ॥ ६४ ॥

राक्षसोंकी सैना फिर अत्यन्त शोभित हुई। इसके उपरान्त युद्ध करनेंके लिये तैयार वानरलोग उन्मत्तकी समान ॥ ६१ ॥ वृक्ष शैल, मूकोंसे कूद २ कर निशाचरोंको मारनें लगे। तब उन कूद २ कर आते हुए वानरोंके तीक्ष्ण बाणोंसे ॥ ६२ ॥ भयंकरविक्रमकारी राक्षस लोग शिर काटनें लगे निशाचरलोग वानर लोगोंके दांतोंसे काटे जाकर कर्ण रहित मूकोंके मारनेंसे शिर रहित और शिलाओंके प्रहारसे अंग भंगहो उस रण भूमिमें विचरण करनेंलगे ॥६३॥ व दूसरी ओरसे घोर रूप निशाचर गणोंने भी तीक्ष्ण खड्गसे मुख्य२वानरोंका संहार करना आरंभ किया ॥ ६४ ॥

भयंकर वेषवाले आक्रमण करनेके अयोग्य ॥ १ ॥ पांच हजार राक्षसोंको जो कि समरसे लौटनाही चाहतेथे और महावेगवानथे उनको युद्ध करनेके लिये आज्ञादी वह सब राक्षस समरमें जाय शूल, पटा, खड्ग, और वृक्षादिक व बाणोंकी वर्षा लगातार श्रीरामचंद्रजीके ऊपर करनें लगे वह वृक्ष और पर्वतोंकी वर्षा प्राणोंकी हरण करनेंवालीथी ॥ २ ॥३॥ धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीनें अपनें तीखे बाणों परही उस वर्षाका ग्रहण किया और उसे ग्रहण करके नेत्र बंद कर लिये ॥ ४ ॥ फिर बडा कोप किया और सब राक्षसोंके संहार करनेंका संकल्प किया उस समय क्रोध और तेजसे प्रकाशमान होते हुए श्रीरामचंद्रजीनें॥५॥दूषण सहित सेनाके ऊपर बाणोंकी वर्षा की । फिर शत्रुदूषण सेनापति दूषण क्रोधित हो

राक्षसान्पंचसाहस्रान्समरेष्वनिवर्तिनः ॥ तेशूलैःपट्टिशैःखड्गैःशिलावर्षैर्द्रुमैरपि ॥ २ ॥ शरवर्षैरविच्छिन्नंववर्षुस्तंसमंततः ॥ तद्द्रुमाणांशिलानांचवर्षंप्राणहरंमहत् ॥ ३ ॥ प्रतिजग्राहधर्मात्माराघवस्तीक्ष्णसायकैः ॥ प्रतिगृह्यचतद्वर्षंनिमीलितइवर्षभः ॥ ४ ॥ रामःक्रोधंपरंलेभेवधार्थंसर्वरक्षसाम् ॥ ततःक्रोधसमाविष्टःप्रदीप्तइवतेजसा ॥ ५ ॥ शरैरभ्यकिरत्सैन्यंसर्वतःसहदूषणम् ॥ ततःसेनापतिःक्रुद्धोदूषणःशत्रुदूषणः ॥६॥शरैरशनिकल्पैस्तंराघवंसमवारयत्॥ततोरामःसुसंक्रुद्धःक्षुरेणास्यमहद्धनुः ॥७॥ चिच्छेदसमरेवीरश्चतुर्भिश्चतुरोहयान्॥हत्वाचाश्वाञ्छरैस्तीक्ष्णैरर्धचंद्रेणसारथेः ॥ ८ ॥ शिरोजहारतद्रक्षस्त्रिभिर्विव्याधवक्षसि ॥ सच्छिन्नधन्वाविरथोहताश्वोहतसारथिः ॥ ९ ॥ जग्राहगिरिशृंगाभंपरिघंलोमहर्षणम् ॥ वेष्टितंकांचनैःपट्टैर्देवसैन्याभिमर्दनम् ॥ १० ॥

कर॥ ६॥ वज्रकी समान बाणोंसे श्रीरामचंद्रजीको निवारण करनें लगा। तब श्रीरामचंद्रजीनें महाक्रोधकर छुरेकी समान तेज बाणोंसे दूषणका धनुष॥७॥ काट कर चार बाणोंसे उसके रथमें जो घोडे नधेथे उनको मार डाला।अश्वोंको तीक्ष्ण बाणोंसे वधकर अर्द्धचंद्र बाणसे उसके सारथिका॥ ८॥ शिर काट डाला। और तीन बाण राक्षस खरकी छातीमें मारे। तब दूषणका धनुषभी टूटा रथभी चूर्ण हुआ और घोडे व सारथिभी उसके मारे गये॥९॥तब उसने जिसके देखनेसे संनाटे रुएं खडे हो जाँय ऐसा पहाडके शृंग समान एक परिघ ग्रहण किया वह सुवर्णके बन्धोंसे

बँधा देवताओंकी सेनाको मर्दन करनेवाला ॥ १० ॥ लोहेकी कीलोंसे जडा शत्रुओंकी चरबी जिसमें लगी हुई वज्र के समान कठोर व शत्रुपुरके द्वारका विदारण करनेवाला ॥ ११ ॥ ऐसे महासर्पके समान उस परिघको ले संग्राममें क्रूरकर्मकारी दूषणराक्षस श्रीरामचंद्रजी की ओर धाया॥१२॥श्रीरामचंद्रजीने उस दौडे आतेहुए दूषणके भूषणसहित दोनों कर काटडाले ॥ १३ ॥ हाथोंके कट जानेपर उसका वह बृह दाकार परिघ स्थानभ्रष्ट होकर इन्द्रध्वजाकी समान समरमें गिरा ॥१४॥ हाथ कटजानेसे मुंहकेवल दूषणभी इसभांति पृथ्वीमें गिरा जैसे दांतटूट

आयसैःशंकुभिस्तीक्ष्णैःकीर्णपरवसोक्षितम्॥वज्राशनिसमस्पर्शंपरगोपुरदारणम्॥११॥तंमहोरगसंकाशंप्रगृह्यपरि घंरणे॥ दूषणोऽभ्यपतद्रामंक्रूरकर्मानिशाचरः ॥ १२ ॥ तस्याभिपतमानस्यदूषणस्यचराघवः ॥ द्वाभ्यांशराभ्यां चिच्छेदसहस्ताभरणौभुजौ ॥१३॥ भ्रष्टस्तस्यमहाकायःपपातरणमूर्धनि ॥ परिघश्छिन्नहस्तस्यशक्रध्वजइवाग्र तः ॥ १४ ॥ कराभ्यांचविकीर्णाभ्यांपपातभुविदूषणः ॥ विषाणाभ्यांविशीर्णाभ्यांमनस्वीवमहागजः ॥ १५ ॥ दृष्ट्वातंपतितंभूमौदूषणंनिहतंरणे ॥ साधुसाध्वितिकाकुत्स्थंसर्वभूतान्यपूजयन् ॥ १६ ॥ एतस्मिन्नंतरेक्रुद्धा स्त्रयःसेनाग्रयायिनः ॥ संहत्याभ्यद्रवन्रामंमृत्युपाशावपाशिताः ॥ १७ ॥ महाकपालःस्थूलाक्षःप्रमाथीचमहा बलः ॥ महाकपालोविपुलंशूलमुद्यम्यराक्षसः ॥ १८ ॥ स्थूलाक्षःपट्टिशंगृह्यप्रमाथीचपरश्वधम्॥ दृष्ट्वैवापततस्तां स्तुराघवःसायकैःशितैः ॥ १९ ॥

जानेंपर महा मनस्वी गजराज पृथ्वीमें गिरताहै ॥ १५ ॥ दूषण को संग्राम में मराहुआ और पृथ्वीमें पडाहुआ देखकर सबही प्राणी साधु २ कह कर श्रीरामचंद्रजीकी प्रशंसा करनेंलगे ॥ १६ ॥ इसीसमय उस खरके तीन सेनापति जो निशाचर सेनाके आगेही चलेथे परस्पर मिलकर मृत्युकी फाँसीसे बँधकर क्रोधमें भरकर श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख धाये ॥ १७ ॥ इन तीनोंके नाम महाकपाल, स्थूलाक्ष और महाबलवान् प्रमाथीथे, इनमें महाकपाल विशाल शूल, उठाय ॥ १८ ॥ स्थूलाक्ष पटालेकर, व प्रमाथी फरशा ग्रहण करके श्रीरामचंद्रजीकी ओर चले,

कपिश्रेष्ठ रथ, घोड़े, वृक्ष लेकर राक्षसोंपर चलाये पर्वतोंके शृङ्ग जो कुछभी पातेथे वहां चलातेथे परन्तु महाबलवान् यूपाक्षने बाण चलाय उन सबको टुकड़े २ कर डाला ॥ २० ॥ इसके उपरान्त वीर द्विविद और मैन्दने वृक्षोंको उखाड़कर राक्षसोंके ऊपर चलाया इन सबको वीर्यवान् प्रतापशाली शोणिताक्षनें अधबीचमें ही तोड़डाला ॥ २१ ॥ इसी समयमें वीरश्रेष्ठ प्रजंघ परमर्मभेदी विपुल खड्ग धारण करके अति वेगसे अंगदजीकी ओर धाया ॥२२॥ तब विपुल बलशाली वानरेन्द्र वालिकुमार अंगदजीनें इस राक्षसको निकट आयाहुआ देखकर एक अश्वकर्णवृक्ष ले बड़े वेगसे उसके मारा ॥२३॥ और उस राक्षसके खड्गयुक्त हाथमें एक मूकाभी अंगदजीने मारा कि उसके चोटसे उस निशाचरके हाथसे खड्ग गिर

रथान्सर्वान्द्रुमाञ्छैलान्प्रतिचिक्षिपुराहवे ॥ शरौघैःप्रतिचिच्छेदतान्यूपाक्षोमहाबलः ॥ २० ॥ सृष्टान्द्विविदमैंदाभ्यां द्रुमानुत्पाट्यवीर्यवान् ॥ बभंजगदयामध्येशोणिताक्षःप्रतापवान् ॥ २१ ॥ उद्यम्यविपुलंखड्गंपरमर्मविदारणम् ॥ प्रजंघोवालिपुत्रायअभिदुद्राववेगितः ॥ २२ ॥ तमभ्याशगतंदृष्ट्वावानरेंद्रोमहाबलः ॥ आजघानश्वकर्णेनद्रुमेणातिबलस्तदा ॥ २३ ॥ बाहुंचास्यसनिस्त्रिंशमाजघानसमुष्टिना ॥ वालिपुत्रस्यघातेनसपपातक्षिताविसिः ॥ २४ ॥ तंदृष्ट्वापतितंभूमौखड्गंमुसलसन्निभम् ॥ मुष्टिंसंवर्तयामासवज्रकल्पंमहाबलः ॥२५॥ सललाटेमहावीर्यमंगदंवानरर्षभम् ॥ आजघानमहातेजाःसमुहूर्तंचचालह ॥२६॥ ससंज्ञांप्राप्यतेजस्वीवालिपुत्रःप्रतापवान् ॥ प्रजंघस्यशिरःकायात्पातयामासमुष्टिना ॥ २७ ॥ सयूपाक्षोश्रुपूर्णाक्षःपितृव्येनिहतेरणे ॥ अवरुह्यरथात्क्षिप्रंक्षीणेषुःखड्गमाददे ॥ २८ ॥

पड़ा ॥ २४ ॥ उस मूशलकी समान खड्गको पृथ्वीमें गिराहुआ देखकर महावीर प्रजंघनें वज्रकी समान मूका बांधकर अंगदजीपर उठाया ॥ २५ ॥ और महावीर्यवान् वानरश्रेष्ठ अंगदजीके माथेमें वह मूका मारा उस मूकेके लगनेंसे अंगदजी एक मुहूर्तभरतक चलायमान रहे ॥ २६ ॥ परन्तु प्रतापवान तेजस्वी वालिकुमार अंगदजीनेभी फिर शीघ्र चेतना पाय एक मूका मारकर प्रजंघके धड़से शिरको अलग करदिया ॥ २७ ॥ अपने चचा प्रजंघको संग्राममें मराहुआ देखकर यूपाक्ष आंखोंमें आंसू भर धनुष बाण छोड़ खड्ग धारणकर रथसे उतर पड़ा ॥ २८ ॥

वार्ता सुनकर अत्यंत क्रोधसे अग्निकी समान प्रज्वलित होगया ॥ १ ॥ राक्षसराज रावण, क्रोध और शोकसे व्याकुल होकर विशाल नेत्रवाले खरके पुत्र मकराक्षसे बोला ॥ २ ॥ वत्स ! हम तुमको आज्ञा देतेहैं, तुम बड़ी भारी सैनाको साथ लेकर संग्रामभूमिमें जाय वानरोंके सहित उन रामचंद्र और लक्ष्मणको मार डालो ॥ ३ ॥ रावणके वचन सुनकर अपने को शूर माननेवाले बलशाली ढीठ खरके पुत्र राक्षस मकराक्षनें "बहुत अच्छा" कहकर रावणके वचनको स्वीकार किया ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त वह रावणको प्रणामकर व उसकी प्रदक्षिणा कर रावणकी आज्ञानुसार उजले वर्णके गृहोंसे निकला ॥ ५ ॥ तव खरके पुत्र मकराक्षनें समीपही खड़े हुए सैनाके नायकसे कहाकि तुम जल्दीसे रथ तैयार कराओ

नैर्ऋतःक्रोधशोकाभ्यांद्वाभ्यांतुपरिमूर्च्छितः ॥ खरपुत्रंविशालाक्षंमकराक्षमचोदयत् ॥ २ ॥ गच्छपुत्रमयाज्ञप्तोबले नाभिसमन्वितः ॥ राघवंलक्ष्मणंचैवजहितौसवनौकसौ ॥ ३ ॥ रावणस्यवचःश्रुत्वाशूरमानीखरात्मजः ॥ बाढमित्यब्रवीद्धृष्टोमकराक्षोनिशाचरम् ॥ ४ ॥ सोभिवाद्यदशग्रीवंकृत्वाचापिप्रदक्षिणम् ॥ निर्जगामगृहाच्छु भ्राद्रावणस्याज्ञयाबली ॥५॥ समीपस्थंबलाध्यक्षंखरपुत्रोब्रवीद्वचः ॥ रथमानीयतांतूर्णंसैन्यंत्वानीयतांत्वरात् ॥ ६ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाबलाध्यक्षोनिशाचरः ॥ स्यंदनंचबलंचैवसमीपंप्रत्यपादयत् ॥ ७ ॥ प्रदक्षिणंरथंकृत्वासमाहूय निशाचरः ॥ सूतंसंचोदयामासशीघ्रंवैरथमावह ॥८॥ अथतान्राक्षसान्सर्वान्मकराक्षोब्रवीदिदम् ॥ यूयंसर्वेप्रयुध्यध्वं पुरस्तान्ममराक्षसाः ॥ ९ ॥ अहंराक्षसराजेनरावणेनमहात्मना ॥ आज्ञप्तःसमरेहंतुंतावुभौरामलक्ष्मणौ ॥ १० ॥

और सब सैनाकोभी सजालाओ ॥ ६ ॥ व सैनाध्यक्षनें मकराक्षकी यह आज्ञा पाय उसका रथ व सब सैनाको वहां सजाकर उपस्थित किया ॥ ७ ॥ निशाचर मकराक्ष रथकी प्रदक्षिणा करकै शीघ्रही उसपर सवारहुआ और सारथिसे कहनेंलगा सूत ! शीघ्रतासे रथको च लाओ ॥ ८ ॥ उसके उपरान्त मकराक्ष उन सब राक्षसोंको पुकार कर कहता हुआ" हे निशाचर गण! तुम हमारे आगे रहकर वानरोंसे यु द्ध करना ॥ ९ ॥ और हमको महात्मा राक्षसोंके स्वामी रावणसे संग्राममें उन राम लक्ष्मण दोनोंके मारनेंको आज्ञा मिलीहै" ॥ १० ॥

समीप भागकर आईहुई सैनाको अनेक प्रकारसे समझाया बुझाया, अतिश्रेष्ठ महावीर्यवान् वानरोंसे ॥ ३६ ॥ महावीर राक्षसोंकी सैनाको मराहुआ देखकर महातेजस्वी कुंभनें संग्राममें अत्यन्त दुष्कर कर्म किया ॥ ३७ ॥ वह धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ कुंभ सावधानमनसे धनुप धारणकर विषधर सर्पोंकी समान फुंकारतेहुए देहविदारी बाण छोड़नें लगा ॥ ३८ ॥ उस कालमें कुंभका बाणसहित श्रेष्ठ धनुष, बिजली ऐरावतके सहित दूसरे इन्द्रधनुषकी समान शोभायमान होंनेंलगा ॥ ३९ ॥ उस वीर कुंभनें सुवर्णकी फोंकवाले पत्रशोभित बाणोंको कानतक खेंचकर उनसे द्विविदको मारा ॥ ४० ॥ पर्वतके शृङ्गकी समान वानरोंमें श्रेष्ठ द्विविद उन बाणोके लगनेंसे अत्यन्त घायलहो मुंहबाय और दोंनों पैर

निपातितमहावीरांदृष्ट्वारक्षश्चमूंतदा ॥ कुंभःप्रचक्रेतेजस्वीरणेकर्मसुदुष्करम् ॥ ३७ ॥ सधनुर्धन्विनांश्रेष्ठःप्रगृह्य सुसमाहितः ॥ मुमोचाशीविषप्रख्याञ्छरान्देहविदारणान् ॥ ३८ ॥ तस्यतच्छुशुभेभूयःसशरंधनुरुत्तमम् ॥ विद्युदैरावतार्चिष्मद्द्वितीयेंद्रधनुर्यथा ॥ ३९ ॥ आकर्णकृष्टमुक्तेनजघानद्विविदंतदा ॥ तेनहाटकपुंखेनपत्रिणापत्रवाससा ॥ ४० ॥ सहसाभिहतस्तेनविप्रमुक्तपदःस्फुरन् ॥ निपपातत्रिकूटाभोविह्वलन्प्लवगोत्तमः ॥ ४१ ॥ मैंदस्तुभ्रातरंतत्रभग्नंदृष्ट्वामहाहवे ॥ अभिदुद्राववेगेनप्रगृह्यविपुलांशिलाम् ॥ ४२ ॥ तांशिलांतत्रचिक्षेपराक्षसायमहाबलः ॥ बिभेदतांशिलांकुंभःप्रसन्नैःपंचभिःशरैः ॥ ४३ ॥ संधायचान्यंसुमुखंशरमाशीविषोपमम् ॥ आजघानमहातेजावक्षसिद्विविदाग्रजम् ॥ ४४ ॥ सतुतेनप्रहारेणमैंदोवानरयूथपः ॥ मर्मण्यभिहतस्तेनपपातभुविमूर्च्छितः ॥ ४५ ॥ अंगदोमातुलौदृष्ट्वामथितौतुमहाबलौ ॥ अभिदुद्राववेगेनकुंभमुद्यतकार्मुकम् ॥ ४६ ॥

फैलाय विकल हो पृथ्वीपर गिरपड़ा ॥ ४१ ॥ मैन्दनें अपनें भ्राता द्विविदको उस महासंग्राममें व्याकुल होते देख एक बड़ी भारी शिला ग्रहण कर कुंभके ऊपर दौड़ा ॥ ४२ ॥ महाबलवान मैन्दनें राक्षसके ऊपर वह शिला चलाई परन्तु महातेजस्वी कुंभनें हँसते २ पांच बाणोंसे उस शिलाको काट डाला ॥ ४३ ॥ और विषधर सर्पकी समान एक और सुमुख बाण धनुषपर चढ़ायकर द्विविदके बड़े भाई मैन्दकी छातीमें कुंभनें मारा ॥४४॥ कुंभका चलायाहुआ वह बाण वानरयूथपति मैन्दके मर्मस्थानमें लगा कि जिस्से वह मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥४५॥तब वानरवीर अंगदजी

कुछभी चिन्ता नकरकै जिस स्थानमें श्रीराम लक्ष्मणजी विराजमानथे उसी ओरको चला ॥ २० ॥ युद्धकी अभिलाषा किये राक्षसोंका आकार मेघ मातंग [हाथी] महिष [भैंस] की तुल्यथा उन राक्षसोंकी देहोंमें गदा खड्ग व और दूसरे अस्त्रोंके चिह्न प्रकाशमानथे वह सबही युद्धविद्यामें पंडितथे पहले हम युद्ध करेंगे पहले हम युद्ध करेंगे समस्त इस उत्साहमें सिंहनाद करतेहुए रणभूमिमें विचरनें लगे ॥ २१ ॥
इ० श्रीम० वा० आ० यु० भाषानुवादे अष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥ वानरश्रेष्ठ गण मकराक्षको युद्धकरनेके लिये निकलाहुआ देखकर अतिबलसे कूदते फांदते युद्धकी अभिलाषासे तैयार हुए ॥ १ ॥ इसके उपरान्त देवता लोगोंके सहित दानव गणोंके समान राक्षसोंके साथ वान

घनगजमहिषांगतुल्यवर्णाःसमरमुखेष्वसकृद्गदासिभिन्नाः ॥ अहमहमितियुद्धकौशलास्तेरजनिचराःपरिबभ्रमुर्मुहुस्ते ॥ २१ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेअष्टसप्ततितमःसर्गः ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ निर्गतंमकराक्षंतेदृष्ट्वावानरपुंगवाः ॥ आप्लुत्यसहसासर्वेयोद्धुकामाव्यवस्थिताः ॥ १ ॥ ततः प्रवृत्तंसुमहत्तद्युद्धंलोमहर्षणम् ॥ निशाचरैःप्लवंगानांदेवानांदानवैरिव ॥ २ ॥ वृक्षशूलनिपातैश्चगदापरिघपातनैः ॥ अन्योन्यंमर्दयंतिस्मतदाकपिनिशाचराः ॥ ३ ॥ शक्तिखड्गगदाकुंतैस्तोमरैश्चनिशाचराः ॥ पट्टिशैर्भिंदिपालैश्चबाणपातैःसमंततः ॥ ४ ॥ पाशमुद्गरदंडैश्चनिर्घातैश्चापरैस्तथा॥कदनंकपिसिंहानांचक्रुस्तेरजनीचराः ॥५॥ बाणौघैरर्दिताश्चापिखरपुत्रेणवानराः॥संभ्रांतमनसःसर्वेदुद्रुवुर्भयपीडिताः ॥६॥ तान्दृष्ट्वाराक्षसाःसर्वेद्रवमाणान्वनौकसः ॥ नेदुस्तेसिंहवद्धृष्टाराक्षसाजितकाशिनः ॥७॥

रोंका बडाभारी रोमहर्षणकारी युद्ध आरंभ हुआ ॥ २ ॥ उस समय वानर और राक्षसगण वृक्ष शूल गदा परिघादि चलाय २ कर परस्पर एक दूसरेको मारनें लगे ॥ ३ ॥ राक्षसलोग शक्ति खड्ग गदा भाला सांग पटा भिन्दिपाल और बाणोंसे वानरोंको मारते हुए ॥ ४ ॥ फिर पाश मुद्गरादि श्रेष्ठ २ आयुधोंसें भी उन राक्षसोंने वानरोंको मारा कि जिस्से बहुतसारे वानर शार्दूल मरगये ॥ ५ ॥ खरके पुत्र मकराक्षके बाणोंसे इस प्रकार पीडित हो वानरगण मारे व्याकुल हो भागनें लगे॥६॥रणविजयी राक्षस लोग वानरोंको चारोंओर भागते हुए देखकर गर्वसहित सिंहनाद करनेलगे ॥७॥

परन्तु महाबलवान वीर द्विविदनें इस राक्षसको आताहुआ देखकर क्रोधसहित इसकी छातीमें एक शिला मारी और अत्यन्तबलसे इस राक्षसको पकड़ लिया ॥ २९ ॥ अपने भाईको पकड़ा हुआ देखकर महातेजस्वी महाबलवान् शोणिताक्षनें द्विविदवीरकी छातीमें एक गदा मारी ॥ ३० ॥ उस अत्यन्त दारुण प्रहारसे वानरवीर द्विविद चलायमान होगया परन्तु थोड़ीही देरमें स्थिरहो उस राक्षसकी दूसरी वार उठी गदाको देख इस वीरने छीन लिया ॥ ३१ ॥ इसी अवसरमें मैन्द अपनें भ्राताकी सहायता करनेंके लिये द्विविदके निकट आय पहुंचा और शोणिताक्ष यूपाक्ष नाम इन दोनों राक्षसोंसे यह दोनों वानरश्रेष्ठ मल्लयुद्ध करनें लगे परस्पर एक दूसरेको खेचते खाचते झटका झोरी करते कठोर युद्धकरने लगे॥३२॥तब द्विविदनें

तमापतंतंसंप्रेक्ष्ययूपाक्षंद्विविदस्त्वरन् ॥ आजघानोरसिक्रुद्धोजग्राहचबलाद्बली ॥ २९ ॥ गृहीतंभ्रातरंदृष्ट्वा शोणिताक्षोमहाबलम् ॥ आजघानमहातेजावक्षसिद्विविदंततः ॥ ३० ॥ सततोभिहतस्तेनचचालचमहाबलः ॥ उद्यतांचपुनस्तस्यजहारद्विविदोगदाम् ॥ ३१ ॥ एतस्मिन्नंतरेमैंदोद्विविदाभ्याशमागमत् ॥ तौशोणिताक्षयूपाक्षौप्लवंगाभ्यांतरस्विनौ॥ चक्रतुःसमरेतीव्रमाकर्षोत्पाटनंभृशम् ॥ ३२ ॥ द्विविदःशोणिताक्षंतुविददारनखैर्मुखे ॥ निष्पिपेषसवीर्येणक्षितावाविध्यवीर्यवान् ॥ ३३ ॥ यूपाक्षमभिसंक्रुद्धोमैंदोवानरपुंगवः ॥ पीडयामासबाहुभ्यांपपातसहतःक्षितौ ॥ ३४ ॥ हतप्रवीराव्यथिताराक्षसेंद्रचमूस्तथा ॥ जगामाभिमुखीसातुकुंभकर्णात्मजोयतः ॥ ३५ ॥ आपतंतींचवेगेनकुंभस्तांसांत्वयच्चमूम् ॥ अथोत्कृष्टंमहावीर्यैर्लब्धलक्षैःप्लवंगमैः ॥ ३६ ॥

अपने मुखसे नखोंसे शोणिताक्षका मुख चीर फाड़ डाला और वकोटलिया और पकड़कर अत्यन्त बलसे पृथ्वीमें दबायकर पीस डाला ॥ ३३ ॥ तब वानरश्रेष्ठ वीर्यवान् मैन्दने अत्यन्त क्रोधितहो दोनों बांहोंसे यूपाक्षको उठाय पृथ्वीपर पटक दिया कि जिस्से यह राक्षस अत्यन्त पीड़ित और निहत होकर पृथ्वीमें गिरपड़ा ॥ ३४ ॥ मारनेंसे बचीहुई राक्षसोंकी सैना राक्षसवीरोंको संग्राममें मृतक देख अत्यन्त दुःखी हुई और अति शीघ्रतासे वहां गई जहां कुम्भकर्णका पुत्र कुंभ खड़ाथा वहां जाकर इस सैनानें यह अशुभ संवाद कुंभसे निवेदन किया ॥ ३५ ॥ कुंभनेंभी उस

इसलियें हेराक्षसगण! आज हम उत्तम बाणोंसे राम लक्ष्मण सुग्रीव व और दूसरे वानरोंकाभी प्राण संहार करेंगे ॥ ११ ॥ जिस प्रकार अग्नि सूखे हुए काठकों जलाताहै, वैसेही हमभी आज शूल चलायकर बड़ीभारी वानरोंकी सैनाको भस्म कर देंगे ॥ १२ ॥ तब वीरवर मकराक्षके वचनोंके अनुसार बलवान् राक्षसगण युद्धके लिये तैयार हुए उनके हाथोंमें अनेक प्रकारके अस्त्रशस्त्र थे ॥ १३ ॥ वह राक्षस क्रूरस्वभाव पीले २ नेत्रवाले कामरूपी और भयंकरदर्शनथे उनके बाल बिखरेहुएथे आकार भयंकर था यह सब राक्षस मतवाले हाथीकी समान बड़ा भारी शब्द करनें लगे ॥१४॥ ऐसे बडे२ शरीरवाले राक्षस महावीरगण मकराक्षको घेरकर चलनेंलगे उनके पैर धरनेकी धमकसे पृथ्वी कंपायमान होने लगी॥१५॥

अद्यरामंवधिष्यामिलक्ष्मणंचनिशाचराः ॥ शाखामृगंचसुग्रीवंवानरांश्चशरोत्तमैः ॥ ११ ॥ अद्यशूलनिपातैश्चवानराणांमहाचमूम् ॥ प्रदहिष्यामिसंप्राप्तांशुष्केंधनमिवानलः ॥ १२ ॥ मकराक्षस्यतच्छ्रुत्वावचनंतेनिशाचराः ॥ सर्वेनानायुधोपेताबलवंतःसमाहिताः ॥ १३ ॥ तेकामरूपिणःक्रूरादंष्ट्रिणःपिंगलेक्षणाः ॥ मातंगाइवनर्दंतोध्वस्तकेशाभयावहाः ॥ १४ ॥ परिवार्यमहाकायामहाकायंखरात्मजम् ॥ अभिजग्मुस्ततोहृष्टाश्चालयंतोनभस्तलम् ॥ १५ ॥ शंखभेरीसहस्राणामाहतानांसमंततः ॥ क्ष्वेलितास्फोटितानांचतत्रशब्दोमहानभूत् ॥ १६ ॥ प्रभ्रष्टोथकरात्तस्यप्रतोदःसारथेस्तदा ॥ पपातसहसादैवाद्ध्वजस्तस्यतुरक्षसः ॥ १७ ॥ तस्यतेरथसंयुक्ताहयाविक्रमवर्जिताः ॥ चरणैराकुलैर्गत्वादीनाःसास्रमुखाययुः ॥ १८ ॥ प्रवातिपवनस्तस्मिन्सपांसुःखरदारुणः ॥ निर्याणेतस्यरौद्रस्यमकराक्षस्यदुर्मतेः ॥ १९ ॥ तानिदृष्ट्वानिमित्तानिराक्षसावीर्यवत्तमाः ॥ अचिंत्यनिर्गताःसर्वेयत्रतौरामलक्ष्मणौ ॥ २० ॥

उस समय भेरी शंख हजारों नगाड़ोंका और वीर लोगोंकी ताल देनेंका और सिंहनाद करनेंका बड़ाभारी शब्द हुआ॥१६॥रणभूमिमें जानेके समय सहसा मकराक्षके सारथीके हाथसे कोड़ा गिरपड़ा और अचानक रथध्वजभी पृथ्वीपर गिरा ॥ १७ ॥ मकराक्षके रथमें जुतेहुए दीन दशाको प्राप्त हुए घोड़े विक्रमहीन हो व्याकुल पवनकी चालसे आंखोंसे आंसू गिरातेहुए गमन करनें लगे ॥ १८ ॥ उस दुर्मति घोर राक्षस मकराक्षके युद्धमें जानेके समय धूलसे युक्त दारुण कठोर पवन चलनेलगी ॥ १९ ॥ परन्तु अत्यन्त वीर्यवान् वह निशाचर उन दुर्निमित्तोंको देखकरभी उनकी

कपिश्रेष्ठ रथ, घोड़े, वृक्ष लेकर राक्षसोंपर चलाये पर्वतोंके शृङ्ग जो कुछभी पातेथे वहां चलातेथे परन्तु महाबलवान् यूपाक्षने बाण चलाय उन सबको टुकड़े २ कर डाला ॥ २० ॥ इसके उपरान्त वीर द्विविद और मैन्दने वृक्षोंको उखाड़कर राक्षसोंके ऊपर चलाया इन सबको वीर्यवान् प्रतापशाली शोणिताक्षनें अधबीचमें ही तोड़डाला ॥ २१ ॥ इसी समयमें वीरश्रेष्ठ प्रजंघ परमर्मभेदी विपुल खड्ग धारण करके अति वेगसे अंगदजीकी ओर धाया ॥२२॥ तब विपुल बलशाली वानरेन्द्र वालिकुमार अंगदजीनें इस राक्षसको निकट आयाहुआ देखकर एक अश्वकर्णवृक्ष ले बड़े वेगसे उसके मारा ॥२३॥ और उस राक्षसके खड्गयुक्त हाथमें एक मूकाभी अंगदजीने मारा कि उसके चोटसे उस निशाचरके हाथसे खड्ग गिर

रथान्सर्वान्द्रुमाञ्छैलान्प्रतिचिक्षिपुराहवे ॥ शरौघैःप्रतिचिच्छेदतान्यूपाक्षोमहाबलः ॥ २० ॥ सृष्टान्द्विविदमैंदाभ्यां द्रुमानुत्पाट्यवीर्यवान् ॥ बभंजगदयामध्येशोणिताक्षःप्रतापवान् ॥ २१ ॥ उद्यम्यविपुलंखड्गंपरमर्मविदारणम् ॥ प्रजंघोवालिपुत्रायअभिदुद्राववेगितः ॥ २२ ॥ तमभ्याशगतंदृष्ट्वावानरेंद्रोमहाबलः ॥ आजघानश्वकर्णेनद्रुमेणातिबलस्तदा ॥ २३ ॥ बाहुंचास्यसनिस्त्रिंशमाजघानसमुष्टिना ॥ वालिपुत्रस्यघातेनसपपातक्षिताविसिः ॥ २४ ॥ तंदृष्ट्वापतितंभूमौखड्गंमुसलसन्निभम् ॥ मुष्टिंसंवर्तयामासवज्रकल्पंमहाबलः ॥ २५ ॥ सललाटेमहावीर्यमंगदंवानरर्षभम् ॥ आजघानमहातेजाःसमुहूर्तंचचालह ॥ २६ ॥ ससंज्ञांप्राप्यतेजस्वीवालिपुत्रःप्रतापवान् ॥ प्रजंघस्यशिरःकायात्पातयामासमुष्टिना ॥ २७ ॥ सयूपाक्षोऽश्रुपूर्णाक्षःपितृव्येनिहतेरणे ॥ अवरुह्यरथात्क्षिप्रंक्षीणेषुःखड्गमाददे ॥ २८ ॥

पड़ा ॥ २४ ॥ उस मूशलकी समान खड्गको पृथ्वीमें गिराहुआ देखकर महावीर प्रजंघनें वज्रकी समान मूका बांधकर अंगदजीपर उठाया ॥ २५ ॥ और महावीर्यवान् वानरश्रेष्ठ अंगदजीके माथेमें वह मूका मारा उस मूकेके लगनेंसे अंगदजी एक मुहूर्तभरतक चलायमान रहे ॥ २६ ॥ परन्तु प्रतापवान तेजस्वी वालिकुमार अंगदजीनेभी फिर शीघ्र चेतना पाय एक मूका मारकर प्रजंघके धड़से शिरको अलग करदिया ॥ २७ ॥ अपने चचा प्रजंघको संग्राममें मराहुआ देखकर यूपाक्ष आंखोंमें आंसू भर धनुष बाण छोड़ खड्ग धारणकर रथसे उतर पड़ा ॥ २८ ॥

वार्ता सुनकर अत्यंत क्रोधसे अग्निकी समान प्रज्वलित होगया ॥ १ ॥ राक्षसराज रावण, क्रोध और शोकसे व्याकुल होकर विशाल नेत्रवाले खरके पुत्र मकराक्षसे बोला ॥ २ ॥ वत्स ! हम तुमको आज्ञा देतेहैं, तुम बड़ी भारी सैनाको साथ लेकर संग्रामभूमिमें जाय वानरोंके सहित उन रामचंद्र और लक्ष्मणको मार डालो ॥ ३ ॥ रावणके वचन सुनकर अपने को शूर माननेवाले बलशाली ढीठ खरके पुत्र राक्षस मकराक्षनें "बहुत अच्छा" कहकर रावणके वचनको स्वीकार किया ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त वह रावणको प्रणामकर व उसकी प्रदक्षिणा कर रावणकी आज्ञानुसार उजले वर्णके गृहोंसे निकला ॥ ५ ॥ तब खरके पुत्र मकराक्षनें समीपही खड़े हुए सैनाके नायकसे कहाकि तुम जलदीसे रथ तैयार कराओ और सब सैनाकोभी सजालाओ ॥ ६ ॥ व सैनाध्यक्षनें मकराक्षकी यह आज्ञा पाय उसका रथ व सब सैनाको वहां सजाकर उपस्थित किया ॥ ७ ॥ निशाचर मकराक्ष रथकी प्रदक्षिणा करकै शीघ्रही उसपर सवारहुआ और सारथिसे कहनेंलगा सूत ! शीघ्रतासे रथको च लाओ ॥ ८ ॥ उसके उपरान्त मकराक्ष उन सब राक्षसोंको पुकार कर कहता हुआ " हे निशाचर गण! तुम हमारे आगे रहकर वानरोंसे यु द्ध करना ॥ ९ ॥ और हमको महात्मा राक्षसोंके स्वामी रावणसे संग्राममें उन राम लक्ष्मण दोनोंके मारनेंको आज्ञा मिलीहै " ॥ १० ॥

नैर्ऋतःक्रोधशोकाभ्यांद्वाभ्यांतुपरिमूर्च्छितः ॥ खरपुत्रंविशालाक्षंमकराक्षमचोदयत् ॥ २ ॥ गच्छपुत्रमयाज्ञप्तोबलेनाभिसमन्वितः ॥ राघवंलक्ष्मणंचैवजहितौसवनौकसौ ॥ ३ ॥ रावणस्यवचःश्रुत्वाशूरमानीखरात्मजः ॥ बाढमित्यब्रवीद्धृष्टोमकराक्षोनिशाचरम् ॥ ४ ॥ सोभिवाद्यदशग्रीवंकृत्वाचापिप्रदक्षिणम् ॥ निर्जगामगृहाच्छुभ्राद्रावणस्याज्ञयाबली ॥५॥ समीपस्थंबलाध्यक्षंखरपुत्रोब्रवीद्वचः ॥ रथमानीयतांतूर्णंसैन्यंत्वानीयतांत्वरात् ॥ ६ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाबलाध्यक्षोनिशाचरः ॥ स्यंदनंचबलंचैवसमीपंप्रत्यपादयत् ॥ ७ ॥ प्रदक्षिणंरथंकृत्वासमाहूयनिशाचरः ॥ सूतंसंचोदयामासशीघ्रंवैरथमावह ॥८॥ अथतान्राक्षसान्सर्वान्मकराक्षोब्रवीदिदम् ॥ यूयंसर्वेप्रयुध्यध्वंपुरस्तान्ममराक्षसाः ॥ ९ ॥ अहंराक्षसराजेनरावणेनमहात्मना ॥ आज्ञप्तःसमरेहंतुंतावुभौरामलक्ष्मणौ ॥ १० ॥

मन्दरपर्वतके सदृश और इन्द्रध्वजकी समान उस वृक्षको सब राक्षसोंके सामनें अत्यन्त वेगसे कुंभके ऊपर चलाया ॥५५॥ कुंभकर्णके पुत्र कुंभनें सात देहको भेदनेंवाले तीखे बाणोंसे अंगदके भेजे उस वृक्षको काटडाला व और एक बाण अतिशीघ्रतासे अंगदजीकी छातीमें मारा अंगद जीभी उस बाणसे अत्यन्त पीड़ित और मोहित होकर पृथ्वीमें गिर पड़े ॥५६॥ समुद्रके जलमें डुबेहुएकी समान अंगदजीको उस महारणमें व्याकुल होकर मूर्छित हुआ देख वानरश्रेष्ठोंनें यह वृत्तान्त श्रीरामचंद्रजीके निकट जायकर निवेदन किया ॥ ५७ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें महासंग्राममें वालिके पुत्र महाबलवान अंगदजीको संग्राममें व्याकुलहुआ सुनकर जाम्बवान् इत्यादि मुख्य २ वानरोंको अंगदजोकी सहाय करनेंकी आज्ञादी ॥ ५८ ॥

तमिंद्रकेतुप्रतिमंवृक्षंमंदरसन्निभम् ॥ समुत्सृजतवेगेनमिषतांसर्वरक्षसाम् ॥ ५५ ॥ सचिच्छेदशितैर्बाणैःसप्तभिः कायभेदनैः ॥ अंगदोविव्यथेभीक्ष्णंसपपातमुमोहच ॥ ५६ ॥ अंगदंपतितंदृष्ट्वासीदंतमिवसागरम् ॥ दुरासदंहरिश्रेष्ठाराघवायन्यवेदयन् ॥५७॥ रामस्तुव्यथितंश्रुत्वावालिपुत्रंमहाहवे॥व्यादिदेशहरिश्रेष्ठाञ्जांबवत्प्रमुखांस्ततः ॥ ५८॥ तेतुवानरशार्दूलाःश्रुत्वारामस्यशासनम् ॥ अभिपेतुःसुसंक्रुद्धाःकुंभमुद्यतकार्मुकम् ॥ ५९ ॥ ततोद्रुमशिलाहस्ताः कोपसंरक्तलोचनाः ॥ रिरक्षिषंतोभ्यपतन्नंगदंवानरर्षभाः ॥ ६० ॥ जांबवांश्चसुषेणश्चवेगदर्शीचवानरः ॥ कुंभकर्णात्मजंवीरंक्रुद्धाःसमभिदुद्रुवुः ॥ ६१ ॥ समीक्ष्यापततस्तांस्तुवानरेंद्रान्महाबलान् ॥ आववारशरौघेणनगेनेवजलाशयम् ॥ ६२ ॥ तस्यबाणपथंप्राप्यनशेकुरपिवीक्षितुम् ॥ वानरेंद्रामहात्मानोवेलामिवमहोदधिः ॥ ६३ ॥

यह वानर शार्दूलगण श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञाको सुनकर क्रोधितहो धनुष उठाये कुंभकी ओर दौड़े ॥ ५९ ॥ इन सबके हाथोंमें वृक्ष और पर्वतथे; क्रोधसे इन सबके नेत्र लाल होरहेथे यह सब अंगदजीके जीवनकी रक्षा करनेके लिये आगे बढ़े ॥ ६० ॥ जाम्बवान् सुषेण, और वानर वेगदर्शी यह तीनों महा क्रोधकर कुंभके सन्मुख धावमान हुए ॥ ६१ ॥ जिस प्रकार पत्थरोंके टुकड़ोंसे जलके सोतेको रोकदियाजाताहै वैसेही कुंभनें उन महाबलवान् वानरश्रेष्ठोंको आताहुआ देखकर बाणोसे उनकी गतिको रोक दिया ॥ ६२ ॥ जिस प्रकार महासमुद्रका जल वेलाभूमिको

उसीसे तुम हमारे साथ युद्ध करो ॥ १६ ॥ दशरथनंदन श्रीरामचन्द्रजी मकराक्षके यह वचन सुनकर हँसते २ उस वृथा बकवाद करनेंवाले मक राक्षसे बोले ॥ १७ ॥ हे निशाचर! किस कारणसे बहुत सारी बकवादकरके अपनी बड़ाई कररहाहै ? तू युद्ध न करके केवल वचनोंहीसे जय प्राप्त करनेंके लिये समर्थ नहीं होगा ॥ १८ ॥ हमनें अकेलेही दंडकारण्यमें तुम्हारे पिता खर, त्रिशिरा, दूषण, और उनके संगी चौदह हजार राक्षसोंका संहार कियाहै ॥ १९ ॥ रे पापी! आज तेराभी प्राण संहारकराजायगा और तेरा मांस तीक्ष्ण चोंच और तीक्ष्ण पंजोंवाले गिद्ध, शृगाल और कौए खायकर तृप्त हो जाँयगे ॥ २० ॥ " रुधिरार्द्रमुखा हृष्टारक्तपक्षाण्डजाश्च ये । खेचरा वसुधाराश्च भविष्यन्ति च सर्वतः ॥ जो

मकराक्षवचःश्रुत्वारामोदशरथात्मजः ॥ अब्रवीत्प्रहसन्वाक्यमुत्तरोत्तरवादिनम् ॥ १७ ॥ कत्थसेकिंवृथारक्षोबहू न्यसदृशानिते ॥ नरणेशक्यतेजेतुंविनायुद्धेनवाग्बलात् ॥ १८ ॥ चतुर्दशसहस्राणिरक्षसांत्वत्पिताचयः ॥ त्रिशिरा दूषणश्चापिदंडकेनिहतोमया ॥ १९ ॥ स्वाशिताश्चापिमांसेनगृध्रगोमायुवायसाः ॥ भविष्यंत्यद्यवैपापतीक्ष्णतुंडन खांकुशाः ॥ २० ॥ राघवेणैवमुक्तस्तुमकराक्षोमहाबलः ॥ बाणौघानमुचत्तस्मैराघवायरणाजिरे ॥ २१ ॥ तान्छरा न्छरवर्षेणरामश्चिच्छेदनैकधा ॥निपेतुर्भुविविच्छिन्नारुक्मपुंखाःसुवाससः ॥ २२ ॥

आकाशके चरनेवाले और लाल पंखयुक्त हैं वह सब पक्षीभी अपनी चोंचसे तेरा रुधिर पान करके हर्षितचित्तहो पृथ्वीके अनेक स्थानोंमें घूमेंगे ❋ ॥ " जब श्रीरामचन्द्रजीनें यह वचन कहे तब महाबलवान् मकराक्षनें समर करनेंके लिये तैयार होकर एकहीवारमें श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर अगणित बाणोंकी वर्षा की ॥ २१ ॥ परन्तु श्रीरामचन्द्रजीनें अपनी बाणवर्षासे उन समस्त बाणोंको काटडाला, वह सुवर्णकी फोंक

❋ यह श्लोक प्राचीन पुस्तकोंमें है यद्यपि टीकाकारोंने एकार्थप्रतिपादक जानकर इस श्लोकको छोड़ दियाहै परन्तु वाल्मीकिजीकी कविताका छोडना उचित नहीं इस कारण यह श्लोक यहांपर लिखागया ॥

नहीं लांघसकता वैसेही वह महाबलवान् वानरश्रेष्ठभी उसके बाणोंको तोड़कर आगे बढ़नेमें समर्थ न हुए ॥ ६३ ॥ वानरश्रेष्ठ उन वानरोंको
संग्राममें बाणोंकी वर्षासे मर्द्दित देख अपने भतीजे अंगदजीको पीछे छोड़ वानरराज सुग्रीवजी ॥ ६४ ॥ कुंभकर्णके पुत्र कुंभ
पर झपटे जिस प्रकार वेगवान् केसरी सिंह पर्वतके शृङ्गोंपर चरतेहुए हाथीपर दौड़ताहै ॥ ६५ ॥ वह महाकपि सुग्रीवजी अश्वकर्णादि अनेक
प्रकारके वृक्ष उखाड़ २ कर कुंभपर चलानेलगे ॥ ६६ ॥ परन्तु कुंभकर्णके पुत्र कुंभनें आकाशको छालेनेवाली दुर्द्धर्ष वृक्ष वृष्टिको तीखे
बाणोंके समूहसे अति शीघ्र खंड २ कर डाला ॥ ६७ ॥ वह काटेहुए दुर्द्धर्ष सब वृक्ष घोर शतघ्नियोंकी समान दिखाई देनेलगे, बाणोंकी वर्षाको

तांस्तुदृष्ट्वाहरिगणाञ्छरवृष्टिभिरर्दितान्॥ अंगदंपृष्ठतःकृत्वाभ्रातृजंप्लवगेश्वरः ॥ ६४ ॥ अभिदुद्रावसुग्रीवःकुंभकर्णा
त्मजंरणे ॥ शैलसानुचरंनागंवेगवानिवकेसरी ॥६५॥ उत्पाट्यचमहावृक्षानश्वकर्णादिकान्बहून्॥ अन्यांश्चविविधा
न्वृक्षांश्चिक्षेपसमहाकपिः ॥ ६६ ॥ तांछादयंतीमाकाशंवृक्षवृष्टिंदुरासदाम् ॥ कुंभकर्णात्मजःश्रीमांश्चिच्छेदस्वशरैः
शितैः ॥ ६७ ॥ अर्दितास्तेद्रुमारेजुर्यथाघोराःशतघ्नयः ॥ द्रुमावर्षंतुतद्भिन्नंदृष्ट्वाकुंभेनवीर्यवान् ॥ ६८ ॥ वानराधिप
तिःश्रीमान्महासत्त्वोनविव्यथे ॥ सविध्यमानःसहसासहमानस्तुताञ्छरान् ॥६९॥ कुंभस्यधनुराक्षिप्यबभंजेंद्रधनुः
प्रभम् ॥ अवप्लुत्यधनुःशीघ्रंकृत्वाकर्मसुदुष्करम् ॥ ७० ॥ अब्रवीत्कुपितःकुंभंभग्नशृंगमिवद्विपम् ॥ निकुंभाग्रजवीर्यं
तेबाणवेगंतदद्भुतम् ॥ ७१ ॥ सन्नतिश्चप्रभावश्चतववारावणस्यवा ॥ प्रह्लादबलिवृत्रघ्नकुबेरवरुणोपमम् ॥ ७२ ॥

वीर्यवान् कुंभ करके छिन्न भिन्न देख वानरोंके स्वामी श्रीमान् महासत्वसम्पन्न सुग्रीवजी कुछभी व्यथित न हुए ॥ ६८ ॥ वानरराज राक्ष
सके बाणसे विंधकर अतिसरलतासे उस दारुण आघातको सहलेतेहुए उन सुग्रीवजीनें इसके उपरान्त कुंभके हाथसे बलपूर्वक इन्द्रके धनुषकी
तुल्य ॥ ६९ ॥ उसका धनुष छीन तोड़ डाला वानरराज सुग्रीवजी ऐसा दुष्कर कर्म करके छलांग मार ॥७०॥ कोपकियेहुए दांत टूटेहुए हाथीकी
समान खड़ेहुए कुंभसे जायकर बोले । हे निकुंभके बड़े भाई कुंभ ! तुम्हारे बाणोंका वेग व वीर्य अतिअद्भुतहै, ॥ ७१ ॥ तुममें विनय और प्रताप ॥

लगे, गांसीयुक्त समस्त बाण कटकर पृथ्वीपर गिरपड़े ॥ २२ ॥ इस प्रकारसे राक्षस खर और नरेन्द्र महाराज दशरथजीके पुत्र उन दोनोंके पुत्र मकराक्ष व श्रीरामचन्द्रजीका परस्पर तेज सहित मिलनें पर दोनोंका घोरयुद्ध आरंभ हुआ ॥ २३ ॥ तिस काल उस रणभूमिमें आकाशमें शब्द करतेहुए दो मेघोंकी समान दोनोंके धनुषकी टंकार और हाथसे खेचनें का और धनुषसे बाण छोड़नेंका शब्द सुनाईआनेंलगा ॥ २४ ॥ देव, दानव, गन्धर्व, किन्नर, और बड़े २ सर्पगण युद्ध देखनेंके लिये आकाशमें विराजमान हुए ॥ २५ ॥ उस समय दोनोंके शरीर जितनेंही बाणोंसे विंधे वैसेही वैसे दोनोंकी सामर्थ्य बढ़नेंलगी, जब एक दूसरेको मारताथा, तब दूसराभी उसका उत्तर देनेंके लिये उसके उसी अंगमें घाव लगाताथा॥२६॥

तद्युद्धमभवत्तत्रसमेत्यान्योन्यमोजसा ॥ खरराक्षसपुत्रस्यसूनोर्दशरथस्यच ॥ २३ ॥ जीमूतयोरिवाकाशेशब्दोज्यातलयोरिव ॥ धनुर्मुक्तस्वनोन्योन्यंश्रूयतेचरणाजिरे ॥ २४ ॥ देवदानवगंधर्वाःकिन्नराश्चमहोरगाः ॥ अंतरिक्षगताःसर्वेद्रष्टुकामास्तदद्भुतम्॥२५॥विद्धमन्योन्यगात्रेषुद्विगुणंवर्धतेबलम् ॥ कृतप्रतिकृतान्योन्यंकुरुतांतौरणाजिरे॥२६॥ राममुक्तांस्तुबाणौघान्राक्षसस्त्वच्छिनद्रणे ॥ रक्षोमुक्तांस्तुरामोवैनैकधाप्राच्छिनच्छरैः ॥ २७ ॥ बाणौघवितताःसर्वादिशश्चप्रदिशस्तथा ॥ संछन्नावसुधाचैवसमंतान्नप्रकाशते॥२८॥ततःक्रुद्धोमहाबाहुर्धनुश्चिच्छेदसंयुगे॥ अष्टाभिरथनाराचैःसूतंविव्याधराघवः॥२९॥भित्त्वारथंशरैरामोहत्वाअश्वानपातयत् ॥ विरथोवसुधास्थःसमकराक्षोनिशाचरः॥३०॥

श्रीरामचन्द्रजीनें जितनें बाण चलाये मकराक्षनें उन सबको काटडाला और राक्षस मकराक्षके छोड़ेहुए बाणसमूहोंको बाणोंकी वर्षा करके श्रीरामचन्द्रजीनें काटडाला ॥ २७ ॥ दोनों वीरोंके चलायेहुए बाणोंसे समस्त दिशा विदिशा भरगईं, और पृथ्वी आकाश दोनोंमें अंधकार छाय गया ॥ २८ ॥ इसके उपरान्त महाबाहु श्रीरामचन्द्रजीनें क्रोधित होकर मकराक्षका धनुष काटकर अठारह बाण चलायकर उसके सारथिको बींधा ॥ २९ ॥ व और बहुतसे बाणोंसे रथको भेदकर उसमेंके जुतेहुए घोड़ोंकाभी संहारकिया तब राक्षस मकराक्ष रथहीन होकर पृथ्वीपर

रावणकी नांईहैं; तुम्हारा विक्रम, बल, प्रह्लाद, इन्द्र कुबेर, और वरुणकी समान है ॥ ७२ ॥ तुम सब प्रकारसे अपने पिता कुंभकर्णके अनुरूप पुत्रहो हेमहाबाहो शत्रुदमनकारी! जब तुम अकेले शूल हाथमें लेकर खड़े हो जाओ ॥ ७३ ॥ तब देवता लोगभी भयभीतहो तुम्हारे सन्मुख न आय सकेंगे; कि जिस प्रकारसे मनकी पीड़ा इन्द्रियोंके जीतनेंवाले पुरुषके सन्मुख नहीं खड़ी हो सकती [अर्थात् उसको पीड़ा नहीं देसकती] अच्छा जो हुआ सो हुआ आज तुम इस महासंग्राममें अपना विक्रम प्रकाश करो और हमारा विक्रम देखो ॥ ७४ ॥ तुम्हारे ताऊ रावणनें तौ ब्रह्माजीके वरदानके प्रभावसेही देवता और दानव लोगोंको जीताथा, परन्तु कुंभकर्णनें अपनें वीर्यके प्रभावसे सुर असुर लोगोंको पराजित

एकस्त्वमनुजातोसिपितरंबलवत्तरम्॥त्वामेवैकंमहाबाहुंशूलहस्तमरिंदमम् ॥७३॥ त्रिदशानातिवर्तंतेजितेंद्रियमिवा धयः॥ विक्रमस्वमहाबुद्धेकर्माणिममपश्यच॥७४॥वरदानात्पितृव्यस्तेसहतेदेवदानवान्॥कुंभकर्णस्तुवीर्येणसहतेच सुरासुरान् ॥ ७५ ॥ धनुषींद्रजितस्तुल्यःप्रतापेरावणस्यच ॥ त्वमद्यरक्षसांलोकेश्रेष्ठोसिबलवीर्यतः ॥ ७६ ॥ महावि मर्दंसमरेमयासहतवाद्भुतम् ॥ अद्यभूतानिपश्यंतुशक्रशंबरयोरिव ॥ ७७ ॥ कृतमप्रतिमंकर्मदर्शितंचास्त्रकौशलम् ॥ पातिताहरिवीराश्चत्वयैतेभीमविक्रमाः ॥ ७८ ॥ उपालंभभयाच्चैवनासिवीरमयाहतः ॥ कृतकर्मपरिश्रांतो विश्रांतःपश्यमेबलम् ॥ ७९ ॥

कियाथा ॥ ७५ ॥ तुम प्रतापमें रावणकी समान और धनुषविद्यामें इन्द्रजीतकी तुल्य हो, इसलिये अब राक्षसोंके बीचमें एक तुमही हमको बल वीर्यमें श्रेष्ठ जान पड़तेहो ॥ ७६ ॥ जिस प्रकार शत्रु लोगोंके साथ शम्बरासुरका संग्राम हुआथा, वैसेही तुम्हारे साथ आज हमारा कठोर संग्राम होगा; समस्त प्राणी इस भयंकर समरको अपनी आंखोंसे देखेंगे ॥ ७७ ॥ तुमनें असाधारण कर्म कियाहै; तुमनें अपने अस्त्रकी चतुरताभी बाणों को चलाय कर दिखाई है, कि इन भीमविक्रमकारी जाम्बवान् आदि वानरोंको बाणोंसें रोकदियाहै ॥ ७८ ॥ तुम अकेले इन बहुत सारे वान रोंके साथ युद्ध करकै थकगयेहो; अतएव इस समय बल प्रकाश करकै तुम्हारे वध करनेंपर लोग निन्दा करैंगे इसी भयसे हम तुमको नहीं मार

खड़ा रहगया ॥ ३० ॥ पृथ्वीपर खड़ेहुए उस राक्षस मकराक्षनें सर्व प्राणियोंको भय दिलानेंवाला प्रलयकालकी समान प्रकाशित शूल अपने हाथमें ग्रहणकिया ॥ ३१ ॥ यह शूल राक्षस मकराक्षनें महादेवजीकी तपस्या करके प्राप्त कियाथा, यह भयंकर और अतिदुर्द्धर्ष था, यह अपने तेजसे आकाशमें प्रज्वलितहो रहाथा, ॥ ३२ ॥ देखनेंसे यह शूल दूसरे संहारास्त्रकी समान जान पड़ताथा जिसको देखकर सब देवता भयके मारे आरत हो दशों दिशाओंको भागगये; ॥ ३३ ॥ ऐसा बड़ाभारी प्रज्वलित शूल घुमायकर राक्षसनें क्रोधसहित वह शूल महात्मा श्रीरामचंद्रजीके ऊपर चलाया उस आतेहुए खरपुत्र मकराक्षके हाथसे चलायेहुए प्रज्व

तत्तिष्ठद्वसुधांरक्षःशूलंजग्राहपाणिना ॥ त्रासनंसर्वभूतानांयुगांताग्निसमप्रभम् ॥३१॥ दुरवापंमहच्छूलंरुद्रदत्तंभयंकरम् ॥ जाज्वल्यमानमाकाशेसंहारास्त्रमिवापरम् ॥३२॥ यंदृष्ट्वादेवताःसर्वाभयार्ताविद्रुतादिशः ॥ विभ्राम्यचमहच्छूलं प्रज्वलंतंनिशाचरः ॥ ३३ ॥ सक्रोधात्प्राहिणोत्तस्मैराघवायमहात्मने ॥ तमापतंतंज्वलितंखरपुत्रकराच्च्युतम् ॥३४॥ बाणैश्चतुर्भिराकाशेशूलंचिच्छेदराघवः ॥ सभिन्नोनैकधाशूलोदिव्यहाटकमंडितः ॥ व्यशीर्यतमहोल्केवरामबाणार्दितोभुवि ॥३५॥ तच्छूलंनिहतंदृष्ट्वारामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ साधुसाध्वितिभूतानिव्याहरंतिनभोगताः ॥३६॥ तंदृष्ट्वानिहतंशूलंमकराक्षोनिशाचरः ॥ मुष्टिमुद्यम्यकाकुत्स्थंतिष्ठतिष्ठेतिचाब्रवीत् ॥३७॥ सतंदृष्ट्वापतंतंतुप्रहस्यरघुनंदनः ॥ पावकास्त्रंततोरामःसंदधेतुशरासने ॥३८॥ तेनास्त्रेणहतंरक्षःकाकुत्स्थेनतदारणे ॥ सच्छिन्नहृदयंतत्रपपातचममारच ॥३९॥

लित ॥ ३४ ॥ शूलको चार बाणोंसे आकाशमेंही श्रीरामचंद्रजीनें काट डाला । तपायेहुए सुवर्णसे शोभित वह दिव्यशूल श्रीरामचंद्रजीके बाणसे मर्दित और अनेक खंड होकर बड़ीभारी उल्काकी समान पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ३५ ॥ उस समय सरलकर्मकारी श्रीरामचंद्रजी करके उस शूलको कटा हुआ देखकर आकाशमें टिके हुए सब प्राणी "धन्यहो, धन्यहो" ऐसा कहनेंलगे ॥ ३६ ॥ निशाचर मकराक्ष शूलको कटा हुआ देख मूका उठाय "खड़े रहो खड़े रहो" ऐसा कहकर श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख धाया ॥ ३७ ॥ ॥ रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीनेंभी उस राक्षसको आताहुआ देख मंद २ हँसतेहुए धनुपको धारण किया और उसपर अग्निबाण चढ़ाया ॥ ३८ ॥ श्रीरामचंद्रजीके उस आग्नेयास्त्रसे राक्षस

डालते हैं. एक क्षणभर विश्राम करकै तुम हमारा पराक्रम देखो ॥ ७९ ॥सुग्रीवजीके ऐसे सारवान् सन्मानयुक्त वचनोंसे अग्निमें आहुति लगनेंके समान कुंभका तेज औरभी बढ़ा ॥८०॥ इसके उपरान्त वीर्यवान कुंभनें दोनों बाहोंसे सुग्रीवजीको पकड़ लिया, वह दोनों जने उस समय मदचु आते हाथीकी समान वारंवार लंबे २ श्वास लेनें लगे ॥ ८१ ॥ परस्पर एक दूसरेका शरीर गांठनें लगे, दोनोंही एक दूसरेको खेंचतेथे अत्यन्त जोरसे लड़नेंकें कारण दोनोंहीके मुखसे मारे परिश्रमके धुवें सहित अग्निकी शिखा निकल रहीथी ॥८२॥ दोनों वीरोंके चरणोंकी धमकसे पृथ्वी नीचे को धसनेंलगीं समुद्रमें बड़ी तरंगें उठनें लगी और समुद्र कंपायमानभी हुआ ॥८३॥ तिसके उपरान्त सुग्रीवजीनें कुंभको पकड़कर मानों समुद्रकी

तेनसुग्रीववाक्येनसावमानेनमानितः ॥ अग्नेराज्यहुतस्येवतेजस्तस्याभ्यवर्धत ॥ ८० ॥ ततःकुंभस्तुसुग्रीवंबाहुभ्यां जगृहेतदा ॥ गजाविवावीतमदौनिःश्वसंतौमुहुर्मुहुः ॥ ८१ ॥ अन्योन्यगात्रग्रथितौघर्षंतावितरेतरम् ॥ सधूमांमुखतो ज्वालांविसृजंतौपरिश्रमात् ॥ ८२ ॥ तयोःपादाभिघाताच्चनिमग्नाचाभवन्मही ॥ व्याघूर्णिततरंगश्चचुक्षुभेवरुणा लयः ॥ ८३ ॥ ततःकुंभंसमुत्क्षिप्यसुग्रीवोलवणांभसि ॥ पातयामासवेगेनदर्शयन्नुदधेःस्थलम् ॥ ८४ ॥ ततःकुंभनिपाते नजलराशिःसमुत्थितः ॥ विंध्यमंदरसंकाशोविससर्पसमंततः ॥ ८५ ॥ ततःकुंभःसमुत्पत्यसुग्रीवमभिपात्यच ॥ आजघानोरसिक्रुद्धोवज्रकल्पेनमुष्टिना ॥ ८६ ॥ तस्यचर्मचपुस्फोटसंजज्ञेचापिशोणितम् ॥ तस्यमुष्टिर्महावेगःप्रति जघ्नेऽस्थिमंडले ॥ ८७ ॥ तस्यवेगेनतत्रासीत्तेजःप्रज्वलितंमहत् ॥ वज्रनिष्पेषसंजाताज्ज्वालामेरोर्यथागिरेः ॥ ८८ ॥

तली दिखलानेंके लियेही उसको अतिवेगसे लवणसमुद्रमें झोक दिया ॥८४॥ जब कुंभ समुद्रमें झोकागया तब समुद्रके जलकी राशि विन्ध्य और मन्दराचल पर्वतकी समान ऊंचा उठकर चारों ओर उफलाय उठा ॥ ८५ ॥ कुंभ एकक्षणभरके पीछेही समुद्रसे निकलकर सुग्रीवजीके निकट आया और क्रोधमें भरकर उनकी छातीमें एक वज्रकी समान मूका मारा॥८६॥उस भयंकर आघातसे सुग्रीवजीके शरीरकी खाल फट गई, अतिवेगसे रुधिरकी धारा वहनेंलगी और उस महावेगसे चलेहुए मूकेनें सुग्रीवजीकी छातीकी हड्डियें तोड़ डालीं ॥ ८७ ॥ जिस प्रकार वज्रके चलानेसे

मकराक्षका हृदय फट गया और वह संग्राम भूमिमें गिरकर प्राण छोड़ता हुआ ॥ ३९ ॥ उस समय और सब राक्षस मकराक्षको मृतक देख राम
बाणके भयसे अत्यन्त व्याकुलहो लंकाकी ओरको भागे ॥ ४० ॥ इस ओर देवता लोग राजा दशरथजीके पुत्र श्रीरामचंद्रजी करके
खरके पुत्र निशाचर मकराक्षको मृतक और वज्रसे विदारण हुए पर्वतकी समान पड़े देखकर परम प्रसन्न हुए ॥ ४१ ॥ इ०
श्रीम० वा० आ० यु० भाषानुवादे नवसप्ततितमः सर्गः ॥ ७९ ॥ महावीर रावण मकराक्षकी मृत्युका समाचार सुनकर अत्यन्त क्रोध
युक्त हुआ और दांतसे दांत पीसकर "कटकट" शब्द करनेंलगा ॥ १ ॥ इसके उपरान्त क्षणभरतक "अब क्या करना उचितहै" यह चिन्ता

दृष्ट्वातेराक्षसाःसर्वेमकराक्षस्यपातनम् ॥ लंकामेवप्रधावंतरामबाणभयार्दिताः ॥ ४० ॥ दशरथनृपसूनुबाणवेगैरज
निचरंनिहतंखरात्मजंतम् ॥ प्रददृशुरथदेवताःप्रहृष्टागिरिमिववज्रहतंतथाविकीर्णम् ॥ ४१ ॥ इ० श्रीम० वा०आ०
यु०नवसप्ततितमःसर्गः ॥ ७९ ॥ ॥ छ ॥ ॥ मकराक्षंहतंश्रुत्वारावणःसमितिंजयः ॥ रोषेणमहताविष्टोदंतान्कटक
टाय्यच ॥ १ ॥ कुपितश्चतदातत्रकिंकार्यमितिचिंतयन् ॥ आदिदेशाथसंक्रुद्धोरणायेंद्रजितंसुतम् ॥ २ ॥ जहिवी
रमहावीर्यौभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ अदृश्योदृश्यमानोवासर्वथात्वंबलाधिकः ॥ ३ ॥ त्वमप्रतिमकर्माणमिंद्रंजय
सिसंयुगे ॥ किंपुनर्मानुषौदृष्ट्वानवधिष्यसिसंयुगे ॥ ४ ॥ तथोक्तोराक्षसेंद्रेणप्रतिगृह्यपितुर्वचः ॥ यज्ञभूमौसविधि
वत्पावकंजुहवेंद्रजित् ॥५॥ जुह्वतश्चापितत्राग्निंरक्तोष्णीषधराःस्त्रियः॥ आजग्मुस्तत्रसंभ्रांताराक्षस्योयत्ररावणिः॥६॥

करके महा क्रोधकर पुत्र इन्द्रजीतको संग्राममें जानेंकी आज्ञा देता हुआ ॥ २ ॥ रावणनें कहा, हेवीर! तुम सब प्रकारसे महाबलवानहो इस
लिये प्रगट होकर अथवा अन्तर्ध्यान होकर दोनों भ्राता राम और लक्ष्मणको मार डालो ॥ ३ ॥ तुमनें जो रणभूमिमें अनुपमकर्मकारी इन्द्रको
जीत लियाहै फिर भला "दो मनुष्योंको" तौ देखतेही तुम मार डालोगे इसमें संदेहही क्याहै इन्द्रजीतनें राक्षसोंके स्वामी रावणकी इस प्रकारसे
आज्ञा पाय यज्ञभूमिमें जाय अग्निमें यथाविधिसे होम करना आरंभ किया ॥ ४ ॥ ५ ॥ जिस स्थानमें राक्षसराजका पुत्र मेघनाद यज्ञकार्यमें ॥

सुमेरु पर्वतसें अग्नि निकलतीथी वैसेही उस मूकेके लगनेंसे सुग्रीवजीकी छातीकी हाड्डियोंमेंसे तेज निकलनें लगा ॥ ८८ ॥ महाबलशाली वीर्यवान वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजीनें कुंभकरके इस प्रकारसे चोट खाय वज्रकी समान महाबलसे मूका बांधा ॥ ८९ ॥ सहस्रकिरणोंसे समुज्वल रवि मंडलकी समान वह घूंसा कुंभकी छातीमें मारा ॥ ९० ॥ तब उस प्रहारसे कुंभ अत्यन्त ताड़ित और विह्वल होकर लपटहीन अग्निके समान पृथ्वीमें गिर पड़ा ॥९१॥ और वह निशाचर मूकेसे मारा जायकर आकाशसे अपनें आपसे गिरेहुए मंगल ग्रहकी समान गिरकर शोभायमान हुआ ॥ ९२ ॥ मूकेके प्रहारसे कुंभकी छाती टूट गई और गिरे हुए कुंभकारूप महादेवजीके मारनेंसे गिरे हुए सूर्यकी समान शोभित हुआ॥९३॥

सतत्राभिहतस्तेनसुग्रीवोवानरर्षभः ॥ मुष्टिंसंवर्तयामासवज्रकल्पंमहाबलः ॥ ८९ ॥ अर्चिःसहस्रविकचरविमंडलवर्चसम् ॥ समुष्टिंपातयामासकुंभस्योरसिवीर्यवान् ॥ ९० ॥ सतुतेनप्रहारेणविह्वलोभृशपीडितः ॥ निपपाततदाकुंभोगतार्चिरिवपावकः ॥ ९१ ॥ मुष्टिनाभिहतस्तेननिपपाताशुराक्षसः ॥ लोहितांगइवाकाशाद्दीप्तरश्मिर्यदृच्छया ॥९२॥ कुंभस्यपततोरूपंभग्नस्योरसिमुष्टिना ॥ बभौरुद्राभिपन्नस्ययथारूपंगवांपतेः ॥ ९३ ॥ तस्मिन्हतेभीमपराक्रमेणप्लवंगमानामृषभेणयुद्धे ॥ महीसशैलासवनाचचालभयंचरक्षांस्यधिकंविवेश ॥ ९४ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेषट्सप्ततितमःसर्गः ॥ ७६ ॥७७॥ निकुंभोभ्रातरंदृष्ट्वासुग्रीवेणनिपातितम् ॥ प्रदहन्निवकोपेनवानरेंद्रमुदैक्षत ॥ १ ॥ ततःस्रग्दामसन्नद्धंदत्तपंचांगुलंशुभम् ॥ आददेपरिघंधीरोमहेंद्रशिखरोपमम् ॥ २ ॥

इस प्रकार भयंकर पराक्रमकारी वानरराज करकै रणभूमिमें जब कुंभ मारा गया, तब समस्त वन और पर्वतोंकें साथ पृथ्वी चलायमान होगई व निशाचर गण औरभी अधिक भीत हुए ॥ ९४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ॥ ७६ ॥ वानरराज सुग्रीवजीके हाथसे अपने भ्राता कुंभको निहत देखकर महावीर निकुंभ क्रोधसे लाल २ नेत्रकर जलाताहीहुआसा मानों सुग्रीवजीकी ओर देखने लगा ॥ १ ॥इसके उपरान्त उस वीरनें काले लोहेका बनाहुआ पांच अंगुलके प्रमाणवाला बन्धोंसें बँधा ज्वाला मालासे शोभित

दीक्षित हुआथा वहांपर कईएक लाल वस्त्र धारण किये हुए राक्षसियें अतिसावधानीसे आयकर इस यज्ञकी सेवा करनें लगीं ॥ ६ ॥ उस यज्ञमें शस्त्रही शरपतके तुल्य बिछरहेथे और उसके पूरा करनेंके लिये बहेड़ेकी लकड़ी, लाल वर्णके वस्त्र, और काले लोहेसे बना हुआ स्रुवा लाया गया ॥ ७ ॥ तब इन्द्रजीतनें तोमर स्वरूप शरपत्रोंसे अग्नि प्रज्वलितकी और एक जीते हुए काले छागकी गर्दन पकड़ी ॥ ८ ॥ और उस छागको अग्निमें होम दिया, होम करतेही वह शरपत्रोंपर फैली हुई अग्नि धूम रहित होगई, और उसमें निकली हुई शिखाओंसे विजयकी सूचना देने वाले चिह्न प्रकाशित हुए ॥ ९ ॥ और तपाये हुए कांचनकी समान अग्निने दाहिनी ओरकी धूम लपटोंके सहित उठकर मेघनादकी दी हुई

शस्त्राणिशरपत्राणिसमिधोथबिभीतकाः ॥ लोहितानिचवासांसिस्रुवंकार्ष्णायसंतथा ॥ ७ ॥ सर्वतोग्निंसमास्तीर्यं शरपत्रैःसतोमरैः ॥ छागस्यसर्वकृष्णस्यगलंजग्राहजीवतः॥ ८ ॥ शरहोमसमिद्धस्यविधूमस्यमहार्चिषः ॥ बभूवु स्तानिलिंगानिविजयंदर्शयंतिच ॥ ९ ॥ प्रदक्षिणावर्तशिखस्तप्तहाटकसन्निभः ॥ हविस्तत्प्रतिजग्राहपावकःस्वयमु त्थितः ॥ १० ॥ हुत्वाग्निंतर्पयित्वाथदेवदानवराक्षसान् ॥ आरुरोहरथश्रेष्ठमंतर्धानगतंशुभम् ॥ ११ ॥ सवाजिभि श्चतुर्भिस्तुबाणैस्तुनिशितैर्यतः ॥ आरोपितमहाचापःशुशुभेस्यंदनोत्तमे ॥ १२ ॥ जाज्वल्यमानोवपुषातपनीयप रिच्छदः ॥ मृगैश्चंद्रार्धचंद्रैश्चसरथःसमलंकृतः ॥ १३ ॥ जांबूनदमहाकंबुर्दीप्तपावकसन्निभः ॥ बभूवेंद्रजितःकेतु र्वैदूर्यसमलंकृतः ॥ १४ ॥

आहुति ग्रहणकी ॥ १० ॥ रावणका पुत्र मेघनाद इस प्रकार अग्निको आहुतिदे देव, दानव और राक्षसोंकी तृप्ति करताहुआ व किसीको न दीखनें वाले शुभ लक्षणयुक्त रथपर सवारहुआ ॥ ११ ॥ उस कालमें चार घोड़ोंसे चलाये जाते उत्तम रथमें सवार होकर वह वीर बड़ाभारी धनुष और तीखे बाणसमूह ग्रहण करके परम शोभायमान होनें लगा ॥ १२ ॥ महावीर इन्द्रजीतका देह सुवर्णके वस्त्राभूषणसे शोभायमानथा उसका रथभी सुवर्णसे भूषितथा, उस रथमें मृगोंकी तसवीर बनरहीथी और अर्द्धचंद्रोंसेभी वह भली भांति अलंकृतथा ॥ १३ ॥ सोनेके वलयसे युक्त

वीर हनुमानजीको उठाय आकाश मार्गसे लंकाकी ओर जानें लगा, तब राक्षस लोग युद्धके इस वृत्तान्तको देखकर हर्षित मनसे कुलाहल करनें लगे ॥ १८ ॥ उस समय महावीर हनुमानजी अपनेको राक्षसके हाथमें पड़ा हुआ देखकर अत्यन्तही लज्जित हुए और उन्होंनें उस राक्षसकी छातीमें वज्रकी समान एक घूंसा मारा ॥ १९ ॥ हनुमानजी उसी समयै राक्षसके हाथसे अपनेंको छुटाय कूदकर पृथ्वीपर खड़े होगये और निकुंभको पकड़कर उन्होंनें शीघ्रही पृथ्वीपर पटक दिया॥२०॥ वह वेगवान वीर हनुमानजी क्रोधमें भरकर निकुंभको पृथ्वीपर पटक वारंवार पीसकर देंदे मारनें लगे और आपभी कूदकर उसकी छातीपर चढ बैठे ॥ २१ ॥ इसके उपरान्त अपनी दोनों बाहोंसे पकडकर उसका शिर मरोरदिया,

सतथाह्रियमाणोपिहनूमांस्तेनरक्षसा ॥ आजघानानिलसुतोवज्रकल्पेनमुष्टिना ॥ १९ ॥ आत्मानंमोक्षयित्वाथ क्षितावभ्यवपद्यत ॥ हनूमानुन्ममाथाशुनिकुंभंमारुतात्मजः ॥२० ॥ निक्षिप्यपरमायत्तोनिकुंभंनिष्पिपेषच ॥ उत्पत्यचास्यवेगेनपपातोरसिवेगवान् ॥ २१ ॥ परिगृह्यचबाहुभ्यांपरिवृत्यशिरोधराम् ॥ उत्पाटयामासशिरोभैरवंनदतोमहत् ॥ २२॥ अथनिनदतिसादितेनिकुंभेपवनसुतेनरणेबभूवयुद्धम् ॥ दशरथसुतराक्षसेंद्रसूनोर्भृशतरमागतरोषयोःसुभीमम् ॥ २३ ॥ व्यपेतेतुजीवेनिकुंभस्यहृष्टाविनेदुःप्लवंगादिशःसस्वनुश्च ॥ चचालेवचोर्वीपपातेवसाद्यौर्बलं राक्षसानांभयंचाविवेश ॥ २४ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवा०आ०युद्धकांडेसप्तसप्ततितमःसर्गः ॥ ७७ ॥ ॥ छ ॥

निकुंभंनिहतंदृष्ट्वाकुंभंचविनिपातितम् ॥ रावणःपरमामर्षीप्रजज्वालानलोयथा ॥ १ ॥

और उस भयंकर शब्द करतेहुएका शिर उखाड़कर फेंक दिया ॥ २२ ॥ इस प्रकार जब पवनकुमार हनुमानजीसे संग्राममें शब्दकरताहुआ निकुंभ मारा गया तब अत्यन्त क्रोध पूर्ण श्रीरामचंद्रजीका और राक्षसोंमें श्रेष्ठ खरके पुत्र मकराक्षका युद्ध आरंभ हुआ ॥ २३ ॥ निकुंभके मारेजानेंपर वानर लोगोंकी आनंदपूर्ण सिंहनादसे दशों दिशा शब्दायमान, पृथ्वी चलायमान और आकाश मानों पृथ्वीपर गिर पड़ा । निकुंभको मराहुआ देखकर वानर लोगोंका भयंकर शब्द सुनकर राक्षसोंकी सैनामें अत्यन्त भयका संचार हुआ ॥ २४ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० भाषानुवादे सप्तसप्ततितमःसर्गः ॥ ७७ ॥ इसके उपरान्त लंकापति दशानन रावण निकुंभ और कुंभके मरनेंकी ॥

और प्रदीप्त अग्निकी समान उसका केतुभी वैदूर्यमणिसे सबप्रकार सजरहाथा ॥ १४ ॥ उस सूर्यकी समान रथ और ब्रह्मास्त्रसे रक्षित होनेंके कारण महाबलवान रावणका पुत्र मेघनाद अत्यन्त अजीत होगया ॥१५॥ समरविजयी इन्द्रजीत इस प्रकारसे अग्निमें होमकरके नगरसे बाहर निकला और राक्षसी मंत्रोंसे अन्तर्ध्यान होकर बोला ॥ १६ ॥ मिथ्या वनको निकले हुए राम और लक्ष्मणको संग्राममें मारकर हम रणमें बटोरी हुई जय अपने पिता रावणको देंगे ॥ १७ ॥ आज हम लक्ष्मणके सहित रामचंद्रका नाशकर पृथ्वीको वानरविहीन और पिताजीको परम प्रसन्न करेंगे ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त महावीर इन्द्रजीत रावणकी प्रेरणासे प्रेरित होकर क्रोधसहित युद्धभूमिमें आया, मेघनाद हाथमें तीक्ष्ण अस्त्र धारण

तेनचादित्यकल्पेनब्रह्मास्त्रेणचपालितः ॥ सबभूवदुराधर्षोरावणिःसुमहाबलः॥१५॥ सोभिनिर्यायनगरादिंद्रजित्समितिंजयः ॥ हुत्वाग्निंराक्षसैर्मंत्रैरंतर्धानगतोब्रवीत् ॥ १६ ॥ अद्यहत्वारणेयौतौमिथ्याप्रव्रजितौवने ॥ जयंपित्रेप्रदास्यामिरावणायरणेधिकम् ॥१७॥ अद्यनिर्वानरामुर्वींहत्वारामंचलक्ष्मणम्॥ करिष्येपरमांप्रीतिमित्युक्त्वांतरधीयत॥१८॥ आपपाताथसंक्रुद्धोदशग्रीवेणचोदितः॥ तीक्ष्णकार्मुकनाराचैस्तीक्ष्णस्त्विंद्ररिपूरणे ॥१९॥ सददर्शमहावीर्यौनागौत्रिशिरसाविव ॥ सृजंताविषुजालानिवीरौवानरमध्यगौ ॥ २० ॥ इमौताविसिंसंचिन्त्यसज्जंकृत्वाचकार्मुकम् ॥ संततानिषुधाराभिःपर्जन्यइववृष्टिमान् ॥ २१ ॥ सतुवैहायसरथोयुधितौरामलक्ष्मणौ ॥ अचक्षुर्विषयेतिष्ठन्विव्याधनिशितैःशरैः ॥ २२ ॥ तौतस्यशरवेगेनपरीतौरामलक्ष्मणौ ॥ धनुषीसशरेकृत्वादिव्यमस्त्रंप्रचक्रतुः ॥ २३ ॥

करके औरभी अधिक तीक्ष्ण होगया ॥ १९ ॥ इन्द्रजीतने देखा कि वानरलोगोंके बीचमें तीन फणवाले सर्पकीसमान श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी खडेहैं [इनके बन्धनोंमें दो दो तरकस लग रहेथे और मस्तकके साथ तीन २ शिरवाले ज्ञात होतेथे, इस कारण तीन फणवाला सर्प कहा] यह श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी वानर लोगोंके बीचमें खड़े रहकर बाणोंकी वर्षा कर रहेथे ॥ २० ॥ इन्द्रजीतनें उनको देखतेही पहचानलिया और मेघ जिसप्रकार जलकी धारा वर्षातेहैं वैसेही मेघनाद धनुषपर बाण चढायकर निरन्तर बाणोंकी वर्षा करनें लगा ॥ २१ ॥ आकाशगामी रथपर सवार होकर वह वीर दृष्टिके ओझलहोकर टिका हुआ तीखे बाण समूहसे श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीको वींधताहुआ ॥ २२ ॥ महावीर श्रीरामचंद्र

॥

इन तीनोंको अपनें ऊपर आयाहुआ देख श्रीरामचंद्रजीनें तीक्ष्ण बाणों से ॥१९॥ इनकी अगवानीकी। जैसे मनुष्य आयेहुए पाहुनोंकी अगुवानी व उचित पूजा करतेहैं। और महाकपालका तो रघुनंदनजीनें शिर ही उड़ादिया ॥ २० ॥ व अगणित बाणोंसे प्रमाथीका माथा, और स्थूलाक्षकी मोटी आखोंको पूरण करदिया ॥२१॥ यह तीनों कटेहुए वृक्षोंकी नांई पृथ्वीमें गिर पडे। इसके पीछे पांचहजार जो दूषणके अनुयायी राक्षसथे उन सबको अति क्रोधकर एक क्षणभरमें ॥२२॥ संहारकर उन सबको श्रीदशरथकुमारनें यमपुरको पठादिया, तब दूषण, व उसके अनुगामी सैन्यको मरा गयाहुआ सुन ॥२३॥ खरनें क्रोधित होकर महाबलवान् और दूसरे सेनापतियोंको इस प्रकारसे आज्ञा दी, कि, से

तीक्ष्णाग्रैःप्रतिजग्राहसंप्राप्तानतिथीनिव ॥ महाकपालस्याशिरश्चिच्छेदरघुनंदनः ॥ २० ॥असंख्येयैस्तुबाणौघैःप्रममाथप्रमाथिनम् ॥ स्थूलाक्षस्याक्षिणीस्थूलेपूरयामाससायकैः ॥ २१ ॥ सपपातहतोभूमौविटपीवमहाद्रुमः ॥ दूषणस्यानुगान्पंचसाहस्रान्कुपितःक्षणात् ॥२२॥ हत्वातुपंचसाहस्रैरनयद्यमसादनम् ॥ दूषणंनिहतंश्रुत्वातस्यचैवपदानुगान् ॥ २३ ॥ व्यादिदेशखरःक्रुद्धःसेनाध्यक्षान्महाबलान् ॥ अयंविनिहतःसंख्येदूषणःसपदानुगः ॥ २४ ॥ महत्यासेनयासार्धंयुद्धारामंकुमानुषम् ॥ शस्त्रैर्नानाविधाकारैर्हनध्वंसर्वराक्षसाः ॥ २५ ॥ एवमुक्त्वाखरःक्रुद्धोराममेवाभिदुद्रुवे ॥ श्येनगामीपृथुग्रीवोयज्ञशत्रुर्विहंगमः ॥ २६ ॥ दुर्जयःकरवीराक्षःपरुषःकालकार्मुकः ॥ हेममालीमहामालीसर्पास्योरुधिराशनः ॥ २७ ॥ द्वादशैतेमहावीर्याबलाध्यक्षाःससैनिकाः ॥ राममेवाभ्यधावंतविसृजंतःशरोत्तमान् ॥ २८ ॥

नापति लोगो! दूषण तो अपने अनुगामियों समेत मारागया ॥ २४ ॥ बस अब तुम सब राक्षसगण एकत्रहो बडी भारी सेनाको साथ लेकर विविध आकार अस्त्र शस्त्र छोडकर मनुष्याधम रामचंद्रको मारडालो॥२५॥खर सेनापतियोंसे इस प्रकार कहकर क्रोधमें भर आपही श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख दौडा। श्येनगामी, पृथुग्रीव, यज्ञशत्रु, विहङ्गम ॥ २६ ॥ दुर्ज्जय, परवीराक्ष, परुष, कालकार्मुक, हेममाली, महामाली, सर्प्पास्य, रुधिराशन ॥ २७ ॥ यह बारह महावीर सेनापति अपनी सेनाके साथ श्रेष्ठ बाण वर्षातेहुए श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख धाये ॥ २८ ॥

इन सब राक्षसोंको तेजस्वी श्रीरामचंद्रजीने अपने ऊपर आताहुआ देखकर हेमवज्रविभूषित अग्नितुल्य बाणोंसे खरकी इस बची बचाई सेनापर
प्रहार करना आरंभकिया ॥ २९ ॥ वज्रपडनेसे जिस प्रकार बडे २ वृक्ष गिर जातेहैं वैसेही श्रीरामचंद्रजीके सुवर्ण पंख सायक सधूम
अग्निकी समान राक्षसोंको संहार करनेलगे ॥३०॥ श्रीरामचंद्रजीने एक शत बाण चलाकर एकशत राक्षसोंका संहारकिया, व हजार बाण चलाकर
हजार राक्षसोंका प्राण लेलिया ॥ ३१ ॥ राक्षसगण रुधिरमें सनेहुए पृथ्वीमें गिरे, उनके कवच भूषण और धनुष छिन्नभिन्न और विदीर्ण
होगये ॥ ३२ ॥ यज्ञकी वेदीपर जिसप्रकार कुश बिछे होतेहैं वैसेही संग्रामकी समस्त पृथ्वी रुधिरसे सराबोर बाल खुलेहुए राक्षसों से छार

ततःपावकसंकाशैर्हेमवज्रविभूषितैः ॥ जघानशेषंतेजस्वीतस्यसैन्यस्यसायकैः ॥ २९ ॥ तेरुक्मपुंखावि
शिखाःसधूमाइवपावकाः ॥ निजघ्नुस्तानिरक्षांसिवज्राइवमहाद्रुमान् ॥ ३० ॥ रक्षसांतुशतंरामःशतेनैकेनक
र्णिना ॥ सहस्रंतुसहस्रेणजघानरणमूर्धनि ॥३१॥ तैर्भिन्नवर्माभरणाश्छिन्नभिन्नशरासनाः ॥ निपेतुःशोणितादिग्धा
धरण्यांरजनीचराः ॥ ३२ ॥ तैर्मुक्तकेशैः समरेपतितैःशोणितोक्षितैः ॥ विस्तीर्णावसुधाकृत्स्नामहावेदिःकुशैरिव॥३३॥
तत्क्षणेतुमहाघोरंवनंनिहतराक्षसम् ॥ बभूवनिरयप्रख्यंमांसशोणितकर्दमम् ॥ ३४ ॥ चतुर्दशसहस्राणिरक्षसांभी
मकर्मणाम् ॥ हतान्येकेनरामेणमानुषेणपदातिना ॥ ३५ ॥ तस्यसैन्यस्यसर्वस्यखरःशेषोमहारथः ॥ राक्षसस्त्रिशि
राश्चैवरामश्चरिपुसूदनः ॥३६॥ शेषाहतामहावीर्याराक्षसारणमूर्धनि ॥ घोरादुर्विषहाःसर्वेलक्ष्मणस्याग्रजेनते ॥३७॥

होथी ॥ ३३ ॥ सब राक्षसोंके मारे जानेसे वनभूमि उनके मांस व रुधिरकी कीचसे ढककर क्षणभरमेंही महाभयंकर नरककी समान
होगई ॥ ३४ ॥ मनुष्यशरीरधारी रामचंद्रने इकलेही बिना रथपर चढे चौदह हजार भयंकरकर्म करनेंवाले राक्षसोंको मारडाला ॥ ३५ ॥
सब सेनाके बीचमें महारथी खर, त्रिशिरा और शत्रुओंके हनन करनेंवाले श्रीरामचंद्रजीके बल यह तीनजन शेषरहे ॥ ३६ ॥ बचेबचाये राक्षस
सबही लक्ष्मणजीके बडेभाई श्रीरामचंद्रजीसे मारेगये, यह समस्त राक्षस अतिशय बलवान, भयंकर, व बडेदुःखसे सहनेके योग्यथे ॥ ३७ ॥

व लक्ष्मणजी राक्षसके बाण लगनेंसे धनुष चढायकर दिव्यास्त्रका प्रयोग करते हुए ॥ २३ ॥ यद्यपि श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीके बाणोंसे आकाश मंडल छाय गया परन्तु वह समस्त बाण इन्द्रजीतके शरीरको स्पर्श नहीं करसके ॥ २४ ॥ राक्षसवीर इन्द्रजीतनें मायाके बलसे धुवें सहित अंधकार विस्तार करके दशों दिशाओंको छाय लिया, और आप उस अंधकार मंडलसे ढका रहकर किसी दूसरेकी दृष्टिमें न आनेंयोग्य हो गया ॥२५॥ उस कालमें उसके रथका घर्घर शब्द धनुषकी टंकार घोडोंके पैर धरनेंका शब्द कुछभी सुनाई नहीं आताथा और मेघनाद स्वयम्भी भली भांतिसे लोप होगया ॥ २६ ॥ उस निबिड़ अंधकारमें सब दिशा विदिशा अंधकारसे छाय गईं, महाबाहु इन्द्रजीत पत्थर वर्षानेंकी समान

प्रच्छादयंतोगगनंशरजालैर्महाबलौ ॥ तमस्त्रैःसूर्यसंकाशैर्नैवपस्पर्शतुःशरैः ॥२४॥ सहिधूमांधकारंचचक्रेप्रच्छादयन्नभः ॥ दिशश्चांतर्दधेश्रीमान्नीहारतमसावृतः ॥२५॥ नैवज्यातलनिर्घोषोनचनेमिखुरस्वनः ॥ शुश्रुवेचरतस्तस्यनचरूपंप्रकाशते ॥२६॥ घनांधकारेतिमिरेशिलावर्षमिवाद्भुतम् ॥ सववर्षमहाबाहुर्नाराचशरवृष्टिभिः ॥२७॥ सरामंसूर्यसंकाशैःशरैर्दत्तवरैर्भृशम् ॥ विव्याधसमरेक्रुद्धःसर्वगात्रेषुरावणिः ॥ २८ ॥ तौहन्यमानौनाराचैर्धाराभिरिवपर्वतौ ॥ हेमपुंखान्नरव्याघ्रौतिग्मान्मुमुचतुःशरान् ॥ २९ ॥ अंतरिक्षेसमासाद्यरावणिंकंकपत्रिणः ॥ निकृत्यपतगाभूमौपेतुस्तेशोणिताप्लुताः ॥ ३० ॥ अतिमात्रंशरौघेणदीप्यमानौनरोत्तमौ ॥ तानिपून्पततोभल्लैरनेकैर्विचकर्ततुः ॥ ३१ ॥ यतोहिददृशातेतौशरान्निपतिताङ्छितान् ॥ ततस्तुतौदाशरथीससृजातेस्त्रमुत्तमम् ॥ ३२ ॥

अद्भुत नाराच और बाणोंकी वर्षा आरंभ करता हुआ ॥ २७ ॥ मेघनाद क्रोधमें भरकर सूर्यकी समान प्रदीप्त बाण समूहसे रणभूमिमें श्रीरामचंद्रजीको मारनें लगा ॥ २८ ॥ पर्वतपर जिसप्रकारसे वृष्टि होती है वैसेही वह दोनों नर शार्दूल श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी मेघनादके बाणोंसे ताडित होकर घोररूप सुवर्णकी फोंक लगे बाणसमूह मेघनादके ऊपर चलानें लगे ॥ २९ ॥ वह समस्त कंकबाण आकाशमें मेघनादके समीप जायकर उसकी देहको भेद रुधिरसे भीग पृथ्वीपर गिरनेंलगे ॥ ३० ॥ इन्द्रजीतके बाण चलानेंसे श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीकी दीप्ति बढ उठी कि उन्होंनेभी राक्षसके चलायेहुए समस्त बाणोंको भाले चलाकर व्यर्थ करदिया ॥ ३१ ॥ यद्यपि श्रीराम लक्ष्मणजी इन्द्रजीतको देख नहीं

परन्तु आपने उस कालमें राज्यको छोड़कर उस अर्थमूल धर्मकी मूल काट डाली ॥ ३१ ॥ जिस प्रकार पर्वतसे नदियें निकलतीहैं वैसेही अनेक देशसे लाये जाकर बढ़े हुए अर्थसेही सब क्रिया प्रवर्तित हुआ करतीहै ॥३२॥ इसके विरुद्ध जिस प्रकार छोटी नदियें ग्रीष्मकालमें सूख जाती हैं वैसेही अल्पबुद्धि अर्थहीन पुरुषकी सब क्रिया नष्ट हो जातीहैं ॥ ३३ ॥ अनेक वार ऐसाभी देखा जाताहै कि पुरुष प्रथम सुख साधन अर्थ छोड़कर पीछेसे सुखका अभिलाषी होताहै, और काल पायकर जब वह अभिलाष बढ़ जाताहै तब वह पापके आचरण करनें आरंभ कर देताहै कि जिस्से दोष होजाताहै ॥ ३४ ॥ इस संसारमें जिसके पास धनहै वही पुरुषहै और मित्र व बन्धु बान्धव गणभी उसीके हैं,धनवानही पुरुषहै धन

अर्थेभ्योथप्रवृद्धेभ्यःसंवृत्तेभ्यस्ततस्ततः ॥ क्रियाःसर्वाःप्रवर्ततेपर्वतेभ्यइवापगाः ॥ ३२ ॥ अर्थेनहिविमुक्तस्यपुरुषस्याल्पचेतसः ॥ विच्छिद्यंतेक्रियाःसर्वाग्रीष्मेकुसरितोयथा ॥ ३३ ॥ सोयमर्थंपरित्यज्यसुखकामःसुखैधितः ॥ पापमांचरतेकर्तुंतदादोषःप्रवर्तते ॥ ३४ ॥ यस्यार्थास्तस्यमित्राणियस्यार्थास्तस्यबांधवाः ॥ यस्यार्थाःसपुमाँल्लोकेयस्यार्थाःसचपंडितः ॥ ३५ ॥ यस्यार्थाःसचविक्रांतोयस्यार्थाःसचबुद्धिमान् ॥ यस्यार्थाःसमहाबाहुर्यस्यार्थाःसगुणाधिकः ॥ ३६ ॥ अर्थस्यैतेपरित्यागेदोषाःप्रव्याहृतामया ॥ राज्यमुत्सृजताधीरयेनबुद्धिस्त्वयाकृता ॥ ३७ ॥ यस्यार्थाधर्मकामार्थास्तस्यसर्वंप्रदक्षिणम् ॥ अधनेनार्थकामेननार्थःशक्यंविचिन्वता ॥ ३८ ॥ हर्षःकामश्चदर्पश्च धर्मःक्रोधःशमोदमः ॥ अर्थादेतानिसर्वाणिप्रवर्ततेनराधिप ॥ ३९ ॥

वानही पंडितहै ॥ ३५ ॥ जिसके पास धनहै उसकाही विक्रमहै, जिसके पास धनहै वही बुद्धिमानहै; जिसके पास धनहै वही महावीर और वही गुणवानहै ॥ ३६ ॥ हेधीर! हमनें जो कुछ कहा धनका त्याग करनेंसे यही दोष होजातेहैं; परन्तु हम नहीं कह सकते कि आपने किस बुद्धिके वश होकर राज्य छोड़ दिया ॥ ३७ ॥ जिसके पास धनहै उसके सबही कुछ वशमे है और वह सहजहीसे धर्म कामादिकोंको सिद्ध कर सकताहै परन्तु निर्धन पुरुष चाहै अनंत उद्योग करै उसका कोई प्रयोजनभी सिद्ध नहींहो सकता ॥ ३८ ॥ हेनरनाथ! हर्ष, काम, गर्व, धर्म, क्रोध,शम,

पातेथे परन्तु जिस ओरसे उसके बाण चले आतेथे उसही ओरको यह दोनोंजन तीखे बाण चलानें लगे ॥ ३२ ॥अतिरथ इन्द्रजीतनेंभी सर्व दिशाओंमे रथ चलाते २ तीखे बाण समूहसे उन बाण वर्षाते हुए दोनों राजकुमारोंको मारना आरंभ किया ॥ ३३ ॥ उस समय वह वीरश्रेष्ठ दोनों दशरथकुमार सुवर्णकी फोंक लगे मेघनादके बाणोंसे विंधकर फूले हुए दो पलाश वृक्षोंकी समान शोभायमान हुए ॥ ३४ ॥ जिस प्रकार मेघसे ढके हुए सूर्यकी गति नहीं जानीजायसक्ती है; वैसेही कोईभी इन्द्रजीतकी गति, रूप, धनुष, अथवा बाण कुछभी नहीं देख सकता ॥ ३५ ॥ उस युद्धमें सैकड़ों हजारों वानर घायल हुए और मृतक होकर पृथ्वीपर गिरपड़े ॥ ३६ ॥

रावणिस्तुदिशःसर्वारथेनातिरथोपतत् ॥ विव्याधतौदाशरथीलघ्वस्त्रौनिशितैःशरैः ॥३३॥ तेनातिविद्धौत्तौवीरौरुक्मपुंखैसुसंहतैः ॥ बभूवतुर्दाशरथीपुष्पिताविवकिंशुकौ ॥३४॥ नास्यवेगगतिंकश्चिन्नचरूपंधनुःशरान् ॥ नचास्यविदितं किंचित्सूर्यस्येवाभ्रसंप्लवे ॥३५॥ तेनविद्धाश्चहरयोनिहताश्चगतासवः ॥ बभूवुःशतशस्तत्रपतिताधरणीतले ॥ ३६ ॥ लक्ष्मणस्तुततःक्रुद्धोभ्रातरंवाक्यमब्रवीत् ॥ ब्राह्ममस्त्रंप्रयोक्ष्यामिवधार्थंसर्वरक्षसाम् ॥ ३७ ॥ तमुवाचततोरामो लक्ष्मणंशुभलक्षणम् ॥ नैकस्यहेतोरक्षांसिपृथिव्यांहंतुमर्हसि ॥ ३८ ॥ अयुध्यमानंप्रच्छन्नंप्रांजलिंशरणागतम् ॥ पलायमानंमत्तंवानहंतुंत्वमिहार्हसि ॥ ३९ ॥ तस्यैवतुवधेयत्नंकरिष्यामिमहाभुज ॥ आदेक्ष्यावोमहावेगानस्त्रानाशीविषोपमान् ॥ ४० ॥ तमेनंमायिनंक्षुद्रमंतर्हितरथंबलात् ॥ राक्षसंनिहनिष्यंतिदृष्ट्वावानरयूथपाः ॥ ४१ ॥

इसी अवसरमें क्रोधित होकर रामचंद्रजीके छोटे भ्राता लक्ष्मणजी श्रीरामचंद्रजीसे यह वचन बोले कि जो आज्ञाहो तौ हम राक्षसोंके कुलको निर्मूल करनेंके लिये ब्रह्मास्त्र छोड़ें; हे महाबलवान! हमारी यही इच्छाहै कि इस लोकको राक्षसशून्यकरदें ॥३७॥ यह वचन सुनकर श्रीरामचंद्रजी शुभ लक्षणयुक्त लक्ष्मणजीसे बोलेकि एक राक्षसके लिये पृथ्वीके समस्त राक्षसोंको नहीं मार डालना चाहिये ॥ ३८ ॥ युद्ध न करते हुए छिपेहुए हाथ जोड़कर शरण आये हुए भागे हुए अथवा मतवाले शत्रुका मार डालनाही ठीक नहीं ॥ ३९ ॥ हेमहाभुज! इस कारण आज हम इसके वध करनेंके निमित्तही यत्नवान होकर विषधर सर्पकी समान बाण अति वेगसे छोड़ेंगे ॥ ४० ॥ हेवीर! मायाके बलसे अदृश्य रथ किये यह मायावी

विषयके अभिप्रायको जानतेहैं, वह कभी सीताजीको नहीं मारनें देगा ॥ १० ॥ हमने रावणके हितकीही कामनासे उस्से वारंवार कहाकि "जानकी श्रीरामचन्द्रजीको देदो;" परन्तु उसनें हमारी इस बातपर कानतकभी नहीं दिया ॥ ११ ॥ सीताजीको वध करना तौ दूर रहा; महाराज ! जब कि साम, दान, अथवा भेद इन तीन उपायोंसेभी जब कोई सीताजीका दर्शन नहीं पाय सकता; तब इन्द्रजीत संग्रामस्थलमें किस प्रकारसे उनका दर्शन प्राप्त करनेंमें समर्थ होगा ? ॥ १२ ॥ हे महावीर ! वह मायाकी सीता इन्द्रजीतने मारडाली होगी हम निश्चय जानते हैं कि राक्षस इन्द्रजीत इस उपायसे वानरोंको मोहित करके चला गयाहै ॥ १३ ॥ आज निकुम्भिलामें वह मेघनाद जाकर होम करैगा इन्द्रादि देवताओंके साथ अग्नि

याच्यमानःसुबहुशोमयाहितचिकीर्षुणा ॥ वैदेहीमुत्सृजस्वेतिनचतत्कृतवान्वचः ॥ ११ ॥ नैवसाम्नानदानेननभेदे नकुतोयुधा ॥ साद्रष्टुमपिशक्येतनैवचान्येनकेनचित् ॥ १२ ॥ वानरान्मोहयित्वातुप्रतियातःसराक्षसः ॥ मा यामयींमहाबाहोतांविद्धिजनकात्मजाम् ॥ १३ ॥ चैत्यंनिकुंभिलामद्यप्राप्यहोमंकरिष्यति ॥ हुतवानुपयातोहिदे वैरपिसवासवैः ॥ १४ ॥ दुराधर्षोभवत्येषसंग्रामेरावणात्मजः ॥ तेनमोहयतानूनमेषामायाप्रयोजिता ॥ विघ्नमन्वि च्छतातत्रवानराणांपराक्रमे ॥ १५ ॥ ससैन्यास्तत्रगच्छामोयावत्तन्नसमाप्यते ॥ त्यजैनंनरशार्दूलमिथ्यासंताप मागतम् ॥ १६ ॥ सीदतेहिबलंसर्वंदृष्ट्वात्वांशोककर्शितम् ॥ इहत्वंस्वस्थहृदयस्तिष्ठसत्त्वसमुच्छ्रितः ॥ १७ ॥

वहां पहुँचे हैं ॥ १४ ॥ जबकि वह यज्ञमें होम करके अग्निको प्रसन्नकर लेगा तब देवताओंके सहित इन्द्रकोभी संग्राममें रावणका पुत्र मेघनाद दुर्द्धर्षहोजायगा, हम निश्चय कहतेहैं कि अपना अभिलाष सिद्ध करनेंके लिये और वानरोंको पराक्रमहीनही करनेके लिये उसनें ऐसी माया प्रगटकी है ॥ १५ ॥ जबतक उसका यज्ञ समाप्त न होजायगा तबतक हम सैनाके सहित वहां पहुंचजायँगे। हे नरशार्दूल ! आप शोक संतापका त्याग कीजिये ॥ १६ ॥ कारण कि आपको शोकसे पीड़ित देखकर ही समस्त वानरोंकी सेना व्याकुल होरही है; इस कारण अब

राक्षस जो किसी प्रकारसे वानर लोगोंकी दृष्टिमें आजावे तव तो वानरोंके यूथपही उसको मार डालेंगे ॥ ४१ ॥ अधिक क्या है जो इन्द्रजीत, स्वर्ग लोक, मृत्युलोक, पाताल, अथवा आकाश, चाहे जहां प्रवेशकर छिप जावे तथापि हमारे अस्त्रोंसे यह भस्म और प्राणरहित होकर पृथ्वीपर गिर जायगा ॥ ४२ ॥ महात्मा रघुवीरश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी यह महाअर्थयुक्त वचन कहकर वानरोंकी सैनाके संग खड़ेहुए क्रूरकर्मकारी राक्षस का प्राण संहार करनेंके लिये अनेक प्रकारसे उपाय उठानें लगे ॥ ४३ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० युद्धकांडे अशीतितमःसर्गः ॥ ८० ॥ महावीर इन्द्रजीत महात्मा श्रीरामचंद्रजीका ऐसा अभिप्राय जानकर उसी समय समरसे निवृत्त होकर लंकापुरीमें चलागया ॥ १ ॥ परन्तु वह

यद्येषभूमिंविशतेदिवंवारसातलंवापिनभस्तलंवा ॥ एवंविगूढोपिममास्त्रदग्धःपतिष्यतेभूमितलेगतासुः॥४२॥इत्येवमुक्त्वावचनंमहार्थंरघुप्रवीरःप्लवगर्षभैर्वृतः ॥ वधायरौद्रस्यनृशंसकर्मणस्तदामहात्मात्वरितंनिरीक्षते ॥ ४३ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रा०वा०आ०युद्धकांडेअशीतितमःसर्गः ॥ ८० ॥ ॥ ७ ॥ ॥ विज्ञायतुमनस्तस्यराघवस्यमहात्मनः ॥ सनिवृत्याहवात्तस्मात्प्रविवेशपुरंततः ॥ १ ॥ सोनुस्मृत्यवधंतेषांराक्षसानांतरस्विनाम् ॥ क्रोधताम्रेक्षणःशूरोनिर्जगामाथरावणिः ॥ २ ॥ सपश्चिमेनद्वारेणनिर्ययौराक्षसैर्वृतः ॥ इंद्रजित्सुमहावीर्यःपौलस्त्योदेवकंटकः ॥ ३ ॥ इंद्रजित्तुततोदृष्ट्वाभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ रणायात्युद्यतौवीरौमायांप्रादुष्करोत्तदा ॥ ४ ॥ इंद्रजित्तुरथेस्थाप्यसीतांमायामयींतदा ॥ बलेनमहतावृत्यतस्यावधमरोचयत् ॥ ५ ॥

शूर मेघनाद शूर कुंभकर्ण इत्यादि तेजस्वी निशाचरोंके वधको विचार क्रोधसे लाल २ नेत्रकर फिर लंकापुरीसे निकला ॥ २ ॥ पौलस्त्य कुलमें उत्पन्न हुआ देवकंटक महा वीर्यवान् मेघनाद वहुत सारे राक्षसोंको साथ लेकर लंकाके पश्चिमद्वारसे निकला ॥ ३ ॥ और इन्द्रजीतनें वीर श्रेष्ठ दोनों भाई रामचंद्र और श्रीलक्ष्मणजीको युद्ध करनेंके लिये तैयार देख वैसे उनको अजीत विचार कर मायाका विस्तार किया ॥ ४ ॥ उस समय मायावी निशाचरनें रथके ऊपर मायाकी सीता वनाकर स्थापित की इन्द्रजीतके साथ वड़ी भारी राक्षसोंकी सैनाथी. इन सीताजीको मार

धीरज धर सावधान हो इस स्थानमें आप विराजमान रहैं ॥ १७ ॥ और सब सैनाके सहित लक्ष्मणजीको हमारे साथ भेज दीजिये ॥ १८ ॥ यह महावीर नरशार्दूल ! लक्ष्मणजी तीक्ष्ण बाण चलाय २ कर उसके यज्ञ कार्यमें विघ्न कर देंगे, जब उससे यज्ञ करना छुट जायगा तब हम उसे मार डालेंगे ॥ १९ ॥ इनके गरुडजीकी समान अंगयुक्त वेगशाली तीक्ष्ण रुधिरके पीनें वाले बाण गिद्ध इत्यादि अशुभ पक्षियोंकी समान उस राक्षसका रुधिर पियेंगे॥२०॥ इसलिये हे महावीर ! जिस प्रकार वज्रधर इन्द्रजीत दैत्योंके मारनेंके लिये वज्रको आज्ञा देतेहैं, वैसेही आपभी शुभ लक्षणयुक्त लक्ष्मणजीको हम लोगोंके साथ जानेंकी आज्ञादे दें ॥ २१ ॥ हे मनुजश्रेष्ठ ! शत्रुके मारनेंमें विलम्ब करना उचित नहीं है; इसलिये

लक्ष्मणंप्रेषयास्माभिःसहसैन्यानुकर्षिभिः ॥१८॥ एषतंनरशार्दूलोरावणिंनिशितैःशरैः ॥ त्याजयिष्यतितत्कर्मततोवध्योभविष्यति॥१९॥तस्यैतेनिशितास्तीक्ष्णापत्रिपत्रांगवाजिनः॥ पतत्रिणइवासौम्याःशराःपास्यंतिशोणितम् ॥२०॥ तत्संदिशमहाबाहोलक्ष्मणंशुभलक्षणम् ॥ राक्षसस्यविनाशायवज्रंवज्रधरोयथा ॥ २१ ॥ मनुजवरनकालविप्रकर्षोरिपुनिधनंप्रतियत्क्षमोद्यकर्तुम् ॥ त्वमतिसृजरिपोर्वधायवज्रंदिविजरिपुमथनेयथामहेंद्रः ॥ २२ ॥ समाप्तकर्माहिसराक्षसर्षभोभवत्यदृश्यःसमरेसुरासुरैः ॥ युयुत्सतातेनसमाप्तकर्मणाभवेत्सुराणामपिसंशयोमहान् ॥ २३॥ इत्यार्षेश्रीम० वा०आ०यु०चतुरशीतितमःसर्गः ॥ ८४ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाराघवःशोककर्शितः ॥ नोपधारयतेव्यक्तंयदुक्तंतेनरक्षसा ॥ १ ॥ ततोधैर्यमवष्टभ्यरामःपरपुरंजयः ॥ विभीषणमुपासीनमुवाचकपिसन्निधौ ॥ २ ॥

जिस प्रकार इन्द्रजी दैत्योंका वध करनेंके लिये वज्रको भेजते हैं वैसेही लक्ष्मणजीको आप हमारे संग भेजदें ॥ २२ ॥ हे महाराज ! वह राक्षसश्रेष्ठ जब कार्य अर्थात् होम समाप्त करलेगा,तब सुर और असुर लोगभी उसको नहीं देख सकते; बस जबकि वह होम समाप्त करके युद्ध करनें लगेगा तब देवता लोगोंकोभी बड़ाभारी संशय उपस्थित होगा ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुरशीतितमःसर्गः ॥८४॥ शोकाकुल श्रीरामचन्द्रजी बिभीषणके वचनोंको सुन करके जो वचन कि बिभीषणजीनें स्पष्ट २ कहेथे उनको धारण करनेंमें समर्थ न हुए ॥ १ ॥ इसके उपरान्त परपुर जीतनेंवाले श्रीरामचन्द्रजी धीरज धारण करके वानर लोगाके निकट बैठे हुए बिभीषणजीसे बोले ॥ २ ॥

में गमन करतेहैं अथवा नरघातक चोर जिस स्थानको कलंकित करतेहैं तू उसी स्थानमें प्राणोंको छोड़कर उन्हीं सब लोकोंको जायगा ॥ २२ ॥ हनुमानजी केवल यही वचन कह आयुधधारी वानरोंके साथ क्रोधमें भर राक्षसराजके पुत्र इन्द्रजीतके सन्मुख दौड़े ॥ २३ ॥ उस महावीर्यवान वानरोंकी सैनाको आताहुआ देखकर इन्द्रजीतनें महा कोपकर राक्षसोंकी सैनासे उनको रुकवाया ॥ २४ ॥ उस समय महावीर इन्द्रजीत हजार बाण चलाय वानरोंकी सैनाको चलायमान कर वानर श्रेष्ठ हनुमानजीसे यह वचन बोला ॥ २५ ॥ राम, सुग्रीव, अथवा तुम जिस कारणसे इस स्थानमें आयेहो आज हम तुम्हारे सामनेही उन जानकीजीका वध करेंगे ॥ २६ ॥ अरे वानर ! इसको मारकर तिसके पीछे

इतिब्रुवाणोहनुमान्सायुधैर्हरिभिर्वृतः ॥ अभ्यधावत्सुसंक्रुद्धोराक्षसेंद्रसुतंप्रति ॥ २३ ॥ आपतंतंमहावीर्यंतदनीकंवनौकसाम् ॥ रक्षसांभीमकोपानामनीकेनन्यवारयत् ॥ २४ ॥ सतांबाणसहस्रेणविक्षोभ्यहरिवाहिनीम् ॥ हनूमंतंहरिश्रेष्ठमिंद्रजित्प्रत्युवाचह ॥ २५ ॥ सुग्रीवस्त्वंचरामश्चयन्निमित्तमिहागताः ॥ तांवधिष्यामिवैदेहीमद्यैवतवपश्यतः ॥ २६ ॥ इमांहत्वाततोरामंलक्ष्मणंत्वांचवानर॥सुग्रीवंचवधिष्यामितंचानार्यंविभीषणम् ॥ २७॥ नहंतव्याःस्त्रियश्चेतियद्ब्रवीषिप्लवंगम ॥ पीडाकरममित्राणांयच्चकर्तव्यमेवतत् ॥ २८ ॥ तमेवमुक्त्वारुदतींसीतांमायामयींचताम् ॥ शितधारेणखड्गेननिजघानेंद्रजित्स्वयम् ॥ २९ ॥

हम राम, लक्ष्मण, सुग्रीव अनार्य बिभीषणके सहित तुझकोभी मार डालेंगे ॥ २७ ॥ रे बंदर ! तैंने जो कहा कि "स्त्रीका वध करना कर्त्तव्य नहीं" सो राजनीतिके अनुसार शत्रुओंको जिस २ कार्यके करनेंसे पीड़ा पहुँचे वह कार्य करना उचित है उसके करनेंसे पापनहीं होता * ॥२८॥ इन्द्रजीतनें यह वचन कहतेही तेजधारवाले खड्गसे अपने आप उन रोती हुईमायामयी जानकीजीके ऊपर प्रहार कर दिया ॥ २९ ॥

* अनेक रामायणोंमें २९ संख्याका श्लोक नहीं, हम नहीं जानते कि छापनेवालोंनें इसे क्यों छोड़ दियाहै । "ताडकाया वधं रामः किमर्थं कृतवान् पुरा ॥ तदहं हन्मि रामस्य महिषीं जनकात्मजां ॥ २९ ॥" भला यह न सही परन्तु पहले रामनें किस प्रकारसे ताडकाको मार डालाथा ! उन्होंनें जिस कारण यह कार्य किया हमभी इसी कारणसे इस रामकी भार्या जनककी बेटी सीताको मार डालेंगे ॥२९॥

हो वैसेही जलके भीगे नगाडेकी समान शब्द करनेलगा ॥ ८ ॥ रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीनें त्रिशिरा राक्षसको अपने सन्मुख आते देखकर धनुष उठाय शब्दकर तीखे बाण चढाय ॥ ९ ॥ त्रिशिराके मारे, उस समय अतिबलवान सिंह और हाथीकी समान श्रीरामचंद्रजी और त्रिशिराका तुमुल संग्राम आरंभ हुआ जिसके देखनेंसे रोम खडे हो जातेथे ॥ १० ॥ अनन्तर क्रोध न करनें वाले श्रीरामचंद्रजी त्रिशिरा करके तीन बाणोंके द्वारा ताडित होकर जो उनके माथे में लगेथे; उनके लगनेंसे रोषयुक्तहो गर्वित वचन कहनें लगे ॥ ११ ॥ कि अरे ! विक्रम शूर निशाचर ! बस तेरा इतनाही बलहै कि तेरे चलाये हुए बहुत सारे बाण हमारे माथेमें फूलोंकी समान लगे हम तो जानतेथे कि तुममें कुछ

आगच्छंतंत्रिशिरसंराक्षसंप्रेक्ष्यराघवः ॥ धनुषाप्रतिजग्राहविधुन्वन्सायकान्शितान् ॥ ९ ॥ ससंप्रहारस्तुमुलोरामात्रिशिरसोस्तदा ॥ संबभूवातिबलिनोःसिंहकुंजरयोरिव ॥१०॥ ततस्त्रिशिरसाबाणैर्ललाटेताडितस्त्रिभिः ॥ अमर्षीकुपितो रामःसंरब्धइदमब्रवीत् ॥११॥ अहोविक्रमशूरस्यराक्षसस्येदृशंबलम् ॥ पुष्पैरिवशरैर्योहंललाटेऽस्मिपरिक्षितः ॥१२॥ ममापिप्रतिगृह्णीष्वशरांश्चापगुणाच्च्युतान् ॥ एवमुक्तस्तुसंरब्धःशरानाशीविषोपमान् ॥ १३ ॥ त्रिशिरावक्षसिक्रुद्धोनि जघानचतुर्दश ॥ चतुर्भिस्तुरगानस्यशरैःसन्नतपर्वभिः ॥ १४ ॥ न्यपातयततेजस्वीचतुरस्तस्यवाजिनः ॥ अष्टभिः सायकैःसूतंरथोपस्थेन्यपातयत् ॥ १५ ॥ रामश्चिच्छेदबाणेनध्वजंचास्यसमुच्छ्रितम् ॥ ततोहतरथात्तस्मादुत्पततं निशाचरम् ॥ १६ ॥ चिच्छेदरामस्तंबाणैर्हृदयेसोभवज्जडः ॥ सायकैश्चाप्रमेयात्मासामर्षात्तस्यरक्षसः ॥ १७ ॥

विक्रम होगा, सो कुछभी नहीं ॥ १२ ॥ क्या आश्चर्यहै ! अब तू हमारे धनुषके रोदेसे छूटे हुए बाणोंके समूहको ग्रहण कर । यह कह बडा क्रोधकर विषधर सर्पोंकी समान ॥ १३ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें चौदह बाण त्रिशिराके हृदयमें मारे और चार घोडोंको ॥ १४ ॥ महा तेजवान श्रीरामचंद्रजीनें मार डाला और आठ बाणोंसे रथपरही उसके सारथिको मार गिराया ॥ १५ ॥ व एक बाणसे अति ऊंची उसकी ध्वजाको काट डाला जब सारथि और घोडे उसके मारे गये तब त्रिशिरा रथसे कूदनेंको हुआ ॥ १६ ॥ तो उसी बीचमें श्रीरामचंद्रजीनें अनेक

जैसेही मेघनादनें प्रहार किया कि बड़ी नितम्बवाली प्रियदर्शन वह जानकी यज्ञोपवीतके स्थानसे कटकर छिन्न भिन्न हो पृथ्वीपर गिरी॥ ३०॥ तब इन्द्रजीतनें हनुमानजीसे कहाकि यह देखो हमने अस्त्रके प्रहारसे रामचन्द्रकी प्यारी वैदेही को मारडाला॥ ३१॥ फिर जब कि जानकी ही मृतक होगई तब फिर तुमलोगोंको और वृथा परिश्रम करनेका क्या फल है॥ ३२॥ इन्द्रजीत इस प्रकारसे उन मायामयी सीताजीको खड्गसे मारकर हर्षित अंतःकरणसे अपने रथपर सवार हो घोर शब्दसे सिंहनाद करनेलगा॥ ३३॥ वानर लोग निकटही टिककर वज्रसमान कठोर शब्द सुननेलगे और उन्होंनें देखाकि महावीर इन्द्रजीत दुर्गमें प्रवेश करके विकटाकार मुखसे

यज्ञोपवीतमार्गेणाच्छिन्नातेनतपस्विनी॥ साप्टथिव्यांप्टथुश्रोणीपपातप्रियदर्शना॥३०॥ तामिंद्रजित्स्त्रियंहत्वाहनुमंतमुवाचह॥ मयारामस्यपश्येमांप्रियांशस्त्रनिषूदिताम्॥ ३१॥ एषांविशस्तावैदेहीनिष्फलोवःपरिश्रमः॥ ३२॥ ततःखड्गेनमहताहत्वातामिंद्रजित्स्वयम्॥ हृष्टःसरथमास्थायननादचमहास्वनम्॥ ३३॥ वानराःशुश्रुवुःशब्दमदूरेप्रत्यवस्थिताः॥ व्यादितास्यस्यनदतस्तद्दुर्गंसंश्रितस्यतु॥ ३४॥ तथातुसीतांविनिहत्यदुर्मतिःप्रहृष्टचेताःसबभूवरावणिः॥ तंहृष्टरूपंसमुदीक्ष्यवानराविषण्णरूपाःसमभिप्रदुद्रुवुः॥ ३५॥ इत्यार्षेश्रीमद्रा० वा०आ० यु० एकाशीतितमःसर्गः॥ ८१॥ ॥ ७॥ श्रुत्वातंभीमनिर्ह्रादंशक्राशनिसमस्वनम्॥ वीक्षमाणादिशःसर्वादुद्रुवुर्वानराभृशम्॥ १॥ तानुवाचततःसर्वान्हनूमान्मारुतात्मजः॥ विषण्णवदनान्दीनांस्त्रस्तान्विद्रवतःपृथक्॥२॥

कठोर हर्षकी ध्वनि कररहाहै॥ ३४॥ दुर्मती रावणके पुत्र इन्द्रजीतने जब इस प्रकारसे उस मायाकी सीताका प्राण संहार किया तब वानरलोग उस हर्षित वीरको देखकर शोकाकुल हो चारों ओरको भागनें लगे॥ ३५॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० एकाशीतितमःसर्गः॥ ८१॥ देवराज इन्द्रजीके वज्रकी शब्दकी समान इन्द्रजीतका वह भयंकर सिंहनाद सुनकर वानरलोग चारों ओरको निहारते हुए भागनें लगे॥ १॥ परन्तु पवनकुमार हनुमानजी उनको भयकेमारे शोकाकुल वदन और दीनभावसे भागाहुआ देखकर सबहीसे अलग २ कहने लगे॥ २॥

फिर वह प्रत्यंचाको वारंवार टंकार देता, अपनी शिक्षा और अस्त्रोंको दिखाता हुआ अनेक भांतिके वाण छोडतेर संग्राम भूमिमें घूमनेंलगा ॥५॥
और सब दिशा विदिशाओंको उस महारथी खरनें बाणोंसे पूर दिया। रामचंद्रजीनें सब दिशाओंको बाणोंसे भरा देख बडा भारी
धनुष हाथमें लिया ॥ ६ ॥ व अग्निके अंगारोंकी समान सहन करनेके अयोग्य सायक समूहसे आकाशको पूर्ण कर दिया जैसे मेघमंडल वृष्टि
करतेहैं ॥ ७ ॥ आकाश खर और श्रीरामचंद्रजीके छुटे हुए बाणोंसे छाकर सब प्रकारसे अवकाशरहित होगया अर्थात् पृथ्वी आकाशके
बीच २ में सबही जगह बाणही बाण भरेथे ॥ ८ ॥ तब परस्पर एक दूसरेकी मार डालनेकी इच्छासे छोडे हुए बाणोंके जाल करके आकाशके

ज्यांविधुन्वन्सुबहुशःशिक्षयास्त्राणिदर्शयन् ॥ चचारसमरेमार्गाञ्छरैरथगतःखरः ॥ ५ ॥ ससर्वाश्चदिशोबाणैःप्रदिश
श्चमहारथः ॥ पूरयामासतंदृष्ट्वारामोपिसुमहद्धनुः ॥ ६ ॥ ससायकैर्दुर्विषहैर्विस्फुलिंगैरिवाग्निभिः ॥ नभश्चकारा
विवरंपर्जन्यइववृष्टिभिः ॥ ७ ॥ तद्बभूवशितैर्बाणैःखररामविसर्जितैः ॥ पर्याकाशमनाकाशंसर्वतःशरसंकुलम् ॥८॥
शरजालावृतःसूर्योनतदास्मप्रकाशते ॥ अन्योन्यवधसंरंभादुभयोःसंप्रयुज्यतोः ॥९ ॥ ततोनालीकनाराचैस्तीक्ष्णा
ग्रैश्चविकर्णिभिः ॥ आजघानरणेरामंतोत्रैरिवमहाद्विपम् ॥ १० ॥ तंरथस्थंधनुष्पाणिंराक्षसंपर्यवस्थितम् ॥ द
दृशुःसर्वभूतानिपाशहस्तमिवांतकम् ॥ ११ ॥ हंतारंसर्वसैन्यस्यपौरुषेपर्यवस्थितम् ॥ परिश्रांतंमहासत्वंमेनेरा
मंखरस्तदा ॥ १२ ॥ तंसिंहमिवविक्रांतंसिंहविक्रांतगामिनम् ॥ दृष्ट्वानोद्विजतेरामःसिंहःक्षुद्रमृगंयथा ॥ १३ ॥

छा जानेसे सूर्य भगवानभी छिप गये ॥ ९ ॥ इसके पीछे महावत महा गजके जिस प्रकार अंकुश मारताहै वैसेही खर तीखे नालीक नाराच
और विकीर्ण अस्त्र शस्त्रोंसे श्रीरामचंद्रजीको घायल करनें लगा ॥ १० ॥ उस समय सबही प्राणी रथमें बैठे धनुष धारी खरको पाश धारी यमरा
जकी समान देखने लगे ॥ ११ ॥ उस काल खरनें अपनी समस्त सेनाके विनाश करनेंवाले पुरुषार्थमें टिके हुए धीर्यवान् रामचंद्रजीको रण
करनेंसे थके समझा ॥ १२ ॥ और सिंहकी समान विक्रम दिखाता हुआ इधर उधर घूमनें लगा सिंह जिस प्रकार मृग छौनाको देखकर

हे वानरगण! तुम सब किस कारणसे रणका उत्साह छोडकर व्याकुल मुख किये भागे जातेहो? तुम्हारी यह शूरता कहांगई नामवाले शूर लोगोंको भागना उचित नहीं है इसलिये हम आगे २ चलते हैं और तुम सब हमारे पीछे २ चलो ॥ ३ ॥ बुद्धिमान् हनुमानजी करके इस प्रकार कहे जाकर वानरोंको क्रोध उत्पन्न हुआ और वह सबही उत्साहसहित शिला और वृक्षोंको ग्रहण करनेलगे ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त वह सब वानरश्रेष्ठ हनुमानजीको घेरे हुए गर्जते २ महा समरके सन्मुख चले ॥ ५ ॥ वानर वीर हनुमानजी वानरोंकी सैनासे घेरे जाकर चलतेहुए जिसप्रकार अग्नि अपनी शिखाओंके संगमें शोभायमान होतेहैं वैसेही शोभायमान होकर शत्रुओंकी सैनाको भस्म करनें लगे ॥ ६ ॥ कालान्तक यमराज

कस्माद्विषण्णवदनाविद्रवध्वंप्लवंगमाः ॥ त्यक्तयुद्धसमुत्साहाःशूरत्वंक्नुवोगतम् ॥ पृष्ठतोनव्रजध्वंमामग्रतोयांत माहवे ॥ ३ ॥ एवमुक्ताःसुसंक्रुद्धावायुपुत्रेणधीमता ॥ शैलशृंगान्द्रुमांश्चैवजगृहुर्हृष्टमानसाः ॥ ४ ॥ अभिपे तुश्चगर्जंतोराक्षसान्वानरर्षभाः ॥ परिवार्यहनूमंतमन्वयुश्चमहाहवे ॥ ५ ॥ सतैर्वानरमुख्यैस्तुहनूमान्सर्वतोवृतः ॥ हुताशनइवार्चिष्मानदहच्छत्रुवाहिनीम् ॥ ६ ॥ सराक्षसानांकदनंचकारसुमहाकपिः ॥ वृतोवानरसैन्येनकालां तकयमोपमः ॥ ७ ॥ सतुशोकेनचाविष्टःकोपेनमहताकपिः ॥ हनूमान्रावणिरथेमहतींपातयच्छिलाम् ॥ ८ ॥ तामापतंतींदृष्ट्वैवरथंसारथिनातदा ॥ विधेयाश्वसमायुक्तोविदूरमपवाहितः ॥ ९ ॥ तमिंद्रजितमप्राप्यरथस्थंसहसा रथिम् ॥ विवेशधरणीमित्वासाशिलाव्यर्थमुद्यता ॥ १० ॥ पतितायांशिलायांतुव्यथितारक्षसांचमूः ॥ निपतंत्याचशि लयाराक्षसामथिताभृशम् ॥ ११ ॥

की समान महाकपि हनुमानजीनें वानरसैनाकी सहायतासे बहुत सारे राक्षसोंको मार डाला ॥ ७ ॥ हनुमानजीनें शोक और क्रोधसें अधीर होकर एक बड़ीभारी शिलाग्रहण करकै रावणके पुत्र मेघनादके रथपर चलाई ॥ ८ ॥ परन्तु शिलाको रथके ऊपर आता हुआ देख सारथिनें संकेत [इशारा] ही किया कि सीखे सिखाये घोडे रथको दूरले जाय कर रक्षा करतेहुए ॥ ९ ॥ तब वह हनुमानजीकी चलाई हुई शिला सार थिके सहित रथपर बैठे हुए इन्द्रजीतको न पायकर विफल हो पृथ्वीमें घुसगई ॥ १० ॥ वह शिला इस प्रकारके वेगसे चलाई गईथी कि जिस

खरकी ध्वजा काटडाली ॥ २२ ॥ वह सुन्दर सुवर्णकी ध्वजा सहसा छिन्न होकर गिरनेंके कालमें ऐसी शोभा धारण करताहुई जैसे कभी देव ताओंके नियमसे सूर्यनारायण पृथ्वीमें आयकर शोभितहों ॥ २३ ॥ यह देखकर मर्म जाननेंवाले खरनें क्रोधितहो चार बाण छोडकर; जिस प्रकार लोग भालोंसे मतवाले हाथी को मारतेहैं, वैसेही श्रीरामचंद्रजीके हृदयको व और दूसरे मर्मस्थानोंको घायल किया ॥ २४ ॥ तिस समय वह महा धनुर्द्धारी श्रीरामचंद्रजी, खरके धन्वासे छूटे हुए बहुतसे बाणोंसे विंधे जाकर. और रुधिरमें भीग महा क्रोधित हुए ॥ २५ ॥ और दृढभावसे श्रेष्ठधनुधन्वा ग्रहण करके खरको भली भांति निशाना बनाय उसके ऊपर छेः बाण छोडे ॥२६॥ उनमेंसे एक बाणसे खरका मस्तक

सदर्शनीयोबहुधाविच्छिन्नःकांचनोध्वजः ॥ जगामधरणींसूर्योदेवतानामिवाज्ञया ॥ २३ ॥ तंचतुर्भिःखरः क्रुद्धोरामंगात्रेषुमार्गणैः ॥ विव्याधहृदिमर्मज्ञोमातंगमिवतोयदैः ॥ २४ ॥ सरामोबहुभिर्बाणैःखरकार्मुकनिः सृतैः ॥ विद्धोरुधिरसिक्तांगोबभूवरुषितोभृशम् ॥ २५ ॥ सधनुर्धन्विनांश्रेष्ठःसंगृह्यपरमाहवे ॥ मुमोचपरमे ष्वासःषट्शरानभिलक्षितान् ॥ २६ ॥ शिरस्येकेनबाणेनद्वाभ्यांबाह्वोरथापयत ॥ त्रिभिश्चंद्रार्धवक्रैश्चवक्षस्यभिजघा नह ॥ २७ ॥ ततःपश्चान्महातेजानाराचान्भास्करोपमान् ॥ जघानराक्षसंक्रुद्धस्त्रयोदशशिलाशितान् ॥ २८ ॥ रथ स्ययुगमेकेनचतुर्भिःशबलान्हयान् ॥ षष्ठेनचशिरःसंख्येचिच्छेदखरसारथेः ॥२९॥ त्रिभिस्त्रिवेणून्बलवान्द्वाभ्यामक्षं महाबलः ॥ द्वादशेनतुबाणेनखरस्यसकरंधनुः ॥ ३० ॥

वींधा दोबाणोंसे दोनों भुजाओंको घायल किया, और अर्द्धचंद्रतुल्य टेढे तीन बाणोंसे खरकी छातीमें प्रहार किया ॥ २७ ॥ उसके पीछे उन इन्द्र समान महाबलवान् तेजवान् श्रीरामचंद्रजीनें बडा क्रोध कर सूर्यकी समान, धार धराये हुए तेरहबाण ग्रहण करके उस खर निशाचरको निशाना बनाकर छोडे ॥ २८ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें एक बाणसे रथका युगकाय चार बाणोंसे चार चित्र विचित्र घोडे, और एक बाणसे उसके सारथिका मस्तक ॥ २९ ॥ तीन बाणोंसे रथके तीनों वांश; और दो बाणोंसे दोनों पहिये, और बारह बाणोंसे खरका बाण

समय वह गिरी असंख्य राक्षसोंकी सैना उससे व्यथित हुई व कुचलगई ॥ ११ ॥ तब उस समय सैंकड़ों हजारों बलशाली बड़े २ शरीर वाले वानरगण पर्वतोंके शिखर और वृक्षोंको उठाये ॥ १२ ॥ अति शीघ्रतासे यह भयंकरविक्रमकारी वानर इन्द्रजीतके सन्मुख दौडे और इन समस्त वानरोंने मेघनादके सैनापर शिलावृक्षादिकी वर्षा करदी ॥ १३ ॥ वानर लोगोंनें राक्षसोंके ऊपर वृक्ष और पर्वतोंकी वर्षा करके उनमेंसे बहुत सारोंका नाश करदिया और विविध भांतिसे सिंहनाद करनेंलगे भयंकर आकारवाले वानरगण घोर रूप वाले निशाचरोंको ॥ १४ ॥ अति वीर्यसे वृक्ष व शिलाके प्रहारसे चूर्ण करके पृथ्वीपर लुटानेलगे तब महावीर इन्द्रजीत वानरोंके हाथसे राक्षसोंको पीडित देखकर ॥ १५ ॥

तमभ्यधावन्शतशोनदंतःकाननौकसः ॥ तेद्रुमांश्चमहाकायागिरिशृंगाणिचोद्यताः ॥ १२ ॥ क्षिपंतींद्रजितंसंख्येवानराभीमविक्रमाः ॥ वृक्षशैलमहावर्षंविसृजंतःप्लवंगमाः ॥ १३ ॥ शत्रूणांकदनंचक्रुर्नेदुश्चविविधैःस्वनैः ॥ वानरैस्तैर्महाभीमैर्घोररूपानिशाचराः ॥ १४ ॥ वीर्यादभिहतावृक्षैर्व्यचेष्टंतरणक्षितौ ॥ ससैन्यमभिवीक्ष्याथवानरार्दितमिंद्रजित् ॥ १५ ॥ प्रगृहीतायुधःक्रुद्धःपरानभिमुखोययौ ॥ सशरौघानवसृजन्स्वसैन्येनाभिसंवृतः ॥ १६ ॥ जघानकपिशार्दूलान्सुबहून्दृढविक्रमः ॥ शूलैरशनिभिःखड्गैःपट्टिशैःशूलमुद्गरैः ॥ १७ ॥ तेचाप्यनुचरांस्तस्यवानराजघ्नुराहवे ॥ १८ ॥ सुस्कंधविटपैःशैलैःशिलाभिश्चमहाबलः ॥ हनूमान्कदनंचक्रेरक्षसांभीमकर्मणाम् ॥ १९ ॥ सन्निवार्यपरानीकमब्रवीत्तान्वनौकसः ॥ हनूमान्सन्निवर्तध्वंननःसाध्यमिदंबलम् ॥ २० ॥

क्रोध सहित हथियार उठाय शत्रुकी सैनामें प्रवेश करता हुआ उसने अपनी सैनाके बीचमें खड़े होकर बाणोंकी झडी लगादी ॥ १६ ॥ किजिस्सें बहुतसे दृढ विक्रमकारी वानरगण मृतक होगये जोकि शूल वज्र, खड्ग, पटा, कूट व मुद्गरादिकोंसे मारेगये ॥ १७ ॥ उस समयमें वानरगणोंने भी मेघनादकी बहुत सैना मार डाली ॥ १८ ॥ महाबलवान् हनुमानजी स्कन्ध और शाखायुक्त शाल वृक्ष और शिलाओंके प्रहारसे भयंकर कर्मकारी राक्षसोंको मारने लगे ॥१९॥ और अपने पराक्रमसे शत्रुओंकी सैनाको निवारित करते हुए अपनी सैनासे बोले कि हे वानरो! लौटच

कर्म करताहै वह निश्चयही उस पापके फलको पाताहै, जैसे अकालवृष्टिके साथ गिरेहुए पत्थरोंको लालचसे ब्राह्मणी (बामनी नामक कीडा) खाकर मर जातीहै ॥ ५ ॥ रेराक्षस! दंडकारण्यवासी धर्माचरण करनेंवाले महातेजवान तपस्वियोंको मारकर तुझको कैसा बुरा फल प्राप्तहोगा सो हमारी समझमें नहीं आता ॥ ६ ॥ अथवा जो क्रूरस्वभाववाले जन चिरकाल पापकर्म करके लोकोंकी निन्दा पानेंके पात्र हो जातेहैं, वह जन ऐश्वर्य पाकरभी जड गले हुए वृक्षकी समान बहुत दिनोंतक नहीं रहसकते अर्थात् गिर पडतेहैं ॥ ७ ॥ वृक्ष जिस प्रकार समय पाय कर फूलताहै, वैसेही समयके आजानें पर पाप कर्मका भयावना फल निश्चयही प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥ हे निशाचर!

वसतोदंडकारण्येतापसान्धर्मचारिणः ॥ किन्नुहत्वामहाभागान्फलंप्रास्यसिराक्षस ॥ ६ ॥ नचिरंपापकर्माणःक्रूरा लोकजुगुप्सिताः ॥ ऐश्वर्यंप्राप्यतिष्ठंतिशीर्णमूलाइवद्रुमाः॥७॥ अवश्यंलभतेकर्ताफलंपापस्यकर्मणः ॥ घोरंपर्या गतेकालेद्रुमःपुष्पमिवार्तवम् ॥ ८ ॥ नचिरात्प्राप्यतेलोकेपापानांकर्मणांफलम् ॥ सविषाणामिवान्नानांभुक्तानांक्षण दाचर ॥ ९ ॥ पापमाचरतांघोरंलोकस्याप्रियमिच्छताम् ॥ अहमासादितोराजाप्राणान्हंतुंनिशाचर ॥ १० ॥ अद्य भित्त्वामयामुक्ताःशराःकांचनभूषणाः ॥ विदार्यापिपतिष्यंतिवल्मीकमिवपन्नगाः ॥ ११ ॥ येत्वयादंडकारण्येभ क्षिताधर्मचारिणः ॥ तानद्यनिहतःसंख्येससैन्योनुगमिष्यसि ॥ १२ ॥ अद्यत्वांनिहतंबाणैःपश्यंतुपरमर्षयः ॥ नि रयस्थंविमानस्थायेत्वयानिहताःपुरा ॥ १३ ॥

जिस प्रकार जहर मिला हुआ अन्न खानेंसे शीघ्रही मृत्यु होतीहै, वैसेही पाप कर्म करनेंका फल थोडेही समयमें फलजाताहै ॥ ९ ॥ रेराक्षस! भयानक पाप कर्म करनेंवाले और लोकोंका बुरा चाहनेंवाले दुष्टोंको मारनेंकेही लिये ऋषिलोगोंनें हमें यहां पठायाहै ॥ १० ॥ सर्प जिस प्रकार बंमईको फोडकर पृथ्वी पर निकल आताहै, वैसेही इस समय हमारे शरासनसे छूटे हुए बाण तेरे शरीरको चीर फाडकर निकल आमेंगे ॥ ११ ॥ पहले तैनें जिस २ दंडकारण्यवासी धर्मचारी तपस्वीका भक्षण कियाहै सो तू आज हमसे युद्धमें मारे जाकर सेना सहित उनके पीछे २ जायगा ॥ १२ ॥ पहले जो समस्त तापस तुझ करके मारे गयेहैं, आज वह विमानमें बैठकर तुझको हमारे बाणसे मरा

लो अब इन राक्षसोंके साथ युद्ध करनेकी आवश्यकता नहींहै ॥ २० ॥ तुम सब श्रीरामचंद्रजीका प्रिय कार्य सिद्ध करनेंकी वासनासे प्राण
तक देनेको तैयार होकर पराक्रम प्रकाश करतेहो परन्तु जिनके लिये युद्ध किया जाताहै वह जानकीजीही मारडाली गईहैं ॥ २१ ॥
चलो रामचंद्रजी व सुग्रीवजीको यह समाचार सुनादें; वह जैसी आज्ञा दें वैसेही किया जायगा ॥ २२ ॥ वानरश्रेष्ठ हनुमानजी निर्भयहो यह
वचन कह समस्त वानरोंको निवारित कर धीरे २ सेनासहित संग्रामसे लौटतेहुए ॥ २३ ॥ हनुमानजीको श्रीरामचंद्रजीके निकट जाता
हुआ देखकर दुष्टात्मा राक्षस इन्द्रजीत होम करनेंके लिये प्रथम निकुंभिला देवालयके वृक्षोंके समीप गमन करके अग्निमें होम करताहु

त्यक्त्वाप्राणान्विचेष्टंतोरामप्रियचिकीर्षवः ॥ यन्निमित्तंहियुध्यामोहतासाजनकात्मजा ॥ २१ ॥ इममर्थंहिविज्ञा
प्यरामंसुग्रीवमेवच ॥ तौयत्प्रतिविधास्येतेतत्करिष्यामहेवयम् ॥ २२ ॥ इत्युक्त्वावानरश्रेष्ठोवारयन्सर्ववानरान् ॥
शनैःशनैरसंत्रस्तःसबलःसंन्यवर्तत ॥ २३ ॥ ततःप्रेक्ष्यहनूमंतंव्रजंतंयत्रराघवः ॥ सहोतुकामोदुष्टात्मागतश्चैत्यंनिकुं
भिलाम् ॥ २४ ॥ निकुंभिलामधिष्ठायपावकंजुहवेंद्रजित् ॥ यज्ञभूम्यांततोगत्वापावकस्तेनरक्षसा ॥ २५ ॥ हूयमानः
प्रजज्वालहोमशोणितभुक्तदा ॥ सार्चिःपिनद्धोददृशेहोमशोणिततर्पितः ॥ संध्यागतइवादित्यःसुतीव्रोग्निःसमुत्थि
तः ॥ २६ ॥ अथेंद्रजिद्राक्षसभूतयेतुजुहावहव्यंविधिनाविधानवित् ॥ दृष्ट्वाव्यतिष्ठंतचराक्षसास्तेमहासमूहेषुनयान
यज्ञाः ॥ २७ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकाण्डेद्व्यशीतितमःसर्गः ॥ ८२ ॥ ६ ॥

आ ॥ २४ ॥ इसके उपरान्त यज्ञभूमिमें गमन करकै अग्निमें होम आरंभ करनेंसे होममें रुधिरका पान करनेंवाली अग्नि प्रज्वलितहो
उठी ॥ २५ ॥ उस कालमें ज्वालासे युक्त और होम तथा रुधिरसे तृप्त कीहुई वह उठीहुई तीव्र अग्नि संध्यासमयके सूर्यकी समान ज्ञात होनें लगी॥२६॥
इस प्रकारसे राक्षसलोगोंकी उन्नतिके हेतुके विधानको जाननेंवाला इन्द्रजीत जब यथाविधिसे होम करनेंलगा तब संग्राम करनेमें कुशल निशाच
रगण स्थिरभावसे बैठेहुए इस यज्ञको देखनेंलगे ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥

तुम्हारा वरन त्रिलोकीके सबही प्राणियोंका संहार कर सकतेहैं ॥२२॥ हमको तुमसे औरभी कुछ कहनाथा, परन्तु उसको अब कुछ नहीं कहेंगे
क्योंकि सूर्य अस्त होनेंपर आगयेहैं सो विशेष देर लगानेसे युद्धमें विघ्न हो जायगा ॥ २३ ॥ तुमनें जो १४००० चौदह हजार राक्षस मार डालेहैं
सो अब तुझको मारकर उनकी स्त्री पुत्रादिकोंके आंसू पोंछेंगे ॥ २४ ॥ यह कहकर खरनें महाक्रोधितहो अतिश्रेष्ठ सुवर्णके बँद जिसमें बँधे ऐ
सी जो गदा उसके हाथमें थी वह देदीप्यमान इन्द्रके वज्रकी समान उसनें रामचंद्रजीके ऊपर चलाई ॥ २५ ॥ यह प्रज्वलित बडी गदा उसकी
भुजासे छूटकर अगल बगलके वृक्षलता दिकोंको जलातीहुई श्रीरामचंद्रजीके समीप आनें लगी ॥ २६ ॥ तब श्रीरामचंद्रजीने

कामंबह्वपिवक्तव्यंत्वयिवक्ष्यामिनत्वहम् ॥ अस्तंप्राप्नोतिसवितायुद्धविघ्नस्ततोभवेत् ॥ २३ ॥ चतुर्दशसहस्राणिराक्ष
सानांहतानिते ॥ त्वद्विनाशात्करोम्यद्यतेषामश्रुप्रमार्जनम् ॥ २४ ॥ इत्युक्त्वापरमक्रुद्धःसगदांपरमांगदाम् ॥ खर
श्चिक्षेपरामायप्रदीप्तामशनिंयथा ॥ २५ ॥ खरबाहुप्रमुक्तासाप्रदीप्तामहतीगदा ॥ भस्मवृक्षांश्चगुल्मांश्चकृत्वागा
त्तत्समीपतः ॥ २६ ॥ तामापतंतींमहतींमृत्युपाशोपमांगदाम् ॥ अंतरिक्षगतांरामश्चिच्छेदबहुधाशरैः ॥ २७ ॥ सा
विशीर्णाशरैर्भिन्नापपातधरणीतले ॥ गदामंत्रौषधिबलैर्व्यालीवविनिपातिता ॥ २८ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मी
कीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेएकोनत्रिंशःसर्गः ॥ २९ ॥ ७ ॥ ॥ भित्त्वातुतांगदांबाणैराघवोधर्मवत्सलः ॥ स्मय
मानइदंवाक्यंसंरब्धमिदमब्रवीत् ॥१॥ एतत्तेबलसर्वस्वंदर्शितंराक्षसाधम ॥ शक्तिहीनतरोमत्तोवृथात्वमुपगर्जसि ॥२॥

बाण जाल चलाकर साक्षात् मृत्युके फंदकी समान निकट आती हुई, उस बडी गदाके आकाशमें खंड २ कर डाले ॥ २७ ॥
अतीव हिंसा करनेंका स्वभाव जिसका हो ऐसी सांपिनि जिसप्रकार मंत्र और दवाईके प्रभावसे गिर जातीहै, वैसेही यह गदा श्रीरामचंद्रजीके
बाणोंसे टुकडे २ हो पृथ्वीमें गिरपडी ॥ २८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे एकोनत्रिंशःसर्गः ॥ २९ ॥
धर्मवत्सल श्रीरामचंद्रजी अपनें बाणोंसे उस गदाको काटकर मुसकाय क्रोधमें भरे खरसे कहनेंलगे ॥१॥ रे राक्षसाधम! बस तुमनें इतनाही

उसओर रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी वानर राक्षसोंका बड़ा भारी समरका शब्द सुनकर जाम्बवान्से कहनेंलगे ॥ १ ॥ हे सौम्य ! ऐसा जान पड़ताहै कि हनुमाननें अति दुष्कर कार्य कियाहै कारण कि अतिभारी भयंकर आयुध चलानेंका शब्द सुनाईदेताहै ॥ २ ॥ इस कारण हे ऋक्षराज ! इन युद्ध करतेहुए वानरश्रेष्ठकी सहायता करनेंके लिये तुम अतिशीघ्रतासे अपनी सैनाके साथ जाओ ॥ ३ ॥ ऋक्षराज जाम्बवानजी "बहुत अच्छा" कहकर जिस स्थानमें वानरश्रेष्ठ हनुमानजी विराजतेथे अपनी सैनाके सहित उसी पश्चिमद्वारको गये ॥ ४ ॥ वहां जायकर ऋक्षराज जाम्बवानजीनें देखाकि हनुमानजी लौटे हुये आयरहेहैं और उनके साथमें जो वानरोंकी सैनाहै; यु

राघवश्चापिविपुलंतंराक्षसवनौकसाम्॥श्रुत्वासंग्रामनिर्घोषंजांबवंतमुवाचह॥ १ ॥ सौम्यनूनंहनुमताकृतंकर्मसुदुष्कर
म्॥श्रूयतेचयथाभीमःसुमहानायुधस्वनः ॥२॥ तद्गच्छकुरुसाहाय्यंस्वबलेनाभिसंवृतः॥ क्षिप्रमृक्षपतेतस्यकपिश्रेष्ठ
स्ययुध्यतः ॥ ३ ॥ ऋक्षराजस्तथेत्युक्त्वास्वेनानीकेनसंवृतः ॥ आगच्छत्पश्चिमंद्वारंहनूमान्यत्रवानरः ॥ ४ ॥ अ
थायांतंहनूमंतंददर्शर्क्षपतिस्तदा ॥ वानरैःकृतसंग्रामैःश्वसद्भिरभिसंवृतम् ॥ ५ ॥ दृष्ट्वापथिहनूमांश्चतदृक्षबलमुद्य
तम्॥नीलमेघनिभंभीमंसन्निवार्यन्यवर्तत॥ ६ ॥ सतेनसहसैन्येनसन्निकर्षमहायशाः॥ शीघ्रमागम्यरामायदुःखितो
वाक्यमब्रवीत् ॥ ७ ॥ समरेयुध्यमानानामस्माकंप्रेक्षतांचसः ॥ जघानरुदतींसीतामिंद्रजिद्रावणात्मजः ॥ ८ ॥
उद्भ्रांतचित्तस्तांदृष्ट्वाविषण्णोहमरिंदम ॥ तदहंभवतोवृत्तंविज्ञापयितुमागतः ॥ ९ ॥

द्ध कर थकित शरीरसे हो वारंवार लंबे २ श्वास लेरहीहै ॥ ५ ॥ हनुमानजीनें मार्गमें उस नीले वादलकी समान समर करनेंके लिये तैयार भयंकर रीछोंकी सैनाको देखकर उन सबको लौटाये ॥ ६ ॥ महायशवान् हनुमानजी ऋक्ष और वानरोंकी सब सैनाके साथ दुःखित मनसे श्रीरामचंद्रजीके निकट पहुचे और उनसे यह कहा ॥ ७ ॥ "हम सबनें संग्रामभूमिमें युद्ध करते २ देखा कि रावणक पुत्र इन्द्रजीतनें हम लोगोंके सामनेंही रोतीहुई जानकीजीको मारडाला ॥ ८ ॥ हे शत्रुओंका नाश करनेंवाले! उनकी ऐसी अवस्था देख हमारा चित्त उद्भ्रा

यें होजायँगी ॥ ११ ॥ रे निर्लज्ज! क्षुद्रात्मा! ब्राह्मणकंटक! मुनिगण तुमसे शंका करके अग्निमें आहुति दिया करतेहैं सो आजसे वह भय जाता रहेगा ॥१२॥ जब रघुकुमार श्रीरामचंद्रजीने महा क्रोधके वशहोकर इस प्रकार कहा तब निशाचर खर क्रोधयुक्तहो फिर बड़े ऊंचे स्वरसे रामचंद्रजीको दुर्वादिक कहताहुआ बोला ॥१३॥कि तुम निश्चयही गर्वितहो और भयहोनेपरभी भय नहीं करते इसीकारण मृत्युके वश होकर क्या कहनें लायक क्या न कहने लायकहै, उसको नहीं समझ सकते॥१४॥जो पुरुष कि कालको फांसोमें बंध जातेहैं, उनकी अन्तःकरणादि छेःइन्द्रियोंकी वृत्ति विषय जाती रहनेंके कारण उनको कार्याकार्यका ज्ञान नहीं रहता॥१५॥निशाचर खरनें श्रीरामचंद्रजीसे इस प्रकार कहकर भ्रुकुटी टेढीकर निकटही

नृशंसशीलक्षुद्रात्मन्नित्यंब्राह्मणकंटक ॥ त्वत्कृतेशंकितैरग्नौमुनिभिःपात्यतेहविः ॥ १२ ॥ तमेवमभिसंरब्धंब्रुवाणंराघवंवने ॥ खरोनिर्भर्त्सयामासरोषात्खरतरस्वरः ॥ १३ ॥ दृढंखल्ववलिप्तोसिभयेष्वपिचनिर्भयः ॥ वाच्यावाच्यंततोहित्वंमृत्योर्वश्योनबुध्यसे ॥ १४ ॥ कालपाशपरिक्षिप्ताभवंतिपुरुषाहिये ॥ कार्याकार्यंनजानंतितेनिरस्तषडिंद्रियाः ॥ १५ ॥ एवमुक्त्वाततोरामंसंरुध्यभ्रुकुटींततः ॥ सददर्शमहासालमविदूरेनिशाचरः ॥ १६ ॥ रणेप्रहरणस्यार्थेसर्वतोह्यवलोकयन्॥सतमुत्पाटयामाससंदष्टदशनच्छदम् ॥ १७ ॥ तंसमुत्क्षिप्यबाहुभ्यांविनर्दित्वामहाबलः॥राममुद्दिश्यचिक्षेपहतस्त्वमितिचाब्रवीत् ॥१८॥ तमापतंतंबाणौघैश्छित्त्वारामःप्रतापवान्॥रोषमाहारयत्तीव्रंनिहंतुंसमरेखरम्॥१९॥जातस्वेदस्ततोरामोरोषरक्तांतलोचनः॥निर्बिभेदसहस्रेणबाणानांसमरेखरम्॥२०॥

बहुत बडा एक शालका वृक्ष देखा ॥ १६ ॥ उस बड़े भारीशालके पेड़को देखकर युद्धमें उसकोही अपना अस्त्ररूप बनानेंके लिये खरनें किचकिचाकर उसको उखाड लिया ॥ १७ ॥ और घोर गंभीर शब्द करके दोनों भुजाओंसे इस वृक्षको उठा "लो तुम मारे गये" यह कहकर वह वृक्ष श्रीरामचंद्रजीके ऊपर चलाया ॥ १८ ॥ प्रतापवान् श्रीरामचंद्रजीनें अपनें ऊपर आतेहुए इस शालके वृक्षको अनेक बाणोंसे काट डालकर युद्धमें खरको मारडालनेंके लिये महाकोप किया ॥ १९ ॥ महाक्रोध करनेंके कारण श्रीरामचंद्रजीके नयन लाल २ हो आये, शरीरसे पसीना

मान असत्कल्प अप्रत्यक्षरूप धर्म स्वयं अचेतनहै, इस कारण वह स्वकर्त्तव्य शत्रुप्रतिकारादि कार्यको कुछभी नहीं जानताहै ॥ २४ ॥ हे साधुश्रेष्ठ! यथार्थ विचार करनेपर यदि कुछ धर्म होता तौ आपको किसी प्रकारके दुःख भोग करनेंकी संभावना नहीं होती, फिर जब कि आप ऐसा दुःख भोग कर रहेहैं, तब हमको यह नहीं जान पड़ता कि धर्म कुछ है ॥ २५ ॥ हमारे विचारसे धर्म एक क्षुद्र पदार्थहै; उस्से कार्य साधन नहीं होता, न उसमें कोई शक्ति है, हां वह केवल कार्य करनेंके समय बलकी सहायता किया करताहै; वह सुखका साधन करनेवाला नहीं हमारी सम्मतिमें उस दुर्बल मर्यादाहीन धर्मकी उपासना करना उचित नहीं है ॥२६॥ यदि धर्म केवल बलका सहायकही हुआ तब फिर उसकी पूजा करनें का क्या प्रयोजन! आप जो धर्मकी पूजा करतेहैं उस धर्मकी पूजा छोड़ जैसे आप धर्मकी पूजा करतेहैं वैसेही यत्नसहित पौरुषका आश्रय लीजिये॥२७॥

यदिसत्स्यात्सतांमुख्यनासत्स्यात्तवकिंचन ॥ त्वयायदीदृशंप्राप्तंतस्मात्तन्नोपपद्यते ॥ २५ ॥ अथवादुर्बलःक्लीबोबलं धर्मोनुवर्तते ॥ दुर्बलोहृतमर्यादोनसेव्यइतिमेमतिः ॥ २६ ॥ बलस्ययदिचेद्धर्मोगुणभूतःपराक्रमैः ॥ धर्ममुत्सृज्यवर्त स्वयथाधर्मेतथाबले ॥ २७ ॥ अथचेत्सत्यवचनंधर्मःकिलपरंतप ॥ अनृतंत्वय्यकरुणेकिंनबद्धस्त्वयाविना ॥ २८ ॥ यदिधर्मोभवेद्भूतअधर्मोवापरंतप ॥ नस्महत्वामुनिंवज्रीकुर्यादिज्यांशतक्रतुः ॥ २९ ॥ अधर्मसंश्रितोधर्मोवि नाशयतिराघव ॥ सर्वमेतद्यथाकामंकाकुत्स्थकुरुतेनरः ॥ ३० ॥ ममचेदंमतंतातधर्मोयमितिराघव ॥ धर्ममूलंत्वया छिन्नंराज्यमुत्सृजतातदा ॥ ३१ ॥

हेशत्रुओंके तपानेवाले! यदि सत्य वचनहीं आपके विचारमें धर्म माना गयाहो तौ जब पिता दशरथजीनें आपको युवराज देना चाहाथा, तब प्रथम आपनें उस वचनको अंगीकार किया और फिर आपनें उस वचनको नहीं पाला; तब उसके लिये आपको अधर्म क्यों नहीं हुआ! ॥ २८ ॥ हेशत्रुदमनकारी! यदि धर्म अथवा अधर्म इन दोनोंके बीचमें कोई बड़ा होता तौ, इन्द्रजी विश्वरूप मुनिका वधरूप अधर्म और तिसके पीछे यज्ञरूप धर्म इन दोनोंको न करते ॥ २९ ॥ हेश्रीरामचंद्रजी! पौरुषका आश्रय कियाहुआ धर्मही शत्रुके विनाशादिमें समर्थहै इसी कारणसे लोग दोनोंका अनुष्ठान किया करतेहैं ॥ ३० ॥ हेरघुनंदन देश, काल, और पात्रके अनुसार कार्य करनाही परम धर्म ज्ञात होताहै;

होकर गिरेथे खरभी वैसेही श्रीरामचंद्रजीके बाणसे नाशहोकर पृथ्वीमें गिरा ॥ २८ ॥ इससमय देवतागण चारणोंके सहित महाहर्ष और विस्मय युक्तहोकर नगाडे बजातेहुए श्रीरामचंद्रजीके ऊपर चारों ओरसे फूलों की वर्षा करनें लगे ❀ ॥ २९ ॥ और सब देवता चारण गण फूल वरसाकर बडे विस्मित हुए कि डेढही मुहूर्तमें तीखे बाणोसें श्रीरामचंद्रजीनें ॥ ३० ॥ इस महायुद्धमें खर दूषण इत्यादि मुख्य राक्षसोंके सहित कामरूपी चौदह हजार राक्षसोंको मार डाला ॥ ३१ ॥ साक्षात् विष्णुजीकी समान सर्वदर्शी श्रीरामचंद्रजीका क्याही बडा आश्चर्यका कार्यहै अहो! क्या अद्भुत वीर्यहै! और क्या विस्मय उपजानेंवाली दृढता हमनें इनमें देखी! ॥ ३२ ॥ यह बात कहते २ एकत्र हुए सब देवता लोग

एतस्मिन्नंतरेदेवाश्चारणैःसहसंगताः ॥ दुंदुभींश्चाभिनिघ्नंतःपुष्पवर्षंसमंततः ॥ २९ ॥ रामस्योपरिसंहृष्टाववर्षुर्विस्मितास्तदा ॥ अर्धाधिकमुहूर्तेनरामेणनिशितैःशरैः ॥ ३० ॥ चतुर्दशसहस्राणिरक्षसांकामरूपिणाम् ॥ खरदूषणमुख्यानांनिहतानिमहामृधे ॥ ३१ ॥ अहोबतमहत्कर्मरामस्यविदितात्मनः ॥ अहोवीर्यमहोदार्ढ्यंविष्णोरिवहिदृश्यते ॥३२॥ इत्येवमुक्त्वातेसर्वेययुर्देवायथागतम् ॥ ततोराजर्षयःसर्वेसंगताःपरमर्षयः ॥ ३३ ॥ सभाज्यमुदितारामंसागस्त्याइदमब्रुवन् ॥ एतदर्थंमहातेजामहेंद्रःपाकशासनः॥३४॥ शरभंगाश्रमंपुण्यमाजगामपुरंदरः ॥ आनीतस्त्वमिमंदेशमुपायेनमहर्षिभिः॥३५॥एषांवधार्थंशत्रूणांरक्षसांपापकर्मणाम् ॥ तदिदंनःकृतंकार्यंत्वयादशरथात्मज॥३६॥

अपनें २ स्थानको चलेगये । तिसके पीछे राजर्षि व महर्षिगण एकत्र होकर आये ॥३३॥ अगस्त्यजीके सहित श्रीरामचंद्रजीकी बडाई कर मुदित होकर सब ऋषिश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीसे बोले, कि इसी कारणसे महातेजवान् इन्द्रजी ॥ ३४ ॥ शरभंगजीके पुण्य आश्रममें आपके निकट आयेथे । इसी कारणसे महर्षि गण बडे उपायसे आपको यहां पर लायेहैं ॥ ३५ ॥ वस एक यही कार्य था कि केवल इन पाप कर्म करनेंवाले राक्षसोंको मरवानाथा क्योंकि यह सब हमारे शत्रुथे, सो हे दशरथकुमार! आपनें यह हमारा कार्य सिद्ध किया ॥ ३६ ॥

❀ राम २ कह तन तजहिं, पावहिं पद निर्वान । कर उपाय रिपु मोर, छिनमें कृपानिधान ॥

इसप्रकार महासंग्राममें समस्त भयंकर बलवान राक्षसोंको श्रीरामचंद्रजीसे माराहुआ देखकर खर बडे भारी रथपर सवार होकर वज्र उठाये हुए इन्द्रकी समान रामचंद्रजीके मारनेंको चला॥३८॥ इ०श्री०वा०आ०आर०षड्विंशःसर्गः॥२६॥ इसके पीछे खर जब श्रीरामचन्द्रजीके सन्मुख धाया, तब सेनापति त्रिशिरा राक्षस उसके समीप आकर कहनेंलगा॥१॥ मैं विक्रमवानहूं आप यह साहस त्यागकरके मुझको रामचंद्रको मार डालनेंके लिये नियत करके समरमें महाबाहु रामचंद्रको मुझकरके माराहुआही देखिये ॥ २ ॥ मैं आपके समीप हथियार छूकर सत्यही प्रतिज्ञा करताहूं कि समस्त राक्षसोंके मारनें योग्य रामचंद्रको मैं निश्चयही मार डालूंगा ॥ ३ ॥ या तो संग्राममें मैंही मरूंगा, अथवा उस रामकोही मार

ततस्तुतद्भीमबलंमहाहवेसमीक्ष्यधर्मेणहतंवलीयसा ॥ रथेनरामंमहताखरस्ततःसमाससादेंद्रइवोद्यताशनिः॥३८॥
इ० श्री० वा० आ० अ० षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ खरंतुरामाभिमुखंप्रयांतंवाहिनीपतिः ॥ राक्षस
त्रिशिरानामसन्निपत्येदमब्रवीत् ॥ १ ॥ मांनियोजयविक्रांतंत्वंनिवर्तस्वसाहसात् ॥ पश्यरामंमहाबाहुंसंयुगेविनि
पातितम् ॥ २ ॥ प्रतिजानामितेसत्यमायुधंचाहमालभे ॥ यथारामंवधिष्यामिवधार्हंसर्वरक्षसाम् ॥ ३ ॥ अहंवास्य
रणेमृत्युरेषवासमरेमम ॥ विनिवर्त्यरणोत्साहंमुहूर्तंप्राश्निकोभव ॥ ४ ॥ प्रहृष्टोवाहतेरामेजनस्थानंप्रयास्यसि ॥
मयिवानिहतेरामंसंयुगायप्रयास्यसि ॥ ५ ॥ खरस्त्रिशिरसातेनमृत्युलोभात्प्रसादितः ॥ गच्छयुध्येत्यनुज्ञातोराघ
वाभिमुखोययौ ॥ ६ ॥ त्रिशिरास्तुरथेनैववाजियुक्तेनभास्वता ॥ अभ्यद्रवद्रणेरामंत्रिशृंगइवपर्वतः ॥ ७॥ शरधारा
समूहान्समहामेघइवोत्सृजन् ॥ व्यसृजत्सदृशंनादंजलार्द्रस्येवदुंदुभेः ॥ ८ ॥

डालूंगा आप क्षणके लियें रणके उत्साहको छोडकर दोनों ओरका युद्ध देखते रहिये ॥ ४ ॥ राम मारा जायगा तो आप आनन्दित चित्तसे जन स्थानको चले जाइये और जो मेरा संहार होवे तो आप स्वयंही युद्ध करनेंके लिये रामचंद्रके सन्मुख होना ॥ ५ ॥ त्रिशिरा इस प्रकार खरको प्रसन्न करके युद्ध करनेंके लिये उसकी आज्ञा लेकर श्रीरामचंद्रजीके सामनें दौडा ॥ ६ ॥ तीन शृंगवाले पर्वतकी समान वह तीन शिर वाला राक्षस देदीप्यमान घोडे जुते हुए रथमें सवार होकर श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख धाया ॥ ७ ॥ और महा मेघ जिस प्रकार जलधारा वर्षाता हुआ

डाला इसमें रामचंद्रजीकी अनंतशक्ति ईश्वरता सूचन करीहै ॥ २० ॥ अकम्पनकी यह भयानक वार्त्ता सुनकर रावणनें कहाकि हम राम लक्ष्मणको मारनेके कारण अभी जनस्थानको जांयगे ॥ २१ ॥ जब रावणनें इस प्रकार कहा तब अकंपन कहनें लगा कि हे राजन्! राममें जिस प्रकारका बल और पौरुष और चरित्रहै उसको श्रवण करो॥२२॥ कि जब महायशवान श्रीरामचंद्रजी क्रोध करें तो उनको निवारण करनेंकी ब्रह्मादि देवताओंकोभी साध्य नहींहै। वह जलसे पूर्ण नदीका वेगभी अपनें बाणोंसे रोक सकतेहैं ॥ २३ ॥ आकाशमंडलसे ग्रह नक्षत्र और सर्व तारागणोंको रामचंद्रजी गिरा सकतेहैं और वह विपदमें पडी हुई पृथ्वीकोभी उवार सकतेहैं ॥ २४ ॥ समुद्रकी वेला भूमिको तोड

अकंपनवचःश्रुत्वारावणोवाक्यमब्रवीत् ॥ गमिष्यामिजनस्थानंरामंहंतुंसलक्ष्मणम् ॥ २१ ॥ अथैवमुक्तेवचनेप्रोवाचेदमकंपनः ॥ शृणुराजन्यथावृत्तंरामस्यबलपौरुषम् ॥ २२ ॥ असाध्यःकुपितोरामोविक्रमेणमहायशाः ॥ आपगायास्तुपूर्णायावेगंपरिहरेच्छरैः ॥ २३ ॥ सताराग्रहनक्षत्रंनभश्चाप्यवसादयेत् ॥ असौरामस्तुसीदंतींश्रीमानभ्युद्धरेन्महीम् ॥ २४ ॥ भित्त्वावेलांसमुद्रस्यलोकानाप्लावयेद्विभुः ॥ वेगंवापिसमुद्रस्यवायुंवाविधमेच्छरैः ॥ २५ ॥ संहृत्यवापुनर्लोकान्विक्रमेणमहायशाः ॥ शक्तःश्रेष्ठःसपुरुषःस्रष्टुंपुनरपिप्रजाः ॥ २६ ॥ नहिरामोदशग्रीवशक्योजेतुंरणेत्वया रक्षसांवापिलोकेनस्वर्गःपापजनैरिव ॥ २७ ॥ नतंवध्यमहंमन्येसर्वैर्देवासुरैरपि ॥ अयंतस्यवधोपायस्तन्ममैकमनाः शृणु ॥ २८ ॥ भार्यातस्योत्तमालोकेसीतानामसुमध्यमा ॥ श्यामासमविभक्तांगीस्त्रीरत्नंरत्नभूषिता ॥ २९ ॥

ताडकर रामचंद्र सब लोकोंको जलमें डुबो सकतेहैं वह अपने बाणोंसे सागरका अथवा पवनका वेगभी रोक सकतेहैं ॥ २५ ॥ और वह महायशवान् श्रीरामचंद्रजी श्रेष्ठ पुरुष अपने २ विक्रमसे समस्त लोकोंका संहार करके फिर नई प्रजाको उत्पन्न कर सकतेहैं ॥ २६ ॥ हे दशानन! पापात्मा लोग जिस प्रकार स्वर्गके जीतनेंकी सामर्थ्य नहीं रखते सो आप या आपके राक्षस लोग कोईभी युद्धमें श्रीरामचंद्रजीके जीतनेको समर्थ नहींहैं ॥ २७ ॥ मैं तो यह जानताहूं कि देवासुर सब एकत्र होकरभी उनको नहीं वध कर सकते तौभी उनके मारनेंका एक उपायहै सो चित्त देकर सुनिये ॥ २८ ॥ सीता नामक उनकी स्त्री एक लोकके मध्यमें सर्व श्रेष्ठ श्यामा अवस्थावालीहै वह स्त्रियोंमें रत्नकी नाईहै वह रत्नोंसे

बाण उसके हृदयमें मारे जिनके लगनेंसे वह फिर हथियार ग्रहण करनेंको समर्थ नहीं हुआ ॥ १७ ॥ फिर अप्रमेयात्मा श्रीरामचंद्रजीनें क्रोधमें भरकर वेगवान् तीन बाणोंकी सहायतासे उसके तीनों शिर काट डाले, तिसके पीछे धुवेंके समान रुधिर गिरता श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे पीडित त्रिशिरा॥१८॥समरमें गिरा, जिसके शिर पहलेही गिर गयेथे। त्रिशिराके मारे जानेंके बाद शेष राक्षस भागकर खरकी शरणमें गये॥ १९॥ और वहांभी खडे न होकर सिंह करके भय पाये हुए मृग यूथकी समान भागेही चले गये तिनको भागे हुए देख खरनें रोषमें भर शीघ्रतासे श्रीरामचंद्रजीकी ओर दौडा जैसे राहु चंद्रमाकी ओर दौडताहै ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ०आरण्यकांडे सप्तविंशः सर्गः॥२७॥

शिरांस्यपातयत्त्रीणिवेगवद्भिस्त्रिभिःशरैः ॥ सधूमशोणितोद्गारीरामबाणाभिपीडितः ॥ १८ ॥ न्यपतत्पातितैःपूर्वंसमरस्थोनिशाचरः ॥ हतशेषास्ततोभग्नाराक्षसाःखरसंश्रयाः ॥ १९ ॥ द्रवंतिस्मनतिष्ठंतिव्याधत्रस्तामृगाइव ॥ तान्खरोद्रवतोदृष्ट्वानिवर्त्यरुषितस्त्वरन् ॥ राममेवाभिदुद्रावराहुश्चंद्रमसंयथा ॥ २० ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीये आदिकाव्येआरण्यकांडेसप्तविंशःसर्गः ॥ २७ ॥ निहतंदूषणंदृष्ट्वारणेत्रिशिरसासह ॥ खरस्याप्यभवत्त्रासोदृष्ट्वारामस्यविक्रमम् ॥ १ ॥ सदृष्ट्वाराक्षसंसैन्यमविषह्यंमहाबलम् ॥ हतमेकेनरामेणदूषणास्त्रिशिराअपि ॥ २ ॥ तद्बलंहतभूयिष्ठंविमनाःप्रेक्ष्यराक्षसः ॥ आससादखरोरामंनमुचिर्वासवंयथा ॥ ३ ॥ विकृष्यबलवच्चापंनाराचान्रक्तभोजनान् ॥ खरश्चिक्षेपरामायक्रुद्धानाशीविषानिव ॥ ४ ॥

दूषण और त्रिशिरा राक्षसको मरा हुआ देख और संग्राममें श्रीरामचंद्रजीकी शूरता निहार खरके मनमेंभी भयका संचार हुआ ॥ १ ॥ खर विचार करनें लगा कि दूषण और त्रिशिराको, सहनेंके अयोग्य पराक्रम वान महाबलवान् राक्षसी सेनाके सहित अकेले रामचंद्रनें संग्राममें मार डाला ॥ २ ॥ ऐसा विचार करता हुआ वह राक्षस खर उदास होकर श्रीरामचंद्रजीके ऊपर दौडा, जैसे नमुचि दैत्य इन्द्रके ऊपर धाया था ॥ ३ ॥ और बडे जोरसे धनुष खैंचकर श्रीरामचंद्रजीके ऊपर, सर्पके विषकी समान रुधिर पान करनेंवाले बाण छोडे ॥ ४ ॥

त्रिशिराको मारा हुआ देखकर शूर्पणखा मेघकी समान गंभीर शब्दसे गर्जनें लगी ॥ २ ॥ औरके करनेंके अयोग्य श्रीरामचंद्रजीका किया हुआ कर्म देखकर अति उकसाके रावणपालिता लंका नगरीको शूर्पणखा गई ॥ ३ ॥ वहां जाकर देखा कि महातेजवान् रावण विमान पर बैठाहै, देवतागण जिस प्रकार इन्द्रके निकट बैठे रहतेहैं। मंत्रीगण वैसेही रावणके घोरे बैठेहैं ॥ ४ ॥ सूर्यकी समान प्रकाशित हुए सुवर्णमय श्रेष्ठ आसनपर बैठनेसे, सुवर्णमय वेदिमध्यगत प्रज्वलित अग्निकी समान उसकी शोभा होरहीहै ॥ ५ ॥ देवता, गन्धर्व, भूत व महात्मा व ऋषि लोगोंके जीतनें अयोग्य अति भयंकर मुँह वाये मानों दूसरा यमराजही बैठाथा ॥ ६ ॥ फिर देवताओं व राक्षसोंके मणियुक्त वज्र कक्ष घाव

साद्दृष्ट्वाकर्मरामस्यकृतमन्यैःसुदुष्करम् ॥ जगामपरमोद्विग्नालंकांरावणपालिताम् ॥ ३ ॥ साददर्शविमानाग्रेरावणं दीप्ततेजसम् ॥ उपोपविष्टंसचिवैर्मरुद्भिरिववासवम् ॥ ४ ॥ आसीनंसूर्यसंकाशेकांचनेपरमासने ॥ रुक्मवेदिगतं प्राज्यंज्वलंतमिवपावकम् ॥ ५ ॥ देवगंधर्वभूतानामृषीणांचमहात्मनाम् ॥ अजेयंसमरेघोरंव्यात्ताननमिवांतकम् ॥ ६ ॥ देवासुरविमर्देषुवज्राशनिकृतव्रणम् ॥ ऐरावतविषाणाग्रैरुत्कृष्टकिणवक्षसम् ॥ ७ ॥ विंशद्भुजंदशग्रीवंदर्शनीयपरिच्छदम् ॥ विशालवक्षसंवीरंराजलक्षणलक्षितम् ॥ ८ ॥ नद्धवैदूर्यसंकाशंतप्तकांचनभूषणम् ॥ सुभुजंशुक्लदशनंमहास्यंपर्वतोपमम् ॥ ९ ॥ विष्णुचक्रनिपातैश्चशतशोदेवसंयुगे ॥ अन्यैःशस्त्रैःप्रहारैश्चमहायुद्धेषुताडितम् १० ॥

सहित, और ऐरावताचल हाथीके दातोंसे बडाभारी चिह्न छातीमें विद्यमान ॥ ७ ॥ उसकी वीस भुजा व दशशिर, पोशाक बडी सुहावन मनभावन, चौडी छाती, और शरीर राजलक्षण युक्त ॥ ८ ॥ वह जो वैदूर्य मणि पहर रहाहै, उसकी देहकी कान्तिभी वैदूर्यमणिके सदृश कानोंके कुंडल तपाये हुए सुवर्णके बने, वीसों भुजा परमसुन्दर, दाँतोंकी कतारअति सुन्दर, वदन मंडल अतीव महान्, आकार पर्वतकी समान ॥ ९ ॥ देवताओंके सहित सैकडों संग्रामोंमें विष्णुचक्रके लगनेंसे व और २अनेक महासंग्रामोंमें अस्त्रोंके प्रहारसे बहुत भांति ताडित हुआ ॥ १० ॥

नहीं डरता वैसेही श्रीरामचंद्रजी खरको देख कुछभी नहीं घबडाये॥१३॥अनन्तर खर सूर्यसमान द्युतिशाली महारथ पर चढकर श्रीरामचंद्रजीके निकट पहुंचा जिस प्रकार आगके धोरे पतंग पहुंचतेहैं ॥ १४ ॥ तिसके पीछे महात्मा श्रीरामचंद्रजीको खरने अपने हाथोंकी फुरती दिखाई और रामचंद्रजीका बाण चढाहुआ मुट्ठीके धोरेसे काट डाला ॥ १५ ॥ फिर क्रोधमे भरकर इन्द्रके वज्रकी तुल्य प्रतापशाली तीखे सात बाण ग्रहण करके श्रीरामचंद्रजीके मर्म स्थानमें मारे॥१६॥और फिर सैकडों हजारों बाणोंसे श्रीरामचंद्रजीको पीडितकर समरमें अपना उपमा रहित तेज दिखाताहुआ महाशब्दसे गर्जनेलगा॥१७॥उससमय श्रीरामचंद्रजीका सूर्यकी समान प्रकाशमान कवच, सुन्दर तेज धार वाले बाणोंके समू

ततःसूर्यनिकाशेनरथेनमहताखरः ॥ आससादाथतंरामंपतंगइवपावकम् ॥ १४ ॥ ततोस्यसशरंचापंमुष्टिदेशेमहात्मनः ॥ खरश्चिच्छेदरामस्यदर्शयन्हस्तलाघवम् ॥ १५ ॥ सपुनस्त्वपरान्सप्तशरानादायमर्मणि ॥ निजघानरणेक्रुद्धःशक्राशनिसमप्रभान् ॥ १६ ॥ ततःशरसहस्रेणराममप्रतिमौजसम् ॥ अर्दयित्वामहानादंननादसमरेखरः ॥ १७ ॥ ततस्तत्प्रहतंबाणैःखरमुक्तैःसुपर्वभिः ॥ पपातकवचंभूमौरामस्यादित्यवर्चसम् ॥ १८ ॥ सशरैरर्पितःक्रुद्धःसर्वगात्रेषुराघवः ॥ रराजसमरेरामोविधूमोग्निरिवज्वलन् ॥ १९ ॥ ततोगंभीरनिर्ह्रादंरामःशत्रुनिबर्हणः ॥ चकारांतायसरिपोःसज्जमन्यन्महद्धनुः ॥ २० ॥ सुमहद्वैष्णवंयत्तदतिसृष्टंमहर्षिणा ॥ वरंतद्धनुरुद्यम्यखरंसमभिधावतः ॥ २१ ॥ ततःकनकपुंखैस्तुशरैःसन्नतपर्वभिः ॥ चिच्छेदरामःसंक्रुद्धःखरस्यसमरेध्वजम् ॥ २२ ॥

हसे छिन्न भिन्न होकर पृथ्वीमें गिरपडा ॥ १८ ॥ उस समय रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीका सब शरीर बाणोंसे विंधगया, तब श्रीरामचंद्रजी क्रोधित होकर प्रज्वलित धूमरहित अग्निकी शोभा धारण करतेहुए ॥ १९ ॥ उसके पीछे उन शत्रुओंका नाशकरनेंवाले श्रीरामचंद्रजीनें शत्रुओंका संहार करनेके लिये और एकगंभीर शब्द करनेंवाले धनुषपर रोदा चढाते हुए ॥ २० ॥ श्रीरामचंद्रजी महर्षि अगस्त्यजीका दियाहुआ वह बृहत् वैष्णव धनुष उठाकर खरके ऊपर क्रोधित होकर धाये ॥ २१ ॥ तदनन्तर सुवर्णके पंखलगे तीखे बड़े भारी बाणोंसे समरमें श्रीरामचंद्रजीनें

कर जिसकी स्तुति करनेंलगेथे ॥ १९ ॥ यह महाबलवान् रावण होमशालामें गमन करके पवित्र सोमको नष्टकरदेता और दक्षिणा देनें
के समय यज्ञको ध्वंसकरदेता सर्वदा ब्राह्मणहननादिक क्रूरकार्योंको क्रियाकरता ॥ २० ॥ सदा प्रजागणोंका अहित आचरण करता कर्कशथा
अनेक प्रकारकी पीडा देकर सब लोकोंका भय उपजानेंवाला होनेंकेकारण लोक उसको रावण कहा करतेथे ॥ २१ ॥ राक्षसी शूर्पणखानें
अपनें क्रूर महाबली भ्राताको देखा । वह रावण दिव्यवस्त्र, दिव्य गहनें,और माला पहर रहाथा ॥ २२ ॥ आसनपर भली प्रकारसे बैठाथा, उस
काल कालकी मूर्त्तिसा प्रतीत होताथा । ऐसा राक्षसनाथ महाभाग पौलस्त्यकुलनंदन रिपुओंका नाश करनेंवाला ॥ २३ ॥ इस प्रकारके

हविर्धानेषुयः सोममुपहंतिमहाबलः ॥ प्राप्तयज्ञहरंदुष्टंब्रह्मघ्नंक्रूरकारिणम् ॥ २० ॥ कर्कशंनिरनुक्रोशंप्रजानाम
हितेरतम् ॥ रावणंसर्वभूतानां सर्वलोकभयावहम् ॥ २१ ॥ राक्षसीभ्रातरंक्रूरंसाददर्शमहाबलम् ॥ तंदिव्यवस्त्राभ
रणंदिव्यमाल्योपशोभितम् ॥ २२ ॥आसनेसूपविष्टंतंकालेकालमिवोद्यतम् ॥ राक्षसेंद्रंमहाभागंपौलस्त्यकुलनंदन
म् ॥ २३ ॥ उपगम्याब्रवीद्वाक्यंराक्षसीभयविह्वला ॥ रावणंशत्रुहंतारंमंत्रिभिःपरिवारितम् ॥ २४ ॥ तमब्रवीद्दी
प्तविशाललोचनंप्रदर्शयित्वाभयलोभमोहिता ॥ सुदारुणंवाक्यमभीतचारिणीमहात्मनाशूर्पणखाविरूपिता॥२५॥
इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेद्वात्रिंशःसर्गः ॥३२॥ ७॥ ॥ ततःशूर्पणखादीनारावणंलो
करावणम् ॥ अमात्यमध्येसंक्रुद्धापरुषंवाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥ प्रमत्तःकामभोगेषुस्वैरवृत्तोनिरंकुशः ॥ समुत्पन्नंभयं
घोरंबोद्धव्यंनावबुध्यसे ॥ २ ॥

गुणोंसे युक्त रावणको देख लक्ष्मणजीनें जो नाक कान काट डालेथे इसकारण भयसे विह्वलहो, मंत्रियोंके बीचमे बैठेहुए रावणसे बोली ॥ २४ ॥
इस प्रकारकी निशाचरी जो कि श्रीरामचंद्रजीके द्वारा कुरूपको प्राप्त होगईथी जिसका नाम शूर्पणखा था वह निर्भय दारुण वचन कहती हुई
रावणसे बोली ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥ उस समय दीन हो
रही शूर्पणखा क्रोधयुक्तहो सब लोकोंके रुवानेंवाले रावणसे मंत्रिगणोंके सामनें कडुवे वचन कहनें लगी ॥ १ ॥ कि तुम स्वेच्छाचारी

सहित शरासन युक्त वायां हाथ,॥३०॥काटकर हँसतेरवज्र समान एक बाणसे खरको इंद्रसमान श्रीरामचंद्रजीनें मारा ॥३१॥ तब वह खर राक्षस धनुष रहित, रथ रहित, सारथि रहित होकर गदाले रथसे कूद पृथ्वी पर खडा होगया ॥ ३२ ॥ उस काल विमानमें बैठे हुए देवता और महर्षिगण महारथी श्रीरामचंद्रजीका यह कार्य अवलोकन करके परम हर्ष प्राप्त करते हुए और परस्पर एकत्रहो हाथजोड स्तुतिकर श्रीरामचंद्रजीकी पूजा करते हुए ॥ ३३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे अष्टाविंशःसर्गः ॥ २८ ॥ इसके पीछे खर रथहीन और हाथमें गदा धारण करके जब पृथ्वीमें खड़ा होगया तब महातेजवान् श्रीरामचंद्रजी बोलनेंमें मधुर

छित्त्वावज्रनिकाशेनराघवःप्रहसन्निव ॥ त्रयोदशेनेंद्रसमोबिभेदसमरेखरम् ॥ ३१ ॥ प्रभग्नधन्वाविरथोहताश्वो हतसारथिः ॥ गदापाणिरवप्लुत्यतस्थौभूमौखरस्तदा ॥ ३२ ॥ तत्कर्मरामस्यमहारथस्यसमेत्यदेवाश्चमहर्षयश्च ॥ अपूजयन्प्रांजलयःप्रहृष्टास्तदाविमानाग्रगताःसमेताः ॥ ३३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडेअष्टाविंशःसर्गः ॥ २८ ॥ ॥छ॥ ॥ खरंतुविरथंरामोगदापाणिमवस्थितम् ॥ मृदुपूर्वंमहातेजाः परुषंवाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥ गजाश्वरथसंबाधेबलेमहतितिष्ठता ॥ कृतंतेदारुणंकर्मसर्वलोकजुगुप्सितम् ॥ २ ॥ उद्वेजनीयोभूतानांनृशंसःपापकर्मकृत् ॥ त्रयाणामपिलोकानामीश्वरोपिनतिष्ठति ॥ ३ ॥ कर्मलोकविरुद्धंतुकुर्वाणं क्षणदाचर ॥ तीक्ष्णंसर्वजनोहंतिसर्पंदुष्टमिवागतम् ॥ ४ ॥ लोभात्पापानिकुर्वाणःकामाद्वायोनबुध्यते ॥ हृष्टः पश्यतितस्यांतंब्राह्मणीकरकादिव ॥ ५ ॥

परंतु वास्तवमें कठोर वचनसे खरसे बोले ॥ १ ॥ हेखर! तैंने हाथी अश्व और रथादि युक्त सेनाके मध्यमें टिककर सर्व लोकमें निन्दित महा भयंकर कर्म कियाहै ॥ २ ॥ यदि त्रिलोकीका स्वामीभी निर्लज्ज होकर पाप कर्म करे और सर्व प्राणियोंको घबडानेंवाला हो तो वहभी अपने पदसें भ्रष्ट होजाताहै ॥ ३ ॥ अरे निशाचर! सभी पुरुष लोकोंके विरुद्ध कर्म करनेवाले तीक्ष्ण स्वभाववाले पुरुषको, आये हुए काल सर्पकी समान संहार कर डालतेहैं ॥ ४ ॥ जो व्यक्ति फल जान करभी लोभ, या कामदेवके वश होकर हिंसा परस्त्रीगमन इत्यादि पाप

खजाना, दूत, और नीति नहीं होती, ऐसे राजालोग साधारण मनुष्योंके समानहैं ॥ ९ ॥ राजा लोग सबजगह अपने दूतोंको नियुक्त करके सब दूरका वृत्तान्त मानों देखते रहतेहैं इसी कारण वह दीर्घचक्षु, कहे जातेहैं ॥ १० ॥ हम जानतीहैं कि तुमनें कहीं भी दूतादि नहीं नियत कियेहैं और तुम साधारण बुद्धिवाले मंत्रियोंके साथ सदाही बैठे रहतेहो। इसीकारणसे निजजन और जनस्थानका जो नाशहोगयाहै उसको तुम नहीं जानते ॥ ११ ॥ देखो! अति कठिन कर्म करनेंवाले रामचंद्रनें इकलेही भयंकरकर्म करनेंवाले चौदह हजार राक्षस खर दूषणसहित मार डाले॥१२॥उन रामचंद्रनें ऋषिगणोंको अभय करदियाहै समस्त दंडकारण्यको निष्कंटक और जनस्थानको भयभीत कर दियाहै ॥ १३ ॥ पर

यस्मात्पश्यंतिदूरस्थान्सर्वानर्थान्नराधिपाः ॥ चारेणतस्माद्रुच्यंतेराजानोदीर्घचक्षुषः ॥ १० ॥ अयुक्तचारंमन्येत्वां प्राकृतैःसचिवैर्युतः ॥ स्वजनंचयतःस्थानंनिहतंनावबुध्यसे ॥ ११ ॥ चतुर्दशसहस्राणिरक्षसांभीमकर्मणाम् ॥ हतान्येकेनरामेणखरश्चसहदूषणः ॥ १२ ॥ ऋषीणामभयंदत्तंकृतक्षेमाश्चदंडकाः ॥ धर्षितंचजनस्थानंरामेणाक्लिष्टकारिणा ॥ १३ ॥ त्वंतुलुब्धःप्रमत्तश्चपराधीनश्चराक्षस ॥ विषयेस्वेसमुत्पन्नंयद्भयंनावबुध्यसे ॥ १४ ॥ तीक्ष्णमल्पप्रदातारंप्रमत्तंगर्वितंशठम् ॥ व्यसनेसर्वभूतानिनाभिधावंतिपार्थिवम् ॥ १५ ॥ अतिमानिनमग्राह्यमात्मसंभावितंनरम् ॥ क्रोधनंव्यसनेहंतिस्वजनोपिनराधिपम् ॥ १६ ॥ नानुतिष्ठतिकार्याणिभयेषुनबिभेतिच ॥ क्षिप्रंराज्याच्च्युतोदीनस्तृणैस्तुल्योभवेदिह ॥ १७ ॥

न्तु हे रावण! तुम तो लोभी मतवाले और सदाही पराये आधीन रहनेंवालेहो इसीकारण तुम नहीं जानते कि तुम्हारे राज्यपर क्या भय आ पहुंचाहै ॥ १४ ॥ जो राजा अति तीक्ष्णस्वभाववाला, असावधान, गर्वित, शठ, और अलपदान करनेंवाला होताहै, विपदके समय प्रजाभी उस राजाकी रक्षाकरनेंके लिये कोई यत्न नही करती ॥ १५ ॥ जो राजा अतिशय अभिमानी होता, क्रोध स्वभाववाला होता, और जो अपने आपही अपना गौरव करताहै, कोई जिसकी बातको नहीं सुनते। विपदके समय उसके सगेही उसका नाश कर देतेहैं ॥१६ ॥ जो राजा राजकार्य को अपने हाथसे नहींकरता। और भय होनेपरभी नहींडरता, ऐसे राजाको शीघ्रही राज्यभ्रष्ट होना पडताहै और सबहीकोई उसे तृणकी स

और नरकमें जाता हुआ देखें ॥ १३ ॥ रे नीचकुलमें उत्पन्न हुए! तू भली भांतिसे यत्न करके हमारे ऊपर प्रहार कर, किन्तु आज हम निश्चयही तालफलके समान तेरा शिर काटकर गिरादेंगे ॥ १४ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा तब क्रोधके वश होकर खरके दोनों नेत्र लालहो आये और क्रोधके मारे ज्ञान रहितहो खर हँसते २ श्रीरामचंद्रजीसे बोला ॥ १५ ॥ रेदशरथकुमार। समरमें साधारण राक्षसोंको मार वास्तवमें प्रशंसित न होनेंपरभी तुम आपही किस प्रकारसे अपनीही प्रशंसा करतेहो ॥ १६ ॥ बलवान् पराक्रमशाली नरगण तेजके मारे गर्वित होकर किसी समयभी अपनी प्रशंसा नहीं किया करते ॥ १७ ॥ जिनका चित्त शुद्ध नहींहै, ओछा स्वभावहै ऐसे क्षत्रियोंमें अधम लोगही

प्रहरस्वयथाकामंकुरुयत्नंकुलाधम ॥ अद्यतेपातयिष्यामिशिरस्तालफलंयथा ॥ १४ ॥ एवमुक्तस्तुरामेणक्रुद्धःसंर
क्तलोचनः ॥ प्रत्युवाचततोरामंप्रहसन्क्रोधमूर्छितः ॥ १५ ॥ प्राकृतान्राक्षसान्हत्वायुद्धेदशरथात्मज ॥ आत्मना
कथमात्मानमप्रशस्यंप्रशंससि ॥ १६ ॥ विक्रांताबलवंतोवायेभवंतिनरर्षभाः ॥ कथयंतिनतेकिंचित्तेजसाचातिगर्वि
ताः ॥ १७ ॥ प्राकृतास्त्वकृतात्मानोलोकेक्षत्रियपांसनाः ॥ निरर्थकंविकत्थंतेतथारामविकत्थसे ॥ १८ ॥ कुलं
व्यपदिशन्वीरःसमरेकोभिधास्यति ॥ मृत्युकालेतुसंप्राप्तेस्वयमप्रस्तुवेस्तवम् ॥ १९ ॥ सर्वथातुलघुत्वंतेकत्थनेनवि
दर्शितम् ॥ सुवर्णप्रतिरूपेणतप्तेनेवकुशाग्निना ॥ २० ॥ नतुमामिहतिष्ठंतंपश्यसित्वंगदाधरम् ॥ धराधरमिवाकंप्यं
पर्वतंधातुभिश्चितम् ॥ २१ ॥ पर्याप्तोहंगदापाणिर्हंतुंप्राणान्रणेतव ॥ त्रयाणामपिलोकानांपाशहस्तइवांतकः ॥ २२ ॥

तुम्हारी समान निरर्थक गर्व प्रगट किया करते हैं ॥ १८ ॥ मृत्यु समयके निकट आजानेंपर कौन वीर अपनें वंशका परिचय देकर प्रशंसाके अयोग्य विषयमें अपनी प्रशंसा करताहै ॥ १९ ॥ जिस प्रकार आग अपने तापसे सुवर्णकी समान पीतलकी अधमताई प्रगट करतीहै वैसेही तुमनें जो अपनी प्रशंसा की इस्से तुम्हारा ओछापनही प्रगट हुआ ॥ २० ॥ तुम क्या गदा धारण किये हुए समरमें टिके देखकर विविध धातुओंके आकार धराधर पर्वतकी समान हमको अकम्पनीय नहीं समझतेहो॥२१॥हम लीलासेही गदा हाथमें लेकर समरमें पाशधारी यमराजकी समान

शूर्पणखा मंत्रियोंकी सभाके बीचमें अनेक प्रकारके कटुवचन कहरहीहै यह देखकर रावणने क्रोधित होकर पूछा ॥ १ ॥ राम कौनहै? उन
का वीर्य, रूप और पराक्रम कैसाहै ? वह किस कारणसे इस दुस्तर दंडकारण्यमें आयेहैं? ॥ २॥ उन्होंनें जिनसें कि खर दूषण और त्रिशिरा आदि
राक्षसोंको युद्धमें मार डाला वह उन रामचंद्रके आयुध कैसेहैं ? ॥ ३ ॥हे मनोहर शरीरवाली ! तुमको किसनें विरूप कर दिया? सब यथार्थही
कहो। जब राक्षसराज रावणनें इस प्रकारसे कहा तब राक्षसी क्रोधसे मूर्च्छितहो ॥ ४ ॥ जैसेका तैसा ठीक २ श्रीरामचंद्रजीका वृत्तान्त कहनें
लगी। उसनें कहा रामचंद्र दशरथके पुत्र कामदेवकी समान रूपवान् दीर्घबाहु और विशाल नेत्र, वल्कल व मृगचर्म धारण किये हुए ॥५ ॥ उनका

ततःशूर्पणखांदृष्ट्वाब्रुवतींपरुषंवचः ॥ अमात्यमध्येसंक्रुद्धःपरिपप्रच्छरावणः ॥ १ ॥ कश्चरामःकथंवीर्यःकिंरूपःकिं
पराक्रमः ॥ किमर्थंदंडकारण्यंप्रविष्टश्चसुदुस्तरम् ॥ २ ॥ आयुधंकिंचरामस्ययेनतेराक्षसाहताः ॥ खरश्चनिहतः
संख्येदूषणस्त्रिशिरास्तथा ॥ ३ ॥ तत्त्वंब्रूहिमनोज्ञांगिकेनत्वंचविरूपिता ॥ इत्युक्ताराक्षसेंद्रेणराक्षसीक्रोधमूर्च्छि
ता ॥ ४ ॥ ततोरामंयथान्यायमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ दीर्घबाहुर्विशालाक्षश्चीरकृष्णाजिनांबरः ॥ ५ ॥ कंदर्पसमरूप
श्चरामोदशरथात्मजः ॥ शक्रचापनिभंचापंविकृष्यकनकांगदम् ॥ ६ ॥ दीप्तान्क्षिपतिनाराचान्सर्पानिवमहाविषा
न् ॥ नाददानंशरान्घोरान्विमुंचंतंमहाबलम् ॥ ७ ॥ नकार्मुकंविकर्षंतंरामंपश्यामिसंयुगे ॥ हन्यमानंतुतत्सैन्यं
पश्यामिशरवृष्टिभिः ॥ ८ ॥ इंद्रेणेवोत्तमंसस्यमाहतंत्वश्मवृष्टिभिः ॥ रक्षसांभीमवीर्याणांसहस्राणिचतुर्दश ॥ ९ ॥
निहतानिशरैस्तीक्ष्णैस्तेनैकेनपदातिना ॥ अर्धाधिकमुहूर्तेनखरश्चसहदूषणः ॥ १० ॥

धनुप इन्द्रके धनुपकी समानहै उसमें सुवर्णके बंद लगेहैं उस धनुषको खेंचकर ॥ ६ ॥ तेज विषवाले सर्पोंकी समान प्रतीप नाराच रामचंद्र छो
डतेहैं यह हमनें नहीं देखा ॥ ७ ॥ और धनुषको किस समयमें खैंचतेहैं यहभी हमनें नहीं देखा केवल इतनाही देखाहै कि बाण वर्षा करके वह संग्रा
ममें राक्षसोंका संहार करतेथे ॥ ८ ॥ जैसे इन्द्र अकालमें ओले वर्षाकर श्रेष्ठ अन्नका नाश कर देतेहैं इसी प्रकार भयंकर वीर्यवान् १४००० हजार
राक्षसोंको ॥ ९ ॥ तीक्ष्ण बाणोंके प्रहारसे अकेले पैदल रामचंद्रजीनें मार डाला। केवल आधेही मुहूर्त्तमें खरको दूषणके सहित संहार कर॥१०॥

अपना सब बल दिखाया तुम हम करके हीन बल होकर वृथा क्यों गर्जना करतेहो ॥ २ ॥ तुम केवल निरर्थक बकवाद करनेमें समर्थहो ! तुम्हारी गदानें हमारे बाणोंसे टुकडे २ होकर पृथ्वीमें गिरकर तुम्हारे विश्वासको नष्ट किया ॥ ३॥ और तुमने जो कहाथा कि मरे हुए राक्षसोंके स्त्री पुत्रादिकोंके आंसू पोंछेंगे; सो तुम्हारी यह बातभी मिथ्याहुई ॥ ४ ॥ और गरुडजीनें जिस प्रकार अमृत हरण कियाथा इस समय हमभी वैसेही नीच, ओछे स्वभाववाले झूंठी प्रतिज्ञा करनेवाले तुम जो हो सो तुम्हारा प्राण हरण करेंगे ॥ ५ ॥ आज हमारे बाणों करके विदारित होनेसे जब तुम्हारा शिर कट जायगा, तब पृथ्वी तुम्हारे गलेका झाग सहित रुधिर पान करेगी ॥ ६ ॥ आज तुम शिथिलहो गिरेहुए दोनों हाथोंसे सर्वांगमें

एषाबाणविनिर्भिन्नागदाभूमितलंगता ॥ अभिधानप्रगल्भस्यतवप्रत्ययघातिनी ॥ ३ ॥ यत्त्वयोक्तंविनष्टानामिद
मश्रुप्रमार्जनम् ॥ राक्षसानांकरोमीतिमिथ्यातदपितेवचः ॥ ४ ॥ नीचस्यक्षुद्रशीलस्यमिथ्यावृत्तस्यरक्षसः ॥
प्राणानपहरिष्यामिगरुत्मानमृतंयथा ॥ ५ ॥ अद्यतेभिन्नकंठस्यफेनबुद्बुदभूषितम् ॥ विदारितस्यमद्बाणैर्मही
पास्यतिशोणितम् ॥ ६ ॥ पांसुरूषितसर्वांगःस्रस्तन्यस्तभुजद्वयः ॥ स्वप्स्यसेगांसमाश्लिष्यदुर्लभांप्रमदामिव ॥ ७॥
प्रवृद्धनिद्रेशयितेत्वयिराक्षसपांसने॥भविष्यतिशरण्यानांशरण्यादंडकाइमे ॥८॥जनस्थानेहतस्थानेतवराक्षसमच्छ
रैः॥ निर्भयाविचरिष्यंतिसर्वतोमुनयोवने ॥ ९॥ अद्यविप्रसरिष्यंतिराक्षस्योहतबांधवाः ॥ बाष्पार्द्रवदनादीनाभया
दन्यभयावहाः॥१०॥अद्यशोकरसज्ञास्ताभविष्यंतिनिरर्थिकाः ॥ अनुरूपकुलाःपत्न्योयासांत्वंपतिरीदृशः ॥ ११ ॥

रुधिर लगाये हुए दुर्लभस्त्रीके समान पृथ्वीको चिपटाकर शयनकरोगे ॥ ७ ॥ रे राक्षसकुलका नाश करनेंवाले! यह दंडकवन सब लोकोंका आश्रय स्वरूप ऋषिगणोंका आश्रय हो जायगा ॥ ८ ॥ रे राक्षस! मेरे बाण समूहकरके जनस्थान राक्षसशून्य होनेंसे मुनिगण निर्भय होकर सब प्रकारसे वनमें निर्भय होकर घूमेंगे ॥ ९ ॥ भयंकरी सब राक्षसीयें आज बन्धु बान्धवोंके मारे जानेसे रुदन करती हुई हमारे भयसे आज जनस्थानसे भाग जांयगी ॥ १० ॥ तुम जिनके पतिहो सो वह तुम्हारेही समान वंशकी पतियें आज शोकरसके मर्मको जानकर हीनवी

हर्षमें भर कर भेंटे वह पुरुष समस्त प्राणी क्या, वरन इन्द्रसेभी अधिकसुखसे जीवन बिताताहै ॥ १९ ॥ सीताके सबही अंग सब लोकोंके प्रशंसा करनेंके योग्यहैं और पृथ्वीमें उसका रूप अतुलनीयहै। वह सुशीला तुम्हारेही लायक भार्याहै, और तुम उसकेही अनुरूप पतिहो ॥ २० ॥ उसके दोनों पयोधर ऊंचेहैं. जंघा अति विशालहैं और मुखमंडल अतिश्रेष्ठहै उसको हम सोच विचार कर तुम्हारी स्त्री होनेंके योग्य जान लैनें गईथीं ॥ २१ ॥ हे महाभुज! सो इस कार्यको करतेही हुए क्रूर लक्ष्मणनें हमारे नाक कान काट डाले उस पूर्णचन्द्रमुखवाली विदेहकुमारीको देखतेही ॥ २२ ॥ तुम फूलबाणधारीके पुष्प बाणोंका निशाना बनोगे, यदि उसको अपनी स्त्री बनानेंका तुम्हारा आशय होतो शीघ्रही

सासुशीलावपुःश्लाघ्यारूपेणाप्रतिमाभुवि ॥ तवानुरूपाभार्यासात्वंचतस्याःपतिर्वरः ॥ २० ॥तांतुविस्तीर्णजघनांपीनोत्तुंगपयोधराम् ॥ भार्यार्थेतुतवानेतुमुद्यताहंवराननाम् ॥ २१ ॥ विरूपितास्मिक्रूरेणलक्ष्मणेनमहाभुज ॥ तांतुदृष्ट्वाद्यवैदेहींपूर्णचंद्रनिभाननाम् ॥ २२ ॥ मन्मथस्यशराणांचत्वंविधेयोभविष्यसि ॥ यदितस्यामभिप्रायोभार्यात्वेतवजायते, ॥ शीघ्रमुद्ध्रियतांपादोजयार्थमिहदक्षिणः ॥ २३ ॥ रोचतेयदितेवाक्यंममैतद्राक्षसेश्वर ॥ क्रियतांनिर्विशंकेनवचनंममरावण ॥ २४ ॥ विज्ञायैषामशक्तिंचक्रियतांचमहाबल ॥ सीतातवानवद्यांगीभार्यात्वेराक्षसेश्वर ॥ २५ ॥ निशम्यरामेणशरैरजिह्मगैर्हतान्जनस्थानगतान्निशाचरान् ॥ खरंचदृष्ट्वानिहतंचदूषणंत्वमद्यकृत्यंप्रतिपत्तुमर्हसि २६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेचतुस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३४ ॥ ॥ ७ ॥

रामचंद्रके जीतनेंको दहिना चरण आगे धरकर चलो॥ २३॥ राक्षसराज रावण! हमारा यह वचन यदि तुम्हें रुचाहो, तो जो हमनें कहा उसको चित्तसे शंका त्यागकर करो ॥२४॥ हे महाबल! तुम उनको असमर्थ और अपनेंको समर्थ जानकर इस सर्वाङ्गसुन्दरी सीताको स्त्री बनानें में यत्नवान होवो ॥२५॥ रामचंद्रनें सीधे चलनेंवाले बाणोंसे समस्त उन जनस्थानवासी राक्षसोंको खर व दूषणके सहित मार डालाहै यह सुनकर अब जो कुछ कर्त्तव्यहो सो करो ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

निकलनें लगा, उन्होंनें हजार बाणोंसे खरके अंगको छिन्न भिन्नकर डाला ॥ २० ॥ पर्वतके झरनेंसे जिसप्रकार पानीकी धारा निकलती रहतीहै, वैसेही खरकी देहमें जो बाण लगनेके कारण छिद्र होगयेथे, उनसे रुधिर गिरनें लगा ॥ २१ ॥ खर श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे व्याकुलहो और रुधिर गन्धसे मतवाला होकर श्रीरामचंद्रजीके सामने बहुत शीघ्रतासे धाया ॥ २२ ॥ यह रुधिरसे डुबाहुआ और अतिशय क्रोधाविष्ट होकर इसप्रकारसे दौडा कि कृतास्त्र श्रीरामचंद्रजो शीघ्रतासे दो तीन परग पीछेको हटगये ॥ २३ ॥ इसके पीछे श्रीरामचंद्रजीनें खरके मारडालनेंके लिये दूसरे ब्रह्मदंडकीसमान अग्निसमान बाण ग्रहणकिया ॥ २४ ॥ धीमान् देवराज इन्द्रजीनें यह बाण श्रीरामचंद्रजीको दियाथा धर्मात्मा

तस्यबाणांतराद्रक्तंबहुसुस्रावफेनिलम्॥गिरेःप्रस्रवणस्येवधाराणांचपरिस्रवः २१॥विकलःसकृतोबाणैःखरोरामेणसंयुगे॥मत्तोरुधिरगंधेनतमेवाभ्यद्रवद्द्रुतम्॥२२॥तमापतंतंसंक्रुद्धंकृतास्त्रोरुधिराप्लुतम्॥अपासर्पद्द्वित्रिपदंकिंचित्त्वरितविक्रमः ॥ २३ ॥ ततःपावकसंकाशंवधायसमरेशरम् ॥ खरस्यरामोजग्राहब्रह्मदंडमिवापरम् ॥ २४ ॥ सतद्दत्तंमघवतासुरराजेनधीमता ॥ संदधेचसधर्मात्मामुमोचचखरंप्रति ॥ २५॥ सविमुक्तोमहाबाणोनिर्घातसमनिःस्वनः ॥ रामेणधनुरायम्यखरस्योरसिचापतत् ॥ २६ ॥ सपपातखरोभूमौदह्यमानःशराग्निना ॥ रुद्रेणेवविनिर्दग्धःश्वेतारण्येयथांधकः ॥ २७ ॥ सवृत्रइववज्रेणफेनेननमुचिर्यथा ॥ बलोवेंद्राशनिहतोनिपपातहतःखरः ॥ २८ ॥

श्रीरामचंद्रजीनें वही बाण धनुषपर चढाकर खरके ऊपर छोड़ा ॥२५॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें धनुषको खैंचकर वह महाबाण छोडा, तब वह बाण वज्रकोसमान शब्द करताहुआ खरकी छातीमें लगा ॥ २६ ॥ खर उस बाणकी अग्निसे भस्महोकर, श्वेतारण्यमें[1] रुद्रकरके भस्महुए अंधकासुरकी समान पृथ्वीमें गिरपडा ॥ २७ ॥ वृत्रासुर[2] जिसप्रकार वज्रसे, नमुचि[3] जिसप्रकार फेनसे, और बलासुर जिसप्रकार इन्द्रके वज्रसे हत

१ कावेरीनदीके किनारे श्वेतारण्यमें एक श्वेत नाम राजर्षि तप करतेथे तब अन्धकासुर उन्हे मारनेको धाया उस समय शिवजीनें लात मारकर उस राक्षसका संहार किया ॥ २ बृहस्पतिजीके रूठ जानेपर जब इन्द्रने विश्वरूपको पुरोहित किया तब इन्द्रनें गुप्त रूपसे दैत्योंके निमित्त उसे आहुति देते देख मारडाला विश्वरूपके मरनेपर उसके पिताने यज्ञ कुंडसे वृत्रासुरको उत्पन्न किया बडा युद्ध इंद्रके साथ हुआ तब इन्द्रनें दधीच ऋषिसे उनकी जांघका हाड मांग वज्र बनाय उस्से वृत्रासुरका संहार किया ॥ ३ नमुचि दैत्यको ब्रह्माजीका वरदानथा तुम गीले सूखे किसी प्रकारके आयुधसे न मरोगे तब इन्द्रने वज्रमें फैन लपेटकर मारा जो गीला सूखा नहींथा ॥

योंके हनन करनेंको यह रावण साक्षात् दश कँगूरों करकै युक्त पर्वतराजसा दिखाई देताथा ॥ ९ ॥ वह रावण उस यथेच्छाचारी विमान पर चढकर ऐसा शोभित हुआ मानों सौदामिनीके संग घन श्याम बगलोंकीपांतिके साथ गगन मंडलमें जाताहै ॥ १० ॥ रावण चलते २ समुद्रके तीरपर पहुंचा, बीचमें उसनें बहुतसे पर्वत व समुद्रकी तलैटीकेदेश देखे वह स्थान अनेक प्रकारके पुष्प फल और वृक्षोंसे शोभायमानथे ॥ ११ ॥ शीतल मंगल जल युक्त तलैयां वहांपर थीं. वेदी युक्त और बडे २ आश्रमोंसे वह देश अलंकृतथा ॥ १२ ॥ केलेका वन चारो ओर लगा, नारियलके पेड़ अलगही लह लहा रहेथे, और शाल ताल तमालादि नाना जातिके पुष्पित वृक्ष लगेथे ॥ १३ ॥ वह स्थान, जो सदा

कामगंरथमास्थायशुशुभेराक्षसाधिपः ॥ विद्युन्मंडलवान्मेघःसबलाकइवांबरे ॥ १० ॥ सशैलसागरानूपंवीर्यवानवलोकयन् ॥ नानापुष्पफलैर्वृक्षैरनुकीर्णंसहस्रशः ॥ ११ ॥ शीतमंगलतोयाभिःपद्मिनीभिःसमंततः ॥ विशालैराश्रमपदैर्वेदिमद्भिरलंकृतम् ॥ १२ ॥ कदल्यटविसंशोभंनालिकेरोपशोभितम् ॥ सालैस्तालैस्तमालैश्चतरुभिश्चसुपुष्पितैः ॥ १३ ॥ अत्यंतनियताहारैःशोभितंपरमर्षिभिः ॥ नागैःसुपर्णैर्गंधर्वैःकिन्नरैश्चसहस्रशः ॥ १४ ॥ जितकामैश्चसिद्धैश्चचारणैश्चोपशोभितम् ॥ आजैर्वैखानसैर्माषैर्वालखिल्यैर्मरीचिपैः ॥ १५ ॥ दिव्याभरणमाल्याभिर्दिव्यरूपाभिरावृतम् ॥ क्रीडारतविधिज्ञाभिरप्सरोभिःसहस्रशः ॥ १६ ॥ सेवितंदेवपत्नीभिःश्रीमतीभिरुपासितम् ॥ देवदानवसंघैश्चचरितंत्वमृताशिभिः ॥ १७ ॥

नियमित भोजनमें मग्न रहते ऐसे परमर्षियोंसे शोभायमानथा, नाग, गरुड, गन्धर्व और सहस्रों किन्नरभी वहांपर थे ॥ १४ ॥ और कामदेवको जिन्होंनें जीत रक्खाहै, ऐसे सिद्ध और चारण गणभी उस स्थानमें शोभित हो रहेथे, आज्य, धूम्र, वैखानस, साख, वालखिल्य, मरीचि आदि ॥ १५ ॥ दिव्य वस्त्राभूपण दिव्य माला, और दिव्य रूप स्त्रियों के संग घूम रहेथे । क्रीडा व रतिकी विधि जाननेंवाली हजारों अप्सराओंके साथ सिद्धगण विहार करतेथे॥१६॥देवोंकी श्रीसम्पन्न स्त्रियांभी घूमरहीथीं.अमृत पीनेंवाले देव दानवोंके समूह भी इधर उधर फिरतेथे१७

अब महर्षिलोग दंडकारण्यमें अपनार धर्म स्वच्छन्द हो करेंगे । मुनिगण इतना कहही रहेथे कि इतनेमें वीर लक्ष्मणजी सीताजीके सहित ॥ ३७ ॥ गिरिगुहासे सुख सहित बाहर आकर अपनें आश्रममें प्रवेश करते हुए इसके पीछे विजयी श्रीरामचंद्रजी महर्षियों करके पूजित होकर ॥ ३८॥ और लक्ष्मणजीसेभी पूजितहो अपनें आश्रममें आगमन करतेहुए तिन महर्षियोंके आनंद बढानेवाले शत्रुओंके दमन करनेंवाले श्रीरामचंद्रजीको देख ॥ ३९ ॥ श्रीजानकीजी प्रसन्न हुईं; और अपनें पति श्रीरामचंद्रजीसे अति प्रेम पूर्वक मिलीं, और फिर राक्षसोंको मरे हुए देख॥४०॥

स्वधर्मंप्रचरिष्यंतिदंडकेषुमहर्षयः॥ एतस्मिन्नंतरेवीरोलक्ष्मणःसहसीतया॥ ३७ ॥ गिरिदुर्गाद्विनिष्क्रम्यसंविवेशाश्रमेसुखी॥ ततोरामस्तुविजयीपूज्यमानोमहर्षिभिः॥ ३८॥ प्रविवेशाश्रमंवीरोलक्ष्मणेनाभिपूजितः॥ तंदृष्ट्वाशत्रुहंतारंमहर्षीणांसुखावहम्॥ ३९॥ बभूवहृष्टावैदेहीभर्तारंपरिषस्वजे॥ मुदापरमयायुक्तादृष्ट्वारक्षोगणान्हतान् ॥ ४० ॥ रामंचैवाव्ययंदृष्ट्वातुतोषजनकात्मजा ॥ ४१ ॥ ततस्तुतंराक्षससंघमर्दनंसंपूज्यमानंमुदितैर्महात्मभिः ॥ पुनःपरिष्वज्यमुदान्वितानानाबभूवहृष्टाजनकात्मजातदा ॥ ४२ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आर० त्रिंशःसर्गः॥ ३० ॥ त्वरमाणस्ततोगत्वाजनस्थानादकंपनः॥ प्रविश्यलंकांवेगेनरावणंवाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥ जनस्थानस्थिताराजन्राक्षसाबहवोहताः॥ खरश्चनिहतःसंख्येकथंचिदहमागतः॥ २ ॥

व श्रीरामचंद्रजीको समस्तही निरापद देखकर श्रीजानकीजी अति संतोषको प्राप्त हुईं ॥ ४१ ॥ अनन्तर सुकुमारी जनकदुलारी परम प्रेम और हर्षमें भरकर राक्षसकुलके संहार करनेंवाले श्रीरामचंद्रजीसे फिर मिलीं और महात्मा ऋषिगण प्रफुल्लित होकर अनेक २ प्रकारसे श्रीरामचंद्रजीकी पूजा करनेंलगे ॥ ४२ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० आर० त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥खर दूषण त्रिशिरा आदि राक्षसोंके मारेजानेंपर अकम्पन नामक राक्षस शीघ्रतासे जनस्थानसे पलायन कर लंकामें जाकर रावणसे कहनें लगा ॥ १ ॥ हे राजन् ! जनस्थानवासी अनेक राक्षस संग्राममें मारे

सिन्धु राजका अनूप किनारा देखा,वह देखनेमें स्वर्गकेही सम तुल्य था, वहां पर सबओरसे मुनियों करके सेवित मेघ सम श्याम एक वरगदका वृक्ष देखा२७उसकी समस्त शाखा चारों ओर शत योजनके घेरमें फैल रहीथीं जहांपर बडे शरीर वाले हाथी और कछुएको२८गरुडजी भोजन करनेंके लिये, इस पेडकी एक शाखा पर बैठेथे पक्षियोंके स्वामी गरुडजीनें मारे वोझके उसकी एक डाली ॥ २९ ॥ जिसमें बहुत पत्र लगेथे तोड डाली उसी शाखाका आश्रय कर वैखानस, माष,मरीचिपायी,वालखिल्य॥३०॥और धूम्राख्य परमर्षिगण मिलकर तपस्या कर रहेथे। धर्मात्मा गरुडजी

अनूपेसिंधुराजस्यददर्शत्रिदिवोपमम् ॥ तत्रापश्यत्समेघाभंन्यग्रोधंमुनिभिर्वृतम्॥ २७ ॥ समंताद्यस्यताःशाखाः
शतयोजनमायताः॥ यस्यहस्तिनमादायमहाकायंचकच्छपम्॥ २८ ॥ भक्षार्थंगरुडःशाखामाजगाममहाबलः॥
तस्यतांसहसाशाखांभारेणपतगोत्तमः ॥ २९ ॥ सुपर्णःपर्णबहुलांबभंजाथमहाबलः ॥ तत्रवैखानसामाषावालखि
ल्यामरीचिपाः ॥ ३० ॥ आजाबभूवुर्धूम्राश्चसंगताःपरमर्षयः॥ तेषांदयार्थंगरुडस्तांशाखांशतयोजनम्॥ ३१ ॥
भग्नामादायवेगेनतौचोभौगजकच्छपौ॥ एकपादेनधर्मात्माभक्षयित्वातदामिषम् ॥ ३२ ॥ निषादविषयंहत्वाशा
खयापतगोत्तमः ॥ प्रहर्षमतुलंलेभेमोक्षयित्वामहामुनीन् ॥ ३३ ॥ सतुतेनप्रहर्षेणद्विगुणीकृतविक्रमः॥ अमृता
नयनार्थंवैचकारमतिमान्मतिम् ॥ ३४ ॥ अयोजालानिनिर्मथ्यभित्त्वारत्नगृहंवरम् ॥ महेंद्रभवनाद्गुप्तमाजहारा
मृतंततः ॥ ३५ ॥ तंमहर्षिगणैर्जुष्टंसुपर्णकृतलक्षणम्॥ नाम्नासुभद्रंन्यग्रोधंददर्शधनदानुजः ॥ ३६ ॥

उन ऋषियोंके प्रति दया करके एक पैरसेही उस शत योजनकी ॥ ३१ ॥टूटी हुई शाखाको पकड दूसरे पैरसे गज कच्छपको दबाय महात्मा गरुडनें उनका मांस खाकर ॥ ३२॥ उस टूटी हुई शाखाकी सहायसे समस्तनिषाद देशको नाश कर दिया इस प्रकार मुनि गणोंको बचाकर गरुडजी परम हर्षित हुएथे ॥ ३३॥ अनन्तर उस हर्षके वशहो गरुडजीका विक्रम दूना बढ गया तौ इस कारण मतिमान गरुडजी अमृतके लानेंका विचार करते हुए ॥ ३४ ॥ और लोहेके जालको तोड ताड रत्नमय श्रेष्ठ गृह फोड फाड महेन्द्र भवनसे अमृतले आये ॥ ३५॥ सो इस समय कुबेरका

भूषितहै युवा अवस्था आरहीहै उसके सब अंग बराबरहैं कोई बडा छोटा नहींहै ॥ २९॥ न देवी, न देवता, न गन्धर्वी, न अप्सरा, न पन्नगी कोईभी उसकी तुल्यता नहीं करसकती फिर मनुष्यकी स्त्री किस भांति उनकेसमान होसकतीहैं ॥ ३० ॥ सो अब महावनमें जाकर किसी प्रकार छल बल चतुराईसे उनकी वह स्त्री हर लीजिये जब उनकी स्त्री हरी जायगी तब राम न बचैंगे वरन अवश्यही मर जांयगे ॥ ३१ ॥ यह बात महाबाहु, राक्षसराज रावणके मनको भाई । वह सोच विचार, करके अकम्पनसे बोला ॥ ३२॥ कि अच्छा! हम अकेले सारथीके साथ वहां जांयगे, और जानकीको हर्ष सहित इस लंकापुरीमें लावैंगे॥ ३३ ॥इस प्रकार कह कर राक्षसराज रावण सूर्यकी समान प्रभावाले रथपर

नैवदेवीनगंधर्वीनाप्सरानचपन्नगी ॥ तुल्यासीभंतिनीतस्यमानुषीतुकुतोभवेत् ॥ ३० ॥ तस्यापहरभार्यांत्वंतंप्रमथ्यमहावने ॥ सीतयारहितोरामोनचैवहिभविष्यति ॥ ३१ ॥ अरोचयततद्वाक्यंरावणोराक्षसाधिपः ॥ चिंतयित्वामहाबाहुरकंपनमुवाचह ॥ ३२ ॥ बाढंकल्यंगमिष्यामिएकःसारथिनासह ॥ आनेष्यामिचवैदेहीमिमांहृष्टोमहापुरीम् ॥ ३३ ॥ तदेवमुक्त्वाप्रययौखरयुक्तेनरावणः ॥ रथेनादित्यवर्णेनदिशःसर्वाःप्रकाशयन् ॥ ३४ ॥ सरथोराक्षसेंद्रस्यनक्षत्रपथगोमहान् ॥ चंचूर्यमाणःशुशुभेजलदेचंद्रमाइव ॥ ३५ ॥ सदूरेचाश्रमंगत्वाताटकेयमुपागमत ॥ मारीचेनार्चितोराजाभक्ष्यभोज्यैरमानुषैः ॥ ३६ ॥ तंस्वयंपूजयित्वातुआसनेनोदकेनच ॥ अर्थोपहितया वाचामारीचोवाक्यमब्रवीत् ॥ ३७ ॥

जिसमें खचड़ जुतेथे सवारहो समस्त दिशा विदिशाओंको प्रकाशित करताहुआ चला ॥ ३४ ॥ राक्षसेन्द्रका वह रथ तारागणोंके मार्गमें वेगसे भराहुआ चलनेंके कारण मेघमंडलमें चंद्रमाकी समान शोभाविस्तार करता हुआ ॥ ३५ ॥ इसके पीछे रावण बहुत दूर चलकर ताडकाके पुत्र मारीचके स्थानपर पहुंचा मारीचनें विविध प्रकारके खानें पीनेंके पदार्थोंसे रावण राक्षसनाथकी पूजाकी । वह पदार्थ मनुष्योंके भक्षण करनेंके अयोग्यथे ॥ ३६ ॥ जब मारीच इस प्रकार आसन, जल, और खानें पीनेंकी वस्तुओंसे रावणकी पूजा कर चुका

जानतेहीहो ॥ २ ॥ मांसका खानें वाला राक्षस त्रिशिरा व औरभी बहुतनिशाचर गण युद्धमें उत्साही व शूरवीर ॥ ३ ॥ मेरी आज्ञा पालन करते हुए वहां वसा करतेथे। वह सब निशाचर गण महावनमें धर्मचारीऋषियोंके अनुष्ठानमें सदाही बाधा दिया करतेथे ॥ ४ ॥ इन सब राक्षसोंकी संख्या १४००० चौदह हजारथी । वह सबही भयंकर कर्मकरनेंवाले, शूर युद्धमें उत्साही और खरके चित्तके अनुसार कार्य करनें वालेथे ॥ ५ ॥ इस समय जनस्थानके रहनेवाले महाबलवान खरइत्यादि राक्षस युद्धमें रामचंद्रके साथ ॥ ६ ॥ विविध भांतिके अस्त्र शस्त्र धारण करके व दुर्भेद्यकवच बांधकर युद्धमें भिडेथे तब रामचंद्रनें महाक्रोध करके ॥७॥ कुछभी कठोर वचन न कहकर धनुष पर बाण चढाय

त्रिशिराश्चमहाबाहूराक्षसःपिशिताशनः ॥ अन्येचबहवःशूरालब्धलक्षानिशाचराः ॥ ३ ॥ वसंतिमन्नियोगेनअधिवासंचराक्षसाः ॥ बाधमानामहारण्येमुनीन्येधर्मचारिणः ॥ ४ ॥ चतुर्दशसहस्राणिरक्षसांभीमकर्मणाम् ॥ शूराणांलब्धलक्षाणांखरचित्तानुवर्तिनाम् ॥ ५ ॥ तेत्विदानींजनस्थानेवसमानामहाबलाः ॥ संगताःपरमायत्तारामेणसहसंयुगे ॥ ६ ॥ नानाशस्त्रप्रहरणाःखरप्रमुखराक्षसाः ॥ तेनसंजातरोषेणरामेणरणमूर्धनि ॥ ७ ॥ अनुक्त्वापरुषंकिंचिच्छरैर्व्यापारितंधनुः ॥ चतुर्दशसहस्राणिरक्षसामुग्रतेजसाम् ॥ ८ ॥ निहतानिशरैर्दीप्तैर्मानुषेणपदातिना ॥ खरश्चनिहतःसंख्येदूषणश्चनिपातितः ॥ ९ ॥ हत्वात्रिशिरसंचापिनिर्भयादंडकाःकृताः ॥ पित्रानिरस्तःक्रुद्धेनसभार्यःक्षीणजीवितः ॥ १० ॥ सहंतातस्यसैन्यस्यरामःक्षत्रियपांसनः ॥ अशीलःकर्कशस्तीक्ष्णोमूर्खोलुब्धोऽजितेंद्रियः॥ ११ ॥ त्यक्तधर्मात्वधर्मात्माभूतानामहितेरतः ॥ येनवैरंविनारण्येसत्वमास्थायकेवलम् ॥ १२ ॥

उनको छोड चौदह हजार उग्रतेजवान राक्षसोंको ॥ ८ ॥ मनुष्यका अवतार लिये रामचंद्रनें खर व दूषण सहित सबको संग्राममें तीक्ष्ण दीप्तिवान नाराचोंसें संहार किया ॥ ९ ॥ और त्रिशिराकोभी मार दंडकवनको अभय करदिया। उस रामचंद्रका चाल चलनभी ठीक नहीं मालूम होता क्योंकि उसके पितानें उसको निर्लज्ज जानकर स्त्री सहित घरसे निकाल दियाहै॥ १० ॥ वही दुःशील, कर्कश, तीक्ष्ण, मूर्ख, लोभी अवितेंद्रिय, क्षत्रियकुल कलंक रामचंद्र इस राक्षसोंकी सेनाका मार डालनेवालाहै ॥ ११ ॥ जो धर्मका त्याग और अधर्मका आश्रय करके सदाही

और उसके सब अंगभी देवताओं करके शस्त्रद्वारा घायल हुएहैं किसीसे चलायमान नहींहों ऐसे समुद्रोंकोभी खलबलानेंको जिसमें विशेष सामर्थ्य है, और शीघ्रही सब कार्य करनेंवाला ॥११॥ पर्वतोंके कंगूरोंको उखाडडालनेंवाला देवताओंका मर्दन करनेंवाला सबधर्मोंका जडसे उखाडनेंवाला पराई पतिव्रता स्त्रियोंका सत्य हरणकारी ॥ १२ ॥ दिव्यास्त्रोंका प्रयोजककारी और सर्व यज्ञ विघ्नकारी, भोगवती नगरीमें जाय नागराज वासुकिको जीत ॥ १३ ॥ तक्षक नामक सर्पको पराजयकरता हुआ उसकी प्रियस्त्रीको हरण करनेवाला कैलासपर्वतपर गमन करके नरवाहन कुबेरको जीतनेवाला ॥ १४ ॥ और उसका मनइच्छासे चलनेवाला पुष्पक विमान हरण करनेवाला, चैत्ररथ नामक

अहतांगैःसमस्तैस्तंदेवप्रहरणैस्तदा॥ अक्षोभ्याणांसमुद्राणांक्षोभणंक्षिप्रकारिणम् ॥ ११ ॥ क्षेप्तारंपर्वताग्राणांसुराणांचप्रमर्दनम् ॥ उच्छेत्तारंचधर्माणांपरदाराभिमर्शनम् ॥ १२ ॥ सर्वदिव्यास्त्रयोक्तारंयज्ञविघ्नकरंसदा ॥ पुरींभोगवतींगत्वापराजित्यचवासुकिम् ॥ १३ ॥ तक्षकस्यप्रियांभार्यांपराजित्यजहारयः ॥ कैलासंपर्वतंगत्वाविजित्य नरवाहनम् ॥ १४ ॥ विमानंपुष्पकंतस्यकामगंवैजहारयः ॥ वनंचैत्ररथंदिव्यंनलिनींनंदनंवनम् ॥ १५ ॥ विनाशयतियःक्रोधाद्देवोद्यानानिवीर्यवान् ॥ चंद्रसूर्यौमहाभागावुत्तिष्ठंतौपरंतपौ ॥ १६ ॥ निवारयतिबाहुभ्यां यःशैलशिखरोपमः ॥ दशवर्षसहस्राणितपस्तप्त्वामहावने ॥ १७॥ पुरास्वयंभुवेधीरःशिरांस्युपजहारयः ॥ देवदानवगंधर्वपिशाचपतगोरगैः॥१८॥अभयंयस्यसंग्रामेमृत्युतोमानुषादृते॥मंत्रैरभिष्टुतंपुण्यमध्वरेषुद्विजातिभिः ॥१९॥

दिव्यवन, नलिनी, नन्दन, कानन, ॥ १५ ॥ व औरभी सबदेवताओंके उद्यानोंका विनाश क्रोधसे जिसनें करदिया है; फिर उदय होते हुए महाभाग्य चंद्रमा व सूर्योंको ॥ १६ ॥ दोनोंबाहोंसे निवारण करनेंवाला पर्वतोंके समान ऊंचा व वीर्यवान व दश हजार वर्ष वनमें तपकर ॥ १७ ॥ ब्रह्माजीको अपनें सब शिर काट २कर जिसनें चढादियेथे, देव, दानव, गन्धर्व, पिशाच, पतंग, वा उरग ॥१८॥ किसीके द्वाराभी जिसको मृत्युका भय नहीं जिसने केवल मनुष्योंको कुछ न समझ उनसे अभय नही मांगा, और ब्राह्मण लोग यज्ञोंमें मंत्र पढ२

रामचंद्रको संग्राममें जीतलेंगे ॥ २१ ॥ रावणके ऐसे वचन सुनतेही महात्मा मारीचका मुख सूख गया और वह अतिशय भयभीत हो गया ॥ २२ ॥ और चिन्ताके वश होकर अपने सूखे होठोंको जीभसे चाटनें लगा और उसके नेत्र मानों निमेषहीन होगये। मारीच आरत भावसे मृतकतुल्य होकर रावणकी ओर देखता रहगया ॥ २३ ॥ वह पहलेहीसे महावनमें श्रीरामचंद्रजीके पराक्रमको जानताथा। इसी कारणसे भयभीत और शोकित चित्तसे हाथ जोडकर रावणसे अपनें व उसके हितके करनेंवाले वचन बोला ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे षट्त्रिंशःसर्गः ॥ ३६ ॥ महातेजवान् राक्षसराजके यह वचन सुन वाक्यविशारद मारीच

तस्यरामकथांश्रुत्वामारीचस्यमहात्मनः॥शुष्कंसमभवद्वक्त्रंपरित्रस्तोबभूवच ॥२२॥ ओष्ठौपरिलिहञ्छुष्कौनेत्रैर निमिषैरिव ॥ मृतभूतइवार्तस्तुरावणंसमुदैक्षत ॥ २३ ॥ सरावणंत्रस्तविषण्णचेतामहावनेरामपराक्रमज्ञः ॥ कृतांजलिस्तत्त्वमुवाचवाक्यंहितंचतस्मैहितमात्मनश्च ॥ २४ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीम॰वा॰आ॰आरण्य॰षट्त्रिंशःसर्गः ॥ ३६ ॥ ॥ ७ ॥ तच्छ्रुत्वाराक्षसेंद्रस्यवाक्यंवाक्यविशारदः ॥ प्रत्युवाचमहातेजामारीचोराक्षसेश्वरम् ॥ १ ॥ सुलभाःपुरुषाराजन्सततंप्रियवादिनः ॥ अप्रियस्यचपथ्यस्यवक्ताभोक्ताचदुर्लभः ॥ २ ॥ ननूनंबुध्यसेरामंमहावीर्यंगुणोन्नतम्॥अयुक्तचारश्चपलोमहेंद्रवरुणोपमम्॥३॥अपिस्वस्तिभवेत्तातसर्वेषामपिरक्षसाम्॥अपिरामोनसंक्रुद्धः कुर्याल्लोकानराक्षसान्॥४॥अपितेजीवितांतायनोत्पन्नाजनकात्मजा॥अपिसीतानिमित्तंचनभवेद्व्यसनंमहत्॥५॥

उससे बोला ॥ १ ॥ हे राजन्! मुंह देखी कहनेंवाले लोग बहुत मिलतेहैं किन्तु सुननें में कुप्यारे और वास्तवमें हितकारीहों ऐसे वचनोंके कहनें सुननेंवाले दोनोंही संसारमें कम मिलतेहैं ॥२॥ एकतौ तुमनें दूतोंको नहीं नियुक्त कर रक्खाहै कि जिससे सब स्थानोंका वृत्तान्त तुमको मिलता रहै दूसरे तुम्हारा स्वभाव चंचलहै। इसी कारणसे रामचंद्र जो साक्षात् महेन्द्र और कुबेरकी समान, महावीर्यवान् और श्रेष्ठ गुणों करके युक्तहैं इस बातको तुमनें नहीं जाना ॥ ३ ॥ हे तात! रामचंद्रसे वैर करनेंमें क्या राक्षसकुलका मंगल होगा? रामचंद्र क्रोधित होनें पर क्या सर्व लोक राक्षसोंसे शून्य नहीं कर सकतेहैं? ॥ ४ ॥ क्या जानकी तुम्हाराही नाश करनेंके लिये उत्पन्न हुईहै? कहीं सीताके ले आनेंका

होकर सदाही कामभोगमें मतवाले रहतेहो और तुम किसी विषयमें किसीकाभी निषेध करना या बाधा देना नहीं मानते। इसी कारण अवश्यही जाननेंके योग्य जो इससमय भयंकर विपद् आ पहुंचीहै, तुम उसको नहीं जानते ॥ २ ॥ परन्तु जो राजा स्त्री इत्यादिक ग्राम्य भोग वस्तुओंमें सदाही आसक्त रहता, स्वेच्छाचारी और लोभी होताहै। प्रजागण मशानकी अग्निकी समान उस राजाका आदर नहीं करते ॥ ३॥ जो राजा यथाकालमें अपनें सब कार्योंको नहींकरताहै। वह राजा और उसके कार्य न करनेंसे अपने राज्य सहित विनाशको प्राप्त होताहै ॥ ४ ॥ जो राजा स्त्रीआदिकोंके आधीन रहकर दूतोंको नियुक्त करके प्रजाका हाल नहीं जानताहै। तो हाथो जिस प्रकार

सक्तंग्राम्येषुभोगेषुकामवृत्तंमहीपतिम् ॥ लुब्धंनबहुमन्यंतेश्मशानाग्निमिवप्रजाः ॥ ३ ॥ स्वयंकार्याणियःकालेनानुतिष्ठतिपार्थिवः ॥ सतुवैसहराज्येनतैश्चकार्यैर्विनश्यति ॥ ४॥ अयुक्तचारंदुर्दर्शमस्वाधीनंनराधिपम् ॥ वर्जयंतिनरादूरान्नदीपंकमिवद्विपाः ॥ ५ ॥ येनरक्षंतिविषयमस्वाधीनंनराधिपाः ॥ तेनवृद्ध्याप्रकाशंतेगिरयःसागरेयथा ॥ ६॥ आत्मवद्भिर्विगृह्यत्वंदेवगंधर्वदानवैः ॥ अयुक्तचारश्चपलःकथंराजाभविष्यसि ॥७ ॥ त्वंतुबालस्वभावश्चबुद्धिहीनश्च राक्षस ॥ ज्ञातव्यंतंनजानीषेकथंराजाभविष्यसि ॥८॥ येषांचाराश्चकोशश्चनयश्चजयतांवर ॥ अस्वाधीनानरेंद्राणां प्राकृतैस्तेजनैःसमाः ॥ ९ ॥

दूरसेही दल २ वाली नदीको त्याग करके चले जातेहैं, प्रजा लोगभी वैसेही उस राजाको त्याग देतेहैं ॥ ५ ॥ औरभी जो नृपतिलोग अपनें आधीनमें न आये हुए राज्योंको उपाय करकै अपनें वश नहीं करलेते। वह समुद्रमें पडेहुए पर्वतोंकी समान प्रकाश को नहीं प्राप्त होते ॥ ६ ॥ एकतो तुम स्वभावसेहो चंचलहो और दूसरे कुछ तुम आचारभी नहीं करते; भला फिर विशुद्धचित्त देव, दानव और गन्धर्वोंसे वैर करकै तुम किस प्रकार राज कर सकोगे ॥ ७ ॥ हेराक्षस! तुम बुद्धिरहित हो,बालकोंकिसा तुम्हारा स्वभावहै और जिस वातको जानना उचितहै; उसकोभी नहीं जानते भला फिर किस प्रकारसे अपने इस राज्यकी रक्षा कर सकोगे? ॥ ८ ॥ हे विजयी श्रेष्ठ! जिन राजा लोगोंके आधीन

इन्द्र जिस प्रकार देवताओंके स्वामीहैं वैसेही वहभी सब लोकोके राजाहैं ॥ १३ ॥ वह अपनें तेजसे जनककुमारी जानकीजीकी रक्षा करतेहैं तुम किस प्रकारसे उनकी जानकीको हरण करनेंकी इच्छा करतेहो ?क्योंकि उनके हरण करनेंकी इच्छा करना मानो सूर्यकी किरणको हाथसे पकड़नाहै ॥ १४ ॥ सब बाणही जिसकी शिखाहैं, धनुष और खड्ग जिसका इंधनहैं, और जिसकी त्रिसीमामें गमन करना असंभवहै सो उस राम रूप प्रज्वलित अग्निमें सहसा प्रवेश करना तुमको उचितनहींहै ॥ १५ ॥ धनुषका चढानाहीं जिसका प्रकाशित मुखहै, बाणही जिसकी दीप्तिहैं इसीसे असह्य धनुर्बाण धारण किये; इसीसे तीक्ष्ण और शत्रुओंकी सेनाके संहार कर्ता ॥ १६ ॥ कृतान्त समान रामचंद्रजीके

कथंनुतस्यवैदेहींरक्षितांस्वेनतेजसा ॥ इच्छसे प्रसभंहर्तुंप्रभामिवविवस्वतः ॥ १४॥ शरार्चिषमनाधृष्यंचापखड्गेंधनं रणे ॥ रामाग्निंसहसादीप्तंनप्रवेष्टुंत्वमर्हसि ॥ १५॥ धनुर्व्यादितदीप्तास्यंशरार्चिषममर्षणः ॥ चापबाणधरंतीक्ष्णंशत्रुसेनापहारिणम्॥१६॥राज्यंसुखंचसंत्यज्यजीवितंचेष्टमात्मनः ॥ नात्यासादयितुंतातरामांतकमिहार्हसि ॥ १७॥ अप्रमेयंहितत्तेजोयस्यसाजनकात्मजा॥नत्वंसमर्थस्तांहर्तुंरामचापाश्रयांवने ॥ १८॥ तस्यवैनरसिंहस्यसिंहोरस्कस्य भामिनी॥प्राणेभ्योपिप्रियतराभार्यानित्यमनुव्रता॥१९॥नसाधर्षयितुंशक्यामैथिल्योजस्विनःप्रिया॥दीप्तस्येवहुताशस्यशिखासीतासुमध्यमा ॥२०॥किमुद्यमंव्यर्थमिमंकृत्वातेराक्षसाधिप॥दृष्टश्चेत्त्वंरणेतेनतदंतमुपजीवितम्॥२१॥

सन्मुख राज्य सुख छोडकर तुम जाओ। यदि गयेभी तो जातेही तुम्हारा नाश होजायगा॥१७॥ उनके तेजकी तुलना नहींहै; जानकी उनकीही स्त्री है, और सदाही उनके धनुर्बलका आश्रय करके वनमें वास करतीहै। तुम किसी भांतिभी जानकीको हरण नहीं करसकोगे! ॥ १८ ॥ सिंहकी समान चौडी छातीवाले नरसिंह रामचंद्रजी नित्य अनुगत सीताजीको प्राणसे भी प्यारी समझतेहैं ॥ १९ ॥ प्रज्वलित अग्निकी शिखाके समान तेजस्वी रामचंद्रजीकी प्रिय स्त्री श्यामा अवस्थावाली जानकीको हर लानेंकी किसीकोभी सामर्थ्य नहींहै ॥ २० ॥ हे राक्षसराज! तुम्हारा इस निरर्थक उद्यमसे प्रयोजन क्याहै? जो वनमें रामचंद्र कहीं तुम्हें मिलभी गये तो वहीं तुम्हारे जीवनकी इतिश्री होजायगी॥२१॥

मान जाननें लगतेहैं ॥ १७॥ सूखे काठ ढेले और धूलसेभी बहुत कार्य होसकतेहैं, परन्तु राज्यभ्रष्ट हुए राजासे कोई कार्यभी नहीं होसकता१८॥ पहराहुआ वस्त्र और मलगिजी माला जिसप्रकार किसीकार्यकी नहींहोती। राज्यभ्रष्ट राजाभी वैसेही शांतिसम्पन्न होकरभी निरर्थक कहाताहै ॥ १९ ॥ जो राजा प्रमादहीन, सर्वज्ञ भली भांतिसे जितेन्द्रिय,कृतज्ञ, और धर्ममें रतहोतेहैं वही राजपदपर चिरस्थाई होतेहैं ॥ २० ॥ जो राजा नेत्रोंसे निद्रित होनेपरभी नीतिरूप नेत्र विस्तार करके जागतेरहतेहैं; और जिनका क्रोध, व प्रसन्नता कार्यके समय प्रगटहो, वह राजाही लोकसमाजमें पूजे जातेहैं ॥ २१ ॥ परन्तु हे रावण! तुम कुबुद्धि और इन समस्त गुणोंसे रहितहो, कारण कि राक्षसोंका वह सर्व नाशहुआ

शुष्ककाष्ठैर्भवेत्कार्यंलोष्ठैरपिचपांसुभिः॥नतुस्थानात्परिभ्रष्टैःकार्यंस्याद्वसुधाधिपैः॥१८॥ उपभुक्तंयथावासःस्रजोवामृदितायथा ॥ एवंराज्यात्परिभ्रष्टःसमर्थोऽपिनिरर्थकः ॥ १९ ॥ अप्रमत्तश्चयोराजासर्वज्ञोविजितेंद्रियः ॥ कृतज्ञोधर्मशीलश्चसराजातिष्ठतेचिरम् ॥ २० ॥ नयनाभ्यांप्रसुप्तोवाजागर्तिनयचक्षुषा ॥ व्यक्तक्रोधप्रसादश्चसराजापूज्यतेजनैः ॥ २१ ॥ त्वंतुरावणदुर्बुद्धिर्गुणैरेतैर्विवर्जितः ॥ यस्यतेऽविदितश्चारैरक्षसांसुमहान्वधः ॥ २२ ॥ परावमंताविषयेषुसंगवान्नदेशकालप्रविभागतत्त्ववित् ॥ अयुक्तबुद्धिर्गुणदोषनिश्चयेविपन्नराज्योनचिराद्विपत्स्यते ॥ २३ ॥ इतिस्वदोषान्परिकीर्तितांस्तयासमीक्ष्यबुद्ध्याक्षणदाचरेश्वरः ॥ धनेनदर्पेणबलेनचान्वितोविचिंतयामासचिरंसरावणः ॥ २४ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेत्रयस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३३ ॥ ॥ ७ ॥

और तुमनें दूतोंके द्वारा उसका कुछ वृत्तान्त न जाना ॥ २२ ॥ तुम केवल पराया अपमान करतेहो, सदाही भोगविलासमें मतवाले बने रहते हो देशकालका निश्चय करना नहीं जानते,और गुण दोषका विचार करनेका सामर्थ्य तुम्हारी बुद्धि नहीं रखती,इस कारण तुमको शीघ्रही विपद्ग्रस्त और राज्यभ्रष्ट होना पडेगा ॥ २३ ॥ धन, बल, और गर्वयुक्त राक्षसनाथ रावण शूर्पणखाको इस प्रकारसे अपनें समस्तदोष कहतेहुए देखकर बहुतही देरतक मनही मन विचारकरतारहा ॥ २४ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० आ० त्रयस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३३ ॥

राजा दशरथसे यह बोले कि अमावस्या और पूर्णमासीको जब हम समाधि अवस्थामें रहेंगे उस समय इन रामचंद्रको हमारी रक्षा करनी होगी ॥ ४ ॥ हे राजन्! मारीच राक्षससे हमको घोर भय उत्पन्न हुआहै । जब ऋषिनें इस प्रकार कहा तब धर्मात्मा राजा दशरथ ॥ ५ ॥ उन महर्षि महाभाग विश्वामित्रको प्रत्युत्तर देते हुए कि रामकी अवस्था अभी सोलह वर्षसेभी कमहै और अस्त्रविद्याभी अभी इन्हें नहीं आती ॥ ६ ॥ इस कारण इनको नहीं देसकते । परन्तु तुम्हारा कार्यकरनेंके लिये हम अपनी बडी भारी चतुरंगिनी सेना सहित चलकर वहां उस निशाचरको ॥ ७ ॥ यमलोकमें पठावेंगे जोकि आपका शत्रुहै जिसका संहार करना आपको अभीष्टहै, विश्वामित्रजी राजा

मारीचान्मेभयंघोरंसमुत्पन्नंनरेश्वर ॥ इत्येवमुक्तोधर्मात्माराजादशरथस्तदा ॥ ५ ॥ प्रत्युवाचमहाभागंविश्वामित्रंमहामुनिम् ॥ ऊनद्वादशवर्षोयमकृतास्त्रश्चराघवः ॥ ६ ॥ कामंतुममतत्सैन्यंमयासहागमिष्यति ॥ बलेनचतुरंगेणस्वयमेत्यनिशाचरम् ॥ ७ ॥ वधिष्यामिमुनिश्रेष्ठशत्रुंतवयथेप्सितम् ॥ एवमुक्तःसतुमुनीराजानमिदमब्रवीत् ॥ ८ ॥ रामान्नान्यद्बलंलोकेपर्याप्तंतस्यरक्षसः ॥ देवतानामपिभवान्समरेष्वभिपालकः ॥ ९ ॥ आसीत्तवकृतंकर्मत्रिलोकविदितंनृप ॥ काममस्तिमहत्सैन्यंतिष्ठत्विहपरंतप ॥ १० ॥ बालोप्येषमहातेजाःसमर्थस्तस्यनिग्रहे ॥ गमिष्येराममादायस्वस्तितेऽस्तुपरंतप ॥ ११ ॥ इत्येवमुक्त्वासमुनिस्तमादायनृपात्मजम् ॥ जगामपरमप्रीतोविश्वामित्रःस्वमाश्रमम् ॥ १२ ॥

दशरथजीके यह वचन सुन उनसे बोले ॥ ८ ॥ यद्यपि यह सत्यहै कि आप संग्राममें देवताओंकेभी रक्षक हो और तुम्हारा किया कर्मभी तीनों लोकोंमें प्रगटहै परन्तु रामचंद्रके सिवाय और किसीका बलभी इस राक्षसका नाश करनेंमें समर्थ नहीं होगा इस कारण हेपरंतप! तुम्हारी जो बडी भारी चतुरंगिनी सेनाहै वह यहीं रहै ॥ ९ ॥ १० ॥ यह महातेजवान रामचंद्र बालक होनेंपरभी राक्षसका नाश करनेंमें समर्थ होंगे इस्से हम इनको लेजांयगे। हे राजन्! तुम्हारा कल्याणहो ॥ ११ ॥ महर्षि विश्वामित्रजी यह कहकर श्रीरामचंद्रजीको

ऋषिगणोंको अभयदे समस्त दंडकवनको मंगलमयकर दिया ॥ ११ ॥ उन आत्मज्ञानी महात्मा श्रीरामचंद्रजीने स्त्रीके वधकी शंका करके, केवल नाक कानहीं काट कर हमहींको अकेला छोडाहै ॥१२॥लक्ष्मण नाम रामचंद्रका छोटा भाई महातेजस्वी गुण और विक्रममें अपनें बडे भ्राताकी तुल्यहै, वह उनकाही अनुरागी भक्तहै। वह अतिशयबुद्धिमान् बलवान्, और वीर्यवान्है ॥ १३ ॥ विक्रममानहैं, क्रोधावि ष्टहै, सबहीके जीतनेंवाले, और आप किसीसे जीते जानेंके योग्य नहींहै और श्रीरामचंद्रजीके दहिनेंहाथ, वरन शरीरके बाहर रहनें वाले प्राणहैं ॥ १४ ॥ और रामचंद्रजीकी जो स्त्रीहै उसके नेत्र बडे २ हैं और वदन पूर्णमासीके चंद्रमाकी समानहै,रामचंद्रको बहुत प्यार करतीहैं,और वहभी सदा पतिकी

ऋषीणामभयंदत्तंकृतक्षेमाश्चदंडकाः ॥ ११ ॥ एकाकथंचिन्मुक्ताहंपरिभूयमहात्मना ॥ स्त्रीवधंशंकमानेनरामेण विदितात्मना ॥ १२ ॥ भ्राताचास्यमहातेजागुणतस्तुल्यविक्रमः ॥ अनुरक्तश्चभक्तश्चलक्ष्मणोनामवीर्यवान्॥ १३॥ अमर्षीदुर्जयोजेताविक्रांतोबुद्धिमान्बली ॥ रामस्यदक्षिणोबाहुर्नित्यंप्राणोबहिश्चरः ॥ १४ ॥ रामस्यतुविशालाक्षी पूर्णेंदुसदृशानना ॥ धर्मपत्नीप्रियानित्यंभर्तुःप्रियहितेरता ॥ १५ ॥ सासुकेशीसुनासोरूःसुरूपाचयशस्विनी ॥ देवतेववनस्यास्यराजतेश्रीरिवापरा ॥ १६ ॥ तप्तकांचनवर्णाभारक्ततुंगनखीशुभा ॥ सीतानामवरारोहावैदेहीतनुमध्यमा ॥ १७ ॥ नैवदेवीनगंधर्वीनयक्षीनचाकिन्नरी ॥ तथारूपामयानारीदृष्टपूर्वामहीतले ॥ १८ ॥ यस्यसीताभवेद्भार्यायंचतुष्टापरिष्वजेत् ॥ अभिजीवेत्ससर्वेषुलोकेष्वपिपुरंदरात् ॥ १९ ॥

प्यारी और हितकरनेंवाला कार्य करती रहतीहैं ॥१५॥ उस यशस्विनी रामचंद्रजीकी स्त्रीके केश, नासिका,उरू और रूप अति उत्तमहैं।वह मानों उस बनकी अधिष्ठात्री देवी और दूसरी लक्ष्मीकी समान विराजमान होरहीहैं ॥ १६ ॥ उनके वर्णकी ज्योति तपाये हुए सुवर्णकी समानहै, कमर पतली और नखोंकी पंक्तिका शिर लालहै।वह अतिशय सुन्दरता युक्तहैं और सब स्त्रियोंकी शिरोमणिहैं, उन्होंनें विदेह वंशमें जन्म ग्रहण कियाहै, और वह सीतानामसे संसारमें विख्यातहैं ॥ १७ ॥ न देवी न गन्धर्वी न यक्षिणी, न किन्नरी किसीकीभी सुन्दरताई उनकी शोभाके संगमें नही चलसकती यहांतक कि कभी हमनें इस पृथ्वीपर इस प्रकारकी रूपवानरमणी नहीं देखीथी ॥ १८ ॥ वह सीता जिसकी स्त्रीहों, और वह जिसको

गंभीर समुद्रके जलमें गिरे और बहुत देरके पीछे चैतन्यता प्राप्त कर लंकामें आये ॥ २१ ॥ इस प्रकारसे हमनें तो रक्षा पाई। परन्तु कठिन कर्म करनेंवाले रामचंद्रनें अशिक्षितास्त्र और बालक होनेपरभी हमारे सहाय सब राक्षसोंको मार डाला ॥ २२ ॥ इसी कारणसे निवारण करताहूं कि यदि तुम रामचंद्रजीके साथ युद्ध करोगे तो भयंकर विपदमें पडकर नाशको प्राप्त होजाओगे ॥ २३ ॥ और अपनें आप यत्न करके समाज उत्सवोंके देखनेवाले और क्रीडा रतिकी विधि जाननेवाले राक्षसोंके कारण वृथा संताप बटोरोगे ॥ २४ ॥ वस सीताहीके लिये, अटा, और अटारि, वा धवरहरोंसे पूर्ण नानारत्नभूषिता लंका नगरीको तुम नाशवान देखोगे ॥ २५ ॥ जिस प्रकार किसी तालावमें सर्प

पातितोऽहंतदातेनगंभीरेसागरांभसि ॥ प्राप्यसंज्ञांचिरात्तातलंकांप्रतिगतःपुरीम् ॥२१॥ एवमस्मितदामुक्तःसहाया
स्तेनिपातिताः ॥ अकृतास्त्रेणरामेणबालेनाक्लिष्टकर्मणा ॥ २२ ॥ तन्मयावार्यमाणस्तुयदिरामेणविग्रहम् ॥ करिष्य
स्यापदंघोरांक्षिप्रंप्राप्यनशिष्यसि॥२३॥ क्रीडारतिविधिज्ञानांसमाजोत्सवदर्शिनाम् ॥ रक्षसांचैवसंतापमनर्थंचाहरि
ष्यसि ॥२४॥ हर्म्यप्रासादसंबाधांनानारत्नविभूषिताम् ॥ द्रक्ष्यसित्वंपुरींलंकांविनष्टांमैथिलीकृते ॥२५॥ अकुर्वतोपि
पापानिशुचयःपापसंश्रयात् ॥ परपापैर्विनश्यंतिमत्स्यानागह्रदेयथा॥२६॥दिव्यचंदनदिग्धांगान्दिव्याभरणभूषि
तान् ॥ द्रक्ष्यस्यभिहतान्भूमौतवदोषात्तुराक्षसान् ॥२७॥ हतदारान्सदारांश्चदशविद्रवतोदिशः॥हतशेषानशरणान्द्र
क्ष्यसित्वंनिशाचरान्॥२८॥शरजालपरिक्षिप्तामग्निज्वालासमावृताम्॥प्रदग्धभवनांलंकांद्रक्ष्यसित्वमसंशयम्॥२९॥

होतेहैं तो वहांकी विचारी मछलियांभी गरुड करके मारडाली जातीहैं;इसी प्रकार जो लोक पाप नहीं करते; ऐसे शुद्धात्मा पुरुषभी, पापात्माके आश्रयमें रहनेंसे उस पापात्माके पापसे विनाशको प्राप्त होतेहैं॥ २६ ॥ इस कारण तुम देखोगे कि तुम्हारे निजके दोषसे दिव्य चंदन शरीरमें लगाये हुए; दिव्य वस्त्राभूषण पहरे हुए निशाचर गण समूल भूमियोंमें गिरेंगे ॥ २७ ॥ और आश्रयरहित राक्षस गण कोई स्त्री रहित हो कोई स्त्रीके सहित दशों दिशाओंको भागेंगे ॥ २८॥ तुम शर जालसे छाई हुई अग्निकी शिखासे पीडित हुई, ऐसी लंकापुरीके सबही गृह

शूर्पणखाके यह रोम हर्षण वचन सुन कर्तव्य स्थिरकर मंत्रियोंकी सम्मति ले रावण जनस्थानमें जानेंको तैयार हुआ ॥ १ ॥ गमन करनेंके समय उस कार्यको भली भांतिसे छानकर, और उसके सब विषयोंको भली प्रकार सोच विचार दोष गुणभी समझ लेता हुआ, बल, अबल सब जानलिया, उसनें जानकीका हरलाना महात्मा रामचंद्रसे वैर करनाही ठीकजांचा ॥ २ ॥ सब कर्त्तव्योंका मनमें निश्चय कर स्थिर बुद्धिहो प्रथम रमणीक यानशालामें गया ॥ ३ ॥ और यानशालामेंपहुंच कर राक्षसराज रावण गुप्त भावसे सारथिसे बोला कि शीघ्रही रथ तैयार करो ॥ ४ ॥ रावणके ऐसा कहतेही एक क्षणमें जल्दबाज सारथिनें जो रथ रावणकी इच्छानुसार था उस रथको सजाया ॥ ५ ॥

ततःशूर्पणखावाक्यंतच्छ्रुत्वारोमहर्षणम्॥ सचिवानभ्यनुज्ञायकार्यंबुद्ध्वाजगामह ॥ १ ॥ तत्कार्यमनुगम्यांतर्यथा वदुपलभ्यच ॥ दोषाणांचगुणानांचसंप्रधार्यबलाबलम् ॥ २ ॥ इतिकर्तव्यमित्येवकृत्वानिश्चयमात्मनः ॥ स्थिरबुद्धिस्ततोरम्यांयानशालांजगामह ॥ ३ ॥ यानशालांततोगत्वाप्रच्छन्नंराक्षसाधिपः ॥ सूतंसंचोदयामासरथःसंयुज्यतामिति ॥ ४ ॥ एवमुक्तःक्षणेनैवसारथिर्लघुविक्रमः ॥ रथंसंयोजयामासतस्याभिमतमुत्तमम् ॥ ५ ॥ कामगंरथमास्थायकांचनंरत्नभूषितम् ॥ पिशाचवदनैर्युक्तंखरैःकनकभूषणैः ॥ ६ ॥ मेघप्रतिमनादेनसनेतधनदानुजः ॥ राक्षसाधिपतिःश्रीमान्ययौनदनदीपतिम् ॥ ७ ॥ सश्वेतवालव्यजनःश्वेतच्छत्रोदशाननः ॥ स्निग्धवैदूर्यसंकाशस्तप्तकांचनभूषणः ॥ ८ ॥ दशग्रीवोविंशतिभुजोदर्शनीयपरिच्छदः ॥ त्रिदशारिर्मुनींद्रघ्नोदशशीर्षइवाद्रिराट् ॥ ९

रावण उस इच्छानुसार कंचनसे बने हुए रत्नभूषित पिशाचवदनवाले गधे जिसमें जुते हुए, ऐसे रथ पर सवार हुआ ॥ ६ ॥ जब वह रथ चला तब उसका शब्द मेघोंके गर्जनेंकी समान होताथा। कुबेरका छोटाभाई राक्षसपति श्रीमान् दशानन उस रथपर चढ, नदनदीपति समुद्रकी ओर चला ॥ ७ ॥ रावणके ऊपर जो चमर और छत्र लगेथे वहदोनों श्वेतथे, रावणके देहकी कांति वैदूर्यमणिके समान नीलीथी, वह सब तपाये हुए सुवर्णके भूषण पहरे हुएथा ॥ ८ ॥ उसके दशमुख, दशमस्तक, दश गर्दन, और वीस भुजा, देवगणोंके शत्रु, और मुनि

अग्निहोत्र होतेथे, वहींपर तपस्वियोंको संहार भक्षण करते हुए हम घूमतेथे ॥ ४ ॥ उस दंडक वनमें धर्मात्मा ऋषिगणोंको संहार २ उनका रुधिर पान करके मांस खा जातेथे ॥५ ॥ और महा कुटिल स्वभाववाले हो जो कोई मिलता उसे भय उपजाते, इस भांति रुधिर पीनेंसे मतवाले हो हम दंडकवनमें घूमतेथे ॥ ६ ॥ जब तपस्वी धर्मका अवलंबनकिये हुए रामचंद्रको हमनें पीडित किया जबकि वह वनमें फिरतेथे ॥ ७ ॥ व महाभाग्यवाली जानकीजीकोभी डरवाया, तब महारथी, तपस्वीरूप सब प्राणियोंका हित करनेंमे तत्पर लक्ष्मणजीकोभी पीडित किया ॥ ८ ॥ फिर महाबलवान् वनमें घूमनेंवाले, रामचंद्रजीको तपस्वी मान पहले वैरका स्मरण कर ॥ ९ ॥ मार डालनेकी इच्छासे

निहत्यदंडकारण्येतापसान्धर्मचारिणः ॥ रुधिराणिपिबंस्तेषांतन्मांसानिचभक्षयन् ॥ ५ ॥ ऋषिमांसाशनः क्रूरस्त्रासयन्वनगोचरान् ॥ तदारुधिरमत्तोऽहंव्यचरंदंडकावनम् ॥ ६ ॥ तदाहंदंडकारण्येविचरन्धर्मदूषकः ॥ आसादयंतदारामंतापसंधर्ममाश्रितम् ॥ ७ ॥ वैदेहींचमहाभागांलक्ष्मणंचमहारथम् ॥ तापसंनियताहारंसर्वभूत हितेरतम् ॥ ८ ॥ सोऽहंवनगतंराममंपरिभूयमहाबलम् ॥ तापसोऽयमितिज्ञात्वापूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ९ ॥ अभ्यधावं सुसंक्रुद्धस्तीक्ष्णशृंगोमृगाकृतिः ॥ जिघांसुरकृतप्रज्ञस्तंप्रहारमनुस्मरन् ॥ १० ॥ तेनत्यक्तास्त्रयोबाणाःशिताःशत्रु निबर्हणाः ॥ विकृष्यसुमहच्चापंसुपर्णानिलतुल्यगाः॥ ११॥ तेबाणावज्रसंकाशाःसुघोरारक्तभोजनाः ॥ आजग्मुःसहि ताःसर्वेत्रयःसन्नतपर्वणः ॥ १२॥ पराक्रमज्ञोरामस्यशठोदृष्टभयःपुरा॥समुत्क्रांतस्ततोमुक्तस्तावुभौराक्षसौहतौ॥ १३॥

क्रोधित हो, यद्यपि उनके पराक्रमको जानतेथे तथापि अपने बडे २ सींगआगेको झुकाय उनपर धावित हुए ॥ १०॥ तब उन्होंनें कानके समीप तक धनुषको खेंचकर तीन नाराच हम तीन मृगोंके ऊपर चलाये, वहबाण गरुड व पवनकी गति समान चले ॥ ११ ॥ वह वज्रसम आकार वाले, अति घोर रक्त पीनेंवाले बाण हम तीनोंके ऊपर आगमन करनेलगे ॥ १२ ॥ हम बडे मूर्ख हैं, इस कारण पहलेही रामचंद्रसे भय देखकर उनका पराक्रम भली भांति जानतेथे तौभी लडे परन्तु हम तो भागकर किसी रीतिसे बचगये! परन्तु वह हमारे सहाई

हंस, क्रौञ्च, मण्डूक, और सारस समूह चारों ओर बोलरहेथे । वैदूर्यमणिके समान नीलवर्णके पत्थर वहां पर विराजतेथे और समुद्र तरंगोंकी हिल्लोल वश वह देश सदाही शीतल और स्निग्ध भावकरके युक्तथा ॥ १८ ॥ इन सब वस्तु ओंके सिवाय, रावण दिव्य माला युक्त, गीत और वाजोंकी ध्वनि जिसमें होरही ऐसे श्वेत वर्ण विशालविमानपर चढा रावण चारों ओर देखनें लगा ॥ १९ ॥ जिन लोगोंनें अपनें तपोबलसे अनेक लोकोंको जीत लियाहै और इच्छाचारीविमानों पर जो बैठेहैं; कुबेरके छोटे भाई रावणनें जानेंके समय मार्गमें उन गन्धर्व गणोंको अप्सराओंके साथ देखा ॥ २० ॥ वहां पर वनमे गोंद रसमूल सहित हजारों सुन्दर, नासिकाको अपनी सुगन्धिसे तृप्त

हंसक्रौंचप्लवाकीर्णसारसैःसंप्रसादितम् ॥ वैदूर्यप्रस्तरंस्निग्धंसांद्रंसागरतेजसा ॥ १८ ॥ पांडुराणिविशाला निदिव्यमाल्ययुतानिच ॥ तूर्यगीताभिजुष्टानिविमानानिसमंततः ॥ १९ ॥ तपसाजितलोकानांकामगान्यभिसं पतन् ॥ गंधर्वाप्सरसश्चैवददर्शधनदानुजः ॥ २० ॥ निर्यासरससमूलानांचंदनानांसहस्रशः ॥ वनानिपश्यन्सौम्या निघ्राणतृप्तिकराणिच ॥ २१ ॥ अगुरूणांचमुख्यानांवनान्युपवनानिच ॥ तक्कोलानांचजात्यानांफलानांचसुगंधि नाम् ॥ २२ ॥ पुष्पाणिचतमालस्यगुल्मानिमरिचस्यच ॥ मुक्तानांचसमूहानिशुष्यमाणानितीरतः ॥ २३ ॥ शै लानिप्रवरांश्चैवप्रवालनिचयांस्तथा ॥ कांचनानिचशृंगाणिराजतानितथैवच ॥ २४ ॥ प्रस्रवाणिमनोज्ञानिप्रसन्ना न्यद्भुतानिच ॥ धनधान्योपपन्नानिस्त्रीरत्नैरावृतानिच ॥ २५ ॥ हस्त्यश्वरथगाढानिनगराणिविलोकयन् ॥ तंस मंसर्वतःस्निग्धंमृदुसंस्पर्शमारुतम् ॥ २६ ॥

करनेंवाले चंदनके वृक्ष देखे ॥ २१ ॥ अगरके मुख्य वन उपवन अंकोल वृक्षोंके सुगन्धित पुष्पित और जायफलके फलित वन उप वनादि देखे ॥ २२ ॥ तमालनाम यक वृक्षके फूल, और काली मिरच गुल्मसमूह समुद्रके किनारे फूले व मोतियोंके समूहगिरे हुए देखे ॥२३॥ पर्वत व मूगोंकी चटानोंके समूह व चांदी सुवर्णके शृंगभी रावणनें देखे ॥ २४ ॥ सुविमल जल पूर्ण अद्भुत मनोहर सोते धन धान्यके सहित स्त्री रत्न युक्त ॥ २५ ॥ हाथी घोडे सहित अनेक प्रकारके नगर देखताहुआ, रावणनें शीतल मंद सुगन्ध पवन सहित ॥ २६ ॥

अपराध करनेंसे सपरिवार विनाशको प्राप्त हुए हैं ॥ २१ ॥इसी प्रकार तुम्हारे अपराधसे हमको नाश होना पडेगा. हेनिशाचर जो तुम्हारी इच्छाहो सो करो, परंतु हम तुम्हारे साथ नहीं चलेंगे, हमें अपनें प्राण प्यारेहैं ॥ २२ ॥ वह महातेजवान् महाबुद्धिमान्, महा बलवान् रामचंद्रजी वास्तवमेंही निशाचरों के कालहैं ॥ २३॥ यद्यपि पहले जनस्थानका रहनेंवाला अपावन खर, शूर्पणखाके लिये रामचं द्रसे मार डाला गयाहै, परन्तु इस विषयमें रामचंद्रजीका क्या अपराध हैसो तुम्हीं सत्य २ कहो ॥ २४ ॥ तुम हमारे बन्धुहो इस कारणसे हमनें तुम्हारे मंगलकेही लिये यह सत्य वचन कहे, यदि तुम हमारे वचनोंको न मानकर रामचंद्रसे वैर करोगे

सोऽहंपरापराधेनविनशेयंनिशाचर ॥ कुरुयत्तेक्षमंतत्त्वमहंत्वांनानुयामिवै ॥ २२ ॥ रामश्चहिमहातेजामहासत्त्वो महाबलः ॥ अपिराक्षसलोकस्यभवेदंतकरोऽपिहि ॥ २३ ॥ यदिशूर्पणखाहेतोर्जनस्थानगतःखरः ॥ अतिवृत्तोहतः पूर्वंरामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ अत्रब्रूहियथातत्त्वंकोरामस्यव्यतिक्रमः ॥ २४ ॥ इदंवचोबंधुहितार्थिनामयायथोच्य मानंयदिनाभिपत्स्यसे ॥ सबांधवस्त्यक्ष्यसिजीवितंरणेहतोऽद्यरामेणशरैरजिह्मगैः ॥ २५ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामा यणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेएकोनचत्वारिंशःसर्गः॥३९॥ ॥ छ॥ ॥ मारीचस्यतुतद्वाक्यंक्षमंयुक्तं चरावणः॥ उक्तोनप्रतिजग्राहमर्तुकामइवौषधम् ॥ १ ॥ तंपथ्यहितवक्तारंमारीचंराक्षसाधिपः॥ अब्रवीत्परुषंवाक्य मयुक्तंकालचोदितः ॥ २ ॥ दुष्कुलैतदयुक्तार्थंमारीचमयिकथ्यते ॥ वाक्यंनिष्फलमत्यर्थंबीजमुप्तमिवोखरे ॥ ३॥ त्वद्वाक्यैर्नतुमांशक्यंभेत्तुंरामस्यसंयुगे ॥ मूर्खस्यपापशीलस्यमानुषस्यविशेषतः ॥ ४ ॥

तो निश्चयही बन्धु बान्धवों सहित रामचंद्रजीके बाणोंसे युद्धमें विनाशको प्राप्तहो तुमको प्राण परित्याग करना पडेगा ॥२५॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे एकोनचत्वारिंशःसर्गः ॥ ३९ ॥ जिस प्रकार मृत्यु जिसकी निकटहै ऐसा रोगी औषधि ग्रहण नहीं करता ऐसेही सहनेंके योग्य व उचित मारीचके वचन रावणनें ग्रहणनहीं किये ॥ १ ॥ उस काल प्रेरित निशाचरपति रावणनें मंगलजनक और युक्तियुक्त संग वचन कहनें वाले मारीचसे अयोग्य व कठोर वचनकहे ॥२॥३॥ हे मारीच ! तुमनें जो यह प्रतिकूल वचन हमसे कहे, यह

अनुज रावण गरुड चिन्हित महर्षिगण सेवित सुभद्र नामक इस वट वृक्षको देखता हुआ॥३६॥ वहांसे नदीपति समुद्रके दूसरीपार जाकर दूसरे वनमें परम पवित्र रमणीक एक निर्जन आश्रम रावणनें देखा ॥ ३७ ॥ रावणनें देखा कि मारीच नामक निशाचर मृगचर्म और जटाजूट धारण करके नियताहार कर वहां वास करताहै ॥ ३८ ॥ राक्षस मारीच रावणको देखतेही मिला और यथा विधानसे विविध भांतिकी अमानुषी भोग्य वस्तुओंसे रावणकी पूजा करता हुआ ॥ ३९ ॥ इस प्रकार भोजनकी सामग्री व जलसे स्वयं रावणकी पूजाकर मारीच अर्थ युक्त वचन

तंतुगत्वापरंपारंसमुद्रस्यनदीपतेः॥ददर्शाश्रममेकांतेपुण्येरम्येवनांतरे ॥ ३७॥ तत्रकृष्णाजिनधरंजटामंडलधारिणम् ॥ ददर्शनियताहारंमारीचंनामराक्षसम् ॥ ३८ ॥ सरावणःसमागम्यविधिवत्तेनरक्षसा ॥ मारीचेनार्चितो राजासर्वकामैरमानुषैः॥३९॥तंस्वयंपूजयित्वाचभोजनेनोदकेनच॥अथोपहितयावाचामारीचोवाक्यमब्रवीत्४०॥ कच्चित्तेकुशलंराजन्लंकायांराक्षसेश्वर ॥ केनार्थेनपुनस्त्वंवैतूर्णमेवइहागतः ॥ ४१ ॥ एवमुक्तोमहातेजामारीचेनस रावणः॥ततःपश्चादिदंवाक्यमब्रवीद्वाक्यकोविदः ॥४२॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्य कांडेपंचत्रिंशःसर्गः ॥ ३५ ॥ मारीचश्रूयतांतातवचनंममभाषतः ॥ आर्तोस्मिममचार्तस्यभवान्हिपरमागतिः॥१॥ जानीषेत्वंजनस्थानंभ्रातायत्रखरोमम ॥ दूषणश्चमहाबाहुःस्वसाशूर्पणखाचमे ॥ २ ॥

बोला ॥ ४० ॥ राजन्! राक्षसेश्वर! आपकी और लंकाकी कुशलतो है?फिर आप किस कारणसे यहां शीघ्रही पधारे हैं? ॥ ४१ ॥ जब मारीचनें ऐसा कहा तब वचन बोलनेंमें चतुर महातेजस्वी रावणनें इसप्रकार कहना आरंभ किया ॥ ४२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे पंचत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥ तात मारीच! कहताहूं श्रवण करो। हम बडे दुःखीहैं, तुमही विपदके समय हमारी परम गतिहो ॥ १ ॥ जिस स्थानमें हमारा भाई खर और महाबाहु दूषण व बहन शूर्पणखा रहा करतीथी उस जनस्थानको तुम

शीतलताई, यमराजकी समान दंडता, और वरुणके समान प्रसन्नताहोतीहै ॥ १३ ॥ इस कारणसे सबही अवसरमें उनकी पूजा व सन्मान करना योग्यताहै । तुम धर्मका विषय कुछभी न जानकर केवल मायाकेही आधीन हो रहेहो ॥ १४ ॥ इसीसे तुम्हारे ग्रहमें आनें पर भी तुमनें हमारी पूजा न की, वरन दौरात्मके वश होकर ऐसे कठोर वचन कहताहै हे राक्षस ! हमनें तुमसे इस कार्यके गुण दोष नहीं पूछे न यह कि इस कार्यका करना कर्तव्यहै, अथवा नहीं ॥ १५ ॥ हे अमितविक्रम! हमनें तो तुमसे यही कहाथा कि तुम इस कार्यमें हमारी सहायता करो ॥ १६ ॥ यह मोरे वचनानुसार जो कार्य तुमको करनाहोगा हम उसको कहतेहैं तुम श्रवणकरो कि तुम रजतबिन्दु विचित्र सुवर्ण मृग होकर

तस्मात्सर्वास्ववस्थासुमान्याःपूज्याश्चनित्यदा ॥ त्वंतुधर्ममविज्ञायकेवलंमोहमाश्रितः ॥ १४ ॥ अभ्यागतंतुदौरा त्म्यात्परुषंवदसीदृशम् ॥ गुणदोषौनपृच्छामिक्षयंचात्मनिराक्षस ॥ १५ ॥ मयोक्तमपिचैतावत्त्वांप्रत्यमितविक्रम ॥ अस्मिंस्तुसभवान्कृत्येसाहाय्यंकर्तुमर्हसि ॥ १६ ॥ शृणुतत्कर्मसाहाय्येयत्कार्यंवचनान्मम ॥ सौवर्णस्त्वंमृगोभूत्वाचि त्रोरजतबिंदुभिः ॥ १७ ॥ आश्रमेतस्यरामस्यसीतायाःप्रमुखेचर ॥ प्रलोभयित्वावैदेहींयथेष्टंगंतुमर्हसि ॥ १८ ॥ त्वांहि मायामयंदृष्ट्वाकांचनंजातविस्मया ॥ आनयैनमितिक्षिप्रंरामंवक्ष्यतिमैथिली ॥ १९ ॥ अपक्रांतेचकाकुत्स्थेदूरंगत्वा प्युदाहर ॥ हासीतेलक्ष्मणेत्येवंरामवाक्यानुरूपकम् ॥ २० ॥ तच्छ्रुत्वारामपदवींसीतयाचप्रचोदितः ॥ अनुगच्छ तिसंभ्रांतंसौमित्रिरपिसौहृदात् ॥ २१ ॥

॥ १७ ॥ उन रामचंद्रके आश्रममें जायकर विदेहराजकुमारी सीताके सामनें विचरण कर उनको लुभा हमारे अभिलषित स्थानमें चले जाओ ॥ १८ ॥ जनककुमारी सीताजी तुमको मायामयको सुवर्णका देखकर विस्मयको प्राप्त हो रामसे शीघ्र मृगके ले आनेंको कहेगी ॥ १९ ॥ तिसके पश्चात् जब काकुत्स्थनंदन राम आश्रमसे बाहर आकर तुम्हारेपीछे धावैं तब तुम उनको बहुत दूर तक ले जाना, और वहां ठीक रामचंद्रजीके बोलसा शब्द बनाकर बड़े जोरसे "हा सीता ! हा लक्ष्मण ! " ऐसा वचन उच्चारण करना ॥ २० ॥ तब ऐसा शब्द सुन करके सीता

प्राणियोंका अहित करनेमें रत रहतेहैं जिसनें विना वैरही केवल अपन बलके घमंडमें आय ॥ १२ ॥ नाक कान काटकर हमारी बहन शूर्पणखाको विरूप करदिया । इस कारण जनस्थानसे उसकी स्त्री सीता जोकि देवताओंसेभी चढकर रूपमें है ॥१३॥हम अपने विक्रमसे ले आमेंगे तुमको हमारी सहायता करनी होगी, तुम महाबलवान् सहायके साथ॥१४॥व अपने भाइयोंके संग हम सारे देवताओंकोभी कुछ नहीं गिनते, तिससे हे मारीच! तुम हमारे इस विषयमें सहायक हो क्योंकि तुम समर्थहो ॥ १५ ॥ तुम महाशूरहो और सब प्रकारकी माया जानतेहो, वीर्यमें, युद्धमें, दर्पमें और उपायमें तुम्हारी समान दूसरा कोई नहींहै ॥ १६ ॥ हे निशाचर! इसी कारणसे इस समय हम तुम्हारे समीप

कर्णनासापहारेणभागिनीमेविरूपिता ॥ अस्यभार्यांजनस्थानात्सीतांसुरसुतोपमाम्॥१३॥आनयिष्यामिविक्रम्यसहायस्तत्रमेभव ॥ त्वयाह्यहंसहायेनपार्श्वस्थेनमहाबल ॥ १४ ॥ भ्रातृभिश्चसुरान्सर्वान्नाहमत्राभिचिंतये ॥ तत्सहायोभवत्वंमेसमर्थोह्यसिराक्षस॥१५॥ वीर्येयुद्धेचदर्पेचनह्यस्तिसदृशस्तव॥उपायतोमहाञ्छूरोमहामायाविशारदः ॥१६॥ एतदर्थमहंप्राप्तस्त्वत्समीपंनिशाचर॥ शृणुतत्कर्मसाहाय्येयत्कार्यंवचनान्मम ॥१७॥ सौवर्णस्त्वंमृगोभूत्वाचित्रोरजतबिंदुभिः ॥ आश्रमेतस्यरामस्यसीतायाःप्रमुखेचर॥१८॥त्वांतुनिःसंशयंसीतादृष्ट्वातुमृगरूपिणम् ॥ गृह्यतामितिभर्तारंलक्ष्मणंचाभिधास्यति ॥ १९ ॥ ततस्तयोरपायेतुशून्येसीतांयथासुखम् ॥ निराबाधोहरिष्यामिराहुश्चंद्रप्रभामिव ॥ २० ॥ ततःपश्चात्सुखंरामेभार्याहरणकर्शिते ॥ विस्रब्धंप्रहरिष्यामिकृतार्थेनांतरात्मना ॥ २१ ॥

आयेहैं, इस समय हमारी सहायता करनेंके लिये जो कुछ तुमको करनाहोगा, सो हम कहतेहैं; तुम श्रवण करो ॥ १७॥ तुम चांदीकी विन्दिये युक्त स्वर्णके मृग बनकर रामचंद्रके आश्रममें जा सीताके सामनें इधर उधर फिरना ॥ १८ ॥ सीता मृगरूपी तुमको देखकर निःसन्देहही अपने स्वामी रामचंद्र और लक्ष्मणसे यह कहैगी कि इस मृगको पकडदो ॥ १९ ॥ जब वह रामचंद्र और लक्ष्मण मृगको पकडनेंके लिये आश्रमसे दूर निकल जांयगे तब हम शून्य आश्रम पाकर सुख सहित निर्विघ्नले आवेंगे; जिस प्रकार राहु चंद्रमाकी प्रभाको हरण कर लेता है ॥२०॥ जब उनकी स्त्री हर लीजायगी तब रामचंद्र शोकके मारे दुर्बल होजांयगे तब कृतार्थ होकर यथासुख और निःशंक चित्तसे

आज्ञा पाकर शंका रहित चित्तसे यह कठोर वचन बोला ॥ १ ॥ कि हे निशाचरराज! किस पाप कर्म करनेंवाले पुरुषनें तुम्हें राज्य मंत्रिवर्ग, और पुत्रोंके सहित विनाश होनेंका यह उपदेश दियाहै ? ॥ २ ॥ कौन पापात्मा तुम्हारे सुखसे सुखीनहीं हो सकताहै? किस पापीनें उपायके छलसे यह तुम्हारी मृत्युका उपाय तुम्हें बतला दियाहै? ॥ ३ ॥ हे राक्षसनाथ! तुम्हारे हीन वीर्य शत्रु लोग, निश्चयही बलवान् पुरुषके साथ तुम्हारा विरोध कराकर तुम्हारा नाश होता देखनेके अभिलाषी हुएहैं॥४॥हे रावण! किस दुष्ट बुद्धि वालेने तुमको ऐसा उपदेश दियाहै? उस दुष्टका यही अभिलाषहै कि तुम अपने कर्मोंके प्रभावसेही नाशको प्राप्त होओ॥ ५ ॥ हे रावण! मंत्रिगण किसी प्रकारसे मार डालनेंके योग्य नहीं

केनायमुपदिष्टस्तेविनाशःपापकर्मणा ॥ सपुत्रस्यसराज्यस्यसामात्यस्यनिशाचर ॥ २ ॥ कस्त्वयासुखिनाराज न्नाभिनंदतिपापकृत् ॥ केनेदमुपदिष्टंतेमृत्युद्वारमुपायतः ॥ ३ ॥ शत्रवस्तवसुव्यक्तंहीनवीर्यानिशाचर ॥ इच्छंतित्वांविनश्यंतमुपरुद्धंबलीयसा ॥ ४ ॥ केनेदमुपदिष्टंतेक्षुद्रेणाहितबुद्धिना ॥ यस्त्वामिच्छतिनश्यंतंस्वकृते ननिशाचर ॥ ५ ॥ वध्याःखलुनवध्यंतेसचिवास्तवरावण ॥ येत्वामुत्पथमारूढंननिगृह्णंतिसर्वशः ॥ ६ ॥ अमात्यैः कामवृत्तोहिराजाकापथमाश्रितः ॥ निग्राह्यःसर्वथासद्भिःसनिग्राह्योनगृह्यसे ॥ ७ ॥ धर्ममर्थंचकामंचयशश्चजय तांवर ॥ स्वामिप्रसादात्सचिवाःप्राप्नुवंतिनिशाचर ॥ ८ ॥ विपर्ययेतुतत्सर्वंव्यर्थंभवतिरावण ॥ व्यसनंस्वामिवै गुण्यात्प्राप्नुवंतीतरेजनाः ॥९॥ राजमूलोहिधर्मश्चयशश्चजयतांवर॥ तस्मात्सर्वास्ववस्थासुरक्षितव्यानराधिपाः॥१०॥

होते, परन्तु जो खोटे रस्ते में चलनेंसे तुमको नहीं रोकते, वही मारडालनेंके लायकहैं ॥ ६ ॥ देखो तुम कामके वश होकर खोटे मार्ग में चलना चाहतेहो, और तुम्हारे मंत्री तथापि तुमको सब प्रकारसे नहीं रोकते ॥७॥ हे निशाचर! हे विजय करनें वालों में उत्तम! मंत्रिगण अपनें स्वामी कीही प्रसन्नतासे, अर्थ, धर्म, काम व यशको प्राप्त होतेहैं ॥ ८ ॥ और जो स्वामीकीही प्रसन्नता नहुई तो सबही व्यर्थ जाताहै और स्वामी के गुणोंमें विकार होनेंके कारण सबही दुःख पातेहैं, और प्रजापर भी महाभय प्राप्त होताहै ॥ ९ ॥ नरपाल प्रजाओंके यश व धर्मकी प्राप्तिके

यह व्यौहार तुम्हारे दुःखका कारण नहो ? ॥ ५ ॥ तुम इच्छानुसार चलनेंवाले और निरंकुशहो अर्थात् तुम्हारा कहनें सुन्नेवाला कोई नहींहै । इसकारण तुम्हारे राजा होते समस्त लंका तुम्हारें और सर्व राक्षसोंके साथ क्या विनष्ट नहीं होगी ! अर्थात् अवश्य होगी ॥ ६॥ तुम्हारी समान जो राजा, बुरे शीलवाला, पाप बुद्धि और इच्छानुसार चलनेंवाला होताहै, वह राजा अपनेको, समस्त राज्यको अपने कुटुंबियोको नाश करनेंका कारण होताहै ॥ ७ ॥ रामचंद्र अपनें पिताकरके नहीं त्यागे गयेहैं । वह मर्यादा रहित भी नहींहै, अथवा, लोभी, दुःशील और क्षत्रियवंशके नाशकभी नहीहैं ॥ ८ ॥ कौशल्याकुमार अपनी माताके आनंदको बढानेंवाले धर्मसे वा गुणोंसे हीन नहींहैं; उ

अपित्वामीश्वरंप्राप्यकामवृत्तंनिरंकुशम् ॥ नविनश्येत्पुरीलंकात्वयासहसराक्षसा ॥ ६ ॥ त्वद्विधःकामवृत्तोहिदुःशीलःपापमंत्रितः ॥ आत्मानंस्वजनंराष्ट्रंसराजाहंतिदुर्मतिः ॥ ७ ॥ नचपित्रापरित्यक्तोनामर्यादःकथंचन ॥ नलुब्धोनचदुःशीलोनचक्षत्रियपांसनः ॥ ८ ॥ नचधर्मगुणैर्हीनःकौसल्यानंदवर्धनः ॥ नचतीक्ष्णोहिभूतानांसर्वभूतहितेरतः ॥ ९ ॥ वंचितंपितरंदृष्ट्वाकैकेय्यासत्यवादिनम् ॥ करिष्यामीतिधर्मात्माततःप्रव्रजितोवनम् ॥ १० ॥ कैकेय्याःप्रियकामार्थंपितुर्दशरथस्यच ॥ हित्वाराज्यंचभोगांश्चप्रविष्टोदंडकावनम् ॥ ११ ॥ नरामःकर्कशस्तातनाविद्वान्नाजितेंद्रियः ॥ अनृतंनश्रुतंचैवनैवत्वंवक्तुमर्हसि ॥ १२ ॥ रामोविग्रहवान्धर्मःसाधुःसत्यपराक्रमः ॥ राजासर्वस्यलोकस्यदेवानामिववासवः ॥ १३ ॥

नका तीक्ष्ण स्वभाव नहींहैं । और वह सदा सब प्राणियोंका अहित करनेंमें रतभी नहींहैं वरन सबका हित करनेंमें तत्परहैं ॥ ९ ॥ अपनें सत्यवादी पिताको कैकेयी करके ठगाहुआ देखकर, वह उनके सत्यकी रक्षा करनेके लिये रामचंद्रजी वनको चले आयेहैं ॥ १० ॥ और पिता दशरथ, व रानी केकेयीका प्रिय कार्य करनेंकी वासनासे, राज्यसुखको जलांजलि देकर श्रीरामचंद्रजी दंडकारण्यमें आयेहैं ॥ ११ ॥ हे तात! रामचंद्र कर्कशस्वभाववालेभी नहींहैं, मूर्खभी नहींहैं, अजितेन्द्रियभी नहींहैं, और मिथ्या कहना तो दूरहै, वह इस झुंठाईके प्रसंगमेंभी नहींहैं। सो उनके प्रति ऐसे वचन कहना आपको उचित नहींहै ॥ १२ ॥ अधिक कहांतक कहूं; रामचंद्र धर्ममूर्त्तिहैं, साधूहैं; सत्यपराक्रमवानहै और

तेही मरे धरेहैं और यहभी भली भांति समझ रक्खो कि सीताको हरणकरतेही तुमभी अपने परिवार सहित मारे जाओगे॥१८॥यदि हमारे साथ मिल रामचंद्रजीको धोखादे तुम सीता महारानीको आश्रमसे लेभी आये, तौ हमारी, तुम्हारी, लंकापुरी, व निशाचर गणोंकी किसीकीभी रक्षा न होगी॥१९॥यदि तुम हमारे इनहितकारी वचनोंको न सुनकर ऐसा कार्य करनेंसे नहीं रुकोंगे तो तुम्हारा नाश हो जायगा क्योंकि जिस मनुष्यकी आयु क्षीण हो जातीहै वह किसी सुहृदके हतकारी वचनोंको नहींमाना करता॥२०॥इ०श्रीम०वा०आ०आर०एकचत्वारिंशः सर्गः ४१॥ मारीचनें राक्षसराज रावणसे ऐसे कठोर वचन कहकर, फिर उसकेभयसे भीतहो यहभी कह दिया कि अच्छा हम चलतेहैं ॥ १ ॥ वह

आनयिष्यसिचेत्सीतामाश्रमात्सहितोमया ॥ नैवत्वमपिनाहंवैनैवलंकानराक्षसाः ॥ १९ ॥ निवार्यमाणस्तुमया हितैषिणानमृष्यसेवाक्यमिदंनिशाचर ॥ परेतकल्पाहिगतायुषोनराहितंनगृह्णंतिसुहृद्भिरीरितम् ॥२० ॥इ०श्री० वा०आ०आरण्यकांडे एकचत्वारिंशःसर्गः ॥४१ ॥ एवमुक्त्वातुपरुषंमारीचोरावणंततः ॥ गच्छावेत्यब्रवीद्दीनोभया द्रात्रिंचरप्रभोः ॥ १ ॥ दृष्टश्चाहंपुनस्तेनशरचापासिधारिणा ॥ मद्वधोद्यतशस्त्रेणनिहतंजीवितंचमे ॥ २ ॥ नहिरामं पराक्रम्यजीवन्प्रतिनिवर्तते ॥ वर्ततेप्रतिरूपोऽसौयमदंडहतस्यते ॥ ३ ॥ किंतुकर्तुंमयाशक्यमेवंत्वयिदुरात्मनि ॥ एषगच्छाम्यहंतातस्वास्तितेस्तुनिशाचर ॥ ४ ॥

धनुर्बाणधारी, और खड्ग धारण किये हुए रामचंद्रजी आयुध उठाकर हमारी ओर व तुम्हारी ओर रामचंद्रजीनें देखातो तुम अपनें व हमारे प्राण गएही जानो ॥२॥हे तात! रामचंद्रजीसे कैसाही पराक्रम प्रकाश करकोईभी जीवित नहीं लौट सकता फिर हम तौ तुम्हारे खोटे आचारोंके कारण यमराजरूप रामचंद्रके बाणोंसे मृत्युको प्राप्तहो तुम्हारेही समानहो जायँगे अर्थात् हम तुम दोनों मारे जायँगे ॥ ३ ॥ तुम्हारे ऊपर अपनी सामर्थ्य प्रकाश करकै जीता हुआ रहना संभव नहीं क्योंकि तुम अतिदुरात्माहो ! हम तुम्हारा करही क्या सकतेहैं ! हे राक्षसराज तुम्हारा मं

देखो राज्य, सुख प्राण यह इस संसारमें महादुर्लभहैं इससे जो सुखभोग किया चाहो तो रामचंद्रजीसे वैरभाव न करो अब यहांसे जाय सब विभीषणादि मंत्रियोंके साथ ॥ २२ ॥ सलाहकर अपना मतभी स्थिरकर गुण दोषोंको विचार रामचंद्रजीके और अपने बलको जांचकर ॥ २३ ॥ फिर रामचंद्रजीके बलमें अपना बल मिथ्या जान मेरी रायमें तो तुमको चुप रहना उचितहै बस तुम्हारा हित इसीमें होगा हमारे इन कडे वचनोंको जो मैंनें आपका हित करनेंके लिये कहेहैं क्षमा करना ॥ २४ ॥हमें कौशल्याधिप दशरथजीके पुत्र श्रीरामचंद्रजीके साथ तुम्हारा युद्धमें समागम करना अच्छा नहीं लगता, इस कारण हे राक्षसनाथ। फिरभी तुम्हारे हितकी युक्तियुक्त वार्ता कहताहूं तुम श्रवण

जीवितंचसुखंचैवराज्यंचैवसुदुर्लभम् ॥ ससर्वैःसचिवैःसार्धंबिभीषणपुरस्कृतैः ॥ २२ ॥ मंत्रयित्वासधर्मिष्ठैःकृत्वानि
श्चयमात्मनः ॥ दोषाणांचगुणानांचसंप्रधार्यबलाबलम् ॥ २३ ॥ आत्मनश्चबलंज्ञात्वाराघवस्यचतत्त्वतः ॥ हितंहि
तवनिश्चित्यक्षमंत्वंकर्तुमर्हसि ॥ २४ ॥ अहंतुमन्येतवनक्षमंरणेसमागमंकोसलराजसूनुना ॥ इदंहिभूयःशृणुवाक्य
मुत्तमंक्षमंचयुक्तंचनिशाचराधिप ॥ २५ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्येकांडेसप्तत्रिंशः
सर्गः ॥ ३७ ॥ ॥ छ ॥ कदाचिदप्यहंवीर्यात्पर्यटन्पृथिवीमिमाम् ॥ बलंनागसहस्रस्यधारयन्पर्वतोपमः ॥ १ ॥
नीलजीमूतसंकाशस्तप्तकांचनकुंडलः ॥ भयंलोकस्यजनयन्किरीटीपरिघायुधः ॥ २ ॥ व्यचरन्दंडकारण्यमृ
षिमांसानिभक्षयन् ॥ विश्वामित्रोथधर्मात्मामाद्वित्रस्तोमहामुनिः ॥ ३ ॥ स्वयंगत्वादशरथंनरेंद्रमिदमब्रवीत् ॥
अयंरक्षतुमांरामःपर्वकालेसमाहितः ॥ ४ ॥

करो॥ २५॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे सप्तत्रिंशःसर्गः ॥ ३७ ॥ मैं एक समय अपने बलवीर्यके घमंडके मारे पृथ्वीपर घूमता हुआ फिरताथा मेरे पर्वतकी समान शरीरमें सहस्र हाथियोंका बलथा ॥१॥ हाथमें परिघ आयुध लिये मस्तक पर किरीट कानमें तपाये हुए सोनेकेबने कुण्डल पहरेथा।मेरे देहकी कान्ति नीले वादरोंकी समानथी इसप्रकारकी अवस्थामें लोकोंको भय उपजाताहुआ॥२॥मैं दंडक वनमें घूम २ कर ऋषिलोगोंका मांस भक्षण करताथा। अनन्तर धर्मात्मा महामुनि विश्वामित्रजी मेरे भयसे भीत होकर ॥ ३ ॥ स्वयं जाकर

रा हुआ यह रामचंद्रका आश्रम दिखाई देताहै ॥ १३ ॥ जिस कारणसे कि हम लोग यहां आयेहैं; इस समय शीघ्रतासे उस कार्यका आरंभ करो। निशाचर मारीच रावणके यह वचन सुनकर ॥ १४॥ महा अद्भुत मृग रूप धारण करके रामचंद्रजीके आश्रमके द्वारपर फिरनें लगा॥१५॥ इस मृगके शींगोंका अग्रभाग मणि प्रवर सदृशथा, और मुखकी आकृति श्वेत कृष्ण विविध वर्णोंसे चित्रितथी वदनमंडल कमलके फूलकी समान श्रवण युगल इन्द्र नील पद्मकी समानथे ॥ १६ ॥ गरदन कुछ एक ऊंची उदरभी इन्द्र नील मणिकी समता रखताथा पीछेका भागमहुयेके सुमनकी समान और वर्ण पद्म परागकी तुल्यथा॥ १७ ॥ खुरियें वैदूर्य मणिकी तुल्यथीं, दोनों जाघें पतलीथीं सब सन्धियें एक दूसरीसे गठी

क्रियतांतत्सखेशीघ्रंयदर्थंवयमागताः ॥सरावणवचःश्रुत्वामारीचोराक्षसस्तदा ॥ १४ ॥ मृगोभूत्वाश्रमद्वारिरामस्य
विचचारह ॥ सतुरूपंसमास्थायमहदद्भुतदर्शनम् ॥ १५ ॥ मणिप्रवरशृंगाग्रःसितासितमुखाकृतिः ॥ रक्तपद्मोत्प
लमुखइंद्रनीलोत्पलश्रवाः ॥ १६ ॥ किंचिदत्युन्नतग्रीवइंद्रनीलनिभोदरः ॥ मधूकनिभपार्श्वश्चकंजकिंजल्कसन्नि
भः॥१७॥ वैदूर्यसंकाशखुरस्तनुजंघःसुसंहतः ॥ इंद्रायुधसवर्णेनपुच्छेनोर्ध्वंविराजितः ॥ मनोहरस्निग्धवर्णोरत्नैर्नाना
विधैर्वृतः ॥ क्षणेनराक्षसोजातोमृगःपरमशोभनः ॥ १९ ॥ वनंप्रज्वलयन्रम्यंरामाश्रमपदंचतत् ॥ मनोहरंदर्शनीयं
रूपंकृत्वासराक्षसः ॥ २० ॥ प्रलोभनार्थंवैदेह्यानानाधातुविचित्रितम् ॥ विचरन्गच्छतेशष्पंशाद्वलानिसमंततः॥२१॥
रौप्यैर्बिंदुशतैश्चित्रंभूत्वाचप्रियनंदनः ॥ विटपीनांकिसलयान्भक्षयन्विचचारह ॥ २२ ॥

हुईथीं, और पूंछ इन्द्रधनुषकी समान ऊपरको उठी हुई विराजमान होरहीथी ॥ १८ ॥ उसका वर्ण चिकना और मनोहरथा और शरीर उसका अनेक भांतिके रत्नोंसे विभूषितथा उस मारीच राक्षसनें क्षण भरमें यह परमशोभा युक्त मृग मूर्ति धारणकी ॥१९॥ उस वनको शोभित करता हुआ और श्रीरामचंद्रजीके आश्रमकोभी अपनें परम मनोहर देखनें योग्यरूपसे वह राक्षस प्रकाश मान करनें लगा ॥ २० ॥ जानकी जीको ललचानेके लिये अनेक प्रकारकी धातुओंसे चित्र विचित्ररूप धारण किये चारों ओर हरी २ घास चरता हुआ वह मृग रामचंद्रजीके आश्रम पर विचरनें लगा ॥ २१ ॥ उसके शरीरपर सैकडों चांदीके विन्द लगेथे ऐसे कि जिनके देखनेंसे परम प्रीति उपजे वह मृग कभी २ वृक्षोंकी कों

साथले परम प्रीतियुक्त हो अपने सिद्धाश्रममें आये ॥ १२ ॥ तिसके पीछें जब महर्षि विश्वामित्रजी यज्ञ करनेंके लिये दीक्षित हुए तब श्रीरामचंद्रजी विचित्र धनुषकी टंकार करनेंके लिये विश्वामित्रजीके समीप आये ॥ १३ ॥ उनके गलेमें सुवर्णकी माला मस्तकपर अलकें हाथमें धनुष, दोनों नेत्र परम सुन्दर, एक मात्र जांघिया पहरे ब्रह्मचारीशरीर श्यामल वर्ण और अति सुन्दरताईसे शोभायमान, तबतक उनके रेख इत्यादि पुरुषचिह्न नहीं प्रगट हुएथे ॥ १४ ॥ वह अपने तेजसे समस्त दंडकारण्यको सुशोभित करके द्वितीयाके चंद्रमाके समान उदय होते हुए दिखलाई देनें लगे ॥ १५ ॥ उस समय हम तप्तकाञ्चन कुण्डलधारी, मेघका रंग धारण करके ब्रह्माजीके दिये हुए वर

तंतथादंडकारण्येयज्ञमुद्दिश्यदीक्षितम् ॥ बभूवोपस्थितोरामश्चित्रंविस्फारयन्धनुः ॥ १३ ॥ अजातव्यंजनःश्रीमान्बालःश्यामःशुभेक्षणः ॥ एकवस्त्रधरोधन्वीशिखीकनकमालया ॥ १४ ॥ शोभयन्दंडकारण्यंदीप्तेनस्वेनतेजसा॥अदृश्यततदारामोबालचंद्रइवोदितः ॥१५॥ ततोऽहंमेघसंकाशस्तप्तकांचनकुंडलः ॥ बलीदत्तवरोदर्पादाजगामाश्रमांतरम् ॥१६॥ तेनदृष्टःप्रविष्टोऽहंसहसैवोद्यतायुधः ॥ मांतुदृष्ट्वाधनुःसज्यमसंभ्रांतश्चकारह ॥ १७ ॥ अवजानन्नसंमोहाद्बालोऽयमितिराघवम् ॥ विश्वामित्रस्यतांवेदिमभ्यधावंकृतत्वरः॥१८॥तेनमुक्तस्ततोबाणःशितःशत्रुनिबर्हणः॥ तेनाहंताडितःक्षिप्तःसमुद्रेशतयोजने॥१९॥नेच्छतातातमांहंतुंतदावीरेणरक्षितः ॥रामस्यशरवेगेननिरस्तोभ्रांतचेतनः२०

प्रभावसे बल मदसे दर्पित हो विश्वामित्रजीके आश्रममें आये ॥ १६ ॥मैं जैसेही उनसे छिपकर हथियार लेकर आया वैसेही हमको आया हुआ देखतेही श्रीरामचंद्रजीनें तत्क्षणात् आयुध उठाकर हर्षित हो धनुषपर शर चढाया ॥ १७ ॥ बहुतही मोहवश होनेके कारण हमनें बालक समझ उनको ध्यानमें न लाकर बड़ी शीघ्रतासे विश्वामित्रजीकी यज्ञवेदीके ऊपरको दौडे ॥ १८ ॥ यह देखकर श्रीरामचंद्रजीनें शत्रुओंके मारनेवाले तीखे बाणोंको चला हमें घायल कर शत योजन दूर समुद्रको फेंक दिया॥१९॥हे तात! हमारे मारनेंकी इच्छा उस समय उनको नहीं थी इसी कारणसे उन्होंनें उस समय हमको संहार न कर रक्षा की तिसके पीछें हम रामचंद्रजीके बाणवेगसे मूर्छित होकर उतनी दूर चलेगये२०

लोचना वैदहीजी॥ ३० ॥ फूल चुननेंके लिये, कभी अशोक कभी कर्णिकार और कभी आम वृक्षके निकट जातीथीं ॥ ३१ ॥ वनवास करनेंके अयोग्य उन रुचिर वदना सीताजीनें फूल चुनते हुए, घूमते २ उस रत्नमय मृगको देखा ॥ ३२ ॥ उसके सब अंग मुक्ता मणियोंसे चित्रितथे। ऐसी वराङ्गना और अति सुन्दर दांत व अधर वाली जानकी जीनें भली भांति उस मृगको देखा इस मृगके रुयें चांदी और गेरु धातुके समान थे॥३३॥श्रीजानकीजी विस्मयसेप्रफुल्ल नेत्रोंसे स्नेह सहित उस मृगको देखनेंलगीं माया मय मृगभी राम प्यारी सीताजीकी ओर देखतारहा॥३४॥ अनन्तर वह मृग उस वनको प्रकाशित करता हुआ इधर उधर घूमने लगा। जनक कुमारी श्रीसीताजी अनेक रत्नमय अदृष्टपूर्व (जो

कुसुमापचयेऽव्यग्रापादपानत्यवर्तत ॥ कर्णिकारानशोकांश्चचूतांश्चमदिरेक्षणा ॥ ३१ ॥ कुसुमान्यपचिन्वंती चचाररुचिरानना ॥ अनर्हांवनवासस्यसातंरत्नमयंमृगम् ॥ ३२ ॥ मुक्तामणिविचित्रांगंददर्शपरमांगना ॥ तंवैरुचिरदंतोष्ठंरूप्यधातुतनूरुहम्॥३३॥विस्मयोत्फुल्लनयनासस्नेहंसमुदैक्षत॥सचतांरामदयितांपश्यन्मायामयो मृगः॥ ३४॥ विचचारततस्तत्रदीपयन्निवतद्वनम् ॥ अदृष्टपूर्वंदृष्ट्वातंनानारत्नमयंमृगम् ॥ विस्मयंपरमंसीताज गामजनकात्मजा ॥ ३५ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वाल्मीकीयेआदिकाव्येआ०कां०द्विचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४२ ॥ ॥छ॥ सातंसंप्रेक्ष्यसुश्रोणिकुसुमानिविचिन्वती ॥ हेमराजतवर्णाभ्यांपार्श्वाभ्यामुपशोभितम् ॥ १ ॥ प्रहृष्टाचानवद्यांगीमृ ष्टहाटकवर्णिनी ॥ भर्त्तारमपिचक्रंदलक्ष्मणंचैवसायुधम् ॥ २ ॥ आहूयाहूयचपुनस्तंमृगंसाधुवीक्षते ॥ आगच्छा गच्छशीघ्रंवैआर्यपुत्रसहानुज ॥३॥ तावाहूतौनरव्याघ्रौवदह्यारामलक्ष्मणौ॥वीक्षमाणौतुतंदेशंतदाददृशतुर्मृगम्॥४॥

पहले कभी नहीं देखा) मृगको देखकर अति विस्मयको प्राप्त हुईं॥३५॥इत्यार्षे श्रीरामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आ० द्विचत्वारिंशःसर्गः ४२ सुश्रोणी,फूल चुनती हुई सीताजीनें इस मृगके शरीरके मध्य चांदीके बिंदुशोभाय मान देख दोनों बगल उसके सुवर्ण व चांदीके देखे ॥१॥ यह देखकर परम हर्षित हो अनिन्दिताङ्गी,विशुद्ध वर वर्णिनी सीताजीनें आयुध धारणकिये हुए रामचंद्र व लक्ष्मणजीको पुकारा॥२॥हे आर्यपुत्र! लक्ष्मणके स हित शीघ्र आओ इस प्रकारसे कहकर रामचंद्रजीको पुकारते२उस मृगकी ओर देखनें लगीं॥३॥ सीताजीके पुकारनें पर पुरुषोत्तम श्री रामचंद्रजी

एकही कालमें भस्म हुए देखोगे ॥ २९ ॥ क्योंकि पराई स्त्रीके हरनकरनेंकी तुल्य और कोई भारी पाप नहीं है! हे राजन्। तुम्हारे रनवासमें सैकडों हजारों स्त्रियां विराजमान हैं ॥ ३० ॥ तुम अपनी ग्रहणकीहुई उनही समस्त स्त्रियोंमें आसक्त रहकर अपने वंश, अभीष्ट प्राण, राज्य, संपद, मान और राक्षसकुलकी रक्षा करो ॥ ३१ ॥ यदि परमसुन्दरी स्त्रिये और मित्रोंके साथ सदांही सुख भोगनेंकी इच्छा करतेहो तौ रामचंद्रका अप्रिय कार्य मत करो ॥ ३२ ॥ हम तुम्हारे सुहृदहैं इसी कारण वारंवार तुमको निवारण करतेहैं यदि इतनेपरभी तुम बलपूर्वक सीताको हर लाओगे तौ निश्चयही तुमको रामबाणसे बन्धु बान्धवों सहित, क्षीणबल और क्षीणप्राण होकर यमराजके भवनमें

परदाराभिमर्शात्तुनान्यत्पापतरंमहत् ॥ प्रमदानांसहस्राणितवराजन्परिग्रहे ॥ ३० ॥ भवस्वदारनिरतः स्वकुलंरक्षराक्षसान् ॥ मानंवृद्धिंचराज्यंचजीवितंचेष्टमात्मनः ॥ ३१ ॥ कलत्राणिचसौम्यानिमित्रवर्गंतथैवच ॥ यदीच्छसिचिरंभोक्तुंमाकृथारामविप्रियम् ॥ ३२ ॥ निवार्यमाणःसुहृदामयाभृशंप्रसह्यसीतांयदिधर्षयिष्यसि ॥ गमिष्यसिक्षीणबलःसबांधवोयमक्षयंरामशरास्तजीवितः ॥३३॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०आर०अष्टात्रिंशःसर्गः॥३८॥छ॥ एवमस्मितदामुक्तःकथंचित्तेनसंयुगे ॥ इदानीमपियद्वृत्तंतच्छृणुष्वयदुत्तरम् ॥ १ ॥ राक्षसाभ्यामहंद्वाभ्यामनिर्विण्णस्तथाकृतः ॥ सहितोमृगरूपाभ्यांप्रविष्टोदंडकावने ॥२॥ दीप्तजिह्वोमहादंष्ट्रस्तीक्ष्णशृंगोमहाबलः ॥ व्यचरन्दंडकारण्यंमांसभक्षोमहामृगः ॥३॥ अग्निहोत्रेषुतीर्थेषुचैत्यवृक्षेषुरावण ॥ अत्यंतघोरोव्यचरंस्तापसांस्तान्प्रधर्षयन् ॥४॥

जाना पडेगा ॥ ३३ ॥इत्यार्षे० श्रीम० वा० आ०आ० अष्टत्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥ उस कालमें तौ हम किसी प्रकारसे रामचंद्रजीके द्वारा इस भांति युद्धमें छूट गयेथे, इस समय वह कहताहूं जो अब हुआहै, सो तुमश्रवण करो ॥ १ ॥ जब दो मृगरूपी राक्षसोंके साथ हम दंडकारण्यको गये वहांभी इसी प्रकार पराजित हुए ॥ २ ॥ जब हम दंडकारण्यको गयेथे तौ हमारी बडी अग्निके समान तो जिह्वाथी, बडे तीखे दांतथे, बडे २ सींगथे महाबलवान् भयंकर रूप था, और दंडकारण्यमें मांस खाते हुएं हम विचरण करतेथे ॥ ३ ॥ फिर जहां २ तीर्थरूपी वृक्षथे,

इसका सबही शरीर विविध वर्णोंसे विचित्रहा रहाहै। मध्य २ में रत्नोंके विन्दु बनेहैं। यह मृग चन्द्रमाकी समान वनभूमिको शान्ति भावसे प्रकाशित करता हुआ हमारे सन्मुख विराजमान हो रहाहै ॥ १४ ॥ अहहह क्या सुन्दरताईहै! अहो क्या श्रीहै! आहा क्या शोभाहै! क्या मधुर इसका बोलहै! यह अपूर्व विचित्र अंगवाला मृग हमारे मनको चुरायेलेताहै ॥ १५ ॥ यदि आप इसको जीता हुआही पकड देंगे तो बडा अपूर्व यह पदार्थ सदा निकट रहकर विस्मय उपजाता रहा करैगा॥१६॥जब हम वनवासके व्रतको पूरा करकै फिर अपने राज्यमें चलेंगे तब यह मृग हमारे रन वासका भूषण होगा ॥ १७ ॥ हे प्रभो! भरतजीको आपको, हमारी सासोंको, वरन सबकोही यह दिव्य मृगरूप विस्मय

नानावर्णविचित्रांगोरत्नभूतोममाग्रतः ॥ द्योतयन्वनमव्यग्रंद्योततेशशिसन्निभः ॥ १४ ॥ अहोरूपमहोलक्ष्मीःस्वरसंपच्चशोभना ॥ मृगोऽद्भुतोविचित्रांगोहृदयंहरतीवमे ॥ १५ ॥ यदिग्रहणमभ्येतिजीवन्नेवमृगस्तव ॥ आश्चर्यंभूतंभवतिविस्मयंजनयिष्यति ॥ १६ ॥ समाप्तवनवासानांराज्यस्थानांचनःपुनः ॥ अंतःपुरेविभूषार्थोमृगएषभविष्यति ॥ १७ ॥ भरतस्यार्यपुत्रस्यश्वश्रूणांममचप्रभो ॥ मृगरूपमिदंदिव्यंविस्मयंजनयिष्यति ॥ १८ ॥ जीवन्नयदितेभ्येतिग्रहणंमृगसत्तमः ॥ अजिनंनरशार्दूलरुचिरंतुभविष्यति ॥ १९ ॥ निहतस्यास्यसत्वस्यजांबूनदमयत्वचि ॥ शष्पबृस्यांविनीतायामिच्छाम्यहमुपासितुम् ॥ २० ॥ कामवृत्तमिदंरौद्रंस्त्रीणामसदृशंमतम् ॥ वपुषात्वस्यसत्त्वस्यविस्मयोजनितोमम ॥ २१ ॥ तेनकांचनरोम्णातुमणिप्रवरशृंगिणा ॥ तरुणादित्यवर्णेननक्षत्रपथवर्चसा ॥२२॥

उत्पन्न करावैगा ॥ १८ ॥ हे पुरुषोत्तम! यदि इस मृगको आपजीता न पकड सकें, तौ इसका चर्मही परम मनोहर होगा ॥ १९ ॥ इस निहत मृगके सुवर्णमय चर्मको कुशासनपर बिछाकर उसपर बैठ तुम्हारे सहित भगवान्की पूजा करनेंको हमारा अभिलाष हुआहै ॥ २० ॥ यद्यपि स्वामीको इस प्रकारकी प्रेरणा करना स्त्रियोंके लिये स्वेच्छा चारिताहै,और भयंकर, व अनुचितभीहै, तथापि इस मृगकी विचित्र देहनें हमको बहुतही विस्मय उपजायाहै ॥ २१ ॥ उसके कंचनके समान रोम भली श्रेष्ठ मणिकी समान शृंग प्रभात कालीन सूर्यकी नांई और आकाशकी

राक्षस रामचंद्रजीके दो बाणोंसे मारे गये ॥ १३ ॥ हे रावण! हम किसीप्रकारसे रामचंद्रजीके बाणसे अपने प्राणोंको बचा तबसे तपस्वीका धर्म ग्रहण कर चित्तको रोके हुए इस स्थानमें योगका अवलंबन करके तपस्याकरतेहैं ॥ १४ ॥ तबसे हम फांसी हाथमें लिये यमराजकी समान उन चीर व मृगचर्म धारण किये धनुषधारी रामचंद्रको मानों प्रत्येक वृक्षके तले देखतेहैं ॥ १५ ॥ हम भयके मारे भीतहो निरन्तर सहस्रों रामको जहां तहां देखतेहैं । इस समस्तही वनमें मानों श्रीरामचंद्रजी हमको दिखाई देरहेहैं ॥ १६ ॥ हे राक्षसेश्वर! हम रामचंद्र करके रहित स्थान मेंभी, बराबर केवल उन्हीं रामचंद्रको देखतेहैं! वरन स्वप्नमेंभी उनको देखकर मैं डरके मारे जागतेकी समान इधर उधर दौडने लगताहूं

शरेणमुक्तोरामस्यकथंचित्प्राप्यजीवितम् ॥ इहप्रव्राजितोयुक्तस्तापसोऽहंसमाहितः ॥ १४ ॥ वृक्षेवृक्षेहिपश्यामिचीर कृष्णाजिनांबरम् ॥ गृहीतधनुषंरामंपाशहस्तमिवांतकम् ॥१५॥ अपिरामसहस्राणिभीतःपश्यामिरावण॥रामभूत मिदंसर्वमरण्यंप्रतिभातिमे ॥ १६ ॥ राममेवहिपश्यामिरहितेराक्षसेश्वर ॥ दृष्ट्वास्वप्नगतंराममुद्भ्रमामीवचेतनः॥१७॥ रकारादीनिनामानिरामत्रस्तस्यरावण ॥ रत्नानिचरथाश्चैववित्रासंजनयंतिमे ॥१८॥ अहंतस्यप्रभावज्ञोनयुद्धंतेनते क्षमम् ॥ बलिंवानमुचिंवापिहन्याद्धिरघुनंदनः ॥१९॥रणेरामेणयुद्धचस्वक्षमांवाकुरुरावण ॥ नतेरामकथाकार्यायदि मांद्रष्टुमिच्छसि ॥ २० ॥ बहवःसाधवोलोकेयुक्ताधर्ममनुष्ठिताः ॥ परेषामपराधेनविनष्टाःसपरिच्छदाः ॥ २१ ॥

॥ १७ ॥ हे रावण! हम तुमसे अधिक कहांतक कहैं कि हम रामचंद्रसे यहांतक डर गयेहैं, कि रत्न, रथ, इत्यादि जिन शब्दोंको आदिमें रकारहै उन शब्दोंके श्रवण करनेंसेभी हमें डर लगताहै *॥ १८ ॥ हम भली भांति उन रघुनंदन रामचंद्रजीके पराक्रमको जानतेहैं । इस कारणसे उनके साथ युद्ध करना तुमको उचित नहीं है।वह राम बलि, अथवा नमुचिको संहार करनेंमेंभी समर्थ हैं ॥ १९ ॥ हे रावण! तुम रामचंद्रके सहित युद्ध करो वा न करो, परन्तु यदि हमको देखनेंका अभिलाष करतेहो तौ हमारे साथ श्रीरामचंद्रजीकी वार्ता मत करो नहीं तौ हम यहाँसे चले जायगे ॥ २० ॥ इस लोकमें धर्मका अनुष्ठान करनेंवाले योगयुक्त होकरभी बहुतसे पुरुष पराया

* "दोहा" रावण राके सुनतही रहत न मोहिं तन प्राण । तिन रघुनंदन सों न छल,करहु वचन मम बान ॥

बहुत मृगोंको मार डालतेहैं ॥ ३१ ॥ अधिक करके वह राजा लोक मृग वधमें उद्यत होकर बड़े २ वनोंमें मणिरत्न सुवर्णादि धातुरूप धनका संग्रहभी करतेहैं ॥ ३२ ॥ हे लक्ष्मण ! इस प्रकार धनधान्यकी राशिसे खजाना बढताहै । इस लिये वनमें सबही पुरुषोंकी ब्रह्मकी नांई मनकी इच्छा सफल होतीहै ॥३३॥ हे लक्ष्मण ! अर्थकी इच्छा करनेंवाला पुरुष अर्थसाधन वस्तुके कारण निःसंशय चित्तसे उस कार्यमें लगै तो अर्थ शास्त्रज्ञ पंडित लोग उसकोही ठीक अर्थ कहते हैं ॥ ३३ ॥ इस कारणसे इस मृगके वध करनेंमें कुछ दुविधा करनेंकी आवश्यकता नहीं है। सुमध्यमा जानकीजी हमारे साथ इस मृग रत्नके श्रेष्ठ व सुवर्ण मय चर्म पर बैठेंगी ॥ ३५ ॥ क्या कदली और प्रियक मृगका चमडा

धनानिव्यवसायेनविचीयंतेमहावने ॥ धातवोविविधाश्चापिमाणिरत्नसुवर्णिनः ॥ ३२ ॥ तत्सारमखिलंनृणांधनंनिच यवर्धनम् ॥ मनसाचिंतितंसर्वयथाशुक्रस्यलक्ष्मण ॥ ३३ ॥ अर्थीयेनार्थकृत्येनसंव्रजत्यविचारयन् ॥ तमर्थमर्थ शास्त्रज्ञाःप्राहुरर्थ्याःसुलक्ष्मण ॥ ३४ ॥ एतस्यमृगरत्नस्यपरार्ध्येकांचनत्वचि ॥ उपवेक्ष्यतिवैदेहिमयासहसुमध्य मा ॥ ३५ ॥ नकादलीनप्रियकीनप्रवेणीनचाविकी ॥ भवेदेतस्यसदृशीस्पर्शेनेनेतिमेमतिः ॥ ३६ ॥ एषचैवमृगःश्रीमा न्यश्चदिव्योनभश्चरः ॥ उभावेतौमृगौदिव्यौतारामृगमहीमृगौ ॥ ३७ ॥ यदिवायंतथायन्मांभवेद्वदसिलक्ष्मण ॥ मा यैषाराक्षसस्येतिकर्तव्योस्यवधोमया ॥ ३८ ॥ एतेनहिनृशंसेनमारीचेनाकृतात्मना ॥ वनेविचरतापूर्वंहिंसितामुनि पुंगवाः ॥ ३९ ॥ उत्थायबहवोयेनमृगयायांजनाधिपाः ॥ निहताःपरमेष्वासास्तस्माद्वध्यस्त्वयंमृगः ॥ ४० ॥

क्या प्रवेणी नामक छागलका चमडा क्या मेषादिकका चमडा । कोई भी चमडा इस मृगके चमडे की समान कोमल, चिकना, व मनोहर हमको नहीं ज्ञात होताहै ॥ ३६ ॥ यह ही मृग श्रीमानहै, और आकाशमें जो मृग विचरण करतेहैं; वही श्रीमानहै । बस इससे वह तारा मृग (मृग शिरा नक्षत्र) और यह महीमृग यही दोनों मृग दिव्यहैं ॥३७॥ हे लक्ष्मण ! तुम कहतेहो कि यह राक्षसकी मायाहै; सो यदि वास्तवमें ऐसाही हो तोभी हमको इसका संहार करना कर्त्तव्यहीहै ॥ ३८ ॥ क्योंकि देखो इस दुरात्मा निर्दय मारीचनें वनमें घूमते २ अनेक मुनिश्रेष्ठोंको मारडालाहै ॥ ३९ ॥ और शिकार खेलनें जब राजालोग इस वनमें आये तो इस राक्षसनें इसी भांति मायामृग बनकर परम धनुर्द्धर अनेक

अयोग्यहैं निष्फलहैं ॥ ४ ॥ जो पुरुष साधारण स्त्रीके कहनेंसे माता,पिता, राज्य, और सुहृदगणोंको छोडकर वनमें चला आयाहै ॥ ५ ॥ सो हम तुम्हारे सामने अवश्यही युद्धमें खरका नाशकरनेंवाले उसरामकी प्राणसे अधिक प्यारी भार्याको हरण करेंगे ॥ ६ ॥ रे मारीच! हमनें अपनी बुद्धिसे अपने हृदयमें ऐसा निश्चय करही लियाहै, सो इन्द्रके सहित सुरासुरगणभी इसके विरुद्ध नहीं कर सकते! अर्थात् हमको इस संकल्पसे नहीं हटा सकते ॥ ७ ॥ यदि हम इस कार्यकेविषय में कर्त्तव्याकर्त्तव्य निश्चय करनेंको तुमसे पूछते, तब तुमको सके दोष, गुण, हानि, लाभ, उपाय, इत्यादि कहने उचितथे ॥ ८ ॥जो ज्ञानवान् मंत्री अपने ऐश्वर्य अभिलाषी होतेहैं वह राजा करके

यस्त्यक्त्वासुहृदोराज्यंमातरंपितरंतथा ॥ स्त्रीवाक्यंप्राकृतंश्रुत्वावनमेकपदेगतः ॥ ५ ॥ अवश्यंतुमयातस्यसंयुगे खरघातिनः ॥ प्राणैःप्रियतरासीताहर्तव्यातवसंनिधौ ॥ ६ ॥ एवंमेनिश्चिताबुद्धिर्हृदिमारीचविद्यते ॥ नव्याव र्तयितुंशक्यासेंद्रैरपिसुरासुरैः ॥ ७ ॥ दोषंगुणंवासंपृष्टस्त्वमेवंवक्तुमर्हसि ॥ अपायंवाउपायंवाकार्यस्यास्यविनि श्चये ॥ ८ ॥ संपृष्टेनतुवक्तव्यंसचिवेनविपश्चिता ॥ उद्यतांजलिनाराज्ञोयइच्छेद्भूतिमात्मनः ॥ ९ ॥ वाक्यमप्रति कूलंतुमृदुपूर्वंशुभंहितम् ॥ उपचारेणवक्तव्योयुक्तंचवसुधाधिपः ॥ १० ॥ सावमर्दंतुयद्वाक्यमथवाहितमुच्यते ॥ ना भिनंदेततद्राजामानार्थीमानवर्जितम् ॥ ११ ॥ पंचरूपाणिराजानोधारयंत्यमितौजसः ॥ अग्नेरिंद्रस्यसोमस्यय मस्यवरुणस्यच ॥ १२ ॥ औष्ण्यंतथाविक्रमंचसौम्यंदंडंप्रसन्नताम् ॥ धारयंतिमहात्मानोराजानःक्षणदाचर ॥ १३ ॥

पूजे जानेंपर हाथ जोड पूछे हुए विषयका उत्तर नम्रतासे निवेदन करतेहैं ॥ ९ ॥ कारण कि राजा ओंके समीप, उपचार युक्त मनोहर, मंगल जनक अप्रतिकूल वचनही कहनें ठीकहै ॥ १० ॥ मंगलजनक वचनसेभी यदि अपमान होताहो तो माननीय राजा लोग उस सन्मान रहित वचनोंको सुन प्रसन्न नहीं होते अथवा ग्रहण नहीं करते ॥ ११ ॥ हे निशाचर! अमिततेजवान् महात्मा भूपतिलोग, अग्नि, इन्द्र, चंद्र, यम और वरुण इन पंच देवताओंका रूप धारण करतेहैं ॥ १२ ॥ इससेही हे मारीच! उनमें, अग्निकी गरमाई, इन्द्रका पराक्रम; चंद्रमाकी

बडी अभिलाषा हुईहै, देखो; अब हम बहुत शीघ्रतासे इस मृगको पकडनेंके लिये जांयगे. ॥ ४८ ॥ इस मृगका चर्म सब मृगोंसे अच्छाहै, आज निश्चयही इसको प्राण त्याग करना पडेगा। लक्ष्मण! हम जबतक इस मृगको नहीं मारडालें तब तक तुम सीताजीके साथ सावधानतासे आश्रममें टिके रहो ॥ ४९ ॥ हे लक्ष्मण! हमें एक बाणसे शीघ्रही मृगको मार कर इसका चर्म ले आऊंगा जब तक हम लौट कर न आवें तब तक तुम सावधानीसे यहां पर रहना॥ ५० ॥ हे लक्ष्मण! तुम जानकीको लेकर अति बलवान् बुद्धिमान, अच्छे कार्योंको करनेंमें चतुर, बली, श्रेष्ठ जटायुके साथ निरंतर शंकित और सावधानीसे यहां पर रहना ॥५१॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ॰आर॰त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥४३॥

त्वचाप्रधानयाह्येषमृगोऽद्यनभविष्यति॥अप्रमत्तेनतेभाव्यमश्रमस्तेनसीतया॥४९॥यावत्पृषतमेकेनसायकेननिहन्म्यहम् ॥ हत्वैतच्चर्मआदायशीघ्रमेष्यामिलक्ष्मण ॥ ५० ॥ प्रदक्षिणेनातिबलेनपक्षिणाजटायुषाबुद्धिमताचलक्ष्मण ॥ भवाप्रमत्तःप्रतिगृह्यमैथिलींप्रतिक्षणंसर्वतएवशंकितः ॥ ५१ ॥ इत्यार्षेश्रीम॰वा॰आ॰आर॰त्रिचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४३ ॥ ७ ॥ ॥ तथातुतंसमुद्दिश्यभ्रातरंरघुनंदनः॥ दधारासिंमहातेजाजांबूनदमयत्सरुम् ॥१॥ ततस्त्रिविनतंचापमादायात्मविभूषणम् ॥ आबध्यचकलापौद्वौजगामोदग्रविक्रमः ॥ २ ॥ तंवन्यराजोराजेंद्रमापतंतंनिरीक्ष्यवै ॥ बभूवांतर्हितस्त्रासात्पुनःसंदर्शनेऽभवत् ॥ ३ ॥ बद्धासिर्धनुरादायप्रदुद्रावयतोमृगः ॥ तंस्मपश्यतिरूपेणद्योतयंतामिवाग्रतः ॥ ४ ॥

परम तेजस्वी रघुनंदन! रामचंद्रजी भ्राता लक्ष्मणजीको इस प्रकारसे समझाय बुझाय सुवर्ण निर्मित मुष्टि लगा हुआ खड्ग हाथमें लेते हुए ॥ १ ॥ तिसके पीछे जिसका बिचला भाग तीन जगहसे झुका हुआथा, ऐसा अपना भूषण स्वरूप धनुष ग्रहण करके और दो तरकश बांध करके प्रचंड पराक्रमी श्रीरामचंद्रजी गये ॥ २ ॥ वह मृगश्रेष्ठ मृगोंका राजा रामचंद्रजीको अपनें सन्मुख आता हुआ देखकर भयके मारे अन्तरध्यानहो फिर थोडी दूरपै उनको दीख पडा ॥ ३ ॥ श्रीरामचंद्रजीभी खड्ग और धनुष बाण धारण करके जिस ओर मृगथा उस ओर को धाये । और देखते हुए कि मृग अपनें रूपसे चारों ओर को प्रकाश करता हुआ मानों सामनेंही विराजरहाहै ॥ ४ ॥

जीकी प्रेरणासे, व भाईकी सुहृदताके प्रेमसे, लक्ष्मणजीभी सम्भ्रान्तचित्तहो रामके निकट चले जायँगे ॥ २१ ॥ इस प्रकार राम लक्ष्मण दोनोंही जब उस आश्रममें चले जांयगे, तब हम सीताको सुखसे हरणकरेंगे। जिस प्रकार इन्द्रनें शचीका हरण कियाथा ॥ २२ ॥ हे सुव्रत निशाचर! मारीच ! तुम इस प्रकार कार्यके पूरा करके जहां इच्छा हो वहां चले जाना। इस कार्यके पूरा होनेंपर हम तुमको आधा राज्य देंगे ॥ २३ ॥ हे शुभदर्शन ! तुम इस कार्यको पूर्ण करनेंके लिये दंडकारण्यके मार्गमें मंगल सहित चलो, हमभी रथपर चढकर तुम्हारे पीछे२ चलतेहैं ॥ २४ ॥ हम रामको ठगकर बिना युद्ध किये सीताको प्राप्तकर कृतकार्य हो फिर लंकापुरीको तुम्हारे सहित लौटेंगे ॥ २५ ॥ हे

अपक्रांतेचकाकुत्स्थेलक्ष्मणेचयथासुखम् ॥ आहरिष्यामिवैदेहींसहस्राक्षःशचीमिव ॥ २२ ॥ एवंकृत्वात्विदंकार्यंयथेष्टंगच्छराक्षस ॥ राज्यस्यार्धंप्रदास्यामिमारीचतवसुव्रत ॥ २३ ॥ गच्छसौम्यशिवंमार्गंकार्यस्यास्यविवृद्धये ॥ अहंत्वानुगमिष्यामिसरथोदंडकावनम् ॥ २४ ॥ प्राप्यसीतामयुद्धेनवंचयित्वातुराघवम् ॥ लंकांप्रतिगमिष्यामिकृतकार्यःसहत्वया ॥ २५ ॥ नोचेत्करोषिमारीचहन्मित्वामहमद्यवै ॥ एतत्कार्यमवश्यंमेबलादपिकरिष्यसि ॥ राज्ञोविप्रतिकूलस्थोनजातुसुखमेधते ॥ २६ ॥ आसाद्यतंजीवितसंशयस्तेमृत्युर्ध्रुवोह्यद्यमयाविरुध्यतः ॥ एतद्यथावत्परिगण्यबुद्ध्यायदत्रपथ्यंकुरुतत्तथात्वम् ॥ २७ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०आर०कां०चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥ ॥ छ ॥ आज्ञप्तोरावणेनेत्थंप्रतिकूलंचराजवत् ॥ अब्रवीत्परुषंवाक्यंनिःशंकोराक्षसाधिपम् ॥ १ ॥

निशाचर! मारीच ! यदि तुम हमारे वचनोंके प्रतिकूल करोगे तो अभी हम तुमको मार डालेंगे, कोई पुरुष राजाके विरुद्ध आचरण करके सुख संपत्ति नहीं पासकता ॥ २६ ॥ रामचंद्रके निकट जानेंसे तुम्हारे जीवनमें संशय मात्र है, परन्तु हमारे साथ विरुद्धाचरण करनेंसे इसी समय तुम्हारीमृत्यु निश्चय होगी; सो अपनी बुद्धिसे यथोचित विचार कर इस विषयमें जो कर्तव्य हो सोकरो ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥ मारीच राक्षसपति रावण करके राजाकी समान मनोगत विषयमें

संधायसदृढंचापेविकृष्यबलवद्बली ॥ तमेवमृगमुद्दिश्यज्वलंतमिवपन्नगम् ॥ १४ ॥ मुमोचज्वलितंदीप्तमस्त्रंब्रह्म
विनिर्मितम् ॥ सभृशंमृगरूपस्यविनिर्भिद्यशरोत्तमः ॥ १५ ॥ मारीचस्यैवहृदयंबिभेदाशनिसन्निभः ॥ तालमात्रम
थोत्प्लुत्यन्यपतत्सभृशातुरः ॥ १६ ॥ व्यनदद्भैरवंनादंधरण्यामल्पजीवितः ॥ म्रियमाणस्तुमारीचोजहौतांकृत्रिमांतनुम् ॥
॥ १७ ॥ स्मृत्वातद्वचनंरक्षोदध्यौकेनतुलक्ष्मणम् ॥ इहप्रस्थापयेत्सीतातांशून्येरावणोहरेत् ॥ १८ ॥ सप्राप्तकाल
माज्ञायचकारचततःस्वनम् ॥ सदृशंराघवस्येवहासीतेलक्ष्मणेतिच ॥ १९ ॥ तेनकर्मणिनिर्विद्धंशरेणानुपमेनहि ॥
मृगरूपंतुतत्त्यक्त्काराक्षसंरूपमास्थितः ॥ २० ॥ चक्रेससुमहाकायोमारीचोजीवितंत्यजन् ॥ तंदृष्ट्वापतितंभूमौरा
क्षसंभीमदर्शनम् ॥ २१ ॥ रामोरुधिरसिक्तांगंचेष्टमानंमहीतले ॥ जगाममनसासीतांलक्ष्मणस्यवचःस्मरन् ॥ २२ ॥

और उसको दृढ धनुष्यपर चढा बलसे खेंच जलती अग्निकी समान प्रकाशित तिस मृगपर ॥ १४ ॥ ब्रह्माका बनाया हुआ अतिप्रज्वलित अस्त्र, उस मृगरूपी राक्षस मारीचके लायकही छोडा ॥ १५ ॥ शर श्रेष्ठ ब्रह्मास्त्रनें छूटतेही वज्रकी समान मृगरूपी मारीचका हृदय विदारण करडाला तब वह मारीच अतिशय आतुर होकर ताडके वृक्ष समान ऊपरको उछल पृथ्वीपर गिर पडा ॥ १६ ॥ और क्षीण प्राण मरनेंके निकट पहुँच पृथ्वी पर गिरकर भयंकर शब्दसे बहुत चिल्लाया। उस राक्षसनें मरनेंके समय वह अपनी बनावटी छलकी देह त्यागन करदी ॥ १७ ॥ अनन्तर मारीच मरनेंके समय उस मायामय देहको त्याग रावणकी आज्ञा स्मरण कर विचारनें लगाकि किस उपायका अवलंबन करनेंसे सीता लक्ष्मणको यहां भेजें, और रावण शून्य आश्रमको पाकर सीताको हरण करले ॥ १८ ॥ यह विचारकर अपना काल आया हुआ जान रावणकी उपदेश कीहुई सलाहके अनुसार, "हा सीते! हा लक्ष्मण!" कहकर रामचंद्रजीके समान कंठस्वर बनाकर उस राक्षसनें चिल्लाना आरंभ किया ॥ १९ ॥ श्री रामचंद्रजीके अनुपम बाणसे उसको मर्म स्थानमें इतना विंध गयाथा; कि फिर वह मृगरूप धारण नहीं कर सका और राक्षसमूर्ति ग्रहणकी ॥ २० ॥ मरनेंके समय मारीचकी देह बडी भारी होगई उस भयंकर निशाचर मारीचको भूमिमें ॥ २१ ॥ रुधिरसे लिपटा पृथ्वीमें लोटता हुआ श्रीरा

मूलहोतेहैं। इस कारण सबही अवस्था में भली भांति राजाकी रक्षाकरनी ठीकहै ॥ १० ॥ हे निशाचर! अति तीक्ष्ण स्वभाव वाला सबका अनभल चाहनेंवाला महात्मा ओंके आगे नम्रतासे नहीं रहनेवाला राजा राज्यका पालन नहीं कर सकताहै ॥ ११ ॥ जो मंत्री लोग बडी कठोर आज्ञासें राजासें कहकर प्रकाशित करा देतेहैं; फिर वे लोगभी राजासे दुःख पातेहैं! जैसे अयोग्य ऊंचे रथ हांकनेंवाले सारथीभी मालिकके साथ झटके सहतेहैं ॥ १२ ॥ इस लोकमें अनेक मनुष्य उचित धर्मानुष्ठान किये अपने पदके योग्य पराये अपराधसे बंधुबांधवोंसहित नाशको प्राप्त हो गयेहैं ॥ १३ ॥ हे दशानन! प्रजा प्रतिकूलाचारी तीक्ष्णस्वभाव राजा करके रक्षमान होकर, शियारों करके रक्षित ससा

राज्यंपालयितुंशक्यंनतीक्ष्णेनानिशाचर ॥ नचातिप्रतिकूलेननाविनीतेनराक्षस ॥ ११ ॥ येतीक्ष्णमंत्राःसचिवाभुज्यंतेसहतेनवै ॥ विषमेषुरथाःशीघ्रंमंदसारथयोयथा ॥ १२ ॥ बहवःसाधवोलोकयुक्तधर्ममनुष्ठिताः ॥ परेषामपराधेनविनष्टाःसपरिच्छदाः ॥ १३ ॥ स्वामिनाप्रतिकूलेनप्रजास्तीक्ष्णेनरावण ॥ रक्ष्यमाणानवर्धंतेमृगागोमायुनायथा ॥ १४ ॥ अवश्यंविनशिष्यंतिसर्वेरावणराक्षसाः ॥ येषांत्वंकर्कशोराजादुर्बुद्धिरजितेंद्रियः ॥ १५ ॥ तदिदंकाकतालीयंघोरमासादितंमया ॥ अत्रत्वंशोचनीयोसिससैन्योविनशिष्यसि ॥ १६ ॥ मांनिहत्यतुरामोसावचिरात्त्वांवधिष्यति ॥ अनेनकृतकृत्योस्मिम्रियेचाप्यरिणाहतः ॥ १७ ॥ दर्शनादेवरामस्यहतंमामवधारय ॥ आत्मानंचहतंविद्धिहत्वासीतांसबांधवम् ॥ १८ ॥

आदि मृग गणोंकी नांई आगे प्रजा वृद्धिको प्राप्त नहीं होती ॥ १४ ॥ अरे रावण! तुम खोटी बुद्धिवाले हो इन्द्रियोंके वश हुए हो, कैडे स्वभाववाले हो, ऐसे जो तुम जिनके राजा हो वह समस्तही निशाचर अवश्यही मृत्युके ग्रास हो जांयगे ॥ १५ ॥ जिससे कि तुम ससैन्य भावना की हुई मृत्युसे भरे हुए शोचनीय हो, वैसेही तुम्हारा हमारे ऊपरभी यह घोरदुःख आन पडाहै ॥ १६ ॥ रामचंद्रजी हमको मारकर फिर तुम्हारा संहार करेंगे! युद्ध करके शत्रुके हाथसे मारे जानेंपर हम तो कृतकृतार्थहो जांयगे ॥ १७ ॥ परन्तु तुम निश्चय जानों कि, हम तो रामको देख

कारण तुम वेगही शरणार्थी अपने भ्राताकी रक्षाके लिये दौडो ॥ ३ ॥ गाय वैल जिस प्रकार सिंहके वशमें पडताहै,तुम्हारे भइयाभी वैसेही राक्षसके
वशमें पडेहैं । परन्तु लक्ष्मणजीको मृग मारनेको गमन करनेंके समय जो रामचंद्रजी आज्ञा देगयेथे उसको याद करके सीताजीसे इस प्रकार कहे
जानें परभी रामचंद्रजीके समीप नहीं गये ॥ ४ ॥ तव सीताजी नितान्त क्षुभित होकर लक्ष्मणजीसे बोलीं कि हे लक्ष्मण ! तुम रामचंद्रजीके मित्र
रूपी शत्रुहो ॥ ५ ॥ देखो तुम इस प्रकारकी अवस्थामेंभी उनकी रक्षा करनेंके लिये नहीं जाते । इस्से समझ पडा कि तुम हमको लेलेनेंके
लिये रामचंद्रजीके विनाशकी कामना करतेहो ॥ ६ ॥ निश्चयही हमारे प्रति लुभानेंसे तुम उनके समीप नहीं जाते इसी कारणसे रामचन्द्रजीकी
रक्षसांवशमापन्नंसिंहानामिवगोवृषम् ॥ नजगामतथोक्तस्तुभ्रातुराज्ञायशासनम् ॥ ४ ॥ तमुवाचततस्तत्रक्षुभिताजन
कात्मजा ॥ सौमित्रेमित्ररूपेणभ्रातुस्त्वमसिशत्रुवत् ॥ ५ ॥ यस्त्वमस्यामवस्थायांभ्रातरंनाभिपद्यसे ॥ इच्छसित्वं
विनश्यंतंरामंलक्ष्मणमत्कृते ॥ ६ ॥ लोभात्तुमत्कृतेनूनंनानुगच्छसिराघवम् ॥ व्यसनंतेप्रियंमन्येस्नेहोभ्रातरिना
स्तिते ॥ ७ ॥ तेनतिष्ठसिविश्रब्धंतमपश्यन्महाद्युतिम् ॥ किंहिसंशयमापन्नेतस्मिन्निहमयाभवेत् ॥ ८ ॥ कर्तव्य
मिहतिष्ठंत्यायत्प्रधानस्त्वमागतः ॥ एवंब्रुवाणांवैदेहींबाष्पशोकसमन्विताम् ॥ ९ ॥ अब्रवील्लक्ष्मणस्त्रस्तांसीतांमृ
गवधूमिव ॥ पन्नगासुरगंधर्वदेवदानवराक्षसैः ॥ १० ॥ अशक्यस्तववैदेहिभर्ताजेतुंनसंशयः ॥ देविदेवमनुष्येषुगंध
र्वेषुपतत्रिषु ॥ ११ ॥ राक्षसेषुपिशाचेषुकिन्नरेषुमृगेषुच ॥ दानवेषुचघोरेषुनसविद्येतशोभने ॥ १२ ॥
यह विपद तुमको प्रिय लगतीहै । और तुमको उनसे कुछ स्नेह नहीं है ॥ ७ ॥ इसी कारण तुम महाद्युतिमान् रामचन्द्रजीको न देख
करभी निश्चिन्त वैठे हो । किन्तु तुम जो रामचन्द्रजीके आधीनमें होकर वनमें आये हो । तो उनके यहां संशयापन्न होनेंसे ॥ ८ ॥ मुझसे यहां
रहकर क्या कार्य होगा जब वैदेहीजीनें आँखोंमें आंसू भरकर यह कहा कि तुम्हारी तो यह दशा रही तो अब हम क्या करें ॥ ९ ॥ तव मृगीके
समान डरी हुई सीताजीसे लक्ष्मणजी वोले कि हे विदेहकुमारी ! नाग, असुर, गन्धर्व, देव, दानव, राक्षस ॥ १० ॥ कोईभी आपके स्वामीको
जीतनेंमें समर्थ नहींहैं; इसमें कुछभी सन्देह नहींहै । हे देवि ! मनुष्य, गन्धर्व, पक्षी ॥ ११ ॥ राक्षस, पिशाच, किन्नर, मृग, व अतिघोर इनमें

गलहो हम चलतेहैं ॥ ४ ॥ राक्षसपति रावण मारीचके यह वचन सुन परम हर्षित हो उस्से भली भांति भेंटा और यह वचन बोला ॥५॥ कि तुमनें हमारे अभिप्रायके अनुसार जब कार्य करनेंको कहा तब यही वचन तुम्हारा वीरोचित हुआ। पहले तुम एक साधारण मारीच राक्षसथे पर अब तुम हमारी समान हुए ॥ ६ ॥ अब तुम हमारे साथ शीघ्रही इस रत्नविभूषित अंतरिक्षमें टिके हुए रथपर जिसमें कि पिशाचोंकी समान गधे जुत रहेहैं बैठो ॥ ७॥ फिर वहां पहुंचकर विदेह राजकुमारी सीता को लुभाकर इच्छानुसार स्थानमें चल देना । तब हम राम लक्ष्मण स

प्रहृष्टस्त्वभवत्तेनवचनेनसराक्षसः ॥ परिष्वज्यसुसंश्लिष्टमिदंवचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥ एतच्छौटीर्ययुक्तंतेमच्छंदवशवर्तिनः ॥ इदानीमसिमारीचःपूर्वमन्योहिराक्षसः ॥ ६ ॥ आरुह्यतामयंशीघ्रंखगोरत्नविभूषितः ॥ मयासहरथोयुक्तःपिशाचवदनैःखरैः ॥ ७ ॥ प्रलोभयित्वावैदेहींयथेष्टंगतुमर्हसि ॥ तांशून्येप्रसभंसीतामानयिष्यामिमैथिलीम् ॥ ८ ॥ ततस्तथेत्युवाचैनंरावणंताटकासुतः ॥ ततोरावणमारीचौविमानमिवतंरथम् ॥ ९ ॥ आरुह्याययतुःशीघ्रंतस्मादाश्रममंडलात् ॥ तथैवतत्रपश्यंतौपत्तनानिवनानिच ॥ १० ॥ गिरींश्चसरितःसर्वाराष्ट्राणिनगराणिच ॥ समेत्यदंडकारण्यंराघवस्याश्रमंततः ॥ ११ ॥ ददर्शसहमारीचोरावणोराक्षसाधिपः ॥ अवतीर्यरथात्तस्मात्ततःकांचनभूषणात् ॥ १२ ॥ हस्तेगृहीत्वामारीचंरावणोवाक्यमब्रवीत् ॥ एतद्रामाश्रमपदंदृश्यतेकदलीवृतम् ॥ १३ ॥

हित शून्य आश्रममें प्रवेश करके बल पूर्वक सीताको हर लावेंगे ॥८॥ऐसा सुनकर ताडका तनय मारीचने कहा कि बहुत अच्छा चलिये। तत्पश्चात् रावण व मारीच विमान समान उस रथपर चढ ॥ ९ ॥ जलदीसे उस आश्रमसे चले और अनेक भांतिके पत्तन वन ॥ १० ॥ पर्वत नदी राज्य व नगरोंको देखते भालते दंडकारण्यमें आये जहां रामचंद्रजीका आश्रमथा ॥ ११ ॥ और आश्रमको मारीचके सहित रावणनें देखा और दोनों जने उस रत्न भूषित रथसे उतरे ॥ १२ ॥ और मारीचका हाथ पकडकर रावण कहनें लगा कि हे सखे! वनमें केलोंके वृक्षोंसें घि

जानकीजीके नेत्र लाल हो आये ॥ २० ॥ वह कठोर वचन सत्यवादी लक्ष्मणजीसे बोलीं कि रे नृशंस ! कुलनाशक ! तुम श्रीरामचंद्र को मरवाकर दया करके हमारी रक्षा करनेंको तैयार हुए हो, इस कारणसे यह ध्यान आर्यजनोचित नहींहै ॥ २१ ॥ हमनें जाना कि रामचन्द्रजीकी यह बडी भारी विपद तुम्हारी परम प्यारी हुईहै इसी कारण तुम उनको विपदमें पडा हुआ देखकर ऐसा कहतेहो॥२२॥ हे लक्ष्मण ! तुम्हारी समान सदा क्रूर स्वभाव व गुप्त पापी शत्रुके मनमें जो ऐसा निन्दनीय पाप रहैगा तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?॥२३॥तुम्हारा स्वभाव बड़ा खोटा है रामचन्द्रजी जो अकेले वनको आनें लगे, तो हमारा लालच करके तुमभी अकेले ही उनके साथ आये । अथवा छिपकर

अब्रवीत्परुषंवाक्यंलक्ष्मणंसत्यवादिनम् ॥ अनार्यकरुणारंभनृशंसकुलपांसन ॥ २१ ॥ अहंतवप्रियंमन्येरामस्य व्यसनंमहत् ॥ रामस्यव्यसनंदृष्ट्वातेनैतानिप्रभाषसे ॥ २२ ॥ नैवचित्रंसपत्नेषुपापंलक्ष्मणयद्भवेत् ॥ त्वद्विधेषु नृशंसेषुनित्यंप्रच्छन्नचारिषु ॥ २३ ॥ सुदुष्टस्त्वंवनेराममेकमेकोनुगच्छसि ॥ ममहेतोःप्रतिच्छन्नःप्रयुक्तोभरतेनवा ॥ २४ ॥ तन्नसिद्ध्यतिसौमित्रेतवापिभरतस्यवा ॥ कथमिंदीवरश्यामंरामंपद्मनिभेक्षणम् ॥ २५ ॥ उपसंश्रित्यभर्तारंकामयेयंपृथग्जनम् ॥ समक्षंतवसौमित्रेप्राणांस्त्यक्ष्याम्यसंशयम् ॥ २६ ॥ रामंविनाक्षणमपिनैवजीवामिभूतले ॥ इत्युक्तःपरुषंवाक्यंसीतयारोमहर्षणम् ॥ २७ ॥ अब्रवील्लक्ष्मणःसीतांप्रांजलिःसजितेंद्रियः ॥ उत्तरंनोत्सहेवक्तुंदैवतंभवतीमम ॥ २८ ॥

भरतके भेजे हुए तुम स्वामीके साथ आये हुए हो ॥ २४ ॥ किन्तु हे लक्ष्मण ! तुमनें या भरतनें जो मनमें सोचाहै, वह सिद्ध नहीं होगा। क्योंकि हम पद्मपलाशलोचन, नीलोत्पलश्याम ॥ २५ ॥ श्रीरामचन्द्रजीकी स्त्री होकर किस प्रकारसे अन्यजनकी अभिलाषा करेंगी। इससे हे लक्ष्मण ! हम तुम्हारे सामने निश्चयही प्राण त्याग देंगी ॥ २६ ॥ क्योंकि रामचन्द्रजीके विना क्षण कालभी हम इस लोकमें प्राण धारण नहीं कर सकतीं। सीताजीके इस प्रकार रोमहर्षण कठोर वचन ॥ २७ ॥ सुन जितेन्द्रिय लक्ष्मणजी हाथ जोडकर उनसे बोले कि आप हमारी साक्षात्

पलके नये २ पत्ते खाता हुआ घूमने लगा ॥ २२ ॥ कभी केलोंकी बगियामें और कर्णिकारके वनमें प्रवेश करके और कभी श्रीसीताजीकी दृष्टिके सन्मुख जाकर इस प्रकार आश्रमके इधर उधर वह मृगमन्द गतिसे चलनें लगा ॥ २३ ॥ पीठपर सुवर्णके द्वारा चित्र विचित्र होनेंसे उसकाल इस महामृगकी अतिशय शोभा हुई थी, वह यथा सुखसे रामचंद्रजीके निकट घूमनें लगा ॥ २४ ॥ आश्रममें घूमनेंके समय कभी दौडता, कभी ठिठककर खडा होजाता कभी मुहूर्त भरतक आगेको आश्रममें चलता, कभी फिर झटपट लौट आता ॥ २५ ॥ कभी इधर उधर खेलता, कभी पृथ्वी पर लेट जाता,कभी आश्रमके द्वारपर आकर सुखसे चरते हुए मृग झुंडोंके साथ

कदलीगृहकंगत्वाकर्णिकारानितस्ततः ॥ तमाश्रमंमंदगतिंसीतासंदर्शनंततः ॥ २३ ॥ राजीवचित्रपृष्ठःसविरराज महामृगः ॥ रामाश्रमपदाभ्याशेविचचारयथासुखम्॥ २४ ॥ पुनर्गत्वानिवृत्तश्चविचचारमृगोत्तमः ॥ गत्वामुहूर्तंत्वरयापुनःप्रतिनिवर्तते ॥ २५ ॥ विक्रीडंश्चपुनर्भूमौपुनरेवनिषीदति ॥ आश्रमद्वारमागम्यमृगयूथानिगच्छति॥२६॥ मृगयूथैरनुगतःपुनरेवनिवर्तते॥ सीतादर्शनमाकांक्षन्राक्षसोमृगतांगतः ॥ २७॥ परिभ्रमतिचित्राणिमंडलानिविनिष्पतन् ॥ समुद्वीक्ष्यचसर्वेतंमृगायेऽन्येवनेचराः ॥ २८ ॥ उपगम्यसमाघ्रायविद्रवंतिदिशोदश ॥ राक्षसःसोपितान्वन्यान्मृगान्मृगवधेरतः॥२९॥ प्रच्छादनार्थंभावस्यनभक्षयतिसंस्पृशन्॥तास्मिन्नेवततःकालेवैदेहीशुभलोचेन॥३०॥

चरनें लगता ॥ २६ ॥ कभी मृगोंके साथही साथ आकर फिर सीताजीको दिखाई देनेंकी वांछासे फिर आश्रममें चला आता जानकीके दर्शनकी इच्छासे वह राक्षश मृग होगया ॥ २७ ॥ इस प्रकार वह मृगताको प्राप्त होकर विचित्र मंडल देखता कूद फांद करनें लगा इसकी कूद फांद देख और वनके मृग ॥ २८ ॥ उसके निकट आये और उसको सूंघतेही दशोंदिशाओंको भागनें लगे । मारीच यद्यपि सदा मृगोंके मारनें में रतथा ॥ २९ ॥ तथापि उसनें अपना भाव छिपानेंके लिये उनमृगोंको भक्षण नहीं किया केवल स्पर्श करनें लगा । इसी समय शुभ

भीजकर रोते २ लक्ष्मणजीसे बोलीं ॥ ३५ ॥ हे लक्ष्मण! रामके विना हम गोदावरीमें डूब मरेंगी अथवा फांसीसे प्राण त्याग करेंगी अथवा किसी ऊंचे पर्वत इत्यादिक पर चढकर वहांसे अपनी देहको नीचे गिरा देंगी ॥ ३६ ॥ या तीक्ष्ण विष पान करेंगी, अथवा अग्निमें प्रवेश करेंगी। तथापि श्रीरामचन्द्रजीके विना और किसी पुरुषको हम कभी स्पर्श नहीं करेंगी ॥ ३७ ॥ सीताजी इस प्रकार शोक युक्त होकर रोते २ लक्ष्मणजीसे ऐसा कहकर दुःखके मारे अपनीछाती पीटनें लगीं (सर्व राक्षसोंके नाश विना मेरी उदरपूर्ति न होगी यह शास्त्र की ध्वनि है) ॥ ३८ ॥ लक्ष्मणजीनें विशाल नयना जनकदुलारी सीताजीको महा आरत भावसे रोते देखकर बहुत समझाया बुझाया परन्तु फिर जानकी

गोदावरींप्रवेक्ष्यामिहीनारामेणलक्ष्मण ॥ आबंधिष्येऽथवात्यक्ष्येविषमेदेहमात्मनः॥ ३६ ॥पिबामिवाविषंतीक्ष्णंप्रवेक्ष्यामिहुताशनम् ॥ नत्वहंराघवादन्यंकदापिपुरुषं स्पृशे ॥ ३७ ॥ इतिलक्ष्मणमाश्रुत्यसीताशोकसमन्विता ॥ पाणिभ्यांरुदतीदुःखादुदरंप्रजघानह ॥ ३८ ॥ तामार्तरूपांविमनारुदंतींसौमित्रिरालोक्यविशालनेत्राम् ॥ आश्वासयामासनचैवभर्तुस्तंभ्रातरंकिंचिदुवाचसीता ॥ ३९ ॥ ततस्तुसीतामभिवाद्यलक्ष्मणःकृतांजलिःकिंचिदभिप्रणम्य॥ अवेक्षमाणोबहुशःसमैथिलींजगामरामस्यसमीपमात्मवान् ॥ ४० ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेपंचचत्वारिंश सर्गः॥४५॥ तयापरुषमुक्तस्तुकुपितोराघवानुजः॥सविकांक्षन्भृशंरामंप्रतस्थेनचिरादिव ॥१॥

जीनें अपने देवर लक्ष्मणजीसे और कुछ न कहा ॥ ३९ ॥ तिसके पिछे जितेन्द्रिय और विशुद्ध चित्त लक्ष्मणजी हाथ जोड प्रणाम कर कुछ एक विनती करते हुए और वारंवार उनकी ओर देखते दुःखित हो रामचन्द्रजीके निकट को चले ॥ ४० ॥ ❋ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि काव्ये पंडितज्वालाप्रसादमिश्र कृत भाषा टीकायांआर० पंचचत्वारिंशःसर्गः॥४५॥लक्ष्मणजी जानकीजीकी कटूक्तिसे पीडित हो क्रोधमें भर श्री

* कूर्म पुराणसे भी सिद्धहै कि जानकीजीकी यही प्रतिज्ञा पूर्णथी कि अन्य पुरुपको स्पर्शन करूंगी अग्निमें प्रवेश कर जाऊंगी इससेभी ध्वनि निकलतीहै कि जानकी अग्निमें प्रवेश कर गईथीं और यह मायाकी जानकीनें लक्ष्मणसे ऐसे वचन कहे क्योंकि मायासेही ऐसा होताहै

और लक्ष्मणजी दोनों जनोंनें इधर उधर देखते वहां आये और इस मृगको देखा ॥ ४ ॥ परन्तु लक्ष्मणजी मृगको देख शंकितहो श्रीरामचंद्र जीसे कहनें लगे कि महाराज ! हमें तो ऐसा समझ पडताहै कि यह मृग रूपी निशाचर मारीचहै ॥ ५ ॥ यह पापात्मा मारीच मृगरूप धारण करके परम हर्ष सहित आखेटको वनमें आये हुए राजा लोगोंको मारडाला करताहै ॥६॥ यह राक्षस मायाका जाननें वालाहै, इसनें मायाके बलसे इस प्रकारका मृगरूप धारण करलियाहै । हे पुरुषसिंह ! यह मृगरूप गन्धर्व नगरकी समान अब रमणीय और परम दीप्ति युक्तहै परन्तु वास्तवमें यह मृग नहींहै ॥ ७ ॥ हे रघुनंदन! इस प्रकार रत्न चित्रित मृगकभी पृथ्वी पर नहीं हो सकता । हे जगत्नाथ ! यह निश्चयही माया है

शंकमानस्तुतंदृष्ट्वालक्ष्मणोवाक्यमब्रवीत् ॥ तमेवैनमहंमन्येमारीचंराक्षसंमृगम् ॥ ५ ॥ चरंतोमृगयांहृष्टाःपापेनोपाधिनावने॥अनेननिहताराजन्राजानःपापरूपिणा॥६॥अस्यमायाविदोमायामृगरूपमिदंकृतम् ॥ भानुमत्पुरुषव्याघ्रगंधर्वपुरसन्निभम् ॥ ७ ॥ मृगोह्येवंविधोरत्नविचित्रोनास्तिराघव ॥ जगत्यांजगतीनाथमायैषाहिनसंशयः ॥ ८ ॥ एवंब्रुवाणंकाकुत्स्थंप्रतिवार्यशुचिस्मिता ॥ उवाचसीतासंहृष्टाच्छद्मनाहृतचेतना ॥ ९ ॥ आर्यपुत्राभिरामोसौमृगोहरतिमेमनः ॥ आनयैनंमहाबाहोक्रीडार्थंनोभविष्यति ॥ १० ॥ इहाश्रमपदेऽस्माकंबहवःपुण्यदर्शनाः॥ मृगाश्चरंतिसहिताश्चमराःसृमरास्तथा ॥ ११ ॥ ऋक्षाःपृषतसंघाश्चवानराःकिन्नरास्तथा ॥ विहरंतिमहाबाहोरूपश्रेष्ठामहाबलाः ॥ १२ ॥ नचान्यःसदृशोराजन्दृष्टःपूर्वंमृगोमया ॥ तेजसाक्षमयादीप्त्यायथाऽयंमृगसत्तमः ॥ १३ ॥

इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ८ ॥ जब लक्ष्मणजी इस प्रकार कहनें लगे तब कुछ एक मुस्कोई हुई सीताजीनें राक्षसके छलसे मोहितहो लक्ष्मणजीको इस कहनेसे रोक दिया और आप परम हर्षितहो बोलीं ॥९ ॥हे आर्यपुत्र! इस अभिराम मृगनें हमारे मनको हरण कियाहै हे महाबाहो! इसको पकड लाओ हम इस मृगके साथ खेला करेंगी ॥ १० ॥ क्योंकिहमारे इस पुण्याश्रममें बहुतसे पुण्यदर्शन मृगगण चमर सृमर घूमा करतेहैं, जिनकी काली और सफेद पूछ होतीहै ॥ ११ ॥ और ऋक्ष, पृषत वानर, व किन्नरादिभी घूमतेहैं यह सब महाबलवान् और रूपवान् हैं ॥ १२ परन्तु हे राजन्! पहले कभी इस प्रकारका मृग हमारी दृष्टिमें नहीं आया, तेज क्षमा कान्तिमें यह मृगोंमें श्रेष्ठ ज्ञात होताहै ॥ १३ ॥

ऐसा टीप टापका संन्यासी वेश बनाया, जिस प्रकार तिनकोसे कोई कुएँको पाटै, और वहां आनें वाला चट उसमें गिरे ॥ १० ॥ ऐसा छद्मवेशी
साधुका वेश धारण किये हुए रावण उन यशस्विनी रामदयिता जानकीजीकी ओर देखकर खड़ा हुआ ॥ ११ ॥ सुन्दर स्वरूप, दशनपंक्ति जि
नकी मनोहर, वदन पूर्णचन्द्रसमान जो जानकीजी पर्णशालामें बैठी अपने पतिके शोकसे पीडित होरहीथीं ॥ १२ ॥ तिन कमलनेत्रा पीताम्बर
धारण किये जानकीजीके निकट वह निशाचर हर्ष सहित पहुंचा ॥ १३ ॥ऐसी जानकीजीको देख रावण मारके बाणसे माराहुआ पीडित हुआ उस स
मय रावणने वेदका उच्चारण करके जानकीजीकी प्रशंसा करके कहा॥ १४॥तुम तीनों लोकमें उत्तमहो; और पद्मिनीकी समान मनोहर कमल फूलों

अतिष्ठत्प्रेक्ष्यवैदेहींरामपत्नींयशस्विनीम् ॥ तिष्ठन्संप्रेक्ष्यचतदापतींरामस्यरावणः ॥ ११ ॥ शुभांरुचिरदंतो
ष्ठींपूर्णचंद्रनिभाननाम् ॥ आसीनांपर्णशालायांबाष्पशोकाभिपीडिताम् ॥ १२ ॥ सतांपद्मपलाशाक्षींपीतकौ
शेयवासिनीम् ॥ अभ्यगच्छतवैदेहींहृष्टचेतानिशाचरः ॥ १३ ॥ दृष्ट्वाकामशराविद्धोब्रह्मघोषमुदीरयन् ॥ अ
ब्रवीत्प्रश्रितंवाक्यंरहितेराक्षसाधिपः ॥ १४ ॥ तामुत्तमांत्रिलोकानांपद्महीनामिवश्रियम् ॥ विभ्राजमानांवपु
षारावणःप्रशशंसह ॥ १५ ॥ रौप्यकांचनवर्णाभेपीतकौशेयवासिनि ॥ कमलानांशुभांमालांपद्मिनीवचबिभ्रती ॥ १६
र्ह्रीःश्रीःकीर्तिःशुभालक्ष्मीरप्सरावाशुभानने ॥ भूतिर्वात्वंवरारोहेरतिर्वास्वैरचारिणी ॥ १७ ॥ समाःशिखरिणःस्नि
ग्धाःपांडुरादशनास्तव ॥ विशालेविमलेनेत्ररक्तांतेकृष्णतारके ॥ १८ ॥

से समाकुल होरहीहो ऐसी प्रशंसा रावणनें की ॥ १५ ॥ फिर कहा कि हेशुभानने! तुम्हारा वर्ण विशुद्ध कांचनकी सदृशहै तिसपर तुम पीले वर्णके
रेशमीन वस्त्र पहरेहो, कमल फूलोंकी माला गलेमें धारण कियेहो ॥ १६॥हेवरारोहे! तुम ह्री, श्री, कीर्ति, लक्ष्मी, अप्सरा, अथवा भूति, या साक्षात्
रतिकी समान जो वनमें इच्छानुसार विहार करती हो सो बतलाओ कि तुम कौन हो ॥ १७ ॥ तुम्हारे सब दांत परस्पर समानहैं, उनका अग्रभाग
कुन्दकी कोर सदृश मनोहर और श्वेत वर्णहै । तुम्हारे नेत्र युगल विशाल, निर्मल, अरुणाई लिये, और कृष्णताराओंकरके युक्तहैं ॥ १८ ॥

समान प्रकाशमान ॥ २२ ॥ रूपसे रामचंद्रजीके हृदयमेंभी विस्मय इसकी अवाई हुई सीताजीके ऐसे वचन सुनकर और उस अद्भुत मृगको देख ॥ २३ ॥ तिसके शरीरकी सुन्दरताईसे रामचंद्रजी लुभागये, तिस पे सीताजीनें प्रेरणाकी इस कारण हर्षित चित्त हो श्रीरामचंद्रजी भ्राता लक्ष्मणसे बोले ॥ २४ ॥ कि हे लक्ष्मण! अवलोकन करो इस मृगका श्रेष्ठ रूप देखकर जानकीजीकी अभिलाषा उल्लसित हो उठीहै। अतएव इस समय इसका प्राण धारण करना असंभव है ॥ २५ ॥ हे लक्ष्मण! क्या वनमें, क्या नन्दनमें, क्या चैत्ररथकाननमें, अथवा पृथ्वीके किसी स्थानमेंभी इसके समान मृग नहीं है ॥ २६ ॥ देखो इसके रोमोंकी पंक्तियें कुछ सीधी कुछ वंकिमाकार कैसी शोभाकों प्राप्त होरही हैं और

बभूवराघवस्यापिमनोविस्मयमागतम् ॥ इतिसीतावचःश्रुत्वादृष्ट्वाचमृगमद्भुतम् ॥ २३ ॥ लोभितस्तेनरूपेणसीतयाचप्रचोदितः ॥ उवाचराघवोहृष्टोभ्रातरंलक्ष्मणंवचः ॥ २४ ॥ पश्यलक्ष्मणवैदेह्यास्पृहामुल्लसितामिमाम् ॥ रूपश्रेष्ठतयाह्येषमृगोऽद्यनभविष्यति ॥ २५ ॥ नवनेनंदनोद्देशेनचैत्ररथसंश्रये ॥ कुतःपृथिव्यांसौमित्रेयोऽस्यकश्चित्समोमृगः ॥ २६ ॥ प्रतिलोमानुलोमाश्चरुचिरारोमराजयः ॥ शोभंतेमृगमाश्रित्यचित्राःकनकबिंदुभिः ॥ २७ ॥ पश्यास्यजृंभमाणस्यदीप्तामग्निशिखोपमाम् ॥ जिह्वांमुखान्निःसरंतींमेघादिवशतह्रदाम् ॥ २८ ॥ मसारगल्वर्कमुखःशंखमुक्तानिभोदरः ॥ कस्यनामानिरूप्योसौनमनोलोभयेन्मृगः ॥२९॥ कस्यरूपमिदंदृष्ट्वाजांबूनदमयप्रभम् ॥ नानारत्नमयंदिव्यंनमनोविस्मयंव्रजेत् ॥३०॥ मांसहेतोरपिमृगान्विहारार्थंचधन्विनः ॥ घ्नंतिलक्ष्मणराजानोमृगयायांमहावने ३१

तिसपर उसमें सुवर्ण बिन्दुओंके चित्रित होनेंसे औरभी सुन्दरताई आई है ॥ २७ ॥ देखो भइया! मेघसें बिजली जिस प्रकार चमकती है वैसेही जमुहाई लेनेंके समय उसके मुखसे अग्निकी शिखाके समान प्रदीप्त जीभ निकलती है ॥ २८ ॥ इसका मुखमंडल इन्द्रनीलमणि निर्मित पानपात्रके आकारसाहै। पेट शंख और मोतीकी समानहै, और इसके स्वरूपका निर्णय करना दुःसाध्यहै, इसको देखनेंसे किसका मन मोहित नहीं होता? ॥ २९ ॥ इसका रूप पक्के सुवर्णकी प्रभासे परिपूर्ण है, और नाना प्रकारके रत्नमयहै ऐसा दिव्य स्वरूप दृष्टि आनेंसे किसका मन विस्मयको प्राप्त नहीं होता? ॥ ३० ॥ धनुर्द्धारी नृपतिगण महा वनमें शिकार करनेंके लिये प्रवृत्त हो मांसके लिये अथवा विहारके लिये

मालायें, श्रेष्ठ सुगन्धियें श्रेष्ठ वस्त्रोंके तुम भोगनें योग्यहो॥२६॥हेअसितेक्षणी ! फिर तुम्हारे लिये स्वामीभी तो श्रेष्ठही चाहिये, हेशुचिस्मिते ! रुद्र गण अथवा मरुद्गण ॥ २७ ॥ या आठ वसुओंमेंसे किसीकी स्त्री हो, हे वरारोहे! हमको तौ तुम स्पष्टही देवता प्रतीत होतीहो, क्योंकि यहां गन्धर्व, देवता, किन्नर कोई नहीं आने पाते ॥ २८॥ यहां वनमें तो राक्षसगणही वास किया करतेहैं; फिर तुम यहां किस प्रकारसे आईहो; यहां तो वनमें वानर, सिंह, चीता, व्याघ्र, भेड़िया, मृग, ॥२९॥ गेंडे ऋक्षादि जीव रहतेहैं. सो इनको देखकर तुम क्यों नहीं डरतीहो? और मतवाले, कठोर मन शी

भर्तारंचवरंमन्येत्वद्युक्तमसितेक्षणे ॥ कात्वंभवसिरुद्राणांमरुतांवाशुचिस्मिते ॥ २७ ॥ वसूनांवावरारोहेदेवताप्रतिभासिमे ॥ नेहगच्छंतिगंधर्वानदेवानचकिन्नराः ॥ २८ ॥ राक्षसानामयंवासःकथंतुत्वमिहागता ॥ इहशाखामृगाःसिंहाद्वीपिव्याघ्रमृगावृकाः ॥ २९ ॥ ऋक्षास्तरक्षवःकंकाःकथंतेभ्योनबिभ्यसे ॥ मदान्वितानांघोराणांकुंजराणांतरस्विनाम् ॥ ३० ॥ कथमेकामहारण्येनबिभेषिवरानने ॥ कासिकस्यकुतश्चत्वंकिन्निमित्तंचदंडकान् ॥ ३१ ॥ एकाचरसिकल्याणिघोरान्राक्षससेवितान् ॥ इतिप्रशस्तावैदेहीरावणेनमहात्मना ॥ ३२ ॥ द्विजातिवेषेणहितंदृष्ट्वारावणमागतम् ॥ सर्वैरतिथिसत्कारैःपूजयामासमैथिली ॥ ३३ ॥ उपानीयासनंपूर्वंपाद्येनाभिनिमंत्र्यच ॥ अब्रवीत्सिद्धमित्येवतदातंसौम्यदर्शनम् ॥ ३४ ॥

घ्र चलनेंवाले हाथियोंसे ॥ ३० ॥ तुम अकेली कैसे- इस महावनमें नहीं डरतीहो, हे वरानने! तुम कौनहो, किसकी स्त्री हो, कहांसे आईहो, और किस कारण इस दंडकारण्यमें ॥ ३१ ॥अकेली विचरतीहो; क्योंकि यह जगह घोर राक्षसों करके युक्तहै इस प्रकारसे महात्मा रावणने वैदेहीजीकी प्रशंसाकी ॥ ३२ ॥ उसको ब्राह्मण वेष धारण किये आया हुआ देख जानकीजीनें यथाविधि आतिथिसत्कारसे उसकी पूजा की ॥ ३३ ॥ प्रथम बैठनेंके लिये आसन दिया फिर चरण धोनेंको जल, पुनः फलाहारादिक जो रक्खेथे वह सौम्यदर्शन रावणको निवेदन किये ॥ ३४ ॥

राजा ओंको संहार कियाहै। इस कारण इस मृगको वधकरनाही कर्तव्यहै ॥ ४० ॥ पेटमें रहतेही हुए जिस प्रकार खिचडीकी गर्भ अपनी माताको मार डालताहै; वैसेही पूर्व समय इस वनमें राक्षस वातापिनेंभी तपस्वी ब्राह्मणोंके पेटमें प्रवेश करके उनको संहार किया करता था ॥ ४१ ॥ बहुत काल पीछे किसी समय वह वातापि तेजस्वी महामुनि अगस्त्यजीको प्राप्त होकर उनके द्वारा पचाया गयाथा ॥ ४२ ॥ फिर जबकि श्राद्धके पूर्ण होनेउपरान्त वातापिको राक्षस रूप धारण करनेंका इच्छुक देख भगवान् अगस्त्यजी मुसकाय कर बोले ॥ ४३ ॥ वातापि! तूनें अपने तेजसे ज्ञानरहित हो इस जीव लोकमें अनेक श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको मारडालाहै, इसी कारणसे हमनें तुमको पचाडाला ॥ ४४ ॥

पुरस्तादिहवातापिःपरिभूयतपस्विनः ॥ उदरस्थोद्विजान्हंतिस्वगर्भोश्वतरीमिव ॥ ४१ ॥ सकदाचिच्चिराल्लोकेआ
ससादमहामुनिम्॥अगस्त्यंतेजसायुक्तंभक्ष्यस्तस्यबभूवह॥४२॥समुत्थानेचतद्रूपंकर्तुकामंसमीक्ष्यतम् ॥उत्स्मयि
त्वातुभगवान्वातापिमिदमब्रवीत्॥ ४३ ॥ त्वयाऽविगण्यवातापेपरिभूताश्चतेजसा ॥जीवलोकेद्विजश्रेष्ठास्तस्माद
सिजरांगतः ॥ ४४ ॥ तद्रक्षोपिनभवेदेववातापिरिवलक्ष्मण ॥ मद्विधंयोतिमन्येतधर्मनित्यंजितेंद्रियम् ॥ ४५ ॥
भवेद्धतोयंवातापिरगस्त्येनेवमागतः ॥इहत्वंभवसन्नद्धोयंत्रितोरक्षमैथिलीम् ॥ ४६ ॥ अस्यामायत्तमस्माकंयत्कृ
त्यंरघुनंदन॥ अहमेनंवधिष्यामिग्रहीष्याम्यथवामृगम्॥ ४७ ॥ यावद्गच्छामिसौमित्रेमृगमानयितुंद्रुतम् ॥ पश्य
लक्ष्मणवैदेह्यामृगत्वचिगतांस्पृहाम् ॥ ४८ ॥

हे लक्ष्मण! जो हमारी समान धर्म निरत और जितेन्द्रिय पुरुषका निरादर करताहै; उस राक्षसके प्राण वातापिही समान नष्ट होजाते हैं॥ ४५॥ अतएव मारीच इस आश्रममें आकर अगस्त्यजी करके वातापिकी नांई हमारे द्वारा मारडाला जायगा। इस समय तुम कवच इत्यादि बांधकर यत्न सहित सीताजीकी रक्षा करो ॥ ४६ ॥ हे रघुनंदन! हमारा कर्त्तव्य कार्य जानकीके आधीनहै इसलिये तुम साव धानीसे यहां टिके रहो, हम इस मृगको मारही डालेंगे, अथवा जीता हुआ पकड लावेंगे ॥ ४७ ॥ हे लक्ष्मण! इस मृग चर्म लेनेकी,जानकीको

विवाह होनेंके पीछे इक्ष्वाकुवंशियोंकी राजधानी अयोध्यानगरीमें बारह वर्षतक रहकर पूर्णमनोरथहो अनेक प्रकारके मनुष्योंको दुर्लभ सुख ह मनें भोगे ॥ ४ ॥ फिर तेरह वर्षमें राजा दशरथजीनें मंत्रिगणोंके साथ सलाह करके रामचंद्रजीके अभिषेक करनेंका उद्योग किया ॥ ५ ॥ उनकी आज्ञानुसार सब अभिषेककी तइयारियां होनें लगीं उस समय हमारी माननीया सासु कैकेयीनें अपनें स्वामी राजा दशरथजीसे दो वर मांगे ॥ ६ ॥ कैकेयीजीनें अपनी कृतिके बलसे श्वशुरको धर्मके वशमें करके हमारे स्वामी रामचंद्रजीको बनवास, और भरतजीको अभिषेक, यह दो वर नृपश्रेष्ठ सत्यप्रतिज्ञ महाराज दशरथजीसे मांगे ॥ ७ ॥ और उन्होंने सत्यप्रतिज्ञ, नृपतिश्रेष्ठ राजा दशरथजी अपनें स्वामीसे

उषित्वाद्वादशसमाइक्ष्वाकूणांनिवेशने ॥ भुंजानामानुषान्भोगान्सर्वकामसमृद्धिनी ॥ ४ ॥ तत्रत्रयोदशेवर्षेराजाऽमंत्रयतप्रभुः ॥ अभिषेचयितुंरामंसमेतोराजमंत्रिभिः ॥ ५ ॥ तस्मिन्संभ्रियमाणेतुराघवस्याभिषेचने ॥ कैकेयीनामभर्तारंममार्यायाचतेवरम् ॥६॥ परिगृह्यतुकैकेयीश्वशुरंसुकृतेनमे ॥ ममप्रव्राजनंभर्तुर्भरतस्याभिषेचनम् ॥७॥ द्वावयाचतभर्तारंसत्यसंधंनृपोत्तमम् ॥नाद्यभोक्ष्येनचस्वप्स्येनपास्येचकदाचन ॥ ८ ॥ एषमेजीवितस्यांतोरामोयदभिषिच्यते ॥ इतिब्रुवाणांकैकेयींश्वशुरोमेसपार्थिवः ॥ ९ ॥ अयाचतार्थैरन्वर्थैर्नचयाञ्चांचकारसा ॥ ममभर्तामहातेजावयसापंचविंशकः ॥ १० ॥ अष्टादशहिवर्षाणिममजन्मनिगण्यते ॥ रामेतिप्रथितोलोकेसत्यवाञ्छीलवाञ्छुचिः ॥ ११ ॥ विशालाक्षोमहाबाहुःसर्वभूतहितेरतः ॥ कामार्तश्चमहाराजःपितादशरथःस्वयम् ॥ १२ ॥

दो वर मांगे और यहभी कहा कि जो रामचंद्रजीका अभिषेक होगा, तो हम किसी प्रकारसे भी भोजन पान वा शयन न करेंगी ॥ ८ ॥ और यही हमारे जीवनका अंत होजायगा जो रामचंद्रजीका अभिषेक हुआ तो हम न जियेंगी । जब कैकेयीनें इस प्रकार कहा तो हमारे श्वशुर महाराज दशरथजीने ॥ ९ ॥ उनसे बहुत और धनादि देनेंकी प्रार्थना की परन्तु उन कैकेयीजीनें न मानी उस समय महा तेजवान हमारे स्वामी पचीस वर्षके ॥१०॥ और हमारी आयु जन्मसे गणना करके अठारह वर्षकी थी, हमारे स्वामी रामनामसे विख्यात हैं, वह सत्यवान, सुशील, निर्मल स्वभाव ॥ ११ ॥ विशालनेत्र, सर्व प्राणियोंके हितकारी महाबाहु हैं परन्तु इनके पिता महाराज दशरथजी बडे कामी थे ॥ १२ ॥

कभी वह मृग शारंगपाणि रामको वारंवार देखकर वनमें दौडता कभी कुलांच मारकर दूर हो रहता॥ ५ ॥ कभी शंकित और भ्रान्त चित्त होकर मानों आकाशको चला जायगा ऐसी छलांग मारता, कभी अदृश्य होजाता, कभी दिखाई पडने लगता ॥ ६ ॥ और कभी छिन्न भिन्न मेघ समूहमें घिरे हुए शारदीय चंद्र मंडलकी समान मुहूर्त भरमें अदृश्य होजाता और मुहूर्तमात्रमेंही दूर दिखाई देता ॥ ७ ॥ इस प्रकारसे मृगरूपी मारीच छल बलकर दीखता छिपता रामचंद्रजीको आश्रमसे बहुत दूर ले गया ॥ ८ ॥ रामचंद्रजी उसकी मायासे मोहित और नितान्त अवश होकर क्रोधसे घिरे और बहुतही थक कर एक पेडकी छायाके नीचे हरी दूबके खेतमें बैठ गये ॥ ९ ॥

अवेक्ष्यावेक्ष्यधावंतंधनुष्पाणिर्महावने ॥ अतिवृत्तमिवोत्पाताल्लोभयानंकदाचन ॥ ५ ॥ शंकितंतुसमुद्भ्रांतमुत्पतंत मिवांबरम् ॥ दृश्यमानमदृश्यंचवनोद्देशेषुकेषुचित् ॥ ६ ॥ छिन्नाभ्रैरिवसंवीतंशारदंचंद्रमंडलम् ॥ मुहूर्तादेवददृशे मुहुर्दूरात्प्रकाशते॥ ७ ॥ दर्शनादर्शनेनैवसोऽपाकर्षतराघवम् ॥ सदूरमाश्रमस्यास्यमारीचोमृगतांगतः ॥८॥ आसी त्क्रुद्धस्तुकाकुत्स्थोविवशस्तेनमोहितः ॥ अथावतस्थेसुश्रांतश्छायामाश्रित्यशाद्वले ॥ ९ ॥ सतमुन्मादयामासमृग रूपोनिशाचरः ॥ मृगैःपरिवृतोऽथान्यैरदूरात्प्रत्यदृश्यत ॥ १० ॥ ग्रहीतुकामंदृष्ट्वातंपुनरेवाभ्यधावत ॥ तत्क्षणादेवसं त्रासात्पुनरंतर्हितोभवत् ॥ ११ ॥ पुनरेवततोदूराद्वृक्षखंडाद्विनिसृतः ॥ दृष्ट्वारामोमहातेजास्तंहंतुंकृतनिश्चयः ॥ १२॥ भूयस्तुशरमुद्धृत्यकुपितस्तत्रराघवः ॥ सूर्यरश्मिप्रतीकाशंज्वलंतमरिमर्दनम् ॥ १३ ॥

मृगरूपी मारीचनें उनको उन्मादित करदियाथा, वह मारीच फिर अन्यमृगोंके साथ बहुत निकटही रामचन्द्रजीको दृष्टि आया ॥ १० ॥ वह मारीच राक्षस श्रीरामचन्द्रजीको अपनें पकडनेका अभिलाषी जानकर दौडा। और मारे भयके उसी समय फिर अन्तर्धान होगया ॥ ११ ॥ और बहुत दूर जाकर फिर वृक्ष समूहोंके नीचे दिखाई दिया, महातेजवान् रामचन्द्रजी यह देखकर अब उस मृगका मार डालनाही निश्चय करते हुए ॥ १२ ॥ उन्होनें रोषमें भरकर फिर तरकशसे सूर्यकी किरणोंकी समान शत्रुका नाश करनेंवाला प्रज्वलित एक बाण निकाला ॥ १३ ॥

दंडकारण्यमें आये ॥ २१ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ! अब हम तीनजन कैकेयीके कारण राज्यभ्रष्ट होकर अपने तेजके प्रभावसे गंभीर वनमें विचरण करते हैं। हे द्विजश्रेष्ठ! एक मुहूर्त भर विश्रामकरो ॥ २२ ॥ अभी हमारे स्वामी बहुत सारे वनफल, मूल, और, रुरु, वराह व गोधा वध करके बहुत मांस द्रव्य ले यहां आते होंगे जब वह आवेंगे तव आपका भली भांतिसे सत्कार होगा इस्से विराजिये ॥ २३ ॥ इस समय आप अपना नाम.गोत्र और वंश सत्यरही कहिये हे द्विज! किस कारण से आप इस दंडकारण्यमें अकेले घूमतेहैं ॥ २४ ॥ जब रामभार्या सीताने इस प्रकारके वचन कहे तो महा बलवान् राक्षसराज रावण उनको तीखा उत्तर देता हुआ बोला ॥ २५ ॥ हे जानकि! सुर असुर और मनुष्यसहित समस्त

विचरामद्विजश्रेष्ठवनंगंभीरमोजसा ॥ समाश्वसमुहूर्तंतुशक्यंवस्तुमिहत्वया ॥ २२ ॥ आगमिष्यतिमेभर्तावन्यमादा
यपुष्कलम् ॥ रुरून्गोधान्वराहांश्चहत्वादायामिषंबहु ॥२३॥ सत्वंनामचगोत्रंचकुलमाचक्ष्वतत्त्वतः ॥ एकश्चदंडका
रण्येकिमर्थंचरसिद्विज ॥ २४ ॥ एवंब्रुवत्यांसीतायांरामपत्न्यांमहाबलः ॥ प्रत्युवाचोत्तरंतीव्रंरावणोराक्षसाधि
पः ॥ २५ ॥ येनवित्रासितालोकाःसदेवासुरमानुषाः ॥ अहंसरावणोनामसीतेरक्षोगणेश्वरः ॥ २६ ॥ त्वांतुकांचन
वर्णाभांदृष्ट्वाकौशेयवासिनीम् ॥ रतिंस्वकेषुदारेषुनाधिगच्छाम्यनिंदिते ॥ २७ ॥ बह्वीनामुत्तमस्त्रीणामाहृतानामि
तस्ततः ॥ सर्वासामेवभद्रंतेममाग्रमहिषीभव ॥ २८ ॥ लंकानामसमुद्रस्यमध्येममममहापुरी ॥ सागरेणपरिक्षिप्तानि
विष्टागिरिमूर्धनि ॥ २९ ॥ तत्रसीतेमयासार्द्धंवनेषुविचरिष्यसि ॥ नचास्यवनवासस्यस्पृहयिष्यसिभामिनी ॥ ३० ॥

लोक जिसके डरके मारे थर २ कांपतेहैं हम वही राक्षसोंके राजा रावणहैं ॥ २६ ॥ तुम्हारा लावण्य कांचनकी समानहै और तुम रेशमी वस्त्र पहररहीहो हे अनिन्दते! तुमको देखकर अपनी स्त्रियोंमें हमारा अब कुछभी अनुराग नहीं रहा ॥ २७ ॥ हम बहुत सारी उत्तम स्त्रियें अनेक स्थानोंसे हर कर लायेहैं सो तुम उन समस्तके बीचमें पटरानी बनो ॥ २८ ॥ तुम्हारा मंगलहो हे जानकि! चारो तरफ समुद्रसे घिरी हुई पर्वतके शिर त्रिकूट पर लंका नामक जो नगरीहै वह हमारीही है ॥ २९ ॥ तुम वहां हमारे साथ महावनोंमें विचरण किया करोगी. हे

मचंद्रजीनें देखा और मनही मनमें सीता और लक्ष्मणके वचन याद करकै आश्रमकी ओर लौटे ॥ २२ ॥ आश्रमको लौटनेंके समय विचारनें लगे कि लक्ष्मणजीनें पहलेही कहाथा कि यह मारीचकी मायाहै । उनकीही बात इस समय सत्य हुई । यथार्थही मारीचको हमनें मारडाला ॥२३॥ इस समय मारीचनें " हा सीते ! हा लक्ष्मण " बडे ऊंचे शब्दसे यह कह कर प्राण त्याग कियेहैं; न जाने सीता इस शब्दको सुनकर क्या करैंगी ॥ २४ ॥ अथवा महाबाहु लक्ष्मणजी किस अवस्थाको प्राप्त होंगे? इस प्रकार चिन्ता करते २ धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीके रोम खडे होगये॥२५॥ उस काल मृगरूपी राक्षसको मार डालकर और इसका इस प्रकारचिल्लाना सुनकर विषादके मारे तीव्र भयसे रामचंद्रजी भीत हुए ॥ २६॥

मारीचस्यतुमायैषापूर्वोक्तालक्ष्मणेनतु ॥ तत्तथाह्यभवच्चाद्यमारीचोऽयंमयाहतः ॥ २३ ॥ हासीतेलक्ष्मणेत्येवमाक्रुश्यतुमहास्वनम् ॥ ममारराक्षसःसोऽयंश्रुत्वासीताकथंभवेत् ॥ २४ ॥ लक्ष्मणश्चमहाबाहुःकामवस्थांगमिष्यति ॥ इतिसंचिंत्यधर्मात्मारामोहृष्टतनूरुहः ॥ २५ ॥ तत्ररामंभयंतीव्रमाविवेशविषादजम् ॥ राक्षसंमृगरूपंतंहत्वाश्रुत्वाचतत्स्वनम् ॥ २६ ॥ निहत्यपृषतंचान्यंमांसमादायराघवः ॥ त्वरमाणोजनस्थानंससाराभिमुखंतदा ॥ २७ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआर ० चतुश्चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४४ ॥ ॥ छ ॥ आर्तस्वरंतुतंभर्तुर्विज्ञायसदृशंवने ॥ उवाचलक्ष्मणंसीतागच्छजानीहिराघवम् ॥ १ ॥ नहिमेजीवितंस्थानेहृदयंवावतिष्ठते ॥ क्रोशतः परमार्तस्यश्रुतःशब्दोमयाभृशम्॥२॥आक्रंदमानंतुवनेभ्रातरंत्रातुमर्हसि॥ तंक्षिप्रमभिधावत्वंभ्रातरंशरणैषिणम्३ ॥

तिसके पीछे वह एक और मृगको मारकर और उसका मांस ग्रहण करकै शीघ्रतासे जनस्थानकी ओर चले ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥ यहां आश्रममें वनके मध्य अपने स्वामीकी समान बहु करुणाका शब्द सुनकर सीताजी लक्ष्मणसे बोली जाकर देख आओ रामचंद्रजीको क्या हुआ?॥ १ ॥ वह महाआरत वचनसे चिल्ला रहेहैं यह शब्द सुनकर हमारा मन प्राण अपने२ ठिकाने नहीं है ॥ २ ॥ वनके बीच ऊंचें स्वरसे रोते हुए अपने भ्राताका उद्धार करना तुमको अवश्य कर्तव्यहै । इस

सकता ऐसेही श्रीरामचंद्रजीके तेज रूप अग्निसे घिरी हमको तुम पानेंकी सामर्थ्य नहीं रखते ॥३७॥ अरे अभागे राक्षस! जब कि तैंनें रघुनंदन श्री रामचंद्रजीकी भार्याके हरनेंका अभिलाष कियाहै, तब तू निश्चयही सब वृक्षोंको सुवर्णमय देखता होगा (स्वप्नमें सोनेका वृक्ष देखना मृत्युरूपहै) अर्थात् तुमको हमारा प्राप्त करना ऐसा दुर्लभहै जैसे कोई दरिद्र सुवर्णके सहस्रों पेड अपनें गृहमें देखनेकी इच्छाकरै ॥ ३८ ॥ मृगारि शीघ्रगामी, और बडे क्षुधित सिंहके मुखसे या विषधर सर्पके मुखसे तुम दांत निकालनेंकी इच्छा करतेहो ॥ ३९ ॥ तुम पर्वतवर मन्दराचलको भुजासे उत्पाटन करना चाहतेहो, और कालविष पीकरभी इस शरीर सहित कुशल जाया चाहतेहो ॥ ४० ॥ क्या तुम सूची (सुई) से अपने नेत्रोंके

पादपान्कांचनान्नूनंबहून्पश्यसिमंदभाक् ॥ राघवस्यप्रियांभार्यांयस्त्वमिच्छसिराक्षस ॥ ३८ ॥ क्षुधितस्यचसिंहस्यमृगशत्रोस्तरस्विनः ॥ आशीविषस्यवदनाद्दंष्ट्रामादातुमिच्छसि ॥ ३९ ॥ मंदरंपर्वतश्रेष्ठंपाणिनाहर्तुमिच्छसि ॥ कालकूटंविषंपीत्वास्वस्तिमान्गंतुमिच्छसि ॥ ४० ॥ अक्षिसूच्याप्रमृजसिजिह्वयालेढिचक्षुरम् ॥ राघवस्यप्रियांभार्यामधिगंतुंत्वमिच्छसि ॥ ४१ ॥ अवसज्ज्यशिलांकंठेसमुद्रंतर्तुमिच्छसि ॥ सूर्यचंद्रमसौचोभौपाणिभ्यांहर्तुमिच्छसि ॥ ४२ ॥ योरामस्यप्रियांभार्यांप्रधर्षयितुमिच्छसि ॥ अग्निंप्रज्वलितंदृष्ट्वावस्त्रेणाहर्तुमिच्छसि ॥ कल्याणवृत्तांयोभार्यांरामस्याहर्तुमिच्छसि ॥ अयोमुखानांशूलानांमध्येचरितुमिच्छसि ॥ ४३ ॥ रामस्यसदृशींभार्यांयोऽधिगंतुंत्वमिच्छसि ॥ ४४ ॥

खुजानेंकी इच्छा करतेहो, या छुरेकी धारसे अपनी रसनाको चाटना अच्छा समझतेहो; क्योंकि जो तुम हमें श्रीरामचंद्रजीकी परम प्यारी स्त्री नारी हमको पानेंकी इच्छा करतेहो ॥ ४१ ॥ तुम ग्रीवामें पर्वतका शिखरबांध समुद्र उतरना विचारतेहो, और सूर्य चंद्रमा दोनोंको उभय भुजासे पकडना चाहतेहो ॥ ४२ ॥ जो कि तुमनें श्रीरामचंद्रजीकी प्यारी नारीको बलपूर्वक प्राप्त होनेंकी इच्छाकीहै, सो यह इच्छा ऐसीहै, जैसे कोई जलती हुई अग्नि वस्त्रमें बांधकर लेजाना चाहै ॥ ४३ ॥ तुमने जो रामचंद्रजीकी कल्याणव्रतवाली भार्याको हरनेंकी इच्छा कीहै सो यह

भी ऐसा कोई नहीं है;॥ १२ ॥ जो इन्द्रके समान पौरुषी श्रीरामचन्द्रजीका सामना करसकै फलतः उनको समरमें कोई मारभी नहीं सकता इस लिये तुमको ऐसा अनुचित नहीं कहना चाहिये ॥ १३ ॥ और रामचन्द्रजीके विना इकेली इस वनके बीच त्याग करनेंकोभी किसी प्रकारसे हमारा साहस नहीं होता, इन्द्रादि बलवान् देवगणभी अपनें बलसे रामचन्द्रजीके बलको नहीं रोक सकते॥१४॥अथवा सब त्रिलोकी समस्त देवता गणोंके सहित एकत्र मिलकरभी रामचंद्रजीके पराजय करनेंको सामर्थ्य नहीं रखते इससे आप शोक त्याग करकै स्थिर चित्त हूजिये ॥ १५ ॥ आपके स्वामी रामचंद्रजी मृगोत्तमको हनन करकै शीघ्रही लौटेंगे और हम निश्चय कहतेहैं कि यह शब्द उनका नहींहै और न कोई यह देव

योरामंप्रतियुध्येतसमरेवासवोपमम् ॥ अवध्यःसमरेरामोनैवंत्वंवक्तुमर्हसि ॥ १३ ॥ नत्वामस्मिन्वनेहातुमुत्सहे राघवंविना ॥ अनिवार्यंबलंतस्यबलैर्बलवतामपि ॥ १४ ॥ त्रिभिर्लोकैःसमुदितैः सेश्वरैःसामरैरपि ॥ हृदयंनिर्वृतंते स्तुसंतापस्त्यज्यतांतव ॥ १५ ॥ आगमिष्यतितेभर्ताशीघ्रंहत्वामृगोत्तमम् ॥ नसतस्यस्वरोव्यक्तंनकश्चिदपिदै वतः ॥ १६ ॥ गंधर्वनगरप्रख्यामायातस्यचरक्षसः ॥ न्यासभूतासिवैदेहिन्यस्तामयिमहात्मना ॥ १७ ॥ रामेण त्वंवरारोहेनत्वां त्यक्तुमिहोत्सहे ॥ कृतवैराश्चकल्याणिवयमेतैर्निशाचरैः ॥ १८ ॥ खरस्यनिधनेदेविजनस्थानवधं प्रति ॥ राक्षसाविविधावाचोव्याहरंतिमहावने ॥ १९ ॥ हिंसाविहारावैदेहिनचिंतयितुमर्हसि ॥ लक्ष्मणेनैवमु क्तातुक्रुद्धासंरक्तलोचना ॥ २० ॥

प्रेरित शब्दहै ॥ १६ ॥ निशाचर मारीचही गन्धर्व नगर सदृशी मिथ्या माया विस्तार करकै इस प्रकार शब्द चिल्लाकर कररहाहै । हे जानकि! महात्मा राम करकै आप हमारे निकट सौंपी गईहैं ॥ १७ ॥ इसही कारणसे आपको त्याग करनेंमें हमारा उत्साह नहीं होता । हे कल्याणि ! हे वरारोहे ! इन सब राक्षसोंके सहित हमारी शत्रुता होगई है ॥ १८ ॥ हे देवि ! खरको मार और जनस्थानको विध्वंस करनेंसे राक्षस लोग इस महावनमें हमारे ऊपर अनेक प्रकारके वचन प्रयोग किया करतेहैं ॥१९ ॥ हे जानकि ! साधु लोगोंकी हिंसा करनाही राक्षस लोगोंका एक मात्र खेल है । इस कारण इस विषयमें चिन्ता करना किसी प्रकारसेभी आपको उचित नहीं है । जब लक्ष्मणजीनें इस प्रकार कहा तब क्रोधके मारे

जब सीताजीनें इस प्रकारसे कठोर वचन कहे तब रावणनें महा क्रोधित होकर भ्रुकुटि टेढी करके कहा ॥ १ ॥ हे वरवर्णनि! हम कुबेरके सौतेले भाईहैं। हम परमप्रतापशालीका नाम दशग्रीव रावणहै, तुम्हारा मंगलहो ॥ २ ॥ जिस प्रकार प्रजागण मृत्युसे भय करतेहैं, वैसेही हमारे भयसे भीत होकर, देव, गन्धर्व, पिशाच, पन्नग, और उरग गण समस्तही सदा भागतेहैं ॥ ३ ॥ हमने किसी कारण वशसे क्रोधमें भर द्वन्द्व करके संग्राममें विक्रम प्रकाश करके सौतेले भाई कुबेरको सब प्रकारसे जीत लियाहै ॥ ४ ॥ इस कारण वह हमसे डरकर धन धान्य ऋषि सिद्धिसे भरी पुरी अपनी लंकापुरी त्यागकर पर्वतराज कैलासमें वास करतेहैं॥५॥ हे भद्रे! हमने अपने वीर्यके प्रभावसे उन कुबेरका इच्छानुसार चलनें

एवंब्रुवत्यांसीतायांसंरब्धःपरुषंवचः ॥ ललाटेभ्रुकुटिंकृत्वारावणःप्रत्युवाचह ॥ १ ॥ भ्रातावैश्रवणस्याहंसापत्नो वरवर्णिनि ॥ रावणोनामभद्रंतेदशग्रीवःप्रतापवान् ॥ २ ॥ यस्यदेवाःसगंधर्वाःपिशाचपतगोरगाः ॥ विद्रवंतिसदाभीतामृत्योरिवसदाप्रजाः ॥ ३ ॥ येनवैश्रवणोभ्रातावैमात्रःकारणांतरे ॥ द्वंद्वमासादितःक्रोधाद्रणेविक्रम्यनिर्जितः ॥ ४ ॥ मद्भयार्तःपरित्यज्यस्वमधिष्ठानमृद्धिमत् ॥ कैलासंपर्वतश्रेष्ठमध्यास्तेनरवाहनः ॥५॥ यस्यतत्पुष्पकंनाम विमानंकामगंशुभम् ॥ वीर्यादावर्जितंभद्रेयेनयामिविहायसम् ॥ ६ ॥ ममसंजातरोषस्यमुखंदृष्ट्वैवमैथिलि ॥ विद्रवंतिपरित्रस्ताःसुराःशक्रपुरोगमाः ॥ ७ ॥ यत्रतिष्ठाम्यहंतत्रमारुतोवातिशंकितः ॥ तीव्रांशुःशिशिरांशुश्चभयात्संपद्यतेदिवि ॥ ८ ॥ निष्कंपपत्रास्तरवोनद्यश्चस्तिमितोदकाः ॥ भवंतियत्रतत्राहंतिष्ठामिचचरामिच ॥ ९ ॥

वाला परम सुन्दर पुष्पक नामक विमानभी हरण कर लियाहै तुम उसी विमानमें बैठकर हमारे साथ आकाशमार्गमें चलोगी ॥ ६ ॥ हे मैथिलि! हमें क्रोध उत्पन्न हुआ कि हमारा मुख देखतेही इन्द्रादि मुख्य देवता गण महाभयभीत होकर दशोदिशाओंको भाग जातेहैं ॥ ७ ॥ जहां पर हम रहा करतेहैं, वायु वहांपर शंका सहित चला करतीहै और सूर्यभी हमारे भयसे आकाश मंडलमें चंद्रमाकी समान देख पडताहै ॥ ८ ॥ अधिक क्या कहें? जहां पर हम बैठते उठते व घूमते घामतेहैं वहां पर वृक्षोंके पत्तेभी नहीं हिलते डुलते, नदियोंका जलभी वहनेसे रुक जाताहै॥९॥

प्रकार उत्तर देनेंको हमारा साहस नहीं होता ॥ २८ ॥ परन्तु हे जानकि ! आपनें जो यह अयोग्य वार्ता कही है सो स्त्रियोंके लिये
छ विचित्र वात नहीं है, क्योंकि इस लोकमें स्त्रियोंका स्वभाव ऐसा देखा ही जाता है ॥ २९ ॥ स्त्रियोंकी जाति, स्वभावसेही
न हीन है, यह पिता पुत्र इत्यादिमें परस्पर भेद करा देती हैं। किन्तु हे जानकि ! तुम्हारी यह वार्ता हम पर नहीं सही जाती
तपे हुए बाणोंकी नांई यह तुम्हारे वचन हमारे दोनों कानोंको विद्धकर रहे हैं। अच्छा ! वनवासी देवता गण सबही हमारे
वण करैं ॥ ३१ ॥ हमनें यथार्थ वार्ता कही है तथापि तुमनें हमको कठोर वचन कहे तुमको धिक्कार है ! निश्चयही तुम्हारा

…तरूपंतुनचित्रंस्त्रीषुमैथिलि ॥ स्वभावस्त्वेषनारीणामेषुलोकेषुदृश्यते ॥ २९ ॥ विमुक्तधर्माश्चपलास्तीक्ष्णा
:स्त्रियः ॥ नसहेहीदृशंवाक्यंवैदेहिजनकात्मजे ॥ ३० ॥ श्रोत्रयोरुभयोर्मध्येतप्तनाराचसंनिभम् ॥ उपशृण्वं
…र्वसाक्षिणोहिवनेचराः ॥ ३१ ॥ न्यायवादीयथावाक्यमुक्तोहंपरुषंत्वया ॥ धिक्त्वामद्यविनश्यंतींयन्मामेवंविशं
कसे ॥ ३२ ॥ स्त्रीत्वाद्दुष्टस्वभावेनगुरुवाक्येव्यवस्थितम् ॥ गच्छामियत्रकाकुत्स्थःस्वस्तितेऽस्तुवरानने ॥ ३३ ॥
रक्षंतुत्वांविशालाक्षिसमग्रावनदेवताः ॥ निमित्तानिहिघोराणियानिप्रादुर्भवंतिमे ॥ अपित्वांसहरामेणपश्येयंपुनरा
गतः ॥ ३४ ॥ लक्ष्मणेनैवमुक्तातुरुदतीजनकात्मजा ॥ प्रत्युवाचततोवाक्यंतीव्रबाष्पपरिप्लुता ॥ ३५ ॥

विनाश काल उपस्थित है (राक्षसकुलकी नाश करानेंवाली तुझको धिक्कार है यह गूढ है) जो हम पर ऐसी शंका करती हो ॥ ३२ ॥ हम
सदाही गुरुजनोंकी आज्ञाका पालन किया करते हैं इस रामचन्द्रजीकी आज्ञा मान तुम्हें छोड नहीं जातेथे। किन्तु तुमनें स्त्रीके स्वभाव और
दुष्ट प्रकृतिके वश होकर हमको दुर्वचन कहे। हे वरानने ! जहां रामचन्द्रजी हैं हमभी वहां जाते हैं; तुम कुशल क्षेमसे रहो ॥ ३३ ॥ और
समस्त वन देवता गण तुम्हारी रक्षा करैं; हे विशालाक्षि ! वडे २ बुरे शकुन हमारे सामने प्रगट हो रहे हैं; इस कारणसे फिर रामचन्द्रजीके
साथ आकर तुमको कुशल सहित देखें ॥ ३४ ॥ जब लक्ष्मणजीनें इस प्रकारसे कहा तब जनकनन्दनी सीताजी अविरलवाहिनी अश्रुधारासे

त हुईथी ॥ १८ ॥ राम मनुष्यहै, वह युद्धमें हमारी एक अंगुलीकी समानभी नहीं होगा । हे वरवर्णिनि! हम तुम्हारे सौभाग्यसेही आप यहां आ
येहैं, इस्से तुम हमको अपना पति बनाओ ॥ १९ ॥ जब रावण नें इस प्रकारके वचन कहे, तब सीताजीके नेत्र क्रोधके मारे लाल २ होगये।
वह उस निर्जन वनमें रावणसे यह कठोर वचन बोली ॥ २० ॥ सब देवताओंके नमस्कार करनेंके योग्य उन परम पूजनीय, कुबेरजीको
अपना भाई बताकर तुम किस प्रकार निन्दनीय कार्य करनेंका अभिलाष करते हो? ॥ २१ ॥ हे रावण! तुम्हारी समान खोटी बुद्धि
वाला कर्कश और अजितेन्द्रिय पुरुष जिनका राजाहै, उन सबही राक्षस गणोंको नाशको प्राप्त होना पडेगा ॥ २२ ॥ इन्द्रपत्नी

अंगुल्यानसमोरामोममयुद्धेसमानुषः ॥ तवभाग्येनसंप्राप्तंभजस्ववरवर्णिनि ॥ १९ ॥ एवमुक्तातुवैदेहीक्रुद्धा
संरक्तलोचना ॥ अब्रवीत्परुषंवाक्यंरहितेराक्षसाधिपम् ॥ २० ॥ कथंवैश्रवणंदेवंसर्वदेवनमस्कृतम् ॥ भ्रात
रंव्यपदिश्यत्वमशुभंकर्तुमिच्छसि ॥ २१ ॥ अवश्यंविनशिष्यंतिसर्वेरावणराक्षसाः ॥ येषांत्वंकर्कशोराजादुर्बु
द्धिरजितेंद्रियः ॥ २२ ॥ अपहृत्यशचींभार्यांशक्यमिंद्रस्यजीवितुम् ॥ नहिरामस्यभार्यांमामानीयस्वस्तिमान्भवे
त् ॥ २३ ॥ जीवेच्चिरंवज्रधरस्यपश्चाच्छचींप्रधृष्याप्रतिरूपरूपाम् ॥ नमादृशींराक्षसधर्षयित्वापीतामृतस्यापितवा
स्तिमोक्षः ॥ २४ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेअष्टचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४८ ॥ ॥ ॥
सीतायावचनंश्रुत्वादशग्रीवःप्रतापवान् ॥ हस्तेहस्तंसमाहन्यचकारसुमहद्वपुः ॥ १ ॥

शचीको हरण करकै; चाहें कोई जीवित रहजाय; परन्तु रामभार्या हमको हरण करकै कौन पुरुष बच कल्याण पासकताहै? ॥ २३ ॥
रे राक्षस! अत्यन्त रूपवती देवराज इन्द्रके पीछे उनकी भार्या को बलपूर्वक हरण करकै चाहे किसीका जीवित रहना संभवभीहो, परन्तु
हम समान स्त्रीको रामचन्द्रजीके पीछे अपमानता करकै अमृत पिया हुआ पुरुषभी मृत्युके हाथसे नहीं बच सकैगा ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा
मायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे अष्टचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४८ ॥ प्रतापवान् दशग्रीव रावण सीताजीके यह वचन सुनकर, हाथपर हा

रामचन्द्रजीको देखनेंके लिये अतिव्यग्रचित्तसे चले ॥ १ ॥ तिसके पीछे दशानन रावण यह सुअवसर पाकर यतीका रूप धारण कर शीघ्रही श्रीसीताजीके सामनें आया ॥ २ ॥ वह कोमल गेरुआ वस्त्र पहरे, शिर पर वार रखाये छत्री लगाये खडाऊं पहरे, वांये कंधे पर लाठी और कमंडलु हाथमें ॥ ३ ॥ ऐसा त्रिदंडी संन्यासीका रूप बना सीताजीके सन्मुख हुआ जबकि दोनों भाई आश्रममें नहींथे ॥ ४ ॥ जिस प्रकार विना चन्द्र सूर्यके सन्ध्याकालमें महा अंधकार हो आता है। वैसेही विना राम और लक्ष्मणजीके सीताजीके निकट दशानन आकर परम यशस्वि नी राजपुत्री जनकनन्दनीजीको देखनें लगा ॥ ५ ॥ जैसे चन्द्रमाकरके हीन रोहिणी नक्षत्रको राहु देखे जनस्थानके समस्त वृक्ष उग्र

तदासाद्यदशग्रीवःक्षिप्रमंतरमास्थितः ॥ अभिचक्रामवैदेहींपरिव्राजकरूपधृक् ॥ २ ॥ श्लक्ष्णकाषायसंवीतःशिखी छत्रीउपानही ॥ वामेचांसेऽवसज्ज्याथशुभेयष्टिकमंडलू ॥ ३ ॥ परिव्राजकरूपेणवैदेहीमन्ववर्तत ॥ तामाससा दातिबलोभ्रातृभ्यांरहितांवने ॥ ४ ॥ रहितांसूर्यचंद्राभ्यांसंध्यामिवमहत्तमः ॥ तामपश्यत्ततोबालांराजपुत्रींयश स्विनीम् ॥ ५ ॥ रोहिणींशशिनाहीनांग्रहवद्भृशदारुणः ॥ तमुग्रंपापकर्माणंजनस्थानगताद्रुमाः ॥ ६ ॥ संदृश्यनप्र कंपंतेनप्रवातिचमारुतः ॥ शीघ्रस्रोताश्चतंदृष्ट्वावीक्षंतंरक्तलोचनम् ॥ ७ ॥स्तिमितंगंतुमारेभेभयाद्गोदावरीनदी ॥ रामस्यत्वंतरंप्रेप्सुर्दशग्रीवस्तदंतरे ॥ ८ ॥ उपतस्थेचवैदेहींभिक्षुरूपेणरावणः ॥ अभव्योभव्यरूपेणभर्तारमनुशो चतीम् ॥ ९ ॥ अभ्यवर्ततवैदेहींचित्रामिवशनैश्चरः ॥ सहसाभव्यरूपेणतृणैःकूपइवावृतः ॥ १० ॥

स्वभाव पाप कर्म करनेंवाले रावणको देखकर ॥ ६ ॥ हिलनें झुलनेंसे रहित होगये पवनका चलना वंद हो गया। लाल २ नेत्र किये सीताजीके प्रति उसकी दृष्टिको लगा देख नदीभी शीघ्र गतिको त्याग मंदर वहनें लगी॥ ७ ॥गोदावरी नदीका जलभी शंकाके वश होकर मंद२वहनें लगा। इसी अव सरमें रामचंद्रजीका अन्तर चाहनेंवाला दशग्रीव ॥ ८ ॥ भिक्षुकका वेश बनाकर वैदेहीजीके निकट आन पहुंचा, यह महाकुरूप दशानन, अति रूपवती अपने पतिके लिये शोक करती हुई ॥ ९ ॥ जानकीजीको ऐसे प्राप्त हुआ जिस प्रकार चित्रानक्षत्रके निकट शनि आताहै, वहां पहुंच उसनें

हुए जानकीजीसे कहनें लगा ॥ १० ॥ कि त्रिभुवनविख्यात स्वामीके प्राप्त करनेंकी यदि इच्छाहो तौ हे वरारोहे! हमारा आश्रय ग्रहण करो, हम ही तुम्हारे समान पतिहैं ॥ ११ ॥ तुम बहुत कालके लिये हमारी भजना करो.हमहीं तुम्हारे वांछित और बडाई करनें योग्य पतिहैं। हेभद्रे! हम कभी ऐसा आचरण नहीं करेंगे जो तुम्हें प्यारा नहो ॥ १२ ॥ तुम मनुष्यके प्रति प्रीति त्यागकरके हमारी ओर अपना प्रेम लगाओ, राज्यसे भ्रष्ट आयुहीन, अर्थरहित, राममें ॥ १३ ॥ किन गुणोंसे तुम अनुरागिणी हुईहो? हे मूढे पंडित मानिनि मैथिलि! जो रामचंद्र स्त्रीके कहनेंसे राज्य और सुहृद्गणोंको छोडकर ॥ १४ ॥ जोकि हम हिंसक जन्तुओंके वास करनें की भूमिमें वनके बीच वह दुर्मति रहताहै । इस प्रकार

त्रिषुलोकेषुविख्यातंयदिभर्तारमिच्छसि॥ मामाश्रयवरारोहेतवाहंसदृशःपति ॥११॥मांभजस्वचिरायत्वमहंश्लाघ्यः पतिस्तव ॥ नैवचाहंक्वचिद्भद्रेकरिष्येतवविप्रियम् ॥ १२ ॥ त्यज्यतांमानुषोभावोमयिभावःप्रणीयताम् ॥ राज्याच्च्युतमसिद्धार्थंरामंपरिमितायुषम्॥१३॥कैर्गुणैरनुरक्तासिमूढेपण्डितमानिनि॥यःस्त्रियोवचनाद्राज्यंविहायससुहृज्जनम् ॥१४॥अस्मिन्व्यालानुचरितेवनेवसतिदुर्मतिः॥इत्युक्त्वामैथिलींवाक्यंप्रियार्हांप्रियवादिनीम्॥१५॥अभिगम्यसुदुष्टात्मा राक्षसःकाममोहितः ॥ जग्राहरावणःसीतांबुधःखेरोहिणीमिव ॥१६॥ वामेनसीतांपद्माक्षींमूर्धजेषुकरेणसः ॥ ऊर्वोस्तुदक्षिणेनैवपरिजग्राहपाणिना ॥ १७ ॥ तंदृष्ट्वागिरिशृंगाभंतीक्ष्णदंष्ट्रंमहाभुजम् ॥ प्राद्रवन्मृत्युसंकाशंभयार्तावनदेवताः ॥ १८ ॥ सचमायामयोदिव्यःखरयुक्तःखरस्वनः ॥ प्रत्यदृश्यतहेमांगोरावणस्यमहारथः ॥ १९ ॥

प्रिय वचन कहनें के योग्य मैथिलीजीसे ॥ १५ ॥ यह कहकर अति दुष्टात्मा रावण जानकीजीके समीप आया और उनको ग्रहण किया, उस समय ऐसा बोध हुआ मानों आकाशके बीच बुधनें रोहिणीको ग्रहण किया ॥ १६ ॥ उस समय सीता महारानी रावणके कठोर वचन सुन और इसका रूप देखकर कुछ ऐसी मूर्छितसी होगई थीं कि वाम बाहुसे तौ रावणनें उनपद्माक्षीका केशपाश और दाहिनी भुजासे दोनों चरणोंको पकड उठा लिया॥१७॥ वन देवता लोकभी उस समय उस पर्वत शृङ्ग सदृश तीक्ष्ण डाढ वाले महा सर्प तुल्य रावणको देख भयभीत हो कर दशों दिशाओंको भाग गये ॥ १८ ॥ देखतेही देखतेही रावणका वह मायामय स्वर्ण मंडित गर्दभजुता हुआ भयंकर शब्दकारी दिव्यरथ व

तुम्हारा जघन, अति पीन व विशालहैं और जांघें हाथीकी शुण्डके समान चढ़ाउतार, बडे२गोलाकर एकमें एक मिले कुछ कम्पायमान ॥१९॥ तुम्हारी दोनों छातियें पीनहैं और जिनका अग्रभाग उठा हुआहै, परम मनोहरहै और चिकने ताल फलके आकारवालेहैं! और उनपर मणियोंकी माला पडीहैं ॥ २० ॥ फलतः तुम्हारे दांत नेत्र और मुसकुराना सवहीकुछ रमणीयहै। हे रमणीये! नदी जिस प्रकार जलके वेगसे कूलको हरण करतीहै तैसेही तुमभी इन सवसे हमारे चित्तको हरण करतीहो ॥ २१ ॥ तुम्हारे केश परम सुन्दरहैं, दोनों पयोधर अत्यन्त घनेहैं, और तुम्हारा मध्य देश अर्थात् कमर इतनी पतलीहै कि मुट्ठीके वीचमें आजाय। क्या देवी, क्या गन्धर्वी, क्या यक्षी, क्या किन्नरी, ॥ २२ ॥ कोईभी तुम्हारे स

विशालंजघनंपीनमूरूकरिकरोपमौ ॥ एतावुपचितौवृत्तौसंहतौसंप्रगल्भितौ ॥ १९ ॥ पीनोन्नतमुखौकांतौस्निग्धतालफलोपमौ ॥ मणिप्रवेकाभरणौरुचिरौतौपयोधरौ ॥ २० ॥ चारुस्मितेचारुदतिचारुनेत्रेविलासिनि ॥ मनोहरसिमेरामेनदीकूलमिवांभसा ॥ २१ ॥ करांतमितमध्यासिसुकेशेसंहतस्तनि ॥ नैवदेवीनगंधर्वीनयक्षीनचकिन्नरी ॥ २२ ॥ नैवंरूपामयानारीदृष्टपूर्वामहीतले ॥ रूपमग्र्यंचलोकेपुसौकुमार्यंवयश्चते ॥ २३ ॥ इहवासश्चकांतारेचित्तमुन्माथयंतिमे ॥ साप्रतिक्रामभद्रंतेनत्वंवस्तुमिहार्हसि ॥ २४ ॥ राक्षसानामयंवासोघोराणांकामरूपिणाम् ॥ प्रासादाग्राणिरम्याणिनगरोपवनानिच ॥ २५ ॥ संपन्नानिसुगंधीनियुक्तान्याचरितुंत्वया ॥ वरंमाल्यंवरंगंधंवरंवस्त्रंचशोभने ॥ २६ ॥

मान रूपवान नहींहै। हमनें इससे पहले पृथ्वीपर तुम्हारे समान रूपवती राजरानी नहीं देखी, तुम्हारा रूप यौवन, सुकुमारता ॥ २३ ॥ और इस निर्जन वनमें वास यह चारोंही त्रिलोकीमें श्रेष्ठहैं, इस कारण इन वातोंसे हमारा चित्त क्षुभित होताहै। इस कारण बाहर चली आओ। तुम्हारा कल्याणहो; बनवास करना तुम को उचित नहींहै ॥ २४ ॥यहां तो कामरूपी भयंकर निशाचर गण रहा करतेहैं तुम तो अति रमणीय प्रासादशिखर, नगर व उपवनोंमें ॥ २५ ॥ जहां सव भोग्य वस्तु प्रस्तुतहैं, और सुगन्धिके पदार्थ धरे रहतेहैं यह स्थान तुम्हारे रहनेंके योग्यहै; श्रेष्ठ

रहित होकर यह जो कर्म किया इसके लिये तुमको रामचंद्रजीसे प्राणान्त करनेंवाली घोर विपद में पडना होगा ॥ २८॥ हाय! हम धर्म की इच्छा करनें वाले यशस्वी रामचंद्रजीकी धर्म पत्नी होकर भी हरी जातीहैं। इतनें दिन पीछे सब कुटुम्बियों सहित कैकेयीकी मनो कामना पूर्ण हुई॥२९॥ इन पुष्पित कर्णिकार और जनस्थान, सब सेही हम यह प्रार्थना करतीहैं कि सब रामचंद्रजीसे कहदेना कि रावण सीताजीको हरण कर लेगया है ॥ ३०॥ हे संसार सेवित तरंगिणि गोदावरी! हम तुम्हारी वंदना करतीहैं; तुमभी शीघ्र रामचंद्रजीसे यह कह देना रावण जानकीको हरण करके ले गयाहै ॥ ३१ ॥ इस विविध प्रकारके वृक्ष कानन में जो देवता वास करते हैं, हम उन सबको नमस्कार करतीहैं, वहभी हमारे स्वामी श्रीराम

हंतेदानींसकामातुकैकेयीबांधवैःसह ॥ ह्रियेयंधर्मकामस्यधर्मपत्नीयशस्विनः ॥ २९ ॥आमंत्रयेजनस्थानंकर्णिकारांश्चपुष्पितान् ॥ क्षिप्रंरामायशंसध्वंसीतांहरतिरावणः ॥ ३० ॥ हंससारससंघुष्टांवंदेगोदावरींनदीम् ॥ क्षिप्रंरामायशंसध्वंसीतांहरतिरावणः ॥ ३१ ॥ दैवतानिचयान्यस्मिन्वनेविविधपादपे ॥ नमस्करोम्यहंतेभ्योभर्तुःशंसतमांहताम् ॥ ३२ ॥ यानिकानिचिदप्यत्रसत्त्वानिविविधानिच ॥ सर्वाणिशरणंयामिमृगपक्षिगणानिवै ॥ ३३ ॥ ह्रियमाणांप्रियांभर्तुःप्राणेभ्योऽपिगरीयसीम् ॥ विवशातेहृतासीतारावणेनेतिशंसत ॥ ३४ ॥ विदित्वातुमहाबाहुरमुत्रापिमहाबलः ॥ आनेष्यतिपराक्रम्यवैवस्वतहृतामपि ॥ ॥ ३५ ॥ सातदाकरुणावाचोविलपंतीसुदुःखिता ॥ वनस्पतिगतंगृध्रंददर्शायतलोचना ॥ ३६ ॥

चंद्रजीसे हमारे हरणकी वार्ता कहैं॥३२ ॥ इस वनमें. मृग. पक्षी,इत्यादि जो कोई प्राणी भी वसतेहैं, हम उन सबकी ही शरण आतीहैं ॥ ३३ ॥ वह सबही पशु पक्षी हमारे स्वामीसे उनकी प्यारी स्त्रीके हरनेंका वृत्तान्त सुनावैं, और कहैं कि विवश होकर सीता रावण करके हरी गईहैं॥ ३४ ॥ हमको यदि यमराज भी हर कर ले जांय और महाबाहु रामचंद्रजीको समाचार मिल जावैं, तो वह अपना पराक्रम प्रकाश करके वहांसेभी हमको लेआवेंगे ॥३५ ॥ विशाल नेत्रवाली जानकीजीनें अतिशय दुःखित होकर विलाप करते २ अचानक देखा कि गृध्रराज जटायु पेड पर बैठेहैं ॥३६॥

ब्राह्मणका वेष धारण किये लाल वस्त्र पहरे जानकीजीनें ब्राह्मणकेही समान रावणका निमंत्रण करके कहा॥ ३५ ॥ हे विप्र! आप कुशासनपर सुख स
हित वैठ जाइये, और यह पाद्य ग्रहण कीजिये,व यह वनके फल सब आपकेही लियें रखेंहैं, इनको भोजनकीजिये ॥ ३६ ॥ नरेन्द्रभार्या जानकीजीनें
जब इस प्रकार निमंत्रण किया तब रावण उनकी ओर देख अपनें वध करानेंको बलपूर्वक उनके हरलेजानेंका निश्चय करताहुआ ॥ ३७ ॥परमप्रिय
मूर्ति रामचंद्रजी लक्ष्मणजीके सहित मृगया करनें गयेथे. जानकी उस समय उनकी वाट देखती हुई इधर उधर दृष्टि करनें लगीं तौ केवल चारों ओर बड़े

द्विजातिवेषेणसमीक्ष्यमैथिलीसमागतंपात्रकुसुंभधारिणम् ॥ अशक्यमुद्वेष्टुमुपायदर्शनान्यमंत्रयद्ब्राह्मणवत्तथाग
तम् ॥ ३५ ॥ इयंबृसीब्राह्मणकाममास्यतामिदंचपाद्यंप्रतिगृह्यतामिति ॥ इदंचसिद्धंवनजातमुत्तमंत्वदर्थमव्यग्रमि
होपभुज्यताम् ॥ ३६ ॥ निमंत्र्यमाणःप्रतिपूर्णभाषिणींनरेंद्रपत्नींप्रसमीक्ष्यमैथिलीम् ॥ प्रसह्यतस्याहरणेदृढंम
नःसमर्पयामासवधायरावणः ॥ ३७ ॥ ततःसुवेषंमृगयागतंपतिंप्रतीक्षमाणासहलक्ष्मणंतदा ॥ निरीक्षमाणाहरितं
ददर्शतन्महद्वनंनैवतुरामलक्ष्मणौ ॥ ३८ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेषट्चत्वारिं
शःसर्गः ॥ ४६ ॥ ॥ ७ ॥ रावणेनतुवैदेहीतदापृष्टाजिहीर्षुणा ॥ परिव्राजकरूपेणशशंसात्मानमात्मना ॥ १ ॥
ब्राह्मणश्चातिथिश्चैषअनुक्तोहिशपेतमाम् ॥ इतिध्यात्वामुहूर्तंतुसीतावचनमब्रवीत् ॥ २ ॥ दुहिताजनकस्याहंमैथि
लस्यमहात्मनः ॥ सीतानामास्मिभद्रंतेरामस्यमहिषीप्रिया ॥ ३ ॥

विस्तारवाली हरे वर्णकी वनभूमिही दृष्टि आई,परन्तु राम लक्ष्मणजी दिखाई नहीं दिये ॥ ३८ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०आर०षट्चत्वारिंशःसर्गः॥४६॥
जब संन्यासीवेशधारी रावणनें हरण करनेंके अभिलाषसे इस भांति पूछा तब सीताजी आपही आप विचार करनें लगीं ॥ १ ॥ कि एक तो यह ब्रा
ह्मणहै दूसरे अतिथिहै जो हम इस्से नहीं बोलतीं, तौ कदाचित् शाप न देदे, एक मुहूर्त भर यह शोच विचार कर जानकीजी उस्से बोलीं ॥ २ ॥ आ
पका कल्याणहो । हम मिथिलानरेश महात्मा जनकजीकी तौ कन्याहैं और श्रीरामचंद्रजीकी प्रिय भार्याहैं हमारा नाम सीताहै ॥ ३ ॥

नाथ रामचंद्रजीकी धर्मपत्नीहैं ॥ ५ ॥ सीता इनका नामहै जिनको तुम हरण करनेंको उद्यत हो सो तुम प्रजा पालन रूप धर्ममें स्थिर रहकर किस प्रकारसे पराई स्त्रीको हरण करोगे ॥ ६ ॥ हे महाबलवान! विशेष कर राज पत्नियोंका रक्षा करना सब भांतिसे कर्त्तव्य है; अतएव तुम पराई स्त्रीके हरण करने ओछे विषय की नीच बुद्धिको निवारण करो ॥ ७ ॥ जिस कर्मके करनें से लोकमें निन्दाहो, धीर पुरुष कभी ऐसे कार्यको नहीं किया करतेहैं। अपनी स्त्रीके समान पराई स्त्रीको पर पुरुषके स्पर्श से रक्षा करना सबही पुरुषोंको कर्त्तव्यहै ॥ ८ ॥ हे पौलस्त्यनंदन! शास्त्रसे निश्चित न होने पर भी शिष्ट जब राजा के अनुवर्ती होकर अनेकानेक धर्म, अर्थ अथवा काम विषयके अनुष्ठानमें रत होतेहैं ॥ ९ ॥ राजाही

सीतानामवरारोहार्यांत्वंहर्तुमिहेच्छसि ॥ कथंराजास्थितोधर्मेपरदारान्परामृशेत् ॥६॥ रक्षणीयाविशेषेणराजदारामहाबल ॥ निवर्तयगतिंनीचांपरदाराभिमर्शनात् ॥ ७॥ नतत्समाचरेद्धीरोयत्परोस्यविगर्हयेत् ॥ यथात्मनस्तथान्येषांदारारक्ष्याविमर्शनात् ॥८॥ अर्थंवायदिवाकामंशिष्टाःशास्त्रेष्वनागतम् ॥ व्यवस्यंत्यनुराजानंधर्मंपौलस्त्यनंदन ॥ ९ ॥ राजाधर्मश्चकामश्चद्रव्याणांचोत्तमोनिधिः ॥ धर्मःशुभंवापापंवाराजमूलंप्रवर्तते ॥ १० ॥ पापस्वभावश्चपलःकथंत्वंरक्षसांवर ॥ ऐश्वर्यमभिसंप्राप्तोविमानमिवदुष्कृती ॥ ११ ॥कामस्वभावोयःसोऽसौनशक्यस्तंप्रमार्जितुम् ॥ नहिदुष्टात्मनामार्यमावसत्यालयेचिरम् ॥ १२ ॥ विषयेवापुरेवातेयदारामोमहाबलः ॥ नापराध्यतिधर्मात्माकथंतस्यापराध्यसि ॥ १३ ॥

धर्म, राजाही काम और राजाही समस्त द्रव्यों में उत्तम रत्न स्वरूपहै; धर्म, काम, वा पाप समस्त ही राजमूलकहैं ॥ १० ॥ हे राक्षसराज! हम नहीं कह सकते कि तुम पाप स्वभाव और चपल होकर किस प्रकार दुष्कर्म करनेवाले जनको देवयोनि प्राप्त होने के समान ऐसे ऐश्वर्य को प्राप्त हुए? ॥ ११ ॥ जो पुरुष स्वेच्छाचारी होताहै वह उस अपने स्वभावको त्यागन नहीं कर सकता, क्यों कर दुरात्माओंके स्थानों में पुण्य कभी टिक नहीं सकताहै ॥ १२ ॥ महाबल धर्मात्मा रामचंद्रजीनें तुम्हारे नगर व अधिकारमें कोई अपराध नहीं कियाहै; फिर तुम किस

इसकारण कैकेयीका प्रिय करनेंके लिये उन्होंने इस प्रकारके गुणसम्पन्न रामचंद्रजीको अभिषेक न किया और जब श्रीरामचंद्रजी अभिषेकार्थ अपने पिताके निकट आये तो ॥ १३॥ कैकेयीने शीघ्रही उनसे यह वचन कहा, कि, हे रघुनंदन! तुम्हारे पिताजीनें तुमको जो आज्ञा दीहै वह हमसे सुनो ॥ १४ ॥ हे काकुत्स्थ! भरतको यह निष्कंटक राज्य देना होगा और तुम्हें चौदह वर्षके लिये वनमें रहना पडेगा ॥ १५ ॥ इसकारण तुम वनमें जाकर पिताके सत्यकी रक्षा करो और मिथ्यावादी न करो पिताको इस ऋणसे छुटाओ, तब दृढव्रत हमारे स्वामी श्रीरामचंद्रजीनें निडरहोकर कैकेयीसे ऐसाही होगा; यह कहा ॥ १६ ॥ हमारे दृढ व्रत धारी स्वामीनें उनके वचन सुनकर उसीके अनुसार कार्य किया हे विप्र! वह के

कैकेय्याःप्रियकामार्थंतंरामंनाभ्यषेचयत् ॥ अभिषेकायतुपितुःसमीपंराममागतम् ॥ १३ ॥ कैकेयीममभर्तारमित्युवाचद्रुतंवचः ॥ तवपित्रासमाज्ञप्तंममेदंशृणुराघव ॥ १४ ॥ भरतायप्रदातव्यमिदंराज्यमकंटकम् ॥ त्वयातुखलुवस्तव्यंनववर्षाणिपंचच॥ १५॥ वनेप्रव्रजकाकुत्स्थपितरंमोचयानृतात् ॥ तथेत्युवाचतांरामःकैकेयीमकुतोभयः ॥ १६ ॥ चकारतद्वचःश्रुत्वाभर्तामममदृढव्रतः ॥ दद्यान्नप्रतिगृह्णीयात्सत्यंब्रूयान्नचानृतम् ॥ १७ ॥ एतद्ब्राह्मणरामस्यव्रतंधृतमनुत्तमम् ॥ तस्यभ्रातातुवैमात्रोलक्ष्मणोनामवीर्यवान् ॥ १८ ॥ रामस्यपुरुषव्याघ्रःसहायःसमरेऽरिहा ॥ सभ्रातालक्ष्मणोनामब्रह्मचारीदृढव्रतः ॥ १९ ॥ अन्वगच्छद्धनुष्पाणिःप्रव्रजंतंमयासह ॥ जटीतापसरूपेणमयासहसहानुजः ॥ २० ॥ प्रविष्टोदंडकारण्यंधर्मनित्योदृढव्रतः ॥ तेवयंप्रच्युताराज्यात्कैकेय्यास्तुकृतेत्रयः ॥ २१ ॥

वल लोकोंको दान किया करतेहैं; परन्तु कभी किसीसे कुछ ग्रहण नहीं करते सदाही सत्य कहतेहैं कभी मिथ्या नहीं कहते ॥ १७ ॥ हे ब्राह्मण! वस यही रामचंद्रजीका श्रेष्ठ व्रतहै। उनके सौतेले भाई लक्ष्मणजी अतिशय वीरहैं ॥ १८ ॥व सदा रामजीके संग रहा करतेहैं पुरुषव्याघ्रहैं समरमें निहारतेही शत्रुका संहार करतेहैं वह ब्रह्मचारी और दृढव्रतधारीहैं ॥ १९ ॥ धनुषबाण हाथमें ले, जटा रखाय तपस्वीका भेष बनाय रामचंद्रजीके साथ२ वनमें चले आये॥२०॥ इस प्रकार दृढव्रतधारी महात्मा रामचंद्रजी भ्राता लक्ष्मण और अपनी स्त्री सहित जटा रखाय तपस्वी वेष धारण कर

यदि तुम शूर हो युद्ध करो। अथवा हे रावण! एक मुहूर्त भर ठहर, पहले खर जिस प्रकार पृथ्वीपर शयन कर चुका तुमभी वैसेही मारे जाकर पृथ्वीपर शयन करोगे॥२२॥ २३ ॥जिन तुमने वारंवार युद्धमें दैत्य और दानवोंको मार डाला है, सो जटावल्कलधारी रामचन्द्रजी शीघ्रही संग्राममें तुमको वध करेंगे ॥ २४ ॥ वह दो राजकुमार, राम लक्ष्मण अभी दूरे हैं हम क्या करैं, रे नीच! तुमको शीघ्रही उनसे भीत होकर विनाशको प्राप्त होना पडेगा इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ २५ ॥ और जबतक कि हम जीते हैं तब तकभी तुम हमारे सामनें रामचन्द्र जीकी प्रिय स्त्री कमलनेत्र सुस्वभावा इन जानकीजीको ले नहीं जा सकोगे ॥ २६ ॥ क्योंकि जबतक हम जीवित हैं तब तक प्राण तलकभी

नशक्तस्त्वंबलाद्धर्तुंवैदेहींममपश्यतः ॥ हेतुभिर्न्यायसंयुक्तैर्ध्रुवांवेदश्रुतीमिव ॥ २२ ॥ युद्धचस्वयदिशूरोसिमुहूर्तंतिष्ठ रावण ॥ शयिष्यसेहतोभूमौयथापूर्वंखरस्तथा ॥२३॥ असकृत्संयुगेयेननिहतादैत्यदानवाः ॥ नचिराच्चीरवासास्त्वां रामोयुधिवधिष्यति ॥ २४ ॥ किंनुशक्यंमयाकर्तुंगतौदूरंनृपात्मजौ ॥ क्षिप्रंत्वंनश्यसेनीचतयोर्भीतोनसंशयः ॥२५॥ नहिमेजीवमानस्यनयिष्यसिशुभामिमाम् ॥ सीतांकमलपत्राक्षींरामस्यमहिषींप्रियाम् ॥२६॥ अवश्यंतुमयाकार्यंप्रि यंतस्यमहात्मनः ॥ जीवितेनापिरामस्यतथादशरथस्यच ॥ २७ ॥ तिष्ठतिष्ठदशग्रीवमुहूर्तंपश्यरावण ॥ वृंतादिवफलं त्वांतुपातयेयंरथोत्तमात् ॥ २८ ॥ युद्धातिथ्यंप्रदास्यामियथाप्राणंनिशाचर ॥ २९ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवा ल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेपंचाशःसर्गः ॥ ५० ॥ ॥ छ ॥ इत्युक्तःक्रोधताम्राक्षस्तप्तकांचनकुंडलः ॥ रा क्षसेंद्रोऽभिदुद्रावपतगेंद्रममर्षणः ॥ १ ॥

देकर महात्मा रामचन्द्र और दशरथजीका प्रिय कार्य हमको अवश्य करना उचित है ॥ २७ ॥ इस कारण हे रावण! एक मुहूर्त खडा रह खडा रह. तुझको हम देखेंगे जिस प्रकार बौर से फल तोड लिया जाता है वैसेही तुमको हम रथसे नीचे गिरावेंगे ॥२८॥ रे निशाचर! जब तक हमारे प्राण हैं तब तक भली भांति हम तुम्हारी युद्धकी पहुनई करेंगे ॥ २९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० आर० पंचाशः सर्गः ॥ ५० ॥ पक्षीराज जटायुनें जब इस प्रकारसे कहा तब शुद्ध सुवर्णके बने कुंडल पहरे राक्षस राज रावण क्रोधके मारे लाल २ नेत्र कर उनके सामनें

भामिनि! वहां विचरण करनेंपर फिर तुमको इस वनमें वास करनेंकी अभिलापा नहीं रहेगी ॥ ३० ॥ हे सीते! यदि तुम हमारी भार्या बनोगी तो सर्व वस्त्राभूषणभूषित पांच हजार दासिये तुम्हारी सेवा किया करेंगी ॥ ३१ ॥ रावण यह जान्ताथा कि मैंने ऐसे पाप कियेहैं कि जिससे जप तप करनेंसे कदाचित् मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती इस कारण विरोध करके राम जिनको तत्त्वसे ईश्वर जानताथा उनके हाथसे मरनेंमें मुक्तिकी प्राप्ति विचार कर जानकीसे ऐसे वाक्य कहे कि जो ऐसे निठुर वचन कहूं तो शीघ्र अधिक पाप करनेसे रामचंद्रके हाथसे परम पद पाऊंगा अनन्दिता जनककुमारी जानकीजी राक्षस राज रावण करके इस प्रकार कहीजानेंपर महा क्रोधित हुई, और उसका अनादर करके कहनें

पंचदास्यःसहस्राणिसर्वाभरणभूषिताः ॥ सीतेपरिचरिष्यंतिभार्याभवसिमेयदि ॥ ३१ ॥ रावणेनैवमुक्तातुकुपिताज
नकात्मजा ॥ प्रत्युवाचानवद्यांगीतमनादृत्यराक्षसम् ॥ ३२ ॥ महागिरिमिवाकंप्यंमहेंद्रसदृशंपतिम् ॥ महोदधि
मिवाक्षोभ्यमहंराममनुव्रता ॥ ३३ ॥ सर्वलक्षणसंपन्नंन्यग्रोधपरिमंडलम् ॥ सत्यसंधंमहाभागमहंराममनुव्रता
॥ ३४ ॥ महाबाहुंमहोरस्कंसिंहविक्रांतगामिनम् ॥ नृसिंहंसिंहसंकाशमहंराममनुव्रता ॥ ३५ ॥ पूर्णचंद्राननंरा
मंराजवत्संजितेंद्रियम् ॥ पृथुकीर्तिमहाबाहुमहंराममनुव्रता ॥ ३६ ॥ त्वंपुनर्जंबुकःसिंहींमामिहेच्छसिदुर्लभाम् ॥
नाहंशक्यास्त्वयास्प्रष्टुमादित्यस्यप्रभायथा ॥ ३७ ॥

लगीं ॥ ३२ ॥ जो यहां पर्वत सुमेरुकी समान अकंपनीय, महासागरकी समान क्षोभरहितहैं, ऐसे महेन्द्र तुल्य हम स्वामी रामचंद्रजीकी अनुगताहैं ॥ ३३ ॥ जो शुभलक्षण युक्त वटवृक्षकी समानहैं, हम उनही सत्य प्रतिज्ञ महाभाग रामचंद्रजीकी अनुगताहैं ॥ ३४ ॥ जो आजानुबाहु वालेहैं, विशाल हृदयहैं, और सिंहकी समान विक्रमके साथ चलनेंवालेहैं, हम उनही नृसिंह और सिंह सदृश रामचंद्रजीकी अनुगताहैं ॥ ३५ ॥ उनका मुख पूर्ण चंद्रमाकी समानहै कीर्ति बहुतही विस्तारित होरहीहै; और बांहें जिनकी अति बडीहैं हम उन्हीं राजकुमार जितेन्द्रिय रामचंद्रजीकी अनुगताहैं ॥ ३६ ॥ तुम शृगाल होकर सिंहीका अभिलाष करतेहो, परन्तु तुम हमको नहीं ले सकते, जैसे सूर्यकी प्रभाको कोई नहीं छू

क्रोधयुक्तहो दूसरा धनुष ग्रहण करके शत २ सहस्र २ बाणोंकी वर्षा जटायु पर करनें लगा ॥ ११ ॥ उस समय पक्षिराज जटायु उन शर समूहसे विधकर घौंसलेमें बैठे हुए पक्षीकी समान शोभित होनें लगे ॥ १२ ॥ तिसके पीछे महा तेजस्वी जटायुजीनें अपने दोनों पंखोंसे उस शर जालको तोड ताड फिर अपने पंजोंसे रावणके महा धनुषको तोड डाला ॥ १३ ॥ और पंखोंके प्रहारसे महा तेजस्वी जटायुनें रावणका अग्निकी समान प्रदीप्त कवचभी खण्ड २ कर दिया ॥ १४ ॥ समरमें रावणका सुवर्णमय दिव्य कवच तोडकर जटायुजीने अतिशय शीघ्र चलनें वाले पिशाचवदन गधोंको जो रावणके रथमें जुतेथे मार डाला ॥ १५ ॥ फिर वेगमें भर कर रावणकी इच्छानुसार चलनेंवाले अग्निकी समान

शरैरावारितस्तस्यसंयुगेपतगेश्वरः ॥ कुलायमभिसंप्राप्तःपक्षिवच्चबभौतदा ॥ १२ ॥ सतानिशरजालानिपक्षाभ्यांतुविधूयह ॥ चरणाभ्यांमहातेजाबभंजास्यमहद्धनुः ॥ १३ ॥ तच्चाग्निसदृशंदीप्तंरावणस्यशरावरम् ॥ पक्षाभ्यांचमहातेजाव्यधुनोत्पतगेश्वरः ॥ १४ ॥ कांचनोरश्छदान्दिव्यान्पिशाचवदनान्खरान् ॥ तांश्चास्यजवसंपन्नाञ्जघानसमरेबली ॥ १५ ॥ अथत्रिवेणुसंपन्नंकामगंपावकार्चिषम् ॥ मणिसोपानचित्रांगंबभंजचमहारथम् ॥ १६ ॥ पूर्णचंद्रप्रतीकाशंछत्रंचव्यजनैःसह ॥ पातयामासवेगेनग्राहिभीराक्षसैःसह ॥ १७ ॥ सारथेश्चास्यवेगेनतुंडेनचमहच्छिरः ॥ पुनर्व्यपहनच्छ्रीमान्पक्षिराजोमहाबलः ॥ १८ ॥ सभग्नधन्वाविरथोहताश्वोहतसारथिः ॥ अंकेनादायवैदेहींपपातभुविरावणः ॥ १९ ॥

प्रभावाले, मणिरचित सोपान युक्त, तीन वांस जिसमें लगे हुए ऐसे रावणके रथकोभी जटायुनें तोडा ॥ १६ ॥ छत्र आदि धारण करनें वाले राक्षसोंके सहित पूर्ण चन्द्रमाकी समान छत्र और व्यजनभी जटायुनें नीचे गिराया ॥ १७ ॥ और फिर अपनी चोंचके प्रहारसे सारथीका बडा भारी शिरभी बडे वेगसे जटायुनें काटा इस प्रकार परम श्रीसम्पन्न महा बलवान पक्षिराज करके ॥ १८ ॥ शरासन छिन्न रथके टूट जानें पर सारथी और घोडोंके मर जानेंसे जानकीजीको दोनों भुजाओंसे पकडे हुए रावण पृथ्वीपर गिरा ॥ १९ ॥

इच्छा लोहेके त्रिशूलोंके वीचमें चलनेंकी समानहै ॥ ४४ ॥ सिंह और शृगालमें, क्षुद्रनदी व सागरमें अमृत और सिरकेमें जितना भेदहै उतनाही भेद श्रीरामचंद्रजी और तुममें है ॥ ४५ ॥ कांचन, शीशे, और लोहे में, चंदन जल और कीचडमें वनमें, हाथी और विलाव में जितना अंतरहै, उतनाही अंतर श्रीरामचंद्रजी और तुममें है ॥ ४६ ॥ गरुड और काकमें, मोर और जलमुर्गीमें, हंस और गीधमें जितना अंतरहै उतनाही अंतर श्रीरामचंद्रजी और तुममें है ॥ ४७ ॥ महेन्द्रसम प्रभावशाली श्रीरामचंद्रजी जो धनुष बाण धारण किये इस पृथ्वीपर टिकेहैं, तौ यदि तुम हमको हरभी ले जाओगे तौ तुम्हारे यहां हम वृद्धावस्थाको प्राप्त न होंगी अर्थात् वह बहुत शीघ्र तुमको मारकर हमको लेआवेंगे। जिस

यदंतरंसिंहसृगालयोर्वनेयदंतरंस्यंदनिकासमुद्रयोः ॥ सुराग्र्यसौवीरकयोर्यदंतरंतदंतरंदाशरथेस्तवैवच ॥ ४५ ॥ यदंतरंकांचनसीसलोहयोर्यदंतरंचंदनवारिपंकयोः ॥ यदंतरंहस्तिबिडालयोर्वनेतदंतरंदाशरथेस्तवैवच ॥ ४६ ॥ यदंतरंवायसवैनतेययोर्यदंतरंमद्गुमयूरयोरपि ॥ यदंतरंहंसकगृध्रयोर्वनेतदंतरंदाशरथेस्तवैवच ॥ ४७ ॥ तस्मिन्सहस्राक्षसमप्रभावेरामेस्थितेकार्मुकबाणपाणौ ॥ हृतापितेहंनजरांगमिष्येआज्यंयथामक्षिकयाऽवगीर्णम् ॥ ४८ ॥ इतीवतद्वाक्यमदुष्टभावासुदुष्टमुक्त्वारजनीचरंतं ॥ गात्रप्रकंपाद्व्यथिताबभूववातोद्धतासाकदलीवतन्वी ॥ ४९ ॥ तांवेपमानामुपलक्ष्यसीतांसरावणोमृत्युसमप्रभावः ॥ कुलंबलंनामचकर्मचात्मनःसमाचचक्षेभयकारणार्थम् ॥ ५० ॥
॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेसप्तचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४७ ॥ ॥ छ ॥

प्रकार घृतमें मक्खी पडजाय, तौ घृत दूषित नहीं होता, वरन मक्खी ही प्राण देतीहै। अर्थात् हमारा कुछ न होगा, तुमही मारे जाओगे ॥ ४८ ॥ जिस प्रकार पवनके चलनेंसे कदलीका वृक्ष कंपायमान होकर हिलनें लगताहै, वैसेही शुद्धस्वभाववाली जानकीजी दुष्ट राक्षससे इस प्रकारके वचन कह थरथर कांपने लगीं ॥ ४९ ॥ तिन जनकात्मजा सीताजीको कंपायमान देखकर मृत्यु सम प्रभावयुक्त रावण उनको डरपानेंके लिये अपना कुल नाम और कर्म कहताहुआ ॥ ५० ॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे सप्तचत्वारिंशः सर्गः॥४७॥

किसी स्थानमें गमन करके भी इस भांतिकी काल फांससि न छूटेगा ॥ २७ ॥ हे रावण! राम लक्ष्मणको कोई नहीं जीत सकता । सो तू जो इस आश्रमका निरादर कर जानकीजीको लिये चला जाता है इस बातको यह सुनकरभी तुझे किसी भांति क्षमा नहीं करेंगे ॥ २८ ॥ तुझ डरपोकनें सर्व लोक निन्दित जैसे कर्मका अनुष्ठान किया है सो ऐसे मार्गमें तस्कर लोग चला करते हैं, और वीर लोग इस मार्गमें नहीं चलते॥२९॥ अरे रावण! यदि तुझमें शूरताहो तौ युद्ध कर! नहीं तौ एक मुहूर्त ठहर बस अपनें भ्राता खरकी समान तूभी पृथ्वीमें शयन करैगा॥३०॥ मृत्युके समय लोग जिस प्रकारके कार्यको करते हैं, सो तूभी अपना नाश करनें के लिये उसी भांतिके अधर्म कार्य करनेंको तैयार हुआ है॥ ३१ ॥ जिस

नहिजातुदुराधर्षौकाकुत्स्थौतवरावण ॥ धर्षणंचाश्रमस्यास्यक्षमिष्येतेतुराघवौ ॥ २८ ॥ यथात्वयाकृतंकर्मभीरुणालोकगर्हितम् ॥ तस्कराचरितोमार्गोनैषवीरनिषेवितः ॥ २९ ॥ युद्धचस्वयदिशूरोसिमुहूर्तंतिष्ठरावण ॥ शयिष्यसिहतोभूमौयथाभ्राताखरस्तथा ॥ ३० ॥ परेतकालेपुरुषोयत्कर्मप्रतिपद्यते ॥ विनाशायात्मनोऽधर्म्यंप्रतिपन्नोसिकर्मतत् ॥ ३१ ॥ पापानुबंधोवैयस्यकर्मणःकोनुतत्पुमान् ॥ कुर्वीतलोकाधिपतिःस्वयंभूर्भगवानपि ॥ ३२ ॥ एवमुक्त्वाशुभंवाक्यंजटायुस्तस्यरक्षसः ॥ निपपातभृशंपृष्ठेदशग्रीवस्यवीर्यवान् ॥ ३३ ॥ तंगृहीत्वानखैस्तीक्ष्णैर्विददारसमंततः ॥ अधिरूढोगजारोहोयथास्याद्दुष्टवारणम् ॥ ३४ ॥ विददारनखैरस्यतुंडंपृष्ठेसमर्पयन् ॥ केशांश्चोत्पाटयामासनखपक्षमुखायुधः ॥ ३५ ॥

अधर्म कार्यके करनेंसे केवल पापही होता है, उस कार्यके करनें में कौन जन हाथ डालता है? इन्द्रादि लोकपाल अथवा स्वयं भगवान् ब्रह्माजीभी नहीं करते ॥ ३२ ॥ महाबलवान् जटायुजी इस प्रकारका नीति युक्त वचन कह कर दशानन रावणकी पीठ पर चिपट गये ॥३३ महावत दुष्ट हाथीपर चढकर जिस प्रकार अंकुश और भाला आदिसे उसके मस्तकको वींधता है, जटायुनेंभी वैसेही रावणको पकड अपने तीक्ष्ण नखोंकी चोटसे भली भांति रावणको घायल किया ॥ ३४ ॥ और इसी भांतिसे चोंचके आघात और पंजोंके प्रहारसे रावणकी पीठ नोंचकर

समुद्रके पार हमारी लंका नामक परम सुन्दरी नगरीहै वह पुरी देखनेमे इन्द्रकी दूसरी अमरावतीहै भयंकर निशाचर गण उसमें रहा करतेहैं ॥ १० ॥ और वहांपर श्वेत धवरहरे वृक्ष बहुतसे शोभित हो रहेहैं, उस लंकापुरीके सब फाटक वैदूर्य मणिके बनेहैं, और बहारदीवारी सुवर्णकीहै चारों ओर जिसके समुद्र रूपी खाईहै जिस्से यह पुरी परम मनोहारिणी होगईहै ॥ ११ ॥ वहांपर सदाही बाजोंकी ध्वनि गूंजती रहतीहै। उसमें हाथी घोडे और रथ समूह बहुत भर रहेहैं। वहांकी सब फुल वाडियें अभिलाषित फल देनेवाले वृक्षोंसे युक्तहैं जिस्से वाडियोंकी अति शोभा होरहीहै ॥ १२ ॥ हे राजपुत्री सीते! तुम हमारे साथ उस नगरीमें वास करोगी, तब फिर मनुष्योंकी स्त्रियोंको कभी स्मरणभी

ममपारेसमुद्रस्यलंकानापुरीशुभा ॥ संपूर्णाराक्षसैर्घोरैर्यथेंद्रस्यामरावती ॥ १० ॥ प्राकारेणपरिक्षिप्तापांडुरेणविराजिता ॥ हेमकक्ष्यापुरीरम्यावैदूर्यमयतोरणा ॥ ११ ॥ हस्त्यश्वरथसंबाधातूर्यनादविनादिता ॥ सर्वकामफलैर्वृक्षैःसंकुलोद्यानभूषिता ॥ १२ ॥ तत्रत्वंवसहेसीतेराजपुत्रिमयासह ॥ नस्मरिष्यसिनारीणांमानुषीणांमनस्विनि ॥ १३ ॥ भुंजानामानुषान्भोगान्दिव्यांश्चवरवर्णिनि ॥ नस्मरिष्यसिरामस्यमानुषस्यगतायुषः ॥ १४ ॥ स्थापयित्वाप्रियंपुत्रंराज्येदशरथोनृपः ॥ मंदवीर्यस्ततोज्येष्ठःसुतःप्रस्थापितोवनम् ॥ १५ ॥ तेनकिंभ्रष्टराज्येनरामेणगतचेतसा ॥ करिष्यसिविशालाक्षितापसेनतपस्विना ॥ १६ ॥ रक्षराक्षसभर्तारंकामयस्वयमागतम् ॥ नमन्मथशराविष्टं प्रत्याख्यातुंत्वमर्हसि ॥१७॥ प्रत्याख्यायहिमांभीरुपश्चात्तापंगमिष्यसि ॥ चरणेनाभिहत्येवपुरूवरसमुर्वशी ॥१८॥

नहीं किया करैंगे ॥ १३ ॥ हेमनस्विनी वरवर्णिनी! वहां पर तुम वह दिव्य भोग करके जो मनुष्योंको महादुर्लभहैं क्षीणायु रामचंद्रको कभी मनमें याद न करोगी ॥ १४ ॥ और राजा दशरथजीनें भरत जीको राज्याभिषेक करके मन्द वीर्य वाले अपने बड़े पुत्र श्रीरामचंद्रजीको वनमें भेज दिया ॥ १५ ॥ हे बडे २ नेत्रवाली! तुम उन राज्यभ्रष्ट, गतचित्त, तपस्वी रामके साथ रहकर क्या करोगी? ॥ १६ ॥ हम समस्त राक्षसोंके राजा, काम बाणसे वींधे जाकर तुम्हारे पास आपही आयेहैं; सो हमारा निरादर करना तुमको उचित नहींहै ॥१७॥ हेभीरु! हमारा निरादर करनेंसे पीछे तुमको पछताना पडेगा। जिस प्रकार उर्वशी राजा पुरूरवाको लात मार कर संतापि

उनकी ओर दौडीं ॥ ४४ ॥ लंकापति रावणने नीले मेघकी समान विपुल वीर्यवान श्वेत वर्ण युक्त छाती वाले और भूपतित जटायुजीको बुझी हुई दावानलके समान शांत देखा ॥४५॥ अनन्तर चंद्र वदना सीताजी रावणके वेगसे मर्दित व पृथ्वीपर पडे हुए जटायुजीको दोनों वाहोंसे पकडकर वारंवार विलाप करकै रोनें लगीं ॥ ४६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे एकपंचाशःसर्गः ॥ ५१ ॥ रावण करके गृध्रराजका नाश देखकर चंद्रमुखी जानकीजी महादुःखितहो यह कहकर विलाप करनें लगीं ॥१॥ नेत्रोंका फडकना कृष्ण पुरुष दर्शनादि विषयक स्वप्न, पक्षियोंका देखना और पक्षियोंका स्वर श्रवण करना इत्यादि निश्चयही मनुष्योंके होंनहार सुख दुःखकी सूचना करतेहैं ऐसा

तंनीलजीमूतनिकाशकल्पंसपांडुरोरस्कमुदारवीर्यम्॥ददर्शलंकाधिपतिःपृथिव्यांजटायुषंशांतमिवाग्निदावम् ॥४५॥
ततस्तुतंपत्ररथंमहीतलेनिपातितंरावणवेगमर्दितम्॥ पुनश्चसंगृह्यशशिप्रभाननारुरोदसीताजनकात्मजातदा ॥४६॥
इत्यार्षेश्रीम० वा० आ०आर०एकपंचाशःसर्गः ॥ ५१ ॥ सातुताराधिपमुखीरावणेननिरीक्ष्यतम् ॥ गृध्रराजंविनि
हतंविललापसुदुःखिता ॥ १ ॥निमित्तंलक्षणस्वप्नंशकुनिस्वरदर्शनम् ॥ अवश्यंसुखदुःखेषुनराणांपरिदृश्यते ॥ २ ॥
ननूनंरामजानासिमहद्व्यसनमात्मनः॥ धावंतिनूनंकाकुत्स्थमदर्थंमृगपक्षिणः ॥ ३ ॥ अयंहिकृपयाराममांत्रातु
मिहसंगतः ॥ शेतेविनिहतोभूमौममाभाग्याद्विहंगमः ॥ ४ ॥ त्राहिमामद्यकाकुत्स्थलक्ष्मणेतिवरांगना ॥ सुसंत्र
स्तासमाक्रंदच्छृण्वतांतुयथांतिके ॥ ५ ॥

देखा जाताहै ॥ २ ॥ हे काकुत्स्थ रामचंद्र!, आज निश्चयही मृग और पक्षी गण इस विपदकी सूचना करकै हमारा वियोग जतानेको तुम्हारे सामनें दौडते होंगे; तथापि तुम इस अपनें बडे कष्टको नहीं जानतेहो॥३॥हे काकुत्स्थ! यह विहङ्गम जटायु कृपा करकै हमारा उद्धार करनेंके लिये यहां आकर हमारेही भाग्य दोषसे निहतहो पृथ्वीपर पडेहैं ॥४॥ हे नाथ रामचंद्रजी! लक्ष्मणजी! तुम यहां पर हमारी रक्षा करो यह कहकर स्त्री रत्न सीताजी अतिशय शंकित होकर बडे जोरसे रुदन करनें लगीं। उनके रोनेंको निकट वर्ती प्राणियोंनें सुना ॥५॥

थमार अपनें शरीरको बहुत बढाता हुआ ॥ १ ॥ तिसके पीछे वचन बोलनें में चतुर दशशीश फिर जानकीजीसे बोला; समझपडा कि तुम उन्मत्त सी हो गईहो। क्या हमारा वीर्य और पराक्रम तुम्हारे श्रवण गोचर नहीं हुआ? ॥ २ ॥ हम आकाशमें टिके रह कर अपनी दोनों भुजाओं से पृथ्वीको उठा सकतेहैं सब समुद्रके जलकोभी पीसकतेहैं; और युद्धमें यमराजकोभी मार सकतेहैं ॥ ३ ॥ और तीखे बाणजालसे आकाशमें टिके हुए सूर्यकोभी व्यथित कर सकते, और पृथ्वीमें गिरा सकतेहैं ॥ ४ ॥ इस प्रकार कहतेही क्रोध युक्त होनेंके कारण रावणके सांवरे नेत्र समान हो गये और जलती हुई अग्निकी समानताको पहुँचे ॥ ५ ॥ फिर वह कुवेरका छोटा भाई रावण डंडी भेसको त्यागकर शीघ्रही यम

समैथिलींपुनर्वाक्यंबभाषेवाक्यकोविदः ॥ नोन्मत्तयाश्रुतौमध्येममवीर्यपराक्रमौ ॥ २ ॥ उद्वहेयंभुजाभ्यांतुमेदिनीमंबरेस्थितः ॥ आपिबेयंसमुद्रंचमृत्युंहन्यांरणेस्थितः ॥ ३ ॥ अर्कंतुद्यांशरैस्तीक्ष्णैर्विभिंद्यांहिमहीतलम् ॥ कामरूपेणउन्मत्तेपश्यमांकामरूपिणम् ॥४॥ एवमुक्तवतस्तस्यरावणस्यशिखिप्रभे ॥ क्रुद्धस्यहरिपर्यंतेरक्तेनेत्रेबभूवतुः॥ ५ ॥ सद्यःसौम्यंपरित्यज्यतीक्ष्णरूपंसरावणः ॥ स्वंरूपंकालरूपाभंभेजेवैश्रवणानुजः ॥ ६ ॥ संरक्तनयनःश्रीमांस्तप्तकांचनभूषणः ॥ क्रोधेनमहताविष्टोनीलजीमूतसंनिभः ॥ ७ ॥ दशास्योविंशतिभुजोबभूवक्षणदाचरः ॥ सपरिव्राजकच्छद्ममहाकायोविहायतत् ॥ ८ ॥ प्रतिपेदेस्वकंरूपंरावणोराक्षसाधिपः ॥ रक्तांबरधरस्तस्थौस्त्रीरत्नंप्रेक्ष्यमैथिलीम् ॥ ९ ॥ सतामसितकेशांतांभास्करस्यप्रभामिव ॥ वसनाभरणोपेतांमैथिलींरावणोऽब्रवीत् ॥ १० ॥

रूप समान अपना तीक्ष्ण रूप धारण करता हुआ ॥ ६ ॥ और महा क्रोध परायण होकर तपाये सोनेके वनेहुए गहनोंसे सुशोभित होकर नील मेघ सदृश श्रीमान् निशाचर रूप प्रगट हुआ ॥ ७ ॥ उस समय वह दशमुख व वीस भुजा वाला होगया, और छलसे जो दंडीका भेष वनायाथा उसको छोड दिया और बडी कायावाला बनगया ॥ ८ ॥ उस राक्षसपति रावणनें पहला रूप धारण कर लिया, परन्तु वस्त्र लाल रंगकेही पहरे रहा, और रमणीरत्न सीताजीको देखकर ॥ ९ ॥ उन सूर्यकी समान प्रभावाली, काले बालों करके युक्त वस्त्राभूषण धारण किये

कि दैवयोगसे रावणका विनाश आ पहुँचा इसमें कुछभी सन्देह नहींहै॥१२॥इस ओर सीताजी वारम्वार राम और लक्ष्मणजीका नाम लेकर रोनें लगीं
राक्षस राज रावण उनको ग्रहण करकै आकाश मार्गमें गमन करनें लगा ॥ १३ ॥ तपे हुए सुवर्णके गहने पहने पीले रेशमीन वस्त्र पहरे राज
नंदनी जानकीजी अतीव शोभान्विता सौदामिनी (विजली) की समान दीप्ति धारण करती हुई ॥ १४ ॥ उस कालमें सीताजीके पीत वसन उडनें
के कारण रावणभी अग्निद्वारा प्रदीप्त पर्वतकी समान अधिक विराजमान हुआ ॥ १५ ॥ परम कल्याणि सीताजीके शरीरमें जो सुगन्धि युक्त
अरुण वर्णके कमल दलथे; वह समस्त दशाननके अंगपर गिरते जातेथे ॥ १६ ॥ इसके सिवाय जानकीजीके विशुद्ध स्वर्ण वर्णके रेशमीन वस्त्र

सतुतांरामरामेतिरुदतींलक्ष्मणेतिच ॥ जगामादायचाकाशंरावणोराक्षसेश्वरः ॥ १३ ॥ तप्ताभरणवर्णांगीपीतकौ
शेयवासिनी ॥ रराजराजपुत्रीतुविद्युत्सौदामनीयथा ॥१४॥ उद्धूतेनचवस्त्रेणतस्याःपीतेनरावणः ॥ अधिकंपरिबभ्राज
गिरिर्दीप्तइवाग्निना॥१५॥तस्याःपरमकल्याण्यास्ताम्राणिसुरभीणिच ॥ पद्मपत्राणिवैदेह्याअभ्यकीर्यंतरावणम् १६
तस्याःकौशेयमुद्धूतमाकाशेकनकप्रभम् ॥ बभौचादित्यरागेणताम्रमभ्रमिवातपे ॥ १७॥ तस्यास्तद्विमलंवक्त्रमाकाशे
रावणांकगम् ॥ नरराजविनारामंविनालमिवपंकजम् ॥ १८॥ बभूवजलदंनीलंभित्त्वाचंद्रइवोदितः ॥ सुललाटंसुके
शांतंपद्मगर्भाभमव्रणम् ॥१९॥ शुक्लैःसुविमलैर्दंतैःप्रभावद्भिरलंकृतम् ॥ तस्यासुनयनंवक्त्रमाकाशेरावणांकगम् ॥२०॥
रुदितंव्यपमृष्टास्रंचंद्रवत्प्रियदर्शनम् ॥ सुनासंचारुताम्रोष्ठमाकाशेहाटकप्रभम् ॥ २१ ॥

आकाशमें उडकर सन्ध्या कालीन सूर्य किरण शोभान्वित मेघोंकी समान शोभा विस्तार करने लगे ॥ १७ ॥ और सीताका निर्मल मुख
मंडल रावणके अंकमें रहनेंके कारण श्री रामचंद्रजीके विना मृणाल रहित कमलकी समान किसी भांति शोभित नहीं हुआ ॥ १८ ॥ नील
मेघको भेदनकर उदय होते हुए चंद्रमाकी समान सुन्दर ललाट सहित सुन्दर केश पर्यन्त पद्मगर्भ सम प्रकाशित विस्फोटकका चिह्न रहित॥१९॥
दीप्तमान् श्वेतवर्ण दन्त पंक्तिकी प्रभासे सुशोभित सुन्दर नेत्रयुक्त जानकीजीका वदन रावणके अंगमें स्थित आकाशमें इस प्रकारसे शोभा
पाने लगा ॥ २० ॥ अनवरत रोदन युक्त आंसुओंके जलसें मलीन चंद्रमाकी समान प्रियदर्शन सुन्दर नासिका सहित, मनोहर, व लाल अधरों

हां पर आ पहुंचा ॥ १९ ॥ उस रथको देख रावण नें गंभीर स्वर और कठोर वचनों से जानकीजीको डांटा और धमकाया और उनको गोदमें लेकर रथमें डाल दिया ॥ २० ॥ यशस्विनी सीताजी उस करके ग्रही जानेपर और भयसे व्याकुलहो हाराम! हा राम! कहकर पुकार करनें लगीं परन्तु रामचंद्रजी उस समय बहुत दूरथे ॥ २१ ॥ रावणके प्रति जानकीजीका कछुभी अनुराग नहींथा इस कारणसे वह अपने छुटानेंके लिये यथाशक्य चेष्टा करनेंलगीं, परन्तु कामके वशहुआ रावण पन्नग राजकी स्त्रीके समान उनको लेकर आकाशको उडगया ॥ २२ ॥ इस प्रकारसे राक्षसराज रावण आकाशमें जानकी हरण करके लेचला जानकीजी मत्त भ्रान्त चित्त और आतुरकी समान यह कहकर बडे जोरसे विलाप

ततस्तांपरुषैर्वाक्यैरभितर्ज्यमहास्वनः ॥ अंकेनादायवैदेहींरथमारोहयत्तदा ॥२० ॥ सागृहीतातिचुक्रोशरावणेनयशस्विनी ॥रामेतिसीतादुःखार्तारामंदूरंगतंवने ॥ २१ ॥ तामकामांसकामार्तःपन्नगेंद्रवधूमिव ॥ विष्टेचमानामादायउत्पपाताथरावणः ॥ २२ ॥ ततःसाराक्षसेंद्रेणह्रियमाणाविहायसा ॥ भृशंचुक्रोशमत्तेवभ्रांतचित्तायथातुरा ॥ २३ ॥ हालक्ष्मणमहाबाहोगुरुचित्तप्रसादक ॥ ह्रियमाणांनजानीषेरक्षसाकामरूपिणा ॥ २४ ॥ जीवितंसुखमर्थंचधर्महेतोःपरित्यजन् ॥ ह्रियमाणामधर्मेणमांराघवनपश्यसि ॥ २५ ॥ ननुनामाविनीतानांविनेतासिपरंतप ॥ कथमेवंविधंपापंनत्वंशाधिहिरावणम् ॥ २६ ॥ ननुसद्योऽविनीतस्यदृश्यतेकर्मणःफलम् ॥ कालोप्यंगीभवत्यत्रसस्यानामिवपक्तये ॥ २७ ॥ त्वंकर्मकृतवानेतत्कालोपहतचेतनः ॥ जीवितांतकरंघोरंरामाद्व्यसनमाप्नुहि ॥ २८ ॥

करनेलगीं ॥ २३ ॥ हा गुरुचित्तप्रसादक! महाबाहु लक्ष्मणजी! काम रूपी राक्षस करके मैं हरी जातीहूं सो इसको तुम नहीं जानतेहो ॥ २४ ॥ हाराम! तुम धर्मकी रक्षा करनेंके लिये, प्राण, सुख, संपत्ति सबकाही त्याग करतेहो, इस समय हम अधर्मके द्वारा हरी जातीहैं सो क्योंनहीं हमें आनकर बचाते? ॥ २५ ॥ हे शत्रुओंके तपानेंवाले! जो अविनयी होतेहैं आप उनका सदाही शासन किया करतेहैं, फिर क्योंनहीं ऐसेही पापात्मा रावणका शासन करतेहो? ॥ २६ ॥ अन्यायी पुरुषके कर्मका फल शीघ्रही नहीं मिलता; जिस प्रकार नाजके पकनेंमें कुछ समय का प्रयोजन होताहै इसी प्रकार समय आनेंपर अन्यायका फल मिलताहै ॥ २७ ॥ हे रावण! तुमनें कालके प्रभावसे चेतना

साथ नीले वर्णका रावण कांचनकक्ष्यावेष्टित हस्तीकी समान शोभा पानें लगा इससे जानकीजी हाथीकी सुवर्णकी कौंधनीकी समान शोभा पानें
लगीं ॥ ३० ॥ श्रीसीताजी महाज्वालाकी समान अपनें तेजसे आकाशके बीच देदीप्यमान होने लगीं, कुबेरका भाई रावण उस अवस्थामें उनको
आकाश मार्गमें गमन करके ले जानें लगा ॥ ३१ ॥ उस समय सीताजीके अग्नि वर्णवाले शब्दायमान उनकी देहसे खसककर सब भूषण पृथ्वीमें
गिरने लगे, उस समय ऐसा बोध हुआ मानों पुण्यक्षीण हुए तारागण आकाशसे गिर रहेहैं ॥३२॥ सीताजीका चंद्र सदृश दीप्तिवाला हार उनके
दोनो उरोजोंके मध्यसे भ्रष्ट होकर गगनसे गिरी हुई गंगाजीके समान शोभा विस्तार करता गिरने लगा ॥ ३३ ॥ उत्पातकी वायुके चलनें से शिरः

तांमहोल्कामिवाकाशेदीप्यमानांस्वतेजसा ॥ जहाराकाशमाविश्यसीतांवैश्रवणानुजः ॥ ३१ ॥ तस्यास्तान्यग्नि
वर्णानिभूषणानिमहीतले ॥ सघोषाण्यवशीर्यंतक्षीणास्ताराइवांबरात् ॥ ३२ ॥ तस्याःस्तनांतराद्भ्रष्टोहारस्ताराधि
पद्युतिः ॥ वैदेह्यानिपतन्भातिगंगेवगगनच्युता ॥ ३३ ॥ उत्पातवाताभिरतानानाद्विजगणायुताः ॥ मामैरितिवि
धूताग्राव्याजह्रुरिवपादपाः ॥ ३४ ॥ नलिन्योध्वस्तकमलास्त्रस्तमीनजलेचराः ॥ सखीमिवगतोत्साहांशोचंतीवस्म
मैथिलीम् ॥ ३५ ॥ समंतादभिसंपत्यसिंहव्याघ्रमृगद्विजाः ॥ अन्वधावंस्तदारोषात्सीताच्छायानुगामिनः ॥ ३६ ॥
जलप्रपातास्रमुखाःशृंगैरुच्छ्रितबाहुभिः ॥ सीतायांह्रियमाणायांविक्रोशंतीवपर्वताः ॥ ३७ ॥ह्रियमाणांतुवैदेहींदृष्ट्वादी
नोदिवाकरः ॥ प्रविध्वस्तप्रभःश्रीमानासीत्पांडुरमंडलः ॥ ३८ ॥

समूह कम्पित होनेके कारण विविध विहंगम युक्त वृक्ष मानों जानकीसे "कुछ भय नहींहै !" यह कहने लगे ॥ ३४ ॥ कमलदलोंके विध्वंस हो
जानेंसे, और मत्स्य इत्यादिक जलचरोंके व्याकुल हो जानेपर सब सरोवर सखीकी समान उत्साह रहित जानकीजीके शोकसे विह्वल होरहेथे ॥
॥३५॥सिंह, व्याघ्र, मृग, और पक्षी समूह क्रोधमें भरकर सीताजीकी परछांईके पकडने के लिये चारों ओरसे आकर उनके पीछेर दौडने लगे॥३६॥
जानकीजीके हर जानेसे समस्त पर्वत शृङ्गरूप बाहु परम्परा उठाकर झरने रूप अश्रुधाराकुल वदनसे मानो रुदनही करने लगे ॥ ३७ ॥
श्रीमान् सूर्य नारायणभी उस अवस्थामें जानकीजीको देखकर दीन और तेज हीन होगये और उनका मंडल प्रदेश धूंधला होगया ॥ ३८ ॥

जटायुको देखकर रावणके वशमें पडी हुई सुश्रोणी जानकीजी भयके मारे दुःखित हो रोकर बोलीं ॥ ३७ ॥ आर्य जटायु! अवलोकन करो यह पापात्मा राक्षसराज रावण हमको अनाथकी समान निर्दय भावसे हरण करके लिये जाता है ॥ ३८ ॥ आप इस महाबलवान् विजय चिह्न धारी दुर्मति क्रूर आयुधधारी निशाचर रावणको निवारण नहीं कर सकेंगे ॥ ३९ ॥ आप इस निशाचरको निवारण करनेंमें समर्थ नहींहैं, इस कारण ही श्रीरामचंद्रजीसे हमारे हरणकी वार्ता ठीक २ कह देना, और लक्ष्मणजीसे यह सब वृत्तान्त ब्यौरेवार कहना ॥ ४० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे एकोनपंचाशः सर्गः ॥ ४९ ॥ जटायु भोजन करके गहरी नींदमें सोरहेथे वह यह शब्द सुनतेही

सातमुद्वीक्ष्यसुश्रोणीरावणस्यवशंगता ॥ समाक्रंदद्भयपरादुःखोपहितयागिरा ॥ ३७ ॥ जटायोपश्यमामार्यह्रियमाणामनाथवत् ॥ अनेनराक्षसेंद्रेणकरुणंपापकर्मणा ॥ ३८ ॥ नैषवारयितुंशक्यस्त्वयाक्रूरोनिशाचरः ॥ सत्त्ववान्जितकाशीचसायुधश्चैवदुर्मतिः ॥ ३९ ॥ रामायतुयथातत्त्वंजटायोहरणंमम ॥ लक्ष्मणायचतत्सर्वमाख्यातव्यमशेषतः ॥ ४० ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेएकोनपंचाशःसर्गः ॥ ४९ ॥ ॥ तंशब्दमवसुप्तस्तुजटायुरथशुश्रुवे ॥ निरैक्षद्रावणंक्षिप्रंवैदेहींचददर्शसः ॥ १ ॥ ततःपर्वतशृंगाभस्तीक्ष्णतुंडःखगोत्तमः ॥ वनस्पतिगतःश्रीमान्व्याजहारशुभांगिरम् ॥ २ ॥ दशग्रीवस्थितोधर्मेपुराणेसत्यसंश्रवः ॥ भ्रातस्त्वंनिंदितंकर्मकर्तुंनार्हसिसांप्रतम् ॥ ३ ॥ जटायुर्नामनाम्नाहंगृध्रराजोमहाबलः ॥ राजासर्वस्यलोकस्यमहेंद्रवरुणोपमः ॥ ४ ॥ लोकानांचहितेयुक्तोरामोदशरथात्मजः ॥ तस्यैषालोकनाथस्यधर्मपत्नीयशस्विनी ॥ ५ ॥

जाग पडे और रावण और जानकी दोनों को देखा ॥ १ ॥ फिर पर्वतके शृंगसमान बडी तेज चोंचवाले और वृक्षपर बैठे हुए श्रीमान् पक्षिराज जटायु मीठे वचन से रावण को पुकारते हुए ॥ २ ॥ भ्रातः दशवदन! हम पुराण धर्म निरत और सत्यप्रतिज्ञहैं; इस कारण तुम हमारे सामने ऐसा निन्दनीय कार्य करनेंमें प्रवृत्त न होवो ॥ ३ ॥ हम महा बलवान् गृध्रराज जटायु हैं और दशरथकुमार श्रीरामचंद्रजी भी साक्षात् महेन्द्र और वरुणजीके समान सब लोकोंके राजाहैं ॥ ४ ॥ वह सब लोकोंके हितकारी कार्य करनेंको तैयार रहतेहैं, यह वरारोहा यशस्विनी उन्ही लोक

रेराक्षसाधम रावण! हमको अकेला पाकर चोरी करके तू लिये भागाजाताहै अरे क्या इस नीच कर्मसे तुझे लाज नहीं आती? ॥ ३ ॥ रे दुरा
त्मन्! मैं जान गई कि तू डरपोक स्वभाववालाहै इसी कारणसे हमारे हरण करनेका अभिलाष कर मायामय मृगरूप बना हमारे स्वामी रामचं
द्रजीको छलसे दूरले गया॥४॥और इस समय हमारी रक्षा करनेके लिये जो तैयार हुएथे उन हमारे श्वशुरके सखा गृध्रराज जटायुजीकोभी तैंनेमारडा
ला हे राक्षसाधम! इससेही जाना गया कि तुझमें कुछ वीरता नहींहै तूने केवल हमको अपना नामही सुनाकर हरण किया, कुछ तुझ करके हम जी
ती नहीं गई. हाँ राम लक्ष्मणसे युद्ध कर हमें जीतता तौ एक वातथी॥५॥६॥रेनीच! शून्यमें पराई स्त्रीके हरण करनेंका यह नीच निन्दनीय कार्य कर

नव्यपत्रपसेनीचकर्मणानेनरावण ॥ ज्ञात्वाविरहितांयोमांचोरयित्वापलायसे ॥ ३ ॥ त्वयैवनूनंदुष्टात्मन्भीरुणाह
र्तुमिच्छता ॥ ममापवाहितोभर्तामृगरूपेणमायया॥४॥ योहिमामुद्यतस्त्रातुंसोप्ययंविनिपातितः ॥ गृध्रराजःपुराणोऽ
सौश्वशुरस्यसखामम ॥ ५ ॥ परमंखलुतेवीर्यंदृश्यतेराक्षसाधम ॥ विश्राव्यनामधेयंहियुद्धेनास्मिजितात्वया ॥ ६ ॥
ईदृशंगर्हितंकर्मकथंकृत्वानलज्जसे ॥ स्त्रियाश्चाहरणंनीचरहितेचपरस्यच ॥ ७ ॥ कथयिष्यंतिलोकेषुपुरुषाःकर्मकु
त्सितम् ॥ सुनृशंसमधर्मिष्ठंतवशौटीर्यमानिनः ॥ ८ ॥ धिक्तेशौर्यंचसत्त्वंचयत्त्वयाकथितंतदा ॥ कुलाक्रोश
करंलोकेधिक्तेचारित्रमीदृशम् ॥ ९ ॥ किंशक्यंकर्तुमेवंहियज्जवेनैवधावसि ॥ मुहूर्तमपितिष्ठत्वंनजीवन्प्रतियास्य
सि ॥ १० ॥ नहिचक्षुःपथंप्राप्यतयोःपार्थिवपुत्रयोः ॥ ससैन्योपिसमर्थस्त्वंमुहूर्तमपिजीवितुम् ॥ ११ ॥

के तू लज्जित नहीं होता ॥७॥रेअपनेंको शूर माननेंवाले! तूनें जो यह अति निर्लज्ज और निन्दनीय कार्य कियाहै सो इसकी चरचा सब पुरुष कर२
के तुझे बुरा कहेंगे॥ ८ ॥तूनें जो अपनी शूरताईकी और शारीरक बलकी वार्ता कही सो तेरी इस शूरताको धिक्कारहै! तेरेइस बलकोभी धिक्कारहै!
तेरे कुलके कलंक जनक ऐसे चरित्रपरभी धिक्कारहै ॥ ९ ॥ तू इस प्रकारसे हरण करकै शीघ्रताके साथ दौड़ा जाताहै फिर भला हम क्या कर स
कें हां यदि एक मुहूर्तभी तू खड़ा रहै, तौ प्राण लेकर नहीं लौटने पावेगा ॥ १० ॥ राजकुमार रामचंद्र और लक्ष्मणजीकी दृष्टिके आगे आते

कारण से उनका अपराध करतेहो? ॥ १३ ॥ देखो जनस्थानका रहनेंवाला खर अतिशय दुष्टथा तिससे सरलता करनेंवाले रामनें शूर्पणखाके लिये यदि उसको मार डालाहै ॥ १४॥ तो इस्में रामचंद्रजीका क्या अपराधहै? तुम वही लोकनाथ रामचंद्रजीकी भार्या हरण करके लिये जातेहो॥१५॥ अभी जानकीको छोड दो; इन्द्रने जिस प्रकार वज्रसे वृत्रासुरको जलाडालाथा वैसेही कहीं रामचंद्रजी तुमको अनल कल्प रूप भयंकर दृष्टिसे भस्म न कर दें ॥ १६ ॥ तुमने जो अपने वस्त्रके अंचलमें महा विषदार सर्प बांधाहै सो उसको तुमनें सर्प नहीं जाना है अथवा तुम उस कालपाशको नहीं देखतेहो जो तुम्हारे गलेमें पडीहै ॥ १७ ॥ हे सौम्य! जिस भारको वहन करनेंसें दबजाना न पडे वही बोझा लेकर चलना चाहिये। और जो सहजही से पच जावै, और किसी प्रकार पीडा नकरै उसही अन्नको खाना चाहिये॥१८ ॥ जिसकार्य करनेंसें धर्म, कीर्ति, वा चिरस्थाई यश, किसीके मिलनेंकी भी संभावना हो, वरन उलटा उससे शरीर में खेद हो, भला ऐसे कार्यके करनेकी कौन पुरुष इच्छा करैगा? ॥१९॥हे रावण! हमें साठ हजार वर्ष जन्म लिये हुए, तबसे विधि पूर्वक पिता पितामहादिकोंका पक्षियोंका राज्य पालन करते हैं॥ २०॥यद्यपि हम बूढे होगयेहैं और तुम युवा धनुर्बाण धारी कवच सम्पन्न और रथ पर सवारहो, तथापि हमारे सामनें तुम निरापद जानकीको न लेजा सकोगे* ॥ २१ ॥

यदिशूर्पणखाहेतोर्जनस्थानगतःखरः ॥ अतिवृत्तोहतःपूर्वंरामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ १४॥ अत्रब्रूहियथातत्त्वंकोरामस्य व्यतिक्रमः ॥ यस्यत्वंलोकनाथस्यहृत्वाभार्यांगमिष्यसि ॥ १५ ॥ क्षिप्रंविसृजवैदेहींमात्वाघोरेणचक्षुषा ॥ दहेद्दहनभूतेनवृत्रमिंद्राशनिर्यथा॥१६॥ सर्पमाशीविषंबद्ध्वावस्त्रांतेनावबुध्यसे॥ग्रीवायांप्रतिमुक्तंचकालपाशंनपश्यसि॥१७॥ सभारःसौम्यभर्तव्योयोनरंनावसादयेत् ॥ तदन्नमपिभोक्तव्यंजीर्यतेयदनामयम् ॥ १८॥ यत्कृत्वानभवेद्धर्मोनकीर्तिर्नयशोध्रुवम् ॥ शरीरस्यभवेत्खेदःकस्तत्कर्मसमाचरेत् ॥ १९ ॥ षष्टिवर्षसहस्राणिजातस्यममरावण ॥ पितृपैतामहंराज्यंयथावदनुतिष्ठतः ॥ २० ॥ वृद्धोहंत्वंयुवाधन्वीसरथःकवचीशरी ॥ नचाप्यादायकुशलीवैदेहींमेगमिष्यसि ॥ २१॥

* भजन–गीधराज सुनि आरत वानी। नैन उठाय विलोकन लागे रघुकुल तिलक नारि पहिचानी॥१॥परीं अधम निश्चरके वशमें जात पुकारत सारंग पानी॥२॥महा क्रोधमें भर अधीरहो रार करन की मनमें ठानी॥३॥पवन समान वेगसों धाये बोले ठहर तनक अभिमानी॥४॥चोर समान लिये सीताको जात कहां वचैके अभिमानी॥५ ॥यह कह चोंच मार रथ तोरचो रथीमार सुमिरे सुख दानी॥पुनि रावणको कियो मूर्छित लई उतार सीय महारानी ॥ ६ ॥ यह बलदेव भक्तके कर्तव युग २ कीरत चली सुहानी ॥ ७ ॥

और भी महद् कंटकाकीर्ण सुतीक्ष्ण शाल्मली वृक्ष यह सब बहुत शीघ्र तुझको दिखाई देंगे! तुम उन महात्मा रामचंद्रजीका ऐसा अप्रिय कार्य करकै नहीं जी सकोगे ॥ २१ ॥ जिस प्रकार विषका पीनें वाला बहुत देर तक नहीं प्राण रख सकता, रेनिर्घृण! रावण! इन सब वातोंसे स्पष्टहै कि तू कठिन कालकी फांसीसे बँधाहै ॥ २२ ॥ महात्मा हमारे स्वामीके सन्मुख संग्राममें प्राप्त होकर फिर तुम्हारा कहीं निस्तारा नहीं, फिर तू कहां जायकर बचेगा; उन्होंने अकेलेही बिना अपनें भ्राताकी सहायताके एक निमेष मात्रमें ॥२३॥ चौदह हजार राक्षस मारडाले,वही सब अस्त्र शस्त्रोंके जाननेंवाले महाबलवान् वीर्यसम्पन्न श्रीरामचंद्रजी ॥ २४ ॥ सुतीक्ष्ण बाणोंके समूहसे अपनी प्रिय भार्याके

द्रक्ष्यसेशाल्मलींतीक्ष्णामायसैःकंटकैश्चिताम् ॥ नहित्वमीदृशंकृत्वातस्यालीकंमहात्मनः ॥ २१ ॥ धारितुंशक्ष्य
सिचिरंविषंपीत्वेवनिर्घृणं ॥ बद्धस्त्वंकालपाशेनदुर्निवारेणरावण ॥ २२ ॥ क्वगतोलप्स्यसेशर्ममभर्तुर्महात्मनः ॥
निमेषांतरमात्रेणविनाभ्रातरमाहवे ॥ २३ ॥ राक्षसानिहतायेनसहस्राणिचतुर्दश ॥ कथंसराघवोवीरःसर्वास्त्रकुशलो
बली ॥ २४ ॥ नत्वांहन्याच्छरैस्तीक्ष्णैरिष्टभार्यापहारिणम् ॥ एतच्चान्यच्चपरुषंवैदेहीरावणांकगा ॥ भयशोकसमा
विष्टाकरुणंविललापह ॥ २५ ॥ तदाभृशार्तांबहुचैवभाषिणींविलापपूर्वंकरुणंचभामिनीम् ॥ जहारपापस्तरुणींविचे
ष्टतींनृपात्मजामागतगात्रवेपथुः ॥ २६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेत्रिपंचा
शःसर्गः ॥ ५३ ॥ ह्रियमाणातुवैदेहीकंचिन्नाथमपश्यती ॥ ददर्शगिरिशृंगस्थान्पंचवानरपुंगवान् ॥ १ ॥

हरनेंवाले तुझको अवश्यही मार डालेंगे, रावणके हाथोंके बीचमें बैठी वैदेहीजी भय और शोक युक्त होकर इस प्रकारसे व औरभी बहुत भांतिसे कठोर वचनके साथ करुणास्वरसे विलाप करनें लगीं ॥ २५ ॥ वह महान्याकुल होकर अपने छुडानेंकी चेष्टा करती हुई करुणा सहित विलाप करकै अनेक वचन कहनें लगीं, उस समय पापचारी रावण अपनें शरीरको कंपाता हुआ उनको हरण करके ले चला ॥ २६ ॥ इ०श्रीम० वा० आ० आर० त्रिपंचाशः सर्गः ॥ ५३ ॥ जब रावण हरण करकै ले चला तब जानकीजी और किसीको रक्षा करनेंवाला

बडे वेगसे दौडा ॥ १ ॥ फिर गगन मण्डलमें वायु प्रेरित दो मेघोंकी टक्कर जिस प्रकार लडती है वैसेही इन दोनोंका महाघोर संग्राम आरंभ हुआ ॥ २ ॥ पर लगे हुए माला पहरे हुए दो श्रेष्ठ पर्वतोंकी समान गृध्रराज जटायु और राक्षसेन्द्र रावणका अद्भुत संग्राम उपस्थित हुआ ॥ ३ ॥ तिसके पीछे रावणने महाबलवान गृध्रराजके ऊपर अनवरत महाभयंकर तीक्ष्णफलक लगे हुए नालीक और नाराच व विकर्णि समूह वाणोंकी वर्षा की ॥ ४॥ पक्षिराज जटायुनें युद्धमें रावणके चलाये हुए अस्त्र और समस्त शर जाल ग्रहण किया ॥ ५ ॥ और अति तीखे नखून लगे हुए अपने दोनों चरणोंसे रावणके शरीरमें सहस्रों घाव कर दिये ॥ ६ ॥ अपने शरीरमें घाव हुए देख महावीर दशवदन रावणनें

ससंप्रहारस्तुमुलस्तयोस्तस्मिन्महामृधे ॥ बभूववातोद्धतयोर्मेघयोर्गगनेयथा ॥ २ ॥ तद्बभूवाद्भुतंयुद्धंगृध्रराक्षसयोस्तदा ॥ सपक्षयोर्माल्यवतोर्महापर्वतयोरिव ॥ ३ ॥ ततोनालीकनाराचैस्तीक्ष्णाग्रैश्चविकर्णिभिः ॥ अभ्यवर्षन्महाघोरैर्गृध्रराजंमहाबलम् ॥ ४ ॥ सतानिशरजालानिगृध्रःपत्ररथेश्वरः ॥ जटायुःप्रतिजग्राहरावणास्त्राणि संयुगे ॥ ५ ॥ तस्यतीक्ष्णनखाभ्यांतुचरणाभ्यांमहाबलः ॥ चकारबहुधागात्रेव्रणान्पतगसत्तमः ॥ ६ ॥ अथक्रोधाद्दशग्रीवोजग्राहदशमार्गणान् ॥ मृत्युदंडनिभान्घोराञ्छत्रोर्निधनकांक्षया ॥ ७ ॥ सतैर्बाणैर्महावीर्यःपूर्णमुक्तैरजिह्मगैः ॥ बिभेदनिशितैस्तीक्ष्णैर्गृध्रंघोरैःशिलीमुखैः ॥ ८ ॥ सराक्षसरथेपश्यञ्जानकींबाष्पलोचनाम् ॥ अचिंतयित्वाबाणांस्तान्राक्षसंसमभिद्रवत् ॥ ९ ॥ ततोस्यसशरंचापंमुक्तामणिविभूषितम् ॥ चरणाभ्यांमहातेजाबभंजपतगोत्तमः ॥ १० ॥ ततोऽन्यद्धनुरादायरावणःक्रोधमूर्छितः ॥ ववर्षशरवर्षाणिशतशोथसहस्रशः ॥ ११ ॥

क्रोध पूर्ण हो शत्रुओंके मार डालनेकी इच्छासे यमराजके दंडकी समान भयंकर दशवाण ग्रहण किये ॥ ७ ॥ और कानतक धनुषकों खेंचकर उन सीधे चलनें वाले तीखे रुधिरके प्यासे भयंकर शिलीमुख वाणोंको छोडकर जटायुको वध किया ॥ ८ ॥ राक्षस राज रावणके रथमें रुदन करती हुई जानकीको देखकर पक्षीराज जटायु उन समस्त वाणोंको कुछ न गिनते हुए रावणके सन्मुख दौडे ॥ ९ ॥ और अपनें दोनों चरणोंसे तेजमान जटायुनें रावणका मणि मुक्ता भूषित वाण सहित शरासन तोड डाला ॥ १० ॥ अपने धनुष वाणको टूटा हुआ देखकर रावण महा

दशा तो नदीनाथकी हुई और अन्तरिक्षमें विचरण करनें वाले चारण गण कहनें लगे ॥ १० ॥ कि अब रावण किसी प्रकार नहीं बच सकता
यहींतक इसके जीवनका शेष होगया । सिद्ध गणभी ऐसाही कहने लगे इस ओर रावण विचेष्ट माना सीताजीको गोदीमें लिये ॥ ११ ॥ अपनी लं
का पुरीमें लेआया, वह सीताजीको नहींलाया वरन कहींसे अपनी मृत्युको मोल ले आया । उस समय लंका नगरीमें बडे २ चौराहे और मार्ग
सुशोभित हो रहेथे ॥ १२ ॥ वहां पहुंचकर अपनें परम सुन्दर रणवास में रावणने शोक मोहसे युक्त तिन परम सुन्दरीको जाकर बैठा दिया१३
उस समय ऐसा बोध हुआ मानों मय दानव अपने पुरमें आसुरी मायाले आयाहै, दशानन सीताजीको अपने रणवासमें स्थापन करकै घोर दर्शना

एतदंतोदशग्रीवइतिसिद्धास्तदाब्रुवन् ॥ सतुसीतांविचेष्टंतीमंकेनादायरावणः ॥ ११ ॥ प्रविवेशपुरींलंकांरूपिणीं
मृत्युमात्मनः ॥ सोऽभिगभ्यपुरींलंकांसुविभक्तमहापथान् ॥ १२ ॥ संरूढकक्ष्यांबहुलांस्वमंतःपुरमाविशत् ॥
तत्रतामसितापांगींशोकमोहसमन्विताम् ॥ १३ ॥ निदधेरावणःसीतांमयोमायामिवासुरीम् ॥ अब्रवीच्चदशग्री
वःपिशाचीर्घोरदर्शनाः ॥ १४ ॥ यथानैनांपुमान्स्त्रीवासीतांपश्यत्यसंमतः ॥ मुक्तामणिसुवर्णानिवस्त्राण्याभरणा
निच ॥ १५ ॥ यद्यदिच्छेत्तदैवास्यादेयंमच्छंदतोयथा ॥ याचवक्ष्यतिवैदेहींवचनंकिंचिदप्रियम् ॥ १६ ॥ अज्ञा
नाद्यदिवाज्ञानान्नतस्याजीवितंप्रियम् ॥ तथोक्त्वाराक्षसीस्तास्तुराक्षसेंद्रःप्रतापवान् ॥ १७ ॥ निष्क्रम्यांतः
पुरात्तस्मात्किंकृत्यमितिचिंतयन् ॥ ददर्शाष्टौमहावीर्यान्राक्षसान्पिशिताशनान् ॥ १८ ॥

पिशाचनियोंको आज्ञा देताहुआ ॥ १४ ॥ कि तुम भली भांतिसे इनकी रक्षाकरो । कोई स्त्री व पुरुष हमारी विना आज्ञा इन सीताको नहीं
देखनें पावै मुक्ता मणि,सुवर्ण वस्त्र भूषण ॥ १५ ॥ इत्यादि जिस २ वस्तुकी यह इच्छा करैं वह समस्तही इनको दीजाय यह मेरी आज्ञाहै व जोकोई
स्त्री तुममेंसे इन जानकीको अप्रिय वचन ॥ १६ ॥ ज्ञानसे व अज्ञानसे कहेगी वह निज शरीरमें अपने प्राणोंको न समझै इस तरह सब रक्षांकर
नें वालियोंसे कह महा प्रतापवान रावण ॥ १७ ॥ रनवास से वाहर आ विचार करनें लगाकि इससमय हमको क्या करना उचितहै, यह सोच उस

रावणकी सवारीको टूटा फूटा देख; और स्वयं रावणकोभी पृथ्वीपर गिरादेख, समस्त प्राणी वारंवार " साधु साधु! " कह कर गृद्धराजकी बडाई करनें लगे ॥ २० ॥ तिसके पीछे रावण बडी उमर होनेंके कारण बुढापा ग्रस्त पक्षियूथपति जटायुको थका हुआ देख हर्ष सहित मैथिलि सीता जीको ग्रहण कर आकाश मार्गमें गमन करनें लगा ॥ २१ ॥ रावणके समस्तही युद्ध साधन विनष्ट और हत हो गयेथे केवल एक खड्ग बच रहाथा ।वह रावण उस अवस्था में भी नितान्त हृष्टचित्त होकर जानकीजीको गोदीमें बैठाय जानेंको तैयार हुआ॥२२॥महा तेजस्वी गृद्धराज जटायु नें बडे जोरसे कूद रावणके सामनें दौडे और उसको भली भांति रोक कर कहनें लगे ॥ २३ ॥ अरे अल्पज्ञानी रावण! तुम समस्त राक्षस कुलको

दृष्ट्वानिपतितंभूमौरावणंभग्नवाहनम् ॥ साधुसाध्वितिभूतानिगृध्रराजमपूजयन् ॥ २० ॥ परिश्रांतंतुतंदृष्ट्वाजरयापक्षियूथपम् ॥ उत्पपातपुनर्हृष्टोमैथिलींगृह्यरावणः ॥ २१ ॥ तंप्रहृष्टंनिधायांकेरावणंजनकात्मजाम् ॥ गच्छंतंखड्गशेषंचप्रनष्टहतसाधनम् ॥ २२ ॥ गृध्रराजःसमुत्पत्यरावणंसमभिद्रवत् ॥ समावार्यमहातेजाजटायुरिदमब्रवीत् ॥ २३ ॥ वज्रसंस्पर्शबाणस्यभार्यांरामस्यरावण ॥ अल्पबुद्धेहरस्येनांवधायखलुरक्षसाम् ॥ २४ ॥ समित्रबंधुःसामात्यःसबलःसपरिच्छदः ॥ विषपानंपिबस्येतत्पिपासितइवोदकम् ॥ २५ ॥ अनुबंधमजानंतःकर्मणामविचक्षणः ॥ शीघ्रमेवविनश्यंतियथात्वंविनशिष्यसि ॥ २६ ॥ बद्धस्त्वंकालपाशेनक्कगतस्तस्यमोक्ष्यसे ॥ वधायबडिशंगृह्यसामिषंजलजोयथा ॥ २७ ॥

विनाश करनेंके लियेही उन वज्र समान बाण धारण करनें वाले श्रीरामचन्द्रजीकी इन जानकीजीको हरण करता है ॥ २४ ॥ हम समझे, कि प्यासा होकर मनुष्य जिस प्रकार जल पीता है तूभी वैसेही मित्र, बन्धु, मंत्री, चतुरंग सेना और दास दासी इत्यादि समस्त परिजनोंके सहित विष पीनेंको तैयार हुआ है ॥ २५ ॥ मूर्खलोग जिस प्रकार कर्मके फलको न जान कर शीघ्रही विष पीकर शीघ्रही विनाशको प्राप्त होते हैं वैसेही तुम्हारा सब परिवारके साथ सत्यानाश हो जायगा ॥ २६ ॥ तू कालकी फांसीमें बँधा है, मछली जिस प्रकार मांसका टुकडा लगी हुई वंशीको ग्रहण करनेंके अर्थ अपना प्राण खोनेंको उसके सामनें को दौडती है और निश्चयही उसके प्राण जाते हैं । सो इसी प्रकार तूभी

सावधानीसे वहां पर चले जाओ, और सदा उस रामचंद्रको मार डालनेंके लिये यत्न करते रहना ॥ २७ ॥ हमनें पहले संग्राममें अनेक वार तुम लोगोंके बलको जान लियाहै, बस इसी कारणसे हमनें तुम लोगोंको जन स्थानमें बिठाया ॥ २८ ॥ वह आठ राक्षस इन अर्थ युक्त मीठे वचनोंको सुन और रावणको प्रणाम कर लंका छोड करकै जनस्थानकी ओर गुप्त भावसे सबके सब चले ॥ २९ ॥ इस प्रकारसे रावण श्रीजानकीजीको परम हर्षित चित्तसे ग्रहण करकै और उनको अपनें रनवासमें टिका, रामचंद्रजीसे महा शत्रुता करकै मोह युक्तहो परमानंदित हुआ ॥ ३० ॥ इ० श्रीम० वाल्मीकीये आदि काव्ये आर० चतुष्पंचाशःसर्गः ॥ ५४ ॥ रावणकी मतिमें भ्रम होगयाथा इसी कारणसे वह घोर महा बलवान्

युष्माकंतुबलंज्ञातंबहुशोरणमूर्धनि ॥ अतश्चास्मिन्जनस्थानेमयायूयंनिवेशिताः ॥ २८ ॥ ततःप्रियंवाक्यमुपेत्यराक्षसामहार्थमष्टावभिवाद्यरावणम् ॥ विहायलंकांसहिताःप्रतस्थिरेयतोजनस्थानमलक्ष्यदर्शनाः ॥ २९ ॥ ततस्तुसीतामुपलभ्यरावणःसुसंप्रहृष्टःपरिगृह्यमैथिलीम् ॥ प्रसज्ज्यरामेणचवैरमुत्तमंबभूवमोहान्मुदितःसरावणः॥३०॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेचतुष्पंचाशःसर्गः ॥ ५४ ॥ संदिश्यराक्षसान्घोरान्रावणोऽष्टौमहाबलान् ॥ आत्मानंबुद्धिवैक्लव्यात्कृतकृत्यममन्यत ॥ १ ॥ सचिंतयानोवैदेहींकामबाणैःप्रपीडितः ॥ प्रविवेशगृहंरम्यंसीतांद्रष्टुमभित्वरन् ॥ २ ॥ सप्रविश्यतुतद्वेश्मरावणोराक्षसाधिपः ॥ अपश्यद्राक्षसीमध्येसीतांदुःखपरायणाम् ॥ ३ ॥ अश्रुपूर्णमुखींदीनांशोकभारावपीडिताम् ॥ वायुवेगैरिवाक्रांतांमज्जंतींनावमर्णवे ॥ ४ ॥

आठ राक्षसोंको जनस्थानमें भेजकर अपनेको कृत कृत्य समझता हुआ कि अब हमें कोई कार्य करनेंको बाकी नहीं रहा ॥ १ ॥ अनन्तर वह बराबर जानकीजीका स्मरण करते हुए राम बाणसे पीडित होकर उन जानकीजीको देखनेंके लिये शीघ्रतासे अपने रमणीय गृहमें प्रवेश करता हुआ ॥ २ ॥ राक्षस पति रावणनें उस घरमें प्रवेश करकै दुःखपरायण सीताजीको राक्षसियोंके बीचमें बैठे हुए देखा ॥ ३ ॥ सीताजी शोकके भारसे महा पीडा पा अतिशय दीन भावको प्राप्तहो नेत्रोंसे आंसू बहातीं हुई बैठीथीं, उस समय ऐसा बोध होताथा मानों नौका वायुके वेगसे कां

फिर उन्होंनें नखून पंख और चोंचरूपी इन हथियारोंकी सहायतासे रावणके सब बाल उखाड डाले ॥ ३५ ॥ गृद्धराजके वारंवार प्रहार करनेंसे रावण महा पीडित होगया, और क्रोधमें भरनेके कारण उसके अधर और सब शरीर कांपने लगे ॥ ३६ ॥ तब रावणने अतिव्याकुल और मूर्च्छित होकर वांई बगलमें भली भांति जानकीजीको दाब जटायुके एक लात मारी ॥३७॥ शत्रु दमन कारी पक्षिराज जटायुजीनें उस लातके प्रहारको सहकर अपनी चोंचसे रावणके दश बायें हाथ उखाड डाले ॥ ३८ ॥ वांहें उखड जानें परभी, रावणके शरीरसे सहसा नये हाथ निकल आये। उस समय ऐसा ज्ञात हुआ मानों विष ज्वाला युक्त सर्प गण वमईसे वाहर निकले ॥ ३९ ॥ इसके वाद वीर्यवान् दशवदन क्रोधमें भर जानकी

सतदागृध्रराजेनक्लिश्यमानोमुहुर्मुहुः॥ अमर्षस्फुरितोष्ठःसन्प्राकंपतचराक्षसः ॥३६॥संपरिष्वज्यवैदेहींवामेनांकेनरावणः॥ तलेनाभिजघानार्तोजटायुंक्रोधमूर्छितः ॥ ३७ ॥जटायुस्तमतिक्रम्यतुंडेनास्यखगाधिपः ॥ वामबाहून्दशतदाव्यपाहरदरिंदमः॥३८॥ संछिन्नबाहोःसद्योवैबाहवःसहसाऽभवन्॥विषज्वालावलीमुक्तावल्मीकादिवपन्नगाः ३९॥ ततःक्रोधाद्दशग्रीवःसीतामुत्सृज्यवीर्यवान् ॥ मुष्टिभ्यांचरणाभ्यांचगृध्रराजमपोथयत् ॥ ४० ॥ ततोमुहूर्तंसंग्रामो बभूवातुलवीर्ययोः॥ राक्षसानांचमुख्यस्यपक्षिणांप्रवरस्यच ॥ ४१ ॥ तस्यव्यायच्छमानस्यरामस्यार्थेसरावणः ॥ पक्षौपादौचपार्श्वौचखड्गमृद्धृत्यसोच्छिनत्॥४२॥सच्छिन्नपक्षःसहसारक्षसारौद्रकर्मणा ॥ निपपातमहागृध्रोधरण्यामल्पजीवितः॥ ४३ ॥ तंदृष्ट्वापतितंभूमौक्षतजार्द्रंजटायुषम् ॥ अभ्यधावतवैदेहीस्वबंधुमिवदुःखिता ॥ ४४ ॥

जीको छोड मुक्के और लातोंसे जटायुजीको मारने लगा ॥ ४० ॥ और जटायुजीभी उसें खुरचनें व काटनें लगे तब अनुपम पराक्रम गृद्धराज और राक्षस राजका घोर युद्ध होनें लगा ॥ ४१ ॥ जटायुजी रामचंद्रजीके उपकार करनेंको युद्ध करतेथे तब रावणनें खड्ग उठाकर उनके दोनों पंख दो चरण और दो बगलें काट डालीं ॥ ४२ ॥ जब घोर कर्म करनें वाले निशाचरनें पंख काट डाले तब गृद्धराज जटायु मृत्युके निकट पहुंच कर तत्क्षण पृथ्वीमें गिरे ॥ ४३॥ उनको रुधिर लगी देहसे पृथ्वीमें गिरा हुआ देखकर सीताजी दुःखितहो बन्धुकी समानके समीप शीघ्रतासे

वह समस्त दिव्य गृह दिखलाकर कहनें लगा ॥ १३ ॥ कि हे जानकी! यहां बत्तीस करोड राक्षस बालक और बूढोंको छोडकर हमारे आधी नहैं ॥१४॥ उन सब भयंकर कर्म करनें वाले राक्षसोंके हम स्वामीहैं। और हमारे इकले केही एक सहस्र दासहैं ॥ १५ ॥ अब हमारा यह समस्त राज्य तुम्हारेही वशमेंहै हे विशालाक्षि! हमारा जीवन पर्यन्तभी तुम्हारे आधीनहै; अधिक क्या कहैं तुम हमारे प्राणोंसेभी प्यारीहो ॥ १६ ॥ हे मैथिली! हमारे रनवासमें जो सब उत्तम स्त्रियांहैं, सो तुम हमारी भार्या होकर उन सबके ऊपर पटरानी बनो ॥ १७ ॥ हे जानकी! हमनें जो कुछ कहा वह तुम्हारे लिये विशेष हितकारीहै; तुम इस बातमें राजी होजाओ, दूसरी भांतिका अभिप्राय करके क्या करोगी; तुम्हारे कारण हम बहुतही

दशराक्षसकोट्यश्चद्वाविंशतिरथापराः ॥ वर्जयित्वाजनान्वृद्धान्बालांश्चरजनीचरान् ॥ १४ ॥ तेषांप्रभुरहंसीतेसर्वेषां भीमकर्मणाम् ॥ सहस्रमेकमेकस्यममकार्यपुरःसरम् ॥ १५ ॥ यदिदंराज्यतंत्रंमेत्वयिसर्वंप्रतिष्ठितम् ॥ जीवितंच विशालाक्षित्वंमेप्राणैर्गरीयसी ॥ १६ ॥ बह्वीनामुत्तमस्त्रीणांममयोऽसौपरिग्रहः ॥ तासांत्वमीश्वरीसीतेममभार्याभव प्रिये ॥ १७ ॥ साधुकिंतेन्यथाबुद्ध्यारोचयस्ववचोमम ॥ भजस्वमाभितप्तस्यप्रसादंकर्तुमर्हसि ॥ १८ ॥ परिक्षिप्तास मुद्रेणलंकेयंशतयोजना ॥ नेयंधर्षयितुंशक्यासेंद्रैरपिसुरासुरैः ॥ १९ ॥ नदेवेषुनयक्षेषुनगंधर्वेषुनर्षिषु ॥ अहंपश्या मिलोकेषुयोमेवीर्यसमोभवेत् ॥ २० ॥ राज्यभ्रष्टेनदीनेनतापसेनपदातिना ॥ किंकरिष्यसिरामेणमानुषेणाल्पते जसा ॥ २१ ॥ भजस्वसीतेमामेवभर्ताहंसदृशस्तव ॥ यौवनंत्वध्रुवंभीरुरमस्वेहमयासह ॥ २२ ॥

संतापित हुएहैं सो तुम प्रसन्न होकर हमको भजो ॥ १८ ॥ चारों ओर समुद्रसे घिरी हुई शतयोजनके विस्तार वाली इस लंकापुरीको इन्द्रके सहित समस्त देव दानवभी किसी प्रकारका भय नहीं करासकें ॥ १९ ॥ क्या देवता, क्या गन्धर्व, क्या यक्ष, क्या ऋषि इन लोगोंमें हम किसी कोभी ऐसा नहीं देखते जो वीरतामें हमारी समानहों ॥ २० ॥ तौ फिर भला; दीन, तपस्वी राज्य भ्रष्ट, पादचारी, अल्प प्राण मनुष्य रामको लेकर तुम क्या करोगी ॥ २१ ॥ इस कारणसे हे सीते! हमही तुम्हारे योग्य पतिहैं; तुम हमारीही भजनाकरो; हेभीरु! यौवन सदा नहीं रहता,

उनके सब गहने और माला इत्यादि मैली होगई और अनाथकी नांई विलाप करनें लगीं तब राक्षस पति रावण उनके सन्मुख दौडा ॥ ६ ॥ और जटायुको पकडे हुए सीताजीको देखकर बारम्बार, इसे छोडो, इसे छोडो, ऐसा रावणनें कहा, जिस प्रकार लता वृक्षोंको घेर लेतीहै, ऐसे जटायुको पकडे जो सीताजी बैठीथीं उनके समीप ऐसी दशामें रावण आया ॥ ७ ॥ इस समय सीताजी रामचंद्रजीके विरहके मारे वनमें वारं वार, राम ! राम ! करके बडे शब्दसे रुदन करती हुई चिल्लानें लगीं तब साक्षात् यमराजकी समान रावणनें अपना नाश करनेंके लिये उनके केश ग्रहण किये ॥ ८ ॥ जब जानकीजीका इस प्रकारसे अपमान हुआ तब सचराचर समस्त जगत् मर्यादा शून्य होकर घोर निबिड़

तांक्लिष्टमाल्याभरणांविलपंतीमनाथवत् ॥ अभ्यधावतवैदेहींरावणोराक्षसाधिपः ॥ ६ ॥ तांलतामिववेष्टंती मालिंगंतींमहाद्रुमान् ॥ मुंचमुंचेतिबहुशःप्रापतांराक्षसाधिपः ॥ ७ ॥ क्रोशंतींरामरामेतिरामेणरहितांवने ॥ जीवितांतायकेशेषुजग्राहांतकसंनिभः ॥ ८ ॥ प्रधर्षितायांवैदेह्यांबभूवसचराचरम् ॥ जगत्सर्वममर्यादंतमसांधेनसंवृतम् ॥ ९ ॥ नवातिमारुतस्तत्रनिष्प्रभोऽभूद्दिवाकरः ॥ दृष्ट्वासीतांपरामृष्टांदेवोदिव्येनचक्षुषा ॥ १० ॥ कृतंकार्यमितिश्रीमान् व्याजहारपितामहः ॥ प्रहृष्टाव्यथिताश्चासन्सर्वेतेपरमर्षयः ॥ ११ ॥ दृष्ट्वासीतांपरामृष्टांदंडकारण्यवासिनः ॥ रावणस्यविनाशंचप्राप्तंबुद्ध्वायदृच्छया ॥ १२ ॥

अंधकारसे छागया ॥ ९ ॥ फिर पवन वहां नहीं चले, प्रभाकर प्रभा शून्य होगये उसी समय दिव्य दृष्टिसे यह केशाकर्षण घटना देखकर ब्रह्माजीनें जानाकि रावण सीताको हर लेगया ❋ ॥ १० ॥ और श्रीमान् देव पितामह ब्रह्माजीनें सब देवताओंसे यह बात कही कि अब कार्य सिद्ध हुआ क्योंकि अब अवश्यही श्रीरामचंद्रजी रावणको मार डालेंगे यह सुनकर कि अब देवताओंको कष्ट न होगा इससे तो सब देवगण हर्षित हुए व जानकीजीका हरण सुन परम दुःखित हुये ॥ ११ ॥ जानकीजीको हरा हुआ देखकर दंडकारण्य वासियोंनेंभी जान लिया

❋रागनी वरुनाताल ॥ रोदन कर शिर धुनत जानकी ॥ हा रघुपति कित गये छोड मुहि रक्षाकीजे आन जानकी ॥कपट भेष धरि दुष्टहरन कियो सुधि न रही मोहि रेख आनकी॥हा लक्ष्मण तव वचन न माने अपने हित मै आप हानकी॥मम रोदन धुनि सुनत न कोऊ क्या इच्छाहै कृपानिधानकी ॥ नारद काऊ आय नियरानो मति बौरानीयातुधानकी ॥

साथ संग्राम करके उसको हम जीत लायेहैं,वह अति विशाल रमणीयहै उसका वे[illegible] [illegible] समानहै ॥ ३० ॥ सो हे सीते! उस विमानपर चढ
कर तुम हमारे साथ विहार सुखसहित करो। हे वरानने! पद्मकी समान परम सुन्दर और सुविमल कान्ति सम्पन्न तुम्हारा मुख ॥ ३१ ॥ शोकके
मारे मलीन होनेंसे अब शोभित नहीं होता, इसकारण तुम शोक नकरो जब रावणनें इस प्रकार से कहा तब पतिव्रता शिरोमणि सीताजी वस्त्रको
आडमें ॥ ३२ ॥ अपना चंद्रसमान वदन मंडल ढक कर रोनें लगीं चिन्तासे उनकादेह पीला पडगया वह बहुतही अस्वस्थकी समान ध्यानमें मग्न
होगई ॥ ३३ ॥ इसको देखकर वीर्यवान निशाचर रावण उनसे बोला कि हे वैदेही! धर्मलोप होजानेकी शंकासे लज्जित मतहोवो ॥ ३४ ॥ देखो
तत्रसीतेमयासार्धंविहरस्वयथासुखम् ॥ वदनंपद्मसंकाशंविमलंचारुदर्शनम् ॥ ३१ ॥ शोकार्तंतुवरारोहेनभ्राजतिव
रानने ॥ एवंवदतितस्मिन्सावस्त्रांतेनवरांगना ॥ ३२ ॥ पिधायेंदुनिभंसीतामंदमश्रूण्यवर्तयत् ॥ ध्यायंतींतामिवा
स्वस्थांसीतांचिंताहतप्रभाम् ॥ ३३ ॥ उवाचवचनंवीरोरावणोरजनीचरः ॥ अलंव्रीडेनवैदेहिधर्मलोपकृतेनते॥३४॥
आर्षोऽयंदेविनिष्पंदोयस्त्वामभिभविष्यति ॥ एतौपादौमयास्निग्धौशिरोभिःपरिपीडितौ ॥ ३५ ॥ प्रसादंकुरुमेक्षि
प्रंवश्योदासोऽहमस्मिते ॥ इमाःशून्यमयावाचःशुष्यमाणेनभाषिताः ॥ ३६ ॥ नचापिरावणःकांचिन्मूर्ध्नास्त्रींप्रणमे
त ॥ एवमुक्त्वादशग्रीवोमैथिलींजनकात्मजाम् ॥ कृतांतवशमापन्नोममेयमितिमन्यते ॥ ३७ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रा०
वा०आ०आर०पंचपंचाशःसर्गः॥५५॥सातथोक्तातुवैदेहीनिर्भयाशोककर्शिता॥तृणमंतरतःकृत्वारावणंप्रत्यभाषत॥१॥
तुम्हारे प्रति हम ऋषि गणोंकेही उपदेश कियेहुए विधिक्रमसे प्रणय बन्धन बांधने को तैयार हुएहैं यह लो हम अपनें दशों शिरोंसे तुम्हारे मनोहर
चरणोंको दबातेहैं ॥ ३५ ॥ हमारे प्रति प्रसन्नता प्रगटकरने में और विलंब मतकरो हम तुम्हारे वशवर्ती दास होजायँगे, हमनें कामके वशहोकर
यह जो वार्ताकही देखो इसकाकोई अंश निरर्थक नहीं जाय ॥ ३६ ॥ रावणनें कभी इसप्रकारसे किसी स्त्रीके चरणोंमें प्रणाम नहीं कियाथा न
शिरधराथा। दशानन मृत्युके वशहोकर जनक नंदिनी मैथिली जीसे इसप्रकार कहकर मनमें समझा कि यह हमारीही होगई ॥ ३७ ॥ इ० श्रीम०
वा० आ० आरण्य० पंचपंचाशः सर्गः ॥ ५५ ॥ शोकसे तपीहुई जानकीजी यह वचन सुन कुछ भय न करके मनहीमन रावणको

करके युक्त सुवर्णके समान आकार कान्तिवाला ॥ २१ ॥ रावण करके कंपायमान हुआ तिन श्रीजानकीजीका मुख मंडल आकाशमें दिनके चंद्रमाकी समान विना श्री रामचन्द्रजीके शोभाको प्राप्त नहीं हुआ ॥ २२ ॥ सुवर्णकी बनी हुई क्षुद्रघंटिका जिस प्रकार नील वर्णके हाथीके आश्रयमें शोभा पातीहै, स्वर्ण वर्ण जानकीजीभी वैसेही रावणके साथ शोभाको प्राप्त हुई ॥ २३ ॥ सीताजी पद्म केशरवर्ण और सुवर्णकी समान कान्तियुक्तथीं और उनके सब गहने तपे हुये सुवर्णके बनेथे। इस कारण रावणके सामनें वह ऐसी शोभा धारण करती हुई, जिस प्रकार विजली मेघमें विराजमान रहतीहै ॥ २४ ॥ उस कालमें सीताजीके गहनोंके शब्दसे दशानन शब्द करते हुए सुविमल नील वर्ण मेघकी समा

राक्षसेंद्रसमाधूतंतस्यास्तद्वदनंशुभम् ॥ शुशुभेनविनारामंदिवाचंद्रइवोदितः ॥ २२ ॥ साहेमवर्णानीलांगंमैथिली राक्षसाधिपम् ॥ शुशुभेकांचनीकांचीनीलंगजमिवाश्रिता ॥ २३ ॥ सापद्मपीताहेमाभारावणंजनकात्मजा ॥ विद्यु द्घनमिवाविश्यशुशुभेतप्तभूषणा ॥ २४ ॥ तस्याभूषणघोषेणवैदेह्याराक्षसेश्वरः ॥ बभूवविमलोनीलःसघोषइवतोयदः ॥ २५ ॥ उत्तमांगच्युतातस्याःपुष्पवृष्टिःसमंततः ॥ सीतायाह्रियमाणायाःपपातधरणीतले ॥ २६ ॥ सातुरावणवे गेनपुष्पवृष्टिःसमंततः ॥ समाधूतादशग्रीवंपुनरेवाभ्यवर्तत ॥ २७ ॥ अभ्यवर्ततपुष्पाणांधारावैश्रवणानुजम् ॥ न क्षत्रमालाविमलामेरुंनगमिवोत्तमम् ॥ २८ ॥ चरणान्नूपुरंभ्रष्टंवैदेह्यारत्नभूषितम्॥विद्युन्मंडलसंकाशंपपातधरणीतले ॥ २९ ॥ तरुप्रवालरक्तासानीलांगंराक्षसेश्वरम् ॥ प्रशोभयतवैदेहीगजंकक्ष्येवकांचनी ॥ ३० ॥

नता धारण करता हुआ॥२५॥जब सीताजीको रावण हरकर ले चला तो उनके मस्तकसे फूलोंकी झडीसी लगकर पृथ्वीपर गिरनें लगी॥२६॥परन्तु वही पुष्पवृष्टि रावणके गमन वेगसे उत्पन्न हुए पवन द्वारा कंपाई जाकर फिर कुबेरके छोटे भाई रावणकेही चारों ओर गिरनें लगी ॥२७॥ वह सीताजीके शिरके फूलोंकी झडी रावणके चारों ओर सुमेरु पर्वतके चारों ओर नक्षत्रोंकी पांतिकी समान शोभित होतीथी ॥२८॥उसी समय जानकीजीके चरणसे रत्न भूषित नूपुर खसकर बिजलीके मंडलकी समान पृथ्वीपर गिर पडा॥२९॥श्रीजानकीजी नवतरु पल्लवकी समान रक्त वर्ण वालीथीं, उनके

तौ हे राक्षस! तू तत्क्षणही भस्म हो जायगा जिस प्रकार महादेवजीकी नेत्राग्निसे कामदेव भस्म हो गयाथा ॥ १० ॥ जो चंद्रमाकोभी आकाशसे पृथ्वीपर
गिरा सकते या नाश कर सकतेहैं वह सीताको भी अवश्यही यहां आकर इस स्थानसे छुडावेंगे ॥ ११ ॥ तेरी उमर वीतचुकी, श्री जाती रही, वीर्य
समाप्त होगया, इन्द्रियांभी अपने २ कार्यसे शिथिल होगई, इस्से विदित होताहै कि तुम्हारे लिये लंकानगरी निश्चयही विधवा हो जायगी ॥१२॥
तुमनें जो पाप कार्य कियाहै इसका परिणाम कभी सुखकर नहीं होगा, क्योंकि तूनें विना विचारे बलात्कारकर पतिकी सेवासे हमको अलग
कियाहै ॥ १३ ॥ हमारे वह महाद्युतिमान स्वामी अपने भ्राता लक्ष्मणके सहित केवल अपनें वीर्यका आश्रय लेकर निडरहो निर्जन वनमें वास

यश्चंद्रंनभसोभूमौपातयेन्नाशयेतवा ॥ सागरंशोषयेद्वापिससीतांमोचयेदिह ॥ ११ ॥ गतासुस्त्वंगतश्रीकोगतस
त्त्वोगतेंद्रियः ॥ लंकावैधव्यसंयुक्तात्वत्कृतेनभविष्यति ॥ १२ ॥ नतेपापमिदंकर्मसुखोदर्कंभविष्यति ॥ याहं
नीताविनाभावंपतिपार्श्वात्त्वयाबलात् ॥ १३ ॥ सहिदेवरसंयुक्तोममभर्तामहाद्युतिः ॥ निर्भयोवीर्यमाश्रित्यशून्ये
वसतिदंडके ॥ १४ ॥ सतेवीर्यंबलंदर्पमुत्सेकंचयथाविधम् ॥ व्यपनेष्यतिगात्रेभ्यःशरवर्षेणसंयुगे ॥ १५ ॥ यदा
विनाशोभूतानांदृश्यतेकालचोदितः ॥ तदाकार्येप्रमाद्यंतिनराःकालवशंगताः ॥१६॥ मांप्रधृष्यसतेकालःप्राप्तोऽयंराक्ष
साधम॥ आत्मनोराक्षसानांचवधायांतःपुरस्यच ॥१७॥ नशक्यायज्ञमध्यस्थावेदिःस्रुग्भांडमंडिता॥ द्विजातिमंत्रसंपू
ताचंडालेनावमर्दितुम्॥१८॥ तथाहंधर्मनित्यस्यधर्मपत्नीदृढव्रता॥ त्वयास्प्रष्टुंनशक्याहंराक्षसाधमपापिना॥ १९ ॥

करतेहैं ॥ १४ ॥ वह संग्राम स्थलमें वाणोंकी वर्षा करकै तेरी देहसे, वल वीर्य, घमंड, व ऐसा अहंकार अलग करदेंगे ॥ १५ ॥ कालके वश होकर
जवकि प्राणियोंका नाश निकट आजाताहै तव वह कालके वशहोकर कार्य अकार्यका विचार करनेंमें ज्ञान रहित हो जातेहैं ॥ १६ ॥ रे राक्षसा
धम! जव कि तैंनें हमारा अपमान कियाहै, तव स्वयं तेरा, समस्त राक्षसोंका और सर्व रनवासोंके नाश होनेंका काल आ पहुँचाहै ॥ १७ ॥
जिस प्रकार ब्राह्मणों करकै मंत्रसे पढी हुई यज्ञको सामग्रीसे विभूषित यज्ञ वेदी चंडालके छूनें योग्य नहीं होती वैसेही हमभी तेरे स्पर्श करनेंके
योग्य नहींहैं ॥ १८ ॥ रेराक्षसाधम ! रेपापात्मा ! हम नित्य धर्मपरायण श्रीरामचन्द्रजीकी धर्मपत्नीहैं, मन वचन कायसे स्वामीहीके प्रति

जब कि रावण सीताजी रामभार्याको हरण करके लिये जाताहै, तब फिर सत्य, दया, धर्म, सरलता और सुशीलता सबही संसारसे लोप होगई यदि ऐसा न होता तो रावण कैसे जानकीजीको हरता? ॥ ३९ ॥ सबही प्राणी झुन्डके झुन्ड मिलकर यह कह विलाप करनें लगे, मृगछौना गण त्रासित होकर वारंवार शोभा रहित नेत्रोंसे दीनमुखहो रोनें लगे ॥ ४० ॥नेत्र खोल२ वार२ यह देख वनदेवताओंका शरीर मारे भयके थरथरा कर कांपने लगा॥४१॥"राम-राम" लक्ष्मण-लक्ष्मण" कह२कर जोरसे रोती व दुःखसे पुकारती जानकीजीको मधुर स्वरसे बोलती हुई ॥ ४२ ॥ और वार२ उनको पृथ्वीपर निहारती हुई देख, जिनका तिलक बिसना हुआ और अति व्याकुल हो रहाहै चित्त जिनका ऐसी जानकीजीको अपनासर्वनाश

नास्तिधर्मःकुतःसत्यंनार्जवंनानृशंसता ॥ यत्ररामस्यवैदेहीसीतांहरतिरावणः ॥ ३९ ॥ इतिभूतानिसर्वाणिगणशः पर्यदेवयन् ॥ वित्रस्तकादीनमुखारुरुदुर्मृगपोतकाः ॥ ४० ॥ उद्वीक्ष्योद्वीक्ष्यनयनैर्भयादिवविलक्षणैः ॥ सुप्रवेपितगात्राश्चबभूवुर्वनदेवताः॥४१॥विक्रोशंतींदृढंसीतांदृष्ट्वादुःखंतथागताम् ॥ तांतुलक्ष्मणरामेतिक्रोशंतींमधुरस्वराम् ॥४२॥ अवेक्षमाणांबहुशोवैदेहींधरणीतलम् ॥ सतामाकुलकेशांतांविप्रमृष्टविशेषकाम् ॥ जहारात्मविनाशायदशग्रीवोमनस्विनीम् ॥ ४३ ॥ ततस्तुसाचारुदतीशुचिस्मिताविनाकृताबंधुजनेनमैथिली ॥ अपश्यतीराघवलक्ष्मणावुभौविवर्णवक्त्राभयभारपीडिता ॥ ४४ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेद्विपंचाशः सर्गः ॥ ५२ ॥ खमुत्पतंतंतंदृष्ट्वामैथिलीजनकात्मजा ॥ दुःखितापरमोद्विग्नाभयेमहतिवर्तिनी ॥ १ ॥ रोषरोदनताम्राक्षीभीमाक्षंराक्षसाधिपम् ॥ रुदतीकरुणंसीताह्रियमाणातमब्रवीत् ॥ २ ॥

करानेके कारण रावण हर कर लेगया॥४३॥अनन्तर मनोहर दन्त वाली मन्द२हास्य युक्त, जानकीजी राम और लक्ष्मण दोनोंको नहींदेखनेपर बन्धु जनके विरहसे मलीन मुखी और भयसे बहुतही पीडित हुई॥४४॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे द्विपंचाशः सर्गः ॥५२॥ रावणको आकाशमें उडता हुआ देखकर जनककुमारी, सुकुमारी सीताजी महाभीत होकर घबडाई और बहुतही दुःखित हुई ॥ १ ॥ क्रोध करनेंके कारण और रोते२ उनके दोनों नेत्र लाल हो आये, वह आरत स्वरसे रोकर उस कालमें भयंकर नेत्र कियेहुए राक्षसपतिसे कहने लगीं॥ २॥

जो आज्ञा कहकर रावणके कहनेंके अनुसार सीताजीको घेर लेतीहुई॥२८॥यह देखकर रावण मानों पृथ्वीको कंपित और विदीर्ण करता हुआ कई एक
परग चलकर, उन घोर दर्शनवाली राक्षसियोंको विशेष रूपसे फिर आज्ञा करता हुआ ॥ २९ ॥ तुम जानकीको अशोक वनमें लेकर चली
जाओ और सब मिलकर सदा इनको घेरे रहकर गूढ भावसे इनकी रक्षाकरो ॥३०॥ वनकी हथिनीको जिस प्रकार वशमें किया जाताहै, तुम सबभी
उसीतरहसे घोर तर्जन करके अथवा समझा बुझाकर इनको हमारे वशमें लाओ ॥ ३१ ॥ जब राक्षसेन्द्र रावणनें इस भांति आज्ञाकी तब राक्षसियें

सताःप्रोवाचराजासौरावणोघोरदर्शनाः ॥ प्रचल्यचरणोत्कर्षैर्दारयन्निवमेदिनीम् ॥ २९ ॥ अशोकवनिकामध्ये
मैथिलीनीयतामिति ॥ तत्रेयंरक्ष्यतांगूढंयुष्माभिःपरिवारिता ॥ ३० ॥ तत्रैनांतर्जनैर्घोरैःपुनःसांत्वैश्चमैथिलीम् ॥
आनयध्वंवशंसर्वावन्यांगजवधूमिव॥ ३१ ॥ इतिप्रतिसमादिष्टाराक्षस्योरावणेनताः॥अशोकवनिकांजग्मुर्मैथिलींपरि
गृह्यतु॥ ३२ ॥ सर्वकामफलैर्वृक्षैर्नानापुष्पफलैर्वृताम् ॥ सर्वकालमदैश्चापिद्विजैःसमुपसेविताम् ॥ ३३ ॥ सातुशोकपरी
तांगीमैथिलीजनकात्मजा ॥ राक्षसीवशमापन्नाव्याघ्रीणांहरिणीयथा ॥ ३४ ॥ शोकेनमहतात्रस्तामैथिलीजनका
त्मजा ॥ नशर्मलभतेभीरुःपाशबद्धामृगीयथा ॥ ३५ ॥ नविंदतेतत्रतुशर्ममैथिलीविरूपनेत्राभिरतीवतर्जिता ॥ पतिं
स्मरंतीदयितंचदेवरंविचेतनाभूद्भयशोकपीडिता ॥ ३६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकां
डेषट्पंचाशःसर्गः ॥ ५६ ॥ ॥ छ ॥

सीताजीको घेरकर अशोकवनमें ले गईं ॥ ३२ ॥ अनेक जातिके मन वांछित पुष्प फल सम्पन्न वृक्ष समूह और सब काल मतवालेही विविध
भांतिके विहंगम इस अशोक वनको शोभाको बढातेथे ॥ ३३ ॥ शोककेवशमें पड़ी हुई जनक दुलारी मैथिलीजी अशोकवनके मध्य राक्षसोंके
वशमें पड़कर रहीं, जिस प्रकार व्याघ्रनियोंमें हरिणी रहतीहै ॥ ३४ ॥ अशोक वनमें फांसीसे बँधी डरपोक मृगीके समान अतिशय शोकमें सी
ताजी रहीं, वह वहां पर किसी भांतिका सुख न प्राप्त कर सकीं ॥ ३५ ॥ विरूप नेत्रवाली राक्षसियों करके घुडकी डरपाई व धमकाई जाकर; पर

ही तू सेना सहित एक मुहूर्तभरभी प्राण धारण नहीं कर सकेगा॥११॥पक्षी जिस प्रकार वनमें लगी हुई दावानलको नहीं छू सकता, वैसेही उन राजकु
मारोंके बाणोंका स्पर्श सहन करनेंकी किसी भांति तुझमें सामर्थ्य नहींहै ॥ १२ ॥ इस कारण हेरावण! भली भांति अपना हिताहित विचार
करके सीधी तरहसे हमको छोड़दे। नहीं तौ हमारे स्वामी अपने भ्राताके सहित हमारे इस पकड़े जानें पर महा क्रोधितहो ॥ १३ ॥ यदि तू हम
को न छोड देगा तौ तेरा विनाश करनेंके लिये यत्न करेंगे, तू जिस आशयसे हमको हरण करके लिये जाताहै ॥ १४ ॥ सो हे राक्षस नीच! वह तेरा
आशय कभी सिद्ध नहीं होगा हम उन देव समान अपनें स्वामीको न देखनें पर ॥ १५ ॥ शत्रुके वशमें रहकर वहुत कालतक प्राण धारण करनें

नत्वंतयोःशरस्पर्शंसोढुंशक्तःकथंचन ॥ वनेप्रज्वलितस्येवस्पर्शमग्नेर्विहंगमः ॥ १२ ॥ साधुकृत्वात्मनःपथ्यंसाधुमां
मुंचरावण ॥ मत्प्रधर्षणसंक्रुद्धोभ्रात्रासहपतिर्मम ॥ १३ ॥ विधास्यतिविनाशायत्वंमांयादिनमुंचासि ॥ येनत्वंव्यव
सायेनबलान्मांहर्तुमिच्छसि ॥ १४ ॥ व्यवसायस्तुतेनीचभविष्यतिनिरर्थकः ॥ नह्यहंतमपश्यंतीभर्तारंविबुधो
पमम् ॥ १५ ॥ उत्सहेशत्रुवशगाप्राणान्धारयितुंचिरम्॥ ननूनंचात्मनःश्रेयःपथ्यंवासमवेक्षसे ॥ १६ ॥ मृत्युका
लेयथामर्त्योविपरीतानिसेवते ॥ मुमूर्षूणांतुसर्वेषांयत्पथ्यंतन्नरोचते ॥ १७ ॥ पश्यामीहहिकंठेत्वांकालपाशावपा
शितम् ॥ यथाचास्मिन्भयस्थानेनबिभेषिनिशाचर॥१८॥ व्यक्तंहिरण्मयांस्त्वंहिसंपश्यसिमहीरुहान् ॥ नदींवैतरणीं
घोरांरुधिरौघविवाहिनीम् ॥ १९ ॥ खड्गपत्रवनंचैवभीमंपश्यसिरावण ॥ तप्तकांचनपुष्पांचवैदूर्यप्रवरच्छदाम् ॥ २० ॥

को समर्थ न होंगी, हमको समझ पड़ताहै कि तू अपना कल्याण और हित नहीं देखता ॥ १६ ॥ जिस प्रकार मृत्युके समय लोगोंकी बुद्धि विपरी
त हो जातीहै अथवा मरनेके निकट किसीको पथ्य रुचिकर नहीं होता ॥ १७ ॥ रेराक्षस! तू इस समयके कार्यमेंभी भय नहीं करता, इस कारण
हम देखतीहैं कि तेरा गला कालकी फाँसीसे बँध गयाहै ॥१८॥ और साफही समझ पड़ताहै कि तेरी मृत्यु जो निकटहै इस्से सब वृक्ष तुझे सुवर्णके
दृष्टि आते होंगे,कारणकि जिनकी मृत्यु निकट होतीहै, उनको वृक्ष सुवर्णकेही दीखतेहैं, और रक्तवाहिनी भयंकर वैतरणी नदी ॥ १९॥ और महा
भीषण खड्ग रूप पत्र युक्त वृक्षोंका वन तू अति शीघ्र देखेगा।और उत्कृष्ट वैदूर्यमणिमय पत्ते लगे हुए तपाये हुए सुवर्णके बने फूल लगे हुए॥२०॥

कर परम प्रसन्न हुई ॥ ९ ॥ देवताओंके कार्य सिद्धिके निमित्त राक्षसोंको मोहित करती हुई इसी अवसरमें इन्द्राणीके पति इन्द्रजी ॥ १० ॥ उस
स्थानमें प्राप्तहो वनमें स्थित हुई जानकी से बोले कि हे भद्रे! मैं देवताओंका राजा इन्द्रहूं. हे सुन्दर हास्य युक्त जानकी! ॥ ११ ॥ मैं तुम्हारे
और रामचंद्रके कार्य सिद्ध करनेंके निमित्त सहाय करनेंको आयाहूं हे जनककुमारी! तुम शोच मत करो ॥ १२ ॥ मेरी कृपासे सैना सहित
रामचंद्रजी सागर तर जांयगे, हे कल्याणी! मेरीही मायाने इन राक्षसियों को मोहित कियाहै॥१३॥ इसी कारण हे जानकी! मैं यह हवि अन्न तुम्हें

देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थंप्रामोहयतराक्षसान् ॥ एतस्मिन्नंतरेदेवःसहस्राक्षःशचीपतिः ॥ १० ॥ आससादवनस्थांतांवचनंचे
दमब्रवीत् ॥ देवराजोस्मिभद्रंतेइहचास्मिशुचिस्मिते ॥ ११ ॥ अहंत्वंकार्यसिद्ध्यर्थंराघवस्यमहात्मनः ॥ साहाय्यं
कल्पयिष्यामिमाशुचोजनकात्मजे ॥ १२ ॥ मत्प्रसादात्समुद्रंसतरिष्यतिबलैःसह ॥ मयैवेहचराक्षस्योमाययामो
हिताःशुभे ॥ १३ ॥ तस्मादन्नमिदंसीतेहविष्यान्नमहंस्वयम् ॥ सत्वांसंगृह्यवैदेहिआगतःसहनिद्रया ॥ १४ ॥ एत
दत्स्यसिमद्धस्तान्नत्वांबाधिष्यतेशुभे ॥ क्षुधातृषाचरंभोरुवर्षाणामयुतैरपि ॥ १५ ॥ एवमुक्तातुदेवेंद्रमुवाचपरिशं
किता ॥ कथंजानामिदेवेंद्रंत्वामिहस्थंशचीपतिम् ॥ १६ ॥ देवलिंगानिदृष्टानिरामलक्ष्मणसन्निधौ ॥ तानिदर्शय
देवेंद्रयदित्वंदेवराट्स्वयम् ॥ १७ ॥ सीतायावचनंश्रुत्वातथाचक्रेशचीपतिः ॥ पृथिवींनास्पृशत्पद्भ्यामनिमेषे
क्षणानिच ॥ १८ ॥

देनेको निद्राके साथ आयाहूं सो हे जानकी! तुम इसे लो ॥ १४ ॥ हे जानकी! मेरे हाथसे यें हवि भक्षण करनेंसे तुमको क्षुधा दश हजार वर्ष तक
भी न व्यापेगी ॥ १५ ॥ जब इन्द्रने ऐसा कहा तौ डरती हुई जानकी बोलीं कि मैं यह कैसे जानूं कि तुम शचीके पति इन्द्रहो ॥ १६ ॥
जो चिह्न राम लक्ष्मणके साथ मैंने आपके देखेथे यदि तुम देवता ओंके राजा इन्द्र हो तौ उन चिह्नोंको दिखाओ ॥ १७ ॥ इन्द्रजी जान
कीजी के वचन सुन पैरोंसे पृथ्वी न स्पर्श करते हुए और नेत्रोंको पलक लगना बंदहोगया देवताओंकी यही पहचानहै कि पैरोंसे

न पाकर चली जानें लगीं। और जाते २ उन्होंनें पर्वतके शृंग पर बैठे हुए प्रधान पांच वंदरोंको देखा॥ १ ॥ तब उन बडे २ नेत्र वाली जानकीजीनें सुवर्णके रंगका अपना एक वस्त्र व कुछ गहनें उतार उन वन्दरोंके बीचमें ॥ २ ॥ इस विचारसे डाल दिये कि यह कदाचित् रामचंद्रजीसे यह सब वृत्तान्त कहभी सकतेहैं। वह जानकीजी का छोडा हुआ वस्त्र व भूषण वन्दरोंके बीचमें गिरा ॥ ३ ॥ जानकी जीके वस्त्र और भूषण डालनें का यह कर्म घवडाहटके मारे रावणनें नहीं जाना, उस कालमें सीताजी बहुतही रुदन कर रही थीं उनको अनिमेष लोचनसे ॥४॥ पीली आंखों वाले वानर श्रेष्ठोंनें सीताजीको अपनें नेत्रोंसे वारंवार देखलिया व रावण पम्पापुरीको नांघ लंकापुरीकी ओर ॥ ५ ॥ रोती हुई

तेषांमध्येविशालाक्षीकौशेयंकनकप्रभम् ॥ उत्तरीयंवरारोहाशुभान्याभरणानिच ॥ २ ॥ मुमोचयदिरामायशंसेयुरि तिभामिनी ॥ वस्त्रमुत्सृज्यतन्मध्येनिक्षिप्तंसहभूषणम् ॥ ३ ॥ संभ्रमात्तुदशग्रीवस्तत्कर्मचनबुद्धवान् ॥ पिंगाक्षास्तांवि शालाक्षींनेत्रैरनिमिषैरिव ॥ ४ ॥ विक्रोशंतींतदासीतांददृशुर्वानरोत्तमाः ॥ सचपंपामतिक्रम्यलंकामभिमुखःपुरी म् ॥ ५ ॥ जगाममैथिलींगृह्यरुदतींराक्षसेश्वरः ॥ तांजहारसुसंहृष्टोरावणोमृत्युमात्मनः ॥ ६ ॥ उत्संगेनैवभुजगीं तीक्ष्णदंष्ट्रांमहाविषाम् ॥ वनानिसरितःशैलान्सरांसिचविहायसा ॥ ७ ॥ सक्षिप्रंसमतीयायशरश्चापादिवच्युतः ॥ ति मिनक्रनिकेतंतुवरुणालयमक्षयम् ॥ ८ ॥ सरितांशरणंगत्वासमतीयायसागरम् ॥ संभ्रमात्परिवृत्तोर्मीरुद्धमीनमहो रगः ॥ ९ ॥ वैदेह्यांह्रियमाणायांबभूववरुणालयः ॥ अंतरिक्षागतावाचःससृजुश्चारणास्तथा ॥ १० ॥

सीताजीको लेकर चला गया, अपनी मूर्तिमान मृत्युस्वरूप सीताजीको हरण करके रावणके हर्षकी सीमा न रही ॥ ६ ॥ वह तेज डाढ वाली और तेज विष वाली सर्पिणीकी समान सीताजीको अंकमें भरकर आकाश मार्गमें होकर बहुतसे पर्वत वन नदियां व तडागादि देखता हुआ ॥ ७ ॥ बडी शीघ्रताके साथ रावण मत्स्य कच्छप मगर नाके इत्यादिकों के स्थान समुद्रको उतर गया, जिसप्रकार कि कमानसे छूटा हुआ बाण अति शीघ्रतासे सीधा चलताहै ॥ ८ ॥ जब रावणनें जानकीजीको हरण किया, तब जगमाताका हरण होनेके कारण क्षुभित होकर वरुणालय समुद्र तरंगविहीन होगया, और उसमेंके मीन और बडे २ सब सर्प व्याकुल होगये ॥ ९ ॥ इस प्रकार जानकीजीके हरण करनेंके समय यह

उस ओर श्रीरामचंद्रजी मृग रूपसे विचरण करनें वाले काम रूपी निशाचर मारीचको संहार करकै शीघ्रही आश्रमके मार्गको लौटे ॥ १ ॥
और श्रीजानकीजीको देखनेंके लिये अति वेगसे चले। इसी समयमें एक शियार उनकी पीठके पीछे महा कठोर शब्द करनेलगा ॥ २ ॥
श्रीरामचंद्रजी शियारके इस रोमाञ्चकर दारुण बोलको सुन अति भयभीतहो मनही मनमें शंका करनें लगे ॥ ३ ॥ जिस प्रकारका शब्द यह
शियार कर रहाहै, इससे तौ ऐसा जान पडताहै, कि कोई अशुभ होगा। इस समय राक्षसोंनें जानकीको भक्षण न कर लियाहो, और सीताजी
कुशलसेहों तभी मंगलहै ॥ ४ ॥ मृग रूपी मारीचनें जान बूझकर हमारे बोलकी समान जो चिल्लाहटकीहै यदि लक्ष्मणनें उस बोलको सुना

राक्षसंमृगरूपेणचरंतंकामरूपिणम् ॥ निहत्यरामोमारीचंतूर्णंपथिन्यवर्तत ॥ १ ॥ तस्यसंत्वरमाणस्यद्रष्टुकामस्यमै
थिलीम् ॥ क्रूरस्वनोथगोमायुर्विननादास्यपृष्ठतः ॥२॥ सतस्यस्वरमाज्ञायदारुणंरोमहर्षणम् ॥ शंकयामासगोमायोः
स्वरेणपरिशंकितः ॥ ३ ॥अशुभंबतमन्येहंगोमायुर्वाशतेयथा ॥ स्वस्तिस्यादपिवैदेह्याराक्षसैर्भक्षणंविना ॥ ४ ॥ मारी
चेनतुविज्ञायस्वरमालक्ष्यमामकम् ॥ विक्रुष्टंमृगरूपेणलक्ष्मणःशृणुयाद्यदि ॥ ५ ॥ ससौमित्रिःस्वरंश्रुत्वातांचहि
त्वाथमैथलीम् ॥ तयैवप्रहितःक्षिप्रंमत्सकाशमिहैष्यति ॥ ६ ॥ राक्षसैःसहितैर्नूनंसीतायाईप्सितोवधः ॥ कांचनश्चमृ
गोभूत्वाव्यपनीयाश्रमात्तुमाम् ॥ ७ ॥ दूरंनीत्वाथमारीचोराक्षसोभूच्छराहतः ॥ हालक्ष्मणहतोस्मीतियद्वाक्यं
व्याजहारह ॥ ८ ॥ अपिस्वस्तिभवेदाभ्यांरहिताभ्यांमयावने ॥ जनस्थाननिमित्तंहिकृतवैरोस्मिराक्षसैः ॥ ९ ॥

हो ॥ ५ ॥ वस लक्ष्मणजी उस स्वरके सुन्तेही तुरत सीताजी करके भेजे जाकर सीताको छोडकर वह शीघ्रही हमारे निकट आवेंगे ॥ ६ ॥ निश्च
यही राक्षसोंनें मिलकर जानकीके वध करनेंकी अभिलाषकीहै और इसी कारणसे राक्षस मारीचने सुवर्ण मृग रूप धारण करकै हमको आश्रमसे
वहुत दूर किया ॥ ७ ॥ और हमको दूर लाकर फिर हमारे वाणसे घायल होकर लक्ष्मणकोभी यहां लानेंके लिये, हाय लक्ष्मण ! हम मारे गये !
यह कहकर उस राक्षसनें प्राण छोडे ॥ ८ ॥ इस शब्दको सुन लक्ष्मणभी तौ चलेही आये होंगे फिर जब वनमें आश्रम पर हम दोनों भाई नरहें तौ

नें इधर उधर देखा तो आगेही मांसके खानेंवाले आठ राक्षस बैठेथे॥ १८॥ उन राक्षसों को देखकर ब्रह्माजीके वरदानसे मोहित हुआ रावण उन राक्षसोंके बल वीर्यकी प्रशंसा करनें लगा ॥ १९ ॥ तुम लोग अनेक भांतिके अस्त्र शस्त्र धारण करकै शीघ्र इस स्थानसे जहां पर खर रहा करताथा उस जन शून्य जनस्थानको जाओ ॥ २० ॥ और तुम लोग वहां बल और पौरुषका आश्रय लेकर किसीकाभी डर न करकै जन शून्य जनस्थानमें जाय टिके रहो ॥ २१ ॥ वहां पर खर और दूषणके सहित हमारी जो महावीर्य वान बहुत सारी सेना रहतीथी, वह समस्त रामचंद्रके बाणसे खर दूषण सहित मारी गई ॥ २२ ॥ इस कारणसे हमको बडा क्रोध हुआहै, और इससेही हम बडे धीर्यवानका धीरज

सतान्दृष्ट्वामहावीर्योवरदानेनमोहितः ॥ उवाचतानिदंवाक्यंप्रशस्यबलवीर्यतः ॥ १९ ॥नानाप्रहरणाःक्षिप्रमितोगच्छ
तसत्वराः ॥ जनस्थानंहतस्थानंभूतपूर्वंखरालयम् ॥ २० ॥ तत्रास्यतांजनस्थानेशून्येनिहतराक्षसे ॥ पौरुषंबलमाश्रि
त्यत्रासमुत्सृज्यदूरतः ॥२१॥ बहुसैन्यंमहावीर्यंजनस्थानेनिवेशितम् ॥ सदूषणखरंयुद्धेनिहतंरामसायकैः ॥ २२ ॥ त
तःक्रोधोममापूर्वोधैर्यस्योपरिवर्धते ॥ वैरंचसुमहज्जातंरामंप्रतिसुदारुणम् ॥ २३ ॥ निर्यातयितुमिच्छामितच्चवैरं
महारिपोः ॥ नहिलप्स्याम्यहंनिद्रामहत्वासंयुगेरिपुम् ॥ २४ ॥ तंत्विदानीमहंहत्वाखरदूषणघातिनम् ॥ रामंशर्मो
पलप्स्यामिधनंलब्ध्वेवनिर्धनः ॥ २५ ॥ जनस्थानेवसद्भिस्तुभवद्भीराममाश्रिता ॥ प्रवृत्तिरुपनेतव्याकिंकरोती
तितत्त्वतः ॥ २६ ॥ अप्रमादाच्चगंतव्यंसर्वैरेवनिशाचरैः ॥ कर्तव्यश्चसदायत्नोराघवस्यवधंप्रति ॥ २७ ॥

भी लोप होगया। इस समय रामचंद्रके प्रति हमारा महा वैरभाव उपस्थित हुआहै ॥ २३ ॥ सो इस समय परम शत्रु रामके प्रति वह अपना क्रोध हम प्रगट करना चाहतेहैं, जब तक हम युद्धमें उस महा शत्रुका वध नहीं करलेते, तब तक हमको सुखकी नींद न आवैगी ॥ २४ ॥ जिस प्रकार निर्धन पुरुष धन प्राप्त करकै सुखी होताहै, वैसेही खर दूषणके मारनें वाले रामचंद्रजीका नाश करकै हमभी सुखी होंगे ॥ २५ ॥ तुम लोग जनस्थानमें रहकर राम किस समय क्या करतेहैं, सदाही इस विषयकी यथा तथा खोज खबर लेते रहो ॥ २६ ॥ तुम सब लोग बडी

का कार्य किया है ॥१७॥हे शुभदर्शन! तुमनें जो अकेला छोडा इस्से क्या सीताका भला होगा? कभी नहीं! हे वीर! जनककुमारी अब आश्रममें नहीं हैं इस बातमें हमको अब कुछ संशय नहीं होता ॥ १८ ॥ परग परग पर जिस प्रकारके अशकुन होरहे हैं इस्से यह ज्ञात होता है कि यातौ सीताको कोई वनचारी राक्षस चुराकर ले गया या मारकर खा गया होगा ॥ १९ ॥ हे लक्ष्मण! जनककुमारीजी सब प्रकारसे कुशल हैं, क्या हम ऐसा देख पावेंगे? हे पुरुषसिंह! क्या जानकी सब प्रकार कुशलसे जीती हैं ॥ २० ॥ हे महाबलवान्! यह मृग गण, शियार, और पक्षी गण सूर्यकी ओरको मुख करकै महा भयंकर शब्द कर दशोंदिशाओंको देखते हैं मानों इनमें आग लगी है। ऐसे अपशकुन देखकर किस प्रकार

सीतामिहागतःसौम्यकच्चित्स्वस्तिभवेदिति ॥ नमेऽस्तिसंशयोवीरसर्वथाजनकात्मजा ॥ १८ ॥ विनष्टाभ क्षितावापिराक्षसैर्वनचारिभिः ॥ अशुभान्येवभूयिष्ठंयथाप्रादुर्भवंतिमे ॥ १९ ॥ अपिलक्ष्मणसीतायाःसामग्र्यं प्राप्नुयामहे ॥ जीवंत्याःपुरुषव्याघ्रसुतायाजनकस्यवै ॥ २० ॥ यथावैमृगसंघाश्चगोमायुश्चैवभैरवम् ॥ वाशंते शकुनाश्चापिप्रदीप्तामभितोदिशम् ॥ अपिस्वस्तिभवेत्तस्याराजपुत्र्यामहाबल ॥ २१ ॥ इदंहिरक्षोमृगसंनिकाशंप्र लोभ्यमांदूरमनुप्रयातम् ॥ हतंकथंचिन्महताश्रमेणसराक्षसोभून्म्रियमाणएव ॥ २२ ॥ मनश्चमेदीनमिहाप्रहृष्टं चक्षुश्चसव्यंकुरुतेविकारम् ॥ असंशयंलक्ष्मणनास्तिसीताहृतामृतावापथिवर्ततेवा ॥ २३ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ० आर०सप्तपंचाशःसर्गः ॥ ५७ ॥

कह दें कि राजपुत्री सीताजी कुशलसे हैं? ॥ २१ ॥ यह मृग रूपी राक्षसभी हमको ललचाकर दूर ले आया, जिसको फिर हमनें बहुतही परीश्रम करकै किसी भांति मार पाया मरनेंके समय उसनें निज राक्षस मूर्ति धारण की ॥ २२ ॥ हमारा मनभी बहुतही दीन और घबडाया हुआ है; और बांई आंखभी फडक रही है! हे लक्ष्मण! निःसन्देह सीता आश्रममें नहीं, यातौ उनको कोई हरण करकै ले गया, या मार्गमें मरी पडी होंगी ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आर०" पं०ज्वालाप्रसाद मिश्र "कृत भाषानुवादे सप्तपंचाशःसर्गः ॥ ५७ ॥

पकर जलमें डूबी हुईहै ॥ ४ ॥ अथवा जैसे मृगी यूथसे बिछुड कर कुत्तोंसे घिरीहो सीताजी शोकके वश पडनेंसे विवश और व्याकुलहो शिर झुकाये बैठीथीं ॥ ५ ॥ राक्षसपति रावण सन्मुख होकर उन शोकसे दीन हुई सीताजीकी इच्छा न रहनें पर भी बलात्कारसे उनको उस देव गृह सदृश दिव्य भवनको दिखाने लगा ॥ ६ ॥ यह घर अनेक प्रकार अटा अटारी और धवहरोंसे परिपूर्णहै, सहस्रों स्त्रियां इसमेंहैं व अनेक प्रकारके पक्षी और विविध भांतिके रत्नभी इस गृहमेंहैं ॥ ७ ॥ उसके सब थंभ हाथीदांतके बनेथे, सुवर्ण, स्फटिक, रजत, और वैदूर्य निर्मित परम चित्रित और देखनेमें मनके हरण करनें वालेथे ॥ ८ ॥ वहां पर समस्त वंदनवारें तपाये हुए सुवर्णकी बनी हुईथीं, और वहां पर निर

मृगयूथपरिभ्रष्टांमृगींश्वभिरिवावृताम् ॥ अधोगतमुखींसीतांतामभ्येत्यनिशाचरः ॥ ५ ॥ तांतुशोकवशांदीनामवशां राक्षसाधिपः॥सबलाद्दर्शयामासगृहंदेवगृहोपमम्॥६॥हर्म्यप्रासादसंबाधंस्त्रीसहस्रनिषेवितम्॥नानापक्षिगणैर्जुष्टंनाना रत्नसमन्वितम् ॥ ७ ॥ दांतकैस्तापनीयैश्चस्फाटिकैराजतैस्तथा ॥ वज्रवैदूर्यचित्रैश्चस्तंभैर्दृष्टिमनोरमैः ॥ ८ ॥ दिव्यदुंदुभिनिर्घोषंतप्तकांचनभूषणम् ॥ सोपानंकांचनंचित्रमारुरोहतयासह ॥ ९ ॥ दांतकाराजताश्चैवगवाक्षाःप्रियदर्शनाः ॥ हेमजालावृताश्चासंस्तत्रप्रासादपंक्तयः॥ १० ॥ सुधामणिविचित्राणिभूमिभागानिसर्वशः ॥ दशग्रीवः स्वभवनेप्रादर्शयतमैथिलीम् ॥ ११ ॥ दीर्घिकाःपुष्करिण्यश्चनानापुष्पसमावृताः ॥ रावणोदर्शयामाससीतांशोकपरायणाम् ॥ १२ ॥ दर्शयित्वातुवैदेहींकृत्स्नंतद्भवनोत्तमम् ॥ उवाचवाक्यंपापात्मासीतांलोभितुमिच्छया ॥ १३ ॥

न्तर दिव्य दुन्दुभी आठ पहर बजती रहतीथीं, रावण सीताजीके सहित इस गृहकी सुवर्ण से बनी हुई विचित्र सीढियोंपर चढा ॥ ९ ॥ वह घर हाथी दांत और चांदी निर्मित होनेंके कारण अति सुन्दर हजारों जालियें वहां लगी हुईथीं जिनको देखतेही मन हर जाय औरभी वहुतसे घर वहां बनेथे जिनमें सुवर्णके जंगले लगेथे ॥ १० ॥ सब भूमि भाग सुधा धवलित और मणि समूह चित्रित रहनेंके कारण विचित्र शोभा दे रहाथा, इस प्रकारका भवन रावणनें सीताजीको दिखाया ॥ ११ ॥ उस मन्दिरमें जगह२ बावली और छोटी २ तलैयेंभी बनीथीं जिनमें अनेक प्रकारके पुष्प खिल रहेथे दशग्रीव रावणनें जानकीजीको यह सब कुछ दिखाया ॥१२॥ इस प्रकारसे पापात्मा रावण जानकीजीको लुभानेंकी इच्छासे अपना

यदि परलोकमें चलीं गईहैं तो हमभी प्राण त्यागन करैंगे ॥ ९ ॥ जब हम आश्रममें पहुंचेंगे और सीता सन्मुख हँसकर यदि हमसे न बोलेंगी
तबभी हम प्राण त्यागेंगे ॥ १० ॥ इस कारणसे हे लक्ष्मण ! तुम बताओ कि जानकी जीवितहैं ? अथवा तुम्हारी असावधानतासे उन तपस्विनी
जानकीजीको राक्षसोंने तौ नहीं भक्षण कर लिया ॥ ११ ॥ वैदेहीजी सुकुमारीहैं, बालिकाहैं, और दुःख भोग करनेंके अयोग्यहैं, वह इस समय
हमारे दुःखसे निश्चयही दुःखीहो सोच करके शोक करती होंगी ॥ १२ ॥ अतिशय दुरात्मा क्रूर निशाचर मारीचनें ऊंचे शब्दसे (हा लक्ष्मण?)
कहकर सब प्रकारसे तुमको भय उत्पन्न करा दियाहै ॥ १३ ॥ हमजानतेहैं कि हमारे बोलकी समान वह बोल जानकीजीनें सुनकर तुमको

यदिमामाश्रमगतंवैदेहीनाभिभाषते ॥ पुरःप्रहसितासीताविनशिष्यामिलक्ष्मण ॥ १० ॥ ब्रूहिलक्ष्मणवैदेहीयदिजी
वतिवानवा ॥ त्वयिप्रमत्तेरक्षोभिर्भक्षितावातपस्विनी ॥ ११ ॥ सुकुमारीचबालाचनित्यंचादुःखभागिनी ॥ मद्वियो
गेनवैदेहीव्यक्तंशोचतिदुर्मनाः ॥ १२ ॥ सर्वथारक्षसातेनजिह्मेनसुदुरात्मना ॥ वदतालक्ष्मणेत्युच्चैस्तवापिजनितंभ
यम् ॥ १३ ॥ श्रुतश्चमन्येवैदेह्यासस्वरःसदृशोमम ॥ त्रस्तयाप्रेषितस्त्वंचद्रष्टुंमांशीघ्रमागतः ॥ १४ ॥ सर्वथातुकृतं
कष्टंसीतामुत्सृजतावने ॥ प्रतिकर्तुंनृशंसानांरक्षसांदत्तमंतरम् ॥ १५ ॥ दुःखिताःखरघातेनराक्षसाःपिशिताशनाः ॥
तैःसीतानिहताघोरैर्भविष्यतिनसंशयः ॥ १६ ॥ अहोऽस्मिव्यसनेमग्नःसर्वथारिपुनाशन ॥ किंत्विदानींकरिष्यामिशं
केप्राप्तव्यमीदृशम् ॥ १७ ॥ इतिसीतांवरारोहांचिंतयन्नेवराघवः ॥ आजगामजनस्थानंत्वरयासहलक्ष्मणः ॥ १८ ॥

यहांपर भेजाहै और तुमभी हमारे देखनेंके लिये शीघ्रही यहांपर आयेहो ॥ १४ ॥ तुमनें सीताजीको अकेला वनमें छोड यहां आकर बडा
कष्टकर कार्य कियाहै । इस्से निर्दयी राक्षसोंको हमारे किये हुए अपकारका प्रतिकार करनेंको तुमनें अवसर दे दिया ॥ १५ ॥ खरको मार
डालनेंसे मांसभोजी राक्षस गण बहुतही दुःखित होगयेहैं । उन घोरनिशाचरोंने निश्चयही जानकीको मार डाला होगा इस्में सन्देह नहीं
है ॥ १६ ॥ हाय ! शत्रुसूदन लक्ष्मण ! हम सब भांतिसे विपदमें डूबे अब हम क्या करैं ? हमको शंका होतीहै कि यह विपद अवश्य होन
हारहै ॥ १७ ॥ श्रीरामचन्द्रजी सुमुखी जानकीके लिये इस प्रकार चिंताकरकै लक्ष्मणजीके सहित शीघ्रतासे जनस्थानमें आये ॥ १८ ॥

इस्से हमारे साथ इस लंका नगरीमें विहार करो ॥ २२ ॥ हे वरानने! अब तुम रामचंद्रके देखनेंकी आशा छोडो! उनमें क्या शक्तिहै जो वह मनो
रथ सेभी यहां पर आसकें? ॥ २३ ॥ जिस प्रकार कोई वहां प्रचंड पवन आकाशमें चलते हुये वांधाचाहै, परन्तु नहीं वांध सकता, या प्रदीप्त
अग्निकी शिखाको कोई हाथसे पकडनाचाहै तौ नहीं पकड सकता, ऐसेही रामभी यहां नहीं आ सकता ॥ २४ ॥ हे शोभने! समस्त भुवनोंमें हम
ऐसा किसीको नहीं देखते कि जो पराक्रम प्रकाश करके हमारी भुजाओंसे रक्षित तुमको लेजासकै ॥ २५ ॥ अतएव तुम इस विशाल लं
काके राज्यका पालन करो, हमारी समान सब पुरुष तुम्हारे आज्ञाकारी दास हो जांयगे । और हमकोभी यदि सेवक समझकर ग्रहण करो तो

दर्शनेमाकृथाबुद्धिंराघवस्यवरानने ॥ कास्यशक्तिरिहागंतुमपिसीतेमनोरथैः ॥ २३ ॥ नशक्योवायुराकाशेपाशै
र्बद्धुंमहाजवः ॥ दीप्यमानस्यवाप्यग्नेग्रहीतुंविमलाःशिखाः ॥ २४ ॥ त्रयाणामपिलोकानांनतंपश्यामिशोभने ॥
विक्रमेणनयेद्यस्त्वांमद्बाहुपरिपालिताम् ॥ २५ ॥ लंकायाःसुमहद्राज्यमिदंत्वमनुपालय ॥ त्वत्प्रेष्यामद्विधाश्चैवदे
वाश्चापिचराचरम् ॥ २६ ॥ अभिषेकजलक्लिन्नातुष्टाचरमयस्वच ॥ दुष्कृतंयत्पुराकर्मवनवासेनतद्गतम् ॥ २७ ॥
यच्चतेसुकृतंकर्मतस्येहफलमाप्नुहि ॥ इहसर्वाणिमाल्यानिदिव्यगंधानिमैथिलि ॥ २८ ॥ भूषणानिचमुख्यानि
तानिसेवमयासह ॥ पुष्पकंनामसुश्रोणिभ्रातुर्वैश्रवणस्यमे ॥ २९ ॥ विमानंसूर्यसंकाशंतरसानिर्जितंरणे ॥ वि
शालंरमणीयंचतद्विमानंमनोजवम् ॥ ३० ॥

हमभी तुम्हारी आज्ञाके आधीन हो जांयगे। सब देवता गण वरन स्थावर जंगमादि समस्त जगत् तुम्हाराही दास हो जायगा ॥ २६ ॥ अब तुम
अभिषेकके जलसे धौतदेहहोकर सन्तुष्ट चित्तसे हमको तृप्तकरो पहले जन्मके तुम्हारे जो कुछ पापथे वह सब वनवास करनेंसे क्षयको प्राप्त होगये२७
अब तुम लंकामें रहकर अपने पहले कियेहुए पुण्योंके फलको प्राप्तहो । हे मैथिलि! यहांपर जो दिव्य मालायें दिव्यगन्ध और दिव्यभूषण रक्खेहैं
तुम उन सबको हमारे साथ भोगकरो। हे सुमध्यमें! भाई कुबेरका पुष्पक नाम ॥२८॥२९॥ विमान सूर्यके समान प्रकाश मान हमारे यहांहै कुबेरके

श्रीरामचन्द्रजीसे बोले॥५॥हम आप अपनी इच्छानुसार सीताजीको त्यागकरकै यहां नहीं आये वरन उनके पठाये हुयेही आपके निकट आयेहैं॥६॥ आपके बोलकी समान बोल बनाकर जो किसीनें (हमें बचाओ) कहकर भय और व्याकुलताके स्वरसे जो चीत्कार कियाथा, सो वही चिल्लाहट जानकीजीके श्रवण गोचर हुई ॥ ७ ॥ उन्होनें लक्ष्मण हमें बचाओ वह करुणाका बोल सुनकर भयसे विकलहो आपके स्नेहके वशके मारे रोतेर हमसे यह कहना आरंभ किया कि शीघ्र जाओ ॥ ८ ॥ वह वारंवार हमसेजानेको कहनें लगीं, तव हमनें उनको विश्वास दिलानेंके लिये यह वार्ता कही ॥ ९ ॥ हम ऐसा किसी राक्षसको नहीं देखते जो श्रीरामचंद्रजीको भय उपजासके, इस्से यह करुणाका वचन रामचंद्रजीका नहीं, वरन यह

नस्वयंकामकारेणतांत्यक्त्वाहमिहागतः ॥ प्रचोदितस्तयैवोग्रैस्त्वत्सकाशमिहागतः ॥ ६ ॥ आर्येणेवपराक्रुष्टंलक्ष्मणेतिसुविस्वरम् ॥ परित्राहीतियद्वाक्यंमैथिल्यास्तच्छ्रुतिंगतम् ॥ ७ ॥ सातमार्तस्वरंश्रुत्वातवस्नेहेनमैथिली ॥ गच्छगच्छेतिमामाहरुदतीभयविक्लवा ॥ ८ ॥ प्रचोद्यमानेनमयागच्छेतिबहुशस्तया ॥ प्रत्युक्तामैथिलीवाक्यमिदंतत्प्रत्ययान्वितम् ॥ ९ ॥ नतत्पश्याम्यहंरक्षोयदस्यभयमावहेत् ॥ निर्वृताभवनास्त्येतत्केनाप्येतदुदाहृतम् ॥ १० ॥ विगर्हितंचनीचंचकथमार्योभिधास्यति ॥ त्राहीतिवचनंसीतेयस्त्रायेत्रिदशानपि ॥ ११ ॥ किंन्निमित्तंतुकेनापिभ्रातुरालंब्यमेस्वरम् ॥ विस्वरंव्याहृतंवाक्यंलक्ष्मणत्राहिमामिति ॥ १२ ॥ राक्षसेनेरितंवाक्यंत्रासात्राहीतिशोभने ॥ नभवत्याव्यथाकार्याकुनारीजनसेविता ॥ १३ ॥ अलंविक्लवतांगंतुंस्वस्थाभवनिरुत्सुका ॥ नचास्तित्रिषुलोकेषुपुमान्योराघवंरणे ॥ १४ ॥

वचन किसी राक्षसनें वा और किसीनें कहा होगा इस कारण आप वेखटके रहैं ॥ १० ॥ हे सीते! जो देवताओंकीभी रक्षा कर सकतेहैं, वह श्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी "हमको बचाओ" यह नीचजनोचित वार्ता किस प्रकारसे कह सकतेहैं ॥ ११ ॥ इस कारणसे किसीने किसी कारण वश रामचंद्रजीके बोलसा बोल बनाकर "लक्ष्मण हमको बचाओ" यह कह व्याकुल स्वरसे चिल्लाहट कीहै इसमें कुछभी सन्देह नहींहै ॥ १२ ॥ हे शोभने किसी राक्षसनें त्रासके मारे "बचाओ" यह शब्द कियाहै । इस्से आप नीचस्त्रीजनोचित मनो वेदना त्याग कर दीजिये ॥ १३ ॥ व्याकुल होनेंकी

तृणसमान समझतीहुई उत्तर देतीहुई कि ॥ १ ॥ राजा दशरथ साक्षात् धर्मके पर्वत सदृश अभेद्यसेतु और सत्य प्रातिज्ञतासे सर्व संसारमें विख्यातथे श्रीरामचंद्रजी उनकेही पुत्रहैं ॥ २ ॥ यहभी धर्मात्माके नामसे तीनों भुवनमें विख्यातहैं,वही दीर्घबाहु विशाल लोचन श्रीरामचंद्रजी हमारे स्वामी और साक्षात् देवताहैं ॥ ३ ॥ उनके कंधे सिंहकी समानहैं, वह महाद्युतिमान और इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुयेहैं वे भ्राता लक्ष्मणके सहित हो अवश्यही तेरे प्राणोंका वध करनें यहां आवेंगे॥४॥ यदि हम उनके सन्मुख बलपूर्वक इसप्रकारसे खेंचीजाती तबतौ युद्धमें खरकी समान निहतहो कर तुमको भी रणभूमिमें शयन करना पडता ॥ ५ ॥ तुमनें जिन सब घोरतर महा बलवान राक्षसोंकी वार्ताकही सो गरुडके निकट सर्पसमूह

राजादशरथोनामधर्मसेतुरिवाचलः ॥ सत्यसंधःपरिज्ञातोयस्यपुत्रःसराघवः ॥ २ ॥ रामोनामसधर्मात्मात्रिषुलोकेषुविश्रुतः ॥ दीर्घबाहुर्विशालाक्षोदैवतंसपतिर्मम ॥ ३ ॥ इक्ष्वाकूणांकुलेजातःसिंहस्कंधोमहाद्युतिः ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्रायस्तेप्राणान्वधिष्यति ॥ ४ ॥ प्रत्यक्षंयद्यहंतस्यत्वयावैधर्षिताबलात् ॥ शयितात्वंहतःसंख्येजनस्थानेयथाखरः ॥ ५ ॥ यएतेराक्षसाःप्रोक्ताघोररूपामहाबलाः ॥ राघवेनिर्विषाःसर्वेसुपर्णेपन्नगायथा ॥ ६ ॥ तस्यज्याविप्रमुक्तास्तेशराःकांचनभूषणाः ॥ शरीरंविधमिष्यंतिगंगाकूलमिवोर्मयः ॥ ७ ॥ असुरैर्वासुरैर्वात्वंयद्यवध्योसिरावण ॥ उत्पाद्यसमुहद्वैरंजीवंस्तस्यनमोक्ष्यसे ॥ ८ ॥ सतेजीवितशेषस्यराघवोंतकरोबली ॥ पशोर्यूपगतस्येवजीवितंतवदुर्लभम् ॥ ९ ॥ यदिपश्येत्सरामस्त्वांरोषदीप्तेनचक्षुषा ॥ रक्षस्त्वमद्यनिर्दग्धोयथारुद्रेणमन्मथः ॥ १० ॥

की समान रामचंद्रजीके निकट यह सब राक्षस हीनबल विहीनतेज होजायँगे ॥ ६ ॥ तरंग जिसप्रकार गंगाजीके किनारेको तोडतीहै वैसेही श्रीरामचंद्रजी अपने धनुषसे छूटेहुए उन स्वर्णभूषित बाणोंके समूहसे राक्षसोंके शरीरका भेदनकरेंगे ॥ ७ ॥ रावण! यद्यपि तू देव दानवोंसे अवध्यहै,परन्तु रामचंद्रकेसाथ यह बडाभारी वैर करकै किसीप्रकार तेरे प्राण न बचेंगे ॥८॥ वह बलवान श्रीरामचंद्रजीही तुम्हारे बचेहुए जीवनका समय पूरा कर देंगे। इससे यज्ञस्तम्भसे बँधेहुए पशुकी समान अब तुम्हारा जीना दुर्लभहै ॥ ९ ॥ यदि श्रीरामचन्द्रजी क्रोध भरे नेत्रोंके दृष्टिसे एक वारही तुझको देखें

जानकीके यह क्रोध वचन सुन आश्रमसे बाहर चले आये ॥ २२ ॥ एक तौ स्त्री, दूसरे क्रोधित, ऐसी जानकीके कठोर वचनोंसे तुमभी उनको
छोडकर यहां पर चले आये इससे हम तुम्हारे ऊपर प्रसन्न नहीं हुए॥ २३ ॥तुमनें सीताके वचन सुन क्रोधके वशहो हमारी आज्ञाका उल्लंघन किया
इस्से तुम्हारा यह कार्य बहुतही निन्दनीय हुआहै ॥ २४ ॥ देखो ! यह राक्षस जो मृग बनकर हमको आश्रमसे दूरतक लायाहै वह हमारे बाणसे
मरा हुआ पडाहै॥ २५ ॥ हमनें धनुष चढा खेंच उस पर बाण चढा लीलासेही एक बाणका इसके ऊपर प्रहार किया जिस बाणके लगनेसे इस राक्ष

नहितेपरितुष्यामित्यक्त्वायदसिमैथिलीम् ॥ क्रुद्धायाःपरुषंश्रुत्वास्त्रियायत्त्वमिहागतः ॥ २३ ॥ सर्वथात्वपनीतं
तेसीतयायत्प्रचोदितः ॥ क्रोधस्यवशमागम्यनाकरोःशासनंमम ॥ २४ ॥ असौहिराक्षसःशेतेशरेणाभिहतोमया ॥
मृगरूपेणयेनाहमाश्रमादपवाहितः ॥ २५ ॥ विकृष्यचापंपरिधायसायकंसलीलबाणेनचताडितोमया ॥ मार्गीतनुं
त्यज्यचविक्लवस्वरोबभूवकेयूरधरःसराक्षसः ॥ २६ ॥ शराहतेनैवतदार्तयागिरास्वरंममालंब्यसुदूरसुश्रवम् ॥ उ
पाहृतंतद्वचनंसुदारुणंत्वमागतोयेनविहायमैथिलीम् ॥ २७ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआर
ण्यकांडेएकोनषष्टितमःसर्गः ॥ ५९ ॥ ॥ छ ॥ भृशमाव्रजमानस्यतस्याधोवामलोचनम् ॥ प्रास्फुरच्चास्ख
लद्रामोवेपथुश्चास्यजायते ॥ १ ॥

सने मृग तनु छोड विकल स्वर कर बाजू पहरे हुये निशाचरका शरीरधारण कियाहै॥२६॥उसकाल हमारे बाणसे घायल होकर दूरसेही श्रवण गोचरहो
इस प्रकारका हमारा बोल बनाकर इस राक्षसके दारुण आर्त्तनाद करनेसे तुम उसको सुन इस समय जानकीको छोडकर यहां आयेहो॥२७॥ इत्यार्षे
श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे एकोनषष्टितमःसर्गः ५९ आश्रममें आनेके समय श्रीरामचंद्रजीके वामनेत्रके नीचेका भाग अत्य
न्तही फडकनेंलगा, परग २ पर चरण फिसलता, और शरीर कांपरहाथा इन अपशकुनोंका यह प्रभावहै कि जिस कार्यके लिये जाओ उसकी सि

दृढव्रताहैं; इस कारण हम किसी प्रकारसेभी तेरे छूनेंके योग्य नहींहैं ॥ १९ ॥ जो हंसिनी कमल पुष्पोंके मध्यमें राज हंसके साथ नित्य क्रीडा करतीहैं वह किस प्रकारसे तृणोंके बीच बैठे हुए मद्गुर (जलकाकविशेष) के प्रति दृष्टि डालेगी ॥ २० ॥ रेराक्षस! यह देहस्वभावसेही संज्ञाहीनहै, इसको बांध, या इसपर आघातदे, जो तेरी इच्छाहो सो कर हम किसी प्रकारसे इस शरीरकी रक्षा नहीं करेंगी ॥ हमें प्राणोंसे कुछ प्रयोजन नहींहै ॥ २१ ॥ और अधिक तू जो हमारे शरीरको स्पर्श करे तौ हम अपने जातेजी यह कलंक पृथ्वीपर विस्तार नहीं कर सकेंगी ! वैदेही जी इस प्रकारसे कठोर वचन कह ॥ २२ ॥ फिर रावणसे और कुछ न बोलीं तब रावण सीताजीके कठोर और रोम हर्षण वचन सुनकर ॥२३॥

क्रीडंतिराजहंसेनपद्मखंडेषुनित्यशः ॥ हंसीसातृणमध्यस्थंकथंद्रक्ष्येतमद्गुकम् ॥ २० ॥ इदंशरीरंनिःसंज्ञंबंधवाघात यस्ववा ॥ नेदंशरीरंरक्ष्यंमेजीवितंवापिराक्षस ॥ २१ ॥ नतुशक्यमपक्रोशंपृथिव्यांदातुमात्मनः ॥ एवमुक्त्वातुवैदेहीक्रो धात्सुपरुषंवचः ॥ २२ ॥ रावणंजानकीतत्रपुनर्नोवाचकिंचन ॥ सीतायावचनंश्रुत्वापरुषंरोमहर्षणम् ॥२३॥ प्रत्युवाच ततःसीतांभयसंदर्शनंवचः ॥ शृणुमैथिलिमद्वाक्यंमासान्द्वादशभामिनि ॥ २४ ॥ कालेनानेननाभ्येषियदिमांचा रुहासिनि ॥ ततस्त्वांप्रातराशार्थंसूदाश्छेत्स्यंतिलेशशः ॥ २५ ॥ इत्युक्त्वापरुषंवाक्यंरावणःशत्रुरावणः ॥ राक्षसीश्च ततःक्रुद्धइदंवचनमब्रवीत् ॥ २६ ॥ शीघ्रमेवहिराक्षस्योविरूपाघोरदर्शनाः ॥ दर्पमस्यापनेष्यंतुमांसशोणितभोज नाः ॥ २७ ॥ वचनादेवतास्तस्यसुघोराघोरदर्शनाः ॥ कृतप्रांजलयोभूत्वामैथिलींपर्यवारयन् ॥ २८ ॥

सीताजीको डर पानेंके लिये कहनें लगा। कि हे मैथिली ! बारह महीनें तक कुछ न कहूंगा ॥ २४ ॥ हे चारुहासिनी ! इस समयके मध्यम यदि तुम हमको न प्राप्त होगी तौ रसोई करनें वाले हमारे प्रातःकलेवेके लिये तुमको टुकडे २ कर काट डालेंगे ॥ २५ ॥ शत्रुओंको रुवानें वाला रावण इस प्रकारसे कठोर वचन कहकर फिर क्रोधितहो राक्षसियोंको आज्ञा देता हुआ ॥ २६ ॥ हे विकटरूपा, घोर दर्शना, रक्त मांसभोजी राक्षसिगण ! तुम सब शीघ्रही जानकीका समस्त गर्व तोड डालो ॥ २७ ॥ वह घोर दर्शना निशाचरी गण यह सुन तत्क्षणही हाथ जोड

शोकके मारे उनके नेत्र लाल रहोगये उससमय वह उन्मत्तोंकी समान फिरनेलगे ॥ १० ॥ श्रीरामचंद्रजी शोकके समुद्रमें डूबकर एक वृक्षसे दूसरे वृक्षके नीचे दौडकर जानेलगे और विलाप करते २ नद नदी और पर्वतोंपर घूमनेलगे ॥ ११ ॥ अनन्तर श्रीरामचंद्रजी उन्मत्तकी समान कदम्बादि वृक्षोंसे सीताजीको पूछनें लगे कि हे कंदम्ब! तुमने उन कदम्बप्रिया हमारी प्राणप्यारी जानकीको देखाहै? यदि देखाहो तौ उन शुभाननाकी वार्त्ता हमसे कहो॥ १२ ॥ हे बिल्व! वह बिल्वसदृश स्तनवाली पल्लव समान कान्तियुक्त पीले रेशमीन वस्त्र धारणकिये सीताको यदि तुमने देखाहो तो बताओ ॥ १३ ॥ अथवा हे अर्ज्जुन! प्रिया तुमको अतिशयचाहतीथी,सो वह क्षीणाङ्गी जनककुमारी जीवितहैं या नहीं सो बताओ १४॥ अथवा यह ककुभवृक्ष ककुभके समान जांघवाली सीताको निश्चयही जानताहोगा. क्योंकि इस वृक्षपर लता पुष्पफल सवही लगेहैं ॥ १५ ॥

वृक्षाद्वृक्षंप्रधावन्सागिरींश्चापिनदीनदम् ॥ बभ्रामविलपन्रामःशोकपंकार्णवप्लुतः ॥ ११ ॥ अस्तिकच्चित्त्वयादृष्टासाकदंबप्रियाप्रिया ॥ कदंबयदिजानीषेशससीतांशुभाननाम् ॥१२॥ स्निग्धपल्लवसंकाशांपीतकौशेयवासिनीम् ॥ शंसस्वयदिसादृष्टाबिल्वबिल्वोपमस्तनी ॥ १३ ॥ अथवार्जुनशंसत्वंप्रियांतामर्जुनप्रियाम् ॥ जनकस्यसुतातन्वीयादजीवतिवानवा ॥ १४ ॥ ककुभःककुभोरूंतांव्यक्तंजानातिमैथिलीम् ॥ लतापल्लवपुष्पाढ्योभातिह्येषवनस्पतिः ॥ १५ ॥ भ्रमरैरुपगीतश्चयथाद्रुमवरोह्यसि ॥ एषव्यक्तंविजानातितिलकस्तिलकप्रियाम् ॥ १६ ॥

और भ्रमरगणोंके संगीत रवसे परिपूर्ण शोभा पारहाहै । हे वनस्पति ! तुम सव वृक्षोंमें प्रधानहो । और जानकीभी सव रमणीयोंमें श्रेष्ठहैं अतएव वह कहांहैं सो बताओ, ❋ अथवा प्रिया तिलक पुष्पको बहुत प्यारकरतीथी इससे यह तिलक वृक्ष निश्चयही उनके वृत्तान्तको जानता होगा ॥ १६ ॥

❋रागनी झंझौटी ताल एकताला।सीता विनु देख कुटी सोचत रघुराई।।आस्ताई॥लक्ष्मण तुमकहा कीन इकली सिय छांडदीन निश्चर कोइ दाओ चीन्ह लेगयो उडाई ॥ १ ॥ सियविन व्याकुल शरीर मनना तनक धरतधीर पीर कौन हरै नीर द्रगचले वहाई ॥ २ ॥ प्रेमविवस रामभये द्रुमलतासों पूछनगये सोकबिबस बोलत नाहिं सबरहे मुरझाई ॥ ३ ॥ आगे गृद्ध भेटभई ताने सकल बातकही तेहि का प्रभु मोक्षदई नारद बलिजाई ॥ ४ ॥

मप्रिय स्वामी और देवरको सदा याद करकै और शोकसे सतानेंके कारण चेतना रहित होकर जानकीजीनें वहां किसी प्रकार शान्ति नहीं पाई॥२६॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे षट्पंचाशः सर्गः॥५६॥ जिस समय जानकीजीको लंकामें रावण लेगया उस समय ब्रह्माजी नें देवताओंकें राजा इन्द्रसे इस प्रकारके वचन कहे ॥ १ ॥ त्रिलोकीके हित करनेंके वास्ते और राक्षसोंके नाशके निमित्त दुरात्मा रावण जानकीजी को लंकामें ले गयाहै॥२॥ वहां महाभाग्यवाली पतिव्रत धर्म युक्त जो सदा सुखहीसे इतनी बड़ी हुईहै अपने स्वामीको न देखकर और राक्षसोंको देखकर ॥ ३ ॥ राक्षसियोंसे घिरी हुई पतिव्रत धर्म वाली जानकी समुद्रके बीचमें जो लंका पुरीहै उसमें स्थित हैं ॥ ४ ॥ रामचंद्रजी किस प्रकार जा

प्रवेशितायांसीतायांलंकांप्रतिपितामहः ॥ तदाप्रोवाचदेवेंद्रंपरितुष्टंशतक्रतुम् ॥ १ ॥ त्रैलोक्यस्यहितार्थायरक्षसाम
हितायच ॥ लंकांप्रवेशितासीतारावणेनदुरात्मना ॥ २ ॥ पतिव्रतामहाभागानित्यंचैवसुखैधिता ॥ अपश्यंतीचभर्ता
रंपश्यंतीराक्षसीजनम् ॥ ३ ॥ राक्षसीभिःपरिवृताभर्तृदर्शनलालसा ॥ निविष्टाहिपुरीलंकातीरेनदनदीपतेः ॥ ४ ॥
कथंज्ञास्यतितांरामस्तत्रस्थांतामनिंदिताम् ॥ दुःखंसंचिंतयंतीसाबहुशःपरिदुर्लभा ॥५॥ प्राणयात्रामकुर्वाणाप्राणां
स्त्यक्ष्यत्यसंशयम् ॥ सभूयःसंशयोजातःसीतायाःप्राणसंक्षये ॥ ६ ॥ सत्वंशीघ्रमितोगत्वासीतांपश्यशुभाननाम् ॥
प्रविश्यनगरींलंकांप्रयच्छहविरुत्तमम् ॥ ७ ॥ एवमुक्तोथदेवेंद्रःपुरींरावणपालिताम् ॥ आगच्छन्निद्रयासार्धं
भगवान्पाकशासनः ॥ ८ ॥ निद्रांचोवाचगच्छत्वंराक्षसान्संप्रमोहय ॥ सा तथोक्तामघवतादेवीपरमहर्षिता ॥ ९ ॥

नेंगें कि वहां निन्दा रहित जानकीजीहैं बड़े कष्ट और दुःखसे रामचंद्रको स्मरण करती हुई जानकी ॥ ५ ॥ भोजनादिके न करनेंसे निश्चय प्राणोंको त्यागन करदेंगी, सो जानकीजीके प्राण रक्षा करनेंमें हमको बड़ा सन्देहहै ॥ ६ ॥ सो तुम शीघ्र यहांसे जाकर सुन्दर मुख वाली जानकीका दर्शनकर लंका पुरीमें प्रवेशकर यह हवि ले जाकर जानकीजीको देदो ॥७॥ जब यह वचन ब्रह्माजीनें कहा तब रावणकी लंकापुरीमें इन्द्रजी आये और निद्राको अपनें साथ लेते आये ॥ ८ ॥ तब इन्द्रनें निद्रा देवीसे कहा, कि तू जाकर राक्षसों को मोहित कर निद्रा देवी इन्द्रके यह वचन सुन

हे शार्दूल ! उन चंद्र वदना हमारी प्यारी मैथिलीको यदि देखाहो तो हमाराविश्वास करकै हमें बतादो ! तुमको कुछ भय नहींहै अर्थात् तुम इस
बातसे नडरो, कि हम तुम्हें मार डालेंगे ॥ २५ ॥ हे प्रिये ! हे कमलेक्षणे ! तुम अब क्यों दौडी जातीहो ? हमने अब निश्चयही तुमको देख लियाहै
तुम किस कारणसे इन वृक्षोंके मध्यमें छिप कर हमसे नहीं बोलतीहो ? ॥ २६ ॥ हे वरारोहे ! हम वारंवार कहतेहैं कि तुम खडी रहो, व
इधर उधर दौडती न फिरो, क्या हमारे ऊपर तुमको दया नहीं आती ? तुमतो कभो हमारे साथ इतना उपहास नहीं करती थी ॥ २७ ॥ हे
वरवर्णिनी ! हमने तुम्हारे पीले रेशमीन वस्त्र देखकर तुमको पहचानलिया है, और यहभी हम देख रहेहैं कि तुम भागही रहीहो इस्से यदि

शार्दूलयदिसादृष्टाप्रियाचंद्रनिभानना ॥ मैथिलीममविस्रब्धःकथयस्वनतेभयम् ॥ २५ ॥ किंधावसिप्रिये
नूनंदृष्टासिकमलेक्षणे ॥ वृक्षैराच्छाद्यचात्मानंकिंमांनप्रतिभाषसे ॥ २६ ॥ तिष्ठतिष्ठवरारोहेनतेस्तिकरुणाम
यि ॥ नात्यर्थंहास्यशीलासिकिमर्थंमामुपेक्षसे ॥ २७ ॥ पीतकौशेयकेनासिसूचितावरवर्णिनि ॥ धावंत्य
पिमयादृष्टातिष्ठयद्यस्तिसौहृदम् ॥ २८ ॥ नैवसानूनमथवाहिंसिताचारुहासिनि ॥ कृच्छ्रंप्राप्तंहिमांनूनंयथापेक्षि
तुमर्हति ॥ २९ ॥ व्यक्तंसाभक्षिताबालाराक्षसैःपिशिताशनैः ॥ विभज्यांगानिसर्वाणिमयाविरहिताप्रिया ॥ ३० ॥
नूनंतच्छुभदंतोष्ठंसुनासंशुभकुंडलम् ॥ पूर्णचंद्रनिभंग्रस्तंमुखंनिष्प्रभतांगतम् ॥ ३१ ॥ साहिचंदनवर्णाभाग्रीवाग्रै
वेयकोचिता ॥ कोमलाविलपंत्यास्तुकांतायाभक्षिताशुभा ॥ ३२ ॥

तुम कुछ प्रेम हमारे साथ रखतीहो तौ लौट आओ और भागती नफिरो ॥ २८ ॥ अथवा हे चारुहासिनी ! हमनें जिसको देखाहै वह तुम
नहींहो, तुमको तो निश्चयही किसीनें मारडाला, यदि ऐसा नहोता तो इस दारुण क्लेशके समयभी क्या तुमभी हमको छोड सकतीहो ॥ २९॥
साफ मालूम होताहै कि मांस खानें वाले राक्षसोंनें हमारा वियोग पाईहुई हमारी प्रियाके अंगोंको खंड २ करके खा लिया ॥ ३० ॥ अहो ! इनका
वह मनोहर दांत वाला, श्रेष्ठ नासिका युक्त, शुभकुंडलसमन्वित, पूर्ण चंद्रमाकी समान वदन राक्षसों करकै ग्रस्त होजानें पर निश्चयही प्रभाही
न होगया होगा ॥ ३१ ॥ उनकी कोमल गरदन हार आदि भूपणोंसे भूपित जिसके वर्णकी ज्योति चंदनकी समान चिकनी और विशदहै

पृथ्वी नहीं स्पर्श करते उनके नेत्रोंके पलक नहीं लगते ॥ १८ ॥ धूलि रहित वस्त्र धारण किये हुए जो फूल मलीन नहीं ऐसे फूलोंकी माला धारण किये इन लक्षणोंसे जानकीजी इन्द्रको पहचान परम हर्षित हुई ॥ १९ ॥ और फिर रोती हुई बोलीं, हे भगवन् ! भाग्यसे महाबाहु रामचंद्रका नाम उनके भाई सहित आज मैंनें सुना ॥ २० ॥ जैसे मेरे श्वशुर दशरथजी, पिता जनकजी हैं तैसेही आज मैं तुम्हें देखतीहूं तुमसे मेरे पति सनाथ हुए ॥ २१ ॥ हे देवेन्द्र ! तुम्हारी आज्ञासे यह दूधकी बनी खीर रघु कुलके बढानें हारे तुम्हारे हाथकी दी हुई मैं खाऊंगी॥२२॥ सुहासिनी जानकीजीनें वह हवि इन्द्रके हाथसे लेकर प्रथम अपने स्वामी रामचंद्र और देवर लक्ष्मणजीको निवेदितकी ॥ २३ ॥ और कहा कि

अरजोंबरधारीचनम्लानकुसुमस्तथा ॥ तंज्ञात्वालक्षणैःसीतावासवंपरिहर्षिता ॥ १९ ॥ उवाचवाक्यंरुदतीभगवद्रा घवंप्रति ॥ सहभ्रात्रामहाबाहुर्दिष्ट्यामेश्रुतिमागतः ॥ २० ॥ यथामेश्वशुरोराजायथाचमिथिलाधिपः ॥ तथात्वा मद्यपश्यामिसनाथोमेपतिस्त्वया ॥ २१ ॥ तवाज्ञयाचदेवेंद्रपयोभूतामिदंहविः ॥ अशिष्यामित्वयादत्तंरघूणांकुलव र्धनम् ॥ २२ ॥ इंद्रहस्ताद्गृहीत्वाततपायसंसाशुचिस्मिता॥ न्यवेदयतभर्त्रेसालक्ष्मणायचमैथिली ॥ २३ ॥ यदिजी वतिमेभर्तासहभ्रात्रामहाबलः ॥ इदमस्तुतयोर्भक्त्यातदाश्नात्पायसंस्वयम् ॥ २४ ॥ इतीवतत्प्राश्यहविर्वराननाज हौक्षुधादुःखसमुद्भवंचतम् ॥ इंद्रात्प्रवृत्तिमुपलभ्यजानकीकाकुत्स्थयोःप्रीतमनाबभूव ॥ २५ ॥ सचापिशक्रस्त्रिदि वालयंतदाप्रीतोययौराघवकार्यसिद्धये ॥ आमंत्र्यसीतांसततोमहात्माजगामनिद्रासहितःस्वमालयम् ॥ २६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेसर्गः ॥ १ ॥

यदि मेरे महावली भर्ता लक्ष्मण भाई सहित जीवितहैं तो यह जो मैं प्रेमसे देतीहूं यह वह पायस ग्रहण करै ॥ २४ ॥ वह सुमुखी इस प्रकार खीरको निवेदन कर पीछे आप भक्षण करती हुई. जिसके खातेही भूंख प्यासका दुःख जाता रहा, इन्द्रसे यह कथा सुनकर कि रामचंद्र शीघ्र आवेंगे रामचंद्रमें मन लगाती हुई ॥ २५ ॥ वह इन्द्रभी उस समय रामचंद्र की कार्य सिद्धिके निमित्त प्रसन्न होकर स्वर्गको गये, और वह महात्मा चलते समय जानकीको समझाकर निद्रा सहित स्वर्गको पधारे॥२६॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे क्षेपकः सर्गः॥५६॥

कि शून्य पडा है, पर्णशालामें कोई नहीं है आसन भी सब इधर उधर पडे हैं ॥ १ ॥ सब ओर वहां पर देख और वैदेहीजीको न पाकर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके दोनों हाथ पकड रोकर बोले ॥ २ ॥ हे लक्ष्मण! सीता कहां हैं? इस आश्रमसे किस स्थानको चली गई हैं? हे सौमित्र! प्रिया को किसनें हरण किया, वा भक्षण किया? ॥ ३ ॥ हे सीते! यदि वृक्षकी आडमें छिपी रहकर तुम्हें उपहास करनेंकी इच्छा हुई हो, तब तो जितना चाहियेथा उतना उपहास होगया, अब अधिक न सताओ। देखो! हम महादुःखके पडनेंसे व्याकुल होरहे हैं सो इस समय आनकर तुम शीघ्र हमको धीरजदो, और समझाओ ॥ ४ ॥ हे सौम्य! तुम जो इन सब विश्वासी मृगछौनोंके सहित खेल करतीथीं सो इस समय यह सब

अदृष्ट्वातत्रवैदेहींसन्निरीक्ष्यचसर्वशः ॥ उवाचरामःप्राक्रुश्यप्रगृह्यरुचिरौभुजौ ॥ २ ॥ क्वनुलक्ष्मणवैदेहीकंवादेशमितोगता ॥ केनाहृतावासौमित्रेभक्षिताकेनवाप्रिया ॥ ३ ॥ वृक्षेणावार्ययदिमांसीतेहसितुमिच्छसि ॥ अलंतेहसितेनाद्यमांभजस्वसुदुःखितम् ॥ ४ ॥ यैःपरिक्रीडसेसीतेविश्वस्तैर्मृगपोतकैः ॥ एतेहीनास्त्वयासौम्येध्यायंत्यस्राविलेक्षणाः ॥ ५ ॥ सीतयारहितोऽहंवैनहिजीवामिलक्ष्मण ॥ वृतंशोकेनमहतासीताहरणजेनमाम् ॥ ६ ॥ परलोकेमहाराजोनूनंद्रक्ष्यतिमेपिता ॥ कथंप्रतिज्ञांसंश्रुत्यमयात्वमभियोजितः ॥ ७ ॥ अपूरयित्वातंकालंमत्सकाशमिहागतः ॥ कामवृत्तमनार्यंवामृषावादिनमेवच ॥ ८ ॥ धिक्त्वामितिपरेलोकेव्यक्तंवक्ष्यतिमेपिता ॥ विवशंशोकसंतप्तंदीनंभग्नमनोरथम् ॥ ९ ॥ मामिहोत्सृज्यकरुणंकीर्तिर्नरमिवानृजुम् ॥ क्वगच्छसिवरारोहेमामोत्सृजसुमध्यमे ॥ १० ॥

तुम्हारे विना नेत्रोंसे अश्रुजल भरे चिंता कर रहे हैं ॥ ५ ॥ हे लक्ष्मण! सीताके विरहमें हम कभी जीवन धारण नहीं कर सकते, उनके हर जानेंसे उत्पन्न हुए घोरतर शोकनें हमको ढक लिया है ॥ ६ ॥ पितृदेव महाराज दशरथजीको निश्चयही हम परलोकमें मिलेंगे, और वह निश्चय ही हमसे यह कहेंगे कि हे राम! हमनें तो तुमको प्रतिज्ञा पूर्ण करनेंको कहाथा, और तुमनेभी स्वीकार कियाथा, कि हम चौदह वर्ष वनमें वसेंगे॥ ७ ॥ सो तुम उस प्रतिज्ञाको पूर्ण विना कियेही इस समय कैसे यहां पर आये? तुम स्वेच्छाचारी, मिथ्यावादी, और नीचता युक्त तुमको ॥८॥ धिक्कार है! सो निश्चयही इस प्रकारके वचन पिताजी हमें कहेंगे, विवश शोकसे व्याकुल, दीन और मनोरथ टूटे हुए ॥ ९ ॥ व दया करनेंके योग्य

कैसे कहैं कि मंगल होगा। कारण कि जनस्थानका नाश करनेंके कारण हमसे और राक्षसोंसे भारी वैरहै ॥ ९ ॥ और तिसपर यहां हमको घोर दुर्निमित्त दिखाई देतेहैं, आत्मवान श्रीरामचंद्रजीनें शृगालका शब्द सुनकर इस प्रकार चिन्ता करते २ ॥ १० ॥ लौटकर बडी शीघ्रतासे आश्रमकी ओर गमन करने लगे। मृग रूपी मारीच जो उनको आश्रमसे दूर ले आयाथा, इस कारण रामचंद्रजी जल्दीसे आश्रमको चले॥ ११ ॥ और शंकित चित्त होकर श्रीरामचन्द्रजी आश्रममें पहुँचे तब सब मृग पक्षी गण इनके मनको उदास देखकर सब इनके निकट आये ॥ १२ ॥ वह सब मृग पक्षीगण उस कालमें रामचन्द्रजीकी वांई तरफ होकर कठोर स्वरसे शब्द करनें लगे उन महा घोर सब दुर्निमित्तोंको देखकर

निमितानिचघोराणिदृश्यंतेऽद्यबहूनिच ॥ इत्येवंचिंतयन्रामःश्रुत्वागोमायुनिःस्वनम् ॥ १० ॥ निवर्तमानस्त्वरितोजगामाश्रममात्मवान् ॥ आत्मनश्चापनयनंमृगरूपेणरक्षसा ॥ ११ ॥ आजगामजनस्थानंराघवःपरिशंकितः ॥ तंदीनमानसंदीनमासेदुर्मृगपक्षिणः ॥ १२ ॥ सव्यंकृत्वामहात्मानंघोरांश्चससृजुःस्वरान् ॥ तानिदृष्ट्वानिमित्तानिमहाघोराणिराघवः ॥ १३ ॥ ततोलक्ष्मणमायांतंददर्शविगतप्रभम् ॥ ततोविदूरेरामेणसमीयायसलक्ष्मणः ॥ १४ ॥ विषण्णःसन्विषण्णेनदुःखितोदुःखभागिना ॥ सजगर्हेऽथतंभ्राताद‍ृष्ट्वालक्ष्मणमागतम् ॥ १५ ॥ विहायसीतांविजनेवनेराक्षससेविते ॥ गृहीत्वाचकरंसव्यंलक्ष्मणंरघुनंदनः ॥ १६ ॥ उवाचमधुरोदर्कमिदंपरुषमार्तवत् ॥ अहोलक्ष्मणगर्ह्यंतेकृतंयत्त्वंविहायताम् ॥ १७ ॥

श्रीरामचन्द्रजीनें देखातौ॥१३॥प्रभा हीन हुए लक्ष्मणजी चले आतेहैं देखते ही देखते लक्ष्मणजी रामचन्द्रजीके निकट आ पहुँचे॥१४॥रामचन्द्रजीको विषादित व दुःखित देखकर लक्ष्मणजीभी विषादित और दुःखित हुए। तब श्रीरामचन्द्रजी अपनें भ्राता लक्ष्मणजीकी निन्दा करनें लगे॥१५॥क्योंकि लक्ष्मणजी सीताजीको राक्षस सेवित सूने वनमें अकेली छोडकर आयेथे लक्ष्मणजीका वांयां हाथ पकडकर श्रीरामचन्द्रजी ॥ १६ ॥ आरतकी समान श्रवण कठोर परिणाम मधुर वचन कहने लगे कि–हे लक्ष्मण! तुम सीताजीको त्याग कर जो यहां चले आये हो, यह तुमनें अतीव निन्दा

हे काकुत्स्थ! आपतोभी यह मानते हों कि जानकी इसी वनमें हैं तब तौ इस वनके सबही आश्रमोंमें खोजेंगे, अब शोक न कीजिये॥१८॥ जब सौहार्दके वश होकर लक्ष्मणजीनें इस प्रकार कहा तब रामचन्द्रजी सावधान चित्त होकर लक्ष्मणजीको संग ले ढूंढनें लगे ॥१९॥ वन, गिरि, तलाव, एक२करके दोनों भाइयोंनें सीताको ढूंढनेंके लिये छाने ॥ २० ॥ फिर उन पर्वतोंके कंगूरों, चटान, व शिखर, सब रत्ती२खोजे पर जानकीजीके दर्शन न हुए॥२१॥ उस कालमें समस्त पर्वतको ढूंढ भालकर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीसे बोले कि हे भाई! इस पर्वत पर प्यारी जनकदुलारी तो दृष्टि नहीं आती॥२२॥

वनंसर्वंविचिनुवोयत्रसाजनकात्मजा ॥ मन्यसेयदिकाकुत्स्थमास्मशोकेमनःकृथाः ॥ १८ ॥ एवमुक्तःससौहार्दा
ल्लक्ष्मणेनसमाहितः ॥ सहसौमित्रिणारामोविचेतुमुपचक्रमे ॥ १९ ॥ तौवनानिगिरींश्चैवसरितश्चसरांसिच ॥
निखिलेनविचिन्वंतौसीतांदशरथात्मजौ ॥ २० ॥ तस्यशैलस्यसानूनिशिलाश्चशिखराणिच ॥ निखिलेनवि
चिन्वंतौनैवतामभिजग्मतुः ॥ २१ ॥ विचित्यसर्वतःशैलंरामोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ नेहपश्यामिसौमित्रेवैदेहींपर्वते
शुभाम् ॥ २२ ॥ ततोदुःखाभिसंतप्तोलक्ष्मणोवाक्यमब्रवीत् ॥ विचरन्दंडकारण्यंभ्रातरंदीप्ततेजसम् ॥ २३ ॥ प्रा
प्स्यसेत्वंमहाप्राज्ञमैथिलींजनकात्मजाम् ॥ यथाविष्णुर्महाबाहुर्बलिंबद्ध्वा महीमिमाम् ॥ २४ ॥ एवमुक्तस्तुवीरेणल
क्ष्मणेनसराघवः ॥ उवाचदीनयावाचादुःखाभिहतचेतनः ॥ २५ ॥ वनंसुविचितंसर्वंपद्मिन्यःफुल्लपंकजाः ॥ गिरि
श्चायंमहाप्राज्ञबहुकंदरनिर्झरः ॥ नहिपश्यामिवैदेहींप्राणेभ्योऽपिगरीयसीम् ॥ २६ ॥

लक्ष्मणजी समस्त दंडकारण्य में विचरण करते हुए भी जानकीजीको न पाकर दुःखसे संतप्त हो प्रदीप्त तेजवाले अपने भ्राता रामचंद्रजी से बोले ॥ २३ ॥ कि महाबलवान् विष्णु जीने जिसप्रकार बलियोंको बांधकर इस पृथ्वीको प्राप्त कियाथा हे बुद्धिमान्! आपभी वैसेंही जनक कुमारी सीताजीको पावेंगे ॥ २४ ॥ वीर लक्ष्मणजीके यह वचन सुन दुःखसे चित्त हरे हुये श्रीरामचंद्रजी अतिदीनतासे बोले ॥ २५ ॥ हे महा बुद्धिमान्! सारा वन खिले हुये कमल कमलाकरसरोवर बहुत सारी कन्दराओंसे युक्त बहुत झरनोंसे सुशोभित यह पर्वत जरा २ करके देखा

लक्ष्मणजी महादीन और उदास मन हो रहेथे । उनको सीताके विना आता हुआ देखकर धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी पूछनें लगे ॥ १ ॥ हे लक्ष्मण! जब हम वनको आये और उस समय जो हमारे साथही वनको आईथीं; और तुम जिनको छोडकर यहां आये हो; वह सीता कहां हैं? ॥२॥ जब हम राज्यसे भ्रष्ट होकर दीनभावसे दंडकारण्यको आये, और उस समय जो हमारे दुःखमें सहाय हुई, वह तनुमध्यमा जानकीजी कहां हैं? ॥३॥ जिसके विना हम एक मुहूर्त भरभी प्राण धारण करनेको उत्साही नहीं, वह देवकन्याकी समान प्राण सहाय जानकीजी कहां हैं? ॥ ४ ॥ हे लक्ष्मण! हम उन तपाये हुए सुवर्णकी समान प्रभावाली जनकात्मजाके विना देवताओंकी प्रभुताई अथवा पृथ्वीकी रजाई लेनेंकीभी अभिलाषा नहीं करते ॥ ५॥

सदृष्ट्वालक्ष्मणंदीनंशून्यंदशरथात्मजः ॥ पर्यपृच्छतधर्मात्मावैदेहीमागतंविना ॥१॥ प्रस्थितंदंडकारण्यंयामामनुजगामह ॥ क्वसालक्ष्मणवैदेहीयांहित्वात्वमिहागतः ॥ २ ॥ राज्यभ्रष्टस्यदीनस्यदंडकान्परिधावतः ॥ क्वसादुःखसहायामेवैदेहीतनुमध्यमा ॥ ३ ॥ यांविनानोत्सहेवीरमुहूर्तमपिजीवितुम् ॥ क्वसाप्राणसहायामेसीतासुरसुतोपमा ॥ ४ ॥ पतित्वममराणांहिपृथिव्याश्चापिलक्ष्मण ॥ विनातांतपनीयाभांनेच्छेयंजनकात्मजाम् ॥ ५ ॥ कच्चिज्जीवतिवैदेहीप्राणैःप्रियतरामम ॥ कच्चित्प्रव्राजनंवीरनमेमिथ्याभविष्यति ॥ ६ ॥ सीतानिमित्तंसौमित्रेमृतेमयिगतेत्वयि ॥ कच्चित्सकामाकैकेयीसुखितासाभविष्यति ॥ ७ ॥ सपुत्रराज्यांसिद्धार्थांमृतपुत्रातपस्विनी ॥ उपस्थास्यतिकौसल्याकच्चित्सौम्येनकैकयीम् ॥ ८ ॥ यदिजीवतिवैदेहीगमिष्याम्याश्रमंपुनः ॥ संवृत्तायदिवृत्तासाप्राणांस्त्यक्ष्यामिलक्ष्मण ॥ ९ ॥

हे वीर! हमारी प्राणोंसेभी प्यारी जानकी क्या अभीतक जीतीहैं, क्या हमने जो चौदह वर्ष तक वनमे रहनेकी प्रतिज्ञा की है यह मिथ्या तो नहोजाय ॥ ६ ॥ लक्ष्मण! सीताके लिये हमारे प्राण त्यागने पर और तुम्हारे अयोध्यामें लौट जानेपर कैकेयी क्या सफल मनोरथ और सुखी होगी॥७॥ कैकेयी इस प्रकार अपनें पुत्रकी राज्य प्राप्तिसे जब सिद्ध काम होगी, तब क्या मृतपुत्रा, दीना, तपस्विनी, हमारी माता कौशल्याजीको विनयके साथ उसकी सेवा करनी होगी ॥ ८ ॥ हे लक्ष्मण! वैदेही यदि जीवितहैं, तब तो हम फिर आश्रमको चलतेहैं, और वह शुद्धचारिणी

अशोक शाखा समूह द्वारा अपना शरीर ढक कर हमारे शोकको अतिशय बढाती हो ॥ ३ ॥ हे देवि! तुम्हारी दोनों जांघें केलेके खंभकी सदृश हैं तुमनें उनको कदलीसे छिपा रक्खाहै सो हम उनको देख रहेहैं तुम अब उनको नहीं छिपा सकतीहो ॥ ४ ॥ हे भद्रे! तुम हँसते २ कर्णिकारके वनमें प्रवेश करतीहो, परन्तु हमको पीडन करकै और अधिक उपहास करनेंका प्रयोजन नहींहै ॥ ५ ॥ विशेष करकै आश्रमके स्थानमें परिहास करना अच्छा नहीं होता, हे प्रिये! यह तो हम जानतेहैं कि स्वभावसे ही तुम परिहासप्रियहो ॥ ६ ॥ परन्तु हे विशालाक्षी! यह पर्णशाला शूनी पडीहै इस कारण आओ। हे लक्ष्मण! निश्चय होताहै कि. सीताको राक्षसोंनें भक्षण कर लिया. अथवा वह उनको हरण करकै

कदलीकांडसदृशौकदल्यासंवृतावुभौ ॥ ऊरूपश्यामितेदेविनासिशक्तानिगूहितुम् ॥ ४ ॥ कर्णिकारवनंभद्रेहसंती
देविसेवसे ॥ अलंतेपरिहासेनममबाधावहेनवै ॥ ५ ॥ विशेषेणाश्रमस्थानेहासोयंनप्रशस्यते ॥ अवगच्छामितेशी
लंपरिहासप्रियंप्रिये ॥ ६ ॥ आगच्छत्वंविशालाक्षिशून्योयमुटजस्तव ॥ सुव्यक्तंराक्षसैःसीताभक्षितावाहृतापिवा॥७॥
नहिसाविलपंतंमामुपसंप्रतिलक्ष्मण ॥ एतानिमृगयूथानिसाश्रुनेत्राणिलक्ष्मण ॥ ८ ॥ शंसंतीवहिमेदेवींभक्षितांर
जनीचरैः ॥ हाममार्येक्वयातासिहासाध्विवरवर्णिनि ॥ ९ ॥ हासकामाद्यकैकेयीदेविमेद्यभविष्यति ॥ सीतयासहनि
र्यातोविनासीतामुपागतः ॥ १० ॥ कथंनामप्रवेक्ष्यामिशून्यमंतःपुरंमम ॥ निर्वीर्यइतिलोकोमांनिर्दयश्चेतिवक्ष्य
ति ॥ ११ ॥ कातरत्वंप्रकाशंहिसीतापनयनेनमे ॥ निवृत्तवनवासश्चजनकंमिथिलाधिपम् ॥ १२ ॥

लेगये ॥ ७ ॥ इसी कारण वह हमको विलाप करते हुए देख कर भी हमारे निकट नहीं आतीं; हे लक्ष्मण! इस पर ये मृग यूथ गण रोदन करते हैं ॥८॥ यह भी मानों यही कह रहे हैं कि राक्षसोंनें सीताका भक्षण कर लिया। हा अच्छेशीलवाली साधवि! हा वरवर्णिनी सुमुखि! हा आर्या! तुम कहां गई हो ॥ ९ ॥ अब सीताकरकै रहित देशको गमन करना पडेगा, इतने दिनोंके पीछे कैकेयीदेवी सफल मनोरथ हुई क्योंकि अब वह देखेंगी कि सीता सहित गयेथे। और आये सीता रहित! ॥ १० ॥ किस प्रकारसे हम सीता रहित अपनें रनवासमें प्रवेश करेंगे? सब लोग हमको वीर्य रहित और निर्दयी कह कर निन्दा करेंगे॥११॥सीताजीके विना संग होनेंसे निश्चय ही हमको कातरता प्राप्त हो जायगी, कारण कि जब

क्षुधा,श्रम, और प्यासके मारे रामचन्द्रजीका मुख सूख गयाथा, वह शोकितचित्तसे दीर्घ निश्वास त्याग करते लक्ष्मणजीकी आर्य भावसे निन्दा करते २ इस प्रकारसे आश्रममें आयकर देखा तो वहां सीता नहींहै वह आश्रम शून्य पडाहै॥ १९ ॥ जब सीताजीको न देखा तब श्रीरामचन्द्रजी आश्रममें प्रवेश करके सीताजीके खेलनेंके सब स्थान और वनवासके उठनें बैठनेंके स्थानमें ढूंढनें लगे, परन्तु वहांभी जनकनंदिनीको न पाया, तब श्रीरामचन्द्रजीनें जानकीजीके उठनें बैठनें और खेलनेंके स्थानोंको बिसूर२याद किया, याद करतेही उनके रोम खडे होगये और बहुत घबडाये ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आर० अष्टपंचाशः सर्गः ॥ ५८ ॥ जब इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीनें आश्रमके मार्गमें वचन कहे और वह

विगर्हमाणोऽनुजमार्तरूपंक्षुधाश्रमेणैवपिपासयाच ॥ विनिःश्वसन्शुष्कमुखोविषण्णःप्रतिश्रयंप्राप्यसमीक्ष्यशून्यम्॥ १९ ॥ स्वमाश्रमंसप्रविगाह्यवीरोविहारदेशाननुसृत्यकांश्चित् ॥ एतत्तदित्येववनवासभूमौप्रहृष्टरोमाव्यथितोबभूव ॥ २० ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेअष्टपंचाशःसर्गः ॥ ५८ ॥ ७ ॥ ॥ अथाश्रमादुपावृत्तमंतरारघुनंदनः ॥ परिपप्रच्छसौमित्रिंरामोदुःखादिदंवचः ॥ १ ॥ तमुवाचकिमर्थंत्वमागतोऽपास्यमैथिलीम् ॥ यदासातवविश्वासाद्वनेविरहितामया ॥ २ ॥ दृष्ट्वैवाभ्यागतंत्वांमेमैथिलींत्यज्यलक्ष्मण ॥ शंकमानंमहत्पापंयत्सत्यंव्यथितंमनः ॥ ३ ॥ स्फुरतेनयनंसव्यंबाहुश्चहृदयंचमे ॥ दृष्ट्वालक्ष्मणदूरेत्वांसीताविरहितंपथि ॥ ४ ॥ एवमुक्तस्तुसौमित्रिर्लक्ष्मणःशुभलक्षणः ॥ भूयोदुःखसमाविष्टोदुःखितंराममब्रवीत् ॥ ५ ॥

लक्ष्मण कुछ न बोले तब फिर महादुःखीहो रामचन्द्रजी सुमित्राकुमारसेबोले ॥ १ ॥ भाई तुम कैसे सीताको छोडकर यहां चले आये ? जबकि हम तुम्हारेही विश्वासपर सीताको वनके बीच छोड आयेहैं ॥ २ ॥ यहदेखतेही कि तुम सीताजीको त्याग कर यहां आयेहो, हमारा मन जो महा अनिष्टकी शंका करके व्यथित होताथा वह हमारी शंका सत्यही सत्यहुई ॥ ३ ॥ तुमको मार्गमें दूरसेही जानकीके विन अकेला आता देखकर हमारा, वामकर, वामनेत्र और हृदयका वायांभाग फड़कने लगा ॥ ४ ॥शुभलक्षण युक्त लक्ष्मणजी रामचन्द्रजीकी यह वार्ता सुन महा दुःखित हो

श्रीरामचंद्रजी सुकेशी सीताके विरहमें महा व्याकुल होकर इस प्रकारसे विलाप करने लगे। तब भयके मारे लक्ष्मणजीका मुख पीला पड गया मन व्यथित हुआ और वह बहुतही आतुर होगये ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्य कांडे द्विषष्टितमःसर्गः ६२॥ राजकुमार श्रीरामचंद्रजी प्रियाविहीनहो शोक मोहसे आतुर होनेंके कारण लक्ष्मणजीको विषाद उत्पन्न कराते हुए आपभी बडे तीव्र विषादको प्राप्त हुए ॥ १ ॥ तिसके पीछे वह विपुल शोकमें डूबकर लंबे २ श्वास लेते हुये, रोते२ शोकसे घिरे हुए लक्ष्मणजीको उपस्थित विपदके अनुरूप वचन कहने लगे. ॥ २ ॥ हम समझतेहैं कि हमारी समान बुरे कर्म करनेवाला दूसरा पुरुष पृथ्वीपर और नहींहै, देखो एकके पीछे एक

इतिविलपतिराघवेतुदीनेवनमुपगम्यतयाविनासुकेश्या ॥ भयविकलमुखस्तुलक्ष्मणोऽपिव्यथितमनाभृशमातुरो बभूव ॥ २० ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवा०आ०आर०द्विषष्टितमःसर्गः ॥ ६२ ॥ ७ ॥ ॥ सराजपुत्रःप्रिययाविहीनःशोकेनमोहेनचपीड्यमानः ॥ विषादयन्भ्रातरमार्तरूपोभूयोविषादंप्रविवेशतीव्रम् ॥ १ ॥ सलक्ष्मणंशोकवशाभिपन्नंशोकेनिमग्नोविपुलेतुरामः ॥ उवाचवाक्यंव्यसनानुरूपमुष्णंविनिःश्वस्यरुदन्सशोकम् ॥ २ ॥ नमद्विधोदुष्कृतकर्मकारीमन्येद्वितीयोऽस्तिवसुंधरायाम् ॥ शोकानुशोकोहिपरंपरायामामेतिभिंदन्हृदयंमनश्च ॥ ३ ॥ पूर्वंमयानूनमभीप्सितानिपापानिकर्माण्यसकृत्कृतानि ॥ तत्रायमद्यापतितोविपाकोदुःखेनदुःखंयदहंविशामि ॥ ४ ॥ राज्यप्रणाशःस्वजनैर्वियोगःपितुर्विनाशोजननीवियोगः॥सर्वाणिमेलक्ष्मणशोकवेगमापूरयंतिप्रविचिंतितानि ॥ ५ ॥ सर्वंतुदुःखंममलक्ष्मणेदंशांतंशरीरेवनमेत्यक्लेशम् ॥ सीतावियोगात्पुनरभ्युदीर्णंकाष्ठैरिवाग्निःसहसोपदीप्तः ॥ ६ ॥

इस प्रकार लगा तार शोक इकट्ठे होकर हमारे मन और हृदयको वेधे डालतेहैं ॥ ३ ॥ पहले जन्ममें हमनें इच्छानुसार वारंवार बहुत सारे पाप कर्म कियेहैं आज उनका फल मिलरहाहै। इसीकारण हमारे ऊपर दुःखके ऊपर दुःख पड रहेहैं ॥४॥ राज्यका नाश होना, पिताजीका मरना, माताजीका वियोग होना, और वन्धु वान्धवोंसे छूटना, यह सब बातें जब याद आतीहैं तो हमारे शोकके वेगको परिपूर्ण कर देतीहैं ॥ ५ ॥ हे लक्ष्मण! वनमें आकर सीताके साथ रहनेंसे वह सब दुःखही छूट गयेथे वरन शरीरको क्लेशका नाम नहीं जान पडताथा, परन्तु आज जानकीके वियो

कोई आवश्यकता नहीं, नघवडानेका कुछ प्रयोजन, इस बातका विचार आप छोडें, क्योंकि लोकमें ऐसा कोई पुरुष नहींहै जो संग्राममें श्रीरघुनंदन रामचंद्रजीको ॥ १४ ॥ जीतसकै आजके समयही क्या वरन कभी ऐसा नहीं हुआ और न आगेको होगा, श्रीरामचंद्रजीको तो संग्राममें इन्द्रादि देवताभी नहीं जीत सकते ॥ १५ ॥ मोहितचित्त वैदेहीजीने हमारे यह बचन सुन आँसू त्यागकर रोतेर हमको यह दारुण वचन कहे ॥ १६ ॥ कि हमारे प्रति तुम्हारा अत्यन्त पाप भाव स्थापित हुआहै, परन्तु भ्राताके विनष्ट होनेपर तुम किसी भाँतिसे हमको प्राप्त नहीं कर सकोगे ॥ १७ ॥ हम समझीं कि तुम भरतके गुप्त भावसे पठाये श्रीरामचंद्रजीके साथ आयेहो इसीसे रामचंद्रजीका आरत नाद करना सुन करभी तुम उनकी सहा

जातोवाजायमानोवासंयुगेयःपराजयेत् ॥ अजेयोराघवोयुद्धेदेवैःशक्रपुरोगमैः ॥ १५ ॥ एवमुक्तातुवैदेहीपरिमोहितचेतना ॥ उवाचाऽश्रूणिमुंचंतीदारुणंमामिदंवचः ॥ १६ ॥ भावोमयितवात्यर्थंपापएवनिवेशितः ॥ विनष्टेभ्रातरिप्राप्तुंनचत्वंमामवाप्स्यसे ॥ १७ ॥ संकेताद्भरतेनत्वंरामंसमनुगच्छसि ॥ क्रोशंतंहियथात्यर्थंनैनमभ्यवपद्यसे ॥ १८ ॥ रिपुःप्रच्छन्नचारीत्वंमदर्थमनुगच्छसि ॥ राघवस्यांतरंप्रेप्सुस्तथैनंनाभिपद्यसे ॥ १९ ॥ एवमुक्तस्तुवैदेह्यासंरब्धोरक्तलोचनः ॥ क्रोधात्प्रस्फुरमाणोष्ठआश्रमादभिनिर्गतः ॥ २० ॥ एवंब्रुवाणंसौमित्रिंरामःसंतापमोहितः ॥ अब्रवीद्दुष्कृतंसौम्यतांविनात्वमिहागतः ॥ २१ ॥ जानन्नपिसमर्थंमांरक्षसामपवारणे ॥ अनेनक्रोधवाक्येनमैथिल्यानिर्गतोभवान् ॥ २२ ॥

यतार्थ नहीं जाते ॥ १८ ॥ अथवा तुम हमारे गुप्त शत्रुहो, हमारेही लेलेनेके लिये रामचंद्रजीके पीछेर वनमें फिरतेहो और सर्वदा अवसर ढूंढतेहो कि कब रामचंद्र कहींको जॉय, और हम इनको ग्रहण करें इस कारणसे तुम उनकी सहायता करनेंके लिये नहीं जाते ॥ १९ ॥ जब वैदेहीजीनें इस प्रकार कहा, तब अति क्रोधके मारे हमारे नेत्र लाल हो आये, रोपमें भरकर अधर फडकने लगे और हम तैसेही आश्रमसे चल खडे हुए ॥२०॥ जब लक्ष्मणजीनें इस प्रकारसे कहना आरंभ किया, तब रामचंद्रजी शोकसे मोहित होकर उनसे बोले कि हे सौम्य! तुम जो जानकीको छोडकर यहां चले आये यह अतिशय दुष्कर कर्म हुआ ॥ २१ ॥ देखो, राक्षसोंका बल निवारण करनेकी हममें विलक्षण सामर्थ्य है उसको जानबूझ करभी तुम

प्रथम हमारे साथ इस शिलातल पर तुम्हारे निकट बैठकर हँसते २ तुमसे कितनी बातें कहतीथीं ॥ १२ ॥ यह नदियोंमें श्रेष्ठ गोदावरीहै, जो हमारी प्रियाको सर्वदाही बहुत प्यारीथी, सो हमारे मनमें यह बातभी आतीहै कि कदाचित् वह इस नदीके तीरपर चली गईहो। परन्तु नहीं वह अकेली यहांपर कभी नहीं आतीथीं ॥ १३ ॥ तब क्या वह कमल दलके समान नेत्रवाली कमलमुखी जानकी कमल लेनेंको चली गई हैं यहभी किसी प्रकार ठीक नहीं हो सकता; क्योंकि वह कभी हमारे विना कमल लेनें नहीं जातीथीं ॥ १४ ॥ अथवा वह इस पुष्पित वृक्ष समूह शोभित अनेक जातिके विहंगमोंसे पूर्ण यह वन अपनी इच्छानुसार देखनेंको गई हैं यहभी बात किसी भांति संभव नहीं हो सकती, क्यों

गोदावरीयंसरितांवरिष्ठाप्रियाप्रियायाममनित्यकालम्॥अप्यत्रगच्छेदितिचिंतयामिनैकाकिनीयातिहिसाकदाचित्॥ १३ ॥ पद्माननापद्मपलाशनेत्रापद्मानिवानेतुमभिप्रयाता ॥ तदप्ययुक्तंनहिसाकदाचिन्मयाविनागच्छतिपंकजानि ॥ १४ ॥ कामंत्विदंपुष्पितवृक्षषंडंनानाविधैःपक्षिगणैरुपेतम् ॥ वनंप्रयातानुतदप्ययुक्तमेकाकिनीसातिबिभेतिभीरुः ॥ १५ ॥ आदित्यभोलोककृताकृतज्ञलोकस्यसत्यानृतकर्मसाक्षिन् ॥ ममप्रियासाक्कगताहृतावाशंसस्वमेशोकहतस्यसर्वम् ॥ १६ ॥ लोकेषुसर्वेषुननास्तिकिंचिद्यत्तेननित्यंविदितंभवेत्तव ॥ शंसस्ववायोकुलपालिनींतांमृताहृतावापथिवर्ततेवा ॥ १७ ॥ इतीवतंशोकविधेयदेहंरामंविसंज्ञंविलपंतमेव ॥ उवाचसौमित्रिरदीनसत्त्वोन्याय्येस्थितःकालयुतंचवाक्यम् ॥ १८ ॥

कि उनका डरपोक स्वभावहै अकेली वनके मध्य प्रवेश करनेंसे वह बहुत डरतींथीं ॥ १५ ॥ हे भगवन् ! सूर्य ! आप सबके कृता कृतको जानतेहैं, और सत्य मिथ्या सबके साक्षीभी आपहैं. इस कारणसे शोक हत हमको बतला दीजिये कि हमारी प्रिया कहां चलीगई अथवा कौंन उनको हरकर लेगया ॥ १६ ॥ हे पवन ! समस्त लोकोंमें ऐसा कुछ नहींहै जो नित्यहीतुम्हारे ज्ञान मार्गमें उदित न होताहो, इससे बतला दीजिये कि हमारी उन कुलमर्य्यादारक्षनी सीतानें प्राण दियेहैं या वह किसीसे हरी गईहैं,अथवा कहीं मार्गमें टिक रहीहैं ॥ १७ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीनें शोक

द्धि नहींहोती ॥ १ ॥ श्रीरामचंद्रजी वारंवार अपशकुन होते देखकर आपही कहनेंलगे कि जनें सीता कुशलसेहैं अथवा नहीं॥ २ ॥ यह सोचते विचारते सीताके दर्शनकरनेंकी लालसासे शीघ्र २ चलकर देखतेहुए किआश्रम सूनापडाहै यह देखकर श्रीरामचंद्रजी बहुत उकसाये॥ ३॥ वह वेग सहित इधर उधर भुजायें चला और घूमकर समस्त पर्ण शालाके स्थान २ करके खोजनेलगे ॥ ४ ॥ रामचंद्रजीनें पर्णशालामें गमन करके देखाकि वहां सीता नहींहैं जानकी बिन हेमंतऋतुके समागम से ध्वस्तपद्मिनीकी समान हो पर्णशाला अत्यन्त श्री विहीन अवस्थामें पडीथी ॥ ५ ॥ वन देवतागण आश्रमको श्रीभ्रष्ट और विध्वस्त देखकर एकवारही छोडकर चलेगये आश्रमके मृग पक्षी और समस्त पुष्पभी मलीन

उपालक्ष्यनिमित्तानिसोशुभानिमुहुर्मुहुः ॥ अपिक्षेमंतुसीतायाइतिवैव्याजहारह ॥ २ ॥ त्वरमाणोजगामाथसीतादर्शनलालसः ॥ शून्यमावसथंदृष्ट्वाबभूवोद्विग्नमानसः ॥ ३ ॥ उद्भ्रमन्निववेगेनविक्षिपन्रघुनंदनः ॥ तत्रतत्रोटजस्थानमभिवीक्ष्यसमंततः ॥ ४ ॥ ददर्शपर्णशालांचसीतयारहितांतदा ॥ श्रियाविरहितांध्वस्तांहेमंतेपद्मिनीमिव ॥ ५ ॥ रुदंतमिववृक्षैश्चम्लानपुष्पमृगद्विजम् ॥ श्रियाविहीनंविध्वस्तंसंत्यक्तंवनदैवतैः ॥ ६ ॥ विप्रकीर्णाजिनकुशंविप्रविद्धबृसीकटम्॥ दृष्ट्वाशून्योटजस्थानंविललापपुनःपुनः ॥७॥ हतामृतावानष्टावाभक्षितावाभविष्यति ॥ निलीनाप्यथवाभीरुरथवावनमाश्रिता ॥ ८ ॥ गताविचेतुंपुष्पाणिफलान्यपिचवापुनः ॥ अथवापद्मिनींयाताजलार्थंवानदींगता ॥९॥ यत्नान्मृगयमाणस्तुनाससादवनेप्रियाम् ॥ शोकरक्तेक्षणःश्रीमानुन्मत्तइवलक्ष्यते ॥ १० ॥

होगयेथे, वहांपरके वृक्ष मानों रोरहेथे ॥ ६ ॥ मृगचर्म और कुश इधर उधर पडे और कुशासन छिन्नभिन्न और गिरे पडेथे, पर्णशालाकी ऐसी अवस्था देखकर श्रीरामचंद्रजी वारंवार यह कहकर विलाप करनेंलगे ॥ ७ ॥ कि निश्चय जानकी हरीगई वा मृतक होगई, अथवा किसी करके भक्षण करडालीगई, या वह डरपोक स्वभाववाली छिप रहींहैं या वनमें चली गईहैं ॥८॥ अथवा वह फूल फल चुननेंके लिये कहीं वनमेंगईहैं वा जल लानेकेलिये सरोवर वा नदीपर गई होंगी ॥ ९ ॥ श्रीरामचंद्रजीने यत्नपूर्वक ढूंढने भालने परभी वनके बीच प्रियाको कहीं नपाया, तब

श्रीरामचंद्रजी आपही गोदावरी नदीके तटपर गये, और वहां खडे होकर बूझने लगे कि सीता कहां है? ॥ ६ ॥ समस्त प्राणियोंनें तथा गोदावरी नदी किसीनें भी श्रीरामचंद्रजीको यह न बतायाकि मारे जानेंके योग्य राक्षस रावण सीताको हरकर लेगयाहै ॥ ७ ॥ तब पृथ्वी जल, वायु, अग्नि, आकाश इन पांच महाभूतोंनें व प्राणियोंनें गोदावरी नदीसे कहा कि रामचंद्रजीसे सीताजीको बताओ, और सोच करते हुये रामचंद्रजीनें भी पूछा परन्तु गोदावरीनें न बताया ॥ ८ ॥ न बतानेंका कारण यह हुआ कि रावणका रूप और उस दुष्टात्माके कार्योंका स्मरण करनेंके मारे भयसे गोदावरीनदीनें श्रीरामचंद्रजीसे सीताको न बताया ॥ ९ ॥ इस प्रकार जब गोदावरीनें सीताजीके दर्शनसे निराश किया

समरामःभिचक्रामस्वयंगोदावरींनदीम् ॥ सतामुपस्थितोरामःक्वसीतेत्येवमब्रवीत् ॥ ६ ॥ भूतानिराक्षसेंद्रेणवधार्हेणहृतामपि ॥ नतांशशंसूरामायतथागोदावरीनदी ॥ ७ ॥ ततःप्रचोदिताभूतैःशंसचास्मैप्रियामिति ॥ नचसह्यावदत्सीतांपृष्टारामेणशोचता ॥ ८ ॥ रावणस्यचतद्रूपंकर्मापिचदुरात्मनः ॥ ध्यात्वाभयात्तुवैदेहसिंानदीनशशंसहा ॥ ९ ॥ निराशस्तुतयानद्यासीतायादर्शनेकृतः ॥ उवाचरामःसौमित्रिंसीतादर्शनकर्षितः ॥ १० ॥ एषागोदावरीसौम्यकिंचिन्नप्रतिभाषते ॥ किंतुलक्ष्मणवक्ष्यामिसमेत्यजनकंवचः ॥ ११ ॥ मातरंचैववैदेह्याविनातामहमप्रियम् ॥ यामेराज्यविहीनस्यवनेवन्येनजीवतः ॥ १२ ॥ सर्वंव्यपानयच्छोकंवैदेहीक्वनुसागता ॥ ज्ञातिवर्गविहीनस्यवैदेहीमप्यपश्यतः ॥ १३ ॥ मन्येदीर्घाभविष्यंतिरात्रयोममजाग्रतः ॥ मंदाकिनींजनस्थानमिमंप्रस्रवणंगिरिम् ॥ १४ ॥

तब श्रीरामचंद्रजी सीताके विरहसे व्यथित होकर लक्ष्मणजीसे बोले ॥ १० ॥ हे शुभदर्शन! यह गोदावरी तो कुछभी उत्तर नहीं देती परन्तु हम सीताके विना अपने देशमें जाकर पिता जनकजीसे क्या कहेंगे ॥ ११ ॥ और वैदेहीजीकी मातासे विना जानकीके कैसे अप्रिय वचन कहेंगे, जो जानकीजी राज्यविहीन वनमें कंद मूलादि भोजन कर जीतेहुये हमारे ॥ १२ ॥ सब शोक अपनयन करतीथीं वह वैदेहीजी कहां गई? हम जातिके लोगोंसे सहायक विहीन होनेके कारण और सीताजीका दर्शन न पानेंके कारण ॥ १३ ॥ जागरित रहनेंसे रात्रि हमको बडी जान पडेंगी

हे अशोक ! तुम शोकको दूर किया करतेहो, इससे शोकसे हतचित्त मुझको प्रियाके साथ मिलाकर अपनें नाम वाला हमको करदो ॥ १७ ॥ हे ताल ! यदि तुमने उन पक्वतालकी समान स्तनवाली जानकीको देखाहै और हमारे ऊपर कुछभी दया करतेहो तब वह वरारोहा सीता कहांहै ? सो हमको बतादो ॥ १८ ॥ हे जामुन ! यदि जाम्बूनद सुवर्ण सम प्रभावाली हमारी प्रियाको तुमनें देखाहै तौ निःशंक चित्तसे बताओ ॥ १९ ॥ हे कर्णिकार ! आज तुम पुष्पित होकर अत्यन्तशोभा पारहे हो और हमारी प्रियाभी तुमसे बहुतही स्नेह करतींथीं सो यदि कहीं उन साध्वीको देखाहो तौ कहो ॥ २० ॥ इसी प्रकार आम,नीम, महाशाल, कटहल, व अनारको देख २ कर श्रीरामचंद्रजी उनसे

अशोकशोकापनुदशोकोपहतचेतनम् ॥ त्वन्नामानंकुरुक्षिप्रंप्रियासंदर्शनेनमाम् ॥ १७ ॥ यदितालत्वयादृष्टापक्वतालोपमस्तनी ॥ कथयस्ववरारोहांकारुण्यंयदितेमयि ॥ १८ ॥ यदिदृष्टात्वयाजंबोजांबूनदसमप्रभा ॥ प्रियांयदिविजानासिनिःशंकंकथयस्वमे ॥ १९ ॥ अहोत्वंकर्णिकाराद्यपुष्पितःशोभसेभृशम् ॥ कर्णिकारप्रियांसाध्वींशंसदृष्टायदिप्रिया ॥ २० ॥ चूतनीपमहासालान्पनसान्कुररांस्तथा ॥ दाडिमानपितान्गत्वादृष्ट्वारामोमहायशाः ॥ २१ ॥ बकुलानथपुन्नागांश्चंदनान्केतकांस्तथा ॥ पृच्छन्रामोवनेभ्रांतउन्मत्तइवलक्ष्यते ॥ २२ ॥ अथवामृगशावाक्षींमृगजानासिमैथिलीम् ॥ मृगविप्रेक्षणीकांतामृगीभिःसहिताभवेत् ॥ २३ ॥ गजसागजनासोरूर्यदिदृष्टात्वयाभवेत् ॥ तांमन्येविदितांतुभ्यमाख्याहिवरवारण ॥ २४ ॥

कहतेथे ॥ २१ ॥ और बकुल, पुन्नाग, चन्दन, केतकी आदि और वृक्षोंकेनीचे २ जाकर भ्रान्त चित्तहो उन्मत्तकी समान श्रीरामचंद्रजी वनमें विचरने लगे ॥ २२ ॥ तिसके पीछे श्रीरामचंद्रजी मृग इत्यादि पशुओंसेपूछते हुए बोले कि, हे मृग ! तुम क्या उन मृगछौनाकीसी आंखोंवाली सीताका कुछ वृत्तान्त जान्तेहो ? अथवा वह मृगलोचना मृगीगणोंके साथ मिलकर घूमती होंगी ॥ २३ ॥ हे गज ! तुम्हारीही शूंड समान आकार वाली उनकी जांघेंहै, यदि तुमनें उनको देखाहो तौकहो ? इस्से हे गजराज ! हमें बतादो कि वह कहांहै ? ॥ २४ ॥

उपाय मिलजावे, तब श्रीरामचन्द्रजी ऐसाहीहो कहकर दक्षिण दिशाकी ओर चले ॥ २३ ॥ इसके पश्चात् २ लक्ष्मणजी आगे २ आप चले दोनों भाईजन इधर उधर देखते भालते व आपसमें बात चीत करते २ चले॥२४॥आगे चलकर देखा तो कहींपर फूल पडेहैं। पृथ्वीपर फूलोंकी वृष्टि पडी देखकर श्रीरामचन्द्रजी ॥ २५ ॥ वह बडे दुःखित हो दुःखित लक्ष्मणजीसे बोले, कि हे लक्ष्मण हम जानतेहैं कि यह वही पुष्पहैं ॥ २६ ॥ जो हमनें वैदेहीजीको दियेथे और उन्होंने यह सब अपनें अंगोंमें धारण कियेथे, यह अभी कुम्हलाये नहीं, ऐसा बोध होताहै कि हमारा प्रिय करनेंके लिये सूर्य, पवन, तपस्विनी पृथ्वीनें ॥ २७ ॥ इन पुष्पोंकी रक्षाकीहै, महाबाहु धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी पुरुषश्रेष्ठ लक्ष्मणजीसे ऐसा कहा ॥ २८ ॥

लक्ष्मणानुगतःश्रीमान्वीक्षमाणोवसुंधराम्॥एवंसंभाषमाणौतावन्योन्यंभ्रातरावुभौ॥२४॥ वसुंधरायांपतितपुष्पमार्गमपश्यताम् ॥ पुष्पवृष्टिंनिपतितांदृष्ट्वारामोमहीतले ॥ २५ ॥ उवाचलक्ष्मणंवीरोदुःखितोदुःखितंवचः ॥ अभिजानामिपुष्पाणितानीमानीहलक्ष्मण ॥ २६ ॥ अपिनद्धानिवैदेह्यामयादत्तानिकानने ॥ मन्येसूर्यश्चवायुश्चमेदिनीचयशस्विनी ॥ २७ ॥ अभिरक्षंतिपुष्पाणिप्रकुर्वंतोममप्रियम् ॥ एवमुक्त्वामहाबाहुर्लक्ष्मणंपुरुषर्षभम् ॥ २८ ॥ उवाचरामोधर्मात्मागिरिंप्रस्रवणाकुलम्॥कच्चित्क्षितिभृतांनाथदृष्टासर्वांगसुंदरी ॥ २९ ॥ रामारम्येवनोद्देशेमयाविरहितात्वया ॥ क्रुद्धोब्रवीद्गिरिंतत्रसिंहःक्षुद्रमृगंयथा ॥ ३० ॥ तांहेमवर्णांहेमांगींसीतांदर्शयपर्वत ॥ यावत्सानूनिसर्वाणिनतेविध्वंसयाम्यहम् ॥ ३१ ॥ एवमुक्तस्तुरामेणपर्वतोमैथिलींप्रति ॥ दर्शयन्निवतांसीतांनादर्शयतराघवे ॥ ३२ ॥

बहुत सारे झरनें जिसमें झररहे ऐसे सामनेंवाले पर्वतसे पुकारकर बोले. हे पर्वतश्रेष्ठ ! तुमनें क्या उन सर्वांगसुन्दरीको देखाहै? ॥ २९ ॥ हमारी प्रिया हमारे विना रमणीय इस वनमें देखीहै ? जब उस पर्वतनें इनकी बातका कुछ उत्तर न दिया तब यह क्रुद्ध होकर उस पर्वतसे बोले जिस प्रकार सिंह छोटे मृगोंसे कडककर बोलताहै ॥ ३० ॥ हे पर्वत! जब तक हम तुम्हारे शृङ्ग तोड न डालें, तबतक तुम सोनेकी समान वर्णवाली हमारी सीताजीको हमें दिखादो ॥ ३१ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीनें ऐसा कहा तो मानों वह पर्वत जानकीजीको जानता हुआ श्रीरामचं-

सो राक्षसोंनें ऐसी मनोहर गरदनकोभी खा डाला, राक्षसोंनें जब हमारी प्रियाको भक्षण किया होगा, तौ न जानें उन्होंनें कितना विलाप किया होगा ॥ ३२ ॥ उनकी दोनों बांहैं पल्लवकी समान कोमल और हाथोंके गहनोंसे सुशोभितहैं निश्चयही राक्षसोंनें इधर उधर फेंक फांक कर उनको खालिया उस कालमें उन दोनों बाहोंका अग्रभाग अवश्य कंपित हुआ होगा ॥ ३३ ॥ हाय ! हम क्या राक्षसोंके भोजनार्थं ही उनको आश्रममें अकेला छोडकर यहां आयेथे इस्सेही वह बन्धु बान्धव युक्त होकरभी राक्षसोंके पेटमें पड गई और कोई बन्धु बान्धव काम न आया॥३४॥ हे लक्ष्मण ! क्या तुमनें प्राणप्यारीको कहीं देखाहै ? हा प्रिया ! हासीते! हा भद्रे! तुम कहां गई इन शब्दोंको रामचंद्रजी वार २ कहतेथे ॥३५॥ इस

नूनंविक्षिप्यमाणौतौबाहूपल्लवकोमलौ ॥ भक्षितौवेपमानाग्रौसहस्ताभरणांगदौ ॥ ३३ ॥ मयाविरहिताबालारक्षसां भक्षणायवै ॥ सार्थेनैवपरित्यक्ताभक्षिताबहुबांधवा ॥ ३४ ॥ हालक्ष्मणमहाबाहोपश्यसेत्वंप्रियांक्वचित् ॥ हाप्रियेक्वगताभद्रेहासीतेतिपुनःपुनः ॥ ३५ ॥इत्येवंविलपन्रामःपरिधावन्वनाद्वनम् ॥ क्वचिदुद्भ्रमतेयोगात्क्वचिद्विभ्रमतेबलात् ॥ ३६ ॥ क्वचिन्मत्तइवाभातिकांतान्वेपणतत्परः ॥ सवनानिनदीःशैलान्गिरिप्रस्रवणानिच ॥ काननानिच वेगेनभ्रमत्यपरिसंस्थितः ॥ ३७ ॥ तदासगत्वाविपुलंमहद्वनंपरीत्यसर्वंत्वथमैथिलींप्रति ॥ अनिष्ठिताशःसचकार मार्गणेपुनःप्रियायाःपरमंपरिश्रमम् ॥ ३८ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेपष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥ दृष्ट्वाश्रमपदंशून्यंरामोदशरथात्मजः ॥ रहितांपर्णशालांचप्रविद्धान्यासनानिच ॥ १ ॥

प्रकार वारंवार विलाप करते२रामचंद्रजी वन२में वेग सहित घूमनें लगे कहीं ठोकर खाकर गिर पडते और कभी२ दिशा विदिशाओंमें घूमनें लगते॥३६॥ कभी रामचंद्रजी उन्मत्तकी समान दृष्टि आते कभी२प्रियाके ढूंढनें में तत्पर होकर वेग सहित नदी पर्वत झरनें और समस्त वनोंमें भ्रमण करने लगे ३७॥ उस समय श्रीरामचन्द्रजी स्थिर होकर कहीं भी न रह सकते।और एक महा वनमें प्रवेश करके उसमें चारों ओर जानकीजीको एक २ वृक्ष और एक२ स्थल ढूंढने परभी रामचन्द्रजीका अभिलाप पूर्ण नहीं हुआ। परन्तु वह फिरभी प्यारी सुकुमारी जनकदुलारीकी खोज करनेमें परिश्रम करने लगे ॥ ३८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० आर० पष्टितमः सर्गः॥६० ॥ इस प्रकार ढूंढते भालते श्रीरामचन्द्रजी फिर आश्रममें आये तौ देखा

हे भइया, लक्ष्मण! हमको जान पडताहै कि कामरूपी राक्षसोंने जानकीजीके खंड २ कर आपसमें बांट चूंट उनको खाडाला ॥ ४१ ॥ हे लक्ष्मण!
ऐसा समझमें आताहै कि सीताके लिये झगडा होंनेंसे यहां दो राक्षसोंका घोर युद्ध हुआथा इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ४२ ॥ हे सौम्य ! किसीका
यह मुक्ता मणिसे बना हुआ रमणीय विभूषित धनुष पृथ्वी पर टूटा हुआ पडाहै ॥ ४३ ॥ हे वत्स! या तो यह धनुष राक्षसोंका है। वा देवता
ओंका है। प्रातःकालके सूर्यकी समान अरुण (लाल) वैदूर्य मणिकी मूठ इसमें लगीहै ॥ ४४ ॥ किसीका यह सुवर्णका कवचभी रत्ती २

मन्येलक्ष्मणवैदेहीराक्षसैःकामरूपिभिः ॥ भित्त्वाभित्त्वाविभक्तावाभक्षितावाभविष्यति ॥ ४१ ॥ तस्यानिमित्तं
सीतायाद्वयोर्विवदमानयोः ॥ बभूवयुद्धंसौमित्रेघोरंराक्षसयोरिह ॥ ४२ ॥ मुक्तामणिचितंचेदंरमणीयंविभूषितम् ॥
धरण्यांपतितंसौम्यकस्यभग्नंमहद्धनुः ॥ ४३ ॥ राक्षसानामिदंवत्ससुराणामथवापिवा ॥ तरुणादित्यसंकाशंवैदूर्यगु
लिकाचितम् ॥ ४४ ॥ विशीर्णंपतितंभूमौकवचंकस्यकांचनम् ॥ छत्रंशतशलाकंचदिव्यमाल्योपशोभितम् ॥४५॥
भग्नदंडमिदंसौम्यभूमौकस्यनिपातितम् ॥ कांचनोरच्छदाश्चेमेपिशाचवदनाःखराः ॥ ४६ ॥ भीमरूपामहाकायाः
कस्यवानिहतारणे ॥ दीप्तपावकसंकाशोद्युतिमान्समरध्वजः ॥ ४७ ॥ अपविद्धश्चभग्नश्चकस्यसांग्रामिकोरथः ॥
रथाक्षमात्राविशिखास्तपनीयविभूषणाः ॥ ४८ ॥ कस्येमेनिहताबाणाःप्रकीर्णाघोरदर्शनाः ॥ शरावरौशरैःपूर्णौ
विध्वस्तौपश्यलक्ष्मण ॥ ४९ ॥

टूटा फूटा हुआ पृथ्वीपर पडाहै और यह शत २ शलाका समन्वित दिव्य माला शोभित छत्र किसका भूमिपर पडाहै ॥ ४५ ॥ हे सौम्य!
इसका दंडा टूट गयाहै किसने तोडाहै व सोनेंकी गर्दनी पडी पिशाचों समान मुख वाले गधे भी ॥ ४६ ॥ महा भयंकर व बडे आकारवाले किसीके
रणमें मरे पडे हैं। फिर दीप्तिमान अग्निके समान अति देदीप्यमान किसीका युद्ध में काम देनेवाला रथभी पडाहै ॥ ४७ ॥
जो जगह२ पटकने व दे मारनेंसे टूट गयाहै ! वह किसीके रथके लम्बे२ बांसभी सुवर्णके विभूषणोंसे भूषित ॥ ४८ ॥ हे लक्ष्मण! टूटे फूटे पडेहैं

हमको यहां छोड कहां जातीहो? जिस प्रकार कुटिल मनुष्यको कीर्त्ति छोड देती है। हे वरारोहे! हे सुमध्यमे! तुम हमको न छोडो ॥ १० ॥ हम तुम्हारे विरहमें अपना जीवन परित्याग करेंगे श्रीरामचन्द्रजी सीता के दर्शनाभिलाषी होकर इस प्रकार विलाप करनें लगे ॥ ११ ॥ परन्तु दुःखसे आरत हुए उन्होंने जानकीजीको न देखा; इस कारण वह जानकीके शोकमें निमग्न होकर ॥ १२ ॥ अतीव दलदलमें फँसे हुए महा गजकी समान बहुतही व्याकुल होगये । रामचन्द्रजीकी यह दशा देख लक्ष्मणजी उनके हितकी कामनासे कहनें लगे ॥ १३ ॥ हे महाद्युतिमान्! आप विषाद न कीजिये। हमारे साथ यत्न कीजिये तब अवश्यही सीताका दर्शन मिलैगा। हे वीर! यह बहुत कन्दराओंसे शोभित गिरिवर जो है और

त्वयाविरहितश्चाहंत्यक्ष्येजीवितमात्मनः ॥ इतीवविलपन्रामःसीतादर्शनलालसः ॥ ११ ॥ नददर्शसुदुःखार्तोराघवो जनकात्मजाम् ॥ अनासादयमानंतंसीतांशोकपरायणम् ॥ १२ ॥ पंकमासाद्यविपुलंसीदंतमिवकुंजरम् ॥ लक्ष्मणो राममत्यर्थमुवाचहितकाम्यया ॥ १३ ॥ माविषादंमहाबुद्धेकुरुयत्नंमयासह ॥ इदंगिरिवरंवीरबहुकंदरशोभितम् ॥ १४ ॥ प्रियकाननसंचारावनोन्मत्ताचमैथिली ॥ सावनंवाप्रविष्टास्यान्नलिनींवासुपुष्पिताम् ॥ १५ ॥ सरितंवापिसंप्राप्तामीनवंजुलसेविताम् ॥ वित्रासयितुकामावालीनास्यात्काननेक्वचित् ॥ १६ ॥ जिज्ञासमानावैदेहीत्वांमांचपुरुषर्षभ ॥ तस्याह्यन्वेषणेश्रीमन्क्षिप्रमेवयतावहे ॥ १७ ॥

इस वनमें घूमना जानकीजीको बहुत प्यारा है, क्योंकि वनको देख वह सदा मत्त हो जातीथीं सो क्या अचरजहै कि वह वन देखनें न चली गईहों अथवा कोई पुष्प शोभित कमल युक्त तलैयां देखनें गई हों ॥ १४ ॥ १५ ॥ अथवा मत्स्ययुक्त वेतसनामक विहंगसेवित नदीपर तौ न चली गई हों! अथवा हम तुमको त्रासित करनेंकी कामनासे इस वनके किसी स्थानमें तो न छिप रहीं हों ॥ १६ ॥ हे पुरुषसिंह! वह यह जाननेंके लिये वनमें लुकाई हैं कि, हम वा आप किस प्रकारसे उनको खोजकर पालेंगे, सो हमको चाहिये कि उनके खोजनेंका अवश्य यत्न करें ॥ १७ ॥

चंद्रमाकी चांदनीको मिटाय, महा सूर्यके समान उदयवत् हमारा प्रकाश देखो, जो कि सुशीलता इत्यादि गुणोंको छोड अब सबको ठीककर
तेहैं॥ ५७ ॥ हे लक्ष्मण! तुम देखते रहो कि अब यक्ष, गन्धर्व,पिशाच, राक्षस, किन्नर, वा मनुष्य कोईभी सुख प्राप्त करनेंको समर्थ नहीं
होगा ॥ ५८ ॥ हे लक्ष्मण आज हमारे बाण समूहसे समस्त आकाशव्याप्त हो जायगा, देखो आज हम त्रिलोक वासी प्राणियोंके गमनागमन
रोके देतेहैं आज हम त्रिलोकीको कालके कवरमें निक्षेप करेंगे ॥ ५९ ॥जब हम सबका गमनागमन रोक देंगे तो इस्से ग्रहोंकी चाल रुक जायगी
चंद्रमा अन्तर्हित हो जांयगे, वायु,अग्नि, और सूर्य इत्यादिकी द्युतिके नाशहोनेंसे, सब जगह गाढा अंधकार छा जायगा ॥ ६० ॥ सबही शैल शिखर

संहृत्यैवशशिज्योत्स्नांमहान्सूर्यइवोदितः ॥ संहृत्यैवगुणान्सर्वान्ममतेजःप्रकाशते ॥ ५७ ॥ नैवयक्षानगंधर्वानपि
शाचानराक्षसाः॥ किंन्नरावामनुष्यावासुखंप्राप्स्यंतिलक्ष्मण ॥ ५८ ॥ ममास्त्रबाणसंपूर्णमाकाशंपश्यलक्ष्मण॥
असंपातंकरिष्यामिह्यद्यत्रैलोक्यचारिणाम् ॥ ५९ ॥ सन्निरुद्धग्रहगणमावारितनिशाकरम् ॥ विप्रनष्टानलमरु
द्भास्करद्युतिसंवृतम्॥६०॥विनिर्मथितशैलाग्रंशुष्यमाणजलाशयम्॥ध्वस्तद्रुमलतागुल्मंविप्रणाशितसागरम्॥ ६१ ॥
त्रैलोक्यंतुकरिष्यामिसंयुक्तंकालकर्मणा ॥ नतेकुशलिनींसीतांप्रदास्यंतिममेश्वराः ॥ ६२ ॥ अस्मिन्मुहूर्तेसौमित्रे
ममद्रक्ष्यंतिविक्रमम् ॥ नाकाशमुत्पतिष्यंतिसर्वभूतानिलक्ष्मण॥ ६३ ॥ समाकुलममर्यादंजगत्पश्याद्यलक्ष्मण ॥
आकर्णपूर्णैरिषुभिर्जीवलोकदुरावरैः ॥ ६४ ॥ करिष्येमैथिलीहेतोरपिशाचमराक्षसम् ॥ ममरोषप्रयुक्तानांविशि
खानांबलंसुराः ॥ ६५ ॥

मथित हो जांयगे, समुद्र सूख जांयगे, वृक्षलता, और गुल्म विध्वंस होजांयगे, और वन एक साथही उजड जांयगे ॥ ६१ ॥ हम तीनों लोकोंका
नाश करदेंगे यदि इन्द्रादि देवगण मंगलमय जानकीजीको नदेदेंगे ॥६२॥तौ हमारा पराक्रम देखना हे लक्ष्मण! उस समय आकाशमेंभी कूदकर
कोई न बच सकेगा ॥ ६३ ॥ हे लक्ष्मण! आज हमारे चापके मुखसे छूटेहुये शर जालसे निरन्तर मर्दित होकर सब जगत् महा व्याकुल मर्यादा शू
न्य हो जायगा, और मृग व पक्षीगण सबही सब भांतिसे भ्रान्त और विनष्टहोजांयगे ॥ ६४ ॥ आज हम सीताके लिये कानतक प्रत्यंचा खेंच छोडे

व ढूंढा तथापि प्राणोंसे भी बहुत भारी प्यारी जानकीजीके दर्शन हमने न पाये ॥ २६ ॥ सीताजीके हरणसे संतापितहो श्रीरामचंद्रजी शोकसे दुःखी और व्याकुल होकर इस प्रकार विलाप करते २एक मुहूर्त्त भर तक रामचंद्रजी विह्वल होरहे ॥ २७ ॥ वह बुद्धिहीन और चैतन्य रहित हो गये और सर्व शरीर विह्वल होगया इस प्रकार श्रीरामचंद्रजी अतिशय व्याकुल और स्पन्दनाहीन होकर गरम लंबे २ श्वासलेकर विलाप करनेंलगे॥२८॥ इसके पश्चात् राजीवलोचन श्रीरामचंद्रजीनें वारंवार श्वास ले हाप्रिये! ऐसा कह गद्गद हो आंसूभर बडे शब्दसे रोदन करना आरंभ किया ॥ २९ ॥ रामचंद्रजीको देखकर उनके प्रिय भ्राता लक्ष्मणजी शोकसे आरत हो विनय सहित हाथ जोड उनको समझाने बुझाने लगे। परन्तु श्रीराम

एवंसविलपन्रामःसीताहरणकर्शितः ॥ दीनःशोकसमाविष्टोमुहूर्तंविह्वलोभवत् ॥ २७ ॥ सविह्वलितसर्वांगोगतबुद्धिर्विचेतनः ॥ विषसादातुरोदीनोनिःश्वस्याशीतमायतम् ॥ २८ ॥ बहुशःसतुनिःश्वस्यरामोराजीवलोचनः ॥ हाप्रियेतिविचुक्रोशबहुशोबाष्पगद्गदः ॥ २९ ॥ तंसांत्वयामासततोलक्ष्मणःप्रियबांधवम् ॥ बहुप्रकारंशोकार्तःप्रश्रितःप्रश्रितांजली ॥ ३० ॥ अनादृत्यतुतद्वाक्यंलक्ष्मणोष्ठपुटच्युतम् ॥ अपश्यंस्तांप्रियांसीतांप्राक्रोशत्सपुनःपुनः ॥३१॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेएकषष्टितमःसर्गः ॥ ६१ ॥ सीतामपश्यन्धर्मात्माशोकोपहतचेतनः ॥ विललापमहाबाहूरामःकमललोचनः ॥ १ ॥ पश्यन्निवचतांसीतामपश्यन्मन्मथार्दितः ॥ उवाचराघवोवाक्यंविलापाश्रयदुर्वचम् ॥२॥ त्वमशोकस्यशाखाभिःपुष्पप्रियतराप्रिये ॥ आवृणोषिशरीरंतेममशोकविवर्धनी ॥ ३ ॥

चंद्रजी उनके मुखसे निकले हुए वचनोंका अनादर करकै प्रियतमा सीताजीके अदर्शनसे वारंवार रोदन करनें लगे ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥ महाबाहु धर्मात्मा कमललोचन श्रीरामचंद्रजी सीताजीके दर्शन ना पाकरके शोकके मारे चेतना रहित हो विलाप करने लगे ॥ १ ॥ वह सीताजीके दर्शन ना पाकरभी, मानों उनको देखही रहे हैं इस भाव करकै कामबाणसे पीडितहो विलाप युक्त दुःखके साने वचन कहने लगे ॥ २ ॥ हे प्रिये! तुम पुष्पोंको अतिशय प्यार करती हो सो इस समय

घोर प्रदीप्त सायक ॥ ७३ ॥ श्रीरामचन्द्रजीनें उस धनुष पर चढाया। और प्रलयकालकी अग्निके समान क्रोधमें भरकर कहने लगे ॥ ७४ ॥ हे लक्ष्मण! जरा, मृत्यु, काल, और विधि यह सब जिस प्रकारसे प्राणिमात्रके रोकनेंसे नहीं रुक सकते, वैसेही हम क्रोधित हुए हैं। निःसन्देह कोई हमको निवारण नहीं कर सकैगा ॥ ७५ ॥ सुदन्तयुक्त निन्दा रहित मिथिलाराजनंदिनी सीताको बिना प्राप्त हुए हम देव, गन्धर्व, मनुष्य, पन्नग और पर्वत सहित समस्त जगत् मर्दित करडालेंगे ॥ ७६ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आर० चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

संदधेधनुषिश्रीमान्रामःपरपुरंजयः ॥ युगांताग्निरिवक्रुद्धइदंवचनमब्रवीत् ॥ ७४ ॥ यथाजरायथामृत्युर्यथा कालोयथोविधः॥ नित्यंनप्रतिहन्यंतेसर्वभूतेषुलक्ष्मण॥ तथाहंक्रोधसंयुक्तोननिवार्योस्म्यसंशयम् ॥७५॥ पुरेवमेचा रुदतीमनिंदितांदिशंतिसीतांयदिवाद्यमैथिलीम् ॥ सदेवगंधर्वमनुष्यपन्नगंजगत्सशैलंपरिवर्तयाम्यहम् ॥ ७६ ॥ इत्या र्षेश्रीम०वा०आ०आर०चतुःषष्टितमःसर्गः॥६४॥तप्यमानंतदारामंसीताहरणकर्शितम्॥लोकानामभवेयुक्तंसांवर्तक मिवानलम् ॥ १ ॥ वीक्षमाणंधनुःसज्यंनिःश्वसंतंपुनःपुनः ॥ दग्धुकामंजगत्सर्वंयुगांतेचयथाहरम् ॥ २ ॥ अदृष्ट पूर्वंसंक्रुद्धंदृष्ट्वारामंसलक्ष्मणः ॥ अब्रवीत्प्रांजलिर्वाक्यंमुखेनपरिशुष्यता ॥ ३ ॥ पुराभूत्वामृदुर्दांतःसर्वभूतहितेरतः॥ नक्रोधवशमापन्नःप्रकृतिंहातुमर्हसि ॥ ४ ॥

सीताजीके हरणसे कातर हुये श्रीरामचन्द्रजी सन्तापित हो संवर्तकप्रलयकालकी अग्निके समान लोकोंका नाश करनेंको तैयार हुए ॥ १ ॥ और प्रलयकालमें समस्त जगत् दग्ध करनेंके अभिलाषी महादेवजीके समान वारंवार श्वास त्याग करतेहुए प्रत्यंचायुक्त शरासनको श्रीराम चन्द्रजी देखनें लगे ॥ २ ॥ लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीका अदृष्ट पूर्व जो पहले कभी नहीं देखाथा, ऐसा क्रोध देखकर शुष्क मुख बना हाथ जोड उनसे बोले ॥ ३ ॥ आप पहलेसे मृदु, सर्व इन्द्रियोंके जीतनेंवाले और सर्वभूतोंके हितकारी कार्य करनेंमें तैयार हैं सो इस समय क्रोधके

हम वनवास करके घरको लौटेंगे और उस समय मिथिलानाथ जनकजी॥ १२॥ कुशल पूछेंगे तो किस प्रकार हम उनको अवलोकन करनेमें समर्थ होंगे? विदेहराज निश्चय हमको विना सीताके देखकर ॥ १३ ॥ अपनी पुत्री जानकीके विनाशसे संतप्तहो मोहके वश हो जांयगे ॥ पिता दशरथजीही धन्यहैं। क्योंकि वे स्वर्गमें वास करतेहैं। अथवा अब हम भरतकी पालित अयोध्यापुरीको न जांयगे॥ १४॥ अयोध्याकी बात तो एक ओर रही सीताके विना तो हम स्वर्गकोभी शून्य समझतेहैं; इस कारण हे लक्ष्मण! तुम अब हमको इस वनमें छोडकर अयोध्याको चले जाओ ॥ १५ ॥ हम

कुशलंपरिपृच्छंतंकथंशक्ष्येनिरीक्षितुम् ॥ विदेहराजोनूनंमांदृष्ट्वाविरहितंतया ॥ १३ ॥ सुताविनाशसंतप्तो मोहस्यवशमेष्यति ॥ "तातएवकृतार्थःसतत्रैववसतादिति"॥ अथवानगमिष्यामिपुरींभरतपालिताम् ॥ १४ ॥ स्वर्गोपिहितयाहीनःशून्यएवमतोमम ॥ तन्मामुत्सृज्यहिवनेगच्छायोध्यापुरींशुभाम् ॥ १५ ॥ नत्वहं तांविनासीतांजीवेयंहिकथंचन ॥ गाढमाश्लिष्यभरतोवाच्योमद्वचनात्त्वया ॥ १६ ॥ अनुज्ञातोऽसिरामे णपालयेतिवसुंधराम् ॥ अंबाचममकैकेयीसुमित्राचत्वयाविभो ॥ १७ ॥ कौसल्याचयथान्यायमभिवाद्या ममाज्ञया ॥ रक्षणीयाप्रयत्नेनभवतासूक्तचारिणा ॥ १८ ॥ सीतायाश्चविनाशोऽयंममचामित्रसूदन ॥ विस्तरेणज नन्यामेविनिवेद्यस्त्वयाभवेत् ॥ १९ ॥

जानकीके विना किसी प्रकारभी जीवन धारण करनेंको समर्थ नहींहैं। तुम हमारी ओरसे भली भांति भरतजीको गाढ आलिंगन कर कहना ॥ १६॥ कि रामचंद्रजीने यह आज्ञाकीहै कि तुमही इस राज्यका पालन करो ॥ हेविभो! माता कैकेयी व सुमित्रा अपनी मातासे ॥ १७ ॥ और कौश ल्याजीसे इनमेसे प्रत्येकको हमारी आज्ञानुसार यथायोग्य तुम प्रणाम कह देना। और सदा नीके वचनोंसे समझा बुझाकर यत्न सहित उनकी रक्षाभी करते रहना ॥ १८॥ हेशत्रुके मारनेवाले! और सब माताओंसे सीताजीके व हमारे विनाशका वृत्तान्तभी विस्तार सहित तुम निवेदन कर देना॥१९॥

आप हमारे साथ धनुष हाथमें लेकर चलिये, और परमर्षि गणोंको सहायक बनाय समुद्र वन पर्वत ढूंढेंगे ॥ १३ ॥ विविध प्रकारकी ताल तलैयां व गुफायें और देवता गन्धर्वोंके लोक समस्तही यत्न सहित आप ढूंढिये ॥ १४ ॥ जब तक कि आपकी स्त्रीके हरनेंवालेको न पावेंगे, और इस प्रकार शान्त भावसे ढूंढनेंपरभी इन्द्रादि देव गण यदि आपकी भार्याको न दें तब हे कौशलेन्द्र! पीछेसे आप उनको यथायोग्य दंड दीजियेगा॥१५॥ हे नरेन्द्र! शीलतासे सामसे और विनय अवलंबन करकेभी यदि आप सीताको न पावें, तब आप इन्द्रके वज्र सदृश सुवर्णपंखवाले शरजालसे समस्त संसारको संहार कर डालियेगा ॥ १६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

मद्वितीयोधनुष्पाणिःसहायैःपरमर्षिभिः ॥ समुद्रंवाविचेष्यामःपर्वतांश्चवनानिच ॥ १३ ॥ गुहाश्चविविधाघोराःप झिन्योविविधास्तथा ॥ देवगंधर्वलोकांश्चविचेष्यामःसमाहिताः ॥ १४ ॥ यावन्नाधिगमिष्यामस्तवभार्यापहारिणम् ॥ नचेत्साम्नाप्रदास्यंतिपत्नींतेत्रिदशेश्वराः ॥ कोशलेंद्रततःपश्चात्प्राप्तकालंकरिष्यसि ॥ १५ ॥ शीलेनसाम्नाविनये नसीतांनयेननप्राप्स्यसिचेन्नरेंद्र ॥ ततःसमुत्सादयहेमपुंखैर्महेंद्रवज्रप्रतिमैःशरौघैः ॥ १६ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा०आ०आरण्यकांडेपंचषष्टितमःसर्गः ॥ ६५ ॥ ॥ तंतथाशोकसंतप्तंविलपंतमनाथवत् ॥ मोहेनमहतायुक्तंपरिद्यू नमचेतसम् ॥ १ ॥ ततःसौमित्रिराश्वास्यमुहूर्तादिवलक्ष्मणः ॥ रामंसंबोधयामासचरणौचाभिपीडयन् ॥ २ ॥ महतातपसाचापिमहताचापिकर्मणा ॥ राज्ञादशरथेनासील्लब्धोमृतमिवामरैः ॥ ३ ॥ तवचैवगुणैर्बद्धस्त्वद्वियोगा न्महीपतिः ॥ राजादेवत्वमापन्नोभरतस्ययथाश्रुतम् ॥ ४ ॥

श्रीरामचंद्रजीनें लक्ष्मणके वाक्यसे क्रोध त्यागकर इस प्रकार शोक संतप्त और महा मोहसे युक्त चेतना रहित होकर अनाथोंकी समान विलाप करना आरंभ किया ॥ १ ॥ लक्ष्मणजी उनके चरण छूकर एक मुहूर्त भरतक उनको समझाते बुझाते हुए कहनें लगे ॥ २ ॥ कि राजा दशरथजीनें अनेक तपस्या और बहु विधि धर्मानुष्ठान करके आपको प्राप्त कियाथा जिस प्रकार देवता लोगोंनें अमृतको बडे२ उपायोंसे प्राप्त कियाथा ॥ ३ ॥ भरतजीसे जैसा जैसा सुनाथा उससे तौ यही ज्ञात होताहै कि राजा दशरथ आपहीके गुणोंमें बंधकर, व आपकेही वियोगमें देवलोकको प्राप्त हुयेहैं॥४॥

गसे, काष्ठके संयोगसे सहसा प्रदीप्त हुई अग्निकी समान वही दुःख फिर प्रवल होगयेहैं ॥ ६ ॥ निश्चयही कोई राक्षस उन भीरुस्वभाववाली आर्या सीताको आकाशमार्गसे आय हरण करकै लेगयाहै! हाय! इसमें कोई सन्देह नहीं है। कि उस समय उन सुन्दर बोलनेंवालीनें भयके विवशहो विकृतस्वरसे वारंवार रोदन किया होगा ॥ ७ ॥ सुंदर सदाही लाल चंदन लगानेंके योग्य हमारी प्रियाके दोनों सुन्दर कुच निश्चयही राक्षसोंनें भक्षण करनेंके समय उनमें रुधिर लगादिया होगा जिस्से वह शोभित नहीं होतेहोंगे हाय इतने परभी हमारे प्राण नहीं जाते ॥ ८ ॥ अब हम इस शरीरसे उनको न भेट सकेंगे। उनका मुखमंडल घूंघरवाले वालोंके वीचमें शोभित, और सुन्दर,सुमधुर सुकोमल, और साफ चिकना सॅवा

सानूनमार्यांममराक्षसेनह्यभ्याहृताखंसमुपेत्यभीरुः॥ अप्यस्वरंसुस्वरविप्रलापाभयेनविक्रंदितवत्यभीक्ष्णम् ॥ ७॥
तौलोहितस्यप्रियदर्शनस्यसदोचितावुत्तमचंदनस्य ॥ वृत्तौस्तनौशोणितपंकदिग्धौनूनंप्रियायाममनाभिपातः ॥८॥
तच्छ्लक्ष्णसुव्यक्तमृदुप्रलापंतस्यामुखंकुंचितकेशभारम् ॥ रक्षोवशंनूनमुपागतायानभ्राजतेराहुमुखेयथेंदुः ॥ ९ ॥
तांहारपाशस्यसदोचितांतांग्रीवांप्रियायाममसुव्रतायाः ॥ रक्षांसिनूनंपरिपीतवंतिशून्येहिभित्त्वारुधिराशनानि ॥ १० ॥ मयाविहीनाविजनेवनेसारक्षोभिराहृत्यविकृष्यमाणा ॥ नूनंविनादंकुररीवदीनासामुक्तवत्यायतकांतनेत्रा ॥ ११॥ अस्मिन्मयासार्धमुदारशीलाशिलातलेपूर्वमुपोपविष्टा॥कांतस्मितालक्ष्मणजातहासात्वामाहसीतावहुवाक्यजातम् ॥ १२ ॥

रा हुआहै, सो जानकीको राक्षसके वश होनेसे राहुमुखमें ग्रसेहुये चंद्रमाकी समान. निश्चय उस मुखकी अब सब सुंदरताई अलगहोगई होगी ॥ ९ ॥ पतिव्रतप्रियाकी वह सुन्दर गरदन सदाही हारके गुच्छोंसे भूषित रहतीथी. सो रुधिरपान करनेंवाले राक्षसोंने शूनेमें पाकर निश्चयही उसको भेदकर रुधिरपान कियाहोगा ॥ १० ॥ हमारे न होनेपर निर्जन वनमें राक्षसोंने चारों ओरसे घेरकर जब उनको खेंचना आरंभ कियाहोगा; तो उससमय वह रुधिर और बडे नेत्रवाली सीतानें निश्चयही हरिणीकी समान विलाप कियाहोगा ॥ ११ ॥ हे लक्ष्मण! हम व हँसमुख उदारस्वभाववाली सीता

हे वीर! आप की समान सर्वदर्शी और हितदर्शी मनुष्य गण सचराचर बडीभारी विपद पडनें परभी शोक नहीं करते ॥ १४ ॥ हे नरश्रेष्ठ! आप
भली भांति विचार करकै यथार्थतासे शुभाशुभका विचार कीजिये।आपकी समान महाप्राज्ञ पुरुषगण बुद्धिसे विचार करकै शुभाशुभ
भली भांतिसे जान लेते हैं ॥१५॥ जिनके गुण और दोष जबतक प्रगटदृष्टिमें नहीं आते, तबतक उन सब अध्रुव अर्थात् अस्थिर कर्मोंके अनुष्ठानसे
कभी इष्ट फलकी प्राप्तिकी आशा नहीं होसकती और उनका जानना बिना क्रिया योगके नहीं होता ॥ १६ ॥ हे वीर! आपनें ही प्रथम हमको
अनेक वार इस प्रकारका उपदेश दिया है और आपको उपदेश देने में तो साक्षात् बृहस्पतिजीभी समर्थ नहीं हैं ॥ १७ ॥ हे महाप्राज्ञ! आपकी

त्वद्विधानहिशोचंतिसततंसर्वदर्शनाः ॥ सुमहत्स्वपिकृच्छ्रेषुरामानिर्विण्णदर्शनाः ॥ १४ ॥ तत्त्वतोहिनरश्रेष्ठबुद्ध्यास
मनुचिंतय ॥ बुद्ध्यायुक्तामहाप्राज्ञाविजानंतिशुभाशुभे ॥१५ ॥ अदृष्टगुणदोषाणामध्रुवाणांतुकर्मणाम् ॥ नांतरेण
क्रियांतेषांफलमिष्टंचवर्तते ॥ १६ ॥ मामेवंहिपुरावीरत्वमेवबहुशोक्तवान् ॥ अनुशिष्याद्धिकोनुत्वामपिसाक्षाद्बृह
स्पतिः ॥ १७ ॥ बुद्धिश्चतेमहाप्राज्ञदेवैरपिदुरन्वया ॥ शोकेनाभिप्रसुप्तंतेज्ञानंसंबोधयाम्यहम् ॥ १८ ॥ दिव्यं
चमानुषंचैवमात्मनश्चपराक्रमम् ॥ इक्ष्वाकुवृषभावेक्ष्ययतस्वद्विषतांवधे ॥ १९ ॥ किंतेसर्वविनाशेनकृतेनपुरुषर्ष
भ ॥ तमेवतुरिपुंपापंविज्ञायोद्धर्तुमर्हसि ॥ २० ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेषट्षष्टि
तमःसर्गः ॥ ६६ ॥ ॥ पूर्वजोऽप्युक्तवाक्यस्तुलक्ष्मणेनसुभाषितम् ॥ साराग्राहीमहासारंप्रतिजग्राहराघवः ॥ १ ॥

बुद्धिको देवता लोगभी नहीं पहुँच सकते अब आपकी वह बुद्धि शोकसे इस प्रकार ढक रही है, कि इस समय हम उसको जगा रहे हैं ॥ १८ ॥
हे इक्ष्वाकुप्रवर! आप अपना दिव्य और मानवी पराक्रम विचार शत्रुसंहार करनेंमें यत्न कीजिये ॥ १९ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ! आपको समस्त लोकोंके
संहार करनेंका क्या प्रयोजनहै? आप उसी अपने शत्रुको जानकर उसे विध्वंसकर सीताको बचाइये॥२०॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मिकीये आदि
काव्ये आरण्यकांडे "पंडितज्वालाप्रसाद" मिश्रकृतभाषानुवादे षट्षष्टितमःसर्गः ॥६६ ॥लक्ष्मणजीके इस प्रकार अतिशय सार गर्भ सुन्दर वचन

युक्त शरीरसे अचेतन अवस्थामें विलाप करना आरंभ किया तव न्यायशास्त्रमें स्थितहो अदीन हुये सौमित्र लक्ष्मण उनसे समयानुसार वचन बोले ॥ १८ ॥ हे आर्य ! शोक छोडकर धीरज धारण करकै उत्साहयुक्तहो जानकीजीको ढूंढिये । उत्साही पुरुष संसारी दुष्कर कार्य करनें मेंभी कभी नहीं घबडाते॥१९॥बडे पौरुषी लक्ष्मणजीनें जब ऐसा कहा तब रघुवंशियोंमें उत्तम श्रीरामचन्द्रजीनें उस वचनको चिन्तनीय समझकर न गिना वरन वह एकवारही धीरजको छोडकर फिर महा दुःखमें डूबगये ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आर०त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥ दीनभावापन्न श्रीरामचन्द्रजी दीन वचन कह लक्ष्मणजीसे बोले कि हे लक्ष्मण ! शीघ्र गोदावरी नदीपर जाकर जान आओ ॥ १ ॥

शोकंविसृज्याद्यधृतिंभजस्वसोत्साहताचास्तुविमार्गणेस्याः ॥ उत्साहवंतोहिनरानलोकेसीदंतिकर्मस्वतिदुष्करेषु ॥ १९ ॥ इतीवसौमित्रिमुदग्रपौरुषंब्रुवंतमार्तरघुवंशसत्तमः ॥ नचिंतयामासधृतिंविमुक्तवान्पुनश्चदुःखंमहदप्युपागमत्॥२०॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेत्रिषष्टितमःसर्गः॥६३॥ सदीनोदीनयावाचालक्ष्मणंवाक्यमब्रवीत्॥शीघ्रंलक्ष्मणजानीहिगत्वागोदावरींनदीम् ॥ १ ॥ अपिगोदावरींसीतापद्मान्यानयितुंगता ॥ एवमुक्तस्तुरामेणलक्ष्मणःपुनरेवहि ॥ २ ॥ नदींगोदावरींरम्यांजगामलघुविक्रमः ॥ तांलक्ष्मणस्तीर्थवतींविचित्वारामब्रवीत् ॥ ३ ॥ नैनांपश्यामितीर्थेषुक्रोशतोनशृणोतिमे ॥ कंनुसादेशमापन्नावैदेहीक्लेशनाशिनी ॥ ४ ॥ नहितंवेद्मिवैरामयत्रसातनुमध्यमा ॥ लक्ष्मणस्यवचःश्रुत्वादीनःसंतापमोहितः ॥ ५ ॥

कि सीता कमल फूल लेनेंको तौ वहां नहीं चली गईहैं? जब श्रीरामचंद्रजी नें ऐसा कहा तौ लक्ष्मणजी फिर ॥ २ ॥ शीघ्र २ पग धरकै गोदावरी नदीपर गये, और उस रमणीय घाटवाली गोदावरीके चारों ओर जरा २ करकै ढूंढ भाल रामचंद्रजीसे शीघ्रही आकर कहा ॥ ३ ॥ कि हमनें सबही घाटोंपर ढूंढा परन्तु कहींपर उनको न पाया पुकारा भी परन्तु उन्होंनें न सुना । हे आर्य! जनें कौन देशमें क्लेशहारिणी जानकीजी चली गईहै॥४॥सो उनका जिनका मध्यमस्थान सूक्ष्महै पता हम नहीं जानते लक्ष्मणजीके वचन सुनकर रामचंद्र और भी दीन व संतापसे मोहितहो ॥५॥

इसमें कुछ संशय नहीं है कि इस गृध्ररूपी वनचर निशाचरनेंही जानकीको भक्षण कर लियाहै, वस यह ठीकही ठीक जान पड
ता है यह गृध्र वना वनमें घूमताहै॥ ११ ॥यह राक्षस उन विशालाक्षी सीताजीको भक्षण करके यथा सुखसे विश्राम कर रहाहै ।इस कारण हम सीधे
चलनेवाले अग्निकी समान प्रकाशमान भयंकर बाणोंसे इसका संहारकरेंगे ॥ १२ ॥ श्रीरामचंद्रजी यह कहकर क्रोधित हो समुद्र पर्यन्त
पृथ्वीको कँपाते हुये धनुष पर तीक्ष्ण बाण चढाय उसके देखनेंको चले ॥ १३ ॥ तिसके पीछे पक्षिराज जटायु सफेन रुधिर उगलता हुआ
अतिशय कातर वचनोंसे उन दशरथकुमार श्रीरामचंद्रजीसे बोला ॥१४॥आयुष्मान्! तुम औषधिकी समान जिनको इस महा वनमें खोजते हो, वह

अनेनसीतावैदेहीभक्षितानात्रसंशयः ॥ गृध्ररूपमिदंव्यक्तंरक्षोभ्रमतिकाननम् ॥ ११ ॥ भक्षयित्वाविशालाक्षीमा
स्तेसीतांयथासुखम् ॥ एनंवधिष्येदीप्ताग्रैःशरैर्घोरैरजिह्मगैः ॥ १२ ॥ इत्युक्त्वाऽभ्यपतद्द्रष्टुंसंधायधनुषिक्षुरम् ॥ क्रु
द्धोरामःसमुद्रांतांचालयन्निवमेदिनीम् ॥ १३ ॥ तंदीनदीनयावाचासफेनंरुधिरंवमन् ॥ अभ्यभाषतपक्षीसरामंदश
रथात्मजम् ॥ १४ ॥ यामोषधीमिवायुष्मन्नन्वेषसिमहावने ॥ सादेवीममचप्राणारावणेनोभयंहृतम् ॥ १५ ॥ त्व
याविरहितादेवीलक्ष्मणेनचराघव ॥ ह्रियमाणामयादृष्टारावणेनबलीयसा ॥ १६ ॥ सीतामभ्यवपन्नोऽहंरावणश्चरणे
प्रभो ॥ विध्वंसितरथच्छत्रःपतितोधरणीतले ॥ १७ ॥ एतदस्यधनुर्भग्नमेतेचास्यशरास्तथा ॥ अयमस्यरणेराम
भग्नःसांग्रामिकोरथः॥ १८॥ अयंतुसारथिस्तस्यमत्पक्षनिहतोभुवि ॥ परिश्रांतस्यमेपक्षौछित्त्वाखड्गेनरावणः ॥१९॥

देवी जानकी और हमारे प्राण दोनोंही रावणनें हर लियेहैं ॥ १५॥ हे रघुनंदन! महाबलवान् दशानन आपके और लक्ष्मणजीके आश्रममें नरहनें
पर सूनेसे जानकीको हर ले जाता हुआ हमनें देखाहै ॥ १६॥ उस समय हमनें सीताजीको छुटानेंके लिये सन्मुख हो युद्ध करके उसके रथ और
छत्रको तोड डाला तब रावण पृथ्वीमें गिरा ॥ १७ ॥ यह जो धनुष और बाण टूटे हुये पडे हैं यह उसकेही हैं और रामचंद्रजी! यह उसकाही
संग्राममें काम देनेंवाला रथहै । जो टूटा हुआ पडाहै ॥ १८ ॥ और यह सारथी भी उसीका है जो हमारे पंखोंके प्रहारसे मरकर पृथ्वीपर पडाहै

अब हम मन्दाकिनी नदी जटा स्थान और झरना झरता हुआ यह पर्वत ॥ १४ ॥ इन सबही स्थानोंमें विचरण किया करेंगे। जिस्से कि सीताजीको देखें। हे वीर! यह मृगगण हमको वार २ देखतेहैं ॥ १५ ॥ इनके इशारेसे जान पडताहै कि मानों यह हमसे कुछ कहा चाहतेहैं, लक्ष्मणजीसे ऐसा कह उन मृगोंको देख पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी उन मृगोंसे बोले ॥ १६ ॥ हे मृगो! सीता कहांहैं? यह कहतेही आंसू निकल आये वाणी गद्गद होगई, जब महाराज श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा तो वह सब मृग सहसा उठ खडे हुए ॥१७॥ और जिस दिशाको रावण जानकी जीको हरण कर लेगयाथा? उसी दक्षिण दिशाको मुखकर आकाशकी ओर निहार २ देखनें लगे ॥ १८ ॥ वह सब मृगगण वारंवार उसी दक्षिण

सर्वाण्यनुचरिष्यामियदिसीताहिलभ्यते ॥ एतेमहामृगावीरामामीक्षंतेपुनःपुनः ॥ १५ ॥ वक्तुकामाइवहिमेइंगितान्युपलक्षये ॥ तांस्तुदृष्ट्वानरव्याघ्रोराघवःप्रत्युवाचह ॥ १६ ॥ क्वसीतेतिनिरीक्षन्वैबाष्पसंरुद्धयागिरा ॥ एवमुक्तानरेंद्रेणते मृगाःसहसोत्थिताः ॥ १७ ॥ दक्षिणाभिमुखाःसर्वेदर्शयंतोनभःस्थलम् ॥ मैथिलीह्रियमाणासादिशंयामभ्यपद्यत ॥ १८ ॥ तेनमार्गेणगच्छंतोनिरीक्षंतेनराधिपम् ॥ येनमार्गंचभूमिंचनिरीक्षंतेस्मतेमृगाः ॥ १९ ॥ पुनर्नदंतोगच्छंति लक्ष्मणेनोपलक्षिताः ॥ तेषांवचनसर्वस्वंलक्षयामासचेंगितम् ॥ २० ॥ उवाचलक्ष्मणोधीमान्ज्येष्ठंभ्रातरमार्तवत् क्वसीतेतित्वयापृष्टायदिमेसहसोत्थिताः ॥ २१ ॥ दर्शयंतिक्षितिंचैवदक्षिणांचदिशंमृगाः ॥ साधुगच्छावहेदेवदिशमेतांचनैर्ऋतीम् ॥ २२ ॥ यदितस्यागमःकश्चिदार्यावासाथलक्ष्यते ॥ बाढमित्येवकाकुत्स्थःप्रथितोदक्षिणांदिशम् ॥ २३ ॥

दिशाकी ओर मुखकर, चिंघडते, और फिर श्रीरामचंद्रजीकी ओर देख दक्षिणको दौडते ॥१९॥ मृग गणोंकी यह दशा देख लक्ष्मणजीनें उनके हृदयका वृत्तान्त जान लिया ॥ २० ॥ अत्यन्त धीमान् लक्ष्मणजी अपनें बडे भ्राता रामचंद्रजीसे आरतकी समान बोले कि हे देव! जब आपनें इन मृगोंसे पूछा कि सीता कहां हैं? तब यह सब एक एक उठ खडे होकर ॥ २१ ॥ दक्षिण दिशा और पृथ्वीको दिखाने लगे। इस कारण चलिये हम लोगभी इसी दक्षिण दिशाको चले चलें ॥ २२ ॥ क्योंकि कदाचित् आपी सीता वहां मिलजांय, अथवा उनकी प्राप्तिका कोई

भाग्यके फेरसे घायल होकर पृथ्वीपर शयन कररहेहैं ❀ ॥ २७ ॥ रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी इस प्रकारके अनेक वचन कहते लक्ष्मणजीके पिताकी समान स्नेह दिखातेहुये जटायुको स्पर्श करते हुये ॥ २८ ॥ फिर श्रीरामचंद्रजी पंख कटे रुधिर में डूबे गृध्रराज जटायुको चिपट कर "हमारी प्राणप्रिया मैथिली कहांगई हैं" यह कह कर पृथ्वीमें गिर पडे ॥ २९ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० आ० सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥ श्रीरामचंद्रजी भयंकर राक्षसके प्रहारसे पृथ्वीपर पडे हुये जटायुको देखकर परमबंधु सुमित्रापुत्रसे कहते हुये ॥ १ ॥ निश्चयही यह पक्षी हमारे लिये यत्न करकै हमारे ही लिये राक्षससे मारा जाकर अब प्राणत्याग करताहै॥२॥हेलक्ष्मण! इसका बोल धीमा पडगया, और दृष्टि हीन हो आईहै

इत्येवमुक्त्वाबहुशोराघवःसहलक्ष्मणः ॥ जटायुषंचपस्पर्शपितृस्नेहंनिदर्शयन् ॥ २८ ॥ निकृत्तपक्षंरुधिरावसिक्तंतंगृध्रराजंपरिगृह्यराघवः ॥ क्वमैथिलीप्राणसमागतेतिविमुच्यवाचंनिपपातभूमौ ॥ २९ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआ०आरकां०सप्तषष्टितमःसर्गः ॥ ६७ ॥ रामःप्रेक्ष्यतुतंगृध्रंभुविरौद्रेणपातितम् ॥ सौमित्रिंमित्रसंपन्नमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १ ॥ ममायंनूनमर्थेषुयतमानोविहंगमः ॥ राक्षसेनहतःसंख्येप्राणांस्त्यजतिमत्कृते ॥ २ ॥ अतिखिन्नःशरीरेऽस्मिन्प्राणोलक्ष्मणविद्यते ॥ तथास्वरविहीनोऽयंविक्लवंसमुदीक्षते ॥ ३ ॥ जटायोयदिशक्नोषिवाक्यंव्याहरितुंपुनः ॥ सीतामाख्याहिभद्रंतेवधमाख्याहिचात्मनः ॥ ४ ॥ किंनिमित्तोजहारार्यांरावणस्तस्यकिंमया ॥ अपराधंतुयंदृष्ट्वारावणेनहृताप्रिया ॥ ५ ॥

और प्राणभी अति मात्र व्याकुल होकर कुछेक इसकी देहमें टिक रहेहैं ॥३॥ हे जटायु ! तुम्हारा कल्याणहो, यदि फिर तुममें कुछ बोलनेंकी शक्तिहो तो सीताहरणका वृत्तान्त, और तुम कैसे मारे गये, यह सब कह दीजिये ॥ ४ ॥ और रावणनें किस निमित्त आर्या जानकीको हरण किया?

*कवित्त॥ दीन मलीन अधीन है अंग विहंग परयो क्षिति खिन्न दुखारी॥ राघव दीन दयालुकृपालु को देख दुखी करुणा भयभारी ॥ गीधको गोदमें राख कृपानिधि नैन सरोजनमें भरिवारी ॥वार हि वार सुधारत पंख जटायुकी धूरि जटान सों झारी ॥ १ ॥ गीधको गोदमें राख कृपानिधि निहारैं और नैननसों जलढारैं ॥ टूक हो जातहैं सीता विथाके जो याकी स्नेह कथाको विचारैं ॥ छोड चले केहि हेतु हमें हमें सौंह तिहारीहै संग सिधारैं ॥ यों कहि राम भरे जल नैन जटायुकी धूरि जटानसों झारैं ॥ २ ॥

जीको बताना चाहताथा परन्तु रावणके भयसे नहीं बताया ॥ ३२ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजी उस पर्वतसे फिर बोले, कि तुम हमारे बाणानलकी अनन्त अग्निसे भस्म हो जाओगे ॥ ३३ ॥ फिर तृण वृक्ष व पल्लवादि जल जानेंसे फिर कोई तुम्हारा आश्रय न लेगा हे लक्ष्मण ! आज इस गोदावरी नदीकोभी शुष्क करदेंगे ॥ ३४ ॥ यदि यह सब हमारी चंद्रमुखी सीताको नहीं बताते तो हम ऐसाही करेंगे, इस प्रकारसे श्रीरामचन्द्रजी क्रोधान्वित होकर मानों उनको नेत्रोंसे भस्मही किये देतेथे ॥३५॥ इधर उधर देखते २ श्रीरामचन्द्रजीनें पृथ्वीपर देखा जहांकि राक्षसके चरण चिह्न बनेथे, व उसी स्थानपर भयभीत और रामचन्द्रजीके दर्शनकी इच्छा किये इधर उधर दौडती हुई ॥ ३६ ॥ राक्षसके अनुसरण करनेंसे

ततोदाशरथीरामउवाचचशिलोच्चयम् ॥ ममबाणाग्निनिर्दग्धोभस्मीभूतोभविष्यसि ॥ ३३ ॥ असेव्यःसर्वतश्चैव
निस्तृणद्रुमपल्लवः ॥ इमांवासरितंचाद्यशोषयिष्यामिलक्ष्मण ॥ ३४ ॥ यदिनाख्यातिमेसीतामद्यचंद्रनिभाननाम् ॥
एवंप्ररुषितोरामोदिधक्षन्निवचक्षुषा ॥ ३५ ॥ ददर्शभूमौनिष्क्रांतंराक्षसस्यपदंमहत् ॥ त्रस्तायारामकांक्षिण्याःप्रधावं
त्याइतस्ततः ॥ ३६ ॥ राक्षसेनानुसृप्तायावैदेह्याश्चपदानितु ॥ ससमीक्ष्यपरिक्रांतंसीतायाराक्षसस्यच ॥ ३७ ॥
भग्नंधनुश्चतूणीचविकीर्णबहुधारथम् ॥ संभ्रांतहृदयोरामःशशंसभ्रातरंप्रियम् ॥ ३८ ॥ पश्यलक्ष्मणवैदेह्याःकीर्णाः
कनकबिंदवः ॥ भूषणानांहिसौमित्रेमाल्यानिविविधानिच ॥ ३९ ॥ तप्तबिंदुनिकाशैश्चचित्रैःक्षतजबिंदुभिः ॥ आवृ
तंपश्यसौमित्रेसर्वतोधरणीतलम् ॥ ४० ॥

जानकीजीकेभी पैरोंके चिह्न उन चिह्नोंके बीचमें बनें देखे, सीताजीके व राक्षसके पद एकमें मिले देख श्रीरामचन्द्रजीनें बडा क्रोध किया ॥३७॥ धनुष व तूणीर (तरकस) कोभी टूटा फूटा पृथ्वीपर पडा देख रथकोभी रत्ती २ चूर्ण देख व्याकुलहो चकित होते हुये श्रीरामचन्द्रजी अपने प्यारे भ्रातासे बोले ॥ ३८ ॥ हे लक्ष्मण! देखो! जानकीजीके गहनोंके सुवर्णबिन्दु और बहुत सारी मालायें यहांपर टूटी पडीहैं ॥ ३९ ॥ हे भइया! इस ओर देखो भूमिमें चारों ओर सुवर्ण बिन्दु सम विचित्रित रक्तबिन्दु समूह छिटक रहेहैं यह सीताका तो रुधिर नहींहै ॥ ४० ॥

इसको नहीं जानताहै, इस कारण वंशीका मांस ग्रहण करनेंसे काली मछलीके समान शीघ्र उसका विनाश होगा ॥ १३ ॥ इस मुहूर्तमें खोई हुई वस्तुही नहीं मिलती किन्तु शत्रुका नाशभी होताहै; तुमभी श्रीजानकीजीके प्राप्त होनेके विषयमें और कुछ संदेह न करो। रावणको संग्राममें मारकर शीघ्रही सीताके सहित विहार करनेंको तुम समर्थ होगे ॥ १४ ॥ तिसके पीछे रामचन्द्रजीके साथ संभाषण करनेंवाले सावधान चित्त मरनेंके निकट गिद्धराज जटायुके मुखसे मांस युक्त रुधिर वहनें लगा ॥ १५ ॥ उस समय जटायुनें रावण विश्रवाका पुत्र, और कुवेरका भाईहै केवल इतनाही कहकर दुर्लभ प्राण त्याग करदिये ॥१६॥ श्रीरामचन्द्रजी हाथ जोडे बोलिये! बोलिये! इस प्रकारसे कहनेंलगे,

नचत्वयाव्यथाकार्याजनकस्यसुतांप्रति॥ वैदेह्यारंस्यसेक्षिप्रंहत्वातंरणमूर्धनि ॥ १४ ॥ असंमूढस्यगृध्रस्यरामंप्रत्य
नुभाषतः॥आस्यात्सुस्रावरुधिरंम्रियमाणस्यसामिषम् ॥ १५ ॥ पुत्रोविश्रवसःसाक्षाद्भ्रातावैश्रवणस्यच ॥ इत्युक्त्वादु
र्लभान्प्राणान्मुमोचपतगेश्वरः॥ १६ ॥ ब्रूहिब्रूहीतिरामस्यब्रुवाणस्यकृतांजलेः ॥ त्यक्त्वाशरीरंगृध्रस्यप्राणाजग्मुर्विहा
यसम् ॥ १७ ॥ सनिक्षिप्यशिरोभूमौप्रसार्यचरणौतथा ॥ विक्षिप्यचशरीरंस्वंपपातधरणीतले ॥ १८ ॥ तंगृध्रंप्रेक्ष्यता
म्राक्षंगतासुमचलोपमम् ॥ रामःसुबहुभिर्दुःखैर्दीनःसौमित्रिमब्रवीत् ॥ १९ ॥ बहूनिरक्षसांवासेवर्षाणिवसतासुखम् ॥
अनेनदंडकारण्येविशीर्णमिहपक्षिणा ॥ २० ॥ अनेकवार्षिकोयस्तुचिरकालसमुत्थितः ॥ सोऽयमद्यहतः शेते
कालोहिदुरतिक्रमः ॥ २१ ॥ पश्यलक्ष्मणगृध्रोऽयमुपकारीहतश्चमे ॥ सीतामभ्यवपन्नोहिरावणेनबलीयसा ॥ २२ ॥

उसी समय उनके सामनेही जटायुके प्राण शरीरको त्याग करके आकाशको चलेगये ॥ १७ ॥ उस समय गिद्धराज चरण युगल फैलाय अपना शरीर फटफटाय भूमिमें शिर गिराय पृथ्वीमें गिरपडे ॥ १८ ॥ श्रीरामचन्द्रजी पर्वत समान बडे आकारवाले ताम्रवत् रक्तनेत्र गृध्रको मरा हुआ देखकर दुःखितहो लक्ष्मणजीसे बोले॥१९॥राक्षसोंके वसनें योग्य दंडकारण्यमें बहुत वर्षोंसे यह जटायुजी रहतेथे, सो आज उन्होंने देह त्याग करदिया ॥२०॥ इस प्रकार यह अनेक वर्षतक जीवितथे; वह आज निहत होकर पृथ्वीमें शयन कररहेहैं; हम समझे कि कालको उल्लंघन करना सहज नहींहै,लक्ष्मण! देखो ये गृध्र हमारा कैसा उपकारीहै, सीताजीको उद्धार करनेंमें तैयार होकर रावण दुरात्मा करके यह मारे गयेहैं ॥२१॥२२॥

जिनको देखनेसे भय उत्पन्न होताहै। बाणोंसे पूर्ण किसीके तूणीरभी पृथ्वीमें पडेहैं ॥ ४९॥ देखो! चाबुक और बाग हाथमें लिये किसीका सारथिभी मृतक पडाहै। देखो यह किसी पुरुष राक्षसके जानेंका प्रगट मार्ग बनाहै ॥ ५० ॥ हे शुभदर्शन ! किस कारणसे अतीव कठिन हृदय कामरूप निशाचर गणोंके सहित हमारा पहलेसे शत गुण अधिक वैर होगया! तुम देखलेना कि इस्से उनके जीवनका अंत होगा ॥ ५१ ॥ या तो राक्षसोंनें सीताको हर लिया वा भक्षण कर लिया, अथवा उन तपस्विनीनें प्राणत्याग करदिया होगा, किन्तु जब इस महा अरण्यमें जानकीजी मरणके निकट पहुँची तब पतिव्रत धर्मनेभी उनकी रक्षा न की! ॥ ५२ ॥ हे लक्ष्मण! इस प्रकारसे जब कि जानकी हरी गई और उस समय धर्मनेंभी

प्रतोदाभीषुहस्तोऽयंकस्यवासारथिर्हतः॥पदवीपुरुषस्यैषाव्यक्तंकस्यापिरक्षसः॥५०॥वैरंशतगुणंपश्यममतैर्जीवितांतकम्॥सुघोरहृदयैःसौम्यराक्षसैःकामरूपिभिः ॥५१ ॥ हतामृतावावैदेहीभक्षितावातपस्विनी॥नधर्मस्त्रायतेसीतांह्रियमाणांमहावने ॥ ५२ ॥ भक्षितायांहिवैदेह्यांहृतायामपिलक्ष्मण ॥ केहिलोकेप्रियंकर्तुंशक्ताःसौम्यममेश्वराः ॥ ॥ ५३ ॥ कर्तारमपिलोकानांशूरंकरुणवेदिनम् ॥ अज्ञानादवमन्येरन्सर्वभूतानिलक्ष्मण ॥ ५४ ॥ मृदुंलोकहितेयुक्तंदांतंकरुणवेदिनम् ॥ निर्वीर्यइतिमन्यंतेनूनंमांत्रिदशेश्वराः॥ ५५॥ मांप्राप्यहिगुणोदोषःसंवृत्तःपश्यलक्ष्मण॥ अद्यैवसर्वभूतानांरक्षसामभवायच ॥ ५६ ॥

उनकी रक्षा न की तब संसारमें ईश्वरीय शक्ति सम्पन्न और कौन पुरुष हमारा प्रिय करनेंमें समर्थ होगा? ॥ ५३ ॥ प्राणीगण इनही सब कारणोंसे अज्ञान प्रयुक्त समस्त लोकोंके कर्त्ता परम दयालु सुरवर परमेश्वरको नहीं मानतेहैं ॥ ५४ ॥ हमारा स्वभाव अतिशय कोमलहै, और सर्वदाही हम सब लोकोंका हित कार्य करतेहैं और करुणा सहित उनका शुभाशुभ विधान करतेहैं परन्तु हम सीताका उद्धार नकरसके, इस कारण इन्द्रादि देवता गण निश्चयही हमको वीर्य रहित समझेंगे ॥ ५५ ॥ हे लक्ष्मण! विचार करके देखो! कि हमको प्राप्त होकर दया दाक्षिण्यादि समस्त गुण दोष रूपमें बदल गये इन दोषोंसे हम छिप गये, अब कोई हमको पराक्रमवान् नहीं समझता इस्से अभी सब प्राणी व राक्षसोंका नाश करनेंके लिये॥५६॥

रामचन्द्रजी सुमित्रानन्दन लक्ष्मणजीके साथ वनमें गये और बडे आकारवाले मृगोंका वधकर उनका मांसले फिर वहां आये जहां जटायुको दाह
कियाथा । वहां आ जटायुको पिंड देनेंके लिये तृण फैलाये ॥ ३२ ॥और उस समस्त मांसके टुकडे २ कर डाले और उनके पिंड बना उनको हरी
घासपर रख जटायुके अर्थ प्रदान किये ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणलोग प्रेत पुरुषकी स्वर्ग प्राप्ति होनेंके लिये जिन मंत्रोंका जप किया करते हैं, श्रीरामचन्द्रजी
जटायुको शीघ्र स्वर्ग प्राप्त करानेंके लिये उन्हीं समस्त मंत्रोंका जप करनेंलगे ॥ ३४ ॥ तिसके पीछे राजकुमार श्रीरामचन्द्र व लक्ष्मणजी दोनों
जन गोदावरी नदीपर जाकर जटायुके लियें तर्पण करते हुए ॥ ३५ ॥ वह दोनों जन स्नान करके शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार जटायुको

रोहिमांसानिचोद्धृत्यपेशीकृत्वामहायशाः ॥ शकुनायददौरामोरम्येहरितशाद्वले ॥ ३२ ॥ यत्तत्प्रेतस्यमर्त्यस्यकथ
यंतिद्विजातयः ॥ तत्स्वर्गगमनंक्षिप्रंतस्यरामोजजापह ॥ ३४ ॥ ततोगोदावरींगत्वानदींनरवरात्मजौ ॥ उदकंच
क्रतुस्तस्मैगृध्रराजायताबुभौ ॥ ३५ ॥ शास्त्रदृष्टेनविधिनाजलंगृध्रायराघवौ ॥ स्नात्वातौगृध्रराजायउदकंचक्रतु
स्तदा ॥ ३६ ॥ सगृध्रराजःकृतवान्यशस्करंसुदुष्करंकर्मरणेनिपातितः ॥ महर्षिकल्पेनचसंस्कृतस्तदाजगामपुण्यां
गतिमात्मनःशुभाम् ॥ ३७॥ कृतोदकौतावपिपक्षिसत्तमेस्थिरांचबुद्धिंप्रणिधायजग्मतुः ॥ प्रवेश्यसीताधिगमेततो
मनोवनंसुरेंद्राविवविष्णुवासवौ ॥ ३८ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० आर० अष्टषष्टितमःसर्गः ॥ ६८ ॥ कृत्वैवमुद
कंतस्मैप्रस्थितौराघवौतदा ॥ अवेक्षंतौवनेसीतांजग्मतुःपश्चिमांदिशम् ॥ १ ॥

जल देकर पिंड व तिलाञ्जलि देते हुए ॥ ३६ ॥ गृध्रराज जटायु दुष्करकार्य करते हुए युद्धमें मारे जाकर, और महर्षिसदृश श्रीरामचन्द्रजीके
संस्कारित हो परम पवित्र पुण्य गतिको प्राप्त हुए ॥ ३७ ॥ तव राम और लक्ष्मण दोनों जन जलादि क्रिया समाप्त करकै पाक्षिश्रेष्ठ
जटायुके प्रति पितृबुद्धि स्थापित कर वहांसे प्रस्थान करते हुए, और सीताजीके खोजनेंमें मन लगाकर सुरश्रेष्ठ विष्णु और इन्द्रजीकी समान वनमें
प्रवेश करतेहुए॥३८॥इ० श्रीम०वा०आ०आ०अष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥ जब पक्षिराज जटायुकी जलक्रिया होचुकी तब श्रीरामचन्द्र व लक्ष्म

हुए बाणोंसे सब संसार पिशाच और राक्षसोंसे रहित कर देंगे ॥ ६५ ॥ इस संसारमें कोईभी हमारे इन बाणोंको निवारण नहीं करसकैगा, आज देवता लोग देखेंगे कि समूहके समूह बाण हम करके रोष और क्रोधमें भरकर चलाये हुए कितनी २ दूरपर जाकर गिरते हैं न देवता न दैत्य न पिशाच न राक्षस ॥ ६६ ॥ जब हमारे क्रोधसे तीनों लोकोंका नाश हुआ तब कोईभी रक्षा न पावैगा ॥ ६७ ॥ अधिक क्या कहैं, सुर, असुर, यक्ष और राक्षसोंके समस्तही लोक हमारे बाण जालसे खंड २ होकर गिरेंगे आज हम बाणोंको छोडकर समस्त लोकको मर्यादा शून्य करेंगे॥ ६८॥ प्रिया वैदेहीजी मरही गईहों अथवा हरही गईहों सो किसी अवस्थामें हों यदि ब्रह्मादि देव गण उने हमको न देदें ॥ ६९ ॥ हम चराचर सहित इस

द्रक्ष्यंत्यद्यविमुक्तानाममर्षाद्दूरगामिनाम् ॥ नैवदेवानदैतेयानपिशाचानराक्षसाः ॥ ६६ ॥ भविष्यंतिममक्रोधात्रैलौक्येऽपिप्रणाशिते ॥ देवदानवयक्षाणांलोकायेरक्षसामपि ॥ ६७ ॥ बहुधानिपतिष्यंतिबाणौघैःशकलीकृताः ॥ निर्मर्यादानिमान्लोकान्करिष्याम्यद्यसायकैः ॥६८॥ हृतांमृतांवासौमित्रेनदास्यंतिममेश्वराः ॥ तथारूपांहिवैदेहींनदास्यंतियदिप्रियाम् ॥ ६९ ॥ नाशयामिजगत्सर्वंत्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ यावद्दर्शनमस्यावैतापयामिचसायकैः ॥ ७० ॥ इत्युक्त्वाक्रोधताम्राक्षःस्फुरमाणोष्ठसंपुटः ॥ वल्कलाजिनमाबध्यजटाभारमबंधयत् ॥ ७१ ॥ तस्यक्रुद्धस्यरामस्यतथाभूतस्यधीमतः ॥ त्रिपुरंजघ्नुषःपूर्वंरुद्रस्येवबभौ तनुः ॥ ७२ ॥ लक्ष्मणादथचादायरामोनिष्पीड्यकार्मुकम् ॥ शरमादायसंदीप्तंघोरमाशीविषोपमम् ॥ ७३ ॥

सब जगत्का विनाश कर डालेंगे और जबतक हम सीताको न देख पावेंगे तबतक बाणोंसे चराचरको संतापित करेंगे ॥ ७० ॥ यह कह कर क्रोधसे श्रीरामचन्द्रजीकी आंखें लाल २ हो आईं, होठ फडकने लगे, श्रीरामचन्द्रजीनें चीर वल्कल मृगचर्म और जटाजूट कस कर बांधा ॥ ७१ ॥ उस कालमें धीमान् रामचन्द्रजीनें क्रोधित होकर जब ऐसे कार्यका अनुष्ठान किया, तब उनका देह ऐसा प्रतिभात होनें लगा कि जैसे पूर्व कालमें रुद्रजी त्रिपुर वध करनेंको तैयार हुएथे ॥ ७२ ॥ अनन्तर उन्होंनें लक्ष्मणजीके निकटसे धनुष ग्रहण कर और दृढ रूपसे धारण करके सर्प विष सदृश

गुफामें नित्यही अंधकार रहताथा ॥ १० ॥ श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीनें उसके निकट पहुँचकर उसम भयंकर आकारवाली और विकृत वदन
एक राक्षसीको देखा ॥ ११ ॥ राक्षसी देखनेंमें अति भयंकरीथी, खाल अति कडीथी ॥ १२ ॥ स्वभाव अति भयंकरथा बडे२ मृगोंको वह भ
क्षण करती, रूप बडा भयावना शिरके बाल खुले, ऐसी उस राक्षसीको दोनों भाइयोंनें देखा ॥ १३ ॥ तिसके पीछे वह निशाचरी रामचंद्रजीके
आगे खडे हुये लक्ष्मणजीके निकट आकर कहनें लगी कि "आओ हम तुमसे विहार करें" ऐसा कहकर उसनें लक्ष्मणजीको ग्रहण किया ॥१४॥
और वह राक्षसी उनको चिपटायकर कहनेंलगी कि हे नाथ! हमारा अयोमुखी नामहै, अब तुमको परम लाभ हुआ और तुमही हमारे प्यारे

आसाद्यचनरव्याघ्रौदर्यास्तस्याविदूरतः ॥ ददर्शतुर्महारूपांराक्षसींविकृताननाम् ॥ ११ ॥ भयदामल्पसत्त्वा
नांबीभत्सांरौद्रदर्शनाम् ॥ लंबोदरींतीक्ष्णदंष्ट्रांकरालींपरुषत्वचम् ॥ १२ ॥ भक्षयंतींमृगान्भीमान्विकटांमुक्त
मूर्धजाम् ॥ अवैक्षतांतुतौतत्रभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ १३ ॥ सासमासाद्यतौवीरौव्रजंतंभ्रातुरग्रतः॥ एहिरंस्यावहे
त्युक्त्वासमालंभतलक्ष्मणम् ॥ १४ ॥ उवाचचैनंवचनंसौमित्रिमुपगृह्यच ॥ अहंत्वयोमुखीनामलाभस्तेत्वमसिप्रि
यः ॥ १५ ॥ नाथपर्वतदुर्गेषुनदीनांपुलिनेषुच ॥ आयुश्चिरमिदंवीरत्वंमयासहरंस्यसे ॥ १६ ॥ एवमुक्तस्तुकुपितःखड्ग
मुद्धृत्यलक्ष्मणः ॥ कर्णनासस्तनंतस्यानिचकर्तारिसूदनः ॥ १७ ॥ कर्णनासेनिकृत्तेतुविस्वरंविननादसा ॥ यथागतं
प्रदुद्रावराक्षसीघोरदर्शना ॥१८॥ तस्यांगतायांगहनंव्रजंतौवनमोजसा॥आसेदतुरमित्रघ्नौभ्रातरौरामलक्ष्मणौ॥१९॥

हुये ॥ १५ ॥ हे नाथ! हमारे सहित सब जीवनतक नदियोंके किनारों पर और नाना प्रकारके पर्वतोंपर तुम विहार किया करना ॥१६॥ शत्रुओंका
नाश करनेंवाले लक्ष्मणजीनें इस बातसे क्रोधित होकर खड्ग उठाकर उस राक्षसीके नाक कान व स्तन काट डाले ॥ १७ ॥ जब उसके कान नाक
व स्तन काट डाले गये तब वह घोरदर्शनवाली राक्षसी विकट शब्दसे चिल्लाकर शब्द करतीहुई जहांसे आईथी वहांको दौडी ॥ १८ ॥ जब वह
वहांसे भाग गई तो महातेजमान शत्रुओंके मारनेंवाले श्रीराम लक्ष्मण दोनों भाई वेग सहित चलतेहुए एक गहन वनमें पहुँचे ॥ १९ ॥

वश होकर अपना स्वभाव छोडना आपको योग्य नहीं है ॥ ४ ॥ चन्द्रमामें श्री, वायुमें गति, पृथ्वीमें क्षमा, सूर्यमें दीप्ति, इन चारोंमें यह चार पदार्थ नित्य हैं और आपमें यश सहित यह चारों पदार्थ विद्यमान हैं ॥ ५ ॥ एक जनके अपराधसे समस्त लोकको हनन करना आपको उचित नहीं है, निश्चयही हम जानते हैं कि यह जो रथ टूटा पडा है यह एकही जनका है बहुतोंका नहीं ॥ ६ ॥ किन्तु यह जुआ युक्त और परिच्छेद सहित रथ किसका है, और क्योंकर टूटा है इसको हम नहीं जानते, देखिये यह स्थान खुरियोंसे खुद खुदाय रहा है और रुधिरसे भीगनेंके कारण अतिशय भयंकर हो रहाहै ॥ ७ ॥ निश्चयही यहांपर संग्राम हुआहै ॥ और इन सब कारणोंसे यहभी बोध होताहै कि एक रथीके सहित और किसी पशुका युद्ध

चंद्रेलक्ष्मीःप्रभासूर्येगतिर्वायौभुविक्षमा ॥ एतच्चनियतंनित्यंत्वयिचानुत्तमंयशः ॥ ५ ॥ एकस्यानापराधेनलोकान्हंतुंत्वमर्हसि ॥ ननुजानामिकस्यायंभग्नःसांग्रामिकोरथः ॥ ६ ॥ केनवाकस्यवाहेतोःसंयुगःसपरिच्छदः ॥ खुरनेमिक्षतश्चायंसिक्तोरुधिरबिंदुभिः ॥ ७ ॥ देशोनिर्वृत्तसंग्रामःसुघोरःपार्थिवात्मज ॥ एकस्यतुविमर्दोऽयंनद्वयोर्वदतांवर ॥ ८ ॥ नहिवृत्तंहिपश्यामिबलस्यमहतःपदम् ॥ नैकस्यतुकृतेलोकान्विनाशयितुमर्हसि ॥ ९ ॥ युक्तदंडाहिमृदवःप्रशांतावसुधाधिपाः ॥ सदात्वंसर्वभूतानांशरण्यःपरमागतिः ॥ १० ॥ कोनुदारप्रणाशंतेसाधुमन्येतराघव ॥ सरितःसागराःशैलादेवगंधर्वदानवाः ॥ ११ ॥ नालंतेविप्रियंकर्तुंदीक्षितस्येवसाधवः ॥ येनराजन्हृतासीतातमन्वेषितुमर्हसि ॥ १२ ॥

हुआहै दोजनोंका युद्ध नहीं हुआहै ॥ ८ ॥ बडी भारी सेनाके चरण चिह्न यहां पर नहीं दृष्टि आते इसलिये एक जनके अपराधसे समस्त लोकोंको विनाश करना आपको उचित नहींहै ॥ ९ ॥ राजा लोग सचराचरपर अतिशय शान्त और मृदु स्वभाववाले होतेहैं, और अपराधानुसार दंड दिया करतेहैं आपभी सर्वदा सब भूतोंके शरण्य और परम गतिहैं ॥ १० ॥ हे रघुनंदन! संसारमें कौन पुरुष आपकी भार्याका वियोग आपसे अच्छा समझताहै कारण कि नदी, समुद्र, पर्वत, देवता, गन्धर्व, दानव, सरित सागर ॥ ११ ॥ और शैल कोईभी आपका अप्रिय नहीं करसकते, जैसे यजमानका अप्रिय साधुलोग नहीं कर सकते । हे राजन्! जिसनें सीताको हरण कियाहै इस समय उस जनकी खोज करना आपका कर्त्तव्य हुआहै ॥ १२ ॥

द्रजीके आगे आनकर खडा होगया,उसका मस्तक आर गर्दन नहींथी शरीर बहुत बडाथा,मुख पेट में था ॥२७॥रुवें भालेके समान तीखे और सीधे थे
आकार उसका महा पर्वतकी समान ऊंचाथा स्वर मेघके गर्जनेंकी तुल्य, रंग नीले मेघकी समान, व स्वभाव और आकार उसका बडा भयंकरथा[illegible]ट॥
और उसका नेत्र यह अग्निकी ज्वालाके समान प्रदीप्त और बडी२ धूमिली पलकें इस पर थीं और यह नेत्र बडाभी बहुत था ॥ २९ ॥ और उस
दूसरा नेत्र छातीमें था यह नेत्र अतिशय भयंकर और तीक्ष्ण दिखावका था, उसका मुखभी बडा भारीथा और उसके मुखमें बडे २ दांतोंकी पंक्ति
यांथीं, वह उस मुखसे मानो लीलेही लेताथा ॥ ३० ॥ और वह अपनी चार २ कोशकी लंबी दोनों बांहोंसे पकड २ ऋक्ष, सिंह, मृगादिकोंको

रोमभिर्निशितैस्तीक्ष्णैर्महागिरिमिवोच्छ्रितम् ॥ नीलमेघनिभंरौद्रंमेघस्तनितनिःस्वनम् ॥ २८ ॥ अग्निज्वाला
निकाशेनललाटस्थेनदीप्यता ॥ महापक्ष्मेणपिंगेनविपुलेनायतेनच ॥ २९ ॥ एकेनोरसिघोरेणनयनेनसुदर्शि
ना ॥ महादंष्ट्रोपपन्नंतंलेलिहानंमहामुखम् ॥ ३० ॥ भक्षयंतंमहाघोरानृक्षासिंहमृगद्विजान् ॥ घोरौभुजौविकु
र्वाणमुभौयोजनमायतौ ॥ ३१ ॥ कराभ्यांविविधान्गृह्यऋक्षान्पक्षिगणान्मृगान् ॥ आकर्षंतंविकर्षंतमनेकान्मृगयू
थपान् ॥ ३२ ॥ स्थितमावृत्यपंथानंतयोर्भ्रात्रोःप्रपन्नयोः ॥ अथतंसमतिक्रम्यक्रोशमात्रंददर्शतुः ॥ ३३ ॥ महांतंदा
रुणंभीमंकबंधंभुजसंवृतम् ॥ कबंधमिवसंस्थानादतिघोरप्रदर्शनम् ॥ ३४ ॥ समहाबाहुरत्यर्थंप्रसार्यविपुलौभुजौ ॥
जग्राहसहितावेषराघवौपीडयन्बलात् ॥ ३५ ॥

भक्षण करता चला आताथा ॥ ३१ ॥ वह अपनी दोनों बांहोंसे विविध प्रकारके मृग पक्षी, ऋक्ष और मृगयूथोंको पकडता और अपने मुखमें
छोडताथा ॥ ३२ ॥ जिस मार्गसे होकर राम लक्ष्मणजीको जानाथा, वह उसीको रोके हुये पडाथा, तब राम लक्ष्मणजीनें घूमकर एक कोश
पर जाकर देखा तो ॥ ३३ ॥ अति घोर दर्शन दारुण भयंकराकार बडे शरीरवाला कवन्ध दिखलाई पडा वह अपनी दोनों भुजाओंसे जीव
जन्तुओंको सब प्रकारसे पकडताथा और उसके शरीरकी गठन देखनेंसे ठीकही वह कवंध ज्ञात होताथा ॥ ३४ ॥ फिर महाबलवान कवन्धने

हे काकुत्स्थ ! यदि आपही इस आई हुई विपदको न झेलेंगे तौ अल्प प्राण मनुष्य कौन सह सकेगा ? ॥ ५ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! आप अपनें चित्तको सँभालिये। विपद अग्निकी समान सबही प्राणियोंको स्पर्श करतीहै किन्तु क्षण कालमेंही दूर चली जातीहै ॥ ६ ॥ लोकका स्वभावही यहहै। देखिये नहुषपुत्र ययाति, इन्द्रपदवी प्राप्त करकेभी अनीतिसे स्वर्गसे च्युत हुआथा ॥ ७ ॥ जो हमारे पिताजीके पुरोहितहैं, उन महर्षि वशिष्ठजीनें एक दिनमें शतपुत्र उत्पन्न किये, और एकदिनमेंही वह सब नष्ट होगये ॥ ८ ॥ हे कौशलेश्वर ! जगन्माता, सर्व लोकके नमस्कार करनें योग्य इस पृथ्वीकाभी चलायमानहोना पाया जाताहै अर्थात् भूकंपादि दुःख इसको हुआ करतेहैं ॥ ९ ॥

यदिदुःखमिदंप्राप्तंकाकुत्स्थंनसहिष्यसे ॥ प्राकृतश्चाल्पसत्त्वश्चइतरःकःसहिष्यति ॥ ५ ॥ आश्वसिहिनरश्रेष्ठप्राणिनःकस्यनापदः ॥ संस्पृशंत्यग्निवद्राजन्क्षणेनव्यपयांतिच ॥ ६ ॥ लोकस्वभावएवैषययातिर्नहुषात्मजः ॥ गतःशक्रेणसालोक्यमनयस्तंसमस्पृशत् ॥ ७ ॥ महर्षियोंवसिष्ठस्तुयःपितुर्नःपुरोहितः ॥ अह्नापुत्रशतंजज्ञेतथैवास्यपुनर्हतम् ॥८॥ याचेयंजगतोमातासर्वलोकनमस्कृता ॥ अस्याश्चचलनंभूमेर्दृश्यतेकोशलेश्वर ॥ ९ ॥ यौधर्मौजगतोनेत्रौयत्रसर्वंप्रतिष्ठितम् ॥ आदित्यचंद्रौग्रहणमभ्युपेतौमहाबलौ ॥ १० ॥ सुमहांत्यपिभूतानिदेवाश्चपुरुषर्षभ ॥ नदैवस्यप्रमुंचंतिसर्वभूतानिदेहिनः ॥ ११ ॥ शक्रादिष्वपिदेवेषुवर्तमानौनयानयौ ॥ श्रूयेतेनरशार्दूलनत्वंव्यथितुमर्हसि ॥ १२ ॥ मृतायामपिवैदेह्यांनष्टायामपिराघव ॥ शोचितुंनार्हसेवीरयथान्यःप्राकृतस्तथा ॥ १३ ॥

जो सूर्य चन्द्रमा कि जगत्के नेत्र और साक्षात् धर्मस्वरूप हैं,और जिनमें समस्त संसार टिका हुआ है उन महाबलवान् सूर्य चन्द्रमाकाभी ग्रहण हो जाता है ॥ १० ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ! इस प्रकारसे अति महत् भूत और देवतालोगभी जब दैवके वश हैं तब साधारण शरीर धारी प्राणियोंकी क्या गिनती है? ॥ ११ ॥ अधिक क्या कहैं इन्द्रादि देवताओंमेंभी नीति और अनीति सुख दुःख सुना जाया करता है, इस्से हे नरसिंह! आप अब व्यथित न हूजिये॥१२॥हे रघुनंदन!यदि जानकीजी हरी गई हों, वा मृतक होगईहों तौभी साधारण पुरुषोंकी समान आपको शोक करना योग्य नहीं है१३॥

यहांपर क्या कार्यहै, और तुम किस कारणसे यहांपर आयेहो सो कहो॥४४॥ हम भूखे होकर यहांपर टिकरहेहैं सो तुम धनुष बाण और खड्ग धारण किये हुये तेज सींगवाले बैलकी समान यहांपर हमारे मुखमें आय पडेहो ॥ ४५ ॥ परन्तु अब हमारे मुखमें पड तुम्हारा जीवित रहना दुर्लभहै दुरात्मा कबंधके यह वचन सुनकर ॥ ४६ ॥ श्रीरामचंद्रजी वदन सुखाकर लक्ष्मणजीसे बोले कि यह सत्यविक्रम ! प्रिया सीताजीके हरणसे विषम विपद आपडी है, सो इस्से निश्चयही प्राण संहार होनेंकी संभावनाहै तिसके ऊपर फिर वारंवार यह कष्टके ऊपर कष्ट पड रहे हैं ॥ ४७ ॥ अब तो यह महा दुःख हमको प्राप्त हुआ है, अब प्रियाके पानेकीभी आश त्याग करैं। हे लक्ष्मण! सब प्राणियोंमें कालका वडा वीर्य दिखलाई देता है ॥४८॥ हे नरश्रेष्ठ लक्ष्मण! देखो हम तुम दोनों कालकेही प्रभावसे कैसे दुःखमें पडे हैं, प्राणियोंको दुःख देनेंमें कालको कुछभी डर नहीं है ॥४९॥ कालके वश हो वडे शूरवीर अस्त्र शस्त्रोंके जाननेंवाले पुरुषभी रेतेसे वनाये हुये पुलकी समान संग्राममें खस जाते हैं ॥ ५० ॥ सत्य और अनतिक्रमणीय दृढविक्रमसम्पन्न, प्रतापवान महायशस्वी दशरथनंदन बुद्धिमान श्रीरामचन्द्रजीनें लक्ष्मणजीको देख ऐसा कहते २ ज्ञानके प्रभावसे अपने चित्तको स्थिर किया ॥ ५१ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आदिकाव्ये आरण्यकांडे एकोनसप्ततितमः सर्गः॥ ६९ ॥

इमंदेशमनुप्राप्तौक्षुधार्तस्येहतिष्ठतः॥ सबाणचापखड्गौचतीक्ष्णशृंगाविवर्षभौ ॥ ४५ ॥ मांतूर्णमनुसंप्राप्तौदुर्लभंजीवितंहिवाम् ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाकबंधस्यदुरात्मनः॥ ४६ ॥ उवाचलक्ष्मणंरामोमुखेनपरिशुष्यता॥कृच्छ्रात्कृच्छ्रतरंप्राप्यदारुणंसत्यविक्रम ॥ ४७ ॥ व्यसनंजीवितांतायप्राप्तमप्राप्यतांप्रियाम् ॥ कालस्यसुमहद्वीर्यंसर्वभूतेषुलक्ष्मण ॥ ४८ ॥ त्वांचमांचनरव्याघ्रव्यसनैःपश्यमोहितौ ॥ नहिभारोऽस्तिदैवस्यसर्वभूतेषुलक्ष्मण ॥ ४९ ॥ शूराश्चबलवंतश्चकृतास्त्राश्चरणाजिरे ॥ कालाभिपन्नाःसीदंतियथावालुकसेतवः॥ ५० इतिब्रुवाणोदृढसत्यविक्रमोमहायशा दाशरथिःप्रतापवान् ॥ अवेक्ष्यसौमित्रिमुदग्रविक्रमःस्थिरांतदास्वांमतिमात्मनाकरोत् ॥ ५१ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा०आ० आर०एकोनसप्ततितमःसर्गः ॥ ६९ ॥ ॥ ६९ ॥ ॥

कहनें पर सारके ग्रहण करनेंवाले महाबाहु रामचन्द्रजीनें उनको ग्रहण किया॥१॥ तिसके पीछे वह अपना बढा हुआ क्रोध शान्तकर विचित्र धनुष धारण करके लक्ष्मणजीसे कहनें लगे॥२॥ हे वत्स! हम इस समय कहां जांय क्या करें, और किस उपायसे जानकीको प्राप्त होवैं? सो तुम इसका विचार करो॥३॥तब लक्ष्मणजी आति संतापित रामचन्द्रजीसे बोले कि इस जनस्थानकोही ढूंढना और खोज करना आपको उचित है॥४॥ बहुत सारे राक्षसों करके समाकीर्ण और विविध भांतिके लता वृक्षोंसे युक्त इस जनस्थानमें अनेक गिरि गुहा कंदरा॥५॥ पत्थरोंकी चटानें और अनेक जाति वाले मृग गणोंसे पूर्ण गुफायें किन्नर व गन्धर्व गणोंके फिरनेंके स्थान और भवन जहां बहुत सारे हैं॥६॥ सो आप हमारे सहित साव

सनिगृह्यमहाबाहुःप्रवृद्धंरोषमात्मनः ॥ अवष्टभ्यधनुश्चित्रंरामोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ २ ॥ किंकरिष्यावहेवत्स
क्वावागच्छावलक्ष्मण ॥ केनोपायेनपश्यावःसीतामिहविचिंतय ॥ ३ ॥ तंतथापरितापार्तंलक्ष्मणोवाक्यमब्रवीत् ॥
इदमेवजनस्थानंत्वमन्वेषितुमर्हसि ॥ ४ ॥ राक्षसैर्बहुभिःकीर्णंनानाद्रुमलतायुतम् ॥ संतीहगिरिदुर्गाणिनिर्दराः
कंदराणिच ॥ ५ ॥ गुहाश्चविविधाघोरानानामृगगणाकुलाः ॥ आवासाःकिन्नराणांचगंधर्वभवनानिच ॥ ६ ॥
तानियुक्तोमयासार्धंसमन्वेषितुमर्हसि ॥ त्वद्विधाबुद्धिसंपन्नामहात्मानोनरर्षभाः ॥ ७ ॥ आपत्सुनप्रकंपंतेवायुवेगैरि
वाचलाः ॥ इत्युक्तस्तद्वनंसर्वंविचचारसलक्ष्मणः ॥ ८ ॥ क्रुद्धोरामःशरंघोरंसंधायधनुषिक्षुरम् ॥ ततःपर्वतकूटाभं
महाभागंद्विजोत्तमम् ॥ ९ ॥ ददर्शपतितंभूमौक्षतजार्द्रंजटायुषम् ॥ तंदृष्ट्वागिरिशृंगाभंरामोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ १० ॥

धान होकर इन सब जगहको ढूंढ लीजिये, आपकी समान बुद्धिसम्पन्न महात्मा पुरुषोत्तम॥७॥ आपदके समय कभी नहीं विचलते, जैसे वायुके वेगसे पर्वत नहीं कांपते यह सुन श्रीरामचन्द्रजीनें लक्ष्मणजीके साथ समस्त बन खोजा॥८॥ उस समय श्रीरामचन्द्रजीनें बडा कोप करके पैनी धारवाला भयंकर बाणभी धनुषपर चढायाथा, वहां जाते २ पर्वतकी समान आकारवाला बडा भाग्यवान् पक्षी श्रेष्ठ॥९॥ जटायुको पृथ्वीपर पडा और रुधिरसे लिपटा हुआ देखा उसको पर्वतके शृंगकी समान आकारवाला देख श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीसे बोले॥१०॥

जब बाहें काट डालीं गई तब भयंकर शब्द करता हुआ महाबाहु कबन्ध मेघकी समान घोर शब्द करके गगनमण्डल और दशोंदिशाओं को अपने शब्दसे भर देता हुआ गिर पडा ॥ १० ॥ फिर अपनी दोनों भुजा ओंको कटा हुआ देखकर दानव कबंध रुधिरसे डूबा हुआ दोनों भाइयोंसे बोला कि तुम कौनहो? ॥ ११ ॥ जब कबन्धनें इस प्रकारसे पूछा तब महाबलवान् शुभ लक्षण युक्त काकुत्स्थ लक्ष्मणजी कबंधसे बोले ॥१२॥ यह इक्ष्वाकु वंशमें उत्पन्न हुए हैं और श्रीराम नामसे यह लोकमें विख्यात हैं और हम इनके छोटे भाई हमारा नाम लक्ष्मण है ॥१३॥ सौतेली जननी कैकेयी करके इनकी राज्य प्राप्ति रोकी जाकर सर्व त्यागी करा यह वनको पठाये गये सो यह हमारे और अपनी भार्याके साथ वनमें विचरण करतेथे

सपपातमहाबाहुश्छिन्नबाहुर्महास्वनः ॥ खंचगांचदिशश्चैवनादयन्जलदोयथा ॥ १० ॥ सनिकृत्तौभुजौदृष्ट्वा शोणितौघपरिप्लुतः ॥ दीनःपप्रच्छतौवीरौकौयुवामितिदानवः ॥ ११ ॥ इतितस्यब्रुवाणस्यलक्ष्मणःशुभलक्षणः ॥ शशंसतस्यकाकुत्स्थंकबंधस्यमहाबलः ॥ १२ ॥ अयमिक्ष्वाकुदायादोरामोनामजनैःश्रुतः ॥ तस्यैवावरजंविद्धिभ्रातरंमांचलक्ष्मणम् ॥ १३ ॥ मात्राप्रतिहतेराज्येरामःप्रव्राजितोवनम् ॥ मयासहचरत्येषभार्ययाचमहद्वनम् ॥ १४ ॥ अस्यदेवप्रभावस्यवसतोविजनेवने ॥ रक्षसापहृताभार्यायामिच्छंताविहागतौ ॥ १५ ॥ त्वंतुकोवाकिमर्थंवाकबंधसदृशोवने ॥ आस्येनोरसिदीप्तेनभग्नजंघोविचेष्टसे ॥ १६ ॥ एवमुक्तःकबंधस्तुलक्ष्मणेनोत्तरंवचः ॥ उवाचवचनंप्रीतस्तदिंद्रवचनंस्मरन् ॥ १७ ॥ स्वागतंवांनरव्याघ्रौदिष्ट्यापश्यामिवामहम् ॥ दिष्ट्याचेमौनिकृत्तौमेयुवाभ्यांबाहुबंधनौ ॥ १८ ॥

॥ १४ ॥ कि वनमें वास करनेंके समय इन देव तुल्य प्रतापशाली श्रीरामचन्द्रजीकी भार्या हरी गई हैं सो उनको ही ढूँढतेर हम लोग यहां पर आये हैं॥१५॥और तुम कौन हो? जो कवन्धकी समान वनमें घूमते हो! तुम्हारी जांघ टूटी हुई हैं, और अतिशय दीप्तयुक्त वदन मंडल छातीमें लगा हुआ है ॥ १६ ॥ जब लक्ष्मणजीनें ऐसा कहा तब इन्द्रके वचनका स्मरण करता हुआ कवन्ध प्रसन्न होकर बोला ॥ १७ ॥ कि आप लोग दोनों ही पुरुषोंमें श्रेष्ठहैं। आप अच्छी तरहसे तो आये आज भाग्यसे ही हमनें आप लोगोंको देखाहै और आपनें जो हमारे बंधन रूप हाथ काट डाले

जब हम बूढे होनेंके कारण लडते २ थक गये तब राक्षसनाथ रावणनें खड्ग से हमारे पंख काट डाले ॥ १९ ॥ और सीताजीको लेकर आकाश मार्गमें चला गया, प्रथम तो हम रावण करकै मारेही गये हैं, सो इस समय हमारा वध करना आपको उचित नहीं है ॥ २० ॥ श्रीरामचंद्रजी गिद्धके मुखसे सीताजीके विषयक प्रिय वचन सुनतेही महा धनुष को त्याग करके आलिंगन करलेते हुये ॥ २१ ॥ और शोकसे अवश हो पृथ्वी में गिर कर लक्ष्मणजीके सहित रोदन करनें लगे । यद्यपि श्रीरामचंद्रजी महावीरथे तथापि दूना संताप पाकर बहुत व्याकुल होगये ॥ २२ ॥ उसकाल जटायुको एकान्त में पडे वारंवार ऊंची श्वास लेते हुये देख शोकसे आतुर हो श्रीरामचंद्रजीने लक्ष्मणजीसे कहा ॥ २३ ॥ हम राज्यसे भ्रष्ट हुये

सीतामादायवैदेहीमुत्पपातविहायसम् ॥ रक्षसानिहतंपूर्वंमांनहंतुंत्वमर्हसि ॥ २० ॥ रामस्तस्यतुविज्ञायसीतासक्तांप्रियांकथाम्॥गृध्रराजंपरिष्वज्यपरित्यज्यमहद्धनुः॥२१॥निपपातावशोभूमौरुरोदसहलक्ष्मणः॥द्विगुणीकृततापार्तोरामोधीरतरोऽपिसन् ॥ २२ ॥ एकमेकायनेकृच्छ्रेनिःश्वसंतंमुहुर्मुहुः ॥ समीक्ष्यदुःखितोरामःसौमित्रिमिदमब्रवीत् ॥ २३ ॥ राज्यंभ्रष्टंवनेवासःसीतानष्टामृतोद्विजः ॥ ईदृशीयंममालक्ष्मीर्दहेदपिहिपावकम् ॥ २४ ॥ संपूर्णमपिचेदद्यप्रतरेयंमहोदधिम् ॥ सोपिनूनंममालक्ष्म्याविशुष्येत्सरितांपतिः ॥ २५ ॥ नास्त्यभाग्यतरोलोकेमत्तोऽस्मिन्सचराचरे ॥ येनेयंमहतीप्राप्तामयाव्यसनवागुरा ॥ २६ ॥ अयंपितुर्वयस्योमेगृध्रराजोमहाबलः ॥ शेतेविनिहतोभूमौममभाग्यविपर्ययात् ॥ २७ ॥

वनमें वास हुआ, सीताजी हरी गई और जटायुकी मृत्यु होगई हमारे खोटे कर्मसे उपस्थित हुई यह विपत्ति अग्निकोभी भस्म कर सकतीहै ॥ २४॥ हम अपने भाग्यकी क्या बात कहैं! हम इस दुःखके संतापसे शान्ति पानेंके लिये तलहीन तटहीन महासागरको भी उतरें! तो वह सरित स्वामी समुद्र भी निश्चयही हमारे दुर्भाग्यके प्रभावसे एक वारही सूख जायगा ॥ २५ ॥ सचराचर लोकोंमें हमसा अधिक मन्दभाग्य और कोई नहीं है क्योंकि हमनें इतनीवडी दुःखकी फांसी पाई है ॥ २६ ॥ यह महाबली गिद्धराज हमारे पिताके प्रिय सखाहैं, सो यह भी हमारे

कर लोगे सो हे लक्ष्मण ! हम दनुके श्रीमान् पुत्रहैं ॥७॥संग्राममें इन्द्रजीके शापसे यह कबंधकासा रूप हमने पायाहै उसका ठीक २ वृत्तान्त यह है कि आगे हमनें अत्युग्र तप करके ब्रह्माजी को प्रसन्न किया ॥ ८ ॥ तब उन्होंने हमको दीर्घायु प्रदान की तिसके पीछे हमारे चित्तमें भ्रम हुआ और जिस्से हमनें गर्वित होकर विचारा कि । इन्द्र हमारा क्या कर सकते हैं क्योंकि अब तौ हमनें दीर्घायु पालीहै ॥ ९ ॥ ऐसी बुद्धिमें स्थिर हो संग्राममें हमनें इन्द्रको ललकारा तब उन्होंनें अपना सौधारका वज्र हमारे ऊपर छोडा जिसके लगनेंसे ॥ १० ॥ मस्तक कनपटी आदि सब अंग हमारे शरीरके भीतर पैठ गये । तिसके पीछे हमने अपनी मौत चाही भी परन्तु उन्होनें हमें यमपुरको न भेजा ॥ ११ ॥ वरन केवल उन्होंनें

इंद्रशापादिदंरूपंप्राप्तमेवंरणाजिरे ॥ अहंहितपसोग्रेणपितामहमतोषयम् ॥ ८ ॥ दीर्घमायुःसमेप्रादात्ततोमांवि भ्रमोऽस्पृशत् ॥ दीर्घमायुर्मयाप्राप्तंकिंमांशक्रःकरिष्यति ॥ ९ ॥ इत्येवंबुद्धिमास्थायरणेशक्रमधर्षयम् ॥ तस्य बाहुप्रमुक्तेनवज्रेणशतपर्वणा ॥ १० ॥ सक्थिनीचशिरश्चैवशरीरेसंप्रवेशितम् ॥ समयायाच्यमानःसन्नानयद्यम सादनम् ॥ ११ ॥ पितामहवचःसत्यंतदस्त्वितिममाब्रवीत् ॥ अनाहारःकथंशक्तोभग्नसक्थिशिरोमुखः ॥ १२ ॥ वज्रिणाभिहतःकालंसुदीर्घमपिजीवितुम् ॥ सएवमुक्तःशक्रोमेबाहूयोजनमायतौ ॥ १३ ॥ तदाचास्यंचमेकुक्षौ तीक्ष्णदंष्ट्रमकल्पयत् ॥ सोऽहंभुजाभ्यांदीर्घाभ्यांसंक्षिप्यास्मिन्वनेचरान् ॥ १४ ॥ सिंहद्वीपिमृगव्याघ्रान्भक्षया मिसमंततः ॥ सतुमामब्रवीदिंद्रोयदारामःसलक्ष्मणः ॥ १५ ॥

इतनाही कहा कि जाओ पितामह ब्रह्माजीका वचन सत्य होवे और तुम बहुत दिनोंतक जीवित रहो तब हमनें उनसे कहाकि आपका वज्र लगनेसे हम शिर कनपटीमुख आदि अंगोंसें रहित होगये फिर भला हम किस प्रकारसे विना कुछ खाये पिये दीर्घकालतक जीवन धारण करनें में समर्थ होंगे ॥ १२ ॥ इस बातको सुनकर इन्द्रजीनें कहाकि बहुत अच्छा अब तेरी बाहें एक योजन लंबी हो जायँगी ॥ १३ ॥ यह कह कर उन्होंनें हमारे पेटमें बडे २ दांत सहित मुख भी बना दिया तबसे हम अपनें बडे हाथ फैलाकर वनचरोंको पकड २ मुखमें डाललेते हैं॥ १४॥ उनमें सिंह व्याघ्र ऋक्ष आदि जो मिलते उनको पकड २ कर हम भक्षण किया करतेथे, इन्द्रजीनें फिर यहभी कहाथा कि जब श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजी॥ १५॥

और हमनें उसका क्या अपराध कियाथा, जो वह हमारी प्राणप्यारीको हरण करकै लेगया ॥ ५ ॥ हे विहंगवर ! हरणके समय जानकीका वह पूर्ण शशि सदृश मनोहर मुखमंडल कैसा हो गयाथा ? और उन्होंने उस समय क्या कहाथा ॥ ६ ॥ उस राक्षसराज रावणका वीर्य, रूप, और कर्म किस प्रकारकाहे । हे तात ! उसका निवास कहांपरहे ? जो हम पूछतेहैं सो सब बता दीजिये ॥ ७ ॥ तब धर्मात्मा जटायु लड खडाती वाणीसे विलाप करते व पूछते हुये श्रीरामचन्द्रजीसे यह वचन बोला ॥ ८ ॥ राक्षसोंके राजा दुरात्मा रावणनें वायु और दुर्दिन (जबकि आकाशमें बादल आजातेहैं) कारिणी महामायाका आश्रय करके सीताका हरण कियाहे ॥ ९ ॥ हे तात ! जब हम लडते २ बहुत थकगये, तब निशाचर

कथंतच्चंद्रसंकाशंमुखमासीन्मनोहरम् ॥ सीतयाकानिचोक्तानितस्मिन्कालेद्विजोत्तम ॥ ६ ॥ कथंवीर्यःकथंरूपः किंकर्मासचराक्षसः ॥ क्वचास्यभवनंतातब्रूहिमेपरिपृच्छतः ॥ ७ ॥ तमुद्वीक्ष्यसधर्मात्माविलपंतमनाथवत् ॥ वाचाविक्लवयाराममिदंवचनमब्रवीत् ॥ ८ ॥ साहृताराक्षसेंद्रेणरावणेनदुरात्मना ॥ मायामास्थायविपुलांवातदुर्दिनसंकुलाम् ॥ ९ ॥ परिक्लांतस्यमेतातपक्षौछित्त्वानिशाचरः ॥ सीतामादायवैदेहींप्रयातोदक्षिणामुखः ॥ १० ॥ उपरुध्यंतिमेप्राणादृष्टिर्भ्रमतिराघव ॥ पश्यामिवृक्षान्सौवर्णानुशीरकृतमूर्धजान् ॥ ११ ॥ येनयातिमुहूर्तेनसीतामादायरावणः ॥ विप्रनष्टंधनंक्षिप्रंतत्स्वामीप्रतिपद्यते ॥ १२ ॥ विंदोनाममुहूर्तोऽसौनचकाकुत्स्थसोऽबुधत् ॥ झषवद्बडिशंगृह्यक्षिप्रमेवविनश्यति ॥ १३ ॥

हमारे दोनों पंख काट सीताको ग्रहण करके दक्षिण दिशाको चला गया ॥ १० ॥ हे रघुनंदन ! अब हमारे प्राण रुकतेहैं, और दृष्टिभी भ्रमित होतीहै और हमको सब वृक्ष सुवर्णके दिखाई देतेहैं, मानों सब वृक्ष अपनें शिरके केशोंमें खश और फूलोंकी माला पहर रहेहैं ॥ ११ ॥ रावण जिस मुहूर्तमें सीताको हर लेगयाहे, उस मुहूर्तमें धनका स्वामी अपनाबहुत दिनका नष्ट (खोया हुआ) धनभी शीघ्रही प्राप्त करलेताहे, अर्थात् इस मुहूर्तकी खोई चीज शीघ्र मिलजातीहै ॥ १२ ॥ इस मुहूर्तका नाम विंदहे, इस मुहूर्तकी खोई हुई वस्तु शीघ्र मिलजातीहे, सो रावण

सो तुम हमारेऊपर उपकार करकै हमारे ऊपर दया करो उसको बताओ और हाथियोंके दातोंसे टूटे हुये सूखे काठ बटोरकर तुमको ॥ २४ ॥
गढा खोद एक उसमें हे वीर ! हम तुमको जलादेंगे अब जो पुरुष सीताको हरण करकै जिस जगह लेगयाहै. सो समस्त हमसे कहो ॥ २५ ॥ यदि
यथार्थही तुम इस बातको जानतेहो तौ इस्से हमारा बडा मंगल हो जायगा, जब श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा तो वह दानवश्रेष्ठ ॥ २६॥ अच्छा बोल
नेंवाला श्रीरामचंद्रजीसे बडी कुशलताके साथ कहनें लगा हमको अभी दिव्यज्ञान नहींहै इस कारण यह नहीं जानते कि जानकी कहांहैं ॥ २७ ॥
परन्तु जो तुमको उन्हें बतावेगा, उसको हम तुम्हें बतामेंगे, आप हमें भस्म कीजिये फिर हम अपना पहला रूप प्राप्त करकै जोकि रावणको

कारुण्यंसदृशंकर्तुमुपकारेणवर्ततामम् ॥ काष्ठान्यानीयभग्नानिकालेशुष्काणिकुंजरैः ॥२४॥धक्ष्यामस्त्वांवयंवीरश्वभ्रे
महतिकल्पिते ॥ सत्वंसीतांसमाचक्ष्वयेनवायत्रवाहृता ॥ २५ ॥ कुरुकल्याणमत्यर्थंयदिजानासितत्त्वतः ॥ एवमु
क्तस्तुरामेणवाक्यंदनुरनुत्तमम् ॥ २६ ॥ प्रोवाचकुशलोवक्तावक्तारमपिराघवम् ॥ दिव्यमस्तिनमेज्ञानंनाभिजाना
मिमैथिलीम् ॥ २७॥ यस्तांवक्ष्यतितंवक्ष्येदग्धःस्वंरूपमास्थितः ॥ योभिजानातितद्रक्षस्तद्वक्ष्येरामतत्परम् ॥ २८॥
अदग्धस्यहिविज्ञातुंशक्तिरस्तिनमेप्रभो ॥ राक्षसंतुमहावीर्यंसीतायेनहृतातव ॥ २९ ॥ विज्ञानंहिमहद्भ्रष्टंशापदोषेण
राघव ॥ स्वकृतेनमयाप्राप्तंरूपंलोकविगर्हितम् ॥ ३० ॥ किंतुयावन्नयात्यस्तंसविताश्रांतवाहनः ॥ तावन्मामवटेक्षि
प्त्वादहरामयथाविधि ॥ ३१ ॥

जानताहै उसको आपसे बतादेंगे ॥ २८ ॥ हे प्रभो ! जिस महावीर्य राक्षसनें आपकी सीताजीको हरण कियाहै सो बिना भस्म हुये हम किसी
प्रकारसेभी उनको न जान सकेंगे ॥ २९ ॥ पहले हममें बडा विज्ञानथासो इस शापके प्रभावसे हमारा वह दिव्यज्ञान नष्ट होगया, और हम
अपनेही कर्मके दोषसे ऐसे संसारमें निन्दित रूपको प्राप्त हुयेहैं ॥ ३० ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! जबतक सूर्य भगवानके घोडे थककर अस्ता
चलको न चले जांय क्योंकि अब अस्ताचलको जानाही चाहतेहैं तिससे पहलेही आप हमको गढेमें डालकर यथा विधिसे भस्म कर दीजिये ॥ ३१ ॥

और हमारे निमित्त पितृपितामहप्राप्त महत् राज्य परित्याग करके इनगृध्रराजने प्राण छोडेहैं ॥ २३ ॥ हम जानतेहैं कि सभी जातियोंमें शूरता युक्त शरण देनेवाले धर्माचरण करनेंवाले साधु देखे जातेहैं,सो मनुष्यादिके सिवाय पक्षिआदि तिर्यग्योनिमेंभी ऐसे लोग देखे जातेहैं॥ २४॥ हे सौम्य ! ह मारेहीलिये इस गृध्रनें प्राण छोडेहैं इसलिये इसकी मृत्युसे सीताके हरणसेभी अधिक हमको दुःख हुआहै ॥२५॥महा यशमान श्रीमान् राजा दशर थजी जिस प्रकारसे हमारे पूजनीय और माननीयहैं परोपकार करनें और पिताजीका सखा होनेंसे यह विहंगमश्रेष्ठभी हमको वैसाही है ॥ २६ ॥ हे सुमित्रानंदन ! तुम काठ ले आओ हम अग्नि उत्पन्न करके हमारे लिये प्राण दिये हुए इन गृध्रराजका दाह करेंगे ॥ २७ ॥ हे लक्ष्मण! यह

गृध्रराज्यंपरित्यज्यपितृपैतामहंमहत् ॥ ममहेतोरयंप्राणान्मुमोचपतगेश्वरः ॥२३॥ सर्वत्रखलुदृश्यंतेसाधवोधर्मचारिणः ॥ शूराःशरण्याःसौमित्रेतिर्यग्योनिगतेष्वपि॥२४॥सीताहरणजंदुःखंनमेसौम्यतथागतम् ॥यथाविनाशोगृध्रस्य मत्कृतेचपरंतप ॥ २५ ॥ राजादशरथःश्रीमान्यथाममममहायशाः ॥ पूजनीयश्चमान्यश्चतथायंपतगेश्वरः॥ २६ ॥ सौमित्रेहरकाष्ठानिनिर्मथिष्यामिपावकम् ॥ गृध्रराजंदिधक्ष्यामिमत्कृतेनिधनंगतम् ॥ २७ ॥ नाथंपतगलोकस्यचितिमारोपयाम्यहम् ॥ इमंधक्ष्यामिसौमित्रेहतंरौद्रेणरक्षसा ॥ २८ ॥ यागतिर्यज्ञशीलानामाहिताग्नेश्चयागतिः ॥ अपरावर्तिनांयाचयाचभूमिप्रदायिनाम् ॥ २९ ॥ मयात्वंसमनुज्ञातोगच्छलोकाननुत्तमान् ॥ गृध्रराजमहासत्त्वसंस्कृतश्चमयाव्रज ॥ ३० ॥ एवमुक्त्वाचितांदीप्तामारोप्यपतगेश्वरम् ॥ ददाहरामोधर्मात्मास्वबंधुमिवदुःखितः ॥३१॥ रामोऽपिसहसौमित्रिर्वनंयात्वासवीर्यवान् ॥ स्थूलान्हत्वामहारोहीननुतस्तारतंद्विजम् ॥ ३२ ॥

जटायु पक्षियोंका राजा, और घोर कर्म करनेंवाले राक्षसके हाथसे मारेगये हैं, हम इनका चितापर रखकर दाह करेंगे ॥ २८ ॥ यज्ञशील और आहिताग्नियोंकी जो गति होती है, समरसे पराङ्मुख न होनेंवाले; और भूमि दान करनें वाले पुरुषोंकी जो गति होती है॥ २९ ॥ हे महाबलवान् गृध्रराज! तुम हम करके संस्कृत और हमारीही आज्ञासे उन सब श्रेष्ठगतियोंको प्राप्त होवो ॥३०॥ धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकारसे यह कह कर दुःखित हो अपने बंधुकी समान पक्षिराज जटायुको जलती हुई चिता में चढाकर दाह करते हुए ॥ ३१ ॥ फिर वह महायशवान् वीर्यवान् श्री

शरीरका प्रभासे दशो दिशाओंको प्रकाशता हुआ ॥ ६ ॥ आकाशमें उठ श्रीरामचंद्रजीकी ओर दृष्टि करके कहनें लगा कि हे रघुनंदन ! जिस उ
पायसे आप सीताको प्राप्त कर सकेंगे वह रीति ठीकर सुनो ॥ ७ ॥ सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय, यह जो छैः युक्ति व उपा
यहैं, सो राजा लोग इनकी सहायतासेही सब वातोंका विचार करतेहैं और विना इनका आश्रय लिये किसी कार्यकीभी सिद्धि नहीं होती ॥ ८ ॥ सो
इसमें दुर्दशाके समय समाश्रय नामक जो उपायहै, उसका आश्रय करना कहाहै सो जब बहुतही दुर्दशा होजाय तब लोग उसका आश्रय करतेहैं
सो इस समय आपकोभी इसी समाश्रयके आश्रय लेनेंका प्रयोजन हुआहै क्योंकि इस समय आप लक्ष्मणजीके सहित वैसेही दुर्दशासे ग्रसे जाकर

सोंतरिक्षगतोवाक्यंकबंधोराममब्रवीत् ॥ शृणुराघवतत्त्वेनयथासीतामवाप्स्यसि ॥ ७ ॥ रामषड्युक्तयोलो
केयाभिःसर्वंविमृश्यते ॥ परिमृष्टोदशांतेनदशाभागेनसेव्यते ॥ ८ ॥ दशाभागगतोहीनस्त्वंहिरामसलक्ष्मणः ॥
यत्कृतेव्यसनंप्राप्तंत्वयादारप्रधर्षणम् ॥ ९ ॥ तदवश्यंत्वयाकार्यःससुहृत्सुहृदांवर ॥ अकृत्वानहितेसिद्धिमहंपश्या
मिचिंतयन् ॥ १० ॥ श्रूयतांरामवक्ष्यामिसुग्रीवोनामवानरः ॥ भ्रात्रानिरस्तःक्रुद्धेनवालिनाशक्रसूनुना ॥ ११ ॥
ऋष्यमूकेगिरिवरेपंपापर्यंतशोभिते ॥ निवसत्यात्मवान्वीरश्चतुर्भिःसहवानरैः ॥ १२ ॥ वानरेंद्रोमहावीर्यस्तेजोवा
नमितप्रभः ॥ सत्यसंधोविनीतश्चधृतिमान्मतिमान्महान् ॥ १३ ॥

राज्यादिसे भ्रष्ट हुएहैं ॥ ९ ॥ और इसी कारणसे आपके ऊपर तुम्हारी स्त्रीका हरण स्वरूप महा दुःखभी आनकर पडाहै। इस कारणसे हे राज
वर! आपको दूसरेके सहित जिसका परिवारभी बहुत हो; उस्से अवश्यही मित्रता करनी होगी, हमनें भली भांतिसे सोच विचारकर देख
लियाहै कि ऐसे उपायका अवलंबन न करनेंसे आपके कार्यकी सिद्धि नहीं होगी ॥ १० ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! सुनिये एक सुग्रीव नामक वानरहै
उसके भाईका नाम जो कि इन्द्रका पुत्रहै वालि है; उस वालिनें क्रोधकर सुग्रीवको घरसे निकाल दियाहै ॥ ११ ॥ अब वह सुग्रीव ऋष्यमूक पर्व
तपर अपनें चार वानरोंके सहित रहताहै। यह ऋष्यमूक पर्वतके चारों ओर पंपानदीतक शोभित हो रहीहै ॥ १२ ॥ वह वानरेन्द्र सुग्रीव महा

णजी दोनों वहांसे चलकर वनमें सीताजीको ढूंढते भालते हुए पश्चिमदिशाकी ओर चले ॥ १ ॥ और धनुष बाण खड्ग हाथमें लेकर दोनों भ्राता जिस मार्गमें तबतक कोई मनुष्य नहीं गयाथा, उसी पश्चिम दक्षिण कोणवाले मार्गको चले ॥ २ ॥ उस मार्गमें अनेक प्रकारके झाड वृक्ष वल्ली लता आदि लगनेंके कारण वह चारोंओरसे घिर रहाथा, इसी कारणसे वह अतिभयानक वा दुर्गम बोध होताथा॥३॥उस मार्गमें होकर फिर वह महाबलवान् दोनों रघुवीर दक्षिणदिशाकी ओर बडी वेगसे महावनमें हो करके चले ॥४॥इस प्रकारसे जाते२जनस्थानसे तीन कोश दूर क्रौञ्च नामक घनें वनमें पहुँचे॥५॥यह वन अतिशय दुर्गम देखनेंमें बहुत सारे मेघोंकी समान महाघनाथा, अनेक प्रकारके सुन्दर फूलोंके खिले रहनेंसे मानों वह सब भांतिसे

तांदिशंदक्षिणांगत्वाशरचापासिधारिणौ ॥ अविप्रहतमैक्ष्वाकौपंथानंप्रतिपेदतुः ॥ २ ॥ गुल्मैर्वृक्षैश्चबहुभिर्लताभि
श्चप्रवेष्टितम् ॥ आवृतंसर्वतोदुर्गंगहनंघोरदर्शनम् ॥ ३ ॥ व्यतिक्रम्यतुवेगेनगृहीत्वादक्षिणांदिशम् ॥ सुभीमंतन्म
हारण्यंव्यतियातौमहाबलौ ॥ ४ ॥ ततःपरंजनस्थानात्त्रिक्रोशंगम्यराघवौ ॥ क्रौंचारण्यंविविशतुर्गहनंतौमहौ
जसौ ॥५॥ नानामेघघनप्रख्यंप्रहृष्टमिवसर्वतः ॥ नानावर्णैःशुभैःपुष्पैर्मृगपक्षिगणैर्युतम् ॥ ६ ॥ दिदृक्षमाणौवैदे
हींतद्वनंतौविचिन्वतुः ॥ तत्रतत्रावतिष्ठंतौसीताहरणदुःखितौ ॥ ७ ॥ ततःपूर्वेणतौगत्वात्रिक्रोशंभ्रातरौतदा ॥ क्रौं
चारण्यमतिक्रम्यमतंगाश्रममंतरे ॥ ८ ॥ दृष्ट्वातुतद्वनंघोरंबहुभीममृगद्विजम् ॥ नानावृक्षसमाकीर्णंसर्वंगहनपाद
पम् ॥ ९ ॥ ददृशातेगिरौतत्रदरींदशरथात्मजौ ॥ पातालसमगंभीरांतमसानित्यसंवृताम् ॥ १० ॥

हर्षपूरितथा, और मृग व पक्षीभी उसमें बहुतथे ॥६॥दोनों भ्राता सीताजीके हरणसे दुःखितहो और उनके दर्शनकी कामनासे वह वन ढूंढते२ शान्तिके वश स्थान२ पर खडे हो जानें लगे ॥७॥ फिर वह पूर्वकी ओर तीन कोश चलकर क्रौंचारण्यको नांघकर मातंग मुनिके आश्रमको देखते हुए ॥ ८ ॥ उस आश्रमका वन महा भयंकरथा, और भयंकर स्वभाववाले अनेक जातिके मृग और पक्षीभी वहां बहुतथे, और अनेक प्रकारके वृक्षोंसे घिरे रहनेंके कारण वह वन बडा घनाथा ॥ ९ ॥ फिर उस वनमें श्रीरामचंद्र व लक्ष्मणजीनें पातालकी समान गहरी एक गिरी गुफा देखी, इस

शरीरकी प्रभासे दशो दिशाओंको प्रकाशता हुआ ॥ ६ ॥ आकाशमें उठ श्रीरामचंद्रजीकी ओर दृष्टि करके कहनें लगा कि हे रघुनंदन ! जिस उपायसे आप सीताको प्राप्त कर सकेंगे वह रीति ठीकरसुनो॥ ७ ॥ सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय, यह जो छैः युक्ति व उपायहैं, सो राजा लोग इनकी सहायतासेही सब वातोंका विचार करतेहैं और विना इनका आश्रय लिये किसी कार्यकीभी सिद्धि नहीं होती ॥ ८ ॥ सो इसमें दुर्दशाके समय समाश्रय नामक जो उपायहै, उसका आश्रय करना कहाहै सो जब बहुतही दुर्दशा होजाय तब लोग उसका आश्रय करतेहैं सो इस समय आपकोभी इसी समाश्रयके आश्रय लेनेंका प्रयोजन हुआहै क्योंकि इस समय आप लक्ष्मणजीके सहित वैसेही दुर्दशासे ग्रसे जाकर

सोंतरिक्षगतोवाक्यंकबंधोराममब्रवीत् ॥ शृणुराघवतत्त्वेनयथासीतामवाप्स्यसि ॥ ७ ॥ रामषड्युक्तयोलोकेयाभिःसर्वंविमृश्यते ॥ परिमृष्टोदशांतेनदशाभागेनसेव्यते ॥ ८ ॥ दशाभागगतोहीनस्त्वंहिरामसलक्ष्मणः ॥ यत्कृतेव्यसनंप्राप्तंत्वयादारप्रधर्षणम् ॥ ९ ॥ तदवश्यंत्वयाकार्यःससुहृत्सुहृदांवर ॥ अकृत्वानहितेसिद्धिमहंपश्यामिचिंतयन् ॥ १० ॥ श्रूयतांरामवक्ष्यामिसुग्रीवोनामवानरः ॥ भ्रात्रानिरस्तःक्रुद्धेनवालिनाशक्रसूनुना ॥ ११ ॥ ऋष्यमूकेगिरिवरेपंपापर्यंतशोभिते ॥ निवसत्यात्मवान्वीरश्चतुर्भिःसहवानरैः ॥ १२ ॥ वानरेंद्रोमहावीर्यस्तेजोवानमितप्रभः ॥ सत्यसंधोविनीतश्चधृतिमान्मतिमान्महान् ॥ १३ ॥

राज्यादिसे भ्रष्ट हुएहैं ॥ ९ ॥ और इसी कारणसे आपके ऊपर तुम्हारी स्त्रीका हरण स्वरूप महा दुःखभी आनकर पडाहै । इस कारणसे हे राजवर! आपको दूसरेके सहित जिसका परिवारभी बहुत हो; उस्से अवश्यही मित्रता करनी होगी, हमनें भली भांतिसे सोच विचारकर देखलियाहै कि ऐसे उपायका अवलंबन न करनेंसे आपके कार्यकी सिद्धि नहीं होगी ॥ १० ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! सुनिये एक सुग्रीव नामक वानरहै उसके भाईका नाम जो कि इन्द्रका पुत्रहै वालि है; उस वालिनें क्रोधकर सुग्रीवको घरसे निकाल दियाहै ॥ ११ ॥ अब वह सुग्रीव ऋष्यमूक पर्वतपर अपनें चार वानरोंके सहित रहताहै । यह ऋष्यमूक पर्वतके चारों ओर पंपानदीतक शोभित हो रहीहै ॥ १२ ॥ वह वानरेन्द्र सुग्रीव महा

वहां पहुँचकर सत्यवक्ता, शीलवान् पवित्र स्वभाव और परम तेजस्वी लक्ष्मणजी हाथ जोड कर तेजसे प्रदीप्तमान श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥२० ॥ हे भ्रातः! हमारा वांया हाथ जल्दी२ फडकताहै और मन मानो बहुत उकसाताहै, और प्रायः दुर्लक्षणभी बहुत दृष्टि आतेहैं ॥ २१ ॥ इस्से हे आर्य! आप सज करके तैयार होरहैं; और हमारी बात सुनें यह सब अपशकुन स्पष्टही कहे देतेहैं कि भय आयाही चाहताहै ॥ २२ ॥ परन्तु विजय हमारी अवश्य होगी। क्योंकि यह अति भयानक वञ्जुलक पक्षी मानों हमारी युद्ध विजय कहता हुआ शब्द कर रहाहै ॥ २३ ॥ फिर जब महा

लक्ष्मणस्तुमहातेजाःसत्यवाञ्छीलवाञ्छुचिः ॥ अब्रवीत्प्रांजलिर्वाक्यंभ्रातरंदीप्ततेजसम् ॥ २० ॥ स्पंदतेमेदृढं बाहुरुद्विग्नमिवमेमनः ॥ प्रायशश्चाप्यनिष्टानिनिमित्तान्युपलक्षये ॥ २१ ॥ तस्मात्सज्जीभवार्यत्वंकुरुष्ववचनं मम ॥ ममैवहिनिमित्तानिसद्यःशंसंतिसंभ्रमम् ॥ २२ ॥ एषवंचुलकोनामपक्षीपरमदारुणः ॥ आवयोर्विजयं युद्धेशंसन्निवविनर्दति ॥ २३ ॥ तयोरन्वेषतोरेवंसर्वतद्वनमोजसा ॥ संजज्ञेविपुलःशब्दःप्रभंजन्निवतद्वनम् ॥ २४ ॥ संवेष्टितमिवात्यर्थंगहनंमातरिश्वना ॥ वनस्यतस्यशब्दोऽभूद्वनमापूरयन्निव ॥ २५ ॥ तंशब्दंकांक्षमाणस्तुरामःखड्गी सहानुजः ॥ ददर्शसुमहाकायंराक्षसंविपुलोरसम् ॥ २६ ॥ आसेदतुश्चतद्रक्षस्तावुभौप्रमुखेस्थितम् ॥ विवृद्धमशिरोग्रीवंकबंधमुदरेमुखम् ॥ २७ ॥

तेजस्वी श्रीराम लक्ष्मणजी उस समस्त वनको ढूंढ रहेथे कि इतनेमेंही एक विपुल शब्द मानों उस वनको विध्वंस करता हुआ होनें लगा ॥२४॥ उस वनमें एकाएकी प्रचंड पवन चलनें लगा, और इस वायुके चलनेंसे वृक्ष आपसमें टकरानें लगे। तब उसमेंसे एक शब्द समस्त वनको शब्दायमान करता उत्पन्न हुआ ॥२५॥ श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके सहित खड्ग धारण करके "यह शब्द कहांसे हुआ" यह जाननेंके लिये अभिलाषी हो इधर उधर देखतेथे कि चौंडी छातीवाला बृहदाकार एक राक्षस सहसा देख पडा॥२६॥उसका पेट बहुत बडा व नाम उसका कबन्धथा, वह श्रीरामचं

वानरनाथसे ॥ २१ ॥ सत्यताके साथ मित्रताई कीजिये हे राघव! वह वानरश्रेष्ठ सब स्थानोंमें कपि कुंजरोंके साथ जाजाकर ॥ २२ ॥ फिर भली
भांतिसे नरमांसके खानेंवाले राक्षसोंकेभी लोकमें चला जायगा हे राघव! लोकमें ऐसा कोई स्थान नहीं जिसे सुग्रीव न जानता हो ॥ २३ ॥ हे शत्रु
ओंके तपानेंवाले रघुनन्दनजी! सहस्रकिरण सूर्य भगवानकी किरणें जहांतक पडती हैं, उतनें बीचमें जितनी २ नदियां और बडे २ पर्वत व
पर्वतोंकी गुफा हैं ॥ २४ ॥समस्त जगत्में जहां कहीं आपकी भार्या जानकीजी होंगी सो हे रघुनन्दन! यह सुग्रीव ढुंढवायकर आपसे मिला देगा
कारणकि वह तुरंत सब दिशाओंमें बडे शरीरवाले वानरोंको पठावेगा ॥ २५ ॥ व तुम्हारे वियोगसे शोच करती हुई श्रीजानकीजीको वह

कुरुराघवसत्येनवयस्यंवनचारिणम् ॥ सहिस्थानानिकात्स्र्यैनसर्वाणिकपिकुंजरः ॥ २२ ॥ नरमांसाशिनांलोकेनै
पुण्यादधिगच्छति ॥ नतस्याविदितंलोकेकिंचिदस्तिहिराघव ॥ २३ ॥ यावत्सूर्यःप्रतपतिसहस्रांशुःपरंतप ॥ सनदी
विंपुलाञ्छैलान्गिरिदुर्गाणिकंदरान् ॥२४॥ अन्विष्यवानरैःसार्धपतींतेधिगमिष्यति ॥वानरांश्चमहाकायान्प्रेषयिष्य
तिराघव ॥ २५ ॥ दिशोविचेतुंतांसीतांत्वद्वियोगेनशोचतीम् ॥ अन्वेष्यतिवरारोहांमैथिलींरावणालये ॥ २६ ॥ स
मेरुशृंगाग्रगतामनिंदितांप्रविश्यपातालतलेपिवाश्रिताम् ॥ प्लवंगमानामृषभस्तवप्रियांनिहत्यरक्षांसिपुनःप्रदास्य
ति ॥ २७ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेद्विसप्ततितमःसर्गः ॥ ७२ ॥ दर्शयित्वातु
रामायसीतायाःपरिमार्गणे ॥ वाक्यमन्वर्थमर्थज्ञःकबंधःपुनरब्रवीत् ॥ १ ॥ एषरामशिवःपंथायत्रैतेपुष्पिताद्रुमाः ॥
प्रतीचींदिशमाश्रित्यप्रकाशंतेमनोरमाः ॥ २ ॥

रावणके घरमें हुई तौ वहांसेभी ढूंढ लाकर आपको मिला देंगे ॥ २६ ॥ अनाथा निंदारहित सीताजी मेरु पर्वतके शिखरके अग्रभागमें हों
अथवा पातालमें निवास करतीं हों कपिराज सुग्रीवजी वहीं जाकर राक्षसोंका नाश करके आपकी भार्या सीताको ले आवेंगे और आपसे
मिला देंगे ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आर० द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥ कवन्ध इस प्रकारसे सीताजीके शोधका उपाय
वताकर फिरभी श्रीरामचन्द्रजीसे यह अर्थयुक्त वचन बोला ॥ १ ॥ कि हे श्रीरामचन्द्रजी यही वहांका कल्याणदायक मार्ग है जिधर यह फूले हुए मनोहर

दोनों बडी २ बाहें फैलाकर राम और लक्ष्मण दोनोंकोही बलसे पीडन करके दोनोंको एक साथही ग्रहण करलिया ॥ ३५ ॥ दृढ धनुष और खड्ग धारण किये हुए तीव्र तेजमान्! महाबलवान्, महाबाहु, वह दोनों भ्राता कवन्धसे खेंचे जाकर अवश होगये ॥ ३६ ॥ श्रीरामचन्द्रजी तौ स्वभावसेही धीर्यवान् और शूरतासंपन्नथे, वह तो कुछभी व्याकुल न हुये, परन्तु लक्ष्मणजी बालक और अनाथ होनेंके कारण एकवारही महा व्याकुल होगये ॥ ३७ ॥ और शोक करके राघवनंदन श्रीरामचन्द्रजीसे बोले कि हे वीर! देखो हम विवश होकर राक्षसके वश हुयेहैं ॥ ३८ ॥ इस कारण एक मात्र हमकोही देकर आप छूट जाइये। और हमें इस राक्षसके आगे बलिकी भांति देकर यथा सुखसे आप भाग जाइये ॥ ३९ ॥

खड्गिनौदृढधन्वानौतिग्मतेजौमहाभुजौ ॥ भ्रातरौविवशंप्राप्तौकृष्यमाणौमहाबलौ ॥ ३६ ॥ तत्रधैर्याच्चशूरस्तुराघवो नैवविव्यथे ॥ बाल्यादनाश्रयाच्चैवलक्ष्मणस्त्वभिविव्यथे ॥ ३७ ॥ उवाचचविषण्णःसन्राघवंराघवानुजः ॥ पश्यमां विवशंवीरराक्षसस्यवशंगतम् ॥ ३८ ॥ मयैकेनतुनिर्युक्तःपरिमुच्यस्वराघव ॥ मांहिभूतबलिंदत्वापलायस्वयथासुखम् ॥ ३९ ॥ अधिगंतासिवैदेहीमचिरेणेतिमेमतिः ॥ प्रतिलभ्यचकाकुत्स्थपितृपैतामहींमहीम् ॥ ४० ॥ तत्रमांरामराज्यस्थःस्मर्तुमर्हसिसर्वदा ॥ लक्ष्मणेनैवमुक्तस्तुरामःसौमित्रिमब्रवीत् ॥ ४१ ॥ मास्मत्रासंवृथावीरनहित्वादृग्विषीदति ॥ एतस्मिन्नंतरेक्रूरोभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ ४२ ॥ तावुवाचमहाबाहुःकबंधोदानवोत्तमः ॥ कौयुवांवृषभस्कंधौ महाखड्गधनुर्धरौ ॥ ४३ ॥ घोरंदेशमिमंप्राप्तौदैवेनममचाक्षुषौ ॥ वदतंकार्यमिहवांकिमर्थंचागतौयुवाम् ॥ ४४ ॥

हे काकुस्थ राम! हम निश्चयही समझतेहैं कि आप शीघ्रही वैदेहीको प्राप्त होंगे, और पिता पितामहका राज्यभी शीघ्रही आप करेंगे ॥ ४० ॥ अब इस समय यही प्रार्थनाहै कि आप राज्य पदपर प्रतिष्ठित होकर आप सदाही हमको याद करते रहा कीजिये जब लक्ष्मणजीनें इस प्रकार कहा तब श्रीरामचंद्रजी उनसे बोले ॥ ४१ ॥ कि हे वीर! वृथाभीत न हूजिये तुम सरीखे पुरुष कभी व्यथित नहीं होतेहैं दोनों भाइयोंसे इसी समय वह क्रूर ॥ ४२ ॥ महाबाहु, दानवश्रेष्ठ कवन्ध कहनें लगा कि तुम्हारे कंधे बैलोंकी समान ऊँचेहैं और हाथमें तुमने बडे २ धनुष और खड्ग धारण कियेहैं, सो बताओ कि तुम कौनहो? ॥ ४३ ॥ तुम लोग भाग्यसेही इस भयंकर देशमें आकर हमारे नेत्रोंके सन्मुख पडेहो तुम्हारा

आदि पक्षी ॥१२॥ पम्पाके जलमें पैरते हुए मनोहर शब्द बोलते हैं, वह मनुष्योंको देखकरभी नहीं डरते, क्योंकि पहले उन्हें किसीनें कभी नहीं मारा है ॥१३॥ हे श्रीरघुनंदन ! आप बडे शरीरवाले घीके पिंडकी समान इन सब पक्षियोंको, और रोहित, चक्रतुंड व नल नामक मछलियोंको वहां पर भक्षणकीजिये ॥ १४ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! जिनके पंख नहीं होते, और बडे शरीर जिनके होतेहैं, त्वक्, और बहुत कांटों करके युक्त ऐसी श्रेष्ठ मछलियोंको बाणोंसे मारकर और अग्निमें भूंनकर आप पंपासर पर भक्षण कीजिये ॥ १५ ॥ इसके सिवाय लक्ष्मणजी आपके प्रति भक्तिके वश होकर वहांके कमल पुष्पोंमें विचरती हुई उक्त मछलियोंके समूह आपको देंगे ॥ १६ ॥ पंपाका जल कमल पुष्पोंकी सुगंधिसे युक्त रोग

वल्गुस्वराणिकूजंतिपंपासलिलगोचराः ॥ नोद्विजंतेनरान्दृष्ट्वावधस्याकोविदाःपुरा ॥ १३ ॥ घृतपिंडोपमान्स्थूलांस्तान्द्विजान्भक्षयिष्यथ ॥ रोहितांश्चक्रतुंडांश्चनलमीनांश्चराघव ॥ १४ ॥ पंपायामिषुभिर्मत्स्यांस्तत्रामवरान्हतान् ॥ निस्त्वक्पक्षानयस्तप्तानकृशानेककंटकान् ॥ १५ ॥ तवभक्त्यासमायुक्तोलक्ष्मणःसंप्रदास्यति ॥ भृशंतान्खादतोमत्स्यान्पंपायाःपुष्पसंचये ॥ १६ ॥ पद्मगंधिशिवंवारिसुखशीतमनामयम् ॥ उद्धृत्यसतदाक्लिष्टंरूप्यस्फटिकसंनिभम् ॥ १७ ॥ अथपुष्करपर्णेनलक्ष्मणःपाययिष्यति ॥ स्थूलान्गिरिगुहाशय्यान्वानरान्वनचारिणः ॥ १८ ॥ सायाह्नेविचरन्रामदर्शयिष्यतिलक्ष्मणः ॥ अपांलोभादुपावृत्तान्वृषभानिवनर्दतः ॥ १९ ॥ स्थूलान्पीतांश्चपंपायांद्रक्ष्यसित्वंनरोत्तम ॥ सायाह्नेविचरन्रामविटपीमाल्यधारिणः ॥ २० ॥

विहीन स्वास्थकर सुशीतल, चांदी और स्फटिक मणिके समान निर्मल जिसके पीनेंसे कोईभी क्लेश नहीं होता ॥ १७ ॥ उस समयमें लक्ष्मणजी पुरैनके पत्तोंका दोना बना वह जल लाकर आपको पिलावेंगे और बडे२ वन्दर पर्वतोंकी कन्दराओं और वृक्षोंके रहनेंवाले ॥ १८ ॥ सन्ध्याके समय घूमनेके कालमें लक्ष्मणजी आपको दिखावेंगे, वह बडे २ वानर जल पीनेंके अर्थ बैलोंके समान शब्द करते हुये आतेहैं ॥ १९ ॥ हेनरश्रेष्ठ ! फिर पंपापर बडे हृष्ट पुष्ट नीले पीलेभी बहुतसें वन्दर वृक्षोंकी शाखा हाथमें लिये हुये आप देखेंगे ॥ २० ॥

श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मण इन दोनों भाइयोंको अपनी बाहोंकी फांसीमें बँधा हुआ वहां खडा देख कबन्ध उनसे बोला ॥ १ ॥ अरे क्षत्रिय श्रेष्ठ! दोनों जन! हम भूखे हुए हैं, विधातानें तुम दोनोंको चेतना रहित करके हमारे खानेंको भेज दिया है। इसलिये हमको देख अब तुम क्या राह देख रहे हो तैयार होवो॥ २ ॥ उसके ऐसे वचन सुनकर लक्ष्मणजी दुःखित व विक्रम प्रकाश करनेंमें कृत निश्चय होकर उस कालके अनुसार वाक्य श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ ३ ॥ कि यह राक्षसाधम हम दोनोंही जनको पकडे हुए है इस कारण आइये हम अभी दो खड्गोंसे इसके बडे भारी दोनों हाथ काट डालें ॥ ४॥ यह बडे आकारवाला भयंकर राक्षस केवल अपनी भुजाओंकी ही सहायतासे सब लोकोंको सर्व प्रकारसे जीत अब

तौतुतत्रस्थितौदृष्ट्वाभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ बाहुपाशपरिक्षिप्तौकबंधोवाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥ तिष्ठतःकिंनुमांदृष्ट्वाक्षुधार्तंक्षत्रियर्षभौ ॥ आहारार्थंतुसंदिष्टौदैवेनहतचेतनौ ॥ २ ॥ तच्छ्रुत्वालक्ष्मणोवाक्यंप्राप्तकालंहितंतदा ॥ उवाचार्तिंसमापन्नोविक्रमेकृतनिश्चयः ॥ ३ ॥ त्वांचमांचपुरातूर्णमादत्तेराक्षसाधमः ॥ तस्मादसिभ्यामस्याशुबाहूछिंदावहेगुरू ॥ ४ ॥ भीषणोऽयंमहाकायोराक्षसोभुजविक्रमः ॥ लोकंह्यतिजितंकृत्वाह्यावांहंतुमिहेच्छति ॥ ५ ॥ निश्चेष्टानांवधोराजन्कुत्सितोजगतीपतेः ॥ क्रतुमध्योपनीतानांपशूनामिवराघव ॥ ६ ॥ एतत्संजल्पितंश्रुत्वातयोःक्रुद्धस्तुराक्षसः ॥ विदार्यास्यंततोरौद्रंतौभक्षयितुमारभत् ॥ ७ ॥ ततस्तौदेशकालज्ञौखड्गाभ्यामेवराघवौ॥अच्छिंदतांसुसंहृष्टौबाहूतस्यांसदेशयोः ॥८॥ दक्षिणोदक्षिणंबाहुमसक्तमसिनाततः ॥ चिच्छेदरामोवेगेनसव्यंवीरस्तुलक्ष्मणः ॥९॥

हम तुमको मारनेंके लिये तैयार हुआ है ॥ ५ ॥ परन्तु हे राजन्! यज्ञमें आये हुए छागोंकी समान चेष्टा रहित होकर मरना क्षत्रियोंके लिये बहुत ही निंदाकी बात है ॥ ६ ॥ श्रीराम लक्ष्मणजीकी ऐसी वार्ता सुन निशाचर कबंध क्रोधित होकर मुँहबाय उनको भक्षण करनेंके लिये तैयार हुआ ॥ ७ ॥ तब देश और कालके जाननेंवाले श्रीराम और लक्ष्मण दोनों भ्राताओंनें खड्ग ग्रहण करके उसकी दोनों भुजायें खंभे परसे काट डालीं ॥ ८ ॥ चतुर श्रीरामचन्द्रजीनें उसकी दाहिनी भुजा और वीर्यवान् लक्ष्मणजीनें उसकी बांई भुजा शीघ्रतासे काट डाली ॥ ९ ॥

श्रम काननको नहीं खल बला सकते ॥२९॥ इसी कारणसे वह वन मतंग वनके नामसे प्रसिद्ध हुआ है. हे रघुनंदन! वह वन देवताओंके नंदन वनकी समानहै रमणीय है ॥ ३० ॥ उसमें अनेक प्रकारके पक्षी सुहावनी बोली बोलते हैं वहां प्रवेश करके आप अच्छी तरहसे विहारकर सकेंगे और पंपाके सामनेही वृक्ष समूहसे सुशोभित ऋष्यमूक पर्वतहै ॥ ३१ ॥ इस कठिन से आरोहण करनेंके योग्य पर्वतकी रक्षा छोटे सर्प किया करते हैं और यह पर्वत उदार ब्रह्माजी करके पहले समयमें बनायागयाथा ॥३२॥ इस उदार पर्वतके शृंगपर जो पुरुष शयन करके स्वप्नमें जो धन प्राप्त करैं तो जागनेंपरभी उसको वही धन मिलताहै ॥ ३३ ॥ अधर्म कार्य करनेमें रत पापकर्म करनेवाले पुरुषके उस पर्वतपर चढनेपर राक्षस लोग उसके

मतंगवनमित्येवविश्रुतंरघुनंदन ॥ तस्मिन्नंदनसंकाशेदेवारण्योपमेवने ॥ ३० ॥ नानाविहगसंकीर्णेरंस्यसेरामनि
र्वृतः ॥ ऋष्यमूकस्तुपंपायाःपुरस्तात्पुष्पितद्रुमः ॥ ३१ ॥ सुदुःखारोहणश्चैवशिशुनागाभिरक्षितः ॥ उदारोब्रह्मणा
चैवपूर्वकालेभिनिर्मितः ॥३२ ॥ शयानःपुरुषोरामतस्यशैलस्यमूर्धनि ॥ यःस्वप्नेलभतेवित्तंतत्प्रबुद्धोधिगच्छति॥३३॥
यस्त्वेनंविषमाचारःपापकर्माधिरोहति ॥ तत्रैवप्रहरंत्येनंसुप्तमादायराक्षसाः ॥ ३४ ॥ ततोपिशिशुनागानामाक्रंदः
श्रूयतेमहान् ॥ क्रीडतांरामपंपायांमतंगाश्रमवासिनाम् ॥ ३५ ॥ सक्तारुधिरधाराभिःसंहत्यपरमद्विपाः ॥ प्रचरंति
पृथक्कीर्णामेघवर्णास्तरस्विनः ॥ ३६ ॥ तेतत्रपीत्वापानीयंविमलंचारुशोभनम् ॥ अत्यंतसुखसंस्पर्शंसर्वगंधसमन्वि
तम् ॥ ३७ ॥ निवृत्ताःसंविगाहंतेवनानिवनगोचराः ॥ ऋक्षांश्चद्वीपिनश्चैवनीलकोमलकप्रभान् ॥ ३८ ॥

शयन करनेंके समय उसको पकड कर वहीं संहार करदेतेहैं ॥ ३४ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! तिसके पीछे आप मतंगाश्रम निवासी पंपातटविहारी हाथियोंके बच्चोंका घोर शब्द श्रवण करोगे ॥ ३५ ॥ उन सबके सिवाय आप कुछ एक लाल वर्णकी मदधारा चुआतेहुए मेघवर्ण वेग युक्त हाथियोंके दलके दल इधर उधर घूमते हुए देखोगे॥३६॥ वह हाथी पंपाका निर्मल सुन्दर और अत्यन्त सुखकारी सुवासित नीर पीकरके ॥ ३७॥ पंपा सरोवरमें विहारसे निवृत्तहो वनमें विहार किया करतेहैं! हे श्रीरामचंद्रजी! वहांपर आप रीछ,गैंडे,व्याघ्र,और नील मणिवत कोमल कान्तिवाले॥३८॥

सो यह भी हमारे बडे सौभाग्यकी बात है; इसमें कुछ संदेह नहींहै ॥ १८ ॥ जिसभांतिसे हमारा इस विरूपताका रूपथा, व जिस ऊधमसे हम इस कुरूपताको प्राप्त हुये सो सब ज्योंका त्यों कहतेहैं आप श्रवण करैं ॥ १९ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० आ० सप्ततितमःसर्गः ॥ ७० ॥ हे महाबाहु श्रीरामचंद्रजी! पूर्वकालमें हमारा रूप अत्यन्त सुन्दर अचिन्तनीय ऐश्वर्य महाबल व पराक्रम युक्त और तीनों लोकोंमें विख्या तथा ॥ १ ॥और सूर्य चंद्रमा व इन्द्रके शरीरकी समान हमारा भी रूपथा, सो ऐसा रूप धारण कर हम तीनो लोकोंको डरपाने लगे ॥ २ ॥ हम घूम २ कर वनवासी ऋषि लोगोंको भयभीत करतेथे एक समय जाते २ हमनें स्थूलशिरा नामक महर्षिको कोपित कराया ॥ ३ ॥ वे

विरूपंयच्चमेरूपंप्राप्तंह्यविनयाद्यथा ॥ तन्मेशृणुनरव्याघ्रतत्त्वतःशंसतस्तव ॥ १९ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेसप्ततितमःसर्गः ॥७०॥ ॥ पुराराममहाबाहोमहाबलपराक्रमम् ॥ रूपमासीन्ममाचिंत्यंत्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥१॥ यथासूर्यस्यसोमस्यशक्रस्यचयथावपुः ॥ सोऽहंरूपमिदंकृत्वालोकवित्रासनंमहत् ॥२॥ ऋषीन्वनगतान्रामत्रासयामिततस्ततः ॥ ततःस्थूलशिरानाममहर्षिःकोपितोमया ॥ ३ ॥ सचिन्वन्विविधंवन्यंरूपेणानेनधर्षितः ॥ तेनाहमुक्तःप्रेक्ष्यैवंघोरशापाभिधायिना ॥ ४ ॥ एतदेवंनृशंसंतेरूपमस्तुविगर्हितम् ॥ समयायाचितः क्रुद्धःशापस्यांतोभवेदिति ॥ ५ ॥ अभिशापकृतस्येतितेनेदंभाषितंवचः ॥ यदाछित्त्वाभुजौरामस्त्वांदहेद्विजनेवने ॥ ६ ॥ तदात्वंप्राप्स्यसेरूपंस्वमेवविपुलंशुभम् ॥ श्रियाविराजितंपुत्रदनोस्त्वंविद्धिलक्ष्मण ॥ ७ ॥

महर्षि जी विविध भांतिके वनके फूल फलादि इकट्ठे कर रहेथे कि हमने अपने रूपके गर्वसे उनको धिक्कारा और क्रोधित कराया तब उन्होंनें हमारी ओर देख अति घोर शाप दिया ॥ ४ ॥ कि जाओ मूर्ख! तुम्हारा रूप भी हमारे ही सा कुरूप होजायगा जब हमनें क्रोध युक्तहो उनको शापदेते हुये देखा तो शापके उद्धारके लिये प्रार्थना की, कि इसका निवारण कब होगा ॥ ५ ॥ तब शापके अन्त होनेके लिये उन्होंने कहाकि जिस समय श्रीरामचंद्रजी तुम्हारे हाथ काट डालेंगे और विजन वनमें तुमको फूँक देंगे ॥ ६ ॥ बस उसी समय तुम अपना सुविपुल और मनोहर रूप प्राप्त

णजी कवंधका बताया हुआ मार्ग लेकर पंपानदीकी ओर पश्चिम दिशाको चले ॥ १ ॥ जिस समय श्रीराम लक्ष्मणजी सुग्रीवके देखनेंको जा रहेथे उस समय पर्वतोंके शिखरोंपर मधु समान स्वाद युक्त फल व फूलवाले अनेक २ वृक्ष उनके नयन गोचर होनें लगे ॥ २ ॥ वह दोनों भ्राता मार्गमें एक रात्रि एक पर्वतके ऊपर रहकर प्रभात होतेही पंपाके पश्चिम किनारे पर जा पहुँचे ॥ ३ ॥ पंपाके पश्चिम किनारे पर पहुँचकर शबरीका रमणीय आश्रम श्रीराम लक्ष्मणजीनें देखा ॥ ४ ॥और उस विविध वृक्षसमूह से समाकीर्ण रमणीय आश्रमको देखते हुये उसमें प्रवेश करके शबरीके निकट आये ॥ ५ ॥ तब सिद्ध शबरी श्रीराम लक्ष्मणजीको देखतेही हाथ जोडे हुये बुद्धिमान् दोनों भाइयोंके चरणोंमें प्रणाम करती हुई ॥ ६ ॥

तौशैलेष्वाचितानेकान्क्षौद्रपुष्पफलद्रुमान् ॥ वीक्षंतौजग्मतुर्द्रष्टुंसुग्रीवंरामलक्ष्मणौ ॥ २ ॥ कृत्वातुशैलपृष्ठेतुतौवासंरघुनंदनौ ॥ पंपायाःपश्चिमंतीरंराघवावुपतस्थतुः ॥ ३ ॥तौपुष्करिण्याःपंपायास्तीरमासाद्यपश्चिमम् ॥ अपश्यतांततस्तत्रशबर्यारम्यमाश्रमम् ॥ ४ ॥ तौतमाश्रममासाद्यद्रुमैर्बहुभिरावृतम् ॥ सुरम्यमभिवीक्षंतौशबरीमभ्युपेयतुः ॥ ५ ॥ तौदृष्ट्वातुतदासिद्धासमुत्थायकृतांजलिः ॥ पादौजग्राहरामस्यलक्ष्मणस्यचधीमतः ॥ ६ ॥ पाद्यमाचमनीयंचसर्वंप्रादाद्यथाविधि ॥ तामुवाचततोरामःश्रमणींधर्मसंस्थिताम् ॥ ७ ॥ कच्चित्तेनिर्जितांविघ्नाःकच्चित्तेवर्धतेतपः ॥ कच्चित्तेनियतःकोपआहारश्चतपोधने ॥ ८ ॥ कच्चित्तेनियमाःप्राप्ताःकच्चित्तेमनसःसुखम् ॥ कच्चित्तेगुरुशुश्रूषासफलाचारुभाषिणि ॥ ९ ॥ रामेणतापसीपृष्टासासिद्धासिद्धसंमता ॥शशंसशबरीवृद्धारामायप्रत्यवस्थिता॥१०॥

और यथाविधिसे पाद्य आचमनीयभी शबरीने किया, तिसके पीछे श्रीरामचन्द्रजी धर्मनिरता शबरीसे बोले ॥ ७ ॥ कि तुमनें सुख व विघ्नोंको तौ जीत लिया है, तुम्हारा तप बढता तो है और क्रोध तौ तुम्हारे वशमें है, हे तपोधने! ॥ ८ ॥ तुम्हारे सब नियम तौ भली भांतिसे चले आते हैं, तुम्हारे मनको तौ सदा सुख रहता है? हे चारुभाषिणी! तुम्हारे गुरुकी सेवा करनी तौ तुम्हैं फलवती हुई है ॥ ९ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीनें इस प्रकार पूछा तौ सिद्ध लोगोंकी अभिमता और तप सिद्धा शबरी सामने निकल कर उनसे निवेदन करती हुई ॥ १० ॥

तबसे हे राजसत्तम ! हम इसी शरीरसे इस वनमें ॥ १६ ॥ जिस २ को देख
समरमें तुम्हारे दोनों हाथ काटेंगे तब तुम स्वर्गको जाओगे । कोई न कोई अवश्य हमको मिलता रहेगा ॥ १७ ॥ सदा
लेतेहैं उसको ग्रहण कर लेतेहैं, व यहभी हमको निश्चयथा कि इन्द्रके वचनानुसार श्रीरामचंद्रजी आपही हैं क्योंकि और
अपना ऐसाही विचार रखतेहैं कुछ विशेप श्रमभी नहीं करतेथे सो इस समय हमनें सत्य २ जाना कि श्रीरामचंद्रजी और तो हमसे कुछ नहीं
कोई हमको नहीं मार सकता ॥ १८ ॥ क्योंकि महर्पिजीनें जो कुछ कहा सो सत्यही हुआहै, इस कारण हे श्रीरामचंद्रजी जब आप हमको अग्निमें जलादेंगे तब हम
हो सकता । परन्तु हे नरश्रेष्ठ! बुद्धिद्वारा आपकी कुछ सहायता कर सकेंगे ॥ १९ ॥ अर्थात्

छेत्स्यतेसमरेबाहूतदास्वर्गंगमिष्यसि ॥ अनेनवपुपातातवनेऽस्मिन्राजसत्तम ॥ १६ ॥ यद्यत्पश्यामिसर्वस्यग्रहणं
साधुरोचये ॥ अवश्यंग्रहणंरामोमन्येऽहंसमुपैष्यति ॥ १७ ॥ इमांबुद्धिंपुरस्कृत्यदेहन्यासकृतश्रमः ॥ सत्वं
रामोऽसिभद्रंतेनाहमन्येनराघव ॥ १८ ॥ शक्योहंतुंयथातत्त्वमेवमुक्तंमहर्पिणा ॥ अहंहिमतिसाचिव्यंकरिष्या
मिनरर्षभ ॥ १९ ॥ मित्रंचैवोपदेक्ष्यामियुवाभ्यांसंस्कृतोग्निना ॥ एवमुक्तस्तुधर्मात्मादनुनातेनराघवः ॥ २० ॥
इदंजगादवचनंलक्ष्मणस्यचपश्यतः ॥ रावणेनहृताभार्यासीताममयशस्विनी ॥ २१ ॥ निष्क्रांतस्यजनस्थानात्स
हभ्रात्रायथासुखम् ॥ नाममात्रंतुजानामिनरूपंतस्यरक्षसः ॥ २२ ॥ निवासंवाप्रभावंवावयंतस्यनविद्महे ॥ शो
कार्तानामनाथानामेवंविपरिधावताम् ॥ २३ ॥

आपको एक मित्र बतावेंगे, जब इस प्रकारसे उस दनुके पुत्रनें महात्मा धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीसे कहा तो ॥ २० ॥ लक्ष्मणजीके सामनें
उससे श्रीरामचंद्रजी बोले कि रावण करके हमारी यशस्विनी भार्या सीताजी हरी गईहैं ॥ २१ ॥ हम उस समय भ्राताके सहित जन
सुख स्थानसे पूर्वक कहींपर चले गयेथे तब वह उनको हरण करके ले गयाथा हम उसराक्षस रावणका केवल नाम मात्र जानतेहैं, परन्तु उसका
रूप ॥ २२ ॥ निवास व प्रभाव कुछभी नहीं जानते । केवल शोकसे आरत हुये अनाथकी समान इसी भांतिसे वन २ में घूमते फिरतेहैं ॥ २३ ॥

लिया कि यह परमात्माकोभी भली भांति जानती है यह समझ उससे कहाकि हमनें कवंधसे तुम्हारा प्रभाव और आचारका माहात्म्य ॥ १९ ॥
श्रवण कियाथा सो तुम यदि उचित समझो तो हम उसको प्रत्यक्ष उनका वृत्तान्त देखनेंकी इच्छा करते हैं, श्रीरामचन्द्रजीके मुखसे निकला हुआ
ऐसा वचन सुन ॥ २० ॥ शबरी उन दोनों भ्राताओंको वह बडा वन दिखाकर कहनें लगी कि मृग और पक्षियोंसे परिपूर्ण काले बादरकी समान
श्यामरंगका यह वन देखिये ॥ २१ ॥ हे रघुनन्दन! इस वनका नाम मतंग वन प्रसिद्ध है, हे महाद्युतिमान् ! इस वनमें विशुद्धात्मा हमारे गुरु लोग
मंत्र पूजित यज्ञ करनेंके लिये वेदके मंत्रोंसे काल हरण करतेथे ॥ २२ ॥ यह वही प्रत्यक्स्थल नामक वेदी है; जिस वेदीपर बैठकर हमारे परम

श्रुतंप्रत्यक्षमिच्छामिसंद्रष्टुंयदिमन्यसे ॥ एतत्तुवचनंश्रुत्वारामवक्त्रविनिःसृतम् ॥ २० ॥ शबरीदर्शयामासतावुभौतद्व
नंमहत् ॥ पश्यमेघघनप्रख्यंमृगपक्षिसमाकुलम् ॥ २१ ॥ मतंगवनमित्येवविश्रुतंरघुनंदन ॥ इहतेभावितात्मानो
गुरवोमेमहाद्युते ॥ जुहवांचक्रिरेनीडंमंत्रवन्मंत्रपूजितम् ॥ २२ ॥ इयंप्रत्यक्स्थलीवेदीयत्रतेमेसुसत्कृताः ॥ पुष्पोप
हारंकुर्वंतिश्रमादुद्वेपिभिःकरैः ॥ २३ ॥ तेषांतपःप्रभावेणपश्याद्यापिरघूत्तम ॥ द्योतयंतीदिशःसर्वाःश्रियावेद्यतुलप्र
भा ॥ २४ ॥ अशक्नुवद्भिस्तैर्गंतुमुपवासश्रमालसैः ॥ चिंतितेनागतान्पश्यसमेतान्सप्तसागरान् ॥ २५ ॥ कृताभिषे
कैस्तैर्न्यस्तावल्कलाःपादपेष्विह ॥ अद्यापिनविशुष्यंतिप्रदेशेरघुनंदन ॥ २६ ॥ देवकार्याणिकुर्वद्भिर्यानीमानिकृ
तानिवै ॥ पुष्पैःकुवलयैःसार्धंम्लानत्वंनतुयांतिवै ॥ २७ ॥

पूजनाय गुरु लोग पुष्पांजलि सहित श्रम युक्त हाथोंसे देवताओंकी पूजा करतेथे ॥ २३ ॥ हे रघुवर! देखिये यह वही अनुपम प्रभायुक्त वेदी उनके
तपोवलसे आजभी अपनी दीप्तिसे दशों दिशाओंको दिपा रही है ॥ २४ ॥ जब वह ऋषि लोग उपवासोंके परिश्रमसे आलस्यीहोकर स्नान करनें
को जानेंमें समर्थ हीन होगये, तब उनके चिंता करतेही यह सात समुद्र यहां आगये सो आप देखिये ॥ २५ ॥ हे रघुनन्दन! ऋषि लोगोंनें स्नान करकै
यहां वृक्षोंपर जो अपने गीले वस्त्र टांग दिये हैं सो वह अवतक नहीं सूखे हैं ॥ २६ ॥ उन्होनें देवताओंका कार्य साधन करनेके लिये जो नीले कमलके सहित

हे महावीर! रघुनंदन! जब यथा विधिसे आप हमको गढेमें रखकर फूंक देंगे तब हम बतलावेंगे कि कौन रावणको जानताहै ॥ ३२ ॥ हे राघव! आप उस अच्छी वृत्तिवाले पुरुषके साथ मित्रता करलेना वह पराक्रमी वीर आपकी वडी भारी सहायता करैगा ॥ ३३ ॥ हे महाराज! त्रिलोकीमें ऐसा कुछभी नहींहै जिसको यह पुरुष न जानता हो वह प्रथम किसी वडेही कारणके वश होकर त्रिलोकीमें घूमा है ॥ ३४ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० आर० एकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥ जब कवन्धनें उन दोनों वीरशिरोमणियोंसे ऐसा कहा तब नर श्रेष्ठ श्रीरामचंद्र व लक्ष्मणजीने पर्वतकी गुफामें लेजाकर उसको अग्नि देदी ॥ १ ॥ लक्ष्मणने वडी २ उल्काओंको प्रज्वलित करके

दग्धस्त्वयाहमवटेन्यायेनरघुनंदन॥ वक्ष्यामितंमहावीरयस्तंवत्स्येतिराक्षसम् ॥ ३२ ॥ तेनसख्यंचकर्तव्यंन्याय्य वृत्तेनराघव ॥ कल्पयिष्यतितेवीरसाहाय्यंलघुविक्रम ॥ ३३ ॥ नहितस्यास्त्यविज्ञातंत्रिषुलोकेषुराघव ॥ सर्वान्प रिवृतोलोकान्पुरावैकारणांतरे ॥ ३४ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० आरण्यकांडेएकसप्ततितमःसर्गः ॥ ७१ ॥ ॥ ७२ ॥ एवमुक्तौतुतौवीरौकबंधेननरेश्वरौ ॥ गिरिप्रदरमासाद्यपावकंविससर्जतुः ॥ १ ॥ लक्ष्मणस्तुमहोल्काभिर्ज्वलिता भिःसमंततः ॥ चितामादीपयामाससाप्रजज्वालसर्वतः ॥ २ ॥ तच्छरीरंकबंधस्यघृतपिंडोपमंमहत् ॥ मेदसा पच्यमानस्यमंदंदहतपावकः ॥ ३ ॥ सविधूयचितामाशुविधूमोऽग्निरिवोत्थितः ॥ अरजेवाससीबिभ्रन्माल्यंदिव्यं महाबलः ॥ ४ ॥ ततश्चितायावेगेनभास्वरोविरजांबरः ॥ उत्पपाताशुसंहृष्टःसर्वप्रत्यंगभूषणः ॥ ५ ॥ विमाने भास्वरेतिष्ठन्हंसयुक्तेयशस्करे ॥ प्रभयाचमहातेजादिशोदशविराजयन् ॥ ६ ॥

चारों ओर अग्नि लगादी तब चिता भली भांतिसे जलनें लगी ॥ २ ॥ तब कवन्धका घीके पिंडेकी समान चरबीसे परिपूर्ण वडा भारी शरीर धीरे२ जलनें लगा ॥ ३ ॥ जब चिता जल कर रहगई तब महा बलवान कबंध उसी समय चिताको कंपायमान करता हुआ निर्मल वस्त्र और दिव्य माला धारण करके धुआं रहित अग्निकी समान उसमेंसे निकला ॥ ४ ॥ और दिव्य कांति युक्त शरीरसे वेगमें भर आनंद सहित उसी समय आ काशको गया उसके समस्त अंग प्रत्यंग गहनोंसे भूषितथे ॥ ५ ॥ तिसके पीछे वह अतिशय उजले हंस युक्त यशस्कर विमानमें बैठकर अपनी

उसस्थानको प्रकाशित करनेंलगी ॥ ३४ ॥ उसके गुरु वह विशुद्धात्मा महर्षि गण जिस स्थानोंमें विराजमानथे श्रमणी भी आत्मसमाधिके
प्रभावसे परम पवित्र उस पुण्य लोकको चली गई ॥ ३५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आर० चतुःसप्तति तमः सर्गः ॥ ७४ ॥
जब शबरी अपनी तपस्याके प्रभावसे स्वर्गको चलीगई तब धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मण जीके सहित चिन्तनाकरनें लगे ॥ १ ॥ वह उन
धर्मात्मा महर्षि गणोंका अद्भुत प्रभाव विचार एकही परम हितकारी अपने भ्राता श्री लक्ष्मणजीसे बोले ॥ २ ॥ हे सौम्य! हमने उन विशुद्धात्मा
महर्षियोंके आश्चर्य युक्त यह आश्रम देखे यहांपर मृग और व्याघ्र लोग वैर भाव छोडकर विचरण करते हैं और अनेक प्रकारके पक्षी भी वास

यत्रतेसुकृतात्मानोविहरंतिमहर्षयः ॥ तत्पुण्यंशबरीस्थानंजगामात्मसमाधिना ॥ ३५ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणे
वाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेचतुःसप्ततितमःसर्गः ॥ ७४ ॥ ॥ ७॥ ॥ दिवंतुतस्यांयातायांशबर्यांस्वे
नतेजसा ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्राचिंतयामासराघवः ॥ १ ॥ चिंतयित्वातुधर्मात्माप्रभावंतंमहात्मनाम् ॥ हितका
रिणमेकाग्रंलक्ष्मणंराघवोऽब्रवीत् ॥ २ ॥ दृष्टोमयाश्रमःसौम्यबह्वाश्चर्यःकृतात्मनाम् ॥ विश्वस्तमृगशार्दूलोनाना
विहगसेवितः ॥ ३ ॥ सप्तानांचसमुद्राणांतेषांतीर्थेषुलक्ष्मण ॥ उपस्पृष्टंचविधिवत्पितरश्चापितर्पिताः ॥ ४ ॥ प्रन
ष्टमशुभंयन्नःकल्याणंसमुपस्थितम् ॥ तेनत्वेतत्प्रहृष्टंमेमनोलक्ष्मणसंप्रति ॥ ५ ॥ हृदयेमेनरव्याघ्रशुभमाविर्भवि
ष्यति ॥ तदागच्छगमिष्यावःपंपांतांप्रियदर्शनाम् ॥ ६ ॥ ऋष्यमूकोगिरिर्यत्रनातिदूरेप्रकाशते ॥ यस्मिन्वसति
धर्मात्मासुग्रीवोंशुमतःसुतः ॥ ७ ॥ नित्यंवालिभयात्त्रस्तश्चतुर्भिःसहवानरैः ॥ अहंत्वरेचतंद्रष्टुंसुग्रीवंवानरर्षभम् ॥ ८ ॥

करतेहैं ॥ ३ ॥ उनके स्थापन किये हुये इन सप्त सागर तीर्थोंमें हमनें यथा विधान से स्नान और पितृ लोगोंको तर्पण भी किया ॥ ४ ॥ इससे
हमारे अशुभ भी नष्ट होगये और कल्याण भी प्राप्त होगया हे लक्ष्मण इस्से हमारा मन इस समय बहुत ही प्रफुल्ल हो रहाहै ॥ ५ ॥ और हे नर
व्याघ्र! इस समय हमारा हृदय भी शुभ भावसे पूरितहै सो अब अच्छाही होगा इस कारण हम उस मनोहर पंपासर पर चलें ॥ ६ ॥ जिस पंपाके
निकट ही ऋष्यमूक पर्वत प्रकाशित होरहाहै जहांपर धर्मात्मा सूर्यके पुत्र सुग्रीवजी बसतेहैं ॥ ७ ॥ नित्य वालिके भयसेभीत चारों वानरों

वीर्यवान्, महातेजस्वी, महादीप्तिमान्, सत्यप्रतिज्ञ, नीतिशास्त्रका जाननेंवाला, धारण शक्ति युक्त महान् ॥ १३ ॥ दक्ष प्रगल्भ प्रकाशमान और महाबल पराक्रमयुक्तहै। परन्तु उस महात्माको राज्यके कारण वालिनें घरसे निकाल दियाहै ॥ १४ ॥ वह निश्चयही सीताके ढूंढनें भालनेंमें आपका सहायक और मित्र होगा। सो आप अब शोक करनेंमें अपने मनको न लगाइये वहां जाइये ॥ १५ ॥ कोईभी होनहारको नहीं मेट सकता, जो होनहारहै वह अवश्यही होगी, हे इक्ष्वाकुश्रेष्ठ! कालकी गति बडी दुर्गमहै ॥ १६ ॥ इस कारणसे हेवीर! आप शीघ्रही इस स्थानसे महापराक्रमवान सुग्रीवके पास जाकर उस्से मित्रता कर लीजिये हे रघुनंदन! इसी समय आप चले जाइये ॥ १७ ॥ प्रज्वलित अग्निके

दक्षःप्रगल्भोद्युतिमान्महाबलपराक्रमः ॥ भ्रात्राविवासितोवीरराज्यहेतोर्महात्मना ॥ १४ ॥ सतेसहायोमित्रंच सीतायाःपरिमार्गणे ॥ भविष्यतिहितेराममाचशोकेमनःकृथाः ॥ १५ ॥ भवितव्यंहितच्चापिनतच्छक्यमिहान्यथा ॥ कर्तुमिक्ष्वाकुशार्दूलकालोहिदुरतिक्रमः ॥ १६ ॥ गच्छशीघ्रमितोवीरसुग्रीवंतंमहाबलम् ॥ वयस्यंतंकुरुक्षिप्रमितोगत्वाद्यराघव ॥ १७ ॥ अद्रोहायसमागम्यदीप्यमानेविभावसौ ॥ नचतेसोऽवमंतव्यःसुग्रीवोवानराधिपः ॥ १८ ॥ कृतज्ञःकामरूपीचसहायार्थीचवीर्यवान् ॥ शक्तौह्यद्ययुवांकर्तुंकार्यंयस्यचिकीर्षितम् ॥ १९ ॥ कृतार्थोवाऽकृतार्थोवातवकृत्यंकरिष्यति ॥ सऋक्षरजसःपुत्रःपंपामटतिशंकितः ॥ २० ॥ भास्करस्यौरसःपुत्रोवालिनाकृतकिल्बिषः ॥ संनिधायायुधंक्षिप्रमृष्यमूकालयंकपिम् ॥ २१ ॥

सन्मुख उसको साक्षीकर सुग्रीवसे मित्रता कीजिये, परन्तु उस वानरनाथका अपमान आप कभी न कीजिये ॥ १८ ॥ क्योंकि कृतज्ञहै कामरूपी इच्छानुसार रूप धारण करलेनेंवालाहै वीर्यवान्भीहै, और विशेष करके इस समय स्वयंभी किसीकी सहायता चाहताहै सो आपभी उसके कार्यको कर देंगे ॥ १९ ॥ फिर वह कार्यका चाहनेंवाला सुग्रीव सफल मनोरथ हो आपका कार्य कर देगा वह ऋक्षराजकी स्त्रीमें सूर्य भगवानसे उत्पन्न हुआ है, और इस समय भाईकी शंकासे पंपाके किनारे २ फिरा करता है॥२०॥ सूर्य नारायणका औरसपुत्र वालिके संग वैर होनेंके कारण दुःखित है इस्से आप अस्त्र शस्त्र दूर धरकर ऋष्यमूक पर्वत पर बैठे हुए उस

रेतीसे घिरा हुआ है ॥१७॥वह पंपासर मछलियें और कछुओंसे शोभित फैली फली बेलें जिसको सखियोंके समान घेरे हुये हैं जिसके किनारे२ बहुतसे वृक्ष लगे हुये हैं, गन्धर्व, किन्नर, सर्प, यक्ष, और राक्षसगण ॥ १८ ॥ उसकेइधर उधर घूमते हैं और वह अनेक जातिके वृक्ष और लताओंसे घिरा हुआ है उसका जल शीतल और महाशोभायमान है ॥ १९ ॥ वह कहीं लाल कमल और कल्हारसे छारहाहै इस्से लाल वर्ण,और कहीं नीलेकमल फूलोंके खिलनेंसे नीला और कहीं बबूलोंसे छायाजानेके कारण श्वेत वर्णहो गया है और अनेक वर्णोंसे चित्रित होनेके कारण रंग बिरंगी हाथीकी झूलकी समान शोभायमान है ॥२०॥वह अरविन्द, उत्पल और पुष्पित आम बनके समूह पूरित और मयूरोंके शब्दसे शब्दायमान ॥ २१ ॥ पंपा

मत्स्यकच्छपसंबाधांतीरस्थद्रुमशोभिताम् ॥ सखीभिरेवसंयुक्तांलताभिरनुवेष्टिताम् ॥ १८॥ किन्नरोरगगंधर्वयक्ष राक्षससेविताम् ॥ नानाद्रुमलताकीर्णांशीतवारिनिधिंशुभाम् ॥१९॥ पद्मसौगंधिकैस्ताम्रांशुक्लांकुमुदमंडलैः ॥ नीलां कुवलयोद्घाटैर्बहुवर्णांकुथामिव॥ २० ॥ अरविंदोत्पलवतींपद्मसौगंधिकायुताम् ॥ पुष्पिताम्रवणोपेतांबर्हिणोद्घुष्टनादिताम् ॥ २१ ॥ सतांदृष्ट्वाततःपंपांरामःसौमित्रिणासह ॥ विललापचतेजस्वीरामोदशरथात्मजः ॥ २२ ॥ तिलकैर्बीजपूरैश्चवटैःशुक्लद्रुमैस्तथा ॥ पुष्पितैःकरवीरैश्चपुन्नागैश्चसुपुष्पितैः ॥ २३ ॥ मालतीकुंदगुल्मैश्चभंडीरैर्निचुलैस्तथा ॥ अशोकैःसप्तपर्णैश्चकेतकैरतिमुक्तकैः ॥ २४ ॥ अन्यैश्चविविधैर्वृक्षैःप्रमदेवोपशोभिताम् ॥ अस्यास्तीरेतुपूर्वोक्तःपर्वतोधातुमंडितः ॥ २५ ॥ ऋष्यमूकइतिख्यातश्चित्रपुष्पितपादपः ॥ हरिर्ऋक्षरजोनाम्नःपुत्रस्तस्यमहात्मनः ॥ २६ ॥

सरोवरको रामचन्द्रजीनें लक्ष्मणजीके सहित देखा उसको देखकर, तेजस्वी दशरथ कुमार श्रीरामचन्द्रजी विलाप करनें लगे ॥ २२ ॥ श्रीरामचंद्रजीने फिर देखाकी तिलक बीज पूरक, वट लोध, द्रुम पुष्पित करवीर फूला हुआ,पुन्नाग ॥२३॥ मालती,कुंद,गुल्म,भांडीर, निचुल, अशोक सप्त वर्ण केतकी, चमेली अतिमुक्तक॥२४॥ इत्यादि औरभी अनेकप्रकारके वृक्षवहां शोभित होरहेहैं श्रीरामचंद्रजी बोले, इसके ही किनारे पहले कहा हुआ धातुओंसे सजा हुआ पर्वत ॥ २५ ॥ विख्यात ऋष्यमूक विचित्र पुष्प युक्त वृक्षोंसे युक्तहै महात्मा हरि ऋक्षरजके पुत्र ॥ २६ ॥ महावीर

वीर्यवान्, महातेजस्वी, महादीप्तिमान्, सत्यप्रतिज्ञ, नीतिशास्त्रका जाननेंवाला, धारण शक्ति युक्त महान् ॥ १३ ॥ दक्ष प्रगल्भ प्रकाशमान और महाबल पराक्रमयुक्तहै। परन्तु उस महात्माको राज्यके कारण वालिनें घरसे निकाल दियाहै ॥ १४ ॥ वह निश्चयही सीताके ढूंढनें भालनेंमें आपका सहायक और मित्र होगा। सो आप अब शोक करनेंमें अपने मनको न लगाइये वहां जाइये ॥ १५ ॥ कोईभी होनहारको नहीं मेट सकता, जो होनहारहै वह अवश्यही होगी, हे इक्ष्वाकुश्रेष्ठ! कालकी गति बडी दुर्गमहै ॥ १६ ॥ इस कारणसे हेवीर! आप शीघ्रही इस स्थानसे महापराक्रमवान सुग्रीवके पास जाकर उस्से मित्रता कर लीजिये हे रघुनंदन! इसी समय आप चले जाइये ॥ १७ ॥ प्रज्वलित अग्निके

दक्षःप्रगल्भोद्युतिमान्महाबलपराक्रमः ॥ भ्रात्राविवासितोवीरराज्यहेतोर्महात्मना ॥ १४ ॥ सतेसहायोमित्रंच सीतायाःपरिमार्गणे ॥ भविष्यतिहितेराममाचशोकेमनःकृथाः ॥ १५ ॥ भवितव्यंहितच्चापिनतच्छक्यमिहान्यथा ॥ कर्तुमिक्ष्वाकुशार्दूलकालोहिदुरतिक्रमः ॥ १६ ॥ गच्छशीघ्रमितोवीरसुग्रीवंतंमहाबलम् ॥ वयस्यंतंकुरुक्षिप्रमितोगत्वाद्यराघव ॥ १७ ॥ अद्रोहायसमागम्यदीप्यमानेविभावसौ ॥ नचतेसोऽवमंतव्यःसुग्रीवोवानराधिपः ॥ १८ ॥ कृतज्ञःकामरूपीचसहायार्थीचवीर्यवान् ॥ शक्तौह्यद्ययुवांकर्तुंकार्यंयस्यचिकीर्षितम् ॥ १९ ॥ कृतार्थोवाऽकृतार्थोवातवकृत्यंकरिष्यति ॥ सऋक्षरजसःपुत्रःपंपामटतिशंकितः ॥ २० ॥ भास्करस्यौरसःपुत्रोवालिनाकृतकिल्बिषः ॥ संनिधायायुधंक्षिप्रमृष्यमूकालयंकपिम् ॥ २१ ॥

सन्मुख उसको साक्षीकर सुग्रीवसे मित्रता कीजिये, परन्तु उस वानरनाथका अपमान आप कभी न कीजिये ॥ १८ ॥ क्योंकि वह कृतज्ञहै कामरूपी इच्छानुसार रूप धारण करलेनेंवालाहै वीर्यवान्भीहै, और विशेष करके इस समय स्वयंभी किसीकी सहायता चाहताहै सो आपभी उसके कार्यको कर देंगे ॥ १९ ॥ फिर वह कार्यका चाहनेंवाला सुग्रीव सफल मनोरथ हो आपका कार्य भी अवश्य कर देगा वह ऋक्षराजकी स्त्रीमें सूर्य भगवानसे उत्पन्न हुआ है, और इस समय भाईकी शंकासे पंपाके किनारे २ फिरा करता है॥२०॥ वह सूर्य नारायणका औरसपुत्र वालिके संग वैर होनेंके कारण दुःखित है इस्से आप अस्त्र शस्त्र दूर धरकर ऋष्यमूक पर्वत पर बैठे हुए उस

-हुआ है ॥१७॥ ...न हित कारण धरो, प्रभुनें मनुज शरीर । ऋषि मुनियनकी दासकी, दूर करी सबपीर ॥
गन्धर्व, कि... कृ... अनुग्रह अस करो, रहे तुम्हारे ध्यान । प्रभु ज्वालापरसादको, यह वरदान न आन ॥
जिमि ... ऋपियनसों भयो, प्रभुको शुभ संवाद । सो सब भाषामें कियो, लख ज्वालापरसाद ॥
पढहिं स... नकृपा करि,सुमिरहिंलक्ष्मणराम । यामें कुछ संशय नहीं, सिद्ध होत सब काम ॥

इदं वा... ...मीकीयरामायणारण्यकाण्डं भाषाटीकासहितं श्रीकृष्णदासात्मजखेमराजेन मुम्बय्यां स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वराख्य" यंत्रालये मुद्रितम् शके १८१४

पुस्तकमिलनेका ठिकाना.

खेमराज श्रीकृष्णदास

"श्रीवेङ्कटेश्वर"छापाखाना बम्बई.

वृक्ष लगरहे हैं, जो यहांसे पाश्चिमकी ओर दृष्टि आते हैं॥२॥ उन वृक्षोंमें जामन, चिरोंजी, कटहर, वट, पाकर, तेंदू, पीपल, कठचंपा, आम आदि अनेक
प्रकारके है ॥ ३ ॥और धवई, नागकेशर, अगेथू , तिलक, किलवार, श्याम, अशोक, कदम्ब, कंदैल, यह सब पुष्पित वृक्ष लगे हैं॥४॥ हरे २ अशोक,
नींबके वृक्ष सब प्रकारके औरभी उत्तम२वृक्ष हैं सो आप उनपर चढके अथवा बलसे हिलाकर फल भूमिमें गिराकर ॥५॥ अमृत समान फल खाते पीतें
हुए दोनो जने चले जाओ हे काकुत्स्थ! उस फूले वृक्ष द्वारा परिपूर्ण वनसे आप निकल जांयगे ॥ ६ ॥ तब और एक नन्दन और उत्तर कुरुदेशके
समान वन मिलेगा; जिसमें सब कालमें फले ऐसे मीठे फलवाले वृक्षभी लग रहे हैं॥ ७ ॥उस वनमें सब समयमें सब ऋतु चैत्र रथ बनकी समान विद्य

जंबूप्रियालपनसान्यग्रोधप्लक्षतिंदुकाः ॥ अश्वत्थाःकर्णिकाराश्चचूताश्चान्येचपादपाः ॥ ३ ॥ धन्वनानागवृक्षाश्च
तिलकानक्तमालकाः ॥ नीलाशोकाःकदंबाश्चकरवीराश्चपुष्पिताः ॥ ४ ॥ अग्निमुख्याअशोकाश्चसुरक्ताःपारिभ
द्रकाः ॥ तानारुह्याथवाभूमौपातयित्वाचतान्बलात् ॥ ५ ॥ फलान्यमृतकल्पानिभक्षयित्वागमिष्यथ ॥ तदतिक्र
म्यकाकुत्स्थवनंपुष्पितपादपम् ॥ ६ ॥ नंदनप्रतिमंत्वन्यत्कुरवस्तूत्तराइव ॥ सर्वकालफलायत्रपादपामधुरस्र
वाः ॥ ७ ॥ सर्वेचऋतवस्तत्रवनेचैत्ररथेयथा ॥ फलभारनतास्तत्रमहाविटपधारिणः ॥ ८ ॥ शोभंतेसर्वतस्तत्रमेघपर्व
तसंनिभाः ॥ तानारुह्याथवाभूमौपातयित्वाथवासुखम् ॥ ९ ॥ फलान्यमृतकल्पानिलक्ष्मणस्तेप्रदास्यति ॥ चंक्रमंतौ
वरान्शैलान्शैलाच्छैलंवनाद्वनम् ॥ १० ॥ ततःपुष्करिणींवीरौपंपांनामगमिष्यथ ॥ अशर्करामविभ्रंशांसमतीर्था
मशेवलाम् ॥ ११ ॥ रामसंजातवालूकांकमलोत्पलशोभिताम् ॥ तत्रहंसाःप्लवाःक्रौंचाःकुरराश्चैवराघव ॥ १२ ॥

मान रहती हैं, वहां सब वृक्ष फल भारसे झुके हुए देख पडते हैं ॥ ८ ॥वह सब मेघों और पर्वतोंकी समान शोभायमान होते हैं । वहां परभी उनपर
चढकर अथवा जोरसे हिला झुला भूमिमें गिराकर जैसा ठीक समझा जाय ॥ ९ ॥ अमृतकी समान फल वह वृक्ष आपको देंगे, इस भांतिसे दोनों
भ्राता पर्वतों पर होते हुए इस वनसें उस बनमें जाय ॥ १० ॥ फिर पंपा नामक सरोवर पर पहुँचोगे, यह सरोवरमें शिवार, शर्करा, कंकर और
फिसलनी भूमि नहीं है सब घाट बराबर बने हैं ॥११॥ हे राम! उसमें रेती बहुत श्रेष्ठ है विविध भांतिके कमल उसमें फूलते हैं, हंस, राजहंस, क्रौंच,कुरर

गयेहैं राक्षसके हाथसे मार डाले गये ॥ ३५ ॥ हेजानकी ! इस प्रकार हमारी सैनागण करके तुम्हारे स्वामी सर्व सैनागणके साथ मार डाले
तुम्हें विश्वाश दिलानेंके लिये हम उनका रुधिर से सना व कटाहुआ मस्तकभी यहां लेआयेहैं ॥ ३६ ॥ तिसके पीछे परम दुर्जय राक्षसेश्वर
रावण सीताजीको सुनानेंके लिये उनके निकट बैठीहुई राक्षसीसे बोला॥३७॥कि हेनिशाचरी! जो राक्षस रण भूमिसे स्वयं रामचंद्रका शिर काटकर ले
आयाहै, उस क्रूरकर्मकारी विद्युज्जिह्व राक्षसको शीघ्र यहां बुला लाओ ॥ ३८ ॥ तिसके पीछे रावणके ऐसा कहतेही यह मायावी विद्यु
ज्जिह्व धनुष बाणके सहित मायामय रामचंद्रजीका कटाहुआ शिर ग्रहणकर रावणके आगे आय प्रणाम करता हुआ ॥ ३९ ॥ रावण मंत्री श्रेष्ठ

एवंतवहतोभर्तासससैन्योममसेनया ॥ क्षतजार्द्ररजोध्वस्तमिदंचास्याहृतंशिरः ॥ ३६ ॥ ततःपरमदुर्धर्षोरावणोराक्षसेश्व
रः॥ सीतायामुपशृण्वंत्यांराक्षसीमिदमब्रवीत् ॥३७॥ राक्षसंक्रूरकर्माणंविद्युज्जिह्वंसमानय ॥ येनतद्राघवशिरःसंग्रामा
त्स्वयमाहृतम् ॥ ३८ ॥ विद्युज्जिह्वस्तदागृह्यशिरस्तत्सशरासनम् ॥ प्रणामंशिरसाकृत्वारावणस्याग्रतःस्थितः ॥ ३९ ॥
तमब्रवीत्ततोराजारावणोराक्षसंस्थितम् ॥ विद्युज्जिह्वंमहाजिह्वंसमीपपरिवर्तिनम् ॥ ४० ॥ अग्रतःकुरुसीतायाःशीघ्रं
दाशरथेःशिरः ॥ अवस्थांपश्चिमांभर्तुःकृपणांसाधुपश्यतु ॥ ४१ ॥ एवमुक्तंतुतद्रक्षःशिरस्तत्प्रियदर्शनम् ॥ उपनि
क्षिप्यसीतायाःक्षिप्रमंतरधीयत ॥ ४२ ॥ रावणश्चापिचिक्षेपभास्वरंकार्मुकंमहत् ॥ त्रिषुलोकेषुविख्यातंरामस्यैतदि
तिब्रुवन् ॥ ४३ ॥ इदंतत्तवरामस्यकार्मुकंज्यासमावृतम् ॥ इहप्रहस्तेनानीतंतंहत्वानिशिमानुषम् ॥ ४४ ॥

महाजीभवाले विद्युज्जिह्वको आगे आया हुआ देखकर बोला ॥४०॥ रामचंद्रका कटा हुआ मस्तक तुम इन जानकीको दिखाओ, कारणकि इस समय
यह कृपणा सीता अपने स्वामीकी अंतिमा अवस्था देखें ॥ ४१ ॥ जब राक्षस विद्युज्जिह्वसे रावणनें ऐसा कहा तब वह प्रियदर्शन
शिर सीताजीको दिखायकर शीघ्रही अन्तर्ध्यान होगया ॥ ४२ ॥ तिसके पीछे रावण बोला, हेसीते! देखो यह उन्ही रामचंद्रका त्रिलोकवि
ख्यात दीप्तिशील और बडा भारी धनुषबाण है यह कहकर रावणने वह भयंकर धनुष फेंकदिया॥ ४३ ॥ हे सीते! पहँचान लो यह वही रोदा चढ़ा

पंपाका शीतल जल देखकर व पीकर आप शोक भूल जांयगे, और वहां फूले हुये तिलक, नक्तमालक आदिक वृक्षहैं ॥२१॥ और हे रघुनंदन ! वहां पर भांति२के कमलभी फूल रहेहैं, परन्तु उन पुष्पोंकी माला बनाकर पहरनेंवाला वहां पर कोई पुरुष नहीं रहता ॥२२॥ वह फूल न कभी मुरझातेहैं, न अपने आपसे गिरतेहैं कारणकि वहां पर मतंग ऋषिके चेले जो ऋषि लोगहैं, वह एकाग्र चित्त होकर वहां रहतेथे॥२३॥ वह सब शिष्य ऋषि लोग अपनें गुरूजीके लिये वनके फल फूल लेनें जाते हुये, वोझके मारे थक जानें पर उनके शरीरसे जो पसीनें की बूंदें पृथ्वीपर गिर पडतीथीं॥२४॥ वहीं २ स्वेद बिन्दु उस कालमें उनके तपके प्रभावसे फूल होगये हैं हे रघुनंदन। ऋषिलोगोंके पसीनेंकी बूंदोंसे उत्पन्न होनेंके कारण यह सब

शिवोदकंचपंपायांदृष्ट्वाशोकंविहास्यसि ॥ सुमनोभिश्चितास्तत्रतिलकानक्तमालकाः ॥ २१ ॥ उत्पलानिचफुल्लानि- पंकजानिचराघव ॥ नतानिकश्चिन्माल्यानितत्रारोपयितानरः ॥ २२ ॥ नचवैग्लानतांयांतिनचशीर्यंतिराघव ॥ मतंग शिष्यास्तत्रासन्नृषयःसुसमाहिताः॥२३॥तेषांभाराभितप्तानांवन्यमाहरतांगुरोः ॥ येप्रपेतुर्महींतूर्णंशरीरात्स्वेदबिंदवः ॥२४॥तानिमाल्यानिजातानिमुनीनांतपसातदा ॥ स्वेदबिंदुसमुत्थानिनविनश्यंतिराघव॥२५॥तेषांगतानामद्यापिदृश्यतेपरिचारिणी ॥ श्रमणीशबरीनामकाकुत्स्थचिरजीविनी ॥ २६ ॥ त्वांतुधर्मेस्थितानित्यंसर्वभूतनमस्कृतम् ॥ दृष्ट्वादेवोपमंरामस्वर्गलोकंगमिष्यति ॥ २७ ॥ ततस्तद्रामपंपायास्तीरमाश्रित्यपश्चिमम् ॥ आश्रमस्थानमतुलंगुह्यं काकुत्स्थपश्यसि॥ २८ ॥ नतत्राक्रमितुंनागाःशक्नुवंतितदाश्रमे ॥ ऋषेस्तस्यमतंगस्यविधानात्तच्चकाननम् ॥ २९ ॥

पुष्प अविनासी होगयेहैं ॥ २५ ॥ यद्यपि सब ऋषि लोग वहांसे अन्तर्ध्यान होगयेहैं परन्तु अबतक उनकी परिचारिका श्रमणी नामक शबरी वहांपर दृष्टि आतीहै ॥ २६ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! आप साक्षात् देवताओंकी समान सब लोकोंके नमस्कार करनें योग्य हैं नित्य धर्म परायण श्रमणी आपको अवलोकन करके स्वर्गको चली जायगी ॥ २७ ॥ हे काकुत्स्थनंदन! जब आप पंपाके पश्चिम तीरपर जांयगे तब महर्षि मतंग का अनेक आश्रमोंमें गुप्त आश्रम दृष्टि आवैगा ॥ २८ ॥ पृथ्वीमें यह आश्रम अतुलनीय है मतंग मुनिजीके प्रभावके वशसे हाथीभी इस आ

समान पृथ्वीपर गिर पड़ीं ॥ ६ ॥ तिसके पीछे बड़े नेत्रोंवाली सीताजी सावधान होकर बहुत देरके पीछे चैतन्यता प्राप्त कर ... डाले गयेहैं
निकट उस मस्तकको रखकर विलाप करनें लगी ॥ ७ ॥ हा महाबाहो! हम जीवित हुईभी मारी गईं!, तुमनें वीर श्रेष्ठकी समान अपने पिताका सत्य
प्रतिपालन किया, परन्तु हमनें विधवा होकर तुम्हारी यह सबसे पीछे अवस्था देखी ॥ ८ ॥ हा नाथ! पहले स्वामीका मरण होनेंसे वह स्त्रीके
दोषसेही मरण कहलाताहै परन्तु हमको साध्वी (पतिव्रता) जानकरभी तुम किस कारणसे साधुकी समान पहलेही मृतक होगये ॥ ९ ॥ हाय!
हम महादुःखके समुद्रमें डूबती हुई बड़े कष्टसे दिन विताय रहीहैं, हमें भरोसा था कि तुम हमे इस विपदसे छुड़ाओगे, परन्तु! हमारे जले भाग्यसे

सामुहूर्तात्समाश्वस्यपरिलभ्याथचेतनाम् ॥ तच्छिरःसमुपास्थायविललापायतेक्षणा ॥ ७ ॥ हाहतास्मिमहाबाहो
वीरव्रतमनुव्रत ॥ इमांतेपश्चिमावस्थांगतास्मिविधवाकृता ॥ ८ ॥ प्रथमंमरणंनार्याभर्तुर्वैगुण्यमुच्यते ॥ सुवृत्तः
साधुवृत्तायाःसंवृत्तस्त्वंममाग्रतः ॥ ९ ॥ महद्दुःखंप्रपन्नायामग्नायाःशोकसागरे ॥ योहिमामुद्यतस्त्रातुंसोपित्वंविनिपा
तितः ॥ १० ॥ साश्वश्रूर्ममकौसल्यात्वयापुत्रेणराघव ॥ वत्सलातेयथाधेनुर्विवत्सावत्सलाकृता ॥ ११ ॥ उद्दि
ष्टंदीर्घमायुस्तेदैवज्ञैरपिराघव ॥ अनृतंवचनंतेषामल्पायुरसिराघव ॥ १२ ॥ अथवानश्यतिप्रज्ञाप्राज्ञस्यापिसत
स्तव ॥ पचत्येनंतथाकालोभूतानांप्रभवोह्ययम् ॥ १३ ॥ अदृष्टंमृत्युमापन्नाःकस्मात्त्वंनयशास्त्रवित् ॥ व्यसना
नामुपायज्ञःकुशलोह्यसिवर्जने ॥ १४ ॥

आज तुमही मृतक होगये ॥ १० ॥ हानाथ! तुम सरीखा पुत्र पायकरभी हमारी वह सास कौशल्याजी किस कारणसे विना बच्चेकी गायके
समान वत्सरहित होगई? ॥ ११ ॥ हे रामचंद्रजी! वशिष्ठ आदि दैवके जाननेंवाले महर्षियोंनें तुमको बड़ी आयुवाला कहाथा, परन्तु हमारे
कुभाग्यसे तुम अल्पायु होकरही मृतक होगये, हा! अब उन महर्षियोंके वचन मिथ्या हुए ॥ १२ ॥ तुम पंडित होकरभी जो सावधानताका
नाश होनेंके कारण शत्रुके वशमें पड़े, सो यह सब बात कालसे ही हुईहै, कारण कि कालही सर्व भूतोंका ईश्वरहै ॥ १३ ॥ हा
नीतिशास्त्रविशारद! तुम तो सब विपदोंसे बचनेंका उपाय जानतेथे, और इन विपदोंके निवारण करनेंमें समर्थ होकरभी तुम

कोमल और सुन्दर वनैले पशु रुरु मृग देख शोक परित्याग करदेंगे, हे श्रीरामचंद्रजी ! उस पर्वतकी कंदराभी अति शोभायमान हैं ॥ ३९ ॥ उस कंदराके द्वारपर सदाही भारी शिला लगी रहतीहै, इस कारण सरलतासे उसमें प्रवेश करना नहीं हो सकता, उस गुफाके पूर्व द्वार पर एक बडा भारी अचल जलका कुंडहै ॥ ४० ॥ उस कुंडके किनारे पर बहुत सारे फूल व फलोंसे युक्त अनेकर भांतिके रमणीक वृक्ष लगेहैं, और वहींपर धर्मात्मा सुग्रीवजी वानरोंके सहित वास करतेहैं ॥ ४१ ॥ और वह सुग्रीवजी कभीर उस पर्वतके शिखर परभी बैठे रहतेहैं, इस प्रकारसे वह कबंध श्रीराम लक्ष्मणजीसे बताय ॥ ४२ ॥ फूलोंकी माला पहरे, सूर्यके समान प्रकाशित आकाशमें टिका हुआ शोभित होनें लगा,

रुरूनपेतानजयान्दृष्ट्वाशोकंप्रहास्यसि ॥ रामतस्यतुशैलस्यमहतीशोभतेगुहा ॥३९॥शिलापिधानाकाकुत्स्थदुःखंचा स्याःप्रवेशनम्॥ तस्यागुहायाःप्राग्द्वारेमहान्शीतोदकोह्रदः ॥४० ॥ बहुमूलफलोरम्योनानानगसमाकुलः॥तस्यांवस तिधर्मात्मासुग्रीवःसहवानरैः ॥ ४१ ॥ कदाचिच्छिखरेतस्यपर्वतस्यापितिष्ठति ॥ कबंधस्त्वनुशास्यैवंतावुभौरामल क्ष्मणौ ॥ ४२ ॥ स्रग्वीभास्करवर्णाभःखेव्यरोचतवीर्यवान् ॥ तंतुखस्थंमहाभागंतावुभौरामलक्ष्मणौ ॥ ४३ ॥ प्रस्थि तौत्वंव्रजस्वेतिवाक्यमूचतुरंतिके॥गम्यतांकार्यसिद्ध्यर्थमितितावब्रवीत्सच ॥४४॥सुप्रीतौतावनुज्ञाप्यकबंधःप्रस्थित स्तदा ॥ ४५ ॥ सतत्कबंधःप्रतिपद्यरूपंवृतःश्रियाभास्वरसर्वदेहः ॥ निदर्शयन्राममवेक्ष्यखस्थःसख्यंकुरुष्वेतितदा भ्युवाच ॥ ४६ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०आर०त्रिसप्ततितमःसर्गः ॥ ७३ ॥ ॥ तौकबंधेनतंमार्गंपंपायादर्शितंवने॥ आतस्थतुर्दिशंगृह्यप्रतीचींनृवरात्मजौ ॥ १ ॥

उस बडे भाग्यवालेको श्रीराम लक्ष्मणजीनें देखकर ॥ ४३ ॥ उस कबंधसे कहा कि अच्छा इस समय हम सुग्रीवके निकट जाते हैं, और तुमभी स्वर्गको जाओ ॥ ४४ ॥ तब कबंध श्रीराम लक्ष्मणजीकी आज्ञा लेकर प्रसन्न होकर स्वर्गको चला॥४५॥ उस कालमें कबंध अपना पहला रूपप्राप्त करके शोभा समन्वित और प्रदीप्त शरीर होकर श्रीरामचन्द्रजीकी ओर दृष्टि करकै कहने लगा कि आप सुग्रीवके साथ मित्रता स्थापन कीजिये ॥ ४६॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आदिकाव्ये आरण्यकांडे त्रिसप्ततितमः सर्गः॥७३॥जब कबंध इस प्रकारसे कहकर स्वर्गको चला गया तब श्रीराम लक्ष्म

अपने साथ लेते चलो ॥२१॥ हे भली गतिको पहुंचे हुए! हमको दुःख भोग करनेंके लिये इस लोकको छोडकर तुम किस वास्ते परलोक... चैतन्यता ... मार डाले गयेहैं
॥२२॥हाय ??? तुम्हारा-यह मंगलमय मनोहर शरीर केवल हमही भेंटतीथीं अब वही शरीर राक्षस लोगों करकै इधर उधर खेंचा जाता होगा! ॥२३॥
तुमनें बहुत दक्षिणाके साथ अग्निष्टोमादि यज्ञ करकै जो संस्कार कियेथे, इस समय अग्निहोत्रद्वारा तुम वह संस्कार क्यों नहीं ग्रहण करते ॥२४॥
हाय ! हम तीन जने अयोध्या पुरीसे वनवास करनेंको आयेथे; परन्तु अब कौशिल्याजी इकले लक्ष्मणजीकोही लौटा आये देखकर शोकके समुद्रमें डूब जांयगी ॥ २५ ॥ तिसके पीछे जब वह लक्ष्मणजीसे तुम्हारा वृत्तान्त पूछेंगी. तब लक्ष्मणजीभी निश्चयही वानरोंकी सैनाका वध,

कस्मान्मामपहायत्वंगतोगतिमतांवर ॥ अस्माल्लोकादमुंलोकंत्यक्त्वामामपिदुःखिताम् ॥ २२ ॥ कल्याणैरुचिरंगात्रं परिष्वक्तंमयैवतु ॥ क्रव्यादैस्तच्छरीरंतेनूनंविपरिकृष्यते ॥ २३ ॥ अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्टवानाप्तदक्षिणैः ॥ अग्नि होत्रेणसंस्कारंकेनत्वंनतुलप्स्यसे ॥ २४ ॥ प्रव्रज्यामुपपन्नानांत्रयाणामेकमागतम् ॥ परिप्रेक्ष्यतिकौसल्यालक्ष्मणं शोकलालसा ॥ २५ ॥ सतस्याःपरिपृच्छंत्यावधंमित्रबलस्यते ॥ तवचाख्यास्यतेनूनंनिशायांराक्षसैर्वधम् ॥ २६ ॥ सात्वांसुप्तंहतंज्ञात्वामांचरक्षोगृहंगताम् ॥ हृदयेनावदीर्णेननभविष्यतिराघव॥२७॥ ममहेतोरनार्यायाअनघःपार्थिवा त्मजः ॥ रामःसागरमुत्तीर्यवीर्यवान्गोष्पदेहतः ॥ २८ ॥ अहंदाशरथेनोढामोहात्स्वकुलपांसनी ॥ आर्यपुत्रस्यरामस्य भार्यामृत्युरजायत ॥२९॥ नूनमन्यांमयाजातिंवारितंदानमुत्तमम् ॥ याहमद्यैवशोचामिभार्यासर्वातिथेरिह ॥ ३० ॥

और जिस राक्षसोंसे तुम मार डाले गये वह सर्व वार्ता कहेंगे ॥ २६ ॥ हा राघव ! उस समय तुमको सोते हुए नाशको प्राप्त और हमको राक्षसके घरमें घिरी हुई सुनैगी, तब क्या उनका हृदय शतखंड नही हो जायगा? ॥ २७ ॥ हाय ! मुझ खोटे शीलवालीकेही लिये पापरहित राजकुमार श्रीरामचंद्रजीके समुद्रके पार होकर एक गौके खुरभर पानीमें डूब गये ॥ २८ ॥ हाय! आर्यपुत्र श्रीरामचंद्रजीनें अज्ञानकेही वश इस कुल नाशिनीके साथ विवाह कियाथा, कारण कि मुझ भार्याकेही परिणाममें श्रीरामचंद्रजीकी मृत्यु हुई ॥२९॥ हे आर्य ! जब कि हम अतिथि लोगोंके

आज आपके दर्शनोंसे मेरे तपकी सिद्धि हुई, जन्म सफल हुआ, गुरु गणोंकी पूजा भली भांतिसे होगई ॥११॥ और तपस्याभी सार्थक होगई, हे पुरुषोत्तम! आप देवताओंमें श्रेष्ठ हैं सो इस समय आपकी पूजा करनेसे हमें ब्रह्मलोक प्राप्त होगया ॥ १२ ॥ हे सौम्य! हे मान देनें वाले हे शत्रुघाती! आपके शुभकारी नेत्रोंकी दृष्टि पडनेंसे हम पवित्र होगई, अब आपके प्रसादसे हमको सब अक्षय लोकोकी प्राप्ति हो जायगी ॥१३॥ जिनकी हम सेवा करतीथीं वह ऋषि आपके चित्रकूट पर्वतपर पधारतेही अनुपम देदीप्यमान देव विमानोंमें सवार होकर इस आश्रमसें स्वर्गको चले गये हैं ॥ १४ ॥ वह सब महा भाग्यवान धर्मात्मा महर्षि लोक स्वर्ग जानेंके समय हमसे कह गये कि श्रीरामचन्द्रजी तुम्हारे इस पुण्य जनक

अद्यप्राप्तातपःसिद्धिस्तवसंदर्शनान्मया ॥ अद्यमेसफलंजन्मगुरवश्चसुपूजिताः ॥ ११ ॥ अद्यमेसफलंतप्तंस्वर्गश्चैवभ
विष्यति ॥ त्वयिदेववरेरामपूजितेपुरुषर्षभ ॥ १२ ॥ तवाहंचक्षुषासौम्यपूतासौम्येनमानद ॥ गमिष्याम्यक्षयान्
लोकांस्त्वत्प्रसादादरिंदम ॥१३॥ चित्रकूटंत्वयिप्राप्तेविमानैरतुलप्रभैः ॥ इतस्तेदिवमारूढायानहंपर्यचारिषम् ॥१४॥
तैश्चाहमुक्ताधर्मज्ञैर्महाभागैर्महर्षिभिः ॥ आगमिष्यतितेरामःसुपुण्यमिममाश्रमम् ॥ १५ ॥ सतेप्रतिग्रहीतव्यःसौ
मित्रिसहितोऽतिथिः ॥ तंचदृष्ट्वावरॉंल्लोकानक्षयांस्त्वंगमिष्यसि ॥ १६ ॥ एवमुक्तामहाभागैस्तदाहंपुरुषर्षभ ॥ म
यातुसंचितंवन्यंविविधंपुरुषर्षभ ॥ १७ ॥ तवार्थेपुरुषव्याघ्रपंपायास्तीरसंभवम् ॥ एवमुक्तःसधर्मात्माशबर्याशबरी
मिदम् ॥ १८ ॥ राघवःप्राहविज्ञानेतांनित्यमबहिष्कृताम् ॥ दनोःसकाशात्तत्त्वेनप्रभावंतेमहात्मनाम् ॥ १९ ॥

आश्रममें आमेंगे ॥ १५ ॥ सो तुम लक्ष्मणजीकी और उन श्रीरामचन्द्रजीकी अतिथिकी समान आदरसत्कारसे पूजा करना, उनके दर्शन करनेसे ही तुमको सर्व अक्षय लोकोंकी प्राप्ति हो जायगी ॥ १६ ॥ हे पुरुषोत्तम! उस समय वह महाभाग्यशाली महर्षिलोग हमसे इस प्रकार कह गयेथे हे पुरुषश्रेष्ठ! तभीसे हमनें विविध भांतिके भले २ फल ढूंढकर ॥ १७ ॥ आपकी सेवाके लिये धररक्खे हैं यह सब फल इसी पंपाके तीरवाले वृक्षोंके हैं धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी शबरी करके इस प्रकार कहे जाकर उससे यह वचन बोले ॥ १८ ॥ कारण कि श्रीरामचन्द्रजीनें अपनें मनमें विचरा

देखनेंको जाता हुआ ॥ ३८ ॥ और उन मंत्रियोंके मुखसे श्रीरामचंद्रजीके पराक्रमको जान उसके विषयमें कर्त्तव्याकर्त्तव्यका विचार और
उस लायक कार्यके अनुष्ठान करनेंके निमित्त सभामें आया ॥ ३९ ॥ इस ओर जैसेही कि रावण यहांसे चला गया, कि वैसेही उसके संगरमें
वह मायाकल्पित रामचंद्रजीका शिर और विचित्र धनुषभी अन्तर्ध्यान होगया ॥ ४० ॥ इस समयमें राजा रावण भयंकर विक्रमकारी मंत्रियोंके
सहित रामचंद्रजीके संबंधमें इस समय क्या कर्त्तव्यहै यह मंत्रणा करनें लगा ॥ ४१ ॥ तब रावण अपने समीप बैठे हुए हितकारी अपने सेना
पति लोगोंसे समयानुसार वचन बोला ॥ ४२ ॥ कि बहुत शीघ्र भेरी (बिगुल) बजवाकर तुम लोग शीघ्रही हमारी सेनाको यहां बुला लाओ;

सतुसर्वंसमर्थ्यैवमंत्रिभिःकृत्यमात्मनः ॥ सभांप्रविश्यविदधेविदित्वारामविक्रमम् ॥ ३९ ॥ अंतर्धानंतुतच्छीर्षं
तच्चकार्मुकमुत्तमम् ॥ जगामरावणस्यैवनिर्याणसमनंतरम् ॥ ४० ॥ राक्षसेंद्रस्तुतैःसार्धंमंत्रिभिर्भीमविक्रमैः ॥
समर्थयामासतदारामकार्यविनिश्चयम् ॥ ४१ ॥ अविदूरस्थितान्सर्वान्बलाध्यक्षान्हितैषिणः ॥ अब्रवीत्कालसदृशो
रावणोराक्षसाधिपः ॥ ४२ ॥ शीघ्रंभेरीनिनादेनस्फुटंकोणाहतेनमे ॥ समानयध्वंसैन्यानिवक्तव्यंचनकारणम् ॥ ४३ ॥
ततस्तथेतिप्रतिगृह्यतद्वचस्तदैवदूताःसहसामहद्बलम् ॥ समानयंश्चैवसमागतंचन्यवेदयन्भर्तरियुद्धकांक्षिणि ॥ ४४ ॥
इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०युद्धकांडेद्वात्रिंशःसर्गः ॥ ३२ ॥ ॥ छ ॥ सीतांतुमोहितांदृष्ट्वासरमानामराक्षसी ॥ आससादाथवै
देहींप्रियांप्रणयिनीसखी ॥ १ ॥ मोहितांराक्षसेंद्रेणसीतांपरमदुःखिताम् ॥ आश्वासयामासतदासरमामृदुभाषिणी ॥ २ ॥

परन्तु किसीसेभी बुलानेंका कारण न कहना ॥ ४३ ॥ तिसके पीछे वह युद्धाभिलाषी दूतगण "तथास्तु" कहकर राक्षसराज रावणके वचन
कहकर वचन मान, उस बड़ी भारी राक्षसी सैनाको वहां लायकर रावणके निकट उनके आगमनकी वार्ता रावणसे निवेदन की ॥ ४४ ॥ इत्यार्षे
श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे द्वात्रिंशःसर्गः ॥ ३२ ॥ इधर सीताजीको मोहित निहार अत्यन्त हितकारिणी सीताजीकी
सरमा नाम राक्षसी सखी जानकीजीके निकट आई ॥ १ ॥ और मीठे वचनोंकरके उस रावणके संताप देनेंसे मोहित हुई परम दुःखित

यह जो समस्त पुष्प देवता ओंको चढायेथे, सो वह अवतक नहीं मुर झायेहैं ॥ २७ ॥ आप सव वन देख चुके, और जो वात श्रवण करनेंके योग्यथी वह श्रवणभी कर चुके अव हमनें इस देहके छोडनेंका अभिलाप कियाहै सो आप आज्ञा दीजिये ॥ २८ ॥ जिनका यह आश्रमहै और जिनकी हम परिचारिका हैं उन विशुद्धात्मा महर्पियोंके निकट जानेंका हमारा अभिलाप हुआहै ॥ २९ ॥ श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके सहित शवरीकी यह धर्म युक्त वार्त्ता सुनकर अतिशय हर्षित हुये और वोले कि यह वडे आश्चर्य की वातहै ॥ ३० ॥ तिसके पीछे श्रीरामचंद्रजी दृढव्रत वाली शवरीसे वोले कि हे भद्रे! तुमने हमारी पूजा भली भांतिसे की अव तुम सुख सहित जहां जाना चाहती हो वहां पर चली जा

कृत्स्नंवनमिदंदृष्टंश्रोतव्यंचश्रुतंत्वया ॥ तदिच्छाम्यभ्यनुज्ञातात्यक्ष्याम्येतत्कलेवरम् ॥ २८ ॥ तेषामिच्छाम्यहं गंतुंसमीपंभावितात्मनाम् ॥ मुनीनामाश्रमोयेषामहंचपरिचारिणी ॥ २९ ॥ धर्मिष्ठंतुवचःश्रुत्वाराघवःसहलक्ष्मणः ॥ प्रहर्षमतुलंलेभेआश्चर्यमितिचाब्रवीत् ॥ ३० ॥ तामुवाचततोरामःशवरींसंशितव्रताम् ॥ अर्चितोऽहंत्वयाभद्रेगच्छ कामंयथासुखम् ॥ ३१ ॥ इत्येवमुक्ताजटिलाचीरकृष्णाजिनांबरा ॥ अनुज्ञातातुरामेणहुत्वात्मानंहुताशने ॥ ३२ ॥ ज्वलत्पावकसंकाशास्वर्गमेवजगामह ॥ दिव्याभरणसंयुक्तादिव्यमाल्यानुलेपना ॥ ३३ ॥ दिव्यांबरधरातत्रब भूवप्रियदर्शना ॥ विराजयंतीतंदेशंविद्युत्सौदामनीयथा ॥ ३४ ॥

ओ ❋ ॥ ३१ ॥ जव श्रीरामचंद्रजीनें इस प्रकारसे आज्ञादी तव जटा,चीर और काले वसन पहरे हुये शवरीनें अपने शरीरको अनलमें आहुतिदे ३२॥ प्रज्वलित अग्निके समान स्वर्गको चली गई स्वर्ग में गमन करनेंके समय उसके आभरण मालायें व चंदनादि सुगन्धित लगानेंके सव पदार्थ दिव्य होगये ॥ ३३ ॥ उसकालमें वह दिव्यही वस्त्र पहरनेके कारण परम मनोहारिणी दृष्टि आतीथी और वह दीप्तिमान विद्युतकी समान

भामिनि जो तै नेहलगायो ॥ मुक्त भई सव आस पासते ब्रह्मलोक फलपायो॥युगयुग कीरति चलिहै तेरी कियो ऋपिन मन भायो ॥ प्रातकाल तेरो सुमिरन करिकै रैनको पापन शायो ॥ यों वलदेव प्रसाद कहैं प्रभु, वेद विरद अस गायो ॥

वह अत्यन्त घोर पराक्रम करनेंवाले, और नित्यकाल अपने परायेकी रक्षाकरनें वाले, नीति शास्त्रके असाधारण जाननेंवाले परम कुलीनहैं, भ्राता लक्ष्मणभी उनके साथही साथ रहतेहैं ॥ ११ ॥ हेसीते! शत्रुकी सैनाके नाश करनें वाले, अचिन्त्य बल पौरुषयुक्त, शत्रुके संहारकारी अपने लघु भ्राता लक्ष्मणके सहित श्रीरामचंद्रजी नहीं मारे गये ॥ १२ ॥ अन्याय बुद्धियुक्त क्रूरकर्म करनेंवाले सर्व प्राणियोंका विरोध करनेंवाले भयंकर रावणनें तुम्हारे निकट माया फैलाय यह धनुष बाण और शिर दिखलानेंका कार्य कियाहे ॥ १३ ॥ हेसीते! शोक बीतकर अब तुम्हारे बड़े भारी कल्याणका समय आयाहे। हेमान्ये! तुम बहुतही थोड़े समयमें बड़ी भारी सम्पत्ति प्राप्त करोगी, कारणकि तुम्हारे लिये जिस मंगल

विक्रांतोरक्षितानित्यमात्मनश्चपरस्यच ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्राकुलीनोनयशास्त्रवित् ॥११॥ हंतापरबलौघानामचिंत्यब
लपौरुषः ॥ नहतोराघवःश्रीमान्सीतेशत्रुनिबर्हणः ॥१२॥ अयुक्तबुद्धिकृत्येनसर्वभूतविरोधिना ॥ इयंप्रयुक्तारौद्रेणमा
यामायाविनात्वयि ॥१३॥ शोकस्तेविगतःसर्वकल्याणंत्वामुपस्थितम् ॥ध्रुवंत्वाभजतेलक्ष्मीःप्रियंतेभवतिशृणु ॥१४॥
उत्तीर्यसागरंरामःसहवानरसेनया ॥ सन्निविष्टःसमुद्रस्यतीरमासाद्यदक्षिणम् ॥ १५ ॥ दृष्टोमेपरिपूर्णार्थःकाकुत्स्थः
सहलक्ष्मणः ॥ सहितैःसागरांतस्थैर्बलैस्तिष्ठतिरक्षितः ॥ १६ ॥ अनेनप्रेषितायेचराक्षसालघुविक्रमाः ॥ राघवस्तीर्ण
इत्येवंप्रवृत्तिस्तैरिहाहृता ॥१७॥ सतांश्रुत्वाविलाशाक्षिप्रवृत्तिंराक्षसाधिपः ॥ एषमंत्रयतेसर्वैःसचिवैःसहरावणः ॥१८॥

मय कार्यका प्रारंभ हमनें कियाहे, वह तुम सुनों ॥ १४ ॥ हम देख आईहैं कि श्रीरामचंद्रजी वानरसैनाके सहित समुद्रके पार होकर महा समुद्रके दक्षिण किनारे पर टिके हुएहे॥१५॥ हमनें अंतरीक्षमें टिक कर स्वयं देखाहे कि परिपूर्णार्थ रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी समुद्रके तीर टिकी वानरोंकी सैनासे रक्षित होकर अपने भ्राता लक्ष्मणजीके साथ विराजमानहो रहेहैं ॥ १६ ॥ और राक्षसोंके स्वामी रावणनें जिन लघु विक्रमी दूतोंको भेजाथा उन लोगोंनेंभी लौटकर रावणके निकट " रामचंद्रजी समुद्रको उतर आये " यह समाचार दियाहे ॥ १७ ॥ हेविशालनेत्रवाली! राक्षस

सहित वहांपर रहतेहैं हम चारों वानरों के सहित शीघ्रही उन वानरश्रेष्ठ सुग्रीव जीको वहांपर देखने चलेंगे ॥८॥कारण कि सीताजीको खोजना हमारा कार्य है,वह उन्हीं सुग्रीवके हाथमें है जब श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा तब लक्ष्मणजी उनसे बोले॥ ९॥ कि हमारा मन भी शीघ्रता करताहै इसकारण जलदी चलिये । यह सुन पृथ्वीश्वर दोनों भाई उस मतंगाश्रमसे चले॥१०॥और वहांसे चलकर पंपा नदीके तीर पर पहुँचे वहांपर देखा तो उसके चारों ओर अनेक प्रकारके पुष्पित वृक्ष लगेथे ॥ ११ ॥ वहांपर पहुंचने के समय कोयल अर्जुन तोता मैना आदि पक्षी गण वहांपर शब्द कर रहेथे ऐसा शब्दाय मान होता हुआ इस महावन ॥१२॥ ऐसे जात२के वृक्ष और समस्त सरोवरोंको देखते कामसे संतप्त हो श्रीरामचंद्रजी उस

तदधीनंहिमेकार्यंसीतायाःपरिमार्गणम् ॥ इतिब्रुवाणंतंवीरंसौमित्रिरिदमब्रवीत् ॥ ९ ॥ गच्छावस्त्वरितंतत्रममापि त्वरतेमनः ॥ आश्रमात्तुततस्तस्मान्निष्क्रम्यसविशांपतिः ॥ १० ॥ आजगामततःपंपांलक्ष्मणेनसहप्रभुः ॥ समीक्षमाणःपुष्पाढ्यंसर्वतोविपुलद्रुमम् ॥ ११ ॥ कोयष्टिभिश्चार्जुनकैःशतपत्रैश्चकीचकैः ॥ एतैश्चान्यैश्चबहुभिर्नादितंतद्वनंमहत् ॥ १२ ॥ सरामोविविधान्वृक्षान्सरांसिविविधानिच ॥ पश्यन्कामाभिसंतप्तोजगामपरमंह्रदम् ॥ १३ ॥ सतामासाद्यवैरामोदूरात्पानीयवाहिनीम् ॥ मतंगसरसंनामह्रदंसमवगाहत ॥ १४ ॥ तत्रजग्मतुरव्यग्रौराघवौहिसमाहितौ ॥ सतुशोकसमाविष्टोरामोदशरथात्मजः ॥ १५ ॥ विवेशनलिनींरम्यांपंकजैश्चसमावृताम् ॥ तिलकाशोकपुन्नागबकुलोद्दालकाशिनीम् ॥ १६ ॥ रम्योपवनसंबाधांरम्यसंपीडितोदकाम् ॥ स्फटिकोपमतोयांतांश्लक्ष्णवालुकसंतताम् ॥ १७ ॥

श्रेष्ठ ह्रदके तीर पहुंच गये ॥ १३ ॥ उस ह्रदका जल अति मीठा शीतल है और यह मतंग सरनामसे विख्यातथा ऐसे उस उत्तम जल वहते हुये मतंग सरमे श्रीरामचन्द्रजीनें स्नान किया॥१४॥तब वहां पर अव्याकुलतासे और मोहित चित्तसे श्रीरामचन्द्रजी गये फिर दशरथ कुमार श्रीरामचन्द्रजी शोकसे व्याकुल हो ॥ १५ ॥ पुरैनके पत्तोंसे छाये और कमल फूलोंसे छाया पंपा सरोवर पर तिलक,अशोक, पुन्नाग बकुल,उद्दाल इत्यादि बहुत लग रहे हैं ॥ १६ ॥ मनोहर बन उसके किनारे पर लगा हुआ है पद्मों करके आवृत और स्फटिककी समान निर्मल जल और सुख स्पर्श चिकना

हिनहिनानेंका शब्द तुम श्रवण करो रावणके अनुयायी राक्षसगण हथियार उठाये गमन कर रहेहैं; देखते २ भयंकर रुओंको खड़ा करनेंवाली तेयारीयें होंने लगी, देखो! शोकका नाश करनेंवाली लक्ष्मी तुम्हारे अंगोंमें शोभायमान होरहीहै; राक्षसलोगोंको श्रीरामचंद्रजीसें भय उत्पन्न हुआ है ॥२७॥ कि जिस प्रकार इन्द्रजीसे दैत्योंको भय उत्पन्न होताहै। हे कमलदलसम नेत्रवाली जितेन्द्रिय अचिंत्य विक्रमकारी तुम्हारे पति श्रीरामचंद्रजी समरमें रावणको संहार करके तुमको प्राप्त करेंगे ॥२८॥ इन्द्रजीनें जिस प्रकार विष्णुजीकी सहायतासे शत्रु लोगोंपर विशेष पराक्रम प्रकाश कियाथा, वैसेही तुम्हारे स्वामी श्रीरामचंद्रजी अपने भ्राता लक्ष्मणजीके साथ संग्राममें राक्षसोंके ऊपर विचित्र विक्रम प्रगट करेंगे ॥ २९ ॥ जब

रामःकमलपत्राक्षोदैत्यानामिववासवः ॥ अवजित्यजितक्रोधस्तमचिंत्यपराक्रमः ॥रावणंसमरेहत्वाभर्तात्वाऽधिगमिष्यति ॥ २८ ॥ विक्रमिष्यतिरक्षस्सुभर्तातेसहलक्ष्मणः ॥ यथाशत्रुषुशत्रुघ्नोविष्णुनासहवासवः ॥ २९ ॥ आगतस्यहिरामस्याक्षिप्रमंकगतांसतीम् ॥ अहंद्रक्ष्यामिसिद्धार्थांत्वांशत्रौविनिपातिते ॥ ३० ॥ अस्राण्यानंदजानित्वंवर्तयिष्यसिजानकि ॥ समागम्यपरिष्वक्तातस्योरसिमहोरसः ॥ ३१ ॥ अचिरान्मोक्ष्यतेसीतेदेवितेजघनंगताम् ॥ धृतामेकांबहून्मासान्वेणींरामोमहाबलः ॥ ३२ ॥ तस्यदृष्ट्वामुखंदेविपूर्णचंद्रमिवोदितम् ॥ मोक्ष्यसेशोकजंवारिनिर्मोकमिवपन्नगी ॥ ३३ ॥ रावणंसमरेहत्वानचिरादेवमैथिलि ॥ त्वयासमग्रःप्रिययासुखार्होलप्स्यतेसुखम् ॥ ३४ ॥

शत्रुका नाश होजायगा, तब तुम्हारा मनोरथभी पूर्ण होगा और हम तुम्हें यहां आये हुए तुम्हारे स्वामीके अंगमें विराजमान देखेंगी ॥ ३० ॥ हेजानकी! उन चौड़ी छातीवाले अपने स्वामी श्रीरामचंद्रजीको भेंटकर तुम उनकी छातीपर बहुतही शीघ्र आनंदके आंसू बहाओगी ॥ ३१ ॥ हेदेवी! तुम कई महीनोंसे जो जांघोंतक लम्बायमान एक मात्र वेणी धारण किये हुएहो सो महाबलवान श्रीरामचंद्रजी शीघ्रही इस चोटीको बहुत शीघ्र अपने करपंकजोंसे सुधारदेंगे और तुम बहुतही शीघ्र इस विपदसे छूटोगी ॥३२॥हेदेवी! जिस प्रकार सांपनि पुरानी केंचलीको छोड़ देतीहै; वैसेही तुम उदय हुए चंद्रमाकी समान अपने स्वामीका वह मुख देखकर आनंदके आंसू छोड़ोगी ॥ ३३ ॥ हेरामप्यारी जानकी! सुखके योग्य श्रीराम

नाथ सुग्रीवके पास चलें ॥ २७ ॥ सत्य विक्रमवान् श्रीरामचंद्रजी फिर लक्ष्मणजीसे
सुग्रीव नाम करके वहां वसते हैं सो हे नरश्रेष्ठ! उस व होकर किस भांतिसे सीताके विरह में जीवन धारण करें? ॥२८॥ श्रीरामचंद्रजी सीताजीमें
बोले कि हे लक्ष्मण! हम राज्यभ्रष्ट दीन और सीतागत महाशोक प्रकाश करते हुये उस कमल पुष्पोंसे युक्त मनोहर पंपाके तीरमें पैठते हुये॥२९॥
चित्त लगाये और मदनसे पीडितहो लक्ष्मणजीसे ऐ जाते हुये धीरे २ अनेक प्रकारके पक्षियोंके समूहसे आकुल सुन्दर वन शोभित पंपासरमें
और चारों ओरका विविध भांति वन देखते भाद आदिकाव्ये पंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृत टीकायां आरण्यकांडे पंचसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥
पैठे ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मी

॥सुग्रीवमभिगच्छत्वंवानरेंद्रंनरर्षभ ॥२७ ॥ इत्युवाचपुनर्वाक्यंलक्ष्मणंसत्य
अध्यास्तेतुमहावीर्यःसुग्रीवइतिवि क्ष्मणजीवितुम् ॥ २८ ॥ इत्येवमुक्त्वामदनाभिपीडितःसलक्ष्मणंवाक्यमनन्यचे
विक्रमः ॥ कथंमयाविनासीताशक् युक्तमंशोकमुदीरयाणः ॥ २९ ॥ क्रमेणगत्वाप्रविलोकयन्वनंददर्शपंपांशुभद
तनः ॥ विवेशपंपांनलिनीमनोरम् संकुलांविवेशरामःसहलक्ष्मणेन ॥ ३० ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआ
र्शकाननाम् ॥ अनेकनानाविध सर्गः ॥ ७५ ॥ ॥ अतःपरंकिष्किंधाकांडंभविष्यति तस्यायमाद्यःश्लोकः ॥
दिकाव्येआरण्यकांडेपंचसप्तति कुलाम् ॥ रामःसौमित्रिसहितोविललापाकुलेंद्रियः ॥ १ ॥
सतांपुष्करिणींगत्वापद्मोत्पल

यह श्लोक है ॥ कमल, लाल कमल मछलियोंसे युक्त पंपासरोवरके किनारे लक्ष्मण सहित जाकर
इसके आगे किष्किंधाकांड है जिसके करनें लगे ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ७ ॥
महात्मा रामचन्द्र व्याकुलेन्द्रियहो

संकट हरन, विघ्न विनाशन आप ॥ ब्रह्म सच्चिदानंदघन, दूर करो संताप ॥
दोहा—गुणआगर परम, नरतनु धारि खरार । लीला विस्तारी जगत, नित मंगल दातार ॥
गुणवंत सुमिरन करैं, गुणगण प्रभुके गाय । ते विनु श्रम संसारके, पारभये सुख पाय ॥

कोमल वाणीसे सरमासे बोली ॥ ५ ॥ निःसन्देह तुम आकाश पातालमें जायसकती हो; और वहभी हम जानती हैं कि ऐसा कोई कार्य नहीं जिसको कि हमारे लिये तुम न कर सको ॥ ६ ॥ जो कुछ भी हो यदि हमारा प्रियकार्य सिद्धकरना तुम चाहती हो और यदि इस कार्यमे तुम्हारी स्थिर मति हुई हो तौ रावण इस स्थानसे जायकर इस समय हमारे संबंधमें क्या विचार कर रहाहै; यह जान आओ कारण कि यही बात जाननेंकी हमारी इच्छा हुई है ॥ ७ ॥ जिसप्रकार लोग मदिरा पान करके मोहित होजाते हैं वैसेही मायाके बलसे क्रूर शत्रु रावण हमको मोहित करनेकी चेष्टा कर रहा है॥८॥ सरमे!रावण सदा घोर राक्षसियोंसे हमारी रक्षा करताहै; और उनसे हमको डरवा धमकायकर हमारी निन्दाभी कराता

समर्थागगनंगंतुमपिचत्वंरसातलम् ॥ अवगच्छाद्यकर्तव्यंकर्तव्यंतेमदंतरे ॥ ६ ॥ मत्प्रियंयदिकर्तव्यंयदिबुद्धिः स्थिरातव ॥ ज्ञातुमिच्छामितंगत्वाकिंकरोतीतिरावणः ॥ ७ ॥ सहिमायाबलःक्रूरोरावणःशत्रुरावणः ॥ मांमोहयतिदुष्टात्मापीतमात्रेववारुणी ॥ ८ ॥ तर्जापयतिमांनित्यंभर्त्सापयतिचासकृत् ॥ राक्षसीभिःसुघोराभिर्योमांरक्षतिनित्यशः ॥ ९ ॥ उद्विग्नाशंकिताचास्मिनस्वस्थंचमनोमम ॥ तद्भयाच्चाहमुद्विग्नाअशोकवनिकांगता ॥ १० ॥ यदिनामकथातस्यनिश्चितंवापियद्भवेत् ॥ निवेदयेथाःसर्वंतद्वरोमेस्यादनुग्रहः ॥ ११ ॥ साप्येवंब्रुवतींसीतांसरमा मृदुभाषिणी ॥ उवाचवचनंतस्याःस्पृशंतीबाष्पविक्लवम् ॥ १२ ॥

है॥९॥हमारा मन हमारे वशमें न रहकर सदा रुवा हुआ शंकायुक्त रहताहै;सखि! अधिक क्या कहैं, हम रावणके भयसेही अशोक वनमें वास करती हैं, परन्तु क्षणभरके लियेभी हमारे मनकी व्याकुलता दूर नहीं होती ॥ १० ॥ हे सरमे! रावणकी सभामें हमारे छोड देनेंके सम्बंधमें अथवा और कोई दूसरी परामर्श हो; वह यदि तुम हमारे निकट समस्त प्रकाश करके कहो; तौ तुम्हारी हमारे ऊपर बडीही दया होगी; बस यही वरदान हम तुमसे मांगतीहैं ॥ ११ ॥ मृदु वचन बोलनेंवाली सरमानें सीताजीके ऐसे वचन सुनकर अपने डुपट्टेके अंचलसे उनका

भयके मारे उठनें लगा तब राक्षस लोगोंनें बहुतसे पटे मार २ कर उनकी जांघें तोडदी; ऐसी चोट खाय वहभी मर गया, और जड़ कटे पेड़की समान वहांपर पड़ाहै ॥ २७ ॥ वानरश्रेष्ठ मैन्द और द्विविद नामक दोनों जनें लंबे २ श्वास लेते रुदन करते २ लोहू लुहान शरीर हो मर गये ॥ २८ ॥ प्रथमही अस्त्र प्रहार करके शत्रुओंके मारनेवाले लोगोंके हाथ काट डाले गयेथे, पनस फल जिस प्रकार पृथ्वीपर गिरताहै, वैसेही वानर पनस पृथ्वीपर शरीरको फैलाये हुए पड़ाहै ॥ २९ ॥ वानर दधिमुख अनेक प्रकारके बाण चलाये जानेंसे मस्तक हीन होकर पर्वतकी कन्दरामें सदाके लिये सोय गयाहै । और महातेजस्वी कुमुद नाम वानरभी चुप चाप शब्दरहित हो पृथ्वीपर पड़ाहै ॥ ३० ॥ अंगदभी बहुतसे बाणोंसे छिन्न होकर मारागया, उसका अंगभी भूमिपर पड़ा हुआहै, और उसके सब अंगोंसे रुधिरकी धारा निकल रहीहैं ॥ ३१ ॥ और वायु वेगके प्रभावसे चलायमान मेघ मालाकी समान हाथी व रथोंके टकरानें और पिचनेंसे जितनी वानरसैना मारी गईहै उसकी कुछ गिनतीही नहीं हो सकती ॥ ३२ ॥ सिंह जिस प्रकार महागजोंके पीछे दौड़ताहै, वैसेही राक्षस लोगोंके हाथसे असंख्य वानर सैना भागती हुईभी गिरगई ॥ ३३ ॥ रीछ लोग वानर दलके साथ मिल व छिपकर वृक्षोंपर चढ़ गयेहैं, और कोई २ समुद्रमें गिर गयेहैं, और कोई २ आकाशका आश्रय ग्रहण किये हुएहैं ॥ ३४ ॥ समुद्रके किनारों पर पर्वत और बनोंमें जिन पीले अंगवाले वानरोने आश्रय लियाथा; यह समस्त विरूपाक्ष

मैंदश्चद्विविदश्चोभौतौवानरवरर्षभौ ॥ निःश्वसंतौरुदंतौचरुधिरेणपरीवृतौ ॥२८॥ असिनाव्यायतौछिन्नौमध्येह्यरिनिषूदनौ ॥ अनुप्वनतिमेदिन्यांपनसःपनसोयथा ॥ २९ ॥ नाराचैर्बहुभिश्छिन्नःशेतेदर्यांदरीमुखः ॥ कुमुदस्तुमहातेजानिष्कूजन्सायकैर्हतः ॥ ३० ॥ अंगदोबहुभिश्छिन्नःशरैरासाद्यराक्षसैः ॥ परितोरुधिरोद्गारीक्षितौनिपतितोऽगदः ॥३१ ॥ हरयोमथितानागैरथजालैस्तथापरे ॥ शयानामृदितास्तत्रवायुवेगैरिवांबुदाः ॥ ३२ ॥ प्रसृताश्चपरेत्रस्ताहन्यमानाजघन्यतः ॥ अनुद्रुतास्तुरक्षोभिःसिंहैरिवमहाद्विपाः ॥ ३३ ॥ सागरेपतिताःकेचित्केचिद्गगनमाश्रिताः ॥ ऋक्षावृक्षानुपारूढावानरैर्व्यतिमिश्रिताः॥३४॥सागरस्यचतीरेषुशैलेषुचवनेषुच॥पिंगलास्तेविरूपाक्षैराक्षसैर्बहवोहताः॥३५॥

"कि हे रावण! शीघ्र श्रीरामचंद्रजीको आदर सहित तुम सीताजीको लौटादो; हे राजन्! उनका पराक्रम तौ तुम जानतेही हो, कि जनस्थानमें उन्होंनें कैसा अद्भुत कर्म कियाथा बस पराक्रमका तौ प्रमाण तौ इतनाही बहुत है॥२१॥ हे राजन्! समुद्रके पार आकर हनुमानजी सीताको देख कर गया यह क्या कुछ थोडी बात है? हे राक्षसराज! श्रीरामचंद्रजी साधारण मनुष्य नहीं है; कारण कि ऐसा कौन मनुष्यहै जो रणभूमिमें राक्षसोंको मार सकताहै" ॥२२॥ हे जानकि! इस प्रकारसे वृद्धमंत्री और रावणकी मातानें तुम्हैं छोड देनेंके लिये रावणको बहुत समझाया बुझाया; परन्तु लालची पुरुष जिस प्रकार धनको किसी भांति नहीं छोड़ता वैसेही रावणकी इच्छा तुम्हैं छोड़नेंकी नहींहै ॥ २३ ॥ हे

दीयतामभिसत्कृत्यमनुजेंद्रायमैथिली ॥ निदर्शनंतेपर्याप्तंजनस्थानेयदद्भुतम् ॥ २१ ॥ लंघनंचसमुद्रस्यदर्शनंच हनूमतः ॥ वधंचरक्षसांयुद्धेकःकुर्यान्मानुषोयुधि ॥ २२ ॥ एवंसमंत्रिवृद्धैश्चमात्राचबहुबोधितः ॥ नत्वामुत्सहतेमोक्तुमर्थमर्थपरोयथा ॥ २३ ॥ नोत्सहत्यमृतोमोक्तुंयुद्धेत्वामितिमैथिलि ॥ सामात्यस्यनृशंसस्यनिश्चयोह्येषवर्तते॥२४॥ तदेषासुस्थिराबुद्धिर्मृत्युलोभादुपस्थिता ॥ भयान्नशक्तस्त्वांमोक्तुमनिरस्तःससंयुगे ॥ २५॥ राक्षसानांचसर्वेषामात्मनश्चवधेनहि ॥ निहत्यरावणंसंख्येसर्वथानिशितैःशरैः ॥ प्रतिनेष्यतिरामस्त्वामयोध्यामसितेक्षणे ॥ २६ ॥ एतस्मिन्नंतरेशब्दोभेरीशंखसमाकुलः ॥ श्रुतोवैसर्वसैन्यानांकंपयन्धरणीतलम् ॥ २७ ॥

सीते! रावणनें अपने सब मंत्रियोंके साथ यह निश्चय कियाहै कि हम प्राण रहते रामचंद्रकी सीता रामचंद्रको कभी नही देंगे ॥ २४ ॥ राक्षसोंके साथ स्वयं रावणभी जबतक न मरजायगा तबतक केवल मृत्युका भयंकर युद्ध न करनेंमें मति नहीं करेगा और न तुमको त्यागही करेगा ऐसा उस रावणनें निश्चय सिद्धान्तकर लियाहै ॥ २५ ॥ हे श्यामनेत्रवाली! तुम कुछभी चिन्ता न करो, श्रीरामचंद्रजी संग्राममें चलाये तीक्ष्ण बाणोंकी सहायतासे रावणका गर्व्व खर्व्व करकै तुमको अपनी राजधानी अयोध्यापुरीमें लेजांयगे ॥२६॥ सरमा इस प्रकारसे कह रहीथी कि इतनेमें

हुआ रामचंद्रजीका धनुषहै, जिसको रात्रि कालमें रामचंद्रजीका प्राण संहार करके प्रहस्त लायाहै ॥ ४४ ॥ तिसके पीछे रावण विद्युज्जिह्वका लाया हुआ वह मस्तक और यशस्विनी सीताजीके सामनें रखकर उनसे बोला"जो होंना था सो तो होगया,अब तुम्हारा कर्तव्य यहीहै कि तुम हमारे वशमें होजाओ ॥ ४५ ॥ इ०श्रीमवा० आ०यु०एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥ तब सीताजी रामचंद्रजीका शरासन और उनका मस्तक देख और वह सुधिकर जो कि हनुमानजीनें कहाथा कि वानरराज सुग्रीवकी रामचंद्रजीसे मित्रता हुईहै बहुत देरतक रोंई ॥ १ ॥ जानकीजीने देखा कि कटे हुए मस्तकके दोनों नेत्र रामचंद्रजीकेही समानहैं, वैसाही मुखका रंग, केश, और ठोडी, व चूडामणिके सहितभी इसका कुछ अन

सविद्युजिह्वेनसहैवतच्छिरोधनुश्चभूमौविनिकीर्यमाणः ॥ विदेहराजस्यसुतांयशस्विनींततोऽब्रवीत्तांभवमेवशानु गा ॥ ४५ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेएकत्रिंशःसर्गः ॥ ३१ ॥ ॥ छ ॥ सासीतात च्छिरोदृष्ट्वातच्चकार्मुकमुत्तमम् ॥ सुग्रीवप्रतिसंसर्गमाख्यातंचहनूमता ॥ १ ॥ नयनेमुखवर्णंचभर्तुस्तत्सदृशंमुखम् ॥ केशान्केशांतदेशंचतंचचूडामणिंशुभम् ॥ २ ॥ एतैःसर्वैरभिज्ञानैरभिज्ञायसुदुःखिता ॥ विजगर्हेत्रकैकेयींक्रोशंतीकुररी यथा ॥ ३ ॥ सकामाभवकैकेयिहतोयंकुलनंदनः ॥ कुलमुत्सादितंसर्वंत्वयाकलहशीलया ॥ ४ ॥ आर्येणकिंनुकैके य्याःकृतंरामेणविप्रियम् ॥ यन्मयाचीरवसनंदत्त्वाप्रव्राजितोवनम् ॥ ५ ॥ एवमुक्त्वातुवैदेहीवेपमानातपस्विनी ॥ जगामजगतींबालाछिन्नातुकदलीयथा ॥ ६ ॥

मेल नहींहै ॥ २ ॥ जनकनंदिनी सीताजी औरभी अनेक प्रकारके चिह्न देख निश्चय अपने स्वामीकी मृत्युका होना जान अत्यन्त दुःखित हुई; और कुरीं जिसप्रकार शोकसे व्याकुल होकर विलाप करतीहै,वैसेही विलापसे कैकेयीकी निन्दा कर कहनें लगी ॥ ३ ॥ हे कैकेयी! तुम्हारी मनो कामना पूरी हुई,हे क्लेशको प्यार करनेंवाली तुमसेही रघुकुलनंदन श्रीरामचंद्रजी निहत हुए, तुझकोही प्राप्त होकर बड़े भारी रघुकुलका नाश होगया ॥ ४ ॥ हाय!!! आर्यपुत्र श्रीरामचंद्रजीनें तेरा ऐसा क्या बुरा कियाथा, कि जो तैंनें चीरवसन पहरायकर हमारे सहित उनको बनो वास दिया!!! ॥ ५ ॥ इतनाही कहकर तपस्विनी छोटी अवस्थावाली जानकीजीकी देह कम्पायमान होंनेलगी, और वह जड़ कटे हु

पंडित माल्यवान नामक रावणका नाना रावणके वचन सुनकर बोला ॥ ६ ॥ हेमहाराज! जो राजा चौदहविद्यानिधान होकर नीतिशास्त्रके अनुसार कार्य करताहै, वही शत्रुलोगोंको वश करके अपने ऐश्वर्यको सदा भोगते रहतेहैं ॥ ७ ॥ जो राजा समयके अनुसार शत्रुके साथ संधि और विग्रह (लड़ाई) करके अपने पक्षको बढाताहै, वही बड़ेभारी ऐश्वर्यको प्राप्त करताहै ॥ ८ ॥ राजा किसी समयभी शत्रुको तुच्छ समझकर छोड़ नहींदे जो आप शत्रुसे कम बलवानहो, या समान बलवालाहो, तब तौ संधि करले; परन्तु जो शत्रुसे अधिक बलवालाहो तब तौ शत्रुसे विग्रहही करना उचितहै ॥ ९ ॥ हेरावण! हमारी सम्मतिमें तौ जिसके लिये श्रीरामचंद्रजीसे युद्ध करतेहो उसी सीताको

विद्यास्वभिविनीतोयोराजाराजन्नयानुगः ॥ सशास्तिचिरमैश्वर्यमरींश्चकुरुतेवशे ॥ ७ ॥ संदधानोहिकालेनविगृह्णंश्चारिभिःसह ॥ स्वपक्षेवर्धनंकुर्वन्महदैश्वर्यमश्नुते ॥ ८ ॥ हीयमानेनकर्तव्योराज्ञासंधिःसमेनच ॥ नशत्रुमवमन्येत ज्यायान्कुर्वीतविग्रहम् ॥ ९ ॥ तन्मह्यंरोचतेसंधिःसहरामेणरावण ॥ यदर्थमभियुक्तोसिसीतातस्मैप्रदीयताम् ॥१०॥ तस्यदेवर्षयःसर्वेगंधर्वाश्चजयैषिणः ॥ विरोधंमागमस्तेनसंधिस्तेतेनरोचताम् ॥ ११ ॥ असृजद्भगवान्पक्षौद्वावेवहिपितामहः ॥ सुराणामसुराणांचधर्माधर्मौतदाश्रयौ ॥ १२ ॥ धर्मोहिश्रूयतेपक्षअमराणांमहात्मनाम् ॥ अधर्मोरक्षसांपक्षोह्यसुराणांचराक्षस ॥ १३ ॥ धर्मोवैग्रसतेऽधर्मंयदाकृतमभूद्युगम् ॥ अधर्मोग्रसतेधर्मंतदातिष्यःप्रवर्तते ॥ १४ ॥

लौटायकर उन रामचंद्रजीके साथ संधि करनाही तुमको उचितहै ॥ १० ॥ देवता गन्धर्व, व ऋषि लोग सबही की यह कामनाहै कि रामचंद्रजीकी जीतहो; इस कारण उनके साथ विरोध न करके आपके संधि करलैनी उचितहै ॥११॥ भगवान पितामह ब्रह्माजीनें सुर व असुर लोगोंके आश्रय वाले धर्म अधर्मरूप दो पक्ष बनायेहैं ॥ १२ ॥ हेनिशाचर! हमनें सुना है कि उसमें धर्म महात्मा देवताओंका, और अधर्म राक्षस लोगोंका पक्ष कहा जाताहै ॥ १३ ॥ जिस समय सतयुग लगताहै; उस समय धर्म अधर्मको ग्रास करलेताहै परन्तु जब अधर्म धर्मको लील

किस कारणसे इस अदृष्टकी मृत्युके वश हुए ॥ १४ ॥ हा कमललोचन! हमहीनें क्या क्रूर घोर रूपवाली कालरात्रि स्वरूप हो तुम्हें चिपटाय, तुम्हारी प्राणवायुको हरण कर लियाहै ? ॥ १५ ॥ हा महाबाहो! पुरुषश्रेष्ठ! तपस्विनीकी समान हमको परित्याग कर प्रियतमा स्त्रीकी समान पृथ्वीको छातीसे लगाये तुम कहां पड़ेहो? ॥१६॥ तुम हमारे साथ सुगन्धित द्रव्य और हारोंसे सदा जिसकी पूजा किया करतेथे और जो हमको भी बहुतही प्याराथा उसी तुम्हारे इस सुवर्णमय धनुषकी यह क्या अवस्था हुई है? ॥ १७ ॥ हा पापरहित! तुम निश्चयही स्वर्गधाममें हमारे श्वशुर पिताकी समान महाराज दशरथजीके व और दूसरे पितृलोगोंके साथमें मिल गयेहो ॥ १८ ॥ जो आ

यथात्वंसंपरिष्वज्यरौद्रयाऽतिनृशंसया ॥ कालरात्र्यामयाच्छिद्यहृतःकमललोचनः ॥ १५ ॥ इहशेषेमहाबाहोमांविहायतपस्विनीम् ॥ प्रियामिवयथानारींपृथिवींपुरुषर्षभ ॥१६॥ अर्चितंसततंयत्नाद्गंधमाल्यैर्मयातव ॥ इदंतेमत्प्रियंवीरधनुःकांचनभूषितम् ॥ १७ ॥ पित्रादशरथेनत्वंश्वशुरेणममानघ ॥ सर्वैश्चपितृभिःसार्धंनूनंस्वर्गेसमागतः ॥ १८ ॥ दिविनक्षत्रभूतंचमहत्कर्मकृतंतथा ॥ पुण्यंराजर्षिवंशंत्वमात्मनःसमुपेक्षसे ॥ १९ ॥ किंमांनप्रेक्षसेराजन्किंवानप्रतिभाषसे ॥ बालांबालेनसंप्राप्तांभार्यांमांसहचारिणीम् ॥ २० ॥ संश्रुतंगृह्णतापाणिंचरिष्यामीतियत्त्वया ॥ स्मरतन्नामकाकुत्स्थनयमामपिदुःखिताम् ॥ २१ ॥

काशमें नक्षत्रके स्वरूपमें टिक रहेहैं उन राजर्षि त्रिशंकुके पवित्र वंशमें जन्म ग्रहण करके, तुमनें अपने पिताके वचनोंका पालनरूप बड़ा भारी कार्य किया, परन्तु ऐसा पुण्य प्राप्त करके भी जो ऐसे पवित्र वंशको त्याग आप स्वर्गको चले गये यह बहुतही अनुचित हुआ ॥ १९ ॥ हा राजन्! तुमनें बालकपनमें हीं जिस बालिकाको अपनी सम सुख दुःख भोग करनेंवाली, स्त्री कहकर स्वीकार कियाथा, अब तुम किस कारणसे उसकी बातका उत्तर नहीं देते? प्यारे! अब हमारी ओरको दृष्टि उठायकर भी नही देखते ॥ २० ॥ हे काकुत्स्थ! तुमनें विवाहमें पाणिग्रहण करनेके समय " तुम्हारेसहित धर्म कर्मका आचरण करेंगे " ऐसी जो प्रतिज्ञाकीथी, इस समय उसको याद करके

ऋषि लोग जिस २ पुण्यवान स्थानमें ॥ २१ ॥ तपस्या करतेहैं; वह वहींसे राक्षस लोगोंको संतापित किया करतेहैं और तुमको कदाचित् यह गर्वहो कि वरदान पानेंके प्रभावसे हमारा मरणहोभी नहीं सकता सो हे महाराज! यही वर तौ तुमनें ब्रह्माजीसे मांगाथा कि हम, देव, दानव पक्षसे न मरें; मनुष्य और वानरोंको तौ कुछ गिनकर इनसे तौ अवध्य मांगाही नहीं ॥ २२ ॥ परन्तु महाबलवान दृढ़ विक्रमकारी अजेय मनुष्य और गोपुच्छ वानर यहां आयकर गर्जन कर रहेहैं; इनसे कैसे निवटोगे; कारणकि इनके रोकनेंका पहलेसे आपनें कोई उपाय नहीं कियाहै ॥ २३ ॥ इस समय अनेक प्रकारके घोर उत्पात और विविध भांतिके घोर दुर्निमित्त दिखलाई देतेहैं; कि जिस्से हमको यह ज्ञात

चर्यमाणंतपस्तीव्रंसंतापयतिराक्षसान्॥देवदानवयक्षेभ्योगृहीतश्चवरस्त्वया ॥२२॥ मनुष्यावानराऋक्षागोलांगूलाम हाबलाः ॥ बलवंतइहागम्यगर्जंतिदृढविक्रमाः॥२३॥उत्पातान्विविधान्दृष्ट्वाघोरान्बहुविधान्बहून् ॥ विनाशमनुपश्यामिसर्वेषांरक्षसामहम् ॥ २४॥ खराभिस्तनिताघोरामेघाःप्रतिभयंकराः ॥ शोणितेनाभिवर्षंतिलंकामुष्णेनसर्वतः॥२५॥ रुदतांवाहनानांचप्रपतंत्यश्रुबिंदवः ॥ रजोध्वस्ताविवर्णाश्चनप्रभांतियथापुरम् ॥ २६ ॥ व्यालागोमायवोगृध्रावाश्यंतिचसुभैरवम् ॥ प्रविश्यलंकामारामेसमवायांश्चकुर्वते ॥ २७ ॥ कालिकाःपांडुरैर्दंतैःप्रहसंत्यग्रतःस्थिताः ॥ स्त्रियःस्वप्नेषुमुष्णंत्योगृहाणिप्रतिभाष्यच ॥ २८ ॥

होताहै कि समस्त राक्षसोंका नाश होजायगा ॥ २४ ॥ हे रावण! हम गधोंको भयंकर शब्दसे रेंकताहुआ देखतेहैं; और बादल घोर शब्दसे गर्जे २ कर गरम रुधिरकी वर्षा करतेहैं. कि जिसको देखकर अत्यन्त डर लगताहै ॥ २५ ॥ सवारीके समस्त पशुगण रोतेहैं, कि जिस्से बराबर उनकी आंखोंसे आसुओंकी बूंदे गिरती रहतीहैं; और समस्त दिशा विदिशा धूरिसे छाये रहनेंके कारण पहलेकी समान प्रकाशित नहीं होती ॥ २६ ॥ गीध, गीदड, सर्प इत्यादि मांस खानेंवाले पशु पक्षीगण लंकानगरको फुलवाड़ियोंमें प्रवेश करकै झुन्ड़ बांध २ भयंकर शब्द करतेहैं ॥२७॥ शृगालियें पीले २ दांत निकाल कर आगे२ हँसती हुई चलतीहैं, सब स्त्रियां स्वप्नमेंही बात करते२ उठकर अपने घरोंको

प्रिय तुम्हारी भार्याहो इस थोड़ी उमरमेंही यहां शोक करनेंको रहगई, तब निश्चयही जान पड़ताहे, कि पहले जन्ममें, हमनें, गौदान, सुवर्ण दान व पृथ्वीदानादि कुछभी नहीं किया ॥ ३० ॥ हे रावण! तुम शीघ्रही यह पति स्त्रीका मिलनरूप भलाईका देनेंवाला कार्य पूरा करो, कि श्रीरामचंद्रजीके पीछे अब हमकोभी मार डालो ॥ ३१ ॥ हे दशशीश! तुम हमारे स्वामीके मस्तकके साथ हमारा मस्तक और उनके शरके साथ हमारा शरीर मिलादो । रावण! महानुभाव पतिके साथही जाना हमको अच्छा लगताहे ॥ ३२ ॥ बडे२नेत्रवाली जनककुमारी जानकीजी अपने स्वामीका मस्तक और वह बड़ा भारी धनुष देखते २ अत्यन्त दुःखसे संतापित होकर विलाप करनें लगी ॥ ३३ ॥ इधर जानकीजो तो

साधुघातयमांक्षिप्रंरामस्योपरिरावण ॥ समानयपतिंपत्न्याकुरुकल्याणमुत्तमम् ॥ ३१ ॥ शिरसामेशिरश्चास्यकायं कायेनयोजय ॥ रावणानुगमिष्यामिगतिंभर्तुर्महात्मनः॥३२॥इतीवदुःखसंतप्ताविललापायतेक्षणा ॥ भर्तुःशिरोधनुश्चै वददर्शजनकात्मजा॥३३ ॥एवंलालप्यमानायांसीतायांतत्रराक्षसः॥अभिचक्रामभर्तारमनीकस्थःकृतांजलिः॥ ३४ ॥ विजयस्वार्यपुत्रेतिसोभिवाद्यप्रसाद्यच॥न्यवेदयदनुप्राप्तंप्रहस्तंवाहिनीपतिम् ॥३५॥अमात्यैःसहितःसर्वैःप्रहस्तस्त्वा मुपस्थितः ॥ तेनदर्शनकामेनअहंप्रस्थापितःप्रभो ॥३६ ॥ नूनमस्तिमहाराजराजभावात्क्षमान्वित ॥ किंचिदात्ययिकं कार्यंतेषांत्वंदर्शनंकुरु॥३७॥एतच्छ्रुत्वादशग्रीवोराक्षसप्रतिवेदितम् ॥ अशोकवनिकांत्यक्त्वामंत्रिणांदर्शनंययौ ॥३८॥

इस प्रकार रोदन कर रहींथी, कि इतनेंमें सैनाका एक निशाचर राक्षस रावणके सन्मुख आन पहुंचा ॥ ३४ ॥ और उसनें " आर्य पुत्र! आपकी जयहो" यह कह रावणको प्रसन्नकर हाथ जोड प्रणाम किया और कहा कि प्रहस्तनाम सैनापति आयाहे ॥ ३५ ॥ वह फिर विशेष करके बोलाकि हे प्रभो! महावीर प्रहस्तनें सर्व मंत्रियोंके साथ मिलकर आपके दर्शन पानेंकी आशासे हमको यहां भेज दियाहे ॥ ३६ ॥ हे राजन्! ऐसा जान पड़ताहे कि निश्चय कोई राजकार्य आनकर पड़ाहे जो कि अति आवश्यकीयहे, इसी कारणसे वह लोग यहांपर आये हैं इस कारण आप उनको दर्शन दीजिये ॥ ३७ ॥ राक्षसके मुखसे राक्षस रावण ऐसी घबड़ा हटका समाचार पाय अशोक वनको छोड़ मंत्रियोंको

लिये हे रावण! तुम श्रीरामचंद्रजीसे मेल मिलाप करलो॥२॥" औरश्रीरामचंद्रजीकोही इन सब दुर्निमित्तोंका कारण जान परिणाममें जिस कार्यको सुखकारी समझो उसीको करो ॥ ३५ ॥ शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ उत्तम पौरुषवाला बलवान माल्यवान यह वचन कहकर राक्षसराज रावणके मनकी परीक्षा करता हुआ उसके मुखका भाव देखकर चुप होगया ॥ ३६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे पंचत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥ दुष्ट बुद्धिवाला रावण माल्यवानके कहे हुए वह हितकारी वचन सुनकर, कालके वश होनेंसे उसके वचनोंको सहन नहीं करसका ॥ १ ॥ वरन क्रोधके मारे उसके दोनों नेत्र घूमनें लगे, फिर क्रोधके वश हो और मुंह टेढ़ा करकै रावण माल्यवानसे बोला ॥ २ ॥ तुमने शत्रुपक्षको प्रबल

ज्ञात्वाऽवधार्यकर्माणिक्रियतामायतिक्षमम्॥३५॥इदंवचस्तस्यनिगद्यमाल्यवान्परीक्ष्यरक्षोधिपतेर्मनःपुनः ॥ अनुत्त मेपूत्तमपौरुषोबलीबभूवतूष्णींसमवेक्ष्यरावणम् ॥ ३६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेपंच त्रिंशःसर्गः ॥ ३५ ॥ ॥छ॥ तत्तुमाल्यवतोवाक्यंहितमुक्तंदशाननः ॥ नमर्षयतिदुष्टात्माकालस्यवशमागतः ॥ १ ॥ सबद्ध्वाभ्रुकुटिंवक्त्रेक्रोधस्यवशमागतः॥ अमर्षात्परिवृत्ताक्षोमाल्यवंतमथाब्रवीत् ॥ २ ॥ हितबुद्ध्यायदहितंवचःपुरुष मुच्यते ॥ परपक्षंप्रविश्यैवनैतच्छ्रोत्रगतंमम ॥ ३ ॥ मानुषंकृपणंराममेकंशाखामृगाश्रयम् ॥ समर्थंमन्यसेकेनत्यक्तं पित्रावनाश्रयम् ॥ ४ ॥ रक्षसामीश्वरंमांचदेवानांचभयंकरम् ॥ हीनंमांमन्यसेकेनअहीनंसर्वविक्रमैः ॥ ५ ॥ वीर द्वेषेणवाशंकेपक्षपातेनवारिपोः ॥ त्वयाहंपरुषाण्युक्तोममप्रोत्साहनेनवा ॥ ६ ॥

विचार करकै हमारा हित साधनेंकी कामनासे जो कठोर वचन कहे उनको हमनें ग्रहण नहीं किया ॥ ३ ॥ रामचंद्र मनुष्य होनेंके कारण स्वभावसेही दुर्बलहैं, और केवल वानरलोगही उनकी सहायता करनेंवालेहैं; यदि उसमें कुछ सामर्थही होती तौ वह अपने बापदादोंका राज्य छोड़कर बनकोही क्यों आता ॥ ४ ॥ और जिन हमनें देवता लोगोंकोभी भय उत्पन्न करादियाहै, और सर्व विक्रमवान राक्षसोंके हम राजाहैं, फिर हमको जो तुम असमर्थ समझते हो इसका कारण क्याहै ॥ ५ ॥ हमको जान पड़ताहै कि वीर लोगोंसे वैर या शत्रुकी पक्षपातता तरफदारी अ

जानकीजीको वह समझानें बुझानें लगीं ॥ २ ॥ यद्यपि सरमा सीताजीकी रक्षा करनेंमें नियुक्त तो थी, परन्तु वह सीताजीकी अनुरागिनी और पक्षपातिनीथी, इस लिये सीताजीके साथ उनकी घनी मित्रता हो गईथी ॥ ३ ॥ उसनें अपनी प्रियसखी जानकीजीको लगभग चेतना रहित देखा घोड़ी जिस प्रकार पृथ्वीपर लोटा करतीहै, वैसेही पृथ्वीकुमारी पृथ्वीपर लोट रहीथी, सरमा उनको उठाकर सखीके स्नेहसे समझानें बुझानें लगी ॥ ४ ॥ हेसखी! रावणनें तुमसे जो कुछ कहाथा, और तुमनें उसको जिस प्रकारसे उत्तर दियाथा, इसलिये तुह्मारेप्रति अधिक स्नेह होंनेके कारण उन बातोंके श्रवण करनेंमें हममें कसर नहींकी ॥५॥ हम रावणके भयसे तुमको छोड़कर अबतक निबिड़ वनमें टिक रहीथीं। परन्तु हेबड़ेनेत्रोंवाली जो कुछ कार्यहो तो हम तुम्हारे लिये रावणसेभी कुछ शंका नहीं करतीं ॥ ६ ॥ हे मैथिलि! वह राक्षसोंका, स्वामी

साहितत्रकृतामित्रंसीतयारक्ष्यमाणया ॥ रक्षंतीरावणादिष्टासानुक्रोशादृढव्रता॥३ ॥सादर्दशसखीसीतांसरमानष्टचेतनाम् ॥ उपावृत्योत्थितांध्वस्तांवडवामिवपांसुषु ॥ ४ ॥ तांसमाश्वासयामाससखीस्नेहेनसुव्रताम् ॥ उक्तायद्रावणेनत्वंप्रत्युक्तश्चस्वयंत्वया॥५॥लीनयागहनेशून्येभयमुत्सृज्यरावणात् ॥ तवहेतोर्विशालाक्षिनहिमेरावणाद्भयम् ॥६॥ ससंभ्रांतश्चनिष्क्रांतोयत्कृतेराक्षसेश्वरः॥तत्रमेविदितंसर्वमभिनिष्क्रम्यमैथिली ॥ ७ ॥ नशक्यंसौप्तिकंकर्तुंरामस्यविदितात्मनः॥ वधश्चपुरुषव्याघ्रेतस्मिन्नैवोपपद्यते ॥८॥ नत्वेवंवानराहंतुंशक्याःपादपयोधिनः॥ सुरादेवर्षभेणेवरामेणहिसुरक्षिताः ॥ ९ ॥दीर्घवृत्तभुजःश्रीमान्महोरस्कःप्रतापवान् ॥ धन्वीसन्नहनोपेतोधर्मात्माभुविविश्रुतः ॥ १० ॥

रावण जिस कारणसे इस स्थानको घबड़ाहटके साथ छोड़ चला गयाथा, वह समस्तही कारण उसके पीछे२ जायकर हम जान आई हैं॥७॥ उन सर्व्वान्तर्यामी श्रीरामचंद्रजीके सोते रहते उनके सैनाके साथ कोई भी युद्ध नहीं कर सकता और उस अवस्थामें उन पुरुषसिंह श्रीरामचंजीका वध करना भी युक्तियुक्त नहीं हो सकता ॥८॥ श्रीरामचंद्रजीकी बात तो दूर रही; इन्द्र करके रक्षित देवता लोगोंकी नाईं श्रीरामचंद्रजीसे रक्षित, वह वृक्ष हाथोंमें लेकर लड़नेंवाले वानरोंको भी कोई नहीं मार सकता ॥ ९ ॥ उन श्रीरामचंद्रजीकी सुगोल दौनों भुजा जंघातक लम्बीहै, उनके सब शरीर पुष्टहैं; प्रतापवान धनुष धारण करनेंवाले कवच बख्तर धारण किये वह धर्मात्मा तीन लोकमैं विख्यातहैं ॥ १० ॥

नको समर्थ न होगा ॥ १३ ॥ यह कहकर रावण बहुतही
शपथके साथ प्रतिज्ञा कहतेहैं. कि वह जीता हुआ लौटकर किसी प्रकारसे यहांसे जानेंको समर्थ न होगा ॥ १३ ॥ यह कहकर रावण बहुतही
शपथके साथ प्रतिज्ञा कहतेहैं. कि वह जीता हुआ लौटकर किसी प्रकारसे यहांसे जानेंको समर्थ न होगा ॥ १३ ॥ परन्तु

क्रोध करता हुआ, तब निशाचर माल्यवान लज्जाके मारे नीचेको मुख करके बैठ गया, और किसी बातका उत्तर न देता हुआ ॥ १४ ॥ परन्तु
रावणकी यथोचित जयसूचक आशिर्वादसे बढती मनाय उसकी आज्ञा लेकर अपने गृह चला गया ॥ १५ ॥ तब लंकापति रावण सब मंत्रि
योंके साथ परामर्श करके भलीभांति शोच विचार लंकापुरीकी रक्षा करनेंके लिये पहरे दारोंको नियत किया ॥ १६ ॥ राक्षस प्रहस्तको पूर्व
द्वारपर और महावीर महापार्श्व, और महोदरको दक्षिणके द्वारपर रावणनें रहनेंकी आज्ञादी, ॥ १७ ॥ और पश्चिमके द्वारपर रहनेंके लिये

एवंब्रुवाणंसंरब्धंरुष्टंविज्ञायरावणम् ॥ व्रीडितोमाल्यवान्वाक्यंनोत्तरंप्रत्यपद्यत ॥ १४ ॥ जयाशिषातुराजानंवर्धयि
त्वायथोचितम् ॥ माल्यवानभ्यनुज्ञातोजगामस्वंनिवेशनम् ॥ १५ ॥ रावणस्तुमहामात्यैर्मंत्रयित्वाविमृश्यच ॥ लंका
यास्तुतदागुप्तिंकारयामासराक्षसः ॥ १६ ॥ व्यादिदेशचपूर्वस्यांप्रहस्तंद्वारिराक्षसं ॥ दक्षिणस्यांमहावीर्यौमहापार्श्व
महोदरौ ॥ १७ ॥ पश्चिमायामथद्वारिपुत्रमिंद्रजितंतदा ॥ व्यादिदेशमहामायंराक्षसैर्बहुभिर्वृतम् ॥ १८ ॥ उत्तरस्यां
पुरद्वारिव्यादिश्यशुकसारणौ ॥ स्वयंचात्रगमिष्यामिमंत्रिणस्तानुवाचह ॥ १९ ॥ राक्षसंतुविरूपाक्षंमहावीर्यपरा
क्रमम् ॥ मध्यमेऽस्थापयद्गुल्मेबहुभिःसहराक्षसैः ॥ २० ॥ एवंविधानंलंकायांकृत्वाराक्षसपुंगवः ॥ कृतकृत्यमिवा
त्मानंमन्यतेकालचोदितः ॥ २१ ॥

इन्द्रका जीतनेंवाला मेघनाद अत्यन्तही मायावी और बहुत सैनाको संग लिये हुएथा ॥ १८ ॥ और शुक सारण नामक मंत्रियोंको उत्तरके द्वारसे
हटाकर जहांकि श्रीरामचंद्रजीकी सैना पड़ी हुईथी, रावणनें आज्ञा दीकि उत्तरके द्वारपर हम स्वयंही ठढे रहेंगे ॥ १९ ॥ महा पराक्रमवान
महावीर्ययुक्त राक्षस विरूपाक्षको रावणनें बहुत सारे राक्षसोंके साथ लंकाके बीचों बीचमें जहां सैनाकी छावनी थी रहनेंके लिये आज्ञादी ॥ २० ॥
राक्षसोंमें श्रेष्ठ रावण लंकामें इस प्रकारसे सब ओर राक्षसोंको रक्षाके लिये नियुक्त करके, कालप्रेरित होनेसे अपनेंको कृतार्थ मानता हुआ

नाथ रावण यह वार्ता सुन करकेही मंत्रि लोगोंके साथ परामर्श करताहै ॥१८॥ सरमा यह बात कह रहीथी कि इतनेमें जानकीजी और सरमा दौनोंनें रावणकी सैनाका समरमें तैयार होंनेके लिये भयंकर सिंहनादको सुना ॥ १९ ॥ मधुर वचन बोलनेंवाली सरमा सैनाकी तैयारीकी चरचा दैनेवाली भेरीका महाशब्द सुनकर सीताजीसे बोली ॥ २० ॥ हेभीरु! जिस भेरीके शब्दको सुनकर सैना बख्तर धारण व समरकी तैयारी करतीहै; अतएव मेघके गर्जनेंकी समान यह उसकी भेरीका शब्द तुम सुनो ॥ २१ ॥ मदमाते हाथी समस्तही सजगये, रथोंमें घोड़े जुतगये कवच बख्तर पहरे हुए असंख्य वीरगण भाला हाथमें लिये घोड़ों पर सवारहो रहेहैं ॥ २२ ॥ और अस्त्रधारी अगणित वीरगण आगे बढ़रहेहैं,

इतिब्रुवाणासरमाराक्षसीसीतयासह ॥ सर्वोद्योगेनसैन्यानांशब्दंशुश्रावभैरवम् ॥ १९ ॥ दंडनिर्घातवादिन्याःश्रुत्वा भेर्यामहास्वनम् ॥ उवाचसरमासीतामिदंमधुरभाषिणी ॥ २० ॥ सन्नाहजननीह्येषाभैरवाभीरुभेरिका ॥ भेरीनादंचगंभीरंशृणुतोयदनिस्वनम् ॥२१॥ कल्प्यंतेमत्तमातंगायुज्यंतेरथवाजिनः ॥ दृश्यंतेतुरगारूढाःप्रासहस्ताःसहस्रशः ॥ २२ ॥ तत्रतत्रचसन्नद्धाःसंपतंतिसहस्रशः ॥ आपूर्यंतेराजमार्गाःसैन्यैरद्भुतदर्शनैः ॥ २३ ॥ वेगवद्भिर्नदद्भिश्च तोयौघैरिवसागरः॥शस्त्राणांचप्रसन्नानांचर्मणांवर्मणांतथा॥२४॥रथवाजिगजानांचराक्षसेंद्रानुयायिनाम्॥संभ्रमोरक्षसामेषहृषितानांतरस्विनाम् ॥ २५ ॥ प्रभांविसृजतांपश्यनानावर्णसमुत्थिताम् ॥ २६ ॥ "वनंनिर्दहतोघर्मेयथारूपंविभावसोः ॥ घंटानांशृणुनिर्घोषंरथानांनेमिनिःस्वनम्॥१॥हयानांह्रेषमाणानांशृणुतूर्यध्वनिंतथा॥उद्यतायुधहस्तानांराक्षसेंद्रानुयायिनाम् ॥२॥ "संभ्रमोरक्षसामेषतुमुलंलोमहर्षणम् ॥ श्रीस्त्वांभजतिशोकघ्नीरक्षसांभयमागतम् ॥ २७ ॥

और राजमार्ग अद्भुत रूप धारण किये सैनासे इस प्रकार छाय रहाहै ॥ २३ ॥ कि जिस प्रकार वेगयुक्त शब्दायमान समुद्र तरंगोंसे परिपूर्ण होताहै । सिपाहियोंके अस्त्र शस्त्र ढाल बख्तर ॥२४॥ रथ घोड़े हाथी,और रावणके अनुगमनकारी राक्षसोंका शब्द होरहाहै योधा लोग हर्षितमन और अति वेगसे युद्धके लिये तैयार होरहेहैं ॥ २५ ॥ यह देखो ! ध्वजा पताका इत्यादिको अनेक वर्णवाली प्रभा प्रकाशमान होरहीहै जैसे ग्रीष्मकालमें वनके जलानेंवाले सूर्यकी अनेक वर्णवाली प्रभा निकलतीहैं ॥ २६ ॥ हेसीते !यह घंटोंकी ध्वनि रथोंका स्वर २ शब्द और तुरंही निनाद, और घोड़ोंके

बनायकर शत्रुके दलमें प्रवेश करके, रावणनें जो लंकापुरीकी रक्षा करनेंका उपाय किया, उसको भली भांतिसे जानकर यह हमारे निकट आये
हैं ॥ ८ ॥ हेश्रीरामचंद्रजी दुरात्मा रावणके पुररक्षा करनेंके विषयमें, हमनें अपने मंत्रियोंसे जो कुछ जानाहै, वह समस्तही कहतेहैं ॥ ९ ॥ कि
प्रहस्त बहुत सारी सैनाके साथ पूर्व द्वारपर टिकाहै. और महावीर्यवान महापार्श्व व महोदर लंकाके दक्षिणद्वारकी रक्षा करतेहैं ॥ १० ॥ पटा खड्ग
इत्यादि विविध अस्त्र शस्त्रधारी और शूल मुद्गर हाथमें लिये असंख्य शूर राक्षस गणोंके साथ रावण पुत्र इन्द्रजित लंकाके पश्चिम द्वारकी रक्षा करता
है ॥ ११ ॥ अनेक प्रकारके और दूसरे हथियार धारण किये शूरवीर रावणके पुत्रभी संगहैं, और स ;स्रों लक्षों शस्त्रपाणि राक्षसोंको संग लि

संविधानंयथाहुस्तेरावणस्यदुरात्मनः ॥ रामतद्ब्रुवतःसर्वंयाथातथ्येनमेशृणु ॥ ९ ॥ पूर्वंप्रहस्तःसबलोद्वारमासाद्य
तिष्ठति ॥ दक्षिणंचमहावीर्यौमहापार्श्वमहोदरौ ॥ १० ॥ इंद्रजित्पश्चिमंद्वारंराक्षसैर्बहुभिर्वृतः ॥ पट्टिशासिधनुष्मद्भिः
शूलमुद्गरपाणिभिः॥११॥नानाप्रहरणैःशूरैरावृतोरावणात्मजः॥ राक्षसानांसहस्रैस्तुबहुभिःशस्त्रपाणिभिः ॥१२॥ युक्तः
परमसंविग्नोराक्षसैःसहमंत्रवित् ॥ उत्तरंनगरद्वारंरावणःस्वयमास्थितः ॥१३॥ विरूपाक्षस्तुमहताशूलमुद्गरधनुष्मता ॥
बलेनराक्षसैःसार्धंमध्यमंगुल्ममाश्रितः ॥ १४ ॥ एतानेवंविधान्गुल्माँल्लंकायाःसमुदीक्ष्यते ॥ मामकामंत्रिणः
सर्वेशीघ्रंपुनरिहागताः ॥१५ ॥ गजानांदशसाहस्रंरथानामयुतंतथा ॥ हयानामयुतेद्वेचसाग्रांकोटिंचरक्षसाम् ॥ १६ ॥
विक्रांतबलवंतश्चसंयुगेष्वाततायिनः ॥ इष्टाराक्षसराजस्यनित्यमेतेनिशाचराः ॥ १७ ॥

ये ॥ १२ ॥ मंत्रका जाननेंवाला रावण उद्विग्नचित्त होकर लंकाके उत्तर फाटक पर स्वयं स्थित हुआहै॥१३॥राक्षस विरूपाक्ष शूल, खड्ग, व धनुष
धारी बड़ी भारी सैनाके साथ लंकाके बीचों बीचमें जहां छावनीहै टिका हुआ है ॥ १४ ॥ हमारे मंत्रिलोग लंकाको समस्त चाटियोंको
इस प्रकारसे देखकर शीघ्रही हमारे पास लौट आयेहैं ॥ १५ ॥ दश हजार ही रथ वीसहजार घोड़े, व करोड़ों राक्षस ॥ १६ ॥ जो कि
अति बलवान और अति विक्रमकारी, समर करनेंमें अत्यन्तही आततायी है, और राक्षसराज रावणका कार्य सिद्ध करनेंको यत्न किये

चंद्रजी बहुतही शीघ्र रणभूमिमें रावणका संहार करके तुम्हारे साथ सुख प्राप्त करेंगे ॥ ३४ ॥ जिस प्रकार यथोचित वर्षा होनेंसे धान्ययुक्त पृथ्वीकी अपूर्व शोभा होतीहै वैसेही तुम श्रीरामचंद्रजीके प्रेम व्यवहारसे सन्मानित होकर अत्यन्तही सन्तोप भोग करोगी ॥ ३५ ॥ हेदेवी जानकि! जो पर्वतश्रेष्ठ सुमेरुके चारोंओर अश्वकी समान गोलाकार गतिसे घुमा करतेहैं; अब तुम उन्ही प्रजा लेगोंका मंगल करनें वाले अपने कुलदेवता सूर्य भगवानकी शरणमें जाओ * ॥ ३६ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० यु० त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥ ॥ छ ॥ ग्रीष्म ऋतुके तापसे संतापित हुई पृथ्वीको जलसे सींचनेकी समान सरमानें इस प्रकारके वचन कह कर, उस रावणके वचनोंकरके मोहित जानकी

सभाजितात्वंरामेणमोदिष्यसिमहात्मना ॥ सुवर्षेणसमायुक्तायथासस्येनमेदिनी ॥ ३५ ॥ गिरिवरमभितोविवर्तमानोहयइवमंडलमाशुयःकरोति ॥ तमिहशरणमभ्युपेहिदेविदिवसकरंप्रभवोह्ययंप्रजानाम् ॥ ३६ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०युद्धकांडेत्रयस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३३ ॥ अथतांजातसंतापांतेनवाक्येनमोदिताम् ॥ सरमाह्लादयामासमहींदग्धामिवांभसा ॥ १ ॥ ततस्तस्याहितंसख्याचिकीर्षंतीसखीवचः ॥ उवाचकालेकालज्ञास्मितपूर्वाभिभाषिणी ॥ २ ॥ उत्सहेयमहंगत्वात्वद्वाक्यमसितेक्षणे ॥ निवेद्यकुशलंरामेप्रतिच्छन्नानिवर्तितुम् ॥ ३ ॥ नहिमेक्रममाणायानिरालंबेविहायसि ॥ समर्थोगतिमन्वेतुंपवनोगरुडोपिवा ॥ ४ ॥ एवंब्रुवाणांतांसीतासरमामिदमब्रवीत् ॥ मधुरंश्लक्ष्णयावाचापूर्वशोकाभिपन्नया ॥ ५ ॥

जीका संतापित हृदय शीतल किया ॥ १ ॥ तिसके पीछे समयको जाननेंवाली सरमाने प्रिय सखी जानकीजीको हितकी कामनासे हँसकर उस समय जानकीजीसे कहा ॥ २ ॥ हेअसितलोचने! जानकी! हमनें गुप्त भावसे जायकर श्रीरामचंद्रजीका संवाद जान तुम्हारे निकट आयकर कहैंगी ॥ ३ ॥ हमारे आश्रय रहित आकाशमे गमन करनें पर पवन या विनताके पुत्र गरुडजी भी हमारी गतिको नहीं रोक सकते हैं ॥ ४ ॥ यद्यपि सीताजी शोक संतापसे क्षीण शरीर होगईथीं परन्तु सरमाके धीरजयुक्त वचनोंसे उनको कुछेक धीरज आया, और फिर वह मधुर

* सूर्य कुलके रामचंद्रकी तुम वधू हो सो दयानिधान सूर्य भगवान तुम्हारी विपत दूरकरैंगे यह आशय है

संहार करनेंके लिये यह वचन बोले ॥ २५ ॥ वानरश्रेष्ठ नील बहुत सारे वानरोंको साथ लेकर लंकाके पूर्वद्वारपर टिके हुए प्रहस्तके साथ
युद्ध करेंगे ॥ २६ ॥ और वालिपुत्र अंगदजीभी बड़ी भारी सैनाके साथ दक्षिण द्वारपर महापार्श्व और महोदरसे लड़कर उनका विध्वंस
करे ॥ २७ ॥ अतुलबलशाली पवनकुमार हनुमानजी बहुत सैनाको साथ लेकर पश्चिम द्वार पर जावें, और वहां मेघनादसे युद्ध करे ॥ २८ ॥
दैत्य दानवोंके समूहोंके संग और महात्मा ऋषि लोगोंके साथ जो सदाही अपकार करताहै, महा नीचस्वभावयुक्त वरदान पानेके मदसे मदा
न्ध ॥ २९ ॥ जो कि सब लोकोंकी प्रजाओंको संतापित करताहै, और सब लोकोंको कुछ नहीं गिनता, उस राक्षसोंके स्वामी रावणका वध

पूर्वद्वारंतुलंकायानीलोवानरपुंगवः ॥ प्रहस्तंप्रतियोद्धास्याद्वानरैर्बहुभिर्वृतः ॥ २६ ॥ अंगदोवालिपुत्रस्तुबलेनमह
तावृतः॥दक्षिणेबाधतांद्वारेमहापार्श्वमहोदरौ ॥२७॥ हनूमान्पश्चिमद्वारंनिष्पीड्यपवनात्मजः॥ प्रविशत्वप्रमेयात्मा
बहुभिःकपिभिर्वृतः ॥ २८॥दैत्यदानवसंघानामृषीणांचमहात्मनाम्॥ विप्रकारप्रियःक्षुद्रोवरदानबलान्वितः ॥ २९ ॥
परिक्रमतियःसर्वाँल्लोकान्संतापयन्प्रजाः ॥ तस्याहंराक्षसेंद्रस्यस्वयमेववधेधृतः ॥ ३० ॥ उत्तरंनगरद्वारमहंसौमि
त्रिणासह ॥ निपीड्याभिप्रवेक्ष्यामिसबलोयत्ररावणः ॥ ३१ ॥ वानरेंद्रश्चबलवानृक्षराजश्चवीर्यवान् ॥ राक्षसेंद्रानुज
श्चैवगुल्मेभवतुमध्यमे ॥ ३२ ॥ नचैवमानुषंरूपंकार्यंहरिभिराहवे ॥ एषाभवतुनःसंज्ञायुद्धेस्मिन्वानरेबले ॥ ३३ ॥

हम स्वयंही जायकर करेंगे ॥ ३० ॥ जहां कि रावण अपनी सैनाके साथ टिका हुआहै, हम लक्ष्मणजीके सहित लंकापुरीके उस उत्तर द्वारको
पीड़ित करनेंके समय प्रवेश करेंगे ॥ ३१ ॥ बलवान वानरेन्द्र सुग्रीवजी, वीर्यवान ऋक्षराज जाम्बवान और राक्षसराज रावणके
छोटे भाई विभीषणजी यह सब मिलकर मध्यम गुल्ममें अर्थात् सैनासमूहके वीचमें रहकर उसकी रक्षा करैं ॥ ३२ ॥ रण
स्थलमें कोईभी वानर मनुष्यका रूप धारण नहीं करे, कारण कि इस संग्राममें मनुष्यका चिह्न केवल हमही लोग धारण किये रहेंगे ॥३३॥

आंसूयुक्त मुखमंडल पोंछकर कहा ॥ १२ ॥ कि हे जानकी! यदि तुम्हारी यही इच्छाहै तौ हम सत्य करके कहती हैं कि तुम्हारे शत्रु रावणका सब वृत्तान्त जानकर हम शीघ्रही यहांपर लौटेंगी ॥ १३ ॥ सरमा जानकीजीसे ऐसे वचन कहकर रावणकी सभामें चलीगई; और मंत्रिलोगोके साथ रावणकी जो सलाह हो रहीथी वह समस्तही उसनें सुनी ॥ १४ ॥ तिसके पीछे सरमा वनाय निश्चय करके दुरात्मा रावणकी सलाहके समस्त समाचार जान शीघ्रही मनोहर अशोकवनमें चली आई ॥ १५ ॥ उस सरमानें अशोक वाटिकामें आय जानकीजीको इस प्रकारसे अपने राह परखते हुए देखाकि जिस प्रकार कमलफूलोंसे भ्रष्ट होकर लक्ष्मीजी बैठी हैं ॥ १६ ॥ तब सीताजीनें मधुर वचन कहनें

एषतेयद्यभिप्रायस्तस्माद्गच्छामिजानकि ॥ गृह्यशत्रोरभिप्रायमुपावर्तामिमैथिली ॥ १३ ॥ एवमुक्त्वाततोगत्वासमीपंतस्यरक्षसः ॥ शुश्रावकथितंतस्यरावणस्यसमंत्रिणः ॥ १४ ॥ साश्रुत्वानिश्चयंतस्यनिश्चयज्ञाद्दुरात्मनः ॥ पुनरेवागमत्क्षिप्रमशोकवनिकांशुभाम् ॥ १५ ॥ साप्रविष्टाततस्तत्रददर्शजनकात्मजाम् ॥ प्रतीक्षमाणांस्वामेवभ्रष्टपद्मामिवाश्रियम् ॥ १६ ॥ तांतुसीतापुनःप्राप्तांसरमांप्रियभाषिणीम् ॥ परिष्वज्यचसुस्निग्धंददौचस्वयमासनम् ॥ १७ ॥ इहासीनासुखंसर्वमाख्याहिममतत्त्वतः ॥ क्रूरस्यनिश्चयंतस्यरावणस्यदुरात्मनः ॥ १८ ॥ एवमुक्तातुसरमासीतयावेपमानया ॥ कथितंसर्वमाचष्टरावणस्यसमंत्रिणः ॥ १९ ॥ जनन्याराक्षसेंद्रोवैत्वन्मोक्षार्थंबृहद्वचः ॥ अतिस्निग्धेनवैदेहिमंत्रिवृद्धेनचोचितः ॥ २० ॥

वाली सरमाको फिर आयाहुआ देखकर, प्रेमसहित भली भांति उनसे भेंटी और स्वयं उसके बैठनेंको आज्ञा देकर कहा ॥ १७ ॥ कि हे सखि! इस आसनपर बैठकर उस क्रूरकर्मकारी रावणकी समस्त सलाह तुम हमसे कहो ॥ १८ ॥ जब सीताजीनें सरमासे इस प्रकार कहा तब सरमा मंत्रिलोगोंके सहित रावणकी जो परामर्श हुईथी उसका समस्त भेद जानकीजीसे कहनें लगीं ॥ १९ ॥ सरमा बोली कि हे जानकी! वृद्ध लोगोंनें और रावणकी मातानें तुमको श्रीरामचंद्रजीके निकट लौटा देनेके लिये मधुर वाणीसे यह अत्युत्तम वचन रावणसे कहे ॥ २० ॥

और सुवेल पर्वतपरसे जो मृत्युके समयतक दुःख भोग करनेके लिये हमारी भार्याको हरण करके ले आया है, उस दुरात्मा रावणके गृह दीख पड़ेंगे ॥ ४ ॥ जिस क्रूर राक्षसने राक्षसी बुद्धिके वश होकर, धर्म सदाचार और कुलकी ओर दृष्टि न करके यह निन्दनीय कार्य कियाहै उस राक्षसोंमें नीच रावणका नाम लेनेंपरभी हमको क्रोध उत्पन्न होताहै, हे सुग्रीव ! हम इस रावणके ही अपराधसे समस्त राक्षसोंका नाश देखते हैं; देखो एक जन कालकी फांसीमें पड़कर पापाचार करताहै; परन्तु इकले उस दुष्टात्माके अपराधसे उसका समस्त कुलभी नष्ट होताहै ॥ ५ ॥ श्रीरामचंद्रजी रावणके प्रति क्रोधमें भरकर यह वचन कहते सुवेल पर्वतपर वास करनेंके लिये उसके शृङ्गोंपर चढ़ते हुए ॥ ६ ॥ विक्रमवान लक्ष्म

लंकांचालोकयिष्यामोनिलयंतस्यरक्षसः ॥ येनमेमरणांतायहृताभार्यादुरात्मना ॥ ४ ॥ येनधर्मोनविज्ञातोनवृत्तं
नकुलंतथा ॥ राक्षस्यानीचयाबुद्ध्यायेनतद्गर्हितंकृतम् ॥ ५ ॥ एवंसंमंत्रयन्नेवसक्रोधोरावणंप्रति ॥ रामःसुवेलमासा
द्यचित्रसानुमुपारुहत् ॥ ६ ॥ पृष्ठतोलक्ष्मणश्चैनमन्वगच्छत्समाहितः ॥ सशरंचापमुद्यम्यसुमहद्विक्रमेरतः ॥ ७ ॥
तमन्वारोहत्सुग्रीवःसामात्यःसविभीषणः ॥ तेवायुवेगप्रवणास्तांगिरिंगिरिचारिणः ॥ ८ ॥ अध्यारोहंतशतशःसुवे
लंयत्रराघवः ॥ तेत्वदीर्घेणकालेनगिरिमारुह्यसर्वतः ॥ ९ ॥ ददृशुःशिखरेतस्यविषक्तामिवखेपुरीम् ॥ तांशुभां
प्रवरद्वारांप्राकारवरशोभिताम् ॥ १० ॥

णजीभी बाण सहित धनुष हाथमें लिये एकाग्र मनसे श्रीरामचंद्रजीके पीछे २ चले ॥ ७ ॥ तिनके पीछे अपने मंत्रियोंके साथ सुग्रीवजी चले, और सुग्रीवजीके पीछे २ विभीषणजी, तत्पश्चात् हनुमान, अंगद, नील, द्विविद, गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, पनस, कुमुद, रंभ, जाम्बवान्, सुषेण, शतबलि, वानरश्रेष्ठ दुर्मुख, इत्यादि पर्वतोंके चरनेंवाले वानर वायु वेगसे उस पर्वतपर ॥ ८ ॥ चढ़े और सुवेल पर्वत पर श्रीरामचंद्रजीके निकट पहुंचे; पर्वतपर चढ़नेके समय उन समस्त वानरोंको कुछभी समय न लगा; वहांपर सबनें चढकर ॥ ९ ॥ उस पर्वतके रमणीय शिखरोंपर आरोहण कर त्रिकूट पर्वतके शिखरपर बसी हुई सुन्दर तोरण छहरदिवारी युक्त आकाशको स्पर्श करती ॥ १० ॥

सैनाकी तैयारीके और शंखका भेरीयुक्त बड़ा भारी शब्द उठा कि जिस्से समस्त पृथ्वी कांपगई ॥ २७ ॥ तब लंकामें टिके हुए रावणके भृत्य राक्षसलोग वानरोंकी सैनाका यह कठोर सिंहनाद सुनकर अपनेंको अत्यन्त हीन कार्य और दीनभाव युक्त समझाते हुए और रावणकी दुर्बुद्धि होनेंके कारण वह लोग उस समय किसी प्रकारके कल्याणका सुख न देखसके॥२८॥इ० श्रीम० वा०आ०यु० चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥३४॥ पराये पुरको जीतनेंवाले महाबलवान श्रीरामचंद्रजी, भेरी शंख मिश्रित शब्दके साथ संग्राम करनेंके लिये तैयार हुए ॥ १ ॥ राक्षसपति रावण वह बड़ाभारी शब्द सुनकर मुहूर्त्तभरतक अपने मनमें सोच विचार करकै समस्त मंत्री गणोंकी ओर देखनें लगा ॥ २ ॥ महाबल

श्रुत्वातुतंवानरसैन्यनादंलंकागताराक्षसराजभृत्या॥ हतौजसोदैन्यपरीतचेष्टाःश्रेयोनपश्यंतिनृपस्यदोषात् ॥२८॥
इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेचतुस्त्रिंशःसर्गः ॥३४॥ ॥छ॥ ॥ तेनशंखविमि
श्रेणभेरीशब्देननादिना ॥ उपायातिमहाबाहूरामःपरपुरंजयः ॥ १ ॥ तंनिनादंनिशम्याथरावणोराक्षसेश्वरः ॥
मुहूर्तंध्यानमास्थायसचिवानभ्युदैक्षत ॥ २ ॥ अथतान्सचिवांस्तत्रसर्वानाभाष्यरावणः ॥ सभांसन्नादयन्स
र्वानित्युवाचमहाबलः ॥ ३ ॥ जगत्संतापनःक्रूरोगर्हयन्राक्षसेश्वरः ॥ तरणंसागरस्यास्यविक्रमंबलपौरुषम् ॥४॥
यदुक्तवंतोरामस्यभवंतस्तन्मयाश्रुतम् ॥ भवतश्चाप्यहंवेद्मियुद्धेसत्यपराक्रमान् ॥ तूष्णीकानीक्षतोन्योऽन्यंविदि
त्वारामविक्रमम् ॥ ५ ॥ ततस्तुसुमहाप्राज्ञोमाल्यवान्नामराक्षसः ॥ रावणस्यवचःश्रुत्वाइतिमातामहोब्रवीत् ॥ ६ ॥

वान रावण मंत्रीयोंको अपने सन्मुख कर सब सभाको अपने शब्दसे गुंजाताहुआ मंत्रीयोंसे बोला ॥ ३ ॥ जगतको संताप देंनेवाला क्रूर स्वभाव राक्षस रावण रामचंद्रजींके पराक्रमकी व उनके समुद्र उतरनेंकी निन्दा करनें लगा॥४॥रावण मंत्रीयोंसे बोला कि तुम लोगोंनें जो रामचंद्रके समुद्रके उतर आने और उनके बलविक्रम पौरुषके विषयमें जो कुछ कहा वह समस्तही हमनें सुना, और तुम लोग सफल पराक्रम होकरभी जो रामचंद्रके पराक्रमको जानकर उत्साहहीनहो परस्पर एक दूसरेका मुख देख रहेहो यहभी समस्त हमनें जानाहै ॥५॥ रावणनें ऐसा कहा तो महा

विमानोंसे लंकानगरी अत्यन्त शोभायमान हो रहीथी ॥२१॥ जिस लंकामें राजमंदिर जिसमें कि सहस्रों खम्भ लगे हुएथे; जो देखनेमें कैलास पर्वतकी समान इतना ऊंचाथा कि मानों वह आकाशमें कोई बात लिख रहाथा ॥२२॥ और असंख्य राक्षस गण सदा जिसकी रक्षा करतेथे, ऐसा राक्षसराज रावणका वह चैत्य नामक राज मंदिर समस्त लंका नगरीका भूषण रूप हुआथा॥ २३ ॥ पुरीके स्थान २ में मनोहर कानन दृष्टि आतेथे अनेक प्रकारके धातु उत्पन्न करनेंवाले पर्वतोंकी असीम शोभा होरहीथी, और बीच २ में रमणीय उद्यान शोभा विस्तार कर रहेथे ॥ २४ ॥ विविध भांतिके विहारोंसे युक्त मृग गण निषेवित कुसुमोंसे शोभायमान अगणित राक्षसोंसे रक्षित वह लंकापुरीथी ॥२५॥ तिसके पीछे लक्ष्मीवान लक्ष्म

यस्यांस्तंभसहस्रेणप्रासादःसमलंकृतः ॥ कैलासशिखराकारोदृश्यतेखमिवोल्लिखन् ॥ २२ ॥ चैत्यःसराक्षसेंद्रस्यबभूवपुरभूषणम् ॥ शतेनरक्षसांनित्यंयःसमग्रेणरक्ष्यते॥ २३ ॥ मनोज्ञांकांचनवतींपर्वतैरुपशोभिताम् ॥ नानाधातुविचित्रैश्चउद्यानैरुपशोभिताम्॥२४॥नानाविहगसंघुष्टांनानामृगनिषेविताम् ॥ नानाकुसुमसंपन्नांनानाराक्षससेविताम्॥२५॥
तांसमृद्धांसमृद्धार्थांलक्ष्मीवाँल्लक्ष्मणाग्रजः॥ नगरींत्रिदिवप्रख्यांविस्मयंप्रापवीर्यवान्॥ २६ ॥ तांरत्नपूर्णांबहुसंविधानांप्रसादमालाभिरलंकृतांच ॥ पुरींमहायंत्रकवाटमुख्यांददर्शरामोमहताबलेन ॥ २७ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणे वाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेएकोनचत्वारिंशःसर्गः ॥ ३९ ॥ ७ ॥ ॥ ततोरामःसुवेलाग्रंयोजनद्वयमंडलम् ॥
उपारोहत्ससुग्रीवोहरियूथैःसमन्वितः ॥ १ ॥

णजीके बड़े भाई श्रीरामचंद्रजी अमरावतीकी समान समृद्धार्थ धन अन्न जनसे परिपूर्ण लंकानगरीको देखकर अत्यन्त विस्मयको प्राप्त हुए ॥ २६॥ इस प्रकारसे श्रीरामचंद्रजी बड़ी भारी वानरी सैनाके साथ वहां पर विराजमान होकर उस राज्य पूर्ण धवरहरोंकी श्रेणीसे शोभायमान अनेक बड़े२ यंत्र और किवाड़ोंसे युक्त लंका नगरीको देखते हुए ॥२७॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥३९॥
इसके पीछे श्रीरामचंद्रजी वानरोंकी सैनाके साथ सुग्रीवजीको संग लेकर दो योजनके विस्तारवाले सुवेल पर्वतके शिखरपर चढ़ते हुए ॥ १ ॥

लेताहै तब कलिराजकी अवाई होतीहै ॥ १४ ॥ परन्तु तुमने दिग्विजयके समय महाऐश्वर्य सिद्ध करनेंवाले धर्मको छोड़ देव ब्राह्मणोंको पीड़ा पहुंचाय अधर्मका आचरण कियाहै, इसी कारणसे तुम्हारे शत्रु लोग ऐसे प्रबल होगयेहैं ॥ १५ ॥ तुम्हारे चित्तके दोषसे उत्पन्न वह हुआ अधर्मही इस समय हमको ग्रासकिये लेताहै, परन्तु देवता लोगोंके नित्य किये हुए धर्मकार्य उनके पक्षको बढा रहेहैं ॥ १६ ॥ तुमनें स्वतंत्र होकर चलनें और भोग विलासमें आसक्त होकर सदांही अग्निकी समान तेजस्वी ऋषिलोगोंको अत्यन्त क्रोध उपजायाहै ॥ १७ ॥ हे रावण! उन ऋषिलोगोंका प्रभाव प्रदीप्त अग्निकी समान अत्यन्तही दुर्द्धर्ष है उनके अंतःकरण तपोबलसे शुद्ध होगयेहैं; वह लोग धर्मके अ

तत्त्वयाचरतालोकान्धर्मोपिनिहतोमहान् ॥ अधर्मःप्रगृहीतश्चतेनास्मद्बलिनःपरे ॥ १५ ॥ सप्रमादात्प्रवृद्धस्तेऽधर्मोहिग्रसतेहिनः ॥ विवर्धयतिपक्षंचसुराणांसुरभावनः ॥ १६ ॥ विषयेषुप्रसक्तेनयत्किंचित्कारिणात्वया ॥ ऋषीणामग्निकल्पानामुद्वेगोजनितोमहान् ॥ १७ ॥ तेषांप्रभावोदुर्धर्षःप्रदीप्तइवपावकः ॥ तपसाभावितात्मानोधर्मस्यानुग्रहेरताः ॥ १८ ॥ मुख्यैर्यज्ञैर्यजंत्येतेतैस्तैर्यत्तेद्विजातयः ॥ जुह्वत्यग्नींश्चविधिवद्वेदांश्चोच्चैरधीयते ॥ अभिभूयचरक्षांसिब्रह्मघोषानुदीरयन् ॥ १९ ॥ दिशोविप्रद्रुताःसर्वेस्तनयित्नुरिवोष्णगे ॥ ऋषीणामग्निकल्पानामग्निहोत्रसमुत्थितः ॥ २० ॥ आवृत्यरक्षसांतेजोधूमोव्याप्यदिशोदश ॥ तेषुतेषुचदेशेषुपुण्येष्वेवधृतव्रतैः ॥ २१ ॥

नुग्रहमें टिके हुएहैं ॥ १८ ॥ हे रावण! वह द्विजातीगण! वेदका उच्चारण करते हुए राक्षस लोगोंको रोकते वेदाध्ययन ध्यानरूप मुख्य यज्ञसे ब्रह्मकी पूजा करके विधिपूर्वक अग्निमें आहुति दिया करतेहैं ॥ १९ ॥ जिसप्रकार ग्रीष्मकालमें अत्यन्त तेजवान सूर्य भगवानके उदय होनेंपर बादल इधर उधरको भाग जातेहैं; वैसेही राक्षस लोग उन ब्राह्मणकी वेद ध्वनी सुनकर चारों ओरको भाग जातेहैं; सो अग्नितुल्य तेजस्वी ऋषि लोगोंके अग्निहोत्रसे उठा हुआ ॥ २० ॥ धुआ राक्षस लोगोंके घरमे उनके तेजको ढककर दशों दिशाओंमें फैला हुआहैं; वह व्रत धारण किये

प्रकार हमसे छुटकारा पानेंको समर्थ न होगा ॥ १० ॥ वानरराज सुग्रीवजी यह कह छलांग मार सहसा उसके मस्तक पर चढ़गये और रावणके शिरपरसे विचित्र मुकुट उतार पृथ्वीपर फेंकदिये, और फिर पृथ्वीपर उतर दुवारा उसके ऊपर झपटे ॥ ११ ॥ निशाचर रावण सुग्रीवको अति वेग सहित दूसरी वार आते हुए देखकर बोलाकि, हेसुग्रीव! जबतक तुम हमें दृष्टि नहीं आये तबहीतक तुम सुग्रीवथे, परन्तु अब हीनग्रीव हो जाओगे ॥ १२ ॥ रावणनें यह कहकर सुग्रीवजीके दोनों हाथ पकड़ उनको पटक दिया, परन्तु सुग्रीवजीनेंभी जलसे लुढ़कती गेंदकी समान शीघ्रतासे उठ रावणकी दोनों वाहें पकड़ उसको पृथ्वीपर पटक डाला ॥ १३ ॥ जब वह परस्पर इस प्रकारसे

इत्युक्त्वासहसोत्पत्यपुप्लुवेतस्यचोपरि ॥ आकृष्यमुकुटंचित्रंपातयामासतद्भुवि ॥११॥ समीक्ष्यतूर्णमायांतंबभाषेतंनिशाचरः ॥ सुग्रीवस्त्वंपरोक्षंमेहीनग्रीवोभविष्यसि ॥ १२ ॥ इत्युक्त्वोत्थायतंक्षिप्रंबाहुभ्यामाक्षिपत्तले ॥ कंदुवत्ससमुत्थायबाहुभ्यामाक्षिपद्धरिः ॥ १३ ॥ परस्परंस्वेदविदिग्धगात्रौपरस्परंशोणितरक्तदेहौ ॥ परस्परंश्लिष्टनिरुद्धचेष्टौ परस्परंशाल्मलिकिंशुकाविव ॥ १४ ॥ मुष्टिप्रहारैश्चतलप्रहारैररत्निघातैश्चकराग्रघातैः ॥ तौचक्रतुर्युद्धमसह्यरूपंमहाबलौराक्षसवानरेंद्रौ ॥ १५ ॥ कृत्वानियुद्धंभृशमुग्रवेगौकालंचिरंगोपुरवेदिमध्ये ॥ उत्क्षिप्यचोत्क्षिप्यविनम्यदेहौ पादक्रमाद्गोपुरवेदिलग्नौ ॥ १६ ॥

युद्ध करनें लगे, तब दौनोंके शरीरसे पसीना वहनें लगा, रुधिरकी धारा वहनेंके कारण दौनोंके देह लाल होगये, परस्पर लिपटनेंके कारण दोनोंके शारीरिक व्यापार वंद होगये, और दोनोंही एक दूसरेसे मिले हुए सेमल और ढाकके वृक्षोंकी समान शोभित होनें लगे ॥ १४ ॥ महावलवान राक्षसराज रावण और वानरनाथ सुग्रीवजी इस प्रकारसे परस्पर मुक्का, लात, जांघ, चनकटा आदिके आघातोंसे एक दूसरेको पीडित करनें लगे ॥ १५ ॥ इस प्रकार वहुत समयतक लंकाके सामनेवाले फाटककी वेदीपर इन दोनोंका वाहुयुद्ध होता रहा तिसके पीछे यहांतक युद्ध हुआ कि कभी २ दोनो लात चलायकर कभी २ वह रावण इनके शरीरको ऊपर उछालताथा और कभी यह

छोड़ चली जातीहैं। अथवा यह कि स्वप्नमें पीले दांतवाली काली स्त्रियां घरोंमें धरी हुई चीज वस्तुसे हँस २ बाते करतीहैं ॥ २८ ॥ कौओंके अर्थ जो बलिकी सामग्री दीजातीहै, उसे कुत्ते खाजातेहैं । गायोंसे गधे, और न्योलोंसे चूहोंकी उत्पति होतीहै ॥ २९ ॥ व्याघ्रोंके साथ बिलाव, कुत्तोंके साथ शुअर, राक्षसोंके साथ किन्नर, और मनुष्योंके साथ राक्षस मैथुन करतेहैं ॥ ३० ॥ पीले वरणके लालचरणवाले बहुत सारे कबूतर राक्षस लोगोंके विनाशार्थही मानों कालके भेजे हुए घरोंमें घूमतेहैं ॥ ३१ ॥ और घरके भीतर पाली हुई सारिका परस्पर क्लेश करती चीची कूची शब्द करतीहैं, व लड़नेंके लिये दूसरे जंगली पक्षीभी उनके पास आते उनसे लडते २ वह सारिका एक दूसरेसे गुथकर अपने अड्डो

गृहाणांबलिकर्माणिश्वानःपर्युपसेवते ॥ स्वरागोपुप्रजायंतेमूपकानकुलेपुच ॥ २९ ॥ मार्जाराद्वीपिभिःसार्धसूक राःशुनकैःसह ॥ किन्नरराक्षसैश्चापिलभेयुर्मानुपैःसह ॥ ३० ॥ पांडुरारक्तपादाश्चविहगाःकालचोदिताः ॥ राक्ष सानांविनाशायकपोताविचरंतिच ॥ ३१ ॥ चीचीकूचीतिवाशंतःशारिकावेश्मसुस्थिताः ॥ पतंतिग्रथिताश्चापिनि जिताःकलहैषिभिः ॥ ३२ ॥ पक्षिणश्चमृगाःसर्वेप्रत्यादित्यंरुदंतिते ॥ करालोविकलोमुंडःपुरुपःकृष्णपिंगलः ॥ ३३ ॥ कालोगृहाणिसर्वेषांकालेकालेऽन्ववेक्षते ॥ एतान्यन्यानिदुष्टानिनिमित्तान्युत्पतंतिच ॥ ३४ ॥ " रामंमन्याम हेविष्णुंमानुपंरूपमास्थितम् ॥ नहिमानुपमात्रोसौराघवोदृढविक्रमः ॥ १ ॥ येनबद्धःसमुद्रेचसेतुःसमरमाद्भुतः ॥ कुरुष्वनरराजेनसंधिंरामेणरावण ॥ २ ॥"

परसे गिर पड़तीहैं ॥ ३२ ॥ पशु और पक्षीगण सूर्यकी ओरको मुख कर २ रोतेहैं विकराल रूप और शिर मुड़ाये काले पीले वर्णका कालपुरुष ॥ ३३ ॥ सन्ध्याके समय हम लोगोंके घरोंमें प्रवेश करके घूमता फिरताहै । इसी प्रकारके और दुष्ट निमित्त हम लोगोंको दिखाई देते है ॥ ३४ ॥ "नराकार धारण किये श्रीरामचंद्रजीको हम तो पुराण पुरुपोत्तम विष्णुही जानतेहैं कारण कि मनुष्यमें दृढ़ पराक्रम होंना कदापि संभव नही ॥ १ ॥ जिन्होंनें समुद्रमें महाअद्भुत सेतु बांध लिया, वह नारायण विष्णुजी न होकर मनुष्य किस प्रकारसे होसकतेहैं ? इस

इस प्रकारसे युद्धविशारद राक्षसेन्द्र और वानरेन्द्र कभी विचित्र मंडल कभी विविध स्थान गोमूत्रोंकार गति कभी विचित्रगत प्रत्यागत ॥ २३ ॥ कभी टेढ़ी और चक्राकार गति, कभी परस्परका प्रहार बचाय कुटिलतासे चलना, औरस्फोटके प्रहारको युक्तिसे बचाना व कौशल पूर्वक मुष्टिक आदि से बचना, दूसरेके प्रहार करनेपर आगे को कूद जाना ॥ २४ ॥ शीघ्रतासे सन्मुखको दौड़ना, ऊपरको कूद जाना साविग्रह अवस्थिति अर्थात् विग्रह दिखा एक स्थानमें टिके रहना कभी पराङ्मुख गति कभी पीछेको हटकर शीघ्रतासे कूद जाना, बगलमें होकर अपद्रुत (जांघ पकड़नेके लिये झुक जाना) अवप्लुत ॥ २५ ॥ उपन्यास कभी अपन्यास इस प्रकारसे युद्धविशारद पारदर्शी दोनोंही वानरेन्द्र सुग्रीव और राक्षसनाथ रावण चतुरता दिखलायकर घूमने लगे ॥ २६ ॥ इतनेहीमें राक्षस रावण वानर सुग्रीवजीसे अपने छुटकारेका उपाय न देखकर

मंडलानिविचित्राणिस्थानानिविविधानिच ॥ गोमूत्रकाणिचित्राणिगतप्रत्यागतानिच ॥ २३ ॥ तिरश्चीनगतान्ये वतथावक्रगतानिच ॥ परिमोक्षंप्रहाराणांवर्जनंपरिधावनम् ॥ २४ ॥ अभिद्रवणमाप्लावमवस्थानंसविग्रहम् ॥ परावृत्तमपावृत्तमपद्रुतमवप्लुतम् ॥ २५ ॥ उपन्यस्तमपन्यस्तंयुद्धमार्गविशारदौ ॥ तौविचेरतुरन्योन्यंवानरेंद्रश्चरावणः ॥ २६ ॥ एतस्मिन्नंतरेरक्षोमायाबलमथात्मनः ॥ आरब्धुमुपसंपेदेज्ञात्वातंवानराधिपः ॥ २७ ॥ उत्पपाततदाकाशंजितकाशीजितक्लमः ॥ रावणःस्थितएवात्रहरिराजेनवंचितः ॥ २८ ॥ अथहरिवरनाथःप्राप्तसंग्रामकीर्तिर्निशिचरपतिमाजौयोजयित्वाश्रमेण ॥ गगनमतिविशालंलंघयित्वार्कसूनुर्हरिगणबलमध्येरामपार्श्वंजगाम ॥ २९ ॥

अपनी माया दिखलानेपर तैयार हुआ, इसे जानकर वानरराज सुग्रीव ॥ २७ ॥ रावणको छोडकर आकाशमें कूद गये, वानरराज सुग्रीवजीको न देखकर रावण धोखा खाय वहांपर खड़ाही रहगया ॥ २८ ॥ तिसके पीछे सूर्यके पुत्र वानरराज सुग्रीव अत्यन्त परिश्रमसे निशाचर

१ मंडलक चार भागके हैं चारिमंडल, करणमडल, खंडमंडल और महामंडल, जिस मंडलमें एक चरण चलानेका कार्य पडताहै, उसे चारि, जिसमें दौनों चरण चलायें जाते हैं उसे करण, जहां कही एक करणमंडलोंका संयोग होताहै, उसे खण्ड, और तीन या इस्से अधिक जहां खण्डमंडल होते उसे महामंडल कहते हैं ॥ २ दोनों चरणोंका तिरछा चलाना—वैष्णवादि छ स्थान है ॥ वैष्णव, संपाद, वैशाख, मंडल, प्रत्यालीढ, अनालीढ, ३ गोमूत्र गति कुटिल भावसे चलना अर्थात् टेढे मेढे होकर चलना ॥ ४ युद्धका आरंभ करके सन्मुख खडे रहना ॥ ५ शत्रुको मारनेके लिये पांव उठाकर दौडना शत्रुबाहोंको न पकड ले इस कारण बाहोंको ऊंची किये रहना ॥ ६ शत्रुकी बांहे पकडनेके लिये अपनी बांहे बढाना॥

थवा हमारे उत्साहसे उत्साहित होकर हमको औरभी उत्साह दिलानेंको तुमनें ऐसे कठोर वचन कहे ॥ ६ ॥ कारण कि उत्साह करनेंका आशय न होनेंसे कौंन शास्त्रके तत्वका जाननेंवाला पंडित युद्धमें सामर्थवान राज्यपर विराजमान अपने स्वामीको ऐसे कठोर वचन कह सकताहै ॥ ७ ॥ कमलहीन लक्ष्मीकी सुन्दरताई जिस प्रकारसे होतीहै, वैसेही हम जनस्थानसे जानकीको हरण करके ले आये, इस समय क्या रामचंद्रसे डरकर हम उनको सीता देदें? ॥ ८ ॥ यह बात सत्यहै कि कोटि २ वानरोंकी सैनाके सहित व सुग्रीव और लक्ष्मणके साथ रामचंद्र लंकामें आयेहैं; परन्तु हम तुमसे कहतेहैं, कि थोड़ेही दिनोंमें तुम उनको हमारे हाथसे सेनासहित नाशको प्राप्त हुआ देखोगे ॥ ९ ॥ जिसके

प्रभवंतंपरस्थंहिपरुषंकोऽभिभाषते ॥ पंडितःशास्त्रतत्त्वज्ञोविनाप्रोत्साहनेनवा ॥ ७ ॥ आनीयचवनात्सीतांपद्महीनामिवश्रियम् ॥ किमर्थंप्रतिदास्यामिराघवस्यभयादहम् ॥ ८ ॥ वृतंवानरकोटीभिःससुग्रीवंसलक्ष्मणम् ॥ पश्यकैश्चिदहोभिश्चराघवंनिहतंमया ॥ ९ ॥ द्वंद्वेयस्यनतिष्ठंतिदैवतान्यपिसंयुगे ॥ सकस्माद्रावणोयुद्धेभयमाहारयिष्यति ॥ १० ॥ द्विधाभज्येयमप्येवंननमेयंतुकस्यचित् ॥ एषमेसहजोदोषःस्वभावोदुरतिक्रमः॥ ११ ॥ यदितावत्समुद्रेतुसेतुर्बद्धोयदृच्छया ॥ रामेणविस्मयःकोत्रयेनतेभयमागतम् ॥ १२ ॥ सतुतीर्त्वार्णवंरामःसहवानरसेनया ॥ प्रतिजानामितेसत्यंनजीवन्प्रतियास्यति ॥ १३ ॥

साथ युद्धमें देवता लोगभी खड़े नहीं होसकते, वह दिग्विजयी रावण क्या कभी युद्ध करनेंसे डरेगा? ॥ १० ॥ चाहें हमारे दोखंड होजांय, परन्तु तौभी हम किसीसे नहीं दबेंगे; यद्यपि यह हमारे स्वभावका दोषहै तौ सही, तथापि स्वभाव अलंघनीय है, इस कारण हम उसको त्याग नहीं सकते ॥ ११ ॥ रामचंद्रका समुद्रमें सेतु बांधना देखकर जो तुम डरगये, भला बतलाओ तौ कि इसमें विस्मयकी क्या बातहै, यह सेतुतो बड़ी सरलतासे बंधा है हम चाहें तौ ऐसे २ हजारों सेतु बँधवादें ॥ १२ ॥ रामचंद्र वानरोंकी सैनाके साथ समुद्रके पार उतरकर यहां आये तौ हैं, परन्तु हम तुमसे

परन्तु तथापि तुम्हारे अवतक न आनेसे हमनें अपनें मनमें इस प्रकारसे स्थित कियाथा ॥ ६ ॥ कि रणभूमिमें, पुत्र सैना, और वाहनोंके सहित रावणका संहार करके बिभीषणको लंकापुरीका राज्य दे देंगे ॥ ७ ॥ हे महाबल ! फिर अयोध्यामें जाय भरतजीको राज्यभार सोंप अपने शरीरकोभी त्याग करदेंगे जब श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा तब सुग्रीवजी उनसे बोले॥८॥हे वीर रघुनंदन! हम अपने पराक्रमको जानकर आपकी भार्याके हरण करनेंवाले रावणको देखकरभी हम किस प्रकार उसे विना दंड दिये रह सकतेहैं ॥ ९ ॥ रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीके यह वचन सुनकर सुग्रीवजीकी बड़ाई करते हुए लक्ष्मी सम्पन्न लक्ष्मणजीसे बोले ॥१०॥ कि आओ हम सवजन सुशीतल जल और फल मूल शोभित वनस्थलीका आश्रय

हत्वाहंरावणंयुद्धेसपुत्रबलवाहनम् ॥ अभिषिच्यचलंकायांविभीषणमथापिच ॥ ७ ॥ भरतेराज्यमारोप्यत्यक्ष्ये देहंमहाबल ॥ तमेवंवादिनंरामंसुग्रीवःप्रत्यभाषत ॥ ८ ॥ तवभार्यापहर्तारंदृष्ट्वाराघवरावणम् ॥ मर्षयामिकथंवीरजानन्विक्रममात्मनः ॥ ९ ॥इत्येवंवादिनंवीरमभिनंद्यचराघवः ॥ लक्ष्मणंलक्ष्मिसंपन्नमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १० ॥ परिगृह्योदकंशीतंवनानिफलवंतिच ॥ बलौघंसंविभज्येमंव्यूह्यतिष्ठामलक्ष्मण ॥ ११ ॥ लोकक्षयकरंभीमंभयंपश्याम्युपस्थितम् ॥ निबर्हणंप्रवीराणामृक्षवानररक्षसाम् ॥ १२ ॥ वाताहिपरुषंवांतिकंपतेचवसुंधरा ॥ पर्वताग्राणिवेपंतेनदंतिधरणीधराः ॥ १३ ॥मेघाःक्रव्यादसंकाशाःपुरुषाःपरुषस्वराः ॥ क्रूराःक्रूरंप्रवर्षंतेमिश्रंशोणितबिंदुभिः ॥ १४ ॥ रक्तचंदनसंकाशासंध्यापरमदारुणा ॥ ज्वलच्चनिपतत्येतदादित्यादग्निमंडलम् ॥ १५ ॥

ले सैनाको विभाग कर व्यूहकी रचना करके उसमें टिकें ॥११॥ इस समय हम लोकोंका क्षय करनेंवाले भयंकर भय चिह्न देखतेंहैं इस युद्धमें जोकि होनेंवालाहै, अनेक २ वीर्यवान ऋक्ष, राक्षस और वानर गणोंका विनाश होगा ॥ १२ ॥ यह देखो भयंकर पवन चल रहीहै पृथ्वी और पर्वतोंके शिखर तरु कंपायमान होरहेहैं; और समस्त पर्वतभी शब्दायमान होरहे हैं ॥ १३ ॥ व्याघ्र सिंहादि हिंसक जन्तुओंकी समान भयंकर क्रूर जलद जाल (वादल) रुधिरकी बूंदोंसे मिला हुआ अशुभ जल वर्षातेहैं ॥ १४ ॥सन्ध्यामें लाल चन्दनकी समान लाल ललाई रंगसे दारुण मूर्ति धारण

कि वस सब होगया अव किसी प्रकारका खटका नहीं ॥ २१ ॥ रावण इस प्रकारसे लंकाकी चौकसीके लिये राक्षसोंको नियत करके मंत्रिगणको विदा देकर और आपभी जयसूचक आशीर्वादसे पूजित होकर, धनजन पूर्ण अपने वडे भारी रनवासमें प्रवेश करता हुआ ॥२२॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आदिकाव्ये युद्धकांडे षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥ इधर मनुष्योंके राजा श्रीरामचंद्रजी वानरराज सुग्रीव, कपिश्रेष्ठ पवनकुमार हनुमानजी, ऋक्षराज जाम्बवान राक्षसराज विभीषण ॥ १ ॥ वालिके पुत्र अंगदजी सुमित्राके पुत्र लक्ष्मणजी वानरश्रेष्ठ शरभ, अपने परिवार सहित सुषेण, मैन्द और द्विविद ॥ २ ॥ गज, गवाक्ष, कुमुद, नल और पनस अपने दुश्मनके राज्य लंकामें आय एकत्रहो बैठकर

विसर्जयामासततःसमंत्रिणोविधानमाज्ञाप्यपुरस्यपुष्कलम् ॥ जयाशिषामंत्रिगणेनपूजितोविवेशसोंतःपुरमृद्धिमन्महत् ॥ २२ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०युद्धकांडेषट्त्रिंशःसर्गः ॥ ३६ ॥ ॥ छ ॥ नरवानरराजानौसतुवायुसुतःकपिः ॥ जांबवानृक्षराजश्चराक्षसश्चविभीषणः ॥ १ ॥ अंगदोवालिपुत्रश्चसौमित्रिःशरभःकपिः ॥ सुषेणःसहदायादोमैंदोद्विविदएवच ॥ २ ॥ गजोगवाक्षःकुमुदोनलोथपनसस्तथा ॥ अमित्रविषयंप्राप्ताःसमवेताःसमर्थयन् ॥ ३ ॥ इयंसालक्ष्यते लंकापुरीरावणपालिता ॥ सासुरोरगगंधर्वैःसर्वैरपिसुदुर्जया ॥ ४ ॥ कार्यसिद्धिंपुरस्कृत्यमंत्रयध्वंविनिर्णये ॥ नित्यंसन्निहितोयत्ररावणोराक्षसाधिपः ॥ ५ ॥ अथतेषुब्रुवाणेषुरावणावरजोब्रवीत् ॥ वाक्यमग्राम्यपदवत्पुष्कलार्थंविभीषणः ॥ ६ ॥ अनलःपनसश्चैवसंपातिःप्रमतिस्तथा ॥ गत्वालंकांममामात्याःपुरींपुनरिहागताः ॥ ७ ॥ भूत्वाशकुनयःसर्वेप्रविष्टाश्चरिपोर्बलम् ॥ विधानंविहितंयच्चतद्दृष्ट्वासमुपस्थिताः ॥ ८ ॥

कहनें लगे ॥ ३ ॥ असुर, उरग, और गन्धर्वगणोंकोभी जो अजेयहै, ऐसी रावणसे पाली जाती हुई लंकापुरीमें हम आगयेहैं ॥ ४ ॥ लंकेश्वर रावण यहांपर सदांही बड़ी सावधानीसे रहताहै; अव जिस प्रकारसे कार्यकी सिद्धि होवे ऐसी परामर्श हम सबको करना उचितहै ॥५ ॥ जब सबनें यही कहा तब रावणके छोटे भाई बिभीषण उनके वचन सुनकर, ग्रामीणादिदोष रहित अर्थयुक्त यह उदार वचन बोले ॥ ६ ॥ कि अनल पनस सम्पाति और प्रमति नामक हमारे यह चारों मंत्री लंकामें जायकर इसी समय वहांसे लौटकर यहां आयेहैं ॥ ७ ॥ यह चारों पक्षियोंका रूप

कहकर पर्वतके शृङ्गसे नीचे उतरनेंकी इच्छा करते हुए ॥ २३ ॥ धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीनें उस पर्वतपरसे उत्तर शत्रुओं करकै बड़े दुःख
सेभी भयभीत न होनेंवाली अपनी वानरी सैनाको देखा ॥ २४ ॥ सुग्रीवजीके साथ श्रीरामचंद्रजीनें, कवच वख्तरादिकी सामग्री धारण कर
सुग्रीवजीको व्यूह बनानेंके लिये कहा और युद्ध करनेंके लिये वानरों को आज्ञादी ॥ २५ ॥ तिसके पीछे महा बलवान श्रीरामचंद्रजी विजय
मुहूर्त्तमें बड़ी भारी सैनाके साथ धनुष धारण करकै लंकापुरीकी ओर मुख कर संग्राम करनेंको चले ॥ २६ ॥ जब श्रीरामचंद्रजी चले तौ वा
नरराज सुग्रीव, हनुमान ऋक्षराज, जाम्बवान् नल नील और लक्ष्मण उनके पीछे २ चले ॥ २७ ॥ रीछ और वानरोंकी बड़ी भारी सैना वि

अवतीर्यतुधर्मात्मातस्माच्छैलात्सराघवः ॥ परैःपरमदुर्धर्षंददर्शबलमात्मनः ॥ २४ ॥ सन्नह्यतुससुग्रीवःकपिराजबलंम
हत्॥कालज्ञोराघवःकालेसंयुगायाभ्यचोदयत् ॥२५॥ ततःकालेमहाबाहुर्बलेनमहतावृतः ॥ प्रविष्टःपुरतोधन्वीलंकाम
भिमुखःपुरीम् ॥२६॥ तौविभीषणसुग्रीवौहनूमान्जांबवान्नलः॥ऋक्षराजस्तथानीलोलक्ष्मणश्चान्वयुस्तदा ॥२७॥ ततः
पश्चात्सुमहतीपृतनर्क्षवनौकसाम् ॥ प्रच्छाद्यमहतींभूमिमनुयातिस्मराघवम् ॥ २८ ॥ शैलशृंगाणिशतशःप्रवृद्धां
श्चमहीरुहान् ॥ जगृहुःकुंजरप्रख्यावानराःपरवारणाः ॥ २९ ॥ तौत्वदीर्घेणकालेनभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ रावणस्य
पुरींलंकामासेदतुररिंदमौ ॥ ३० ॥ पताकामालिनींरम्यामुद्यानवनशोभिताम् ॥ चित्रवप्रांसुदुष्प्रापामुच्चैःप्राकार
तोरणाम् ॥ ३१ ॥ तांसुरैरपिदुर्धर्षांरामवाक्यप्रचोदिताः ॥ यथानिदेशंसंपीड्यन्यविशंतवनौकसः ॥ ३२ ॥

स्तारित पृथ्वीके एक बड़े भागको ढक कर रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीके पीछे २ गमन करनें लगी ॥ २८ ॥ शत्रुओंका विनाश करनेंमें समर्थ
हाथियोंके समान आकारवाले वानरोंनें गमन करनेंके समय असंख्य पर्वतोंके शिखर और बड़े २ वृक्ष ग्रहण कर लिये ॥ २९ ॥ इस प्रकारसे
शत्रुओंके मारनेंवाले श्रीरामचंद्रजी बहुतही शीघ्रतासे राक्षस रावणकी लंकापुरीके द्वारपर पहुंचे ॥ ३० ॥ यह लंकापुरी बहुत सारी पताका
ओंके लगनेंसे शोभायमान होरहीथी, रमणीक फुलवाडियोंसे शोभितथी; उसकी दुर्ग प्राचीर अति विचित्रथी, परिखा (खर्द) व द्वारोंपरके स्थान
अति विशाल थे; इस कारण बड़े दुःखसेभी वहां कोई नहीं पहुंच सकताथा ॥ ३१ ॥ देवताओंकोभी अति दुःखसे प्रवेश करनेंके योग्य लंकापुरी

हुएहैं ॥ १७ ॥ हेपृथ्वीनाथ! इन करोड़ २ सैनाके एक २ राक्षसके साथ उसका असंख्य परिवारभी मिल जाकर युद्धके समय इकट्ठाहो जाता है ॥ १८ ॥ महाबलवान् विभीषणजीनें मंत्रियोंसे सुना हुआ यह लंकाका वृत्तान्त निवेदन करके अपने चारों मंत्री श्रीरामचंद्रजीको दिखा दिये ॥ १९ ॥ व उन चारों मंत्रियोंनें कमलदलकी समान नेत्रवाले श्रीरामचंद्रजीसे यह सब वृत्तान्त निवेदन किया ॥ २० ॥ तिसके पीछे रावणके छोटे भाई श्रीमान् बिभीषणजी रामचंद्रजीका हित साधन करनेंकी वासनासे उनसे बोले, कि रावणके बलकी क्या बातहै, जब यह रावण कुबेरके साथ युद्ध करताथा ॥ २१ ॥ उस समय साठ लाख राक्षस इसके साथ युद्ध करनेंको गयेथे । हेराजन् ! वह दुरात्मा राक्षसगण

एकैकस्यात्रयुद्धार्थैराक्षसस्यविशांपते ॥ परीवारःसहस्राणांसहस्रमुपतिष्ठति ॥ १८ ॥ एतांप्रवृत्तिंलंकायांमंत्रिप्रोक्तां विभीषणः ॥ एवमुक्त्वामहाबाहूराक्षसांस्तानदर्शयत् ॥ १९ ॥ लंकायांसचिवैःसर्वैरामायप्रत्यवेदयत् ॥ रामंकमलपत्राक्षमिदमुत्तरमब्रवीत् ॥ २० ॥ रावणावरजःश्रीमान्रामप्रियचिकीर्षया ॥ कुबेरंतुयदारामरावणःप्रतियुद्ध्यति ॥ २१ ॥ षष्टिःशतसहस्राणितदानिर्यांतिराक्षसाः ॥ पराक्रमेणवीर्येणतेजसासत्वगौरवात् ॥ सदृशाह्यत्रदर्पेणरावणस्यदुरात्मनः ॥२२॥ अत्रमन्युर्नकर्तव्यःकोपयेत्वांनभीषये ॥ समर्थोह्यसिवीर्येणसुराणामपिनिग्रहे ॥ २३ ॥ तद्भवांश्चतुरंगेणबलेनमहतावृतम् ॥ व्यूह्येदंवानरानीकंनिर्मथिष्यसिरावणम् ॥ २४ ॥ रावणावरजेवाक्यमेवंब्रुवतिराघवः ॥ शत्रूणांप्रतिघातार्थमिदंवचनमब्रवीत् ॥ २५ ॥

पराक्रम, वीर्य, तेज, बल, धीरता, और दर्प किसी बातमें किसी प्रकार रावणसे कम नहीं ॥ २२ ॥ हेराजन्! आप क्रोध न कीजिये, हमनें; भय दिखानेके लिये, ऐसा नहीं कहा, वरन केवल आपका क्रोध प्रदीप्त करनेंहीके लिये ऐसा कहाहै; कारणकि आप क्रोधित होकर अपने वीर्यके बलसे देवता इन्द्रादिकोंकोभी दंड देसकते हैं ॥ २३ ॥ हम निश्चयही कहतेहैं कि आप इस बड़ी भारी चतुरंगिनी सैनाको व्यूहाकारमें स्थापन करके रावणको भलीभांति मर्दन करेंगे ॥ २४ ॥ रावणके छोटे भाई बिभीषणजीनें जब ऐसा कहा तब रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी शत्रुगणोंका

साथ दक्षिण द्वार परगये, और मध्यके गुल्म पर स्वयं सुग्रीवजी जाउठे ॥ ४१ ॥ कि जिनके साथ सर्व वानरश्रेष्ठ थे, कि जिनमें गरुड़
और पवनकी समान बल था, इस वानरोंकी सैनामें छत्तीस करोड़ विख्यात वानरोंके यूथपथे ॥ ४२ ॥ यह सब वानर वहां पर मिलकर
आये कि जहां सुग्रीवजीथे, रामचंद्रजीकी आज्ञासे लक्ष्मण और विभीषणजीनें ॥ ४३ ॥ लंकाके प्रत्येक द्वार पर करोड़ २ वानरोंको नियुक्त करते
हुए सुषेण जाम्बवान् बहुतसी वानरोंकी सैनाको संगलेकर श्रीरामचंद्रजीके पीछे ॥ ४४ ॥ अत्यन्त निकटवाले मध्य गुल्म पर बहुतसी सैनाके
साथ जाय टिके इस प्रकार वानर शार्दूलगण कि जिनके दांतभी सिंहकी समान तीक्ष्ण थे, वृक्ष और पर्वतोंको धारण करके हर्षित मनसे

सहस्रैर्हरिश्रेष्ठैःसुपर्णपवनोपमैः ॥ वानराणांतुषट्त्रिंशत्कोट्यःप्रख्यातयूथपाः ॥ ४२ ॥ निपीड्योपनिविष्टाश्चसुग्री
वोयत्रवानरः ॥ शासनेनतुरामस्यलक्ष्मणःसविभीषणः ॥ ४३ ॥ द्वारेद्वारेहरीणांतुकोटिंकोटीन्र्यवेशयत् ॥ पश्चिमे
नतुरामस्यसुषेणःसहजांबवान् ॥ ४४ ॥ अदूरान्मध्यमेगुल्मेतस्थौबहुबलानुगः ॥ तेतुवानरशार्दूलाःशार्दूलाइव
दंष्ट्रिणः ॥ गृहीत्वाद्रुमशैलाग्रान्हृष्टायुद्धायतस्थिरे ॥ ४५ ॥ सर्वेविकृतलांगूलाःसर्वेदंष्ट्रानखायुधाः ॥ सर्वेविकृतिचि
त्रांगाःसर्वेचविकृताननाः ॥ ४६ ॥ दशनागबलाःकेचित्केचिद्दशगुणोत्तराः ॥ केचिन्नागसहस्रस्यबभूवुस्तुल्यविक्रमाः
॥ ४७ ॥ संतिचौघबलाःकेचित्केचिच्छतगुणोत्तराः ॥ अप्रमेयबलाश्चान्येतत्रासन्हरियूथपाः ॥ ४८ ॥ अद्भुतश्च
विचित्रश्चतेषामासीत्समागमः ॥ तत्रवानरसैन्यानांशलभानामिवोद्गमः ॥ ४९ ॥

युद्धकी राह परखनें लगे ॥ ४५ ॥ नख और दांतोंको आयुध बनाये विचित्र देहवाले वह वानरगण क्रोधमें भरकर अपनी पूंछको फटकारने अंग
चलानें और मुख बिरानेंके आकार करनें लगे ॥ ४६ ॥ इन वानरोंमें किसी२के दश हाथियोंका बल था, किसी २ के शत हाथियोंका बलथा, और
किन्हीं २ में हजार हाथियोंकी समान बल विक्रम था ॥ ४७ ॥ उन वानरोंमें कोई २ अमोघ सङ्घ औरकोई २ के शत अमोघ सङ्घ हाथियोंकी समान
बलशाली थे, और कोई २ यूथपतिसे ऐसे बलशाली थे, कि उनकी तुलना किसीके साथ नहीं हो सकती ॥ ४८ ॥ टीढ़ियोंकी समान उस वानरोंकी

हे वानरगण! तुम लोगोंका चिन्ह वानरहीहै, इस कारण तुम सब यही रूप धारण किये रहना, केवल हम सात जन मनुष्यका रूप धारण करके शत्रुसे युद्ध करेंगे ॥३४॥ उनमें हम महा तेजस्वी लक्ष्मणजी सखा बिभीषणजी, और इनके सचिव चारों राक्षस बस यह सात जन मनुष्यका रूप धारण करके युद्ध करेंगे, इनके सिवाय मनुष्यका रूप धारण किये और जिसकोभी देखेंगे मार डालेंगे ॥ ३५ ॥ सब कार्योंके करनेमें समर्थ बुद्धिमान स्वामी श्रीरामचंद्रजी धार्मिक बिभीषणजीसे यह कहकर सुवेल पर्वतपर चढ़नेंकी अपनी बुद्धि करते हुए ॥ ३६ ॥ क्योंकि, वह सुवेल पर्वतका तट श्रीरामचंद्रजीको बहुत रमणीयतर दिखायी दिया ॥ ३७ ॥ इस प्रकारसे महाबलवान श्रीरामचंद्रजी शत्रुका वध करनेके लिये

वानराएववश्चिह्नंस्वजनेऽस्मिन्भविष्यति॥वयंतुमानुषेणैवसप्तयोत्स्यामहेपरान्॥३४॥ अहमेवसहभ्रात्रालक्ष्मणेनमहौजसा॥आत्मनापंचमश्चायंसखाममविभीषणः॥३५॥ सरामःकृत्यसिद्ध्यर्थमेवमुक्त्वाविभीषणम् ॥ सुवेलारोहणेबुद्धिंचकारमतिमान्प्रभुः ॥ ३६ ॥ रमणीयतरंदृष्ट्वासुवेलस्यगिरेस्तटम् ॥ ३७ ॥ ततस्तुरामोमहताबलेनप्रच्छाद्यसर्वांपृथिवींमहात्मा ॥ प्रहृष्टरूपोभिजगामलंकांकृत्वामतिंसोरिवधेमहात्मा ॥ ३८ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेसप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥ ॥ छ ॥ ॥ सतुकृत्वासुवेलस्यमतिमारोहणंप्रति ॥ लक्ष्मणानुगतोरामः सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥ बिभीषणंचधर्मज्ञमनुरक्तंनिशाचरम् ॥ मंत्रज्ञंचविधिज्ञंचश्लक्ष्णयापरयागिरा ॥ २ ॥ सुवेलंसाधुशैलेंद्रमिमंधातुशतैश्चितम् ॥ अध्यारोहामहेसर्वेवत्स्यामोत्रनिशामिमाम् ॥ ३ ॥

कृतनिश्चय होकर अपनी बड़ी भारी वानर सैनासे पृथ्वीको ढककर हर्षित अंतःकरणसे लंकाके जंगलमें विराजमान होनें लगे ॥ ३८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥ श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके साथ सुवेल पर्वत पर चढनेंकी अभिलाषा करके वानरराज सुग्रीवजीसे बोले ॥ १ ॥ मंत्र जाननेंवाले, धर्मके जानकर अनुरागी चित्त और समस्त विधान समझानेंवाले बिभीषणजीसे भी श्रीरामचंद्रजीने कहा ॥ २ ॥ कि चलो हम सब जन द्रुम (वृक्ष) और धातु युक्त सुवेल पर्वतपर चढकर आज वहांपर रात्रि वितामेंगे ॥ ३ ॥

उस बड़े भारी शब्दसे पर्वत, वन कानन प्राकार और फाटकोंके सहित समस्त लंकाद्वीप वारंवार कम्पायमान होनें लगा ॥ ५६ ॥ अधिक क्याकहैं उस समयमें वह वानरोंकी सैना श्रीरामचंद्र लक्ष्मण व सुग्रीवजी करके रक्षित होनेंके कारण देवता व राक्षसोंसे भी जीतनेंके अयोग्य जान पड़तीथी ॥ ५७ ॥ श्रीरामचंद्रजी इस प्रकारसे राक्षसोंका वध करनेंके लिये सैना स्थापनकर कर्त्तव्याकर्त्तव्यका निश्चय करनेंके लिये मंत्रियोंके साथ सलाह करनेंमें लगे और वारंवार कार्यका निर्णय करनेंमें आगे बढ़े ॥ ५८ ॥ श्रीरामचंद्रजी साम दाम भेद दंड इन चारों उपायोंको जानतेथे, परन्तु उपस्थित कार्यमें शेष उपाय अर्थात् दंड देनाही श्रेष्ठ विचार करकै राजधर्ममें

तेनशब्देनमहतासप्राकारासतोरणा ॥ लंकाप्रचलितासर्वासशैलवनकानना ॥ ५६ ॥ रामलक्ष्मणगुप्तासासुग्रीवेणच वाहिनी॥बभूवदुर्धर्षतरासर्वैरपिसुरासुरैः ॥५७॥राघवःसन्निवेश्यैवस्वसैन्यंरक्षसांवधे ॥ संमंत्र्यमंत्रिभिःसार्धनिश्चित्य चपुनःपुनः ॥५८॥आनंतर्यमभिप्रेप्सुःक्रमयोगार्थतत्त्ववित् ॥ विभीषणस्यानुमतेराजधर्ममनुस्मरन् ॥ ५९ ॥ अंगदंवा लितनयंसमाहूयेदमब्रवीत्॥ गत्वासौम्यदशग्रीवंब्रूहिमद्वचनात्कपे ॥६०॥ लंघयित्वापुरींलंकांभयंत्यक्त्वागतव्यथः ॥ भ्रष्टश्रीकंगतैश्वर्यंमुमूर्षानष्टचेतनम् ॥ ६१ ॥ ऋषीणांदेवतानांचगंधर्वाप्सरसांतथा ॥ नागानामथयक्षाणांराज्ञांचर जनीचर ॥ ६२ ॥ यच्चपापंकृतंमोहादवलिप्तेनराक्षस ॥ नूनंतेविगतोदर्पःस्वयंभूवरदानजः ॥ ६३ ॥ यस्यदंडधरस्ते हंदाराहरणकर्शितः ॥ दंडंधारयमाणस्तुलंकाद्वारेव्यवस्थितः ॥ ६४ ॥

मन लगाते हुए और विभीषणजीकी परामर्शके अनुसार यही कर्त्तव्य स्थिर करकै ॥ ५९ ॥ वालिके पुत्र अंगदजीको बुलायकर उनसे बोले, कि हेसौम्य! तुम हमारे वचनोंको जायकर रावणसे कहना; ॥ ६० ॥ तुम निर्भय होकर समस्त लंका पुरीको लांघते हुए चले जाना, और राक्षसोंका भय छोड़ उनसे कहनाकि हेलक्ष्मीरहित, ऐश्वर्यहीन मृत्युके निकट पहुंचे चेतना रहित राक्षस ॥ ६१ ॥ ऋषि, देवता, गन्धर्व, अप्सरा, सर्प, यक्ष और राजाओंका ॥ ६२ ॥ जो पाप विनाविचारे व गर्वसे तुमनें कियाहै, उस पापके भोगनेंका समय अब आगयाहै; अब उन पापोंका दारुण परिणाम फलनाही चाहताहै, ब्रह्माके वरदानसे ये गर्व तुमको हुआहै, आज वह चूर्ण कर देंगे ॥ ६३ ॥ तुमनें जो हमारी भार्या

राक्षसोंसें पूर्ण लंकापुरीको वानर यूथपोंने देखा कोटकी भीत और खंबोंपर चढे राक्षसोंसे घिरी हुई उस लंकापुरीमें व नील वर्ण वाली राक्षसी सैनाकी श्रेणीको मानों दूसरी दुर्ग प्राचीर (शहर पनाह) तुल्य वानर श्रेष्ठोंनें देखी ॥ ११ ॥ युद्धकी अभिलाषा किये वानर गण उन समस्त राक्षसोंकी सैनाको देख रामचंद्रके सामनेही सिंहनाद करनें लगे ॥ १२ ॥ तिसके पीछे सन्ध्या राग रंजित दिवाकर सूर्य भगवान अस्ताचलको गमन करते हुए, और रात्री हो आई, उस समय पूर्ण चंद्रमाके उदय होनेंसे रात्रिभी प्रदीप्त तुल्य बोध होनें लगी ॥ १३ ॥ तिसके पीछे श्रीरामचंद्रजी अपने सैनापती वानरयूथप व विभीषणजीसे पूजित और सन्मानित होकर लक्ष्मणजीके साथ यूथपति

लंकांराक्षससंपूर्णांददृशुर्हरियूथपाः ॥ प्राकारवरसंस्थैश्चतथानीलैश्चराक्षसैः ॥ ददृशुस्तेहरिश्रेष्ठाःप्राकारमपरं
कृतम् ॥ ११ ॥ तंदृष्ट्वावानराःसर्वेराक्षसान्युद्धकांक्षिणः ॥ मुमुचुर्विविधान्नादांस्तस्यरामस्यपश्यतः ॥ १२ ॥
ततोस्तमगमत्सूर्यःसंध्ययाप्रतिरंजितः ॥ पूर्णचंद्रप्रदीप्ताचक्षपासमतिवर्तत ॥ १३ ॥ ततःसरामोहरिवाहिनीपतिर्वि
भीषणेनप्रतिनंद्यसत्कृतः ॥ सलक्ष्मणोयूथपयूथसंयुतःसुवेलपृष्ठेन्यवसद्यथासुखम् ॥ १४ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ०
युद्धकांडेअष्टत्रिंशःसर्गः ॥ ३८ ॥ ॥ छ ॥ तांरात्रिमुषितास्तत्रसुवेलेहरियूथपाः ॥ लंकायांददृशुर्वीरावनान्युपवना
निच ॥ १ ॥ समसौम्यानिरम्याणिविशालान्यायतानिच ॥ दृष्टिरम्याणितेदृष्ट्वाबभूवुर्जातविस्मयाः ॥ २ ॥ चंपका
शोकबकुलशालतालसमाकुला ॥ तमालपनसच्छन्नानागमालासमावृता ॥ ३ ॥

और यूथ गणोंके सहित यथा सुखसे सुवेल पर्वतके शृंगोंपर वास करनें लगे ॥ १४ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० अष्टत्रिंशःसर्गः ॥ ३८ ॥
तिसके पीछे वानरोंकी सैनाके यूथप सुवेल पर्वतके शिखर पर वह रात्रि विताय लंकापुरीके समस्त वन व उपवनोंको देखते हुए ॥ १ ॥ यह समस्त उपवन, विशाल समान सुखदाई, लम्बे चौड़े और देखतेही मन मोहतेथे, जिनको देखकर वानरगण अत्यन्त विस्मित हुए ॥ २ ॥ वानरोंनें देखाकि इन वन उपवनोंमें,चम्पा, वकुल, शाकुल, शाल, ताल छायरहे हैं, और तमाल कटहरसे छायकर यह वन नागवेलिसे युक्त हैं ॥ ३ ॥

हे निशाचर! तुम यदि पक्षीकी देह धारण करके त्रिलोकीके मध्यमें भी घूमोगे,तथापि हमारी दृष्टिसे अलग हो जानेंको अथवा अपने जीवनके रक्षा करनेंको तुम समर्थ न होगे॥७१॥अबतुम्हारा जीवन हमारे ही हाथमें है; इस कारण तुम्हारे हितके निमित्त ही कहते हैं, कि तुम पर लोक सद्गति प्राप्त करनेंके लिये दानपुण्य जो कुछ करनें हैं वह कर लो, और तुम्हारा मरण देखकर लंकानगरी प्रमुदित होवै ॥ ७२ ॥ दुष्करकर्म करनें वाले श्रीरामचंद्रजी करके इस प्रकारसे कहे जाकर ताराकुमार अंगदजी मूर्तिमान अग्निकी समान आकाश मार्ग में गमन करने ॥ ७३ ॥ इसके पीछे एक मुहूर्त भरके बीचमें रावणके मंदिर पर पहुंचकर मंत्रि लोगोंके साथ बैठे अविचालित हृदय रावणको अंगदजी देखते हुए ॥ ७४ ॥

ब्रवीमित्वांहितंवाक्यं यद्याविशसिलोकांस्त्रीन्पक्षीभूतोनिशाचर ॥ ममचक्षुःपथंप्राप्यनजीवन्प्रतियास्यसि ॥ ७१ ॥ इत्युक्तःसतुतारेयोरामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ जगामाकाशमाविश्यमूर्तिमानिवहव्यवाट् ॥ ७३ ॥ सोतिपत्यमुहूर्तेनश्रीमान्रावणमंदिरम् ॥ ददर्शासीनमव्यग्रंरावणंसचिवैःसह ॥ ७४ ॥ ततस्तस्याविदूरेणनिपत्यहरिपुंगवः ॥ दीप्ताग्निसदृशस्तस्थावंगदःकनकांगदः ॥ ७५ ॥ तद्रामवचनंसर्वमन्यूनाधिकमुत्तमम् ॥ सामात्यंश्रावयामासनिवेद्यात्मानमात्मना ॥ ७६ ॥ दूतोहंकोशलेंद्रस्यरामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ वालिपुत्रोंगदोनामयदितेश्रोत्रमागतः ॥ ७७ ॥ आहत्वांराघवोरामःकौसल्यानंदवर्धनः ॥ निष्पत्यप्रतियुध्यस्वनृशंसपुरुषोभव ॥ ७८ ॥

(क्रियतामौर्ध्वदेहिकम् ॥ सुदृष्टाक्रियतांलंकाजीवितंतेमयिस्थितम् ॥ ७२ ॥ appears after ब्रवीमित्वांहितंवाक्यं in line order)

तिसके पीछे सुवर्णके बाजूसे भूषित प्रदीप्त अग्निकी समान वानरश्रेष्ठ अंगदजी रावणके निकट ही आकाशसे उतर स्वयं अपना नाम सबको सुनाय मंत्रियोंके सहित रावणसे वह श्रीरामचंद्रजीके कहे हुए वचन यथार्थ २ कहनें लगे ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ अंगदजी बोले कदाचित्त तुमने हमारा नाम सुनाही होगा, जो न सुना हो तौ अब सुनों कि हम वालिके पुत्र हैं और अंगद हमारा नामहै । इस समय दुष्कर कर्म करनेंवाले श्रीरामचंद्रजीके दूत होकर यहां आये हैं ॥ ७७ ॥ कौशल्याजीको आनंद बढ़ानेवाले श्रीरामचंद्रजीनें तुमसे कह दियाहै कि-रे पुरुषोंमें

वहांपर चढ़कर एक मुहूर्त्तभरतक टिक दशों दिशाओंको श्रीरामचंद्रजीनें निहारा, तब विश्वकर्माजीकी बनाई त्रिकूटपर्वतके शिखरपर वसी हुई लंका नगरी ॥ २ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें देखी, यह पुरी अच्छे नियमद्वारा क्रम २ से बनाई गईथी, और रमणीकवनभी इसमें चारों ओर शोभायमान थे, उस लंकामें बने हुए ऊंचे द्वारके (गोपुरके) ऊपर राक्षसोंके राजा अति दुर्द्धर्ष रावणको मस्तक पर ॥ ३ ॥ विजय छत्र लगाये;अगल बगल दो श्वेत चँवर ढुलते लाल चंदन लगाये, लाल कपड़े व लालही गहनोंसे भूषित ॥ ४ ॥ और नीले बादरके रंगका सुवर्ण जड़ित उत्तरीय वस्त्र धारण किये, छातीमें ऐरावत हाथीके दांत लगजानेंसे घावयुक्त होनेंके कारण उसके चिह्नसे युक्त ॥ ५ ॥ खरगोशके

स्थित्वामुहूर्तंतत्रैवदिशोदशविलोकयन् ॥ त्रिकूटशिखरेरम्येनिर्मितांविश्वकर्मणा ॥ २ ॥ ददर्शलंकांसुन्यस्तांरम्यकाननशोभिताम् ॥ तस्यगोपुरशृंगस्थंराक्षसेंद्रंदुरासदम् ॥ ३ ॥ श्वेतचामरपर्यंतंविजयच्छत्रशोभितम् ॥ रक्तचंदनसंलिप्तंरक्ताभरणभूषितम् ॥ ४ ॥ नीलजीमूतसंकाशंहेमसंछादितांबरम् ॥ ऐरावतविषाणाग्रैरुत्कृष्टकिणवक्षसम् ॥ ५ ॥ शशलोहितरागेणसंवीतंरक्तवाससा ॥ संध्यातपेनसंछन्नंमेघराशिमिवांबरे ॥ ६ ॥ पश्यतांवानरेंद्राणांराघवस्यापिपश्यतः ॥ दर्शनाद्राक्षसेंद्रस्यसुग्रीवःसहसोत्थितः ॥ ७ ॥ क्रोधवेगेनसंयुक्तःसत्वेनचबलेनच ॥ अचलाग्रादथोत्थायपुप्लुवेगोपुरस्थले ॥ ८ ॥ स्थित्वामुहूर्तंसंप्रेक्ष्यनिर्भयेनांतरात्मना ॥ तृणीकृत्यचतद्रक्षःसोब्रवीत्परुषंवचः ॥ ९ ॥ लोकनाथस्यरामस्यसखादासोस्मिराक्षस ॥ नमयामोक्ष्यसेऽद्यत्वंपार्थिवेंद्रस्यतेजसा ॥ १० ॥

रुधिरकी समान रंगवाला लाल वस्त्र पहरे सन्ध्याकी धूपसे ढके हुए बादलके समूहकी समान आकाशमें विराजमान ॥ ६ ॥ वानरोंनें और श्रीरामचंद्रजीनें देखा, ऐसे राक्षसराजको देखतेही सुग्रीवजी सहसा उठ खड़ेहुए ॥ ७ ॥ वह सुग्रीव क्रोधके वेगसे परिपूर्ण और अपनें बल विक्रमसे उत्साहित होकर पर्वतके ऊपरसे छलांग मारकर उसी गोपुरके स्थानमें पहुंच गये जहांकि रावण खड़ाथा ॥ ८ ॥ तिसके पीछे वहां पर भय रहित मनसे कुछ देरतक खड़ेहो रावणके प्रति एक दृष्टिसे देख उसको तृणकी समान समझ कठोर वचन कहनेंलगे ॥ ९ ॥ कि हे निशाचर! हम सर्व लोकके स्वामी श्रीरामचंद्रजीके दासहैं;-हम उन पृथ्वीनाथके अनुग्रहसे जिस प्रकारके तेजस्वी हुएहैं, तिस्सै तौ आज किसी

राक्षस रावणके सामनेही पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ८७ ॥ तिसके पीछे महाप्रतापी अंगदजीनें पर्वतके शिखरकी समान ऊंचे रावणके राजमंदिर पर चढ़कर उस पर बलसे एक पद प्रहार किया ॥ ८८ ॥ वज्रधारी इन्द्रजीके वज्र मारनेंसे जिस प्रकार पूर्व कालमें हिमाचलका शृङ्ग चूर्ण होगयाथा वैसेही रावणके सन्मुख उसके देखते २ राजमंदिर फटकर गिर पड़ा ॥८९॥ इस प्रकारसे अंगदजी राज मंदिरके शिखरको तोडकर वारंवार अपना नाम सबको सुनाय अत्यन्त घोर सिंहनाद करते हुए आकाशको उछल गये ॥ ९० ॥ वीर अंगदजी इस प्रकारसे राक्षसोंको दुःखी और वानर गणोंको हर्ष उपजाते हुए वानर गणोंके बीचमें बैठे श्रीरामचंद्रजी के निकट पहुंच गये ॥ ९१॥ राजमंदिरके टूटनेंपर रावणको अत्यन्तही क्रोध उत्पन्न

ततःप्रासादशिखरंशैलशृंगमिवोन्नतम् ॥ चक्रामराक्षसेंद्रस्यवालिपुत्रःप्रतापवान् ॥ ८८ ॥ पफालचतदाक्रांतंदशग्रीव
स्यपश्यतः ॥पुराहिमवतःशृंगंवज्रेणेवविदारितम्॥८९॥ भंक्त्वाप्रासादशिखरंनामविश्राव्यचात्मनः ॥ विनद्यसुमहाना
दमुत्पपातविहायसा ॥९०॥व्यथयन्राक्षसान्सर्वान्हर्षयंश्चापिवानरान् ॥ सवानराणांमध्येतुरामपार्श्वमुपागतः॥९१॥
रावणस्तुपरंचक्रेक्रोधंप्रासादधर्षणात् ॥ विनाशंचात्मनःपश्यन्निःश्वासपरमोभवत् ॥ ९२ ॥ रामस्तुबहुभिर्हृष्टैर्विन
दद्भिःप्लवंगमैः ॥ वृतोरिपुवधाकांक्षीयुद्धायैवाभिवर्तत ॥ ९३ ॥ सुषेणस्तुमहावीर्योगिरिकूटोपमोहरिः ॥ बहुभिःसंवृ
तस्तत्रवानरैःकामरूपिभिः ॥ ९४ ॥ सतुद्वाराणिसंयम्यसुग्रीववचनात्कपिः ॥ पर्यक्रामतदुर्धर्षोनक्षत्राणीवचं
द्रमाः ॥ ९५ ॥ तेषामक्षौहिणिशतंसमवेक्ष्यवनौकसाम् ॥ लंकामुपनिविष्टानांसागरंचाभिवर्तताम् ॥ ९६ ॥

हुआ और वह श्रीरामचंद्रजीके दूतका बल और अपने होंनेवाले विनाशको निश्चय जानकर चिन्ता सहित वारंवार लंबे २ श्वास लेने लगा ॥ ९२ ॥ इस ओर महाबलवान श्रीरामचंद्रजीभी हर्षित किलकिलात वानर गणोंसे वेष्टित होकर शत्रुका नाश करनेंके लिये युद्धमेंही अपने मनको लगाते हुए ॥९३॥ पर्वताकार महाबलशाली सुषेणभी कामरूपधारी बहुत सारे वानरोंकी सैना संगलेकर आगे बढ शोभायमान हुआ ॥ ९४ ॥ वह अजेय सुषेण नाम वानर कपिराज सुग्रीवजीकी आज्ञासे तारागणोंसे घिरे हुए चंद्रमंडलकी समान बहुत सारी सैनाको साथ लेकर लंकाके समस्त द्वारोंपर घूमनें लगा ॥ ९५ ॥ लंकाके मयदानमें समुद्रकी सीमातक उठी हुई असंख्य अक्षौहिणीके प्रमाणवाली वानरोंकी सैना देखकर ॥९६॥

सुग्रीव इसके शरीरको ऊपर उछालकर गिरा देतेथे ॥ १६ ॥ तिसके पीछे दोनों दोनोंको दबाय एक दूसरेसे लिपट दुर्ग प्राचीरकी खाई में गिरे, वहां थोडी देर दोनोही चेष्टा रहित होकर निर्जीवसे पडे रहे और फिर अतिकठिनतासे पृथ्वी पकड़ वहांसे निकले उसकाल दोनों ही वारंवार लंबी श्वासें ले रहेथे ॥ १७ ॥ क्रोध शिक्षा और बलके सहित यह मार्गमें घूमते हुए दोनों दोनोंको वारंवार लिपटते हुए ऐसे जान पड़ने लगे कि मानों दोनों २ को वारंवार रस्सीसे बांध रहेहैं ॥ १८ ॥ इस प्रकारसे दांत निकले सिंह व शार्दूलशिशुके सहित समरमें आसक्त हो हाथीके पाठोंकी समान दोनों दोनों बाहोंसे आघात प्रतिघात करते हुए दोनोंही एक साथ पृथ्वीपर गिरनें लगे ॥ १९ ॥ इस प्रकारसे वह दोनों वीर परस्पर एक

अन्योन्यमापीड्यविलग्नदेहौतौपेततुःसालनिखातमध्ये ॥ उत्पेततुर्भूमितलंस्पृशंतौस्थित्वामुहूर्तंत्वभिनिःश्वसंतौ ॥ १७ ॥ आलिंग्यचालिंग्यचबाहुयोक्त्रैःसंयोजयामासतुराहवेतौ ॥ संरंभशिक्षाबलसंप्रयुक्तौसुचेरतुःसंप्रतियुद्धमार्गे ॥ १८ ॥ शार्दूलसिंहाविवजातदंष्ट्रौगजेंद्रपोताविवसंप्रयुक्तौ ॥ संहत्यसंवेद्यचतौकराभ्यांतौपेततुर्वैयुगपद्धरायाम् ॥ १९ ॥ उद्यम्यचान्योन्यमधिक्षिपंतौसंचक्रमातेबहुयुद्धमार्गे ॥ व्यायामशिक्षाबलसंप्रयुक्तौक्लमंनतौजग्मतुराशुवीरौ ॥ २० ॥ बाहूत्तमैर्वारणवारणाभैर्निवारयंतौपरवारणाभौ ॥ चिरेणकालेनभृशंप्रयुद्धौसंचेरतुर्मंडलमार्गमाशु ॥ २१ ॥ तौपरस्परमासाद्ययत्तावन्योन्यसूदने ॥ मार्जाराविवभक्षार्थेऽवतस्थातेमुहुर्मुहुः ॥ २२ ॥

दूसरे को वारंवार मारते और उछाल देतेथे, और, उत्साह शिक्षा व बल सहित अनेक प्रकारकी चतुरताभी दिखातेथे, परन्तु तथापि उन दोनों वीरोंमे से शीघ्र कोई भी न थका ॥ २० ॥ मतवाले हाथियोंकी समान वह दोनों वीर हाथीकी शुण्डके समान आकार वाली अपनी दोनों भुजाओंसे एक दोनोंको निवारण करते हुए बहुत विलम्बतक युद्ध करके मंडलाकार होकर लड़ने लगे ॥ २१ ॥ किसी भोजन करनेंकी वस्तु को भोजन करनेके लिये लड़ते हुए दो बिलावोंकी समान यह दोनों वीरभी एक दूसरेका प्राण संहार करनेंमे यत्न करनेंलगे ॥ २२ ॥

चिन्ता होनें लगी कि किस प्रकारसे वानरोंका नाश किया जाय ॥ ४ ॥ बहुत देरतक यह चिन्ता करके वह धीर धारणकरके नेत्र फैलाय २ राम लक्ष्मण और उनकी सैनाके समूहको देखनें लगा ॥ ५ ॥ वहांपर श्रीरामचंद्रजीनें हर्षित अंतःकरणसे सैनाके सहित लंकापुरीके प्राकारके निकट पहुँच गुप्त राक्षसोंकी पुरी लंकाको सब जगह राक्षसोंसे पूरित होकर रक्षा की जाती हुई देखा ॥ ६ ॥ ध्वजा पताकाओंसे शोभायमान लंकापुरीको देखतेही सीतापति रघुनाथजीके विरहसे उत्पन्न हुए दुःखकी अवाई हुई और इसी समय श्रीरामचंद्रजी मनही मनमें कहनें लगे ॥ ७ ॥ हाय! इसी स्थानमें वह मृग छौनाकेसे नेत्रवाली कृशाङ्गी जनककुमारी जानकी हमारे लिये पीडित और शोकसे संतापित होकर

सचिंतयित्वासुचिरंधैर्यमालंब्यरावणः ॥ राघवंहरियूथांश्चददर्शायतलोचनः ॥ ५ ॥ राघवःसहसैन्येनमुदितोनामपुप्लुवे ॥ लंकांददर्शगुप्तांवैसर्वतोराक्षसैर्वृताम् ॥६॥ दृष्ट्वादाशरथिर्लंकांचित्रध्वजपताकिनीम् ॥ जगाममनसासीतांदूयमानेनचेतसा ॥७॥ अत्रसामृगशावाक्षीमत्कृतेजनकात्मजा ॥ पीड्यतेशोकसंतप्ताकृशास्थंडिलशायिनी ॥ ८॥ निपीड्यमानांधर्मात्मावैदेहीमनुचिंतयन्॥क्षिप्रमाज्ञापयद्रामोवानरान्द्विषतांवधे ॥ ९॥ एवमुक्तेतुवचसिरामेणाक्लिष्टकर्मणा॥ संघर्षमाणाःप्लवगाःसिंहनादैरपूरयन् ॥ १० ॥ शिखरैर्विकिरामैतांलंकांमुष्टिभिरेववा ॥ इतिस्मदधिरेसर्वेमनांसिहरियूथपाः ॥ ११ ॥ उद्यम्यगिरिशृंगाणिमहांतिशिखराणिच ॥ तरूंश्चोत्पाट्यविविधांस्तिष्ठंतिहरियूथपाः ॥१२॥

पृथ्वीमें शयन करती हैं ॥ ८ ॥ श्रीरामचंद्रजी इस प्रकार वैदेहीजीके दुःखको विचारकर अत्यन्तही कातर हुए; और शीघ्रही युद्ध करनेके लिये उन्होंने वानर लोगोंको आज्ञादी ॥ ९ ॥ वानर लोग सरलतासे कर्म करनें वाले श्रीरामचंद्रजीकी इस प्रकारसे आज्ञा पाय समस्तही वानर एक साथ आगे बढनेंके लिये सिंहनाद कर२ के चारों दिशाओंको परिपूरित करते हुए ॥ १० ॥ उस कालमें वह वानरयूथपतिगण समस्तही "हम लोग पर्वतोंके शिखरसे इस लंका नगरीको तितर बितर करेंगे अथवा घुमाकर उसको चूर्ण कर डालेंगे," इस प्रकारसे सबही मनमें कहनें लगे ॥ ११ ॥ वह वानरोंके समस्त यूथप पर्वत शृङ्ग बड़े २ शिखर और अनेक प्रकारके वृक्षोंको उखाड़कर हाथमें ले लड़नेंको तैयार हुए ॥ १२ ॥

पति रावणको पराजित और स्वयंभी विजय रूप कीर्ति पाय अतिविशाल आकाशको लांघकर वानरोंकी सैनाके मध्यमें टिके हुए श्रीरामचंद्रजीके निकट पहुंचनेंकी इच्छा करते हुए ॥ २९ ॥ तिसके पीछे हर्षित अन्तःकरण और पवनवेग तुल्यसे वानरोंकी सैनाके बीचमें प्रवेशकर उन वानरोंसे पूजितहो युद्धका वृत्तान्त निवेदन करतेहुए श्रीरामचंद्रजीके आनंदको बढानेंलगे ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥ इसके पीछे दशरथ कुमार श्रीरामचंद्रजी सुग्रीवजीके शरीरमें युद्धके चिह्न देख उनको भेंटकर कहनें लगे ॥ १ ॥ हे सखे तुमनें हमारे साथ विना सलाह कियेही साहस प्रकाश कियाहै, सो राजालोग कभीभी ऐसा

सइतिसवितृसूनुस्तत्रतत्कर्मकृत्वापवनगतिरनीकंप्राविशत्संप्रहृष्टः ॥रघुवरनृपसूनोर्वर्धयन्युद्धहर्षंतरुमृगगणमुख्यैः पूज्यमानोहरींद्रः ॥ ३० ॥ ॥इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०यु०चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४० ॥ ७१ ॥ ॥ अथतस्मिन्निमित्तानिदृष्ट्वा लक्ष्मणपूर्वजः ॥ सुग्रीवंसंपरिष्वज्यरामोवचनमब्रवीत् ॥ १ ॥ असंमंत्र्यमयासार्धंतदिदंसाहसंकृतम् ॥एवंसाहसयुक्तानिनकुर्वंतिजनेश्वराः ॥२॥ संशयेस्थाप्यमांचेदंबलंचेमंविभीषणम् ॥ कष्टंकृतमिदंवीरसाहसंसाहसप्रिय॥ ३॥इदानींमाकृथावीरएवंविधमरिंदम॥त्वयिकिंचित्समापन्नेकिंकार्यंसीतयामम ॥४॥भरतेनमहाबाहोलक्ष्मणेनयवीयसा ॥ शत्रुघ्नेनचशत्रुघ्नस्वशरीरेणवापुनः ॥५॥त्वयिचानागतेपूर्वमितिमेनिश्चितामतिः ॥ जानतश्चापितेवीर्यंमहेंद्रवरुणोपम ॥ ६ ॥

साहसका कार्य करनेंमें नही लगतेहैं अर्थात् राजाओंका ऐसा साहस करना अनुचितहै ॥ २ ॥ हे साहसप्रिय वीर ! तुमनें जिस प्रकारके महा साहसका कार्य कियाहै, इस्से हमें वानरोंकी सहायताको और विभीषणजीकीभी तुम्हारे यहांपर लौटनेंमें संदेह हुआथा ॥ ३ ॥ हे शत्रुदमनकारी ! जो करना था सो कर चुके, परन्तु अब आगेको ऐसा साहस कभी न करना, कारण कि तुम्हारा जो किसी प्रकारसेभी कुछ अनभल होगया तौ हम सीताको लेकर क्या करेंगे ? ॥ ४ ॥ हे महाबलवान् शत्रुओंके मारनेंवाले ! तुम्हारा कुछभी अपमान होनेंपर, हम भरत, उनसे छोटे लक्ष्मण शत्रुघ्न अथवा इस अपने शरीरहीको लेकर क्या करेंगे ? ॥५ ॥ यद्यपि महेन्द्र और वरुणजीकी तुल्य हम तुम्हारे बल विक्रमको जानतेहैं

प्राकारपर घूमनें लगे ॥ २१ ॥ यूथपति वीर सुबाहु, वीरबाहु, नल और पनस यह यूथपतिगण सैनाको नगरीमें प्रवेश करानेके लिये लंकाकी छहरदिवारीको तोड़ते पुरमें प्रवेश करते हुए, इसी समय इन वानर वीरोंनें लंकाके निवास स्थानको पीड़ित किया ॥ २२ ॥ कुमुद नाम रण विजयी महा बलवान् वानर दश करोड़ वानरोंको संग लेकर पूर्वके द्वारको घेर लेता हुआ ॥ २३ ॥ व उसी कुमुदकी सहायता करनेंके लिये बहुतसे वानरोंको साथ लिये वानरश्रेष्ठ प्रसभ, और महाबाहु पनस नाम वानरभी तैयार हो खड़ा होगया ॥ २४ ॥ वीरश्रेष्ठ बलवान वानर शतबलि बीस करोड़ वानरोंकी सैनाके सहित लंकाके दक्षिणद्वारको घेर लेता हुआ ॥ २५ ॥ ताराका पिता बलवान सुषेण करोड़ २ वानरोंकी सैना

वीरबाहुःसुबाहुश्चनलश्चपनसस्तथा॥निपीडचोपनिविष्टास्तेप्राकारंहरियूथपाः ॥एतस्मिन्नंतरेचक्रुःस्कंधावारनिवेशनम्॥२२॥पूर्वद्वारंतुकुमुदःकोटिभिर्दशभिर्वृतः॥ आवृत्यबलवांस्तस्थौहरिभिर्जितकाशिभिः॥२३॥सहायार्थंतुतस्यैवनिविष्टःप्रसभोहरिः ॥ पनसश्चमहाबाहुर्वानरैरभिसंवृतः॥ २४ ॥ दक्षिणद्वारमासाद्यवीरःशतबलिःकपिः॥ आवृत्यबलवांस्तस्थौविंशत्याकोटिभिर्वृतः॥२५॥सुषेणःपश्चिमद्वारंगत्वातारापिताबली॥आवृत्यबलवांस्तस्थौकोटिकोटिभिरावृतः ॥ २६ ॥ उत्तरद्वारमागम्यरामःसौमित्रिणासह॥ आवृत्यबलवांस्तस्थौसुग्रीवश्चहरीश्वरः ॥ २७ ॥ गोलांगूलोमहाकायोगवाक्षोभीमदर्शनः ॥ वृतःकोटचामहावीर्यस्तस्थौरामस्यपार्श्वतः ॥ २८ ॥ ऋक्षाणांभीमकोपानांधूमःशत्रुनिबर्हणः ॥ वृतःकोटचामहावीर्यस्तस्थौरामस्यपार्श्वतः ॥ २९ ॥ सन्नद्धस्तुमहावीर्योगदापाणिर्विभीषणः ॥ वृतोयत्तैस्तुसचिवैस्तस्थौयत्रमहाबलः ॥ ३० ॥

को संग लेकर लंकाके पश्चिमद्वारपर विराजमान हुआ ॥ २६ ॥ उत्तर द्वारको घेरकर महाबलवान श्रीरामचंद्र लक्ष्मणजीके साथ खड़े हुए, और सुग्रीवजी श्रीरामचंद्रजीकी सहायता करनेंके लिये तैयार होगये ॥ २७ ॥ भयंकराकार महावीर्यवान, महाकाय गोपुच्छ गवाक्ष नामक वानर एक करोड़ वानरोंको साथ लेकर श्रीरामचंद्रजीकी पार्श्वमें रक्षा करनें लगा ॥ २८ ॥ व श्रीरामचंद्रजीकी दूसरी बगलमें शत्रुओंका तपानेंवाला महा बलवान् धूम्र करोड़ रीछोंके साथ विराजमान होनें लगा ॥ २९ ॥ कवच बख्तर पहरे गदा हाथमें लिये महावीर्य विभीषणजी अपने चारों

कीहै, सूर्य मंडलसे अग्निके अंगारे जलते हुए गिरतेहैं ॥ १५ ॥ दीन स्वभाव क्रूर बुरे पशु और पक्षीगण सूर्यके सन्मुख होकर बड़ी दीनतासे रोतेहैं; कि जिनको सुनकर अत्यन्त भय उत्पन्न होताहै ॥ १६ ॥ रात्रिमें चंद्रमा उदय होकर लोकोंको संताप किया करताहै; और प्रलय कालकी समान उसके चारों ओर काली और लाल किरणें दिखलाई देतीहैं हे लक्ष्मण! चंद्रमाका ऐसा विपरीत भाव बहुतही बुराहै ॥ १७ ॥ हे लक्ष्मण देखो! सूर्यके मंडलमें नीले दाग दिखलाई देतेहैं; चंद्रमाकी भांति सूर्य मंडलभी रूखा, छोटा, बुरा और लाल वर्णका होगयाहै ॥ १८ ॥ हे ल

आदित्यमभिवाश्यंतिजनयंतोमहद्भयम् ॥ दीनादीनस्वराःक्रूराअप्रशस्तामृगद्विजाः ॥ १६ ॥ रजन्यामप्रशस्तश्चसं
तापयतिचंद्रमाः ॥ कृष्णरक्तांशुपर्यंतोयथालोकस्यसंक्षये ॥ १७ ॥ ह्रस्वोरूक्षोप्रशस्तश्चपरिवेषःसुलोहितः ॥ आदि
त्यमंडलेनीलंलक्ष्मलक्ष्मणदृश्यते ॥ १८ ॥ दृश्यतेनयथावच्चनक्षत्राण्यभिवर्तते ॥ युगांतमिवलोकस्यपश्यलक्ष्मणशं
सति ॥ १९ ॥ काकाःश्येनास्तथागृध्रानीचैःपरिपतंतिच ॥ शिवाश्चाप्यशुभावाचःप्रवदंतिमहास्वनाः ॥ २० ॥ शैलैः
शूलैश्चखड्गैश्चविमुक्तैःकपिराक्षसैः ॥ भविष्यत्यावृताभूमिर्मांसशोणितकर्दमा ॥ २१ ॥ क्षिप्रमद्यदुराधर्षांपुरींराव
णपालिताम् ॥ अभियामजवेनैवसर्वतोहरिभिर्वृताः ॥ २२ ॥ इत्येवंतुवदन्वीरोलक्ष्मणंलक्ष्मणाग्रजः ॥ तस्मादवा
तरच्छीघ्रंपर्वताग्रान्महाबलः ॥ २३ ॥

क्ष्मण! चंद्रमाके प्रति नक्षत्रमें यथावत न टिकनेंसे निश्चय ज्ञात होताहै कि मानो शीघ्रही प्रलय काल आया चाहताहै ॥ १९ ॥ गिद्ध, बाज, और कौये ऊपरसे सहसा गिरतेहैं, और शृगालियां मानों ऊंचे स्वरसे अशुभ समाचारको ही प्रगट कर रहीहैं ॥ २० ॥ वानरराक्षसोंके छोड़े हुए वृक्ष शूल और खड्गादिकोंसे मरी हुई सैनाके मांस व रक्तसे यहांकी, पृथ्वी परिपूर्ण होजायगी ॥ २१ ॥ हे लक्ष्मण! जो कुछभी हो वानर गणोंके साथ बल पूर्वक आज हम रावणसे पाली जाती हुई दुर्द्धर्ष लंकापुरीमें प्रवेश करेंगे ॥ २२ ॥ वीर श्रेष्ठ महाबलवान श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीसे यह

शंख नगाडोंके बजनें, और वानर गणोंके सिंहनाद करनेंसे पृथ्वी आकास और समुद्रभी पूर्ण होगया ॥ ३९ ॥ हाथियोंकी चिंघाड घो
ड़ोंकी हिनहिनाहट रथोंके खरखर शब्द व राक्षस लोगोंके चरण धरनेके शब्दसे पृथ्वी पूर्ण होगई, ॥ ४० ॥ इसके पीछे फिर वानर और
राक्षसोंके घोर संग्रामका प्रारंभ हुआ; कि जैसा पूर्वकालमें देवताओंके साथ असुरोंका संग्राम हुआथा ॥ ४१ ॥ राक्षस लोग वारंवार अपने २
विक्रमका प्रकाश करके; प्रदीप्त, शक्ति, शूल, फरसे और गदा चलाय२कर वानरोंका प्रहार करने लगे ॥ ४२ ॥ वेगवान बड़े शरीरवाले वानर

शंखदुदुंभिनिर्घोषःसिंहनादस्तरस्विनाम् ॥ पृथिवींचांतरिक्षंचसागरंचाभ्यनादयत् ॥ ३९ ॥ गजानांबृंहितैःसार्धंहया
नांहेषितैरपि ॥ रथानांनेमिनिर्घोषैरक्षसांपदनिःस्वनैः ॥ ४० ॥ एतस्मिन्नंतरेघोरःसंग्रामःसमपद्यत ॥ रक्षसांवानराणां
चयथादेवासुरेपुरा ॥४१॥ तेगदाभिःप्रदीप्ताभिःशक्तिशूलपरश्वधैः ॥ निजघ्नुर्वानरान्सर्वान्कथयंतःस्वविक्रमान् ॥ ४२ ॥
तथावृक्षैर्महाकायाःपर्वताग्रैश्चवानराः ॥ निजघ्नुस्तानिरक्षांसिनखैर्दन्तैश्चवेगिनः ॥ ४३ ॥ राजाजयतिसुग्रीवइतिशब्दो
महानभूत् ॥ राजन्जयजयेत्युक्त्वास्वस्वनामकथांततः ॥ ४४ ॥ राक्षसास्त्वपरेभीमाःप्राकारस्थामहींगतान् ॥ वान
रान्भिदिपालैश्चशूलैश्चैवव्यदारयन् ॥ ४५ ॥ वानराश्चापिसंक्रुद्धाःप्राकारस्थान्महींगताः ॥ राक्षसान्पातयामासुः
खमाप्लुत्यस्वबाहुभिः ॥ ४६ ॥

गणभी, नख, दांत, वृक्ष और पर्वतके शिखर चलाय २ कर राक्षसोंको मारनें लगे ॥ ४३ ॥ तिस समय उस वानरोंकी सैनामेंसे " वानर राज
सुग्रीवजीकी जयहो " ऐसा बड़ा भारी शब्द हुआ और इधर " राक्षस रावणकी जयहो " ऐसा शब्द सुनाय अपने २ नामको बताय परस्पर
दोनों दल लड़नें लगे ॥ ४४ ॥ भयंकर आकारवाले राक्षसगण लंकाकी दुर्ग प्राचीरपर चढ़कर वानरोंको भिन्दिपाल, और शूलादि अस्त्रोंसे
मारनें लगे ॥ ४५ ॥ यह देखकर पृथ्वीपर टिके हुए वानर लोगभी क्रोधसे आकाशमें कूद और भुजाओंके प्रहारसे कोटकी

पर श्रीरामचंद्रजीके वचनोंसे प्रेरित वानर गण यथायोग्य स्थानोंको दबाय २ बैठगये ॥ ३२ ॥ इस प्रकारसे श्रीरामचंद्रजी धनुष धारण करके अनुज लक्ष्मणजीके साथ पर्वतके शिखर समान ऊंचे उत्तर द्वारको रोककर अपनी सैनाकी रक्षा करनें लगे ॥ ३३ ॥ महाराजाधिराज दशरथजीके पुत्र श्रीरामचंद्रजी वीर लक्ष्मणजीको साथ लेकर रावणसे रक्षित लंकापुरीमें प्रवेश करते हुए ॥ ३४ ॥ जहां पर रावण स्वयं विराजमान था रामचंद्रजीके सिवाय और कोईभी उसकी रक्षा करनेंको समर्थ नहीं होगा यही विचार कर वीरदशरथकुमार श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके सहित स्वयं उस रावणपालित लंका पुरीके उत्तर द्वारको घेर लेते हुए ॥ ३५ ॥ वरुणजीसे रक्षित महासागर और

लंकायास्तूत्तरद्वारंशलशृंगैमिवोन्नतम्॥ रामःसहानुजोधन्वीजुगोपचरुरोधच॥३३॥लंकामुपनिविष्टस्तुरामोदशरथात्मजः ॥ लक्ष्मणानुचरोवीरःपुरींरावणपालिताम् ॥३४॥ उत्तरंद्वारमासाद्ययत्रतिष्ठतिरावणः ॥ नान्योरामाद्धितद्द्वारंसमर्थःपरिरक्षितुम् ॥ ३५ ॥ रावणाधिष्ठितंभीमंवरुणेनेवसागरम् ॥ सायुधैराक्षसैर्भीमैरभिगुप्तंसमंततः ॥ ३६ ॥ लघूनांत्रासजननंपातालमिवदानवैः ॥ विन्यस्तानिचयोधानांबहूनिविविधानिच॥ ३७ ॥ ददर्शायुधजालानितथैवकवचानिच ॥ पूर्वंतुद्वारमासाद्यनीलोहरिचमूपतिः ॥ ३८ ॥ अतिष्ठत्सहमैंदेनद्विविदेनचवीर्यवान् ॥ अंगदोदक्षिणद्वारंजग्राहसुमहाबलः ॥ ३९ ॥ ऋषभेणगवाक्षेणगजेनगवयेनच ॥ हनूमान्पश्चिमद्वारंररक्षबलवान्कपिः ॥ ४० ॥ प्रजंघतरसाभ्यांचवीरैरन्यैश्चसंगतः ॥ मध्यमेचस्वयंगुल्मेसुग्रीवःसमतिष्ठत ॥ ४१ ॥

दानवोंके दलसे रक्षित पाताल पुरीकी समान शस्त्रलिये भयंकर रूप राक्षसों करके सर्व प्रकारसे व रावणसेभी रक्षा किया जाताहुआ, उत्तर द्वारके देखनेंसे अल्पवीर्य वालोंको अत्यन्त भय लगताथा ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ और वहां पर वानर लोगोंने राक्षस वीरोंके अनेक अस्त्र और कवच देखे सेनापति नील वानरोंकी सैनाके साथ पूर्व द्वार पर पहुंचा ॥ ३८ ॥ इन नीलके साथ वीर्यवान मैन्द और द्विविद यह दौनों वानरभीथे महा वली वालिके पुत्र अंगदजी दक्षिणके द्वार पर गये ॥ ३९ ॥ अंगदजीके साथ ऋषभ, गज, गवय और गवाक्ष, यह चार वानरभी दक्षिण द्वार परगये महावीर हनुमानजीनें पश्चिम द्वारको जायकर घेर लिया ॥ ४० ॥ प्रजङ्घ, तरस, व और दूसरे वीर सेनापति उन हनुमानजीके

प्रजङ्घके साथ युद्ध करनें लगा और वानरश्रेष्ठ हनुमानजी, जम्बुमाली राक्षससे जायकर भिड़े ॥ ७ ॥ उस संग्राम भूमिमें रावणके छोटे भाई विभीषणजी अत्यन्त क्रोध युक्तहो शत्रुघ्न नामक राक्षसके साथ युद्ध करते हुए ॥ ८ ॥ महा बलवान गजनाम वानर तपन राक्षसके साथ अति परा क्रमसे युद्ध करनें लगा, और महा तेजस्वी नील नाम सैनापति निकुम्भ नाम राक्षससे जाय भिड़ा ॥ ९ ॥ वानरोंके राजा सुग्रीवजी राक्षस प्रघसके साथ द्वन्द्व युद्ध करनें लगे और विरूपाक्ष नामक राक्षसके साथ श्रीमान् लक्ष्मणजीका युद्ध होनें लगा ॥ १० ॥ दुर्द्धर्ष, अग्निकेतु, रश्मिकेतु, मित्रघ्न, और यज्ञकोप यह चार राक्षस श्रीरामचंद्रजीके साथ युद्ध करने लगे ॥ ११ ॥ घोर रूपवान वज्रमुष्टि और अशनिप्रभ नामक यह

संगतस्तुमहाक्रोधोराक्षसोरावणानुजः ॥ समरेतीक्ष्णवेगेनशत्रुघ्नेनविभीषणः ॥ ८ ॥ तपनेनगजःसार्धंराक्षसेनमहा बलः ॥ निकुंभेनमहातेजानीलोपिसमयुध्यत ॥ ९ ॥ वानरेंद्रस्तुसुग्रीवःप्रघसेनसुसंगतः ॥ संगतःसमरेश्रीमान्विरू पाक्षेणलक्ष्मणः ॥ १० ॥ अग्निकेतुःसुदुर्धर्षोरश्मिकेतुश्चराक्षसः ॥ मित्रघ्नोयज्ञकोपश्चरामेणसहसंगताः ॥ ११ ॥ वज्र मुष्टिश्चमैंदेनद्विविदेनाशनिप्रभः ॥ राक्षसाभ्यांसुघोराभ्यांकपिमुख्यौसमागतौ ॥ १२ ॥ वीरःप्रतपनोघोरोराक्षसोरण दुर्धरः॥समरेतीक्ष्णवेगेननलेनसमयुध्यत ॥१३॥ धर्मस्यपुत्रोबलवान्सुषेणइतिविश्रुतः ॥ सविद्युन्मालिनासार्धमयुध्य तमहाकपिः ॥ १४ ॥ वानराश्चापरेघोराराक्षसैरपरैःसह ॥ द्वंद्वंसमीयुःसहसायुद्धाचबहुभिःसह ॥ १५ ॥ तत्रासीत्सु महद्युद्धंतुमुलंरोमहर्षणम् ॥ रक्षसांवानराणांचवीराणांजयमिच्छताम् ॥ १६ ॥

दो राक्षस मैन्द व द्विविद नामक दो वानरोंके साथ युद्ध करनें लगे ॥ १२॥भयंकराकार रणमें दुर्जय वीर प्रतपन नामक राक्षस, तीक्ष्ण वेगवान नल नामक वानरके साथ संग्राम करनें लगा ॥ १३ ॥ त्रिलोक विख्यात बलवान धर्मका पुत्र महाकपि सुषेण विद्युन्माली राक्षसके साथ युद्ध कर नेंको जाय उठा ॥ १४ ॥ व और दूसरे भयंकर पराक्रम करनेंवाले वानर गणभी अगणित राक्षसोंके साथ घोर द्वन्द्व युद्ध करनें लगे, ॥ १५ ॥ इस प्रकारसे उस रणभूमिमें अपने २ जयको अभिलाषा किये वीर राक्षस और वानर गणोंका तुमुल रोमहर्षण कारी युद्ध प्रारंभ हुआ ॥ १६ ॥

सैनाका ऐसा विचित्र समागम हुआथा कि पहले कभी भी ऐसा समागम नहीं हुआथा ॥ ४९ ॥ लंका पर पहुंचे हुए वानरगणों करके वहांकी पृथ्वी और कूदते फांदते हुए वानरोंसे आकाश परिपूर्ण हो रहाथा ॥ ५० ॥ इनके सिवाय युद्धकी अभिलाषा करके असंख्य वानर और रीछगण चारों ओरसे लंकाके द्वारों पर आय २ जुटनें लगे ॥ ५१ ॥ उस समय समस्त पर्वतश्रेष्ठ गिरि चित्रकूट समस्त वानरोंसे छाया हुआ जान पड़नें लगा, अति द्वार पर सन्निवेशित सैनाका वृत्तान्त जाननेके लिये एक कोटि वानरगण लंकापुरीके चारों ओर घूमनें लगे ॥ ५२ ॥ लंका नगरी, वृक्ष हाथोंमें लिये वानरों करके इस प्रकार सर्व भावसे घेरी गई कि वहां पवनका प्रवेश करनाभी कठिन ज्ञात होंनें लगा ॥ ५३ ॥ मेघाकार और इन्द्र तुल्य पराक्रमकारी वानर गणोंसे पीड़ित होकर राक्षसगण अत्यन्त विस्मित हुए ॥ ५४ ॥ समुद्रकें ऊपर सेतु

प्रतिपूर्णमिवाकाशंसंपूर्णेवचमेदिनी ॥ लंकामुपनिविष्टैश्चसंपतद्भिश्चवानरैः ॥ ५० ॥ शतंशतसहस्राणांप्टतनर्क्षवनौ कसाम् ॥ लंकाद्वाराण्युपाजग्मुरन्येयोद्धुंसमंततः ॥ ५१ ॥ आवृतःसगिरिःसर्वैस्तैःसमंतात्प्लवंगमैः ॥ अयुतानां सहस्रंचपुरींतामभ्यवर्तत ॥५२ ॥ वानरैर्बलवद्भिश्चबभूवद्रुमपाणिभिः ॥ सर्वतःसंवृतालंकादुष्प्रवेशापिवायुना ॥५३॥ राक्षसाविस्मयंजग्मुःसहसाभिनिपीडिताः॥ वानरैर्मेघसंकाशैःशक्रतुल्यपराक्रमैः ॥ ५४ ॥ महाञ्छब्दोभवत्तत्रबलौघस्याभिवर्ततः ॥ सागरस्येवभिन्नस्ययथास्यात्सलिलस्वनः ॥ ५५ ॥

बँधनेंसे जिस प्रकार उसके जलका अत्यन्त भयंकर शब्द होताहै, वैसेही अतिभारी वानरोंकी सैनाका तुमुल शब्द प्रगट होनें लगा * ॥ ५५ ॥

---

* कवित्त ॥ चढ़त कटक महाराज रामचंद्रजीके गरद गगन रवि झंपिगो झडाकदै ॥फूटिगो जलधवन्ध लूटिकै दुवनपुर, छूटिगोमवीस वन हटिगो हडाकदै ॥ श्रीपति सुजान भने चिरिगो बराह रद फिरिगो सुमेरगिरिरगो धड़ाकदै ॥ धुंधरकी धरनिमें फलक्यो फनिन्द फन दरकी कमठ पीठ कड़की कड़ाकदै॥१॥उज्वल अमल आभा अधिक विराजमान गंगाकी तरंग सुर लोककी निसैनीहै ॥ रसरौद्र पूरन सरस्वती सहित जहां स्यामता सहित रविसुता सुखदैनी है ॥ भट अवतंश महाराज रघुवंश मणि कहै रसरूप जाकी धारा अति पैनी है । महामदमत्त बलवन्त बड़े बैरिनको तारिवेको थारी तरवार यौं त्रिवेनी है ॥ २ ॥ जानदैहौं भरत अवध सब जान दैहौं जान दैहौं कौशिला हमारी मात प्रानकी ॥ जानदैहौं सकल जहानको सुकौनकाम कहै रघुनाथ ऐसो वचन प्रमानकी ॥ जानदैहौं लखन सुकंठमें विचार कहौं जान दैहौं खेल पेल अपने सवानकी । जानदैहौं धनुष कमान वान जान दैहौं; जानदैहौं जान पै न जान दैहौं जानकी ॥

वेगसे सप्तपर्णका वृक्ष उखाड़ उसके प्रहारसे प्रघस नाम राक्षसको मारडाला,भयंकराकार राक्षसको बाण वर्षासे व्याकुल कर ॥ २५ ॥ फिर एक बाणसे लक्ष्मणजीनें उस अपने शत्रु विरूपाक्ष नामक राक्षसको संहार किया। दुर्द्धर्ष अग्निकेतु व रश्मिकेतु मित्रघ्न व यज्ञकोप इन चार राक्षसोंनें श्रीरामचंद्रजीके ऊपर बाणोंकी वर्षाकी ॥ २६ ॥ तब रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीनें अत्यन्त क्रोध करके अग्निकी शिखाकी समान लप लपाते चार भयंकर बाणोंसे उन चारों राक्षसोंका शिर काट डाला ॥२७॥मैन्द नामक वानरनें घूंसा मारकर रणमें वज्रमुष्टिका संहार किया, तब यह राक्षस रथ और घोड़ोंके सहित पृथ्वीपर गिर पड़ा कि जैसे कोई नगरकी ऊंची अटारी फयराय पड़ै ॥ २८ ॥ सूर्य नारायण जिस प्रकार

निजघानविरूपाक्षंशरेणैकेनलक्ष्मणः॥ अग्निकेतुश्चदुर्धर्षोरश्मिकेतुश्चराक्षसः ॥ मित्रघ्नोयज्ञकोपश्चराममादीपयच्छरैः ॥ २६ ॥ तेषांचतुर्णांरामस्तुशिरांसिसमरेशरैः॥ क्रुद्धश्चतुर्भिश्चिच्छेदघोरैरग्निशिखोपमैः ॥ २७ ॥ वज्रमुष्टिस्तुमैंदेनमुष्टिनानिहतोरणे ॥ पपातसरथःसाश्वःसुराट्टइवभूतले ॥ २८ ॥ निकुंभस्तुरणेनीलंनीलांजनचयप्रभम् ॥ निर्बिभेदशरैस्तीक्ष्णैःकरैर्मेघमिवांशुमान् ॥ २९ ॥ पुनःशरशतेनाथक्षिप्रहस्तोनिशाचरः ॥ बिभेदसमरेनीलंनिकुंभःप्रजहासच ॥ ३० ॥ तस्यैवरथचक्रेणनीलोविष्णुरिवाहवे ॥ शिरश्चिच्छेदसमरेनिकुंभस्यचसारथेः॥ ३१ ॥ वज्राशनिसमस्पर्शोद्विविदश्चसमप्रभम् ॥ जघानगिरिशृंगेणमिषतांसर्वरक्षसाम् ॥ ३२ ॥ द्विविदंवानरेंद्रंतुद्रुमयोधिनमाहवे ॥ शरैरशनिसंकाशैःसविव्याधाशनिप्रभः ॥ ३३ ॥

अपनी किरणोंसे बादलोंको अलग २ करके उड़ाय देतेहैं वैसेही वीर निकुम्भ राक्षसनें तीक्ष्ण बाणोंको चलायकर नील अंजनकी समान प्रभावाले सैनापति नीलके शरीरको वींध डाला, और तिसके पीछे दूसरी बार फिर शतबाण छोड़ नीलका शरीर भेद यह निकुम्भ राक्षस अति ऊंचेस्वरसे ठट्ठा करके हँसनें लगा ॥ २९ ॥ ३० ॥ परन्तु सैनापति नीलनें राक्षसनिकुम्भके रथका पहिया ग्रहण कर, चक्र धारण किये हुए विष्णुजीकी समान निकुम्भ और उसके सारथिका मस्तक काट डाला ॥ ३१ ॥ वज्रकी समान कठिन प्रहार करनें वाले द्विविद नाम वानरनें सर्व राक्षसोंके सामनेहो पर्वतके शिखरका प्रहार करके राक्षस अशनिप्रभके ऊपर चोट चलाई ॥ ३२ ॥ राक्षस अशनिप्रभनेंभी

का हरणरूप अपराध कियाहै; हम उसका उचित दंड देनेंके लिये साक्षात् कालकी समान लंकाके द्वारपर टिक रहेहैं ॥ ६४ ॥ यदि हमारे साथ युद्ध करनेंही की तेरी इच्छाहै, तो युद्धमें हमारे हाथसे तेरी मृत्यु होनेंपर तेरे भाग्यमें देवता महर्षि राजाओंकी गति प्राप्त होगी॥६५॥ रे राक्षसाधम! तैनें जो बल और मायाका आश्रय करके हमारी कुटीसे दूरकरके सीताको हरण कियाहै, अब वही बल और वही माया तुमको दिखानी चाहिये ॥ ६६ ॥ यदि तुम सीताको समर्पण करके हमारे शरणागत नहोगे; तो जान लेनाकि अत्यन्त तीखे बाणोंसे हम समस्त लोक राक्षसशून्य करेंगे; इस्से जानकीको देदे क्योंकि जानकी किसी प्रकारसे हम नहीं छोड़ सकते * ॥ ६७ ॥ धर्मात्मा राक्षसश्रेष्ठ विभीषण हमारी शरणमें आयेहैं; हमभी इनकोही निष्कंटक लंकाका राज्य व तुम्हारा सब ऐश्वर्य दान कर देंगे ॥ ६८ ॥ तुम जिस प्रकारके पापा

पदवींदेवतानांचमहर्षीणांचराक्षस ॥ राजर्षीणांचसर्वेषांगमिष्यसियुधिस्थिरः ॥ ६५ ॥ बलेनयेनवैसीतांमाययाराक्षसाधम ॥ मामतिक्रमयित्वात्वंहृतवांस्तन्निदर्शय ॥ ६६ ॥ अराक्षसमिमंलोकंकर्तास्मिनिशितैःशरैः ॥ नचेच्छरणमभ्येषितामादायतुमैथिलीम् ॥ ६७ ॥ धर्मात्माराक्षसश्रेष्ठःसंप्राप्तोयंविभीषणः ॥ लंकैश्वर्यमिदंश्रीमान्ध्रुवंप्राप्नोत्यकंटकम् ॥ ६८ ॥ नहिराज्यमधर्मेणभोक्तुंक्षणमपित्वया ॥ शक्यंमूर्खसहायेनपापेनाविदितात्मना ॥ ६९ ॥ युध्यस्वमाधृतिंकृत्वाशौर्यमालंब्यराक्षस ॥ मच्छरैस्त्वंरणेशांतस्ततःशांतोभविष्यसि ॥ ७० ॥

चारी और सज्ञानहीनहो,और तिसपर ऐसा अधर्म्माचरण करके इन मूर्ख मंत्रियोंकी सहायतासे अब अधिक कालतक राज्य नहीं कर सकोगे ॥६९॥ हेराक्षस! यदि शरणमें आना तुम्हारा मन माना न होवे तो धीरता और शूरताका आश्रय लेकर युद्ध करो कारणकि युद्ध करनें पर हमारे चलाये हुए बाणोंसे तुम्हारा देह पवित्रहो जायगा, और तुमनें जन्मसे लेकर अबतक जो पापकार्य कियेहैं उनसे तुम्हारा छुटकाराहो जायगा ॥७० ॥

* खर भर भये लंक संकित सब रजनीचर अकुलाते है ।सहि न जात वह तेज वदनकी मूंदि नयन रह जाते है॥ दाह कलंक कीस सोइ आयउ श्रवननिलागि सुनाते हैं ॥कौन विधाता अबकी राखै यह कहते बिलखाते हैं ॥ कहि लंकेशहि पोच शोच सब पुरवासी घवडाते हैं । बिन पूछे मग लंका गढकी कर जोरे बतलाते हैं । मुकुट शीशकर गदा विराजै सूर्य तेजमन भाते है । दशग्रीव मानके मथन हेतु बलशीव वालिसुत आते हैं ॥

चरोंके समूह वीरश्रेष्ठ वानरों करकै मर्दित होनें लगे ॥ ४२ ॥ भाले, गदा, शक्ति, तोमर और बाणोंके प्रहार लगनेंसे रथ और समरके घोड़े समस्तही पृथ्वीपर गिरनें लगे ॥ ४३ ॥ मरेहुए मतवाले, हाथियोंसे, वानर, राक्षसोंसे, रथके टूटे पहियोंसे, जुआ व धुरे आदिकोंसे ॥ ४४ ॥ संग्राम भूमि परिपूर्ण होगई, इसी कारणसे उस घोर रूप संग्राममें सहस्रों शृगाल घूमनेंलगे; अनेक भांतिसे राक्षस और वानरोंके कवन्ध नृत्य करनें लगे ॥४५॥ अधिक क्या कहैं यह संग्रामभी वैसाही हुआ जैसा कि देवासुरसंग्राम पूर्वकालमें हुआथा ॥ ४६ ॥ परन्तु उस कालमें रक्त गन्धसे मूर्छित निशाचरोंनें वानर वीरों करकै अत्यन्त पीड़ित हो करकैभी फिर अत्यन्त बलके साथ युद्ध करना प्रारंभकिया, और वह राक्षस लोग सूर्य

भल्लैश्चान्यैर्गदाभिश्चशक्तितोमरसायकैः ॥ अपविद्धैश्चापिरथैस्तथासांग्रामिकैर्हयैः ॥ ४३ ॥ निहतैःकुंजरैर्मत्तैस्तथा वानरराक्षसैः ॥ चक्राक्षयुगदंडैश्चभग्नैर्धरणिसंश्रितैः ॥ ४४ ॥ बभूवायोधनंघोरंगोमायुगणसेवितम् ॥ कबंधानि समुत्पेतुर्दिक्षुवानररक्षसाम् ॥ ४५ ॥ विमर्देतुमुलेतस्मिन्देवासुररणोपमे ॥ ४६ ॥ निहन्यमानाहरिपुंगवैस्तदानि शाचराःशोणितगंधमूर्च्छिताः ॥ पुनःसुयुद्धंतरसासमाश्रितादिवाकरस्यास्तमयाभिकांक्षिणः ॥ ४७ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा०आदिकाव्येयुद्धकांडेत्रिचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४३ ॥ ॥छ॥ ॥ युध्यतामेवतेषांतुतदावानररक्षसाम् ॥ रविरस्तंगतोरा त्रिःप्रवृत्ताप्राणहारिणी ॥१॥ अन्योन्यंबद्धवैराणांघोराणांजयमिच्छताम् ॥ संप्रवृत्तंनिशायुद्धंतदावानररक्षसाम् ॥२॥ राक्षसोसीतिहरयोवानरोसीतितिराक्षसाः ॥ अन्योन्यंसमरेजघ्नुस्तस्मिंस्तमसिदारुणे ॥ ३ ॥

भगवानके छिपनें और रात्रिके आनेंकी वाट देखने लगे ॥४७॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥४३॥ जब राक्षस और वानर गणोंमें सहज २ करकै घोर युद्ध होनें लगा तब सूर्य भगवान अस्ताचलका आश्रय ग्रहण करते हुए; और देखतेही देखते जीव जीवन नाशिनी रात्रि आय पहुँची ॥१॥ तिस समय परस्पर वैर बांधे हुए जयके अभिलाषी घोररूपी उन वानर व राक्षसोंका रात्रि युद्ध आरंभ हुआ ॥ २॥ उस दारुण अंधकारको वानर लोग "तू राक्षसहै" और राक्षस " तू वानरहै " यह कहकर परस्पर परस्परको आघात करनेंलगे ॥३॥

नीच क्रूर! तुम लंकापुरीसे निकल हमसे युद्धकरो ॥ ७८ ॥ हम पुत्र जाति बांधव और मंत्रियोंके सहित तेरा संहार करेंगे रावण! तुम्हारे मर जानेंपर त्रिभुवनकी व्याकुलता और घबडाहट जाती रहेगी ॥ ७९ ॥ हम तुम्हारा संहार करके देव,दानव, यक्ष, गन्धर्व,सर्प, राक्षस और ऋषि लोगोंके कण्टकका उद्धार करेंगे ॥ ८० ॥ तुम हमारे चरणोंमें झुककर आदर सहित यदि हमको जानकी न देदोगे तौ निश्चयही तुम नाशको प्राप्त होगे; और तुम्हारा समस्त ऐश्वर्य बिभीषणका होजायगा ॥ ८१ ॥ जब वानरवीर अंगदजीनें इस प्रकारके कठोर वचन कहे तब राक्षसोंका राजा रावण क्रोधके वश हुआ ॥ ८२ ॥ वह रावण अत्यन्त ही क्रोधके वशहोकर अपने मंत्रियोंसे बोला कि तुम अभी इस वानरको पकडकर

हंतास्मित्वांसहामात्यंसपुत्रज्ञातिबांधवम् ॥ निरुद्विग्नास्त्रयोलोकाभविष्यंतिहतेत्वयि ॥ ७९॥ देवदानवयक्षाणांगंधर्वोरगरक्षसाम्॥शत्रुमद्योद्धरिष्यामित्वामृषीणांचकंटकम्॥८०॥ विभीषणस्यचैश्वर्यंभविष्यतिहतेत्वयि॥नचेत्सत्कृत्य वैदेहींप्रणिपत्यप्रदास्यसि ॥ ८१ ॥ इत्येवंपरुषंवाक्यंब्रुवाणेहरिपुंगवे ॥ अमर्षवशमापन्नोनिशाचरगणेश्वरः ॥ ८२ ॥ ततःसरोषमापन्नःशशाससचिवांस्तदा ॥ गृह्यतामितिदुर्मेधावध्यतामितिचासकृत् ॥ ८३ ॥ रावणस्यवचःश्रुत्वादीप्ताग्निमिवतेजसा ॥ जगृहुस्तंततोघोराश्चत्वारोरजनीचराः ॥ ८४ ॥ ग्राहयामासतारेयःस्वयमात्मानमात्मवान् ॥ बलंदर्शयितुंवीरोयातुधानगणेतदा ॥ ८५ ॥ सतान्बाहुद्वयासक्तानादायपतगानिव ॥ प्रासादंशैलसंकाशमुत्पपातांगदस्तदा ॥ ८६ ॥ तस्योत्पतनवेगेननिर्धूतास्तत्रराक्षसाः ॥ भूमौनिपतिताःसर्वेराक्षसेंद्रस्यपश्यतः ॥ ८७ ॥

इसका प्राण संहार कर डालो ॥ ८३ ॥ रावणके ऐसे वचन सुनकर घोर रूपवाले चार निशाचर उन प्रदीप्त अग्निकी तुल्य अंगदजीको पकडनेके लिये तैयार हुये ॥ ८४ ॥ वीरश्रेष्ठ बुद्धिमान ताराकुमार अंगदजीने समर्थ होकर भी अपना बल राक्षसोंको दिखलानेके लिये स्वयं ही अपनेंको पकड़वा दिया ॥ ८५ ॥ जब राक्षस लोग अंगदजीकी बाँहें बांध रहेथे, तब अंगदजी सहसा उन राक्षसोंके सहित पर्वतके शृङ्गोंकी समान ऊंचे बडे भारी राजमंदिरपर कूदकर चढ गये ॥ ८६ ॥ अंगदजीके कूदनेंके समय राक्षस लोग ऐसे त्रासित हो उठे कि वह समस्त

मृदंग और ढोलोंको अद्भुत अनुपम शब्द होनें लगा ॥ १२ ॥ घायल हुए व ताडित हुए राक्षसोंकी आरत वाणी और अस्त्र शस्त्र चलानेंके शब्दसे व वानर गणोंके दारुण शब्दसे संग्रामभूमि परिपूर्ण होगई ॥ १३ ॥ शक्ति, शूल, और परशु इत्यादि अस्त्र शस्त्रोंसे मरे हुए वानर और पर्वताकार कामरूपी राक्षस लोगोंके गिरनेसे ॥ १४ ॥ वह रणभूमि शस्त्ररूप पुष्पोंसे शोभायमान उद्यान (फुलवाड़ी) की समान जानपड़ने लगी। सब जगह ही रुधिरके वहनेंसे कीचड़ हो जानेंसे वह संग्राम भूमि सबके न देखनें योग्य और न प्रवेश करने योग्य होगई ॥१५॥ वास्तवमें राक्षस और वानर गणोंकी प्राण हरण करने वाली वह रात्रि कालरात्रिकी समान सबही प्राणियोंको अत्यन्त भयंकर हुई ॥ १६ ॥ तिसके पीछे उस दारुण

हयानांस्तनमानानांराक्षसानांचनिःस्वनः॥शस्तानांवानराणांचसंबभूवात्रदारुणः ॥१३॥हतैर्वानरमुख्यैश्चशक्तिशूलपरश्वधैः॥निहतैःपर्वताकारैराक्षसैःकामरूपिभिः ॥१४॥ शस्त्रपुष्पोपहाराचतत्रासीद्युद्धमेदिनी ॥दुर्ज्ञेयादुर्निवेशाचशोणितास्त्रावकर्दमा ॥ १५ ॥ साबभूवनिशाघोराहरिराक्षसहारिणी ॥ कालरात्रीवभूतानांसर्वेषांदुरतिक्रमा ॥ १६ ॥ ततस्ते राक्षसास्तत्रतस्मिंस्तमसिदारुणे ॥ राममेवाभ्यवर्तंतसंहृष्टाःशरवृष्टिभिः ॥ १७॥ तेषामापततांशब्दःक्रुद्धानामपिगर्जताम् ॥ उद्वर्तइवसत्वानांसमुद्राणामभूत्स्वनः ॥ १८ ॥ तेषांरामःशरैःषड्भिःषड्जघाननिशाचरान् ॥ निमेषांतरमात्रेण शरैरग्निशिखोपमैः ॥ १९ ॥ यज्ञशत्रुश्चदुर्धर्षोमहापार्श्वमहोदरौ ॥ वज्रदंष्ट्रोमहाकायस्तौचोभौशुकसारणौ ॥ २० ॥ ते तुरामेणबाणौघैःसर्वमर्मसुताडिताः ॥ युद्धादपसृतास्तत्रसावशेषायुषोभवन् ॥ २१ ॥

अंधकारमें समस्त ही राक्षस श्रीरामचंद्रजीके ऊपर बाण वर्षाते हुए आगे बढ़े ॥ १७॥ उस समय जब भयंकर क्रोधकिये हुये राक्षस सिंहनाद करते जब श्रीरामचंद्रजीके सन्मुखको दौडे; तब प्रलयकालके समयमें सात समुद्रकी समान कोलाहलरूप बड़ाभारी शब्द हुआ ॥ १८ ॥ परन्तु श्रीरामचंद्रजीनें एक पलक मारनेंके समय इनमेंसे छै राक्षसोंको अग्निकी लपटके समान तीखे बाणोंसे मारा ॥ १९ ॥ अजेय, यज्ञशत्रु, महापार्श्व, महोदर, बड़े शरीरवाला वज्रदंष्ट्र, शुक और सारण॥ २० ॥ यह छै राक्षस श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे मर्ममें चोट खायकर अपनें २

राक्षस लोगोंमेंसे कोई २ विस्मित हुए कोई २ भीत हुए और कोई २ रणके उत्साहसे मत्त होकर अतिशय आनंदको प्राप्त हुए ॥ ९७ ॥ वानरोंकी सैनानें लंकाके दुर्गकी भीतको छाय लियाथा; जिस्से ऐसा ज्ञात हुआ कि वानर गणोंके घेरनेंसे प्राकार (दुर्गकी भीत) गिरकर पृथ्वीमें मिल गया, ऐसा दीन भावयुक्त राक्षसोंने देखा ॥ ९८ ॥ यह देखकर राक्षस लोग भयके मारे हा! हा! कार करनें लगे ॥ ९९ ॥ इस प्रकारसे राक्षसोंकी राजधानी लंकापुरीमें कठोर कुलाहल होनें लगा, तब वीर राक्षस गण प्रचंड अस्त्र शस्त्र ग्रहण करके युगान्त कालके राहुकी समान इधर उधर घूमनें लगे ॥ १०० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

राक्षसाविस्मयंजग्मुस्त्रासंजग्मुस्तथापरे ॥ अपरेसमरेहर्षाद्धर्षमेवोपपेदिरे ॥ ९७ ॥ कृत्स्नंहिकपिभिर्व्याप्तंप्राकारपरिखांतरम् ॥ ॥ ददृशूराक्षसादीनाःप्राकारंवानरीकृतम् ॥ ९८ ॥ हाहाकारमकुर्वंतराक्षसाभयमागताः ॥ ९९ ॥ तस्मिन्महाभीषणकेप्रवृत्तेकोलाहलेराक्षसराजयोधाः ॥ प्रगृह्यरक्षांसिमहायुधानियुगांतवाताइवसंविचेरुः ॥ १०० ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०युद्धकांडेएकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥ ७ ॥ ॥ ततस्तेराक्षसास्तत्रगत्वारावणमंदिरम् ॥ न्यवेदयन्पुरींरुद्धांरामेणसहवानरैः ॥ १ ॥ रुद्धांतुनगरींश्रुत्वाजातक्रोधोनिशाचरः ॥ विधानंद्विगुणंश्रुत्वाप्रासादंचाप्यरोहत ॥ २ ॥ सददर्शावृतांलंकांसशैलवनकाननाम् ॥ असंख्येयैर्हरिगणैःसर्वतोयुद्धकांक्षिभिः ॥ ३ ॥ सदृष्ट्वावानरैःसर्वैर्वसुधांकपिलीकृताम् ॥ कथंक्षपयितव्याःस्युरितिचिंतापरोभवत् ॥ ४ ॥

इसके पीछे राक्षस लोगोंने रावणके गृहमें प्रवेश करके निवेदन किया कि श्रीरामचंद्रजीनें सैनाके समेत लंकापुरीको चारों ओरसे घेर लिया ॥ १ ॥ पुरीके रोके जानेंका समाचार सुनतेही राक्षस रावण क्रोधके मारे अधीर होगया, और प्रति द्वार पहलेसे दूनी सैना नियतकर स्वयं बडे ऊंचे धवरहर पर चढ़ा ॥ २ ॥ और देखा कि शैल, वन, और कानन सहित समस्त लंका असंख्य युद्धकी अभिलाषी वानरगणोंसे घिर रहीहै ॥ ३ ॥ उन सब वानरोंके बडे भारी जमाओंसे मानों लंकापुरीका वर्ण पीलासा हो रहाथा इनको देखकर रावणके मनमें यह

लक्ष्मण इन दोनोंकीभी अनेक प्रशंसा करनें लगे ॥ २९ ॥ इन्द्रजीतके रणका पराक्रम सबही जानतेथे इसीलिये उसको अंगदजी करके परा जित देखकर सबही आनंद करनें लगे ॥ ३० ॥ सुग्रीव, विभीषण, व और दूसरे वानरगणभी शत्रुको पराजित देखकर सिंहनाद करनें लगे, और साधु साधु कहकर अंगदजीकी अनेक प्रकारसे बड़ाई करते हुए ॥ ३१ ॥ भयंकर कर्मकारी अंगदजीसे संग्रामभूमिमें पराजित होकर इन्द्रजीत बड़ा लज्जित हुआ, और उसको अत्यन्त क्रोध हो आया ॥ ३२ ॥ तब वह दुष्ट ब्रह्माजीके वरदान पानेंसे गर्वितहो अत्यन्त क्रोधकर अन्तर्ध्यान

प्रभावंसर्वभूतानिविदुरिंद्रजितोयुधि ॥ ततस्तेनमहात्मानंदृष्ट्वातुष्टाःप्रधर्षितम् ॥ ३० ॥ ततःप्रहृष्टाःकपयःससुग्री वविभीषणाः ॥ साधुसाध्वितिनेदुश्चदृष्ट्वाशत्रुंपराजितम् ॥ ३१ ॥ इंद्रजित्तुतदानेननिर्जितोभीमकर्मणा ॥ संयुगे वालिपुत्रेणक्रोधंचक्रेसुदारुणम् ॥ ३२ ॥ सोंतर्धानगतःपापोरावणीरणकर्शितः ॥ ब्रह्मदत्तवरोवीरोरावणिःक्रो धमूर्च्छितः ॥ ३३ ॥ अदृश्योनिशितान्बाणान्मुमोचाशनिवर्चसः ॥ रामंचलक्ष्मणंचैवघोरैर्नागमयैःशरैः ॥ ३४ ॥ बिभेदसमरेक्रुद्धःसर्वगात्रेषुराघवौ ॥ माययासंवृतस्तत्रमोहयन्राघवौयुधि ॥ ३५ ॥ अदृश्यःसर्वभूतानांकूटयोधी निशाचरः ॥ बबंधशरबंधेनभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ ३६ ॥ तौतेनपुरुषव्याघ्रौक्रुद्धेनाशीविषैःशरैः ॥ सहसाभिहतौ वीरौतदाप्रैक्षंतवानराः ॥ ३७ ॥

होगया ॥ ३३ ॥ और किसीको दिखाई न देता हुआ आकाशमें टिककर वज्रकी समान बाण चलानें लगा और रामचंद्रजी व लक्ष्मणजीके सबही अंग उसनें बींध डाले ॥ ३४ ॥ उस मेघनादनें क्रोधित होकर संग्राममें श्रीरामचंद्रजीके सब अंगोंको बाणोंसे भेदा, उसनें अपनी मायासे समरमें दोनों भ्राताओंको मोहित किया ॥ ३५ ॥ वह छलसे युद्ध करनेंवाला निशाचर इन्द्रजीत अन्तर्ध्यान रह सब प्राणियोंको न दीखकर मायाके बलसे रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजीको बाणोंके बन्धनोंसे बांधलेता हुआ ॥ ३६ ॥ उन पुरुषसिंह श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजीको क्रोधित

राक्षसोंके नाथ रावणनें देखा कि असंख्य वानरोंकी सैना श्रीरामचंद्रजीका प्रिय कार्य सिद्ध करनेंके लिये लंकापर चढ़ी ॥ १३ ॥ इस प्रकारसे वह शिला और वृक्षोंको लेकर युद्ध करनेंवाले अरुण मुख स्वर्णकी समान प्रभावान वानरगण श्रीरामचंद्रजीके लिये जीवतक छोड़नेंको तैयार होकर सबही लंकाकी ओरको धाये ॥ १४ ॥ वह वानरगण लंका नगरीके निकट आयकर वृक्ष और पर्वतों शिखर व मुष्टि प्रहारसे लंकाके पुरीके प्राचीर (भीत) और असंख्य फाटक तोड़नें फोड़नें लगे ॥१५॥ वह वानरगण अति बड़े २ पर्वतके टुकड़ोंसे, तिनकोंसे, काठसे व धूल डाल २ कर निर्मल जलसे शोभायमान लंकाके खांयेको पूर्ण करनें लगे ॥ १६ ॥ और जो समस्त वीर कि लंकापुरीकी प्राचीरपर चढ़गये, उनमें

प्रेक्षतोराक्षसेंद्रस्यतान्यनीकानिभागशः ॥ राघवप्रियकामार्थंलंकामारुरुहुस्तदा ॥ १३ ॥ तेताम्रवक्राहेमाभारामार्थे त्यक्तजीविताः ॥ लंकामेवाभ्यवर्ततसालभूधरयोधिनः ॥१४॥ तेद्रुमैःपर्वताग्रैश्चमुष्टिभिश्चप्लवंगमाः ॥ प्राकाराग्राण्यसंख्यानिममंथुस्तोरणानिच ॥ १५ ॥ परिखान्पूरयंतश्चप्रसन्नसलिलाशयान् ॥ पांसुभिःपर्वताग्रैश्चतृणैःकाष्ठैश्चवानराः ॥ १६ ॥ ततःसहस्रयूथाश्चकोटियूथाश्चयूथपाः ॥ कोटियूथशताश्चान्येलंकामारुरुहुस्तदा ॥ १७॥ कांचनानि प्रमर्दंतस्तोरणानिप्लवंगमाः ॥ कैलासशिखराग्राणिगोपुराणिप्रमथ्यच ॥ १८ ॥ आप्लवंतःप्लवंतश्चगर्जंतश्चप्लवंगमाः ॥ लंकांतामभिधावंतिमहावारणसन्निभाः ॥ १९ ॥ जयत्युरुबलोरामोलक्ष्मणश्चमहाबलः ॥ राजाजयतिसुग्रीवोराघवेणाभिपालितः ॥ २० ॥ इत्येवंघोषयंतश्चगर्जंतश्चप्लवंगमाः ॥ अभ्यधावंतलंकायाःप्राकारंकामरूपेणः ॥ २१ ॥

कोई २ वानर सहस्र यूथका अधिपति था कोई करोड़ यूथका और कोई२शत करोड़ यूथका स्वामी था, वह वानरगण लंकामें प्रवेश करके कांचन निर्मित तोरण और कैलाश पर्वतकी समान उन तोरणोंके ऊपर बने हुए बड़े स्थानोंको तोड़नें फोड़नें लगे ॥ १७॥ १८ ॥ महा गजकी समान अगणित वानरगण ऊपरको छलांगें भरते तड़कते, व गर्जते हुए लंकाके चारों ओर घूमनें लगे ॥ १९ ॥ दोहा ॥ जयति जयति भ्राता सहित, महा बली रघुराज॥ राघव पालित सूर्य सुत, जीतहिं सहित समाज ॥ २० ॥ इस प्रकारसे पुकारते व गर्जन करते हुए कामरूपी वानर गण लंकाके

करता हुआ॥७॥वह दोनों भाई क्रोधित मेघनादके चलाये सर्पमय बाणोंसे ऐसे विद्ध हुए कि उनके शरीरका कोई स्थानभी विना घावके न रहा॥८॥ उनके घावोंसे बहुत सारा रुधिर बहनेंके कारण वह दोनों भाई फूले हुए दो टेशूके वृक्षोंकी समान शोभायमान होनेलगे॥९॥ तिसके पीछे लाललाल नेत्र किये अंजनवाले पर्वतकी समान काला रावणका बेटा मेघनाद अदृश्यही रहकर उन दोनों भ्राताओंसे यह वचन बोला॥१०॥ अरे बाण जालसे बंधे हुए दो राजकुमारो! तुम्हारी बात तौ दूर रहे हम जिस समय अदृश्य होकर युद्ध करतेहैं, उस समय स्वर्गके पति इन्द्रभी हमारा दर्शन नहीं कर सकते, या हमको प्राप्त नहीं होसकतेहैं॥ ११॥ जो कुछभी हो अब हम बहुतही शीघ्र कंकपत्र लगे बाणोंसे भली प्रकार तुमको बींधकर यम

निरंतरशरीरौतुतावुभौरामलक्ष्मणौ ॥ क्रुद्धेनेंद्रजितावीरौपन्नगैःशरतांगतैः ॥ ८ ॥ तयोःक्षतजमार्गेणसुस्रावरुधिरं बहु ॥ तावुभौचप्रकाशेतेपुष्पिताविवकिंशुकौ ॥ ९ ॥ ततःपर्यंतरक्ताक्षोभिन्नांजनचयोपमः ॥ रावणिर्भ्रातरौवाक्यमंतर्धानगतोब्रवीत् ॥ १०॥ युध्यमानमनालक्ष्यंशक्रोपित्रिदशेश्वरः ॥ द्रष्टुमासादितुंवापिनशक्तःकिंपुनर्युवाम् ॥ ११ ॥ प्रापिताविषुजालेनराघवौकंकपत्रिणा ॥ एषरोषपरीतात्मानयामियमसादनम् ॥ १२ ॥ एवमुक्त्वातुधर्मज्ञौभ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ निर्बिभेदशितैर्बाणैःप्रजहर्षननादच ॥ १३ ॥ भिन्नांजनचयश्यामोविस्फार्यविपुलंधनुः ॥ भूयएव शरान्घोरान्विससर्जमहामृधे ॥१४॥ ततोमर्मसुमर्मज्ञोमज्जयन्निशिताञ्छरान् ॥ रामलक्ष्मणयोर्वीरोननादचमुहुर्मुहुः ॥ १५ ॥ बद्धौतुशरबंधनतावुभौरणमूर्धनि ॥ निमेषांतरमात्रेणनशेकतुरवेक्षितुम् ॥ १६ ॥

राजके गृहमें भेजे देतेहैं ॥ १२ ॥ धर्मात्मा श्रीरामचंद्र और लक्ष्मणजी दोनों भाइयोंसे ऐसा कह मेघनाद अत्यन्त तीक्ष्ण बाणोंसे उनको घायल कर वारंवार हर्षसे सिंहनाद करनें लगा ॥ १३ ॥ उस घोर रूप संग्राममें काले अंजनकी समान श्याम रंगवाला मेघनाद अपने धनुषपर टंकार दे वारंवार अत्यन्त घोर बाणजाल वर्षानें लगा ॥ १४ ॥ इसके पीछे वह मेघनाद धर्मात्मा श्रीरामचंद्र और लक्ष्मणजीके मर्म स्थानमें तीखे बाण मारकर हर्ष सहित वारंवार सिंहनाद करता हुआ ॥ १५ ॥ उस समय वह दोनों वीर रणभूमिमें बाणोंके बंधनसे बंधकर एक पल

मंत्रियोंके साथ महा बलवान श्रीरामचंद्रजीके निकट पहुंचे ॥ ३० ॥ गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, और गंधमादन यह कई एक वानरगण समस्त वानर सैनाकी रक्षा करनेंके लिये चारों ओर घूमनें लगे ॥ ३१ ॥ निशाचर पति रावण यह समस्त वृत्तान्त जानकर अत्यन्तही क्रोधके वश हुआ, और शीघ्रही अपनी सैनाको युद्ध करनेंके अर्थ बाहर निकलनेकी आज्ञा देता हुआ ॥ ३२ ॥ राक्षस लोगोंनेंभी रावणके मुखसे यह वचन सुनकर भेरी बजाकर उसके शब्दके साथ इस आज्ञाका सब कहीं प्रचार कर दिया ॥ ३३ ॥ तिसके पीछे चारों ओरसे राक्षस लोगोंकी सुवर्णकोणाभिहत सोनेंके दंडे से ताडित और चंद्रमाकी समान उजले मुखवाले ढकनोंसे युक्त भेरियें

गजोगवाक्षोगवयःशरभोगंधमादनः ॥ समंतात्परिधावंतोररक्षुर्हरिवाहिनीम् ॥३१॥ ततःकोपपरीतात्मारावणोराक्षसेश्वरः ॥ निर्याणंसर्वसैन्यानांद्रुतमाज्ञापयत्तदा ॥ ३२ ॥ एतच्छ्रुत्वातदावाक्यंरावणस्यमुखेरितम् ॥ सहसाभीमनिर्घोषमुद्धुष्टरजनीचरैः ॥३३॥ ततःप्रबोधिताभेर्यश्चंद्रपांडुरपुष्कराः ॥ हेमकोणैरभिहताराक्षसानांसमंततः ॥ ३४ ॥ विनेदुश्चमहाघोषाःशंखाःशतसहस्रशः ॥ राक्षसानांसुघोराणांमुखमारुतपूरिताः ॥३५॥ तेबभुःशुकनीलांगाःसशंखारजनीचराः ॥ विद्युन्मंडलसन्नद्धाःसबलाकाइवांबुदाः ॥ ३६ ॥ निष्पतंतिततःसैन्याहृष्टारावणचोदिताः ॥ समयेपूर्यमाणस्यवेगाइवमहोदधेः ॥ ३७ ॥ ततोवानरसैन्येनमुक्तोनादःसमंततः ॥ मलयःपूरितोयेनससानुप्रस्थकंदरः ॥ ३८ ॥

बजनें लगीं ॥ ३४ ॥ घोर रूपवाले राक्षस लोगोंकी मुख पवनसे परिपूर्ण हो घोर शब्दसे युक्त सैकडों हजारों शंख एक समयमेंही बजनें लगे ॥ ३५ ॥ मेघमाल्यके साथ बिजलीके मिलनें और बगलोकी लंगारके सम्मित होंनेंसे जिस प्रकार शोभा होतीहै वैसेही शुकपक्षीकी समान नीले देहवाले राक्षस लोगोंके मुखमें लगे हुए शंख शोभायमान हुए ॥ ३६ ॥ इसके पीछे राक्षस लोग रावणकी आज्ञा पाय प्रलयकालके समय उछलते हुए समुद्रकी तरंगोंकी समान महावेगसे बाहर निकल कर चले ॥ ३७ ॥ इन राक्षसलोगोंको आते देखकर वानरोंकी सैना चारों ओरसे सिंहनाद करनें लगी. कि जिस्से बहुत दूर पर टिका हुआ मलयपर्वतभी शृङ्ग शिखर और कन्दराओंके साथ गूंजनें लगा ॥ ३८ ॥

भूषित और मुष्टिस्थानोंसे अलग शरासनको त्यागकर श्रीरामचंद्रजी वीरोचित सेजपर शयन करते हुए; उस समय उनमें कवच बख्तर धारण करनेंकीभी कुछ सामर्थ्य न रही ॥ २४ ॥ पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीको बाणोंकी सेजपर सोया हुआ देखकर लक्ष्मणजी जीवनकी आशा त्याग करते हुए॥२५॥ और उन कमलदललोचन रणतोषण शरण देनेंवाले अपने भ्राताको पृथ्वीमें गिरा हुआ देखकर विलाप करनें लगे ॥२६॥ वानरगणभी श्रीरामचंद्रजीकी ऐसी अवस्था देखकर अत्यन्त सन्तापित हुए और शोकके मारे नेत्रोंमें आंसू भरकर बड़े शब्दसे रोनें लगे ॥ २७ ॥ हनुमान इत्यादि मुखियार वानर लोग राम लक्ष्मण दोनों भाइयोंको नाग फाँससे बँधा हुआ और वीरोचित सेजपर शयन किये हुए देखकर चारों ओरसे घेर

बाणपातांतरेरामंपातितंपुरुषर्षभम् ॥ सतत्रलक्ष्मणोदृष्ट्वानिराशोजीवितेऽभवत् ॥ २५ ॥ रामंकमलपत्राक्षंशरण्यं रणतोषिणम् ॥ शुशोचभ्रातरंदृष्ट्वापतितंधरणीतले ॥ २६ ॥ हरयश्चापितंदृष्ट्वासंतापंपरमंगताः ॥ शोकार्ताश्चुक्रुशुर्घोरमश्रुपूरितलोचनाः ॥ २७ ॥ बद्धौतुतौवीरशयेशयानौतेवानराःसंपरिवार्यतस्थुः ॥ समागतावायुसुतप्रमुख्याविषादमार्ताःपरमंचजग्मुः ॥ २८ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा० आ०युद्धकांडेपंचचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४५ ॥ ७॥ ततोद्यांपृथिवींचैववीक्षमाणावनौकसः ॥ ददृशुःसंततौबाणैर्भ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ १ ॥ वृष्ट्वेवोपरतेदेवेकृतकर्मणिराक्षसे ॥ आजगामाथतंदेशंससुग्रीवोविभीषणः ॥ २ ॥ नीलश्चद्विविदोमैंदःसुषेणःकुमुदोंगदः ॥ तूर्णंहनुमतासार्धमन्वशोचंतराघवौ ॥ ३ ॥

कर अत्यन्त विलाप करनें लगे ॥ २८ ॥ इ० श्रीम०वा०आ०यु० पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥ इसके पीछे वानर लोगोंनें भयके मारे आकाश और पृथ्वीको खोज करके देखा कि राम लक्ष्मण दोनों भाई नागफाँससे बँधेहुए पड़े हैं ॥१॥ तिसके पीछे इन्द्र जिस प्रकार जलधारा वर्षाय कर थँम जाते हैं, वैसेही इन्द्रजीत इन दोनों वीरोंको बाणजालसे घायल और बाँध करके थमगया,तब सुग्रीव विभीषणके सहित उस स्थानमें आये ॥२॥ तिसके पीछे नील, द्विविद, मैन्द, सुषेण, कुमुद, और अंगद हनुमानजीके साथ वहांपर आय श्रीरामचंद्रजीके निमित्त शोक करनें लगे ॥ ३ ॥

भीत पर चढ़े हुए राक्षसोंको नीचे पृथ्वीमें गिरानें लगे ॥ ४६ ॥ उस समय वानर और राक्षस लोगोंका ऐसा भारी घोर संग्राम हुआकि दोनों ओर वाले वीरोंके शरीरसे निकले हुए मांस और रुधिरसे रण भूमि कीचड़से परिपूर्ण होगई; और वह समर ऐसा हुआ; कि जैसा पहले कभी नहीं हुआथा ॥ ४७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्ध कांडे द्विचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४२ ॥ इस प्रकारसे महाबलवान वानर और राक्षसगण जब युद्ध करनें लगे, तब उनमें परस्पर जय लाभ करनेंकी कामनासे अत्यन्त दारुण क्रोध हुआ ॥ १ ॥ वह समस्त वीर राक्षसगण सुवर्णके आभूषण पहरे, घोड़े व अग्निकी शिखाके समान आकारवाले चमकते दमकते हाथियोंपर

ससंप्रहारस्तुमुलोमांसशोणितकर्दमः ॥ रक्षसांवानराणांचसंबभूवाद्भुतोपमः ॥ ४७ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेद्विचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४२ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ॥ युध्यतांतुततस्तेषांवानराणांमहात्मनाम् ॥ रक्षसांसंबभूवाथबलरोषःसुदारुणः ॥ १ ॥ तेहयैःकांचनापीडैर्गजैश्चाग्निशिखोपमैः ॥ रथैश्चादित्यसंकाशैःकवचैश्चमनोरमैः ॥ २ ॥ निर्ययूराक्षसावीरानादयंतोदिशोदश ॥ राक्षसाभीमकर्माणोरावणस्यजयैषिणः ॥ ३ ॥ वानराणामपिचमूर्बृहतीजयमिच्छताम् ॥ अभ्यधावततांसेनांरक्षसांघोरकर्मणाम् ॥ ४ ॥ एतस्मिन्नंतरेतेषामन्योन्यमभिधावताम् ॥ रक्षसांवानराणांचद्वंद्वयुद्धमवर्तत ॥ ५ ॥ अंगदेनेंद्रजित्सार्धवालिपुत्रेणराक्षसः ॥ अयुध्यतमहातेजास्त्र्यंबकेणयथांधकः ॥ ६ ॥ प्रजंघेनचसंपातिर्नित्यंदुर्धर्षणोरणे ॥ जंबुमालिनमारब्धोहनुमानपिवानरः ॥ ७ ॥

और सूर्यकी समान प्रभावान रथोंपर चढ़ मनोहर कवच बख्तर धारण कर ॥ २ ॥ दशों दिशाओंमें निहारते भयंकर कर्म करनेंवाले राक्षस रावणके जयकी कामना किये संग्राम करनेंको आये ॥ ३ ॥ इन राक्षसोंकी सैनाको आता हुआ देखकर जयकी इच्छा किये बड़ी भारी वानर सैनाभी राक्षस लोगोंकी सैनाके सन्मुख धाई ॥ ४ ॥ जब इस प्रकार वानरोंकी सैना राक्षसोंपर धाई, व राक्षसी सैना वानरों पर धाई तब राक्षस वीर वानरगणोंका द्वंद्व युद्ध होंनें लगा ॥ ५ ॥ जिस प्रकार अन्धकासुरके साथ युद्ध करते हुए महादेवजीका संग्राम हुआथा, वैसेही महा तेजस्वी वालिकुमार अंगदजीके साथ इन्द्रजीतका युद्ध होंनें लगा ॥ ६ ॥ रणमें अति अजेय सम्पाती नाम वानर राक्षस

कि जो सब जगत्‌में बड़े बलवान विख्यात हैं. जिनके हाथसे खर दूषण मारे गये, उन्हीं
सब राक्षसोंको सन्तोष दिलाता कहनें लगा ॥ ११ ॥ कि जो सब जगत्‌में बड़े बलवान विख्यात हैं. जिनके हाथसे खर दूषण मारे गये, उन्हीं
राम लक्ष्मण दोनों भाइयोंका आज हमनें अपनें बाणोंसे संहार कर डाला ॥ १२ ॥ यदि सुर असुर, और समस्त ऋषिलोगभी यहां आन
कर इकट्ठे हो इनको नागफाँससे छुटानेंका यत्न करैं, परन्तु किसी प्रकारसेभी यह नागफाँस टूटनेंवाली नहीं ॥ १३ ॥ जिनके लिये हमारे पिता
भय और शोकसे अत्यन्तही व्याकुल थे, जिनके कारण वह हमारे पिता सेजपर विना अंगके लगायेही तीन पहर रात्रि बितादेते हैं ॥ १४ ॥
जिनके लिये लंकाके रहनेंवाले समस्तही लोग वर्षाके समयवाली नदीकी समान व्याकुलथे,उस अनर्थके मूलकोही आज हमनें उखाड़ डाला॥१५॥

दूषणस्यचहंतारौखरस्यचमहाबलौ ॥ सादितौमामकैर्बाणैर्भ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ १२ ॥ नेमौमोक्षयितुंशक्यावेतस्मा
दिषुबंधनात् ॥ सर्वैरपिसमागम्यसर्षिसंघैःसुरासुरैः ॥ १३ ॥यत्कृतेचिंतयानस्यशोकार्तस्यपितुर्मम ॥ अस्पृष्ट्वाश
यनंगात्रैस्त्रियामायातिशर्वरी ॥ १४ ॥ कृत्स्नेयंयत्कृतेलंकानदीवर्षास्विवाकुला ॥ सोयंमूलहरोनर्थःसर्वेषांशमितोमया
॥ १५ ॥ रामस्यलक्ष्मणस्येवसर्वेषांचवनौकसाम् ॥ विक्रमानिष्फलाःसर्वेयथाशरदितोयदाः ॥ १६॥ एवमुक्त्वातुतान्स
र्वान्राक्षसान्परिपश्यतः ॥ यूथपानपितान्सर्वांस्ताडयत्सचरावणिः ॥ १७ ॥ नीलंनवभिराहत्यमैंदंसद्विविदंतथा ॥ त्रि
भिस्त्रिभिरमित्रघ्नस्ततापपरमेषुभिः ॥ १८ ॥ जांबवंतंमहेष्वासोविद्ध्वाबाणेनवक्षसि ॥ हनूमतोवेगवतोविससर्जशरा
न्दश ॥ १९ ॥ गवाक्षंशरभंचैवतावप्यमितविक्रमौ ॥ द्वाभ्यांद्वाभ्यांमहावेगोविव्याधयुधिरावणिः ॥ २० ॥

राक्षस लोगोंसे
शरदकालके मेघ जिस प्रकार निष्फल होते हैं; वैसेही राम-लक्ष्मण व और समस्त वानरोंका विक्रम निष्फल हो गया ॥ १६ ॥ राक्षस लोगोंसे
यह वचन कहकर उनके सन्मुखही वानरोंके यूथनाथोंकोभी ताड़ना करनें लगा ॥ १७ ॥ उस अमित्र घाती अति धनुर्द्धर मेघनादनें वीर नील
पर नल और मैन्द व द्विविद वानरपर तीन२ अति तीखे बाण चलायकर उनको वींध डाला ॥ १८ ॥ तिसके पीछे जाम्बवानकी छातीमें एक बाण
मारकर उसनें हनुमानजीके ऊपर दश बाण चलाये ॥ १९ ॥ गवाक्ष और शरभके ऊपर महा पराक्रमी वेगवान मेघनादनें दो दो बाण चलाये और

राक्षस और वानर गणोंकी पर्वताकार देहसे प्रहारोंके लगनेंसे जो रक्तकी धार निकलतीथी, वही नदीकी समान और उनके शरीरके रोमसमूहथे वही शैवाल की समान जान पड़नें लगे ॥ १७ ॥ वज्रधारी इन्द्रजी जिसप्रकार वज्र चलातेहैं, वैसेही इन्द्रजीत मेघनादनें क्रोधमें मूर्छित होकर शत्रुओंकी सैनाको विदारण करनेंवाले अंगदजीको ताककर एक गदा इनके ऊपर चलाई ॥ १८ ॥ वानरश्रेष्ठ वेगवान अंगदजीनें मेघनादकी चलाई गदा पकड़ करके उसके अश्व, सारथी और सुवर्णसे चित्रित रथको कीर्चे२कर डाला ॥ १९ ॥ प्रजङ्घ राक्षसनें तीन बाणद्वारा संपाति नाम वानर पर प्रहार किया, तदनन्तर संपातिनें एक अश्वकर्णके वृक्षको उखाड़कर प्रजङ्घके मस्तकपर चलाया ॥ २० ॥ रथोंमें बैठेहुए महाबलवान

हरिराक्षसदेहेभ्यःप्रसृताःकेशशाद्वलाः॥शरीरसंघाटवहाःप्रसुस्रुःशोणितापगाः ॥१७॥ आजघानेंद्रजित्क्रुद्धोवज्रेणेवशतक्रतुः ॥ अंगदंगदयावीरंशत्रुसैन्यविदारणम् ॥ १८॥ तस्यकांचनचित्रांगंरथंसाश्वंससारथिम् ॥ जघानगदयाश्रीमानंगदोवेगवान्हरिः ॥ १९ ॥ संपातिस्तुप्रजंघेनत्रिभिर्बाणैःसमाहतः ॥ निजघानाश्वकर्णेनप्रजंघंरणमूर्धनि ॥ २० ॥ जंबुमालीरथस्थस्तुरथशक्त्यामहाबलः ॥ बिभेदसमरेक्रुद्धोहनुमंतंस्तनांतरे ॥ २१ ॥ तस्यतंरथमास्थायहनूमान्मारुतात्मजः ॥ प्रममाथतलेनाशुसहतेनैवरक्षसा ॥ २२ ॥ नदन्प्रतपनोघोरोनलंसोभ्यनुधावत ॥ नलःप्रतपनस्याशुपातयामासचक्षुषी ॥ २३ ॥ भिन्नगात्रःशरैस्तीक्ष्णैःक्षिप्रहस्तेनरक्षसा ॥ ग्रसंतमिवसैन्यानिप्रघसंवानराधिपः ॥ २४ ॥ सुग्रीवःसप्तपर्णेननिजघानजवेनच ॥ प्रपीड्यशरवर्षेणराक्षसंभीमदर्शनम् ॥ २५ ॥

जम्बुमाली नाम राक्षसनें क्रोधमें भरकर हनुमानजीके बीच छातीमें एक शक्ति मारी ॥ २१ ॥ शक्ति लगनेंपर हनुमानजीनें अति शीघ्रताके साथ उसके रथपर कूद उसमें एक लात मारी कि जिस्से वह रथ चूर्ण होगया; और उसके सहित उस राक्षसकाभी नाश कर दिया ॥ २२ ॥ भयंकराकार प्रतपन नामक राक्षस शब्द करता हुआ नल नाम वानरकी ओर दौड़ा, वीर नलनेंभी विक्रम प्रकाश करके उस राक्षसकी दोनों आंखें निकालली ॥ २३ ॥ बाण चलानेंमें चतुर उस राक्षसके बाण चलानेंसे यद्यपि नलका शरीर छिन्न भिन्न होरहाथा, परन्तु तौभी उन्हों नें उसकी आंखें निकालली, इधर प्रघस नामक राक्षसनें समस्त सैनाको निकल जाना विचारा परन्तु वानरोंके राजा ॥ २४ ॥ सुग्रीवजीनें महा

उस समय बड़े चतुर विभीषणजी नेत्रोंमें आंसूभरे हुए दीनभावसे युक्त और क्रोधाकुल नेत्र वानरराज सुग्रीवजीसे बोले कि हे सुग्रीव! त्रासको छोड़ो और रोनेंकाभी कुछ काम नहीं ॥ ३० ॥ युद्धका फल इसी प्रकारसे हुआ करताहै, कारण कि कभी किसीको सदा जय नहीं प्राप्त हुआ करतीहै, हे वीर! यदि हम लोगोंका भाग्य प्रसन्न होजायगा ॥ ३१ ॥ तौ महाबलवान महात्मा इन दोनों भाइयोंका मोह बहुतही शीघ्र छुट जायगा; हेवानरपति! तुम निश्चय जानना कि जो लोग सत्य और धर्मके अनुरागी होतेहैं; उन लोगोंको कभी मृत्यु उपस्थित नहीं होती, इसलिये तुम अनाथकी समान शोक न करके अपनेको और हमको सावधान करो ॥३२॥ विभीषणजीनें यह कहकर प्रथम अपने हाथमें लिये हुए जलसे

तमुवाचपरित्रस्तंवानरेंद्रंविभीषणः ॥ सबाष्पवदनंदीनंक्रोधव्याकुललोचनम् ॥ अलंत्रासेनसुग्रीवबाष्पवेगोनिगृह्य
ताम् ॥ ३० ॥ एवंप्रायाणियुद्धानिविजयोनास्तिनैष्ठिकः ॥ सभाग्यशेषतास्माकंयदिवीरभविष्यति ॥ ३१ ॥ मो
हमेतौप्रहास्येतेमहात्मानौमहाबलौ ॥ पर्यवस्थापयात्मानमनाथंमांचवानर ॥ सत्यधर्माभिरक्तानांनास्तिमृत्युकृतं
भयम् ॥ ३२ ॥ एवमुक्त्वाततस्तस्यजलक्लिन्नेनपाणिना ॥ सुग्रीवस्यशुभेनेत्रेप्रममार्जविभीषणः ॥ ३३ ॥ ततःस
लिलमादायविद्ययापरिजप्यच ॥ सुग्रीवनेत्रेधर्मात्माप्रममार्जविभीषणः ॥ ३४ ॥ विमृज्यवदनंतस्यकपिराजस्यधी
मतः ॥ अब्रवीत्कालसंप्राप्तमसंभ्रांतमिदंवचः ॥३५॥ नकालःकपिराजेंद्रवैक्लव्यमवलंबितुम् ॥ अतिस्नेहोपिकालेऽस्मि
न्मरणायोपकल्पते ॥३६॥ तस्माद्उत्सृज्यवैक्लव्यंसर्वकार्यविनाशनम् ॥ हितंरामपुरागाणांसैन्यानामनुचिंतय ॥३७॥

सुग्रीवजीके दोनों नेत्र धोय दिये॥३३॥तिसके पीछे फिर जल हाथमें लेकर उसको शोकनिवारण विद्यासे अभिमंत्रितकर उस्से फिर सुग्रीवके दोनोंनेत्र धोदिये ॥३४॥तब बुद्धिमान् वानरराज सुग्रीवजीके नेत्र जलसे पोंछ समयके अनुसार व्याकुलताके निवारण करनेंवाले वचन विभीषणजी बोले ॥३५॥ हेसखे! यह व्याकुल होनेंके योग्य समय नहींहै जान लो कि ऐसे कठिन समयमें स्नेहभी मृत्युका कारण होजाताहै॥३६॥इस कारण इन सब कार्योंकी विनाश करनेंवाली विकलताको छोड़कर जिस्से श्रीरामचंद्रजीकी अनुगामी सेनाका मंगल होवे ऐसा तुमको करना उचितहै ॥ ३७ ॥

वज्रकी समान बाणोंसे वृक्ष ग्रहण करकै युद्ध करते हुए वानरोंमें श्रेष्ठ द्विविदको विद्ध किया ॥ ३३ ॥ परन्तु बाणोंके लगनेंसे द्विविदको अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हुआ और इन्होंनें एक शालका वृक्ष उखाड़ कर अश्व और रथके सहित राक्षसका संहार किया॥ ३४ ॥ रथमें बैठा हुआ राक्षस विद्युन्माली स्वर्णभूषित अनेक बाणोंको चलाय सुषेणजीको पीड़ित करकै वारंवार सिंहनाद करनेंलगा ॥ ३५ ॥ तब वानरोंमें श्रेष्ठ सुषेण जीनें उसको रथमें बैठा हुआ देखकर एक पर्वताकार शिला चलाय उसके रथका चूर्ण करदिया ॥ ३६ ॥ तब निशाचर विद्युन्माली अत्यन्त शीघ्र चतुरता सहित रथपरसे उतरकर अजेय गदा लेकर पृथ्वीमें खड़ा होगया ॥ ३७ ॥ तब वानर सुषेण, राक्षसको खड़ा हुआ देखकर क्रोधि

सशरैरभिविद्धांगोद्विविदःक्रोधमूर्छितः ॥ सालेनसरथंसाश्वंनिजघानाशनिप्रभम् ॥ ३४ ॥ विद्युन्मालीरथस्थस्तुशरैः कांचनभूषणैः ॥ सुषेणंताडयामासननादचमुहुर्मुहुः ॥ ३५ ॥ तंरथस्थमथोदृष्ट्वासुषेणोवानरोत्तमः ॥ गिरिशृंगेणमहतारथमाशुन्यपातयत् ॥ ३६ ॥ लाघवेनतुसंयुक्तोविद्युन्मालीनिशाचरः ॥ अपक्रम्यरथात्तूर्णंगदापाणिःक्षितौस्थितः ॥ ३७ ॥ ततःक्रोधसमाविष्टःसुषेणोहरिपुंगवः ॥ शिलांसुमहतींगृह्यनिशाचरमभिद्रवत् ॥ ३८ ॥ तमापतंतंगदयाविद्युन्मालीनिशाचरः ॥ वक्षस्यभिजघानाशुसुषेणंहरिपुंगवम् ॥ ३९ ॥ गदाप्रहारंतंघोरमचिंत्यप्लवगोत्तमः ॥ तांतूष्णींपातयामासतस्योरसिमहामृधे ॥ ४० ॥ शिलाप्रहाराभिहतोविद्युन्मालीनिशाचरः ॥ निष्पिष्टहृदयोभूमौगतासुर्निपपातह ॥ ४१ ॥ एवंतैर्वानरैःशूरैःशूरास्तेरजनीचराः ॥ द्वंद्वेविमथितास्तत्रदैत्याइवदिवौकसः ॥ ४२ ॥

त हो शिला ग्रहण करकै इसकी ओरको दौड़े ॥ ३८ ॥ निशाचर विद्युन्माली इनको शिला ग्रहण किये आता हुआ देखकर शीघ्रतासे वानर श्रेष्ठ सुषेणजीकी छातीमें गदाका प्रहार करता हुआ ॥ ३९ ॥ वानरश्रेष्ठ सुषेणजीनें उस गदाको कुछभी न समझ कर उस राक्षस विद्युन्मालीकी छातीमें प्रथमही ग्रहणकीहुई अपनी शिलाको चलाया ॥ ४० ॥ निशाचर विद्युन्माली उस शिलाके प्रहार लगनेंसे पीड़ित और चूर्णित हृदय होकर पृथ्वी पर गिरा कि जिस्से उसके प्राणतक निकल गये ॥ ४१ ॥ इस प्रकारसे उस द्वन्द्व युद्धमें सुर गणसे असुर गणोंकी समान शूर निशा

बैठा हुआ रावण अपने दोनों शत्रुओंका मारा जाना सुनकर खड़ाहो हर्षित अंतःकरणसे पुत्रको हृदयसे लगाताहुआ ॥ ४६ ॥ तब रावणनें अति प्रसन्नता सहित पुत्रका मस्तक सूंघकर पुत्रसे युद्धका समस्त वृत्तान्त पूछा, पुत्र इन्द्रजीतनेंभी सब चरित्र पितासे निवेदन किया ॥ ४७ ॥ जिस प्रकारसे राम और लक्ष्मणको संग्राममें नागपाशसे बांधकर चेष्टाहीन और प्रभाहीन किया,वह सब वृत्तान्त रावणसे इन्द्रजीतनें कहा ॥ ४८ ॥ महाबलवान महारथ इन्द्रजीतके मुखसे संग्राममें जीतनेका समाचार पाय अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ, और उस समय उसके अंतःकरणसें श्रीरामचंद्रजीका भय दूर होगया, तब वह हर्षित वचनोंसे पुत्रकी बड़ाई करनेंलगा ॥ ४९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्ध

उपाघ्रायचतंमूर्ध्निपप्रच्छप्रीतमानसः ॥ पृच्छतेचयथावृत्तंपित्रेतस्मैन्यवेदयत् ॥ ४७॥ यथातौशरबंधेननिश्चेष्टौनिष्प्रभौकृतौ ॥४८॥ सहर्षवेगानुगतांतरात्माश्रुत्वागिरंतस्यमहारथस्य ॥ जहौत्वरंदाशरथेःसमुत्थंप्रहृष्टवाचाभिननंदपुत्रम् ॥ ४९ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेषट्चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४६ ॥ छ ॥ तस्मिन्प्रविष्टेलंकायांकृतार्थेरावणात्मजे ॥ राघवंपरिवार्याथररक्षुर्वानरर्षभाः ॥ १ ॥ हनुमानंगदोनीलःसुषेणःकुमुदोनलः ॥ गजोगवाक्षःपनसःसानुप्रस्थोमहाहरिः ॥ २ ॥ जांबवानृषभःसुंदोरंभःशतबलिःपृथुः ॥ व्यूढानीकाश्चयत्ताश्चद्रुमानादायसर्वतः ॥ ३ ॥ वीक्षमाणादिशःसर्वास्तिर्यगूर्ध्वंचवानराः ॥ तृणेष्वपिचचेष्टत्सुराक्षसाइतिमेनिरे ॥ ४ ॥

काण्डे षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥ ॥ छ ॥ तिसके पीछे जब रावणका पुत्र मेघनाद रणविजयी होकर लंकाको चलागया, तब वानरश्रेष्ठगण श्रीरामचंद्रजीको चारों ओरसे घेरकर उनकी रक्षा करनें लगे ॥ १ ॥ हनुमान, अंगद, नील, सुषेण, कुमुद, नल, गज, गवाक्ष, पनस, महावानर सानुप्रस्थ ॥ २ ॥ जाम्बवान, ऋषभ, सुन्द, रम्भ, शतबलि और पृथु इत्यादि यह सबही वानर यूथपगण वृक्षोंको हाथमें ग्रहणकर सैनाका व्यूह बनाय श्रीरामचंद्रजीकी रक्षा करनें लगे ॥ ३ ॥ उस कालमें रक्षामें नियुक्त हुए वानर गण इस प्रकारकी

उसकाल उस सैनाके बीचमें मारडालो फाड़डालो भागता क्यों है लौट करआ इस प्रकारसे कठोर शब्द सुनाई आने लगे ॥ ४ ॥ उस अं
धकारमें काले वर्णवाले राक्षस लोग सुवर्णका बना कवच धारण करनेसे प्रदीप्त औषधिवन भूषित पर्वतराजोंकी समान जान पड़नें लगे ॥ ५ ॥
उस अपार अन्धकारमें क्रोधसे भरे हुए राक्षस लोग वानरोंकी सैनामें अति वेगसे प्रवेश करकै उनको भक्षण करनें लगे ॥ ६ ॥ भयंकर क्रोध
किये हुए वानरगणभी छलांग मार २ कर अपने तीक्ष्ण दांतोंसे काट कर राक्षस लोगोंके सुवर्णसे मंडित घोड़े और सर्पाकार ध्वजाओंके डंडे
खंड २ करने लगे ॥ ७ ॥ उस संग्रामभूमिमें बलवान वानरगणोंनेंभी राक्षसोंकी सैनाको खल बलाय दिया, हाथी और हाथियोंके सवार

हतदारयचैहीतिकथंविद्रवसीतिच ॥ एवंसुतुमुलःशब्दस्तस्मिन्सैन्येतुशुश्रुवे ॥ ४ ॥ कालाःकांचनसन्नाहास्तस्मिंस्त
मसिराक्षसाः ॥ संप्रदृश्यंतशैलेंद्रादीप्तौषधिवनाइव ॥ ५ ॥ तस्मिंस्तमसिदुष्पारेराक्षसाःक्रोधमूर्च्छिताः ॥ परिपेतुर्म
हावेगाभक्षयंतःप्लवंगमान् ॥ ६ ॥ तेहयान्कांचनापीडान्ध्वजांश्चाशीविषोपमान् ॥ आप्लुत्यदशनैस्तीक्ष्णैर्भीमको
पाव्यदारयन् ॥ ७ ॥ वानराबलिनोयुद्धेऽक्षोभयन्राक्षसींचमूम् ॥ कुंजरान्कुंजरारोहान्पताकाध्वजिनोरथान् ॥ ८ ॥
चकर्षुश्चददंशुश्चदशनैःक्रोधमूर्च्छिताः ॥ लक्ष्मणश्चापिरामश्चशरैराशीविषोपमैः ॥ ९ ॥ दृश्यादृश्यानिरक्षांसिप्रवरा
णिनिजघ्नतुः ॥ तुरंगखुरविध्वस्तंरथनेमिसमुत्थितम् ॥ १० ॥ रुरोधकर्णनेत्राणियुध्यतांधरणीरजः ॥ वर्तमानेतथाघो
रेसंग्रामेलोमहर्षणे ॥ रुधिरौघामहाघोरानद्यस्तत्रविसुस्रुवुः ॥ ११ ॥ ततोभेरीमृदंगानांपणवानांचनिःस्वनः ॥ शं
खनेमिस्वनोन्मिश्रःसंबभूवाद्भुतोपमः ॥ १२ ॥

पताका और ध्वजा शोभित रथ ॥ ८ ॥ सबको यह वानरगण क्रोधमें मूर्छित होकर खेंचनें व दांतोंसे काटनें लगे । लक्ष्मण और श्रीरामचं
द्रजीभी विषकी समान बाणधारा वर्षायकर ॥ ९ ॥ दीखते अन दीखते बडे २ राक्षसोंका संहार करनें लगे । उस कालमें घोडोंके खुरोंसे
रथके पहियोंसे उठी हुई धूरिने ॥ १० ॥ युद्ध करती हुई सैनाके कान और नेत्र पृथ्वीपरसे उड़कर मूंदलिये, इस प्रकारसे कठोर और रोमहर्षण
कारी संग्राम आरंभ हुआ; तब उस संग्राममें घोर रुधिरकी नदी वहनें लगी ॥ ११ ॥ तिसके पीछे शंखका शब्द, रथचक्रकी खर २ ध्वनि भेरी

और पतिके शोकसे दुर्बल हुई सीताको उन राक्षसियोंनें अपनें हाथसे पकड़कर पुष्पकविमानपर चढ़ाया ॥ १३ ॥ रावण त्रिजटाके साथ सीताजीको पुष्पक विमानमें सवार कराकर ध्वजा पताकोंओंसे शोभायमान लंकापुरीमें घुमानें लगा ॥ १४ ॥ उस राक्षसपति रावणनें घुमानेंके कालमें चारों ओर यह पुकारवाया कि "संग्राममूमिमें इन्द्रजीतके हाथसे राम लक्ष्मण दोनों भाई मारे गये" ॥ १५ ॥ इस पीछे जनककुमारी सीताजी त्रिजटाके सहित रणभूमिमें जाय कर देखती हुई कि लगभग समस्त वानर सैनाही मरी पड़ीहै ॥ १६ ॥ मांसके खानेंवाले राक्षस लोग हर्षित अंतःकरणसे चारों ओर घूमरहेहैं; और वानर गण दुःखित मनसे श्रीराम लक्ष्मणजीके निकट खड़े हुएहैं ॥ १७ ॥

तामादायतुराक्षस्योभर्तृशोकपराजिताम् ॥ सीतामारोपयामासुर्विमानंपुष्पकंतदा ॥ १३ ॥ ततःपुष्पकमारोप्यसी
तांत्रिजटयासह ॥ रावणश्चारयामासपताकाध्वजमालिनीम् ॥ १४ ॥ प्राघोषयतहृष्टश्चलंकायांराक्षसेश्वरः॥ राघ
वोलक्ष्मणश्चैवहताविंद्रजितारणे ॥ १५ ॥ विमानेनापिगत्वातुसीतात्रिजटयासह ॥ ददर्शवानराणांतुसर्वंसैन्यंनि
पातितम् ॥ १६ ॥ प्रहृष्टमनसश्चापिददर्शपिशिताशनान् ॥ वानरांश्चातिदुःखार्तान्रामलक्ष्मणपार्श्वतः ॥ १७ ॥ ततः
सीताददर्शोभौशयानौशरतल्पगौ ॥ लक्ष्मणंचैवरामंचविसंज्ञौशरपीडितौ ॥ १८ ॥ विध्वस्तकवचौवीरौविप्रविद्धश
रासनौ ॥ सायकैश्छिन्नसर्वांगौशरस्तंबमयौक्षितौ ॥ १९ ॥ तौदृष्ट्वाभ्रातरौतत्रप्रवीरौपुरुषर्षभौ ॥ शयानौपुंडरी
काक्षौकुमाराविवपावकी ॥२०॥ शरतल्पगतौवीरौतथाभूतौनरर्षभौ ॥ दुःखार्ताकरुणंसीतासुभृशंविललापह॥ २१॥

तिसके पीछे जनककुमारी जानकीजीनें देखा कि राम और लक्ष्मणजी बाणोंसे पीड़ित होंनेंके कारण चेतनारहितहो बाणोंकी शेजपर पड़े हुए हैं ॥ १८ ॥ वह दोवीरश्रेष्ठ दोनों भाई राम और लक्ष्मणजी कवचहीन धनुष त्याग किये सब अंगोंमें बाण विंधवाये पृथ्वीपर पड़े हुएहैं ॥ १९ ॥ जानकीजीनें देखा—वह वीराग्रगण्य पुरुषश्रेष्ठ पुण्डरीकाक्ष दोनों भ्राता, दो अग्निकुमारोंकी समान बाणोंकी शेज पर शयन किये हुएथे ॥ २० ॥ उन पुरुषश्रेष्ठ दोनों वीरोंको ऐसी अवस्थामें बाणोंकी शेजपर शयन किये हुए देख जनककुमारी सीताजी दुःखकी अधिकाईके

जीवको ले रणभूमिसे भागगये ॥ २१ ॥ उस कालमें महारथी श्रीरामचंद्रजी इस प्रकार अग्निकी लपटके समान बाण चलानेंलगे कि जिस्से पलभरमें दशोंदिशा व विदिशाओंमें अंधकार छायगया ॥ २२ ॥ जिस प्रकार अग्निके मुखमें गिरकर पतंगे जल जाते हैं; वैसेही जो राक्षस श्रीरामचंद्रजीकी ओर धायेथे उनका उसी समय नाश होगया ॥ २३ ॥ सबही कहीं सुवर्ण लगे बाणोंके गिरनेंसे, वह रात्रि पटबीजनों करके युक्त शरदृऋतुकी रात्रिके समान विचित्र ज्ञात होनें लगी ॥ २४ ॥ राक्षस लोगोंके सिंहनाद और भेरीके शब्दसे शब्दायमान होनेंके कारण वह रात्रि औरभी घोर भयंकर होगई ॥ २५ ॥ सर्व प्रकारसे बढ़ा हुआ बड़ा भारी शब्द त्रिकूट पर्वतकी कन्दराओंमें प्रवेश करके गुंजार करनें

निमेषांतरमात्रेणघोरैरग्निशिखोपमैः ॥ दिशश्चकारविमलाःप्रदिशश्चमहारथः ॥ २२ ॥ येत्वन्येराक्षसावीरारामस्या
भिमुखेस्थिताः॥ तेपिनष्टाःसमासाद्यपतंगाइवपावकम् ॥ २३ ॥ सुवर्णपुंखेर्विशिखैःसंपतद्भिःसमंततः ॥ बभूवरजनी
चित्राखद्योतैरिवशारदी ॥ २४ ॥ राक्षसानांचनिनदैर्भेरीणांचैवनिःस्वनैः ॥ साबभूवनिशाघोराभूयोघोरतराभव
त् ॥ २५ ॥ तेनशब्देनमहताप्रवृद्धेनसमंततः ॥ त्रिकूटःकंदराकीर्णःप्रव्याहरदिवाचलः ॥ २६ ॥ गोलांगूलामहाकाया
स्तमसातुल्यवर्चसः ॥ संपरिष्वज्यबाहुभ्यांभक्षयन्रजनीचरान् ॥ २७ ॥ अंगदस्तुरणेशत्रून्निहंतुंसमुपस्थितः ॥ इं
द्रजित्तुरथंत्यक्त्वाहताश्वोहतसारथिः ॥ अंगदेनमहायस्तस्तत्रैवांतरधीयत ॥ २८ ॥ तत्कर्मवालिपुत्रस्यसर्वेदेवाः
सहर्षिभिः॥ तुष्टुवुःपूजनार्हस्यतौचोभौरामलक्ष्मणौ ॥ २९ ॥

लगा ॥ २६ ॥ श्याम रंगवाले महाशरीरधारी गोपुच्छ वानरगण अपनी बांहोंसे राक्षसोंको पकड़ फिर भक्षण करनेंलगे ॥ २७ ॥ अंगदजीभी शत्रुका विनाश करनेंकी वासनासे रणमें प्रवेश करके रावणके पुत्र इन्द्रजीतके ऊपर प्रहार करते हुए, और उसके सारथि व घोड़ोंको मार डाला, परन्तु मायाविशारद इन्द्रजीत अंगदजी करके घोड़े और सारथिके मारे जानें परभी रथको छोड़कर उसी स्थानमें अन्तर्ध्यान होजाताहुआ ॥ २८ ॥ देवता, और ऋषिलोगोंके प्रशंसा करनेंके योग्य वालिकुमार अंगदजीका ऐसा कठिन कार्य देखकर उनकी व राम

प्रतिज्ञा करके हमारे अभिषेकके सम्बन्धमें जो शुभकारी वार्त्ता कहीथी,सो आज श्रीरामचंद्रजीके मृतक हो जानेसे उनके वचनभी विफल हो गये ॥ ५ ॥ दोनों चरणोंमें पद्म चिह्न रहनेसे जो कुलकी स्त्रियां नरेन्द्रपतियोंके साथ अधिराजस्थानपर अभिषेचित होतीहैं, वे पद्माकार रेखा रूप हमारे चरणोंमें हैं ॥ ६ ॥ क्या आश्चर्य है कि जिन सब कुलक्षणोंके रहनेसे दुर्भाग्यवती स्त्रियें विधवा अवस्थाको प्राप्त होतीहैं; हम विशेष रूपसे देख भालकरभी अपने शरीरमें वैसा कोई कुलक्षण नहीं देखती वरन जबकि हम ऐसे सुलक्षण युक्त होकरभी विधवा हुई; इस्से निश्चयही बोध होताहै कि यह पद्म चिह्न इत्यादि हमसे हत होगये ॥ ७ ॥ हा!लक्षण जाननेंवाले पंडित लोग जिस पद्मचिह्नका "अमोघ" फल कहा

इमानिखलुपद्मानिपादयोर्वैकुलस्त्रियः ॥ आधिराज्येऽभिषिच्यंतेनरेंद्रैःपतिभिःसह ॥ ६ ॥ वैधव्यंयांतियैर्नार्योऽलक्षणैर्भाग्यदुर्लभाः ॥ नात्मनस्तानिपश्यामिपश्यंतीहतलक्षणा ॥७॥ सत्यनामानिपद्मानिस्त्रीणामुक्तानिलक्षणैः ॥ तान्यद्यनिहतेरामेवितथानिभवंतिमे ॥ ८ ॥ केशाःसूक्ष्माःसमानीलाभ्रुवौचासंहतेमम ॥ वृत्तेचारोमकेजंघेदंताश्चाविरलाःमम ॥ ९ ॥ शंखेनेत्रेकरौपादौगुल्फावूरूसमौचितौ ॥ अनुवृत्तनखाःस्निग्धाःसमाश्चांगुलयोमम ॥ १० ॥ स्तनौचाविरलौपीनौमामकौमग्नचूचुकौ ॥ मग्नाचोत्सेधनीनाभिःपार्श्वोरस्कंचमेचितम् ॥ ११ ॥ ममवर्णोमणिनिभोमृदून्यंगरुहाणिच ॥ प्रतिष्ठितांद्वादशभिर्मामूचुःशुभलक्षणाम् ॥ १२ ॥

करतेहैं श्रीरामचंद्रजीके निहत होंनेसे आज हमारे जान तौ यह सबमिथ्या होगये ॥ ८ ॥ देखो स्त्रियोंके समस्त सुलक्षण हममें हैं, नील, पतले, और बराबर हमारे केशहैं, दोनों भौंयें परस्पर मिली हुईनहीं हैं दोनो जांघें गोल और रोम रहितहैं, दांतोंकी पंक्ति विरल है ॥ ९ ॥ नेत्रोंके कोये, नेत्र, हाथ, पांव, घुटने, उरू, यह सब हमारे मोटेहैं, चढा उतार, चिकने लाल नखहैं, उंगलियें, समस्त बराबर हैं ॥ १० ॥ हमारे परस्पर मिले हुए स्तन ऐसे मोटे और ऊंचेहैं मानो दोनो स्तनकोरक उनमें पैठेही जातेहैं, हमारे स्तनोके निकटवाली बगल व उरू विशालहै नाभि ऊंची पार्श्ववाली और सुगंभीरहै ॥ ११ ॥ हमारा वर्ण शान पर चढ़ी मणिकी समान उजलाहै, रोम समस्त कोमल

इन्द्रजीत करके नागमय बाणसमूहोंसे बँधनें पर वानर लोग विस्मित होकर देखनें लगे ॥ ३७ ॥ राक्षसराज रावणके पुत्र इन्द्रजीतनें जिस समय देखाकि राम लक्ष्मणको सन्मुख संग्राममें जीत लेना कुछ सहज बात नहीं है; तब उस समय दुरात्मा निशाचर मायाके बलका आश्रय करके सबके सन्मुख अन्तर्ध्यान होकर उन दोनों राजकुमारोंको बांधलेता हुआ ॥ ३८ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०यु०चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥ तब उस दुष्टात्मा मेघनादके खोजनेंके लिये महा प्रतापी राजकुमारजीनें दश बलवान वानर यूथपोंको आज्ञादी ॥ १ ॥ उनमें दो तौ सुषेणके भाईथे और वानरोंमें श्रेष्ठ नील, वालिकुमार अंगद, अतिवेगवान शरभ ॥ २ ॥ द्विविद हनुमान महाबलवान, प्रस्थ, ऋषभ, और ऋषभस्कन्ध

प्रकाशरूपस्तुयदानशक्तस्तौबाधितुंराक्षसराजपुत्रः ॥ मायांप्रयोक्तुंसमुपाजगामबबंधतौराजसुतौदुरात्मा ॥ ३८ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० युद्धकांडेचतुश्चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४४ ॥ ७ ॥ ॥ सतस्यगतिमन्विच्छन्राजपुत्रःप्रतापवान् ॥ दिदेशातिबलोरामोदशवानरयूथपान् ॥ १ ॥ द्वौसुषेणस्यदायादौनीलंचप्लवगाधिपम् ॥ अंगदंवालिपुत्रंचशरभंचतरस्विनम् ॥ २ ॥ द्विविदंचहनूमंतंसानुप्रस्थंमहाबलम् ॥ ऋषभंचर्षभस्कंधमादिदेशपरंतपः ॥ ३ ॥ तेसंप्रहृष्टाहरयोभीमानुद्यम्यपादपान् ॥ आकाशंविविशुःसर्वेमार्गमाणादिशोदश ॥ ४ ॥ तेषांवेगवतांवेगमिषुभिर्वेगवत्तरैः ॥ अस्त्रवित्परमास्त्रेणवारयामासरावणिः ॥ ५ ॥ तंभीमवेगाहरयोनाराचैःक्षतविक्षताः ॥ अंधकारेनदद्दृशुर्मेघैःसूर्यमिवावृतम् ॥ ६ ॥ रामलक्ष्मणयोरेवसर्वदेहभिदःशरान् ॥ भृशमावेशयामासरावणिःसमितिंजयः ॥ ७ ॥

इन्हीं दश शत्रुओंके तपानेवाले वानरोंको श्रीरामचंद्रजीने आज्ञादी ॥ ३ ॥ यह सुनकर वह वानरगण अत्यन्त आनंदित होकर बड़े २ वृक्षोंको उठाय दशों दिशाओंको खोजते हुए आकाशमें प्रवेश करते हुए ॥ ४ ॥ अस्त्रके जाननें वाले इन्द्रजीतनें ब्रह्मास्त्र मंत्र पढ़े हुए बाणोंसे उन वेगवान वानरोंकी गति रोकदी ॥ ५ ॥ वह वेगवान वानरगण बाण जालसे छिन्नभिन्न होकर बादलसे ढके हुए सूर्यकी समान अंधकारमें छिपे हुए इन्द्रजीतको नहीं देखसके ॥ ६ ॥ इतनेही अवसरमें रणदुर्जय रावणका पुत्र मेघनाद सर्व देहके भेद करनेंवाले बाणोंसे राम लक्ष्मणजीको विद्ध

में क्यों मारे जाते? ॥ १९ ॥ श्रीरामचंद्रजी, महारथी लक्ष्मणजी जननी अथवा अपने लियेभी हमें ऐसा शोक नहीं; परन्तु तपस्विनी सास कौश
ल्याजीके परिणामकी चिन्ता करके हमारी छाती फटी जाती है ॥ २० ॥वह सदा यही चिंता किया करती हैं कि--कब राम लक्ष्मण वधूके सहित
व्रत समाप्त करके आवेंगे? कब हम उनको देखनें पावेंगी? ॥ २१ ॥ जब जनक कुमारी सीताजी इस प्रकारसे विलापकर रहीथीं तब त्रिजटा नाम रा
क्षसीनें कहा कि--हे देवि! तुम अब विलाप न करो, कारण कि तुम्हारे स्वामी अभी जीवितहैं ॥ २२ ॥ हे देवि! भ्राता राम और लक्ष्मण जिस प्र
कारसे जीवितहैं, इसका बड़ा भारी कारण हम कहती हैं; तुम उसको श्रवण करो ॥ २३ ॥ यह वानरगण क्रोध प्रकाश कररहे हैं और उनके मु

नशोचामितथारामंलक्ष्मणंचमहारथम् ॥ नात्मानंजननींचापियथाश्वश्रूंतपस्विनीम् ॥ २० ॥ सातुचिंतयतेनित्यं
समाप्तव्रतमागतम् ॥ कदाद्रक्ष्यामिसीतांचलक्ष्मणंचसराघवम् ॥ २१ ॥ परिदेवयमानांतांराक्षसीत्रिजटाब्रवीत् ॥
माविषादंकृथादेविभर्ताऽयंतवजीवति ॥ २२ ॥ कारणानिचवक्ष्यामिमहांतिसदृशानिच ॥ यथेमौजीवतोदेविभ्रातरौ
रामलक्ष्मणौ ॥ २३ ॥ नहिकोपपरीतानिहर्षपर्युत्सुकानिच ॥ भवंतियुधियोधानांमुखानिनिहतेपतौ ॥ २४ ॥ इदं
विमानंवैदेहिपुष्पकंनामनामतः ॥ दिव्यंत्वांधारयेन्नेदंयद्येतौगतजीवितौ ॥ २५ ॥ हतवीरप्रधानाहिगतोत्साहानि
रुद्यमा ॥ सेनाभ्रमतिसंख्येषुहतकर्णेवनौर्जले ॥ २६ ॥ इयंपुनरसंभ्रांतानिरुद्विग्नातपस्विनी ॥ सेनारक्षतिकाकुत्स्थौ
मयाप्रीत्यानिवेदितौ ॥ २७ ॥

खों पर हर्षके चिह्नभी दिखाई देते हैं; परन्तु रणस्थलमें राजाके मरजानें पर उसकी सैनाके मुखपर कभी इस प्रकारके चिह्न प्रकाशित नहीं हो
ते ॥ २४ ॥ हे वैदेही! औरभी सुनो; यदि श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजी जीवित न होते. तो यह पुष्पक विमान किसी प्रकारसे भी तुमको धार
ण न करता, क्योंकि यह अपने ऊपर विधवा स्त्रियोंको नहीं चढ़ाता है ॥ २५ ॥ हम जानती हैं कि युद्धमें सेनापति या प्रधानकी मृत्यु हो
जानें पर सैनाके लोगोंमें उत्साह और उद्यम नहीं रहता; परन्तु इन वानरोंमें हम यह सब बातें पातीहैं, यदि श्रीरामचंद्रजीका कोई अंग नष्ट हु
आ होता तो निश्चयही विनामांझी की नौकाके समान यह सैना संग्राम भूमिमें इधर उधर फिरती ॥ २६ ॥ परन्तु हे तपस्विनी! यह वानरोंकी

भरभी किसी ओर देखनेंको समर्थ न हुए ॥ १६ ॥ परन्तु इस समय वह बाणोंके फलकोंसे पीड़ित हो गयेथे, व उनके अंगभी कट गयेथे, इस्से वह दोनों जन रस्सीसे रहित कम्पायमान महेन्द्रके ध्वज युगलकी समान शोभित हुए ॥ १७ ॥ इस प्रकारसे महा बलवान जगतपति श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी मर्ममें घाव लग जानेंसें पीड़ित होकर पृथ्वीपर गिरपड़े ॥ १८ ॥ वह दोनों वीर सब अंगोंमें बाण लगनेंके कारण अत्यन्त पीड़ित होकर वीरोचित सेजपर शयन करते हुए, व उनके सब अंगोंसे रुधिरकी धारा निकलनें लगी ॥ १९ ॥ उनके अंगमें एक उंगलभी ऐसा स्थान नहींथा कि जहां बाण न लगाहो, और उंगलियोंके पौरुवोंसे लेकर कोईभी उनके अंगका स्थान नागमय बाण समूहसे अविचलित या

ततोविभिन्नसर्वांगौशरशल्याचितौकृतौ ॥ ध्वजाविवमहेंद्रस्यरज्जुमुक्तौप्रकंपितौ ॥ १७ ॥ तौसंप्रबलितौ वीरौमर्मभेदेनकर्षितौ ॥ निपेततुर्महेष्वासौजगत्यांजगतीपती ॥ १८ ॥ तौवीरशयनेवीरौशयानौरुधिरोक्षितौ ॥ शरवेष्टितसर्वांगावार्तौपरमपीडितौ ॥ १९ ॥ नह्यविद्धंतयोर्गात्रेबभूवांगुलमंतरम् ॥ नानिर्विण्णंनचाध्वस्तमाकराग्रादजिह्मगैः ॥ २० ॥ तौतुक्रूरेणनिहतौरक्षसाकामरूपिणा ॥ असृक्सुस्रुवतुस्तीव्रंजलंप्रस्रवणाविव ॥२१॥ पपातप्रथमंरामोविद्धोमर्मसुमार्गणैः ॥ क्रोधादिंद्रजितायेनपुराशक्रोविनिर्जितः ॥ २२ ॥ ॥ रुक्मपुंखैःप्रसन्नाग्रैरजोगतिभिराशुगैः ॥ नाराचैरर्धनाराचैर्भल्लैरंजलिकैरपि ॥ विव्याधवत्सदंतैश्चसिंहदंष्ट्रैःक्षुरैस्तथा ॥ २३ ॥ सवीरशयनेशिश्येविज्यमाविध्यकार्मुकम् ॥ भिन्नमुष्टिपरीणाहंत्रिणतंरुक्मभूषितम् ॥ २४ ॥

साबित नहीं रहा, सबही अंग कटेथे ॥ २० ॥ वह दोनोंजन कामरूपी क्रूर राक्षस करके बाणोंसे ऐसे घायल हुए कि जिस प्रकार झरनेंसे जलकी धार निकलतीहै; वैसेही इनके सब अंगोंसे रुधिरकी धारा निकलनें लगी ॥ २१ ॥ पहले श्रीरामचंद्रजी राक्षस इन्द्रजीतके दारुण बाणसे विद्ध होकर पृथ्वीमें गिरपड़े; जिस प्रकार इन्द्रजीतनें पहले इन्द्रको युद्धमें हरायाथा वैसेही श्रीरामचंद्रजीकी पराजयभी उसको आनंदकी देनेंवाली हुई ॥ २२ ॥ फिरभी इस दुष्ट मेघनादनें सुवर्णके फोंके लगे हुए रजकी समान सब कहीं पहुंचनेंवाले बाणोंसे, व अनेक प्रकारके भालोंसे, बछडेके दांतोंके समान वह सिंह दशनके समान आकारवाले बाणोंसे श्रीरामचंद्रजीको मारा ॥ २३ ॥ तब शरसहित तीन स्थानोंपर झुकेहुए रुक्म

मिथिलाराजनन्दिनी, देवकन्याओंकी समान सीता यह समस्त वचन श्रवण कर हाथ जोड़कर बोलीं कि तुमनें जो कुछ कहा वही समस्त
वचन तुम्हारे सत्यहैं ॥ ३४ ॥ तिसके पीछे त्रिजटा उस मनके वेगकी अनुसार शीघ्र चलनेंवाले पुष्पक विमानको लौटाय कर दीन सीता
जीको फिर लंकापुरीमें प्रवेश कराती हुई ॥ ३५ ॥ तदनन्तर जनकपुत्री सीताजी त्रिजटाके सहित अशोक वनके समीपमें उपस्थित हो
समस्त राक्षसियोंके सहित फिर उसमें प्रवेश करती हुई ॥ ३६ ॥ इस प्रकारसे जानकीजीनें राक्षसोंमें इन्द्र रावणकी विहारभूमि अनेक
वृक्षोंसे युक्त अशोक वाटिकामें प्रवेश किया; परन्तु इन्होंनें दो राजकुमारोंको जिस अवस्थामें पड़ा देखाथा, अशोकवनमें आनेंके समय

श्रुत्वातुवचनंतस्याःसीतासुरसुतोपमा ॥ कृतांजलिरुवाचेमामेवमस्त्वितिमैथिली ॥ ३४ ॥ विमानंपुष्पकंतत्तुसन्निव
र्त्यमनोजवम् ॥ दीनात्रिजटयासीतालंकामेवप्रवेशिता ॥ ३५ ॥ ततस्त्रिजटयासार्धंपुष्पकादवरुह्यसा ॥ अशोकव
निकामेवराक्षसीभिःप्रवेशिता ॥ ३६ ॥ प्रविश्यसीताबहुवृक्षखंडांतांराक्षसेंद्रस्यविहारभूमिम् ॥ संप्रेक्ष्यसंचिंत्यचरा
जपुत्रौपरंविषादंसमुपाजगाम ॥ ३७ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेअष्टचत्वारिंशः स
र्गः ॥ ४८ ॥ ॥छ॥ ॥ घोरेणशरबंधेनबद्धौदशरथात्मजौ ॥ निःश्वसंतौयथानागौशयानौरुधिरोक्षितौ ॥ १ ॥ सर्वेतेवा
नरश्रेष्ठाःससुग्रीवमहाबलाः ॥ परिवार्यमहात्मानौतस्थुःशोकपरिप्लुताः ॥ २ ॥ एतस्मिन्नंतरेरामःप्रत्यबुध्यतवीर्य
वान् ॥ स्थिरत्वात्सत्त्वयोगाच्चशरैःसंदानितोपिसन् ॥ ३ ॥

वही चिन्ता आयकर इनके मनको अत्यन्त व्याकुल और हृदयको मथनें लगी ॥ ३७ ॥ इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०लं०अष्टचत्वारिंशःसर्गः ४८ ॥
दशरथकुमार श्रीरामचंद्र व लक्ष्मणजी नागफाँसमें बँधे हुए बाणोंकी सेजपर पड़ेथे, व उनके सब अंगोंसे रुधिर निकल रहाथा; हाथी जिस
प्रकार गर्जन किया करताहै; उस समय यह दो भ्राताभी इसी भांति लंबे२श्वास लेनें लगे ॥ १ ॥ सुग्रीवादि मुख्य२ बलवान वानर श्रेष्ठ गण शोकसे
अत्यन्त पीड़ित होकर उनको चारों ओरसे घेर कर खड़े होगये ॥ २ ॥ यद्यपि श्रीरामचंद्रजी दृढ़ नाग फांसमें बँधे हुएथे; परन्तु अपनी दृढ़ता

उन समस्त वानरोंनें देखा कि राम लक्ष्मण शरविद्ध होनेंके कारण चेष्टारहित हैं, उनके सब शरीरमें रुधिर वह रहा है,श्वास मन्द२चल रहा है, और वह बाणोंकी सेजपर बाणोंसे विंधेहुए पड़े हैं ॥ ४ ॥ तेजहीन सर्पकी जो अवस्था होती है, दशरथकुमार श्रीरामचंद्रजीकीभी वही अवस्था होर हीथी वह धीरे २ लंबे २ श्वास ले रहे थे, वह सर्वाङ्गमें रुधिर लगाये सुवर्णसे ध्वजाओंके डंडेकी समान पृथ्वीपर पड़ेहुए शोभायमान हो रहे हैं ॥ ५ ॥ वह वीरशय्यापर शयन करनेंके कारण हाथ पांव आदि न हिलाते डुलाते अपने उन यूथपोंके बीचमें लोटे हुएथे जो कि उनके चारों ओर खड़े रोतेथे ॥ ६ ॥ बाणजालसे विंधेहुए श्रीरामचंद्रजीको पृथ्वीपर गिरा हुआ देखकर विभीषणके सहित सबही वानर अत्यन्त व्यथित होते

अचेष्टौमंदनिःश्वासौशोणितेनपरिप्लुतौ॥शरजालचितौस्तब्धौशयानौशरतल्पगौ ॥४॥ निःश्वसंतौयथासर्पौनिश्चेष्टौदीनविक्रमौ ॥ रुधिरस्रावदिग्धांगौतपनीयाविवध्वजौ ॥ ५॥ तौवीरशयनेवीरौशयानौमंदचेष्टितौ ॥ यूथपैःस्वैःपरिवृतौबाष्पव्याकुललोचनैः॥ ६॥ राघवौपतितौदृष्ट्वाशरजालसमन्वितौ ॥ बभूवुर्व्यथिताःसर्वेवानराःसविभीषणाः ॥ ७ ॥ अंतरिक्षंनिरीक्षंतोदिशःसर्वाश्चवानराः ॥ नचैनंमाययाछन्नंददृशूरावणिंरणे ॥८॥ तंतुमायाप्रतिच्छन्नंमाययैवविभीषणः ॥ वीक्ष्यमाणोददर्शाग्रेभ्रातुःपुत्रमवस्थितम् ॥ तमप्रतिमकर्माणमप्रतिद्वंद्वमाहवे ॥ ९ ॥ ददर्शांतर्हितंवीरंवरदानाद्विभीषणः ॥ तेजसायशसाचैवविक्रमेणचसंयुतः ॥ १० ॥ इंद्रजित्त्वात्मनःकर्मतौशयानौसमीक्ष्यच ॥ उवाचपरमप्रीतोहर्षयन्सर्वराक्षसान् ॥ ११ ॥

हुए ॥ ७ ॥ यद्यपि इस समय वानरगण रावणके पुत्र मेघनादको आकाशमें ढूंढ़ रहेथे, परन्तु मायासे अदृश्य होनेंके कारण उसको कोईभी न देख सका ॥ ८ ॥ परन्तु विभीषण इस मायाको जानते थे, इस कारण जैसेही कि उन्होंनें दृष्टि की, वैसेही मायाके बलसे ढके हुए, उस अपने भाईके पुत्र- (भतीजे) मेघनादको इन्होंनें देखा कि वह अनुपम कर्म करनेंवाला, संग्रामभूमिमें अप्रतिद्वन्द्व ॥ ९ ॥ वरदान पानेंसे गर्वित वीर अन्तर्ध्यान होकर सन्मुखही आकाशमें टिका हुआ है, ऐसे मेघनादको तेज, यश, विक्रमसंयुक्त विभीषणजीनें देखा ॥ १० ॥ इसके पीछे इन्द्रजीत मेघनाद इन श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी दोनों वीरोंको वीरशेजपर पड़ाहुआ देखकर अत्यन्त सन्तुष्ट हो अपना कर्म सबको सुनाता हुआ

जब कि अपने पुत्र लक्ष्मणजीके लिये सुमित्राजी हमारी निन्दा करेंगी; तब वह वचन हमसे किस प्रकार सहे जांयगे;इसकारण यहींपर जीवन त्याग देना हमारा कर्तव्य है ॥ ११॥ हा! हम बड़े ही दुष्कार्यके करनेवाले और अतिशय अनार्य हैं, इसलिये हमको धिक्कारहै; अहो ! हमारेही कारण हमारे छोटे भाई लक्ष्मण बाणोंकी सेजपर लेटे हुए मृतककी समान पड़ेहैं ॥१२॥ भैया लक्ष्मण! जब हम कुछ शोक करते तब तुम सदाही हमको समझाते परन्तु आज हम इस प्रकारके पीड़ित होरहे हैं,तथापि तुम मृतककी समान हमसे कुछभी वार्तालाप नहीं करते और न हमें समझाते हो॥१३॥हाय! आज इस रणभूमिमें जिन करके असंख्य राक्षस वशको प्राप्त होकर पृथ्वीमें शयन कररहे हैं; वही शूर श्रेष्ठ लक्ष्मणजीभी बाणोंसे घायल होकर आज

उपालंभंनशक्ष्यामिसोढुमंबासुमित्रया ॥ इहैवदेहंत्यक्ष्यामिनहिजीवितुमुत्सहे ॥ ११ ॥ धिङ्मांदुष्कृतकर्माणमनार्यंमत्कृतेह्यसौ ॥ लक्ष्मणःपातितःशेतेशरतल्पेगतासुवत् ॥ १२ ॥ त्वंनित्यंसुविषण्णंमामाश्वासयसिलक्ष्मण ॥ गतासुर्नाद्यशक्तोसिमामार्तमभिभाषितुम् ॥ १३ ॥ येनाद्यबहवोयुद्धेनिहताराक्षसाःक्षितौ ॥ तस्यामेवाद्यशूरस्त्वंशेषेविनिहतःशरैः ॥१४॥ शयानःशरतल्पेऽस्मिन्सशोणितपरिप्लुतः ॥ शरभूतस्ततोभासिभास्करोऽस्तमिवव्रजन् ॥ १५॥ बाणाभिहतमर्मत्वान्नशक्नोषीहभाषितुम् ॥ रुजाचाब्रुवतोयस्यदृष्टिरागेणसूच्यते ॥ १६ ॥ यथैवमांवनंयांतमनुयातोमहाद्युतिः ॥ अहमप्यनुयास्यामितथैवैनंयमक्षयम् ॥ १७ ॥ इष्टबंधुजनोनित्यंमांचनित्यमनुव्रतः ॥ इमामद्यगतोऽवस्थांममानार्यस्यदुर्नयैः ॥ १८॥

बाणोंकी सेज पर शयन कररहे हैं ॥१४॥ हा लक्ष्मण! तुम रुधिरसे भीगे हुए होकर बाणोंकी सेजपर शयनकरके शर रूप प्राप्त अस्तगामी सूर्यकी समान शोभा धारण किये हुएहो ॥ १५ ॥ हाय! तुम्हारे सब मर्मस्थानोंमें बाणोंके लगनेसे तुम कुछ कहनेंको समर्थ नहीं हो; परन्तु कुछ न कहनेंपरभी तुम्हारे नेत्रोंके लालेपनसे तुम्हारे मनकी समस्तही व्यथा प्रगट होरही है ॥ १६ ॥ हाय! जिस प्रकार हमारे वनमें आनेंके समय तुम महाद्युतिमान हमारे पीछे२ आयेथे, वैसेही हमभी तुम्हारे पीछे२आज यमलोकमें गमन करेंगे ॥ १७॥ हाय! जो सदाही अपने बन्धुजनोंके प्रति

उनकोभी वींध डाला ॥ २० ॥ और वड़ी शीघ्रताके साथ उसने गोपुच्छ वानरोंके स्वामी ऋक्षराज धूम्र और वालिकुमार अंगदजीके ऊपर बहुत असंख्य बाण चलाये ॥ २१ ॥ महा सत्वयुक्त बलवान रावणकुमार उन अग्निकी शिखाके समान लपलपाते बाण समूहसे वानरोंको मारकर सिंह नाद करनें लगा ॥ २२ ॥ वह महाबाहु मेघनाद बाणोंकी चोटसे वानरोंको शंकित और पीड़ित करके विकट हँसनें लगा और राक्षस लोगोंको पुकारकर बोला ॥ २३ ॥ हे निशाचर गण ! श्रवण करो; हमनें बराबर बाणोंकी वर्षा करके अंतमें राम लक्ष्मणको नागफाँससे बांधही लिया॥२४॥ छलसे युद्ध करनेंवाले राक्षस लोग मेघनादकी बात सुनकर उसके कार्यसे अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और उसकी उपमारहित वीरताको देखकर अत्य

गोलांगूलेश्वरंचैववालिपुत्रमथांगदम् ॥ विव्याधबहुभिर्बाणैस्त्वरमाणोथरावणिः ॥ २१ ॥ तान्वानरवरान्भित्त्वाशरै रग्निशिखोपमैः ॥ ननादबलवांस्तत्रमहासत्त्वःसरावणिः ॥ २२ ॥ तानर्दयित्वाबाणौघैस्त्रासयित्वाचवानरान् ॥ प्रजहा समहाबाहुर्वचनंचेदमब्रवीत् ॥२३॥ शरबंधनघोरेणमयाबद्धौचमूमुखे ॥ सहितौभ्रातरावेतौनिशामयतराक्षसाः॥२४॥ एवमुक्तास्तुतेसर्वैराक्षसाःकूटयोधिनः ॥ परंविस्मयमापन्नाःकर्मणातेनहर्षिताः ॥ २५ ॥ विनेदुश्चमहानादान्सर्वेते जलदोपमाः ॥ हतोरामइतिज्ञात्वारावणिंसमपूजयन् ॥ २६ ॥ निष्पंदौतुतदादृष्ट्वाभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ वसुधायां निरुच्छ्वासौहतावित्यन्वमन्यत ॥ २७ ॥ हर्षेणतुसमाविष्टइंद्रजित्समितिंजयः ॥ प्रविवेशपुरींलंकांहर्षयन्सर्वनैर्ऋ तान् ॥ २८ ॥ रामलक्ष्मणयोर्दृष्ट्वाशरीरेसायकैश्चिते ॥ सर्वाणिचांगोपांगानिसुग्रीवंभयमाविशत् ॥ २९ ॥

न्त विस्मित होरहे ॥ २५ ॥ तब मेघाकार राक्षस लोग "राम मारे गये" यह मनमें निश्चय करके सबही सिंहनाद करते हुए इन्द्रजीतमेघनादकी बड़ाई करनेंलगे ॥ २६ ॥ और उन दोनों भ्राता श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीको विना हाथ पैर हिलाते डुलाते और श्वास रहित पृथ्वीमें पड़े देख तब राक्षसोंनें निश्चय जान लिया कि यह मृतक होगये ॥ २७ ॥ तिसके पीछे रणमें विजय करनेवाला इन्द्रजीत रणमें विजय पाय कर राक्षसोंको आनंदित कराता हुआ लंकामें प्रवेश करता हुआ ॥ २८ ॥ इसी समयमें कपिराज सुग्री वजी राक्षसराज रावणके पुत्र मेघनादके बाणोंसे श्रीराम लक्ष्मणके समस्तअंग विद्ध और रुधिरसे भींगे देखकर अत्यन्त भयको प्राप्त हुए ॥ २९ ॥

गोपुच्छके राजानें जो कठिन कर्म हमारे लिये किये तिस्से हम परम प्रसन्न हैं ॥ २५ ॥ और अंगदनेंभी बड़ेभारी कर्म किये, व मैन्द, द्विविद, केशरी और सम्पातिनाम वानरनेंभी युद्धमें हमारे लिये बड़े घोर कर्म किये ॥ २६ ॥ गवय, गवाक्ष, शरभ, गज, व औरभी दूसरे वानरोंनें अपने प्राणतककी बाजी लगाकर युद्ध करनेंके लिये तैयार होकर संग्राम कियाहै ॥ २७ ॥ हे सुग्रीव! मनुष्य भाग्यको कभी उल्लंघन नहीं करसकत्ता जो मित्रको मित्रके साथ और सुहृदको सुहृदके साथ करना उचित है; वह मेरे लिये ॥ २८ ॥ हे सुग्रीव ! तुमने धर्म और शक्तिके अनुसार सबही कुछ किया; हेवानरश्रेष्ठो! तुमनेभी हमारा मित्रकार्य भली भांतिसे किया ॥ २९ ॥ इसलिये अब हम तुमको आज्ञा दे

अंगदेनकृतंकर्ममैंदेनाद्विविदेनच ॥ युद्धंकेसरिणासंख्येघोरंसंपातिनाकृतम् ॥ २६ ॥ गवयेनगवाक्षेणशरभेणगजेनच ॥ अन्यैश्चहरिभिर्युद्धंदुर्धरंत्यक्तजीवितैः ॥ २७ ॥ नचातिक्रमितुंशक्यंदैवंसुग्रीवमानुषैः ॥ यत्तुशक्यंवयस्येनसुहृदावापरंमम ॥ २८ ॥ कृतंसुग्रीवतत्सर्वंभवताधर्मभीरुणा ॥ मित्रकार्यंकृतमिदंभवद्भिर्वानरर्षभाः ॥ २९ ॥ अनुज्ञातामयासर्वेयथेष्टंगंतुमर्हथ ॥ शुश्रुवुस्तस्ययेसर्वेवानराःपरिदेवितुम् ॥ वर्तयांचक्रिरेऽश्रूणिनेत्रैःकृष्णेतरेक्षणाः ॥ ३० ॥ ततःसर्वाण्यनीकानिस्थापयित्वाविभीषणः ॥ आजगामगदापाणिस्त्वरितंयत्रराघवः ॥ ३१ ॥ तंदृष्ट्वात्वरितंयांतंनीलांजनचयोपमम् ॥ वानराद्रुद्रुवुःसर्वेमन्यमानास्तुरावणिम् ॥ ३२ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० युद्धकांडेएकोनपंचाशःसर्गः ॥ ४९ ॥ ७ ॥

ते हैं कि तुम्हारी सबकी जहां पर इच्छा हो वहांपर चले जाओ; जब रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी इस प्रकारसे विलाप करते रहे, तब उसकाल जितनें वानरोंनें उनका वह विलाप सुना; उन सबके नेत्रोंसेही आंसुओंकी धारा गिरनेलगीं ॥ ३० ॥ इतनेंमेंही विभीषणजी सब सैनाको धीरज बँधाते जहांके तहां सब को टिकाते गदा ग्रहणकर अति शीघ्रतासे श्रीरामचंद्रजीके पास आये ॥ ३१ ॥ परन्तु नील अंजनके ढेरकी समान उस वीर विभीषणको शीघ्रतासे श्रीरामचंद्रजीके समीप आते देखकर वानर उनको इन्द्रजीत समझकर चारों ओर भागनें लगे ॥ ३२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे भाषानुवादे कात्यायनकुमारपं० ज्वालाप्रसादमिश्रकृते एकोनपंचाशः सर्गः ॥ ४९ ॥

अथवा जबतक श्रीरामचंद्रजीका मोह छूटकर उनको संज्ञा प्राप्तहो तब तक तुम उनकी रक्षा करते रहो; जान लो कि जब काकुत्स्थ श्रीरामचंद्रजीनें चैतन्यता प्राप्त करली तब फिर हमको कोईभी भय न रहैगा ॥३८॥ श्रीरामचंद्रजीकी मोहकी अवस्था जो तुम देखतेहो यह सब कुछभी नहीं है, लक्षणसे अनुमान होताहै कि किसी प्रकारसेभी श्रीरामचंद्रजीकी मृत्यु होनेंवाली नहीं; जीवका जीवन नष्ट होनें पर जो श्री दुर्लभहै, इन श्रीरामचंद्रजीके शरीरमें वही श्री स्पष्ट दिखलाई देतीहै ॥३९॥ हेसुग्रीव! जो हुआ सो हुआ तुम सावधान होवो; और अपनी सैनाकोभी ढांढस बँधाओ, और हमभी अपनी सैनाको फिर स्थिर करतेहैं ॥ ४० ॥ हे वानरश्रेष्ठ! यह देखो, वानर गण नेत्र फैलाय २ भीत और शंकित होकर परस्पर एक

अथवारक्ष्यतांरामोयावत्संज्ञाविपर्ययः॥ लब्धसंज्ञौहिकाकुत्स्थौभयंनौव्यपनेष्यतः॥ ३८ ॥ नैतात्किंचनरामस्यनच रामोमुमूर्षति॥ नह्येनंहास्यतेलक्ष्मीर्दुर्लभायागतायुषाम् ॥ ३९ ॥ तस्मादाश्वासयात्मानंबलंचाश्वासयस्वकम् ॥ यावत्सैन्यानिसर्वाणिपुनःसंस्थापयाम्यहम् ॥ ४० ॥ एतेहिफुल्लनयनास्त्रासादागतसाध्वसाः ॥ कर्णेकर्णेप्रकथिताहरयो हरिसत्तम ॥ ४१ ॥ मांतुदृष्ट्वाप्रधावंतमनीकंसंप्रहर्षितम् ॥ त्यजंतुहरयस्त्रासंभुक्तपूर्वामिवस्रजम् ॥ ४२ ॥ समाश्वास्य तुसुग्रीवंराक्षसेंद्रोविभीषणः ॥ विद्रुतंवानरानीकंतत्समाश्वासयत्पुनः ॥४३ ॥ इंद्रजित्तुमहामायःसर्वसैन्यसमावृतः ॥ विवेशनगरींलंकांपितरंचाभ्युपागमत् ॥ ४४ ॥ तत्ररावणमासाद्यअभिवाद्यकृतांजलिः ॥ आचचक्षेप्रियंपित्रेनिहतौरामलक्ष्मणौ ॥ ४५ ॥ उत्पपाततोहृष्टःपुत्रंचपरिषस्वजे ॥ रावणोरक्षसांमध्येश्रुत्वाशत्रूनिपातितौ ॥ ४६ ॥

दूसरेके कानही कानमें श्रीरामचंद्रजीकी वार्ता कर रहे हैं ॥ ४१ ॥ हमको इधर उधर घूमते हुए देखकर व समस्त वानरवाहिनीकोभी हर्षित देख पहरनेंसे मलगिजी व कुंभलाई हुई मालाके त्याग करनेंके समान सब वानर अपनी व्याकुलताको छोडेंगे ॥ ४२ ॥ तिसके पीछे वह राक्षसोंके इन्द्र बिभीषणजी वानरराज सुग्रीवजीको यह कह समझाय बुझाय फिर भागीहुई सैनाको धीरज बँधाने लगे ॥ ४३ ॥ इस ओर माया विशारद इन्द्रजीत सब सैनाको साथ लेकर लंका नगरीमें प्रवेशित हो अपने पिता रावणके निकट जायकर पहुंचा ॥ ४४ ॥ फिर रावणके निकट जाय हाथ जोड़ प्रणामकर रामचंद्र व लक्ष्मणके मारे जानेकी प्रिय वार्त्ता वह मेघनाद निवेदन करताहुआ ॥ ४५ ॥ राक्षसमंडलके बीचमें

णजीकोही वानरगणोंके भयका कारण जानकर समीपमें बैठे हुए ऋक्षराज जाम्बवान्‌से यह वचन बोले ॥ ८ ॥ यह विभीषण यहांपर आये हैं; इनकोही देख और रावणका पुत्र मेघनाद समझकर भयके मारे चकितनेत्र होकर वानरगण यह शंका करके कि फिर वह भय आया भागे जाते हैं ॥ ९ ॥ इस कारण आप शीघ्रही त्रासित और चारों ओरको भागी जाती हुई इस वाहिनीको पुकारकर सावधान करो, कि यह इन्द्रजीत नहीं वरन विभीषणजी आये हैं ॥ १० ॥ तब ऋक्षराज जाम्बवानजी सुग्रीवजीके ऐसे वचन सुनकर भागते हुए वानरोंको लौटनेको पुकारनें लगे ॥ ११ ॥ तिसके पीछे समस्त वानर गणभी जो कि भागे जाते थे ऋक्षराज जाम्बवान्‌जीके वचन सुन और विभीषणको आयाहुआ देख

विभीषणोयंसंप्राप्तोयंदृष्ट्वावानरर्षभाः ॥ द्रवंत्यागतसंत्रासारावणात्मजशंकया ॥ ९ ॥ शीघ्रमेतान्सुसंत्रस्तान्बहुधाविप्रधावितान् ॥ पर्यवस्थापयाख्याहिविभीषणमुपस्थितम् ॥ १० ॥ सुग्रीवेणैवमुक्तस्तुजांबवानृक्षपार्थिवः ॥ वानरान्सांत्वयामाससांन्नेवर्त्यप्रधावतः ॥ ११ ॥ तेनिवृत्ताःपुनःसर्वेवानरास्त्यक्तसाध्वसाः ॥ ऋक्षराजवचःश्रुत्वातंचदृष्ट्वाविभीषणम् ॥ १२ ॥ विभीषणस्तुरामस्यदृष्ट्वागात्रंशरैश्चितम् ॥ लक्ष्मणस्यतुधर्मात्माबभूवव्यथितस्तदा ॥ १३ ॥ जलक्लिन्नेनहस्तेनतयोर्नेत्रेविमृज्यच ॥ शोकसंपीडितमनारुरोदविललापच ॥ १४ ॥ इमौतौसत्वसंपन्नौविक्रांतौप्रियसंयुगौ ॥ इमामवस्थांगमितौराक्षसैःकूटयोधिभिः ॥ १५ ॥ भ्रातृपुत्रेणचैतेनदुष्पुत्रेणदुरात्मना ॥ राक्षस्याजिह्मयाबुद्ध्यावंचितावृजुविक्रमौ ॥ १६ ॥

भय त्यागकर लौट आये ॥ १२ ॥ तत्पश्चात् धर्मात्मा विभीषणजी श्रीराम लक्ष्मणजी दोनोंहीके शरीर बाणोंसे छाये और रुधिरसे नहाये देख मनमें बहुतही दुःखी हुए ॥ १३ ॥ विभीषणजीनें अपनें हाथमें जल लेकर स्वयं महात्मा श्रीरामचंद्रजीके और लक्ष्मणजीके नेत्र धोये और फिर शोकित मनसे नेत्रोंमें आंसू भरा देख और विलाप करनें लगे ॥ १४ ॥ हाय! यह दोनों सत्वसम्पन्न समरप्रिय भयंकरविक्रमकारी दोनों भाई कपटयुद्ध करनेंवाले निशाचरोंसे ऐसी दुरवस्थाको प्राप्त हुएहैं ॥ १५ ॥ हाय! रावणके पुत्र और हमारे भतीजे दुरात्मा मेघनादकी राक्षसी कु

सावधानतासे चारों ओर देखने लगे कि जो कहीं तनक शब्दभी हुआ तौ वह लोग " राक्षस आगया" ऐसा जान करके उसही ओरको दौड़ने लगे ॥ ४ ॥ इस ओर रावण हर्षित मनसे प्रियपुत्र इन्द्रजीतको विदा देकर सीताजीके रक्षाकार्यमें नियत हुई राक्षसियोंको बुलाता हुआ ॥ ५ ॥ त्रिजटा व और भी सब राक्षसियें रावणकी आज्ञा जानकर वहां पर आईं, तब राक्षसोंका स्वामी रावण हर्ष भरे मनसे यह कहता हुआ ॥६॥ कि तुम सब सीताको समाचार दो कि इन्द्रजीतके हाथसे राम लक्ष्मण दोनों भाई मारे गये उनसे यह कह व फिर उन्हें पुष्पकविमानपर चढ़ायकर रण भूमिमें मरे हुए दोनों भाइयोंको दिखलाओ ॥ ७ ॥ उस जानकीसे तुम कहना कि जिनके आश्रयके गर्वके मारे तुम इतनें दिनोंतक हमसे विरु

रावणश्चापिसंहृष्टोविसृज्येंद्रजितंसुतम् ॥ आजुहावततःसीतारक्षणीराक्षसीस्तदा ॥५॥ राक्षस्यस्त्रिजटाचापिशासना त्तमुपस्थिताः॥ ताउवाचततोहृष्टोराक्षसीराक्षसाधिपः ॥६॥ हताविंद्रजिताख्यातवैदेह्यारामलक्ष्मणौ ॥ पुष्पकंतत्समा रोप्यदर्शयध्वंरणेहतौ ॥ ७ ॥ यदाश्रयादवष्टब्धानेयंमामुपतिष्ठते ॥ सोस्याभर्तासहभ्रात्रानिहतोरणमूर्धनि ॥ ८ ॥ नि र्विशंकानिरुद्विग्नानिरपेक्षाचमैथिली ॥ मामुपस्थास्यतेसीतासर्वाभरणभूषिता ॥ ९ ॥ अद्यकालवशंप्राप्तंरणेरामंसल क्ष्मणम् ॥ अवेक्ष्यविनिवृत्तासाचान्यांगतिमपश्यती ॥ अनपेक्षाविशालाक्षीमामुपस्थास्यतेस्वयम् ॥ १० ॥ तस्यतद्व चनंश्रुत्वारावणस्यदुरात्मनः ॥ राक्षस्यस्तास्तथेत्युक्त्वाजग्मुर्वैयत्रपुष्पकम् ॥ ११ ॥ ततःपुष्पकमादायराक्षस्योराव णाज्ञया ॥ अशोकवनिकास्थांतांमैथिलींसमुपानयन् ॥ १२ ॥

द्धथीं, इस समय वही तुम्हारे स्वामी अपने भाईके सहित मार डाले गये हैं ॥ ८ ॥ अब सीता रामके सहित मिलनेंकी आशाको भली भांतिसे त्यागकर और शोक व शंकाको छोड़ सर्व गहनोंसे भूषितहो हमारे वशमें हो जाय ॥ ९ ॥ जान पड़ताहै कि आज वह बड़े नेत्रोंवाली जानकी संग्रामभूमिमें लक्ष्मणजीके सहित रामचंद्रको प्राण रहित और अपनी कोई और गति न देखकर जब वहांसे लौटेगी; तब आपही हमारे वशमें पड़ेंगी ॥ १० ॥ तब यह सब राक्षसी दुरात्मा रावणके यह वचन सुनकर और " ऐसेही होगा " कहकर जहां पुष्पक विमान रक्खाथा वहांपर गईं ॥११॥ तिसके पीछे वह राक्षसी गण रावणकी आज्ञासे वह पुष्पक विमान लेकर अशोकवनमें वास करती हुई सीताजीके निकट पहुंचीं ॥ १२ ॥

राम और लक्ष्मण व और दूसरे शूर वानर वीरोंको किष्किन्धापुरीमें लेजाओ, और जबतक इन शत्रुओंके मारनेंवालोंको चैतन्यता न प्राप्त होवे, तब तक उसी स्थानमें इनकी रक्षा करते रहना॥ २४ ॥ और इस ओर हमभी, इस रावणको पुत्र पौत्र और बान्धवोंके साथ संहार करके, रावणसे हरी हुई जानकीजीका उद्धार करके लेआवेंगे, कि जैसे नष्ट हुई राज्यलक्ष्मीको इन्द्रजीनें फिर प्राप्त कियाथा ॥ २५ ॥ सुग्रीवजीके ऐसे वचन सुनकर सुषेण बोलेकि ॥—"पहले हमनें देवता व असुरोंका बड़ाभारी संग्राम देखाथा" ॥ २६ ॥ उस संग्राममें बाण चलानेंमें अति चतुर और शस्त्रास्त्रके कर्ममें अति कुशल राक्षसोंनें जब रण करनेंमें चतुर देवता लोगोंको बाणोंके समूहसे वारंवार ढक लियाथा ॥ २७ ॥ तब देवतागुरु

अहंतुरावणंहत्वासपुत्रंसहबांधवम् ॥ मैथिलीमानयिष्यामिशक्रोनष्टामिवश्रियम् ॥ २५ ॥ श्रुत्वैतद्वानरें
द्रस्यसुषेणोवाक्यमब्रवीत् ॥ देवासुरंमहायुद्धमनुभूतंपुरातनम् ॥ २६ ॥ तदास्मदानवादेवान्शरसंस्पर्शको
विदान् ॥ निजघ्नुःशस्त्रविदुषश्छादयंतोमुहुर्मुहुः ॥ २७ ॥ तानार्तान्नष्टसंज्ञांश्चगतासूंश्चबृहस्पतिः ॥ विद्याभिर्मंत्र
युक्ताभिरोषधीभिश्चिकित्सति ॥ २८ ॥ तान्यौषधान्यानयितुंक्षीरोदंयांतुसागरम् ॥ जवेनवानराःशीघ्रंसंपातिपनसा
दयः ॥ २९ ॥ हरयस्तुविजानंतिपार्वतीतेमहौषधी ॥ संजीवकरणींदिव्यांविशल्यांदेवनिर्मिताम् ॥ ३० ॥ चंद्रश्च
नामद्रोणश्चक्षीरोदेसागरोत्तमे ॥ अमृतंयत्रमथितंतत्रतेपरमौषधी ॥ ३१ ॥

बृहस्पतिजी उन देवताओंको पीड़ित चेतना रहित और विनाशको प्राप्त देखकर, मंत्रविद्याके प्रभावसे व यथायोग्य औषधियोंसे उनकी चिकित्सा करते रहे कि जिस्से वह समस्त देवता फिर जीवित होगये ॥ २८॥ हेराजन्! तिन औषधियोंको लानेंके अर्थ सम्पाति पनसादि वानर बहुतही शीघ्र क्षीर समुद्रके निकट जांय ॥ २९ ॥ कारणकि यह वानर उन दो पहाड़ी बूंटियोंको भली भांति जानतेहैं उन दोनों बूटियोंमें एकका नाम (संजीवनी) और एकका नाम (विशल्यकरणी) अर्थात् घावकी पीड़ाको दूर करनेंवालीहै ॥ ३० ॥ जिस स्थानपर देवता लोगोंनें समुद्रको मथन

मारे वारं वार विलाप करनें लगी ॥ २१ ॥ कृष्णलोचन वाली व कोमल अंगवाली जानकीजी अपने स्वामी और लक्ष्मणजीको धूरिमें लोटता हुआ देखकर रोदन करनें लगीं ॥ २२ ॥ इस प्रकारसे जनक कुमारी जानकीजी सुर सुत समान दौनों भाइयोंको ऐसी अवस्थामें देख " यह मृतक होगये " ऐसा मनमें स्थिर करती हुई और शोकके मारे उनका वदन मंडल आंसुओंकरके पूर्णहो जानेसे वह अत्यंत दुःखके मारे कहनें लगीं ॥ २३ ॥ इ० श्रीम० आ०यु०सप्तचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४७ ॥ अपने स्वामी और महावलवान लक्ष्मणजीको मृतक देखकर मारे शोक के दुर्वल सीताजी अत्यन्त करुणा भरी वाणीसे इस प्रकार विलाप करनेंलगीं ॥ १ ॥ हाय; सामुद्रिकके जाननेंवाले पुरुष हमको देखकर कहतेहैं

भर्तारमनवद्यांगीलक्ष्मणंचासितेक्षणा ॥ प्रेक्ष्यपांसुषुचेष्टंतौरुरोदजनकात्मजा ॥ २२ ॥ सबाष्पशोकाभिहतासमीक्ष्यतौभ्रातरौदेवसुतप्रभावौ ॥ वितर्कयंतीनिधनंतयोःसादुःखान्वितावाक्यमिदंजगाद ॥ २३ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेसप्तचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४७ ॥ भर्तारंनिहतंदृष्ट्वालक्ष्मणंचमहाबलम् ॥ विललापभृशंसीताकरुणंशोककर्शिता ॥ १ ॥ ऊचुर्लाक्षणिकायेमांपुत्रिण्यविधवेतिच ॥ तेऽद्यसर्वेहतेरामेऽज्ञानिनोऽनृतवादिनः ॥ २ ॥ यज्वनोमहिषींयेमामूचुःपत्नींचसत्रिणः ॥ तेऽद्यसर्वेहतेरामेज्ञानिनोऽनृतवादिनः ॥ ३ ॥ वीरपार्थिवपत्नीनांयेविदुर्भर्तृपूजिताम् ॥ तेऽद्यसर्वेहतेरामेज्ञानिनोऽनृतवादिनः ॥ ४ ॥ ऊचुःसंश्रवणेयेमांद्विजाःकार्तांतिकाःशुभाम् ॥ तेऽद्यसर्वेहतेरामेज्ञानिनोऽनृतवादिनः ॥ ५ ॥

कि तुम पुत्रवती होकर सदा सुहागन रहोगी, परन्तु आज श्रीरामचंद्रजीके मृतक हो जानेंसे उनके वह वचन मिथ्या हुए ॥ २ ॥ और जो लोग हमको देखकर कहते हैं कि तुम यज्ञ करने वाले राजाकी स्त्री होगी; हाय;आज श्रीरामचंद्रजीके मृतक हो जानेसे वह ज्ञानी लोगभी मिथ्यावादी हुए ॥ ३ ॥ हाय! और उन ज्ञानी लोगोंने हमको देखकर यहभी कहाथा कि तुम वीरराजाकी सब रानियोंमें वडी होगी, परन्तु बड़े शोककी वात है कि आज श्रीरामचंद्रजीके मरजानेंसे उन ज्ञानी लोगोंकी वातभी मिथ्या हुई ॥ ४ ॥ ज्योतिष शास्त्रके जाननेंवाले ब्राह्मणोंने हमको देख

शरीरमें जितने घाव थे वह सब भर गये, और वह दोनों ज की समान चिकना शरीर और प्रथमहीकी समान शोभा धारण करते हुए ॥३९॥ इनका तेज, पराक्रम, शरीरका बल, महागुण, उत्साह, दर्शन शक्ति, बुद्धि और स्मरण शक्ति यह सब बातें पहलेसे दुगनी हो गई ॥ ४० ॥ तिस समय महा तेजस्वी गरुडजीनें इन्द्र तुल्य भाइयोंको उठाकर अति हर्षसे अपने हृदयसे लगा लिया; तब श्रीरामचंद्रजी हर्षित अंतःकरण युक्त गरुड़जीसे बोले ॥ ४१ ॥ कि तुम्हारेही प्रसादसे हम इन्द्रजित कृत घोर विपदसे शीघ्र छूट गये, और अब हमारे शरीरोंमें भी प्रथम हीकी समान बल आगयाहै ॥ ४२ ॥ अधिक क्याकहैं पितामह अज और पिता दशरथजीको देख हमें जिस प्रकारका आनंद होता,

तेजोवीर्यंबलंचौजउत्साहश्चमहागुणाः॥प्रदर्शनंचबुद्धिश्चस्मृतिश्चद्विगुणातयोः॥४०॥तावुत्थाप्यमहातेजागरुडोवास
वोपमौ ॥ उभौचसस्वजेहृष्टोरामश्चैनमुवाचह ॥ ४१ ॥ भवत्प्रसादाद्व्यसनंरावणिप्रभवंमहत् ॥ उपायेनव्यतिक्रां
तौशीघ्रंचबलिनौकृतौ ॥ ४२ ॥ यथातातंदशरथंयथाऽजंचपितामहम् ॥ तथाभवंतमासाद्यहृदयंमेप्रसीदति ॥ ४३ ॥
कोभवान्रूपसंपन्नोदिव्यस्रगनुलेपनः ॥ वसानोविरजेवस्त्रेदिव्याभरणभूषितः ॥ ४४ ॥ तमुवाचमहातेजावैनतेयो
महाबलः ॥ पतत्रिराजःप्रीतात्माहर्षपर्याकुलेक्षणम् ॥ ४५ ॥ अहंसखातेकाकुत्स्थप्रियःप्राणोबहिश्चरः ॥ गरुत्मा
निहसंप्राप्तोयुवयोःसाह्यकारणात् ॥ ४६ ॥

आपका दर्शन करनेंसे भी हमारे हृदयनें वैसीही प्रसन्नता प्राप्तकीहै॥४३॥आपनें स्वर्गीय हार और दिव्य अनुलेपन धारण कियाहै; दिव्य अलंकारसे अलंकृत होकर आपने विमल वस्त्र युगल धारण कियेहैं; इस कारण सत्यही सत्य बताइये कि आप कोनहैं? ॥ ४४ ॥ तब ऐसा सुनकर महा तेजस्वी विनताके पुत्र महाबल पक्षिराज गरुड़जी आनंदसे उत्फुल्लनेत्रहो प्रीति सहित श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ ४५ ॥ कि हे श्रीरामचंद्रजी ! हम आपके प्राणके समान प्रिय बाहर घूमनेंवाले सखाहैं; हमारा नाम गरुड़है; आपकी सहायता करनेंके अर्थही यहांपर आयेहैं ॥ ४६ ॥

हैं, इस प्रकार दश इन्द्रियें और मन बुद्धिसे हमको सब शुभ लक्षणवालीही कहते हैं ॥ १२ ॥ हमारे उंगलियोंके पोरुवोंपर सब यव पूरे हैं. कोई रेखासे खंडित नहीं और हाथ पैरकी सब उंगलियें घनीहैं, और समस्त अंग शोभासे युक्त हैं; इन सब लक्षणोंसे लक्षण जाननेंवाले लोग हमको मन्दस्मिता कहा करतेथे ॥ १३ ॥ हा! ज्योतिष शास्त्रके जाननें वाले ब्राह्मण लोगोंनें कहाथा कि "पतिके साथ तुम अधिराज्यपर अभिषिक्त होगी" परन्तु यह सबही आज मिथ्या होगया ॥ १४ ॥ हा! यह दोनों भ्राता जनस्थानके कंटकको दूर करके हमारा पता लगाय लांघनें के अयोग्य समुद्रके पार होकर अंतमें हमारे भाग्यसे गायके खुरके गढ़ेमें भरेहुए जलमें डूबगये ॥१५॥ हाय! इन दोनों वीरोंने वरुण आग्नेय इन्द्र वायव्य

समग्रयवमच्छिद्रंपाणिपादंचवर्णवत् ॥ मंदस्मितेत्येवचमांकन्यालाक्षणिकाविदुः ॥ १३ ॥ आधिराज्येभिषेकोमे ब्राह्मणैः पतिनासह ॥ कृतांतकुशलैरुक्तंतत्सर्वंवितथीकृतम् ॥ १४ ॥ शोधयित्वाजनस्थानंप्रवृत्तिमुपलभ्यच ॥ तीर्त्वासागरमक्षोभ्यंभ्रातरौगोष्पदेहतौ ॥ १५ ॥ ननुवारुणमाग्नेयमैंद्रंवायव्यमेवच ॥ अस्त्रंब्रह्मशिरश्चैवराघवौप्रत्यपद्यत ॥ १६ ॥ अदृश्यमानेनरणेमाययावासवोपमौ ॥ ममनाथावनाथायानिहतौरामलक्ष्मणौ ॥ १७ ॥ नहिदृष्टिपथंप्राप्यराघवस्यरणेरिपुः ॥ जीवन्प्रतिनिवर्तेतयद्यपिस्यान्मनोजवः ॥ १८ ॥ नकालस्यातिभारोस्तिकृतांतश्चसुदुर्जयः ॥ यत्ररामःसहभ्रात्राशेतेयुधिनिपातितः ॥ १९ ॥

और ब्रह्मशिर नामक जिन अस्त्रोंको प्राप्त कियाथा. किस कारणसे यह सब अस्त्र इन्होंनें इस कुसमयमें स्मरण नहीं किये * ॥१६॥ हाय! हाय! मुझ अनाथिनीके नाथ इन्द्रकी समान पराक्रमकारी राम और लक्ष्मणजी मायाके बलसे अन्तर्ध्यान हुए इन्द्रजीतके हाथसे संग्राम भूमिमें मारे गये हैं ॥ १७ ॥ इन्द्रजीतनें अदृश्य रह करही ऐसा किया है; परन्तु संग्राममें वह किसी प्रकारसेभी ऐसा नहीं कर सकता कारण कि रणभूमिमें रघुनंदनकी दृष्टिके सामनें पड़कर मनकी समान वेगवान् शत्रुभी जीता हुआ लौटकर नहीं जाय सकता ॥ १८ ॥ जो कुछभी हो कालके लिये कोईभी कार्य दुष्कर नहीं है. और को तौ जीतभी लियाजाय सकता है, परन्तु कालको कोई जीतनेंवाला नहीं, यदि ऐसा न होता तौ यह दोनों भ्राता रण

* "किस कारणसे उन्होंनें यह सब अस्त्र इस कुसमयमें स्मरण नहीं किये।" यह कथा मूलमें नहीं है; परन्तु टीकाकारका अभिप्रायहै.

दृष्टान्तसे जान गये कि राक्षस लोग कैसे कुटिल होतेहैं ॥ ५४ ॥ महा बलवान विनताके पुत्र गरुड़जी यह कहकर दशरथ कुमार श्रीरामचंद्रजीको भेंट स्नेह सहित यह वचन बोले ॥ ५५ ॥ हे मित्रश्रीरामचंद्रजी! हे धर्मज्ञ! शत्रुके प्रतिभी आप बहुतही अनुग्रह किया करतेहैं। इस समय हम आपकी आज्ञा लेकर अपने स्थानमें जानेंकी इच्छा करतेहैं ॥ ५६ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी हमारे प्रति तुम्हारा सखा संबन्ध किस प्रकारसे हुआ इसके जाननेंको आप कौतूहल प्रकाश नकीजिये, युद्धमें विजय प्राप्त करके जिस समय आप अपने देशको लौटेंगे उसी समय यह सम्बन्ध आपको ज्ञात हो जायगा ॥ ५७ ॥ हे वीर श्रीरामचंद्रजी! आपके बाणोंकी तरंगोंके वेगसे लंकापुरी विध्वंस होकर केवल बालक और बूढे

एवमुक्त्वातदारामंसुपर्णःसमहाबलः ॥ परिष्वज्यचसुस्निग्धमाप्रष्टुमुपचक्रमे ॥ ५५ ॥ सखेराघवधर्मज्ञरिपूणामपिवत्सल ॥ अभ्यनुज्ञातुमिच्छामिगमिष्यामियथासुखम् ॥५६॥ नचकौतूहलंकार्यंसखित्वंप्रतिराघव ॥ कृतकर्मारणेवीरसखित्वंप्रतिवेत्स्यसि ॥५७॥ बालवृद्धावशेषांतुलंकांकृत्वाशरोर्मिभिः ॥ रावणंतुरिपुंहत्वासीतांत्वमुपलप्स्यसे॥५८॥ इत्येवमुक्त्वावचनंसुपर्णःशीघ्रविक्रमः ॥ रामंचनीरुजंकृत्वामध्येतेषांवनौकसाम् ॥५९॥ प्रदक्षिणंततःकृत्वापरिष्वज्यचवीर्यवान् ॥ जगामाकाशमाविश्यसुपर्णःपवनोयथा ॥ ६० ॥ नीरुजौराघवौदृष्ट्वाततोवानरयूथपाः ॥ सिंहनादंतदानेदुर्लांगूलंदुधुवुश्चते ॥६१॥ ततोभेरीःसमाजघ्नुर्मृदंगांश्चाप्यवादयन् ॥ दध्मुःशंखान्संप्रहृष्टाःक्ष्वेलंत्यपियथापुरम्॥६२॥

लोगोंकी रहनेंकी भूमि हो जायगी हम निश्चय कहते हैं कि आप बहुतही शीघ्र संग्राममें रावणका संहार करके सीताजीको प्राप्त कर सकेंगे ॥ ५८ ॥ शीघ्र विक्रम वीर्यवान सुपर्ण (गरुड) जी श्रीरामचन्द्रजी व लक्ष्मणजो दोनोंको रोगरहित करते यह कहकर वानरोंके बीचमें बैठे श्रीरामचन्द्रजीकी ॥ ५९ ॥ प्रदक्षिणा कर पवनकी समान वेग धारण कर आकाशमार्गको गरुडजी चलेगये ॥ ६० ॥ तिसके उपरान्त दोनो रघुवीरोंको रोग रहित देखकर वानर यूथपगण मनमें आनंद मनाय सिंहनादकर अपनी पूंछको कम्पायमान करने लगे ॥ ६१ ॥ इसके पीछे भेरियोंका शब्द उठा मृदंगोंकी नाद होनें लगी इतने शंख बजेकि उनकी ध्वनि आकाशमें गुंजारती रही और सब वानर लोग हर्षित

सैना बड़ी सावधानतासे उद्वेग रहितहो दोनों भ्राता राम लक्ष्मणजीकी रक्षा करती हैं; इस कारण हमें ज्ञात होताहै, कि यह मृतक न होकर मूर्छित होगये हैं यह बात हमने प्रीतिके कारण तुमसे कहीहै. ॥ २७ ॥ हेजानकी! तुम इस समय सावधान होवो, हमको स्पष्ट अनुमान करनेंसे जान पड़ताहैकि राम लक्ष्मणजीका कुछ अमंगल नहीं हुआ, तुम्हारे प्रति हमारा स्नेह जो है इसी कारण तौ हम तुमसे यह बात कहती हैं ॥ २८ ॥ हेमैथिलि! हमनें पहले कभी तुमसे कोई मिथ्या वार्त्ता न कही, न अब कहैं, हे देवि! अधिक क्या कहैं तुमने अपने निर्मल चरित्रके प्रभावसे हमारे अंतःकरणको अपने वशमें कर लियाहै ॥ २९ ॥ हमनें श्रीरामचंद्र व लक्ष्मणजीकी जो सौम्यमूर्त्ति देखीहै; तिसको देखकर

सात्वंभवसुविस्रब्धाअनुमानैःसुखोदयैः॥ अहतौपश्यकाकुत्स्थौस्नेहादेतद्ब्रवीमिते ॥२८॥ अनृतंनोक्तपूर्वंमेनचवक्ष्यामिमैथिलि ॥ चारित्रसुखशीलत्वात्प्रविष्टासिमनोमम ॥ २९ ॥ नेमौशक्यौरणेजेतुंसेंद्रैरपिसुरासुरैः ॥ तादृशंदर्शनंदृष्ट्वामयाचोदीरितंतव ॥ ३० ॥ इदंतुसुमहच्चित्रंशरैःपश्यस्वमैथिलि ॥ विसंज्ञौपतितावेतौनैवलक्ष्मीर्विमुंचति ॥ ३१ ॥ प्रायेणगतसत्वानांपुरुषाणांगतायुषाम् ॥ दृश्यमानेषुवक्त्रेषुपरंभवतिवैकृतम् ॥ ३२ ॥ त्यजशोकंचदुःखंचमोहंचजनकात्मजे ॥ रामलक्ष्मणयोरर्थेनाद्यशक्यमजीवितुम् ॥ ३३ ॥

हम निश्चयही. कह सकतीहैं कि इनको पराजित करनेकी सुर व असुरोंके सहित इन्द्रमेंभी सामर्थ्य नहीं है, फिर यह राक्षस बिचारे तो हैं ही क्या वस्तु? ॥ ३० ॥ हेरामप्राणवल्लभे! और एक बात आश्चर्यकी यहभी है कि यह दोनों बाणोंसे विद्ध और संज्ञाहीन होकर पृथ्वी पर गिर पड़े हैं; परन्तु जिस परभी इनकी सुन्दरताईमें कुछ अन्तर नहीं आयाहै ॥ ३१ ॥ बहुधा देखनेंमें आताहै कि प्राणियोंका जीवन नष्ट या शक्तिहीन होंनेपर उनके मुखकी शोभा नहीं रहती वरन मुखकी आकृतिं विगड़ जातीहै हेजनककुमारी! हम इसीलिये कहतीहैं कि तुम शोक दुःख और मोहको छोड़ो; कारणकि यदि राम लक्ष्मण जीवरहित होते तौ इनके शरीरोंपर ऐसा लावण्य किसी प्रकारसेभी नहीं रहता ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

समय उन वानरवृन्दोंका यह बड़ा भारी शब्द उठनेंसे हमको अत्यन्तही शंका होतीहै ॥ ५ ॥ राक्षसोंका स्वामी रावण निज मंत्रियोंसे ऐसा कह
अपने निकट बैठे हुए राक्षसोंसे बोला ॥ ६ ॥ कि इन वनवासी वानर लोगोंका ऐसे शोकके समय एकाएकी आनंदित होंनेका कारण तुम
लोग जानकर शीघ्र आओ ॥ ७ ॥ राक्षसगण इस प्रकारसे रावणकी आज्ञा पाय सावधानहो एक धवरहरे पर जोकि अति ऊंचाथा चढ़े और
तब उन्होंने देखा कि महात्मा सुग्रीवजी उस वानर वाहिनीकी रक्षा करते हैं ॥ ८ ॥ श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी यह दोनों भ्राता भी नाग फांससे
छुटकर उठ बैठेहैं, यह देखकर यह राक्षस अत्यन्तही विषादित हुए ॥९॥ उस समय यह राक्षस त्रासित मनसे कोटकी अति ऊंची भीतसे नीचे

एवंचवचनंचोक्त्वामंत्रिणोराक्षसेश्वरः ॥ उवाचनैर्ऋतांस्तत्रसमीपपरिवर्तिनः ॥ ६ ॥ ज्ञायतांतूर्णमेतेषांसर्वेषांचवनौ
कसाम् ॥ शोककालेसमुत्पन्नेहर्षकारणमुत्थितम् ॥ ७ ॥ तथोक्तास्तेसुसंभ्रान्ताःप्राकारमधिरुह्यच ॥ ददृशुःपालितांसे
नांसुग्रीवेणमहात्मना ॥८॥ तौचमुक्तौसुघोरेणशरबंधेनराघवौ ॥ समुत्थितौमहाभागौविषेदुःसर्वराक्षसाः ॥९॥ संत्रस्त
हृदयाःसर्वेप्राकारादवरुह्यते ॥ विवर्णाराक्षसाघोराराक्षसेंद्रमुपस्थिताः ॥१०॥ तदप्रियंदीनमुखारावणस्यचराक्षसाः ॥
कृत्स्नंनिवेदयामासुर्यथावद्वाक्यकोविदाः ॥ ११ ॥ यौताविंद्रजितायुद्धेभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ निबद्धौशरबंधेननिष्प्र
कंपभुजौकृतौ ॥ १२ ॥ विमुक्तौशरबंधेनदृश्येतेतौरणाजिरे ॥ पाशानिवगजौछित्त्वागजेंद्रसमविक्रमौ ॥ १३ ॥ त
च्छ्रुत्वावचनंतेषांराक्षसेंद्रोमहाबलः ॥ चिंतारोपसमाक्रांतोविवर्णवदनोऽभवत् ॥ १४ ॥

उतरनें लगे, उनके मुखकी कान्ति मलीन होगई और वह सब अत्यन्त दीन भावसे रावणके निकट आये ॥ १० ॥ उन दीन मुख वचन बोलनेमें
चतुर राक्षसोंनें रावणके अप्रिय वचन यथार्थ २ निवेदन किये ॥ ११ ॥ कि जो राम लक्ष्मण संग्राम भूमिमें इन्द्रजीतके द्वारा बाणोंसे विंध गयेथे
और तिसके बाद जिनकी दोनो भुजायें कुछ भी हिलडुल नहीं सकती थीं ॥ १२ ॥ इस समय हमनें देखाकि गजेन्द्रविक्रमकारी वह दोनों
भ्राता दो गजोंकी समान नागफांशको तोडकर बाणबन्धनसे छूट रणभूमिमें विराजमान होरहेहैं ॥ १३ ॥ महाबलवान राक्षसोंका स्वामी
राक्षसोंके मुखसे यह समाचार सुनकर चिन्ताके वशमें हुआ, और शोचके मारे उस समय उसका मुखमंडलभी प्रभाहीन होगया ॥ १४ ॥

और बलकी अधिकाईके अनुसार वह इस समय सचेत हुए ॥ ३ ॥ जाग कर श्रीरामचंद्रजी अपने छोटे भइया लक्ष्मणजीको दीन वदन किये शरीरसे रक्त बहाते पृथ्वीपर शयन करते हुए देखकर आतुर पुरुषकी समान रोदन करनें लगे ॥ ४ ॥ कि जब हमनें प्राणोंसेभी अधिक अपने प्रिय भ्राता लक्ष्मणजीको युद्धमें पराजित और पृथ्वी पर पड़े हुए देखा, फिर भला अब हम सीताका उद्धार करके क्या करेंगे, और हमारे इस जीवन धारण करनेंकाभी क्या प्रयोजनहै? ॥ ५ ॥ हाय ! पृथ्वीपर ढूंढ़नेंसे सीताकी समान अनेक स्त्रियां पाई जासकतीहैं; परन्तु त्रिलोकीमें ढूंढ़ नेंसेंभी लक्ष्मणकी समान संग्रामका मंत्री भाई हम नहीं पाय सकेंगे "मिलहिं न जगत सहोदर भ्राता" ॥ ६ ॥ जो यह सुमित्राजीके आनंद बढ़ानें

ततोदृष्ट्वासरुधिरंनिषण्णंगाढमर्पितम् ॥ भ्रातरंदीनवदनंपर्यदेवयदातुरः ॥ ४ ॥ किंनुमेसीतयाकार्यंलब्धयाजीविते नवा ॥ शयानंयोद्यपश्यामिभ्रातरंयुधिनिर्जितम् ॥ ५ ॥ शक्यासीतासमानारीमर्त्यलोकेविचिन्वता ॥ नलक्ष्मण समोभ्रातासचिवःसांपरायिकः ॥ ६ ॥ परित्यक्ष्याम्यहंप्राणान्वानराणांतुपश्यताम् ॥ यदिपंचत्वमापन्नःसुमित्रानं दवर्धनः ॥७॥ किंनुवक्ष्यामिकौसल्यांमातरंकिंनुकैकयीम् ॥ कथमंबांसुमित्रांचपुत्रदर्शनलालसाम् ॥ ८ ॥ विवत्सां वेपमानांचवेपंतींकुररीमिव ॥ कथमाश्वासयिष्यामियदियास्यामितंविना ॥ ९ ॥ कथंवक्ष्यामिशत्रुघ्नंभरतंचयश स्विनम् ॥ मयासहवनंयातोविनातेनाहमागतः ॥ १० ॥

वाले लक्ष्मणजी मृतक होगयेहों तब हम इसी मुहूर्त्तमें समस्त वानरोंके सन्मुखही प्राण त्याग करेंगे ॥ ७ ॥ क्या कष्टहै ? जबकि हम अयोध्या जीमें लौटकर जांयगे तब माता, कौशल्या, कैकेयी, और पुत्रके दर्शनकी लालसा किये माता सुमित्राजीसे क्या कहेंगे ॥ ८ ॥ हादैव! जो हम अयोध्यापुरीको विना लक्ष्मणकेही चलेजांय; तो कुररीकी समान कम्पायमान उन वत्सरहित सुमित्राजीको हम क्या कहकर समझावेंगे ॥ ९ ॥ हा! हम जिनके साथ वनमें आयेथे, उन लक्ष्मणजीके विना अयोध्यामें लौट कर हम यशस्वी भरत और शत्रुघ्नसे क्या कहेंगे कुछ समझमें नहीं आता ॥ १० ॥

नाद करते हुए हर्षित मनसे धूम्राक्षके चारों ओर खड़े होगये, वह समस्त राक्षस अतिशय बलवानथे उनकी कमरमें घंटे लगे हुए बज रहेथे ॥२३॥ विविध भांतिके अस्त्र शस्त्र ग्रहणकर, शूल, मुद्गर, गदा, पटा, दंड, मूसल आदि धारण किये ॥ २४ ॥ बड़े २ मुद्गर, धनवासी, भाले, फांसी, फरसे आदि अस्त्र शस्त्र लिये समस्त राक्षसगण मेघकी समान गर्जन करते हुए चले ॥ २५ ॥ उन राक्षसोंमें कोई २ कवच धारण करके ध्वजा पताकासे शोभायमान विचित्र चित्रित रथोंमें सवार हुए और कोई २ सुवर्ण जाल मंडित विविध भांतिके मुखवाले गधोंपर चढ़े ॥२६॥ और कोई २ राक्षस अति शीघ्रतासे चलनेंवाले घोडों पर चढ़ चले और कोई २ मदान्ध हाथियोंकी पीठपर सवार हुए; इस प्रकारसे वह राक्षसव्याघ्र लोग अजेय व्या

विविधायुधहस्ताश्चशूलमुद्गरपाणयः ॥ गदाभिःपट्टिशैर्दंडैरायसैर्मुसलैरपि ॥ २४ ॥ परिघैर्भिंदिपालैश्चभल्लैः पाशैःपरश्वधैः ॥ निर्ययूराक्षसाघोरानर्दंतोजलदायथा ॥ २५ ॥ रथैःकवचिनस्त्वन्येध्वजैश्चसमलंकृतैः ॥ सुवर्ण जालविहितैःखरैश्चविविधाननैः ॥ २६ ॥ हयैःपरमशीघ्रैश्चगजैश्चैवमदोत्कटैः ॥ निर्ययुर्नैर्ऋतव्याघ्राव्याघ्राइवदुरा सदाः ॥ २७ ॥ मृगसिंहमुखैर्युक्तंखरैःकनकभूषितैः ॥ आरुरोहरथंदिव्यंधूम्राक्षःखरनिःस्वनः ॥ २८ ॥ सनिर्या तोमहावीर्योधूम्राक्षोराक्षसैर्वृतः ॥ हसन्वैपश्चिमद्वाराद्धनूमान्यत्रतिष्ठति ॥ २९ ॥ रथप्रवरमास्थायखरयुक्तंखर स्वनम् ॥ प्रयांतंतुमहाघोरंराक्षसंभीमदर्शनम् ॥ ३० ॥ अंतरिक्षगताःक्रूराःशकुनाःप्रत्यषेधयन् ॥ रथशीर्षेम हाभीमोगृध्रश्चनिपपातह ॥ ३१ ॥

घ्रकी समान गमन करनें लगे ॥ २७ ॥ महावीर धूम्राक्ष कनकभूषित भेडियां सिंह और व्याघ्र मुखवाले गधे जुते हुए रथमें बैठकर रणमें जानें लगा ॥ २८ ॥ इस प्रकार महावीर धूम्राक्ष बड़ीभारी राक्षसोंकी सेनाके साथ जहां पर हँसते हुए मुखसे हनुमानजी डट रहेथे लंकाके उस पश्चिम द्वारपर आया ॥ २९ ॥ कठोर शब्द करनेंवाले गधे जुते, श्रेष्ठ रथपर सवार हो, महाघोर, भयंकर विक्रमकारी राक्षसको जाताहुआ देख ॥ ३० ॥ आकाशमें प्राप्त हुए क्रूर शकुन विविध अमंगलकारी चिह्नोंसे उस राक्षस को निवारण करते हुए कि पहले तो धूम्राक्षके रथकी छत्रीपर एक बड़ा

प्रीति दिखलातेथे और हमारीभी आज्ञामें सदाही रहतेथे; आज इस कुभागी मुझ दशरथके पुत्रकी कुनीतिसेही उन लक्ष्मणजीकी ऐसी दशा हुई॥१८॥ हाय! यह वीर लक्ष्मणजी भी जब कि महा कोपके वश होजाते; तबभी कभी इन्होंनें हमको कोई कठोर वचन न सुनायाथा. ऐसा तो हमको स्मरणनहीं होता अर्थात् इन्होंनें कभी हमको कठोर वचन नहीं कहा॥१९॥हाय! जो लक्ष्मण दोबांहोंवाले होकरभी जबकि एक वेगमेंही पांच २ शत बाण छोडतेथे. तब अस्त्र चलानेमें यह सहस्र बाहोंवाले कार्त्तवीर्यसेभी अधिकथे; कारणकि वह तो हजार बाहें होंनेपर एक कालमें पांचशत बाण चलाताथा; परन्तु यह दोबांहोंसेंही एक कालमें पांच शत बाण छोड़तेथे ॥ २० ॥ हा! जो वीर अपने अस्त्रोंके बलसे इन्द्रके वज्रादि अस्त्रोंको,भी निवारणकरसकतेथे;और पहले जिनको बड़े मोलकी शय्या पर शयन करनेंसेभी निद्रा न आतीथी; आज वही लक्ष्मणजी मेघनादके बाणोंसे मृतक

सुरुष्टेनापिवीरेणंलक्ष्मणेननसंस्मरे ॥ परुषंविप्रियंचापिश्रावितंतुकदाचन ॥ १९ ॥ विससर्जैकवेगेनपंचबाणशतानि यः ॥ इष्वस्त्रेष्वधिकस्तस्मात्कार्तवीर्याच्चलक्ष्मणः ॥ २० ॥ अस्त्रैरस्त्राणियोहन्याच्छक्रस्यापिमहात्मनः ॥ सोयमुर्व्यां हतःशेतेमहार्हशयनोचितः ॥ २१ ॥ तत्तुमिथ्याप्रलप्तंमांप्रधक्ष्यतिनसंशयः ॥ यन्मयानकृतोराजाराक्षसानांविभीषणः ॥ २२ ॥ अस्मिन्मुहूर्तेसुग्रीवप्रतियातुमिहार्हसि ॥ सत्त्वहीनंमयाराजन्रावणोभिभविष्यति ॥ २३ ॥ अंगदंतुपुरस्कृत्यससैन्यंसपरिच्छदम् ॥ सागरंतरसुग्रीवनीलेनचनलेनच ॥ २४ ॥ कृतंहिसुमहत्कर्मयदन्यैर्दुष्करंरणे ॥ ऋक्षराजेनतुष्यामिगोलांगूलाधिपेनच ॥ २५ ॥

होकर पृथ्वीपर शयन कररहे हैं ॥ २१ ॥ हाय! हमनें जो "विभीषणको लंकाका राजा बनावेंगे" ऐसी प्रतिज्ञा कीथी, और अब इस प्रतिज्ञाको पूरा न करसके बस इस समय वही मिथ्या प्रलाप हमारी आत्माको दग्ध किये डालताहै ॥ २२ ॥ हे सुग्रीव! जबकि हम प्राणत्याग करेंगे; तब रावण तुमको बलहीन समझकर अवश्यही कोई न कोई उपद्रव करेगा, इस कारण तुम इसी मुहूर्त यहां परसे अपनें देश किष्किन्धा को चले जाओ ॥ २३ ॥ हे सुग्रीव! तुम अंगद व सब सैनाकोभी आगे२ करकै नील नल और भी सैनाके सब सामान सहित समुद्रके पार होकर शीघ्रता करकै यहांसे चले जाओ ॥ २४ ॥ हनुमाननें हमारे लिये रणभूमिमें औरसे न होनेके योग्य जो कठिन कर्म किये, और ऋक्षराज जाम्बवान व

युद्ध प्रारंभ हुआ उस समय वह बड़े २ वृक्ष, शूल, मुद्गर चलाय २ कर परस्पर परस्परके ऊपर प्रहार करनें लगे ॥ २ ॥ निशाचरोंनें वानर लोगोंको सब भांतिसे घेर लिया, और, वानर गणभी वृक्षोंको चलाय २ राक्षसोंको पृथ्वीपर शयन करानें लगे ॥ ३ ॥ राक्षसभी क्रोधमें भरकर तीखे बाण समूह और सीधे चलनेंवाले घोर रूप कंकपत्रयुक्त बाणोंसे वानरोंका नाश करनें लगे ॥ ४ ॥ उस समय महाबलवान वानरगण भयंकर गदा, शूल, पटा, मुद्गर घोर परिघ और चित्र विचित्र शूलोंके द्वारा॥५॥राक्षसोंसे विदारितहो क्रोधमें भरकर और उत्साहसे भरपूरहो भयरहितकी समान युद्धके कर्म करनें लगे ॥ ६ ॥ वानरोंके शरीर बाणोंसे घायल होनें लगे; उनकी देहमें स्थान २ पर घाव होगये, वह वानर यूथप राक्ष

राक्षसैर्वानराघोराविनिकृत्ताःसमंततः ॥ वानरैराक्षसाश्चापिद्रुमैर्भूमिसमीकृताः ॥ ३ ॥ राक्षसास्त्वभिसंक्रुद्धावानरान्निशितैःशरैः ॥ विव्यधुर्घोरसंकाशैःकंकपत्रैरजिह्मगैः ॥ ४ ॥ तेगदाभिश्चभीमाभिःपट्टिशैःकूटमुद्गरैः ॥ घोरैश्चपरिघैश्चित्रैस्त्रिशूलैश्चापिसंश्रितैः ॥ ५ ॥ विदार्यमाणारक्षोभिर्वानरास्तेमहाबलाः ॥ अमर्षजनितोद्धर्षाश्चक्रुःकर्माण्यभीतवत् ॥ ६ ॥ शरनिर्भिन्नगात्रास्तेशूलनिर्भिन्नदेहिनः ॥ जगृहुस्तेद्रुमांस्तत्रशिलाश्चहरियूथपाः ॥ ७ ॥ तेभीमवेगाहरयोनर्दमानास्ततस्ततः ॥ ममंथूराक्षसान्वीरान्नामानिचबभाषिरे ॥ ८ ॥ तद्बभूवाद्भुतंघोरंयुद्धंवानररक्षसाम् ॥ शिलाभिर्विविधाभिश्चबहुशाखैश्चपादपैः ॥ ९ ॥ राक्षसामथिताःकेचिद्वानरैर्जितकाशिभिः ॥ प्रवेमूरुधिरंकेचिन्मुखैरुधिरभोजनाः ॥ १० ॥ पार्श्वेषुदारिताःकेचित्केचिद्राशीकृताद्रुमैः ॥ शिलाभिश्चूर्णिताःकेचित्केचिद्दंतैर्विदारिताः ॥ ११ ॥

सोंके निकटसे अपनी पराजय सहन न करके बड़े २ वृक्षोंको ग्रहणकर उनकी ओर दौड़े ॥ ७ ॥ भयंकर वेगवान वानर लोग सिंहनाद करके वीर राक्षसोंका संहार करनें लगे ; चोट चलानेंके समय सबही एक दूसरेको अपना २ नाम बतानें लगे ॥ ८ ॥ उस कालमें अनेक शाखाओंसे युक्त वृक्ष और विविध भांतिकी शिलाओंके चलाये जानेंसे वह वानर और राक्षसोंका घोर युद्ध अद्भुत जान पड़नें लगा ॥ ९ ॥ उस समय कितनेंही रुधिर पान करनेंवाले निशाचरगण जीतेजानेंसे प्रसन्न वानरोंसे मारखाय रुधिर उगलनें लगे ॥ १० ॥ इसी प्रकारसे किसी २ की देह छिन्न होगई , कोई २ वृक्षोंकी चोटसे मरगये, कोई २ शिलाओंकी चोटसे पिसकर चूर्णकी समान होगये, और कोई २ तीक्ष्ण दातोंके

इसके पीछे महाबलवान् महातेजवान् वानरराज सुग्रीवजी बोले कि जलके बीचमें प्रचंड पवनके लगनेंसे नौकाकी समान किस प्रकारसे यह वानरोंकी सैना ऐसी चलायमान हुई ॥ १ ॥ सुग्रीवजीके ऐसे वचन सुन वालिके पुत्र अंगद बोले क्या तुम महारथी श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी को नहीं देखते! ॥ २ ॥ जो दशरथकुमार बड़े वीर होनेपरभी बाणजालसे विंधे हैं, इनके सब अंगोंसे रुधिर निकल रहा है, और बाणोंकी शय्या पर सोय रहे हैं जबकि यही ऐसी अवस्थामें पड़कर दुःख पाय रहे हैं तब सैनाके इस प्रकारसे चलायमान होनेंका कारण इसके अतिरिक्त और क्या हो सकता है? तिसके पीछे वानरोंके स्वामी सुग्रीवजी अपने भतीजे अंगदसे बोले कि वत्स! वानरगण जो ऐसे चलायमान हुए हैं, इसका कोई बड़ा भारी

अथोवाचमहातेजाहरिराजोमहाबलः ॥ किमियंव्यथितासेनामूढवातेवनौर्जले ॥ १ ॥ सुग्रीवस्यवचःश्रुत्वावालिपुत्रोंगदोब्रवीत् ॥ नत्वंपश्यसिरामंचलक्ष्मणंचमहारथम् ॥ २ ॥ शरशालाचितौवीरावुभौदशरथात्मजौ ॥ शरतल्पेमहात्मानौशयानौरुधिरोक्षितौ ॥३॥ अथाब्रवीद्वानरेंद्रःसुग्रीवःपुत्रमंगदम् ॥ नानिमित्तमिदंमन्येभवितव्यंभयेनतु ॥ ४ ॥ विषण्णवदनाह्येतेत्यक्तप्रहरणादिशः ॥ पलायंतेत्रहरयस्त्रासादुत्फुल्ललोचनाः ॥ ५ ॥ अन्योन्यस्यनलज्जंतेननिरीक्षंतिपृष्ठतः ॥ विप्रकर्षंतिचान्योन्यंपतितंलंघयंतिच ॥ ६ ॥ एतस्मिन्नंतरेवीरोगदापाणिर्विभीषणः ॥ सुग्रीवंवर्धयामासराघवंचजयाशिषा ॥ ७ ॥ विभीषणंचसुग्रीवोदृष्ट्वावानरभीषणम् ॥ ऋक्षराजंमहात्मानंसमीपस्थमुवाचह ॥ ८ ॥

कारण है ऐसा समझ पड़ताहै कि कोई भय आया होगा॥ ३ ॥४॥ यह देखो वानर गण व्याकुल मुख किये समस्त अस्त्र शस्त्रोंको त्याग चारों ओरको भागे जाते हैं; और भयके मारे उन सबके नेत्र लाल और चंचल हो रहे हैं ॥ ५ ॥ देखो ! यह सब ऐसे डरगये हैं कि भागनेंमें कुछभी लाज नहीं करते, कोई सन्मुख पड़कर गतिको रोकै तो उसको खैंचकर पीछे ढकेल देते; और कोई गिरजाय तो उसको लांघते हुए सब भागे जाते हैं; और कोई पीछेकी ओरको दृष्टि नहीं करता ॥ ६ ॥ सुग्रीवजी ऐसा कहरहे थे कि इतनेमें वीर विभीषणजी गदा हाथमें लिये वहां आय पहुंचे और विजयसूचक आशीर्वाद देकै वचनोंसे रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी और वानरराज सुग्रीवजीको प्रणाम करते हुए ॥ ७ ॥ तब सुग्रीवजी विभीष

विह्वलहो जीव गँवाय संग्रामभूमिमें गिरपड़े ॥ २० ॥ और बहुतसे वानर क्रोधित राक्षसों करके रणभूमिमें मारे जायकर रुधिर बहतीहुई देहसे
पृथ्वीपर गिर पड़े और कोई २ लोहू लुहान होकर भागनें लगे ॥ २१ ॥ इस दारुण संग्राममें राक्षस गण क्रोधके मारे यमराजकी समान मूर्त्ति धार
णकर वानरोंके हृदय चीरनें फाड़नें लगे, कि जिस्से कोई २ वानर एक ओर को गिर पड़े; और कोई २ त्रिशूलसे घायल हुए और बहुतसे अस्त्रके
प्रभावसे भाग निकले ॥२२ ॥ इस प्रकारसे वानर और राक्षसोंका भयंकर युद्ध होने लगा, दोनो ओरसे अनेक अस्त्र शस्त्र चले, और शिला समेत
वृक्षोंकी वृष्टि होनें लगी ॥ २३ ॥ धीरे २ रणभूमि गीत विद्याका रूप धारण करती हुई, राक्षसोंके धनुषोंके रोदोंका शब्द वीनाके तारका कार्य

केचिद्विनिहताभूमौरुधिरार्द्रावनौकसः ॥ केचिद्विद्राविता नष्टाःसंक्रुद्धैराक्षसैर्युधि ॥ २१ ॥ विभिन्नहृदयाःकेचिदेकपा
र्श्वेनशायिताः ॥ विदारितास्त्रिशूलैश्चकेचिदांत्रैर्विनिःसृताः ॥ २२ ॥ तत्सुभीमंमहद्युद्धंहरिराक्षससंकुलम् ॥ प्रबभौ
शस्त्रबहुलंशिलापादपसंकुलम् ॥ २३ ॥ धनुर्ज्यातंत्रिमधुरंहिक्कातालसमन्वितम् ॥ मंदस्तनितगीतंतद्युद्धंगांधर्वमा
बभौ ॥ २४ ॥ धूम्राक्षस्तुधनुष्पाणिर्वानरान्रणमूर्धनि ॥ हसन्विद्रावयामासदिशस्ताञ्छरवृष्टिभिः ॥ २५ ॥ धू
म्राक्षेणार्दितंसैन्यंव्यथितंप्रेक्ष्यमारुतिः ॥ अभ्यवर्ततसंक्रुद्धःप्रगृह्यविपुलांशिलाम् ॥ २६ ॥ क्रोधाद्द्विगुणताम्राक्षः
पितुस्तुल्यपराक्रमः ॥ शिलांतांपातयामासधूम्राक्षस्यरथंप्रति ॥ २७ ॥ आपतंतींशिलांदृष्ट्वागदामुद्यम्यसंभ्रमात् ॥
रथादाप्लुत्यवेगेनवसुधायांव्यतिष्ठत ॥ २८ ॥

करनें लगा और वीरोंको गिरनेंके समय जो हिचकियें आनें लगीं, वही ताल गिनीगई, और हाथियोंका गर्जनाही उस समय गीतकी समान जान पड़
ताथा, इस प्रकार यह द्वन्द्वयुद्ध गन्धर्वविद्याकी तुल्य शोभाको प्राप्त हुआ ॥ २४ ॥ राक्षस धूम्राक्ष इस प्रकारसे संग्राम भूमिमें धनुष धार बा
णवर्षाय सर्व दिशा छाय हँसते २ सब वानरोंको मार भगाय देता हुआ॥२५॥धूम्राक्षके हाथसे वानरोंकी सैनाको अत्यन्त पीड़ित देखकर हनुमान्
क्रोधके मारे घुमाते बड़ी भारी शिला ग्रहण करके उस्से युद्ध करनेंके लिये आगे बढ़े ॥ २६ ॥ पिता पवनकी त[illegible]
क्रोधके मारे अरुणनयन हो उस बडी भारी शिलाको धूम्राक्षके रथपर अति जोरसे मारते [illegible]

टिल बुद्धिसे यह सरल बुद्धिवाले दोनों राजकुमार धोखा खाय गये हैं ॥ १६ ॥ यह बाणोंसे युक्त और शरीरमें रुधिर निकलनेंके कारण पृथ्वीमें पड़े रहनेंसे कांटोंसे युक्त सैंजनेके वृक्षकी समान जान पड़ते हैं ॥ १७ ॥ हाय! जिनके वीर्यके ऊपर भरोसा करकेही हमनें लंकाकी राज्यगद्दीपर बैठनेंकी अभिलाषा की थी, इस समय वही पुरुषश्रेष्ठ दोनों राजकुमार अपनी देहका नाश करनेके लियेही पृथ्वीपर पड़े हैं ॥ १८ ॥ हाय! इनकी ऐसी अवस्था होनेपर हम तो जीते हुए मर गये; और मनमें जो राज्यप्राप्त करनेंकी बलवती आशा हुईथी, वहभी नाशको प्राप्त हुई, परन्तु शत्रु रावणकी प्रतिज्ञाभी पूरी हुई और इसके मनोरथभी पूरे हुए ॥ १९ ॥ जब कि विभीषणजी इस

शरैरिमावलंविद्धौरुधिरेणसमुक्षितौ ॥ वसुधायामिमौसुप्तौदृश्येतेशल्यकाविव ॥ १७ ॥ ययोर्वीर्यमुपाश्रित्यप्रतिष्ठा
कांक्षितामया ॥ ताविमौदेहनाशायप्रसुप्तौपुरुषर्षभौ ॥ १८ ॥ जीवन्नद्यविपन्नोस्मिनष्टराज्यमनोरथः ॥ प्राप्तप्रतिज्ञश्च
रिपुःसकामोरावणःकृतः ॥ १९ ॥ एवंविलपमानंतंपरिष्वज्यविभीषणम् ॥ सुग्रीवःसत्वसंपन्नोहरिराजोऽब्रवीदिदम् ॥ २० ॥
राज्यंप्राप्स्यसिधर्मज्ञलंकायांनेहसंशयः ॥ रावणःसहपुत्रेणस्वकामंनेहलप्स्यते ॥ २१ ॥ गरुडाधिष्ठितावेतावुभौरा
घवलक्ष्मणौ ॥ त्यक्त्वामोहंवधिष्येतेसगणंरावणंरणे ॥ २२ ॥ तमेवंसांत्वयित्वातुसमाश्वास्यतुराक्षसम् ॥ सुषेणंश्वशु
रंपार्श्वेसुग्रीवस्तमुवाचह ॥ २३ ॥ सहशूरैर्हरिगणैर्लब्धसंज्ञावरिंदमौ ॥ गच्छत्वंभ्रातरौगृह्यकिष्किंधांरामलक्ष्मणौ ॥ २४ ॥

प्रकारसे विलाप कररहेथे, तब बलवान सत्वसंयुक्त वानरराज सुग्रीवजी उनको हृदयसे लगाय भलीभांति भेंटकर बोले ॥ २० ॥ हेधर्मज्ञ! आप निश्चय जानलें कि रावण अथवा इन्द्रजीतका मनोरथ किसी प्रकारसे पूर्ण नहीं होगा। और निश्चयही लंकापुरीका राज्य आपको मिलैगा, इसमें कुछभी संशय नहीं ॥ २१ ॥ यह दोनों भ्राता गरुड़जीके उपासकहैं, बस गरुड़जीके आतेही राम लक्ष्मण दोनों भाई संज्ञा प्राप्त करेंगे, और इनका मोह दूर होजायगा, और फिर यह बहुतही शीघ्र संग्रामभूमिमें रावणको वंश सहित विध्वंस करेंगे ॥ २२ ॥ सुग्रीवजी राक्षसश्रेष्ठ विभीषणजीको इस प्रकारसे समझा बुझाकर निकट बैठे हुए अपने श्वशुर सुषेणनामक यूथपसे बोले ॥ २३ ॥ कि तुम इन दोनों भ्राता

वड़ी भारी शिला धूम्राक्षके ऊपर चलाई,कि जिस गिरिशृङ्गके प्रहारसे उस राक्षसके अंग फटकर फैलगये ॥३६॥पर्वत जिस प्रकार फटकर गिर जाता
है, वैसेही धूम्राक्षके अंग फट जानेंके कारण पृथ्वीपर गिर पड़ा और उसके प्राण निकल गये;और मरनेंसे बचे बचाये राक्षस गण सैनापति धूम्राक्षको
मरा हुआ देखकर अत्यन्तही त्रासित हुए;और वानर गणोंकी मार खाय मरनेके निकट पहुंच भयके मारे शीघ्रही लंकापुरीको भागगये॥३७॥महाबलवा
न् पवनकुमार हनुमानजी इस प्रकारसे शत्रुओंका संहार करते हुए रणभूमिमें रुधिर की नदी वहाय शत्रुके मारनेंके श्रमसे अत्यन्त थकित होंनेपरभी
वानर गणों करके पूजितहो अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त करते हुए ॥३८॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे द्विपंचाशःसर्गः ॥ ५२ ॥

पपातसहसाभूमौविकीर्णइवपर्वतः ॥ धूम्राक्षंनिहतंदृष्ट्वाहतशेषानिशाचराः ॥ त्रस्ताःप्रविविशुर्लंकांवध्यमानाःप्लवंग
मैः ॥ ३७ ॥ सतुपवनसुतोनिहत्यशत्रून्क्षतजवहाःसरितश्चसंविकीर्य ॥ रिपुवधजनितश्रमोमहात्मामुदमगमत्क
पिभिःसुपूज्यमानः ॥ ३८ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआ०युद्धकांडेद्विपंचाशःसर्गः ॥ ५२ ॥ ॥छ॥ धूम्राक्षं
निहतंश्रुत्वारावणोराक्षसेश्वरः ॥ क्रोधेनमहताविष्टोनिःश्वसन्नुरगोयथा ॥ १ ॥ दीर्घमुष्णंविनिःश्वस्यक्रोधेनकलुषी
कृतः ॥ अब्रवीद्राक्षसंक्रूरंवज्रदंष्ट्रंमहाबलम् ॥ २ ॥ गच्छत्वंवीरनिर्याहिराक्षसैःपरिवारितः ॥ जहिदाशरथिंरामंसुग्री
वंवानरैःसह ॥ ३ ॥ तथेत्युक्त्वाद्रुततरंमायावीराक्षसेश्वरः ॥ निर्जगामबलैःसार्धंबहुभिःपरिवारितः ॥ ४ ॥ नागैरश्वैः
खरैरुष्ट्रैःसंयुक्तःसुसमाहितः ॥ पताकाध्वजचित्रैश्चबहुभिःसमलंकृतः ॥ ५ ॥

राक्षसोंका स्वामी रावण धूम्राक्षका संग्राममें मरना सुन अत्यन्त क्रोधयुक्तहो सर्पकी समान लंबे २ श्वास त्याग करनें लगा ॥ १ ॥ तिसके
पीछे क्रोधसे अधीरहो लंबे २ और गरम २ श्वास छोड़ताहुआ रावण क्रूरस्वभावी महाबलवान वज्रदंष्ट्र नामक राक्षससे बोला ॥ २ ॥ हेवीर!
तुम राक्षसोंकी सैनाके साथ रणभूमिमें जायकर दशरथकुमार रामचंद्र और वानरगणोंके साथ सुग्रीवका नाश कर आओ ॥ ३ ॥ रावणकी
ऐसी आज्ञा पाय अति शीघ्रतासे मायावी राक्षसोंका ईश्वर वज्रदंष्ट्र बहुतसे राक्षसोंको संग लेकर चला ॥ ४ ॥ और उसके साथमें, हाथी, घोड़े, गधे

कियाथा वहांपर चन्द्र और द्रोण नामक दो पर्वतहैं उन्हीं पर्वतपर यह दोनों बूटियें हैं ॥ ३१ ॥ इन दोनों बूटियोंको देवताओंनें क्षीर समुद्रके बीचमें स्थापित कर दियाहै; इस कारण, हेराजन्! और किसी वानरको वहाँ जानेंकी आवश्यकता नहीं; यह पवनके पुत्र वेगवान हनुमानही वहाँ पर जांय; सुषेण यह वचन कहही रहेथेकि इतनेमें दामिनीमाला शोभित मेघ, और प्रबल आंधी उठकर समुद्रके जल और पर्वतोंको कम्पायमान करनें लगी ॥ ३२ ॥ ३३ ॥प्रबल पंखोंकी पवनके लगनेंसे द्वीपोंमें लगे हुए जो बड़े २ वृक्षथे उनकी शाखायें टूट गईं, और वह वृक्ष सब महासमुद्रके जलमें उड़कर जायगिरे ॥ ३४ ॥ देखते २ समुद्रके निवासी बड़े शरीरवाले सर्पगण भयंकराकारसे व्याकुल होंने लगे, । और जलजन्तु गण

तौतत्रविहितौदेवैःपर्वतौतौमहोदधौ ॥ अयंवायुसुतोराजन्हनूमांस्तत्रगच्छतु ॥ ३२ ॥ एतस्मिन्नंतरेवायुर्मेघाश्चापिस
विद्युतः॥ पर्यस्यसागरेतोयंकंपयन्निवपर्वतान् ॥ ३३ ॥ महतापक्षवातेनसर्वद्वीपमहाद्रुमाः ॥ निपेतुर्भग्नविटपाःसलि
लेलवणांभसि ॥ ३४ ॥ अभवन्पन्नगास्त्रस्ताभोगिनस्तत्रवासिनः ॥ शीघ्रंसर्वाणियादांसिजग्मुश्चलवणार्णवम् ॥ ३५ ॥
ततोमुहूर्ताद्गरुडंवैनतेयंमहाबलम् ॥ वानरादद्दृशुःसर्वेज्वलंतमिवपावकम् ॥ ३६ ॥ तमागतमभिप्रेक्ष्यनागास्तेवि
प्रदुद्रुवुः॥ यैस्तुतौपुरुषौबद्धौशरभूतैर्महाबलैः ॥ ३७ ॥ ततःसुपर्णःकाकुत्स्थौस्पृष्ट्वाप्रत्यभिनंद्यच ॥ विममर्शचपाणि
भ्यांमुखेचंद्रसमप्रभे ॥ ३८ ॥ वैनतेयेनसंस्पृष्टास्तयोसंरुरुहुर्व्रणाः ॥ सुवर्णेचतनूस्निग्धेतयोराशुबभूवतुः ॥ ३९ ॥

बड़ी शीघ्रतासे लवण समुद्रके जलमें प्रवेश कर गये ॥ ३५ ॥ तिसके पीछे समस्त वानरलोगोंनें एक मुहूर्त्त भरके बीचमें प्रदीप्त अग्निकी समान प्रकाशित विनताके पुत्र गरुड़जीको आते हुए देखा ॥ ३६ ॥ उन गरुड़जीके आतेही, जिन्होंने बाण रूपसे श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीको बांध रक्खाथा, और जो अतिशय बलवान्थे, ऐसे वह समस्त नाग डरके मारे अतिशीघ्रतासे भाग गये ॥ ३७ ॥ तिसके पीछे विनतानन्दन गरुड़जी रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजीको प्रणाम करके उनके अंगको अपने हाथोंसे स्पर्श करते हुए इन दोनों भ्राताओंको चंद्रमाकी समान द्युतिवाले मुख मंडल अपने हाथसे सुहरानें लगे ॥ ३८ ॥ गरुड़जीके करस्पर्शसे इन दोनों भ्राताओंके

शृगालियें अग्निकी लपटें उगालती हुई अशुभ शब्द करनें लगीं ॥ १४ ॥ और मृगादि पशुगण चिल्लाय २ कर राक्षसोंके संहारको बतानें लगे, चलते २ वीर योद्धा लोग एकाएक पैर फिसलनेंसे भयंकर भांतिसे गिरनें लगे ॥ १५ ॥ परन्तु महा बलवान वज्रदंष्ट्र राक्षस यह समस्त उत्पात उठानेंवाले लक्षण देखकर भी धीरज धारण कर समरका अभिलाषी हो लंकागढ़से बाहर निकला ॥ १६ ॥ इस ओर विजयी वानर समूह राक्षसोंको आया हुआ देखकर ऐसा सिंहनाद करनें लगे, कि उसकी गुंजारसे दशों दिशायें पूर्ण होगईं ॥ १७ ॥ तिसके पीछे परस्पर एक दूसरेको मार डालनेंकी आशा किये भयंकर रूप महाबलवान वानर और राक्षसोंका घोर संग्राम आरंभ हुआ ॥ १८ ॥ उस समय उन अति उत्साह

व्याहरंतमृगाघोरारक्षसांनिधनंतदा ॥ समापतंतोयोधास्तुप्रास्खलंस्तत्रदारुणम् ॥ १५ ॥ एतानौत्पातिकान्दृष्ट्वा वज्रदंष्ट्रोमहाबलः ॥ धैर्यमालंब्यतेजस्वीनिर्जगामरणोत्सुकः ॥ १६ ॥ तांस्तुविद्रवतोदृष्ट्वावानराजितकाशिनः ॥ प्रणेदुःसुमहानादान्दिशःशब्देनपूरयन् ॥ १७ ॥ ततःप्रवृत्तंतुमुलंहरीणांराक्षसैःसह ॥ घोराणांभीमरूपाणामन्योन्यवधकांक्षिणाम् ॥ १८ ॥ निष्पतंतोमहोत्साहाभिन्नदेहशिरोधराः ॥ रुधिरोक्षितसर्वांगान्यपतन्धरणीतले ॥ १९ ॥ केचिदन्योन्यमासाद्यशूराःपरिघबाहवः ॥ चिक्षिपुर्विविधाञ्छस्त्रान्समरेष्वनिवर्तिनः ॥ २० ॥ द्रुमाणांचशिलानांचशस्त्राणांचापिनिःस्वनः ॥ श्रूयतेसुमहांस्तत्रघोरोहृदयभेदनः ॥ २१ ॥ रथनेमिस्वनस्तत्रधनुषश्चापिघोरवत् ॥ शंखभेरीमृदंगानांबभूवतुमुलःस्वनः ॥ २२ ॥ केचिदस्त्राणिसंत्यज्यबाहुयुद्धमकुर्वत ॥ तलैश्चचरणैश्चापिमुष्टिभिश्चद्रुमैरपि ॥ २३ ॥

वाले वीरोंकी देह, मस्तक, अधर, इत्यादि अंग कटजानेंसे व रुधिरमें शरीर डूबजानेंसे वह पृथ्वीपर गिर जानें लगे ॥ १९ ॥ समरसे न लौटने वाले और परिघकी समान लंबी २ बांहवाले वीरगण लड़ते २ परस्पर पर लिपट जाते, और तिसके पीछे विविध भांतिके अस्त्र शस्त्र चलानें लगते ॥ २० ॥ उस घोर संग्राम भूमिमें वृक्ष पर्वत और अस्त्र शस्त्रोंका भयंकर हृदयको फाड़नेंवाला शब्द सुनाई आनें लगा ॥ २१ ॥ संग्राममें रथके चक्रोंका घर घर शब्द धनुषकी टंकार शंख भेरी और मृदंगोंका बड़ा कठोर शब्द हुआ ॥ २२ ॥ अनन्तर कोई राक्षस वानर वीर

कारणकि महा पराक्रमकारी दैत्य महाबलवान वानर गण और गन्धर्वादिकोंके सहित देवतालोग या स्वयं इन्द्रभी ॥४७॥ मायाके बलसे क्रूर कर्म कारी मेघनादका रचा हुआ यह अति दारुण नागरूपी बाण बन्धन नहीं छुड़ा सकतेथे, इसी कारण आपको इस संकटसे छुटानेके लिये हम आये॥४८॥ तीक्ष्ण दन्त युक्त महा विषधर यह कद्रूके पुत्र नाग गण राक्षसी मायाके प्रभावसेही बाण रूप होकर आपका आश्रय किये हुएथे ॥ ४९ ॥ हे धर्मज्ञ! सत्य पराक्रमकारी श्रीरामचंद्रजी! समरमें रिपुघाती इन भ्राता लक्ष्मणजीके सहित आप अपनेको बड़ाही भाग्यवान समझें; कारणकि भाग्यहीसे आप इस घोर बन्धनसे मुक्त हुएहैं ॥ ५० ॥ आपकी यह अत्यन्त शोचनीय दशा सुनकर हम बड़ीही शीघ्रतासे इस स्थानमें आये

असुरावामहावीर्यावानरावामहाबलाः ॥ सुराश्चापिसगंधर्वाःपुरस्कृत्यशतक्रतुम् ॥ ४७ ॥ नेमंमोक्षयितुंशक्ताःशरबंधंसुदारुणम् ॥ मायाबलादिंद्रजितानिर्मितंक्रूरकर्मणा ॥ ४८ ॥ एतेनागाःकाद्रवेयास्तीक्ष्णदंष्ट्राविषोल्बणाः ॥ रक्षोमायाप्रभावेणशरभूतास्त्वदाश्रयाः ॥ ४९ ॥ सभाग्यश्चासिधर्मज्ञरामसत्यपराक्रम ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्रासमरेरिपुघातिना ॥ ५० ॥ इमंश्रुत्वातुविक्रांतस्त्वरमाणोहमागतः ॥ सहसैवावयोःस्नेहात्सखित्वमनुपालयन् ॥ ५१ ॥ मोक्षितौचमहाघोरादस्मात्सायकबंधनात् ॥ अप्रमादश्चकर्तव्योयुवाभ्यांनित्यमेवहि ॥ ५२ ॥ प्रकृत्याराक्षसाः सर्वेसंग्रामेकूटयोधिनः ॥ शूराणांशुद्धभावानांभवतामार्जवंबलम् ॥ ५३ ॥ तन्नविश्वसनीयंवोराक्षसानांरणाजिरे ॥ एतेनैवोपमानेननित्यंजिह्माहिराक्षसाः ॥ ५४ ॥

हैं, हमारा यह आना केवल आपसे स्नेह करनेंहीके कारण हुआ ॥ ५१ ॥ इस समय अनायासमें यह कार्य हुआ कि हमनें आपको इस महाघोर सर्प रूपी बाण बन्धनसे छुटा दिया, अब आगेको आप सदाही सावधान रहाकरें ॥ ५२ ॥ आपकी समान शुद्ध स्वभाववाले शूर लोग रण भूमिमें सदा सरलतासेही युद्ध किया करतेहैं; परन्तु राक्षसगण सदाही संग्राममें छलते युद्ध किया करतेहैं ॥ ५३ ॥ इस कारण आप रणभूमिमें इन राक्षस लोगोंका किसी प्रकारसे भी विश्वास न कीजिये, कारण कि यह लोग सदाहीसे क्रूर बुद्धिवाले होतेहैं; अब तो आप एक इन्द्रजीतहीके

ढकनेंके कारण वह रणभूमि अत्यन्त भयंकरी होगई । हार, बाजू वस्त्रऔर कटे हुए शस्त्रोंसे सजनेंके कारण ॥ ३१ ॥ वह रणभूमि शरद् ऋतुकी रात्रिके समान शोभा धारण करती हुई जिस प्रकार पवनके वेगसे मेघोंका जाल तितर वितर होकर पड़जाता है, वैसेही अंगदजीकी वीरता और उन करकै मर्दित होनेंसे राक्षसोंकी सैना कम्पायमान हुई ॥३२॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे त्रिपंचाशः सर्गः ॥५३॥ तब महाबलवान वज्रदंष्ट्र राक्षस अपनी सेनाका नाश और अंगदजीके बलका प्रकाश देखकर अत्यन्तही क्रोध करता हुआ ॥ १ ॥ उस समय वह वज्रदंष्ट्र वज्रकी समान प्रभावाला भयंकर धनुष बाण शब्दितकर और उसे चढ़ाय वानरोंकी सैनापर बाणोंकी वर्षा करनें लगा ॥ २ ॥ रथपर चढ़े हुए

भूमिर्भातिरणेतत्रशारदीवयथानिशा॥ अंगदस्यचवेगेनतद्राक्षसबलंमहत् ॥ प्राकंपततदातत्रपवनेनांबुदोयथा॥२२॥
इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवा० आदिकाव्येयुद्धकांडेत्रिपंचाशःसर्गः ॥ ५३ ॥ ७ ॥ स्वबलस्यचघातेनअंगदस्यबलेन
च ॥ राक्षसःक्रोधमाविष्टोवज्रदंष्ट्रोमहाबलः ॥ १ ॥ विस्फार्यचधनुर्घोरंशक्राशनिसमप्रभम् ॥ वानराणामनीकानि
प्राकिरच्छरवृष्टिभिः ॥ २ ॥ राक्षसाश्चापिमुख्यास्तेरथैश्चसमवस्थिताः ॥ नानाप्रहरणाःशूराःप्रायुध्यंततदारणे ॥३॥
वानराणांचशूरास्तुतेसर्वेप्लवगर्षभाः ॥ अयुध्यंतशिलाहस्ताःसमवेताःसमंततः ॥ ४ ॥ तत्रायुधसहस्राणितस्मिन्त्रा
योधनेभृशम् ॥ राक्षसाःकपिमुख्येषुपातयांचक्रिरेतदा ॥ ५ ॥ वानराश्चैवरक्षःसुगिरिवृक्षान्महाशिलाः ॥ प्रवीराः
पातयामासुर्मत्तवारणसन्निभाः ॥ ६ ॥ शूराणांयुध्यमानानांसमरेष्वनिवर्तिनाम् ॥ तद्राक्षसगणानांचसुयुद्धंसमवर्त
त ॥ ७ ॥अभग्नशिरसःकेचिच्छिन्नैःपादैश्चबाहुभिः ॥ शस्त्रैरर्दितदेहास्तुरुधिरेणसमुक्षिताः ॥ ८ ॥

विविध भांतिके अस्त्र शस्त्र धारण किये बड़े २ शूर निशाचरभी युद्ध करनेंलगे ॥३॥ कूदनें फादनेंमे चतुर शूर वानर गणभी एकत्र हो शिला हाथमें लेकर सर्व प्रकारसे युद्ध करनें लगे ॥ ४ ॥ उस रणभूमिमें राक्षसोंने वानरश्रेष्ठोंके ऊपर सहस्र २ घोर कठोर बाण चलाये ॥ ५ ॥ मतवाले हाथियोंकी समान वानर वीर गणभी राक्षसोंको ताक २ कर बडे २ वृक्ष और बडी २शिलायें चलाने लगे ॥ ६ ॥ इस प्रकार संग्राममें न लौटने वाले और समराभिलाषी उन राक्षस और वानरोंका महाघोर युद्ध आरंभहुआ ॥७॥ उनमें से किसी २ के शिर कट गये और किसी किसीके चरण

होकर प्रथमहीकी समान क्रीडा करने लगे ॥ ६२ ॥ व औरभी शत सहस्र पर्वतोंसे युद्ध करनेवाले विकराल वानरगण विविध भांतिके वृक्षों को उखाडते फांदते कूदते दलके दल खडेहो ॥ ६३ ॥ राक्षसोंको त्रासित करते हुए बड़ाभारी नादकरने लगे और वह सब वानर युद्धकी कामनासे आगे बढकर लंकापुरीके द्वारपर जाय पहुंचे ॥ ६४ ॥ ग्रीष्म कालके अंत समय रात्रिके समय शब्दायमान घनघटा समूहके भयंकर गर्जनकी समान उन वानर यूथनाथोंका भयंकर कठोर सिंहनाद श्रवण गोचर होने लगा ॥ ६५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे पंचाशः सर्गः ॥ ५० ॥ ॥ ७१ ॥ इस ओर विभीषण इत्यादि राक्षस गणोंके सहित शब्दायमान उन महातेजस्वी

अपरेस्फोट्यविक्रांतावानरानगयोधिनः ॥ द्रुमानुत्पाट्यविविधांस्तस्थुःशतसहस्रशः ॥ ६३ ॥ विसृजंतोमहानादां स्त्रासयंतोनिशाचरान् ॥ लंकाद्वाराण्युपाजग्मुर्युद्धकामाःप्लवंगमाः ॥ ६४ ॥ तेषांसुभीमस्तुमुलोनिनादोबभूवशाखा मृगयूथपानाम् ॥ क्षयेनिदाघस्ययथाघनानांनादःसुभीमोनदतांनिशीथे ॥ ६५ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०युद्धकांडेपं चाशःसर्गः ॥ ५० ॥७१॥ तेषांतुतुमुलंशब्दंवानराणांमहौजसाम् ॥ नर्दतांराक्षसैःसार्धंतदाशुश्रावरावणः ॥ १ ॥ स्नि ग्धगंभीरनिर्घोषंश्रुत्वातंनिनदंभृशम् ॥ सचिवानांततस्तेषांमध्येवचनमब्रवीत् ॥ २ ॥ यथाऽसौसंप्रहृष्टानांवानरा णामुपस्थितः ॥ बहूनांसुमहान्नादोमेघानामिवगर्जताम् ॥ ३ ॥ सुव्यक्तंमहतीप्रीतिरेतेषांनात्रसंशयः ॥ तथाहिविपुलै र्नादैश्चुक्षुभेलवणार्णवः ॥ ४ ॥ तौतुबद्धौशरैस्तीक्ष्णैर्भ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ अयंचसुमहान्नादःशंकांजनयतीवमे ॥ ५ ॥

वानरवृन्दोंका तुमुल कठोर सिंहनाद राक्षसोंके स्वामी रावणने सुना ॥ १ ॥ वह रावण स्पष्ट गंभीर और कठोर सिंहनाद वार २ श्रवण करके अपने मंत्रियोंसे जोकि वहां बैठेथे यह कहने लगा ॥ २ ॥ जब कि हर्षितचित्त हुए उन वानरोंका यह घोर सिंहनाद सुनाई आता है, जब कि वादलकी समान वह वानर गंभीर गर्जन कर रहे हैं ॥ ३ ॥ तब इसमे कोईभी सन्देह नहीं है कि उनको कोई बड़ी प्रसन्नता प्राप्त हुईहै यह देखो उनके बड़े भारी शब्दसे क्षार समुद्रभी खल बलाय रहाहै ॥ ४ ॥ वह दोनों भाई राम और लक्ष्मण तीक्ष्ण बाणोंसे बंध गयेथे; परन्तु इस

वज्रदंष्ट्रभी अंगदजीको वार २ क्रोधकी दृष्टिसे देखनें लगा ॥ १६ ॥ तब वज्रदंष्ट्र और अंगदजी दोनोही अत्यन्त क्रोधमें भरकर युद्ध करनें लगे उस समय वह दोनो मतवाले हाथी और केशरी (सिंह) की समान जान पड़तेथे ॥ १७ ॥ तिसके पीछे राक्षसोंकी सैनाके पति वज्रदंष्ट्रने अग्निकी शिखाके समान हजार बाण चलायकर वानर सैनापति अंगदजी के मर्म स्थानमें प्रहार किया ॥ १८ ॥ उस अत्यन्त हजार बाणका प्रहार लगनेंसे वालिकुमार अंगदजीके सब शरीरसे रुधिर निकलने लगा और इन्होनें भयंकर शब्दसे गर्जकर उस राक्षस वज्रदंष्ट्रके ऊपर एक बडा भारी वृक्ष चलाया ॥ १९ ॥ राक्षस वज्रदंष्ट्रने उस बडे भारी वृक्षको अपने ऊपर गिरता हुआ देखकर अति सावधानीसे बाण चलाय उसके

वज्रदंष्ट्रोऽङ्गदश्चोभौयोयुध्येतेपरस्परम् ॥ चेरतुःपरमक्रुद्धौहरिमत्तगजाविव ॥ १७ ॥ ततःशरसहस्रेणहरिपुत्रं महाबलम् ॥ जघानमर्मदेशेषुशरैरग्निशिखोपमैः ॥ १८ ॥ रुधिरोक्षितसर्वांगोवालिसूनुर्महाबलः ॥ चिक्षेपवज्रदंष्ट्रायवृक्षंभीमपराक्रमः ॥ १९ ॥ दृष्ट्वापतंतंतंवृक्षमसंभ्रांतश्चराक्षसः ॥ चिच्छेदबहुधासोपिमथितःप्रापतद्भुवि ॥ २० ॥ तंदृष्ट्वावज्रदंष्ट्रस्यविक्रमंप्लवगर्षभः ॥ प्रगृह्यविपुलंशैलंचिक्षेपचननादच ॥ २१ ॥ तमापतंतंदृष्ट्वासरथादाप्लुत्यवीर्यवान् ॥ गदापाणिरसंभ्रांतःपृथिव्यांसमतिष्ठत ॥ २२ ॥ अंगदेनशिलाक्षिप्तागत्वातुरणमूर्धनि ॥ सचक्रकूबरंसाश्वप्रममाथरथंतदा ॥ २३ ॥ ततोऽन्यच्छिखरंगृह्यविपुलंद्रुमभूषितम् ॥ वज्रदंष्ट्रस्यशिरसिपातयामासवानरः॥२४॥अभवच्छोणितोद्गारीवज्रदंष्ट्रःसुमूर्च्छितः ॥ मुहूर्तमभवन्मूढोगदामालिंग्यनिःश्वसन् ॥ २५ ॥

टुकडेकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ २० ॥ वानरश्रेष्ठ अंगदजीनें वज्रदंष्ट्रका ऐसा विक्रम देखकर एक अत्यन्त बडी शिला ग्रहण करके उसके ऊपर चलाय सिंह नादकरने लगे ॥ २१ ॥ परन्तु वीर्यवान राक्षस वज्रदंष्ट्र उस शिलाको गिरता हुआ देख रथसे छलांग मार श्रमरहितहो गदा हाथमें ले पृथ्वीपर खड़ा होगया ॥ २२ ॥ तिसकाल अंगदजीकी चलाई हुई शिलाने अत्यन्त जोरसे गिरकर रणभूमिके बीचमें टिका हुआ, चक्र और कूबरके सहित वज्रदंष्ट्रके रथको चूर्ण कर डाला ॥ २३ ॥ तब वानरोंके सैनापति अंगदजीनें वृक्षोंसे शोभायमान एक पर्वतका शिखर उखाड़कर उस राक्षस वज्रदंष्ट्रके शिरपर देमारा ॥ २४ ॥ उस घोर शैलशृङ्गकी चोट लगनेंसे रुधिर वमन करता हुआ वज्रदंष्ट्र मूर्च्छित होगया, और एक मुहूर्त भर

तब रावण कुछ एक रुष्ट होकर कहनें लगा कि मेघनादनें संग्राम स्थलमें भलीभांति मान मर्दनकर अति घोर वर प्राप्त किये हुए विषधर सर्पोंकी समान सफल और सूर्यवत्प्रकाशित बाणोंसे जिनको बंधन कियाथा॥१५॥जब कि वह शत्रु ऐसे बाण बन्धनसेभी छुटगये तब हमको ऐसा नहीं जान पड़ता कि हम इस राक्षसोंकी सैनासे विजयको प्राप्त करेंगे ॥ १६ ॥ आश्चर्यहै कि जिन सब अस्त्रोंने संग्राम भूमिमें वारंवार शत्रुगणोके प्राण हरण कियेथे, आज वही अग्निकी समान तेजस्वी अस्त्र हमारे कुभाग्यहीसे निष्फल होगये ॥ १७ ॥ यह कहकर रावण अत्यन्त क्रोधमें भरकर सर्प की समान लंबे २ श्वासलेने लगा; और कुछ देर पीछे रावण राक्षसोंके बीचमें बैठे हुए धूम्राक्षसे कहता हुआ ॥ १८ ॥ कि हे भयंकर विक्रमका

घोरैर्दत्तवरैर्बद्धौशरैराशीविषोपमैः ॥ अमोघैःसूर्यसंकाशैःप्रमथ्येंद्रजितायुधि ॥ १५ ॥ तदस्त्रबंधमासाद्ययदिमुक्तौ रिपूमम ॥ संशयस्थमिदंसर्वमनुपश्याम्यहंबलम् ॥ १६ ॥ निष्फलाःखलुसंवृत्ताःशराःपावकतेजसः॥ आदत्तंयैस्तुसं ग्रामेरिपूणांजीवितंमम ॥१७॥एवमुक्त्वातुसंक्रुद्धोनिःश्वसन्नुरगोयथा ॥अब्रवीद्रक्षसांमध्येधूम्राक्षंनामराक्षसम्॥१८॥ बलेनमहतायुक्तोराक्षसैर्भीमविक्रमैः ॥ त्वंवधायाशुनिर्याहिरामस्यसहवानरैः ॥ १९ ॥ एवमुक्तस्तुधूम्राक्षोराक्षसेंद्रे णधीमता ॥ परिक्रम्यततःशीघ्रंनिर्जगामनृपालयात् ॥ २० ॥ अभिनिष्क्रम्यतद्द्वारंबलाध्यक्षमुवाचह ॥ त्वरयस्व बलंशीघ्रंकिंचिरेणयुयुत्सतः ॥ २१ ॥ धूम्राक्षवचनंश्रुत्वाबलाध्यक्षोबलानुगः ॥ बलमुद्योजयामासरावणस्याज्ञया भृशम् ॥ २२ ॥ तेबद्धघंटाबलिनोघोररूपानिशाचराः ॥ विनद्यमानाःसंहृष्टाधूम्राक्षंपर्यवारयन् ॥ २३ ॥

री ! वानर गणोंके और रामचंद्रका संहार करनेंके लिये तुम बड़ीभारी सैनाको संग लेकर शीघ्र युद्ध करनेंको जाओ ॥ १९ ॥ राक्षस धूम्राक्ष, बुद्धिमान राक्षसोंके स्वामी रावणकी ऐसी आज्ञा पाय उसकी प्रदक्षिणा करता हुआ अतिशीघ्र राजभवनसे बाहर निकला ॥ २० ॥ राक्षस धूम्राक्षनें राजद्वारके बाहर आयकर सैनाध्यक्षसे कहा कि,—हम युद्धमें जाना चाहते हैं, इस कारण कुछभी विलंब न लगायकर झटपट सैनाको सजाओ ॥ २१ ॥ धूम्राक्षके वचन सुन सैनाध्यक्षनें रावणकी आज्ञानुसार समस्त सैनाको बहुतही शीघ्र सजाया ॥ २२ ॥ घोररूपी राक्षसगण सिंह

तब महाबलवान अंगदजीने अत्यन्त तीक्ष्ण और विमल चमकते दमकते खड्गकी चोटसे वज्रदंष्ट्रका शिर काटकर पृथ्वीपर गिरादिया ॥ ३४ ॥ राक्षस वीर वज्रदंष्ट्रकी देह दोखंड होकर गिर पड़ी; सर्व शरीरसे रुधिर निकलनें लगा, उसकी दोनों आंखें उलट गई और रुण्डपरसे पृथक् होकर शिर नीचे गिरपड़ा ॥३५॥ राक्षसगण वज्रदंष्ट्रको माराहुआ देखकर भयके मारे विह्वलहो लंकापुरीको भागगये। भागनेंके समय वानरवीरोंनें उनके ऊपर ऐसी मार धाड़ मचाईकि राक्षसोंके मरनेंमें कुछ कसर न रही। यह समस्त राक्षस इस अवस्थामें व्याकुलवदन और दीनभावयुक्तहो लज्जा से मुखको नीचा करकै लंकामें प्रवेश करते हुए ॥ ३६ ॥ इस प्रकारसे इन्द्रकी समान प्रतापवान वह महाबलशाली वालिकुमार अंगदजी वानरोंकी

निर्मलेनसुधौतेनखड्गेनास्यमहच्छिरः ॥ जघानवज्रदंष्ट्रस्यवालिसूनुर्महाबलः ॥ ३४ ॥ रुधिरोक्षितगात्रस्यबभूवप
तितंद्विधा ॥ तच्चतस्यपरीताक्षंशुभंखड्गहतंशिरः ॥ ३५ ॥ वज्रदंष्ट्रंहतंदृष्ट्वाराक्षसाभयमोहिताः ॥ त्रस्ताह्यभ्यद्रवँल्लं
कांवध्यमानाःप्लवंगमैः ॥ विषण्णवदनादीनाह्रियाकिंचिदवाङ्मुखाः ॥ ३६ ॥ निहत्यतंवज्रधरःप्रतापवान्सवालिसूनुः
कपिसैन्यमध्ये ॥ जगामहर्षंमहितोमहाबलःसहस्रनेत्रस्त्रिदशैरिवावृतः ॥ ३७ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०युद्धकांडेच
तुष्पंचाशःसर्गः ॥ ५४ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ वज्रदंष्ट्रंहतंश्रुत्वावालिपुत्रेणरावणः ॥ बलाध्यक्षमुवाचेदंकृतांजलिमुपस्थित
म् ॥ १ ॥ शीघ्रंनिर्यान्तुदुर्धर्षाराक्षसाभीमविक्रमाः ॥ अकंपनंपुरस्कृत्यसर्वशस्त्रास्त्रकोविदम् ॥ २ ॥

सैनाके वीचमें उस राक्षस वज्रदंष्ट्रको मार परम प्रसन्नता प्राप्त करतेहुए, और देवतालोगोंके वीचमें बैठे सहस्रलोचन इन्द्रकी नाईं वानरगणोंसे पूजित हुए ॥ ३७ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० चतुष्पंचाशः सर्गः ॥ ५४ ॥ तिसके पीछे लंकापति रावण वालिके पुत्र अंगदजीके हाथसे वज्रदंष्ट्र राक्षसको माराहुआ सुन निकटही हाथ जोड़कर खड़ेहुए सैनापति प्रहस्तसे बोला ॥ १ ॥ कि भयंकर विक्रम करनेंवाले दुर्द्धर्ष निशाचर लोक समस्त अस्त्र शस्त्रोंके जाननेंमें पंडित राक्षस अकम्पनको अपना

भयंकर गिद्ध आकाशसे गिरा ॥ ३१ ॥ मांसके खानेंवाले, पक्षिगण गुँधी हुई मालाकी समान लंगार (श्रेणी) से उसके रथकी ध्वजापर गिरनें लगे और रुधिरमें सना हुआ अत्यंत श्वेत कबंध धूम्राक्षके निकट पृथ्वी पर गिरा ॥ ३२ ॥ अत्यन्त भयंकर शब्द करता हुआ कबंध धूम्राक्षके सन्मुख गिरा । बादलोंसे रुधिरकी वर्षा होनें लगी, और पृथ्वी कंपायमान हुई ॥ ३३ ॥ और वज्रकी समान शब्द करताहुआ पवन चलनें लगा, घोर अंधकारसे ढकजानेंके कारण दशोंदिशा अप्रकाशित होगई ॥ ३४ ॥ राक्षस धूम्राक्ष राक्षस लोगोंके यह अमंगल भयजनक घोर उत्पात देखकर हृदयमें अत्यन्त भय करता हुआ;और उसके साथ चलनेंवाली राक्षसोंकी सैनाभी यह अचानक अमंगल शकुन देखकर मूर्च्छित

ध्वजाग्रेग्रथिताश्चैवनिपेतुःकुणपाशनाः ॥ रुधिरार्द्रोमहान्श्वेतःकबंधःपतितोभुवि ॥ ३२ ॥ विस्वरंचोत्सृजन्नादान्धूम्राक्षस्यनिपातितः ॥ ववर्षरुधिरंदेवःसंचचालचमेदिनी ॥३३॥ प्रतिलोमंववौवायुर्निर्घातसमनिःस्वनः ॥ तिमिरौघावृतास्तत्रदिशश्चनचकाशिरे ॥ ३४ ॥ सतूत्पातांस्ततोदृष्ट्वाराक्षसानांभयावहान् ॥ प्रादुर्भूतान्सुघोरांश्चधूम्राक्षोव्यथितोभवत् ॥ मुमुहूराक्षसाःसर्वेधूम्राक्षस्यपुरःसराः ॥ ३५ ॥ ततःसुभीमोबहुभिर्निशाचरैर्वृतोभिनिष्क्रम्यरणोत्सुकोबली ॥ ददर्शतांराघवबाहुपालितांमहौघकल्पांबहुवानरींचमूम् ॥ ३६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेएकपंचाशःसर्गः ॥ ५१ ॥ ॥ छ ॥ धूम्राक्षंप्रेक्ष्यनिर्यांतंराक्षसंभीमविक्रमम् ॥ विनेदुर्वानराःसर्वेप्रहृष्टायुद्धकांक्षिणः ॥ १ ॥ तेषांसुतुमुलंयुद्धंसंजज्ञेकापिरक्षसाम् ॥ अन्योन्यंपादपैर्घोरैर्निघ्नतांशूलमुद्गरैः ॥ २ ॥

होगई ॥ ३५ ॥ तिसके पीछे रण करनेंकी इच्छा किये महाबलवान भयंकररूप राक्षस धूम्राक्ष असंख्य निशाचरगणोंके सहित, लंकापुरीसे बाहर आय श्रीरामचंद्रजीकी बाहुसे रक्षित प्रलयके समुद्रकी समान उन वानरोंकी सैनाको देखता हुआ कि जिसका कुछ ओर छोर नथा ॥ ३६ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० एकपंचाशः सर्गः ॥ ५१ ॥ युद्धकी अभिलाषा किये वानरगण भयंकर विक्रमकारी राक्षस धूम्राक्षको युद्ध करनेंके लिये आये हुए देखकर हर्षित मनसे सिंहनाद करनें लगे ॥ १ ॥ तिसके पीछे धीरे २ उन वानर और राक्षसोंका घोर कठोर

अचानक दीनभाव प्राप्त हुआ, युद्ध करनेंको प्रसन्नतासे चलेजाते हुए अकम्पनका वांया नेत्रभी फडकनें लगा ॥ १० ॥ इसका मुखमंडल मलीन
होगया, और कंठस्वर विरूपताको प्राप्त हुआ, उस दिनके समय दुर्दिन आय पहुंचा पवन रूखेपनसे वहनें लगी ॥ ११ ॥ और मृग पक्षीगण सबहीके
भयका उपजानेंवाला क्रूर शब्द करना आरंभ करनें लगे; परन्तु सिंहकी समान ऊँचे कंधोंवाला और शार्दूलकी समान विक्रमकारी ॥ १२ ॥ वह
अकम्पनवीर; इन उत्पातोंको कुछभी नहीं समझताहुआ रणभूमिको चला; वह निशाचर राक्षसोंकी सैनाके साथ लंकापुरीसे निकला ॥ १३ ॥
इस सैनाका इस प्रकारका बड़ाभारी शब्द हुआ कि जिस्से समुद्रमेंभी खलबली पडगई, और वानरोंकी सैनाभी उस शब्दसे त्रासित होकर ॥१४॥
विवर्णोमुखवर्णश्चगद्गदश्चाभवत्स्वनः ॥ अभवत्सुदिनेकालेदुर्दिनंरूक्षमारुतम् ॥ ११ ॥ ऊचुःखगमृगाःसर्वेवाचःक्रू
राभयावहाः ॥ सर्सिहोपचितस्कंधःशार्दूलसमविक्रमः ॥ १२ ॥ तानुत्पातानचिंत्यैवनिर्जगामरणाजिरम् ॥ तथानि
गच्छतस्तस्यरक्षसःसहराक्षसैः ॥ १३ ॥ बभूवसुमहान्नादःक्षोभयन्निवसागरम् ॥ तेनशब्देनवित्रस्तावानराणांमहा
चमूः ॥ १४ ॥ द्रुमशैलप्रहाराणांयोद्धुंसमुपतिष्ठताम् ॥ तेषांयुद्धंमहारौद्रंसंजज्ञेकपिरक्षसाम् ॥ १५ ॥ रामरावण
योरर्थेसमभित्यक्तदेहिनः ॥ सर्वेह्यतिबलाःशूराःसर्वेपर्वतसन्निभाः ॥ १६ ॥ हरयोराक्षसाश्चैवपरस्परजिघांसया ॥
तेषांविनर्दतांशब्दःसंयुगेऽतितरस्विनाम् ॥ १७ ॥ शुश्रावसुमहान्कोपादन्योन्यमभिगर्जताम् ॥ रजश्चारुणवर्णाभ
सुभीममभवद्भृशम् ॥ १८ ॥ उद्धूतंहरिरक्षोभिःसंरुरोधदिशोदश ॥ अन्योन्यंरजसातेनकौशेयोद्धतपांडुना ॥ १९ ॥
उसी समय वृक्ष और पर्वतोंको उठाय २ युद्ध करनेंके लिये आगे बढ़ी। तब उन वानर और राक्षसोंका महा घोरयुद्ध आरंभ हुआ ॥ १५ ॥
अनन्तर श्रीरामचंद्रजी और रावणके लिये प्राणतक त्यागना दोनो ओरके वीरोंनें विचारा दोनोंही बलवान विक्रमशाली और पर्वताकारथे ॥ १६ ॥
राक्षस और वानरगण परस्पर एक दूसरेको मार डालनेंके लिये तैयारथे। अतिवेगवान तिन वानर और राक्षसोंका शब्द समरमें ॥ १७ ॥ श्रवण
गोचर होंनें लगा, दोनो दलोंकेही क्रोधसहित गर्जनेंका महाभयानक शब्द उठा, दोनो दलोंमें धूम पड़नेसे बड़ी भारी लाल २ धूल उड़ी ॥१८॥
वानर और राक्षसोंके चरणोंकी उडीहुई धूलसे दशोंदिशा पूर्ण होगई, यह धूल धूसर वर्णकी कुछ २ लालपन लिये हुएथी ॥ १९ ॥

ही प्रहारसे चीर फाड़कर काटे गये ॥ ११ ॥ कोई २ ध्वजाओंसे मल डाले गये कोई खड्गसे पृथ्वीपर खड़ा होगया ॥ २८ ॥ हनुमानजीकी चलाई
कितनेही राक्षस अत्यन्त व्यथित हुए ॥ १२ ॥ पर्वतोंके शिखरकी समान पर्वताकार हाथी वानर गण और वह शिला पृथ्वीमें गिरी ॥ २९ ॥
वह समर भूमि पूर्ण होगई ॥ १३ ॥ भयंकर विक्रमकारी वेगवान वानरगण वारंवार छलांग मारते हुए अपने नखोंसे निशाचरोंके मुँह ॥ ३० ॥
फाड़नें लगे ॥ १४ ॥ तब राक्षस इस अवस्थाको पाय अत्यन्त विषादित हुए, उनके बाल खुलगये, और वह बराबर वहते हुए रुधिर गन्ध
मूर्च्छितहो पृथ्वीपर गिरनें लगे ॥ १५ ॥ इसी समयमें बहुत सारे राक्षस गण क्रोधसे प्रदीप्त हो वेगवान वानरोंको, वज्रकी समान लात मारनेंके

ध्वजैर्विमथितैर्भग्नैःखड्गैश्चविनिपातितैः ॥ रथैर्विध्वंसिताःकेचिद्व्यथितारजनीचराः ॥ १२ ॥ गजेंद्रैःपर्वताकारैःपर्व
ताग्रैर्वनौकसाम् ॥ मथितैर्वाजिभिःकीर्णंसारोहैर्वसुधातल ॥ १३ ॥ वानरैर्भीमविक्रांतैराप्लुत्योत्प्लुत्यवेगितैः ॥ राक्ष
साःकरजैस्तीक्ष्णैर्मुखेषुविनिदारिताः ॥ १४ ॥ विषण्ण भूयोविप्रकीर्णशिरोरुहाः ॥ मूढाःशोणितगंधेननिपेतुर्धर
णीतले ॥ १५ ॥ अन्येतुपरमक्रुद्धाराक्षसाभीमविक्र ॥ तलैरेवाभिधावंतिवज्रस्पर्शसमैर्हरीन् ॥ १६ ॥ वानरैः
पातयंतस्तेवेगितावेगवत्तरैः ॥ मुष्टिभिश्चरणैर्दंतैःपादपैश्चावपोथिताः ॥१७ ॥ सैन्यंतुविद्रुतंदृष्ट्वाधूम्राक्षोराक्षसर्षभः॥
रोषेणकदनंचक्रेवानराणांयुयुत्सताम् ॥ १८॥ प्रासैःप्रमथिताःकेचिद्वानराःशोणितस्रवाः ॥ मुद्गरैराहताःकेचित्पति
ताधरणीतले ॥ १९ ॥ परिघैर्मथिताःकेचिद्भिंदिपालैश्चदारिताः ॥ पट्टिशैर्मथिताःकेचिद्विह्वलंतोगतासवः ॥ २० ॥

लिये उनकी ओर दौड़े ॥ १६ ॥ परन्तु वेगवान वानरगण;—घूंसा, लात, दांत, और वृक्षोंसे उनको इस प्रकारकि मार देनें लगे, कि वह राक्षस उन
के सामने स्थिर न रहकर भाग निकले ॥ १७ ॥ तिसके पीछे राक्षसश्रेष्ठ धूम्राक्ष अपनी सैनाको चलायमान देखकर क्रोधमें भर वानरोंके ऊपर
प्रहार करनें लगा ॥ १८ ॥ तब कोई २ वानर तो बाण लगनेंसे मर्दित होगये और उनके शरीरसे रुधिर वहनें लगा, और अनेक वानर मुद्गरोंसे घा
यल होकर पृथ्वीपर गिरते हुए ॥ १९ ॥ कोई २ वानर परिघसे, और कोई पटेसे कुचल डाले गये,और कोई धनवासी लगनेंके कारण घायल होनेंसे

हर्षित करानें लगा;वानर लोगभी राक्षसोंको बड़े २ वृक्ष और बड़ी२शिलायें ग्रहण कर ॥ २९ ॥ बलपूर्वक राक्षसोंके अस्त्र शस्त्र उनको विदारण करनें लगे, कि उसी अवसरमें वानर वीर, कुमुद, नल, ॥३०॥ मैन्दादि सब महाक्रोध कर बड़ावेग करनेंलगे। यह महावीर वानर गण बड़े २ वृक्षोंको लेकर सैनाके मुखमें टिके हुए ॥३१॥ लीलासेही खेलसा करते हुए राक्षसोंकी बड़ीभारी दुर्दशा करनें लगे; इन वानरश्रेष्ठोंनें यहां तक वृक्ष चलाये, कि बहुतसे राक्षस मृतक होगये। इन वानरोंनें औरभी अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंसे राक्षसोंका मान मथडाला ॥ ३२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा मायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पंचपंचाशः सर्गः ॥ ५५ ॥ तब वानर वीरगणोंका अद्भुत विक्रम देखकर और उनके बड़ेभारी

विदारयंत्यभिक्रम्यशस्त्राण्याच्छिद्यवीर्यतः ॥ एतस्मिन्नंतरेवीराहरयःकुमुदोनलः ॥ ३० ॥ मैंदश्चपरमक्रुद्धश्चक्रु वेंगमनुत्तमम् ॥ तेतुवृक्षैर्महावीराराक्षसानांचमूमुखे ॥ ३१ ॥ कदनंसुमहच्चक्रुर्लीलयाहरिपुंगवाः ॥ ममंथूराक्षसान्सर्वे नानाप्रहरणैर्भृशम् ॥ ३२ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० युद्ध० पंचपंचाशः सर्गः ॥५५॥ ॥छ॥ ॥ तद्दृष्ट्वासुम त्कर्मकृतंवानरसत्तमैः ॥ क्रोधमाहारयामासयुधितीव्रमकंपनः ॥ १ ॥ क्रोधमूर्छितरूपस्तुधुन्वन्परमकार्मुकम् ॥ दृष्ट्वातुकर्मशत्रूणांसारथिंवाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥ तत्रैवतावत्त्वरितोरथंप्रापयसारथे ॥ एतेचबलिनोघ्नंतिसुबहून्राक्ष सान्रणे ॥ ३ ॥ एतेचबलवंतोवाभीमकोपाश्चवानराः ॥ द्रुमशैलप्रहरणास्तिष्ठंतिप्रमुखेमम ॥ ४ ॥ एतान्निहंतुमि च्छामिसमरश्लाघिनोह्यहम् ॥ एतैःप्रमथितंसर्वंरक्षसांदृश्यतेबलम् ॥ ५ ॥

कार्यको विचारकर राक्षस सैनापति अकंपननें अत्यन्त क्रोधकिया ॥ १ ॥वह वीर अकंपन शत्रुलोगोंका ऐसा कर्म देखकर बड़ा भारी विचित्र शरा सन ग्रहण कर उसपर टंकारदे क्रोधसे मूर्छितहो अपने सारथिसे बोला ॥ २ ॥ हेसारथे! यह बलवान वानर गण संग्राममें अगणित राक्षसोंको संहार कर रहेहैं, इस कारण जहांपर यह वानरहैं, वहीं पर हमारा रथ ले चलो ॥३॥ जो वानर लोग कि वृक्ष और शिलारूप हथियार धारण किये हुए हमारे सामने टिकेहैं; यह समरकी अभिलाषा किये भयंकर कोप करनेंवाले वानर अतिशय बलवानहैं ॥ ४ ॥ इस कारण हम पहले इन

शिलाको अपने ऊपर आती देख बडी शीघ्रताके साथ रथसे छलांगमार गदा ग्रहण कर पृथ्वीपर खड़ा होगया ॥ २८ ॥ हनुमानजीकी चलाई गदाके प्रहारसे केवल धूम्राक्षका रथही चूर्ण नहीं हुआ, वरन, चक्र, कूवर, ध्वजा और धनुष बाणतक नष्ट करके वह शिला पृथ्वीमें गिरी ॥ २९ ॥ तिसके पीछे हनुमानजी धूम्राक्षके रथको छोड़ कर शाखा और पत्तोंके सहित वृक्षोंसे राक्षसोंका विध्वंस करनें और उनको भगानें लगे ॥ ३० ॥ तब वृक्षोंके द्वारा पीड़ित होनेंसे राक्षसोंके शिर फूट गये और इस कारण रुधिरकी धारा निकलनेंसे वह पृथ्वी पर गिरनें लगे कुछेक राक्षस मार डालेगये और कितनोंनें अपने प्राणोंकी आशा छोड़दी ॥ ३१ ॥ पवनकुमार हनुमानजी इस प्रकारसे राक्षसोंकी सैनाको तितर वितर कर भगाय

साप्रमथ्यरथंतस्यनिपपाताशिलाभुवि ॥ सचक्रकूबरमुखंसध्वजंसशरासनम् ॥ २९ ॥ सत्यक्त्वातुरथंतस्यहनूमान्मारुतात्मजः ॥ रक्षसांकदनंचक्रेसस्कंधविटपैर्द्रुमैः ॥ ३० ॥ विभिन्नशिरसोभूत्वाराक्षसारुधिरोक्षिताः ॥ द्रुमैः प्रमथिताश्चान्येनिपेतुर्धरणीतले ॥ ३१ ॥ विद्राव्यराक्षससैन्यंहनूमान्मारुतात्मजः ॥ गिरेःशिखरमादायधूम्राक्षमभिदुद्रुवे ॥ ३२ ॥ तमापतंतंधूम्राक्षोगदामुद्यम्यवीर्यवान् ॥ विनर्दमानःसहसाहनूमंतमभिद्रवत् ॥ ३३ ॥ तस्य क्रुद्धस्यरोषेणगदांतांबहुकंटकाम् ॥ पातयामासधूम्राक्षोमस्तकेऽथहनूमतः ॥ ३४ ॥ ताडितःसतयातत्रगदयाभीमवेगया ॥ सकपिर्मारुतबलस्तंप्रहारमचिंतयत् ॥ ३५ ॥ धूम्राक्षस्यशिरोमध्येगिरिशृंगमपातयत् ॥ सविस्फारितसर्वांगोगिरिशृंगेणताडितः ॥ ३६ ॥

एक पर्वतका शृङ्ग ग्रहण करके धूम्राक्षके सामनें दौड़े ॥ ३२ ॥ वीर्यवान राक्षस धूम्राक्षभी हनुमानजीको अपनी ओर आता हुआ देख सिंहनादकर एक गदा उठाय उनके सन्मुख हुआ ॥ ३३ ॥ तिसके पीछे धूम्राक्षनें क्रोधमे भरकर वह अपनी बहुत कांटोंसे युक्त गदा क्रोधित हनुमानजीके शिरपर मारी ॥ ३४ ॥ परन्तु पवनकी समान बलवान हनुमानजी उस भयंकर वेगवाली गदाका प्रहार अपनें शिरमें लगनेंसेभी उस प्रहारको कुछभी नहीं समझते हुए कि जानें कहां लगा ॥ ३५ ॥ तिसके पीछे अञ्जनीहृदयनंदन पवनकुमार हनुमानजीनें अपनी वह पहली ग्रहणकीहुई

घोर सिंहनाद करतेहुए उनका रूप अत्यन्त असह होगया और वह प्रदीप्त अग्निकी समान अपने तेजसे आपही प्रकाशित हुए ॥ १४ ॥ वानर श्रेष्ठ क्रोधयुक्त हनुमानजीनें अपने आपको जब आयुधसे हीन जाना तब अतिवेगसे इन्होंनें एक पर्वत उखाड लिया ॥ १५ ॥ और एक हाथसे उस महापर्वतको ग्रहण कर पवननंदन हनुमानजी वारंवार सिंहनादकरके उस पर्वतको घुमानेंलगे ॥ १६ ॥ पहले देवराज इन्द्रजी संग्राममें जिस प्रकार नमुचि दैत्यपर दौड़ेथे, वैसेही श्रीहनुमानजी राक्षसश्रेष्ठ अकंपनकी ओर दौड़े ॥ १७ ॥ परन्तु अकम्पननें हनुमानजीको गिरि शृंग लिये आता हुआ देखकर दूरसेही बड़े भारी अर्द्धचन्द्र बाण चलाय इस पर्वतको खंड २ कर डाला ॥ १८ ॥ हनुमानजी उस पर्वतको राक्ष

आत्मानंत्वप्रहरणंज्ञात्वाक्रोधसमन्वितः ॥ शैलमुत्पाटयामासवेगेनहरिपुंगवः ॥ १५ ॥ गृहीत्वासुमहाशैलंपाणि
नैकेनमारुतिः ॥ सविनद्यमहानादंभ्रामयामासवीर्यवान् ॥ १६ ॥ ततस्तमभिदुद्रावराक्षसेंद्रमकंपनम् ॥ पुराहिन
मुचिंसंख्येवज्रेणेवपुरंदरः ॥ १७ ॥ अकंपनस्तुतद्दृष्ट्वागिरिशृंगंसमुद्यतम् ॥ दूरादेवमहाबाणैरर्धचंद्रैरदारयत् ॥ १८ ॥
तंपर्वताग्रमाकाशेरक्षोबाणविदारितम् ॥ विकीर्णपतितंदृष्ट्वाहनूमान्क्रोधमूर्छितः ॥ १९ ॥ सोश्वकर्णसमासाद्यरोषदर्पा
न्वितोहरिः ॥ तूर्णमुत्पाटयामासमहागिरिमिवोच्छ्रितम् ॥ २० ॥ तंगृहीत्वामहास्कंधंसोश्वकर्णमहाद्युतिः ॥ प्रगृह्य
परयाप्रीत्याभ्रामयामासभूतले ॥ २१ ॥ प्रधावन्नुरुवेगेनबभंजतरसाद्रुमान् ॥ हनूमान्परमक्रुद्धश्चारणैर्दारयन्मही
म् ॥ २२ ॥ गजांश्चसगजारोहान्सरथान्रथिनस्तथा ॥ जघानहनुमान्भीमान्राक्षसांश्चपदातिगान् ॥ २३ ॥

सके बाणोंसे आकाशमार्गमेंही कटा और इधर उधर छितराया देखकर क्रोधके मारे अधीर होगये ॥ १९ ॥ तब क्रोध और गर्व किये हुए उन वानरश्रेष्ठ हनुमानजीनें महापर्वतकी समान ऊंचे एक अश्वकर्ण वृक्षके नीचे जाय अति शीघ्रताके सहित उसको उखाड़ लिया ॥ २० ॥ तिसके पीछे महाद्युतिमान हनुमानजीनें शाखा फुलंची युक्त उस अति ऊंचे अश्वकर्णके वृक्षको ग्रहण करके परम प्रसन्नता सहित उसको रणस्थलमें घुमाय कर एक वार पृथ्वीपर देमारा ॥ २१ ॥ उस कालमें क्रोधपूर्ण हनुमानजी करके उस वृक्षके घुमानेंसे अनेक वृक्ष टूट गये, और उनके चरणोंके वेगसे वसुमती पृथ्वी घूमनें लगी ॥ २२ ॥ महावीर हनुमानजी उस वृक्षको घुमाय २ हाथी, हाथियोंके साथ, रथी, रथ और भयंकर परा

ऊंट, इत्यादि जीवगणभी चलनेंलगे, और चित्र विचित्र ध्वजा पताकाओंसे यह सब विशेष सुशोभितथे ॥ ५ ॥ वीर वज्रदंष्ट्र विचित्र बाजू बांधे शोभायमान मुकुट शिर पर धारे युद्ध करनेंको चला, उसका शरीर बख्तरसे ढकाहुआथा, और हाथोंमें धनुष बाणथा ॥ ६ ॥ उसका रथ ध्वजा पताकाओंके लगनेसे शोभायमानथा, तपायाहुआ सुवर्णभी उसमें बहुत स्थानोंपर लगा हुआथा, ऐसे रथकी प्रदक्षिणा करके वज्रदंष्ट्र उस पर सवार हुआ ॥ ७ ॥ तेगा, तोमर, मूसल, तीक्ष्ण फरसे, भिण्डिपाल, धनुष, शक्ति पटा ॥ ८ ॥ खड्ग, चक्र, गदा; इत्यादि और अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र लिये पैदल सैना वज्रदंष्ट्र नामक राक्षसके साथ २ चली ॥ ९ ॥ वह राक्षसश्रेष्ठ सबही उजले और दीप्त चित्रित वस्त्र पहर रहेथे, उस

ततोविचित्रकेयूरमुकुटेनविभूषितः ॥ तनुत्रंचसमावृत्यसधनुर्निर्ययौद्रुतम् ॥ ६ ॥ पताकालंकृतंदीप्तंतप्तकांचनभूषितम् ॥ रथंप्रदक्षिणंकृत्वासमारोहच्चमूपतिः ॥ ७ ॥ ऋष्टिभिस्तोमरैश्चित्रैःश्लक्ष्णैश्चमुसलैरपि ॥ भिंदिपालैश्चचापैश्चशक्तिभिःपट्टिशैरपि ॥ ८ ॥ खड्गैश्चक्रैर्गदाभिश्चनिशितैश्चपरश्वधैः ॥ पदातयश्चनिर्यांतिविविधाःशस्त्रपाणयः ॥ ९ ॥ विचित्रवाससःसर्वेदीप्താराक्षसपुंगवाः ॥ गजामदोत्कटाःशूराश्चलंतइवपर्वताः ॥ तेयुद्धकुशलारूढास्तोमरांकुशपाणिभिः ॥ अन्येलक्षणसंयुक्ताःशूरारूढामहाबलाः ॥ ११ ॥ तद्राक्षसबलंसर्वंविप्रस्थितमशोभत ॥ प्रावृट्कालेयथामेघानर्दमानाःसविद्युतः ॥ १२ ॥ निःसृतादक्षिणद्वारादंगदोयत्रयूथपः ॥ तेषांनिष्क्रममाणानामशुभंसमजायत ॥ १३ ॥ आकाशाद्विघनात्तीव्रादुल्मुकान्यपतंस्तदा ॥ वमंतःपावकज्वालाःशिवाघोरावववाशिरे ॥ १४ ॥

सैनाके पीछे २ मदमाते हाथी, गमन करनेंके समय चलते हुए पर्वतोंकी समान ज्ञात होतेथे ॥ १० ॥ वह समस्त हाथी युद्ध करनेंमें बड़े कुशलथे, उन पर भाला अंकुशादि धारण किये वीर लोग चढ़ेथे व औरभी महाबली सर्व लक्षण सम्पन्न वीर गण उन पर चढ रहेथे ॥ ११ ॥ उस समय वह चलती हुई राक्षस सैना वर्षा समयकी श्रेणीसे शोभित गर्जती हुई मेघ मालाकी समान शोभायमान होनें लगी ॥ १२ ॥ उस समय वह सैना निकलकर वहां पर जहां कि यूथपति अंगदजी लंकाके दक्षिणद्वारपर टिके हुएथे राक्षसोंकी सैना जैसेही निकलीकि उसके अशुभकी सूचना करनें वाले अमंगल दृष्टि आनें लगे ॥ १३ ॥ आकाशसे विनाही मेघके तीव्र विजलीके सहित उल्का गिरनें लगीं । घोर रूपवाली

भागनें लगे ॥ ३२ ॥ उन राक्षसोंके वाल छूट रहेथे उन्होंने पराजित होकर मान मर्यादाको जल दे दिया, भयके मारे उनके सब अंगोंमें पसीना
आ रहाथा, और प्राणोंका डर करके उनके चित्त स्थिर नहींथे ॥ ३३ ॥ उस समय उनको इस प्रकारका भय हुआथा कि वह राक्षस भागनेंके
समय वारंवार पीछे को देखनें लगे, और आपही परस्पर एक दूसरेको मारते हुए नगरमें प्रवेश करते हुए ॥ ३४ ॥ जब वह महावल राक्षस लंका
पुरीको चले गये तब समस्त वानर एकत्रहो हनुमानजीकी पूजा करनें लगे और उन नीतिविशारद सत्वसम्पन्न हनुमानजीनेभी भेंटकरके,
व संभाषण करके उन सब वानरोंकी यथायोग्य रूपसे बडाईकर प्रतिपूजित किया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ तिसके पीछे वह विजयी वानर गण मृतक

तेमुक्तकेशाःसंभ्रांताभग्नमानाःपराजिताः॥भयाच्छ्रमजलैरंगैःप्रस्रवद्भिर्विदुद्रुवुः॥३३॥ अन्योन्यंतेप्रमथ्नंतोविविशुर्नग
रंभयात् ॥ पृष्ठतस्तेतुसंमूढाःप्रेक्षमाणामुहुर्मुहुः॥३४॥ तेषुलंकांप्रविष्टेषुराक्षसेषुमहाबलाः ॥ समेत्यहरयःसर्वेहनूमंतम
पूजयन् ॥३५॥ सोपिप्रवृद्धस्तान्सर्वान्हरीन्संप्रत्यपूजयत् ॥ हनूमान्सत्त्वसंपन्नोयथार्हमनुकूलतः ॥ ३६ ॥ विनेदुश्चय
थाप्राणंहरयोजितकाशिनः ॥ चकृषुश्चपुनस्तत्रसप्राणानेवराक्षसान् ॥ ३७ ॥ सवीरशोभामभजन्महाकपिःसमेत्यरक्षां
सिनिहत्यमारुतिः ॥ महासुरंभीमममित्रनाशनंविष्णुर्यथैवोरुबलंचमूमुखे ॥३८॥ अपूजयन्देवगणास्तदाकपिंस्वयंच
रामोतिबलश्चलक्ष्मणः॥तथैवसुग्रीवमुखाःप्लवंगमाविभीषणश्चैवमहाबलस्तदा ॥ ३९ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वाल्मीकीयेआ०
युद्धकांडेषट्पंचाशःसर्गः ॥५६॥अकंपनवधंश्रुत्वाक्रुद्धोवैराक्षसेश्वरः॥किंचिद्दीनमुखश्चापिसचिवांस्तानुदैक्षत ॥ १ ॥

राक्षसोंको ऐसा समझकर कि कदाचित् यह जीवित न हों फिर इधर उधर खेंचने लगे ॥ ३७ ॥ जिस प्रकार शत्रुओंके मारनेंवाले विष्णुजीने
संग्रामभूमिमें भयंकर रूप महा वलवान मधुकैटभादि महा असुरोंको मारकर बडी भारी शोभा धारण कीथी वैसेही यह महाकपि पवनकुमार
हनुमानजी राक्षसोंको ऐसा संहारकरके वीरोंकी शोभासे शोभित हुए ॥ ३८ ॥ उस समय आकाशमें टिके हुए देवतागण सुग्रीवादि मुख्य २ वानर
गण, महाबलवान विभीषण अति वलवान लक्ष्मण और स्वयं श्रीरामचंद्रजीभी उन महाकपि हनुमानजीकी वारंवार प्रशंसा करने लगे ॥ ३९ ॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे षट्पंचाशःसर्गः ॥ ५६ ॥ अकम्पनके मारे जानेका वृत्तान्त सुनकर निशाचरपति रावण अ

सब अस्त्र शस्त्रोंको त्याग करके, तल, चरण और घूमनेंसे मल्ल युद्ध और कोई वृक्षोंको लेकर युद्ध करनें लगे ॥ २३ ॥ उस समय कोई २ राक्षस युद्धमें मतवाले वानर गणोंसे जांघसे मारे जाकर अपने शरीरको तुडवाते हुए, और कोई राक्षस वानरोंकी चलाई हुई शिलाओंके प्रहारसे पिसकर चूर्ण होगये ॥ २४ ॥ तिसके पीछे वज्रदंष्ट्र यह समस्त व्यापारदेख वानरोंको त्रासित करता हुआ लोक संहार करनेंके लिये तैयार फांसी हाथमें लिये हुए यमराजकी समान रणभूमिमें घूमनें लगा ॥ २५ ॥उस समय विविध अस्त्र शस्त्र धारी अस्त्रावित् बलवान निशाचर गण क्रोधसे मूर्छित होकर वानरोंकी सैनाका संहार करनें लगे ॥ २६ ॥ परन्तु महा वीरजी रणभूमिमें राक्षसों करके वानर लोगोंको मरते देखकर प्रलय

जानुभिश्चहताःकेचिद्भग्नदेहाश्चराक्षसाः ॥ शिलाभिश्चूर्णिताःकेचिद्वानरैर्युद्धदुर्मदैः ॥ २४ ॥ वज्रदंष्ट्रोथतंदृष्ट्वारणेवि
त्रासयन्हरीन् ॥ चचारलोकसंहारेपाशहस्तइवांतकः ॥ २५ ॥ बलवंतोऽस्त्रविदुषोनानाप्रहरणारणे ॥ जघ्नुर्वानरसैन्यानि
राक्षसाःक्रोधमूर्छिताः ॥ २६ ॥ जघ्नेतान्राक्षसान्सर्वान्दृष्टोवायुसुतोरणे ॥ क्रोधेनद्विगुणाविष्टःसंवर्तकइवानलः ॥ २७॥
तान्राक्षसगणान्सर्वान्वृक्षमुद्यम्यवीर्यवान् ॥ अंगदःक्रोधताम्राक्षःसिंहःक्षुद्रमृगानिव ॥ २८॥ चकारकदनंघोरंशक्रतु
ल्यपराक्रमः ॥ अंगदाभिहतास्तत्रराक्षसाभीमविक्रमाः ॥ २९ ॥विभिन्नशिरसःपेतुर्निकृत्ताइवपादपाः ॥ रथैश्चित्रैर्ध्वजै
रश्वैःशरीरैहरिरक्षसाम् ॥ ३० ॥ रुधिरौघेणसंछन्नाभूमिर्भयकरीतदा ॥ हारकेयूरवस्त्रैश्चछत्रैश्चसमलंकृता॥ ३१ ॥

कालके अग्निकी समान द्विगुण कोप करते हुए ॥ २७ ॥ इन्द्रतुल्य पराक्रम शाली अंगदजी भी क्रोधके मारे लाल २ नेत्रकर सिंह जिस प्रकार छोटे २ मृगोंका नाश करताहै वैसेही वृक्षोंको उठाय २ यह राक्षसोंकाघोर विनाश करनें लगे ॥ २८ ॥ यद्यपि यह राक्षस लोग भी बड़े विक्रमीथे परन्तु इन्द्रकी समान वीर विक्रम कारी अंगदजीके द्वारा मारे जानेंसे ॥ २९ ॥ इन राक्षसोंके शिर कट गये, कि जिस्से यह राक्षस कटे हुए वृक्षकी समान पृथ्वीपर गिरनें लगे । रथ चित्र विचित्र ध्वजा पताका अश्व और वानर राक्षसोंके मृतक शरीरोंसे ॥ ३० ॥ और रुधिरके सोतेसे

सिंहकी सिंहनादको नहीं सहसकतेहैं; वैसेही वह नीतिरहित चपल और चंचलचित्त वानरोंकी सैना तुम्हारा भयंकर गर्जना नहीं सहसकेगी हे प्रहस्त! सब वानरोंकी सैनाके इधर उधर भाग जानेंसे वह स्वामी शक्तिहीन सहायरहित रामचंद्र और सुमित्राके पुत्र लक्ष्मणके सहित तुम्हारे वशमें होजांयगे ॥९॥ १० ॥ हे वीर! यद्यपि आपत् अर्थात् युद्धमें मरण संशय युक्तहै; कारण कि यह नहीं जाने कि कौन मारा जायगा. और निःसंशयमें अमंगलहै, इस कारण इसका प्रतिलोम और अनुलोम, जिसमें प्रवृत्तिहो वही तुम करो * ॥ ११ ॥ जब रावणनें यह कहा तब सैनापति प्रहस्त शुक्राचार्य जिस प्रकार दैत्येन्द्रसे कहा करते हैं वैसेही राक्षसोंके स्वामी रावणसे यह बोला ॥ १२ ॥ हे महाराज! पहले हम

विद्रुतेचबलेतस्मिन्रामःसौमित्रिणासह ॥ अवशस्तुनिरालंबः प्रहस्तवशमेष्यति ॥ १० ॥ आपत्संशयिताश्रेयोनात्रनिःसंशयीकृता ॥ प्रतिलोमानुलोमंवायत्तुनोमन्यसेहितम् ॥ ११ ॥ रावणेनैवमुक्तस्तुप्रहस्तोवाहिनीपतिः ॥ राक्षसेंद्रमुवाचेदमसुरेंद्रमिवोशना ॥ १२ ॥ राजन्मंत्रितपूर्वंनःकुशलैःसहमंत्रिभिः ॥ विवादश्चापिनोवृत्तःसमवेक्ष्यपरस्परम् ॥१३॥ प्रदानेनतुसीतायाःश्रेयोव्यवसितंमया ॥ अप्रदानेपुनर्युद्धंदृष्टमेवतथैवनः ॥१४॥ सोहंदानैश्चमानैश्चसततंपूजितस्त्वया ॥ सांत्वैश्चविविधैःकालेकिंनकुर्यांहितंतव ॥ १५ ॥

लोगोंनें नीतिके जाननेंवाले मंत्रियोंके सहित इस सम्बन्धमें परामर्श कियाथा. परन्तु उसकालमें परस्पर एकमत न होनेंसे हम लोगोंमें विवाद भी हुआ ॥ १३ ॥ उस समय हमनें जानकीका दे देनाही निश्चय कियाथा; और यह भी हमनें कहाथा कि सीता न देनेंसे युद्धभी होगा सो हे महाराज! इस समय हमें वही युद्ध प्राप्त हुआहै ॥ १४ ॥ हे राक्षसनाथ! जो कुछभी हो आप दान, सन्मान और मीठे वचनोंसे सदाही हमारा सन्मान किया करतेहैं; इस कारण इस समय हम आपके लिये किसी प्रकार हितकारी कार्य करनेंमें कोई कसर न रक्खेंगे ॥ १५ ॥

* तात्पर्य;—युद्ध क्षेत्रमें तुम्हारीभी मृत्यु होगी इसकी क्या स्थिरता है? परन्तु इसमे जयलाभ करना एक प्रकारसे स्थिर सिद्धान्त है इसकारण युद्धमें तुम्हारे लिये जानाही अच्छा हैं युद्धसे विमुख होना तुम्हारा कर्त्तव्य नहींहैं ॥

और हाथ कटगये और शस्त्रोंसे कट जानेके कारण उनके सब अंगोंमें रुधिर वहने लगा ॥ ८ ॥ असंख्य वानर और राक्षसगण मर २ कर पृथ्वीपर गिर पडे, तब उनके मृतक शरीरोंपर सहस्रों काक, गिद्ध, व गीदड बैठ मांस खाय २ नाचनें लगे ॥ ९ ॥ डरपोकोंको डरावने वाले कबंध उडनें लगे रणभूमिमें असंख्य सैनाके हाथ पैर शिर कटकर शरीरसे अलग होने लगे ॥ १० ॥ तिसके पीछे वानरोंकी सैनाकरकै मारीहुई निशाचरोंकी वह सैना राक्षस वज्रदंष्ट्रके सन्मुखही रणभूमि छोड कर भागनेका आरंभ करनेंलगी ॥ ११ ॥ वानरोंकी सैनाके हाथसे राक्षसोंको मारा जाता हुआ और भयसे भीत देखकर ॥ १२ ॥ प्रतापशाली राक्षसोंका सैनापति वज्रदंष्ट्र कोपसे परिपूर्ण हो गया उसके दोनोंनेत्र

हरयोराक्षसाश्चैवशेरतेगांसमाश्रिताः ॥ कंकगृध्रबलाढ्याश्चगोमायुकुलसंकुलाः ॥९ ॥ कबंधानिसमुत्पेतुर्भीरूणांभीषणानिवै ॥ भुजपाणिशिरश्छिन्नाश्छिन्नकायाश्चभूतले ॥ १० ॥ वानरराक्षसाश्चापिनिपेतुस्तत्रभूतले ॥ ततोवानरसैन्येनहन्यमानंनिशाचरम् ॥ ११ ॥ प्राभज्यतबलंसर्ववज्रदंष्ट्रस्यपश्यतः ॥ राक्षसान्भयवित्रस्तान्हन्यमानान्प्लवंगमैः ॥१२॥ दृष्ट्वासरोषताम्राक्षोवज्रदंष्ट्रःप्रतापवान् ॥ प्रविवेशधनुष्पाणिस्त्रासयन्हरिवाहिनीम् ॥१३॥ शरैर्विदारयामासकंकपत्रैरजिह्मगैः ॥ बिभेदवानरांस्तत्रसप्ताष्टौनवपंचच ॥ विव्याधपरमक्रुद्धोवज्रदंष्ट्रःप्रतापवान् ॥ १४ ॥ त्रस्ताःसर्वेहरिगणाःशरैःसंकृत्तदेहिनः ॥ अंगदंसंप्रधावंतिप्रजापतिमिवप्रजाः ॥ १५ ॥ ततोहरिगणान्भग्नान्दृष्ट्वावालिसुतस्तदा ॥ क्रोधेनवज्रदंष्ट्रंतमुदीक्षंतमुदैक्षत ॥ १६ ॥

क्रोधके मारे लाल हो आये वह धनुष करकै वानरोंकी सैनामें प्रवेश करकै उसको ताडित करने लगा ॥ १३ ॥ और अपनी कुटिल गतिसे कंक पत्र लगे हुए अगणित बाण चलाय २ वानर सैनाको घायल करने लगा, उस महाप्रतापी वज्रदंष्ट्रने अत्यन्त कोपमें भरकर वानर गणोंको यथा क्रमसे सात, आठ; नौ और पांच २ बाण चलाय उन वानरोंके शरीरको भेदा ॥ १४ ॥ तब भयके मारे सब वानर गण भागने लगे उनके शरीर बाणोंके लगनेंसे छिन्नभिन्न होगये सताई हुई प्रजा जिस प्रकार ब्रह्माजीके निकट जाया करतीहै वैसेही वानर गण अंगदजीके निकट दौडकर आने लगे ॥ १५ ॥ तब महा बलवान अंगदजी वज्रदंष्ट्रके द्वारा वानरोंको भागा हुआ देखकर उसकी ओर क्रोधसें दृष्टि करते हुए। राक्षस सैनापति

सर्व अस्त्र शस्त्रोंसे पूर्ण और तैयार रथपर सजा सजाया प्रहस्त नाम सैनापति सवार हुआ इस रथमें अत्यन्त वेगवान् घोड़े जुतेथे और सर्व भांतिसे चतुर सारथीभी इसपर चढ़ा हुआथा॥२५॥ इस रथका शब्द बड़े भारी मेघगर्जनकी समानथा चन्द्र सूर्यकी समान इसमें प्रकाशथा, सर्पाकार ध्वजा इसपर लटक रहीथीं । सुन्दर गुम्मजदार ॥ २६ ॥ सुवर्णके जालसे युक्त अपनी सुन्दरताईकी शोभाको मानो आपही हँसरही है, ऐसे रथपर रावणकी आज्ञासे सैनापति प्रहस्त सवार होकर ॥ २७ ॥ बड़ी भारी राक्षसोंकी सैना संगले लंकासे बहुतही शीघ्र निकला । उस समय मेघकी गर्जनेंकी समान नगाडोंका शब्द होनें लगा व और दूसरे बाजोंके शब्दसेभी पृथ्वी और दशोंदिशा पूर्ण होगई ॥ २८ ॥ जब वह सैनापति प्रहस्त

आरुरोहरथंयुक्तःप्रहस्तःसज्जकल्पितम् ॥ हयैर्महाजवैर्युक्तंसम्यक्सूतंसुसंयतम् ॥ २५ ॥ महाजलदनिर्घोषंसाक्षाच्चंद्रार्कभास्वरम् ॥ उरगध्वजदुर्धर्षंसुवरूथंस्वपस्करम् ॥२६॥ सुवर्णजालसंयुक्तंप्रहसंतमिवश्रिया ॥ ततस्तंरथमास्थाय रावणार्पितशासनः ॥ २७ ॥ लंकायानिर्ययौतूर्णंबलेनमहतावृतः ॥ ततोदुंदुभिनिर्घोषःपर्जन्यनिनदोपमः ॥ वादित्राणांचनिनदःपूरयन्निवमेदिनीम् ॥ २८ ॥ शुश्रुवेशंखशब्दश्चप्रयातेवाहिनीपतौ ॥ निनदंतःस्वरान्घोरान्राक्षसाजग्मुरग्रतः ॥ २९ ॥ भीमरूपामहाकायाःप्रहस्तस्यपुरःसराः ॥ नरांतकःकुंभहनुर्महानादःसमुन्नतः ॥ प्रहस्तसचिवाह्येते निर्ययुःपरिवार्यतम् ॥ ३० ॥ व्यूढेनैवसुघोरेणपूर्वद्वारात्सनिर्ययौ ॥ गजयूथनिकाशेनबलेनमहतावृतः ॥ ३१ ॥ सागरप्रतिमौघेनवृतस्तेनबलेनसः ॥ प्रहस्तोनिर्ययौक्रुद्धःकालांतकयमोपमः ॥ ३२ ॥

चला, तब बहुत सारे शंखभी बजनेंलगे और बड़े उच्च शब्दसे घोर गर्जन करते हुए राक्षस गणभी आगे २ चले ॥२९॥ प्रहस्तके साथ इस प्रकारसे महाकाय और भयंकर रूपवाले यह राक्षस आगे बढ़े।नारान्तक, कुम्भहनु, महानाद, समुन्नत, प्रहस्तके यह चार मंत्री प्रहस्तको घेरकर लंकासे निकले ॥ ३० ॥ हाथियोंके यूथकी समान बडीभारी राक्षसोंकी सैनाके साथ वह प्रहस्त घोर व्यूहकी रचना करता हुआ लंकाके पूर्वद्वारसे निकला ॥३१॥ प्रहस्तकी सैना बड़े भारी विस्तारवाले समुद्रकी समानथी । वह प्रहस्त कराल कालकी समान भयंकर मूर्ति धारण कर सेनाको संगले समरभूमिके

तक चेतना रहित हो अपनी गदाको पकड़े हुए लंबे श्वास चलानें लगा ॥२५॥ फिर कुछ देरमें चेतना पाय राक्षस वज्रदंष्ट्रनें क्रोधमें भर सन्मुख खडे हुए वालिकुमार अंगदजीको छातीमें एक गदा मारी ॥ २६ ॥ तिसके पीछे गदा युद्ध छोड वह वानर और राक्षस दोनों मूका,लात,चनकटा इत्यादि मार२वाहु युद्धकर परस्पर एक दूसरे पर चोट चलानें लगे ॥२७॥दोनोकेही शरीरसे रुधिर निकलनें लगा.घोर कठोर प्रहारोंके लगनेंसे दोनों वीरही थक गये; उस समय वह ऐसे ज्ञात होतेथे मानों रणभूमिमें मंगल और बुध ग्रह घूम रहेहैं ॥२८॥ तब परम तेजस्वी वानर श्रेष्ठ अंगदजी पुष्प और फलोंसे शोभायमान एक बडा भारी वृक्ष उखाडकर रणभूमिमें खडे होगये ॥२९ ॥ परन्तु निशाचर वज्रदंष्ट्रने किंकिणीजालसे युक्त विमल ऋषभके चर्मसे

सलब्धसंज्ञोगदयावालिपुत्रमवस्थितम् ॥ जघानपरमक्रुद्धोवक्षोदेशेनिशाचरः ॥ २६ ॥ गदांत्यक्त्वाततस्तत्रमुष्टियुद्धमकुर्वत ॥ अन्योन्यंजघ्नतुस्तत्रतावुभौहरिराक्षसौ ॥२७॥ रुधिरोद्गारिणौतौतुप्रहारैर्जनितश्रमौ ॥ बभूवतुःसुविक्रांतावंगारकबुधाविव ॥ २८ ॥ ततःपरमतेजस्वीअंगदःप्लवगर्षभः ॥ उत्पाट्यवृक्षंस्थितवानासीत्पुष्पफलैर्युतः ॥ २९ ॥ जग्राहचार्षभंचर्मखड्गंचविपुलंशुभम् ॥ किंकिणीजालसंछन्नंचर्मणाचपरिष्कृतम् ॥३०॥ चित्रांश्चरुचिरान्मार्गांश्चेरतुःकपिराक्षसौ ॥ जघ्नतुश्चतदान्योन्यंनर्दंतौजयकांक्षिणौ ॥३१॥ व्रणैःसमुत्थैःशोभेतांपुष्पिताविवकिंशुकौ ॥ युध्यमानौपरिश्रांतौजानुभ्यामवनींगतौ ॥ ३२॥ निमेषांतरमात्रेणअंगदःकपिकुंजरः ॥ उदतिष्ठतदीप्ताक्षोदंडाहतइवोरगः॥३३॥

बनी ढाल और चमड़ेके म्यानसे ढकी हुई तलवार निकाली तब वालिकुमार अंगदजीनेंभी मृगचर्मसे बनी हुई जयकी सूचना करनेंवाली बडी ढाल और खड्ग ग्रहण किया ॥ ३० ॥ उस समय विजयकी अभिलाषा किये वह दोनों वानर और राक्षस विचित्रमार्गेमें घूमतेहुए परस्परमें एक दूसरेके ऊपर चोट चलानें लगे ॥ ३१ ॥ परस्पर युद्ध करते हुए उन दोनों वीरोंके सर्वाङ्गोंमें रुधिर निकलनेंके कारण वह दोनों फूले हुए दो टेसू वृक्षोंकी समान शोभायमान हो रहेथे, परस्पर जांघोंको सकोड़ कर यह दोनों वीर थककर पृथ्वीमें बैठतेहुए ॥ ३२ ॥ कपि कुंजर अंगदजी एक निमेष मात्रमें दंडसे आहत हुए सर्पकी समान तड़ककर उठे, उनके दोनों नेत्रोंनें दीप्तिमान अग्निके समान प्रभाव धारण किया ॥ ३३ ॥

और बड़ी शिलायें ग्रहण करके पर्वतोंके शृङ्गोंको तोड़ते हुए धीरे २ आगे बढ़े ॥ ४१ ॥ तिसके पीछे वानर और निशाचरोंकी सैना ऐसा गर्जन और सिंहनाद करनें लगी ! दोनोंही ओरकी सैना युद्धकी वासनासे हर्षितचित्त होरहीथी ॥ ४२ ॥ यह दोनों वानर और राक्षसगण एक दूसरेका नाश करना चाहतेथे, उस कालमें दोनों सैनाके वीर दोनों ओरके वीरोंको लड़नेंके लिये पुकारतेथे, वस यही शब्द उस काल श्रवण होताथा ॥ ४३ ॥ तिसके पीछे राक्षसोंकी सैनाका पति खोटीमतिवाला प्रहस्त युद्धमें जय पानेंकी वासनासे; पतंग जिस प्रकार मृत्युके निकट पहुंचकर प्रदीप्त अग्निकी शिखामें गिरजाताहै, वैसेही अत्यन्त वेगसे वानरोंकी सैनामें प्रवेश करता हुआ ॥ ४४ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०यु०सप्तपंचाशःसर्गः ॥ ५७ ॥

नदतांराक्षसानांचवानराणांचगर्जताम् ॥ उभेप्रमुदितेसैन्येरक्षोगणवनौकसाम् ॥ ४२ ॥ वेगितानांसमर्थानामन्योन्य वधकांक्षिणाम् ॥ परस्परंचाह्वयतांनिनादःश्रूयतेमहान् ॥ ४३ ॥ ततःप्रहस्तःकपिराजवाहिनीमभिप्रतस्थेविजया यदुर्मतिः ॥ विवृद्धवेगश्चविवेशितांचमूंयथामुमूर्षुःशलभोविभावसुम् ॥ ४४ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मी कीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेसप्तपंचाशःसर्गः ॥ ५७ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ततःप्रहस्तंनिर्यांतंदृष्ट्वारणकृतोद्यमम् ॥ उवाच सस्मितंरामोविभीषणमरिंदमः ॥ १ ॥ कएषसुमहाकायोबलेनमहतावृतः ॥ आगच्छतिमहावेगःकिंरूपबलपौरु षः ॥ २ ॥ आचक्ष्वमेमहाबाहोवीर्यवंतंनिशाचरम् ॥ राघवस्यवचःश्रुत्वाप्रत्युवाचबिभीषणः ॥ ३ ॥ एषसेनापति स्तस्यप्रहस्तोनामराक्षसः ॥ लंकायांराक्षसेंद्रस्यत्रिभागबलसंवृतः ॥ वीर्यवानस्त्रविच्छूरःसुप्रख्यातपराक्रमः ॥ ४ ॥

तिसके पीछे शत्रुदमनकारी श्रीरामचंद्रजी प्रहस्तको संग्राम करनेंके लिये तैयार देख हँसकर विभीषणजीसे पूछनेंलगे ॥ १ ॥ यह महाकाय वीर्यवान् निशाचर जो बड़ी भारी सैनाके साथ अतिवेगसे यहांपर आय रहाहै; इसका बल और पौरुष कैसा है ॥ २ ॥ हेमहाबाहो ! हमको इस वीर्यवान् निशाचरका यह समस्त वृत्तान्त सुनाओ, तब श्रीरामचंद्रजीके ऐसे वचन सुनकर विभीषणजी उत्तर देतेहुए ॥ ३ ॥ कि यह प्रहस्तनामक निशाचर राक्षसराज रावणका सैनापतिहै; लंकापुरीमें जितनीभर रावणकी सैनाहै यह विख्यातपराक्रम अस्त्रोंका जाननेंवाला

सेनापति बनायकर युद्ध करनेके लिये जाँय ॥ २ ॥ यह अकम्पन वीर शत्रु लोगोंको दमन करनेमें बड़ा चतुरहै, यह अपनी सैनाकी रक्षा करने वाला और युद्ध कार्यका प्रेरकहै; विशेष करके यह हमारा एक हितकारी बन्धुहै युद्ध कार्यमें इसका बड़ा अनुरागहै ॥ ३ ॥ यही महाबल वान् सुग्रीवके सहित रामचंद्र और लक्ष्मणको युद्धमे पराजित करेंगे; और इसमेंभी कोई सन्देह नहीं कि इनके हाथसे युद्धमें और वानरवीर गणभी मारे जायँगे ॥ ४ ॥ शीघ्र पराक्रम करनेवाला महाबलवान् प्रहस्त रावणकी ऐसी आज्ञाको पायकर सब सैनाको युद्ध करनेके लिये चलनेंकी आज्ञा देताहुआ ॥ ५ ॥ तव वह अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र धारी भयंकर नेत्र और भयंकराकार प्रधान २ राक्षसगण सैनापतिकी यह

एषशास्ताचगोप्ताचनेताचयुधिसत्तमः ॥ भूतिकामश्चमेनित्यंनित्यंचसमरप्रियः॥३॥ एषजेष्यतिकाकुत्स्थौसुग्रीवंच महाबलम्॥वानरांश्चापरान्घोरान्हनिष्यतिनसंशयः ॥४॥परिगृह्यसताज्ञांरावणस्यमहाबलः॥स्वबलंप्रेरयामासतदा लघुपराक्रमः॥५॥ततोनानाप्रहरणाभीमाक्षाभीमदर्शनाः ॥ निष्पेतूराक्षसामुख्याबलाध्यक्षप्रचोदिताः ॥६॥ रथमास्था यविपुलंतप्तकांचनभूषणम् ॥ मेघाभोमेघवर्णश्चमेघस्वनमहास्वनः ॥ ७ ॥ राक्षसैःसंवृतोघोरैस्तदानिर्यात्यकंपनः ॥ नहिकंपयितुंशक्यःसुरैरपिमहामृधे ॥ ८ ॥ अकंपनस्ततस्तेषामादित्यइवतेजसा ॥ तस्यनिर्धावमानस्यसंरब्धस्य युयुत्सया ॥ ९ ॥ अकस्माद्दैन्यमागच्छद्धयानांरथवाहिनाम् ॥ विस्फुरन्नयनंचास्यसव्यंयुद्धाभिनंदिनः ॥ १० ॥

आज्ञा पायकर युद्ध करनेंके लिये निकले ॥ ६ ॥ राक्षसोंके सेनापतिका वर्ण मेघतुल्य और शब्द मेघके गर्जन करनेंकी समान था; वह तपाये हुए सुवर्णसे विभूषित रथपर सवार होता हुआ ॥ ७ ॥ उसके साथ २ भयंकराकार अगणित राक्षसोंकी सैना युद्ध करनेंके लिये निकली इस वीर अकंपनको संग्रामस्थानमें देवतालोगभी कंपायमान करनेंको समर्थ नहीं थे ॥ ८ ॥ यह तेजस्वी अकंपन अपनी सेनाके बीचमें साक्षात् सूर्य भग वान् की समान शोभायमान होंनेलगा जब यह युद्ध करनेंकी इच्छासे चला, तब क्रोधकर दौडतेहुए अकम्पनके ॥ ९ ॥ रथमें जुतेहुए घोडोंको

खड्गमें दो टुकडे कर डाले गये; किसी २ वानरकी बगलही कटगईथी; इस्से वहभी पृथ्वीपर पड़ेथे ॥ १४ ॥ इसी प्रकारसे बड़ा क्रोध करके वानरोंनें राक्षसोंके ऊपर पर्वतोंके शिखर और वृक्षोंका प्रहार किया, कि जिस्से वह पिसकर पृथ्वीपर गिर पडे ॥ १५ ॥ कोई २ राक्षस वानरोंके चनकटे खाय और कोई २ घूंसे खाय २ कर मारे गये, कोई २ रुधिर उगलनेंलगे, और किसी २ राक्षसके मुख सूखकर फैल गयेथे ॥ १६ ॥ इस प्रकारसे राक्षस और वानरोंकी सैनाके बीचमें आरत वाणी सिंहनाद और गर्जन करनेंका कठोर शब्द उत्पन्न हुआ ॥ १७ ॥ इस प्रकारसे वह विकराल वदन क्रूर निशाचर और वानर गण वीर मार्गमें टिके हुए क्रोधमें भर भय छोड़ युद्ध करते हुए

वानरैश्चापिसंक्रुद्धैराक्षसौघाःसमंततः ॥ पादपैर्गिरिशृंगैश्चसंपिष्टावसुधातले ॥ १५ ॥ वज्रस्पर्शतलैर्हस्तैर्मुष्टिभिश्च हताभृशम् ॥ वमञ्छोणितमास्येभ्योविशीर्णवदनेक्षणाः ॥ १६ ॥ आर्तस्वनंचस्वनतांसिंहनादंचनर्दताम् ॥ बभूवतु मुलःशब्दोहरीणांरक्षसामपि ॥ १७ ॥ वानराराक्षसाःक्रुद्धावीरमार्गमनुव्रताः ॥ विवृत्तवदनाःक्रूराश्चक्रुःकर्माण्यभी तवत् ॥ १८ ॥ नरांतकःकुंभहनुर्महानादःसमुन्नतः ॥ एतेप्रहस्तसचिवाःसर्वेजघ्नुर्वनौकसः ॥ १९ ॥ तेषांनिपततां शीघ्रंनिघ्नतांचापिवानरान् ॥ द्विविदोगिरिशृंगेणजघानैकंनरांतकम् ॥२०॥ दुर्मुखःपुनरुत्थायकपिःसविपुलद्रुमम् ॥ राक्षसंक्षिप्रहस्तंतुसमुन्नतमपोथयत् ॥ २१ ॥ जांबवांस्तुसुसंक्रुद्धःप्रगृह्यमहतींशिलाम् ॥ पातयामासतेजस्वीमहा नादस्यवक्षसि ॥ २२ ॥ अथकुंभहनुस्तत्रतारेणासाद्यवीर्यवान् ॥ वृक्षेणमहतासद्यःप्राणान्संत्याजयद्रणे ॥ २३ ॥

अद्भुत कर्म करनें लगे ॥ १८ ॥ प्रहस्तके मंत्री नरान्तक, कुम्भहनु, महानाद, और समुन्नत, नामक यह चारों राक्षस भी अनेक वानरोंका संहार करनें लगे ॥ १९॥ परन्तु द्विविद नाम वानरनें इनको इस प्रकारसे कूद२ कर वानरोंको मारते देख पर्वतका शृङ्ग उठाय उस्से राक्षस नरान्तकका प्राण संहार किया ॥ २० ॥ कपिश्रेष्ठ दुर्मुखनें एक बड़ा भारी वृक्ष उठाय उस्से शीघ्र कर्मकारी निशाचर समुन्नतको मार डाला ॥२१ ॥ महावीर तेजस्वी जाम्बवानजीनें अत्यन्त क्रोधमें भरकर महानादकी छातीमें एक बड़ी भारी शिलामार उसको पृथ्वीपर गिरा दिया ॥२२॥ कपिवर वीर्यवान

इस धूरनें सब दिशाओंको ढक लिया, न राक्षस, न वानर, न ध्वजा, न पताका, न ढाल, न अश्व, न गज॥२०॥न हथियार, न रथ, कुछभी उस धूलके उड़नेंसे नहीं दीख पड़तेथे। संग्राममें गर्जन करके धावमान होते हुए वानर और राक्षसोंका बड़ा भारी शब्दही॥२१॥ केवल कठोर युद्धमें सुनाई देताथा, परन्तु किसीका कोई रूप दिखाई नहीं देताथा। अधिक क्या कहैं यहांतक हुआकि रूप न दिखाई देनेके कारण वानरगण वानरोंकोही मारनें लगे, और राक्षस लोग अंधकारके मारे राक्षसोंहीको संहार करनें लगे, वानर और राक्षस दोनोंही अपनी २ ओरवालोंको; और अपने २ शत्रुओंकोभी मारतेथे ॥ २२ ॥ २३ ॥ वानर और राक्षसगण यहांतक लड़े कि पृथ्वी रुधिरसे गीली होगई और इनके शरीरोंमें रुधिरकी कीच लिपट

संवृतानिचभूतानिददृशुर्नरणाजिरे ॥ नध्वजोनपताकावाचर्मवातुरगोपिवा ॥ २० ॥ आयुधंस्यंदनोवापिददृशेतेनरेणुना॥ शब्दश्चसुमहांस्तेषांनर्दतामभिधावताम्॥२१॥ श्रूयतेतुमुलेयुद्धेनरूपाणिचकाशिरे ॥ हरीनेवसुसंरुष्टाहरयोजघ्नुराहवे ॥ २२॥ राक्षसाराक्षसांश्चापिनिजघ्नुस्तिमिरेतदा ॥ तेपरांश्चविनिघ्नंतःस्वांश्चवानरराक्षसाः ॥ २३ ॥ रुधिरार्द्रांतदाचक्रुर्महींपंकानुलेपनाम् ॥ ततस्तुरुधिरौघेणसिक्तंह्यपगतंरजः ॥ २४ ॥ शरीरशवसंकीर्णाबभूवचवसुंधरा ॥ द्रुमशक्तिगदाप्रासैःशिलापरिघतोमरैः ॥ २५ ॥ राक्षसाहरयस्तूर्णंजघ्नुरन्योन्यमोजसा ॥ बाहुभिःपरिघाकारैर्युध्यंतःपर्वतोपमान् ॥ २६॥ हरयोभीमकर्माणोराक्षसान्जघ्नुराहवे ॥ राक्षसास्त्वभिसंक्रुद्धाःप्रासतोमरपाणयः ॥२७॥ कपीन्निजघ्निरेतत्रशस्त्रैःपरमदारुणैः ॥ अकंपनःसुसंक्रुद्धोराक्षसानांचमूपतिः ॥२८॥ संहर्षयतितान्सर्वान्राक्षसान्भीमविक्रमान् ॥ हरयस्त्वपिरक्षांसिमहाद्रुममहाश्मभिः ॥ २९ ॥

गई, जब रुधिरसे कीच उठी तब धूल जातीरही ॥२४॥तिसके पीछे देखते२ पृथ्वी मृतक शरीरोंसे पूर्ण होगई। वृक्ष, शक्ति, गदा, फांसी, शिला, परिघ, तोमर, आदि अस्त्र शस्त्रोंसे ॥ २५ ॥ वानर और राक्षसगण परस्पर एक दूसरेपर चोट चलानें लगे। परिघाकारवाली बाहोंसे युद्ध करते हुए पर्वतकी समान ॥ २६ ॥ भयंकर कर्मकारी वानरगण राक्षसोंका संहार करनें लगे; और राक्षसोंनेंभी प्रास तोमर हाथोंमें ले ॥ २७ ॥ व औरभी परम दारुण अस्त्र शस्त्रोंसे वानरोंको मारा तिसके पीछे राक्षसोंका सैनापति अकंपन क्रोध करता हुआ ॥ २८ ॥ भयंकर कर्मकारी सब राक्षसोंको

कायर पुरुषोंके लिये यह युद्धमय नदी अतिदुःखसे पार होनेके योग्यहै, शरदकालमें जैसे श्रेष्ठ नदी हंस सारस पक्षियोंसे सेवित होतीहै ऐसी ॥ ३२ ॥ नदीमें गजयूथपतिगण जिस प्रकारसे पद्मरजशालिनी नलिनीके पार उतर जातेहैं; वैसेही वह राक्षस और वानर मुख्य २ गण अति सरलतासे इस नदीके पार उतरनें लगे ॥ ३३ ॥ तिसके पीछे प्रहस्तको रथपर सवार हुआ बाणोंकी वर्षा करते हुए वानर गणोंको विदारित करते देख सैनापति नील अत्यन्त वेगसे धाये ॥ ३४॥ सैनापति प्रहस्त बड़े भारी मेघकी समान बलशाली और आकाशमें टिके हुए पवनकी समान नीलको रणभूमिमें अपनी ओर झपटकर आता हुआ देख ॥ ३५ ॥ अपने सूर्यकी समान रथको चलायकर नीलके सन्मुख आया तिसके पीछे

तांकापुरुषदुस्तारांयुद्धभूमिमयींनदीम् ॥ नदीमिवघनापायेहंससारससेविताम् ॥ ३२ ॥ राक्षसाःकपिमुख्यास्ते तेरुस्तांदुस्तरांनदीम् ॥ यथापद्मरजोध्वस्तांनलिनींगजयूथपाः ॥ ३३ ॥ ततःसृजंतंबाणौघान्प्रहस्तंस्यंदनेस्थितम् ॥ ददर्शतरसानीलोविधमंतंप्लवंगमान् ॥ ३४ ॥ उद्धूतइववायुःखेमहदभ्रबलंबलात् ॥ समीक्ष्याभिद्रुतंयुद्धेप्रहस्तोवाहिनीपतिः ॥ ३५ ॥ रथेनादित्यवर्णेननीलमेवाभिदुद्रुवे ॥ सधनुर्धन्विनांश्रेष्ठोविकृष्यपरमाहवे॥ ३६ ॥ नीलायव्यसृजद्बाणान्प्रहस्तोवाहिनीपतिः ॥ तेप्रेत्यविशिखानीलंविनिर्भिद्यसमाहिताः ॥ ३७ ॥ महींजग्मुर्महावेगारोषिताइवपन्नगाः ॥ नीलःशरैरभिहतोनिशितैर्ज्वलनोपमैः ॥ ३८ ॥ सतंपरमदुर्धर्षमापतंतंमहाकपिः ॥ प्रहस्तंताडयामासवृक्षमुत्पाट्यवीर्यवान् ॥ ३९ ॥ सतेनाभिहतःक्रुद्धोनर्दन्राक्षसपुंगवः ॥ ववर्षशरवर्षाणिप्लवंगानांचमूपतौ ॥ ४० ॥

धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ सैनापति प्रहस्त अपने बडे भारी धनुषको खेंचकर ॥ ३६ ॥ सैनापति नीलके ऊपर बाणोंकी वर्षा करनेंलगा; वह समस्त महावेगवान बाण नीलके शरीरपर गिर और नीलकी देहको फोड़ उसमें प्रवेश करते हुए ॥ ३७ ॥ मानो क्रोधित सर्प पृथ्वीमें प्रवेश कर रहेहैं, सैनापति नील अग्निकी समान बाणोंसे घायल होकर ॥ ३८ ॥ वह परम दुर्द्धर्ष वीर्यवान् महाकपि एक वृक्ष उखाड़कर प्रहस्तके ऊपर प्रहार करतेहुए ॥ ३९ ॥ राक्षसश्रेष्ठ प्रहस्त इस घोर प्रहारसे अत्यन्त दुःखित और व्यथित होकर अत्यन्त क्रोधयुक्त हो वारंवार सिंहनादकर

केही संहार करनेंकी इच्छा करतेहैं, कारण कि हम देखते हैं कि कईएक वानरोंसेही समस्त राक्षसोंकी सैना मथी जा रहीहै॥५॥ ऐसा सुनकर जब सारथिनें घोड़े हाँके तब राक्षसश्रेष्ठ अकंपन, वानर गणोंके सामने जाय दूरसेही उन वानरोंके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ६ ॥ तिस समय उस अकम्पनके साथ युद्ध करना तौ दूर रहै वानर गण रणमें उसके सामनेभी नहीं टिकसके, वरन उसके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित और छिन्नभिन्न होकर सवही इधर उधरसे भागनें लगे ॥ ७ ॥ परन्तु महाबलवान हनुमानजी अपनी जातिवाले वानरोंको अकम्पनके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित और मृत्युके मुखमें धरे हुए देखकर उसके सामनेंको बढ़े ॥ ८ ॥ तिस समय उन महाकपिको देखकर सब महावीर वानरगण फिर रण

ततःप्रचलिताश्वेनरथेनरथिनांवरः ॥ हरीनभ्यपतद्दूराच्छरजालैरकंपनः ॥६॥ नस्थातुंवानराःशेकुःकिंपुनर्योद्धुमाहवे॥ अकंपनशरैर्भग्नाःसर्वएवाभिदुद्रुवुः ॥७॥ तान्मृत्युवशमापन्नानकंपनशरानुगान् ॥ समीक्ष्यहनुमान्ज्ञातीनुपतस्थेम हाबलः ॥ ८ ॥ तंमहाप्लवगंदृष्ट्वासर्वेतेप्लवगर्षभाः ॥ समेत्यसमरेवीराःसहिताःपर्यवारयन् ॥ ९ ॥ व्यवस्थितंहनूमं तंतेदृष्ट्वाप्लवगर्षभाः ॥ बभूवुर्बलवंतोहिबलवंतमुपाश्रिताः ॥ १० ॥ अकंपनस्तुशैलाभंहनूमंतमवस्थितम् ॥ महेंद्रइवधा राभिःशरैरभिववर्षह ॥११॥ अचिंतयित्वाबाणौघान्शरीरेपातितान्कपिः ॥ अकंपनवधार्थायमनोदध्रेमहाबलः ॥१२॥ सप्रहस्यमहातेजाहनूमान्मारुतात्मजः ॥ अभिदुद्रावतद्रक्षःकंपयन्निवमेदिनीम् ॥ १३ ॥ तस्याथनर्दमानस्यदीप्य मानस्यतेजसा ॥ बभूवरूपंदुर्धर्षंदीप्तस्येवविभावसोः ॥ १४ ॥

भूमिमें आ करके हनुमानजीको घेरकर खड़े होगये ॥ ९ ॥ हनुमानजीको युद्ध करनेंके लिये पहुंचाहुआ देखकर वह भागे हुए वानरश्रेष्ठगणभी, बल प्राप्त करते हुए कारण कि बलवानसे सहाय पायकर दुर्बल भी बलवान होजातेहैं ॥ १० ॥ पर्वताकार हनुमानजीको आगे खड़ाहुआ देखकर राक्षस अकम्पन उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करनेंलगा, कि जिस प्रकार इन्द्रजी पृथ्वीपर जलकी धारा वर्षातेहैं ॥ ११ ॥ परन्तु महाबलवान वानर हनुमानजी अपने शरीर पर गिरते उन बाणोंकी कुछभी चिन्ता न करते हुए अकम्पनके संहार करनेंका विचार करते हुए ॥ १२ ॥ वह महातेजस्वी पवनकुमार हनुमानजी पृथ्वीको कंपायमान करते हँसते २ उस राक्षस अकम्पनके सन्मुख धाये ॥ १३ ॥ इस समय यह हनुमानजी

वासनासे युद्धकरने लगे दोनो ही परस्पर एक दूसरेको विना जीते हुए समरसे लौटनेंवाले नहीं थे ॥ ४८ ॥ तिसके पीछे विपुलबलशाली सैनापति प्रहस्तनें नीलके माथेपर मूसलका प्रहार किया; जिसके प्रहारसे नीलके माथेसे रुधिर बहनेंलगा ॥ ४९ ॥ जब अंगोंसे रुधिर निकलने लगा, तब महाकपि सैनापाति नीलनें अत्यन्त क्रोधित हो एक बड़ा भारी वृक्ष ग्रहणकर प्रहस्तकी छातीमें प्रहार किया ॥ ५० ॥ परन्तु सैनापति वीर प्रहस्त उस प्रहारको कुछभी न समझता हुआ वही बड़ाभारी मूसल ग्रहण कर अत्यन्त जोरसे बलवान् वानरश्रेष्ठ नीलके सन्मुख धाया। महाकपि नील उस उग्र वेगवान् राक्षसको सन्मुख दौड़े आते हुए ॥ ५१ ॥ देख एक महाशिला ग्रहण करके उस समरकी अभिलाषा करनेंवाले

अजघानतदानीलंललाटेमुसलेनसः ॥ प्रहस्तःपरमायत्तस्ततःसुस्रावशोणितम् ॥ ४९ ॥ ततःशोणितदिग्धांगःप्रगृह्यचमहातरुम् ॥ प्रहस्तस्योरसिक्रुद्धोविससर्जमहाकपिः ॥ ५० ॥ तमचिंत्यप्रहारंसप्रगृह्यमुसलंमहत् ॥ अभिदुद्रावबलिनंबलान्नीलंप्लवंगमम् ॥ तमुग्रवेगंसंरब्धमापतंतंमहाकपिः ॥ ५१ ॥ ततःसंप्रेक्ष्यजग्राहमहावेगोमहाशिलाम् ॥ तस्ययुद्धाभिकामस्यमृधेमुसलयोधिनः ॥ ५२ ॥ प्रहस्तस्यशिलांनीलोमूर्ध्नितूर्णमपातयत् ॥ नीलेनकपिमुख्येन विमुक्तामहतीशिला ॥ बिभेदबहुधाघोराप्रहस्तस्याशिरस्तदा ॥ ५३ ॥ सगतासुर्गतश्रीकोगतसत्त्वोगतेंद्रियः ॥ पपातसहसाभूमौछिन्नमूलइवद्रुमः ॥ ५४ ॥ विभिन्नशिरसस्तस्यबहुसुस्रावशोणितम् ॥ शरीरादपिसुस्रावगिरेःप्रस्रवणोयथा ॥ ५५ ॥ हतेप्रहस्तेनीलेनतदकंप्यंमहाबलम् ॥ राक्षसानामहृष्टानांलंकामभिजगामह ॥ ५६ ॥

मूसलसे युद्ध करते हुए ॥ ५२ ॥ प्रहस्तके मूसल प्रहार करनेंसे पहलेही उसके मस्तकपर वह शिला मारी कपिश्रेष्ठ नीलकी चलाई हुई उस घोर और महाशिलानें प्रहस्तके मस्तकको खंड २ कर डाला; उस समय उस प्रहस्तकी इन्द्रियें लोप होगईं, बल जाता रहा, देहकी श्री नष्ट होगई; और वह प्राण रहित होकर जड़ कटे हुए वृक्षकी समान पृथ्वीमें गिर पडा ॥५३॥॥५४॥ तिस काल प्रहस्तका मस्तक धड़से अलग हो जानेंपर उससे और उसके शरीरसे इस प्रकारसे रुधिरकी धारें गिरनें लगी, कि जिस प्रकार पर्वतसे झरना झरते हैं ॥ ५५ ॥ इस प्रकार सैनापति नीलके हाथसे

क्रम करनेंवाले राक्षसोंको संहार करनें लगे ॥ २३ ॥ तब राक्षस गण वृक्षका प्रहार करते हुए प्राणहरण करनेंवाले यमराजकी समान उन क्रोधित अंजनीके पुत्र हनुमानजीको देखकर भागनें लगे ॥ २४ ॥ राक्षस सैनापति महावीर अकम्पन उन महावीर्य क्रोधित हनुमानजीको राक्षसोंके लिये भय उत्पन्न कराते देखकर अत्यन्तही क्रोध करताहुआ और उस समय उस अकम्पननें घोरनादसे गर्जन करना आरंभ किया ॥ २५ ॥ और शरीरको विदारण करनेंवाले अत्यन्त तीखे चौदह बाण उसनें हनुमानजीके देहमें मारे ॥ २६ ॥ उस कालमें तीखे नाराच और शक्तियोंके लग नेंसे हनुमानजीका शरीर ऐसा विद्ध हो रहाथा कि उस समय वह वृक्ष युक्त गिरिवरकी समान शोभित होतेथे ॥ २७ ॥ महाबलवान् महाकाय

तमंतकमिवक्रुद्धंसद्रुमंप्राणहारिणम् ॥ हनूमंतमभिप्रेक्ष्यराक्षसाविप्रदुद्रुवुः ॥ २४ ॥ तमापतंतंसंक्रुद्धंराक्षसानांभयाव हम् ॥ ददर्शाकंपनोवीरश्चुक्षोभचननादच ॥ २५ ॥ सचतुर्दशभिर्बाणैर्निशितैर्देहदारणैः ॥ निर्बिभेदमहावीर्यंहनूमं तमकंपनः ॥ २६ ॥ सतथाविप्रकीर्णस्तुनाराचैःशितशक्तिभिः ॥ हनूमान्ददृशेवीरःप्ररूढइवसानुमान् ॥ २७ ॥ विररा जमहावीर्योमहाकायोमहाबलः ॥ पुष्पिताशोकसंकाशोविधूमइवपावकः ॥ २८ ॥ ततोन्यंवृक्षमुत्पाटचकृत्वावेगम नुत्तमम् ॥ शिरस्यभिजघानाशुराक्षसेंद्रमकंपनम् ॥ २९ ॥ सवृक्षेणहतस्तेनसक्रोधेनमहात्मना ॥ राक्षसोवानरेंद्रे णपपातचममारच ॥ ३० ॥ तंदृष्ट्वानिहतंभूमौराक्षसेंद्रमकंपनम् ॥ व्यथिताराक्षसाःसर्वेक्षितिकंपइवद्रुमाः ॥ ३१ ॥ त्यक्तप्रहरणाःसर्वेराक्षसास्तेपराजिताः ॥ लंकामभिययुस्त्रासाद्वानरैस्तैरभिद्रुताः ॥ ३२ ॥

और महावीर्यवान हनुमानजी फूलेहुए अशोक और धूमरहित अग्निकी समान शोभायमान होनेंलगे ॥ २८ ॥ तिसके पीछे पवनकुमार हनुमानजीनें अति शीघ्रतासे एक वृक्ष उखाड़ कर अत्यन्त वेगसे राक्षसोंके सैनापति अकंपनके शिरपर मारा ॥ २९ ॥ क्रोधसे पूर्ण महाबल वान् वानरोंमें इन्द्र हनुमानजी करके इस प्रकारसे वृक्षद्वारा घायलहो वह राक्षस तत्क्षणही पृथ्वीमें गिरकर मृतक होगया ॥ ३० ॥ समस्त राक्षस राक्षसोंके स्वामी अकम्पनको मृतक और पृथ्वीमें पड़ा हुआ देखकर अत्यन्त दुःखित हुए, और भूडोलके समय जिस प्रकार वृक्ष काँपतेहैं, ऐसेही कम्पायमान होनें लगे ॥ ३१ ॥ उस समय वह हारे हुए राक्षस वानरलोगोंसे खेदे जाकर अपने अस्त्र शस्त्र त्यागकर लंकाके सन्मुख

चित्त होकर देवराज इन्द्रजी जिसप्रकार देवसैनाके अधिनायकोंसे कहतेहैं इसीभांति रावण राक्षस दलके यूथनाथोंसे बोला ॥ ३ ॥ कि जिनकरके इन्द्रके वलका मथनकारी हमारा वह सैनापति अपने अनुयायी वर्ग और हाथी घोडेके सहित मार डालागया ऐसे शत्रुको अब तुच्छ नहीं समझना चाहिये ॥ ४ ॥ इसकारण शत्रुओंका विनाशकरनें और विजय प्राप्त करनेंके लिये हम स्वयंही अद्भुत रणभूमिमें जायँगे अब शोच विचार करनें कीभी कुछ आवश्यकता नहीं ॥५॥ प्रदीप्त अग्निसे वनके जलनेंकी समान आज हम बाणसमूहोंसे रामचंद्र व लक्ष्मणके सहित उस वानरोंकी सैनाको मार डालेंगे ॥ ६ ॥ अपने प्रकाशित शरीरसे प्रकाशमान होता हुआ अमरराज इन्द्रजीका शत्रु रावण यह कह कर दामिनीकी समान

नावज्ञारिपवेकार्यायैरिंद्रबलसादनः ॥ सूदितःसैन्यपालोमेसानुयात्रःसकुंजरः ॥ ४ ॥ सोहंरिपुविनाशायविजयायाविचारयन् ॥ स्वयमेवगमिष्यामिरणशीर्षंतदद्भुतम् ॥ ५ ॥ अद्यतद्वानरानीकंरामंचसहलक्ष्मणम् ॥ निर्दहिष्यामिबाणौघैर्वनंदीप्तैरिवाग्निभिः ॥ ६ ॥ सएवमुक्त्वाज्वलनप्रकाशंरथंतुरंगोत्तमराजियुक्तम् ॥ प्रकाशमानंवपुषाज्वलंतंसमारुरोहामरराजशत्रुः ॥ ७ ॥ सशंखभेरीपणवप्रणादैरास्फोटितक्ष्वेडितसिंहनादैः ॥ पुण्यैःस्तवैश्चापिसुपूज्यमानस्तदाययौराक्षसराजमुख्यः ॥ ८ ॥ सशैलजीमूतनिकाशरूपैर्मांसाशनैःपावकदीप्तनेत्रैः ॥ बभौवृतोराक्षसराजमुख्योभूतैर्वृतोरुद्रइवामरेशः ॥ ९ ॥ ततोनगर्याःसहसामहौजानिष्क्रम्यतद्वानरसैन्यमुग्रम् ॥ महार्णवाभ्रस्तनितंददर्शसमुद्यतंपादपशैलहस्तम् ॥ १० ॥

दमकते हुए उत्तम घोडे जोते हुए रथपर सवार हुआ ॥ ७ ॥ उस समय शंख, भेरी, और ढोल वजनें लगे; वीरगण कोई बांहोंको थपकनें लगे कोई २ किल किलानें लगे और कोई २ सिंहनाद करनें लगे ! इस प्रकारसे राक्षस रावण पवित्र स्तोत्रसे पूजित होकर शीघ्रही युद्ध करनेंको चलता हुआ ॥ ८ ॥ उस कालमें पर्वत व वादलकी समान आकारवाले और अग्निकी समान दीप्त नेत्र युक्त मांस खानेवाले राक्षसोंके संगमें वह राक्षसपति रावण भूतोंके संग अमरनाथ रुद्रकी समान शोभायमान होनेलगा ॥ ९ ॥ तिसके पीछे उस महातेजस्वी रावणनें सैनाके

त्यन्त क्रोधयुक्त हुआ और दीन मलीन मुखहो मंत्रीलोगोंके मुखकी ओर देखनें लगा ॥ १ ॥ रावण एक मुहूर्त्तभरतक चिन्ता करके मंत्रीलोगोंके सहित सलाहकर समस्त लंकाकी मोरचेबंदी देखनेके लिये दशघडी दिन चढे लंकाके तीर घूमने को चला ॥ २ ॥ रावणने नगर मे घूमकर देखाकि ध्वजा पताका युक्त और बहु व्यूह समन्वित वह लंकानगरी राक्षस लोगों करके सब भांतिसे रक्षित हो रहीहै ॥ ३ ॥ तब राक्षसोंका स्वामी रावण उस लंका नगरीको सब भांतिसे वानरोंके द्वारा रूंधीहुई देखकर यथा समयमें युद्धविशारद प्रहस्तसे अपने हितकारी यह वचन बोला ॥ ४ ॥ रावण बोला कि हे युद्धविशारद शत्रुकी सैना चारो ओरसे रूंधकर पुरीको जिस प्रकारसे संताप देरहीहै इस्से तो युद्ध करनेके सिवाय छुटकारा पानेंका हम

सतुध्यात्वामुहूर्तंतुमंत्रिभिःसंविचार्यच ॥ ततस्तुरावणःपूर्वंदिवसेराक्षसाधिपः ॥ पुरींपरिययौलंकांसर्वान्गुल्मानवेक्षितुम् ॥ २ ॥ तांराक्षसगणैर्गुप्तांगुल्मैर्बहुभिरावृताम् ॥ ददर्शनगरींराजापताकाध्वजमालिनीम् ॥ ३ ॥ रुद्धांतुनगरींदृष्ट्वा रावणोराक्षसेश्वरः॥ उवाचात्महितंकालेप्रहस्तंयुद्धकोविदम्॥४॥पुरस्योपनिविष्टस्यसहसापीडितस्यह ॥ नान्यंयुद्धात्प्रपश्यामिमोक्षंयुद्धविशारदाः ॥ ५ ॥ अहंवाकुंभकर्णोवात्वंवासेनापतिर्मम ॥ इंद्रजिद्वानिकुंभोवावहेयुर्भारमीदृशम् ॥ ६॥ सत्वंबलमतःशीघ्रमादायपरिगृह्यच ॥ विजयायाभिनिर्याहियत्रसर्वेवनौकसः ॥ ७ ॥ निर्याणादेवतूर्णंच चलिताहरिवाहिनी ॥ नर्दतांराक्षसेंद्राणांश्रुत्वानादंद्रविष्यति ॥ ८ ॥ चपलाह्यविनीताश्चचलचित्ताश्चवानराः ॥ नसहिष्यंतितेनादंसिंहनादमिवद्विपाः ॥ ९ ॥

दूसरा उपाय नहीं देखते ॥ ५ ॥ परन्तु इस समय हमारे इन्द्रजितके कुम्भकर्णके निकुम्भके अथवा हमारे सैनापति तुम्हारे सिवाय, और कौन इस बड़े भारी भारको उठासकताहै ॥ ६ ॥ इस कारण तुम शीघ्रही रथ पर सवारहो सैनाको साथले जिस स्थानपर वानरगण टिके हुएहैं, वहां पर युद्ध करनेंके लिये जाओ ॥ ७ ॥ ऐसा हम जानतेहैं कि "तुम लड़नेंके लिये आयेहो" यह बात सुनतेही वह वानरोंकी सैना चलायमान होजायगी; हम निश्चय कहतेहैं कि राक्षसोंका सिंहनाद सुनकर यह वानर भयके मारे इधर उधर भाग जांयगे ॥ ८ ॥ हे वीर ! जिस प्रकारसे हाथी

समान लाल २ नेत्र किये जो महाबलवान् राक्षस घंटेके नादकी समान नादकरते हुए क्रूर स्वभाववाले हाथीके ऊपर चढकर गर्जन कर रहाहै यही महात्मा महोदर नाम वीर है ॥ १७ ॥ जो सन्ध्या कालके मेघ और पर्वतकी समान आकार वालाहै और सुवर्णके गहनोंसे भूषित घोडों पर चढकर मरीच्याकार झालर लगा प्रास उठाये हुएहै इस वज्रकी समान वेगवान वीरका नाम पिशाचहै ॥१८॥ जो तीक्ष्ण शूल ग्रहण करके वज्रसे भी अधिक वेगवान चंद्रमाकी समान प्रकाशमान और बिजलीकी समान श्रेष्ठ बैलपर चढ़कर चला आताहै वह बडा यशस्वी त्रिशिरानामक राक्षसहै ॥ १९ ॥ विशाल और चौडी छातीवाला और सौदामिनीकी समान रूपवान जो वीर स्थिरभावसे अपने धनुषको टंकारता और

योसौहयंकांचनचित्रभांडमारुह्यसंध्याभ्रगिरिप्रकाशः ॥ प्रासंसमुद्यम्यमरीचिनद्धंपिशाचएषोशनितुल्यवेगः ॥ १८॥
यश्चैषशूलंनिशितंप्रगृह्यविद्युत्प्रभंकिंकरवज्रवेगम् ॥ वृषेंद्रमास्थायशशिप्रकाशमायातियोसौत्रिशिरायशस्वी ॥१९॥
असौचजीमूतनिकाशरूपःकुंभःपृथुव्यूढसुजातवक्षाः ॥ समाहितःपन्नगराजकेतुर्विस्फारयन्यातिधनुर्विधुन्वन् ॥ २० ॥
यश्चैषजांबूनदवज्रजुष्टंदीप्तंसधूमंपरिघंप्रगृह्य ॥ आयातिरक्षोबलकेतुभूतोयोसौनिकुंभोऽद्भुतवीरकर्मा ॥ २१ ॥
यश्चैषचापासिशरौघजुष्टंपताकिनंपावकदीप्तरूपम् ॥ रथंसमास्थायविभात्युदग्रोनरांतकोसौनगशृंगयोधी ॥ २२ ॥
यश्चैषनानाविधघोररूपैर्व्याघ्रोष्ट्रनागेंद्रमृगाश्ववक्त्रैः ॥ भूतैर्वृतोभातिविवृत्तनेत्रैर्योसौसुराणामपिदर्पहंता ॥ २३ ॥

कंपायमान करता चला आताहै और जिसके रथकी ध्वजापर शेषजीका चिह्न दिखाई देताहै उसका नाम कुम्भहै ॥ २० ॥ निशाचरोंकी सैनाका पताकारूप जो अद्भुत कर्म करनेवाला वीर सुवर्ण और हीरोंसे खचित प्रकाशमान धूम सहित परिघलिये हुए आगमन करताहै इसका नाम निकुम्भहै ॥ २१ ॥ जो बड़े शरीरवाला वीर अग्निकी समान तेज युक्त पताका शोभित, चाप खड्ग बाण समूहसे परिपूर्ण रथपर चढ़ा हुआ शोभायमान होरहाहै इसकाही नाम नरान्तक कहतेहैं ॥ महाराज ! यह वीर अपनी समान योद्धा न पायकर अपनी बांहोंकी चुलबुलाहट मिटानेंको पर्वतके शृङ्गोंसेही युद्ध किया करताहै ॥ २२ ॥ जिसनें देवतालोगोंकाभी गर्व नाश कियाहै, और विविध

अपना प्राण पुत्र परिवार और धन कुछभी हम रखना नहीं चाहते;इस कारण हम कहते हैं कि इस समय आपके अर्थही युद्धमें इस जीवनको भी हमदें गे ॥ १६ ॥ सैनापति प्रहस्तनें राक्षसपति रावणसे यह कहकर सामने आकर खडे हुए सैनाध्यक्षसे कहा ॥ १७ ॥ कि जलदीसे बडीभारी राक्षसोंकी सैनाको सजायकर लेआओ;हमारे बाणोंके वेगसे रणमें मृतक हुए॥१८॥ वानरोंके मांससे आज वनके रहनेंवाले पशुपक्षी भलीभांति तृप्तहोंगे । प्रह स्तके यह वचन सुनकर महाबलवान् सैनाध्यक्ष लोगोंनें ॥ १९ ॥ तिस राक्षसराजके गृहमें लायकर सैनाको इकट्ठा कर दिया, एक मुहूर्तमें अनेक

नहिमेजीवितंरक्ष्यंपुत्रदारधनानिच ॥ त्वंपश्यमांजुहूषंतंत्वदर्थेजीवितंयुधि ॥ १६ ॥ एवमुक्त्वातुभर्तारंरावणंवाहिनीपतिः ॥ उवाचेदंबलाध्यक्षान्प्रहस्तःपुरतःस्थितान् ॥ १७ ॥ समानयतमेशीघ्रंराक्षसानांमहाबलम् ॥ मद्बाणानांतुवेगेनहतानांतुरणाजिरे ॥ १८ ॥ अद्यतृप्यंतुमांसादाःपक्षिणःकाननौकसः ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाबलाध्यक्षामहाबलाः ॥ १९ ॥ बलमुद्योजयामासुस्तस्मिन्राक्षसमंदिरे ॥ साबभूवमुहूर्तेनभीमैर्नानाविधायुधैः ॥ २० ॥ लंकाराक्षसवीरैस्तैर्गजैरिवसमाकुला ॥ हुताशनंतर्पयतांब्राह्मणांश्चनमस्यताम् ॥ २१ ॥ आज्यगंधप्रतिवहःसुरभिर्मारुतोववौ ॥ स्रजश्चविविधाकाराजगृहुस्त्वभिमंत्रिताः ॥ २२ ॥ संग्रामसज्जाःसंहृष्टाधारयन्राक्षसास्तदा ॥ सधनुष्काःकवचिनोवेगादुत्सृज्यराक्षसाः ॥ २३ ॥ रावणंप्रेक्ष्यराजानंप्रहस्तंपर्यवारयन् ॥ अथामंत्र्यतुराजानंभेरीमाहत्यभैरवाम् ॥ २४ ॥

प्रकारके अस्त्र शस्त्र धारण किये॥२०॥राक्षस वीरोंसे लंकापुरी ऐसी पूर्ण हुई मानो हाथियोसे पूर्ण होगई । कोई राक्षस अग्निको तृप्त करते हुए कोई ब्राह्मणोंको प्रणाम करते हुए ॥२१॥ ऐसे राक्षसोंके घृतकी सुगन्धिसे युक्त होकर सुगन्धित पवन चलनें लगा और विविध प्रकारकी मालायें जो मंत्रोंसे पढ़ी हुईथीं राक्षसोंने ग्रहणकी ॥२२॥ और संग्राममें जानेंके लिये वह राक्षस रणके आयुधोंसे सजनें लगे, तिसके पीछे कवच और धनुषधारी वह राक्षसगण अतिवेगसे राक्षसराज रावणको देखकर प्रहस्तनाम सैनापतिको घेर खड़े होगये । फिर राजाकी आज्ञा ले अतिघोर भेरी बजवाय ॥ २३ ॥ २४ ॥

कि आज यह पापात्मा हमारे दृष्टि गोचर हुआहै इस लिये सीता हरण होंनेसे जो क्रोध हमारे मनमें उत्पन्न हुआहै, वह क्रोध आज हम इसके ऊपर छोडेंगे ॥ ३१ ॥ वीर्यवान् श्रीरामचन्द्रजी यह कहकर धनुषपर रोदा चढ़ाय आगे बढे, और लक्ष्मणजीभी इनके पीछे २ चले ॥ ३२ ॥ तिसके पीछे महात्मा राक्षसपति रावण उन महा बलवान राक्षसोंसे बोला कि तुम लोग हमारी आज्ञासे इस समय जाय लंकाके चार पुर द्वार राजमार्ग और घरोंमें शंका रहित मनके सुख सहित टिके रहो ॥ ३३ ॥ कारण कि एकत्र हुए महाबलवान वनवासी वानरगण तुम लोगोंके सहित हमारी पुरीसे बाहर आनेका यह छिद्र पाय, प्रवेश करनेंके अयोग्य वीर शून्य लंका पुरीको मर्दन करके विध्वंश कर डालेंगे ॥ ३४ ॥ जब

एवमुक्त्वाततोरामोधनुरादायवीर्यवान् ॥ लक्ष्मणानुचरस्तस्थौसमुद्धृत्यशरोत्तमम् ॥ ३२ ॥ ततःसरक्षोधिपतिर्महात्मारक्षांसितान्याहमहाबलानि ॥ द्वारेषुचर्यागृहगोपुरेषुसुनिर्वृतास्तिष्ठतनिर्विशंकाः ॥ ३३ ॥ इहागतंमांसहितंभवद्भिर्वनौकसश्छिद्रमिदंविदित्वा ॥ शून्यांपुरींदुष्प्रसहांप्रमथ्यप्रधर्षयेयुःसहसासमेताः ॥ ३४ ॥ विसर्जयित्वासचिवांस्ततस्तान्गतेषुरक्षःसुयथानियोगम् ॥ व्यदारयद्वानरसागरौघंमहाझषःपूर्णमिवार्णवौघम् ॥ ३५ ॥ तमापतंतंसहसासमीक्ष्यदीप्तेषुचापंयुधिराक्षसेंद्रम् ॥ महत्समुत्पाट्यमहीधराग्रंदुद्रावरक्षोधिपतिंहरीशः ॥ ३६ ॥ तच्छैलशृंगंबहुवृक्षसानुंप्रगृह्यचिक्षेपनिशाचराय ॥ तमापतंतंसहसासमीक्ष्यचिच्छेदबाणैस्तपनीयपुंखैः ॥ ३७ ॥

राक्षस लोग रावणकी आज्ञाके अनुसार पुरीकी रक्षा करनेको उसमें प्रवेश करते हुए; तब निशाचर पति रावणभी अपने मंत्रियोंको विदा देकर स्वयं बडे २ मत्स्य आदि जीवोंसे परिपूर्ण महा समुद्रकी समान उस बडी भारी वानरोंकी सैनाको विदारण करने लगा ॥ ३५ ॥ तब वानरराज सुग्रीवजी, प्रदीप्त बाण सहित धनुष धारण किये राक्षसोंके स्वामी रावणको अचानक आया हुआ देख एक बडा भारी पर्वतका शिखर उखाडकर निशाचर पतिकी ओर दौडे ॥ ३६ ॥ तिसके पीछे बहुत वृक्ष और कंगूरोंसे शोभित वह पर्वतका शृङ्ग इन्होंने राक्षस रावणके ऊपर चलाया परन्तु रावणनें अपने ऊपर गिरते २ उस पर्वतके शृङ्गको सुवर्णकी फोंका लगे हुए बाणोंसे सहसा खंड २ कर डाला ॥ ३७ ॥

सन्मुख गमन करनें लगा ॥ ३२ ॥ जब प्रहस्त निकला तब उसके साथवाले शब्द करते हुए. राक्षसोंके निकलनेसे ऐसा बड़ा भारी नाद उत्पन्न हुआ कि लंका नगरीके समस्त प्राणी पुञ्जविकट स्वरसे चिह्लानें लगे॥३३॥मांस रुधिरके खानें पीनेंवाले गिद्ध आदि, विना मेघके आकाशमें मंडलाकारसे रथके ऊपर घूमने लगे ॥ ३४ ॥ भयंकर रूपवाली शृगालियें भयंकर शब्दसे बोलकर मुखसे अग्निकी लपटें छोडती चिह्लाने लगीं अन्तरिक्षसे वार २ उल्का गिरनें लगीं,पवनभी रूखेपनसे चलनें लगा ॥३५॥ परस्पर एक दूसरेके क्रोधितहो युद्ध करनेंसे सब ग्रहोंकी प्रभा हीन होगई राक्षस सैनापतिके रथपर मेघमाला गंभीर शब्दसे गर्जन करके ॥३६॥ रुधिरकी वर्षा करनें लगी और उसके आगे चलती हुई सैनापरभी रुधिर वर्षा रथ

तस्यनिर्याणघोषेणराक्षसानांचनर्दताम् ॥ लंकायांसर्वभूतानिनिनेदुर्विकृतैःस्वरैः ॥ ३३ ॥ व्यभ्रमाकाशमाविश्यमांसशोणितभोजनाः ॥ मंडलान्यपसव्यानिखगाश्चक्रूरथंप्रति ॥ ३४ ॥ वमंतिपावकज्वालाःशिवाघोरावबाशिरे॥अंतरिक्षात्पपातोल्कावायुश्चपरुषंववौ ॥ ३५ ॥ अन्योन्यमभिसंरब्धाग्रहाश्चनचकाशिरे ॥ मेघाश्चखरनिर्घोषारथस्योपरिरक्षसः ॥ ३६ ॥ ववर्षूरुधिरंचास्यसिषिचुश्चपुरःसरान् ॥ केतुमूर्धनिगृध्रस्तुविलीनोदक्षिणामुखः ॥ ३७॥ नदन्नुभयतःपार्श्वंसमग्रांश्रियमाहरत् ॥ सारथेर्बहुशश्चात्रसंग्राममनिवर्तिनः ॥ ३८ ॥ प्रतोदोन्यपतद्धस्तात्सूतस्यहयसादिनः ॥ निर्याणश्रीश्चयाचस्याद्भास्वराचसुदुर्लभा ॥ ३९ ॥ सानिनाशमुहूर्तेनसमेचस्खलिताहयाः ॥ प्रहस्तंतंहिनिर्यांतंप्रख्यातगुणपौरुषम् ॥ युधिनानाप्रहरणाकपिसेनाऽभ्यवर्तत ॥ ४० ॥ अथघोषःसुतुमुलोहरीणांसमजायत ॥ वृक्षानारुजतांचैवगुर्वीर्वैगृह्णतांशिलाः ॥ ४१ ॥

की ध्वजापर गिद्ध बैठ गया; और दक्षिण मुख होकर शब्द करने लगा ॥३७॥ और अपनें दोनों पंखोंको फैलायकर सैनापति प्रहस्तकी समस्त प्रभा और श्रीको हरण कर लेता हुआ । समरसे विमुख नहोनेंवाले सारथिकीभी श्री जाती रही ॥ ३८ ॥ और घोड़ोंके सिखानेंवालेके हाथसे, व सारथिके हाथसे वारंवार चाबुक गिर पड़नें लगा जो युद्धमें जानेंके समयकी शोभा और दीप्तिथी वह एक मुहूर्तभरमें नाशको प्राप्त हुई, घोड़ोंका पैर फिसलनें लगा इस प्रकारसे विख्यात बलपौरुषवाला प्रहस्त जब लंकासे युद्ध करनेंको निकला, तब रणभूमिमें वानरगण, वृक्ष शिला इत्यादि अनेक प्रकारके आयुध धारण किये हुए उसके सन्मुख दौड़े ॥ ३९ ॥ ४० ॥ इस समय वानरगण कटकटाय कर गर्जनेंलगे और वह बड़े २ वृक्ष

तब वह भयंकर शरीरवाले वानर गणभी राक्षसनाथ रावणके बाणोंकेलगनेसे छिन्न भिन्न शरीरहो पृथ्वीपर गिरनें लगे ॥४३॥ तब राक्षस रावण बाणोंके ढेरके ढेर चलायकर उग्र स्वभाववाली उस वानरोंकी सैनाको बाण जालसे छानें लगा इस प्रकार रावणके बाणोंसे मर्ममें चोट खाय वानरोंमेसे अनेक मर गये और अनेक गिर पड़े, अनेक छिन्न भिन्न होगये और उनमेंसे अनेक भयके मारे विह्वल होकर शरणागत प्रतिपालक अनाथ नाथ श्रीरामचंद्रजीकी शरणमें गये ॥ ४४ ॥वानरोंको शरणमें आया हुआदेखकर धनुष धारियोंमें श्रेष्ठ महात्मा श्रीरामचंद्रजी सहसा आगे बढ़नेंको तैयार हुए कि इतने हीमें लक्ष्मणजीनें हाथ जोड़कर उनसे यह परमार्थ युक्त वचन कहे॥४५॥हे आर्य ! हम अकेलेही इस दुरात्मा रावणका संहार

ततस्तुतद्वानरसैन्यमुग्रंप्रच्छादयामाससबाणजालैः ॥ तेवध्यमानाःपतिताश्चवीरानानद्यमानाभयशल्यविद्धाः ॥
शाखामृगारावणसायकार्ताजग्मुःशरण्यंशरणंस्मरामम् ॥ ४४ ॥ ततोमहात्मासधनुर्धनुष्मानादायरामःसहसाज
गाम ॥ तंलक्ष्मणःप्रांजलिरभ्युपेत्यउवाचरामंपरमार्थयुक्तम् ॥ ४५ ॥ काममार्यसुपर्याप्तोवधायास्यदुरात्मनः ॥
विधमिष्याम्यहंचैतमनुजानीहिमांविभो ॥ ४६ ॥ तमब्रवीन्महातेजारामःसत्यपराक्रमः ॥ गच्छयत्नपरश्चापि
भवलक्ष्मणसंयुगे ॥ ४७ ॥ रावणोहिमहावीर्योरणेऽद्भुतपराक्रमः ॥ त्रैलोक्येनापिसंक्रुद्धोदुष्प्रसह्योनसंश
यः ॥ ४८॥ तस्यच्छिद्राणिमार्गस्वस्वच्छिद्राणिचलक्षय ॥ चक्षुषाधनुषात्मानंगोपायस्वसमाहितः ॥ ४९ ॥ राघ
वस्यवचःश्रुत्वासंपरिष्वज्यपूज्यच ॥ अभिवाद्यचरामायययौसौमित्रिराहवे ॥ ५० ॥

कर सकतेहैं, इस कारण हे विभो! आप निश्चय जानें कि इस निशाचरको हमहीं मार डालेंगे ॥ ४६ ॥ यह वचन सुनकर सत्य पराक्रम महा तेजवान श्रीरामचंद्रजीनें कहा कि हे लक्ष्मण ! जाओ परन्तु रणमें भली भांति सावधान रहना ॥ ४७ ॥ तुमसे इतना कहनेंका यही अभिप्रायहै, कि रावण अत्यन्त वीर और महाबलवानहै, उसका पराक्रम अद्भुतहै, जब उसको क्रोध उत्पन्न होजाताहै. तब त्रिलोकवासी समस्त जनभी इसके पराक्रमको नही सह सकते इसमें कोईभी सन्देह नहीं ॥ ४८ ॥ तुम उस रावणके प्रहार करनेंका अवसर खोजते रहना और सावधान चित्तसे अपनी रक्षा करते रहकर अपने प्रहारके समय शत्रुपर दृष्टि रक्खो. व धनुष परबाण चलाय संभालकर रिपुपर चलाओ ॥४९॥ श्रीरामचंद्रजीके यह वचन

वीर्यवान और शूर निशाचर उस तीन भागवाली सैनामेंसे एक भाग सैना अपने साथ लेकर यहां आयाहै ॥ ४ ॥ और इस ओर सैनापति प्रहस्त भयंकर पराक्रम दिखाता, गर्जता हुआ बहुत सारे राक्षसोंकी सैनाके साथ निकला ॥ ५ ॥ महाबलवान वानरगण बड़ी भारी प्रहस्तकी सैनाको देखकर अत्यन्त क्रोध युक्त होकर गर्जन करनें लगे ॥ ६ ॥ खड्ग, शक्ति, छंड, ऋष्टि, शूल, बाण, मूसल, गदा, परिघ, प्रास, विविध भांतिके फरसे, ॥ ७ ॥ चित्र विचित्र, धनुष लिये, जीतनेंकी इच्छा किये वानरोंके ऊपर धावमानहोते हुए राक्षसोंके अस्त्र शस्त्र शोभायमान होतेथे, यह देखकर समरके अभिलाषी वानरगणभी पुष्पित वृक्ष, और पर्वतोंके शिखर, और बड़ी २ शिलायें ग्रहण करते हुए ॥ ८ ॥ ९ ॥ दोनों ओरकी

ततःप्रहस्तंनिर्यांतंभीमंभीमपराक्रमम्॥ गर्जंतंसुमहाकायंराक्षसैरभिसंवृतम्॥५॥ददर्शमहतीसेनावानराणांबलीयसाम् ॥ अभिसंजातघोषाणांप्रहस्तमभिगर्जताम् ॥ ६ ॥ खड्गशक्त्यृष्टिशूलाश्चबाणानिमुसलानिच ॥ गदाश्चपरिघाःप्रासाविविधाश्चपरश्वधाः॥७॥धनूंषिचविचित्राणिराक्षसानांजयैषिणाम् ॥ प्रगृहीतान्यराजंतवानरानभिधावताम्॥८॥ जगृहुःपादपांश्चापिपुष्पितांस्तुगिरींस्तथा ॥ शिलाश्चविपुलादीर्घायोद्धुकामाःप्लवंगमाः ॥ ९ ॥ तेषामन्योन्यमासाद्यसंग्रामःसुमहानभूत् ॥ बहूनामश्मवृष्टिंचशरवर्षंचवर्षताम् ॥ १० ॥ बहवोराक्षसायुद्धेबहून्वानरपुंगवान् ॥ वानराराक्षसांश्चापिनिजघ्नुर्बहवोबहून् ॥ ११ ॥ शूलैःप्रमथिताःकेचित्केचित्तुपरमायुधैः ॥ परिघैराहताःकेचित्केचिच्छिन्नाःपरश्वधैः॥ १२ ॥ निरुच्छ्वासाःपुनःकेचित्पतिताजगतीतले ॥ विभिन्नहृदयाःकेचिदिषुसंधानसादिताः ॥ १३ ॥ केचिद्द्विधाकृताःखड्गैःस्फुरंतःपतिताभुवि ॥ वानराराक्षसैःशूरैःपार्श्वतश्चविदारिताः ॥ १४ ॥

सैनामें भयंकर संग्राम आरंभ हुआ; दोनोंही ओरके वीर शिला और बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ १० ॥ राक्षसगणोंनें संग्राममें अगणित वानरोंको मार डाला और वानरोंनेभी असंख्य राक्षसोंका प्राण संहार किया॥ ११ ॥वानरोंमेंसे कोई२ राक्षसोंके शूलप्रहारसे मारे गये और कोई२ दूसरे अस्त्र शस्त्रोंसे मृतक हुए; कोई परिघकी चोटसे रणभूमिमें गिरे और फरसेके प्रहारसे किसी २ का शिर कटगया ॥ १२ ॥ किसीनें पृथ्वीपर गिरकर प्राणत्याग, दिया किसी २ का हृदय छिन्नभिन्न होगया किसी२ के शरीरमें बाणही लगे,कि जिस्से वह गिरे ॥ १३ ॥ कोई २ वानर शूरराक्षसों करके

हमारा पराक्रम जानही लेना चाहतेहो तौ हमसे विनाशको प्राप्त हुए अपनेपुत्र अक्षकुमारकी याद करलो ॥ ५८ ॥ महातेजस्वी वीर्यवान राक्षसोंके स्वामी रावणने हनुमानजीसे ऐसा सुन उन पवनकुमारकी छातीमें एक लातमारी; उस लातके लगनेसे हनुमानजी वारंवार विचलित भी हुए॥५९॥ परन्तु उन महातेजस्वी हनुमानजीनेंभी एक मुहूर्तमें स्थिरहो अत्यन्त क्रोध सहित एक लात रावणके ऊपर चलाई ॥ ६० ॥ तव दशमुख रावण उन महावलवान हनुमानजीके चरणकी चोट खाय भूडोलके समय कांपते हुए पर्वतकी समान कम्पायमान होंनेलगा ॥ ६१ ॥ उस कालमें सिद्ध चारण ऋषि देवता और असुरगण रावणको संग्राम भूमिमें इस प्रकारसे लातके प्रहारसे चेतना रहित होते देखकर आनंदके

एवमुक्तोमहातेजारावणोराक्षसेश्वरः ॥ आजघानानिलसुतंतलेनोरसिवीर्यमान् ॥ सतलाभिहतस्तेनचचालचमुहुर्मुहुः ॥ ५९ ॥ स्थितोमुहूर्त्तंतेजस्वीस्थैर्यंकृत्वामहामतिः ॥ आजघानचसंक्रुद्धस्तलेनैवामरद्विषम् ॥ ६० ॥ ततःसतेनाभिहतोवानरेणमहात्मना ॥ दशग्रीवःसमाधूतोयथाभूमिचलेऽचलः ॥ ६१ ॥ संग्रामेतंतथादृष्ट्वारावणंतलताडितम् ॥ ऋषयोवानराःसिद्धानेदुर्देवाःसुरासुरैः ॥ ६२ ॥ अथाश्वास्यमहातेजारावणोवाक्यमब्रवीत् ॥ साधुवानरवीर्येणश्लाघनीयोसिमेरिपुः ॥ ६३ ॥ रावणेनैवमुक्तस्तुमारुतिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ धिगस्तुममवीर्यस्ययत्त्वंजीवसिरावण ॥ ६४ ॥ सकृत्तुप्रहरेदानींदुर्बुद्धेकिंविकत्थसे ॥ ततस्त्वांमामकोमुष्टिर्नयिष्यतियमक्षयम् ॥ ६५ ॥ ततोमारुतिवाक्येनकोपस्तस्यप्रजज्वले ॥ संरक्तनयनोयत्नान्मुष्टिमावृत्यदक्षिणम् ॥ पातयामासवेगेनवानरोरसिवीर्यवान्॥६६॥

मारे सिंहनाद करनें लगे ॥ ६२ ॥ तिसके पीछे रावण कुछ देरमें चेतना पायकर स्थिर हो हनुमानजीसे बोला कि हे वानर! तुम अपने वीर्यके प्रभावसे बड़ाई करनेंके योग्य हुए हो और इस वातसे हमभी बड़ाई करनेंके योग्य हुए हैं कि तुम समान बलवान हमारे शत्रु हुए हैं ॥ ६३ ॥ जब रावणनें इस प्रकारसे कहा तब हनुमानजी बोले हे रावण ! मेरे वीर्यको धिक्कारहै, कारणकि मेरी लातके प्रहारको खायकर भी तू अबतक जीवितहै ॥ ६४ ॥ रेनिर्बोध तू वृथा क्यों गर्व करताहै ! और एक वार प्रहार कर देख; तिसके पीछे हमारा यह घूंसा तुझको यमराजके भवनमें पहुंचावेगा ॥ ६५ ॥ पवनकुमार हनुमानजीके ऐसे वचन सुनकर वीर्यवान रावणके क्रोधकी अग्नि भड़क उठी, और दोनों नेत्र लाल हो आये, और

तारनें बड़े भारी वृक्षके प्रहारसे कुम्भहनुके ऊपर चोट चलाई कि जिस्से उसका प्राण निकल गया ॥ २३ ॥ परन्तु रथपर चढ़ा हुआ प्रहस्त उन वानर लोगोंके इस कर्मको न सहकर धनुष धारण करके वानरोंका घोर नाश करनें लगा ॥ २४ ॥ उस कालमें दोनों ओरकी सैनाके वेगसे इधर उधर भ्रमण करनेंसे उनकी वह विचित्र गति आवर्तके समान जान पड़नें लगी, और उससे खलबलायमान अप्रमेय समुद्रकी समान शब्द होनें लगा ॥ २५ ॥ उस रणभूमिमें दुर्मद निशाचर प्रहस्तनें अत्यन्त क्रोधित होकर बाणोंका झड लगाकर वानरोंको मारने लगा ॥२६॥ उस समय वह रणभूमि वानर और राक्षसगणोंके मृतक देहोंसे परिपूर्ण होगई कि जिस्से वह ऐसी ज्ञात होनें लगी मानों यह भयंकर पर्वतोंसे घिररही

अमृष्यमाणस्तत्कर्मप्रहस्तोरथमाश्रितः ॥ चकारकदनंघोरंधनुष्पाणिर्वनौकसाम् ॥ २४ ॥ आवर्तइवसंजज्ञेसेनयोरुभयोस्तदा ॥ क्षुभितस्याप्रमेयस्यसागरस्येवनिःस्वनः ॥ २५ ॥ महताहिशरौघेणराक्षसोरणदुर्मदः ॥ अर्दयामास संक्रुद्धोवानरान्परमाहवे ॥२६॥ वानराणांशरीरैस्तुराक्षसानांचमेदिनी ॥ बभूवातिचिताघोरैःपर्वतैरिवसंवृता ॥२७॥ सामहीरुधिरौघेणप्रच्छन्नासंप्रकाशते ॥ संछन्नामाधवेमासिपलाशैरिवपुष्पितैः ॥ २८॥ हतवीरौघवप्रांतुभग्नायुधमहाद्रुमाम् ॥ शोणितौघमहातोयांयमसागरगामिनीम् ॥ २९ ॥ यकृत्प्लीहमहापंकांविनिकीर्णांत्रशैवलाम् ॥ भिन्नकायशिरोमीनामंगावयवशाद्वलाम् ॥ ३० ॥ गृध्रहंसवराकीर्णांकंकसारससेविताम् ॥ मेदःफेनसमाकीर्णामावर्तस्वननिःस्वनाम् ॥ ३१ ॥

है॥२७॥ वसन्तऋतुके आगमनसे खिले हुए पलाशके फूलोंसे जिस प्रकार पृथ्वी शोभायमान होतीहै, वैसेही रणभूमिमें रुधिरकी नदीनें प्रवाहित होकर अत्यन्त शोभा धारणकी ॥ २८ ॥ मरे हुए वानर राक्षस इसके तट टूटे हुए अस्त्र शस्त्रही किनारे वाले बड़े २ वृक्ष रुधिरका वहनाही जल राशि ऐसी यह रणभूमि उस कालमें यमसागरगामिनी नदीसी ज्ञात हुई ॥ २९ ॥ प्लीहा और यकृत जिसकी घनी कीचड इधर उधर पडे हुए इसके शिवार वीरोंकें कटे हुए रुण्डही इस नदीके बड़े मच्छ व काटे हुए अंग जलकी घासके समान ॥३०॥ रक्त मांसकी चाहना करनेंवाले गृध्रही इस नदीके हंस,कंक रूप सारसही जिसमें बैठेहैं,और चरबीही जिसका फेनरूपहै;और आरत वाणीही जिसका वादलोंका गर्जना रूपशब्दहै॥ ३१ ॥

खंड २ होकर पृथ्वीपर गिरा हुआ देख कोपके मारे प्रलयकी अग्निके समान जल उठे ॥ ७४ ॥ उस समय वह सैनापति नील अश्वकर्ण, धव, शाल और वौरे हुए आम इत्यादि वृक्ष उखाड़ २ समरमें रावणके ऊपर चलानें लगे ॥ ७५ ॥ राक्षसोंके राजा रावणने इन समस्त चलाये हुए वृक्षोंको देखते २ खंड २ कर डाला और नीलके ऊपर बाणोंकी घोर वर्षाकरने लगा ॥ ७६ ॥ मेघ जिस प्रकार जल वर्षातेहैं वैसेही लंकेश्वर रावणके बाण वर्षासे घवड़ाय वानर सैनापति नील अपनी देहको छोटा बनाय कूदकर रावणकी ध्वजापर कूद गये ॥ ७७ ॥ तब दशानन रावण अग्निपुत्र नीलको अपनी ध्वजापर बैठा हुआ देखकर क्रोधके मारे जल उठा यह देखकर वानर सैनापति नीलनें घोर सिंहनाद किया ॥ ७८ ॥ इस

सोश्वकर्णद्रुमान्शालांश्चूतांश्चापिसुपुष्पितान् ॥ अन्यांश्चविविधान्वृक्षान्नीलश्चिक्षेपसंयुगे ॥ ७५ ॥ सतान्वृक्षान्समासाद्यप्रतिचिच्छेदरावणः ॥ अभ्यवर्षच्चघोरेणशरवर्षेणपावकिम् ॥ ७६ ॥ अभिवृष्टःशरौघेणमेघेनेवमहाबलः ॥ ह्रस्वंकृत्वाततोरूपंध्वजाग्रेनिपपातह ॥ ७७ ॥ पावकात्मजमालोक्यध्वजाग्रेसमवस्थितम् ॥ जज्वालरावणःक्रोधात्ततोनीलोननादच ॥ ७८ ॥ ध्वजाग्रेधनुषश्चाग्रेकिरीटाग्रेचतंहरिम् ॥ लक्ष्मणोथहनूमांश्चरामश्चापिसुविस्मिताः ॥ ७९ ॥ रावणोपिमहातेजाःकपिलाघवविस्मितः ॥ अस्त्रमाहारयामासदीप्तमाग्नेयमद्भुतम् ॥ ८० ॥ ततस्तेचुक्रुशुर्हृष्टालब्धलक्षाःप्लवंगमाः ॥ नीललाघवसंभ्रांतंदृष्ट्वारावणमाहवे ॥ ८१ ॥ वानराणांचनादेनसंरब्धोरावणस्तदा ॥ संभ्रमाविष्टहृदयोनकिंचित्प्रत्यपद्यत ॥ ८२ ॥

प्रकारसे वानरोंके सैनापति नील कभी रावणकी ध्वजाके डंडेपर, कभी धनुषपर, और कभी २ रावणके मुखके आगे विराजमान होनें लगे, सेनापति नीलकी यह अनुपम वीरता देखकर श्रीरामचंद्र, लक्ष्मण हनुमानजी अत्यन्त विस्मित हुए ॥ ७९ ॥ रावणनें भी सैनापति नीलकी यह अद्भुत रणकी चतुरता देख अत्यन्त विस्मितहो एक अद्भुत प्रदीप्त अग्नि बाण ग्रहण किया ॥ ८० ॥ इस ओर वानरगण रावणको नीलकी शीघ्रता और चंचलतासे रावणको सम्भ्रान्त चित्त देख आनंदसे कुलाहल करनें लगे ॥ ८१ ॥ रावणभी वानर दलका ऐसा शब्द सुनकर इस प्रकारका

एकही वानरोंके सैनापति नीलके ऊपर बाणोंकी वर्षा करनें लगा ॥४०॥ वानरोंके सैनापति नील इन दुरात्मा प्रहस्तके बाणोंको न रोक सके और नेत्र मूंदकर उन समस्त बाणोंको सहन कर लिया। जैसे कि शरद ऋतुकी शीघ्र वर्षाको वृषभ सहन कर लेताहै ॥ ४१ ॥ इसी प्रकार बडे दुःखसे सहनेके अयोग्यभी प्रहस्तके बाण सैनापति नीलनें नेत्र मूंद करके सहन कर लिये ॥४२॥ तिसके पीछे वह महाबलवान् सैनापति नील प्रहस्तके बाणोंकी वर्षा देख क्रोधित हो एक बडाभारी शालका वृक्ष ग्रहण करते हुए, और उसको चलाय कर प्रहस्तके रथमें जुते हुए चार घोडोंका संहार किया ॥ ४३ ॥ और क्रोधमें भरकर उस दुरात्मा राक्षस प्रहस्तका धनुषभी नीलनें बल पूर्वक ग्रहण करके तोड डाला; धनुष तोडकर वानर

तस्यबाणगणानेवराक्षसस्यदुरात्मनः ॥ अपारयन्वारयितुंप्रत्यगृह्णान्निमीलितः ॥ यथैवगोवृषोवर्षंशारदंशीघ्रमागतम् ॥ ४१ ॥ एवमेवप्रहस्तस्यशरवर्षान्दुरासदान् ॥ निमीलिताक्षःसहसानीलःसेहेदुरासदान् ॥ ४२ ॥ रोषितःशरवर्षेणसालेनमहतामहान् ॥ प्रजघानहयान्नीलःप्रहस्तस्यमहाबलः ॥ ४३ ॥ ततोरोषपरीतात्माधनुस्तस्यदुरात्मनः ॥ बभंजतरसानीलोननादचपुनःपुनः ॥ ४४ ॥ विधनुःसकृतस्तेनप्रहस्तोवाहिनीपतिः ॥ प्रगृह्यमुसलंघोरंस्यंदनादवपुप्लुवे ॥ ४५ ॥ तावुभौवाहिनीमुख्यौजातवैरौतरस्विनौ ॥ स्थितौक्षतजसिक्तांगौप्रभिन्नाविवकुंजरौ ॥४६॥ उल्लिखंतौसुतीक्ष्णाभिर्दंष्ट्राभिरितरेतरम् ॥ सिंहशार्दूलसदृशौसिंहशार्दूलचेष्टितौ ॥ ४७ ॥ विक्रांतविजयौवीरौसमरेष्वनिवर्तिनौ ॥ कांक्षमाणौयशःप्राप्तुंवृत्रवासवयोरिव ॥ ४८ ॥

सैनापति नील वारंवार सिंहनाद करनें लगे ॥ ४४ ॥ धनुषहीन होनेपर सैनापति प्रहस्त घोर मूसल ग्रहण करके रथसे छलांग मारकर पृथ्वीपर कूद पडा ॥ ४५ ॥ दोनों घोर युद्ध करनें लगे; दोनों जिस प्रकार वैर बांधे हुएथे; वैसेही बलवानभीथे। युद्ध करते २ दोनोंका शरीर कट गया; और दोनोंहीके शरीरसे रुधिर बहनें लगा ॥४६॥ दोनोंही तीक्ष्ण दाँतोंके प्रहारसे परस्पर एक दूसरेको काटनें लगे, दोनोंका विक्रम और चेष्टा सिंह शार्दूल की समानथी॥४७॥वृत्रासुर और वृत्रासुरके मारनेंवाले इन्द्रमें जिस प्रकारसे युद्धहुआथा; इसही प्रकारसे यह दोनों वीर समरमें यश प्राप्त करनेकी

चेतना रहित देख मेघके समान शब्द करते हुए अपने रथको चलायकर सुमित्रा कुमार लक्ष्मणजीकी ओर चला ॥ ९० ॥ प्रतापवान रावण लक्ष्मणजीको प्राप्त होकर वानरोंको निवारण कर अपने तेजसे विराज मान हो वारंवार अपने धनुषको टंकारनें लगा ॥ ९१ ॥ तब प्रबल बल शाली सुमित्रानंदन लक्ष्मणजी रावणको इस प्रकारसे धनुषपर टंकार देते देखकर बोले; हे राक्षस नाथ ! वानरोंके साथ युद्ध करना तुमको उचित नहीं है, क्योंकि वह तुम्हारी समानके नहीं हैं, इस कारण उनसे युद्ध न करके हमारे साथ युद्ध करो हम तुमसे युद्ध करनेंके लिये तैयार हैं ॥ ९२ ॥ यह कहकर लक्ष्मणजी धनुषपर टंकार देंने लगे; तब राक्षस राज दशानन उनके प्रति शब्द पूर्ण वचन और धनुषकी टंकारका उग्र

आसाद्यरणमध्येतुवारयित्वास्थितोज्वलन् ॥ धनुर्विस्फारयामासराक्षसेंद्रःप्रतापवान् ॥ ९१ ॥ तमाहसौमित्रिरदी
नसत्त्वोविस्फारयंतंधनुरप्रमेयम् ॥ अवेहिमामद्यनिशाचरेंद्रनवानरांस्त्वंप्रतियोद्धुमर्हसि ॥ ९२ ॥ सतस्यवाक्यंप्रति
पूर्णघोषंज्याशब्दमुग्रंचनिशम्यराजा ॥ आसाद्यसौमित्रिमुपस्थितंतंरोषान्वितंवाचमुवाचरक्षः ॥ ९३ ॥ दिष्ट्यासिमे
राघवदृष्टिमार्गंप्राप्तोंतगामीविपरीतबुद्धिः ॥ अस्मिन्क्षणेयास्यसिमृत्युलोकंसंसाद्यमानोममबाणजालैः ॥ ९४ ॥
तमाहसौमित्रिरविस्मयानोगर्जंतमुद्वृत्तशिताग्रदंष्ट्रम् ॥ राजन्नगर्जंतिमहाप्रभावाविकत्थसेपापकृतांवरिष्ठ ॥ ९५ ॥
जानामिवीर्यंतवराक्षसेंद्रबलंप्रतापंचपराक्रमंच ॥ अवस्थितोहंशरचापपाणिरागच्छकिंमोघविकत्थनेन ॥ ९६ ॥

शब्द श्रवण करके और सुमित्राके पुत्र लक्ष्मणजीको इस प्रकारसे आगे खड़ा देखकर क्रोधसे पूर्ण यह वचन बोला ॥ ९३ ॥ हे लक्ष्मण ! तुम्हारा समय पूर्ण होगया इस कारणसे तुम्हारी बुद्धिमेंभी विपरीतता आगई है; इसही कारणसे हो या हमारे सौभाग्य हीसेही जबकि तुम आज हमारी दृष्टिके मार्गमें पड़ेहो तब निश्चयही हमारे बाणोंसे छिन्न भिन्न इसी मुहूर्तमें तुम यमलोककी यात्रा करोगे ॥ ९४ ॥ रावणके यह वचन सुनकर महावीर लक्ष्मणजी विस्मय रहितहो बोले; हे रावण ! तुम पापी लोगोंके अगुएहो, इसीसे निर्लज्जहो, गर्ज २ कर अपने उज्ज्वल दांत बाहर निकाल ऐसी बकवादकर रहेहो परन्तु महा प्रभाव लोग कभी ऐसा नहीं कहते ॥९५॥ हे राक्षसेन्द्र ! हम तुम्हारे वीर्य बल प्रताप और पराक्रमको भली भांति

जब प्रहस्त मारा गया, तब निशाचरोंकी बची हुई वह कंपायमान करनेंके अयोग्य बड़ी भारी सैना शिर झुकायकर लंकाको चली गई ॥५६॥ जिस प्रकार पुल पांव देके टूट जानें पर सब जल निकल जाताहै और नहीं रुक सकताहै, वैसेही सेनापति प्रहस्तके मारे जानेंपर वह निशाचरगण वहां टिकनेंको समर्थ न हुये ॥ ५७ ॥ उस सैनापति प्रहस्तके मारे जानेंपर वह निशाचर गण शोकके समुद्रमें डूबकर चेतना रहित होगये, और पीछे सब उद्यम छोड़ राक्षसपति रावणके मन्दिरमें आय ध्यान करते हुए पुरुषकी समान मौन धारण किये रहे ॥ ५८ ॥ इस ओर महावीर सैनापति नील युद्धमें जय प्राप्त करके श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजीके निकट आये, तत्काल सबही उनकी इस

नशेकुःसमवस्थातुंनिहतेवाहिनीपतौ ॥ सेतुबंधंसमासाद्यविशीर्णंसलिलंयथा ॥ ५७॥ हतेतस्मिंश्चमूमुख्येराक्षसास्ते निरुद्यमाः ॥ रक्षःपतिगृहंगत्वाध्यानमूकत्वमागताः ॥ प्राप्ताःशोकार्णवंतीव्रंविसंज्ञाइवतेभवन् ॥ ५८ ॥ ततस्तुनीलो विजयीमहाबलःप्रशस्यमानःसुकृतेनकर्मणा ॥ समेत्यरामेणसलक्ष्मणेनप्रहृष्टरूपस्तुबभूवयूथपः ॥ ५९ ॥ इत्यार्षे श्री० वा० आ० यु०अष्टपंचाशःसर्गः ॥ ५८ ॥ ॥ ७ ॥ तस्मिन्हतेराक्षससैन्यपालेप्लवंगमानामृषभेणयुद्धे ॥ भी मायुधंसागरवेगतुल्यंविदुद्रुवेराक्षसराजसैन्यम् ॥ १ ॥ गत्वातुरक्षोधिपतेःशशंसुःसेनापतिंपावकसूनुशस्तम् ॥ तच्चा पितेषांवचनंनिशम्यरक्षोधिपःक्रोधवशंजगाम ॥ २ ॥ संख्येप्रहस्तंनिहतंनिशम्यक्रोधार्दितःशोकपरीतचेताः ॥ उ वाचतान्राक्षसयूथमुख्यानिंद्रोयथानिजरयूथमुख्यान् ॥ ३ ॥

वीरताकी बहुतसी बडाई करनें लगे ॥ ५९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे अष्टपंचाशः सर्गः ॥ ५८ ॥ वानर श्रेष्ठ नीलके हाथसे जब सैनापति प्रहस्त संग्रामभूमिमें मारा गया तब भयंकर अस्त्र शस्त्रधारी समुद्रके वेगकी समान राक्षस रावणकी भागी हुई ॥ १ ॥ उस सैनानें लंका नगरीमें रावणके निकट जाय "अग्निके पुत्र नीलके हाथसे प्रहस्त मारा गया" उसको यह सम्वाद सुनाया। राक्षस रावण सैनाके मुखसे प्रहस्तका मरना सुनकर अत्यन्त क्रोधित हुआ ॥२॥ रणभूमिसें प्रहस्तको माराहुआ सुनकर रोषके परवश और शोकसे विकल

किया ॥ १०२ ॥ लक्ष्मणजीनें रावणके बाणसे अत्यन्त पीडित आरत होकर क्षण भरको चलायमान हुए, परन्तु अनेक कष्ट करके क्षणभरमेंही चेतना पाय अपने गिरे हुए धनुषको उठायकर उसपर बाण चढ़ाय इन्द्रके शत्रु रावणका धनुष काट डाला ॥ १०३ ॥ दशरथ कुमार लक्ष्मणजीनें इस प्रकारसे रावणका धनुष काटकर अत्यन्त तीखे तीन बाण उस राक्षस राजके मारे रावण उन बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर मोहित होगया और फिर अत्यन्त कष्टसे मूर्छासे जागा ॥ १०४ ॥ लक्ष्मणजीसे धनुष कट जानें और उनके बाणोंसे ताडित होनेंके कारण उग्र सामर्थ्यवान देव शत्रु रावणके अंगोंमें चरबीसे मिला हुआ रुधिर निकलनेसे और दूसरा उपाय नदेखकर उसने ब्रह्माजीकी दीहुई अमोघ(अव्यर्थ)शक्ति ग्रहणकी॥१०५॥

सलक्ष्मणोरावणसायकार्तश्चचालचापंशिथिलंप्रगृह्य ॥ पुनश्चसंज्ञांप्रतिलभ्यकृच्छ्राच्चिच्छेदचापंत्रिदशेंद्रशत्रोः ॥ ३॥
निकृत्तचापंत्रिभिराजघानबाणैस्तदादाशरथिःशिताग्रैः ॥ ससायकार्तोविचचालराजाकृच्छ्राच्चसंज्ञांपुनराससाद ॥४॥
सुकृत्तचापःशरताडितश्चमेदार्द्रगात्रोरुधिरावसिक्तः ॥ जग्राहशक्तिंस्वयमुग्रशक्तिःस्वयंभुदत्तांयुधिदेवशत्रुः ॥१०५॥
सतांसधूमानलसन्निकाशांवित्रासनींसंयतिवानराणाम् ॥ चिक्षेपशक्तिंतरसाज्वलंतींसौमित्रयेराक्षसराष्ट्रनाथः ॥ ६ ॥
तामापतंतींभरतानुजोस्त्रैर्जघानबाणैश्चहुताग्निकल्पैः ॥ तथापिसातस्यविवेशशक्तिर्भुजांतरंदाशरथेर्विशालम् ॥ ७ ॥ स
शक्तिमाञ्छक्तिसमाहतःसञ्जज्वालभूमौसरघुप्रवीरः ॥ तंविह्वलंतंसहसाभ्युपेत्यजग्राहराजातरसाभुजाभ्याम् ॥ ८॥

राक्षसोंके राजा रावणनें सुमित्राकुमार लक्ष्मणजीको ताककर संग्राम भूमिमें वानरोंको त्रास उपजानेंवाली और धुएं सहित अग्निकी समान जलती हुई वह शक्ति छोड़दी ॥ १०६ ॥ भरतजीके छोटे भाई लक्ष्मणजीनें उस शक्तिको अपने ऊपर गिरता हुआ देखकर उसको ताक असंख्य अग्निकी समान बाण छोड़े तथापि वह शक्ति किसी प्रकारसे व्यर्थ न होकर लक्ष्मणजीकी विशाल भुजामें आनकर प्रवेश करती हुई ॥ १०७ ॥ तब वह शक्तिमान रघुवीर लक्ष्मणजी शक्तिसे घायल होकर पृथ्वीमें गिर पडे; उनको इस प्रकारसे पृथ्वीमें गिरते हुए देखकर राक्षसराज रावण सहसा

सहित नगरसे बाहर आय महासमुद्र और महामेघकी समान शब्दायमान पर्वत, वृक्ष, हाथमें लिये रण करनेंको तैयार और उग्ररूप वाली बलशाली निराली वानरोंकी सैनाको देखा ॥ १० ॥ इस ओर भुजगेन्द्र सदृश बाहुयुगल शाली अपनी सैनामें टिके हुए सुन्दरदर्शन रघुनन्दन श्रीरामचंद्रजी उस परम प्रचंड राक्षसकी सैनाको देखकर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ विभीषणजीसे बोले ॥ ११ ॥ रंगबिरंगी ध्वजा पताकाओंसे शोभित महेन्द्राचलकी समान हाथी घोड़ोंसे युक्त और प्रास खड्ग शूल इत्यादि भांति २ के अस्त्र शस्त्रोंसे परिपूर्ण यह किस वीरकी सैना है ॥ ॥ १२ ॥ श्रीरामचंद्रजकि यह वचन सुनकर इन्द्र तुल्य वीर्यवान विभीषणजी उन महाबलवान राक्षसश्रेष्ठोंकी सैनाका परिचय श्रीरामचंद्रजीके

तद्राक्षसानीकमतिप्रचंडमालोक्यरामोभुजगेंद्रबाहुः ॥ विभीषणंशस्त्रभृतांवरिष्ठमुवाचसेनानुगतःपृथुश्रीः ॥ ११ ॥
नानापताकाध्वजछत्रजुष्टंप्रासासिशूलायुधशस्त्रजुष्टम् ॥ कस्येदमक्षोभ्यमभीरुजुष्टंसैन्यंमहेंद्रोपमनागजुष्टम् ॥ १२ ॥
ततस्तुरामस्यनिशम्यवाक्यंविभीषणःशक्रसमानवीर्यः ॥ शशंसरामस्यबलप्रवेकंमहात्मनांराक्षसपुंगवानाम् ॥ १३ ॥
योसौगजस्कंधगतोमहात्मानवोदितार्कोपमताम्रवक्त्रः ॥ संकंपयन्नागशिरोभ्युपैतिह्यकंपनंत्वेनमवेहिराजन् ॥ १४ ॥
योसौरथस्थोमृगराजकेतुर्धून्वन्धनुःशक्रधनुःप्रकाशम् ॥ करीवभात्युग्रविवृत्तदंष्ट्रःसइंद्रजिन्नामवरप्रधानः ॥ १५ ॥
यश्चैषविंध्यास्तमहेंद्रकल्पोधन्वीरथस्थोऽतिरथोतिवीरः ॥ विस्फारयंश्चापमतुल्यमानंनाम्नातिकायोतिविवृद्धकायः ॥ १६ ॥ योसौनवार्कोदितताम्रचक्षुरारुह्यघंटानिनदप्रणादम् ॥ गजंखरंगर्जतिवैमहात्मामहोदरोनामसएषवीरः ॥ १७ ॥

समीप निवेदन करने लगे ॥ १३ ॥ विभीषणजी बोले हे राजन्! प्रभात कालके उदय होते हुए सूर्यकी समान जो महाबलवान राक्षस हाथीपर चढकर उसके मस्तकको कम्पायमान करता हुआ आता है उसका नाम अकम्पन है (यह दूसरा अकम्पन था) ॥ १४ ॥ जो रथपर चढ़कर वारंवार इन्द्रके धनुषकी तुल्य अपने धनुषको कंपायमान करता है जिसके रथपर सिंह ध्वज लगाहै,जो तिरछे दांतवाले हाथीकी समान शोभायमान होरहाहै वही वरदान पाया हुआ राक्षसोंमें श्रेष्ठ इन्द्रजीतहै ॥१५॥ विन्ध्याचल अस्ताचल और महेन्द्र पर्वतकी समान अप्रमेय देहवालाहै जो धनुषधारी अतिरथहै और अपने धनुषपर टंकार देता हुआ आय रहा है इसही बडे आकारवाले वीरका नाम अतिकायहै ॥ १६ ॥ प्रभातकालके सूर्यकी

वानर ऋषि सिद्ध और इन्द्रादि देवगण सिंहनाद करनें लगे तिसके पीछे तेजस्वी हनुमानजी रावणसें पीडित लक्ष्मणजीको ॥ ११६ ॥ अपनी दोनों बाहोंसे ग्रहण करके श्रीरामचंद्रजीके पास लाये सुमित्रानंदन लक्ष्मणजी शत्रु लोगोंसे कंपायमान होनेके योग्य नहीं इसकारण रावणके उठाने से न उठे परन्तु हनुमानजीका सौहार्दता और परम भक्तिसे प्रसन्न होकर वह उनके लिये बहुतही हलके होगये ॥ ११७ ॥ तिसके पीछे वह शक्ति संग्रामभूमिको छोड़े हुए लक्ष्मणजीको त्याग कर रावणके रथमें आय अपने स्थानपर विराजमान हुई ॥ ११८ ॥ अतुल तेजस्वी रावणनेभी उस बड़े भारी संग्राममें चैतन्यताको पाय फिर अपना बड़ा भारी धनुष और तीक्ष्ण बाण ग्रहणकिये ॥ ११९ ॥ इस ओर

ऋषयोवानराश्चैवनेदुर्देवाश्चसासुराः ॥ हनुमानथतेजस्वीलक्ष्मणंरावणार्दितम् ॥ १६ ॥ आनयद्राघवाभ्याशंबाहु
भ्यांपरिगृह्यतम् ॥ वायुसूनोःसुहृत्त्वेनभक्त्यापरमयाचसः ॥ शत्रूणामप्यकंप्योपिलघुत्वमगमत्कपेः ॥ ११७ ॥
तंसमुत्सृज्यसाशक्तिःसौमित्रिंयुधिनिर्जितम् ॥ रावणस्यरथेतास्मिन्स्थानंपुनरुपागमत् ॥ १८ ॥ रावणोपिमहाते
जाःप्राप्यसंज्ञांमहाहवे ॥ आददेनिशितान्बाणाञ्जग्राहचमहद्धनुः ॥ १९ ॥ आश्वस्तश्चविशल्यश्चलक्ष्मणःशत्रुसूद
नः ॥ विष्णोर्भागममीमांस्यमात्मानंप्रत्यनुस्मरन् ॥ २० ॥ निपातितमहावीरांवानराणांमहाचमूम् ॥ राघवस्तुर
णेदृष्ट्वारावणंसमभिद्रवत् ॥ २१ ॥ अथैनमनुसंक्रम्यहनूमान्वाक्यमब्रवीत् ॥ ममपृष्ठंसमारुह्यराक्षसंशास्तुमर्ह
सि ॥ २२ ॥ विष्णुर्यथागरुत्मंतमारुह्यामरवैरिणाम् ॥ तच्छ्रुत्वाराघवोवाक्यंवायुपुत्रेणभाषितम् ॥ २३ ॥

शत्रुओंके मारनेंवाले लक्ष्मणजीभी अपने अचिन्तनीय वैष्णव अंशको स्मरणकर व्यथित और सावधानचित्त हुए ॥ १२० ॥ तब रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी वानरोंकी सैनाके अनेक वीरोंको रावणके हाथसे मृतक होते देखकर शीघ्रतासे उसकी ओर चले॥१२१॥ श्रीरामचंद्रजीको संग्राम करनेंके लिये तैयार देखकर वीर हनुमानजी उनसे हाथ जोड़कर बोलेकि हमारी पीठपर सवार होकर आप रावणका वध कीजिये॥१२२॥ विष्णुजीने जिस प्रकार गरुड़जी पर सवार होकर देवताओंके वैरी दैत्योंका संहार कियाथा, श्रीरामचंद्रजी हनुमानजीके कहे हुए ऐसे वचन सुनकर॥१२३॥

प्रकारके घोर रूप वाले विकट नेत्र युक्त व्याघ्र, ऊंट हाथी, मृग, घोड़ेके समान मुखवाले भूतोंके सँग जो शोभितहैं ॥ २३ ॥ और भूतोंसे घिरे हुए शिवजीकी समान शोभायमान हो रहाहै, और जहांपर महीन सौ कमानियोंका बना हुआ चंद्रमाकी समान उज्ज्वल व श्रेष्ठ छत्र लगा दिखाई देताहै, इसी स्थानमें राक्षसोंका स्वामी विराजमानहै ॥ २४ ॥ हेमहाराज! जिसने इन्द्र और यमराजके गर्वकाभी नाश कियाहै,और जिसके मुखपर हलते हुए कुण्डल दीख पडतेहैं, यह वही हिमालय और विन्ध्याचल पर्वतकी समान भयंकराकार निशाचर पति सूर्यकी समान प्रकाशमान हो रहाहै ॥ २५ ॥ तिसके पीछे शत्रुनाशी श्रीरामचंद्रजी विभीषणसे कहने लगे कि अहो ! राक्षसराज रावणका तेज कैसा प्रदीप्तहै! और बडाही

यत्रैतदिंदुप्रतिमंविभातिच्छत्रंसितंसूक्ष्मशलाकमग्र्यम् ॥ अत्रैवरक्षोधिपतिर्महात्माभूतैर्वृतोरुद्रइवावभाति ॥ २४ ॥ असौकिरीटीचलकुंडलास्योनगेंद्रविंध्योपमभीमकायः ॥ महेंद्रवैवस्वतदर्पहंतारक्षोधिपःसूर्यइवावभाति ॥ २५ ॥ प्रत्युवाचततोरामोविभीषणमरिंदमः ॥ अहोदीप्तमहातेजारावणोराक्षसेश्वरः ॥ २६ ॥ आदित्यइवदुष्प्रेक्ष्योरश्मिभिर्भातिरावणः ॥ नव्यक्तंलक्षयेह्यस्यरूपंतेजःसमावृतम् ॥२७॥ देवदानववीराणांवपुर्नैवंविधंभवेत् ॥ यादृशंराक्षसेंद्रस्य वपुरेतद्विराजते ॥ २८ ॥ सर्वेपर्वतसंकाशाःसर्वेपर्वतयोधिनः ॥ सर्वेदीप्तायुधधरायोधास्तस्यमहात्मनः ॥ २९ ॥ विभातिरक्षोराजोसौप्रदीप्तैर्भीमदर्शनैः ॥ भूतैःपरिवृतैस्तीक्ष्णैर्देहवद्भिरिवांतकः ॥ ३० ॥ दिष्ट्यायमद्यपापात्मामम दृष्टिपथंगतः ॥ अद्यक्रोधंविमोक्ष्यामिसीताहरणसंभवम् ॥ ३१ ॥

तेजस्वीहै ॥ २६ ॥ इसके देहकी किरणें चारों ओर ऐसी फैल रहीहैं, और यह सूर्यकी समान ऐसा दुष्प्रेक्ष्य हुआहै कि इसका तेजसे ढका हुआ रूप हमको नहीं दीख पाताहै ॥२७॥ इस राक्षसोंके स्वामी रावणका शरीर जिस प्रकारसे प्रकाशित हो रहाहै, देवता और दानव वीर गणोंका शरीरभी ऐसा प्रकाशित नहीं हुआ करताहै ॥ २८ ॥ महाबलवान राक्षस जो कि रावणके अनुगामी वर्ग हैं वह सबही पर्वतोंके समान बड़े आकारवाले दीप्तायुधधारीहैं; और देहकी चुलबुलाहट निवारण करनेके लिये सबही पर्वतोंके सहित युद्ध किया करतेहैं ॥ २९ ॥ यह राक्षस रावण प्रदीप्त भयंकर दर्शन और तीक्ष्ण देह वाले राक्षसोंके संग होनेसे भूत गणोंके साथ यमराजकी समान जान पडताहै ॥ ३० ॥ बडेही भाग्यकी बातहै

जोकि श्रीरामचंद्रजीको अपने ऊपर चढ़ा रहेथे॥ १३१ ॥ अत्यन्त क्रोध युक्तहो पहला वैर संभाल, कालाग्निकी समान प्रकाशित अत्यन्त तीखे
बाण मारे ॥ १३२ ॥ जोकि,हनुमानजीके लगे, परन्तु संग्राममें रावणके बाणोंसे ताड़ित हुए स्वभावसेही महातेजस्वी हनुमानजीका तेज औरभी
अधिक चढ़ा ॥ १३३ ॥ तिसके पीछे महा तेजस्वी श्रीरामचंद्रजी हनुमानजीकी पीठमें रावणके बाणोंसे घाव हुआ देख अत्यन्त क्रोध करते
हुए ॥ १३४ ॥ उन श्रीरामचंद्रजीनें तीक्ष्ण बाणोंको चलायकर पहिये, घोड़े, छत्र, पताका, सारथि, शूल और खड्गके सहित रावणका रथ चूर्ण
और छिन्नभिन्न करके रत्ती २ काट डाला ॥ १३५ ॥ जिस प्रकार भगवान इन्द्रजीनें सुमेरु पर्वतको चूर्ण कियाथा, वैसेही वज्र और अशनि समान

रोषेण महताविष्टःपूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ आजघानशरैर्दीप्तैःकालानलशिखोपमैः ॥३२॥राक्षसेनाहतेतस्यताडितस्यापि
सायकैः ॥ स्वभावतेजोयुक्तस्यभूयस्तेजोभ्यवर्धत ॥ ३३ ॥ ततोरामोमहातेजारावणेनकृतव्रणम् ॥ दृष्ट्वाप्लवगशार्दू
लंक्रोधस्यवशमेयिवान् ॥ ३४ ॥ तस्याभिसंक्रम्यरथंसचक्रंसाश्वध्वजच्छत्रमहापताकम् ॥ ससारथिंसाशनिशूल
खड्गंरामःप्रचिच्छेदशितैःशराग्रैः ॥ ३५ ॥ अथेंद्रशत्रुंतरसाजघानबाणेनवज्राशनिसन्निभेन ॥ भुजांतरेव्यूढसुजात
रूपेवज्रेणमेरुंभगवानिवेंद्रः ॥ ३६ ॥ योवज्रपाताशनिसन्निपातान्नचुक्षुभेनापिचचालराजा ॥ सरामबाणाभिहतो
भृशार्तश्चचालचापंचमुमोचवीरः ॥ ३७ ॥ तंविह्वलंतंप्रसमीक्ष्यरामःसमाददेदीप्तमथार्धचंद्रम् ॥ तेनार्कवर्णसहसा
किरीटंचिच्छेदरक्षोधिपतेर्महात्मा ॥ ३८ ॥ तंनिर्विषाशीविषसन्निकाशंशांतार्चिषंसूर्यमिवाप्रकाशम् ॥ गतश्रियंकृ
त्तकिरीटकूटमुवाचरामोयुधिराक्षसेंद्रम् ॥ ३९ ॥

बाणोंसे उन्होंनें इन्द्रके शत्रु रावणकी छातीमें चोटदी,और विविध भांतिके गहनोंसे युक्त भुजामेंभी प्रहार किया ॥ १३६ ॥ पहले वज्र अथवा अश
निके आघातसेभी क्षुभित या चलायमान नहीं हुआ; वही वीरश्रेष्ठ रावण श्रीरामचंद्रजीके बाणसे घायल होकर ऐसा आरत और
चलायमान हुआकि उसका धनुष उसके हाथसे गिर पड़ा ॥ १३७ ॥ महाबलवान श्रीरामचंद्रजीनें रावणको ऐसा व्याकुल देख एक अर्द्ध
चंद्र दीप्तबाण ग्रहण कर उससे राक्षसपतिका सूर्यकी समान प्रकाशित मुकुट काट डाला ॥ १३८ ॥ इस समयमें राक्षस

वह बड़े भारी और उत्तम कंगूरे व तट श्रेणी विराजित पर्वतका शृङ्ग जब पृथ्वीमें गिर पड़ा तब निशाचर नाथ रावणनें क्रोधित होकर महा सर्पकी तुल्य यमराजकी समान एक बाण ग्रहण करता हुआ ॥ ३८ ॥ इस कुमति वाले रावणनें सुग्रीवजीके मार डालनेंकी वासनासे यह महा वेगवान बाण उनके ऊपर चलाया यह बाण चिनगार निकलते अग्निकी समान प्रदीप्तथा उसकी गति वज्र और पवनके समान थी ॥ ३९ ॥ षड़ानन स्वामी कार्त्तिक जीकी चलाई हुई उस शक्तिनें जिस प्रकार क्रौञ्च पर्वतको भेद डालाथा, वैसेही रावणकी बाहोंसे छूटे हुए उस बाणनें इन्द्रजीके वज्रकी समान प्रकाशित देह वानर राज सुग्रीवजीके ऊपर गिरकर उनके हृदयको भेद डाला ॥ ४० ॥ वीर

तस्मिन्प्रवृद्धोत्तमसानुवृक्षेशृंगेविदीर्णेपतितेपृथिव्याम् ॥ महाहिकल्पंशरमंतकाभंसमादधेराक्षसलोकनाथः ॥ ३८॥
सतंगृहीत्वाऽनिलतुल्यवेगंसविस्फुलिंगज्वलनप्रकाशम् ॥ बाणंमहेंद्राशनितुल्यवेगंचिक्षेपसुग्रीववधायरुष्टः ॥ ३९॥
ससायकोरावणबाहुमुक्तःशक्राशनिस्पर्शवपुःप्रकाशम् ॥ सुग्रीवमासाद्यविभेदवेगाद्गुहेरिताक्रौंचमिवोग्रशक्तिः ॥ ४०॥
ससायकार्तोविपरीतचेताःकूजन्पृथिव्यांनिपपातवीरः ॥ तंवीक्ष्यभूमौपतितंविसंज्ञंनेदुःप्रहृष्टायुधियातुधानाः ॥ ४१ ॥
ततोगवाक्षोगवयःसुषेणस्त्वथर्षभोज्योतिमुखोनलश्च ॥ शैलान्समुत्पाट्यविवृद्धकायाःप्रदुद्रुवुस्तंप्रतिराक्षसेंद्रम्॥ ४२ ॥ तेषांप्रहारान्सचकारमोघान्रक्षोधिपोबाणशतैःशिताग्रैः ॥ तान्वानरेंद्रानपिबाणजालैर्बिभेदजांबूनदचित्रपुंखैः ॥ तेवानरेंद्रास्त्रिदशारिबाणैर्भिन्नानिपेतुर्भुविभीमकायाः ॥ ४३ ॥

श्रेष्ठ वानरराज सुग्रीवजी उस बाणके प्रहारसे अत्यन्त आरत और चेतना रहित हो घोर शब्द करते हुए पृथ्वीपर गिरपड़े राक्षसगण उन को रणभूमिके मध्य मूर्छित होकर पृथ्वीमें पड़ा हुआ देखकर आनंद के मारे सिंहनाद करनें लगे ॥ ४१ ॥ फिर गवाक्ष गवय सुषेण ऋषभ ज्योतिर्मुख नल इत्यादि वानरगण अपनी २ देहको बढाय उठाय २ राक्षसराज रावणके सन्मुख दौड़े ॥ ४२ ॥ परन्तु राक्षसोंके पर्वतोंको स्वामी रावणनें अत्यन्त तीखे शत बाण चलाय उनके प्रहारको व्यर्थकर सुवर्णकी फोंक लगे हुए बाणोंसे उन वानरश्रेष्ठोंके ऊपर प्रहारकिया

इसके पीछे लंकेश्वर दशानन श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे व्यथित हृदय होकर लंकापुरीमें प्रवेश करता हुआ, उसके हृदयमें श्रीरामचंद्रजीका भय तबतक प्रबलथा दिग्विजयी होनेंका इतने दिनोंतक जो अभिमान था आज वह अभिमान चूर्ण होगया ॥ १ ॥ सिंहके निकट हाथी और पन्नग राज गरुड़जीके निकट सर्पकी अवस्था जिस प्रकार होजातीहै, श्रीरामचंद्रजीके निकट रावणकी भी आज वही अवस्था हुई थी ॥ २ ॥ रावण घरमें बैठकर विकसित सौदामिनीकी समान तेजशाली और ब्रह्मदंडकी समान बाणोंको याद करके अत्यन्त दुःखी हुआ ॥ ३ ॥ तिसके पीछे सुवर्णके बने सिंहासन पर बैठ राक्षसोंकी ओर निहार रावण बोला ॥ ४ ॥ हा ! हमनें जो कठोर तप कियाथा; हम जानतेहैं कि आज वह तप वृथा

सप्रविश्यपुरींलंकांरामबाणभयार्दितः ॥ भग्नदर्पस्तदाराजाबभूवव्यथितेंद्रियः ॥ १ ॥ मातंगइवसिंहे नगरुडेनेवपन्नगः ॥ अभिभूतोभवद्राजाराघवेणमहात्मना ॥ २ ॥ ब्रह्मदंडप्रतीकानांविद्युच्चलितवर्चसाम् ॥ स्मरन्राघवबाणानांविव्यथेराक्षसेश्वरः ॥ ३ ॥ सकांचनमयंदिव्यमाश्रित्यपरमासनम् ॥ विप्रेक्षमाणोरक्षांसिरा वणोवाक्यमब्रवीत् ॥ ४ ॥ सर्वंतत्खलुमेमोघंयत्तप्तंपरमंतपः ॥ यत्समानोमहेंद्रेणमानुषेणविनिर्जितः ॥ ५ ॥ इदंत द्ब्रह्मणोघोरंवाक्यंमामभ्युपस्थितम् ॥ मानुषेभ्योविजानीहिभयंत्वमितितत्तथा ॥ ६ ॥ देवदानवगंधर्वैर्यक्षराक्षसप न्नगैः ॥ अवध्यत्वंमयाप्रोक्तंमानुषेभ्योनयाचितम् ॥ ७ ॥ तमिमंमानुषंमन्येरामंदशरथात्मजम् ॥ इक्ष्वाकुकुल जातेनअनरण्येनयत्पुरा ॥ ८ ॥

होगया; हम इन्द्र तुल्य प्रतापी होकर जब कि एक साधारण मनुष्यसे रणभूमिमें हार गये; तब हमारी वीरताही क्या हुई ॥५॥ पूर्व कालमें प्रजापति ब्रह्माजीनें हमसे कहाथा कि हे राक्षसराज ! मनुष्यके हाथसेही तुमको भयहै, इस समय उनकी वही बात हमको याद आतीहै; देखतेहैं कि अब सत्य सत्यही मनुष्यसे हमको घोर भय आ पहुँचा; कि जिसका ठिकाना नहीं ॥ ६ ॥ हमनें वरदान पानेंके समय ब्रह्माजीसे, देवता, गन्धर्व, दानव यक्ष, राक्षस, और सर्प इन सब जातियोंसे न मारे जांय, यह वर मांगा था मनुष्यकी जातिको अपदार्थ समझकर "मनुष्य जातिसे भी हम न मारे जाँय" ऐसा वरदान हमनें नहीं मांगा ॥ ७ ॥ पूर्व समय इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न हुए महाराजाधिराज अनरण्यनें जो शाप हमको दियाथा

सुनकर सुमित्राके पुत्र लक्ष्मणजी उनको प्रणाम करते हुए, और उनकी पूजाकी, व श्रीरामचंद्रजीनेंभी इनको गलेसे लगाय कर भेंटा जब लक्ष्मणजी युद्ध करनेंको गये ॥५०॥ तब युद्धमें आगे बढ़कर लक्ष्मणजीनें देखा कि हाथीकी शुण्डके समान चढ़ा उतार बांहोंवाला राक्षस रावण भयं कर धनुष उठाय अनिवार बाणोंकी वर्षा करता हुआ वानरोंको ढक रहाहै, और वानर लोगभी छिन्नभिन्न शरीरहो पृथ्वीपर गिर रहेहैं ॥ ५१ ॥ इतने हीमें पवनकुमार हनुमानजी लक्ष्मणजीको आगे बढ़ा हुआ देखकर उनको रोक आप रावणके बाणजालको चीरते फाड़ते उसके सन्मुख धाये ॥ ५२ ॥ तिसके पीछे बुद्धिमान हनुमानजी रावणके रथपर चढ़ दहिनी भुजाका तमाचा उठाय उसको भय दिखाते हुए बोले ॥ ५३ ॥ कि

सरावणंवारणहस्तबाहुंददर्शभीमोद्यतदीप्तचापम् ॥ प्रच्छादयंतंशरवृष्टिजालैस्तान्वानरान्भिन्नविकीर्णदेहान् ॥ ५१ ॥ तमालोक्यमहातेजाहनूमान्मारुतात्मजः ॥ निवार्यशरजालानिविदुद्रावसरावणम् ॥ ५२ ॥ रथंतस्यसमासाद्यबाहुमुद्यम्यदक्षिणम् ॥ त्रासयन्रावणंधीमान्हनूमान्वाक्यमब्रवीत् ॥ ५३ ॥ देवदानवगंधर्वैर्यक्षैश्चसहराक्षसैः ॥ अवध्यत्वंत्वयाप्राप्तंवानरेभ्यस्तुतेभयम् ॥ ५४ ॥ एषमेदक्षिणोबाहुःपंचशाखःसमुद्यतः ॥ विधमिष्यतितेदेहेभूतात्मानंचिरोषितम् ॥ ५५ ॥ श्रुत्वाहनूमतोवाक्यंरावणोभीमविक्रमः ॥ संरक्तनयनःक्रोधादिदंवचनमब्रवीत् ॥ ५६ ॥ क्षिप्रंप्रहरनिःशंकंस्थिरांकीर्तिमवाप्नुहि ॥ ततस्त्वांज्ञातविक्रांतंनाशयिष्यामिवानर ॥ ५७ ॥ रावणस्यवचःश्रुत्वावायुसूनुर्वचोब्रवीत् ॥ प्रहतंहिमयापूर्वमक्षंतवसुतंस्मर ॥ ५८ ॥

तुम वरदानके प्रभावसे देवता, दानव, गन्धर्व और राक्षस लोगोंसेही अवध्य हुएहो, परन्तु वानर लोगोंसे तुमको सम्पूर्ण भयकी सम्भावनाहै ॥ ५४ ॥ इससमय पांच उँगलियोंके सहित हमारा दहना हाथ जो उठा हुआ देखते हो यही तेरी देहमें बहुत कालके वसे हुए प्राणोंको सदाके लिये निकाल कर अलग करेगा ॥ ५५ ॥ भयंकर पराक्रमकारी रावण हनुमानजीके वचन सुन क्रोधके मारे लाल २ नेत्रकर उनसे कहता हुआ ॥ ५६ ॥ कि हे वानर! तुम शंकारहित होकर शीघ्र हमारे ऊपर प्रहार करके अचल कीर्त्ति को प्राप्त करो;तिसके पीछे तुम्हारे पराक्रमकी परीक्षा करके फिर हमभी तुम्हारा संहार करेंगे ॥ ५७ ॥ रावणके वचन सुनकर हनुमानजी बोले कि हमारे पराक्रमको और अधिक जाननेंकी क्या आवश्यकताहै, यदि तुम

आज्ञादी, कि सब द्वारोंपर प्रथम यत्न करो, और फिर सब प्राकार पर चढ़कर उसको रखाओ ॥ १५ ॥ और नींदके वश हुए कुंभकर्णकोभी जगाओ, कारण कि वह कामके मारे हमारे विचले भाई सदा सोयेही रहतेहैं ॥१६॥ पितामह ब्रह्माजीसे वर पानेके अनुसार निशाचर कुंभकर्ण छैमहीनेतक सो या हुआ रहकर केवल एक दिनको जागताहै परन्तु इससमय उसको सोये हुए केवल नौही दिन * हुएहैं,इसकारण उसको यत्न सहित इससमय जगा नाही कर्तव्यहै ॥ १७ ॥ एक वही महाबाहु इस भयंकर युद्धमें बड़ा चतुर है;वही सब वीरोंका शिरोमणिहै, वही राम लक्ष्मण और समस्त वानरोंका बहुत शीघ्र विनाश करैगा ॥ १८ ॥ सम्पूर्ण राक्षसोंमें श्रेष्ठ कुंभकर्ण ऐसा महाबल शाली होकरभी ग्राम्यसुखमें (स्त्रीपुत्रादिकोंके सुख) अनुरा

निद्रावशसमाविष्टःकुंभकर्णोविबोध्यताम् ॥ सुखंस्वपितिनिश्चिंतःकामोपहतचेतनः ॥ १६ ॥ नवसप्तदशाष्टौचमा सान्स्वपितिराक्षसः ॥ मंत्रंकृत्वाप्रसुप्तोयमितस्तुनवमेहनि ॥१७॥ सहिसंख्येमहाबाहुःककुदंसर्वरक्षसाम् ॥ वान रान्राजपुत्रौचक्षिप्रमेवहनिष्यति ॥ १८ ॥ एषकेतुःपरंसंख्येमुख्योवैसर्वरक्षसाम् ॥ कुंभकर्णःसदाशेतेमूढोग्रा म्यसुखेरतः ॥ १९ ॥ रामेणाभिनिरस्तस्यसंग्रामेस्मिन्सुदारुणे ॥ भविष्यतिनमेशोकःकुंभकर्णेविबोधिते ॥ २० ॥ किंकरिष्याम्यहंतेनशक्रतुल्यबलेनहि ॥ ईदृशेव्यसनेघोरेयोनसाह्यायकल्पते ॥ २१ ॥ तेतुतद्वचनंश्रुत्वाराक्षसें द्रस्यराक्षसाः ॥ जग्मुःपरमसंभ्रांताःकुंभकर्णनिवेशनम् ॥ २२ ॥

गी रहकर मूढ सोयाही रहताहै ॥ १९ ॥ हम उस दारुण संग्राम भूमिमें रामचंद्रसे यद्यपि हारगयेहैं परन्तु कुंभकर्णके जागनेंपर हमको यह शोक नहीं दुःखित करैगा ॥ २० ॥ हमपर ऐसी घोर विपद पड़नेंके समयभी यदि इन्द्रकी समान पराक्रम करनेंवाला कुम्भकर्ण हमारी किसी प्रकारकी सहायताके कामोंमें न आवैगा.तब फिर हम उसको लेकर क्या करेंगे॥२१॥राक्षसोंके राजा रावणके ऐसे वचन सुनकर सब राक्षसगण अति शीघ्र तासे कुम्भकर्णके स्थानको गये ॥ २२ ॥ रक्त मांस प्रिय वे राक्षस लोग रावणकी आज्ञाके अनुसार कुंभकर्णके लिये सुगन्धितमाला और श्रेष्ठ २

* कुंभकर्णके जागनेका नियम नहींथा वर्षों सोताही रहताथा क्योंकि "नव सप्तदशाष्टौचमासानिति" इस्से महीनौ और अगस्त्यके वाक्यसे वर्षोंका सोना पाया जाताहै ॥

उसनें अपने दहिने हाथकी मुट्ठी बांधकर वानर श्रेष्ठ हनुमानजीकी छातीमें एक घूंसा मारा ॥ ६६ ॥ हनुमानजी भी बड़ी छातीमें घूंसेका प्रहार लगनेंसे वारंवार चलायमानहो चेतना रहित हुए महा बलवान हनुमानजीको विह्वल देखकर ॥ ६७ ॥ अतिरथ रावण रथपर चढ़ा हुआ शीघ्र नीलके सन्मुख आया, राक्षसोंके राजा दशग्रीव प्रतापशाली रावणनें ॥ ६८ ॥ पराये मर्मको भेदनेंवाले भयंकर सर्पके विषकी समान बाणोंके समूहसे वानरोंके सैनापति नीलको मारा॥ ६९ ॥ परन्तु वानरोंके सैनापति नीलनें बाणोंसे घायल होकर भी एक हाथसे एक पर्वतका शृङ्ग ग्रहण कर राक्षसपति रावणके ऊपर चलाया ॥ ७० ॥ इतनेही में इस ओर महा तेजस्वी हनुमानजी चेतना प्राप्तकर सावधान हो समर करनेंकी वास

हनूमान्वक्षसिव्यूढेसंचचालपुनःपुनः ॥ विह्वलंतंतदादृष्ट्वाहनूमंतंमहाबलम् ॥ ६७ ॥ रथेनातिरथःशीघ्रंनीलंप्रति समभ्यगात् ॥ राक्षसानामधिपतिर्दशग्रीवःप्रतापवान् ॥ ६८ ॥ पन्नगप्रतिमैर्भीमैःपरमर्माभिभेदनैः ॥ शरैरादीपयामासनीलंहरिचमूपतिम् ॥ ६९ ॥ सशरौघसमायस्तोनीलोहरिचमूपतिः ॥ करेणैकेनशैलाग्रंरक्षोधिपतयेसृजत् ॥ ७० ॥ हनूमानपितेजस्वीसमाश्वस्तोमहामनाः ॥ विप्रेक्षमाणोयुद्धेप्सुःसरोषमिदमब्रवीत् ॥ ७१ ॥ नीलेनसहसंयुक्तंरावणंराक्षसेश्वरम् ॥ अन्येनयुद्ध्यमानस्यनयुक्तमभिधावनम् ॥ ७२ ॥ रावणोथमहातेजास्तंशृंगंसप्तभिःशरैः ॥ आजघानसुतीक्ष्णाग्रैस्तद्विशीर्णंपपातह ॥ ७३ ॥ तद्विशीर्णंगिरेःशृंगंदृष्ट्वाहरिचमूपतिः ॥ कालाग्निरिवजज्वालकोपेनपरवीरहा ॥ ७४ ॥

नासे चारों ओर निहार राक्षस रावणको नीलके साथ युद्ध करते हुए देख क्रोधमें भरकर बोले ॥ ७१ ॥ कि हे रावण ! इस समय तुम नीलके साथ युद्ध कर रहेहो, इस कारण इस समय तुम्हारे ऊपर धावमान होना हमेंउचित नहींहै;नहीं तौ अभी तुम्हैं हम भलीभांति सिखावन देते ॥ ७२ ॥ परन्तु अतुल तेजस्वी बलशाली राक्षसेन्द्र रावणनें हनुमानजीके वचनोंका निरादर करके, उस नीलके छोड़े हुए पर्वतके शिखरको ताककर, ऐसे सात बाण छोड़े कि जिस्से वह शृङ्ग खंड२ होकर पृथ्वीमें गिर पड़ा॥७३॥तब परवीरघाती वानर सैनापति नील संग्राम भूमिमें उस पर्वतके शृङ्गको

नाश करनेंवाले कुम्भकर्णको राक्षसोंने देखा ॥ ३० ॥ तिसके पीछे राक्षसोंने कुम्भकर्णके निकट पर्वताकार तृप्तिकर जीवजन्तुओंकी राशि उसके खानेंको खडी करदी ॥ ३१ ॥ असंख्य मृग महिष और शूकर इकट्ठे किये गये इसके पीछे अद्भुत ढेरका ढेर अन्नभी राक्षसव्याघ्रोंने वहांपर संग्रह किया ॥ ३२ ॥ तिसके पीछे राक्षस लोगोंनें रुधिरके भरे हुए घडे और विविध भांतिके माँस भी इकट्ठे करकै कुम्भकर्णके निकट रखदिये ॥ ३३ ॥ तिसके पीछे उसकी देहमें सुगन्धित उत्तम चंदन लगाया और वह सब राक्षस उसको श्रेष्ठ २ हार और श्रेष्ठ चन्दनकी सुगन्धिको सुँघानें लगे ॥ ३४ ॥ निशाचर गण उस शत्रुनाशी कुम्भकर्णके सन्मुख तीव्रगंधवाली धूप इत्यादि सुगन्धियें रखकर वादलके समान गंभीर

ततश्चक्रुर्महात्मानःकुंभकर्णस्यचाग्रतः ॥ भूतानांमेरुसंकाशंराशिंपरमतर्पणम् ॥ ३१ ॥ मृगाणांमहिषाणां
चवराहाणांचसंचयान् ॥ चक्रुर्नैर्ऋतशार्दूलाराशिमन्नस्यचाद्भुतम् ॥ ३२ ॥ ततःशोणितकुम्भांश्चमांसानिविवि
धानिच ॥ पुरस्तात्कुंभकर्णस्यचक्रुस्त्रिदशशत्रवः ॥ ३३ ॥ लिलिपुश्चपराध्र्येनचंदनेनपरंतपम् ॥ दिव्यैराश्वास
यामासुर्माल्यैर्गंधैश्चगंधिभिः ॥ ३४ ॥ धूपंगंधांश्चससृजुस्तुष्टुवुश्चपरंतपम् ॥ जलदाइवचानेदुर्यातुधानास्ततस्त
तः ॥ ३५ ॥ शंखांश्चपूरयामासुःशशांकसदृशप्रभान् ॥ तुमुलंयुगपच्चापिविनेदुश्चाप्यमर्षिताः ॥ ३६ ॥ नेदुरास्फो
टयामासुश्चिक्षिपुस्तेनिशाचराः ॥ कुंभकर्णविबोधार्थंचक्रुस्तेविपुलंस्वरम् ॥ ३७ ॥ सशंखभेरीपणवप्रणादंसास्फो
टितक्ष्वेलितसिंहनादम् ॥ दिशोद्रवंतस्त्रिदिवंकिरंतःश्रुत्वाविहंगाःसहसानिपेतुः ॥ ३८ ॥

शब्दसे गर्ज कर उसकी स्तुति करनें लगे ॥ ३५ ॥ चन्द्रमाकी समान श्वेत शंखोंको वायु पूरित कर बजाने लगे जब कुम्भकर्ण न जागा तौ क्रोधमें भरकर सिंहनादभी करनें लगे ॥ ३६ ॥ कोई २ राक्षस वडे शब्दसे चिल्लानें लगे; कोई २ बाजे आदि अंग बजाय २ ताल देते, कोई उसके चरण उठाय पृथ्वीपर पटक देते; और कोई २ कुम्भकर्णके जागनें के लिये विविध भांतिसे शब्दही करनें लगे ॥ ३७ ॥ उस समय शंख, भेरी और ढोलकी नादके सहित बाहु स्फोटन और सिंहनादका शब्द श्रवण करके पक्षीगण चारों ओरको उडे परन्तु उडते हुए पृथ्वीपर गिरपडे ॥ ३८ ॥

क्रोधयुक्त और सम्भ्रान्त चित्त हुआ कि अपने कर्तव्यको वह निश्चय न कर सका कि अब क्या करना चाहिये ॥ ८२ ॥ तिसके पीछे उस महा तेजस्वी राक्षसोंके पति रावणनें आग्नेयास्त्रसे युक्त बाण ग्रहण करके ध्वजापर बैठे हुए नीलकी ओर दृष्टि करके कहा ॥ ८३ ॥ तब महातेज वान राक्षसोंके स्वामी रावणनें नीलसे कहाकि हे वानर ! तुमने वारंवार मायासे अपना छोटारूप बनायकर हमको धोखा दिया ॥ ८४ ॥ परन्तु अब जो समर्थ हो तौ अपने जीवनकी रक्षा कर कारणकि हमनें देखा कि तैंने मायाके प्रभावसे वारंवार अपने रूपको छोटा बनायाहै सो अबभी वही छोटा रूप बनाकर अपने जीवनकी रक्षाकर ॥ ८५ ॥ परन्तु तुम्हारे अनंत चेष्टाओं करके जीवनकी रक्षामें यत्नवान होने पर

आग्नेयेनापिसंयुक्तंगृहीत्वारावणःशरम् ॥ ध्वजशीर्षस्थितंनीलमुदैक्षतनिशाचरः ॥ ८३ ॥ ततोऽब्रवीन्महातेजाराव णोराक्षसेश्वरः ॥ कपेलाघवयुक्तोसिमाययापरयासह ॥ ८४ ॥ जीवितंखलुरक्षस्वयदिशक्तोसिवानर ॥ तानिता न्यात्मरूपाणिसृजसित्वमनेकशः ॥ ८५ ॥ तथापित्वांमयामुक्तःसायकोस्त्रमयोजितः ॥ जीवितंपरिरक्षंतंजीविता द्भ्रंशयिष्यति ॥ ८६ ॥ एवमुक्तामहाबाहूरावणोराक्षसेश्वरः ॥ संधायबाणमस्त्रेणचमूपतिमताडयत् ॥ ८७ ॥ सो स्त्रमुक्तेनबाणेननीलोवक्षसिताडितः ॥ निर्दह्यमानःसहसासपपातमहीतले ॥ ८८ ॥ पितृमाहात्म्यसंयोगादात्मन श्चापितेजसा ॥ जानुभ्यामपतद्भूमौनतुप्राणैर्वियुज्यत ॥ ८९ ॥ विसंज्ञंवानरंदृष्ट्वादशग्रीवोरणोत्सुकः ॥ रथेनांबुदनादे नसौमित्रिमभिदुद्रुवे ॥ ९० ॥

भी आग्नेयास्त्र युक्त हमारा यह बाण प्राण रक्षा करते हुए तुम्हारे प्राणोंका नाश कर देगा ॥ ८६ ॥ महाबाहु राक्षसराज रावणनें यह कहकर आग्नेयास्त्रसे शर सन्धानकर सैनापति नीलके ऊपर वह बाणचलाया ॥ ८७ ॥ तब सैनापति नीलकी छातीमें वह अग्निबाण लगा, कि जिसके लगनेंसे वह जलते हुए सहसा गिर पडे ॥ ८८ ॥ परन्तु अपने तेज और पिता अग्निके माहात्म्यसे इस आग्नेयास्त्रसे उनके प्राणोंका नाश नहीं हुआ वह केवल दोनों जांघोंको पकडे हुए पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ८९ ॥ इस ओर समरका अभिलाषी रावण वानरश्रेष्ठ नीलको

और मुद्गर व मूसलसेभी कुंभकर्णको यह राक्षस अति जोरसे मारनें लगे,तिस कालमें उस तुमुलनिनादसे पर्वत और समस्त वनोंके सहित लंका
पूर्ण होगई, परन्तु कुम्भकर्णकी नींद न टूटी ॥ ४७ ॥ तिसके पीछे सुवर्णके बने हुए सहस्रों नगाड़े एकही संग बजाये गये और चारों ओर
उनकी ध्वनि गूंज उठी परन्तु कुम्भकर्ण न जागा ॥ ४८ ॥ जबकि कुंभकर्ण शापसे ग्रसित रहनेंके कारण ऐसी घोर निद्रामें सोया रहकर किसी
प्रकारसे न जागा तब यह सब राक्षस अत्यन्त क्रोधित हुए ॥ ४९ ॥ तिसके पीछे उन कोप युक्त भयंकर कर्मकारी राक्षस कुम्भकर्णको जगानेंके
लिये अपना २ पराक्रम दिखानें लगे ॥ ५० ॥ कोई २ नगाड़े और भेरी बजानें लगे, कोई २ सिंहनादही करते हुए किसी २ नें उसके बाल पकड़

मुद्गरैर्मुसलैश्चापिसर्वप्राणसमुद्यतैः ॥ तेननादेनमहतालंकासर्वाप्रपूरिता ॥ सपर्वतवनासर्वासोऽपिनैवप्रबुध्यते ॥ ४७ ॥
ततोभेरीसहस्रंतुयुगपत्समहन्यत ॥ मृष्टकांचनकोणानामसक्तानांसमंततः ॥ ४८ ॥ एवमप्यतिनिद्रस्तुयदानैवप्रबु
ध्यत ॥ शापस्यवशमापन्नस्ततःक्रुद्धानिशाचराः ॥ ४९ ॥ ततःकोपसमाविष्टाःसर्वेभीमपराक्रमाः ॥ तद्रक्षोबोधयिष्यं
तश्चक्रुरन्येपराक्रमम् ॥५० ॥ अन्येभेरीःसमाजघ्नुरन्येचक्रुर्महास्वनम् ॥ केशानन्येप्रलुलुपुःकर्णानन्येदशंतिच ॥ ५१ ॥
उदकुंभशतानन्येसमसिंचंतकर्णयोः ॥ नकुंभकर्णःपस्पंदेमहानिद्रावशंगतः ॥ ५२ ॥ अन्येचबलिनस्तस्यकूटमुद्गर
पाणयः ॥ मूर्ध्निवक्षसिगात्रेषुपातयन्कूटमुद्गरान् ॥ ५३ ॥ रज्जुबंधनबद्धाभिःशतघ्नीभिश्चसर्वशः ॥ वध्यमानोमहाका
योनप्राबुध्यतराक्षसः ॥ ५४ ॥ वारणानांसहस्रंचशरीरेस्यप्रधावितम् ॥ कुंभकर्णस्तदाबुद्धास्पर्शंपरमबुध्यत ॥ ५५ ॥

कर खेंचे और कोई२ उसके कानोंको काटनें लगे ॥ ५१ ॥ और बहुतसे राक्षस सैकड़ों जलके भरे हुए घड़े लेकर कुम्भकर्णके कानोंको जलसे
भरनें लगे, तथापि नींदमें मस्त कुम्भकर्ण कुछभी चलायमान न हुआ ॥ ५२ ॥ और दूसरे कूट, मुद्गरादि हाथसें लिये बलवान निशाचर
गण मुद्गरोंसे उसके मस्तक, छाती, और सब अंगोंमें चोट देनें लगे॥५३॥ बहुत सारे राक्षस रस्सियोंके बन्धनसे बांधकर उसके शरीरमें शतघ्नियोंका
प्रहार करनें लगे; इस प्रकारसेभी मार खाय कर कुम्भकर्णनें निद्राके सुखको नहीं त्यागा ॥ ५४ ॥ तब राक्षसोंनें उसके ऊपर अति वेग सहित

जानतेहैं (अर्थात् सूने आश्रमको पायकर जानकीको हर लायेहो इस्से यह ध्वनि निकलतीहै) इसलिये अब ऐसे बकवाद करनेंका कुछ प्रयोजन नहीं है,हम धनुष बाण धारण करके टिके हुए हैं, तुमभी आगेको बढ़ो ॥ ९६ ॥ जब लक्ष्मणजीनें ऐसा कहा तब रावणनें लक्ष्मणजीके ऊपर श्रेष्ठ फोंक लगे हुए सात बाण चलाये सुमित्राके पुत्र लक्ष्मणजीनें तीखे धार युक्त सुपुंख बाणोंसे उन रावणके चलाये बाणोंको काट डाला ॥ ९७ ॥ तब लंकापति रावण शरीर कटे सर्पोंकी समान उन बाणोंको सहसा खंड २ देखकर अत्यन्त क्रोधित हुआ, व और दूसरे तीखे बाण लक्ष्मणजीके ऊपर चलानें लगा ॥ ९८ ॥ परन्तु श्रीरामचन्द्रजीके छोटे भाई वीर लक्ष्मणजीनें उन बाणासे चलायमान होकर अपने धनुपको चढ़ाकर बाणोंकी

सएवमुक्तःकुपितःससर्जरक्षोधिपःसप्तशरान्सुपुंखान्॥ताँल्लक्ष्मणःकांचनचित्रपुंखैश्चिच्छेदबाणैर्निशिताग्रधारैः॥९७॥ तान्प्रेक्षमाणःसहसानिकृत्तान्निकृत्तभोगानिवपन्नगेंद्रान् ॥ लंकेश्वरःक्रोधवशंजगामससर्जचान्यान्निशितान्पृषत्कान् ॥ ९८ ॥ सबाणवर्षंतुववर्षतीव्रंरामानुजःकार्मुकसंप्रयुक्तम् ॥ क्षुरार्धचंद्रोत्तमकर्णभल्लैःशरांश्चचिच्छेदनचुक्षुभे च ॥ ९९ ॥ सबाणजालान्यपितानितानिमोघानिपश्यंस्त्रिदशारिराजः ॥ विसिस्मियेलक्ष्मणलाघवेनपुनश्चबाणान्निशितान्मुमोच ॥१०० ॥ सलक्ष्मणश्चापिशितान्शिताग्रान्महेंद्रतुल्योशनिभीमवेगान् ॥ संधायचापेज्वलनप्रकाशान्ससर्जरक्षोधिपतेर्वधाय ॥ १ ॥ सतान्प्रचिच्छेदहिराक्षसेंद्रःशिताञ्छराँल्लक्ष्मणमाजघान ॥ शरेनकालाग्निसमप्रभेण स्वयंभुदत्तेनललाटदेशे ॥ २ ॥

वर्षा करनें लगे; और छुरे, अर्द्धचन्द्र, व तीखे फलके लगे हुए भालोंसे रावणके चलाये हुए बाणोंको खंड २ कर डाला ॥ ९९ ॥ उन अमोघ बाणोंके जालको निष्फल देख और लक्ष्मणजीकीभी शीघ्रतासे विस्मित हो रावणनें फिर तीक्ष्ण बाण चलाये ॥ १०० ॥ तब लक्ष्मणजीनेंभी अपने धनुषको चढ़ाय इन्द्रके वज्रकी समान वेगवान अग्निकी समान तीक्ष्ण धारवाले बाण राक्षसपति रावणके वध करनेंके लिये छोड़े ॥ १०१ ॥ परन्तु राक्षसोंके स्वामी रावणनें उन समस्त बाणोंको काटकर ब्रह्माजीके दिये हुए प्रलयकी अग्निके प्रचंड बाणसे लक्ष्मणजीके माथेमें प्रहार

वढ़ते गये और शिर झुकायकर प्रणाम कर उसके चारों ओर खड़े होगये ॥ ६४ ॥ उसकी
राक्षसगण उसको तृप्त जानकर धीरे २ उसके आगे बढ़ते गये और शिर झुकायकर प्रणाम कर उसके चारों ओर दृष्टि डालकर राक्षसोंको देखा ॥ ६५ ॥ राक्षस
आंखें नींदके वश होनेसे कुछ एक खुली, और लाल २ हो रहींथीं; उस कुम्भकर्णनें चारों ओर दृष्टि डालकर राक्षसोंको देखा ॥ ६५ ॥ राक्षस
श्रेष्ठ कुम्भकर्ण इन सब राक्षसोंको समझाय बुझाय फिर अकालमें जगानेंके कारण विस्मितहो इन सबसे बोला ॥ ६६ ॥ हेराक्षस गण! तुमनें
आदर सहित अति यत्नसे किस कारण हमको जगाया! महाराज निशाचर नाथ कुशलसे तौहैं? इस समय भयका तौ कोई कारण नहीं है?॥ ६७ ॥

ततस्तृप्तइतिज्ञात्वासमुत्पेतुर्निशाचराः ॥ शिरोभिश्चप्रणम्यैनंसर्वतःपर्यवारयन् ॥ ६४ ॥ निद्राविशदनेत्रस्तुकलुषी
कृतलोचनः ॥ चारयन्सर्वतोदृष्टिंतानुवाचनिशाचरान् ॥ ६५ ॥ ससर्वान्सांत्वयामासनैर्ऋतान्नैर्ऋतर्षभः ॥ बोधना
द्विस्मितश्चापिराक्षसानिदमब्रवीत् ॥ ६६ ॥ किमर्थमहमादृत्यभवद्भिःप्रतिबोधितः ॥ कच्चित्सुकुशलंराज्ञोभयंवाने
हकिंचन ॥ ६७ ॥ अथवाध्रुवमन्येभ्योभयंपरमुपस्थितम् ॥ यदर्थमेवत्वरितैर्भवद्भिःप्रतिबोधितः ॥ ६८ ॥ अद्य
राक्षसराजस्यभयमुत्पाटयाम्यहम् ॥ दारयिष्येमहेंद्रंवाशीतयिष्येतथानलम् ॥ ६९ ॥ नह्यल्पकारणेसुप्तंबोधयिष्य
तिमादृशम् ॥ तदाख्यातार्थतत्त्वेनमत्प्रबोधनकारणम् ॥ ७० ॥ एवंब्रुवाणंसंरब्धंकुंभकर्णमरिंदमम् ॥ यूपाक्षः
सचिवोराज्ञःकृतांजलिरभाषत ॥ ७१ ॥

अथवा इस पूछनेंका क्या प्रयोजनहै जबकि तुमनें हमको ऐसी शीघ्रतासे जगायाहै तब तौ कोई बड़ा भारी भय आ पहुंचाहै इसमें कोईभी संदेह
नहीं ॥ ६८ ॥ जो कुछभीहो आज हम राक्षस राजका भय दूर कर देंगे; महेन्द्र पर्वतको उखाड़ और तोड़ फोड़कर फेंक देंगे अथवा अग्निके तेजको
खर्वकर देंगे ॥ ६९ ॥ जब कि हमारी समान सोते हुए वीरको जगाया गयाहै; तब इसका साधारण कारण नहीं जान पड़ता;इससे हमारे जगानेंका क्या
कारण है वह तुम यथार्थ२कहो ॥ ७० ॥ शत्रुओंके नाश करनें वाले कुम्भकर्ण के ऐसा कहनें पर रावणका यूपाक्ष मंत्री हाथ जोड़कर बोला ॥ ७१ ॥

उनके निकट चला गया, और उनको उठानेंके अभिप्रायसे भुजाओंसे बल सहित ग्रहण करता हुआ ॥ १०८ ॥ परन्तु आश्चर्य! जो महावीरनें हिमालय, मन्दर, सुमेरु; वरन सब प्राणियोंके सहित त्रिलोकके उठानेंको समर्थ हैं, परन्तु वही वीर रावण आज लक्ष्मणजीके उठानेंको किसी प्रकारसे समर्थ नहीं हुआ ॥ १०९ ॥ ब्रह्माजीकी शक्तिके छातीमें लगनेंसे यद्यपि लक्ष्मणजी मूर्च्छितभी हुए तथापि विष्णुजीभी जिन श्रीरामचन्द्रजीको यथार्थतासे नहीं जानते कि इनमें कितनी सामर्थ्य है; ऐसे ऐश्वर्य युक्त सबके प्रेरणा करनेंवाले श्रीरामचन्द्रजीका इन लक्ष्मणजीनें स्मरण किया, इस कारण चौदह भुवनोंसे कोटि गुणी अधिक गरुआई लक्ष्मणजीमें आगई कि जिससे रावण इनको उठा नहीं सका ॥ ११० ॥ देवताओंका कण्टक रावण इस बातको जानकरही देव दानवोंका गर्व हरनें वाले लक्ष्मणजीको उठानेंके लिये अपनी वीसों भुजा ओंसे बहुतेरी चेष्टा करता

हिमवान्मंदरोमेरुस्त्रैलोक्यंवासहामरैः ॥ शक्यंभुजाभ्यामुद्धर्तुंनशक्योभरतानुजः ॥ ९ ॥ शक्त्याब्राह्म्यातुसौमित्रिस्ताडितोपिस्तनांतरे ॥ विष्णोरमीमांस्यभागमात्मानंप्रत्यनुस्मरत् ॥ ११० ॥ ततोदानवदर्पघ्नंसौमित्रिंदेवकंटकः॥ तंपीडयित्वाबाहुभ्यांनप्रभुर्लंघनेभवत् ॥ ११ ॥ ततःक्रुद्धोवायुसुतोरावणंसमभिद्रवत् ॥ आजघानोरसिक्रुद्धोवज्रकल्पेनमुष्टिना ॥ १२ ॥ तेनमुष्टिप्रहारेणरावणोराक्षसेश्वरः ॥ जानुभ्यामगमद्भूमौचचालचपपातच ॥ १३ ॥ आस्यैश्चनेत्रैःश्रवणैःपपातरुधिरंबहु ॥ विघूर्णमानोनिश्चेष्टोरथोपस्थउपाविशत् ॥ १४ ॥ विसंज्ञोमूर्छितश्चासीन्नचस्थानंसमालभत् ॥ विसंज्ञंरावणंदृष्ट्वासमरेभीमविक्रमम् ॥ ११५ ॥

हुआ परन्तु इस्से किसी प्रकारसे लक्ष्मणजीकी मर्यादा उल्लंघन नहीं हो सकी ॥ १११ ॥ इतनेहीमें पवनकुमार हनुमानजी लक्ष्मणजीको मूर्छित हुआ देख क्रोधित हो रावणके सन्मुख धाये और वज्रकी समान मूका बांधकर अति वेगसे उसकी छातीमें मारा ॥ ११२ ॥ राक्षसोंका स्वामी रावण उस मूकेके प्रहारसे चेतना रहित और रथसे गिरकर अपनी दोनों जांघों के बल कांपता थर थराता पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥११३॥ इस समय रावणके मुख नेत्र और कानोंसे बहुतही रुधिर बहनें लगा और वह ज्ञानरहित हो घूमता २ फिर अपने रथपर जाकर गिरा ॥११४॥ ऐसा मूर्छित यह रावण हुआ कि हाथ पैर कुछभी इसके नहीं चलतेथे, तब भयंकर विक्रमकारी रावणको मूर्छित हुआ देखकर ॥ ११५ ॥

राक्षस सैनापति वीरोंमें मुख्य महोदर कुम्भकर्णके ऐसे गर्वित और रोषके मारे दोष युक्त वचन सुनकर हाथ जोड़कर बोला ॥ ८१ ॥ कि हे महा
वाहो ! रावणके वचन सुनकर और उनके गुण दोष विचार पीछेसे शत्रु लोगोंको आप जीतें ॥ ८२ ॥ विपुल बलशाली महा तेजस्वी कुम्भकर्ण
महोदरके ऐसे वचन सुनकर राक्षसोंके साथ २ उस स्थानसे चलनेंका अभिलाषी हुआ ॥ ८३ ॥ उस कालमें कुछ एक निशाचर भयंकर
नेत्र वाले भीमरूप और भयंकर पराक्रम कुम्भकर्णको जागा हुआ देखकर पहले हीसे रावणके निकट चले गयेथे ॥ ८४ ॥ उन्होंनें वहां जाकर देखा
कि रावण दिव्य सिंहासन पर बैठाहै; तब उन राक्षसोंने यह देखतेही हाथ जोड़कर रावणसे कहा ॥ ८५ ॥ हे राक्षसेश्वर ! आपके भ्राता कुम्भकर्ण

तत्तस्यवाक्यंब्रुवतोनिशम्यसगर्वितंरोषविवृद्धदोषम् ॥ महोदरोनैर्ऋतयोधमुख्यःकृतांजलिर्वाक्यमिदंबभाषे ॥ ८१ ॥
रावणस्यवचःश्रुत्वागुणदोषौविमृश्यच ॥ पश्चादपिमहाबाहोशत्रून्युधिविजेष्यसि ॥ ८२ ॥ महोदरवचःश्रु
त्वाराक्षसैःपरिवारितः ॥ कुंभकर्णोमहातेजाःसंप्रतस्थेमहाबलः ॥ ८३ ॥ सुप्तमुत्थाप्यभीमाक्षंभीमरूपप
राक्रमम् ॥ राक्षसास्त्वरिताजग्मुर्दशग्रीवनिवेशनम् ॥ ८४ ॥ तेभिगम्यदशग्रीवमासीनंपरमासने ॥ ऊचुर्बद्धांज
लिपुटासर्वएवनिशाचराः ॥ ८५ ॥ कुंभकर्णःप्रबुद्धोसौभ्रातातेराक्षसेश्वर ॥ कथंतत्रैवनिर्यातुद्रक्ष्यसेतमिहागतम्
॥ ८६ ॥ रावणस्त्वब्रवीद्धृष्टोराक्षसांस्तानुपस्थितान् ॥ द्रष्टुमेनमिहेच्छामियथान्यायंचपूज्यताम् ॥ ८७ ॥ तथेत्यु
क्त्वातुतेसर्वेपुनरागम्यराक्षसाः ॥ कुंभकर्णमिदंवाक्यमूचूरावणचोदिताः ॥ ८८ ॥ द्रष्टुंत्वांकांक्षतेराजासर्वराक्षसपुं
गवः ॥ गमनेक्रियतांबुद्धिर्भ्रातरंसंप्रहर्षय ॥ ८९ ॥

जाग गये हैं अब वह सीधेही वहांसे रणभूमिको चले जाँय या आप इस स्थानमें उनके साथ साक्षात् करनेंकी इच्छा करतेहैं ॥ ८६ ॥ तब लंका
पति रावणनें हर्षित होकर उनसे कहाकि हम एकवार कुम्भकर्णको देखनेंकी इच्छा करते हैं; तुम परम आदर मानके साथ उसको संग लेकर
यहांपर चले आओ ॥८७॥ वे राक्षस रावणकी आज्ञाके अनुसार उसके वचनोंको स्वीकारकर कुम्भकर्णके निकट आनकर निवेदन करते हुए ॥८८॥
राक्षस राज रावण आपके देखनेंकी इच्छा करतेहैं; इस कारण आप गमन करनेंमें स्थिर निश्चय कीजिये; हम लोगोंके निवेदन करनेंसे आप अपनें

महाबाहु हनुमानजीकी पीठपर चढ़े और श्रीरामचंद्रजीनें रावणकोभी रथपर चढ़ेहुए देखा ॥ १२४ ॥ महातेजस्वी श्रीरामचंद्रजी उस रावणको देखकर विष्णुजीनें जिस प्रकार क्रोधितहो अस्त्र धारण कर राजा बलिपर दौड़ेथे वैसेही रावणके सन्मुख धाये ॥ १२५ ॥ तब श्रीरामचंद्रजी अपने धनुष पर वज्रके शब्दकी समान कठोर टंकारदे रावणसे यह गंभीर वचन बोले ॥१२६॥ रेराक्षसशार्दूल खड़ा रह खडारह! तू हमारे ऐसे कुप्यारे कार्यको करके क्या स्थानमें भागकर छुटकारा पायसकताहै? ॥१२७॥ तुम यदि भागकर इन्द्र, यम, सूर्य, ब्रह्मा, अग्नि अथवा श्रीशंकरजीकेभी शरणमें

अथारुरोहसहसाहनूमंतंमहाकपिम् ॥ रथस्थंरावणंसंख्येददर्शमनुजाधिपः ॥ २४ ॥ तमालोक्यमहातेजाःप्रदुद्राव सरावणम् ॥ वैरोचनमिवक्रुद्धोविष्णुरभ्युद्यतायुधः ॥ २५ ॥ ज्याशब्दमकरोत्तीव्रंवज्रनिष्पेषनिष्ठुरम् ॥ गिरागंभीरया रामोराक्षसेंद्रमुवाचह ॥ २६ ॥ तिष्ठतिष्ठममत्वंहिकृत्वाविप्रियमीदृशम् ॥ क्वनुराक्षसशार्दूलगत्वामोक्षमवाप्स्यसि ॥ २७ ॥ यदींद्रवैवस्वतभास्करान्वास्वयंभुवैश्वानरशंकरान्वा ॥ गमिष्यसित्वंदशधादिशोवातथापिमेनाद्यगतोविमोक्ष्यसे ॥ २८ ॥ यश्चैषशक्त्यानिहतस्त्वयाद्यगच्छन्विषादंसहसाभ्युपेत्य ॥ सएषरक्षोगणराजमृत्युःसपुत्रपौत्रस्यतवाद्ययुद्धे ॥ २९ ॥ एतेनचात्यद्भुतदर्शनानिशरैर्जनस्थानकृतालयानि ॥ चतुर्दशान्यात्तवरायुधानिरक्षःसहस्राणिनिषूदितानि ॥ १३० ॥ राघवस्यवचःश्रुत्वाराक्षसेंद्रोमहाबलः ॥ वायुपुत्रंमहावेगंवहंतंराघवंरणे ॥ ३१ ॥

जाओ, या दशों दिशाओंमें कहीं जाकर छिपो तथापि आज हमारे हाथसे तुम किसी प्रकारसे निस्तार नपासकोगे ॥ १२८ ॥ राक्षसराज! तेरे द्वारा घायल होकर लक्ष्मण विषादित हुएहैं, हम इसी दुःखसे आज प्रतिज्ञा करके तुम्हारे पुत्रोंके सहित तुम्हारी मृत्युके स्वरूप हो रणभूमिमें आयेहैं ॥ १२९ ॥ विचारकर याद कर ले कि जनस्थानके रहनेंवाले श्रेष्ठ अस्त्र शस्त्र धारण किये अद्भुत दर्शन चौदह हजार (१४०००) राक्षसोंका हमनेंही प्राण संहार कियाहै ॥ १३० ॥ महाबलवान रावणनें श्रीरामचंद्रजीके ऐसे वचन सुन महावेगवान पवनकुमार हनुमानजीकी पीठमें

उन वानरोंमेसे कोई२ सबके शरण देनेंवाले श्रीरामचंद्रजीकी शरणमें गये और कोई २ दुःखी होकर पृथ्वीपर गिर पड़े, कोई २ दशों दिशा ओंमें भागगये; और कोई २ मारे भयके पृथ्वीपर गिरकर सोयरहे ॥ ९७ ॥ अधिक क्या कहें? जिसनें अपने तेजसे सूर्यको भी उछंघन कर दियाहै; उस पर्वतके शृङ्गकी समान किरीट धारी बड़े ऊंचे और अद्भुत दर्शन वीर कुम्भकर्णको देखतेही, वानरोंमें जिसनें जहां सुभीता पाया वह भयके मारे उसी स्थानमें भाग गया ॥ ९८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥ तिसके पीछे महा तेजस्वी वीर्यवान् धनुष धारण करनें वाले श्रीरामचंद्रजीनें उस किरीट धारी महाकाय कुम्भकर्णको देखा ॥ १ ॥ पहले

केचिच्छरण्यंशरणंस्मरामंव्रजंतिकेचिद्व्यथिताःपतंति ॥केचिद्दिशश्चव्यथिताःपतंतिकेचिद्भयार्ताभुविशेरतेस्म९७॥ तमद्रिशृंगप्रतिमंकिरीटिनंस्पृशंतमादित्यमिवात्मतेजसा ॥ वनौकसःप्रेक्ष्यविवृद्धमद्भुतंभयार्दितादुद्रुविरेयतस्ततः ॥ ९८ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० षष्टितमःसर्गः ॥ ६० ॥ ॥ छ ॥ ततोरामोमहातेजाधनुरादाय वीर्यवान् ॥ किरीटिनंमहाकायंकुंभकर्णंददर्शह ॥ १ ॥ तंदृष्ट्वाराक्षसश्रेष्ठंपर्वताकारदर्शनम् ॥ क्रममाणमिवाकाशंपुरानारायणंयथा ॥ २ ॥ सतोयांबुदसंकाशंकांचनांगदभूषणम् ॥ दृष्ट्वापुनःप्रदुद्राववानराणांमहाचमूः ॥ ३ ॥ विद्रुतांवाहिनींदृष्ट्वावर्धमानंचराक्षसम् ॥ सविस्मितमिदंरामोविभीषणमुवाचह ॥ ४ ॥ कोसौपर्वतसंकाशः किरीटीहरिलोचनः ॥ लंकायांदृश्यतेवीरःसविद्युदिवतोयदः ॥ ५ ॥

समयमें आकाश मापते समय वामनजीके समान उस पर्वताकार राक्षस श्रेष्ठ कुम्भकर्णको देखकर श्रीरामचंद्रजी सतर्क हुए ॥ २ ॥ परन्तु सजल जलद, (पानी सहित वादल) की समान आकार वाले सुवर्णके वाजू पहरे उस वीरको धीरे २ वढ़ता हुआ देखकर वानरोंकी वड़ी सैना फिर भाग खड़ी हुई ॥ ३ ॥ तब रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी वानरोंकी सैनाको त्रासित और राक्षस कुम्भकर्णको वढ़ा हुआ देखकर विस्मय युक्तहो विभीषणजीसे बोले ॥ ४ ॥ लंकाके वीचमें पर्वतकी समान मस्तक पर किरीट धारण किये, वानरोंकेसे नेत्र वाला दामिनी युक्त मेघकी समान

राज रावणकी अवस्था विषहीन सर्प और तेजहीन सूर्यकी समान हुई । मुकुटके कट जानेंसे रावणकी समस्त सुन्दरता जाती रही तब श्रीरामचंद्रजी उस्से बोले ॥ १३९ ॥ हेराक्षस ! तुमनें घोर युद्ध कियाहै तुम्हारे हाथसे हमारी सेनाके अनेक वीर मारे गयेहैं इस समय हम तुमको इसी कारणसे बहुत थका हुआ देखतेहैं; यही विचारकर हमनें आज अपने बाणोंसे तुमको यमराजके गृहमें नहीं पठाया ॥ १४० ॥ हेराक्षसराज! तुम संग्राम करके श्रमके मारे अत्यन्त कातर हुएहो इस लिये हम सलाह देतेहैं कि तुम इस समय लंकामें जायकर सावधान होवो। सावधान होनेंके पीछे धनुष धारण कर जबकि फिर संग्राम भूमिमें आगमन करोगे उसी समय तुम हमारा पराक्रम जान सकोगे ॥ १४१ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा तो लंकानाथ रावण लंका पुरीको झटपट चला गया, उसका वीर गर्व और उत्साह जातारहा, धनुष कट कुट गया घोड़े

कृतंत्वयाकर्ममहत्सुभीमंहतप्रवीरश्चकृतस्त्वयाहम्॥तस्मात्परिश्रांतइतिव्यवस्यनत्वांशरैर्मृत्युवशंनयामि॥ ४०॥ प्र
याहिजानामिरणार्दितस्त्वंप्रविश्यरात्रिंचरराजलंकाम्॥आश्वस्यनिर्याहिरथीसधन्वीतदाबलंप्रेक्ष्यसिमेरथस्थः४१॥
सएवमुक्तोहतदर्पहर्षोनिकृत्तचापःसहताश्वसूतः ॥ शरार्दितोभग्नमहाकिरीटोविवेशलंकांसहसास्मराजा ॥ ४२ ॥ त
स्मिन्प्रविष्टेरजनीचरेंद्रेमहाबलेदानवदेवशत्रौ ॥ हरीन्विशल्यान्सहलक्ष्मणेनचकाररामःपरमाहवाग्रे ॥ ४३ ॥ तस्मि
न्प्रभग्नेत्रिदशेंद्रशत्रौसुरासुराभूतगणादिशश्च ॥ ससागराः सर्वमहोरगाश्चतथैवभूम्यंबुचराःप्रहृष्टाः ॥ १४४॥ इत्या
र्षेश्रीम०वा०आ०यु०एकोनषष्टितमःसर्गः ॥५९॥ ॥ छ॥ ॥छ॥ ॥छ॥ ॥

और सारथीभी नष्ट हुए रावणका शरीर बाणोंके लगनेंसे घायल होरहा उसकी चूडामणि लुप्त होगई ऐसी अवस्थाको पाय मनमें अति दुःखित रावण लंकापुरीमें प्रवेश करता हुआ ॥ १४२ ॥ देवता और दानव गणोंका शत्रु महाबलवान निशाचरपति रावण जब इस प्रकारसे लंकाको चलगया तब श्रीरामचंद्रजीनें लक्ष्मणजीके सहित रणभूमिमें जो वानर पड़ेथे; और उनके अंगोंमें जो बाण गड़ेथे उनको निकलवा डाला और सबकी व्यथा निवारणकी ॥ १४३ ॥ इस ओर इन्द्रके शत्रु रावणको रणसे भागा इस प्रकारसे लंकामें प्रवेश करते देखकर, सुर, असुर, महर्षि, उरग, भूतगणादिक और समस्त सागर व भूचर जलचरादि सबही प्राणी प्रसन्न हुए ॥ १४४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये कात्यायनकुमार पंडित ज्वालाप्रसादमिश्रकृते भाषानुवादे युद्धकांडे एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥ ॥ छ ॥

इन्द्रकी शरणमें जायकर उनसे अपनी इस दुर्गतिको निवेदन किया॥१४॥यह सुनकर इन्द्रनें क्रोधितहो इनके ऊपर वज्र चलाया यह महात्मा कुम्भ
कर्ण वज्रसे कुछ चोट खाय और विचलित होकर भी वारंवार सिंहनाद करनेंलगा ॥ १५ ॥ उस कालमें सिंहनाद करते हुए राक्षसश्रेष्ठ कुम्भकर्णका
वह घोर शब्द सुनकर प्रजा फिर बहुतही भयभीत हुई ॥ १६ ॥ तिसके पीछे महावलवान कुम्भकर्णनें ऐरावत हाथीके दांत खेंचकर उखाड़
उस्से इन्द्रकी छातीमें प्रहार किया ॥ १७ ॥ अत्यन्त दारुण प्रहारसे वज्रधर इन्द्रजी बहुत व्याकुल हुए उनके सब शरीरसे रुधिर वहनें
लगा; ब्रह्मर्षि और दानवगण यह अवस्था देखकर अत्यन्त विषाद करनें लगे ॥ १८ ॥ और सबही इन्द्र और प्रजाके साथ मिलकर सहसा

सकुंभकर्णंकुपितोमहेंद्रोजघानवज्रेणशितेनवज्री ॥ सशक्रवज्राभिहतोमहात्माचचालकोपाच्चभृशंननाद ॥ १५ ॥
तस्यनानद्यमानस्यकुंभकर्णस्यरक्षसः ॥ श्रुत्वानिनादंवित्रस्ताःप्रजाभूयोवितत्रसुः ॥ १६ ॥ ततःक्रुद्धोमहेंद्रस्य
कुंभकर्णोमहाबलः ॥ निष्कृष्यैरावताद्दंतंजघानोरसिवासवम् ॥ १७ ॥ कुंभकर्णप्रहारार्तोविजज्वालसवासवः ॥
ततोविषेदुःसहसादेवाब्रह्मर्षिदानवाः ॥ प्रजाभिःसहशक्रश्चययौस्थानंस्वयंभुवः ॥ १८ ॥ कुंभकर्णस्यदौरात्म्यंशशं
सुस्तेप्रजापतेः ॥ प्रजानांभक्षणंचापिशशंसुस्तेदिवौकसाम् ॥ आश्रमध्वंसनंचापिपरस्त्रीहरणंतथा ॥ १९ ॥ एवं
प्रजायदित्वेषभक्षयिष्यतिनित्यशः ॥ अचिरेणैवकालेनशून्योलोकोभविष्यति ॥ २० ॥ वासवस्यवचःश्रुत्वासर्वलो
कपितामहः ॥ रक्षांस्यावाहयामासकुंभकर्णंददर्शह ॥ २१ ॥ कुंभकर्णंसमीक्ष्यैववितत्रासप्रजापतिः ॥ कुंभकर्ण
मथाश्वस्तःस्वयंभूरिदमब्रवीत् ॥ २२ ॥

प्रजापति ब्रह्माजीके निकट गये; और वहां उन्होंनें प्रजागणोंको भक्षण करना देवता लोगोंको सताना, आश्रमोंका विध्वंसित होना और पराई
स्त्रीका हरण, रूपी कुम्भकर्णकी यह सब दुष्टता ब्रह्माजीसे निवेदनकी ॥ १९ ॥ तब इन्द्रजीनें कहाकि यह यदि नित्य प्रति प्रजाको भक्षण
किया करैगा; तौ बहुतही शीघ्रतासे सब लोग उजाड़ होजांयगे ॥ २० ॥ सर्व लोगोंके पितामह ब्रह्माजीने इन्द्रजीके वचन सुनकर गायत्र्यादि
मंत्रोंसे राक्षसोंको आह्वान करकै उनमें कुम्भकर्णकोभी देखा ॥ २१ ॥ परन्तु कुम्भकर्णको देखतेही ब्रह्माजीको अत्यन्त भय उपस्थित हुआ

सो जान पड़ताहै कि उसही शापका फल फलनेंके लिये उनके वंशमें दशरथ कुमार रामचंद्रका जन्म हुआ होगा ॥ ८ ॥ महाराज अनरण्यनें कहाथा कि हे राक्षसोंमें नीच! हमारे वंशमेंसे एक ऐसे वीर पुरुष जन्म ग्रहण करेंगे कि जिसके हाथसे तुम, तुम्हारे पुत्र, मंत्री, समस्त सैना, अश्व, सारथि, ॥ ९ ॥ इन सबके साथ हे दुर्मति नराधम! तुम संग्राममें मारे जाओगे; हमनें पूर्वकालमें एक वार वेदवतीके प्रति बल प्रकाश करके उसके सतीपनका अपमान कियाथा ॥ १० ॥ सो अब जान पड़ताहै कि उन वेदवती हीनें इन महाभागा जनकनंदिनीके रूपसें जन्म ग्रहण कियाहै, इनसेही हमारा नाश होगा, इनके अतिरिक्त देवी उमा, नन्दीश्वर, रम्भा, और वरुणजीकी कन्या पुञ्जिकस्थलीनें ॥ ११ ॥ जो

उत्पत्स्यतिहिमद्वंशपुरुषोराक्षसाधम ॥ यस्त्वांसपुत्रंसामात्यंसबलंसाश्वसारथिम् ॥ ९ ॥ निहनिष्यतिसंग्रामेत्वां कुलाधमदुर्मते ॥ शप्तोहंवेदवत्याचयथासाधर्षितापुरा ॥ १० ॥ सेयंसीतामहाभागाजाताजनकनंदिनी ॥ उमानंदीश्वरश्चापिरंभावरुणकन्यका ॥ ११ ॥ यथोक्तास्तन्मयाप्राप्तंनमिथ्याऋषिभाषितम् ॥ एतदेवसमागम्ययत्नंकर्तुमिहार्हथ ॥ १२ ॥ राक्षसाश्चापितिष्ठंतुचर्यागोपुरमूर्धसु ॥ सचाप्रतिमगांभीर्योदेवदानवदर्पहा ॥ १३ ॥ ब्रह्मशापाभिभूतस्तुकुंभकर्णोविबोध्यताम् ॥ समरेजितमात्मानंप्रहस्तंचनिषूदितम् ॥ १४ ॥ ज्ञात्वारक्षोभीमबलमादिदेशमहाबलः ॥ द्वारेषुयत्नःक्रियतांप्राकारश्चाधिरुह्यताम् ॥ १५ ॥

शाप हमको दियेहैं,* इससमय हमको वही शापकी दशा उपस्थित हुईहै; ऋषिलोगोंके वचन कभी मिथ्या होंनेवाले नहीं, हे राक्षसगण! यह समस्त जान बूझकर अब जो कुछ कर्तव्यहो सो तुम करो ॥ १२ ॥ इससमय राजमार्ग और कोटकी भीतके किनारे २ राक्षसलोग रक्षाकरनेंको टिक रहेंहैं अति गंभीरता युक्त देव दानव गर्व खर्व कारी ॥ १३ ॥ पितामह ब्रह्माजीके शापसे सोतेहुए कुम्भकर्णको भी अब जगाना उचितहै । अपने आपको समरमें श्रीरामचंद्रजीसे हारा और प्रहस्तको मारा हुआ जान ॥ १४ ॥ और कुम्भकर्णको महाबलवान् जाना तब महाबली रावणनें राक्षसोंको

* जब रावणने कैलाश उठाया तब पार्वतीने शाप दिया कि स्त्रीके निमित्त तेरा मरण होगा नंदीश्वरकी वानराकार मूर्त्ति देखकर हँसा तब उन्हौने शाप दिया कि वानरही तेरा नाश करैंगे रंभा निमित्त नल कूबरके शापकी कथा लिख चुकेहैं । वरुणकी कन्या पुंजिकस्थालीको रावणने पकडा तौ ब्रह्माने शाप दिया कि स्त्रीहरणसे मरण होगा ॥

तैयार होगा ॥ ३० ॥ इस कुम्भकर्णको देखते ही वानरगण भाग रहे हैं परन्तु जब यह क्रोधित होकर रणभूमिमें खड़ा होगा उस काल वानरोंमेंसे कौन इसको निवारणकर सकैगा ॥३१॥ इस कारणसे सब वानरोंके सैनाके मध्यमें इस बातका प्रचारित कर दियाजाय कि यह मूर्ति सजीव नहीं है वरन रावणनें तुम लोगोंको डरवानेके लिये यह कल बनाई है बस इस बातको सुन सब वानर भयरहित होजांयगे ॥ ३२ ॥ वानर लोगोंके हितकारी और युक्ति युक्त विभीषणजीके कहे हुए वचन सुनकर रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी सेनापति नीलसे बोले ॥ ३३ ॥ हे अग्निकुमार! तुम जायकर सब वानरों

कुंभकर्णप्रतीक्ष्यैवहरयोद्यप्रदुद्रुवुः ॥ कथमेनंरणेक्रुद्धंवारयिष्यंतिवानराः ॥ ३१ ॥ उच्यंतांवानराःसर्वैयंत्रमेतत्समु
च्छ्रितम् ॥ इतिविज्ञायहरयोभविष्यंतीहनिर्भयाः ॥ ३२ ॥ विभीषणवचःश्रुत्वाहेतुमत्सुमुखोद्गतम् ॥ उवाचराघ
वोवाक्यंनीलंसेनापतिंतदा ॥ ३३ ॥ गच्छसैन्यानिसर्वाणिव्यूह्यतिष्ठस्वपावके ॥ द्वाराण्यादायलंकायाश्चर्याश्चा
स्याथसंक्रमान् ॥ ३४ ॥ शैलशृंगाणिवृक्षांश्चशिलाश्चाप्युपसंहरन् ॥ भवंतःसायुधाःसर्वेवानराःशैलपाणयः ॥ ३५ ॥
राघवेणसमादिष्टोनीलोहरिचमूपतिः ॥ शशासवानरानीकंयथावत्कपिकुंजरः ॥ ३६ ॥ ततोगवाक्षःशरभोहनूमानं
गदस्तथा ॥ शैलशृंगाणिशैलाभागृहीत्वाद्वारमभ्ययुः ॥ ३७ ॥ रामवाक्यमुपश्रुत्यहरयोजितकाशिनः ॥ पादपैरर्द
यन्वीरावानराःपरवाहिनीम् ॥ ३८ ॥

का व्यूह बनाओ और सावधान होकर लंकाके पुरद्वार राजमार्ग व और भी सब मोर्चे घेरलो ॥ ३४ ॥ हमारी आज्ञानुसार तुम सब शैल शृंग वृक्ष और शिला इकट्ठी कर रक्खो तुम लोग अस्त्र और पर्वतादि धारण करकै सावधानतासे टिके रहो॥३५॥वानर सैनापति कपिकुंजर नीलनें श्रीरामचंद्र जीकी ऐसी आज्ञा पाय समस्त वानरोंमें उस आज्ञाका प्रचार करादिया॥३६॥तिसके पीछे गवाक्ष, शरभ, हनुमान, और अंगद, यह समस्त वानर पर्वतों के शृङ्ग ग्रहण करकै लंकाके द्वारपर उपस्थित हुए ॥ ३७ ॥ इस प्रकारसे वह जययुक्त वानरगण श्रीरामचंद्रजीके वचनोंसे सावधानहो शत्रुकी

भोजन करनेंकी सामग्री इकट्ठी करके लेजानें लगे ॥ २३ ॥ तिसके पीछे वह राक्षस कुम्भकर्णकी गुहामें प्रवेश करते हुए, यह गुफा अतिरमणीक थी, यहांपर फूलोंकी सुगन्धि आय रहीथी, इस गुहाका द्वार अति विस्तार वालाथा; यह गुफा चार कोशकी लंबी चौड़ी थी ॥ २४ ॥ वह महाबली राक्षस कुम्भकर्णके श्वासोंकी पवन लगनेके कारण बहुतही कंपायमान हुए और बड़े कष्टसे स्थिर हो अति यत्न सहित उस गुफामें पैठे ॥ २५ ॥ तिसके पीछे राक्षसोंनें रत्नकांचन बनें हुए फर्ससे युक्त उस रमणीक गुफामें प्रवेश करके सोते हुए भयंकर विक्रम कारी कुम्भकर्णको देखा ॥ २६ ॥ सब राक्षस लोग मिलकर कुम्भकर्णकी निद्रा तोड़नेका उपाय करने लगे इन राक्षसोंनें देखा कि महावीर्य

तेरावणसमादिष्टामांसशोणितभोजनाः ॥ गंधंमाल्यंमहद्भक्ष्यमादायसहसाययुः ॥ २३ ॥ तांप्रविश्यमहाद्वारां सर्वतोयोजनायताम् ॥ कुंभकर्णगुहांरम्यांपुष्पगंधप्रवाहिनीम् ॥२४॥ कुंभकर्णस्यनिःश्वासादवधूतामहाबलाः ॥ प्रति ष्ठमानाःकृच्छ्रेणयत्नात्प्रविविशुर्गुहाम् ॥ २५ ॥ तांप्रविश्यगुहांरम्यांरत्नकांचनकुट्टिमाम् ॥ ददृशुर्नैर्ऋतव्याघ्राः शयानंभीमविक्रमम् ॥ २६ ॥ तेतुतंविकृतंसुप्तंविकीर्णमिवपर्वतम् ॥ कुंभकर्णमहानिद्रंसमेताःप्रत्यबोधयन् ॥ २७॥ उर्ध्वलोमांचिततनुंश्वसंतमिवपन्नगम् ॥ भ्रामयंतंविनिःश्वासैःशयानंभीमविक्रमम् ॥ २८ ॥ भीमनासापुटंतंतुपा तालविपुलाननम् ॥ शयनेन्यस्तसर्वांगंमेदोरुधिरगंधिनम् ॥ २९ ॥ कांचनांगदनद्धांगंकिरीटेनार्कवर्चसम् ॥ ददृशुर्नै र्ऋतव्याघ्रंकुंभकर्णमरिंदमम् ॥ ३० ॥

कुम्भकर्ण सोता हुआ विकराल हो रहा है और पर्वतकी समान पड़ा है ॥ २७ ॥ कुम्भकर्णके सब रूँये ऊपरको खड़ेथे वह सर्पकी समान लंबे २ श्वासोंकी पवनसे मानों राक्षसोंको घूमाय रहाथा ऐसा भयंकर कर्मकारी कुम्भकर्णको राक्षसोंने देखा ॥ २८ ॥ इसका मुख पातालकी समान बड़ाथा नाक के स्वरभी बहुतही लंबे चौडेथे उसके सब शरीरमें (जोकि शेजपर पड़ाथा) चरबी और रुधिरकी दुर्गन्ध आय रहीथी॥२९॥ वह सुवर्णका बाजू पहरे हुएथा उसके शिरपर मुकुट सूर्य भगवानकी किरणोंकी समान प्रकाशित हो रहाथा ऐसे राक्षसव्याघ्र शत्रुओंका

पातेही शीघ्रता सहित हर्षित अंतःकरणसे उठकर कुंभकर्णको अपने समीप लाया ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त रावणके आसनपर बैठनेंके पीछे महा बलवान कुंभकर्ण अपने भ्राताके चरणयुगल वंदन करकै बोलाकि "हमें क्या करना होगा?"॥८॥ रावण कुम्भकर्णको प्रणाम करता हुआ देखकर हर्षित अंतःकरणसे फिर उठकर उसे भलीभांति अपने हृदयसे लगाता हुआ ॥ ९ ॥ महा बलवान् कुम्भकर्णभी अपने भ्राता करकै भेंटे जाकर और यथायोग्य रूपसे आदर पाय श्रेष्ठ व देवताओंके बैठनेंके योग्य आसनपर बैठा ॥ १० ॥ तब कुम्भकर्ण क्रोधके मारे लाल २ नेत्र करकै रावण से बोला कि हे महाराज! किसकारणसे आपने ऐसे यत्नसे हमको जगवायाहै? ॥ ११ ॥ किससे आपको भय पहुंचाहै? और किसको आज हम

अथासीनस्यपर्यंकेकुंभकर्णोमहाबलः॥ भ्रातुर्ववंदेचरणौकिंकृत्यमितिचाब्रवीत्॥८॥ पुनःसमुदितोत्पत्यरावणःपरिषस्वजे ॥ सभ्रात्रासंपरिष्वक्तोयथावच्चाभिनंदितः ॥ ९ ॥ कुंभकर्णःशुभंदिव्यंप्रतिपेदेवरासनम् ॥ सतदासनमाश्रित्यकुंभकर्णोमहाबलः ॥ १० ॥ संरक्तनयनःक्रोधाद्रावणंवाक्यमब्रवीत् ॥ किमर्थमहमादृत्यत्वयाराजन्प्रबोधितः ॥ ११ ॥ शंसकस्माद्भयंतेत्रकोवाप्रेतोभविष्यति ॥ भ्रातरंरावणःक्रुद्धंकुंभकर्णमवस्थितम् ॥ रोषेणपरिवृत्ताभ्यांनेत्राभ्यांवाक्यमब्रवीत् ॥ १२ ॥ अयंतेसुमहान्कालःशयानस्यमहाबल ॥ सुषुप्तस्त्वंनजानीषेममरामकृतंभयम् ॥ १३ ॥ एषदाशरथिःश्रीमान्सुग्रीवसहितोबली ॥ समुद्रंलंघयित्वातुकुलंनःपरिकृंतति ॥ १४ ॥ हंतपश्यस्वलंकायांवनान्युपवनानिच ॥ सेतुनासुखमागत्यवानरैकार्णवंकृतम् ॥ १५ ॥

यमराजके भवनोंमें भेजें? यह समस्त वृत्तान्त आप हमारे निकट प्रकाश करकै कहिये; कुम्भकर्ण क्रोधसे यह वचन कह मौनरहा, और अपने लघुभ्राताके वचन सुनकर रावणभी क्रोधके मारे अपनी दोनों आँखोंको घुमानें लगा ॥ १२ ॥ हेमहाबलवान्! तुम बराबर शयन करकै सुखसे सो रहेथे इसलिये रामचंद्रसे जो भय हमको उपस्थित हुआहै वह तुम कुछभी नहीं जानतेहो? ॥ १३ ॥ महाबलशाली श्रीमान् दशरथके पुत्र रामचंद्र सुग्रीव सहित समुद्रके पार आयकर हमारे जाति कुलका नाश कररहेहैं ॥ १४ ॥ लंकाके वन उपवनोंकी ओर एकवार

परन्तु जब नीदसे अचेत हुआ महाबलवान महात्मा कुम्भकर्ण निशाचर गणोंके घोर सिंहनाद करनेंसेभी न जागा, तब राक्षसोंनें क्रोधित होकर भुशुण्डी, मूशल, और गदा इत्यादि अस्त्र शस्त्र ग्रहण किये ॥ ३९ ॥ तिसके पीछे प्रचंड निशाचर गण पर्वतोंके शिखर, मूसल गदा और मूकोंसे पृथ्वीपर सुखसे सोये हुए कुम्भकर्ण की छातीमें अत्यन्त बलसे प्रहार करनें लगे, परन्तु किसीसेभी कुछ न हुआ ॥ ४० ॥ यह राक्षसगण महाबलवान होकरभी कुम्भकर्णके प्रबल श्वासोंकी पवनके आगे किसी प्रकार ठहरनेंको समर्थ नहीं हुए ॥ ४१ ॥ तिसके पीछे भयंकर विक्रमकारी वह राक्षस गण धोती जांघिये आदि अपने वस्त्रोंको संभालकर मृदंग, ढोल, भेरी शंख और कुम्भ नामक बाजोंको बजानें

यदाभृशार्तैर्निनदैर्महात्मानकुंभकर्णोबुबुधेप्रसुप्तः ॥ ततोभुशुंडीर्मुसलानिसर्वेरक्षोगणास्तेजगृहुर्गदाश्च ॥ ३९ ॥ तंशैलशृंगैर्मुसलैर्गदाभिर्वक्षस्थलेमुद्गरमुष्टिभिश्च ॥ सुखप्रसुप्तंभुविकुंभकर्णंरक्षांस्युदग्राणितदानिजघ्नुः ॥ ४० ॥ तस्यनिःश्वासवातेनकुंभकर्णस्यरक्षसः ॥ राक्षसाःकुंभकर्णस्यस्थातुंशेकुर्नचाग्रतः ॥ ४१ ॥ ततःपरिहितागाढंराक्षसाभीमविक्रमाः ॥ मृदंगपणवान्भेरीःशंखकुंभगणांस्तथा ॥ ४२ ॥ दशराक्षससाहस्रंयुगपत्पर्यवारयत् ॥ नीलांजनचयाकारंतेतुतंप्रत्यबोधयन् ॥ ४३ ॥ अभिघ्नंतोनदंतश्चनचसंबुबुधेतदा ॥ यदाचैनंनशेकुस्तेप्रतिबोधयितुंतदा ॥ ४४ ॥ ततोगुरुतरंयत्नंदारुणंसमुपाक्रमत् ॥ अश्वानुष्ट्रान्खरान्नागाञ्जघ्नुर्दंडकशांकुशैः ॥ ४५ ॥ भेरीशंखमृदंगांश्चसर्वप्राणैरवादयन् ॥ निजघ्नुश्चास्यगात्राणिमहाकाष्ठकटंकरैः ॥ ४६ ॥

लगे ॥ ४२ ॥ इस प्रकारसे दश हजार नीले अंजनकी ढेरकी समान उस कुम्भकर्णको जगानेके लिये बड़ेही यत्न करनें लगे ॥ ४३ ॥ वह राक्षस अनेक प्रकारके प्रहार, गर्जन और भांति २ के बाजे बजाकरभी उस कुम्भकर्णको नहीं जगाय सके ॥ ४४ ॥ जब वह राक्षस इन सब कार्योंके करनेंका कुछ फल न पाते हुए, तब उन राक्षसोंकी मति इस्सेभी भारी उपाय करनें की हुई, वह राक्षसगण उन्हींके अनुसार ऊंट गधे और हाथियोंको, वारंवार दंडोंसे चाबकोंसे और अंकुशोंसे मार कर कुम्भकर्णके ऊपर चलानें लगे ॥ ४५ ॥ सब इकट्ठे होकर भेरी शंख, और अति जोरसे मृदंग बजानें लगे और कुम्भकर्णके शरीरमें बड़े भारी कांटे लगे काठोंसे ठोकनें लगे ॥ ४६ ॥

कोभी तुम्हारी समान बलवान नहीं देखते; कारण तुमही हमारे लिये अधिक वीर्य प्रकाश करो ॥ २१ ॥ प्रचंड पवन जिस प्रकारसे
शरद समयके मेघको उड़ा देतीहै; वैसेही तुम अपने तेजके प्रभावसे शत्रुकी सेनाके धुरें उड़ादो हे बान्धवप्रिय ! हे समराभिलाषी!
तुम हमारे हितार्थ यह उत्तम कार्य पूराकरो ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥
राक्षसराज रावणके ऐसे विलापके वचन सुनकर कुम्भकर्ण हँसता हुआ बोला ॥ १ ॥ हमनें परामर्श होनेके समयमें जिस दोषकी शंका
कीथी, आपने उन हितकारी वचनोंपर श्रद्धा नहीं की, इसी कारणसे अब आपको वही दोष आय प्राप्त हुआहै ॥ २ ॥ कुकर्म करनेंवाले जन जिस

स्वतेजसाव्यथयसपत्नवाहिनींशरद्घनंपवनइवोद्यतोमहा
कुरुष्वमेप्रियहितमेतदुत्तमंयथाप्रियंप्रियरणबांधवप्रिय ॥ ॥ तस्यराक्षसराजस्यनिशम्यपरिदेवितम् ॥
न् ॥२२॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०युद्धकांडेद्विषष्टितमःसर्गः ॥६२॥ ॥छ॥ हितेष्वनभियुक्तेनसोयमासा
कुंभकर्णोबभाषेदंवचनंप्रजहासच ॥१॥ दृष्टोदोषोहियोस्माभिःपुरामंत्रविनिर्णये ॥ प्रथमंवै
दितस्त्वया ॥ २ ॥ शीघ्रंखल्वभ्युपेतंत्वांफलंपापस्यकर्मणः ॥ निरयेष्वेवपतनंयथादुष्कृतकर्मणः ॥ ३ ॥
महाराजकृत्यमेतदचिंतितम् ॥ केवलंवीर्यदर्पेणनानुबंधोविचारितः ॥ ४ ॥ यःपश्चात्पूर्वकार्याणिकुर्यादैश्वर्यमास्थि
तः ॥ पूर्वंचोत्तरकार्याणिनसवेदनयानयौ ॥ ५ ॥ देशकालविहीनानिकर्माणिविपरीतवत् ॥ क्रियमाणानिदुष्यंति
हवींष्यप्रयतेष्विव ॥ ६ ॥ त्रयाणांपंचधायोगंकर्मणांयःप्रपद्यते ॥ सचिवैःसमयंकृत्वाससम्यग्वर्ततेपथि ॥ ७ ॥

प्रकार शीघ्रही नरकमें पड़ा करतेहैं; ऐसेही तुमको अपने पापकर्म करनेंका फल बहुत शीघ्र मिलगया ॥ ३ ॥ हेमहाराज ! आपनें केवल वीर्यके
घमंडके वशमें हो पहले इस सम्बन्धमें कुछ चिन्ता नहींकी; और ऐसे निन्दनीय कार्यके विषयमें कुछ सुविचारभी नहीं किया ॥ ४ ॥ जो ऐश्वर्यके
मदसे मदवाले होकर पहले करनें योग्य कार्य पीछे, और पीछे करनें योग्य कार्योंको पहले किया करतेहैं; उन्होंनें नीति अनीतिको कुछभी
नहीं जाना ॥ ५ ॥ जिस प्रकार संस्कारके अयोग्य अग्निमें दीहुई आहुति विफल होजातीहै वैसेही देशकालको विना विचारे जो कार्य किये जातेहैं;
वह समस्तही विपरीत और दूषित होजातेहैं ॥ ६ ॥ जो राजा विचार करनेंके पीछे, कर्त्तव्य, क्षय, वृद्धि स्थान और सभादिके विषयमें चिन्ता

हजारों हाथियोंकी दांय चलाई, तब हाथियोंके पैरोंसे दबनेंका सुख पाय कुम्भकर्ण जाग उठा ॥ ५५ ॥ कुम्भकर्ण उन गिराये हुए पर्वतोंके शिखर और वृक्षोंसे मार खाय करभी निद्रा नाशके वश, भूंखसे व्याकुलहो वारंवार जंभाई लेता सहसा उठ कर बैठ गया ॥ ५६ ॥ तिसके पीछे राक्षसेन्द्र कुम्भकर्ण वज्रसेभी अधिक सारवान और अचल शृङ्ग व नाग भोगकी समान दोनों बांहोंको फैलाय घोड़ीके समान अपने विकट मुखको खोल ॥ ५७ ॥ जँभाई लेंनेके समय उसका वदन पातालकी समान गंभीर और मुख मंडल सुमेरु गिरिपर उदय हुए सूर्यकी समान दृष्टि आया ॥ ५८ ॥ जब जँभाई लेता हुआ वह निशाचर जागा तब जिस प्रकार पर्वत परसे निकल कर पवन वहतीहै उसही भांति कुम्भकर्णकी

सापत्यमानैर्गिरिशृंगवृक्षैरचिंतयंस्तान्विपुलान्प्रहारान्॥ निद्राक्षयात्क्षुद्भयपीडितश्चविजृंभमाणःसहसोत्पपात॥५६॥
सनागभोगाचलशृंगकल्पोविक्षिप्यबाहूजितवज्रसारौ ॥ विवृत्यवक्त्रंवडवामुखाभंनिशाचरोसौविकृतंजजृंभे ॥ ५७॥
तस्यजाजृंभमाणस्यवक्त्रंपातालसन्निभम् ॥ ददृशेमेरुशृंगाग्रेदिवाकरइवोदितः ॥ ५८॥ सजृंभमाणोतिबलःप्रबुद्ध
स्तुनिशाचरः ॥ निःश्वासश्चास्यसंजज्ञेपर्वतादिवमारुतः ॥ ५९ ॥ रूपमुत्तिष्ठतस्तस्यकुंभकर्णस्यतद्बभौ ॥ युगां
तेसर्वभूतानिकालस्येवदिधक्षतः ॥ ६० ॥ तस्याग्निदीप्तसदृशेविद्युत्सदृशवर्चसी ॥ ददृशातेमहानेत्रेदीप्ताविवमहाग्र
हौ ॥ ६१ ॥ ततस्त्वदर्शयन्सर्वान्भक्ष्यांश्चविविधान्बहून् ॥ वराहान्महिषांश्चैवबभक्षसमहाबलः ॥ ६२ ॥ आदद्बुभुक्षि
तोमांसंशोणितंतृषितोपिबत् ॥ मेदःकुंभांश्चमद्यांश्चपपौशक्ररिपुस्तदा ॥ ६३ ॥

श्वासका पवन वहनें लगा ॥ ५९ ॥ जब कुम्भकर्ण जागा तब उसका रूप संसारको जलानेंके लिये तैयार प्रलय कालीन कालकी समान जान पड़नें लगा ॥ ६० ॥ उसकी दोनों आंखें प्रकाशमान अग्निकी समान थीं, उनसे विजलीसी निकल रहीथी; मानों वह कुम्भकर्ण प्रकाशमान महा ग्रह था ॥ ६१ ॥ तिसके पीछे उसके भोजन करनेंको जो महिष शूकरादि विविध प्रकारकी सामग्री गईथी वह इकट्ठी कीगई; वह सब उन राक्षसोंनें कुम्भकर्णको दिखाये, तब महाबलवान कुम्भकर्ण उन सबको भक्षण करनेंमें लगा ॥ ६२ ॥ बहुत दिनोंसे भूंखा प्यासा वह इन्द्रका शत्रु राक्षस कुम्भकर्ण ढेरके ढेर विविध भांतिके मांस खाय और असंख्य चरबी; व मदिराके घड़ोंको पान करके अपनी प्यास बुझाता हुआ ॥ ६३ ॥

जो शास्त्रको न जानतेहों; उनका वचन राजा कभी ग्रहण नहीं करें; कारण कि वह अहितकाही करनेंवाला होताहै, कारण कि वे लोग अर्थशास्त्रके
न जाननेंसे धनकी बड़ी आशा रखते, और ठकुर सुहाती बात कह देतेहैं इससे उनकी बातका क्या ठीकहै ? ॥ १५ ॥ जो पुरुष अहित बातको
ऐसा नोन मिर्च लगायकर कहते, कि मानों यह बड़ाही हित कर रहेहैं, ऐसे धूर्तोंको मंत्रणा कार्यसे बाहर निकालदेना चाहिये, कारण कि उनसे सब
कार्य भ्रष्ट होजाते हैं ॥ १६ ॥ हे महाराज ! ऐसेभी अनेक मंत्री होतेहैं, जो सब कुछ जाननेंवाले शत्रुओंके साथ सलाह करके विपरीत कार्य करके
स्वामीका विनाश कर देतेहैं ॥ १७ ॥ राजाको उचितहै कि उन मंत्रियोंको जो मित्र बने हुए वैरी हैं व्यवहारसे जानले और जान बूझकर उनका त्याग

अथशास्त्रानभिज्ञानांविपुलांश्रियमिच्छताम् ॥ १५ ॥ अहितंचहिताका
अशास्त्रविषद्वांतेषांकार्यंनाभिहितंवचः ॥ अवश्यंमंत्रबाह्यास्तेकर्तव्याःकृत्यदूषकाः ॥ १६ ॥ विनाशयंतोभर्त्तारंसहिताःशत्रु
रंधाष्टर्याज्जल्पंतियेनराः ॥ तान्भर्तामित्रसंकाशानमित्रान्मंत्रनिर्णये ॥ व्यवहारे
भिर्बुधैः ॥ विपरीतानिकृत्यानिकारयंतीहमंत्रिणः ॥ १७ ॥ क्षिप्रमन्येप्रपद्यंतेक्रौंचस्यखमिव
णजानीयात्सचिवानुपसंहितान् ॥ १८ ॥ चपलस्येहकृत्यानिसहसानुप्रधावतः ॥ अवाप्नोतिहिसोऽनर्थान्स्थानाच्चव्यवरोप्यते ॥ २० ॥
द्विजाः ॥ १९ ॥ योहिशत्रुमवज्ञायआत्मानंनाभिरक्षति ॥ तत्तुश्रुत्वादशग्रीवःकुंभकर्ण
यदुक्तमिहतेपूर्वंप्रिययामेनुजेनच ॥ तदेवनोहितंवाक्यंयथेच्छसितथाकुरु ॥ २१ ॥
स्यभाषितम् ॥ भ्रुकुटिंचैवसंचक्रेक्रुद्धश्चैनमभाषत ॥ २२ ॥

करदे ॥ १८ ॥ जिस प्रकार पक्षीगण स्वामिकार्तिकजीसे विदारित किये हुए क्रौञ्च पर्वतके छिद्रमें प्रवेश करतेहैं, वैसेही शत्रु लोगभी चपल और इधर
उधर दौड़कर धानेंवाले राजामें छिद्र पायकर प्रवेश किया करतेहैं ॥ १९ ॥ जो शत्रुको तुच्छ समझकर अपनी रक्षा नहीं करतेहैं; वह बड़े भारी अन
र्थको प्राप्त होकर स्थानसे भी भ्रष्ट होजातेहैं ॥ २० ॥ रानी मन्दोदरी और हमारे छोटे प्रिय भ्राता विभीषणजीनें जो कुछ कहाथा, वही कहना
हमारे हितका करनें वालाहै; तिसके पीछे जो आपकी इच्छा हो सो कीजिये ॥ २१ ॥ तब दशमुख रावण कुम्भकर्णके ऐसे वचन सुनकर भ्रुकुटि

हेमहाराज ! हम लोगोंको देवकृत कोई भय नहीं पड़ाहै परन्तु इस समय मनुष्योंसे हमको तुमुल भय आन पहुंचाहै ॥ ७२ ॥ हे राजन् ! मनुष्योंसे इस समय जैसा भय हमको पहुंचाहै दैत्य अथवा दानवोंसेभी ऐसा भय हमको कभी नहीं हुआ ॥ ७३ ॥ सीताके हरणसे संतापित हुए श्रीरामचन्द्रही हमारे इस बड़े भारी भयके कारण हैं, उनकीही पर्वताकार वानरोंकी सैनासे लंकापुरी घिरी हुईहै ॥ ७४ ॥ पहले केवल एकही वानर करके लंका जलाई गई, और कुंजर वा अपने साथियोंके सहित हितकुमार अक्षभी मारा गयाहै ॥७५॥ और की बात तो क्याकहैं देवता लोगोंका कण्टक स्वयं पुलस्त्यनंदन राक्षस राज रावणभी सूर्यकी समान तेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीके सामनेंसे भागकर चले आये हैं, सोभी

ननोदेवकृतंकिंचिद्भयमस्तिकदाचन ॥ मानुषान्नोभयंराजंस्तुमुलंसंप्रबाधते ॥ ७२ ॥ नदैत्यदानवेभ्योवाभयमस्तिननःक्वचित् ॥ यादृशंमानुषंराजन्भयमस्मानुपस्थितम् ॥ ७३ ॥ वानरैःपर्वताकारैर्लंकेयंपरिवारिता ॥ सीताहरणसंतप्ताद्रामान्नस्तुमुलंभयम् ॥ ७४ ॥ एकेनवानरेणेयंपूर्वंदग्धामहापुरी ॥ कुमारोनिहतश्चाक्षःसानुयात्रःसकुंजरः ॥ ७५ ॥ स्वयंरक्षोधिपश्चापिपौलस्त्योदेवकंटकः ॥ व्रजेतिसंयुगेमुक्तोरामेणादित्यवर्चसा॥७६॥यन्नदेवैःकृतोराजानापिदैत्यैर्नदानवैः ॥ कृतःसइहरामेणविमुक्तःप्राणसंशयात् ॥ ७७॥ सयूपाक्षवचःश्रुत्वाभ्रातुर्युधिपराभवम् ॥ कुंभकर्णोविवृत्ताक्षोयूपाक्षमिदमब्रवीत् ॥ ७८॥ सर्वमद्यैवयूपाक्षहरिसैन्यंसलक्ष्मणम् ॥ राघवंचरणेजित्वाततोद्रक्ष्यामिरावणम् ॥ ७९ ॥ राक्षसांस्तर्पयिष्यामिहरीणांमांसशोणितैः ॥ रामलक्ष्मणयोश्चापिस्वयंपास्यामिशोणितम् ॥ ८० ॥

जब श्रीरामचन्द्रजीनें दया करके उनसे कहाकि " जाओ भागजाओ " इस समय हमनें तुम्हें छोड़ दिया ॥ ७६ ॥ देव, दैत्य, और दानवोंसेभी जिन महाराजकी कभी पहले दुरवस्था नहीं हुई, आज रामचन्द्र करके ऐसी प्राण संशयकारिणी दशा उनको आई, उन रामचन्द्रनें दया करके राजाको प्राणोंसे नहीं मारा ॥ ७७ ॥ उस समय कुम्भकर्ण यूपाक्षके वचन सुनकर और संग्राम भूमिमें अपने भ्राता रावणका पराजय होना जानकर नेत्र घुमाय उससे बोला ॥ ७८ ॥ हे यूपाक्ष ! हम प्रथम सबसे पहले वानरोंकी सैनाके सहित राम और लक्ष्मणका नाश करके पीछेसे अपने बड़े भाई के चरणोंको देखेंगे ॥ ७९ ॥ हम वानर लोगोंके मांस और रुधिरसे राक्षसोंको तृप्त करेंगे; और हम स्वयं राम और लक्ष्मणका रुधिर पियेंगे॥८०॥

ऐसे सन्तापको स्थान न दीजिये । हम
छोड़कर सावधानचित्त होजाइये ॥ ३० ॥ हे पृथ्वीनाथ ! हमारे जीवित रहतेहुए आप मनमें कभी ऐसे सन्तापको स्थान न दीजिये । हम उनका नाश कर डालेंगे ॥ ३१ ॥ हे महाराज ! आप चाहें जिस अव
निश्चय कहतेहैं कि जिनके लिये आपको इतना संतापित होना पड़ाहै; हम उनका नाश कर डालेंगे ॥ ३१ ॥ हे महाराज ! आप चाहें जिस अव
स्थामें हों वही समय हमको हितके वचन कहने चाहिये, इस कारणही बन्धुभाव और भ्राताके स्नेहके वश होकर हमने आपसे ऐसा कहा॥३२॥
संकट पड़नेके समयमें स्नेहके आधीन हुए बन्धुके लिये जो कुछ करना उचितहै, हम उससे विमुख नहीं हैं. आज युद्धमें जाकर हम शत्रुओंकी
सैनाका नाश करतेहैं सो आप देखें ॥ ३३ ॥ हे महाबाहो ! आज हमसे संग्रामभूमिमें भ्राताके सहित रामचंद्रके मारनेपर आप वानरोंकी सैनाको

नैतन्मनसिकर्तव्यंमयिजीवतिपार्थिव ॥ तमहंनाशयिष्यामियत्कृतेपरितप्यते ॥३१॥ अवश्यंचहितंवाच्यंसर्वावस्थां
गतंमया ॥ बंधुभावादभिहितंभ्रातृस्नेहाच्चपार्थिव ॥ ३२ ॥ सदृशंयच्चकालेस्मिन्कर्तुंस्नेहेनबंधुना ॥ शत्रूणांकदनं
पश्यक्रियमाणंमयारणे ॥ ३३ ॥ अद्यपश्यमहाबाहोमयासमरमूर्धनि ॥ हतेरामेसहभ्रात्राद्रवंतींहरिवाहिनीम् ॥३४॥
अद्यरामस्यतद्दृष्ट्वामयानीतंरणाच्छिरः ॥ सुखीभवमहाबाहोसीताभवतुदुःखिता ॥ ३५ ॥ अद्यरामस्यपश्यंतुनि
धनंसुमहत्प्रियम् ॥ लंकायांराक्षसाःसर्वेयेतेनिहतबांधवाः ॥ ३६ ॥ अद्यशोकपरीतानांस्वबंधुवधशोचिनाम् ॥
शत्रोर्युधिविनाशेनकरोम्यश्रुप्रमार्जनम् ॥ ३७ ॥ अद्यपर्वतसंकाशंसशूर्यमिवतोयदम् ॥ विकीर्णंपश्यसमरे
सुग्रीवंप्लवगेश्वरम् ॥ ३८ ॥

भागता हुआ देखेंगे ॥ ३४॥ हे महाभुज ! आज मुझ करके रणभूमिसे लायेहुए रामचंद्रके मस्तकको देखकर आप सुखी और जानकी दुःखी
होंगी ॥३५॥ युद्धमें जिनके बन्धु बान्धव मारे गयेहैं आज लंकावासी वह निशाचरगण बड़े भारी सुखका मूल रामचंद्रका मारा जाना देखेंगे ॥ ३६ ॥
युद्धमें बान्धव लोगोंका विनाश होनेंके कारण जो लोग शोकाकुल होकर अश्रु छोड़ रहेहैं आज रणभूमिमें शत्रुओंको विनाश करके उनके आंसु
ओंको पोंछेंगे ॥३७॥ आज पर्वताकार वानरराज सुग्रीव रणभूमिमें सूर्यके सहित बादलके समान फैलाहुआ, और रुधिरसे भीगा हुआ देखोगे ॥३८॥

बड़े भ्राताका आनंद बढ़ावें ॥ ८९ ॥ महावीर दुर्द्धर्ष कुम्भकर्ण अपने भ्राताकी आज्ञाको जान और उसे माथे पर चढ़ाकर (बहुत अच्छा) कह से जपरसे उठा ॥ ९० ॥ और हर्षित मनसे मुखधो स्नानकर परम सुखपाय बलको बढ़ानेंवाली मदिराके पीनेंका अभिलाष करता हुआ ॥ ९१ ॥ तब राक्षस लोग रावणकी आज्ञाके अनुसार विविध भांति मदिरा और विविध प्रकारके भोजन पदार्थ लेआये ॥ ९२ ॥ तेज बल युक्त कुम्भकर्ण मदिराको पीकर कुछ एक मतवाला और तीव्र स्वभाव होकर चलनेंके लिये तैयार हुआ ॥ ९३ ॥ कुम्भकर्ण हर्षित होकर कालान्तक यम राजकी समान शोभायमान होनें लगा उस कालमें कुम्भकर्ण जब राक्षसोंके साथ २ अपने भ्राता रावणके भवनमें गमन करनें लगा; तब उसके

कुंभकर्णस्तुदुर्धर्षोभ्रातुराज्ञायशासनम् ॥ तथेत्युक्त्वामहावीर्यःशयनादुत्पपातह ॥ ९० ॥ प्रक्षाल्यवदनंहृष्टःस्नातः परमहर्षितः ॥ पिपासुस्त्वरयामासपानंबलसमीरणम् ॥ ९१ ॥ ततस्तेत्वरितास्तत्रराक्षसारावणाज्ञया ॥ मद्यंभक्ष्यांश्चविविधान्क्षिप्रमेवोपहारयन् ॥ ९२ ॥ पीत्वाघटसहस्रेद्वेगमनायोपचक्रमे ॥ ईषत्समुत्कटोमत्तस्तेजोबलसमन्वितः ॥ ९३ ॥ कुंभकर्णोबभौरुष्टःकालांतकयमोपमः ॥ भ्रातुःसभवनंगच्छन्रक्षोबलसमन्वितः ॥ कुंभकर्णःपदन्यासैरकंपयतमेदिनीम् ॥ ९४ ॥ सराजमार्गंवपुषाप्रकाशयन्सहस्ररश्मिर्धरणीमिवांशुभिः ॥ जगामतत्रांजलिमालयावृतःशतक्रतुर्गेहमिवस्वयंभुवः ॥ ९५ ॥ तंराजमार्गस्थममित्रघातिनंवनौकसस्तेसहसाबहिःस्थिताः ॥ दृष्ट्वाप्रमेयंगिरिशृंगकल्पंवितत्रसुस्तेसहयूथपालैः ॥ ९६ ॥

वारंवार चरण धरनें उठानेंसे पृथ्वी कंपायमान होनें लगी ॥ ९४ ॥ जिस प्रकार सूर्य भगवान् अपनी किरणोंके जालसे पृथ्वीको प्रकाशित करतेहैं,वैसेही कुम्भकर्ण भी अपनी कान्तिसे राज मार्गको प्रकाशित करता हुआ चला । इन्द्रजीके ब्रह्माजीके भवनमें जानेंकी समान हाथ जोड़े हुए राक्षस रूपी मालासे घिरकर कुम्भकर्ण अपने भ्राताके स्थानको जानें लगा ॥ ९५ ॥ वह पर्वतके शृङ्गकी समान शत्रु ओंका नाश करनें वाला अप्रमेय वीर जब राजमार्गमें चला जाताथा तब बाहर खड़े हुए वनवासी वानर अपने यूथपतियोंके साथ इसको देखतेही त्रासित हुए ॥ ९६ ॥

राम हमारे मूकेके वेगको सहकर जीवित रहैं ॥ ४६ ॥ तो हमारे बाण उस रामचन्द्रके रुधिरको पान करेंगे। इसलिये हे महाराज! आप हमारे जीवित रहते हुए आप किस कारणसे संतापकरतेहैं ॥ ४७ ॥ लीजिये हम आपके शत्रुका प्राण संहार करनेंके लिये जातेहैं आप रामचंद्रका भय छोड़ दीजिये, क्योंकि हम घोर युद्धमें उनको मार डालेंगे ॥ ४८ ॥ हम राम लक्ष्मण सुग्रीवको और जिस वानरनें राक्षसोंका नाश करके लंकापुरी जलाईथी उस हनुमानकोभी संहार करैंगे ॥ ४९ ॥ और वहांपर जो वानरगण युद्ध करनेंके लिये आयेहैं उनकोभी हम खाडालेंगे! हे महाराज! हमनें आपके बड़े भारी यशकी कामना करके इस असाधारण कामके करनेंकी अभिलाषा कीहै ॥ ५० ॥ हेराजन्! यदि इन्द्र अथवा

ततःपास्यंतिबाणौघारुधिरंराघवस्यमे ॥ चिंतयातप्यसेराजन्किमर्थंमयितिष्ठति ॥ ४७ ॥ सोहंशत्रुविनाशायतव निर्यातुमुद्यतः ॥ मुंचरामाद्भयंघोरंनिहनिष्यामिसंयुगे ॥ ४८ ॥ राघवंलक्ष्मणंचैवसुग्रीवंचमहाबलम् ॥ हनूमंतं चरक्षोघ्नंयेनलंकाप्रदीपिता ॥ ४९ ॥ हरींश्चभक्षयिष्यामिसंयुगेसमुपस्थिते ॥ असाधारणमिच्छामितवदातुंमहद्य शः ॥ ५० ॥ यदिचेंद्राद्भयंराजन्यदिचापिस्वयंभुवः ॥ अपिदेवाःशयिष्यंतेमयिक्रुद्धेमहीतले ॥ ५१ ॥ यमंचशमयिष्यामिभक्षयिष्यामिपावकम् ॥ आदित्यंपातयिष्यामिसनक्षत्रंमहीतले ॥ ५२ ॥ शतक्रतुंवधिष्यामिपास्यामि वरुणालयम् ॥ पर्वतांश्चूर्णयिष्यामिदारयिष्यामिमेदिनीम् ॥ ५३ ॥ दीर्घकालंप्रसुप्तस्यकुंभकर्णस्यविक्रमम् ॥ अद्यपश्यंतुभूतानिभक्ष्यमाणानिसर्वशः ॥ नत्विदंत्रिदिवंसर्वमाहारोममपूर्यते ॥ ५४ ॥

ब्रह्मासेभी आपको भय पहुंचाहो तौ हम उनकोभी मारडालेंगे। हमारे क्रोधित होनेंपर देवता लोग पृथ्वीपर सोते हुए दीखेंगे ॥ ५१ ॥ हम यमराजकाभी नाश करदेंगे अग्निको भक्षण कर डालेंगे; और हम सूर्यकोभी आकाशसे तारागणोंके सहित पृथ्वीपर गिरादेंगे ॥ ५२ ॥ इन्द्रको मार डालेंगे, समुद्रको पान कर जायँगे, पर्वतोंको चूर्ण २ करदेंगे और पृथ्वीको भी हम विदीर्ण करैंगे ॥ ५३ ॥ हम बहुत समयसे सोय रहेथे, परन्तु आज समस्त जीव इस कुम्भकर्णसे भक्षित होकर इसका विक्रम देखें अधिक क्या कहैं यह त्रिलोकभी हमारे पेटको भरनेंके लिये पूरी न होगी॥ ५४ ॥

यह कौन वीरहै ? ॥ ५ ॥ यह तो पृथ्वीका एक बड़ा पताकारूप अकेलाही जान पड़ताहै; कारणकि इसके केवल देखनेहीसे समस्त वानरोंकी सैना भागी जातीहै ॥ ६ ॥ हमनें पहले कभी इस प्रकारका अद्भुत प्राणी नहीं देखा; इसलिये यह महाप्राणी राक्षसहै या असुरहै; यह हमको ठीक २ बताओ ॥ ७ ॥ सरलतासे कठिन कर्म करनेवाले रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीसे इस भांति कहे जाकर महाप्राज्ञ विभीषणजी बोले ॥ ८ ॥ जिसनें संग्राम भूमिमें यमराज और इन्द्रकोभी हरा दियाथा यह वही विश्रवाका पुत्र प्रतापवान् कुम्भकर्ण है, इसके प्रमाण की समान और कोई राक्षस नहीं है ॥ ९ ॥ हे रामचंद्रजी ! इस करकै ही संग्रामभूमिमें दानव, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, विद्याधर और पन्नगगण हजारों वार हारकर इसके

पृथिव्यांकेतुभूतोसौमहानेकोत्रदृश्यत ॥ यंदृष्ट्वावानराःसर्वेविद्रवंतियतस्ततः ॥ ६ ॥ आचक्ष्वसुमहान्कोसौरक्षोवा यदिवासुरः ॥ नमयैवंविधंभूतंदृष्टपूर्वंकदाचन ॥ ७ ॥ संपृष्टोराजपुत्रेणरामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ विभीषणोमहाप्रज्ञः काकुत्स्थमिदमब्रवीत् ॥ ८ ॥ येनवैवस्वतोयुद्धेवासवश्चपराजितः ॥ सैषविश्रवसःपुत्रःकुंभकर्णःप्रतापवान् ॥ अस्यप्रमाणसदृशोराक्षसोन्योनविद्यते ॥ ९ ॥ एतेनदेवायुधिदानवाश्चयक्षाभुजंगाःपिशिताशनाश्च ॥ गंधर्वविद्याधरपन्नगाश्चसहस्रशोराघवसंप्रभग्नाः ॥ १० ॥ शूलपाणिंविरूपाक्षंकुंभकर्णंमहाबलम् ॥ हंतुंनशेकुस्त्रिदशाःकालोऽयमितिमोहिताः ॥ ११ ॥ प्रकृत्याह्येषतेजस्वीकुंभकर्णोमहाबलः ॥ अन्येषांराक्षसेंद्राणांवरदानकृतंबलम् ॥ १२ ॥ बालेनजातमात्रेणक्षुधार्तेनमहात्मना ॥ भक्षितानिसहस्राणिप्रजानांसुबहून्यपि ॥ १३ ॥ तेषुसंभक्ष्यमाणेषुप्रजाभयनिपीडिताः ॥ यांतिस्मशरणंशक्रंतमप्यर्थंन्यवेदयन् ॥ १४ ॥

सामनेसे भागे हैं ॥ १० ॥ हे राजन् ! इस महाबलवान् टेढे नेत्रवाले कुम्भकर्णको मारना तो दूर रहे; जब यह शूल हाथमें लेकर खड़ा होताहै; तब देवतागणभी इसको काल समान समझकर मोहित होजाते हैं ॥ ११ ॥ और दूसरे राक्षसश्रेष्ठ तो वरदान पाय उसकेही बलसे बलवान् हुएहैं, परन्तु यह महाबलवान् कुम्भकर्ण स्वभावसेही तेजस्वीहै ॥ १२ ॥ इस महाबलवान् महात्मा कुम्भकर्णने जन्म ग्रहण करतेही जब यह बहुत बालक था हजारों प्रजापुञ्जोंको भक्षण कर लिया ॥ १३ ॥ तब प्रजागण ऐसी अवस्था देखकर प्राणके भयसे अत्यन्त भीत हुए, और देवराज

तुमने जो धर्म अर्थ और कामको पृथक् २ समयमें सेवन करनेंका वर्णन किया, इन सबका उपदेश औरोंको देना तो दूररहा; तुम स्वयंही स्वभावसे इन सबको नहीं जानते ॥६॥ देखो, कर्महीं, धर्म, अर्थ, और काम इन तीनोंका कारणहै, क्रियाहीन पुरुषका किसी प्रकारसेभी पुरुषार्थ नहीं है;इसकारण अनुष्ठाताको शुभाशुभ कर्मोंका फल भोगना पड़ताहै॥७॥ धर्म, अर्थ, यह दोनों मोक्षकोभी देतेहैं; और इन करके स्वर्गकी प्राप्ति व महाराज्यादिक लोगभी मिल सकतेहैं, जो अधर्म और अनर्थकी प्राप्तिहो तौभी कभी २ अपराधीको सुख प्राप्त होजाताहै ॥ ८ ॥ पुरुष इस लोक और परलोकके लियेभी कर्म करतेहैं और कामपर आरूढ हुआ पुरुषभी सामर्थ कर्मोंके फलोंको प्राप्त कर लेताहै ॥ ९ ॥

यांस्तुधर्मार्थकामांस्त्वंब्रवीषिपृथगाश्रयान् ॥ अवबोद्धुंस्वभावेननहिलक्षणमस्तितान् ॥ ६ ॥ कर्मचैवाहिसर्वेषां कारणानांप्रयोजनम् ॥ श्रेयःपापीयसांचात्रफलंभवतिकर्मणाम् ॥ ७ ॥ निःश्रेयसफलावेवधर्मार्थावितरावपि ॥ अध र्मानर्थयोःप्राप्तंफलंचप्रात्यवायिकम् ॥ ८ ॥ ऐहलौकिकपारक्यंकर्मपुंभिर्निषेव्यते ॥ कर्माण्यपितुकल्पानिलभते काममास्थितः ॥ ९ ॥ तत्रक्लृप्तमिदंराज्ञाहृदिकार्यमतंचनः ॥ शत्रौहिसाहसंयत्तत्किमिवात्रापनीयते ॥ १० ॥ एक स्यैवाभियानेतुहेतुर्यःप्राहृतस्त्वया ॥ तत्राप्यनुपपन्नंतेवक्ष्यामियदसाधुच ॥ ११ ॥ येनपूर्वंजनस्थानेबहवोतिबला स्तदा ॥ राक्षसाराघवंध्वस्ताःकथमेकोजयिष्यसि ॥ १२ ॥ येपूर्वंनिर्जितास्तेनजनस्थानेमहौजसः ॥ राक्षसांस्तान्पुरे सर्वान्भीतानद्यनपश्यसि ॥ १३ ॥

हमनें महाराजके इस विषयको अपने अन्तरके साथ भला कहाहै, इस लिये राक्षसराजके मनमें जोकि निश्चय होगया है उस कार्यकाही अनुष्ठान करना ठीक है कारण कि शत्रुगणोंके प्रति साहस प्रगट करनेंमें कुछ भी अनीति दृष्टि नहीं आती ॥ १० ॥ और तुमने जो अभिमानके वश होकर विना दूसरेकी सहायताके अकेलेही शत्रुओंको जीतनेकी वात कही यहभी हमारे विचारमें असंगत और असाधुपन है श्रवणकरो ॥११॥ कि जिन रामचंद्रने पहले जनस्थानमें असंख्य महाबलवान राक्षसोंका संहार किया है विना किसीकी सहायता लिये तुम उनको अकेले किस प्रकारसे विनाश करोगे ॥ १२ ॥ उस समय जनस्थानमें जो महातेजस्वी राक्षसगण रामचंद्रजीसे हारकर संग्रामसे भाग आयेथे वे रामचंद्रके

तब क्षणभरके पीछे घवडाये हुएसे ब्रह्माजी कुम्भकर्णसे बोले ॥ २२ ॥ हम निश्चयही जानते हैं कि विश्रवाने तुमको लोकका विनाश ही करनेंके लिये उत्पन्न किया है; हम इसीलिये तुमको यह शाप देतेहैं कि तुम आजसे मृतक की समान होकर बराबर शयन करते रहो ॥ २३ ॥ जब पितामह ब्रह्माजीनें ऐसा शापदिया तब कुम्भकर्ण उनके आगेही नींदसे ग्रसित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा यह देख रावण अत्यन्त व्याकुल होकर बोला ॥ २४ ॥ भगवन् यह कांचन वृक्ष बढाहै सो फल आनेंके समय आप क्यों इसको काटते हैं हे प्रजापते! विशेष करके अपने नातीको ऐसा शापदेना आपको किसी प्रकारसे उचित नहीं है ॥ २५ ॥ आपके वचन किसी प्रकारसे मिथ्या होनेवाले नहींहै निश्चयही कुम्भकर्णको निद्रा घेरेगी परन्तु आपके

ध्रुवंलोकविनाशायपौलस्त्येनासिनिर्मितः ॥ तस्मात्त्वमद्यप्रभृतिमृतकल्पःशयिष्यसे ॥ २३ ॥ ब्रह्मशापाभिभूतो थनिपपाताग्रतःप्रभोः ॥ ततःपरमसंभ्रांतोरावणोवाक्यमब्रवीत् ॥ २४ ॥ प्रवृद्धःकांचनोवृक्षःफलकालेनिकृंत्यते ॥ ननप्तारंस्वकंन्याय्यंशप्तुमेवंप्रजापते ॥ २५ ॥ नमिथ्यावचनश्चत्वंस्वप्स्यत्येवनसंशयः ॥ कालस्तुक्रियतामस्यशयने जाग्रणेतथा ॥ २६ ॥ रावणस्यवचःश्रुत्वास्वयंभूरिदमब्रवीत् ॥ शयिताह्येषषण्मासमेकाहंजागरिष्यति ॥ २७ ॥ एकेनाह्नात्वसौवीरश्चरन्भूमिंबुभुक्षितः ॥ व्यात्तास्योभक्षयेल्लोकान्संवृद्धइवपावकः ॥ २८ ॥ सोसौव्यसनमापन्नः कुंभकर्णमबोधयत् ॥ त्वत्पराक्रमभीतश्चराजासंप्रतिरावणः ॥ २९ ॥ सएषनिर्गतोवीरःशिबिराद्भीमविक्रमः ॥ वा नरान्भृशसंक्रुद्धोभक्षयन्परिधावति ॥ ३० ॥

निकट यह प्रार्थना है कि आप इसके जागनें और सोनेका उपयुक्त समय नियत कर दीजिये ॥ २६ ॥ राक्षसपतिके यह वचन सुनकर प्रजापति ब्रह्माजी बोले कि यह छःमहीनेतक सोता रहकर केवल एक दिनके लिये जागा करैगा और फिर दूसरे दिन छैः महीनेके लिये सो जाया करेगा ॥ २७ ॥ जागनेके दिन यह क्षुधासे व्याकुलहो पृथ्वीपर घूमा करैगा और प्रदीप्त अग्निकी समान मुख फैलायकर सब लोकोंको भक्षण करेगा ॥ २८ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! इस समय तुम्हारे प्रतापसे भीत और विपदमें पड़कर लंकापति रावणनें कुम्भकर्णको जगवायाहै ॥ २९ ॥ हे रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी ! हम निश्चय कहते हैं कि यह भयंकरविक्रमकारी वीर कुम्भकर्ण अपनी गुफासे निकलकर क्रोधमें भर वानरोंके भक्षण करनेंको

आप सब कहीं ऐसा ढंडोरा पिटवादीजिये कि द्विजिह्व, संहारी, कुम्भकर्ण वितर्दन, और मैं (महोदर) यह पांच राक्षस रामचन्द्रका विनाश करनेंके लिये गमन करेंगे ॥ २२ ॥ इस ओर हम रणभूमिमें गमन करके यत्न सहित युद्ध करके यदि आपके शत्रुको जीतसकें तब तो हमको और किसी उपायके करनेकी आवश्यकता न पड़ैगी ॥ २३ ॥ परन्तु यदि हम लोगोंके बड़ाभारी युद्धकरनेंपर भी आपका शत्रु जीवित रह जाय तब हमनें मनमें जो उपाय स्थिर कियाहै उसको ही किया जाय ॥ २४ ॥ वह उपाय यहहै कि हम लोग रामनामाङ्कित तीक्ष्ण बाणोंसे अपनी देहको कटाय अंगोंसे रुधिर वहाय समरभूमिसे यहां आमेंगे ॥ २५ ॥ हमलोग आप पर प्रगट करैंगे कि हम राम लक्ष्मणको भक्षण करके

ततोगत्वावयंयुद्धंदास्यामस्तस्ययत्नतः ॥ जेष्यामोयदितेशत्रून्नोपायैःकार्यमस्तिनः ॥ २३ ॥ अथजीवतिनः शत्रुर्वयंचकृतसंयुगाः ॥ ततःसमभिपत्स्यामोमनसायत्समीक्षितम् ॥ २४ ॥ वयंयुद्धादिहैष्यामोरुधिरेणसमुक्षिताः ॥ विदार्यस्वतनुंबाणैरामनामांकितैःशरैः ॥ २५ ॥ भक्षितोराघवोस्माभिर्लक्ष्मणश्चेतिवादिनः ॥ ततःपादौग्रहीष्यामस्त्वन्नःकामंप्रपूरय ॥ २६ ॥ ततोऽवघोषयपुरेगजस्कंधेनपार्थिव ॥ हतोरामःसहभ्रात्रासरैन्यइतिसर्वतः ॥ २७ ॥ प्रीतोनामततोभूत्वाभृत्यानांत्वमरिंदम ॥ भोगांश्चपरिवारांश्चकामान्वसुचदापय ॥ २८ ॥ ततोमाल्यानिवासांसिवीराणामनुलेपनम् ॥ देयंचबहुयोधेभ्यःस्वयंचमुदितःपिब ॥ २९ ॥ ततोस्मिन्बहुलीभूतेकौलीनेसर्वतोगते ॥ भक्षितःससुहृद्रामोराक्षसैरितिविश्रुते ॥ ३० ॥

चले आये तिसके पीछे इस कार्यका पुरस्कार पानेंको हम आपके चरणोंमें प्रार्थना करेंगे ॥ २६ ॥ हे महीपाल, तिसके पीछे नगरमें आय सबकहीं हाथीपर एक राक्षसको चढवाय इस प्रकारसे पुकारवादेना कि भ्राता और अपनी सब सैनाके सहित रामचन्द्र मारा गयाहै ॥ २७ ॥ आप मानों ऐसा होनेसे बड़ेही प्रसन्न हुएहैं; इस प्रकारसे दास दासियोंको और नौकरों चाकरोंको भोजनके पदार्थ धन धान्य रत्नादि देना ॥ २८ ॥ तिसके उपरान्त वस्त्र, भूषण, और गन्ध प्रदान कीजियेगा और उनके सन्तोष करानेंको उन्हैं सुरादेना; और आपभी मन सहित आनंदमें मग्नहो सुरा पान करना ॥ २९ ॥ तिसके पीछे सुहृद गणोंके सहित राम लक्ष्मण सब राक्षसोंके सहित भक्षण कर लिये गये;इस प्रकारकी जनश्रुति (अफवाह)

ओरके राक्षसोंको वृक्षोंसे मारनेंलगे ॥ ३८ ॥ वानरगण जब कि वृक्ष और पर्वतोंके शृङ्ग ग्रहण करकै लंकाके द्वारपर जाय डटे; तब पर्वतके निकटवाली मेघमाला जिस प्रकार प्रकाशित होतीहै, वैसेही यह वानर प्रकाशित हुए ॥ ३९ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०यु० एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥ इस ओर निद्राके मदसे आकुल विपुल विक्रमकारी राक्षसशार्दूल कुम्भकर्ण शोभायमान राजमार्गमें गमन करनें लगा ॥ १ ॥ वह परम दुर्जय वीर कुम्भकर्ण सहस्र राक्षसोंके साथ जिस समय राजमार्गमें जाय रहाथा, उस समय दोनों ओर जो धवरहरोंकी श्रेणी थीं उनके ऊपरसे कुम्भकर्णके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा होनें लगी ॥ २ ॥ कुम्भकर्णनें इसप्रकारसे गमन करते हुए अति निकट अपने भाई रावणके सुवर्णकी जालियोंसे युक्त, सूर्यकी

ततोहरीणांतदनीकमुग्रंरराजशैलोद्यतवृक्षहस्तम् ॥ गिरेःसमीपानुगतंयथैवमहन्महांभोधरजालमुग्रम् ॥ ३९ ॥
इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेएकषष्टितमःसर्गः ॥ ६१ ॥ ॥ ७ ॥ सतुराक्षसशार्दूलोनि
द्रामदसमाकुलः ॥ राजमार्गंश्रियाजुष्टंययौविपुलविक्रमः ॥ १ ॥ राक्षसानांसहस्रैश्चवृतःपरमदुर्जयः ॥ गृहेभ्यः-
पुष्पवर्षेणकीर्यमाणस्तदाययौ ॥ २ ॥ सहेमजालविततंभानुभास्वरदर्शनम् ॥ ददर्शविपुलंरम्यंराक्षसेंद्रनिवेशन
म् ॥ ३ ॥ सतत्तदासूर्यइवाभ्रजालंप्रविश्यरक्षोधिपतेर्निवेशनम् ॥ ददर्शदूरेग्रजमासनस्थंस्वयंभुवंशक्रइवासन
स्थम् ॥ ४ ॥ भ्रातुःसभवनंगत्वारक्षोगणसमन्वितः ॥ कुंभकर्णःपदन्यासैरकंपयतमेदिनीम् ॥ ५ ॥ सोभिगम्यगृहं
भ्रातुःकक्ष्यामभिविगाह्यच ॥ ददर्शोद्विग्नमासीनंविमानेपुष्पकेगुरुम् ॥ ६ ॥ अथदृष्ट्वादशग्रीवःकुंभकर्णमुपस्थित
म् ॥ तूर्णमुत्थायसंहृष्टःसन्निकर्षमुपानयत् ॥ ७ ॥

समान प्रकाशमान विपुल और रमणीक गृहको देखा ॥ ३ ॥ जिस प्रकार सूर्य भगवान् बादलके मध्यमें प्रवेश करतेहैं वैसेही उस वीरनें राक्षसपति रावणके स्थानमें प्रवेश करकै, देवराजके हंसासनसमासीन ब्रह्माजीके दर्शनकीनाई सिंहासनपर बैठे हुए अपने बड़े भाई रावणको देखा ॥ ४ ॥ वीरश्रेष्ठ कुम्भकर्ण राक्षसगणोंके साथ जिस समयकि रावणके भवनमें जारहाथा, उससमय उसके प्रति पगके धरनेंसे पृथ्वी कंपायमान होरहीथी ॥ ५ ॥ वीर कुंभकर्णनें गमन कर भवनमें जाय उदासमनसे पुष्पक विमानमें बैठे हुए अपने भ्राताको देखा ॥ ६ ॥ रावणभी आयेहुए कुंभकर्णके दर्शन

जब महोदरने यह कहा तब महाबलवान् कुम्भकर्ण उसकी निन्दा करता हुआ राक्षसराज रावणसे यह वचन बोला ॥ १ ॥ हेमहाराज! आप यथा सुखसे विचरण करैं हम उस दुरात्मा रामचंद्रको वध करके आपका घोर भय दूर करके आपको शत्रुरहित कर देंगे ॥ २ ॥ शूर लोग कालमेंभी बिना जलके बादलकी समान कभी गर्जन नहीं करते हमनें जो गर्जन कियाहै;आप संग्रामभूमिमेंभी हमको वही कार्य करते हुए देखेंगे ॥ ३ ॥ अधिक क्या कहैं वीर लोग अपनी बड़ाई करके कभी अपनेको छोटा नहीं बनाते; और वह लोग जो कार्य किया करतेहैं; उसको वह अद्भुत और दूसरेसे न होनेंयोग्य न होनें पर कभी नहीं करते ॥ ४ ॥ हेमहोदर! तुमनें जो वृथा ऐसे वचन कहे यह कायर बुद्धि रहित अपने

सतथोक्तस्तुनिर्भर्त्स्यकुंभकर्णोमहोदरम्॥अब्रवीद्राक्षसश्रेष्ठंभ्रातरंरावणंततः ॥१॥ सोहंतवभयंघोरंवधात्तस्यदुरात्मनः॥ रामस्याद्यप्रमार्जामिनिर्वैरोहिसुखीभव ॥ २ ॥ गर्जंतिनवृथाशूरानिर्जलाइवतोयदाः ॥ पश्यसंपद्यमानंतुगर्जितंयुधिकर्मणा ॥ ३ ॥ नमर्षयंतिचात्मानंसंभावयितुमात्मना ॥ अदर्शयित्वाशूरास्तुकर्मकुर्वंतिदुष्करम् ॥ ४ ॥ विक्लवानांह्यबुद्धीनांराज्ञांपंडितमानिनाम् ॥ रोचतेत्वद्वचोनित्यंकथ्यमानंमहोदर ॥ ५ ॥ युद्धेकापुरुषैर्नित्यंभवद्भिःप्रियवादिभिः ॥ राजानमनुगच्छद्भिःसर्वंकृत्यंविनाशितम् ॥ ६ ॥ राजशेषाकृतालंकाक्षीणःकोशोबलंहतम् ॥ राजानमिममासाद्यसुहृच्चिह्नममित्रकम् ॥ ७ ॥ एषनिर्याम्यहंयुद्धमुद्यतःशत्रुनिर्णये ॥ दुर्नयंभवतामद्यसमीकर्तुंमहाहवे ॥ ८ ॥ एवमुक्तवतोवाक्यंकुंभकर्णस्यधीमतः ॥ प्रत्युवाचततोवाक्यंप्रहसन्राक्षसाधिपः ॥ ९ ॥

आपको पंडित माननेंवाले, और उजड्ड राजाहीको रुचिकर हो सकतेहैं ॥ ५ ॥ तुम लोग डरपोक और कायर पुरुष हो प्यारे वचनोंसे राजाके मनको सन्तुष्ट रखनाही तुम्हारा कार्यहै। तुम लोगोंसे राजाके कर्त्तव्यकर्मोंकी भली भांति अंगहीनता होतीहै ॥ ६ ॥ हा! लंकापुरीकी कैसी दुर्दशाहै? केवल एक राजाही बचगयेहैं, कोषागार (खजाना) शून्य होगया,सैना मारी गई, और मित्रोंका चिह्न धारण किये शत्रुलोगोंसे महाराज घिररहेहैं ॥ ७॥ हम तुम्हारी इस दुर्नीतको युद्धसे भगानेंके लिये शत्रुके जीतनेंको कृतनिश्चय होकर संग्राममें जातेहैं ॥ ८ ॥ बुद्धिमान् कुम्भ

निहार कर देखो कि वानरोंनें सेतुबांध उसकी सहायतासे सुखपूर्वक समुद्रके पारहो इन सबको वानर सागरकी समान कर दिया ॥ १५ ॥ जो राक्षस बड़े २ प्रधान कहकर प्रसिद्धथे; वही सब रणभूमिमें वानरगणोंसे मारे गयेहैं, परन्तु हमनें वानरोंका मरना एक दिनभी नहीं श्रवण किया, और न कभी पहले हमनें वानरोंको युद्धमें जीता ॥१६॥ इनसेही हमको भय उत्पन्न हुआहै, और इस समय तुम इस शंकटसे हमारा त्राण उद्धार करो तुमहीसे यह विपद नाशको प्राप्त होगी, इसी कारणसे तुमको जगाया गयाहै ॥ १७ ॥ हमारा समस्त खजाना खाली होगयाहै; इसलिये

येराक्षसामुख्यतमाहतास्तेवानरैर्युधि ॥ वानराणांक्षयंयुद्धेनपश्यामिकथंचन ॥ नचापिवानरायुद्धेजितपूर्वाःकदाचन ॥ १६ ॥ तदेतद्भयमुत्पन्नंत्रायस्वेहमहाबल ॥ नाशयत्वमिमानद्यतदर्थंबोधितोभवान् ॥ १७ ॥ सर्वक्षपितकोशंचसत्वमभ्युपपद्यमाम् ॥ त्रायस्वेमांपुरींलंकांबालवृद्धावशेषिताम् ॥ १८ ॥ भ्रातुरर्थेमहाबाहोकुरुकर्मसुदुष्करम् ॥ मयैवंनोक्तपूर्वोहिभ्राताकश्चित्परंतप ॥ १९ ॥ त्वय्यस्तिममचस्नेहःपरासंभावनाचमे ॥ देवासुरेषुयुद्धेषुबहुशोराक्षसर्षभ ॥ त्वयादेवाःप्रतिव्यूह्यनिर्जिताश्चामरायुधि ॥ २० ॥ तदेतत्सर्वमातिष्ठवीर्यंभीमपराक्रम ॥ नहितेसर्वभूतेषुदृश्यतेसदृशोबली ॥ २१ ॥

तुम हमारा उद्धार करो, और बालक बूढ़ेही जिस पुरीमें रहेहैं, ऐसी लंका पुरीकी तुम रक्षा करो ॥ १८ ॥ हेशत्रुओंके नाश करनेवाले ! हे महाबाहो ! हमनें पहले कभी किसी भ्रातासे ऐसे दीन वचन नहीं कहे परन्तु आज तुम हमारा कहना मान अपने भ्राताके लिये अति कठिन कर्म करनेंके लिये तैयार होवो ! ॥ १९ ॥ हेराक्षसश्रेष्ठ ! तुमनें देवासुरसंग्रामके समयमें व्यूह बनाकरके अनेक वार देवताओंको रणभूमिमें पराजित कियाथा; इस कारण तुम्हारा तो हमें बड़ा भारी भरोसा है और हम तुमसे स्नेहभी अधिक करतेहैं ॥ २० ॥ हेभयंकरपराक्रमकारी ! हम त्रिलोकीमें किसी

शत्रुओंको मारनेंवाला वीर कुंभकर्णने अतिवेगसे काले लोहेका बनाहुआ अति तीक्ष्ण शूल लिया। यह शूल प्रदीप्त, तपाये हुए सुवर्णसे भूषित था ॥ १८ ॥ यह शूल इन्द्रके वज्रकी समान और अशनिके समान भारीथा, देव, दानव, गंधर्व, यक्ष, और पन्नगोंके मारनेंको यह समर्थथा ॥ १९ ॥ बड़ी भारी रत्नमालासे शोभित होनेंके कारण उस शूलसे अग्नि निकल रहीथी ऐसे शत्रुओंके रुधिरसे रँगे हुए शूलको ग्रहण करके ॥ २० ॥ महा तेजस्वी कुम्भकर्णनें रावणसे कहा; हम अकेलेही रणमें जाते हैं, तुम्हारी सैना यहीं पर रहै ॥ २१ ॥ आज हम क्षुधित होनेंके कारण क्रोधित होकर

आददेनिशितंशूलंवेगाच्छत्रुनिबर्हणः ॥ सर्वकालायसंदीप्तंतप्तकांचनभूषणम् ॥ १८ ॥ इंद्राशनिसमप्रख्यं वज्रप्रतिमगौरवम् ॥ देवदानवगंधर्वयक्षपन्नगसूदनम् ॥ १९ ॥ रक्तमाल्यमहादामंस्वतश्चोद्गतपावकम् ॥ आदाय विपुलंशूलंशत्रुशोणितरंजितम् ॥ २० ॥ कुंभकर्णोमहातेजारावणंवाक्यमब्रवीत् ॥ गमिष्याम्यहमेकाकीतिष्ठत्विहब लंमहत् ॥ २१ ॥ अद्यतान्क्षुधितःक्रुद्धोभक्षयिष्यामिवानरान् ॥ कुंभकर्णवचःश्रुत्वारावणोवाक्यमब्रवीत् ॥ २२ ॥ सैन्यैःपरिवृतोगच्छशूलमुद्गरपाणिभिः ॥ वानराहिमहात्मानःशूराःसुव्यवसायिनः ॥ २३ ॥ एकाकिनंप्रमत्तंवानयेयुर्दशनैःक्षयम् ॥ तस्मात्परमदुर्धर्षैःसैन्यैःपरिवृतोव्रज ॥ रक्षसामहितंसर्वंशत्रुपक्षंनिषूदय ॥ २४ ॥ अथासनात्समुत्पत्यस्त्रजंमणिकृतांतराम् ॥ आबबंधमहातेजाःकुंभकर्णस्यरावणः ॥ २५ ॥

वानर गणोंको भक्षण करेंगे, कुंभकर्णके वचन सुनकर रावणनें कहा ॥२२॥ कि हे कुंभकर्ण! तुम शूल, मुद्गर ग्रहण किये सैनाको साथ लेकर यहांसे जाओ, कारण कि वह वानर गण महाबलवान शूर और रण करनेंमें बड़े निपुणहैं ॥ २३ ॥ तुम सदाही मतवाले रहतेहो; इसलिये तुमको अकेला देखकर वह उसी समय विनाश कर डालेंगे; हम इसी कारणसे कहते हैं कि तुम परम दुर्द्धर्ष सैनाको साथ लेकर राक्षस लोगोंके अहितकारी शत्रु गणोंका विनाश कर आओ ॥ २४ ॥ यह कह महा तेजस्वी रावणनें आसनपरसे उठ मणिकी माला कुंभकर्णके गलेमें पहरायदी ॥ २५ ॥

करके मंत्रियोंके साथ सब कार्योंका आरम्भोपाय पुरुष, द्रव्य, सम्मत, देशकाल विभाग, विपरीतप्रतिकार और कार्यसिद्धि, इन पांचोको विचार करता हुआ कार्य करताहै;वह नीतिमार्गसे कभी चलायमान नहीं होता ॥ ७ ॥जो राजा मंत्रिलोगोंके सहित सभादिके कार्याकार्यका विचार करते हैं, वह बुद्धिबलसे मंत्रिलोगोंके मनका भाव और उनमें कोन यथार्थ सुहृद् और कोन केवल खुशामद करके मनको वहलाया करताहै, यह सब वह जानतेहैं ॥ ८ ॥ हे राक्षसनाथ! सब लोगोंमें कोई प्रभातकाल, कोई मध्याह्नकाल और कोई रात्रिकाल इन तीनों कालमें यथाक्रमसे धर्म और कामकी सेवा करते हैं, कोई २ एकही समयमें धर्म कामादि रूप दंडका सेवन करतेहैं; और कोई २ एक कालमेंही तीनोंकी सेवा किया करते हैं ॥ ९ ॥ इन तीनोंमेसे कौन श्रेष्ठहै, इसको जो सुनकरभी नहीं जान सकतेहैं; वह राजाही हो अथवा राजकुमारहीहो, सबके सबही विफल हो

यथागमंचयोराजासमयंचचिकीर्षति ॥ बुध्यतेसचिवैर्बुद्ध्यासुहृदश्चानुपश्यति ॥ ८ ॥ धर्ममर्थंहिकामंवासर्वान्वा रक्षसांपते ॥ भजतेपुरुषःकालेत्रीणिद्वंद्वानिवापुनः ॥ ९ ॥ त्रिषुचैतेषुयच्छ्रेष्ठंश्रुत्वातन्नावबुध्यते ॥ राजावाराजमात्रोवाव्यर्थंतस्यबहुश्रुतम् ॥१०॥ उपप्रदानंसांत्वंचभेदंकालेचविक्रमम् ॥ योगंचरक्षसांश्रेष्ठतावुभौचनयानयौ ॥११॥ कालेधर्मार्थकामान्यःसंमंत्र्यसचिवैःसह ॥ निषेवेतात्मवाँल्लोकेनसव्यसनमाप्नुयात् ॥ १२ ॥ हितानुबंधमालोक्यकुर्यात्कार्यमिहात्मनः ॥ राजासहार्थतत्त्वज्ञैःसचिवैर्बुद्धिजीविभिः ॥ १३ ॥ अनभिज्ञायशास्त्रार्थान्पुरुषाःपशुबुद्धयः॥ प्रागल्भ्याद्वक्तुमिच्छंतिमंत्रिष्वभ्यंतरीकृताः ॥ १४ ॥

जातेहैं और वह बहुश्रुत कहकर नहीं मानाजाता अर्थात् उसका शास्त्रज्ञान व्यर्थ है ॥ १० ॥ हे राक्षसश्रेष्ठ! साम, दान, भेद, विक्रम पहले कहे हुए पांच योग नीति और अनीति ॥ ११ ॥ और अर्थ धर्म काम सम्बन्धी मंत्रणा मंत्रीलोगोंके साथ उचित समय पर जो बुद्धिमान राजा किया करते हैं उनको कभी दुःख प्राप्त नहीं होता ॥ १२ ॥ बुद्धिमान अर्थके तत्त्वोंको जाननेंवाले मंत्रिलोगोंके सहित अपने शुभ परिणामका विचार करके जो राजा कार्य किया करताहै; उसकी भाग्यलक्ष्मी अचल होकर टिकी रहती है ॥ १३ ॥ परन्तु कोई २ पुरुष किसी प्रकारसे जो परामर्श करनेंमें बुलाये गये, तौ वे पशुबुद्धिलोग मारे ढिठाईके शास्त्रका अर्थ न जाननें वाले पुरुषसे कुछ औरका औरही अर्थ कह देतेहैं; ॥ १४॥

मेघकी समान शब्दायमान रथ, हाथी, घोड़े और रथी लोग उस सैनाके पीछे २ चलनें लगे ॥ ३४ ॥ सर्प, ऊंट, गधे, सिंह, हाथी मृगादि पक्षियोंके ऊपर सवार होहोकर राक्षस लोग महा बलवान कुंभकर्णके पीछे २ गमन करनें लगे ॥ ३५ ॥ इस प्रकारसे वह महोत्कट रुधिरकी गन्धसे मतवाला और तीक्ष्ण शूल धारण किये हुए देव दानवोंका शत्रु कुंभकर्ण चला; उस कालमें उसके मस्तकपर छत्रलग रहाथा, और चारों ओरसे उसके ऊपर फूलोंकी वर्षा हो रहीथी ॥ ३६ ॥ कुंभकर्णके पीछे २ बहुतसे पैदल सारवान महाबलवान भयंकर पराक्रमकारी और भयंकर नेत्रवाले राक्षस हाथोंमें शस्त्र लिये चले ॥३७॥ राक्षसोंकी आँखें लाल होरहीथीं मूर्त्तिनीले अंजनके ढेरकी समान थी; वह राक्षसगण शूल, खड्ग फरसोंको और

सर्पैरुष्ट्रैःखरैश्चैवसिंहद्विपमृगद्विजैः ॥ अनुजग्मुश्चतंघोरंकुंभकर्णमहाबलम् ॥ ३५ ॥ सपुष्पवर्षैरवकीर्यमाणो धृतातपत्रःशितशूलपाणिः ॥ महोत्कटःशोणितगंधमत्तोविनिर्ययौदानवदेवशत्रुः ॥ ३६ ॥ पदातयश्चबहवोमहा सारामहाबलाः ॥ अन्वयूराक्षसाभीमाभीमाक्षाःशस्त्रपाणयः ॥ ३७ ॥ रक्ताक्षाःसुबहुव्यामानीलांजनचयोपमाः ॥ शूलानुद्यम्यखड्गांश्चनिशितांश्चपरश्वधान् ॥ ३८ ॥ भिंदिपालांश्चपरिघान्गदाश्चमुसलानिच ॥ तालस्कंधांश्चविपु लान्क्षेपणीयान्दुरासदान् ॥ ३९ ॥ अथान्यद्वपुरादायदारुणंघोरदर्शनम् ॥ निष्पपातमहातेजाःकुंभकर्णोमहाबलः ॥ ॥ ४० ॥ धनुःशतपरीणाहःसषट्शतसमुच्छ्रितः ॥ रौद्रःशकटचक्राक्षोमहापर्वतसंन्निभः ॥ ४१ ॥ सन्निपत्यचरक्षांसि दग्धशैलोपमोमहान् ॥ कुंभकर्णोमहावक्त्रःप्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ४२ ॥

दूसरे अस्त्र शस्त्र धारण करके गमन करनें लगे ॥ ३८ ॥ और भिन्दिपाल, परिघ, गदा, मूसल, तालस्कन्ध बड़े २ क्षेपणीय शस्त्रादि लिये वह दुष्ट राक्षस चले ॥ ३९ ॥ इसके उपरान्त महावीर कुम्भकर्णनें इस समस्त सैनाको साथ ले भयंकर मूर्त्ति धारण कर युद्ध करनेंके लिये यात्रा की॥४०॥उस समय कुंभकर्णका देह शत धनुष अर्थात् तीन शत हाथही चौडाईमें था, और एक शत छैः धनुष अर्थात् ११८ हाथका लंबाथा छक ड़ेके पहियोंकी समान नेत्र थे; और पर्वतकी समान दिखाई देताथा ॥ ४१ ॥ भस्म हुए पर्वतकी समान बड़े भारी मुखवाला कुंभकर्ण व्यूहकी रचना

चढ़ाय क्रोध प्रगटकर यह कहनेंलगा ॥ २२ ॥ हे कुम्भकर्ण ! हम तुम्हारे गुरु और आचार्यकी समान पूजनीयहैं सो तुम हमको उलटा उप देश देतेहो ! जो कुछभीहो इस वार्त्तालापसे क्या प्रयोजनहै ? जो कुछ हमनें कहा उसको तुम पूरा करो ॥ २३ ॥ और हमने, विभ्रमसे चित्तके मोहसे और बल वीर्यके घमंडके मोहसे वशमें होकर पहले जो तुम सबका उपदेश नहीं सुना; सो उसही उपदेशको अब फिरसे कहनेंकी क्या आवश्य कताहै ? ॥ २४ ॥ वीत गये हुए कार्यके लिये सोच करना कर्तव्य नहीं है,कारणकि जो वीतगया वह तौ वीतही गया, इसलिये हे वीर ! इस समय जो करना उचितहो; उसकीही चिन्ता तुम करो; हमको अन्याय करनेंसे जो दुःख उत्पन्न हुआहै वह तुम अपने विक्रमसे दूर करो ॥ २५ ॥ यदि

मान्योगुरुरिवाचार्यःकिंमांत्वमनुशाससि ॥ किमेवंवाक्छ्रमंकृत्वायद्युक्तंतद्विधीयताम् ॥ २३ ॥ विभ्रमाच्चित्तमो हाद्वाबलवीर्याश्रयेणवा ॥ नाभिपन्नमिदानींयद्व्यर्थातस्यपुनःकथा ॥ २४ ॥ अस्मिन्कालेतुयद्युक्तंतदिदानींविचिंत्य ताम् ॥ ममापनयजंदुःखंविक्रमेणसमीकुरु ॥ २५ ॥ यदिखल्वस्तिमेस्नेहोविक्रमंवाधिगच्छसि ॥ यदिकार्यंममै तत्तेहृदिकार्यंतमंमतम् ॥२६॥ ससुहृद्योविपन्नार्थंदीनमभ्युपपद्यते ॥ सबंधुर्योपनीतेषुसाहाय्यायोपकल्पते ॥ २७ ॥ तमथैवंब्रुवाणंसवचनंधीरदारुणम् ॥ रुष्टोऽयमितिविज्ञायशनैःश्लक्ष्णमुवाचह ॥ २८ ॥ अतीवहिसमालक्ष्यभ्रातरंक्षु भितेंद्रियम् ॥ कुंभकर्णःशनैर्वाक्यंबभाषेपरिसांत्वयन् ॥ २९ ॥ शृणुराजन्नवहितोममवाक्यमरिंदम ॥ अलंराक्षस राजेंद्रसंतापमुपपद्यते ॥ रोषंचसंपरित्यज्यस्वस्थोभवितुमर्हसि ॥ ३० ॥

हमारे प्रति तुम्हारा स्नेहहो, यदि तुम्हारे शरीरमें बल विक्रमहो; यदि हमारा यह कार्य तुम्हारे मनमें बड़ा भारी कार्यहो तौ हमको इस दुःखसे छुटाओ ॥२६॥ जोविपदमें पड़े हुए और दीनभावापन्न लोगोंके ऊपर दया कियाकरतेहैं वह सुहृदहै परन्तु नीतिके मार्गसे चलायमान होंनेपरभी जो सहायता कियाकरतेहैं बन्धु उनकोही कहतेहैं ॥२७॥ रावणके इस प्रकार धीर और करुणा वचन कहनेंपर कुंभकर्णनें (भाई साहब क्रोधित होगये) यह जानकर धीरे २ मधुर वाणीसे कहनेका अभिलाष किया॥२८॥ महावीर कुम्भकर्ण अपने भ्राताको महाविकलेन्द्रिय देखकर समझाता बुझाताहुआ कुंभकर्ण बोला ॥ २९ ॥ हे राजन् ! एकाग्रचित्त होकर हमारे वचन सुनो ऐसे संतापित होनेंकी कुछ आवश्यकता नहीं है; क्रोध

परन्तु कालवशसे प्रेरित हुआ कुंभकर्ण उन रोमहर्षण बडे २ उत्पातोंको कुछभी न समझता हुआ चला ही गया ॥ ५२ ॥ पर्वताकार कुंभकर्ण पैदल ही चलकर कोटकी भीतके वाहर आया कि उसमें मेघमाला की समान अद्भुत वानरोंकी सैनाको देखा ॥५३॥ पर्वताकार राक्षस वीर कुंभकर्णको निहारकर पवनसे उडाये हुए मेघकी समान सब वानर लोग इधर उधर भागने लगे ॥ ५४ ॥ वीर कुंभकर्ण प्रचंड वानरोंकी सैनाको मेघ जालकी समान इधर उधर भागता हुआ देखकर हर्षके मारे मेघकी समान गंभीर शब्दसे सिंहनाद करनें लगा ॥ ५५ ॥ जिस प्रकार आकाशमें मेघोंका

अचिंतयन्महोत्पातानुदितान्रोमहर्षणान् ॥ निर्ययौकुंभकर्णस्तुकृतांतबलचोदितः ॥ ५२ ॥ सलंघयित्वाप्राकारंप द्भ्यांपर्वतसन्निभः ॥ सददर्शघनप्रख्यंवानरानीकमद्भुतम् ॥ ५३ ॥ तेदृष्ट्वाराक्षसश्रेष्ठंवानराःपर्वतोपमम् ॥ वायुनुन्नाइव घनाययुःसर्वदिशस्तदा ॥ ५४ ॥ तद्वानरानीकमतिप्रचंडंदिशोद्रवद्भिन्नमिवाभ्रजालम् ॥ सकुंभकर्णःसमवेक्ष्यहर्षान्न नादभूयोघनवद्घनाभः ॥ ५५ ॥ तेतस्यघोरंनिनदंनिशम्ययथानिनादंदिविवारिदस्य ॥ पेतुर्धरण्यांबहवःप्लवंगानि कृत्तमूलाइवशालवृक्षाः ॥ ५६ ॥ विपुलपरिघवान्सकुंभकर्णोरिपुनिधनायविनिःसृतोमहात्मा ॥ कपिगणभयमाददत्सु भीमंप्रभुरिवकिंकरदंडवान्युगांते ॥ ५७ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०युद्धकांडेपंचषष्टितमःसर्गः ॥ ६५ ॥ ॥ छ ॥ सलंघयित्वाप्राकारंगिरिकूटोपमोमहान् ॥ निर्ययौनगरात्तूर्णंकुंभकर्णोमहाबलः ॥ १ ॥

गर्जना शब्द हुआ करता है ऐसेही कुंभकर्ण की घोर सिंहनाद सुनकर वानरोंमेंसें बहुतसे जड़कटे शाल वृक्षकी समान पृथ्वीपर गिर पडे ॥ ५६ ॥ इस प्रकारसे शत्रुका विनाश करनेंके लिये आया हुआ बड़ाभारी शूल हाथमें लिये हुए महा बलवान कुंभकर्ण किंकर गणोंके साथ प्रलयकालीन दंड हाथमें लिये शंकरजीकी समान वानर लोगोंको भयंकर भय उत्पन्न करानें लगा ॥ ५७ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०यु० पंचषष्टितमःसर्गः ॥ ६५ ॥ इसके उपरान्त पर्वताकार महावीर कुंभकर्ण लंकाके प्राकार (कोटकीभीत) को लांघ अति शीघ्रता पूर्वक नगरके वाहर निकला ॥ १ ॥

हे अनघ! कैसा आश्चर्यहै कि रामचंद्रके विनाशकी अभिलाष किये यह समस्त राक्षसगण व हम यह सबही आपको अनेक प्रकारसें समझा रहेहैं, तथापि आप क्यों ऐसे व्यथित होतेहैं ॥ ३९ ॥ हेराक्षसोंके नाथ! रामचंद्रके लिये आपको भय अच्छा! वह पहले हमारा नाश करे पीछे आपका अधिक क्या कहें यदि हम पहले मारे जांय तौ हमको इसकेलिये कुछ संतापित न होंना चाहिये ॥ ४० ॥ हे शत्रुओंके तपानेंवाले! हे अतुल विक्रम! इस समय जैसी इच्छाहो वैसीही आज्ञा हमको दीजिये। शत्रुओंके साथ युद्ध करनेंके लिये आपके जानेंका क्या प्रयोजनहै अब और किसीको युद्धमें भेजनेंके लिये न देखिये ॥ ४१ ॥ हमही अकेले आपके महाबलवान शत्रुका प्राण संहार कर डालेंगे यदि इन्द्र, यम, अग्नि, वायु ॥ ४२॥ कु

कथंचराक्षसैरेभिर्मयाचपरिसांत्वितः ॥ जिघांसुभिर्दाशरथिंव्यथसेवंसदानघ ॥ ३९ ॥ मांनिहत्यकिलत्वांहिनिह निष्यतिराघवः ॥ नाहमात्मनिसंतापंगच्छेयंराक्षसाधिप ॥ ४० ॥ कामंत्विदानीमपिमांव्यादिशत्वंपरंतप ॥ नपरःप्रे क्षणीयस्तेयुद्धायातुलविक्रम ॥ ४१ ॥ अहमुत्सादयिष्यामिशत्रूंस्तवमहाबलान् ॥ यदिशक्रोयदियमोयदिपावकमा रुतौ ॥ ४२ ॥ तानहंयोधयिष्यामिकुबेरवरुणावपि ॥ गिरिमात्रशरीरस्यशितशूलधरस्यमे ॥ ४३ ॥ नर्दतस्तीक्ष्णदंष्ट्र स्यबिभीयाद्वैपुरंदरः॥अथवात्यक्तशस्त्रस्यमृद्नतस्तरसारिपून् ॥ ४४ ॥ नमेप्रतिमुखःकश्चित्स्थातुंशक्तोजिजीविषुः ॥ नैवशक्त्यानगदयानासिनानिशितैःशरैः ॥ ४५ ॥ हस्ताभ्यामेवसंरभ्यहनिष्याम्यसवज्रिणम् ॥ यदिमेमु ष्टिवेगंसराघवोद्यसहिष्यति ॥ ४६ ॥

बेर और वरुण यह समस्तभी हमारे विमुख युद्धमें खड़े होजांय तौ हम उनकोभी संहार करेंगे युद्ध करनेंकी कथा तौ दूर रहे जिस समय हम तीक्ष्ण शूल धारण करके खड़े होजांयगे तौ उस कालमें हमारा यह पर्वताकार शरीर ॥ ४३ ॥ और तीक्ष्ण दंत देख व सिंहनाद श्रवण करके इन्द्र भी डरकर भाग जायगा; अथवा अधिक कहनेंकी क्या आवश्यकताहै, जबकि हम अस्त्र शस्त्रोंको चलाय २ कर शत्रुओंको मलते होंगे ॥ ४४ ॥ उस कालमें अपने जीवन बचानेंकी आशा किये कोई जन हमारे सन्मुख टिकनेंके लिये समर्थ न होगा; न शक्ति, न गदा, न असि, न तीखे बाण, इनमेंसे किसीकोभी हम नहीं चाहते ॥ ४५ ॥ हम क्रोधित होकर केवल अपनी बाहोंके बलहीसे जो इन्द्रभी हो तौ उसकोभी मार डालेंगे, यदि वह

परन्तु महाबलवान् कुम्भकर्ण बड़े २ पर्वतोंके शृङ्ग, शिला, और फूले फले हुए वृक्षोंसे ताड़ित होकरभी क्षणभरके लियेभी चलायमान नहीं हुआ ॥ १० ॥ अधिक करके शिला और वृक्ष फूले हुए उसके शरीर पर गिर खंड २ हो पृथ्वीपर गिरनें लगे ॥ ११ ॥ अग्निके वनको जलानेंकी समान क्रोधमें भरकर महा तेजस्वी कुंभकर्णभी वानरोंकी उस सेनाको अति यत्नके साथ मथनें लगा ॥ १२ ॥ उस कालमें बहुतसे वानरगण अरुण रंगके पुष्पोंसे शोभित वृक्षोंकी समान लाल २ रुधिरसे देह भिगाये पृथ्वीपर गिर २ कर शयन करनें लगे ॥ १३ ॥ उनमेंसे कोई २ वानर किसी ओरको न देखकर भागते हुए लांघनेंके अभिप्रायसे समुद्रमें गिरनें लगे; और कोई २ सघन वनोंमें छिप गये ॥ १४ ॥ अधिक

प्रांशुभिर्गिरिशृंगैश्चशिलाभिश्चमहाबलाः ॥ पादपैःपुष्पिताग्रैश्चहन्यमानोनकंपते ॥ १० ॥ तस्यागात्रेषुपतिताभिद्यंतेब हवःशिलाः ॥ पादपाःपुष्पिताग्राश्चभग्नाःपेतुर्महीतले ॥ ११ ॥ सोपिसैन्यानिसंक्रुद्धोवानराणांमहौजसाम् ॥ ममंथ परमायत्तोवनान्यग्निरिवोत्थितः ॥ १२ ॥ लोहितार्द्रास्तुबहवःशेरतेवानरर्षभाः ॥ निरस्ताःपतिताभूमौताम्रपुष्पाइव द्रुमाः ॥ १३ ॥ लंघयंतःप्रधावंतोवानरानावलोकयन् ॥ केचित्समुद्रेपतिताःकेचिद्गगनमास्थिताः ॥ १४ ॥ वध्य मानास्तुतेवीरराक्षसेनचलीलया ॥ सागरंयेनतेतीर्णाःपथातेनैवदुद्रुवुः ॥ १५ ॥ तेस्थलानितदानिम्नंविवर्णवदना भयात् ॥ ऋक्षावृक्षान्समारूढाःकेचित्पर्वतमाश्रिताः ॥ १६ ॥ निपेतुःकेचिदपरेकेचिन्नैवावतस्थिरे ॥ केचिद्भूमौनिपतिताः केचित्सुप्तामृताइव ॥ १७ ॥ तान्समीक्ष्यांगदोभग्नान्वानरानिदमब्रवीत् ॥ अवतिष्ठतयुध्यामोनिवर्तध्वंप्लवंगमाः ॥ १८ ॥

क्या कहैं उसकालमें अनेक वानर वीर उस राक्षस कुंभकर्णसे लीला सहित मारे जाकर मरनेके निकट पहुंच जिस मार्गसे समुद्रके पार हुएथे उसी मार्गसे भागनें लगे ॥ १५ ॥ रीछ गणभी भयके मारे विवर्ण मुखहो कोई २ गुफामें प्रवेश करगये, कोई २ वृक्षोंपर चढ़े, और कोई २ पर्वतोंपर आरोहण करते हुए ॥ १६ ॥ कोई २ पर्वतों परसे नीचे उतर आये और कोई २ नीचे नहीं उतरे वही पर रहे; कोई २ मृतक होगये, और कोई २ मृतक तुल्य होकर पृथ्वीपर सोरहे ॥ १७ ॥ तब अंगदजी वानरोंकी यह अवस्था देखकर उनसे बोले तुम लोग लौटो, हम फिर युद्ध करेंगे ॥ १८ ॥

हेराजन् ! हम दशरथकुमार रामचंद्रको वध करके आपको असीम सुख प्राप्त करनेंके लिये चले लक्ष्मणके सहित रामचंद्रका विनाश करके हम समस्त वानरोंके यूथपोंको खालेंगे ॥ ५५ ॥ इस समय आप मनके सुखसे मदिरा पानकर स्त्रियोंके सहित विहार करते रहें, और जितनाभर मनका दुःखहै वह आप छोड़दें । आप निश्चय रक्खें कि यमराजके भवनमें रामचन्द्रके पहुंच जानेंपर सीता सदाके लिये आपके वशमें होजायगी ॥ ५६ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० त्रिषष्टितमःसर्गः ॥ ६३ ॥ विशालबाहु बड़े भारी देहवाले महाबलवान् कुम्भकर्णके ऐसे वचन सुन कर राक्षस महोदर कहने लगा॥१॥हे कुंभकर्ण! तुम बड़े भारी कुलमें जन्मे तौ हो परन्तु ढिठाई और गर्वके मारे तुम यथार्थ अवस्थाको नहीं जान सकते,

वधेनतेदाशरथेःसुखावहंसुखंसमाहर्तुमहंव्रजामि ॥ निहत्यरामंसहलक्ष्मणेनखादामिसर्वान्हरियूथमुख्यान् ॥ ५५ ॥ रमस्वराजन्पिबचाद्यवारुणींकुरुष्वकृत्यानिविनीयदुःखम् ॥ मयाद्यरामेगमितेयमक्षयंचिरायसीतावशगाभविष्य ति ॥ ५६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेत्रिषष्टितमःसर्गः ॥ ६३ ॥ ॥ ६४ ॥ तदुक्तम तिकायस्यबलिनोबाहुशालिनः ॥ कुंभकर्णस्यवचनंश्रुत्वोवाचमहोदरः ॥ १ ॥ कुंभकर्णकुलेजातोधृष्टप्राकृतदर्श नः ॥ अवलिप्तोनशक्नोषिकृत्यंसर्वत्रवेदितुम् ॥ २ ॥ नहिराजानजानीतेकुंभकर्णनयानयौ ॥ त्वंतुकैशोरकाद्धृष्टः केवलंवक्तुमिच्छसि ॥ ३ ॥ स्थानंवृद्धिंचहानिंचदेशकालविधानवित् ॥ आत्मनश्चपरेषांचबुध्यतेराक्षसर्षभः ॥ ४ ॥ यत्त्वशक्यंबलवतावक्तुंप्राकृतबुद्धिना ॥ अनुपासितवृद्धेनकःकुर्यात्तादृशंनरः ॥ ५ ॥

इसी कारणसे कौन समय क्या करना चाहिये यहभी तुम नहीं जानते॥ २ ॥हमारे राजा क्या नीति अनीतिको नहीं जानतेहैं;तुम बालक पनसेही ढीठहो, इसी कारणसे ऐसे अनर्थक वचनोंका जाल फैलाया करतेहो ॥३॥राक्षसराज देश और कालके विभागको जानतेहैं;इनसे अपने ओरकी और शत्रुके ओ रकी उन्नति छिपी नहीं है,और अपने पक्षके क्षय वृद्धिके अभावमें किसप्रकारसे रहना होताहै,इन सब बातोंकोही यह जानतेहैं ॥ ४ ॥ जिसनें कभी बड़े बूढेकी पूजानहीं की ऐसी प्राकृत बुद्धिवाले और बलसे गर्वित लोग जो कार्य किया करतेहैं,क्या नीति जाननेंवाले लोग वैसे कार्योंको कर सकतेहैं॥५॥

लोगोंका नाश करसके तो इस लोकमें अतुल कीर्त्तिको प्राप्त करेंगे ॥२५॥ जिस प्रकार पतंग दीप्तिमान अग्निके निकट होकर अपने जीवनकी रक्षा
करनेमें समर्थ नहीं होता, वैसेही कुंभकर्णभी रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीके निकट आयकर फिर जीता हुआ लंकाको लौटकर नहीं जासकेगा॥२६॥
विशेष करके हम लोग महावीर और बहुत सारे होकरभी यदि एक राक्षससे भय पायकर भाग जांयगे और इस प्रकार अपने प्राणोंकी रक्षाकरेंगे
तो इस्से हमारा यश नष्ट होजायगा ॥ २७ ॥ कनकका बाजू पहरे शूर श्रेष्ठ अंगदजीके यह वचन सुन भागकर चले जाते हुए वानर लोग शूर
गणोंके आगे निन्दा पानेके योग्य वचन बोले ॥ २८ ॥ हे वीरश्रेष्ठ! महाबलवान् कुम्भकर्ण आति घोर संग्राम कर रहाहै, इस समय हम लोग उसके
सन्मुख किसी प्रकारसे खड़े नहीं हो सकते हैं, जो कुछभीहो हमें अपना प्राण अत्यन्त प्याराहै;इस कारण भाग जानेमेंही हमारी भलाई है॥२९॥

नकुंभकर्णःकाकुत्स्थंदृष्ट्वाजीवन्गमिष्यति ॥ दीप्यमानमिवासाद्यपतंगोज्वलनंयथा ॥ २६ ॥ पलायनेनचोद्दिष्टाः
प्राणान्रक्षामहेवयम् ॥ एकेनबहवोभग्नायशोनाशंगमिष्यति ॥ २७ ॥ एवंब्रुवाणंतंशूरमंगदंकनकांगदम् ॥ द्रवमा
णास्ततोवाक्यमूचुःशूरविगर्हितम् ॥ २८ ॥ कृतंनःकदनंघोरंकुंभकर्णेनरक्षसा ॥ नस्थानकालोगच्छामोदयितंजी
वितंहिनः ॥ २९ ॥ एतावदुक्त्वावचनंसर्वेतेभेजिरेदिशः ॥ भीमंभीमाक्षमायांतंदृष्ट्वावानरयूथपाः॥ ३० ॥ द्रवमाणास्तु
तेवीराअंगदेनवलीमुखाः ॥ सांत्वनैश्चानुमानैश्चततःसर्वेनिवर्तिताः ॥ ३१ ॥ प्रहर्षमुपनीताश्चवालिपुत्रेणधीमता ॥
आज्ञाप्रतीक्षास्तस्थुश्चसर्वेवानरयूथपाः ॥ ३२ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेषट्ष
ष्टितमःसर्गः॥ ६६ ॥ ॥ तेनिवृत्तामहाकायाःश्रुत्वांगदवचस्तदा ॥ नैष्ठिकींबुद्धिमास्थायसर्वेसंग्रामकांक्षिणः ॥ १ ॥

वानरोंके यूथपति भयंकर नेत्रवाले भयंकर रूपवान कुम्भकर्णको आया हुआ देखकर केवल इतनाही कहकर चारों ओरको भागने लगे ॥ ३० ॥
परन्तु अंगदजीनें समझाय बुझाय लालच दिवाय, उन भागते हुए वानर गणोंके यूथनाथोंको किसी प्रकारसे फिर लौटारा ॥ ३१ ॥ तब बुद्धिमान
अंगदजीने उन सब वानरोंको उत्साहित किया, और यूथपति लोगभी युद्ध करनेके लिये वाट जोहनें लगे ॥ ३२ ॥ (इसके उपरान्त शरभ,
मैन्द धूम्र, नील, कुमुद, सुषेण, गवाक्ष, रम्भ, तार, द्विविद और पवनकुमार हनुमानादि मुख्य २ वानर अतिशीघ्रतासे समरभूमिकी ओर चले)
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि० युद्धकांडे षट्षष्टितमः सर्गः॥६६॥अंगदजीके वचन सुनकर समस्त वानर लौटपडे; और अपनी मृत्युका

भयसे भीत होकर ऐसे छिपे हुएहैं कि तुम अबभी उनको युद्धमें आया हुआ नहीं देखोगे ॥ १३ ॥ आहा ! कैसे आश्चर्यकी बातहै कि तुम जान बूझकर भी क्रोधित होकर सोये हुए केसरी और श्रेष्ठ सर्पकी समान दशरथकुमार रामचंद्रको जगानेकी इच्छा करते हो ॥ १४ ॥ जो रामचंद्र अप ने तेजसे प्रदीप्त हैं और क्रोधवश होनेके कारण अत्यन्त दुर्द्धर्ष हैं सो कौन पुरुष मृत्युकी समान सहन करनेके अयोग्य उन वीरश्रेष्ठके निकट बढ़नेकी इच्छा करताहै॥१५॥हे तात!यह समस्त राक्षस गण इकट्ठे होकर रामचंद्रके सन्मुख टिक कर जीते हुए नहीं रह सकते हैं हमेंतो इसमें भी सन्देहहै इसलिये रामचंद्रसें युद्ध करनेके लिये अकेले तुम्हारा जाना हमारी सम्मतिमें नहीं आता॥१६॥स्वयं हीनबल होकरभी कौन पुरुष अपना जीवही देनेंके लिये

तंसिंहमिवसंक्रुद्धंरामंदशरथात्मजम् ॥ सर्पंसुप्तमहोबुद्ध्वाप्रबोधयितुमिच्छसि ॥ १४ ॥ ज्वलंतंतेजसानित्यंक्रोधेनच दुरासदम् ॥ कस्तंमृत्युमिवासह्यमासादयितुमर्हति ॥ १५ ॥ संशयस्थमिदंसर्वंशत्रोःप्रतिसमासने ॥ एकस्यगमनं तातनहिमेरोचतेभृशम्॥१६॥हीनार्थस्तुसमृद्धार्थंकोरिपुंप्राकृतंयथा ॥ निश्चितंजीवितत्यागेवशमानेतुमिच्छति॥१७॥ यस्यनास्तिमनुष्येषुसदृशोराक्षसोत्तम ॥ कथमाशंससेयोद्धुंतुल्येनेंद्रविवस्वतोः ॥ १८ ॥ एवमुक्त्वातुसंरब्धंकुंभक र्णंमहोदरः ॥ उवाचरक्षसांमध्येरावणंलोकरावणम् ॥ १९ ॥ लब्ध्वापुरस्ताद्वैदेहींकिमर्थंत्वंविलंबसे ॥ यदीच्छसि तदासीतावशगातेभविष्यति ॥ २० ॥ दृष्टःकश्चिदुपायोमेसीतोपस्थानकारकः ॥ रुचितश्चेत्स्वयाबुद्ध्याराक्षसेंद्रततः शृणु ॥ २१ ॥ अहंद्विजिह्वःसंह्रादीकुंभकर्णोवितर्दनः ॥ पंचरामवधायैतेनिर्यांतीत्यवघोषय ॥ २२ ॥

दूसरे प्राकृत शत्रुकी समान बलवान शत्रुको अपने वशमे लानेंकी इच्छा कर सकताहै ? ॥ १७ ॥ हे राक्षसोंमें श्रेष्ठ ! त्रिलोकीमें जिनकी समान कोईभी नहींहै तुम किसलिये सूर्य और इन्द्रकी समान इन इक्ष्वाकुवंशावतंस श्रीरामचन्द्रजीके साथ अकेलेही युद्ध करनेंका अभिलाष करतेहो ॥ १८॥ राक्षस महोदरनें क्रोधित होकर कुम्भकर्णसे ऐसा कह राक्षसोंके बीचमें बैठे हुए फिर लोगोंके रुवानें वाले रावणसे कहा ॥ १९ ॥ आप सीताको प्राप्त करनेंमें किसलिये देर कर रहे हैं, यदि आपकी इच्छाहो तौ सीता इसी समय आपके वशमें होसकतीहै ॥ २० ॥ हमनें सीताको वशमें करनेंका एक उपाय स्थिर कियाहै; यदि आपकी बुद्धिमेंभी वह भला ज्ञातहो तौ उसको सुनकर आप कीजिये ॥ २१ ॥ वह उपाय यहहै कि

कार कुम्भकर्णकी ओर दौड़ा ॥ ९ ॥ उस वानर श्रेष्ठनें पर्वतका शिखर उखाड़तेही कुम्भकर्ण पर चलाया, परन्तु वह पर्वतका शिखर कुम्भकर्णके ऊपर न गिरके उसकी सैनापर गिरा ॥ १० ॥ उस पर्वत शृङ्गके गिरनेंसे उस सैनाके अश्व, गज, और रथ समस्त चूर्ण होगये । तब वानर द्विविद और एक पर्वतका शृङ्ग चलायकर और राक्षसोंका नाश करनें लगे ॥ ११ ॥ वानर श्रेष्ठ द्विविदके चलाये शैल शृङ्गनें अत्यन्त वेगसे गिरकर राक्षसोंके रथ सारथियोंके सहित चूर्णकर डाले ॥ क्षण भरमें रण भूमि राक्षसोंके रुधिरसे गीली होगई ॥१२॥ तब रणमें बैठे हुए महावीर राक्षस लोग भयंकर सिंहनाद करके कालाग्निकी समान बाण चलाय २ वानरोंका नाश करनें लगे ॥ १३ ॥ इस ओर महा बलवान् वानर गणभी बड़े वृक्षोंको

तंसमुत्पाट्यचिक्षेपकुंभकर्णायवानरः॥ तमप्राप्यमहाकायंतस्यसैन्येपतत्ततः ॥ १० ॥ ममर्दाश्वान्गजांश्चापिरथां
श्चापिगजोत्तमान् ॥ तानिचान्यानिरक्षांसिएवंचान्यद्गिरेःशिरः ॥ ११ ॥ तच्छैलवेगाभिहतंहताश्वंहतसारथिम् ॥
रक्षसांरुधिरक्लिन्नंबभूवायोधनंमहत् ॥ १२ ॥ रथिनोवानरेंद्राणांशरैःकालांतकोपमैः ॥ शिरांसिनदतांजह्रुःसहसाभी
मनिःस्वनाः ॥१३॥ वानराश्चमहात्मानःसमुत्पाट्यमहाद्रुमान् ॥ रथानश्वान्गजानुष्ट्रान्राक्षसानभ्यसूदयन् ॥१४॥
हनूमाञ्छैलशृंगाणिशिलाश्चविविधान्द्रुमान् ॥ ववर्षकुंभकर्णस्यशिरस्यंबरमास्थितः॥ १५ ॥ तानिपर्वतशृंगाणिशूले
नसबिभेदह ॥ बभंजवृक्षवर्षंचकुंभकर्णोमहाबलः ॥ १६ ॥ ततोहरीणांतदनीकमुग्रंदुद्रावशूलंनिशितंप्रगृह्य ॥
तस्थौसतस्यापततःपुरस्तान्महीधराग्रंहनुमान्प्रगृह्य ॥ १७ ॥ सकुंभकर्णंकुपितोजघानवेगेनशैलोत्तमभीमकायम् ॥
संचुक्षुभेतेनतदाभिभूतोमेदार्द्रगात्रोरुधिरावसिक्तः ॥ १८ ॥

उखाड़कर रथ, अश्व, हाथी, ऊंट, और राक्षसोंको विध्वंश करनें लगे ॥१४॥ महावीर हनुमानजीनें आकाश मार्गमें टिककर पर्वतोंके शृङ्ग विविध शिलाखंड और अनेक वृक्ष कुम्भकर्णके मस्तकपर चलाये ॥ १५ ॥ राक्षसवीर महाबलवान कुंभकर्णने देखते २ इन सब शैल शृंगादिकोंको शूलसे खंड २ कर डाला और पलक मारतेमे वृक्षादिकोंको चूर्ण करदिया ॥ १६ ॥ इसके उपरान्त कुंभकर्ण तीक्ष्ण शूल हाथमें लेकर वानर सैनाकी ओर दौड़ा, यह देखकर हनुमानजी एक बड़ा भारी पर्वतका शृङ्ग ग्रहण करके उसके सन्मुख खडे रहे॥१७॥ तब हनुमानजीनें अत्यन्त क्रोधमें

जब सब ओर फैलेगी,तब इसको सीताभी सुनेंगी,॥३०॥तव आप अशोक वनमें प्रवेश करके एकान्तमें सीताको समझाना बुझाना और धन धान्य रत्न और कामना करने लायक वस्तुओंसे लुभाना ॥ ३१ ॥ हे राजन्! नाथ हीन सीताका अभिलाष होंनेपरभी ऐसे शोकके उत्पन्न करानें वालेसे धोखाखाय आपके वशमें होजायगी ॥ ३२ ॥ जानकी अपने प्यारे पतिको नाश हुआ देख सब भांतिकी आशा छोड़ स्त्रीस्वभावकी लघुताईसे आपके वशमें पड़कर आपहीका आश्रय ग्रहण करैंगी ॥ ३३ ॥उन सीतानें पहले अनेक प्रकारके भोग सुख भोगेथे, कभी दुःखका मुखभी नहीं देखा, इस समय वह महादुःख भोग रही हैं; बस वह यह समझकर कि आपके निकट रहनेंसे बड़ा सुख मिलेगा; आपके वशमें होनेंके लिये

प्रविश्याश्वास्यचापित्वंसीतांरहसिसांत्वयन् ॥ धनधान्यैश्चकामैश्चरत्नैश्चैनांप्रलोभय ॥ ३१ ॥ अनयोपधयाराजन्भूयःशोकानुबंधया ॥ अकामात्वद्वशंसीतानष्टनाथागमिष्यति ॥ ३२ ॥ रमणीयंहिभर्तारंविनष्टमधिगम्यसा ॥ नैराश्यात्स्त्रीलघुत्वाच्चत्वद्वशंप्रतिपत्स्यते ॥ ३३ ॥ सापुरासुखसंवृद्धासुखार्हादुःखकर्षिता ॥ त्वय्यधीनंसुखंज्ञात्वा सर्वथैवागमिष्यति ॥ ३४ ॥ एतत्सुनीतंममदर्शनेनरामंहिदृष्ट्वैवभवेदनर्थः ॥ इहैवतेसेत्स्यतिमोत्सुकोभूर्महानयुद्धेनसुखस्यलाभः ॥ ३५ ॥ अनष्टसैन्योह्यनवाप्तसंशयोरिपुंत्वयुद्धेनजयञ्जनाधिप ॥ यशश्चपुण्यंचमहान्महीपतिःश्रियंचकीर्तिंचचिरंसमश्नुते॥ ३६ ॥इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेचतुःषष्टितमःसर्गः ॥ ६४ ॥

असम्मत नहीं होगी ॥ ३४ ॥ हे महाराज! हमारे विचारमें तो यही बात उचित जान पड़ताहै और इससेही आपका अभिलाष पूर्ण होगा; इस कारण आप संग्रामभूमिमें रामचन्द्रके सहित युद्ध करनेंका अभिलाष न कीजिये, क्योंकि उस्से सुख प्राप्त न होकर वरन बड़े भारी अनर्थके होनेकी संभावनाहै ॥३५॥हेजनाधिप! जो महान् महीपति अपने आप संशयमें न पड़कर और सैनाको नाश न करके विना युद्ध किये शत्रुलोगोंको जीतलेतेहैं; वह विपुल यश,सुख,सम्पत्ति और कीर्त्तिको प्राप्त करतेहैं ॥ ३६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे चतुःषष्टितमःसर्गः॥६४॥

वह वालिकी छातीमें जाकर महावेगसे लगा ॥ ३५ ॥ तब महातेजमान् वीर्यवान् वानरराज वालि वाणसे घायल होकर पृथ्वीपर गिर पडा ॥ ३६॥
जिस प्रकार आश्विन मासमें पूर्णमासीके अंतमें इन्द्रध्वज गिर पडताहै, वैसेही वालिके प्राण निकलनें लगे, और वह वनाथ मूर्च्छित होगया॥३७॥
कफके मारे उसका कंठ रुकगया और सहज २ आरत स्वर उसनें प्रगट किया ॥ ३८॥ जिस प्रकार श्रीशंकरजी मुखसे धूम अग्नि छोडतेहैं वैसेही
कालकी समान नरोत्तम श्रीरामचंद्रजीनें सुवर्णविभूषित शत्रुओंका नाश करनेंवाला वाण वालिपर छोडा ॥ ३९ ॥ फिर शरीरसे रुधिर निकलता
हुआ पर्वत परसे उत्पन्न हुए अशोक वृक्षकी समान इन्द्रसुत वालि चेतनारहित, पवनवेगसे टूटे हुए इन्द्रध्वजकी समान पृथ्वीपर गिरपडा ॥ ४० ॥

ततस्तेनमहातेजावीर्ययुक्तःकपीश्वरः ॥ वेगेनाभिहतोवालीनिपपातमहीतले ॥ ३६ ॥ इंद्रध्वजइवोद्धूतःपौर्णमास्यां
महीतले ॥ आश्वयुक्समयेमासिगतसत्त्वोविचेतनः ॥ ३७ ॥ बाष्पसंरुद्धकंठस्तुवालीचार्तस्वरःशनैः ॥ ३८ ॥
नरोत्तमःकालइवांतकोपमंशरोत्तमंकांचनरूपभासितम्॥ससर्जदीप्तंतममित्रमर्दनंसधूममग्निंमुखतोयथाहरः ॥ ३९॥
अथोक्षितःशोणिततोयविस्रवैःप्रपुष्पिताशोकइवाचलोद्गतः ॥ विचेतनोवासवसूनुराहवेप्रभ्रंशितेंद्रध्वजवत्क्षितिंग
तः ॥ ४० ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेषोडशः सर्गः ॥ १६ ॥ ॥ छ ॥
ततःशरेणाभिहतोरामेणरणकर्कशः ॥ पपातसहसावालीनिकृत्तइवपादपः ॥ १ ॥ सभूमौन्यस्तसर्वांगस्तप्तकांचनभूष
णः ॥ अपतद्देवराजस्यमुक्तरश्मिरिवध्वजः ॥ २ ॥ अस्मिन्निपतितेभूमौहर्यृक्षाणांगणेश्वरे ॥ नष्टचंद्रमिवव्योमनव्य
राजतमेदिनी ॥ ३ ॥ भूमौनिपतितस्यापितस्यदेहंमहात्मनः ॥ नश्रीर्जहातिनप्राणानतेजोनपराक्रमः ॥ ४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीयेआदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे षोडशःसर्गः॥१६॥जब श्रीरामचन्द्रजीनें वाण मारा,तब वह रणशूर वालि उस वाणसे घा
यल हो कटे हुये वृक्षकी समान पृथ्वीपर गिर पडा ॥ १ ॥ उज्ज्वल सुवर्णके भूषण धारण किये हुये वालि डोरी छोड दिये हुये इंद्रध्वजकी समान गि
रकर अपने सब अंग पृथ्वीपर लुटाता हुआ ॥ २ ॥ जब वानर गणोंका राजा वालि पृथ्वीपर गिर पडा तब उसके राज्यकी भूमि चंद्रमा रहित आ
काशकी समान शोभाहीन होगई ॥ ३ ॥ यद्यपि वालि पृथ्वीपर गिर पडा, परन्तु उस महात्माके लक्ष्मी, तेज, प्राण और पराक्रम कुछ न गये॥४॥

कर्णने जब यह कहा तब राक्षस रावण उस्से हँसकर बोला ॥ ९ ॥ हेवत्स !युद्धविशारद ! हम निश्चय कहतेहैं कि महोदर रामचंद्रको देखकर डर गया होगा इसी कारणसे इसका युद्ध करनेंका अभिलाष नहींहोता ॥ १० ॥ हेकुम्भकर्ण ! क्या सुहृदतामें, क्या बलके प्रभावमें तुम्हारी समान अपना पुरुष हमारा कोईभी नहींहै, इस कारण तुम शत्रुलोगोंका वध साधन करनेंके लिये और विजय पानेंके अर्थ शीघ्र लंकापुरीसे बाहर चलो ॥ ११ ॥ हेशत्रुनाशी ! तुम घोर नींदमें मग्नथे, हमनें शत्रुको जीत लेनेहीके अर्थ तुमको जगवायाहै; इस समय राक्षस लोगोंपर घोर संकट पड़ा देखकर ॥ १२ ॥ फांसी हाथमें लिये यमराज जिस प्रकारसे दौड़तेहैं; उनकीही समान तुमभी शूल हाथमें धारण कर युद्धकी यात्रा करो । और

महोदरोयंरामात्तुपवित्रस्तौनसंशयः ॥ नहिरोचयतेतातयुद्धंयुद्धविशारद ॥ १० ॥ कश्चिन्मेत्वत्समोनास्तिसौहृदेनबलेनच ॥ गच्छशत्रुवधायत्वंकुंभकर्णजयायच ॥ ११ ॥ शयानःशत्रुनाशार्थंभवान्संबोधितोमया ॥ अयंहिकालःसुमहान्राक्षसानामरिंदम ॥ १२ ॥ संगच्छशूलमादायपाशहस्तइवांतकः ॥ वानरान्राजपुत्रौचभक्षयादित्यतेजसौ ॥ १३ ॥ समालोक्यतुतेरूपंविद्रविष्यंतिवानराः ॥ रामलक्ष्मणयोश्चापिहृदयेप्रस्फुटिष्यतः ॥ १४ ॥ एवमुक्त्वामहातेजाःकुंभकर्णमहाबलम् ॥ पुनर्जातमिवात्मानंमेनेराक्षसपुंगवः ॥ १५ ॥ कुंभकर्णबलाभिज्ञोजानंस्तस्यपराक्रमम् ॥ बभूवमुदितोराजाशशांकइवनिर्मलः ॥ १६ ॥ इत्येवमुक्तःसंहृष्टोनिर्जगाममहाबलः ॥ राज्ञस्तुवचनंश्रुत्वायोद्धुमुद्युक्तवांस्तदा ॥ १७ ॥

सूर्यकी समान प्रभावाले राम लक्ष्मणको मार कर पीछेसे वानरोंकोभी भक्षण कर लेना ॥ १३ ॥ हम जानतेहैं कि तुम्हारी भयंकर मूर्त्ति देखनें पर वानर लोग प्राणोंके डरसे भाग जायँगे, और राम लक्ष्मणकाभी हृदय विदीर्ण होजायगा ॥ १४ ॥ राक्षसश्रेष्ठ रावण महाबलवान् कुम्भकर्णसे यह कहकर जयकी आशासे यह समझाकि, मानो दूसरा जन्म हुआ ॥ १५ ॥ उस समय रावणका अंतःकरण पूर्णमासीके चंद्रमाकी समान निर्मल होगया, रावण कुम्भकर्णके बल विक्रमको जानताथा; इसलिये उसको युद्धके लिये तैयार देख इसके आनंदकी सीमा न रही ॥ १६ ॥ कुम्भकर्णभी राक्षसराज रावणके कहे हुए ऐसे वचन सुनकर परम सन्तुष्ट हुआ, और युद्धमें जानेंकी तैयारियें करनें लगा ॥ १७ ॥

जाय युद्धके लिये समयको देखनें लगा ॥ १७ ॥ सुग्रीवजीभी दृढ मुक्का बाँधकर दर्पमें भर हेमशाली वालिकी ओर गमन करनें लगे ॥१८॥ वा
लि रणपण्डित क्रोधसे लाल२ नेत्र किये सुग्रीवको महावेगसे आता हुआ देखकर बोला ॥ १९ ॥ यह देखो सब उंगलियोंको सकोड कर हमनें दृढ
रूपसे जो यह महामुष्टिका बाँधीहै हम इसको महा वेगसे तुम्हारे ऊपर चलामेंगे इसमें कोई संदेह नहींकि इसके लगतेही तुम्हारा प्राण निकल जायगा
जब वालिनें ऐसा कहा तब सुग्रीवजीभी उस्से क्रोधित होकर बोले कि देखा यह हमनें जो मुक्का बांधाहै यहभी तुम्हारे मस्तकपर पडकर प्राण लेहीलेगा
॥२०॥२१॥तब वालिनें अत्यन्त क्रोधित होकर वेगसे जाकर सुग्रीवजीके मुक्का मारा।उस मुक्केके लगनेंसे सुग्रीवजी झरनें सहित पर्वतकी समान रुधिर

श्लिष्टंमुष्टिंसमुद्यम्यसंरब्धतरमागतः ॥ सुग्रीवोपिसमुद्दिश्यवालिनंहेममालिनम् ॥ १८ ॥ तंवालीक्रोधताम्राक्षंसुग्री
वंरणकोविदम् ॥ आपतंतंमहावेगमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १९ ॥ एषमुष्टिर्महान्बद्धोगाढःसुनियतांगुलिः ॥ मयावेग
विमुक्तस्तेप्राणानादाययास्यति ॥ २० ॥ एवमुक्तस्तुसुग्रीवःक्रुद्धोवालिनमब्रवीत् ॥ तवचैषहरन्प्राणान्मुष्टिःपततु
मूर्धनि ॥ २१ ॥ ताडितस्तेनतंक्रुद्धःसमभिक्रम्यवेगतः ॥ अभवच्छोणितोद्गारीसापीडइवपर्वतः ॥ २२ ॥ सुग्रीवे
णतुनिःशंकंसालमुत्पाट्यतेजसा ॥ गात्रेष्वभिहतोवालीवज्रेणेवमहागिरिः ॥ २३ ॥ सतुवृक्षेणनिर्भग्नःसालताडनवि
ह्वलः ॥ गुरुभारभराक्रांतानौःससार्थेवसागरे ॥ २४ ॥ तौभीमबलविक्रांतौसुपर्णसमवेगितौ ॥ प्रयुद्धौघोरवपुषौचंद्र
सूर्याविवांबरे ॥ २५ ॥ परस्परममित्रघ्नौछिद्रान्वेषणतत्परौ ॥ ततोऽवर्धतवालीतुबलवीर्यसमन्वितः ॥ २६ ॥

उगलते २पृथ्वीपर गिरे॥२२॥फिर सुग्रीवजीनें झटपट उठकर अति तेजीसे निःशंकहो एक शालका वृक्ष उखाड वालिके मारा, जैसे इन्द्रजीनें वज्रसे
पर्वतोंको माराथा ॥ २३ ॥ उस वृक्षके लगनेंसे विह्वलहो वालि समुद्रके मध्य चलती बहुत बोझसे लदीहुई नावके समान चल विचल होनें
लगा ॥ २४ ॥वह भयंकर बल वीर्यशाली चन्द्रमा सूर्यकी समान, गरुडतुल्य वेगवान् घोरतरदेहधारी वालि और सुग्रीव महाघोर युद्ध करनें
लगे ॥ २५ ॥ परस्पर एक दूसरेका दोष ढूंढनेंमें तैयारहुये दोनों वीर परस्पर चोट चलानें लगे। लड़ते २ बलवीर्य युक्त वालि समरमें जय

फिर बाजू अंगूठी आदि श्रेष्ठ २ भूषण और चंद्रमाकी समान उज्ज्वल हार महात्मा कुंभकर्णको रावणने पहराया ॥ २६ ॥ कुंभकर्णके कानोंमें मनो हर दो कुंडल शोभायमान हुए, और उसके गलेमें अतिसुगन्धित शोभायमान माला रावणनें पहराई ॥ २७ ॥ बड़े कानवाला कुम्भकर्ण सुवर्णके बाजू, केयूर और वह दूसरे आभूषणोंसे भूषित होकर प्रदीप्त अग्निकी समान शोभायमान होने लगा ॥ २८ ॥ उसकी कमरमें काला तगड़ीका डोरा देखनेसे ऐसा जान पड़ताथा, मानो समुद्रसे अमृत मथन करनेंके समय सर्पद्वारा मन्दर पर्वत दृढरूपसे बँधा हुआहै ॥ २९ ॥ कुम्भकर्णनें सुवर्ण का बना हुआ बिजलीकी प्रभाके समान वर्म (बख्तर) धारण किया, वह तेजके प्रभावसे दमकरहाथा, बड़ा भारी था, अभेद्य था, इस बख्तरसे,

अंगदान्यंगुलीवेष्टान्वराण्याभरणानिच ॥ हारंचशशिसंकाशमाबबंधमहात्मनः ॥ २६ ॥ दिव्यानिचसुगंधीनिमाल्यदामानिरावणः ॥ गात्रेषुसज्जयामासश्रोत्रयोश्चास्यकुंडले ॥ २७ ॥ कांचनांगदकेयूरनिष्काभरणभूषितः ॥ कुंभकर्णोबृहत्कर्णःसुहुतोग्निरिवाबभौ ॥ २८ ॥ श्रोणीसूत्रेणमहतामेचकेनविराजता ॥ अमृतोत्पादनेनद्धोभुजंगेनेवमंदरः ॥ २९ ॥ सकांचनंभारसहंनिवातंविद्युत्प्रभंदीप्तमिवात्मभासा ॥ आबध्यमानःकवचंरराजसंध्याभ्रसंवीतइवाद्रिराजः ॥ ३० ॥ सर्वाभरणसर्वांगःशूलपाणिःसराक्षसः ॥ त्रिविक्रमकृतोत्साहोनारायणइवाबभौ ॥ ३१ ॥ भ्रातरंसंपरिष्वज्यकृत्वाचापिप्रदक्षिणम् ॥ प्रणम्यशिरसातस्मैप्रतस्थेसमहाबलः ॥ ३२ ॥ तमाशीर्भिःप्रशस्ताभिःप्रेषयामासरावणः ॥ शंखदुंदुभिनिर्घोषैःसैन्यैश्चापिवरायुधैः ॥ ३३ ॥ तंगजैश्चतुरंगैश्चस्यंदनैश्चांबुदस्वनैः ॥ अनुजग्मुर्महात्मानोरथिनोरथिनांवरम् ॥ ३४ ॥

सन्ध्या समयके मेघसे रँगे हुए हिमालय पर्वतकी समान कुम्भकर्णनें अपूर्व शोभा धारणकी ॥ ३० ॥ कुंभकर्ण समस्त भूषणोंसे भूषित और हाथमें बड़ा भारी शूल लेकर ऐसा ज्ञात हुआ, कि मानों त्रिविक्रमसे विष्णुजी, स्वर्ग मृत्यु, और पाताल लोकके तापनेंको तैयार हुएहैं ॥ ३१ ॥ महाबली कुम्भकर्ण रावणसे भलीभांति मिल भेंटकर उसकी प्रदक्षिणा कर प्रणाम करकै युद्ध करनेंके लिये चला ॥ ३२ ॥ राक्षसराज रावणनें उस समय उसको मंगलसूचक आशीर्वाद दिया, उस कालमें शंख व नगाड़ोंका कठोर शब्द उत्पन्न हुआ ॥ ३३ ॥ श्रेष्ठ हथियार लगाये हुए सैना चली

जाय युद्धके लिये समयको देखनें लगा ॥ १७ ॥ सुग्रीवजीभी दृढ मुक्का बाँधकर दर्पमें भर हेमशाली वालिकी ओर गमन करनें लगे ॥१८॥ वालि रणपण्डित क्रोधसे लाल२ नेत्र किये सुग्रीवको महावेगसे आता हुआ देखकर बोला ॥ १९ ॥ यह देखो सब उंगलियोंको सकोड कर हमनें दृढ रूपसे जो यह महामुष्टिका बाँधीहै हम इसको महा वेगसे तुम्हारे ऊपर चलामेंगे इसमें कोई संदेह नहींकि इसके लगतेही तुम्हारा प्राण निकल जायगा जब वालिनें ऐसा कहा तब सुग्रीवजीभी उस्से क्रोधित होकर बोले कि देखो यह हमनें जो मुक्का बांधाहै यहभी तुम्हारे मस्तकपर पडकर प्राण लेहीलेगा ॥२०॥२१॥तब वालिनें अत्यन्त क्रोधित होकर वेगसे जाकर सुग्रीवजीके मुक्का मारा।उस मुक्केके लगनेंसे सुग्रीवजी झरनें सहित पर्वतकी समान रुधिर

श्लिष्टंमुष्टिंसमुद्यम्यसंरब्धतरमागतः ॥ सुग्रीवोपिसमुद्दिश्यवालिनंहेममालिनम् ॥ १८ ॥ तंवालीक्रोधताम्राक्षंसुग्रीवंरणकोविदम् ॥ आपतंतंमहावेगमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १९ ॥ एषमुष्टिर्महान्बद्धोगाढःसुनियतांगुलिः ॥ मयावेगविमुक्तस्तेप्राणानादाययास्यति ॥ २० ॥ एवमुक्तस्तुसुग्रीवःक्रुद्धोवालिनमब्रवीत् ॥ तवचैषहरन्प्राणान्मुष्टिःपततुमूर्धनि ॥ २१ ॥ ताडितस्तेनतंक्रुद्धःसमभिक्रम्यवेगतः ॥ अभवच्छोणितोद्गारीसापीडइवपर्वतः ॥ २२ ॥ सुग्रीवेणतुनिःशंकंसालमुत्पाट्यतेजसा ॥ गात्रेष्वभिहतोवालीवज्रेणेवमहागिरिः ॥ २३ ॥ सतुवृक्षेणनिर्भग्नःसालताडनविह्वलः ॥ गुरुभारभराक्रांतानौःससार्थेवसागरे ॥ २४ ॥ तौभीमबलविक्रांतौसुपर्णसमवेगितौ ॥ प्रयुद्धौघोरवपुषौचंद्रसूर्याविवांबरे ॥ २५ ॥ परस्परममित्रघ्नौछिद्रान्वेषणतत्परौ ॥ ततोऽवर्धतवालीतुबलवीर्यसमन्वितः ॥ २६ ॥

उगलते २पृथ्वीपर गिरे॥२२॥फिर सुग्रीवजीनें झटपट उठकर अति तेजीसे निःशंकहो एक शालका वृक्ष उखाड वालिके मारा, जैसे इन्द्रजीनें वज्रसे पर्वतोंको माराथा ॥ २३ ॥ उस वृक्षके लगनेंसे विह्वलहो वालि समुद्रके मध्य चलती बहुत बोझसे लदीहुई नावके समान चल विचल होनें लगा ॥ २४ ॥वह भयंकर बल वीर्यशाली चन्द्रमा सूर्यकी समान, गरुडतुल्य वेगवान् घोरतरदेहधारी वालि और सुग्रीव महाघोर युद्ध करनें लगे ॥ २५ ॥ परस्पर एक दूसरेका दोष ढूंढनेंमें तैयारहुये दोनों वीर परस्पर चोट चलानें लगे। लड़ते २ बलवीर्य युक्त वालि समरमें जय

करके अपनी सैनासे मृदु हँसकर बोला ॥ ४२ ॥ हे राक्षसगण! तुम लोग वानरोंके यूथ पतियोंको देखते हो हम इनकों इस प्रकारसे भस्म कर डालेंगे कि जैसे अग्नि पतंगको भस्म कर देतीहै ॥ ४३ ॥ अथवा वनचारी वानरलोगोंका अपराध ही क्या है वह तो हम समान पुरुषोंकी पुरी और फुलवाडियोंके ही भूषणहैं ॥ ४४ ॥ हमारे विचारमें रामचंद्र ही लंका घेरनेकी मूल हैं इसलिये आज रामचंद्र व लक्ष्मणको मारडालनेसे और सब अपने आपही से मर जांयगे ॥ ४५ ॥ कुंभकर्ण यह बात कह ही रहाथा कि इतनेंमें ही महाबलवान योद्धा लोग समुद्रको कंपायमान ही करने से मानो घोर सिंहनाद करने लगे ॥ ४६ ॥ महा बुद्धिमान कुंभकर्ण युद्धके लिये निकल रहाथा कि इतनेहीमे चारों ओर अति घोर दुर्नि

अद्यवानरमुख्यानांतानियूथानिभागशः ॥ निर्दहिष्यामिसंक्रुद्धःपतंगानिवपावकः ॥ ४३ ॥ नापराध्यंतिमेकामंवा
नरावनचारिणः ॥ जातिरस्मद्विधानांसापुरोद्यानविभूषणम् ॥ ४४ ॥ पुररोधस्यमूलंतुराघवःसहलक्ष्मणः ॥ ह
तेतस्मिन्हतंसर्वंतंवधिष्यामिसंयुगे ॥ ४५ ॥ एवंतस्यब्रुवाणस्यकुंभकर्णस्यरक्षसः ॥ नादंचक्रुर्महाघोरंकंपयंतइवार्णव
म् ॥ ४६ ॥ तस्यनिष्पततस्तूर्णंकुंभकर्णस्यधीमतः ॥ बभूवुर्घोररूपाणिनिमित्तानिसमंततः ॥ ४७ ॥ उल्काशनियुतामेघाब
भूवुर्गर्दभारुणाः ॥ ससागरवनाचैववसुधासमकंपत ॥ ४८ ॥ घोररूपाःशिवानेदुःसज्वालकवलैर्मुखैः ॥ मंडलान्यपसव्या
निबबंधुश्चविहंगमाः ॥ ४९ ॥ निष्पपातचगृध्रोस्यशूलेवैपथिगच्छतः ॥ प्रास्फुरन्नयनंचास्यसव्योबाहुरकंपत ॥
॥ ५० ॥ निष्पपाततदाचोल्काज्वलंतीभीमनिःस्वना ॥ आदित्योनिष्प्रभश्चासीन्नवातिचसुखोनिलः ॥ ५१ ॥

मित्त होनें लगे ॥ ४७ ॥ उल्का व वज्रसे युक्त मेघ गण गर्दभकी समान अरुण रंग होगये और समुद्र वनके सहित पृथ्वी कंपायमान होने लगी ॥ ४८ ॥ घोर रूप शृगालियें अँगारोंको मुखमें दिये शब्द करने लगीं और पक्षी गण अशुभ मंडल बांधकर दहिनी ओर चलने लगे ॥ ४९ ॥ जबकि कुंभकर्ण मार्ग चल रहाथा तब उस समय उसके शूल पर गिद्ध बैठगया और उसका बांया नेत्र फड़ककर बांया हाथभी कंपायमान होने लगा ॥ ५० ॥ सन्मुख बडी भारी भयंकर जलती हुई उल्का गिर पडी सूर्य भगवान प्रभाहीन होगये और जिस्से सुख प्राप्त हो सकै ऐसी वायु भी नहीं चली ॥ ५१ ॥

राजा महा तेजमान जाम्बवान॥२६॥दशकोटि ऋक्षोंकी सेनाले सुग्रीवजीके वशमें आया रुमण नामक तेजस्वी पराक्रमी वानर पति बहुतसे वानरोंके साथ ॥ २७ ॥ और महाबलवान् सौ करोड वानर सैना संग लिये आया तिसके पीछे लक्ष २ करोड २ वानर संग लिये ॥ २८ ॥ महा पराक्रम करने वाला गन्धमादन नामक यूथप आया तिसके पीछे हजार पद्म और हजार शंख कपियोंकी सेनाको साथ लिये ॥ २९ ॥ अपने पिता वालिके तुल्य पराक्रम करनेवाले अतिबुद्धिमान वानरसेनापतियोंके शिरमौर युवराज अंगदजी आये फिर तारागणोंके समान प्रकाशमान अतिभयं कर पराक्रम करनेवाले वानरोंको संग लिये तार नाम यूथनाथ आया ॥ ३० ॥ उस तारके साथ अति प्रचंड पांच कोटि वानर सेना थी

कोटिभिर्दशभिर्व्याप्तःसुग्रीवस्यवशेस्थितः ॥ रुमणोनामतेजस्वीविक्रांतैर्वानरैर्वृतः ॥ २७ ॥ आगतोबलवांस्तूर्णं कोटीशतसमावृतः ॥ ततःकोटिसहस्राणांसहस्रेणशतेनच ॥ २८ ॥ पृष्ठतोऽनुगतःप्राप्तोहरिभिर्गंधमादनः ॥ ततः पद्मसहस्रेणवृतःशंखशतेनच ॥ २९ ॥ युवराजोंगदःप्राप्तःपितुस्तुल्यपराक्रमः ॥ ततस्ताराद्युतिस्तारोहरिभिर्भीम विक्रमैः ॥ ३० ॥ पंचभिर्हरिकोटीभिर्दूरतःपर्यदृश्यत ॥ इंद्रजानुःकविर्वीरोयूथपःप्रत्यदृश्यत ॥ ३१ ॥ एकादशा नांकोटीनामीश्वरस्तैश्चसंवृतः ॥ ततोरंभस्त्वनुप्राप्तस्तरुणादित्यसन्निभः ॥ ३२ ॥ अयुतेनवृतश्चैवसहस्रेणशतेनच ॥ ततोयूथपतिर्वीरोदुर्मुखोनामवानरः ॥ ३३ ॥ प्रत्यदृश्यतकोटीभ्यांद्वाभ्यांपरिवृतोबली ॥ कैलासशिखराकारैर्वानरै र्भीमविक्रमैः॥ ३४ ॥ वृतःकोटिसहस्रेणहनुमान्प्रत्यदृश्यत ॥ नलश्चापिमहावीर्यःसंवृतोद्रुमवासिभिः ॥ ३५ ॥ को टीशतेनसंप्राप्तःसहस्रेणशतेनच ॥ ततोदरीमुखःश्रीमान्कोटिभिर्दशभिर्वृतः ॥ ३६ ॥

तदनन्तर इन्द्रजानु नामक महावीर यूथनाथ ॥ ३१ ॥ ग्यारह कोटि वानरोंको संगलिये हुये दिखाई दिया फिर प्रभातकालके बालसूर्यके वर्णकी समान रंभ नामक वानर यूथपति ॥३२॥ दशहजार एक शत वानरोंकी सेनाको संग लिये हुये सुग्रीवजीके निकट उपस्थित हुआ; इसके पीछे महावीर यूथपति दुर्मुख नामक वानर ॥३३ ॥ महाबली दोकरोड वानरोंकी सेनाको संग लिये हुये दिखाई दिया ॥ फिर कैलास पर्वतके शिखरकी तुल्य आकार वाले भयंकर पराक्रमकारी वानरों की ॥ ३४ ॥ हजार करोड सेना संग लिये आते हुये हनुमानजी दिखाई दिये ॥ फिर महा वीर्यवान् नल नामक यूथनाथ वृक्षोंपर रहनेवाले ॥ ३५ ॥ शत कोटि एक सहस्र येक वानरों की सेना संग लिये हुये आया फिर श्रीमान दधि

वह कुंभकर्ण समुद्रको कंपायमान पर्वतोंको चलायमान, और वज्रको पराजित करके घोर सिंहनाद करनें लगा ॥ २ ॥ वानर गण, इन्द्र, यम और वरुणसेभी न मारे जानें योग्य भयंकर नेत्रवाले उस राक्षसको देखकर डरके मारे भागनें लगे ॥३॥ तव वालिके पुत्र अंगदजी वानरोंको भागते हुए देखकर नल नील गवाक्ष और कुमुदसे बोले॥ ४ ॥ यह क्या! और साधारण वानर लोगोंकी समान तुम लोगभी भयके मारे विह्वलहो कहांको भागे जाते हो? क्या तुम अपने२ परिवार और अपने २ बड़े भारी वीर्यकों भूलगये॥५॥ हेसौम्यस्वभाव वालो ! भाग करके प्राणरक्षा करनेंकी क्या आवश्य

ननादचमहानादंसमुद्रमभिनादयन् ॥ विजयन्निवनिर्घातान्विधमन्निवपर्वतान् ॥ २ ॥ तमवध्यंमघवतायमेनवरुणेनवा ॥ प्रेक्ष्यभीमाक्षमायांतंवानराविप्रदुद्रुवुः ॥ ३ ॥ तांस्तुविप्रद्रुतान्दृष्ट्वाराजपुत्रोंगदोब्रवीत् ॥ नलंनीलंगवाक्षंचकुमुदंचमहाबलम् ॥ ४ ॥ आत्मनस्तानिविस्मृत्यवीर्याण्यभिजनानिच ॥ क्वगच्छतभयत्रस्ताःप्राकृताहरयोयथा ॥ ५ ॥ साधुसौम्यानिवर्तध्वंकिंप्राणान्परिरक्षथ ॥ नालंयुद्धायवैरक्षोमहतीयंविभीषिका ॥ ६ ॥ महतीमुत्थितामेनांराक्षसानांविभीषिकाम् ॥ विक्रमाद्विधमिष्यामोनिवर्तध्वंप्लवंगमाः ॥ ७ ॥ कृच्छ्रेणतुसमाश्वस्यसंगम्यचततस्ततः ॥ वृक्षान्गृहीत्वाहरयःसंप्रतस्थूरणाजिरे ॥ ८ ॥ तेनिवर्त्यतुसंरब्धाःकुंभकर्णवनौकसः ॥ निर्जघ्नुःपरमक्रुद्धाःसमदाइवकुंजराः ॥ ९ ॥

कताहै? जो कुछभीहो इस समय तुम लौट आओ,जिसको देखकर तुम लोग भय करतेहो यह तो केवल धोखाही धोखाहै, इसमें युद्ध करनेकी सामर्थ्य नहींहै ॥ ६ ॥ हेवानर लोगो ! तुम सबके लौट आनेंपर हम सब एकत्रहो मिलकर विक्रम प्रकाश करके राक्षसोंके उठाये हुए बड़े भारी धोखेको नाश कर देंगे ॥ ७ ॥ अंगदजीके ऐसे वचन सुनकर वानरगण धीरज बांध बड़ी कठिनाईसे लौटे और वृक्ष पर्वतादि ग्रहण करके युद्ध करनेंके लिये तैयार हुए ॥ ८ ॥ मदमाते हाथियोंकी समान वह वानर गणोंनें उत्साह सहित लौटतेही क्रोधमें भरकर कुंभकर्णके ऊपर प्रहार करनें लगे ॥ ९ ॥

फिर कपिराज सुग्रीवजी; नरश्रेष्ठ परवलविनाशी श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ १ ॥ कि हमारे राज्यमें रहनेंवाले इन्द्रकी समान बलवान् कामचारी वानरयूथप लोग यहां पहुंचकर अपनीर सेनाओंमें टिके हुयेहैं॥२॥ यह सब बहुत स्थानोंमें अपना पराक्रम प्रगट कियेहैं; ऐसे भयंकर विक्रमकारी, दैत्य दानवोंकी तुल्य घोररूप बलवान् समस्त वानरोंकी सेना आय पहुँचीहै ॥ ३॥ यह सब कर्म करनेंमें विख्यात, अपने वीर्यमें विख्यात बडे बलवान् युद्धमें कभी थकतेही नहीं,पराक्रम करनेंमें विख्यात अर्थका निश्चय करनेमें स्थिर प्रतिज्ञावान॥४॥बडे श्रेष्ठ, समुद्रके तीरपर बसनें वाले, और अनेक पर्वतोंके वासी,आपके दास यह करोड २ वानर गण यहां पर आगयेहैं ॥ ५ ॥ हे शत्रुनाशी ! वह सब वानर देशोंके पालनेंवाले स्वामीके

अथराजासमृद्धार्थःसुग्रीवःप्लवगेश्वरः॥उवाचनरशार्दूलंराममंपरबलार्दनम्॥१ ॥आगताविनिविष्टाश्चबलिनःकामचारिणः॥वानरेंद्रामहेंद्राभायेमद्विषयवासिनः॥२॥तइमेबहुविक्रांतैर्बलिभिर्भीमविक्रमैः॥आगतावानराघोरादैत्यदानवसन्निभाः ॥ ३ ॥ ख्यातकर्मापदानाश्चबलवंतोजितक्लमाः ॥ पराक्रमेषुविख्याताव्यवसायेषुचोत्तमाः ॥ ४ ॥ पृथिव्यंबुचरारामनानानगनिवासिनः ॥ कोटचोघाश्चइमेप्राप्तावानरास्तवकिंकराः ॥ ५ ॥ निदेशवर्तिनःसर्वेसर्वेगुरुहितेस्थिताः ॥ अभिप्रेतमनुष्ठातुंतवशक्ष्यंत्यरिंदम ॥ ६ ॥ तइमेबहुसाहस्रैरनेकैर्बहुविक्रमैः ॥ आगतावानराघोरादैत्यदानवसन्निभाः ॥ ७ ॥ यन्मन्यसेनरव्याघ्रप्राप्तकालंतदुच्यताम् ॥ त्वत्सैन्यंत्वद्वशेयुक्तमाज्ञापयितुमर्हसि ॥ ८ ॥ काममेवमिदंकार्यंविदितंममतत्त्वतः ॥ तथापितुयथायुक्तमाज्ञापयितुमर्हसि ॥ ९ ॥ तथाब्रुवाणंसुग्रीवंरामोदशरथात्मजः ॥ बाहुभ्यांसंपरिष्वज्यइदंवचनमब्रवीत् ॥ १० ॥

हित कार्यमें रत आपके इच्छानुसार कार्यको साधन करनेंमें निःसन्देह समर्थ होंगे ॥ ६ ॥ वही यह हजार २ कोटि २ बहुत स्थानोंमें अपने पराक्रमको प्रकाश किये घोररूपी, दैत्य दानवोंकी समान वानरगण यहां पर आगयेहैं॥७ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! अब समय उपस्थितहै; अब जैसा आपका विचारहो वह कहिये, यह सब आपकी सेना आपके वशमेंहै; इस समय जो ठीक और उचित आज्ञाहो वह इनको दीजिये ॥ ८ ॥ हम इन लोगोंका ठीक बल जानतेहैं; तथापि आप इन सबकों युक्तिसे युक्तहो वही आज्ञा दीजिये ॥ ९ ॥ जब सुग्रीवजीनें इस प्रकार कहा तब दशरथ कुमारश्रीरा

हे वानर गण ! तुम रणभूमिको छोड़कर भागे जातेहो परन्तु हम सारी पृथ्वीपर भी तुम्हारे कहीं रहनेंका स्थान नहीं देखते कि तुम वहां भयरहित होकर बच जाओ और अपने २ प्राणोंकी रक्षा कर सको, इसलिये शीघ्र लौट आओ; इस प्रकारकी प्राण रक्षा करनेंसे क्या होगा; क्योंकि जहां रहोगे वहां सुग्रीव तुम्हें मरवा डालेंगे ॥ १९ ॥ हे अतुल गतिवान् पौरुषयुक्त वानरो! तुम यदि अपने आयुधोंका त्याग करके इस प्रकारसे भाग अपने प्राणोंकी रक्षा करोगे; तब तुम्हारी स्त्रियें जो तुम्हारा उपहास करेंगी; वह उनका हँसना ही मृत्युकी समान होजायगा ॥ २० ॥ आश्चर्य! तुम सबने बडे २ कुलोंमें जन्म ग्रहण कियाहै सो तुम साधारण वानरोंकी समान भयभीत होकर कहां भागे जातेहो ? तुम लोग जबकि अपना

भग्नानांवोनपश्यामिपरिक्रम्यमहीमिमाम् ॥ स्थानंसर्वेनिवर्तध्वंकिंप्राणान्परिरक्षथ ॥ १९ ॥ निरायुधानां क्रमतामसंगगतिपौरुषाः ॥ दाराह्युपहसिष्यंतिसवैघातःसुजीवताम् ॥ २० ॥ कुलेषुजाताःसर्वेस्मिन्विस्तीर्णेषुमहत्सुच ॥ क्वगच्छतभयत्रस्ताःप्राकृताहरयोयथा ॥ अनार्याःखलुयद्भीतास्त्यक्त्वावीर्यंप्रधावत ॥ २१ ॥ विकत्थनानिवायानिभवद्भिर्जनसंसदि ॥ तानिवःक्वनुयातानिसोदग्राणिहतानिच ॥ २२ ॥ भीरोःप्रवादाःश्रूयंतेयस्तुजीवतिधिक्कृतः ॥ मार्गःसत्पुरुषैर्जुष्टःसेव्यतांत्यज्यतांभयम् ॥ २३ ॥ शयामहेवानिहताःपृथिव्यामल्पजीविताः ॥ प्राप्नुयामोब्रह्मलोकंदुष्प्रापंचकुयोधिभिः ॥ २४ ॥ अवाप्नुयामःकीर्तिंवानिहत्वाशत्रुमाहवे ॥ निहतावीरलोकस्यभोक्ष्यामोवसुवानराः ॥ २५ ॥

विपुल विक्रम भूलकर भीत हुए हो तब तुम अति नीच और राजद्रोही हो ॥ २१ ॥ अपनी २ उग्रता दिखलानें, और वानर राज सुग्रीवका हित साधन करनेंके लिये तुमनें उस समय जो बड़ी २ बातें मारी थीं वह समस्त बातें कहां अन्तर्ध्यान होगई ॥ २२ ॥ जिसको सत्पुरुष लोग धिक्कार दिया करते हैं, उस भीरुके नरकमें गिरने आदिके प्रवाद सुनाई देतेहैं इस कारण सत्पुरुषोंके सेवन करनें योग्य मार्गमें चलकर भयको त्यागदो; क्यों भय खातेहो? ॥ २३ ॥ यदि आयुके पूरा होजानेसे हम सब शत्रुओंसे नाशको प्राप्त होकर रणभूमिमें दैवात् पृथ्वीपर गिरें तौ अवीर गणोंको प्राप्त होंनेके अयोग्य ब्रह्म लोकको हम प्राप्त करेंगे ॥ २४ ॥ और वीर गणोंके सुखसे भोग करनेंके धनको प्राप्त करेंगे, और जो समरमें शत्रु

ढूँडनेकेसमय सब पर्वतोंकी कन्दरा ओंमें दुर्गम स्थानोंमें, सब बनोंमें और नदियोंमें; रमणीय गंगा सरयू कौशिकी ॥ २० ॥ कालिन्दी, मनोहर यमुनाऔर यमुनाके समीप वाले सब पर्वतोंको, और सरस्वती,सिन्धु, मणि तुल्यस्वच्छ जल वाला शोणभद्र॥ २१ ॥मही और शैल कानन सहित काल मही औरभी समस्त नदियोंमें और ब्रह्ममाल विदेह, मालव, काशिराज, और कौशलदेश ॥ २२॥ मागध, महाग्राम. पुण्ड्र, अंग, इन समस्त देशोंमें और कोषाकार रेशमकेकीडे जहां होतेहैं, व चांदीकी खानि वालीभूमिमें जहाँ खानोंसे चांदी निकलतीहै ॥ २३ ॥ उन सब स्थानोंमें तुम लोग सीताजी और रावणका स्थान खोजते हुये, जहां कहींभी स्त्री रामचंद्रजीकी भार्या और दशरथजीकी पुत्र वधू जानकीजीहों देखना ॥ २४ ॥

मार्गध्वंगिरिदुर्गेषुवनेषुचनदीषुच॥ नदींभागीरथींरम्यांसरयूंकौशिकींतथा॥२०॥कालिंदींयमुनांरम्यांयामुनंचमहागिरिम्॥ सरस्वतींचसिंधुंचशोणंमणिनिभोदकम्॥ २१ ॥ महींकालमहींचापिशैलकाननशोभिताम् ॥ ब्रह्ममालान्विदेहांश्चमालवान्काशिकोसलान् ॥ २२ ॥ मागधांश्चमहाग्रामान्पुंड्रांस्त्वंगांस्तथैवच ॥ भूमिंचकोशकाराणांभूमिंचरजताकराम् ॥ २३ ॥ सर्वंचतद्विचेतव्यंमृगयद्भिस्ततस्ततः ॥ रामस्यदयितांभार्यांसीतांदशरथस्नुषाम् ॥ २४ ॥ समुद्रमवगाढांश्चपर्वतान्पत्तनानिच॥मंदरस्यचयेकोटिंसंश्रिताःकेचिदालयाः ॥ २५॥ कर्णप्रावरणाश्चैवतथाचाप्योष्ठकर्णकाः॥घोरलोहमुखाश्चैवजवनाश्चैकपादकाः॥२६॥अक्षयाबलवंतश्चतथैवपुरुषादकाः॥किरातास्तीक्ष्णचूडाश्चहेमाभाःप्रियदर्शनाः॥२७॥ आममीनाशनाश्चापिकिराताद्वीपवासिनः॥अंतर्जलचराघोरानरव्याघ्राइतिस्मृताः॥२८॥

और जो जो पर्वत और नगर समुद्रके टापुओंमें हों, और मन्दराचल पर्वतके किनारोंपर जो देश वसते हों, उन सबमें तुम भली प्रकार ढूँडना भालना ॥ २५ ॥ जो कानों तक वस्त्र लपेटेहों और जिनके कान अधरपर्यन्तहों, । और जिनका घोर लोह सम मुखहो, बडे वेगसे चलनें वाले व एक पादक लोग जो टापुओंमेंहैं ॥ २६ ॥ और अक्ष संतान बलवान्राक्षस, किरात तीक्षण चूडा वाले बडे बाल वाले सुवर्ण समान दीप्तिमान्, प्रियदर्शन ॥ २७ ॥ और जिन किरात देशोंमें कच्ची मछलियें भक्षणकी जातीहैं, ऐसे किरात गण; नीचेके भागमें मनुष्योंकी समान आकार

होना मनमें ठान युद्ध करनेंका अभिलाष करते हुए ॥ १ ॥ तिसके पीछे बलवान अंगदजीके वचनोंसे वह सब प्रकारसे युद्ध करनेंको आरूढ हुए और उन लोगोंका वीर्य प्रदीप्त होनेसे वह सब फिर पराक्रम प्रकाश करनें लगे ॥ २ ॥ वह समस्त वानरगण अपने प्राणोंकी आशा छोड़कर मरणमें कृत निश्चयहो कठोर युद्धका आरंभ करतेहुए ॥ ३ ॥ तिसके उपरान्त वह बड़े शरीर वाले वानर गण, वृक्ष और पर्वतोंके शृङ्ग उठायकर कुम्भ कर्णके सन्मुख धाये ॥ ४ ॥ परन्तु वीर्यवान महाकाय कुम्भकर्ण क्रोधमें भर गदा उठाय शत्रुओंको धर्षित करके चारों ओरसे उनके

समुदीरितवीर्यास्तेसमारोपितविक्रमाः ॥ पर्यवस्थापितावाक्यैरंगदेनबलीयसा ॥ २ ॥ प्रयाताश्चगताहर्षंमरणेकृत
निश्चयाः ॥ चक्रुःसुतुमुलंयुद्धंवानरास्त्यक्तजीविताः ॥ ३ ॥ अथवृक्षान्महाकायाःसानूनिसुमहांतिच ॥ वानरास्तूर्ण
मुद्यम्यकुंभकर्णमभिद्रवन् ॥ ४ ॥ कुंभकर्णःसुसंक्रुद्धोगदामुद्यम्यवीर्यवान् ॥ धर्षयन्समहाकायःसमंताद्व्यक्षिपद्रिपू
न् ॥ ५ ॥ शतानिसप्तचाष्टौचसहस्राणिचवानराः ॥ प्रकीर्णाःशेरतेभूमौकुंभकर्णेनताडिताः ॥ ६ ॥ षोडशाष्टौचदश
चविंशत्त्रिंशत्तथैवच ॥ परिक्षिप्यचबाहुभ्यांखादन्सपरिधावति ॥ भक्षयन्भृशसंक्रुद्धोगरुडःपन्नगानिव ॥ ७ ॥ कृच्छ्रे
णचसमाश्वस्ताःसंगम्यचततस्ततः ॥ वृक्षाद्रिहस्ताहरयस्तस्थुःसंग्राममूर्धनि ॥८॥ ततःपर्वतमुत्पाट्यद्विविदःप्लवग
र्षभः ॥ दुद्रावगिरिशृंगाभंविलंबइवतोयदः ॥ ९ ॥

ऊपर प्रहार करनें लगा ॥ ५ ॥ उस समय असंख्य वानरवीर कुम्भकर्णके प्रहारसे ताडितहो अपनी देह पृथ्वीपर पसारकर सोगये ॥ ६ ॥ जिस प्रकार गरुडजी सर्पोंको भक्षण करतेहैं वैसेही अत्यन्त क्रोधित हुआ कुम्भकर्ण, एक २ वारमें सोलह अठारह, और वीस तीसतक वानरोंको अपनी बांहोंसे पकडकर मुखमें डालकर खाय जाताथा ॥ ७ ॥ वानर लोगभी बड़े कष्टसे सावधान चित्तहो इकट्ठे हुए और वृक्ष व पर्वतोंको हाथमें ग्रहणकर रणभूमिमें विराजमान होंने लगे ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त लंबमान वादलकी समान वानरश्रेष्ठ द्विविद एक पर्वत उखाड़के पर्वता

इसलिये तिस समयमें मेघोंके समान गर्जते और बडे २ सर्पोंसे सेवितहोनेंके कारण पार जानेंके अयोग्य उस समुद्रमें सुघाट पर उतरना ॥ ३८ ॥
जब इसके पार होजाओगे, तब लाल रंगके जलसे भरे भयंकर लोहित नामकसागर पर जाकर वहां एक बडा भारी शाल्मलीका वृक्ष देखोगे * ॥ ३९ ॥
वहांपर पक्षीनाथ गरुडजीका, कैलाश पर्वतकी समान अनेक रत्नोंसे भूषित विश्वकर्माका बनाया हुआ गृह विराजमानहै ॥ ४० ॥ वहांपर सुरा समुद्रके
पर्वतोंके शृंगोंपर पर्वत तुल्य भयंकर देह धारी, नाना रूपी, भयावह, मंदेह नाम वाले राक्षस गण नीचे मुख किये लटके रहते हैं ॥ ४१ ॥
यह राक्षस सूर्यके उदय होनेंपर उनसे युद्ध करनेंको आकर सूर्यके तेजसे तीनों वर्णोंके दिये हुये सन्ध्या समयके जलसे घायल होकर समुद्रके

तंकालमेघप्रतिमंमहोरगनिषेवितम् ॥ अभिगम्यमहानादंतीर्थेनैवमहोदधिम् ॥ ३८ ॥ ततोरक्तजलंभीमंलोहितं
नामसागरम् ॥ गत्वाप्रेक्ष्यथतांचैवबृहतींकूटशाल्मलीम् ॥ ३९ ॥ गृहंचवैनतेयस्यनानारत्नविभूषितम् ॥ तत्रकैलाससं
काशंविहितंविश्वकर्मणा ॥ ४० ॥ तत्रशैलनिभाभीमामंदेहानामराक्षसाः ॥ शैलशृंगेषुलंबंतेनानारूपाभयावहाः ॥ ४१ ॥
तेपतंतिजलेनित्यंसूर्यस्योदयनंप्रति ॥ अभितप्ताःस्मसूर्येणलंबंतेस्मपुनःपुनः ॥ ४२ ॥ निहताब्रह्मतेजोभिरहन्यहनि
राक्षसाः ॥ ततःपांडुरमेघाभंक्षीरोदंनामसागरम् ॥ ४३ ॥ गत्वाद्रक्ष्यथदुर्धर्षामुक्ताहारमिवोर्मिभिः ॥ तस्यमध्ये
महाञ्छ्वेतोऋषभोनामपर्वतः ॥ ४४ ॥ दिव्यगंधैःकुसुमितैराचितैश्चनगैर्वृतः ॥ सरश्चराजतैःपद्मैर्ज्वलितैर्हैमकेसरैः ॥ ४५ ॥

जलमें गिर पडते हैं; और फिर जीवित होकर इन पर्वतके कँगूरोंपर लटकनें लगते हैं ॥ ४२ ॥ इन राक्षसोंको सन्ध्याके समय प्रतिदिन ब्राह्मण
लोग मारते हैं; उनके मारनेंसे सूर्य रूपी भगवान प्रसन्न हो जाते हैं, इससे आगे बढकर उजले बादरकी समान क्षीर सागर देखोगे ॥ ४३ ॥ यह क्षीर
सागर अपनी लहरोंसे ऐसा शोभायमान हो रहा है; मानों मोतियोंका हार पहर रहा हो; उस क्षीर सागरके मध्य में तुम अति श्वेत ऋषभ नामक प
र्वत देखोगे ॥ ४४ ॥ इस पर्वतके ऊपर सुवासित पुष्प युक्त अनेक प्रकारके वृक्ष लगे हैं और वहीं पर एक तलावभी बडा उत्तम है जिसमें अनेक

* इस्से शाल्मली द्वीपका अनुमान होताहै ।

इन्द्रकी दी हुई अति उत्तम रत्नभूषित सुवर्णकी माला, उस वानरश्रेष्ठके प्राण, तेज, और देह लक्ष्मीको धारण किये रही ॥ ५ ॥ वानरराज उस सुवर्णकी मालासे संध्याकालीन जलधरकी समान शोभा धारण करता हुआ ॥६॥ यद्यपि वालि गिर पडा, परंतु उस समयभी ऐसा शोभित होताथा कि मानों लक्ष्मी, माला, देह,और मर्म घाती शर इन तीन रूपोंमें प्रगटहो शोभायमान होरहा हैं॥७॥श्रीरामचंद्रजीके धनुषसे छूटा हुआ स्वर्गका साधक वह बाण उस वीर वालिको परम गतिका देनेंवाला हुआ ॥८॥ युद्धस्थलमें शिखारहित अग्निकी समान गिरे पुण्य क्षय होनेंपर देवलोकसे खसे यया

शक्रदत्तावरामालाकांचनीरत्नभूषिता ॥ दधारहरिमुख्यस्यप्राणांस्तेजःश्रियंचसा ॥ ५ ॥ सतयामालयावीरोहैमयाह
रियूथपः ॥ संध्यानुगतपर्यंतःपयोधरइवाभवत् ॥ ६ ॥ तस्यमालाचदेहश्चमर्मघातीचयःशरः ॥ त्रिधेवरचितालक्ष्मीः
पतितस्यापिशोभते ॥ ७ ॥ तदस्त्रंतस्यवीरस्यस्वर्गमार्गप्रभावनम् ॥ रामबाणासनक्षिप्तमावहत्परमांगतिम् ॥ ८ ॥
तंतथापतितंसंख्येगतार्चिषमिवानलम् ॥ ययातिमिवपुण्यांतेदेवलोकादिहच्युतम् ॥ ९ ॥ आदित्यमिवकालेनयु
गांतेभुविपातितम् ॥ महेंद्रमिवदुर्धर्षमुपेंद्रमिवदुःसहाम् ॥ १० ॥ महेंद्रपुत्रंपतितंवालिनंहेममालिनम् ॥ व्यूढोरस्कं
महाबाहुंदीप्तास्यंहरिलोचनम् ॥ ११ ॥ लक्ष्मणानुचरोरामोददर्शोपससर्पच ॥ तंतथापतितंवीरंगतार्चिषमिवान
लम् ॥ १२ ॥ बहुमान्यचतंवीरंवीक्षमाणंशनैरिव ॥ उपयातौमहावीर्यौभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ १३ ॥ तंदृष्ट्वाराघवं
वालीलक्ष्मणंचमहाबलम् ॥ अब्रवीत्परुषंवाक्यंप्रश्रितंधर्मसंहितम् ॥ १४ ॥

तिकी तुल्य ॥ ९ ॥ युगान्तके समय पृथ्वीमें गिरे हुये सूर्यकी समान इन्द्रकी समान दुर्द्धर्ष उपेन्द्रकी समान दुस्सह ॥ १० ॥ चौडी छातीवाले महाबाहु प्रदीप्तवदन सिंहलोचन इन्द्रके पुत्र हेममाली वालिको ॥ ११ ॥ रणस्थलमें देख श्रीरामचंद्र लक्ष्मणजीके सहित उसके निकट गये जहां वह वीर बुझी हुई अग्निके समान पृथ्वीपर गिरा पडाथा ॥ १२ ॥ वह मानके करने योग्य श्रीराम लक्ष्मणजी उस वीरश्रेष्ठ वालिके निकट उसको देखते २ गये ॥ १३ ॥ वालि महाबलवान् श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीको देखकर धर्मयुक्त

चिह्न स्वरूप सीमाके अंतमें बिन्दुकी समान निर्माण कर रक्खा है उसके आगे परम हेममय देवता ओंका होता श्रीमान् उदय पर्वत है ॥ ५४ ॥ इस पर्वतकी एक कोटि सौ योजन चौडीहै, और उसके कँगूरे ऐसे ऊंचे हैं कि आकाशको स्पर्शही किये लेते हैं। वह सुवर्णकी बनी वेदी आधार पर्वतके सहित विराजमान है ॥ ५५ ॥ इस पर्वतपर फूले हुये सुवर्ण मय सूर्यकी समान ताल, तमाल, और कर्णिकारके वृक्ष शोभायमान हो रहे हैं ॥ ५६ ॥ वहांपर एक योजन विस्तार वाला और दश योजन ऊंचा सुवर्ण मय सौमनस शृङ्ग है ॥ ५७ ॥ पूर्वकालमें पुरुषोत्तम विष्णुजीनें राजा बलिको छलकर जब सब लोक नापेथे तब पहला चरण उन्होंने वहां रखकर दूसरा चरण मेरुके शिखर पर रक्खाथा ॥ ५८ ॥ सूर्य

तस्यकोटिर्दिवंस्पृष्ट्वाशतयोजनमायता ॥ जातरूपमयीदिव्याविराजतिसवेदिका ॥ ५५ ॥ सालैस्तालैस्तमालैश्चक
र्णिकारैश्चपुष्पितैः ॥ जातरूपमयैर्दिव्यैःशोभतेसूर्यसन्निभैः ॥ ५६ ॥ तत्रयोजनविस्तारमुच्छ्रितंदशयोजनम् ॥
शृंगंसौमनसंनामजातरूपमयंध्रुवम् ॥ ५७ ॥ तत्रपूर्वपदंकृत्वापुराविष्णुस्त्रिविक्रमे ॥ द्वितीयंशिखरेमेरोश्चकारपुरुषो
त्तमः ॥ ५८ ॥ उत्तरेणपरिक्रम्यजंबूद्वीपंदिवाकरः ॥ दृश्योभवतिभूयिष्ठंशिखरंतन्महोच्छ्रयम् ॥ ५९ ॥ तत्रवै
खानसानामवालखिल्यामहर्षयः ॥ प्रकाशमानादृश्यंतेसूर्यवर्णास्तपस्विनः ॥ ६० ॥ अयंसुदर्शनोद्वीपःपुरोय
स्यप्रकाशते ॥ तस्मिंस्तेजश्चचक्षुश्चसर्वप्राणभृतामपि ॥ ६१ ॥ शैलस्यतस्यपृष्ठेषुकंदरेषुवनेषुच ॥ रावणःसहवैदे
ह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥ ६२ ॥

नारायण उत्तर दिशामें घूम जम्बूद्वीपकी परिक्रमा करके फिर उसी ऊंचे शिखर वाले पहले कहे सौमनस शिखर पर टिके हुए फिर जम्बूद्वीपमें रहनेवाले मनुष्योंको दृष्टि आतेहैं॥५९॥और इसी शिखर पर, सूर्य समान प्रकाशमान तपस्वी, दीप्ति प्रयुक्त वैखानस वाल्यखिल्य महर्षि गण प्रकाशित होतेहैं ॥६०॥ जिसके समीप सुदर्शन द्वीप प्रकाशित होताहै, और जब इस सौमनस शिखर पर सूर्य उदय होतेहैं; तभी सब प्राणियोंके नेत्रों में उजाला आताहै, इसका प्रकाश सबको ज्ञातहै ॥६१॥ उस पर्वतकी पीठ कन्दरा, और वनमें तुम लोग रावण सहित जानकीजीका अनुसन्धा

शाली हो बढा ॥ २६ ॥ और सूर्यपुत्र महा बलवान् सुग्रीवजी हीनबल होने लगे, वालिनें इनका गर्व खर्वकर डाला; और इनका विक्रमभी कम होनें पर आया ॥ २७ ॥ परन्तु सुग्रीवजी श्रीरामचन्द्रजीके दिखानेंके अर्थ वालिके ऊपर बडा कोपकर, जड़ व शाखा सहित वृक्ष उखाड, पर्वत शिखर, और वज्र सम धार वाले नखोंसे ॥ २८ ॥ और मुष्टिका, जांघ, चरण, और वाहोंसे फिर लडनें लगे और वालिभी इन्ही आयुधोंसे लड ताथा; इस कारण इन दोनों जनोंका संग्राम ऐसा हुआकि जैसा इन्द्रजीके साथ वृत्रासुरका हुआथा ॥ २९ ॥ वह वनचारी दोनों वानर रुधिरसे न हाय महामेघकी समान घोर शब्दसे परस्पर तर्जन गर्जन करनें लगे॥३०॥तव श्रीरामचन्द्रजीनें देखा कि सुग्रीव अब बहुतही हीनबल होगयेहैं; इस

सूर्यपुत्रोमहावीर्यःसुग्रीवःपरिहीयत ॥ वालिनाभग्नदर्पस्तुसुग्रीवोमंदविक्रमः ॥२७॥ वालिनंप्रतिसामर्षोदर्शयामासरा
घवम् ॥ वृक्षैःसशाखैःशिखरैर्वज्रकोटिनिभैर्नखैः ॥ २८ ॥ मुष्टिभिर्जानुभिःपद्भिर्बाहुभिश्चपुनःपुनः ॥ तयोर्युद्धमभू
द्घोरंवृत्रवासवयोरिव॥२९॥तौशोणिताक्तौयुध्येतांवानरौवनचारिणौ॥मेघाविवमहाशब्दैस्तर्जमानौपरस्परम्॥३०॥
हीयमानमथापश्यत्सुग्रीवंवानरेश्वरम् ॥ प्रेक्षमाणंदिशश्चैवराघवःसमुहुर्मुहुः ॥ ३१ ॥ ततोरामोमहातेजाआर्तंदृष्ट्वा
हरीश्वरम् ॥ सशरंवीक्षतेवीरोवालिनोवधकांक्षया ॥ ३२ ॥ ततोधनुषिसंधायशरमाशीविषोपमं ॥ पूरयामासतच्चा
पंकालचक्रमिवांतकः ॥ ३३ ॥ तस्यज्यातलघोषेणत्रस्ताःपत्ररथेश्वराः ॥ प्रदुद्रुवुर्मृगाश्चैवयुगांतइवमोहिताः ॥ ३४ ॥
मुक्तस्तुवज्रनिर्घोषःप्रदीप्ताशनिसन्निभः ॥ राघवेणमहाबाणोवालिवक्षसिपातितः ॥ ३५ ॥

कारणसेही वारंवार सब दिशाओंकी ओर निहारतेहैं ॥ ३१ ॥ महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजी सुग्रीवको भयातुर देखकर वालिके संहार करनेंकी इच्छासे वारंवार बाणोंकी ओर दृष्टि पात करनें लगे ॥ ३२ ॥ फिर विषधर सर्पकी समान बाण धनुषपर चढाकर यमराजके काल चक्रकी समान धनुषको टंकारनें लगे ॥ ३३ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीनें धनुपको टंकारा तो उस शब्दसे मृग व पक्षीगण युगान्त होनेंके दुकालकी समान मोहको प्राप्तहो वेग सहित भागने लगे ॥ ३४ ॥ फिर श्रीरामचन्द्रजीनें प्रदीप्त अग्निकी समान वज्रतुल्य शब्द करताहुआ वह महाबाण छोडा

डालेंगे, जाओ जनककुमारी जानकीजी को ढूंढभाल और उनका पतालगाकर आओ ॥ ७०॥इन्द्रकी स्त्री, वनादिकोंसे सुशोभित पूर्व दिशाको तुम चतुर वानर उत्तम रीतिसे खोज करके राघव प्रिया सीताजीको पायकर फिर सब जन सुखी होना॥ ७१ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०कि० चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४० ॥वानर राज वीर वर सुग्रीवजीनें उस वानरोंकी सेनाको पूर्व दिशाकीओर भेजकर कार्यके साधनका निर्णय करनेंमें चतुर वानरोंको दक्षिण दिशामें भेजा ॥ १ ॥ उनमें अग्नि पुत्र नील महाबलवान् हनुमानजी ब्रह्माका पुत्र महा बलवान् जाम्बवान् ॥ २ ॥ सुहोत्र, शरारि, शर गुल्म, गज, गवाक्ष, गवय, सुषेण, वृषभ ॥ ३ ॥ मैन्द, द्विविद,गन्धमादन, ताराके पिता सुषेण, उल्कामुख, अनंग, यह दोनों अग्निके

महेंद्रकांतांवनषंडमंडितांदिशंचरित्वानिपुणेनवानराः ॥अवाप्यसीतांरघुवंशजप्रियांततोनिवृत्ताःसुखिनोभविष्यथ॥
॥ ७१ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेचत्वारिंशःसर्गः॥ ४० ॥ ॥ ६५ ॥
ततःप्रस्थाप्यसुग्रीवस्तन्महद्वानरंबलम् ॥ दक्षिणांप्रेषयामासवानरानभिलक्षितान् ॥ १ ॥ नीलमग्निसुतंचैवहनूमं
तंचवानरम् ॥ पितामहसुतंचैवजांबवंतंमहौजसम् ॥ २ ॥ सुहोत्रंचशरारिंचशरगुल्मंतथैवच ॥ गजंगवाक्षंगवयंसुषेणं
वृषभंतथा ॥ ३ ॥ मैंदंचद्विविदंचैवसुषेणंगंधमादनम् ॥ उल्कामुखमनंगंचहुताशनसुतावुभौ ॥ ४ ॥ अंगदप्र
मुखान्वीरान्वीरःकपिगणेश्वरः ॥ वेगविक्रमसंपन्नान्संदिदेशविशेषवित् ॥ ५ ॥ तेषामग्रेसरंचैवबृहद्बलमथांगदम् ॥
विधायहरिवीराणामादिशद्दक्षिणांदिशम्॥६॥येकेचनसमुद्देशास्तस्यांदिशिसुदुर्गमाः॥ सतेषांकपिमुख्यानांकपीशः
समुदाहरत् ॥ ७॥ सहस्रशिरसंविंध्यंनानाद्रुमलतायुतम् ॥ नर्मदांचनदींरम्यांमहोरगनिषेविताम् ॥ ८॥

पुत्र ॥ ४ ॥ व अंगद इत्यादि वेगसे चलनेंवाले महा महापराक्रमी वानरोंको सब देशोंके जाननें वाले सुग्रीवजीनें दक्षिण दिशामें पठाया ॥ ५ ॥ जितनें वानर दक्षिणदिशाको भेजे गये उन समस्त वानरोंका मुखिया बडे बली अंगदजीको करके सुग्रीवजीनें दक्षिण दिशाको भेजा ॥ ६ ॥ कपीश्वर सुग्रीवजी, उस दिशामें जो जो देश दुर्गमथे, वह समस्तही उन वानर यूथपोंको बताने लगें ॥ ७ ॥ कि तुम लोग, सहस्र शिखरवाले विविध वृक्ष लताओंसे विराजमान, विन्ध्याचलपर्वतको प्रथम देखोगे फिर महाभुजंग गण सेवित रमणीक नर्मदा नदी मिलैगी ॥ ८ ॥

अत्याचार नहीं करेंगे केवल वृक्षोंके प्रहारसे और घूसोंसे उन्हें मारेंगे जिस्से वह पीडित हो अपनी गुफाको चला जायगा ॥ ८ ॥ हे तारे! वह दुरात्मा हमारा हंकार और प्रहारादि नहीं सह सकैगा इसमें कुछ संदेह नहीं, कि तुमनें हमारी बुद्धिकी सहायता करके सुहृदता दिखाई॥९॥ तुमको हमारे प्राणोंकी शपथ है कि तुम इन सब स्त्रियोंके साथ लौट जाओ, हम रणस्थलमें भ्राताको केवल जीतही कर लौट आमेंगे, और उसे प्राणोंसे नहीं मारेंगे ॥ १० ॥ प्रियवादिनी दक्षिणा नायका तारा वालिको भेंटकर उसकी प्रदक्षिणाकर रोते २ वहांसे लौटी ॥ ११ ॥ शोकसे मोहित हुई, स्वस्तिके मंत्र जाननेंवाली तारा विजयकी इच्छा किये स्वस्त्ययन करके सब स्त्रियोंके साथ अन्तःपुरमें चली गई ॥ १२ ॥ जब सब स्त्रियोंके

नमेगर्वितमायस्तंसहिष्यतिदुरात्मवान् ॥ कृतंतारेसहायत्वंदर्शितंसौहृदंमयि ॥ ९ ॥ शापितासिममप्राणैर्निवर्त स्वजनेनच ॥ अलंजित्वानिवर्तिष्येतमहंभ्रातररंरणे ॥ १० ॥ तंतुतारापरिष्वज्यवालिनंप्रियवादिनी ॥ चकाररुदती मंदंदक्षिणासाप्रदक्षिणम् ॥ ११ ॥ ततःस्वस्त्ययनंकृत्वामंत्रविद्विजयैषिणी ॥ अंतःपुरंसहस्त्रीभिःप्रविष्टाशोकमोहिता ॥ १२ ॥ प्रविष्टायांतुतारायांसहस्त्रीभिःस्वमालयम् ॥ नगर्यान्निर्ययौक्रुद्धोमहासर्पइवश्वसन् ॥ १३ ॥ सनिःश्वस्यमहारोषोवालीपरमवेगवान् ॥ सर्वतश्चारयन्दृष्टिंशत्रुदर्शनकांक्षया ॥ १४ ॥ सददर्शततःश्रीमान्सुग्रीवंहेमपिंगलम् ॥ सुसंवीतमवष्टब्धंदीप्यमानमिवानलम् ॥ १५ ॥ तंसदृष्ट्वामहाबाहुःसुग्रीवंपर्यवस्थितम् ॥ गाढंपरिदधेवासोवाली परमकोपनः ॥ १६ ॥ सवालीगाढसंवीतोमुष्टिमुद्यम्यवीर्यवान् ॥ सुग्रीवमेवाभिमुखोययौयोद्धुंकृतक्षणः ॥ १७ ॥

साथ तारा अपने घरमें चली गई, तब वालि क्रोधित हुये महासर्पकी समान श्वास लेता हुआ नगरीसे बाहर निकला ॥ १३ ॥ वानरराज वालिनें लंबे २ श्वास लेकर बडे वेगसे आय रोषमें भर शत्रुको देखनेंकी वासनासे चारों ओरको दृष्टि डाली ॥ १४ ॥ तिसके पीछे श्रीमान् वालिनें सुवर्णसम पिंगलनेत्र, कच्छ, कसकर बाँधे हुये, पृथ्वीपर दृढरूपसे खडे देदीप्यमान अनलतुल्य सुग्रीवजीको देखा ॥ १५ ॥ महाबलवान् परम क्रोधित वालि सुग्रीवजीको इस प्रकारसे खडा देख आपभी वस्त्रोंको कसकर पहन लेता हुआ ॥ १६ ॥ वीर्यवान् वालि कच्छ बाँध मुक्का उठाय सुग्रीवजीके सन्मुख

स्त्रीकी समान अपनें पतिरूप समुद्रमें जा मिलती है। फिर हेममय दिव्य मुक्ता मणि विभूषित ॥ १८ ॥ कपाट युक्त पाण्डच वंशियोंका फाटक देखोगे। हे वानरो! फिर तुम निश्चय समुद्रके निकट पहुंचोगे, उस समुद्र पार होनेंके विषयमें समर्थ और असमर्थ विचारकर उसके पार होना ॥ १९ ॥ उस समुद्रके पार होनेंका उपाय कहते हैं सो तुम श्रवण करो कि इसका उपाय अगस्त्यजी तुमको बतावेंगे उनसे सब समाचार जान महेन्द्र पर्वतपर जाय चित्र विचित्र शृङ्गोंपर चढ ॥ २० ॥ समुद्रके पार होजाना, यह पर्वत सुवर्णमय और समुद्रके एक पार्श्वमें डूबा हुआ है और नाना प्रकारके फूले फले वृक्षोंसे शोभायमान है ॥ २१ ॥ यह पर्वत देव, यक्ष, अप्सरा, सिद्ध और चारण गणोंसे सेवित होनेंके कारण

युक्तंकवाटपांडचानांगताद्रक्ष्यथवानराः ॥ ततःसमुद्रमासाद्यसंप्रधार्यार्थनिश्चयम् ॥ १९ ॥ अगस्त्येनांतरेतत्रसागरे विनिवेशितः॥चित्रसानुनगःश्रीमान्महेंद्रःपर्वतोत्तमः ॥२०॥ जातरूपमयःश्रीमानवगाढोमहार्णवम्॥नानाविधैर्नगैःफुल्लैर्लताभिश्चोपशोभितम् ॥ २१ ॥ देवर्षियक्षप्रवरैरप्सरोभिश्चशोभितम् ॥ सिद्धचारणसंघैश्चप्रकीर्णंसुमनोरमम् ॥ २२
तमुपैतिसहस्राक्षःसदापर्वसुपर्वसु ॥ द्वीपस्तस्यापरेपारेशतयोजनविस्तृतः ॥ २३ ॥ अगम्योमानुषैर्दीप्तस्तंमार्गध्वं समंततः ॥ तत्रसर्वात्मनासीतामार्गितव्याविशेषतः ॥ २४ ॥ सहिदेशस्तुवध्यस्यरावणस्यदुरात्मनः ॥ राक्षसाधिपतेर्वासःसहस्राक्षसमद्युतेः ॥ २५ ॥ दक्षिणस्यसमुद्रस्यमध्येतस्यतुराक्षसी ॥ अंगारकेतिविख्याताछायामाक्षिप्यभोजनी ॥ २६ ॥

परम मनोहर है ॥ २२ ॥ देवराज इन्द्रजी प्रत्येक अमावास्या और पूर्णमासीको इस पर्वतपर आगमन किया करते हैं। इसी समुद्रकी दूसरीपार सौ योजन विस्तारवाला एक द्वीप है ॥२३॥ वहांपर कोई मनुष्य नहीं जा सकता वहांपर चारोंओर विशेष करके द्वीपमें सीताजीको ढूँढना ॥२४॥ हम जानते हैं कि वही स्थान इन्द्रतुल्य दीप्तिमान राक्षसपति दुरात्मा और वध करनेंके योग्य रावणका वासस्थल है ॥ २५ ॥ इस दक्षिण समुद्रके बीचमें अङ्गारिका नाम विख्यात परछांई पकडकर जीवोंको खेंचकर भक्षण करनेंवाली राक्षसी वास किया करती हैं ॥ २६ ॥

नामक वानर यूथप, हजार करोड वानरोंकी सेनाके सहित आया ॥ १६ ॥ फिर, पद्मपरागकी समान वर्णवाला. और घोर प्रभात कालीन सूर्यके रंगकी समान मुख वाला महा बुद्धिमान वानर श्रेष्ठ. और सब वानरोंमें अति उत्तम ॥ १७ ॥ बहुत सहस्र वानरोंकी सेनाके सहित. हनुमानजी का पिता श्रीमान केशरी नामक वानर आया ॥ १८ ॥ गोपुच्छ वानरोंका राजा भयंकर विक्रमकारी गवाक्ष, करोड सहस्र वानरोंको साथ लेकर आ पहुँचा ॥ १९ ॥ भयंकर वेगवान रीछोंका राजा शत्रुओंका मारनेवाला धूम्र नामक ऋक्ष दो सहस्र किरोड ऋक्षोंकी सेना लिये हुये आया ॥ २० ॥ पनस नामक वीर्यवान यूथपति वानर महाबलवान घोर रूप तीन करोड वानर संग लिये वहां आगमन करता हुआ ॥२१॥

पद्मकेसरसंकाशस्तरुणार्कनिभाननः ॥ बुद्धिमान्वानरश्रेष्ठःसर्ववानरसत्तमः ॥ १७ ॥ अनेकैर्बहुसाहस्रैर्वानराणां समन्वितः ॥ पिताहनुमतःश्रीमान्केसरीप्रत्यदृश्यत ॥ १८ ॥ गोलांगूलमहाराजोगवाक्षोभीमविक्रमः ॥ वृतःकोटि सहस्रेणवानराणामदृश्यत ॥ १९ ॥ ऋक्षाणांभीमवेगानांधूम्रःशत्रुनिबर्हणः ॥ वृतःकोटिसहस्राभ्यांद्वाभ्यांसमभिव र्तत ॥२०॥ महाबलनिभैर्घोरैःपनसोनामयूथपः ॥ आजगाममहावीर्यस्तिसृभिःकोटिभिर्वृतः ॥२१॥ नीलांजनचया कारोनीलोनामैषयूथपः ॥ अदृश्यतमहाकायःकोटिभिर्दशभिर्वृतः ॥ २२ ॥ ततःकांचनशैलाभोगवयोनामयूथपः ॥ आजगाममहावीर्यःकोटिभिःपंचभिर्वृतः ॥ २३ ॥ दरीमुखश्चबलवान्यूथपोभ्याययौतदा ॥ वृतःकोटिसहस्रेणसुग्री वंसमवस्थितः ॥ २४ ॥ मैंदश्चद्विविदश्चोभावाश्विपुत्रौमहाबलौ ॥ कोटिकोटिसहस्रेणवानराणामदृश्यताम् ॥ २५ ॥ गजश्चबलवान्वीरस्तिसृभिःकोटिभिर्वृतः ॥ ऋक्षराजोमहातेजाजांबवान्नामनामतः २६ ॥

नील वर्णी अंजन पुंजकी समान द्युतिमान महा काय नील नामक यूथपति दशकोटि वानरोंको संग लिये हुये आया ॥२२॥ सुवर्ण पर्वतके तुल्य द्युतिवाला महा वीर्यवान गवय नामक यूथपति पांच करोड सेनाके संग उपस्थित हुआ ॥ २३ ॥ दरी मुख नामक बलवान यूथपति हजार कोटि वानरोंकी सेना संग लिये हुये सुग्रीवजीके निकट आय पहुँचा॥२४॥मैन्द और द्विविद नामक महा बलवान वानर अश्विनीके पुत्र दोनों कोटि २ सहस्र वानरोंकी सेना संग लिये हुये आये ॥ २५ ॥ गज नामक बलवान वीर तीनकरोड वानरोंकी सेनाको ले आया और ऋक्षोंका

रहनेंका स्थान भोगवती नाम पुरीहै ॥ ३६ ॥ यह पुरी बडे मार्गवाली, दुर्द्धर्षहै, और सब ओरसे रक्षितहै, और महा विषैले तेज दांत वाले घोर
सर्पभी इसकी रक्षा करतेहैं ॥ ३७ ॥ जहांपर महा घोर सर्पराज वासुकीजी वसतेहैं, ऐसी भोगवती पुरीमें जाय सबलोग ॥ ३८ ॥ वहांपरके
ढके ढकाये सब गुप्त देशोंको भली भांतिसे ढूंडना; उस देशको नांघ आगे बढ़कर बैलके आकारवाला बडा भारी ॥ ३९ ॥ सर्व रत्नमय परम
सुन्दर ऋषभ नामक पर्वत मिलैगा । इसपर गोशीर्षक, पद्मक; हरिश्यामा, ॥ ४० ॥ दिव्य विशेष२ चंदन अग्निसम प्रभाशाली उत्पन्न होतेहैं
उन चंदनोंको देखकर तुम कुछ बात न करना और उनको छूनाभी मत ॥ ४१॥ कारणकि उस बनकी रक्षा रोहित नामक घोर गन्धर्व किया

विशालरथ्यादुर्धर्षासर्वतःपरिरक्षिता ॥ रक्षितापन्नगैर्घोरैस्तीक्ष्णदंष्ट्रैर्महाविषैः ॥ ३७ ॥ सर्पराजोमहाघोरोयस्यां
वसतिवासुकिः ॥ निर्यायमार्गितव्याचसाचभोगवतीपुरी ॥ ३८ ॥ तत्रचानंतरोद्देशायेकेचनसमावृताः ॥ तंचदेशम
॥ ४० ॥दिव्यमुत्पद्यतेयत्रतच्चैवाग्निसमप्रभम् ॥ नतुतच्चंदनंदृष्ट्वास्प्रष्टव्यंतुकदाचन ॥ ४१ ॥ रोहितानामगंधर्वाघोरंर
तिक्रम्यमहानृषभसंस्थितिः ॥ ३९ ॥ सर्वरत्नमयःश्रीमानृषभोनामपर्वतः ॥ गोशीर्षकंपद्मकंचहरिश्यामंचचंदनम् ॥
क्षंतितद्वनम् ॥ तत्रगंधर्वपतयःपंचसूर्यसमप्रभाः ॥ ४२ ॥ शैलूषोग्रामणीःशिक्षःशुकोबभ्रुस्तथैवच ॥ रविसोमाग्निवपुषां
निवासःपुण्यकर्मणाम्॥४३॥अंतेपृथिव्यादुर्धर्षास्ततःस्वर्गजितःस्थिताः॥ततःपरंनवःसेव्यःपितृलोकःसुदारुणः॥४४॥
राजधानीयमस्यैषाकष्टेनतमसावृता॥एतावदेवयुष्माभिर्वीरवानरपुंगवाः॥शक्यंविचेतुंगंतुंवानातोगतिमतांगतिः४५

करतेहैं वहांपर पांच गन्धर्वोंके पति सूर्यकी समान प्रभावाले ॥ ४२ ॥ शैलूप, ग्रामणी, शिक्ष, शुक, और बभ्रु रहतेहैं उसपर सूर्य चंद्र और अग्नि
के समान प्रकाशित देह पुण्यात्मा लोगोंके रहनेंके स्थान बनेहैं॥ ४३ ॥ ऐसे पृथ्वीके अंतमें दुर्द्धर्ष तथा स्वर्गके सुख जीतनेंवाले लोग रहतेहैं
इसके आगे दारुण पितृलोकहै, जहांपर मनुष्य नहीं जा सकते ॥ ४४ ॥ यहां अंधकारसे ढकीहुई यमराजकी राजधानी संयमिनी नाम पुरीहै
वहांपर तुम क्षण मात्रभी नहीं ठहर सकतेहो, हे वानर श्रेष्ठगण ! तुमलोग यहींतक ढूंडनेंको समर्थहो इस्से और फिर मनुष्यादिक किसीकीभी

मुख नामक वानर पति नदीप्रदेशसे दशकोटि वानरोंकी अनी संगलिये हुये ॥ ३६ ॥ महात्मा सुग्रीवजीके निकट प्राप्त हुआ शरभ कुमुद व ह्नि और रंभ ॥ ३७ ॥ व और भी बहुतसे इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले वानरोंके यूथप सब पृथ्वी वन और पर्वत आदिकोंको ढकते हुये आये ॥ ३८ ॥ व अनेक प्रकारके नामधारी यूथप आये कि जिनकी संख्या नहीं है इन सब वानरदलोंके मध्यमें कोई कोई २ दल आता जाताथा, और कोई आय २ करके बैठता जाताथा ॥ ३९ ॥ उन दलोंमें के कोई २ वानर उन्हें घेरते छलांग मारते कोई २ गर्जते सुग्रीवजीके निकट पहुँचने लगे, जिस प्रकार मेघ सूर्यके निकट गमन करते हैं॥४०॥ और सबही वानर बहुत शब्द कर रहे थे वह सब महाबली सुग्रीवजीके

संप्राप्तोभिनदंतस्यसुग्रीवस्यमहात्मनः ॥ शरभःकुमुदोवह्निर्वानरोरंभएवच ॥ ३७ ॥ एतेचान्येचबहवोवानराः कामरूपिणः ॥ आवृत्यपृथिवींसर्वांपर्वतांश्चवनानिच ॥ ३८ ॥ यूथपाःसमनुप्राप्तायेषांसंख्यानविद्यते ॥ आगताश्चनिविष्टाश्चपृथिव्यांसर्ववानराः ॥ ३९ ॥ आप्लुवंतःप्लवंतश्चगर्जंतश्चप्लवंगमाः ॥ अभ्यवर्ततसुग्रीवंसूर्यमभ्रगणाइव ॥ ४० ॥ कुर्वाणाबहुशब्दांश्चप्रकृष्टाबाहुशालिनः ॥ शिरोभिर्वानरेंद्रायसुग्रीवायन्यवेदयन् ॥ ४१ ॥ अपरेवानरश्रेष्ठाःसंगम्यचयथोचितम् ॥ सुग्रीवेणसमागम्यस्थिताःप्रांजलयस्तदा ॥ ४२ ॥ सुग्रीवस्त्वरितोरामेसर्वांस्तांस्त्वरितांस्तदा ॥ निवेदयित्वाधर्मज्ञःस्थितःप्रांजलिरब्रवीत् ॥ ४३ ॥ यथासुखंपर्वतनिर्झरेषुवनेषुवर्षेषुचवानरेंद्राः ॥ निवेशयित्वाविधिवद्बलानिबलंबलज्ञःप्रतिपत्तुमीष्टे॥४४॥इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०किष्किंधाकांडेएकोनचत्वारिंशःसर्गः ॥ ३९॥

निकट पहुँच कर मस्तक झुकाय २ अपना २ आना निवेदन कर रहे थे ॥ ४१ ॥ और कोई २ सुग्रीवजीके निकट पहुँचकर, उनका यथोचित आदर सन्मान कर हाथ जोड कर खडे होनेंलगे ॥ ४२ ॥ तिसके पीछे धर्मात्मा सुग्रीवजीने शीघ्रताके सहित श्रीरामचंद्रजीके निकट जाय हाथ जोड उनसे समस्त वानर और वानरयूथपतियोंका आगमन निवेदन किया फिर वानर यूथपोंसे बोले ॥ ४३ ॥ हे समस्तवानरेन्द्रगण। पर्वत, झरने, और वनके समूहोंमें उस सैनाको टिकाकर कि जिसका बल अच्छी तरहसे तुम सब जानते हो। विधिपूर्वक इस वातका निर्णय करो कि कौन वानर आया और कौन नहीं आया ॥ ४४ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० कि० एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥३९॥

कार वाला और प्रकाश गानथा॥३॥और बुद्धिमें खगपति तुल्य द्युतिमान और मरीचिके सुन्दर माला धारण किये मारीच नाम अति गुण धाम और महाबलवान ॥ ४ ॥ ऋषिपुत्रथे उन सबको पश्चिम दिशामें जानेके लिये सुग्रीवजीनें आज्ञादी, इनके साथ दो लक्ष यूथपथे व और वानरोंकी तो कुछ गिन्तीही नहीं ॥ ५ ॥ हे वानरो ! सुषेण सहित तुम लोग वैदेहीजीको जाय कर ढूंडो, प्रथम सौराष्ट्र देश फिर बाह्लीक, तिसके आगे चंद्र चित्र ॥ ६ ॥ इत्यादि मनोहर विभवशाली जनपद, और बहुतसे पुर और पुन्नाग, गहन, बकुल, उद्दालक ॥ ७ ॥ तथा केतक आदिके वृक्षोंसे

बुद्धिविक्रमसंपन्नंवैनतेयसमद्युतिम् ॥ मरीचिपुत्रान्मारीचानर्चिर्माल्यान्महाबलान् ॥ ४॥ ऋषिपुत्रांश्चतान्सर्वान्प्रतीचीमादिशद्दिशम् ॥ द्वाभ्यांशतसहस्राभ्यांकपीनांकपिसत्तमाः ॥ ५ ॥ सुषेणप्रमुखायूयंवैदेहींपरिमार्गथ ॥ सौराष्ट्रान्सहबाल्हीकांश्चंद्रचित्रांस्तथैवच ॥ ६ ॥ स्फीताञ्जनपदान्रम्यान्विपुलानिपुराणिच ॥ पुन्नागगहनंकुक्षिंबकुलोद्दालकाकुलम् ॥ ७॥ तथाकेतकखंडांश्चमार्गध्वंहरिपुंगवाः ॥ प्रत्यक्स्रोतोवहाश्चैवनद्यःशीतजलाःशिवाः ॥ ८ ॥ तापसानामरण्यानिकांतारगिरयश्चये ॥ तत्रस्थलीर्मरुप्रायाअत्युच्चशिशिराःशिलाः ॥ ९ ॥ गिरिजालावृतांदुर्गांमार्गित्वापश्चिमांदिशम् ॥ ततःपश्चिममागम्यसमुद्रंद्रष्टुमर्हथ ॥ १० ॥ तिमिनक्राकुलजलंगत्वाद्रक्ष्यथवानराः ॥ ततःकेतकखंडेषुतमालगहनेषुच॥११॥कपयोविहरिष्यंतिनारिकेलवनेषुच॥तत्रसीतांचमार्गध्वंनिलयंरावणस्यच ॥१२॥

व्याप्त कुक्षि देशको ढूंडना; हे वानरश्रेष्ठो ! पश्चिमकी ओरको वहनें वाली शीतल जल युक्त, पवित्र नदियेंभी ढूंडना ॥ ८ ॥ तपस्वियोंके वन बडे दुर्गम पर्वत, अति ऊँची वनस्थलियें, जल रहित देश, शीतल शिलायें ॥ ९ ॥ और अ.के भांतिके पर्वत समूहसे युक्त पश्चिम दिशाको खोजना फिर पश्चिम दिशाको आकर पश्चिम समुद्र देखोगे ॥ १० ॥ इस समुद्रमें बडे २ नाके मगर आदि जल जीव भरे हैं इसके आगे केतक खंड और गहन तमाल वनके मध्य ॥ ११ ॥ और नारियलके काननमें वानरगण विहरेंगे; इन सब स्थानोंमें दुष्ट रावणके स्थान सहित सीताजीको

मचंद्रजी दोनों बाहें पसार उनसे भेंटकर बोले ॥ १० ॥ हे सौम्य ! हेमहा पंडित ! जनककुमारी सीताजी जीवितहैं; अथवा नहीं; और रावण किस देशमें रहताहै इस बातका पता लगाना उचितहै ॥ ११ ॥ जब यह बात जानली जायगी तब रावणके स्थानपर और वैदेहीजीके निकट पहुंचकर तुम्हारे साथ परामर्श करके समयानुसार उचित्त कार्यकाविधान किया जायगा ॥ १२ ॥ हे वानरनाथ! हम या लक्ष्मण इस कार्यके साधन करनेंमें समर्थ नहींहैं ! तुमही इस कार्यके कारणहो और तुम्ही इसकेसिद्ध करनेंमें समर्थहो ॥ १३ ॥ हेवीर! तुम निःसन्देह हमारे कार्यको जानतेहो इसलिये तुमही इस विषयमें निश्चित कार्यको सोच विचार करआज्ञादेदो ॥ १४ ॥ तुम हमारे अनुपम सुहृद, बलवान् पंडित, समयको

ज्ञायतांसौम्यवैदेहीयदिजीवतिवानवा ॥ सचदेशोमहाप्राज्ञयस्मिन्वसतिरावणः ॥ ११ ॥ अभिगम्यतुवैदेहींनिलय रावणस्यच ॥ प्राप्तकालंविधास्यामितस्मिन्कालेसहत्वया ॥ १२ ॥ नाहमस्मिन्प्रभुःकार्येवानरेंद्रनलक्ष्मणः ॥ त्वमस्यहेतुःकार्यस्यप्रभुश्चप्लवगेश्वर ॥ १३ ॥ त्वमेवाज्ञापयविभोममकार्यविनिश्चयम् ॥ त्वंहिजानासिमेकार्यममवीरनसंशयः ॥ १४ ॥ सुहृद्द्वितीयोविक्रांतःप्राज्ञःकालविशेषवित् ॥ भवानस्मद्धितेयुक्तःसुहृदाप्तोर्थवित्तमः ॥ १५ ॥ एवमुक्तस्तुसुग्रीवोविनतंनामयूथपम् ॥ अब्रवीद्रामसान्निध्येलक्ष्मणस्यचधीमतः॥१६॥शैलाभंमेघनिर्घोषमूर्जितंप्लवगेश्वरम्॥ सोमसूर्यनिभैःसार्धवानरैर्वानरोत्तम ॥ १७ ॥ देशकालनयैर्युक्तोविज्ञःकार्यविनिश्चये ॥ वृतःशतसहस्रेणवानराणांतरस्विनाम् ॥ १८ ॥ अधिगच्छदिशंपूर्वांसशैलवनकाननाम् ॥ तत्रसीतांचवैदेहींनिलयंरावणस्यच ॥ १९ ॥

भली प्रकारसे जाननें वाले अर्थ विचारनें वालोंमें अग्रगण्यहो और हमाराहितकारी कार्य करनेंमें लगे हुयेहो ॥ १५ ॥ जब सुग्रीवजीसे श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा तब सुग्रीवजी बुद्धिमान श्रीराम लक्ष्मणजीके आगेही वानर श्रेष्ठ ॥ १६ ॥ पर्वत सम आकार वाले मेघकी समान शब्दकारी विनत नाम यूथपसे बोलेकि हे वानरोत्तम ! चंद्रमा व सूर्यकी समान वर्णवाले वानर संगले ॥ १७ ॥ जो देश काल और नीति शास्त्रके जाननें वालेहों उनको साथले, कार्य करनेंमें निश्चय किये औरभी सैकडों सहस्रों वानरोंको साथ लिये ॥ १८ ॥ पूर्वदिशाको चलेजाओ. वहांपर पर्वत, वन इत्यादि स्थलोंमें जनककुमारी सीताजी और रावणके बसनेंके स्थानकोढूंडो (चारों दिशा ओंमें रावणके रहनेंके स्थानथे) ॥ १९ ॥

को पावककी शिखाके तुल्य प्रकाशित चारों ओर घूमा करतेहैं ॥ २१ ॥ भयंकर कर्मकारी वानर गण ऐसे चले जांय कि मानो उनको देखाही नहीं और उनके साथ कोई छेड छाडभी न कीजाय और वहांका कोई फल भी न तोडा जाय ॥ २२ ॥ क्योंकि वह धीर्य वीर्य शाली महाबलवान दुर्द्धर्ष वीर गण उन फलोंकी रक्षा किया करते हैं ॥ २३ ॥वहां पर जानकीजीके ढूँडनेमें यत्न करना कर्त्तव्यहै यद्यपि उन गन्धर्वोंका प्रभाव बडाहै तथापि विना अपराध किये उन लोगोंसे किसीको भयका कारण नहींहोता॥२४ ॥ वहीं पर वैदूर्य मणिके रंगका और हीरेकी चमककी समान अनेक भांतिके वृक्षोंसे शोभित ॥ २५ ॥ शत योजनका चौडा और शोभायमान वज्रनाम महा पर्वत है उस पर्वतकी समस्त बडी २ कन्दरायें देखना॥२६॥

नात्यासादयितव्यास्तेवानरैर्भीमविक्रमैः ॥ नादेयंचफलंतस्माद्देशात्किंचित्प्लवंगमैः ॥ २२ ॥ दुरासदाहितेवीराःसत्ववंतामहाबलाः ॥ फलमूलानितेतत्ररक्षंतेभीमविक्रमाः ॥ २३ ॥ तत्रयत्नश्चकर्तव्योमार्गितव्याचजानकी ॥ नहितेभ्योभयंकिंचित्कपित्वमनुवर्तताम् ॥ २४ ॥ तत्रवैदूर्यवर्णाभोवज्रसंस्थानसंस्थितः ॥ नानाद्रुमलताकीर्णोवज्रोनाममहागिरिः ॥ २५ ॥ श्रीमान्समुदितस्तत्रयोजनानांशतंसमम् ॥ गुहास्तत्रविचेतव्याःप्रयत्नेनप्लवंगमाः ॥ २६ ॥ चतुर्भागेसमुद्रस्यचक्रवान्नामपर्वतः ॥ तत्रचक्रंसहस्रारंनिर्मितंविश्वकर्मणा ॥ २७ ॥ तत्रपंचजनंहत्वाहयग्रीवंचदानवम् ॥ आजहारततश्चक्रंशंखंचपुरुषोत्तमः ॥ २८ ॥ तत्रसानुषुरम्येषुविशालासुगुहासुच ॥ रावणःसहवैदेह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥ २९ ॥ योजनानिचतुःषष्टिर्वराहोनामपर्वतः ॥ सुवर्णशृंगःसुमहानगाधेवरुणालये ॥ ३० ॥ तत्रप्राग्ज्योतिषंनामजातरूपमयंपुरम् ॥ तस्मिन्वसतिदुष्टात्मानरकोनामदानवः ॥ ३१ ॥

उसके आगे समुद्रके चतुर्थ भागमें टिका हुआ चक्र वान नाम पर्वतहै; वहीं पर विश्वकर्माजीने सहस्र आरागजका चक्र बनायाथा ॥२७॥ वहींपर पुरुषोत्तम विष्णु भगवानजीने पञ्चजन और हयग्रीव नामक दो दानवोंका संहार करके शंख और चक्र ग्रहण कियाथा ॥ २८ ॥ उस पर्वतके मनोहर शृङ्गों पर और समस्त विशाल गुफाओंमें वैदेहीजी और रावणको ढूंडना तुम्हारा कर्त्तव्य है ॥ २९ ॥ इसके आगे अगाध समुद्रमें चौंसठ योजनकी उँचाई वाला सुवर्णशृङ्ग युक्त वराहनामक पर्वत है ॥ ३० ॥ उस पर्वत पर प्राग्ज्योतिष नामक सुवर्ण मय पुरहै

वाले और ऊपरके भागमें व्याघ्रकी समान आकार वाले नर व्याघ्र लोग जोकि जलके मध्यमें रहतेहैं ॥ २८ ॥ इन सब राक्षसोंके स्थानोंमें भली भांति देखना भालना पर्वतोंको देखते भालते, जिन देशोंमें अथवा द्वीपोंमें उछल कूदकर जाना होसके, ऐसे सब देशोंमें ढूंडना तुम्हारा परम कर्त्तव्यहै ॥ २९ ॥ और तुम बडे यत्नके साथ सप्त राज्य सुशोभित यव द्वीपमें जाना; और सुवर्ण कारी पुष्पोंसे शोभित रूपक द्वीपमें ढूँडना तुम्हारा कर्त्तव्यहै ॥ ३० ॥ जब सुवर्ण द्वीपको ढूंडकर आगे चलोगे, तब देव दानव गण करके सेवित शिशिर नामक पर्वत मिलैगा, उसके कँगूरे आकाशको भेद करके मानों स्वर्गको छू रहेहैं ॥ ३१ ॥ इन सब द्वीपादिकोंकेपर्वतोंके दुर्गोंमें वनोंमें, और नदियोंके अप्रगट होनेंके स्थानोंमें, तुम यश

एतेषामाश्रयाःसर्वेविचेयाःकाननौकसः ॥ गिरिभिर्येचगम्यंतेप्लवनेनप्लवेनच ॥ २९ ॥ यत्नवंतोयवद्वीपंसप्तराज्योपशोभितम् ॥ सुवर्णरूप्यकद्वीपंसुवर्णकरमंडितम् ॥ ३० ॥ यवद्वीपमतिक्रम्यशिशिरोनामपर्वतः ॥ दिवंस्पृशतिशृंगेणदेवदानवसेवितः ॥ ३१ ॥ एतेषांगिरिदुर्गेषुप्रपातेषुवनेषुच ॥ मार्गध्वंसहिताःसर्वेरामपत्नीयशस्विनीम् ॥ ३२ ॥ ततोरक्तजलंप्राप्यशोणाख्यंशीघ्रवाहिनम् ॥ गत्वापारंसमुद्रस्यसिद्धचारणसेवितम् ॥ ३३ ॥ तस्यतीर्थेषुरम्येषुविचित्रेषुवनेषुच ॥ रावणःसहवैदेह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥ ३४ ॥ पर्वतप्रभवानद्यःसुभीमबहुनिष्कुटाः ॥ मार्गितव्यादरीमंतःपर्वताश्चवनानिच ॥ ३५ ॥ ततःसमुद्रद्वीपांश्चसुभीमान्द्रष्टुमर्हथ ॥ ऊर्मिमंतंमहारौद्रंक्रोशंतमनिलोद्धतम् ॥ ३६ ॥ तत्रासुरामहाकायाश्छायांगृह्णंतिनित्यशः ॥ ब्रह्मणासमनुज्ञातादीर्घकालंबुभुक्षिताः ॥ ३७ ॥

स्विनी राम भार्या जानकीजीको ढूंढना ॥ ३२ ॥ फिर समुद्रके उस पारजाकर, सिद्ध चारण सेवित लाल जल वाला शोण नामक नद मिलेगा ॥ ३३ ॥ वहां उसके रमणीक तीर्थमें, विचित्र वनोंमें, और कन्दरायुक्त सब पर्वतोंमें और वनोंमें खोज करना ॥ ३४ ॥ भयंकर अनेक उपवनोंसे युक्त पर्वतोंसे निकली हुई समस्त नदियोंमें, और कन्दरा युक्त सबपर्वतोंमें और वनोंमें खोज करना तुम्हारा अवश्य कर्त्तव्यहै ॥ ३५ ॥ फिर भयंकर पवनके सन्नाटेसे भयंकर शब्द करता हुआ, अति उग्र तरंग युक्तसमुद्रके द्वीप तुम लोग देखोगे॥ ३६ ॥इस इक्षु समुद्रमें ब्रह्माजीकी आज्ञा पाये हुये, भूंखसे सताये असुर गण नित्य २ परछांयी ग्रहण करके प्राणियोंको भक्षण किया करतेहैं, सो यहां पर बडी सावधानीसे जाना॥ ३७॥

गण, वसुगण, मरुद्गण, और सुरलोकके रहनेंवाले देवता लोग आगमन करकै पश्चिमसन्ध्यामें ॥ ४१ ॥ सूर्यदेवकी उपासना करते हैं सूर्य
देव उनसे पूजित और सर्व जीवोंकी दृष्टिसे अदृश्य हो अस्ताचलको प्राप्तहोजातेहैं ॥ ४२ ॥ इसके आगे दशहजार योजनके विस्तार वाले अस्ता
चल पर्वत पर सूर्य नारायण आधे मुहूर्तमें मेरु पर्वतसे पहुँचते हैं ॥ ४३ ॥ उसी पर्वतके शिखरपर बडे २ दिव्य, सूर्यकी समान प्रभावाला बहुत ध
वरहरेवाला भवन विश्वकर्माका बनाया हुआ है ॥ ४४ ॥ वह अनेक प्रकारके पक्षी और वृक्ष समूहके चित्रित होनेंसे शोभायमान है; यही पाश
हस्त वरुण देवजी का स्थान है ॥ ४५ ॥ आगे मेरुकी चोटीमें दश शाखा वाला सुवर्ण मय परम सुन्दर एक ताल वृक्ष शोभायमान हो रहाहै, उस

आदित्यमुपतिष्ठंतितैश्चसूर्योभिपूजितः ॥ अदृश्यःसर्वभूतानामस्तंगच्छतिपर्वतम् ॥ ४२ ॥ योजनानांसहस्राणि
दशतानिदिवाकरः ॥ मुहूर्तार्धेनतंशीघ्रमभियातिशिलोच्चयम् ॥ ४३ ॥ शृंगेतस्यमहद्दिव्यंभवनंसूर्यसन्निभम् ॥ प्रासा
दगणसंबाधंविहितंविश्वकर्मणा ॥ ४४ ॥ शोभितंतरुभिश्चित्रैर्नानापक्षिसमाकुलैः ॥ निकेतंपाशहस्तस्यवरुणस्य
महात्मनः ॥ ४५ ॥ अंतरामेरुमस्तंचतालोदशशिरामहान् ॥ जातरूपमयःश्रीमान्भ्राजतेचित्रवेदिकः ॥ ४६ ॥ ते
घुसर्वेषुदुर्गेषुसरस्सुचसरित्सुच ॥ रावणःसहवैदेह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥ ४७ ॥ यत्रतिष्ठतिधर्मज्ञस्तपसास्वेनभा
वितः ॥ मेरुसावर्णिरित्येषख्यातोवैब्रह्मणासमः ॥ ४८ ॥ प्रष्टव्योमेरुसावर्णिर्महर्षिःसूर्यसन्निभः ॥ प्रणम्यशिरसा
भूमौप्रवृत्तिंमैथिलींप्रति ॥ ४९ ॥ एतावज्जीवलोकस्यभास्करोरजनीक्षये ॥ कृत्वावितिमिरंसर्वमस्तंगच्छतिपर्व
तम् ॥ ५० ॥ एतावद्वानरैःशक्यंगंतुंवानरपुंगवाः ॥ अभास्करममर्यादंनजानीमस्ततःपरम् ॥ ५१ ॥

पर्वतके मूलमें विचित्र वेदी बनी हैं ॥ ४६ ॥ उस पर्वत के समस्त दुर्गम स्थानोंमें, सरोवरोंमें, और नदियोंमें, तुम सब जनोंको जानकी जी और रा
वणका ढूंडना उचित है ॥ ४७ ॥ इसी मेरु पर्वतपर ब्रह्माजी के तुल्य देदीप्यमान अपने तेजसे प्रकाशित धर्मात्मा मेरु सावर्णि नाम विख्यात तप
स्वी वास करते हैं ॥ ४८ ॥ उन सूर्यकी समान प्रकाशित महर्षि मेरु सावर्णिजी को शिर झुका प्रणाम करकै जानकीजीका समाचार पूछना॥४९॥
रात्रिके वीत जानेपर सूर्य नारायण उदयाचलपर्वतसे मेरु सावर्णितकप्रकाश करकै अस्त हो जातेहैं ॥ ५० ॥ हे कपिवरगण! वानर गण यहीं

भांतिके पुष्प खिल रहे हैं ॥ ४५ ॥ इसका नाम सुदर्शनसर है, यह राजहंसोंसे व्याप्त है और इसके किनारे २ देव,चारण, यक्ष, किन्नर, अप्सरा गण ॥ ४६ ॥ हर्षित हो विहार करनेंके लिये उसी चरमें घूमा करते हैं। क्षीर सागर उतरनेके बाद हे वानरगण! ॥ ४७ ॥ जलोद सागरको शीघ्रही देखोगे, यह समुद्र सब प्राणियोंको भय उपजानें वाला है। कारणकि वहां पर और्व ऋषिके क्रोधसे उत्पन्न तेजसे महा हय मुख तेज उत्पन्न हुआ है ॥ ४८ ॥ उस अद्भुत महा वेग हय मुख तेजका प्रलयकालमें सचराचर जगत् अन्न स्वरूप कहाता है। उस स्थानमें असमर्थ विनाशकी शंकासे डरे हुये प्राणियोंका महा आरत शब्द श्रवण आया करता है; यह प्राणी उस हय मुखके देखनेंसे डरकर रोया करते हैं ॥ ४९ ॥ स्वादु समुद्रके

नाम्नासुदर्शनंनामराजहंसैःसमाकुलम् ॥ विबुधाश्चारणायक्षाःकिन्नराश्चाप्सरोगणाः ॥ ४६ ॥ हृष्टाःसमधिगच्छंतिनलिनींतांरिरंसवः ॥ क्षीरोदंसमतिक्रम्यतदाद्रक्ष्यथवानराः ॥ ४७ ॥ जलोदंसागरंशीघ्रंसर्वभूतभयापहम् ॥ तत्रतत्कोपजंतेजःकृतंहयमुखंमहत्॥ ४८ ॥अस्याद्भुतंमहावेगमोदनंसचराचरम् ॥ तत्रविक्रोशतांनादोभूतानांसागरौकसाम्॥ श्रूयतेचासमर्थानांदृष्ट्वाभूद्वडवामुखम् ॥ ४९ ॥ स्वादूदस्योत्तरेतीरेयोजनानित्रयोदश ॥ जातरूपशिलोनाममुमहान्कनकप्रभः ॥ ५० ॥ तत्रचंद्रप्रतीकाशंपन्नगंधरणीधरम् ॥ पद्मपत्रविशालाक्षंततोद्रक्ष्यथवानराः ॥ ५१ ॥ आसीनंपर्वतस्याग्रेसर्वदेवनमस्कृतम् ॥ सहस्रशिरसंदेवमनंतंनीलवाससम् ॥ ५२ ॥ त्रिशिराःकांचनःकेतुस्तालस्तस्यमहात्मनः ॥ स्थापितःपर्वतस्याग्रेविराजतिसवेदिकः ॥ ५३ ॥ पूर्वस्यांदिशिनिर्माणंकृतंतत्रिदशेश्वरैः ॥ ततःपरंहेममयःश्रीमानुदयपर्वतः ॥ ५४ ॥

उत्तर तीरमें तेरह योजन विस्तार वाला कनक तुल्य प्रभाशाली सुवर्णकी चट्टानोंसे युक्त एक महान पर्वत है ॥ ५० ॥ वहांपर हे वानरो! तुम चन्द्रमाकी तुल्य श्वेत वर्णवाले कमल दलकी समान विशाल नेत्र वाले धरणी धर भुजंगोंको देखोगे ॥ ५१ ॥ वहीं सहस्र शिरवाले नीलाम्बर धारण किये सब देवताओंके नमस्कार करनेंके योग्य अनन्तजी पर्वतके शिखरपर बैठे रहते हैं ॥ ५२ ॥ इनके शिरके निकट तीन स्कंध वाली सुवर्णकी केतु-स्वरूप ताल वृक्षके आधारसे बनी हुई वेदी विराजित है उस पर अनंतजी प्रतिष्ठित हैं ॥ ५३ ॥ इन्द्रजीनें उस तरुवरको पूर्व दिशाके

वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजी; अपने श्वशुरको पश्चिम दिशामें भेजते हुये और शतबलनामक वानरनाथसे सुग्रीवजी ॥ १ ॥ बोले; सर्वज्ञ कपिराजनें जो वचन कहे वह सबही अपने और श्रीरामचन्द्रजीके हितके लियेथे ॥२॥ सुग्रीवजी बोले कि हे विक्रमशालिन्! तुम अपने मेलके शतसहस्र वनवासी वानरोंके साथ समस्त यमसुत मंत्रि गणोंके सहित यात्रा करो ॥३॥ और हिमालय पर्वतको कर्णफूल बनाये उत्तर दिशामें जायकर यशस्विनी श्रीरामचन्द्रजीकी भार्याको ढूँडो ॥ ४ ॥ हे कृतार्थोंके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ! श्रीरामचन्द्रजीका यह प्रियकार्य पूरा हो जानेंपर हम उनके ऋणसे छूट

ततःसंदिश्यसुग्रीवःश्वशुरंपश्चिमांदिशम् ॥ वीरंशतबलंनामवानरंवानरेश्वरः ॥ १ ॥ उवाचराजासर्वज्ञःसर्ववानरसत्तमः ॥ वाक्यमात्महितंचैवरामस्यचहितंतदा ॥ २ ॥ वृतःशतसहस्रेणत्वद्विधानांवनौकसाम् ॥ वैवस्वतसुतैःसार्धं प्रविष्टःसर्वमंत्रिभिः ॥ ३ ॥ दिशंह्युदीचींविक्रांतहिमशैलावतंसिकाम् ॥ सर्वतःपरिमार्गध्वंरामपत्नींयशस्विनीम् ॥ ४ ॥ अस्मिन्कार्येविनिर्वृत्तेकृतेदाशरथेःप्रिये ॥ ऋणान्मुक्ताभविष्यामःकृतार्थार्थविदांवर ॥ ५ ॥ कृतंहिप्रियमस्माकं राघवेणमहात्मना ॥ तस्यचेत्प्रतिकारोऽस्तिसफलंजीवितंभवेत् ॥ ६ ॥ अर्थिनःकार्यनिर्वृत्तिमकर्तुरपियश्चरेत् ॥ तस्यस्यात्सफलंजन्मकिंपुनःपूर्वकारिणः ॥ ७ ॥ एतांबुद्धिंसमास्थायदृश्यतेजानकीयथा ॥ तथाभवद्भिःकर्तव्यमस्मत्प्रियहितैषिभिः ॥ ८ ॥ अयंहिसर्वभूतानांमान्यस्तुनरसत्तमः ॥ अस्मासुचगतःप्रीतिंरामःपरपुरंजयः ॥ ९ ॥

जाँयगे ॥५॥ महात्मा श्रीरामचन्द्रजीनें हमारा प्रियकार्य सिद्ध कियाहै सो यदि हम उनका कुछभी प्रत्युपकार करसकें तो हमारा जीवन सफल होजाय ६॥ जिसने अपने साथमें कोई उपकार नहीं कियाहो, यदि उसके साथभी कोई उपकार कर दिया जाय तोभी जीवन सफल होजाता है फिर जोकि पहले ही उपकार कर चुका हो उसका कार्य सिद्ध करनेंमें और कहना ही क्या है ॥ ७॥ तुम लोग हमारे हितकी कामना करते हुए जिससे जानकीजी मिलजाँय या उनका पता लगजाय, इस प्रकारकी बुद्धि धारण करो, ऐसा करना सब भाँतिसे तुमको उचित है ॥ ८ ॥ शत्रुओंके पुर जीतनें वाले

न करना ॥ ६२ ॥ सुवर्ण शैलके और महात्मा सूर्यके तेजसे युक्त हो अरुण वर्णकी पूर्व संध्या प्रकाशित होतीहै ॥ ६३ ॥ जिस्से कि समस्त भुवनोंमें प्रकाश करनेंके लिये सूर्यके उदयकी आवश्यकता देख प्रथमही ऊपरमें टिके हुए सब जनोंका प्रवेश द्वार स्वरूप उदयगिरिको ब्रह्माजीनें बनायाथा इससेही इसको पूर्व दिशा कहतेंहैं ॥ ६४ ॥ उस पर्वतकी पीठ पर झरनोंमें, और गुफाओंमें, तुम लोग रावण और जानकीजीका खोज करना ॥ ६५ ॥ उदयाचलके आगे इस पूर्व दिशामें जिसके अधिष्ठाता इन्द्रादि देवताहैं वहां सूर्य चंद्रमाका प्रकाश नहींहै इस कारणसे अंधेराही

कांचनस्यचशैलस्यसूर्यस्यचमहात्मनः ॥ आविष्टातेजसासंध्यापूर्वारक्ताप्रकाशते ॥ ६३ ॥ पूर्वमेतत्कृतंद्वारंपृथिव्याभुवनस्यच ॥ सूर्यस्योदयनंचैवपूर्वाह्येषादिगुच्यते ॥ ६४ ॥ तस्यशैलस्यपृष्ठेषुनिर्झरेषुगुहासुच ॥ रावणःसहवैदेह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥ ६५ ॥ ततःपरमगम्यास्याद्दिक्पूर्वात्रिदशावृता ॥ रहिताचंद्रसूर्याभ्यामदृश्यातमसावृता ॥ ६६ ॥ शैलेषुतेषुसर्वेषुकंदरेषुनदीषुच ॥ येचनोक्तामयोद्देशाविचेयातेषुजानकी ॥ ६७ ॥ एतावद्वानरैःशक्यंगंतुंवानरपुंगवाः ॥ अभास्करममर्यादंनजानीमस्ततःपरम् ॥ ६८ ॥ अभिगम्यतुवैदेहींनिलयंरावणस्यच ॥ मासेपूर्णेनिवर्तध्वमुदयंप्राप्यपर्वतम् ॥ ६९ ॥ ऊर्ध्वंमासान्नवस्तव्यंवसन्वध्योभवेन्मम ॥ सिद्धार्थाःसन्निवर्तध्वमधिगम्यचमैथिलीम् ॥ ७० ॥

अंधेराहै, इसलिये यहांसे आगे कोई नहीं देख सकता ॥ ६६ ॥ इन सवपर्वतोंमें, कन्दराओंमें, नदियोंमें, जितने कि समस्त स्थान हमनें कहे इन सब स्थानोंमें तुम लोग जानकीजीका पता लगाना ॥ ६७ ॥ हे कपि श्रेष्ठगण! बस यहीं तक तुमलोग जानेंको समर्थ हो; इसके आगे सूर्य भगवान रहित और सीमा रहित जो स्थान हैं उन सबको हम नहीं जानते ॥ ६८ ॥ जहां जानकीजी हों, और रावणके स्थान में उदयाचल पर्वत तक जाकर एक मासके पूर्ण होते २ तुम लोग फिर आना ॥ ६९ ॥ एक मासके ऊपर वहां पर न रहना यदि कोई एक मासके ऊपर रहेगा तो उसको हम मार

जनका लंबा चौडा एक मयदानहै, जिसमें पर्वत, नदी, वृक्ष, और कोई जन्तुभी नहीं है ॥ १९ ॥ तुम सब इस रोमहर्षण मयदानको नांघकर श्वेत वर्णवाले कैलासपर्वतको पाकर हर्षित चित्त होगे ॥ २० ॥ उस कैलास पर्वतपर श्वेतवर्ण मेघकी प्रभाके समान सुवर्णसे सजाया हुआ मनोहर कुबेरजीका भवन विश्वकर्माजीनें बनायाहै ॥ २१ ॥ उस भवनमें बहुत सारे कमल फूलोंके सहित हंस और कारंडवादि जल पक्षियोंसे परिपूर्ण अप्सरा झुन्डोंसे सेवित एक तलैया विद्यमानहै ॥ २२ ॥ उस भवनमें धनद यक्षराज सर्व लोकोंके नमस्कार किये जानेंके योग्य विश्रवाके पुत्र श्रीमान् कुबेरजी गुह्यक गणोंके साथ आनंद सहित वास किया करतेहैं ॥२३॥ उस कैलासपर्वतकी चन्द्र तुल्य प्रकाशित, पर्वतश्रेणीमें और गुफाओंमें

तञ्चशीघ्रमतिक्रम्यकांतारंरोमहर्षणम् ॥ कैलासंपांडुरंप्राप्यहृष्टायूयंभविष्यथ ॥ २० ॥ तत्रपांडुरमेघाभंजांबूनदपरिष्कृतम् ॥ कुबेरभवनंरम्यंनिर्मितंविश्वकर्मणा ॥ २१ ॥ विशालानलिनीयत्रप्रभूतकमलोत्पला ॥ हंसकारंडवाकीर्णाअप्सरोगणसेविता॥२२॥तत्रवैश्रवणोराजासर्वलोकनमस्कृतः ॥ धनदोरमतेश्रीमान्गुह्यकैःसहयक्षराट् ॥२३॥ तस्यचंद्रनिकाशेषुपर्वतेषुगुहासुच ॥ रावणःसहवैदेह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥ २४ ॥ क्रौंचंतुगिरिमासाद्यबिलंतस्यसुदुर्गमम् ॥ अप्रमत्तैःप्रवेष्टव्यंदुष्प्रवेशंहितत्स्मृतम् ॥ २५ ॥ वसंतिहिमहात्मानस्तत्रसूर्यसमप्रभाः ॥ देवैरभ्यर्थिताःसम्यग्देवरूपामहर्षयः ॥ २६ ॥ क्रौंचस्यतुगुहाश्चान्याःसानूनिशिखराणिच ॥ दर्दराश्चनितंबाश्चविचेतव्यास्ततस्ततः ॥२७॥अवृक्षंकामशैलंचमानसंविहगालयम् ॥ नगतिस्तत्रभूतानांदेवानांनचरक्षसाम् ॥ २८ ॥

जरा जरा करके रावण और जानकीजीको तुम लोग ढूंडना ॥ २४ ॥ वहांसे चलकर तुम लोग क्रौंचगिरि देखोगे; उस पर्वतके दुर्गम विलोंमें बडी सावधानीसे प्रवेश करना, क्योंकि उसके ऊपरके बिल बडी कठिनाईसे प्रवेश करनेके योग्यहैं ॥ २५ ॥ और उस पर्वतपर सूर्यकी समान प्रभा वाले महात्मा देवरूप, महर्षि गण देवता लोगोंसे प्रार्थना किये जानेपर वहां वास करतेहैं ॥ २६ ॥ क्रौञ्च पर्वतकी और दूसरी गुफायें, और कंगूरे, दर्रे व नितम्बोंको भली प्रकार ढूंडना ॥ २७ ॥ इसी पर्वतका एक शिखर वृक्षोंसे रहित कामतप शैल और पक्षी गणोंका आश्रय स्थान मा

फिर गोदावरी और रमणीक कृष्णवेणी नदी मिलैगी; तदनन्तर मेकल,उत्कल, दशार्ण आदि देश मिलेंगे ॥ ९ ॥ फिर आत्रवन्ती, अवन्ती पुरी दिखलाई देगी । पश्चात् विदर्भ, ऋष्टिक, माहीषक ॥ १० ॥ इत्यादि सबदेश दृष्टि आवेंगे, फिर मत्स्य, कुलिंग, कौशिकादि देशोंको भली भांति खोजना; और नदी गुफा सहित दंडकारण्यमेंभी ढूंडना ॥ ११ ॥ तिसके पीछे तुम सबोंको दूसरी गोदावरी नदी दिखाई देगी इसके आगे, अन्ध्र, पुन्ड्र, चोल, पाण्ड्य, केरल ॥ १२ ॥ आदि देश और अयोमुख नामक अनेक धातुओंसे युक्त पर्वत जिसपर बडे विचित्र शिखरहैं, मिलेगा; इसका

ततोगोदावरींरम्यांकृष्णवेणींमहानदीम् ॥ मेकलानुत्कलांश्चैवदशार्णनगराण्यपि ॥९॥ आब्रवंतीमवंतींचसर्वमेवानुपश्यत ॥ विदर्भानृष्टिकांश्चैवरम्यान्माहिषकानपि ॥ १० ॥ तथामत्स्यकलिंगांश्चकौशिकांश्चसमंततः ॥ अन्वीक्ष्यदंडकारण्यंसपर्वतनदीगुहम् ॥ ११ ॥ नदींगोदावरींचैवसर्वमेवानुपश्यत ॥ तथैवांध्रांश्चपुंड्रांश्चचोलान्पांड्यांश्च केरलान् ॥ १२ ॥ अयोमुखश्चगंतव्यःपर्वतोधातुमंडितः ॥ विचित्रशिखरःश्रीमांश्चित्रपुष्पितकाननः ॥ १३ ॥ सुचंदनवनोद्देशोमार्गितव्योमहागिरिः ॥ ततस्तामापगांदिव्यांप्रसन्नसलिलाशयाम् ॥ १४ ॥ तत्रद्रक्ष्यथकावेरींविहृतामप्सरोगणैः ॥ तस्यासीनंनगस्याग्रेमलयस्यमहौजसः ॥ १५ ॥ द्रक्ष्यथादित्यसंकाशमगस्त्यमृषिसत्तमम् ॥ ततस्तेनाभ्यनुज्ञाताःप्रसन्नेनमहात्मना ॥ १६ ॥ ताम्रपर्णींग्राहजुष्टांतरिष्यथमहानदीम् ॥ साचंदनवनैश्चित्रैःप्रच्छन्नद्वीपवारिणी ॥ १७ ॥ कांतेवयुवतीकांतंसमुद्रमवगाहते ॥ ततोहेममयंदिव्यंमुक्तामणिविभूषितम् ॥ १८ ॥

वनभी सदा फूला फलाही रहताहै ॥ १३ ॥ चन्दनका वनभी इस पर लगा हुआहै; इस मलयाचलको भली भांति अनुसन्धान करना फिर स्वच्छ जलवाली दिव्य ॥ १४ ॥ अप्सराओंके झुन्डोंसे सेवित कावेरी नदी देखोगे, तिसके पीछे मलय पर्वतके अग्रभागमें बैठे हुए ॥ १५ ॥ महातेज सम्पन्न आदित्य तुल्य ऋषि श्रेष्ठ अगस्त्यजी को देखोगे. फिर प्रणामादि द्वारा उनको प्रसन्न करकै उनकी आज्ञासे चल ॥१६॥ विविध ग्राह युक्त महानदी ताम्रपर्णीके पार होगे । चंदनके वनके द्वारा विचित्र ढकी हुई द्वीपोंसे युक्त, स्वच्छजलवाली वह नदी ॥ १७ ॥ सर्व शृंगार किये

नदी वहतीहै, उसके दोनों किनारोंपर कीचक नामक वांस उत्पन्न होतेहैं ॥ ३७ ॥ वही वांस सिद्ध लोगोंको शैलोदके पार लेजातेहैं और फिर वही इस पारको लेआतेहैं। इसी नदीके दूसरी पार पुण्यात्मा जनोंके निवासका स्थान उत्तर कुरु देशहै ॥ ३८ ॥ उस उत्तरकुरुके रहनेवाले जन, सुवर्ण, पद्मसमन्वित पुष्करणियोंके जलसे तर्पण किया करतेहैं॥ ३९ ॥ वहांपर नीलवर्णके जिनमें वैदूर्य मणियोंके पत्ते लगरहे ऐसे सुवर्णमय लाल कमल फूलोंसे विभूषित सहस्र २ नदियां विराजमानहैं ॥ ४० ॥ प्रभात कालके सूर्यकी समान प्रकाशित समस्त जलाशय, महामणि, महारत्न, और विचित्र सुवर्णकी केशरवाले ॥ ४१ ॥ नील वर्णके कमल फलोंसे व वनोंके समूहसे बडे २ मोलके मुक्तामणियोंसे और धनसे यह

तेनयंतिपरंतीरंसिद्धान्प्रत्यानयंतिच ॥ उत्तराःकुरवस्तत्रकृतपुण्यप्रतिश्रयाः ॥ ३८ ॥ ततःकांचनपद्माभिःपद्मिनीभिःकृतोदकाः॥ ३९ ॥ नीलवैदूर्यपत्राढ्यानद्यस्तत्रसहस्रशः ॥ रक्तोत्पलवनैश्चात्रमंडिताश्चहिरण्मयैः ॥ ४० ॥ तरुणादित्यसंकाशाभांतितत्रजलाशयाः ॥ महार्हमणिरत्नैश्चकांचनप्रभकेसरैः॥४१॥ नीलोत्पलवनैश्चित्रैःसदेशःसर्वतोवृतः॥ निस्तुलाभिश्चमुक्ताभिर्मणिभिश्चमहाधनैः ॥ ४२ ॥ उद्भूतपुलिनास्तत्रजातरूपैश्चनिम्नगाः ॥ सर्वरत्नमयैश्चित्रैरवगाढानगोत्तमैः ॥४३॥ जातरूपमयैश्चापिहुताशनसमप्रभैः॥नित्यपुष्पफलास्तत्रनगाःपत्ररथाकुलाः ॥४४॥दिव्यगंधरसस्पर्शाःसर्वकामान्स्रवंतिच॥ नानाकाराणिवासांसिफलंत्यन्येनगोत्तमाः ॥४५॥मुक्तावैदूर्यचित्राणिभूषणानितथैवच॥ स्त्रीणांयान्यनुरूपाणिपुरुषाणांतथैवच ॥ ४६ ॥

देश पूर्णहै ॥ ४२ ॥ वहांपर सब नदियोंके किनारे सुवर्णमय होरहेहैं जिस्सेकि वडी शोभा होतीहै, और उनके किनारोंपर रत्नोंके तरुवर लग रहे हैं ॥ ४३ ॥ उन सब अग्निसमान प्रकाशित वृक्षोंमें सुवर्णके फूल लगे हैं;उन वृक्षोंमें नित्य फल फूल लगे रहते और पक्षीगण मीठी वाणीसे बोला करतेहैं ॥ ४४ ॥ किसी २ वृक्षमें दिव्य रसकी सुगन्धि और समस्त कमनीय पदार्थ उत्पन्न हुआ करतेहैं व और जितने उत्तम २ वृक्षहैं वह अनेक प्रकारके वसन उत्पन्न किया करतेहैं ॥ ४५ ॥ किसी २ श्रेष्ठ वृक्षमें स्त्रीऔर पुरुषोंके पहरनें योग्य उत्तम गहनें उत्पन्न होतेहैं जो मुक्ता और

इस प्रकारके संशय युक्त देशोंमें विशेष ढूंढ भाल संशय रहित होकर अमित तेजवान नरेन्द्र श्रीरामचंद्रजीकी भार्याका पता लगाओ ॥ २७ ॥ उस लंकाद्वीपको नांघकर शत योजन वाले समुद्रके बीचमें परम सुन्दरपुष्पितक नाम पर्वत सिद्ध चारण गणोंसे सेवित ॥ २८ ॥ चंद्र सूर्यकी किरणोंसे प्रभाशाली सागरके जलका आश्रय लेकर अपने विपुलकंगूरोंसे मानों स्वर्गको छूलेता टिका हुआहै ॥ २९ ॥ उसके कांचनमय एक शृङ्गकी सेवा सूर्य भगवान् किया करतेहैं, कृतघ्न, नास्तिक औरनिर्लज्ज मनुष्य गण इन शृङ्गोंको नहीं देख सकते ॥ ३० ॥ हे वानरगण ! तुम लोग इस पर्वत श्रेष्ठको प्रणाम करके सीताजीको खोजना उस दुर्द्धर्षपर्वतको नांघकर आगे सूर्यवान नाम पर्वत॥ ३१ ॥ पर पहुँचोगे। इसका

एवंनिःसंशयान्कृत्वासंशयानष्टसंशयाः ॥ मृगयध्वंनरेंद्रस्यपत्नीममिततेजसः॥२७॥तमतिक्रम्यलक्ष्मीवान्समुद्रेशत योजने ॥ गिरिःपुष्पितकोनामसिद्धचारणसेवितः ॥२८॥ चंद्रसूर्यांशुसंकाशःसागरांबुसमाश्रयः ॥ भ्राजतेविपुलैःशृंगै रंबरंविलिखन्निव ॥ २९ ॥ तस्यैकंकांचनंशृंगंसेवतेऽयंदिवाकरः ॥ नतंकृतघ्नाःपश्यंतिननृशंसाननास्तिकाः ॥३० ॥ प्रणम्यशिरसाशैलंतंविमार्गथवानराः ॥ तमतिक्रम्यदुर्धर्षंसूर्यवान्नामपर्वतः ॥ ३१ ॥ अध्वनादुर्विगाहेनयोजनानि चतुर्दश ॥ ततस्तमप्यतिक्रम्यवैद्युतोनामपर्वतः ॥ ३२ ॥ सर्वकामफलैर्वृक्षैःसर्वकालमनोहरैः ॥ तत्रभुक्त्वावरार्हाणि मूलानिचफलानिच ॥ ३३ ॥ मधूनिपीत्वाजुष्टानिपरंगच्छतवानराः ॥ तत्रनेत्रमनःकांतःकुंजरोनामपर्वतः ॥ ३४ ॥ अगस्त्यभवनंयत्रनिर्मितंविश्वकर्मणा ॥ तत्रयोजनविस्तारमुच्छ्रितंदशयोजनम् ॥ ३५ ॥ शरणंकांचनंदिव्यंनाना रत्नविभूषितम् ॥ तत्रभोगवतीनामसर्पाणामालयःपुरी ॥ ३६ ॥

विस्तार चौदह योजनहै और यह अति दुर्गमहै, फिर इस्से आगे चलकर वैद्युत नाम पर्वतहै ॥ ३२॥ यह सर्वकालमेंही मनोहरहै और सब कामना युक्त फलोंको देनेंवाले वृक्ष इसपर लगे हुयेहैं। वहांपर उत्तम भोजन फल मूल खाय ॥ ३३॥ और मधु पीकर तृप्तहो तुम सब लोग आगे बढना तहां नेत्र और मनको आराम देने वाला कुंजर नामक पर्वतहै॥ ३४॥ वहांपर पहले विश्वकर्म्माजीनें अगस्त्यजीका भवन बनायाथा। यह भवन विस्ता रमें एक योजन और उंचाईमें दश योजनहै॥ ३५॥ इस सुवर्ण मय गृहमें अनेक प्रकारके दिव्य रत्न भूषितहोरहेहैं। इसी कुंजर पर्वत पर सर्पोंके

साथ वास करते हैं ॥ ५६ ॥ कुरुके उत्तर देशमें तुम लोग कदापि मतजाना, क्योंकि वहांपर और कोई जीवधारी नहीं जा सकता ॥ ५७ ॥ वह सोमगिरि नामक पर्वत देवता लोगोंकेभी जानेके योग्य नहीं है तुम लोग केवल उसका दर्शनही करके लौट आना ॥ ५८ ॥ हे वानर श्रेष्ठगण! वानर लोग यहींतक जा सकते हैं; इसके आगे सीमा रहित और सूर्य रहित स्थानोंको हम नहीं जानते॥ ५९॥ हमनें जो स्थान बताये, उन सबही स्थानोंको तुम लोग ढूंढना; और जो स्थान कि हमारे बतलानेंसे रह गये हों; उन सबको अपनी बुद्धिके अनुसार तुम लोग खोजना ॥६०॥ऐसा करनेंसे श्रीरामचन्द्रजीका और हमारा अति प्रियकार्य हो जायगा । हे अनिलतुल्य! और अनल तुल्य वानरगण! उन जनककुमारीका पता लगानेंसे,

नकथंचनगंतव्यंकुरूणामुत्तरेणवः ॥ अन्येषामपिभूतानांनानुक्रामतिवैगतिः ॥ ५७ ॥ सहिसोमगिरिर्नामदेवानामपि दुर्गमः ॥ तमालोक्यततःक्षिप्रमुपावर्तितुमर्हथ ॥ ५८ ॥ एतावद्वानरैःशक्यंगंतुंवानरपुंगवाः ॥ अभास्करममर्यादंनजानीमस्ततःपरम् ॥५९॥ सर्वमेतद्विचेतव्यंयन्मयापरिकीर्तितम् ॥ यदन्यदपिनोक्तंचतत्रापिक्रियतांमतिः ॥ ६० ॥ ततःकृतंदाशरथेर्महत्प्रियंमहत्प्रियंचापिततोममप्रियम् ॥ कृतंभविष्यत्यनिलानलोपमाविदेहजादर्शनजेनकर्मणा॥६१॥ ततःकृतार्थाःसहिताःसबांधवामयार्चिताःसर्वगुणैर्मनोरमैः॥चरिष्यथोर्वींप्रतिशांतशात्रवाःसहप्रियाभूतधराःप्लवंगमाः ॥६२॥इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेत्रिचत्वारिंशःसर्गः ॥४३ ॥ विशेषेणतुसुग्रीवोहनूमत्यर्थमुक्तवान् ॥ सहितस्मिन्हरिश्रेष्ठेनिश्चितार्थोऽर्थसाधने ॥ १ ॥ अब्रवीच्चहनूमंतंविक्रांतमनिलात्मजम् ॥ सुग्रीवः परमप्रीतःप्रभुःसर्ववनौकसाम् ॥२॥ नभूमौनांतरिक्षेवानांबरेनामरालये ॥ नाप्सुवागतिसंगंतपश्यामिहरिपुंगव॥३॥

हम तुम सबही निःसन्देह कृत कृत्य हो जांयगे ॥ ६१ ॥ फिर कृतार्थ हो हमसे पूजित और शत्रुरहित हो सब मनोहर गुणोंसे विभूषित और भूत गणोंसें आश्रय स्वरूप हो अपनी प्रियाके सहित सुख स्वच्छन्दतासे तुम लोग घूमना ॥ ६२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥ यद्यपि सब वानरोंको सुग्रीवजीनें सब ओरको जानेंके लिये आज्ञादी तथापि सुग्रीवजीनें निश्चय कियाथा कि कार्यकी सिद्धि हनुमानजीसेही होगी इस कारण कपि श्रेष्ठ हनुमानजीसे ॥ १ ॥ वानर नाथ सुग्रीवजी परम प्रीतिसे बोले; क्योंकि यह हनुमानजी पवनके पुत्र और बडे पराक्रमीथे ॥ २ ॥ हे वानर श्रेष्ठ! भूमिमें, वा पक्षियोंके उडनेंके स्थान अन्तरिक्षमें

गति नहींहै ॥ ४५ ॥ जो जो स्थान हमनें बताये तुम सब इनमें व और स्थानभीजो कि दिखाईदें इन सबको देखभाल सीताजीकी गतिजान कर फिर आओ ॥ ४६ ॥ जो वानर एक मासके भीतर लौटकर"हमनें सीताजीको देखाहै" यह वचन कहैगा वह हमारी समान विभवशाली होकर सुखसे विहार करैगा ॥ ४७ ॥ उस्से अधिक और कोईभी हमारा प्रिय न होगा, व अनेक वार अपराध करने परभी हमारा बन्धु रहैगा ॥४८॥ हे वानर गण ! तुम लोग अमित बल विक्रम शाली और विपुल गुण सम्पन्न कुलमें उत्पन्न हुये हो, इस समय तुम सब, कि जिस्से जनककुमारी

सर्वमेतत्समालोक्ययच्चान्यदपिदृश्यते ॥ गतिंविदित्वावैदेह्याःसन्निवर्तितुमर्हथ ॥ ४६ ॥ यश्चमासान्निवृत्तोग्रेदृष्टासीतेतिवक्ष्यति ॥ मत्तुल्यविभवोभोगैःसुखंसविहरिष्यति ॥ ४७ ॥ ततःप्रियतरोनास्तिममप्राणाद्विशेषतः ॥ कृतापराधोबहुशोममबंधुर्भविष्यति ॥ ४८ ॥ अमितबलपराक्रमाभवंतोविपुलगुणेषुकुलेषुचप्रसूताः ॥ मनुजपतिसुतांयथालभध्वंतदधिगुणंपुरुषार्थमारभध्वम् ॥ ४९ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०किष्किंधाकांडेएकचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४१ ॥ ७ ॥ अथप्रस्थाप्यसहरीन्सुग्रीवोदक्षिणांदिशम् ॥ अब्रवीन्मेघसंकाशंसुषेणंनामवानरम् ॥ १ ॥ तारायाःपितरंराजाश्वशुरंभीमविक्रमम् ॥ अब्रवीत्प्रांजलिर्वाक्यमभिगम्यप्रणम्यच ॥ २ ॥ महर्षिपुत्रंमारीचमर्चिष्मंतंमहाकपिम् ॥ वृतंकपिवरैःशूरैर्महेंद्रसदृशद्युतिम् ॥ ३ ॥

सीताजी प्राप्त होजाँय इस विषयमें अनुकूल पुरुषार्थ प्रकाशकर विशेषभांतिसे यत्न करते रहो ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि काव्ये किष्किन्धाकांडे एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥ अनन्तर सुग्रीवजी उन समस्त वानरवृन्दोंको दक्षिणदिशामें भेजकर सुषेण नाम वानरसे बोले ॥ १ ॥ यह सुषेण ताराके पिता, और वालि सुग्रीवके श्वशुर, भयंकर विक्रम करने वालेथे, इस्से उनके हाथ जोड प्रणाम कर सुग्रीवजी बोले ॥ २ ॥ और महर्षि मरीचिके पुत्र अर्चिष्मान् नामक महावानरसे जो कि अति शूरवीर कपिगणोंसे सेवित, महेन्द्राचल सम आ

देनेंके लिये हनुमानजीको अर्पण करदी ॥ १२ ॥ हे वानर श्रेष्ठ ! इसनिशानीसे जानकीजी तुमको निश्चित हमारे निकटसे आया हुआ झट पट जान जांयगी ॥ १३ ॥ हे वीरेन्द्र ! तुम्हारीं दृढ चित्तता और अनुपम विक्रम और सुग्रीवजीका आदेश इन सबसेही हमको अपने कार्यकी सिद्धि जान पडतीहै ॥ १४ ॥ यह कपि श्रेष्ठ हनुमानजी उस अँगूठीको माथे चढा हाथ जोडकर श्रीरामचंद्रजीके दोनों चरणोंकी वन्दना करके गमन करनेको तैयार हुये ॥ १५ ॥ पवनपुत्र कपिवीर; वह बडीभारी सेना संगलेकर मेघ रहित विमल आकाशमें तारा गणोंसे शोभित

अनेनत्वांहरिश्रेष्ठचिह्नेनजनकात्मजा ॥ मत्सकाशादनुप्राप्तमनुद्विग्नाऽनुपश्यति ॥ १३ ॥ व्यवसायश्चतेवीरसत्त्व युक्तश्चविक्रमः ॥ सुग्रीवस्यचसंदेशःसिद्धिंकथयतीवमे ॥ १४ ॥ सतद्गृह्यहरिश्रेष्ठःकृत्वामूर्ध्निकृतांजलिः ॥ वंदित्वा चरणौचैवप्रस्थितःप्लवगर्षभः ॥ १५ ॥ सतत्प्रकर्षन्हरिणांमहद्बलंबभूववीरःपवनात्मजःकपिः ॥ गतांबुदेव्योम्नि विशुद्धमंडलःशशीवनक्षत्रगणोपशोभितः ॥ १७ ॥ अतिबलबलमाश्रितस्तवाहंहरिवरविक्रमविक्रमैरनल्पैः ॥ पव नसुतयथाऽधिगम्यतेसाजनकसुताहनुमंस्तथाकुरुष्व ॥ १७ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०किष्किंधाकांडेचतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ सर्वांश्चाहूयसुग्रीवःप्लवगान्प्लवगर्षभः ॥ समस्तांश्चाब्रवीद्राजारामकार्यार्थसिद्धये ॥ १ ॥ एवमेतद्विचेतव्यंभवद्भिर्वानरोत्तमैः ॥ तदुग्रशासनंभर्तुर्विज्ञायहरिपुंगवाः ॥२॥ शलभाइवसंछाद्यमेदिनींसंप्रतस्थिरे ॥ रामःप्रस्रवणेतस्मिन्न्यवसत्सहलक्ष्मणः ॥ ३ ॥

विशुद्ध मंडल चंद्रमाकी समान शोभापाने लगे ॥ १६ ॥ हेसिंह विक्रम ! अति बल शालीन ! पवन पुत्र ! हमनें तुम्हारेही बलका आश्रय कियाहै; तुम इस समय ऐसा विधान विपुल विक्रमसे करोकिजिस्से जानकीजी प्राप्त हो जांय ॥ १७ ॥ इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०कि०चतुश्चत्वारिंशःसर्गः॥४४॥ अनन्तर कपिराज सुग्रीवजी सब वानरोंको पुकारकर उनसे श्रीरामचंद्रजीके कार्यकी सिद्धि करनेंके लिये कहने लगे ॥ १ ॥ हे वानर श्रेष्ठ गण ! तुम सबही हमारी अति उग्र आज्ञाको जानकर रावण और जानकीजीको खोजो ॥ २ ॥ टीडीकी समान पृथ्वीको छायकर समस्त वानर

ढूँडना ॥ १२ ॥ और समुद्रके किनारे की भूमिवाले सब पर्वत, वन, और मुरची पत्तन, और रमणीक जटापुर ॥ १३ ॥ अवंती, और दो पुरी, अंग
लेपा व आलक्षित नामक समस्त वन विशाल राज्य और विशाल वाणिज्यके स्थान देखना ॥ १४ ॥ वहांपर सिन्धुनद और सगर संगमके स्थल
में महा तरु समूह समन्वित शत शिखरवाला, सोमगिरि नामक एक महान पर्वतहै ॥ १५ ॥ उस पर्वतके रमणीक प्रस्थ देशमें सिंह नामक पक्षी
वास करतेहैं; वह पक्षी तिमि, मत्स्य, और हाथियोंको पंजेसे पकडकर अपने घोंसलेमें लेजाय भक्षण कर लेतेहैं ॥ १६ ॥ उन सिंह पक्षियोंमें गये
और गिरिशृङ्गोपर संतापित व उद्दीप्त हाथी मेघोंके गर्जनकी समान शब्द किया करतेहैं ॥ १७ ॥ यह हाथियोंके झुन्ड उस पर्वतके किनारे जो स

वेलातलनिविष्टेषुपर्वतेषुवनेषुच ॥ मुरचीपत्तनंचैवरम्यंचैवजटापुरम् ॥ १३ ॥ अवंतीमंगलेपांचतथाचालक्षितंवनम् ॥
राष्ट्राणिचविशालानिपत्तनानिततस्ततः ॥ १४ ॥ सिंधुसागरयोश्चैवसंगमेतत्रपर्वतः ॥ महान्सोमगिरिर्नामशतशृंगो
महाद्रुमः ॥ १५ ॥ तत्रप्रस्थेषुरम्येषुसिंहाःपक्षगमास्थिताः ॥ तिमिमत्स्यगजांश्चैवनीडान्यारोपयंतिते ॥ १६ ॥ ता
निनीडानिसिंहानांगिरिशृंगगताश्चये ॥ दृप्तास्तृप्ताश्चमातंगास्तोयदस्वननिःस्वनाः ॥ १७ ॥ विचरंतिविशालेस्मिंस्तो
यपूर्णेसमंततः ॥ तस्यशृंगंदिवस्पर्शंकांचनंचित्रपादपम् ॥ १८ ॥ सर्वमाशुविचेतव्यंकपिभिःकामरूपिभिः ॥ को
टिंतत्रसमुद्रस्यकांचनींशतयोजनाम् ॥ १९ ॥ दुर्दर्शांपारियात्रस्यगत्वाद्रक्ष्यथवानराः ॥ कोटचस्तत्रचतुर्विंशद्गंध
र्वाणांतपस्विनाम् ॥ २० ॥ वसंत्यग्निनिकाशानांघोराणांपापकर्मणाम् ॥ पावकार्चिःप्रतीकाशाःसमवेताःसमंततः ॥ २१ ॥

मुद्रहै उस परभी विचरा करतेहैं उस पर्वतका एक सुवर्ण मय शृंग इतनाऊँचाहै मानों स्वर्गको चला गयाहै, और उसपर भांति २ के चित्र विचित्र
वृक्ष लगेहैं; वहांपर तुम सब वानर लोग काम रूप धारण करके शीघ्रतासहित सब स्थानोंको ढूंडना। उसी समुद्रमें पारियात्र नाम पर्वतकी कोटि
शत योजन विस्तारकीहै ॥ १८ ॥ १९ ॥ हे वानर गणो ! उस कोटिका देखना दुर्गम होनें परभी तुम लोग उसे देखोगे। जहांपर चौवीस
कोटि२४०००००० गन्धर्व और तपस्वी गण मिलकर तपस्या करतेहैं ॥ २० ॥ यह सब अग्निकी तुल्य दीप्तमान घोर पापकारियोंके जलानें

हम वृक्षोंको उखाड डालेंगे, हम पर्वतोंको तोड फोड डालेंगे, हम पृथ्वीको विदीर्ण कर डालेंगे, हम समुद्रको खल बला डालेंगे ॥१४॥ हम एक छलांगमें येक योजन, हम येक शतसे भी अधिक योजन येक छलांगमें कूदजांयगे ॥ १५ ॥ हमारी गति पृथ्वीमें, समुद्रमें, पर्वतोंमें व वनोंमें पातालमें कहीं भी नहीं रुक सकती, हम सबही स्थानोंमें जा सकतेहैं ॥ १६ ॥ उन वानरराज सुग्रीवजीके निकट येक २ वानर अपने बलके दर्प से ऐंठते अकडते ऐसा कहनें लगे ॥ १७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे पंच चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

विधमिष्याम्यहंवृक्षान्दारयिष्याम्यहंगिरीन् ॥ धरणींदारयिष्यामिक्षोभयिष्यामिसागरान् ॥ १४ ॥ अहंयोजन
संख्यायाःप्लवेयंनात्रसंशयः ॥ शतयोजनसंख्यायाःशतंसमधिकंह्यहम् ॥ १५ ॥ भूतलेसागरेवापिशैलेषुचवनेषुच ॥
पातालस्यापिवामध्येनममाच्छिद्यतेगतिः ॥ १६ ॥ इत्येकैकस्तदातत्रवानराबलदर्पिताः ॥ ऊचुश्चवचनंतस्यहरिरा
जस्यसन्निधौ ॥ १७ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०किष्किंधाकांडेपंचचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४५ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ गतेषु
वानरेंद्रेषुरामःसुग्रीवमब्रवीत् ॥ कथंभवान्विजानीतेसर्वंवैमंडलंभुवः ॥ १ ॥ सुग्रीवश्चततोराममुवाचप्रणतात्मवान् ॥
श्रूयतांसर्वमाख्यास्येविस्तरेणवचोमम ॥ २ ॥ यदातुदुंदुभिंनामदानवंमहिषाकृतिम् ॥ प्रतिकालयतेवालीमलयंप्र
तिपर्वतम् ॥ ३ ॥ तदाविवेशमहिषोमलयस्यगुहांप्रति ॥ विवेशवालीतत्रापिमलयंतज्जिघांसया ॥ ४ ॥ ततोहंतत्र
निक्षिप्तोगुहाद्वारिविनीतवत् ॥ नचनिष्क्रामतेवालीतदासंवत्सरेगते ॥ ५ ॥

जब चारों ओरको सब वानरोंके झुन्ड चले गये तव श्रीरामचंद्रजीने सुग्रीवसे कहाकि तुमनें समस्त पृथ्वी मण्डलका समाचार किसप्रकारसे जाना? ॥ १ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीने ऐसा कहा तो सुग्रीवजी शिरनवायश्रीरामचंद्रजीसे बोले कि आप श्रवण करें हम सब विस्तार सहित कहते हैं ॥ २ ॥ जब भैंसे की समान आकार वाले दुन्दुभी नामक दानवके पीछेधावमान होकर वालि मलयाचल पर्यंत तक चलागया॥३॥जब वह महिष मलयाचलकी गुफामें प्रवेश करगया तब वालि भी उसके वध करनेकी वासना से उस पर्वतकी गुफामें बैठा ॥ ४ ॥ हम उस गुफाकेद्वार

उसमें नरक नामक दुष्टात्मा दानव वास करता है ॥ ३१ ॥ उस पर्वतके रमणीक कँगूरों और गुफाओंमें रावणके सहित जानकीजीको ढूंडना तुम्हारा कर्त्तव्य है ॥ ३२ ॥ उस कांचन गर्भ शैलराजको नांघकर धारा और झरनो करकै सहित सर्व सौवर्ण नाम पर्वत दिखाई देगा॥ ३३ ॥ उस पर्वत पर वराह सिंह व्याघ्रादि जन्तु गण सर्वदाही अपने शब्दकी प्रति ध्वनि श्रवण कर दर्पित हो शीघ्रतासे फिर गर्जन करनें लगते हैं ॥३४॥ इसके आगे मेघ नामक पर्वत है इस पर्वतपर पाकशासन श्रीमान इन्द्रजीका देवता ओंनें सुरराज्यपर अभिषेक कियाथा॥ ३५ ॥ इस महेन्द्र परिपालित अचल राजको नांघकर तुम सुवर्णके साठ हजार पर्वत देखोगे ॥३६॥ यह सब पर्वत प्रभात कालके सूर्यकी समान प्रकाशित

तत्रसानुषुरम्येषुविशालासुगुहासुच ॥ रावणःसहवैदेह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥ ३२ ॥ तमतिक्रम्यशैलेंद्रंकांचनांतरदर्शनम् ॥ पर्वतःसर्वसौवर्णोधाराप्रस्रवणायुतः ॥ ३३ ॥ तंगजाश्ववराहाश्चसिंहाव्याघ्राश्चसर्वतः ॥ अभिगर्जंतिसततंतेनशब्देनदर्पिताः॥३४॥यस्मिन्हरिहयःश्रीमान्महेंद्रःपाकशासनः॥अभिषिक्तःसुरैराजामेघोनामसपर्वतः॥३५॥ तमतिक्रम्यशैलेंद्रंमहेंद्रपरिपालितम् ॥ षष्टिंगिरिसहस्राणिकांचनानिगमिष्यथ ॥ ३६ ॥ तरुणादित्यवर्णानिभ्राजमानानिसर्वशः॥जातरूपमयैर्वृक्षैःशोभितानिसुपुष्पितैः ॥३७॥ तेषांमध्येस्थितोराजामेरुरुत्तमपर्वतः ॥ आदित्येनप्रसन्नेनशैलोदत्तवरःपुरा ॥ ३८ ॥ तेनैवमुक्तःशैलेंद्रःसर्वएवत्वदाश्रयाः ॥ मत्प्रसादाद्भविष्यंतिदिवारात्रौचकांचनाः ॥३९॥ त्वयियेचापिवत्स्यंतिदेवगंधर्वदानवाः ॥तेभविष्यंतिभक्ताश्चप्रभयाकांचनप्रभाः ॥ ४० ॥ विश्वेदेवाश्चवसवोमरुतश्चदिवौकसः ॥ आगत्यपश्चिमांसंध्यांमेरुमुत्तमपर्वतम् ॥ ४१ ॥

हैं और फूले फले हुये सुवर्ण मय वृक्षोंके समूहसे शोभायमान हैं॥ ३७ ॥ उन साठ हजार पर्वतोंके मध्यमें येक अति उत्तम राजाकी समान सुवर्ण मय मेरुपर्वत है; पहले सूर्यनारायणने प्रसन्न होकर इसको वरदान दियाथा ॥ ३८ ॥ वह वरदान इस प्रकार दियाथा कि येक समय सूर्य नारायणने उस अचलसे कहाकि हमारे प्रसादसे तुम्हारे आश्रित समस्त पर्वत दिन रात्रिमें सुवर्ण मय हो जांयगे ॥ ३९ ॥ और तुम्हारे ऊपर जो देव दानव और गन्धर्व गण वास करेंगे वह हमारे भक्त गण सुवर्णकी समान प्रभावान हो जायँगे ॥ ४० ॥ इस सावर्णि-मेरु पर्वत पर विश्वदेव

प्रकारके विविध रमणीक सरोवर देखे ॥ १४ ॥ वहांपर धातुमंडित उदय पर्वत और अप्सराओंके रहनेंका स्थान क्षीरसमुद्रभी देखा॥ १५ ॥ वहां भी हमारे पीछेर वालि आया तब वहांसे हम भागतेरफिर उदयाचलपर्वतपर आये ॥ १६ ॥ पूर्व दिशासे हम विन्ध्याचल और विविध वृक्षोंसे युक्त चन्दन वृक्ष परिशोभित दक्षिणदिशाको भागे ॥ १७ ॥ वहां परभी दूसरे पर्वत पर हमनें अपने पीछे वालिको भागते हुए देखा तब हम वहांसेभी भागे और फिर पश्चिम दिशाको आये ॥ १८ ॥ पश्चिम दिशामें विविध देश अनेक पर्वत, और गिरिश्रेष्ठ अस्ताचलको

उदयंतत्रपश्यामिपर्वतंधातुमंडितम् ॥ क्षीरोदंसागरंचैवनित्यमप्सरसालयम् ॥ १५ ॥ परिकाल्यमानस्तुतदावालिनाभिद्रुतोह्यहम् ॥ पुनरावृत्यसहसाप्रस्थितोऽहंतदाविभो ॥ १६ ॥ दिशस्तस्यास्ततोभूयःप्रस्थितोदक्षिणांदिशम् ॥ विंध्यपादपसंकीर्णांचंदनद्रुमशोभिताम् ॥ १७ ॥ द्रुमशैलांतरेपश्यन्भूयोदक्षिणतोपराम् ॥ अपरांचदिशंप्राप्तोवालिनासमभिद्रुतः ॥ १८ ॥ सपश्यन्विविधान्देशानस्तंचगिरिसत्तमम् ॥ प्राप्यचास्तंगिरिश्रेष्ठमुत्तरंसंप्रधावितः ॥ १९ ॥ हिमवंतंचमेरुंचसमुद्रंचतथोत्तरम् ॥ यदानाविंदेशरणंवालिनासमभिद्रुतः ॥ २० ॥ ततोमांबुद्धिसंपन्नोहनुमान्वाक्यमब्रवीत् ॥ इदानींमेस्मृतंराजन्यथावालीहरीश्वरः ॥ २१ ॥ मतंगेनतदाशप्तोह्यस्मिन्नाश्रममंडले ॥ प्रविशेद्यदिवावालीमूर्धास्यशतधाभवेत् ॥ २२ ॥ तत्रवासःसुखोऽस्माकंनिरुद्विग्नोभविष्यति ॥ तत्रपर्वतमासाद्यऋष्यमूकंनृपात्मज ॥ २३ ॥

देख, वहांभी वालिके आनेंका समाचार पाय फिर उत्तर दिशाको भागे ॥ १९ ॥ उत्तर दिशामें पहुँच हिमवान्, मेरु और उत्तर समुद्रतक हम चले गये, परन्तु वालिके भयसे हमको कहीं शरण नहीं मिली ॥२० ॥तब बुद्धिमान् हनुमानजीनें हमसे कहा कि हे राजन् ! इस समय हमको याद आया कि यह वानरराज वालि ॥ २१ ॥ मतंग मुनिके शापसे शापित जब उस आश्रममंडलमें प्रवेश करेगा तब उसके मस्तकके शत खंड हो जाँयगे ॥ २२ ॥वहांपर वास करनेंसे हम सब बेखटके सुखसे वास कर सकेंगे; जब हनुमानजीनें ऐसा कहा तो हम ऋष्यमूक पर्वत पर आये॥२३॥

तक जासकतेहैं कि जहांतक सूर्यका प्रकाश और मर्यादा है ; और इसके आगे हम कुछभी नहीं जानते हैं ॥ ५१ ॥ रावणका स्थान और जानकी जीके निकट गमन करनेंके लिये अस्ताचलतक चले जाकर एक मास पूर्ण होते २ लौट आओ ॥ ५२ ॥ एक माससे ऊपर वहांपर मत लगाना और जो एक माससे पीछे आवैगा उसको हम मार डालेंगे, हमारे श्वशुर महावीर्य सुषेण तुम लोगोंके साथ जाँयगे ॥ ५३ ॥ तुम सब उनकी आ ज्ञामें रहना; और जो कुछ यह कहैं वह श्रवण करना क्योंकि यह हमारे श्वशुर महाबलवान् और महाबलशाली हैं इस्से गुरू हैं ॥ ५४ ॥ और

अवगम्यतुवैदेहींनिलयंरावणस्यच ॥ अस्तंपर्वतमासाद्यपूर्णेमासेनिवर्तत ॥ ५२ ॥ ऊर्ध्वंमासान्नवस्तव्यंवसन्वध्यो भवेन्मम ॥ सहैवशूरोयुष्माभिःश्वशुरोमेगमिष्यति ॥ ५३ ॥ श्रोतव्यंसर्वमेतस्यभवद्भिर्दिष्टकारिभिः ॥ गुरुरेषम हाबाहुःश्वशुरोमेमहाबलः ॥ ५४ ॥ भवंतश्चापिविक्रांताःप्रमाणंसर्वएवहि ॥ प्रमाणमेनंसंस्थाप्यपश्यध्वंपश्चिमांदि शम् ॥ ५५ ॥ कृतकृत्याभविष्यामःकृतस्यप्रतिकर्मणा ॥ अतोन्यदपियत्कार्यंकार्यस्यास्यप्रियंभवेत् ॥ संप्रधार्य भवद्भिश्चदेशकालार्थसंहितम् ॥ ५६ ॥ ततःसुषेणप्रमुखाःप्लवंगमाःसुग्रीववाक्यंनिपुणंनिशम्य ॥ आमंत्र्यसर्वेप्लवगाधि पास्तेजग्मुर्दिशंतांवरुणाभिगुप्ताम् ॥ ५७ ॥ ॥ इतिश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेद्वि चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४२ ॥

पश्चिम दिशाको खोजो ॥ ५५ ॥ तुम सबभी पराक्रमी और कर्त्तव्य कार्यका निश्चय करनेंवाले हो; तथापि इनको नियम बतलानेंवाला जानकर जब उपकारका बदला प्रत्युपकार देदेंगे तब हम लोग कृतकार्य हो जांयगे इसके सिवाय रावणका वध होनेंतक जो समस्त प्रिय कार्य हैं उन सबको तुम लोग देश काल और अर्थके अनुसार विचार लेना ॥ ५६ ॥ तब सुषेणादि निपुण वानरगण सुग्रीवजीके विनीत वचन सुन उनसे विदाले प्रीति सहित पश्चिम दिशाको चले गये ॥ ५७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥४२॥

सब वानरोंके सहित सीताजीको ढूंडकर सुग्रीवजीके निकट उपस्थित हुआ ॥ ९ ॥ उस प्रस्रवणगिरिपर लक्ष्मण सहित रामचन्द्रको प्रणाम कर सुग्रीवजीसे बोला ॥ १० ॥ हमनें समस्त पर्वत, गहन, वन, सागर, नदी, जनपद, ग्राम, पुरादि ढूंडे ॥ ११ ॥ आपके बताये हुए सब गुहादि स्थान ढूंडे और अनेक भांतिके कुंजभी बार २ खोजे ॥ १२ ॥ उनमें जो गहन देशथे उनको वारंवार ढूंढा जो दुर्ग गहन विषम स्थानथे बडे २ जीवोंके रहनेंके स्थानमें ढूंड और उन्हें मार जो रुरु देशहैं उन्हें बार २ देखा ॥ १३ ॥ हे वानरेन्द्र ! महावीर्यवान् और महाकुलमें उत्पन्न

तंप्रस्रवणपृष्ठस्थंसमासाद्याभिवाद्यच ॥ आसीनंसहरामेणसुग्रीवमिदमब्रुवन् ॥१०॥ विचिताःपर्वताःसर्वेवनानिगहनानिच ॥ निम्नगाःसागरांताश्चसर्वेजनपदाश्चये ॥ ११ ॥ गृहाश्चविचिताःसर्वायाश्चतेपरिकीर्तिताः ॥ विचिताश्चमहागुल्मालतावितत संतताः ॥ १२ ॥ गहनेषुचदेशेषुदुर्गेषुविषमेषुच ॥ सत्त्वान्यतिप्रमाणानिविचितानिहतानिच ॥ येचैवगहनादेशाविचितास्तेपुनःपुनः ॥ १३ ॥ उदारसत्त्वाभिजनोहनूमान्समैथिलींज्ञास्यतिवानरेंद्र ॥ दिशंतुयामेवगतातुसीतातामास्थितोवायुसुतोहनूमान् ॥ १४ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेसप्तचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४७ ॥ सहतारांगदाभ्यांतुसहसाहनुमान्कपिः ॥ सुग्रीवेणयथोद्दिष्टंगंतुंदेशंप्रचक्रमे ॥ १ ॥ सतुदूरमुपागम्यसर्वैस्तैःकपिसत्तमैः ॥ ततोविचित्यविंध्यस्यगुहाश्चगहनानिच ॥ २ ॥ पर्वताग्रनदीदुर्गान्सरांसिविपुलद्रुमान् ॥ वृक्षखंडांश्चविविधान्पर्वतान्वनपादपान् ॥ ३ ॥ अन्वेषमाणास्तेसर्वेवानराःसर्वतोदिशम् ॥ नसीतांददृशुर्वीरामैथिलींजनकात्मजाम् ॥ ४ ॥

हुए हनुमानजी सीताको अवश्यही जानसकेंगे क्योंकि सीताजी जिस दिशाको गईहैं; पवनकुमार हनुमान्‌जी उसी दक्षिण दिशामें गयेहैं ॥ १४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० किष्किन्धाकांडे सप्तचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४७ ॥ इधर कपिवर हनुमानजी तार और अंगदजीके सहित सुग्रीवजीकी बताई हुई दिशामें गमन करने लगे ॥ १ ॥ वह समस्त कपिगणोंके सहित दूर गमन करके विन्ध्याचलकी सघन गुहादि खोजनें लगे ॥ २ ॥ पर्वत और उनके आगे बहती हुई नदी दुर्गम स्थान सरोवर अनेक तरुवर सघनवृक्षोंसे युक्त विविध पर्वत ॥ ३ ॥ भली भांति सब वानरोंनें दक्षिण दिशामें

श्रीरामचन्द्रजी सर्व प्राणियोंके मान्य और प्रियहैं; सो यह हमारे ऊपर परम प्रसन्न होरहेहैं; तुम लोग अपनी बुद्धि और विक्रमसे जैसे होसके वैसे बहुतसे दुर्गम स्थान, नदी और पर्वत सबमें जानकीजीको ढूंडो॥९॥१०॥ उस उत्तर दिशाकी ओर जानेमें म्लेक्ष, पुलिन्द, शूरसेन, प्रस्थल, भरत, कुरु, मद्रक, ॥ ११ ॥ कम्बोज, वरद, यवन, और शकोंके नगर देखकर हिमालय पर्वतको खोजना ॥ १२ ॥ लोध्र और पद्मक वनमें और देवदारुके वनमें जानकीजी और रावण का अनुसन्धान करना तुम्हारा कर्तव्यहै ॥ १३ ॥ फिर सोमाश्रमपर जाय देवता और गन्धर्वगणोंसे सेवित

इमानिबहुदुर्गाणिनद्यःशैलांतराणिच ॥ भवंतःपरिमार्गंतुबुद्धिविक्रमसंपदा ॥ १० ॥ तत्रम्लेछान्पुलिंदांश्चशूरसेनांस्तथैवच ॥ प्रस्थलान्भरतांश्चैवकुरूंश्चसहमद्रकैः ॥ ११ ॥ कांबोजयवनांश्चैवशकानांपत्तनानिच ॥ अन्वीक्ष्यवरदांश्चैवहिमवंतंविचिन्वथ ॥ १२ ॥ लोध्रपद्मकखंडेषुदेवदारुवनेषुच ॥ रावणःसहवैदेह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥ १३ ॥ ततःसोमाश्रमंगत्वादेवगंधर्वसेवितम् ॥ कालंनाममहासानुंपर्वतंतंगमिष्यथ ॥ १४ ॥ महत्सुतस्यशैलेषुपर्वतेषुगुहासुच॥ विचिन्वतमहाभागांरामपत्नीमनिंदिताम् ॥ १५ ॥ तमतिक्रम्यशैलेंद्रंहेमगर्भंमहागिरिम् ॥ ततःसुदर्शनंनामपर्वतंगंतुमर्हथ ॥ १६ ॥ ततोदेवसखानामपर्वतःपतगालयः ॥ नानापक्षिसमाकीर्णोविविधद्रुमभूषितः ॥ १७ ॥ तस्यकांचनखंडेषुनिर्दरेषुगुहासुच ॥ रावणःसहवैदेह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥ १८ ॥ तमतिक्रम्यचाकाशंसर्वतःशतयोजनम् ॥ अपर्वतनदीवृक्षंसर्वसत्त्वविवर्जितम् ॥ १९ ॥

बडे २ कँगूरोंसे युक्त काल नामक पर्वतको तुम लोग देखोगे ॥ १४ ॥ उस पर्वतकी बडी कन्दराओंमें और सब दुर्गम स्थानोंमें उन निन्दा रहित श्रीरामचन्द्रजीकी भार्याको तुम लोग ढूंडना ॥ १५ ॥ उस काल पर्वतको नाँघकर हेमगर्भ महापर्वत सुदर्शनपर तुम लोग जाओगे ॥ १६ ॥ फिर अनेक भांतिके पक्षियोंसे परिपूर्ण और विविध प्रकारके वृक्षोंसे शोभायमान पक्षि लोगोंका वासस्थान देवसखा नाम महा पर्वतहै ॥ १७ ॥ उसकी सुवर्णमय कन्दराओंमें, और समस्त निर्झरोंमें रावण और जानकीजीको तुम लोग ढूंडना ॥ १८ ॥ उस देवसखा पर्वतके आगे शत यो

तोंकी कन्दरायें ॥ १४ ॥ व नदियें आदि सबही खोजे पर उन महात्माओंनें वहांभी जनककुमारी सीताजीको न पाया ॥ १५ ॥ अथवा सुग्रीवजीके प्रियकारी श्रीरामचंद्रजीकी वनिता हरण करनेंवाले रावणकोभी नहीं देखा वह सब वानर लता और झाडियोंसे ढके उस भयंकर ॥ १६ ॥ वनमें प्रवेश करके देवताओंसे निर्भय हुए भयंकर कर्म करनेवाले एक राक्षसको देखते हुए वानरोंनें उस पर्वताकार घोर असुरको देख कर ॥ १७ ॥ दृढ रूपसे जांघिया आदि वस्त्र पहरे वह बली राक्षसभी उनसमस्त पर्वताकार वानरोंको देखकर उनसे बोला कि देखो मैं अभी तुम

प्रभवानिनदीनांचविचिन्वंतिसमाहिताः ॥ तत्रचापिमहात्मानोनापश्यन्जनकात्मजाम् ॥ १५ ॥ हर्तारंरावणं वापिसुग्रीवप्रियकारिणः ॥ तेप्रविश्यतुतंभीमंलताग़ुल्मसमावृतम् ॥ १६ ॥ ददृशुर्भीमकर्माणमसुरंसुरनिर्भयम् ॥ तंदृष्ट्वावानराघोरंस्थितंशैलमिवासुरम् ॥ १७ ॥ गाढंपरिहिताःसर्वेदृष्ट्वातंपर्वतोपमम् ॥ सोपितान्वानरान्सर्वान्नष्टाःस्थेत्यब्रवीद्बली ॥ १८ ॥ अभ्यधावतसंक्रुद्धोमुष्टिमुद्यम्यसंगतम् ॥ तमापतंतंसहसावालिपुत्रोंगदस्तदा ॥ १९ ॥ रावणोऽयमितिज्ञात्वातलेनाभिजघानह ॥ सवालिपुत्राभिहतोवक्राच्छोणितमुद्वमन् ॥ २० ॥ असुरोन्यपतद्भूमौपर्यस्तइवपर्वतः ॥ तेतुतस्मिन्निरुच्छ्वासेवानराजितकाशिनः ॥ २१ ॥ विचिन्वन्प्रायशस्तत्रसर्वंतेगिरिगह्वरम् ॥ विचितंतुततःसर्वंसर्वेतेकाननौकसः ॥ २२ ॥

सबको मारे डालताहूं ॥ १८ ॥ यह कहकर घूसातान क्रोधकर वह उनसब वानरोंपै धाया उसको इस भांतिसे आता हुआ देखकर सहसा वालिकुमार अंगदजीने ॥ १९ ॥ यही रावणहै यह समझकर उसके एक चपेटलगाई वह वालिपुत्र अंगदजीके चपटाघातसे व्याकुल हो मुखमें रुधिर वमन करता ॥ २० ॥ उखडेहुए पर्वतकी समान वह राक्षस पृथ्वीपर गिरा, उस असुरके मृतक हो जानेंसे वानरगण विजयलक्ष्मी पाय परमानंदको प्राप्त हुए ॥ २१ ॥फिर उन समस्त वानरोंनें पर्वतकी समस्त कंदराओंको और बनको ढूंढा

नस सरोवरहै, वहांपर देवता, राक्षस और मनुष्यादि जीव गणोंके पहुँचनेंकी गति नहींहै ॥ २८ ॥ इसकारणसे युक्ति पूर्वक तुम सब उस पर्वतके छोटे और बडे शृंगोंको देखना, क्रौञ्च पर्वतसे आगे चलनें पर मेनाक नामपर्वत दिखाई देगा ॥ २९ ॥ उस पर मयदानवने आपही अपनें रहनेंके स्थानको बनायाहै। उस मेनाकके शृंग; प्रस्थ; और कन्दराओंमें सीताजीको ढूंडना ॥ ३० ॥ यह मेनाक पर्वत अश्वमुखी (किन्नरी) स्त्रियोंका भवनहै, इस देशको नांघकर सिद्धसेवित आश्रमोंपर पहुँचोगे ॥ ३१ ॥ वहांपर सिद्ध, वैखानस, वालखिल्य, आदि तपस्वी गण वास करतेहैं; वह पाप रहित सिद्ध व तपस्वियों गणोंके वन्दन करनेके योग्यहैं ॥ ३२ ॥ इस कारण विनय सहित उन सब लोगोंसे सीताजीका समाचार पूछना

सचसर्वैर्विचेतव्यःससानुप्रस्थभूधरः ॥ क्रौंचंगिरिमतिक्रम्यमेनाकोनामपर्वतः ॥ २९ ॥ मयस्यभवनंतत्रदानवस्यस्वयंकृतम् ॥ मैनाकस्तुविचेतव्यःससानुप्रस्थकंदरः ॥ ३० ॥ स्त्रीणामश्वमुखीनांतुनिकेतस्तत्रतत्रतु ॥ तंदेशंसमतिक्रम्यआश्रमंसिद्धसेवितम् ॥ ३१ ॥ सिद्धावैखानसायत्रवालखिल्याश्चतापसाः ॥ वंदितव्यास्ततःसिद्धास्तपसावीतकल्मषाः ॥ ३२ ॥ प्रष्टव्याचापिसीतायाःप्रवृत्तिर्विनयान्वितैः ॥ हिमपुष्करसंछन्नंतत्रवैखानसंसरः ॥ ३३ ॥ तरुणादित्यसंकाशैर्हंसैर्विचरितंशुभैः ॥ औपवाह्यःकुवेरस्यसार्वभौमइतिस्मृतः ॥ ३४ ॥ गजःपर्येतितंदेशंसदासहकरेणुभिः ॥ तत्सरःसमतिक्रम्यनष्टचंद्रदिवाकरम् ॥ अनक्षत्रगणंव्योमनिष्पयोदमनादितम् ॥ ३५ ॥ गभस्तिभिरिवार्कस्यसतुदेशःप्रकाश्यते ॥ विश्राम्यद्भिस्तपःसिद्धैर्देवकल्पैःस्वयंप्रभैः ॥ ३६ ॥ तंतुदेशमतिक्रम्यशैलोदानामनिम्नगा ॥ उभयोस्तीरयोस्तस्याःकीचकानामवेणवः ३७ ॥

उचितहै। वहांपर एक वैखानस नाम सरोवरहै। जिसमें सुवर्णके कमल खिल रहेहैं ॥ ३३ ॥ उस सरोवरपर प्रभात कालके सूर्यकी समान रंग वाले शुभ हंसगण भ्रमण किया करतेहैं और कुवेरजीको सवारीका सार्वभौम नामक ॥ ३४ ॥ गज अपनी हथनियोंके साथ वहां विचरा करताहै; इस सरोवरके नांघनेपर सूर्य चंद्र विहीन और नक्षत्र व मेघोंसे रहित नित्य आकाश स्थलहै ॥ ३५ ॥ वहांपर तो केवल सूर्य नारायणकी किरणोंसे प्रकाश होता रहताहै; वहांपर अपनेही तेजकी प्रभासे दीप्तिमान देव समान सिद्ध लोग तप किया करतेहैं ॥ ३६ ॥ उस देशके आगे शैलोदा नामक

सबको जरा २ करके खोजो ॥ ७ ॥ जो लोग कार्यको करते हैं उनको उस कार्यका फल अवश्यही मिलता है परन्तु एक बार खेदयुक्त होनेसे
फिर उत्साह आना अत्यन्त कठिन हो जाता है ॥ ८ ॥ हे वानरगण! सुग्रीवजी बडे क्रोधी राजा हैं; वह बडा कडा दंड दिया करते हैं; इसलिये उन
से और महात्मा श्रीरामचन्द्रजीसे भय करना उचित है ॥ ९ ॥ तुम्हारे सबके हित करनेंहीके लिये हमनें ऐसा कहा है; यदि रुचि हो तो इस कार्य
को करो; जिस्से जितना कार्य होसके उतनाही कार्य करे; और तुमनें जो कुछ हितकारी बात विचारी हो वहभी कहो ॥ १० ॥ अंगदजीके वचन
सुनकर गन्धमादन नामक वानर प्यासके मारे और परिश्रमसे व्याकुल हो कहने लगा ॥ ११ ॥ अंगदजीने जो कुछ कहा वह हितकारी और अनुकू

अवश्यंकुर्वतांतस्यदृश्यतेकर्मणःफलम् ॥ परंनिर्वेदमागम्यनहिनोन्मीलनंक्षमम् ॥ ८ ॥ सुग्रीवःक्रोधनोराजाती
क्ष्णदंडश्चवानराः ॥ भेतव्यंतस्यसततंरामस्यचमहात्मनः ॥ ९ ॥ हितार्थमेतदुक्तंवःक्रियतांयदिरोचते ॥ उच्यतां
हिक्षमंयत्तत्सर्वेषामेववानराः ॥ १० ॥ अंगदस्यवचःश्रुत्वावचनंगंधमादनः ॥ उवाचव्यक्तयावाचापिपासाश्रमखिन्न
या ॥ ११ ॥ सदृशंखलुवोवाक्यमंगदोयदुवाचह ॥ हितंचैवानुकूलंचक्रियतामस्यभाषितम् ॥ १२ ॥ पुनर्मार्गाम
हेशैलान्कंदरांश्चशिलास्तथा ॥ काननानिचशून्यानिगिरिप्रस्रवणानिच ॥ १३ ॥ यथोद्दिष्टानिसर्वाणिसुग्रीवेणमहा
त्मना ॥ विचिन्वंतुवनंसर्वेगिरिदुर्गाणिसंगताः ॥ १४ ॥ ततःसमुत्थायपुनर्वानरास्तेमहाबलाः ॥ विंध्यकाननसंकी
र्णांविचेरुर्दक्षिणांदिशम् ॥ १५ ॥ तेशारदाभ्रप्रतिमंश्रीमद्रजतपर्वतम् ॥ शृंगवंतंदरीवंतमधिरुह्यचवानराः ॥ १६ ॥
तत्रलोध्रवनंरम्यंसप्तपर्णवनानिच ॥ विचिन्वंतोहरिवराःसीतादर्शनकांक्षिणः ॥ १७ ॥

ल है इसलिये इनके कहनेंके अनुसार कार्य करो ॥ १२ ॥ हम सब जन पर्वत कन्दरायें, शिला, वन और पर्वतोंके शूने स्थान ढूंडे ॥ १३ ॥ जिस
प्रकार सुग्रीवजीनें बताया है उसी प्रकारसे गिरिदुर्ग और पर्वतोंके झरनें सब फिरकर ढूंडो ॥ १४ ॥ यह सुनकर समस्तही बलवान वानरगण फिर
उठे और विन्ध्याचलकी कानन पूर्ण दक्षिण दिशामें घूमने लगे ॥ १५ ॥ घूमते २ उन्होंनें एक शरदकालकी मेघकी तुल्य रंगवाला शिखर और
गुफादि युक्त चांदीका एक पर्वत देखा उसपर चढ ॥ १६ ॥ और उसी गिरिपर सीताजीके देखनेंकी इच्छा किये समस्त वानरोंनें सातपत्तेवाले

हुये मणियोंसे चित्रित होतेहैं ॥ ४६ ॥ किसी २ वृक्षोंमें सब ऋतुओंमेंपहरनेके योग्य वस्त्रही फला करतेहैं; और तरुवरमें बडे मोलके खिलौनें फला करतेहैं ॥ ४७ ॥ बहुतसे वृक्षोंमें चित्र विचित्र विस्तरे फले करतेहैं किसी २ वृक्षोंमें मनोहर हार ॥ ४८ ॥ और बहुतसे वृक्षोंमें बडे मोलकी सवारियां और खानें पीनेंकी वस्तुयें उत्पन्न होतीहैं; उस स्थानमें रूपयौवन सम्पन्न गुण युक्त स्त्रियांभी फलतीहैं ॥ ४९ ॥ दीप्यमान गन्धर्वगण किन्नरगण, सिद्धगण, नागगण, विद्याधरगण, अपनी २ स्त्रियोंके सहित वहां विहार करतेहैं ॥ ५० ॥ वह सबही पुण्यवान्, सबही रति परायण सबही कामभोग युक्त होते और अपनी २ स्त्रियोंके सहित वास करतेहैं ॥ ५१ ॥ वहांपर समस्त जीव गणोंके रमणीक हास्य स्वरके सहित

सर्वर्तुसुखसेव्यानिफलंत्यन्येनगोत्तमाः॥ महार्हमणिचित्राणिफलंत्यन्येनगोत्तमाः ॥ ४७ ॥शयनानिप्रसूयंतेचित्रास्तरणवंतिच ॥ मनःकांतानिमाल्यानिफलंत्यत्रापरेद्रुमाः॥ ४८ ॥पानानिचमहार्हाणिभक्ष्याणिविविधानिच ॥ स्त्रियश्चगुणसंपन्नारूपयौवनलक्षिताः ॥ ४९ ॥ गंधर्वाःकिन्नराःसिद्धानागाविद्याधरास्तथा ॥ रमंतेसततंतत्रनारीभिर्भास्वरप्रभाः ॥ ५० ॥सर्वेसुकृतकर्माणःसर्वेरतिपरायणाः॥ सर्वेकामार्थसहितावसंतिसहयोषितः ॥ ५१ ॥ गीतवादित्रनिर्घोषःसोत्कृष्टहसितस्वरैः ॥ श्रूयतेसततंतत्रसर्वभूतमनोरमः ॥ ५२ ॥ तत्रनामुदितःकश्चिन्नात्रकश्चिदसत्प्रियः ॥ अहन्यहनिवर्धंते गुणास्तत्रमनोरमाः ॥ ५३ ॥ तमतिक्रम्यशैलेंद्रमुत्तरःपयसांनिधिः ॥ तत्रसोमगिरिर्नाममध्येहेममयोमहान् ॥ ५४ ॥ सतुदेशोविसूर्योपितस्यभासाप्रकाशते॥सूर्यलक्ष्म्याभिविज्ञेयस्तपतेवविवस्वता ॥ ५५ ॥ भगवांस्तत्रविश्वात्माशंभुरेकादशात्मकः ॥ ब्रह्मावसतिदेवेशोब्रह्मर्षिपरिवारितः ॥ ५६ ॥

गीत, और वाजोंकी ध्वनि सदाही सुनाई आया करतीहै ॥ ५२ ॥ वहांपर कोईभी असन्तुष्ट नहीं, किसीको किसी प्यारी वस्तुका वियोग नहीं वहांपर दिन २ मनोहर गुणोंकी भरती हुआ करतीहै ॥ ५३ ॥ जब उस पर्वतसे तुम आगे चलोगे तो उत्तर समुद्र आवैगा वहांपर सुवर्णमय सोमनामक एक महा पर्वत विद्यमान हैं ॥ ५४ ॥ यद्यपि वहांपर सूर्यका प्रकाश नहीं है तथापि सोम पर्वतकी प्रभासे ही वहां ऐसा प्रकाश रहता है कि जैसा सूर्य युक्त देशमें रहता है ॥ ५५ ॥ वहांपर विश्वात्मा एकादश रुद्रात्मक महादेवजी और देवेश्वर ब्रह्माजी सब ब्रह्मर्षि गणोंके

कि अनेक प्रकारकी गुफा व सघन विस्तारित वन विद्यमानथे; हनुमानजीनें उन समस्त पर्वतोंको ढूंडा ॥ ४ ॥ परस्पर एक दूसरेके निकट रह
कर एक २ करके गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गंधमादन, ॥ ५ ॥ मैन्द, द्विविद, हनुमान, जाम्बवान्, युवराज अंगद, तार, इन सबने वनमें फिरते
हुये ॥ ६ ॥ पर्वतके समूहसे युक्त दक्षिणदिशाको ढूंडते भालते हुये एक अति ऐंडी गुफा देखी ॥७॥ उस का ऋक्षबिल नामथा, वह अति दुर्गम और
दानवोंसे रक्षित बेल पत्तोंसे ढक रहीथी. क्षुधा, और प्यास लगनेंके कारण थके जलपान करनेंकी इच्छा किये ॥८॥ लता पातादिकों से छाये
उस महाविलको देखते हुये, उसमें से क्रौञ्च, हंस, सारस आदि पक्षी निकल रहेथे ॥ ९ ॥ जलसे भीगे कमल परागसे रँगीले अरुण चकवा चकवीभी

परस्परेणरहिताअन्योन्यस्याविदूरतः ॥ गजोगवाक्षोगवयःशरभोगंधमादनः ॥५॥ मैंदश्चद्विविदश्चैवहनूमान्जांबवा
नपि॥अंगदोयुवराजश्चतारश्चवनगोचरः॥६॥ गिरिजालावृतान्देशान्मार्गित्वादक्षिणांदिशम्॥विचिन्वंतस्ततस्तत्रदद्द
शुर्विवृतंबिलं॥७॥दुर्गमृक्षबिलंनामदानवेनाभिरक्षितं॥ क्षुत्पिपासापरीतास्तुश्रांतास्तुसलिलार्थिनः॥८॥अवकीर्णंलता
वृक्षैर्दद्दशुस्तेमहाबिलम् ॥ तत्रक्रौंचाश्चहंसाश्चसारसाश्चापिनिष्क्रमन् ॥ ९ ॥ जलार्द्राश्चक्रवाकाश्च रक्तांगाःपद्मरेणु
भिः ॥ ततस्तद्बिलमासाद्यसुगंधिदुरतिक्रमम् ॥ १० ॥ विस्मयव्यग्रमनसोबभूवुर्वानरर्षभाः ॥ संजातपरिशंकास्तेत
द्बिलंप्लवगोत्तमाः ॥ ११ ॥ अभ्यपद्यंतसंहृष्टास्तेजोवंतोमहाबलाः ॥ नानासत्त्वसमाकीर्णंदैत्येंद्रनिलयोपमम् ॥
॥ १२ ॥ दुर्दर्शमिवघोरंचदुर्विगाह्यंचसर्वशः ॥ ततःपर्वतकूटाभोहनूमान्मारुतात्मजः ॥ १३ ॥ अब्रवीद्वानरान्
घोरान्कांतारवनकोविदः ॥ गिरिजालावृतान्देशान्मार्गित्वादक्षिणांदिशम् ॥ १४ ॥

दृष्टि आये, उस सुगन्धिवान, बडे कठिनसे प्रवेश करने योग्य बिलको प्राप्त होकर ॥ १० ॥ सब वानरयूथपोंका मन विस्मयसे व्याकुल होगया उन
सब वानर श्रेष्ठोंको उस बिलके विषयमें बडी शंका उत्पन्न हुई ॥ ११ ॥ वह तेजस्वी महा बलवान् वानर गण अनेकप्रकार के जीवोंसे परिपूर्ण राजा
बलिके स्थानके तुल्य उस बिलके द्वारपर आये ॥ १२ ॥ वह बिल बडे कष्टसे दर्शन करनेंके योग्य अतिघोर सब स्थानोंमें दुर्गम थी, तब पर्वतकी
समान पवनकुमार हनुमानजी ॥ १३ ॥ जोकि वनपर्वतोंका विषय भली भांति जानतेथे घोरदर्शन वानरोंसे बोले कि हम सबनें दक्षिणदिशामें

या मेघोंके चलनेके स्थान अम्बरमें; अथवा स्वर्गमें किम्वा सलिलमें,कहींभी तुम्हारी गति नहीं रुक सकती ॥ ३ ॥ असुर, गन्धर्व, नाग, नर, और देवता ओंके लोक व समुद्र पृथ्वी और पातालादि समस्त लोकोंको तुमजानते हो ॥ ४ ॥ हे महावीर! क्या गतिमें, क्या तेजमें, क्या शीघ्रतामें, सबमें तुम अपने पिता तेजस्वी पवनकीही समान हो ॥ ५ ॥ और तुम्हारी समान तेजशाली जीव तीनों लोकमें नहीं है; इस कारण जिस्से सीताजीका पता लगजाय ऐसा यत्न करनेमें तुमको विशेष यत्न करनाउचित है ॥ ६ ॥ हे नीति पंडित हनुमन्! तुममेंही बल बुद्धि, पराक्रम देश और कालज्ञान और नीति यह समस्तही विद्यमान हैं ॥ ७ ॥ तव श्रीरामचन्द्रजी हनुमान्‌जीसेही कार्यकी सिद्धि विचार करकै, और हनुमानजीके

गतिर्वेगश्चतेजश्चलाघवंचमहाकपे॥ सासुराःसहगंधर्वाःसनागनरदेवताः॥विदिताःसर्वलोकास्तेससागरधराधराः॥४॥ तद्यथालभ्यतेसीतातत्त्वमेवानुचिंतय ॥ ६ ॥ तेजसावापितेभूतंनसमंभुविविद्यते ॥ पितुस्तेसदृशंवीरमारुतस्यमहौजसः ॥ ५ ॥ ततःकार्यसमासंगमवगम्यहनूमति ॥ त्वय्येवहनुमन्नस्तिबलंबुद्धिःपराक्रमः ॥ देशकालानुवृत्तिश्चनयश्चनयपंडित ॥ ७ ॥ निश्चितार्थतरश्चापिहनूमान्कार्यसाधने ॥ ९ ॥ सर्वथानिश्चितार्थोयंहनूमतिहरीश्वरः ॥ विदित्वाहनुमंतंचचिंतयामासराघवः ॥ ८ ॥ भर्त्रापरिगृहीतस्यध्रुवःकार्यफलोदयः ॥ १० ॥ तदेवप्रस्थितस्यास्यपरिज्ञातस्यकर्मभिः ॥ तंसमीक्ष्यमहातेजाव्यवसायोत्तरंहरिम् ॥ कृतार्थइवसंहृष्टःप्रहृष्टेंद्रियमानसः ॥ ११ ॥ ददौतस्य ततःप्रीतःस्वनामांकोपशोभितम् ॥ अंगुलीयमभिज्ञानंराजपुत्र्याःपरंतपः ॥ १२ ॥

बल विक्रमकी ओर सीताजीके उद्धार करनेकी गुरुताको मनहीमनमें विचारकरनेलगे ॥ ८ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें विचाराकि, कपिराजसुग्रीवजी यहसमझेहुयेहैं कि हनुमानजीसेही कार्यकी सिद्धि होगी और हमाराभी अधिक तर यही विचारहै कि इनसेही कार्यकी सिद्धिहोगी ॥ ९ ॥ यह हनुमानजी अपने कर्मोंसे प्रसिद्ध हुयेहैं और राजाभी इनके ऊपर कृपा करताहै, यदि यह वीरकेशरो सीताजीके ढूँडनेंको जांयगे तो अवश्यही कार्यकी सिद्धिहोगी ॥ १० ॥ महा तेजवान रामचंद्रजी हनुमानजीको कार्यके साधन करनेमें श्रेष्ठ विचारकरके कृतार्थकी समान सन्तुष्ट होगये हर्षके कारण उनकी सब इन्द्रियां प्रफुल्लित होगई ॥ ११ ॥ तिसके पीछे पर वीर घाती श्रीरामचंद्रजीनें प्रसन्नहोकर एक अंगूठी जिसपर उनका नाम खुदा हुआथा सीताजीको निशानो

पडे रहे क्योंकि वह बहुत दुर्बलहोरहेथे ॥ २३ ॥ उन वानरोंनें इधर उधर देखकर समझा कि बस अब यहींपर हमारा मरण होगा फिर बडे कष्ट और यत्नसे चले तो आगे एक बहुत प्रकाशमय वन दृष्टि आया ॥ २४ ॥ उस वनके सुवर्ण मय वृक्षोंकी प्रभा अग्निकी प्रभाके तुल्यथी, उन वृक्षोंमें ताल, तमाल, पुन्नाग, वंजुल, धव, ॥ २५ ॥ चंपक, नाग, कर्णिकार यह सब वृक्ष फूलरहेथे और विचित्र लाल वर्णके गुच्छे और कोंपल इन वृक्षोंमें लगेथे ॥ २६ ॥ उन वृक्षोंपर जो बेलें छांईहुईथीं, वही उनके गहनेंकी समान शोभायमान हो रहीथीं, उन सबके थांवले वैदूर्य्यमणिके बनाये गयेथे ॥ २७ ॥ यह सब वृक्ष कांचन मय होनेंसे प्रकाशमानथे और सरोवरोंमें नील वैदूर्यमणिके सजीव पक्षी गुंजार कर

आलोकंददृशुर्वीरानिराशाजीवितेयदा ॥ ततस्तंदेशमागम्यसौम्यावितिमिरंवनम्॥ २४॥ददृशुःकांचनान्वृक्षान्दीप्तवैश्वानरप्रभान् ॥ सालांस्तालांस्तमालांश्चपुन्नागान्वंजुलान्धवान् ॥ २५ ॥ चंपकान्नागवृक्षांश्चकर्णिकारांश्चपुष्पितान् ॥ स्तबकैःकांचनैश्चित्रैरक्तैःकिसलयैस्तथा ॥ २६ ॥ आपीडैश्चलताभिश्चहेमाभरणभूषितान् ॥ तरुणादित्यसंकाशान्वैदूर्यमयवेदिकान् ॥ २७ ॥ विभ्राजमानान्वपुषापादपांश्चहिरण्मयान् ॥ नीलवैदूर्यवर्णाश्चपद्मिनीः पतगैर्वृताः ॥२८॥ महद्भिःकांचनैर्वृक्षैर्वृतंबालार्कसन्निभैः ॥ जातरूपमयैर्मत्स्यैर्महद्भिश्चाथपंकजैः॥२९॥नलिनीस्तत्रददृशुःप्रसन्नसलिलायुताः ॥ कांचनानिविमानानिराजतानितथैवच ॥ ३० ॥ तपनीयगवाक्षाणिमुक्ताजालावृतानिच ॥ हैमराजतभौमानिवैदूर्यमणिमंतिच ॥ ३१ ॥ ददृशुस्तत्रहरयोगृहमुख्यानिसर्वशः ॥ पुष्पितान्फलिनोवृक्षान्प्रवालमणिसन्निभान् ॥ ३२ ॥ कांचनभ्रमरांश्चैवमधूनिचसमंततः ॥ मणिकांचनचित्राणिशयनान्यासनानिच ॥ ३३ ॥

रहेथे ॥ २८ ॥ बालसूर्यके समान रंगवाले बडे २ वृक्ष सुवर्णके ही लग रहेथे,और सरोवरोंमें मीनभी सुवर्णके हीथे, कमलभी सब हेममयथे ॥२९॥ इस प्रकारकी स्वच्छ जल वाली पुष्करिणियोंके देखनेंके अतिरिक्त शत २ विमान वहांथे जिनमें अनेक चांदीके बनेथे अनेक सोनेके थे ॥३०॥ सब सुवर्णमय झरोखोंमें मोतियोंकी झालर लगीथीं, सुवर्ण व चांदोके बने वैदूर्यमणियुक्त ॥ ३१ ॥ वहां अनेक प्रकारके गृह वानरोंने देखे और फल पुष्प युक्त मूंगे मणियोंके वृक्षभी देखते हुए॥ ३२ ॥ सुवर्णमय भ्रमर और मधु और मणि काञ्चन सेवित सुवर्णके शयन करनें उठनें बैठनेंके

गण गमन करने लगे; श्रीरामचंद्रजी, लक्ष्मणजीके सहित उस प्रस्रवणपर्वतपर बसे ॥ ३ ॥ सीताजीका समाचार जाननेमें एक महीनेंकी अवधि निश्चय कर रामचंद्रजी वहां बसे फिर हिमाचलसे युक्त रमणीक उत्तरदिशाको ॥ ४ ॥ कपिश्रेष्ठ शतवलि अपनी सेनाको लेकर गया और विनत नामक यूथनाथ उत्तर दिशाको चला ॥ ५ ॥ और तार अंगदादिसहित पवनपुत्र हनुमानजी अगस्त्यजीसे सेवित दक्षिण दिशाको गये ॥ ६ ॥ और वानर शार्दूल सुषेण वरुणजीसे पाली जातीहुई घोर पश्चिम दिशाकी ओर सिधारा, ॥ ७ ॥ तब सब ओरको यथानुरूप वानरोंकी सेनाको भेजकर कपिनाथ राजा सुग्रीवजी हर्षित चित्त हुये ॥ ८ ॥ इस प्रकार भेजे जाकर सकल वानर यूथप अपनी २ बताई हुई दिशा

प्रतीक्षमाणस्तंमासंसीताधिगमनेकृतः ॥ उत्तरांतुदिशंरम्यांगिरिराजसमावृताम् ॥ ४ ॥ प्रतस्थेसहसावीरोहरिः शतबलिस्तदा ॥ पूर्वांदिशंप्रतिययौविनतोहरियूथपः ॥ ५ ॥ तारांगदादिसहितःप्लवगःपवनात्मजः ॥ अगस्त्याचरितामाशांदक्षिणांहरियूथपः ॥ ६ ॥ पश्चिमांचदिशंघोरांसुषेणःप्लवगेश्वरः ॥ प्रतस्थेहरिशार्दूलोदिशंवरुणपालिताम् ॥ ७ ॥ ततःसर्वादिशोराजाचोदयित्वायथातथम् ॥ कपिसेनापतिर्वीरोमुमोदसुखितःसुखम्ः ॥ ८ ॥ एवंसंचोदिताः सर्वेराज्ञावानरयूथपाः ॥ स्वांस्वां दिशमभिप्रेत्यत्वरिताःसंप्रतस्थिरे ॥ ९ ॥ नदंतश्चोन्नदंतश्चगर्जंतश्चप्लवंगमाः ॥ क्ष्वेडंतो धावमानाश्चविनदंतोमहाबलाः ॥ १० ॥ एवंसंचोदिताःसर्वेराज्ञावानरयूथपाः ॥ आनयिष्यामहेसीतांहनिष्यामश्चरावणम् ॥ ११ ॥ अहमेकोवधिष्यामिप्राप्तंरावणमाहवे ॥ ततश्चोन्मथ्यसहसाहरिष्येजनकात्मजाम् ॥ १२ ॥ वेपमानांश्रमेणाद्यभवद्भिःस्थीयतामिति ॥ एकएवाहरिष्यामिपातालादपिजानकीम् ॥ १३ ॥

ओंको शीघ्रतासे गमन करते हुये ॥ ९ ॥ महा बलवान् वानर दल, नाद, उच्चनाद, गर्जन और क्रोध पूर्वक अनेक प्रकारके शब्द करते हुये दौडे ॥ १० ॥ वानरराज सुग्रीवजी करके भेजे हुये सब वानर हाथ जोडकर "हमरावणको मार डालेंगे" हम जानकीजीको ले आवेंगे ॥ ११ ॥ कोई २ बोलेकि हम इकलेही रणस्थलमें रावणको पाय सहित सहाय उसको मार जानकीजीको ले आवेंगे ॥ १२ ॥ कोई बोलेकि यदि जानकीजी पातालमें भीहों तो उन श्रमसे कम्पमान होती हुई कामनीको "स्थिर होओ" इस प्रकारसेसमझा दृढ सहित हम अकेलेही उनको वहांसे ले आवेंगे ॥ १३ ॥

धर्मचारिणी महाभागा तपस्विनीसे बोले॥१॥हम लोग सब भांतिसे थकित प्यासे और खिन्न होकर सहसा इस अंधकारसे ढके हुए बिलमें चले आयेहैं॥२॥ हम लोग अधिक करकै प्यासे होनेंके कारणही इस वडे भारी विलमें प्रवेश कर आये हैं। परन्तु यहांपर आय यह विविध भांतिके अद्भुत पदार्थ देखे ॥ ३ ॥ जिनके देखतेही हम सब व्यथित, सम्भ्रान्त चित्त और हतबुद्धि होगये हैं, यह प्रभात कालीन सूर्यकी समान प्रभावाले सुवर्ण मय वृक्ष किसके हैं? ॥ ४ ॥ यह पवित्र भोजन करनेंके पदार्थ फल मूलादि किसके हैं? सुवर्णमय विमान चांदीके बने गृह ॥ ५ ॥

इदंप्रविष्टाःसहसाबिलंतिमिरसंवृतम् ॥ क्षुत्पिपासापरिश्रांताःपरिखिन्नाश्चसर्वशः ॥ २ ॥ महद्धरण्याविवरंप्रविष्टाःस्म पिपासिताः ॥ इमांस्त्वेवंविधान्भावान्विविधानद्भुतोपमान् ॥ ३ ॥ दृष्ट्वावयंप्रव्यथिताःसंभ्रांतानष्टचेतसः ॥ कस्यैते कांचनावृक्षास्तरुणादित्यसन्निभाः ॥ ४ ॥ शुचीन्यभ्यवहाराणिमूलानिचफलानिच ॥ कांचनानिविमानानिराजता निगृहाणिच ॥ ५ ॥ तपनीयगवाक्षाणिमणिजालावृतानिच ॥ पुष्पिताःफलवंतश्चपुण्याःसुरभिगंधयः ॥ ६ ॥ इमेजांबूनदमयाःपादपाःकस्यतेजसा ॥ कांचनानिचपद्मानिजातानिविमलेजले ॥ ७ ॥ कथंमत्स्याश्चसौवर्णादृश्यंतेसहकच्छपैः ॥ आत्मनस्त्वनुभावाद्वाकस्यवैतत्तपोबलम् ॥ ८ ॥ अजानतांनःसर्वेषांसर्वमाख्यातुमर्हसि ॥ एवमुक्ता हनुमतातापसीधर्मचारिणी ॥ ९ ॥ प्रत्युवाचहनूमंतंसर्वभूतहितेरता ॥ मयोनाममहातेजामायावीवानरर्षभ ॥ १० ॥

सुवर्णमय मणियोंके जाल लगे यह झरोखे पुष्पित फलवान् पुण्य दायक सुगन्धिसे महकते ॥ ६ ॥ जाम्बूनदके सुवर्णमय वृक्ष किसके तेजसे उत्पन्न हुये हैं सुवर्णमय कमल फूलसे विमल जलमें कैसे बने ॥ ७ ॥ मछलियां और कछुये किसके तेजसे सुवर्णमय हुये? यह सब आपके प्रभावसे अथवा और किसी तपस्याके बलसे बनेंहैं? ॥ ८ ॥ हम सब इस बातको कुछ भी नहीं जानते आप अनुग्रह करकै यह सब वृत्तान्त हमसें कहदीजिये, जब हनुमानजीनें उस धर्मचारिणी तपस्विनीसे ऐसा कहा ॥९॥ तब सब प्राणियोंके ऊपर दया करनेवाली वह तपस्विनी हनुमानजीको उत्तर

पर विनीत हो टिके रहे और येक संवत वीत गया तौभी वालि नहीं लौटा ॥ ५ ॥फिर रुधिरकी धारासे वह बिल परिपूर्ण होगया तिसको देख
हम विस्मित और भाईके शोकसे जर्जरित हो गये ॥ ६ ॥ फिर हमने बुद्धि रहित होकर स्थिर किया कि बडा भाई वालि मारागया ऐसा
समझ कर पर्वतकी समान येक शिला खंड बिलके द्वारपर लगाय उसको बंद किया ॥ ७ ॥ हमने विचाराकि महिष इसमेंसे निकलनेंका उद्योग करेगा
तो आपही इस्से दबकर मर जायगा ऐसा विचार, और भ्राता वालिके जीवनसे निराशहो हम किष्किन्धाको चले आये ॥ ८ ॥ नगरमें आय ता
रा और रुमा व बडे राज्यको पाय बन्धु बान्धवोंके सहित हम सुखसे वास करने लगे ॥ ९ ॥ फिर वानरश्रेष्ठ वालि उस दानवको मारकर

ततःक्षतजवेगेनआपुपूरेतदाबिलम् ॥ तदहंविस्मितोदृष्ट्वाभ्रातुःशोकविषार्दितः ॥ ६ ॥ अथाहंगतबुद्धिस्तुसुव्यक्तं
निहतोगुरुः ॥ शिलापर्वतसंकाशाबिलद्वारिमयाकृता ॥ ७ ॥ अशक्नुवन्निष्क्रमितुंमहिषोविनशिष्यति ॥ ततोहमागां
किष्किंधांनिराशस्तस्यजीविते ॥ ८ ॥ राज्यंचसुमहत्प्राप्यतारांचरुमयासह ॥ मित्रैश्चसहितस्तस्यवसामिविगत
ज्वरः ॥ ९ ॥ आजगामततोवालीहत्वातंवानरर्षभः ॥ ततोहमददांराज्यंगौरवाद्भययंत्रितः ॥ १० ॥समांजिघांसुर्दुष्टा
त्मावालीप्रव्यथितेंद्रियः ॥ परिकालयतेवालीधावंतंसचिवैःसह ॥ ११ ॥ ततोहंवालिनातेनसोनुबद्धःप्रधावितः ॥ न
दीश्च विविधाःपश्यन्वनानिनगराणिच ॥१२॥ आदर्शतलसंकाशाततोवैपृथिवीमया ॥ अलातचक्रप्रतिमादृष्टागोष्प
दवत्कृता ॥ १३ ॥ पूर्वांदिशंततोगत्वापश्यामिविविधान्द्रुमान् ॥ पर्वतान्सदरीन्रम्यान्सरांसिविविधानिच ॥ १४ ॥

नगरमें आया तब हमनें भयसे भीतहो और गौरवके हेतु फिर उसको राज्य देदिया ॥ १० ॥ दुष्टात्मा वालि व्यथित हो हमारे मार डालनेंकी
इच्छा करता हुआ हमारे पीछे दौडा तब हमभी अपने मंत्रियोंके सहित भागने लगे ॥ ११ ॥ वरन हमारे सबही साथी वालिके भयसें भागे
हमनें भागते २ मार्गमें अनेक भांतिकी नदियें वन नगर इत्यादि देखे ॥ १२ ॥ इसी प्रकारसे सब भूमि जिसका आकार अलातचक्रकी
समानहै, हमने गोपदके गढेकी समान अवलोकन करली ॥ १३ ॥ फिर पूर्व दिशामें जायकर विविध भांतिके वृक्ष गुफा सहित पर्वत और अनेक

महारथी श्रीरामचंद्र और लक्ष्मणजी दोनों कौतूहलके वश होकर धर्मभृत् नामक ऋषिसे पूछते हुए ॥ ८ ॥ हे महर्षे ! यह बडे आश्चर्यका शब्द सुनकर हम सबकोही बडा कौतूहल हुआहै ! अतएव इस घटनाका सविशेष समस्त वर्णन कीजिये ॥ ९ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें इस प्रकार कहा तब धर्मात्मा ऋषि तत्क्षण इस सरोवरके प्रभावका वर्णन करने लगे ॥ १० ॥ ऋषि बोले हे रामचंद्रजी ! इस तडागका नाम पंचाप्सरहै इसमें सदा जल रहताहै कभी सूखता नहीं। महर्षि माण्डकर्णिनें तपोबलसे इसको बनायाहै ॥ ११ ॥ वह महामुनि माण्डकर्णि दश हजार वर्ष केवल पवन भोजन करते यहां रह कठोर तप करते रहे॥१२॥इस तपस्यासे इन्द्र, वरुण, कुबेर, अग्नि सूर्यादि देवता सब बहुतही व्यथित

ततःकौतूहलाद्रामोलक्ष्मणश्चमहारथः ॥ मुनिंधर्मभृतंनामप्रष्टुंसमुपचक्रमे ॥ ८ ॥ इदमत्यद्भुतंश्रुत्वासर्वेषांनोमहामुने ॥ कौतूहलंमहज्जातंकिमिदंसाधुकथ्यताम् ॥ ९ ॥ तेनैवमुक्तोधर्मात्माराघवेणमुनिस्तदा ॥ प्रभावंसरसःक्षिप्रमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ १० ॥ इदंपंचाप्सरोनामतटाकंसार्वकालिकम् ॥ निर्मितंतपसारामुनिनामांडकर्णिना॥११॥ सहितेपेतपस्तीव्रंमांडकर्णिर्महामुनिः ॥ दशवर्षसहस्राणिवायुभक्षोजलाशये ॥ १२ ॥ ततःप्रव्यथिताःसर्वेदेवाःसाग्निपुरोगमाः ॥ अब्रुवन्वचनंसर्वेपरस्परसमागताः ॥ १३ ॥ अस्माकंकस्यचित्स्थानमेषप्रार्थयतेमुनिः ॥ इतिसंविग्नमनसःसर्वेतत्रदिवौकसः ॥ १४ ॥ ततःकर्तुंतपोविघ्नंसर्वदेवैर्नियोजिताः ॥ प्रधानाप्सरसःपंचविद्युच्चालितवर्चसः ॥ १५ ॥ अप्सरोभिस्ततस्ताभिर्मुनिर्दृष्टपरावरः ॥ नीतोमदनवश्यत्वंदेवानांकार्यसिद्धये ॥ १६ ॥ ताश्चैवाप्सरसःपंचमुनेःपत्नीत्वमागताः ॥ तटाकेनिर्मितंतासांतस्मिन्नंतर्हितंगृहम् ॥ १७ ॥

होकर परस्पर इकट्ठे होकर कहनें लगे ॥१३॥ यह ऋषि हममें से किसीका पद पानेंके लिये तप करतेहैं । इस प्रकार निश्चय करके देवताओंके अंतःकरण महा उद्विग्न होगये ॥ १४ ॥ तब उन सब देवताओंनें मिलकर उनके तपमें विघ्न करनेकी अभिलाषसे; विजलीकी समान प्रभावाली पांच मुख्य अप्सराओंको भेजा ॥ १५ ॥ अप्सराओंनेभी देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये अपने और पराये विषयके जाननें वाले महर्षि माण्डकर्णिजीको मदनके मदसे मतवाला कर दिया ॥ १६ ॥ ऋषिजी उन पांचों अप्सराओंको अपनी स्त्रीकी भांति ग्रहण करके

उनके लिये इस सरोवरमें न दीखनेंवाला सुन्दर घर बनाया ॥ १७ ॥ पांचों अप्सरायें यथा सुखसे इस गृहमें वास करके तपके प्रभावसे युवा अवस्थाको प्राप्त हुए उन ऋषिका मन मुदित करनेंको उनके संग विहार करनें लगीं ॥ १८ ॥ मुनिजीके सहित विहार करती हुई उन अप्सरा गणोंकेही बाजे बजाने और गानेका यह शब्दहै, व उन्हींके गहनोंका यह मनोहर शब्द सुनाई देताहै ॥ १९ ॥ महायशवान श्रीराम चंद्रजी भ्राता लक्ष्मणजीके सहित विशुद्ध चित्त महर्षिजीकी इस कथाको सुन बडा अचरज पाते हुए ॥ २० ॥ और कैसे अचरजको बातहै यह कहते २ चारों ओर कुश चीर जिनमें पडे, ब्राह्मी शोभा समन्वित आश्रममंडल श्रीरामचंद्रजी देखते हुए ॥ २१ ॥ वह बहुत शीघ्र भ्रात।

तत्रैवाप्सरसःपंचनिवसंत्योयथासुखम् ॥ रमयंतितपोयोगान्मुनिंयौवनमास्थितम् ॥ १८ ॥ तासांसंक्रीडमाना नामेषवादित्रनिःस्वनः ॥ श्रूयतेभूषणोन्मिश्रोगीतशब्दोमनोहरः ॥ १९ ॥ आश्चर्यमितितस्यैतद्वचनंभाविता त्मनः ॥ राघवःप्रतिजग्राहसहभ्रात्रामहायशाः ॥ २० ॥ एवंकथयमानःसददर्शाश्रममंडलम् ॥ कुशचीरपरि क्षिप्तंब्राह्म्यालक्ष्म्यासमावृतम् ॥ २१ ॥ प्रविश्यसहवैदेह्यालक्ष्मणेनचराघवः ॥ तदातस्मिन्सकाकुत्स्थःश्रीमत्या श्रममंडले ॥ २२ ॥ उषित्वासुखंतत्रपूज्यमानोमहर्षिभिः ॥ जगामचाश्रमांस्तेषांपर्यायेणतपस्विनाम् ॥ २३ ॥ येषामुषितवान्पूर्वंसकाशेसमहास्त्रवित् ॥ क्वचित्परिदशान्मासानेकसंवत्सरंक्वचित् ॥ २४ ॥ क्वचिच्चचतुरोमासान्पंचषट्चपरान्क्वचित् ॥ अपरत्राधिकान्मासानध्यर्धमधिकंक्वचित् ॥ २५ ॥

लक्ष्मण और भार्या जानकीजीके सहित वन शोभासम्पन्न आश्रमोंमें प्रवेश करते हुए ॥ २२ ॥ जब वहां ऋषियोंनें कंद मूल फलोंसे उनकी पूजाकी तब रामचंद्रजी वहां सुखसे बसे, फिर बारी२ से रामचंद्रजी सबही ऋषियोंके आश्रमों पर गये और पूजा पाते हुए ॥ २३ ॥ वह महास्त्र वित् श्रीरामचंद्रजी पहले जिनके आश्रममें बसेथे, इस समय फिर उनके आश्रममें जाते हुए। वह किसी आश्रममें पूरे दश महीने, कहीं पूरे वर्ष भर ॥ २४ ॥ कहीं चार महीने कहीं पांच महीने कहीं छः महीने कहीं एक वर्षसेभी अधिक, कहीं पखवाडेसे अधिक कहीं तीन महीनें और

कहीं २ साढे तीन २ महीने ॥ २५ ॥ कहीं तीन मास, कहीं आठ महीनेतक रहे कहीं इस्से न्यूनाधिक रहे ऐसे तिन मुनियोंके आश्रमों पर श्रीरामचंद्रजी बसे ॥ २६ ॥ सबही जगह वह सुख सहित रहे; उन आश्रमोंमें वसते हुए ऋषि लोगोंकी अनुकूलतासे सीता सहित दश वर्ष श्रीरामचंद्रजीनें बितादिये ॥ २७ ॥ इस प्रकारसे धर्मके जाननेवाले श्रीरामचंद्रजी सीताके साथ सब पुण्य आश्रमोंमें घूम घाम कर फिर महर्षि सुतीक्ष्णजीके आश्रममें आये जहां मुनि गणोनें उनकी बडी पूजाकी ॥ २८ ॥ वहां पर दुश्मनोंके मारनेवाले श्रीरामचंद्रजी कुछ एक दिन रहकर एक दिन विनय सहित उन महामुनि सुतीक्ष्णजीसे ॥ २९ ॥ श्रीरामचंद्रजी पूछते हुए, कि हे भगवन्! इस वनमें

त्रीन्मासानष्टमासांश्चराघवोन्यवसत्सुखम् ॥ तत्रसंवसतस्तस्यमुनीनामाश्रमेषुवै ॥ २६ ॥ रमतश्चानुकूल्येनययुः संवत्सरादश ॥ परिसृत्यचधर्मज्ञोराघवःसहसीतया ॥ २७ ॥ सुतीक्ष्णस्याश्रमपदंपुनरेवाजगामह ॥ सतमाश्रममागम्यमुनिभिःपरिपूजितः ॥ २८ ॥ तत्रापिन्यवसद्रामःकिंचित्कालमरिंदमः ॥ अथाश्रमस्थोविनयात्कदाचित्तंमहामुनिम् ॥ २९ ॥ उपासीनःसकाकुत्स्थःसुतीक्ष्णमिदमब्रवीत् ॥ अस्मिन्नरण्येभगवन्नगस्त्योमुनिसत्तमः ॥ ३० ॥ वसतीतिमयानित्यंकथाःकथयतांश्रुतम् ॥ नतुजानामितंदेशंवनस्यास्यमहत्तया ॥ ३१ ॥ कुत्राश्रमपदंरम्यंमहर्षेस्तस्यधीमतः ॥ प्रसादार्थंभगवतःसानुजःसहसीतया ॥ ३२ ॥ अगस्त्यमधिगच्छेयमभिवादयितुंमुनिम् ॥ मनोरथोमहानेषहृदिसंपरिवर्तते ॥ ३३ ॥ यदहंतंमुनिवरंशुश्रूषेयमपिस्वयम् ॥ इतिरामस्यसमुनिः श्रुत्वाधर्मात्मनोवचः ॥ ३४ ॥

मुनियोंमें श्रेष्ठ भगवान् अगस्त्यजी ॥ ३० ॥ वसतेहैं, यह बात हमनें बहुत ऋषि लोगोंसे सुनीहै परन्तु यह हमने अबतक नजान पाया कि उन महा तपस्वीजीके रहनेंका कौन वनहै? ॥ ३१ ॥ फिर यहभी नहीं जानते कि उन धीमान् महर्षिजीका उस वनमें रमणीक आश्रम कौनसाहै? उनके प्रसादके लिये लक्ष्मण और जानकीके सहित ॥ ३२ ॥ अगस्त्यजीके पास हम प्रणाम करनेको जाया चाहतेहैं। इस प्रकारका महा मनोरथ हमारे हृदयमें वर्त्त रहाहै ॥ ३३ ॥ वहां पर जाकर हम स्वयं मुनिराजजीकी सेवा करेंगे। इस प्रकार सुतीक्ष्णजीनें

धर्मात्मा रामचंद्रजीकी वाणी सुन ॥ ३४ ॥ दशरथजीके प्यारे दुलारे पुत्र श्रीरामचंद्रजीसे बोले कि हम लक्ष्मण सहित आपसे यह बतलानेको हीथे कि ॥ ३५ ॥ आप लक्ष्मण व जनककुमारी सीताजीके सहित अगस्त्यजीके निकट जाइये, सो बडे भाग्यकी बातहै कि आपनेंही अपनें मुखसे यह वार्त्ता पूछी ॥ ३६ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! महर्षि अगस्त्यजी जिस वनमें रहतेहैं उसको हम बतातेहैं,—हे तात ! इस आश्रमसे दक्षिण दिशाकी ओर सोलह कोश मार्ग चले जाइये, तब अगस्त्यजीके भ्राताका आश्रम आपकी दृष्टि आवैगा ॥३७॥ इस आश्रमकी भूमि बडी व समा नहै यहां पिप्पलीके वृक्षोंका वन शोभित होरहाहै और नाना भांतिके पक्षी शब्द करतेहैं। ऐसे परम मनोहर और विविध भांतिके फल पुष्प

सुतीक्ष्णःप्रत्युवाचेदंप्रीतोदशरथात्मजम् ॥ अहमप्येतदेवत्वांवक्तुकामःसलक्ष्मणम् ॥ ३५ ॥ अगस्त्यमभिगच्छे
तिसीतयासहराघव ॥ दिष्ट्यात्विदानीमर्थेस्मिन्स्वयमेवब्रवीषिमाम् ॥ ३६ ॥ अयमाख्यामितेरामयत्रागस्त्यो
महामुनिः ॥ योजनान्याश्रमात्तातयाहिचत्वारिवैततः ॥ दक्षिणेनमहाञ्छ्रीमानगस्त्यभ्रातुराश्रमः ॥ ३७ ॥
स्थलीप्रायवनोद्देशेपिप्पलीवनशोभिते ॥ बहुपुष्पफलेरम्येनानाविहगनादिते ॥ ३८ ॥ पद्मिन्योविविधास्तत्रप्र
सन्नसलिलाशयाः ॥ हंसकारंडवाकीर्णाश्चक्रवाकोपशोभिताः ॥ ३९ ॥ तत्रैकांरजनींव्युष्यप्रभातेरामगम्यताम् ॥
दक्षिणांदिशमास्थायवनखंडस्यपार्श्वतः ॥ ४० ॥ तत्रागस्त्याश्रमपदंगत्वायोजनमंतरम् ॥ रमणीयेवनोद्देशे
बहुपादपशोभिते ॥ ४१ ॥ रंस्यतेतत्रवैदेहीलक्ष्मणश्चत्वयासह ॥ सहिरम्योवनोद्देशोबहुपादपसंयुतः ॥ ४२ ॥

युक्त वनके देशमें यह आश्रम प्रतिष्ठितहै ॥ ३८ ॥ वहां पर स्वच्छ वारिसे भरे बहुत सारे सरोवरहैं, हंस, कराकुल, चकवा, चकवी और सारस इत्यादि जलमें खेल किया करतेहैं ॥ ३९ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! उस आश्रममें आप एक रात्रि वास करके प्रभात होतेही उस आश्रमके निकटस्थ वनको करवटमें छोड, दक्षिणकी ओरको गमन कीजिये ॥ ४० ॥ बस चार कोश मार्ग चलतेही विविध भांतिके वृक्षोंसे घिरा हुआ रमणीय वनमें हर्षित अगस्त्यजीके रहनेका आश्रम देखोगे ॥४१॥ सीता और लक्ष्मणजी तुम्हारे साथ वहां वास करके परम प्रसन्न होंगे,

क्योंकि वह अनेक प्रकारके वृक्षोंसे युक्त वन अतिरमणीयहै ॥ ४२ ॥ हे महामते ! यदि महर्षि अगस्त्यजीके दर्शन करनेका अभिलाषहै तो आजही जानेका विचार कीजिये ॥ ४३ ॥ श्रीरामचंद्रजी सुतीक्ष्णमुनिके ऐसे वचन सुन उनको प्रणाम करके भ्राता लक्ष्मण और जानकीजीके सहित अगस्त्यजीके देखनेको प्रस्थान करतेहुए ॥ ४४ ॥ मार्गमें जानेकेसमय बहुत सारे विचित्र वन, बादलोंकी समान ऊंचे २ पहाड, नदी सरोवर सबही श्रीरामचंद्रजी देखते जातेथे ॥ ४५ ॥ इस प्रकार श्रीरामचंद्रजी सुतीक्ष्णजीके बताये हुए मार्गमें यथासुखसे गमन करके परम

यदिबुद्धिःकृताद्रष्टुमगस्त्यंतंमहामुनिम् ॥ अद्यैवगमनेबुद्धिंरोचयस्वमहामते ॥ ४३ ॥ इतिरामोमुनेश्रुत्वासहभ्रात्राभिवाद्यच ॥ प्रतस्थेगस्त्यमुद्दिश्यसानुजःसहसीतया ॥ ४४ ॥ पश्यन्वनानिचित्राणिपर्वतांश्चाभ्रसन्निभान् ॥ सरांसिसरितश्चैवपथिमार्गवशानुगान् ॥ ४५ ॥ सुतीक्ष्णेनोपदिष्टेनगत्वातेनपथासुखम् ॥ इदंपरमसंहृष्टोवाक्यंलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ ४६ ॥ एतदेवाश्रमपदंनूनंतस्यमहात्मनः ॥ अगस्त्यस्यमुनेर्भ्रातुर्दृश्यतेपुण्यकर्मणः ॥ ४७ ॥ यथाहीमेवनस्यास्यज्ञाताःपथिसहस्रशः ॥ सन्नताःफलभारेणपुष्पभारेणचद्रुमाः ॥ ४८ ॥ पिप्पलीनांचपक्कानांवनादस्मादुपागतः ॥ गंधोयंपवनोत्क्षिप्तःसहसाकटुकोदयः ॥ ४९ ॥ तत्रतत्रचदृश्यंतेसंक्षिप्ताःकाष्ठसंचयाः ॥ लूनाश्चपरिदृश्यंतेदर्भावैदूर्यवर्चसः ॥ ५० ॥ एतच्चवनमध्यस्थंकृष्णाभ्रशिखरोपमम् ॥ पावकस्याश्रमस्थस्यधूमाग्रंसंप्रदृश्यते ॥ ५१ ॥

प्रसन्न और हर्षितहो लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ४६ ॥ कि निश्चयही पुण्य कर्म करनेवाले महात्मा अगस्त्यऋषिके भ्राताका यह आश्रम दिखलाई देताहै ॥ ४७ ॥ क्योंकि जिस प्रकारसे सुनाथा वैसेही मार्गमें इस वनमेंको आते २ फल और फूलोंके बोझसे झुकेहुए सैकडों हजारों पेड हमनें देखेहैं ॥ ४८ ॥ यह देखो पकेहुए पिप्पलीके फलोंकी कडवी गन्ध पवन वेगसे वहीहुई चली आतीहै ॥४९॥ स्थान२में इकट्ठे किये हुए काठके बोझ और छिन्न वैदूर्यमणिके वर्णकी समान हरे कुशभी यहां देख पडतेहैं ॥ ५० ॥ आश्रममें स्थित हुई अग्निकी यह वही धूमशिखा,

कृष्णमेघयुक्त पर्वतके शिखरकी समान वनके बीच दृष्टि आतीहै ॥५१॥ और यह ब्राह्मण लोग स्वच्छ तीर्थके जलमें स्नान करके अपने लाये हुये फूलोंके समूहसे इष्ट देवताओंकी पूजा कर रहेहैं ॥५२॥ हे सौम्य! महर्षि सुतीक्ष्णजीके मुखसे जैसा श्रवण कियाथा उसीके अनुसार यहांपर सब कुछ देखकर हमको निश्चयही जान पडताहै कि यही अगस्त्यजीके भ्राताका आश्रमहै॥५३॥जिनमहर्षि अगस्त्यजीनें सब लोकोंका हित करनेकी कामनासे बल सहित साक्षात् मृत्युकी समान दैत्यको मारकर इस दक्षिण दिशाकोभी सबके वसने योग्य कियाहै ॥५४॥ ऐसा प्रसिद्धहै कि पहले एक समय महा असुर ब्राह्मणोंका घात करनेवाले वातापि और इल्वल नामक दो क्रूर कर्म करनेवाले भाई इकट्ठे इस वनमें वास करतेथे ॥ ५५ ॥ उन

विविक्तेषुचतीर्थेषुकृतस्नानाद्विजातयः ॥ पुण्योपहारंकुर्वंतिकुसुमैःस्वयमर्जितैः ॥५२ ॥ ततःसुतीक्ष्णवचनंयथासौम्यमयाश्रुतम् ॥ अगस्त्यस्याश्रमोभ्रातुर्नूनमेषभविष्यति ॥ ५३ ॥ निगृह्यतरसामृत्युंलोकानांहितकाम्यया ॥ यस्यभ्रात्राकृतेयंदिक्शरण्यापुण्यकर्मणा ॥ ५४ ॥ इहैकदाकिलक्रूरोवातापिरपिचेल्वलः ॥ भ्रातरौसहितावास्तांब्राह्मणघ्नौमहासुरौ ॥५५॥ धारयन्ब्राह्मणंरूपमिल्वलःसंस्कृतंवदन् ॥ आमंत्रयतिविप्रान्सश्राद्धमुद्दिश्यनिर्घृणः ॥ ५६ ॥ भ्रातरंसंस्कृतंकृत्वाततस्तंमेषरूपिणम् ॥ तान्द्विजान्भोजयामासश्राद्धदृष्टेनकर्मणा ॥ ५७॥ ततोभुक्तवतांतेषांविप्राणामिल्वलोऽब्रवीत् ॥ वातापेनिष्क्रमस्वेतिस्वरेणमहतावदन् ॥ ५८ ॥ ततोभ्रातुर्वचःश्रुत्वावातापिर्मेषवन्नदन् ॥ भित्त्वाभित्त्वाशरीराणिब्राह्मणानांविनिष्पतत् ॥ ५९ ॥ ब्राह्मणानांसहस्राणितैरेवंकामरूपिभिः ॥ विनाशितानिसंहत्यनित्यशःपिशिताशनैः ॥ ६० ॥

दोनोंमेंसे निर्दयी इल्वल जब श्राद्धका समय आवे तौ ब्राह्मणका वेष धर संस्कृत उच्चारण करके ब्राह्मणोंको निमंत्रण करै ॥ ५६ ॥ जब सब ब्राह्मण आजावें तब अपने भ्राता मेषरूपी वातापिको श्राद्धके कहे अनुष्ठानके अनुसार उत्तम रूपसे रांधकर सब ब्राह्मणोंको भोजन करादेवे ॥ ५७ ॥ तिसके पीछे जब ब्राह्मण भोजन कर चुकें इल्वल अति ऊंचे स्वरसे (वातापि ! निकल आओ) यह वचन कहता ॥ ५८॥ वातापि भ्राताका शब्द सुनकर मेंढेकी समान शब्द करता हुआ ब्राह्मणोंके शरीर फार २ निकल आता ॥ ५९ ॥ यह इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले मांस

भोजी असुर इस प्रकारसे प्रतिदिन परस्पर मिलकर सहस्र २ ब्राह्मणोंकी हत्या करते ॥ ६० ॥ यह देखकर महर्षि अगस्त्यजीनें देवताओंकी प्रार्थनाके वश होकर श्राद्धमें उस महा असुर वातापिको भक्षण करलिया,ऐसी वात प्रसिद्धहै ॥ ६१ ॥ जव श्राद्ध पूरा होगया इस प्रकारसे कहके ब्राह्मणोंके हाथ धुलानेंके लिये जल देकर " वातापि ! बाहर निकल आओ " यह कहकर इल्वल भ्राताको पुकारने लगा ॥६२॥ जव इल्वलनें वार २ अपने भाईको पुकारा तव यह देखकर मुनियोंमें श्रेष्ठ अगस्त्यजीनें हँसकर विप्रघाती इल्वलसे कहा ॥६३॥ हमनें तुम्हारे मेषरूपी भ्राता वातापिको पचा डाला, वह यमराजके गृहको चला गया सो अव उसको वाहर होनेकी सामर्थ्य कहां ? ॥ ६४ ॥ निशाचर इल्वल भाईके मरनेकी वार्त्ता

अगस्त्येनतदादेवैःप्रार्थितेनमहर्षिणा ॥ अनुभूयकिलश्राद्धेभक्षितःसमहासुरः ॥ ६१ ॥ ततःसंपन्नमित्युक्त्वादत्त्वा हस्तेवनेजनम् ॥ भ्रातरंनिष्क्रमस्वेतिइल्वलःसमभाषत ॥ ६२ ॥ सतदाभाषमाणंतुभ्रातरंविप्रघातिनम् ॥ अब्रवीत्प्रहसन्धीमानगस्त्योमुनिसत्तमः ॥ ६३ ॥ कुतोनिष्क्रमितुंशक्तिर्मयाजीर्णस्यरक्षसः ॥ भ्रातुस्तुमेषरूपस्यगतस्य यमसादनम् ॥ ६४ ॥ अथतस्यवचःश्रुत्वाभ्रातुर्निधनसंश्रितम् ॥ प्रधर्षयितुमारेभेमुनिंक्रोधान्निशाचरः ॥ ६५ ॥ सोऽभ्यद्रवद्द्विजेंद्रंतंमुनिनादीप्ततेजसा ॥ चक्षुषाऽनलकल्पेननिर्दग्धोनिधनंगतः ॥ ६६ ॥ तस्यायमाश्रमोभ्रातुस्तटाकवनशोभितः ॥ विप्रानुकंपयायेनकर्मेदंदुष्करंकृतम् ॥ ६७ ॥ एवंकथयमानस्यतस्यसौमित्रिणासह ॥ रामस्यास्तंगतःसूर्यःसंध्याकालोभ्यवर्तत ॥ ६८ ॥

सुन करके क्रोध युक्तहो महर्षि अगस्त्यजीके मारनेको तैयार हुआ॥६५॥जैसेही वह मारनेको दौडा कि महर्षिजीनें प्रज्वलित अग्निकी समान दृष्टिसे एक वार देख दिया, वस देखनें मात्रसेही, वह भस्म होगया और प्राण त्यागन करदिये ॥६६॥ जिन्होंने ब्राह्मणगणोंके ऊपर दयाके वश होकर इस प्रकारका औरके न करने योग्य अनुष्ठान कियाथा उन अगस्त्यजीके महात्मा भाईकाही यह तडागमय शोभित आश्रमहै ॥ ६७ ॥ श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके साथ यह वार्त्ता कहतेही रहेकि इतनेमें भगवान् भास्कर अस्ताचलचूडावलम्बी हुए और संध्या होआई ॥ ६८ ॥

तब श्रीरामचंद्रजीनें भ्राता लक्ष्मणजीके सहित विधिवत् सायंकालकी संध्या समाप्त करके अगस्त्यजीके भाईके आश्रममें प्रवेश किया और अगस्त्यजीके भाईको प्रणाम किया॥ ६९ ॥ और अगस्त्यजीके भाईनेंभी उनका भली भांति शिष्टाचार किया और कंद मूल फल खानेको दिये सो भोजनकर श्रीरामचंद्रजी एक रात्रि वहां पर बसे ॥७०॥ फिर जब रात बीत गयी और सूर्य नारायण निकल आये तब श्रीरामचंद्रजीने विदाकी प्रार्थना करते ऋषिसे निवेदन करते हुए॥७१॥कि हे भगवन् ! हम आपको प्रणाम करतेहैं हमने यहां बडे सुखसे यह रात्रि बिताई अब इस समय विदा दीजिये अब आपके बडे भाई गुरुदेव अगस्त्यजीके दर्शन करनेको हमारी अभिलाषा हुईहै ॥ ७२ ॥ यह कहकर ऋषिकी आज्ञा ले उनके

उपास्यपश्चिमांसंध्यांसहभ्रात्रायथाविधि ॥ प्रविवेशाश्रमपदंतमृषिंचाभ्यवादयत् ॥ ६९ ॥ सम्यक्प्रतिगृहीतस्तु मुनिनातेनराघवः ॥ न्यवसत्तांनिशामेकांप्राश्यमूलफलानिच ॥ ७० ॥ तस्यांरात्र्यांव्यतीतायामुदितेरविमंडले ॥ भ्रातरंतमगस्त्यस्यआमंत्रयतराघवः ॥ ७१ ॥ अभिवादयेत्वांभगवन्सुखमस्म्युषितोनिशाम्॥ आमंत्रयेत्वांगच्छामिगुरुंतेद्रष्टुमग्रजम् ॥ ७२ ॥ गम्यतामितितेनोक्तोजगामरघुनंदनः ॥ यथोद्दिष्टेनमार्गेणवनंतच्चावलोकयन् ॥ ७३ ॥ नीवारान्पनसान्सालान्वंजुलांस्तिनिशांस्तथा ॥ चिरिबिल्वान्मधूकांश्चबिल्वानथचतिंदुकान् ॥७४॥ पुष्पितान्पुष्पिताग्राभिर्लताभिरुपशोभितान् ॥ ददर्शरामःशतशस्तत्रकांतारपादपान् ॥ ७५॥ हस्तिहस्तैर्विमृदितान्वानरैरुपशोभितान् ॥ मत्तैःशकुनिसंघैश्चशतशःप्रतिनादितान् ॥ ७६ ॥ ततोब्रवीत्समीपस्थंरामोराजीवलोचनः ॥ पृष्ठतोनुगतंवीरंलक्ष्मणंलक्ष्मिवर्धनम् ॥ ७७ ॥

आश्रमका वन देखते भालते सुतीक्ष्ण मुनिके बताए हुए आश्रमको जाते हुए ॥ ७३॥ जानेके समय वनके मध्यमें शत २ नीवार, पनस, शाल, वञ्जुल, तिनिश, चिरिबिल्व (नक्तमाल) मधूक, वेल॥७४॥ तिन्दुक इत्यादि वृक्ष परस्पर फूली फली लताओंसे शोभित सैकडों हजारों वृक्ष श्रीरामचंद्रजीनें देखे ॥ ७५ ॥ अनेक प्रकारके पक्षीगण मतवाले होकर उन वृक्षोंपर गुंजार कर रहेथे कुसुमित शिखर लता और वानरगणोंके निकट रहनेंसे वहां अतिशय शोभा होरही,और हाथियोंकी शूंडके आघातसे उन वृक्षोंकी टहनियां टूट फूट रहींथीं ॥ ७६ ॥ यह देखकर राजीवलोचन

श्रीरामचंद्रजी अपने पीछे आते हुए निकटवर्ती लक्ष्मीके बढानेवाले लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ७७ ॥ इन सब वृक्षोंके पत्ते जैसे चिकने दिखाई देतेहैं और मृगगण जैसे शान्तचित्त दृष्टि आतेहैं सो इन सब बातोसे ज्ञात होताहै कि उन विशुद्धचित्त महर्षि अगस्त्यजीका आश्रम अब अधिक दूर नहींहै ॥ ७८ ॥ जिन्होंनें अनेक कर्म द्वारा लोकमें प्रसिद्ध अगस्त्य नाम पायाहै, उनही महर्षिजीका थके हुए लोगोंके श्रमका हरनेवाला यह आश्रम दिखाई देताहै ॥ ७९ ॥ यज्ञका धुवाँ वनमें छाय रहाहै वृक्षोंकी डालियोंपर चीर वस्त्र टँग रहेहैं; वैरको छोडे हुए सब मृग इधर उधर घूमरहेहैं। अनेक प्रकारके पक्षी मधुर २ नाद कर रहेहैं ॥ ८० ॥ जिन्होंने मनुष्योंका हित करनेकी कामनासे बल सहित जम ऐसे

स्निग्धपत्रायथावृक्षायथाक्षांतामृगद्विजाः ॥ आश्रमोनातिदूरस्थोमहर्षेर्भावितात्मनः ॥७८॥ अगस्त्यइतिविख्याताेलोकेस्वेनैवकर्मणा ॥ आश्रमोदृश्यतेतस्यपरिश्रांतश्रमापहः ॥ ७९ ॥ प्राज्यधूमाकुलवनश्चीरमालापरिष्कृतः ॥ प्रशांतमृगयूथश्चनानाशकुनिनादितः ॥ ८० ॥ निगृह्यतरसामृत्युंलोकानांहितकाम्यया ॥ दक्षिणादिक्कृतायेनशरण्यापुण्यकर्मणा ॥ ८१ ॥ तस्येदमाश्रमपदंप्रभावाद्यस्यराक्षसैः ॥ दिगियंदक्षिणात्रासाद्दृश्यतेनोपभुज्यते ॥ ८२ ॥ यदाप्रभृतिचाक्रांतादिगियंपुण्यकर्मणा ॥ तदाप्रभृतिनिर्वैराःप्रशांतारजनीचराः ॥ ८३ ॥ नाम्नाचेयंभगवतोदक्षिणादिक्प्रदक्षिणा ॥ प्रथितात्रिषुलोकेषुदुर्धर्षाक्रूरकर्मभिः ॥ ८४ ॥ मार्गंनिरोद्धुंसततंभास्करस्याचलोत्तमः ॥ संदेशंपालयंस्तस्यविंध्यशैलोनवर्धते ॥ ८५ ॥

असुरोंको जीतकर दक्षिण दिशाको सबके वास योग्य कर दियाहै ॥८१॥ और जिनके प्रभावसे राक्षस लोग त्रासित होकर इस दक्षिण दिशाके ओर केवल देखते और आते तो हैं; परन्तु किसीको पीडा नहीं दे सकते; उन्हीं पुण्य कर्म करनेवाले महर्षि अगस्त्यजीका यह आश्रमहै ॥ ८२ ॥ उन पवित्र वेत्ता अगस्त्यजीनें जबसे इस आश्रममें आकर वास कियाहै तबसे निशाचर लोग वैर छोडकर शान्तचित्तहोगये हैं ॥ ८३ ॥ भगवान् अगस्त्यजीकी यह दक्षिण दिशा आगस्त्यादिक् नामसे त्रिलोकीमें प्रसिद्ध होगईहै और उनके प्रभावसे क्रूर कर्म करनेंवाले निशाचरगणोंके दबजानेंसे यह दिशा मुनिलोगोंके वास करनें योग्य होगईहै ॥ ८४ ॥ पर्वतोंमें श्रेष्ठ विन्ध्याचल उनकी आज्ञाका

प्रति पालनही करता हुआ, सूर्यका मार्ग रोकनेके लिये और निरन्तर नहीं बढता * ॥ ८५॥ लोकोंके बीचमें विख्यात कर्म करनेवाले दीर्घायु महर्षि अगस्त्यजीका विनय युक्त मृगगण सेवित यही आश्रमहै॥८६॥जबकि हम सर्व लोकोंमें पूजित सदा साधु लोकोंका हित चाहनेंवाले साधु चरित्र इन महर्षि अगस्त्यजीके आश्रममें जांयगे, तब वह अवश्यही हमारा मंगल विधान करेंगे ॥ ८७ ॥ हे शुभदर्शन ! हम इसी आश्रममें रहकर महर्षि अगस्त्यजीकी आराधना करेंगे और वनवासका शेष समय यहीं बिता देंगे ॥ ८८॥ इस आश्रममें देवता गन्धर्व, तपस्या करके सिद्ध हुए महर्षि

अयंदीर्घायुषस्तस्यलोकेविश्रुतकर्मणः ॥ अगस्त्यस्याश्रमःश्रीमान्विनीतमृगसेवितः ॥ ८६ ॥ एषलोकार्चितःसाधुर्हितेनित्यंरतःसताम् ॥ अस्मानधिगतानेषश्रेयसायोजयिष्यति ॥ ८७ ॥ आराधयिष्याम्यत्राहमगस्त्यंतंमहामुनिम् ॥ शेषंचवनवासस्यसौम्यवत्स्याम्यहंप्रभो ॥ ८८ ॥ अत्रदेवाःसगंधर्वाःसिद्धाश्चपरमर्षयः ॥ अगस्त्यंनियताहाराःसततंपर्युपासते ॥ ८९ ॥ नात्रजीवेन्मृषावादीक्रूरोवायदिवाशठः ॥ नृशंसःपापवृत्तोवामुनिरेषतथाविधः ॥ ९० ॥ अत्रदेवाश्चयक्षाश्चनागाश्चपतगैःसह ॥ वसंतिनियताहाराधर्ममाराधयिष्णवः ॥ ९१ ॥ अत्रसिद्धामहात्मानोविमानैःसूर्यसन्निभैः ॥ त्यक्त्वादेहान्नवैर्देहैःस्वर्याताःपरमर्षयः ॥ ९२ ॥

लोग निराहार रहकर सदाही अगस्त्यजीकी भलीभांति सेवा किया करते हैं ॥ ८९ ॥ महर्षि अगस्त्यजीका प्रभाव ऐसाहै कि इनके आश्रममें झूंठ बोलनेवाला, शठ दुष्ट निर्लज्ज पापपरायण पुरुष किसी भांति जीता हुआ नहीं रह सकता ॥ ९० ॥ इस आश्रममें देव, यक्ष, नाग और पक्षीगण धर्मकी आराधना करनेंके लिये नियताहारी होकर वास करते हैं ॥ ९१ ॥ महात्मा महर्षि लोग इस आश्रममें सिद्धहो देह त्याग नवीन

* एक समय अगस्त्यजीका शिष्य विन्ध्याचल पर्वत सूर्यका मार्ग रोकनेके लिये अधिकतासे बढने लगा यह देख देवता बहुत भयभीतहो अगस्त्यजीकी शरण जाकर कहने लगे कि आप अपने शिष्यको इस दुर्घट कार्यके करनेसे निवारण कीजिये तब अगस्त्यजी विन्ध्याचलके निकट गये पर्वतने इन्हें देखकर प्रणाम किया और चरण पकडे २ पूछा गुरु देव ! आज्ञा कीजिये कैसे आगमन हुआ अगस्त्यजी बोले जबतक हम लौटकर न आवें तबतक तुम योंही पडे रहो विन्ध्यने तथास्तु कहा तबसे अगस्त्यजी दक्षिणदिशामें आकर रहनेलगे और फिर उधर न गये विन्ध्याचल गुरु आज्ञासे आजतक लेट रहाहै ॥

देह धारण कर सूर्य तुल्य देदीप्यमान विमान में सवार हो स्वर्गको गयेहैं ॥ १२ ॥ जो समस्त पवित्र कर्म करनेंवाले प्राणीगण इस आश्रममें रहतेहैं वह देवताओंकी उपासना करके देवताओंके प्रसादसे देवत्व, यक्षत्व, और विविध राज्योंको प्राप्त होतेहैं ॥ १३ ॥ हे सुमित्राकुमार ! हम इस समय उसही आश्रममें आय पहुँचेहैं । तुम पहले प्रवेश करके उन मुनिसे यह निवेदन करदोकि हम सीताके सहित उनके आश्रममें आयेहैं ॥ १४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे एकादशःसर्गः ॥ ११ ॥
ऐसा जब रामचंद्रजीनें कहा, तब उनके छोटे भइया लक्ष्मणजी आश्रममें प्रवेश करके अगस्त्यजीके शिष्यके समीप पहुँचकर कहने

यक्षत्वममरत्वंचराज्यानिविविधानिच ॥ अत्रदेवाःप्रयच्छंतिभूतैराराधिताःशुभैः ॥ १३ ॥ आगताःस्माश्रमपदंसौमित्रेप्रविशाग्रतः ॥ निवेदयेहमांप्राप्तमृषयेसहसीतया ॥ १४ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीये आरण्यकांडेएकादशःसर्गः ॥ ११ ॥ ॥ छ ॥ सप्रविश्याश्रमपदंलक्ष्मणोराघवानुजः ॥ अगस्त्यशिष्यमासाद्यवाक्यमेतदुवाचह ॥१॥ राजादशरथोनामज्येष्ठस्तस्यसुतोबली॥रामःप्राप्तोमुनिंद्रष्टुंभार्ययासहसीतया॥२॥ लक्ष्मणोनामतस्याहंभ्रातात्ववरजोहितः ॥ अनुकूलश्चभक्तश्चयदितेश्रोत्रमागतः ॥ ३ ॥ तेवयंवनमत्युग्रंप्रविष्टाःपितृशासनात् ॥ द्रष्टुमिच्छामहेसर्वेभगवंतंनिवेद्यताम् ॥ ४ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वालक्ष्मणस्यतपोधनः ॥ तथेत्युक्त्वाग्निशरणंप्रविवेशनिवेदितुम् ॥ ५ ॥

लगे ॥ १ ॥ कि राजा दशरथजीके बडे पुत्र महाबलवान श्रीरामचन्द्रजी अपनी स्त्री सीताजीके साथ महर्षिजीके चरणोंका दर्शन करनेको आयेहैं ॥ २ ॥ और हमारा नाम लक्ष्मणहै, हम उनके हितकारी परम भक्त और उनके अनुकूल चलनेवाले उनके छोटे भाई हैं सो कदाचित् आपने हमारी वार्त्ता सुनीही होगी ॥३ ॥ हमने पिताजीकी आज्ञासे अतिभयंकर वनमें प्रवेश कियाहै और अब भगवान् अगस्त्यमुनिके दर्शन करनेकी हमको अभिलाष हुईहै, सो आप उनसे यह वृत्तान्त निवेदन कर दीजिये ॥४॥ वह तपोधन लक्ष्मणजीके यह वचन श्रवण कर उनसे आपका आना निवेदन करता हूं यह कह कर इस वार्त्ताको महर्षि अगस्त्यजीसे कहनेके निमित्त अग्निगृहमें प्रवेश करता हुआ ॥ ५ ॥

और वहां पहुँचकर हाथ जोड तपोवलसे प्रदीप्त मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजीसे रामचन्द्रजीके आनेका समाचार कहा ॥ ६ ॥ अगस्त्यजीका शिष्य लक्ष्मणजीके वचनके अनुसार कहने लगा कि अयोध्याजीके राजा दशरथ कुमार राम और लक्ष्मण ॥ ७ ॥ आपके आश्रममें अपनी भार्या सहित आयेहैं, वह शत्रुतापन आपकी सेवा करनें व देखनेके लिये यहां आयेहैं ॥ ८ ॥ सो इसमें जैसा कर्त्तव्यहो वही आज्ञा आप कीजिये, शिष्यके मुखसे रामचन्द्र व लक्ष्मणजीका आगमन सुन ॥ ९ ॥ और महा भाग्यवती सीताजीकीभी आगमनकी वार्त्ता सुन करके महर्षि अगस्त्यजी बोले, कि बडे भाग्यकी बातहै बहुत दिनोंपर श्रीरामचंद्रजी हमारे दर्शन करनेको यहां आयेहैं ॥ १० ॥ और मैंनेभी मनसे इनके समा

सप्रविश्यमुनिश्रेष्ठंतपसादुष्प्रधर्षणम् ॥ कृतांजलिरुवाचेदंरामागमनमंजसा ॥ ६ ॥ यथोक्तंलक्ष्मणेनैवशिष्योगस्त्यस्यसंमतः ॥ पुत्रौदशरथस्येमौरामोलक्ष्मणएवच ॥ ७ ॥ प्रविष्टावाश्रमपदंसीतयासहभार्यया ॥ द्रष्टुंभवंतमायातौशुश्रूषार्थमरिंदमौ ॥८॥ यदत्रानंतरंतत्त्वमाज्ञापयितुमर्हसि ॥ ततःशिष्यादुपश्रुत्यप्राप्तंरामंसलक्ष्मणं ॥९॥ वैदेहींचमहाभागामिदंवचनमब्रवीत् ॥ दिष्ट्यारामश्चिरस्याद्यद्रष्टुंमांसमुपागतः ॥ १० ॥ मनसाकांक्षितंह्यस्यमयाप्यागमनंप्रति ॥ गम्यतांसत्कृतोरामःसभार्यःसहलक्ष्मणः ॥ ११ ॥ प्रवेश्यतांसमीपंमेकिमयंनप्रवेशितः ॥ एवमुक्तस्तुमुनिनाधर्मज्ञेनमहात्मना ॥१२॥ अभिवाद्याब्रवीच्छिष्यस्तथेतिनियतांजलिः ॥ तदानिष्क्रम्यसंभ्रांतःशिष्योलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ १३ ॥ कोऽसौरामोमुनिंद्रष्टुमेतुप्रविशतुस्वयम् ॥ ततोगत्वाश्रमपदंशिष्येणसहलक्ष्मणः ॥ १४ ॥

गमकी आकांक्षा कीथी तिस्से आगे जाकर आदर मान सहित श्रीरामचन्द्रजीको भ्राता और स्त्री सहित ॥ ११ ॥ यहां लिवालाओ और अब तक तुम किस कारणसे उनको यहां नहीं लिवालाये, जब महात्मा धर्मज्ञ अगस्त्यजीनें इस प्रकार कहा ॥१२॥ तो शिष्य कर जोडकर जो आज्ञा अभी लिवाये लाताहूं कह और प्रणाम करके तभी वहांसे बाहर आ आदर सहित लक्ष्मणजीसे बोला ॥१३॥ आपमें राम कौनसेहैं ? वह भगवान् अगस्त्यजीके दर्शन करनेके लिये आवें और स्वयं प्रवेश करें अनन्तर लक्ष्मण उस शिष्यके सहित वहां गये जहां श्रीरामचन्द्रजीथे ॥ १४ ॥

और उस शिष्यको जनककुमारी सीता व श्रीरामचन्द्रजीको दिखादिया, उस शिष्यने बडी नरमाईसे अगस्त्यजीके वचन श्रीरामचंद्रजीसे जाय कहे ॥ १५ ॥ यथा नियम भलीभांति आदर सत्कार करके श्रीरामचंद्रजीको लक्ष्मण व सीताजीके सहित आश्रममें प्रवेश कराया ॥ १६ ॥ उस आश्रममें प्रवेश करनेके समय श्रीरामचंद्रजीनें देखाकि परम शान्तस्वभाव हरिण चारों ओर बैठेहैं, ब्रह्मा, शिव ॥१७॥ विष्णु, इन्द्र, सूर्य, चंद्र, भग, कुबेर ॥ १८ ॥ धाता, विधाता, पवन, पाशहस्त महात्मा वरुण ॥१९ ॥ गायत्री, वसु, नागराज वासुकी

दर्शयामासकाकुत्स्थंसीतांचजनकात्मजाम्॥ तंशिष्यःप्रश्रितंवाक्यमगस्त्यवचनंब्रुवन् ॥ १५॥ प्रावेशयद्यथान्यायंसत्कारार्हंसुसत्कृतम्॥ प्रविवेशततोरामःसीतयासहलक्ष्मणः ॥ १६॥ प्रशांतहरिणाकीर्णमाश्रमंह्यवलोकयन्॥ सतत्रब्रह्मणःस्थानमग्नेःस्थानंतथैवच॥१७॥विष्णोःस्थानंमहेंद्रस्यस्थानंचैवविवस्वतः॥ सोमस्थानंभगस्थानंस्थानंकौबेरमेवच॥ १८॥ धातुर्विधातुःस्थानंचवायोःस्थानंतथैवच ॥ स्थानंचपाशहस्तस्यवरुणस्यमहात्मनः ॥ १९ ॥ स्थानंतथैवगायत्र्यावसूनांस्थानमेवच ॥ स्थानंचनागराजस्यगरुडस्थानमेवच॥ २०॥ कार्तिकेयस्यचस्थानंधर्मस्थानंचपश्यति॥ ततःशिष्यैःपरिवृतोमुनिरप्यभिनिष्पतत्॥ २१॥ तंददर्शाग्रतोरामोमुनीनांदीप्ततेजसाम्॥ अब्रवीद्वचनंवीरोलक्ष्मणंलक्ष्मिवर्धनम् ॥ २२ ॥ बहिर्लक्ष्मणनिष्क्रामत्यगस्त्योभगवानृषिः ॥ औदार्येणावगच्छामिनिधानंतपसामिदम्॥ २३ ॥ एवमुक्त्वामहाबाहुरगस्त्यंसूर्यवर्चसम् ॥ जग्राहापततस्तस्यपादौचरघुनंदनः ॥ २४॥

आदि सर्प, गरुड ॥ २० ॥ कार्त्तिकेय और धर्म, इन सबकी पूजाके निमित्त अलग २ स्थान बनें हुए एक २ करके श्रीरामचंद्रजीनें देखे मुनिअगस्त्यजीभी अपने शिष्योंके संग होमशालामेंसे निकले ॥ २१ ॥ वीर्यवान् श्रीरामचंद्रजी सब तपस्वियोंमें बडे तेजवान् अगस्त्यजीको सामनेसे आते देखकर लक्षण युक्त लक्ष्मणजीसे बोले ॥ २२ ॥ हे लक्ष्मण ! भगवान् अगस्त्यजी ऋषि कुटीसे बाहर निकलतेहैं इस समय हम उदारता युक्त होकर उन तप प्रकाशित ऋषिवरके निकट गमन करेंगे ॥ २३ ॥ ऐसा कहकर महाबाहु श्रीरामचंद्रजी कुटीसे बाहर आये

हुए सूर्यकी समान तेजवान महर्षि अगस्त्यजीके चरण छूकर प्रणाम करते हुए ॥ २४ ॥ धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मणजीके सहित ऋषिजीके चरणोंकी वंदना करके करजोड उनके आगे खडे रहे ॥ २५ ॥ यह देखकर महर्षि अगस्त्यजीनें आदर सहित रामचन्द्रजीको ग्रहण किया चरण पखारनेके लिये जल मंगवा दिया, आसन देकर बैठनेकी अनुमतिदी फिर कुशल प्रश्न किया ॥ २६ ॥ तिसके पीछे अगस्त्यजीनें अग्निमें आहुति देकर उन आये हुए पाहुनोंको अर्घ्य दिया, और वानप्रस्थ धर्मके अनुसार आहार करनेकी सामग्रीदी ॥ २७ ॥ अनन्तर धर्मके जाननेवाले महर्षि अगस्त्यजी प्रथम स्वयं बैठ पीछे कर जोडकर बैठे हुए धर्मपंडित श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ २८ ॥ हे रामच

अभिवाद्यतुधर्मात्मातस्थौरामःकृतांजलिः ॥ सीतयासहवैदेह्यातदारामःसलक्ष्मणः ॥ २५ ॥ प्रतिगृह्यचकाकुत्स्थमर्चयित्वासनोदकैः ॥ कुशलप्रश्नमुक्त्वाचआस्यतामितिसोब्रवीत् ॥ अग्निंहुत्वाप्रदायार्घ्यमतिथीन्प्रतिपूज्यच ॥ वानप्रस्थेनधर्मेणसतेषांभोजनंददौ ॥ २७ ॥ प्रथमंचोपविश्याथधर्मज्ञोमुनिपुंगवः ॥ उवाचराममासीनंप्रांजलिंधर्मकोविदम् ॥ २८ ॥ अन्यथाखलुकाकुत्स्थतपस्वीसमुदाचरन् ॥ दुःसाक्षीवपरेलोकेस्वानिमांसानिभक्षयेत् ॥ २९ ॥ राजासर्वस्यलोकस्यधर्मचारीमहारथः ॥ पूजनीयश्चमान्यश्चभवान्प्राप्तःप्रियातिथिः ॥ ३० ॥ एवमुक्त्वाफलैर्मूलैःपुष्पैश्चान्यैश्चराघवम् ॥ पूजयित्वायथाकामंततोगस्त्यस्तमब्रवीत् ॥ ३१ ॥ इदंदिव्यंमहच्चापंहेमवज्रविभूषितम् ॥ वैष्णवंपुरुषव्याघ्रनिर्मितंविश्वकर्मणा ॥ ३२ ॥

न्द्रजी! तपस्वी यदि पाहुनेका सत्कार न करके उसके प्रति और कोई अन्यथा आचरण करे तो वह झूठी गवाही देनेवाले मनुष्यकी समान परलोकमें अपना मांस भक्षण करताहे ॥ २९ ॥ फिर आप तो महारथी और सब लोकोंके धर्मचारी राजाहैं तिस पर आपने प्रिय अतिथि की भांति हमारे आश्रममें आगमन कियाहे। अतएव आपकी पूजा और सन्मान करना हमारा सब भांतिसे कर्त्तव्यहे ॥ ३० ॥ यह कहकर महर्षि जी फल, मूल, पुष्प, व औरभी उत्तम २ वनके पदार्थोंसे यथाभिलषित भांतिसे रामचंद्रजीकी पूजा करके फिर कहनें लगे ॥ ३१ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ! हमको यह विश्वकर्माका बनाया हुआ, स्वर्ण और वज्र मणिसे विभूषित दिव्य और बडा वैष्णव चाप ॥ ३२ ॥

और सूर्यकी समान प्रभासम्पन्न उत्तम बाण यह दोनों चीजें हमें ब्रह्माजीनें दींहैं और इन्द्रजीने दो तरकस जिनके बाण कभी नहीं निवडते हमको दियेहैं ॥ ३३ ॥ तीखे बाणोंसे परिपूर्ण और अग्निकी समान चमकते हुए यह उत्तम दो तरकस और यह स्वर्णमय कोश बद्ध खड्ग इन्द्रजीने हमको दियाहै ॥ ३४ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! पहले भगवान् विष्णुजीनें इस वैष्णव धनुकी सहायतासे युद्धमें महाबली छली असुरोंको संहार करके देवताओंको दीप्तिमती लक्ष्मी प्रदानकीथी ॥ ३५ ॥ हे मानद! वज्रधर इन्द्रजी जिस प्रकार वज्र धारण करतेहैं, तुमभी तैसेही पवित्र यश प्राप्त करनेंके अर्थ यह शर चाप खड्ग और दो तरकस ग्रहण करो ॥ ३६ ॥ महा तेजवान् भगवान् महर्षि अगस्त्यजी ऐसा कह कर महापण्डित

अमोघःसूर्यसंकाशोब्रह्मदत्तःशरोत्तमः ॥ दत्तोममर्हेंद्रेणतूणीचाक्षय्यसायकौ ॥ ३३ ॥ संपूर्णौनिशितैर्बाणैर्ज्वलद्भिरिवपावकैः॥महारजतकोशोयमसिर्हेमविभूषितः॥३४॥अनेनधनुषारामहत्वासंख्येमहासुरान्॥आजहारश्रियंदीप्तांपुराविष्णुर्दिवौकसाम्॥३५॥तद्धनुस्तौचतूणीचशरंखड्गंचमानद॥जयायप्रतिगृह्णीष्ववज्रंवज्रधरोयथा॥३६॥एवमुक्त्वामहातेजाःसमस्तंतद्वरायुधम्॥दत्वारामायभगवानगस्त्यःपुनरब्रवीत्॥३७॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआरण्यकांडेद्वादशःसर्गः॥ १२ ॥ रामप्रीतोस्मिभद्रंतेपरितुष्टोस्मिलक्ष्मण॥ अभिवादयितुंयन्मांप्राप्तौस्थःसहसीतया ॥ १ ॥ अध्वश्रमेणवांखेदोबाधतेप्रचुरश्रमः ॥ व्यक्तमुत्कंठतेवापिमैथिलीजनकात्मजा ॥ २ ॥ एषाचसुकुमारीचखेदैश्चनविमानिता ॥ प्राज्यदोषंवनंप्राप्ताभर्तृस्नेहप्रचोदिता ॥ ३ ॥

प्रवीण रामचन्द्रजीको वह समस्त अतिश्रेष्ठ वैष्णव आयुध देकर फिर बोले ॥ ३७ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आ० द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥ हे श्रीरामचन्द्र! तुम जो सीता सहित हमको प्रणाम करनें आये हो इस्से हम तुम्हारे और लक्ष्मणके प्रति बहुतही प्रसन्न हुए हैं; तुम्हारा मंगल होवे ॥ १ ॥ यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि मार्ग चलनेकी थकावट से तुमको महा कष्ट हुआ है। जनककुमारी सुकुमारी जानकीजीभी विश्राम करना चाहतीहैं ॥ २ ॥ यह बडी ही सुकुमार हैं; इन्होंने भला कभी काहेकोही कष्ट सहा होगा परन्तु पतिसे स्नेहके कारण इस

बडे कष्ट देनेवाले वनमें यह आई हैं ॥ ३ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! जानकीजीका मन जिसमें प्रसन्न रहे वही तुमको करना चाहिए, क्योंकि तुम्हारे साथ २ वनको आकर इन्होंनें बडा दुष्कर काम किया है ॥ ४ ॥ हे रघुनन्दन ! जबसे स्वयंभूकी उत्पत्ति हुई है तबसे स्त्रिओंका स्वभावही ऐसा है कि धनवान पुरुषको ग्रहण करती और दरिद्रको त्याग करती हैं ॥ ५ ॥ स्त्रियें बिजलीकी चपलता, अस्त्रोंकी तीक्ष्णता, गरुड और पवनकी शीघ्रताका अनुकरण करती हैं ॥ ६ ॥ परन्तु इन तुम्हारी भार्या जानकीजीमें इन सबमें से कोई दोष भी नहीं है । यह देवताओंके बीचमें अरुन्धती की समान प्रशंसनीय और कीर्तिवान हैं ॥ ७ ॥ हे शत्रुदमनकारी ! तुम सुमित्राकुमार और सीताजीके साथ जिस देशमें

यथैषारमतेरामइहसीतातथाकुरु ॥ दुष्करंकृतवत्येषावनेत्वामभिगच्छति ॥ ४ ॥ एषाहिप्रकृतिःस्त्रीणामासृष्टे रघुनंदन ॥ समस्थमनुरज्यंतेविषमस्थंत्यजंतिच ॥ ५ ॥ शतह्रदानांलोलत्वंशस्त्राणांतीक्ष्णतांतथा ॥ गरुडानिलयोःशैघ्र्यमनुगच्छंतियोषितः ॥ ६ ॥ इयंतुभवतोभार्यादोषैरेतैर्विवर्जिता ॥ श्लाघ्याचव्यपदेश्याचयथादेवेष्वरुंधती ॥ ७ ॥ अलंकृतोयंदेशश्चयत्रसौमित्रिणासह ॥ वैदेह्याचानयारामवत्स्यासित्वमरिंदम ॥ ८ ॥ एवमुक्तस्तुमुनिनाराघवःसंयतांजलिः ॥ उवाचप्रश्रितंवाक्यमृषिंदीप्तमिवानलम् ॥ ९ ॥ धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मियस्यमेमुनिपुंगवः ॥ गुणैःसभ्रातृभार्यस्यगुरुर्नःपरितुष्यति ॥ १० ॥ किंतुव्यादिशमेदेशंसोदकंबहुकाननम् ॥ यत्राश्रमपदंकृत्वावसेयंनिरतःसुखम् ॥ ११ ॥ ततोऽब्रवीन्मुनिश्रेष्ठःश्रुत्वारामस्यभाषितम् ॥ ध्यात्वामुहूर्तंधर्मात्माततोवाचवचःशुभम् ॥ १२ ॥

वास करोगे वही देश शोभायमान हो जायगा ॥ ८ ॥ जब ऋषिनें इस प्रकार कहा तब श्रीरामचन्द्रजीनें हाथ जोड विनीत वचनसे अग्नि समान तेजवान उन महर्षि अगस्त्यजीसे कहा ॥ ९ ॥ हे मुनिवर ! हमारे, हमारी भार्याके, और हमारे भ्राताके गुणोंसे जो आप प्रसन्न हुएहैं इससे मैं धन्य और अनुग्रह भाजन हुआ ॥ १० ॥ तिस्से आज्ञा कीजिये कि ऐसा कोई स्थानहै जहां वनभी बडा हो और जलभी सरलतासे प्राप्त हो जाया करे और यहां हम कुटी बनाकर स्वच्छन्दतासे वास कर सकें ॥ ११ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके वचन श्रवण करके धर्मात्मा

मुनिवर मुहूर्त भरतक चिंता करके शुभ वचन बोले ॥ १२ ॥ वत्स! इस स्थानसे आठ कोशके अन्तर पर पंचवटी नामक विख्यात एक अति सुन्दर स्थान है इस स्थानमें फल, मूल और जल बहुतायतसे मिलताहै और अनेक प्रकारके पशुभी वहां वास करते हैं॥१३॥तुम लक्ष्मणजीके साथ वहां जा और आश्रम बनाकर पिता दशरथजीका सत्य पालन करते हुए सुखसे वास करो॥१४॥हे पापरहित! हम स्नेहके वश होनेके कारण तपके प्रभावसे तुम्हारा और दशरथजीका समस्त वृत्तान्त जानते हैं कारण, दशरथजीका हमसे बडा स्नेहथा नहीं तो ऐसे वृत्तान्त जान्नेकी क्या आवश्यकता थी॥ १५ ॥ और हम तपके प्रभावसे यहभी जानते हैं कि यह प्रतिज्ञा करके कि हमारे निकट आप बसैंगे, और फिर अब वासस्थानकी

इतोद्वियोजनेतातबहुमूलफलोदकः ॥ देशोबहुमृगःश्रीमान्पंचवट्याभिविश्रुतः॥१३॥तत्रगत्वाश्रमपदंकृत्वासौमित्रिणासह ॥ रमस्वत्वंपितुर्वाक्यंयथोक्तमनुपालयन् ॥ १४ ॥विदितोह्येषवृत्तांतोममसर्वस्तवानघ ॥ तपसश्चप्रभावेनस्नेहाद्दशरथस्यच ॥ १५ ॥ हृदयस्थंचतेच्छंदोविज्ञातंतपसामया ॥ इहवासंप्रतिज्ञायमयासहतपोवने ॥ १६ ॥ अतश्चत्वामहंब्रूमिगच्छपंचवटीमिति ॥ सहिरम्योवनोद्देशोमैथिलीतत्ररंस्यते ॥ १७ ॥ सदेशःश्लाघनीयश्चनातिदूरेचराघव ॥ गोदावर्याःसमीपेचमैथिलीतत्ररंस्यते ॥ १८ ॥ प्राज्यमूलफलैश्चैवनानाद्विजगणैर्युतः ॥ विविक्तश्चमहाबाहोपुण्योरम्यस्तथैवच ॥ १९ ॥ भवानपिसदाचारःशक्तश्चपरिरक्षणे ॥ अपिचात्रवसन्रामतापसान्पालयिष्यसि ॥ २० ॥

वार्त्ता क्यों पूछते हैं? अर्थात् हमारे निकट राक्षस नहीं आसक्ते आप उनका मारना चाहते हैं इस कारण आप यहां रहना नहीं चाहते ॥१६॥ इसही कारण हम कहते हैं कि तुम पंचवटीको चले जाओ वह बनैला देश अति रमणीय है वहां सीताके मनकोभी सन्तोष होगा ॥ १७ ॥ पंचवटी बडाई करनेंके योग्य है और बहुत दूरभी नहीं है, इस गोदावरीके निकटही है मिथिलेशदुलारी वहां पर प्रसन्न होकर रहैंगी ॥ १८ ॥ हे महाबाहो! वह बहुत फल मूल करके युक्त अनेक भांतिके विहंगमोंसे परिपूर्ण पुण्यमय और निर्जन देश अति रमणीय है ॥ १९ ॥ तुमभी सदाचारी और रक्षाकार्य करनेमें समर्थ हो उस स्थानमें वास करके तपस्वीलोगोंका पालन भली प्रकार कर सकोगे ॥ २० ॥

देवीर! यह जो महुयेके वृक्षोंका महावन दिखलाई देताहै उसके उत्तर ओर होकर तुमको जाना होगा, फिर उसके पीछे तुमको न्यग्रोध आश्रम प्राप्त होगा॥२१॥तिसके पीछे विशेष स्थानपर पहुँचनेसे तुमको एकपर्वत दिखाई देगा, उस पर्वतके कुछ दूर ही विख्यात पंचवटीका वन है वह सदाही फूला फला रहता है॥२२॥ श्रीअगस्त्यजीके ऐसे वचन श्रवण करके श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके सहित ऋषिका भली भांति आदर सत्कार करके उनसे विदा मांगते हुए ॥ २३ ॥ अगस्त्यजीकी आज्ञा पाकर दोनोंजन उनके चरणोंकी वन्दना करके सीताजीके साथ पंच

एतदालक्ष्यतेवीरमधूकानांमहावनम् ॥ उत्तरेणास्यगंतव्यंन्यग्रोधमपिगच्छता ॥ २१ ॥ ततःस्थलमुपारुह्यपर्वतस्याविदूरतः ॥ ख्यातःपंचवटीत्येवनित्यपुष्पितकाननः ॥ २२ ॥ अगस्त्येनैवमुक्तस्तुरामःसौमित्रिणासह ॥ सत्कृत्यामंत्रयामासतमृषिंसत्यवादिनम् ॥ २३ ॥ तौतुतेनाभ्यनुज्ञातौकृतपादाभिवंदनौ ॥ तमाश्रमंपंचवटींजग्मतुःसहसीतया ॥ २४ ॥ गृहीतचापौतुनराधिपात्मजौविषक्ततूणीसमरेष्वकातरौ ॥ यथोपदिष्टेनपथामहर्षिणाप्रजग्मतुःपंचवटींसमाहितौ ॥ २५ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेत्रयोदशःसर्गः ॥ १३ ॥ ॥ छ ॥ अथपंचवटींगच्छन्नंतरारघुनंदनः ॥ आससादमहाकायंगृध्रंभीमपराक्रमम् ॥ १ ॥ तंदृष्ट्वातौमहाभागौवनस्थंरामलक्ष्मणौ ॥ मेनातेराक्षसंपक्षिंब्रुवाणौकोभवानिति ॥ २ ॥ ततोमधुरयावाचासौम्ययाप्रीणयन्निव ॥ उवाचवत्समांविद्धिवयस्यंपितुरात्मनः ॥३॥

वटी आश्रमके लिये चले ॥ २४ ॥ समरमें न डरनेवाले दोनों नृपकुमार धनुष धारण कर और तरकस बांधकर महर्षि अगस्त्यजीनें जो मार्ग बता दियाथा अति सावधानसे उस मार्गके द्वारा पंचवटीकी यात्रा करते हुए ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आरण्यकांडे त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥ अनन्तर श्रीरामचन्द्रजीनें पंचवटीके मार्गमें जाते २ एक भयानक पराक्रमवान महाशरीरवाले गीधको देखा ॥ १ ॥ महाभाग श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणजी वनमें इस पक्षीको देख राक्षस समझ कर उससे पूछनें लगे, कि तुम कौन हो? ॥ २ ॥ गीध मधुर और प्यारे वचनोंसे

उनको प्रसन्न करके बोला, कि– वत्स! तुम हमको अपने पिताका मित्र समझो ॥ ३ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजीनें उसको पिताका मित्र जानकर पूजा करते हुए व्यग्र भावसे उसका कुल और नाम पूछा ॥ ४ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके वचन सुनकर गीध सब जीवोंकी उत्पत्तिका वर्णनाका प्रसंग वर्णन करके अपना कुल और नाम कहनें लगा ॥ ५ ॥ हे महाबाहो हे राघव! पूर्वकालमें जो कि प्रजापति हुएथे, हम क्रमशः उन सबका नाम बतलाते हैं आप श्रवण कीजिये ॥ ६ ॥ कर्दम उन सबमें बडेथे उनके बाद विकृत, शेष, संश्रय, वीर्यवान् बहुपुत्र ॥ ७ ॥ स्थाणु, मरी

सतंपितृसखंमत्वापूजयामासराघवः ॥ सतस्यकुलमव्यग्रमथपप्रच्छनामच ॥ ४ ॥ रामस्यवचनंश्रुत्वाकुलमात्मा
नमेवच ॥ आचचक्षेद्दिजस्तस्मैसर्वभूतसमुद्भवम् ॥ ५ ॥ पूर्वकालेमहाबाहोयेप्रजापतयोभवन् ॥ तान्मेनिगदतः
सर्वानादितःशृणुराघव ॥ ६ ॥ कर्दमःप्रथमस्तेषांविकृतस्तदनंतरम् ॥ शेषश्चसंश्रयश्चैवबहुपुत्रश्चवीर्यवान् ॥ ७ ॥
स्थाणुर्मरीचिरत्रिश्चक्रतुश्चैवमहाबल ॥ पुलस्त्यश्चांगिराश्चैवप्रचेताःपुलहस्तथा ॥ ८ ॥ दक्षोविवस्वानपरोऽरिष्टने
मिश्चराघवः ॥ कश्यपश्चमहातेजास्तेषामासीच्चपश्चिमः ॥ ९ ॥ प्रजापतेस्तुदक्षस्यबभूवुरितिविश्रुताः ॥ षष्टिर्दुहि
तरोरामयशस्विन्योमहायशः ॥ १० ॥ कश्यपःप्रतिजग्राहतासामष्टौसुमध्यमाः ॥ अदितिंचदितिंचैवदनूमपिचका
लकाम् ॥ ११ ॥ ताम्रांक्रोधवशांचैवमनुंचाप्यनलामपि ॥ तास्तुकन्यास्ततःप्रीतःकश्यपःपुनरब्रवीत् ॥ १२ ॥ पुत्रां
स्त्रैलोक्यभर्तॄन्वैजनयिष्यथमत्समान् ॥ अदितिस्तन्मनारामदितिश्चदनुरेवच ॥ १३ ॥

चि, अत्रि महाबलवान क्रतु, पुलस्त्य, अंगिरा, प्रचेता, पुलह ॥ ८ ॥ दक्ष, विवस्वान, अरिष्टनेमि यह क्रमसे उत्पन्न हुए महात्मा कश्यप उन सबमें छोटेथे ॥ ९ ॥ हे महायशवान् श्रीरामचन्द्रजी! उनमें दक्ष प्रजापतिके यशस्विनी लोकमें विख्यात साठ ६० कन्यायें उत्पन्न हुई ॥ १० ॥ उनमें अति सुन्दरी आठ कन्याओंका कश्यपजी विवाह करते हुए। उनके नाम अदिति, दिति, दनु, कालका, ॥ ११ ॥ ताम्रा, क्रोधवशा, मनु, व अनला, विवाह होजानें पर प्रसन्नहो कश्यपजी इन दक्षकन्याओंसे बोले ॥ १२ ॥ कि तुम हमारी समान त्रिलोकीका भरण

पोषण करनेंवाले पुत्र उत्पन्न करो यह सुन दिति अदिति दनु ॥१३॥ और कालका यह तो वैसे पुत्र प्राप्त करनेंके लिये अभिलाषिता हुई और शेष चारोंने पतिके कहनेंमें ध्यान न लगाया अदितिके तेंतीस ३३ देवता हुए ॥ १४ ॥ अदितिके गर्भमें १२ आदित्य ८ वसु ११ रुद्र २ अश्विनी कुमार उपजे। और दितिने भी बडे यशवान् दैत्य उत्पन्न किये ॥ १५ ॥ पहले वन और समुद्र सहित यह पृथ्वी उनहीकी थी। हे अरिन्दम! दनुने अश्वग्रीव नामक एक पुत्र उत्पन्न किया ॥ १६ ॥ और कालकानें नरक और कालक नामक दो पुत्र उत्पन्न किये क्रौञ्ची भासी

कालकाचमहाबाहोशेषास्त्वमनसोभवन् ॥ अदित्यांजज्ञिरेदेवास्त्रयस्त्रिंशदरिंदम ॥ १४ ॥ आदित्यावसवोरुद्राअश्विनौचपरंतप ॥ दितिस्त्वजनयत्पुत्रान्दैत्यांस्तातयशस्विनः ॥ १५ ॥ तेषामियंवसुमतीपुरासीत्सवनार्णवा ॥ दनुस्त्वजनयत्पुत्रमश्वग्रीवमरिंदम ॥ १६ ॥ नरकंकालकंचैवकालकापिव्यजायत ॥ क्रौंचींभासींतथाश्येनींधृतराष्ट्रींतथाशुकीम् ॥ १७ ॥ ताम्रातुसुषुवेकन्याःपंचैतालोकविश्रुताः ॥ उलूकाञ्जनयत्क्रौंचीभासीभासान्व्यजायत ॥ १८ ॥ श्येनीश्येनांश्चगृध्रांश्चव्यजायतसुतेजसः॥ धृतराष्ट्रीतुहंसांश्चकलहंसांश्चसर्वशः ॥ १९ ॥ चक्रवाकांश्चभद्रंतेविजज्ञेसापिभामिनी ॥ शुकीनतांविजज्ञेतुनतायांविनतासुता ॥ २० ॥ दशक्रोधवशारामविजज्ञेप्यात्मसंभवाः ॥ मृगींचमृगमंदांचहरींभद्रमदामपि ॥ २१ ॥ मातंगीमथशार्दूलींश्वेतांचसुरभींतथा ॥ सर्वलक्षणसंपन्नांसुरसांकद्रुकामपि ॥ २२ ॥

श्येनी, धृतराष्ट्री और शुकी ॥ १७ ॥ ताम्रासे यह लोकविख्यात पांच कन्या जन्मी उसमें क्रौञ्चीसे उलूक पैदा हुए भासीसे भास जन्मे ॥ १८ ॥ श्येनीने अति तेजस्वी श्येन और गीधोंको प्रसव किया और धृतराष्ट्री से सब हंस ॥ १९ ॥ और चकवा चकवियोंको भी उसीनें उत्पन्न किया शुकी के नता कन्या हुई और नताके विनता उत्पन्न हुई ॥ २० ॥ हे राम! क्रोधवशाके दश कन्या उत्पन्न हुई उनके नाम यहहैं यथा—मृगी मृगमंदा, हरी, भद्रमदा ॥ २१ ॥ मातंगी, शार्दूली, श्वेता, सुरभी, सुरसा, कद्रुका यह सब कन्यायें शुभ लक्षण सम्पन्न थीं ॥ २२ ॥

हेनरश्रेष्ठ! समस्त मृग,मृगीसे उत्पन्न हुए और काले व सफेद रीछ सृमर चमरी आदि मृग मन्दाके जन्मे॥२३॥ भद्रमदानें इरावती नामक कन्या प्रसव की उसका पुत्र लोकपाल महा गज ऐरावत हुआ॥२४॥ सिंह वानर और गोपुच्छ गण हरीके उत्पन्न हुए शार्दूलीने व्याघ्रोंको प्रसव किया॥२५॥ हे पुरुषवर श्रीरामचंद्रजी! सब हाथी मातङ्गीके पुत्र हुए। श्वेताने दिग्गजोंको उत्पन्न किया ॥२६॥ सुरभीके दो कन्या हुईं, यशस्विनी रोहिणी और गन्धर्वी ॥ २७ ॥ रोहिणीने गौ बेल आदिकों को और गन्धर्वीनें अश्वोंको प्रसव किया हे राम! सुरसाने नागोंको प्रसव किया, और

अपत्यंतुमृगाःसर्वेम्मृग्यानरवरोत्तम॥ ऋक्षाश्चमृगमंदायाःसृमराश्चमरास्तथा॥ २३॥ ततास्त्विरावतींनामजज्ञेभद्रमदासुताम्॥ तस्यास्त्वैरावतःपुत्रोलोकनाथोमहागजः॥ २४॥ हर्याश्चहरयोपत्यंवानराश्चतपस्विनः ॥ गोलांगूलाश्चशार्दूलीव्याघ्रांश्चाजनयत्सुतान् ॥२५॥ मातंग्यास्त्वथमातंगाअपत्यंमनुजर्षभ ॥ दिशागजंतुकाकुत्स्थश्वेताव्यजनयत्सुतान्॥ २६ ॥ ततोदुहितरौरामसुरभिर्देव्यजायत॥ रोहिणींनामभद्रंतेगंधर्वींचयशस्विनीम् ॥ २७ ॥ रोहिण्यजनयद्गावोगंधर्वीवाजिनःसुतान्॥ सुरसाजनयन्नागान्रामकद्रूश्चपन्नगान् ॥ २८ ॥ मनुर्मनुष्याञ्जनयत्कश्यपस्यमहात्मनः ॥ ब्राह्मणान्क्षत्रियान्वैश्याञ्छूद्रांश्चमनुजर्षभ ॥ २९ ॥ मुखतोब्राह्मणाजाताउरसःक्षत्रियास्तथा॥ ऊरुभ्यांजज्ञिरेवैश्याःपद्भ्यांशूद्राइतिश्रुतिः॥ ३० ॥ सर्वान्पुण्यफलान्वृक्षाननलापिव्यजायत ॥ विनताचशुकीपौत्रीकद्रूश्चसुरसास्वसा॥३१॥ कद्रूर्नागसहस्रंतुविजज्ञेधरणीधरान् ॥ द्वौपुत्रौविनतायास्तुगरुडोऽरुणएवच ॥ ३२॥ तस्माज्जातोहमरुणात्संपातिश्चममाग्रजः ॥ जटायुरितिमांविद्धिश्येनीपुत्रमरिंदम ॥ ३३ ॥

कद्रुके सर्प उत्पन्न हुए ॥ २८ ॥ महात्मा कश्यपजीकी दूसरी स्त्री मनुसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र यह सब मनुष्य जन्मे ॥ २९ ॥ सो ऐसी कहावत चली आतीहै कि मुखसे ब्राह्मण, वक्षःस्थलसे क्षत्रिय जंघाओंसे वैश्य, और चरणोंसे शूद्रोंकी उत्पत्ति हुई ॥ ३० ॥ अनलानें परम श्रेष्ठ फल युक्त वृक्ष जनें, विनता शुकीकी पौत्री, और कद्रु सुरसाकी कन्या हुई ॥ ३१ ॥ उनमें कद्रुनें सहस्रों नाग पुत्र उत्पन्न किये यही सब पृथ्वीको धारण किये हुएहैं और विनताके दो पुत्र गरुड व अरुण हुए ॥ ३२ ॥ हम तिनही गरुडजीसे उत्पन्न हुएहैं, सम्पाति हमारे बडे

भाईहैं। हे अरिनाशक! हमारा नाम जटायु व हमारी माताका नाम श्येनी जानिये ॥ ३३ ॥ हे तात! यदि इच्छा होवे तो हम तुम्हारी वनमें वसने के समय सहायता करैं और जब तुम लक्ष्मणजीके सहित कहीं वनमें कंद, मूल, फल लेने जाया करोगे तो हम सीताजीकी रक्षा किया करेंगे ॥ ३४ ॥ रामचंद्रजी प्रफुल्लतासे जटायुको भेंट और उसकी पूजाकर उसको प्रणाम करते हुए, और पिताजीके साथ जो मित्रता उसकी थी सो उस जटायुके मुखसे वारंवार श्रवण करने लगे ॥ ३५ ॥ फिर वह बलवान जटायुके हाथमें सीताजीकी रक्षाका भार सौंपकर उसको साथले लक्ष्मणजीके सहित शत्रुओंको जलाते वनकी रक्षा करनेंके लिये सुप्रसिद्ध पंचवटीमें गमन करते हुए ॥ ३६ ॥ इत्यार्षे

सोहंवाससहायस्तेभविष्यामियदीच्छसि ॥ सीतांचतातरक्षिष्येत्वयियातेसलक्ष्मणे ॥ ३४ ॥ जटायुषंतुप्रतिपू
ज्यराघवोमुदापरिष्वज्यचसन्नतोऽभवत् ॥ पितुर्हिशुश्रावसखित्वमात्मवान्जटायुषासंकथितंपुनःपुनः ॥ ३५ ॥
सतत्रसीतांपरिदायमैथिलींसहैवतेनातिबलेनपक्षिणा ॥ जगामतांपंचवटींसलक्ष्मणोरिपून्दिधक्षन्सवनानिपाल
यन् ॥ ३६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेचतुर्दशःसर्गः ॥ १४ ॥ ततःपंचवटीं
गत्वानानाव्यालमृगायुताम् ॥ उवाचलक्ष्मणंरामोभ्रातरंदीप्ततेजसम् ॥ १ ॥ आगताःस्मयथोद्दिष्टंयंदेशंमुनिरब्र
वीत् ॥ अयंपंचवटीदेशःसौम्यपुष्पितकाननः ॥ २ ॥ सर्वतश्चार्यतांदृष्टिःकाननेनिपुणोह्यसि ॥ आश्रमःकतर
स्मिन्नोदेशेभवतिसंमतः ॥ ३ ॥ रमतेयत्रवैदेहीत्वमहंचैवलक्ष्मण ॥ तादृशोदृश्यतांदेशःसन्निकृष्टजलाशयः ॥ ४॥

श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे चतुर्दशःसर्गः ॥ १४ ॥ तिसके पीछे यह अनेक प्रकारके सर्प और पशुयुक्त पंचवटीमें गमन करके तेजसे प्रकाशमान भ्राता लक्ष्मणसे बोले ॥ १ ॥ हे सौम्य! महर्षि अगस्त्यजीनें जिसको बतायाथा अब हम उसी सदा फूले फले वन करके शोभायमान पंचवटीमें आगयेहैं ॥ २ ॥ आश्रम बनानेंके लायक स्थान निर्णय करनेंमें तुम भलीभांति चतुरहो तिस्से इस काननके चारों ओर दृष्टि डालिये कि कौनसे स्थानमें हमारे मनमाना आश्रम बनसकताहै ॥ ३ ॥ हेलक्ष्मण! जिसे स्थानमें तुम हम और जानकीजी विशेषप्रसन्नता

सहित रहसकें और जल भी जहां निकटही हो ऐसे स्थानको तुम खोजो ॥ ४ ॥ जिस जगह वन और जल दोनोंही रमणीय और पावनहों व ईंधन, पुष्प, कुश, जल जहां निकटही पाया जावे ऐसा स्थानदेखो ॥ ५ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें जब इस प्रकार कहा तब लक्ष्मणजीनें कर जोड कर सीताजीके सामने रामचंद्रजीसे कहा ॥ ६ ॥ हे भाई साहब! हम आपके विद्यमान रहते सैकडों वर्षतकभी स्वाधीन नहींहैं न कुछ विचार करही सकतेहैं और हमारा विचार ठीकभी नहींहै तिस्से अब आप स्वयंही मनोहर स्थान देख भाल हमको वहां आश्रम बनानेकी आज्ञा दीजिये ॥ ७ ॥ महाद्युतिमान श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके यह वचन सुन परम प्रसन्न हो विचार करके सर्व गुणों करके युक्त एक मनोहर स्थान खोज लेते

वनरामण्यकंयत्रजलरामण्यकंतथा ॥ सन्निकृष्टंचयस्मिंस्तुसमित्पुष्पकुशोदकम् ॥ ५ ॥ एवमुक्तस्तुरामेणलक्ष्मणः संयतांजलिः ॥ सीतासमक्षंकाकुत्स्थमिदंवचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥ परवानस्मिकाकुत्स्थत्वयिवर्षशतंस्थिते ॥ स्वयंतुरुचिरेदेशेक्रियतामितिमांवद ॥ ७ ॥ सुप्रीतस्तेनवाक्येनलक्ष्मणस्यमहाद्युतिः ॥ विमृशन्रोचयामासदेशंसर्वगुणान्वितम् ॥ ८ ॥ सतंरुचिरमाक्रम्यदेशमाश्रमकर्मणि ॥ हस्तेगृहीत्वाहस्तेनरामःसौमित्रिमब्रवीत् ॥ ९ ॥ अयंदेशः समःश्रीमान्पुष्पितैस्तरुभिर्वृतः ॥ इहाश्रमपदंरम्यंयथावत्कर्तुमर्हसि ॥ १० ॥ इयमादित्यसंकाशैःपद्मैःसुरभिगंधिभिः ॥ अदूरेदृश्यतेरम्यापद्मिनीपद्मशोभिता ॥ ११ ॥ यथाख्यातमगस्त्येनमुनिनाभावितात्मना ॥ इयंगोदावरीरम्यापुष्पितैस्तरुभिर्वृता ॥ १२ ॥

हुए ॥ ८ ॥ यह स्थान सब भांतिसे मनोहर और आश्रम बनानेंके लायक था वहां श्रीरामचंद्रजी पदार्पणकर अपने हाथसे लक्ष्मणजीका हाथ पकडकर बोले ॥ ९ ॥ यह स्थान परम श्रीसम्पन्न भूमि वहांकी बराबरहे और फूले हुए वृक्षोंसे घिराहुआहे तिस्से तुम इस स्थानमें वित्तानुसार पर्णकुटी बनाओ ॥ १० ॥ सूर्यकी समान उज्वल चित्त प्रसन्न करनेवाली सुगन्धि जिनमें आरहीहैं ऐसेकमलके फूलोंके सहित यह पुष्करणी यहांसे निकटही बहरहीहै॥ ११॥ विशुद्धात्मा महर्षि अगस्त्यजीने जिस प्रकार कहाथा यह देखो वैसेही फुलाने वृक्षोंसे शोभित

हंसकारंडवाकीर्णाचक्रवाकोपशोभिता ॥ नातिदूरेनचासन्नेमृगयूथनिपीडिता ॥ १३ ॥ मयूरनादितारम्याःप्रां शवोबहुकंदराः ॥ दृश्यंतेगिरयःसौम्याःफुल्लैस्तरुभिरावृताः ॥ १४ ॥ सौवर्णैराजतैस्ताम्रैर्देशेदेशेतथाशुभैः ॥ गवाक्षिताइवाभांतिगजाःपरमभक्तिभिः ॥ १५ ॥ सालैस्तालैस्तमालैश्चखर्जूरैःपनसैर्द्रुमैः ॥ नीवारैस्तिनिशैश्चैव पुन्नागैश्चोपशोभिताः ॥१६॥चूतैरशोकैस्तिलकैःकेतकैरपिचंपकैः ॥ पुष्पगुल्मलतोपेतैस्तैस्तैस्तरुभिरावृताः ॥१७॥ स्यंदनैश्चंदनैर्नीपैःपनसैर्लकुचैरपि ॥ धवाश्वकर्णखदिरैःशमीकिंशुकपाटलैः ॥ १८ ॥ इदंपुण्यमिदंरम्यमिदंबहुमृ गद्विजम् ॥ इहवत्स्यामसौमित्रेसार्धमेतेनपक्षिणा॥१९॥एवमुक्तस्तुरामेणलक्ष्मणःपरवीरहा ॥ अचिरेणाश्रमंभ्रातु श्चकारसुमहाबलः ॥ २० ॥ पर्णशालांसुविपुलांतत्रसंघातमृत्तिकाम् ॥ सुस्तंभांमस्करैर्दीर्घैःकृतवंशांसुशोभ नाम् ॥ २१ ॥ शमीशाखाभिरास्तीर्यदृढपाशावपाशिताम् ॥ कुशकाशशरैःपर्णैःसुपरिच्छादितांतथा ॥ २२ ॥

गोदावरी दृष्टि आतीहै ॥ १२ ॥ वहां हंस और कारंडव बोल रहेहैं चकवा चकवी पक्षियोंसे शोभायमान यह नदी न यहांसे बडी दूरहै न बहुत निकटहीहै मृगोंके यूथके यूथ जहां घूम रहेहैं ॥ १३ ॥ खिले हुए वृक्षोंसे शोभित मोर गण जहां नाद कर रहेहैं बहुत गुफा जिनमें विद्यमान परम मनोहर देखनेमें दिव्य बड़े २ ऊंचे यह सब पहाड दिखाई देतेहैं ॥ १४ ॥ उन सब पहाडों के स्थान २ में सब हाथी सुवर्ण चांदी और ताम्र वर्ण की विचित्र रचना से सजे हुएकी समान शोभा पारहेहैं ॥१५॥ साल,ताल, तमाल,खजूर, कटहल, निवार, निमिश,पुन्नागसे शोभित॥१६॥आम, अशोक,तिलक, केतकी, और चंपा आदि पुष्प, गुल्म, लता इत्यादि वृक्षोंसे शोभाय मान॥१७॥स्यन्दन, चन्दन, कदंब, लुचकुच, धव, अश्वकर्ण, खैर, शमी, ढाक और पटल इन तरुवरोंसेभी घिरे हुएहैं ॥ १८ ॥ हे लक्ष्मण ! यह स्थान अतिशय पवित्र, अतिशय मनोहर, अनेक प्रकारके मृग और पक्षियोंसे परिपूर्णहै; सो जटायुके सहित इस स्थानपर हम वास करेंगे ॥ १९ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा तब श्रीलक्ष्मणजीनें बहुत शीघ्र रामचंद्रजीके रहनेके लिये परम श्रेष्ठ एक स्थान बनाया ॥ २० ॥ उसमें बडी भारी पर्णशाला बनाई, भीतें मिट्टीसे उठादीं सुन्दर थंभ गाड दिये, ऊपर लंबे २ बांस धरे ॥ २१ ॥ उन तिरछे वासोंपर शमीकी डालियें काट २ कर छादीं फिर उन

शाखाओंको रस्सियोंसे अति दृढता सहित बांध दिया, कुश, कांश, और शर पत्रसे भलीभांति उसको छाकर बराबर करदिया ॥ २२ ॥ तिसपर शमीकी डालियोंकी बतियें छा कसकर बांधदीं, ऐसा मनोहर स्थान लक्ष्मणजीनें श्रीरामचंद्रजीके रहनेके लिये बनाया ॥ २३ ॥ जब स्थान बन चुका तो श्रीमान् लक्ष्मणजी गोदावरी नदीमें नहाकर वहांसे कमलके फूल और अनेक फल लेकर आश्रमको लौटे ॥ २४ ॥ फिर लक्ष्मण जीनें फूलोंसे यथा विधि वास्तुशान्ति करके उस कुटीको पवित्रकर श्रीरामचंद्रजीको दिखाया ॥ २५ ॥ श्रीरघुनंदन रामचंद्रजी सीताके सहित लक्ष्मणजीकी बनाई वह शुभदर्शन कुटी देखकर परम प्रसन्न हुए ॥ २६ ॥ और बहुतही हर्षमें भरकर दोनों बाहोंसे लक्ष्मणजीको स्नेह

समीकृततलांरम्यांचकारसुमहाबलः ॥ निवासंराघवस्यार्थेप्रेक्षणीयमनुत्तमम् ॥ २३ ॥ सगत्वालक्ष्मणःश्रीमान्नदींगोदावरींतदा ॥ स्नात्वापद्मानिचादायसफलःपुनरागतः ॥ २४ ॥ ततःपुष्पबलिंकृत्वाशांतिंचसयथाविधि ॥ दर्शयामासरामायतदाश्रमपदंकृतम् ॥ २५ ॥ सतंदृष्ट्वाकृतंसौम्यमाश्रमंसहसीतया ॥ राघवःपर्णशालायांहर्षमाहारयत्परम् ॥ २६ ॥ सुसंहृष्टःपरिष्वज्यबाहुभ्यांलक्ष्मणंतदा ॥ अतिस्निग्धंचगाढंचवचनंचेदमब्रवीत् ॥ २७ ॥ प्रीतोस्मितेमहत्कर्मत्वयाकृतमिदंप्रभो ॥ प्रदेयोयन्निमित्तंतेपरिष्वंगोमयाकृतः ॥ २८ ॥ भावज्ञेनकृतज्ञेनधर्मज्ञेनचलक्ष्मण ॥ त्वयापुत्रेणधर्मात्मानसंवृत्तःपितामम ॥ २९ ॥ एवंलक्ष्मणमुक्त्वातुराघवोलक्ष्मिवर्धनः ॥ तस्मिन्देशेबहुफलेन्यवसत्ससुखंसुखी ॥ ३० ॥

सहित अपनी छातीसे लगा लिया और बडे मनोहर प्रेमसने वचन बोले ॥ २७ ॥ हे कार्य करनेमें चतुर! हम तुमपर बहुतही प्रसन्न हुए हैं तुमनें यह बडा भारी कार्य किया सो इस कार्यका तुमको इनाम देना चाहिये अतएव इसके बदलेहीमें हमनें तुमसे भेंटकी ॥ २८ ॥ हे लक्ष्मण जी! तुम्हारी समान विचारवान् सबका भाव जाननेंवाले, उपकार माननेंवाले, और धर्मके जाननेंवाले पुत्रके रहते राजा दशरथजीकी मृत्यु नहीं हुई ॥ २९ ॥ लक्ष्मीके बढानेवाले श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणसे ऐसा कहकर परम सुखभोगमय बहु फल युक्त उस आश्रमपदमें वास करने लगे ॥ ३० ॥

वह धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मण करके सेवित होनेंपर देवलोकमें देवताकी समान वहां कुछ दिन वास करते हुए ॥ २१ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आर० पंचदशःसर्गः ॥ १५ ॥ महात्मा रामचंद्रजीके वहां सुखसे वास करते२शरत्काल वीता और सबका प्यारा हेमन्त समय आया ॥ १ ॥ एक समय रात्रि वीतकर प्रभात हुआ तो उस समय श्रीरामचंद्रजी स्नानकरनेंके लिये रमणीक गोदावरी नदीपर जाते हुए ॥ २ ॥ वीर्यवान् भ्राता लक्ष्मणजी सीताजीके साथ जलका कलश हाथमें लेकर उनके पीछे २ चलते हुए नम्रता से बोले ॥ ३ ॥ हे प्रिय बोलनेवाले ! जो इस समय आपको प्याराहै; यह वही हेमन्तकाल उपस्थित हुआहै । इस हेमन्तके समागमसेही शुभ

कंचित्कालंसधर्मात्मासीतयालक्ष्मणेनच ॥ अन्वास्यमानोन्यवसत्स्वर्गलोकेयथामरः ॥ २१ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा०आ०आर०पंचदशःसर्गः ॥ १५ ॥ ॥ ७ ॥ वसतस्तस्यतुसुखंराघवस्यमहात्मनः ॥ शरद्व्यपायेहेमंतऋतुरिष्टःप्रवर्तत ॥ १ ॥ सकदाचित्प्रभातायांशर्वर्यांरघुनंदनः ॥ प्रययावभिषेकार्थंरम्यांगोदावरींनदीम् ॥ २ ॥ प्रह्वः कलशहस्तस्तुसीतयासहवीर्यवान् ॥ पृष्ठतोनुव्रजन्भ्रातासौमित्रिरिदमब्रवीत् ॥ ३ ॥ अयंसकालःसंप्राप्तःप्रियोयस्तेप्रियंवद ॥ अलंकृतइवाभातियेनसंवत्सरःशुभः ॥ ४ ॥ नीहारपरुषोलोकःपृथिवीसस्यमालिनी ॥ जलान्यनुपभोग्यानिसुभगोहव्यवाहनः ॥ ५ ॥ नवाग्रयणपूजाभिरभ्यर्च्यपितृदेवताः ॥ कृताग्रयणकाःकालेसंतोविगतकल्मषाः ॥६॥ प्राज्यकामाजनपदाःसंपन्नतरगोरसाः ॥ विचरंतिमहीपालायात्रार्थंविजिगीषवः ॥ ७ ॥ सेवमानेदृढंसूर्येदिशमंतकसेविताम् ॥ विहीनतिलकेवस्त्रीनोत्तरादिक्प्रकाशते ॥ ८ ॥

संवत्सर मानों सजकरही मनोहर हुआहै ॥४॥ शरदीके प्रभावसे सबही लोगोंके शरीर रूखे होगये, और पृथ्वी अनाजोंसे भरपूर होरहीहै और अग्निही इस समय लोगोंको प्रिय लगतीहै शरदीसे पानी नहीं छुआ जाता ॥ ५ ॥ इस समय मनुष्य गण नये अनाजसे देवता और पित्रोंकी विशेष भांतिसे पूजा करके नवशस्य निमित्तक यज्ञ करते हुए निष्पाप हुएहैं ॥ ६ ॥ इस समय सब देशोंमें काम्यवस्तु; दही, दूध, गोरस आदि बहुत प्राप्त होताहै इस समय विजयकी इच्छा किये हुए राजा लोग देशोंमें घूमनेंके लिये यात्रा करतेहैं ॥ ७ ॥ दक्षिण दिशामें सूर्य भगवा

नका अधिक अनुराग होनेसे उत्तरदिशा तिलकहीन स्त्रीकी नांई शोभारहित होगईहै ॥ ८ ॥ एक तो हिमालय पर स्वभावसेही बहुत पाला पडताहै तिसपर अब सूर्य भगवान् उस्से बहुत दूर होगयेहैं; तिस्से हिमवानका हिमालय (पालेका घर) नाम ठीक २ होरहाहै ॥ ९ ॥ इस समय दुपहरियामें घूमना अच्छा लगताहै धूप लगनेसे सुख होताहै, इस समय सूर्य सबके सुख देनेंवाले, और छाया जल एकवारही नहीं सेवन किया जाता ॥ १० ॥ अब सूर्य नारायणका वह पहलासा तेज नहींहै। कुहरा पडने व पवन चलनेसे जाडा बहुतही अधिक पडताहै तिस जाडेके पडनेंसे जीवमात्रही जडीभूत होगये, तिससे सब ही वन सूनेसे जान पडतेहैं प्रभातकाल हिमग्रस्त होकर प्रकाशित

प्रकृत्याहिमकोशाढ्योदूरसूर्यश्चसांप्रतम् ॥ यथार्थनामसुव्यक्तंहिमवान्हिमवान्गिरिः ॥ ९ ॥ अत्यंतसुखसंचारा मध्याह्नेस्पर्शतःसुखाः ॥ दिवसाःसुभगादित्याश्छायासलिलदुर्भगाः ॥ १० ॥ मृदुसूर्याःसुनीहाराःपटुशीताःसमाहिताः ॥ शून्यारण्याहिमध्वस्तादिवसाभांतिसांप्रतम् ॥ ११ ॥ निवृत्ताकाशशयनाःपुष्यनीताहिमारुणाः ॥ शीतवृद्धतरायामास्त्रियामायांतिसांप्रतम् ॥ १२ ॥ रविसंक्रांतसौभाग्यस्तुषारारुणमंडलः ॥ निःश्वासांधइवादर्शश्चंद्रमानप्रकाशते॥१३॥ज्योत्स्नातुषारमलिनापौर्णमास्यांनराजते ॥ सीतेवचातपश्यामालक्ष्यतेनचशोभते ॥१४॥ प्रकृत्याशीतलस्पर्शोहिमविद्धश्चसांप्रतम् ॥ प्रवातिपश्चिमोवायुःकालेद्विगुणशीतलः ॥ १५ ॥

होताहै ॥ ११ ॥ पुष्य नक्षत्र युक्त इस पुष्य मासमें और पाला पडती हुई धूसर वर्ण इन दिनोंको रात्रिमें विना छाये हुए स्थानमें नहीं सोया जाता अब रात्रियों में शीत अधिक पडताहै ॥१२॥ जिस प्रकार श्वासकी वाफ लगनेंसे दर्पण अंधासा होजाताहै, वैसेही सुखसेव्यतादि सबही सौभाग्य इस समय सूर्यसे दबजानें और बरफके द्वारा किरणोंके ढक जानें और धूसरवर्ण होजानेंसे चंद्रमाकाभी अब प्रकाश नहींहैं॥१३॥तुषार करके मलीन होनेंसे चांदनी अब पूर्णमासीकी रात्रिमेंभी नहीं खिलती केवल दीखतीहै जैसे सीताजी धूमके लगनेंसे श्याम होगईहैं और शोभित नहीं होतीं ॥ १४ ॥ स्वभावतः शीतलता युक्त पछादिया पवन अब हिमसे आवृत और उससे मिलकर दूना शीतलहो चल रहाहै ॥ १५ ॥

यव और गेहुओं करके पूर्ण ओस जिनमें पडी हुई ऐसे समस्त वन सूर्यके उदय होनेपर शब्द करते हुए सारस और क्रौञ्चादिक पक्षियोंसे व्याप्त होकर शोभा विस्तार करतेहैं ॥ १६ ॥ सुवर्णके वर्णवाले शालि समूह खजूरके फूलकी समान तन्दुल भरी हुई वालोंके लगनेसे कुछ एक झुके हुए विराजरहेहैं ॥ १७ ॥ सूर्य आकाशमें ऊँचे उठकर चन्द्रमाकी समान शीतल अल्प प्रकाशमय दृष्टि आतेहैं, क्योंकि इधर उधर फैली हुई उनकी किरणें पालेसे ढक रहीहैं ॥ १८ ॥ धूपका तेज सवेरे २ तो कुछ होताही नहीं दुपहर को कुछ एक सुखका देनेवाला होता

बाष्पच्छन्नान्यरण्यानियवगोधूमवंतिच ॥ शोभंतेभ्युदितेसूर्येनदद्भिःक्रौंचसारसैः ॥ १६ ॥ खर्जूरपुष्पाकृतिभिःशिरोभिःपूर्णतंडुलैः ॥ शोभंतेकिंचिदालंबाःशालयःकनकप्रभाः ॥ १७ ॥ मयूखैरुपसर्पद्भिर्हिमनीहारसंवृतैः ॥ दूरमभ्युदितःसूर्यःशशांकइवलक्ष्यते ॥ १८ ॥ अग्राह्यवीर्यःपूर्वाह्णेमध्याह्नेस्पर्शतःसुखः ॥ संसक्तःकिंचिदापांडुरातपःशोभतेक्षितौ ॥ १९ ॥ अवश्यायनिपातेनकिंचित्प्रक्लिन्नशाद्वला ॥ वनानांशोभतेभूमिर्निविष्टतरुणातपा ॥ २० ॥ स्पृशन्सुविपुलंशीतमुदकंद्विरदःसुखम् ॥ अत्यंततृषितोवन्यःप्रतिसंहरतेकरम् ॥ २१ ॥ एतेहिसमुपासीनाविहगाजलचारिणः ॥ नावगाहंतिसलिलमप्रगल्भाइवाहवम् ॥ २२ ॥ अवश्यायतमोनद्धानीहारतमसावृताः ॥ प्रसुप्ताइवलक्ष्यंतेविपुष्पावनराजयः ॥ २३ ॥

है और उसी समय वर्ण कुछ पीला पडजानेसे पृथ्वीमें शोभित होता है ॥ १९ ॥ प्रभातमें ओसकी बूंदोंके गिरनेसे हरी २ घास गीली होरहीहै उस घासपर सूर्यकी किरणें पडनेसे वन भूमिकी शोभाकी सीमा नहीं रहती ॥ २० ॥ वनैला हाथी अधिक प्यासा होनेपरभी शीतल जल छूतेही उसी समय शूंड खेंच लेताहै ॥ २१ ॥ डरपोक आदमी जिस प्रकार युद्धमें नहीं जाते, वैसेही यह जलचर पक्षीगण जलके समीप बैठे रह करभी किसी प्रकारसे जलमें डुबकी नहीं मारते ॥ २२ ॥ प्रसून शून्य वनश्रेणी रात्रिमें ओस और अंधकारसे ढक जाने और प्रभातको

कुहरके अंधेरेसे छिपजानेंपर ऐसी लगतीहै मानों सोयरहीहै ॥ २३ ॥ अब समस्त नदियें वाफसे ढकी हुईहैं, और उनके तीरका रेतभी पालेके पडनेंसे गीला होरहाहै; और शब्द करते हुए सारसोंके घूमनेंसे सब नदियें बहुतही शोभायुक्त हुईहैं ॥ २४ ॥ वर्फके गिरनें और सूर्यका तेज मंद होनेंसे,शीतके वशहो पर्वतोंके अग्रभागका जलभी प्रायः स्वादिष्ठ होगयाहै ॥ २५ ॥ अब जराके वश होजानेंसे पत्तोंके गिरजानें और पंखडियोंके टूट जानें व हिमग्रस्त होजानेंसे कमल फूलमें केवल डंडी मात्र रह गईहै अब कमलाकर सरोवर शोभा नहीं पाते ॥ २६ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ! इस दारुण हेमन्त कालमें धर्मात्मा भरतजी आपकी भक्तिके वशहो नगरमें रहकरभी दुःखका बोझ सहन करते हुए तपस्या करते

बाष्पसंछन्नसलिलारुतविज्ञेयसारसाः ॥ हिमार्द्रवालुकास्तीरैःसरितोभांतिसांप्रतम् ॥ २४ ॥ तुषारपतनाच्चैवमृदुत्वाद्भास्करस्यच ॥ शैत्यादगाग्रस्थमपिप्रायेणरसवज्जलम् ॥ २५ ॥ जराझर्झरितैःपत्रैःशीर्णकेसरकर्णिकैः ॥ नालशेषाहिमध्वस्तानभांतिकमलाकराः ॥ २६ ॥ अस्मिंस्तुपुरुषव्याघ्रकालेदुःखसमन्वितः ॥ तपश्चरतिधर्मात्मात्वद्भक्त्याभरतःपुरे ॥ २७ ॥ त्यक्त्वाराज्यंचमानंचभोगांश्चविविधान्बहून् ॥ तपस्वीनियताहारःशेतेशीतेमहीतले ॥ २८ ॥ सोपिवेलामिमांनूनमभिषेकार्थमुद्यतः ॥ वृतःप्रकृतिभिर्नित्यंप्रयातिसरयूंनदीम् ॥ २९ ॥ अत्यंतसुखसंवृद्धःसुकुमारोहिमार्दितः ॥ कथंत्वपररात्रेषुसरयूमवगाहते ॥ ३० ॥ पद्मपत्रेक्षणःश्यामःश्रीमान्निरुदरोमहान् ॥ धर्मज्ञःसत्यवादीचह्रीनिषेधोजितेंद्रियः ॥ ३१ ॥

होंगे ॥ २७ ॥ और राज्य मान और अनेक प्रकारके राज्योचित सुख छोडकर नियत समयपर आहार करके तपस्वी हो शीतल पृथ्वीपर शयन करते होंगे ॥ २८ ॥ वह निश्चय प्रति दिन इस समय निरालस्यहो मंत्री आदिकोंके साथ सरयू नदीमें नहानेंके लिये जाते होंगे ॥ २९ ॥ भरतजी स्वभावसेही सुकुमारहैं और परम सुखसे पलकर इतनें बडे हुएहैं । सो अब वह किस प्रकारसे पाला पडते हुये प्रभात कालमें सरयूके जलसे स्नान करते होंगे! ॥ ३० ॥ आर्य! वह कमलनेत्र,श्यामवर्ण,बडाई करके युक्त शोभावान सूक्ष्मोदर, धर्मज्ञ, सत्यवादी,सभामें बडे ढीठे जितेन्द्रिय ॥ ३१ ॥

प्रिय वचन बोलनेवाले शत्रुओंका दमन करनेवाले लंबी भुजाओंवाले लज्जाशील श्रीमान् भरतजी सब सुख भोगको जलांजलि देकर अंतःक रणसे आपकोही आश्रय किये हुएहैं ॥ ३२ ॥ हे वनवासिन् ! यद्यपि आपके भ्राता महात्मा भरतजी तापस धर्मका आश्रय करके वनवासी नहीं हुएहैं तथापि उन्होंने आपके अनुरूप कार्यकर स्वर्गको जीत लियाहै ॥ ३३ ॥ जगत्‌में जो यह कहावत चली आतीहै कि मनुष्योंमें पिताका भाव नहीं आता वरन माताहीका स्वभाव आताहै सो भरतजीनें इस कहावतके विरुद्ध किया क्योंकि उनमें कैकेयीका स्वभाव नहींहै॥३४॥परन्तु श्रीराजाधिराज महाराज दशरथजी जिसके स्वामी और साधु भरतजी जिसके पुत्र वह जननी कैकेयी किस प्रकारसे ऐसी क्रूर

प्रियाभिभाषीमधुरोदीर्घबाहुररिंदमः ॥ संत्यज्यविविधान्सौख्यानार्यंसर्वात्मनाश्रितः ॥ ३२ ॥ जितःस्वर्गस्तवभ्रा त्राभरतेनमहात्मना ॥ वनस्थमपितापस्येयस्त्वामनुविधीयते ॥ ३३ ॥ नपित्र्यमनुवर्ततेमातृकंद्विपदाइति ॥ ख्या तोलोकप्रवादोयंभरतेनान्यथाकृतः ॥ ३४ ॥ भर्तादशरथोयस्याःसाधुश्चभरतःसुतः ॥ कथंनुसांबाकैकेयीतादृशी क्रूरदर्शिनी ॥ ३५ ॥ इत्येवंलक्ष्मणेवाक्यंस्नेहाद्ब्रुवतिधार्मिके ॥ परिवादंजनन्यास्तमसहन्राघवोऽब्रवीत् ॥ ३६ ॥ नतेऽबामध्यमातातगर्हितव्याकदाचन ॥ तामेवेक्ष्वाकुनाथस्यभरतस्यकथांकुरु ॥ ३७॥ निश्चितैवहिमेबुद्धिर्वनवा सेदृढव्रता ॥ भरतस्नेहसंतप्ताबालिशीक्रियतेपुनः ॥ ३८ ॥ संस्मराम्यस्यवाक्यानिप्रियाणिमधुराणिच ॥ हृद्यान्य मृतकल्पानिमनःप्रह्लादनानिच ॥ ३९ ॥

बुद्धिवाली हुई ? ॥ ३५ ॥ महात्मा लक्ष्मणजीनें जब भाईके स्नेहके वश हो इस प्रकार कहा तब श्रीरामचंद्रजी माता कैकेयीकी वह निन्दा न सहते हुए कहनें लगे ॥ ३६ ॥ हे भइया ! मँझली माता कैकेयीकी निन्दा मत करो तुम केवल इक्ष्वाकुनाथ भरतजीकेही गुणगणोंका बखान करो ॥ ३७ ॥ यद्यपि हमारी बुद्धि एक मात्र वनवासमें निश्चित और दृढव्रत हुईहै तथापि भरतजीके स्नेहके वश होकर बावरीसी होग ईहै ॥ ३८ ॥ भरतजीकी प्रिय मधुर हृदयको अमृतकी नांई सिंचन करनेवाली मनको आह्लाद देनेवाली वार्त्ता वार २ हमारे मनमें स्मरण

होरहीहै ॥ ३९ ॥ नहीं जानते कि कितनें दिनोंमें फिर महात्मा भरतजी और शत्रुघ्नजीसे तुम्हारे सहित हम मिलेंगे ! ॥ ४० ॥ रघुनंदन श्रीराम चंद्रजी इस प्रकारसे विलाप करते २ भ्राता लक्ष्मण और सीताके सहित गोदावरी नदीपर पहुंचकर स्नान करते हुए ॥ ४१ ॥ फिर सबनें गोदावरीके जलसे पितृगणोंको देवतोंको तर्पण करके उदित सूर्य व और दूसरे देवताओंका स्तोत्र किया ॥ ४२ ॥ भगवान् भूतनाथ पार्वती और नन्दिके सहित स्नान करके जिस प्रकारसे शोभाको प्राप्त होते हैं सीताजी और लक्ष्मणजीके सहित नहाकर श्रीरामचन्द्रजीनेंभी वैसेही शोभा धारण की ॥४३॥ इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०आर० षोडशः सर्गः ॥१६॥ श्रीरामचन्द्रजी, सीताजी, व लक्ष्मणजी तीनों जन स्नान करके गोदा

कदाह्यहंसमेष्यामिभरतेनमहात्मना ॥ शत्रुघ्नेनचवीरेणत्वयाचरघुनंदन ॥४०॥ इत्येवंविलपंस्तत्रप्राप्यगोदावरीं नदीम् ॥ चक्रेभिषेकंकाकुत्स्थःसानुजःसहसीतया॥ ४१ ॥ तर्पयित्वाथसलिलैस्तैःपितॄन्दैवतानपि ॥ स्तुवंतिस्मोदितंसूर्यंदेवताश्चतथानघाः ॥ ४२ ॥ कृताभिषेकःसरराजरामःसीताद्वितीयःसहलक्ष्मणेन ॥ कृताभिषेकस्त्वगराजपुत्र्यारुद्रःसनंदिर्भगवानिवेशः ॥४३॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आदिकाव्येआरण्यकांडेषोडशःसर्गः ॥ १६ ॥ ७॥ कृताभिषेकोरामस्तुसीतासौमित्रिरेवच ॥ तस्माद्गोदावरीतीरात्ततोजग्मुःस्वमाश्रमम् ॥१॥ आश्रमंतदुपागम्य राघवःसहलक्ष्मणः ॥ कृत्वापौर्वाह्णिकंकर्मपर्णशालामुपागमत् ॥ २ ॥ उवाससुखितस्तत्रपूज्यमानोमहर्षिभिः ॥ सरामःपर्णशालायामासीनःसहसीतया ॥ ३ ॥ विरराजमहाबाहुश्चित्रयाचंद्रमाइव ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्राचकार विविधाःकथाः ॥ ४ ॥ तदासीनस्यरामस्यकथासंसक्तचेतसः ॥ तंदेशंराक्षसीकाचिदाजगामयदृच्छया ॥ ५ ॥

वरीके तीरसे आश्रमको लौटे ॥ १ ॥ और श्रीरामचन्द्रजीनें आश्रममें पहुँच कर लक्ष्मणजीके साथ प्रथम कालकी सब क्रिया कर पर्णशालामें प्रवेश किया ॥ २ ॥ और महर्षि लोगों से पूजे जाकर वहां सुखसे वास करनेंलगे उस काल सीताजीके सहित पर्णशालामें आसीन होनेंसे ॥ ३ ॥ महाबाहु रामचन्द्रजी; चित्रा नक्षत्र युक्त चन्द्रमा की समान शोभा पानें लगे। तिसके पीछे भ्राता लक्ष्मणजीके सहित रामचन्द्रजीनें अनेक प्रकारकी कथा वार्त्ता आरंभ करदी ॥ ४ ॥ इस प्रकारसे बैठे रहकर कथा वार्त्ता कहनेंमें लगे हुयेहैं कि इतनेंही में कोई राक्षसी

अपनी इच्छासे घूमतीहुई वहां आई ॥ ५ ॥ यह राक्षसी दशवदन रावणकी बहनथी नाम इसका शूर्पणखा था वह देवताओंकी समान
रामचन्द्रजीके निकट आकर उनको देखती हुई ॥ ६ ॥ उसनें देखा कि रामचन्द्रजीका वदन प्रदीप्तमान है बाहें घुटनोंतक आती हैं दोनों नेत्र
कमलदलकी समान बडे हैं चाल हाथीकी समान है शिर पर जटा धारण किये हुयेहैं ॥ ७ ॥ अंग प्रत्यंग अति कोमल हैं बल विक्रम
अपार है। शरीर राजलक्षणों करकै युक्त है। वर्ण नीले कमलकी समान श्यामता लिये हुयेहैं, कोटि मदनकी समान सुन्दर हैं ॥ ८ ॥ इस प्रकार
साक्षात् इन्द्रकी समान श्रीरामचन्द्र जीको देखकर राक्षसी कामसे मोहित हुई । श्रीरामचन्द्रजीका वदन मण्डल श्रेष्ठथा। राक्षसीका मुख खरा
वथा रामचन्द्रजीका मध्य देश गोलाकार व राक्षसीका उदर अति बृहत् था ॥ ९ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके दोनों नेत्र अति विशाल व राक्षसी
सातुशूर्पणखानामदशग्रीवस्यरक्षसः ॥ भगिनीराममासाद्यददर्शत्रिदशोपमम् ॥ ६॥ दीप्तास्यंचमहाबाहुंपद्मपत्रा
यतेक्षणम् ॥ गजविक्रांतगमनंजटामंडलधारिणम् ॥ ७ ॥ सुकुमारंमहासत्त्वंपार्थिवव्यंजनान्वितम् ॥ राममिंदीवर
श्यामंकंदर्पसदृशप्रभम् ॥ ८ ॥ बभूवेंद्रोपमंदृष्ट्वाराक्षसीकाममोहिता ॥ सुमुखंदुर्मुखीरामंवृत्तमध्यंमहोदरी ॥ ९॥
विशालाक्षंविरूपाक्षीसुकेशंताम्रमूर्धजा ॥ प्रियरूपंविरूपासासुस्वरंभैरवस्वना ॥ १० ॥ तरुणंदारुणावृद्धादाक्षिणं
वामभाषिणी ॥ न्यायवृत्तंसुदुर्वृत्ताप्रियमप्रियदर्शना॥११॥शरीरजसमाविष्टाराक्षसीराममब्रवीत्॥जटीतापसवेषेण
सभार्यःशरचापधृक् ॥१२॥आगतस्त्वमिमंदेशंकथंराक्षससेवितम्॥ किमागमनकृत्यंतेतत्त्वमाख्यातुमर्हसि॥१३॥
की आंखें अति बुरीथीं रामचन्द्रके अति श्रेष्ठ घूंघर वाले बालथे और राक्षसी के केश ताम्रवर्ण थे। श्रीरामचन्द्र जी प्रिय रूपवान् और
राक्षसी महाभयानक रूपथी श्रीरामचंद्रजीका अति मधुर स्वरथा और राक्षसीका स्वर नितान्त कर्कश भीषण और भयंकरथा ॥१०॥ श्रीराम
चंद्रजी युवाथे, व राक्षसी महावृद्धाथी, श्रीरामचंद्रजी अति मधुर वचन बोलनेंवाले, व राक्षसी अत्यन्त कर्कशभाषिणी थी, श्रीरामचंद्रजी न्याय
वृत्त, और राक्षसी दुर्वृत्तथी, श्रीरामचंद्रजी देखनें में जैसे प्यारे थे ! वह राक्षसी देखनें में वैसीही कुप्यारीथी ॥ ११ ॥ ऐसी शूर्पणखा महाका
मातुर होकर श्रीरामचंद्रजीसे बोली कि तुम जटा रखाये तपस्वीका वेष धारे धनुष बाण लिये स्त्री सहित ॥ १२ ॥ किस कारणसे राक्षसोंसे

सेवित देशमें आयेहो तुम्हारे यहां पर आनेका क्या प्रयोजन है ? सो यथार्थ कहो ॥ १३ ॥ शत्रुओंके तपानेवाले श्रीरामचंद्रजी राक्षसी शूर्पणखाकी यह वार्त्ता सुनकर सरलता सहित कुछ न छिपाते हुए सब वर्णन करने लगे ॥ १४ ॥ श्रीरामचंद्रजी बोले कि देवताओंकी समान विक्रमवान दशरथजी नामक एक राजाथे हम उनके ज्येष्ठ पुत्रहैं लोकमें हमारा नाम रामहै ॥ १५ ॥ और इनका नाम लक्ष्मणहै, यह हमारे आज्ञाकारी छोटे भ्राताहैं, और यह विदेहकुमारी हमारी भार्या हैं इनका सीता ऐसा नामहै ॥ १६ ॥ पिता और माता कैकेयीके कहनेसे धर्मके लाभकी आशा और धर्मकी रक्षा करनेके कारण वनमें वास करनेके लिये हम इस स्थानमें आयेहैं ॥ १७ ॥ इस समय यह

एवमुक्तस्तुराक्षस्याशूर्पणख्यापरंतपः ॥ ऋजुबुद्धितयासर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ १४ ॥ आसीद्दशरथोनामराजा त्रिदशविक्रमः ॥ तस्याहमग्रजःपुत्रोरामोनामजनैःश्रुतः ॥ १५ ॥ भ्रातायंलक्ष्मणोनामयवीयान्मामनुव्रतः ॥ इयं भार्याचवैदेहीममसीतेतिविश्रुता ॥ १६ ॥ नियोगात्तुनरेंद्रस्यपितुर्मातुश्चयंत्रितः ॥ धर्मार्थंधर्मकांक्षीचवनंवस्तुमिहागतः ॥ १७ ॥ त्वांतुवेदितुमिच्छामिकस्यत्वंकासिकस्यवा ॥ त्वंहितावन्मनोज्ञांगीराक्षसीप्रतिभासिमे ॥ १८ ॥ इहवाकिंनिमित्तंत्वमागताब्रूहितत्त्वतः ॥ साब्रवीद्वचनंश्रुत्वाराक्षसीमदनार्दिता ॥ १९ ॥ श्रूयतांरामतत्त्वार्थंवक्ष्यामिवचनंमम ॥ अहंशूर्पणखानामराक्षसीकामरूपिणी ॥ २० ॥ अरण्यंविचरामीदमेकासर्वभयंकरा ॥ रावणोनाममेभ्रातायदितेश्रोत्रमागतः॥२१॥प्रवृद्धनिद्रश्चसदाकुंभकर्णोमहाबलः॥विभीषणस्तुधर्मात्मानतुराक्षसचेष्टितः॥२२॥

हमारी इच्छा तुमको जाननेंकी हुईहै, तुम कौनहो किसकी बेटीहो; और किसकी स्त्रीहो ! हमें तो ऐसा जान पडताहै कि तुम राक्षसोंका मन मोहने वालीहो॥१८॥ और तुम किसलिये यहां आई हो सो सत्यही सत्य कहो ! यह वचन सुनकर वह मदनसे आतुर हुई राक्षसी बोली ॥ १९ ॥ हे रामचंद्र ! तुम ठीक २ हमारा परिचय सुनो हम कहती हैं; हम शूर्पणखा नामक कामरूपा राक्षसी॥२०॥ सबको भय उपजाती हुई अकेली इस वनमें घूमा करतीहैं हमारे भइयाका नाम रावणहै सो कदाचित् तुमने उसका वृत्तान्त व नाम सुनाही होगा॥२१॥हमारे और दो भाइयोंका नाम कुम्भकर्ण और विभीषणहै कुंभकर्ण अति बलवान्है और सदा सोताही रहता है और विभीषण परम धार्मिक है राक्षसोंके चरित्र उसमें नहीं हैं॥२२॥

खर और दूषण यह दोनोंभी हमारे भ्राता रणमें बडे वीर्यवान् और बलशाली लोकमें प्रसिद्ध हैं ॥ २३ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी! तुमको प्रथम देखते ही हम उन सबको छोड छाँड तुम्हारा अपूर्व रूप देख पुरुषोत्तम जान प्रेमके मारे अपना पति बनानेंके लिये यहां आईहैं ॥२४॥ हममें बडा पराक्रमहै; और बल होनेके कारण जहां इच्छा होतीहै वहीं स्वच्छन्दतासे घूमती रहती हूं। सो तुम सदाके लिये हमारे स्वामी बेना। इस सीताको लेकर क्या करोगे? ॥ २५ ॥ यह सीता विकटाकार और कुरूपाहै; किसी भांतिभी यह तुम्हारे योग्य नहींहै हमको देखो; हमहीं रूपके

प्रख्यातवीर्यौचरणेभ्रातरौखरदूषणौ॥२३॥तानहंसमतिक्रांतारामत्वापूर्वदर्शनात् ॥समुपेतास्मिभावेनभर्तारंपुरुषोत्तमम् ॥ २४ ॥अहंप्रभावसंपन्नास्वच्छंदबलगामिनी ॥ चिरायभवभर्तामेसीतयाकिंकरिष्यसि ॥ २५ ॥ विकृताच विरूपाचनसेयंसदृशीतव ॥ अहमेवानुरूपातेभार्यारूपेणपश्यमाम् ॥ २६ ॥ इमांविरूपामसतींकरालांनिर्णतोदरीम् ॥ अनेनसहतेभ्रात्राभक्षयिष्यामिमानुषीम् ॥ २७ ॥ ततःपर्वतशृंगाणिवनानिविविधानिच ॥ पश्यन्सहमयाकामीदंडकान्विचरिष्यसि ॥ २८ ॥ इत्येवमुक्तःकाकुत्स्थःप्रहस्यमदिरेक्षणाम् ॥ इदंवचनमारेभेवक्तुंवाक्यविशारदः ॥ २९ ॥इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेसप्तदशःसर्गः ॥ १७ ॥ ॥ छ ॥ तांतुशूर्पणखांरामःकामपाशावपाशिताम् ॥ स्वेच्छयाश्लक्ष्णयावाचास्मितपूर्वमथाब्रवीत् ॥ १ ॥ कृतदारोस्मिभवतिभार्येयंदयितामम ॥ त्वद्विधानांतुनारीणांसुदुःखाससपत्नता ॥ २ ॥

हेतु तुम्हारी भार्या बननेंके लायकहैं॥२६॥हम तुम्हारे इस भ्राताके सहित इस मानवी, कुरूपा, असती, कराला और नतोदरी सीताको भक्षण कर जांयगी॥२७॥तुम काम भोग में तत्पर होकर हमारे सहित और पर्वतोंके शृङ्गोंको देखते हुए दंडकारण्यमें विचरण करोगे॥२८॥वचन बोलनेमें चतुर रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी यह वचन सुन ऊंचे स्वरसे हँसकर क्रूरनयना शूर्पणखासे बोले॥ २९ ॥इत्यार्षे श्रीम० वा० आ०आ० सप्तदशः सर्गः ॥१७॥ श्रीरामचंद्रजीनें उपहास करनेंके लिये हँस कर मधुर वचनसे उस कामके फंदमें फँसी शूर्पणखासे कहा ॥ १ ॥ अयि कल्याणी! हमारा

विवाह होगयाहै यह सीताजी हमारी स्त्रीहै । सो तुम सरीखी स्त्रियोंको सौतका होना बहुतही दुःखका विषय है ॥ २ ॥ परन्तु हमारे यह छोटे भ्राता लक्ष्मणजी सच्चरित्र श्रीमान् वीर्यवान् और प्रियदर्शनहैं । इनका विवाह अभी नहीं हुआहै अथवा अकृतदार इनके निकट स्त्री नहीहैं अथवा इन्होंनें स्त्री परिग्रह नहीं कियाहै ॥ ३ ॥ इन्होंनें पहले कभी स्त्रीका सुख नहीं भोगा है इसी कारण यह विवाहार्थी हुएहैं और विशेष करके यह युवाहैं तिस्से यह सब प्रकारसे तुम्हारे लायक स्वामी होंगे ॥ ४ ॥ हे बडे नेत्रोंवाली ! सूर्यकी प्रभा जिस प्रकार सुमेरुक भजना करतीहै, तुमभी वैसेही सौत रहित होकर हमारे इन भाईकी स्वामीकी भांतिसे सेवा करो ॥ ५ ॥ वह कामसे मोहित हुई राक्षसी राम

अनुजस्त्वेषमेभ्राताशीलवान्प्रियदर्शनः ॥ श्रीमानकृतदारश्चलक्ष्मणोनामवीर्यवान् ॥ ३ ॥ अपूर्वीभार्ययाचार्थी तरुणःप्रियदर्शनः ॥ अनुरूपश्चतेभर्तारूपस्यास्यभविष्यति ॥ ४ ॥ एनंभजविशालाक्षिभर्तारंभ्रातरंमम ॥ असपत्नावरारोहेमेरुमर्कप्रभायथा ॥ ५ ॥ इतिरामेणसाप्रोक्ताराक्षसीकाममोहिता ॥ विसृज्यरामंसहसाततोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ ६ ॥ अस्यरूपस्यतेयुक्ताभार्याहंवरवर्णिनी ॥ मयासहसुखंसर्वान्दंडकान्विचरिष्यसि ॥ ७ ॥ एवमुक्तस्तुसौमित्रीराक्षस्यावाक्यकोविदः ॥ ततःशूर्पणखींस्मित्वालक्ष्मणोयुक्तमब्रवीत् ॥ ८ ॥ कथंदासस्यमेदासीभार्याभवितुमिच्छसि ॥ सोहमार्येणपरवान्भ्रात्राकमलवर्णिनी ॥ ९ ॥ समृद्धार्थस्यसिद्धार्थानुदितामलवर्णिनी ॥ आर्यस्यत्वंविशालाक्षिभार्याभवयवीयसी ॥ १० ॥

चंद्रजीके यह वचन सुनकर तुरन्त लक्ष्मणजीके निकट जाकर कहनें लगी॥६॥मैं सब स्त्रियोंसे अधिक सुन्दरहूं तिससे तुम्हारे इस रूप लायकही भार्या बनूंगी तुम हमारे सहित सुखपूर्वक समस्त वनोंमें विचरण करोगे ॥ ७ ॥ उस राक्षसीसे ऐसा सुन वचन बोलनेंमें चतुर सुमित्रानंदन लक्ष्मणजी मन्द मन्द हँसकर उस्से यह युक्तियुक्त वचन बोले ॥ ८ ॥ अयि कमलवर्णनि ! हम दासहैं फिर किस कारण तुम हमारी स्त्री बनकर दासी बननेंकी अभिलाषिणी हुईहो ! हम इन बडे भ्राता रामचन्द्रजीके दासहैं ॥ ९ ॥ हे विशालनेत्रवाली ! तुम सिद्धकामा, और आनन्दिता

होकर सर्व भावसे संपत्तिमान् हमारे बडे भ्राता आर्य श्रीरामचन्द्रजीकी दूसरी स्त्री बनो क्योंकि उनसे विवाह करनेंमें तुम्हारी विधि भली मिलेगी। उनका श्यामरंग तुम्हारे वर्णसे कुछ २ मिलता हुआहै । परन्तु हमारा तुम्हारा रंग कुछभी नहीं मिलता ॥ १० ॥ फिर जब इनसे विवाह कर लोगी तो यह कुरूपा, असती, भय उपजानेंवाली, कृशोदरी, और वृद्धा भार्याको त्याग करके तुममेंही अनुरागी हो जांयगे ॥११॥अयि वरवर्णि नि! अयि वरारोहे! कौन चतुर पुरुषहै जो तुम्हारे इस श्रेष्ठ रूपका अनादर करके मानुषीमें अनुरागीहो ? ॥ १२ ॥ जब लक्ष्मणजीनें इस प्रकार कहा तो बडे पेटवाली सबलोकोंको डरावनेंवाली निशाचरी शूर्पणखा उस हँसीकी बातको न समझकर लक्ष्मणजीकी बातको सत्यही

एतांविरूपामसतींकरालांनिर्णतोदरीम् ॥ भार्यांवृद्धांपरित्यज्यत्वामेवैषभजिष्यति ॥११॥ कोहिरूपमिदंश्रेष्ठंसंत्य ज्यवरवर्णिनि ॥ मानुषीषुवरारोहेकुर्याद्भावंविचक्षणः॥१२॥ इतिसालक्ष्मणेनोक्ताकरालानिर्णतोदरी॥ मन्यतेतद्वचः सत्यंपरिहासाविचक्षणा॥१३॥सारामंपर्णशालायामुपविष्टंपरंतपम् ॥ सातयासहदुर्धर्षमब्रवीत्काममोहिता ॥१४॥ इमांविरूपामसतींकरालांनिर्णतोदरीम् ॥ वृद्धांभार्यामवष्टभ्यनमांत्वंबहुमन्यसे ॥ १५ ॥ अद्येमांभक्षयिष्यामि पश्यतस्तवमानुषीम् ॥ त्वयासहचरिष्यामिनिःसपत्नायथासुखम् ॥ १६ ॥ इत्युक्त्वामृगशावाक्षीमलातसदृशेक्ष णा ॥ अभ्यगच्छत्सुसंक्रुद्धामहोल्कारोहिणीमिव ॥ १७ ॥ तांमृत्युपाशप्रतिमामापतंतींमहाबलः ॥ निगृह्यरामः कुपितस्ततोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ १८ ॥

समझी ॥ १३ ॥ तिसके पीछे वह मोहित होकर पर्णकुटीमें सीताजीके साथ बैठे हुये शत्रुओंके तपानेंवाले अजेय श्रीरामचन्द्रजीसे कहनें लगी ॥ १४ ॥ कि तुम इस बुढिया कुरूपा कृशोदरी, भय उपजानेंवाली असती स्त्रीमें अनुरागी होकर हमारा आदर सन्मान नहीं करते ॥ १५ ॥ तिससे तुम्हारे सामनेंही इसी मुहूर्त्तमें हम इस मानुषीको भक्षण करेंगी और सौतहीन होकर यथा सुखसे घूमा करेंगी ॥ १६ ॥ यह कहकर जलते अंगारेकी समान चमकते हुये नेत्रोंवाली निशाचरी महा क्रोधमें भरकर हरिणके बच्चोंकी समान नेत्रहैं जिनके ऐसी सीताजीके सामनेको दौडी जैसे रोहिणीकी ओर उल्का धावमानहो ॥ १७ ॥ उस यमकी फांसीकी समान राक्षसीको सामने आते देखकर श्रीरामचन्द्रजी क्रोधमें

भर उसको रोक लक्ष्मणजीसे बोले ॥ १८ ॥ हे लक्ष्मण ! क्रूर स्वभाववाले ! दुष्टोंके साथमें हँसी करनाभी किसी भांति कर्त्तव्य नहींहै ! देखो इस परिहासके होनेंसेही जानकीजीको अपने जीवनमें संदेह हुआहै॥१९॥हे पुरुषश्रेष्ठ ! इस समय तुम इस कामसे मत्त हुई बडे पेटवाली कुरूपिणी असती राक्षसीको औरभी कुरूप करदो ॥ २०॥ महाबलवान् श्रीलक्ष्मणजीनें श्रीरामचन्द्रजीके यह वचन सुनकर महाक्रोधितहो तलवार उठाकर उनके सामनेही राक्षसी शूर्पणखाके नाक कान काट डाले ॥२१॥ नाक कान कटायेहुए घोर स्वभाववाली वह राक्षसी उस समय विकट

क्रूरैरनार्यैःसौमित्रेपरिहासःकथंचन ॥ नकार्यःपश्यवैदेहींकथंचित्सौम्यजीवतीम् ॥ १९ ॥ इमांविरूपामसतीमतिमत्तांमहोदरीम् ॥राक्षसींपुरुषव्याघ्रविरूपयितुमर्हसि॥ २० ॥ इत्युक्तोलक्ष्मणस्तस्याःक्रुद्धोरामस्यपश्यतः ॥ उद्धृत्यखड्गंचिच्छेदकर्णनासेमहाबलः ॥ २१ ॥ निकृत्तकर्णनासातुविस्वरंसाविनद्यच ॥ यथागतंप्रदुद्रावघोराशूर्पणखावनम् ॥ २२॥ साविरूपामहाघोराराक्षसीशोणितोक्षिता ॥ ननादविविधान्नादान्यथाप्रावृषितोयदः ॥ २३॥ साविक्षरंतीरुधिरंबहुधाघोरदर्शना ॥ प्रगृह्यबहुगर्जंतीप्रविवेशमहावनम् ॥ २४ ॥ ततस्तुसाराक्षससंघसंवृतंखरंजनस्थानगतंविरूपिता ॥ उपेत्यतंभ्रातरमुग्रतेजसंपपातभूमौगगनाद्यथाशनिः ॥ २५ ॥

शब्दसे चिल्लातीहुई जहांसे आईथी उसी वनकी ओर शीघ्रतासे दौडी ॥२२॥ अति भयंकर शरीरवाली कुरूपा वह राक्षसी शरीरमें रुधिर लगाये हुए वर्षा कालीन बादरकी समान विविध प्रकारके शब्द करनें लगी॥२३॥तिसके पीछे वह बांहे उठाकर घावोंसे रुधिर बहाती–गर्जती हुई महा वनमें प्रवेश कर गई ॥ २४ ॥ वहां प्रवेश करके उसी कुरूप रूपसे राक्षसगणोंसे घेरे हुए जनस्थानवासी उग्र तेजवान् अपनें भाई खरके

निकट जाकर आकाशसे वज्रपातकी समान पृथ्वीमें गिरी ॥२५॥ रुधिर जिसके सब अंगोंमें लगा हुआ भय और मोहसे जिसका चित्त ठिकानें नहीं ऐसी उस खरकी बहिन राक्षसी शूर्पणखानें खरसे स्त्री और भ्राताके सहित श्रीरामचन्द्र जीका वनमें आना और उनसे अपने नाक कान काटे जानेंका सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा॰ वा॰ आ॰ पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषानुवादे आर॰ अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥ राक्षसगण खर अपनी बहनको कुरूपा, शरीरमें रुधिर लगा हुआ और पृथ्वीमें पडा हुआ देखकर क्रोधसे संतापित हो, बूझनें लगा ॥ १ ॥ खरनें कहा, उठकर बैठो, वृत्तान्त तो कहो, मूर्च्छा और चित्त की चपलताको छोडो, साफ़ २ कहो कि किसनें तुमको ऐसा विरूप

ततःसभार्यंभयमोहमूर्छितासलक्ष्मणंराघवमागतंवनम् ॥ विरूपणंचात्मनिशोणितोक्षिताशशंससर्वंभगिनीखरस्य सा ॥ २६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेअष्टादशःसर्गः ॥ १८ ॥ ॥ छ ॥ ॥
तांतथापतितांदृष्ट्वाविरूपांशोणितोक्षिताम् ॥ भगिनींक्रोधसंतप्तःखरःपप्रच्छराक्षसः ॥ १ ॥ उत्तिष्ठतावदाख्याहिप्रमोहंजहिसंभ्रमम् ॥ व्यक्तमाख्याहिकेनत्वमेवंरूपाविरूपिता ॥ २ ॥ कःकृष्णसर्पमासीनमाशीविषमनागसम् ॥ तुदत्यभिसमापन्नमंगुल्यग्रेणलीलया ॥ ३ ॥ कालपाशंसमासज्यकंठेमोहान्नबुध्यते ॥ यस्त्वामद्यसमासाद्यपीतवान्विषमुत्तमम् ॥ ४ ॥ बलविक्रमसंपन्नाकामगाकामरूपिणी ॥ इमामवस्थांनीतात्वंकेनांतकसमागता ॥ ५ ॥ देवगंधर्वभूतानामृषीणांचमहात्मनाम् ॥ कोयमेवंमहावीर्यस्त्वांविरूपांचकारह ॥ ६ ॥

किया? ॥ २॥ किसनें सामने बैठे हुए, कुण्डली बाँधे हुए निरपराध विषधर काले सांपको खेलसेही उंगली के पोरुएसे छेडकर जगायाहै? ॥३ ॥ उसनें तेरे साथ कुत्सित व्यापार कर अब भयंकर विष पिया, अपने गलेमें कालकी फांसी डाली सो वह अज्ञानी इस बात को जो विपत्ति उसके ऊपर पडेगी उसको नहीं समझा है ॥ ४ ॥ बल विक्रम सम्पन्न यमराजकी समान चलनेवाली कामरूपिणी यमसमान तुम किसके पास गईथी, कि जिसनें तुम्हारी यह दशा की है? ॥ ५ ॥ देव गन्धर्व भूत और महात्मा ऋषि लोगोंमें कौन ऐसा वीर्यवान् है कि–जिसनें

तुमको विरूप किया है। ॥ ६ ॥ देवताओंमें पाकशासन सहस्रलोचन, इन्द्रके सिवाय, ब्राह्मणमें हम ऐसा और किसीको नहीं देखते जो हमारा अप्रिय कार्य करे ॥ ७ ॥ हंस जिस प्रकार जलसे मिले हुए दूधको अलग कर पीलेताहै आज हम भी प्राण हरणकारी तीरोंके समूहसे उसके शरीरसे प्राण अलग करेंगे, कि जिसनें तुमको विरूप किया है ॥ ८ ॥ समर में मुझ करके शरजालद्वारा छिन्न मर्म किसमरे हुए पुरुषका फेन सहित रुधिर पृथ्वीनें पीनेंकी इच्छा की है। ॥ ९ ॥ लडाईमें मुझ करके मारे हुए किस पुरुषके देहसे मांस नोच २ कर आनंद सहित चील गिद्धादि पक्षी खांयगे ॥ १० ॥ हम संग्राममें जिसके ऊपर चढाई करेंगे उस हतभागेको, क्या देवता, क्या गन्धर्व, क्या

नहिपश्याम्यहंलोकेयःकुर्यान्ममविप्रियम् ॥ अमरेषुसहस्राक्षंमहेंद्रंपाकशासनम् ॥ ७ ॥ अद्याहंमार्गणैःप्राणानादास्येजीवितांतगैः ॥ सलिलेक्षीरमासक्तंनिष्पिबन्निवसारसः ॥ ८ ॥ निहतस्यमयासंख्येशरसंकृत्तमर्मणः ॥ सफेनंरुधिरंकस्यमेदिनीपातुमिच्छति ॥ ९ ॥ कस्यपत्ररथाःकायान्मांसमुत्कृत्यसंगताः ॥ प्रहृष्टाभक्षयिष्यंतिनिहतस्यमयारणे ॥ १० ॥ तंनदेवानगंधर्वानपिशाचानराक्षसाः ॥ मायापकृष्टंकृपणंशक्तास्त्रातुंमहाहवे ॥ ११ ॥ उपालभ्यशनैःसंज्ञातंमेशंसितुमर्हसि ॥ येनत्वंदुर्विनीतेनवनेविक्रम्यनिर्जिता ॥ १२ ॥ इतिभ्रातुर्वचःश्रुत्वाक्रुद्धस्यचाविशेषतः ॥ ततःशूर्पणखावाक्यंसबाष्पमिदमब्रवीत् ॥ १३ ॥ तरुणौरूपसंपन्नौसुकुमारौमहाबलौ ॥ पुंडरीकविशालाक्षौचीरकृष्णाजिनांबरौ ॥ १४ ॥ फलमूलाशनौदांतौतापसौब्रह्मचारिणौ ॥ पुत्रौदशरथस्यास्तांभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ १५ ॥ गंधर्वराजप्रतिमौपार्थिवव्यंजनान्वितौ ॥ देवौवादानवावेतौनतर्कयितुमुत्सहे ॥ १६ ॥

पिशाच, क्या राक्षस, कोई भी उद्धार करनेंको समर्थ नहीं होगा ॥ ११ ॥ इस समय तुम सहज २ सावधान होकर हमसे कहो कि किस दुष्ट व्यक्तिनें वनमें पराक्रम प्रकाश करके तुमको पराजय किया है। ॥ १२ ॥ महा क्रोधित हुए अपनें भाई खरके यह वचन सुनकर शूर्पणखा आंसू पोंछती हुई बोली ॥ १३ ॥ कि तरुण, रूपसम्पन्न, सुकुमार, महाबलवान् कमलनयन चीर व मृग चर्म धारण किये ॥ १४ ॥ कन्द मूल फलके खानेवाले, जितेन्द्रिय, तपस्वी, ब्रह्मचारी राजा दशरथके दो पुत्र राम, व लक्ष्मण ॥ १५ ॥ वह देखनेंमें गन्धर्वराजकी समान

हमने देखा है ... इसका कुछ निश्चय नहीं हो सकता ॥ १६ ॥ हमने देखा है
और राजलक्षणोंकरके युक्त जान पडतेहैं। वह दोनों जन देव हैं; अथवा दानव इसका कुछ निश्चय नहीं हो सकता ॥ १६ ॥ हमने देखा है कि वहां पर उन दोनों जनोंके साथ एकरूपवती सब भूषण धारण किये हुए युवाअवस्थाको प्राप्त एक स्त्रीभीहै ॥ १७ ॥ उन दोनों भाइयोंने मिलकर उस स्त्रीके कहनेसे, जैसे कोई अनाथ कुलटा स्त्रीकी दुर्दशा करताहै, वही दशा हमारी की अर्थात् नाक कान काट डाले ॥ १८ ॥ हम कुटिल चरित्रवाली उस स्त्रीका और उन दोनों जनोंका झाग सहित रुधिर समरमें पान करनेकी इच्छा करतीहैं ॥ १९ ॥ तुम हमारी यह पहली अभिलाषा पूर्ण करो हम संग्राममें उस स्त्रीका और उन दोनों का खून पियेंगी ॥ २० ॥ जब शूर्पणखाने यह वचन कहे तब खर

ने क्रोधित होकर महाबलवान् [१४] राक्षसोंको आज्ञादी कि ॥ २१ ॥ शस्त्र लगाए हुए चीर व मृगचर्म पहरे हुए, दो मनुष्य घोर दण्डकारण्यमें स्त्रीसहित आये हैं ॥ २२ ॥ सो तुम उन दोनों जनोंको और उस दुष्टा स्त्रीको मार करके लौट आओ क्योंकि हमारी यह बहन उनका रुधिर पियेगी ॥ २३ ॥ हे राक्षसो! तुम लोग शीघ्र जाकर बलसे उन दोनोंजनोंको संहार करके हमारी बहनका यह अभीष्ट मनोरथ पूरा करो ॥ २४ ॥ तुमनें युद्धमें उन दोनों भाइयोंको मार डालाहै सो देखकर हमारी यह बहन अतिशय संतोषित और हर्षित होकर युद्धके

तरुणीरूपसंपन्नासर्वाभरणभूषिता॥ दृष्टातत्रमयानारीतयोर्मध्येसुमध्यमा ॥ १७ ॥ ताभ्यामुभाभ्यांसंभूयप्रमदामधिकृत्यताम् ॥ इमामवस्थांनीताहंयथाऽनाथाऽसतीतथा ॥ १८॥ तस्याश्चानृजुवृत्तायास्तयोश्चहतयोरहम् ॥ सफेनंपातुमिच्छामिरुधिरंरणमूर्धनि ॥ १९ ॥ एषमेप्रथमःकामःकृतस्तत्रत्वयाभवेत् ॥ तस्यास्तयोश्चरुधिरंपिबेयमहमाहवे ॥ २० ॥ इतितस्यांब्रुवाणायांचतुर्दशमहाबलान् ॥ व्यादिदेशखरःक्रुद्धोराक्षसानंतकोपमान् ॥ २१ ॥ मानुषौशस्त्रसंपन्नौचीरकृष्णाजिनांबरौ ॥ प्रविष्टौदंडकारण्यंघोरंप्रमदयासह ॥ २२ ॥ तौहत्वातांचदुर्वृत्तामुपावर्तितुमर्हथ॥ इयंचभगिनीतेषांरुधिरंममपास्यति ॥ २३ ॥ मनोरथोयमिष्टोस्याभगिन्याममराक्षसाः ॥ शीघ्रंसंपाद्यतांगत्वातौप्रमथ्यस्वतेजसा ॥२४॥ युष्माभिर्निहतौदृष्ट्वातावुभौभ्रातरौरणे ॥इयंप्रहृष्टामुदितारुधिरंयुधिपास्यति॥२५॥

स्थलमें उनका रुधिर पियेगी ॥ २५ ॥ इस प्रकारकी आज्ञा पाकर यह चौदह राक्षस वायुसे चलायमान मेघकी समान शूर्पणखाके साथ जहां श्रीरामचन्द्रजीथे, उस स्थानकी यात्रा करते हुए ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आर० एकोनविंशःसर्गः ॥ १९ ॥ तिसके पीछे शूर्पणखा श्रीरामचन्द्रजीके आश्रममें आई, और राक्षसोंको सीताजीके सहित उन दोनों भ्राताओंको दिखा दिया ॥ १ ॥ उन राक्षसों नें पर्णशालामें महाबलवान् श्रीरामचन्द्रजीको श्रीसीताजीके सहित बैठा और लक्ष्मणजीसे सेवित देखा ॥ २ ॥ श्रीमान् रघुनन्दन रामचन्द्रजी इन राक्षसोंको आया हुआ देखकर दीप्तिसे तेजमान भ्राता लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ३ ॥ हे लक्ष्मण! एक घडीभर तुम सीताजीके निक

इतिप्रतिसमादिष्टाराक्षसास्तेचतुर्दश ॥ तत्रजग्मुस्तयासार्धंघनावातेरिताइव ॥ २६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेएकोनविंशःसर्गः ॥१९ ॥ ॥७॥ ॥ ततःशूर्पणखाघोराराघवाश्रममागता॥ राक्षसानाचचक्षेतौभ्रातरौसहसीतया ॥ १ ॥ तेरामंपर्णशालायामुपविष्टंमहाबलम् ॥ ददृशुःसीतयासार्धंलक्ष्मणेनापिसेवितम् ॥ २ ॥ तांदृष्ट्वाराघवःश्रीमानागतांस्तांश्चराक्षसान् ॥ अब्रवीद्भ्रातरंरामोलक्ष्मणंदीप्ततेजसम् ॥ ३ ॥ मुहूर्तंभवसौमित्रेसीतायाःप्रत्यनंतरः ॥ इमानस्यावधिष्यामिपदवीमागतानिह ॥ ४ ॥ वाक्यमेतत्ततःश्रुत्वारामस्यविदितात्मनः ॥ तथेतिलक्ष्मणोवाक्यंराघवस्यप्रपूजयन् ॥ ५ ॥ राघवोपिमहच्चापंचामीकरविभूषितम् ॥ चकारसज्जंधर्मात्मातानिरक्षांसिचाब्रवीत् ॥ ६ ॥ पुत्रौदशरथस्यावांभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ प्रविष्टौसीतयासार्द्धंदुश्चरंदंडकावनम् ॥ ७ ॥ फलमूलाशनौदांतौतापसौब्रह्मचारिणौ ॥ वसंतौदंडकारण्येकिमर्थमुपहिंसथ ॥ ८ ॥

ट रहो। इतनेमें हम इस राक्षसीके पक्षपाती इन सब राक्षसोंको मार डालें ॥ ४ ॥ तब विदितात्मा लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीके वचन श्रवण करके तथास्तु कह उनकी बात शिरमाथे चढाते हुए ॥ ५ ॥ व इधर धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रभी सुवर्णभूषित महाधनुषमें रोदा चढाय इन सब राक्षसोंसे बोले ॥ ६ ॥ हम दो भ्राता हैं, नाम हमारा राम व लक्ष्मण है राजा दशरथजीके पुत्र हैं; हम सीता सहित इस दुर्गम दण्डकारण्यमें आयेहैं ॥ ७ ॥ हम फल मूल खानेवाले अपनी इन्द्रियोंको जीतेहुएहैं तपस्वी और धर्मचारी होकर दण्डकारण्यमें वास करतेहैं,

सो तुम किसकारण हमारें ऊपर चढाई करते हो॥८॥ यदि कहो कि तुम तपस्वी होकर धनुप क्यों धारण किये हो तौ इसका उत्तर यह है कि तुम लोग पापात्मा हो सो महावनमें ऋषि लोगोंकी आज्ञासे हम तुमको विनाश करनेके लिये धनुप धारणकर यहां आयेहैं ॥ ९ ॥ सन्तुष्ट हो कर इसी स्थानमें खडे रहो, और आगे न बढो; हे निशाचरगण! यदि प्राणोंका मोह होवे, और तुम इसका प्रयोजन समझते हो तौ यहांसे लौट जाओ हम किसीको नहीं मारेंगे ॥ १० ॥ ब्रह्मघाती, शूलधारी, भयंकर यह चौदह राक्षस श्रीरामचंद्रजीके यह वचन श्रवण करके महाक्रोधित हो बोले ॥ ११ ॥ सबही लाल २ नेत्र कर रामचंद्रके प्रति कठोर वचन कहते थे वह सब श्रीरामचंद्रजीके परा

युष्मान्पापात्मकान्हंतुंविप्रकारान्महाहवे ॥ ऋषीणांतुनियोगेनसंप्राप्तःसशरासनः ॥ ९॥ तिष्ठतैवात्रसंतुष्टानोपावर्तितुमर्हथ ॥ यदिप्राणैरिहार्थोवोनिवर्तध्वंनिशाचराः ॥ १० ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाराक्षसास्तेचतुर्दश ॥ ऊचुर्वाचंसुसंक्रुद्धाब्रह्मघ्नाःशूलपाणयः ॥११॥ संरक्तनयनाघोरारामंसंरक्तलोचनम्॥परुषामधुराभाषंहृष्टादृष्टपराक्रमम् ॥१२॥ क्रोधमुत्पाद्यनोभर्तुःखरस्यसुमहात्मनः॥ त्वमेवहास्यसेप्राणान्सद्योस्माभिर्हतोयुधि ॥१३॥ काहितेशक्तिरेकस्यबहूनांरणमूर्धनि॥ अस्माकमग्रतःस्थातुंकिंपुनर्योद्धुमाहवे ॥ १४॥ एभिर्बाहुप्रयुक्तैश्चपरिघैःशूलपट्टिशैः ॥ प्राणांस्त्यक्ष्यसिवीर्यंचधनुश्चकरपीडितम् ॥ १५ ॥ इत्येवमुक्त्वासंरब्धाराक्षसास्तेचतुर्दश ॥ उद्यतायुधनिस्त्रिंशाराममेवाभिदुद्रुवुः ॥ १६ ॥ चिक्षिपुस्तानिशूलानिराघवंप्रतिदुर्जयम् ॥ तानिशूलानिकाकुत्स्थःसमस्तानिचतुर्दश ॥ १७ ॥

क्रमको नहीं जानतेथे इससे हर्षयुतहो मधुर वचन बोलनेंवाले श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ १२ ॥ तुमने हमारे प्रभु महात्मा खरको क्रोध उपजायाहै, इस कारण अभी युद्धमें हमारे हाथसे मारे जाकर तुमको शीघ्रही प्राण छोडने पडेंगे ॥ १३ ॥ तुम इकले हो और हम बहुतहैं, इसलिये लडाईमें युद्ध करना तो दूर रहै हमारे सामनें भी तुम खडे नहीं हो सकोगे ॥ १४ ॥ हमारे इन बाहोंसे परिघ, शूल, और पटासे घायल होकर तुमको प्राण, वीर्य और हाथमें धारण किया हुआ धनुप त्याग करना पडेगा ॥ १५ ॥ यह चौदह राक्षस इस भांतिसे कहकर महाक्रोधित हो आयुध और खड्ग उठाकर श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख दौडे ॥१६॥ और यह सब दुर्जय अस्त्र शस्त्र शूलादि श्रीरामचंद्रजीके ऊपर चलानें

लगे। उन चौदह राक्षसोंके चलाये हुए शूल आदि श्रीरामचंद्रजीनें ॥ १७ ॥ चौदहही स्वर्ण भूषित बाणोंसे काटकर फेंक दिये। तत्पश्चात् महातेजवान् श्रीरामचंद्रजीनें सूर्यकी समान प्रभावाले बाण ग्रहणकर ॥ १८ ॥ उनको धनुष पर चढाय महा क्रोधवान् हो चौदह राक्षसोंको ताक कर शिलपशाणित नामक बाण ॥ १९ ॥ छोडे, जिस प्रकार इन्द्र वज्र छोडतेहैं। यह सब नाराच अति वेगसे राक्षसोंकी छातियों में प्रवेश कर रुधिरमें सन ॥ २० ॥ पृथ्वीमें गिरे जिस प्रकार बँमईमें से सांप निकला करतेहैं। राक्षसभी इन सब बाणोंसे छिन्न भिन्न हृदयहो पृथ्वी में गिरे। जेसे जड कटे हुए वृक्ष भूमिमें गिर पडतेहैं ॥२१॥ वह राक्षस कलेजेमें बाण लगनेके कारण रुधिरमें सराबोर हो रहेथे, प्राण जाते रहेथे

तावद्भिरेवचिच्छेदशरैःकांचनभूषितैः ॥ ततःपश्यन्महातेजानाराचान्सूर्यसन्निभान् ॥ १८ ॥ जग्राहपरमक्रुद्धश्चतुर्दशशिलाशितान् ॥ गृहीत्वाधनुरायम्यलक्ष्यानुद्दिश्यराक्षसान् ॥१९॥ मुमोचराघवोबाणान्वज्रानिवशतक्रतुः ॥ तेभित्त्वारक्षसांवेगाद्वक्षांसिरुधिरप्लुताः ॥ २० ॥ विनिष्पेतुस्तदाभूमौवल्मीकादिवपन्नगाः ॥ तैर्भग्नहृदयाभूमौभिन्नमूलाइवद्रुमाः ॥२१॥ निपेतुःशोणितस्नाताविकृताविगतासवः ॥ तान्भूमौपतितान्दृष्ट्वाराक्षसीक्रोधमूर्च्छिता २२ ॥ उपगम्यखरंसातुकिंचित्संशुष्कशोणिता ॥ पपातपुनरेवार्तासनिर्यासेववल्लरी ॥ २३ ॥ भ्रातुःसमीपेशोकार्तासससर्जनिनदंमहत् ॥ सस्वरंसुमुचेबाष्पंविवर्णवदनातदा ॥ २४ ॥ निपातितान्प्रेक्ष्यरणेतुराक्षसान्प्रधाविताशूर्पणखापुनस्ततः ॥ वधंचतेषांनिखिलेनरक्षसांशशंससर्वंभगिनीखरस्यसा ॥ २५ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेविंशतितमःसर्गः ॥ २० ॥

उनकी सूरतें बिगडगईथीं ऐसा उन राक्षसोंको गिरा हुआ देखकर राक्षसी शूर्पणखा क्रोधसे अधीरा होकर ॥ २२ ॥ अपने भाई खरके पास जा फिर कातरहो गिर पडी उस समय उसके शरीरका रक्त कुछेक सूख गयाथा इस कारण वह गोंद लगी लताके समान दृष्टि आतीथी ॥ २३ ॥ राक्षसी अपने भ्राता खरके निकट शोकसे पीड़ितहो घोर चिल्लाने लगी और उदासीन मुख व विकट शब्दसे रोने लगी ॥ २४ ॥ खरकी बहन शूर्पणखा राक्षसी राक्षसोंको माराहुआ देख वेगसे दौडआकर खरसे बोली कि राक्षस सब मारे गये ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा

मायणे आदिकाव्ये वाल्मीकीये आरण्यकांडे विंशतितमःसर्गः ॥ २० ॥ अनर्थके निमित्त आईहुई शूर्पणखाको फिर पृथ्वीमें पडा देखकर खर क्रोधमें भर फिर जोरसे कहनें लगा ॥ १ ॥ कि हमनें तुम्हारा प्रिय कार्य करनेंके लिये मांस खानेवाले, चौदह राक्षसोंको आज्ञादीथी सो अब फिर तुम किस कारणसे रो रहीहो? ॥ २ ॥ वह राक्षस जो कि हमनें भेजेहैं सब हमारे अनुरागी भक्त और सदाही हित करनेंवालेहैं वह किसीके मारेसे मरनेंवाले नहींहैं और सबही अंतःकरणसे हमारी आज्ञाका पालन करते रहतेहैं ॥ ३ ॥ फिर तुम किस कारण हानाथ कह वार २ चिल्लाकर सर्पकी समान लोट रहीहो सो इसका क्या कारणहै! उसको मैं जानना चाहताहूं ॥ ४ ॥ हमसा रक्षक होनेंपरभी तुम

सपुनःपतितांदृष्ट्वाक्रोधाच्छूर्पणखांपुनः ॥ उवाचव्यक्तयांवाचातामनर्थार्थमागताम् ॥ १ ॥ मयात्विदानींशूरास्तेराक्षसाःपिशिताशनाः ॥ त्वत्प्रियार्थंविनिर्दिष्टाःकिमर्थंरुद्यतेपुनः ॥ २ ॥ भक्ताश्चैवानुरक्ताश्चहिताश्चममनित्यशः ॥ हन्यमानानहन्यंतेननकुर्युर्वचोमम ॥३॥ किमेतच्छ्रोतुमिच्छामिकारणंयत्कृतेपुनः॥हानाथेतिविनर्दंतीसर्पवच्चेष्टसेक्षितौ ॥ ४ ॥ अनाथवद्विलपसिकिंनुनाथेमयिस्थिते ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठमामैवंवैक्लव्यंत्यज्यतामिति ॥५॥ इत्येवमुक्तादुर्धर्षाखरेणपरिसांत्विता ॥ विमृज्यनयनेसास्रेखरंभ्रातरमब्रवीत् ॥ ६ ॥ अस्मीदानीमहंप्राप्ताहतश्रवणनासिका ॥ शोणितौघपरिक्लिन्नात्वयाचपरिसांत्विता ॥ ७॥ प्रेषिताश्चत्वयाशूराराक्षसास्तेचतुर्दश ॥ निहंतुंराघवंघोरंमत्प्रियार्थंसलक्ष्मणम् ॥ ८॥ तेतुरामेणसामर्षाःशूलपट्टिशपाणयः॥ समरेनिहताःसर्वेसायकैर्मर्मभेदिभिः ॥ ९ ॥

किस कारण अनाथकी समान विलाप करतीहो। उठो और शोकका त्याग करो ॥ ५ ॥ खरनें जब इस प्रकार कहकर विशेप भांतिसे शूर्पणखाको समझाया बुझाया तब दुर्द्धर्ष शूर्पणखा आंसूभरे नेत्रोंको पोंछ बोली ॥ ६ ॥ कि हमारे नाक कान दोनोंही गयेहैं और मैं खूनसे भीज गईहूं इस अवस्थामें पहले की समान फिर तुम्हारे पास आईहूं और तुमने हमको बहुत समझाया बुझाया ॥ ७ ॥ परन्तु तुमनें जो हमारा प्रिय कार्य करनेंकी कामनासे लक्ष्मण सहित भयानक रामचंद्रको मार डालनेंके लिये जो वीर चौदह राक्षस भेजेथे ॥ ८ ॥ रामचंद्रनें मर्मभेदी

बाणोंको छोडकर शूल, पटा आदि, हाथमें लिये हुए क्रोधपरायण, उन सबही राक्षसोंको युद्धमें मारडाला॥९॥ अतिशय तेजस्वी राक्षसोंको क्षण भरमेंही पृथ्वी पर पडा हुआ देख और रामचंद्रका यह भारी कार्यदेख मुझको महा भय लगताहै॥१०॥मैं डरी हुईहूं, उत्कंठितहूं, और विषादित होकर सबही जगह भय देखती हुई तुम्हारी शरणमें आईहूं ॥११॥ तुम किस कारणसे हमारा उद्धार नहीं करते? हम विषाद रूप मगर और गोहोंसे भरे हुए तरङ्ग उठते हुए गंभीर शोक सागरमें डूब रहींहैं॥१२॥जो मांस खानेवाले राक्षस हमारे साथ तुमनें भेजेथे उन सबको रामचंद्रनें तीखे बाणोंसे मारडाला ॥१३॥ यदि हमारे ऊपर और उन सब राक्षसोंकी सन्तानोंके ऊपर तुमको दयाहो, यदि रामचंद्रसे युद्ध करनेकी शक्ति और

तान्भूमौपतितान्दृष्ट्वाक्षणेनैवमहाजवान् ॥ रामस्यचमहत्कर्ममहांस्त्रासोभवन्मम ॥ १० ॥ सास्मिभीता समुद्विग्नाविषण्णाचनिशाचर ॥ शरणंत्वांपुनःप्राप्तासर्वतोभयदर्शिनी ॥ ११ ॥ विषादनक्राध्युषितेपरित्रासोर्मिमालिनि ॥ किंमांनत्रायसेमग्नांविपुलेशोकसागरे ॥ १२ ॥ एतेचनिहताभूमौरामेणनिशितैःशरैः ॥ येचमेपदवींप्राप्ताराक्षसाःपिशिताशनाः ॥ १३ ॥ मयितेयद्यनुक्रोशोयदिरक्षःसुतेषुच ॥ रामेणयदिशक्तिस्तेतेजोवास्तिनिशाचर ॥ १४ ॥ दंडकारण्यनिलयंजहिराक्षसकंटकम्॥यदिराममामित्रघ्नंनत्वमद्यवधिष्यसि ॥१५ ॥तवचैवाग्रतःप्राणांस्त्यक्ष्यामिनिरपत्रपा॥बुद्ध्याहमनुपश्यामिनत्वंरामस्यसंयुगे ॥ १६ ॥ स्थातुंप्रतिमुखेशक्तःसबलोपिमहारणे ॥ शूरमानीनशूरस्त्वंमिथ्यारोपितविक्रमः॥१७॥अपयाहिजनस्थानात्त्वरितःसहबांधवः॥जहित्वंसमरेमूढान्यथातुकुलपांसन॥१८॥

तेज तुममेंहो ॥ १४ ॥ तब तो राक्षस कुलके कण्टक रूप दंडकारण्यवासी रामचंद्रको आजही मारडालोयदि शत्रु ओंके मारनेवाले रामचंद्रको तुम आजही संहार न कर डालोगे ॥ १५॥ तो हम लाजरहित होकर तुम्हारे सामनेंही प्राण त्याग करेंगी क्योकि हमें अपनी बुद्धिसे जान पडता है कि तुम संग्राममें ॥ १६॥ रामचंद्रके सामने खडे न हो सकोगे यद्यपि तुम्हारे साथ चतुरंगिनी सेनाभी भारीहै और तुम अपनेको शूर कहकर अभिमानभी करतेहो किन्तु वास्तवमें तुम शूर नहीं हो और तुम्हारा विक्रमभी मिथ्या कहनेकेही लियेहै ॥ १७ ॥ हे मूढ ! हे कुलाधम,

तुम इस मुहूर्त्तही बन्धु बान्धव कुटुम्ब सहित इस जनस्थानसे भाग जाओ ॥ १८ ॥ नहीं तो राम और लक्ष्मणको संग्रा
संहार करो, राम लक्ष्मण मनुष्यहैं यदि उनको मारनेकीभी सामर्थ्य तुममें नहींहै तो हीनवीर्य दुर्बल होकर किस प्रकारसे यहां रह
सकोंगे ॥ १९ ॥ रामचंद्रके तेजसे निन्दितहो थोडेही समयमें तुम्हारा नाश हो जायगा । दशरथकुमार रामचंद्र स्वभावसेही अतिशय तेज
मानहैं ॥ २० ॥ और उनके भाई लक्ष्मणभी महावीर्यवानहैं कि जिन्होंनें हमारे नाक कान काट डालेहैं इस प्रकारसे वह बडे उदरवाली राक्षसी
बहुत भांतिसे विलाप कर॥२१॥अपने भ्राता खरके निकट शोकके मारे व्याकुलहो अचेतन होगई और दुःखसे व्याकुलहो दोनों हाथोंसे छाती पीटर

मानुषौतौनशक्तोषिहंतुंवैरामलक्ष्मणौ ॥ निःसत्त्वस्याल्पवीर्यस्यवासस्तेकीदृशस्त्विह ॥ १९॥ रामतेजोभिभूतो
हित्वंक्षिप्रंविनशिष्यसि ॥ सहितेजःसमायुक्तोरामोदशरथात्मजः ॥ २० ॥ भ्राताचास्यमहावीर्योयेनचास्मि
विरूपिता ॥ एवंविलप्यबहुशोराक्षसीप्रदरोदरी ॥ २१ ॥ भ्रातुःसमीपेशोकार्तानष्टसंज्ञाबभूवह ॥ कराभ्यामुद
रंहत्वारुरोदभृशदुःखिता ॥२२॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआ०आरण्यकांडेएकविंशःसर्गः ॥२१॥ एवमा
धर्षितःशूरःशूर्पणख्याखरस्ततः ॥ उवाचरक्षसांमध्येखरःखरतरंवचः ॥ १॥ तवापमानप्रभवःक्रोधोयमतुलोमम ॥
नशक्यतेधारयितुंलवणांभइवोल्बणम् ॥२॥ नरामंगणयेवीर्यान्मानुषंक्षीणजीवितम् ॥ आत्मदुश्चरितैःप्राणान्हतो
योद्यविमोक्ष्यते ॥ ३ ॥ बाष्पःसंधार्यतामेषसंभ्रमश्चविमुच्यताम् ॥ अहंरामंसहभ्रात्रानयामियमसादनम् ॥ ४ ॥

कर रोनें लगी ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० आर० एकविंशः सर्गः ॥२१॥ शूर्पणखानें जब क्रोधमें भरकर इस प्रकार खरका
तिरस्कार किया तब तेजस्वभाववाला शूरवीर खर राक्षसोंकी सभाके बीचमें उससे कठोर वचन कहने लगा ॥१॥ कि तुम्हारा अपमान होनेसे जो
क्रोध हमको हुआहै उसकी तुलना नहींहै घावमें छोडे हुए नमकीन जलकी समान इस क्रोधको धारण करनेंकी हममें शक्ति नहींहै ॥२॥रामचंद्र
और लक्ष्मण तो मनुष्यहैं. हममें जो पराक्रमहै उससे हम रामको कुछ नहीं गिनते उस रामनें जो कुकर्म कियाहै उसके पापसे वह आजही
निहत होकर प्राण त्याग करेगा ॥ ३ ॥ इसकारण तुम रोना धोना छोड डरका त्याग करो हम अवश्यही रामके सहित लक्ष्मणको यमपुरीमें

पठावेंगे ॥ ४ ॥ अयि राक्षसि ! अब मरणोन्मुख रामचंद्रजी जब हमारे शरसे घायल होकर मर जायगा तब तुम उसका लाल २ गरम २ रुधिर पान करना ॥ ५ ॥ शूर्पणखा खरके मुखसे निकले हुए यह वचन सुन मोहसे अधिक हर्षमें भर फिर उस राक्षसश्रेष्ठ खरकी बडाई करनें लगी ॥ ६ ॥ जब निशाचरी शूर्पणखानें प्रथम निन्दाकी और फिर प्रशंसाकी तब तत्क्षण खर दूषण नामक अपने सेनापतिसे बोला॥ ७ ॥ कि हे शुभदर्शन ! जो सब भांतिसे हमारा प्रिय अनुष्ठान करनेंवालेहैं जो कभी युद्धमें पीठ नहीं दिखाते अति वेगवान् भयंकर चौदह हजार राक्षस ॥ ८ ॥ जो लोगोंकी हत्या करके सदा खेला करतेहैं जिनका पराक्रम भयानक और जिनका वर्ण नीले वादरकी समानहै ऐसे राक्षसोंको

परश्वधहतस्याद्यमंदप्राणस्यभूतले ॥ रामस्यरुधिरंरक्तमुष्णंपास्यसिराक्षसि ॥ ५ ॥ संप्रहृष्टावचःश्रुत्वाखरस्य वदनाच्च्युतम् ॥ प्रशशंसपुनर्मौर्ख्याद्भ्रातरंरक्षसांवरम् ॥ ६ ॥ तयापरुषितःपूर्वंपुनरेवप्रशंसितः ॥ अब्रवीद्दूषणं नामखरःसेनापतिंतदा ॥७॥ चतुर्दशसहस्राणिममचित्तानुवर्तिनाम् ॥ रक्षसांभीमवेगानांसमरेष्वनिवर्तिनाम् ॥८॥ नीलजीमूतवर्णानांलोकहिंसाविहारिणाम् ॥ सर्वोद्योगमुदीर्णानांरक्षसांसौम्यकारय ॥ ९ ॥ उपस्थापयमेक्षिप्रं रथंसौम्यधनूंषिच ॥ शरांश्चचित्रान्खड्गांश्चशक्तीश्चविविधाःशिताः ॥ १० ॥ अग्रेनिर्यातुमिच्छामिपौलस्त्यानां महात्मनाम् ॥ वधार्थंदुर्विनीतस्यरामस्यरणकोविद ॥११॥ इतितस्यब्रुवाणस्यसूर्यवर्णमहारथम् ॥ सदश्वैःशबलै र्युक्तमाचचक्षेथदूषणः ॥ १२ ॥ तंमेरुशिखराकारंतप्तकांचनभूषणम् ॥ हेमचक्रमसंबाधंवैदूर्यमयकूबरम् ॥ १३ ॥

सब प्रकारसे सजाकर हमारे सामनें लाओ ॥ ९ ॥ इसके सिवाय शीघ्र चलनेंवाला रथ, धनुष, विचित्र बाणसमूह तेजधारवाली अनेक भांति की शक्तियें और खड्गभी ले आओ ॥ १० ॥ हे रणपंडित ! महानुभव राक्षसोंके प्रथमही; हम महात्मा पुलस्त्यवंशसे उत्पन्न, जो रामचंद्र राक्षसोंको मारनेंके लिये आयेहैं उन दुर्विनीत रामचंद्रके वधार्थ संग्राममें जानेंकी इच्छा करतेहैं ॥ ११ ॥ खरनें जब इस प्रकार कहा तो दूषण तुरन्तही विचित्र वर्णवाले श्रेष्ठ घोडे जिसमें जुते हुए सूर्यकी समान चमकता हुआ रथ खरके समीप ले आया ॥ १२ ॥ इस रथका आकार मेरु

पर्वतकी समान सब गहनें इसमें तपाए हुए सुवर्णके लगेथे पहिये सुवर्णके बनेथे और दोनों गुम्मजभी वैदूर्य मणिके बनेथे ॥ १३ ॥ जिसमें मछली पुष्प, द्रुम, शैल, चन्द्रकान्त मणि यह सुवर्णके लगे हुएथे और सुवर्णकेही पक्षि और तारागणभी इस रथमें जड रहेथे ॥ १४ ॥ छोटी २ पेटिया, इसमें लगी हुईथीं खर क्रोधमें भरा हुआ, कुछभी विलम्ब न करके ध्वजा पताका युक्त अच्छे घोडों करके चलाये जाते हुए रथपर सवार हुआ ॥ १५ ॥ खरको सवार हुआ देखकर दूषणनें रथ चर्म आदि हथियार लिये, ध्वजा युक्त बडी सेनाको युद्धके लिये कूच करनेंकी आज्ञादी उसनें जब सब राक्षसोंसे इस प्रकार कहा ॥ १६ ॥ तब भयंकर चर्म ध्वजा युक्त वह राक्षसोंकी सेना महावेगसे महाकुलाहल मचाती हुई जन

मत्स्यैःपुष्पैर्द्रुमैःशैलैश्चंद्रकांतैश्चकांचनैः॥मांगल्यैःपक्षिसंघैश्चताराभिश्चसमावृतम् ॥१४॥ध्वजनिस्त्रिंशसंपन्नंकिंकिणीवरभूषितम् ॥ सदश्वयुक्तंसोमर्षादारुरोहखरस्तदा ॥ १५ ॥ खरस्तुतन्महत्सैन्यंरथचर्मायुधध्वजम् ॥निर्यातेत्यब्रवीत्प्रेक्ष्यदूषणःसर्वराक्षसान् ॥ १६ ॥ ततस्तद्राक्षसंसैन्यंघोरचर्मायुधध्वजम् ॥ निर्जगामजनस्थानान्महानादंमहाजवम् ॥ १७ ॥ मुद्गरैःपट्टिशैःशूलैःसुतीक्ष्णैश्चपरश्वधैः ॥ खड्गैश्चक्रैरथस्थैश्चभ्राजमानैःसतोमरैः ॥ १८ ॥शक्तिभिःपरिघैर्घोरैरतिमात्रैश्चकार्मुकैः ॥ गदासिमुसलैर्वज्रैर्गृहीतैर्भीमदर्शनैः ॥ १९ ॥ राक्षसानांसुघोराणांसहस्राणिचतुर्दश ॥ निर्यातानिजनस्थानात्खरचित्तानुवर्तिनाम् ॥ २० ॥ तांस्तुनिर्धावतोदृष्ट्वाराक्षसान्भीमदर्शनान् ॥ खरस्याथरथःकिंचिज्जगामतदनंतरम् ॥ २१ ॥ ततस्ताञ्छबलानश्वांस्तप्तकांचनभूषितान् ॥ खरस्यमतमाज्ञाय सारथिःपर्यचोदयत् ॥ २२ ॥

स्थानसे चली ॥ १७ ॥ उस सेनामें राक्षस मुद्गर, पटा, तेजशूल, फरशे, खड्ग, चक्र, व तोमरादि शस्त्र धारण किये शोभायमान थे ॥ १८ ॥ शक्ति, परिघ, महा भयंकर धनुष, गदा, तलवार, मूसल और भयंकर अस्त्र शस्त्र ग्रहण कर राक्षस जनस्थानसे निकले ॥ १९ ॥ इस प्रकार खरके मनकी बात करनेंवाले बडे भयंकर स्वरूप चौदह हजार राक्षस जनस्थानसे बाहर हुए ॥ २० ॥ वह भयंकर राक्षस जब महा वेगसे दौडे तब इसको देखकर खरका रथभी कुछ तिनके निकटही पहुँचा ॥ २१ ॥ सारथिनें खरकी आज्ञा जानकर विचित्र वर्णवाले सुवर्णके गहनें पहनें

घोडोंको शीघ्रतासे चलाया ॥२२॥ उस समय रिपुघाती खरका चलताहुआ रथ अपनें शब्दसे सहसा दिशा विदिशाओंको भर देता हुआ ॥२३॥ अतिबलवान् वह बडे स्वरवाला खर क्रोधमें भर यमराजकी समान शत्रु संहार करनेंमें विशेष शीघ्रतायुक्त हो ओले वर्षानेंवाले महा मेघकी समान गर्जताहुआ सारथीसे बोला कि रथ जलदी २ चलाओ ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आ० द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥ जब इस प्रकारके वह भयंकर राक्षसोंकी सेना युद्ध करनेंके लिये चली, तब गंधर्वकी समान धूसरवर्ण महा डरावने मेघ आकाशमें उठकर

संचोदितोरथःशीघ्रंखरस्यरिपुघातिनः ॥ शब्देनापूरयामासदिशःसप्रदिशस्तथा ॥ २३ ॥ प्रवृद्धमन्युस्तुखरःखर स्वरोरिपोर्वधार्थंत्वरितोयथांतकः ॥ अचूचुदत्सारथिमुन्नदन्पुनर्महाबलोमेघइवाश्मवर्षवान् ॥ २४ ॥ इत्यार्षेश्रीम द्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेद्वाविंशःसर्गः ॥ २२ ॥ ॥ ॥ तत्प्रयातंबलंघोरमशिवंशोणितो दकम् ॥ अभ्यवर्षन्महाघोरस्तुमुलोगर्दभारुणः ॥ १ ॥ निपेतुस्तुरगास्तस्यरथयुक्तामहाजवाः ॥ समेपुष्पचिते देशेराजमार्गेयदृच्छया ॥ २ ॥ श्यामंरुधिरपर्यंतंबभूवपरिवेषणम् ॥ अलातचक्रप्रतिमंप्रतिगृह्यदिवाकरम् ॥ ३ ॥ ततोध्वजमुपागम्यहेमदंडंसमुच्छ्रितम् ॥ समाक्रम्यमहाकायस्तस्थौगृध्रःसुदारुणः ॥ ४ ॥ जनस्थानसमीपेच समाक्रम्यखरस्वनाः ॥ विस्वरान्विविधान्नादान्मांसादान्मृगपक्षिणः ॥ ५ ॥

कडा शब्द करके रुधिर मिला हुआ जल वर्षानें लगे ॥१॥ खरके रथमें जो तेज चलनेवाले घोडे जुत रहेथे वह राजमार्गमें चलनेंके समय सहसा कुल बिछी हुई बराबर हुई पृथ्वीमें गिर पडे ॥ २ ॥ सूर्य मंडलके चारों ओर श्यामवर्णका घेरा बन गया इस घेरका बाहरी भाग अरुण वर्ण और आकार अंगार चक्रकी समान गोलथा ॥ ३ ॥ इसके पीछे बडे आकारवाला भयंकर गिद्ध बडा ऊंचो सुवर्णकी रथकी ध्वजाके निकट आकर पंख उठाकर उसके ऊपर बैठ गया ॥ ४ ॥ विकट शब्दकारी, मांस खानेंवाले पशु पक्षीगण जनस्थानके समीप आकर भयंकर शब्द करके

चिल्लाने लगे ॥ ५ ॥ भयंकर सियार पूर्व दिशामें राक्षसोंका अमंगलदायक भयंकर घोर शब्द करने लगे ॥ ६ ॥ मतवाले हाथियोंकी समान भयंकर मूर्तिवाले मेघ जलको समान रुधिरकी वर्षा करके वहांके सब आकाशको एक वारही छालेते हुए ॥ ७ ॥ रुवें खडा करनेंवाला ऐसा घोर अंधकार छाया कि दिशा विदिशा समस्त एक साथही उस्से ढकगई, फिर कुछभी दृष्टि न आया ॥ ८ ॥ संध्या खूनसे भीगे वस्त्रकी समान वर्ण धारण करके अकालमेंही प्रकाशित होगई भयंकर पशुपक्षीगणोने खरके सन्मुख मुख करके कठोर स्वरसे चिल्लाना आरंभ किया ॥ ९ ॥

व्याजह्रुरभिदीप्तायांदिशिवैभैरवस्वनम् ॥ अशिवंयातुधानानांशिवाघोरामहास्वनाः ॥ ६ ॥ प्रभिन्नगजसंकाशास्तोयशोणितधारिणः ॥ आकाशंतदनाकाशंचक्रुर्भीमांबुवाहकाः ॥ ७ ॥ बभूवतिमिरंघोरमुद्धतंरोमहर्षणम् ॥ दिशोवाप्रदिशोवापिसुव्यक्तंनचकाशिरे ॥ ८ ॥ क्षतजार्द्रसवर्णाभासंध्याकालंविनाबभौ ॥ खरंचाभिमुखंनेदुस्तदाघोरामृगाःखगाः ॥ ९ ॥ कंकगोमायुगृध्राश्चचुक्रुशुर्भयशंसिनः ॥ नित्याशिवकरायुद्धेशिवाघोरनिदर्शनाः ॥ १० ॥ नेदुर्बलस्याभिमुखंज्वालोद्गारिभिराननैः ॥ कबंधःपरिघाभासोदृश्यतेभास्करांतिके ॥ ११ ॥ जग्राहसूर्यंस्वर्भानुरपर्वणिमहाग्रहः ॥ प्रवातिमारुतःशीघ्रंनिष्प्रभोभूद्दिवाकरः ॥ १२ ॥ उत्पेतुश्चविनारात्रिंताराःखद्योतसप्रभाः ॥ संलीनमीनविहगानलिन्यःशुष्कपंकजाः ॥ १३ ॥

सफेद चील शियार और गिद्धगण खरको भय उपजाते हुए ऊंची आवाजसे शब्द करनेंलगे और युद्धमें जिनका बोलना महा अमंगलका उपजानेंवालाहै ऐसी शृगालियांभी भय उपजाती हुई ॥ १० ॥ सनोक सामनें घोर शोर करनें लगीं सूर्यके निकट परिघाकार कबंध दिखलाई देनेलगा ॥ ११ ॥ महा ग्रह राहुनें विना अमावस्या और पर्वकालकेही सूर्यको ग्रस लिया पवन प्रचंड चलनें लगी सूर्यकी दीप्ति जाती रही ॥ १२ ॥ और रात्रि न होनें परभी तारागण पट बीजनेंकी समान चमककर उदय हुए तालावोंके कमल सूख गये मछलीभी सागर सरोवरोंमें हो लीन होगईं

और पक्षीभी नाशको प्राप्त होगये ॥ १३ ॥ उस समय सब वृक्ष फल फूलों करके रहित होगये और विना पवनके चलनेंपरभी महा धूरि उडनें लगी बादल लाल होगये ॥ १४ ॥ उस काल मैंना पक्षी सिखाये हुए शब्दोंको त्याग करके (चीची कूचि इत्यादि) अर्थ रहित शब्द करनें लगे घोर भयावन उल्कायें यह कांप करके पृथ्वीपर गिरनें लगीं॥१५॥और वन उपवन और पर्वत सहित पृथ्वी कांपनें लगी धीमान् खर रथमें बैठकर गर्जन करनेलगा ॥ १६ ॥ खरकी बांई भुजा बहुतही कांपनें लगीं स्वर बिगड गया इस प्रकार इधर उधर देखते २ उसके दोनों नेत्रोंमें आंसू भर आये ॥ १७ ॥ उस खरके शिरमें वारंवार पीर होनें लगी तथापि मोहके मारे वह संग्राममें जानेंसे नहीं लौटा इन सब रोमहर्षण

तस्मिन्क्षणेबभूवुश्चविनापुष्पफलैर्द्रुमाः ॥ उद्धूतश्चविनावातंरेणुर्जलधरारुणः ॥ १४ ॥ चीचीकूचीतिवाश्यंतोबभूवुस्तत्रसारिकाः ॥ उल्काश्चापिसनिर्घोषानिपेतुर्घोरदर्शनाः ॥ १५ ॥ प्रचचालमहीचापिसशैलवनकानना ॥ खरस्यचरथस्थस्यनर्दमानस्यधीमतः ॥ १६ ॥ प्राकंपतभुजःसव्यःस्वरश्चास्यावसज्जत ॥ सास्रासंपद्यतेदृष्टिःपश्यमानस्यसर्वतः ॥१७॥ ललाटेचरुजाजातानचमोहान्न्यवर्तत ॥ तान्समीक्ष्यमहोत्पातानुत्थितान्रोमहर्षणान् ॥ १८ ॥ अब्रवीद्राक्षसान्सर्वान्प्रहसन्सखरस्तदा॥महोत्पातानिमान्सर्वानुत्थितान्घोरदर्शनान् ॥१९॥ नाचिंतयाम्यहंवीर्याद्बलवान्दुर्बलानिव ॥ ताराअपिशरैस्तीक्ष्णैःपातयेयंनभस्तलात् ॥ २० ॥ मृत्युंमरणधर्मेणसंक्रुद्धोयोजयाम्यहम् ॥ राघवंतंबलोत्सिक्तंभ्रातरंचापिलक्ष्मणम् ॥२१॥ अहत्वासायकैस्तीक्ष्णैर्नोपावर्तितुमुत्सहे॥यन्निमित्तंतुरामस्यलक्ष्मणस्यविपर्ययः ॥ २२ ॥

महाउत्पातोंको उपस्थित हुआ देख ॥ १८ ॥ खर हँसता २ सब राक्षसोंसे बोला कि यह तो घोर दिखाई देनेवाले महाउत्पात इस समय हो रहेहैं इनको देखकर मैं ॥ १९ ॥ ऐसे कुछ नहीं समझता कि बलवान जिस प्रकार दुर्बलोंको नहीं गिनता वैसेही हमारे पराक्रमसे इन उत्पातोंको मनमें स्थान नहीं देते । जो हम क्रुद्ध होवें तो तीखे बाणोंसे आकाश मंडलसे तारागणोंकोभी पृथ्वीपर गिरादें ॥ २० ॥ हम क्रोधित हों तो यमराजकीभी मृत्यु शोध लावें; इस्से हम बलसे दर्पित रामचंद्रको उसके भाई लक्ष्मण सहित ॥ २१ ॥ तीखे बाणोंके आघातसे विना मार

डाले हुए नहीं लौटेंगे । जिसके लिये रामचंद्र व लक्ष्मणकी विपरीत बुद्धि हुई और उन्होंनें इसके नाक कान काट डाले ॥ २२ ॥ ऐसी हमारी बहन शूर्पणखा भ्राताके सहित रामका रुधिर पीकर सफल मनोरथ होवे। और हमें पराजय होनेका कुछ डरही नहीं क्योंकि आजतक हम किसी संग्राममें पहले नहीं हारेहैं ॥ २३ ॥ सो तुम लोगोंको ज्ञातहीहै इस कारण हम मिथ्या नहीं कहते जो हम क्रुद्ध होजांय तौ मत्त ऐरावत हाथीपर असवार इन्द्रको ॥२४॥ यद्यपि रणके मध्य उसके हाथमें वज्रभी हो तथापि मार डालें फिर राम लक्ष्मणके मारनेंमें क्या बडी बातहै वह तो मनुष्यहैं यह कहकर खर गर्जने लगा जिसे श्रवणकर राक्षसोंकी बडीभारी फौज॥२५॥अतुलित हर्षित हुई, यद्यपि यमके फंदमें फँसीथी। इस ओर युद्धके देख

सकामाभगिनीमेऽस्तुपीत्वातुरुधिरंतयोः ॥ नकचित्प्राप्तपूर्वोमेसंयुगेषुपराजयः ॥ २३ ॥ युष्माकमेतत्प्रत्यक्षंनानृतंकथयाम्यहम् ॥ देवराजमपिक्रुद्धोमत्तैरावतगामिनम् ॥ २४ ॥ वज्रहस्तंरणेहन्यांकिंपुनस्तौचमानवौ ॥ सातस्य गर्जितंश्रुत्वाराक्षसानांमहाचमूः ॥ २५ ॥ प्रहर्षमतुलंलेभेमृत्युपाशावपाशिता ॥ समेयुश्चमहात्मानोयुद्धदर्शनकांक्षिणः॥ २६ ॥ ऋषयोदेवगंधर्वाःसिद्धाश्चसहचारणैः ॥ समेत्यचोचुःसहितास्तेन्योन्यंपुण्यकर्मणः ॥ २७ ॥ स्वस्तिगोब्राह्मणेभ्यस्तुलोकानांयेचसंमताः ॥ जयतांराघवोयुद्धेपौलस्त्यान्रजनीचरान् ॥ २८ ॥ चक्रहस्तोयथाविष्णुःसर्वानसुरसत्तमान् ॥ एतच्चान्यच्चबहुशोब्रुवाणाःपरमर्षयः ॥ २९ ॥ जातकौतूहलास्तत्रविमानस्थाश्चदैवताः ॥ ददृशुर्वाहिनींतेषांराक्षसानांगतायुषाम् ॥ ३० ॥

नेंकी वासनासे महात्मा लोग आये ॥ २६ ॥ उनमें ऋषिगण, देवगण गन्धर्वगण, व सिद्ध लोग सबही आये । वह पुण्य कर्म करनेंवाले वहां सबही एकत्र होकर परस्पर कहनें लगे ॥ २७ ॥ कि, गौ, ब्राह्मण सुखसे रहैं इसके सिवाय औरभी सब लोकसम्मत प्राणियोंका मंगल होवे और श्रीरघुनंदन श्रीरामचंद्रजी युद्धमें पुलस्त्य वंशी राक्षसोंको जीतें ॥ २८ ॥ जैसे चक्रधारी विष्णुजीनें समस्त असुरश्रेष्ठोंको जीताथा । परमर्षिगण ऐसे, व औरभी अनेक प्रकारके वचन परस्पर कहनें लगे ॥ २९ ॥ विमानमें बैठे हुए देवता लोग कौतूहलके वश होकर मृत्यु जिनकी

निकट आईहै ऐसे राक्षसोंको बडी सेनाको देखनें लगे ॥ ३० ॥ इस समय खर रथपर चढा हुआ सेनाके अगले भागमें हुआ, तब उसके अगल बगल श्येनगामी, पृथुश्याम, यज्ञ शत्रु, विहङ्गम,॥३१॥ दुर्ज्जय, परवीराक्ष, परुष, कालिकार्मुक, हेममाली, महामाली, सर्वास्य, और रुधिराशन। यह बारह महावीर राक्षस खरको घेरे हुए जातेथे॥३२॥ महाकपाल, स्थूलाक्ष, प्रमाथ और त्रिशिरा, यह चार राक्षस दूषण सेनापतिके पीछे२चले जातेथे ३३॥ जिस प्रकार ग्रहजाल चंद्र और सूर्यको प्राप्त होताहै, वैसेही भीम वेग सुदारुण, महा बलवान् राक्षसगण संग्रामका अभिलाष किये हुए सहसा राजपुत्र रामचंद्र और लक्ष्मणजीके निकट पहुंचे ॥ ३४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकिये आदिकाव्ये आरण्यकांडे त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

रथेनतुखरोवेगात्सैन्यस्याग्राद्विनिःसृतः ॥ श्येनगामीपृथुग्रीवोयज्ञशत्रुर्विहंगमः ॥ ३१ ॥ दुर्जयःपरवीराक्षःपरुषः कालकार्मुकः ॥ हेममालीमहामालीसर्पास्योरुधिराशनः ॥ द्वादशैतेमहावीर्याःप्रतस्थुरभितःखरम् ॥ ३२ ॥ महाकपालःस्थूलाक्षःप्रमाथस्त्रिशिरास्तथा ॥ चत्वारएतेसेनाग्रेदूषणंपृष्ठतोऽन्वयुः ॥ ३३ ॥ साभीमवेगासमराभिकांक्षिणी सुदारुणाराक्षसवीरसेना ॥ तौराजपुत्रौसहसाभ्युपेतामालांग्रहाणामिवचंद्रसूर्यौ ॥ ३४ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेत्रयोविंशःसर्गः ॥ २३ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ आश्रमंप्रतियातेतुखरेखरपराक्रमे ॥ तानेवौत्पातिकान्रामःसहभ्रात्राददर्शह ॥ १ ॥ तानुत्पातान्महाघोरान्रामोदृष्ट्वात्यमर्षण ॥ प्रजानामहितान्दृष्ट्वावाक्यंलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ २ ॥ इमान्पश्यमहाबाहोसर्वभूतापहारिणः ॥ समुत्थितान्महोत्पातान्संहर्तुंसर्वराक्षसान् ॥ ३ ॥ अमीरुधिरधारास्तुविसृजंतेखरस्वनाः ॥ व्योम्निमेघाविवर्ततेपरुषागर्दभारुणाः ॥ ४ ॥

इस भांति तीक्ष्ण पराक्रमवाला खर जब रामचंद्रजीके आश्रमकी ओर चला तब श्रीरामचंद्रजीनें भ्राता लक्ष्मणके सहित वह उत्पात जोकि खरके चलनेंके समय हुएथे वह सब देखे ॥ १ ॥ श्रीरामचंद्रजी प्रजागणोंके अमंगलकारी महाघोर इन सब उत्पातोंको देखकर अस्वस्थ चित्तसे लक्ष्मणजीसे बोले ॥ २ ॥ हे महाबाहो ! सब प्राणियोंके प्राणनाश करनें वाले यह बडे भारी उत्पात राक्षस कुलका संहार करनेंके लिये होरहेहैं सो तुम देखो ॥ ३ ॥ गर्दभकी समान धूसर वर्णवाले वादलोंका समूह इस आकाशमें इधर उधर दौडकर बडे शब्दसे गर्ज२रुधिर वर्षाताहै॥४॥

हमारे सब बाणोंसे धुआं निकलताहै, सो यह युद्ध होनेंका आनंद मना रहेहैं; और स्वर्ण जिनकी पीठमें लगा हुआहै ऐसे धनुषभी विचलित हो रहेहैं ॥ ५ ॥ वनचर पक्षीगण जिस प्रकारसे शब्द करतेहैं इससे राक्षसोंको भय और प्राणसंशय आकर उपस्थित हुआहै ॥ ६॥ अब शीघ्रही महा युद्ध होगा, इसमें कुछभी संदेह नहींहै। परन्तु हे वीर! हमारा यह दहना हाथ बार २ फडककर हमारे जयकी सूचना करताहै ॥ ७ ॥ हे शूर! हमारी जय और शत्रुओंकी पराजय निकट आय पहुंचीहै, तुम्हारा वदनभी प्रसन्न और प्रभायुक्त देख पडताहै ॥ ८ ॥ हे लक्ष्मण! युद्ध करनेंके लिये तैयार हुए जिन पुरुषोंका मुख मलीन हो जाताहै, इससे उन लोगोंकी आयुका क्षय होताहै ॥ ९ ॥ राक्षसोंके घोर और

सधूमाश्चशराःसर्वेममयुद्धाभिनंदिताः ॥ रुक्मपृष्ठानिचापानिविचेष्टंतेविचक्षण ॥ ५ ॥ यादृशाइहकूजंतिपक्षिणो वनचारिणः ॥ अग्रतोनोभयंप्राप्तंसंशयोजीवितस्यच ॥ ६ ॥ संप्रहारस्तुसुमहान्भविष्यतिनसंशयः ॥ अयमाख्याति मेबाहुःस्फुरमाणोमुहुर्मुहुः ॥७॥ सन्निकर्षेतुनःशूरजयंशत्रोःपराजयम् ॥ सुप्रभंचप्रसन्नंचतववक्त्रंहिलक्ष्यते॥८॥ उद्यतानांहियुद्धार्थंयेषांभवतिलक्ष्मण ॥ निष्प्रभंवदनंतेषांभवत्यायुःपरिक्षयः ॥ ९ ॥ रक्षसांनर्दतांघोषःश्रूयतेयंम हाध्वनिः ॥ आहतानांचभेरीणांराक्षसैःक्रूरकर्मभिः ॥१०॥ अनागतविधानंतुकर्तव्यंशुभमिच्छता ॥ आपदाशंक मानेनपुरुषेणविपश्चिता ॥११॥ तस्माद्गृहीत्वावैदेहींशरपाणिर्धनुर्धरः ॥ गुहामाश्रयशैलस्यदुर्गांपादपसंकुलाम्॥१२॥ प्रतिकूलितुमिच्छामिनहिवाक्यमिदंत्वया ॥ शापितोममपादाभ्यांगम्यतांवत्समाचिरम् ॥ १३ ॥

गंभीर गर्जनका यह शब्दभी अब सुनाई आताहै। व उन क्रूर कर्म करनेंवाले राक्षसोंके भेरीकी ध्वनिभी अब सुनाई आतीहै ॥१०॥ कल्याणके चाहनेवाले पंडित पुरुष विपत्तिकी शंका रहनेसे प्रथमही उस आनेवाली विपत्तिका ऐसा उपाय करतेहैं कि जिस्से वह विपत्ति निकट न आवै ॥ ११ ॥ इस कारण तुम धनुष धारण करके जानकीजीको ले वृक्षोंकरके युक्त दुर्गम पर्वतकी कन्दरामें चले जाओ ॥ १२ ॥ तुम हमारे इन वचनोंके प्रतिकूल आचरण मत करना। वत्स! हम तुमको अपने चरणोंकी सौगन्ध देतेहै कि तुम शीघ्रही जानकीको लेकर गिरिगुहामें

चले जाओ ॥ १३ ॥ तुम . शूर और बलवान्हो. निश्चय इन राक्षसोंको वधकर सकतेहो इसमें सन्देह नहींहै परन्तु हम आपही इन सर्व निशाचरोंके मार डालनेंकी इच्छा करतेहैं ॥ १४ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा तब लक्ष्मणजी सीताजीके सहित शर और चाप ग्रहण करके दुर्गम पर्वतकी कन्दरामें चले गये ॥ १५ ॥ जब जानकीजीके साथ लक्ष्मणजी पर्वतकी कन्दरामें चले गये, तब श्रीरामचंद्रजी बडे हर्षित हुए और कवच व बाण रघुनंदनजीनें ग्रहण किया ॥ १६ ॥ अग्निवर्ण वाले कवचके धारण करनेंसे श्रीरामचंद्रजी अन्धकारमध्यमेंसे उठे हुए महा अग्निकी समान जान पडनें लगे ॥ १७ ॥ तत्पश्चात् वीर्यवान् श्रीरामचंद्रजी धनुषको उठाय, बाणोंको ग्रहण कर प्रत्यंचाकी टंकारके शब्दसे दशोंदिश

त्वंहिशूरश्चबलवान्हन्याएतान्नसंशयः ॥ स्वयंनिहंतुमिच्छामिसर्वानेवनिशाचरान् ॥ १४ ॥ एवमुक्तस्तुरामेणलक्ष्मणःसहसीतया ॥ शरानादायचापंचगुहांदुर्गांसमाश्रयत् ॥ १५ ॥ तस्मिन्प्रविष्टेतुगुहांलक्ष्मणेसहसीतया ॥ हंतनिर्युक्तमित्युक्त्वारामःकवचमाविशत् ॥ १६ ॥ सतेनाग्निनिकाशेनकवचेनविभूषितः ॥ बभूवरामस्तिमिरेमहानग्निरिवोत्थितः ॥ १७ ॥ सचापमुद्यम्यमहच्छरानादायवीर्यवान् ॥ संबभूवास्थितस्तत्रज्यास्वनःपूरयन्दिशः ॥ १८ ॥ ततोदेवाःसगंधर्वाःसिद्धाश्चसहचारणैः ॥ समेयुश्चमहात्मानोयुद्धदर्शनकांक्षया ॥ १९ ॥ ऋषयश्चमहात्मानोलोकेब्रह्मर्षिसत्तमाः ॥ समेत्यचोचुःसहितास्तेन्योन्यंपुण्यकर्मणः ॥२०॥ स्वस्तिगोब्राह्मणानांचलोकानांचेतिसंस्थिताः ॥ जयतांराघवोयुद्धेपौलस्त्यान्रजनीचरान् ॥ २१ ॥ चक्रहस्तोयथायुद्धेसर्वानसुरपुंगवान् ॥ एवमुक्त्वापुनःप्रोचुरालोक्यचपरस्परम् ॥ २२ ॥

ओंको पूर्ण करते हुए भली भांतिसे दृढहो वहां खडे होगये ॥ १८ ॥ उस समय महात्मा देवगण, गन्धर्वगण, सिद्धगण, और चारण गण संग्राम देखनेंकी अभिलाषसे वहां आये ॥ १९ ॥ लोकमें जो ब्रह्मर्षि प्रसिद्धहैं वह सब महर्षिभी वहां आये वह सब पुण्य कर्म करनेंवाले एकत्र होकर परस्पर मिल कहनें लगे ॥ २० ॥ गौ, ब्राह्मण व और सब लोकोंका सब प्रकारसे मंगलहो और श्रीरामचंद्रजी युद्धमें पुलस्त्यवंशीय निशाचरोंको जीतें, ॥ २१ ॥ जिस प्रकार श्रीविष्णुजीनें चक्र हाथमें लेकर असुर श्रेष्ठोंको हरायाथा। इस प्रकार कहकर वह फिर परस्पर अवलोकन

करते हुए कहनेंलगे ॥ २२ ॥ कि भयंकर कर्म करनेंवाले राक्षस तो चौदह हजार [१४०००] हैं, और धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी इकलेहैं; सो इस्से कह नहीं सकते कि किस प्रकार युद्ध होगा ॥ २३ ॥ इस प्रकारसे राजर्षिगण, सिद्धगण, विद्याधरादि समस्त देवयोनि गण प्रधान २ ब्रह्मर्षिगण कौतूहलाक्रांत चित्त किये वहां खडेथे ॥ २४ ॥ महा तेजवान श्रीरामचंद्रजीको समर स्थलमें अकेला खड़ा देख, प्राणिमात्रही भयके मारे दुःखी हुए कि न जानें महाराजको आज कैसा परीश्रम पडेगा और कैसे इन १४००० हजार दुष्टोंसे लडेंगे ? ॥ २५ ॥ महात्मा रुद्रजी जब क्रोध करतेहैं और उनका रूप जैसा होजाताहै, वैसाही क्लेशरहित कर्म करनेंवाले श्रीरामचंद्रजीका रूप होगया जिसके समान विकराल

चतुर्दशसहस्राणिरक्षसांभीमकर्मणाम्॥एकश्चरामोधर्मात्माकथंयुद्धंभविष्यति ॥२३॥इतिराजर्षयःसिद्धाःसगणाश्च द्विजर्षभाः॥ जातकौतूहलास्तस्थुर्विमानस्थाश्चदेवताः ॥२४॥ आविष्टंतेजसारामंसंग्रामशिरसिस्थितम् ॥ दृष्ट्वासर्वाणिभूतानिभयाद्विव्यथिरेतदा ॥ २५ ॥ रूपमप्रतिमंतस्यरामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ बभूवरूपंक्रुद्धस्यरुद्रस्येवमहात्मनः ॥ २६ ॥ इतिसंभाष्यमाणेतुदेवगंधर्वचारणैः ॥ ततोगंभीरनिर्ह्रादंघोरचर्मायुधध्वजम् ॥ २७ ॥ अनीकंयातुधानानांसमंतात्प्रत्यपद्यत॥वीरालापान्विसृजतामन्योन्यमभिगच्छताम्॥२८॥ चापानिविस्फारयतांजृंभतांचाप्यभीक्ष्णशः ॥ विप्रघुष्टस्वनानांचदुंदुभींश्चाभिनिघ्नताम् ॥ २९ ॥ तेषांसुविपुलःशब्दःपूरयामासतद्वनम् ॥ तेनशब्देनवित्रस्ताश्वासितावनचारिणः ॥ ३० ॥ दुद्रुवुर्यत्रनिःशब्दंपृष्ठतोनावलोकयन ॥ तच्चानीकंमहावेगंरामंसमनुवर्तत ॥ ३१ ॥

रूप और नहींथा ॥२६॥ आकाशमें देव गन्धर्व और चारण लोग ऐसा कहही रहेहैं कि इतनेंमें महा गंभीर शब्द करती, अति घोर ढाल खड्गादि हथियार लिये ॥ २७ ॥ चारोंओरसे राक्षसोंकी सेना अनी वनी ठनी आ पहुँची, जो वीरपनेकी वार्त्ता आपसमें कर रहीथी ॥ २८ ॥ उस सेनाके कोई २ लोग धनुषकी प्रत्यंचा खेंच २ बजाते कोई बार २ जंभाई लेते कोई ऊँचे स्वरसे चिल्लाते और कोई नगाडोंकोही बजातेथे ॥ २९ ॥ इस सब सेनाके राक्षसोंका ऐसा घोर शब्द हुआ कि जिस्से वह वन भर गया और उस शब्दसे वनचारी पशु पक्षीभी घबडा गये ॥३०॥ और लौटकर पीछेको न देखतेहुए जिस जगह वह शब्द श्रवणगोचर न होवे वहांको भागे। व इसओर राक्षसी सेना धूम धामसे श्रीरामचंद्रजीके

निकट आय पहुँची ॥ ३१ ॥ उस सेनाके वीरगण अनेक प्रकारके हथियार धारण कियेथे, वह समुद्र समान उफनती चली आतीथी समरपंडित
श्रीरघुनंदन रामचंद्रजीनें नेत्र डाल चारों ओर निहारातो॥३२॥युद्ध करनेंको खरकी सेना, उनकीसोंही चली आतीहै, तब श्रीरामचंद्रजीनें धनुष
को उठाय, और तरकसमेंसे बाण समूहको ग्रहणकर ॥ ३३ ॥ राक्षस कुलका संहार करनेंके लिये महाक्रोध किया, उस समय श्रीरामचंद्रजीका
ऐसा विकट स्वरूप होगया मानों प्रलयकालकी अग्निहो॥३४॥वन देवता लोग उनका वह तेजवान स्वरूप देखकर बडेही व्यथित हुए क्योंकि उन्हों
ने वह भयावना रामचन्द्रजीका रूप काहेको देखाथा।परन्तु दक्षका यज्ञ विनाश करनेंको तैयार महादेवजीकी समान श्रीरामचन्द्रजीकी वह क्रोधभरी

धृतनानाप्रहरणंगंभीरंसागरोपमम् ॥ रामोपिचारयंश्चक्षुःसर्वतोरणपंडितः ॥ ३२ ॥ ददर्शखरसैन्यंतद्युद्धायाभिमु
खोगतः॥ वितत्यचधनुर्भीमंतूण्याश्चोद्धृत्यसायकान् ॥ ३३ ॥ क्रोधमाहारयत्तीव्रंवधार्थंसर्वरक्षसाम् ॥ दुष्प्रेक्ष्यश्चा
भवत्क्रुद्धोयुगांताग्निरिवज्वलन् ॥३४॥ तंदृष्ट्वातेजसाविष्टंप्राव्यथन्वनदेवताः ॥तस्यरुष्टस्यरूपंतुरामस्यदहृशेतदा ॥
दक्षस्येवक्रतुंहंतुमुद्यतस्यपिनाकिनः ॥ ३५ ॥ तत्कार्मुकैराभरणैरथैश्चतद्वर्मभिश्चाग्निसमानवर्णैः ॥ बभूवसैन्यंपि
शिताशनानांसूर्योदयेनीलमिवाभ्रजालम् ॥ ३६ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०आरण्यकांडेचतुर्विंशःसर्गः ॥ २४ ॥
अवष्टब्धधनुंरामंक्रुद्धंतंरिपुघातिनम् ॥ ददर्शाश्रममागम्यखरःसहपुरःसरैः ॥ १ ॥ तंदृष्ट्वासगुणंचापमुद्यम्यखरनिः
स्वनम् ॥ रामस्याभिमुखंसूतंचोद्यतामित्यचोदयत् ॥ २ ॥ सखरस्याज्ञयासूतस्तुरगान्समचोदयत् ॥ यत्ररामो
महाबाहुरेकोधुन्वन्धनुःस्थितः ॥ ३ ॥

मूर्त्ति उस समय उन सबनें देखीथी ॥ ३५ ॥ जैसे नीले रंगके बादर सूर्योदयमें शोभा पातेहैं। राक्षससेनाभी अग्नि सम वर्ण,कवच, रथ, आभरण और
धनुष युक्त होकर उस काल वैसीही शोभा पाने लगी ॥ ३६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे चतुर्विंशःसर्गः ॥ २४ ॥
अपने साथियोंके साथ आश्रममें आकर खरनें शत्रुओंके मारनेंवाले श्रीरामचन्द्रजीको क्रोधमें भरे और धनुष ग्रहण किये देखा ॥१॥ ऐसा
देखकर उसनें कठोर प्रत्यंचा युक्त धनुष उठाकर सारथिसे ऊंचे स्वरसे कहा कि रामचंद्रके सामनें रथ लेचलो ॥ २ ॥ सारथिनें खरकी आज्ञा

नुसार जहां महाबाहु श्रीरामचंद्रजी धनुषपर टंकार देते हुए इकले खडेथे वहांपर घोडोंको चलाया ॥३॥ खरको रामचंद्रजीके आगे जाता हुआ
देखकर उसके मंत्री श्येनगम्यादि बारह राक्षस उसके चारों ओर हो लिये ॥ ४ ॥ तब रथपर चढा हुआ खर दुर्विनीत राक्षसोंके बीचमें ऐसा
शोभित होताथा, जैसे ताराओंके बीचमें प्रदीप्त मंगल ग्रह शोभित होताहै ॥ ५ ॥ अनन्तर वह खर श्रीरामचंद्रजीके ऊपर युद्धमें हजार बाण
छोडकर महा शब्दसे चिल्लानें लगा ॥ ६ ॥ तिसके पीछे सब निशाचर क्रोधित होकर भयंकर धनुषधारी, निवारण करनेंके योग्य श्रीरामचंद्र
जीको ताककर विविध भांतिके शर वर्षानें लगे ॥ ७ ॥ वह राक्षस सेना, युद्धमें क्रोधितहो अनेक २ लोहेके मुन्दर, शूल, फांसी, तलवार, और

तंतुनिष्पतितंदृष्ट्वासर्वतोरजनीचराः ॥ मुंचमानामहानादंसचिवाःपर्यवारयन् ॥४॥ सतेषांयातुधानानांमध्येरथग
तःखरः ॥ बभूवमध्येताराणांलोहितांगइवोद्धतः ॥ ५ ॥ ततःशरसहस्रेणराममप्रतिमौजसम् ॥ अर्दयित्वामहाना
दंननादसमरेखरः ॥६॥ ततस्तंभीमधन्वानंक्रुद्धाःसर्वेनिशाचराः ॥ रामंनानाविधैःशस्त्रैरभ्यवर्षंतदुर्जयम् ॥ ७ ॥
मुद्गरैरायसैःशूलैःप्रासैःखड्गैःपरश्वधैः ॥ राक्षसाःसमरेशूरंनिजघ्नूरोषतत्पराः ॥ ८॥ तेबलाहकसंकाशामहाकायाम
हाबलाः ॥ अभ्यधावंतकाकुत्स्थंरथैर्वाजिभिरेवच ॥ ९ ॥ गजैःपर्वतकूटाभैरामंयुद्धेजिघांसवः॥ तेरामेशरवर्षाणि
व्यसृजन्रक्षसांगणाः ॥ १० ॥ शैलेंद्रमिवधाराभिर्वर्षमाणामहाघनाः ॥ सर्वैःपरिवृतोरामोराक्षसैःक्रूरदर्शनैः ॥११॥
तिथिष्विवमहादेवोवृतःपारिषदांगणैः ॥ तानिमुक्तानिशस्त्राणियातुधानैःसराघवः ॥ १२ ॥

फरसे आदिकसे श्रीरामचंद्रजीके ऊपर प्रहार करनेंलगे ॥ ८ ॥ फिर वह बडे २ शरीरवाले महाबलवान्, मेघ समान निशाचर गण,
रथ, घोडे, हाथियोंपर चढ २ युद्धमें श्रीरामचन्द्रजीको मार डालनेंके लिये उनके पीछे दौडे ॥ ९ ॥ उनसे कुछ राक्षस पर्वतोंके शृंग समान
आकारवाले हाथियोंपर चढकर श्रीरामचंद्रजीको युद्धमें मार डालनेंके लिये आयेथे, इस कारण वह सब रामचंद्रजीपर बाणोंकी वर्षा करनें
लगे॥१०॥जैसे मेघमाला पर्वतोंपर वर्षा करतीहै, वैसेही बाणवर्षा उन निशाचरोंने श्रीरामचंद्रजीके ऊपर की, सब राक्षसोंके मध्य जानकी जीवन
कैसे शोभित होतेथे॥११॥जैसे प्रदोषकी यामिनीयोंमें पार्षदोंके मध्य महादेवजी शोभित होतेहैं।राक्षसोंके चलाये अस्त्र शस्त्रश्रीरामचंद्रजीनें॥१२॥

अपने बाणोंके सहित ग्रहण किये, जैसे नदीयोंकी धाराओंको महोदधि ग्रहण करताहै यद्यपि श्रीरामचन्द्रजीके अंगमें अतिघोर वह अस्त्र शस्त्र लगेथे पर इससे उनको कुछ व्याधि न हुई ॥ १३ ॥ जैसे प्रकाशमान बहुतसे वज्रोंसे हिमालय पर्वतको पीडा नहीं होती।सर्व शरीरमें बाणोंके लगनेंसे रुधिर वहनेंसें श्रीरामचन्द्र ऐसे शोभित हुए ॥१४॥ जैसे संध्याकालीन बादरोंके बीचमें होनेसे सूर्य भगवान् शोभित होतेहैं। रघुनंदनजीकी यह अवस्था देख देव, गन्धर्व, और सिद्ध व परमर्षिगण बडे विषादित हुए ॥ १५ ॥ कारण कि अकेले रामचंद्रजीको सहस्रों निशाचर घेरे हुएथे। ऋषि आदिकोंकी यह अवस्था देख श्रीरामचंद्रजीनें महाक्रोध युक्तहो धनुषको जोरसे खेंच ॥ १६ ॥

प्रतिजग्राहविशिखैर्नद्योघानिवसागरः ॥ सतैःप्रहरणैर्घोरैर्भिन्नगात्रोनविव्यथे ॥ १३ ॥ रामःप्रदीप्तैर्बहुभिर्वज्रैरिवम
हाचलः ॥ सविद्धःक्षतजादिग्धःसर्वगात्रेषुराघवः ॥ १४ ॥ बभूवरामःसंध्याभ्रैर्दिवाकरइवावृतः ॥ विषेदुर्देवगंधर्वाः
सिद्धाश्चपरमर्षयः ॥ १५ ॥ एकंसहस्रैर्बहुभिस्तदादृष्ट्वासमावृतम् ॥ ततोरामस्तुसंक्रुद्धोमंडलीकृतकार्मुकः ॥ १६ ॥
ससर्जनिशितान्बाणाञ्छतशोथसहस्रशः ॥ दुरावारान्दुर्विषहान्कालपाशोपमान्रणे ॥ १७ ॥ मुमोचलीलयाकंकप
त्रान्कांचनभूषणान् ॥ तेशराःशत्रुसैन्येषुमुक्तारामेणलीलया ॥ १८ ॥ आददूरक्षसांप्राणान्पाशाःकालकृताइव॥ भि
त्त्वाराक्षसदेहांस्तांस्तेशरारुधिराप्लुताः ॥ १९ ॥ अंतरिक्षगतारेजुर्दीप्ताग्निसमतेजसः ॥ असंख्येयास्तुरामस्यसाय
काश्चापमंडलात् ॥ २० ॥

शत २ सहस्र २ अति तीखे बाण छोडे वे सब बाण किसीके रोकनेंसे नहीं रुकते, वरन अनिवारथे सहन करनेंके योग्य नहींथे और देखनेंमें यमराजकी फांसीके समानथे ॥ १७ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें लीला पूर्वक सुवर्णसे चित्र विचित्र कंकपत्र युक्त बाण शत्रुकी सेनामें चलाये। वह सब बाण शत्रुकी सेनामें पहुँच २ ॥ १८ ॥ चलाई हुई यमकी फाँसियोंकी समान राक्षसोंका देह भेद व प्राण ग्रहण करके रुधिरके लगनेंसे लाल गेरूहो॥१९॥आकाशमें जाकर जलती हुई अग्निकी समान शोभा पानें लगे, उस समय श्रीरामचन्द्रजीके चाप मंडलसे असंख्यों बाण छूटे ॥२०॥

श्रीरामचंद्रजी उन सब बाणोंसे राक्षसोंके शत २ शरासन और सहस्र २ शरासन, ध्वजाके अग्रभाग ढाल, कवच ॥ २१ ॥ हाथके गहनों करके युक्त बाहु हाथियोंकी शुण्डके समान जंघाएँ सैकडों हजारों काट डालीं ॥ २२ ॥ इनके अतिरिक्त सुवर्णके कवच धारण किये घोडे रथ और सारथी महावत् व सवारसहित हाथी घुडसवारसहित घोडे ॥ २३ ॥ इन सबको प्रत्यंचासे छूटे हुए श्रीरामचंद्रजीके बाणोंनें छिन्न भिन्न किया, और पैदलोंकोभी संहार करके यमराजके भवनमें पहुंचाया ॥ २४ ॥ राक्षसगण, अग्रभाग जिनका महातीक्ष्णहै ऐसे नालीक, नाराच, और विकर्ण समूहसे कट कुट कर भयंकर शब्द कर आरत पुकारने लगे ॥ २५ ॥ शुष्कवनश्रेणी जिस प्रकार अग्निको पाकर

विनिष्पेतुरतीवोग्रारक्षःप्राणापहारिणः ॥ तैर्धनूंषिध्वजाग्राणिचर्माणिकवचानिच ॥२१॥ बाहून्सहस्ताभरणानूरून्करिकरोपमान् ॥ चिच्छेदरामःसमरेशतशोथसहस्रशः ॥ २२ ॥ हयान्कांचनसन्नाहान्रथयुक्तान्ससारथीन् ॥ गजांश्चसगजारोहान्सहयान्सादिनस्तदा ॥ २३ ॥ चिच्छिदुर्बिभिदुश्चैवरामबाणागुणच्युताः ॥ पदातीन्समरेहत्वाअनयद्यमसादनम् ॥ २४ ॥ ततोनालीकनाराचैस्तीक्ष्णाग्रैश्चविकर्णिभिः ॥ भीममार्तस्वरंचक्रुश्छिद्यमानानिशाचराः ॥ २५ ॥ तत्सैन्यंविविधैर्बाणैरर्दितंमर्मभेदिभिः ॥ नरामेणसुखंलेभेशुष्कंवनमिवाग्निना ॥ २६ ॥ केचिद्भीमबलाःशूराःप्रासान्शूलान्परश्वधान् ॥ चिक्षिपुःपरमक्रुद्धारामायरजनीचराः ॥ २७ ॥ तेषांबाणैर्महाबाहुःशस्त्राण्यावार्यवीर्यवान् ॥ जहारसमरेप्राणांश्चिच्छेदचाशिरोधरान् ॥ २८ ॥ तेच्छिन्नशिरसःपेतुश्छिन्नचर्मरासनाः ॥ सुपर्णवातविक्षिप्ताजगत्यांपादपायथा ॥ २९ ॥

खूबही घूम २ कर जलतीहैं, वैसेही राक्षस सेनाभी श्रीरामचंद्रजीके मर्मभेदी बाणोंसे पीडित होकर सुख प्राप्त करनेंको समर्थ नहीं होसकी ॥२६॥ उस सेनाके कोई २ महाबलवान् शूरवीर राक्षस महा क्रोधित होकर श्रीरामचंद्रजीके ऊपर, प्रास, फरसे और शूल इत्यादि चलानेंलगे ॥२७॥ महाबाहु वीर्यवान् श्रीरामचंद्रजीनें अपनें बाणोंसे राक्षसोंके चलाये हुए अस्त्र शस्त्रोंको रोक उनके प्राण हरण करके उनके मस्तकभी धडसे उडा देते हुए ॥ २८ ॥ गरुडजीके उडनेंके समय जो उनके पंखोंसे पवन निकलती जिस प्रकार उससे वृक्षसमूह पृथ्वीपर गिर जातेहैं वैसेही

राक्षसगण छिन्नमस्तकहो पृथ्वीपर गिरनेंलगे उनका धनुष और ढाल तलवारभी टूट टाट गईं ॥ २९ ॥ बचे बचाये राक्षस श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसें घायल होनेके कारण व्याकुल हो मलीनभावसे खरकी शरणमें गये ॥ ३० ॥ यह देखकर दूषण महा क्रोधित होकर धनुष सँभाल भागे हुए राक्षसोंको धीर बँधाता हुआ क्रोधित कालकी समान रोष परायण श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख दौडा ॥ ३१ ॥ तब रणसे भागे हुए निशाचर गण दूषणका आसरा पाय लौटकर शाल, ताल, शिला, पाश, मुद्गर, और शूल इन सब आयुधोंको धारण कर श्रीरामचंद्रजीके सामने धाये ॥ ३२ ॥ उन राक्षसोंने संग्राममें आतेही शूल, मुद्गर, पाशादि, अस्त्र शस्त्रोंकी वर्षा श्रीरामचंद्रजीके ऊपर की । ३३॥ फिर वृक्षोंकी वर्षा और

अवशिष्टाश्चयेतत्रविषण्णास्तेनिशाचराः॥खरमेवाभ्यधावंतशरणाथशराहताः॥३०॥ तान्सर्वान्धनुरादायसमाश्वास्यचदूषणः॥अभ्यधावत्सुसंक्रुद्धःक्रुद्धंक्रुद्धइवांतकः ॥३१॥निवृत्तास्तुपुनःसर्वेदूषणाश्रयनिर्भयाः॥ राममेवाभ्यधावंतसालतालशिलायुधाः॥३२॥ शूलमुद्गरहस्ताश्चपाशहस्तामहाबलाः ॥ सृजंतःशरवर्षाणिशस्त्रवर्षाणिसंयुगे ॥ ३३ ॥ द्रुमवर्षाणिमुंचंतःशिलावर्षाणिराक्षसाः ॥ तद्बभूवाद्भुतंयुद्धंतुमुलंरोमहर्षणम् ॥ ३४॥ रामस्यास्यमहाघोरंपुनस्तेषांचरक्षसाम् ॥ तेसमंतादभिक्रुद्धाराघवंपुनरार्दयन् ॥ ३५॥ ततःसर्वादिशोदृष्ट्वाप्रदिशश्चसमावृताः ॥ राक्षसैःसर्वतःप्राप्तैःशरवर्षाभिरावृतः ॥ ३६ ॥ सकृत्वाभैरवंनादमस्त्रंपरमभास्वरम् ॥ समयोजयद्गांधर्वंराक्षसेषुमहाबलः ॥ ३७ ॥ ततःशरसहस्राणिनिर्ययुश्चापमंडलात् ॥ सर्वादशदिशोबाणैरापूर्यंतसमागतैः ॥ ३८ ॥

शिलाकी वृष्टि प्रारंभ होनेंपर तिस समय महाभयानक और घोर लोमहर्षण संग्राम होनें लगा ॥ ३४ ॥ उधरसे राक्षसगण श्रीरामचंद्रजी पर अस्त्र शस्त्र चलारहेथे इधरसे श्रीरामचंद्रजी राक्षसोंपर बाण वर्षा करतेथे यह देखकर राक्षसोंने फिर अस्त्र शस्त्रोंसे श्रीरामचंद्रजीको पीडित किया ॥ ३५ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें देखा कि सर्व दिशा विदिशा राक्षसोंसे भर गईहैं और हमभी उनके बाणोंसे ढक गयेहैं ॥ ३६ ॥ यह देख श्रीरामचंद्रजीनें बडा शब्दकर भयंकर राक्षसगणोंके ऊपर परम देदीप्यमान गान्धर्वास्त्र चलाया ॥ ३७॥ इस गान्धर्वास्त्रके चलानेके पीछे श्रीरामचंद्रजीके धनुषसे हजार २ बाण निकलनें लगे; उन निकलते हुए बाणोंसे समस्त दिशायें भरगईं ॥ ३८ ॥

राक्षसगण इस समय यह नहीं देख सके कि कब श्रीरामचंद्रजी श्रेष्ठ और भयंकर शर ग्रहण करते कब छोडते और कब धनुषको आक र्षण करतेहैं परन्तु केवल उनके बाणोंसे महा व्यथित होनें लगे॥ ३९ ॥ श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे अन्धकार उत्पन्न होकर दिवाकर सहित आकाश मंडलको ढक लेता हुआ। परन्तु श्रीरामचंद्रजी बराबर शर धारा छोडते चले जातेथे ॥ ४० ॥ उस बाण धारासे अनेक २ राक्षस महा घायल हुए कोई २ गिरे हुए कोई२गिरते हुए दिखाई देतेथे ऐसे राक्षसोंसे पृथ्वी पूर्ण होगई ॥ ४१ ॥ रणभूमिमें सर्वत्रही सहस्र २ राक्षस पतित, छिन्न, भिन्न, विदारित और कंठगत प्राण दृष्टि आने लगे। श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे छिन्न भिन्न पगडी सहित मस्तक बाजू युक्त बाँह व अनेक २ भांतिके

नाददानंशरान्घोरान्विमुंचंतंशरोत्तमान् ॥ विकर्षमाणंपश्यंतिराक्षसास्तेशरार्दिताः ॥ ३९ ॥ शरांधकारमाकाश मावृणोत्सदिवाकरम् ॥ बभूवावस्थितोरामःप्रक्षिपन्निवताञ्छरान् ॥ ४० ॥ युगपत्पतमानैश्चयुगपच्चहतैर्भृशम् ॥ युगपत्पतितैश्चैवविकीर्णावसुधाभवत् ॥ ४१ ॥ निहताःपतिताःक्षीणाश्छिन्नाभिन्नाविदारिताः ॥ तत्रतत्रस्मदृश्यंतेरा क्षसास्तेसहस्रशः ॥ ४२ ॥ सोष्णीषैरुत्तमांगैश्चसांगदैर्बाहुभिस्तथा ॥ ऊरुभिर्बाहुभिश्छिन्नैर्नानारूपैर्विभूषणैः ॥४३॥ हयैश्चद्विपमुख्यैश्चरथैर्भिन्नैरनेकशः ॥ चामरव्यजनैश्छत्रैर्ध्वजैर्नानाविधैरपि ॥ ४४ ॥ रामेणबाणाभिहतैर्विच्छिन्नैः शूलपट्टिशैः ॥ विच्छिन्नैःसमरेभूमिर्विस्तीर्णाभूद्भयंकरा ॥ ४५ ॥ तान्दृष्ट्वानिहतान्सर्वेराक्षसाःपरमातुराः ॥ नत त्रचलितुंशक्तारामंपरपुरंजयम् ॥ ४६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेपंचविंशः सर्गः ॥ २५ ॥ ॥ ७॥ ॥ दूषणस्तुस्वकंसैन्यंहन्यमानंविलोक्यच ॥ संदिदेशमहाबाहुर्भीमवेगान्दुरासदान् ॥१॥

गहनें ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ अश्व, हस्ती, चमर, व्यजन, छत्र, व नाना प्रकारकी ध्वजाओंसे ॥ ४४ ॥ व शूल पटादि शस्त्रोंसे जोकि रामचंद्र जीके बाणोंसे कट २ टूट गयेथे यह पृथ्वी अति भयंकर होगई ॥ ४५ ॥ इस प्रकार बहुतसे राक्षसोंको मारे हुए व पृथ्वीमें पडे देख बचे बचाये राक्षसगण अतिशय कातर होकर शत्रुओंके जीतनेवाले श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख जानेंको और समर्थ नहीं हुए ॥ ४६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे पंचविंशःसर्गः ॥ २५ ॥ महाबाहु दूषण अपनी सेनाको श्रीरामचंद्रजीसे माराहुआ देख

इन्द्रजीके वज्र चलानेंसे जिस प्रकार पर्वत पंख कटाकर नीचे गिरेथे, वैसेही वानरलोग राक्षसी मायासे मोहित होगये, इनका सब शरीर राक्षसके बाणोंसे फटगया और वह धीरे २ विकट स्वरसे शब्द करके रणभूमिमें गिरनें लगे ॥ ५२ ॥ उस समय वानरगणने सेनामें केवल इन्द्रजीतके छोड़े हुए अत्यन्त तीखे बाणोंको देखपाया; परन्तु मायाके बलसे छिपे हुए उस इन्द्रकेशत्रु मेघनादको न देखा कि कहां खड़ाहुआ बाणोंकी वर्षा करताहै ॥ ५३ ॥ इसके उपरान्त राक्षसपति महाबलवान इन्द्रजीत सूर्यकी समान गांसीलगे हुए बाणोंसे सब दिशाओंको छायलिया; और अत्यन्त पैंने बाणोंसे वानरोंको मारनेंभी लगा ॥ ५४ ॥ और प्रदीप्त अग्निकी समान अंगारे व चिनगारियोंसे युक्त शूल, निस्त्रिंश, और परशु

तेशक्रजिद्बाणविशीर्णदेहामायाहताविस्वरमुन्नदंतः ॥ रणेनिपेतुर्हरयोद्रिकल्पायथेंद्रवज्राभिहतानगेंद्राः ॥ ५२ ॥
तेकेवलंसंददृशुःशिताग्रान्बाणान्रणेवानरवाहिनीषु ॥ मायाविगूढंचसुरेंद्रशत्रुंनचात्रतंराक्षसमप्यपश्यन् ॥ ५३ ॥
ततःसरक्षोधिपतिर्महात्मासर्वादिशोबाणगतैःशिताग्रैः ॥ प्रच्छादयामासरविप्रकाशैर्विदारयामासचवानरेंद्रान् ॥५४॥
सशूलनिस्त्रिंशपरश्वधानिव्याविद्धदीप्तानलसप्रभाणि ॥ सविस्फुलिंगोज्ज्वलपावकानिववर्षतीव्रंप्लवगेंद्रसैन्ये॥ ५५॥
ततोज्वलनसंकाशैर्बाणैर्वानरयूथपाः ॥ ताडिताःशक्रजिद्बाणैःप्रफुल्लाइवकिंशुकाः ॥ ५६ ॥ उदीक्षमाणागगनंकेचिन्नेत्रेषुताडिताः ॥ शनैर्विविशुरन्योन्यंपेतुश्चजगतीतले ॥ ५७ ॥ हनूमंतंचसुग्रीवमंगदंगंधमादनम् ॥ जांबवंतंसुषेणंचवेगदर्शिनमेवच ॥ ५८ ॥

इत्यादि सब आयुधोंको ग्रहण करके वानरराज सुग्रीवजीकी सैनाके ऊपर वह मेघनाद वर्षानें लगा ॥ ५५ ॥ इस प्रकार इंद्रके शत्रु मेघनादके बाणोंसे जब वानर गणोंका शरीर छिन्नभिन्न होकर रुधिरसे भीग गया तब वह समस्त वानर खिले हुए टेसूके वृक्षकी समान शोभायमान हुए ॥५६॥ उस समय कोई२वानर ऊपरको नेत्र उठाये आकाशकी ओर देख रहेथे; कि इतनेंमेंही बाण आनकर उनकी आंखोंमें लगा; तब वह परस्पर एक दूसरेका आश्रय लेनेलगे और कोई पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ५७ ॥ इसके उपरान्त हनुमान सुग्रीव अंगद गन्धमादन जाम्बवान सुषेण वेगदर्शी ॥५८॥

समय घाव रहित होगये और वानर वीर गणभी घावरहित हो उठ बैठे॥६९जिसप्रकार रात्रिके आनेसे समस्त जीव सोजातेहैं और रात्रि बीत जाने पर जाग उठते हैं वैसेही एक क्षणमें समस्त वानर रोगरहित होकर उठ बैठे और जो वानर रणमें मृतक हो गयेथे उन वानरोंकी भी देहोंमें प्राण आय गये॥ ७० ॥परन्तु उन महौषधियोंसे, राक्षस कोईभी नहीं जिया। कारण कि जबसे वानर और राक्षसों का युद्ध आरंभ हुआथा उस समयसे ही रावणकी आज्ञाके अनुसार परिमाण जाननेके लिये ॥ ७१ ॥ जो राक्षस रणमें वानरवीरोंसे मारे जातेथे वह समस्त राक्षसोके द्वारा तुरत ही समुद्रमें फेक दिये जातेथे फिर भला राक्षस कैसे जियें ॥ ७२ ॥ इसके उपरान्त जब सब समस्त वानर जी गये तब अत्यन्त वेग सम्प

सर्वेविशल्याविरुजाःक्षणेनहरिप्रवीराश्चहताश्चयेस्युः ॥ गंधेनतासांप्रवरौषधीनांसुप्तानिशांतेष्विवसंप्रबुद्धाः॥ ७० ॥ यदाप्रभृतिलंकायांयुध्यंतेहरिराक्षसाः ॥ तदाप्रभृतिमानार्थमाज्ञयारावणस्यच ॥ ७१ ॥ येहन्यंतेरणेतत्रराक्षसाः कपिकुंजरैः ॥ हताहतास्तुक्षिप्यंतेसर्वएवतुसागरे ॥ ७२ ॥ ततोहरिर्गंधवहात्मजस्तुतमोषधीशैलमुदग्रवेगः ॥ निनायवेगाद्धिमवंतमेवपुनश्चरामेणसमाजगाम ॥ ७३ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रा०वा०आ०युद्धकांडेचतुःसप्ततितमःसर्गः ॥७४॥ ततोब्रवीन्महातेजाःसुग्रीवोवानरेश्वरः ॥ अर्थ्यंविज्ञापयंश्चापिहनूमंतमिदंवचः ॥ १ ॥ यतोहतःकुंभकर्णःकुमाराश्चनिषूदिताः ॥ नेदानीमुपनिर्हाररावणोदातुमर्हति ॥ २ ॥ येयेमहाबलाःसंतिलघवश्चप्लवंगमाः ॥ लंकामभिपतंत्वाशुगृह्योल्काःप्लवगर्षभाः ॥ ३ ॥

न्न गन्धवहनंदन [पवनकुमार] वानरश्रेष्ठ हनुमानजी उस औषधि पर्वतको ग्रहणकरके वेगसे हिमालय पर्वतपर जहांका तहां स्थापन करके फिर श्रीरामचंद्रजीके निकट चले आये ॥ ७३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे चतुःसप्ततितमःसर्गः ॥ ७४ ॥ इसके उपरान्त वानरराज सुग्रीवजी किसी एक कार्यको विचार करके हनुमानजीसे यह कहते हुए॥ १ ॥ जब कि कुंभकर्ण मारा गया और रावणके पुत्र भी मारे गये तिस्परभी यह रावण अपनी लंकापुरीकी रक्षा करनेमें समर्थ होगा ऐसा तो हमें ज्ञात नहीं होता ॥२॥ इसलिये इन सब वानरोंमें जो महाबलवान् और शीघ्रविक्रमकारी वानरगणहैं वह वानर गण शीघ्रही मसालें हाथमें लेकर लंकापुरीको जलावें ॥ ३ ॥

अठारह बाणोंसे नीलको और नव बाणोंसे नलनाम वानरको दूरसेही खड़े रहकर रणभूमिमें मारा ॥ ४३ ॥ उस महावीर्यवाननें सात मर्म विदारी बाणोंसे नीलको वींधडाला और पांच बाणसे संग्रामभूमिमें गजको विद्ध किया ॥४४॥ इस प्रकारसे दश बाणोंसे जाम्बवानकोव फिर तीस बाणोंसे नलको मर्माहत किया; इसके उपरान्त वानरराज सुग्रीव, ऋषभ अंगद और द्विविदको तीक्ष्ण बाणोंसें मारकर मृतकतुल्य कर दिया ॥ ४५ ॥ इस प्रकारसे उस मेघनादनें अत्यन्त घोर वरदानसे प्राप्त तीक्ष्ण बाणोंसे इन वानरोंको मारा और समस्त वानरोंकोभी असंख्य बाणोंसें मारा ॥ ४६ ॥ क्रोधसें कालाग्निकी समान मूर्छितहो उस महा पराक्रमी मेघनादनें सूर्यकी समान प्रकाशित शीघ्रगामी भली भांतिसे चलाये हुए बाणोंसे ॥ ४७ ॥

सप्तभिस्तुमहावीर्योमैंदंमर्मविदारणैः ॥ पंचभिर्विशिखैश्चैवगजंविव्याधसंयुगे ॥ ४४ ॥ जांबवंतंतुदशभिर्नीलंत्रिंशद्भिरेवच ॥ सुग्रीवमृषभंचैवसोंगदंद्विविदंतथा ॥ ४५ ॥ घोरैर्दत्तवरैस्तीक्ष्णैर्निष्प्राणानकरोत्तदा ॥ अन्यानपितदामुख्यान्वानरान्बहुभिःशरैः ॥ ४६ ॥ अर्दयामाससंक्रुद्धःकालाग्निरिवमूर्छितः ॥ सशरैःसूर्यसंकाशैःसुमुक्तैःशीघ्रगामिभिः ॥ ४७ ॥ वानराणामनीकानिनिर्ममंथमहारणे ॥ आकुलांवानरींसेनांशरजालेनपीडिताम् ॥ ४८ ॥ हृष्टःसपश्यत्प्रीत्याददर्शक्षतजोक्षिताम् ॥ पुनरेवमहातेजाराक्षसेंद्रात्मजोबली ॥ ४९ ॥ संसृज्यबाणवर्षंचशस्त्रवर्षंचदारुणम् ॥ ममर्दवानरानीकंपरितस्त्विद्राजिलद्बली ॥ ५० ॥ स्वसैन्यमुत्सृज्यसमेत्यतूर्णंमहाहवेवानरवाहिनीषु ॥ अदृश्यमानःशरजालमुग्रंववर्षनीलांबुधरोयथांबु ॥ ५१ ॥

वानरोंको एक बारही मर्दित कर डाला बाणोंसे पीड़ित होनेंके कारण व्याकुल और रुधिरसेभीगी हुई वानरोंकी सैनाको ॥ ४८ ॥ देखकर मेघनाद अत्यन्त हर्षित हुआ और फिर महातेजस्वी रावणका पुत्र मेघनाद ॥ ४९ ॥ दारुण शब्द और बाणोंकी वर्षा करके वानरोंकी सैनाको यह इन्द्रजीत सब प्रकारसे मर्दित कर कंपायमान करनें लगा ॥ ५० ॥ मेघनाद सहसा अपनी सैनाको छोड़कर वानरोंकी दृष्टिसे लोप होगया और अदृश्य रहकर नीला बादर जिस प्रकार जलकी वर्षा करताहै वैसेही वानरोंको ताककर उनके ऊपर अनिवारित बाणोंकी वर्षा करनें लगा॥५१॥

यह कह कर हनुमानजीने शृङ्ग प्रस्तर, खण्ड, मातङ्ग और सुवर्ण आदि धातुओंके उस अनेक शिखरवाले और सहस्रों धातुओंसे प्रज्वलित
शृङ्ग सानु समन्वित उस पर्वतको सहसा ग्रहण करकै अतिवेगसे उखाड़ लिया ॥ ६३ ॥ गरुड़जीकी समान अति उग्र वेगवाले हनुमानजी उस
पर्वतशृङ्गको उखाड़ आकाशमें उछल गये और सुरेन्द्र व असुरगणोंके साहित समस्त लोकोंको त्रासित करते२ असंख्य आकाशचारियोंसें स्तुति
किये जाते हुए अतिवेगसे गमन करते हुए ॥ ६४ ॥ सूर्यकी समान रूप सम्पन्न वह वीर हनुमानजी सूर्यकी समान पर्वत ग्रहण करके सूर्यके
मार्गमें उपस्थित हो दूसरें सूर्यकी समान शोभाधारण करते हुए ॥ ६५ ॥ पर्वताकार हनुमानजी उस पर्वतको ग्रहण करकै अग्निकी ज्वालासे युक्त

सतस्यशृंगंसनगंसनागंसकांचनंधातुसहस्रजुष्टम् ॥ विकीर्णकूटंज्वलिताग्रसानुंप्रगृह्यवेगात्सहसोन्ममाथ ॥ ६३ ॥
सतंसमुत्पाट्यखमुत्पपातवित्रास्यलोकान्ससुरान्सुरेंद्रान् ॥ संस्तूयमानःखचरैरनेकैर्जगामवेगाद्गरुडोग्रवेगः ॥ ६४ ॥
सभास्कराध्वानमनुप्रपन्नस्तंभास्कराभंशिखरंप्रगृह्य॥बभौतदाभास्करसन्निकाशोरवेःसमीपेप्रतिभास्कराभः॥६५॥
सतेनशैलेनभृशंरराजशैलोपमोगंधवहात्मजस्तु ॥ सहस्रधारेणसपावकेनचक्रेणखेविष्णुरिवार्पितेन ॥ ६६ ॥ तंवान
राःप्रेक्ष्यतदाविनेदुःसतानपिप्रेक्ष्यमुदाननाद ॥ तेषांसमुत्कृष्टरवंनिशम्यलंकालयाभीमतरंविनेदुः ॥ ६७॥ ततोमहा
त्मानिपपाततस्मिन्शैलोत्तमेवानरसैन्यमध्ये ॥ हर्युत्तमेभ्यःशिरसाभिवाद्यविभीषणंतत्रचसस्वजेसः ॥ ६८ ॥ ताव
प्युभौमानुषराजपुत्रौतंगंधमाघ्रायमहौषधीनाम् ॥ बभूवतुस्तत्रतदाविशल्यावुत्तस्थुरन्येचहरिप्रवीराः ॥ ६९ ॥

हाथमें सहस्र धार चक्र द्वारा शोभित विष्णुजीकी समान शोभायमान होनें लगे॥६६॥ उस कालमें लंकाके मैदान में खड़े हुए वानरगण उनको
देखकर सिंहनाद करने लगें और हनुमानजी भी उनको देखकर सिंहनाद कर उठे उस अत्यन्त दारुण शब्दको श्रवणकरकै लंका निवासी निशाचर
गणभी भयंकर घोर सिंहनाद करने लगे॥६७॥ इसके उपरान्त महाबलवान हनुमानजी पर्वतश्रेष्ठ त्रिकूटके ऊपर वानरोंकी सेनामें उतरकर मुख्य२ वा
नरोंको प्रणाम करकै बिभीषणजीको लिपटायकर मिले॥६८॥इस ओर मनुष्यराजकुमार राम और लक्ष्मणजी सब महौषधियोंकी सुगन्धि सूंघकर उसी

सैना निरुपाय और चेष्टा रहित होकर मोहको प्राप्त हुई ॥ १ ॥ तब बुद्धिमान लोगोंमें आगे गिनेजानेके योग्य विभीषणजी सबको ऐसा विषादित देखकर वानरराज सुग्रीवजीके वीरोंको अनुपम वचनोंसे समझानें बुझानें लगे ॥ २ ॥ हे वीरगण! तुम लोग डरो मत यह शोक करनेंका अवसर नहींहै, तुम जो इन्द्रजीतके बाणजालसे श्रीराम लक्ष्मणजीको व्याकुल और मृतक देखतेहो भगवान स्वयंभू ब्रह्माजीका सन्मानही करनेंके लिये श्रीराम लक्ष्मणजीनें ऐसा कियाहै ॥ ३ ॥ स्वयंभू ब्रह्माजीनें इन्द्रजीतको यह बड़ा भारी अमोघ (अन्यर्थ) वीर्य वाला ब्रह्मास्त्र दान कियाहै, यह दोनों राजकुमार इस अस्त्रकी मर्यादा रक्षा करनेंके लियेही ऐसी अवस्थाको प्राप्त होकर गिरे हैं, जो कुछभी हो

ततोविषण्णंसमवेक्ष्यसर्वंविभीषणोबुद्धिमतांवरिष्ठः ॥ उवाचशाखामृगराजवीरानाश्वासयन्नप्रतिमैर्वचोभिः ॥ २ ॥ माभैष्टनास्त्यत्रविषादकालोयदार्यपुत्रौह्यवशौविषण्णौ ॥ स्वयंभुवोवाक्यमथोद्वहंतौयत्सादिताविंद्रजितास्त्रजालैः ॥ ३ ॥ तस्मैतुदत्तंपरमास्त्रमेतत्स्वयंभुवाब्राह्मममोघवीर्यम् ॥ तन्मानयंतौयुधिराजपुत्रौनिपातितौकोऽत्रविषादकालः ॥ ४ ॥ ब्राह्ममस्त्रंततोधीमान्मानयित्वातुमारुतिः ॥ विभीषणवचःश्रुत्वाहनूमानिदमब्रवीत् ॥ ५ ॥ अस्मिन्नस्त्रहतेसैन्येवानराणांतरस्विनाम् ॥ योयोधारयतेप्राणांस्तंतमाश्वासयावहे ॥ ६ ॥ तावुभौयुगपद्वीरौहनूमद्राक्षसोत्तमौ ॥ उल्काहस्तौतदारात्रौरणशीर्षेविचेरतुः ॥ ७ ॥ भिन्नलांगूलहस्तोरुपादांगुलिशिरोधरैः ॥ स्रवद्भिःक्षतजंगात्रैःप्रस्रवद्भिःसमंततः ॥ ८ ॥

फिर इसमें शोक करनेंका या घवड़ानेंका क्या कारणहै? ॥ ४ ॥ पवन कुमार हनुमानजी विभीषणजीके वचन सुनकर उनकाही कही ब्रह्मास्त्रकी मर्यादाको "यथार्थ है" ऐसा कहतेहुए बोले ॥५॥ हे राक्षसकुलतिलक! राक्षस वीर इन्द्रजीतके चलाये हुए ब्रह्मास्त्रसे लग भग हमारी समस्त सैना मारी गई है; इस समय जो वानर कि जीवितहैं उनको समझाना बुझाना हमारा कर्तव्यहै ॥ ६ ॥ इसके उपरान्त हनुमानजी और विभीषणजी यह दोनों वीर उस रात्रिमें मसाल हाथमें लेकर रणभूमिमें घूमनें लगे ॥७॥ उन्होंने रणभूमिमें घूमते हुए देखा कि हाथ जांघ, पैर, उंगली, मस्तक और पूंछ कटे हुए अनेक वानर रणभूमिमें पड़े हुए हैं; वहुत वानरोंके शरीरसे रुधिरकी धारा वहरहीहै; किसी २ वानरका भयके मारे पयःस्राव

ग्रीष्म कालमें दामिनीसे विराजित घटाकी समान प्रकाश पानेंलगे अग्नि लगनेंसे प्रकाशित समस्त गृह ॥ २२ ॥ दावाग्निसे प्रकाशित महापर्वतके शिखरोंकी समान शोभायमान होंनेलगे, समस्त विमानोमें सोती हुई श्रेष्ठस्त्रियें अग्निसे जलती हुई ॥ २३ ॥ सब अंगोंसे गहना निकाल २ कर ऊंचे शब्दसे हाहाकार करके रोदन करनें लगीं! अग्निसे जलाये समस्त भवन भी ॥ २४ ॥ इन्द्रके वज्रसे आहत हुए महापर्वतोंके शृङ्गोंकी समान गिरनें लगे वह भस्म हुए समस्त धवरहर दूरसे ऐसे प्रकाशित होतेथे ॥ २५ ॥ कि मानों जलते हुए हिमवान पर्वतके शिखर जल रहेहैं. ज्वालासे प्रज्वलित हर्म्यादिकोंके भस्म होंनेंसे ॥ २६ ॥ फूले हुए पलाशके वृक्षोंसे पूर्ण रात्रिमें वह समस्त लंकानगरी ज्ञात होंने लगी।

विद्युद्भिरिवनद्धानिमेघजालानिधर्मगे ॥ ज्वलनेनपरीतानिगृहाणिप्रचकाशिरे ॥ २२ ॥ दावाग्निदीप्तानियथाशिखराणिमहागिरेः ॥ विमानेषुप्रसुप्ताश्चदह्यमानावरांगनाः ॥ २३ ॥ त्यक्ताभरणसंयोगाहाहेत्युच्चैर्विचुक्रुशुः ॥ तत्रचाग्निपरीतानिनिपेतुर्भवनान्यपि ॥ २४ ॥ वज्रिवज्रहतानीवशिखराणिमहागिरेः ॥ तानिनिर्दह्यमानानिदूरतःप्रचकाशिरे ॥ २५ ॥ हिमवच्छिखराणीवदह्यमानानिसर्वशः ॥ हर्म्याग्रैर्दह्यमानैश्चज्वालाप्रज्वलितैरपि ॥ २६ ॥ रात्रौसादृश्यतेलंकापुष्पितैरिवकिंशुकैः ॥ हस्त्यध्यक्षैर्गजैर्मुक्तैर्मुक्तैश्चतुरगैरपि ॥ बभूवलंकालोकांतेभ्रांतग्राहइवार्णवः ॥ २७ ॥ अश्वंमुक्तंगजोदृष्ट्वाक्वचिद्भीतोपसर्पति ॥ भीतोभीतंगजंदृष्ट्वाक्वचिदश्वोनिवर्तते ॥ २८ ॥ लंकायांदह्यमानायांशुशुभेचमहोदधिः ॥ छायासंसक्तसलिलोलोहितोदइवार्णवे ॥ २९ ॥ साबभूवमुहूर्तेनहरिभिर्दीपितापुरी ॥ लोकस्यास्यक्षयेघोरेप्रदीप्तेववसुंधरा ॥ ३० ॥

उस कालमें अध्यक्ष लोगोंनें अग्निके भयसे भीत होकर हाथी और घोड़ोंको उनके थान परसे खोल दिया, उस समय ऐसा जाना गया मानों लंका पुरी महा प्रलयमें घूमते हुए ग्राह मकरादिसे पूर्ण महा समुद्रकी समान होगई है ॥ २७ ॥ किसी स्थानमें हाथी घोड़ोंको खुला हुआ देखकर भागनें लगा और कहीं डरे हुए हाथियोंको देख घोड़ाही लौट पड़ता था ॥ २८ ॥ जबकि लंका नगरी इस प्रकारसे दग्ध होगई, तब अग्निकी शिखाओंकी परछांई समुद्रके जलमें पड़नेंसे समुद्र लाल समुद्रकी समान जान पड़ताथा ॥ २९ ॥ अधिक क्या कहैं वानर गणों करके दीप्तिमान

होगयाहै ॥ ८ ॥ पर्वताकार प्रधान २ वानरोंके गिरनेंसे रणभूमि परिपूर्ण होरहीहै और बहुतसारे अस्त्र शस्त्रभी टूटेफूटेहुए पड़ेहैं ॥ ९ ॥ सुग्रीव, अंगद, नील, शरभ, गन्धमादन, जाम्बवन्त सुषेण और वेगदर्शी ॥ १० ॥ मैन्द, नल ज्योतिर्मुख और द्विविद वानरोंकोंभी हनुमान और विभीषण जीनें रणभूमिमें मृतक हुए देखा ॥ ११ ॥ इस संग्रामके मध्यम दिनके पांचमें भागमें अर्थात् छैः घड़ीमें ब्रह्माजीके अस्त्रसे रावणके पुत्र मेघनादनें सड़सठ करोड वानरोंको मार डालाथा; उन सबको उन दोनों वीरोंनें देखा ॥१२॥ हनुमानजी विभीषणजीके सहित समुद्रके प्रवाहकी समान विस्तारवाली भयंकर वानर सैनाकी यह दशा देखकर जाम्बवानको खोजनें लगे ॥ १३ ॥ बहुत ढूंढ भाल करनेंके पीछे शीघ्र बुझनेंवाली अग्निके

पतितैःपर्वताकारैर्वानरैरभिसंवृताम् ॥ शस्त्रैश्चपतितैर्दीप्तैर्ददृशातेवसुंधराम् ॥ ९ ॥ सुग्रीवमंगदंनीलंशरभंगंधमादनम् ॥ जांबवंतंसुषेणंचवेगदर्शिनमेवच ॥ १० ॥ मैंदंनलंज्योतिमुखंद्विविदंचापिवानरम् ॥ विभीषणोहनूमांश्चददृशातेहतान्रणे ॥ ११ ॥ सप्तषष्टिर्हताःकोट्योवानराणांतरस्विनाम् ॥ अह्नःपंचमशेषेणवल्लभेनस्वयंभुवः ॥ १२ ॥ सागरौघनिभंभीमंदृष्ट्वाबाणार्दितंबलम् ॥ मार्गतेजांबवंतंचहनूमान्सविभीषणः ॥ १३ ॥ स्वभावजरयायुक्तंवृद्धंशरशतैश्चितम् ॥ प्रजापतिसुतंवीरंशाम्यंतमिवपावकम् ॥ १४ ॥ दृष्ट्वासमभिसंक्रम्यपौलस्त्योवाक्यमब्रवीत् ॥ कच्चिदार्यशरैस्तीक्ष्णैर्नप्राणाध्वंसितास्तव ॥ १५ ॥ विभीषणवचःश्रुत्वाजांबवानृक्षपुंगवः ॥ कृच्छ्रादभ्युद्गिरन्वाक्यमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १६ ॥ नैर्ऋतेंद्रमहावीर्यस्वरेणत्वाभिलक्षये ॥ विद्धगात्रःशितैर्बाणैर्नत्वांपश्यामिचक्षुषा ॥ १७ ॥

समान सेकड़ों हजारों बाणोंसे विंधेहुए जराग्रसित वृद्ध प्रजापतिके पुत्र वीर जाम्बवानको ॥ १४ ॥ देखकर पौलस्त्य विभीषणभी उनके समीप जायकर बोले कि हे आर्य ! इस दारुण तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षासे आपके कहीं चोट तौ नहीं लगी ॥ १५ ॥ विभीषणजीके वचन सुनकर ऋक्षश्रेष्ठ जाम्बवानजी अत्यन्त कष्टसे वचन उच्चारण कर कहनेंलगे ॥ १६ ॥ हे महावीर्यवान ! तीखे बाणोंसे हमारा शरीर ऐसा विद्ध हुआहै; कि हम आपको अपने नेत्रोंसे देखभी नहीं सकतेहैं; केवल आपका बोल सुनकर ही हम आपको राक्षसोंका स्वामी विभीषण मानते हैं ॥ १७ ॥

की हुई वह लंकापुरी एक मुहूर्त भरमें प्रलय कालमें प्रदीप्त हुई पृथ्वीकी समान भस्म होगई ॥ ३० ॥ उस कालमें अग्निसे संतापित धुएंसे व्याप्त और रुदन करती हुई राक्षसोंकी स्त्रियोंका शब्द सौ योजनसे सुनाई आनें लगा ॥ ३१ ॥ उस समय जले अध जले जो राक्षस भागकर लंकाके बाहर को आतेथे युद्ध करनेंके लिये वानर वृन्द उनके सन्मुख जायर कर उनको मारनें लगे॥३२॥उस कालमें वानर लोगोंके उद्योगसे और निशाचरगणोंके शब्दसे दशोंदिशा समुद्र, और समस्त पृथ्वी शब्दायमान होनें लगी ॥३३॥ इस ओर दोनों राज कुमार महात्मा श्रीराम लक्ष्मणजी घाव रहित व सावधान चित्तहो दोनोंनें श्रेष्ठ धनुष धारण किये ॥ ३४ ॥ उसके उपरान्त श्रीरामचंद्रजीनें जब अपनें बड़ेभारी उत्तम धनुषपर टंकोरदी तब राक्षस

नारीजनस्यधूमेनव्याप्तस्योच्चैर्विनेदुषः ॥ स्वनोज्वलनतप्तस्यशुश्रुवेशतयोजनम् ॥ ३१ ॥ प्रदग्धकायानपरान्रा क्षसान्निर्गतान्बहिः ॥ सहसाभ्युत्पतंतिस्महरयोथयुयुत्सवः ॥ ३२ ॥ उद्घुष्टंवानराणांचराक्षसानांचनिःस्वनम् ॥ दिशो दशसमुद्रंचपृथिवींचव्यनादयत् ॥ ३३ ॥ विशल्यौचमहात्मानौतावुभौरामलक्ष्मणौ ॥ असंभ्रांतौजगृहतुस्तेउभे धनुषीवरे ॥ ३४ ॥ ततोविस्फारयामासरामश्चधनुरुत्तमम् ॥ बभूवतुमुलःशब्दोराक्षसानांभयावहः ॥ ३५ ॥ अशो भततदारामोधनुर्विस्फारयन्महत् ॥ भगवानिवसंक्रुद्धोभवोवेदमयंधनुः ॥ ३६ ॥ उद्घुष्टंवानराणांचराक्षसानांच निःस्वनम् ॥ ज्याशब्दस्तावुभौशब्दावतिरामस्यशुश्रुवे ॥ ३७ ॥ वानरोद्घुष्टघोषश्चराक्षसानांचनिःस्वनः ॥ ज्याश ब्दश्चापिरामस्यत्रयंव्यापदिशोदश ॥ ३८ ॥

लोगोंका भयावह कठोर शब्द होनें लगा ॥ ३५ ॥ जिस समय श्रीरामचंद्रजीनें बड़ेभारी धनुषपर टंकोरदी; तब उस समय वह संहार कालमें शब्द ब्रह्मात्मक वेदमय धनु विस्फारण कारी भगवान भवानी पतिकी समान जान पड़नें लगे॥ ३६ ॥ वानरोंके गर्जन करनें और राक्षसोंके रोदन करनेंका शब्द और श्रीरामचंद्रजीके धनुषकी टंकारका शब्द यह तीनों शब्द एक दूसरेको मूंद लेते हुएसे सुनाई देतेथे ॥ ३७ ॥ और वानर गणोंका गर्जना, निशाचर गणोंका रोना और श्रीरामचंद्रजीके धनुषके टंकोर यह तीनो शब्द दशों दिशाओंमें व्याप्त होगये॥ ३८ ॥

हे सुव्रत! जिनको पुत्र प्राप्त करके अंजनी सुपुत्रवती हुई है और पवन देव पुत्रवान् हुएहैं वह वानरश्रेष्ठ हनुमान् क्या जीवित हैं? ॥१८॥ जाम्बवानके वचन सुनकर बिभीषणजी बोले हे आर्य ! आप आर्यपुत्र श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजीको छोड़कर प्रथम किस कारणसे हनुमानजीका वृत्तान्त पूछते हैं? ॥ १९ ॥ आपने रघुनंदन, वानर सुग्रीवजी अथवा अंगदजीके प्रति स्नेहानुराग न दिखाकर हनुमानजीमें जो ऐसा स्नेह प्रकाश किया इसका कारण क्याहै ? ॥ २० ॥ बिभीषणजीके वचन सुनकर जाम्बवन्तजीनें कहा; हे राक्षसशार्दूल! हमनें जिस कारणसे और सबको छोड़कर केवल हनुमानजीका वृत्तान्त पूछा, उसका कारण श्रवण करो ॥ २१ ॥ यद्यपि यह वानरोंकी सेना मारी तो गईहै, परन्तु वीर

अंजनासुप्रजायेनमातरिश्वाचसुव्रत ॥ हनूमान्वानरश्रेष्ठःप्राणान्धारयतेक्वचित् ॥ १८ ॥ श्रुत्वाजांबवतोवाक्यमुवाचेदंविभीषणः ॥ आर्यपुत्रावतिक्रम्यकस्मात्पृच्छसिमारुतिम् ॥ १९ ॥ नैवराजनिसुग्रीवेनांगदेनापिराघवे ॥ आर्यसंदर्शितःस्नेहोयथावायुसुतेपरः ॥ २० ॥ विभीषणःवचःश्रुत्वाजांबवान्वाक्यमब्रवीत् ॥ शृणुनैर्ऋतशार्दूलयस्मात्पृच्छामिमारुतिम् ॥ २१ ॥ अस्मिन्जीवतिवीरेतुहतमप्यहतंबलम् ॥ हनूमत्युज्झितप्राणेजीवंतोपिमृतावयम् ॥ २२ ॥ धरतेमारुतिस्तातमारुतप्रतिमोयदि ॥ वैश्वानरसमोवीर्येजीविताशाततोभवेत् ॥ २३ ॥ ततोवृद्धमुपागम्यविनयेनाभ्यवादयत् ॥ गृह्यजांबवतःपादौहनूमान्मारुतात्मजः ॥ २४ ॥ श्रुत्वाहनूमतोवाक्यंतदाविव्यथितेंद्रियः ॥ पुनर्जातमिवात्मानंमन्यतेप्लवगोत्तमः ॥ २५ ॥

श्रेष्ठ वानर हनुमानजीके जीवित रहते, हम किसीको भी मरा हुआ नहीं समझते परन्तु पवनकुमार हनुमानजीके मर जानेंसे हम लोग जीतेहुए भी मरेही हैं॥ २२ ॥ इस्से जो हनुमान जीवितहों तब हमें जीवनकी आशा होगी नहीं तो जीना क्याहै कारणकि वह पवनकी समान,समरमें वेगवान हैं और वीर्यमें अग्निको समान हैं हेतात! हनुमानजीका जीना सुनकर फिर हमें जीनेंकी आशा होगी ॥ २३ ॥ तब महावीर हनुमानजी वृद्ध जाम्बवानके निकट जायकर उनके चरण पकड़ विनीत भावसे प्रणाम करके अपना नाम बतायकर बोले कि हम आपकी कृपासे जीतेंहैं॥२४॥ तब हनुमानजीके वचन सुनकर रीछराज अत्यन्त कातर रहनेंपरभी आनन्दके मारे अत्यन्त हर्षित हो अपना दूसरा जन्म समझतेहुए ॥२५॥

श्रीरामचंद्रजीके धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे उस लंका पुरीके कैलास पर्वतके शिखरकी समान फाटक चूर्ण होकर पृथ्वीमें गिर पडे ॥ ३९ ॥ इस ओर विमान और गृहोकों गिरता हुआ व श्रीरामचंद्रजीके बाणोंको देख राक्षस श्रेष्ठोमें भी कठोर युद्धकी तैयारियां होनें लगी ॥ ४० ॥ जब राक्षस श्रेष्ठ गण सिंहनाद करके संग्राम करनेंके लिये तैयार होनें लगे तब उस समय यह रात्रि कालरात्रिकी समान जान पड़नें लगी ॥ ४१ ॥ इसी अवसरमें महा बलवान् वानर सुग्रीवजीनें वानर श्रेष्ठोंको यह आज्ञादी कि "हे वानर गण ! तुम लोगोंमेंसे जो वानर जिस द्वारके निकटहो वही उसी द्वारपर युद्ध करे ॥ ४२ ॥ श्रेणी [मोरचा] पर उपस्थित रहकर भी जो हमारी आज्ञाका निरादर करैगा, राजाज्ञाके अनादर करनेंवाले उस

तस्यकार्मुकनिर्मुक्तैःशरैस्तत्पुरगोपुरम् ॥ कैलासशृंगप्रतिमंविकीर्णमभवद्भुवि ॥ ३९ ॥ ततोरामशरान्दृष्ट्वाविमानेषुगृहेषुच ॥ सन्नाहोराक्षसेंद्राणांतुमुलःसमपद्यत ॥ ४० ॥ तेषांसन्नह्यमानानांसिंहनादंचकुर्वताम् ॥ शर्वरीराक्षसेंद्राणांरौद्रीवसमपद्यत ॥४१॥ आदिष्टावानरेंद्रास्तेसुग्रीवेणमहात्मना ॥ आसन्नंद्वारमासाद्ययुध्यध्वंचप्लवंगमाः ॥४२॥ यश्चवोवितथंकुर्यात्तत्रतत्राप्युपस्थितः ॥ सहंतव्योभिसंप्लुत्यराजशासनदूषकः ॥ ४३ ॥ तेषुवानरमुख्येषुदीप्तोल्कोज्वलपाणिषु ॥ स्थितेषुद्वारमाश्रित्यरावणंक्रोधआविशत् ॥ ४४ ॥ तस्यजृंभितविक्षेपाद्व्यामिश्रावैदिशोदश ॥ रूपवानिवरुद्रस्यमन्युर्गात्रेष्वदृश्यत ॥ ४५ ॥ सकुंभंचनिकुंभंचकुंभकर्णात्मजावुभौ ॥ प्रेषयामाससंक्रुद्धोराक्षसैर्बहुभिःसह ॥ ४६ ॥ यूपाक्षःशोणिताक्षश्चप्रजंघःकंपनस्तथा ॥ निर्ययुःकौंभकर्णाभ्यांसहरावणशासनात् ॥ ४७॥ शशासचैवतान्सर्वान्राक्षसान्समहाबलान् ॥ राक्षसागच्छताद्यैवसिंहनादंचनादयन् ॥ ४८ ॥

वानरको निःसन्देह मार डालेंगे" ॥ ४३ ॥ इसके उपरान्त जब वह मुखियार वानर लूके हाथमें लिये सब द्वारोंको घेरेहुये खड़े रहे तब निशाचरराज रावणको अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हुआ ॥४४॥ जब रावणनें जंभाई ली तब दशोंदिशा कलुषित होगई और प्रलयकालीन रुद्रके रूपवान् क्रोधके समान रावणके शरीरमें भी क्रोधके चिह्न दिखाई देनें लगे ॥ ४५ ॥ तिसके उपरान्त निशाचरपति रावणनें क्रोधमें भरकर कुंभकर्णके पुत्र कुंभ और निकुंभको बहुत निशाचरोंके साथ युद्ध करनेंके लिये भेजा ॥ ४६ ॥ रावणकी आज्ञाके अनुसार, यूपाक्ष, शोणिताक्ष, प्रजङ्घ और कंपन नामक चार राक्षस इन कुंभकर्णके दो पुत्रोंके साथ चले ॥ ४७ ॥ तब उस समय रावणनें राक्षसोंका भय दूर करनेंके लिये सिंहनाद करके उन महाबल

इसके उपरान्त महातेजमान् जाम्बवानजी हनुमानजीसे बोले कि हेवानरश्रेष्ठ! आओ प्रथम इन सब वानरोंकी रक्षा करना तुम्हारा कर्तव्यहैं ॥ २६॥ हेवीर! इस समय हम और किसीको नहीं देखते केवल तुमही इन लोगोंके परम सखा हो और तुम्हारा पराक्रमही इन लोगोका उद्धार करनेमें यथेष्ट होगा, विशेष करकै इस समय तुम्हारे उस पराक्रम प्रकाश करनेंका समय आयाहै ॥ २७ ॥ रीछ और वानरवीरगणोंकी इस समस्त सैनाको हर्षित कराओ और पीड़ित हुए श्रीराम, व लक्ष्मणजीके अंगोंमेंसे वाण निकाल डालो ॥ २८ ॥ हे शत्रुदमनकारी हनुमान्! तुम इस समय महासमुद्रके पार बहुत दूरतक गमन करकै पर्वतश्रेष्ठ हिमालयपर पहुँचोगे ॥ २९ ॥ इसके आगे सुवर्णमय ऋषभनाम पर्वतश्रेष्ठहै; हे शत्रु

ततोब्रवीन्महातेजाहनूमंतंसजांबवान् ॥ आगच्छहरिशार्दूलवानरांस्त्रातुमर्हसि ॥ २६ ॥ नान्योविक्रमपर्याप्तस्त्वमे षांपरमःसखा ॥ त्वत्पराक्रमकालोयंनान्यंपश्यामिकंचन ॥ २७ ॥ ऋक्षवानरवीराणामनीकानिप्रहर्षय ॥ विशल्यौ कुरुचाप्येतौसादितौरामलक्ष्मणौ ॥ २८ ॥ गत्वापरममध्वानमुपर्युपरिसागरम् ॥ हिमवंतंनगश्रेष्ठंहनूमन्गंतुमर्ह सि ॥ २९ ॥ ततःकांचनमत्युग्रमृषभंपार्वतोत्तमम् ॥ कैलासशिखरंचात्रद्रक्ष्यस्यरिनिषूदन ॥ ३० ॥ तयोःशिखरयो र्मध्येप्रदीप्तमतुलप्रभम् ॥ सर्वौषधियुतंवीरद्रक्ष्यस्योषधिपर्वतम् ॥ ३१ ॥ तस्यवानरशार्दूलचतस्रोमूर्ध्निसंभवाः ॥ द्रक्ष्यस्योषधयोदीप्तादीपयंतीर्दिशोदश ॥ ३२ ॥ मृतसंजीवनींचैवविशल्यकरणीमपि ॥ सुवर्णकरणींचैवसंधानीं चमहौषधीम् ॥ ३३ ॥ ताःसर्वाहनुमन्गृह्यक्षिप्रमागंतुमर्हसि ॥ आश्वासयहरीन्प्राणैर्योज्यगंधवहात्मज ॥ ३४ ॥

दमनकारी! वहां पर तुम कैलासपर्वतके शिखरभी देखोगे ॥ ३० ॥ वहांपर इन दोनों शिखरोंके मध्यमें समस्त औषधियोंसे युक्त अतुल प्रभा युक्त और प्रदीप्त ओषधि पर्वत तुमको दिखाई देगा ॥ ३१ ॥ हे वानरशार्दूल! तुम उस पर्वतके शिखर पर चार प्रकारकी ओषधि देख पाओगे, तुम देखोगे कि वह अपने प्रभावसे दशों दिशाओंको प्रकाशमान कर रही होंगी ॥ ३२ ॥ उनके मृतसञ्जीवनी [मरे हुएको जिलानें वाली] विशल्यकरणी [अंगोंकी व्यथा दूर करनेंवाली] सुवर्णकरिणी, [घाव आदिकसे हुई विवर्णताको दूरकर अंग सुन्दर करतीहै] और सन्धानकरणी, [लगातेही घावको भर देती है] यह चार नामहैं ॥३३॥ हे गन्धवह [पवन] नन्दन हनुमान्! तुम इन सब औषधियोंको जितनी

वान् राक्षसोंसे कहा "हे निशाचर गण ! तुम सब इस रात्रिमेंही युद्ध करनेंके लिये जाओ" ॥ ४८ ॥ राक्षसगण राक्षसराज रावण करके इस प्रका रसे युद्धमें भेजे जाकर आयुध उठाय वारंवार सिंहनाद करते हुए लंकासे निकले ॥ ४९ ॥ तब राक्षसोंके धारण कियेहुए अलंकारोंसे और शरीरोंके कांतिसें और वानरोने पकडेहुये उल्कासे आकाश प्रकाशित होगया ॥ ५० ॥ ऊपरसे चंद्रमा और तारागण व नीचे वानर राक्षसोंके भूषणोंकी प्रकाशमय कांतिसे दोनों सैनाओंके बीचमें टिकाहुआ आकाश प्रदीप्तमान होगया ॥ ५१ ॥ चंद्रमाकी चांदनी गहनोंकी कांति

ततस्तुचोदितास्तेनराक्षसाज्वलितायुधाः ॥ लंकायांनिर्ययुर्वीराःप्रणदंतःपुनःपुनः ॥ ४९ ॥ रक्षसांभूषणस्थाभिर्भाभिःस्वाभिश्चसर्वशः ॥ चक्रुस्तेसप्रभंव्योमहरयश्चाग्निभिःसह ॥ ५० ॥ तत्रताराधिपस्याभाताराणांभातथैव च ॥ तयोराभरणाभाचज्वलिताद्यामभासयत् ॥ ५१ ॥ चंद्राभाभूषणाभाचग्रहाणांज्वलिताचभा ॥ हरिराक्षससैन्यानिभ्राजयामाससर्वतः ॥ ५२ ॥ तत्रचार्धप्रदीप्तानांगृहाणांसागरःपुनः ॥ भाभिःसंसक्तसलिलश्चलोर्मिःशुशुभेध्रुवम् ॥ ५३ ॥ पताकाध्वजसंयुक्तमुत्तमासिपरश्वधम् ॥ भीमाश्वरथमातंगंनानापत्तिसमाकुलम् ॥ ५४ ॥ दीप्तशूलगदाखड्गप्रासतोमरकार्मुकम् ॥ तद्राक्षसबलंभीमंघोरविक्रमपौरुषम् ॥ ५५ ॥ ददृशेज्वलितप्रासंकिंकिणीशतनादितम् ॥ हेमजालाचितभुजंव्यावेष्टितपरश्वधम् ॥ ५६ ॥

और जलतेहुए भवनोंकी अग्नि;यह सब वानर और राक्षसोंको प्रकाशित करनें लगीं ॥ ५२ ॥ अग्निसे जलतेहुए गृहोंकी दीप्तिकी परछांई जब समुद्रके जलमें पडी तब चंचल तरंग माला शोभित समुद्र और भी अधिक शोभायमान हुआ ॥ ५३ ॥ ध्वजा पताकासंयुक्त, उत्तम खड्ग, फरसासहित, भयंकर घोड़े व हाथियोंके साथ अनेक प्रकारके पैदलोंके सहित ॥ ५४ ॥ प्रदीप्त शूल, गदा खड्ग, प्राश, तोमर, धनुष ऐसे राक्षसोंकी घोर विक्रमकारी और पौरुषयुक्त सैनाको ॥ ५५ ॥ प्रकाशमान देखा वह सैना शत २ किङ्किणीनिनादित, प्रज्वलित कुठार और सुवर्ण भूषणसे

जलदी लासकते हो, उतनी जलदी लेआओ, और वानरोंको प्राणदान देकर इन लोगोंको आनंदित करो ॥ ३४ ॥ उस समय पवननंदन हनुमानजी जाम्बवन्तके वचन सुनकर पवनके वेगसे जिस प्रकार समुद्र उफनजाताहै, वैसेही प्रबल वेगसे आपभी उद्धतहो उठे ॥ ३५॥ इसके उपरान्त कूदनेंके लियेही जब यह त्रिकूट पर्वतके आगे खड़े हुए तब दूसरे पर्वतके समान जानपड़तेथे ॥ ३६ ॥ तिस काल वानरश्रेष्ठ हनुमानजीके पांवों द्वारा अत्यन्त पीड़ित होंनेसे वह पर्वत अपने स्थानमें रहनेंको असमर्थ हो टूटकर झुक पड़ा ॥ ३७ ॥ वानर श्रेष्ठ हनुमानजीके वेगसे पीड़ित होंनेसे उस पर्वतके समस्त वृक्ष पृथ्वीपर गिर पड़े और उसके समस्त शिखर फटगये कि जिनसे अग्नि निकलनेंलगी और सब शृङ्गभी फट

श्रुत्वाजांबवतोवाक्यंहनूमान्मारुतात्मजः ॥ आपूर्यतबलोद्धर्षैर्वायुवेगैरिवार्णवः ॥३५॥ सपर्वततटाग्रस्थःपीडयन्पर्वतोत्तमम् ॥हनूमान्दृश्यतेवीरोद्वितीयइवपर्वतः ॥३६॥ हरिपादविनिर्भग्नोनिषसादसपर्वतः ॥ नशशाकतदात्मानंवोढुंभृशनिपीडितः॥३७॥तस्यपेतुर्नगाभूमौहरिवेगाच्चजज्वलुः ॥ शृंगाणिचव्यकीर्यंतपीडितस्यहनूमता ॥ ३८ ॥ तस्मिन्संपीड्यमानेतुभग्नद्रुमशिलातले ॥ नशेकुर्वानराःस्थातुंघूर्णमानेनगोत्तमे ॥ ३९ ॥ साघूर्णितमहाद्वाराप्रभग्नगृहगोपुरा ॥ लंकात्रासाकुलारात्रौप्रनृत्येवाभवत्तदा॥४०॥ पृथिवीधरसंकाशोनिपीड्यपृथिवीधरम् ॥ पृथिवींक्षोभयामाससार्णवांमारुतात्मजः ॥ ४१ ॥ पद्भ्यांतुशैलमाविध्यवडवामुखवन्मुखम् ॥ विवृत्योग्रंननादोच्चैस्त्रासयन्रजनीचरान् ॥ ४२ ॥ तस्यनानद्यमानस्यश्रुत्वानिनदमुत्तमम् ॥ लंकास्थाराक्षसव्याघ्रानशेकुःस्पंदितुंकचित् ॥ ४३ ॥

गये ॥ ३८ ॥ इस प्रकार पर्वतश्रेष्ठ त्रिकूटके सब वृक्ष टूट गये शिलाओंका चूरा होगया, और वह पर्वतभी पीड़ित होकर घूमनेंलगा; उस पर्वतके रहनेंवाले वानर लोग उस पर नहीं टिकसके ॥ ३९ ॥ लंकाके गृह और पुरद्वार टूट गये, और कंपायमान होनेलगे सबही शंकायुक्त हुए; उस समय ऐसा ज्ञात हुआ कि मानों राक्षसोंकी पुरी लंका नाच रहीहै ॥ ४० ॥ पर्वताकार वानरवीर पवनकुमार पर्वतको पीड़ित करके समस्त पृथ्वीको समुद्रके सहित चलायमान कर देते हुए ॥ ४१ ॥ हनुमानजी चरणके आघातसे पृथ्वीको विदीर्ण करके घोड़ीके मुखकी समान प्रदीप्त मुख फैलाय राक्षसोंको शंकित करके घोर गर्जन करनेंलगे ॥ ४२ ॥ लंकामें टिकेहुए राक्षसलोग अचानक कठोर गर्जन सुन

भूषित बाहु और प्रज्वलित भालेंसे युक्त ॥ ५६ ॥ महाशस्त्रोंको घुमाते हुए धनुष पर बाण चढ़ाते हुए, गन्धमाला व पवनकी मधुकमोहकेसं मोदित करते ॥ ५७ ॥ शूरगणोंके भरे रहनेसे अतिघोर महा मेघके गर्जनकी समान शब्द करती ऐसी दुर्द्धर्ष राक्षसोंकी सैना आई हुई देखकर ॥ ५८ ॥ वानरोंकी सैनानें विचलित होकर ऊंचे स्वरसे सिंहनाद किया। फिर उस राक्षसोंकी बड़ी भारी सैनाके वीचमें ॥ ५९ ॥ अतिवेगसे कूद पड़े कि जैसे पतंगे अग्निमें कूद पड़तेहैं तिन राक्षस लोगोंके भुजोंके व्यापारसे कंपायमान,किये गये वज्र व अशनिसें युक्त ॥ ६० ॥

व्याघूर्णितमहाशस्त्रंबाणसंसक्तकार्मुकम् ॥ गंधमाल्यमधूत्सेकसंमोदितमहानिलम् ॥ ५७ ॥ घोरंशूरजनाकीर्णमहां बुधरनिःस्वनम् ॥ तदृष्ट्वाबलमायातंराक्षसानांदुरासदम् ॥ ५८ ॥ संचचालप्लवंगानांबलमुच्चैर्ननादच ॥ जवेनाप्लुत्यच पुनस्तद्बलंरक्षसांमहत् ॥ ५९ ॥ अभ्ययात्प्रत्यरिबलंपतंगाइवपावकम् ॥ तेषांभुजपरामर्शव्यामृष्टपरिघाश नि ॥ ६० ॥ राक्षसानांबलंश्रेष्ठंभूयःपरमशोभत ॥ तत्रोन्मत्ताइवोत्पेतुर्हरयोथयुयुत्सवः ॥ ६१ ॥ तरुशैलैरभिघ्नं तोमुष्टिभिश्चनिशाचरान् ॥ तथैवापततांतेषांहरीणांनिशितैःशरैः ॥ ६२ ॥ शिरांसिसहसाजह्रुराक्षसाभीमविक्रमाः ॥ दशनैर्हृतकर्णाश्चमुष्टिभिर्भिन्नमस्तकाः ॥ शिलाप्रहारभग्नांगाविचेरुस्तत्रराक्षसाः ॥ ६३ ॥ तथैवाप्यपरेतेषांकपीनाम सिभिःशितैः ॥ प्रवरानभितोजघ्नुर्घोररूपानिशाचराः ॥ ६४ ॥

राक्षसोंकी सैना फिर अत्यन्त शोभित हुई। इसके उपरान्त युद्ध करनेंके लिये तैयार वानरलोग उन्मत्तकी समान ॥ ६१ ॥ वृक्ष शैल, मूकोंसे कूद २ कर निशाचरोंको मारनें लगे। तब उन कूद २ कर आते हुए वानरोंके तीक्ष्ण बाणोंसे ॥ ६२ ॥ भयंकरविक्रमकारी राक्षस लोग शिर का टनें लगे निशाचरलोग वानर लोगोंके दांतोंसे काटे जाकर कर्ण रहित मूकोंके मारनेंसे शिर रहित और शिलाओंके प्रहारसे अंग भंगहो उस रण भूमिमें विचरण करनेंलगे ॥६३॥ व दूसरी ओरसे घोर रूप निशाचर गणोंने भी तीक्ष्ण खड्गसे मुख्य२वानरोंका संहार करना आरंभ किया ॥ ६४ ॥

धनु, और वसुन्धराकी नाभि, अर्थात् सब प्राजापत्यस्थानोंको देखा ॥५६॥ [महावीर पवनकुमार हनुमानजीनें उस हिमालय पर विघ्नेश्वर (गणेशजी) नंदिकेश्वर, देवता लोगोंसे वेष्टित कुमार कार्तिकेय और कन्या गणोंके साथमें दीप्तिमती हैमवती (दुर्गाजीको) देखा] इसके उपरान्त हिमवत शिखर कैलास; जाम्बवन्तके बताये हुए वृक्ष पर्वत श्रेष्ठ सुवर्णका पर्वत देखकर सब औषधियोंसे प्रदीप्त औषधि पर्वत हनुमानजीनें देखा ॥ ५७ ॥ पवनकुमार हनुमानजी कूदकर अनलकी राशिके समान प्रदीप्त उस औषधिपर्वतपर पहुंचकर जाम्बवानकी बताईहुई सब महौषधियोंको खोजनेंलगे और इन औषधियोंको अग्निके समान प्रकाशमान देख हनुमानजी विस्मितभी हुए ॥ ५८ ॥ इस प्रकारसे महाकपि हनुमा

कैलासमुग्रंहिमवच्छिलांचतंवैवृषंकांचनशैलमग्र्यम् ॥ प्रदीप्तसर्वौषधिसंप्रदीप्तंददर्शसर्वौषधिपर्वतेंद्रम् ॥ ५७ ॥ सतंसमीक्ष्यानलराशिदीप्तंविसिस्मियेवासवदूतसूनुः ॥ आप्लुत्यतंचौषधिपर्वतेंद्रंतत्रौषधीनांविचयंचकार ॥ ५८ ॥ सयोजनसहस्राणिसमतीत्यमहाकपिः ॥ दिव्यौषधिधरंशैलंव्यचरन्मारुतात्मजः ॥ ५९ ॥ महौषध्यस्ततःसर्वास्तस्मिन्पर्वतसत्तमे ॥ विज्ञायार्थिनमायांतंततोजग्मुरदर्शनम् ॥ ६० ॥ सतामहात्माहनुमानपश्यंश्चुकोपरोषाच्चभृशंननाद ॥ अमृष्यमाणोग्निसमानचक्षुर्महीधरेंद्रंतमुवाचवाक्यम् ॥ ६१ ॥ किमेतदेवंसुविनिश्चितंतेयद्राघवेनासिकृतानुकंपः ॥ पश्याद्यमद्बाहुबलाभिभूतोविकीर्णमात्मानमथोनगेंद्र ॥ ६२ ॥

नजी हजार योजन मार्ग चलकर सब ओषधियुक्त उस पर्वतपर पहुंचकर घूमनें लगे॥५९॥परन्तु उस पर्वतश्रेष्ठके ऊपर जो समस्त महौषधिथीं, वह यह समझकरकि हमको ढूंढ़नेंको कोई आयाहै सबही अदृश्य होगई॥६०॥उन समस्त औषधियोंको न देख पायकर क्रोधके मारे हनुमानजीके दोनों नेत्र अग्निकी समान लाल होगये और वह उन औषधियोंका ऐसा कार्य न सहन करके वारंवार सिंहनाद करतेहुए उस पर्वतसे बोले ॥ ६१ ॥ हे पर्वत! तुम जो श्रीरामचंद्रजीके प्रति दया प्रगट नहीं करते यह कैसा कार्य तुमनें निश्चय कियाहै? यदि तुमनें अपनी सामर्थ्यपर भरोसा रखके कार्यमें ऐसी उदासीनता प्रकाश की तो आज हमारे बाहुबलसे व्याकुल होकर तुम अपनेको रत्ती २ चूर्णहुआ देखोगे ॥ ६२ ॥

जायकर उठगये ॥ १ ॥ वेगवान् कंपननेंभी युद्ध करनेंके लिये अंगदको पुकारकर अपनी गदासे उनको मारा कि जिस्से अत्यन्त घायलहो अंगदजी चलायमान होगये ॥ २ ॥ परन्तु तेजस्वी अंगदजीनें क्षण कालमेंही मूर्छासे जागकर एक पर्वतका शिखर उसके ऊपर चलाया कि उस प्रहारके लगतेही कंपन अर्दित होकर पृथ्वीमें गिर पड़ा ॥ ३ ॥ कंपनको रणमें मराहुआ देखकर शोणिताक्ष अपने रथको चलाता हुआ निर्भयहो शीघ्रतासे अंगदजीके समीप गया ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त अत्यन्त वेगसे अंगदजीके ऊपर तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करनेंलगा; वह कालकी अग्निके समान सायक वीरश्रेष्ठ अंगदजीके शरीरमें विंधगये ॥ ५ ॥ राक्षसवीरनें वानरवीरके प्रति क्रमसे छुरे, क्षुरप्र, नाराच, वत्सदन्त, शिलीमुख, कर्णीशल्य

आहूयसोंगदंकोपात्ताडयामासवेगितः ॥ गदयाकंपनःपूर्वंसचचालभृशाहतः ॥ २ ॥ ससंज्ञांप्राप्यतेजस्वीचिक्षेपशिखरंगिरेः ॥ अर्दितश्चप्रहारेणकंपनःपतितोभुवि ॥ ३ ॥ ततस्तुकंपनंदृष्ट्वाशोणिताक्षोहतंरणे ॥ रथेनाभ्यपतत्क्षिप्रंतत्रांगदमभीतवत् ॥ ४ ॥ सोंगदंनिशितैर्बाणैस्तदाविव्याधवेगितः ॥ शरीरदारणैस्तीक्ष्णैःकालाग्निसमविग्रहैः ॥ ५ ॥ क्षुरक्षुरप्रनाराचैर्वत्सदंतैःशिलीमुखैः ॥ कर्णीशल्यविपाटैश्चबहुभिर्निशितैःशरैः ॥ ६ ॥ अंगदःप्रतिविद्धांगोवालिपुत्रःप्रतापवान् ॥ धनुरुग्रंरथंबाणान्ममर्दतरसाबली ॥ ७ ॥ शोणिताक्षस्ततःक्षिप्रमसिचर्मसमाददे ॥ उत्पपाततदाक्रुद्धोवेगवानविचारयन् ॥ ८ ॥ तंक्षिप्रतरमाप्लुत्यपरामृश्यांगदोबली ॥ करेणतस्यतंखड्गंसमाच्छिद्यननादच ॥ ९ ॥ तस्यांसफलकेखड्गंनिजघानततोंगदः ॥ यज्ञोपवीतवच्चैनंचिच्छेदकपिकुंजरः ॥ १० ॥

और विपाट इत्यादिक अनेक प्रकारके बाण छोड़े प्रतापवान् बलशाली वालिकुमार अंगदके शरीरमें जब यह समस्त बाण लगे तब उन्होंनें अत्यन्त वेगसे उस राक्षसका उग्र धनु और समस्त बाणोंको छिन्न भिन्न कर डाला ॥ ६ ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त शोणिताक्ष क्रोधमें भरकर शीघ्रतासे ढाल तरवार ग्रहण कर विना विचारे वेगसे कूद पड़ा ॥ ८ ॥ तब विपुलबलशाली अंगदजीनें शीघ्रतासे छलांग मारकर उस राक्षसको पकड़ा और उसके हाथसे बलपूर्वक ढाल तरवार छीन वारंवार सिंहनाद करनेंलगे ॥ ९ ॥ उसकाही खड्ग उसके बायें हाथपर इस प्रकारसे अंगदजीनें

यह कह कर हनुमानजीने शृङ्ग प्रस्तर, खण्ड, मातङ्ग और सुवर्ण आदि धातुओंके उस अनेक शिखरवाले और सहस्रों धातुओंसे प्रज्वलित शृङ्ग सानु समन्वित उस पर्वतको सहसा ग्रहण करके अतिवेगसे उखाड़ लिया ॥ ६३ ॥ गरुड़जीकी समान अति उग्र वेगवाले हनुमानजी उस पर्वतशृङ्गको उखाड़ आकाशमें उछल गये और सुरेन्द्र व असुरगणोंके सहित समस्त लोकोंको त्रासित करते२ असंख्य आकाशचारियोंसे स्तुति किये जाते हुए अतिवेगसे गमन करते हुए ॥ ६४ ॥ सूर्यकी समान रूप सम्पन्न वह वीर हनुमानजी सूर्यकी समान पर्वत ग्रहण करके सूर्यके मार्गमें उपस्थित हो दूसरें सूर्यकी समान शोभाधारण करते हुए ॥ ६५ ॥ पर्वताकार हनुमानजी उस पर्वतको ग्रहण करके अग्निकी ज्वालासे युक्त

सतस्यशृंगंसनगंसनागंसकांचनंधातुसहस्रजुष्टम् ॥ विकीर्णकूटंज्वलिताग्रसानुंप्रगृह्यवेगात्सहसोन्ममाथ ॥ ६३ ॥
सतंसमुत्पाट्यखमुत्पपातवित्रास्यलोकान्ससुरान्सुरेंद्रान् ॥ संस्तूयमानःखचरैरनेकैर्जगामवेगाद्गरुडोग्रवेगः ॥ ६४ ॥
सभास्कराध्वानमनुप्रपन्नस्तंभास्कराभंशिखरंप्रगृह्य॥बभौतदाभास्करसन्निकाशोरवेःसमीपेप्रतिभास्कराभः॥६५॥
सतेनशैलेनभृशंरराजशैलोपमोगंधवहात्मजस्तु ॥ सहस्रधारेणसपावकेनचक्रेणखेविष्णुरिवार्पितेन ॥ ६६ ॥ तंवान
राःप्रेक्ष्यतदाविनेदुःसतानपिप्रेक्ष्यमुदाननाद ॥ तेषांसमुत्कृष्टरवंनिशम्यलंकालयाभीमतरंविनेदुः ॥ ६७॥ ततोमहा
त्मानिपपाततस्मिन्शैलोत्तमेवानरसैन्यमध्ये ॥ हर्युत्तमेभ्यःशिरसाभिवाद्यविभीषणंतत्रचसस्वजेसः ॥ ६८ ॥ ताव
प्युभौमानुषराजपुत्रौतंगंधमाघ्रायमहौषधीनाम् ॥ बभूवतुस्तत्रतदाविशल्यावुत्तस्थुरन्येचहरिप्रवीराः ॥ ६९ ॥

हाथमें सहस्र धार चक्र द्वारा शोभित विष्णुजीकी समान शोभायमान होनें लगे॥६६॥ उस कालमें लंकाके मैदान में खड़े हुए वानरगण उनको देखकर सिंहनाद करने लगें और हनुमानजी भी उनको देखकर सिंहनाद कर उठे उस अत्यन्त दारुण शब्दको श्रवणकरके लंका निवासी निशाचर गणभी भयंकर घोर सिंहनाद करने लगे॥६७॥ इसके उपरान्त महाबलवान हनुमानजी पर्वतश्रेष्ठ त्रिकूटके ऊपर वानरोंकी सेनामें उतरकर मुख्य२ वानरोंको प्रणाम करके विभीषणजीको लिपटायकर मिले॥६८॥इस ओर मनुष्यराजकुमार राम और लक्ष्मणजी सब महौषधियोंकी सुगन्धि सूंघकर उसी

बलवान वानरवीरोंनेभी प्रबल राक्षसोंका संहार किया, एक २ जनके मारनेंको जैसेही तैयारहुआ कि वैसेही एक दूसरेनें आकर उसको ढकेल दिया कोई किसीको काटरहाथा कि दूसरेनें आनकर उसका काट खाया, कोई एक २ किसीकी निन्दाकररहाथा कि वैसेही एक तीसरेनें आकर उसका निरादर किया; किसीके युद्ध चाहनेंपर दूसरा उस्से युद्ध कर रहाहै कि इतनेहीमें कोई आयकर बोला कि हम युद्ध करेंगे "क्यों क्लेशदेतेहो! तुम यहां खड़े रहो" रणभूमिमे तिसकाल एक दूसरेसे ऐसा कह रहेथे ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ धीरे २ दोनोंओरका युद्ध अतिभयं कर हो उठा, राक्षस लोगोंके शस्त्र व्यर्थ होनेंलगे, उनके कवच आयुध समस्त छिन्न भिन्न होगये। राक्षसलोग बड़े २ भाले, मुष्टि, शूल, और तलवार उठाय रहगये ॥ ६७ ॥ "प्रावर्तत महारौद्रं युद्धं वानररक्षसाम् ॥ वानरान्दश सप्तेति राक्षसा जघ्नुराहवे" इस प्रकारसे वानर

घ्नंतमन्यंजघानान्यःपातयंतमपातयत् ॥ गर्हमाणंजगर्हान्योदशंतमपरोदशत् ॥ ६५ ॥ देहीत्यन्योददात्यन्यो ददामीत्यपरःपुनः ॥ किंक्लेशयसितिष्ठेतितत्रान्योन्यंबभाषिरे ॥ ६६ ॥ विप्रलंभितशस्त्रंचविमुक्तकवचायुधम् ॥ समु द्यतमहाप्रासंमुष्टिशूलासिकुंतलम् ॥ ६७ ॥ प्रावर्ततमहारौद्रंयुद्धंवानररक्षसाम् ॥ वानरान्दशसप्तेतिराक्षसाजघ्नु राहवे ॥ ६८ ॥ विप्रलंभितवस्त्रंचविमुक्तकवचध्वजम् ॥ बलंराक्षसमालंब्यवानराःपर्यवारयन् ॥ ६९ ॥ इ० श्री मद्रा० वा० आ० यु० पंचसप्ततितमःसर्गः ॥ ७५ ॥ ॥ छ ॥ ॥ प्रवृत्तेसंकुलेतस्मिन्वीरेघोरजनक्षये ॥ अंगदःकंपनंवीरमाससादरणोत्सुकः ॥ १ ॥

और राक्षसोंका महाघोर युद्ध होनेंलगा निशाचर लोग एकही वारमें सहस्र २ वानरोंको संहार करनेंलगे ॥ ६८ ॥ "राक्षसान्दशसप्तेति वानरास्त्वभ्यपातयन् । बलं राक्षसमालंब्य वानराः पर्यवारयन् ॥" और वानर लोगभी इतनेही राक्षसोंको एक २ बाणसे रणभूमिमें मारते हुए और उनके वस्त्र फाड कवच तोड ध्वजा नष्ट करदी, उस युद्धमें वानरगण राक्षस लोगोंकी समान बलका आश्रय करके राक्षस लोगोंको निवारण करनेंलगे ॥ ६९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे भाषानुवादे पंचसप्ततितमः सर्गः ॥ ॥ ७५ ॥ जब इस प्रकारसे लोकक्षयकारी घोर कठोर संग्राम होनेंलगा तब महावीर अंगदजी युद्धका अभिलाप करके राक्षसवीर कंपनके सन्मुख

जब वानरराज सुग्रीवजीनें इस प्रकारसे आज्ञा दी तौ उसी दिन सूर्य छिपनेंके पीछे घोर रात्रिमें वानरश्रेष्ठगण मसालें हाथमें लेलेकर लंकाके सन्मुख गये ॥ ४ ॥ विरूपाक्ष राक्षसगण जोकि लंकाके द्वारकी रक्षा करतेथे वह सब वानरोंको लूके हाथमें लिये हुए देखकर घबड़ाये और वानरगणोंसे मार खाय कर भागगये ॥ ५ ॥ तब वानर लोगोंनें हर्षित अंतःकरणसे बाहर द्वारोंपर, अटारियोंपर, छज्जोंपर, विविध चर्या और धवरहरोंपर सबही जगह अग्नि लगादी ॥ ६ ॥ उस कालमें अग्निनें उन राक्षसोंके हजारों गृह भस्म कर दिये, और पर्वताकार समस्त धवरहर भस्महो पृथ्वीपर भयराय कर गिरनेंलगे ॥ ७ ॥ लंकाके स्थान २ में अगर, परम सुगन्धि युक्त चंदन, मुक्तामणि, उत्तम २ हीरे प्रवाल भस्म

ततोस्तंगतआदित्येरौद्रेतस्मिन्निशामुखे ॥ लंकामभिमुखाःसोल्काजग्मुस्तेप्लवगर्षभाः ॥ ४ ॥ उल्काहस्तैर्हरिगणैः सर्वतःसमभिद्रुताः ॥ आरक्षस्थाविरूपाक्षाःसहसाविप्रदुद्रुवुः ॥ ५ ॥ गोपुराट्टप्रतोलीषुचर्यासुविविधासुच ॥ प्रासादेषुचसंहृष्टाःससृजुस्तेहुताशनम् ॥ ६ ॥ तेषांगृहसहस्राणिददाहहुतभुक्तदा ॥ प्रासादाःपर्वताकाराःपतंतिधरणीतले ॥ ७ ॥ अगुरुर्दह्यतेतत्रपरंचैवसुचंदनम् ॥ मौक्तिकामणयःस्निग्धावज्रंचापिप्रवालकम् ॥ ८ ॥ क्षौमंचदह्यतेतत्रकौशेयंचापिशोभनम्॥ आविकंविविधंचौर्णंकांचनंभांडमायुधम्॥९॥नानाविकृतसंस्थानंवाजिभांडपरिच्छदम्॥ गजग्रैवेयकक्ष्याश्चरथभांडांश्चसंस्कृतान् ॥ १० ॥ तनुत्राणिचयोधानांहस्त्यश्वानांचचर्मच ॥ खड्गाधनूंषिज्याबाणास्तोमरांकुशशक्तयः ॥ ११ ॥ रोमजंवालजंचर्मव्याघ्रजंचांडजंबहु ॥ मुक्तामणिविचित्रांश्चप्रासादांश्चसमंततः ॥ १२ ॥

होंने लगे ॥ ८ ॥ अनेक प्रकारके क्षौम कौशेय, [रेशमीन] राङ्कव और उनके बने हुए वस्त्रादि भस्म होगये, आयुध व सुवर्णके पात्रभी जलकर मट्टीमें मिलगये ॥ ९ ॥ भांति २ अन्नादि धरनेंके स्थान घोड़ोंके व और दूसरेभी बहुत सारे अलंकार, हाथियोंके गलोंमें बांधनेंकी वस्तुयें और कमरमें बांधनेंके रस्से, रथोंके गहने, व भोजनादिके पात्र जो कुछभी बनेठने धरेथे ॥ १० ॥ योद्धागणोंके कवच वर्म इत्यादि, हाथी घोड़ोंके कवच, खड्ग, धनुष, प्रत्यंचा, बाण, भाला, अंकुश, शक्ति ॥ ११ ॥ उनके बनेहुए वस्त्र वालोंके बनेहुए चामरादि असंख्य व्याघ्रचर्म, अण्डजात मृग

भूषित बाहु और प्रज्वलित भालोंसे युक्त ॥ ५६ ॥ महाशस्त्रोंको घुमाते हुए धनुष पर बाण चढ़ाते हुए, गन्धमाला व पवनकी मधुकमोहकेसं
मोदित करते ॥ ५७ ॥ शूरगणोंके भरे रहनेसे अतिघोर महा मेघके गर्जनकी समान शब्द करती ऐसी दुर्द्धर्ष राक्षसोंकी सैना आई
हुई देखकर ॥ ५८ ॥ वानरोंकी सैनानें विचलित होकर ऊंचे स्वरसे सिंहनाद किया। फिर उस राक्षसोंकी बड़ी भारी सैनाके बीचमें ॥ ५९ ॥
अतिवेगसे कूद पड़े कि जैसे पतंगे अग्निमें कूद पड़तेहैं तिन राक्षस लोगोंके भुजोंके व्यापारसे कंपायमान,किये गये वज्र व अशनिसें युक्त ॥ ६० ॥

व्याघूर्णितमहाशस्त्रंबाणसंसक्तकार्मुकम् ॥ गंधमाल्यमधूत्सेकसंमोदितमहानिलम् ॥ ५७ ॥ घोरंशूरजनाकीर्णमहां
बुधरनिःस्वनम् ॥ तद्दृष्ट्वाबलमायातंराक्षसानांदुरासदम् ॥ ५८ ॥ संचचालप्लवंगानांबलमुच्चैर्ननादच ॥ जवेनाप्लुत्यच
पुनस्तद्बलंरक्षसांमहत् ॥ ५९ ॥ अभ्ययात्प्रत्यरिबलंपतंगाइवपावकम् ॥ तेषांभुजपरामर्शव्यामृष्टपरिघाश
नि ॥ ६० ॥ राक्षसानांबलंश्रेष्ठंभूयःपरमशोभत ॥ तत्रोन्मत्ताइवोत्पेतुर्हरयोथयुयुत्सवः ॥ ६१ ॥ तरुशैलैरभिघ्नं
तोमुष्टिभिश्चनिशाचरान् ॥ तथैवापततांतेषांहरीणांनिशितैःशरैः ॥ ६२ ॥ शिरांसिसहसाजह्रूराक्षसाभीमविक्रमाः ॥
दशनैर्हृतकर्णाश्चमुष्टिभिर्भिन्नमस्तकाः ॥ शिलाप्रहारभग्नांगाविचेरुस्तत्रराक्षसाः ॥ ६३ ॥ तथैवाप्यपरेतेषांकपीनाम
सिभिःशितैः ॥ प्रवरानभितोजघ्नुःघोररूपानिशाचराः ॥ ६४ ॥

राक्षसोंकी सैना फिर अत्यन्त शोभित हुई। इसके उपरान्त युद्ध करनेंके लिये तैयार वानरलोग उन्मत्तकी समान ॥ ६१ ॥ वृक्ष शैल, मूकोंसे
कूद २ कर निशाचरोंको मारनें लगे। तब उन कूद २ कर आते हुए वानरोंके तीक्ष्ण बाणोंसे ॥ ६२ ॥ भयंकरविक्रमकारी राक्षस लोग शिर का
टनें लगे निशाचरलोग वानर लोगोंके दांतोंसे काटे जाकर कर्ण रहित मूकोंके मारनेंसे शिर रहित और शिलाओंके प्रहारसे अंग भंगहो उस रण
भूमिमें विचरण करनेंलगे॥६३॥ व दूसरी ओरसे घोर रूप निशाचर गणोंने भी तीक्ष्ण खड्गसे मुख्य२वानरोंका संहार करना आरंभ किया ॥ ६४ ॥

भयंकर वेषवाले आक्रमण करनेके अयोग्य ॥ १ ॥ पांच हजार राक्षसोंको जो कि समरसे लौटनाही चाहतेथे और महावेगवानथे उनको युद्ध करनेंके लिये आज्ञादी वह सब राक्षस समरमें जाय शूल, पटा, खड्ग, और वृक्षादिक व बाणोंकी वर्षा लगातार श्रीरामचंद्रजीके ऊपर करनें लगे वह वृक्ष और पर्वतोंकी वर्षा प्राणोंकी हरण करनेंवालीथी ॥ २ ॥३॥ धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीनें अपनें तीखे बाणों परही उस वर्षाका ग्रहण किया और उसे ग्रहण करके नेत्र बंद कर लिये ॥ ४ ॥ फिर बडा कोप किया और सब राक्षसोंके संहार करनेंका संकल्प किया उस समय क्रोध और तेजसे प्रकाशमान होते हुए श्रीरामचंद्रजीनें॥५॥दूषण सहित सेनाके ऊपर बाणोंकी वर्षा की । फिर शत्रुदूषण सेनापति दूषण क्रोधित हो

राक्षसान्पंचसाहस्रान्समरेष्वनिवर्तिनः ॥ तेशूलैःपट्टिशैःखड्गैःशिलावर्षैर्द्रुमैरपि ॥ २ ॥ शरवर्षैरविच्छिन्नंववर्षुस्तंसमंततः ॥ तद्द्रुमाणांशिलानांचवर्षंप्राणहरंमहत् ॥ ३ ॥ प्रतिजग्राहधर्मात्माराघवस्तीक्ष्णसायकैः ॥ प्रतिगृह्यचतद्वर्षंनिमीलितइवर्षभः ॥ ४ ॥ रामःक्रोधंपरंलेभेवधार्थंसर्वरक्षसाम् ॥ ततःक्रोधसमाविष्टःप्रदीप्तइवतेजसा ॥ ५ ॥ शरैरभ्यकिरत्सैन्यंसर्वतःसहदूषणम् ॥ ततःसेनापतिःक्रुद्धोदूषणःशत्रुदूषणः ॥६॥शरैरशनिकल्पैस्तंराघवंसमवारयत्॥ततोरामःसुसंक्रुद्धःक्षुरेणास्यमहद्धनुः ॥७॥ चिच्छेदसमरेवीरश्चतुर्भिश्चतुरोहयान्॥हत्वाचाश्वाञ्छरैस्तीक्ष्णैरर्धचंद्रेणसारथेः ॥ ८ ॥ शिरोजहारतद्रक्षस्त्रिभिर्विव्याधवक्षसि ॥ सच्छिन्नधन्वाविरथोहताश्वोहतसारथिः ॥ ९ ॥ जग्राहगिरिशृंगाभंपरिघंलोमहर्षणम् ॥ वेष्टितंकांचनैःपट्टैर्देवसैन्याभिमर्दनम् ॥ १० ॥

कर॥ ६॥ वज्रकी समान बाणोंसे श्रीरामचंद्रजीको निवारण करनें लगा। तब श्रीरामचंद्रजीनें महाक्रोधकर छुरेकी समान तेज बाणोंसे दूषणका धनुष॥७॥ काट कर चार बाणोंसे उसके रथमें जो घोडे नहेथे उनको मार डाला।अश्वोंको तीक्ष्ण बाणोंसे वधकर अर्द्धचंद्र बाणसे उसके सारथिका॥ ८॥शिर काट डाला। और तीन बाण राक्षस खरकी छातीमें मारे। तब दूषणका धनुषभी टूटा रथभी चूर्ण हुआ और घोडे व सारथिभी उसके मारे गये॥९॥तब उसने जिसके देखनेसे संनाटे रुएं खडे हो जाँय ऐसा पहाडके शृंग समान एक परिघ ग्रहण किया वह सुवर्णके बन्धोंसे

बँधा देवताओंकी सेनाको मर्दन करनेवाला ॥ १० ॥ लोहेकी कीलोंसे जडा शत्रुओंकी चरबी जिसमें लगी हुई वज्र के समान कठोर व शत्रुपुरके द्वारका विदारण करनेवाला ॥ ११ ॥ ऐसे महासर्पके समान उस परिघको ले संग्राममें क्रूरकर्मकारी दूषणराक्षस श्रीरामचंद्रजी की ओर धाया॥१२॥श्रीरामचंद्रजीने उस दौडे आतेहुए दूषणके भूषणसहित दोनों कर काटडाले ॥ १३ ॥ हाथोंके कट जानेपर उसका वह बृह दाकार परिघ स्थानभ्रष्ट होकर इन्द्रध्वजाकी समान समरमें गिरा ॥१४॥ हाथ कटजानेसे मुंहकेबल दूषणभी इसभांति पृथ्वीमें गिरा जैसे दांतटूट

आयसैःशंकुभिस्तीक्ष्णैःकीर्णपरवसोक्षितम्॥वज्राशनिसमस्पर्शंपरगोपुरदारणम्॥११॥तंमहोरगसंकाशंप्रगृह्यपरि
घंरणे॥ दूषणोऽभ्यपतद्रामंक्रूरकर्मानिशाचरः ॥ १२ ॥ तस्याभिपतमानस्यदूषणस्यचराघवः ॥ द्वाभ्यांशराभ्यां
चिच्छेदसहस्ताभरणौभुजौ ॥१३॥ भ्रष्टस्तस्यमहाकायःपपातरणमूर्धनि ॥ परिघाश्छिन्नहस्तस्यशक्रध्वजइवाग्र
तः ॥ १४ ॥ कराभ्यांचविकीर्णाभ्यांपपातभुविदूषणः ॥ विषाणाभ्यांविशीर्णाभ्यांमनस्वीवमहागजः ॥ १५ ॥
दृष्ट्वातंपतितंभूमौदूषणंनिहतंरणे ॥ साधुसाध्वितिकाकुत्स्थंसर्वभूतान्यपूजयन् ॥ १६ ॥ एतस्मिन्नंतरेक्रुद्धा
स्त्रयःसेनाग्रयायिनः ॥ संहत्याभ्यद्रवन्रामंमृत्युपाशावपाशिताः ॥ १७ ॥ महाकपालःस्थूलाक्षःप्रमाथीचमहा
बलः ॥ महाकपालोविपुलंशूलमुद्यम्यराक्षसः ॥ १८ ॥ स्थूलाक्षःपट्टिशंगृह्यप्रमाथीचपरश्वधम्॥ दृष्ट्वैवापततस्तां
स्तुराघवःसायकैःशितैः ॥ १९ ॥

जानेपर महा मनस्वी गजराज पृथ्वीमें गिरताहै ॥ १५ ॥ दूषण को संग्राम में मराहुआ और पृथ्वीमें पडाहुआ देखकर सबही प्राणी साधु २ कह कर श्रीरामचंद्रजीकी प्रशंसा करनेलगे ॥ १६ ॥ इसीसमय उस खरके तीन सेनापति जो निशाचर सेनाके आगेही चलेथे परस्पर मिलकर मृ त्युकी फाँसीसे बँधकर क्रोधमें भरकर श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख धाये ॥ १७ ॥ इन तीनोंके नाम महाकपाल, स्थूलाक्ष और महाबलवान् प्रमाथीथे, इनमें महाकपाल विशाल शूल, उठाय ॥ १८ ॥ स्थूलाक्ष पटालेकर, व प्रमाथी फरशा ग्रहण करके श्रीरामचंद्रजीकी ओर चले,

कपिश्रेष्ठ रथ, घोड़े, वृक्ष लेकर राक्षसोंपर चलाये पर्वतोंके शृङ्ग जो कुछभी पातेथे वहां चलातेथे परन्तु महाबलवान् यूपाक्षने बाण चलाय उन सबको टुकड़े २ कर डाला ॥ २० ॥ इसके उपरान्त वीर द्विविद और मैन्दने वृक्षोंको उखाड़कर राक्षसोंके ऊपर चलाया इन सबको वीर्यवान् प्रतापशाली शोणिताक्षनें अधबीचमें ही तोड़डाला ॥ २१ ॥ इसी समयमें वीरश्रेष्ठ प्रजंघ परमर्मभेदी विपुल खड्ग धारण करके अति वेगसे अंगदजीकी ओर धाया ॥२२॥ तब विपुल बलशाली वानरेन्द्र वालिकुमार अंगदजीनें इस राक्षसको निकट आयाहुआ देखकर एक अश्वकर्णवृक्ष ले बड़े वेगसे उसके मारा ॥२३॥ और उस राक्षसके खड्गयुक्त हाथमें एक मूकाभी अंगदजीने मारा कि उसके चोटसे उस निशाचरके हाथसे खड्ग गिर

रथान्सर्वान्द्रुमाञ्छैलान्प्रतिचिक्षिपुराहवे ॥ शरौघैःप्रतिचिच्छेदतान्यूपाक्षोमहाबलः ॥ २० ॥ सृष्टान्द्विविदमैंदाभ्यां द्रुमानुत्पाट्यवीर्यवान् ॥ बभंजगदयामध्येशोणिताक्षःप्रतापवान् ॥ २१ ॥ उद्यम्यविपुलंखड्गंपरमर्मविदारणम् ॥ प्रजंघोवालिपुत्रायअभिदुद्राववेगितः ॥ २२ ॥ तमभ्याशगतंदृष्ट्वावानरेंद्रोमहाबलः ॥ आजघानश्वकर्णेनद्रुमेणातिबलस्तदा ॥ २३ ॥ बाहुंचास्यसनिस्त्रिंशमाजघानसमुष्टिना ॥ वालिपुत्रस्यघातेनसपपातक्षितावसिः ॥ २४ ॥ तंदृष्ट्वापतितंभूमौखड्गंमुसलसन्निभम् ॥ मुष्टिंसंवर्तयामासवज्रकल्पंमहाबलः ॥ २५ ॥ सललाटेमहावीर्यमंगदंवानरर्षभम् ॥ आजघानमहातेजाःसमुहूर्तंचचालह ॥ २६ ॥ ससंज्ञांप्राप्यतेजस्वीवालिपुत्रःप्रतापवान् ॥ प्रजंघस्यशिरःकायात्पातयामासमुष्टिना ॥ २७ ॥ सयूपाक्षोश्रुपूर्णाक्षःपितृव्येनिहतेरणे ॥ अवरुह्यरथात्क्षिप्रंक्षीणेषुःखड्गमाददे ॥ २८ ॥

पड़ा ॥ २४ ॥ उस मूशलकी समान खड्गको पृथ्वीमें गिराहुआ देखकर महावीर प्रजंघनें वज्रकी समान मूका बांधकर अंगदजीपर उठाया ॥ २५ ॥ और महावीर्यवान् वानरश्रेष्ठ अंगदजीके माथेमें वह मूका मारा उस मूकेके लगनेंसे अंगदजी एक मुहूर्तभरतक चलायमान रहे ॥ २६ ॥ परन्तु प्रतापवान तेजस्वी वालिकुमार अंगदजीनेभी फिर शीघ्र चेतना पाय एक मूका मारकर प्रजंघके धड़से शिरको अलग करदिया ॥ २७ ॥ अपने चचा प्रजंघको संग्राममें मराहुआ देखकर यूपाक्ष आंखोंमें आंसू भर धनुष बाण छोड़ खड्ग धारणकर रथसे उतर पड़ा ॥ २८ ॥

वार्ता सुनकर अत्यंत क्रोधसे अग्निकी समान प्रज्वलित होगया ॥ १ ॥ राक्षसराज रावण, क्रोध और शोकसे व्याकुल होकर विशाल नेत्रवाले खरके पुत्र मकराक्षसे बोला ॥ २ ॥ वत्स ! हम तुमको आज्ञा देतेहैं, तुम बड़ी भारी सैनाको साथ लेकर संग्रामभूमिमें जाय वानरोंके सहित उन रामचंद्र और लक्ष्मणको मार डालो ॥ ३ ॥ रावणके वचन सुनकर अपने को शूर माननेवाले बलशाली ढीठ खरके पुत्र राक्षस मकराक्षनें "बहुत अच्छा" कहकर रावणके वचनको स्वीकार किया ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त वह रावणको प्रणामकर व उसकी प्रदक्षिणा कर रावणकी आज्ञानुसार उजले वर्णके गृहोंसे निकला ॥ ५ ॥ तब खरके पुत्र मकराक्षनें समीपही खड़े हुए सैनाके नायकसे कहाकि तुम जलदीसे रथ तैयार कराओ

नैर्ऋतःक्रोधशोकाभ्यांद्वाभ्यांतुपरिमूर्च्छितः ॥ खरपुत्रंविशालाक्षंमकराक्षमचोदयत् ॥ २ ॥ गच्छपुत्रमयाज्ञप्तोबले नाभिसमन्वितः ॥ राघवंलक्ष्मणंचैवजहितौसवनौकसौ ॥ ३ ॥ रावणस्यवचःश्रुत्वाशूरमानीखरात्मजः ॥ बाढमित्यब्रवीद्धृष्टोमकराक्षोनिशाचरम् ॥ ४ ॥ सोभिवाद्यदशग्रीवंकृत्वाचापिप्रदक्षिणम् ॥ निर्जगामगृहाच्छु भ्राद्रावणस्याज्ञयाबली ॥५॥ समीपस्थंबलाध्यक्षंखरपुत्रोब्रवीद्वचः ॥ रथमानीयतांतूर्णंसैन्यंत्वानीयतांत्वरात् ॥ ६ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाबलाध्यक्षोनिशाचरः ॥ स्यंदनंचबलंचैवसमीपंप्रत्यपादयत् ॥ ७ ॥ प्रदक्षिणंरथंकृत्वासमाहूय निशाचरः ॥ सूतंसंचोदयामासशीघ्रंवैरथमावह ॥८॥ अथतान्राक्षसान्सर्वान्मकराक्षोब्रवीदिदम् ॥ यूयंसर्वेप्रयुध्यध्वं पुरस्तान्ममराक्षसाः ॥ ९ ॥ अहंराक्षसराजेनरावणेनमहात्मना ॥ आज्ञप्तःसमरेहंतुंतावुभौरामलक्ष्मणौ ॥ १० ॥

और सब सैनाकोभी सजालाओ ॥ ६ ॥ व सैनाध्यक्षनें मकराक्षकी यह आज्ञा पाय उसका रथ व सब सैनाको वहां सजाकर उपस्थित किया ॥ ७ ॥ निशाचर मकराक्ष रथकी प्रदक्षिणा करकै शीघ्रही उसपर सवारहुआ और सारथिसे कहनेंलगा सूत ! शीघ्रतासे रथको च लाओ ॥ ८ ॥ उसके उपरान्त मकराक्ष उन सब राक्षसोंको पुकार कर कहता हुआ" हे निशाचर गण! तुम हमारे आगे रहकर वानरोंसे यु द्ध करना ॥ ९ ॥ और हमको महात्मा राक्षसोंके स्वामी रावणसे संग्राममें उन राम लक्ष्मण दोनोंके मारनेंको आज्ञा मिलीहै " ॥ १० ॥

समीप भागकर आईहुई सैनाको अनेक प्रकारसे समझाया बुझाया, अतिश्रेष्ठ महावीर्यवान् वानरोंसे ॥ ३६ ॥ महावीर राक्षसोंकी सैनाको मराहुआ देखकर महातेजस्वी कुंभनें संग्राममें अत्यन्त दुष्कर कर्म किया ॥ ३७ ॥ वह धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ कुंभ सावधानमनसे धनुप धारणकर विषधर सर्पोंकी समान फुंकारतेहुए देहविदारी बाण छोड़नें लगा ॥ ३८ ॥ उस कालमें कुंभका बाणसहित श्रेष्ठ धनुष, बिजली ऐरावतके सहित दूसरे इन्द्रधनुषकी समान शोभायमान होंनेंलगा ॥ ३९ ॥ उस वीर कुंभनें सुवर्णकी फोंकवाले पत्रशोभित बाणोंको कानतक खेंचकर उनसे द्विविदको मारा ॥ ४० ॥ पर्वतके शृङ्गकी समान वानरोंमें श्रेष्ठ द्विविद उन बाणोके लगनेंसे अत्यन्त घायलहो मुंहबाय और दोंनों पैर

निपातितमहावीरांदृष्ट्वारक्षश्चमूंतदा ॥ कुंभःप्रचक्रेतेजस्वीरणेकर्मसुदुष्करम् ॥ ३७ ॥ सधनुर्धन्विनांश्रेष्ठःप्रगृह्य सुसमाहितः ॥ मुमोचाशीविषप्रख्याञ्छरान्देहविदारणान् ॥ ३८ ॥ तस्यतच्छुशुभेभूयःसशरंधनुरुत्तमम् ॥ विद्युदैरावतार्चिष्मद्द्वितीयेंद्रधनुर्यथा ॥ ३९ ॥ आकर्णकृष्टमुक्तेनजघानद्विविदंतदा ॥ तेनहाटकपुंखेनपत्रिणापत्रवाससा ॥ ४० ॥ सहसाभिहतस्तेनविप्रमुक्तपदःस्फुरन् ॥ निपपातत्रिकूटाभोविह्वलन्प्लवगोत्तमः ॥ ४१ ॥ मैंदस्तुभ्रातरंतत्रभग्नंदृष्ट्वामहाहवे ॥ अभिदुद्राववेगेनप्रगृह्यविपुलांशिलाम् ॥ ४२ ॥ तांशिलांतत्रचिक्षेपराक्षसायमहाबलः ॥ बिभेदतांशिलांकुंभःप्रसन्नैःपंचभिःशरैः ॥ ४३ ॥ संधायचान्यंसुमुखंशरमाशीविषोपमम् ॥ आजघानमहातेजावक्षसिद्विविदाग्रजम् ॥ ४४ ॥ सतुतेनप्रहारेणमैंदोवानरयूथपः ॥ मर्मण्यभिहतस्तेनपपातभुविमूर्च्छितः ॥ ४५ ॥ अंगदोमातुलौदृष्ट्वामथितौतुमहाबलौ ॥ अभिदुद्राववेगेनकुंभमुद्यतकार्मुकम् ॥ ४६ ॥

फैलाय विकल हो पृथ्वीपर गिरपड़ा ॥ ४१ ॥ मैन्दनें अपनें भ्राता द्विविदको उस महासंग्राममें व्याकुल होते देख एक बड़ी भारी शिला ग्रहण कर कुंभके ऊपर दौड़ा ॥ ४२ ॥ महाबलवान मैन्दनें राक्षसके ऊपर वह शिला चलाई परन्तु महातेजस्वी कुंभनें हँसते २ पांच बाणोंसे उस शिलाको काट डाला ॥ ४३ ॥ और विषधर सर्पकी समान एक और सुमुख बाण धनुषपर चढ़ायकर द्विविदके बड़े भाई मैन्दकी छातीमें कुंभनें मारा ॥४४॥ कुंभका चलायाहुआ वह बाण वानरयूथपति मैन्दके मर्मस्थानमें लगा कि जिस्से वह मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥४५॥तब वानरवीर अंगदजी

कुछभी चिन्ता नकरकै जिस स्थानमें श्रीराम लक्ष्मणजी विराजमानथे उसी ओरको चला ॥ २० ॥ युद्धकी अभिलाषा किये राक्षसोंका आकार मेघ मातंग [हाथी] महिष [भैंस] की तुल्यथा उन राक्षसोंकी देहोंमें गदा खड्ग व और दूसरे अस्त्रोंके चिह्न प्रकाशमानथे वह सबही युद्धविद्यामें पंडितथे पहले हम युद्ध करेंगे पहले हम युद्ध करेंगे समस्त इस उत्साहमें सिंहनाद करतेहुए रणभूमिमें विचरनें लगे ॥ २१ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० भाषानुवादे अष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥ वानरश्रेष्ठ गण मकराक्षको युद्धकरनेके लिये निकलाहुआ देखकर अतिबलसे कूदते फांदते युद्धकी अभिलाषासे तैयार हुए ॥ १ ॥ इसके उपरान्त देवता लोगोंके सहित दानव गणोके समान राक्षसोंके साथ वान

घनगजमहिषांगतुल्यवर्णाःसमरमुखेष्वसकृद्गदासिभिन्नाः ॥ अहमहमितियुद्धकौशलास्तेरजनिचराःपरिबभ्रमुर्हुस्ते ॥ २१ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेअष्टसप्ततितमःसर्गः ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ निर्गतंमकराक्षंतेदृष्ट्वावानरपुंगवाः ॥ आप्लुत्यसहसासर्वेयोद्धुकामाव्यवस्थिताः ॥ १ ॥ ततः प्रवृत्तंसुमहत्तद्युद्धंलोमहर्षणम् ॥ निशाचरैःप्लवंगानांदेवानांदानवैरिव ॥ २ ॥ वृक्षशूलनिपातैश्चगदापरिघपातनैः ॥ अन्योन्यंमर्दयंतिस्मतदाकपिनिशाचराः ॥ ३ ॥ शक्तिखड्गगदाकुंतैस्तोमरैश्चनिशाचराः ॥ पट्टिशैर्भिंदिपालैश्चबाणपातैःसमंततः ॥ ४ ॥ पाशमुद्गरदंडैश्चनिर्घातैश्चापरैस्तथा॥कदनंकपिसिंहानांचक्रुस्तेरजनीचराः ॥५॥ बाणौघैरर्दिताश्चापिखरपुत्रेणवानराः॥संभ्रांतमनसःसर्वेदुद्रुवुर्भयपीडिताः ॥६॥ तान्दृष्ट्वाराक्षसाःसर्वेद्रवमाणान्वनौकसः ॥ नेदुस्तेसिंहवद्दृप्ताराक्षसाजितकाशिनः ॥७॥

रोंका बडाभारी रोमहर्षणकारी युद्ध आरंभ हुआ ॥ २ ॥ उस समय वानर और राक्षसगण वृक्ष शूल गदा परिघादि चलाय २ कर परस्पर एक दूसरेको मारनें लगे ॥ ३ ॥ राक्षसलोग शक्ति खड्ग गदा भाला सांग पटा भिन्दिपाल और बाणोंसे वानरोंको मारते हुए ॥ ४ ॥ फिर पाश मुद्गरादि श्रेष्ठ २ आयुधोंसें भी उन राक्षसोंने वानरोंको मारा कि जिस्से बहुतसारे वानर शार्दूल मरगये ॥ ५ ॥ खरके पुत्र मकराक्षके बाणोंसे इस प्रकार पीडित हो वानरगण मारे व्याकुल हो भागनें लगे॥६॥रणविजयी राक्षस लोग वानरोंको चारोंओर भागते हुए देखकर गर्वसहित सिंहनाद करनेलगे ॥७॥

परन्तु महाबलवान वीर द्विविदनें इस राक्षसको आताहुआ देखकर क्रोधसहित इसकी छातीमें एक शिला मारी और अत्यन्तबलसे इस राक्षसको पकड़ लिया ॥ २९ ॥ अपने भाईको पकड़ा हुआ देखकर महातेजस्वी महाबलवान् शोणिताक्षनें द्विविदवीरकी छातीमें एक गदा मारी ॥ ३० ॥ उस अत्यन्त दारुण प्रहारसे वानरवीर द्विविद चलायमान होगया परन्तु थोड़ीही देरमें स्थिरहो उस राक्षसकी दूसरी वार उठी गदाको देख इस वीरने छीन लिया ॥ ३१ ॥ इसी अवसरमें मैन्द अपनें भ्राताकी सहायता करनेंके लिये द्विविदके निकट आय पहुंचा और शोणिताक्ष यूपाक्ष नाम इन दोनों राक्षसोंसे यह दोनों वानरश्रेष्ठ मल्लयुद्ध करनें लगे परस्पर एक दूसरेको खेचते खाचते झटका झोरी करते कठोर युद्धकरने लगे॥३२॥तब द्विविदनें

तमापतंतंसंप्रेक्ष्ययूपाक्षंद्विविदस्त्वरन् ॥ आजघानोरसिक्रुद्धोजग्राहचबलाद्बली ॥ २९ ॥ गृहीतंभ्रातरंदृष्ट्वा शोणिताक्षोमहाबलम् ॥ आजघानमहातेजावक्षसिद्विविदंततः ॥ ३० ॥ सततोभिहतस्तेनचचालचमहाबलः ॥ उद्यतांचपुनस्तस्यजहारद्विविदोगदाम् ॥ ३१ ॥ एतस्मिन्नंतरेमैंदोद्विविदाभ्याशमागमत् ॥ तौशोणिताक्षयूपाक्षौप्लवंगाभ्यांतरस्विनौ॥ चक्रतुःसमरेतीव्रमाकर्षोत्पाटनंभृशम् ॥ ३२ ॥ द्विविदःशोणिताक्षंतुविददारनखैर्मुखे ॥ निष्पिपेषसवीर्येणक्षितावाविध्यवीर्यवान् ॥ ३३ ॥ यूपाक्षमभिसंक्रुद्धोमैंदोवानरपुंगवः ॥ पीडयामासबाहुभ्यांपपातसहतःक्षितौ ॥ ३४ ॥ हतप्रवीराव्यथिताराक्षसेंद्रचमूस्तथा ॥ जगामाभिमुखीसातुकुंभकर्णात्मजोयतः ॥ ३५ ॥ आपतंतींचवेगेनकुंभस्तांसांत्वयच्चमूम् ॥ अथोत्कृष्टंमहावीर्यैर्लब्धलक्षैःप्लवंगमैः ॥ ३६ ॥

अपने मुखसे नखोंसे शोणिताक्षका मुख चीर फाड़ डाला और वकोटलिया और पकड़कर अत्यन्त बलसे पृथ्वीमें दबायकर पीस डाला ॥ ३३ ॥ तब वानरश्रेष्ठ वीर्यवान् मैन्दने अत्यन्त क्रोधितहो दोनों बांहोंसे यूपाक्षको उठाय पृथ्वीपर पटक दिया कि जिस्से यह राक्षस अत्यन्त पीड़ित और निहत होकर पृथ्वीमें गिरपड़ा ॥ ३४ ॥ मारनेंसे बचीहुई राक्षसोंकी सैना राक्षसवीरोंको संग्राममें मृतक देख अत्यन्त दुःखी हुई और अति शीघ्रतासे वहां गई जहां कुम्भकर्णका पुत्र कुंभ खड़ाथा वहां जाकर इस सैनानें यह अशुभ संवाद कुंभसे निवेदन किया ॥ ३५ ॥ कुंभनेंभी उस

इसलियें हेराक्षसगण! आज हम उत्तम बाणोंसे राम लक्ष्मण सुग्रीव व और दूसरे वानरोंकाभी प्राण संहार करेंगे ॥ ११ ॥ जिस प्रकार अग्नि सूखे हुए काठकों जलाताहै, वैसेही हमभी आज शूल चलायकर बड़ीभारी वानरोंकी सैनाको भस्म कर देंगे ॥ १२ ॥ तब वीरवर मकराक्षके वचनोंके अनुसार बलवान् राक्षसगण युद्धके लिये तैयार हुए उनके हाथोंमें अनेक प्रकारके अस्त्रशस्त्र थे ॥ १३ ॥ वह राक्षस क्रूरस्वभाव पीले २ नेत्र वाले कामरूपी और भयंकरदर्शनथे उनके वाल विखरेहुएथे आकार भयंकर था यह सब राक्षस मतवाले हाथीकी समान बड़ा भारी शब्द करनें लगे ॥१४॥ ऐसे बडे२ शरीरवाले राक्षस महावीरगण मकराक्षको घेरकर चलनेंलगे उनके पैर धरनेकी धमकसे पृथ्वी कंपायमान होने लगी॥१५॥

अद्यराममंवधिष्यामिलक्ष्मणंचनिशाचराः ॥ शाखामृगंचसुग्रीवंवानरांश्चशरोत्तमैः ॥ ११ ॥ अद्यशूलनिपातैश्चवानराणांमहाचमूम् ॥ प्रदहिष्यामिसंप्राप्तांशुष्कैंधनमिवानलः ॥ १२ ॥ मकराक्षस्यतच्छ्रुत्वावचनंतेनिशाचराः ॥ सर्वेनानायुधोपेताबलवंतःसमाहिताः ॥ १३ ॥ तेकामरूपिणःक्रूरादंष्ट्रिणःपिंगलेक्षणाः ॥ मातंगाइवनर्दंतोध्वस्तकेशाभयावहाः ॥ १४ ॥ परिवार्यमहाकायामहाकायंखरात्मजम् ॥ अभिजग्मुस्ततोहृष्टाश्चालयंतोनभस्तलम् ॥ १५ ॥ शंखभेरीसहस्राणामाहतानांसमंततः ॥ क्ष्वेलितास्फोटितानांचतत्रशब्दोमहानभूत् ॥ १६ ॥ प्रभ्रष्टोथकरात्तस्यप्रतोदःसारथेस्तदा ॥ पपातसहसादैवाद्ध्वजस्तस्यतुरक्षसः ॥ १७ ॥ तस्यतेरथसंयुक्ताहयाविक्रमवर्जिताः ॥ चरणैराकुलैर्गत्वादीनाःसास्रमुखाययुः ॥ १८ ॥ प्रवातिपवनस्तस्मिन्सपांसुःखरदारुणः ॥ निर्याणेतस्यरौद्रस्यमकराक्षस्यदुर्मतेः ॥ १९ ॥ तानिदृष्ट्वानिमित्तानिराक्षसावीर्यवत्तमाः ॥ अचिंत्यनिर्गताःसर्वेयत्रतौरामलक्ष्मणौ ॥ २० ॥

उस समय भेरी शंख हजारों नगाड़ोंका और वीर लोगोंकी ताल देनेंका और सिंहनाद करनेंका बड़ाभारी शब्द हुआ॥१६॥रणभूमिमें जानेके समय सहसा मकराक्षके सारथीके हाथसे कोड़ा गिरपड़ा और अचानक रथध्वजभी पृथ्वीपर गिरा ॥ १७ ॥ मकराक्षके रथमें जुतेहुए दीन दशाको प्राप्त हुए घोड़े विक्रमहीन हो व्याकुल पवनकी चालसे आंखोंसे आंसू गिरातेहुए गमन करनें लगे ॥ १८ ॥ उस दुर्मति घोर राक्षस मकराक्षके युद्धमें जानेके समय धूलसे युक्त दारुण कठोर पवन चलनेलगी ॥ १९ ॥ परन्तु अत्यन्त वीर्यवान् वह निशाचर उन दुर्निमित्तोंको देखकरभी उनकी

कपिश्रेष्ठ रथ, घोड़े, वृक्ष लेकर राक्षसोंपर चलाये पर्वतोंके शृङ्ग जो कुछभी पातेथे वहां चलातेथे परन्तु महाबलवान् यूपाक्षने बाण चलाय उन सबको टुकड़े २ कर डाला ॥ २० ॥ इसके उपरान्त वीर द्विविद और मैन्दने वृक्षोंको उखाड़कर राक्षसोंके ऊपर चलाया इन सबको वीर्यवान् प्रतापशाली शोणिताक्षनें अधबीचमें ही तोड़डाला ॥ २१ ॥ इसी समयमें वीरश्रेष्ठ प्रजंघ परमर्मभेदी विपुल खड्ग धारण करके अति वेगसे अंगदजीकी ओर धाया ॥२२॥ तब विपुल बलशाली वानरेन्द्र वालिकुमार अंगदजीनें इस राक्षसको निकट आयाहुआ देखकर एक अश्वकर्णवृक्ष ले बड़े वेगसे उसके मारा ॥२३॥ और उस राक्षसके खड्गयुक्त हाथमें एक मूकाभी अंगदजीने मारा कि उसके चोटसे उस निशाचरके हाथसे खड्ग गिर

रथान्सर्वान्द्रुमाञ्छैलान्प्रतिचिक्षिपुराहवे ॥ शरौघैःप्रतिचिच्छेदतान्यूपाक्षोमहाबलः ॥ २० ॥ सृष्टान्द्विविदमैंदाभ्यां द्रुमानुत्पाट्यवीर्यवान् ॥ बभंजगदयामध्येशोणिताक्षःप्रतापवान् ॥ २१ ॥ उद्यम्यविपुलंखड्गंपरमर्मविदारणम् ॥ प्रजं घोवालिपुत्रायअभिदुद्राववेगितः ॥ २२ ॥ तमभ्याशगतंदृष्ट्वावानरेंद्रोमहाबलः ॥ आजघानश्वकर्णेनद्रुमेणातिबल स्तदा ॥ २३ ॥ बाहुंचास्यसनिस्त्रिंशमाजघानसमुष्टिना ॥ वालिपुत्रस्यघातेनसपपातक्षिताविसिः ॥ २४ ॥ तंदृष्ट्वाप तितंभूमौखड्गंमुसलसन्निभम् ॥ मुष्टिंसंवर्तयामासवज्रकल्पंमहाबलः ॥ २५ ॥ सललाटेमहावीर्यमंगदंवानरर्षभम् ॥ आज घानमहातेजाःसमुहूर्तंचचालह ॥ २६ ॥ ससंज्ञांप्राप्यतेजस्वीवालिपुत्रःप्रतापवान् ॥ प्रजंघस्यशिरःकायात्पातयामासमु ष्टिना ॥ २७ ॥ सयूपाक्षोश्रुपूर्णाक्षःपितृव्येनिहतेरणे ॥ अवरुह्यरथात्क्षिप्रंक्षीणेषुःखड्गमाददे ॥ २८ ॥

पड़ा ॥ २४ ॥ उस मूशलकी समान खड्गको पृथ्वीमें गिराहुआ देखकर महावीर प्रजंघनें वज्रकी समान मूका बांधकर अंगदजीपर उठाया ॥ २५ ॥ और महावीर्यवान् वानरश्रेष्ठ अंगदजीके माथेमें वह मूका मारा उस मूकेके लगनेंसे अंगदजी एक मुहूर्तभरतक चलायमान रहे ॥ २६ ॥ परन्तु प्रतापवान तेजस्वी वालिकुमार अंगदजीनेभी फिर शीघ्र चेतना पाय एक मूका मारकर प्रजंघके धड़से शिरको अलग करदिया ॥ २७ ॥ अपने चचा प्रजंघको संग्राममें माराहुआ देखकर यूपाक्ष आंखोंमें आंसू भर धनुष बाण छोड़ खड्ग धारणकर रथसे उतर पड़ा ॥ २८ ॥

वार्ता सुनकर अत्यंत क्रोधसे अग्निकी समान प्रज्वलित होगया ॥ १ ॥ राक्षसराज रावण, क्रोध और शोकसे व्याकुल होकर विशाल नेत्रवाले खरके पुत्र मकराक्षसे बोला ॥ २ ॥ वत्स ! हम तुमको आज्ञा देतेहैं, तुम बड़ी भारी सैनाको साथ लेकर संग्रामभूमिमें जाय वानरोंके सहित उन रामचंद्र और लक्ष्मणको मार डालो ॥ ३ ॥ रावणके वचन सुनकर अपने को शूर माननेवाले बलशाली ढीठ खरके पुत्र राक्षस मकराक्षनें "बहुत अच्छा" कहकर रावणके वचनको स्वीकार किया ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त वह रावणको प्रणामकर व उसकी प्रदक्षिणा कर रावणकी आज्ञानुसार उजले वर्णके गृहोंसे निकला ॥ ५ ॥ तब खरके पुत्र मकराक्षनें समीपही खड़े हुए सैनाके नायकसे कहाकि तुम जलदीसे रथ तैयार कराओ और सब सैनाकोभी सजालाओ ॥ ६ ॥ व सैनाध्यक्षनें मकराक्षकी यह आज्ञा पाय उसका रथ व सब सैनाको वहां सजाकर उपस्थित किया ॥ ७ ॥ निशाचर मकराक्ष रथकी प्रदक्षिणा करकै शीघ्रही उसपर सवारहुआ और सारथिसे कहनेंलगा सूत ! शीघ्रतासे रथको च लाओ ॥ ८ ॥ उसके उपरान्त मकराक्ष उन सब राक्षसोंको पुकार कर कहता हुआ" हे निशाचर गण! तुम हमारे आगे रहकर वानरोंसे यु द्ध करना ॥ ९ ॥ और हमको महात्मा राक्षसोंके स्वामी रावणसे संग्राममें उन राम लक्ष्मण दोनोंके मारनेंको आज्ञा मिलीहै " ॥ १० ॥

नैर्ऋतःक्रोधशोकाभ्यांद्वाभ्यांतुपरिमूर्च्छितः ॥ खरपुत्रंविशालाक्षंमकराक्षमचोदयत् ॥ २ ॥ गच्छपुत्रमयाज्ञप्तोबलेनाभिसमन्वितः ॥ राघवंलक्ष्मणंचैवजहितौसवनौकसौ ॥ ३ ॥ रावणस्यवचःश्रुत्वाशूरमानीखरात्मजः ॥ बाढमित्यब्रवीद्दृष्टोमकराक्षोनिशाचरम् ॥ ४ ॥ सोभिवाद्यदशग्रीवंकृत्वाचापिप्रदक्षिणम् ॥ निर्जगामगृहाच्छुभ्राद्रावणस्याज्ञयाबली ॥५॥ समीपस्थंबलाध्यक्षंखरपुत्रोब्रवीद्वचः ॥ रथमानीयतांतूर्णंसैन्यंत्वानीयतांत्वरात् ॥ ६ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाबलाध्यक्षोनिशाचरः ॥ स्यंदनंचबलंचैवसमीपंप्रत्यपादयत् ॥ ७ ॥ प्रदक्षिणंरथंकृत्वासमाहूयनिशाचरः ॥ सूतंसंचोदयामासशीघ्रंवैरथमावह ॥८॥ अथतान्राक्षसान्सर्वान्मकराक्षोब्रवीदिदम् ॥ यूयंसर्वेप्रयुध्यध्वंपुरस्तान्ममराक्षसाः ॥ ९ ॥ अहंराक्षसराजेनरावणेनमहात्मना ॥ आज्ञप्तःसमरेहंतुंतावुभौरामलक्ष्मणौ ॥ १० ॥

मन्दरपर्वतके सदृश और इन्द्रध्वजकी समान उस वृक्षको सब राक्षसोंके सामनें अत्यन्त वेगसे कुंभके ऊपर चलाया ॥५५॥ कुंभकर्णके पुत्र कुंभनें सात देहको भेदनेंवाले तीखे बाणोंसे अंगदके भेजे उस वृक्षको काटडाला व और एक बाण अतिशीघ्रतासे अंगदजीकी छातीमें मारा अंगद जीभी उस बाणसे अत्यन्त पीड़ित और मोहित होकर पृथ्वीमें गिर पड़े ॥५६॥ समुद्रके जलमें डुबेहुएकी समान अंगदजीको उस महारणमें व्याकुल होकर मूर्छित हुआ देख वानरश्रेष्ठोंनें यह वृत्तान्त श्रीरामचंद्रजीके निकट जायकर निवेदन किया ॥ ५७ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें महासंग्राममें वालिके पुत्र महाबलवान अंगदजीको संग्राममें व्याकुलहुआ सुनकर जाम्बवान् इत्यादि मुख्य २ वानरोंको अंगदजोकी सहाय करनेंकी आज्ञादी ॥ ५८ ॥

तमिंद्रकेतुप्रतिमंवृक्षंमंदरसन्निभम् ॥ समुत्सृजतवेगेनमिषतांसर्वरक्षसाम् ॥ ५५ ॥ सचिच्छेदशितैर्बाणैःसप्तभिः कायभेदनैः ॥ अंगदोविव्यथेभीक्ष्णंसपपातमुमोहच ॥ ५६ ॥ अंगदंपतितंदृष्ट्वासीदंतमिवसागरम् ॥ दुरासदंहरिश्रे ष्ठाराघवायन्यवेदयन्॥५७॥रामस्तुव्यथितंश्रुत्वावालिपुत्रंमहाहवे॥व्यादिदेशहरिश्रेष्ठाञ्जांबवत्प्रमुखांस्ततः ॥ ५८॥ तेतुवानरशार्दूलाःश्रुत्वारामस्यशासनम् ॥ अभिपेतुःसुसंक्रुद्धाःकुंभमुद्यतकार्मुकम् ॥ ५९ ॥ ततोद्रुमशिलाहस्ताः कोपसंरक्तलोचनाः ॥ रिरक्षिषंतोभ्यपतन्नंगदंवानरर्षभाः ॥ ६० ॥ जांबवांश्चसुषेणश्चवेगदर्शीचवानरः ॥ कुंभकर्णा त्मजंवीरंक्रुद्धाःसमभिदुद्रुवुः ॥ ६१ ॥ समीक्ष्यापततस्तांस्तुवानरेंद्रान्महाबलान् ॥ आववारशरौघेणनगेनेवजलाश यम् ॥ ६२ ॥ तस्यबाणपथंप्राप्यनशेकुरपिवीक्षितुम् ॥ वानरेंद्रामहात्मानोवेलामिवमहोदधिः ॥ ६३ ॥

यह वानर शार्दूलगण श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञाको सुनकर क्रोधितहो धनुष उठाये कुंभकी ओर दौड़े ॥ ५९ ॥ इन सबके हाथोंमें वृक्ष और पर्वतथे; क्रोधसे इन सबके नेत्र लाल होरहेथे यह सब अंगदजीके जीवनकी रक्षा करनेके लिये आगे बढ़े ॥ ६० ॥ जाम्बवान् सुषेण, और वानर वेगदर्शी यह तीनों महा क्रोधकर कुंभके सन्मुख धावमान हुए ॥ ६१ ॥ जिस प्रकार पत्थरोंके टुकड़ोंसे जलके सोतेको रोकदियाजाताहै वैसेहो कुंभनें उन महाबलवान् वानरश्रेष्ठोंको आताहुआ देखकर बाणोंसे उनकी गतिको रोक दिया ॥ ६२ ॥ जिस प्रकार महासमुद्रका जल वेलाभूमिको

उसीसे तुम हमारे साथ युद्ध करो ॥ १६ ॥ दशरथनंदन श्रीरामचन्द्रजी मकराक्षके यह वचन सुनकर हँसते २ उस वृथा बकवाद करनेंवाले मक राक्षसे बोले ॥ १७ ॥ हे निशाचर! किस कारणसे बहुत सारी बकवादकरके अपनी बड़ाई कररहाहै ? तू युद्ध न करके केवल वचनोंहीसे जय प्राप्त करनेंके लिये समर्थ नहीं होगा ॥ १८ ॥ हमनें अकेलेही दंडकारण्यमें तुम्हारे पिता खर, त्रिशिरा, दूषण, और उनके संगी चौदह हजार राक्षसोंका संहार कियाहै ॥ १९ ॥ रे पापी! आज तेराभी प्राण संहारकराजायगा और तेरा मांस तीक्ष्ण चोंच और तीक्ष्ण पंजोंवाले गिद्ध, शृगाल और कौए खायकर तृप्त हो जाँयगे ॥ २० ॥ "रुधिरार्द्रमुखा हृष्टारक्तपक्षाण्डजाश्च ये। खेचरा वसुधाराश्च भविष्यन्ति च सर्वतः ॥ जो

मकराक्षवचःश्रुत्वारामोदशरथात्मजः ॥ अब्रवीत्प्रहसन्वाक्यमुत्तरोत्तरवादिनम् ॥ १७ ॥ कत्थसेकिंवृथारक्षोबहून्यसदृशानिते ॥ नरणेशक्यतेजेतुंविनायुद्धेनवाग्बलात् ॥ १८ ॥ चतुर्दशसहस्राणिरक्षसांत्वत्पिताचयः ॥ त्रिशिरादूषणश्चापिदंडकेनिहतोमया ॥ १९ ॥ स्वाशिताश्चापिमांसेनगृध्रगोमायुवायसाः ॥ भविष्यंत्यद्यवैपापतीक्ष्णतुंडनखांकुशाः ॥ २० ॥ राघवेणैवमुक्तस्तुमकराक्षोमहाबलः ॥ बाणौघानमुचत्तस्मैराघवायरणाजिरे ॥ २१ ॥ ताञ्छराञ्छरवर्षेणरामश्चिच्छेदनैकधा ॥निपेतुर्भुविविच्छिन्नारुक्मपुंखाःसुवाससः ॥ २२ ॥

आकाशके चरनेवाले और लाल पंखयुक्त हैं वह सब पक्षीभी अपनी चोंचसे तेरा रुधिर पान करके हर्षितचित्तहो पृथ्वीके अनेक स्थानोंमें घूमेंगे * ॥" जब श्रीरामचन्द्रजीनें यह वचन कहे तब महाबलवान् मकराक्षनें समर करनेंके लिये तैयार होकर एकहीवारमें श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर अगणित बाणोंकी वर्षा की ॥ २१ ॥ परन्तु श्रीरामचन्द्रजीनें अपनी बाणवर्षासे उन समस्त बाणोंको काटडाला, वह सुवर्णकी फोंक

* यह श्लोक प्राचीन पुस्तकोंमें है यद्यपि टीकाकारोंने एकार्थप्रतिपादक जानकर इस श्लोकको छोड़ दियाहै परन्तु वाल्मीकिजीकी कविताका छोडना उचित नहीं इस कारण यह श्लोक यहांपर लिखागया ॥

नहीं लांघसकता वैसेही वह महाबलवान् वानरश्रेष्ठभी उसके बाणोंको तोड़कर आगे बढ़नेमें समर्थ न हुए ॥ ६३ ॥ वानरश्रेष्ठ उन वानरोंको संग्राममें बाणोंकी वर्षासे मर्द्दित देख अपने भतीजे अंगदजीको पीछे छोड़ वानरराज सुग्रीवजी ॥ ६४ ॥ कुंभकर्णके पुत्र कुंभ पर झपटे जिस प्रकार वेगवान् केसरी सिंह पर्वतके शृङ्गोंपर चरतेहुए हाथीपर दौड़ताहै ॥ ६५ ॥ वह महाकपि सुग्रीवजी अश्वकर्णादि अनेक प्रकारके वृक्ष उखाड़ २ कर कुंभपर चलानेलगे ॥ ६६ ॥ परन्तु कुंभकर्णके पुत्र कुंभनें आकाशको छालेनेवाली दुर्द्धर्ष वृक्ष वृष्टिको तीखे बाणोंके समूहसे अति शीघ्र खंड २ कर डाला ॥ ६७ ॥ वह काटेहुए दुर्द्धर्ष सब वृक्ष घोर शतघ्नियोंकी समान दिखाई देनेलगे, बाणोंकी वर्षाको

तांस्तुदृष्ट्वाहरिगणाञ्छरवृष्टिभिरर्दितान्॥ अंगदंपृष्ठतःकृत्वाभ्रातृजंप्लवगेश्वरः ॥ ६४ ॥ अभिदुद्रावसुग्रीवःकुंभकर्णात्मजंरणे ॥ शैलसानुचरंनागंवेगवानिवकेसरी ॥६५॥ उत्पाट्यचमहावृक्षानश्वकर्णादिकान्बहून्॥ अन्यांश्चविविधान्वृक्षांश्चिक्षेपसमहाकपिः ॥ ६६ ॥ तांछादयंतीमाकाशंवृक्षवृष्टिंदुरासदाम् ॥ कुंभकर्णात्मजःश्रीमांश्चिच्छेदस्वशरैःशितैः ॥ ६७ ॥ अर्दितास्तेद्रुमारेजुर्यथाघोराःशतघ्नयः ॥ द्रुमावर्षंतुतद्भिन्नंदृष्ट्वाकुंभेनवीर्यवान् ॥ ६८ ॥ वानराधिपतिःश्रीमान्महासत्त्वोनविव्यथे ॥ सविध्यमानःसहसासहमानस्तुताञ्छरान् ॥६९॥ कुंभस्यधनुराक्षिप्यबभंजेंद्रधनुःप्रभम् ॥ अवप्लुत्यधनुःशीघ्रंकृत्वाकर्मसुदुष्करम् ॥ ७० ॥ अब्रवीत्कुपितःकुंभंभग्नशृंगमिवद्विपम् ॥ निकुंभाग्रजवीर्यंतेबाणवेगंतदद्भुतम् ॥ ७१ ॥ सन्नतिश्चप्रभावश्चतववारावणस्यवा ॥ प्रह्लादबलिवृत्रघ्नकुबेरवरुणोपमम् ॥ ७२ ॥

वीर्यवान् कुंभ करके छिन्न भिन्न देख वानरोंके स्वामी श्रीमान् महासत्वसम्पन्न सुग्रीवजी कुछभी व्यथित न हुए ॥ ६८ ॥ वानरराज राक्षसके बाणसे विंधकर अतिसरलतासे उस दारुण आघातको सहलेतेहुए उन सुग्रीवजीनें इसके उपरान्त कुंभके हाथसे बलपूर्वक इन्द्रके धनुषकी तुल्य ॥ ६९ ॥ उसका धनुष छीन तोड़ डाला वानरराज सुग्रीवजी ऐसा दुष्कर कर्म करके छलांग मार ॥७०॥ कोपकियेहुए दांत टूटेहुए हाथीकी समान खड़ेहुए कुंभसे जायकर बोले । हे निकुंभके बड़े भाई कुंभ ! तुम्हारे बाणोंका वेग व वीर्य अतिअद्भुतहै, ॥ ७१ ॥ तुममें विनय और प्रताप ॥

लगे, गांसीयुक्त समस्त बाण कटकर पृथ्वीपर गिरपड़े ॥ २२ ॥ इस प्रकारसे राक्षस खर और नरेन्द्र महाराज दशरथजीके पुत्र उन दोनोंके पुत्र मकराक्ष व श्रीरामचन्द्रजीका परस्पर तेज सहित मिलनें पर दोनोंका घोरयुद्ध आरंभ हुआ ॥ २३ ॥ तिस काल उस रणभूमिमें आकाशमें शब्द करतेहुए दो मेघोंकी समान दोनोंके धनुषकी टंकार और हाथसे खेचनें का और धनुषसे बाण छोड़नेंका शब्द सुनाईआनेंलगा ॥ २४ ॥ देव, दानव, गन्धर्व, किन्नर, और बड़े २ सर्पगण युद्ध देखनेंके लिये आकाशमें विराजमान हुए ॥ २५ ॥ उस समय दोनोंके शरीर जितनेंही बाणोंसे विंधे वैसेही वैसे दोनोंकी सामर्थ्य बढ़नेंलगी, जब एक दूसरेको मारताथा, तब दूसराभी उसका उत्तर देनेंके लिये उसके उसी अंगमें घाव लगाताथा॥२६॥

तद्युद्धमभवत्तत्रसमेत्यान्योन्यमोजसा ॥ खरराक्षसपुत्रस्यसूनोर्दशरथस्यच ॥ २३ ॥ जीमूतयोरिवाकाशेशब्दोज्या तलयोरिव ॥ धनुर्मुक्तस्वनोन्योन्यंश्रूयतेचरणाजिरे ॥ २४ ॥ देवदानवगंधर्वाःकिन्नराश्चमहोरगाः ॥ अंतरिक्षगताः सर्वेद्रष्टुकामास्तदद्भुतम्॥२५॥विद्धमन्योन्यगात्रेषुद्विगुणंवर्धतेबलम् ॥ कृतप्रतिकृतान्योन्यंकुरुतांतौरणाजिरे॥२६॥ राममुक्तांस्तुबाणौघान्राक्षसस्त्वच्छिनद्रणे॥ रक्षोमुक्तांस्तुरामोवैनैकधाप्राच्छिनच्छरैः॥ २७॥ बाणौघवितताःसर्वा दिशश्चप्रदिशस्तथा॥ संछन्नावसुधाचैवसमंतान्नप्रकाशते॥२८॥ततःक्रुद्धोमहाबाहुर्धनुश्चिच्छेदसंयुगे॥ अष्टाभिरथना राचैःसूतंविव्याधराघवः॥२९॥भित्त्वारथंशरैरामोहत्वाअश्वानपातयत् ॥ विरथोवसुधास्थःसमकराक्षोनिशाचरः॥३०॥

श्रीरामचन्द्रजीनें जितनें बाण चलाये मकराक्षनें उन सबको काटडाला और राक्षस मकराक्षके छोड़ेहुए बाणसमूहोंको श्रीरामचन्द्रजीनें काटडाला ॥ २७ ॥ दोनों वीरोंके चलायेहुए बाणोंसे समस्त दिशा विदिशा भरगईं, और पृथ्वी आकाश दोनोंमें अंधकार छाय गया ॥ २८ ॥ इसके उपरान्त महाबाहु श्रीरामचन्द्रजीनें क्रोधित होकर मकराक्षका धनुष काटकर अठारह बाण चलायकर उसके सारथिको बींधा ॥ २९ ॥ व और बहुतसे बाणोंसे रथको भेदकर उसमेंके जुतेहुए घोड़ोंकाभी संहारकिया तब राक्षस मकराक्ष रथहीन होकर पृथ्वीपर

रावणकी नांईहैं; तुम्हारा विक्रम, बल, प्रह्लाद, इन्द्र कुबेर, और वरुणकी समान है ॥ ७२ ॥ तुम सब प्रकारसे अपने पिता कुंभकर्णके अनुरूप पुत्रहो हेमहाबाहो शत्रुदमनकारी! जब तुम अकेले शूल हाथमें लेकर खड़े हो जाओ ॥ ७३ ॥ तब देवता लोगभी भयभीतहो तुम्हारे सन्मुख न आय सकेंगे; कि जिस प्रकारसे मनकी पीड़ा इन्द्रियोंके जीतनेंवाले पुरुषके सन्मुख नहीं खड़ी हो सकती [अर्थात् उसको पीड़ा नहीं देसकती] अच्छा जो हुआ सो हुआ आज तुम इस महासंग्राममें अपना विक्रम प्रकाश करो और हमारा विक्रम देखो ॥ ७४ ॥ तुम्हारे ताऊ रावणनें तौ ब्रह्माजीके वरदानके प्रभावसेही देवता और दानव लोगोंको जीताथा, परन्तु कुंभकर्णनें अपनें वीर्यके प्रभावसे सुर असुर लोगोंको पराजित

एकस्त्वमनुजातोसिपितरंबलवत्तरम्॥त्वामेवैकंमहाबाहुंशूलहस्तमरिंदमम् ॥७३॥ त्रिदशानातिवर्त्ततेजितेंद्रियमिवाधयः॥ विक्रमस्वमहाबुद्धेकर्माणिममपश्यच॥७४॥वरदानात्पितृव्यस्तेसहतेदेवदानवान्॥कुंभकर्णस्तुवीर्येणसहतेचसुरासुरान् ॥ ७५ ॥ धनुषींद्रजितस्तुल्यःप्रतापेरावणस्यच ॥ त्वमद्यरक्षसांलोकेश्रेष्ठोसिबलवीर्यतः ॥ ७६ ॥ महाविमर्दसमरेमयासहतवाद्भुतम् ॥ अद्यभूतानिपश्यंतुशक्रशंबरयोरिव ॥ ७७ ॥ कृतमप्रतिमंकर्मदर्शितंचास्त्रकौशलम् ॥ पातिताहरिवीराश्चत्वयैतेभीमविक्रमाः ॥ ७८ ॥ उपालंभभयाच्चैवनासिवीरमयाहतः ॥ कृतकर्मपरिश्रांतोविश्रांतःपश्यमेबलम् ॥ ७९ ॥

कियाथा ॥ ७५ ॥ तुम प्रतापमें रावणकी समान और धनुषविद्यामें इन्द्रजीतकी तुल्य हो, इसलिये अब राक्षसोंके बीचमें एक तुमही हमको बल वीर्यमें श्रेष्ठ जान पड़तेहो ॥ ७६ ॥ जिस प्रकार शत्रु लोगोंके साथ शम्बरासुरका संग्राम हुआथा, वैसेही तुम्हारे साथ आज हमारा कठोर संग्राम होगा; समस्त प्राणी इस भयंकर समरको अपनी आंखोंसे देखेंगे ॥ ७७ ॥ तुमनें असाधारण कर्म कियाहै; तुमनें अपने अस्त्रकी चतुरताभी बाणोंको चलाय कर दिखाई है, कि इन भीमविक्रमकारी जाम्बवान् आदि वानरोंको बाणोंसें रोकदियाहै ॥ ७८ ॥ तुम अकेले इन वहुत सारे वानरोंके साथ युद्ध करकै थकगयेहो; अतएव इस समय बल प्रकाश करकै तुम्हारे वध करनेंपर लोग निन्दा करैंगे इसी भयसे हम तुमको नहीं मार

खड़ा रहगया ॥ ३० ॥ पृथ्वीपर खड़ेहुए उस राक्षस मकराक्षनें सर्व प्राणियोंको भय दिलानेंवाला प्रलयकालकी समान प्रकाशित शूल अपने हाथमें ग्रहणकिया ॥ ३१ ॥ यह शूल राक्षस मकराक्षनें महादेवजीकी तपस्या करके प्राप्त कियाथा, यह भयं कर और अतिदुर्द्धर्ष था, यह अपने तेजसे आकाशमें प्रज्वलितहो रहाथा, ॥ ३२ ॥ देखनेंसे यह शूल दूसरे संहारास्त्रकी समान जान पड़ताथा जिसको देखकर सब देवता भयके मारे आरत हो दशों दिशाओंको भागगये; ॥ ३३ ॥ ऐसा बड़ाभारी प्रज्वलित शूल घुमायकर राक्षसनें क्रोधसहित वह शूल महात्मा श्रीरामचंद्रजीके ऊपर चलाया उस आतेहुए खरपुत्र मकराक्षके हाथसे चलायेहुए प्रज्व

तत्तिष्ठद्वसुधांरक्षःशूलंजग्राहपाणिना ॥ त्रासनंसर्वभूतानांयुगांताग्निसमप्रभम् ॥३१॥ दुरवापंमहच्छूलंरुद्रदत्तंभयंकरम् ॥ जाज्वल्यमानमाकाशेसंहारास्त्रमिवापरम् ॥३२॥ यंदृष्ट्वादेवताःसर्वाभयार्ताविद्रुतादिशः ॥ विभ्राम्यचमहच्छूलंप्रज्वलंतंनिशाचरः ॥ ३३ ॥ सक्रोधात्प्राहिणोत्तस्मैराघवायमहात्मने ॥ तमापतंतंज्वलितंखरपुत्रकराच्युतम् ॥३४॥ बाणैश्चतुर्भिराकाशेशूलंचिच्छेदराघवः ॥ सभिन्नोनैकधाशूलोदिव्यहाटकमंडितः ॥ व्यशीर्यतमहोल्केवरामबाणार्दितोभुवि ॥३५॥ तच्छूलंनिहतंदृष्ट्वारामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ साधुसाध्वितिभूतानिव्याहरंतिनभोगताः ॥३६॥ तंदृष्ट्वानिहतंशूलंमकराक्षोनिशाचरः ॥ मुष्टिमुद्यम्यकाकुत्स्थंतिष्ठतिष्ठेतिचाब्रवीत्॥३७॥सतंदृष्ट्वापतंतंतुप्रहस्यरघुनंदनः ॥ पावकास्त्रंततोरामःसंदधेतुशरासने॥३८॥तेनास्त्रेणहतंरक्षःकाकुत्स्थेनतदारणे॥सच्छिन्नहृदयंतत्रपपातचममारच॥३९॥

लित ॥ ३४ ॥ शूलको चार बाणोंसे आकाशमेंही श्रीरामचंद्रजीनें काट डाला । तपायेहुए सुवर्णसे शोभित वह दिव्यशूल श्रीरामचंद्रजीके बाणसे मर्दित और अनेक खंड होकर बड़ीभारी उल्काकी समान पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ३५ ॥ उस समय सरलकर्मकारी श्रीरामचंद्रजी करके उस शूलको कटा हुआ देखकर आकाशमें टिके हुए सब प्राणी "धन्यहो, धन्यहो" ऐसा कहनेंलगे ॥ ३६ ॥ निशाचर मकराक्ष शूलको कटा हुआ देख मूका उठाय "खड़े रहो खड़े रहो" ऐसा कहकर श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख धाया ॥ ३७ ॥ ॥ रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीनेंभी उस राक्षसको आताहुआ देख मंद २ हँसतेहुए धनुपको धारण किया और उसपर अग्निबाण चढ़ाया ॥ ३८ ॥ श्रीरामचंद्रजीके उस आग्नेयास्त्रसे राक्षस

डालते हैं. एक क्षणभर विश्राम करकै तुम हमारा पराक्रम देखो ॥ ७९ ॥सुग्रीवजीके ऐसे सारवान् सन्मानयुक्त वचनोंसे अग्निमें आहुति लगनेंके समान कुंभका तेज औरभी बढ़ा ॥८०॥ इसके उपरान्त वीर्यवान कुंभनें दोनों बाहोंसे सुग्रीवजीको पकड़ लिया, वह दोनों जने उस समय मदचु आते हाथीकी समान वारंवार लंबे २ श्वास लेनें लगे ॥ ८१ ॥ परस्पर एक दूसरेका शरीर गांठनें लगे, दोनोंही एक दूसरेको खेंचतेथे अत्यन्त जोरसे लड़नेंकें कारण दोनोंहीके मुखसे मारे परिश्रमके धुवें सहित अग्निकी शिखा निकल रहीथी ॥८२॥ दोनों वीरोंके चरणोंकी धमकसे पृथ्वी नीचे को धसनेंलगीं समुद्रमें बड़ी तरंगें उठनें लगी और समुद्र कंपायमानभी हुआ ॥८३॥ तिसके उपरान्त सुग्रीवजीनें कुंभको पकड़कर मानों समुद्रकी

तेनसुग्रीववाक्येनसावमानेनमानितः ॥ अग्नेराज्यहुतस्येवतेजस्तस्याभ्यवर्धत ॥ ८० ॥ ततःकुंभस्तुसुग्रीवंबाहुभ्यां जगृहेतदा ॥ गजाविवावीतमदौनिःश्वसंतौमुहुर्मुहुः ॥ ८१ ॥ अन्योन्यगात्रग्रथितौघर्षतावितरेतरम् ॥ सधूमांमुखतो ज्वालांविसृजंतौपरिश्रमात् ॥ ८२ ॥ तयोःपादाभिघाताच्चनिमग्नाचाभवन्मही ॥ व्याघूर्णिततरंगश्चचुक्षुभेवरुणा लयः ॥ ८३ ॥ ततःकुंभंसमुत्क्षिप्यसुग्रीवोलवणांभसि ॥ पातयामासवेगेनदर्शयन्नुदधेःस्थलम् ॥ ८४ ॥ ततःकुंभनिपाते नजलराशिःसमुत्थितः ॥ विंध्यमंदरसंकाशोविससर्पसमंततः ॥ ८५ ॥ ततःकुंभःसमुत्पत्यसुग्रीवमभिपात्यच ॥ आजघानोरसिक्रुद्धोवज्रकल्पेनमुष्टिना ॥ ८६ ॥ तस्यचर्मचपुस्फोटसंजज्ञेचापिशोणितम् ॥ तस्यमुष्टिर्महावेगःप्रति जघ्नेऽस्थिमंडले ॥ ८७ ॥ तस्यवेगेनतत्रासीत्तेजःप्रज्वलितंमहत् ॥ वज्रनिष्पेषसंजाताज्वालामेरोर्यथागिरेः ॥ ८८ ॥

तली दिखलानेंके लियेही उसको अतिवेगसे लवणसमुद्रमें झोक दिया ॥८४॥ जब कुंभ समुद्रमें झोकागया तब समुद्रके जलकी राशि विन्ध्य और मन्दराचल पर्वतकी समान ऊंचा उठकर चारों ओर उफलाय उठा ॥ ८५ ॥ कुंभ एकक्षणभरके पीछेही समुद्रसे निकलकर सुग्रीवजीके निकट आया और क्रोधमें भरकर उनकी छातीमें एक वज्रकी समान मूका मारा॥८६॥उस भयंकर आघातसे सुग्रीवजीके शरीरकी खाल फट गई, अतिवेगसे रुधिरकी धारा वहनेंलगी और उस महावेगसे चलेहुए मूकेनें सुग्रीवजीकी छातीकी हड्डियें तोड़ डालीं ॥ ८७ ॥ जिस प्रकार वज्रके चलानेसे

मकराक्षका हृदय फट गया और वह संग्राम भूमिमें गिरकर प्राण छोड़ता हुआ ॥ ३९ ॥ उस समय और सब राक्षस मकराक्षको मृतक देख राम
बाणके भयसे अत्यन्त व्याकुलहो लंकाकी ओरको भागे ॥ ४० ॥ इस ओर देवता लोग राजा दशरथजीके पुत्र श्रीरामचंद्रजी करके
खरके पुत्र निशाचर मकराक्षको मृतक और वज्रसे विदारण हुए पर्वतकी समान पड़े देखकर परम प्रसन्न हुए ॥ ४१ ॥ इ०
श्रीम० वा० आ० यु० भाषानुवादे नवसप्ततितमः सर्गः ॥ ७९ ॥ महावीर रावण मकराक्षकी मृत्युका समाचार सुनकर अत्यन्त क्रोध
युक्त हुआ और दांतसे दांत पीसकर "कटकट" शब्द करनेंलगा ॥ १ ॥ इसके उपरान्त क्षणभरतक "अब क्या करना उचितहै" यह चिन्ता

दृष्ट्वातेराक्षसाःसर्वेमकराक्षस्यपातनम् ॥ लंकामेवप्रधावंतरामबाणभयार्दिताः ॥ ४० ॥ दशरथनृपसूनुबाणवेगैरज
निचरंनिहतंखरात्मजंतम् ॥ प्रददृशुरथदेवताःप्रहृष्टागिरिमिववज्रहतंतथाविकीर्णम् ॥ ४१ ॥ इ० श्रीम० वा०आ०
यु०नवसप्ततितमःसर्गः ॥ ७९ ॥ ॥ छ ॥ ॥ मकराक्षंहतंश्रुत्वारावणःसमितिंजयः ॥ रोषेणमहताविष्टोदंतान्कटक
टाय्यच ॥ १ ॥ कुपितश्चतदातत्रकिंकार्यमितिचिंतयन् ॥ आदिदेशाथसंक्रुद्धोरणायेंद्रजितंसुतम् ॥ २ ॥ जहिवी
रमहावीर्यौभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ अदृश्योदृश्यमानोवासर्वथात्वंबलाधिकः ॥ ३ ॥ त्वमप्रतिमकर्माणमिंद्रंजय
सिसंयुगे ॥ किंपुनर्मानुषौदृष्ट्वानवधिष्यसिसंयुगे ॥ ४ ॥ तथोक्तोराक्षसेंद्रेणप्रतिगृह्यपितुर्वचः ॥ यज्ञभूमौसविधि
वत्पावकंजुहवेंद्रजित् ॥५॥ जुह्वतश्चापितत्राग्निंरक्तोष्णीषधराःस्त्रियः॥ आजग्मुस्तत्रसंभ्रांताराक्षस्योयत्ररावणिः॥६॥

करके महा क्रोधकर पुत्र इन्द्रजीतको संग्राममें जानेंकी आज्ञा देता हुआ ॥ २ ॥ रावणनें कहा, हेवीर! तुम सब प्रकारसे महाबलवानहो इस
लिये प्रगट होकर अथवा अन्तर्ध्यान होकर दोनों भ्राता राम और लक्ष्मणको मार डालो ॥ ३ ॥ तुमनें जो रणभूमिमें अनुपमकर्मकारी इन्द्रको
जीत लियाहै फिर भला "दो मनुष्योंको" तौ देखतेही तुम मार डालोगे इसमें संदेहही क्याहै इन्द्रजीतनें राक्षसोंके स्वामी रावणकी इस प्रकारसे
आज्ञा पाय यज्ञभूमिमें जाय अग्निमें यथाविधिसे होम करना आरंभ किया ॥ ४ ॥ ५ ॥ जिस स्थानमें राक्षसराजका पुत्र मेघनाद यज्ञकार्यमें

सुमेरु पर्वतसें अग्नि निकलतीथी वैसेही उस मूकेके लगनेंसे सुग्रीवजीकी छातीकी हड्डियोंमेंसे तेज निकलनें लगा ॥ ८८ ॥ महाबलशाली वीर्यवान वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजीनें कुंभकरके इस प्रकारसे चोट खाय वज्रकी समान महाबलसे मूका बांधा ॥ ८९ ॥ सहस्रकिरणोंसे समुज्वल रवि मंडलकी समान वह घूंसा कुंभकी छातीमें मारा ॥ ९० ॥ तब उस प्रहारसे कुंभ अत्यन्त ताड़ित और विह्वल होकर लपटहीन अग्निके समान पृथ्वीमें गिर पड़ा ॥९१॥ और वह निशाचर मूकेसे मारा जायकर आकाशसे अपनें आपसे गिरेहुए मंगल ग्रहकी समान गिरकर शोभायमान हुआ ॥ ९२ ॥ मूकेके प्रहारसे कुंभकी छाती टूट गई और गिरे हुए कुंभकारूप महादेवजीके मारनेंसे गिरे हुए सूर्यकी समान शोभित हुआ॥९३॥

सतत्राभिहतस्तेनसुग्रीवोवानरर्षभः ॥ मुष्टिंसंवर्तयामासवज्रकल्पंमहाबलः ॥ ८९ ॥ अर्चिःसहस्रविकचरविमंडलवर्चसम् ॥ समुष्टिंपातयामासकुंभस्योरसिवीर्यवान् ॥ ९० ॥ सतुतेनप्रहारेणविह्वलोभृशपीडितः ॥ निपपाततदाकुंभोगतार्चिरिवपावकः ॥ ९१ ॥ मुष्टिनाभिहतस्तेननिपपाताशुराक्षसः ॥ लोहितांगइवाकाशाद्दीप्तरश्मिर्यदृच्छया ॥९२ ॥ कुंभस्यपततोरूपंभग्नस्योरसिमुष्टिना ॥ बभौरुद्राभिपन्नस्ययथारूपंगवांपतेः ॥९३ ॥ तस्मिन्हतेभीमपराक्रमेणप्लवंगमानामृषभेणयुद्धे ॥ महीसशैलासवनाचचालभयंचरक्षांस्यधिकंविवेश ॥ ९४ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेषट्सप्ततितमःसर्गः ॥ ७६ ॥७॥ निकुंभोभ्रातरंदृष्ट्वासुग्रीवेणनिपातितम् ॥ प्रदहन्निवकोपेनवानरेंद्रमुदैक्षत ॥ १ ॥ ततःस्रग्दामसन्नद्धंदत्तपंचांगुलंशुभम् ॥ आददेपरिघंधीरोमहेंद्रशिखरोपमम् ॥ २ ॥

इस प्रकार भयंकर पराक्रमकारी वानरराज करके रणभूमिमें जब कुंभ मारा गया, तब समस्त वन और पर्वतोंके साथ पृथ्वी चलायमान होगई व निशाचर गण औरभी अधिक भीत हुए ॥ ९४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ॥ ७६ ॥ वानरराज सुग्रीवजीके हाथसे अपने भ्राता कुंभको निहत देखकर महावीर निकुंभ क्रोधसे लाल २ नेत्रकर जलाताहीहुआसा मानों सुग्रीवजीकी ओर देखने लगा ॥ १ ॥इसके उपरान्त उस वीरनें काले लोहेका बनाहुआ पांच अंगुलके प्रमाणवाला बन्धोंसें बँधा ज्वाला मालासे शोभित

दीक्षित हुआथा वहांपर कईएक लाल वस्त्र धारण किये हुए राक्षसियें अतिसावधानीसे आयकर इस यज्ञकी सेवा करनें लगीं ॥ ६ ॥ उस यज्ञमें शस्त्रही शरपतके तुल्य बिछरहेथे और उसके पूरा करनेंके लिये बहेड़ेकी लकड़ी, लाल वर्णके वस्त्र, और काले लोहेसे बना हुआ स्रुवा लाया गया ॥ ७ ॥ तब इन्द्रजीतनें तोमर स्वरूप शरपत्रोंसे अग्नि प्रज्वलितकी और एक जीते हुए काले छागकी गर्दन पकड़ी ॥ ८ ॥ और उस छागको अग्निमें होम दिया, होम करतेही वह शरपत्रोंपर फैली हुई अग्नि धूम रहित होगई, और उसमें निकली हुई शिखाओंसे विजयकी सूचना देने वाले चिह्न प्रकाशित हुए ॥ ९ ॥ और तपाये हुए कांचनकी समान अग्निने दाहिनी ओरकी धूम लपटोंके सहित उठकर मेघनादकी दी हुई

शस्त्राणिशरपत्राणिसमिधोथबिभीतकाः ॥ लोहितानिचवासांसिस्रुवंकार्ष्णायसंतथा ॥ ७ ॥ सर्वतोग्निंसमास्तीर्य शरपत्रैःसतोमरैः ॥ छागस्यसर्वकृष्णस्यगलंजग्राहजीवतः॥ ८ ॥ शरहोमसमिद्धस्यविधूमस्यमहार्चिषः ॥ बभूवु स्तानिलिंगानिविजयंदर्शयंतिच ॥ ९ ॥ प्रदक्षिणावर्तशिखस्तप्तहाटकसन्निभः ॥ हविस्तत्प्रतिजग्राहपावकःस्वयमु त्थितः ॥ १० ॥ हुत्वाग्निंतर्पयित्वाथदेवदानवराक्षसान् ॥ आरुरोहरथश्रेष्ठमंतर्धानगतंशुभम् ॥ ११ ॥ सवाजिभि श्चतुर्भिस्तुबाणैस्तुनिशितैर्यतः ॥ आरोपितमहाचापःशुशुभेस्यंदनोत्तमे ॥ १२ ॥ जाज्वल्यमानोवपुषातपनीयप रिच्छदः ॥ मृगैश्चंद्रार्धचंद्रैश्चसरथःसमलंकृतः ॥ १३ ॥ जांबूनदमहाकंबुर्दीप्तपावकसन्निभः ॥ बभूवेंद्रजितःकेतु र्वैदूर्यसमलंकृतः ॥ १४ ॥

आहुति ग्रहणकी ॥ १० ॥ रावणका पुत्र मेघनाद इस प्रकार अग्निको आहुतिदे देव, दानव और राक्षसोंकी तृप्ति करताहुआ व किसीको न दीखनें वाले शुभ लक्षणयुक्त रथपर सवारहुआ ॥ ११ ॥ उस कालमें चार घोड़ोंसे चलाये जाते उत्तम रथमें सवार होकर वह वीर बड़ाभारी धनुष और तीखे बाणसमूह ग्रहण करके परम शोभायमान होनें लगा ॥ १२ ॥ महावीर इन्द्रजीतका देह सुवर्णके वस्त्राभूषणसे शोभायमानथा उसका रथभी सुवर्णसे भूषितथा, उस रथमें मृगोंकी तसवीर बनरहीथी और अर्द्धचंद्रोंसेभी वह भली भांति अलंकृतथा ॥ १३ ॥ सोनेके वलयसे युक्त

वीर हनुमानजीको उठाय आकाश मार्गसे लंकाकी ओर जानें लगा, तब राक्षस लोग युद्धके इस वृत्तान्तको देखकर हर्षित मनसे कुलाहल करनें लगे ॥ १८ ॥ उस समय महावीर हनुमानजी अपनेको राक्षसके हाथमें पड़ा हुआ देखकर अत्यन्तही लज्जित हुए और उन्होंनें उस राक्षसकी छातीमें वज्रकी समान एक घूंसा मारा ॥ १९ ॥ हनुमानजी उसी समयै राक्षसके हाथसे अपनेंको छुटाय कूदकर पृथ्वीपर खड़े होगये और निकुंभको पकड़कर उन्होंनें शीघ्रही पृथ्वीपर पटक दिया॥२०॥ वह वेगवान वीर हनुमानजी क्रोधमें भरकर निकुंभको पृथ्वीपर पटक वारंवार पीसकर देदे मारनें लगे और आपभी कूदकर उसकी छातीपर चढ बैठे ॥ २१ ॥ इसके उपरान्त अपनी दोनों बाहोंसे पकडकर उसका शिर मरोरदिया,

सतथाह्रियमाणोपिहनूमांस्तेनरक्षसा ॥ आजघानानिलसुतोवज्रकल्पेनमुष्टिना ॥ १९ ॥ आत्मानंमोक्षयित्वाथ क्षितावभ्यवपद्यत ॥ हनूमानुन्ममाथाशुनिकुंभंमारुतात्मजः ॥२० ॥ निक्षिप्यपरमायत्तोनिकुंभंनिष्पिपेषच ॥ उत्पत्यचास्यवेगेनपपातोरसिवेगवान् ॥ २१ ॥ परिगृह्यचबाहुभ्यांपरिवृत्यशिरोधराम् ॥ उत्पाटयामासशिरोभैरवंनदतोमहत् ॥ २२॥ अथनिनदतिसादितेनिकुंभेपवनसुतेनरणेबभूवयुद्धम् ॥ दशरथसुतराक्षसेंद्रसूनोर्भृशतरमागतरोषयोःसुभीमम् ॥ २३ ॥ व्यपेतेतुजीवेनिकुंभस्यहृष्टाविनेदुःप्लवंगादिशःसस्वनुश्च ॥ चचालेवचोर्वीपपातेवसाद्यौर्बलं राक्षसानांभयंचाविवेश ॥ २४ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवा०आ०युद्धकांडेसप्तसप्ततितमःसर्गः ॥ ७७ ॥ ॥ ६ ॥

निकुंभंनिहतंदृष्ट्वाकुंभंचविनिपातितम् ॥ रावणःपरमामर्षीप्रजज्वालानलोयथा ॥ १ ॥

और उस भयंकर शब्द करतेहुएका शिर उखाड़कर फेंक दिया ॥२२॥ इस प्रकार जब पवनकुमार हनुमानजीसे संग्राममें शब्दकरताहुआ निकुंभ मारा गया तब अत्यन्त क्रोध पूर्ण श्रीरामचंद्रजीका और राक्षसोंमें श्रेष्ठ खरके पुत्र मकराक्षका युद्ध आरंभ हुआ ॥ २३ ॥ निकुंभके मारेजानेंपर वानर लोगोंकी आनंदपूर्ण सिंहनादसे दशों दिशा शब्दायमान, पृथ्वी चलायमान और आकाश मानों पृथ्वीपर गिर पड़ा । निकुंभको माराहुआ देखकर वानर लोगोंका भयंकर शब्द सुनकर राक्षसोंकी सैनामें अत्यन्त भयका संचार हुआ ॥ २४ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० भाषानुवादे सप्तसप्ततितमःसर्गः ॥ ७७ ॥ इसके उपरान्त लंकापति दशानन रावण निकुंभ और कुंभके मरनेंकी ॥

और प्रदीप्त अग्निकी समान उसका केतुभी वैदूर्यमणिसे सबप्रकार सजरहाथा ॥ १४ ॥ उस सूर्यकी समान रथ और ब्रह्मास्त्रसे रक्षित होनेंके कारण महाबलवान रावणका पुत्र मेघनाद अत्यन्त अजीत होगया ॥१५॥ समरविजयी इन्द्रजीत इस प्रकारसे अग्निमें होमकरके नगरसे बाहर निकला और राक्षसी मंत्रोंसे अन्तर्ध्यान होकर बोला ॥ १६ ॥ मिथ्या वनको निकले हुए राम और लक्ष्मणको संग्राममें मारकर हम रणमें बटोरी हुई जय अपने पिता रावणको देंगे ॥ १७ ॥ आज हम लक्ष्मणके सहित रामचंद्रका नाशकर पृथ्वीको वानरविहीन और पिताजीको परम प्रसन्न करेंगे ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त महावीर इन्द्रजीत रावणकी प्रेरणासे प्रेरित होकर क्रोधसहित युद्धभूमिमें आया, मेघनाद हाथमें तीक्ष्ण अस्त्र धारण करके औरभी अधिक तीक्ष्ण होगया ॥ १९ ॥ इन्द्रजीतने देखा कि वानरलोगोंके बीचमें तीन फणवाले सर्पकीसमान श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी खडेहैं [इनके बन्धनोंमें दो दो तरकस लग रहेथे और मस्तकके साथ तीन २ शिरवाले ज्ञात होतेथे, इस कारण तीन फणवाला सर्प कहा] यह श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी वानर लोगोंके बीचमें खड़े रहकर बाणोंकी वर्षा कर रहेथे ॥ २० ॥ इन्द्रजीतनें उनको देखतेही पहचानलिया और मेघ जिसप्रकार जलकी धारा वर्षातेहैं वैसेही मेघनाद धनुषपर बाण चढायकर निरन्तर बाणोंकी वर्षा करनें लगा ॥ २१ ॥ आकाशगामी रथपर सवार होकर वह वीर दृष्टिके ओझलहोकर टिका हुआ तीखे बाण समूहसे श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीको वींधताहुआ ॥ २२ ॥ महावीर श्रीरामचंद्र

तेनचादित्यकल्पेनब्रह्मास्त्रेणचपालितः ॥ सबभूवदुराधर्षोरावणिःसुमहाबलः॥१५॥ सोभिनिर्यायनगरादिंद्रजित्समितिंजयः ॥ हुत्वाग्निंराक्षसैर्मंत्रैरंतर्धानगतोब्रवीत् ॥ १६ ॥ अद्यहत्वारणेयौतौमिथ्याप्रव्रजितौवने ॥ जयंपित्रेप्रदास्यामिरावणायरणेधिकम् ॥१७॥ अद्यनिर्वानरामुर्वींहत्वारामंचलक्ष्मणम्॥ करिष्येपरमांप्रीतिमित्युक्त्वांतरधीयत॥१८॥ आपपाताथसंक्रुद्धोदशग्रीवेणचोदितः॥ तीक्ष्णकार्मुकनाराचैस्तीक्ष्णास्त्विंद्ररिपूरणे ॥१९॥ सददर्शमहावीर्यौनागौत्रिशिरसाविव ॥ सृजंताविषुजालानिवीरौवानरमध्यगौ ॥ २० ॥ इमौतावितिसंचिंत्यसज्जंकृत्वाचकार्मुकम् ॥ संततानिषुधाराभिःपर्जन्यइववृष्टिमान् ॥ २१ ॥ सतुवैहायसरथोयुधितौरामलक्ष्मणौ ॥ अचक्षुर्विषयेतिष्ठन्विव्याधनिशितैःशरैः ॥ २२ ॥ तौतस्यशरवेगेनपरीतौरामलक्ष्मणौ ॥ धनुषीसशरेकृत्वादिव्यमस्त्रंप्रचक्रतुः ॥ २३ ॥

इन तीनोंको अपनें ऊपर आयाहुआ देख श्रीरामचंद्रजीनें तीक्ष्ण बाणों से ॥१९॥ इनकी अगवानीकी। जैसे मनुष्य आयेहुए पाहुनोंकी अगुवानी व उचित पूजा करतेहैं। और महाकपालका तो रघुनंदनजीनें शिर ही उड़ादिया ॥ २० ॥ व अगणित बाणोंसे प्रमाथीका माथा, और स्थूलाक्षकी मोटी आखोंको पूरण करदिया ॥२१॥ यह तीनों कटेहुए वृक्षोंकी नांईं पृथ्वीमें गिर पडे। इसके पीछे पांचहजार जो दूषणके अनुयायी राक्षसथे उन सबको अति क्रोधकर एक क्षणभरमें ॥२२॥ संहारकर उन सबको श्रीदशरथकुमारनें यमपुरको पठादिया, तब दूषण, व उसके अनुगामी सैन्यको मरा गयाहुआ सुन ॥ २३ ॥ खरनें क्रोधित होकर महाबलवान् और दूसरे सेनापतियोंको इस प्रकारसे आज्ञा दी, कि, से

तीक्ष्णाग्रैःप्रतिजग्राहसंप्राप्तानतिथीनिव ॥ महाकपालस्याशिरश्चिच्छेदरघुनंदनः ॥ २० ॥असंख्येयैस्तुबाणौघैःप्रममाथप्रमाथिनम् ॥ स्थूलाक्षस्याक्षिणीस्थूलेपूरयामाससायकैः ॥ २१ ॥ सपपातहतोभूमौविटपीवमहाद्रुमः ॥ दूषणस्यानुगान्पंचसाहस्रान्कुपितःक्षणात् ॥२२॥ हत्वातुपंचसाहस्रैरनयद्यमसादनम् ॥ दूषणंनिहतंश्रुत्वातस्यचैवपदानुगान् ॥ २३ ॥ व्यादिदेशखरःक्रुद्धःसेनाध्यक्षान्महाबलान् ॥ अयंविनिहतःसंख्येदूषणःसपदानुगः ॥ २४ ॥ महत्यासेनयासार्धंयुद्धारामंकुमानुषम् ॥ शस्त्रैर्नानाविधाकारैर्हनध्वंसर्वराक्षसाः ॥ २५ ॥ एवमुक्त्वाखरःक्रुद्धोराममेवाभिदुद्रुवे ॥ श्येनगामीपृथुग्रीवोयज्ञशत्रुर्विहंगमः ॥ २६ ॥ दुर्जयःकरवीराक्षःपरुषःकालकार्मुकः ॥ हेममालीमहामालीसर्पास्योरुधिराशनः ॥ २७ ॥ द्वादशैतेमहावीर्याबलाध्यक्षाःससैनिकाः ॥ राममेवाभ्यधावंतविसृजंतःशरोत्तमान् ॥ २८ ॥

नापति लोगो। दूषण तो अपने अनुगामियों समेत मारागया ॥ २४ ॥ बस अब तुम सब राक्षसगण एकत्रहो बडी भारी सेनाको साथ लेकर विविध आकार अस्त्र शस्त्र छोडकर मनुष्याधम रामचंद्रको मारडालो ॥२५॥ खर सेनापतियोंसे इस प्रकार कहकर क्रोधमें भर आपही श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख दौडा। श्येनगामी, पृथुग्रीव, यज्ञशत्रु, विहङ्गम ॥ २६ ॥ दुर्ज्जय, परवीराक्ष, परुष, कालकार्मुक, हेममाली, महामाली, सर्प्पास्य, रुधिराशन ॥ २७ ॥ यह बारह महावीर सेनापति अपनी सेनाके साथ श्रेष्ठ बाण वर्षातेहुए श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख धाये ॥ २८ ॥

इन सब राक्षसोंको तेजस्वी श्रीरामचंद्रजीने अपने ऊपर आताहुआ देखकर हेमवज्रविभूषित अग्नितुल्य बाणोंसे खरकी इस बची बचाई सेनापर प्रहार करना आरंभकिया ॥ २९ ॥ वज्रपडनेसे जिस प्रकार बडे २ वृक्ष गिर जातेहैं वैसेही श्रीरामचंद्रजीके सुवर्ण पंख सायक सधूम अग्निकी समान राक्षसोंको संहार करनेलगे ॥३०॥ श्रीरामचंद्रजीने एक शत बाण चलाकर एकशत राक्षसोंका संहारकिया, व हजार बाण चलाकर हजार राक्षसोंका प्राण लेलिया ॥ ३१ ॥ राक्षसगण रुधिरमें सनेहुए पृथ्वीमें गिरे, उनके कवच भूषण और धनुष छिन्नभिन्न और विदीर्ण होगये ॥ ३२ ॥ यज्ञकी वेदीपर जिसप्रकार कुश बिछे होतेहैं वैसेही संग्रामकी समस्त पृथ्वी रुधिरसे सराबोर बाल खुलेहुए राक्षसों से छार

ततःपावकसंकाशैर्हेमवज्रविभूषितैः ॥ जघानशेषंतेजस्वीतस्यसैन्यस्यसायकैः ॥ २९ ॥ तेरुक्मपुंखावि
शिखाःसधूमाइवपावकाः ॥ निजघ्नुस्तानिरक्षांसिवज्राइवमहाद्रुमान् ॥ ३० ॥ रक्षसांतुशतंरामःशतेनैकेनक
र्णिना ॥ सहस्रंतुसहस्रेणजघानरणमूर्धनि ॥३१॥ तैर्भिन्नवर्माभरणाश्छिन्नभिन्नशरासनाः ॥ निपेतुःशोणितादिग्धा
धरण्यांरजनीचराः ॥ ३२ ॥ तैर्मुक्तकेशैः समरेपतितैःशोणितोक्षितैः ॥ विस्तीर्णावसुधाकृत्स्नामहावेदिःकुशैरिव॥३३॥
तत्क्षणेतुमहाघोरंवनंनिहतराक्षसम् ॥ बभूवनिरयप्रख्यंमांसशोणितकर्दमम् ॥ ३४ ॥ चतुर्दशसहस्राणिरक्षसांभी
मकर्मणाम् ॥ हतान्येकेनरामेणमानुषेणपदातिना ॥ ३५ ॥ तस्यसैन्यस्यसर्वस्यखरःशेषोमहारथः ॥ राक्षसस्त्रिशि
राश्चैवरामश्चारिपुसूदनः ॥३६॥ शेषाहतामहावीर्याराक्षसारणमूर्धनि ॥ घोरादुर्विषहाःसर्वेलक्ष्मणस्याग्रजेनते ॥३७॥

हीथी ॥ ३३ ॥ सब राक्षसोंके मारे जानेसे वनभूमि उनके मांस व रुधिरकी कीचसे ढककर क्षणभरमेंही महाभयंकर नरककी समान होगई ॥ ३४ ॥ मनुष्यशरीरधारी रामचंद्रने इकलेही बिना रथपर चढे चौदह हजार भयंकरकर्म करनेंवाले राक्षसोंको मारडाला ॥ ३५ ॥ सब सेनाके बीचमें महारथी खर, त्रिशिरा और शत्रुओंके हनन करनेंवाले श्रीरामचंद्रजीके बल यह तीनजन शेषरहे ॥ ३६ ॥ बचेबचाये राक्षस सबही लक्ष्मणजीके बडेभाई श्रीरामचंद्रजीसे मारेगये, यह समस्त राक्षस अतिशय बलवान, भयंकर, व बडेदुःखसे सहनेके योग्यथे ॥ ३७ ॥

व लक्ष्मणजी राक्षसके बाण लगनेंसे धनुप चढायकर दिव्यास्त्रका प्रयोग करते हुए ॥ २३ ॥ यद्यपि श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीके बाणोंसे आकाश मंडल छाय गया परन्तु वह समस्त बाण इन्द्रजीतके शरीरको स्पर्श नहीं करसके ॥ २४ ॥ राक्षसवीर इन्द्रजीतनें मायाके बलसे धुवें सहित अंधकार विस्तार करके दशों दिशाओंको छाय लिया, और आप उस अंधकार मंडलसे ढका रहकर किसी दूसरेकी दृष्टिमें न आनेंयोग्य हो गया ॥२५॥ उस कालमें उसके रथका घर्घर शब्द धनुपकी टंकार घोडोंके पैर धरनेंका शब्द कुछभी सुनाई नहीं आताथा और मेघनाद स्वयम्भी भली भांतिसे लोप होगया ॥ २६ ॥ उस निबिड़ अंधकारमें सब दिशा विदिशा अंधकारसे छाय गईं, महाबाहु इन्द्रजीत पत्थर वर्षानेंकी समान

प्रच्छादयंतोगगनंशरजालैर्महाबलौ ॥ तमस्त्रैःसूर्यसंकाशैर्नैवपस्पर्शतुःशरैः ॥२४॥ सहिधूमांधकारंचचक्रेप्रच्छादयन्नभः ॥ दिशश्चांतर्दधेश्रीमान्नीहारतमसावृतः ॥२५॥ नैवज्यातलनिर्घोषोनचनेमिखुरस्वनः ॥ शुश्रुवेचरतस्तस्यनचरूपंप्रकाशते ॥२६॥ घनांधकारेतिमिरेशिलावर्षमिवाद्भुतम् ॥ सववर्षमहाबाहुर्नाराचशरवृष्टिभिः ॥२७॥ सरामंसूर्यसंकाशैःशरैर्दत्तवरैर्भृशम् ॥ विव्याधसमरेक्रुद्धःसर्वगात्रेषुरावणिः ॥ २८ ॥ तौहन्यमानौनाराचैर्धाराभिरिवपर्वतौ ॥ हेमपुंखान्नरव्याघ्रौतिग्मान्मुमुचतुःशरान् ॥ २९ ॥ अंतरिक्षेसमासाद्यरावणिंकंकपत्रिणः ॥ निकृत्यपतगाभूमौपेतुस्तेशोणिताप्लुताः ॥ ३० ॥ अतिमात्रंशरौघेणदीप्यमानौनरोत्तमौ ॥ तानिपून्पततोभल्लैरनेकैर्विचकर्ततुः ॥ ३१ ॥ यतोहिददृशातेतौशरान्निपतितान्छितान् ॥ ततस्तुतौदाशरथीससृजातेस्त्रमुत्तमम् ॥ ३२ ॥

अद्भुत नाराच और बाणोंकी वर्षा आरंभ करता हुआ ॥ २७ ॥ मेघनाद क्रोधमें भरकर सूर्यकी समान प्रदीप्त बाण समूहसे रणभूमिमें श्रीरामचंद्रजीको मारनें लगा ॥ २८ ॥ पर्वतपर जिसप्रकारसे वृष्टि होती है वैसेही वह दोनों नर शार्दूल श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी मेघनादके बाणोंसे ताडित होकर घोररूप सुवर्णकी फोंक लगे बाणसमूह मेघनादके ऊपर चलानें लगे ॥ २९ ॥ वह समस्त कंकबाण आकाशमें मेघनादके समीप जायकर उसकी देहको भेद रुधिरसे भीग पृथ्वीपर गिरनेंलगे ॥ ३० ॥ इन्द्रजीतके बाण चलानेंसे श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीकी दीप्ति बढ उठी कि उन्होंनेभी राक्षसके चलायेहुए समस्त बाणोंको भाले चलाकर व्यर्थ करदिया ॥ ३१ ॥ यद्यपि श्रीराम लक्ष्मणजी इन्द्रजीतको देख नहीं

परन्तु आपने उस कालमें राज्यको छोड़कर उस अर्थमूल धर्मकी मूल काट डाली ॥ ३१ ॥ जिस प्रकार पर्वतसे नदियें निकलतीहैं वैसेही अनेक देशसे लाये जाकर बढ़े हुए अर्थसेही सब क्रिया प्रवर्तित हुआ करतीहै ॥३२॥ इसके विरुद्ध जिस प्रकार छोटी नदियें ग्रीष्मकालमें सूख जाती हैं वैसेही अल्पबुद्धि अर्थहीन पुरुषकी सब क्रिया नष्ट हो जातीहैं ॥ ३३ ॥ अनेक वार ऐसाभी देखा जाताहै कि पुरुष प्रथम सुख साधन अर्थ छोड़कर पीछेसे सुखका अभिलाषी होताहै, और काल पायकर जब वह अभिलाष बढ़ जाताहै तब वह पापके आचरण करनें आरंभ कर देताहै कि जिस्से दोष होजाताहै ॥ ३४ ॥ इस संसारमें जिसके पास धनहै वही पुरुषहै और मित्र व बन्धु बान्धव गणभी उसीके हैं,धनवानही पुरुषहै धन

अर्थेभ्योथप्रवृद्धेभ्यःसंवृत्तेभ्यस्ततस्ततः॥ क्रियाःसर्वाःप्रवर्ततेपर्वतेभ्यइवापगाः ॥ ३२ ॥ अर्थेनहिविमुक्तस्यपुरुषस्याल्पचेतसः ॥ विच्छिद्यंतेक्रियाःसर्वाग्रीष्मेकुसरितोयथा ॥ ३३ ॥ सोयमर्थंपरित्यज्यसुखकामःसुखैधितः ॥ पापमांचरतेकर्तुंतदादोषःप्रवर्तते ॥ ३४ ॥ यस्यार्थास्तस्यमित्राणियस्यार्थास्तस्यबांधवाः ॥ यस्यार्थाःसपुमाँल्लोकेयस्यार्थाःसचपंडितः ॥ ३५ ॥ यस्यार्थाःसचविक्रांतोयस्यार्थाःसचबुद्धिमान्॥ यस्यार्थाःसमहाबाहुर्यस्यार्थाःसगुणाधिकः ॥ ३६ ॥ अर्थस्यैतेपरित्यागेदोषाःप्रव्याहृतामया ॥ राज्यमुत्सृजताधीरयेनबुद्धिस्त्वयाकृता ॥ ३७॥ यस्यार्थाधर्मकामार्थास्तस्यसर्वंप्रदक्षिणम् ॥ अधनेनार्थकामेननार्थःशक्यंविचिन्वता ॥ ३८ ॥ हर्षःकामश्चदर्पश्च धर्मःक्रोधःशमोदमः ॥ अर्थादेतानिसर्वाणिप्रवर्ततेनराधिप ॥ ३९ ॥

वानही पंडितहै ॥ ३५ ॥ जिसके पास धनहै उसकाही विक्रमहै, जिसके पास धनहै वही बुद्धिमानहै; जिसके पास धनहै वही महावीर और वही गुणवानहै ॥ ३६ ॥ हेधीर! हमनें जो कुछ कहा धनका त्याग करनेंसे यही दोष होजातेहैं; परन्तु हम नहीं कह सकते कि आपने किस बुद्धिके वश होकर राज्य छोड़ दिया ॥ ३७ ॥ जिसके पास धनहै उसके सबही कुछ वशमे है और वह सहजहीसे धर्म कामादिकोंको सिद्ध कर सकताहै परन्तु निर्धन पुरुष चाहै अनंत उद्योग करै उसका कोई प्रयोजनभी सिद्ध नहींहो सकता ॥ ३८ ॥ हेनरनाथ! हर्ष, काम, गर्व, धर्म, क्रोध,शम,

पातेथे परन्तु जिस ओरसे उसके बाण चले आतेथे उसही ओरको यह दोनोंजन तीखे बाण चलानें लगे ॥ ३२ ॥अतिरथ इन्द्रजीतनेंभी सर्व दिशाओंमे रथ चलाते २ तीखे बाण समूहसे उन बाण वर्षाते हुए दोनों राजकुमारोंको मारना आरंभ किया॥ ३३ ॥ उस समय वह वीरश्रेष्ठ दोनों दशरथकुमार सुवर्णकी फोंक लगे मेघनादके बाणोंसे विंधकर फूले हुए दो पलाश वृक्षोंकी समान शोभायमान हुए ॥ ३४ ॥ जिस प्रकार मेघसे ढके हुए सूर्यकी गति नहीं जानीजायसक्ती है; वैसेही कोईभी इन्द्रजीतकी गति, रूप, धनुष, अथवा बाण कुछभी नहीं देख सकता ॥ ३५ ॥ उस युद्धमें सैकड़ों हजारों वानर घायल हुए और मृतक होकर पृथ्वीपर गिरपड़े ॥ ३६ ॥

रावणिस्तुदिशःसर्वारथेनातिरथोपतत् ॥ विव्याधतौदाशरथीलघ्वस्त्रौनिशितैःशरैः ॥३३॥ तेनातिविद्धौतौवीरौरुक्मपुंखैसुसंहतैः ॥ बभूवतुर्दाशरथीपुष्पिताविवकिंशुकौ ॥३४॥ नास्यवेगगतिंकश्चिन्नचरूपंधनुःशरान् ॥ नचास्यविदितंकिंचित्सूर्यस्येवाभ्रसंप्लवे ॥३५॥ तेनविद्धाश्चहरयोनिहताश्चगतासवः ॥ बभूवुःशतशस्तत्रपतिताधरणीतले ॥ ३६ ॥ लक्ष्मणस्तुततःक्रुद्धोभ्रातरंवाक्यमब्रवीत् ॥ ब्राह्ममस्त्रंप्रयोक्ष्यामिवधार्थंसर्वरक्षसाम् ॥ ३७ ॥ तमुवाचततोरामोलक्ष्मणंशुभलक्षणम् ॥ नैकस्यहेतोरक्षांसिपृथिव्यांहंतुमर्हसि ॥ ३८ ॥ अयुध्यमानंप्रच्छन्नंप्रांजलिंशरणागतम् ॥ पलायमानंमत्तंवानहंतुंत्वमिहार्हसि ॥ ३९ ॥ तस्यैवतुवधेयत्नंकरिष्यामिमहाभुज ॥ आदेक्ष्यावोमहावेगानस्त्रानाशीविषोपमान् ॥ ४० ॥ तमेनंमायिनंक्षुद्रमंतर्हितरथंबलात् ॥ राक्षसंनिहनिष्यंतिदृष्ट्वावानरयूथपाः ॥ ४१ ॥

इसी अवसरमें क्रोधित होकर रामचंद्रजीके छोटे भ्राता लक्ष्मणजी श्रीरामचंद्रजीसे यह वचन बोले कि जो आज्ञाहो तो हम राक्षसोंके कुलको निर्मूल करनेंके लिये ब्रह्मास्त्र छोड़ें; हे महाबलवान! हमारी यही इच्छाहै कि इस लोकको राक्षसशून्यकरदें ॥३७॥ यह वचन सुनकर श्रीरामचंद्रजी शुभ लक्षणयुक्त लक्ष्मणजीसे बोलेकि एक राक्षसके लिये पृथ्वीके समस्त राक्षसोंको नहीं मार डालना चाहिये ॥ ३८ ॥ युद्ध न करते हुए छिपेहुए हाथ जोड़कर शरण आये हुए भागे हुए अथवा मतवाले शत्रुका मार डालनाही ठीक नहीं ॥ ३९ ॥ हेमहाभुज! इस कारण आज हम इसके वध करनेंके निमित्तही यत्नवान होकर विषधर सर्पकी समान बाण अति वेगसे छोड़ेंगे ॥ ४० ॥ हेवीर! मायाके बलसे अदृश्य रथ किये यह मायावी

विषयके अभिप्रायको जानतेहैं, वह कभी सीताजीको नहीं मारनें देगा ॥ १० ॥ हमने रावणके हितकीही कामनासे उस्से वारंवार कहाकि " जानकी श्रीरामचन्द्रजीको देदो; " परन्तु उसनें हमारी इस बातपर कानतकभी नहीं दिया ॥ ११ ॥ सीताजीको वध करना तौ दूर रहा; महाराज ! जब कि साम, दान, अथवा भेद इन तीन उपायोंसेभी जब कोई सीताजीका दर्शन नहीं पाय सकता; तब इन्द्रजीत संग्रामस्थलमें किस प्रकारसे उनका दर्शन प्राप्त करनेंमें समर्थ होगा ? ॥ १२ ॥ हे महावीर ! वह मायाकी सीता इन्द्रजीतने मारडाली होगी हम निश्चय जानते हैं कि राक्षस इन्द्रजीत इस उपायसे वानरोंको मोहित करके चला गयाहै ॥ १३ ॥ आज निकुम्भिलामें वह मेघनाद जाकर होम करैगा इन्द्रादि देवताओंके साथ अग्नि

याच्यमानःसुबहुशोमयाहितचिकीर्षुणा ॥ वैदेहीमुत्सृजस्वेतिनचतत्कृतवान्वचः ॥ ११ ॥ नैवसाम्नानदानेननभेदे नकुतोयुधा ॥ साद्रष्टुमपिशक्येतनैवचान्येनकेनचित् ॥ १२ ॥ वानरान्मोहयित्वातुप्रतियातःसराक्षसः ॥ मायामयींमहाबाहोतांविद्धिजनकात्मजाम् ॥ १३ ॥ चैत्यंनिकुंभिलामद्यप्राप्यहोमंकरिष्यति ॥ हुतवानुपयातोहिदेवैरपिसवासवैः ॥ १४ ॥ दुराधर्षोभवत्येषसंग्रामेरावणात्मजः ॥ तेनमोहयतानूनमेषामायाप्रयोजिता ॥ विघ्नमन्विच्छतातत्रवानराणांपराक्रमे ॥ १५ ॥ ससैन्यास्तत्रगच्छामोयावत्तन्नसमाप्यते ॥ त्यजैनंनरशार्दूलमिथ्यासंतापमागतम् ॥ १६ ॥ सीदतेहिबलंसर्वंदृष्ट्वात्वांशोककर्शितम् ॥ इहत्वंस्वस्थहृदयस्तिष्ठसत्त्वसमुच्छ्रितः ॥ १७ ॥

वहां पहुँचे हैं ॥ १४ ॥ जबकि वह यज्ञमें होम करके अग्निको प्रसन्नकर लेगा तब देवताओंके सहित इन्द्रकोभी संग्राममें रावणका पुत्र मेघनाद दुर्द्धर्षहोजायगा, हम निश्चय कहतेहैं कि अपना अभिलाष सिद्ध करनेंके लिये और वानरोंको पराक्रमहीनही करनेके लिये उसनें ऐसी माया प्रगटकी है ॥ १५ ॥ जबतक उसका यज्ञ समाप्त न होजायगा तबतक हम सैनाके सहित वहां पहुंचजायँगे। हे नरशार्दूल ! आप शोक संतापका त्याग कीजिये ॥ १६ ॥ कारण कि आपको शोकसे पीड़ित देखकर ही समस्त वानरोंकी सैना व्याकुल होरही है; इस कारण अब

राक्षस जो किसी प्रकारसे वानर लोगोंकी दृष्टिमें आजावे तब तो वानरोंके यूथपही उसको मार डालेंगे ॥ ४१ ॥ अधिक क्या है जो इन्द्रजीत, स्वर्ग लोक, मृत्युलोक, पाताल, अथवा आकाश, चाहे जहां प्रवेशकर छिप जावे तथापि हमारे अस्त्रोंसे यह भस्म और प्राणरहित होकर पृथ्वीपर गिर जायगा ॥ ४२ ॥ महात्मा रघुवीरश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी यह महाअर्थयुक्त वचन कहकर वानरोंकी सैनाके संग खड़ेहुए क्रूरकर्मकारी राक्षस का प्राण संहार करनेंके लिये अनेक प्रकारसे उपाय उठानें लगे ॥ ४३ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० युद्धकांडे अशीतितमःसर्गः ॥ ८० ॥ महावीर इन्द्रजीत महात्मा श्रीरामचंद्रजीका ऐसा अभिप्राय जानकर उसी समय समरसे निवृत्त होकर लंकापुरीमें चलागया ॥ १ ॥ परन्तु वह

यद्येषभूमिंविशतेदिवंवारसातलंवापिनभस्तलंवा ॥ एवंविगूढोपिममास्त्रदग्धःपतिष्यतेभूमितलेगतासुः॥४२॥इत्येवमुक्त्वावचनंमहार्थंरघुप्रवीरःप्लवगर्षभैर्वृतः ॥ वधायरौद्रस्यनृशंसकर्मणस्तदामहात्मात्वरितंनिरीक्षते ॥ ४३ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रा०वा०आ०युद्धकांडेअशीतितमःसर्गः ॥ ८० ॥ ॥ ७ ॥ ॥ विज्ञायतुमनस्तस्यराघवस्यमहात्मनः ॥ सनिवृत्याहवात्तस्मात्प्रविवेशपुरंततः ॥ १ ॥ सोनुस्मृत्यवधंतेषांराक्षसानांतरस्विनाम् ॥ क्रोधताम्रेक्षणःशूरोनिर्जगामाथरावणिः ॥ २ ॥ सपश्चिमेनद्वारेणनिर्ययौराक्षसैर्वृतः ॥ इंद्रजित्सुमहावीर्यःपौलस्त्योदेवकंटकः ॥ ३ ॥ इंद्रजित्तुततोदृष्ट्वाभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ रणायात्युद्यतौवीरौमायांप्रादुष्करोत्तदा ॥ ४ ॥ इंद्रजित्तुरथेस्थाप्यसीतांमायामयींतदा ॥ बलेनमहतावृत्यतस्यावधमरोचयत् ॥ ५ ॥

शूर मेघनाद शूर कुंभकर्ण इत्यादि तेजस्वी निशाचरोंके वधको विचार क्रोधसे लाल २ नेत्रकर फिर लंकापुरीसे निकला ॥ २ ॥ पौलस्त्य कुलमें उत्पन्न हुआ देवकंटक महा वीर्यवान् मेघनाद बहुत सारे राक्षसोंको साथ लेकर लंकाके पश्चिमद्वारसे निकला ॥ ३ ॥ और इन्द्रजीतनें वीर श्रेष्ठ दोनों भाई रामचंद्र और श्रीलक्ष्मणजीको युद्ध करनेंके लिये तैयार देख वैसे उनको अजीत विचार कर मायाका विस्तार किया ॥ ४ ॥ उस समय मायावी निशाचरनें रथके ऊपर मायाकी सीता बनाकर स्थापित की इन्द्रजीतके साथ बड़ी भारी राक्षसोंकी सैनाथी. इन सीताजीको मार

धीरज धर सावधान हो इस स्थानमें आप विराजमान रहैं ॥ १७ ॥ और सब सैनाके सहित लक्ष्मणजीको हमारे साथ भेज दीजिये ॥ १८ ॥ यह महावीर नरशार्दूल ! लक्ष्मणजी तीक्ष्ण बाण चलाय २ कर उसके यज्ञ कार्यमें विघ्न कर देंगे, जब उससे यज्ञ करना छुट जायगा तब हम उसे मार डालेंगे ॥ १९ ॥ इनके गरुडजीकी समान अंगयुक्त वेगशाली तीक्ष्ण रुधिरके पीनें वाले बाण गिद्ध इत्यादि अशुभ पक्षियोंकी समान उस राक्षसका रुधिर पियेंगे॥२०॥ इसलिये हे महावीर ! जिस प्रकार वज्रधर इन्द्रजीत दैत्योंके मारनेंके लिये वज्रको आज्ञा देतेहैं, वैसेही आपभी शुभ लक्षणयुक्त लक्ष्मणजीको हम लोगोंके साथ जानेंकी आज्ञादे दें ॥ २१ ॥ हे मनुजश्रेष्ठ ! शत्रुके मारनेंमें विलम्ब करना उचित नहीं है; इसलिये

लक्ष्मणंप्रेषयास्माभिःसहसैन्यानुकर्षिभिः ॥१८॥ एषतंनरशार्दूलोरावणिंनिशितैःशरैः ॥ त्याजयिष्यतितत्कर्मततोवध्योभविष्यति॥१९॥तस्यैतेनिशितास्तीक्ष्णापत्रिपत्रांगवाजिनः॥ पतत्रिणइवासौम्याःशराःपास्यंतिशोणितम् ॥२०॥ तत्संदिशमहाबाहोलक्ष्मणंशुभलक्षणम् ॥ राक्षसस्यविनाशायवज्रंवज्रधरोयथा ॥ २१ ॥ मनुजवरनकालविप्रकर्षोरिपुनिधनंप्रतियत्क्षमोद्यकर्तुम् ॥ त्वमतिसृजरिपोर्वधायवज्रंदिविजरिपुमथनेयथामहेंद्रः ॥ २२ ॥ समाप्तकर्माहिसराक्षसर्षभोभवत्यदृश्यःसमरेसुरासुरैः ॥ युयुत्सतातेनसमाप्तकर्मणाभवेत्सुराणामपिसंशयोमहान् ॥ २३॥ इत्यार्षेश्रीम० वा०आ०यु०चतुरशीतितमःसर्गः ॥ ८४ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाराघवःशोककर्शितः ॥ नोपधारयतेव्यक्तंयदुक्तंतेनरक्षसा ॥ १ ॥ ततोधैर्यमवष्टभ्यरामःपरपुरंजयः ॥ विभीषणमुपासीनमुवाचकपिसन्निधौ ॥ २ ॥

जिस प्रकार इन्द्रजी दैत्योंका वध करनेंके लिये वज्रको भेजते हैं वैसेही लक्ष्मणजीको आप हमारे संग भेजदें ॥ २२ ॥ हे महाराज ! वह राक्षसश्रेष्ठ जब कार्य अर्थात् होम समाप्त करलेगा, तब सुर और असुर लोगभी उसको नहीं देख सकते; बस जबकि वह होम समाप्त करके युद्ध करनें लगेगा तब देवता लोगोंकोभी बड़ाभारी संशय उपस्थित होगा ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुरशीतितमःसर्गः ॥८४॥ शोकाकुल श्रीरामचन्द्रजी बिभीषणके वचनोंको सुन करके जो वचन कि बिभीषणजीनें स्पष्ट २ कहेथे उनको धारण करनेंमें समर्थ न हुए ॥ १ ॥ इसके उपरान्त परपुर जीतनेंवाले श्रीरामचन्द्रजी धीरज धारण करके वानर लोगाके निकट बैठे हुए बिभीषणजीसे बोले ॥ २ ॥

में गमन करतेहैं अथवा नरघातक चोर जिस स्थानको कलंकित करतेहैं तू उसी स्थानमें प्राणोंको छोड़कर उन्हीं सब लोकोंको जायगा ॥ २२ ॥ हनुमानजी केवल यही वचन कह आयुधधारी वानरोंके साथ क्रोधमें भर राक्षसराजके पुत्र इन्द्रजीतके सन्मुख दौड़े ॥ २३ ॥ उस महावीर्यवान वानरोंकी सैनाको आताहुआ देखकर इन्द्रजीतनें महा कोपकर राक्षसोंकी सैनासे उनको रुकवाया ॥ २४ ॥ उस समय महावीर इन्द्रजीत हजार बाण चलाय वानरोंकी सैनाको चलायमान कर वानर श्रेष्ठ हनुमानजीसे यह वचन बोला ॥ २५ ॥ राम, सुग्रीव, अथवा तुम जिस कारणसे इस स्थानमें आयेहो आज हम तुम्हारे सामनेही उन जानकीजीका वध करेंगे ॥ २६ ॥ अरे वानर ! इसको मारकर तिसके पीछे

इतिब्रुवाणोहनुमान्सायुधैर्हरिभिर्वृतः ॥ अभ्यधावत्सुसंक्रुद्धोराक्षसेंद्रसुतंप्रति ॥ २३ ॥ आपतंतंमहावीर्यंतदनीकंवनौकसाम् ॥ रक्षसांभीमकोपानामनीकेनन्यवारयत् ॥ २४ ॥ सतांबाणसहस्रेणविक्षोभ्यहरिवाहिनीम् ॥ हनूमंतंहरिश्रेष्ठमिंद्रजित्प्रत्युवाचह ॥ २५ ॥ सुग्रीवस्त्वंचरामश्चयन्निमित्तमिहागताः ॥ तांवधिष्यामिवैदेहीमद्यैवतवपश्यतः ॥ २६ ॥ इमांहत्वाततोरामंलक्ष्मणंत्वांचवानर॥सुग्रीवंचवधिष्यामितंचानार्यंविभीषणम् ॥ २७॥ नहंतव्याःस्त्रियश्चेतियद्ब्रवीषिप्लवंगम ॥ पीडाकरममित्राणांयच्चकर्तव्यमेवतत् ॥ २८ ॥ तमेवमुक्त्वारुदतींसीतांमायामयींचताम् ॥ शितधारेणखड्गेननिजघानेंद्रजित्स्वयम् ॥ २९ ॥

हम राम, लक्ष्मण, सुग्रीव अनार्य बिभीषणके सहित तुझकोभी मार डालेंगे ॥ २७ ॥ रे बंदर ! तैंने जो कहा कि "स्त्रीका वध करना कर्त्तव्य नहीं " सो राजनीतिके अनुसार शत्रुओंको जिस २ कार्यके करनेंसे पीड़ा पहुँचे वह कार्य करना उचित है उसके करनेंसे पापनहीं होता * ॥२८॥ इन्द्रजीतनें यह वचन कहतेही तेजधारवाले खड्गसे अपने आप उन रोती हुईमायामयी जानकीजीके ऊपर प्रहार कर दिया ॥ २९ ॥

* अनेक रामायणोंमें २९ संख्याका श्लोक नहीं, हम नहीं जानते कि छापनेवालोंनें इसे क्यों छोड़ दियाहै । " ताडकाया वधं रामः किमर्थं कृतवान् पुरा ॥ तदहं हन्मि रामस्य महिषीं जनकात्मजां ॥ २९ ॥ " भला यह न सही परन्तु पहले रामनें किस प्रकारसे ताडकाको मार डालाथा ! उन्हौनें जिस कारण यह कार्य किया हमभी इसी कारणसे इस रामकी भार्या जनककी बेटी सीताको मार डालेंगे ॥२९॥

हो वैसेही जलके भीगे नगाडेकी समान शब्द करनेलगा ॥ ८ ॥ रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीनें त्रिशिरा राक्षसको अपने सन्मुख आते देखकर धनुष उठाय शब्दकर तीखे बाण चढाय ॥ ९ ॥ त्रिशिराके मारे, उस समय अतिबलवान सिंह और हाथीकी समान श्रीरामचंद्रजी और त्रिशिराका तुमुल संग्राम आरंभ हुआ जिसके देखनेंसे रोम खडे हो जातेथे ॥ १० ॥ अनन्तर क्रोध न करनें वाले श्रीरामचंद्रजी त्रिशिरा करके तीन बाणोंके द्वारा ताडित होकर जो उनके माथे में लगेथे; उनके लगनेंसे रोषयुक्तहो गर्वित वचन कहनें लगे ॥ ११ ॥ कि अरे! विक्रम शूर निशाचर ! बस तेरा इतनाही बलहै कि तेरे चलाये हुए बहुत सारे बाण हमारे माथेमें फूलोंकी समान लगे हम तो जानतेथे कि तुममें कुछ

आगच्छंतंत्रिशिरसंराक्षसंप्रेक्ष्यराघवः ॥ धनुषाप्रतिजग्राहविधुन्वन्सायकान्शितान् ॥ ९ ॥ ससंप्रहारस्तुमुलोरामात्रिशिरसोस्तदा ॥ संबभूवातिबलिनोःसिंहकुंजरयोरिव ॥१०॥ ततस्त्रिशिरसाबाणैर्ललाटेताडितस्त्रिभिः ॥ अमर्षीकुपितो रामःसंरब्धइदमब्रवीत् ॥११॥ अहोविक्रमशूरस्यराक्षसस्येदृशंबलम् ॥ पुष्पैरिवशरैर्योहंललाटेऽस्मिपरिक्षितः ॥१२॥ ममापिप्रतिगृह्णीष्वशरांश्चापगुणाच्च्युतान् ॥ एवमुक्तस्तुसंरब्धःशरानाशीविषोपमान् ॥ १३ ॥ त्रिशिरावक्षसिक्रुद्धोनिजघानचतुर्दश ॥ चतुर्भिस्तुरगानस्यशरैःसन्नतपर्वभिः ॥ १४ ॥ न्यपातयततेजस्वीचतुरस्तस्यवाजिनः ॥ अष्टभिः सायकैःसूतंरथोपस्थेन्यपातयत् ॥ १५ ॥ रामश्चिच्छेदबाणेनध्वजंचास्यसमुच्छ्रितम् ॥ ततोहतरथात्तस्मादुत्पततं निशाचरम् ॥ १६ ॥ चिच्छेदरामस्तंबाणैर्हृदयेसोभवज्जडः ॥ सायकैश्चाप्रमेयात्मासामर्षात्तस्यरक्षसः ॥ १७ ॥

विक्रम होगा, सो कुछभी नहीं ॥ १२ ॥ क्या आश्चर्यहै ! अब तू हमारे धनुषके रोदेसे छूटे हुए बाणोंके समूहको ग्रहण कर । यह कह बडा क्रोधकर विषधर सर्पोंकी समान ॥ १३ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें चौदह बाण त्रिशिराके हृदयमें मारे और चार घोडोंको ॥ १४ ॥ महा तेजवान श्रीरामचंद्रजीनें मार डाला और आठ बाणोंसे रथपरही उसके सारथिको मार गिराया ॥ १५ ॥ व एक बाणसे अति ऊंची उसकी ध्वजाको काट डाला जब सारथि और घोडे उसके मारे गये तब त्रिशिरा रथसे कूदनेंको हुआ ॥ १६ ॥ तो उसी बीचमें श्रीरामचंद्रजीनें अनेक

जैसेही मेघनादनें प्रहार किया कि बड़ी नितम्बवाली प्रियदर्शन वह जानकी यज्ञोपवीतके स्थानसे कटकर छिन्न भिन्न हो पृथ्वीपर गिरी ॥ ३० ॥ तब इन्द्रजीतनें हनुमानजीसे कहाकि यह देखो हमने अस्त्रके प्रहारसे रामचन्द्रकी प्यारी वैदेही को मारडाला ॥ ३१ ॥ फिर जब कि जानकी ही मृतक होगई तब फिर तुमलोगोंको और वृथा परिश्रम करनेका क्या फल है। ॥ ३२ ॥ इन्द्रजीत इस प्रकारसे उन मायामयी सीताजीको खड्गसे मारकर हर्षित अंतःकरणसे अपने रथपर सवार हो घोर शब्दसे सिंहनाद करनेलगा ॥ ३३ ॥ वानर लोग निकटही टिककर वज्रसमान कठोर शब्द सुननेलगे और उन्होंनें देखाकि महावीर इन्द्रजीत दुर्गमें प्रवेश करके विकटाकार मुखसे

यज्ञोपवीतमार्गेणाछिन्नातेनतपस्विनी ॥ सापृथिव्यांपृथुश्रोणीपपातप्रियदर्शना ॥३० ॥ तामिंद्रजित्स्त्रियंहत्वाहनुमंतमुवाचह ॥ मयारामस्यपश्येमांप्रियांशस्त्रनिषूदिताम् ॥ ३१ ॥ एषांविशस्तावैदेहीनिष्फलोवःपरिश्रमः ॥ ३२ ॥ ततःखड्गेनमहताहत्वातामिंद्रजित्स्वयम् ॥ हृष्टःसरथमास्थायननादचमहास्वनम् ॥ ३३ ॥ वानराःशुश्रुवुःशब्दमदूरेप्रत्यवस्थिताः ॥ व्यादितास्यस्यनदतस्तद्दुर्गंसंश्रितस्यतु ॥ ३४ ॥ तथातुसीतांविनिहत्यदुर्मतिःप्रहृष्टचेताःसबभूवरावणिः ॥ तंहृष्टरूपंसमुदीक्ष्यवानराविषण्णरूपाःसमभिप्रदुद्रुवुः ॥ ३५ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रा० वा०आ० यु० एकाशीतितमःसर्गः॥ ८१ ॥ ॥ ७ ॥ श्रुत्वातंभीमनिह्रादंशक्राशनिसमस्वनम् ॥ वीक्षमाणादिशःसर्वादुद्रुवुर्वानराभृशम् ॥ १ ॥ तानुवाचततःसर्वान्हनूमान्मारुतात्मजः ॥ विषण्णवदनान्दीनांस्त्रस्तान्विद्रवतःपृथक्॥२ ॥

कठोर हर्षकी ध्वनि कररहाहै ॥ ३४ ॥ दुर्मती रावणके पुत्र इन्द्रजीतने जब इस प्रकारसे उस मायाकी सीताका प्राण संहार किया तब वानरलोग उस हर्षित वीरको देखकर शोकाकुल हो चारों ओरको भागनें लगे ॥ ३५ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० एकाशीतितमःसर्गः ॥ ८१ ॥ देवराज इन्द्रजीके वज्रकी शब्दकी समान इन्द्रजीतका वह भयंकर सिंहनाद सुनकर वानरलोग चारों ओरको निहारते हुए भागनें लगे ॥ १ ॥ परन्तु पवनकुमार हनुमानजी उनको भयकेमारे शोकाकुल वदन और दीनभावसे भागाहुआ देखकर सबहीसे अलग २ कहने लगे ॥ २ ॥

फिर वह प्रत्यंचाको वारंवार टंकार देता, अपनी शिक्षा और अस्त्रोंको दिखाता हुआ अनेक भांतिके बाण छोडतेर संग्राम भूमिमें घूमनेंलगा ॥५॥ और सब दिशा विदिशाओंको उस महारथी खरनें बाणोंसे पूर दिया। रामचंद्रजीनें सब दिशाओंको बाणोंसे भरा देख बडा भारी धनुष हाथमें लिया ॥ ६ ॥ व अग्निके अंगारोंकी समान सहन करनेके अयोग्य सायक समूहसे आकाशको पूर्ण कर दिया जैसे मेघमंडल वृष्टि करतेहैं ॥ ७ ॥ आकाश खर और श्रीरामचंद्रजीके छुटे हुए बाणोंसे छाकर सब प्रकारसे अवकाशरहित होगया अर्थात् पृथ्वी आकाशके बीच २ में सबही जगह बाणही बाण भरेथे ॥ ८ ॥ तब परस्पर एक दूसरेकी मार डालनेकी इच्छासे छोडे हुए बाणोंके जाल करके आकाशके

ज्यांविधुन्वन्सुबहुशःशिक्षयास्त्राणिदर्शयन् ॥ चचारसमरेमार्गाञ्छरैरथगतःखरः ॥ ५ ॥ ससर्वाश्चदिशोबाणैःप्रदिशश्चमहारथः ॥ पूरयामासतंदृष्ट्वारामोपिसुमहद्धनुः ॥ ६ ॥ ससायकैर्दुर्विषहैर्विस्फुलिंगैरिवाग्निभिः ॥ नभश्चकाराविवरंपर्जन्यइववृष्टिभिः ॥ ७ ॥ तद्बभूवशितैर्बाणैःखररामविसर्जितैः ॥ पर्याकाशमनाकाशंसर्वतःशरसंकुलम् ॥८॥ शरजालावृतःसूर्योनतदास्मप्रकाशते ॥ अन्योन्यवधसंरंभादुभयोःसंप्रयुज्यतोः ॥९ ॥ ततोनालीकनाराचैस्तीक्ष्णाग्रैश्चविकर्णिभिः ॥ आजघानरणेरामंतोत्रैरिवमहाद्विपम् ॥ १० ॥ तंरथस्थंधनुष्पाणिंराक्षसंपर्यवस्थितम् ॥ ददृशुःसर्वभूतानिपाशहस्तमिवांतकम् ॥ ११ ॥ हंतारंसर्वसैन्यस्यपौरुषेपर्यवस्थितम् ॥ परिश्रांतंमहासत्वंमेनेरामंखरस्तदा ॥ १२ ॥ तंसिंहमिवविक्रांतंसिंहविक्रांतगामिनम् ॥ दृष्ट्वानोद्विजतेरामःसिंहःक्षुद्रमृगंयथा ॥ १३ ॥

छा जानेसे सूर्य भगवानभी छिप गये ॥ ९ ॥ इसके पीछे महावत महा गजके जिस प्रकार अंकुश मारताहै वैसेही खर तीखे नालीक नाराच और विकीर्ण अस्त्र शस्त्रोंसे श्रीरामचंद्रजीको घायल करनें लगा ॥ १० ॥ उस समय सबही प्राणी रथमें बैठे धनुष धारी खरको पाश धारी यमराजकी समान देखने लगे ॥ ११ ॥ उस काल खरनें अपनी समस्त सेनाके विनाश करनेंवाले पुरुषार्थमें टिके हुए धीर्यवान् रामचंद्रजीको रण करनेंसे थके समझा ॥ १२ ॥ और सिंहकी समान विक्रम दिखाता हुआ इधर उधर घूमनें लगा सिंह जिस प्रकार मृग छौनाको देखकर

हे वानरगण! तुम सब किस कारणसे रणका उत्साह छोडकर व्याकुल मुख किये भागे जातेहो? तुम्हारी यह शूरता कहांगई नामवाले शूर लोगोंको भागना उचित नहीं है इसलिये हम आगे २ चलते हैं और तुम सब हमारे पीछे २ चलो ॥ ३ ॥ बुद्धिमान् हनुमानजी करके इस प्रकार कहे जाकर वानरोंको क्रोध उत्पन्न हुआ और वह सबही उत्साहसहित शिला और वृक्षोंको ग्रहण करनेलगे ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त वह सब वानरश्रेष्ठ हनुमानजीको घेरे हुए गर्जते २ महा समरके सन्मुख चले ॥ ५ ॥ वानर वीर हनुमानजी वानरोंकी सैनासे घेरे जाकर चलतेहुए जिसप्रकार अग्नि अपनी शिखाओंके संगमें शोभायमान होतेहैं वैसेही शोभायमान होकर शत्रुओंकी सैनाको भस्म करनें लगे ॥ ६ ॥ कालान्तक यमराज

कस्माद्विषण्णवदनाविद्रवध्वंप्लवंगमाः ॥ त्यक्तयुद्धसमुत्साहाःशूरत्वंक्कनुवोगतम् ॥ पृष्ठतोनव्रजध्वंमामग्रतोयांतमाहवे ॥ ३ ॥ एवमुक्ताःसुसंक्रुद्धावायुपुत्रेणधीमता ॥ शैलशृंगान्द्रुमांश्चैवजगृहुर्हृष्टमानसाः ॥ ४ ॥ अभिपेतुश्चगर्जंतोराक्षसान्वानरर्षभाः ॥ परिवार्यहनूमंतमन्वयुश्चमहाहवे ॥ ५ ॥ सतैर्वानरमुख्यैस्तुहनूमान्सर्वतोवृतः ॥ हुताशनइवार्चिष्मानदहच्छत्रुवाहिनीम् ॥ ६ ॥ सराक्षसानांकदनंचकारसुमहाकपिः ॥ वृतोवानरसैन्येनकालांतकयमोपमः ॥ ७ ॥ सतुशोकेनचाविष्टःकोपेनमहताकपिः ॥ हनूमान्रावणिरथेमहतींपातयच्छिलाम् ॥ ८ ॥ तामापतंतींदृष्ट्वैवरथंसारथिनातदा ॥ विधेयाश्वसमायुक्तोविदूरमपवाहितः ॥ ९ ॥ तमिंद्रजितमप्राप्यरथस्थंसहसारथिम् ॥ विवेशधरणीमित्वासाशिलाव्यर्थमुद्यता ॥ १० ॥ पतितायांशिलायांतुव्यथितारक्षसांचमूः ॥ निपतंत्याचशिलयाराक्षसामथिताभृशम् ॥ ११ ॥

की समान महाकपि हनुमानजीनें वानरसैनाकी सहायतासे बहुत सारे राक्षसोंको मार डाला ॥ ७ ॥ हनुमानजीनें शोक और क्रोधसें अधीर होकर एक बड़ीभारी शिलाग्रहण करकै रावणके पुत्र मेघनादके रथपर चलाई ॥ ८ ॥ परन्तु शिलाको रथके ऊपर आता हुआ देख सारथिनें संकेत [इशारा] ही किया कि सीखे सिखाये घोडे रथको दूरले जाय कर रक्षा करतेहुए ॥ ९ ॥ तब वह हनुमानजीकी चलाई हुई शिला सारथिके सहित रथपर बैठे हुए इन्द्रजीतको न पायकर विफल हो पृथ्वीमें घुसगई ॥ १० ॥ वह शिला इस प्रकारके वेगसे चलाई गईथी कि जिस

खरकी ध्वजा काटडाली ॥ २२ ॥ वह सुन्दर सुवर्णकी ध्वजा सहसा छिन्न होकर गिरनेंके कालमें ऐसी शोभा धारण करतीहुई जैसे कभी देवताओंके नियमसे सूर्यनारायण पृथ्वीमें आयकर शोभितहों ॥ २३ ॥ यह देखकर मर्म जाननेंवाले खरनें क्रोधितहो चार बाण छोडकर; जिस प्रकार लोग भालोंसे मतवाले हाथी को मारतेहैं, वैसेही श्रीरामचंद्रजीके हृदयको व और दूसरे मर्मस्थानोंको घायल किया ॥ २४ ॥ तिस समय वह महा धनुर्द्धारी श्रीरामचंद्रजी, खरके धन्वासे छूटे हुए बहुतसे बाणोंसे विंधे जाकर. और रुधिरमें भीग महा क्रोधित हुए ॥ २५ ॥ और दृढभावसे श्रेष्ठधनुधन्वा ग्रहण करके खरको भली भांति निशाना बनाय उसके ऊपर छेः बाण छोडे ॥२६॥ उनमेंसे एक बाणसे खरका मस्तक

सद्दर्शनीयोबहुधाविच्छिन्नःकांचनोध्वजः ॥ जगामधरणींसूर्योदेवतानामिवाज्ञया ॥ २३ ॥ तंचतुर्भिःखरः क्रुद्धोरामंगात्रेषुमार्गणैः ॥ विव्याधहृदिमर्मज्ञोमातंगमिवतोयदैः ॥ २४ ॥ सरामोबहुभिर्बाणैःखरकार्मुकनिःसृतैः ॥ विद्धोरुधिरसिक्तांगोबभूवरुषितोभृशम् ॥ २५ ॥ सधनुर्धन्विनांश्रेष्ठःसंगृह्यपरमाहवे ॥ मुमोचपरमेष्वासःषट्शरानभिलक्षितान् ॥ २६ ॥ शिरस्येकेनबाणेनद्वाभ्यांबाह्वोरथापयत ॥ त्रिभिश्चंद्रार्धवक्रैश्चवक्षस्यभिजघान ह ॥ २७ ॥ ततःपश्चान्महातेजानाराचान्भास्करोपमान् ॥ जघानराक्षसंक्रुद्धस्त्रयोदशशिलाशितान् ॥ २८ ॥ रथस्ययुगमेकेनचतुर्भिःशबलान्हयान् ॥ षष्ठेनचशिरःसंख्येचिच्छेदखरसारथेः॥२९॥त्रिभिस्त्रिवेणून्बलवान्द्वाभ्यामक्षं महाबलः ॥ द्वादशेनतुबाणेनखरस्यसकरंधनुः ॥ ३० ॥

वींधा दोबाणोंसे दोनों भुजाओंको घायल किया, और अर्द्धचंद्रतुल्य टेढे तीन बाणोंसे खरकी छातीमें प्रहार किया ॥ २७ ॥ उसके पीछे उन इन्द्र समान महाबलवान् तेजवान् श्रीरामचंद्रजीनें बडा क्रोध कर सूर्यकी समान, धार धराये हुए तेरहबाण ग्रहण करकै उस खर निशाचरको निशाना बनाकर छोडे ॥ २८ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें एक बाणसे रथका युगकाय चार बाणोंसे चार चित्र विचित्र घोडे, और एक बाणसे उसके सारथिका मस्तक ॥ २९ ॥ तीन बाणोंसे रथके तीनों बांश; और दो बाणोंसे दोनों पहिये, और बारह बाणोंसे खरका बाण

समय वह गिरी असंख्य राक्षसोंकी सैना उससे व्यथित हुई व कुचलगई ॥ ११ ॥ तब उस समय सैंकड़ों हजारों बलशाली बड़े २ शरीर वाले वानरगण पर्वतोंके शिखर और वृक्षोंको उठाये ॥ १२ ॥ अति शीघ्रतासे यह भयंकरविक्रमकारी वानर इन्द्रजीतके सन्मुख दौडे और इन समस्त वानरोंने मेघनादके सैनापर शिलावृक्षादिकी वर्षा करदी ॥ १३ ॥ वानर लोगोंनें राक्षसोंके ऊपर वृक्ष और पर्वतोंकी वर्षा करके उनमेंसे बहुत सारोंका नाश करदिया और विविध भांतिसे सिंहनाद करनेंलगे भयंकर आकारवाले वानरगण घोर रूप वाले निशाचरोंको ॥ १४ ॥ अति वीर्यसे वृक्ष व शिलाके प्रहारसे चूर्ण करके पृथ्वीपर लुटानेलगे तब महावीर इन्द्रजीत वानरोंके हाथसे राक्षसोंको पीडित देखकर ॥ १५ ॥

तमभ्यधावन्शतशोनदंतःकाननौकसः ॥ तेद्रुमांश्चमहाकायागिरिशृंगाणिचोद्यताः ॥ १२ ॥ क्षिपंतींद्रजितंसंख्येवानराभीमविक्रमाः ॥ वृक्षशैलमहावर्षंविसृजंतःप्लवंगमाः ॥ १३ ॥ शत्रूणांकदनंचक्रुर्नेदुश्चविविधैःस्वनैः ॥ वानरैस्तैर्महाभीमैर्घोररूपानिशाचराः ॥ १४ ॥ वीर्यादभिहतावृक्षैर्व्यचेष्टंतरणक्षितौ ॥ ससैन्यमभिवीक्ष्याथवानरार्दितमिंद्रजित् ॥ १५ ॥ प्रगृहीतायुधःक्रुद्धःपरानभिमुखोययौ ॥ सशरौघानवसृजन्स्वसैन्येनाभिसंवृतः ॥ १६ ॥ जघानकपिशार्दूलान्सुबहून्दृढविक्रमः ॥ शूलैरशनिभिःखड्गैःपट्टिशैःशूलमुद्गरैः ॥ १७ ॥ तेचाप्यनुचरांस्तस्यवानराजघ्नुराहवे ॥ १८ ॥ सुस्कंधविटपैःशैलैःशिलाभिश्चमहाबलः ॥ हनूमान्कदनंचक्रेरक्षसांभीमकर्मणाम् ॥ १९ ॥ सन्निवार्यपरानीकमब्रवीत्तान्वनौकसः ॥ हनूमान्सन्निवर्तध्वंननःसाध्यमिदंबलम् ॥ २० ॥

क्रोध सहित हथियार उठाय शत्रुकी सैनामें प्रवेश करता हुआ उसने अपनी सैनाके बीचमें खड़े होकर बाणोंकी झडी लगादी ॥ १६ ॥ किजिस्सें बहुतसे दृढ विक्रमकारी वानरगण मृतक होगये जोकि शूल वज्र, खड्ग, पटा, कूट व मुद्गरादिकोंसे मारेगये ॥ १७ ॥ उस समयमें वानरगणोंने भी मेघनादकी बहुत सैना मार डाली ॥ १८ ॥ महाबलवान् हनुमानजी स्कन्ध और शाखायुक्त शाल वृक्ष और शिलाओंके प्रहारसे भयंकर कर्मकारी राक्षसोंको मारने लगे ॥१९॥और अपने पराक्रमसे शत्रुओंकी सैनाको निवारित करते हुए अपनी सैनासे बोले कि हे वानरो! लौटच

कर्म करताहै वह निश्चयही उस पापके फलको पाताहै, जैसे अकालवृष्टिके साथ गिरेहुए पत्थरोंको लालचसे ब्राह्मणी (बामनी नामक कीडा) खाकर मर जातीहै ॥ ५ ॥ रेराक्षस! दंडकारण्यवासी धर्माचरण करनेंवाले महातेजवान तपस्वियोंको मारकर तुझको कैसा बुरा फल प्राप्तहोगा सो हमारी समझमें नहीं आता ॥ ६ ॥ अथवा जो क्रूरस्वभाववाले जन चिरकाल पापकर्म करके लोकोंकी निन्दा पानेंके पात्र हो जातेहैं, वह जन ऐश्वर्य पाकरभी जड गले हुए वृक्षकी समान बहुत दिनोंतक नहीं रहसकते अर्थात् गिर पडतेहैं ॥ ७ ॥ वृक्ष जिस प्रकार समय पाय कर फूलताहै, वैसेही समयके आजानें पर पाप कर्मका भयावना फल निश्चयही प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥ हे निशाचर!

वसतोदंडकारण्येतापसान्धर्मचारिणः ॥ किन्नुहत्वामहाभागान्फलंप्रास्यसिराक्षस ॥ ६ ॥ नचिरंपापकर्माणःक्रूरा लोकजुगुप्सिताः ॥ ऐश्वर्यंप्राप्यतिष्ठंतिशीर्णमूलाइवद्रुमाः॥७॥ अवश्यंलभतेकर्ताफलंपापस्यकर्मणः ॥ घोरंपर्या गतेकालेद्रुमःपुष्पमिवार्तवम् ॥ ८ ॥ नचिरात्प्राप्यतेलोकेपापानांकर्मणांफलम् ॥ सविषाणामिवान्नानांभुक्तानांक्षण दाचर ॥ ९ ॥ पापमाचरतांघोरंलोकस्याप्रियमिच्छताम् ॥ अहमासादितोराजाप्राणान्हंतुंनिशाचर ॥ १० ॥ अद्य भित्त्वामयामुक्ताःशराःकांचनभूषणाः ॥ विदार्यापिपतिष्यंतिवल्मीकमिवपन्नगाः ॥ ११ ॥ येत्वयादंडकारण्येभ क्षिताधर्मचारिणः ॥ तानद्यनिहतःसंख्येससैन्योनुगमिष्यसि ॥ १२ ॥ अद्यत्वांनिहतंबाणैःपश्यंतुपरमर्षयः ॥ नि रयस्थंविमानस्थायेत्वयानिहताःपुरा ॥ १३ ॥

जिस प्रकार जहर मिला हुआ अन्न खानेंसे शीघ्रही मृत्यु होतीहै, वैसेही पाप कर्म करनेंका फल थोडेही समयमें फलजाताहै ॥ ९ ॥ रेराक्षस! भयानक पाप कर्म करनेंवाले और लोकोंका बुरा चाहनेंवाले दुष्टोंको मारनेंकेही लिये ऋषिलोगोंनें हमें यहां पठायाहै ॥ १० ॥ सर्प जिस प्रकार बंमईको फोडकर पृथ्वी पर निकल आताहै, वैसेही इस समय हमारे शरासनसे छूटे हुए बाण तेरे शरीरको चीर फाडकर निकल आमेंगे ॥ ११ ॥ पहले तैनें जिस २ दंडकारण्यवासी धर्मचारी तपस्वीका भक्षण कियाहै सो तू आज हमसे युद्धमें मारे जाकर सेना सहित उनके पीछे २ जायगा ॥ १२ ॥ पहले जो समस्त तापस तुझ करके मारे गयेहैं, आज वह विमानमें बैठकर तुझको हमारे बाणसे मरा

लो अब इन राक्षसोंके साथ युद्ध करनेकी आवश्यकता नहींहै ॥ २० ॥ तुम सब श्रीरामचंद्रजीका प्रिय कार्य सिद्ध करनेकी वासनासे प्राण तक देनेको तैयार होकर पराक्रम प्रकाश करतेहो परन्तु जिनके लिये युद्ध किया जाताहै वह जानकीजीही मारडाली गईहैं ॥ २१ ॥ चलो रामचंद्रजी व सुग्रीवजीको यह समाचार सुनादें; वह जैसी आज्ञा दें वैसेही किया जायगा ॥ २२ ॥ वानरश्रेष्ठ हनुमानजी निर्भयहो यह वचन कह समस्त वानरोंको निवारित कर धीरे २ सेनासहित संग्रामसे लौटतेहुए ॥ २३ ॥ हनुमानजीको श्रीरामचंद्रजीके निकट जाता हुआ देखकर दुष्टात्मा राक्षस इन्द्रजीत होम करनेंके लिये प्रथम निकुंभिला देवालयके वृक्षोंके समीप गमन करके अग्निमें होम करताहु

त्यक्त्वाप्राणान्विचेष्टंतोरामप्रियचिकीर्षवः ॥ यन्निमित्तंहियुध्यामोहतासाजनकात्मजा ॥ २१ ॥ इममर्थंहिविज्ञा
प्यरामंसुग्रीवमेवच ॥ तौयत्प्रतिविधास्येतेतत्करिष्यामहेवयम् ॥ २२ ॥ इत्युक्त्वावानरश्रेष्ठोवारयन्सर्ववानरान् ॥
शनैःशनैरसंत्रस्तःसबलःसंन्यवर्तत ॥ २३ ॥ ततःप्रेक्ष्यहनूमंतंव्रजंतंयत्रराघवः ॥ सहोतुकामोदुष्टात्मागतश्चैत्यंनिकुं
भिलाम् ॥ २४ ॥ निकुंभिलामधिष्ठायपावकंजुहवेंद्रजित् ॥ यज्ञभूम्यांततोगत्वापावकस्तेनरक्षसा ॥ २५ ॥ हूयमानः
प्रजज्वालहोमशोणितभुक्तदा ॥ सार्चिःपिनद्धोददृशेहोमशोणिततर्पितः ॥ संध्यागतइवादित्यःसुतीव्रोग्निःसमुत्थि
तः ॥ २६ ॥ अथेंद्रजिद्राक्षसभूतयेतुजुहावहव्यंविधिनाविधानवित् ॥ दृष्ट्वाव्यतिष्ठंतचराक्षसास्तेमहासमूहेषुनयान
यज्ञाः ॥ २७ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकाण्डेद्व्यशीतितमःसर्गः ॥ ८२ ॥ ७ ॥

आ ॥ २४ ॥ इसके उपरान्त यज्ञभूमिमें गमन करके अग्निमें होम आरंभ करनेंसे होममें रुधिरका पान करनेंवाली अग्नि प्रज्वलितहो उठी ॥ २५ ॥ उस कालमें ज्वालासे युक्त और होम तथा रुधिरसे तृप्त कीहुई वह उठीहुई तीव्र अग्नि संध्यासमयके सूर्यकी समान ज्ञात होनें लगी॥२६॥ इस प्रकारसे राक्षसलोगोंकी उन्नतिके हेतुके विधानको जाननेंवाला इन्द्रजीत जब यथाविधिसे होम करनेंलगा तब संग्राम करनेंमें कुशल निशाचरगण स्थिरभावसे बैठेहुए इस यज्ञको देखनेंलगे ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥

तुम्हारा वरन त्रिलोकीके सबही प्राणियोंका संहार कर सकतेहैं ॥२२॥ हमको तुमसे औरभी कुछ कहनाथा, परन्तु उसको अब कुछ नहीं कहेंगे क्योंकि सूर्य अस्त होनेंपर आगयेहैं सो विशेष देर लगानेसे युद्धमें विघ्न हो जायगा ॥ २३ ॥ तुमनें जो १४००० चौदह हजार राक्षस मार डालेहैं सो अब तुझको मारकर उनकी स्त्री पुत्रादिकोंके आंसू पोंछैंगे ॥ २४ ॥ यह कहकर खरनें महाक्रोधितहो अतिश्रेष्ठ सुवर्णके बँद जिसमें बँधे ऐसी जो गदा उसके हाथमें थी वह देदीप्यमान इन्द्रके वज्रकी समान उसनें रामचंद्रजीके ऊपर चलाई ॥ २५ ॥ यह प्रज्वलित बडी गदा उसकी भुजासे छूटकर अगल बगलके वृक्षलता दिकोंको जलातीहुई श्रीरामचंद्रजीके समीप आनें लगी ॥ २६ ॥ तब श्रीरामचंद्रजीने

कामंबह्वपिवक्तव्यंत्वयिवक्ष्यामिनत्वहम् ॥ अस्तंप्राप्नोतिसवितायुद्धविघ्नस्ततोभवेत् ॥ २३ ॥ चतुर्दशसहस्राणिराक्षसानांहतानिते ॥ त्वद्विनाशात्करोम्यद्यतेषामश्रुप्रमार्जनम् ॥ २४ ॥ इत्युक्त्वापरमक्रुद्धःसगदांपरमांगदाम् ॥ खरश्चिक्षेपरामायप्रदीप्तामशनिंयथा ॥ २५ ॥ खरबाहुप्रमुक्तासाप्रदीप्तामहतीगदा ॥ भस्मवृक्षांश्चगुल्मांश्चकृत्वागात्तत्समीपतः ॥ २६ ॥ तामापतंतींमहतींमृत्युपाशोपमांगदाम् ॥ अंतरिक्षगतांरामश्चिच्छेदबहुधाशरैः ॥ २७ ॥ साविशीर्णाशरैर्भिन्नापपातधरणीतले ॥ गदामंत्रौषधिबलैर्व्यालीवविनिपातिता ॥ २८ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेएकोनत्रिंशःसर्गः ॥ २९ ॥ ७ ॥ ॥ भित्त्वातुतांगदांबाणैराघवोधर्मवत्सलः ॥ स्मयमानइदंवाक्यंसंरब्धमिदमब्रवीत् ॥१॥एतत्तेबलसर्वस्वंदर्शितंराक्षसाधम॥शक्तिहीनतरोमत्तोवृथात्वमुपगर्जसि ॥२॥

बाण जाल चलाकर साक्षात् मृत्युके फंदकी समान निकट आती हुई, उस बडी गदाके आकाशमें खंड २ कर डाले ॥ २७ ॥ अतीव हिंसा करनेंका स्वभाव जिसका हो ऐसी सांपिनि जिसप्रकार मंत्र और दवाईके प्रभावसे गिर जातीहै, वैसेही यह गदा श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे टुकडे २ हो पृथ्वीमें गिरपडी ॥ २८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे एकोनत्रिंशःसर्गः ॥ २९ ॥ धर्मवत्सल श्रीरामचंद्रजी अपनें बाणोंसे उस गदाको काटकर मुसकाय क्रोधमें भरे खरसे कहनेंलगे ॥१॥ रे राक्षसाधम! बस तुमनें इतनाही

उसओर रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी वानर राक्षसोंका बड़ा भारी समरका शब्द सुनकर जाम्बवान्से कहनेंलगे ॥ १ ॥ हे सौम्य ! ऐसा जान पड़ताहै कि हनुमाननें अति दुष्कर कार्य कियाहै कारण कि अतिभारी भयंकर आयुध चलानेंका शब्द सुनाईदेताहै ॥ २ ॥ इस कारण हे ऋक्षराज ! इन युद्ध करतेहुए वानरश्रेष्ठकी सहायता करनेंके लिये तुम अतिशीघ्रतासे अपनी सैनाके साथ जाओ ॥ ३ ॥ ऋक्षराज जाम्बवानजी "बहुत अच्छा" कहकर जिस स्थानमें वानरश्रेष्ठ हनुमानजी विराजतेथे अपनी सैनाके सहित उसी पश्चिमद्वारको गये ॥ ४ ॥ वहां जायकर ऋक्षराज जाम्बवानजीनें देखाकि हनुमानजी लौटे हुये आयरहेहैं और उनके साथमें जो वानरोंकी सैनाहै; यु

राघवश्चापिविपुलंतंराक्षसवनौकसाम्॥श्रुत्वासंग्रामनिर्घोषंजांबवंतमुवाचह॥ १ ॥ सौम्यनूनंहनुमताकृतंकर्मसुदुष्कर
म्॥श्रूयतेचयथाभीमःसुमहानायुधस्वनः ॥२॥ तद्गच्छकुरुसाहाय्यंस्वबलेनाभिसंवृतः ॥ क्षिप्रमृक्षपतेतस्यकपिश्रेष्ठ
स्ययुध्यतः ॥ ३ ॥ ऋक्षराजस्तथेत्युक्त्वास्वेनानीकेनसंवृतः ॥ आगच्छत्पश्चिमंद्वारंहनूमान्यत्रवानरः ॥ ४ ॥ अ
थायांतंहनूमंतंददर्शर्क्षपतिस्तदा ॥ वानरैःकृतसंग्रामैःश्वसद्भिरभिसंवृतम् ॥ ५ ॥ दृष्ट्वापथिहनूमांश्चतदृक्षबलमुद्य
तम् ॥ नीलमेघनिभंभीमंसन्निवार्यन्यवर्तत ॥ ६ ॥ सतेनसहसैन्येनसन्निकर्षंमहायशाः ॥ शीघ्रमागम्यरामायदुःखितो
वाक्यमब्रवीत् ॥ ७ ॥ समरेयुध्यमानानामस्माकंप्रेक्षतांचसः ॥ जघानरुदतींसीतामिंद्रजिद्रावणात्मजः ॥ ८ ॥
उद्भ्रांतचित्तस्तांदृष्ट्वाविषण्णोहमरिंदम ॥ तदहंभवतोवृत्तंविज्ञापयितुमागतः ॥ ९ ॥

द्ध कर थकित शरीरसे हो वारंवार लंबे २ श्वास लेरहीहै ॥ ५ ॥ हनुमानजीनें मार्गमें उस नीले वादलकी समान समर करनेंके लिये तैयार भयंकर रीछोंकी सैनाको देखकर उन सबको लौटाये ॥ ६ ॥ महायशवान् हनुमानजी ऋक्ष और वानरोंकी सब सैनाके साथ दुःखित मनसे श्रीरामचंद्रजीके निकट पहुचे और उनसे यह कहा ॥ ७ ॥ " हम सबनें संग्रामभूमिमें युद्ध करते २ देखा कि रावणक पुत्र इन्द्रजीतनें हम लोगोंके सामनेंही रोतीहुई जानकीजीको मारडाला ॥ ८ ॥ हे शत्रुओंका नाश करनेंवाले! उनकी ऐसी अवस्था देख हमारा चित्त उद्भ्रा

यें होजायँगी ॥ ११ ॥ रे निर्लज्ज! क्षुद्रात्मा! ब्राह्मणकंटक! मुनिगण तुमसे शंका करके अग्निमें आहुति दिया करतेहैं सो आजसे वह भय जाता रहेगा ॥१२॥ जब रघुकुमार श्रीरामचंद्रजीने महा क्रोधके वशहोकर इस प्रकार कहा तब निशाचर खर क्रोधयुक्तहो फिर बड़े ऊंचे स्वरसे रामचंद्रजीको दुर्वादिक कहताहुआ बोला ॥१३॥ कि तुम निश्चयही गर्वितहो और भयहोनेपरभी भय नहीं करते इसीकारण मृत्युके वश होकर क्या कहने लायक क्या न कहने लायकहै, उसको नहीं समझ सकते॥१४॥ जो पुरुष कि कालकी फांसोमें बंध जातेहैं, उनकी अन्तःकरणादि छैःइन्द्रियोंकी वृत्ति विषय जाती रहनेंके कारण उनको कार्याकार्यका ज्ञान नहीं रहता॥१५॥ निशाचर खरनें श्रीरामचंद्रजीसे इस प्रकार कहकर भ्रुकुटी टेढीकर निकटही

नृशंसशीलक्षुद्रात्मन्नित्यंब्राह्मणकंटक ॥ त्वत्कृतेशंकितैरग्नौमुनिभिःपात्यतेहविः ॥ १२ ॥ तमेवमभिसंरब्धंब्रुवाणंराघवंवने ॥ खरोनिर्भर्त्सयामासरोषात्खरतरस्वरः ॥ १३ ॥ दृढंखल्ववलिप्तोसिभयेष्वपिचनिर्भयः ॥ वाच्यावाच्यंततोहित्वंमृत्योर्वश्योनबुध्यसे ॥ १४ ॥ कालपाशपरिक्षिप्ताभवंतिपुरुषाहिये ॥ कार्याकार्यंनजानंतितेनिरस्तषडिंद्रियाः ॥ १५ ॥ एवमुक्कातततोरामंसंरुध्यभ्रुकुटींततः ॥ सददर्शमहासालमविदूरेनिशाचरः ॥ १६ ॥ रणेप्रहरणस्यार्थेसर्वतोह्यवलोकयन्॥सतमुत्पाटयामाससंदष्टदशनच्छदम् ॥ १७ ॥ तंसमुत्क्षिप्यबाहुभ्यांविनर्दित्वामहाबलः॥राममुद्दिश्यचिक्षेपहतस्त्वमितिचाब्रवीत्॥१८॥ तमापतंतंबाणौघैश्छित्त्वारामःप्रतापवान्॥रोषमाहारयत्तीव्रंनिहंतुंसमरेखरम्॥१९॥जातस्वेदस्ततोरामोरोषरक्तांतलोचनः॥निर्बिभेदसहस्रेणबाणानांसमरेखरम्॥२०॥

बहुत बडा एक शालका वृक्ष देखा ॥ १६ ॥ उस बड़े भारीशालके पेड़को देखकर युद्धमें उसकोही अपना अस्त्ररूप बनानेंके लिये खरनें किचकिचाकर उसको उखाड लिया ॥ १७ ॥ और घोर गंभीर शब्द करके दोनों भुजाओंसे इस वृक्षको उठा "लो तुम मारे गये" यह कहकर वह वृक्ष श्रीरामचंद्रजीके ऊपर चलाया ॥ १८ ॥ प्रतापवान् श्रीरामचंद्रजीनें अपनें ऊपर आतेहुए इस शालके वृक्षको अनेक बाणोंसे काट डालकर युद्धमें खरको मारडालनेंके लिये महाकोप किया ॥ १९ ॥ महाक्रोध करनेंके कारण श्रीरामचंद्रजीके नयन लाल २ हो आये, शरीरसे पसीना

मान असत्कल्प अप्रत्यक्षरूप धर्म स्वयं अचेतनहै, इस कारण वह स्वकर्त्तव्य शत्रुप्रतिकारादि कार्यको कुछभी नहीं जानताहै ॥ २४ ॥ हे साधुश्रेष्ठ! यथार्थ विचार करनेपर यदि कुछ धर्म होता तौ आपको किसी प्रकारके दुःख भोग करनेंकी संभावना नहीं होती, फिर जब कि आप ऐसा दुःख भोग कर रहेहैं, तब हमको यह नहीं जान पड़ता कि धर्म कुछ है॥ २५ ॥ हमारे विचारसे धर्म एक क्षुद्र पदार्थहै; उस्से कार्य साधन नहीं होता, न उसमें कोई शक्ति है, हां वह केवल कार्य करनेंके समय बलकी सहायता किया करताहै; वह सुखका साधन करनेवाला नहीं हमारी सम्मतिमें उस दुर्बल मर्यादाहीन धर्मकी उपासना करना उचित नहीं है ॥२६॥ यदि धर्म केवल बलका सहायकही हुआ तब फिर उसकी पूजा करनें का क्या प्रयोजन! आप जो धर्मकी पूजा करतेहैं उस धर्मकी पूजा छोड़ जैसे आप धर्मकी पूजा करतेहैं वैसेही यत्नसहित पौरुषका आश्रय लीजिये॥२७॥

यदिसत्स्यात्सतांमुख्यनासत्स्यात्तवकिंचन ॥ त्वयायदीदृशंप्राप्तंतस्मात्तन्नोपपद्यते ॥ २५ ॥ अथवादुर्बलःक्लीबोबलं धर्मोनुवर्तते ॥ दुर्बलोहृतमर्यादोनसेव्यइतिमेमतिः ॥ २६ ॥ बलस्ययदिचेद्धर्मोगुणभूतःपराक्रमैः ॥ धर्ममुत्सृज्यवर्त स्वयथाधर्मेतथाबले ॥ २७ ॥ अथचेत्सत्यवचनंधर्मःकिलपरंतप ॥ अनृतंत्वय्यकरणेकिंनबद्धस्त्वयाविना ॥ २८ ॥ यदिधर्मोभवेद्भूतअधर्मोवापरंतप ॥ नस्महत्वामुनिंवज्रीकुर्यादिज्यांशतक्रतुः ॥ २९ ॥ अधर्मसंश्रितोधर्मोवि नाशयतिराघव ॥ सर्वमेतद्यथाकामंकाकुत्स्थकुरुतेनरः ॥ ३० ॥ ममचेदंमतंतातधर्मोयमितिराघव ॥ धर्ममूलंत्वया छिन्नंराज्यमुत्सृजतातदा ॥ ३१ ॥

हेशत्रुओंके तपानेवाले! यदि सत्य वचनहीं आपके विचारमें धर्म माना गयाहो तौ जब पिता दशरथजीनें आपको युवराज देना चाहाथा, तब प्रथम आपनें उस वचनको अंगीकार किया और फिर आपनें उस वचनको नहीं पाला; तब उसके लिये आपको अधर्म क्यों नहीं हुआ! ॥ २८ ॥ हेशत्रुदमनकारी! यदि धर्म अथवा अधर्म इन दोनोंके बीचमें कोई बड़ा होता तौ, इन्द्रजी विश्वरूप मुनिका वधरूप अधर्म और तिसके पीछे यज्ञरूप धर्म इन दोनोंको न करते ॥ २९ ॥ हेश्रीरामचंद्रजी! पौरुषका आश्रय कियाहुआ धर्महीं शत्रुके विनाशादिमें समर्थहै इसी कारणसे लोग दोनोंका अनुष्ठान किया करतेहैं ॥ ३० ॥ हेरघुनंदन देश, काल, और पात्रके अनुसार कार्य करनाही परम धर्म ज्ञात होताहै;

होकर गिरेथे खरभी वैसेही श्रीरामचंद्रजीके बाणसे नाशहोकर पृथ्वीमें गिरा ॥ २८ ॥ इससमय देवतागण चारणोंके सहित महाहर्ष और विस्म
य युक्तहोकर नगाडे बजातेहुए श्रीरामचंद्रजीके ऊपर चारों ओरसे फूलों की वर्षा करनें लगे ❋ ॥ २९ ॥ और सब देवता चारण गण फूल बर
साकर बडे विस्मित हुए कि डेढही मुहूर्तमें तीखे बाणोसें श्रीरामचंद्रजीनें ॥ ३० ॥ इस महायुद्धमें खर दूषण इत्यादि मुख्य राक्षसोंके सहित
कामरूपी चौदह हजार राक्षसोंको मार डाला ॥ ३१ ॥ साक्षात् विष्णुजीकी समान सर्वदर्शी श्रीरामचंद्रजीका क्याही बडा आश्चर्यका कार्यहै
अहो! क्या अद्भुत वीर्यहै! और क्या विस्मय उपजानेंवाली दृढता हमनें इनमें देखी! ॥ ३२ ॥ यह बात कहते २ एकत्र हुए सब देवता लोग

एतस्मिन्नंतरेदेवाश्चारणैःसहसंगताः ॥ दुंदुभींश्चाभिनिघ्नंतःपुष्पवर्षंसमंततः ॥ २९ ॥ रामस्योपरिसंहृष्टाववर्षुर्विस्मि
तास्तदा ॥ अर्धाधिकमुहूर्तेनरामेणनिशितैःशरैः ॥ ३० ॥ चतुर्दशसहस्राणिरक्षसांकामरूपिणाम् ॥ खरदूषणमु
ख्यानांनिहतानिमहामृधे ॥ ३१ ॥ अहोबतमहत्कर्मरामस्यविदितात्मनः ॥ अहोवीर्यंमहोदार्ढ्यंविष्णोरिवहिदृ
श्यते ॥३२॥ इत्येवमुक्त्वातेसर्वेययुर्देवायथागतम् ॥ ततोराजर्षयःसर्वेसंगताःपरमर्षयः ॥ ३३ ॥ सभाज्यमुदितारामं
सागस्त्याइदमब्रुवन् ॥ एतदर्थंमहातेजामहेंद्रःपाकशासनः॥३४॥ शरभंगाश्रमंपुण्यमाजगामपुरंदरः ॥ आनीतस्त्व
मिमंदेशमुपायेनमहर्षिभिः॥३५॥एषांवधार्थंशत्रूणांरक्षसांपापकर्मणाम् ॥ तदिदंनःकृतंकार्यंत्वयादशरथात्मज॥३६॥

अपनें २ स्थानको चलेगये । तिसके पीछे राजर्षि व महर्षिगण एकत्र होकर आये ॥३३॥ अगस्त्यजीके सहित श्रीरामचंद्रजीकी बडाई
कर मुदित होकर सब ऋषिश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीसे बोले, कि इसी कारणसे महातेजवान् इन्द्रजी ॥ ३४ ॥ शरभंगजीके पुण्य आश्रममें
आपके निकट आयेथे। इसी कारणसे महर्षि गण बडे उपायसे आपको यहां पर लायेहैं ॥ ३५ ॥ बस एक यही कार्य था कि केवल इन पाप
कर्म करनेंवाले राक्षसोंको मरवानाथा क्योंकि यह सब हमारे शत्रुथे, सो हे दशरथकुमार! आपनें यह हमारा कार्य सिद्ध किया ॥ ३६ ॥

❋ राम २ कह तन तजहिं, पावहिं पद निर्वान। कर उपाय रिपु मोर, छिनमें कृपानिधान ॥

इसप्रकार महासंग्राममें समस्त भयंकर बलवान राक्षसोंको श्रीरामचंद्रजीसे माराहुआ देखकर खर बडे भारी रथपर सवार होकर वज्र उठाये हुए इन्द्रकी समान रामचंद्रजीके मारनेंको चला॥३८॥ इ०श्री०वा०आ०आर०षड्विंशःसर्गः॥२६॥ इसके पीछे खर जब श्रीरामचन्द्रजीके सन्मुख धाया, तब सेनापति त्रिशिरा राक्षस उसके समीप आकर कहनेंलगा॥१॥ मैं विक्रमवानहूं आप यह साहस त्यागकरके मुझको रामचंद्रको मार डालनेके लिये नियत करके समरमें महाबाहु रामचंद्रको मुझकरके माराहुआही देखिये ॥ २ ॥ मैं आपके समीप हथियार छूकर सत्यही प्रतिज्ञा करताहूं कि समस्त राक्षसोंके मारनें योग्य रामचंद्रको मैं निश्चयही मार डालूंगा ॥ ३ ॥ या तो संग्राममें मैंही मरूंगा, अथवा उस रामकोही मार

ततस्तुतद्भीमबलंमहाहवेसमीक्ष्यधर्मेणहतंबलीयसा ॥ रथेनरामंमहताखरस्ततःसमाससादेंद्रइवोद्यताशनिः॥३८॥ इ० श्री० वा० आ० अ० षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ खरंतुरामाभिमुखंप्रयांतंवाहिनीपतिः ॥ राक्षसस्त्रिशिरानामसन्निपत्येदमब्रवीत् ॥ १ ॥ मांनियोजयविक्रांतंत्वंनिवर्तस्वसाहसात् ॥ पश्यरामंमहाबाहुंसंयुगेविनिपातितम् ॥ २ ॥ प्रतिजानामितेसत्यमायुधंचाहमालभे ॥ यथारामंवधिष्यामिवधार्हंसर्वरक्षसाम् ॥ ३ ॥ अहंवास्यरणेमृत्युरेषवासमरेमम ॥ विनिवर्त्यरणोत्साहंमुहूर्तंप्राश्निकोभव ॥ ४ ॥ प्रहृष्टोवाहतेरामेजनस्थानंप्रयास्यसि ॥ मयिवानिहतेरामंसंयुगायप्रयास्यसि ॥ ५ ॥ खरस्त्रिशिरसातेनमृत्युलोभात्प्रसादितः ॥ गच्छयुध्येत्यनुज्ञातोराघवाभिमुखोययौ ॥ ६ ॥ त्रिशिरास्तुरथेनैववाजियुक्तेनभास्वता ॥ अभ्यद्रवद्रणेरामंत्रिशृंगइवपर्वतः ॥ ७॥ शरधारासमूहान्समहामेघइवोत्सृजन् ॥ व्यसृजत्सदृशंनादंजलार्द्रस्येवदुंदुभेः ॥ ८ ॥

डालूंगा आप क्षणके लियें रणके उत्साहको छोडकर दोनों ओरका युद्ध देखते रहिये ॥ ४ ॥ राम मारा जायगा तो आप आनन्दित चित्तसे जनस्थानको चले जाइये और जो मेरा संहार होवे तो आप स्वयंही युद्ध करनेंके लिये रामचंद्रके सन्मुख होना ॥ ५ ॥ त्रिशिरा इस प्रकार खरको प्रसन्न करके युद्ध करनेके लिये उसकी आज्ञा लेकर श्रीरामचंद्रजीके सामनें दौडा ॥ ६ ॥ तीन शृंगवाले पर्वतकी समान वह तीन शिर वाला राक्षस देदीप्यमान घोडे जुते हुए रथमें सवार होकर श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख धाया ॥ ७ ॥ और महा मेघ जिस प्रकार जलधारा वर्षाता हुआ

डाला इसमें रामचंद्रजीकी अनंतशक्ति ईश्वरता सूचन करीहै ॥ २० ॥ अकम्पनकी यह भयानक वार्त्ता सुनकर रावणनें कहाकि हम राम लक्ष्मणको मारनेके कारण अभी जनस्थानको जांयगे ॥ २१ ॥ जब रावणनें इस प्रकार कहा तब अकंपन कहनें लगा कि हे राजन्! राममें जिस प्रकारका बल और पौरुष और चरित्रहै उसको श्रवण करो॥२२॥ कि जब महायशवान श्रीरामचंद्रजी क्रोध करें तो उनको निवारण करनेंकी ब्रह्मादि देवताओंकोभी साध्य नहींहै। वह जलसे पूर्ण नदीका वेगभी अपनें बाणोंसे रोक सकतेहैं ॥ २३ ॥ आकाशमंडलसे ग्रह नक्षत्र और सर्व तारागणोंको रामचंद्रजी गिरा सकतेहैं और वह विपदमें पडी हुई पृथ्वीकोभी उबार सकतेहैं ॥ २४ ॥ समुद्रकी वेला भूमिको तोड

अकंपनवचःश्रुत्वारावणोवाक्यमब्रवीत् ॥ गमिष्यामिजनस्थानंरामंहंतुंसलक्ष्मणम् ॥ २१ ॥ अथैवमुक्तेवचनेप्रोवाचेदमकंपनः ॥ शृणुराजन्यथावृत्तंरामस्यबलपौरुषम् ॥ २२ ॥असाध्यःकुपितोरामोविक्रमेणमहायशाः ॥ आपगायास्तुपूर्णायावेगंपरिहरेच्छरैः ॥ २३ ॥ सताराग्रहनक्षत्रंनभश्चाप्यवसादयेत् ॥ असौरामस्तुसीदंतींश्रीमानभ्युद्धरेन्महीम् ॥ २४ ॥ भित्त्वावेलांसमुद्रस्यलोकानाप्लावयेद्विभुः ॥ वेगंवापिसमुद्रस्यवायुंवाविधमेच्छरैः ॥ २५ ॥ संहृत्यवापुनर्लोकान्विक्रमेणमहायशाः ॥ शक्तःश्रेष्ठःसपुरुषःस्रष्टुंपुनरपिप्रजाः ॥ २६ ॥ नहिरामोदशग्रीवशक्योजेतुंरणेत्वया रक्षसांवापिलोकेनस्वर्गःपापजनैरिव ॥ २७ ॥ नतंवध्यमहंमन्येसर्वैर्देवासुरैरपि ॥ अयंतस्यवधोपायस्तन्ममैकमनाःशृणुः ॥ २८ ॥ भार्यातस्योत्तमालोकेसीतानामसुमध्यमा ॥ श्यामासमविभक्तांगीस्त्रीरत्नंरत्नभूषिता ॥ २९ ॥

ताडकर रामचंद्र सब लोकोंको जलमें डुबो सकतेहैं वह अपने बाणोंसे सागरका अथवा पवनका वेगभी रोक सकतेहैं ॥ २५ ॥ और वह महायशवान् श्रीरामचंद्रजी श्रेष्ठ पुरुष अपने २ विक्रमसे समस्त लोकोंका संहार करके फिर नई प्रजाको उत्पन्न कर सकतेहैं ॥ २६ ॥ हे दशानन! पापात्मा लोग जिस प्रकार स्वर्गके जीतनेंकी सामर्थ्य नहीं रखते सो आप या आपके राक्षस लोग कोईभी युद्धमें श्रीरामचंद्रजीके जीतनेको समर्थ नहींहैं ॥ २७ ॥ मैं तो यह जानताहूं कि देवासुर सब एकत्र होकरभी उनको नहीं वध कर सकते तौभी उनके मारनेंका एक उपायहै सो चित्त देकर सुनिये ॥ २८ ॥ सीता नामक उनकी स्त्री एक लोकके मध्यमें सर्व श्रेष्ठ श्यामा अवस्थावालीहै वह स्त्रियोंमें रत्नकी नाईहै वह रत्नोंसे

बाण उसके हृदयमें मारे जिनके लगनेंसे वह फिर हथियार ग्रहण करनेंको समर्थ नहीं हुआ ॥ १७ ॥ फिर अप्रमेयात्मा श्रीरामचंद्रजीनें क्रोधमें भरकर वेगवान् तीन बाणोंकी सहायतासे उसके तीनों शिर काट डाले, तिसके पीछे धुवेंके समान रुधिर गिरता श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे पीडित त्रिशिरा॥१८॥समरमें गिरा, जिसके शिर पहलेही गिर गयेथे। त्रिशिराके मारे जानेंके बाद शेष राक्षस भागकर खरकी शरणमें गये॥ १९॥ और वहांभी खडे न होकर सिंह करके भय पाये हुए मृग यूथकी समान भागेही चले गये तिनको भागे हुए देख खरनें रोषमें भर शीघ्रतासे श्रीरामचंद्रजीकी ओर दौडा जैसे राहु चंद्रमाकी ओर दौडताहै ॥ २० ॥ इत्यार्पे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० आरण्यकांडे सप्तविंशः सर्गः॥२७॥

शिरांस्यपातयत्रीणिवेगवद्भिस्त्रिभिःशरैः ॥ सधूमशोणितोद्गारीरामबाणाभिपीडितः ॥ १८ ॥ न्यपतत्पतितैःपूर्वंसमरस्थोनिशाचरः ॥ हतशेषास्ततोभग्नाराक्षसाःखरसंश्रयाः ॥ १९ ॥ द्रवंतिस्मनतिष्ठंतिव्याधत्रस्तामृगाइव ॥ तान्खरोद्रवतोदृष्ट्वानिवर्त्यरुषितस्त्वरन् ॥ राममेवाभिदुद्रावराहुश्चंद्रमसंयथा ॥ २० ॥ इत्यार्पेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीये आदिकाव्येआरण्यकांडेसप्तविंशःसर्गः ॥ २७ ॥ निहतंदूषणंदृष्ट्वारणेत्रिशिरसासह ॥ खरस्याप्यभवत्त्रासोदृष्ट्वारामस्यविक्रमम् ॥ १ ॥ सदृष्ट्वाराक्षसंसैन्यमविषह्यंमहाबलम् ॥ हतमेकेनरामेणदूषणास्त्रिशिराअपि ॥ २ ॥ तद्बलंहतभूयिष्ठंविमनाःप्रेक्ष्यराक्षसः ॥ आससादखरोरामंनमुचिर्वासवंयथा ॥ ३ ॥ विकृष्यबलवच्चापंनाराचान्रक्तभोजनान् ॥ खराश्चिक्षेपरामायक्रुद्धानाशीविषानिव ॥ ४ ॥

दूषण और त्रिशिरा राक्षसको मरा हुआ देख और संग्राममें श्रीरामचंद्रजीकी शूरता निहार खरके मनमेंभी भयका संचार हुआ॥ १॥ खर विचार करनें लगा कि दूषण और त्रिशिराको, सहनेंके अयोग्य पराक्रम वान महाबलवान् राक्षसी सेनाके सहित अकेले रामचंद्रनें संग्राममें मार डाला ॥ २ ॥ ऐसा विचार करता हुआ वह राक्षस खर उदास होकर श्रीरामचंद्रजीके ऊपर दौडा, जैसे नमुचि दैत्य इन्द्रके ऊपर धाया था ॥ ३ ॥ और बडे जोरसे धनुष खैंचकर श्रीरामचंद्रजीके ऊपर, सर्पके विषकी समान रुधिर पान करनेंवाले बाण छोडे ॥ ४ ॥

त्रिशिराको मारा हुआ देखकर शूर्पणखा मेघकी समान गंभीर शब्दसे गर्जनें लगी ॥ २ ॥ औरके करनेंके अयोग्य श्रीरामचंद्रजीका किया हुआ कर्म देखकर अति उकसाके रावणपालिता लंका नगरीको शूर्पणखा गई ॥ ३ ॥ वहां जाकर देखा कि महातेजवान् रावण विमान पर बैठाहै, देवतागण जिस प्रकार इन्द्रके निकट बैठे रहतेहैं। मंत्रीगण वैसेही रावणके घोरे बैठेहैं ॥ ४ ॥ सूर्यकी समान प्रकाशित हुए सुवर्णमय श्रेष्ठ आसनपर बैठनेसे, सुवर्णमय वेदिमध्यगत प्रज्वलित अग्निकी समान उसकी शोभा होरहीहै ॥ ५ ॥ देवता, गन्धर्व, भूत व महात्मा व ऋषि लोगोंके जीतनें अयोग्य अति भयंकर मुँह बाये मानों दूसरा यमराजही बैठाथा ॥ ६ ॥ फिर देवताओं व राक्षसोंके मणियुक्त वज्र कक्ष घाव

साद्दष्ट्वाकर्मरामस्यकृतमन्यैःसुदुष्करम् ॥ जगामपरमोद्विग्नालंकांरावणपालिताम् ॥ ३ ॥ साददर्शविमानाग्रेरावणं दीप्ततेजसम् ॥ उपोपविष्टंसचिवैर्मरुद्भिरिववासवम् ॥ ४ ॥ आसीनंसूर्यसंकाशेकांचनेपरमासने ॥ रुक्मवेदिगतं प्राज्यंज्वलंतमिवपावकम् ॥ ५ ॥ देवगंधर्वभूतानामृषीणांचमहात्मनाम् ॥ अजेयंसमरेघोरंव्यात्ताननमिवांतकम् ॥ ६ ॥ देवासुरविमर्देषुवज्राशनिकृतव्रणम् ॥ ऐरावतविषाणाग्रैरुत्कृष्टकिणवक्षसम् ॥ ७ ॥ विंशद्भुजंदशग्रीवंदर्शनीयपरिच्छदम् ॥ विशालवक्षसंवीरंराजलक्षणलक्षितम् ॥ ८ ॥ नद्धवैदूर्यसंकाशंतप्तकांचनभूषणम् ॥ सुभुजंशुक्लदशनंमहास्यंपर्वतोपमम् ॥ ९ ॥ विष्णुचक्रनिपातैश्चशतशोदेवसंयुगे ॥ अन्यैःशस्त्रैःप्रहारैश्चमहायुद्धेषुताडितम् १० ॥

सहित, और ऐरावताचल हाथीके दांतोंसे बडाभारी चिह्न छातीमें विद्यमान ॥ ७ ॥ उसकी वीस भुजा व दशशिर, पोशाक बडी सुहावन मनभावन, चौडी छाती, और शरीर राजलक्षण युक्त ॥ ८ ॥ वह जो वैदूर्य मणि पहर रहाहै, उसकी देहकी कान्तिभी वैदूर्यमणिके सदृश कानोंके कुंडल तपाये हुए सुवर्णके बने, वीसों भुजा परमसुन्दर, दाँतोंकी कतारअति सुन्दर, वदन मंडल अतीव महान्, आकार पर्वतकी समान ॥ ९ ॥ देवताओंके सहित सैकडों संग्रामोंमें विष्णुचक्रके लगनेंसे व और २अनेक महासंग्रामोंमें अस्त्रोंके प्रहारसे बहुत भांति ताडित हुआ ॥ १० ॥

नहीं डरता वैसेही श्रीरामचंद्रजी खरको देख कुछभी नहीं घबडाये॥१३॥अनन्तर खर सूर्यसमान द्युतिशाली महारथ पर चढकर श्रीरामचंद्रजीके निकट पहुंचा जिस प्रकार आगके घोरे पतंग पहुंचतेहैं॥ १४ ॥ तिसके पीछे महात्मा श्रीरामचंद्रजीको खरने अपने हाथोंकी फुरती दिखाई और रामचंद्रजीका बाण चढाहुआ मुट्ठीके घोरेसे काट डाला ॥ १५ ॥ फिर क्रोधमे भरकर इन्द्रके वज्रकी तुल्य प्रतापशाली तीखे सात बाण ग्रहण करके श्रीरामचंद्रजीके मर्म स्थानमें मारे॥१६॥और फिर सैकडों हजारों बाणोंसे श्रीरामचंद्रजीको पीडितकर समरमें अपना उपमा रहित तेज दिखाताहुआ महाशब्दसे गर्जनेलगा॥१७॥उससमय श्रीरामचंद्रजीका सूर्यकी समान प्रकाशमान कवच, सुन्दर तेज धार वाले बाणोंके समू

ततःसूर्यनिकाशेनरथेनमहताखरः॥आससादाथतंरामंपतंगइवपावकम्॥ १४ ॥ ततोस्यसशरंचापंमुष्टिदेशेमहात्मनः॥ खरश्चिच्छेदरामस्यदर्शयन्हस्तलाघवम्॥१५॥ सपुनस्त्वपरान्सप्तशरानादायमर्मणि॥ निजघानरणेक्रुद्धःशक्राशनिसमप्रभान्॥१६॥ ततःशरसहस्रेणराममप्रतिमौजसम्॥ अर्दयित्वामहानादंननादसमरेखरः॥ १७॥ ततस्तत्प्रहतंबाणैःखरमुक्तैःसुपर्वभिः॥ पपातकवचंभूमौरामस्यादित्यवर्चसम्॥ १८ ॥ सशरैरर्पितःक्रुद्धःसर्वगात्रेषुराघवः॥ रराजसमरेरामोविधूमोग्निरिवज्वलन्॥ १९ ॥ ततोगंभीरनिर्ह्रादंरामःशत्रुनिबर्हणः॥चकारांतायसरिपोःसज्जमन्यन्महद्धनुः॥ २० ॥ सुमहद्वैष्णवंयत्तदतिसृष्टंमहर्षिणा॥ वरंतद्धनुरुद्यम्यखरंसमभिधावतः॥२१॥ ततःकनकपुंखैस्तुशरैःसन्नतपर्वभिः॥ चिच्छेदरामःसंक्रुद्धःखरस्यसमरेध्वजम्॥ २२ ॥

हसे छिन्न भिन्न होकर पृथ्वीमें गिरपडा ॥ १८ ॥ उस समय रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीका सब शरीर बाणोंसे विंधगया, तब श्रीरामचंद्रजी क्रोधित होकर प्रज्वलित धूमरहित अग्निकी शोभा धारण करतेहुए ॥ १९ ॥ उसके पीछे उन शत्रुओंका नाशकरनेंवाले श्रीरामचंद्रजीनें शत्रुओंका संहार करनेके लिये और एकगंभीर शब्द करनेंवाले धनुषपर रोदा चढाते हुए ॥ २० ॥ श्रीरामचंद्रजी महर्षि अगस्त्यजीका दियाहुआ वह बृहत् वैष्णव धनुष उठाकर खरके ऊपर क्रोधित होकर धाये ॥ २१ ॥ तदनन्तर सुवर्णके पंखलगे तीखे बड़े भारी बाणोंसे समरमें श्रीरामचंद्रजीनें

कर जिसकी स्तुति करनेंलगेथे ॥ १९ ॥ यह महाबलवान् रावण होमशालामें गमन करके पवित्र सोमको नष्टकरदेता और दक्षिणा देनें
के समय यज्ञको ध्वंसकरदेता सर्वदा ब्राह्मणहननादिक क्रूरकार्योंको क्रियाकरता ॥ २० ॥ सदा प्रजागणोंका अहित आचरण करता कर्कशथा
अनेक प्रकारकी पीडा देकर सब लोकोंका भय उपजानेंवाला होनेंकेकारण लोक उसको रावण कहा करतेथे ॥ २१ ॥ राक्षसी शूर्पणखानें
अपनें क्रूर महाबली भ्राताको देखा । वह रावण दिव्यवस्त्र, दिव्य गहनें,और माला पहर रहाथा ॥ २२ ॥ आसनपर भली प्रकारसे बैठाथा, उस
काल कालकी मूर्त्तिसा प्रतीत होताथा । ऐसा राक्षसनाथ महाभाग पौलस्त्यकुलनंदन रिपुओंका नाश करनेंवाला ॥ २३ ॥ इस प्रकारके

हविर्धानेषुयः सोममुपहंतिमहाबलः ॥ प्राप्तयज्ञहरंदुष्टंब्रह्मघ्नंक्रूरकारिणम् ॥ २० ॥ कर्कशंनिरनुक्रोशंप्रजानाम
हितेरतम् ॥ रावणंसर्वभूतानां सर्वलोकभयावहम् ॥ २१ ॥ राक्षसीभ्रातरंक्रूरंसाददर्शमहाबलम् ॥ तंदिव्यवस्त्राभ
रणंदिव्यमाल्योपशोभितम् ॥ २२ ॥आसनेसूपविष्टंतंकालेकालमिवोद्यतम् ॥ राक्षसेंद्रंमहाभागंपौलस्त्यकुलनंदन
म् ॥ २३ ॥ उपगम्याब्रवीद्वाक्यंराक्षसीभयविह्वला ॥ रावणंशत्रुहंतारंमंत्रिभिःपरिवारितम् ॥ २४ ॥ तमब्रवीद्दी
प्तविशाललोचनंप्रदर्शयित्वाभयलोभमोहिता ॥ सुदारुणंवाक्यमभीतचारिणीमहात्मनाशूर्पणखाविरूपिता॥२५॥
इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेद्वात्रिंशःसर्गः ॥३२॥ ७१ ॥ ॥ ततःशूर्पणखादीनारावणंलो
करावणम् ॥ अमात्यमध्येसंक्रुद्धापरुषंवाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥ प्रमत्तःकामभोगेषुस्वैरवृत्तोनिरंकुशः ॥ समुत्पन्नंभयं
घोरंबोद्धव्यंनावबुध्यसे ॥ २ ॥

गुणोंसे युक्त रावणको देख लक्ष्मणजीनें जो नाक कान काट डालेथे इसकारण भयसे विह्वलहो, मंत्रियोंके बीचमे बैठेहुए रावणसे बोली ॥ २४ ॥
इस प्रकारकी निशाचरी जो कि श्रीरामचंद्रजीके द्वारा कुरूपको प्राप्त होगईथी जिसका नाम शूर्पणखा था वह निर्भय दारुण वचन कहती हुई
रावणसे बोली ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥ उस समय दीन हो
रही शूर्पणखा क्रोधयुक्तहो सब लोकोंके रुवानेंवाले रावणसे मंत्रिगणोंके सामनें कडुवे वचन कहनें लगी ॥ १ ॥ कि तुम स्वेच्छाचारी

सहित शरासन युक्त वायां हाथ,॥३०॥काटकर हँसतेर वज्र समान एक बाणसे खरको इंद्रसमान श्रीरामचंद्रजीनें मारा ॥३१॥ तब वह खर राक्षस धनुष रहित, रथ रहित, सारथि रहित होकर गदाले रथसे कूद पृथ्वी पर खडा होगया ॥ ३२ ॥ उस काल विमानमें बैठे हुए देवता और महर्षिगण महारथी श्रीरामचंद्रजीका यह कार्य अवलोकन करके परम हर्ष प्राप्त करते हुए और परस्पर एकत्रहो हाथजोड स्तुतिकर श्रीरामचंद्रजीकी पूजा करते हुए ॥ ३३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे अष्टाविंशः सर्गः ॥ २८ ॥ इसके पीछे खर रथहीन और हाथमें गदा धारण करके जब पृथ्वीमें खड़ा होगया तब महातेजवान् श्रीरामचंद्रजी बोलनेमें मधुर

छित्त्वावज्रनिकाशेनराघवःप्रहसन्निव ॥ त्रयोदशेनेंद्रसमोबिभेदसमरेखरम् ॥ ३१ ॥ प्रभग्नधन्वाविरथोहताश्वो हतसारथिः ॥ गदापाणिरवप्लुत्यतस्थौभूमौखरस्तदा ॥ ३२ ॥ तत्कर्मरामस्यमहारथस्यसमेत्यदेवाश्चमहर्षयश्च ॥ अपूजयन्प्रांजलयःप्रहृष्टास्तदाविमानाग्रगताःसमेताः ॥ ३३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडेअष्टाविंशःसर्गः ॥ २८ ॥ ॥छ॥ ॥ खरंतुविरथंरामोगदापाणिमवस्थितम् ॥ मृदुपूर्वंमहातेजाः परुषंवाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥ गजाश्वरथसंबाधेबलेमहतितिष्ठता ॥ कृतंतेदारुणंकर्मसर्वलोकजुगुप्सितम् ॥ २ ॥ उद्वेजनीयोभूतानांनृशंसःपापकर्मकृत् ॥ त्रयाणामपिलोकानामीश्वरोपिनतिष्ठति ॥ ३ ॥ कर्मलोकविरुद्धंतुकुर्वाणं क्षणदाचर ॥ तीक्ष्णंसर्वजनोहंतिसर्पंदुष्टमिवागतम् ॥ ४ ॥ लोभात्पापानिकुर्वाणःकामाद्वायोनबुध्यते ॥ हृष्टः पश्यतितस्यांतंब्राह्मणीकरकादिव ॥ ५ ॥

परंतु वास्तवमें कठोर वचनसे खरसे बोले ॥ १ ॥ हेखर! तैंने हाथी अश्व और रथादि युक्त सेनाके मध्यमें टिककर सर्व लोकमें निन्दित महा भयंकर कर्म कियाहै ॥ २ ॥ यदि त्रिलोकीका स्वामीभी निर्लज्ज होकर पाप कर्म करै और सर्व प्राणियोंको घवडानेंवाला हो तौ वहभी अपने पदसें भ्रष्ट होजाताहै ॥ ३ ॥ अरे निशाचर! सभी पुरुष लोकोंके विरुद्ध कर्म करनेवाले तीक्ष्ण स्वभाववाले पुरुषको, आये हुए काल सर्पकी समान संहार कर डालतेहैं ॥ ४ ॥ जो व्यक्ति फल जान करभी लोभ, या कामदेवके वश होकर हिंसा परस्त्रीगमन इत्यादि पाप

खजाना, दूत, और नीति नहीं होती, ऐसे राजालोग साधारण मनुष्योंके समानहैं ॥ ९ ॥ राजा लोग सबजगह अपने दूतोंको नियुक्त करके सब दूरका वृत्तान्त मानों देखते रहतेहैं इसी कारण वह दीर्घचक्षु, कहे जातेहैं ॥ १० ॥ हम जानतीहैं कि तुमनें कहीं भी दूतादि नहीं नियत कियेहैं और तुम साधारण बुद्धिवाले मंत्रियोंके साथ सदाही बैठे रहतेहो। इसीकारणसे निजजन और जनस्थानका जो नाशहोगयाहै उसको तुम नहीं जानते ॥ ११ ॥ देखो! अति कठिन कर्म करनेंवाले रामचंद्रनें इकलेही भयंकरकर्म करनेंवाले चौदह हजार राक्षस खर दूषणसहित मार डाले॥१२॥उन रामचंद्रनें ऋषिगणोंको अभय करदियाहै समस्त दंडकारण्यको निष्कंटक और जनस्थानको भयभीत कर दियाहै ॥ १३ ॥ पर

यस्मात्पश्यंतिदूरस्थान्सर्वानर्थान्नराधिपाः ॥ चारेणतस्माद्धुच्यंतेराजानोदीर्घचक्षुषः ॥ १० ॥ अयुक्तचारंमन्येत्वां प्राकृतैःसचिवैर्युतः ॥ स्वजनंचयतःस्थानंनिहतंनावबुध्यसे ॥ ११ ॥ चतुर्दशसहस्राणिरक्षसांभीमकर्मणाम् ॥ हतान्येकेनरामेणखरश्चसहदूषणः ॥ १२ ॥ ऋषीणामभयंदत्तंकृतक्षेमाश्चदंडकाः ॥ धर्षितंचजनस्थानंरामेणाक्लिष्टकारिणा ॥ १३ ॥ त्वंतुलुब्धःप्रमत्तश्चपराधीनश्चराक्षस॥ विषयेस्वेसमुत्पन्नंयद्भयंनावबुध्यसे ॥ १४ ॥ तीक्ष्णमल्पप्रदातारंप्रमत्तंगर्वितंशठम् ॥ व्यसनेसर्वभूतानिनाभिधावंतिपार्थिवम् ॥ १५ ॥ अतिमानिनमग्राह्यमात्मसंभावितंनरम् ॥ क्रोधनंव्यसनेहंतिस्वजनोपिनराधिपम्॥ १६ ॥ नानुतिष्ठतिकार्याणिभयेषुनबिभेतिच ॥ क्षिप्रंराज्याच्च्युतोदीनस्तृणैस्तुल्योभवेदिह ॥ १७ ॥

न्तु हे रावण! तुम तो लोभी मतवाले और सदाही पराये आधीन रहनेंवालेहो इसीकारण तुम नहीं जानते कि तुम्हारे राज्यपर क्या भय आ पहुंचाहै ॥ १४ ॥ जो राजा अति तीक्ष्णस्वभाववाला, असावधान, गर्वित, शठ, और अलपदान करनेंवाला होताहै, विपदके समय प्रजाभी उस राजाकी रक्षाकरनेंके लिये कोई यत्न नही करती ॥ १५ ॥ जो राजा अतिशय अभिमानी होता, क्रोध स्वभाववाला होता, और जो अपने आपही अपना गौरव करताहै, कोई जिसकी बातको नहीं सुनते। विपदके समय उसके सगेही उसका नाश कर देतेहैं ॥१६ ॥ जो राजा राजकार्य को अपने हाथसे नहींकरता। और भय होनेपरभी नहींडरता, ऐसे राजाको शीघ्रही राज्यभ्रष्ट होना पडताहै और सबहीकोई उसे तृणकी स

और नरकमें जाता हुआ देखें ॥ १३ ॥ रे नीचकुलमें उत्पन्न हुए! तू भली भांतिसे यत्न करके हमारे ऊपर प्रहार कर, किन्तु आज हम निश्चयही तालफलके समान तेरा शिर काटकर गिरादेंगे ॥ १४ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा तब क्रोधके वश होकर खरके दोनों नेत्र लालहो आये और क्रोधके मारे ज्ञान रहितहो खर हँसते २ श्रीरामचंद्रजीसे बोला ॥ १५ ॥ रेदशरथकुमार! समरमें साधारण राक्षसोंको मार वास्तवमें प्रशंसित न होनेंपरभी तुम आपही किस प्रकारसे अपनीही प्रशंसा करतेहो ॥ १६ ॥ बलवान् पराक्रमशाली नरगण तेजके मारे गर्वित होकर किसी समयभी अपनी प्रशंसा नहीं किया करते ॥ १७ ॥ जिनका चित्त शुद्ध नहींहै, ओछा स्वभावहै ऐसे क्षत्रियोंमें अधम लोगही

प्रहरस्वयथाकामंकुरुयत्नंकुलाधम ॥ अद्यतेपातयिष्यामिशिरस्तालफलंयथा ॥ १४ ॥ एवमुक्तस्तुरामेणक्रुद्धःसंर
क्तलोचनः ॥ प्रत्युवाचततोरामंप्रहसन्क्रोधमूर्छितः ॥ १५ ॥ प्राकृतान्राक्षसान्हत्वायुद्धेदशरथात्मज ॥ आत्मना
कथमात्मानमप्रशस्यंप्रशंससि ॥ १६ ॥ विक्रांताबलवंतोवायेभवंतिनरर्षभाः ॥ कथयंतिनतेकिंचित्तेजसाचातिगर्वि
ताः ॥ १७ ॥ प्राकृतास्त्वकृतात्मानोलोकेक्षत्रियपांसनाः ॥ निरर्थकंविकत्थंतेतथारामविकत्थसे ॥ १८ ॥ कुलं
व्यपदिशन्वीरःसमरेकोभिधास्यति ॥ मृत्युकालेतुसंप्राप्तेस्वयमप्रस्तुवेस्तवम् ॥ १९ ॥ सर्वथातुलघुत्वंतेकत्थनेनवि
दर्शितम् ॥ सुवर्णप्रतिरूपेणतप्तेनेवकुशाग्निना ॥ २० ॥ नतुमामिहतिष्ठंतंपश्यसित्वंगदाधरम् ॥ धराधरमिवाकंप्यं
पर्वतंधातुभिश्चितम् ॥ २१ ॥ पर्याप्तोहंगदापाणिर्हंतुंप्राणान्रणेतव ॥ त्रयाणामपिलोकानांपाशहस्तइवांतकः ॥ २२ ॥

तुम्हारी समान निरर्थक गर्व प्रगट किया करते हैं ॥ १८ ॥ मृत्यु समयके निकट आजानेंपर कौन वीर अपनें वंशका परिचय देकर प्रशंसाके अयोग्य विषयमें अपनी प्रशंसा करताहै ॥ १९ ॥ जिस प्रकार आग अपने तापसे सुवर्णकी समान पीतलकी अधमताई प्रगट करतीहै वैसेही तुमनें जो अपनी प्रशंसा की इस्से तुम्हारा ओछापनही प्रगट हुआ ॥ २० ॥ तुम क्या गदा धारण किये हुए समरमें टिके देखकर विविध धातुओंके आकार धराधर पर्वतकी समान हमको अकम्पनीय नहीं समझतेहो ॥ २१ ॥ हम लीलासेही गदा हाथमें लेकर समरमें पाशधारी यमराजकी समान

शूर्पणखा मंत्रियोंकी सभाके बीचमें अनेक प्रकारके कटुवचन कहरहीहै यह देखकर रावणने क्रोधित होकर पूछा ॥ १ ॥ राम कौनहै? उनका वीर्य, रूप और पराक्रम कैसाहै ? वह किस कारणसे इस दुस्तर दंडकारण्यमें आयेहैं? ॥ २॥ उन्होंनें जिनसें कि खर दूषण और त्रिशिरा आदि राक्षसोंको युद्धमें मार डाला वह उन रामचंद्रके आयुध कैसेहैं ? ॥ ३ ॥हे मनोहर शरीरवाली ! तुमको किसनें विरूप कर दिया? सब यथार्थही कहो। जब राक्षसराज रावणनें इस प्रकारसे कहा तब राक्षसी क्रोधसे मूर्च्छितहो ॥ ४ ॥ जैसेका तैसा ठीक २ श्रीरामचंद्रजीका वृत्तान्त कहनें लगी। उसनें कहा रामचंद्र दशरथके पुत्र कामदेवकी समान रूपवान् दीर्घबाहु और विशाल नेत्र, वल्कल व मृगचर्म धारण किये हुए ॥५ ॥ उनका

ततःशूर्पणखांदृष्ट्वाब्रुवतींपरुषंवचः ॥ अमात्यमध्येसंक्रुद्धःपरिपप्रच्छरावणः ॥ १ ॥ कश्चरामःकथंवीर्यःकिंरूपःकिंपराक्रमः ॥ किमर्थंदंडकारण्यंप्रविष्टश्चसुदुस्तरम् ॥ २ ॥ आयुधंकिंचरामस्ययेनतेराक्षसाहताः ॥ खरश्चनिहतःसंख्येदूषणस्त्रिशिरास्तथा ॥ ३ ॥ तत्त्वंब्रूहिमनोज्ञांगिकेनत्वंचविरूपिता ॥ इत्युक्ताराक्षसेंद्रेणराक्षसीक्रोधमूर्च्छिता ॥ ४ ॥ ततोरामंयथान्यायमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ दीर्घबाहुर्विशालाक्षश्चीरकृष्णाजिनांबरः ॥ ५ ॥ कंदर्पसमरूपश्चरामोदशरथात्मजः ॥ शक्रचापनिभंचापंविकृष्यकनकांगदम् ॥ ६ ॥ दीप्तान्क्षिपतिनाराचान्सर्पानिवमहाविषान् ॥ नाददानंशरान्घोरान्विमुंचंतंमहाबलम् ॥ ७ ॥ नकार्मुकंविकर्षंतंरामंपश्यामिसंयुगे ॥ हन्यमानंतुतत्सैन्यंपश्यामिशरवृष्टिभिः ॥ ८ ॥ इंद्रेणेवोत्तमंसस्यमाहतंत्वश्मवृष्टिभिः ॥ रक्षसांभीमवीर्याणांसहस्राणिचतुर्दश ॥ ९ ॥ निहतानिशरैस्तीक्ष्णैस्तेनैकेनपदातिना ॥ अर्धाधिकमुहूर्तेनखरश्चसहदूषणः ॥ १० ॥

धनुष इन्द्रके धनुषकी समानहै उसमें सुवर्णके बंद लगेहैं उस धनुषको खेंचकर ॥ ६ ॥ तेज विषवाले सर्पोंकी समान प्रतीप नाराच रामचंद्र छोडतेहैं यह हमनें नहीं देखा ॥ ७ ॥ और धनुषको किस समयमें खैंचतेहैं यहभी हमनें नहीं देखा केवल इतनाही देखाहै कि बाण वर्षा करके वह संग्राममें राक्षसोंका संहार करतेथे ॥ ८ ॥ जैसे इन्द्र अकालमें ओले वर्षाकर श्रेष्ठ अन्नका नाश कर देतेहैं इसी प्रकार भयंकर वीर्यवान् १४००० हजार राक्षसोंको ॥ ९ ॥ तीक्ष्ण बाणोंके प्रहारसे अकेले पैदल रामचंद्रजीनें मार डाला। केवल आधेही मुहूर्त्तमें खरको दूषणके सहित संहार कर॥१०॥

अपना सब बल दिखाया तुम हम करके हीन बल होकर वृथा क्यों गर्जना करतेहो ॥ २ ॥ तुम केवल निरर्थक बकवाद करनेमें समर्थहो ! तुम्हारी गदानें हमारे बाणोंसे टुकडे २ होकर पृथ्वीमें गिरकर तुम्हारे विश्वासको नष्ट किया ॥ ३॥ और तुमने जो कहाथा कि मरे हुए राक्षसोंके स्त्री पु त्रादिकोंके आंसू पोंछेंगे; सो तुम्हारी यह बातभी मिथ्याहुई ॥ ४ ॥ और गरुडजीनें जिस प्रकार अमृत हरण कियाथा इस समय हमभी वैसेही नीच, ओछे स्वभाववाले झूंठी प्रतिज्ञा करनेवाले तुम जो हो सो तुम्हारा प्राण हरण करेंगे ॥ ५ ॥ आज हमारे बाणों करके विदारित होनेसे जब तुम्हारा शिर कट जायगा, तब पृथ्वी तुम्हारे गलेका झाग सहित रुधिर पान करेगी ॥ ६ ॥ आज तुम शिथिलहो गिरेहुए दोनों हाथोंसे सर्वांगमें

एषाबाणविर्निर्भिन्नागदाभूमितलंगता ॥ अभिधानप्रगल्भस्यतवप्रत्ययघातिनी ॥ ३ ॥ यत्त्वयोक्तंविनष्टानामिद मश्रुप्रमार्जनम् ॥ राक्षसानांकरोमीतिमिथ्यातदपितेवचः ॥ ४ ॥ नीचस्यक्षुद्रशीलस्यमिथ्यावृत्तस्यरक्षसः ॥ प्राणानपहरिष्यामिगरुत्मानमृतंयथा ॥ ५ ॥ अद्यतेभिन्नकंठस्यफेनबुद्बुदभूषितम् ॥ विदारितस्यमद्बाणैर्मही पास्यतिशोणितम् ॥ ६ ॥ पांसुरूषितसर्वांगःस्रस्तन्यस्तभुजद्वयः ॥ स्वप्स्यसेगांसमाश्लिष्यदुर्लभांप्रमदामिव ॥ ७॥ प्रवृद्धनिद्रेशयितेत्वयिराक्षसपांसने॥भविष्यतिशरण्यानांशरण्यादंडकाइमे ॥८॥जनस्थानेहतस्थानेतवराक्षसमच्छ रैः॥ निर्भयाविचरिष्यंतिसर्वतोमुनयोवने ॥ ९॥ अद्यविप्रसरिष्यंतिराक्षस्योहतबांधवाः ॥ बाष्पार्द्रवदनादीनाभया दन्यभयावहाः॥१०॥अद्यशोकरसज्ञास्ताभविष्यंतिनिरर्थिकाः ॥ अनुरूपकुलाःपत्न्योयासांत्वंपतिरीदृशः ॥ ११ ॥

रुधिर लगाये हुए दुर्लभस्त्रीके समान पृथ्वीको चिपटाकर शयनकरोगे ॥ ७ ॥ रे राक्षसकुलका नाश करनेंवाले! यह दंडकवन सब लो कोंका आश्रय स्वरूप ऋषिगणोंका आश्रय हो जायगा ॥ ८ ॥ रे राक्षस! मेरे बाण समूहकरके जनस्थान राक्षसशून्य होनेंसे मुनिगण निर्भय हो कर सब प्रकारसे वनमें निर्भय होकर घूमेंगे ॥ ९ ॥ भयंकरी सब राक्षसीयें आज बन्धु बान्धवोंके मारे जानेसे रुदन करती हुई हमारे भयसे आज जनस्थानसे भाग जांयगी ॥ १० ॥ तुम जिनके पतिहो सो वह तुम्हारेही समान वंशकी पतियें आज शोकरसके मर्मको जानकर हीनवी

हर्षमें भर कर भेंटे वह पुरुष समस्त प्राणी क्या, वरन इन्द्रसेभी अधिकसुखसे जीवन बिताताहै ॥ १९ ॥ सीताके सबही अंग सब लोकोंके प्रशंसा करनेंके योग्यहैं और पृथ्वीमें उसका रूप अतुलनीयहै। वह सुशीला तुम्हारेही लायक भार्याहै, और तुम उसकेही अनुरूप पतिहो ॥ २० ॥ उसके दोनों पयोधर ऊंचेहैं. जंघा अति विशालहैं और मुखमंडल अतिश्रेष्ठहै उसको हम सोच विचार कर तुम्हारी स्त्री होनेंके योग्य जान लैनें गईथीं ॥ २१ ॥ हे महाभुज! सो इस कार्यको करतेही हुए क्रूर लक्ष्मणनें हमारे नाक कान काट डाले उस पूर्णचन्द्रमुखवाली विदेहकुमारीको देखतेही ॥ २२ ॥ तुम फूलबाणधारीके पुष्प बाणोंका निशाना बनोगे, यदि उसको अपनी स्त्री बनानेंका तुम्हारा आशय होतो शीघ्रही

सासुशीलावपुःश्लाघ्यारूपेणाप्रतिमाभुवि ॥ तवानुरूपाभार्यासात्वंचतस्याःपतिर्वरः ॥ २० ॥तांतुविस्तीर्णजघनांपीनोत्तुंगपयोधराम् ॥ भार्यार्थेतुतवानेतुमुद्यताहंवराननाम् ॥ २१ ॥ विरूपितास्मिक्रूरेणलक्ष्मणेनमहाभुज ॥ तांतुदृष्ट्वाद्यवैदेहींपूर्णचंद्रनिभाननाम् ॥ २२ ॥ मन्मथस्यशराणांचत्वंविधेयोभविष्यसि ॥ यदितस्यामभिप्रायोभार्यात्वे तवजायते ॥ शीघ्रमुद्ध्रियतांपादोजयार्थमिहदक्षिणः॥ २३ ॥ रोचतेयदितेवाक्यंममैतद्राक्षसेश्वर ॥ क्रियतांनिर्विशंकेनवचनंममरावण ॥ २४ ॥ विज्ञायैषामशक्तिंचक्रियतांचमहाबल ॥ सीतातवानवद्यांगीभार्यात्वेराक्षसेश्वर॥२५॥ निशम्यरामेणशरैरजिह्मगैर्हतान्जनस्थानगतान्निशाचरान्॥खरंचदृष्ट्वानिहतंचदूषणंत्वमद्यकृत्यंप्रतिपत्तुमर्हसि२६॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेचतुस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३४ ॥ ॥ ७ ॥

रामचंद्रके जीतनेंको दहिना चरण आगे धरकर चलो॥ २३॥ राक्षसराज रावण! हमारा यह वचन यदि तुम्हें रुचाहो, तो जो हमनें कहा उसको चित्तसे शंका त्यागकर करो ॥२४॥ हे महाबल! तुम उनको असमर्थ और अपनेंको समर्थ जानकर इस सर्वाङ्गसुन्दरी सीताको स्त्री बनानें में यत्नवान होवो ॥२५॥ रामचंद्रनें सीधे चलनेंवाले बाणोंसे समस्त उन जनस्थानवासी राक्षसोंको खर व दूषणके सहित मार डालाहै यह सुनकर अब जो कुछ कर्त्तव्यहो सो करो ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

निकलनें लगा, उन्होंनें हजार बाणोंसे खरके अंगको छिन्न भिन्नकर डाला ॥ २० ॥ पर्वतके झरनेंसे जिसप्रकार पानीकी धारा निकलती रह तीहै, वैसेही खरकी देहमें जो बाण लगनेके कारण छिद्र होगयेथे, उनसे रुधिर गिरनें लगा ॥ २१ ॥ खर श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे व्याकुलहो और रुधिर गन्धसे मतवाला होकर श्रीरामचंद्रजीके सामने बहुत शीघ्रतासे धाया ॥ २२ ॥ यह रुधिरसे डुबाहुआ और अतिशय क्रोधाविष्ट होकर इसप्रकारसे दौडा कि कृतास्त्र श्रीरामचंद्रजो शीघ्रतासे दो तीन परग पीछेको हटगये ॥ २३ ॥ इसके पीछे श्रीरामचंद्रजीनें खरके मारडा लनेंके लिये दूसरे ब्रह्मदंडकीसमान अग्निसमान बाण ग्रहणकिया ॥ २४ ॥ धीमान् देवराज इन्द्रजीनें यह बाण श्रीरामचंद्रजीको दियाथा धर्मात्मा

तस्यबाणांतराद्रक्तंबहुसुस्रावफेनिलम्॥गिरेःप्रस्रवणस्येवधाराणांचपरिस्रवः २१॥विकलःसकृतोबाणैःखरोरामेणसं युगे॥मत्तोरुधिरगंधेनतमेवाभ्यद्रवद्द्रुतम् ॥२२॥ तमापतंतंसंक्रुद्धंकृतास्त्रोरुधिराप्लुतम्॥अपासर्पद्द्वित्रिपदंकिंचित्त्वरित विक्रमः ॥ २३ ॥ ततःपावकसंकाशंवधायसमरेशरम् ॥ खरस्यरामोजग्राहब्रह्मदंडमिवापरम् ॥ २४ ॥ सतद्दत्तंमघ वतासुरराजेनधीमता ॥ संदधेचसधर्मात्मामुमोचचखरंप्रति ॥ २५॥ सविमुक्तोमहाबाणोनिर्घातसमनिःस्वनः ॥ रामेणधनुरायम्यखरस्योरसिचापतत् ॥ २६ ॥ सपपातखरोभूमौदह्यमानःशराग्निना ॥ रुद्रेणेवविनिर्दग्धःश्वेतार ण्येयथांधकः ॥ २७ ॥ सवृत्रइववज्रेणफेनेननमुचिर्यथा ॥ बलोवेंद्राशनिहतोनिपपातहतःखरः ॥ २८ ॥

श्रीरामचंद्रजीनें वही बाण धनुषपर चढाकर खरके ऊपर छोड़ा ॥२५ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें धनुषको खैंचकर वह महाबाण छोडा, तब वह बाण वज्रकोसमान शब्द करताहुआ खरकी छातीमें लगा ॥ २६ ॥ खर उस बाणकी अग्निसे भस्महोकर, श्वेतारण्यमें[1] रुद्रकरके भस्महुए अन्धका सुरकी समान पृथ्वीमें गिरपडा ॥ २७ ॥ वृत्रासुर[2] जिसप्रकार वज्रसे, नमुचि[3] जिसप्रकार फेनसे, और बलासुर जिसप्रकार इन्द्रके वज्रसे हत

१ कावेरीनदीके किनारे श्वेतारण्यमें एक श्वेत नाम राजर्षि तप करतेथे तब अन्धकासुर उन्हे मारनेको धाया उस समय शिवजीनें लात मारकर उस राक्षसका संहार किया ॥ २ बृह स्पतिजीके रूठ जानेपर जब इन्द्रने विश्वरूपको पुरोहित किया तब इन्द्रनें गुप्त रूपसे दैत्योंके निमित्त उसे आहुति देते देख मारडाला विश्वरूपके मरनेपर उसके पिताने यज्ञ कुंडसे वृत्रा सुरको उत्पन्न किया बडा युद्ध इंद्रके साथ हुआ तब इन्द्रनें दधीच ऋषिसे उनकी जांघका हाड मांग वज्र बनाय उस्से वृत्रासुरका संहार किया ॥ ३ नमुचि दैत्यको ब्रह्माजीका वरदानथा तुम गीले सूखे किसी प्रकारके आयुधसे न मरोगे तब इन्द्रने वज्रमें फेन लपेटकर मारा जो गीला सूखा नहींथा ॥

योंके हनन करनेंको यह रावण साक्षात् दश कँगूरों करके युक्त पर्वतराजसा दिखाई देताथा ॥ ९ ॥ वह रावण उस यथेच्छाचारी विमान पर चढकर ऐसा शोभित हुआ मानों सौदामिनीके संग घन श्याम बगलोंकीपांतिके साथ गगन मंडलमें जाताहै ॥ १० ॥ रावण चलते २ समुद्रके तीरपर पहुंचा, बीचमें उसनें बहुतसे पर्वत व समुद्रकी तलैटीकेदेश देखे वह स्थान अनेक प्रकारके पुष्प फल और वृक्षोंसे शोभायमानथे ॥ ११ ॥ शीतल मंगल जल युक्त तलैयां वहांपर थीं. वेदी युक्त और बडे २ आश्रमोंसे वह देश अलंकृतथा ॥ १२ ॥ केलेका वन चारो ओर लगा, नारियलके पेड़ अलगही लह लहा रहेथे, और शाल ताल तमालादि नाना जातिके पुष्पित वृक्ष लगेथे ॥ १३ ॥ वह स्थान, जो सदा

कामगंरथमास्थायशुशुभेराक्षसाधिपः ॥ विद्युन्मंडलवान्मेघःसबलाकइवांबरे ॥ १० ॥ सशैलसागरानूपंवीर्यवानवलोकयन् ॥ नानापुष्पफलैर्वृक्षैरनुकीर्णंसहस्रशः ॥ ११ ॥ शीतमंगलतोयाभिःपद्मिनीभिःसमंततः ॥ विशालैराश्रमपदैर्वेदिमद्भिरलंकृतम् ॥ १२ ॥ कदल्यटविसंशोभंनालिकेरोपशोभितम् ॥ सालैस्तालैस्तमालैश्वतरुभिश्वसुपुष्पितैः ॥ १३ ॥ अत्यंतनियताहारैःशोभितंपरमर्षिभिः ॥ नागैःसुपर्णैर्गंधर्वैःकिन्नरैश्वसहस्रशः ॥ १४ ॥ जितकामैश्वसिद्धैश्वचारणैश्वोपशोभितम् ॥ आजैर्वैखानसैर्माषैर्वालखिल्यैर्मरीचिपैः ॥ १५ ॥ दिव्याभरणमाल्याभिर्दिव्यरूपाभिरावृतम् ॥ क्रीडारतविधिज्ञाभिरप्सरोभिःसहस्रशः ॥ १६ ॥ सेवितंदेवपत्नीभिःश्रीमतीभिरुपासितम् ॥ देवदानवसंघैश्वचरितंत्वमृताशिभिः ॥ १७ ॥

नियमित भोजनमें मग्न रहते ऐसे परमर्षियोंसे शोभायमानथा, नाग, गरुड, गन्धर्व और सहस्रों किन्नरभी वहांपर थे ॥ १४ ॥ और कामदेवको जिन्होंनें जीत रक्खाहै, ऐसे सिद्ध और चारण गणभी उस स्थानमें शोभित हो रहेथे, आज्य, धूम्र, वैखानस, साख, वालखिल्य, मरीचि आदि ॥ १५ ॥ दिव्य वस्त्राभूषण दिव्य माला, और दिव्य रूप स्त्रियों के संग घूम रहेथे । क्रीडा व रतिकी विधि जाननेंवाली हजारों अप्सराओंके साथ सिद्धगण विहार करतेथे॥१६॥ देवोंकी श्रीसम्पन्न स्त्रियांभी घूमरहीथीं. अमृत पीनेंवाले देव दानवोंके समूह भी इधर उधर फिरतेथे१७

अब महर्षिलोग दंडकारण्यमें अपनार धर्म स्वच्छन्द हो करेंगे । मुनिगण इतना कहही रहेथे कि इतनेमें वीर लक्ष्मणजी सीताजीके सहित ॥ ३७ ॥ गिरिगुहासे सुख सहित बाहर आकर अपनें आश्रममें प्रवेश करते हुए इसके पीछे विजयी श्रीरामचंद्रजी महर्षियों करके पूजित होकर ॥ ३८॥ और लक्ष्मणजीसेभी पूजितहो अपनें आश्रममें आगमन करतेहुए तिन महर्षियोंके आनंद बढानेवाले शत्रुओंके दमन करनेंवाले श्रीरामचंद्रजीको देख ॥ ३९ ॥ श्रीजानकीजी प्रसन्न हुई; और अपनें पति श्रीरामचंद्रजीसे अति प्रेम पूर्वक मिलीं, और फिर राक्षसोंको मरे हुए देख॥४०॥

स्वधर्मंप्रचरिष्यंतिदंडकेषुमहर्षयः॥ एतस्मिन्नंतरेवीरोलक्ष्मणःसहसीतया॥ ३७ ॥ गिरिदुर्गाद्विनिष्क्रम्यसंविवेशाश्रमेसुखी॥ ततोरामस्तुविजयीपूज्यमानोमहर्षिभिः॥ ३८॥ प्रविवेशाश्रमंवीरोलक्ष्मणेनाभिपूजितः॥ तंदृष्ट्वाशत्रुहंतारंमहर्षीणांसुखावहम्॥ ३९॥ बभूवहृष्टावैदेहीभर्तारंपरिषस्वजे॥ मुदापरमयायुक्तादृष्ट्वारक्षोगणान्हतान् ॥ ४० ॥ रामंचैवाव्ययंदृष्ट्वातुतोषजनकात्मजा॥ ४१ ॥ ततस्तुतंराक्षससंघमर्दनंसंपूज्यमानंमुदितैर्महात्मभिः ॥ पुनःपरिष्वज्यमुदान्विताननाबभूवहृष्टाजनकात्मजातदा ॥ ४२ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आर० त्रिंशःसर्गः॥ ३० ॥ त्वरमाणस्ततोगत्वाजनस्थानादकंपनः॥ प्रविश्यलंकांवेगेनरावणंवाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥ जनस्थानस्थिताराजन्राक्षसाबहवोहताः॥ खरश्चनिहतःसंख्येकथंचिदहमागतः॥ २ ॥

व श्रीरामचंद्रजीको समस्तही निरापद देखकर श्रीजानकीजी अति संतोषको प्राप्त हुई ॥ ४१ ॥ अनन्तर सुकुमारी जनकदुलारी परम प्रेम और हर्षमें भरकर राक्षसकुलके संहार करनेंवाले श्रीरामचंद्रजीसे फिर मिलीं और महात्मा ऋषिगण प्रफुल्लित होकर अनेक २ प्रकारसे श्रीरामचंद्रजीकी पूजा करनेंलगे॥ ४२॥ इ० श्रीम० वा० आ० आर० त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥खर दूषण त्रिशिरा आदि राक्षसोंके मारेजानेंपर अकम्पन नामक राक्षस शीघ्रतासे जनस्थानसे पलायन कर लंकामें जाकर रावणसे कहनें लगा ॥ १ ॥ हे राजन् ! जनस्थानवासी अनेक राक्षस संग्राममें मारे

सिन्धु राजका अनूप किनारा देखा,वह देखनेमें स्वर्गकेही सम तुल्य था, वहां पर सबओरसे मुनियों करके सेवित मेघ सम श्याम एक बरगदका वृक्ष देखा२७उसकी समस्त शाखा चारों ओर शत योजनके घेरमें फैल रहीथीं जहांपर बडे शरीर वाले हाथी और कछुएको२८गरुडजी भोजन करनेंके लिये, इस पेडकी एक शाखा पर बैठेथे पक्षियोंके स्वामी गरुडजीनें मारे बोझके उसकी एक डाली ॥ २९ ॥ जिसमें बहुत पत्र लगेथे तोड डाली उसी शाखाका आश्रय कर वैखानस, माष,मरीचिपायी,वालखिल्य॥३०॥और धूम्राख्य परमर्षिगण मिलकर तपस्या कर रहेथे। धर्मात्मा गरुडजी

अनूपेसिंधुराजस्यददर्शत्रिदिवोपमम् ॥ तत्रापश्यत्समेघाभंन्यग्रोधंमुनिभिर्वृतम्॥ २७ ॥ समंताद्यस्यताःशाखाः शतयोजनमायताः॥ यस्यहस्तिनमादायमहाकायंचकच्छपम्॥ २८ ॥ भक्षार्थंगरुडःशाखामाजगाममहाबलः॥ तस्यतांसहसाशाखांभारेणपतगोत्तमः ॥ २९ ॥ सुपर्णःपर्णबहुलांबभंजाथमहाबलः ॥ तत्रवैखानसामाषावालखिल्यामरीचिपाः ॥ ३० ॥ आजाबभूवुर्धूम्राश्चसंगताःपरमर्षयः॥ तेषांदयार्थंगरुडस्तांशाखांशतयोजनम्॥ ३१ ॥ भग्नामादायवेगेनतौचोभौगजकच्छपौ॥ एकपादेनधर्मात्माभक्षयित्वातदामिषम् ॥ ३२ ॥ निषादविषयंहत्वाशाखयापतगोत्तमः ॥ प्रहर्षमतुलंलेभेमोक्षयित्वामहामुनीन् ॥ ३३ ॥ सतुतेनप्रहर्षेणद्विगुणीकृतविक्रमः॥ अमृतानयनार्थंवैचकारमतिमान्मतिम् ॥ ३४ ॥ अयोजालानिनिर्मथ्यभित्त्वारत्नगृहंवरम् ॥ महेंद्रभवनाद्गुप्तमाजहारामृतंततः ॥ ३५ ॥ तंमहर्षिगणैर्जुष्टंसुपर्णकृतलक्षणम्॥ नाम्नासुभद्रंन्यग्रोधंददर्शधनदानुजः ॥ ३६ ॥

उन ऋषियोंके प्रति दया करके एक पैरसेही उस शत योजनकी ॥ ३१ ॥टूटी हुई शाखाको पकड दूसरे पैरसे गज कच्छपको दबाय महात्मा गरुडनें उनका मांस खाकर ॥ ३२॥ उस टूटी हुई शाखाकी सहायसे समस्तनिषाद देशको नाश कर दिया इस प्रकार मुनि गणोंको बचाकर गरुडजी परम हर्षित हुएथे ॥ ३३॥ अनन्तर उस हर्षके वशहो गरुडजीका विक्रम दूना बढ गया तो इस कारण मतिमान गरुडजी अमृतके लानेंका विचार करते हुए ॥ ३४ ॥ और लोहेके जालको तोड ताड रत्नमय श्रेष्ठ गृह फोड फाड महेन्द्र भवनसे अमृतले आये ॥ ३५॥ सो इस समय कुबेरका

भूपितहै युवा अवस्था आरहीहै उसके सब अंग बराबरहैं कोई बड़ा छोटा नहींहै ॥ २९॥ न देवी, न देवता, न गन्धर्वी, न अप्सरा, न पन्नगी कोईभी उसकी तुल्यता नहीं करसकती फिर मनुष्यकी स्त्री किस भांति उनकेसमान होसकतीहै ॥ ३० ॥ सो अब महावनमें जाकर किसी प्रकार छल बल चतुराईसे उनकी वह स्त्री हर लीजिये जब उनकी स्त्री हरी जायगी तब राम न बचेंगे वरन अवश्यही मर जांयगे ॥ ३१ ॥ यह बात महाबाहु, राक्षसराज रावणके मनको भाई । वह सोच विचार, करके अकम्पनसे बोला ॥ ३२ ॥ कि अच्छा ! हम अकेले सारथीके साथ वहां जांयगे, और जानकीको हर्ष सहित इस लंकापुरीमें लावेंगे ॥ ३३ ॥इस प्रकार कह कर राक्षसराज रावण सूर्यकी समान प्रभावाले रथपर

नैवदेवीनगंधर्वीनाप्सरानचपन्नगी ॥ तुल्यासीभंतिनीतस्यमानुषीतुकुतोभवेत् ॥ ३० ॥ तस्यापहरभार्यात्वंतंप्रमथ्यमहावने ॥ सीतयारहितोरामोनचैवहिभविष्यति ॥ ३१ ॥ अरोचयततद्वाक्यंरावणोराक्षसाधिपः ॥ चिंतयित्वामहाबाहुरकंपनमुवाचह ॥ ३२ ॥ बाढंकल्यंगमिष्यामिएकःसारथिनासह ॥ आनेष्यामिचवैदेहीमिमांहृष्टोमहापुरीम् ॥ ३३ ॥ तदेवमुक्त्वाप्रययौखरयुक्तेनरावणः ॥ रथेनादित्यवर्णेनदिशःसर्वाःप्रकाशयन् ॥ ३४ ॥ सरथोराक्षसेंद्रस्यनक्षत्रपथगोमहान् ॥ चंचूर्यमाणःशुशुभेजलदेचंद्रमाइव ॥ ३५ ॥ सदूरेचाश्रमंगत्वाताटकेयमुपागमत ॥ मारीचेनार्चितोराजाभक्ष्यभोज्यैरमानुषैः ॥ ३६ ॥ तंस्वयंपूजयित्वातुआसनेनोदकेनच ॥ अर्थोपहितया वाचामारीचोवाक्यमब्रवीत् ॥ ३७ ॥

जिसमें खचड़ जुतेथे सवारहो समस्त दिशा विदिशाओंको प्रकाशित करताहुआ चला ॥ ३४ ॥ राक्षसेन्द्रका वह रथ तारागणोंके मार्गमें वेगसे भराहुआ चलनेंके कारण मेघमंडलमें चंद्रमाकी समान शोभाविस्तार करता हुआ ॥ ३५ ॥ इसके पीछे रावण बहुत दूर चलकर ताडकाके पुत्र मारीचके स्थानपर पहुंचा मारीचनें विविध प्रकारके खानें पीनेंके पदार्थोंसे रावण राक्षसनाथकी पूजाकी । वह पदार्थ मनुष्योंके भक्षण करनेंके अयोग्यथे ॥ ३६ ॥ जब मारीच इस प्रकार आसन, जल, और खानें पीनेंकी वस्तुओंसे रावणकी पूजा कर चुका

जानतेहीहो ॥ २ ॥ मांसका खानें वाला राक्षस त्रिशिरा व औरभी बहुतनिशाचर गण युद्धमें उत्साही व शूरवीर ॥ ३ ॥ मेरी आज्ञा पालन करते
हुए वहां वसा करतेथे। वह सब निशाचर गण महावनमें धर्मचारीऋषियोंके अनुष्ठानमें सदाही बाधा दिया करतेथे ॥ ४ ॥ इन सब
राक्षसोंकी संख्या १४००० चौदह हजारथी । वह सबही भयंकर कर्मकरनेंवाले, शूर युद्धमें उत्साही और खरके चित्तके अनुसार कार्य करनें
वालेथे ॥ ५ ॥ इस समय जनस्थानके रहनेवाले महाबलवान खरइत्यादि राक्षस युद्धमें रामचंद्रके साथ ॥ ६ ॥ विविध भांतिके अस्त्र शस्त्र
धारण करके व दुर्भेद्यकवच बांधकर युद्धमें भिडेथे तब रामचंद्रनें महाक्रोध करके ॥७॥ कुछभी कठोर वचन न कहकर धनुष पर बाण चढाय

त्रिशिराश्चमहाबाहूराक्षसःपिशिताशनः ॥ अन्येचबहवःशूरालब्धलक्षानिशाचराः ॥ ३ ॥ वसंतिमन्नियोगेनअधि
वासंचराक्षसाः ॥ बाधमानामहारण्येमुनीन्येधर्मचारिणः ॥ ४ ॥ चतुर्दशसहस्राणिरक्षसांभीमकर्मणाम् ॥ शूराणां
लब्धलक्षाणांखरचित्तानुवर्तिनाम् ॥ ५ ॥ तेत्विदानींजनस्थानेवसमानामहाबलाः ॥ संगताःपरमायत्तारामेणसहसं
युगे ॥ ६ ॥ नानाशस्त्रप्रहरणाःखरप्रमुखराक्षसाः ॥ तेनसंजातरोषेणरामेणरणमूर्धनि ॥ ७ ॥ अनुक्त्वापरुषंकिंचि
च्छरैर्व्यापारितंधनुः ॥ चतुर्दशसहस्राणिरक्षसामुग्रतेजसाम् ॥ ८ ॥ निहतानिशरैर्दीप्तैर्मानुषेणपदातिना ॥ खरश्च
निहतःसंख्येदूषणश्चनिपातितः ॥ ९ ॥ हत्वात्रिशिरसंचापिनिर्भयादंडकाःकृताः ॥ पित्रानिरस्तःक्रुद्धेनसभार्यःक्षी
णजीवितः ॥ १० ॥ सहंतातस्यसैन्यस्यरामःक्षत्रियपांसनः ॥ अशीलःकर्कशस्तीक्ष्णोमूर्खोलुब्धोऽजितेंद्रियः ॥ ११ ॥
त्यक्तधर्मात्वधर्मात्माभूतानामहितेरतः ॥ येनवैरंविनारण्येसत्वमास्थायकेवलम् ॥ १२ ॥

उनको छोड चौदह हजार उग्रतेजवान राक्षसोंको ॥ ८ ॥ मनुष्यका अवतार लिये रामचंद्रनें खर व दूषण सहित सबको संग्राममें तीक्ष्ण दीप्ति
वान नाराचोंसें संहार किया ॥ ९ ॥ और त्रिशिराकोभी मार दंडकवनको अभय करदिया। उस रामचंद्रका चाल चलनभी ठीक नहीं
मालूम होता क्योंकि उसके पितानें उसको निर्लज्ज जानकर स्त्री सहित घरसे निकाल दियाहै ॥ १० ॥ वही दुःशील, कर्कश, तीक्ष्ण, मूर्ख, लोभी अवि
जितेंद्रिय, क्षत्रियकुल कलंक रामचंद्र इस राक्षसोंकी सेनाका मार डालनेवालाहै ॥ ११ ॥ जो धर्मका त्याग और अधर्मका आश्रय करके सदाही

और उसके सब अंगभी देवताओं करके शस्त्रद्वारा घायल हुएहैं किसीसे चलायमान नहींहों ऐसे समुद्रोंकोभी खलबलानेंको जिसमें विशेष सामर्थ्य है, और शीघ्रही सब कार्य करनेंवाला ॥११॥ पर्वतोंके कंगूरोंको उखाडडालनेंवाला देवताओंका मर्दन करनेंवाला सबधर्मोंका जडसे उखाडनेंवाला पराई पतिव्रता स्त्रियोंका सत्य हरणकारी ॥ १२ ॥ दिव्यास्त्रोंका प्रयोजककारी और सर्व यज्ञ विघ्नकारी, भोगवती नगरीमें जाय नागराज वासुकिको जीत ॥ १३ ॥ तक्षक नामक सर्पको पराजयकरता हुआ उसकी प्रियस्त्रीको हरण करनेंवाला कैलासपर्वतपर गमन करके नरवाहन कुबेरको जीतनेंवाला ॥ १४ ॥ और उसका मनइच्छासे चलनेंवाला पुष्पक विमान हरण करनेंवाला, चैत्ररथ नामक

अहतांगैःसमस्तैस्तंदेवप्रहरणैस्तदा ॥ अक्षोभ्याणांसमुद्राणांक्षोभणंक्षिप्रकारिणम् ॥ ११ ॥ क्षेप्तारंपर्वताग्राणांसुराणांचप्रमर्दनम् ॥ उच्छेत्तारंचधर्माणांपरदाराभिमर्शनम् ॥ १२ ॥ सर्वदिव्यास्त्रयोक्तारंयज्ञविघ्नकरंसदा ॥ पुरींभोगवतींगत्वापराजित्यचवासुकिम् ॥ १३ ॥ तक्षकस्यप्रियांभार्यांपराजित्यजहारयः ॥ कैलासंपर्वतंगत्वाविजित्यनरवाहनम् ॥ १४ ॥ विमानंपुष्पकंतस्यकामगंवैजहारयः ॥ वनंचैत्ररथंदिव्यंनलिनींनंदनंवनम् ॥ १५ ॥ विनाशयतियःक्रोधाद्देवोद्यानानिवीर्यवान् ॥ चंद्रसूर्यौमहाभागावुत्तिष्ठंतौपरंतपौ ॥ १६ ॥ निवारयतिबाहुभ्यांयःशैलशिखरोपमः ॥ दशवर्षसहस्राणितपस्तप्त्वामहावने ॥ १७॥ पुरास्वयंभुवेधीरःशिरांस्युपजहारयः ॥ देवदानवगंधर्वपिशाचपतगोरगैः॥१८॥अभयंयस्यसंग्रामेमृत्युतोमानुषादृते॥मंत्रैरभिष्टुतंपुण्यमध्वरेषुद्विजातिभिः ॥१९॥

दिव्यवन, नलिनी, नन्दन, कानन, ॥ १५ ॥ व औरभी सबदेवताओंके उद्यानोंका विनाश क्रोधसे जिसनें करदिया है; फिर उदय होते हुए महाभाग्य चंद्रमा व सूर्योंको ॥ १६ ॥ दोनोंबाहोंसे निवारण करनेंवाला पर्वतोंके समान ऊंचा व वीर्यवान व दश हजार वर्ष वनमें तपकर ॥ १७ ॥ ब्रह्माजीको अपनें सब शिर काट २कर जिसनें चढादियेथे, देव, दानव, गन्धर्व, पिशाच, पतंग, वा उरग ॥१८॥ किसीके द्वाराभी जिसको मृत्युका भय नहीं जिसने केवल मनुष्योंको कुछ न समझ उनसे अभय नही मांगा, और ब्राह्मण लोग यज्ञोंमें मंत्र पढ२

रामचंद्रको संग्राममें जीतलेंगे ॥ २१ ॥ रावणके ऐसे वचन सुनतेही महात्मा मारीचका मुख सूख गया और वह अतिशय भयभीत हो गया ॥ २२ ॥ और चिन्ताके वश होकर अपने सूखे होठोंको जीभसे चाटनें लगा और उसके नेत्र मानों निमेषहीन होगये। मारीच आरत भावसे मृतकतुल्य होकर रावणकी ओर देखता रहगया ॥ २३ ॥ वह पहलेहीसे महावनमें श्रीरामचंद्रजीके पराक्रमको जानताथा। इसी कारणसे भयभीत और शोकित चित्तसे हाथ जोडकर रावणसे अपनें व उसके हितके करनेंवाले वचन बोला ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे षट्त्रिंशःसर्गः ॥ ३६ ॥ महातेजवान् राक्षसराजके यह वचन सुन वाक्यविशारद मारीच

तस्यरामकथांश्रुत्वामारीचस्यमहात्मनः॥शुष्कंसमभवद्वक्रंपरित्रस्तोबभूवच ॥२२॥ ओष्ठौपरिलिहञ्छुष्कौनेत्रैर निमिषैरिव ॥ मृतभूतइवार्तस्तुरावणंसमुदैक्षत ॥ २३ ॥ सरावणंत्रस्तविषण्णचेतामहावनेरामपराक्रमज्ञः ॥ कृतां जलिस्तत्त्वमुवाचवाक्यंहितंचतस्मैहितमात्मनश्च ॥ २४ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०आरण्य०षट्त्रिंशःस र्गः ॥ ३६ ॥ ॥ छ ॥ तच्छ्रुत्वाराक्षसेंद्रस्यवाक्यंवाक्यविशारदः ॥ प्रत्युवाचमहातेजामारीचोराक्षसेश्वरम् ॥ १ ॥ सुलभाःपुरुषाराजन्सततंप्रियवादिनः ॥ अप्रियस्यचपथ्यस्यवक्ताभोक्ताचदुर्लभः ॥ २ ॥ ननूनंबुध्यसेरामंमहावी र्यंगुणोन्नतम्॥अयुक्तचारश्चपलोमहेंद्रवरुणोपमम्॥३॥अपिस्वस्तिभवेत्तातसर्वेषामपिरक्षसाम्॥अपिरामोनसंक्रुद्धः कुर्याल्लोकानराक्षसान्॥४॥अपितेजीवितांतायनोत्पन्नाजनकात्मजा॥अपिसीतानिमित्तंचनभवेद्व्यसनंमहत्॥५॥

उससे बोला ॥ १ ॥ हे राजन्! मुंह देखी कहनेंवाले लोग बहुत मिलतेहैं किन्तु सुननें में कुप्यारे और वास्तवमें हितकारीहों ऐसे वचनोंके कहनें सुननेंवाले दोनोंही संसारमें कम मिलतेहैं ॥२॥ एकतौ तुमनें दूतोंको नहीं नियुक्त कर रक्खाहै कि जिससे सब स्थानोंका वृत्तान्त तुमको मि- लता रहै दूसरे तुम्हारा स्वभाव चंचलहै। इसी कारणसे रामचंद्र जो साक्षात् महेन्द्र और कुवेरकी समान, महावीर्यवान् और श्रेष्ठ गुणों करके युक्तहैं इस बातको तुमनें नहीं जाना ॥ ३ ॥ हे तात! रामचंद्रसे वैर करनेंमें क्या राक्षसकुलका मंगल होगा? रामचंद्र क्रोधित होनें पर क्या सर्व लोक राक्षसोंसे शून्य नहीं कर सकतेहैं? ॥ ४ ॥ क्या जानकी तुम्हाराही नाश करनेंके लिये उत्पन्न हुईहै? कहीं सीताके ले आनेंका

होकर सदाही कामभोगमें मतवाले रहतेहो और तुम किसी विषयमें किसीकाभी निषेध करना या बाधा देना नहीं मानते। इसी कारण अवश्यही जाननेंके योग्य जो इससमय भयंकर विपद् आ पहुंचीहै, तुम उसको नहीं जानते ॥ २ ॥ परन्तु जो राजा स्त्री इत्यादिक ग्राम्य भोग वस्तुओंमें सदाही आसक्त रहता, स्वेच्छाचारी और लोभी होताहै। प्रजागण मशानकी अग्निकी समान उस राजाका आदर नहीं करते ॥ ३॥ जो राजा यथाकालमें अपनें सब कार्योंको नहींकरताहै। वह राजा और उसके कार्य न करनेंसे अपने राज्य सहित विनाशको प्राप्त होताहै ॥ ४ ॥ जो राजा स्त्रीआदिकोंके आधीन रहकर दूतोंको नियुक्त करके प्रजाका हाल नहीं जानताहै। तौ हाथी जिस प्रकार

सक्तंग्राम्येषुभोगेषुकामवृत्तंमहीपतिम् ॥ लुब्धंनबहुमन्यंतेश्मशानाग्निमिवप्रजाः ॥ ३ ॥ स्वयंकार्याणियःकालेनानुतिष्ठतिपार्थिवः ॥ सतुवैसहराज्येनतैश्चकार्यैर्विनश्यति ॥ ४॥ अयुक्तचारंदुर्दर्शमस्वाधीनंनराधिपम् ॥ वर्जयंतिनरादूरान्नदीपंकमिवद्विपाः ॥ ५ ॥ येनरक्षंतिविषयमस्वाधीनंनराधिपाः ॥ तेनवृद्ध्याप्रकाशंतेगिरयःसागरेयथा ॥ ६॥ आत्मवद्भिर्विगृह्यत्वंदेवगंधर्वदानवैः ॥ अयुक्तचारश्चपलःकथंराजाभविष्यसि ॥७ ॥ त्वंतुबालस्वभावश्चबुद्धिहीनश्च राक्षस ॥ ज्ञातव्यंतंनजानीषेकथंराजाभविष्यसि ॥८॥ येषांचाराश्चकोशश्चनयश्चजयतांवर ॥ अस्वाधीनानरेंद्राणां प्राकृतैस्तेजनैःसमाः ॥ ९ ॥

दूरसेही दल २ वाली नदीको त्याग करके चले जातेहैं, प्रजा लोगभी वैसेही उस राजाको त्याग देतेहैं ॥ ५ ॥ औरभी जो नृपतिलोग अपनें आधीनमें न आये हुए राज्योंको उपाय करकै अपनें वश नहीं करलेते। वह समुद्रमें पडेहुए पर्वतोंकी समान प्रकाश को नहीं प्राप्त होते ॥ ६ ॥ एकतो तुम स्वभावसेहो चंचलहो और दूसरे कुछ तुम आचारभी नहीं करते; भला फिर विशुद्धचित्त देव, दानव और गन्धर्वोंसे वैर करकै तुम किस प्रकार राज कर सकोगे ॥ ७ ॥ हेराक्षस! तुम बुद्धिरहित हो,बालकोंकिसा तुम्हारा स्वभावहै और जिस बातको जानना उचितहै; उसकोभी नहीं जानते भला फिर किस प्रकारसे अपने इस राज्यकी रक्षा कर सकोगे? ॥ ८ ॥ हे विजयी श्रेष्ठ! जिन राजा लोगोंके आधीन

इन्द्र जिस प्रकार देवताओंके स्वामीहैं वैसेही वहभी सब लोकोके राजाहैं ॥ १३ ॥ वह अपनें तेजसे जनककुमारी जानकीजीकी रक्षा करतेहैं तुम किस प्रकारसे उनकी जानकीको हरण करनेंकी इच्छा करतेहो ?क्योंकि उनके हरण करनेंकी इच्छा करना मानो सूर्यकी किरणको हाथसे पकड़नाहै ॥ १४ ॥ सब बाणही जिसकी शिखाहैं, धनुष और खड्ग जिसका ईंधनहैं, और जिसकी त्रिसीमामें गमन करना असंभवहै सो उस राम रूप प्रज्वलित अग्निमें सहसा प्रवेश करना तुमको उचितनहींहै ॥ १५ ॥ धनुषका चढानाहीं जिसका प्रकाशित मुखहै, बाणही जिसकी दीप्तिहैं इसीसे असह्य धनुर्बाण धारण किये; इसीसे तीक्ष्ण और शत्रुओंकी सेनाके संहार कर्ता ॥ १६ ॥ कृतान्त समान रामचंद्रजीके

कथंनुतस्यवैदेहींरक्षितांस्वेनतेजसा ॥ इच्छसे प्रसभंहर्तुंप्रभामिवविवस्वतः ॥ १४॥ शरार्चिषमनाधृष्यंचापखड्गेंधनं रणे ॥ रामाग्निंसहसादीप्तंनप्रवेष्टुंत्वमर्हसि ॥ १५॥ धनुर्व्यादितदीप्तास्यंशरार्चिषममर्षणः ॥ चापबाणधरंतीक्ष्णंशत्रुसेनापहारिणम्॥१६॥राज्यंसुखंचसंत्यज्यजीवितंचेष्टमात्मनः ॥ नात्यासादयितुंतातरामांतकमिहार्हसि ॥ १७॥ अप्रमेयंहितत्तेजोयस्यसाजनकात्मजा॥नत्वंसमर्थस्तांहर्तुंरामचापाश्रयांवने ॥ १८॥ तस्यवैनरसिंहस्यसिंहोरस्कस्य भामिनी॥प्राणेभ्योपिप्रियतराभार्यानित्यमनुव्रता॥१९॥नसाधर्षयितुंशक्यामैथिल्योजस्विनःप्रिया॥दीप्तस्येवहुताशस्यशिखासीतासुमध्यमा ॥२०॥किमुद्यमंव्यर्थमिमंकृत्वातेराक्षसाधिप॥दृष्टश्चेत्त्वंरणेतेनतदंतमुपजीवितम्॥२१॥

सन्मुख राज्य सुख छोडकर तुम जाओ। यदि गयेभी तो जातेही तुम्हारा नाश होजायगा॥१७॥ उनके तेजकी तुलना नहींहै; जानकी उनकीही स्त्री है, और सदाही उनके धनुर्बलका आश्रय करके वनमें वास करतीहै। तुम किसी भांतिभी जानकीको हरण नहीं करसकोगे! ॥ १८ ॥ सिंहकी समान चौडी छातीवाले नरसिंह रामचंद्रजी नित्य अनुगत सीताजीको प्राणसे भी प्यारी समझतेहैं ॥ १९ ॥ प्रज्वलित अग्निकी शिखाके समान तेजस्वी रामचंद्रजीकी प्रिय स्त्री श्यामा अवस्थावाली जानकीको हर लानेंकी किसीकोभी सामर्थ्य नहींहै ॥ २० ॥ हे राक्षसराज! तुम्हारा इस निरर्थक उद्यमसे प्रयोजन क्याहै? जो वनमें रामचंद्र कहीं तुम्हें मिलभी गये तो वहीं तुम्हारे जीवनकी इतिश्री होजायगी॥२१॥

मान जाननें लगतेहैं ॥ १७॥ सूखे काठ ढेले और धूलसेभी बहुत कार्य होसकतेहैं, परन्तु राज्यभ्रष्ट हुए राजासे कोई कार्यभी नहीं होसकता१८॥ पहराहुआ वस्त्र और मलगिजी माला जिसप्रकार किसीकार्यकी नहींहोती। राज्यभ्रष्ट राजाभी वैसेही शांतिसम्पन्न होकरभी निरर्थक कहाताहै ॥ १९ ॥ जो राजा प्रमादहीन, सर्वज्ञ भली भांतिसे जितेन्द्रिय,कृतज्ञ, और धर्ममें रतहोतेहैं वही राजपदपर चिरस्थाई होतेहैं ॥ २० ॥ जो राजा नेत्रोंसे निद्रित होनेपरभी नीतिरूप नेत्र विस्तार करके जागतेरहतेहैं; और जिनका क्रोध, व प्रसन्नता कार्यके समय प्रगटहो, वह राजाही लोकसमाजमें पूजे जातेहैं ॥ २१ ॥ परन्तु हे रावण! तुम कुबुद्धि और इन समस्त गुणोंसे रहितहो, कारण कि राक्षसोंका वह सर्व नाशहुआ

शुष्ककाष्ठैर्भवेत्कार्यंलोष्ठैरपिचपांसुभिः॥नतुस्थानात्परिभ्रष्टैःकार्यंस्याद्वसुधाधिपैः॥१८॥ उपभुक्तंयथावासःस्रजोवामृदितायथा ॥ एवंराज्यात्परिभ्रष्टःसमर्थोऽपिनिरर्थकः ॥ १९ ॥ अप्रमत्तश्चयोराजासर्वज्ञोविजितेंद्रियः ॥ कृतज्ञोधर्मशीलश्चसराजातिष्ठतेचिरम् ॥ २० ॥ नयनाभ्यांप्रसुप्तोवाजागर्तिनयचक्षुषा ॥ व्यक्तक्रोधप्रसादश्चसराजापूज्यतेजनैः ॥ २१ ॥ त्वंतुरावणदुर्बुद्धिर्गुणैरेतैर्विवर्जितः ॥ यस्यतेऽविदितश्चारैरक्षसांसुमहान्वधः ॥ २२ ॥ परावमंताविषयेषुसंगवान्नदेशकालप्रविभागतत्त्ववित् ॥ अयुक्तबुद्धिर्गुणदोषनिश्चयेविपन्नराज्योनचिराद्विपत्स्यते ॥ २३ ॥ इतिस्वदोषान्परिकीर्तितांस्तयासमीक्ष्यबुद्ध्याक्षणदाचरेश्वरः ॥ धनेनदर्पेणबलेनचान्वितोविचिंतयामासचिरंसरावणः ॥ २४ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेत्रयस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३३ ॥ ॥ ७ ॥

और तुमनें दूतोंके द्वारा उसका कुछ वृत्तान्त न जाना ॥ २२ ॥ तुम केवल पराया अपमान करतेहो, सदाही भोगविलासमें मतवाले बने रहतेहो देशकालका निश्चय करना नहीं जानते,और गुण दोषका विचार करनेका सामर्थ्य तुम्हारी बुद्धि नहीं रखती,इस कारण तुमको शीघ्रही विपदग्रस्त और राज्यभ्रष्ट होना पडेगा ॥ २३ ॥ धन, बल, और गर्वयुक्त राक्षसनाथ रावण शूर्पणखाको इस प्रकारसे अपनें समस्तदोष कहतेहुए देखकर बहुतही देरतक मनही मन विचारकरतारहा ॥ २४ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० आ० त्रयस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३३ ॥

राजा दशरथसे यह बोले कि अमावस्या और पूर्णमासीको जब हम समाधि अवस्थामें रहेंगे उस समय इन रामचंद्रको हमारी रक्षा करनी होगी ॥ ४ ॥ हे राजन्! मारीच राक्षससे हमको घोर भय उत्पन्न हुआहै। जब ऋषिनें इस प्रकार कहा तब धर्मात्मा राजा दशरथ ॥ ५ ॥ उन महर्षि महाभाग विश्वामित्रको प्रत्युत्तर देते हुए कि रामकी अवस्था अभी सोलह वर्षसेभी कमहै और अस्त्रविद्याभी अभी इन्हें नहीं आती ॥ ६ ॥ इस कारण इनको नहीं देसकते। परन्तु तुम्हारा कार्यकरनेंके लिये हम अपनी बडी भारी चतुरंगिनी सेना सहित चलकर वहां उस निशाचरको ॥ ७ ॥ यमलोकमें पठावेंगे जोकि आपका शत्रुहै जिसका संहार करना आपको अभीष्टहै, विश्वामित्रजी राजा

मारीचान्मेभयंघोरंसमुत्पन्नंनरेश्वर ॥ इत्येवमुक्तोधर्मात्माराजादशरथस्तदा ॥ ५ ॥ प्रत्युवाचमहाभागंविश्वामित्रंमहामुनिम् ॥ ऊनद्वादशवर्षोयमकृतास्त्रश्चराघवः ॥ ६ ॥ कामंतुममतत्सैन्यंमयासहागमिष्यति ॥ बलेनचतुरंगेणस्वयमेत्यनिशाचरम्॥७॥वधिष्यामिमुनिश्रेष्ठशत्रुंतवयथेप्सितम् ॥ एवमुक्तःसतुमुनीराजानमिदमब्रवीत्॥८॥ रामान्नान्यद्बलंलोकेपर्याप्तंतस्यरक्षसः ॥ देवतानामपिभवान्समरेष्वभिपालकः ॥ ९ ॥ आसीत्तवकृतंकर्मत्रिलोकविदितंनृप ॥ काममस्तिमहत्सैन्यंतिष्ठत्विहपरंतप ॥ १० ॥ बालोप्येषमहातेजाःसमर्थस्तस्यनिग्रहे ॥ गमिष्येराममादायस्वस्तितेऽस्तुपरंतप ॥ ११ ॥ इत्येवमुक्त्वासमुनिस्तमादायनृपात्मजम् ॥ जगामपरमप्रीतोविश्वामित्रःस्वमाश्रमम् ॥ १२ ॥

दशरथजीके यह वचन सुन उनसे बोले ॥ ८ ॥ यद्यपि यह सत्यहै कि आप संग्राममें देवताओंकेभी रक्षक हो और तुम्हारा किया कर्मभी तीनों लोकोंमें प्रगटहै परन्तु रामचंद्रके सिवाय और किसीका बलभी इस राक्षसका नाश करनेंमें समर्थ नहीं होगा इस कारण हेपरंतप! तुम्हारी जो बडी भारी चतुरंगिनी सेनाहै वह यहीं रहै ॥ ९ ॥ १० ॥ यह महातेजवान रामचंद्र बालक होनेंपरभी राक्षसका नाश करनेंमें समर्थ होंगे इस्से हम इनको लेजांयगे। हे राजन्! तुम्हारा कल्याणहो ॥ ११ ॥ महर्षि विश्वामित्रजी यह कहकर श्रीरामचंद्रजीको

ऋषिगणोंको अभयदे समस्त दंडकवनको मंगलमयकर दिया ॥ ११ ॥ उन आत्मज्ञानी महात्मा श्रीरामचंद्रजीने स्त्रीके वधकी शंका करके, केवल नाक कानहीं काट कर हमहींको अकेला छोडाहै ॥१२॥लक्ष्मण नाम रामचंद्रका छोटा भाई महातेजस्वी गुण और विक्रममें अपनें बडे भ्राताकी तुल्यहै, वह उनकाही अनुरागी भक्तहै। वह अतिशयबुद्धिमान् वलवान्, और वीर्यवान्है ॥ १३ ॥ विक्रममानहैं, क्रोधावि ष्टहै, सवहीके जीतनेंवाले, और आप किसीसे जीते जानेंके योग्य नहींहै और श्रीरामचंद्रजीके दहिनेंहाथ, वरन शरीरके वाहर रहनें वाले प्राणहैं ॥ १४ ॥ और रामचंद्रजीकी जो स्त्रीहै उसके नेत्र बडे २ हैं और वदन पूर्णमासीके चंद्रमाकी समानहै,रामचंद्रको वहुत प्यार करतीहैं,और वहभी सदा पतिको

ऋषीणामभयंदत्तंकृतक्षेमाश्चदंडकाः ॥ ११ ॥ एकाकथंचिन्मुक्ताहंपरिभूयमहात्मना ॥ स्त्रीवधंशंकमानेनरामेण विदितात्मना ॥ १२ ॥ भ्राताचास्यमहातेजागुणतस्तुल्यविक्रमः ॥ अनुरक्तश्चभक्तश्चलक्ष्मणोनामवीर्यवान् ॥ १३ ॥ अमर्षीदुर्जयोजेताविक्रांतोबुद्धिमान्बली ॥ रामस्यदक्षिणोबाहुर्नित्यंप्राणोबहिश्चरः ॥ १४ ॥ रामस्यतुविशालाक्षी पूर्णेंदुसदृशानना ॥ धर्मपत्नीप्रियानित्यंभर्तुःप्रियहितेरता ॥ १५ ॥ सासुकेशीसुनासोरूःसुरूपाचयशस्विनी ॥ देवतेववनस्यास्यराजतेश्रीरिवापरा ॥ १६ ॥ तप्तकांचनवर्णाभारक्ततुंगनखीशुभा ॥ सीतानामवरारोहावैदेहीतनुमध्यमा ॥ १७ ॥ नैवदेवीनगंधर्वीनयक्षीनचाकिन्नरी ॥ तथारूपामयानारीदृष्टपूर्वामहीतले ॥ १८ ॥ यस्यसीताभवेद्भार्यायंचतुष्टापरिष्वजेत् ॥ अभिजीवेत्ससर्वेषुलोकेष्वपिपुरंदरात् ॥ १९ ॥

प्यारी और हितकरनेंवाला कार्य करती रहतीहैं ॥१५॥ उस यशस्विनी रामचंद्रजीकी स्त्रीके केश, नासिका,उरू और रूप अति उत्तमहैं।वह मानों उस बनकी अधिष्ठात्री देवी और दूसरी लक्ष्मीकी समान विराजमान होरहीहैं ॥ १६ ॥ उनके वर्णकी ज्योति तपाये हुए सुवर्णकी समानहै, कमर पतली और नखोंकी पंक्तिका शिर लालहै।वह अतिशय सुन्दरता युक्तहैं और सब स्त्रियोंकी शिरोमणिहैं, उन्होंनें विदेह वंशमें जन्म ग्रहण कियाहै, और वह सीतानामसे संसारमें विख्यातहैं ॥ १७ ॥ न देवी न गन्धर्वी न यक्षिणी, न किन्नरी किसीकीभी सुन्दरताई उनकी शोभाके संगमें नही चलसकती यहांतक कि कभी हमनें इस पृथ्वीपर इस प्रकारकी रूपवानरमणी नहीं देखीथी ॥ १८ ॥ वह सीता जिसकी स्त्रीहों, और वह जिसको

गंभीर समुद्रके जलमें गिरे और बहुत देरके पीछे चैतन्यता प्राप्त कर लंकामें आये ॥ २१ ॥ इस प्रकारसे हमनें तो रक्षा पाई। परन्तु कठिन कर्म करनेंवाले रामचंद्रनें अशिक्षितास्त्र और बालक होनेपरभी हमारे सहाय सब राक्षसोंको मार डाला ॥ २२ ॥ इसी कारणसे निवारण करताहूं कि यदि तुम रामचंद्रजीके साथ युद्ध करोगे तो भयंकर विपदमें पडकर नाशको प्राप्त होजाओगे ॥ २३ ॥ और अपनें आप यत्न करके समाज उत्सवोंके देखनेवाले और क्रीडा रतिकी विधि जाननेवाले राक्षसोंके कारण वृथा संताप वटोरोगे ॥ २४ ॥ वस सीताहीके लिये, अटा, और अटारि, वा धवरहरोंसे पूर्ण नानारत्नभूषिता लंका नगरीको तुम नाशवान देखोगे ॥ २५ ॥ जिस प्रकार किसी तालावमें सर्प

पातितोऽहंतदातेनगंभीरेसागरांभसि ॥ प्राप्यसंज्ञांचिरात्तातलंकांप्रतिगतःपुरीम् ॥२१॥ एवमस्मितदामुक्तःसहाया स्तेनिपातिताः ॥ अकृतास्त्रेणरामेणबालेनाक्लिष्टकर्मणा ॥ २२ ॥ तन्मयावार्यमाणस्तुयदिरामेणविग्रहम् ॥ करिष्य स्यापदंघोरांक्षिप्रंप्राप्यनशिष्यसि॥२३॥ क्रीडारतिविधिज्ञानांसमाजोत्सवदर्शिनाम् ॥ रक्षसांचैवसंतापमनर्थंचाहरि ष्यसि ॥२४॥ हर्म्यप्रासादसंबाधांनानारत्नविभूषिताम् ॥ द्रक्ष्यसित्वंपुरींलंकांविनष्टांमैथिलीकृते ॥२५॥ अकुर्वतोपि पापानिशुचयःपापसंश्रयात् ॥ परपापैर्विनश्यंतिमत्स्यानागह्रदेयथा॥२६॥ दिव्यचंदनदिग्धांगान्दिव्याभरणभूषि तान् ॥ द्रक्ष्यस्यभिहतान्भूमौतवदोषात्तुराक्षसान् ॥२७॥ हतदारान्सदारांश्चदशविद्रवतोदिशः॥ हतशेषानशरणान्द्र क्ष्यसित्वंनिशाचरान्॥२८॥ शरजालपरिक्षिप्तामग्निज्वालासमावृताम्॥ प्रदग्धभवनांलंकांद्रक्ष्यसित्वमसंशयम्॥२९॥

होतेहैं तो वहांकी बिचारी मछलियांभी गरुड करके मारडाली जातीहैं; इसी प्रकार जो लोक पाप नहीं करते; ऐसे शुद्धात्मा पुरुषभी, पापा त्माके आश्रयमें रहनेंसे उस पापात्माके पापसे विनाशको प्राप्त होतेहैं॥ २६ ॥ इस कारण तुम देखोगे कि तुम्हारे निजके दोषसे दिव्य चंदन शरीरमें लगाये हुए; दिव्य वस्त्राभूषण पहरे हुए निशाचर गण समूल भूमियोंमें गिरेंगे ॥ २७ ॥ और आश्रयरहित राक्षस गण कोई स्त्री रहित हो कोई स्त्रीके सहित दशों दिशाओंको भागेंगे ॥ २८॥ तुम शर जालसे छाई हुई अग्निकी शिखासे पीडित हुई, ऐसी लंकापुरीके सबही गृह

शूर्पणखाके यह रोम हर्षण वचन सुन कर्तव्य स्थिरकर मंत्रियोंकी सम्मति ले रावण जनस्थानमें जानेंको तैयार हुआ ॥ १ ॥ गमन करनेंके समय उस कार्यको भली भांतिसे छानकर, और उसके सब विषयोंको भली प्रकार सोच विचार दोप गुणभी समझ लेता हुआ, बल, अबल सब जानलिया, उसनें जानकीका हरलाना महात्मा रामचंद्रसे वैर करनाही ठीकजांचा ॥ २ ॥ सब कर्त्तव्योंका मनमें निश्चय कर स्थिर बुद्धिहो प्रथम रमणीक यानशालामें गया ॥ ३ ॥ और यानशालामेंपहुंच कर राक्षसराज रावण गुप्त भावसे सारथिसे बोला कि शीघ्रही रथ तैयार करो ॥ ४ ॥ रावणके ऐसा कहतेही एक क्षणमें जल्दवाज सारथिनें जो रथ रावणकी इच्छानुसार था उस रथको सजाया ॥ ५ ॥

ततःशूर्पणखावाक्यंतच्छ्रुत्वारोमहर्षणम्॥ सचिवानभ्यनुज्ञायकार्यंबुद्ध्वाजगामह ॥ १ ॥ तत्कार्यमनुगम्यांतर्यथावदुपलभ्यच ॥ दोषाणांचगुणानांचसंप्रधार्यबलाबलम् ॥ २ ॥ इतिकर्तव्यमित्येवकृत्वानिश्चयमात्मनः ॥ स्थिरबुद्धिस्ततोरम्यांयानशालांजगामह ॥ ३ ॥ यानशालांततोगत्वाप्रच्छन्नंराक्षसाधिपः ॥ सूतंसंचोदयामासरथःसंयुज्यतामिति ॥ ४ ॥ एवमुक्तःक्षणेनैवसारथिर्लघुविक्रमः ॥ रथंसंयोजयामासतस्याभिमतमुत्तमम् ॥ ५ ॥ कामगंरथमास्थायकांचनंरत्नभूषितम् ॥ पिशाचवदनैर्युक्तंखरैःकनकभूषणैः ॥ ६ ॥ मेघप्रतिमनादेनसनेतधनदानुजः ॥ राक्षसाधिपतिःश्रीमान्ययौनदनदीपतिम् ॥ ७ ॥ सश्वेतवालव्यजनःश्वेतच्छत्रोदशाननः ॥ स्निग्धवैदूर्यसंकाशस्तप्तकांचनभूषणः ॥ ८ ॥ दशग्रीवोविंशतिभुजोदर्शनीयपरिच्छदः ॥ त्रिदशारिर्मुनींद्रघ्नोदशशीर्षइवाद्रिराट् ॥ ९

रावण उस इच्छानुसार कंचनसे बने हुए रत्नभूषित पिशाचवदनवाले गधे जिसमें जुते हुए, ऐसे रथ पर सवार हुआ ॥ ६ ॥ जब वह रथ चला तब उसका शब्द मेघोंके गर्जनेंकी समान होताथा। कुवेरका छोटाभाई राक्षसपति श्रीमान् दशानन उस रथपर चढ, नदनदीपति समुद्रकी ओर चला ॥ ७ ॥ रावणके ऊपर जो चमर और छत्र लगेथे वहदोनों श्रेष्ठथे, रावणके देहकी कांति वैदूर्यमणिके समान नीलीथी, वह सब तपाये हुए सुवर्णके भूषण पहरे हुएथा ॥ ८ ॥ उसके दशमुख, दशमस्तक, दश गर्दन, और वीस भुजा, देवगणोंके शत्रु, और मुनि

अग्निहोत्र होतेथे, वहींपर तपस्वियोंको संहार भक्षण करते हुए हम घूमतेथे ॥ ४ ॥ उस दंडक वनमें धर्मात्मा ऋषिगणोंको संहार २ उनका रुधिर पान करके मांस खा जातेथे ॥५ ॥ और महा कुटिल स्वभाववाले हो जो कोई मिलता उसे भय उपजाते, इस भांति रुधिर पीनेंसे मतवाले हो हम दंडकवनमें घूमतेथे ॥ ६ ॥ जब तपस्वी धर्मका अवलंबनकिये हुए रामचंद्रको हमनें पीडित किया जबकि वह वनमें फिरतेथे ॥ ७ ॥ व महाभाग्यवाली जानकीजीकोभी डरवाया, तब महारथी, तपस्वीरूप सब प्राणियोंका हित करनेंमे तत्पर लक्ष्मणजीकोभी पीडित किया ॥ ८ ॥ फिर महाबलवान् वनमें घूमनेंवाले, रामचंद्रजीको तपस्वी मान पहले वैरका स्मरण कर ॥ ९ ॥ मार डालनेकी इच्छासे

निहत्यदंडकारण्येतापसान्धर्मचारिणः ॥ रुधिराणिपिबंस्तेषांतन्मांसानिचभक्षयन् ॥ ५ ॥ ऋषिमांसाशनः क्रूरस्त्रासयन्वनगोचरान् ॥ तदारुधिरमत्तोऽहंव्यचरंदंडकावनम् ॥ ६ ॥ तदाहंदंडकारण्येविचरन्धर्मदूषकः ॥ आसादयंतदारामंतापसंधर्ममाश्रितम् ॥ ७ ॥ वैदेहींचमहाभागांलक्ष्मणंचमहारथम् ॥ तापसंनियताहारंसर्वभूत हितेरतम् ॥ ८ ॥ सोऽहंवनगतंराममंपरिभूयमहाबलम् ॥ तापसोऽयमितिज्ञात्वापूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ९ ॥ अभ्यधावं सुसंक्रुद्धस्तीक्ष्णशृंगोमृगाकृतिः ॥ जिघांसुरकृतप्रज्ञस्तंप्रहारमनुस्मरन् ॥ १० ॥ तेनत्यक्तास्त्रयोबाणाःशिताःशत्रु निबर्हणाः ॥ विकृष्यसुमहच्चापंसुपर्णानिलतुल्यगाः ॥ ११ ॥ तेबाणावज्रसंकाशाःसुघोरारक्तभोजनाः ॥ आजग्मुःसहि ताःसर्वेत्रयःसन्नतपर्वणः ॥ १२ ॥ पराक्रमज्ञोरामस्यशठोदृष्टभयःपुरा ॥ समुत्क्रांतस्ततोमुक्तस्तावुभौराक्षसौहतौ ॥ १३ ॥

क्रोधित हो, यद्यपि उनके पराक्रमको जानतेथे तथापि अपने बडे २ सींगआगेको झुकाय उनपर धावित हुए ॥ १० ॥ तब उन्होंनें कानके समीप तक धनुषको खेंचकर तीन नाराच हम तीन मृगोंके ऊपर चलाये, वहबाण गरुड व पवनकी गति समान चले ॥ ११ ॥ वह वज्रसम आकार वाले, अति घोर रक्त पीनेंवाले बाण हम तीनोंके ऊपर आगमन करनेलगे ॥ १२ ॥ हम बडे मूर्ख हैं, इस कारण पहलेही रामचंद्रसे भय देखकर उनका पराक्रम भली भांति जानतेथे तौभी लडे परन्तु हम तो भागकर किसी रीतिसे बचगये। परन्तु वह हमारे सहाई

हंस, क्रौञ्च, मण्डूक, और सारस समूह चारों ओर बोलरहेथे । वैदूर्यमणिके समान नीलवर्णके पत्थर वहां पर विराजतेथे और समुद्र तरंगोंकी हिल्लोल वश वह देश सदाही शीतल और स्निग्ध भावकरके युक्तथा ॥ १८ ॥ इन सब वस्तु ओंके सिवाय, रावण दिव्य माला युक्त, गीत और वाजोंकी ध्वनि जिसमें होरही ऐसे श्वेत वर्ण विशालविमानपर चढा रावण चारों ओर देखनें लगा ॥ १९ ॥ जिन लोगोंनें अपनें तपोबलसे अनेक लोकोंको जीत लियाहै और इच्छाचारीविमानों पर जो बैठेहैं; कुबेरके छोटे भाई रावणनें जानेंके समय मार्गमें उन गन्धर्व गणोंको अप्सराओंके साथ देखा ॥ २० ॥ वहां पर वनमे गोंद रसमूल सहित हजारों सुन्दर, नासिकाको अपनी सुगन्धिसे तृप्त

हंसक्रौंचप्लवाकीर्णसारसैःसंप्रसादितम् ॥ वैदूर्यप्रस्तरंस्निग्धंसांद्रंसागरतेजसा ॥ १८ ॥ पांडुराणिविशाला निदिव्यमाल्ययुतानिच ॥ तूर्यगीताभिजुष्टानिविमानानिसमंततः ॥ १९ ॥ तपसाजितलोकानांकामगान्यभिसं पतन् ॥ गंधर्वाप्सरसश्चैवददर्शधनदानुजः ॥ २० ॥ निर्यासरसमूलानांचंदनानांसहस्रशः ॥ वनानिपश्यन्सौम्या निघ्राणतृप्तिकराणिच ॥ २१ ॥ अगुरूणांचमुख्यानांवनान्युपवनानिच ॥ तक्कोलानांचजात्यानांफलानांचसुगंधि नाम् ॥ २२ ॥ पुष्पाणिचतमालस्यगुल्मानिमरिचस्यच ॥ मुक्तानांचसमूहानिशुष्यमाणानितीरतः ॥ २३ ॥ शै लानिप्रवरांश्चैवप्रवालनिचयांस्तथा ॥ कांचनानिचशृंगाणिराजतानितथैवच ॥ २४ ॥ प्रस्रवाणिमनोज्ञानिप्रसन्ना न्यद्भुतानिच ॥ धनधान्योपपन्नानिस्त्रीरत्नैरावृतानिच ॥ २५ ॥ हस्त्यश्वरथगाढानिनगराणिविलोकयन् ॥ तंस मंसर्वतःस्निग्धंमृदुसंस्पर्शमारुतम् ॥ २६ ॥

करनेंवाले चंदनके वृक्ष देखे ॥ २१ ॥ अगरके मुख्य वन उपवन अंकोल वृक्षोंके सुगन्धित पुष्पित और जायफलके फलित वन उप वनादि देखे ॥ २२ ॥ तमालनाम यक वृक्षके फूल, और काली मिरच गुल्मसमूह समुद्रके किनारे फूले व मोतियोंके समूहगिरे हुए देखे ॥२३॥ पर्वत व मूगोंकी चटानोंके समूह व चांदी सुवर्णके शृंगभी रावणनें देखे ॥ २४ ॥ सुविमल जल पूर्ण अद्भुत मनोहर सोते धन धान्यके सहित स्त्री रत्न युक्त ॥ २५ ॥ हाथी घोडे सहित अनेक प्रकारके नगर देखताहुआ, रावणनें शीतल मंद सुगन्ध पवन सहित ॥ २६ ॥

अपराध करनेंसे सपरिवार विनाशको प्राप्त हुए हैं ॥ २१ ॥इसी प्रकार तुम्हारे अपराधसे हमको नाश होना पडेगा. हेनिशाचर जो तुम्हारी इच्छाहो सो करो, परंतु हम तुम्हारे साथ नहीं चलेंगे, हमें अपनें प्राण प्यारेहैं ॥ २२ ॥ वह महातेजवान् महाबुद्धिमान्, महा बलवान् रामचंद्रजी वास्तवमेंही निशाचरों के कालहैं ॥ २३॥ यद्यपि पहले जनस्थानका रहनेंवाला अपावन खर, शूर्पणखाके लिये रामचं द्रसे मार डाला गयाहै, परन्तु इस विषयमें रामचंद्रजीका क्या अपराध हैसो तुम्हीं सत्य २ कहो ॥ २४ ॥ तुम हमारे बन्धुहो इस कारणसे हमनें तुम्हारे मंगलकेही लिये यह सत्य वचन कहे, यदि तुम हमारे वचनोंको न मानकर रामचंद्रसे वैर करोगे

सोऽहंपरापराधेनविनशेयंनिशाचर ॥ कुरुयत्तेक्षमंतत्त्वमहंत्वांनानुयामिवै ॥ २२ ॥ रामश्चहिमहातेजामहासत्त्वो महाबलः ॥ अपिराक्षसलोकस्यभवेदंतकरोऽपिहि ॥ २३ ॥ यदिशूर्पणखाहेतोर्जनस्थानगतःखरः ॥ अतिवृत्तोहतः पूर्वंरामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ अत्रब्रूहियथातत्त्वंकोरामस्यव्यतिक्रमः ॥ २४ ॥ इदंवचोबंधुहितार्थिनामयायथोच्य मानंयदिनाभिपत्स्यसे ॥ सबांधवस्त्यक्ष्यसिजीवितंरणेहतोऽद्यरामेणशरैरजिह्मगैः ॥ २५ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामा यणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेएकोनचत्वारिंशःसर्गः ॥३९॥ ॥ छ॥ ॥ मारीचस्यतुतद्वाक्यंक्षमंयुक्तं चरावणः ॥ उक्तोनप्रतिजग्राहमर्तुकामइवौषधम् ॥ १ ॥ तंपथ्यहितवक्तारंमारीचंराक्षसाधिपः ॥ अब्रवीत्परुषंवाक्य मयुक्तंकालचोदितः ॥ २ ॥ दुष्कुलैतदयुक्तार्थंमारीचमयिकथ्यते ॥ वाक्यंनिष्फलमत्यर्थंबीजमुप्तमिवोखरे ॥ ३॥ त्वद्वाक्यैर्नतुमांशक्यंभेत्तुंरामस्यसंयुगे ॥ मूर्खस्यपापशीलस्यमानुषस्यविशेषतः ॥ ४ ॥

तो निश्चयही बन्धु बान्धवों सहित रामचंद्रजीके बाणोंसे युद्धमें विनाशको प्राप्तहो तुमको प्राण परित्याग करना पडेगा ॥२५॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे एकोनचत्वारिंशःसर्गः ॥ ३९ ॥ जिस प्रकार मृत्यु जिसकी निकटहै ऐसा रोगी औषधि ग्रहण नहीं करता ऐसेही सहनेंके योग्य व उचित मारीचके वचन रावणनें ग्रहणनहीं किये ॥ १ ॥ उस काल प्रेरित निशाचरपति रावणनें मंगलजनक और युक्तियुक्त संग वचन कहनें वाले मारीचसे अयोग्य व कठोर वचनकहे ॥२॥३॥ हे मारीच ! तुमनें जो यह प्रतिकूल वचन हमसे कहे, यह

अनुज रावण गरुड चिन्हित महर्षिगण सेवित सुभद्र नामक इस वट वृक्षको देखता हुआ॥३६॥ वहांसे नदीपति समुद्रके दूसरीपार जाकर दूसरे वनमें परम पवित्र रमणीक एक निर्जन आश्रम रावणनें देखा ॥ ३७ ॥ रावणनें देखा कि मारीच नामक निशाचर मृगचर्म और जटाजूट धारण करके नियताहार कर वहां वास करताहै ॥ ३८ ॥ राक्षस मारीच रावणको देखतेही मिला और यथा विधानसे विविध भांतिकी अमानुषी भोग्य वस्तुओंसे रावणकी पूजा करता हुआ ॥ ३९ ॥ इस प्रकार भोजनकी सामग्री व जलसे स्वयं रावणकी पूजाकर मारीच अर्थ युक्त वचन

तंतुगत्वापरंपारंसमुद्रस्यनदीपतेः॥ददर्शाश्रममेकांतेपुण्येरम्येवनांतरे ॥ ३७॥ तत्रकृष्णाजिनधरंजटामंडलधारिणम् ॥ ददर्शनियताहारंमारीचंनामराक्षसम् ॥ ३८ ॥ सरावणःसमागम्यविधिवत्तेनरक्षसा ॥ मारीचेनार्चितो राजासर्वकामैरमानुषैः॥३९॥तंस्वयंपूजयित्वाचभोजनेनोदकेनच॥अथोपहितयावाचामारीचोवाक्यमब्रवीत्४०॥ कच्चित्तेकुशलंराजन्लंकायांराक्षसेश्वर ॥ केनार्थेनपुनस्त्वंवैतूर्णमेवइहागतः ॥ ४१ ॥ एवमुक्तोमहातेजामारीचेनसरावणः॥ ततःपश्चादिदंवाक्यमब्रवीद्वाक्यकोविदः ॥४२॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेपंचत्रिंशःसर्गः ॥ ३५ ॥ मारीचश्रूयतांतातवचनंममभाषतः ॥ आर्तोस्मिममचार्तस्यभवान्हिपरमागतिः॥१॥ जानीषेत्वंजनस्थानंभ्रातायत्रखरोमम ॥ दूषणश्चमहाबाहुःस्वसाशूर्पणखाचमे ॥ २ ॥

बोला ॥ ४० ॥ राजन्! राक्षसेश्वर! आपकी और लंकाकी कुशलतो है?फिर आप किस कारणसे यहां शीघ्रही पधारे हैं? ॥ ४१ ॥ जब मारीचनें ऐसा कहा तब वचन बोलनेंमें चतुर महातेजस्वी रावणनें इसप्रकार कहना आरंभ किया ॥ ४२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे पंचत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥ तात मारीच! कहताहूं श्रवण करो। हम बडे दुःखीहैं, तुमही विपदके समय हमारी परम गतिहो ॥ १ ॥ जिस स्थानमें हमारा भाई खर और महाबाहु दूषण व बहन शूर्पणखा रहा करतीथी उस जनस्थानको तुम

शीतलताई, यमराजकी समान दंडता, और वरुणके समान प्रसन्नताहोतीहै ॥ १३ ॥ इस कारणसे सबही अवसरमें उनकी पूजा व सन्मान करना योग्यताहै । तुम धर्मका विषय कुछभी न जानकर केवल मायाकेही आधीन हो रहेहो ॥ १४ ॥ इसीसे तुम्हारे ग्रहमें आनें पर भी तुमनें हमारी पूजा न की, वरन दौरात्मके वश होकर ऐसे कठोर वचन कहताहै हे राक्षस ! हमनें तुमसे इस कार्यके गुण दोष नहीं पूछे न यह कि इस कार्यका करना कर्तव्यहै, अथवा नहीं ॥ १५ ॥ हे अमितविक्रम! हमनें तो तुमसे यही कहाथा कि तुम इस कार्यमें हमारी सहायता करो ॥ १६ ॥ यह मोरे वचनानुसार जो कार्य तुमको करनाहोगा हम उसको कहतेहैं तुम श्रवणकरो कि तुम रजतबिन्दु विचित्र सुवर्ण मृग होकर

तस्मात्सर्वास्ववस्थासुमान्याःपूज्याश्चनित्यदा ॥ त्वंतुधर्ममविज्ञायकेवलंमोहमाश्रितः ॥ १४ ॥ अभ्यागतंतुदौरा
त्म्यात्परुषंवदसीदृशम्॥गुणदोषौनपृच्छामिक्षयंचात्मनिराक्षस ॥ १५॥ मयोक्तमपिचैतावत्त्वांप्रत्यमितविक्रम ॥
अस्मिंस्तुसभवान्कृत्येसाहाय्यंकर्तुमर्हसि॥१६॥शृणुतत्कर्मसाहाय्येयत्कार्यंवचनान्मम ॥सौवर्णस्त्वंमृगोभूत्वाचि
त्रोरजतबिंदुभिः॥१७॥आश्रमेतस्यरामस्यसीतायाःप्रमुखेचर ॥ प्रलोभयित्वावैदेहींयथेष्टंगंतुमर्हसि ॥१८ ॥ त्वांहि
मायामयंदृष्ट्वाकांचनंजातविस्मया॥ आनयैनमितिक्षिप्रंरामंवक्ष्यतिमैथिली ॥ १९॥ अपक्रांतेचकाकुत्स्थेदूरंगत्वा
प्युदाहर ॥ हासीतेलक्ष्मणेत्येवंरामवाक्यानुरूपकम् ॥ २० ॥ तच्छ्रुत्वारामपदवींसीतयाचप्रचोदितः ॥ अनुगच्छ
तिसंभ्रांतंसौमित्रिरपिसौहृदात् ॥ २१ ॥

॥ १७ ॥ उन रामचंद्रके आश्रममें जायकर विदेहराजकुमारी सीताके सामनें विचरण कर उनको लुभा हमारे अभिलषित स्थानमें चले जाओ ॥ १८ ॥ जनककुमारी सीताजी तुमको मायामयको सुवर्णका देखकर विस्मयको प्राप्त हो रामसे शीघ्र मृगके ले आनेंको कहेगी ॥ १९ ॥ तिसके पश्चात् जब काकुत्स्थनंदन राम आश्रमसे बाहर आकर तुम्हारेपीछे धावैं तब तुम उनको बहुत दूर तक ले जाना, और वहां ठीक रामचंद्रजीके बोलसा शब्द बनाकर बड़े जोरसे "हा सीता ! हा लक्ष्मण!" ऐसा वचन उच्चारण करना ॥ २० ॥ तब ऐसा शब्द सुन करके सीता

प्राणियोंका अहित करनेमें रत रहतेहैं जिसनें विना वैरही केवल अपने बलके घमंडमें आय ॥ १२ ॥ नाक कान काटकर हमारी बहन शूर्पणखाको विरूप करदिया। इस कारण जनस्थानसे उसकी स्त्री सीता जोकि देवताओंसेभी चढकर रूपमें है ॥१३॥ हम अपने विक्रमसे ले आमेंगे तुमको हमारी सहायता करनी होगी, तुम महाबलवान् सहायके साथ॥१४॥ व अपने भाइयोंके संग हम सारे देवताओंकोभी कुछ नहीं गिनते, तिससे हे मारीच! तुम हमारे इस विषयमें सहायक हो क्योंकि तुम समर्थहो ॥ १५ ॥ तुम महाशूरहो और सब प्रकारकी माया जानतेहो, वीर्यमें, युद्धमें, दर्पमें और उपायमें तुम्हारी समान दूसरा कोई नहींहै ॥ १६ ॥ हे निशाचर! इसी कारणसे इस समय हम तुम्हारे समीप

कर्णनासापहारेणभगिनीमेविरूपिता॥ अस्यभार्यांजनस्थानात्सीतांसुरसुतोपमाम्॥१३॥आनयिष्यामिविक्रम्यसहायस्तत्रमेभव॥ त्वयाह्यहंसहायेनपार्श्वस्थेनमहाबल॥ १४॥ भ्रातृभिश्चसुरान्सर्वान्नाहमत्राभिचिंतये॥ तत्सहायोभवत्वंमेसमर्थोह्यसिराक्षस॥१५॥ वीर्येयुद्धेचदर्पेचनह्यस्तिसदृशस्तव॥उपायतोमहाञ्छूरोमहामायाविशारदः॥१६॥ एतदर्थमहंप्राप्तस्त्वत्समीपंनिशाचर॥ शृणुतत्कर्मसाहाय्येयत्कार्यंवचनान्मम ॥१७॥ सौवर्णस्त्वंमृगोभूत्वाचित्रोरजतबिंदुभिः॥ आश्रमेतस्यरामस्यसीतायाःप्रमुखेचर॥१८॥त्वांतुनिःसंशयंसीतादृष्ट्वातुमृगरूपिणम् ॥ गृह्यतामितिभर्तारंलक्ष्मणंचाभिधास्यति ॥ १९ ॥ ततस्तयोरपायेतुशून्येसीतांयथासुखम् ॥ निराबाधोहरिष्यामिराहुश्चंद्रप्रभामिव ॥ २० ॥ ततःपश्चात्सुखंरामेभार्याहरणकर्शिते ॥ विस्रब्धंप्रहरिष्यामिकृतार्थेनांतरात्मना ॥ २१ ॥

आयेहैं, इस समय हमारी सहायता करनेके लिये जो कुछ तुमको करनाहोगा, सो हम कहतेहैं; तुम श्रवण करो ॥ १७॥ तुम चांदीकी विन्दिये युक्त स्वर्णके मृग बनकर रामचंद्रके आश्रममें जा सीताके सामनें इधर उधर फिरना ॥ १८ ॥ सीता मृगरूपी तुमको देखकर निःसन्देहही अपने स्वामी रामचंद्र और लक्ष्मणसे यह कहैगी कि इस मृगको पकडदो ॥ १९ ॥ जब वह रामचंद्र और लक्ष्मण मृगको पकडनेके लिये आश्रमसे दूर निकल जांयगे तब हम शून्य आश्रम पाकर सुख सहित निर्विघ्नले आवेंगे; जिस प्रकार राहु चंद्रमाकी प्रभाको हरण कर लेता है ॥२०॥ जब उनकी स्त्री हर लीजायगी तब रामचंद्र शोकके मारे दुर्बल होजांयगे तब कृतार्थ होकर यथासुख और निःशंक चित्तसे

आज्ञा पाकर शंका रहित चित्तसे यह कठोर वचन बोला ॥ १ ॥ कि हे निशाचरराज! किस पाप कर्म करनेंवाले पुरुषनें तुम्हें राज्य मंत्रिवर्ग, और पुत्रोंके सहित विनाश होनेंका यह उपदेश दियाहै ? ॥ २ ॥ कौन पापात्मा तुम्हारे सुखसे सुखीनहीं हो सकताहै? किस पापीनें उपायके छलसे यह तुम्हारी मृत्युका उपाय तुम्हें बतला दियाहै? ॥ ३ ॥ हे राक्षसनाथ! तुम्हारे हीन वीर्य शत्रु लोग, निश्चयही बलवान् पुरुषके साथ तुम्हारा विरोध कराकर तुम्हारा नाश होता देखनेके अभिलाषी हुएहैं॥४॥हे रावण! किस दुष्ट बुद्धि वालेने तुमको ऐसा उपदेश दियाहै? उस दुष्टका यही अभिलाषहै कि तुम अपने कर्मोंके प्रभावसेही नाशको प्राप्त होओ॥ ५ ॥ हे रावण! मंत्रिगण किसी प्रकारसे मार डालनेंके योग्य नहीं

केनायमुपदिष्टस्तेविनाशःपापकर्मणा ॥ सपुत्रस्यसराज्यस्यसामात्यस्यनिशाचर ॥ २ ॥ कस्त्वयासुखिनाराजन्नाभिनंदतिपापकृत् ॥ केनेदमुपदिष्टंतेमृत्युद्वारमुपायतः ॥ ३ ॥ शत्रवस्तवसुव्यक्तंहीनवीर्यानिशाचर ॥ इच्छंतित्वांविनश्यंतमुपरुद्धंबलीयसा ॥ ४ ॥ केनेदमुपदिष्टंतेक्षुद्रेणाहितबुद्धिना ॥ यस्त्वामिच्छतिनश्यंतंस्वकृतेननिशाचर ॥ ५ ॥ वध्याःखलुनवध्यंतेसचिवास्तवरावण ॥ येत्वामुत्पथमारूढंननिगृह्णंतिसर्वशः ॥ ६ ॥ अमात्यैःकामवृत्तोहिराजाकापथमाश्रितः ॥ निग्राह्यःसर्वथासद्भिःसनिग्राह्योनगृह्यसे ॥ ७ ॥ धर्ममर्थंचकामंचयशश्चजयतांवर ॥ स्वामिप्रसादात्सचिवाःप्राप्नुवंतिनिशाचर ॥ ८ ॥ विपर्ययेतुतत्सर्वंव्यर्थंभवतिरावण ॥ व्यसनंस्वामिवैगुण्यात्प्राप्नुवंतीतरेजनाः ॥९॥ राजमूलोहिधर्मश्चयशश्चजयतांवर॥ तस्मात्सर्वास्ववस्थासुरक्षितव्यानराधिपाः॥१०॥

होते, परन्तु जो खोटे रस्ते में चलनेंसे तुमको नहीं रोकते, वही मारडालनेंके लायकहैं ॥ ६ ॥ देखो तुम कामके वश होकर खोटे मार्ग में चलना चाहतेहो, और तुम्हारे मंत्री तथापि तुमको सब प्रकारसे नहीं रोकते ॥७॥ हे निशाचर! हे विजय करनें वालों में उत्तम ! मंत्रिगण अपनें स्वामी कीही प्रसन्नतासे, अर्थ, धर्म, काम व यशको प्राप्त होतेहैं ॥ ८ ॥और जो स्वामीकीही प्रसन्नता नहुई तो सबही व्यर्थ जाताहै और स्वामी के गुणोंमें विकार होनेंके कारण सबही दुःख पातेहैं, और प्रजापर भी महाभय प्राप्त होताहै ॥ ९ ॥ नरपाल प्रजाओंके यश व धर्मकी प्राप्तिके

यह व्यौहार तुम्हारे दुःखका कारण नहो ? ॥ ५ ॥ तुम इच्छानुसार चलनेंवाले और निरंकुशहो अर्थात् तुम्हारा कहनें सुननेवाला कोई नहींहै । इसकारण तुम्हारे राजा होते समस्त लंका तुम्हारें और सर्व राक्षसोंके साथ क्या विनष्ट नहीं होगी ! अर्थात् अवश्य होगी ॥ ६॥ तुम्हारी समान जो राजा, बुरे शीलवाला, पाप बुद्धि और इच्छानुसार चलनेंवाला होताहै, वह राजा अपनेको, समस्त राज्यको अपने कुटुंबियोको नाश करनेंका कारण होताहै ॥ ७ ॥ रामचंद्र अपनें पिताकरकै नहीं त्यागे गयेहैं । वह मर्यादा रहित भी नहींहै, अथवा, लोभी, दुःशील और क्षत्रियवंशके नाशकभी नहीहैं ॥ ८ ॥ कौशल्याकुमार अपनी माताके आनंदको बढानेंवाले धर्मसे वा गुणोंसे हीन नहींहैं; उ

अपित्वामीश्वरंप्राप्यकामवृत्तंनिरंकुशम् ॥ नविनश्येत्पुरीलंकात्वयासहसराक्षसा ॥ ६ ॥ त्वद्विधःकामवृत्तोहिदुःशीलःपापमंत्रितः ॥ आत्मानंस्वजनंराष्ट्रंसराजाहंतिदुर्मतिः ॥ ७ ॥ नचपित्रापरित्यक्तोनामर्यादःकथंचन ॥ नलुब्धोनचदुःशीलोनचक्षत्रियपांसनः ॥ ८ ॥ नचधर्मगुणैर्हीनःकौसल्यानंदवर्धनः ॥ नचतीक्ष्णोहिभूतानांसर्वभूतहितेरतः ॥ ९ ॥ वंचितंपितरंदृष्ट्वाकैकेय्यासत्यवादिनम् ॥ करिष्यामीतिधर्मात्माततःप्रव्रजितोवनम् ॥ १० ॥ कैकेय्याःप्रियकामार्थंपितुर्दशरथस्यच ॥ हित्वाराज्यंचभोगांश्चप्रविष्टोदंडकावनम् ॥ ११ ॥ नरामःकर्कशस्तातनाविद्वान्नाजितेंद्रियः ॥ अनृतंनश्रुतंचैवनैवत्वंवक्तुमर्हसि ॥ १२ ॥ रामोविग्रहवान्धर्मःसाधुःसत्यपराक्रमः ॥ राजासर्वस्यलोकस्यदेवानामिववासवः ॥ १३ ॥

नका तीक्ष्ण स्वभाव नहींहैं । और वह सदा सब प्राणियोंका अहित करनेंमें रतभी नहींहैं वरन सबका हित करनेंमें तत्परहैं ॥ ९ ॥ अपनें सत्यवादी पिताको कैकेयी करके ठगाहुआ देखकर, वह उनके सत्यकी रक्षा करनेके लिये रामचंद्रजी वनको चले आयेहैं ॥ १० ॥ और पिता दशरथ, व रानी केकेयीका प्रिय कार्य करनेंकी वासनासे, राज्यसुखको जलांजलि देकर श्रीरामचंद्रजी दंडकारण्यमें आयेहैं ॥ ११ ॥ हे तात ! रामचंद्र कर्कशस्वभाववालेभी नहींहैं, मूर्खभी नहींहैं, अजितेन्द्रियभी नहींहैं, और मिथ्या कहना तो दूरहे, वह इस झुंठाईके प्रसंगमेंभी नहींहैं। सो उनके प्रति ऐसे वचन कहना आपको उचित नहींहै ॥ १२ ॥ अधिक कहांतक कहूं; रामचंद्र धर्ममूर्तिहैं, साधू हैं; सत्यपराक्रमवानहै और

तेही मरे धरेहैं और यहभी भली भांति समझ रक्खो कि सीताको हरणकरतेही तुमभी अपने परिवार सहित मारे जाओगे॥१८॥यदि हमारे साथ मिल रामचंद्रजीको धोखादे तुम सीता महारानीको आश्रमसे लेभी आये, तौ हमारी, तुम्हारी, लंकापुरी, व निशाचर गणोंकी किसीकीभी रक्षा न होगी॥१९॥यदि तुम हमारे इनहितकारी वचनोंको न सुनकर ऐसा कार्य करनेंसे नहीं रुकोगे तो तुम्हारा नाश हो जायगा क्योंकि जिस मनुष्यकी आयु क्षीण हो जातीहै वह किसी सुहृदके हितकारी वचनोंको नहींमाना करता॥२०॥ इ०श्रीम०वा०आ०आर०एकचत्वारिंशः सर्गः ४१॥ मारीचनें राक्षसराज रावणसे ऐसे कठोर वचन कहकर, फिर उसकेभयसे भीतहो यहभी कह दिया कि अच्छा हम चलतेहैं ॥ १ ॥ वह

आनयिष्यसिचेत्सीतामाश्रमात्सहितोमया ॥ नैवत्वमपिनाहंवैनैवलंकानराक्षसाः ॥ १९ ॥ निवार्यमाणस्तुमया हितैषिणानमृष्यसेवाक्यमिदंनिशाचर ॥ परेतकल्पाहिगतायुषोनराहितंनगृह्णंतिसुहृद्भिरीरितम् ॥२०॥इ०श्री० वा०आ०आरण्यकांडे एकचत्वारिंशःसर्गः ॥४१॥ एवमुक्त्वातुपरुषंमारीचोरावणंततः ॥ गच्छावेत्यब्रवीद्दीनोभया द्रात्रिंचरप्रभोः ॥ १ ॥ दृष्टश्चाहंपुनस्तेनशरचापासिधारिणा ॥ मद्वधोद्यतशस्त्रेणनिहतंजीवितंचमे ॥ २ ॥ नहिरामं पराक्रम्यजीवन्प्रतिनिवर्तते ॥ वर्ततेप्रतिरूपोऽसौयमदंडहतस्यते ॥ ३ ॥ किंतुकर्तुंमयाशक्यमेवंत्वयिदुरात्मनि ॥ एषगच्छाम्यहंतातस्वस्तितेस्तुनिशाचर ॥ ४ ॥

धनुर्बाणधारी, और खड्ग धारण किये हुए रामचंद्रजी आयुध उठाकर हमारी ओर व तुम्हारी ओर रामचंद्रजीनें देखातो तुम अपनें व हमारे प्राण गएही जानो ॥२॥हे तात! रामचंद्रजीसे कैसाही पराक्रम प्रकाश करकोईभी जीवित नहीं लौट सकता फिर हम तौ तुम्हारे खोटे आचारोंके कारण यमराजरूप रामचंद्रके बाणोंसे मृत्युको प्राप्तहो तुम्हारेही समानहो जायँगे अर्थात् हम तुम दोनों मारे जायँगे ॥ ३ ॥ तुम्हारे ऊपर अपनी सामर्थ्य प्रकाश करकै जीता हुआ रहना संभव नहीं क्योंकि तुम अतिदुरात्माहो! हम तुम्हारा करही क्या सकतेहैं! हे राक्षसराज तुम्हारा मं

देखो राज्य, सुख प्राण यह इस संसारमें महादुर्लभहैं इससे जो सुखभोग किया चाहो तो रामचंद्रजीसे वैरभाव न करो अब यहांसे जाय सब विभीषणादि मंत्रियोंके साथ ॥ २२ ॥ सलाहकर अपना मतभी स्थिरकर गुण दोषोंको विचार रामचंद्रजीके और अपने बलको जांचकर ॥ २३ ॥ फिर रामचंद्रजीके बलमें अपना बल मिथ्या जान मेरी रायमें तो तुमको चुप रहना उचितहै बस तुम्हारा हित इसीमें होगा हमारे इन कडे वचनोंको जो मैंनें आपका हित करनेंके लिये कहेहैं क्षमा करना ॥ २४ ॥हमें कौशल्याधिप दशरथजीके पुत्र श्रीरामचंद्रजीके साथ तुम्हारा युद्धमें समागम करना अच्छा नहीं लगता, इस कारण हे राक्षसनाथ। फिरभी तुम्हारे हितकी युक्तियुक्त वार्ता कहताहूं तुम श्रवण

जीवितंचसुखंचैवराज्यंचैवसुदुर्लभम् ॥ ससर्वैःसचिवैःसार्धंबिभीषणपुरस्कृतैः ॥ २२ ॥ मंत्रयित्वासधर्मिष्ठैःकृत्वानिश्चयमात्मनः ॥ दोषाणांचगुणानांचसंप्रधार्यबलाबलम् ॥ २३ ॥ आत्मनश्चबलंज्ञात्वाराघवस्यचतत्त्वतः ॥ हितंहि तवनिश्चित्यक्षमंत्वंकर्तुमर्हसि ॥ २४ ॥ अहंतुमन्येतवनक्षमंरणेसमागमंकोसलराजसूनुना ॥ इदंहिभूयःशृणुवाक्यमुत्तमंक्षमंचयुक्तंचनिशाचराधिप ॥ २५ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्येकांडेसप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥ ॥ छ ॥ कदाचिदप्यहंवीर्यात्पर्यटन्पृथिवीमिमाम् ॥ बलंनागसहस्रस्यधारयन्पर्वतोपमः ॥ १ ॥ नीलजीमूतसंकाशस्तप्तकांचनकुंडलः ॥ भयंलोकस्यजनयन्किरीटीपरिघायुधः ॥ २ ॥ व्यचरन्दंडकारण्यमृषिमांसानिभक्षयन् ॥ विश्वामित्रोथधर्मात्मामद्वित्रस्तोमहामुनिः ॥ ३ ॥ स्वयंगत्वादशरथंनरेंद्रमिदमब्रवीत् ॥ अयंरक्षतुमांरामःपर्वकालेसमाहितः ॥ ४ ॥

करो॥ २५॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे सप्तत्रिंशःसर्गः ॥ ३७ ॥ मैं एक समय अपने बलवीर्यके घमंडके मारे पृथ्वीपर घूमता हुआ फिरताथा मेरे पर्वतकी समान शरीरमें सहस्र हाथियोंका बलथा ॥१॥ हाथमें परिघ आयुध लिये मस्तक पर किरीट कानमें तपाये हुए सोनेकेबने कुण्डल पहरेथा।मेरे देहकी कान्ति नीले वादरोंकी समानथी इसप्रकारकी अवस्थामें लोकोंको भय उपजाताहुआ॥२॥मैं दंडक वनमें घूम २ कर ऋषिलोगोंका मांस भक्षण करताथा । अनन्तर धर्मात्मा महामुनि विश्वामित्रजी मेरे भयसे भीत होकर ॥ ३ ॥ स्वयं जाकर

रा हुआ यह रामचंद्रका आश्रम दिखाई देताहै ॥ १३ ॥ जिस कारणसे कि हम लोग यहां आयेहैं; इस समय शीघ्रतासे उस कार्यका आरंभ क
रो। निशाचर मारीच रावणके यह वचन सुनकर ॥ १४॥ महा अद्भुत मृग रूप धारण करके रामचंद्रजीके आश्रमके द्वारपर फिरनें लगा॥१५॥
इस मृगके शींगोंका अग्रभाग मणि प्रवर सदृशथा, और मुखकी आकृति श्वेत कृष्ण विविध वर्णोंसे चित्रितथी वदनमंडल कमलके फूलकी स
मान श्रवण युगल इन्द्र नील पद्मकी समानथे ॥ १६ ॥ गरदन कुछ एक ऊंची उदरभी इन्द्र नील मणिकी समता रखताथा पीछेका भागम
हुयेके सुमनकी समान और वर्ण पद्म परागकी तुल्यथा॥ १७ ॥ खुरियें वैदूर्य मणिकी तुल्यथीं, दोनों जांघें पतलीथीं सब सन्धियें एक दूसरीसे गठी

क्रियतांतत्सखेशीघ्रंयदर्थंवयमागताः ॥सरावणवचःश्रुत्वामारीचोराक्षसस्तदा ॥ १४ ॥ मृगोभूत्वाश्रमद्वारिरामस्य
विचचारह ॥ सतुरूपंसमास्थायमहदद्भुतदर्शनम् ॥ १५ ॥ मणिप्रवरशृंगाग्रःसितासितमुखाकृतिः ॥ रक्तपद्मोत्प
लमुखइंद्रनीलोत्पलश्रवाः ॥ १६ ॥ किंचिदत्युन्नतग्रीवइंद्रनीलनिभोदरः ॥ मधूकनिभपार्श्वश्चकंजकिंजल्कसन्नि
भः॥१७॥ वैदूर्यसंकाशखुरस्तनुजंघःसुसंहतः ॥ इंद्रायुधसवर्णेनपुच्छेनोर्ध्वंविराजितः ॥ मनोहरस्निग्धवर्णोरत्नैर्नाना
विधैर्वृतः ॥क्षणेनराक्षसोजातोमृगःपरमशोभनः ॥ १९ ॥ वनंप्रज्वलयन्रम्यंरामाश्रमपदंचतत् ॥ मनोहरंदर्शनीयं
रूपंकृत्वासराक्षसः ॥ २० ॥ प्रलोभनार्थंवैदेह्यानानाधातुविचित्रितम्॥विचरन्गच्छतेशष्पंशाद्वलानिसमंततः॥२१॥
रौप्यैर्बिंदुशतैश्चित्रंभूत्वाचप्रियनंदनः ॥ विटपीनांकिसलयान्भक्षयन्विचचारह ॥ २२ ॥

हुईथीं, और पूंछ इन्द्रधनुषकी समान ऊपरको उठी हुई विराजमान होरहीथी ॥ १८ ॥ उसका वर्ण चिकना और मनोहरथा और शरीर उसका
अनेक भांतिके रत्नोंसे विभूषितथा उस मारीच राक्षसनें क्षण भरमें यह परमशोभा युक्त मृग मूर्ति धारणकी ॥१९॥ उस वनको शोभित करता
हुआ और श्रीरामचंद्रजीके आश्रमकोभी अपनें परम मनोहर देखनें योग्यरूपसे वह राक्षस प्रकाश मान करनें लगा॥ २० ॥ जानकीजीको
ललचानेके लिये अनेक प्रकारकी धातुओंसे चित्र विचित्ररूप धारण किये चारों ओर हरी २ घास चरता हुआ वह मृग रामचंद्रजीके आश्रम
पर विचरनें लगा ॥ २१ ॥उसके शरीरपर सैकडों चांदीके विन्द लगेथे ऐसे कि जिनके देखनेंसे परम प्रीति उपजे वह मृग कभी २ वृक्षोंकी कों

साथले परम प्रीतियुक्त हो अपने सिद्धाश्रममें आये ॥ १२ ॥ तिसके पीछें जब महर्षि विश्वामित्रजी यज्ञ करनेंके लिये दीक्षित हुए तब श्रीरामचंद्रजी विचित्र धनुषकी टंकार करनेंके लिये विश्वामित्रजीके समीप आये ॥ १३ ॥ उनके गलेमें सुवर्णकी माला मस्तकपर अलकें हाथमें धनुष, दोनों नेत्र परम सुन्दर, एक मात्र जांघिया पहरे ब्रह्मचारीशरीर श्यामल वर्ण और अति सुन्दरताईसे शोभायमान, तबतक उनके रेख इत्यादि पुरुषचिह्न नहीं प्रगट हुएथे ॥ १४ ॥ वह अपने तेजसे समस्त दंडकारण्यको सुशोभित करके द्वितीयाके चंद्रमाके समान उदय होते हुए दिखलाई देनें लगे ॥ १५ ॥ उस समय हम तप्तकाञ्चन कुण्डलधारी, मेघका रंग धारण करके ब्रह्माजीके दिये हुए वर

तंतथादंडकारण्येयज्ञमुद्दिश्यदीक्षितम् ॥ बभूवोपस्थितोरामश्चित्रंविस्फारयन्धनुः ॥ १३ ॥ अजातव्यंजनःश्रीमान्बालःश्यामःशुभेक्षणः ॥ एकवस्त्रधरोधन्वीशिखीकनकमालया ॥ १४ ॥ शोभयन्दंडकारण्यंदीप्तेनस्वेनतेजसा॥अदृश्यततदारामोबालचंद्रइवोदितः ॥१५॥ ततोऽहंमेघसंकाशस्तप्तकांचनकुंडलः ॥ बलीदत्तवरोदर्पादाजगामाश्रमांतरम् ॥१६॥ तेनदृष्टःप्रविष्टोऽहंसहसैवोद्यतायुधः ॥ मांतुदृष्ट्वाधनुःसज्यमसंभ्रांतश्चकारह ॥ १७ ॥ अवजानन्नसंमोहाद्बालोऽयमितिराघवम् ॥ विश्वामित्रस्यतांवेदिमभ्यधावंकृतत्वरः॥१८॥तेनमुक्तस्ततोबाणःशितःशत्रुनिबर्हणः॥ तेनाहंताडितःक्षिप्तःसमुद्रेशतयोजने॥१९॥नेच्छतातातमांहंतुंतदावीरेणरक्षितः ॥रामस्यशरवेगेननिरस्तोभ्रांतचेतनः२०

प्रभावसे बल मदसे दर्पित हो विश्वामित्रजीके आश्रममें आये ॥ १६ ॥मैं जैसेही उनसे छिपकर हथियार लेकर आया वैसेही हमको आया हुआ देखतेही श्रीरामचंद्रजीनें तत्क्षणात् आयुध उठाकर हर्षित हो धनुषपर शर चढाया ॥ १७ ॥ बहुतही मोहवश होनेके कारण हमनें बालक समझ उनको ध्यानमें न लाकर बड़ी शीघ्रतासे विश्वामित्रजीकी यज्ञवेदीके ऊपरको दौडे ॥ १८ ॥ यह देखकर श्रीरामचंद्रजीनें शत्रुओंके मारनेवाले तीखे बाणोंको चला हमें घायल कर शत योजन दूर समुद्रको फेंक दिया॥१९॥हे तात! हमारे मारनेंकी इच्छा उस समय उनको नहीं थी इसी कारणसे उन्होंनें उस समय हमको संहार न कर रक्षा की तिसके पीछें हम रामचंद्रजीके बाणवेगसे मूर्छित होकर उतनी दूर चलेगये२०

लोचना वैदेहीजी॥ ३० ॥ फूल चुननेंके लिये, कभी अशोक कभी कर्णिकार और कभी आम वृक्षके निकट जातीथीं ॥ ३१ ॥ वनवास करनेंके अयोग्य उन रुचिर वदना सीताजीनें फूल चुनते हुए, घूमते २ उस रत्नमय मृगको देखा ॥ ३२ ॥ उसके सव अंग मुक्ता मणियोंसे चित्रितथे। ऐसी वराङ्गना और अति सुन्दर दांत व अधर वाली जानकी जीनें भली भांति उस मृगको देखा इस मृगके रुयें चांदी और गेरु धातुके समान थे॥३३॥श्रीजानकीजी विस्मयसेप्रफुल्ल नेत्रोंसे स्नेह सहित उस मृगको देखनेंलगीं माया मय मृगभी राम प्यारी सीताजीकी ओर देखतारहा॥३४॥ अनन्तर वह मृग उस वनको प्रकाशित करता हुआ इधर उधर घूमने लगा। जनक कुमारी श्रीसीताजी अनेक रत्नमय अदृष्टपूर्व (जो

कुसुमापचयेव्यग्रापादपानत्यवर्तत ॥ कर्णिकारानशोकांश्चचूतांश्चमदिरेक्षणा ॥ ३१ ॥ कुसुमान्यपचिन्वंती चचाररुचिरानना ॥ अनर्हांवनवासस्यसातंरत्नमयंमृगम् ॥ ३२ ॥ मुक्तामणिविचित्रांगंददर्शपरमांगना ॥ तंवैरुचिरदंतोष्ठंरूप्यधातुतनूरुहम्॥३३॥विस्मयोत्फुल्लनयनासस्नेहंसमुदैक्षत॥सचतांरामदयितांपश्यन्मायामयो मृगः॥ ३४ ॥ विचचारततस्तत्रदीपयन्निवतद्वनम् ॥ अदृष्टपूर्वंदृष्ट्वातंनानारत्नमयंमृगम् ॥ विस्मयंपरमंसीताज गामजनकात्मजा ॥ ३५ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वाल्मीकीयेआदिकाव्येआ०कां०द्विचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४२ ॥ ॥७॥ सातंसंप्रेक्ष्यसुश्रोणिकुसुमाविचिन्वती ॥ हेमराजतवर्णाभ्यांपार्श्वाभ्यामुपशोभितम् ॥ १ ॥ प्रहृष्टाचानवद्यांगीमृ ष्टहाटकवर्णिनी ॥ भर्त्तारमपिचक्रंदलक्ष्मणंचैवसायुधम् ॥ २ ॥ आहूयाहूयचपुनस्तंमृगंसाधुवीक्षते ॥ आगच्छा गच्छशीघ्रंवैआर्यपुत्रसहानुज ॥३॥ तावाहूतौनरव्याघ्रौवदह्यारामलक्ष्मणौ॥वीक्षमाणौतुतंदेशंतदाददृशतुर्मृगम्॥४॥

पहले कभी नहीं देखा) मृगको देखकर अति विस्मयको प्राप्त हुईं॥३५॥इत्यार्षे श्रीरामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आ० द्विचत्वारिंशःसर्गः ४२ सुश्रोणी,फूल चुनती हुई सीताजीनें इस मृगके शरीरके मध्य चांदीके बिंदुशोभाय मान देख दोनों बगल उसके सुवर्ण व चांदीके देखे ॥१॥ यह देखकर परम हर्षित हो अनिन्दिताङ्गी,विशुद्ध वर वर्णिनी सीताजीनें आयुध धारणकिये हुए रामचंद्र व लक्ष्मणजीको पुकारा॥२॥हे आर्यपुत्र! लक्ष्मणके स हित शीघ्र आओ इस प्रकारसे कहकर रामचंद्रजीको पुकारते२उस मृगकी ओर देखनें लगीं॥३॥ सीताजीके पुकारनें पर पुरुषोत्तम श्री रामचंद्रजी

एकही कालमें भस्म हुए देखोगे ॥ २९ ॥ क्योंकि पराई स्त्रीके हरनकरनेंकी तुल्य और कोई भारी पाप नहीं है! हे राजन्! तुम्हारे रनवासमें सैकडों हजारों स्त्रियां विराजमान हैं ॥ ३० ॥ तुम अपनी ग्रहणकीहुई उनही समस्त स्त्रियोंमें आसक्त रहकर अपने वंश, अभीष्ट प्राण, राज्य, संपद्, मान और राक्षसकुलकी रक्षा करो ॥ ३१ ॥ यदि परमसुन्दरी स्त्रिये और मित्रोंके साथ सदाही सुख भोगनेंकी इच्छा करतेहो तौ रामचंद्रका अप्रिय कार्य मत करो ॥ ३२ ॥ हम तुम्हारे सुहृदहैं इसी कारण वारंवार तुमको निवारण करतेहैं यदि इतनेपरभी तुम बलपूर्वक सीताको हर लाओगे तो निश्चयही तुमको रामबाणसे बन्धु बान्धवों सहित, क्षीणबल और क्षीणप्राण होकर यमराजके भवनमें

परदाराभिमर्शात्तुनान्यत्पापतरंमहत् ॥ प्रमदानांसहस्राणितवराजन्परिग्रहे ॥ ३० ॥ भवस्वदारनिरतः स्वकुलंरक्षराक्षसान् ॥ मानंवृद्धिंचराज्यंचजीवितंचेष्टमात्मनः ॥ ३१ ॥ कलत्राणिचसौम्यानिमित्रवर्गंतथैवच ॥ यदीच्छसिचिरंभोक्तुंमाकृथारामविप्रियम् ॥ ३२ ॥ निवार्यमाणःसुहृदामयाभृशंप्रसह्यसीतांयदिधर्षयिष्यसि ॥ गमिष्यसिक्षीणबलःसबांधवोयमक्षयंरामशरास्तजीवितः ॥३३॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०आर०अष्टात्रिंशःसर्गः॥३८॥छ॥ एवमस्मितदामुक्तःकथंचित्तेनसंयुगे ॥ इदानीमपियद्वृत्तंतच्छृणुष्वयदुत्तरम् ॥ १ ॥ राक्षसाभ्यामहंद्वाभ्यामनिर्विण्णस्तथाकृतः ॥ सहितोमृगरूपाभ्यांप्रविष्टोदंडकावने ॥२॥ दीप्तजिह्वोमहादंष्ट्रस्तीक्ष्णशृंगोमहाबलः ॥ व्यचरन्दंडकारण्यंमांसभक्षोमहामृगः ॥३॥ अग्निहोत्रेषुतीर्थेषुचैत्यवृक्षेषुरावण ॥ अत्यंतघोरोव्यचरंस्तापसांस्तान्प्रधर्षयन् ॥४॥

जाना पडेगा ॥ ३३ ॥इत्यार्षे० श्रीम० वा० आ०आ० अष्टत्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥ उस कालमें तौ हम किसी प्रकारसे रामचंद्रजीके द्वारा इस भांति युद्धमें छूट गयेथे, इस समय वह कहताहूं जो अब हुआहै, सो तुमश्रवण करो ॥ १ ॥ जब दो मृगरूपी राक्षसोंके साथ हम दंडकारण्यको गये वहांभी इसी प्रकार पराजित हुए ॥ २ ॥ जब हम दंडकारण्यको गयेथे तौ हमारी बडी अग्निके समान तो जिह्वाथी, बडे तीखे दांतथे, बडे २ सींगथे महाबलवान् भयंकर रूप था, और दंडकारण्यमें मांस खाते हुएं हम विचरण करतेथे ॥ ३ ॥ फिर जहां २ तीर्थरूपी वृक्षथे,

इसका सबही शरीर विविध वर्णोंसे विचित्रहो रहाहै । मध्य २ में रत्नोंके विन्दु वनेहैं । यह मृग चद्रमाकी समान वनभूमिको शान्ति भावसे प्रकाशित करता हुआ हमारे सन्मुख विराजमान हो रहाहै ॥ १४ ॥ अहहह क्या सुन्दरताईहै ! अहो क्या श्रीहै ! आहा क्या शोभाहै! क्या मधुर इसका बोलहै! यह अपूर्व विचित्र अंगवाला मृग हमारे मनको चुरायेलेताहै ॥ १५ ॥ यदि आप इसको जीता हुआही पकड देंगे तौ बडा अपूर्व यह पदार्थ सदा निकट रहकर विस्मय उपजाता रहा करैगा॥१६॥जब हम वनवासके व्रतको पूरा करके फिर अपने राज्यमें चलेंगे तब यह मृग हमारे रन वासका भूषण होगा ॥ १७ ॥ हे प्रभो! भरतजीको आपको, हमारी सासोंको, वरन सबकोही यह दिव्य मृगरूप विस्मय

नानावर्णविचित्रांगोरत्नभूतोममाग्रतः ॥ द्योतयन्वनमव्यग्रंद्योततेशशिसन्निभः ॥ १४ ॥ अहोरूपमहोलक्ष्मीःस्वरसंपच्चशोभना ॥ मृगोऽद्भुतोविचित्रांगोहृदयंहरतीवमे ॥ १५ ॥ यदिग्रहणमभ्येतिजीवन्नेवमृगस्तव ॥ आश्चर्यंभूतंभवतिविस्मयंजनयिष्यति ॥ १६ ॥ समाप्तवनवासानांराज्यस्थानांचनःपुनः ॥ अंतःपुरेविभूषार्थोमृगएषभविष्यति ॥ १७ ॥ भरतस्यार्यपुत्रस्यश्वश्रूणांममचप्रभो ॥ मृगरूपमिदंदिव्यंविस्मयंजनयिष्यति ॥ १८ ॥ जीवन्नयदितेभ्येतिग्रहणंमृगसत्तमः ॥ अजिनंनरशार्दूलरुचिरंतुभविष्यति ॥ १९ ॥ निहतस्यास्यसत्वस्यजांबूनदमयत्वचि ॥ शष्पबृस्यांविनीतायामिच्छाम्यहमुपासितुम् ॥ २० ॥ कामवृत्तमिदंरौद्रंस्त्रीणामसदृशंमतम् ॥ वपुषात्वस्यसत्त्वस्यविस्मयोजनितोमम ॥ २१ ॥ तेनकांचनरोम्णातुमणिप्रवरशृंगिणा ॥ तरुणादित्यवर्णेननक्षत्रपथवर्चसा ॥२२॥

उत्पन्न करावैगा ॥ १८ ॥ हे पुरुषोत्तम! यदि इस मृगको आपजीता न पकड सकें, तौ इसका चर्मही परम मनोहर होगा ॥ १९ ॥ इस निहत मृगके सुवर्णमय चर्मको कुशासनपर बिछाकर उसपर बैठ तुम्हारे सहित भगवान्‌की पूजा करनेंको हमारा अभिलाष हुआहै ॥ २० ॥ यद्यपि स्वामीको इस प्रकारकी प्रेरणा करना स्त्रियोंके लिये स्वेच्छा चारिताहै,और भयंकर, व अनुचितभीहै, तथापि इस मृगकी विचित्र देहनें हमको बहुतही विस्मय उपजायाहै ॥ २१ ॥ उसके कंचनके समान रोम भली श्रेष्ठ मणिकी समान शृंग प्रभात कालीन सूर्यकी नांई और आकाशकी

राक्षस रामचंद्रजीके दो बाणोंसे मारे गये ॥ १३ ॥ हे रावण! हम किसीप्रकारसे रामचंद्रजीके बाणसे अपने प्राणोंको बचा तबसे तपस्वीका धर्म ग्रहण कर चित्तको रोके हुए इस स्थानमें योगका अवलंबन करके तपस्याकरतेहैं ॥ १४ ॥ तबसे हम फांसी हाथमें लिये यमराजकी समान उन चीर व मृगचर्म धारण किये धनुषधारी रामचंद्रको मानों प्रत्येक वृक्षके तले देखतेहैं ॥ १५ ॥ हम भयके मारे भीतहो निरन्तर सहस्रों रामको जहां तहां देखतेहैं । इस समस्तही वनमें मानों श्रीरामचंद्रजी हमको दिखाई देरहेहैं ॥ १६ ॥ हे राक्षसेश्वर ! हम रामचंद्र करके रहित स्थान मेंभी, बराबर केवल उन्हीं रामचंद्रको देखतेहैं ! वरन स्वप्नमेंभी उनको देखकर मैं डरके मारे जागतेकी समान इधर उधर दौडने लगताहूं

शरेणमुक्तोरामस्यकथंचित्प्राप्यजीवितम् ॥ इहप्रव्राजितोयुक्तस्तापसोऽहंसमाहितः ॥ १४ ॥ वृक्षेवृक्षेहिपश्यामिचीर कृष्णाजिनांबरम् ॥ गृहीतधनुषंरामंपाशहस्तमिवांतकम् ॥१५॥ अपिरामसहस्राणिभीतःपश्यामिरावण॥रामभूत मिदंसर्वमरण्यंप्रतिभातिमे ॥ १६ ॥राममेवहिपश्यामिरहितेराक्षसेश्वर ॥ दृष्ट्वास्वप्नगतंराममुद्भ्रमामीवचेतनः॥१७॥ रकारादीनिनामानिरामत्रस्तस्यरावण॥रत्नानिचरथाश्चैववित्रासंजनयंतिमे ॥१८॥ अहंतस्यप्रभावज्ञोनयुद्धंतेनते क्षमम् ॥ बलिंवानमुचिंवापिहन्याद्धिरघुनंदनः ॥१९॥रणेरामेणयुद्धचस्वक्षमांवाकुरुरावण ॥ नतेरामकथाकार्यायदि मांद्रष्टुमिच्छसि ॥ २० ॥ बहवःसाधवोलोकेयुक्ताधर्ममनुष्ठिताः ॥ परेषामपराधेनविनष्टाःसपरिच्छदाः ॥ २१ ॥

॥ १७ ॥ हे रावण ! हम तुमसे अधिक कहांतक कहैं कि हम रामचंद्रसे यहांतक डर गयेहैं, कि रत्न, रथ, इत्यादि जिन शब्दोंको आदिमें रकारहै उन शब्दोंके श्रवण करनेंसेभी हमें डर लगताहै *॥ १८ ॥ हम भली भांति उन रघुनंदन रामचंद्रजीके पराक्रमको जानतेहैं । इस कारणसे उनके साथ युद्ध करना तुमको उचित नहीं है ।वह राम बलि, अथवा नमुचिको संहार करनेंमेंभी समर्थ हैं ॥ १९ ॥ हे रावण! तुम रामचंद्रके सहित युद्ध करो वा न करो, परन्तु यदि हमको देखनेंका अभिलाष करतेहो तौ हमारे साथ श्रीरामचंद्रजीकी वार्ता मत करो नहीं तौ हम यहाँसे चले जायगे ॥ २० ॥ इस लोकमें धर्मका अनुष्ठान करनेंवाले योगयुक्त होकरभी बहुतसे पुरुष पराया

* "दोहा" रावण राके सुनतही रहत न मोहिं तन प्राण । तिन रघुनंदन सों न छल,करहु वचन मम बान ॥

बहुत मृगोंको मार डालतेहैं ॥ ३१ ॥ अधिक करके वह राजा लोक मृग वधमें उद्यत होकर बड़े २ वनोंमें मणिरत्न सुवर्णादि धातुरूप धनका संग्रहभी करतेहैं ॥ ३२ ॥ हे लक्ष्मण ! इस प्रकार धनधान्यकी राशिसे खजाना बढता है । इस लिये वनमें सबही पुरुषोंकी ब्रह्मकी नांई मनकी इच्छा सफल होतीहै ॥३३॥ हे लक्ष्मण ! अर्थकी इच्छा करनेंवाला पुरुष अर्थसाधन वस्तुके कारण निःसंशय चित्तसे उस कार्यमें लगै तो अर्थ शास्त्रज्ञ पंडित लोग उसकोही ठीक अर्थ कहते हैं ॥ ३३ ॥ इस कारणसे इस मृगके वध करनेंमें कुछ दुविधा करनेंकी आवश्यकता नहीं है। सुमध्यमा जानकीजी हमारे साथ इस मृग रत्नके श्रेष्ठ व सुवर्ण मय चर्म पर बैठेंगी ॥ ३५ ॥ क्या कदली और प्रियक मृगका चमडा

धनानिव्यवसायेनविचीयंतेमहावने ॥ धातवोविविधाश्चापिमणिरत्नसुवर्णिनः ॥ ३२ ॥ तत्सारमखिलंनृणांधनंनिचयवर्धनम् ॥ मनसाचिंतितंसर्वंयथाशुक्रस्यलक्ष्मण ॥ ३३ ॥ अर्थीयेनार्थकृत्येनसंव्रजत्यविचारयन् ॥ तमर्थमर्थशास्त्रज्ञाःप्राहुरर्थ्याःसुलक्ष्मण ॥ ३४ ॥ एतस्यमृगरत्नस्यपरार्ध्यैकांचनत्वचि ॥ उपवेक्ष्यतिवैदेहिमयासहसुमध्यमा ॥ ३५ ॥ नकादलीनप्रियकीनप्रवेणीनचाविकी ॥ भवेदेतस्यसदृशीस्पर्शेनेनेतिमेमतिः ॥ ३६ ॥ एषचैवमृगःश्रीमान्यश्चदिव्योनभश्चरः ॥ उभावेतौमृगौदिव्यौतारामृगमहीमृगौ ॥ ३७ ॥ यदिवायंतथायन्मांभवेद्वदसिलक्ष्मण ॥ मायैषाराक्षसस्येतिकर्तव्योस्यवधोमया ॥ ३८ ॥ एतेनहिनृशंसेनमारीचेनाकृतात्मना ॥ वनेविचरतापूर्वंहिंसितामुनिपुंगवाः ॥ ३९ ॥ उत्थायबहवोयेनमृगयायांजनाधिपाः ॥ निहताःपरमेष्वासास्तस्माद्वध्यस्त्वयंमृगः ॥ ४० ॥

क्या प्रवेणी नामक छागलका चमडा क्या मेषादिकका चमडा । कोई भी चमडा इस मृगके चमडे की समान कोमल, चिकना, व मनोहर हमको नहीं ज्ञात होताहै ॥ ३६ ॥ यह ही मृग श्रीमानहै, और आकाशमें जो मृग विचरण करतेहैं; वही श्रीमानहै । वस इससे वह तारा मृग (मृग शिरा नक्षत्र) और यह महीमृग यही दोनों मृग दिव्यहैं ॥३७॥ हे लक्ष्मण ! तुम कहतेहो कि यह राक्षसकी मायाहै; सो यदि वास्तवमें ऐसाही हो तोभी हमको इसका संहार करना कर्त्तव्यहीहै ॥ ३८ ॥ क्योंकि देखो इस दुरात्मा निर्दय मारीचनें वनमें घूमते २ अनेक मुनिश्रेष्ठोंको मारडालाहै ॥ ३९ ॥ और शिकार खेलनें जब राजालोग इस वनमें आये तो इस राक्षसनें इसी भांति मायामृग बनकर परम धनुर्द्धर अनेक

अयोग्यहैं निष्फलहैं ॥ ४ ॥ जो पुरुष साधारण स्त्रीके कहनेंसे माता,पिता, राज्य, और सुहृदगणोंको छोडकर वनमें चला आयाहै ॥ ५ ॥ सो हम तुम्हारे सामने अवश्यही युद्धमें खरका नाशकरनेंवाले उसरामकी प्राणसे अधिक प्यारी भार्याको हरण करेंगे ॥ ६ ॥ रे मारीच! हमनें अपनी बुद्धिसे अपने हृदयमें ऐसा निश्चय करही लियाहै, सो इन्द्रके सहित सुरासुरगणभी इसके विरुद्ध नहीं कर सकते! अर्थात् हमको इस संकल्पसे नहीं हटा सकते ॥ ७ ॥ यदि हम इस कार्यकेविषय में कर्त्तव्याकर्त्तव्य निश्चय करनेंको तुमसे पूछते, तब तुमको सके दोष, गुण, हानि, लाभ, उपाय, इत्यादि कहने उचितथे ॥ ८ ॥जो ज्ञानवान् मंत्री अपने ऐश्वर्य अभिलाषी होतेहैं वह राजा करके

यस्त्यक्त्वासुहृदोराज्यंमातरंपितरंतथा ॥ स्त्रीवाक्यंप्राकृतंश्रुत्वावनमेकपदेगतः ॥ ५ ॥ अवश्यंतुमयातस्यसंयुगे खरघातिनः ॥ प्राणैःप्रियतरासीताहर्तव्यातवसंनिधौ ॥ ६ ॥ एवंमेनिश्चिताबुद्धिर्हृदिमारीचविद्यते ॥ नव्याव र्तयितुंशक्यासेंद्रैरपिसुरासुरैः ॥ ७ ॥ दोषंगुणंवासंपृष्टस्त्वमेवंवक्तुमर्हसि ॥ अपायंवाउपायंवाकार्यस्यास्यविनि श्चये ॥ ८ ॥ संपृष्टेनतुवक्तव्यंसचिवेनविपश्चिता ॥ उद्यतांजलिनाराज्ञोयइच्छेद्भूतिमात्मनः ॥ ९ ॥ वाक्यमप्रति कूलंतुमृदुपूर्वंशुभंहितम् ॥ उपचारेणवक्तव्योयुक्तंचवसुधाधिपः ॥ १० ॥ सावमर्दंतुयद्वाक्यमथवाहितमुच्यते ॥ ना भिनंदेततद्राजामानार्थीमानवर्जितम् ॥ ११ ॥ पंचरूपाणिराजानोधारयंत्यमितौजसः ॥ अग्नेरिंद्रस्यसोमस्यय मस्यवरुणस्यच ॥ १२ ॥ औष्ण्यंतथाविक्रमंचसौम्यंदंडंप्रसन्नताम् ॥ धारयंतिमहात्मानोराजानःक्षणदाचर ॥ १३ ॥

पूछे जानेंपर हाथ जोड पूछे हुए विषयका उत्तर नम्रतासे निवेदन करतेहैं ॥ ९ ॥ कारण कि राजा ओंके समीप, उपचार युक्त मनोहर, मंगल जनक अप्रतिकूल वचनही कहनें ठीकहै ॥ १० ॥ मंगलजनक वचनसेभी यदि अपमान होताहो तो माननीय राजा लोग उस सन्मान रहित वचनोंको सुन प्रसन्न नहीं होते अथवा ग्रहण नहीं करते ॥ ११ ॥ हे निशाचर! अमिततेजवान् महात्मा भूपतिलोग, अग्नि, इन्द्र, चंद्र, यम और वरुण इन पंच देवताओंका रूप धारण करतेहैं ॥ १२ ॥ इससेही हे मारीच! उनमें, अग्निकी गरमाई, इन्द्रका पराक्रम; चंद्रमाकी

बडी अभिलाषा हुईहै, देखो; अब हम बहुत शीघ्रतासे इस मृगको पकडनेंके लिये जांयगे. ॥ ४८ ॥ इस मृगका चर्म सब मृगोंसे अच्छाहै, आज निश्चयही इसको प्राण त्याग करना पडेगा। लक्ष्मण ! हम जबतक इस मृगको नहीं मारडालें तब तक तुम सीताजीके साथ सावधानतासे आश्रममें टिके रहो ॥ ४९ ॥ हे लक्ष्मण ! हमें एक बाणसे शीघ्रही मृगको मार कर इसका चर्म ले आऊंगा जब तक हम लौट कर न आवें तब तक तुम सावधानीसे यहां पर रहना ॥ ५० ॥ हे लक्ष्मण! तुम जानकीको लेकर अति बलवान् बुद्धिमान, अच्छे कार्योंको करनेंमें चतुर, बली, श्रेष्ठ जटायुके साथ निरंतर शंकित और सावधानीसे यहां पर रहना ॥५१॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० आर० त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥४३॥

त्वचाप्रधानयाह्येषमृगोऽद्यनभविष्यति॥अप्रमत्तेनतेभाव्यमश्रमस्तेनसीतया॥४९॥यावत्पृषतमेकेनसायकेननिहन्म्यहम् ॥ हत्वैतच्चर्मआदायशीघ्रमेष्यामिलक्ष्मण ॥ ५० ॥ प्रदक्षिणेनातिबलेनपक्षिणाजटायुषाबुद्धिमताचलक्ष्मण ॥ भवाप्रमत्तः प्रतिगृह्यमैथिलींप्रतिक्षणंसर्वतएवशंकितः ॥ ५१ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०आर०त्रिचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४३ ॥ ७ ॥ ॥ तथातुतंसमुद्दिश्यभ्रातरंरघुनंदनः॥ दधारासिंमहातेजाजांबूनदमयत्सरुम् ॥१॥ ततस्त्रिविनतंचापमादायात्मविभूषणम् ॥ आबध्यचकलापौद्वौजगामोदग्रविक्रमः ॥ २ ॥ तंवन्यराजोराजेंद्रमापतंतंनिरीक्ष्यवै ॥ बभूवांतर्हितस्त्रासात्पुनःसंदर्शनेऽभवत् ॥ ३ ॥ बद्धासिर्धनुरादायप्रदुद्रावयतोमृगः ॥ तंस्मपश्यतिरूपेणद्योतयंतामिवाग्रतः ॥ ४ ॥

परम तेजस्वी रघुनंदन ! रामचंद्रजी भ्राता लक्ष्मणजीको इस प्रकारसे समझाय बुझाय सुवर्ण निर्मित मुष्टि लगा हुआ खड्ग हाथमें लेते हुए ॥ १ ॥ तिसके पीछे जिसका बिचला भाग तीन जगहसे झुका हुआथा, ऐसा अपना भूषण स्वरूप धनुष ग्रहण करके और दो तरकश बांध करके प्रचंड पराक्रमी श्रीरामचंद्रजी गये ॥ २ ॥ वह मृगश्रेष्ठ मृगोंका राजा रामचंद्रजीको अपनें सन्मुख आता हुआ देखकर भयके मारे अन्तरध्यानहो फिर थोडी दूरपै उनको दीख पडा ॥ ३ ॥ श्रीरामचंद्रजीभी खड्ग और धनुष बाण धारण करके जिस ओर मृगथा उस ओर को धाये । और देखते हुए कि मृग अपनें रूपसे चारों ओर को प्रकाश करता हुआ मानों सामनेंही विराजरहाहै ॥ ४ ॥

जीकी प्रेरणासे, व भाईकी सुहृदताके प्रेमसे, लक्ष्मणजीभी सम्भ्रान्तचित्तहो रामके निकट चले जायँगे ॥ २१ ॥ इस प्रकार राम लक्ष्मण दोनोंही जब उस आश्रममें चले जायंगे, तब हम सीताको सुखसे हरणकरेंगे। जिस प्रकार इन्द्रनें शचीका हरण कियाथा ॥ २२ ॥ हे सुव्रत निशाचर! मारीच ! तुम इस प्रकार कार्यके पूरा करके जहां इच्छा हो वहां चले जाना। इस कार्यके पूरा होनेंपर हम तुमको आधा राज्य देंगे ॥ २३ ॥ हे शुभदर्शन ! तुम इस कार्यको पूर्ण करनेंके लिये दंडकारण्यके मार्गमें मंगल सहित चलो, हमभी रथपर चढकर तुम्हारे पीछे२ चलतेहैं ॥ २४ ॥ हम रामको ठगकर बिना युद्ध किये सीताको प्राप्तकर कृतकार्य हो फिर लंकापुरीको तुम्हारे सहित लौटेंगे ॥ २५ ॥ हे

अपक्रांतेचकाकुत्स्थेलक्ष्मणेचयथासुखम् ॥ आहरिष्यामिवैदेहींसहस्राक्षःशचीमिव ॥ २२ ॥ एवंकृत्वात्विदंकार्यंयथेष्टंगच्छराक्षस ॥ राज्यस्यार्धंप्रदास्यामिमारीचतवसुव्रत ॥ २३ ॥ गच्छसौम्यशिवंमार्गंकार्यस्यास्यविवृद्धये ॥ अहंत्वानुगमिष्यामिसरथोदंडकावनम् ॥ २४ ॥ प्राप्यसीतामयुद्धेनवंचयित्वातुराघवम् ॥ लंकांप्रतिगमिष्यामिकृतकार्यःसहत्वया ॥ २५ ॥ नोचेत्करोषिमारीचहन्मित्वामहमद्यवै ॥ एतत्कार्यमवश्यंमेबलादपिकारिष्यसि ॥ राज्ञोविप्रतिकूलस्थोनजातुसुखमेधते ॥ २६ ॥ आसाद्यतंजीवितसंशयस्तेमृत्युर्ध्रुवोह्यद्यमयाविरुध्यतः ॥ एतद्यथावत्परिगण्यबुद्ध्यायदत्रपथ्यंकुरुतत्तथात्वम् ॥ २७ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०आर०कां०चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥ ॥ छ ॥ आज्ञप्तोरावणेनेत्थंप्रतिकूलंचराजवत् ॥ अब्रवीत्परुषंवाक्यंनिःशंकोराक्षसाधिपम् ॥ १ ॥

निशाचर! मारीच ! यदि तुम हमारे वचनोंके प्रतिकूल करोगे तो अभी हम तुमको मार डालेंगे, कोई पुरुष राजाके विरुद्ध आचरण करके सुख संपत्ति नहीं पासकता ॥ २६ ॥ रामचंद्रके निकट जानेंसे तुम्हारे जीवनमें संशय मात्र है, परन्तु हमारे साथ विरुद्धाचरण करनेंसे इसी समय तुम्हारीमृत्यु निश्चय होगी; सो अपनी बुद्धिसे यथोचित विचार कर इस विषयमें जो कर्तव्य हो सोकरो ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥ मारीच राक्षसपति रावण करके राजाकी समान मनोगत विषयमें

और उसको दृढ धनुष्यपर चढा बलसे खेंच जलती अग्निकी समान प्रकाशित तिस मृगपर ॥ १४ ॥ ब्रह्माका बनाया हुआ अतिप्रज्वलित अस्त्र, उस मृगरूपी राक्षस मारीचके लायकही छोडा॥१५॥शर श्रेष्ठ ब्रह्मास्त्रनें छूटतेही वज्रकी समान मृगरूपी मारीचका हृदय विदारण करडाला तब वह मारीच अतिशय आतुर होकर ताडके वृक्ष समान ऊपरको उछल पृथ्वीपर गिर पडा ॥ १६ ॥ और क्षीण प्राण मरनेंके निकट पहुँच पृथ्वी पर गिरकर भयंकर शब्दसे बहुत चिल्लाया । उस राक्षसनें मरनेंके समय वह अपनी बनावटी छलकी देह त्यागन करदी ॥ १७ ॥ अनन्तर मारीच मरनेंके समय उस मायामय देहको त्याग रावणकी आज्ञा स्मरण कर विचारनें लगाकि किस उपायका अवलंबन करनेंसे सीता लक्ष्मणको यहां

संधायसदृढंचापेविकृष्यबलवद्बली ॥ तमेवमृगमुद्दिश्यज्वलंतमिवपन्नगम् ॥ १४ ॥ मुमोचज्वलितंदीप्तमस्त्रंब्रह्म विनिर्मितम् ॥ सभृशंमृगरूपस्यविनिर्भिद्यशरोत्तमः ॥ १५ ॥ मारीचस्यैवहृदयंबिभेदाशनिसन्निभः॥ तालमात्रम थोत्प्लुत्यन्यपतत्सभृशातुरः॥१६॥व्यनदद्भैरवंनादंधरण्यामल्पजीवितः॥म्रियमाणस्तुमारीचोजहौतांकृत्रिमांतनुम्॥ ॥ १७ ॥ स्मृत्वातद्वचनंरक्षोदध्यौकेनतुलक्ष्मणम् ॥ इहप्रस्थापयेत्सीतातांशून्येरावणोहरेत् ॥ १८ ॥ सप्राप्तकाल माज्ञायचकारचततःस्वनम् ॥ सदृशंराघवस्यैवहासीतेलक्ष्मणेतिच ॥ १९ ॥ तेनकर्मणिनिर्विद्धःशरेणानुपमेनहि ॥ मृगरूपंतुतत्त्यक्त्वाराक्षसंरूपमास्थितः ॥ २० ॥ चक्रेससुमहाकायोमारीचोजीवितंत्यजन् ॥ तंदृष्ट्वापतितंभूमौरा क्षसंभीमदर्शनम् ॥ २१ ॥ रामोरुधिरसिक्तांगंचेष्टमानंमहीतले॥ जगाममनसासीतांलक्ष्मणस्यवचःस्मरन् ॥ २२ ॥

भेजें, और रावण शून्य आश्रमको पाकर सीताको हरण करले ॥ १८ ॥ यह विचारकर अपना काल आया हुआ जान रावणकी उपदेश कीहुई सलाहके अनुसार, "हा सीते! हा लक्ष्मण!" कहकर रामचंद्रजीके समान कंठस्वर बनाकर उस राक्षसनें चिल्लाना आरंभ किया ॥ १९ ॥ श्री रामचंद्रजीके अनुपम बाणसे उसको मर्म स्थानमें इतना विंध गयाथा; कि फिर वह मृगरूप धारण नहीं कर सका और राक्षसमूर्ति ग्रहणकी॥ २०॥ मरनेंके समय मारीचकी देह बडी भारी होगई उस भयंकर निशाचर मारीचको भूमिमें ॥ २१ ॥ रुधिरसे लिपटा पृथ्वीमें लोटता हुआ श्रीरा

मूलहोतेहैं। इस कारण सबही अवस्था में भली भांति राजाकी रक्षाकरनी ठीकहै ॥ १० ॥ हे निशाचर! अति तीक्ष्ण स्वभाव वाला सबका अनभल चाहनेंवाला महात्मा ओंके आगे नम्रतासे नहीं रहनेवाला राजा राज्यका पालन नहीं कर सकताहै ॥११॥ जो मंत्री लोग बडी कठोर आज्ञासें राजासें कहकर प्रकाशित करा देतेहैं; फिर वे लोगभी राजासे दुःख पातेहैं! जैसे अयोग्य ऊंचे रथ हांकनेंवाले सारथीभी मालिकके साथ झटके सहतेहैं ॥ १२ ॥ इस लोकमें अनेक मनुष्य उचित धर्मानुष्ठान किये अपने पदके योग्य पराये अपराधसे बंधुबांधवोंसहित नाशको प्राप्त हो गयेहैं ॥ १३ ॥ हे दशानन! प्रजा प्रतिकूलाचारी तीक्ष्णस्वभाव राजा करके रक्षमान होकर, शियारों करके रक्षित ससा

राज्यंपालयितुंशक्यंनतीक्ष्णेनानिशाचर ॥ नचातिप्रतिकूलेननाविनीतेनराक्षस ॥ ११ ॥ येतीक्ष्णमंत्राःसचिवाभुज्यं
तेसहतेनवै ॥ विषमेषुरथाःशीघ्रंमंदसारथयोयथा ॥ १२ ॥ बहवःसाधवोलोकयुक्तधर्ममनुष्ठिताः ॥ परेषामपराधे
नविनष्टाःसपरिच्छदाः ॥ १३ ॥ स्वामिनाप्रतिकूलेनप्रजास्तीक्ष्णेनरावण ॥ रक्ष्यमाणानवर्धंतेमृगागोमायुनाय
था ॥ १४ ॥ अवश्यंविनाशिष्यंतिसर्वेरावणराक्षसाः ॥ येषांत्वंकर्कशोराजादुर्बुद्धिरजितेंद्रियः ॥ १५ ॥ तदिदं
काकतालीयंघोरमासादितंमया ॥ अत्रत्वंशोचनीयोसिससैन्योविनशिष्यसि ॥ १६ ॥ मांनिहत्यतुरामोसावचिरा
त्त्वांवधिष्यति ॥ अनेनकृतकृत्योस्मिम्रियेचाप्यरिणाहतः ॥ १७ ॥ दर्शनादेवरामस्यहतंमामवधारय ॥ आत्मानं
चहतंविद्धिहृत्वासीतांसबांधवम् ॥ १८ ॥

आदि मृग गणोंकी नांई आगे प्रजा वृद्धिको प्राप्त नहीं होती ॥ १४ ॥ अरे रावण! तुम खोटी बुद्धिवाले हो इन्द्रियोंके वश हुए हो, कैडे स्वभाववाले हो, ऐसे जो तुम जिनके राजा हो वह समस्तही निशाचर अवश्यही मृत्युके ग्रास हो जांयगे ॥ १५ ॥ जिससे कि तुम ससैन्य भावना की हुई मृत्युसे भरे हुए शोचनीय हो, वैसेही तुम्हारा हमारे ऊपरभी यह घोरदुःख आन पडाहै ॥ १६ ॥ रामचंद्रजी हमको मारकर फिर तुम्हारा संहार करेंगे! युद्ध करके शत्रुके हाथसे मारे जानेंपर हम तो कृतकृतार्थहो जांयगे ॥ १७ ॥ परन्तु तुम निश्चय जानों कि, हम तो रामको देख

कारण तुम वेगही शरणार्थी अपने भ्राताकी रक्षाके लिये दौडो ॥ ३ ॥ गाय बैल जिस प्रकार सिंहके वशमें पडताहै,तुम्हारे भइयाभी वैसेही राक्षसके
वशमें पडेहैं। परन्तु लक्ष्मणजीको मृग मारनेको गमन करनेंके समय जो रामचंद्रजी आज्ञा देगयेथे उसको याद करके सीताजीसे इस प्रकार कहे
जानें परभी रामचंद्रजीके समीप नहीं गये ॥ ४ ॥ तब सीताजी नितान्त क्षुभित होकर लक्ष्मणजीसे बोलीं कि हे लक्ष्मण ! तुम रामचंद्रजीके मित्र
रूपी शत्रुहो ॥ ५ ॥ देखो तुम इस प्रकारकी अवस्थामेंभी उनकी रक्षा करनेंके लिये नहीं जाते। इस्से समझ पडा कि तुम हमको लेलेनेंके
लिये रामचंद्रजीके विनाशकी कामना करतेहो ॥ ६ ॥ निश्चयही हमारे प्रति लुभानेंसे तुम उनके समीप नहीं जाते इसी कारणसे रामचन्द्रजीकी
रक्षसांवशमापन्नंसिंहानामिवगोवृषम् ॥ नजगामतथोक्तस्तुभ्रातुराज्ञायशासनम् ॥ ४ ॥ तमुवाचततस्तत्रक्षुभिताजन
कात्मजा ॥ सौमित्रेमित्ररूपेणभ्रातुस्त्वमसिशत्रुवत् ॥ ५ ॥ यस्त्वमस्यामवस्थायांभ्रातरंनाभिपद्यसे ॥ इच्छसित्वं
विनश्यंतंरामंलक्ष्मणमत्कृते ॥ ६ ॥ लोभात्तुमत्कृतेनूनंनानुगच्छसिराघवम् ॥ व्यसनंतेप्रियंमन्येस्नेहोभ्रातरिना
स्तिते ॥ ७ ॥ तेनतिष्ठसिविश्रब्धंतमपश्यन्महाद्युतिम् ॥ किंहिसंशयमापन्नेतस्मिन्निहमयाभवेत् ॥ ८ ॥ कर्तव्य
मिहतिष्ठंत्यायत्प्रधानस्त्वमागतः ॥ एवंब्रुवाणांवैदेहींबाष्पशोकसमन्विताम् ॥ ९ ॥ अब्रवील्लक्ष्मणस्त्रस्तांसीतांमृ
गवधूमिव ॥ पन्नगासुरगंधर्वदेवदानवराक्षसैः ॥ १० ॥ अशक्यस्तववैदेहिभर्ताजेतुंनसंशयः ॥ देविदेवमनुष्येषुगंध
र्वेषुपतत्रिषु ॥ ११ ॥ राक्षसेषुपिशाचेषुकिन्नरेषुमृगेषुच ॥ दानवेषुचघोरेषुनसविद्येतशोभने ॥ १२ ॥
यह विपद तुमको प्रिय लगतीहै। और तुमको उनसे कुछ स्नेह नहीं है ॥ ७ ॥ इसी कारण तुम महाद्युतिमान् रामचन्द्रजीको न देख
करभी निश्चिन्त बैठे हो। किन्तु तुम जो रामचन्द्रजीके आधीनमें होकर वनमें आये हो। तो उनके यहां संशयापन्न होनेंसे ॥ ८ ॥ मुझसे यहां
रहकर क्या कार्य होगा जब वैदेहीजीनें आँखोंमें आंसू भरकर यह कहा कि तुम्हारी तो यह दशा रही तो अब हम क्या करें ॥ ९ ॥ तब मृगीके
समान डरी हुई सीताजीसे लक्ष्मणजी बोले कि हे विदेहकुमारी ! नाग, असुर, गन्धर्व, देव, दानव, राक्षस ॥ १० ॥ कोईभी आपके स्वामीको
जीतनेंमें समर्थ नहींहैं; इसमें कुछभी सन्देह नहींहै। हे देवि ! मनुष्य, गन्धर्व, पक्षी ॥ ११ ॥ राक्षस, पिशाच, किन्नर, मृग, व अतिघोर इनमें

गलहो हम चलतेहैं ॥ ४ ॥ राक्षसपति रावण मारीचके यह वचन सुन परम हर्षित हो उस्से भली भांति भेंटा और यह वचन बोला ॥५॥ कि तुमनें हमारे अभिप्रायके अनुसार जब कार्य करनेंको कहा तब यही वचन तुम्हारा वीरोचित हुआ। पहले तुम एक साधारण मारीच राक्षसथे पर अब तुम हमारी समान हुए ॥ ६ ॥ अब तुम हमारे साथ शीघ्रही इस रत्नविभूषित अंतरिक्षमें टिके हुए रथपर जिसमें कि पिशाचोंकी समान गधे जुत रहेहैं बैठो ॥ ७॥ फिर वहां पहुंचकर विदेह राजकुमारी सीता को लुभाकर इच्छानुसार स्थानमें चल देना। तब हम राम लक्ष्मण स

प्रहृष्टस्त्वभवत्तेनवचनेनसराक्षसः ॥ परिष्वज्यसुसंश्लिष्टमिदंवचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥ एतच्छौटीर्ययुक्तंतेमच्छंदवश
वर्तिनः ॥ इदानीमसिमारीचःपूर्वमन्योहिराक्षसः ॥ ६ ॥ आरुह्यतामयंशीघ्रंखगोरत्नविभूषितः ॥ मयासहरथोयु
क्तःपिशाचवदनैःखरैः ॥ ७ ॥ प्रलोभयित्वावैदेहींयथेष्टंगतुमर्हसि ॥ तांशून्येप्रसभंसीतामानयिष्यामिमैथिली
म् ॥ ८ ॥ ततस्तथेत्युवाचैनंरावणंताटकासुतः ॥ ततोरावणमारीचौविमानमिवतंरथम् ॥ ९ ॥ आरुह्याययतुःशी
घ्रंतस्मादाश्रममंडलात् ॥ तथैवतत्रपश्यंतौपत्तनानिवनानिच ॥ १० ॥ गिरींश्चसरितःसर्वाराष्ट्राणिनगराणिच ॥ समे
त्यदंडकारण्यंराघवस्याश्रमंततः ॥ ११ ॥ ददर्शसहमारीचोरावणोराक्षसाधिपः ॥ अवतीर्यरथात्तस्मात्ततःकांच
नभूषणात् ॥ १२ ॥ हस्तेगृहीत्वामारीचंरावणोवाक्यमब्रवीत् ॥ एतद्रामाश्रमपदंदृश्यतेकदलीवृतम् ॥ १३ ॥

हित शून्य आश्रममें प्रवेश करके बल पूर्वक सीताको हर लावेंगे ॥८॥ऐसा सुनकर ताडका तनय मारीचने कहा कि बहुत अच्छा चलिये। तत्पश्चात् रावण व मारीच विमान समान उस रथपर चढ ॥ ९ ॥ जल्दीसे उस आश्रमसे चले और अनेक भांतिके पत्तन वन ॥ १० ॥ पर्वत नदी राज्य व नगरोंको देखते भालते दंडकारण्यमें आये जहां रामचंद्रजीका आश्रमथा ॥ ११ ॥ और आश्रमको मारीचके सहित रावणनें देखा और दोनों जने उस रत्न भूषित रथसे उतरे ॥ १२ ॥ और मारीचका हाथ पकडकर रावण कहनें लगा कि हे सखे! वनमें केलोंके वृक्षोंसें घि

जानकीजीके नेत्र लाल हो आये ॥ २० ॥ वह कठोर वचन सत्यवादी लक्ष्मणजीसे बोलीं कि रे नृशंस ! कुलनाशक ! तुम श्रीरामचंद्र को मरवाकर दया करके हमारी रक्षा करनेंको तैयार हुए हो, इस कारणसे यह ध्यान आर्यजनोचित नहींहै ॥ २१ ॥ हमनें जाना कि रामचन्द्रजीकी यह बडी भारी विपद तुम्हारी परम प्यारी हुईहै इसी कारण तुम उनको विपदमें पडा हुआ देखकर ऐसा कहतेहो॥२२॥ हे लक्ष्मण ! तुम्हारी समान सदा क्रूर स्वभाव व गुप्त पापी शत्रुके मनमें जो ऐसा निन्दनीय पाप रहैगा तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?॥२३॥तुम्हारा स्वभाव बड़ा खोटा है रामचन्द्रजी जो अकेले वनको आनें लगे, तो हमारा लालच करके तुमभी अकेले ही उनके साथ आये । अथवा छिपकर

अब्रवीत्परुषंवाक्यंलक्ष्मणंसत्यवादिनम् ॥ अनार्यकरुणारंभनृशंसकुलपांसन ॥ २१ ॥ अहंतवप्रियंमन्येरामस्य व्यसनंमहत् ॥ रामस्यव्यसनंदृष्ट्वातेनैतानिप्रभाषसे ॥ २२ ॥ नैवचित्रंसपत्नेषुपापंलक्ष्मणयद्भवेत् ॥ त्वद्विधेषु नृशंसेषुनित्यंप्रच्छन्नचारिषु ॥ २३ ॥ सुदुष्टस्त्वंवनेराममेकमेकोनुगच्छसि ॥ ममहेतोःप्रतिच्छन्नःप्रयुक्तोभर तेनवा ॥ २४ ॥ तन्नसिद्ध्यतिसौमित्रेतवापिभरतस्यवा ॥ कथमिंदीवरश्यामंरामंपद्मनिभेक्षणम् ॥ २५ ॥ उपसंश्रित्यभर्तारंकामयेयंपृथग्जनम् ॥ समक्षंतवसौमित्रेप्राणांस्त्यक्ष्याम्यसंशयम् ॥ २६ ॥ रामंविनाक्ष णमपिनैवजीवामिभूतले ॥ इत्युक्तःपरुषंवाक्यंसीतयारोमहर्षणम् ॥ २७ ॥ अब्रवील्लक्ष्मणःसीतांप्रांजलिःसजि तेंद्रियः ॥ उत्तरंनोत्सहेवक्तुंदैवतंभवतीमम ॥ २८ ॥

भरतके भेजे हुए तुम स्वामीके साथ आये हुए हो ॥ २४ ॥ किन्तु हे लक्ष्मण ! तुमनें या भरतनें जो मनमें सोचाहै, वह सिद्ध नहीं होगा। क्योंकि हम पद्मपलाशलोचन, नीलोत्पलश्याम ॥ २५ ॥ श्रीरामचन्द्रजीकी स्त्री होकर किस प्रकारसे अन्यजनकी अभिलाषा करेंगी। इससे हे लक्ष्म ण ! हम तुम्हारे सामने निश्चयही प्राण त्याग देंगी ॥ २६ ॥ क्योंकि रामचन्द्रजीके विना क्षण कालभी हम इस लोकमें प्राण धारण नहीं कर सकतीं। सीताजीके इस प्रकार रोमहर्षण कठोर वचन ॥ २७ ॥ सुन जितेन्द्रिय लक्ष्मणजी हाथ जोडकर उनसे बोले कि आप हमारी साक्षात्

पलके नये २ पत्ते खाता हुआ घूमने लगा ॥ २२ ॥ कभी केलोंकी बगियामें और कर्णिकारके वनमें प्रवेश करके और कभी श्रीसीताजीकी दृष्टिके सन्मुख जाकर इस प्रकार आश्रमके इधर उधर वह मृगमन्द गतिसे चलनें लगा ॥ २३ ॥ पीठपर सुवर्णके द्वारा चित्र विचित्र होनेंसे उसकाल इस महामृगकी अतिशय शोभा हुई थी, वह यथा सुखसे रामचंद्रजीके निकट घूमनें लगा ॥ २४ ॥ आश्रममें घूमनेंके समय कभी दौडता, कभी ठिठककर खडा होजाता कभी मुहूर्त भरतक आगेको आश्रममें चलता, कभी फिर झटपट लौट आता ॥ २५ ॥ कभी इधर उधर खेलता, कभी पृथ्वी पर लेट जाता,कभी आश्रमके द्वारपर आकर सुखसे चरते हुए मृग झुंडोंके साथ

कदलीगृहकंगत्वाकर्णिकारानितस्ततः ॥ तमाश्रमंमंदगतिंसीतासंदर्शनंततः ॥ २३ ॥ राजीवचित्रपृष्ठःसविरराज महामृगः ॥ रामाश्रमपदाभ्याशेविचचारयथासुखम्॥ २४ ॥ पुनर्गत्वानिवृत्तश्चविचचारमृगोत्तमः ॥ गत्वामुहूर्तंत्वरयापुनःप्रतिनिवर्तते ॥ २५ ॥ विक्रीडंश्चपुनर्भूमौपुनरेवनिषीदति ॥ आश्रमद्वारमागम्यमृगयूथानिगच्छति॥२६॥ मृगयूथैरनुगतःपुनरेवनिवर्तते॥ सीतादर्शनमाकांक्षन्राक्षसोमृगतांगतः ॥ २७॥ परिभ्रमतिचित्राणिमंडलानिविनिष्पतन् ॥ समुद्वीक्ष्यचसर्वेतंमृगायेऽन्येवनेचराः ॥ २८ ॥ उपगम्यसमाघ्रायविद्रवंतिदिशोदश ॥ राक्षसःसोपितान्वन्यान्मृगान्मृगवधेरतः॥२९॥ प्रच्छादनार्थंभावस्यनभक्षयतिसंस्पृशन्॥तास्मिन्नेवततःकालेवैदेहीशुभलोचेन॥३०॥

चरनें लगता ॥ २६ ॥ कभी मृगोंके साथही साथ आकर फिर सीताजीको दिखाई देनेंकी वांछासे फिर आश्रममें चला आता जानकीके दर्शनकी इच्छासे वह राक्षस मृग होगया ॥ २७ ॥ इस प्रकार वह मृगताको प्राप्त होकर विचित्र मंडल देखता कूद फांद करनें लगा इसकी कूद फांद देख और वनके मृग ॥ २८ ॥ उसके निकट आये और उसको सूंघतेही दशोंदिशाओंको भागनें लगे । मारीच यद्यपि सदा मृगोंके मारनें में रतथा ॥ २९ ॥ तथापि उसनें अपना भाव छिपानेंके लिये उनमृगोंको भक्षण नहीं किया केवल स्पर्श करनें लगा । इसी समय शुभ

भीजकर रोते २ लक्ष्मणजीसे बोलीं ॥ ३५ ॥ हे लक्ष्मण! रामके विना हम गोदावरीमें डूब मरेंगी अथवा फांसीसे प्राण त्याग करेंगी अथवा किसी ऊंचे पर्वत इत्यादिक पर चढकर वहांसे अपनी देहको नीचे गिरा देंगी ॥ ३६ ॥ या तीक्ष्ण विष पान करेंगी, अथवा अग्निमें प्रवेश करेंगी। तथापि श्रीरामचन्द्रजीके विना और किसी पुरुषको हम कभी स्पर्श नहीं करेंगी ॥ ३७ ॥ सीताजी इस प्रकार शोक युक्त होकर रोते २ लक्ष्मणजीसे ऐसा कहकर दुःखके मारे अपनीछाती पीटनें लगीं (सर्व राक्षसोंके नाश विना मेरी उदरपूर्ति न होगी यह शास्त्र की ध्वनि है) ॥ ३८ ॥ लक्ष्मणजीनें विशाल नयना जनकदुलारी सीताजीको महा आरत भावसे रोते देखकर बहुत समझाया बुझाया परन्तु फिर जानकी

गोदावरींप्रवेक्ष्यामिहीनारामेणलक्ष्मण ॥ आबंधिष्येऽथवात्यक्ष्येविषमेदेहमात्मनः॥ ३६ ॥पिबामिवाविषंतीक्ष्णंप्रवेक्ष्यामिहुताशनम् ॥ नत्वहंराघवादन्यंकदापिपुरुषं स्पृशे ॥ ३७ ॥ इतिलक्ष्मणमाश्रुत्यसीताशोकसमन्विता ॥ पाणिभ्यांरुदतीदुःखादुदरंप्रजघानह ॥ ३८ ॥ तामार्तरूपांविमनारुदंतींसौमित्रिरालोक्यविशालनेत्राम् ॥ आश्वासयामासनचैवभर्तुस्तंभ्रातरंकिंचिदुवाचसीता ॥ ३९ ॥ ततस्तुसीतामभिवाद्यलक्ष्मणःकृतांजलिःकिंचिदभिप्रणम्य॥ अवेक्षमाणोबहुशःसमैथिलींजगामरामस्यसमीपमात्मवान् ॥ ४० ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेपंचचत्वारिंश सर्गः॥४५॥ तयापरुषमुक्तस्तुकुपितोराघवानुजः॥सविकांक्षन्भृशंरामंप्रतस्थेनचिरादिव ॥१॥

जीनें अपने देवर लक्ष्मणजीसे और कुछ न कहा ॥ ३९ ॥ तिसके पिछे जितेन्द्रिय और विशुद्ध चित्त लक्ष्मणजी हाथ जोड प्रणाम कर कुछ एक विनती करते हुए और वारंवार उनकी ओर देखते दुःखित हो रामचन्द्रजीके निकट को चले ॥ ४० ॥ ❋ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि काव्ये पंडितज्वालाप्रसादमिश्र कृत भाषा टीकायांआर० पंचचत्वारिंशःसर्गः॥४५॥लक्ष्मणजी जानकीजीकी कटूक्तिसे पीडित हो क्रोधमें भर श्री

* कूर्म पुराणसे भी सिद्धहै कि जानकीजीकी यही प्रतिज्ञा पूर्णथी कि अन्य पुरुषको स्पर्शन करूंगी अग्निमें प्रवेश कर जाऊंगी इससेभी ध्वनि निकलतीहै कि जानकी अग्निमें प्रवेश कर गईथीं और यह मायाकी जानकीनें लक्ष्मणसे ऐसे वचन कहे क्योंकि मायासेही ऐसा होताहै

और लक्ष्मणजी दोनों जनोंनें इधर उधर देखते वहां आये और इस मृगको देखा ॥ ४ ॥ परन्तु लक्ष्मणजी मृगको देख शंकितहो श्रीरामचंद्र जीसे कहनें लगे कि महाराज ! हमें तो ऐसा समझ पडताहै कि यह मृग रूपी निशाचर मारीचहै ॥ ५ ॥ यह पापात्मा मारीच मृगरूप धारण करके परम हर्ष सहित आखेटको वनमें आये हुए राजा लोगोंको मारडाला करताहै ॥६॥ यह राक्षस मायाका जाननें वालाहै, इसनें मायाके बलसे इस प्रकारका मृगरूप धारण करलियाहै । हे पुरुषसिंह ! यह मृगरूप गन्धर्व नगरकी समान अब रमणीय और परम दीप्ति युक्तहै परन्तु वास्तवमें यह मृग नहींहै ॥ ७ ॥ हे रघुनंदन! इस प्रकार रत्न चित्रित मृगकभी पृथ्वी पर नहीं हो सकता । हे जगत्नाथ ! यह निश्चयही माया है

शंकमानस्तुतंदृष्ट्वालक्ष्मणोवाक्यमब्रवीत् ॥ तमेवैनमहंमन्येमारीचंराक्षसंमृगम् ॥ ५ ॥ चरंतोमृगयांहृष्टाःपापेनोपाधिनावने॥अनेननिहताराजराजानःपापरूपिणा॥६॥अस्यमायाविदोमायामृगरूपमिदंकृतम् ॥ भानुमत्पुरुषव्याघ्रगंधर्वपुरसन्निभम् ॥ ७ ॥ मृगोह्येवंविधोरत्नविचित्रोनास्तिराघव ॥ जगत्यांजगतीनाथमायैषाहिनसंशयः॥ ८ ॥ एवंब्रुवाणंकाकुत्स्थंप्रतिवार्यशुचिस्मिता ॥ उवाचसीतासंहृष्टाच्छद्मनाहृतचेतना ॥ ९ ॥ आर्यपुत्राभिरामोसौमृगोहरतिमेमनः ॥ आनयैनंमहाबाहोक्रीडार्थंनोभविष्यति ॥ १० ॥ इहाश्रमपदेऽस्माकंबहवःपुण्यदर्शनाः॥ मृगाश्चरंतिसहिताश्चमराःसृमरास्तथा ॥ ११ ॥ ऋक्षाःपृषतसंघाश्चवानराःकिन्नरास्तथा ॥ विहरंतिमहाबाहोरूपश्रेष्ठामहाबलाः ॥ १२ ॥ नचान्यःसदृशोराजन्दृष्टःपूर्वंमृगोमया ॥ तेजसाक्षमयादीप्त्यायथाऽयंमृगसत्तमः ॥ १३ ॥

इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ८ ॥ जब लक्ष्मणजी इस प्रकार कहनें लगे तब कुछ एक मुस्कोई हुई सीताजीनें राक्षसके छलसे मोहितहो लक्ष्मणजीको इस कहनेसे रोक दिया और आप परम हर्षितहो बोलीं ॥९ ॥हे आर्यपुत्र! इस अभिराम मृगनें हमारे मनको हरण कियाहै हे महाबाहो! इसको पकड लाओ हम इस मृगके साथ खेला करेंगी ॥ १० ॥ क्योंकिहमारे इस पुण्याश्रममें बहुतसे पुण्यदर्शन मृगगण चमर सृमर घूमा करतेहैं, जिनकी काली और सफेद पूछ होतीहै ॥ ११ ॥ और ऋक्ष, पृषत वानर, व किन्नरादिभी घूमतेहैं यह सब महाबलवान् और रूपवान् हैं ॥ १२ परन्तु हे राजन्! पहले कभी इस प्रकारका मृग हमारी दृष्टिमें नहीं आया, तेज क्षमा कान्तिमें यह मृगोंमें श्रेष्ठ ज्ञात होताहै ॥ १३ ॥

ऐसा टीप टापका संन्यासी वेश बनाया, जिस प्रकार तिनकोसे कोई कुएँको पाटै, और वहां आनें वाला चट उसमें गिरे ॥ १० ॥ ऐसा छद्मवेशी
साधुका वेश धारण किये हुए रावण उन यशस्विनी रामदयिता जानकीजीकी ओर देखकर खड़ा हुआ ॥ ११ ॥ सुन्दर स्वरूप, दशनपंक्ति जि
नकी मनोहर, वदन पूर्णचन्द्रसमान जो जानकीजी पर्णशालामें बैठी अपने पतिके शोकसे पीडित होरहीथीं ॥ १२ ॥ तिन कमलनेत्रा पीताम्बर
धारण किये जानकीजीके निकट वह निशाचर हर्ष सहित पहुंचा ॥ १३ ॥ऐसी जानकीजीको देख रावण मारके बाणसे माराहुआ पीडित हुआ उस स
मय रावणने वेदका उच्चारण करके जानकीजीकी प्रशंसा करके कहा॥१४॥तुम तीनों लोकमें उत्तमहो; और पद्मिनीकी समान मनोहर कमल फूलों
अतिष्ठत्प्रेक्ष्यवैदेहींरामपत्नींयशस्विनीम् ॥ तिष्ठन्संप्रेक्ष्यचतदापतींरामस्यरावणः ॥ ११ ॥ शुभांरुचिरदंतो
ष्ठींपूर्णचंद्रनिभाननाम् ॥ आसीनांपर्णशालायांबाष्पशोकाभिपीडिताम् ॥ १२ ॥ सतांपद्मपलाशाक्षींपीतकौ
शेयवासिनीम् ॥ अभ्यगच्छतवैदेहींहृष्टचेतानिशाचरः ॥ १३ ॥ दृष्ट्वाकामशराविद्धोब्रह्मघोषमुदीरयन् ॥ अ
ब्रवीत्प्रश्रितंवाक्यंरहितेराक्षसाधिपः ॥ १४ ॥ तामुत्तमांत्रिलोकानांपद्महीनामिवश्रियम् ॥ विभ्राजमानांवपु
षारावणःप्रशशंसह ॥ १५ ॥ रौप्यकांचनवर्णाभेपीतकौशेयवासिनि ॥ कमलानांशुभांमालांपद्मिनीवचबिभ्रती ॥१६
ह्रीःश्रीःकीर्तिःशुभालक्ष्मीरप्सरावाशुभानने ॥ भूतिर्वात्वंवरारोहेरतिर्वास्वैरचारिणी ॥ १७ ॥ समाःशिखरिणःस्नि
ग्धाःपांडुरादशनास्तव ॥ विशालेविमलेनेत्रेरक्तांतेकृष्णतारके ॥ १८ ॥
से समाकुल होरहीहो ऐसी प्रशंसा रावणनें की ॥ १५ ॥ फिर कहा कि हेशुभानने! तुम्हारा वर्ण विशुद्ध कांचनकी सदृशहै तिसपर तुम पीले वर्णके
रेशमीन वस्त्र पहरेहो, कमल फूलोंकी माला गलेमें धारण कियेहो ॥ १६॥हेवरारोहे! तुम ह्री, श्री, कीर्ति, लक्ष्मी, अप्सरा, अथवा भूति, या साक्षात्
रतिकी समान जो वनमें इच्छानुसार विहार करती हो सो बतलाओ कि तुम कौन हो ॥ १७ ॥ तुम्हारे सब दांत परस्पर समानहैं, उनका अग्रभाग
कुन्दकी कोर सदृश मनोहर और श्वेत वर्णहै । तुम्हारे नेत्र युगल विशाल, निर्मल, अरुणाई लिये, और कृष्णताराओंकरके युक्तहैं ॥ १८ ॥

समान प्रकाशमान ॥ २२ ॥ रूपसे रामचंद्रजीके हृदयमेंभी विस्मय इसकी अवाई हुई सीताजीके ऐसे वचन सुनकर और उस अद्भुत मृगको देख ॥ २३ ॥ तिसके शरीरकी सुन्दरताईसे रामचंद्रजी लुभागये, तिस पै सीताजीनें प्रेरणाकी इस कारण हर्षित चित्त हो श्रीरामचंद्रजी भ्राता लक्ष्मणसे बोले ॥ २४ ॥ कि हे लक्ष्मण! अवलोकन करो इस मृगका श्रेष्ठ रूप देखकर जानकीजीकी अभिलाषा उल्लसित हो उठीहै। अतएव इस समय इसका प्राण धारण करना असंभव है ॥ २५ ॥ हे लक्ष्मण! क्या वनमें, क्या नन्दनमें, क्या चैत्ररथकाननमें, अथवा पृथ्वीके किसी स्थानमेंभी इसके समान मृग नहीं है ॥ २६ ॥ देखो इसके रोमोंकी पंक्तियें कुछ सीधी कुछ वंकिमाकार कैसी शोभाको प्राप्त होरही हैं और

बभूवराघवस्यापिमनोविस्मयमागतम् ॥ इतिसीतावचःश्रुत्वादृष्ट्वाचमृगमद्भुतम् ॥ २३ ॥ लोभितस्तेनरूपेणसीत
याचप्रचोदितः ॥ उवाचराघवोहृष्टोभ्रातरंलक्ष्मणंवचः ॥ २४ ॥ पश्यलक्ष्मणवैदेह्यास्पृहामुल्लसितामिमाम् ॥ रूप
श्रेष्ठतयाह्येषमृगोऽद्यनभविष्यति ॥ २५ ॥ नवनेनंदनोद्देशेनचैत्ररथसंश्रये ॥ कुतःपृथिव्यांसौमित्रेयोऽस्यकश्चित्समो
मृगः ॥ २६ ॥ प्रतिलोमानुलोमाश्चरुचिरारोमराजयः ॥ शोभंतेमृगमाश्रित्यचित्राःकनकबिंदुभिः ॥ २७ ॥ पश्यास्य
जृंभमाणस्यदीप्तामग्निशिखोपमाम् ॥ जिह्वांमुखान्निःसरंतींमेघादिवशतह्रदाम् ॥ २८ ॥ मसारगल्वर्कमुखःशंखमुक्ता
निभोदरः ॥ कस्यनामानिरूप्योसौनमनोलोभयेन्मृगः ॥२९॥कस्यरूपमिदंदृष्ट्वाजांबूनदमयप्रभम्॥नानारत्नमयं
दिव्यंनमनोविस्मयंव्रजेत् ॥३०॥मांसहेतोरपिमृगान्विहारार्थंचधन्विनः॥घ्नंतिलक्ष्मणराजानोमृगयायांमहावने३१

तिसपर उसमें सुवर्ण बिन्दुओंके चित्रित होनेंसे औरभी सुन्दरताई आई है ॥ २७ ॥ देखो भइया! मेघसें बिजली जिस प्रकार चमकती है वैसेही जमुहाई लेनेंके समय उसके मुखसे अग्निकी शिखाके समान प्रदीप्त जीभ निकलती है ॥ २८ ॥ इसका मुखमंडल इन्द्रनीलमणि निर्मित पान पात्रके आकारसाहै। पेट शंख और मोतीकी समानहै, और इसके स्वरूपका निर्णय करना दुःसाध्यहै, इसको देखनेंसे किसका मन मोहित नहीं होता? ॥ २९ ॥ इसका रूप पक्के सुवर्णकी प्रभासे परिपूर्ण है, और नाना प्रकारके रत्नमयहै ऐसा दिव्य स्वरूप दृष्टि आनेंसे किसका मन विस्मयको प्राप्त नहीं होता? ॥ ३० ॥ धनुर्द्धारी नृपतिगण महा वनमें शिकार करनेंके लिये प्रवृत्त हो मांसके लिये अथवा विहारके लिये

मालायें, श्रेष्ठ सुगन्धियें श्रेष्ठ वस्त्रोंके तुम भोगनें योग्यहो॥२६॥हेअसितेक्षणी! फिर तुम्हारे लिये स्वामीभी तो श्रेष्ठही चाहिये, हेशुचिस्मिते! रुद्र गण अथवा मरुद्गण ॥ २७ ॥ या आठ वसुओंमेंसे किसीकी स्त्री हो, हे वरारोहे! हमको तौ तुम स्पष्टही देवता प्रतीत होतीहो, क्योंकि यहां गन्धर्व, देवता, किन्नर कोई नहीं आने पाते ॥ २८॥ यहां वनमें तो राक्षसगणही वास किया करतेहैं; फिर तुम यहां किस प्रकारसे आईहो; यहां तो वनमें वानर, सिंह, चीता, व्याघ्र, भेड़िया, मृग, ॥२९॥ गेंडे ऋक्षादि जीव रहतेहैं. सो इनको देखकर तुम क्यों नहीं डरतीहो? और मतवाले, कठोर मन शी

भर्तारंचवरंमन्येत्वद्युक्तमसितेक्षणे ॥ कात्वंभवसिरुद्राणांमरुतांवाशुचिस्मिते ॥ २७ ॥ वसूनांवावरारोहेदेवताप्रतिभासिमे ॥ नेहगच्छंतिगंधर्वानदेवानचकिन्नराः ॥ २८ ॥ राक्षसानामयंवासःकथंतुत्वमिहागता ॥ इहशाखामृगाःसिंहाद्वीपिव्याघ्रमृगावृकाः ॥ २९ ॥ ऋक्षास्तरक्षवःकंकाःकथंतेभ्योनबिभ्यसे ॥ मदान्वितानांघोराणांकुंजराणांतरस्विनाम् ॥ ३० ॥ कथमेकामहारण्येनबिभेषिवरानने ॥ कासिकस्यकुतश्चत्वंकिंनिमित्तंचदंडकान् ॥ ३१ ॥ एकाचरसिकल्याणिघोरान्राक्षससेवितान् ॥ इतिप्रशस्तावैदेहीरावणेनमहात्मना ॥ ३२ ॥ द्विजातिवेषेणहितंदृष्ट्वारावणमागतम् ॥ सर्वैरतिथिसत्कारैःपूजयामासमैथिली ॥ ३३ ॥ उपानीयासनंपूर्वंपाद्येनाभिनिमंत्र्यच ॥ अब्रवीत्सिद्धमित्येवतदातंसौम्यदर्शनम् ॥ ३४ ॥

घ्र चलनेंवाले हाथियोंसे ॥ ३० ॥ तुम अकेली कैसे- इस महावनमें नहीं डरतीहो, हे वरानने! तुम कौनहो, किसकी स्त्री हो, कहांसे आईहो, और किस कारण इस दंडकारण्यमें ॥ ३१ ॥अकेली विचरतीहो; क्योंकि यह जगह घोर राक्षसों करकै युक्तहै इस प्रकारसे महात्मा रावणने वैदेहीजीकी प्रशंसाकी ॥ ३२ ॥ उसको ब्राह्मण वेष धारण किये आया हुआ देख जानकीजीनें यथाविधि अतिथिसत्कारसे उसकी पूजा की ॥ ३३ ॥ प्रथम बैठनेंके लिये आसन दिया फिर चरण धोनेंको जल, पुनः फलाहारादिक जो रक्खेथे वह सौम्यदर्शन रावणको निवेदन किये ॥ ३४ ॥

राजा ओंको संहार कियाहै । इस कारण इस मृगको वधकरनाही कर्तव्यहै ॥ ४० ॥ पेटमें रहतेही हुए जिस प्रकार खिचडीकी गर्भ अपनी माताको मार डालताहै; वैसेही पूर्व समय इस वनमें राक्षस वातापिनेंभी तपस्वी ब्राह्मणोंके पेटमें प्रवेश करके उनको संहार किया करता था ॥ ४१ ॥ बहुत काल पीछे किसी समय वह वातापि तेजस्वी महामुनि अगस्त्यजीको प्राप्त होकर उनके द्वारा पचाया गयाथा ॥ ४२ ॥ फिर जबकि श्राद्धके पूर्ण होनेउपरान्त वातापिको राक्षस रूप धारण करनेंका इच्छुक देख भगवान् अगस्त्यजी मुसकाय कर बोले ॥ ४३ ॥ वातापि ! तूनें अपने तेजसे ज्ञानरहित हो इस जीव लोकमें अनेक श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको मारडालाहै, इसी कारणसे हमनें तुमको पचाडाला ॥ ४४ ॥

पुरस्तादिहवातापिःपरिभूयतपस्विनः ॥ उदरस्थोद्विजान्हंतिस्वगर्भोश्वतरीमिव ॥ ४१ ॥ सकदाचिच्चिराल्लोकेआससादमहामुनिम्॥अगस्त्यंतेजसायुक्तंभक्ष्यस्तस्यबभूवह॥४२॥समुत्थानेचतद्रूपंकर्तुकामंसमीक्ष्यतम् ॥उत्स्मयित्वातुभगवान्वातापिमिदमब्रवीत्॥ ४३ ॥ त्वयाऽविगण्यवातापेपरिभूताश्चतेजसा ॥जीवलोकेद्विजश्रेष्ठास्तस्मादसिजरांगतः ॥ ४४ ॥ तद्रक्षोपिनभवेदेववातापिरिवलक्ष्मण ॥ मद्विधंयोतिमन्येतधर्मनित्यंजितेंद्रियम् ॥ ४५ ॥ भवेद्धतोयंवातापिरगस्त्येनेवमागतः॥इहत्वंभवसन्नद्धोयंत्रितोरक्षमैथिलीम् ॥ ४६ ॥ अस्यामायत्तमस्माकंयत्कृत्यंरघुनंदन॥ अहमेनंवधिष्यामिग्रहीष्याम्यथवामृगम्॥ ४७ ॥ यावद्गच्छामिसौमित्रेमृगमानयितुंद्रुतम् ॥ पश्यलक्ष्मणवैदेह्यामृगत्वचिगतांस्पृहाम् ॥ ४८ ॥

हे लक्ष्मण ! जो हमारी समान धर्म निरत और जितेन्द्रिय पुरुषका निरादर करताहै; उस राक्षसके प्राण वातापिही समान नष्ट होजाते हैं ॥ ४५ ॥ अतएव मारीच इस आश्रममें आकर अगस्त्यजी करके वातापिकी नांई हमारे द्वारा मारडाला जायगा । इस समय तुम कवच इत्यादि बांधकर यत्न सहित सीताजीकी रक्षा करो ॥ ४६ ॥ हे रघुनंदन ! हमारा कर्त्तव्य कार्य जानकीके आधीनहै इसलिये तुम सावधानीसे यहां टिके रहो, हम इस मृगको मारही डालेंगे, अथवा जीता हुआ पकड लावेंगे ॥ ४७ ॥ हे लक्ष्मण ! इस मृग चर्म लेनेकी जानकीको

विवाह होनेंके पीछे इक्ष्वाकुवंशियोंकी राजधानी अयोध्यानगरीमें बारह वर्षतक रहकर पूर्णमनोरथहो अनेक प्रकारके मनुष्योंको दुर्लभ सुख हमनें भोगे ॥ ४ ॥ फिर तेरह वर्षमें राजा दशरथजीनें मंत्रिगणोंके साथ सलाह करके रामचंद्रजीके अभिषेक करनेंका उद्योग किया ॥ ५ ॥ उनकी आज्ञानुसार सब अभिषेककी तइयारियां होनें लगीं उस समय हमारी माननीया सासु कैकेयीनें अपनें स्वामी राजा दशरथजीसे दो वर मांगे ॥ ६ ॥ कैकेयीजीनें अपनी कृतिके बलसे श्वशुरको धर्मके वशमें करके हमारे स्वामी रामचंद्रजीको बनवास, और भरतजीको अभिषेक, यह दो वर नृपश्रेष्ठ सत्यप्रतिज्ञ महाराज दशरथजीसे मांगे ॥ ७ ॥ और उन्होंने सत्यप्रतिज्ञ, नृपतिश्रेष्ठ राजा दशरथजी अपनें स्वामीसे

उषित्वाद्वादशसमाइक्ष्वाकूणांनिवेशने ॥ भुंजानामानुषान्भोगान्सर्वकामसमृद्धिनी ॥ ४ ॥ तत्रत्रयोदशेवर्षेराजाऽमंत्रयतप्रभुः ॥ अभिषेचयितुंरामंसमेतोराजमंत्रिभिः ॥ ५ ॥ तस्मिन्संभ्रियमाणेतुराघवस्याभिषेचने ॥ कैकेयीनामभर्तारंममार्यायाचतेवरम् ॥६॥ परिगृह्यतुकैकेयीश्वशुरंसुकृतेनमे ॥ ममप्रव्राजनंभर्तुर्भरतस्याभिषेचनम् ॥७॥ द्वावयाचतभर्तारंसत्यसंधंनृपोत्तमम्॥नाद्यभोक्ष्येनचस्वप्स्येनपास्येचकदाचन ॥ ८ ॥ एषमेजीवितस्यांतोरामोयदभिषिच्यते ॥ इतिब्रुवाणांकैकेयींश्वशुरोमेसपार्थिवः ॥ ९ ॥ अयाचतार्थैरन्वर्थैर्नचयाच्ञांचकारसा ॥ ममभर्तामहातेजावयसापंचविंशकः ॥ १० ॥ अष्टादशहिवर्षाणिममजन्मनिगण्यते ॥ रामेतिप्रथितोलोकेसत्यवाञ्छीलवाञ्छुचिः ॥ ११ ॥ विशालाक्षोमहाबाहुःसर्वभूतहितेरतः ॥ कामार्तश्चमहाराजःपितादशरथःस्वयम् ॥ १२ ॥

दो वर मांगे और यहभी कहा कि जो रामचंद्रजीका अभिषेक होगा, तो हम किसी प्रकारसे भी भोजन पान वा शयन न करेंगी ॥ ८ ॥ और यही हमारे जीवनका अंत होजायगा जो रामचंद्रजीका अभिषेक हुआ तो हम न जियेंगी । जब कैकेयीनें इस प्रकार कहा तो हमारे श्वशुर महाराज दशरथजीने ॥ ९ ॥ उनसे बहुत और धनादि देनेंकी प्रार्थना की परन्तु उन कैकेयीजीनें न मानी उस समय महा तेजवान हमारे स्वामी पचीस वर्षके ॥१०॥ और हमारी आयु जन्मसे गणना करके अठारह वर्षकी थी, हमारे स्वामी रामनामसे विख्यात हैं, वह सत्यवान, सुशील, निर्मल स्वभाव ॥ ११ ॥ विशालनेत्र, सर्व प्राणियोंके हितकारी महाबाहु हैं परन्तु इनके पिता महाराज दशरथजी बडे कामी थे ॥ १२ ॥

कभी वह मृग शारंगपाणि रामको वारंवार देखकर वनमें दौडता कभी कुलांच मारकर दूर हो रहता॥ ५ ॥ कभी शंकित और भ्रान्त चित्त होकर मानों आकाशको चला जायगा ऐसी छलांग मारता, कभी अदृश्य होजाता, कभी दिखाई पडने लगता ॥ ६ ॥ और कभी छिन्न भिन्न मेघ समूहमें घिरे हुए शारदीय चंद्र मंडलकी समान मुहूर्त भरमें अदृश्य होजाता और मुहूर्तमात्रमेंही दूर दिखाई देता ॥ ७ ॥ इस प्रकारसे मृगरूपी मारीच छल बलकर दीखता छिपता रामचंद्रजीको आश्रमसे बहुत दूर ले गया ॥ ८ ॥ रामचंद्रजी उसकी मायासे मोहित और नितान्त अवश होकर क्रोधसे घिरे और बहुतही थक कर एक पेडकी छायाके नीचे हरी दूबके खेतमें बैठ गये ॥ ९ ॥

अवेक्ष्यावेक्ष्यधावंतंधनुष्पाणिर्महावने ॥ अतिवृत्तमिवोत्पाताल्लोभयानंकदाचन ॥ ५ ॥ शंकितंतुसमुद्भ्रांतमुत्पतंत मिवांबरम् ॥ दृश्यमानमदृश्यंचवनोद्देशेषुकेषुचित् ॥ ६ ॥ छिन्नाभ्रैरिवसंवीतंशारदंचंद्रमंडलम् ॥ मुहूर्तादेवददृशे मुहुर्दूरात्प्रकाशते॥ ७ ॥ दर्शनादर्शनेनैवसोऽपाकर्षतराघवम् ॥ सदूरमाश्रमस्यास्यमारीचोमृगतांगतः ॥८॥ आसी त्क्रुद्धस्तुकाकुत्स्थोविवशस्तेनमोहितः ॥ अथावतस्थेसुश्रांतश्छायामाश्रित्यशाद्वले ॥ ९ ॥ सतमुन्मादयामासमृग रूपोनिशाचरः ॥ मृगैःपरिवृतोऽथान्यैरदूरात्प्रत्यदृश्यत ॥ १० ॥ ग्रहीतुकामंदृष्ट्वातंपुनरेवाभ्यधावत ॥ तत्क्षणादेवसं त्रासात्पुनरंतर्हितोभवत् ॥ ११ ॥ पुनरेवततोदूराद्वृक्षखंडाद्विनिसृतः ॥ दृष्ट्वारामोमहातेजास्तंहंतुंकृतनिश्चयः ॥ १२॥ भूयस्तुशरमुद्धृत्यकुपितस्तत्रराघवः ॥ सूर्यरश्मिप्रतीकाशंज्वलंतमरिमर्दनम् ॥ १३ ॥

मृगरूपी मारीचनें उनको उन्मादित करदियाथा, वह मारीच फिर अन्यमृगोंके साथ बहुत निकटही रामचन्द्रजीको दृष्टि आया ॥ १० ॥ वह मारीच राक्षस श्रीरामचन्द्रजीको अपनें पकडनेका अभिलाषी जानकर दौडा । और मारे भयके उसी समय फिर अन्तर्ध्यान होगया ॥ ११ ॥ और बहुत दूर जाकर फिर वृक्ष समूहोंके नीचे दिखाई दिया, महातेजवान् रामचन्द्रजी यह देखकर अब उस मृगका मार डालनाही निश्चय करते हुए ॥ १२ ॥ उन्होंनें रोषमें भरकर फिर तरकशसे सूर्यकी किरणोंकी समान शत्रुका नाश करनेंवाला प्रज्वलित एक बाण निकाला ॥ १३ ॥

दंडकारण्यमें आये ॥ २१ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ! अब हम तीनजन कैकेयीके कारण राज्यभ्रष्ट होकर अपने तेजके प्रभावसे गंभीर वनमें विचरण करते हैं। हे द्विजश्रेष्ठ! एक मुहूर्त भर विश्रामकरो ॥ २२ ॥ अभी हमारे स्वामी बहुत सारे वनफल, मूल, और, रुरु, वराह व गोधा वध करके बहुत मांस द्रव्य ले यहां आते होंगे जब वह आवेंगे तब आपका भली भांतिसे सत्कार होगा इस्से विराजिये ॥ २३ ॥ इस समय आप अपना नाम. गोत्र और वंश सत्यरही कहिये हे द्विज! किस कारण से आप इस दंडकारण्यमें अकेले घूमतेहैं ॥ २४ ॥ जब रामभार्या सीताने इस प्रकारके वचन कहे तो महा बलवान् राक्षसराज रावण उनको तीखा उत्तर देता हुआ बोला ॥ २५ ॥ हे जानकि! सुर असुर और मनुष्यसहित समस्त

विचरामद्विजश्रेष्ठवनंगंभीरमोजसा ॥ समाश्वसमुहूर्ततुशक्यंवस्तुमिहत्वया ॥ २२ ॥ आगमिष्यतिमेभर्तावन्यमादायपुष्कलम् ॥ रुरून्गोधान्वराहांश्चहत्वादायामिषंबहु ॥२३॥ सत्वंनामचगोत्रंचकुलमाचक्ष्वतत्त्वतः ॥ एकश्चदंडकारण्येकिमर्थंचरसिद्विज ॥ २४ ॥ एवंब्रुवत्यांसीतायांरामपत्न्यांमहाबलः ॥ प्रत्युवाचोत्तरंतीव्रंरावणोराक्षसाधिपः ॥ २५ ॥ येनवित्रासितालोकाःसदेवासुरमानुषाः ॥ अहंसरावणोनामसीतेरक्षोगणेश्वरः ॥ २६ ॥ त्वांतुकांचनवर्णाभांदृष्ट्वाकौशेयवासिनीम् ॥ रतिंस्वकेषुदारेषुनाधिगच्छाम्यनिंदिते ॥ २७ ॥ बह्वीनामुत्तमस्त्रीणामाहृतानामितस्ततः ॥ सर्वासामेवभद्रंतेममाग्रमहिषीभव ॥ २८ ॥ लंकानामसमुद्रस्यमध्येममममहापुरी ॥ सागरेणपरिक्षिप्तानिविष्टागिरिमूर्धनि ॥ २९ ॥ तत्रसीतेमयासार्द्धंवनेषुविचरिष्यसि ॥ नचास्यवनवासस्यस्पृहयिष्यसिभामिनी ॥ ३० ॥

लोक जिसके डरके मारे थर २ कांपतेहैं हम वही राक्षसोंके राजा रावणहैं ॥ २६ ॥ तुम्हारा लावण्य कांचनकी समानहै और तुम रेशमी वस्त्र पहररहीहो हे अनिन्दते! तुमको देखकर अपनी स्त्रियोंमें हमारा अब कुछभी अनुराग नहीं रहा ॥ २७ ॥ हम बहुत सारी उत्तम स्त्रियें अनेक स्थानोंसे हर कर लायेहैं सो तुम उन समस्तके बीचमें पटरानी बनो ॥ २८ ॥ तुम्हारा मंगलहो हे जानकि! चारो तरफ समुद्रसे घिरी हुई पर्वतके शिर त्रिकूट पर लंका नामक जो नगरीहै वह हमारीही है ॥ २९ ॥ तुम वहां हमारे साथ महावनोंमें विचरण किया करोगी. हे

मचंद्रजीनें देखा और मनही मनमें सीता और लक्ष्मणके वचन याद करकै आश्रमकी ओर लौटे ॥ २२ ॥ आश्रमको लौटनेंके समय विचारनें लगे कि लक्ष्मणजीनें पहलेही कहाथा कि यह मारीचकी मायाहै । उनकीही बात इस समय सत्य हुई । यथार्थही मारीचको हमनें मारडाला ॥२३॥ इस समय मारीचनें " हा सीते ! हा लक्ष्मण " बडे ऊंचे शब्दसे यह कह कर प्राण त्याग कियेहैं; न जाने सीता इस शब्दको सुनकर क्या करैंगी ॥ २४ ॥ अथवा महाबाहु लक्ष्मणजी किस अवस्थाको प्राप्त होंगे? इस प्रकार चिन्ता करते २ धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीके रोम खडे होगये॥२५॥ उस काल मृगरूपी राक्षसको मार डालकर और इसका इस प्रकारचिल्लाना सुनकर विषादके मारे तीव्र भयसे रामचंद्रजी भीत हुए ॥ २६॥

मारीचस्यतुमायैषापूर्वोक्तालक्ष्मणेनतु ॥ तत्तथाह्यभवच्चाद्यमारीचोऽयंमयाहतः ॥ २३ ॥ हासीतेलक्ष्मणेत्येवमाक्रुश्यतुमहास्वनम् ॥ ममारराक्षसःसोऽयंश्रुत्वासीताकथंभवेत् ॥ २४ ॥ लक्ष्मणश्चमहाबाहुःकामवस्थांगमिष्यति ॥ इतिसंचिंत्यधर्मात्मारामोहृष्टतनूरुहः ॥ २५ ॥ तत्ररामंभयंतीव्रमाविवेशविषादजम् ॥ राक्षसंमृगरूपंतंहत्वाश्रुत्वाचतत्स्वनम् ॥ २६ ॥ निहत्यपृषतंचान्यंमांसमादायराघवः ॥ त्वरमाणोजनस्थानंससाराभिमुखंतदा ॥ २७ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआर० चतुश्चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४४ ॥ ॥ छ ॥ आर्तस्वरंतुतंभर्तुर्विज्ञायसदृशंवने ॥ उवाचलक्ष्मणंसीतागच्छजानीहिराघवम् ॥ १ ॥ नहिमेजीवितंस्थानेहृदयंवावतिष्ठते ॥ क्रोशतःपरमार्तस्यश्रुतःशब्दोमयाभृशम्॥२॥आक्रंदमानंतुवनेभ्रातरंत्रातुमर्हसि॥ तंक्षिप्रमभिधावत्वंभ्रातरंशरणैषिणम्३ ॥

तिसके पीछे वह एक और मृगको मारकर और उसका मांस ग्रहण करकै शीघ्रतासे जनस्थानकी ओर चले ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥ यहां आश्रममें वनके मध्य अपने स्वामीकी समान बहु करुणाका शब्द सुनकर सीताजी लक्ष्मणसे बोली जाकर देख आओ रामचंद्रजीको क्या हुआ?॥ १ ॥ वह महाआरत वचनसे चिल्ला रहेहैं यह शब्द सुनकर हमारा मन प्राण अपने२ ठिकाने नहींहै ॥ २ ॥ वनके बीच ऊंचें स्वरसे रोते हुए अपने भ्राताका उद्धार करना तुमको अवश्य कर्तव्यहै । इस

सकता ऐसेही श्रीरामचंद्रजीके तेज रूप अग्निसे घिरी हमको तुम पानेंकी सामर्थ्य नहीं रखते ॥३७॥ अरे अभागे राक्षस! जब कि तैंनें रघुनंदन श्री रामचंद्रजीकी भार्याके हरनेंका अभिलाष कियाहै, तब तू निश्चयही सब वृक्षोंको सुवर्णमय देखता होगा (स्वप्नमें सोनेका वृक्ष देखना मृत्युरूपहै) अर्थात् तुमको हमारा प्राप्त करना ऐसा दुर्लभहै जैसे कोई दरिद्र सुवर्णके सहस्रों पेड अपनें गृहमें देखनेकी इच्छाकरै ॥ ३८ ॥ मृगारि शीघ्रगामी, और बडे क्षुधित सिंहके मुखसे या विषधर सर्पके मुखसे तुम दांत निकालनेंकी इच्छा करतेहो ॥ ३९ ॥ तुम पर्वतवर मन्दराचलको भुजासे उत्पाटन करना चाहतेहो, और कालविष पीकरभी इस शरीर सहित कुशल जाया चाहतेहो ॥ ४० ॥ क्या तुम सूची (सुई) से अपने नेत्रोंके

पादपान्कांचनान्नूनंबहून्पश्यसिमंदभाक् ॥ राघवस्यप्रियांभार्यांयस्त्वमिच्छसिराक्षस ॥ ३८ ॥ क्षुधितस्यचासिं हस्यमृगशत्रोस्तरस्विनः ॥ आशीविषस्यवदनाद्दंष्ट्रामादातुमिच्छसि ॥ ३९ ॥ मंदरंपर्वतश्रेष्ठंपाणिनाहर्तुमिच्छ सि ॥ कालकूटंविषंपीत्वास्वस्तिमान्गंतुमिच्छसि ॥ ४० ॥ अक्षिसूच्याप्रमृजसिजिह्वयालेढिचक्षुरम् ॥ राघवस्यप्रियां भार्यामधिगंतुंत्वमिच्छसि ॥ ४१ ॥ अवसज्ज्यशिलांकंठेसमुद्रंतर्तुमिच्छसि ॥ सूर्यचंद्रमसौचोभौपाणिभ्यांहर्तुमि च्छसि ॥ ४२ ॥ योरामस्यप्रियांभार्यांप्रधर्षयितुमिच्छसि ॥ अग्निंप्रज्वलितंदृष्ट्वावस्त्रेणाहर्तुमिच्छसि ॥ ४३ ॥ कल्याणवृत्तांयोभार्यांरामस्याहर्तुमिच्छसि ॥ अयोमुखानांशूलानांमध्येचरितुमिच्छसि ॥ रामस्यसदृशींभार्यां योऽधिगंतुंत्वमिच्छसि ॥ ४४ ॥

खुजानेंकी इच्छा करतेहो, या छुरेकी धारसे अपनी रसनाको चाटना अच्छा समझतेहो; क्योंकि जो तुम हमें श्रीरामचंद्रजीकी परम प्यारी स्त्री नारी हमको पानेंकी इच्छा करतेहो ॥ ४१ ॥ तुम ग्रीवामें पर्वतका शिखरबांध समुद्र उतरना विचारतेहो, और सूर्य चंद्रमा दोनोंको उभय भुजासे पकडना चाहतेहो ॥ ४२ ॥ जो कि तुमनें श्रीरामचंद्रजीकी प्यारी नारीको बलपूर्वक प्राप्त होनेंकी इच्छाकीहै, सो यह इच्छा ऐसीहै, जैसे कोई जलती हुई अग्नि वस्त्रमें बांधकर लेजाना चाहै ॥ ४३ ॥ तुमने जो रामचंद्रजीकी कल्याणव्रतवाली भार्याको हरनेंकी इच्छा कीहै सो यह

भी ऐसा कोई नहीं है;॥ १२ ॥ जो इन्द्रके समान पौरुषी श्रीरामचन्द्रजीका सामना करसकै फलतः उनको समरमें कोई मारभी नहीं सकता इस लिये तुमको ऐसा अनुचित नहीं कहना चाहिये ॥ १३ ॥ और रामचन्द्रजीके विना इकेली इस वनके बीच त्याग करनेंकोभी किसी प्रकारसे हमारा साहस नहीं होता, इन्द्रादि बलवान् देवगणभी अपनें बलसे रामचन्द्रजीके बलको नहीं रोक सकते॥१४॥अथवा सब त्रिलोकी समस्त देवता गणोंके सहित एकत्र मिलकरभी रामचंद्रजीके पराजय करनेंको सामर्थ्य नहीं रखते इससे आप शोक त्याग करकै स्थिर चित्त हूजिये ॥ १५ ॥ आपके स्वामी रामचंद्रजी मृगोत्तमको हनन करकै शीघ्रही लौटेंगे और हम निश्चय कहतेहैं कि यह शब्द उनका नहींहै और न कोई यह देव

योरामंप्रतियुध्येतसमरेवासवोपमम् ॥ अवध्यःसमरेरामोनैवंत्वंवक्तुमर्हसि ॥ १३ ॥ नत्वामस्मिन्वनेहातुमुत्सहे राघवंविना ॥ अनिवार्यबलंतस्यबलैर्बलवतामपि ॥ १४ ॥ त्रिभिर्लोकैःसमुदितैः सेश्वरैःसामरैरपि ॥ हृदयंनिर्वृतंतेस्तुसंतापस्त्यज्यतांतव ॥ १५ ॥ आगमिष्यतितेभर्ताशीघ्रंहत्वामृगोत्तमम् ॥ नसतस्यस्वरोव्यक्तंनकश्चिदपिदैवतः॥ १६ ॥ गंधर्वनगरप्रख्यामायातस्यचरक्षसः ॥ न्यासभूतासिवैदेहिन्यस्तामयिमहात्मना ॥ १७ ॥ रामेण त्वंवरारोहेनत्वां त्यक्तुमिहोत्सहे ॥ कृतवैराश्चकल्याणिवयमेतैर्निशाचरैः ॥ १८ ॥ खरस्यनिधनेदेविजनस्थानवधंप्रति ॥ राक्षसाविविधावाचोव्याहरंतिमहावने ॥ १९ ॥ हिंसाविहारावैदेहिनचिंतयितुमर्हसि ॥ लक्ष्मणेनैवमुक्तातुक्रुद्धासंरक्तलोचना ॥ २० ॥

प्रेरित शब्दहै ॥ १६ ॥ निशाचर मारीचही गन्धर्व नगर सदृशी मिथ्या माया विस्तार करकै इस प्रकार शब्द चिल्लाकर कररहाहै । हे जानकि! महात्मा राम करकै आप हमारे निकट सौंपी गईहैं ॥ १७ ॥ इसही कारणसे आपको त्याग करनेंमें हमारा उत्साह नहीं होता । हे कल्याणि ! हे वरारोहे ! इन सब राक्षसोंके सहित हमारी शत्रुता होगई है ॥ १८ ॥ हे देवि ! खरको मार और जनस्थानको विध्वंस करनेंसे राक्षस लोग इस महावनमें हमारे ऊपर अनेक प्रकारके वचन प्रयोग किया करतेहैं ॥१९ ॥ हे जानकि ! साधु लोगोंकी हिंसा करनाही राक्षस लोगोंका एक मात्र खेल है । इस कारण इस विषयमें चिन्ता करना किसी प्रकारसेभी आपको उचित नहीं है । जब लक्ष्मणजीनें इस प्रकार कहा तब क्रोधके मारे

जब सीताजीनें इस प्रकारसे कठोर वचन कहे तब रावणनें महा क्रोधित होकर भ्रुकुटि टेढी करके कहा ॥ १ ॥ हे वरवर्णनि! हम कुवेरके सौतेले भाईहैं। हम परमप्रतापशालीका नाम दशग्रीव रावणहै, तुम्हारा मंगलहो ॥ २ ॥ जिस प्रकार प्रजागण मृत्युसे भय करतेहैं, वैसेही हमारें भयसे भीत होकर, देव, गन्धर्व, पिशाच, पन्नग, और उरग गण समस्तही सदा भागतेहैं ॥ ३ ॥ हमने किसी कारण वशसे क्रोधमें भर द्रन्द्व करके संग्राममें विक्रम प्रकाश करके सौतेले भाई कुबेरको सब प्रकारसे जीत लियाहै ॥ ४ ॥ इस कारण वह हमसे डरकर धन धान्य ऋषि सिद्धिसे भरी पुरी अपनी लंकापुरी त्यागकर पर्वतराज कैलासमें वास करतेहैं॥५॥ हे भद्रे! हमने अपने वीर्यके प्रभावसे उन कुबेरका इच्छानुसार चलनें

एवंब्रुवत्यांसीतायांसंरब्धःपरुषंवचः ॥ ललाटेभ्रुकुटिंकृत्वारावणःप्रत्युवाचह ॥ १ ॥ भ्रातावैश्रवणस्याहंसापत्नो वरवर्णिनि ॥ रावणोनामभद्रंतेदशग्रीवःप्रतापवान् ॥ २ ॥ यस्यदेवाःसगंधर्वाःपिशाचपतगोरगाः ॥ विद्रवंतिसदाभीतामृत्योरिवसदाप्रजाः ॥ ३ ॥ येनवैश्रवणोभ्रातावैमात्रःकारणांतरे ॥ द्वंद्वमासादितःक्रोधाद्रणेविक्रम्यनिर्जितः ॥ ४ ॥ मद्भयार्तःपरित्यज्यस्वमधिष्ठानमृद्धिमत् ॥ कैलासंपर्वतश्रेष्ठमध्यास्तेनरवाहनः ॥५॥ यस्यतत्पुष्पकंनाम विमानंकामगंशुभम् ॥ वीर्यादावर्जितंभद्रेयेनयामिविहायसम् ॥ ६ ॥ ममसंजातरोषस्यमुखंदृष्ट्वैवमैथिलि ॥ विद्रवंतिपरित्रस्ताःसुराःशक्रपुरोगमाः ॥ ७ ॥ यत्रतिष्ठाम्यहंतत्रमारुतोवातिशंकितः ॥ तीव्रांशुःशिशिरांशुश्चभयात्संपद्यतेदिवि ॥ ८ ॥ निष्कंपपत्रास्तरवोनद्यश्चस्तिमितोदकाः ॥ भवंतियत्रतत्राहंतिष्ठामिचचरामिच ॥ ९ ॥

वाला परम सुन्दर पुष्पक नामक विमानभी हरण कर लियाहै तुम उसी विमानमें बैठकर हमारे साथ आकाशमार्गमें चलोगी ॥ ६ ॥ हे मैथिलि! हमें क्रोध उत्पन्न हुआ कि हमारा मुख देखतेही इन्द्रादि मुख्य देवता गण महाभयभीत होकर दशोदिशाओंको भाग जातेहैं ॥ ७ ॥ जहां पर हम रहा करतेहैं, वायु वहांपर शंका सहित चला करतीहै और सूर्यभी हमारे भयसे आकाश मंडलमें चंद्रमाकी समान देख पडताहै ॥ ८ ॥ अधिक क्या कहें? जहां पर हम बैठते उठते व घूमते घामतेहैं वहां पर वृक्षोंके पत्तेभी नहीं हिलते डुलते, नदियोंका जलभी वहनेसे रुक जाताहै॥९॥

प्रकार उत्तर देनेंको हमारा साहस नहीं होता ॥ २८ ॥ परन्तु हे जानकि ! आपनें जो यह अयोग्य वार्ता कही है सो स्त्रियोंके लिये छ विचित्र बात नहीं है, क्योंकि इस लोकमें स्त्रियोंका स्वभाव ऐसा देखा ही जाता है ॥ २९ ॥ स्त्रियोंकी जाति, स्वभावसेही न हीन है, यह पिता पुत्र इत्यादिमें परस्पर भेद करा देती हैं। किन्तु हे जानकि ! तुम्हारी यह वार्ता हम पर नहीं सही जाती तपे हुए बाणोंकी नांई यह तुम्हारे वचन हमारे दोनों कानोंको विद्धकर रहे हैं। अच्छा ! वनवासी देवता गण सबही हमारे वण करैं ॥ ३१ ॥ हमनें यथार्थ वार्ता कही है तथापि तुमनें हमको कठोर वचन कहे तुमको धिक्कार है ! निश्चयही तुम्हारा

तरूपंतुनचित्रंस्त्रीषुमैथिलि ॥ स्वभावस्त्वेषनारीणामेषुलोकेषुदृश्यते ॥ २९ ॥ विमुक्तधर्माश्चपलास्तीक्ष्णा ःस्त्रियः ॥ नसहेहीदृशंवाक्यंवैदेहिजनकात्मजे ॥ ३० ॥ श्रोत्रयोरुभयोर्मध्येतप्तनाराचसंनिभम् ॥ उपशृण्वं र्वसाक्षिणोहिवनेचराः ॥ ३१ ॥ न्यायवादीयथावाक्यमुक्तोहंपरुषंत्वया ॥ धिक्त्वामद्यविनश्यंतींयन्मामेवंविशं कसे ॥ ३२ ॥ स्त्रीत्वाद्दुष्टस्वभावेनगुरुवाक्येव्यवस्थितम् ॥ गच्छामियत्रकाकुत्स्थःस्वस्तितेऽस्तुवरानने ॥ ३३ ॥ रक्षंतुत्वांविशालाक्षिसमग्रावनदेवताः ॥ निमित्तानिहिघोराणियानिप्रादुर्भवंतिमे ॥ अपित्वांसहरामेणपश्येयंपुनरा गतः ॥ ३४ ॥ लक्ष्मणेनैवमुक्तातुरुदतीजनकात्मजा ॥ प्रत्युवाचततोवाक्यंतीव्रबाष्पपरिप्लुता ॥ ३५ ॥

विनाश काल उपस्थित है (राक्षसकुलकी नाश करानेंवाली तुझको धिक्कार है यह गूढ है) जो हम पर ऐसी शंका करती हो ॥ ३२ ॥ हम सदाही गुरुजनोंकी आज्ञाका पालन किया करते हैं इस रामचन्द्रजीकी आज्ञा मान तुम्हें छोड नहीं जातेथे। किन्तु तुमनें स्त्रीके स्वभाव और दुष्ट प्रकृतिके वश होकर हमको दुर्वचन कहे। हे वरानने ! जहां रामचन्द्रजी हैं हमभी वहां जाते हैं; तुम कुशल क्षेमसे रहो ॥ ३३ ॥ और समस्त वन देवता गण तुम्हारी रक्षा करैं; हे विशालाक्षि ! बडे २ बुरे शकुन हमारे सामने प्रगट हो रहे हैं; इस कारणसे फिर रामचन्द्रजीके साथ आकर तुमको कुशल सहित देखें ॥ ३४ ॥ जब लक्ष्मणजीनें इस प्रकारसे कहा तब जनकनन्दनी सीताजी अविरलवाहिनी अश्रुधारासे

त हुईथी ॥ १८ ॥ राम मनुष्यहै, वह युद्धमें हमारी एक अंगुलीकी समानभी नहीं होगा । हे वरवर्णिनि! हम तुम्हारे सौभाग्यसेही आप यहां आ
येहैं, इस्से तुम हमको अपना पति बनाओ ॥ १९ ॥ जब रावण नें इस प्रकारके वचन कहे, तब सीताजीके नेत्र क्रोधके मारे लाल २ होगये।
वह उस निर्जन वनमें रावणसे यह कठोर वचन बोली ॥ २० ॥ सब देवताओंके नमस्कार करनेंके योग्य उन परम पूजनीय, कुबेरजीको
अपना भाई बताकर तुम किस प्रकार निन्दनीय कार्य करनेंका अभिलाष करते हो? ॥ २१ ॥ हे रावण! तुम्हारी समान खोटी बुद्धि
वाला कर्कश और अजितेन्द्रिय पुरुष जिनका राजाहै, उन सबही राक्षस गणोंको नाशको प्राप्त होना पडेगा ॥ २२ ॥ इन्द्रपत्नी

अंगुल्यानसमोरामोममयुद्धेसमानुषः ॥ तवभाग्येनसंप्राप्तंभजस्ववरवर्णिनि ॥ १९ ॥ एवमुक्तातुवैदेहीक्रुद्धा
संरक्तलोचना ॥ अब्रवीत्परुषंवाक्यंरहितेराक्षसाधिपम् ॥ २० ॥ कथंवैश्रवणंदेवंसर्वदेवनमस्कृतम् ॥ भ्रात
रंव्यपदिश्यत्वमशुभंकर्तुमिच्छसि ॥ २१ ॥ अवश्यंविनशिष्यंतिसर्वेरावणराक्षसाः ॥ येषांत्वंकर्कशोराजादुर्बु
द्धिरजितेंद्रियः ॥ २२ ॥ अपहृत्यशचींभार्यांशक्यमिंद्रस्यजीवितुम् ॥ नहिरामस्यभार्यांमामानीयस्वस्तिमान्भवे
त् ॥ २३ ॥ जीवेच्चिरंवज्रधरस्यपश्चाच्छचींप्रधृष्याप्रतिरूपरूपाम् ॥ नमादृशींराक्षसधर्षयित्वापीतामृतस्यापितवा
स्तिमोक्षः ॥ २४ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेअष्टचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४८ ॥ ॥ ॥
सीतायावचनंश्रुत्वादशग्रीवःप्रतापवान् ॥ हस्तेहस्तंसमाहन्यचकारसुमहद्वपुः ॥ १ ॥

शचीको हरण करकै; चाहें कोई जीवित रहजाय; परन्तु रामभार्या हमको हरण करकै कौन पुरुष बच कल्याण पासकताहै? ॥ २३ ॥
रे राक्षस! अत्यन्त रूपवती देवराज इन्द्रके पीछे उनकी भार्या को बलपूर्वक हरण करकै चाहे किसीका जीवित रहना संभवभीहो, परन्तु
हम समान स्त्रीको रामचन्द्रजीके पीछे अपमानता करकै अमृत पिया हुआ पुरुषभी मृत्युके हाथसे नहीं बच सकैगा ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा
मायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे अष्टचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४८ ॥ प्रतापवान् दशग्रीव रावण सीताजीके यह वचन सुनकर, हाथपर हा

रामचन्द्रजीको देखनेंके लिये अतिव्यग्रचित्तसे चले ॥ १ ॥ तिसके पीछे दशानन रावण यह सुअवसर पाकर यतीका रूप धारण कर शीघ्रही श्रीसीताजीके सामनें आया ॥ २ ॥ वह कोमल गेरुआ वस्त्र पहरे, शिर पर वार रखाये छत्री लगाये खडाऊं पहरे, वांये कंधे पर लाठी और कमंडलु हाथमें ॥ ३ ॥ ऐसा त्रिदंडी संन्यासीका रूप बना सीताजीके सन्मुख हुआ जबकि दोनों भाई आश्रममें नहींथे ॥ ४ ॥ जिस प्रकार विना चन्द्र सूर्यके सन्ध्याकालमें महा अंधकार हो आता है। वैसेही विना राम और लक्ष्मणजीके सीताजीके निकट दशानन आकर परम यशस्विनी राजपुत्री जनकनन्दनीजीको देखनें लगा ॥ ५ ॥ जैसे चन्द्रमाकरके हीन रोहिणी नक्षत्रको राहु देखे जनस्थानके समस्त वृक्ष उग्र

तदासाद्यदशग्रीवःक्षिप्रमंतरमास्थितः ॥ अभिचक्रामवैदेहींपरिव्राजकरूपधृक् ॥ २ ॥ श्लक्ष्णकाषायसंवीतःशिखी छत्रीउपानही ॥ वामेचांसेऽवसज्ज्याथशुभेयष्टिकमंडलू ॥ ३ ॥ परिव्राजकरूपेणवैदेहीमन्ववर्तत ॥ तामाससादातिबलोभ्रातृभ्यांरहितांवने ॥ ४ ॥ रहितांसूर्यचंद्राभ्यांसंध्यामिवमहत्तमः ॥ तामपश्यत्ततोबालांराजपुत्रींयशस्विनीम् ॥ ५ ॥ रोहिणींशशिनाहीनांग्रहवद्भृशदारुणः ॥ तमुग्रंपापकर्माणंजनस्थानगताद्रुमाः ॥ ६ ॥ संदृश्यनप्रकंपंतेनप्रवातिचमारुतः ॥ शीघ्रस्रोताश्चतंदृष्ट्वावीक्षंतंरक्तलोचनम् ॥ ७ ॥स्तिमितंगंतुमारेभेभयाद्गोदावरीनदी ॥ रामस्यत्वंतरंप्रेप्सुर्दशग्रीवस्तदंतरे ॥ ८ ॥ उपतस्थेचवैदेहींभिक्षुरूपेणरावणः ॥ अभव्योभव्यरूपेणभर्तारमनुशोचतीम् ॥ ९ ॥ अभ्यवर्ततवैदेहींचित्रामिवशनैश्चरः ॥ सहसाभव्यरूपेणतृणैःकूपइवावृतः ॥ १० ॥

स्वभाव पाप कर्म करनेंवाले रावणको देखकर ॥ ६ ॥ हिलनें झुलनेंसे रहित होगये पवनका चलना वंद हो गया। लाल २ नेत्र किये सीताजीके प्रति उसकी दृष्टिको लगा देख नदीभी शीघ्र गतिको त्याग मंद२वहनें लगी॥ ७ ॥गोदावरी नदीका जलभी शंकाके वश होकर मंद२वहनें लगा। इसी अवसरमें रामचंद्रजीका अन्तर चाहनेंवाला दशग्रीव ॥ ८ ॥ भिक्षुकका वेश बनाकर वैदेहीजीके निकट आन पहुंचा, यह महाकुरूप दशानन, अति रूपवती अपने पतिके लिये शोक करती हुई ॥ ९ ॥जानकीजीको ऐसे प्राप्त हुआ जिस प्रकार चित्रानक्षत्रके निकट शनि आताहै, वहां पहुंच उसनें

हुए जानकीजीसे कहनें लगा ॥ १० ॥ कि त्रिभुवनविख्यात स्वामीके प्राप्त करनेंकी यदि इच्छाहो तौ हे वरारोहे! हमारा आश्रय ग्रहण करो, हम ही तुम्हारे समान पतिहैं ॥ ११ ॥ तुम बहुत कालके लिये हमारी भजना करो.हमहीं तुम्हारे वांछित और बडाई करनें योग्य पतिहैं। हेभद्रे ! हम कभी ऐसा आचरण नहीं करेंगे जो तुम्हें प्यारा नहो ॥ १२ ॥ तुम मनुष्यके प्रति प्रीति त्यागकरके हमारी ओर अपना प्रेम लगाओ, राज्यसे भ्रष्ट आयुहीन, अर्थरहित, राममें ॥ १३ ॥ किन गुणोंसे तुम अनुरागिणी हुईहो? हे मूढे पंडित मानिनि मैथिलि! जो रामचंद्र स्त्रीके कहनेंसे राज्य और सुहृद्‌गणोंको छोडकर ॥ १४ ॥ जोकि हम हिंसक जन्तुओंके वास करनें की भूमिमें वनके बीच वह दुर्मति रहताहै । इस प्रकार

त्रिषुलोकेषुविख्यातंयदिभर्तारमिच्छसि॥ मामाश्रयवरारोहेतवाहंसदृशःपति ॥११॥मांभजस्वचिरायत्वमहंश्लाघ्यः पतिस्तव ॥ नैवचाहंक्वचिद्भद्रेकरिष्येतवविप्रियम् ॥ १२ ॥ त्यज्यतांमानुषोभावोमयिभावःप्रणीयताम् ॥ राज्याच्च्यु तमसिद्धार्थंरामंपरिमितायुषम्॥१३॥कैर्गुणैरनुरक्तासिमूढेपण्डितमानिनि॥यःस्त्रियोवचनाद्राज्यंविहायससुहृज्जनम् ॥१४॥अस्मिन्व्यालानुचरितेवनेवसतिदुर्मतिः॥इत्युक्त्वामैथिलींवाक्यंप्रियार्हांप्रियवादिनीम्॥१५॥अभिगम्यसुदुष्टा त्माराक्षसःकाममोहितः॥ जग्राहरावणःसीतांबुधःखेरोहिणीमिव ॥१६॥ वामेनसीतांपद्माक्षींमूर्धजेषुकरेणसः ॥ ऊर्वो स्तुदक्षिणेनैवपरिजग्राहपाणिना ॥ १७ ॥ तंदृष्ट्वागिरिशृंगाभंतीक्ष्णदंष्ट्रंमहाभुजम् ॥ प्राद्रवन्मृत्युसंकाशंभयार्तावनदे वताः ॥ १८ ॥ सचमायामयोदिव्यःखरयुक्तःखरस्वनः ॥ प्रत्यदृश्यतहेमांगोरावणस्यमहारथः ॥ १९ ॥

प्रिय वचन कहनें के योग्य मैथिलीजीसे ॥ १५ ॥ यह कहकर अति दुष्टात्मा रावण जानकीजीके समीप आया और उनको ग्रहण किया, उस समय ऐसा बोध हुआ मानों आकाशके बीच बुधनें रोहिणीको ग्रहण किया ॥ १६ ॥ उस समय सीता महारानी रावणके कठोर वचन सुन और इसका रूप देखकर कुछ ऐसी मूर्छितसी होगई थीं कि वाम बाहुसे तौ रावणनें उनपद्माक्षीका केशपाश और दाहिनी भुजासे दोनों चरणोंको पकड उठा लिया॥१७॥ वन देवता लोकभी उस समय उस पर्वत शृङ्ग सदृश तीक्ष्ण डाढ वाले महा सर्प तुल्य रावणको देख भयभीत हो कर दशों दिशाओंको भाग गये ॥ १८ ॥ देखतेही देखतेही रावणका वह मायामय स्वर्ण मंडित गर्दभजुता हुआ भयंकर शब्दकारी दिव्यरथ व

तुम्हारा जघन, अति पीन व विशालहैं और जांघें हाथीकी शुण्डके समान चढ़ाउतार, बडे२गोलाकर एकमें एक मिले कुछ कम्पायमान ॥१९॥ तुम्हारी दोंनों छातियें पीनहैं और जिनका अग्रभाग उठा हुआहै, परम मनोहरहैं और चिकने ताल फलके आकारवालेहैं! और उनपर मणियोंकी माला पडीहैं ॥ २० ॥ फलतः तुम्हारे दांत नेत्र और मुसकुराना सवहीकुछ रमणीयहै । हे रमणीये! नदी जिस प्रकार जलके वेगसे कूलको हरण करतीहै तैसेही तुमभी इन सवसे हमारे चित्तको हरण करतीहो ॥ २१ ॥ तुम्हारे केश परम सुन्दरहैं, दोनों पयोधर अत्यन्त घनेहैं, और तुम्हारा मध्य देश अर्थात् कमर इतनी पतलीहै कि मुट्ठीके वीचमें आजाय। क्या देवी, क्या गन्धर्वी, क्या यक्षी, क्या किन्नरी, ॥ २२ ॥ कोईभी तुम्हारे स

विशालंजघनंपीनमूरूकरिकरोपमौ ॥ एतावुपचितौवृत्तौसंहतौसंप्रगल्भितौ ॥ १९ ॥ पीनोन्नतमुखौकांतौस्निग्धतालफलोपमौ ॥ मणिप्रवेकाभरणौरुचिरौतौपयोधरौ ॥ २० ॥ चारुस्मितेचारुदतिचारुनेत्रेविलासिनि ॥ मनोहरसिमेरामेनदीकूलमिवांभसा ॥ २१ ॥ करांतमितमध्यासिसुकेशेसंहतस्तनि ॥ नैवदेवीनगंधर्वीनयक्षीनचकिन्नरी ॥ २२ ॥ नैवंरूपामयानारीदृष्टपूर्वामहीतले ॥ रूपमग्र्यंचलोकेपुसौकुमार्यंवयश्चते ॥ २३ ॥ इहवासश्चकांतारेचित्तमुन्माथयंतिमे ॥ साप्रतिक्रामभद्रंतेनत्वंवस्तुमिहार्हसि ॥ २४ ॥ राक्षसानामयंवासोघोराणांकामरूपिणाम् ॥ प्रासादाग्राणिरम्याणिनगरोपवनानिच ॥ २५ ॥ संपन्नानिसुगंधीनियुक्तान्याचरितुंत्वया ॥ वरंमाल्यंवरंगंधंवरंवस्त्रंचशोभने ॥ २६ ॥

मान रूपवान नहींहै । हमनें इससे पहले पृथ्वीपर तुम्हारे समान रूपवती राजरानी नहीं देखी, तुम्हारा रूप यौवन, सुकुमारता ॥ २३ ॥ और इस निर्जन वनमें वास यह चारोंही त्रिलोकीमें श्रेष्ठहैं, इस कारण इन वातोंसे हमारा चित्त क्षुभित होताहै । इस कारण वाहर चली आओ । तुम्हारा कल्याणहो; वनवास करना तुम को उचित नहींहै ॥ २४ ॥यहां तौ कामरूपी भयंकर निशाचर गण रहा करतेहैं तुम तौ अति रमणीय प्रासादशिखर, नगर व उपवनोंमें ॥ २५ ॥ जहां सव भोग्य वस्तु प्रस्तुतहैं, और सुगन्धिके पदार्थ धरे रहतेहैं यह स्थान तुम्हारे रहनेंके योग्यहै; श्रेष्ठ

रहित होकर यह जो कर्म किया इसके लिये तुमको रामचंद्रजीसे प्राणान्त करनेंवाली घोर विपद् में पडना होगा ॥ २८॥ हाय! हम धर्म की इच्छा
करनें वाले यशस्वी रामचंद्रजीकी धर्म पत्नी होकर भी हरी जातीहैं । इतनें दिन पीछे सव कुटुम्बियों सहित कैकेयीकी मनो कामना पूर्ण हुई॥२९॥
इन पुष्पित कर्णिकार और जनस्थान, सब सेही हम यह प्रार्थना करतीहैं कि सब रामचंद्रजीसे कहदेना कि रावण सीताजीको हरण कर लेगया
है ॥ ३०॥ हे संसार सेवित तरंगिणि गोदावरी! हम तुम्हारी वंदना करतीहैं; तुमभी शीघ्र रामचंद्रजीसे यह कह देना रावण जानकीको हरण करके
ले गयाहै ॥ ३१ ॥ इस विविध प्रकारके वृक्ष कानन में जो देवता वास करते हैं, हम उन सवको नमस्कार करतीहैं, वहभी हमारे स्वामी श्रीराम

हंतेदानींसकामातुकैकेयीबांधवैःसह ॥ ह्रियेयंधर्मकामस्यधर्मपत्नीयशस्विनः ॥ २९ ॥आमंत्रयेजनस्थानंकर्णिकारां
श्चपुष्पितान् ॥ क्षिप्रंरामायशंसध्वंसीतांहरतिरावणः ॥ ३० ॥ हंससारससंघुष्टांवंदेगोदावरींनदीम् ॥ क्षिप्रंरामा
यशंसध्वंसीतांहरतिरावणः ॥ ३१ ॥ दैवतानिचयान्यस्मिन्वनेविविधपादपे ॥ नमस्करोम्यहंतेभ्योभर्तुःशंसतमांह
ताम् ॥ ३२ ॥ यानिकानिचिदप्यत्रसत्त्वानिविविधानिच ॥ सर्वाणिशरणंयामिमृगपक्षिगणानिवै ॥ ३३ ॥ ह्रियमा
णांप्रियांभर्तुःप्राणेभ्योऽपिगरीयसीम् ॥ विवशातेहृतासीतारावणेनेतिशंसत ॥ ३४ ॥ विदित्वातुमहाबाहुरमुत्रापि
महाबलः ॥ आनेष्यतिपराक्रम्यवैवस्वतहृतामपि ॥ ॥ ३५ ॥ सातदाकरुणावाचोविलपंतीसुदुःखिता ॥ वनस्पति
गतंगृध्रंददर्शायतलोचना ॥ ३६ ॥

चंद्रजीसे हमारे हरणकी वार्ता कहैं॥३२ ॥ इस वनमें. मृग. पक्षी,इत्यादि जो कोई प्राणी भी वसतेहैं, हम उन सबकी ही शरण आतीहैं ॥ ३३ ॥
वह सवही पशु पक्षी हमारे स्वामीसे उनकी प्यारी स्त्रीके हरनेंका वृत्तान्त सुनावें, और कहैं कि विवश होकर सीता रावण करकै हरी गईहैं॥ ३४ ॥
हमको यदि यमराज भी हर कर ले जांय और महावाहु रामचंद्रजीको समाचार मिल जावें, तो वह अपना पराक्रम प्रकाश करकै वहांसेभी हमको
लेआवेंगे ॥३५ ॥ विशाल नेत्रवाली जानकीजीनें अतिशय दुःखित होकर विलाप करते २ अचानक देखा कि गृध्रराज जटायु पेड पर बैठेहैं ॥३६॥

ब्राह्मणका वेष धारण किये लाल वस्त्र पहरे जानकीजीनें ब्राह्मणकेही समान रावणका निमंत्रण करके कहा॥ ३५ ॥ हे विप्र! आप कुशासनपर सुख स
हित बैठ जाइये, और यह पाद्य ग्रहण कीजिये,व यह वनके फल सब आपकेही लियें रखेंहैं, इनको भोजनकीजिये ॥ ३६ ॥ नरेन्द्रभार्या जानकीजीनें
जब इस प्रकार निमंत्रण किया तब रावण उनकी ओर देख अपनें वध करानेंको बलपूर्वक उनके हरलेजानेंका निश्चय करताहुआ ॥ ३७ ॥परमप्रिय
मूर्ति रामचंद्रजी लक्ष्मणजीके सहित मृगया करनें गयेथे. जानकी उस समय उनकी वाट देखती हुई इधर उधर दृष्टि करनें लगीं तौ केवल चारों ओर बड़े

द्विजातिवेषेणसमीक्ष्यमैथिलीसमागतंपात्रकुसुंभधारिणम् ॥ अशक्यमुद्द्रेष्टुमुपायदर्शनान्यमंत्रयद्ब्राह्मणवत्तथाग
तम् ॥ ३५ ॥ इयंबृसीब्राह्मणकाममास्यतामिदंचपाद्यंप्रतिगृह्यतामिति ॥ इदंचसिद्धंवनजातमुत्तमंत्वदर्थमव्यग्रमि
होपभुज्यताम् ॥ ३६ ॥ निमंत्र्यमाणःप्रतिपूर्णभाषिणींनरेंद्रपत्नींप्रसमीक्ष्यमैथिलीम् ॥ प्रसह्यतस्याहरणेदृढंम
नःसमर्पयामासवधायरावणः ॥ ३७ ॥ ततःसुवेषंमृगयागतंपतिंप्रतीक्षमाणासहलक्ष्मणंतदा ॥ निरीक्षमाणाहरितं
ददर्शतन्महद्वनंनैवतुरामलक्ष्मणौ ॥ ३८ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेषट्चत्वारिं
शःसर्गः ॥ ४६ ॥ ॥ ७ ॥ रावणेनतुवैदेहीतदापृष्टाजिहीर्षुणा ॥ परिव्राजकरूपेणशशंसात्मानमात्मना ॥ १ ॥
ब्राह्मणश्चातिथिश्चैषअनुक्तोहिशपेतमाम् ॥ इतिध्यात्वामुहूर्तंतुसीतावचनमब्रवीत् ॥ २ ॥ दुहिताजनकस्याहंमैथि
लस्यमहात्मनः ॥ सीतानामास्मिभद्रंतेरामस्यमहिषीप्रिया ॥ ३ ॥

विस्तारवाली हरे वर्णकी वनभूमिही दृष्टि आई,परन्तु राम लक्ष्मणजी दिखाई नहीं दिये ॥ ३८ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०आर०षट्चत्वारिंशःसर्गः॥४६॥
जब संन्यासीवेशधारी रावणनें हरण करनेंके अभिलाषसे इस भांति पूछा तब सीताजी आपही आप विचार करनें लगीं ॥ १ ॥ कि एक तो यह ब्रा
ह्मणहै दूसरे अतिथिहै जो हम इस्से नहीं बोलतीं, तौ कदाचित् शाप न देदे, एक मुहूर्त भर यह शोच विचार कर जानकीजी उस्से बोलीं ॥ २ ॥ आ
पका कल्याणहो । हम मिथिलानरेश महात्मा जनकजीकी तौ कन्याहैं और श्रीरामचंद्रजीकी प्रिय भार्याहैं हमारा नाम सीताहै ॥ ३ ॥

नाथ रामचंद्रजीकी धर्मपत्नीहैं ॥ ५ ॥ सीता इनका नामहै जिनको तुम हरण करनेंको उद्यत हो सो तुम प्रजा पालन रूप धर्ममें स्थिर रहकर किस प्रकारसे पराई स्त्रीको हरण करोगे ॥ ६ ॥ हे महाबलवान! विशेष कर राज पत्नियोंका रक्षा करना सब भांतिसे कर्त्तव्य है; अतएव तुम पराई स्त्रीके हरण करने ओछे विषय की नीच बुद्धिको निवारण करो ॥ ७ ॥ जिस कर्मके करनें से लोकमें निन्दाहो, धीर पुरुष कभी ऐसे कार्यको नहीं किया करतेहैं। अपनी स्त्रीके समान पराई स्त्रीको पर पुरुषके स्पर्श से रक्षा करना सबही पुरुषोंको कर्त्तव्यहै॥ ८ ॥ हे पौलस्त्यनंदन! शास्त्रसे निश्चित न होने पर भी शिष्ट जब राजा के अनुवर्ती होकर अनेकानेक धर्म, अर्थ अथवा काम विषयके अनुष्ठानमें रत होतेहैं ॥ ९ ॥ राजाही

सीतानामवरारोहार्यांत्वंहर्तुमिहेच्छसि ॥ कथंराजास्थितोधर्मेपरदारान्परामृशेत् ॥६॥ रक्षणीयाविशेषेणराजदारामहाबल ॥ निवर्तयगतिंनीचांपरदाराभिमर्शनात् ॥ ७॥ नतत्समाचरेद्धीरोयत्परोस्यविगर्हयेत् ॥ यथात्मनस्तथान्येषांदारारक्ष्याविमर्शनात् ॥८॥ अर्थंवायदिवाकामंशिष्टाःशास्त्रेष्वनागतम् ॥ व्यवस्यंत्यनुराजानंधर्मंपौलस्त्यनंदन ॥ ९ ॥ राजाधर्मश्चकामश्चद्रव्याणांचोत्तमोनिधिः ॥ धर्मःशुभंवापापंवाराजमूलंप्रवर्तते ॥ १० ॥ पापस्वभावश्चपलःकथंत्वंरक्षसांवर ॥ ऐश्वर्यमभिसंप्राप्तोविमानमिवदुष्कृती ॥ ११ ॥ कामस्वभावोयःसोऽसौनशक्यस्तंप्रमार्जितुम् ॥ नहिदुष्टात्मनामार्यमावसत्यालयेचिरम् ॥ १२ ॥ विषयेवापुरेवातेयदारामोमहाबलः ॥ नापराध्यति धर्मात्माकथंतस्यापराध्यसि ॥ १३ ॥

धर्म, राजाही काम और राजाही समस्त द्रव्यों में उत्तम रत्न स्वरूपहै; धर्म, काम, वा पाप समस्त ही राजमूलकहैं ॥ १० ॥ हे राक्षसराज! हम नहीं कह सकते कि तुम पाप स्वभाव और चपल होकर किस प्रकार दुष्कर्म करनेवाले जनको देवयोनि प्राप्त होने के समान ऐसे ऐश्वर्य को प्राप्त हुए? ॥ ११ ॥ जो पुरुष स्वेच्छाचारी होताहै वह उस अपने स्वभावको त्यागन नहीं कर सकता, क्यों कर दुरात्माओंके स्थानों में पुण्य कभी टिक नहीं सकताहै ॥ १२ ॥ महाबल धर्मात्मा रामचंद्रजीनें तुम्हारे नगर व अधिकारमें कोई अपराध नहीं कियाहै; फिर तुम किस

इसकारण कैकेयीका प्रिय करनेंके लिये उन्होंने इस प्रकारके गुणसम्पन्न रामचंद्रजीको अभिषेक न किया और जब श्रीरामचंद्रजी अभिषेकार्थ अपने पिताके निकट आये तो ॥ १३॥ कैकेयीने शीघ्रही उनसे यह वचन कहा, कि, हे रघुनंदन! तुम्हारे पिताजीनें तुमको जो आज्ञा दीहै वह हमसे सुनो ॥ १४ ॥ हे काकुत्स्थ! भरतको यह निष्कंटक राज्य देना होगा और तुम्हें चौदह वर्षके लिये वनमें रहना पडेगा ॥ १५ ॥ इसकारण तुम वनमें जाकर पिताके सत्यकी रक्षा करो और मिथ्यावादी न करो पिताको इस ऋणसे छुटाओ, तब दृढव्रत हमारे स्वामी श्रीरामचंद्रजीनें निडरहोकर कैकेयीसे ऐसाही होगा; यह कहा ॥ १६ ॥ हमारे दृढ व्रत धारी स्वामीनें उनके वचन सुनकर उसीके अनुसार कार्य किया हे विप्र! वह के

कैकेय्याःप्रियकामार्थंतंरामंनाभ्यषेचयत् ॥ अभिषेकायतुपितुःसमीपंराममागतम् ॥ १३ ॥ कैकेयीममभर्तारमित्यु
वाचद्रुतंवचः ॥ तवपित्रासमाज्ञप्तंममेदंशृणुराघव ॥ १४ ॥ भरतायप्रदातव्यमिदंराज्यमकंटकम् ॥ त्वयातुखलुवस्त
व्यंनववर्षाणिपंचच॥ १५॥ वनेप्रव्रजकाकुत्स्थपितरंमोचयानृतात् ॥ तथेत्युवाचतांरामःकैकेयीमकुतोभयः ॥ १६ ॥
चकारतद्वचःश्रुत्वाभर्ताममदृढव्रतः ॥ दद्यान्नप्रतिगृह्णीयात्सत्यंब्रूयान्नचानृतम् ॥ १७ ॥ एतद्ब्राह्मणरामस्यव्रतंधृत
मनुत्तमम् ॥ तस्यभ्रातातुवैमात्रोलक्ष्मणोनामवीर्यवान् ॥ १८ ॥ रामस्यपुरुषव्याघ्रःसहायःसमरेऽरिहा ॥ सभ्राता
लक्ष्मणोनामब्रह्मचारीदृढव्रतः ॥ १९ ॥ अन्वगच्छद्धनुष्पाणिःप्रव्रजंतंमयासह ॥ जटीतापसरूपेणमयासहसहानु
जः ॥ २० ॥ प्रविष्टोदंडकारण्यंधर्मनित्योदृढव्रतः ॥ तेवयंप्रच्युताराज्यात्कैकेय्यास्तुकृतेत्रयः ॥ २१ ॥

वल लोकोंको दान किया करतेहैं; परन्तु कभी किसीसे कुछ ग्रहण नहीं करते सदाही सत्य कहतेहैं कभी मिथ्या नहीं कहते ॥ १७ ॥ हे ब्राह्मण! बस यही रामचंद्रजीका श्रेष्ठ व्रतहै। उनके सौतेले भाई लक्ष्मणजी अतिशय वीरहैं ॥ १८ ॥व सदा रामजीके संग रहा करतेहैं पुरुषव्याघ्रहैं समरमें निहारतेही शत्रुका संहार करतेहैं वह ब्रह्मचारी और दृढव्रतधारीहैं ॥ १९ ॥ धनुषबाण हाथमें ले, जटा रखाय तपस्वीका भेष बनाय रामचंद्रजीके साथ२ वनमें चले आये॥२०॥ इस प्रकार दृढव्रतधारी महात्मा रामचंद्रजी भ्राता लक्ष्मण और अपनी स्त्री सहित जटा रखाय तपस्वी वेष धारण कर

यदि तुम शूर हो युद्ध करो। अथवा हे रावण! एक मुहूर्त भर ठहर, पहले खर जिस प्रकार पृथ्वीपर शयन कर चुका तुमभी वैसेही मारे
जाकर पृथ्वीपर शयन करोगे॥२२॥ २३ ॥जिन तुमने वारंवार युद्धमें दैत्य और दानवोंको मार डाला है, सो जटावल्कलधारी रामचन्द्रजी
शीघ्रही संग्राममें तुमको वध करेंगे॥ २४ ॥ वह दो राजकुमार, राम लक्ष्मण अभी दूरे हैं हम क्या करैं, रे नीच! तुमको शीघ्रही उनसे भीत
होकर विनाशको प्राप्त होना पडेगा इसमें कुछ सन्देह नहीं है॥ २५ ॥ और जबतक कि हम जीते हैं तब तकभी तुम हमारे सामनें रामचन्द्र
जीकी प्रिय स्त्री कमलनेत्र सुस्वभावा इन जानकीजीको ले नहीं जा सकोगे॥ २६ ॥ क्योंकि जबतक हम जीवित हैं तब तक प्राण तलकभी

नशक्तस्त्वंबलाद्धर्तुंवैदेहींममपश्यतः॥ हेतुभिर्न्यायसंयुक्तैर्ध्रुवांवेदश्रुतीमिव॥ २२ ॥ युद्धचस्वयदिशूरोसिमुहूर्तंतिष्ठ
रावण॥ शयिष्यसेहतोभूमौयथापूर्वंखरस्तथा॥२३॥ असकृत्संयुगेयेननिहतादैत्यदानवाः॥ नचिराच्चीरवासास्त्वां
रामोयुधिवधिष्यति॥ २४ ॥ किंनुशक्यंमयाकर्तुंगतौदूरंनृपात्मजौ॥ क्षिप्रंत्वंनश्यसेनीचतयोर्भीतोनसंशयः॥२५॥
नहिमेजीवमानस्यनयिष्यसिशुभामिमाम्॥ सीतांकमलपत्राक्षींरामस्यमहिषींप्रियाम्॥२६॥ अवश्यंतुमयाकार्यंप्रि
यंतस्यमहात्मनः॥ जीवितेनापिरामस्यतथादशरथस्यच॥ २७ ॥ तिष्ठतिष्ठदशग्रीवमुहूर्तंपश्यरावण॥ वृंतादिवफलं
त्वांतुपातयेयंरथोत्तमात्॥ २८ ॥ युद्धातिथ्यंप्रदास्यामियथाप्राणंनिशाचर॥ २९ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवा
ल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेपंचाशःसर्गः॥ ५० ॥ ॥ छ ॥ इत्युक्तःक्रोधताम्राक्षस्तप्तकांचनकुंडलः॥ रा
क्षसेंद्रोऽभिदुद्रावपतगेंद्रममर्षणः॥ १ ॥

देकर महात्मा रामचन्द्र और दशरथजीका प्रिय कार्य हमको अवश्य करना उचित है॥ २७ ॥ इस कारण हे रावण! एक मुहूर्त खडा रह खडा रह.
तुझको हम देखेंगे जिस प्रकार बौर से फल तोड लिया जाता है वैसेही तुमको हम रथसे नीचे गिरावेंगे॥२८॥ रे निशाचर! जब तक हमारे प्राण हैं
तब तक भली भांति हम तुम्हारी युद्धकी पहुनई करेंगे॥ २९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० आर० पंचाशः सर्गः॥ ५० ॥
पक्षीराज जटायुनें जब इस प्रकारसे कहा तब शुद्ध सुवर्णके बने कुंडल पहरे राक्षस राज रावण क्रोधके मारे लाल २ नेत्र कर उनके सामनें

भामिनि! वहां विचरण करनेंपर फिर तुमको इस वनमें वास करनेंकी अभिलाषा नहीं रहेगी ॥ ३० ॥ हे सीते! यदि तुम हमारी भार्या बनोगी तो सर्व वस्त्राभूषणभूषित पांच हजार दासिये तुम्हारी सेवा किया करेंगी ॥ ३१ ॥ रावण यह जान्ताथा कि मैंने ऐसे पाप कियेहैं कि जिससे जप तप करनेंसे कदाचित् मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती इस कारण विरोध करके राम जिनको तत्त्वसे ईश्वर जानताथा उनके हाथसे मरनेंमें मुक्तिकी प्राप्ति विचार कर जानकीसे ऐसे वाक्य कहे कि जो ऐसे निठुर वचन कहूं तो शीघ्र अधिक पाप करनेसे रामचंद्रके हाथसे परम पद पाऊंगा अनन्दिता जनककुमारी जानकीजी राक्षस राज रावण करके इस प्रकार कहीजानेंपर महा क्रोधित हुई, और उसका अनादर करके कहनें

पंचदास्यःसहस्राणिसर्वाभरणभूषिताः ॥ सीतेपरिचरिष्यंतिभार्याभवसिमेयदि ॥ ३१ ॥ रावणेनैवमुक्तातुकुपिताज
नकात्मजा ॥ प्रत्युवाचानवद्यांगीतमनादृत्यराक्षसम् ॥ ३२ ॥ महागिरिमिवाकंप्यंमहेंद्रसदृशंपतिम् ॥ महोदधि
मिवाक्षोभ्यमहंराममनुव्रता ॥ ३३ ॥ सर्वलक्षणसंपन्नंन्यग्रोधपरिमंडलम् ॥ सत्यसंधंमहाभागमहंराममनुव्रता
॥ ३४ ॥ महाबाहुंमहोरस्कंसिंहविक्रांतगामिनम् ॥ नृसिंहंसिंहसंकाशमहंराममनुव्रता ॥ ३५ ॥ पूर्णचंद्राननंरा
मंराजवत्संजितेंद्रियम् ॥ पृथुकीर्तिमहाबाहुमहंराममनुव्रता ॥ ३६ ॥ त्वंपुनर्जंबुकःसिंहींमामिहेच्छसिदुर्लभाम् ॥
नाहंशक्यास्त्वयास्प्रष्टुमादित्यस्यप्रभायथा ॥ ३७ ॥

लगीं ॥ ३२ ॥ जो यहां पर्वत सुमेरुकी समान अकंपनीय, महासागरकी समान क्षोभरहितहैं, ऐसे महेन्द्र तुल्य हम स्वामी रामचंद्रजीकी अनुगताहैं ॥ ३३ ॥ जो शुभलक्षण युक्त वटवृक्षकी समानहैं, हम उनही सत्य प्रतिज्ञ महाभाग रामचंद्रजीकी अनुगताहैं ॥ ३४ ॥ जो आजानुबाहु वालेहैं, विशाल हृदयहैं, और सिंहकी समान विक्रमके साथ चलनेंवालेहैं, हम उनही नृसिंह और सिंह सदृश रामचंद्रजीकी अनुगताहैं ॥ ३५ ॥ उनका मुख पूर्ण चंद्रमाकी समानहै कीर्ति बहुतही विस्तारित होरहीहै; और बांहें जिनकी अति बडीहैं हम उन्हीं राजकुमार जितेन्द्रिय रामचंद्रजीकी अनुगताहैं ॥ ३६ ॥ तुम शृगाल होकर सिंहीका अभिलाष करतेहो, परन्तु तुम हमको नहीं ले सकते, जैसे सूर्यकी प्रभाको कोई नहीं छू

क्रोधयुक्तहो दूसरा धनुष ग्रहण करके शत २ सहस्र २ बाणोंकी वर्षा जटायु पर करनें लगा ॥ ११ ॥ उस समय पक्षिराज जटायु उन शर समूहसे विधकर घोंसलेमें बैठे हुए पक्षीकी समान शोभित होनें लगे ॥ १२ ॥ तिसके पीछे महा तेजस्वी जटायुजीनें अपने दोनों पंखोंसे उस शर जालको तोड ताड फिर अपने पंजोंसे रावणके महा धनुषको तोड डाला ॥ १३ ॥ और पंखोंके प्रहारसे महा तेजस्वी जटायुनें रावणका अग्निकी समान प्रदीप्त कवचभी खण्ड २ कर दिया ॥ १४ ॥ समरमें रावणका सुवर्णमय दिव्य कवच तोडकर जटायुजीने अतिशय शीघ्र चलनें वाले पिशाचवदन गधोंको जो रावणके रथमें जुतेथे मार डाला ॥ १५ ॥ फिर वेगमें भर कर रावणकी इच्छानुसार चलनेंवाले अग्निकी समान

शरैरावारितस्तस्यसंयुगेपतगेश्वरः ॥ कुलायमभिसंप्राप्तःपक्षिवच्चबभौतदा ॥ १२ ॥ सतानिशरजालानिपक्षाभ्यांतुविधूयह ॥ चरणाभ्यांमहातेजाबभंजास्यमहद्धनुः ॥ १३ ॥ तच्चाग्निसदृशंदीप्तंरावणस्यशरावरम् ॥ पक्षाभ्यांचमहातेजाव्यधुनोत्पतगेश्वरः ॥ १४ ॥ कांचनोरश्छदान्दिव्यान्पिशाचवदनान्खरान् ॥ तांश्चास्यजवसंपन्नाञ्जघानसमरेबली ॥ १५ ॥ अथत्रिवेणुसंपन्नंकामगंपावकार्चिषम् ॥ मणिसोपानचित्रांगंबभंजचमहारथम् ॥ १६ ॥ पूर्णचंद्रप्रतीकाशंछत्रंचव्यजनैःसह ॥ पातयामासवेगेनग्राहिभीराक्षसैःसह ॥ १७ ॥ सारथेश्चास्यवेगेनतुंडेनचमहच्छिरः ॥ पुनर्व्यपहनच्छ्रीमान्पक्षिराजोमहाबलः ॥ १८ ॥ सभग्नधन्वाविरथोहताश्वोहतसारथिः ॥ अंकेनादायवैदेहींपपातभुविरावणः ॥ १९ ॥

प्रभावाले, मणिरचित सोपान युक्त, तीन वांस जिसमें लगे हुए ऐसे रावणके रथकोभी जटायुनें तोडा ॥ १६ ॥ छत्र आदि धारण करनें वाले राक्षसोंके सहित पूर्ण चन्द्रमाकी समान छत्र और व्यजनभी जटायुनें नीचे गिराया ॥ १७ ॥ और फिर अपनी चोंचके प्रहारसे सारथीका बडा भारी शिरभी बडे वेगसे जटायुनें काटा इस प्रकार परम श्रीसम्पन्न महा बलवान पक्षिराज करके ॥ १८ ॥ शरासन छिन्न रथके टूट जानें पर सारथी और घोडोंके मर जानेंसे जानकीजीको दोनों भुजाओंसे पकडे हुए रावण पृथ्वीपर गिरा ॥ १९ ॥

इच्छा लोहेके त्रिशूलोंके वीचमें चलनेंकी समानहै ॥ ४४ ॥ सिंह और शृगालमें, क्षुद्रनदी व सागरमें अमृत और सिरकेमें जितना भेदहै उतनाही भेद श्रीरामचंद्रजी और तुममें है ॥ ४५ ॥ कांचन, शीशे, और लोहे में, चंदन जल और कीचडमें वनमें, हाथी और विलाव में जितना अंतरहै, उतनाही अंतर श्रीरामचंद्रजी और तुममें है ॥ ४६ ॥ गरुड और काकमें, मोर और जलमुर्गीमें, हंस और गीधमें जितना अंतरहै उतनाही अंतर श्रीरामचंद्रजी और तुममें है ॥ ४७ ॥ महेन्द्रसम प्रभावशाली श्रीरामचंद्रजी जो धनुष बाण धारण किये इस पृथ्वीपर टिकेहैं, तौ यदि तुम हमको हरभी ले जाओगे तौ तुम्हारे यहां हम वृद्धावस्थाको प्राप्त न होंगी अर्थात् वह बहुत शीघ्र तुमको मारकर हमको लेआवेंगे । जिस

यदंतरंसिंहसृगालयोर्वनेयदंतरंस्यंदनिकासमुद्रयोः ॥ सुराग्र्यसौवीरकयोर्यदंतरंतदंतरंदाशरथेस्तवैवच ॥ ४५ ॥ यदंतरंकांचनसीसलोहयोर्यदंतरंचंदनवारिपंकयोः ॥ यदंतरंहस्तिबिडालयोर्वनेतदंतरंदाशरथेस्तवैवच ॥ ४६ ॥ यदंतरंवायसवैनतेययोर्यदंतरंमद्गुमयूरयोरपि ॥ यदंतरंहंसकगृध्रयोर्वनेतदंतरंदाशरथेस्तवैवच ॥ ४७ ॥ तस्मिन्सहस्राक्षसमप्रभावेरामेस्थितेकार्मुकबाणपाणौ ॥ हृतापितेहंनजरांगमिष्येआज्यंयथामक्षिकयाऽवगीर्णम् ॥ ४८ ॥ इतीवतद्वाक्यमदुष्टभावासुदुष्टमुक्त्वारजनीचरंतं ॥ गात्रप्रकंपाद्व्यथिताबभूववातोद्धतासाकदलीवतन्वी ॥ ४९ ॥ तांवेपमानामुपलक्ष्यसीतांसरावणोमृत्युसमप्रभावः ॥ कुलंबलंनामचकर्मचात्मनःसमाचचक्षेभयकारणार्थम् ॥ ५० ॥

॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेसप्तचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४७ ॥ ॥ छ ॥

प्रकार घृतमें मक्खी पडजाय, तौ घृत दूषित नहीं होता, वरन मक्खी ही प्राण देतीहै । अर्थात् हमारा कुछ न होगा, तुमही मारे जाओगे ॥ ४८ ॥ जिस प्रकार पवनके चलनेंसे कदलीका वृक्ष कंपायमान होकर हिलनें लगताहै, वैसेही शुद्धस्वभाववाली जानकीजी दुष्ट राक्षससे इस प्रकारके वचन कह थरथर कांपने लगीं ॥ ४९ ॥ तिन जनकात्मजा सीताजीको कंपायमान देखकर मृत्यु सम प्रभावयुक्त रावण उनको डरपानेंके लिये अपना कुल नाम और कर्म कहताहुआ ॥ ५० ॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे सप्तचत्वारिंशः सर्गः॥४७॥

किसी स्थानमें गमन करके भी इस भांतिकी काल फांससे न छूटेगा ॥ २७ ॥ हे रावण! राम लक्ष्मणको कोई नहीं जीत सकता। सो तू जो इस आश्रमका निरादर कर जानकीजीको लिये चला जाता है इस बातको यह सुनकरभी तुझे किसी भांति क्षमा नहीं करेंगे ॥ २८ ॥ तुझ डरपोकनें सर्व लोक निन्दित जैसे कर्मका अनुष्ठान किया है सो ऐसे मार्गमें तस्कर लोग चला करते हैं, और वीर लोग इस मार्गमें नहीं चलते॥२९॥ अरे रावण! यदि तुझमें शूरताहो तौ युद्ध कर! नहीं तौ एक मुहूर्त ठहर बस अपनें भ्राता खरकी समान तूभी पृथ्वीमें शयन करैगा॥३०॥ मृत्युके समय लोग जिस प्रकारके कार्यको करते हैं, सो तूभी अपना नाश करनें के लिये उसी भांतिके अधर्म कार्य करनेंको तैयार हुआ है॥ ३१ ॥ जिस

नहिजातुदुराधर्षौकाकुत्स्थौतवरावण ॥ धर्षणंचाश्रमस्यास्यक्षमिष्येतेतुराघवौ ॥ २८ ॥ यथात्वयाकृतंकर्मभीरुणालोकगर्हितम् ॥ तस्कराचरितोमार्गोनैषवीरनिषेवितः ॥ २९ ॥ युद्ध्यस्वयदिशूरोसिमुहूर्तंतिष्ठरावण ॥ शयिष्यसिहतोभूमौयथाभ्राताखरस्तथा ॥ ३० ॥ परेतकालेपुरुषोयत्कर्मप्रतिपद्यते ॥ विनाशायात्मनोऽधर्म्यंप्रतिपन्नोसिकर्मतत् ॥ ३१ ॥ पापानुबंधोवैयस्यकर्मणःकोनुतत्पुमान् ॥ कुर्वीतलोकाधिपतिःस्वयंभूर्भगवानपि ॥ ३२ ॥ एवमुक्त्वाशुभंवाक्यंजटायुस्तस्यरक्षसः ॥ निपपातभृशंपृष्ठेदशग्रीवस्यवीर्यवान् ॥ ३३ ॥ तंगृहीत्वानखैस्तीक्ष्णैर्विददारसमंततः ॥ अधिरूढोगजारोहोयथास्याद्दुष्टवारणम् ॥ ३४ ॥ विददारनखैरस्यतुंडंपृष्ठेसमर्पयन् ॥ केशांश्चोत्पाटयामासनखपक्षमुखायुधः ॥ ३५ ॥

अधर्म कार्यके करनेंसे केवल पापही होता है, उस कार्यके करनें में कौन जन हाथ डालता है? इन्द्रादि लोकपाल अथवा स्वयं भगवान् ब्रह्माजीभी नहीं करते ॥ ३२ ॥ महाबलवान् जटायुजी इस प्रकारका नीति युक्त वचन कह कर दशानन रावणकी पीठ पर चिपट गये ॥३३ महावत दुष्ट हाथीपर चढकर जिस प्रकार अंकुश और भाला आदिसे उसके मस्तकको वींधता है, जटायुनेंभी वैसेही रावणको पकड अपने तीक्ष्ण नखोंकी चोटसे भली भांति रावणको घायल किया ॥ ३४ ॥ और इसी भांतिसे चोंचके आघात और पंजोंके प्रहारसे रावणकी पीठ नोंचकर

समुद्रके पार हमारी लंका नामक परम सुन्दरी नगरीहै वह पुरी देखनेमे इन्द्रकी दूसरी अमरावतीहै भयंकर निशाचर गण उसमें रहा करतेहैं ॥ १० ॥ और वहांपर श्वेत धवरहरे वृक्ष बहुतसे शोभित हो रहेहैं, उस लंकापुरीके सब फाटक वैदूर्य मणिके बनेहैं, और बहारदीवारी सुवर्णकीहै चारों ओर जिसके समुद्र रूपी खाईहै जिस्से यह पुरी परम मनोहारिणी होगईहै ॥ ११ ॥ वहांपर सदाही बाजोंकी ध्वनि गूंजती रहतीहै। उसमें हाथी घोडे और रथ समूह बहुत भर रहेहैं। वहांकी सब फुल वाडियें अभिलाषित फल देनेवाले वृक्षोंसे युक्तहैं जिस्से वाडियोंकी अति शोभा होरहीहै ॥ १२ ॥ हे राजपुत्री सीते! तुम हमारे साथ उस नगरीमें वास करोगी, तब फिर मनुष्योंकी स्त्रियोंको कभी स्मरणभी

ममपारेसमुद्रस्यलंकानापुरीशुभा ॥ संपूर्णाराक्षसैर्घोरैर्यथेंद्रस्यामरावती ॥ १० ॥ प्राकारेणपरिक्षिप्तापांडुरेणविराजिता ॥ हेमकक्ष्यापुरीरम्यावैदूर्यमयतोरणा ॥ ११ ॥ हस्त्यश्वरथसंबाधातूर्यनादविनादिता ॥ सर्वकामफलैर्वृक्षैःसंकुलोद्यानभूषिता ॥ १२ ॥ तत्रत्वंवसहेसीतेराजपुत्रिमयासह ॥ नस्मरिष्यसिनारीणांमानुषीणांमनस्विनि ॥ १३ ॥ भुंजानामानुषान्भोगान्दिव्यांश्चवरवर्णिनि ॥ नस्मरिष्यसिरामस्यमानुषस्यगतायुषः ॥ १४ ॥ स्थापयित्वाप्रियंपुत्रंराज्येदशरथोनृपः ॥ मंदवीर्यस्ततोज्येष्ठःसुतःप्रस्थापितोवनम् ॥ १५ ॥ तेनकिंभ्रष्टराज्येनरामेणगतचेतसा ॥ करिष्यसिविशालाक्षितापसेनतपस्विना ॥ १६ ॥ रक्षराक्षसभर्तारंकामयस्वयमागतम् ॥ नमन्मथशराविष्टंप्रत्याख्यातुंत्वमर्हसि ॥१७॥ प्रत्याख्यायहिमांभीरुपश्चात्तापंगमिष्यसि ॥ चरणेनाभिहत्येवपुरूवरसमुर्वशी ॥१८॥

नहीं किया करैंगे ॥ १३ ॥ हेमनस्विनी वरवर्णिनी! वहां पर तुम वह दिव्य भोग करके जो मनुष्योंको महादुर्लभहैं क्षीणायु रामचंद्रको कभी मनमें याद न करोगी ॥ १४ ॥ और राजा दशरथजीनें भरत जीको राज्याभिषेक करके मन्द वीर्य वाले अपने बडे पुत्र श्रीरामचंद्रजीको वनमें भेज दिया ॥ १५ ॥ हे बडे २ नेत्रवाली! तुम उन राज्यभ्रष्ट, गतचित्त, तपस्वी रामके साथ रहकर क्या करोगी? ॥ १६ ॥ हम समस्त राक्षसोंके राजा, काम बाणसे वींधे जाकर तुम्हारे पास आपही आयेहैं; सो हमारा निरादर करना तुमको उचित नहींहै ॥१७॥ हेभीरु! हमारा निरादर करनेंसे पीछे तुमको पछताना पडेगा। जिस प्रकार उर्वशी राजा पुरूरवाको लात मार कर संतापि

उनकी ओर दौडीं ॥ ४४ ॥ लंकापति रावणने नीले मेघकी समान विपुल वीर्यवान श्वेत वर्ण युक्त छाती वाले और भूपतित जटायुजीको बुझी हुई दावानलके समान शांत देखा ॥४५॥ अनन्तर चंद्र वदना सीताजी रावणके वेगसे मर्दित व पृथ्वीपर पडे हुए जटायुजीको दोनों बाहोंसे पकडकर वारंवार विलाप करकै रोनें लगीं ॥ ४६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे एकपंचाशःसर्गः ॥ ५१ ॥ रावण करके गृध्रराजका नाश देखकर चंद्रमुखी जानकीजी महादुःखितहो यह कहकर विलाप करनें लगीं ॥१॥ नेत्रोंका फडकना कृष्ण पुरुष दर्शनादि विषयक स्वप्न, पक्षियोंका देखना और पक्षियोंका स्वर श्रवण करना इत्यादि निश्चयही मनुष्योंके होंनहार सुख दुःखकी सूचना करतेहैं ऐसा

तंनीलजीमूतनिकाशकल्पंसपांडुरोरस्कमुदारवीर्यम्॥ददर्शलंकाधिपतिःपृथिव्यांजटायुषंशांतमिवाग्निदावम्॥४५॥
ततस्तुतंपत्ररथंमहीतलेनिपातितंरावणवेगमर्दितम्॥ पुनश्चसंगृह्यशशिप्रभाननारुरोदसीताजनकात्मजातदा ॥४६॥
इत्यार्षेश्रीम० वा० आ०आर०एकपंचाशःसर्गः ॥ ५१ ॥ सातुताराधिपमुखीरावणेननिरीक्ष्यतम् ॥ गृध्रराजंविनि
हतंविललापसुदुःखिता ॥ १ ॥निमित्तंलक्षणस्वप्नंशकुनिस्वरदर्शनम् ॥ अवश्यंसुखदुःखेषुनराणांपरिदृश्यते ॥ २ ॥
ननूनंरामजानासिमहद्व्यसनमात्मनः॥ धावंतिनूनंकाकुत्स्थमदर्थंमृगपक्षिणः ॥ ३ ॥ अयंहिकृपयाराममांत्रातु
मिहसंगतः ॥ शेतेविनिहतोभूमौममाभाग्याद्विहंगमः ॥ ४ ॥ त्राहिमामद्यकाकुत्स्थलक्ष्मणेतिवरांगना ॥ सुसंत्र
स्तासमाक्रंदच्छृण्वतांतुयथांतिके ॥ ५ ॥

देखा जाताहै ॥ २ ॥ हे काकुत्स्थ रामचंद्र!, आज निश्चयही मृग और पक्षी गण इस विपदकी सूचना करकै हमारा वियोग जतानेको तुम्हारे सामनें दौडते होंगे; तथापि तुम इस अपनें बडे कष्टको नहीं जानतेहो॥३॥हे काकुत्स्थ! यह विहङ्गम जटायु कृपा करकै हमारा उद्धार करनेंके लिये यहां आकर हमारेही भाग्य दोषसे निहतहो पृथ्वीपर पडेहैं ॥४॥ हे नाथ रामचंद्रजी! लक्ष्मणजी! तुम यहां पर हमारी रक्षा करो यह कहकर स्त्री रत्न सीताजी अतिशय शंकित होकर बडे जोरसे रुदन करनें लगीं। उनके रोनेंको निकट वर्ती प्राणियोंनें सुना ॥ ५ ॥

थमार अपनें शरीरको बहुत बढाता हुआ ॥ १ ॥ तिसके पीछे वचन बोलनें में चतुर दशशीश फिर जानकीजीसे बोला; समझपडा कि तुम उन्मत्त सी हो गईहो। क्या हमारा वीर्य और पराक्रम तुम्हारे श्रवण गोचर नहीं हुआ? ॥ २ ॥ हम आकाशमें टिके रह कर अपनी दोनों भुजाओं से पृथ्वीको उठा सकतेहैं सब समुद्रके जलकोभी पीसकतेहैं; और युद्धमें यमराजकोभी मार सकतेहैं ॥ ३ ॥ और तीखे बाणजालसे आकाशमें टिके हुए सूर्यकोभी व्यथित कर सकते, और पृथ्वीमें गिरा सकतेहैं ॥ ४ ॥ इस प्रकार कहतेही क्रोध युक्त होनेंके कारण रावणके सांवरे नेत्र समान हो गये और जलती हुई अग्निकी समानताको पहुँचे ॥ ५ ॥ फिर वह कुबेरका छोटा भाई रावण डंडी भेसको त्यागकर शीघ्रही यम

समैथिलींपुनर्वाक्यंबभाषेवाक्यकोविदः ॥ नोन्मत्तयाश्रुतौमध्येममवीर्यपराक्रमौ ॥ २ ॥ उद्वहेयंभुजाभ्यांतुमेदिनीमंबरेस्थितः ॥ आपिबेयंसमुद्रंचमृत्युंहन्यांरणेस्थितः ॥ ३ ॥ अर्कंतुद्यांशरैस्तीक्ष्णैर्विभिंद्यांहिमहीतलम् ॥ कामरूपेणउन्मत्तेपश्यमांकामरूपिणम् ॥४॥ एवमुक्तवतस्तस्यरावणस्यशिखिप्रभे ॥ क्रुद्धस्यहरिपर्यंतेरक्तेनेत्रेबभूवतुः॥ ५ ॥ सद्यःसौम्यंपरित्यज्यतीक्ष्णरूपंसरावणः ॥ स्वंरूपंकालरूपाभंभेजेवैश्रवणानुजः ॥ ६ ॥ संरक्तनयनःश्रीमांस्तप्तकांचनभूषणः ॥ क्रोधेनमहताविष्टोनीलजीमूतसंनिभः ॥ ७ ॥ दशास्योविंशतिभुजोबभूवक्षणदाचरः ॥ सपरिव्राजकच्छद्ममहाकायोविहायतत् ॥ ८ ॥ प्रतिपेदेस्वकंरूपंरावणोराक्षसाधिपः ॥ रक्तांबरधरस्तस्थौस्त्रीरत्नंप्रेक्ष्यमैथिलीम् ॥ ९ ॥ सतामसितकेशांतांभास्करस्यप्रभामिव ॥ वसनाभरणोपेतांमैथिलींरावणोऽब्रवीत् ॥ १० ॥

रूप समान अपना तीक्ष्ण रूप धारण करता हुआ ॥ ६ ॥ और महा क्रोध परायण होकर तपाये सोनेके बनेहुए गहनोंसे सुशोभित होकर नील मेघ सदृश श्रीमान् निशाचर रूप प्रगट हुआ ॥ ७ ॥ उस समय वह दशमुख व बीस भुजा वाला होगया, और छलसे जो दंडीका भेष बनायाथा उसको छोड दिया और बडी कायावाला बनगया ॥ ८ ॥ उस राक्षसपति रावणनें पहला रूप धारण कर लिया, परन्तु वस्त्र लाल रंगकेही पहरे रहा, और रमणीरत्न सीताजीको देखकर ॥ ९ ॥ उन सूर्यकी समान प्रभावाली, काले बालों करके युक्त वस्त्राभूषण धारण किये

कि दैवयोगसे रावणका विनाश आ पहुँचा इसमें कुछभी सन्देह नहींहै॥१२॥इस ओर सीताजी वारम्वार राम और लक्ष्मणजीका नाम लेकर रोनें लगीं राक्षस राज रावण उनको ग्रहण करकै आकाश मार्गमें गमन करनें लगा ॥ १३ ॥ तपे हुए सुवर्णके गहने पहने पीले रेशमीन वस्त्र पहरे राज नंदनी जानकीजी अतीव शोभान्विता सौदामिनी (विजली) की समान दीप्ति धारण करती हुई ॥ १४ ॥ उस कालमें सीताजीके पीत वसन उडनें के कारण रावणभी अग्निद्वारा प्रदीप्त पर्वतकी समान अधिक विराजमान हुआ ॥ १५ ॥ परम कल्याणि सीताजीके शरीरमें जो सुगन्धि युक्त अरुण वर्णके कमल दलथे; वह समस्त दशाननके अंगपर गिरते जातेथे ॥ १६ ॥ इसके सिवाय जानकीजीके विशुद्ध स्वर्ण वर्णके रेशमीन वस्त्र

सतुतांरामरामेतिरुदतींलक्ष्मणेतिच ॥ जगामादायचाकाशंरावणोराक्षसेश्वरः ॥ १३ ॥ तप्ताभरणवर्णांगीपीतकौ शेयवासिनी॥रराजराजपुत्रीतुविद्युत्सौदामनीयथा॥१४॥ उद्धूतेनचवस्त्रेणतस्याःपीतेनरावणः॥अधिकंपरिबभ्राज गिरिर्दीप्तइवाग्निना॥१५॥तस्याःपरमकल्याण्यास्ताम्राणिसुरभीणिच ॥ पद्मपत्राणिवैदेह्याअभ्यकीर्यंतरावणम् १६ तस्याःकौशेयमुद्धूतमाकाशेकनकप्रभम् ॥ बभौचादित्यरागेणताम्रमभ्रमिवातपे॥ १७॥ तस्यास्तद्विमलंवक्त्रमाकाशे रावणांकगम्॥ नरराजविनारामंविनालमिवपंकजम् ॥ १८॥ बभूवजलदंनीलंभित्त्वाचंद्रइवोदितः ॥ सुललाटंसुके शांतंपद्मगर्भाभमव्रणम् ॥१९॥ शुक्लैःसुविमलैर्दंतैःप्रभावद्भिरलंकृतम्॥ तस्यासुनयनंवक्त्रमाकाशेरावणांकगम्॥२०॥ रुदितंव्यपमृष्टास्रंचंद्रवत्प्रियदर्शनम् ॥ सुनासंचारुताम्रोष्ठमाकाशेहाटकप्रभम् ॥ २१ ॥

आकाशमें उडकर सन्ध्या कालीन सूर्य किरण शोभान्वित मेघोंकी समान शोभा विस्तार करने लगे ॥ १७ ॥ और सीताका निर्मल मुख मंडल रावणके अंकमें रहनेंके कारण श्री रामचंद्रजीके विना मृणाल रहित कमलकी समान किसी भांति शोभित नहीं हुआ ॥ १८ ॥ नील मेघको भेदनकर उदय होते हुए चंद्रमाकी समान सुन्दर ललाट सहित सुन्दर केश पर्यन्त पद्मगर्भ सम प्रकाशित विस्फोटकका चिह्न रहित॥१९॥ दीप्तमान् श्वेतवर्ण दन्त पंक्तिकी प्रभासे सुशोभित सुन्दर नेत्रयुक्त जानकीजीका वदन रावणके अंगमें स्थित आकाशमें इस प्रकारसे शोभा पाने लगा ॥ २० ॥ अनवरत रोदन युक्त आंसुओंके जलसें मलीन चंद्रमाकी समान प्रियदर्शन सुन्दर नासिका सहित, मनोहर, व लाल अधरों

हां पर आ पहुंचा ॥ १९ ॥ उस रथको देख रावण नें गंभीर स्वर और कठोर वचनों से जानकीजीको डांटा और धमकाया और उनको गोदमें लेकर रथमें डाल दिया ॥ २० ॥ यशस्विनी सीताजी उस करके ग्रही जानेपर और भयसे व्याकुलहो हाराम! हा राम! कहकर पुकार करनें लगीं परन्तु रामचंद्रजी उस समय बहुत दूरथे ॥ २१ ॥ रावणके प्रति जानकीजीका कछुभी अनुराग नहींथा इस कारणसे वह अपने छुटानेंके लिये यथाशक्य चेष्टा करनेंलगीं, परन्तु कामके वशहुआ रावण पन्नग राजकी स्त्रीके समान उनको लेकर आकाशको उडगया ॥ २२ ॥ इस प्रकारसे राक्षसराज रावण आकाशमें जानकी हरण करके लेचला जानकीजी मत्त भ्रान्त चित्त और आतुरकी समान यह कहकर बडे जोरसे विलाप

ततस्तांपरुषैर्वाक्यैरभितर्ज्यमहास्वनः ॥ अंकेनादायवैदेहींरथमारोहयत्तदा ॥२०॥ सागृहीतातिचुक्रोशरावणेनयशस्विनी ॥ रामेतिसीतादुःखार्तारामंदूरंगतंवने ॥ २१ ॥ तामकामांसकामार्तःपन्नगेंद्रवधूमिव ॥ विष्टेचमानामादायउत्पपाताथरावणः ॥ २२ ॥ ततःसाराक्षसेंद्रेणह्रियमाणाविहायसा ॥ भृशंचुक्रोशमत्तेवभ्रांतचित्तायथातुरा ॥ २३ ॥ हालक्ष्मणमहाबाहोगुरुचित्तप्रसादक ॥ ह्रियमाणांनजानीषेरक्षसाकामरूपिणा ॥ २४ ॥ जीवितंसुखमर्थंचधर्महेतोःपरित्यजन् ॥ ह्रियमाणामधर्मेणमांराघवनपश्यसि ॥ २५ ॥ ननुनामाविनीतानांविनेतासिपरंतप ॥ कथमेवंविधंपापंनत्वंशाधिहिरावणम् ॥ २६ ॥ ननुसद्योऽविनीतस्यदृश्यतेकर्मणःफलम् ॥ कालोप्यंगीभवत्यत्रसस्यानामिवपक्तये ॥ २७ ॥ त्वंकर्मकृतवानेतत्कालोपहतचेतनः ॥ जीवितांतकरंघोरंरामाद्व्यसनमाप्नुहि ॥ २८ ॥

करनेलगीं ॥ २३ ॥ हा गुरुचित्तप्रसादक! महाबाहु लक्ष्मणजी! काम रूपी राक्षस करके मैं हरी जातीहूं सो इसको तुम नहीं जानतेहो ॥ २४ ॥ हाराम! तुम धर्मकी रक्षा करनेंके लिये, प्राण, सुख, संपत्ति सबकाही त्याग करतेहो, इस समय हम अधर्मके द्वारा हरी जातीहैं सो क्योंनहीं हमें आनकर बचाते? ॥ २५ ॥ हे शत्रुओंके तपानेंवाले! जो अविनयी होतेहैं आप उनका सदाही शासन किया करतेहैं, फिर क्योंनहीं ऐसेही पापात्मा रावणका शासन करतेहो? ॥ २६ ॥ अन्यायी पुरुषके कर्मका फल शीघ्रही नहीं मिलता; जिस प्रकार नाजके पकनेंमें कुछ समय का प्रयोजन होताहै इसी प्रकार समय आनेंपर अन्यायका फल मिलताहै ॥ २७ ॥ हे रावण! तुमनें कालके प्रभावसे चेतना

साथ नीले वर्णका रावण कांचनकक्ष्यावेष्टित हस्तीकी समान शोभा पानें लगा इससे जानकीजी हाथीकी सुवर्णकी कौंधनीकी समान शोभा पानें लगीं ॥ ३० ॥ श्रीसीताजी महाज्वालाकी समान अपनें तेजसे आकाशके वीच देदीप्यमान होने लगीं, कुबेरका भाई रावण उस अवस्थामें उनको आकाश मार्गमें गमन करके ले जानें लगा ॥ ३१ ॥ उस समय सीताजीके अग्नि वर्णवाले शब्दायमान उनकी देहसे खसककर सब भूषण पृथ्वीमें गिरने लगे, उस समय ऐसा बोध हुआ मानों पुण्यक्षीण हुए तारागण आकाशसे गिर रहेहैं ॥३२॥ सीताजीका चंद्र सदृश दीप्तिवाला हार उनके दोनो उरोजोंके मध्यसे भ्रष्ट होकर गगनसे गिरी हुई गंगाजीके समान शोभा विस्तार करता गिरने लगा ॥ ३३ ॥ उत्पातकी वायुके चलनें से शिरः

तांमहोल्कामिवाकाशेदीप्यमानांस्वतेजसा ॥ जहाराकाशमाविश्यसीतांवैश्रवणानुजः ॥ ३१ ॥ तस्यास्तान्यग्निवर्णानिभूषणानिमहीतले ॥ सघोषाण्यवशीर्यंतक्षीणास्ताराइवांबरात् ॥ ३२ ॥ तस्याःस्तनांतराद्भ्रष्टोहारस्ताराधिपद्युतिः ॥ वैदेह्यानिपतन्भातिगंगेवगगनच्युता ॥ ३३ ॥ उत्पातवाताभिरतानानाद्विजगणायुताः ॥ माभैरितिविधूताग्राव्याजह्रुरिवपादपाः ॥ ३४ ॥ नलिन्योध्वस्तकमलास्त्रस्तमीनजलेचराः ॥ सखीमिवगतोत्साहांशोचंतीवस्ममैथिलीम् ॥ ३५ ॥ समंतादभिसंपत्यसिंहव्याघ्रमृगद्विजाः ॥ अन्वधावंस्तदारोषात्सीताच्छायानुगामिनः ॥ ३६ ॥ जलप्रपातास्रमुखाःशृंगैरुच्छ्रितबाहुभिः ॥ सीतायांह्रियमाणायांविक्रोशंतीवपर्वताः ॥ ३७ ॥ह्रियमाणांतुवैदेहींदृष्ट्वादीनोदिवाकरः ॥ प्रविध्वस्तप्रभःश्रीमानासीत्पांडुरमंडलः ॥ ३८ ॥

समूह कम्पित होनेके कारण विविध विहंगम युक्त वृक्ष मानों जानकीसे "कुछ भय नहींहै!" यह कहने लगे ॥ ३४ ॥ कमलदलोंके विध्वंस हो जानेंसे, और मत्स्य इत्यादिक जलचरोंके व्याकुल हो जानेपर सब सरोवर सखीकी समान उत्साह रहित जानकीजीके शोकसे विह्वल होरहेथे ॥ ॥३५॥सिंह, व्याघ्र, मृग, और पक्षी समूह क्रोधमें भरकर सीताजीकी परछांईके पकडने के लिये चारों ओरसे आकर उनके पीछेर दौडने लगे॥३६॥ जानकीजीके हर जानेसे समस्त पर्वत शृङ्गरूप बाहु परम्परा उठाकर झरने रूप अश्रुधाराकुल वदनसे मानो रुदनही करने लगे ॥ ३७ ॥ श्रीमान् सूर्य नारायणभी उस अवस्थामें जानकीजीको देखकर दीन और तेज हीन होगये और उनका मंडल प्रदेश धूंधला होगया ॥ ३८ ॥

जटायुको देखकर रावणके वशमें पडी हुई सुश्रोणी जानकीजी भयके मारे दुःखित हो रोकर बोलीं ॥ ३७ ॥ आर्य जटायु! अवलोकन करो यह पापात्मा राक्षसराज रावण हमको अनाथकी समान निर्दय भावसे हरण करके लिये जाता है ॥ ३८ ॥ आप इस महाबलवान् विजय चिह्न धारी दुर्मति क्रूर आयुधधारी निशाचर रावणको निवारण नहीं कर सकेंगे ॥ ३९ ॥ आप इस निशाचरको निवारण करनेंमें समर्थ नहींहैं, इस कारण ही श्रीरामचंद्रजीसे हमारे हरणकी वार्ता ठीक २ कह देना, और लक्ष्मणजीसे यह सब वृत्तान्त ब्यौरेवार कहना ॥ ४० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे एकोनपंचाशः सर्गः ॥ ४९ ॥ जटायु भोजन करके गहरी नींदमें सोरहेथे वह यह शब्द सुनतेही

सातमुद्वीक्ष्यसुश्रोणीरावणस्यवशंगता ॥ समाक्रंदद्भयपराद्दुःखोपहितयागिरा ॥ ३७ ॥ जटायोपश्यमामार्यह्रियमाणामनाथवत् ॥ अनेनराक्षसेंद्रेणकरुणंपापकर्मणा ॥ ३८ ॥ नैषवारयितुंशक्यस्त्वयाक्रूरोनिशाचरः ॥ सत्त्ववान्जितकाशीचसायुधश्चैवदुर्मतिः ॥ ३९ ॥ रामायतुयथातत्त्वंजटायोहरणंमम ॥ लक्ष्मणायचतत्सर्वमाख्यातव्यमशेषतः ॥ ४० ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेएकोनपंचाशःसर्गः ॥ ४९ ॥ ॥ तंशब्दमवसुप्तस्तुजटायुरथशुश्रुवे ॥ निरैक्षद्रावणंक्षिप्रंवैदेहींचददर्शसः ॥ १ ॥ ततःपर्वतशृंगाभस्तीक्ष्णतुंडःखगोत्तमः ॥ वनस्पतिगतःश्रीमान्व्याजहारशुभांगिरम् ॥ २ ॥ दशग्रीवस्थितोधर्मेपुराणेसत्यसंश्रवः ॥ भ्रातस्त्वंनिंदितंकर्मकर्तुंनार्हसिसांप्रतम् ॥ ३ ॥ जटायुर्नामनाम्नाहंगृध्रराजोमहाबलः ॥ राजासर्वस्यलोकस्यमहेंद्रवरुणोपमः ॥ ४ ॥ लोकानांचहितेयुक्तोरामोदशरथात्मजः ॥ तस्यैषालोकनाथस्यधर्मपत्नीयशस्विनी ॥ ५ ॥

जाग पडे और रावण और जानकी दोनों को देखा ॥ १ ॥ फिर पर्वतके शृंगसमान बडी तेज चोंचवाले और वृक्षपर बैठे हुए श्रीमान् पक्षिराज जटायु मीठे वचन से रावण को पुकारते हुए ॥ २ ॥ भ्रातः दशवदन! हम पुराण धर्म निरत और सत्यप्रतिज्ञहैं; इस कारण तुम हमारे सामने ऐसा निन्दनीय कार्य करनेंमें प्रवृत्त न होवो ॥ ३ ॥ हम महा बलवान् गृध्रराज जटायु हैं और दशरथकुमार श्रीरामचंद्रजी भी साक्षात् महेन्द्र और वरुणजीके समान सब लोकोंके राजाहैं ॥ ४ ॥ वह सब लोकोंके हितकारी कार्य करनेंको तैयार रहतेहैं, यह वरारोहा यशस्विनी उन्हीं लोक

रेराक्षसाधम रावण! हमको अकेला पाकर चोरी करके तू लिये भागाजाताहै अरे क्या इस नीच कर्मसे तुझे लाज नहीं आती? ॥ ३ ॥ रे दुरा
त्मन्! मैं जान गई कि तू डरपोक स्वभाववालाहै इसी कारणसे हमारे हरण करनेका अभिलाष कर मायामय मृगरूप बना हमारे स्वामी रामचं
द्रजीको छलसे दूरले गया॥४॥और इस समय हमारी रक्षा करनेके लिये जो तैयार हुएथे उन हमारे श्वशुरके सखा गृध्रराज जटायुजीकोभी तैंनेमारडा
ला हे राक्षसाधम! इससेही जाना गया कि तुझमें कुछ वीरता नहींहै तूने केवल हमको अपना नामही सुनाकर हरण किया, कुछ तुझ करके हम जी
ती नहीं गई. हाँ राम लक्ष्मणसे युद्ध कर हमें जीतता तौ एक बातथी॥५॥६॥रेनीच! शून्यमें पराई स्त्रीके हरण करनेंका यह नीच निन्दनीय कार्य कर

नव्यपत्रपसेनीचकर्मणानेनरावण ॥ ज्ञात्वाविरहितांयोमांचोरयित्वापलायसे ॥ ३ ॥ त्वयैवनूनंदुष्टात्मन्भीरुणाह
र्तुमिच्छता ॥ ममापवाहितोभर्तामृगरूपेणमायया॥४॥ योहिमामुद्यतस्त्रातुंसोप्ययंविनिपातितः ॥ गृध्रराजःपुराणोऽ
सौश्वशुरस्यसखामम ॥ ५ ॥ परमंखलुतेवीर्यंदृश्यतेराक्षसाधम ॥ विश्राव्यनामधेयंहियुद्धेनास्मिजितात्वया ॥ ६ ॥
ईदृशंगर्हितंकर्मकथंकृत्वानलज्जसे ॥ स्त्रियाश्चाहरणंनीचरहितेचपरस्यच ॥ ७ ॥ कथयिष्यंतिलोकेषुपुरुषाःकर्मकु
त्सितम् ॥ सुनृशंसमधर्मिष्ठंतवशौटीर्यमानिनः ॥ ८ ॥ धिक्तेशौर्यंचसत्त्वंचयत्त्वयाकथितंतदा ॥ कुलाक्रोश
करंलोकेधिक्तेचारित्रमीदृशम् ॥ ९ ॥ किंशक्यंकर्तुमेवंहियज्जवेनैवधावसि ॥ मुहूर्तमपितिष्ठत्वंनजीवन्प्रतियास्य
सि ॥ १० ॥ नहिचक्षुःपथंप्राप्यतयोःपार्थिवपुत्रयोः ॥ ससैन्योपिसमर्थस्त्वंमुहूर्तमपिजीवितुम् ॥ ११ ॥

के तू लज्जित नहीं होता ॥७॥रेअपनेंको शूर माननेंवाले! तूनें जो यह अति निर्लज्ज और निन्दनीय कार्य कियाहै सो इसकी चरचा सब पुरुष कर२
के तुझे बुरा कहेंगे॥ ८॥तूनें जो अपनी शूरताईकी और शारीरक बलकी वार्ता कही सो तेरी इस शूरताको धिक्कारहै! तेरेइस बलकोभी धिक्कारहै!
तेरे कुलके कलंक जनक ऐसे चरित्रपरभी धिक्कारहै ॥ ९ ॥ तू इस प्रकारसे हरण करकै शीघ्रताके साथ दौड़ा जाताहै फिर भला हम क्या कर स
कें हां यदि एक मुहूर्तभी तू खड़ा रहै, तौ प्राण लेकर नहीं लौटने पावेगा ॥ १० ॥ राजकुमार रामचंद्र और लक्ष्मणजीकी दृष्टिके आगे आते

कारण से उनका अपराध करतेहो? ॥ १३ ॥ देखो जनस्थानका रहनेंवाला खर अतिशय दुष्टथा तिससे सरलता करनेंवाले रामनें शूर्पणखाके लिये यदि उसको मार डालाहै ॥ १४॥ तौ इस्में रामचंद्रजीका क्या अपराधहै? तुम वही लोकनाथ रामचंद्रजीकी भार्या हरण करके लिये जातेहो॥१५॥ अभी जानकीको छोड दो; इन्द्रने जिस प्रकार वज्रसे वृत्रासुरको जलाडालाथा वैसेही कहीं रामचंद्रजी तुमको अनल कल्प रूप भयंकर दृष्टिसे भस्म न कर दें ॥ १६ ॥ तुमने जो अपने वस्त्रके अंचलमें महा विषदार सर्प बांधाहै सो उसको तुमनें सर्प नहीं जाना है अथवा तुम उस कालपाशको नहीं देखतेहो जो तुम्हारे गलेमें पडीहै ॥ १७ ॥ हे सौम्य! जिस भारको वहन करनेंसें दबजाना न पडे वही बोझा लेकर चलना चाहिये । और जो सहजही से पच जावै, और किसी प्रकार पीडा नकरै उसही अन्नको खाना चाहिये॥१८ ॥ जिसकार्य करनेंसें धर्म, कीर्ति,

यदिशूर्पणखाहेतोर्जनस्थानगतःखरः ॥ अतिवृत्तोहतःपूर्वंरामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ १४॥ अत्रब्रूहियथातत्त्वंकोरामस्य व्यतिक्रमः ॥ यस्यत्वंलोकनाथस्यहृत्वाभार्यांगमिष्यसि ॥ १५ ॥ क्षिप्रंविसृजवैदेहींमात्वाघोरेणचक्षुषा ॥ दहेद्दहनभूतेनवृत्रमिंद्राशनिर्यथा॥१६॥ सर्पमाशीविषंबद्ध्वावस्त्रांतेनावबुध्यसे॥ग्रीवायांप्रतिमुक्तंचकालपाशंनपश्यसि॥१७॥ सभारःसौम्यभर्तव्योयोनरंनावसादयेत् ॥ तदन्नमपिभोक्तव्यंजीर्यतेयदनामयम् ॥ १८॥ यत्कृत्वानभवेद्धर्मोनकीर्तिर्नयशोध्रुवम् ॥ शरीरस्यभवेत्खेदःकस्तत्कर्मसमाचरेत् ॥ १९ ॥ षष्टिवर्षसहस्राणिजातस्यममरावण ॥ पितृपैतामहंराज्यंयथावदनुतिष्ठतः ॥ २० ॥ वृद्धोहंत्वंयुवाधन्वीसरथःकवचीशरी ॥ नचाप्यादायकुशलीवैदेहींमेगमिष्यसि ॥ २१॥

वा चिरस्थाई यश, किसीके मिलनेंकी भी संभावना हो, वरन उलटा उससे शरीर में खेद हो, भला ऐसे कार्यके करनेकी कौन पुरुष इच्छा करैगा? ॥१९॥हे रावण! हमें साठ हजार वर्ष जन्म लिये हुए, तबसे विधि पूर्वक पिता पितामहादिकोंका पक्षियोंका राज्य पालन करते हैं॥ २०॥यद्यपि हम बूढे होगयेहैं और तुम युवा धनुर्वाण धारी कवच सम्पन्न और रथ पर सवारहो, तथापि हमारे सामनें तुम निरापद जानकीको न लेजा सकोगे* ॥ २१ ॥

* भजन—गीधराज सुनि आरत वानी । नैन उठाय विलोकन लागे रघुकुल तिलक नारि पहिचानी॥१॥परीं अधम निश्चरके वशमें जात पुकारत सारंग पानी॥२॥महा क्रोधमें भर अधीरहो रार करन की मनमें ठानी॥३॥पवन समान वेगसों धाये बोले ठहर तनक अभिमानी॥४॥चोर समान लिये सीताको जात कहां बचैके अभिमानी॥५ ॥यह कह चोंच मार रथ तोरचो रथीमार सुमिरे सुख दानी॥पुनि रावणको कियो मूर्छित लई उतार सीय महारानी ॥ ६ ॥ यह बलदेव भक्तके कर्तव युग २ कीरत चली सुहानी ॥ ७ ॥

और भी महद् कंटकाकीर्ण सुतीक्ष्ण शाल्मली वृक्ष यह सब बहुत शीघ्र तुझको दिखाई देंगे! तुम उन महात्मा रामचंद्रजीका ऐसा
अप्रिय कार्य करकै नहीं जी सकोगे ॥ २१ ॥ जिस प्रकार विषका पीनें वाला बहुत देर तक नहीं प्राण रख सकता, रेनिर्घृण! रावण! इन सब
वातोंसे स्पष्टहै कि तू कठिन कालकी फांसीसे बँधाहै ॥ २२ ॥ महात्मा हमारे स्वामीके सन्मुख संग्राममें प्राप्त होकर फिर तुम्हारा कहीं निस्तारा
नहीं, फिर तू कहां जायकर बचेगा; उन्होंने अकेलेही बिना अपनें भ्राताकी सहायताके एक निमेष मात्रमें ॥२३॥ चौदह हजार राक्षस मारडाले,वही
सब अस्त्र शस्त्रोंके जाननेंवाले महाबलवान् वीर्यसम्पन्न श्रीरामचंद्रजी ॥ २४ ॥ सुतीक्ष्ण बाणोंके समूहसे अपनी प्रिय भार्याके

द्रक्ष्यसेशाल्मलींतीक्ष्णामायसैःकंटकैश्चिताम् ॥ नहित्वमीदृशंकृत्वातस्यालीकंमहात्मनः ॥ २१ ॥ धारितुंशक्ष्य
सिचिरंविषंपीत्वेवनिर्घृणं ॥ बद्धस्त्वंकालपाशेनदुर्निवारेणरावण ॥ २२ ॥ क्वगतोलप्स्यसेशर्ममभर्तुर्महात्मनः ॥
निमेषांतरमात्रेणविनाभ्रातरमाहवे ॥ २३ ॥ राक्षसानिहतायेनसहस्राणिचतुर्दश ॥ कथंसराघवोवीरःसर्वास्त्रकुशलो
बली ॥ २४ ॥ नत्वांहन्याच्छरैस्तीक्ष्णैरिष्टभार्यापहारिणम् ॥ एतच्चान्यच्चपरुषंवैदेहीरावणांकगा ॥ भयशोकसमा
विष्टाकरुणंविललापह ॥ २५ ॥ तदाभृशार्तांबहुचैवभाषिणींविलापपूर्वंकरुणंचभामिनीम् ॥ जहारपापस्तरुणींविचे
ष्टतींनृपात्मजामागतगात्रवेपथुः ॥ २६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेत्रिपंचा
शःसर्गः ॥ ५३ ॥ ह्रियमाणातुवैदेहीकंचिन्नाथमपश्यती ॥ ददर्शगिरिशृंगस्थान्पंचवानरपुंगवान् ॥ १ ॥

हरनेंवाले तुझको अवश्यही मार डालेंगे, रावणके हाथोंके बीचमें बैठी वैदेहीजी भय और शोक युक्त होकर इस प्रकारसे व औरभी बहुत
भांतिसे कठोर वचनके साथ करुणास्वरसे विलाप करनें लगीं ॥ २५ ॥ वह महाव्याकुल होकर अपने छुडानेंकी चेष्टा करती हुई करुणा स
हित विलाप करकै अनेक वचन कहनें लगीं, उस समय पापचारी रावण अपनें शरीरको कंपाता हुआ उनको हरण करके ले चला ॥ २६ ॥
इ० श्रीम० वा० आ० आर० त्रिपंचाशः सर्गः ॥ ५३ ॥ जब रावण हरण करकै ले चला तब जानकीजी और किसीको रक्षा करनेंवाला

बडे वेगसे दौडा ॥ १ ॥ फिर गगन मण्डलमें वायु प्रेरित दो मेघोंकी टक्कर जिस प्रकार लडती है वैसेही इन दोनोंका महाघोर संग्राम आरंभ हुआ ॥ २ ॥ पर लगे हुए माला पहरे हुए दो श्रेष्ठ पर्वतोंकी समान गृध्रराज जटायु और राक्षसेन्द्र रावणका अद्भुत संग्राम उपस्थित हुआ ॥ ३ ॥ तिसके पीछे रावणने महाबलवान गृध्रराजके ऊपर अनवरत महाभयंकर तीक्ष्णफलक लगे हुए नालीक और नाराच व विकर्णि समूह बाणोंकी वर्षा की ॥ ४ ॥ पक्षिराज जटायुनें युद्धमें रावणके चलाये हुए अस्त्र और समस्त शर जाल ग्रहण किया ॥ ५ ॥ और अति तीखे नखून लगे हुए अपने दोनों चरणोंसे रावणके शरीरमें सहस्रों घाव कर दिये ॥ ६ ॥ अपने शरीरमें घाव हुए देख महावीर दशवदन रावणनें

ससंप्रहारस्तुमुलस्तयोस्तस्मिन्महामृधे ॥ बभूववातोद्धतयोर्मेघयोर्गगनेयथा ॥ २ ॥ तद्बभूवाद्भुतंयुद्धंगृध्रराक्षसयोस्तदा ॥ सपक्षयोर्माल्यवतोर्महापर्वतयोरिव ॥ ३ ॥ ततोनालीकनाराचैस्तीक्ष्णाग्रैश्चविकर्णिभिः ॥ अभ्यवर्षन्महाघोरैर्गृध्रराजंमहाबलम् ॥ ४ ॥ सतानिशरजालानिगृध्रःपत्ररथेश्वरः ॥ जटायुःप्रतिजग्राहरावणास्त्राणि संयुगे ॥ ५ ॥ तस्यतीक्ष्णनखाभ्यांतुचरणाभ्यांमहाबलः ॥ चकारबहुधागात्रेव्रणान्पतगसत्तमः ॥ ६ ॥ अथक्रोधाद्दशग्रीवोजग्राहदशमार्गणान् ॥ मृत्युदंडनिभान्घोराञ्छत्रोर्निधनकांक्षया ॥ ७ ॥ सतैर्बाणैर्महावीर्यःपूर्णमुक्तैरजिह्मगैः ॥ बिभेदनिशितैस्तीक्ष्णैर्गृध्रंघोरैःशिलीमुखैः ॥ ८ ॥ सराक्षसरथेपश्यञ्जानकींबाष्पलोचनाम् ॥ अचिंतयित्वाबाणांस्तान्राक्षसंसमभिद्रवत् ॥ ९ ॥ ततोऽस्यसशरंचापंमुक्तामणिविभूषितम् ॥ चरणाभ्यांमहातेजाबभंजपतगोत्तमः ॥ १० ॥ ततोऽन्यद्धनुरादायरावणःक्रोधमूर्छितः ॥ ववर्षशरवर्षाणिशतशोथसहस्रशः ॥ ११ ॥

क्रोध पूर्ण हो शत्रुओंके मार डालनेकी इच्छासे यमराजके दंडकी समान भयंकर दशबाण ग्रहण किये ॥ ७ ॥ और कानतक धनुषकों खेंचकर उन सीधे चलनें वाले तीखे रुधिरके प्यासे भयंकर शिलीमुख बाणोंको छोडकर जटायुको वध किया ॥ ८ ॥ राक्षस राज रावणके रथमें रुदन करती हुई जानकीको देखकर पक्षीराज जटायु उन समस्त बाणोंको कुछ न गिनते हुए रावणके सन्मुख दौडे ॥ ९ ॥ और अपनें दोनों चरणोंसे तेजमान जटायुनें रावणका मणि मुक्ता भूषित बाण सहित शरासन तोड डाला ॥ १० ॥ अपने धनुष बाणको टूटा हुआ देखकर रावण महा

दशा तो नदीनाथकी हुई और अन्तरिक्षमें विचरण करनें वाले चारण गण कहनें लगे ॥ १० ॥ कि अब रावण किसी प्रकार नहीं बच सकता
यहींतक इसके जीवनका शेष होगया । सिद्ध गणभी ऐसाही कहने लगे इस ओर रावण विचेष्ट माना सीताजीको गोदीमें लिये ॥ ११ ॥ अपनी लं
का पुरीमें लेआया, वह सीताजीको नहींलाया वरन कहींसे अपनी मृत्युको मोल ले आया । उस समय लंका नगरीमें बडे २ चौराहे और मार्ग
सुशोभित हो रहेथे ॥ १२ ॥ वहां पहुंचकर अपनें परम सुन्दर रणवास में रावणने शोक मोहसे युक्त तिन परम सुन्दरीको जाकर बैठा दिया १३
उस समय ऐसा बोध हुआ मानों मय दानव अपने पुरमें आसुरी मायाले आयाहै, दशानन सीताजीको अपने रणवासमें स्थापन करकै घोर दर्शना

एतदंतोदशग्रीवइतिसिद्धास्तदाब्रुवन् ॥ सतुसीतांविचेष्टंतीमंकेनादायरावणः ॥ ११ ॥ प्रविवेशपुरींलंकांरूपिणीं
मृत्युमात्मनः ॥ सोऽभिगम्यपुरींलंकांसुविभक्तमहापथान् ॥ १२ ॥ संरूढकक्ष्यांबहुलांस्वमंतःपुरमाविशत् ॥
तत्रतामसितापांगींशोकमोहसमन्विताम् ॥ १३ ॥ निदधेरावणःसीतांमयोमायामिवासुरीम् ॥ अब्रवीच्चदशग्री
वःपिशाचीर्घोरदर्शनाः ॥ १४ ॥ यथानैनांपुमान्स्त्रीवासीतांपश्यत्यसंमतः ॥ मुक्तामणिसुवर्णानिवस्त्राण्याभरणा
निच ॥ १५ ॥ यद्यदिच्छेत्तदैवास्यादेयंमच्छंदतोयथा ॥ याचवक्ष्यतिवैदेहींवचनंकिंचिदप्रियम् ॥ १६ ॥ अज्ञा
नाद्यदिवाज्ञानान्नतस्याजीवितंप्रियम् ॥ तथोक्त्वाराक्षसीस्तास्तुराक्षसेंद्रःप्रतापवान् ॥ १७ ॥ निष्क्रम्यांतः
पुरात्तस्मात्किंकृत्यमितिचिंतयन् ॥ ददर्शाष्टौमहावीर्यान्राक्षसान्पिशिताशनान् ॥ १८ ॥

पिशाचनियोंको आज्ञा देताहुआ ॥ १४ ॥ कि तुम भली भांतिसे इनकी रक्षाकरो । कोई स्त्री व पुरुष हमारी विना आज्ञा इन सीताको नहीं
देखनें पावै मुक्ता मणि,सुवर्ण वस्त्र भूषण ॥ १५ ॥ इत्यादि जिस २ वस्तुकी यह इच्छा करैं वह समस्तही इनको दीजाय यह मेरी आज्ञाहै व जोकोई
स्त्री तुममेंसे इन जानकीको अप्रिय वचन ॥ १६ ॥ ज्ञानसे व अज्ञानसे कहेगी वह निज शरीरमें अपने प्राणोंको न समझै इस तरह सब रक्षाकर
नें वालियोंसे कह महा प्रतापवान रावण ॥ १७ ॥ रनवास से वाहर आ विचार करनें लगाकि इससमय हमको क्या करना उचितहै, यह सोच उस

रावणकी सवारीको टूटा फूटा देख; और स्वयं रावणकोभी पृथ्वीपर गिरादेख, समस्त प्राणी वारंवार " साधु साधु! " कह कर गृद्ध्रराजकी बडाई करनें लगे ॥ २० ॥ तिसके पीछे रावण बडी उमर होनेंके कारण बुढापा ग्रस्त पक्षियूथपति जटायुको थका हुआ देख हर्ष सहित मैथिलि सीताजीको ग्रहण कर आकाश मार्गमें गमन करनें लगा ॥ २१ ॥ रावणके समस्तही युद्ध साधन विनष्ट और हत हो गयेथे केवल एक खड्ग बच रहाथा ।वह रावण उस अवस्था में भी नितान्त हृष्टचित्त होकर जानकीजीको गोदीमें बैठाय जानेंको तैयार हुआ॥२२॥महा तेजस्वी गृद्ध्रराज जटायुनें बडे जोरसे कूद रावणके सामनें दौडे और उसको भली भांति रोक कर कहनें लगे ॥ २३ ॥ अरे अल्पज्ञानी रावण! तुम समस्त राक्षस कुलको

दृष्ट्वानिपतितंभूमौरावणंभग्नवाहनम् ॥ साधुसाध्वितिभूतानिगृध्रराजमपूजयन् ॥ २० ॥ परिश्रांतंतुतंदृष्ट्वाजरयापक्षियूथपम् ॥ उत्पपातपुनर्हृष्टोमैथिलींगृह्यरावणः ॥ २१ ॥ तंप्रहृष्टंनिधायांकेरावणंजनकात्मजाम् ॥ गच्छंतंखड्गशेषंचप्रनष्टहतसाधनम् ॥ २२ ॥ गृध्रराजःसमुत्पत्यरावणंसमभिद्रवत् ॥ समावार्यमहातेजाजटायुरिदमब्रवीत् ॥ २३ ॥ वज्रसंस्पर्शबाणस्यभार्यांरामस्यरावण ॥ अल्पबुद्धेहरस्येनांवधायखलुरक्षसाम् ॥ २४ ॥ समित्रबंधुःसामात्यःसबलःसपरिच्छदः ॥ विषपानंपिबस्येतत्पिपासितइवोदकम् ॥ २५ ॥ अनुबंधमजानंतःकर्मणामविचक्षणः ॥ शीघ्रमेवविनश्यंतियथात्वंविनशिष्यसि ॥ २६ ॥ बद्धस्त्वंकालपाशेनक्वगतस्तस्यमोक्ष्यसे ॥ वधायबडिशंगृह्यसामिषंजलजोयथा ॥ २७ ॥

विनाश करनेंके लियेही उन वज्र समान बाण धारण करनें वाले श्रीरामचन्द्रजीकी इन जानकीजीको हरण करता है ॥ २४ ॥ हम समझे, कि प्यासा होकर मनुष्य जिस प्रकार जल पीता है तूभी वैसेही मित्र, बन्धु, मंत्री, चतुरंग सेना और दास दासी इत्यादि समस्त परिजनोंके सहित विष पीनेंको तैयार हुआ है ॥ २५ ॥ मूर्खलोग जिस प्रकार कर्मके फलको न जान कर शीघ्रही विष पीकर शीघ्रही विनाशको प्राप्त होते हैं वैसेही तुम्हारा सब परिवारके साथ सत्यानाश हो जायगा ॥ २६ ॥ तू कालकी फांसीमें बँधा है, मछली जिस प्रकार मांसका टुकडा लगी हुई वंशीको ग्रहण करनेंके अर्थ अपना प्राण खोनेंको उसके सामनें को दौडती है और निश्चयंही उसके प्राण जाते हैं । सो इसी प्रकार तूभी

सावधानीसे वहां पर चले जाओ, और सदा उस रामचंद्रको मार डालनेंके लिये यत्न करते रहना ॥ २७ ॥ हमनें पहले संग्राममें अनेक वार तुम
लोगोंके बलको जान लियाहै, वस इसी कारणसे हमनें तुम लोगोंको जन स्थानमें विठाया ॥ २८ ॥ वह आठ राक्षस इन अर्थ युक्त मीठे वचनोंको
सुन और रावणको प्रणाम कर लंका छोड करकै जनस्थानकी ओर गुप्त भावसे सबके सब चले ॥ २९ ॥ इस प्रकारसे रावण श्रीजानकी
जीको परम हर्षित चित्तसे ग्रहण करकै और उनको अपनें रनवासमें टिका, रामचंद्रजीसे महा शत्रुता करकै मोह युक्तहो परमानंदित हुआ ॥ ३० ॥
इ० श्रीम० वाल्मीकीये आदि काव्ये आर० चतुष्पंचाशःसर्गः ॥ ५४ ॥ रावणकी मतिमें भ्रम होगयाथा इसी कारणसे वह घोर महा बलवान्

युष्माकंतुबलंज्ञातंबहुशोरणमूर्धनि ॥ अतश्चास्मिन्जनस्थानेमयायूयंनिवेशिताः ॥ २८ ॥ ततःप्रियंवाक्यमुपेत्यरा
क्षसामहार्थमष्टावभिवाद्यरावणम् ॥ विहायलंकांसहिताःप्रतस्थिरेयतोजनस्थानमलक्ष्यदर्शनाः ॥ २९ ॥ ततस्तुसी
तामुपलभ्यरावणःसुसंप्रहृष्टःपरिगृह्यमैथिलीम् ॥ प्रसज्ज्यरामेणचवैरमुत्तमंबभूवमोहान्मुदितःसरावणः॥३०॥ इत्या
र्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेचतुष्पंचाशःसर्गः ॥ ५४ ॥ संदिश्यराक्षसान्घोरान्राव
णोऽष्टौमहाबलान् ॥ आत्मानंबुद्धिवैक्लव्यात्कृतकृत्यममन्यत ॥ १ ॥ सचिंतयानोवैदेहींकामबाणैःप्रपीडितः ॥
प्रविवेशगृहंरम्यंसीतांद्रष्टुमभित्वरन् ॥ २ ॥ सप्रविश्यतुतद्वेश्मरावणोराक्षसाधिपः ॥ अपश्यद्राक्षसीमध्येसी
तांदुःखपरायणाम् ॥ ३ ॥ अश्रुपूर्णमुखींदीनांशोकभारावपीडिताम् ॥ वायुवेगैरिवाक्रांतांमज्जंतींनावमर्णवे ॥ ४ ॥

आठ राक्षसोंको जनस्थानमें भेजकर अपनेको कृत कृत्य समझता हुआ कि अब हमें कोई कार्य करनेंको वाकी नहीं रहा ॥ १ ॥ अनन्तर वह बराबर
जानकीजीका स्मरण करते हुए राम बाणसे पीडित होकर उन जानकीजीको देखनेंके लिये शीघ्रतासे अपने रमणीय गृहमें प्रवेश करता
हुआ ॥ २ ॥ राक्षस पति रावणनें उस घरमें प्रवेश करकै दुःखपरायण सीताजीको राक्षसियोंके वीचमें बैठे हुए देखा ॥ ३ ॥ सीताजी शोकके
भारसे महा पीडा पा अतिशय दीन भावको प्राप्तहो नेत्रोंसे आंसू वहातीं हुई बैठीथीं, उस समय ऐसा बोध होताथा मानों नौका वायुके वेगसे कां

फिर उन्होंनें नखून पंख और चोंचरूपी इन हथियारोंकी सहायतासे रावणके सब बाल उखाड डाले ॥ ३५ ॥ गृद्धराजके वारंवार प्रहार करनेंसे रावण महा पीडित होगया, और क्रोधमें भरनेके कारण उसके अधर और सब शरीर कांपने लगे ॥ ३६ ॥ तब रावणने अतिव्याकुल और मूर्च्छित होकर वांई बगलमें भली भांति जानकीजीको दाब जटायुके एक लात मारी ॥३७॥शत्रु दमन कारी पक्षिराज जटायुजीनें उस लातके प्रहारको सहकर अपनी चोंचसे रावणके दश वायें हाथ उखाड डाले ॥ ३८ ॥ वांहें उखड जानें परभी, रावणके शरीरसे सहसा नये हाथ निकल आये। उस समय ऐसा ज्ञात हुआ मानों विष ज्वाला युक्त सर्प गण वमईसे बाहर निकले ॥ ३९ ॥ इसके बाद वीर्यवान् दशवदन क्रोधमें भर जानकी

सतदागृध्रराजेनक्लिश्यमानोमुहुर्मुहुः॥ अमर्षस्फुरितोष्ठःसन्प्राकंपतचराक्षसः ॥३६॥संपरिष्वज्यवैदेहींवामेनांकेनरावणः॥ तलेनाभिजघानार्तोजटायुंक्रोधमूर्छितः ॥ ३७ ॥जटायुस्तमतिक्रम्यतुंडेनास्यखगाधिपः ॥ वामबाहून्दशतदाव्यपाहरदरिंदमः॥३८॥ संछिन्नबाहोःसद्योवैबाहवःसहसाऽभवन्॥विषज्वालावलीमुक्तावल्मीकादिवपन्नगाः ३९॥ ततःक्रोधाद्दशग्रीवःसीतामुत्सृज्यवीर्यवान् ॥ मुष्टिभ्यांचरणाभ्यांचगृध्रराजमपोथयत् ॥ ४० ॥ ततोमुहूर्तसंग्रामोबभूवातुलवीर्ययोः॥ राक्षसानांचमुख्यस्यपक्षिणांप्रवरस्यच ॥ ४१ ॥ तस्यव्यायच्छमानस्यरामस्यार्थेसरावणः ॥ पक्षौपादौचपार्श्वौचखड्गमुद्धृत्यसोच्छिनत्॥४२॥सच्छिन्नपक्षःसहसारक्षसारौद्रकर्मणा ॥ निपपातमहागृध्रोधरण्यामल्पजीवितः॥ ४३ ॥ तंदृष्ट्वापतितंभूमौक्षतजार्द्रंजटायुषम् ॥ अभ्यधावतवैदेहीस्वबंधुमिवदुःखिता ॥ ४४ ॥

जीको छोड मुक्के और लातोंसे जटायुजीको मारने लगा ॥ ४० ॥ और जटायुजीभी उसें खुरचनें व काटनें लगे तब अनुपम पराक्रम गृद्धराज और राक्षस राजका घोर युद्ध होनें लगा ॥ ४१ ॥ जटायुजी रामचंद्रजीके उपकार करनेंको युद्ध करतेथे तब रावणनें खड्ग उठाकर उनके दोनों पंख दो चरण और दो बगलें काट डालीं ॥ ४२ ॥ जब घोर कर्म करनें वाले निशाचरनें पंख काट डाले तब गृद्धराज जटायु मृत्युके निकट पहुंच कर तत्क्षण पृथ्वीमें गिरे ॥ ४३॥ उनको रुधिर लगी देहसे पृथ्वीमें गिरा हुआ देखकर सीताजी दुःखितहो बन्धुकी समानके समीप शीघ्रतासे

वह समस्त दिव्य गृह दिखलाकर कहनें लगा ॥ १३ ॥ कि हे जानकी! यहां बत्तीस करोड राक्षस बालक और बूढोंको छोडकर हमारे आधी नहैं ॥१४॥ उन सब भयंकर कर्म करनें वाले राक्षसोंके हम स्वामीहैं। और हमारे इकले केही एक सहस्र दासहैं ॥ १५ ॥ अब हमारा यह समस्त राज्य तुम्हारेही वशमेंहै हे विशालाक्षि! हमारा जीवन पर्यन्तभी तुम्हारे आधीनहै; अधिक क्या कहैं तुम हमारे प्राणोंसेभी प्यारीहो ॥ १६ ॥ हे मैथिली! हमारे रनवासमें जो सब उत्तम स्त्रियांहैं, सो तुम हमारी भार्या होकर उन सबके ऊपर पटरानी बनो ॥ १७ ॥ हे जानकी! हमनें जो कुछ कहा वह तुम्हारे लिये विशेष हितकारीहै; तुम इस बातमें राजी होजाओ, दूसरी भांतिका अभिप्राय करके क्या करोगी; तुम्हारे कारण हम बहुतही

दशराक्षसकोट्यश्चद्वाविंशतिरथापराः ॥ वर्जयित्वाजनान्वृद्धान्बालांश्चरजनीचरान् ॥ १४ ॥ तेषांप्रभुरहंसीतेसर्वेषां भीमकर्मणाम् ॥ सहस्रमेकमेकस्यममकार्यपुरःसरम् ॥ १५ ॥ यदिदंराज्यतंत्रंमेत्वयिसर्वंप्रतिष्ठितम् ॥ जीवितंच विशालाक्षित्वंमेप्राणैर्गरीयसी ॥ १६ ॥ बह्वीनामुत्तमस्त्रीणांममयोऽसौपरिग्रहः ॥ तासांत्वमीश्वरीसीतेममभार्याभव प्रिये ॥ १७ ॥ साधुकिंतेन्यथाबुद्ध्यारोचयस्ववचोमम ॥ भजस्वमाभितप्तस्यप्रसादंकर्तुमर्हसि ॥ १८ ॥ परिक्षिप्तास मुद्रेणलंकेयंशतयोजना ॥ नेयंधर्षयितुंशक्यासेंद्रैरपिसुरासुरैः ॥ १९ ॥ नदेवेषुनयक्षेषुनगंधर्वेषुनर्षिषु ॥ अहंपश्या मिलोकेषुयोमेवीर्यसमोभवेत् ॥ २० ॥ राज्यभ्रष्टेनदीनेनतापसेनपदातिना ॥ किंकरिष्यसिरामेणमानुषेणाल्पते जसा ॥ २१ ॥ भजस्वसीतेमामेवभर्ताहंसदृशस्तव ॥ यौवनंत्वध्रुवंभीरुरमस्वेहमयासह ॥ २२ ॥

संतापित हुएहैं सो तुम प्रसन्न होकर हमको भजो ॥ १८ ॥ चारों ओर समुद्रसे घिरी हुई शतयोजनके विस्तार वाली इस लंकापुरीको इन्द्रके सहित समस्त देव दानवभी किसी प्रकारका भय नहीं करासकें ॥ १९ ॥ क्या देवता, क्या गन्धर्व, क्या यक्ष, क्या ऋषि इन लोगोंमें हम किसी कोभी ऐसा नहीं देखते जो वीरतामें हमारी समानहों ॥ २० ॥ तौ फिर भला; दीन, तपस्वी राज्य भ्रष्ट, पादचारी, अल्प प्राण मनुष्य रामको लेकर तुम क्या करोगी ॥ २१ ॥ इस कारणसे हे सीते! हमही तुम्हारे योग्य पतिहैं; तुम हमारीही भजनाकरो; हेभीरु! यौवन सदा नहीं रहता,

उनके सव गहने और माला इत्यादि मैली होगई और अनाथकी नांई विलाप करनें लगीं तव राक्षस पति रावण उनके सन्मुख दौडा ॥ ६ ॥ और जटायुको पकडे हुए सीताजीको देखकर बारम्बार, इसे छोडो, इसे छोडो, ऐसा रावणनें कहा, जिस प्रकार लता वृक्षोंको घेर लेतीहै, ऐसे जटायुको पकडे जो सीताजी बैठीथीं उनके समीप ऐसी दशामें रावण आया ॥ ७ ॥ इस समय सीताजी रामचंद्रजीके विरहके मारे वनमें वारं वार, राम ! राम ! करके बडे शब्दसे रुदन करती हुई चिल्लानें लगीं तव साक्षात् यमराजकी समान रावणनें अपना नाश करनेंके लिये उनके केश ग्रहण किये ॥ ८ ॥ जव जानकीजीका इस प्रकारसे अपमान हुआ तव सचराचर समस्त जगत् मर्यादा शून्य होकर घोर निविड़

तांक्लिष्टमाल्याभरणांविलपंतीमनाथवत् ॥ अभ्यधावतवैदेहींरावणोराक्षसाधिपः ॥ ६ ॥ तांलतामिववेष्टंतीमालिंगंतींमहाद्रुमान् ॥ मुंचमुंचेतिबहुशःप्रापतांराक्षसाधिपः ॥ ७ ॥ क्रोशंतींरामरामेतिरामेणरहितांवने ॥ जीवितांतायकेशेषुजग्राहांतकसंनिभः ॥ ८ ॥ प्रधर्षितायांवैदेह्यांबभूवसचराचरम् ॥ जगत्सर्वममर्यादंतमसांधेनसंवृतम् ॥ ९ ॥ नवातिमारुतस्तत्रनिष्प्रभोऽभूद्दिवाकरः ॥ दृष्ट्वासीतांपरामृष्टांदेवोदिव्येनचक्षुषा ॥ १० ॥ कृतंकार्यमितिश्रीमान् व्याजहारपितामहः ॥ प्रहृष्टाव्यथिताश्चासन्सर्वेतेपरमर्षयः ॥ ११ ॥ दृष्ट्वासीतांपरामृष्टांदंडकारण्यवासिनः ॥ रावणस्यविनाशंचप्राप्तंबुद्ध्वायदृच्छया ॥ १२ ॥

अंधकारसे छागया ॥ ९ ॥ फिर पवन वहां नहीं चले, प्रभाकर प्रभा शून्य होगये उसी समय दिव्य दृष्टिसे यह केशाकर्षण घटना देखकर ब्रह्माजीनें जानाकि रावण सीताको हर लेगया ❋ ॥ १० ॥ और श्रीमान् देव पितामह ब्रह्माजीनें सव देवताओंसे यह वात कही कि अव कार्य सिद्ध हुआ क्योंकि अव अवश्यही श्रीरामचंद्रजी रावणको मार डालेंगे यह सुनकर कि अव देवताओंको कष्ट न होगा इससे तो सव देवगण हर्षित हुए व जानकीजीका हरण सुन परम दुःखित हुये ॥ ११ ॥ जानकीजीको हरा हुआ देखकर दंडकारण्य वासियोंनेंभी जान लिया

❋रागनी वरुनाताल ॥ रोदन कर शिर धुनत जानकी ॥ हा रघुपति कित गये छोड मुहि रक्षाकीजे आन आनकी ॥कपट भेष धरि दुष्ट हरन कियो सुधि न रही मोहि रेख आनकी॥हा लक्ष्मण तव वचन न माने अपने हित मै आप हानकी॥मम रोदन धुनि सुनत न कोऊ क्या इच्छाहै कृपानिधानकी ॥ नारद काह आय नियरानो मति बौरानी यातुधानकी ॥

साथ संग्राम करके उसको हम जीत लायेहैं,वह अति विशाल रमणीयहै उसका वे... समान है ॥ ३० ॥ सो हे सीते! उस विमानपर चढ
कर तुम हमारे साथ विहार सुखसहित करो। हे वरानने! पद्मकी समान परम सुन्दर और सुविमल कान्ति सम्पन्न तुम्हारा मुख ॥ ३१ ॥ शोकके
मारे मलीन होनेंसे अब शोभित नहीं होता, इसकारण तुम शोक नकरो जब रावणनें इस प्रकार से कहा तब पतिव्रता शिरोमणि सीताजी वस्त्रको
आडमें ॥ ३२ ॥ अपना चंद्रसमान वदन मंडल ढक कर रोनें लगीं चिन्तासे उनकादेह पीला पडगया वह बहुतही अस्वस्थकी समान ध्यानमें मग्न
होगईं ॥ ३३ ॥ इसको देखकर वीर्यवान निशाचर रावण उनसे बोला कि हे वैदेही! धर्मलोप होजानेकी शंकासे लज्जित मतहोवो ॥ ३४ ॥ देखो
तत्रसीतेमयासार्धंविहरस्वयथासुखम् ॥ वदनंपद्मसंकाशंविमलंचारुदर्शनम् ॥ ३१ ॥ शोकार्तंतुवरारोहेनभ्राजतिव
रानने ॥ एवंवदतितस्मिन्सावस्त्रांतेनवरांगना ॥ ३२ ॥ पिधायेंदुनिभंसीतामंदमश्रूण्यवर्तयत् ॥ ध्यायंतींतामिवा
स्वस्थांसीतांचिंताहतप्रभाम् ॥ ३३ ॥ उवाचवचनंवीरोरावणोरजनीचरः ॥ अलंव्रीडेनवैदेहिधर्मलोपकृतेनते ॥ ३४ ॥
आर्षोऽयंदेविनिष्पंदोयस्त्वामभिभविष्यति ॥ एतौपादौमयास्निग्धौशिरोभिःपरिपीडितौ ॥ ३५ ॥ प्रसादंकुरुमेक्षि
प्रंवश्योदासोऽहमस्मिते ॥ इमाःशून्यमयावाचःशुष्यमाणेनभाषिताः ॥ ३६ ॥ नचापिरावणःकांचिन्मूर्ध्नास्त्रींप्रणमे
त ॥ एवमुक्त्वादशग्रीवोमैथिलींजनकात्मजाम् ॥ कृतांतवशमापन्नोममेयमितिमन्यते ॥ ३७ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रा०
वा०आ०आर०पंचपंचाशःसर्गः॥५५॥ सातथोक्तातुवैदेहीनिर्भयाशोककर्शिता॥तृणमंतरतःकृत्वारावणंप्रत्यभाषत॥१॥
तुम्हारे प्रति हम ऋषि गणोंकेही उपदेश कियेहुए विधिक्रमसे प्रणय बन्धन बांधने को तैयार हुएहैं यह लो हम अपनें दशों शिरोंसे तुम्हारे मनोहर
चरणोंको दबातेहैं ॥ ३५ ॥ हमारे प्रति प्रसन्नता प्रगटकरने में और विलंब मतकरो हम तुम्हारे वशवर्ती दास होजायँगे, हमनें कामके वशहोकर
यह जो वार्ताकही देखो इसकाकोई अंश निरर्थक नहीं जाय ॥ ३६ ॥ रावणनें कभी इसप्रकारसे किसी स्त्रीके चरणोंमें प्रणाम नहीं कियाथा न
शिरधराथा। दशानन मृत्युके वशहोकर जनक नंदिनी मैथिली जीसे इसप्रकार कहकर मनमें समझा कि यह हमारीही होगई ॥ ३७ ॥ इ० श्रीम०
वा० आ० आरण्य० पंचपंचाशः सर्गः ॥ ५५ ॥ शोकसे तपीहुई जानकीजी यह वचन सुन कुछ भय न करके मनहीमन रावणको

करके युक्त सुवर्णके समान आकार कान्तिवाला ॥ २१ ॥ रावण करके कंपायमान हुआ तिन श्रीजानकीजीका मुख मंडल आकाशमें दिनके चंद्रमाकी समान विना श्री रामचन्द्रजीके शोभाको प्राप्त नहीं हुआ ॥ २२ ॥ सुवर्णकी बनी हुई क्षुद्रघंटिका जिस प्रकार नील वर्णके हाथीके आश्रयमें शोभा पातीहै, स्वर्ण वर्ण जानकीजीभी वैसेही रावणके साथ शोभाको प्राप्त हुई ॥ २३ ॥ सीताजी पद्म केशरवर्ण और सुवर्णकी समान कान्तियुक्तथीं और उनके सब गहने तपे हुये सुवर्णके बनेथे। इस कारण रावणके सामनें वह ऐसी शोभा धारण करती हुई, जिस प्रकार बिजली मेघमें विराजमान रहतीहै ॥ २४ ॥ उस कालमें सीताजीके गहनोंके शब्दसे दशानन शब्द करते हुए सुविमल नील वर्ण मेघकी समा

राक्षसेंद्रसमाधूतंतस्यास्तद्वदनंशुभम् ॥ शुशुभेनविनारामंदिवाचंद्रइवोदितः ॥ २२ ॥ साहेमवर्णानीलांगंमैथिली राक्षसाधिपम् ॥ शुशुभेकांचनीकांचीनीलंगजमिवाश्रिता ॥ २३ ॥ सापद्मपीताहेमाभारावणंजनकात्मजा ॥ विद्यु द्धनमिवाविश्यशुशुभेतप्तभूषणा ॥ २४ ॥ तस्याभूषणघोषेणवैदेह्याराक्षसेश्वरः ॥ बभूवविमलोनीलःसघोषइवतोयदः ॥ २५ ॥ उत्तमांगच्युतातस्याःपुष्पवृष्टिःसमंततः ॥ सीतायाह्रियमाणायाःपपातधरणीतले ॥ २६ ॥ सातुरावणवे गेनपुष्पवृष्टिःसमंततः ॥ समाधूतादशग्रीवंपुनरेवाभ्यवर्तत ॥ २७ ॥ अभ्यवर्ततपुष्पाणांधारावैश्रवणानुजम् ॥ न क्षत्रमालाविमलामेरुंनगमिवोत्तमम् ॥ २८ ॥ चरणान्नूपुरंभ्रष्टंवैदेह्यारत्नभूषितम्॥विद्युन्मंडलसंकाशंपपातधरणीतले ॥ २९ ॥ तरुप्रवालरक्तासानीलांगंराक्षसेश्वरम् ॥ प्रशोभयतवैदेहीगजंकक्ष्येवकांचनी ॥ ३० ॥

नता धारण करता हुआ॥२५॥जब सीताजीको रावण हरकर ले चला तो उनके मस्तकसे फूलोंकी झडीसी लगकर पृथ्वीपर गिरनें लगी॥२६॥परन्तु वही पुष्पवृष्टि रावणके गमन वेगसे उत्पन्न हुए पवन द्वारा कंपाई जाकर फिर कुबेरके छोटे भाई रावणकेही चारों ओर गिरनें लगी ॥२७॥ वह सीताजीके शिरके फूलोंकी झडी रावणके चारों ओर सुमेरु पर्वतके चारों ओर नक्षत्रोंकी पांतिकी समान शोभित होतीथी ॥२८॥उसी समय जानकीजीके चरणसे रत्न भूषित नूपुर खसकर बिजलीके मंडलकी समान पृथ्वीपर गिर पडा॥२९॥श्रीजानकीजी नवतरु पल्लवकी समान रक्त वर्ण वालीथीं, उनके

तौ हे राक्षस! तू तत्क्षणही भस्म हो जायगा जिस प्रकार महादेवजीकी नेत्राग्निसे कामदेव भस्म हो गयाथा ॥ १० ॥ जो चंद्रमाकोभी आकाशसे पृथ्वीपर गिरा सकते या नाश कर सकतेहैं वह सीताको भी अवश्यही यहां आकर इस स्थानसे छुडावेंगे ॥ ११ ॥ तेरी उमर वीतचुकी, श्री जाती रही, वीर्य समाप्त होगया, इन्द्रियांभी अपने २ कार्यसे शिथिल होगईं, इस्से विदित होताहै कि तुम्हारे लिये लंकानगरी निश्चयही विधवा हो जायगी ॥१२॥ तुमनें जो पाप कार्य कियाहै इसका परिणाम कभी सुखकर नहीं होगा, क्योंकि तूनें विना विचारे बलात्कारकर पतिकी सेवासे हमको अलग कियाहै ॥ १३ ॥ हमारे वह महाद्युतिमान स्वामी अपने भ्राता लक्ष्मणके सहित केवल अपनें वीर्यका आश्रय लेकर निडरहो निर्जन वनमें वास

यश्चंद्रंनभसोभूमौपातयेन्नाशयेतवा ॥ सागरंशोषयेद्वापिससीतांमोचयेदिह ॥ ११ ॥ गतासुस्त्वंगतश्रीकोगतस त्वोगतेंद्रियः ॥ लंकावैधव्यसंयुक्तात्वत्कृतेनभविष्यति ॥ १२ ॥ नतेपापमिदंकर्मसुखोदर्कंभविष्यति ॥ याहं नीताविनाभावंपतिपार्श्वात्त्वयाबलात् ॥ १३ ॥ सहिदेवरसंयुक्तोममभर्तामहाद्युतिः ॥ निर्भयोवीर्यमाश्रित्यशून्ये वसतिदंडके ॥ १४ ॥ सतेवीर्यंबलंदर्पमुत्सेकंचयथाविधम् ॥ व्यपनेष्यतिगात्रेभ्यःशरवर्षेणसंयुगे ॥ १५ ॥ यदा विनाशोभूतानांदृश्यतेकालचोदितः ॥ तदाकार्येप्रमाद्यंतिनराःकालवशंगताः ॥१६॥ मांप्रधृष्यसतेकालःप्राप्तोऽयंराक्ष साधम॥ आत्मनोराक्षसानांचवधायांतःपुरस्यच ॥१७॥ नशक्यायज्ञमध्यस्थावेदिःस्रुग्भांडमंडिता॥ द्विजातिमंत्रसंपू ताचंडालेनावमर्दितुम्॥१८॥ तथाहंधर्मनित्यस्यधर्मपत्नीदृढव्रता॥ त्वयास्प्रष्टुंनशक्याहंराक्षसाधमपापिना॥ १९ ॥

करतेहैं ॥ १४ ॥ वह संग्राम स्थलमें वाणोंकी वर्षा करके तेरी देहसे, बल वीर्य, घमंड, व ऐसा अहंकार अलग करदेंगे ॥ १५ ॥ कालके वश होकर जबकि प्राणियोंका नाश निकट आजाताहै तब वह कालके वशहोकर कार्य अकार्यका विचार करनेंमें ज्ञान रहित हो जातेहैं ॥ १६ ॥ रे राक्षसा धम! जब कि तैंनें हमारा अपमान कियाहै, तब स्वयं तेरा, समस्त राक्षसोंका और सर्व रनवासोंके नाश होनेंका काल आ पहुँचाहै ॥ १७ ॥ जिस प्रकार ब्राह्मणों करकै मंत्रसे पढी हुई यज्ञको सामग्रीसे विभूषित यज्ञ वेदी चंडालके छूनें योग्य नहीं होती वैसेही हमभी तेरे स्पर्श करनेंके योग्य नहींहैं ॥ १८ ॥ रेराक्षसाधम ! रेपापात्मा ! हम नित्य धर्मपरायण श्रीरामचन्द्रजीकी धर्मपत्नीहैं, मन वचन कायसे स्वामीहीके प्रति

जब कि रावण सीताजी रामभार्याको हरण करके लिये जाताहै, तब फिर सत्य, दया, धर्म, सरलता और सुशीलता सबही संसारसे लोप होगई यदि ऐसा न होता तो रावण कैसे जानकीजीको हरता? ॥ ३९ ॥ सबही प्राणी झुन्डके झुन्ड मिलकर यह कह विलाप करनें लगे, मृगछौना गण त्रासित होकर वारंवार शोभा रहित नेत्रोंसे दीनमुखहो रोनें लगे ॥ ४० ॥नेत्र खोल२ वार२ यह देख वनदेवताओंका शरीर मारे भयके थरथरा कर कांपने लगा॥४१॥"राम-राम" लक्ष्मण-लक्ष्मण" कह२कर जोरसे रोती व दुःखसे पुकारती जानकीजीको मधुर स्वरसे बोलती हुई ॥ ४२ ॥ और वार२ उनको पृथ्वीपर निहारती हुई देख, जिनका तिलक विसना हुआ और अति व्याकुल हो रहाहै चित्त जिनका ऐसी जानकीजीको अपनासर्वनाश

नास्तिधर्मःकुतःसत्यंनार्जवंनानृशंसता ॥ यत्ररामस्यवैदेहीसीतांहरतिरावणः ॥ ३९ ॥ इतिभूतानिसर्वाणिगणशः पर्यदेवयन् ॥ वित्रस्तकादीनमुखारुरुदुर्मृगपोतकाः ॥ ४० ॥ उद्वीक्ष्योद्वीक्ष्यनयनैर्भयादिवविलक्षणैः ॥ सुप्रवेपितगात्राश्चबभूवुर्वनदेवताः॥४१॥विक्रोशंतींदृढंसीतांदृष्ट्वादुःखंतथागताम् ॥ तांतुलक्ष्मणरामेतिक्रोशंतींमधुरस्वराम् ॥४२॥ अवेक्षमाणांबहुशोवैदेहींधरणीतलम् ॥ सतामाकुलकेशांतांविप्रमृष्टविशेषकाम् ॥ जहारात्मविनाशायदशग्रीवोमनस्विनीम् ॥ ४३ ॥ ततस्तुसाचारुदतीशुचिस्मिताविनाकृताबंधुजनेनमैथिली ॥ अपश्यतीराघवलक्ष्मणावुभौविवर्णवक्त्राभयभारपीडिता ॥ ४४ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेद्विपंचाशः सर्गः ॥ ५२ ॥ खमुत्पतंतंतंदृष्ट्वामैथिलीजनकात्मजा ॥ दुःखितापरमोद्विग्नाभयेमहतिवर्तिनी ॥ १ ॥ रोषरोदनताम्राक्षीभीमाक्षंराक्षसाधिपम् ॥ रुदतीकरुणंसीताह्रियमाणातमब्रवीत् ॥ २ ॥

करानेके कारण रावण हर कर लेगया॥४३॥अनन्तर मनोहर दन्त वाली मन्द२हास्य युक्त, जानकीजी राम और लक्ष्मण दोनोंको नहींदेखनेपर बन्धु जनके विरहसे मलीन मुखी और भयसे बहुतही पीडित हुई॥४४॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे द्विपंचाशः सर्गः ॥५२॥ रावणको आकाशमें उडता हुआ देखकर जनककुमारी, सुकुमारी सीताजी महाभीत होकर घबडाई और बहुतही दुःखित हुई ॥ १ ॥ क्रोध करनेंके कारण और रोते२ उनके दोनों नेत्र लाल हो आये, वह आरत स्वरसे रोकर उस कालमें भयंकर नेत्र कियेहुए राक्षसपतिसे कहने लगीं॥ २॥

जो आज्ञा कहकर रावणके कहनेके अनुसार सीताजीको घेर लेतीहुई॥२८॥यह देखकर रावण मानों पृथ्वीको कंपित और विदीर्ण करता हुआ कई एक परग चलकर, उन घोर दर्शनवाली राक्षसियोंको विशेष रूपसे फिर आज्ञा करता हुआ ॥ २९ ॥ तुम जानकीको अशोक वनमें लेकर चली जाओ और सब मिलकर सदा इनको घेरे रहकर गूढ भावसे इनकी रक्षाकरो ॥३०॥ वनकी हथिनीको जिस प्रकार वशमें किया जाताहै, तुम सबभी उसीतरहसे घोर तर्जन करके अथवा समझा बुझाकर इनको हमारे वशमें लाओ ॥ ३१ ॥ जब राक्षसेन्द्र रावणनें इस भांति आज्ञाकी तब राक्षसियें

सताःप्रोवाचराजासौरावणोघोरदर्शनाः ॥ प्रचल्यचरणोत्कर्षैर्दारयन्निवमेदिनीम् ॥ २९ ॥ अशोकवनिकामध्ये मैथिलीनीयतामिति ॥ तत्रेयंरक्ष्यतांगूढंयुष्माभिःपरिवारिता ॥ ३० ॥ तत्रैनांतर्जनैर्घोरैःपुनःसांत्वैश्चमैथिलीम् ॥ आनयध्वंवशंसर्वावन्यांगजवधूमिव॥ ३१ ॥ इतिप्रतिसमादिष्टाराक्षस्योरावणेनताः॥अशोकवनिकांजग्मुर्मैथिलींपरिगृह्यतु॥ ३२ ॥ सर्वकामफलैर्वृक्षैर्नानापुष्पफलैर्वृताम् ॥ सर्वकालमदैश्चापिद्विजैःसमुपसेविताम् ॥ ३३ ॥ सातुशोकपरीतांगीमैथिलीजनकात्मजा ॥ राक्षसीवशमापन्नाव्याघ्रीणांहरिणीयथा ॥ ३४ ॥ शोकेनमहतात्रस्तामैथिलीजनकात्मजा ॥ नशर्मलभतेभीरुःपाशबद्धामृगीयथा ॥ ३५ ॥ नविंदतेतत्रतुशर्ममैथिलीविरूपनेत्राभिरतीवतर्जिता॥ पतिंस्मरंतीदयितंचदेवरंविचेतनाभूद्भयशोकपीडिता॥ ३६॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेषट्पंचाशःसर्गः॥ ५६ ॥ ॥

सीताजीको घेरकर अशोकवनमें ले गईं ॥ ३२ ॥ अनेक जातिके मन वांछित पुष्प फल सम्पन्न वृक्ष समूह और सब काल मतवालेही विविध भांतिके विहंगम इस अशोक वनको शोभाको बढातेथे ॥ ३३ ॥ शोकके वशमें पड़ी हुई जनक दुलारी मैथिलीजी अशोकवनके मध्य राक्षसोंके वशमें पड़कर रहीं, जिस प्रकार व्याघ्रनियोंमें हरिणी रहतीहै ॥ ३४ ॥ अशोक वनमें फांसीसे बँधी डरपोक मृगीके समान अतिशय शोकमें सीताजी रहीं, वह वहां पर किसी भांतिका सुख न प्राप्त कर सकीं ॥ ३५ ॥ विरूप नेत्रवाली राक्षसियों करके घुडकी डरपाई व धमकाई जाकर; पर

ही तू सेना सहित एक मुहूर्तभरभी प्राण धारण नहीं कर सकेगा॥११॥पक्षी जिस प्रकार वनमें लगी हुई दावानलको नहीं छू सकता, वैसेही उन राजकुमारोंके बाणोंका स्पर्श सहन करनेंकी किसी भांति तुझमें सामर्थ्य नहींहै ॥ १२ ॥ इस कारण हेरावण! भली भांति अपना हिताहित विचार करके सीधी तरहसे हमको छोड़दे । नहीं तो हमारे स्वामी अपने भ्राताके सहित हमारे इस पकड़े जानें पर महा क्रोधितहो ॥ १३ ॥ यदि तू हमको न छोड देगा तो तेरा विनाश करनेंके लिये यत्न करेंगे, तू जिस आशयसे हमको हरण करके लिये जाताहै ॥ १४ ॥ सो हे राक्षस नीच! वह तेरा आशय कभी सिद्ध नहीं होगा हम उन देव समान अपनें स्वामीको न देखनें पर ॥ १५ ॥ शत्रुके वशमें रहकर बहुत कालतक प्राण धारण करनें

नत्वंतयोःशरस्पर्शंसोढुंशक्तःकथंचन ॥ वनेप्रज्वलितस्येवस्पर्शमग्नेर्विहंगमः ॥ १२ ॥ साधुकृत्वात्मनःपथ्यंसाधुमांमुंचरावण ॥ मत्प्रधर्षणसंक्रुद्धोभ्रात्रासहपतिर्मम ॥ १३ ॥ विधास्यतिविनाशायत्वंमांयादिनमुंचासि ॥ येनत्वंव्यवसायेनबलान्मांहर्तुमिच्छसि ॥ १४ ॥ व्यवसायस्तुतेनीचभविष्यतिनिरर्थकः ॥ नह्यहंतमपश्यंतीभर्तारंविबुधोपमम् ॥ १५ ॥ उत्सहेशत्रुवशगाप्राणान्धारयितुंचिरम्॥ ननूनंचात्मनःश्रेयःपथ्यंवासमवेक्षसे ॥ १६ ॥ मृत्युकालेयथामर्त्योविपरीतानिसेवते ॥ मुमूर्षूणांतुसर्वेषांयत्पथ्यंतन्नरोचते ॥ १७ ॥ पश्यामीहहिकंठेत्वांकालपाशावपाशितम् ॥ यथाचास्मिन्भयस्थानेनबिभेषिनिशाचर॥१८॥ व्यक्तंहिरण्मयांस्त्वंहिसंपश्यसिमहीरुहान् ॥ नदींवैतरणींघोरांरुधिरौघविवाहिनीम् ॥ १९ ॥ खड्गपत्रवनंचैवभीमंपश्यसिरावण ॥ तप्तकांचनपुष्पांचवैदूर्यप्रवरच्छदाम् ॥ २०॥

को समर्थ न होंगी, हमको समझ पड़ताहै कि तू अपना कल्याण और हित नहीं देखता ॥ १६ ॥ जिस प्रकार मृत्युके समय लोगोंकी बुद्धि विपरीत हो जातीहै अथवा मरनेके निकट किसीको पथ्य रुचिकर नहीं होता ॥ १७ ॥ रेराक्षस! तू इस समयके कार्यमेंभी भय नहीं करता, इस कारण हम देखतीहैं कि तेरा गला कालकी फाँसीसे बँध गयाहै ॥१८॥ और साफही समझ पड़ताहै कि तेरी मृत्यु जो निकटहै इस्से सब वृक्ष तुझे सुवर्णके दृष्टि आते होंगे,कारणकि जिनकी मृत्यु निकट होतीहै, उनको वृक्ष सुवर्णकेही दीखतेहैं, और रक्तवाहिनी भयंकर वैतरणी नदी ॥ १९॥ और महा भीषण खड्ग रूप पत्र युक्त वृक्षोंका वन तू अति शीघ्र देखेगा।और उत्कृष्ट वैदूर्यमणिमय पत्ते लगे हुए तपाये हुए सुवर्णके बने फूल लगे हुए॥२० ॥

कर परम प्रसन्न हुई ॥ ९ ॥ देवताओंके कार्य सिद्धिके निमित्त राक्षसोंको मोहित करती हुई इसी अवसरमें इन्द्राणीके पति इन्द्रजी ॥ १० ॥ उस
स्थानमें प्राप्तहो वनमें स्थित हुई जानकी से बोले कि हे भद्रे! मैं देवताओंका राजा इन्द्रहूं. हे सुन्दर हास्य युक्त जानकी! ॥ ११ ॥ मैं तुम्हारे
और रामचंद्रके कार्य सिद्ध करनेंके निमित्त सहाय करनेंको आयाहूं हे जनककुमारी! तुम शोच मत करो ॥ १२ ॥ मेरी कृपासे सैना सहित
रामचंद्रजी सागर तर जांयगे, हे कल्याणी! मेरीही मायाने इन राक्षसियों को मोहित कियाहै॥१३॥ इसी कारण हे जानकी! मैं यह हवि अन्न तुम्हें

देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थंप्रामोहयतराक्षसान् ॥ एतस्मिन्नंतरेदेवःसहस्राक्षःशचीपतिः ॥ १० ॥ आससादवनस्थांतांवचनंचे
दमब्रवीत् ॥ देवराजोस्मिभद्रंतेइहचास्मिशुचिस्मिते ॥ ११ ॥ अहंत्वंकार्यसिद्ध्यर्थंराघवस्यमहात्मनः ॥ साहाय्यं
कल्पयिष्यामिमाशुचोजनकात्मजे ॥ १२ ॥ मत्प्रसादात्समुद्रंसतरिष्यतिबलैःसह ॥ मयैवेहचराक्षस्योमाययामो
हिताःशुभे ॥ १३ ॥ तस्मादन्नमिदंसीतेहविष्यान्नमहंस्वयम् ॥ सत्वांसंगृह्यवैदेहिआगतःसहनिद्रया ॥ १४ ॥ एत
दत्स्यसिमद्धस्तान्नत्वांबाधिष्यतेशुभे ॥ क्षुधातृषाचरंभोरुवर्षाणामयुतैरपि ॥ १५ ॥ एवमुक्तातुदेवेंद्रमुवाचपरिशं
किता ॥ कथंजानामिदेवेंद्रंत्वामिहस्थंशचीपतिम् ॥ १६ ॥ देवलिंगानिदृष्टानिरामलक्ष्मणसन्निधौ ॥ तानिदर्शय
देवेंद्रयदित्वंदेवराट्स्वयम् ॥ १७ ॥ सीतायावचनंश्रुत्वातथाचक्रेशचीपतिः ॥ पृथिवींनास्पृशत्पद्भ्यामनिमेषे
क्षणानिच ॥ १८ ॥

देनेको निद्राके साथ आयाहूं सो हे जानकी ! तुम इसे लो ॥ १४ ॥ हे जानकी! मेरे हाथसे यें हवि भक्षण करनेंसे तुमको क्षुधा दश हजार वर्ष तक
भी न व्यापेगी ॥ १५ ॥ जब इन्द्रने ऐसा कहा तौ डरती हुई जानकी बोलीं कि मैं यह कैसे जानूं कि तुम शचीके पति इन्द्रहो ॥ १६ ॥
जो चिह्न राम लक्ष्मणके साथ मैंने आपके देखेथे यदि तुम देवता ओंके राजा इन्द्र हो तो उन चिह्नोंको दिखाओ ॥ १७ ॥ इन्द्रजी जान
कीजी के वचन सुन पैरोंसे पृथ्वी न स्पर्श करते हुए और नेत्रोंको पलक लगना बंदहोगया देवताओंकी यही पहचानहै कि पैरोंसे

न पाकर चली जानें लगीं। और जाते २ उन्होंनें पर्वतके शृंग पर बैठे हुए प्रधान पांच वंदरोंको देखा॥ १ ॥ तब उन बडे २ नेत्र वाली जानकीजीनें सुवर्णके रंगका अपना एक वस्त्र व कुछ गहनें उतार उन वन्दरोंके बीचमें ॥ २ ॥ इस विचारसे डाल दिये कि यह कदाचित् रामचंद्रजीसे यह सब वृत्तान्त कहभी सकतेहैं। वह जानकीजी का छोडा हुआ वस्त्र व भूषण वन्दरोंके बीचमें गिरा ॥ ३ ॥ जानकी जीके वस्त्र और भूषण डालनें का यह कर्म घवडाहटके मारे रावणनें नहीं जाना, उस कालमें सीताजी बहुतही रुदन कर रही थीं उनको अनिमेष लोचनसे ॥४॥ पीली आंखों वाले वानर श्रेष्ठोंनें सीताजीको अपनें नेत्रोंसे वारंवार देखलिया व रावण पम्पापुरीको नांघ लंकापुरीकी ओर ॥ ५ ॥ रोती हुई

तेषांमध्येविशालाक्षीकौशेयंकनकप्रभम् ॥ उत्तरीयंवरारोहाशुभान्याभरणानिच ॥ २ ॥ मुमोचयदिरामायशंसेयुरि
तिभामिनी ॥ वस्त्रमुत्सृज्यतन्मध्येनिक्षिप्तंसहभूषणम् ॥ ३ ॥ संभ्रमात्तुदशग्रीवस्तत्कर्मचनबुद्धवान् ॥ पिंगाक्षास्तांवि
शालाक्षींनेत्रैरनिमिषैरिव ॥ ४ ॥ विक्रोशंतींतदासीतांददृशुर्वानरोत्तमाः ॥ सचपंपामतिक्रम्यलंकामभिमुखःपुरी
म् ॥ ५ ॥ जगाममैथिलींगृह्यरुदतींराक्षसेश्वरः ॥ तांजहारसुसंहृष्टोरावणोमृत्युमात्मनः ॥ ६ ॥ उत्संगेनैवभुजगीं
तीक्ष्णदंष्ट्रांमहाविषाम् ॥ वनानिसरितःशैलान्सरांसिचविहायसा ॥ ७ ॥ सक्षिप्रंसमतीयायशरश्चापादिवच्युतः ॥ ति
मिनक्रनिकेतंतुवरुणालयमक्षयम् ॥ ८ ॥ सरितांशरणंगत्वासमतीयायसागरम् ॥ संभ्रमात्परिवृत्तोर्मीरुद्धमीनमहो
रगः ॥ ९ ॥ वैदेह्यांह्रियमाणायांबभूववरुणालयः ॥ अंतरिक्षागतावाचःसमृजुश्चारणास्तथा ॥ १० ॥

सीताजीको लेकर चला गया, अपनी मूर्तिमान मृत्युस्वरूप सीताजीको हरण करके रावणके हर्षकी सीमा न रही ॥ ६ ॥ वह तेज डाढ वाली और तेज विष वाली सर्पिणीकी समान सीताजीको अंकमें भरकर आकाश मार्गमें होकर बहुतसे पर्वत वन नदियां व तडागादि देखता हुआ ॥ ७ ॥ बडी शीघ्रताके साथ रावण मत्स्य कच्छप मगर नाके इत्यादिकों के स्थान समुद्रको उतर गया, जिसप्रकार कि कमानसे छूटा हुआ वाण अति शीघ्रतासे सीधा चलताहै ॥ ८ ॥ जब रावणनें जानकीजीको हरण किया, तब जगमाताका हरण होनेके कारण क्षुभित होकर वरुणालय समुद्र तरंगविहीन होगया, और उसमेंके मीन और बडे २ सब सर्प व्याकुल होगये ॥ ९ ॥ इस प्रकार जानकीजीके हरण करनेंके समय यह

उस ओर श्रीरामचंद्रजी मृग रूपसे विचरण करनें वाले काम रूपी निशाचर मारीचको संहार करकै शीघ्रही आश्रमके मार्गको लौटे ॥ १ ॥
और श्रीजानकीजीको देखनेंके लिये अति वेगसे चले। इसी समयमें एक शियार उनकी पीठके पीछे महा कठोर शब्द करनेलगा ॥ २ ॥
श्रीरामचंद्रजी शियारके इस रोमाञ्चकर दारुण बोलको सुन अति भयभीतहो मनही मनमें शंका करनें लगे ॥ ३ ॥ जिस प्रकारका शब्द यह
शियार कर रहाहै, इससे तौ ऐसा जान पडताहै, कि कोई अशुभ होगा। इस समय राक्षसोंनें जानकीको भक्षण न कर लियाहो, और सीताजी
कुशलसेहों तभी मंगलहै ॥ ४ ॥ मृग रूपी मारीचनें जान बूझकर हमारे बोलकी समान जो चिल्लाहटकीहै यदि लक्ष्मणनें उस बोलको सुना

राक्षसंमृगरूपेणचरंतंकामरूपिणम् ॥ निहत्यरामोमारीचंतूर्णंपथिन्यवर्तत ॥ १ ॥ तस्यसंत्वरमाणस्यद्रष्टुकामस्यमै
थिलीम् ॥ क्रूरस्वनोथगोमायुर्विननादास्यपृष्ठतः ॥२॥ सतस्यस्वरमाज्ञायदारुणंरोमहर्षणम् ॥ शंकयामासगोमायोः
स्वरेणपरिशंकितः ॥ ३ ॥अशुभंबतमन्येहंगोमायुर्वाशतेयथा ॥ स्वस्तिस्यादपिवैदेह्याराक्षसैर्भक्षणंविना ॥ ४ ॥ मारी
चेनतुविज्ञायस्वरमालक्ष्यमामकम् ॥ विक्रुष्टंमृगरूपेणलक्ष्मणःशृणुयाद्यदि ॥ ५ ॥ ससौमित्रिःस्वरंश्रुत्वातांचहि
त्वाथमैथलीम् ॥ तयैवप्रहितःक्षिप्रंमत्सकाशमिहैष्यति ॥ ६॥ राक्षसैःसहितैर्नूनंसीतायाईप्सितोवधः ॥ कांचनश्चमृ
गोभूत्वाव्यपनीयाश्रमात्तुमाम् ॥ ७ ॥ दूरंनीत्वाथमारीचोराक्षसोभूच्छराहतः ॥ हालक्ष्मणहतोस्मीतियद्वाक्यं
व्याजहारह ॥ ८ ॥ अपिस्वस्तिभवेदाभ्यांरहिताभ्यांमयावने ॥ जनस्थाननिमित्तंहिकृतवैरोस्मिराक्षसैः ॥ ९ ॥

हो ॥ ५ ॥ वस लक्ष्मणजी उस स्वरके सुन्तेही तुरत सीताजी करके भेजे जाकर सीताको छोडकर वह शीघ्रही हमारे निकट आवेंगे ॥ ६ ॥ निश्च
यही राक्षसोंनें मिलकर जानकीके वध करनेंकी अभिलाषकीहै और इसी कारणसे राक्षस मारीचने सुवर्ण मृग रूप धारण करकै हमको आश्रमसे
बहुत दूर किया ॥ ७ ॥ और हमको दूर लाकर फिर हमारे बाणसे घायल होकर लक्ष्मणकोभी यहां लानेंके लिये, हाय लक्ष्मण ! हम मारे गये !
यह कहकर उस राक्षसनें प्राण छोडे ॥ ८ ॥ इस शब्दको सुन लक्ष्मणभी तौ चलेही आये होंगे फिर जब वनमें आश्रम पर हम दोनों भाई नरहें तौ

नें इधर उधर देखा तो आगेही मांसके खानेंवाले आठ राक्षस बैठेथे॥ १८॥ उन राक्षसों को देखकर ब्रह्माजीके वरदानसे मोहित हुआ रावण उन राक्षसोंके बल वीर्यकी प्रशंसा करनें लगा ॥ १९ ॥ तुम लोग अनेक भांतिके अस्त्र शस्त्र धारण करकै शीघ्र इस स्थानसे जहां पर खर रहा करताथा उस जन शून्य जनस्थानको जाओ ॥ २० ॥ और तुम लोग वहां बल और पौरुषका आश्रय लेकर किसीकाभी डर न करकै जन शून्य जनस्थानमें जाय टिके रहो ॥ २१ ॥ वहां पर खर और दूषणके सहित हमारी जो महावीर्य वान बहुत सारी सेना रहतीथी, वह समस्त रामचंद्रके बाणसे खर दूषण सहित मारी गई ॥ २२ ॥ इस कारणसे हमको बडा क्रोध हुआहै, और इससेही हम बडे धीर्यवानका धीरज

सतान्दृष्ट्वामहावीर्योवरदानेनमोहितः ॥ उवाचतानिदंवाक्यंप्रशस्यबलवीर्यतः ॥ १९ ॥नानाप्रहरणाःक्षिप्रमितोगच्छ तसत्वराः ॥ जनस्थानंहतस्थानंभूतपूर्वंखरालयम् ॥ २० ॥ तत्रास्यतांजनस्थानेशून्येनिहतराक्षसे ॥ पौरुषंबलमाश्रि त्यत्रासमुत्सृज्यदूरतः ॥२१॥ बहुसैन्यंमहावीर्यंजनस्थानेनिवेशितम् ॥ सदूषणखरंयुद्धेनिहतंरामसायकैः ॥ २२ ॥ त तःक्रोधोममापूर्वोधैर्यस्योपरिवर्धते ॥ वैरंचसुमहज्जातंरामंप्रतिसुदारुणम् ॥ २३ ॥ निर्यातयितुमिच्छामितच्चवैरं महारिपोः ॥ नहिलप्स्याम्यहंनिद्रामहत्वासंयुगेरिपुम् ॥ २४ ॥ तंत्विदानीमहंहत्वाखरदूषणघातिनम् ॥ रामंशर्मो पलप्स्यामिधनंलब्ध्वेवनिर्धनः ॥ २५ ॥ जनस्थानेवसद्भिस्तुभवद्भीराममाश्रिता ॥ प्रवृत्तिरुपनेतव्याकिंकरोती तितत्त्वतः ॥ २६ ॥ अप्रमादाच्चगंतव्यंसर्वैरेवनिशाचरैः ॥ कर्तव्यश्चसदायत्नोराघवस्यवधंप्रति ॥ २७ ॥

भी लोप होगया। इस समय रामचंद्रके प्रति हमारा महा वैरभाव उपस्थित हुआहै ॥ २३ ॥ सो इस समय परम शत्रु रामके प्रति वह अपना क्रोध हम प्रगट करना चाहतेहैं, जब तक हम युद्धमें उस महा शत्रुका वध नहीं करलेते, तब तक हमको सुखकी नींद न आवैगी ॥ २४ ॥ जिस प्रकार निर्धन पुरुष धन प्राप्त करकै सुखी होताहै, वैसेही खर दूषणके मारनें वाले रामचंद्रजीका नाश करकै हमभी सुखी होंगे ॥ २५ ॥ तुम लोग जनस्थानमें रहकर राम किस समय क्या करतेहैं, सदाही इस विषयकी यथा तथा खोज खबर लेते रहो ॥ २६ ॥ तुम सब लोग बडी

का कार्य किया है ॥१७॥हे शुभदर्शन! तुमनें जो अकेला छोडा इस्से क्या सीताका भला होगा? कभी नहीं! हे वीर! जनककुमारी अब आश्रममें नहीं हैं इस बातमें हमको अब कुछ संशय नहीं होता ॥ १८ ॥ परग परग पर जिस प्रकारके अशकुन होरहे हैं इस्से यह ज्ञात होता है कि यातौ सीताको कोई वनचारी राक्षस चुराकर ले गया या मारकर खा गया होगा ॥ १९ ॥ हे लक्ष्मण! जनककुमारीजी सब प्रकारसे कुशल हैं, क्या हम ऐसा देख पावेंगे? हे पुरुषसिंह! क्या जानकी सब प्रकार कुशलसे जीती हैं ॥ २० ॥ हे महाबलवान्! यह मृग गण, शियार, और पक्षी गण सूर्यकी ओरको मुख करकै महा भयंकर शब्द कर दशोंदिशाओंको देखते हैं मानों इनमें आग लगी है। ऐसे अपशकुन देखकर किस प्रकार

सीतामिहागतःसौम्यकच्चित्स्वस्तिभवेदिति ॥ नमेऽस्तिसंशयोवीरसर्वथाजनकात्मजा ॥ १८ ॥ विनष्टाभक्षितावापिराक्षसैर्वनचारिभिः ॥ अशुभान्येवभूयिष्ठंयथाप्रादुर्भवंतिमे ॥ १९ ॥ अपिलक्ष्मणसीतायाःसामग्र्यंप्राप्नुयामहे ॥ जीवंत्याःपुरुषव्याघ्रसुतायाजनकस्यवै ॥ २० ॥ यथावैमृगसंघाश्चगोमायुश्चैवभैरवम् ॥ वाशंतेशकुनाश्चापिप्रदीप्तामभितोदिशम् ॥ अपिस्वस्तिभवेत्तस्याराजपुत्र्यामहाबल ॥ २१ ॥ इदंहिरक्षोमृगसंनिकाशंप्रलोभ्यमांदूरमनुप्रयातम् ॥ हतंकथंचिन्महताश्रमेणसराक्षसोभून्म्रियमाणएव ॥ २२ ॥ मनश्चमेदीनमिहाप्रहृष्टंचक्षुश्चसव्यंकुरुतेविकारम्॥ असंशयंलक्ष्मणनास्तिसीताहृतामृतावापथिवर्ततेवा ॥ २३ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०आर०सप्तपंचाशःसर्गः॥५७॥

कह दें कि राजपुत्री सीताजी कुशलसे हैं? ॥ २१ ॥ यह मृग रूपी राक्षसभी हमको ललचाकर दूर ले आया, जिसको फिर हमनें बहुतही परीश्रम करकै किसी भांति मार पाया मरनेंके समय उसनें निज राक्षस मूर्ति धारण की ॥ २२ ॥ हमारा मनभी बहुतही दीन और घबडाया हुआ है; और बांई आंखभी फडक रही है! हे लक्ष्मण! निःसन्देह सीता आश्रममें नहीं, यातौ उनको कोई हरण करकै ले गया, या मार्गमें मरी पडी होंगी ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आर०" पं०ज्वालाप्रसाद मिश्र "कृत भाषानुवादे सप्तपंचाशःसर्गः ॥ ५७ ॥

पकर जलमें डूबी हुईहै ॥ ४ ॥ अथवा जैसे मृगी यूथसे विछुड कर कुत्तोंसे घिरीहो सीताजी शोकके वश पडनेंसे विवश और व्याकुलहो शिर झुकाये बैठीथीं ॥ ५ ॥ राक्षसपति रावण सन्मुख होकर उन शोकसे दीन हुई सीताजीकी इच्छा न रहनें पर भी बलात्कारसे उनको उस देव गृह सदृश दिव्य भवनको दिखाने लगा ॥ ६ ॥ यह घर अनेक प्रकार अटा अटारी और धवहरोंसे परिपूर्णहै, सहस्रों स्त्रियां इसमेंहैं व अनेक प्रकारके पक्षी और विविध भांतिके रत्नभी इस गृहमेंहैं ॥ ७ ॥ उसके सब थंभ हाथीदांतके बनेथे, सुवर्ण, स्फटिक, रजत, और वैदूर्य निर्मित परम चित्रित और देखनेमें मनके हरण करनें वालेथे ॥ ८ ॥ वहां पर समस्त वंदनवारें तपाये हुए सुवर्णकी बनी हुईथीं, और वहां पर निर

मृगयूथपरिभ्रष्टांमृगींश्वभिरिवावृताम् ॥ अधोगतमुखींसीतांतामभ्येत्यनिशाचरः ॥ ५ ॥ तांतुशोकवशांदीनामवशां राक्षसाधिपः॥सबलाद्दर्शयामासगृहंदेवगृहोपमम्॥६॥हर्म्यप्रासादसंबाधंस्त्रीसहस्रनिषेवितम्॥नानापक्षिगणैर्जुष्टंनाना रत्नसमन्वितम् ॥ ७ ॥ दांतकैस्तापनीयैश्चस्फाटिकैराजतैस्तथा ॥ वज्रवैदूर्यचित्रैश्चस्तंभैर्दृष्टिमनोरमैः ॥ ८ ॥ दि व्यदुंदुभिनिर्घोषंतप्तकांचनभूषणम् ॥ सोपानंकांचनंचित्रमारुरोहतयासह ॥ ९ ॥ दांतकाराजताश्चैवगवाक्षाःप्रिय दर्शनाः ॥ हेमजालावृताश्चासंस्तत्रप्रासादपंक्तयः॥ १० ॥ सुधामणिविचित्राणिभूमिभागानिसर्वशः ॥ दशग्रीवः स्वभवनेप्रादर्शयतमैथिलीम् ॥ ११ ॥ दीर्घिकाःपुष्करिण्यश्चनानापुष्पसमावृताः ॥ रावणोदर्शयामाससीतांशोकप रायणाम् ॥ १२ ॥ दर्शयित्वातुवैदेहींकृत्स्नंतद्भवनोत्तमम् ॥ उवाचवाक्यंपापात्मासीतांलोभितुमिच्छया ॥ १३ ॥

न्तर दिव्य दुन्दुभी आठ पहर बजती रहतीथीं, रावण सीताजीके सहित इस गृहकी सुवर्ण से बनी हुई विचित्र सीढियोंपर चढा ॥ ९ ॥ वह घर हाथी दांत और चांदी निर्मित होनेंके कारण अति सुन्दर हजारों जालियें वहां लगी हुईथीं जिनको देखतेही मन हर जाय औरभी वहुतसे घर वहां बनेथे जिनमें सुवर्णके जंगले लगेथे ॥ १० ॥ सब भूमि भाग सुधा धवलित और मणि समूह चित्रित रहनेंके कारण विचित्र शोभा दे रहाथा, इस प्रकारका भवन रावणनें सीताजीको दिखाया ॥ ११ ॥ उस मन्दिरमें जगह२ बावली और छोटी २ तलैयेंभी बनीथीं जिनमें अनेक प्रकारके पुष्प खिल रहेथे दशग्रीव रावणनें जानकीजीको यह सब कुछ दिखाया ॥१२॥ इस प्रकारसे पापात्मा रावण जानकीजीको लुभानेंकी इच्छासे अपना

यदि परलोकमें चलीं गईहैं तो हमभी प्राण त्यागन करैंगे ॥ ९ ॥ जब हम आश्रममें पहुंचेंगे और सीता सन्मुख हँसकर यदि हमसे न बोलेंगी तबभी हम प्राण त्यागेंगे ॥ १० ॥ इस कारणसे हे लक्ष्मण ! तुम बताओ कि जानकी जीवितहैं ? अथवा तुम्हारी असावधानतासे उन तपस्विनी जानकीजीको राक्षसोंने तौ नहीं भक्षण कर लिया ॥ ११ ॥ वैदेहीजी सुकुमारीहैं, बालिकाहैं, और दुःख भोग करनेंके अयोग्यहैं, वह इस समय हमारे दुःखसे निश्चयही दुःखीहो सोच करकै शोक करती होंगी ॥ १२ ॥ अतिशय दुरात्मा क्रूर निशाचर मारीचनें ऊंचे शब्दसे (हा लक्ष्मण !) कहकर सब प्रकारसे तुमको भय उत्पन्न करा दियाहै ॥ १३ ॥ हमजानतेहैं कि हमारे बोलकी समान वह बोल जानकीजीनें सुनकर तुमको

यदिमामाश्रमगतंवैदेहीनाभिभाषते ॥ पुरःप्रहसितासीताविनशिष्यामिलक्ष्मण ॥ १० ॥ ब्रूहिलक्ष्मणवैदेहीयदिजीवतिवानवा ॥ त्वयिप्रमत्तेरक्षोभिर्भक्षितावातपस्विनी ॥ ११ ॥ सुकुमारीचबालाचनित्यंचादुःखभागिनी ॥ मद्वियोगेनवैदेहीव्यक्तंशोचतिदुर्मनाः ॥ १२ ॥ सर्वथारक्षसातेनजिह्मेनसुदुरात्मना ॥ वदतालक्ष्मणेत्युच्चैस्तवापिजनितंभयम् ॥ १३ ॥ श्रुतश्चमन्येवैदेह्यासस्वरःसदृशोमम ॥ त्रस्तयाप्रेषितस्त्वंचद्रष्टुंमांशीघ्रमागतः ॥ १४ ॥ सर्वथातुकृतंकष्टंसीतामुत्सृजतावने ॥ प्रतिकर्तुंनृशंसानांरक्षसांदत्तमंतरम् ॥ १५ ॥ दुःखिताःखरघातेनराक्षसाःपिशिताशनाः ॥ तैःसीतानिहताघोरैर्भविष्यतिनसंशयः ॥ १६ ॥ अहोऽस्मिव्यसनेमग्नःसर्वथारिपुनाशन ॥ किंत्विदानींकरिष्यामिशंकेप्राप्तव्यमीदृशम् ॥ १७ ॥ इतिसीतांवरारोहांचिंतयन्नेवराघवः ॥ आजगामजनस्थानंत्वरयासहलक्ष्मणः ॥ १८ ॥

यहांपर भेजाहै और तुमभी हमारे देखनेंके लिये शीघ्रही यहांपर आयेहो ॥ १४ ॥ तुमनें सीताजीको अकेला वनमें छोड यहां आकर बडा कष्टकर कार्य कियाहै । इस्से निर्दयी राक्षसोंको हमारे किये हुए अपकारका प्रतिकार करनेंको तुमनें अवसर दे दिया ॥ १५ ॥ खरको मार डालनेंसे मांसभोजी राक्षस गण बहुतही दुःखित होगयेहैं । उन घोरनिशाचरोंने निश्चयही जानकीको मार डाला होगा इस्में सन्देह नहीं है ॥ १६ ॥ हाय ! शत्रुसूदन लक्ष्मण ! हम सब भांतिसे विपदमें डूबे अब हम क्या करैं ? हमको शंका होतीहै कि यह विपद अवश्य होनहारहै ॥ १७ ॥ श्रीरामचन्द्रजी सुमुखी जानकीके लिये इस प्रकार चिंताकरकै लक्ष्मणजीके सहित शीघ्रतासे जनस्थानमें आये ॥ १८ ॥

इस्से हमारे साथ इस लंका नगरीमें विहार करो ॥ २२ ॥ हे वरानने! अब तुम रामचंद्रके देखनेंकी आशा छोडो! उनमें क्या शक्तिहै जो वह मनो
रथ सेभी यहां पर आसकें? ॥ २३ ॥ जिस प्रकार कोई वहां प्रचंड पवन आकाशमें चलते हुये बांधाचाहै, परन्तु नहीं बांध सकता, या प्रदीप्त
अग्निकी शिखाको कोई हाथसे पकडनाचाहै तौ नहीं पकड सकता, ऐसेही रामभी यहां नहीं आ सकता ॥ २४ ॥ हे शोभने! समस्त भुवनोंमें हम
ऐसा किसीको नहीं देखते कि जो पराक्रम प्रकाश करके हमारी भुजाओंसे रक्षित तुमको लेजासकै ॥ २५ ॥ अतएव तुम इस विशाल लं
काके राज्यका पालन करो, हमारी समान सब पुरुष तुम्हारे आज्ञाकारी दास हो जांयगे । और हमकोभी यदि सेवक समझकर ग्रहण करो तो

दर्शनेमाकृथाबुद्धिंराघवस्यवरानने ॥ कास्यशक्तिरिहागंतुमपिसीतेमनोरथैः ॥ २३ ॥ नशक्योवायुराकाशेपाशै
र्बद्धुंमहाजवः ॥ दीप्यमानस्यवाप्यग्नेर्ग्रहीतुंविमलाःशिखाः ॥ २४ ॥ त्रयाणामपिलोकानांनतंपश्यामिशोभने ॥
विक्रमेणनयेद्यस्त्वांमद्बाहुपरिपालिताम् ॥ २५ ॥ लंकायाःसुमहद्राज्यमिदंत्वमनुपालय ॥ त्वत्प्रेष्यामद्विधाश्चैवदे
वाश्चापिचराचरम् ॥ २६ ॥ अभिषेकजलक्लिन्नातुष्टाचरमयस्वच ॥ दुष्कृतंयत्पुराकर्मवनवासेनतद्गतम् ॥ २७ ॥
यच्चतेसुकृतंकर्मतस्येहफलमाप्नुहि ॥ इहसर्वाणिमाल्यानिदिव्यगंधानिमैथिलि ॥ २८ ॥ भूषणानिचमुख्यानि
तानिसेवमयासह ॥ पुष्पकंनामसुश्रोणिभ्रातुर्वैश्रवणस्यमे ॥ २९ ॥ विमानंसूर्यसंकाशंतरसानिर्जितंरणे ॥ वि
शालंरमणीयंचतद्विमानंमनोजवम् ॥ ३० ॥

हमभी तुम्हारी आज्ञाके आधीन हो जांयगे। सब देवता गण वरन स्थावर जंगमादि समस्त जगत् तुम्हाराही दास हो जायगा ॥ २६ ॥ अब तुम
अभिषेकके जलसे धौतदेहहोकर सन्तुष्ट चित्तसे हमको तृप्तकरो पहले जन्मके तुम्हारे जो कुछ पापथे वह सब वनवास करनेंसे क्षयको प्राप्त होगये२७
अब तुम लंकामें रहकर अपने पहले कियेहुए पुण्योंके फलको प्राप्तहो । हे मैथिलि! यहांपर जो दिव्य मालायें दिव्यगन्ध और दिव्यभूषण रक्खेहैं
तुम उन सबको हमारे साथ भोगकरो। हे सुमध्यमे! भाई कुबेरका पुष्पक नाम ॥२८॥२९॥ विमान सूर्यके समान प्रकाश मान हमारे यहांहै कुबेरके

श्रीरामचन्द्रजीसे बोले॥५॥हम आप अपनी इच्छानुसार सीताजीको त्यागकरकै यहां नहीं आये वरन उनके पठाये हुयेही आपके निकट आयेहैं॥६॥ आपके बोलकी समान बोल बनाकर जो किसीनें (हमें बचाओ) कहकर भय और व्याकुलताके स्वरसे जो चीत्कार कियाथा, सो वही चिछाहट जानकीजीके श्रवण गोचर हुई ॥ ७ ॥ उन्होनें लक्ष्मण हमें बचाओ वह करुणाका बोल सुनकर भयसे विकलहो आपके स्नेहके वशके मारे रोतेर हमसे यह कहना आरंभ किया कि शीघ्र जाओ ॥ ८ ॥ वह वारंवार हमसेजानेको कहनें लगीं, तब हमनें उनको विश्वास दिलानेंके लिये यह वार्ता कही ॥ ९ ॥ हम ऐसा किसी राक्षसको नहीं देखते जो श्रीरामचंद्रजीको भय उपजासके, इस्से यह करुणाका वचन रामचंद्रजीका नहीं, वरन यह

नस्वयंकामकारेणतांत्यक्त्वाहमिहागतः ॥ प्रचोदितस्तयैवोग्रैस्त्वत्सकाशमिहागतः ॥ ६ ॥ आर्येणेवपराक्रुष्टंलक्ष्मणेतिसुविस्वरम् ॥ परित्राहीतियद्वाक्यंमैथिल्यास्तच्छ्रुतिंगतम् ॥ ७ ॥ सातमार्तस्वरंश्रुत्वातवस्नेहेनमैथिली ॥ गच्छगच्छेतिमामाहरुदतीभयविक्लवा ॥ ८ ॥ प्रचोद्यमानेनमयागच्छेतिबहुशस्तया ॥ प्रत्युक्तामैथिलीवाक्यमिदंतत्प्रत्ययान्वितम् ॥ ९ ॥ नतत्पश्याम्यहंरक्षोयदस्यभयमावहेत् ॥ निर्वृताभवनास्त्येतत्केनाप्येतदुदाहृतम् ॥ १० ॥ विगर्हितंचनीचंचकथमार्योभिधास्यति ॥ त्राहीतिवचनंसीतेयस्त्रायेत्रिदशानपि ॥ ११ ॥ किंनिमित्तंतुकेनापिभ्रातुरालंब्यमेस्वरम् ॥ विस्वरंव्याहृतंवाक्यंलक्ष्मणत्राहिमामिति ॥ १२ ॥ राक्षसेनेरितंवाक्यंत्रासात्राहीतिशोभने ॥ नभवत्याव्यथाकार्याकुनारीजनसेविता ॥ १३ ॥ अलंविक्लवतांगंतुंस्वस्थाभवनिरुत्सुका ॥ नचास्तित्रिषुलोकेषुपुमान्योराघवंरणे ॥ १४ ॥

वचन किसी राक्षसनें वा और किसीनें कहा होगा इस कारण आप वेखटके रहैं ॥ १० ॥ हे सीते! जो देवताओंकीभी रक्षा कर सकतेहैं, वह श्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी "हमको वचाओ" यह नीचजनोचित वार्ता किस प्रकारसे कह सकतेहैं ॥ ११ ॥ इस कारणसे किसीने किसी कारण वश रामचंद्रजीके बोलसा बोल बनाकर "लक्ष्मण हमको वचाओ" यह कह व्याकुल स्वरसे चिछाहट कीहै इसमें कुछभी सन्देह नहींहै ॥ १२ ॥ हे शोभने किसी राक्षसनें त्रासके मारे "वचाओ" यह शब्द कियाहै । इस्से आप नीचस्त्रीजनोचित मनो वेदना त्याग कर दीजिये ॥ १३ ॥ व्याकुल होनेंकी

तृणसमान समझतीहुई उत्तर देतीहुई कि ॥ १ ॥ राजा दशरथ साक्षात् धर्मके पर्वत सदृश अभेद्यसेतु और सत्य प्रतिज्ञतासे सर्व संसारमें विख्यातथे श्रीरामचंद्रजी उनकेही पुत्रहैं ॥ २ ॥ यहभी धर्मात्माके नामसे तीनों भुवनमें विख्यातहैं,वही दीर्घबाहु विशाल लोचन श्रीरामचंद्रजी हमारे स्वामी और साक्षात् देवताहैं ॥ ३ ॥ उनके कंधे सिंहकी समानहैं, वह महाद्युतिमान और इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुयेहैं वे भ्राता लक्ष्मणके सहित हो अवश्यही तेरे प्राणोंका वध करनें यहां आवेंगे॥४॥ यदि हम उनके सन्मुख बलपूर्वक इसप्रकारसे खेंचीजाती तबतौ युद्धमें खरकी समान निहतहो कर तुमको भी रणभूमिमें शयन करना पडता ॥ ५ ॥ तुमनें जिन सब घोरतर महा बलवान राक्षसोंकी वार्ताकही सो गरुडके निकट सर्पसमूह

राजादशरथोनामधर्मसेतुरिवाचलः ॥ सत्यसंधःपरिज्ञातोयस्यपुत्रःसराघवः ॥ २ ॥ रामोनामसधर्मात्मात्रिषुलोकेषुविश्रुतः ॥ दीर्घबाहुर्विशालाक्षोदैवतंसपतिर्मम ॥ ३ ॥ इक्ष्वाकूणांकुलेजातःसिंहस्कंधोमहाद्युतिः ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्रायस्तेप्राणान्वधिष्यति ॥ ४ ॥ प्रत्यक्षंयद्यहंतस्यत्वयावैधर्षिताबलात् ॥ शयितात्वंहतःसंख्येजनस्थानेयथाखरः ॥ ५ ॥ यएतेराक्षसाःप्रोक्ताघोररूपामहाबलाः ॥ राघवेनिर्विषाःसर्वेसुपर्णेपन्नगायथा ॥ ६ ॥ तस्यज्याविप्रमुक्तास्तेशराःकांचनभूषणाः ॥ शरीरंविधमिष्यंतिगंगाकूलमिवोर्मयः ॥ ७ ॥ असुरैर्वासुरैर्वात्वंयद्यवध्योसिरावण ॥ उत्पाद्यसमुहद्वैरंजीवंस्तस्यनमोक्ष्यसे ॥ ८ ॥ सतेजीवितशेषस्यराघवोंतकरोबली ॥ पशोर्यूपगतस्येवजीवितंतवदुर्लभम् ॥ ९ ॥ यदिपश्येत्सरामस्त्वांरोषदीप्तेनचक्षुषा ॥ रक्षस्त्वमद्यनिर्दग्धोयथारुद्रेणमन्मथः ॥ १० ॥

की समान रामचंद्रजीके निकट यह सब राक्षस हीनबल विहीनतेज होजायँगे ॥ ६ ॥ तरंग जिसप्रकार गंगाजीके किनारेको तोडतीहै वैसेही श्रीरामचंद्रजी अपने धनुषसे छूटेहुए उन स्वर्णभूषित बाणोंके समूहसे राक्षसोंके शरीरका भेदनकरेंगे ॥ ७ ॥ रावण! यद्यपि तू देव दानवोंसे अवध्यहै,परन्तु रामचंद्रकेसाथ यह बडाभारी वैर करकै किसीप्रकार तेरे प्राण न बचेंगे ॥८॥ वह बलवान श्रीरामचंद्रजीही तुम्हारे बचेहुए जीवनका समय पूरा कर देंगे। इससे यज्ञस्तम्भसे बँधेहुए पशुकी समान अब तुम्हारा जीना दुर्लभहै ॥ ९ ॥ यदि श्रीरामचन्द्रजी क्रोध भरे नेत्रोंके दृष्टिसे एक बारही तुझको देखें

जानकीके यह क्रोध वचन सुन आश्रमसे बाहर चले आये ॥ २२ ॥ एक तौ स्त्री, दूसरे क्रोधित, ऐसी जानकीके कठोर वचनोंसे तुमभी उनको छोडकर यहां पर चले आये इससे हम तुम्हारे ऊपर प्रसन्न नहीं हुए॥ २३ ॥तुमनें सीताके वचन सुन क्रोधके वशहो हमारी आज्ञाका उल्लंघन किया इस्से तुम्हारा यह कार्य बहुतही निन्दनीय हुआहै ॥ २४ ॥ देखो ! यह राक्षस जो मृग बनकर हमको आश्रमसे दूरतक लायाहै वह हमारे बाणसे मरा हुआ पडाहै॥ २५ ॥ हमनें धनुष चढा खेंच उस पर बाण चढा लीलासेही एक बाणका इसके ऊपर प्रहार किया जिस बाणके लगनेसे इस राक्षसने मृग तनु छोड विकल स्वर कर बाजू पहरे हुये निशाचरका शरीरधारण कियाहै॥२६॥उसकाल हमारे बाणसे घायल होकर दूरसेही श्रवण गोचरहो इस प्रकारका हमारा बोल बनाकर इस राक्षसके दारुण आर्त्तनाद करनेसे तुम उसको सुन इस समय जानकीको छोडकर यहां आयेहो॥२७॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे एकोनषष्टितमःसर्गः ५९ आश्रममें आनेके समय श्रीरामचंद्रजीके वामनेत्रके नीचेका भाग अत्यन्तही फडकनेंलगा, परग २ पर चरण फिसलता, और शरीर कांपरहाथा इन अपशकुनोंका यह प्रभावहै कि जिस कार्यके लिये जाओ उसकी सि

नहितेपरितुष्यामित्यक्त्वायदसिमैथिलीम् ॥ क्रुद्धायाःपरुषंश्रुत्वास्त्रियायत्त्वमिहागतः ॥ २३ ॥ सर्वथात्वपनीतंतेसीतयायत्प्रचोदितः ॥ क्रोधस्यवशमागम्यनाकरोःशासनंमम ॥ २४ ॥ असौहिराक्षसःशेतेशरेणाभिहतोमया ॥ मृगरूपेणयेनाहमाश्रमादपवाहितः ॥ २५ ॥ विकृष्यचापंपरिधायसायकंसलीलबाणेनचताडितोमया ॥ मार्गींतनुंत्यज्यचविक्लवस्वरोबभूवकेयूरधरःसराक्षसः ॥ २६ ॥ शराहतेनैवतदार्तयागिरास्वरंममालंब्यसुदूरसुश्रवम् ॥ उपाहृतंतद्वचनंसुदारुणंत्वमागतोयेनविहायमैथिलीम् ॥ २७ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेएकोनषष्टितमःसर्गः ॥ ५९ ॥ ॥ छ ॥ भृशमाव्रजमानस्यतस्याधोवामलोचनम् ॥ प्रास्फुरच्चास्खलद्रामोवेपथुश्चास्यजायते ॥ १ ॥

दृढव्रताहैं; इस कारण हम किसी प्रकारसेभी तेरे छूनेंके योग्य नहींहैं ॥ १९ ॥ जो हंसिनी कमल पुष्पोंके मध्यमें राज हंसके साथ नित्य क्रीडा करतीहैं वह किस प्रकारसे तृणोंके बीच बैठे हुए मद्गुर (जलकाकविशेष) के प्रति दृष्टि डालेगी ॥ २० ॥ रेराक्षस! यह देहस्वभावसेही संज्ञाहीनहै, इसको बांध, या इसपर आघातदे, जो तेरी इच्छाहो सो कर हम किसी प्रकारसे इस शरीरकी रक्षा नहीं करेंगी ॥ हमें प्राणोंसे कुछ प्रयोजन नहींहै ॥ २१ ॥ और अधिक तू जो हमारे शरीरको स्पर्श करे तौ हम अपने जातेजी यह कलंक पृथ्वीपर विस्तार नहीं कर सकेंगी ! वैदेही जी इस प्रकारसे कठोर वचन कह ॥ २२ ॥ फिर रावणसे और कुछ न बोलीं तब रावण सीताजीके कठोर और रोम हर्षण वचन सुनकर॥२३॥

क्रीडंतिराजहंसेनपद्मखंडेषुनित्यशः ॥ हंसीसातृणमध्यस्थंकथंद्रक्ष्येतमद्गुकम् ॥ २० ॥ इदंशरीरंनिःसंज्ञंबंधवाघात
यस्ववा ॥ नेदंशरीरंरक्ष्यंमेजीवितंवापिराक्षस ॥ २१ ॥ नतुशक्यमपक्रोशंपृथिव्यांदातुमात्मनः ॥ एवमुक्त्वातुवैदेहीक्रो
धात्सुपरुषंवचः ॥ २२ ॥ रावणंजानकीतत्रपुनर्नोवाचकिंचन ॥ सीतायावचनंश्रुत्वापरुषंरोमहर्षणम् ॥२३॥ प्रत्युवाच
ततःसीतांभयसंदर्शनंवचः ॥ शृणुमैथिलिमद्वाक्यंमासान्द्वादशभामिनि ॥ २४ ॥ कालेनानेननाभ्येषियदिमांचा
रुहासिनि ॥ ततस्त्वांप्रातराशार्थंसूदाश्छेत्स्यंतिलेशशः ॥ २५ ॥ इत्युक्त्वापरुषंवाक्यंरावणःशत्रुरावणः ॥ राक्षसीश्च
ततःक्रुद्धइदंवचनमब्रवीत् ॥ २६ ॥ शीघ्रमेवहिराक्षस्योविरूपाघोरदर्शनाः ॥ दर्पमस्यापनेष्यंतुमांसशोणितभोज
नाः ॥ २७ ॥ वचनादेवतास्तस्यसुघोराघोरदर्शनाः ॥ कृतप्रांजलयोभूत्वामैथिलींपर्यवारयन् ॥ २८ ॥

सीताजीको डर पानेंके लिये कहनें लगा। कि हे मैथिली ! बारह महीनें तक कुछ न कहूंगा ॥ २४ ॥ हे चारुहासिनी ! इस समयके मध्यम यदि तुम हमको न प्राप्त होगी तौ रसोई करनें वाले हमारे प्रातःकलेवेके लिये तुमको टुकडे २ कर काट डालेंगे ॥ २५ ॥ शत्रुओंको रुवानें वाला रावण इस प्रकारसे कठोर वचन कहकर फिर क्रोधितहो राक्षसियोंको आज्ञा देता हुआ ॥ २६ ॥ हे विकटरूपा, घोर दर्शना, रक्त मांसभोजी राक्षसिगण ! तुम सब शीघ्रही जानकीका समस्त गर्व तोड डालो ॥ २७ ॥ वह घोर दर्शना निशाचरी गण यह सुन तत्क्षणही हाथ जोड

शोकके मारे उनके नेत्र लाल रहोगये उससमय वह उन्मत्तोंकी समान फिरनेलगे ॥ १० ॥ श्रीरामचंद्रजी शोकके समुद्रमें डूबकर एक वृक्षसे दूसरे वृक्षके नीचे दौडकर जानेलगे और विलाप करते २ नद नदी और पर्वतोंपर घूमनेलगे ॥ ११ ॥ अनन्तर श्रीरामचंद्रजी उन्मत्तकी समान कदम्बादि वृक्षोंसे सीताजीको पूछनें लगे कि हे कदम्ब! तुमने उन कदम्बप्रिया हमारी प्राणप्यारी जानकीको देखाहै? यदि देखाहो तो उन शुभानना की वार्त्ता हमसे कहो॥ १२ ॥ हे बिल्व! वह बिल्वसदृश स्तनवाली पल्लव समान कान्तियुक्त पीले रेशमीन वस्त्र धारणकिये सीताको यदि तुमने देखाहो तो बताओ ॥ १३ ॥ अथवा हे अर्ज्जुन! प्रिया तुमको अतिशयचाहतीथी,सो वह क्षीणाङ्गी जनककुमारी जीवितहैं या नहीं सो बताओ १४॥ अथवा यह ककुभवृक्ष ककुभके समान जांघवाली सीताको निश्चयही जानताहोगा. क्योंकि इस वृक्षपर लता पुष्पफल सबही लगेहैं ॥ १५ ॥

वृक्षाद्वृक्षंप्रधावन्सागिरींश्चापिनदीनदम् ॥ बभ्रामविलपन्रामःशोकपंकार्णवप्लुतः ॥ ११ ॥ अस्तिकच्चित्त्वयादृष्टासाकदंबप्रियाप्रिया ॥ कदंबयदिजानीषेशससीतांशुभाननाम् ॥१२॥ स्निग्धपल्लवसंकाशांपीतकौशेयवासिनीम् ॥ शंसस्वयदिसादृष्टाबिल्वबिल्वोपमस्तनी ॥ १३ ॥ अथवार्जुनशंसत्वंप्रियांतामर्जुनप्रियाम् ॥ जनकस्यसुतातन्वीयादजीवतिवानवा ॥ १४ ॥ ककुभःककुभोरूंतांव्यक्तंजानातिमैथिलीम् ॥ लतापल्लवपुष्पाढ्योभातिह्येषवनस्पतिः ॥ १५ ॥ भ्रमरैरुपगीतश्चयथाद्रुमवरोह्यसि ॥ एषव्यक्तंविजानातितिलकस्तिलकप्रियाम् ॥ १६ ॥

और भ्रमरगणोंके संगीत रवसे परिपूर्ण शोभा पारहाहै। हे वनस्पति! तुम सब वृक्षोंमें प्रधानहो। और जानकीभी सब रमणीयोंमें श्रेष्ठहैं अतएव वह कहांहैं सो बताओ, ❋ अथवा प्रिया तिलक पुष्पको बहुत प्यारकरतीथी इससे यह तिलक वृक्ष निश्चयही उनके वृत्तान्तको जानता होगा ॥ १६ ॥

❋रागनी झंझौटी ताल एकताला।सीता विनु देख कुटी सोचत रघुराई॥आस्ताई॥लक्ष्मण तुमकहा कीन इकली सिय छांडदीन निश्चर कोइ दाओ चीन्ह लेगयो उडाई ॥ १ ॥ सियविन व्याकुल शरीर मनना तनक धरतधीर पीर कौन हरै नीर द्रगचले वहाई ॥ २ ॥ प्रेमविवस रामभये द्रुमलतासों पूछनगये सोकाबिबस बोलत नाहिं सबरहे मुरझाई ॥ ३ ॥ आगे गृद्ध भेटभई ताने सकल बातकही तेहि का प्रभु मोक्षदई नारद बलिजाई ॥ ४ ॥

मप्रिय स्वामी और देवरको सदा याद करकै और शोकसे सतानेंके कारण चेतना रहित होकर जानकीजीनें वहां किसी प्रकार शान्ति नहीं पाई॥२६॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे षट्पंचाशः सर्गः॥५६॥जिस समय जानकीजीको लंकामें रावण लेगया उस समय ब्रह्माजी नें देवताओकें राजा इन्द्रसे इस प्रकारके वचन कहे॥ १॥ त्रिलोकीके हित करनेके वास्ते और राक्षसोंके नाशके निमित्त दुरात्मा रावण जानकीजी को लंकामें ले गयाहै॥२॥वहां महाभाग्यवाली पतिव्रत धर्म युक्त जो सदा सुखहीसे इतनी बड़ी हुईहै अपने स्वामीको न देखकर और राक्षसोंको देखकर॥ ३॥ राक्षसियोंसे घिरी हुई पतिव्रत धर्म वाली जानकी समुद्रके बीचमें जो लंका पुरीहै उसमें स्थित हैं॥ ४॥ रामचंद्रजी किस प्रकार जा

प्रवेशितायांसीतायांलंकांप्रतिपितामहः॥ तदाप्रोवाचदेवेंद्रंपरितुष्टंशतक्रतुम्॥ १॥ त्रैलोक्यस्यहितार्थायरक्षसाम हितायच॥ लंकांप्रवेशितासीतारावणेनदुरात्मना॥ २॥ पतिव्रतामहाभागानित्यंचैवसुखैधिता॥ अपश्यंतीचभर्तारंपश्यंतीराक्षसीजनम्॥ ३॥ राक्षसीभिःपरिवृताभर्तृदर्शनलालसा॥ निविष्टाहिपुरीलंकातीरेनदनदीपतेः॥ ४॥ कथंज्ञास्यतितांरामस्तत्रस्थांतामनिंदिताम्॥ दुःखंसंचिंतयंतीसाबहुशःपरिदुर्लभा॥५॥ प्राणयात्रामकुर्वाणाप्राणांस्त्यक्ष्यत्यसंशयम्॥ सभूयःसंशयोजातःसीतायाःप्राणसंक्षये॥ ६॥ सत्वंशीघ्रमितोगत्वासीतांपश्यशुभाननाम्॥ प्रविश्यनगरींलंकांप्रयच्छहविरुत्तमम्॥ ७॥ एवमुक्तोथदेवेंद्रःपुरींरावणपालिताम्॥ आगच्छन्निद्रयासार्धं भगवान्पाकशासनः॥ ८॥ निद्रांचोवाचगच्छत्वंराक्षसान्संप्रमोहय॥ सा तथोक्तामघवतादेवीपरमहर्षिता॥ ९॥

नेगें कि वहां निन्दा रहित जानकीजीहैं बड़े कष्ट और दुःखसे रामचंद्रको स्मरण करती हुई जानकी॥ ५॥ भोजनादिके न करनेंसे निश्चय प्राणोंको त्यागन करदेंगी, सो जानकीजीके प्राण रक्षा करनेंमें हमको बड़ा सन्देहहै॥ ६॥ सो तुम शीघ्र यहांसे जाकर सुन्दर मुख वाली जानकीका दर्शनकर लंका पुरीमें प्रवेशकर यह हवि ले जाकर जानकीजीको देदो॥७॥ जब यह वचन ब्रह्माजीनें कहा तब रावणकी लंकापुरीमें इन्द्रजी आये और निद्राको अपनें साथ लेते आये॥ ८॥ तब इन्द्रनें निद्रा देवीसे कहा, कि तू जाकर राक्षसों को मोहित कर निद्रा देवी इन्द्रके यह वचन सुन

हे शार्दूल ! उन चंद्र वदना हमारी प्यारी मैथिलीको यदि देखाहो तो हमाराविश्वास करकै हमें बतादो ! तुमको कुछ भय नहींहै अर्थात् तुम इस बातसे नडरो, कि हम तुम्हें मार डालेंगे ॥ २५ ॥ हे प्रिये ! हे कमलेक्षणे ! तुम अब क्यों दौडी जातीहो ? हमने अब निश्चयही तुमको देख लियाहै तुम किस कारणसे इन वृक्षोंके मध्यमें छिप कर हमसे नहीं बोलतीहो ? ॥ २६ ॥ हे वरारोहे ! हम वारंवार कहतेहैं कि तुम खडी रहो, व इधर उधर दौडती न फिरो, क्या हमारे ऊपर तुमको दया नहीं आती ? तुमतो कभो हमारे साथ इतना उपहास नहीं करती थी ॥ २७ ॥ हे वरवर्णिनी ! हमने तुम्हारे पीले रेशमीन वस्त्र देखकर तुमको पहचानलिया है, और यहभी हम देख रहेहैं कि तुम भागही रहीहो इस्से यदि

शार्दूलयदिसादृष्टाप्रियाचंद्रनिभानना ॥ मैथिलीममविस्रब्धःकथयस्वनतेभयम् ॥ २५ ॥ किंधावसिप्रिये नूनंदृष्टासिकमलेक्षणे ॥ वृक्षैराच्छाद्यचात्मानंकिंमांनप्रतिभाषसे ॥ २६ ॥ तिष्ठतिष्ठवरारोहेनतेस्तिकरुणाम यि ॥ नात्यर्थंहास्यशीलासिकिमर्थंमामुपेक्षसे ॥ २७ ॥ पीतकौशेयकेनासिसूचितावरवर्णिनि ॥ धावंत्य पिमयादृष्टातिष्ठयद्यस्तिसौहृदम् ॥ २८ ॥ नैवसानूनमथवाहिंसिताचारुहासिनि ॥ कृच्छ्रंप्राप्तंहिमांनूनंयथापेक्षि तुमर्हति ॥ २९ ॥ व्यक्तंसाभक्षिताबालाराक्षसैःपिशिताशनैः ॥ विभज्यांगानिसर्वाणिमयाविरहिताप्रिया ॥ ३० ॥ नूनंतच्छुभदंतोष्ठंसुनासंशुभकुंडलम् ॥ पूर्णचंद्रनिभंग्रस्तंमुखंनिष्प्रभतांगतम् ॥ ३१ ॥ साहिचंदनवर्णाभाग्रीवाग्रै वेयकोचिता ॥ कोमलाविलपंत्यास्तुकांतायाभक्षिताशुभा ॥ ३२ ॥

तुम कुछ प्रेम हमारे साथ रखतीहो तौ लौट आओ और भागती नफिरो ॥ २८ ॥ अथवा हे चारुहासिनी ! हमनें जिसको देखाहै वह तुम नहींहो, तुमको तो निश्चयही किसीनें मारडाला, यदि ऐसा नहोता तो इस दारुण क्लेशके समयभी क्या तुमभी हमको छोड सकतीहो ॥ २९॥ साफ मालूम होताहै कि मांस खानें वाले राक्षसोंनें हमारा वियोग पाईहुई हमारी प्रियाके अंगोंको खंड २ करके खा लिया ॥ ३० ॥ अहो ! इनका वह मनोहर दांत वाला, श्रेष्ठ नासिका युक्त, शुभकुंडलसमन्वित, पूर्ण चंद्रमाकी समान वदन राक्षसों करकै ग्रस्त होजानें पर निश्चयही प्रभाही न होगया होगा ॥ ३१ ॥ उनकी कोमल गरदन हार आदि भूपणोंसे भूपित जिसके वर्णकी ज्योति चंदनकी समान चिकनी और विशदहै

पृथ्वी नहीं स्पर्श करते उनके नेत्रोंके पलक नहीं लगते ॥ १८ ॥ धूलि रहित वस्त्र धारण किये हुए जो फूल मलीन नहों ऐसे फूलोंकी माला धारण किये इन लक्षणोंसे जानकीजी इन्द्रको पहचान परम हर्षित हुई ॥ १९ ॥ और फिर रोती हुई बोलीं, हे भगवन्! भाग्यसे महाबाहु रामचंद्रका नाम उनके भाई सहित आज मैंनें सुना ॥ २० ॥ जैसे मेरे श्वशुर दशरथजी, पिता जनकजी हैं तैसेही आज मैं तुम्हें देखतीहूं तुमसे मेरे पति सनाथ हुए ॥ २१ ॥ हे देवेन्द्र! तुम्हारी आज्ञासे यह दूधकी बनी खीर रघु कुलके बढानें हारे तुम्हारे हाथकी दी हुई मैं खाऊंगी॥२२॥ सुहासिनी जानकीजीनें वह हवि इन्द्रके हाथसे लेकर प्रथम अपने स्वामी रामचंद्र और देवर लक्ष्मणजीको निवेदितकी ॥ २३ ॥ और कहा कि

अरजोंबरधारीचनम्लानकुसुमस्तथा ॥ तंज्ञात्वालक्षणैःसीतावासवंपरिहर्षिता ॥ १९ ॥ उवाचवाक्यंरुदतीभगवद्रा
घवंप्रति ॥ सहभ्रात्रामहाबाहुर्दिष्ट्यामेश्रुतिमागतः ॥ २० ॥ यथामेश्वशुरोराजायथाचमिथिलाधिपः ॥ तथात्वा
मद्यपश्यामिसनाथोमेपतिस्त्वया ॥ २१ ॥ तवाज्ञयाचदेवेंद्रपयोभूतामिदंहविः ॥ अशिष्यामित्वयादत्तंरघूणांकुलव
र्धनम् ॥ २२ ॥ इंद्रहस्तादृगृहीत्वाततपायसंसाशुचिस्मिता॥ न्यवेदयतभर्त्रेसालक्ष्मणायचमैथिली ॥ २३ ॥ यदिजी
वतिमेभर्तासहभ्रात्रामहाबलः ॥ इदमस्तुतयोर्भक्त्यातदाश्नातपायसंस्वयम् ॥ २४ ॥ इतीवतत्प्राश्यहविर्वराननाज
हौक्षुधादुःखसमुद्भवंचतम् ॥ इंद्रात्प्रवृत्तिमुपलभ्यजानकीकाकुत्स्थयोःप्रीतमनाबभूव ॥ २५ ॥ सचापिशक्रस्त्रिदि
वालयंतदाप्रीतोययौराघवकार्यसिद्धये ॥ आमंत्र्यसीतांसततोमहात्माजगामनिद्रासहितःस्वमालयम् ॥ २६ ॥
इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेसर्गः ॥ १ ॥

यदि मेरे महाबली भर्ता लक्ष्मण भाई सहित जीवितहैं तो यह जो मैं प्रेमसे देतीहूं यह वह पायस ग्रहण करे ॥ २४ ॥ वह सुमुखी इस प्रकार खीरको निवेदन कर पीछे आप भक्षण करती हुई. जिसके खातेही भूंख प्यासका दुःख जाता रहा, इन्द्रसे यह कथा सुनकर कि रामचंद्र शीघ्र आवेंगे रामचंद्रमें मन लगाती हुई ॥ २५ ॥ वह इन्द्रभी उस समय रामचंद्र की कार्य सिद्धिके निमित्त प्रसन्न होकर स्वर्गको गये, और वह महात्मा चलते समय जानकीको समझाकर निद्रा सहित स्वर्गको पधारे॥२६॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे क्षेपकः सर्गः॥५६॥

कि शून्य पडा है, पर्णशालामें कोई नहीं है आसन भी सब इधर उधर पडे हैं ॥ १ ॥ सब ओर वहां पर देख और वैदेहीजीको न पाकर श्रीराम चन्द्रजी लक्ष्मणजीके दोनों हाथ पकड रोकर बोले ॥ २ ॥ हे लक्ष्मण! सीता कहां हैं? इस आश्रमसे किस स्थानको चली गई हैं? हे सौमित्र! प्रिया को किसनें हरण किया, वा भक्षण किया? ॥ ३ ॥ हे सीते! यदि वृक्षकी आडमें छिपी रहकर तुम्हैं उपहास करनेंकी इच्छा हुई हो, तब तो जितना चाहियेथा उतना उपहास होगया, अब अधिक न सताओ। देखो! हम महादुःखके पडनेंसे व्याकुल होरहे हैं सो इस समय आनकर तुम शीघ्र हमको धीरजदो, और समझाओ ॥ ४ ॥ हे सौम्य! तुम जो इन सब विश्वासी मृगछौनोंके सहित खेल करतीथीं सो इस समय यह सब

अदृष्ट्वातत्रवैदेहींसन्निरीक्ष्यचसर्वशः ॥ उवाचरामःप्राक्रुश्यप्रगृह्यरुचिरौभुजौ ॥ २ ॥ क्वनुलक्ष्मणवैदेहीकंवादेश मितोगता ॥ केनाहृतावासौमित्रेभक्षितांकेनवाप्रिया ॥ ३ ॥ वृक्षेणावार्ययदिमांसीतेहसितुमिच्छसि ॥ अलंतेह सितेनाद्यमांभजस्वसुदुःखितम् ॥ ४ ॥ यैःपरिक्रीडसेसीतेविश्वस्तैर्मृगपोतकैः ॥ एतेहीनास्त्वयासौम्येध्यायंत्यस्रा विलेक्षणाः ॥ ५ ॥ सीतयारहितोऽहंवैनहिजीवामिलक्ष्मण ॥ वृतंशोकेनमहतासीताहरणजेनमाम् ॥ ६ ॥ परलोके महाराजोनूनंद्रक्ष्यतिमेपिता ॥ कथंप्रतिज्ञांसंश्रुत्यमयात्वमभियोजितः ॥ ७ ॥ अपूरयित्वातंकालंमत्सकाशमिहाग तः ॥ कामवृत्तमनार्यंवामृषावादिनमेवच ॥ ८ ॥ धिक्त्वामितिपरेलोकेव्यक्तंवक्ष्यतिमेपिता ॥ विवशंशोकसंतप्तंदीनं भग्नमनोरथम् ॥ ९ ॥ मामिहोत्सृज्यकरुणंकीर्तिर्नरमिवानृजुम् ॥ क्वगच्छसिवरारोहेमामोत्सृजसुमध्यमे ॥ १० ॥

तुम्हारे विना नेत्रोंसे अश्रुजल भरे चिंता कर रहे हैं ॥ ५ ॥ हे लक्ष्मण! सीताके विरहमें हम कभी जीवन धारण नहीं कर सकते, उनके हर जानें से उत्पन्न हुए घोरतर शोकनें हमको ढक लिया है ॥ ६ ॥ पितृदेव महाराज दशरथजीको निश्चयही हम परलोकमें मिलेंगे, और वह निश्चय ही हमसे यह कहेंगे कि हे राम! हमनें तो तुमको प्रतिज्ञा पूर्ण करनेंको कहाथा, और तुमनेभी स्वीकार कियाथा, कि हम चौदह वर्ष वनमें बसेंगे॥ ७ ॥ सो तुम उस प्रतिज्ञाको पूर्ण विना कियेही इस समय कैसे यहां पर आये? तुम स्वेच्छाचारी, मिथ्यावादी, और नीचता युक्त तुमको ॥ ८ ॥ धिक्कार है! सो निश्चयही इस प्रकारके वचन पिताजी हमें कहेंगे, विवश शोकसे व्याकुल, दीन और मनोरथ टूटे हुए ॥ ९ ॥ व दया करनेंके योग्य

कैसे कहैं कि मंगल होगा । कारण कि जनस्थानका नाश करनेंके कारण हमसे और राक्षसोंसे भारी वैरहै ॥ ९ ॥ और तिसपर यहां हमको घोर दुर्निमित्त दिखाई देतेहैं, आत्मवान श्रीरामचंद्रजीनें शृगालका शब्द सुनकर इस प्रकार चिन्ता करते २ ॥ १० ॥ लौटकर बडी शीघ्रतासे आश्रमकी ओर गमन करने लगे । मृग रूपी मारीच जो उनको आश्रमसे दूर ले आयाथा, इस कारण रामचंद्रजी जल्दीसे आश्रमको चले॥ ११ ॥ और शंकित चित्त होकर श्रीरामचन्द्रजी आश्रममें पहुँचे तब सब मृग पक्षी गण इनके मनको उदास देखकर सब इनके निकट आये ॥ १२ ॥ वह सब मृग पक्षीगण उस कालमें रामचन्द्रजीकी बांई तरफ होकर कठोर स्वरसे शब्द करनें लगे उन महा घोर सब दुर्निमित्तोंको देखकर

निमितानिचघोराणिदृश्यंतेऽद्यबहूनिच ॥ इत्येवंचिंतयन्रामःश्रुत्वागोमायुनिःस्वनम् ॥ १० ॥ निवर्तमानस्त्वरितोजगामाश्रममात्मवान् ॥ आत्मनश्चापनयनंमृगरूपेणरक्षसा ॥ ११ ॥ आजगामजनस्थानंराघवःपरिशंकितः ॥ तंदीनमानसंदीनमासेदुर्मृगपक्षिणः ॥ १२ ॥ सव्यंकृत्वामहात्मानंघोरांश्चससृजुःस्वरान् ॥ तानिदृष्ट्वानिमित्तानिमहाघोराणिराघवः ॥ १३ ॥ ततोलक्ष्मणमायांतंददर्शविगतप्रभम् ॥ ततोविदूरेरामेणसमीयायसलक्ष्मणः ॥ १४ ॥ विषण्णःसन्विषण्णेनदुःखितोदुःखभागिना ॥ सजगर्हेऽथतंभ्रातादृष्ट्वालक्ष्मणमागतम् ॥ १५ ॥ विहायसीतांविजनेवनेराक्षससेविते ॥ गृहीत्वाचकरंसव्यंलक्ष्मणंरघुनंदनः ॥ १६ ॥ उवाचमधुरोदर्कमिदंपरुषमार्तवत् ॥ अहोलक्ष्मणगर्ह्यंतेकृतंयत्त्वंविहायताम् ॥ १७ ॥

श्रीरामचन्द्रजीनें देखातो॥१३॥प्रभा हीन हुए लक्ष्मणजी चले आतेहैं देखते ही देखते लक्ष्मणजी रामचन्द्रजीके निकट आ पहुँचे॥१४॥रामचन्द्रजीको विषादित व दुःखित देखकर लक्ष्मणजीभी विषादित और दुःखित हुए। तब श्रीरामचन्द्रजी अपनें भ्राता लक्ष्मणजीकी निन्दा करनें लगे॥१५॥क्योंकि लक्ष्मणजी सीताजीको राक्षस सेवित सूने वनमें अकेली छोडकर आयेथे लक्ष्मणजीका वांयां हाथ पकडकर श्रीरामचन्द्रजी ॥ १६ ॥ आरतकी समान श्रवण कठोर परिणाम मधुर वचन कहने लगे कि–हे लक्ष्मण! तुम सीताजीको त्याग कर जो यहां चले आये हो, यह तुमनें अतीव निन्दा

हे काकुत्स्थ! आपतोभी यह मानते हों कि जानकी इसी वनमें हैं तब तौ इस वनके सबही आश्रमोंमें खोजेंगे, अब शोक न कीजिये॥१८॥ जब सौहार्दके वश होकर लक्ष्मणजीनें इस प्रकार कहा तब रामचन्द्रजी सावधान चित्त होकर लक्ष्मणजीको संग ले ढूंढनें लगे ॥१९॥ वन, गिरि, तलाव, एकर करके दोनों भाइयोंनें सीताको ढूंढनेंके लिये छाने ॥ २० ॥ फिर उन पर्वतोंके कंगूरों, चटान, व शिखर, सब रत्ती२ खोजे पर जानकीजीके दर्शन न हुए॥२१॥ उस कालमें समस्त पर्वतको ढूंढ भालकर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीसे बोले कि हे भाई! इस पर्वत पर प्यारी जनकदुलारी तो दृष्टि नहीं आतीं ॥२२॥

वनंसर्वंविचिनुवोयत्रसाजनकात्मजा ॥ मन्यसेयदिकाकुत्स्थमास्मशोकेमनःकृथाः ॥ १८ ॥ एवमुक्तःससौहार्दा
ल्लक्ष्मणेनसमाहितः ॥ सहसौमित्रिणारामोविचेतुमुपचक्रमे ॥ १९ ॥ तौवनानिगिरींश्चैवसरितश्चसरांसिच ॥
निखिलेनविचिन्वंतौसीतांदशरथात्मजौ ॥ २० ॥ तस्यशैलस्यसानूनिशिलाश्चशिखराणिच ॥ निखिलेनवि
चिन्वंतौनैवतामभिजग्मतुः ॥ २१ ॥ विचित्यसर्वतःशैलंरामोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ नेहपश्यामिसौमित्रेवैदेहींपर्वते
शुभाम् ॥ २२ ॥ ततोदुःखाभिसंतप्तोलक्ष्मणोवाक्यमब्रवीत् ॥ विचरन्दंडकारण्यंभ्रातरंदीप्ततेजसम् ॥ २३ ॥ प्रा
प्स्यसेत्वंमहाप्राज्ञमैथिलींजनकात्मजाम् ॥ यथाविष्णुर्महाबाहुर्बलिंबद्ध्वा महीमिमाम् ॥ २४ ॥ एवमुक्तस्तुवीरेणल
क्ष्मणेनसराघवः ॥ उवाचदीनयावाचादुःखाभिहतचेतनः ॥ २५ ॥ वनंसुविचितंसर्वंपद्मिन्यःफुल्लपंकजाः ॥ गिरि
श्चायंमहाप्राज्ञबहुकंदरनिर्झरः ॥ नहिपश्यामिवैदेहींप्राणेभ्योऽपिगरीयसीम् ॥ २६ ॥

लक्ष्मणजी समस्त दंडकारण्य में विचरण करते हुए भी जानकीजीको न पाकर दुःखसे संतप्त हो प्रदीप्त तेजवाले अपने भ्राता रामचंद्रजी से बोले ॥ २३ ॥ कि महाबलवान् विष्णु जीने जिसप्रकार बलियोंको बांधकर इस पृथ्वीको प्राप्त कियाथा हे बुद्धिमान्! आपभी वैसेही जनक कुमारी सीताजीको पामेंगे ॥ २४ ॥ वीर लक्ष्मणजीके यह वचन सुन दुःखसे चित्त हरे हुये श्रीरामचंद्रजी अतिदीनतासे बोले ॥ २५ ॥ हे महा बुद्धिमान्! सारा वन खिले हुये कमल कमलाकरसरोवर बहुत सारी कन्दराओंसे युक्त बहुत झरनोंसे सुशोभित यह पर्वत जरा २ करके देखा

लक्ष्मणजी महादीन और उदास मन हो रहेथे । उनको सीताके विना आता हुआ देखकर धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी पूछनें लगे ॥ १ ॥ हे लक्ष्मण! जब हम वनको आये और उस समय जो हमारे साथही वनको आईथीं; और तुम जिनको छोडकर यहां आये हो; वह सीता कहां हैं? ॥२ ॥ जब हम राज्यसे भ्रष्ट होकर दीनभावसे दंडकारण्यको आये, और उस समय जो हमारे दुःखमें सहाय हुई, वह तनुमध्यमा जानकीजी कहां हैं? ॥३॥ जिसके बिना हम एक मुहूर्त भरभी प्राण धारण करने को उत्साही नहीं, वह देवकन्याकी समान प्राण सहाय जानकीजी कहां हैं? ॥ ४ ॥ हे लक्ष्मण! हम उन तपाये हुए सुवर्णकी समान प्रभावाली जनकात्मजाके बिना देवताओंकी प्रभुताई अथवा पृथ्वीकी रजाई लेनेंकीभी अभिलाषा नहीं करते ॥ ५॥

सदृष्ट्वालक्ष्मणंदीनंशून्यंदशरथात्मजः ॥ पर्यपृच्छतधर्मात्मावैदेहीमागतंविना ॥१ ॥ प्रस्थितंदंडकारण्यंयामामनुजगामह ॥ क्वसालक्ष्मणवैदेहीयांहित्वात्वमिहागतः ॥ २ ॥ राज्यभ्रष्टस्यदीनस्यदंडकान्परिधावतः ॥ क्वसादुःखसहायामेवैदेहीतनुमध्यमा ॥ ३ ॥ यांविनानोत्सहेवीरमुहूर्तमपिजीवितुम् ॥ क्वसाप्राणसहायामेसीतासुरसुतोपमा ॥ ४ ॥ पतित्वममराणांहिपृथिव्याश्चापिलक्ष्मण ॥ विनातांतपनीयाभांनेच्छेयंजनकात्मजाम् ॥ ५ ॥ कच्चिज्जीवतिवैदेहीप्राणैःप्रियतरामम ॥ कच्चित्प्रव्राजनंवीरनमेमिथ्याभविष्यति ॥ ६ ॥ सीतानिमित्तंसौमित्रेमृतेमयिगतेत्वयि ॥ कच्चित्सकामाकैकेयीसुखितासाभविष्यति ॥ ७ ॥ सपुत्रराज्यांसिद्धार्थांमृतपुत्रातपस्विनी ॥ उपस्थास्यतिकौसल्याकच्चित्सौम्येनकैकयीम् ॥ ८ ॥ यदिजीवतिवैदेहीगमिष्याम्याश्रमंपुनः ॥ संवृत्तायदिवृत्ता साप्राणांस्त्यक्ष्यामिलक्ष्मण ॥ ९ ॥

हे वीर! हमारी प्राणोंसेभी प्यारी जानकी क्या अभीतक जीतीहैं, क्या हमने जो चौदह वर्ष तक वनमे रहनेकी प्रतिज्ञा की है यह मिथ्या तौ नहोजाय ॥ ६ ॥ लक्ष्मण! सीताके लिये हमारे प्राण त्यागने पर और तुम्हारे अयोध्यामें लौट जानेपर कैकेयी क्या सफल मनोरथ और सुखी होगी॥७॥ कैकेयी इस प्रकार अपनें पुत्रकी राज्य प्राप्तिसे जब सिद्ध काम होगी, तब क्या मृतपुत्रा, दीना, तपस्विनी, हमारी माता कौशल्याजीको विनयके साथ उसकी सेवा करनी होगी ॥ ८ ॥ हे लक्ष्मण ! वैदेही यदि जीवितहैं, तब तो हम फिर आश्रमको चलतेहैं, और वह शुद्धचारिणी

अशोक शाखा समूह द्वारा अपना शरीर ढक कर हमारे शोकको अतिशय बढाती हो ॥ ३ ॥ हे देवि! तुम्हारी दोनों जांघें केलेके खंभकी सदृश हैं तुमनें उनको कदलीसे छिपा रक्खाहै सो हम उनको देख रहेहैं तुम अब उनको नहीं छिपा सकतीहो ॥ ४ ॥ हे भद्रे! तुम हँसते २ कर्णिकारके वनमें प्रवेश करतीहो, परन्तु हमको पीडन करके और अधिक उपहास करनेंका प्रयोजन नहींहै ॥ ५ ॥ विशेष करके आश्रमके स्थानमें परिहास करना अच्छा नहीं होता, हे प्रिये! यह तो हम जानतेहैं कि स्वभावसे ही तुम परिहासप्रियहो ॥ ६ ॥ परन्तु हे विशालाक्षी! यह पर्णशाला शूनी पडीहै इस कारण आओ। हे लक्ष्मण! निश्चय होताहै कि. सीताको राक्षसोंनें भक्षण कर लिया. अथवा वह उनको हरण करके

कदलीकांडसदृशौकदल्यासंवृतावुभौ ॥ ऊरूपश्यामितेदेविनासिशक्तानिगूहितुम् ॥ ४ ॥ कर्णिकारवनंभद्रेहसंती देविसेवसे ॥ अलंतेपरिहासेनममबाधावहेनवै ॥ ५ ॥ विशेषेणाश्रमस्थानेहासोयंनप्रशस्यते ॥ अवगच्छामितेशीलंपरिहासप्रियंप्रिये ॥ ६ ॥ आगच्छत्वंविशालाक्षिशून्योयमुटजस्तव ॥ सुव्यक्तंराक्षसैःसीताभक्षितावाहृतापिवा ॥७॥ नहिसाविलपंतंमामुपसंप्रतिलक्ष्मण ॥ एतानिमृगयूथानिसाश्रुनेत्राणिलक्ष्मण ॥ ८ ॥ शंसंतीवहिमेदेवींभक्षितांरजनीचरैः ॥ हाममार्येक्वयातासिहासाध्विवरवर्णिनि ॥ ९ ॥ हासकामाद्यकैकेयीदेविमेद्यभविष्यति ॥ सीतयासहनिर्यातोविनासीतामुपागतः ॥ १० ॥ कथंनामप्रवेक्ष्यामिशून्यमंतःपुरंमम ॥ निर्वीर्यइतिलोकोमांनिर्दयश्चेतिवक्ष्यति ॥ ११ ॥ कातरत्वंप्रकाशंहिसीतापनयनेनमे ॥ निवृत्तवनवासश्चजनकंमिथिलाधिपम् ॥ १२ ॥

लेगये ॥ ७ ॥ इसी कारण वह हमको विलाप करते हुए देख कर भी हमारे निकट नहीं आतीं; हे लक्ष्मण! इस पर ये मृग यूथ गण रोदन करते हैं ॥८॥ यह भी मानों यही कह रहे हैं कि राक्षसोंनें सीताका भक्षण कर लिया। हा अच्छेशीलवाली साधवि! हा वरवर्णिनी सुमुखि! हा आर्या! तुम कहां गई हो ॥ ९ ॥ अब सीताकरके रहित देशको गमन करना पडेगा, इतने दिनोंके पीछे कैकेयीदेवी सफल मनोरथ हुई क्योंकि अब वह देखेंगी कि सीता सहित गयेथे। और आये सीता रहित! ॥ १० ॥ किस प्रकारसे हम सीता रहित अपनें रनवासमें प्रवेश करेंगे? सब लोग हमको वीर्य रहित और निर्दयी कह कर निन्दा करेंगे॥११॥सीताजीके विना संग होनेंसे निश्चय ही हमको कातरता प्राप्त हो जायगी, कारण कि जब

क्षुधा,श्रम, और प्यासके मारे रामचन्द्रजीका मुख सूख गयाथा, वह शोकितचित्तसे दीर्घ निश्वास त्याग करते लक्ष्मणजीकी आर्य भावसे निन्दा करते २ इस प्रकारसे आश्रममें आयकर देखा तो वहां सीता नहींहै वह आश्रम शून्य पडाहै॥ १९ ॥ जब सीताजीको न देखा तब श्रीरामचन्द्रजी आश्रममें प्रवेश करके सीताजीके खेलनेंके सब स्थान और वनवासके उठनें बैठनेंके स्थानमें ढूंढनें लगे, परन्तु वहांभी जनकनंदिनीको न पाया, तब श्रीरामचन्द्रजीनें जानकीजीके उठनें बैठनें और खेलनेंके स्थानोंको विसूर२याद किया, याद करतेही उनके रोम खडे होगये और बहुत घबडाये ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आर० अष्टपंचाशः सर्गः ॥ ५८ ॥ जब इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीनें आश्रमके मार्गमें वचन कहे और वह

विगर्हमाणोऽनुजमार्तरूपंक्षुधाश्रमेणैवपिपासयाच ॥ विनिःश्वसन्शुष्कमुखोविषण्णःप्रतिश्रयंप्राप्यसमीक्ष्यशून्यम् ॥ १९ ॥ स्वमाश्रमंसंप्रविगाह्यवीरोविहारदेशाननुसृत्यकांश्चित् ॥ एतत्तदित्येववनवासभूमौप्रहृष्टरोमाव्यथितोबभूव ॥ २० ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेअष्टपंचाशःसर्गः ॥ ५८ ॥ ७ ॥ ॥
अथाश्रमादुपावृत्तमंतरारघुनंदनः ॥ परिपप्रच्छसौमित्रिंरामोदुःखादिदंवचः ॥ १ ॥ तमुवाचकिमर्थंत्वमागतोऽपास्यमैथिलीम् ॥ यदासातवविश्वासाद्वनेविरहितामया ॥ २ ॥ दृष्ट्वैवाभ्यागतंत्वांमेमैथिलींत्यज्यलक्ष्मण ॥ शंकमानंमहत्पापंयत्सत्यंव्यथितंमनः ॥ ३ ॥ स्फुरतेनयनंसव्यंबाहुश्चहृदयंचमे ॥ दृष्ट्वालक्ष्मणदूरेत्वांसीताविरहितंपथि ॥ ४ ॥ एवमुक्तस्तुसौमित्रिर्लक्ष्मणःशुभलक्षणः ॥ भूयोदुःखसमाविष्टोदुःखितंराममब्रवीत् ॥ ५ ॥

लक्ष्मण कुछ न बोले तब फिर महादुःखीहो रामचन्द्रजी सुमित्राकुमारसेबोले ॥ १ ॥ भाई तुम कैसे सीताको छोडकर यहां चले आये ? जबकि हम तुम्हारेही विश्वासपर सीताको वनके बीच छोड आयेहैं ॥ २ ॥ यहदेखतेही कि तुम सीताजीको त्याग कर यहां आयेहो, हमारा मन जो महा अनिष्टकी शंका करके व्यथित होताथा वह हमारी शंका सत्यही सत्यहुई ॥ ३ ॥ तुमको मार्गमें दूरसेही जानकीके विन अकेला आता देखकर हमारा, वामकर, वामनेत्र और हृदयका वायांभाग फड़कने लगा ॥ ४ ॥शुभलक्षण युक्त लक्ष्मणजी रामचन्द्रजीकी यह वार्ता सुन महा दुःखित हो

श्रीरामचंद्रजी सुकेशी सीताके विरहमें महा व्याकुल होकर इस प्रकारसे विलाप करने लगे। तब भयके मारे लक्ष्मणजीका मुख पीला पड गया मन व्यथित हुआ और वह बहुतही आतुर होगये ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्य कांडे द्विषष्टितमःसर्गः ६२॥ राजकुमार श्रीरामचंद्रजी प्रियाविहीनहो शोक मोहसे आतुर होनेंके कारण लक्ष्मणजीको विषाद उत्पन्न कराते हुए आपभी बडे तीव्र विषादको प्राप्त हुए ॥ १ ॥ तिसके पीछे वह विपुल शोकमें डूबकर लंबे २ श्वास लेते हुये, रोते२ शोकसे घिरे हुए लक्ष्मणजीको उपस्थित विपदके अनुरूप वचन कहने लगे. ॥ २ ॥ हम समझतेहैं कि हमारी समान बुरे कर्म करनेवाला दूसरा पुरुष पृथ्वीपर और नहींहै, देखो एकके पीछे एक

इतिविलपतिराघवेतुदीनेवनमुपगम्यतयाविनासुकेश्या ॥ भयविकलमुखस्तुलक्ष्मणोऽपिव्यथितमनाभृशमातुरो बभूव ॥ २० ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवा०आ०आर०द्विषष्टितमःसर्गः ॥ ६२ ॥ ७ ॥ ॥ सराजपुत्रःप्रिययाविहीनःशोकेनमोहेनचपीड्यमानः ॥ विषादयन्भ्रातरमार्तरूपोभूयोविषादंप्रविवेशतीव्रम् ॥ १ ॥ सलक्ष्मणंशोकवशाभिपन्नंशोकेनिमग्नोविपुलेतुरामः ॥ उवाचवाक्यंव्यसनानुरूपमुष्णंविनिःश्वस्यरुदन्सशोकम् ॥ २ ॥ नमद्विधोदुष्कृतकर्मकारीमन्येद्वितीयोऽस्तिवसुंधरायाम् ॥ शोकानुशोकोहिपरंपरायामामेतिभिंदन्हृदयंमनश्च ॥ ३ ॥ पूर्वमयानूनमभीप्सितानिपापानिकर्माण्यसकृत्कृतानि ॥ तत्रायमद्यापतितोविपाकोदुःखेनदुःखंयदहंविशामि ॥ ४ ॥ राज्यप्रणाशःस्वजनैर्वियोगःपितुर्विनाशोजननीवियोगः॥सर्वाणिमेलक्ष्मणशोकवेगमापूरयंतिप्रविचिंतितानि ॥ ५ ॥ सर्वंतुदुःखंममलक्ष्मणेदंशांतंशरीरेवनमेत्यक्लेशम् ॥ सीतावियोगात्पुनरभ्युदीर्णंकाष्ठैरिवाग्निःसहसोपदीप्तः ॥ ६ ॥

इस प्रकार लगा तार शोक इकट्ठे होकर हमारे मन और हृदयको वेधे डालतेहैं ॥ ३ ॥ पहले जन्ममें हमनें इच्छानुसार वारंवार बहुत सारे पाप कर्म कियेहैं आज उनका फल मिलरहाहै। इसीकारण हमारे ऊपर दुःखके ऊपर दुःख पड रहेहैं ॥४॥ राज्यका नाश होना, पिताजीका मरना, माताजीका वियोग होना, और बन्धु बान्धवोंसे छूटना, यह सब बातें जब याद आतीहैं तो हमारे शोकके वेगको परिपूर्ण कर देतीहैं ॥ ५ ॥ हे लक्ष्मण! वनमें आकर सीताके साथ रहनेंसे वह सब दुःखही छूट गयेथे वरन शरीरको क्लेशका नाम नहीं जान पडताथा, परन्तु आज जानकीके वियो

कोई आवश्यकता नहीं, नचवडानेका कुछ प्रयोजन, इस बातका विचार आप छोडें, क्योंकि लोकमें ऐसा कोई पुरुष नहींहै जो संग्राममें श्रीरघुनंदन रामचंद्रजीको ॥ १४ ॥ जीतसकै आजके समयही क्या वरन कभी ऐसा नहीं हुआ और न आगेको होगा, श्रीरामचंद्रजीको तो संग्राममें इन्द्रादि देवताभी नहीं जीत सकते ॥ १५ ॥ मोहितचित्त वैदेहीजीने हमारे यह बचन सुन आँसू त्यागकर रोतेर हमको यह दारुण वचन कहे ॥ १६ ॥ कि हमारे प्रति तुम्हारा अत्यन्त पाप भाव स्थापित हुआहै, परन्तु भ्राताके विनष्ट होनेपर तुम किसी भाँतिसे हमको प्राप्त नहीं कर सकोगे ॥ १७ ॥ हम समझीं कि तुम भरतके गुप्त भावसे पठाये श्रीरामचंद्रजीके साथ आयेहो इसीसे रामचंद्रजीका आरत नाद करना सुन करभी तुम उनकी सहा

जातोवाजायमानोवासंयुगेयःपराजयेत् ॥ अजेयोराघवोयुद्धेदेवैःशक्रपुरोगमैः ॥ १५ ॥ एवमुक्तातुवैदेहीपरिमोहितचेतना ॥ उवाचाऽश्रूणिमुंचंतीदारुणंमामिदंवचः ॥ १६ ॥ भावोमयितवात्यर्थंपापएवनिवेशितः ॥ विनष्टेभ्रातरिप्राप्तुंनचत्वंमामवाप्स्यसे ॥ १७ ॥ संकेताद्भरतेनत्वंरामंसमनुगच्छसि ॥ क्रोशंतंहियथात्यर्थंनैनमभ्यवपद्यसे ॥ १८ ॥ रिपुःप्रच्छन्नचारीत्वंमदर्थमनुगच्छसि ॥ राघवस्यांतरंप्रेप्सुस्तथैनंनाभिपद्यसे ॥ १९ ॥ एवमुक्तस्तुवैदेह्यासंरब्धोरक्तलोचनः ॥ क्रोधात्प्रस्फुरमाणोष्ठआश्रमादभिनिर्गतः ॥ २० ॥ एवंब्रुवाणंसौमित्रिंरामःसंतापमोहितः ॥ अब्रवीद्दुष्कृतंसौम्यतांविनात्वमिहागतः ॥ २१ ॥ जानन्नपिसमर्थंमांरक्षसामपवारणे ॥ अनेनक्रोधवाक्येनमैथिल्यानिर्गतोभवान् ॥ २२ ॥

यतार्थ नहीं जाते ॥ १८ ॥ अथवा तुम हमारे गुप्त शत्रुहो, हमारेही लेलेनेके लिये रामचंद्रजीके पीछेर वनमें फिरतेहो और सर्वदा अवसर ढूंढतेहो कि कब रामचंद्र कहींको जॉय, और हम इनको ग्रहण करें इस कारणसे तुम उनकी सहायता करनेके लिये नहीं जाते ॥ १९ ॥ जब वैदेहीजीनें इस प्रकार कहा, तब अति क्रोधके मारे हमारे नेत्र लाल हो आये, रोषमें भरकर अधर फडकने लगे और हम तैसेही आश्रमसे चल खडे हुए ॥२०॥ जब लक्ष्मणजीनें इस प्रकारसे कहना आरंभ किया, तब रामचंद्रजी शोकसे मोहित होकर उनसे बोले कि हे सौम्य! तुम जो जानकीको छोडकर यहां चले आये यह अतिशय दुष्कर कर्म हुआ ॥ २१ ॥ देखो, राक्षसोंका बल निवारण करनेकी हममें विलक्षण सामर्थ्य है उसको जानबूझ करभी तुम

प्रथम हमारे साथ इस शिलातल पर तुम्हारे निकट बैठकर हँसते २ तुमसे कितनी बातें कहतीथीं ॥ १२ ॥ यह नदियोंमें श्रेष्ठ गोदावरीहै, जो हमारी प्रियाको सर्वदाही बहुत प्यारीथी, सो हमारे मनमें यह बातभी आतीहै कि कदाचित् वह इस नदीके तीरपर चली गईहो। परन्तु नहीं वह अकेली यहांपर कभी नहीं आतीथीं ॥ १३ ॥ तब क्या वह कमल दलके समान नेत्रवाली कमलमुखी जानकी कमल लेनेंको चली गई हैं यहभी किसी प्रकार ठीक नहीं हो सकता; क्योंकि वह कभी हमारे विना कमल लेनें नहीं जातीथीं ॥ १४ ॥ अथवा वह इस पुष्पित वृक्ष समूह शोभित अनेक जातिके विहंगमोंसे पूर्ण यह वन अपनी इच्छानुसार देखनेंको गई हैं यहभी बात किसी भांति संभव नहीं हो सकती, क्यों

गोदावरीयंसरितांवरिष्ठाप्रियाप्रियायाममनित्यकालम्॥अप्यत्रगच्छेदितिचिंतयामिनैकाकिनीयातिहिसाकदाचि
त्॥ १३ ॥ पद्माननापद्मपलाशनेत्रापद्मानिवानेतुमभिप्रयाता ॥ तदप्ययुक्तंनहिसाकदाचिन्मयाविनागच्छतिपंकजा
नि ॥ १४ ॥ कामंत्विदंपुष्पितवृक्षषंडंनानाविधैःपक्षिगणैरुपेतम् ॥ वनंप्रयातानुतदप्ययुक्तमेकाकिनीसातिबिभेति
भीरुः ॥ १५ ॥ आदित्यभोलोककृताकृतज्ञलोकस्यसत्यानृतकर्मसाक्षिन् ॥ ममप्रियासाक्वगताहृतावाशंसस्वमेशो
कहतस्यसर्वम् ॥ १६ ॥ लोकेषुसर्वेषुननास्तिकिंचिद्यत्तेननित्यंविदितंभवेत्तव ॥ शंसस्ववायोकुलपालिनींतांमृता
हृतावापथिवर्ततेवा ॥ १७॥ इतीवतंशोकविधेयदेहंरामंविसंज्ञंविलपंतमेव ॥ उवाचसौमित्रिरदीनसत्त्वोन्याय्ये
स्थितःकालयुतंचवाक्यम् ॥ १८ ॥

कि उनका डरपोक स्वभावहै अकेली वनके मध्य प्रवेश करनेंसे वह बहुत डरतींथीं ॥ १५ ॥ हे भगवन् ! सूर्य ! आप सबके कृता कृतको जानतेहैं, और सत्य मिथ्या सबके साक्षीभी आपहैं. इस कारणसे शोक हत हमको बतला दीजिये कि हमारी प्रिया कहां चलीगई अथवा कौंन उनको हरकर लेगया ॥ १६ ॥ हे पवन ! समस्त लोकोंमें ऐसा कुछ नहींहै जो नित्यहीतुम्हारे ज्ञान मार्गमें उदित न होताहो, इससे बतला दीजिये कि हमारी उन कुलमर्य्यादारक्षनी सीतानें प्राण दियेहैं या वह किसीसे हरी गईहैं,अथवा कहीं मार्गमें टिक रहींहैं ॥ १७ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीनें शोक

द्धि नहींहोती ॥ १ ॥ श्रीरामचंद्रजी वारंवार अपशकुन होते देखकर आपही कहनेंलगे कि जनें सीता कुशलसेहैं अथवा नहीं॥ २ ॥ यह सोचते वि चारते सीताके दर्शनकरनेंकी लालसासे शीघ्र २ चलकर देखतेहुए किआश्रम सूनापडाहै यह देखकर श्रीरामचंद्रजी बहुत उकसाये॥ ३॥ वह वे ग सहित इधर उधर भुजायें चला और घूमकर समस्त पर्ण शालाके स्थान २ करके खोजनेलगे ॥ ४ ॥ रामचंद्रजीनें पर्णशालामें गमन करके दे खाकि वहां सीता नहींहैं जानकी बिन हेमंतऋतुके समागम से ध्वस्तपद्मिनीकी समान हो पर्णशाला अत्यन्त श्री विहीन अवस्थामें पडीथी ॥ ५ ॥ वन देवतागण आश्रमको श्रीभ्रष्ट और विध्वस्त देखकर एकवारही छोडकर चलेगये आश्रमके मृग पक्षी और समस्त पुष्पभी मलीन

उपालक्ष्यनिमित्तानिसोशुभानिमुहुर्मुहुः ॥ अपिक्षेमंतुसीतायाइतिवैव्याजहारह ॥ २ ॥ त्वरमाणोजगामाथसी
तादर्शनलालसः ॥ शून्यमावसथंदृष्ट्वाबभूवोद्विग्नमानसः ॥ ३ ॥ उद्भ्रमन्निववेगेनविक्षिपन्रघुनंदनः ॥ तत्रतत्रो
टजस्थानमभिवीक्ष्यसमंततः ॥ ४ ॥ ददर्शपर्णशालांचसीतयारहितांतदा ॥ श्रियाविरहितांध्वस्तांहेमंतेपद्मिनी
मिव ॥ ५ ॥ रुदंतमिववृक्षैश्चग्लानपुष्पमृगद्विजम् ॥ श्रियाविहीनंविध्वस्तंसंत्यक्तंवनदैवतैः ॥ ६ ॥ विप्रकीर्णा
जिनकुशंविप्रविद्धबृसीकटम्॥ दृष्ट्वाशून्योटजस्थानंविललापपुनःपुनः ॥७॥ हतामृतावानष्टावाभक्षितावाभविष्यति ॥
निलीनाप्यथवाभीरुरथवावनमाश्रिता ॥ ८ ॥ गताविचेतुंपुष्पाणिफलान्यपिचवापुनः ॥ अथवापद्मिनींयाताज
लार्थंवानदींगता ॥९॥ यत्नान्मृगयमाणस्तुनाससादवनेप्रियाम् ॥ शोकरक्तेक्षणःश्रीमानुन्मत्तइवलक्ष्यते ॥ १० ॥

होगयेथे, वहांपरके वृक्ष मानों रोरहेथे ॥ ६ ॥ मृगचर्म और कुश इधर उधर पडे और कुशासन छिन्नभिन्न और गिरे पडेथे, पर्णशालाकी ऐसी अवस्था देखकर श्रीरामचंद्रजी वारंवार यह कहकर विलाप करनेंलगे ॥ ७ ॥ कि निश्चय जानकी हरीगई वा मृतक होगई, अथवा किसी करकै भक्षण करडालीगई, या वह डरपोक स्वभाववाली छिप रहींहैं या वनमें चली गईहैं ॥८॥ अथवा वह फूल फल चुननेंके लिये कहीं वनमेंगईहैं वा जल लानेकेलिये सरोवर वा नदीपर गई होंगी ॥ ९ ॥ श्रीरामचंद्रजीने यत्नपूर्वक ढूंढने भालने परभी वनके बीच प्रियाको कहीं नपाया, तब

श्रीरामचंद्रजी आपही गोदावरी नदीके तटपर गये, और वहां खडे होकर बूझने लगे कि सीता कहां है? ॥ ६ ॥ समस्त प्राणियोंनें तथा गोदावरी नदी किसीनें भी श्रीरामचंद्रजीको यह न बताया कि मारे जानेंके योग्य राक्षस रावण सीताको हरकर लेगयाहै ॥ ७ ॥ तब पृथ्वी जल, वायु, अग्नि, आकाश इन पांच महाभूतोंनें व प्राणियोंनें गोदावरी नदीसे कहा कि रामचंद्रजीसे सीताजीको बताओ, और सोच करते हुये रामचंद्रजीनें भी पूछा परन्तु गोदावरीनें न बताया ॥ ८ ॥ न बतानेंका कारण यह हुआ कि रावणका रूप और उस दुष्टात्माके कार्योंका स्म रण करनेंके मारे भयसे गोदावरीनदीनें श्रीरामचंद्रजीसे सीताको न बताया ॥ ९ ॥ इस प्रकार जब गोदावरीनें सीताजीके दर्शनसे निराश किया

समरामःभिचक्रामस्वयंगोदावरींनदीम् ॥ सतामुपस्थितोरामःक्वसीतेत्येवमब्रवीत् ॥ ६ ॥ भूतानिराक्षसेंद्रेणव धार्हेणहृतामपि ॥ नतांशशंसूरामायतथागोदावरीनदी ॥ ७ ॥ ततःप्रचोदिताभूतैःशंसचास्मैप्रियामिति ॥ नचसह्या वदत्सीतांपृष्टारामेणशोचता ॥ ८ ॥ रावणस्यचतद्रूपंकर्माणिचदुरात्मनः ॥ ध्यात्वाभयात्तुवैदेहसिंानदीनशशं सह॥ ९ ॥ निराशस्तुतयानद्यासीतायादर्शनेकृतः ॥ उवाचरामःसौमित्रिंसीतादर्शनकर्षितः ॥ १० ॥ एषागोदावरीसौ म्यकिंचिन्नप्रतिभाषते ॥ किंतुलक्ष्मणवक्ष्यामिसमेत्यजनकंवचः ॥ ११ ॥ मातरंचैववैदेह्याविनातामहमप्रियम् ॥ यामेराज्यविहीनस्यवनेवन्येनजीवतः ॥ १२ ॥ सर्वंव्यपानयच्छोकंवैदेहीक्वनुसागता ॥ ज्ञातिवर्गविहीनस्यवैदेही मप्यपश्यतः ॥ १३ ॥ मन्येदीर्घाभविष्यंतिरात्रयोममजाग्रतः ॥ मंदाकिनींजनस्थानमिमंप्रस्रवणंगिरिम् ॥ १४ ॥

तब श्रीरामचंद्रजी सीताके विरहसे व्यथित होकर लक्ष्मणजीसे बोले ॥ १० ॥ हे शुभदर्शन! यह गोदावरी तो कुछभी उत्तर नहीं देती परन्तु हम सीताके विना अपने देशमें जाकर पिता जनकजीसे क्या कहेंगे ॥ ११ ॥ और वैदेहीजीकी मातासे विना जानकीके कैसे अप्रिय वचन कहेंगे, जो जानकीजी राज्यविहीन वनमें कंद मूलादि भोजन कर जीतेहुये हमारे ॥ १२ ॥ सब शोक अपनयन करतींथीं वह वैदेहीजी कहां गई? हम जातिके लोगोंसे सहायक विहीन होनेंके कारण और सीताजीका दर्शन न पानेंके कारण ॥ १३ ॥ जागरित रहनेंसे रात्रि हमको बडी जान पडेंगी

हे अशोक ! तुम शोकको दूर किया करतेहो, इससे शोकसे हतचित्त मुझको प्रियाके साथ मिलाकर अपनें नाम वाला हमको करदो ॥ १७ ॥ हे ताल ! यदि तुमने उन पक्वतालकी समान स्तनवाली जानकीको देखाहै और हमारे ऊपर कुछभी दया करतेहो तब वह वरारोहा सीता कहांहै ? सो हमको बतादो ॥ १८ ॥ हे जामुन ! यदि जाम्बूनद सुवर्ण सम प्रभावाली हमारी प्रियाको तुमनें देखाहै तौ निःशंक चित्तसे बताओ ॥ १९ ॥ हे कर्णिकार ! आज तुम पुष्पित होकर अत्यन्तशोभा पारहे हो और हमारी प्रियाभी तुमसे बहुतही स्नेह करतींथीं सो यदि कहीं उन साध्वीको देखाहो तौ कहो ॥ २० ॥ इसी प्रकार आम,नीम, महाशाल, कटहल, व अनारको देख २ कर श्रीरामचंद्रजी उनसे

अशोकशोकापनुदशोकोपहतचेतनम् ॥ त्वन्नामानंकुरुक्षिप्रंप्रियासंदर्शनेनमाम् ॥ १७ ॥ यदितालत्वयादृष्टापक्वतालोपमस्तनी ॥ कथयस्ववरारोहांकारुण्यंयदितेमयि ॥ १८ ॥ यदिदृष्टात्वयाजंबोजांबूनदसमप्रभा ॥ प्रियांयदिविजानासिनिःशंकंकथयस्वमे ॥ १९ ॥ अहोत्वंकर्णिकाराद्यपुष्पितःशोभसेभृशम् ॥ कर्णिकारप्रियांसाध्वींशंसदृष्टायदिप्रिया ॥ २० ॥ चूतनीपमहासालान्पनसान्कुररांस्तथा ॥ दाडिमानपिताान्गत्वादृष्ट्वारामोमहायशाः ॥ २१ ॥ बकुलानथपुन्नागांश्चंदनान्केतकांस्तथा ॥ पृच्छन्रामोवनेभ्रांतउन्मत्तइवलक्ष्यते ॥ २२ ॥ अथवामृगशावाक्षींमृगजानासिमैथिलीम् ॥ मृगविप्रेक्षणीकांतामृगीभिःसहिताभवेत् ॥ २३ ॥ गजसागजनासोरूर्यदिदृष्टात्वयाभवेत् ॥ तांमन्येविदितांतुभ्यमाख्याहिवरवारण ॥ २४ ॥

कहतेथे ॥ २१ ॥ और बकुल, पुन्नाग, चन्दन, केतकी आदि और वृक्षोंकेनीचे २ जाकर भ्रान्त चित्तहो उन्मत्तकी समान श्रीरामचंद्रजी वनमें विचरने लगे ॥ २२ ॥ तिसके पीछे श्रीरामचंद्रजी मृग इत्यादि पशुओंसेपूछते हुए बोले कि, हे मृग ! तुम क्या उन मृगछौनाकीसी आंखोंवाली सीताका कुछ वृत्तान्त जान्तेहो ? अथवा वह मृगलोचना मृगीगणोंके साथ मिलकर घूमती होंगी ॥ २३ ॥ हे गज ! तुम्हारीही शूंड समान आकार वाली उनकी जांघेंहै, यदि तुमनें उनको देखाहो तौकहो ? इस्से हे गजराज ! हमें बतादो कि वह कहांहै ? ॥ २४ ॥

उपाय मिलजावे, तव श्रीरामचन्द्रजी ऐसाहीहो कहकर दक्षिण दिशाकी ओर चले ॥ २३ ॥ इसके पश्चात् २ लक्ष्मणजी आगे २ आप चले दोनों भाईजन इधर उधर देखते भालते व आपसमें बात चीत करते २ चले॥२४॥आगे चलकर देखा तो कहींपर फूल पडेहैं। पृथ्वीपर फूलोंकी वृष्टि पडी देखकर श्रीरामचन्द्रजी ॥ २५ ॥ वह बडे दुःखित हो दुःखित लक्ष्मणजीसे बोले, कि हे लक्ष्मण हम जानतेहैं कि यह वही पुष्पहैं ॥ २६ ॥ जो हमनें वैदेहीजीको दियेथे और उन्होंने यह सब अपनें अंगोंमें धारण कियेथे, यह अभी कुम्हलाये नहीं, ऐसा बोध होताहै कि हमारा प्रिय करनेंके लिये सूर्य, पवन, तपस्विनी पृथ्वीनें ॥ २७ ॥ इन पुष्पोंकी रक्षाकीहै, महाबाहु धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी पुरुषश्रेष्ठ लक्ष्मणजीसे ऐसा कहा ॥ २८ ॥

लक्ष्मणानुगतःश्रीमान्वीक्षमाणोवसुंधराम्॥एवंसंभाषमाणौतावन्योन्यंभ्रातरावुभौ॥२४॥ वसुंधरायांपतितपुष्पमार्ग
मपश्यताम् ॥ पुष्पवृष्टिंनिपतितांदृष्ट्वारामोमहीतले ॥ २५ ॥ उवाचलक्ष्मणंवीरोदुःखितोदुःखितंवचः ॥ अभिजाना
मिपुष्पाणितानीमानीहलक्ष्मण ॥ २६ ॥ अपिनद्धानिवैदेह्यामयादत्तानिकानने ॥ मन्येसूर्यश्चवायुश्चमेदिनीचयश
स्विनी ॥ २७ ॥ अभिरक्षंतिपुष्पाणिप्रकुर्वंतोममप्रियम् ॥ एवमुक्त्वामहाबाहुर्लक्ष्मणंपुरुषर्षभम् ॥ २८ ॥ उवाचरामोध
र्मात्मागिरिंप्रस्रवणाकुलम्॥कच्चित्क्षितिभृतांनाथदृष्टासर्वांगसुंदरी ॥ २९ ॥ रामारम्येवनोद्देशेमयाविरहितात्वया ॥
क्रुद्धोब्रवीद्गिरिंतत्रसिंहःक्षुद्रमृगंयथा ॥ ३० ॥ तांहेमवर्णांहेमांगींसीतांदर्शयपर्वत ॥ यावत्सानूनिसर्वाणिनते
विध्वंसयाम्यहम् ॥ ३१ ॥ एवमुक्तस्तुरामेणपर्वतोमैथिलींप्रति ॥ दर्शयन्निवतांसीतांनादर्शयतराघवे ॥ ३२ ॥

बहुत सारे झरनें जिसमें झररहे ऐसे सामनेंवाले पर्वतसे पुकारकर बोले. हे पर्वतश्रेष्ठ! तुमनें क्या उन सर्वांगसुन्दरीको देखाहै? ॥ २९ ॥ हमारी प्रिया हमारे विना रमणीय इस वनमें देखीहै? जब उस पर्वतनें इनकी बातका कुछ उत्तर न दिया तब यह क्रुद्ध होकर उस पर्वतसे बोले जिस प्रकार सिंह छोटे मृगोंसे कडककर बोलताहै ॥ ३० ॥ हे पर्वत! जब तक हम तुम्हारे शृङ्ग तोड न डालें, तबतक तुम सोनेकी समान वर्ण वाली हमारी सीताजीको हमें दिखादो ॥ ३१ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीनें ऐसा कहा तो मानों वह पर्वत जानकीजीको जानता हुआ श्रीरामचं-

सो राक्षसोंनें ऐसी मनोहर गरदनकोभी खा डाला, राक्षसोंनें जब हमारी प्रियाको भक्षण किया होगा, तौ न जानें उन्होंनें कितना विलाप किया होगा ॥ ३२ ॥ उनकी दोनों बाँहैं पल्लवकी समान कोमल और हाथोंके गहनोंसे सुशोभितहैं निश्चयही राक्षसोंनें इधर उधर फेंक फांक कर उनको खालिया उस कालमें उन दोनों बाहोंका अग्रभाग अवश्य कंपित हुआ होगा ॥ ३३ ॥ हाय ! हम क्या राक्षसोंके भोजनार्थ ही उनको आश्रममें अकेला छोडकर यहां आयेथे इस्सेही वह बन्धु बान्धव युक्त होकरभी राक्षसोंके पेटमें पड गई और कोई बन्धु बान्धव काम न आया॥३४॥ हे लक्ष्मण ! क्या तुमनें प्राणप्यारीको कहीं देखाहै ? हा प्रिया ! हासीते! हा भद्रे! तुम कहां गई इन शब्दोंको रामचंद्रजी वार २ कहतेथे ॥३५॥ इस

नूनंविक्षिप्यमाणौतौबाहूपल्लवकोमलौ ॥ भक्षितौवेपमानाग्रौसहस्ताभरणांगदौ ॥ ३३ ॥ मयाविरहिताबालारक्षसां भक्षणायवै ॥ सार्थेनैवपरित्यक्ताभक्षिताबहुबांधवा ॥ ३४ ॥ हालक्ष्मणमहाबाहोपश्यसेत्वंप्रियांकचित् ॥ हाप्रियेक्वगताभद्रेहासीतेतिपुनःपुनः ॥ ३५ ॥इत्येवंविलपन्रामःपरिधावन्वनाद्वनम् ॥ क्वचिदुद्भ्रमतेयोगात्क्वचिद्विभ्रमतेबलात् ॥ ३६ ॥ क्वचिन्मत्तइवाभातिकांतान्वेषणतत्परः ॥ सवनानिनदीःशैलान्गिरिप्रस्रवणानिच ॥ काननानिच वेगेनभ्रमत्यपरिसंस्थितः ॥ ३७ ॥ तदासगत्वाविपुलंमहद्वनंपरीत्यसर्वंत्वथमैथिलींप्रति ॥ अनिष्ठिताशःसचकार मार्गणेपुनःप्रियायाःपरमंपरिश्रमम् ॥ ३८ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेषष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥ दृष्ट्वाश्रमपदंशून्यंरामोदशरथात्मजः ॥ रहितांपर्णशालांचप्रविद्धान्यासनानिच ॥ १ ॥

प्रकार वारंवार विलाप करते२ रामचंद्रजी वन२में वेग सहित घूमनें लगे कहीं ठोकर खाकर गिर पडते और कभी२ दिशा विदिशाओंमें घूमनें लगते॥३६॥ कभी रामचंद्रजी उन्मत्तकी समान दृष्टि आते कभी२ प्रियाके ढूंढनें में तत्पर होकर वेग सहित नदी पर्वत झरनें और समस्त वनोंमें भ्रमण करने लगे ३७॥ उस समय श्रीरामचन्द्रजी स्थिर होकर कहीं भी न रह सकते।और एक महा वनमें प्रवेश करके उसमें चारों ओर जानकीजीको एक २ वृक्ष और एक२ स्थल ढूंढने परभी रामचन्द्रजीका अभिलाप पूर्ण नहीं हुआ। परन्तु वह फिरभी प्यारी सुकुमारी जनकदुलारीकी खोज करनेमें परिश्रम करने लगे ॥ ३८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० आर० षष्टितमः सर्गः॥६० ॥ इस प्रकार ढूंढते भालते श्रीरामचन्द्रजी फिर आश्रममें आये तौ देखा

हे भइया, लक्ष्मण! हमको जान पडताहै कि कामरूपी राक्षसोंने जानकीजीके खंड २ कर आपसमें बांट चूंट उनको खाडाला ॥ ४१ ॥ हे लक्ष्मण! ऐसा समझमें आताहै कि सीताके लिये झगडा होंनेंसे यहां दो राक्षसोंका घोर युद्ध हुआथा इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ४२ ॥ हे सौम्य! किसीका यह मुक्ता मणिसे बना हुआ रमणीय विभूषित धनुष पृथ्वी पर टूटा हुआ पडाहै ॥ ४३ ॥ हे वत्स! या तौ यह धनुष राक्षसोंका है। वा देवता ओंका है। प्रातःकालके सूर्यकी समान अरुण (लाल) वैदूर्य मणिकी मूठ इसमें लगीहै ॥ ४४ ॥ किसीका यह सुवर्णका कवचभी रत्ती २

मन्येलक्ष्मणवैदेहीराक्षसैःकामरूपिभिः ॥ भित्त्वाभित्त्वाविभक्तावाभक्षितावाभविष्यति ॥ ४१ ॥ तस्यानिमित्तं सीतायाद्वयोर्विवदमानयोः ॥ बभूवयुद्धंसौमित्रेघोरंराक्षसयोरिह ॥ ४२ ॥ मुक्तामणिचितंचेदंरमणीयंविभूषितम् ॥ धरण्यांपतितंसौम्यकस्यभग्नंमहद्धनुः ॥ ४३ ॥ राक्षसानामिदंवत्ससुराणामथवापिवा ॥ तरुणादित्यसंकाशंवैदूर्यगु लिकाचितम् ॥ ४४ ॥ विशीर्णंपतितंभूमौकवचंकस्यकांचनम् ॥ छत्रंशतशलाकंचदिव्यमाल्योपशोभितम् ॥४५॥ भग्नदंडमिदंसौम्यभूमौकस्यनिपातितम् ॥ कांचनोरच्छदाश्चेमेपिशाचवदनाःखराः ॥ ४६ ॥ भीमरूपामहाकायाः कस्यवानिहतारणे ॥ दीप्तपावकसंकाशोद्युतिमान्समरध्वजः ॥ ४७ ॥ अपविद्धश्चभग्नश्चकस्यसांग्रामिकोरथः ॥ रथाक्षमात्राविशिखास्तपनीयविभूषणाः ॥ ४८ ॥ कस्येमेनिहताबाणाःप्रकीर्णाघोरदर्शनाः ॥ शरावरौशरैःपूर्णौ विध्वस्तौपश्यलक्ष्मण ॥ ४९ ॥

टूटा फूटा हुआ पृथ्वीपर पडाहै और यह शत २ शलाका समन्वित दिव्य माला शोभित छत्र किसका भूमिपर पडाहै ॥ ४५ ॥ हे सौम्य! इसका दंडा टूट गयाहै किसने तोडाहै व सोनेंकी गर्दनी पडी पिशाचों समान मुख वाले गधे भी ॥ ४६ ॥ महा भयंकर व बडे आकारवाले किसीके रणमें मरे पडे हैं। फिर दीप्तिमान अग्निके समान अति देदीप्यमान किसीका युद्ध में काम देनेवाला रथभी पडाहै ॥ ४७ ॥ जो जगह२ पटकने व दे मारनेंसे टूट गयाहै! वह किसीके रथके लम्बे२ बांसभी सुवर्णके विभूषणोंसे भूषित ॥ ४८ ॥ हे लक्ष्मण! टूटे फूटे पडेहैं

हमको यहां छोड कहां जातीहो? जिस प्रकार कुटिल मनुष्यको कीर्त्ति छोड देती है। हे वरारोहे! हे सुमध्यमे! तुम हमको न छोडो ॥ १० ॥ हम तुम्हारे विरहमें अपना जीवन परित्याग करेंगे श्रीरामचन्द्रजी सीता के दर्शनाभिलाषी होकर इस प्रकार विलाप करनें लगे ॥ ११ ॥ परन्तु दुःखसे आरत हुए उन्होंने जानकीजीको न देखा; इस कारण वह जानकीके शोकमें निमग्न होकर ॥ १२ ॥ अतीव दलदलमें फँसे हुए महा गजकी समान बहुतही व्याकुल होगये । रामचन्द्रजीकी यह दशा देख लक्ष्मणजी उनके हितकी कामनासे कहनें लगे ॥ १३ ॥ हे महाद्युतिमान्! आप विषाद न कीजिये। हमारे साथ यत्न कीजिये तब अवश्यही सीताका दर्शन मिलैगा। हे वीर! यह बहुत कन्दराओंसे शोभित गिरिवर जो है और

त्वयाविरहितश्चाहंत्यक्ष्येजीवितमात्मनः ॥ इतीवविलपन्रामःसीतादर्शनलालसः ॥ ११ ॥ नददर्शसुदुःखार्तोराघवो जनकात्मजाम् ॥ अनासादयमानंतंसीतांशोकपरायणम् ॥ १२ ॥ पंकमासाद्यविपुलंसीदंतमिवकुंजरम् ॥ लक्ष्मणो राममत्यर्थमुवाचहितकाम्यया ॥ १३ ॥ माविषादंमहाबुद्धेकुरुयत्नंमयासह ॥ इदंगिरिवरंवीरबहुकंदरशोभित म् ॥ १४ ॥ प्रियकाननसंचारावनोन्मत्ताचमैथिली ॥ सावनंवाप्रविष्टास्यान्नलिनींवासुपुष्पिताम् ॥ १५ ॥ सरितंवा पिसंप्राप्तामीनवंजुलसेविताम् ॥ वित्रासयितुकामावालीनास्यात्काननेक्वचित् ॥ १६ ॥ जिज्ञासमानावैदेहीत्वांमां चपुरुषर्षभ ॥ तस्याह्यन्वेषणेश्रीमन्क्षिप्रमेवयतावहे ॥ १७ ॥

इस वनमें घूमना जानकीजीको बहुत प्यारा है, क्योंकि वनको देख वह सदा मत्त हो जातीथीं सो क्या अचरजहै कि वह वन देखनें न चली गईहों अथवा कोई पुष्प शोभित कमल युक्त तलैयां देखनें गई हों ॥ १४ ॥ १५ ॥ अथवा मत्स्ययुक्त वेतसनामक विहंगसेवित नदीपर तो न चली गई हों! अथवा हम तुमको त्रासित करनेंकी कामनासे इस वनके किसी स्थानमें तो न छिप रहीं हों ॥ १६ ॥ हे पुरुषसिंह! वह यह जाननेंके लिये वनमें लुकाई हैं कि, हम वा आप किस प्रकारसे उनको खोजकर पालेंगे, सो हमको चाहिये कि उनके खोजनेंका अवश्य यत्न करें ॥ १७ ॥

चंद्रमाकी चांदनीको मिटाय, महा सूर्यके समान उदयवत् हमारा प्रकाश देखो, जो कि सुशीलता इत्यादि गुणोंको छोड अब सबको ठीककर
तेहैं॥ ५७ ॥ हे लक्ष्मण! तुम देखते रहो कि अब यक्ष, गन्धर्व,पिशाच, राक्षस, किन्नर, वा मनुष्य कोईभी सुख प्राप्त करनेंको समर्थ नहीं
होगा ॥ ५८ ॥ हे लक्ष्मण आज हमारे बाण समूहसे समस्त आकाशव्याप्त हो जायगा, देखो आज हम त्रिलोक वासी प्राणियोंके गमनागमन
रोके देतेहैं आज हम त्रिलोकीको कालके कवरमें निक्षेप करेंगे ॥ ५९ ॥जब हम सबका गमनागमन रोक देंगे तौ इस्से ग्रहोंकी चाल रुक जायगी
चंद्रमा अन्तर्हित हो जांयगे, वायु, अग्नि, और सूर्य इत्यादिकी द्युतिके नाशहोनेंसे, सब जगह गाढा अंधकार छा जायगा ॥ ६० ॥ सबही शैल शिखर

संहृत्यैवशशिज्योत्स्नांमहान्सूर्यइवोदितः ॥ संहृत्यैवगुणान्सर्वान्ममतेजःप्रकाशते ॥ ५७ ॥ नैवयक्षानगंधर्वानपि
शाचानराक्षसाः॥ किंन्नरावामनुष्यावासुखंप्राप्स्यंतिलक्ष्मण ॥ ५८ ॥ ममास्त्रबाणसंपूर्णमाकाशंपश्यलक्ष्मण ॥
असंपातंकरिष्यामिह्यद्यत्रैलोक्यचारिणाम् ॥ ५९ ॥ सन्निरुद्धग्रहगणमावारितनिशाकरम् ॥ विप्रनष्टानलमरु
द्भास्करद्युतिसंवृतम्॥६०॥विनिर्मथितशैलाग्रंशुष्यमाणजलाशयम्॥ध्वस्तद्रुमलतागुल्मंविप्रणाशितसागरम्॥ ६१ ॥
त्रैलोक्यंतुकरिष्यामिसंयुक्तंकालकर्मणा ॥ नतेकुशलिनींसीतांप्रदास्यंतिममेश्वराः ॥ ६२ ॥ अस्मिन्मुहूर्तेसौमित्रे
ममद्रक्ष्यंतिविक्रमम् ॥ नाकाशमुत्पतिष्यंतिसर्वभूतानिलक्ष्मण॥ ६३ ॥ समाकुलममर्यादंजगत्पश्याद्यलक्ष्मण ॥
आकर्णपूर्णैरिषुभिर्जीवलोकदुरावरैः ॥ ६४ ॥ करिष्येमैथिलीहेतोरपिशाचमराक्षसम् ॥ ममरोषप्रयुक्तानांविशि
खानांबलंसुराः ॥ ६५ ॥

मथित हो जांयगे, समुद्र सूख जांयगे, वृक्षलता, और गुल्म विध्वंस होजांयगे, और वन एक साथही उजड जांयगे ॥ ६१ ॥ हम तीनों लोकोंका
नाश करदेंगे यदि इन्द्रादि देवगण मंगलमय जानकीजीको नदेदेंगे ॥६२॥तौ हमारा पराक्रम देखना हे लक्ष्मण! उस समय आकाशमेंभी कूदकर
कोई न बच सकेगा ॥ ६३ ॥ हे लक्ष्मण! आज हमारे चापके मुखसे छूटेहुये शर जालसे निरन्तर मर्दित होकर सब जगत् महा व्याकुल मर्यादा शू
न्य हो जायगा, और मृग व पक्षीगण सबही सब भांतिसे भ्रान्त और विनष्टहोजांयगे ॥ ६४ ॥ आज हम सीताके लिये कानतक प्रत्यंचा खेंच छोडे

व ढूंढा तथापि प्राणोंसे भी बहुत भारी प्यारी जानकीजीके दर्शन हमने न पाये ॥ २६ ॥ सीताजीके हरणसे संतापितहो श्रीरामचंद्रजी शोकसे दुःखी और व्याकुल होकर इस प्रकार विलाप करते २एक मुहूर्त्त भर तक रामचंद्रजी विह्वल होरहे ॥ २७ ॥ वह बुद्धिहीन और चैतन्य रहित हो गये और सर्व शरीर विह्वल होगया इस प्रकार श्रीरामचंद्रजी अतिशय व्याकुल और स्पन्दनाहीन होकर गरम लंबे २ श्वासलेकर विलाप करनेंलगे॥२८॥ इसके पश्चात् राजीवलोचन श्रीरामचंद्रजीनें वारंवार श्वास ले हाप्रिये! ऐसा कह गद्गद हो आंसूभर बडे शब्दसे रोदन करना आरंभ किया ॥ २९ ॥ रामचंद्रजीको देखकर उनके प्रिय भ्राता लक्ष्मणजी शोकसे आरत हो विनय सहित हाथ जोड उनको समझाने बुझाने लगे। परन्तु श्रीराम

एवंसविलपन्रामःसीताहरणकर्शितः ॥ दीनःशोकसमाविष्टोमुहूर्तंविह्वलोभवत् ॥ २७ ॥ सविह्वलितसर्वांगोगतबुद्धिर्विचेतनः ॥ विषसादातुरोदीनोनिःश्वस्याशीतमायतम् ॥ २८ ॥ बहुशःसतुनिःश्वस्यरामोराजीवलोचनः ॥ हाप्रियेतिविचुक्रोशबहुशोबाष्पगद्गदः ॥ २९ ॥ तंसांत्वयामासततोलक्ष्मणःप्रियबांधवम् ॥ बहुप्रकारंशोकार्तःप्रश्रितःप्रश्रितांजली ॥ ३० ॥ अनादृत्यतुतद्वाक्यंलक्ष्मणोष्ठपुटच्युतम् ॥अपश्यंस्तांप्रियांसीतांप्राक्रोशत्सपुनःपुनः ॥३१॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेएकषष्टितमःसर्गः ॥ ६१ ॥ सीतामपश्यन्धर्मात्माशोकोपहतचेतनः ॥ विललापमहाबाहूरामःकमललोचनः ॥ १ ॥ पश्यन्निवचतांसीतामपश्यन्मन्मथार्दितः ॥ उवाचराघवोवाक्यंविलापाश्रयदुर्वचम्॥२॥त्वमशोकस्यशाखाभिःपुष्पप्रियतराप्रिये ॥ आवृणोषिशरीरंतेममशोकविवर्धनी ॥ ३ ॥

चंद्रजी उनके मुखसे निकले हुए वचनोंका अनादर करकै प्रियतमा सीताजीके अदर्शनसे वारंवार रोदन करनें लगे ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥ महाबाहु धर्मात्मा कमललोचन श्रीरामचंद्रजी सीताजीके दर्शन ना पाकरके शोकके मारे चेतना रहित हो विलाप करने लगे ॥ १ ॥ वह सीताजीके दर्शन ना पाकरभी, मानों उनको देखही रहे हैं इस भाव करकै कामबाणसे पीडितहो विलाप युक्त दुःखके साने वचन कहने लगे ॥ २ ॥ हे प्रिये! तुम पुष्पोंको अतिशय प्यार करती हो सो इस समय

घोर प्रदीप्त सायक ॥ ७३ ॥ श्रीरामचन्द्रजीनें उस धनुष पर चढाया। और प्रलयकालकी अग्निके समान क्रोधमें भरकर कहने लगे ॥ ७४ ॥ हे लक्ष्मण! जरा, मृत्यु, काल, और विधि यह सब जिस प्रकारसे प्राणिमात्रके रोकनेंसे नहीं रुक सकते, वैसेही हम क्रोधित हुए हैं। निःसन्देह कोई हमको निवारण नहीं कर सकैगा ॥ ७५ ॥ सुदन्तयुक्त निन्दा रहित मिथिलाराजनंदिनी सीताको बिना प्राप्त हुए हम देव, गन्धर्व, मनुष्य, पन्नग और पर्वत सहित समस्त जगत् मर्दित करडालेंगे ॥ ७६ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आर० चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

संदधेधनुषिश्रीमान्रामःपरपुरंजयः ॥ युगांताग्निरिवक्रुद्धइदंवचनमब्रवीत् ॥ ७४ ॥ यथाजरायथामृत्युर्यथा कालोयथोविधः॥ नित्यंनप्रतिहन्यंतेसर्वभूतेषुलक्ष्मण॥ तथाहंक्रोधसंयुक्तोननिवार्योस्म्यसंशयम् ॥७५॥ पुरेवमेचा रुदतीमनिंदितांदिशंतिसीतांयदिवाद्यमैथिलीम् ॥ सदेवगंधर्वमनुष्यपन्नगंजगत्सशैलंपरिवर्तयाम्यहम् ॥ ७६ ॥ इत्या र्षेश्रीम०वा०आ०आर०चतुःषष्टितमःसर्गः॥६४॥तप्यमानंतदारामंसीताहरणकर्शितम्॥लोकानामभवेयुक्तंसांवर्तक मिवानलम् ॥ १ ॥ वीक्षमाणंधनुःसज्यंनिःश्वसंतंपुनःपुनः ॥ दग्धुकामंजगत्सर्वंयुगांतेचयथाहरम् ॥ २ ॥ अदृष्ट पूर्वंसंक्रुद्धंदृष्ट्वारामंसलक्ष्मणः ॥ अब्रवीत्प्रांजलिर्वाक्यंमुखेनपरिशुष्यता ॥ ३ ॥ पुराभूत्वामृदुर्दांतःसर्वभूतहितेरतः॥ नक्रोधवशमापन्नःप्रकृतिंहातुमर्हसि ॥ ४ ॥

सीताजीके हरणसे कातर हुये श्रीरामचन्द्रजी सन्तापित हो संवर्तकप्रलयकालकी अग्निके समान लोकोंका नाश करनेंको तैयार हुए ॥ १ ॥ और प्रलयकालमें समस्त जगत् दग्ध करनेंके अभिलाषी महादेवजीके समान वारंवार श्वास त्याग करतेहुए प्रत्यंचायुक्त शरासनको श्रीराम चन्द्रजी देखनें लगे ॥ २ ॥ लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीका अदृष्ट पूर्व जो पहले कभी नहीं देखाथा, ऐसा क्रोध देखकर शुष्क मुख बना हाथ जोड उनसे बोले ॥ ३ ॥ आप पहलेसे मृदु, सर्व इन्द्रियोंके जीतनेंवाले और सर्वभूतोंके हितकारी कार्य करनेंमें तैयार हैं सो इस समय क्रोधके

हम वनवास करके घरको लौटेंगे और उस समय मिथिलानाथ जनकजी॥१२॥कुशल पूछेंगे तो किस प्रकार हम उनको अवलोकन करनेमें समर्थ होंगे? विदेहराज निश्चय हमको विना सीताके देखकर ॥ १३ ॥ अपनी पुत्री जानकीके विनाशसे संतप्तहो मोहके वश हो जायंगे ॥ पिता दशरथजीही धन्यहैं।क्योंकि वे स्वर्गमें वास करतेहैं।अथवा अब हम भरतकी पालित अयोध्यापुरीको न जांयगे॥१४॥अयोध्याकी बात तो एक ओर रही सीताके विना तो हम स्वर्गकोभी शून्य समझतेहैं; इस कारण हे लक्ष्मण! तुम अब हमको इस वनमें छोडकर अयोध्याको चले जाओ ॥ १५ ॥ हम

कुशलंपरिप्टच्छंतंकथंशक्ष्येनिरीक्षितुम् ॥ विदेहराजोनूनंमांदृष्ट्वाविरहितंतया ॥ १३ ॥ सुताविनाशसंतप्तो मोहस्यवशमेष्यति ॥ "तातएवकृतार्थःसतत्रैववसतादिति"॥ अथवानगमिष्यामिपुरींभरतपालिताम् ॥ १४ ॥ स्वर्गोपिहितयाहीनःशून्यएवमतोमम ॥ तन्मामुत्सृज्यहिवनेगच्छायोध्यापुरींशुभाम् ॥ १५ ॥ नत्वहं तांविनासीतांजीवेयंहिकथंचन ॥ गाढमाश्लिष्यभरतोवाच्योमद्वचनात्त्वया ॥ १६ ॥ अनुज्ञातोऽसिरामे णपालयेतिवसुंधराम् ॥ अंबाचममकैकेयीसुमित्राचत्वयाविभो ॥ १७ ॥ कौसल्याचयथान्यायमभिवाद्या ममाज्ञया ॥ रक्षणीयाप्रयत्नेनभवतासूक्तचारिणा ॥ १८ ॥ सीतायाश्चविनाशोऽयंममचामित्रसूदन ॥ विस्तरेणज नन्यामेविनिवेद्यस्त्वयाभवेत् ॥ १९ ॥

जानकीके विना किसी प्रकारभी जीवन धारण करनेंको समर्थ नहींहैं। तुम हमारी ओरसे भली भांति भरतजीको गाढ आलिंगन कर कहना ॥ १६॥ कि रामचंद्रजीने यह आज्ञाकीहै कि तुमही इस राज्यका पालन करो ॥ हेविभो! माता कैकेयी व सुमित्रा अपनी मातासे ॥ १७ ॥ और कौश ल्याजीसे इनमेसे प्रत्येकको हमारी आज्ञानुसार यथायोग्य तुम प्रणाम कह देना। और सदा नीके वचनोंसे समझा बुझाकर यत्न सहित उनकी रक्षाभी करते रहना॥ १८॥ हेशत्रुके मारनेवाले! और सब माताओंसे सीताजीके व हमारे विनाशका वृत्तान्तभी विस्तार सहित तुम निवेदन कर देना॥१९॥

आप हमारे साथ धनुप हाथमें लेकर चलिये, और परमर्षि गणोंको सहायक बनाय समुद्र वन पर्वत ढूंढेंगे ॥ १३ ॥ विविध प्रकारकी ताल
तलैयां व गुफायें और देवता गन्धर्वोंके लोक समस्तही यत्न सहित आप ढूंढिये॥ १४॥ जब तक कि आपकी स्त्रीके हरनेंवालेको न पावेंगे, और इस
प्रकार शान्त भावसे ढूंढनेंपरभी इन्द्रादि देव गण यदि आपकी भार्याको न दें तब हे कौशलेन्द्र! पीछेसे आप उनको यथायोग्य दंड दीजियेगा॥१५॥
हे नरेन्द्र! शीलतासे सामसे और विनय अवलंबन करकेभी यदि आप सीताको न पावें, तब आप इन्द्रके वज्र सदृश सुवर्णपंखवाले शरजालसे
समस्त संसारको संहार कर डालियेगा ॥ १६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥
मद्वितीयोधनुष्पाणिःसहायैःपरमर्षिभिः ॥ समुद्रंवाविचेष्यामःपर्वतांश्चवनानिच ॥ १३ ॥ गुहाश्चविविधाघोराःप
द्मिन्योविविधास्तथा॥ देवगंधर्वलोकाश्चविचेष्यामःसमाहिताः॥ १४॥ यावन्नाधिगमिष्यामस्तवभार्यापहारिणम्॥
नचेत्साम्नाप्रदास्यंतिपत्नींतेत्रिदशेश्वराः॥ कोशलेंद्रततःपश्चात्प्राप्तकालंकरिष्यसि ॥ १५ ॥ शीलेनसाम्नाविनये
नसीतांनयेननप्राप्स्यसिचेन्नरेंद्र ॥ ततःसमुत्सादयहेमपुंखैर्महेंद्रवज्रप्रतिमैःशरौघैः ॥ १६ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीम०
वा०आ०आरण्यकांडेपंचषष्टितमःसर्गः॥६५॥ ॥तंतथाशोकसंतप्तंविलपंतमनाथवत् ॥ मोहेनमहतायुक्तंपरिद्यू
नमचेतसम् ॥ १ ॥ ततःसौमित्रिराश्वास्यमुहूर्तादिवलक्ष्मणः ॥ रामंसंबोधयामासचरणौचाभिपीडयन् ॥ २ ॥
महतातपसाचापिमहताचापिकर्मणा ॥ राज्ञादशरथेनासील्लब्धोमृतमिवामरैः ॥ ३ ॥ तवचैवगुणैर्बद्धस्त्वद्वियोगा
न्महीपतिः ॥ राजादेवत्वमापन्नोभरतस्ययथाश्रुतम् ॥ ४ ॥
श्रीरामचंद्रजीनें लक्ष्मणके वाक्यसे क्रोध त्यागकर इस प्रकार शोक संतप्त और महा मोहसे युक्त चेतना रहित होकर अनाथोंकी समान विलाप
करना आरंभ किया ॥ १ ॥ लक्ष्मणजी उनके चरण छूकर एक मुहूर्त भरतक उनको समझाते बुझाते हुए कहनें लगे ॥ २ ॥ कि राजा दशरथजीनें
अनेक तपस्या और बहु विधि धर्मानुष्ठान करके आपको प्राप्त कियाथा जिस प्रकार देवता लोगोंनें अमृतको बडे२ उपायोंसे प्राप्त कियाथा ॥३॥
भरतजीसे जैसा जैसा सुनाथा उस्से तो यही ज्ञात होताहै कि राजा दशरथ आपहीके गुणोंमें बंधकर, व आपकेही वियोगमें देवलोकको प्राप्त हुयेहैं॥४॥

गसे, काष्ठके संयोगसे सहसा प्रदीप्त हुई अग्निकी समान वही दुःख फिर प्रबल होगयेहैं ॥ ६ ॥ निश्चयही कोई राक्षस उन भीरुस्वभाववाली आर्या सीताको आकाशमार्गसे आय हरण करकै लेगयाहै! हाय! इसमें कोई सन्देह नहीं है । कि उस समय उन सुन्दर बोलनेंवालीनें भयके विवशहो विकृतस्वरसे वारंवार रोदन किया होगा ॥ ७ ॥ सुंदर सदाही लाल चंदन लगानेंके योग्य हमारी प्रियाके दोनों सुन्दर कुच निश्चयही राक्षसोंनें भक्षण करनेंके समय उनमें रुधिर लगादिया होगा जिस्से वह शोभित नहीं होतेहोंगे हाय इतने परभी हमारे प्राण नहीं जाते ॥ ८ ॥ अब हम इस शरीरसे उनको न भेट सकेंगे । उनका मुखमंडल घूंघरवाले बालोंके बीचमें शोभित, और सुन्दर,सुमधुर सुकोमल, और साफ चिकना सॅवा

सानूनमार्याममराक्षसेनह्यभ्याहृताखंसमुपेत्यभीरुः ॥ अप्यस्वरंसुस्वरविप्रलापाभयेनविक्रंदितवत्यभीक्ष्णम् ॥ ७ ॥
तौलोहितस्यप्रियदर्शनस्यसदोचितावुत्तमचंदनस्य ॥ वृत्तौस्तनौशोणितपंकदिग्धौनूनंप्रियायाममनाभिपातः ॥ ८ ॥
तच्छ्लक्ष्णसुव्यक्तमृदुप्रलापंतस्यामुखंकुंचितकेशभारम् ॥ रक्षोवशंनूनमुपागतायानभ्राजतेराहुमुखेयथेंदुः ॥ ९ ॥
तांहारपाशस्यसदोचितांतांग्रीवांप्रियायाममसुव्रतायाः ॥ रक्षांसिनूनंपरिपीतवंतिशून्येहिभित्त्वारुधिराशनानि ॥ १० ॥ मयाविहीनाविजनेवनेसारक्षोभिराहृत्यविकृष्यमाणा ॥ नूनंविनादंकुररीवदीनासामुक्तवत्यायतकांतनेत्रा ॥ ११ ॥ अस्मिन्मयासार्धमुदारशीलाशिलातलेपूर्वमुपोपविष्टा ॥ कांतस्मितालक्ष्मणजातहासात्वामाहसीताबहुवाक्यजातम् ॥ १२ ॥

रा हुआहै, सो जानकीको राक्षसके वश होनेसे राहुमुखमें ग्रसेहुये चंद्रमाकी समान. निश्चय उस मुखकी अब सब सुंदरताई अलगहोगई होगी ॥ ९ ॥ पतिव्रतप्रियाकी वह सुन्दर गरदन सदाही हारके गुच्छोंसे भूषित रहतीथी. सो रुधिरपान करनेंवाले राक्षसोंने शूनेमें पाकर निश्चयही उसको भेदकर रुधिरपान कियाहोगा ॥ १० ॥ हमारे न होनेपर निर्जन वनमें राक्षसोंने चारों ओरसे घेरकर जब उनको खेंचना आरंभ कियाहोगा; तौ उससमय वह रुधिर और बडे नेत्रवाली सीतानें निश्चयही हरिणीकी समान विलाप कियाहोगा ॥ ११ ॥ हे लक्ष्मण! हम व हँसमुख उदारस्वभाववाली सीता

हे वीर! आप की समान सर्वदर्शी और हितदर्शी मनुष्य गण सचराचर बडीभारी विपद पडनें परभी शोक नहीं करते ॥ १४ ॥ हे नरश्रेष्ठ! आप भली भांति विचार करके यथार्थतासे शुभाशुभका विचार कीजिये ।आपकी समान महाप्राज्ञ पुरुषगण बुद्धिसे विचार करकै शुभाशुभ भली भांतिसे जान लेते हैं ॥१५॥ जिनके गुण और दोष जबतक प्रगटदृष्टिमें नहीं आते, तबतक उन सब अध्रुव अर्थात् अस्थिर कर्मोंके अनुष्ठानसे कभी इष्ट फलकी प्राप्तिकी आशा नहीं होसकती और उनका जानना बिना क्रिया योगके नहीं होता ॥ १६ ॥ हे वीर! आपनें ही प्रथम हमको अनेक वार इस प्रकारका उपदेश दिया है और आपको उपदेश देने में तो साक्षात् बृहस्पतिजीभी समर्थ नहीं हैं ॥ १७ ॥ हे महाप्राज्ञ! आपकी

त्वद्विधानहिशोचंतिसततंसर्वदर्शनाः ॥ सुमहत्स्वपिकृच्छ्रेषुरामानिर्विण्णदर्शनाः ॥ १४ ॥ तत्त्वतोहिनरश्रेष्ठबुद्ध्यास मनुचिंतय ॥ बुद्ध्यायुक्तामहाप्राज्ञाविजानंतिशुभाशुभे ॥१५ ॥ अदृष्टगुणदोषाणामध्रुवाणांतुकर्मणाम् ॥ नांतरेण क्रियांतेषांफलमिष्टंचवर्तते ॥ १६ ॥ मामेवंहिपुरावीरत्वमेवबहुशोक्तवान् ॥ अनुशिष्याद्धिकोनुत्वामपिसाक्षाद्बृह स्पतिः ॥ १७ ॥ बुद्धिश्चतेमहाप्राज्ञदेवैरपिदुरन्वया ॥ शोकेनाभिप्रसुप्तंतेज्ञानंसंबोधयाम्यहम् ॥ १८ ॥ दिव्यं चमानुषंचैवमात्मनश्चपराक्रमम् ॥ इक्ष्वाकुवृषभावेक्ष्ययतस्वद्विषतांवधे ॥ १९ ॥ किंतेसर्वविनाशेनकृतेनपुरुषर्ष भ ॥ तमेवतुरिपुंपापंविज्ञायोद्धर्तुमर्हसि ॥ २० ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेषट्षष्टि तमःसर्गः ॥ ६६ ॥ ॥ पूर्वजोऽप्युक्तवाक्यस्तुलक्ष्मणेनसुभाषितम् ॥ सारग्राहीमहासारंप्रतिजग्राहराघवः ॥ १ ॥

बुद्धिको देवता लोगभी नहीं पहुँच सकते अब आपकी वह बुद्धि शोकसे इस प्रकार ढक रही है, कि इस समय हम उसको जगा रहे हैं ॥ १८ ॥ हे इक्ष्वाकुप्रवर! आप अपना दिव्य और मानवी पराक्रम विचार शत्रुसंहार करनेंमें यत्न कीजिये ॥ १९ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ! आपको समस्त लोकोंके संहार करनेंका क्या प्रयोजनहै? आप उसी अपने शत्रुको जानकर उसे विध्वंसकर सीताको बचाइये॥२०॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि काव्ये आरण्यकांडे "पंडितज्वालाप्रसाद" मिश्रकृतभाषानुवादे षट्षष्टितमःसर्गः ॥६६ ॥लक्ष्मणजीके इस प्रकार अतिशय सार गर्भ सुन्दर वचन

युक्त शरीरसे अचेतन अवस्थामें विलाप करना आरंभ किया तब न्यायशास्त्रमें स्थितहो अदीन हुये सौमित्र लक्ष्मण उनसे समयानुसार वचन बोले ॥ १८ ॥ हे आर्य ! शोक छोडकर धीरज धारण करकै उत्साहयुक्तहो जानकीजीको ढूंढिये । उत्साही पुरुष संसारी दुष्कर कार्य करनें मेंभी कभी नहीं घबडाते॥१९॥बडे पौरुषी लक्ष्मणजीनें जब ऐसा कहा तब रघुवंशियोंमें उत्तम श्रीरामचन्द्रजीनें उस वचनको चिन्तनीय समझकर न गिना वरन वह एकवारही धीरजको छोडकर फिर महा दुःखमें डूबगये ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आर०त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥ दीनभावापन्न श्रीरामचन्द्रजी दीन वचन कह लक्ष्मणजीसे बोले कि हे लक्ष्मण ! शीघ्र गोदावरी नदीपर जाकर जान आओ ॥ १ ॥

शोकंविसृज्याद्यधृतिंभजस्वसोत्साहताचास्तुविमार्गणेस्याः ॥ उत्साहवंतोहिनरानलोकेसीदंतिकर्मस्वतिदुष्करेषु ॥ १९ ॥ इतीवसौमित्रिमुदग्रपौरुषंब्रुवंतमार्तरघुवंशसत्तमः ॥ नचिंतयामासधृतिंविमुक्तवान्पुनश्चदुःखंमहदप्युपागमत्॥२०॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेत्रिषष्टितमःसर्गः॥६३॥ सदीनोदीनयावाचालक्ष्मणंवाक्यमब्रवीत्॥शीघ्रंलक्ष्मणजानीहिगत्वागोदावरींनदीम् ॥ १ ॥ अपिगोदावरींसीतापद्मान्यानयितुंगता ॥ एवमुक्तस्तुरामेणलक्ष्मणःपुनरेवहि ॥ २ ॥ नदींगोदावरींरम्यांजगामलघुविक्रमः ॥ तांलक्ष्मणस्तीर्थवतींविचित्वारामब्रवीत् ॥ ३ ॥ नैनांपश्यामितीर्थेषुक्रोशतोनशृणोतिमे ॥ कंनुसादेशमापन्नावैदेहीक्लेशनाशिनी ॥ ४ ॥ नहितंवेद्मिवैरामयत्रसातनुमध्यमा ॥ लक्ष्मणस्यवचःश्रुत्वादीनःसंतापमोहितः ॥ ५ ॥

कि सीता कमल फूल लेनेंको तौ वहां नहीं चली गईहैं? जब श्रीरामचंद्रजी नें ऐसा कहा तौ लक्ष्मणजी फिर ॥ २ ॥ शीघ्र २ पग धरकै गोदावरी नदीपर गये, और उस रमणीय घाटवाली गोदावरीके चारों ओर जरा २ करकै ढूंढ भाल रामचंद्रजीसे शीघ्रही आकर कहा ॥ ३ ॥ कि हमनें सबही घाटोंपर ढूंढा परन्तु कहींपर उनको न पाया पुकारा भी परन्तु उन्होंनें न सुना । हे आर्य! जनें कौन देशमें क्लेशहारिणी जानकीजी चली गईहै॥४॥सो उनका जिनका मध्यमस्थान सूक्ष्महै पता हम नहीं जानते लक्ष्मणजीके वचन सुनकर रामचंद्र और भी दीन व संतापसे मोहितहो ॥५॥

इसमें कुछ संशय नहीं है कि इस गृध्ररूपी वनचर निशाचरनेंही जानकीको भक्षण कर लियाहै, वस यह ठीकही ठीक जान पड
ता है यह गृध्र वना वनमें घूमताहै॥ ११ ॥यह राक्षस उन विशालाक्षी सीताजीको भक्षण करकै यथा सुखसे विश्राम कर रहाहै ।इस कारण हम सीधे
चलनेवाले अग्निकी समान प्रकाशमान भयंकर बाणोंसे इसका संहारकरेंगे ॥ १२ ॥ श्रीरामचंद्रजी यह कहकर क्रोधित हो समुद्र पर्यन्त
पृथ्वीको कँपाते हुये धनुष पर तीक्ष्ण बाण चढाय उसके देखनेंको चले ॥ १३ ॥ तिसके पीछे पक्षिराज जटायु सफेन रुधिर उगलता हुआ
अतिशय कातर वचनोंसे उन दशरथकुमार श्रीरामचंद्रजीसे बोला ॥१४॥आयुष्मान्! तुम औषधिकी समान जिनको इस महा वनमें खोजते हो, वह
अनेनसीतावैदेहीभक्षितानात्रसंशयः ॥ गृध्ररूपमिदंव्यक्तंरक्षोभ्रमतिकाननम् ॥ ११ ॥ भक्षयित्वाविशालाक्षीमा
स्तेसीतांयथासुखम् ॥ एनंवधिष्येदीप्ताग्रैःशरैर्घोरैरजिह्मगैः ॥ १२ ॥ इत्युक्त्वाऽभ्यपतद्द्रष्टुंसंधायधनुषिक्षुरम् ॥ क्रु
द्धोरामःसमुद्रांतांचालयन्निवमेदिनीम् ॥ १३ ॥ तंदीनदीनयावाचासफेनंरुधिरंवमन् ॥ अभ्यभाषतपक्षीसरामंदश
रथात्मजम् ॥ १४ ॥ यामोषधीमिवायुष्मन्नन्वेषसिमहावने ॥ सादेवीममचप्राणारावणेनोभयंहृतम् ॥ १५ ॥ त्व
याविरहितादेवीलक्ष्मणेनचराघव ॥ ह्रियमाणामयादृष्टारावणेनबलीयसा ॥ १६ ॥ सीतामभ्यवपन्नोऽहंरावणश्चरणे
प्रभो ॥ विध्वंसितरथच्छत्रःपतितोधरणीतले ॥ १७ ॥ एतदस्यधनुर्भग्नमेतेचास्यशरास्तथा ॥ अयमस्यरणेराम
भग्नःसांग्रामिकोरथः॥ १८॥ अयंतुसारथिस्तस्यमत्पक्षनिहतोभुवि ॥ परिश्रांतस्यमेपक्षौछित्त्वाखड्गेनरावणः ॥१९॥
देवी जानकी और हमारे प्राण दोनोंही रावणनें हर लियेहैं ॥ १५॥ हे रघुनंदन! महाबलवान् दशानन आपके और लक्ष्मणजीके आश्रममें नरहनें
पर सूनेसे जानकीको हर ले जाता हुआ हमनें देखाहै ॥ १६॥ उस समय हमनें सीताजीको छुटानेंके लिये सन्मुख हो युद्ध करकै उसके रथ और
छत्रको तोड डाला तब रावण पृथ्वीमें गिरा ॥ १७ ॥ यह जो धनुष और बाण टूटे हुये पडे हैं यह उसकेही हैं और रामचंद्रजी! यह उसकाही
संग्राममें काम देनेंवाला रथहै । जो टूटा हुआ पडाहै ॥ १८ ॥ और यह सारथी भी उसीका है जो हमारे पंखोंके प्रहारसे मरकर पृथ्वीपर पडाहै

अब हम मन्दाकिनी नदी जटा स्थान और झरना झरता हुआ यह पर्वत ॥ १४ ॥ इन सबही स्थानोंमें विचरण किया करेंगे। जिस्से कि सीताजीको देखें। हे वीर! यह मृगगण हमको वार २ देखतेहैं ॥ १५ ॥ इनके इशारेसे जान पडताहै कि मानों यह हमसे कुछ कहा चाहतेहैं, लक्ष्मणजीसे ऐसा कह उन मृगोंको देख पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी उन मृगोंसे बोले ॥ १६ ॥ हे मृगो! सीता कहांहैं ? यह कहतेही आंसू निकल आये वाणी गद्गद होगई, जब महाराज श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा तो वह सब मृग सहसा उठ खडे हुए ॥१७॥ और जिस दिशाको रावण जानकीजीको हरण कर लेगयाथा? उसी दक्षिण दिशाको मुखकर आकाशकी ओर निहार २ देखनें लगे ॥ १८ ॥ वह सब मृगगण वारंवार उसी दक्षिण

सर्वाण्यनुचरिष्यामियदिसीताहिलभ्यते ॥ एतेमहामृगावीरामामीक्षंतेपुनःपुनः ॥ १५ ॥ वक्तुकामाइवहिमेइंगितान्युपलक्षये ॥ तांस्तुदृष्ट्वानरव्याघ्रोराघवःप्रत्युवाचह ॥ १६ ॥ क्वसीतेतिनिरीक्षन्वैबाष्पसंरुद्धयागिरा ॥ एवमुक्तानरेंद्रेणते मृगाःसहसोत्थिताः ॥ १७ ॥ दक्षिणाभिमुखाःसर्वेदर्शयंतोनभःस्थलम् ॥ मैथिलीह्रियमाणासादिशंयामभ्यपद्यत ॥ १८ ॥ तेनमार्गेणगच्छंतोनिरीक्षंतेनराधिपम् ॥ येनमार्गंचभूमिंचनिरीक्षंतेस्मतेमृगाः ॥ १९ ॥ पुनर्नदंतोगच्छंति लक्ष्मणेनोपलक्षिताः ॥ तेषांवचनसर्वस्वंलक्षयामासचेंगितम् ॥ २० ॥ उवाचलक्ष्मणोधीमान्ज्येष्ठंभ्रातरमार्तवत् क्वसीतेतित्वयापृष्टायदिमेसहसोत्थिताः ॥ २१ ॥ दर्शयंतिक्षितिंचैवदक्षिणांचदिशंमृगाः ॥ साधुगच्छावहेदेवदिशमेतांचनैर्ऋतीम् ॥ २२ ॥यदितस्यागमःकश्चिदार्यावासाथलक्ष्यते ॥ बढिमत्येवकाकुत्स्थःप्रथितोदक्षिणांदिशम् ॥२३॥

दिशाकी ओर मुखकर, चिंघडते, और फिर श्रीरामचंद्रजीकी ओर देख दक्षिणको दौडते ॥१९॥ मृग गणोंकी यह दशा देख लक्ष्मणजीनें उनके हृदयका वृत्तान्त जान लिया ॥ २० ॥ अत्यन्त धीमान् लक्ष्मणजी अपनें बडे भ्राता रामचंद्रजीसे आरतकी समान बोले कि हे देव! जब आपनें इन मृगोंसे पूछा कि सीता कहां हैं ? तब यह सब एक एक उठ खडे होकर ॥ २१ ॥ दक्षिण दिशा और पृथ्वीको दिखाने लगे। इस कारण चलिये हम लोगभी इसी दक्षिण दिशाको चले चलें ॥ २२ ॥ क्योंकि कदाचित् आपी सीता वहां मिलजांय, अथवा उनकी प्राप्तिका कोई

भाग्यके फेरसे घायल होकर पृथ्वीपर शयन कररहेहैं ❀ ॥ २७ ॥ रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी इस प्रकारके अनेक वचन कहते लक्ष्मणजीके पिताकी समान स्नेह दिखातेहुये जटायुको स्पर्श करते हुये ॥ २८ ॥ फिर श्रीरामचंद्रजी पंख कटे रुधिर में डूबे गृध्रराज जटायुको चिपट कर "हमारी प्राणप्रिया मैथिली कहांगई हैं" यह कह कर पृथ्वीमें गिर पडे ॥ २९ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० आ० सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥ श्रीरामचंद्रजी भयंकर राक्षसके प्रहारसे पृथ्वीपर पडे हुये जटायुको देखकर परमबंधु सुमित्रापुत्रसे कहते हुये ॥ १ ॥ निश्चयही यह पक्षी हमारे लिये यत्न करकै हमारे ही लिये राक्षससे मारा जाकर अब प्राणत्याग करताहै॥२॥हेलक्ष्मण! इसका बोल धीमा पडगया, और दृष्टि हीन हो आईहै

इत्येवमुक्त्वाबहुशोराघवःसहलक्ष्मणः ॥ जटायुषंचपस्पर्शपितृस्नेहंनिदर्शयन् ॥ २८ ॥ निकृत्तपक्षंरुधिरावसिक्तंतंगृ ध्रराजंपरिगृह्यराघवः ॥ क्कमैथिलीप्राणसमागतेतिविमुच्यवाचंनिपपातभूमौ ॥ २९ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मी कीयेआ०आरकां०सप्तषष्टितमःसर्गः ॥ ६७ ॥ रामःप्रेक्ष्यतुतंगृध्रंभुविरौद्रेणपातितम् ॥ सौमित्रिंमित्रसंपन्नमिदंवचन मब्रवीत् ॥ १ ॥ ममायंनूनमर्थेषुयतमानोविहंगमः ॥ राक्षसेनहतःसंख्येप्राणांस्त्यजतिमत्कृते ॥ २ ॥ अतिखिन्नःश रीरेऽस्मिन्प्राणोलक्ष्मणविद्यते ॥ तथास्वरविहीनोऽयंविक्लवंसमुदीक्षते ॥ ३ ॥ जटायोयदिशक्नोषिवाक्यंव्याहरि तुंपुनः ॥ सीतामाख्याहिभद्रंतेवधमाख्याहिचात्मनः ॥ ४ ॥ किंनिमित्तोजहारार्यांरावणस्तस्यकिंमया ॥ अपराधं तुयंदृष्ट्वारावणेनहृताप्रिया ॥ ५ ॥

और प्राणभी अति मात्र व्याकुल होकर कुछेक इसकी देहमें टिक रहेहैं ॥३॥ हे जटायु ! तुम्हारा कल्याणहो, यदि फिर तुममें कुछ बोलनेंकी शक्तिहो तो सीताहरणका वृत्तान्त, और तुम कैसे मारे गये, यह सब कह दीजिये ॥ ४ ॥ और रावणनें किस निमित्त आर्या जानकीको हरण किया?

*कवित्त॥ दीन मलीन अधीन है अंग विहंग पर्यो क्षिति खिन्न दुखारी॥ राघव दीन दयालुकृपालु को देख दुखी करुणा भयभारी ॥ गीधको गोदमें राख कृपानिधि नैन सरोजनमें भरिवारी ॥वार हि बार सुधारत पंख जटायुकी धूरि जटान सों झारी ॥ १ ॥ गीधको गोदमें राख कृपानिधि निहारैं और नैननसों जलढारैं ॥ टूक हो जातहैं सीता विथाके जो याकी स्नेह कथाको विचारैं ॥ छोड चले केहि हेतु हमें हमें सौंह तिहारीहै संग सिधारैं ॥ यों कहि राम भरे जल नैन जटायुकी धूरि जटानसों झारैं ॥ २ ॥

जीको बताना चाहताथा परन्तु रावणके भयसे नहीं बताया ॥ ३२ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजी उस पर्वतसे फिर बोले, कि तुम हमारे बाणानलकी अनन्त अग्निसे भस्म हो जाओगे ॥ ३३ ॥ फिर तृण वृक्ष व पल्लवादि जल जानेंसे फिर कोई तुम्हारा आश्रय न लेगा हे लक्ष्मण! आज इस गोदावरी नदीकोभी शुष्क करदेंगे ॥ ३४ ॥ यदि यह सब हमारी चंद्रमुखी सीताको नहीं बताते तौ हम ऐसाही करेंगे, इस प्रकारसे श्रीरामचन्द्रजी क्रोधान्वित होकर मानों उनको नेत्रोंसे भस्मही किये देतेथे ॥३५॥ इधर उधर देखते २ श्रीरामचन्द्रजीनें पृथ्वीपर देखा जहांकि राक्षसके चरण चिह्न बनेथे, व उसी स्थानपर भयभीत और रामचन्द्रजीके दर्शनकी इच्छा किये इधर उधर दौडती हुई ॥ ३६ ॥ राक्षसके अनुसरण करनेंसे

ततोदाशरथीरामउवाचचशिलोच्चयम् ॥ ममबाणाग्निनिर्दग्धोभस्मीभूतोभविष्यसि ॥ ३३ ॥ असेव्यःसर्वतश्चैव निस्तृणद्रुमपल्लवः ॥ इमांवासरितंचाद्यशोषयिष्यामिलक्ष्मण ॥ ३४ ॥ यदिनाख्यातिमेसीतामद्यचंद्रनिभाननाम् ॥ एवंप्ररुषितोरामोदिधक्षन्निवचक्षुषा ॥ ३५ ॥ ददर्शभूमौनिष्क्रांतंराक्षसस्यपदंमहत् ॥ त्रस्तायारामकांक्षिण्याःप्रधावंत्याइतस्ततः ॥ ३६ ॥ राक्षसेनानुसृप्तायावैदेह्याश्चपदानितु ॥ ससमीक्ष्यपरिक्रांतंसीतायाराक्षसस्यच ॥ ३७ ॥ भग्नंधनुश्चतूणीचविकीर्णबहुधारथम् ॥ संभ्रांतहृदयोरामःशशसभ्रातरंप्रियम् ॥ ३८ ॥ पश्यलक्ष्मणवैदेह्याःकीर्णाःकनकबिंदवः ॥ भूषणानांहिसौमित्रेमाल्यानिविविधानिच ॥ ३९ ॥ तप्तबिंदुनिकाशैश्चचित्रैःक्षतजबिंदुभिः ॥ आवृतंपश्यसौमित्रेसर्वतोधरणीतलम् ॥ ४० ॥

जानकीजीकेभी पैरोंके चिह्न उन चिह्नोंके बीचमें बनें देखे, सीताजीके व राक्षसके पद एकमें मिले देख श्रीरामचन्द्रजीनें बडा क्रोध किया ॥३७॥ धनुष व तूणीर (तरकस) कोभी टूटा फूटा पृथ्वीपर पडा देख रथकोभी रत्ती २ चूर्ण देख व्याकुलहो चकित होते हुये श्रीरामचन्द्रजी अपने प्यारे भ्रातासे बोले ॥ ३८ ॥ हे लक्ष्मण! देखो! जानकीजीके गहनोंके सुवर्णबिन्दु और बहुत सारी मालायें यहांपर टूटी पडीहैं ॥ ३९ ॥ हे भइया! इस ओर देखो भूमिमें चारों ओर सुवर्ण बिन्दु सम विचित्रित रक्तबिन्दु समूह छिटक रहेहैं यह सीताका तो रुधिर नहींहै ॥ ४० ॥

इसको नहीं जानताहै, इस कारण वंशीका मांस ग्रहण करनेंसे काली मछलीके समान शीघ्र उसका विनाश होगा ॥ १३ ॥ इस मुहूर्तमें खोई हुई वस्तुही नहीं मिलती किन्तु शत्रुका नाशभी होताहै; तुमभी श्रीजानकीजीके प्राप्त होनेके विषयमें और कुछ संदेह न करो। रावणको संग्राममें मारकर शीघ्रही सीताके सहित विहार करनेंको तुम समर्थ होगे॥ १४ ॥ तिसके पीछे रामचन्द्रजीके साथ संभाषण करनेंवाले सावधान चित्त मरनेंके निकट गिद्धराज जटायुके मुखसे मांस युक्त रुधिर वहनें लगा ॥ १५ ॥ उस समय जटायुनें रावण विश्रवाका पुत्र, और कुवेरका भाईहै केवल इतनाही कहकर दुर्लभ प्राण त्याग करदिये ॥१६॥ श्रीरामचन्द्रजी हाथ जोडे बोलिये ! बोलिये ! इस प्रकारसे कहनेंलगे,

नचत्वयाव्यथाकार्याजनकस्यसुतांप्रति॥ वैदेह्यारंस्यसेक्षिप्रंहत्वातंरणमूर्धनि ॥ १४ ॥ असंमूढस्यगृध्रस्यरामंप्रत्यनुभाषतः॥आस्यात्सुस्रावरुधिरंम्रियमाणस्यसामिषम् ॥ १५ ॥ पुत्रोविश्रवसःसाक्षाद्भ्रातावैश्रवणस्यच ॥ इत्युक्त्वादुर्लभान्प्राणान्मुमोचपतगेश्वरः॥ १६॥ ब्रूहिब्रूहीतिरामस्यब्रुवाणस्यकृतांजलेः ॥ त्यक्त्वाशरीरंगृध्रस्यप्राणाजग्मुर्विहायसम् ॥ १७॥ सनिक्षिप्यशिरोभूमौप्रसार्यचरणौतथा ॥ विक्षिप्यचशरीरंस्वंपपातधरणीतले॥ १८॥ तंगृध्रंप्रेक्ष्यताम्राक्षंगतासुमचलोपमम्॥ रामःसुबहुभिर्दुःखैर्दीनःसौमित्रिमब्रवीत्॥ १९ ॥ बहूनिरक्षसांवासेवर्षाणिवसतासुखम्॥ अनेनदंडकारण्येविशीर्णमिहपक्षिणा ॥ २० ॥ अनेकवार्षिकोयस्तुचिरकालसमुत्थितः ॥ सोऽयमद्यहतः शेते कालोहिदुरतिक्रमः॥ २१ ॥ पश्यलक्ष्मणगृध्रोऽयमुपकारीहतश्चमे ॥ सीतामभ्यवपन्नोहिरावणेनबलीयसा ॥ २२ ॥

उसी समय उनके सामनेही जटायुके प्राण शरीरको त्याग करके आकाशको चलेगये ॥ १७॥ उस समय गिद्धराज चरण युगल फैलाय अपना शरीर फटफटाय भूमिमें शिर गिराय पृथ्वीमें गिरपडे ॥ १८ ॥ श्रीरामचन्द्रजी पर्वत समान बडे आकारवाले ताम्रवत् रक्तनेत्र गृध्रको मरा हुआ देखकर दुःखितहो लक्ष्मणजीसे बोले॥१९॥राक्षसोंके वसनें योग्य दंडकारण्यमें बहुत वर्षोंसे यह जटायुजी रहतेथे, सो आज उन्होंने देह त्याग करदिया ॥२०॥ इस प्रकार यह अनेक वर्षतक जीवितथे; वह आज निहत होकर पृथ्वीमें शयन कररहेहैं; हम समझे कि कालको उल्लंघन करना सहज नहींहै,लक्ष्मण ! देखो ये गृध्र हमारा कैसा उपकारीहै, सीताजीको उद्धार करनेंमें तैयार होकर रावण दुरात्मा करके यह मारे गयेहैं ॥२१॥ २२॥

जिनको देखनेसे भय उत्पन्न होताहै । बाणोंसे पूर्ण किसीके तूणीरभी पृथ्वीमें पडेहैं ॥ ४९॥ देखो! चाबुक और बाग हाथमें लिये किसीका सारथिभी मृतक पडाहै । देखो यह किसी पुरुष राक्षसके जानेंका प्रगट मार्ग बनाहै ॥ ५० ॥ हे शुभदर्शन ! किस कारणसे अतीव काठिन हृदय कामरूप निशाचर गणोंके सहित हमारा पहलेसे शत गुण अधिक वैर होगया! तुम देखलेना कि इस्से उनके जीवनका अंत होगा ॥ ५१ ॥ या तो राक्षसोंनें सीताको हर लिया वा भक्षण कर लिया, अथवा उन तपस्विनीनें प्राणत्याग करदिया होगा, किन्तु जब इस महा अरण्यमें जानकीजी मरणके निकट पहुँची तब पतिव्रत धर्मनेभी उनकी रक्षा न की! ॥ ५२ ॥ हे लक्ष्मण! इस प्रकारसे जब कि जानकी हरी गई और उस समय धर्मनेंभी

प्रतोदाभीषुहस्तोऽयंकस्यवासारथिर्हतः ॥पदवीपुरुषस्यैषाव्यक्तंकस्यापिरक्षसः॥५०॥वैरंशतगुणंपश्यममतैर्जीवितांतकम्॥सुघोरहृदयैःसौम्यराक्षसैःकामरूपिभिः ॥५१ ॥ हतामृतावावैदेहीभक्षितावातपस्विनी॥नधर्मस्त्रायतेसीतांह्रियमाणांमहावने ॥ ५२ ॥ भक्षितायांहिवैदेह्यांहृतायामपिलक्ष्मण ॥ केहिलोकेप्रियंकर्तुंशक्ताःसौम्यममेश्वराः ॥ ॥ ५३ ॥ कर्तारमपिलोकानांशूरंकरुणवेदिनम् ॥ अज्ञानादवमन्येरन्सर्वभूतानिलक्ष्मण ॥ ५४ ॥ मृदुंलोकहितेयुक्तंदांतंकरुणवेदिनम् ॥ निर्वीर्यइतिमन्यंतेनूनंमांत्रिदशेश्वराः ॥ ५५ ॥ मांप्राप्यहिगुणोदोषःसंवृत्तःपश्यलक्ष्मण॥ अद्यैवसर्वभूतानांरक्षसामभवायच ॥ ५६ ॥

उनकी रक्षा न की तब संसारमें ईश्वरीय शक्ति सम्पन्न और कौन पुरुष हमारा प्रिय करनेंमें समर्थ होगा? ॥ ५३ ॥ प्राणीगण इनही सब कारणोंसे अज्ञान प्रयुक्त समस्त लोकोंके कर्त्ता परम दयालु सुरवर परमेश्वरको नहीं मानतेहैं ॥ ५४ ॥ हमारा स्वभाव अतिशय कोमलहै, और सर्वदाही हम सब लोकोंका हित कार्य करतेहैं और करुणा सहित उनका शुभाशुभ विधान करतेहैं परन्तु हम सीताका उद्धार नकरसके, इस कारण इन्द्रादि देवता गण निश्चयही हमको वीर्य रहित समझेंगे ॥ ५५ ॥ हे लक्ष्मण! विचार करके देखो! कि हमको प्राप्त होकर दया दाक्षिण्यादि समस्त गुण दोषरूपमें बदल गये इन दोषोंसे हम छिप गये, अब कोई हमको पराक्रमवान् नहीं समझता इस्से अभी सब प्राणी व राक्षसोंका नाश करनेंके लिये॥५६॥

रामचन्द्रजी सुमित्रानन्दन लक्ष्मणजीके साथ वनमें गये और बडे आकारवाले मृगोंका वधकर उनका मांसले फिर वहां आये जहां जटायुको दाह
कियाथा । वहां आ जटायुको पिंड देनेंके लिये तृण फैलाये ॥ ३२ ॥और उस समस्त मांसके टुकडे २ कर डाले और उनके पिंड बना उनको हरी
घासपर रख जटायुके अर्थ प्रदान किये ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणलोग प्रेत पुरुषकी स्वर्ग प्राप्ति होनेंके लिये जिन मंत्रोंका जप किया करते हैं, श्रीरामचन्द्रजी
जटायुको शीघ्र स्वर्ग प्राप्त करानेंके लिये उन्हीं समस्त मंत्रोंका जप करनेंलगे ॥ ३४ ॥ तिसके पीछे राजकुमार श्रीरामचन्द्र व लक्ष्मणजी दोनों
जन गोदावरी नदीपर जाकर जटायुके लियें तर्पण करते हुए ॥ ३५ ॥ वह दोनों जन स्नान करकै शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार जटायुको

रोहिमांसानिचोद्धृत्यपेशीकृत्वामहायशाः ॥ शकुनायददौरामोरम्येहरितशाद्वले ॥ ३३ ॥ यत्तत्प्रेतस्यमर्त्यस्यकथ
यंतिद्विजातयः ॥ तत्स्वर्गगमनंक्षिप्रंतस्यरामोजजापह ॥ ३४ ॥ ततोगोदावरींगत्वानदींनरवरात्मजौ ॥ उदकंच
क्रतुस्तस्मैगृध्रराजायताबुभौ ॥ ३५ ॥ शास्त्रदृष्टेनविधिनाजलंगृध्रायराघवौ ॥ स्नात्वातौगृध्रराजायउदकंचक्रतु
स्तदा ॥ ३६ ॥ सगृध्रराजःकृतवान्यशस्करंसुदुष्करंकर्मरणेनिपातितः ॥ महर्षिकल्पेनचसंस्कृतस्तदाजगामपुण्यां
गतिमात्मनःशुभाम् ॥ ३७ ॥ कृतोदकौतावपिपक्षिसत्तमेस्थिरांचबुद्धिंप्रणिधायजग्मतुः ॥ प्रवेश्यसीताधिगमेततो
मनोवनंसुरेंद्राविवविष्णुवासवौ ॥ ३८ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० आर० अष्टषष्टितमःसर्गः ॥ ६८ ॥ कृत्वैवमुद
कंतस्मैप्रस्थितौराघवौतदा ॥ अवेक्षंतौवनेसीतांजग्मतुःपश्चिमांदिशम् ॥ १ ॥

जल देकर पिंड व तिलाञ्जलि देते हुए ॥ ३६ ॥ गृध्रराज जटायु दुष्करकार्य करते हुए युद्धमें मारे जाकर, और महर्षिसदृश श्रीरामचन्द्रजीके
संस्कारित हो परम पवित्र पुण्य गतिको प्राप्त हुए ॥ ३७ ॥ तब राम और लक्ष्मण दोनों जन जलादि क्रिया समाप्त करकै पक्षिश्रेष्ठ
जटायुके प्रति पितृबुद्धि स्थापित कर वहांसे प्रस्थान करते हुए, और सीताजीके खोजनेंमें मन लगाकर सुरश्रेष्ठ विष्णु और इन्द्रजीकी समान वनमें
प्रवेश करतेहुए॥ ३८ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० आ० अष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥ जब पक्षिराज जटायुकी जलक्रिया होचुकी तब श्रीरामचन्द्र व लक्ष्म

हुए बाणोंसे सब संसार पिशाच और राक्षसोंसे रहित कर देंगे ॥ ६५ ॥ इस संसारमें कोईभी हमारे इन बाणोंको निवारण नहीं करसकेगा, आज देवता लोग देखेंगे कि समूहके समूह बाण हम करके रोष और क्रोधमें भरकर चलाये हुए कितनी २ दूरपर जाकर गिरते हैं न देवता न दैत्य न पिशाच न राक्षस ॥ ६६ ॥ जब हमारे क्रोधसे तीनों लोकोंका नाश हुआ तब कोईभी रक्षा न पावेगा ॥ ६७ ॥ अधिक क्या कहैं, सुर, असुर, यक्ष और राक्षसोंके समस्तही लोक हमारे बाण जालसे खंड २ होकर गिरेंगे आज हम बाणोंको छोडकर समस्त लोकको मर्यादा शून्य करेंगे॥ ६८॥ प्रिया वैदेहीजी मरही गईहों अथवा हरही गईहों सो किसी अवस्थामें हों यदि ब्रह्मादि देव गण उने हमको न देंदें ॥ ६९ ॥ हम चराचर सहित इस

द्रक्ष्यंत्यद्यविमुक्तानाममर्षाद्दूरगामिनाम् ॥ नैवदेवानदैतेयानपिशाचानराक्षसाः ॥ ६६ ॥ भविष्यंतिममक्रोधात्त्रैलोक्येऽपिप्रणाशिते ॥ देवदानवयक्षाणांलोकायेरक्षसामपि ॥ ६७ ॥ बहुधानिपतिष्यंतिबाणौघैःशकलीकृताः ॥ निर्मर्यादानिमान्लोकान्करिष्याम्यद्यसायकैः ॥६८॥ हृतांमृतांवासौमित्रेनदास्यंतिममेश्वराः ॥ तथारूपांहिवैदेहींनदास्यंतियदिप्रियाम् ॥ ६९॥ नाशयामिजगत्सर्वंत्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ यावद्दर्शनमस्यावैतापयामिचसायकैः ॥ ७० ॥ इत्युक्त्वाक्रोधताम्राक्षःस्फुरमाणोष्ठसंपुटः ॥ वल्कलाजिनमाबध्यजटाभारमबंधयत् ॥ ७१ ॥ तस्यक्रुद्धस्यरामस्यतथाभूतस्यधीमतः ॥ त्रिपुरंजघ्नुषःपूर्वंरुद्रस्येवबभौ तनुः ॥ ७२ ॥ लक्ष्मणादथचादायरामोनिष्पीड्यकार्मुकम् ॥ शरमादायसंदीप्तंघोरमाशीविषोपमम् ॥ ७३ ॥

सब जगत्‌का विनाश कर डालेंगे और जबतक हम सीताको न देख पावेंगे तबतक बाणोंसे चराचरको संतापित करेंगे ॥ ७० ॥ यह कह कर क्रोधसे श्रीरामचन्द्रजीकी आंखें लाल २ हो आईं, होठ फडकने लगे, श्रीरामचन्द्रजीनें चीर वल्कल मृगचर्म और जटाजूट कस कर बांधा ॥ ७१ ॥ उस कालमें धीमान् रामचन्द्रजीनें क्रोधित होकर जब ऐसे कार्यका अनुष्ठान किया, तब उनका देह ऐसा प्रतिभात होनें लगा कि जैसे पूर्व कालमें रुद्रजी त्रिपुर वध करनेंको तैयार हुएथे ॥ ७२ ॥ अनन्तर उन्होंनें लक्ष्मणजीके निकटसे धनुष ग्रहण कर और दृढ रूपसे धारण करके सर्प विष सदृश

गुफामें नित्यही अंधकार रहताथा ॥ १० ॥ श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीनें उसके निकट पहुँचकर उसम भयंकर आकारवाली और विकृत वदन
एक राक्षसीको देखा ॥ ११ ॥ राक्षसी देखनेंमें अति भयंकरीथी, खाल अति कडीथी ॥ १२ ॥ स्वभाव अति भयंकरथा बडे२ मृगोंको वह भ
क्षण करती, रूप बडा भयावना शिरके बाल खुले, ऐसी उस राक्षसीको दोनों भाइयोंनें देखा ॥ १३ ॥ तिसके पीछे वह निशाचरी रामचंद्रजीके
आगे खडे हुये लक्ष्मणजीके निकट आकर कहनें लगी कि "आओ हम तुमसे विहार करें" ऐसा कहकर उसनें लक्ष्मणजीको ग्रहण किया ॥१४॥
और वह राक्षसी उनको चिपटायकर कहनेंलगी कि हे नाथ! हमारा अयोमुखी नामहै, अब तुमको परम लाभ हुआ और तुमही हमारे प्यारे

आसाद्यचनरव्याघ्रौदर्यास्तस्याविदूरतः ॥ ददर्शतुर्महारूपांराक्षसींविकृताननाम् ॥ ११ ॥ भयदामल्पसत्त्वा
नांबीभत्सांरौद्रदर्शनाम् ॥ लंबोदरींतीक्ष्णदंष्ट्रांकरालींपरुषत्वचम् ॥ १२ ॥ भक्षयंतींमृगान्भीमान्विकटांमुक्त
मूर्धजाम् ॥ अवैक्षतांतुतौतत्रभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ १३ ॥ सासमासाद्यतौवीरौव्रजंतंभ्रातुरग्रतः ॥ एहिरंस्यावहे
त्युक्त्वासमालंभतलक्ष्मणम् ॥ १४ ॥ उवाचचैनंवचनंसौमित्रिमुपगृह्यच ॥ अहंत्वयोमुखीनामलाभस्तेत्वमसिप्रि
यः ॥ १५ ॥ नाथपर्वतदुर्गेषुनदीनांपुलिनेषुच ॥ आयुश्चिरमिदंवीरत्वंमयासहरंस्यसे ॥ १६ ॥ एवमुक्तस्तुकुपितःखड्ग
मुद्धृत्यलक्ष्मणः ॥ कर्णनासस्तनंतस्यानिचकर्तारिसूदनः ॥ १७ ॥ कर्णनासेनिकृत्तेतुविस्वरंविननादसा ॥ यथागतं
प्रदुद्रावराक्षसीघोरदर्शना ॥१८॥ तस्यांगतायांगहनंव्रजंतौवनमोजसा॥आसेदतुरमित्रघ्नौभ्रातरौरामलक्ष्मणौ॥१९॥

हुये ॥ १५ ॥ हे नाथ! हमारे सहित सब जीवनतक नदियोंके किनारों पर और नाना प्रकारके पर्वतोंपर तुम विहार किया करना ॥१६॥ शत्रुओंका
नाश करनेंवाले लक्ष्मणजीनें इस बातसे क्रोधित होकर खड्ग उठाकर उस राक्षसीके नाक कान व स्तन काट डाले ॥ १७ ॥ जब उसके कान नाक
व स्तन काट डाले गये तब वह घोरदर्शनवाली राक्षसी विकट शब्दसे चिल्लाकर शब्द करतीहुई जहांसे आईथी वहांको दौडी ॥ १८ ॥ जब वह
वहांसे भाग गई तो महातेजमान शत्रुओंके मारनेंवाले श्रीराम लक्ष्मण दोनों भाई वेग सहित चलतेहुए एक गहन वनमें पहुँचे ॥ १९ ॥

वश होकर अपना स्वभाव छोडना आपको योग्य नहीं है ॥ ४ ॥ चन्द्रमामें श्री, वायुमें गति, पृथ्वीमें क्षमा, सूर्यमें दीप्ति, इन चारोंमें यह चार पदार्थ नित्य हैं और आपमें यश सहित यह चारों पदार्थ विद्यमान हैं ॥ ५ ॥ एक जनके अपराधसे समस्त लोकको हनन करना आपको उचित नहीं है, निश्चयही हम जानते हैं कि यह जो रथ टूटा पडा है यह एकही जनका है बहुतोंका नहीं ॥ ६ ॥ किन्तु यह जुआ युक्त और परिच्छेद सहित रथ किसका है, और क्योंकर टूटा है इसको हम नहीं जानते, देखिये यह स्थान खुरियोंसे खुद खुदाय रहा है और रुधिरसे भीगनेंके कारण अतिशय भयंकर हो रहाहै ॥ ७ ॥ निश्चयही यहांपर संग्राम हुआहै ॥ और इन सब कारणोंसे यहभी बोध होताहै कि एक रथीके सहित और किसी पशुका युद्ध

चंद्रेलक्ष्मीःप्रभासूर्येगतिर्वायौभुविक्षमा ॥ एतच्चनियतंनित्यंत्वयिचानुत्तमंयशः ॥ ५ ॥ एकस्यानापराधेनलोका
न्हंतुंत्वमर्हसि ॥ ननुजानामिकस्यायंभग्नःसांग्रामिकोरथः ॥ ६ ॥ केनवाकस्यवाहेतोःसंयुगःसपरिच्छदः ॥ खुर
नेमिक्षतश्चायंसिक्तोरुधिरबिंदुभिः ॥ ७ ॥ देशोनिर्वृत्तसंग्रामःसुघोरःपार्थिवात्मज ॥ एकस्यतुविमर्दोऽयंनद्वयोर्वदतां
वर ॥ ८ ॥ नहिवृत्तंहिपश्यामिबलस्यमहतःपदम् ॥ नैकस्यतुकृतेलोकान्विनाशयितुमर्हसि ॥ ९ ॥ युक्तदंडाहिमृदवः
प्रशांतावसुधाधिपाः ॥ सदात्वंसर्वभूतानांशरण्यःपरमागतिः ॥ १० ॥ कोनुदारप्रणाशंतेसाधुमन्येतराघव ॥ सरितः
सागराःशैलादेवगंधर्वदानवाः ॥ ११ ॥ नालंतेविप्रियंकर्तुंदीक्षितस्येवसाधवः ॥ येनराजन्हृतासीतातमन्वेषितुमर्हसि ॥ १२ ॥

हुआहै दोजनोंका युद्ध नहीं हुआहै ॥ ८ ॥ बडी भारी सेनाके चरण चिह्न यहां पर नहीं दृष्टि आते इसलिये एक जनके अपराधसे समस्त लोकोंको विनाश करना आपको उचित नहींहै ॥ ९ ॥ राजा लोग सचराचरपर अतिशय शान्त और मृदु स्वभाववाले होतेहैं, और अपराधानुसार दंड दिया करतेहैं आपभी सर्वदा सब भूतोंके शरण्य और परम गतिहैं ॥ १० ॥ हे रघुनंदन! संसारमें कौन पुरुष आपकी भार्याका वियोग आपसे अच्छा समझताहै कारण कि नदी, समुद्र, पर्वत, देवता, गन्धर्व, दानव, सरित सागर ॥ ११ ॥ और शैल कोईभी आपका अप्रिय नहीं करसकते, जैसे यजमानका अप्रिय साधुलोग नहीं कर सकते। हे राजन्! जिसनें सीताको हरण कियाहै इस समय उस जनकी खोज करना आपका कर्त्तव्य हुआहै ॥ १२ ॥

द्रजीके आगे आनकर खडा होगया,उसका मस्तक आर गर्दन नहींथी शरीर बहुत बडाथा,मुख पेट में था॥२७॥रुवें भालेके समान तीखे और सीधे थे
आकार उसका महा पर्वतकी समान ऊंचाथा स्वर मेघके गर्जनेंकी तुल्य, रंग नीले मेघकी समान, व स्वभाव और आकार उसका बडा भयंकरथा॥२८॥
और उसका नेत्र यह अग्निकी ज्वालाके समान प्रदीप्त और बडी२ धूमिली पलकें इस पर थीं और यह नेत्र बडाभी बहुत था॥ २९ ॥ और उस
दूसरा नेत्र छातीमें था यह नेत्र अतिशय भयंकर और तीक्ष्ण दिखावका था, उसका मुखभी बडा भारीथा और उसके मुखमें बडे २ दांतोंकी पंक्ति
यांथीं, वह उस मुखसे मानो लीलेही लेताथा ॥ ३० ॥ और वह अपनी चार २ कोशकी लंबी दोनों बांहोंसे पकड २ ऋक्ष, सिंह, मृगादिकोंको

रोमभिर्निशितैस्तीक्ष्णैर्महागिरिमिवोच्छ्रितम् ॥ नीलमेघनिभंरौद्रंमेघस्तनितनिःस्वनम् ॥ २८ ॥ अग्निज्वाला
निकाशेनललाटस्थेनदीप्यता ॥ महापक्ष्मेणपिंगेनविपुलेनायतेनच ॥ २९ ॥ एकेनोरसिघोरेणनयनेनसुदर्शि
ना ॥ महादंष्ट्रोपपन्नंतंलेलिहानंमहामुखम् ॥ ३० ॥ भक्षयंतंमहाघोरानृक्षसिंहमृगद्विजान् ॥ घोरौभुजौविकु
र्वाणमुभौयोजनमायतौ ॥ ३१ ॥ कराभ्यांविविधान्गृह्यऋक्षान्पक्षिगणान्मृगान् ॥ आकर्षंतंविकर्षंतमनेकान्मृगयू
थपान् ॥ ३२ ॥ स्थितमावृत्यपंथानंतयोर्भ्रात्रोःप्रपन्नयोः ॥ अथतंसमतिक्रम्यक्रोशमात्रंददर्शतुः ॥ ३३ ॥ महांतंदा
रुणंभीमंकबंधंभुजसंवृतम् ॥ कबंधमिवसंस्थानादतिघोरप्रदर्शनम् ॥ ३४ ॥ समहाबाहुरत्यर्थंप्रसार्यविपुलौभुजौ ॥
जग्राहसहितावेवराघवौपीडयन्बलात् ॥ ३५ ॥

भक्षण करता चला आताथा ॥ ३१ ॥ वह अपनी दोनों बांहोंसे विविध प्रकारके मृग पक्षी, ऋक्ष और मृगयूथोंको पकडता और अपने मुखमें
छोडताथा ॥ ३२ ॥ जिस मार्गसे होकर राम लक्ष्मणजीको जानाथा, वह उसीको रोके हुये पडाथा, तव राम लक्ष्मणजीनें घूमकर एक कोश
पर जाकर देखा तो ॥ ३३ ॥ अति घोर दर्शन दारुण भयंकराकार बडे शरीरवाला कवन्ध दिखलाई पडा वह अपनी दोनों भुजाओंसे जीव
जन्तुओंको सब प्रकारसे पकडताथा और उसके शरीरकी गठन देखनेंसे ठीकही वह कवंध ज्ञात होताथा ॥ ३४ ॥ फिर महाबलवान कवन्धने

हे काकुत्स्थ ! यदि आपही इस आई हुई विपदको न झेलेंगे तौ अल्प प्राण मनुष्य कौन सह सकेगा ? ॥ ५ ॥ हे नरश्रेष्ठ। आप अपनें चित्तको सँभालिये। विपद अग्निकी समान सबही प्राणियोंको स्पर्श करतीहै किन्तु क्षण कालमेंही दूर चली जातीहै ॥ ६ ॥ लोकका स्वभावही यहहै। देखिये नहुषपुत्र ययाति, इन्द्रपदवी प्राप्त करकेभी अनीतिसे स्वर्गसे च्युत हुआथा ॥ ७ ॥ जो हमारे पिताजीके पुरोहितहैं, उन महर्षि वशिष्ठजीनें एक दिनमें शतपुत्र उत्पन्न किये, और एकदिनमेंही वह सब नष्ट होगये ॥ ८ ॥ हे कौशलेश्वर। जगन्माता, सर्व लोकके नमस्कार करनें योग्य इस पृथ्वीकाभी चलायमानहोना पाया जाताहै अर्थात् भूकंपादि दुःख इसको हुआ करतेहैं ॥ ९ ॥

यदिदुःखमिदंप्राप्तंकाकुत्स्थंनसहिष्यसे ॥ प्राकृतश्चाल्पसत्त्वश्चइतरःकःसहिष्यति ॥ ५ ॥ आश्वसिहिनरश्रेष्ठप्राणिनःकस्यनापदः ॥ संस्पृशंत्यग्निवद्राजन्क्षणेनव्यपयांतिच ॥ ६ ॥ लोकस्वभावएवैषययातिर्नहुषात्मजः ॥ गतःशक्रेणसालोक्यमनयस्तंसमस्पृशत् ॥ ७ ॥ महर्षियोंवसिष्ठस्तुयःपितुर्नःपुरोहितः ॥ अह्नापुत्रशतंजज्ञेतथैवास्यपुनर्हतम् ॥८॥ याचेयंजगतोमातासर्वलोकनमस्कृता ॥ अस्याश्चचलनंभूमेर्दृश्यतेकोशलेश्वर ॥ ९ ॥ यौधर्मौजगतोनेत्रौयत्रसर्वंप्रतिष्ठितम् ॥ आदित्यचंद्रौग्रहणमभ्युपेतौमहाबलौ ॥ १० ॥ सुमहांत्यपिभूतानिदेवाश्चपुरुषर्षभ ॥ नदैवस्यप्रमुंचंतिसर्वभूतानिदेहिनः ॥ ११ ॥ शक्रादिष्वपिदेवेषुवर्तमानौनयानयौ ॥ श्रूयेतेनरशार्दूलनत्वंव्यथितुमर्हसि ॥ १२ ॥ मृतायामपिवैदेह्यांनष्टायामपिराघव ॥ शोचितुंनार्हसेवीरयथान्यःप्राकृतस्तथा ॥ १३ ॥

जो सूर्य चन्द्रमा कि जगत्के नेत्र और साक्षात् धर्मस्वरूप हैं,और जिनमें समस्त संसार टिका हुआ है उन महाबलवान् सूर्य चन्द्रमाकाभी ग्रहण हो जाता है ॥ १० ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ! इस प्रकारसे अति महत् भूत और देवतालोगभी जब दैवके वश हैं तब साधारण शरीर धारी प्राणियोंकी क्या गिनती है? ॥ ११ ॥ अधिक क्या कहैं इन्द्रादि देवताओंमेंभी नीति और अनीति सुख दुःख सुना जाया करता है, इस्से हे नरसिंह! आप अब व्यथित न हूजिये॥ १२॥हे रघुनंदन!यदि जानकीजी हरी गई हों, वा मृतक होगईहों तौभी साधारण पुरुषोंकी समान आपको शोक करना योग्य नहीं है१३॥

यहांपर क्या कार्यहै, और तुम किस कारणसे यहांपर आयेहो सो कहो॥४४॥ हम भूखे होकर यहांपर टिकरहेहैं सो तुम धनुष बाण और खड्ग धारण किये हुये तेज सींगवाले बैलकी समान यहांपर हमारे मुखमें आय पडेहो ॥ ४५ ॥ परन्तु अब हमारे मुखमें पड तुम्हारा जीवित रहना दुर्लभहै दुरात्मा कवंधके यह वचन सुनकर ॥ ४६ ॥ श्रीरामचंद्रजी वदन सुखाकर लक्ष्मणजीसे बोले कि यह सत्यविक्रम ! प्रिया सीताजीके हरणसे विषम विपद आपडी है, सो इस्से निश्चयही प्राण संहार होनेंकी संभावनाहै तिसके ऊपर फिर वारंवार यह कष्टके ऊपर कष्ट पड रहे हैं ॥ ४७ ॥ अब तौ यह महा दुःख हमको प्राप्त हुआ है, अब प्रियाके पानेकीभी आश त्याग करैं। हे लक्ष्मण! सब प्राणियोंमें कालका वडा वीर्य दिखलाई देता

इमंदेशमनुप्राप्तौक्षुधार्तस्येहतिष्ठतः॥ सबाणचापखड्गौचतीक्ष्णशृंगाविवर्षभौ ॥ ४५ ॥ मांतूर्णमनुसंप्राप्तौदुर्लभंजीवितंहिवाम् ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाकबंधस्यदुरात्मनः ॥ ४६ ॥ उवाचलक्ष्मणंरामोमुखेनपरिशुष्यता॥कृच्छ्रात्कृच्छ्रतरंप्राप्यदारुणंसत्यविक्रम ॥ ४७ ॥ व्यसनंजीवितांतायप्राप्तमप्राप्यतांप्रियाम् ॥ कालस्यसुमहद्वीर्यंसर्वभूतेषुलक्ष्मण ॥ ४८ ॥ त्वांचमांचनरव्याघ्रव्यसनैःपश्यमोहितौ ॥ नहिभारोऽस्तिदैवस्यसर्वभूतेषुलक्ष्म ण ॥ ४९ ॥ शूराश्चबलवंतश्चकृतास्त्राश्चरणाजिरे ॥ कालाभिपन्नाःसीदंतियथावालुकसेतवः ॥ ५० इतिब्रुवाणोदृढसत्यविक्रमोमहायशा दाशरथिःप्रतापवान् ॥ अवेक्ष्यसौमित्रिमुदग्रविक्रमःस्थिरांतदास्वांमतिमात्मनाकरोत् ॥ ५१ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा०आ० आर०एकोनसप्ततितमःसर्गः ॥ ६९ ॥ ॥ ७ ॥ ॥

है ॥४८॥हे नरश्रेष्ठ लक्ष्मण! देखो हम तुम दोनों कालकेही प्रभावसे कैसे दुःखमें पडे हैं, प्राणियोंको दुःख देनेंमें कालको कुछभी डर नहीं है ॥४९॥ कालके वश हो वडे शूरवीर अस्त्र शस्त्रोंके जाननेंवाले पुरुषभी रेतेसे वनाये हुये पुलकी समान संग्राममें खस जाते हैं ॥ ५० ॥ सत्य और अनतिक्रमणीय दृढविक्रमसम्पन्न, प्रतापवान महायशस्वी दशरथनंदन बुद्धिमान श्रीरामचन्द्रजीनें लक्ष्मणजीको देख ऐसा कहते २ ज्ञानके प्रभावसे अपने चित्तको स्थिर किया ॥ ५१ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आदिकाव्ये आरण्यकांडे एकोनसप्ततितमः सर्गः॥ ६९ ॥

कहनें पर सारके ग्रहण करनेंवाले महाबाहु रामचन्द्रजीनें उनको ग्रहण किया॥१॥ तिसके पीछे वह अपना बढा हुआ क्रोध शान्तकर विचित्र धनुष धारण करके लक्ष्मणजीसे कहनें लगे ॥ २ ॥ हे वत्स! हम इस समय कहां जांय क्या करें, और किस उपायसे जानकीको प्राप्त होवैं? सो तुम इसका विचार करो॥३॥तब लक्ष्मणजी अति संतापित रामचन्द्रजीसे बोले कि इस जनस्थानकोही ढूंढना और खोज करना आपको उचित है॥ ४ ॥ बहुत सारे राक्षसों करके समाकीर्ण और विविध भांतिके लता वृक्षोंसे युक्त इस जनस्थानमें अनेक गिरि गुहा कंदरा ॥ ५ ॥ पत्थरोंकी चटानें और अनेक जाति वाले मृग गणोंसे पूर्ण गुफायें किन्नर व गन्धर्व गणोंके फिरनेंके स्थान और भवन जहां बहुत सारे हैं ॥ ६ ॥ सो आप हमारे सहित साव

सनिगृह्यमहाबाहुःप्रवृद्धंरोषमात्मनः ॥ अवष्टभ्यधनुश्चित्रंरामोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ २ ॥ किंकरिष्यावहेवत्स क्ववागच्छावलक्ष्मण ॥ केनोपायेनपश्यावःसीतामिहविचिंतय ॥ ३ ॥ तंतथापरितापार्तंलक्ष्मणोवाक्यमब्रवीत् ॥ इदमेवजनस्थानंत्वमन्वेषितुमर्हसि ॥ ४ ॥ राक्षसैर्बहुभिःकीर्णंनानाद्रुमलतायुतम् ॥ संतीहगिरिदुर्गाणिनिर्दराः कंदराणिच ॥ ५ ॥ गुहाश्चविविधाघोरानानामृगगणाकुलाः ॥ आवासाःकिन्नराणांचगंधर्वभवनानिच ॥ ६ ॥ तानियुक्तोमयासार्धंसमन्वेषितुमर्हसि ॥ त्वद्विधाबुद्धिसंपन्नामहात्मानोनरर्षभाः ॥ ७ ॥ आपत्सुनप्रकंपंतेवायुवेगैरिवाचलाः ॥ इत्युक्तस्तद्वनंसर्वंविचचारसलक्ष्मणः ॥ ८ ॥ क्रुद्धोरामःशरंघोरंसंधायधनुषिक्षुरम् ॥ ततःपर्वतकूटाभंमहाभागंद्विजोत्तमम् ॥ ९ ॥ ददर्शपतितंभूमौक्षतजार्द्रंजटायुषम् ॥ तंदृष्ट्वागिरिशृंगाभंरामोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ १० ॥

धान होकर इन सब जगहको ढूंढ लीजिये, आपकी समान बुद्धिसम्पन्न महात्मा पुरुषोत्तम ॥७॥ आपदके समय कभी नहीं विचलते, जैसे वायुके वेगसे पर्वत नहीं कांपते यह सुन श्रीरामचन्द्रजीनें लक्ष्मणजीके साथ समस्त बन खोजा ॥ ८ ॥ उस समय श्रीरामचन्द्रजीनें बडा कोप करके पैनी धारवाला भयंकर बाणभी धनुषपर चढायाथा, वहां जाते २ पर्वतकी समान आकारवाला बडा भाग्यवान् पक्षी श्रेष्ठ ॥ ९ ॥ जटायुको पृथ्वीपर पडा और रुधिरसे लिपटा हुआ देखा उसको पर्वतके शृंगकी समान आकारवाला देख श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीसे बोले ॥१०॥

जब बाहें काट डालीं गईं तब भयंकर शब्द करता हुआ महाबाहु कबन्ध मेघकी समान घोर शब्द करके गगनमण्डल और दशोंदिशाओं को अपने शब्दसे भर देता हुआ गिर पडा ॥ १० ॥ फिर अपनी दोनों भुजा ओंको कटा हुआ देखकर दानव कबंध रुधिरसे डूबा हुआ दोनों भाइयोंसे बोला कि तुम कौनहो? ॥ ११ ॥ जब कबन्धनें इस प्रकारसे पूछा तब महाबलवान् शुभ लक्षण युक्त काकुत्स्थ लक्ष्मणजी कबंधसे बोले ॥१२॥ यह इक्ष्वाकु वंशमें उत्पन्न हुए हैं और श्रीराम नामसे यह लोकमें विख्यात हैं और हम इनके छोटे भाई हमारा नाम लक्ष्मण है ॥१३॥ सौतेली जननी कैकेयी करके इनकी राज्य प्राप्ति रोकी जाकर सर्व त्यागी करा यह वनको पठाये गये सो यह हमारे और अपनी भार्याके साथ वनमें विचरण करतेथे

सपपातमहाबाहुश्छिन्नबाहुर्महास्वनः ॥ खंचगांचदिशश्चैवनादयन्जलदोयथा ॥ १० ॥ सनिकृत्तौभुजौदृष्ट्वा शोणितौघपरिप्लुतः ॥ दीनःपप्रच्छतौवीरौकौयुवामितिदानवः ॥ ११ ॥ इतितस्यब्रुवाणस्यलक्ष्मणःशुभलक्षणः ॥ शशंसतस्यकाकुत्स्थंकबंधस्यमहाबलः ॥ १२ ॥ अयमिक्ष्वाकुदायादोरामोनामजनैःश्रुतः ॥ तस्यैवावरजंविद्धिभ्रातरंमांचलक्ष्मणम् ॥ १३ ॥ मात्राप्रतिहतेराज्येरामःप्रव्राजितोवनम् ॥ मयासहचरत्येषभार्ययाचमहद्वनम् ॥ १४ ॥ अस्यदेवप्रभावस्यवसतोविजनेवने ॥ रक्षसापहृताभार्यायामिच्छंताविहागतौ ॥ १५ ॥ त्वंतुकोवा किमर्थंवाकबंधसदृशोवने ॥ आस्येनोरसिदीप्तेनभग्नजंघोविचेष्टसे ॥ १६ ॥ एवमुक्तःकबंधस्तुलक्ष्मणेनोत्तरंवचः ॥ उवाचवचनंप्रीतस्तदिंद्रवचनंस्मरन् ॥ १७ ॥ स्वागतंवांनरव्याघ्रौदिष्ट्यापश्यामिवामहम् ॥ दिष्ट्याचेमौनिकृत्तौमेयुवाभ्यांबाहुबंधनौ ॥ १८ ॥

॥ १४ ॥ कि वनमें वास करनेके समय इन देव तुल्य प्रतापशाली श्रीरामचन्द्रजीकी भार्या हरी गई हैं सो उनको ही ढूँढतेर हम लोग यहां पर आये हैं॥१५॥और तुम कौन हो? जो कवन्धकी समान वनमें घूमते हो! तुम्हारी जांघ टूटी हुई हैं, और अतिशय दीप्तयुक्त वदन मंडल छातीमें लगा हुआ है ॥ १६ ॥ जब लक्ष्मणजीनें ऐसा कहा तब इन्द्रके वचनका स्मरण करता हुआ कवन्ध प्रसन्न होकर बोला ॥ १७ ॥ कि आप लोग दोनोंहीं पुरुषोंमें श्रेष्ठहैं । आप अच्छी तरहसे तो आये आज भाग्यसे ही हमनें आप लोगोंको देखाहै और आपनें जो हमारे बंधन रूप हाथ काट डाले

जब हम बूढे होनेंके कारण लडते २ थक गये तब राक्षसनाथ रावणनें खड्ग से हमारे पंख काट डाले ॥ १९ ॥ और सीताजीको लेकर आकाश मार्गमें चला गया, प्रथम तो हम रावण करकै मारेही गये हैं, सो इस समय हमारा वध करना आपको उचित नहीं है ॥ २० ॥ श्रीरामचंद्रजी गिद्धके मुखसे सीताजीके विषयक प्रिय वचन सुनतेही महा धनुष को त्याग करके आलिंगन करलेते हुये ॥ २१ ॥ और शोकसे अवश हो पृथ्वी में गिर कर लक्ष्मणजीके सहित रोदन करनें लगे । यद्यपि श्रीरामचंद्रजी महावीरथे तथापि दूना संताप पाकर बहुत व्याकुल होगये ॥ २२ ॥ उसकाल जटायुको एकान्त में पडे वारंवार ऊंची श्वास लेतेहुये देख शोकसे आतुर हो श्रीरामचंद्रजीने लक्ष्मणजीसे कहा ॥ २३ ॥ हम राज्यसे भ्रष्ट हुये

सीतामादायवैदेहीमुत्पपातविहायसम् ॥ रक्षसानिहतंपूर्वंमांनहंतुंत्वमर्हसि ॥ २० ॥ रामस्तस्यतुविज्ञायसीतासक्तांप्रियांकथाम्॥गृध्रराजंपरिष्वज्यपरित्यज्यमहद्धनुः॥२१॥निपपातावशोभूमौरुरोदसहलक्ष्मणः॥द्विगुणीकृततापार्तोरामोधीरतरोऽपिसन् ॥ २२ ॥ एकमेकायनेकृच्छ्रेनिःश्वसंतंमुहुर्मुहुः ॥ समीक्ष्यदुःखितोरामःसौमित्रिमिदमब्रवीत् ॥ २३ ॥ राज्यंभ्रष्टंवनेवासःसीतानष्टामृतोद्विजः ॥ ईदृशीयंममालक्ष्मीर्दहेदपिहिपावकम् ॥ २४ ॥ संपूर्णमपिचेदद्यप्रतरेयंमहोदधिम् ॥ सोपिनूनंममालक्ष्म्याविशुष्येत्सरितांपतिः ॥ २५ ॥ नास्त्यभाग्यतरोलोकेमत्तोऽस्मिन्सचराचरे ॥ येनेयंमहतीप्राप्तामयाव्यसनवागुरा ॥ २६ ॥ अयंपितुर्वयस्योमेगृध्रराजोमहाबलः ॥ शेतेविनिहतोभूमौममभाग्यविपर्ययात् ॥ २७ ॥

वनमें वास हुआ, सीताजी हरी गई और जटायुकी मृत्यु होगई हमारे खोटे कर्मसे उपस्थित हुई यह विपत्ति अग्निकोभी भस्म कर सकतीहै ॥ २४॥ हम अपने भाग्यकी क्या बात कहैं! हम इस दुःखके संतापसे शान्ति पानेंके लिये तलहीन तटहीन महासागरको भी उतरें! तो वह सरित स्वामी समुद्र भी निश्चयही हमारे दुर्भाग्यके प्रभावसे एक वारही सूख जायगा ॥ २५ ॥ सचराचर लोकोंमें हमसा अधिक मन्दभाग्य और कोई नहीं है क्योंकि हमनें इतनीवडी दुःखकी फांसी पाई है ॥ २६ ॥ यह महावली गिद्धराज हमारे पिताके प्रिय सखाहैं, सो यह भी हमारे

कर लोगे सो हे लक्ष्मण ! हम दनुके श्रीमान् पुत्रहैं ॥७॥ संग्राममें इन्द्रजीके शापसे यह कवंधकासा रूप हमने पायाहै उसका ठीक २ वृत्तान्त यह है कि आगे हमनें अत्युग्र तप करके ब्रह्माजी को प्रसन्न किया ॥ ८ ॥ तव उन्होंने हमको दीर्घायु प्रदान की तिसके पीछे हमारे चित्तमें भ्रम हुआ और जिस्से हमनें गर्वित होकर विचारा कि । इन्द्र हमारा क्या कर सकते हैं क्योंकि अब तौ हमनें दीर्घायु पालीहै ॥ ९ ॥ ऐसी बुद्धिमें स्थिर हो संग्राममें हमनें इन्द्रको ललकारा तव उन्होंनें अपना सौधारका वज्र हमारे ऊपर छोडा जिसके लगनेंसे ॥ १० ॥ मस्तक कनपटी आदि सब अंग हमारे शरीरके भीतर पैठ गये । तिसके पीछे हमने अपनी मौत चाही भी परन्तु उन्होनें हमें यमपुरको न भेजा ॥ ११ ॥ वरन केवल उन्होंनें

इंद्रशापादिदंरूपंप्राप्तमेवंरणाजिरे ॥ अहंहितपसोग्रेणपितामहमतोषयम् ॥ ८ ॥ दीर्घमायुःसमेप्रादात्ततोमांवि भ्रमोऽस्पृशत् ॥ दीर्घमायुर्मयाप्राप्तंकिंमांशक्रःकरिष्यति ॥ ९ ॥ इत्येवंबुद्धिमास्थायरणेशक्रमधर्षयम् ॥ तस्य बाहुप्रमुक्तेनवज्रेणशतपर्वणा ॥ १० ॥ सक्थिनीचाशिरश्चैवशरीरेसंप्रवेशितम् ॥ समयायाच्यमानःसन्नानयद्यम सादनम् ॥ ११ ॥ पितामहवचःसत्यंतदस्त्वितिममाब्रवीत् ॥ अनाहारःकथंशक्तोभग्नसक्थिशिरोमुखः ॥ वज्रिणाभिहतःकालंसुदीर्घमपिजीवितुम् ॥ सएवमुक्तःशक्रोमेबाहूयोजनमायतौ ॥ १२ ॥ तीक्ष्णदंष्ट्रमकल्पयत् ॥ सोऽहंभुजाभ्यांदीर्घाभ्यांसंक्षिप्यास्मिन्वनेचरान् ॥ १३ ॥ तदाचास्यंचमेकुक्षौ सिंहद्वीपिमृगव्याघ्रान्भक्षया मिसमंततः ॥ सतुमामब्रवीदिंद्रोयदारामःसलक्ष्मणः ॥ १४ ॥ ॥ १५ ॥

इतनाही कहा कि जाओ पितामह ब्रह्माजीका वचन सत्य होवे और तुम बहुत दिनोंतक जीवित रहो तव हमनें उनसे कहाकि आपका वज्र लगनेसे हम शिर कनपटीमुख आदि अंगोंसें रहित होगये फिर भला हम किस प्रकारसे विना कुछ खाये पिये दीर्घकालतक जीवन धारण करनें में समर्थ होंगे ॥ १२ ॥ इस बातको सुनकर इन्द्रजीनें कहाकि बहुत अच्छा अब तेरी बाहें एक योजन लंबी हो जायँगी ॥ १३ ॥ यह कह कर उन्होंनें हमारे पेटमें बडे २ दांत सहित मुख भी बना दिया तबसे हम अपनें बडे हाथ फैलाकर वनचरोंको पकड२मुखमें डाललेते हैं॥१४॥ उनमें सिंह व्याघ्र ऋक्ष आदि जो मिलते उनको पकड २ कर हम भक्षण किया करतेथे, इन्द्रजीनें फिर यहभी कहाथा कि जब श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजी॥१५॥

और हमनें उसका क्या अपराध कियाथा, जो वह हमारी प्राणप्यारीको हरण करके लेगया ॥ ५ ॥ हे विहंगवर ! हरणके समय जानकीका वह पूर्ण शशि सदृश मनोहर मुखमंडल कैसा हो गयाथा ? और उन्होंने उस समय क्या कहाथा ॥ ६ ॥ उस राक्षसराज रावणका वीर्य, रूप, और कर्म किस प्रकारकाहै । हे तात ! उसका निवास कहांपरहै ? जो हम पूछतेहैं सो सब बता दीजिये ॥ ७ ॥ तब धर्मात्मा जटायु लड खडाती वाणीसे विलाप करते व पूछते हुये श्रीरामचन्द्रजीसे यह वचन बोला ॥ ८ ॥ राक्षसोंके राजा दुरात्मा रावणनें वायु और दुर्दिन (जबकि आकाशमें बादल आजातेहैं) कारिणी महामायाका आश्रय करके सीताका हरण कियाहै ॥ ९ ॥ हे तात ! जब हम लडते २ बहुत थकगये, तब निशाचर

कथंतच्चंद्रसंकाशंमुखमासीन्मनोहरम् ॥ सीतयाकानिचोक्तानितस्मिन्कालेद्विजोत्तम ॥ ६ ॥ कथंवीर्यःकथंरूपः किंकर्मासचराक्षसः ॥ क्वचास्यभवनंतातब्रूहिमेपरिपृच्छतः ॥ ७ ॥ तमुद्वीक्ष्यसधर्मात्माविलपंतमनाथवत् ॥ वाचाविक्लवयारामभिदंवचनमब्रवीत् ॥ ८ ॥ साहृताराक्षसेंद्रेणरावणेनदुरात्मना ॥ मायामास्थायविपुलांवातदुर्दिनसंकुलाम् ॥ ९ ॥ परिक्लांतस्यमेतातपक्षौछित्त्वानिशाचरः ॥ सीतामादायवैदेहींप्रयातोदक्षिणामुखः ॥ १० ॥ उपरुध्यंतिमेप्राणादृष्टिर्भ्रमतिराघव ॥ पश्यामिवृक्षान्सौवर्णानुशीरकृतमूर्धजान् ॥ ११ ॥ येनयातिमुहूर्तेनसीतामादायरावणः ॥ विप्रनष्टंधनंक्षिप्रंतत्स्वामीप्रतिपद्यते ॥ १२ ॥ विंदोनाममुहूर्तोऽसौनचकाकुत्स्थसोऽबुधत् ॥ झषवद्बडिशंगृह्यक्षिप्रमेवविनश्यति ॥ १३ ॥

हमारे दोनों पंख काट सीताको ग्रहण करके दक्षिण दिशाको चला गया ॥ १० ॥ हे रघुनंदन ! अब हमारे प्राण रुकतेहैं, और दृष्टिभी भ्रमित होतीहै और हमको सब वृक्ष सुवर्णके दिखाई देतेहैं, मानों सब वृक्ष अपनें शिरके केशोंमें खश और फूलोंकी माला पहर रहेहैं ॥ ११ ॥ रावण जिस मुहूर्तमें सीताको हर लेगयाहै, उस मुहूर्तमें धनका स्वामी अपनाबहुत दिनका नष्ट (खोया हुआ) धनभी शीघ्रही प्राप्त करलेताहै, अर्थात् इस मुहूर्तकी खोई चीज शीघ्र मिलजातीहै ॥ १२ ॥ इस मुहूर्तका नाम विंदहै, इस मुहूर्तकी खोई हुई वस्तु शीघ्र मिलजातीहै, सो रावण

सो तुम हमारेऊपर उपकार करके हमारे ऊपर दया करो उसको बताओ और हाथियोंके दातोंसे टूटे हुये सूखे काठ बटोरकर तुमको ॥ २४ ॥
गढा खोद एक उसमें हे वीर ! हम तुमको जलादेंगे अब जो पुरुष सीताको हरण करके जिस जगह लेगयाहै. सो समस्त हमसे कहो ॥ २५ ॥ यदि
यथार्थही तुम इस बातको जानतेहो तौ इस्से हमारा बडा मंगल हो जायगा, जब श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा तो वह दानवश्रेष्ठ ॥ २६॥ अच्छा बोल
नेंवाला श्रीरामचंद्रजीसे बडी कुशलताके साथ कहनें लगा हमको अभी दिव्यज्ञान नहींहै इस कारण यह नहीं जानते कि जानकी कहांहैं ॥ २७ ॥
परन्तु जो तुमको उन्हें बतावेगा, उसको हम तुम्हें बतामेंगे, आप हमें भस्म कीजिये फिर हम अपना पहला रूप प्राप्त करके जोकि रावणको

कारुण्यंसदृशंकर्तुमुपकारेणवर्तताम् ॥ काष्ठान्यानीयभग्नानिकालेशुष्काणिकुंजरैः ॥२४॥धक्ष्यामस्त्वांवयंवीरश्वभ्रे
महतिकल्पिते ॥ सत्वंसीतांसमाचक्ष्वयेनवायत्रवाहृता ॥ २५ ॥ कुरुकल्याणमत्यर्थंयदिजानासितत्त्वतः ॥ एवमु
क्तस्तुरामेणवाक्यंदनुरनुत्तमम् ॥ २६ ॥ प्रोवाचकुशलोवक्तावक्तारमपिराघवम् ॥ दिव्यमस्तिनमेज्ञानंनाभिजाना
मिमैथिलीम् ॥ २७ ॥ यस्तांवक्ष्यतितंवक्ष्येदग्धःस्वंरूपमास्थितः ॥ योभिजानातितद्रक्षस्तद्वक्ष्येरामतत्परम् ॥ २८॥
अदग्धस्यहिविज्ञातुंशक्तिरस्तिनमेप्रभो ॥ राक्षसंतुमहावीर्यंसीतायेनहृतातव ॥ २९ ॥ विज्ञानंहिमहद्भ्रष्टंशापदोषेण
राघव ॥ स्वकृतेनमयाप्राप्तंरूपंलोकविगर्हितम् ॥ ३० ॥ किंतुयावन्नयात्यस्तंसविताश्रांतवाहनः ॥ तावन्मामवटेक्षि
प्त्वादहरामयथाविधि ॥ ३१ ॥

जानताहै उसको आपसे बतादेंगे ॥ २८ ॥ हे प्रभो ! जिस महावीर्य राक्षसनें आपकी सीताजीको हरण कियाहै सो बिना भस्म हुये हम किसी
प्रकारसेभी उनको न जान सकेंगे ॥ २९ ॥ पहले हममें बडा विज्ञानथासो इस शापके प्रभावसे हमारा वह दिव्यज्ञान नष्ट होगया, और हम
अपनेही कर्मके दोषसे ऐसे संसारमें निन्दित रूपको प्राप्त हुयेहैं ॥ ३० ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! जबतक सूर्य भगवानके घोडे थककर अस्ता
चलको न चले जांय क्योंकि अब अस्ताचलको जानाही चाहतेहैं तिससे पहलेही आप हमको गढेमें डालकर यथा विधिसे भस्म कर दीजिये ॥३१॥

और हमारे निमित्त पितृपितामहप्राप्त महत् राज्य परित्याग करके इनगृध्रराजने प्राण छोडेहैं ॥ २३ ॥ हम जानतेहैं कि सभी जातियोंमें शूरता युक्त शरण देनेवाले धर्माचरण करनेंवाले साधु देखे जातेहैं, सो मनुष्यादिके सिवाय पक्षिआदि तिर्यग्योनिमेंभी ऐसे लोग देखे जातेहैं॥ २४॥ हे सौम्य! हमारेहीलिये इस गृध्रनें प्राण छोडेहैं इसलिये इसकी मृत्युसे सीताके हरणसेभी अधिक हमको दुःख हुआहै ॥२५॥महा यशमान श्रीमान् राजा दशरथजी जिस प्रकारसे हमारे पूजनीय और माननीयहैं परोपकार करनें और पिताजीका सखा होनेंसे यह विहंगमश्रेष्ठभी हमको वैसाही है ॥ २६ ॥ हे सुमित्रानंदन! तुम काठ ले आओ हम अग्नि उत्पन्न करके हमारे लिये प्राण दिये हुए इन गृध्रराजका दाह करेंगे ॥ २७ ॥ हे लक्ष्मण! यह

गृध्रराज्यंपरित्यज्यपितृपैतामहंमहत् ॥ ममहेतोरयंप्राणान्मुमोचपतगेश्वरः ॥२३॥ सर्वत्रखलुदृश्यंतेसाधवोधर्मचारिणः ॥ शूराःशरण्याःसौमित्रेतिर्यग्योनिगतेष्वपि॥२४॥सीताहरणजंदुःखंनमेसौम्यतथागतम् ॥यथाविनाशोगृध्रस्यमत्कृतेचपरंतप ॥ २५ ॥ राजादशरथःश्रीमान्यथाममममहायशाः ॥ पूजनीयश्चमान्यश्चतथायंपतगेश्वरः॥ २६॥ सौमित्रेहरकाष्ठानिनिर्मथिष्यामिपावकम् ॥ गृध्रराजंदिधक्ष्यामिमत्कृतेनिधनंगतम् ॥ २७ ॥ नाथंपतगलोकस्यचितिमारोपयाम्यहम् ॥ इमंधक्ष्यामिसौमित्रेहतंरौद्रेणरक्षसा ॥ २८ ॥ यागतिर्यज्ञशीलानामाहिताग्नेश्चयागतिः ॥ अपरावर्तिनांयाचयाचभूमिप्रदायिनाम् ॥ २९ ॥ मयात्वंसमनुज्ञातोगच्छलोकाननुत्तमान् ॥ गृध्रराजमहासत्त्वसंस्कृतश्चमयाव्रज ॥ ३० ॥ एवमुक्त्वाचितांदीप्तामारोप्यपतगेश्वरम् ॥ ददाहरामोधर्मात्मास्वबंधुमिवदुःखितः ॥३१॥ रामोऽपिसहसौमित्रिर्वनंयात्वासवीर्यवान् ॥ स्थूलान्हत्वामहारोहीननुतस्तारतंद्विजम् ॥ ३२ ॥

जटायु पक्षियोंका राजा, और घोर कर्म करनेंवाले राक्षसके हाथसे मारेगये हैं, हम इनका चितापर रखकर दाह करेंगे ॥ २८॥ यज्ञशील और आहिताग्नियोंकी जो गति होती है, समरसे पराङ्मुख न होनेंवाले; और भूमि दान करनें वाले पुरुषोंकी जो गति होती है॥ २९ ॥ हे महाबलवान् गृध्रराज! तुम हम करके संस्कृत और हमारीही आज्ञासे उन सब श्रेष्ठगतियोंको प्राप्त होवो ॥३०॥ धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकारसे यह कहकर दुःखित हो अपने बंधुकी समान पक्षिराज जटायुको जलती हुई चिता में चढाकर दाह करते हुए॥ ३१ ॥ फिर वह महायशवान् वीर्यवान् श्री

सोंतरिक्षगतोवाक्यंकबंधोराममब्रवीत् ॥ शृणुराघवतत्त्वेनयथासीतामवाप्स्यसि ॥ ७ ॥ रामषड्युक्तयोलोकेयाभिःसर्वंविमृश्यते ॥ परिमृष्टोदशांतेनदशाभागेनसेव्यते ॥ ८ ॥ दशाभागगतोहीनस्त्वंहिरामसलक्ष्मणः ॥ यत्कृतेव्यसनंप्राप्तंत्वयादारप्रधर्षणम् ॥ ९ ॥ तदवश्यंत्वयाकार्यःससुहृत्सुहृदांवर ॥ अकृत्वानहितेसिद्धिमहंपश्यामिचिंतयन् ॥ १० ॥ श्रूयतांरामवक्ष्यामिसुग्रीवोनामवानरः ॥ भ्रात्रानिरस्तःक्रुद्धेनवालिनाशक्रसूनुना ॥ ११ ॥ ऋष्यमूकेगिरिवरेपंपापर्यंतशोभिते ॥ निवसत्यात्मवान्वीरश्चतुर्भिःसहवानरैः ॥ १२ ॥ वानरेंद्रोमहावीर्यस्तेजोवानमितप्रभः ॥ सत्यसंधोविनीतश्चधृतिमान्मतिमान्महान् ॥ १३ ॥

शरीरका प्रभासे दशो दिशाओंको प्रकाशता हुआ ॥ ६ ॥ आकाशमें उठ श्रीरामचंद्रजीकी ओर दृष्टि करके कहनें लगा कि हे रघुनंदन ! जिस उपायसे आप सीताको प्राप्त कर सकेंगे वह रीति ठीकर सुनो ॥ ७ ॥ सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय, यह जो छैः युक्ति व उपायहैं, सो राजा लोग इनकी सहायतासेही सब वार्तोका विचार करतेहैं और विना इनका आश्रय लिये किसी कार्यकीभी सिद्धि नहीं होती ॥ ८ ॥ सो इसमें दुर्दशाके समय समाश्रय नामक जो उपायहै, उसका आश्रय करना कहाहै सो जब बहुतही दुर्दशा होजाय तब लोग उसका आश्रय करतेहैं सो इस समय आपकोभी इसी समाश्रयके आश्रय लेनेंका प्रयोजन हुआहै क्योंकि इस समय आप लक्ष्मणजीके सहित वैसेही दुर्दशासे ग्रसे जाकर राज्यादिसे भ्रष्ट हुएहैं ॥ ९ ॥ और इसी कारणसे आपके ऊपर तुम्हारी स्त्रीका हरण स्वरूप महा दुःखभी आनकर पडाहै । इस कारणसे हे राजवर! आपको दूसरेके सहित जिसका परिवारभी बहुत हो; उस्से अवश्यही मित्रता करनी होगी, हमनें भली भांतिसे सोच विचारकर देख लियाहै कि ऐसे उपायका अवलंबन न करनेंसे आपके कार्यकी सिद्धि नहीं होगी ॥ १० ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! सुनिये एक सुग्रीव नामक वानरहै उसके भाईका नाम जो कि इन्द्रका पुत्रहै वालि है; उस वालिनें क्रोधकर सुग्रीवको घरसे निकाल दियाहै ॥ ११ ॥ अब वह सुग्रीव ऋष्यमूक पर्वतपर अपनें चार वानरोंके सहित रहताहै । यह ऋष्यमूक पर्वतके चारों ओर पंपानदीतक शोभित हो रहीहै ॥ १२ ॥ वह वानरेन्द्र सुग्रीव महा

णजी दोनों वहांसे चलकर वनमें सीताजीको ढूंढते भालते हुए पश्चिमदिशाकी ओर चले ॥ १ ॥ और धनुष बाण खड्ग हाथमें लेकर दोनों भ्राता जिस मार्गमें तबतक कोई मनुष्य नहीं गयाथा, उसी पश्चिम दक्षिण कोणवाले मार्गको चले ॥ २ ॥ उस मार्गमें अनेक प्रकारके झाड वृक्ष वल्ली लता आदि लगनेंके कारण वह चारोंओरसे घिर रहाथा, इसी कारणसे वह अतिभयानक वा दुर्गम बोध होताथा॥३॥उस मार्गमें होकर फिर वह महाबलवान् दोनों रघुवीर दक्षिणदिशाकी ओर बडी वेगसे महावनमें हो करके चले ॥४॥इस प्रकारसे जाते२जनस्थानसे तीन कोश दूर क्रौञ्च नामक घनें वनमें पहुँचे॥५॥यह वन अतिशय दुर्गम देखनेंमें बहुत सारे मेघोंकी समान महाघनाथा, अनेक प्रकारके सुन्दर फूलोंके खिले रहनेंसे मानों वह सब भांतिसे

तांदिशंदक्षिणांगत्वाशरचापासिधारिणौ ॥ अविप्रहतमैक्ष्वाकौपंथानंप्रतिपेदतुः ॥ २ ॥ गुल्मैर्वृक्षैश्चबहुभिर्लताभिश्चप्रवेष्टितम् ॥ आवृतंसर्वतोदुर्गंगहनंघोरदर्शनम् ॥ ३ ॥ व्यतिक्रम्यतुवेगेनगृहीत्वादक्षिणांदिशम् ॥ सुभीमंतन्महारण्यंव्यतियातौमहाबलौ ॥ ४ ॥ ततःपरंजनस्थानात्त्रिक्रोशंगम्यराघवौ ॥ क्रौंचारण्यंविविशतुर्गहनंतौमहौजसौ ॥५॥ नानामेघघनप्रख्यंप्रहृष्टमिवसर्वतः ॥ नानावर्णैःशुभैःपुष्पैर्मृगपक्षिगणैर्युतम् ॥ ६ ॥ दिदृक्षमाणौवैदेहींतद्वनंतौविचिन्वतुः ॥ तत्रतत्रावतिष्ठंतौसीताहरणदुःखितौ ॥ ७ ॥ ततःपूर्वेणतौगत्वात्रिक्रोशंभ्रातरौतदा ॥ क्रौंचारण्यमतिक्रम्यमतंगाश्रममंतरे ॥ ८ ॥ दृष्ट्वातुतद्वनंघोरंबहुभीममृगद्विजम् ॥ नानावृक्षसमाकीर्णंसर्वंगहनपादपम् ॥ ९ ॥ ददृशातेगिरौतत्रदरींदशरथात्मजौ ॥ पातालसमगंभीरांतमसानित्यसंवृताम् ॥ १० ॥

हर्षपूरितथा, और मृग व पक्षीभी उसमें बहुतथे ॥६॥दोनों भ्राता सीताजीके हरणसे दुःखितहो और उनके दर्शनकी कामनासे वह वन ढूंढते२ शान्तिके वश स्थान२ पर खडे हो जानें लगे ॥७॥ फिर वह पूर्वकी ओर तीन कोश चलकर क्रौंचारण्यको नांघकर मातंग मुनिके आश्रमको देखते हुए ॥ ८ ॥ उस आश्रमका वन महा भयंकरथा, और भयंकर स्वभाववाले अनेक जातिके मृग और पक्षीभी वहां बहुतथे, और अनेक प्रकारके वृक्षोंसे घिरे रहनेंके कारण वह वन बडा घनाथा ॥ ९ ॥ फिर उस वनमें श्रीरामचंद्र व लक्ष्मणजीनें पातालकी समान गहरी एक गिरी गुफा देखी, इस

शरीरकी प्रभासे दशो दिशाओंको प्रकाशता हुआ ॥ ६ ॥ आकाशमें उठ श्रीरामचंद्रजीकी ओर दृष्टि करके कहनें लगा कि हे रघुनंदन ! जिस उपायसे आप सीताको प्राप्त कर सकेंगे वह रीति ठीकरसुनो ॥ ७ ॥ सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय, यह जो छैः युक्ति व उपायहैं, सो राजा लोग इनकी सहायतासेही सब वातोंका विचार करतेहैं और विना इनका आश्रय लिये किसी कार्यकीभी सिद्धि नहीं होती ॥ ८ ॥ सो इसमें दुर्दशाके समय समाश्रय नामक जो उपायहै, उसका आश्रय करना कहाहै सो जब बहुतही दुर्दशा होजाय तब लोग उसका आश्रय करतेहैं सो इस समय आपकोभी इसी समाश्रयके आश्रय लेनेंका प्रयोजन हुआहै क्योंकि इस समय आप लक्ष्मणजीके सहित वैसेही दुर्दशासे ग्रसे जाकर

सोंतरिक्षगतोवाक्यंकबंधोराममब्रवीत् ॥ शृणुराघवतत्त्वेनयथासीतामवाप्स्यसि ॥ ७ ॥ रामषड्युक्तयोलोकेयाभिःसर्वंविमृश्यते ॥ परिमृष्टोदशांतेनदशाभागेनसेव्यते ॥ ८ ॥ दशाभागगतोहीनस्त्वंहिरामसलक्ष्मणः ॥ यत्कृतेव्यसनंप्राप्तंत्वयादारप्रधर्षणम् ॥ ९ ॥ तदवश्यंत्वयाकार्यःससुहृत्सुहृदांवर ॥ अकृत्वानहितेसिद्धिमहंपश्यामिचिंतयन् ॥ १० ॥ श्रूयतांरामवक्ष्यामिसुग्रीवोनामवानरः ॥ भ्रात्रानिरस्तःक्रुद्धेनवालिनाशक्रसूनुना ॥ ११ ॥ ऋष्यमूकेगिरिवरेपंपापर्यंतशोभिते ॥ निवसत्यात्मवान्वीरश्चतुर्भिःसहवानरैः ॥ १२ ॥ वानरेंद्रोमहावीर्यस्तेजोवानमितप्रभः ॥ सत्यसंधोविनीतश्चधृतिमान्मतिमान्महान् ॥ १३ ॥

राज्यादिसे भ्रष्ट हुएहैं ॥ ९ ॥ और इसी कारणसे आपके ऊपर तुम्हारी स्त्रीका हरण स्वरूप महा दुःखभी आनकर पडाहै । इस कारणसे हे राजवर! आपको दूसरेके सहित जिसका परिवारभी बहुत हो; उस्से अवश्यही मित्रता करनी होगी, हमनें भली भांतिसे सोच विचारकर देखलियाहै कि ऐसे उपायका अवलंबन न करनेंसे आपके कार्यकी सिद्धि नहीं होगी ॥ १० ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! सुनिये एक सुग्रीव नामक वानरहै उसके भाईका नाम जो कि इन्द्रका पुत्रहै वालि है; उस वालिनें क्रोधकर सुग्रीवको घरसे निकाल दियाहै ॥ ११ ॥ अब वह सुग्रीव ऋष्यमूक पर्वतपर अपनें चार वानरोंके सहित रहताहै । यह ऋष्यमूक पर्वतके चारों ओर पंपानदीतक शोभित हो रहीहै ॥ १२ ॥ वह वानरेन्द्र सुग्रीव महा

वहां पहुँचकर सत्यवक्ता, शीलवान् पवित्र स्वभाव और परम तेजस्वी लक्ष्मणजी हाथ जोड कर तेजसे प्रदीप्तमान श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥२० ॥ हे भ्रातः! हमारा बांया हाथ जल्दी२ फडकताहै और मन मानो बहुत उकसाताहै, और प्रायः दुर्लक्षणभी बहुत दृष्टि आतेहैं ॥ २१ ॥ इस्से हे आर्य! आप सज करके तैयार होरहैं; और हमारी बात सुनें यह सब अपशकुन स्पष्टही कहे देतेहैं कि भय आयाही चाहताहै ॥ २२ ॥ परन्तु विजय हमारी अवश्य होगी। क्योंकि यह अति भयानक वञ्चुलक पक्षी मानों हमारी युद्ध विजय कहता हुआ शब्द कर रहाहै ॥ २३ ॥ फिर जब महा

लक्ष्मणस्तुमहातेजाःसत्यवाञ्छीलवाञ्छुचिः ॥ अब्रवीत्प्रांजलिर्वाक्यंभ्रातरंदीप्ततेजसम् ॥ २० ॥ स्पंदतेमेदृढं बाहुरुद्विग्नमिवमेमनः ॥ प्रायशश्चाप्यनिष्टानिनिमित्तान्युपलक्षये ॥ २१ ॥ तस्मात्सज्जीभवार्यत्वंकुरुष्ववचनं मम ॥ ममैवहिनिमित्तानिसद्यःशंसंतिसंभ्रमम् ॥ २२ ॥ एषवंचुलकोनामपक्षीपरमदारुणः ॥ आवयोर्विजयं युद्धेशंसन्निवविनर्दति ॥ २३ ॥ तयोरन्वेषतोरेवंसर्वतद्वनमोजसा ॥ संजज्ञेविपुलःशब्दःप्रभंजन्निवतद्वनम् ॥ २४ ॥ संवेष्टितमिवात्यर्थंगहनंमातरिश्वना ॥ वनस्यतस्यशब्दोऽभूद्वनमापूरयन्निव ॥ २५ ॥ तंशब्दंकांक्षमाणस्तुरामःखड्गी सहानुजः ॥ ददर्शसुमहाकायंराक्षसंविपुलोरसम् ॥ २६ ॥ आसेदतुश्चतद्रक्षस्तावुभौप्रमुखेस्थितम् ॥ विवृद्धमशिरो ग्रीवंकबंधमुदरेमुखम् ॥ २७ ॥

तेजस्वी श्रीराम लक्ष्मणजी उस समस्त वनको ढूंढ रहेथे कि इतनेमेंही एक विपुल शब्द मानों उस वनको विध्वंस करता हुआ होनें लगा ॥२४॥ उस वनमें एकाएकी प्रचंड पवन चलनें लगा, और इस वायुके चलनेंसे वृक्ष आपसमें टकरानें लगे। तब उसमेंसे एक शब्द समस्त वनको शब्दाय मान करता उत्पन्न हुआ ॥२५॥ श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके सहित खड्ग धारण करके "यह शब्द कहांसे हुआ" यह जाननेंके लिये अभिलाषी हो इधर उधर देखतेथे कि चौंडी छातीवाला बृहदाकार एक राक्षस सहसा देख पडा॥२६॥उसका पेट बहुत बडा व नाम उसका कवन्धथा, वह श्रीरामचं

वानरनाथसे ॥ २१ ॥ सत्यताके साथ मित्रताई कीजिये हे राघव! वह वानरश्रेष्ठ सब स्थानोंमें कपि कुंजरोंके साथ जाजाकर ॥ २२ ॥ फिर भली
भांतिसे नरमांसके खानेंवाले राक्षसोंकेभी लोकमें चला जायगा हे राघव! लोकमें ऐसा कोई स्थान नहीं जिसे सुग्रीव न जानता हो ॥ २३ ॥ हे शत्रु
ओंके तपानेंवाले रघुनन्दनजी! सहस्रकिरण सूर्य भगवानकी किरणें जहांतक पडती हैं, उतनें बीचमें जितनी २ नदियां और बडे २ पर्वत व
पर्वतोंकी गुफा हैं ॥ २४ ॥समस्त जगत्में जहां कहीं आपकी भार्या जानकीजी होंगी सो हे रघुनन्दन! यह सुग्रीव ढुंढवायकर आपसे मिला देगा
कारणकि वह तुरंत सब दिशाओंमें बडे शरीरवाले वानरोंको पठावेगा ॥ २५ ॥ व तुम्हारे वियोगसे शोच करती हुई श्रीजानकीजीको वह

कुरुराघवसत्येनवयस्यंवनचारिणम् ॥ सहिस्थानानिकात्स्न्येंनसर्वाणिकपिकुंजरः ॥ २२ ॥ नरमांसाशिनांलोकेनै
पुण्यादधिगच्छति ॥ नतस्याविदितंलोकेकिंचिदस्तिहिराघव ॥ २३ ॥ यावत्सूर्यःप्रतपतिसहस्रांशुःपरंतप ॥ सनदी
विंपुलाञ्छैलान्गिरिदुर्गाणिकंदरान् ॥२४॥ अन्विष्यवानरैःसार्धपत्नींतेधिगमिष्यति ॥वानरांश्चमहाकायान्प्रेषयिष्य
तिराघव ॥ २५ ॥ दिशोविचेतुंतांसीतांत्वद्वियोगेनशोचतीम् ॥ अन्वेष्यतिवरारोहांमैथिलींरावणालये ॥ २६ ॥ स
मेरुशृंगाग्रगतामनिंदितांप्रविश्यपातालतलेपिवाश्रिताम् ॥ प्लवंगमानामृषभस्तवप्रियांनिहत्यरक्षांसिपुनःप्रदास्य
ति ॥ २७ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेद्विसप्ततितमःसर्गः ॥ ७२ ॥ दर्शयित्वातु
रामायसीतायाःपरिमार्गणे ॥ वाक्यमन्वर्थमर्थज्ञःकबंधःपुनरब्रवीत् ॥ १ ॥ एषरामशिवःपंथायत्रैतेपुष्पिताद्रुमाः ॥
प्रतीचींदिशमाश्रित्यप्रकाशंतेमनोरमाः ॥ २ ॥

रावणके घरमें हुई तौ वहांसेभी ढूंढ लाकर आपको मिला देंगे ॥ २६ ॥ अनाथा निंदारहित सीताजी मेरु पर्वतके शिखरके अग्रभागमें हों
अथवा पातालमें निवास करतीं हों कपिराज सुग्रीवजी वहीं जाकर राक्षसोंका नाश करकै आपकी भार्या सीताको ले आवेंगे और आपसे
मिला देंगे ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आर० द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥ कबन्ध इस प्रकारसे सीताजीके शोधका उपाय
बताकर फिरभी श्रीरामचन्द्रजीसे यह अर्थयुक्त वचन बोला ॥ १ ॥ कि हे श्रीरामचन्द्रजी यही वहांका कल्याणदायक मार्ग है जिधर यह फूले हुए मनोहर

दोनों बडी २ बाहें फैलाकर राम और लक्ष्मण दोनोंकोही बलसे पीडन करके दोनोंको एक साथही ग्रहण करलिया ॥ ३५ ॥ दृढ धनुष और खड्ग धारण किये हुए तीव्र तेजमान्! महाबलवान्, महाबाहु, वह दोनों भ्राता कवन्धसे खेंचे जाकर अवश होगये ॥ ३६ ॥ श्रीरामचन्द्रजी तो स्वभावसेही धीर्यवान् और शूरतासंपन्नथे, वह तो कुछभी व्याकुल न हुये, परन्तु लक्ष्मणजी बालक और अनाथ होनेंके कारण एकवारही महा व्याकुल होगये ॥ ३७ ॥ और शोक करके राघवनंदन श्रीरामचन्द्रजीसे बोले कि हे वीर! देखो हम विवश होकर राक्षसके वश हुयेहैं ॥ ३८ ॥ इस कारण एक मात्र हमकोही देकर आप छूट जाइये। और हमें इस राक्षसके आगे बलिकी भांति देकर यथा सुखसे आप भाग जाइये ॥ ३९॥

खड्गिनौदृढधन्वानौतिग्मतेजौमहाभुजौ ॥ भ्रातरौविवशंप्राप्तौकृष्यमाणौमहाबलौ ॥ ३६ ॥ तत्रधैर्याच्चशूरस्तुराघवो नैवविव्यथे॥ बाल्यादनाश्रयाच्चैवलक्ष्मणस्त्वभिविव्यथे ॥ ३७ ॥उवाचचविषण्णःसन्राघवंराघवानुजः ॥ पश्यमां विवशंवीरराक्षसस्यवशंगतम् ॥ ३८ ॥ मयैकेनतुनिर्युक्तःपरिमुच्यस्वराघव ॥ मांहिभूतबलिंदत्वापलायस्वयथासु खम् ॥ ३९ ॥ अधिगंतासिवैदेहीमचिरेणेतिमेमतिः ॥ प्रतिलभ्यचकाकुत्स्थपितृपैतामहींमहीम् ॥ ४० ॥ तत्रमांरामरा ज्यस्थःस्मर्तुमर्हसिसर्वदा ॥ लक्ष्मणेनैवमुक्तस्तुरामःसौमित्रिमब्रवीत् ॥ ४१ ॥ मास्मत्रासंवृथावीरनहित्वादृग्वि षीदति ॥ एतस्मिन्नंतरेक्रूरोभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ ४२ ॥ तावुवाचमहाबाहुःकबंधोदानवोत्तमः ॥ कौयुवांवृषभस्कंधौ महाखड्गधनुर्धरौ ॥ ४३ ॥ घोरंदेशमिमंप्राप्तौदैवेनममचाक्षुषौ ॥ वदतंकार्यमिहवांकिमर्थंचागतौयुवाम् ॥ ४४ ॥

हे काकुत्स्थ राम! हम निश्चयही समझतेहैं कि आप शीघ्रही वैदेहीको प्राप्त होंगे, और पिता पितामहका राज्यभी शीघ्रही आप करेंगे ॥ ४० ॥ अब इस समय यही प्रार्थनाहै कि आप राज्य पदपर प्रतिष्ठित होकर आप सदाही हमको याद करते रहा कीजिये जब लक्ष्मणजीनें इस प्रकार कहा तब श्रीरामचंद्रजी उनसे बोले ॥ ४१ ॥ कि हे वीर! वृथाभीत न हूजिये तुम सरीखे पुरुष कभी व्यथित नहीं होतेहैं दोनों भाइयोंसे इसी समय वह क्रूर ॥ ४२ ॥ महाबाहु, दानवश्रेष्ठ कवन्ध कहनें लगा कि तुम्हारे कंधे बैलोंकी समान ऊँचेहैं और हाथमें तुमने बडे २ धनुष और खड्ग धारण कियेहैं, सो बताओ कि तुम कौनहो? ॥ ४३ ॥ तुम लोग भाग्यसेही इस भयंकर देशमें आकर हमारे नेत्रोंके सन्मुख पडेहो तुम्हारा

आदि पक्षी ॥१२॥ पम्पाके जलमें पैरते हुए मनोहर शब्द बोलते हैं, वह मनुष्योंको देखकरभी नहीं डरते, क्योंकि पहले उन्हें किसीनें कभी नहीं मारा है ॥१३॥ हे श्रीरघुनंदन ! आप बडे शरीरवाले घीके पिंडकी समान इन सब पक्षियोंको, और रोहित, चक्रतुंड व नल नामक मछलियोंको वहां पर भक्षणकीजिये ॥ १४ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! जिनके पंख नहीं होते, और बडे शरीर जिनके होतेहैं, त्वक्, और बहुत कांटों करके युक्त ऐसी श्रेष्ठ मछलियोंको बाणोंसे मारकर और अग्निमें भूंनकर आप पंपासर पर भक्षण कीजिये ॥ १५ ॥ इसके सिवाय लक्ष्मणजी आपके प्रति भक्तिके वश होकर वहांके कमल पुष्पोंमें विचरती हुई उक्त मछलियोंके समूह आपको देंगे ॥ १६ ॥ पंपाका जल कमल पुष्पोंकी सुगंधिसे युक्त रोग

वल्गुस्वराणिकूजंतिपंपासलिलगोचराः ॥ नोद्विजंतेनरान्दृष्ट्वावधस्याकोविदाःपुरा ॥ १३ ॥ घृतपिंडोपमान्स्थूलांस्तान्द्विजान्भक्षयिष्यथ ॥ रोहितांश्चक्रतुंडांश्चनलमीनांश्चराघव ॥ १४ ॥ पंपायामिषुभिर्मत्स्यांस्तत्रामवरान्हतान् ॥ निस्त्वक्पक्षानयस्तप्तानकृशानेककंटकान् ॥ १५ ॥ तवभक्त्यासमायुक्तोलक्ष्मणःसंप्रदास्यति ॥ भृशंतान्खादतोमत्स्यान्पंपायाःपुष्पसंचये ॥ १६ ॥ पद्मगंधिशिवंवारिसुखशीतमनामयम् ॥ उद्धृत्यसतदाक्लिष्टंरूप्यस्फटिकसंनिभम् ॥ १७ ॥ अथपुष्करपर्णेनलक्ष्मणःपाययिष्यति ॥ स्थूलान्गिरिगुहाशय्यान्वानरान्वनचारिणः ॥ १८ ॥ सायाह्नेविचरन्रामदर्शयिष्यतिलक्ष्मणः ॥ अपांलोभादुपावृत्तान्वृषभानिवनर्दतः ॥ १९ ॥ स्थूलान्पीतांश्चपंपायांद्रक्ष्यसित्वंनरोत्तम ॥ सायाह्नेविचरन्रामविटपीमाल्यधारिणः ॥ २० ॥

विहीन स्वास्थकर सुशीतल, चांदी और स्फटिक मणिके समान निर्मल जिसके पीनेंसे कोईभी क्लेश नहीं होता ॥ १७ ॥ उस समयमें लक्ष्मणजी पुरैनके पत्तोंका दोना बना वह जल लाकर आपको पिलावेंगे और बडे२ वन्दर पर्वतोंकी कन्दराओं और वृक्षोंके रहनेंवाले ॥ १८ ॥ सन्ध्याके समय घूमनेके कालमें लक्ष्मणजी आपको दिखावेंगे, वह बडे २ वानर जल पीनेंके अर्थ बैलोंके समान शब्द करते हुये आतेहैं ॥ १९ ॥ हेनरश्रेष्ठ ! फिर पंपापर बडे हृष्ट पुष्ट नीले पीलेभी बहुतसें वन्दर वृक्षोंकी शाखा हाथमें लिये हुये आप देखेंगे ॥ २० ॥

श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मण इन दोनों भाइयोंको अपनी बाहोंकी फांसीमें बँधा हुआ वहां खडा देख कबन्ध उनसे बोला ॥ १ ॥ अरे क्षत्रिय श्रेष्ठ! दोनों जन! हम भूखे हुए हैं, विधातानें तुम दोनोंको चेतना रहित करके हमारे खानेंको भेज दिया है। इसलिये हमको देख अब तुम क्या राह देख रहे हो तैयार होवो॥ २ ॥ उसके ऐसे वचन सुनकर लक्ष्मणजी दुःखित व विक्रम प्रकाश करनेंमें कृत निश्चय होकर उस कालके अनुसार वाक्य श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ ३ ॥ कि यह राक्षसाधम हम दोनोंही जनको पकडे हुए है इस कारण आइये हम अभी दो खड्गोंसे इसके बडे भारी दोनों हाथ काट डालें ॥ ४॥ यह बडे आकारवाला भयंकर राक्षस केवल अपनी भुजाओंकी ही सहायतासे सब लोकोंको सर्व प्रकारसे जीत अब

तौतुतत्रस्थितौदृष्ट्वाभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ बाहुपाशपरिक्षिप्तौकबंधोवाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥ तिष्ठतःकिंनुमांदृष्ट्वाक्षुधार्तंक्षत्रियर्षभौ ॥ आहारार्थंतुसंदिष्टौदैवेनहतचेतनौ ॥ २ ॥ तच्छ्रुत्वालक्ष्मणोवाक्यंप्राप्तकालंहितंतदा ॥ उवाचार्तिंसमापन्नोविक्रमेकृतनिश्चयः ॥ ३ ॥ त्वांचमांचपुरातूर्णमादत्तेराक्षसाधमः ॥ तस्मादसिभ्यामस्याशुबाहूछिंदावहेगुरू ॥ ४ ॥ भीषणोऽयंमहाकायोराक्षसोभुजविक्रमः ॥ लोकंह्यतिजितंकृत्वाह्यावांहंतुमिहेच्छति ॥ ५ ॥ निश्चेष्टानांवधोराजन्कुत्सितोजगतीपतेः ॥ क्रतुमध्योपनीतानांपशूनामिवराघव ॥ ६ ॥ एतत्संजल्पितंश्रुत्वातयोःक्रुद्धस्तुराक्षसः ॥ विदार्यास्यंततोरौद्रंतौभक्षयितुमारभत् ॥ ७ ॥ ततस्तौदेशकालज्ञौखड्गाभ्यामेवराघवौ॥अच्छिंदतांसुसंहृष्टौबाहूतस्यांसदेशयोः ॥८॥ दक्षिणोदक्षिणंबाहुमसक्तमसिनाततः ॥ चिच्छेदरामोवेगेनसव्यंवीरस्तुलक्ष्मणः ॥९॥

हम तुमको मारनेंके लिये तैयार हुआ है ॥ ५ ॥ परन्तु हे राजन्! यज्ञमें आये हुए छागोंकी समान चेष्टा रहित होकर मरना क्षत्रियोंके लिये बहुत ही निंदाकी बात है ॥ ६ ॥ श्रीराम लक्ष्मणजीकी ऐसी वार्ता सुन निशाचर कबंध क्रोधित होकर मुँहवाय उनको भक्षण करनेंके लिये तैयार हुआ ॥ ७ ॥ तब देश और कालके जाननेंवाले श्रीराम और लक्ष्मण दोनों भ्राताओंनें खड्ग ग्रहण करके उसकी दोनों भुजायें खंभे परसे काट डालीं ॥ ८ ॥ चतुर श्रीरामचन्द्रजीनें उसकी दाहिनी भुजा और वीर्यवान् लक्ष्मणजीनें उसकी बांई भुजा शीघ्रतासे काट डाली ॥ ९ ॥

श्रम काननको नहीं खल बला सकते ॥२९॥ इसी कारणसे वह वन मतंग वनके नामसे प्रसिद्ध हुआ है. हे रघुनंदन! वह वन देवताओंके नंदन वनकी समानहै रमणीय है ॥ ३० ॥ उसमें अनेक प्रकारके पक्षी सुहावनी बोली बोलते हैं वहां प्रवेश करके आप अच्छी तरहसे विहारकर सकेंगे और पंपाके सामनेही वृक्ष समूहसे सुशोभित ऋष्यमूक पर्वतहै ॥ ३१ ॥ इस कठिन से आरोहण करनेंके योग्य पर्वतकी रक्षा छोटे सर्प किया करते हैं और यह पर्वत उदार ब्रह्माजी करके पहले समयमें बनायागयाथा ॥३२॥ इस उदार पर्वतके शृंगपर जो पुरुष शयन करके स्वप्नमें जो धन प्राप्त करैं तौ जागनेंपरभी उसको वही धन मिलताहै ॥ ३३ ॥ अधर्म कार्य करनेमें रत पापकर्म करनेवाले पुरुषके उस पर्वतपर चढनेपर राक्षस लोग उसके

मतंगवनमित्येवविश्रुतंरघुनंदन ॥ तस्मिन्नंदनसंकाशेदेवारण्योपमेवने ॥ ३० ॥ नानाविहगसंकीर्णेरंस्यसेरामनिर्वृतः ॥ ऋष्यमूकस्तुपंपायाःपुरस्तात्पुष्पितद्रुमः ॥ ३१ ॥ सुदुःखारोहणश्चैवशिशुनागाभिरक्षितः ॥ उदारोब्रह्मणाचैवपूर्वकालेभिनिर्मितः ॥३२ ॥ शयानःपुरुषोरामतस्यशैलस्यमूर्धनि ॥ यःस्वप्नेलभतेवित्तंतत्प्रबुद्धोधिगच्छति॥३३॥ यस्त्वेनंविषमाचारःपापकर्माधिरोहति ॥ तत्रैवप्रहरंत्येनंसुप्तमादायराक्षसाः ॥ ३४ ॥ ततोपिशिशुनागानामाक्रंदःश्रूयतेमहान् ॥ क्रीडतांरामपंपायांमतंगाश्रमवासिनाम् ॥ ३५ ॥ सक्तारुधिरधाराभिःसंहत्यपरमद्विपाः ॥ प्रचरंतिपृथक्कीर्णामेघवर्णास्तरस्विनः ॥ ३६ ॥ तेतत्रपीत्वापानीयंविमलंचारुशोभनम् ॥ अत्यंतसुखसंस्पर्शंसर्वगंधसमन्वितम् ॥ ३७ ॥ निवृत्ताःसंविगाहंतेवनानिवनगोचराः ॥ ऋक्षांश्चद्वीपिनश्चैवनीलकोमलकप्रभान् ॥ ३८ ॥

शयन करनेंके समय उसको पकड कर वहीं संहार करदेतेहैं ॥ ३४ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! तिसके पीछे आप मतंगाश्रम निवासी पंपातटविहारी हाथियोंके बच्चोंका घोर शब्द श्रवण करोगे ॥ ३५ ॥ उन सबके सिवाय आप कुछ एक लाल वर्णकी मदधारा चुआतेहुए मेघवर्ण वेग युक्त हाथियोंके दलके दल इधर उधर घूमते हुए देखोगे॥३६॥ वह हाथी पंपाका निर्मल सुन्दर और अत्यन्त सुखकारी सुवासित नीर पीकरके ॥ ३७॥ पंपा सरोवरमें विहारसे निवृत्तहो वनमें विहार किया करतेहैं! हे श्रीरामचंद्रजी! वहांपर आप रीछ,गैंडे,व्याघ्र,और नील मणिवत कोमल कान्तिवाले॥३८॥

सो यह भी हमारे बडे सौभाग्यकी बात है; इसमें कुछ संदेह नहींहै ॥ १८ ॥ जिसभांतिसे हमारा इस विरूपताका रूपथा, व जिस ऊधमसे हम इस कुरूपताको प्राप्त हुये सो सब ज्योंका त्यों कहतेहैं आप श्रवण करैं ॥ १९ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० आ० सप्ततितमःसर्गः ॥ ७० ॥ हे महाबाहु श्रीरामचंद्रजी! पूर्वकालमें हमारा रूप अत्यन्त सुन्दर अचिन्तनीय ऐश्वर्य महाबल व पराक्रम युक्त और तीनों लोकोंमें विख्या तथा ॥ १ ॥और सूर्य चंद्रमा व इन्द्रके शरीरकी समान हमारा भी रूपथा, सो ऐसा रूप धारण कर हम तीनो लोकोंको डरपाने लगे ॥ २ ॥ हम घूम २ कर वनवासी ऋषि लोगोंको भयभीत करतेथे एक समय जाते २ हमनें स्थूलशिरा नामक महर्षिको कोपित कराया ॥ ३ ॥ वे

विरूपंयच्चमेरूपंप्राप्तंह्यविनयाद्यथा ॥ तन्मेशृणुनरव्याघ्रतत्त्वतःशंसतस्तव ॥ १९ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेसप्ततितमःसर्गः ॥७०॥ ॥ पुराराममहाबाहोमहाबलपराक्रमम् ॥ रूपमासीन्ममाचिंत्यंत्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥१॥ यथासूर्यस्यसोमस्यशक्रस्यचयथावपुः ॥ सोऽहंरूपमिदंकृत्वालोकवित्रासनंमहत् ॥२॥ ऋषीन्वनगतान्रामत्रासयामिततस्ततः ॥ ततःस्थूलशिरानाममहर्षिःकोपितोमया ॥ ३ ॥ सचिन्वन्विविधंवन्यंरूपेणानेनधर्षितः ॥ तेनाहमुक्तःप्रेक्ष्यैवंघोरशापाभिधायिना ॥ ४ ॥ एतदेवंनृशंसंतेरूपमस्तुविगर्हितम् ॥ समयायाचितःक्रुद्धःशापस्यांतोभवेदिति ॥ ५ ॥ अभिशापकृतस्येतितेनेदंभाषितंवचः ॥ यदाछित्त्वाभुजौरामस्त्वांदहेद्विजनेवने ॥ ६ ॥ तदात्वंप्राप्स्यसेरूपंस्वमेवविपुलंशुभम् ॥ श्रियाविराजितंपुत्रदनोस्त्वंविद्धिलक्ष्मण ॥ ७ ॥

महर्षि जी विविध भांतिके वनके फूल फलादि इकट्ठे कर रहेथे कि हमने अपने रूपके गर्वसे उनको धिक्कारा और क्रोधित कराया तब उन्होंनें हमारी ओर देख अति घोर शाप दिया ॥ ४ ॥ कि जाओ मूर्ख! तुम्हारा रूप भी हमारे ही सा कुरूप होजायगा जब हमनें क्रोध युक्तहो उनको शापदेते हुये देखा तो शापके उद्धारके लिये प्रार्थना की, कि इसका निवारण कब होगा ॥ ५ ॥ तब शापके अन्त होनेंके लिये उन्होंने कहाकि जिस समय श्रीरामचंद्रजी तुम्हारे हाथ काट डालेंगे और विजन वनमें तुमको फूँक देंगे ॥ ६ ॥ वस उसी समय तुम अपना सुविपुल और मनोहर रूप प्राप्त

णजी कबंधका बताया हुआ मार्ग लेकर पंपानदीकी ओर पश्चिम दिशाको चले ॥ १ ॥ जिस समय श्रीराम लक्ष्मणजी सुग्रीवके देखनेंको जा रहेथे उस समय पर्वतोंके शिखरोंपर मधु समान स्वाद युक्त फल व फूलवाले अनेक २ वृक्ष उनके नयन गोचर होनें लगे ॥ २ ॥ वह दोनों भ्राता मार्ग में एक रात्रि एक पर्वतके ऊपर रहकर प्रभात होतेही पंपाके पश्चिम किनारे पर जा पहुँचे ॥ ३ ॥ पंपाके पश्चिम किनारे पर पहुँचकर शबरीका रम णीय आश्रम श्रीराम लक्ष्मणजीनें देखा ॥ ४ ॥और उस विविध वृक्षसमूह से समाकीर्ण रमणीय आश्रमको देखते हुये उसमें प्रवेश करके शबरीके निकट आये ॥ ५ ॥ तब सिद्ध शबरी श्रीराम लक्ष्मणजीको देखतेही हाथ जोडे हुये बुद्धिमान् दोनों भाइयोंके चरणोंमें प्रणाम करती हुई ॥ ६ ॥

तौशैलेष्वाचितानेकान्क्षौद्रपुष्पफलद्रुमान् ॥ वीक्षंतौजग्मतुर्द्रष्टुंसुग्रीवंरामलक्ष्मणौ ॥ २ ॥ कृत्वातुशैलपृष्ठेतुतौवासंरघुनंदनौ ॥ पंपायाःपश्चिमंतीररंराघवावुपतस्थतुः ॥ ३ ॥तौपुष्करिण्याःपंपायास्तीरमासाद्यपश्चिमम् ॥ अपश्यतांततस्तत्रशबर्यारम्यमाश्रमम् ॥ ४ ॥ तौतमाश्रममासाद्यद्रुमैर्बहुभिरावृतम् ॥ सुरम्यमभिवीक्षंतौशबरीमभ्युपेयतुः ॥ ५ ॥ तौदृष्ट्वातुतदासिद्धासमुत्थायकृतांजलिः ॥ पादौजग्राहरामस्यलक्ष्मणस्यचधीमतः ॥ ६ ॥ पाद्यमाचमनीयंचसर्वंप्रादाद्यथाविधि ॥ तामुवाचततोरामःश्रमणींधर्मसंस्थिताम् ॥ ७ ॥ कच्चित्तेनिर्जितांविघ्नाःकच्चित्तेवर्धतेतपः ॥ कच्चित्तेनियतःकोपआहारश्चतपोधने ॥ ८ ॥ कच्चित्तेनियमाःप्राप्ताःकच्चित्तेमनसःसुखम् ॥ कच्चित्तेगुरुशुश्रूषासफलाचारुभाषिणि ॥ ९ ॥ रामेणतापसीपृष्टासासिद्धासिद्धसंमता ॥शशंसशबरीवृद्धारामायप्रत्यवस्थिता॥१०॥

और यथाविधिसे पाद्य आचमनीयभी शबरीने किया, तिसके पीछे श्रीरामचन्द्रजी धर्मेनिरता शबरीसे बोले ॥ ७ ॥ कि तुमनें सुख व विघ्नों को तौ जीत लिया है, तुम्हारा तप बढता तो है और क्रोध तौ तुम्हारे वशमें है, हे तपोधने! ॥ ८ ॥ तुम्हारे सब नियम तौ भली भांतिसे चले आते हैं, तुम्हारे मनको तौ सदा सुख रहता है? हे चारुभाषिणी! तुम्हारे गुरुकी सेवा करनी तौ तुम्हें फलवंती हुई है ॥ ९ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीनें इस प्रकार पूछा तौ सिद्ध लोगोंकी अभिमता और तप सिद्धा शबरी सामने निकल कर उनसे निवेदन करती हुई ॥ १० ॥

समरमें तुम्हारे दोनों हाथ काटेंगे तब तुम स्वर्गको जाओगे । तबसे हे राजसत्तम ! हम इसी शरीरसे इस वनमें ॥ १६ ॥ जिस २ को देख
लेतेहैं उसको ग्रहण कर लेतेहैं, व यहभी हमको निश्चयथा कि इन्द्रके वचनानुसार कोई न कोई अवश्य हमको मिलता रहेगा ॥ १७ ॥ सदा
अपना ऐसाही विचार रखतेहैं कुछ विशेष श्रमभी नहीं करतेथे सो इस समय हमनें सत्य २ जाना कि श्रीरामचंद्रजी आपही हैं क्योंकि और
कोई हमको नहीं मार सकता ॥ १८ ॥ क्योंकि महर्षिजीनें जो कुछ कहा सो सत्यही हुआहै, इस कारण हे श्रीरामचंद्रजी और तो हमसे कुछ नहीं
हो सकता । परन्तु हे नरश्रेष्ठ! बुद्धिद्वारा आपकी कुछ सहायता कर सकेंगे ॥ १९ ॥ अर्थात् जब आप हमको अग्निमें जलादेंगे तब हम

छेत्स्यतेसमरेबाहूतदास्वर्गंगमिष्यसि ॥ अनेनवपुषातातवनेऽस्मिन्राजसत्तम ॥ १६ ॥ यद्यत्पश्यामिसर्वस्यग्रहणं
साधुरोचये ॥ अवश्यंग्रहणंरामोमन्येऽहंसमुपैष्यति ॥ १७ ॥ इमांबुद्धिंपुरस्कृत्यदेहन्यासकृतश्रमः ॥ सत्वं
रामोऽसिभद्रंतेनाहमन्येनराघव ॥ १८ ॥ शक्योहंतुंयथातत्त्वमेवमुक्तंमहर्षिणा ॥ अहंहिमतिसाचिव्यंकरिष्या
मिनरर्षभ ॥ १९ ॥ मित्रंचैवोपदेक्ष्यामियुवाभ्यांसंस्कृतोऽग्निना ॥ एवमुक्तस्तुधर्मात्मादनुनातेनराघवः ॥ २० ॥
इदंजगादवचनंलक्ष्मणस्यचपश्यतः ॥ रावणेनहृताभार्यासीताममयशस्विनी ॥ २१ ॥ निष्क्रांतस्यजनस्थानात्स
हभ्रात्रायथासुखम् ॥ नाममात्रंतुजानामिनरूपंतस्यरक्षसः ॥ २२ ॥ निवासंवाप्रभावंवावयंतस्यनविद्महे ॥ शो
कार्तानामनाथानामेवंविपरिधावताम् ॥ २३ ॥

आपको एक मित्र बतावेंगे, जब इस प्रकारसे उस दनुके पुत्रनें महात्मा धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीसे कहा तो ॥ २० ॥ लक्ष्मणजीके सामनें
उस्से श्रीरामचंद्रजी बोले कि रावण करके हमारी यशस्विनी भार्या सीताजी हरी गईहैं ॥ २१ ॥ हम उस समय भ्राताके सहित जन
सुख स्थानसे पूर्वक कहींपर चले गयेथे तब वह उनको हरण करके ले गयाथा हम उसराक्षस रावणका केवल नाम मात्र जानतेहैं, परन्तु उसका
रूप ॥ २२ ॥ निवास व प्रभाव कुछभी नहीं जानते । केवल शोकसे आरत हुये अनाथकी समान इसी भांतिसे वन २ में घूमते फिरतेहैं ॥ २३ ॥

लिया कि यह परमात्माकोभी भली भांति जानती है यह समझ उससे कहाकि हमनें कवंधसे तुम्हारा प्रभाव और आचारका माहात्म्य ॥ १९॥
श्रवण कियाथा सो तुम यदि उचित समझो तो हम उसको प्रत्यक्ष उनका वृत्तान्त देखनेंकी इच्छा करते हैं, श्रीरामचन्द्रजीके मुखसे निकला हुआ
ऐसा वचन सुन ॥ २० ॥ शवरी उन दोनों भ्राताओंको वह वडा वन दिखाकर कहनें लगी कि मृग और पक्षियोंसे परिपूर्ण काले बादरकी समान
श्यामरंगका यह वन देखिये ॥ २१ ॥ हे रघुनन्दन! इस वनका नाम मतंग वन प्रसिद्ध है, हे महाद्युतिमान् ! इस वनमें विशुद्धात्मा हमारे गुरु लोग
मंत्र पूजित यज्ञ करनेंके लिये वेदके मंत्रोंसे काल हरण करतेथे ॥ २२ ॥ यह वही प्रत्यक्स्थल नामक वेदी है; जिस वेदीपर बैठकर हमारे परम

श्रुतंप्रत्यक्षमिच्छामिसंद्रष्टुंयदिमन्यसे ॥ एतत्तुवचनंश्रुत्वारामवक्त्रविनिःसृतम् ॥ २० ॥ शवरीदर्शयामासतावुभौतद्व
नंमहत् ॥ पश्यमेघघनप्रख्यंमृगपक्षिसमाकुलम् ॥ २१ ॥ मतंगवनमित्येवविश्रुतंरघुनंदन ॥ इहतेभावितात्मानो
गुरवोमेमहाद्युते ॥ जुहवांचक्रिरेनीडंमंत्रवन्मंत्रपूजितम् ॥ २२ ॥ इयंप्रत्यक्स्थलीवेदीयत्रतेमेसुसत्कृताः ॥ पुष्पोप
हारंकुर्वंतिश्रमादुद्वेपिभिःकरैः ॥ २३ ॥ तेषांतपःप्रभावेणपश्याद्यापिरघूत्तम ॥ द्योतयंतीदिशःसर्वाःश्रियावेद्यतुलप्र
भा ॥ २४ ॥ अशक्नुवद्भिस्तैर्गंतुमुपवासश्रमालसैः ॥ चिंतितेनागतान्पश्यसमेतान्सप्तसागरान् ॥ २५॥ कृताभिषे
कैस्तैर्न्यस्तावल्कलाःपादपेष्विह ॥ अद्यापिनविशुष्यंतिप्रदेशेरघुनंदन ॥ २६ ॥ देवकार्याणिकुर्वद्भिर्यानीमानिकृ
तानिवै ॥ पुष्पैःकुवलयैःसार्धंम्लानत्वंनतुयांतिवै ॥ २७ ॥

पूजनाय गुरु लोग पुष्पांजलि सहित श्रम युक्त हाथोंसे देवताओंकी पूजा करतेथे ॥ २३ ॥ हे रघुवर! देखिये यह वही अनुपम प्रभायुक्त वेदी उनके
तपोवलसे आजभी अपनी दीप्तिसे दशों दिशाओंको दिपा रही है ॥ २४ ॥ जब वह ऋषि लोग उपवासोंके परिश्रमसे आलस्यीहोकर स्नान करनें
को जानेंमें समर्थ हीन होगये, तब उनके चिंता करतेही यह सात समुद्र यहां आगये सो आप देखिये॥२५॥ हे रघुनन्दन! ऋषि लोगोंनें स्नान करकै
यहां वृक्षोंपर जो अपने गीले वस्त्र टांग दिये हैं सो वह अवतक नहीं सूखे हैं॥२६॥उन्होनें देवताओंका कार्य साधन करनेके लिये जो नीले कमलके सहित

हे महावीर! रघुनंदन! जब यथा विधिसे आप हमको गढेमें रखकर फूंक देंगे तब हम बतलावेंगे कि कौन रावणको जानताहै ॥ ३२ ॥ हे राघव! आप उस अच्छी वृत्तिवाले पुरुषके साथ मित्रता करलेना वह पराक्रमी वीर आपकी वडी भारी सहायता करेगा ॥ ३३ ॥ हे महाराज! त्रिलोकीमें ऐसा कुछभी नहींहै जिसको यह पुरुष न जानता हो वह प्रथम किसी वडेही कारणके वश होकर त्रिलोकीमें घूमा है ॥ ३४ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० आर० एकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥ जब कवन्धनें उन दोनों वीरशिरोमणियोंसे ऐसा कहा तब नर श्रेष्ठ श्रीरामचंद्र व लक्ष्मणजीने पर्वतकी गुफामें लेजाकर उसको अग्नि देदी ॥ १ ॥ लक्ष्मणने वडी २ उल्काओंको प्रज्वलित करके

दग्धस्त्वयाहमवटेन्यायेनरघुनंदन॥ वक्ष्यामितंमहावीरयस्तंवत्स्येतिराक्षसम् ॥ ३२ ॥ तेनसख्यंचकर्तव्यंन्याय्य वृत्तेनराघव ॥ कल्पयिष्यतितेवीरसाहाय्यंलघुविक्रम ॥ ३३ ॥ नहितस्यास्त्यविज्ञातंत्रिषुलोकेषुराघव ॥ सर्वान्प रिवृतोलोकान्पुरावैकारणांतरे ॥ ३४ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० आरण्यकांडेएकसप्ततितमःसर्गः ॥ ७१ ॥ ॥ ७२ ॥ एवमुक्तौतुतौवीरौकबंधेननरेश्वरौ ॥ गिरिप्रदरमासाद्यपावकंविससर्जतुः ॥ १ ॥ लक्ष्मणस्तुमहोल्काभिर्ज्वलिता भिःसमंततः ॥ चितामादीपयामाससाप्रजज्वालसर्वतः ॥ २ ॥ तच्छरीरंकबंधस्यघृतपिंडोपमंमहत् ॥ मेदसा पच्यमानस्यमंदंदहतपावकः ॥ ३ ॥ सविधूयचितामाशुविधूमोऽग्निरिवोत्थितः ॥ अरजेवाससीबिभ्रन्माल्यंदिव्यं महाबलः ॥ ४ ॥ ततश्चितायावेगेनभास्वरोविरजांबरः ॥ उत्पपाताशुसंहृष्टःसर्वप्रत्यंगभूषणः ॥ ५ ॥ विमाने भास्वरेतिष्ठन्हंसयुक्तेयशस्करे ॥ प्रभयाचमहातेजादिशोदशविराजयन् ॥ ६ ॥

चारों ओर अग्नि लगादी तब चिता भली भांतिसे जलनें लगी ॥ २ ॥ तब कवन्धका घीके पिंडेकी समान चरबीसे परिपूर्ण बडा भारी शरीर धीरे२ जलनें लगा ॥ ३ ॥ जब चिता जल कर रहगई तब महा बलवान कबंध उसी समय चिताको कंपायमान करता हुआ निर्मल वस्त्र और दिव्य माला धारण करके धुआं रहित अग्निकी समान उसमेंसे निकला ॥ ४ ॥ और दिव्य कांति युक्त शरीरसे वेगमें भर आनंद सहित उसी समय आ काशको गया उसके समस्त अंग प्रत्यंग गहनोंसे भूषितथे ॥ ५ ॥ तिसके पीछे वह अतिशय उजले हंस युक्त यशस्कर विमानमें बैठकर अपनी

उसस्थानको प्रकाशित करनेंलगी ॥ ३४ ॥ उसके गुरु वह विशुद्धात्मा महर्षि गण जिस स्थानोंमें विराजमानथे श्रमणी भी आत्मसमाधिके प्रभावसे परम पवित्र उस पुण्य लोकको चली गई ॥ ३५ ॥ इत्यार्पे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आर० चतुःसप्तति तमः सर्गः ॥ ७४ ॥ जब शबरी अपनी तपस्याके प्रभावसे स्वर्गको चलीगई तब धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मण जीके सहित चिन्तनाकरनें लगे ॥ १ ॥ वह उन धर्मात्मा महार्षि गणोंका अद्भुत प्रभाव विचार एकही परम हितकारी अपने भ्राता श्री लक्ष्मणजीसे बोले ॥ २ ॥ हे सौम्य! हमने उन विशुद्धात्मा महर्षियोंके आश्चर्य युक्त यह आश्रम देखे यहांपर मृग और व्याघ्र लोग वैर भाव छोडकर विचरण करते हैं और अनेक प्रकारके पक्षी भी वास

यत्रतेसुकृतात्मानोविहरंतिमहर्षयः ॥ तत्पुण्यंशबरीस्थानंजगामात्मसमाधिना ॥ ३५ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणे वाल्मीकीयेआदिकाव्येआरण्यकांडेचतुःसप्ततितमःसर्गः ॥ ७४ ॥ ॥ छ ॥ ॥ दिवंतुतस्यांयातायांशबर्यांस्वेनतेजसा ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्राचिंतयामासराघवः ॥ १ ॥ चिंतयित्वातुधर्मात्माप्रभावंतंमहात्मनाम् ॥ हितकारिणमेकाग्रंलक्ष्मणंराघवोऽब्रवीत् ॥ २ ॥ दृष्टोमयाश्रमःसौम्यबह्वाश्चर्यःकृतात्मनाम् ॥ विश्वस्तमृगशार्दूलोनानाविहगसेवितः ॥ ३ ॥ सप्तानांचसमुद्राणांतेषांतीर्थेषुलक्ष्मण ॥ उपस्पृष्टंचविधिवत्पितरश्चापितर्पिताः ॥ ४ ॥ प्रनष्टमशुभंयन्नःकल्याणंसमुपस्थितम् ॥ तेनत्वेतत्प्रहृष्टंमेमनोलक्ष्मणसंप्रति ॥ ५ ॥ हृदयेमेनरव्याघ्रशुभमाविर्भविष्यति ॥ तदागच्छगमिष्यावःपंपांतांप्रियदर्शनाम् ॥ ६ ॥ ऋष्यमूकोगिरिर्यत्रनातिदूरेप्रकाशते ॥ यस्मिन्वसति धर्मात्मासुग्रीवोंशुमतःसुतः ॥ ७ ॥ नित्यंवालिभयात्त्रस्तश्चतुर्भिःसहवानरैः ॥ अहंत्वरेचतंद्रष्टुंसुग्रीवंवानरर्षभम् ॥ ८ ॥

करतेहैं ॥ ३ ॥ उनके स्थापन किये हुये इन सप्त सागर तीर्थोंमें हमनें यथा विधान से स्नान और पितृ लोगोंको तर्पण भी किया ॥ ४ ॥ इससे हमारे अशुभ भी नष्ट होगये और कल्याण भी प्राप्त होगया हे लक्ष्मण इस्से हमारा मन इस समय बहुत ही प्रफुल्ल हो रहाहै ॥ ५ ॥ और हे नर व्याघ्र! इस समय हमारा हृदय भी शुभ भावसे पूरितहै सो अब अच्छाही होगा इस कारण हम उस मनोहर पंपासर पर चलें ॥ ६ ॥ जिस पंपाके निकट ही ऋष्यमूक पर्वत प्रकाशित होरहाहै जहांपर धर्मात्मा सूर्यके पुत्र सुग्रीवजी बसतेहैं ॥ ७ ॥ नित्य वालिके भयसेभीत चारों वानरों

वीर्यवान्, महातेजस्वी, महादीप्तिमान्, सत्यप्रतिज्ञ, नीतिशास्त्रका जाननेंवाला, धारण शक्ति युक्त महान् ॥ १३ ॥ दक्ष प्रगल्भ प्रकाशमान और महाबल पराक्रमयुक्तहै । परन्तु उस महात्माको राज्यके कारण वालिनें घरसे निकाल दियाहै ॥ १४ ॥ वह निश्चयही सीताके ढूंढनें भालनेंमें आपका सहायक और मित्र होगा । सो आप अब शोक करनेंमें अपने मनको न लगाइये वहां जाइये ॥ १५ ॥ कोईभी होनहारको नहीं मेट सकता, जो होनहारहै वह अवश्यही होगी, हे इक्ष्वाकुश्रेष्ठ! कालकी गति बडी दुर्गमहै ॥ १६ ॥ इस कारणसे हेवीर! आप शीघ्रही इस स्थानसे महापराक्रमवान सुग्रीवके पास जाकर उस्से मित्रता कर लीजिये हे रघुनंदन! इसी समय आप चले जाइये ॥ १७ ॥ प्रज्वलित अग्निके

दक्षःप्रगल्भोद्युतिमान्महाबलपराक्रमः ॥ भ्रात्राविवासितोवीरराज्यहेतोर्महात्मना ॥ १४ ॥ सतेसहायोमित्रंच सीतायाःपरिमार्गणे ॥ भविष्यतिहितेराममाचशोकेमनःकृथाः ॥ १५ ॥ भवितव्यंहितच्चापिनतच्छक्यमिहान्यथा ॥ कर्तुमिक्ष्वाकुशार्दूलकालोहिदुरतिक्रमः ॥ १६ ॥ गच्छशीघ्रमितोवीरसुग्रीवंतंमहाबलम् ॥ वयस्यंतंकुरुक्षिप्रमितोगत्वाद्यराघव ॥ १७ ॥ अद्रोहायसमागम्यदीप्यमानेविभावसौ ॥ नचतेसोऽवमंतव्यःसुग्रीवोवानराधिपः ॥ १८ ॥ कृतज्ञःकामरूपीचसहायार्थीचवीर्यवान् ॥ शक्तौह्यद्ययुवांकर्तुंकार्यंयस्यचिकीर्षितम् ॥ १९ ॥ कृतार्थोवाऽकृतार्थोवातवकृत्यंकरिष्यति ॥ सऋक्षरजसःपुत्रःपंपामटतिशंकितः ॥ २० ॥ भास्करस्यौरसःपुत्रोवालिनाकृतकिल्बिषः ॥ संनिधायायुधंक्षिप्रमृष्यमूकालयंकपिम् ॥ २१ ॥

... उसको साक्षीकर सुग्रीवसे मित्रता कीजिये, परन्तु उस वानरनाथका अपमान आप कभी न कीजिये ॥ १८ ॥ क्योंकि कृतज्ञहै कामरूपी इच्छानुसार रूप धारण करलेनेंवालाहै वीर्यवान्भीहै, और विशेष करके इस समय स्वयंभी किसीकी ... चाहताहै सो आपभी उसके कार्यको कर देंगे ॥ १९ ॥ फिर वह कार्यका चाहनेंवाला सुग्रीव सफल मनोरथ हो आपका कार्य ... कर देगा वह ऋक्षराजकी स्त्रीमें सूर्य भगवानसे उत्पन्न हुआ है, और इस समय भाईकी शंकासे पंपाके किनारे २ फिरा करता है॥२०॥ ... का औरसपुत्र वालिके संग वैर होनेंके कारण दुःखित है इस्से आप अस्त्र शस्त्र दूर धरकर ऋष्यमूक पर्वत पर बैठे हुए उस

रेतीसे घिरा हुआ है ॥१७॥वह पंपासर मछलियें और कछुओंसे शोभित फैली फली बेलें जिसको सखियोंके समान घेरे हुये हैं जिसके किनारे२बहुतसे वृक्ष लगे हुये हैं, गन्धर्व, किन्नर, सर्प, यक्ष, और राक्षसगण ॥ १८ ॥ उसकेइधर उधर घूमते हैं और वह अनेक जातिके वृक्ष और लताओंसे घिरा हुआ है उसका जल शीतल और महाशोभायमान है ॥ १९ ॥ वह कहीं लाल कमल और कल्हारसे छारहाहै इस्से लाल वर्ण,और कहीं नीलेकमल फूलोंके खिलनेंसे नीला और कहीं बबूलोंसे छायाजानेके कारण श्वेत वर्णहो गया है और अनेक वर्णोंसे चित्रित होनेके कारण रंग बिरंगी हाथीकी झूलकी समान शोभायमान है ॥२०॥वह अरविन्द, उत्पल और पुष्पित आम बनके समूह पूरित और मयूरोंके शब्दसे शब्दायमान ॥ २१ ॥ पंपा

मत्स्यकच्छपसंबाधांतीरस्थद्रुमशोभिताम् ॥ सखीभिरेवसंयुक्तांलताभिरनुवेष्टिताम् ॥ १८॥ किन्नरोरगगंधर्वयक्ष
राक्षससेविताम् ॥ नानाद्रुमलताकीर्णांशीतवारिनिधिंशुभाम् ॥१९॥ पद्मसौगंधिकैस्ताम्रांशुक्लांकुमुदमंडलैः ॥ नीलां
कुवलयोद्घाटैर्बहुवर्णांकुथामिव॥ २० ॥ अरविंदोत्पलवतींपद्मसौगंधिकायुताम् ॥ पुष्पिताम्रवणोपेतांबर्हिणोद्घुष्टना
दिताम् ॥ २१ ॥ सतांदृष्ट्वाततःपंपांरामःसौमित्रिणासह ॥ विललापचतेजस्वीरामोदशरथात्मजः ॥ २२ ॥ तिलकैर्बीज
पूरैश्चवटैःशुक्लद्रुमैस्तथा ॥ पुष्पितैःकरवीरैश्चपुन्नागैश्चसुपुष्पितैः ॥ २३ ॥ मालतीकुंदगुल्मैश्चभंडीरैर्निचुलैस्तथा ॥
अशोकैःसप्तपर्णैश्चकेतकैरतिमुक्तकैः ॥ २४ ॥ अन्यैश्चविविधैर्वृक्षैःप्रमदेवोपशोभिताम् ॥ अस्यास्तीरेतुपूर्वोक्तःपर्व
तोधातुमंडितः ॥ २५ ॥ ऋष्यमूकइतिख्यातश्चित्रपुष्पितपादपः ॥ हरिर्ऋक्षरजोनाम्नःपुत्रस्तस्यमहात्मनः ॥ २६ ॥

सरोवरको रामचन्द्रजीनें लक्ष्मणजीके सहित देखा उसको देखकर, तेजस्वी दशरथ कुमार श्रीरामचन्द्रजी विलाप करनें लगे ॥ २२ ॥ श्रीराम चंद्रजीने फिर देखाकी तिलक बीज पूरक, वट लोध, द्रुम पुष्पित करवीर फूला हुआ,पुन्नाग ॥२३॥ मालती,कुंद,गुल्म,भांडीर, निचुल, अशोक सप्त वर्ण केतकी, चमेली अतिमुक्तक॥२४॥ इत्यादि औरभी अनेकप्रकारके वृक्षवहां शोभित होरहेहैं श्रीरामचंद्रजी बोले, इसके ही किनारे पहले कहा हुआ धातुओंसे सजा हुआ पर्वत ॥ २५ ॥ विख्यात ऋष्यमूक विचित्र पुष्प युक्त वृक्षोंसे युक्तहै महात्मा हरि ऋक्षरजके पुत्र ॥ २६ ॥ महावीर

वीर्यवान्, महातेजस्वी, महादीप्तिमान्, सत्यप्रतिज्ञ, नीतिशास्त्रका जाननेंवाला, धारण शक्ति युक्त महान् ॥ १३ ॥ दक्ष प्रगल्भ प्रकाशमान और महाबल पराक्रमयुक्तहै । परन्तु उस महात्माको राज्यके कारण वालिनें घरसे निकाल दियाहै ॥ १४ ॥ वह निश्चयही सीताके ढूंढनें भालनेंमें आपका सहायक और मित्र होगा । सो आप अब शोक करनेंमें अपने मनको न लगाइये वहां जाइये ॥ १५ ॥ कोईभी होनहारको नहीं मेट सकता, जो होनहारहै वह अवश्यही होगी, हे इक्ष्वाकुश्रेष्ठ! कालकी गति बडी दुर्गमहै ॥ १६ ॥ इस कारणसे हेवीर ! आप शीघ्रही इस स्थानसे महापराक्रमवान सुग्रीवके पास जाकर उस्से मित्रता कर लीजिये हे रघुनंदन! इसी समय आप चले जाइये ॥ १७ ॥ प्रज्वलित अग्निके

दक्षःप्रगल्भोद्युतिमान्महाबलपराक्रमः ॥ भ्रात्राविवासितोवीरराज्यहेतोर्महात्मना ॥ १४ ॥ सतेसहायोमित्रंच सीतायाःपरिमार्गणे ॥ भविष्यतिहितेराममाचशोकेमनःकृथाः ॥ १५ ॥ भवितव्यंहितच्चापिनतच्छक्यमिहान्यथा ॥ कर्तुमिक्ष्वाकुशार्दूलकालोहिदुरतिक्रमः ॥ १६ ॥ गच्छशीघ्रमितोवीरसुग्रीवंतंमहाबलम् ॥ वयस्यंतंकुरुक्षिप्रमितोगत्वाद्यराघव ॥ १७ ॥ अद्रोहायसमागम्यदीप्यमानेविभावसौ ॥ नचतेसोऽवमंतव्यःसुग्रीवोवानराधिपः ॥ १८ ॥ कृतज्ञःकामरूपीचसहायार्थीचवीर्यवान् ॥ शक्तौह्यद्ययुवांकर्तुंकार्यंयस्यचिकीर्षितम् ॥ १९ ॥ कृतार्थोवाऽकृतार्थोवातवकृत्यंकरिष्यति ॥ सऋक्षरजसःपुत्रःपंपामटतिशंकितः ॥ २० ॥ भास्करस्यौरसःपुत्रोवालिनाकृतकिल्बिषः ॥ संनिधायायुधंक्षिप्रमृष्यमूकालयंकपिम् ॥ २१ ॥

सन्मुख उसको साक्षीकर सुग्रीवसे मित्रता कीजिये, परन्तु उस वानरनाथका अपमान आप कभी न कीजिये ॥ १८ ॥ क्योंकि वह कृतज्ञहै कामरूपी इच्छानुसार रूप धारण करलेनेंवालाहै वीर्यवान्भीहै, और विशेष करके इस समय स्वयंभी किसीकी सहायता चाहताहै सो आपभी उसके कार्यको कर देंगे ॥ १९ ॥ फिर वह कार्यका चाहनेंवाला सुग्रीव सफल मनोरथ हो आपका कार्य भी अवश्य कर देगा वह ऋक्षराजकी स्त्रीमें सूर्य भगवानसे उत्पन्न हुआ है, और इस समय भाईकी शंकासे पंपाके किनारे २ फिरा करता है॥२०॥ वह सूर्य नारायणका औरसपुत्र वालिके संग वैर होनेंके कारण दुःखित है इस्से आप अस्त्र शस्त्र दूर धरकर ऋष्यमूक पर्वत पर बैठे हुए उस

-हुआ है ॥१७॥ ...न हित कारण धरो, प्रभुनें मनुज शरीर । ऋषि मुनियनकी दासकी, दूर करी सवपीर ॥
गन्धर्व, किं... अनुग्रह अस करो, रहे तुम्हारे ध्यान । प्रभु ज्वालापरसादको, यह वरदान न आन ॥
जिमि ... ऋपियनसों भयो, प्रभुको शुभ संवाद । सो सब भाषामें कियो, लख ज्वालापरसाद ॥
पढहिं स... नकृपा करि,सुमिरहिंलक्ष्मणराम । यामें कुछ संशय नहीं, सिद्ध होत सब काम ॥

इदं वा... ीकीयरामायणारण्यकाण्डं भाषाटीकासहितं श्रीकृष्णदासात्मजखेमराजेन
मुम्बय्यां स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वराख्य" यंत्रालये मुद्रितम् शके १८१४

पुस्तकमिलनेका ठिकाना.

खेमराज श्रीकृष्णदास
"श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना बम्बई.

वृक्ष लगरहे हैं, जो यहांसे पश्चिमकी ओर दृष्टि आते हैं॥२॥ उन वृक्षोंमें जामन, चिरोंजी, कटहर, वट, पाकर, तेंदू, पीपल, कठचंपा, आम आदि अनेक प्रकारके है ॥ ३ ॥और धवई, नागकेशर, अगेथू , तिलक, किलवार, श्याम, अशोक, कदम्ब, कंदेल, यह सब पुष्पित वृक्ष लगे हैं॥४॥ हरे २ अशोक, नींबके वृक्ष सब प्रकारके औरभी उत्तम२वृक्ष हैं सो आप उनपर चढके अथवा बलसे हिलाकर फल भूमिमें गिराकर ॥५॥ अमृत समान फल खाते पीतें हुए दोनो जने चले जाओ हे काकुत्स्थ! उस फूले वृक्ष द्वारा परिपूर्ण वनसे आप निकल जांयगे ॥ ६ ॥ तब और एक नन्दन और उत्तर कुरुदेशके समान वन मिलेगा; जिसमें सब कालमें फले ऐसे मीठे फलवाले वृक्षभी लग रहे हैं॥ ७ ॥उस वनमें सब समयमें सब ऋतु चैत्र रथ बनकी समान विद्य

जंबूप्रियालपनसान्यग्रोधप्लक्षतिंदुकाः ॥ अश्वत्थाःकर्णिकाराश्चचूताश्चान्येचपादपाः ॥ ३ ॥ धन्वनानागवृक्षाश्च तिलकानक्तमालकाः ॥ नीलाशोकाःकदंबाश्चकरवीराश्चपुष्पिताः ॥ ४ ॥ अग्निमुख्याअशोकाश्चसुरक्ताःपारिभद्रकाः ॥ तानारुह्याथवाभूमौपातयित्वाचतान्बलात् ॥ ५ ॥ फलान्यमृतकल्पानिभक्षयित्वागमिष्यथ ॥ तदतिक्रम्यकाकुत्स्थवनंपुष्पितपादपम् ॥ ६ ॥ नंदनप्रतिमंत्वन्यत्कुरवस्तूत्तराइव ॥ सर्वकालफलायत्रपादपामधुरस्रवाः ॥ ७ ॥ सर्वेचऋतवस्तत्रवनेचैत्ररथेयथा ॥ फलभारनतास्तत्रमहाविटपधारिणः ॥ ८ ॥ शोभंतेसर्वतस्तत्रमेघपर्वतसंनिभाः ॥ तानारुह्याथवाभूमौपातयित्वाथवासुखम् ॥ ९ ॥ फलान्यमृतकल्पानिलक्ष्मणस्तेप्रदास्यति ॥ चंक्रमंतौवरान्शैलान्शैलाच्छैलंवनाद्वनम् ॥ १० ॥ ततःपुष्करिणींवीरौपंपांनामगमिष्यथ ॥ अशर्करामविभ्रंशांसमतीर्थामशेवलाम् ॥ ११ ॥ रामसंजातवालूकांकमलोत्पलशोभिताम् ॥ तत्रहंसाःप्लवाःक्रौंचाःकुरराश्चैवराघव ॥ १२ ॥

मान रहती हैं, वहां सब वृक्ष फल भारसे झुके हुए देख पडते हैं ॥ ८ ॥वह सब मेघों और पर्वतोंकी समान शोभायमान होते हैं । वहां परभी उनपर चढकर अथवा जोरसे हिला झुला भूमिमें गिराकर जैसा ठीक समझा जाय ॥ ९ ॥ अमृतकी समान फल वह वृक्ष आपको देंगे, इस भांतिसे दोनों भ्राता पर्वतों पर होते हुए इस वनसें उस बनमें जाय ॥ १० ॥ फिर पंपा नामक सरोवर पर पहुँचोगे, यह सरोवरमें शिवार, शर्करा, कंकर और फिसलनी भूमि नहीं है सब घाट बराबर बने हैं ॥११॥ हे राम! उसमें रेती बहुत श्रेष्ठ है विविध भांतिके कमल उसमें फूलते हैं, हंस, राजहंस, क्रौंच,कुरर

राक्षसके हाथसे मार डाले गये ॥ ३५ ॥ हेजानकी ! इस प्रकार हमारी सैनागण करके तुम्हारे स्वामी सर्व सैनागणके साथ मार डाले गयेहैं
तुम्हैं विश्वाश दिलानेंके लिये हम उनका रुधिर से सना व कटाहुआ मस्तकभी यहां लेआयेहैं ॥ ३६ ॥ तिसके पीछे परम दुर्जय राक्षसेश्वर
रावण सीताजीको सुनानेंके लिये उनके निकट बैठीहुई राक्षसीसे बोला॥३७॥कि हेनिशाचरी! जो राक्षस रण भूमिसे स्वयं रामचंद्रका शिर काटकर ले
आयाहै, उस क्रूरकर्मकारी विद्युज्जिह्व राक्षसको शीघ्र यहां बुला लाओ ॥ ३८ ॥ तिसके पीछे रावणके ऐसा कहतेही यह मायावी विद्यु
ज्जिह्व धनुष बाणके सहित मायामय रामचंद्रजीका कटाहुआ शिर ग्रहणकर रावणके आगे आय प्रणाम करता हुआ ॥ ३९ ॥ रावण मंत्री श्रेष्ठ

एवंतवहतोभर्तासैन्योममसेनया ॥ क्षतजार्द्ररजोध्वस्तमिदंचास्याहृतंशिरः ॥ ३६ ॥ ततःपरमदुर्धर्षोरावणोराक्षसेश्व
रः ॥ सीतायामुपशृण्वंत्यांराक्षसीमिदमब्रवीत् ॥३७॥ राक्षसंक्रूरकर्माणंविद्युज्जिह्वंसमानय ॥ येनतद्राघवशिरःसंग्रामा
त्स्वयमाहृतम् ॥ ३८ ॥ विद्युज्जिह्वस्तदागृह्यशिरस्तत्सशरासनम् ॥ प्रणामंशिरसाकृत्वारावणस्याग्रतःस्थितः ॥ ३९ ॥
तमब्रवीत्ततोराजारावणोराक्षसंस्थितम् ॥ विद्युज्जिह्वंमहाजिह्वंसमीपपरिवर्तिनम् ॥ ४० ॥ अग्रतःकुरुसीतायाःशीघ्रं
दाशरथेःशिरः ॥ अवस्थांपश्चिमांभर्तुःकृपणासाधुपश्यतु ॥ ४१ ॥ एवमुक्तंतुतद्रक्षःशिरस्तत्प्रियदर्शनम् ॥ उपनि
क्षिप्यसीतायाःक्षिप्रमंतरधीयत ॥ ४२ ॥ रावणश्चापिचिक्षेपभास्वरंकार्मुकंमहत् ॥ त्रिषुलोकेषुविख्यातंरामस्यैतादि
तिब्रुवन् ॥ ४३ ॥ इदंतत्तवरामस्यकार्मुकंज्यासमावृतम् ॥ इहप्रहस्तेनानीतंतंहत्वानिशिमानुषम् ॥ ४४ ॥

महाजीभवाले विद्युज्जिह्वको आगे आया हुआ देखकर बोला ॥४०॥ रामचंद्रका कटा हुआ मस्तक तुम इन जानकीको दिखाओ, कारणकि इस समय
यह कृपणा सीता अपने स्वामीकी अंतिमा अवस्था देखें ॥ ४१ ॥ जब राक्षस विद्युज्जिह्वसे रावणनें ऐसा कहा तब वह प्रियदर्शन
शिर सीताजीको दिखायकर शीघ्रही अन्तर्ध्यान होगया ॥ ४२ ॥ तिसके पीछे रावण बोला, हेसीते! देखो यह उन्ही रामचंद्रका त्रिलोकवि
ख्यात दीप्तिशील और बडा भारी धनुषबाण है यह कहकर रावणने वह भयंकर धनुष फेंकदिया॥ ४३ ॥ हे सीते! पहँचान लो यह वही रोदा चढ़ा

पंपाका शीतल जल देखकर व पीकर आप शोक भूल जांयगे, और वहां फूले हुये तिलक, नक्तमालक आदिक वृक्षहैं ॥२१॥ और हे रघुनंदन! वहां पर भांति२के कमलभी फूल रहेहैं, परन्तु उन पुष्पोंकी माला बनाकर पहरनेंवाला वहां पर कोई पुरुष नहीं रहता ॥२२॥ वह फूल न कभी मुरझातेहैं, न अपने आपसे गिरतेहैं कारणकि वहां पर मतंग ऋषिके चेले जो ऋषि लोगहैं, वह एकाग्र चित्त होकर वहां रहतेथे ॥२३॥ वह सब शिष्य ऋषि लोग अपनें गुरूजीके लिये वनके फल फूल लेनें जाते हुये, वोझके मारे थक जानें पर उनके शरीरसे जो पसीनें की बूंदें पृथ्वीपर गिर पडतीथीं ॥२४॥ वहीं २ स्वेद विन्दु उस कालमें उनके तपके प्रभावसे फूल होगये हैं हे रघुनंदन! ऋषिलोगोंके पसीनेंकी बूंदोंसे उत्पन्न होनेंके कारण यह सब

शिवोदकंचपंपायांदृष्ट्वाशोकंविहास्यसि ॥ सुमनोभिश्चितास्तत्रतिलकानक्तमालकाः ॥ २१ ॥ उत्पलानिचफुल्लानि-
पंकजानिचराघव ॥ नतानिकश्चिन्माल्यानितत्रारोपयितानरः ॥ २२ ॥ नचवैग्लानतांयांतिनचशीर्यंतिराघव ॥ मतंग
शिष्यास्तत्रासन्नृषयःसुसमाहिताः ॥२३॥ तेषांभाराभितप्तानांवन्यमाहरतांगुरोः ॥ येप्रपेतुर्महींतूर्णंशरीरात्स्वेदबिंदवः
॥२४॥ तानिमाल्यानिजातानिमुनीनांतपसातदा ॥ स्वेदबिंदुसमुत्थानिनविनश्यंतिराघव ॥२५॥ तेषांगतानामद्यापिदृ
श्यतेपरिचारिणी ॥ श्रमणीशबरीनामकाकुत्स्थचिरजीविनी ॥ २६ ॥ त्वांतुधर्मेस्थितानित्यंसर्वभूतनमस्कृतम् ॥
दृष्ट्वादेवोपमंरामस्वर्गलोकंगमिष्यति ॥ २७ ॥ ततस्तद्रामपंपायास्तीरमाश्रित्यपश्चिमम् ॥ आश्रमस्थानमतुलंगुह्यं
काकुत्स्थपश्यसि ॥ २८ ॥ नतत्राक्रमितुंनागाःशक्नुवंतितदाश्रमे ॥ ऋषेस्तस्यमतंगस्यविधानात्तच्चकाननम् ॥ २९ ॥

पुष्प अविनासी होगयेहैं ॥ २५ ॥ यद्यपि सब ऋषि लोग वहांसे अन्तर्ध्यान होगयेहैं परन्तु अबतक उनकी परिचारिका श्रमणी नामक शबरी वहांपर दृष्टि आतीहै ॥ २६ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! आप साक्षात् देवताओंकी समान सब लोकोंके नमस्कार करनें योग्य हैं नित्य धर्म परायण श्रमणी आपको अवलोकन करके स्वर्गको चली जायगी ॥ २७ ॥ हे काकुत्स्थनंदन! जब आप पंपाके पश्चिम तीरपर जांयगे तब महर्षि मतंग का अनेक आश्रमोंमें गुप्त आश्रम दृष्टि आवैगा ॥ २८ ॥ पृथ्वीमें यह आश्रम अतुलनीय है मतंग मुनिजीके प्रभावके वशसे हाथीभी इस आ

समान पृथ्वीपर गिर पड़ीं ॥ ६ ॥ तिसके पीछे बड़े नेत्रोंवाली सीताजी सावधान होकर बहुत देरके पीछे चैतन्यता प्राप्त करती हुई, प्राण मार डाले गयेहैं
निकट उस मस्तकको रखकर विलाप करनें लगी ॥ ७॥ हा महाबाहो! हम जीवित हुईभी मारी गई! , तुमनें वीर श्रेष्ठकी समान अपने पिताका सत्य
प्रतिपालन किया, परन्तु हमनें विधवा होकर तुम्हारी यह सबसे पीछे अवस्था देखी ॥ ८ ॥ हा नाथ! पहले स्वामीका मरण होनेंसे वह स्त्रीके
दोषसेही मरण कहलाताहै परन्तु हमको साध्वी (पतिव्रता) जानकरभी तुम किस कारणसे साधुकी समान पहलेही मृतक होगये ॥ ९ ॥ हाय!
हम महादुःखके समुद्रमें डूबती हुई बड़े कष्टसे दिन विताय रहीहैं, हमें भरोसा था कि तुम हमे इस विपदसे छुड़ाओगे, परन्तु! हमारे जले भाग्यसे

सामुहूर्तात्समाश्वस्यपरिलभ्याथचेतनाम् ॥ तच्छिरःसमुपास्थायविललापायतेक्षणा ॥ ७ ॥ हाहतास्मिमहाबाहो
वीरव्रतमनुव्रत ॥ इमांतेपश्चिमावस्थांगतास्मिविधवाकृता ॥ ८ ॥ प्रथमंमरणंनार्याभर्तुर्वैगुण्यमुच्यते ॥ सुवृत्तः
साधुवृत्तायाःसंवृत्तस्त्वंममाग्रतः ॥ ९ ॥ महद्दुःखंप्रपन्नायामग्नायाःशोकसागरे ॥ योहिमामुद्यतस्त्रातुंसोपित्वंविनिपा
तितः ॥ १० ॥ साश्वश्रूर्ममकौसल्यात्वयापुत्रेणराघव ॥ वत्सलातेयथाधेनुर्विवत्सावत्सलाकृता ॥ ११ ॥ उद्दि
ष्टंदीर्घमायुस्तेदैवज्ञैरपिराघव ॥ अनृतंवचनंतेषामल्पायुरसिराघव ॥ १२ ॥ अथवानश्यतिप्रज्ञाप्राज्ञस्यापिसत
स्तव ॥ पचत्येनंतथाकालोभूतानांप्रभवोह्ययम् ॥ १३ ॥ अदृष्टंमृत्युमापन्नाःकस्मात्त्वंनयशास्त्रवित् ॥ व्यसना
नामुपायज्ञःकुशलोह्यसिवर्जने ॥ १४ ॥

आज तुमही मृतक होगये ॥ १० ॥ हानाथ! तुम सरीखा पुत्र पायकरभी हमारी वह सास कौशल्याजी किस कारणसे विना बच्चेकी गायके
समान वत्सरहित होगई? ॥ ११ ॥ हे रामचंद्रजी! वशिष्ठ आदि दैवके जाननेंवाले महर्षियोंनें तुमको बड़ी आयुवाला कहाथा, परन्तु हमारे
कुभाग्यसे तुम अल्पायु होकरही मृतक होगये, हा! अब उन महर्षियोंके वचन मिथ्या हुए ॥ १२ ॥ तुम पंडित होकरभी जो सावधानताका
नाश होनेंके कारण शत्रुके वशमें पड़े, सो यह सब बात कालसे ही हुईहै, कारण कि कालही सर्व भूतोंका ईश्वरहै ॥ १३ ॥ हा
नीतिशास्त्रविशारद! तुम तो सब विपदोंसे बचनेंका उपाय जानतेथे, और इन विपदोंके निवारण करनेंमें समर्थ होकरभी तुम

॥ ७३ ॥

कोमल और सुन्दर वनैले पशु रुरु मृग देख शोक परित्याग करदेंगे, हे श्रीरामचंद्रजी ! उस पर्वतकी कंदराभी अति शोभायमान हैं ॥ ३९ ॥ उस कंदराके द्वारपर सदाही भारी शिला लगी रहतीहै, इस कारण सरलतासे उसमें प्रवेश करना नहीं हो सकता, उस गुफाके पूर्व द्वार पर एक बडा भारी अचल जलका कुंडहै ॥ ४० ॥ उस कुंडके किनारे पर वहुत सारे फूल व फलोंसे युक्त अनेकर भांतिके रमणीक वृक्ष लगेहैं, और वहींपर धर्मात्मा सुग्रीवजी वानरोंके सहित वास करतेहैं ॥ ४१ ॥ और वह सुग्रीवजी कभीर उस पर्वतके शिखर परभी वैठे रहतेहैं, इस प्रकारसे वह कवंध श्रीराम लक्ष्मणजीसे वताय ॥ ४२ ॥ फूलोंकी माला पहरे, सूर्यके समान प्रकाशित आकाशमें टिका हुआ शोभित होनें लगा,

रुरूनपेतानजयान्दृष्ट्वाशोकंप्रहास्यसि ॥ रामतस्यतुशैलस्यमहतीशोभतेगुहा ॥३९॥शिलापिधानाकाकुत्स्थदुःखंचा स्याःप्रवेशनम्॥ तस्यागुहायाःप्राग्द्वारेमहान्शीतोदकोह्रदः ॥४०॥ बहुमूलफलोरम्योनानानगसमाकुलः॥तस्यांवस तिधर्मात्मासुग्रीवःसहवानरैः ॥ ४१ ॥ कदाचिच्छिखरेतस्यपर्वतस्यापितिष्ठति ॥ कबंधस्त्वनुशास्यैवंतावुभौरामल क्ष्मणौ ॥ ४२ ॥ स्रग्वीभास्करवर्णाभःखेव्यरोचतवीर्यवान् ॥ तंतुखस्थंमहाभागंतावुभौरामलक्ष्मणौ ॥ ४३ ॥ प्रस्थि तौत्वंव्रजस्वेतिवाक्यमूचतुरंतिके॥गम्यतांकार्यसिद्ध्यर्थमितितावब्रवीत्सच ॥४४॥सुप्रीतौतावनुज्ञाप्यकबंधःप्रस्थित स्तदा ॥ ४५ ॥ सतत्कबंधःप्रतिपद्यरूपंवृतःश्रियाभास्वरसर्वदेहः ॥ निदर्शयन्राममवेक्ष्यखस्थःसख्यंकुरुष्वेतितदा भ्युवाच ॥ ४६ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०आर०त्रिसप्ततितमःसर्गः ॥ ७३ ॥ ॥ तौकबंधेनतंमार्गंपंपायादर्शितंवने॥ आतस्थतुर्दिशंगृह्यप्रतीचींनृवरात्मजौ ॥ १ ॥

उस वडे भाग्यवालेको श्रीराम लक्ष्मणजीनें देखकर ॥ ४३ ॥ उस कवंधसे कहा कि अच्छा इस समय हम सुग्रीवके निकट जाते हैं, और तुमभी स्वर्गको जाओ ॥ ४४ ॥ तव कवंध श्रीराम लक्ष्मणजीकी आज्ञा लेकर प्रसन्न होकर स्वर्गको चला ॥४५॥ उस कालमें कवंध अपना पहला रूपप्राप्त करके शोभा समन्वित और प्रदीप्त शरीर होकर श्रीरामचन्द्रजीकी ओर दृष्टि करकै कहने लगा कि आप सुग्रीवके साथ मित्रता स्थापन कीजिये ॥ ४६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आदिकाव्ये आरण्यकांडे त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥७३॥जव कवंध इस प्रकारसे कहकर स्वर्गको चला गया तव श्रीराम लक्ष्म

अपने साथ लेते चलो ॥२१॥ हे भली गतिको पहुंचे हुए! हमको दुःख भोग करनेंके लिये इस लोकको छोडकर तुम किस वास्ते परलोक ॥२२॥हाय ??? तुम्हारा-यह मंगलमय मनोहर शरीर केवल हमही भेंटतीथीं अब वही शरीर राक्षस लोगों करकै इधर उधर खेंचा जाता होगा! ॥२३॥ तुमनें बहुत दक्षिणाके साथ अग्निष्टोमादि यज्ञ करकै जो संस्कार कियेथे, इस समय अग्निहोत्रद्वारा तुम वह संस्कार क्यों नहीं ग्रहण करते ॥२४॥ हाय ! हम तीन जने अयोध्या पुरीसे वनवास करनेंको आयेथे; परन्तु अब कौशिल्याजी इकले लक्ष्मणजीकोही लौटा आये देखकर शोकके समुद्रमें डूब जांयगी ॥ २५ ॥ तिसके पीछे जब वह लक्ष्मणजीसे तुम्हारा वृत्तान्त पूछेंगी. तब लक्ष्मणजीभी निश्चयही वानरोंकी सेनाका वध,

कस्मान्मामपहायत्वंगतोगतिमतांवर ॥ अस्माल्लोकादमुंलोकंत्यक्त्वामामपिदुःखिताम् ॥ २२ ॥ कल्याणैरुचिरंगात्रं परिष्वक्तंमयैवतु ॥ क्रव्यादैस्तच्छरीरंतेनूनंविपरिकृष्यते ॥ २३ ॥ अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्टवानाप्तदक्षिणैः ॥ अग्निहोत्रेणसंस्कारंकेनत्वंनतुलप्स्यसे ॥ २४ ॥ प्रव्रज्यामुपपन्नानांत्रयाणामेकमागतम् ॥ परिप्रेक्ष्यतिकौसल्यालक्ष्मणंशोकलालसा ॥ २५ ॥ सतस्याःपरिपृच्छंत्यावधंमित्रबलस्यते ॥ तवचाख्यास्यतेनूनंनिशायांराक्षसैर्वधम् ॥ २६ ॥ सात्वांसुप्तंहतंज्ञात्वामांचरक्षोगृहंगताम् ॥ हृदयेनावदीर्णेननभविष्यतिराघव॥२७॥ ममहेतोरनार्यायाअनघःपार्थिवात्मजः ॥ रामःसागरमुत्तीर्यवीर्यवान्गोष्पदेहतः ॥ २८ ॥ अहंदाशरथेनोढामोहात्स्वकुलपांसनी ॥ आर्यपुत्रस्यरामस्य भार्यामृत्युरजायत ॥२९॥ नूनमन्यांमयाजातिंवारितंदानमुत्तमम् ॥ याहमद्यैवशोचामिभार्यासर्वातिथेरिह ॥ ३० ॥

और जिस राक्षसोंसे तुम मार डाले गये वह सर्व वार्ता कहेंगे ॥ २६ ॥ हा राघव ! उस समय तुमको सोते हुए नाशको प्राप्त और हमको राक्षसके घरमें घिरी हुई सुनैगी, तब क्या उनका हृदय शतखंड नही हो जायगा? ॥ २७ ॥ हाय ! मुझ खोटे शीलवालीकेही लिये पापरहित राजकुमार श्रीरामचंद्रजीके समुद्रके पार होकर एक गौके खुरभर पानीमें डूब गये ॥ २८ ॥ हाय! आर्यपुत्र श्रीरामचंद्रजीनें अज्ञानकेही वश इस कुल नाशिनीके साथ विवाह कियाथा, कारण कि मुझ भार्याकेही परिणाममें श्रीरामचंद्रजीकी मृत्यु हुई ॥२९॥ हे आर्य ! जब कि हम अतिथि लोगोंके

आज आपके दर्शनोंसे मेरे तपकी सिद्धि हुई, जन्म सफल हुआ, गुरु गणोंकी पूजा भली भांतिसे होगई ॥११॥ और तपस्याभी सार्थक होगई, हे
पुरुषोत्तम! आप देवताओंमें श्रेष्ठ हैं सो इस समय आपकी पूजा करनेसे हमें ब्रह्मलोक प्राप्त होगया ॥ १२ ॥ हे सौम्य! हे मान देनें वाले
हे शत्रुघाती! आपके शुभकारी नेत्रोंकी दृष्टि पडनेंसे हम पवित्र होगई, अब आपके प्रसादसे हमको सब अक्षय लोकोकी प्राप्ति हो जायगी ॥१३॥
जिनकी हम सेवा करतीथीं वह ऋषि आपके चित्रकूट पर्वतपर पधारतेही अनुपम देदीप्यमान देव विमानोंमें सवार होकर इस आश्रमसें स्वर्गको चले
गये हैं ॥ १४ ॥ वह सब महा भाग्यवान धर्मात्मा महर्षि लोक स्वर्ग जानेंके समय हमसे कह गये कि श्रीरामचन्द्रजी तुम्हारे इस पुण्य जनक

अद्यप्राप्तातपःसिद्धिस्तवसंदर्शनान्मया ॥ अद्यमेसफलंजन्मगुरवश्चसुपूजिताः ॥ ११ ॥ अद्यमेसफलंतप्तंस्वर्गश्चैवभ
विष्यति ॥ त्वयिदेववरेरामपूजितेपुरुषर्षभ ॥ १२ ॥ तवाहंचक्षुषासौम्यपूतासौम्येनमानद ॥ गमिष्याम्यक्षयान्
लोकांस्त्वत्प्रसादादरिंदम ॥ १३ ॥ चित्रकूटंत्वयिप्राप्तेविमानैरतुलप्रभैः ॥ इतस्तेदिवमारूढायानहंपर्यचारिपम् ॥१४॥
तैश्चाहमुक्ताधर्मज्ञैर्महाभागैर्महर्षिभिः ॥ आगमिष्यतितेरामःसुपुण्यमिममाश्रमम् ॥ १५ ॥ सतेप्रतिग्रहीतव्यःसौ
मित्रिसहितोऽतिथिः ॥ तंचदृष्ट्वावरॉंल्लोकानक्षयांस्त्वंगमिष्यसि ॥ १६ ॥ एवमुक्तामहाभागैस्तदाहंपुरुषर्षभ ॥ म
यासंचितंवन्यंविविधंपुरुषर्षभ ॥ १७ ॥ तवार्थेपुरुषव्याघ्रपंपायास्तीरसंभवम् ॥ एवमुक्तःसधर्मात्माशबर्याशबरी
मिदम् ॥ १८ ॥ राघवःप्राहविज्ञानेतांनित्यमबहिष्कृताम् ॥ दनोःसकाशात्तत्त्वेनप्रभावंतेमहात्मनाम् ॥ १९ ॥

आश्रममें आमेंगे ॥ १५ ॥ सो तुम लक्ष्मणजीकी और उन श्रीरामचन्द्रजीकी अतिथिकी समान आदरसत्कारसे पूजा करना, उनके दर्शन करनेसे
ही तुमको सर्व अक्षय लोकोंकी प्राप्ति हो जायगी ॥ १६ ॥ हे पुरुषोत्तम! उस समय वह महाभाग्यशाली महर्षिलोग हमसे इस प्रकार कह गयेथे हे पु
रुषश्रेष्ठ! तभीसे हमनें विविध भांतिके भले २ फल ढूंढकर॥ १७ ॥आपकी सेवाके लिये धररक्खे हैं यह सब फल इसी पंपाके तीरवाले वृक्षोंके हैं
धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी शवरी करके इस प्रकार कहे जाकर उससे यह वचन बोले ॥ १८ ॥ कारण कि श्रीरामचन्द्रजीनें अपनें मनमें विचरा

और उसके विषयमें कर्त्तव्याकर्त्तव्यका विचार और
देखनेंको जाता हुआ ॥ ३८ ॥ और उन मंत्रियोंके मुखसे श्रीरामचंद्रजीके पराक्रमको जान उसके विषयमें कर्त्तव्याकर्त्तव्यका विचार और
उस लायक कार्यके अनुष्ठान करनेंके निमित्त सभामें आया ॥ ३९ ॥ इस ओर जैसेही कि रावण यहांसे चला गया, कि वैसेही उसके संगरमें
वह मायाकल्पित रामचंद्रजीका शिर और विचित्र धनुषभी अन्तर्ध्यान होगया ॥ ४० ॥ इस समयमें राजा रावण भयंकर विक्रमकारी मंत्रियोंके
सहित रामचंद्रजीके संबंधमें इस समय क्या कर्त्तव्यहै यह मंत्रणा करनें लगा ॥ ४१ ॥ तब रावण अपने समीप बैठे हुए हितकारी अपने सैना
पति लोगोंसे समयानुसार वचन बोला ॥ ४२ ॥ कि बहुत शीघ्र भेरी (बिगुल) बजवाकर तुम लोग शीघ्रही हमारी सैनाको यहां बुला लाओ;

सतुसर्वंसमर्थ्यैवमंत्रिभिःकृत्यमात्मनः ॥ सभांप्रविश्यविदधेविदित्वारामविक्रमम् ॥ ३९ ॥ अंतर्धानंतुतच्छीर्षं
तच्चकार्मुकमुत्तमम् ॥ जगामरावणस्यैवनिर्याणसमनंतरम् ॥ ४० ॥ राक्षसेंद्रस्तुतैःसार्धंमंत्रिभिर्भीमविक्रमैः ॥
समर्थयामासतदारामकार्यविनिश्चयम् ॥ ४१ ॥ अविदूरस्थितान्सर्वान्बलाध्यक्षान्हितैषिणः ॥ अब्रवीत्कालसदृशो
रावणोराक्षसाधिपः ॥ ४२ ॥ शीघ्रंभेरीनिनादेनस्फुटंकोणाहतेनमे ॥ समानयध्वंसैन्यानिवक्तव्यंचनकारणम् ॥ ४३ ॥
ततस्तथेतिप्रतिगृह्यतद्वचस्तदैवदूताःसहसामहद्बलम् ॥ समानयंश्चैवसमागतंचन्यवेदयन्भर्तरियुद्धकांक्षिणि ॥ ४४ ॥
इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०युद्धकांडेद्वात्रिंशःसर्गः ॥ ३२ ॥ ॥छ॥ सीतांतुमोहितांदृष्ट्वासरमानामराक्षसी ॥ आससादाथवै
देहींप्रियांप्रणयिनीसखी ॥१॥ मोहितांराक्षसेंद्रेणसीतांपरमदुःखिताम् ॥ आश्वासयामासतदासरमामृदुभाषिणी ॥२॥

परन्तु किसीसेभी बुलानेंका कारण न कहना ॥ ४३ ॥ तिसके पीछे वह युद्धाभिलाषी दूतगण "तथास्तु" कहकर राक्षसराज रावणके वचन
कहकर वचन मान, उस बड़ी भारी राक्षसी सैनाको वहां लायकर रावणके निकट उनके आगमनकी वार्ता रावणसे निवेदन की ॥ ४४ ॥ इत्यार्षे
श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे द्वात्रिंशःसर्गः ॥ ३२ ॥ इधर सीताजीको मोहित निहार अत्यन्त हितकारिणी सीताजीकी
सरमा नाम राक्षसी सखी जानकीजीके निकट आई ॥ १ ॥ और मीठे वचनोंकरके उस रावणके संताप देनेंसे मोहित हुई परम दुःखित

यह जो समस्त पुष्प देवता ओंको चढायेथे, सो वह अवतक नहीं मुर झायेहैं ॥ २७ ॥ आप सव वन देख चुके, और जो वात श्रवण करनेंके योग्यथी वह श्रवणभी कर चुके अव हमनें इस देहके छोडनेंका अभिलाप कियाहै सो आप आज्ञा दीजिये ॥ २८ ॥ जिनका यह आश्रमहै और जिनकी हम परिचारिका हैं उन विशुद्धात्मा महर्षियोंके निकट जानेंका हमारा अभिलाप हुआहै ॥ २९ ॥ श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके सहित शवरीकी यह धर्म युक्त वार्त्ता सुनकर अतिशय हर्षित हुये और बोले कि यह वडे आश्चर्य की वातहै ॥ ३० ॥ तिसके पीछे श्रीरामचंद्रजी दृढव्रत वाली शवरीसे बोले कि हे भद्रे! तुमने हमारी पूजा भली भांतिसे की अव तुम सुख सहित जहां जाना चाहती हो वहां पर चली जा

कृत्स्नंवनमिदंदृष्टंश्रोतव्यंचश्रुतंत्वया ॥ तदिच्छाम्यभ्यनुज्ञातात्यक्ष्याम्येतत्कलेवरम् ॥ २८ ॥ तेषामिच्छाम्यहं गंतुंसमीपंभावितात्मनाम् ॥ मुनीनामाश्रमोयेषामहंचपरिचारिणी ॥ २९ ॥ धर्मिष्ठंतुवचःश्रुत्वाराघवःसहलक्ष्मणः ॥ प्रहर्षमतुलंलेभेआश्चर्यमितिचाब्रवीत् ॥ ३० ॥ तामुवाचततोरामःशवरींसंशितव्रताम् ॥ अर्चितोऽहंत्वयाभद्रेगच्छ कामंयथासुखम् ॥ ३१ ॥ इत्येवमुक्ताजटिलाचीरकृष्णाजिनांबरा ॥ अनुज्ञातातुरामेणहुत्वात्मानंहुताशने ॥ ३२ ॥ ज्वलत्पावकसंकाशास्वर्गमेवजगामह ॥ दिव्याभरणसंयुक्तादिव्यमाल्यानुलेपना ॥ ३३ ॥ दिव्यांबरधरातत्रब भूवप्रियदर्शना ॥ विराजयंतीतंदेशंविद्युत्सौदामनीयथा ॥ ३४ ॥

ओ ❋ ॥ ३१ ॥ जव श्रीरामचंद्रजीनें इस प्रकारसे आज्ञादी तव जटा, चीर और काले वसन पहरे हुये शवरीनें अपने शरीरको अनलमें आहुतिदे ३२॥ प्रज्वलित अग्निके समान स्वर्गको चली गई स्वर्ग में गमन करनेंके समय उसके आभरण मालायें व चंदनादि सुगन्धित लगानेंके सव पदार्थ दिव्य होगये ॥ ३३ ॥ उसकालमें वह दिव्यही वस्त्र पहरनेके कारण परम मनोहारिणी दृष्टि आतीथी और वह दीप्तिमान विद्युतकी समान

भामिनि जो तै नेहलगायो ॥ मुक्त भई सव आस पासते ब्रह्मलोक फलपायो॥युगयुग कीरति चलिहै तेरी कियो ऋपिन मन भायो ॥ प्रातकाल तेरो सुमिरन करिकै रैनको पापन शायो ॥ यों वलदेव प्रसाद कहैं प्रभु, वेद विरद अस गायो ॥

वह अत्यन्त घोर पराक्रम करनेंवाले, और नित्यकाल अपने परायेकी रक्षाकरनें वाले, नीति शास्त्रके असाधारण जाननेंवाले परम कुलीनहैं, भ्राता लक्ष्मणभी उनके साथही साथ रहतेंहैं ॥ ११ ॥ हेसीते! शत्रुकी सैनाके नाश करनें वाले, अचिन्त्य बल पौरुषयुक्त, शत्रुके संहारकारी अपने लघु भ्राता लक्ष्मणके सहित श्रीरामचंद्रजी नहीं मारे गये ॥ १२ ॥ अन्याय बुद्धियुक्त क्रूरकर्म करनेंवाले सर्व प्राणियोंका विरोध करनेंवाले भयंकर रावणनें तुम्हारे निकट माया फैलाय यह धनुष बाण और शिर दिखलानेंका कार्य कियाहे ॥ १३ ॥ हेसीते! शोक बीतकर अब तुम्हारे बड़े भारी कल्याणका समय आयाहे। हेमान्ये! तुम बहुतही थोड़े समयमें बड़ी भारी सम्पत्ति प्राप्त करोगी, कारणकि तुम्हारे लिये जिस मंगल

विक्रांतोरक्षितानित्यमात्मनश्चपरस्यच ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्राकुलीनोनयशास्त्रवित् ॥११॥ हंतापरबलौघानामचिंत्यबलपौरुषः ॥ नहतोराघवःश्रीमान्सीतेशत्रुनिबर्हणः ॥१२॥ अयुक्तबुद्धिकृत्येनसर्वभूतविरोधिना ॥ इयंप्रयुक्तारौद्रेणमायामायाविनात्वयि ॥१३॥ शोकस्तेविगतःसर्वकल्याणंत्वामुपस्थितम् ॥ध्रुवंत्वाभजतेलक्ष्मीःप्रियंतेभवतिशृणु ॥१४॥ उत्तीर्यसागरंरामःसहवानरसेनया ॥ सन्निविष्टःसमुद्रस्यतीरमासाद्यदक्षिणम् ॥ १५ ॥ दृष्टोमेपरिपूर्णार्थःकाकुत्स्थःसहलक्ष्मणः ॥ सहितैःसागरांतस्थैर्बलैस्तिष्ठतिरक्षितः ॥ १६ ॥ अनेनप्रेषितायेचराक्षसालघुविक्रमाः ॥ राघवस्तीर्णइत्येवंप्रवृत्तिस्तैरिहाहृता ॥१७॥ सतांश्रुत्वाविशालाक्षिप्रवृत्तिंराक्षसाधिपः ॥ एषमंत्रयतेसर्वैःसचिवैःसहरावणः ॥१८॥

मय कार्यका प्रारंभ हमनें कियाहे, वह तुम सुनों ॥ १४ ॥ हम देख आई हैं कि श्रीरामचंद्रजी वानरसैनाके सहित समुद्रके पार होकर महा समुद्रके दक्षिण किनारे पर टिके हुएहे॥१५॥ हमनें अंतरीक्षमें टिक कर स्वयं देखाहे कि परिपूर्णार्थ रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी समुद्रके तीर टिकी वानरोंकी सैनासे रक्षित होकर अपने भ्राता लक्ष्मणजीके साथ विराजमानहो रहेहैं ॥ १६ ॥ और राक्षसोंके स्वामी रावणनें जिन लघु विक्रमी दूतोंको भेजाथा उन लोगोंनेंभी लौटकर रावणके निकट " रामचंद्रजी समुद्रको उतर आये " यह समाचार दियाहे ॥ १७ ॥ हेविशालनेत्रवाली! राक्षस

सहित वहांपर रहतेहैं हम चारों वानरों के सहित शीघ्रही उन वानरश्रेष्ठ सुग्रीव जीको वहांपर देखने चलेंगे ॥८॥कारण कि सीताजीको खोजना हमारा कार्य है,वह उन्हीं सुग्रीवके हाथमें है जब श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा तब लक्ष्मणजी उनसे बोले॥ ९॥ कि हमारा मन भी शीघ्रता करताहै इसकारण जलदी चलिये । यह सुन पृथ्वीश्वर दोनों भाई उस मतंगाश्रमसे चले॥१०॥और वहांसे चलकर पंपा नदीके तीर पर पहुंचे वहांपर देखा तो उसके चारों ओर अनेक प्रकारके पुष्पित वृक्ष लगेथे ॥ ११ ॥ वहांपर पहुंचने के समय कोयल अर्जुन तोता मैना आदि पक्षी गण वहांपर शब्द कर रहेथे ऐसा शब्दाय मान होता हुआ इस महावन ॥१२॥ ऐसे जात२के वृक्ष और समस्त सरोवरोंको देखते कामसे संतप्त हो श्रीरामचंद्रजी उस

तदधीनंहिमेकार्यंसीतायाःपरिमार्गणम् ॥ इतिब्रुवाणंतंवीरंसौमित्रिरिदमब्रवीत् ॥ ९ ॥ गच्छावस्त्वरितंतत्रममापि त्वरतेमनः ॥ आश्रमात्तुततस्तस्मान्निष्क्रम्यसविशांपतिः ॥ १० ॥ आजगामततःपंपांलक्ष्मणेनसहप्रभुः ॥ समीक्षमाणःपुष्पाढ्यंसर्वतोविपुलद्रुमम् ॥ ११ ॥ कोयष्टिभिश्चार्जुनकैःशतपत्रैश्चकीचकैः ॥ एतैश्चान्यैश्चबहुभिर्नादितंतद्वनंमहत् ॥ १२ ॥ सरामोविविधान्वृक्षान्सरांसिविविधानिच ॥ पश्यन्कामाभिसंतप्तोजगामपरमंह्रदम् ॥ १३ ॥ सतामासाद्यवैरामोदूरात्पानीयवाहिनीम् ॥ मतंगसरसंनामह्रदंसमवगाहत ॥ १४ ॥ तत्रजग्मतुरव्यग्रौराघवौहिसमाहितौ ॥ सतुशोकसमाविष्टोरामोदशरथात्मजः ॥ १५ ॥ विवेशनलिनींरम्यांपंकजैश्चसमावृताम् ॥ तिलकाशोकपुन्नागबकुलोद्दालकाशिनीम् ॥ १६ ॥ रम्योपवनसंबाधांरम्यसंपीडितोदकाम् ॥ स्फटिकोपमतोयांतांश्लक्ष्णवालुकसंतताम् ॥ १७ ॥

श्रेष्ठ ह्रदके तीर पहुंच गये ॥ १३ ॥ उस ह्रदका जल अति मीठा शीतल है और यह मतंग सरनामसे विख्यातथा ऐसे उस उत्तम जल वहते हुये मतंग सरमें श्रीरामचन्द्रजीनें स्नान किया॥१४॥तव वहां पर अव्याकुलतासे और मोहित चित्तसे श्रीरामचन्द्रजी गये फिर दशरथ कुमार श्रीरामचन्द्रजी शोकसे व्याकुल हो ॥ १५ ॥ पुरैनके पत्तोंसे छाये और कमल फूलोंसे छाया पंपा सरोवर पर तिलक,अशोक, पुन्नाग वकुल,उद्दाल इत्यादि वहुत लग रहे हैं ॥ १६ ॥ मनोहर वन उसके किनारे पर लगा हुआ है पद्मों करकै आवृत और स्फटिककी समान निर्मल जल और सुख स्पर्श चिकना

हिनहिनानेंका शब्द तुम श्रवण करो रावणके अनुयायी राक्षसगण हथियार उठाये गमन कर रहेहैं; देखते २ भयंकर रुओंको खड़ा करनेंवाली तेयारीयें होंने लगी, देखो! शोकका नाश करनेंवाली लक्ष्मी तुम्हारे अंगोंमें शोभायमान होरहीहै; राक्षसलोगोंको श्रीरामचंद्रजीसें भय उत्पन्न हुआ है ॥२७॥ कि जिस प्रकार इन्द्रजीसे दैत्योंको भय उत्पन्न होताहै। हे कमलदलसम नेत्रवाली जितेन्द्रिय अचिंत्य विक्रमकारी तुम्हारे पति श्रीरामचंद्रजी समरमें रावणको संहार करके तुमको प्राप्त करेंगे ॥२८॥ इन्द्रजीनें जिस प्रकार विष्णुजीकी सहायतासे शत्रु लोगोंपर विशेष पराक्रम प्रकाश कियाथा, वैसेही तुम्हारे स्वामी श्रीरामचंद्रजी अपने भ्राता लक्ष्मणजीके साथ संग्राममें राक्षसोंके ऊपर विचित्र विक्रम प्रगट करेंगे ॥ २९ ॥ जब

रामःकमलपत्राक्षोदैत्यानामिववासवः ॥ अवजित्यजितक्रोधस्तमचिंत्यपराक्रमः ॥रावणंसमरेहत्वाभर्तात्वाऽधिगमिष्यति ॥ २८ ॥ विक्रमिष्यतिरक्षस्सुभर्तातेसहलक्ष्मणः ॥ यथाशत्रुषुशत्रुघ्नोविष्णुनासहवासवः ॥ २९ ॥ आगतस्यहिरामस्याक्षिप्रमंकगतांसतीम् ॥ अहंद्रक्ष्यामिसिद्धार्थांत्वांशत्रौविनिपातिते ॥ ३० ॥ अस्राण्यानंदजानित्वंवर्तयिष्यसिजानकि ॥ समागम्यपरिष्वक्तातस्योरसिमहोरसः ॥ ३१ ॥ अचिरान्मोक्ष्यतेसीतेदेवितेजघनंगताम् ॥ धृतामेकांबहून्मासान्वेणींरामोमहाबलः ॥ ३२ ॥ तस्यदृष्ट्वामुखंदेविपूर्णचंद्रमिवोदितम् ॥ मोक्ष्यसेशोकजंवारिनिर्मोकमिवपन्नगी ॥ ३३ ॥ रावणंसमरेहत्वानचिरादेवमैथिलि ॥ त्वयासमग्रःप्रिययासुखार्होलप्स्यतेसुखम् ॥ ३४ ॥

शत्रुका नाश होजायगा, तब तुम्हारा मनोरथभी पूर्ण होगा और हम तुम्हें यहां आये हुए तुम्हारे स्वामीके अंगमें विराजमान देखेंगी ॥ ३० ॥ हेजानकी! उन चौंड़ी छातीवाले अपने स्वामी श्रीरामचंद्रजीको भेंटकर तुम उनकी छातीपर बहुतही शीघ्र आनंदके आंसू बहाओगी ॥ ३१ ॥ हेदेवी! तुम कई महीनोंसे जो जांघोंतक लम्बायमान एक मात्र वेणी धारण किये हुएहो सो महाबलवान श्रीरामचंद्रजी शीघ्रही इस चोटीको बहुत शीघ्र अपने करपंकजोंसे सुधारदेंगे और तुम बहुतही शीघ्र इस विपदसे छूटोगी ॥३२॥हेदेवी! जिस प्रकार सांपनि पुरानी केंचलीको छोड़ देतीहै; वैसेही तुम उदय हुए चंद्रमाकी समान अपने स्वामीका वह मुख देखकर आनंदके आंसू छोड़ोगी ॥ ३३ ॥ हेरामप्यारी जानकी! सुखके योग्य श्रीराम

नाथ सुग्रीवके पास चलें ॥ २७ ॥ सत्य विक्रमवान् श्रीरामचंद्रजी फिर लक्ष्मणजीसे
सुग्रीव नाम करके वहां वसते हैं सो हे नरश्रेष्ठ! उस व होकर किस भांतिसे सीताके विरह में जीवन धारण करे? ॥२८॥ श्रीरामचंद्रजी सीताजीमें
बोले कि हे लक्ष्मण! हम राज्यभ्रष्ट दीन और सीतागत महाशोक प्रकाश करते हुये उस कमल पुष्पोंसे युक्त मनोहर पंपाके तीरमें पैठते हुये॥२९॥
चित्त लगाये और मदनसे पीडितहो लक्ष्मणजीसे ऐ जाते हुये धीरे २ अनेक प्रकारके पक्षियोंके समूहसे आकुल सुन्दर वन शोभित पंपासरमें
और चारों ओरका विविध भांति वन देखते भा आदिकाव्ये पंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृत टीकायां आरण्यकांडे पंचसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥
पैठे ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मी ॥सुग्रीवमभिगच्छत्वंवानरेंद्रंनरर्षभ ॥२७ ॥ इत्युवाचपुनर्वाक्यंलक्ष्मणंसत्य
अध्यास्तेतुमहावीर्यःसुग्रीवइतिवि क्ष्मणजीवितुम् ॥ २८ ॥ इत्येवमुक्त्वामदनाभिपीडितःसलक्ष्मणंवाक्यमनन्यचे
विक्रमः ॥ कथंमयाविनासीताशक् युत्तमंशोकमुदीरयाणः ॥ २९ ॥ क्रमेणगत्वाप्रविलोकयन्वनंददर्शपंपांशुभद
तनः ॥ विवेशपंपांनलिनीमनोरम संकुलांविवेशरामःसहलक्ष्मणेन ॥ ३० ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआ
र्शकाननाम् ॥ अनेकनानाविध सर्गः ॥ ७५ ॥ ॥ अतःपरंकिष्किंधाकांडंभविष्यति तस्यायमाद्यःश्लोकः ॥
दिकाव्येआरण्यकांडेपंचसप्त कुलाम् ॥ रामःसौमित्रिसहितोविललापाकुलेंद्रियः ॥ १ ॥
सतांपुष्करिणींगत्वापद्मोत्पल
यह श्लोक है ॥ कमल, लाल कमल मछलियोंसे युक्त पंपासरोवरके किनारे लक्ष्मण सहित जाकर
इसके आगे किष्किंधाकांड है जिसके करनें लगे ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ७ ॥
महात्मा रामचन्द्र व्याकुलेन्द्रियहो संकट हरन, विघ्न विनाशन आप ॥ ब्रह्म सच्चिदानंदघन, दूर करो संताप ॥

दोहा—सागर परम, नरतनु धारि खरार । लीला विस्तारी जगत, नित मंगल दातार ॥

गुणनंत सुमिरन करैं, गुणगण प्रभुके गाय । ते विनु श्रम संसारके, पारभये सुख पाय ॥

कोमल वाणीसे सरमासे बोली ॥ ५ ॥ निःसन्देह तुम आकाश पातालमें जायसकती हो; और वहभी हम जानती हैं कि ऐसा कोई कार्य नहीं जिसको कि हमारे लिये तुम न कर सको ॥ ६ ॥ जो कुछ भी हो यदि हमारा प्रियकार्य सिद्धकरना तुम चाहती हो और यदि इस कार्यमे तुम्हारी स्थिर मति हुई हो तौ रावण इस स्थानसे जायकर इस समय हमारे संबंधमें क्या विचार कर रहाहै; यह जान आओ कारण कि यही बात जाननेंकी हमारी इच्छा हुई है ॥ ७ ॥ जिसप्रकार लोग मदिरा पान करके मोहित होजाते हैं वैसेही मायाके बलसे क्रूर शत्रु रावण हमको मोहित करनेकी चेष्टा कर रहा है॥८॥ सरमे! रावण सदां घोर राक्षसियोंसे हमारी रक्षा कराताहै; और उनसे हमको डरवा धमकायकर हमारी निन्दाभी कराता

समर्थागगनंगंतुमपिचत्वंरसातलम् ॥ अवगच्छाद्यकर्तव्यंकर्तव्यंतेमदंतरे ॥ ६ ॥ मतिप्रियंयदिकर्तव्यंयदिबुद्धिः स्थिरातव ॥ ज्ञातुमिच्छामितंगत्वाकिंकरोतीतिरावणः ॥ ७ ॥ सहिमायाबलःक्रूरोरावणःशत्रुरावणः ॥ मांमोहयतिदुष्टात्मापीतमात्रेववारुणी ॥ ८ ॥ तर्जापयतिमांनित्यंभर्त्सापयतिचासकृत् ॥ राक्षसीभिःसुघोराभिर्योमांरक्षतिनित्यशः ॥ ९ ॥ उद्विग्नाशंकिताचास्मिनस्वस्थंचमनोमम ॥ तद्भयाच्चाहमुद्विग्नाअशोकवनिकांगता ॥ १० ॥ यदिनामकथातस्यनिश्चितंवापियद्भवेत् ॥ निवेदयेथाःसर्वंतद्वरोमेस्यादनुग्रहः ॥ ११ ॥ साप्येवंब्रुवतींसीतांसरमा मृदुभाषिणी ॥ उवाचवचनंतस्याःस्पृशंतीबाष्पविक्लवम् ॥ १२ ॥

है॥९॥हमारा मन हमारे वशमें न रहकर सदां रुवा हुआ शंकायुक्त रहताहै;सखि! अधिक क्या कहैं, हम रावणके भयसेही अशोक वनमें वास करती हैं, परन्तु क्षणभरके लियेभी हमारे मनकी व्याकुलता दूर नहीं होती॥ १० ॥ हे सरमे! रावणकी सभामें हमारे छोड देनेंके सम्बंधमें अथवा और कोई दूसरी परामर्श हो; वह यदि तुम हमारे निकट समस्त प्रकाश करके कहो; तौ तुम्हारी हमारे ऊपर बडीही दया होगी; बस यही वरदान हम तुमसे मांगतीहैं ॥ ११ ॥ मृदु वचन बोलनेंवाली सरमानें सीताजीके ऐसे वचन सुनकर अपने डुपट्टेके अंचलसे उनका

भयके मारे उठनें लगा तब राक्षस लोगोंनें बहुतसे पटे मार २ कर उनकी जांघें तोडदी; ऐसी चोट खाय वहभी मर गया, और जड़ कटे पेड़की समान वहांपर पड़ाहै ॥ २७ ॥ वानरश्रेष्ठ मैन्द और द्विविद नामक दोनों जनें लंबे २ श्वास लेते रुदन करते २ लोहू लुहान शरीर हो मर गये ॥ २८ ॥ प्रथमही अस्त्र प्रहार करके (?) शत्रुओंके मारनेवाले लोगोंके हाथ काट डाले गयेथे, पनस फल जिस प्रकार पृथ्वीपर गिरताहै, वैसेही वानर पनस पृथ्वीपर शरीरको फैलाये हुए पड़ाहै ॥ २९ ॥ वानर दधिमुख अनेक प्रकारके बाण चलाये जानेंसे मस्तक हीन होकर पर्वतकी कन्दरामें सदाके लिये सोय गयाहै । और महातेजस्वी कुमुद नाम वानरभी चुप चाप शब्दरहित हो पृथ्वीपर पड़ाहै ॥ ३० ॥ अंग

मैंदश्चद्विविदश्चोभौतौवानरवरर्षभौ ॥ निःश्वसंतौरुदंतौचरुधिरेणपरिवृतौ ॥२८॥ असिनाव्यायतौछिन्नौमध्येह्यरिनिषूदनौ ॥ अनुष्वनतिमेदिन्यांपनसःपनसोयथा ॥ २९ ॥ नाराचैर्बहुभिश्छिन्नःशेतेदर्यांदरीमुखः ॥ कुमुदस्तुमहातेजा निष्कूजन्सायकैर्हतः ॥ ३० ॥ अंगदोबहुभिश्छिन्नःशरैरासाद्यराक्षसैः ॥ परितोरुधिरोद्गारीक्षितौनिपतितोऽगदः॥३१॥ हरयोमथितानागैरथजालैस्तथापरे ॥ शयानामृदितास्तत्रवायुवेगैरिवांबुदाः ॥ ३२ ॥ प्रसृताश्चपरेत्रस्ताहन्यमाना जघन्यतः ॥ अनुद्रुतास्तुरक्षोभिःसिंहैरिवमहाद्विपाः ॥ ३३ ॥ सागरेपतिताःकेचित्केचिद्गगनमाश्रिताः ॥ ऋक्षावृक्षानुपारूढावानरैर्व्यतिमिश्रिताः॥३४॥सागरस्यचतीरेषुशैलेषुचवनेषुच॥पिंगलास्तेविरूपाक्षैराक्षसैर्बहवोहताः॥३५॥

दभी बहुतसे बाणोंसे छिन्न होकर मारागया, उसका अंगभी भूमिपर पड़ा हुआहै, और उसके सब अंगोंसे रुधिरकी धारा निकल रहीहैं ॥ ३१ ॥ और वायु वेगके प्रभावसे चलायमान मेघ मालाकी समान हाथी व रथोंके टकरानें और पिचनेंसे जितनी वानरसैना मारी गईहै उसकी कुछ गिनतीही नहीं हो सकती ॥ ३२ ॥ सिंह जिस प्रकार महागजोंके पीछे दौड़ताहै, वैसेही राक्षस लोगोंके हाथसे असंख्य वानर सैना भागती हुईभी गिरगई ॥ ३३ ॥ रीछ लोग वानर दलके साथ मिल व छिपकर वृक्षोंपर चढ़ गयेहैं, और कोई २ समुद्रमें गिर गयेहैं, और कोई २ आकाशका आश्रय ग्रहण किये हुएहैं ॥ ३४ ॥ समुद्रके किनारों पर पर्वत और बनोंमें जिन पीले अंगवाले वानरोने आश्रय लियाथा; यह समस्त विरूपाक्ष

"कि हे रावण! शीघ्र श्रीरामचंद्रजीको आदर सहित तुम सीताजीको लौटादो; हे राजन्! उनका पराक्रम तौ तुम जानतेही हो, कि जनस्थानमें उन्होंनें कैसा अद्भुत कर्म कियाथा बस पराक्रमका तौ प्रमाण तौ इतनाही बहुत है॥२१॥ हे राजन्! समुद्रके पार आकर हनुमानजी सीताको देख कर गया यह क्या कुछ थोडी बात है? हे राक्षसराज! श्रीरामचंद्रजी साधारण मनुष्य नहीं है; कारण कि ऐसा कौन मनुष्यहै जो रणभूमिमें राक्षसोंको मार सकताहै" ॥२२॥ हे जानकि! इस प्रकारसे वृद्धमंत्री और रावणकी मातानें तुम्हें छोड देनेंके लिये रावणको बहुत समझाया बुझाया; परन्तु लालची पुरुष जिस प्रकार धनको किसी भांति नहीं छोड़ता वैसेही रावणकी इच्छा तुम्हें छोड़नेंकी नहींहै ॥ २३ ॥ हे

दीयतामभिसत्कृत्यमनुजेंद्रायमैथिली ॥ निदर्शनंतेपर्याप्तंजनस्थानेयदद्भुतम् ॥ २१ ॥ लंघनंचसमुद्रस्यदर्शनंच हनूमतः ॥ वधंचरक्षसांयुद्धेकःकुर्यान्मानुषोयुधि ॥ २२ ॥ एवंसमंत्रिवृद्धैश्चमात्राचबहुबोधितः ॥ नत्वामुत्सहतेमोक्तुमर्थमर्थपरोयथा ॥ २३ ॥ नोत्सहत्यमृतोमोक्तुंयुद्धेत्वामितिमैथिलि ॥ सामात्यस्यनृशंसस्यनिश्चयोह्येषवर्तते॥२४॥ तदेषांसुस्थिराबुद्धिर्मृत्युलोभादुपस्थिता ॥ भयान्नशक्तस्त्वांमोक्तुमनिरस्तःससंयुगे ॥ २५॥ राक्षसानांचसर्वेषामात्मनश्चवधेनहि ॥ निहत्यरावणंसंख्येसर्वथानिशितैःशरैः ॥ प्रतिनेष्यतिरामस्त्वामयोध्यामसितेक्षणे ॥ २६ ॥ एतस्मिन्नंतरेशब्दोभेरीशंखसमाकुलः ॥ श्रुतोवैसर्वसैन्यानांकंपयन्धरणीतलम् ॥ २७ ॥

सीते! रावणनें अपने सब मंत्रियोंके साथ यह निश्चय कियाहै कि हम प्राण रहते रामचंद्रकी सीता रामचंद्रको कभी नही देंगे ॥ २४ ॥ राक्षसोंके साथ स्वयं रावणभी जबतक न मरजायगा तबतक केवल मृत्युका भयंकर युद्ध न करनेंमें मति नहीं करेगा और न तुमको त्यागही करेगा ऐसा उस रावणनें निश्चय सिद्धान्तकर लियाहै ॥ २५ ॥ हे श्यामनेत्रवाली! तुम कुछभी चिन्ता न करो, श्रीरामचंद्रजी संग्राममें चलाये तीक्ष्ण बाणोंकी सहायतासे रावणका गर्व्व खर्व्व करकै तुमको अपनी राजधानी अयोध्यापुरीमें लेजांयगे ॥२६॥ सरमा इस प्रकारसे कह रहीथी कि इतनेमें

हुआ रामचंद्रजीका धनुषहै, जिसको रात्रि कालमें रामचंद्रजीका प्राण संहार करके प्रहस्त लायाहै ॥ ४४ ॥ तिसके पीछे रावण विद्युज्जिह्वका लाया हुआ वह मस्तक और यशस्विनी सीताजीके सामनें रखकर उनसे बोला"जो होंना था सो तौ होगया,अब तुम्हारा कर्तव्य यहीहै कि तुम हमारे वशमें होजाओ ॥ ४५ ॥ इ०श्रीमद्वा० आ०यु०एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥ तब सीताजी रामचंद्रजीका शरासन और उनका मस्तक देख और वह सुधिकर जो कि हनुमानजीनें कहाथा कि वानरराज सुग्रीवकी रामचंद्रजीसे मित्रता हुईहै बहुत देरतक रोंई ॥ १ ॥ जानकीजीने देखा कि कटे हुए मस्तकके दोनों नेत्र रामचंद्रजीकेही समानहैं, वैसाही मुखका रंग, केश, और ठोडी,व चूडामणिके सहितभी इसका कुछ अन

सविद्युजिह्वेनसहैवतच्छिरोधनुश्चभूमौविनिकीर्यमाणः ॥ विदेहराजस्यसुतांयशस्विनींततोऽब्रवीत्तांभवमेवशानुगा ॥ ४५ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेएकत्रिंशःसर्गः ॥ ३१ ॥ ॥ ७ ॥ सासीतातच्छिरोदृष्ट्वातच्चकार्मुकमुत्तमम् ॥ सुग्रीवप्रतिसंसर्गमाख्यातंचहनूमता ॥ १ ॥ नयनेमुखवर्णंचभर्तुस्तत्सदृशंमुखम् ॥ केशान्केशांतदेशंचतंचचूडामणिंशुभम् ॥ २ ॥ एतैःसर्वैरभिज्ञानैरभिज्ञायसुदुःखिता ॥ विजगर्हेऽत्रकैकेयींक्रोशंतीकुररीयथा ॥ ३ ॥ सकामाभवकैकेयिहतोयंकुलनंदनः ॥ कुलमुत्सादितंसर्वंत्वयाकलहशीलया ॥ ४ ॥ आर्येणकिंनुकैकेय्याःकृतंरामेणविप्रियम् ॥ यन्मयाचीरवसनंदत्त्वाप्रव्राजितोवनम् ॥ ५ ॥ एवमुक्त्वातुवैदेहीवेपमानातपस्विनी ॥ जगामजगतींबालाछिन्नातुकदलीयथा ॥ ६ ॥

मेल नहींहै ॥ २ ॥ जनकनंदिनी सीताजी औरभी अनेक प्रकारके चिह्न देख निश्चय अपने स्वामीकी मृत्युका होना जान अत्यन्त दुःखित हुई; और कुरीं जिसप्रकार शोकसे व्याकुल होकर विलाप करतीहै,वैसेही विलापसे कैकेयीकी निन्दा कर कहनें लगी ॥ ३ ॥ हे कैकेयी! तुम्हारी मनोकामना पूरी हुई,हे क्लेशको प्यार करनेंवाली तुमसेही रघुकुलनंदन श्रीरामचंद्रजी निहत हुए, तुझकोही प्राप्त होकर बड़े भारी रघुकुलका नाश होगया ॥ ४ ॥ हाय!!! आर्यपुत्र श्रीरामचंद्रजीनें तेरा ऐसा क्या बुरा कियाथा, कि जो तैंनें चीरवसन पहरायकर हमारे सहित उनको बनोवास दिया!!! ॥ ५ ॥ इतनाही कहकर तपस्विनी छोटी अवस्थावाली जानकीजीकी देह कम्पायमान होंनेलगी, और वह जड़ .. कटे ..

पंडित माल्यवान नामक रावणका नाना रावणके वचन सुनकर बोला ॥ ६ ॥ हेमहाराज! जो राजा चौदहविद्यानिधान होकर नीतिशास्त्रके अनुसार कार्य करताहै, वही शत्रुलोगोंको वश करके अपने ऐश्वर्यको सदा भोगते रहतेहैं ॥ ७ ॥ जो राजा समयके अनुसार शत्रुके साथ संधि और विग्रह (लड़ाई) करके अपने पक्षको बढाताहै, वही बड़ेभारी ऐश्वर्यको प्राप्त करताहै ॥ ८ ॥ राजा किसी समयभी शत्रुको तुच्छ समझकर छोड़ नहींदे जो आप शत्रुसे कम बलवानहो, या समान बलवालाहो, तब तौ संधि करले; परन्तु जो शत्रुसे अधिक बलवालाहो तब तौ शत्रुसे विग्रहही करना उचितहै ॥ ९ ॥ हेरावण ! हमारी सम्मतिमें तौ जिसके लिये श्रीरामचंद्रजीसे युद्ध करतेहो उसी सीताको

विद्यास्वभिविनीतोयोराजाराजन्नयानुगः ॥ सशास्तिचिरमैश्वर्यमरींश्चकुरुतेवशे ॥ ७ ॥ संदधानोहिकालेनविगृह्णंश्चारिभिःसह ॥ स्वपक्षेवर्धनंकुर्वन्महदैश्वर्यमश्नुते ॥ ८ ॥ हीयमानेनकर्तव्योराज्ञासंधिःसमेनच ॥ नशत्रुमवमन्येत ज्यायान्कुर्वीतविग्रहम् ॥ ९ ॥ तन्मह्यंरोचतेसंधिःसहरामेणरावण ॥ यदर्थमभियुक्तोसिसीतातस्मैप्रदीयताम् ॥१०॥ तस्यदेवर्षयःसर्वेगंधर्वाश्चजयैषिणः ॥ विरोधंमागमस्तेनसंधिस्तेतेनरोचताम् ॥ ११ ॥ असृजद्भगवान्पक्षौद्वावेवहिपितामहः ॥ सुराणामसुराणांचधर्माधर्मौतदाश्रयौ ॥ १२ ॥ धर्मोहिश्रूयतेपक्षअमराणांमहात्मनाम् ॥ अधर्मोरक्षसांपक्षोह्यसुराणांचराक्षस ॥ १३ ॥ धर्मोवैग्रसतेऽधर्मंयदाकृतमभूद्युगम् ॥ अधर्मोग्रसतेधर्मंतदातिष्यःप्रवर्तते ॥ १४ ॥

लौटायकर उन रामचंद्रजीके साथ संधि करनाही तुमको उचितहै ॥ १० ॥ देवता गन्धर्व, व ऋषि लोग सबही की यह कामनाहै कि रामचंद्रजीकी जीतहो; इस कारण उनके साथ विरोध न करके आपके संधि करलैनी उचितहै ॥११॥ भगवान पितामह ब्रह्माजीनें सुर व असुर लोगोंके आश्रय वाले धर्म अधर्मरूप दो पक्ष बनायेहैं ॥ १२ ॥ हेनिशाचर! हमनें सुना है कि उसमें धर्म महात्मा देवताओंका, और अधर्म राक्षस लोगोंका पक्ष कह लाया जाताहै ॥ १३ ॥ जिस समय सतयुग लगताहै; उस समय धर्म अधर्मको ग्रास करलेताहै परन्तु जब अधर्म धर्मको लील

किस कारणसे इस अदृष्टकी मृत्युके वश हुए ॥ १४ ॥ हा कमललोचन! हमहीनें क्या क्रूर घोर रूपवाली कालरात्रि स्वरूप हो तुम्हें चिपटाय, तुम्हारी प्राणवायुको हरण कर लियाहै ? ॥ १५ ॥ हा महाबाहो! पुरुषश्रेष्ठ! तपस्विनीकी समान हमको परित्याग कर प्रियतमा स्त्रीकी समान पृथ्वीको छातीसे लगाये तुम कहां पड़ेहो? ॥१६॥ तुम हमारे साथ सुगन्धित द्रव्य और हारोंसे सदा जिसकी पूजा किया करतेथे और जो हमको भी बहुतही प्याराथा उसी तुम्हारे इस सुवर्णमय धनुषकी यह क्या अवस्था हुई है? ॥ १७ ॥ हा पापरहित! तुम निश्चयही स्वर्गधाममें हमारे श्वशुर पिताकी समान महाराज दशरथजीके व और दूसरे पितृलोगोंके साथमें मिल गयेहो ॥ १८ ॥ जो आ

यथात्वंसंपरिष्वज्यरौद्रयाऽतिनृशंसया ॥ कालरात्र्यामयाच्छिद्यहृतःकमललोचनः ॥ १५ ॥ इहशेषेमहाबाहोमांवि हायतपस्विनीम् ॥ प्रियामिवयथानारींपृथिवींपुरुषर्षभ ॥१६॥ अर्चितंसततंयत्नाद्गंधमाल्यैर्मयातव ॥ इदंतेमत्प्रियं वीरधनुःकांचनभूषितम् ॥ १७ ॥ पित्रादशरथेनत्वंश्वशुरेणममानघ ॥ सर्वैश्चपितृभिःसार्धंनूनंस्वर्गेसमागतः ॥ १८ ॥ दिविनक्षत्रभूतंचमहत्कर्मकृतंतथा ॥ पुण्यंराजर्षिवंशंत्वमात्मनःसमुपेक्षसे ॥ १९ ॥ किंमांनप्रेक्षसेराजन्किंवानप्र तिभाषसे ॥ बालांबालेनसंप्राप्तांभार्यांमांसहचारिणीम् ॥ २० ॥ संश्रुतंगृह्णतापाणिंचरिष्यामीतियत्त्वया ॥ स्मर तन्नामकाकुत्स्थनयमामपिदुःखिताम् ॥ २१ ॥

काशमें नक्षत्रके स्वरूपमें टिक रहेहैं उन राजर्षि त्रिशंकुके पवित्र वंशमें जन्म ग्रहण करके, तुमनें अपने पिताके वचनोंका पालनरूप बड़ा भारी कार्य किया, परन्तु ऐसा पुण्य प्राप्त करके भी जो ऐसे पवित्र वंशको त्याग आप स्वर्गको चले गये यह बहुतही अनुचित हुआ ॥ १९ ॥ हा राजन्! तुमनें बालकपनमें हीं जिस बालिकाको अपनी सम सुख दुःख भोग करनेंवाली, स्त्री कहकर स्वीकार कियाथा, अब तुम किस कारणसे उसकी बातका उत्तर नहीं देते? प्यारे! अब हमारी ओरको दृष्टि उठायकर भी नहीं देखते ॥ २० ॥ हे काकुत्स्थ! तुमनें विवाहमें पाणिग्रहण करनेके समय " तुम्हारेसहित धर्म कर्मका आचरण करेंगे " ऐसी जो प्रतिज्ञाकीथी, इस समय उसको याद करके

ऋषि लोग जिस २ पुण्यवान स्थानमें ॥ २१ ॥ तपस्या करतेहैं; वह वहींसे राक्षस लोगोंको संतापित किया करतेहैं और तुमको कदाचित् यह गर्वहो कि वरदान पानेंके प्रभावसे हमारा मरणहोभी नहीं सकता सो हे महाराज। यही वर तौ तुमनें ब्रह्माजीसे मांगाथा कि हम, देव, दानव पक्षसे न मरें; मनुष्य और वानरोंको तौ कुछ गिनकर इनसे तौ अवध्य मांगाही नहीं ॥ २२ ॥ परन्तु महाबलवान दृढ़ विक्रमकारी अजेय मनुष्य और गोपुच्छ वानर यहां आयकर गर्जन कर रहेहैं; इनसे कैसे निवटोगे; कारणकि इनके रोकनेंका पहलेसे आपनें कोई उपाय नहीं कियाहै ॥ २३ ॥ इस समय अनेक प्रकारके घोर उत्पात और विविध भांतिके घोर दुर्निमित्त दिखलाई देतेहैं; कि जिस्से हमको यह ज्ञात

चर्यमाणंतपस्तीव्रंसंतापयतिराक्षसान्॥देवदानवयक्षेभ्योगृहीतश्चवरस्त्वया ॥२२॥ मनुष्यावानराऋक्षागोलांगूलाम
हाबलाः ॥ बलवंतइहागम्यगर्जंतिदृढविक्रमाः॥२३॥उत्पातान्विविधान्दृष्ट्वाघोरान्बहुविधान्बहून् ॥ विनाशमनुपश्या
मिसर्वेषांरक्षसामहम् ॥ २४॥ खराभिस्तनिताघोरामेघाःप्रतिभयंकराः ॥ शोणितेनाभिवर्षंतिलंकामुष्णेनसर्वतः॥२५॥
रुदतांवाहनानांचप्रपतंत्यश्रुबिंदवः ॥ रजोध्वस्ताविवर्णाश्चनप्रभांतियथापुरम् ॥ २६ ॥ व्यालागोमायवोगृध्रावा
श्यंतिचसुभैरवम् ॥ प्रविश्यलंकामारामेसमवायांश्चकुर्वते ॥ २७ ॥ कालिकाःपांडुरैर्दंतैःप्रहसंत्यग्रतःस्थिताः ॥ स्त्रि
यःस्वप्नेषुमुष्णंत्योगृहाणिप्रतिभाष्यच ॥ २८ ॥

होताहै कि समस्त राक्षसोंका नाश होजायगा ॥ २४ ॥ हे रावण! हम गधोंको भयंकर शब्दसें रेंकताहुआ देखतेहैं; और बादल घोर शब्दसे गर्ज २ कर गरम रुधिरकी वर्षा करतेहैं. कि जिसको देखकर अत्यन्त डर लगताहै ॥ २५ ॥ सवारीके समस्त पशुगण रोतेहैं, कि जिस्से बराबर उनकी आंखोंसे आसुओंको बूंदे गिरती रहतीहैं; और समस्त दिशा विदिशा धूरिसे छाये रहनेंके कारण पहलेकी समान प्रकाशित नहीं होती ॥ २६ ॥ गीध, गीदड, सर्प इत्यादि मांस खानेंवाले पशु पक्षीगण लंकानगरको फुलवाड़ियोंमें प्रवेश करकै झुन्ड़ बांध २ भयंकर शब्द करतेहैं ॥२७॥ शृगालियें पीले २ दांत निकाल कर आगे२ हँसती हुई चलतीहैं, सब स्त्रियां स्वप्नमेंही बात करते२ उठकर अपने घरोंको

प्रिय तुम्हारी भार्याहो इस थोड़ी उमरमेंही यहां शोक करनेंको रहगई, तब निश्चयही जान पड़ताहे, कि पहले जन्ममें, हमनें, गौदान, सुवर्ण दान व पृथ्वीदानादि कुछभी नहीं किया ॥ ३० ॥ हे रावण! तुम शीघ्रही यह पति स्त्रीका मिलनरूप भलाईका देनेंवाला कार्य पूरा करो, कि श्रीरामचंद्रजीके पीछे अब हमकोभी मार डालो ॥ ३१ ॥ हे दशशीश! तुम हमारे स्वामीके मस्तकके साथ हमारा मस्तक और उनके शरके साथ हमारा शरीर मिलादो । रावण! महानुभाव पतिके साथही जाना हमको अच्छा लगताहे ॥ ३२ ॥ बडे२नेत्रवाली जनककुमारी जानकीजी अपने स्वामीका मस्तक और वह बड़ा भारी धनुष देखते २ अत्यन्त दुःखसे संतापित होकर विलाप करनें लगी ॥ ३३ ॥ इधर जानकीजो तो

साधुघातयमांक्षिप्रंरामस्योपरिरावण॥ समानयपतिंपत्न्याकुरुकल्याणमुत्तमम् ॥ ३१ ॥ शिरसामेशिरश्चास्यकायं कायेनयोजय॥ रावणानुगमिष्यामिगतिंभर्तुर्महात्मनः॥३२॥इतीवदुःखसंतप्ताविललापायतेक्षणा॥ भर्तुःशिरोधनुश्चै वददर्शजनकात्मजा॥३३ ॥एवंलालप्यमानायांसीतायांतत्रराक्षसः॥अभिचक्रामभर्तारमनीकस्थःकृतांजलिः॥ ३४ ॥ विजयस्वार्यपुत्रेतिसोभिवाद्यप्रसाद्यच॥न्यवेदयदनुप्राप्तंप्रहस्तंवाहिनीपतिम् ॥३५॥अमात्यैःसहितःसर्वैःप्रहस्तस्त्वा मुपस्थितः॥ तेनदर्शनकामेनअहंप्रस्थापितःप्रभो ॥३६॥ नूनमस्तिमहाराजराजभावात्क्षमान्वित ॥ किंचिदात्ययिकं कार्यंतेषांत्वंदर्शनंकुरु॥३७॥एतच्छ्रुत्वादशग्रीवोराक्षसप्रतिवेदितम् ॥ अशोकवनिकांत्यक्त्वामंत्रिणांदर्शनंययौ ॥३८॥

इस प्रकार रोदन कर रहींथी, कि इतनेंमें सैनाका एक निशाचर राक्षस रावणके सन्मुख आन पहुंचा ॥ ३४ ॥ और उसनें "आर्य पुत्र! आपकी जयहो" यह कह रावणको प्रसन्नकर हाथ जोड प्रणाम किया और कहा कि प्रहस्तनाम सैनापति आयाहे ॥ ३५ ॥ वह फिर विशेष करके बोलाकि हे प्रभो! महावीर प्रहस्तनें सर्व मंत्रियोंके साथ मिलकर आपके दर्शन पानेंकी आशासे हमको यहां भेज दियाहे ॥ ३६ ॥ हे राजन्! ऐसा जान पड़ताहे कि निश्चय कोई राजकार्य आनकर पड़ाहे जो कि अति आवश्यकीयहे, इसी कारणसे वह लोग यहांपर आये हैं इस कारण आप उनको दर्शन दीजिये ॥ ३७ ॥ राक्षसके मुखसे राक्षस रावण ऐसी घबड़ा हटका समाचार पाय अशोक वनको छोड़ मंत्रियोंको

लिये हे रावण! तुम श्रीरामचंद्रजीसे मेल मिलाप करलो॥२॥" औरश्रीरामचंद्रजीकोही इन सब दुर्निमित्तोंका कारण जान परिणाममें जिस कार्यको
सुखकारी समझो उसीको करो ॥ ३५ ॥ शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ उत्तम पौरुषवाला बलवान माल्यवान यह वचन कहकर राक्षसराज रावणके मनकी परीक्षा
करता हुआ उसके मुखका भाव देखकर चुप होगया ॥ ३६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे पंचत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥
दुष्ट बुद्धिवाला रावण माल्यवानके कहे हुए वह हितकारी वचन सुनकर, कालके वश होनेंसे उसके वचनोंको सहन नहीं करसका ॥ १ ॥
वरन क्रोधके मारे उसके दोनों नेत्र घूमनें लगे, फिर क्रोधके वश हो और मुंह टेढ़ा करकै रावण माल्यवानसे बोला ॥ २ ॥ तुमने शत्रुपक्षको प्रबल

ज्ञात्वाऽवधार्यकर्माणिक्रियतामायतिक्षमम्॥३५॥इदंवचस्तस्यनिगद्यमाल्यवान्परीक्ष्यरक्षोधिपतेर्मनःपुनः ॥ अनुत्त
मेषूत्तमपौरुषोबलीबभूवतूष्णींसमवेक्ष्यरावणम् ॥ ३६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेपंच
त्रिंशःसर्गः ॥ ३५ ॥ ॥ ७॥ तत्तुमाल्यवतोवाक्यंहितमुक्तंदशाननः ॥ नमर्षयतिदुष्टात्माकालस्यवशमागतः ॥ १ ॥
सबद्धाभ्रुकुटिंवक्त्रेक्रोधस्यवशमागतः॥ अमर्षात्परिवृत्ताक्षोमाल्यवंतमथाब्रवीत् ॥ २ ॥ हितबुद्ध्यायदहितंवचःपुरुष
मुच्यते ॥ परपक्षंप्रविश्यैवनैतच्छ्रोत्रगतंमम ॥ ३ ॥ मानुषंकृपणंराममेकंशाखामृगाश्रयम् ॥ समर्थमन्यसेकेनत्यक्तं
पित्रावनाश्रयम् ॥ ४ ॥ रक्षसामीश्वरंमांचदेवानांचभयंकरम् ॥ हीनंमांमन्यसेकेनअहीनंसर्वविक्रमैः ॥ ५ ॥ वीर
द्वेषेणवाशंकेपक्षपातेनवारिपोः ॥ त्वयाहंपरुषाण्युक्तोममप्रोत्साहनेनवा ॥ ६ ॥

विचार करकै हमारा हित साधनेंकी कामनासे जो कठोर वचन कहे उनको हमनें ग्रहण नहीं किया ॥ ३ ॥ रामचंद्र मनुष्य होनेंके कारण
स्वभावसेही दुर्बलहैं, और केवल वानरलोगही उनकी सहायता करनेंवालेहैं; यदि उसमें कुछ सामर्थही होती तौ वह अपने बापदादोंका राज्य
छोड़कर बनकोही क्यों आता ॥ ४ ॥ और जिन हमनें देवता लोगोंकोभी भय उत्पन्न करादियाहै, और सर्व विक्रमवान राक्षसोंके हम राजाहैं, फिर
हमको जो तुम असमर्थ समझते हो इसका कारण क्याहै ॥ ५ ॥ हमको जान पड़ताहै कि वीर लोगोंसे वैर या शत्रुकी पक्षपातता तरफदारी अ

जानकीजीको वह समझानें बुझानें लगीं ॥ २ ॥ यद्यपि सरमा सीताजीकी रक्षा करनेंमें नियुक्त तो थी, परन्तु वह सीताजीकी अनुरागिनी और पक्षपातिनीथी, इस लिये सीताजीके साथ उनकी घनी मित्रता हो गईथी ॥ ३ ॥ उसनें अपनी प्रियसखी जानकीजीको लगभग चेतना रहित देखा घोड़ी जिस प्रकार पृथ्वीपर लोटा करतीहै, वैसेही पृथ्वीकुमारी पृथ्वीपर लोट रहीथी, सरमा उनको उठाकर सखीके स्नेहसे समझानें बुझानें लगी ॥ ४ ॥ हेसखी! रावणनें तुमसे जो कुछ कहाथा, और तुमनें उसको जिस प्रकारसे उत्तर दियाथा, इसलिये तुह्मारेप्रति अधिक स्नेह होंनके कारण उन बातोंके श्रवण करनेंमें हममें कसर नहींकी ॥५॥ हम रावणके भयसे तुमको छोड़कर अवतक निबिड़ वनमें टिक रहीथीं। परन्तु हेबड़ेनेत्रोंवाली जो कुछ कार्यहो तो हम तुम्हारे लिये रावणसेभी कुछ शंका नहीं करतीं ॥ ६ ॥ हे मैथिलि! वह राक्षसोंका, स्वामी

साहितत्रकृतामित्रंसीतयारक्ष्यमाणया ॥ रक्षंतीरावणादिष्टासानुक्रोशादृढव्रता॥३ ॥सादर्दशसखीसीतांसरमानष्टचेतनाम् ॥ उपावृत्योत्थितांध्वस्तांवडवामिवपांसुषु ॥ ४ ॥ तांसमाश्वासयामाससखीस्नेहेनसुव्रताम् ॥ उक्तायद्रावणेनत्वंप्रत्युक्तश्चस्वयंत्वया॥५॥लीनयागहनेशून्येभयमुत्सृज्यरावणात् ॥ तवहेतोर्विशालाक्षिनहिमेरावणाद्भयम् ॥६॥ ससंभ्रांतश्चनिष्क्रांतोयत्कृतेराक्षसेश्वरः॥तत्रमेविदितंसर्वमभिनिष्क्रम्यमैथिली ॥ ७ ॥ नशक्यंसौप्तिकंकर्तुंरामस्यविदितात्मनः॥वधश्चपुरुषव्याघ्रेतस्मिन्नैवोपपद्यते ॥८॥ नत्वेवंवानराहंतुंशक्याःपादपयोधिनः॥ सुरादेवर्षभेणेवरामेणहिसुरक्षिताः ॥ ९ ॥दीर्घवृत्तभुजःश्रीमान्महोरस्कःप्रतापवान् ॥ धन्वीसन्नहनोपेतोधर्मात्माभुविविश्रुतः ॥ १० ॥

रावण जिस कारणसे इस स्थानको घबड़ाहटके साथ छोड़ चला गयाथा, वह समस्तही कारण उसके पीछे२ जायकर हम जान आई हैं॥७॥ उन सर्वान्तर्यामी श्रीरामचंद्रजीके सोते रहते उनके सैनाके साथ कोई भी युद्ध नहीं कर सकता और उस अवस्थामें उन पुरुषसिंह श्रीरामचंजीका वध करना भी युक्तियुक्त नहीं हो सकता ॥८॥ श्रीरामचंद्रजीकी बात तो दूर रही; इन्द्र करके रक्षित देवता लोगोंकी नाई श्रीरामचंद्रजीसे रक्षित, वह वृक्ष हाथोंमें लेकर लड़नेंवाले वानरोंको भी कोई नहीं मार सकता ॥ ९ ॥ उन श्रीरामचंद्रजीकी सुगोल दौनों भुजा जंघातक लम्बीहै, उनके सब शरीर पुष्टहैं; प्रतापवान धनुष धारण करनेंवाले कवच वख्तर धारण किये वह धर्मात्मा तीन लोकमें विख्यातहैं ॥ १० ॥

शपथके साथ प्रतिज्ञा कहतेहैं. कि वह जीता हुआ लौटकर किसी प्रकारसे यहांसे जानेंको समर्थ न होगा ॥ १३ ॥ यह कहकर रावण बहुतही क्रोध करता हुआ, तब निशाचर माल्यवान लज्जाके मारे नीचेको मुख करके बैठ गया, और किसी बातका उत्तर न देता हुआ ॥ १४ ॥ परन्तु रावणकी यथोचित जयसूचक आशिर्वादसे बढती मनाय उसकी आज्ञा लेकर अपने गृह चला गया ॥ १५ ॥ तब लंकापति रावण सब मंत्रियोंके साथ परामर्श करके भलीभांति शोच विचार लंकापुरीकी रक्षा करनेंके लिये पहरे दारोंको नियत किया ॥ १६ ॥ राक्षस प्रहस्तको पूर्व द्वारपर और महावीर महापार्श्व, और महोदरको दक्षिणके द्वारपर रावणनें रहनेंकी आज्ञादी, ॥ १७ ॥ और पश्चिमके द्वारपर रहनेंके लिये

जयाशिषातुराजानंवर्धयि

एवंब्रुवाणंसंरब्धंरुष्टंविज्ञायरावणम् ॥ व्रीडितोमाल्यवान्वाक्यंनोत्तरंप्रत्यपद्यत ॥ १४ ॥ जयाशिषातुराजानंवर्धयित्वायथोचितम् ॥ माल्यवानभ्यनुज्ञातोजगामस्वंनिवेशनम् ॥ १५ ॥ रावणस्तुमहामात्यैमंत्रयित्वाविमृश्यच ॥ लंकायास्तुतदागुप्तिंकारयामासराक्षसः ॥ १६ ॥ व्यादिदेशचपूर्वस्यांप्रहस्तंद्वारिराक्षसं ॥ दक्षिणस्यांमहावीर्यौमहापार्श्वमहोदरौ ॥ १७ ॥ पश्चिमायामथद्वारिपुत्रमिंद्रजितंतदा ॥ व्यादिदेशमहामायंराक्षसैर्बहुभिर्वृतम् ॥ १८ ॥ उत्तरस्यांपुरद्वारिव्यादिश्यशुकसारणौ ॥ स्वयंचात्रगमिष्यामिमंत्रिणस्तानुवाचह ॥ १९ ॥ राक्षसंतुविरूपाक्षंमहावीर्यपराक्रमम् ॥ मध्यमेऽस्थापयद्गुल्मेबहुभिःसहराक्षसैः ॥ २० ॥ एवंविधानंलंकायांकृत्वाराक्षसपुंगवः ॥ कृतकृत्यमिवात्मानंमन्यतेकालचोदितः ॥ २१ ॥

इन्द्रका जीतनेंवाला मेघनाद अत्यन्तही मायावी और बहुत सैनाको संग लिये हुएथा ॥ १८ ॥ और शुक सारण नामक ,मंत्रियोंको उत्तरके द्वारसे हटाकर जहांकि श्रीरामचंद्रजीकी सैना पड़ी हुईथी, रावणनें आज्ञा दीकि उत्तरके द्वारपर हम स्वयंही ठडे रहेंगे ॥ १९ ॥ महा पराक्रमवान महावीर्ययुक्त राक्षस विरूपाक्षको रावणनें बहुत सारे राक्षसोंके साथ लंकाके बीचों बीचमें जहां सैनाकी छावनी थी रहनेंके लिये आज्ञादी ॥ २० ॥ राक्षसोंमें श्रेष्ठ रावण लंकामें इस प्रकारसे सब ओर राक्षसोंको रक्षाके लिये नियुक्त करके, कालप्रेरित होनेसे अपनेंको कृतार्थ मानता हुआ

नाथ रावण यह वार्ता सुन करकेही मंत्रि लोगोंके साथ परामर्श करताहै ॥१८॥ सरमा यह बात कह रहीथी कि इतनेमें जानकीजी और सरमा दौनोंनें रावणकी सेनाका समरमें तैयार होंनेके लिये भयंकर सिंहनादको सुना ॥ १९ ॥ मधुर वचन बोलनेंवाली सरमा सैनाकी तैयारीकी चरचा देंनेवाली भेरीका महाशब्द सुनकर सीताजीसे बोली ॥ २० ॥ हेभीरु! जिस भेरीके शब्दको सुनकर सेना बख्तर धारण व समरकी तैयारी करतीहै; अतएव मेघके गर्जनेंकी समान यह उसकी भेरीका शब्द तुम सुनो ॥ २१ ॥ मदमाते हाथी समस्तही सजगये, रथोंमें घोड़े जुतगये कवच बख्तर पहरे हुए असंख्य वीरगण भाला हाथमें लिये घोड़ों पर सवारहो रहेहैं ॥ २२ ॥ और अस्त्रधारी अगणित वीरगण आगे बढ़रहेहैं,

इतिब्रुवाणासरमाराक्षसीसीतयासह ॥ सर्वोद्योगेनसैन्यानांशब्दंशुश्रावभैरवम् ॥ १९ ॥ दंडनिर्घातवादिन्याःश्रुत्वा भेर्यामहास्वनम् ॥ उवाचसरमासीतामिदंमधुरभाषिणी ॥ २० ॥ सन्नाहजननीह्येषाभैरवाभीरुभेरिका ॥ भेरीना दंचगंभीरंशृणुतोयदनिस्वनम् ॥२१॥ कल्प्यंतेमत्तमातंगायुज्यंतेरथवाजिनः ॥ दृश्यंतेतुरगारूढाःप्रासहस्ताःसहस्र शः ॥ २२ ॥ तत्रतत्रचसन्नद्धाःसंपतंतिसहस्रशः ॥ आपूर्यंतेराजमार्गाःसैन्यैरद्भुतदर्शनैः ॥ २३ ॥ वेगवद्भिर्नदद्भिश्च तोयौघैरिवसागरः॥शस्त्राणांचप्रसन्नानांचर्मणांवर्मणांतथा॥२४॥रथवाजिगजानांचराक्षसेंद्रानुयायिनाम्॥संभ्रमोरक्ष सामेषहृषितानांतरस्विनाम् ॥ २५ ॥ प्रभांविसृजतांपश्यनानावर्णसमुत्थिताम् ॥ २६ ॥ "वनंनिर्दहतोघर्मेयथारूपंवि भावसोः ॥ घंटानांशृणुनिर्घोषंरथानांनेमिनिःस्वनम्॥१॥हयानांह्रेषमाणानांशृणुतूर्यध्वनिंतथा॥उद्यतायुधहस्तानांरा क्षसेंद्रानुयायिनाम् ॥२॥" संभ्रमोरक्षसामेषतुमुलंलोमहर्षणम् ॥ श्रीस्त्वांभजतिशोकघ्नीरक्षसांभयमागतम् ॥ २७ ॥

और राजमार्ग अद्भुत रूप धारण किये सेनासे इस प्रकार छाय रहाहै ॥ २३ ॥ कि जिस प्रकार वेगयुक्त शब्दायमान समुद्र तरंगोंसे परिपूर्ण होताहै । सिपाहियोंके अस्त्र शस्त्र ढाल बख्तर ॥२४॥ रथ घोड़े हाथी,और रावणके अनुगमनकारी राक्षसोंका शब्द होरहाहै योधा लोग हर्षितमन और अति वेगसे युद्धके लिये तैयार होरहेहैं ॥ २५ ॥ यह देखो ! ध्वजा पताका इत्यादिको अनेक वर्णवाली प्रभा प्रकाशमान होरहीहैं जैसे ग्रीष्मकालमें वनके जलानेंवाले सूर्यकी अनेक वर्णवाली प्रभा निकलतीहैं ॥ २६ ॥ हेसीते !यह घंटोंकी ध्वनि रथोंका स्वर २ शब्द और तुरंही निनाद, और घोड़ोंके

बनायकर शत्रुके दलमें प्रवेश करके, रावणनें जो लंकापुरीकी रक्षा करनेंका उपाय किया, उसको भली भांतिसे जानकर यह हमारे निकट आये
हैं ॥ ८ ॥ हेश्रीरामचंद्रजी दुरात्मा रावणके पुररक्षा करनेंके विषयमें, हमनें अपने मंत्रियोंसे जो कुछ जानाहै, वह समस्तही कहतेहैं ॥ ९ ॥ कि
प्रहस्त बहुत सारी सैनाके साथ पूर्व द्वारपर टिकाहै. और महावीर्यवान महापार्श्व व महोदर लंकाके दक्षिणद्वारकी रक्षा करतेहैं ॥ १० ॥ पटा खड्ग
इत्यादि विविध अस्त्र शस्त्रधारी और शूल मुद्गर हाथमें लिये असंख्य शूर राक्षस गणोंके साथ रावण पुत्र इन्द्रजित लंकाके पश्चिम द्वारकी रक्षा करता
है ॥ ११ ॥ अनेक प्रकारके और दूसरे हथियार धारण किये शूरवीर रावणके पुत्रभी संगहैं, और स ;स्रों लक्षों शस्त्रपाणि राक्षसोंको संग लि

संविधानंयथाहुस्तेरावणस्यदुरात्मनः ॥ रामतद्ब्रुवतःसर्वंयाथातथ्येनमेशृणु ॥ ९ ॥ पूर्वंप्रहस्तःसबलोद्वारमासाद्य
तिष्ठति ॥ दक्षिणंचमहावीर्यौमहापार्श्वमहोदरौ ॥ १० ॥ इंद्रजित्पश्चिमंद्वारंराक्षसैर्बहुभिर्वृतः ॥ पट्टिशासिधनुष्मद्भिः
शूलमुद्गरपाणिभिः॥११॥नानाप्रहरणैःशूरैरावृतोरावणात्मजः॥ राक्षसानांसहस्रैस्तुबहुभिःशस्त्रपाणिभिः ॥१२॥ युक्तः
परमसंविग्नोराक्षसैःसहमंत्रवित्॥ उत्तरंनगरद्वारंरावणःस्वयमास्थितः ॥१३॥ विरूपाक्षस्तुमहताशूलमुद्गधनुष्मता ॥
बलेनराक्षसैःसार्धंमध्यमंगुल्ममाश्रितः ॥ १४ ॥ एतानेवंविधान्गुल्मॉंल्लंकायाःसमुदीक्ष्यते ॥ मामकामंत्रिणः
सर्वेशीघ्रंपुनरिहागताः ॥१५ ॥ गजानांदशसाहस्रंरथानामयुतंतथा ॥ हयानामयुतेद्वेचसाग्रांकोटिंचरक्षसाम् ॥ १६ ॥
विक्रांतबलवंतश्चसंयुगेष्वाततायिनः ॥ इष्टाराक्षसराजस्यनित्यमेतेनिशाचराः ॥ १७ ॥

ये ॥ १२ ॥ मंत्रका जाननेंवाला रावण उद्विग्नचित्त होकर लंकाके उत्तर फाटक पर स्वयं स्थित हुआहै॥१३॥राक्षस विरूपाक्ष शूल, खड्ग, व धनुष
धारी बड़ी भारी सैनाके साथ लंकाके बीचों बीचमें जहां छावनीहै टिका हुआ है ॥ १४ ॥ हमारे मंत्रिलोग लंकाको समस्त घाटियोंको
इस प्रकारसे देखकर शीघ्रही हमारे पास लौट आयेहैं ॥ १५ ॥ दश हजार ही रथ वीसहजार घोड़े, व करोड़ों राक्षस ॥ १६ ॥ जो कि
अति बलवान और अति विक्रमकारी, समर करनेंमें अत्यन्तही आततायी है, और राक्षसराज रावणका कार्य सिद्ध करनेंको यत्न किये

चंद्रजी बहुतही शीघ्र रणभूमिमें रावणका संहार करके तुम्हारे साथ सुख प्राप्त करेंगे ॥ ३४ ॥ जिस प्रकार यथोचित वर्षा होनेंसे धान्ययुक्त पृथ्वीकी अपूर्व शोभा होतीहै वैसेही तुम श्रीरामचंद्रजीके प्रेम व्यवहारसे सन्मानित होकर अत्यन्तही सन्तोप भोग करोगी ॥ ३५ ॥ हेदेवी जानकि! जो पर्वतश्रेष्ठ सुमेरुके चारोंओर अश्वकी समान गोलाकार गतिसे घुमा करतेहैं; अब तुम उन्ही प्रजा लोगोंका मंगल करनें वाले अपने कुलदेवता सूर्य भगवानकी शरणमें जाओ * ॥ ३६ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ ० यु० त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥ ॥ छ ॥ ग्रीष्म ऋतुके तापसे संतापित हुई पृथ्वीको जलसे सींचनेकी समान सरमानें इस प्रकारके वचन कह कर,उस रावणके वचनों करके मोहित जानकी

सभाजितात्वंरामेणमोदिष्यसिमहात्मना ॥ सुवर्षेणसमायुक्तायथासस्येनमेदिनी ॥ ३५ ॥ गिरिवरमभितोवि वर्तमानोहयइवमंडलमाशुयःकरोति ॥ तमिहशरणमभ्युपैहिदेविदिवसकरंप्रभवोह्ययंप्रजानाम् ॥ ३६ ॥ इत्यार्षेश्री म०वा०आ०युद्धकांडेत्रयस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३३ ॥ अथतांजातसंतापांतेनवाक्येनमोदिताम् ॥ सरमाह्लादयामासमहींद ग्धामिवांभसा ॥ १ ॥ ततस्तस्याहितंसख्याचिकीर्षंतीसखीवचः ॥ उवाचकालेकालज्ञास्मितपूर्वाभिभाषिणी ॥ २ ॥ उत्सहेयमहंगत्वात्वद्वाक्यमसितेक्षणे ॥ निवेद्यकुशलंरामेप्रतिच्छन्नानिवर्तितुम् ॥ ३ ॥ नहिमेक्रममाणायानिरालं बेविहायसि ॥ समर्थोगतिमन्वेतुंपवनोगरुडोपिवा ॥ ४ ॥ एवंब्रुवाणांतांसीतासरमामिदमब्रवीत् ॥ मधुरंश्लक्ष्णया वाचापूर्वशोकाभिपन्नया ॥ ५ ॥

जीका संतापित हृदय शीतल किया ॥ १ ॥ तिसके पीछे समयको जाननेंवाली सरमाने प्रिय सखी जानकीजीको हितकी कामनासे हँसकर उस समय जानकीजीसे कहा ॥ २ ॥ हेअसितलोचने! जानकी! हमनें गुप्त भावसे जायकर श्रीरामचंद्रजीका संवाद जान तुम्हारे निकट आयकर कहेंगी ॥ ३ ॥ हमारे आश्रय रहित आकाशमे गमन करनें पर पवन या विनताके पुत्र गरुडजी भी हमारी गतिको नहीं रोक सकते हैं ॥ ४ ॥ यद्यपि सीताजी शोक संतापसे क्षीण शरीर होगईथीं परन्तु सरमाके धीरजयुक्त वचनोंसे उनको कुछेक धीरज आया, और फिर वह मधुर

* सूर्य कुलके रामचंद्रकी तुम वधू हो सो दयानिधान सूर्य भगवान तुम्हारी विपत दूरकरैंगे यह आशय है

संहार करनेंके लिये यह वचन बोले ॥ २५ ॥ वानरश्रेष्ठ नील बहुत सारे वानरोंको साथ लेकर लंकाके पूर्वद्वारपर टिके हुए प्रहस्तके साथ युद्ध करेंगे ॥ २६ ॥ और वालिपुत्र अंगदजीभी बड़ी भारी सैनाके साथ दक्षिण द्वारपर महापार्श्व और महोदरसे लड़कर उनका विध्वंस करें ॥ २७ ॥ अतुलबलशाली पवनकुमार हनुमानजी बहुत सैनाको साथ लेकर पश्चिम द्वार पर जावें, और वहां मेघनादसे युद्ध करे ॥ २८ ॥ दैत्य दानवोंके समूहोंके संग और महात्मा ऋषि लोगोंके साथ जो सदाही अपकार करताहै, महा नीचस्वभावयुक्त वरदान पानेके मदसे मदान्ध ॥ २९ ॥ जो कि सब लोकोंकी प्रजाओंको संतापित करताहै, और सब लोकोंको कुछ नहीं गिनता, उस राक्षसोंके स्वामी रावणका वध

पूर्वद्वारंतुलंकायानीलोवानरपुंगवः ॥ प्रहस्तंप्रतियोद्धास्याद्वानरैर्बहुभिर्वृतः ॥ २६ ॥ अंगदोवालिपुत्रस्तुबलेनमहतावृतः॥दक्षिणेबाधतांद्वारेमहापार्श्वमहोदरौ ॥२७॥ हनूमान्पश्चिमद्वारंनिष्पीड्यपवनात्मजः॥ प्रविशत्वप्रमेयात्मा बहुभिःकपिभिर्वृतः ॥ २८॥दैत्यदानवसंघानामृषीणांचमहात्मनाम्॥ विप्रकारप्रियःक्षुद्रोवरदानबलान्वितः ॥ २९ ॥ परिक्रमतियःसर्वाल्लोँकान्संतापयन्प्रजाः ॥ तस्याहंराक्षसेंद्रस्यस्वयमेववधेधृतः ॥ ३० ॥ उत्तरंनगरद्वारमहंसौमित्रिणासह ॥ निपीड्याभिप्रवेक्ष्यामिसबलोयत्ररावणः ॥ ३१ ॥ वानरेंद्रश्चबलवानृक्षराजश्चवीर्यवान् ॥ राक्षसेंद्रानुजश्चैवगुल्मेभवतुमध्यमे ॥ ३२ ॥ नचैवमानुषंरूपंकार्यंहरिभिराहवे॥ एषाभवतुनःसंज्ञायुद्धेस्मिन्वानरेबले ॥ ३३ ॥

हम स्वयंही जायकर करेंगे ॥ ३० ॥ जहां कि रावण अपनी सैनाके साथ टिका हुआहै, हम लक्ष्मणजीके सहित लंकापुरीके उस उत्तर द्वारको पीड़ित करनेंके समय प्रवेश करेंगे ॥ ३१ ॥ बलवान वानरेन्द्र सुग्रीवजी, वीर्यवान ऋक्षराज जाम्बवान और राक्षसराज रावणके छोटे भाई विभीषणजी यह सब मिलकर मध्यम गुल्ममें अर्थात् सैनासमूहके वीचमें रहकर उसकी रक्षा करें ॥ ३२ ॥ रणस्थलमें कोईभी वानर मनुष्यका रूप धारण नहीं करे, कारण कि इस संग्राममें मनुष्यका चिह्न केवल हमही लोग धारण किये रहेंगे ॥३३॥

आंसूयुक्त मुखमंडल पोंछकर कहा ॥ १२ ॥ कि हे जानकी! यदि तुम्हारी यही इच्छाहै तौ हम सत्य करके कहती हैं कि तुम्हारे शत्रु रावणका सब वृत्तान्त जानकर हम शीघ्रही यहांपर लौटेंगी ॥ १३ ॥ सरमा जानकीजीसे ऐसे वचन कहकर रावणकी सभामें चलीगई; और मंत्रिलोगोके साथ रावणकी जो सलाह हो रहीथी वह समस्तही उसनें सुनी ॥ १४ ॥ तिसके पीछे सरमा वनाय निश्चय करके दुरात्मा रावणकी सलाहके समस्त समाचार जान शीघ्रही मनोहर अशोकवनमें चली आई ॥ १५ ॥ उस सरमानें अशोक वाटिकामें आय जानकीजीको इस प्रकारसे अपने राह परखते हुए देखाकि जिस प्रकार कमलफूलोंसे भ्रष्ट होकर लक्ष्मीजी वैठी हैं ॥ १६ ॥ तव सीताजीनें मधुर वचन कहनें

एषतेयद्यभिप्रायस्तस्माद्गच्छामिजानकि ॥ गृह्यशत्रोरभिप्रायमुपावर्तामिमैथिली ॥ १३ ॥ एवमुक्त्वाततोगत्वासमीपंतस्यरक्षसः ॥ शुश्रावकथितंतस्यरावणस्यसमंत्रिणः ॥ १४ ॥ साश्रुत्वानिश्चयंतस्यनिश्चयज्ञादुरात्मनः ॥ पुनरेवागमत्क्षिप्रमशोकवनिकांशुभाम् ॥ १५ ॥ साप्रविष्टाततस्तत्रददर्शजनकात्मजाम् ॥ प्रतीक्षमाणांस्वामेवभ्रष्टपद्मामिवाश्रियम् ॥ १६ ॥ तांतुसीतापुनःप्राप्तांसरमांप्रियभाषिणीम् ॥ परिष्वज्यचसुस्निग्धंददौचस्वयमासनम् ॥ १७ ॥ इहासीनासुखंसर्वमाख्याहिममतत्त्वतः ॥ क्रूरस्यनिश्चयंतस्यरावणस्यदुरात्मनः ॥ १८ ॥ एवमुक्तातुसरमासीतयावेपमानया ॥ कथितंसर्वमाचष्टरावणस्यसमंत्रिणः ॥ १९ ॥ जनन्याराक्षसेंद्रोवैत्वन्मोक्षार्थंबृहद्वचः ॥ अतिस्निग्धेनवैदेहिमंत्रिवृद्धेनचोचितः ॥ २० ॥

वाली सरमाको फिर आयाहुआ देखकर, प्रेमसहित भली भांति उनसे भेंटी और स्वयं उसके वैठनेंको आज्ञा देकर कहा ॥ १७ ॥ कि हे सखि! इस आसनपर वैठकर उस क्रूरकर्मकारी रावणकी समस्त सलाह तुम हमसे कहो ॥ १८ ॥ जव सीताजीनें सरमासे इस प्रकार कहा तव सरमा मंत्रिलोगोंके सहित रावणकी जो परामर्श हुईथी उसका समस्त भेद जानकीजीसे कहनें लगीं ॥ १९ ॥ सरमा बोली कि हे जानकी! वृद्ध लोगोंनें और रावणकी मातानें तुमको श्रीरामचंद्रजीके निकट लौटा देनेंके लिये मधुर वाणीसे यह अत्युत्तम वचन रावणसे कहे ॥ २० ॥

और सुवेल पर्वतपरसे जो मृत्युके समयतक दुःख भोग करनेके लिये हमारी भार्याको हरण करके ले आया है, उस दुरात्मा रावणके गृह दीख पड़ेंगे ॥ ४ ॥ जिस क्रूर राक्षसने राक्षसी बुद्धिके वश होकर, धर्म सदाचार और कुलकी ओर दृष्टि न करके यह निन्दनीय कार्य कियाहै उस राक्षसोंमें नीच रावणका नाम लेनेंपरभी हमको क्रोध उत्पन्न होताहै, हे सुग्रीव! हम इस रावणके ही अपराधसे समस्त राक्षसोंका नाश देखते हैं; देखो एक जन कालकी फांसीमें पड़कर पापाचार करताहै; परन्तु इकले उस दुष्टात्माके अपराधसे उसका समस्त कुलभी नष्ट होताहै ॥ ५ ॥ श्रीरामचंद्रजी रावणके प्रति क्रोधमें भरकर यह वचन कहते सुवेल पर्वतपर वास करनेके लिये उसके शृङ्गोंपर चढ़ते हुए ॥ ६ ॥ विक्रमवान लक्ष्म

लंकांचालोकयिष्यामोनिलयंतस्यरक्षसः ॥ येनमेमरणांतायहृताभार्यादुरात्मना ॥ ४ ॥ येनधर्मोनविज्ञातोनवृत्तं नकुलंतथा॥ राक्षस्यानीचयाबुद्धयायेनतद्गर्हितंकृतम् ॥ ५ ॥ एवंसंमंत्रयन्नेवसक्रोधोरावणंप्रति ॥ रामःसुवेलमासाद्यचित्रसानुमुपारुहत् ॥ ६ ॥ पृष्ठतोलक्ष्मणश्चैनमन्वगच्छत्समाहितः ॥ सशरंचापमुद्यम्यसुमहद्विक्रमेरतः ॥ ७ ॥ तमन्वारोहत्सुग्रीवःसामात्यःसविभीषणः ॥ तेवायुवेगप्रवणास्तांगिरिंगिरिचारिणः ॥ ८ ॥ अध्यारोहंतशतशःसुवेलंयत्रराघवः ॥ तेत्वदीर्घेणकालेनगिरिमारुह्यसर्वतः ॥ ९ ॥ ददृशुःशिखरेतस्यविषक्तामिवखेपुरीम् ॥ तांशुभांप्रवरद्वारांप्राकारवरशोभिताम् ॥ १० ॥

णजीभी बाण सहित धनुष हाथमें लिये एकाग्र मनसे श्रीरामचंद्रजीके पीछे २ चले ॥ ७ ॥ तिनके पीछे अपने मंत्रियोंके साथ सुग्रीवजी चले, और सुग्रीवजीके पीछे २ बिभीषणजी, तत्पश्चात् हनुमान, अंगद, नील, द्विविद, गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, पनस, कुमुद, रंभ, जाम्बवान्, सुषेण, शतबलि, वानरश्रेष्ठ दुर्मुख, इत्यादि पर्वतोंके चरनेंवाले वानर वायु वेगसे उस पर्वतपर ॥ ८ ॥ चढ़े और सुवेल पर्वत पर श्रीरामचंद्रजीके निकट पहुंचे; पर्वतपर चढ़नेके समय उन समस्त वानरोंको कुछभी समय न लगा; वहांपर सबनें चढकर ॥ ९ ॥ उस पर्वतके रमणीय शिखरोंपर आरोहण कर त्रिकूट पर्वतके शिखरपर बसी हुई सुन्दर तोरण छहरदिवारी युक्त आकाशको [illegible] करती ॥ [illegible]

सैनाकी तैयारीके और शंखका भेरीयुक्त बड़ा भारी शब्द उठा कि जिस्से समस्त पृथ्वी कांपगई ॥ २७ ॥ तब लंकामें टिके हुए रावणके भृत्य राक्षसलोग वानरोंकी सैनाका यह कठोर सिंहनाद सुनकर अपनेंको अत्यन्त हीन कार्य और दीनभाव युक्त समझाते हुए और रावणकी दुर्बुद्धि होनेंके कारण वह लोग उस समय किसी प्रकारके कल्याणका सुख न देखसके॥२८॥इ० श्रीम० वा०आ०यु० चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥३४॥ पराये पुरको जीतनेंवाले महाबलवान श्रीरामचंद्रजी, भेरी शंख मिश्रित शब्दके साथ संग्राम करनेंके लिये तैयार हुए ॥ १ ॥ राक्षसपति रावण वह बड़ाभारी शब्द सुनकर मुहूर्त्तभरतक अपने मनमें सोच विचार करकै समस्त मंत्री गणोंकी ओर देखनें लगा ॥ २ ॥ महाबल

श्रुत्वातुतंवानरसैन्यनादंलंकागताराक्षसराजभृत्या ॥ हतौजसोदैन्यपरीतचेष्टाःश्रेयोनपश्यंतिनृपस्यदोषात् ॥२८॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेचतुस्त्रिंशःसर्गः ॥३४॥ ॥छ॥ ॥ तेनशंखविमिश्रेणभेरीशब्देननादिना ॥ उपायतिमहाबाहूरामःपरपुरंजयः ॥ १ ॥ तंनिनादंनिशम्याथरावणोराक्षसेश्वरः ॥ मुहूर्तंध्यानमास्थायसचिवानभ्युदैक्षत ॥ २ ॥ अथतान्सचिवांस्तत्रसर्वानाभाष्यरावणः ॥ सभांसन्नादयन्सर्वानित्युवाचमहाबलः ॥ ३ ॥ जगत्संतापनःक्रूरोगर्हयन्राक्षसेश्वरः ॥ तरणंसागरस्यास्यविक्रमंबलपौरुषम् ॥४॥ यदुक्तवंतोरामस्यभवंतस्तन्मयाश्रुतम् ॥ भवतश्चाप्यहंवेद्मियुद्धेसत्यपराक्रमान् ॥ तूष्णीकानीक्षतोन्योऽन्यंविदित्वारामविक्रमम् ॥ ५ ॥ ततस्तुसुमहाप्राज्ञोमाल्यवान्नामराक्षसः ॥ रावणस्यवचःश्रुत्वाइतिमातामहोब्रवीत् ॥ ६ ॥

वान रावण मंत्रीयोंको अपने सन्मुख कर सब सभाको अपने शब्दसे गुंजाताहुआ मंत्रीयोंसे बोला ॥ ३ ॥ जगतको संताप देंनेवाला क्रूर स्वभाव राक्षस रावण रामचंद्रजीके पराक्रमकी व उनके समुद्र उतरनेंकी निन्दा करनें लगा॥४॥रावण मंत्रीयोंसे बोला कि तुम लोगोंनें जो रामचंद्रके समुद्रके उतर आने और उनके बलविक्रम पौरुषके विषयमें जो कुछ कहा वह समस्तही हमनें सुना, और तुम लोग सफल पराक्रम होकरभी जो रामचंद्रके पराक्रमको जानकर उत्साहहीनहो परस्पर एक दूसरेका मुख देख रहेहो यहभी समस्त हमनें जानाहै ॥५॥ रावणनें ऐसा कहा तौ महा

विमानोंसे लंकानगरी अत्यन्त शोभायमान हो रहीथी ॥२१॥ जिस लंकामें राजमंदिर जिसमें कि सहस्रों खम्भ लगे हुएथे; जो देखनेमें कैलास पर्वतकी समान इतना ऊंचाथा कि मानों वह आकाशमें कोई बात लिख रहाथा ॥२२॥ और असंख्य राक्षस गण सदा जिसकी रक्षा करतेथे, ऐसा राक्षसराज रावणका वह चैत्य नामक राज मंदिर समस्त लंका नगरीका भूषण रूप हुआथा ॥ २३ ॥ पुरीके स्थान २ में मनोहर कानन दृष्टि आतेथे अनेक प्रकारके धातु उत्पन्न करनेंवाले पर्वतोंकी असीम शोभा होरहीथी, और बीच २ में रमणीय उद्यान शोभा विस्तार कर रहेथे ॥ २४ ॥ विविध भांतिके विहारोंसे युक्त मृग गण निषेवित कुसुमोंसे शोभायमान अगणित राक्षसोंसे रक्षित वह लंकापुरीथी ॥२५॥ तिसके पीछे लक्ष्मीवान लक्ष्म

यस्यांस्तंभसहस्रेणप्रासादःसमलंकृतः ॥ कैलासशिखराकारोदृश्यतेखमिवोल्लिखन् ॥ २२ ॥ चैत्यःसराक्षसेंद्रस्यबभूवपुरभूषणम् ॥ शतेनरक्षसांनित्यंयःसमग्रेणरक्ष्यते॥ २३ ॥ मनोज्ञांकांचनवतींपर्वतैरुपशोभिताम् ॥ नानाधातुविचित्रैश्चउद्यानैरुपशोभिताम्॥२४॥नानाविहगसंघुष्टांनानामृगनिषेविताम् ॥ नानाकुसुमसंपन्नांनानाराक्षससेविताम्॥२५॥ तांसमृद्धांसमृद्धार्थांलक्ष्मीवाँल्लक्ष्मणाग्रजः ॥ नगरींत्रिदिवप्रख्यांविस्मयंप्रापवीर्यवान् ॥ २६ ॥ तांरत्नपूर्णांबहुसंविधानांप्रसादमालाभिरलंकृतांच ॥ पुरींमहायंत्रकवाटमुख्यांददर्शरामोमहताबलेन ॥ २७ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणे वाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेएकोनचत्वारिंशःसर्गः ॥ ३९ ॥ ७ ॥ ॥ ततोरामःसुवेलाग्रंयोजनद्वयमंडलम् ॥ उपारोहत्ससुग्रीवोहरियूथैःसमन्वितः ॥ १ ॥

णजीके बड़े भाई श्रीरामचंद्रजी अमरावतीकी समान समृद्धार्थ धन अन्न जनसे परिपूर्ण लंकानगरीको देखकर अत्यन्त विस्मयको प्राप्त हुए ॥ २६॥ इस प्रकारसे श्रीरामचंद्रजी बड़ी भारी वानरी सैनाके साथ वहां पर विराजमान होकर उस राज्य पूर्ण धवरहरोंकी श्रेणीसे शोभायमान अनेक बड़े२ यंत्र और किवाड़ोंसे युक्त लंका नगरीको देखते हुए ॥२७॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥३९ ॥ इसके पीछे श्रीरामचंद्रजी वानरोंकी सैनाके साथ सुग्रीवजीको संग लेकर दो योजनके विस्तारवाले सुवेल पर्वतके शिखरपर चढ़ते हुए ॥ १ ॥

लेताहै तब कलिराजकी अवाई होतीहै ॥ १४ ॥ परन्तु तुमने दिग्विजयके समय महाऐश्वर्य सिद्ध करनेंवाले धर्मको छोड़ देव ब्राह्मणोंको पीड़ा पहुंचाय अधर्मका आचरण कियाहै, इसी कारणसे तुम्हारे शत्रु लोग ऐसे प्रबल होगयेहैं ॥ १५ ॥ तुम्हारे चित्तके दोषसे उत्पन्न वह हुआ अधर्मही इस समय हमको ग्रासकिये लेताहै, परन्तु देवता लोगोंके नित्य किये हुए धर्मकार्य उनके पक्षको बढा रहेहै ॥ १६ ॥ तुमनें स्वतंत्र होकर चलनें और भोग विलासमें आसक्त होकर सदांही अग्निकी समान तेजस्वी ऋषिलोगोंको अत्यन्त क्रोध उपजायाहै ॥ १७ ॥ हे रावण! उन ऋषिलोगोंका प्रभाव प्रदीप्त अग्निकी समान अत्यन्तही दुर्द्धर्ष है उनके अंतःकरण तपोबलसे शुद्ध होगयेहैं; वह लोग धर्मके अ

तत्त्वयाचरतालोकान्धर्मोपिनिहतोमहान् ॥ अधर्मःप्रगृहीतश्चतेनास्मद्बलिनःपरे ॥ १५ ॥ सप्रमादात्प्रवृद्धस्तेऽधर्मोहिग्रसतेहिनः ॥ विवर्धयतिपक्षंचसुराणांसुरभावनः ॥ १६ ॥ विषयेषुप्रसक्तेनयत्किंचित्कारिणात्वया ॥ ऋषीणामग्निकल्पानामुद्वेगोजनितोमहान् ॥ १७ ॥ तेषांप्रभावोदुर्धर्षःप्रदीप्तइवपावकः ॥ तपसाभावितात्मानोधर्मस्यानुग्रहेरताः ॥ १८ ॥ मुख्यैर्यज्ञैर्यजंत्येतेतैस्तैर्यत्तेद्विजातयः ॥ जुह्वत्यग्नींश्चविधिवद्वेदांश्चोच्चैरधीयते ॥ अभिभूयचरक्षांसिब्रह्मघोषानुदीरयन् ॥ १९ ॥ दिशोविप्रद्रुताःसर्वेस्तनयित्नुरिवोष्णगे ॥ ऋषीणामग्निकल्पानामग्निहोत्रसमुत्थितः ॥ २० ॥ आवृत्यरक्षसांतेजोधूमोव्याप्यदिशोदश ॥ तेषुतेषुचदेशेषुपुण्येष्टचवधृतव्रतैः ॥ २१ ॥

नुग्रहमें टिके हुएहैं ॥ १८ ॥ हे रावण! वह द्विजातीगण! वेदका उच्चारण करते हुए राक्षस लोगोंको रोकते वेदाध्ययन ध्यानरूप मुख्य यज्ञसे ब्रह्मकी पूजा करके विधिपूर्वक अग्निमें आहुति दिया करतेहैं ॥ १९ ॥ जिसप्रकार ग्रीष्मकालमें अत्यन्त तेजवान सूर्य भगवानके उदय होनेंपर बादल इधर उधरको भाग जातेहैं; वैसेही राक्षस लोग उन ब्राह्मणकी वेद ध्वनी सुनकर चारों ओरको भाग जातेहैं; सो अग्नितुल्य तेजस्वी ऋषि लोगोंके अग्निहोत्रसे उठा हुआ ॥ २० ॥ धुआ राक्षस लोगोंके घरमे उनके तेजको ढककर दशों दिशाओंमें फैला हुआहैं; वह व्रत धारण किये

प्रकार हमसे छुटकारा पानेंको समर्थ न होगा ॥ १० ॥ वानरराज सुग्रीवजी यह कह छलांग मार सहसा उसके मस्तक पर चढ़गये और रावणके शिरपरसे विचित्र मुकुट उतार पृथ्वीपर फेंकदिये, और फिर पृथ्वीपर उतर दुवारा उसके ऊपर झपटे ॥ ११ ॥ निशाचर रावण सुग्रीवको अति वेग सहित दूसरी वार आते हुए देखकर बोलाकि, हेसुग्रीव! जबतक तुम हमें दृष्टि नहीं आये तवहीतक तुम सुग्रीवथे, परन्तु अब हीनग्रीव हो जाओगे ॥ १२ ॥ रावणनें यह कहकर सुग्रीवजीके दोनों हाथ पकड़ उनको पटक दिया, परन्तु सुग्रीवजीनेंभी जलसे लुढ़कती गेंदकी समान शीघ्रतासे उठ रावणकी दोनों बाहें पकड़ उसको पृथ्वीपर पटक डाला ॥ १३ ॥ जब वह परस्पर इस प्रकारसे

इत्युक्तासहसोत्पत्यपुप्लुवेतस्यचोपरि ॥ आकृष्यमुकुटंचित्रंपातयामासतद्भुवि ॥११॥ समीक्ष्यतूर्णमायांतंबभाषेतंनिशाचरः ॥ सुग्रीवस्त्वंपरोक्षंमेहीनग्रीवोभविष्यसि ॥ १२ ॥ इत्युक्त्वोत्थायतंक्षिप्रंबाहुभ्यामाक्षिपत्तले ॥ कंदुवत्ससमुत्थायबाहुभ्यामाक्षिपद्धरिः ॥ १३ ॥ परस्परंस्वेदविदिग्धगात्रौपरस्परंशोणितरक्तदेहौ ॥ परस्परंश्लिष्टनिरुद्धचेष्टौपरस्परंशाल्मलिकिंशुकाविव ॥ १४ ॥ मुष्टिप्रहारैश्चतलप्रहारैररत्निघातैश्चकराग्रघातैः ॥ तौचक्रतुर्युद्धमसह्यरूपंमहाबलौराक्षसवानरेंद्रौ ॥ १५ ॥ कृत्वानियुद्धंभृशमुग्रवेगौकालंचिरंगोपुरवेदिमध्ये ॥ उत्क्षिप्यचोत्क्षिप्यविनम्यदेहौपादक्रमाद्गोपुरवेदिलग्नौ ॥ १६ ॥

युद्ध करनें लगे, तब दौनोंके शरीरसे पसीना वहनें लगा, रुधिरकी धारा बहनेंके कारण दौनोंके देह लाल होगये, परस्पर लिपटनेंके कारण दोनोंके शारीरिक व्यापार बंद होगये, और दोनोंही एक दूसरेसे मिले हुए सेमल और ढाकके वृक्षोंकी समान शोभित होनें लगे ॥ १४ ॥ महाबलवान राक्षसराज रावण और वानरनाथ सुग्रीवजी इस प्रकारसे परस्पर मुक्का, लात, जांघ, चनकटा आदिके आघातोंसे एक दूसरेको पीडित करनें लगे ॥ १५ ॥ इस प्रकार बहुत समयतक लंकाके सामनेवाले फाटककी वेदीपर इन दोनोंका बाहुयुद्ध होता रहा तिसके पीछे यहांतक युद्ध हुआ कि कभी २ दोनो लात चलायकर कभी २ वह रावण इनके शरीरको ऊपर उछालताथा और कभी यह

छोड़ चली जातीहैं। अथवा यह कि स्वप्नमें पीले दांतवाली काली स्त्रियां घरोंमें धरी हुई चीज वस्तुसे हँस २ बाते करतीहैं ॥ २८ ॥ कौओंके अर्थ जो बलिकी सामग्री दीजातीहै, उसे कुत्ते खाजातेहैं । गायोंसे गधे, और न्योलोंसे चूहोंकी उत्पति होतीहै ॥ २९ ॥ व्याघ्रोंके साथ बिलाव, कुत्तोंके साथ शुअर, राक्षसोंके साथ किन्नर, और मनुष्योंके साथ राक्षस मैथुन करतेहैं ॥ ३० ॥ पीले वरणके लालचरणवाले बहुत सारे कबूतर राक्षस लोगोंके विनाशार्थही मानों कालके भेजे हुए घरोंमें घूमतेहैं ॥ ३१ ॥ और घरके भीतर पाली हुई सारिका परस्पर क्लेश करती चीची कूची शब्द करतीहैं, व लड़नेंके लिये दूसरे जंगली पक्षीभी उनके पास आते उनसे लडते २ वह सारिका एक दूसरेसे गुथकर अपने अड्डो

गृहाणांबलिकर्माणिश्वानःपर्युपसेवते ॥ स्वरागोपुप्रजायंतेमूपकानकुलेपुच ॥ २९ ॥ मार्जाराद्वीपिभिःसार्धंसूक राःशुनकैःसह ॥ किन्नराराक्षसैश्चापिलभेयुर्मानुपैःसह ॥ ३० ॥ पांडुरारक्तपादाश्चविहगाःकालचोदिताः ॥ राक्ष सानांविनाशायकपोताविचरंतिच ॥ ३१ ॥ चीचीकूचीतिवाशंतःशारिकावेश्मसुस्थिताः ॥ पतंतिग्रथिताश्चापिनि र्जिताःकलहैपिभिः ॥ ३२ ॥ पक्षिणश्चमृगाःसर्वेप्रत्यादित्यंरुदंतिते ॥ करालोविकलोमुंडःपुरुपःकृष्णपिंगलः ॥ ३३ ॥ कालोगृहाणिसर्वेषांकालेकालेऽन्ववेक्षते ॥ एतान्यन्यानिदुष्टानिनिमित्तान्युत्पतंतिच ॥ ३४ ॥ " रामंमन्यामहेविष्णुंमानुपंरूपमास्थितम् ॥ नहिमानुपमात्रोसौराघवोदृढविक्रमः ॥ १ ॥ येनवद्धःसमुद्रेचसेतुःसमरमाद्भुतः ॥ कुरुष्वनरराजेनसंधिंरामेणरावण ॥ २ ॥"

परसे गिर पड़तीहैं ॥ ३२ ॥ पशु और पक्षीगण सूर्यकी ओरको मुख कर २ रोतेहैं विकराल रूप और शिर मुड़ाये काले पीले वर्णका कालपुरुष ॥ ३३ ॥ सन्ध्याके समय हम लोगोंके घरोंमें प्रवेश करके घूमता फिरताहै । इसी प्रकारके और दुष्ट निमित्त हम लोगोंको दिखाई देते है ॥ ३४ ॥ "नराकार धारण किये श्रीरामचंद्रजीको हम तो पुराण पुरुपोत्तम विष्णुही जानतेहैं कारण कि मनुष्यमें दृढ़ पराक्रम होंना कदापि संभव नही ॥ १ ॥ जिन्होंनें समुद्रमें महाअद्भुत सेतु बांध लिया, वह नारायण विष्णुजी न होकर मनुष्य किस प्रकारसे होसकतेहैं ? इस

इस प्रकारसे युद्धविशारद राक्षसेन्द्र और वानरेन्द्र कभी विचित्र मंडल कभी विविध स्थान गोमूत्रोंकार गति कभी विचित्रगत प्रत्यागत ॥ २३ ॥ कभी टेढ़ी और चक्राकार गति,कभी परस्परका प्रहार बचाय कुटिलतासे चलना, औरस्फोटके प्रहारको युक्तिसे बचाना व कौशल पूर्वक मुष्टिक आदि से बचना, दूसरेके प्रहार करनेपर आगे को कूद जाना ॥ २४ ॥ शीघ्रतासे सन्मुखको दौड़ना, ऊपरको कूद जाना सविग्रह अवस्थिति अर्थात् विग्रह दिखा एक स्थानमें टिके रहना कभी पराङ्मुख गति कभी पीछेको हटकर शीघ्रतासे कूद जाना, बगलमें होकर अपद्रुत (जांघ पकड़नेके लिये झुक जाना) अवप्लुत ॥ २५ ॥ उपन्यास कभी अपन्यास इस प्रकारसे युद्धविशारद पारदर्शी दोनोंही वानरेन्द्र सुग्रीव और राक्षसनाथ रावण चतुरता दिखलायकर घूमने लगे ॥ २६ ॥ इतनेहीमें राक्षस रावण वानर सुग्रीवजीसे अपने छुटकारेका उपाय न देखकर

मंडलानिविचित्राणिस्थानानिविविधानिच ॥ गोमूत्रकाणिचित्राणिगतप्रत्यागतानिच ॥ २३ ॥ तिरश्चीनगतान्ये
वतथावक्रगतानिच ॥ परिमोक्षंप्रहाराणांवर्जनंपरिधावनम् ॥ २४ ॥ अभिद्रवणमाप्लावमवस्थानंसविग्रहम् ॥ परा
वृत्तमपावृत्तमपद्रुतमवप्लुतम् ॥ २५ ॥ उपन्यस्तमपन्यस्तंयुद्धमार्गविशारदौ ॥ तौविचेरतुरन्योन्यंवानरेंद्रश्चराव
णः ॥ २६ ॥ एतस्मिन्नंतरेरक्षोमायाबलमथात्मनः ॥ आरब्धुमुपसंपेदेज्ञात्वातंवानराधिपः ॥ २७ ॥ उत्पपाततदाका
शंजितकाशीजितक्लमः ॥ रावणःस्थितएवात्रहरिराजेनवंचितः ॥ २८ ॥ अथहरिवरनाथःप्राप्तसंग्रामकीर्तिर्निशिचरप
तिमाजौयोजयित्वाश्रमेण ॥ गगनमतिविशालंलंघयित्वार्कसूनुर्हरिगणबलमध्येरामपार्श्वंजगाम ॥ २९ ॥

अपनी माया दिखलानेपर तैयार हुआ, इसे जानकर वानरराज सुग्रीव ॥ २७ ॥ रावणको छोडकर आकाशमें कूद गये, वानरराज सुग्रीवजीको न देखकर रावण धोखा खाय वहांपर खड़ाही रहगया ॥ २८ ॥ तिसके पीछे सूर्यके पुत्र वानरराज सुग्रीव अत्यन्त परिश्रमसे निशाचर

१ मंडलके चार भागके हैं चारिमंडल, करणमंडल, खंडमंडल और महामंडल, जिस मंडलमें एक चरण चलानेका कार्य पडताहै, उसे चारि, जिसमें दौनों चरण चलायें जाते हैं उसे करण, जहां कही एक करणमंडलोंका संयोग होताहै, उसे खण्ड, और तीन या इस्से अधिक जहां खण्डमंडल होते उसे महामंडल कहते हैं ॥ २ दोनों चरणोंका तिरछा चलाना—वैष्णवादि छ स्थान है ॥ वैष्णव, संपाद, वैशाख, मंडल, प्रत्यालीढ, अनालीढ, ३ गोमूत्र गति कुटिल भावसे चलना अर्थात् टेढे मेढे होकर चलना ॥ ४ युद्धका आरंभ करके सन्मुख खडे रहना ॥ ५ शत्रुको मारनेके लिये पांव उठाकर दौडना शत्रुबाहोंको न पकड ले इस कारण बाहोंको ऊंची किये रहना ॥ ६ शत्रुकी बांहे पकडनेके लिये अपनी बांहे बढाना॥

थवा हमारे उत्साहसे उत्साहित होकर हमको औरभी उत्साह दिलानेंको तुमनें ऐसे कठोर वचन कहे ॥ ६ ॥ कारण कि उत्साह करनेंका आशय न होनेंसे कौंन शास्त्रके तत्वका जाननेंवाला पंडित युद्धमें सामर्थवान राज्यपर विराजमान अपने स्वामीको ऐसे कठोर वचन कह सकताहै ॥ ७ ॥ कमलहीन लक्ष्मीकी सुन्दरताई जिस प्रकारसे होतीहै, वैसेही हम जनस्थानसे जानकीको हरण करके ले आये, इस समय क्या रामचंद्रसे डरकर हम उनको सीता देदें? ॥ ८ ॥ यह बात सत्यहै कि कोटि २ वानरोंकी सैनाके सहित व सुग्रीव और लक्ष्मणके साथ रामचंद्र लंकामें आयेहैं; परन्तु हम तुमसे कहतेहैं, कि थोड़ेही दिनोंमें तुम उनको हमारे हाथसे सेनासहित नाशको प्राप्त हुआ देखोगे ॥ ९ ॥ जिसके

प्रभवंतंपरस्थंहिपरुषंकोऽभिभाषते ॥ पंडितःशास्त्रतत्त्वज्ञोविनाप्रोत्साहनेनवा ॥ ७ ॥ आनीयचवनात्सीतांपद्महीनामिवश्रियम् ॥ किमर्थंप्रतिदास्यामिराघवस्यभयादहम् ॥ ८ ॥ वृतंवानरकोटीभिःससुग्रीवंसलक्ष्मणम् ॥ पश्यकैश्चिदहोभिश्चराघवंनिहतंमया ॥ ९ ॥ द्वंद्वेयस्यनतिष्ठंतिदैवतान्यपिसंयुगे ॥ सकस्माद्रावणोयुद्धेभयमाहारयिष्यति ॥ १० ॥ द्विधाभज्येयमप्येवंननमेयंतुकस्यचित् ॥ एषमेसहजोदोषःस्वभावोदुरतिक्रमः॥ ११ ॥ यदितावत्समुद्रेतुसेतुर्बद्धोयदृच्छया ॥ रामेणविस्मयःकोत्रयेनतेभयमागतम् ॥ १२ ॥ सतुतीर्त्वार्णवंरामःसहवानरसेनया ॥ प्रतिजानामितेसत्यंनजीवन्प्रतियास्यति ॥ १३ ॥

साथ युद्धमें देवता लोगभी खड़े नहीं होसकते, वह दिग्विजयी रावण क्या कभी युद्ध करनेंसे डरेगा? ॥ १० ॥ चाहें हमारे दोखंड होजांय, परन्तु तौभी हम किसीसे नहीं दबेंगे; यद्यपि यह हमारे स्वभावका दोषहै तौ सही, तथापि स्वभाव अलंघनीय है, इस कारण हम उसको त्याग नहीं सकते ॥ ११ ॥ रामचंद्रका समुद्रमें सेतु बांधना देखकर जो तुम डरगये, भला बतलाओ तौ कि इसमें विस्मयकी क्या बातहै, यह सेतुतो बड़ी सरलतासे बंधा है हम चाहें तौ ऐसे २ हजारों सेतु बँधवादें ॥ १२ ॥ रामचंद्र वानरोंकी सैनाके साथ समुद्रके पार उतरकर यहां आये तौ हैं, परन्तु हम तुमसे

परन्तु तथापि तुम्हारे अवतक न आनेसे हमनें अपनें मनमें इस प्रकारसे स्थित कियाथा ॥ ६ ॥ कि रणभूमिमें, पुत्र सैना, और वाहनोंके सहित रावणका संहार करके बिभीषणको लंकापुरीका राज्य दे देंगे ॥ ७ ॥ हे महाबल ! फिर अयोध्यामें जाय भरतजीको राज्यभार सोंप अपने शरीरकोभी त्याग करदेंगे जब श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा तब सुग्रीवजी उनसे बोले॥८॥हे वीर रघुनंदन! हम अपने पराक्रमको जानकर आपकी भार्याके हरण करनेंवाले रावणको देखकरभी हम किस प्रकार उसे विना दंड दिये रह सकतेहैं ॥ ९ ॥ रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीके यह वचन सुनकर सुग्रीवजीकी वड़ाई करते हुए लक्ष्मी सम्पन्न लक्ष्मणजीसे बोले ॥१०॥ कि आओ हम सबजन सुशीतल जल और फल मूल शोभित वनस्थलीका आश्रय

हत्वाहंरावणंयुद्धेसपुत्रबलवाहनम् ॥ अभिषिच्यचलंकायांविभीषणमथापिच ॥ ७ ॥ भरतेराज्यमारोप्यत्यक्ष्येदेहंमहाबल ॥ तमेवंवादिनंरामंसुग्रीवःप्रत्यभाषत ॥ ८ ॥ तवभार्यापहर्तारंदृष्ट्वाराघवरावणम् ॥ मर्षयामिकथंवीरजानन्विक्रममात्मनः ॥ ९ ॥इत्येवंवादिनंवीरमभिनंद्यचराघवः ॥ लक्ष्मणंलक्ष्मिसंपन्नमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १० ॥ परिगृह्योदकंशीतंवनानिफलवंतिच ॥ बलौघंसंविभज्येमंव्यूह्यतिष्ठामलक्ष्मण ॥ ११ ॥ लोकक्षयकरंभीमंभयंपश्याम्युपस्थितम् ॥ निबर्हणंप्रवीराणामृक्षवानररक्षसाम् ॥ १२ ॥ वाताहिपरुषंवांतिकंपतेचवसुंधरा ॥ पर्वताग्राणिवेपंतेनदंतिधरणीधराः ॥ १३ ॥मेघाःक्रव्यादसंकाशाःपुरुषाःपरुषस्वराः ॥ क्रूराःक्रूरंप्रवर्षंतेमिश्रंशोणितबिंदुभिः ॥ १४ ॥ रक्तचंदनसंकाशासंध्यापरमदारुणा ॥ ज्वलच्चनिपतत्येतदादित्यादग्निमंडलम् ॥ १५ ॥

ले सैनाको विभाग कर व्यूहकी रचना करके उसमें टिकें ॥११॥ इस समय हम लोकोंका क्षय करनेंवाले भयंकर भय चिह्न देखतेहैं इस युद्धमें जोकि होनेंवालाहै, अनेक २ वीर्यवान ऋक्ष, राक्षस और वानर गणोंका विनाश होगा ॥ १२ ॥ यह देखो भयंकर पवन चल रहीहै पृथ्वी और पर्वतोंके शिखर तरु कंपायमान होरहेहैं; और समस्त पर्वतभी शब्दायमान होरहे हैं ॥ १३ ॥ व्याघ्र सिंहादि हिंसक जन्तुओंकी समान भयंकर क्रूर जलद जाल (वादल) रुधिरकी बूंदोंसे मिला हुआ अशुभ जल वर्षातेहैं ॥ १४ ॥सन्ध्यामें लाल चन्दनकी समान लाल ललाई रंगसे दारुण मूर्ति धारण

कि बस सब होगया अब किसी प्रकारका खटका नहीं ॥ २१ ॥ रावण इस प्रकारसे लंकाकी चौकसीके लिये राक्षसोंको नियत करके मंत्रिगणको विदा देकर और आपभी जयसूचक आशीर्वादसे पूजित होकर, धनजन पूर्ण अपने बडे भारी रनवासमें प्रवेश करता हुआ ॥२२ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आदिकाव्ये युद्धकांडे षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥ इधर मनुष्योंके राजा श्रीरामचंद्रजी वानरराज सुग्रीव, कपिश्रेष्ठ पवनकुमार हनुमानजी, ऋक्षराज जाम्बवान राक्षसराज बिभीषण ॥ १ ॥ वालिके पुत्र अंगदजी सुमित्राके पुत्र लक्ष्मणजी वानरश्रेष्ठ शरभ, अपने परिवार सहित सुषेण, मैन्द और द्विविद ॥ २ ॥ गज, गवाक्ष, कुमुद, नल और पनस अपने दुश्मनके राज्य लंकामें आय एकत्रहो बैठकर

विसर्जयामासततःसमंत्रिणोविधानमाज्ञाप्यपुरस्यपुष्कलम् ॥ जयाशिषामंत्रिगणेनपूजितोविवेशसोंतःपुरमृद्धिमन्महत् ॥ २२ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०युद्धकांडेषट्त्रिंशःसर्गः ॥ ३६॥ ॥ छ ॥ नरवानरराजानौसतुवायुसुतःकपिः ॥ जांबवानृक्षराजश्चराक्षसश्चविभीषणः ॥ १ ॥ अंगदोवालिपुत्रश्चसौमित्रिःशरभःकपिः ॥ सुषेणःसहदायादोमैंदोद्विविदएवच ॥ २ ॥ गजोगवाक्षःकुमुदोनलोथपनसस्तथा ॥ अमित्रविषयंप्राप्ताःसमवेताःसमर्थयन् ॥ ३ ॥ इयंसालक्ष्यते लंकापुरीरावणपालिता ॥ सासुरोरगगंधर्वैःसर्वैरपिसुदुर्जया ॥ ४ ॥ कार्यसिद्धिंपुरस्कृत्यमंत्रयध्वंविनिर्णये ॥ नित्यंसन्निहितोयत्ररावणोराक्षसाधिपः ॥ ५ ॥ अथतेषुब्रुवाणेषुरावणावरजोब्रवीत् ॥ वाक्यमग्राम्यपदवत्पुष्कलार्थंविभीषणः ॥ ६ ॥ अनलःपनसश्चैवसंपातिःप्रमतिस्तथा ॥ गत्वालंकांममामात्याःपुरींपुनरिहागताः ॥ ७ ॥ भूत्वाशकुनयःसर्वेप्रविष्टाश्चरिपोर्बलम् ॥ विधानंविहितंयच्चतदृष्ट्वासमुपस्थिताः ॥ ८ ॥

कहने लगे ॥ ३ ॥ असुर, उरग, और गन्धर्वगणोंकोभी जो अजेयहै, ऐसी रावणसे पाली जाती हुई लंकापुरीमें हम आगयेहैं ॥ ४ ॥ लंकेश्वर रावण यहांपर सदांही बड़ी सावधानीसे रहताहै; अब जिस प्रकारसे कार्यकी सिद्धि होवे ऐसी परामर्श हम सबको करना उचितहै ॥५ ॥ जब सबनें यही कहा तब रावणके छोटे भाई बिभीषण उनके वचन सुनकर, ग्रामीणादिदोष रहित अर्थयुक्त यह उदार वचन बोले ॥ ६ ॥ कि अनल पनस सम्पाति और प्रमति नामक हमारे यह चारों मंत्री लंकामें जायकर इसी समय वहांसे लौटकर यहां आयेहैं ॥ ७ ॥ यह चारों पक्षियोंका रूप

कहकर पर्वतके शृङ्गसे नीचे उतरनेंकी इच्छा करते हुए ॥ २३ ॥ धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीनें उस पर्वतपरसे उत्तर शत्रुओं करकै बड़े दुःख
सेभी भयभीत न होनेंवाली अपनी वानरी सैनाको देखा ॥ २४ ॥ सुग्रीवजीके साथ श्रीरामचंद्रजीनें, कवच वख्तरादिकी सामग्री धारण कर
सुग्रीवजीको व्यूह बनानेंके लिये कहा और युद्ध करनेंके लिये वानरों को आज्ञादी ॥ २५ ॥ तिसके पीछे महा बलवान श्रीरामचंद्रजी विजय
मुहूर्त्तमें बड़ी भारी सैनाके साथ धनुष धारण करकै लंकापुरीकी ओर मुख कर संग्राम करनेंको चले ॥ २६ ॥ जब श्रीरामचंद्रजी चले तौ वा
नरराज सुग्रीव, हनुमान ऋक्षराज, जाम्बवान् नल नील और लक्ष्मण उनके पीछे २ चले ॥ २७ ॥ रीछ और वानरोंकी बड़ी भारी सैना वि

अवतीर्यतुधर्मात्मातस्माच्छैलात्सराघवः ॥ परैःपरमदुर्धर्षंददर्शबलमात्मनः ॥ २४ ॥ सन्नह्यतुससुग्रीवःकपिराजबलंम
हत्॥कालज्ञोराघवःकालेसंयुगायाभ्यचोदयत् ॥२५॥ ततःकालेमहाबाहुर्बलेनमहतावृतः ॥ प्रविष्टःपुरतोधन्वीलंकाम
भिमुखःपुरीम् ॥२६॥ तौविभीषणसुग्रीवौहनूमान्जांबवान्नलः॥ऋक्षराजस्तथानीलोलक्ष्मणश्चान्वयुस्तदा ॥२७॥ ततः
पश्चात्सुमहतीपृतनर्क्षवनौकसाम् ॥ प्रच्छाद्यमहतींभूमिमनुयातिस्मराघवम् ॥ २८ ॥ शैलशृंगाणिशतशःप्रवृद्धां
श्चमहीरुहान् ॥ जगृहुःकुंजरप्रख्यावानराःपरवारणाः ॥ २९ ॥ तौत्वदीर्घेणकालेनभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ रावणस्य
पुरींलंकामासेदतुररिंदमौ ॥ ३० ॥ पताकामालिनींरम्यामुद्यानवनशोभिताम् ॥ चित्रवप्रांसुदुष्प्रापामुच्चैःप्राकार
तोरणाम् ॥ ३१ ॥ तांसुरैरपिदुर्धर्षांरामवाक्यप्रचोदिताः ॥ यथानिदेशंसंपीड्यन्यविशंतवनौकसः ॥ ३२ ॥

स्तारित पृथ्वीके एक बड़े भागको ढक कर रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीके पीछे २ गमन करनें लगी ॥ २८ ॥ शत्रुओंका विनाश करनेंमें समर्थ
हाथियोंके समान आकारवाले वानरोंनें गमन करनेंके समय असंख्य पर्वतोंके शिखर और बड़े २ वृक्ष ग्रहण कर लिये ॥ २९ ॥ इस प्रकारसे
शत्रुओंके मारनेंवाले श्रीरामचंद्रजी बहुतही शीघ्रतासे राक्षस रावणकी लंकापुरीके द्वारपर पहुंचे ॥ ३० ॥ यह लंकापुरी बहुत सारी पताका
ओंके लगनेंसे शोभायमान होरहीथी, रमणीक फुलवाडियोंसे शोभितथी; उसकी दुर्ग प्राचीर अति विचित्रथी, परिखा (खर्द) व द्वारोंपरके स्थान
अति विशाल थे; इस कारण बड़े दुःखसेभी वहां कोई नहीं पहुंच सकताथा ॥ ३१ ॥ देवताओंकोभी अति दुःखसे प्रवेश करनेंके योग्य लंकापुरी

हुएहैं ॥ १७ ॥ हेपृथ्वीनाथ! इन करोड़ २ सैनाके एक २ राक्षसके साथ उसका असंख्य परिवारभी मिल जाकर युद्धके समय इकट्ठाहो जाता है ॥ १८ ॥ महाबलवान् विभीषणजीनें मंत्रियोंसे सुना हुआ यह लंकाका वृत्तान्त निवेदन करके अपने चारों मंत्री श्रीरामचंद्रजीको दिखा दिये ॥ १९ ॥ व उन चारों मंत्रियोंनें कमलदलकी समान नेत्रवाले श्रीरामचंद्रजीसे यह सब वृत्तान्त निवेदन किया ॥ २० ॥ तिसके पीछे रावणके छोटे भाई श्रीमान् विभीषणजी रामचंद्रजीका हित साधन करनेंकी वासनासे उनसे बोले, कि रावणके बलकी क्या बातहै, जब यह रावण कुबेरके साथ युद्ध करताथा ॥ २१ ॥ उस समय साठ लाख राक्षस इसके साथ युद्ध करनेंको गयेथे । हेराजन् ! वह दुरात्मा राक्षसगण

एकैकस्यात्रयुद्धार्थेराक्षसस्यविशांपते ॥ परीवारःसहस्राणांसहस्रमुपतिष्ठति ॥ १८ ॥ एतांप्रवृत्तिंलंकायांमंत्रिप्रोक्तां विभीषणः ॥ एवमुक्त्वामहाबाहूराक्षसांस्तानदर्शयत् ॥ १९ ॥ लंकायांसचिवैःसर्वैरामायप्रत्यवेदयत् ॥ रामंकमलपत्राक्षमिदमुत्तरमब्रवीत् ॥ २० ॥ रावणावरजःश्रीमान्रामप्रियचिकीर्षया ॥ कुबेरंतुयदारामरावणःप्रतियुद्ध्यति ॥ २१ ॥ षष्टिःशतसहस्राणितदानिर्यातिराक्षसाः ॥ पराक्रमेणवीर्येणतेजसासत्वगौरवात् ॥ सदृशाह्यत्रदर्पेणरावणस्यदुरात्मनः ॥ २२ ॥ अत्रमन्युर्नकर्तव्यःकोपयेत्वांनभीषये ॥ समर्थोह्यसिवीर्येणसुराणामपिनिग्रहे ॥ २३ ॥ तद्भवांश्चतुरंगेणबलेनमहतावृतम् ॥ व्यूह्येदंवानरानीकंनिर्मथिष्यासिरावणम् ॥ २४ ॥ रावणावरजेवाक्यमेवंब्रुवतिराघवः ॥ शत्रूणांप्रतिघातार्थमिदंवचनमब्रवीत् ॥ २५ ॥

पराक्रम, वीर्य, तेज, बल, धीरता, और दर्प किसी बातमें किसी प्रकार रावणसे कम नहीं ॥ २२ ॥ हेराजन्! आप क्रोध न कीजिये, हमनें; भय दिखानेके लिये, ऐसा नहीं कहा, वरन केवल आपका क्रोध प्रदीप्त करनेंहीके लिये ऐसा कहाहै; कारणकि आप क्रोधित होकर अपने वीर्यके बलसे देवता इन्द्रादिकोंकोभी दंड देसकते हैं ॥ २३ ॥ हम निश्चयही कहतेहैं कि आप इस बड़ी भारी चतुरंगिनी सैनाको व्यूहाकारमें स्थापन करके रावणको भलीभांति मर्दन करेंगे ॥ २४ ॥ रावणके छोटे भाई विभीषणजीनें जब ऐसा कहा तब रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी शत्रुगणोंका

साथ दक्षिण द्वार परगये, और मध्यके गुल्म पर स्वयं सुग्रीवजी जाउठे ॥ ४१ ॥ कि जिनके साथ सर्व वानरश्रेष्ठ थे, कि जिनमें गरुड़ और पवनकी समान बल था, इस वानरोंकी सैनामें छत्तीस करोड़ विख्यात वानरोंके यूथपथे ॥ ४२ ॥ यह सब वानर वहां पर मिलकर आये कि जहां सुग्रीवजीथे, रामचंद्रजीकी आज्ञासे लक्ष्मण और विभीषणजीनें ॥ ४३ ॥ लंकाके प्रत्येक द्वार पर करोड़ २ वानरोंको नियुक्त करते हुए सुषेण जाम्बवान् बहुतसी वानरोंकी सैनाको संगलेकर श्रीरामचंद्रजीके पीछे ॥ ४४ ॥ अत्यन्त निकटवाले मध्य गुल्म पर बहुतसी सैनाके साथ जाय टिके इस प्रकार वानर शार्दूलगण कि जिनके दांतभी सिंहकी समान तीक्ष्ण थे, वृक्ष और पर्वतोंको धारण करके हर्षित मनसे

सहस्रैर्हरिश्रेष्ठैःसुपर्णपवनोपमैः ॥ वानराणांतुषट्त्रिंशत्कोट्यःप्रख्यातयूथपाः ॥ ४२ ॥ निपीड्योपनिविष्टाश्चसुग्रीवोयत्रवानरः ॥ शासनेनतुरामस्यलक्ष्मणःसविभीषणः ॥ ४३ ॥ द्वारेद्वारेहरीणांतुकोटिंकोटीन्र्यवेशयत् ॥ पश्चिमेनतुरामस्यसुषेणःसहजांबवान् ॥ ४४ ॥ अदूरान्मध्यमेगुल्मेतस्थौबहुबलानुगः ॥ तेतुवानरशार्दूलाःशार्दूलाइवदंष्ट्रिणः ॥ गृहीत्वाद्रुमशैलाग्रान्हृष्टायुद्धायतस्थिरे ॥ ४५ ॥ सर्वेविकृतलांगूलाःसर्वेदंष्ट्रानखायुधाः ॥ सर्वेविकृतिचित्रांगाःसर्वेंचविकृताननाः ॥ ४६ ॥ दशनागबलाःकेचित्केचिद्दशगुणोत्तराः ॥ केचिन्नागसहस्रस्यबभूवुस्तुल्यविक्रमाः ॥ ४७ ॥ संतिचौघबलाःकेचित्केचिच्छतगुणोत्तराः ॥ अप्रमेयबलाश्चान्येतत्रासन्हरियूथपाः ॥ ४८ ॥ अद्भुतश्चविचित्रश्चतेषामासीत्समागमः ॥ तत्रवानरसैन्यानांशलभानामिवोद्गमः ॥ ४९ ॥

युद्धकी राह परखनें लगे ॥ ४५ ॥ नख और दांतोंको आयुध बनाये विचित्र देहवाले वह वानरगण क्रोधमें भरकर अपनी पूंछको फटकारने अंग चलानें और मुख विरानेंके आकार करनें लगे ॥ ४६ ॥ इन वानरोंमें किसीरके दश हाथियोंका बल था, किसी २ के शत हाथियोंका बलथा, और किन्हीं २ में हजार हाथियोंकी समान बल विक्रम था ॥ ४७ ॥ उन वानरोंमें कोई २ अमोघ सङ्घ औरकोई २ के शत अमोघ सङ्घ हाथियोंकी समान बलशाली थे, और कोई २ यूथपतिसे ऐसे बलशाली थे, कि उनकी तुलना किसीके साथ नहीं हो सकती ॥ ४८ ॥ टीढ़ियोंकी समान उस वानरोंकी

हे वानरगण! तुम लोगोंका चिन्ह वानरहीहै, इस कारण तुम सब यही रूप धारण किये रहना, केवल हम सात जन मनुष्यका रूप धारण करके शत्रुसे युद्ध करेंगे ॥३४॥ उनमें हम महा तेजस्वी लक्ष्मणजी सखा बिभीषणजी, और इनके सचिव चारों राक्षस बस यह सात जन मनुष्यका रूप धारण करके युद्ध करेंगे, इनके सिवाय मनुष्यका रूप धारण किये और जिसकोभी देखेंगे मार डालेंगे ॥ ३५ ॥ सब कार्योंके करनेमें समर्थ बुद्धिमान स्वामी श्रीरामचंद्रजी धार्मिक बिभीषणजीसे यह कहकर सुवेल पर्वतपर चढ़नेंकी अपनी बुद्धि करते हुए ॥ ३६ ॥ क्योंकि, वह सुवेल पर्वतका तट श्रीरामचंद्रजीको बहुत रमणीयतर दिखायी दिया ॥ ३७ ॥ इस प्रकारसे महाबलवान श्रीरामचंद्रजी शत्रुका वध करनेके लिये

वानराएववश्चिह्नंस्वजनेऽस्मिन्भविष्यति॥वयंतुमानुषेणैवसप्तयोत्स्यामहेपरान्॥३४॥ अहमेवसहभ्रात्रालक्ष्मणेनमहौजसा॥आत्मनापंचमश्चायंसखाममविभीषणः॥३५॥ सरामःकृत्यसिद्ध्यर्थमेवमुक्त्वाविभीषणम्॥ सुवेलारोहणेबुद्धिंचकारमतिमान्प्रभुः॥ ३६ ॥ रमणीयतरंदृष्ट्वासुवेलस्यगिरेस्तटम्॥ ३७ ॥ ततस्तुरामोमहताबलेनप्रच्छाद्यसर्वांपृथिवींमहात्मा॥ प्रहृष्टरूपोभिजगामलंकांकृत्वामतिंसोरिवधेमहात्मा ॥ ३८ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेसप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥ ॥ छ ॥ ॥ सतुकृत्वासुवेलस्यमतिमारोहणंप्रति ॥ लक्ष्मणानुगतोरामः सुग्रीवमिदमब्रवीत्॥ १ ॥ बिभीषणंचधर्मज्ञमनुरक्तंनिशाचरम् ॥ मंत्रज्ञंचविधिज्ञंचश्लक्ष्णयापरयागिरा ॥ २ ॥ सुवेलंसाधुशैलेंद्रमिमंधातुशतैश्चितम् ॥ अध्यारोहामहेसर्वेवत्स्यामोत्रनिशामिमाम् ॥ ३ ॥

कृतनिश्चय होकर अपनी बड़ी भारी वानर सैनासे पृथ्वीको ढककर हर्षित अंतःकरणसे लंकाके जंगलमें विराजमान होनें लगे ॥ ३८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥ श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके साथ सुवेल पर्वत पर चढनेंकी अभिलाषा करके वानरराज सुग्रीवजीसे बोले ॥ १ ॥ मंत्र जाननेंवाले, धर्मके जानकर अनुरागी चित्त और समस्त विधान समझानेंवाले बिभीषणजीसे भी श्रीरामचंद्रजीने कहा ॥ २ ॥ कि चलो हम सब जन द्रुम (वृक्ष) और धातु युक्त सुवेल पर्वतपर चढकर आज वहांपर रात्रि वितामेंगे ॥ ३ ॥

उस बड़े भारी शब्दसे पर्वत, वन कानन प्राकार और फाटकोंके सहित समस्त लंकाद्वीप वारंवार कम्पायमान होनें लगा ॥ ५६ ॥ अधिक क्याकहैं उस समयमें वह वानरोंकी सैना श्रीरामचंद्र लक्ष्मण व सुग्रीवजी करकै रक्षित होनेंके कारण देवता व राक्षसोंसे भी जीतनेंके अयोग्य जान पड़तीथी ॥ ५७ ॥ श्रीरामचंद्रजी इस प्रकारसे राक्षसोंका वध करनेंके लिये सैना स्थापनकर कर्त्तव्याकर्त्तव्यका निश्चय करनेंके लिये मंत्रियोंके साथ सलाह करनेंमें लगे और वारंवार कार्यका निर्णय करनेंमें आगे बढ़े ॥ ५८ ॥ श्रीरामचंद्रजी साम दाम भेद दंड इन चारों उपायोंको जानतेथे, परन्तु उपस्थित कार्यमें शेष उपाय अर्थात् दंड देनाही श्रेष्ठ विचार करकै राजधर्ममें

तेनशब्देनमहतासप्राकारासतोरणा ॥ लंकाप्रचलितासर्वासशैलवनकानना ॥ ५६ ॥ रामलक्ष्मणगुप्तासासुग्रीवेणच वाहिनी॥बभूवदुर्धर्षतरासर्वैरपिसुरासुरैः ॥५७॥राघवःसन्निवेश्यैवस्वसैन्यंरक्षसांवधे ॥ संमंत्र्यमंत्रिभिःसार्धंनिश्चित्य चपुनःपुनः ॥५८॥आनंतर्यमभिप्रेप्सुःक्रमयोगार्थतत्त्ववित् ॥ विभीषणस्यानुमतेराजधर्ममनुस्मरन् ॥ ५९ ॥ अंगदंवा लितनयंसमाहूयेदमब्रवीत्॥ गत्वासौम्यदशग्रीवंब्रूहिमद्वचनात्कपे ॥६०॥ लंघयित्वापुरींलंकांभयंत्यक्त्वागतव्यथः ॥ भ्रष्टश्रीकंगतैश्वर्यंमुमूर्षांनष्टचेतनम् ॥ ६१ ॥ ऋषीणांदेवतानांचगंधर्वाप्सरसांतथा ॥ नागानामथयक्षाणांराज्ञांचर जनीचर ॥ ६२ ॥ यच्चपापंकृतंमोहादवलिप्तेनराक्षस ॥ नूनंतेविगतोदर्पःस्वयंभूवरदानजः ॥ ६३ ॥ यस्यदंडधरस्ते हंदाराहरणकर्शितः ॥ दंडंधारयमाणस्तुलंकाद्वारेव्यवस्थितः ॥ ६४ ॥

मन लगाते हुए और विभीषणजीकी परामर्शके अनुसार यही कर्त्तव्य स्थिर करकै ॥ ५९ ॥ वालिके पुत्र अंगदजीको बुलायकर उनसे वोले, कि हेसौम्य ! तुम हमारे वचनोंको जायकर रावणसे कहना; ॥ ६० ॥ तुम निर्भय होकर समस्त लंका पुरीको लांघते हुए चले जाना, और राक्षसोंका भय छोड़ उनसे कहनाकि हेलक्ष्मीरहित, ऐश्वर्यहीन मृत्युके निकट पहुंचे चेतना रहित राक्षस ॥ ६१ ॥ ऋषि, देवता, गन्धर्व, अप्सरा, सर्प, यक्ष और राजाओंका ॥ ६२ ॥ जो पाप विनाविचारे व गर्वसे तुमनें कियाहै, उस पापके भोगनेंका समय अव आगयाहै; अव उन पापोंका दारुण परिणाम फलनाही चाहताहै, ब्रह्माके वरदानसे ये गर्व तुमको हुआहै, आज वह चूर्ण कर देंगे ॥ ६३ ॥ तुमनें जो हमारी भार्या

राक्षसोंसें पूर्ण लंकापुरीको वानर यूथपोंने देखा कोटकी भीत और खंबोंपर चढे राक्षसोंसे घिरी हुई उस लंकापुरीमें व नील वर्ण वाली राक्षसी सैनाकी श्रेणीको मानों दूसरी दुर्ग प्राचीर (शहर पनाह) तुल्य वानर श्रेष्ठोंनें देखी ॥ ११ ॥ युद्धकी अभिलाषा किये वानर गण उन समस्त राक्षसोंकी सैनाको देख रामचंद्रके सामनेही सिंहनाद करनें लगे ॥ १२ ॥ तिसके पीछे सन्ध्या राग रंजित दिवाकर सूर्य भगवान अस्ता चलको गमन करते हुए, और रात्री हो आई, उस समय पूर्ण चंद्रमाके उदय होनेंसे रात्रिभी प्रदीप्त तुल्य बोध होनें लगी ॥ १३ ॥ तिसके पीछे श्रीरामचंद्रजी अपने सैनापती वानरयूथप व विभीषणजीसे पूजित और सन्मानित होकर लक्ष्मणजीके साथ यूथपति

लंकांराक्षससंपूर्णांददृशुर्हरियूथपाः ॥ प्राकारवरसंस्थैश्चतथानीलैश्चराक्षसैः ॥ ददृशुस्तेहरिश्रेष्ठाःप्राकारमपरं कृतम् ॥ ११ ॥ तंदृष्ट्वावानराःसर्वेराक्षसान्युद्धकांक्षिणः ॥ मुमुचुर्विविधान्नादांस्तस्यरामस्यपश्यतः ॥ १२ ॥ ततोस्तमगमत्सूर्यःसंध्ययाप्रतिरंजितः ॥ पूर्णचंद्रप्रदीप्ताचक्षपासमतिवर्तत ॥ १३ ॥ ततःसरामोहरिवाहिनीपतिर्विभीषणेनप्रतिनंद्यसत्कृतः ॥ सलक्ष्मणोयूथपयूथसंयुतःसुवेलपृष्ठेन्यवसद्यथासुखम् ॥ १४ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० युद्धकांडेअष्टत्रिंशःसर्गः ॥ ३८ ॥ ॥छ॥ तांरात्रिमुषितास्तत्रसुवेलेहरियूथपाः ॥ लंकायांददृशुर्वीरावनान्युपवनानिच ॥ १ ॥ समसौम्यानिरम्याणिविशालान्यायतानिच ॥ दृष्टिरम्याणितेदृष्ट्वाबभूवुर्जातविस्मयाः ॥ २ ॥ चंपकाशोकबकुलशालतालसमाकुला ॥ तमालपनसच्छन्नानागमालासमावृता ॥ ३ ॥

और यूथ गणोंके सहित यथा सुखसे सुवेल पर्वतके शृंगोंपर वास करनें लगे ॥ १४ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० अष्टत्रिंशःसर्गः ॥ ३८ ॥ तिसके पीछे वानरोंकी सैनाके यूथप सुवेल पर्वतके शिखर पर वह रात्रि विताय लंकापुरीके समस्त वन व उपवनोंको देखते हुए ॥ १ ॥ यह समस्त उपवन, विशाल समान सुखदाई, लम्बे चौड़े और देखतेही मन मोहतेथे, जिनको देखकर वानरगण अत्यन्त विस्मित हुए ॥ २ ॥ वानरोंनें देखाकि इन वन उपवनोंमें, चम्पा, बकुल, शाकुल, शाल, ताल छायरहे हैं, और तमाल कटहरसे छायकर यह वन नागवेलिसे युक्त हैं ॥ ३ ॥

रक्षा
हे निशाचर! तुम यदि पक्षीकी देह धारण करके त्रिलोकीके मध्यमें भी घूमोगे,तथापि हमारी दृष्टिसे अलग हो जानेंको अथवा अपने जीवनके सद्गति
करनेंको तुम समर्थ न होगे ॥७१॥अबतुम्हारा जीवन हमारे ही हाथमें है; इस कारण तुम्हारे हितके निमित्त ही कहते हैं, कि तुम पर लोक करनें वाले
प्राप्त करनेंके लिये दानपुण्य जो कुछ करनें हैं वह कर लो, और तुम्हारा मरण देखकर लंकानगरी प्रमुदित होवै ॥ ७२ ॥ दुष्करकर्म ॥ ७३ ॥
श्रीरामचंद्रजी करके इस प्रकारसे कहे जाकर ताराकुमार अंगदजी मूर्तिमान अग्निकी समान आकाश मार्ग में गमन करने
इसके पीछे एक मुहूर्त भरके बीचमें रावणके मंदिर पर पहुंचकर मंत्रि लोगोंके साथ बैठे अविचालित हृदय रावणको अंगदजी देखते हुए ॥ ७४ ॥

यद्याविशसिलोकांस्त्रीन्पक्षीभूतोनिशाचर ॥ ममचक्षुःपथंप्राप्यनजीवन्प्रतियास्यसि ॥ ७१ ॥ ब्रवीमित्वांहितंवाक्यं
क्रियतामौर्ध्वदेहिकम् ॥ सुदृष्टाक्रियतांलंकाजीवितंतेमयिस्थितम् ॥ ७२ ॥ इत्युक्तःसतुतारेयोरामेणाक्लिष्टकर्म
णा ॥ जगामाकाशमाविश्यमूर्तिमानिवहव्यवाट् ॥ ७३ ॥ सोतिपत्यमुहूर्तेनश्रीमान्रावणमंदिरम् ॥ ददर्शासी
नमव्यग्रंरावणंसचिवैःसह ॥ ७४ ॥ ततस्तस्याविदूरेणनिपत्यहरिपुंगवः ॥ दीप्ताग्निसदृशस्तस्थावंगदःकनकांग
दः॥ ७५ ॥ तद्रामवचनंसर्वमन्यूनाधिकमुत्तमम् ॥ सामात्यंश्रावयामासनिवेद्यात्मानमात्मना ॥ ७६ ॥ दूतोहंको
शलेंद्रस्यरामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ वालिपुत्रोंगदोनामयदितेश्रोत्रमागतः ॥ ७७ ॥ आहत्वांराघवोरामःकौसल्यानं
दवर्धनः ॥ निष्पत्यप्रतियुध्यस्वनृशंसपुरुषोभव ॥ ७८ ॥

तिसके पीछे सुवर्णके बाजूसे भूषित प्रदीप्त अग्निकी समान वानरश्रेष्ठ अंगदजी रावणके निकट ही आकाशसे उतर स्वयं अपना नाम सबको
सुनाय मंत्रियोंके सहित रावणसे वह श्रीरामचंद्रजीके कहे हुए वचन यथार्थ २ कहनें लगे ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ अंगदजी बोले कदाचित्त तुमने हमारा
नाम सुनाही होगा, जो न सुना हो तौ अब सुनों कि हम वालिके पुत्र हैं और अंगद हमारा नामहै । इस समय दुष्कर कर्म करनेंवाले
श्रीरामचंद्रजीके दूत होकर यहां आये हैं ॥ ७७ ॥ कौशल्याजीको आनंद बढ़ानेवाले श्रीरामचंद्रजीनें तुमसे कह दियाहै कि—रे पुरुषोंमें

वहांपर चढ़कर एक मुहूर्त्तभरतक टिक दशों दिशाओंको श्रीरामचंद्रजीनें निहारा, तब विश्वकर्माजीकी बनाई त्रिकूटपर्वतके शिखरपर वसी हुई लंका नगरी ॥ २ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें देखी, यह पुरी अच्छे नियमद्वारा क्रम २ से बनाई गईथी, और रमणीकवनभी इसमें चारों ओर शोभायमान थे, उस लंकामें बने हुए ऊंचे द्वारके (गोपुरके) ऊपर राक्षसोंके राजा अति दुर्द्धर्ष रावणको मस्तक पर ॥ ३ ॥ विजय छत्र लगाये;अगल बगल दो श्वेत चँवर ढुलते लाल चंदन लगाये, लाल कपड़े व लालही गहनोंसे भूषित ॥ ४ ॥ और नीले बादरके रंगका सुवर्ण जड़ित उत्तरीय वस्त्र धारण किये, छातीमें ऐरावत हाथीके दांत लगजानेंसे घावयुक्त होनेंके कारण उसके चिह्नसे युक्त ॥ ५ ॥ खरगोशके

स्थित्वामुहूर्तंतत्रैवदिशोदशविलोकयन् ॥ त्रिकूटशिखरेरम्येनिर्मितांविश्वकर्मणा ॥ २ ॥ ददर्शलंकांसुन्यस्तांरम्यकाननशोभिताम् ॥ तस्यगोपुरश्रृंगस्थंराक्षसेंद्रंदुरासदम् ॥ ३ ॥ श्वेतचामरपर्यंतंविजयच्छत्रशोभितम् ॥ रक्तचंदनसंलिप्तंरक्ताभरणभूषितम् ॥ ४ ॥ नीलजीमूतसंकाशंहेमसंछादितांबरम् ॥ ऐरावतविषाणाग्रैरुत्कृष्टकिणवक्षसम् ॥ ५ ॥ शशलोहितरागेणसंवीतंरक्तवाससा ॥ संध्यातपेनसंछन्नंमेघराशिमिवांबरे ॥ ६ ॥ पश्यतांवानरेंद्राणांराघवस्यापिपश्यतः ॥ दर्शनाद्राक्षसेंद्रस्यसुग्रीवःसहसोत्थितः ॥ ७ ॥ क्रोधवेगेनसंयुक्तःसत्वेनचबलेनच ॥ अचलाग्रादथोत्थायपुप्लुवेगोपुरस्थले ॥ ८ ॥ स्थित्वामुहूर्तंसंप्रेक्ष्यनिर्भयेनांतरात्मना ॥ तृणीकृत्यचतद्रक्षःसोब्रवीत्परुषंवचः ॥ ९ ॥ लोकनाथस्यरामस्यसखादासोस्मिराक्षस ॥ नमयामोक्ष्यसेऽद्यत्वंपार्थिवेंद्रस्यतेजसा ॥ १० ॥

रुधिरकी समान रंगवाला लाल वस्त्र पहरे सन्ध्याकी धूपसे ढके हुए बादलके समूहकी समान आकाशमें विराजमान ॥ ६ ॥ वानरोंनें और श्रीरामचंद्रजीनें देखा, ऐसे राक्षसराजको देखतेही सुग्रीवजी सहसा उठ खड़ेहुए ॥ ७ ॥ वह सुग्रीव कोधके वेगसे परिपूर्ण और अपनें बल विक्रमसे उत्साहित होकर पर्वतके ऊपरसे छलांग मारकर उसी गोपुरके स्थानमें पहुंच गये जहांकि रावण खड़ाथा ॥ ८ ॥ तिसके पीछे वहां पर भय रहित मनसे कुछ देरतक खड़ेहो रावणके प्रति एक दृष्टिसे देख उसको तृणकी समान समझ कठोर वचन कहनेंलगे ॥ ९ ॥ कि हे निशाचर! हम सर्व लोकके स्वामी श्रीरामचंद्रजीके दासहैं;-हम उन पृथ्वीनाथके अनुग्रहसे जिस प्रकारके तेजस्वी हुएहैं, तिस्से तौ आज किसी

राक्षस रावणके सामनेही पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ८७ ॥ तिसके पीछे महाप्रतापी अंगदजीनें पर्वतके शिखरकी समान ऊंचे रावणके राजमंदिर पर चढ़कर उस पर बलसे एक पद प्रहार किया ॥ ८८ ॥ वज्रधारी इन्द्रजीके वज्र मारनेंसे जिस प्रकार पूर्व कालमें हिमाचलका शृङ्ग चूर्ण होगयाथा वैसेही रावणके सन्मुख उसके देखते २ राजमंदिर फटकर गिर पड़ा ॥८९॥ इस प्रकारसे अंगदजी राज मंदिरके शिखरको तोडकर वारंवार अपना नाम सबको सुनाय अत्यन्त घोर सिंहनाद करते हुए आकाशको उछल गये ॥ ९० ॥ वीर अंगदजी इस प्रकारसे राक्षसोंको दुःखी और वानर गणोंको हर्ष उपजाते हुए वानर गणोंके बीचमें बैठे श्रीरामचंद्रजी के निकट पहुंच गये ॥ ९१॥ राजमंदिरके टूटनेंपर रावणको अत्यन्तही क्रोध उत्पन्न

ततःप्रासादशिखरंशैलशृंगमिवोन्नतम् ॥ चक्रामराक्षसेंद्रस्यवालिपुत्रःप्रतापवान् ॥ ८८ ॥ पफालचतदाक्रांतंदशग्रीव
स्यपश्यतः ॥पुराहिमवतःशृंगंवज्रेणेवविदारितम्॥८९॥ भंक्त्वाप्रासादशिखरंनामविश्राव्यचात्मनः ॥ विनद्यसुमहाना
दमुत्पपातविहायसा ॥९०॥व्यथयन्राक्षसान्सर्वान्हर्षयंश्चापिवानरान् ॥ सवानराणांमध्येतुरामपार्श्वमुपागतः॥९१॥
रावणस्तुपरंचक्रेक्रोधंप्रासादधर्षणात् ॥ विनाशंचात्मनःपश्यन्निःश्वासपरमोभवत् ॥ ९२ ॥ रामस्तुबहुभिर्हृष्टैर्विन
दद्भिःप्लवंगमैः ॥ वृतोरिपुवधाकांक्षीयुद्धायैवाभिवर्तत ॥ ९३ ॥ सुषेणस्तुमहावीर्योगिरिकूटोपमोहरिः ॥ बहुभिःसंवृ
तस्तत्रवानरैःकामरूपिभिः ॥ ९४ ॥ सतुद्वाराणिसंयम्यसुग्रीववचनात्कपिः ॥ पर्यक्रामतदुर्धर्षोनक्षत्राणीवचं
द्रमाः ॥ ९५ ॥ तेषामक्षौहिणिशतंसमवेक्ष्यवनौकसाम् ॥ लंकामुपनिविष्टानांसागरंचाभिवर्तताम् ॥ ९६ ॥

हुआ और वह श्रीरामचंद्रजीके दूतका बल और अपने होंनेवाले विनाशको निश्चय जानकर चिन्ता सहित वारंवार लंबे २ श्वास लेने लगा ॥ ९२ ॥ इस ओर महाबलवान श्रीरामचंद्रजीभी हर्षित किलकिलात वानर गणोंसे वेष्टित होकर शत्रुका नाश करनेंके लिये युद्धमेंही अपने मनको लगाते हुए ॥९३॥ पर्वताकार महाबलशाली सुषेणभी कामरूपधारी बहुत सारे वानरोंकी सैना संगलेकर आगे बढ शोभायमान हुआ ॥ ९४ ॥ वह अजेय सुषेण नाम वानर कपिराज सुग्रीवजीकी आज्ञासे तारागणोंसे घिरे हुए चंद्रमंडलकी समान बहुत सारी सैनाको साथ लेकर लंकाके समस्त द्वारोंपर घूमनें लगा ॥ ९५ ॥ लंकाके मयदानमें समुद्रकी सीमातक उठी हुई असंख्य अक्षौहिणीके प्रमाणवाली वानरोंकी सैना देखकर ॥९६॥

सुग्रीव इसके शरीरको ऊपर उछालकर गिरा देतेथे ॥ १६ ॥ तिसके पीछे दोनों दोनोंको दबाय एक दूसरेसे लिपट दुर्ग प्राचीरकी खाई में गिरे, वहां थोडी देर दोनोही चेष्टा रहित होकर निर्जीवसे पडे रहे और फिर अतिकठिनतासे पृथ्वी पकड़ वहांसे निकले उसकाल दोनों ही वारंवार लंबी श्वासें ले रहेथे ॥ १७ ॥ क्रोध शिक्षा और बलके सहित यह मार्गमें घूमते हुए दोनों दोनोंको वारंवार लिपटते हुए ऐसे जान पड़ने लगे कि मानों दोनों २ को वारंवार रस्सीसे बांध रहेहैं ॥ १८ ॥ इस प्रकारसे दांत निकले सिंह व शार्दूलशिशुके सहित समरमें आसक्त हो हाथीके पाठोंकी समान दोनों दोनों बाहोंसे आघात प्रतिघात करते हुए दोनोंही एक साथ पृथ्वीपर गिरनें लगे ॥ १९ ॥ इस प्रकारसे वह दोनों वीर परस्पर एक

अन्योन्यमापीड्यविलग्नदेहौतौपेततुःसालनिखातमध्ये ॥ उत्पेततुर्भूमितलंस्पृशंतौस्थित्वामुहूर्तंत्वभिनिःश्वसंतौ ॥ १७ ॥ आलिंग्यचालिंग्यचबाहुयोक्त्रैःसंयोजयामासतुराहवेतौ ॥ संरंभशिक्षाबलसंप्रयुक्तौसुचेरतुःसंप्रतियुद्धमार्गे ॥ १८ ॥ शार्दूलसिंहाविवजातदंष्ट्रौगजेंद्रपोताविवसंप्रयुक्तौ ॥ संहत्यसंवेष्ट्यचतौकराभ्यांतौपेततुर्वैयुगपद्धरायाम् ॥ १९ ॥ उद्यम्यचान्योन्यमधिक्षिपंतौसंचक्रमातेबहुयुद्धमार्गे ॥ व्यायामशिक्षाबलसंप्रयुक्तौक्लमंनतौजग्मतुराशुवीरौ ॥ २० ॥ बाहूत्तमैर्वारणवारणाभैर्निवारयंतौपरवारणाभौ ॥ चिरेणकालेनभृशंप्रयुद्धौसंचेरतुर्मंडलमार्गमाशु ॥ २१ ॥ तौपरस्परमासाद्ययत्तावन्योन्यसूदने ॥ मार्जाराविवभक्षार्थेऽवतस्थातेमुहुर्मुहुः ॥ २२ ॥

दूसरे को वारंवार मारते और उछाल देतेथे, और, उत्साह शिक्षा व बल सहित अनेक प्रकारकी चतुरताभी दिखातेथे, परन्तु तथापि उन दोनों वीरोंमे से शीघ्र कोई भी न थका ॥ २० ॥ मतवाले हाथियोंकी समान वह दोनों वीर हाथीकी शुण्डके समान आकार वाली अपनी दोनों भुजाओंसे एक दोनोंको निवारण करते हुए बहुत विलम्बतक युद्ध करके मंडलाकार होकर लड़ने लगे ॥ २१ ॥ किसी भोजन करनेंकी वस्तु को भोजन करनेके लिये लड़ते हुए दो बिलावोंकी समान यह दोनों वीरभी एक दूसरेका प्राण संहार करनेंमे यत्न करनेंलगे ॥ २२ ॥

चिन्ता होनें लगी कि किस प्रकारसे वानरोंका नाश किया जाय ॥ ४ ॥ बहुत देरतक यह चिन्ता करके वह धीर धारणकरके नेत्र फैलाय २ राम लक्ष्मण और उनकी सैनाके समूहको देखनें लगा ॥ ५ ॥ वहांपर श्रीरामचंद्रजीनें हर्षित अंतःकरणसे सैनाके सहित लंकापुरीके प्राकारके निकट पहुँच गुप्त राक्षसोंकी पुरी लंकाको सब जगह राक्षसोंसे पूरित होकर रक्षा की जाती हुई देखा ॥ ६ ॥ ध्वजा पताकाओंसे शोभायमान लंकापुरीको देखतेही सीतापति रघुनाथजीके विरहसे उत्पन्न हुए दुःखकी अवाई हुई और इसी समय श्रीरामचंद्रजी मनही मनमें कहनें लगे ॥ ७ ॥ हाय! इसी स्थानमें वह मृग छौनाकेसे नेत्रवाली कृशाङ्गी जनककुमारी जानकी हमारे लिये पीडित और शोकसे संतापित होकर

सचिंतयित्वासुचिरंधैर्यमालंब्यरावणः ॥ राघवंहरियूथांश्चददर्शायतलोचनः ॥ ५ ॥ राघवःसहसैन्येनमुदितोनामपुप्लुवे ॥ लंकांददर्शगुप्तांवैसर्वतोराक्षसैर्वृताम् ॥६॥ दृष्ट्वादाशरथिर्लंकांचित्रध्वजपताकिनीम् ॥ जगाममनसासीतांदूयमानेनचेतसा ॥७॥ अत्रसामृगशावाक्षीमत्कृतेजनकात्मजा ॥ पीडयतेशोकसंतप्ताकृशास्थंडिलशायिनी ॥ ८॥ निपीडयमानांधर्मात्मावैदेहीमनुचिंतयन्॥क्षिप्रमाज्ञापयद्रामोवानरान्द्विषतांवधे ॥ ९॥ एवमुक्तेतुवचसिरामेणाक्लिष्टकर्मणा॥ संघर्षमाणाःप्लवगाःसिंहनादैरपूरयन् ॥ १० ॥ शिखरैर्विकिरामैतांलंकांमुष्टिभिरेववा ॥ इतिस्मदधिरेसर्वेमनांसिहरियूथपाः ॥ ११ ॥ उद्यम्यगिरिशृंगाणिमहांतिशिखराणिच ॥ तरूंश्चोत्पाटयविविधांस्तिष्ठंतिहरियूथपाः ॥१२॥

पृथ्वीमें शयन करती हैं ॥ ८ ॥ श्रीरामचंद्रजी इस प्रकार वैदेहीजीके दुःखको विचारकर अत्यन्तही कातर हुए; और शीघ्रही युद्ध करनेके लिये उन्होंने वानर लोगोंको आज्ञादी ॥ ९ ॥ वानर लोग सरलतासे कर्म करनें वाले श्रीरामचंद्रजीकी इस प्रकारसे आज्ञा पाय समस्तही वानर एक साथ आगे बढनेंके लिये सिंहनाद कर२ के चारों दिशाओंको परिपूरित करते हुए ॥ १० ॥ उस कालमें वह वानरयूथपतिगण समस्तही "हम लोग पर्वतोंके शिखरसे इस लंका नगरीको तितर बितर करेंगे अथवा घुमाकर उसको चूर्ण कर डालेंगे," इस प्रकारसे सबही मनमें कहनें लगे ॥ ११ ॥ वह वानरोंके समस्त यूथप पर्वत शृङ्ग बड़े २ शिखर और अनेक प्रकारके वृक्षोंको उखाड़कर हाथमें ले लड़नेंको तैयार हुए ॥ १२ ॥

पति रावणको पराजित और स्वयंभी विजय रूप कीर्ति पाय अतिविशाल आकाशको लांघकर वानरोंकी सैनाके मध्यमें टिके हुए श्रीरामचंद्रजीके निकट पहुंचनेंकी इच्छा करते हुए ॥ २९ ॥ तिसके पीछे हर्षित अन्तःकरण और पवनवेग तुल्यसे वानरोंकी सैनाके बीचमें प्रवेशकर उन वानरोंसे पूजितहो युद्धका वृत्तान्त निवेदन करतेहुए श्रीरामचंद्रजीके आनंदको बढानेंलगे ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥ इसके पीछे दशरथ कुमार श्रीरामचंद्रजी सुग्रीवजीके शरीरमें युद्धके चिह्न देख उनको भेंटकर कहनें लगे ॥ १ ॥ हे सखे तुमनें हमारे साथ विना सलाह कियेही साहस प्रकाश कियाहै, सो राजालोग कभीभी ऐसा

सइतिसवितृसूनुस्तत्रतत्कर्मकृत्वापवनगतिरनीकंप्राविशत्संप्रहृष्टः ॥रघुवरनृपसूनोर्वर्धयन्युद्धहर्षंतरुमृगगणमुख्यैः पूज्यमानोहरींद्रः ॥ ३० ॥ ॥इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०यु०चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४० ॥ ७ ॥ ॥ अथतस्मिन्निमित्तानिदृष्ट्वा लक्ष्मणपूर्वजः ॥ सुग्रीवंसंपरिष्वज्यरामोवचनमब्रवीत् ॥ १ ॥ असंमंत्र्यमयासार्धंतदिदंसाहसंकृतम् ॥एवंसाहसयुक्तानिनकुर्वंतिजनेश्वराः ॥२॥ संशयेस्थाप्यमांचेदंबलंचेमंविभीषणम् ॥ कष्टंकृतमिदंवीरसाहसंसाहसप्रिय॥३॥इदानींमाकृथावीरएवंविधमरिंदम॥त्वयिकिंचित्समापन्नेकिंकार्यंसीतयामम ॥४॥भरतेनमहाबाहोलक्ष्मणेनयवीयसा ॥ शत्रुघ्नेनचशत्रुघ्नस्वशरीरेणवापुनः ॥५॥त्वयिचानागतेपूर्वमितिमेनिश्चितामतिः ॥ जानतश्चापितेवीर्यंमहेंद्रवरुणोपम ॥ ६ ॥

साहसका कार्य करनेंमें नही लगतेहैं अर्थात् राजाओंका ऐसा साहस करना अनुचितहै ॥ २ ॥ हे साहसप्रिय वीर ! तुमनें जिस प्रकारके महा साहसका कार्य कियाहै, इस्से हमें वानरोंकी सहायताको और विभीषणजीकीभी तुम्हारे यहांपर लौटनेंमें संदेह हुआथा ॥ ३ ॥ हे शत्रुदमनकारी ! जो करना था सो कर चुके, परन्तु अब आगेको ऐसा साहस कभी न करना, कारण कि तुम्हारा जो किसी प्रकारसेभी कुछ अनभल होगया तौ हम सीताको लेकर क्या करेंगे ? ॥ ४ ॥ हे महाबलवान् शत्रुओंके मारनेंवाले ! तुम्हारा कुछभी अपमान होनेंपर, हम भरत, उनसे छोटे लक्ष्मण शत्रुघ्न अथवा इस अपने शरीरहीको लेकर क्या करेंगे ? ॥५॥ यद्यपि महेन्द्र और वरुणजीकी तुल्य हम तुम्हारे बल विक्रमको जानतेहैं

प्राकारपर घूमनें लगे ॥ २१ ॥ यूथपति वीर सुबाहु, वीरबाहु, नल और पनस यह यूथपतिगण सैनाको नगरीमें प्रवेश करानेके लिये लंकाकी छहरदिवारीको तोड़ते पुरमें प्रवेश करते हुए, इसी समय इन वानर वीरोंनें लंकाके निवास स्थानको पीड़ित किया ॥ २२ ॥ कुमुद नाम रण वि जयी महा बलवान् वानर दश करोड़ वानरोंको संग लेकर पूर्वके द्वारको घेर लेता हुआ ॥ २३ ॥ व उसी कुमुदकी सहायता करनेंके लिये बहु तसे वानरोंको साथ लिये वानरश्रेष्ठ प्रसभ, और महाबाहु पनस नाम वानरभी तैयार हो खड़ा होगया ॥ २४ ॥ वीरश्रेष्ठ बलवान वानर शत बलि वीस करोड़ वानरोंकी सैनाके सहित लंकाके दक्षिणद्वारको घेर लेता हुआ ॥ २५ ॥ ताराका पिता बलवान सुषेण करोड़ २ वानरोंकी सैना

वीरबाहुःसुबाहुश्चनलश्चपनसस्तथा॥निपीडयोपनिविष्टास्तेप्राकारंहरियूथपाः ॥एतस्मिन्नंतरेचक्रुःस्कंधावारनिवेशन म्॥२२॥पूर्वद्वारंतुकुमुदःकोटिभिर्दशभिर्वृतः॥ आवृत्यबलवांस्तस्थौहरिभिर्जितकाशिभिः॥२३॥सहायार्थेतुतस्यैवनि विष्टःप्रसभोहरिः ॥ पनसश्चमहाबाहुर्वानरैरभिसंवृतः॥ २४ ॥ दक्षिणद्वारमासाद्यवीरःशतबलिःकपिः॥ आवृत्यबलवां स्तस्थौविंशत्याकोटिभिर्वृतः॥२५॥सुषेणःपश्चिमद्वारंगत्वातारापिताबली॥आवृत्यबलवांस्तस्थौकोटिकोटिभिरावृतः ॥ २६ ॥ उत्तरद्वारमागम्यरामःसौमित्रिणासह॥आवृत्यबलवांस्तस्थौसुग्रीवश्चहरीश्वरः ॥ २७ ॥ गोलांगूलोमहाका योगवाक्षोभीमदर्शनः ॥ वृतःकोटयामहावीर्यस्तस्थौरामस्यपार्श्वतः ॥ २८ ॥ ऋक्षाणांभीमकोपानांधूम्रःशत्रुनिबर्ह णः॥ वृतःकोटयामहावीर्यस्तस्थौरामस्यपार्श्वतः॥ २९ ॥ सन्नद्धस्तुमहावीर्योगदापाणिर्विभीषणः ॥ वृतोयत्तैस्तुस चिवैस्तस्थौयत्रमहाबलः ॥ ३० ॥

को संग लेकर लंकाके पश्चिमद्वारपर विराजमान हुआ ॥ २६ ॥ उत्तर द्वारको घेरकर महाबलवान श्रीरामचंद्र लक्ष्मणजीके साथ खड़े हुए, और सुग्रीवजी श्रीरामचंद्रजीकी सहायता करनेंके लिये तैयार होगये ॥ २७॥ भयंकराकार महावीर्यवान, महाकाय गोपुच्छ गवाक्ष नामक वानर एक करोड़ वानरोंको साथ लेकर श्रीरामचंद्रजीकी पार्श्वमें रक्षा करनें लगा ॥ २८ ॥ व श्रीरामचंद्रजीकी दूसरी बगलमें शत्रुओंका तपानेंवाला महा बलवान् धूम्र करोड़ रीछोंके साथ विराजमान होनें लगा ॥ २९ ॥ कवच बख्तर पहरे गदा हाथमें लिये महावीर्य विभीषणजी अपने चारों

कीहै, सूर्य मंडलसे अग्निके अंगारे जलते हुए गिरतेहैं ॥ १५ ॥ दीन स्वभाव क्रूर बुरे पशु और पक्षीगण सूर्यके सन्मुख होकर बड़ी दीनतासे रोतेहैं; कि जिनको सुनकर अत्यन्त भय उत्पन्न होताहै ॥ १६ ॥ रात्रिमें चंद्रमा उदय होकर लोकोंको संताप किया करताहै; और प्रलय कालकी समान उसके चारों ओर काली और लाल किरणें दिखलाई देतींहैं हे लक्ष्मण! चंद्रमाका ऐसा विपरीत भाव बहुतही बुराहै ॥ १७ ॥ हे लक्ष्मण देखो! सूर्यके मंडलमें नीले दाग दिखलाई देतेहैं; चंद्रमाकी भांति सूर्य मंडलभी रूखा, छोटा, बुरा और लाल वर्णका होगयाहै ॥ १८ ॥ हे ल

आदित्यमभिवाश्यंतिजनयंतोमहद्भयम् ॥ दीनादीनस्वराःक्रूराअप्रशस्तामृगद्विजाः ॥ १६ ॥ रजन्यामप्रशस्तश्चसंतापयतिचंद्रमाः ॥ कृष्णरक्तांशुपर्यंतोयथालोकस्यसंक्षये ॥ १७ ॥ ह्रस्वोरूक्षोप्रशस्तश्चपरिवेषःसुलोहितः ॥ आदित्यमंडलेनीलंलक्ष्मलक्ष्मणदृश्यते ॥ १८ ॥ दृश्यतेनयथावच्चनक्षत्राण्यभिवर्तते ॥ युगांतमिवलोकस्यपश्यलक्ष्मणशंसति ॥ १९ ॥ काकाःश्येनास्तथागृध्रानीचैःपरिपतंतिच ॥ शिवाश्चाप्यशुभावाचःप्रवदंतिमहास्वनाः ॥ २० ॥ शैलैःशूलैश्चखड्गैश्चविमुक्तैःकपिराक्षसैः ॥ भविष्यत्यावृताभूमिर्मांसशोणितकर्दमा ॥ २१ ॥ क्षिप्रमद्यदुराधर्षांपुरींरावणपालिताम् ॥ अभियामजवेनैवसर्वतोहरिभिर्वृताः ॥ २२ ॥ इत्येवंतुवदन्वीरोलक्ष्मणंलक्ष्मणाग्रजः ॥ तस्मादवातरच्छीघ्रंपर्वताग्रान्महाबलः ॥ २३ ॥

क्ष्मण! चंद्रमाके प्रति नक्षत्रमें यथावत न टिकनेंसे निश्चय ज्ञात होताहै कि मानो शीघ्रही प्रलय काल आया चाहताहै ॥ १९ ॥ गिद्ध, बाज, और कौये ऊपरसे सहसा गिरतेहैं, और शृगालियां मानों ऊंचे स्वरसे अशुभ समाचारको ही प्रगट कर रहीहैं ॥ २० ॥ वानरराक्षसोंके छोड़े हुए वृक्ष शूल और खड्गादिकोंसे मरी हुई सैनाके मांस व रक्तसे यहांकी, पृथ्वी परिपूर्ण होजायगी ॥ २१ ॥ हे लक्ष्मण! जो कुछभी हो वानर गणोंके साथ बल पूर्वक आज हम रावणसे पाली जाती हुई दुर्द्धर्ष लंकापुरीमें प्रवेश करेंगे ॥ २२ ॥ वीर श्रेष्ठ महाबलवान श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीसे यह

हाथियोंकी चिंघाड घो
शंख नगाडोंके बजनें, और वानर गणोंके सिंहनाद करनेंसे पृथ्वी आकास और समुद्रभी पूर्ण होगया ॥ ३९ ॥
ड़ोंकी हिनहिनाहट रथोंके खरखर शब्द व राक्षस लोगोंके चरण धरनेके शब्दसे पृथ्वी पूर्ण होगई, ॥ ४० ॥ इसके पीछे फिर वानर और
राक्षसोंके घोर संग्रामका प्रारंभ हुआ; कि जैसा पूर्वकालमें देवताओंके साथ असुरोंका संग्राम हुआथा ॥ ४१ ॥ राक्षस लोग वारंवार अपने २
विक्रमका प्रकाश करके; प्रदीप्त, शक्ति, शूल, फरसे और गदा चलाय२कर वानरोंका प्रहार करने लगे ॥ ४२ ॥ वेगवान बड़े शरीरवाले वानर

गजानांबृंहितैःसार्धंहया
शंखदुदुंभिनिर्घोषःसिंहनादस्तरस्विनाम् ॥ पृथिवींचांतरिक्षंचसागरंचाभ्यनादयत् ॥ ३९ ॥
नांहेषितैरपि ॥ रथानांनेमिनिर्घोषैरक्षसांपदनिःस्वनैः ॥ ४० ॥ एतस्मिन्नंतरेघोरःसंग्रामःसमपद्यत ॥ रक्षसांवानराणां
चयथादेवासुरेपुरा ॥४१॥ तेगदाभिःप्रदीप्ताभिःशक्तिशूलपरश्वधैः ॥ निजघ्नुर्वानरान्सर्वान्कथयंतःस्वविक्रमान् ॥ ४२ ॥
तथावृक्षैर्महाकायाःपर्वताग्रैश्चवानराः ॥ निजघ्नुस्तानिरक्षांसिनखैर्दन्तैश्चवेगिनः ॥ ४३ ॥ राजाजयतिसुग्रीवइतिशब्दो
महानभूत् ॥ राजन्जयजयेत्युक्त्वास्वस्वनामकथांततः ॥ ४४ ॥ राक्षसास्त्वपरेभीमाःप्राकारस्थामहींगतान् ॥ वान
रान्भिदिपालैश्चशूलैश्चैवव्यदारयन् ॥ ४५ ॥ वानराश्चापिसंक्रुद्धाःप्राकारस्थान्महींगताः ॥ राक्षसान्पातयामासुः
खमाप्लुत्यस्वबाहुभिः ॥ ४६ ॥

तिस समय उस वानरोंकी सैनामेंसे " वानर राज
गणभी, नख, दांत, वृक्ष और पर्वतके शिखर चलाय २ कर राक्षसोंको मारनें लगे ॥ ४३ ॥ ॥१९।
सुग्रीवजीकी जयहो " ऐसा बड़ा भारी शब्द हुआ और इधर " राक्षस रावणकी जयहो " ऐसा शब्द सुनाय अपने २ नामको बताय परस्पर
दोनों दल लड़नें लगे ॥ ४४ ॥ भयंकर आकारवाले राक्षसगण लंकाकी दुर्ग प्राचीरपर चढ़कर वानरोंको भिन्दिपाल, और शूलादि अस्त्रोंसे
मारनें लगे ॥ ४५ ॥ यह देखकर पृथ्वीपर टिके हुए वानर लोगभी क्रोधसे आकाशमें कूद और भुजाओंके प्रहारसे कोटकी

पर श्रीरामचंद्रजीके वचनोंसे प्रेरित वानर गण यथायोग्य स्थानोंको दबाय २ बैठगये ॥ ३२ ॥ इस प्रकारसे श्रीरामचंद्रजी धनुष धारण करके अनुज लक्ष्मणजीके साथ पर्वतके शिखर समान ऊंचे उत्तर द्वारको रोककर अपनी सैनाकी रक्षा करनें लगे ॥ ३३ ॥ महाराजाधिराज दशरथजीके पुत्र श्रीरामचंद्रजी वीर लक्ष्मणजीको साथ लेकर रावणसे रक्षित लंकापुरीमें प्रवेश करते हुए ॥ ३४ ॥ जहां पर रावण स्वयं विराजमान था रामचंद्रजीके सिवाय और कोईभी उसकी रक्षा करनेंको समर्थ नहीं होगा यही विचार कर वीरदशरथकुमार श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके सहित स्वयं उस रावणपालित लंका पुरीके उत्तर द्वारको घेर लेते हुए ॥ ३५ ॥ वरुणजीसे रक्षित महासागर और

लंकायास्तूत्तरद्वारंशलशृंगैमिवोन्नतम्॥ रामःसहानुजोधन्वीजुगोपचरुरोधच॥३३॥लंकामुपनिविष्टस्तुरामोदशरथा
त्मजः ॥ लक्ष्मणानुचरोवीरःपुरींरावणपालिताम् ॥३४॥ उत्तरंद्वारमासाद्ययत्रतिष्ठतिरावणः ॥ नान्योरामाद्धितद्द्वा
रंसमर्थःपरिरक्षितुम् ॥ ३५ ॥ रावणाधिष्ठितंभीमंवरुणेनेवसागरम् ॥ सायुधैराक्षसैर्भीमैरभिगुप्तंसमंततः ॥ ३६ ॥
लघूनांत्रासजननंपातालमिवदानवैः ॥ विन्यस्तानिचयोधानांबहूनिविविधानिच॥ ३७ ॥ ददर्शायुधजालानितथैवक
वचानिच ॥ पूर्वंतुद्वारमासाद्यनीलोहरिचमूपतिः ॥ ३८ ॥ अतिष्ठत्सहमैंदेनद्विविदेनचवीर्यवान् ॥ अंगदोदक्षिणद्वा
रंजग्राहसुमहाबलः ॥ ३९ ॥ ऋषभेणगवाक्षेणगजेनगवयेनच ॥ हनूमान्पश्चिमद्वारंररक्षबलवान्कपिः ॥ ४० ॥
प्रजंघतरसाभ्यांचवीरैरन्यैश्चसंगतः ॥ मध्यमेचस्वयंगुल्मेसुग्रीवःसमतिष्ठत ॥ ४१ ॥

दानवोंके दलसे रक्षित पाताल पुरीकी समान शस्त्रलिये भयंकर रूप राक्षसों करके सर्व प्रकारसे व रावणसेभी रक्षा किया जाताहुआ, उत्तर द्वारके देखनेंसे अल्पवीर्य वालोंको अत्यन्त भय लगताथा ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ और वहां पर वानर लोगोंने राक्षस वीरोंके अनेक अस्त्र और कवच देखे सेनापति नील वानरोंकी सैनाके साथ पूर्व द्वार पर पहुंचा ॥ ३८ ॥ इन नीलके साथ वीर्यवान मैन्द और द्विविद यह दौनों वानरभीथे महा बली वालिके पुत्र अंगदजी दक्षिणके द्वार पर गये ॥ ३९ ॥ अंगदजीके साथ ऋषभ, गज, गवय और गवाक्ष, यह चार वानरभी दक्षिण द्वार परगये महावीर हनुमानजीनें पश्चिम द्वारको जायकर घेर लिया ॥ ४० ॥ प्रजङ्घ, तरस, व और दूसरे वीर सेनापति उन हनुमानजीके

प्रजङ्घके साथ युद्ध करनें लगा और वानरश्रेष्ठ हनुमानजी, जम्बुमाली राक्षससे जायकर भिड़े ॥ ७ ॥ उस संग्राम भूमिमें रावणके छोटे भाई विभीषणजी अत्यन्त क्रोध युक्तहो शत्रुघ्न नामक राक्षसके साथ युद्ध करते हुए ॥ ८ ॥ महा बलवान गजनाम वानर तपन राक्षसके साथ अति परा क्रमसे युद्ध करनें लगा, और महा तेजस्वी नील नाम सैनापति निकुम्भ नाम राक्षससे जाय भिड़ा ॥ ९ ॥ वानरोंके राजा सुग्रीवजी राक्षस प्रघसके साथ द्वन्द्व युद्ध करनें लगे और विरूपाक्ष नामक राक्षसके साथ श्रीमान् लक्ष्मणजीका युद्ध होनें लगा ॥ १० ॥ दुर्द्धर्ष, अग्निकेतु, रश्मिकेतु, मित्रघ्न, और यज्ञकोप यह चार राक्षस श्रीरामचंद्रजीके साथ युद्ध करने लगे ॥ ११ ॥ घोर रूपवान वज्रमुष्टि और अशनिप्रभ नामक यह

संगतस्तुमहाक्रोधोराक्षसोरावणानुजः ॥ समरेतीक्ष्णवेगेनशत्रुघ्नेनविभीषणः ॥ ८ ॥ तपनेनगजःसार्धंराक्षसेनमहा बलः ॥ निकुंभेनमहातेजानीलोपिसमयुध्यत ॥ ९ ॥ वानरेंद्रस्तुसुग्रीवःप्रघसेनसुसंगतः ॥ संगतःसमरेश्रीमान्विरू पाक्षेणलक्ष्मणः ॥ १० ॥ अग्निकेतुःसुदुर्धर्षोरश्मिकेतुश्चराक्षसः ॥ मित्रघ्नोयज्ञकोपश्चरामेणसहसंगताः ॥ ११ ॥ वज्र मुष्टिश्चमैंदेनद्विविदेनाशनिप्रभः ॥ राक्षसाभ्यांसुघोराभ्यांकपिमुख्यौसमागतौ ॥ १२ ॥ वीरःप्रतपनोघोरोराक्षसोरण दुर्धरः॥समरेतीक्ष्णवेगेननलेनसमयुध्यत ॥१३॥ धर्मस्यपुत्रोबलवान्सुषेणइतिविश्रुतः ॥ सविद्युन्मालिनासार्धमयुध्य तमहाकपिः ॥ १४ ॥ वानराश्चापरेघोराराक्षसैरपरैःसह ॥ द्वंद्वंसमीयुःसहसायुद्धाचबहुभिःसह ॥ १५ ॥ तत्रासीत्सु महद्युद्धंतुमुलंरोमहर्षणम् ॥ रक्षसांवानराणांचवीराणांजयमिच्छताम् ॥ १६ ॥

दो राक्षस मैन्द व द्विविद नामक दो वानरोंके साथ युद्ध करनें लगे ॥ १२ ॥ भयंकराकार रणमें दुर्जय वीर प्रतपन नामक राक्षस, तीक्ष्ण वेगवान नल नामक वानरके साथ संग्राम करनें लगा ॥ १३ ॥ त्रिलोक विख्यात बलवान धर्मका पुत्र महाकपि सुषेण विद्युन्माली राक्षसके साथ युद्ध करनेंको जाय उठा ॥ १४ ॥ व और दूसरे भयंकर पराक्रम करनेंवाले वानर गणभी अगणित राक्षसोंके साथ घोर द्वन्द्व युद्ध करनें लगे, ॥ १५ ॥ इस प्रकारसे उस रणभूमिमें अपने २ जयकी अभिलाषा किये वीर राक्षस और वानर गणोंका तुमुल रोमहर्षण कारी युद्ध प्रारंभ हुआ ॥ १६ ॥

सैनाका ऐसा विचित्र समागम हुआथा कि पहले कभी भी ऐसा समागम नहीं हुआथा ॥ ४९ ॥ लंका पर पहुंचे हुए वानरगणों करके वहांकी पृथ्वी और कूदते फांदते हुए वानरोंसे आकाश परिपूर्ण हो रहाथा ॥ ५० ॥ इनके सिवाय युद्धकी अभिलाषा करके असंख्य वानर और रीछगण चारों ओरसे लंकाके द्वारों पर आय २ जुटनें लगे ॥ ५१ ॥ उस समय समस्त पर्वतश्रेष्ठ गिरि चित्रकूट समस्त वानरोंसे छाया हुआ जान पड़नें लगा, अति द्वार पर सन्निवेशित सैनाका वृत्तान्त जाननेके लिये एक कोटि वानरगण लंकापुरीके चारों ओर घूमनें लगे ॥ ५२ ॥ लंका नगरी, वृक्ष हाथोंमें लिये वानरों करके इस प्रकार सर्व भावसे घेरी गई कि वहां पवनका प्रवेश करनाभी कठिन ज्ञात होंनें लगा ॥ ५३ ॥ मेघाकार और इन्द्र तुल्य पराक्रमकारी वानर गणोंसे पीड़ित होकर राक्षसगण अत्यन्त विस्मित हुए ॥ ५४ ॥ समुद्रकें ऊपर सेतु

प्रतिपूर्णमिवाकाशंसंपूर्णेवचमेदिनी ॥ लंकामुपनिविष्टैश्चसंपतद्भिश्चवानरैः ॥ ५० ॥ शतंशतसहस्राणांपृतनर्क्षवनौकसाम् ॥ लंकाद्वाराण्युपाजग्मुरन्येयोद्धुंसमंततः ॥ ५१ ॥ आवृतःसगिरिःसर्वैस्तैःसमंतात्प्लवंगमैः ॥ अयुतानांसहस्रंचपुरींतामभ्यवर्तत ॥ ५२ ॥ वानरैर्बलवद्भिश्चबभूवद्रुमपाणिभिः ॥ सर्वतःसंवृतालंकादुष्प्रवेशापिवायुना ॥ ५३ ॥ राक्षसाविस्मयंजग्मुःसहसाभिनिपीडिताः॥ वानरैर्मेघसंकाशैःशक्रतुल्यपराक्रमैः ॥ ५४ ॥ महाञ्छब्दोभवत्तत्रबलौघस्याभिवर्ततः ॥ सागरस्येवभिन्नस्ययथास्यात्सलिलस्वनः ॥ ५५ ॥

बँधनेंसे जिस प्रकार उसके जलका अत्यन्त भयंकर शब्द होताहै, वैसेही अतिभारी वानरोंकी सैनाका तुमुल शब्द प्रगट होनें लगा ❋ ॥ ५५ ॥

❋ कवित्त ॥ चढ़त कटक महाराज रामचंद्रजीके गरद गगन रवि झंपिगो झडाकदै ॥फूटिगो जलधवन्ध लूटिकै दुवनपुर, छूटिगोमवीस वन हटिगो हडाकदै ॥ श्रीपति सुजान भने चिरिगो बराह रद फिरिगो सुमेरगिरिश्गो धड़ाकदै ॥ धुंधरकी धरनिमें फलक्यो फनिन्द फन दरकी कमठ पीठ कड़की कड़ाकदै॥१॥उज्वल अमल आभा अधिक विराजमान गंगाकी तरंग सुर लोककी निसैनीहै ॥ रसरौद्र पूरन सरस्वती सहित जहां स्यामता सहित रविसुता सुखदैनी है ॥ भट अवतंश महाराज रघुवंश मणि कहै रसरूप जाकी धारा अति पैनी है । महामदमत्त बलवन्त बड़े बैरिनको तारिवेको थारी तरवार यौं त्रिवेनी है ॥ २ ॥ जानदैहौं भरत अवध सब जान देहौं जान देहौं कौशिला हमारी मात प्रानकी ॥ जानदैहौं सकल जहानको सुकौनकाम कहे रघुनाथ ऐसो वचन प्रमानकी ॥ जानदैहौं लखन सुकंठमें विचार कहौं जान देहौं खेल पेल अपने सवानकी । जानदैहौं धनुष कमान वान जान देहौं; जानदैहौं जान पै न जान देहौं जानकी ॥

वेगसे सप्तपर्णका वृक्ष उखाड़ उसके प्रहारसे प्रघस नाम राक्षसको मारडाला,भयंकराकार राक्षसको बाण वर्षासे व्याकुल कर ॥ २५ ॥ फिर एक बाणसे लक्ष्मणजीनें उस अपने शत्रु विरूपाक्ष नामक राक्षसको संहार किया। दुर्द्धर्ष अग्निकेतु व रश्मिकेतु मित्रघ्न व यज्ञकोप इन चार राक्षसोंनें श्रीरामचंद्रजीके ऊपर बाणोंकी वर्षाकी ॥ २६ ॥ तब रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीनें अत्यन्त क्रोध करके अग्निकी शिखाकी समान लप लपाते चार भयंकर बाणोंसे उन चारों राक्षसोंका शिर काट डाला ॥२७॥मैन्द नामक वानरनें घूंसा मारकर रणमें वज्रमुष्टिका संहार किया, तब यह राक्षस रथ और घोड़ोंके सहित पृथ्वीपर गिर पड़ा कि जैसे कोई नगरकी ऊंची अटारी फयराय पड़े ॥ २८ ॥ सूर्य नारायण जिस प्रकार

निजघानविरूपाक्षंशरेणैकेनलक्ष्मणः ॥ अग्निकेतुश्चदुर्धर्षोरश्मिकेतुश्चराक्षसः ॥ मित्रघ्नोयज्ञकोपश्चराममादीपयच्छरैः ॥ २६ ॥ तेषांचतुर्णांरामस्तुशिरांसिसमरेशरैः ॥ क्रुद्धश्चतुर्भिश्चिच्छेदघोरैरग्निशिखोपमैः ॥ २७ ॥ वज्रमुष्टिस्तुमैंदेनमुष्टिनानिहतोरणे ॥ पपातसरथःसाश्वःसुराट्टइवभूतले ॥ २८ ॥ निकुंभस्तुरणेनीलंनीलांजनचयप्रभम् ॥ निर्बिभेदशरैस्तीक्ष्णैःकरैर्मेघमिवांशुमान् ॥ २९ ॥ पुनःशरशतेनाथक्षिप्रहस्तोनिशाचरः ॥ बिभेदसमरेनीलंनिकुंभःप्रजहासच ॥ ३० ॥ तस्यैवरथचक्रेणनीलोविष्णुरिवाहवे ॥ शिरश्चिच्छेदसमरेनिकुंभस्यचसारथेः ॥ ३१ ॥ वज्राशनिसमस्पर्शोद्विविदश्चसमप्रभम् ॥ जघानगिरिशृंगेणमिषतांसर्वरक्षसाम् ॥ ३२ ॥ द्विविदंवानरेंद्रंतुद्रुमयोधिनमाहवे ॥ शरैरशनिसंकाशैःसविव्याधाशनिप्रभः ॥ ३३ ॥

अपनी किरणोंसे बादलोंको अलग २ करके उड़ाय देतेहैं वैसेही वीर निकुम्भ राक्षसनें तीक्ष्ण बाणोंको चलायकर नील अंजनकी समान प्रभावाले सैनापति नीलके शरीरको वींध डाला, और तिसके पीछे दूसरी बार फिर शतबाण छोड़ नीलका शरीर भेद यह निकुम्भ राक्षस अति ऊंचेस्वरसे ठट्ठा करके हँसनें लगा ॥ २९ ॥ ३० ॥ परन्तु सैनापति नीलनें राक्षसनिकुम्भके रथका पहिया ग्रहण कर, चक्र धारण किये हुए विष्णुजीकी समान निकुम्भ और उसके सारथिका मस्तक काट डाला ॥ ३१ ॥ वज्रकी समान कठिन प्रहार करनें वाले द्विविद नाम वानरनें सर्व राक्षसोंके सामनेंहो पर्वतके शिखरका प्रहार करके राक्षस अशनिप्रभके ऊपर चोट चलाई ॥ ३२ ॥ राक्षस अशनिप्रभनेंभी

का हरणरूप अपराध कियाहै; हम उसका उचित दंड देनेंके लिये साक्षात् कालकी समान लंकाके द्वारपर टिक रहेहैं ॥ ६४ ॥ यदि हमारे साथ युद्ध करनेंही की तेरी इच्छाहै, तो युद्धमें हमारे हाथसे तेरी मृत्यु होनेंपर तेरे भाग्यमें देवता महर्षि राजाओंकी गति प्राप्त होगी॥६५॥ रे राक्षसाधम! तैनें जो बल और मायाका आश्रय करके हमारी कुटीसे दूरकरके सीताको हरण कियाहै, अब वही बल और वही माया तुमको दिखानी चाहिये ॥ ६६ ॥ यदि तुम सीताको समर्पण करके हमारे शरणागत नहोगे; तो जान लेनाकि अत्यन्त तीखे बाणोंसे हम समस्त लोक राक्षसशून्य करेंगे; इस्से जानकीको देदे क्योंकि जानकी किसी प्रकारसे हम नहीं छोड़ सकते * ॥ ६७ ॥ धर्मात्मा राक्षसश्रेष्ठ विभीषण हमारी शरणमें आयेहैं; हमभी इनकोही निष्कंटक लंकाका राज्य व तुम्हारा सब ऐश्वर्य दान कर देंगे ॥ ६८ ॥ तुम जिस प्रकारके पापा

पदवींदेवतानांचमहर्षीणांचराक्षस ॥ राजर्षीणांचसर्वेषांगमिष्यसियुधिस्थिरः ॥ ६५ ॥ बलेनयेनवैसीतांमाययाराक्षसाधम ॥ मामतिक्रमयित्वात्वंहृतवांस्तन्निदर्शय ॥ ६६ ॥ अराक्षसमिमंलोकंकर्तास्मिनिशितैःशरैः ॥ नचेच्छरणमभ्येषितामादायतुमैथिलीम् ॥ ६७ ॥ धर्मात्माराक्षसश्रेष्ठःसंप्राप्तोयंविभीषणः ॥ लंकैश्वर्यमिदंश्रीमान्ध्रुवंप्राप्नोत्यकंटकम् ॥ ६८ ॥ नहिराज्यमधर्मेणभोक्तुंक्षणमपित्वया ॥ शक्यंमूर्खसहायेनपापेनाविदितात्मना ॥ ६९ ॥ युध्यस्वमाधृतिंकृत्वाशौर्यमालंब्यराक्षस ॥ मच्छरैस्त्वंरणेशांतस्ततःशांतोभविष्यसि ॥ ७० ॥

चारी और सज्ञानहीनहो,और तिसपर ऐसा अधर्माचरण करके इन मूर्ख मंत्रियोंकी सहायतासे अब अधिक कालतक राज्य नहीं कर सकोगे ॥६९॥ हेराक्षस! यदि शरणमें आना तुम्हारा मन माना न होवे तो धीरता और शूरताका आश्रय लेकर युद्ध करो कारणकि युद्ध करनें पर हमारे चलाये हुए बाणोंसे तुम्हारा देह पवित्रहो जायगा, और तुमनें जन्मसे लेकर अबतक जो पापकार्य कियेहैं उनसे तुम्हारा छुटकाराहो जायगा ॥७० ॥

* खर भर भये लंक संकित सब रजनीचर अकुलाते है ।सहि न जात वह तेज वदनकी मूंदि नयन रह जाते है॥ दाह कलंक कीस सोइ आयउ श्रवननिलागि सुनाते हैं ॥कौन विधाता अबकी राखै यह कहते बिलखाते हैं ॥ कहि लंकेशहि पोच शोच सब पुरवासी घवडाते हैं । बिन पूछे मग लंका गढकी कर जोरे बतलाते हैं । मुकुट शीशकर गदा विराजै सूर्य तेजमन भाते है । दशग्रीव मानके मथन हेतु बलशीव वालिसुत आते हैं ॥

चरोंके समूह वीरश्रेष्ठ वानरों करकै मर्दित होनें लगे ॥ ४२ ॥ भाले, गदा, शक्ति, तोमर और बाणोंके प्रहार लगनेंसे रथ और समरके घोड़े समस्तही पृथ्वीपर गिरनें लगे ॥ ४३ ॥ मरेहुए मतवाले, हाथियोंसे, वानर, राक्षसोंसे, रथके टूटे पहियोंसे, जुआ व धुरे आदिकोंसे ॥ ४४ ॥ संग्राम भूमि परिपूर्ण होगई, इसी कारणसे उस घोर रूप संग्राममें सहस्रों शृगाल घूमनेंलगे; अनेक भांतिसे राक्षस और वानरोंके कवन्ध नृत्य करनें लगे ॥४५॥ अधिक क्या कहैं यह संग्रामभी वैसाही हुआ जैसा कि देवासुरसंग्राम पूर्वकालमें हुआथा ॥ ४६ ॥ परन्तु उस कालमें रक्त गन्धसे मूर्छित निशाचरोंनें वानर वीरों करकै अत्यन्त पीड़ित हो करकैभी फिर अत्यन्त बलके साथ युद्ध करना प्रारंभकिया, और वह राक्षस लोग सूर्य

भल्लैश्चान्यैर्गदाभिश्चशक्तितोमरसायकैः ॥ अपविद्धैश्चापिरथैस्तथासांग्रामिकैर्हयैः ॥ ४३ ॥ निहतैःकुंजरैर्मत्तैस्तथा वानरराक्षसैः ॥ चक्राक्षयुगदंडैश्चभग्नैर्धरणिसंश्रितैः ॥ ४४ ॥ बभूवायोधनंघोरंगोमायुगणसेवितम् ॥ कबंधानि समुत्पेतुर्दिक्षुवानररक्षसाम् ॥ ४५ ॥ विमर्देतुमुलेतस्मिन्देवासुररणोपमे ॥ ४६ ॥ निहन्यमानाहरिपुंगवैस्तदानि शाचराःशोणितगंधमूर्च्छिताः ॥ पुनःसुयुद्धंतरसासमाश्रितादिवाकरस्यास्तमयाभिकांक्षिणः ॥ ४७ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा०आदिकाव्येयुद्धकांडेत्रिचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४३ ॥ ॥छ॥ ॥ युध्यतामेवतेषांतुतदावानररक्षसाम् ॥ रविरस्तंगतोरा त्रिःप्रवृत्ताप्राणहारिणी ॥१॥ अन्योन्यंबद्धवैराणांघोराणांजयमिच्छताम् ॥ संप्रवृत्तंनिशायुद्धंतदावानररक्षसाम् ॥२॥ राक्षसोसीतिहरयोवानरोसीतितिराक्षसाः ॥ अन्योन्यंसमरेजघ्नुस्तस्मिंस्तमसिदारुणे ॥ ३ ॥

भगवानके छिपनें और रात्रिके आनेंकी वाट देखने लगे ॥४७॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥४३॥ जब राक्षस और वानर गणोंमें सहज २ करकै घोर युद्ध होनें लगा तब सूर्य भगवान अस्ताचलका आश्रय ग्रहण करते हुए; और देखतेही देखते जीव जीवन नाशिनी रात्रि आय पहुँची ॥१॥ तिस समय परस्पर वैर बांधे हुए जयके अभिलाषी घोररूपी उन वानर व राक्षसोंका रात्रि युद्ध आरंभ हुआ ॥२॥ उस दारुण अंधकारको वानर लोग "तू राक्षसहै" और राक्षस " तू वानरहै " यह कहकर परस्पर परस्परको आघात करनेंलगे ॥३॥

नीच क्रूर! तुम लंकापुरीसे निकल हमसे युद्धकरो ॥ ७८ ॥ हम पुत्र जाति बांधव और मंत्रियोंके सहित तेरा संहार करेंगे रावण! तुम्हारे मर जानेंपर त्रिभुवनकी व्याकुलता और घबडाहट जाती रहेगी ॥ ७९ ॥ हम तुम्हारा संहार करके देव,दानव, यक्ष, गन्धर्व,सर्प, राक्षस और ऋषि लोगोंके कण्टकका उद्धार करेंगे ॥ ८० ॥ तुम हमारे चरणोंमें झुककर आदर सहित यदि हमको जानकी न देदोगे तौ निश्चयही तुम नाशको प्राप्त होगे; और तुम्हारा समस्त ऐश्वर्य बिभीषणका होजायगा ॥ ८१ ॥ जब वानरवीर अंगदजीनें इस प्रकारके कठोर वचन कहे तब राक्षसोंका राजा रावण क्रोधके वश हुआ ॥ ८२ ॥ वह रावण अत्यन्त ही क्रोधके वशहोकर अपने मंत्रियोंसे बोला कि तुम अभी इस वानरको पकडकर

हंतास्मित्वांसहामात्यंसपुत्रज्ञातिबांधवम् ॥ निरुद्विग्नास्त्रयोलोकाभविष्यंतिहतेत्वयि ॥ ७९॥ देवदानवयक्षाणांगंधर्वोरगरक्षसाम्॥शत्रुमद्योद्धरिष्यामित्वामृषीणांचकंटकम्॥८०॥ विभीषणस्यचैश्वर्यंभविष्यतिहतेत्वयि॥नचेत्सत्कृत्य वैदेहींप्रणिपत्यप्रदास्यसि ॥ ८१ ॥ इत्येवंपरुषंवाक्यंब्रुवाणेहरिपुंगवे ॥ अमर्षवशमापन्नोनिशाचरगणेश्वरः ॥ ८२ ॥ ततःसरोषमापन्नःशशाससचिवांस्तदा ॥ गृह्यतामितिदुर्मेधावध्यतामितिचासकृत् ॥ ८३ ॥ रावणस्यवचःश्रुत्वादीप्ताग्निमिवतेजसा ॥ जगृहुस्तंततोघोराश्चत्वारोरजनीचराः ॥ ८४ ॥ ग्राहयामासतारेयःस्वयमात्मानमात्मवान् ॥ बलंदर्शयितुंवीरोयातुधानगणेतदा ॥ ८५ ॥ सतान्बाहुद्वयासक्तानादायपतगानिव ॥ प्रासादंशैलसंकाशमुत्पपातांगदस्तदा ॥ ८६ ॥ तस्योत्पतनवेगेननिर्धूतास्तत्रराक्षसाः ॥ भूमौनिपतिताःसर्वेराक्षसेंद्रस्यपश्यतः ॥ ८७ ॥

इसका प्राण संहार कर डालो ॥ ८३ ॥ रावणके ऐसे वचन सुनकर घोर रूपवाले चार निशाचर उन प्रदीप्त अग्निकी तुल्य अंगदजीको पकडनेके लिये तैयार हुये ॥ ८४ ॥ वीरश्रेष्ठ बुद्धिमान ताराकुमार अंगदजीने समर्थ होकर भी अपना बल राक्षसोंको दिखलानेके लिये स्वयं ही अपनेंको पकड़वा दिया ॥ ८५ ॥ जब राक्षस लोग अंगदजीकी बाँहें बांध रहेथे, तब अंगदजी सहसा उन राक्षसोंके सहित पर्वतके शृङ्गोंकी समान ऊंचे बडे भारी राजमंदिरपर कूदकर चढ गये ॥ ८६ ॥ अंगदजीके कूदनेंके समय राक्षस लोग ऐसे त्रासित हो उठे कि वह समस्त

मृदंग और ढोलोंको अद्भुत अनुपम शब्द होनें लगा ॥ १२ ॥ घायल हुए व ताडित हुए राक्षसोंकी आरत वाणी और अस्त्र शस्त्र चलानेके शब्दसे व वानर गणोंके दारुण शब्दसे संग्रामभूमि परिपूर्ण होगई ॥ १३ ॥ शक्ति, शूल, और परशु इत्यादि अस्त्र शस्त्रोंसे मरे हुए वानर और पर्वताकार कामरूपी राक्षस लोगोंके गिरनेसे ॥ १४ ॥ वह रणभूमि शस्त्ररूप पुष्पोंसे शोभायमान उद्यान (फुलवाड़ी) की समान जानपड़ने लगी। सब जगह ही रुधिरके वहनेंसे कीचड़ हो जानेंसे वह संग्राम भूमि सबके न देखनें योग्य और न प्रवेश करने योग्य होगई ॥१५॥ वास्तवमें राक्षस और वानर गणोंकी प्राण हरण करने वाली वह रात्रि कालरात्रिकी समान सबही प्राणियोंको अत्यन्त भयंकर हुई ॥ १६ ॥ तिसके पीछे उस दारुण

हयानांस्तनमानानांराक्षसानांचनिःस्वनः॥शस्तानांवानराणांचसंबभूवात्रदारुणः॥१३॥हतैर्वानरमुख्यैश्चशक्तिशूलपरश्वधैः॥निहतैःपर्वताकारैराक्षसैःकामरूपिभिः॥१४॥शस्त्रपुष्पोपहाराचतत्रासीद्युद्धमेदिनी॥दुर्ज्ञेयादुर्निवेशाचशोणितास्त्रावकर्दमा॥१५॥साबभूवनिशाघोराहरिराक्षसहारिणी॥कालरात्रीवभूतानांसर्वेषांदुरतिक्रमा॥१६॥ततस्ते राक्षसास्तत्रतस्मिंस्तमसिदारुणे॥राममेवाभ्यवर्तंतसंहृष्टाःशरवृष्टिभिः॥१७॥तेषामापततांशब्दःक्रुद्धानामपिगर्जताम्॥उद्वर्तइवसत्वानांसमुद्राणामभूत्स्वनः॥ १८ ॥ तेषांरामःशरैःषड्भिःषड्जघाननिशाचरान्॥निमेषांतरमात्रेण शरैरग्निशिखोपमैः ॥ १९ ॥ यज्ञशत्रुश्चदुर्धर्षोमहापार्श्वमहोदरौ॥वज्रदंष्ट्रोमहाकायस्तौचोभौशुकसारणौ॥२०॥ते तुरामेणबाणौघैःसर्वमर्मसुताडिताः ॥ युद्धादपसृतास्तत्रसावशेषायुषोभवन् ॥ २१ ॥

अंधकारमें समस्त ही राक्षस श्रीरामचंद्रजीके ऊपर बाण वर्षाते हुए आगे बढ़े ॥ १७॥ उस समय जब भयंकर क्रोधकिये हुये राक्षस सिंहनाद करते जब श्रीरामचंद्रजीके सन्मुखको दौडे; तब प्रलयकालके समयमें सात समुद्रकी समान कोलाहलरूप बड़ाभारी शब्द हुआ ॥ १८ ॥ परन्तु श्रीरामचंद्रजीनें एक पलक मारनेंके समय इनमेंसे छै राक्षसोंको अग्निकी लपटके समान तीखे बाणोंसे मारा ॥ १९ ॥ अजेय, यज्ञशत्रु, महापार्श्व, महोदर, बड़े शरीरवाला वज्रदंष्ट्र, शुक और सारण॥ २० ॥ यह छै राक्षस श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे मर्ममें चोट खायकर अपनें २

राक्षस लोगोंमेंसे कोई २ विस्मित हुए कोई २ भीत हुए और कोई २ रणके उत्साहसे मत्त होकर अतिशय आनंदको प्राप्त हुए ॥ ९७ ॥ वानरोंकी सैनानें लंकाके दुर्गकी भीतको छाय लियाथा; जिस्से ऐसा ज्ञात हुआ कि वानर गणोंके घेरनेंसे प्राकार (दुर्गकी भीत) गिरकर पृथ्वीमें मिल गया, ऐसा दीन भावयुक्त राक्षसोंने देखा ॥ ९८ ॥ यह देखकर राक्षस लोग भयके मारे हा! हा! कार करनें लगे ॥ ९९ ॥ इस प्रकारसे राक्षसोंकी राजधानी लंकापुरीमें कठोर कुलाहल होनें लगा, तब वीर राक्षस गण प्रचंड अस्त्र शस्त्र ग्रहण करके युगान्त कालके राहुकी समान इधर उधर घूमनें लगे ॥ १०० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

राक्षसाविस्मयंजग्मुस्त्रासंजग्मुस्तथापरे ॥ अपरेसमरेहर्षाद्धर्षमेवोपपेदिरे ॥ ९७ ॥ कृत्स्नंहिकपिभिर्व्याप्तंप्राकारपरि
खांतरम् ॥ ॥ ददृशूराक्षसादीनाःप्राकारंवानरीकृतम् ॥ ९८ ॥ हाहाकारमकुर्वंतराक्षसाभयमागताः ॥ ९९ ॥ तस्मि
न्महाभीषणकेप्रवृत्तेकोलाहलेराक्षसराजयोधाः ॥ प्रगृह्यरक्षांसिमहायुधानियुगांतवाताइवसंविचेरुः ॥ १०० ॥
इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०युद्धकांडेएकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥ ७ ॥ ॥ ततस्तेराक्षसास्तत्रगत्वारावणमंदिरम् ॥
न्यवेदयन्पुरींरुद्धांरामेणसहवानरैः ॥ १ ॥ रुद्धांतुनगरींश्रुत्वाजातक्रोधोनिशाचरः ॥ विधानंद्विगुणंश्रुत्वाप्रासा
दंचाप्यरोहत ॥ २ ॥ सददर्शावृतांलंकांसशैलवनकाननाम् ॥ असंख्येयैर्हरिगणैःसर्वतोयुद्धकांक्षिभिः ॥ ३ ॥
सदृष्ट्वावानरैःसर्वैर्वसुधांकपिलीकृताम् ॥ कथंक्षपयितव्याःस्युरितिचिंतापरोभवत् ॥ ४ ॥

इसके पीछे राक्षस लोगोंने रावणके गृहमें प्रवेश करके निवेदन किया कि श्रीरामचंद्रजीनें सैनाके समेत लंकापुरीको चारों ओरसे घेर लिया ॥ १ ॥ पुरीके रोके जानेंका समाचार सुनतेही राक्षस रावण क्रोधके मारे अधीर होगया, और प्रति द्वार पहलेसे दूनी सैना नियतकर स्वयं बडे ऊंचे धवरहर पर चढ़ा ॥ २ ॥ और देखा कि शैल, वन, और कानन सहित समस्त लंका असंख्य युद्धकी अभिलाषी वानरगणोंसे घिर रही है ॥ ३ ॥ उन सब वानरोंके बडे भारी जमाओंसे मानों लंकापुरीका वर्ण पीलासा हो रहाथा इनको देखकर रावणके मनमें यह

लक्ष्मण इन दोनोंकीभी अनेक प्रशंसा करनें लगे ॥ २९ ॥ इन्द्रजीतके रणका पराक्रम सबही जानतेथे इसीलिये उसको अंगदजी करके परा
जित देखकर सबही आनंद करनें लगे ॥ ३० ॥ सुग्रीव, विभीषण, व और दूसरे वानरगणभी शत्रुको पराजित देखकर सिंहनाद करनें लगे, और
साधु साधु कहकर अंगदजीकी अनेक प्रकारसे बड़ाई करते हुए ॥ ३१ ॥ भयंकर कर्मकारी अंगदजीसे संग्रामभूमिमें पराजित होकर इन्द्रजीत
बड़ा लज्जित हुआ, और उसको अत्यन्त क्रोध हो आया ॥ ३२ ॥ तब वह दुष्ट ब्रह्माजीके वरदान पानेंसे गर्वितहो अत्यन्त क्रोधकर अन्तर्ध्यान

प्रभावंसर्वभूतानिविदुरिंद्रजितोयुधि ॥ ततस्तेनमहात्मानंदृष्ट्वातुष्टाःप्रधर्षितम् ॥ ३० ॥ ततःप्रहृष्टाःकपयःससुग्री
वविभीषणाः ॥ साधुसाध्वितिनेदुश्चदृष्ट्वाशत्रुंपराजितम् ॥ ३१ ॥ इंद्रजित्तुतदानेननिर्जितोभीमकर्मणा ॥ संयुगे
वालिपुत्रेणक्रोधंचक्रेसुदारुणम् ॥ ३२ ॥ सोंतर्धानगतःपापोरावणीरणकर्शितः ॥ ब्रह्मदत्तवरोवीरोरावणिःक्रो
धमूर्च्छितः ॥ ३३ ॥ अदृश्योनिशितान्बाणान्मुमोचाशनिवर्चसः ॥ रामंचलक्ष्मणंचैवघोरैर्नागमयैःशरैः ॥ ३४ ॥
बिभेदसमरेक्रुद्धःसर्वगात्रेषुराघवौ ॥ माययासंवृतस्तत्रमोहयन्राघवौयुधि ॥ ३५ ॥ अदृश्यःसर्वभूतानांकूटयोधी
निशाचरः ॥ बबंधशरबंधेनभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ ३६ ॥ तौतेनपुरुषव्याघ्रौक्रुद्धेनाशीविषैःशरैः ॥ सहसाभिहतौ
वीरौतदाप्रैक्षंतवानराः ॥ ३७ ॥

होगया ॥ ३३॥ और किसीको दिखाई न देता हुआ आकाशमें टिककर वज्रकी समान बाण चलानें लगा और रामचंद्रजी व लक्ष्मणजीके सबही
अंग उसनें बींध डाले ॥ ३४ ॥ उस मेघनादनें क्रोधित होकर संग्राममें श्रीरामचंद्रजीके सब अंगोंको बाणोंसे भेदा, उसनें अपनी मायासे समरमें
दोनों भ्राताओंको मोहित किया ॥ ३५ ॥ वह छलसे युद्ध करनेंवाला निशाचर इन्द्रजीत अन्तर्ध्यान रह सब प्राणियोंको न दीखकर मायाके बलसे
रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजीको बाणोंके बन्धनोंसे बांधलेता हुआ ॥ ३६ ॥ उन पुरुषसिंह श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजीको क्रोधित

राक्षसोंके नाथ रावणनें देखा कि असंख्य वानरोंकी सैना श्रीरामचंद्रजीका प्रिय कार्य सिद्ध करनेंके लिये लंकापर चढ़ी ॥ १३ ॥ इस प्रकारसे वह शिला और वृक्षोंको लेकर युद्ध करनेंवाले अरुण मुख स्वर्णकी समान प्रभावान वानरगण श्रीरामचंद्रजीके लिये जीवतक छोड़नेंको तैयार होकर सबही लंकाकी ओरको धाये ॥ १४ ॥ वह वानरगण लंका नगरीके निकट आयकर वृक्ष और पर्वतों शिखर व मुष्टि प्रहारसे लंकाके पुरीके प्राचीर (भीत) और असंख्य फाटक तोड़नें फोड़नें लगे ॥१५॥ वह वानरगण अति बड़े २ पर्वतके टुकड़ोंसे, तिनकोंसे, काठसे व धूल डाल २ कर निर्मल जलसे शोभायमान लंकाके खांयेको पूर्ण करनें लगे ॥ १६ ॥ और जो समस्त वीर कि लंकापुरीकी प्राचीरपर चढ़गये, उनमें

प्रेक्षतोराक्षसेंद्रस्यतान्यनीकानिभागशः ॥ राघवप्रियकामार्थंलंकामारुरुहुस्तदा ॥ १३ ॥ तेताम्रवक्राहेमाभारामार्थेत्यक्तजीविताः ॥ लंकामेवाभ्यवर्ततसालभूधरयोधिनः ॥१४॥ तेद्रुमैःपर्वताग्रैश्चमुष्टिभिश्चप्लवंगमाः ॥ प्राकाराग्राण्यसंख्यानिममंथुस्तोरणानिच ॥ १५ ॥ परिखान्पूरयंतश्चप्रसन्नसलिलाशयान् ॥ पांसुभिःपर्वताग्रैश्चतृणैःकाष्ठैश्चवानराः ॥ १६ ॥ ततःसहस्रयूथाश्चकोटियूथाश्चयूथपाः ॥ कोटियूथशताश्चान्येलंकामारुरुहुस्तदा ॥ १७॥ कांचनानिप्रमर्दंतस्तोरणानिप्लवंगमाः ॥ कैलासशिखराग्राणिगोपुराणिप्रमथ्यच ॥ १८ ॥ आप्लवंतःप्लवंतश्चगर्जंतश्चप्लवंगमाः ॥ लंकांतामभिधावंतिमहावारणसन्निभाः ॥ १९ ॥ जयत्युरुबलोरामोलक्ष्मणश्चमहाबलः ॥ राजाजयतिसुग्रीवोराघवेणाभिपालितः ॥ २० ॥ इत्येवंघोषयंतश्चगर्जंतश्चप्लवंगमाः ॥ अभ्यधावंतलंकायाःप्राकारंकामरूपिणः ॥ २१ ॥

कोई २ वानर सहस्र यूथका अधिपति था कोई करोड़ यूथका और कोई२शत करोड़ यूथका स्वामी था, वह वानरगण लंकामें प्रवेश करके कांचन निर्मित तोरण और कैलाश पर्वतकी समान उन तोरणोंके ऊपर बने हुए बड़े स्थानोंको तोड़नें फोड़नें लगे ॥ १७॥ १८ ॥ महा गजकी समान अगणित वानरगण ऊपरको छलांगें भरते तड़कते, व गर्जते हुए लंकाके चारों ओर घूमनें लगे ॥ १९ ॥ दोहा ॥ जयति जयति भ्राता सहित, महा वली रघुराज ॥ राघव पालित सूर्य सुत, जीतहिं सहित समाज ॥ २० ॥ इस प्रकारसे पुकारते व गर्जन करते हुए कामरूपी वानर गण लंकाके

करता हुआ॥७॥वह दोनों भाई क्रोधित मेघनादके चलाये सर्पमय बाणोंसे ऐसे विद्ध हुए कि उनके शरीरका कोई स्थानभी विना घावके न रहा॥८॥ उनके घावोंसे बहुत सारा रुधिर वहनेंके कारण वह दोनों भाई फूले हुए दो टेशूके वृक्षोंकी समान शोभायमान होनेलगे॥९॥ तिसके पीछे लाल२नेत्र किये अंजनवाले पर्वतकी समान काला रावणका बेटा मेघनाद अदृश्यही रहकर उन दोनों भ्राताओंसे यह वचन बोला॥१०॥ अरे बाण जालसे बंधे हुए दो राजकुमारो! तुम्हारी बात तौ दूर रहे हम जिस समय अदृश्य होकर युद्ध करतेहैं, उस समय स्वर्गके पति इन्द्रभी हमारा दर्शन नहीं कर सकते, या हमको प्राप्त नहीं होसकतेहैं ॥ ११॥ जो कुछभी हो अब हम बहुतही शीघ्र कंकपत्र लगे बाणोंसे भली प्रकार तुमको बींधकर यम

निरंतरशरीरौतुतावुभौरामलक्ष्मणौ ॥ क्रुद्धेनेंद्रजितावीरौपन्नगैःशरतांगतैः ॥ ८ ॥ तयोःक्षतजमार्गेणसुस्रावरुधिरं बहु ॥ तावुभौचप्रकाशेतेपुष्पिताविवकिंशुकौ ॥ ९ ॥ ततःपर्यंतरक्ताक्षोभिन्नांजनचयोपमः ॥ रावणिर्भ्रातरौवाक्यमंतर्धानगतोब्रवीत् ॥ १०॥ युध्यमानमनालक्ष्यंशक्रोपित्रिदशेश्वरः ॥ द्रष्टुमासादितुंवापिनशक्तःकिंपुनर्युवाम् ॥ ११ ॥ प्रापिताविषुजालेनराघवौकंकपत्रिणा ॥ एषरोषपरीतात्मानयामियमसादनम् ॥ १२ ॥ एवमुक्त्वातुधर्मज्ञौभ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ निर्बिभेदशितैर्बाणैःप्रजहर्षननादच ॥ १३ ॥ भिन्नांजनचयश्यामोविस्फार्यविपुलंधनुः ॥ भूयएव शरान्घोरान्विससर्जमहामृधे ॥१४॥ ततोमर्मसुमर्मज्ञोमज्जयन्निशिताञ्छरान् ॥ रामलक्ष्मणयोर्वीरोननादचमुहुर्मुहुः ॥ १५ ॥ बद्धौतुशरबंधनतावुभौरणमूर्धनि ॥ निमेषांतरमात्रेणनशेकतुरवेक्षितुम् ॥ १६ ॥

राजके गृहमें भेजे देतेहैं ॥ १२ ॥ धर्मात्मा श्रीरामचंद्र और लक्ष्मणजी दोनों भाइयोंसे ऐसा कह मेघनाद अत्यन्त तीक्ष्ण बाणोंसे उनको घायल कर वारंवार हर्षसे सिंहनाद करनें लगा ॥ १३ ॥ उस घोर रूप संग्राममें काले अंजनकी समान श्याम रंगवाला मेघनाद अपने धनुषपर टंकार दे वारंवार अत्यन्त घोर बाणजाल वर्षानें लगा ॥ १४ ॥ इसके पीछे वह मेघनाद धर्मात्मा श्रीरामचंद्र और लक्ष्मणजीके मर्म स्थानमें तीखे बाण मारकर हर्ष सहित वारंवार सिंहनाद करता हुआ ॥ १५ ॥ उस समय वह दोनों वीर रणभूमिमें बाणोंके बंधनसे बंधकर एक पल

मंत्रियोंके साथ महा बलवान श्रीरामचंद्रजीके निकट पहुंचे ॥ ३० ॥ गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, और गंधमादन यह कई एक वानरगण समस्त वानर सैनाकी रक्षा करनेंके लिये चारों ओर घूमनें लगे ॥ ३१ ॥ निशाचर पति रावण यह समस्त वृत्तान्त जानकर अत्यन्तही क्रोधके वश हुआ, और शीघ्रही अपनी सैनाको युद्ध करनेंके अर्थ बाहर निकलनेकी आज्ञा देता हुआ ॥ ३२ ॥ राक्षस लोगोंनेंभी रावणके मुखसे यह वचन सुनकर भेरी बजाकर उसके शब्दके साथ इस आज्ञाका सब कहीं प्रचार कर दिया ॥ ३३ ॥ तिसके पीछे चारों ओरसे राक्षस लोगोंकी सुवर्णकोणाभिहत सोनेंके दंडे से ताडित और चंद्रमाकी समान उजले मुखवाले ढकनोंसे युक्त भेरियें

गजोगवाक्षोगवयःशरभोगंधमादनः ॥ समंतात्परिधावंतोररक्षुर्हरिवाहिनीम् ॥३१॥ ततःकोपपरीतात्मारावणोराक्षसेश्वरः ॥ निर्याणंसर्वसैन्यानांद्रुतमाज्ञापयत्तदा ॥ ३२ ॥ एतच्छ्रुत्वातदावाक्यंरावणस्यमुखेरितम् ॥ सहसाभीमनिर्घोषमुद्घुष्टरजनीचरैः ॥३३॥ ततःप्रबोधिताभेर्यश्चंद्रपांडुरपुष्कराः ॥ हेमकोणैरभिहताराक्षसानांसमंततः ॥ ३४ ॥ विनेदुश्चमहाघोषाःशंखाःशतसहस्रशः ॥ राक्षसानांसुघोराणांमुखमारुतपूरिताः ॥३५॥ तेबभुःशुकनीलांगाःसशंखारजनीचराः ॥ विद्युन्मंडलसन्नद्धाःसबलाकाइवांबुदाः ॥ ३६ ॥ निष्पतंतिततःसैन्याहृष्टारावणचोदिताः ॥ समयेपूर्यमाणस्यवेगाइवमहोदधेः ॥ ३७ ॥ ततोवानरसैन्येनमुक्तोनादःसमंततः ॥ मलयःपूरितोयेनससानुप्रस्थकंदरः ॥ ३८ ॥

बजनें लगीं ॥ ३४ ॥ घोर रूपवाले राक्षस लोगोंकी मुख पवनसे परिपूर्ण हो घोर शब्दसे युक्त सैकडों हजारों शंख एक समयमेंही बजनें लगे ॥ ३५ ॥ मेघमाल्यके साथ बिजलीके मिलनें और बगलोकी लंगारके सम्मित होंनेंसे जिस प्रकार शोभा होतीहै वैसेही शुकपक्षीकी समान नीले देहवाले राक्षस लोगोंके मुखमें लगे हुए शंख शोभायमान हुए ॥ ३६ ॥ इसके पीछे राक्षस लोग रावणकी आज्ञा पाय प्रलयकालके समय उछलते हुए समुद्रकी तरंगोंकी समान महावेगसे बाहर निकल कर चले ॥ ३७ ॥ इन राक्षसलोगोंको आते देखकर वानरोंकी सैना चारों ओरसे सिंहनाद करनें लगी. कि जिस्से बहुत दूर पर टिका हुआ मलयपर्वतभी शृङ्ग शिखर और कन्दराओंके साथ गूंजनें लगा ॥ ३८ ॥

भूषित और मुष्टिस्थानोंसे अलग शरासनको त्यागकर श्रीरामचंद्रजी वीरोचित सेजपर शयन करते हुए; उस समय उनमें कवच बख्तर धारण करनेंकीभी कुछ सामर्थ्य न रही ॥ २४ ॥ पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीको बाणोंकी सेजपर सोया हुआ देखकर लक्ष्मणजी जीवनकी आशा त्याग करते हुए॥२५॥ और उन कमलदललोचन रणतोषण शरण देनेंवाले अपने भ्राताको पृथ्वीमें गिरा हुआ देखकर विलाप करनें लगे ॥२६॥ वानरगणभी श्रीरामचंद्रजीकी ऐसी अवस्था देखकर अत्यन्त सन्तापित हुए और शोकके मारे नेत्रोंमें आंसू भरकर बड़े शब्दसे रोनें लगे ॥ २७ ॥ हनुमान इत्यादि मुखियार वानर लोग राम लक्ष्मण दोनों भाइयोंको नाग फाँससे बँधा हुआ और वीरोचित सेजपर शयन किये हुए देखकर चारों ओरसे घेर

बाणपातांतरेरामंपातितंपुरुषर्षभम् ॥ सतत्रलक्ष्मणोदृष्ट्वानिराशोजीवितेऽभवत् ॥ २५ ॥ रामंकमलपत्राक्षंशरण्यं रणतोषिणम् ॥ शुशोचभ्रातरंदृष्ट्वापतितंधरणीतले ॥ २६ ॥ हरयश्चापितंदृष्ट्वासंतापंपरमंगताः ॥ शोकार्ताश्चुक्रुशुर्घोरमश्रुपूरितलोचनाः ॥ २७ ॥ बद्धौतुतौवीरशयेशयानौतेवानराःसंपरिवार्यतस्थुः ॥ समागतावायुसुतप्रमुख्याविषादमार्ताःपरमंचजग्मुः ॥ २८ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा० आ०युद्धकांडेपंचचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४५ ॥ ७॥ ततोद्यांपृथिवींचैववीक्षमाणावनौकसः ॥ ददृशुःसंततैबाणैर्भ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ १ ॥ वृष्ट्वेवोपरतेदेवेकृतकर्मणिराक्षसे ॥ आजगामाथतंदेशंससुग्रीवोविभीषणः ॥ २ ॥ नीलश्चद्विविदोमैंदःसुषेणःकुमुदोंगदः ॥ तूर्णंहनुमतासार्धमन्वशोचंतराघवौ ॥ ३ ॥

कर अत्यन्त विलाप करनें लगे ॥ २८ ॥ इ० श्रीम०वा०आ०यु० पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥ इसके पीछे वानर लोगोंनें भयके मारे आकाश और पृथ्वीको खोज करके देखा कि राम लक्ष्मण दोनों भाई नागफाँससे बँधेहुए पड़े हैं ॥१॥ तिसके पीछे इन्द्र जिस प्रकार जलधारा वर्षाय कर थँम जाते हैं, वैसेही इन्द्रजीत इन दोनों वीरोंको बाणजालसे घायल और बाँध करके थमगया,तब सुग्रीव विभीषणके सहित उस स्थानमें आये ॥२॥ तिसके पीछे नील, द्विविद, मैन्द, सुषेण, कुमुद, और अंगद हनुमानजीके साथ वहांपर आय श्रीरामचंद्रजीके निमित्त शोक करनें लगे ॥ ३ ॥

भीत पर चढ़े हुए राक्षसोंको नीचे पृथ्वीमें गिरानें लगे ॥ ४६ ॥ उस समय वानर और राक्षस लोगोंका ऐसा भारी घोर संग्राम हुआकि दोनों ओर वाले वीरोंके शरीरसे निकले हुए मांस और रुधिरसे रण भूमि कीचड़से परिपूर्ण होगई; और वह समर ऐसा हुआ; कि जैसा पहले कभी नहीं हुआथा ॥ ४७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्ध कांडे द्विचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४२ ॥ इस प्रकारसे महाबलवान वानर और राक्षसगण जब युद्ध करनें लगे, तब उनमें परस्पर जय लाभ करनेंकी कामनासे अत्यन्त दारुण क्रोध हुआ ॥ १ ॥ वह समस्त वीर राक्षसगण सुवर्णके आभूषण पहरे, घोड़े व अग्निकी शिखाके समान आकारवाले चमकते दमकते हाथियोंपर

ससंप्रहारस्तुमुलोमांसशोणितकर्दमः ॥ रक्षसांवानराणांचसंबभूवाद्भुतोपमः ॥ ४७ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेद्विचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४२ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ॥ युध्यतांतुततस्तेषांवानराणांमहात्मनाम् ॥ रक्षसांसंबभूवाथबलरोषःसुदारुणः ॥ १ ॥ तेहयैःकांचनापीडैर्गजैश्चाग्निशिखोपमैः ॥ रथैश्चादित्यसंकाशैःकवचैश्चमनोरमैः ॥ २ ॥ निर्ययूराक्षसावीरानादयंतोदिशोदश ॥ राक्षसाभीमकर्माणोरावणस्यजयैषिणः ॥ ३ ॥ वानराणामपिचमूर्बृहतीजयमिच्छताम् ॥ अभ्यधावततांसेनांरक्षसांघोरकर्मणाम् ॥ ४ ॥ एतस्मिन्नंततेरेषामन्योन्यमभिधावताम् ॥ रक्षसांवानराणांचद्वंद्वयुद्धमवर्तत ॥ ५ ॥ अंगदेनेंद्रजित्सार्धंवालिपुत्रेणराक्षसः ॥ अयुध्यतमहातेजास्त्र्यंबकेणयथांधकः ॥ ६ ॥ प्रजंघेनचसंपातिर्नित्यंदुर्धर्षणोरणे ॥ जंबुमालिनमारब्धोहनुमानपिवानरः ॥ ७ ॥

और सूर्यकी समान प्रभावान रथोंपर चढ़ मनोहर कवच बख्तर धारण कर ॥ २ ॥ दशों दिशाओंमें निहारते भयंकर कर्म करनेंवाले राक्षस रावणके जयकी कामना किये संग्राम करनेंको आये ॥ ३ ॥ इन राक्षसोंकी सैनाको आता हुआ देखकर जयकी इच्छा किये बड़ी भारी वानर सैनाभी राक्षस लोगोंकी सैनाके सन्मुख धाई ॥ ४ ॥ जब इस प्रकार वानरोंकी सैना राक्षसोंपर धाई, व राक्षसी सैना वानरों पर धाई तब राक्षस वीर वानरगणोंका द्वंद्व युद्ध होनें लगा ॥ ५ ॥ जिस प्रकार अन्धकासुरके साथ युद्ध करते हुए महादेवजीका संग्राम हुआथा, वैसेही महा तेजस्वी वालिकुमार अंगदजीके साथ इन्द्रजीतका युद्ध होनें लगा ॥ ६ ॥ रणमें अति अजेय सम्पाती नाम वानर राक्षस

सब राक्षसोंको सन्तोष दिलाता कहनें लगा ॥ ११ ॥ कि जो सब जगत्में बड़े बलवान विख्यात हैं. जिनके हाथसे खर दूषण मारे गये, उन्हीं राम लक्ष्मण दोनों भाइयोंका आज हमनें अपनें बाणोंसे संहार कर डाला ॥ १२ ॥ यदि सुर असुर, और समस्त ऋषिलोगभी यहां आन कर इकट्ठे हो इनको नागफाँससे छुटानेंका यत्न करैं, परन्तु किसी प्रकारसेभी यह नागफाँस टूटनेंवाली नहीं ॥ १३ ॥ जिनके लिये हमारे पिता भय और शोकसे अत्यन्तही व्याकुल थे, जिनके कारण वह हमारे पिता सेजपर विना अंगके लगायेही तीन पहर रात्रि बितादेते हैं ॥ १४ ॥ जिनके लिये लंकाके रहनेंवाले समस्तही लोग वर्षाके समयवाली नदीकी समान व्याकुलथे,उस अनर्थके मूलकोही आज हमनें उखाड़ डाला॥१५॥

दूषणस्यचहंतारौखरस्यचमहाबलौ ॥ सादितौमामकैर्बाणैर्भ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ १२ ॥ नेमौमोक्षयितुंशक्यावेतस्मा दिषुबंधनात् ॥ सर्वैरपिसमागम्यसर्षिसंघैःसुरासुरैः ॥ १३ ॥यत्कृतेचिंतयानस्यशोकार्तस्यपितुर्मम ॥ अस्पृष्ट्वाश यनंगात्रैस्त्रियामायातिशर्वरी ॥ १४ ॥ कृत्स्नेयंयत्कृतेलंकानदीवर्षास्विवाकुला ॥ सोयंमूलहरोनर्थःसर्वेषांशमितोमया ॥ १५ ॥ रामस्यलक्ष्मणस्येवसर्वेषांचवनौकसाम् ॥ विक्रमानिष्फलाःसर्वेयथाशरदितोयदाः ॥ १६॥ एवमुक्त्वातुतान्स र्वान्राक्षसान्परिपश्यतः ॥ यूथपानपितान्सर्वांस्ताडयत्सचरावणिः ॥ १७ ॥ नीलंनवभिराहत्यमैंदंसद्विविदंतथा ॥ त्रि भिस्त्रिभिरमित्रघ्नस्ततापपरमेषुभिः ॥ १८ ॥ जांबवंतंमहेष्वासोविद्धाबाणेनवक्षसि ॥ हनूमतोवेगवतोविससर्जशरा न्दश ॥ १९ ॥ गवाक्षंशरभंचैवतावप्यमितविक्रमौ ॥ द्वाभ्यांद्वाभ्यांमहावेगोविव्याधयुधिरावणिः ॥ २० ॥

राक्षस लोगोंसे शरदकालके मेघ जिस प्रकार निष्फल होते हैं; वैसेही राम-लक्ष्मण व और समस्त वानरोंका विक्रम निष्फल हो गया ॥ १६ ॥ यह वचन कहकर उनके सन्मुखही वानरोंके यूथनाथोंकोभी ताड़ना करनें लगा ॥ १७ ॥ उस अमित्र घाती अति धनुर्द्धर मेघनादनें वीर नील पर नल और मैन्द व द्विविद वानरपर तीन२ अति तीखे वाण चलायकर उनको वींध डाला ॥ १८ ॥ तिसके पीछे जाम्बवानकी छातीमें एक वाण मारकर उसनें हनुमानजीके ऊपर दश वाण चलाये ॥ १९ ॥ गवाक्ष और शरभके ऊपर महा पराक्रमी वेगवान मेघनादनें दो दो वाण चलाये और

राक्षस और वानर गणोंकी पर्वताकार देहसे प्रहारोंके लगनेंसे जो रक्तकी धार निकलतीथी, वही नदीकी समान और उनके शरीरके रोमसमूहथे वही शैवाल की समान जान पड़नें लगे ॥ १७ ॥ वज्रधारी इन्द्रजी जिसप्रकार वज्र चलातेहैं, वैसेही इन्द्रजीत मेघनादनें क्रोधमें मूर्छित होकर शत्रुओंकी सैनाको विदारण करनेंवाले अंगदजीको ताककर एक गदा इनके ऊपर चलाई ॥ १८ ॥ वानरश्रेष्ठ वेगवान अंगदजीनें मेघनादकी चलाई गदा पकड़ करके उसके अश्व, सारथी और सुवर्णसे चित्रित रथको कीर्चेरकर डाला ॥ १९ ॥ प्रजङ्घ राक्षसनें तीन बाणद्वारा संपाति नाम वानर पर प्रहार किया, तदनन्तर संपातिनें एक अश्वकर्णके वृक्षको उखाड़कर प्रजङ्घके मस्तकपर चलाया ॥ २० ॥ रथोंमें बैठेहुए महाबलवान

हरिराक्षसदेहेभ्यःप्रसृताःकेशशाद्वलाः॥शरीरसंघाटवहाःप्रसुस्रुःशोणितापगाः ॥१७॥ आजघानेंद्रजित्क्रुद्धोवज्रेणेवशतक्रतुः ॥ अंगदंगदयावीरंशत्रुसैन्यविदारणम् ॥ १८॥ तस्यकांचनचित्रांगंरथंसाश्वंससारथिम् ॥ जघानगदयाश्रीमानंगदोवेगवान्हरिः ॥ १९ ॥ संपातिस्तुप्रजंघेनत्रिभिर्बाणैःसमाहतः ॥ निजघानाश्वकर्णेनप्रजंघंरणमूर्धनि ॥ २० ॥ जंबुमालीरथस्थस्तुरथशक्त्यामहाबलः ॥ बिभेदसमरेक्रुद्धोहनुमंतंस्तनांतरे ॥ २१ ॥ तस्यतंरथमास्थायहनूमान्मारुतात्मजः ॥ प्रममाथतलेनाशुसहतेनैवरक्षसा ॥ २२ ॥ नदन्प्रतपनोघोरोनलंसोभ्यनुधावत ॥ नलःप्रतपनस्याशुपातयामासचक्षुषी ॥ २३ ॥ भिन्नगात्रःशरैस्तीक्ष्णैःक्षिप्रहस्तेनरक्षसा ॥ ग्रसंतमिवसैन्यानिप्रघसंवानराधिपः ॥ २४ ॥ सुग्रीवःसप्तपर्णेननिजघानजवेनच ॥ प्रपीड्यशरवर्षेणराक्षसंभीमदर्शनम् ॥ २५ ॥

जम्बुमाली नाम राक्षसनें क्रोधमें भरकर हनुमानजीके बीच छातीमें एक शक्ति मारी ॥ २१ ॥ शक्ति लगनेंपर हनुमानजीनें अति शीघ्रताके साथ उसके रथपर कूद उसमें एक लात मारी कि जिस्से वह रथ चूर्ण होगया; और उसके सहित उस राक्षसकाभी नाश कर दिया ॥ २२ ॥ भयंकराकार प्रतपन नामक राक्षस शब्द करता हुआ नल नाम वानरकी ओर दौड़ा, वीर नलनेंभी विक्रम प्रकाश करके उस राक्षसकी दोनों आंखें निकालली ॥ २३ ॥ बाण चलानेंमें चतुर उस राक्षसके बाण चलानेंसे यद्यपि नलका शरीर छिन्न भिन्न होरहाथा, परन्तु तौभी उन्होंनें उसकी आंखें निकालली, इधर प्रघस नामक राक्षसनें समस्त सैनाको निकल जाना विचारा परन्तु वानरोंके राजा ॥ २४ ॥ सुग्रीवजीनें महा

उस समय बड़े चतुर विभीषणजी नेत्रोंमें आंसूभरे हुए दीनभावसे युक्त और क्रोधाकुल नेत्र वानरराज सुग्रीवजीसे बोले कि हे सुग्रीव! त्रासको
छोड़ो और रोनेंकाभी कुछ काम नहीं ॥ ३० ॥ युद्धका फल इसी प्रकारसे हुआ करताहै, कारण कि कभी किसीको सदा जय नहीं प्राप्त हुआ
करतीहै, हे वीर! यदि हम लोगोंका भाग्य प्रसन्न होजायगा ॥ ३१ ॥ तौ महाबलवान महात्मा इन दोनों भाइयोंका मोह बहुतही शीघ्र छुट
जायगा; हेवानरपति! तुम निश्चय जानना कि जो लोग सत्य और धर्मके अनुरागी होतेहैं; उन लोगोंको कभी मृत्यु उपस्थित नहीं होती, इसलिये
तुम अनाथकी समान शोक न करके अपनेको और हमको सावधान करो ॥३२॥ विभीषणजीनें यह कहकर प्रथम अपने हाथमें लिये हुए जलसे

तमुवाचपरित्रस्तंवानरेंद्रंविभीषणः ॥ सबाष्पवदनंदीनंक्रोधव्याकुललोचनम् ॥ अलंत्रासेनसुग्रीवबाष्पवेगोनिगृह्य
ताम् ॥ ३० ॥ एवंप्रायाणियुद्धानिविजयोनास्तिनैष्ठिकः ॥ सभाग्यशेषतास्माकंयदिवीरभविष्यति ॥ ३१ ॥ मो
हमेतौप्रहास्येतेमहात्मानौमहाबलौ ॥ पर्यवस्थापयात्मानमनाथंमांचवानर ॥ सत्यधर्माभिरक्तानांनास्तिमृत्युकृतं
भयम् ॥ ३२ ॥ एवमुक्त्वाततस्तस्यजलक्लिन्नेनपाणिना ॥ सुग्रीवस्यशुभेनेत्रेप्रममार्जविभीषणः ॥ ३३ ॥ ततःस
लिलमादायविद्ययापरिजप्यच ॥ सुग्रीवनेत्रेधर्मात्माप्रममार्जविभीषणः ॥ ३४ ॥ विमृज्यवदनंतस्यकपिराजस्यधी
मतः ॥ अब्रवीत्कालसंप्राप्तमसंभ्रांतमिदंवचः ॥३५॥ नकालःकपिराजेंद्रवैक्लव्यमवलंबितुम् ॥ अतिस्नेहोपिकालेऽस्मि
न्मरणायोपकल्पते ॥३६॥ तस्मादुत्सृज्यवैक्लव्यंसर्वकार्यविनाशनम् ॥ हितंरामपुरागाणांसैन्यानामनुचिंतय ॥३७॥

सुग्रीवजीके दोनों नेत्र धोय दिये ॥३३॥ तिसके पीछे फिर जल हाथमें लेकर उसको शोकनिवारण विद्यासे अभिमंत्रितकर उस्से फिर सुग्रीवके दोनोंनेत्र
धोदिये ॥३४॥ तब बुद्धिमान् वानरराज सुग्रीवजीके नेत्र जलसे पोंछ समयके अनुसार व्याकुलताके निवारण करनेंवाले वचन विभीषणजी बोले
॥३५॥ हेसखे! यह व्याकुल होनेंके योग्य समय नहींहै जान लो कि ऐसे कठिन समयमें स्नेहभी मृत्युका कारण होजाताहै ॥३६॥ इस कारण इन सब
कार्योंकी विनाश करनेंवाली विकलताको छोड़कर जिस्से श्रीरामचंद्रजीकी अनुगामी सेनाका मंगल होवे ऐसा तुमको करना उचितहै ॥ ३७ ॥

वज्रकी समान बाणोंसे वृक्ष ग्रहण करके युद्ध करते हुए वानरोंमें श्रेष्ठ द्विविदको विद्ध किया ॥ ३३ ॥ परन्तु बाणोंके लगनेंसे द्विविदको अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हुआ और इन्होंनें एक शालका वृक्ष उखाड़ कर अश्व और रथके सहित राक्षसका संहार किया ॥ ३४ ॥ रथमें बैठा हुआ राक्षस विद्युन्माली स्वर्णभूषित अनेक बाणोंको चलाय सुषेणजीको पीड़ित करके वारंवार सिंहनाद करनेंलगा ॥ ३५ ॥ तब वानरोंमें श्रेष्ठ सुषेण जीनें उसको रथमें बैठा हुआ देखकर एक पर्वताकार शिला चलाय उसके रथका चूर्ण करदिया ॥ ३६ ॥ तब निशाचर विद्युन्माली अत्यन्त शीघ्र चतुरता सहित रथपरसे उतरकर अजेय गदा लेकर पृथ्वीमें खड़ा होगया ॥ ३७ ॥ तब वानर सुषेण, राक्षसको खड़ा हुआ देखकर क्रोधि

सशरैरभिविद्धांगोद्विविदःक्रोधमूर्छितः ॥ सालेनसरथंसाश्वंनिजघानाशनिप्रभम् ॥ ३४ ॥ विद्युन्मालीरथस्थस्तुशरैः कांचनभूषणैः ॥ सुषेणंताडयामासननादचमुहुर्मुहुः ॥ ३५ ॥ तंरथस्थमथोदृष्ट्वासुषेणोवानरोत्तमः ॥ गिरिशृंगेणमह तारथमाशुन्यपातयत् ॥ ३६ ॥ लाघवेनतुसंयुक्तोविद्युन्मालीनिशाचरः ॥ अपक्रम्यरथात्तूर्णंगदापाणिःक्षितौस्थि तः ॥ ३७ ॥ ततःक्रोधसमाविष्टःसुषेणोहरिपुंगवः ॥ शिलांसुमहतींगृह्यनिशाचरमभिद्रवत् ॥ ३८ ॥ तमापतंतं गदयाविद्युन्मालीनिशाचरः ॥ वक्षस्यभिजघानाशुसुषेणंहरिपुंगवम् ॥ ३९ ॥ गदाप्रहारंतंघोरमचिंत्यप्लवगोत्तमः ॥ तांतूष्णींपातयामासतस्योरसिमहामृधे ॥ ४० ॥ शिलाप्रहाराभिहतोविद्युन्मालीनिशाचरः ॥ निष्पिष्टहृदयोभूमौ गतासुर्निपपातह ॥ ४१ ॥ एवंतैर्वानरैःशूरैःशूरास्तेरजनीचराः ॥ द्वंद्वेविमथितास्तत्रदैत्याइवदिवौकसः ॥ ४२ ॥

त हो शिला ग्रहण करके इसकी ओरको दौड़े ॥ ३८ ॥ निशाचर विद्युन्माली इनको शिला ग्रहण किये आता हुआ देखकर शीघ्रतासे वानर श्रेष्ठ सुषेणजीकी छातीमें गदाका प्रहार करता हुआ ॥ ३९ ॥ वानरश्रेष्ठ सुषेणजीनें उस गदाको कुछभी न समझ कर उस राक्षस विद्युन्मालीकी छातीमें प्रथमही ग्रहणकीहुई अपनी शिलाको चलाया ॥ ४० ॥ निशाचर विद्युन्माली उस शिलाके प्रहार लगनेंसे पीड़ित और चूर्णित हृदय होकर पृथ्वी पर गिरा कि जिस्से उसके प्राणतक निकल गये ॥ ४१ ॥ इस प्रकारसे उस द्वन्द्व युद्धमें सुर गणसे असुर गणोंकी समान शूर निशा

बैठा हुआ रावण अपने दोनों शत्रुओंका मारा जाना सुनकर खड़ाहो हर्षित अंतःकरणसे पुत्रको हृदयसे लगाताहुआ ॥ ४६ ॥ तब रावणनें अति प्रसन्नता सहित पुत्रका मस्तक सूंघकर पुत्रसे युद्धका समस्त वृत्तान्त पूछा, पुत्र इन्द्रजीतनेंभी सब चरित्र पितासे निवेदन किया ॥ ४७ ॥ जिस प्रकारसे राम और लक्ष्मणको संग्राममें नागपाशसे बांधकर चेष्टाहीन और प्रभाहीन किया,वह सब वृत्तान्त रावणसे इन्द्रजीतनें कहा ॥ ४८ ॥ महाबलवान महारथ इन्द्रजीतके मुखसे संग्राममें जीतनेका समाचार पाय अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ, और उस समय उसके अंतःकरणसें श्रीरामचंद्रजीका भय दूर होगया, तब वह हर्षित वचनोंसे पुत्रकी बड़ाई करनेंलगा ॥ ४९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्ध

उपाघ्रायचतंमूर्ध्निपप्रच्छप्रीतमानसः ॥ पृच्छतेचयथावृत्तंपित्रेतस्मैन्यवेदयत् ॥ ४७॥ यथातौशरबंधेननिश्चेष्टौनिष्प्रभौकृतौ ॥४८॥ सहर्षवेगानुगतांतरात्माश्रुत्वागिरंतस्यमहारथस्य ॥ जहौत्वरंदाशरथेःसमुत्थंप्रहृष्टवाचाभिननंदपुत्रम् ॥ ४९ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेषट्चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४६ ॥ छ ॥ तस्मिन्प्रविष्टेलंकायांकृतार्थेरावणात्मजे ॥ राघवंपरिवार्याथररक्षुर्वानरर्षभाः ॥ १ ॥ हनुमानंगदोनीलःसुषेणःकुमुदोनलः ॥ गजोगवाक्षःपनसःसानुप्रस्थोमहाहरिः ॥ २ ॥ जांबवानृषभःसुंदोरंभःशतबलिःपृथुः ॥ व्यूढानीकाश्चयत्ताश्चद्रुमानादायसर्वतः ॥ ३ ॥ वीक्षमाणादिशःसर्वास्तिर्यगूर्ध्वंचवानराः ॥ तृणेष्वपिचचेष्टत्सुराक्षसाइतिमेनिरे ॥ ४ ॥

काण्डे षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥ ॥ छ ॥ तिसके पीछे जब रावणका पुत्र मेघनाद रणविजयी होकर लंकाको चलागया, तब वानरश्रेष्ठगण श्रीरामचंद्रजीको चारों ओरसे घेरकर उनकी रक्षा करनें लगे ॥ १ ॥ हनुमान, अंगद, नील, सुषेण, कुमुद, नल, गज, गवाक्ष, पनस, महावानर सानुप्रस्थ ॥ २ ॥ जाम्बवान, ऋषभ, सुन्द, रम्भ, शतबलि और पृथु इत्यादि यह सबही वानर यूथपगण वृक्षोंको हाथमें ग्रहणकर सैनाका व्यूह बनाय श्रीरामचंद्रजीकी रक्षा करनें लगे ॥ ३ ॥ उस कालमें रक्षामें नियुक्त हुए वानर गण इस प्रकारकी

उसकाल उस सैनाके बीचमें मारडालो फाड़डालो भागता क्यों है लौट करआ इस प्रकारसे कठोर शब्द सुनाई आने लगे ॥ ४ ॥ उस अं
धकारमें काले वर्णवाले राक्षस लोग सुवर्णका बना कवच धारण करनेसे प्रदीप्त औषधिवन भूषित पर्वतराजोंकी समान जान पड़नें लगे ॥ ५ ॥
उस अपार अन्धकारमें क्रोधसे भरे हुए राक्षस लोग वानरोंकी सैनामें अति वेगसे प्रवेश करकै उनको भक्षण करनें लगे ॥ ६ ॥ भयंकर क्रोध
किये हुए वानरगणभी छलांग मार २ कर अपने तीक्ष्ण दांतोंसे काट कर राक्षस लोगोंके सुवर्णसे मंडित घोड़े और सर्पाकार ध्वजाओंके डंडे
खंड २ करने लगे ॥ ७ ॥ उस संग्रामभूमिमें बलवान वानरगणोंनेंभी राक्षसोंकी सैनाको खल बलाय दिया, हाथी और हाथियोंके सवार

हतदारयचैहीतिकथंविद्रवसीतिच ॥ एवंसुतुमुलःशब्दस्तस्मिन्सैन्येतुशुश्रुवे ॥ ४ ॥ कालाःकांचनसन्नाहास्तस्मिंस्त
मसिराक्षसाः ॥ संप्रदृश्यंतशैलेंद्रादीप्तौषधिवनाइव ॥ ५ ॥ तस्मिंस्तमसिदुष्पारेराक्षसाःक्रोधमूर्च्छिताः ॥ परिपेतुर्म
हावेगाभक्षयंतःप्लवंगमान् ॥ ६ ॥ तेहयान्कांचनापीडान्ध्वजांश्चाशीविषोपमान् ॥ आप्लुत्यदशनैस्तीक्ष्णैर्भीमको
पाव्यदारयन् ॥ ७ ॥ वानराबलिनोयुद्धेऽक्षोभयन्राक्षसींचमूम् ॥ कुंजरान्कुंजरारोहान्पताकाध्वजिनोरथान् ॥ ८ ॥
चकर्षुश्चददंशुश्चदशनैःक्रोधमूर्च्छिताः ॥ लक्ष्मणश्चापिरामश्चशरैराशीविषोपमैः ॥ ९ ॥ दृश्यादृश्यानिरक्षांसिप्रवरा
णिनिजघ्नतुः ॥ तुरंगखुरविध्वस्तंरथनेमिसमुत्थितम् ॥ १० ॥ रुरोधकर्णनेत्राणियुध्यतांधरणीरजः ॥ वर्तमानेतथाघो
रेसंग्रामेलोमहर्षणे ॥ रुधिरौघामहाघोरानद्यस्तत्रविसुस्रुवुः ॥ ११ ॥ ततोभेरीमृदंगानांपणवानांचनिःस्वनः ॥ शं
खनेमिस्वनोन्मिश्रःसंबभूवाद्भुतोपमः ॥ १२ ॥

पताका और ध्वजा शोभित रथ ॥ ८ ॥ सबको यह वानरगण क्रोधमें मूर्छित होकर खेंचनें व दांतोंसे काटनें लगे । लक्ष्मण और श्रीरामचं
द्रजीभी विषकी समान बाणधारा वर्षायकर ॥ ९ ॥ दीखते अन दीखते बडे २ राक्षसोंका संहार करनें लगे । उस कालमें घोड़ोंके खुरोंसे
रथके पहियोंसे उठी हुई धूरिने ॥ १० ॥ युद्ध करती हुई सैनाके कान और नेत्र पृथ्वीपरसे उड़कर मूंदलिये, इस प्रकारसे कठोर और रोमहर्षण
कारी संग्राम आरंभ हुआ; तब उस संग्राममें घोर रुधिरकी नदी वहनें लगी ॥ ११ ॥ तिसके पीछे शंखका शब्द, रथचक्रकी खर २ ध्वनि भेरी

और पतिके शोकसे दुर्बल हुई सीताको उन राक्षसियोंनें अपनें हाथसे पकड़कर पुष्पकविमानपर चढ़ाया ॥ १३ ॥ रावण
त्रिजटाके साथ सीताजीको पुष्पक विमानमें सवार कराकर ध्वजा पताकोंओंसे शोभायमान लंकापुरीमें घुमानें लगा ॥ १४ ॥ उस राक्षसपति
रावणनें घुमानेंके कालमें चारों ओर यह पुकारवाया कि "संग्राममभूमिमें इन्द्रजीतके हाथसे राम लक्ष्मण दोनों भाई मारे गये" ॥ १५ ॥
इस पीछे जनककुमारी सीताजी त्रिजटाके सहित रणभूमिमें जाय कर देखती हुई कि लगभग समस्त वानर सैनाही मरी पड़ीहै ॥ १६ ॥ मांसके
खानेंवाले राक्षस लोग हर्षित अंतःकरणसे चारों ओर घूमरहेहैं; और वानर गण दुःखित मनसे श्रीराम लक्ष्मणजीके निकट खड़े हुएहैं ॥ १७ ॥

तामादायतुराक्षस्योभर्तृशोकपराजिताम् ॥ सीतामारोपयामासुर्विमानंपुष्पकंतदा ॥ १३ ॥ ततःपुष्पकमारोप्यसी
तांत्रिजटयासह ॥ रावणश्चारयामासपताकाध्वजमालिनीम् ॥ १४ ॥ प्राघोषयतहृष्टश्चलंकायांराक्षसेश्वरः ॥ राघ
वोलक्ष्मणश्चैवहताविंद्रजितारणे ॥ १५ ॥ विमानेनापिगत्वातुसीतात्रिजटयासह ॥ ददर्शवानराणांतुसर्वंसैन्यंनि
पातितम् ॥ १६ ॥ प्रहृष्टमनसश्चापिददर्शपिशिताशनान् ॥ वानरांश्चातिदुःखार्तान्रामलक्ष्मणपार्श्वतः ॥ १७ ॥ ततः
सीताददर्शोभौशयानौशरतल्पगौ ॥ लक्ष्मणंचैवरामंचविसंज्ञौशरपीडितौ ॥ १८ ॥ विध्वस्तकवचौवीरौविप्रविद्धश
रासनौ ॥ सायकैश्छिन्नसर्वांगौशरस्तंबमयौक्षितौ ॥ १९ ॥ तौदृष्ट्वाभ्रातरौतत्रप्रवीरौपुरुषर्षभौ ॥ शयानौपुंडरी
काक्षौकुमाराविवपावकी ॥२०॥ शरतल्पगतौवीरौतथाभूतौनरर्षभौ ॥ दुःखार्ताकरुणंसीतासुभृशंविललापह॥ २१॥

तिसके पीछे जनककुमारी जानकीजीनें देखा कि राम और लक्ष्मणजी बाणोंसे पीड़ित होंनेंके कारण चेतनारहितहो बाणोंकी शेजपर पड़े
हुए हैं ॥ १८ ॥ वह दोवीरश्रेष्ठ दोनों भाई राम और लक्ष्मणजी कवचहीन धनुष त्याग किये सब अंगोंमें बाण विंधवाये पृथ्वीपर पड़े हुएहैं
॥ १९ ॥ जानकीजीनें देखा—वह वीराग्रगण्य पुरुषश्रेष्ठ पुण्डरीकाक्ष दोनों भ्राता, दो अग्निकुमारोंकी समान बाणोंकी शेज पर शयन किये
हुएथे ॥ २० ॥ उन पुरुषश्रेष्ठ दोनों वीरोंको ऐसी अवस्थामें बाणोंकी शेजपर शयन किये हुए देख जनककुमारी सीताजी दुःखकी अधिकाईके

जीवको ले रणभूमिसे भागगये ॥ २१ ॥ उस कालमें महारथी श्रीरामचंद्रजी इस प्रकार अग्निकी लपटके समान बाण चलानेंलगे कि जिस्से पलभरमें दशोंदिशा व विदिशाओंमें अंधकार छायगया ॥ २२ ॥ जिस प्रकार अग्निके मुखमें गिरकर पतंगे जल जाते हैं; वैसेही जो राक्षस श्रीरामचंद्रजीकी ओर धायेथे उनका उसी समय नाश होगया ॥ २३ ॥ सबही कहीं सुवर्ण लगे बाणोंके गिरनेंसे, वह रात्रि पटबीजनों करके युक्त शरदृऋतुकी रात्रिके समान विचित्र ज्ञात होनें लगी ॥ २४ ॥ राक्षस लोगोंके सिंहनाद और भेरीके शब्दसे शब्दायमान होनेंके कारण वह रात्रि औरभी घोर भयंकर होगई ॥ २५ ॥ सर्व प्रकारसे बढ़ा हुआ बड़ा भारी शब्द त्रिकूट पर्वतकी कन्दराओंमें प्रवेश करके गुंजार करनें

निमेषांतरमात्रेणघोरैरग्निशिखोपमैः ॥ दिशश्चकारविमलाःप्रदिशश्चमहारथः ॥ २२ ॥ येत्वन्येराक्षसावीरारामस्याभिमुखेस्थिताः॥ तेपिनष्टाःसमासाद्यपतंगाइवपावकम् ॥ २३ ॥ सुवर्णपुंखेर्विशिखेःसंपतद्भिःसमंततः ॥ बभूवरजनीचित्राखद्योतैरिवशारदी ॥ २४ ॥ राक्षसानांचनिनदैर्भेरीणांचैवनिःस्वनेः ॥ साबभूवनिशाघोराभूयोघोरतराभवत् ॥ २५ ॥ तेनशब्देनमहताप्रवृद्धेनसमंततः ॥ त्रिकूटःकंदराकीर्णःप्रव्याहरदिवाचलः ॥ २६ ॥ गोलांगूलामहाकायास्तमसातुल्यवर्चसः ॥ संपरिष्वज्यबाहुभ्यांभक्षयन्रजनीचरान् ॥ २७ ॥ अंगदस्तुरणेशत्रून्निहंतुंसमुपास्थितः ॥ इंद्रजित्तुरथंत्यक्त्वाहताश्वोहतसारथिः ॥ अंगदेनमहायस्तस्तत्रैवांतरधीयत ॥ २८ ॥ तत्कर्मवालिपुत्रस्यसर्वेदेवाःसहर्षिभिः॥ तुष्टुवुःपूजनार्हस्यतौचोभौरामलक्ष्मणौ ॥ २९ ॥

लगा ॥ २६ ॥ श्याम रंगवाले महाशरीरधारी गोपुच्छ वानरगण अपनी बांहोंसे राक्षसोंको पकड़ फिर भक्षण करनेंलगे ॥ २७ ॥ अंगदजीभी शत्रुका विनाश करनेंकी वासनासे रणमें प्रवेश करके रावणके पुत्र इन्द्रजीतके ऊपर प्रहार करते हुए, और उसके सारथि व घोड़ोंको मार डाला, परन्तु मायाविशारद इन्द्रजीत अंगदजी करके घोड़े और सारथिके मारे जानें परभी रथको छोड़कर उसी स्थानमें अन्तर्ध्यान होजाताहुआ ॥ २८ ॥ देवता, और ऋषिलोगोंके प्रशंसा करनेंके योग्य वालिकुमार अंगदजीका ऐसा कठिन कार्य देखकर उनकी व राम

प्रतिज्ञा करके हमारे अभिषेकके सम्बन्धमें जो शुभकारी वार्त्ता कहीथी,सो आज श्रीरामचंद्रजीके मृतक हो जानेसे उनके वचनभी विफल हो गये ॥ ५ ॥ दोनों चरणोंमें पद्म चिह्न रहनेसे जो कुलकी स्त्रियां नरेन्द्रपतियोंके साथ अधिराजस्थानपर आभिषेचित होतीहैं, वे पद्माकार रेखा रूप हमारे चरणोंमें हैं ॥ ६ ॥ क्या आश्चर्य है कि जिन सब कुलक्षणोंके रहनेसे दुर्भाग्यवती स्त्रियें विधवा अवस्थाको प्राप्त होतीहैं; हम विशेष रूपसे देख भालकरभी अपने शरीरमें वैसा कोई कुलक्षण नहीं देखती वरन जबकि हम ऐसे सुलक्षण युक्त होकरभी विधवा हुईं; इस्से निश्चयही बोध होताहै कि यह पद्म चिह्न इत्यादि हमसे हत होगये ॥ ७ ॥ हा!लक्षण जाननेंवाले पंडित लोग जिस पद्मचिह्नका "अमोघ" फल कहा

इमानिखलुपद्मानिपादयोर्वैकुलस्त्रियः ॥ आधिराज्येऽभिषिच्यंतेनरेंद्रैःपतिभिःसह ॥ ६ ॥ वैधव्यंयांतियैर्नार्योऽलक्षणैर्भाग्यदुर्लभाः ॥ नात्मनस्तानिपश्यामिपश्यंतीहतलक्षणा ॥ ७॥ सत्यनामानिपद्मानिस्त्रीणामुक्तानिलक्षणैः ॥ तान्यद्यनिहतेरामेवितथानिभवंतिमे ॥ ८ ॥ केशाःसूक्ष्माःसमानीलाभ्रुवौचासंहतेमम ॥ वृत्तेचारोमकेजंघेदंताश्चाविरलाश्चमम ॥ ९ ॥ शंखेनेत्रेकरौपादौगुल्फावूरूसमौचितौ ॥ अनुवृत्तनखाःस्निग्धाःसमाश्चांगुलयोमम ॥ १० ॥ स्तनौचाविरलौपीनौमामकौमग्नचूचुकौ ॥ मग्नाचोत्सेधनीनाभिःपार्श्वोरस्कंचमेचितम् ॥ ११ ॥ ममवर्णोमणिनिभोमृदून्यंगरुहाणिच ॥ प्रतिष्ठितांद्वादशभिर्मामूचुःशुभलक्षणाम् ॥ १२ ॥

करतेहैं श्रीरामचंद्रजीके निहत होंनेसे आज हमारे जान तौ यह सबमिथ्या होगये ॥ ८ ॥ देखो स्त्रियोंके समस्त सुलक्षण हममें हैं, नील, पतले, और बराबर हमारे केशहैं, दोनों भौंयें परस्पर मिली हुईनहीं हैं दोनो जांघें गोल और रोम रहितहैं, दांतोंकी पंक्ति विरल है ॥ ९ ॥ नेत्रोंके कोये, नेत्र, हाथ, पांव, घुटने, उरू, यह सब हमारे मोटेहैं, चढा उतार, चिकने लाल नखहैं, उंगलियें, समस्त बराबर हैं ॥ १० ॥ हमारे परस्पर मिले हुए स्तन ऐसे मोटे और ऊंचेहैं मानो दोनो स्तनकोरक उनमें पैठेही जातेहैं, हमारे स्तनोके निकटवाली बगल व उरू विशालहै नाभि ऊंची पार्श्ववाली और सुगंभीरहै ॥ ११ ॥ हमारा वर्ण शान पर चढ़ी मणिकी समान उजलाहै, रोम समस्त कोमल

इन्द्रजीत करके नागमय बाणसमूहोंसे बँधनें पर वानर लोग विस्मित होकर देखनें लगे ॥ ३७ ॥ राक्षसराज रावणके पुत्र इन्द्रजीतनें जिस समय देखाकि राम लक्ष्मणको सन्मुख संग्राममें जीत लेना कुछ सहज बात नहीं है; तब उस समय दुरात्मा निशाचर मायाके बलका आश्रय करके सबके सन्मुख अन्तर्ध्यान होकर उन दोनों राजकुमारोंको बांधलेता हुआ ॥ ३८ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०यु०चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥ तब उस दुष्टात्मा मेघनादके खोजनेंके लिये महा प्रतापी राजकुमारजीनें दश बलवान वानर यूथपोंको आज्ञादी ॥ १ ॥ उनमें दो तौ सुषेणके भाईथे और वानरोंमें श्रेष्ठ नील, वालिकुमार अंगद, अतिवेगवान शरभ ॥ २ ॥ द्विविद हनुमान महाबलवान, प्रस्थ, ऋषभ, और ऋषभस्कन्ध

प्रकाशरूपस्तुयदानशक्तस्तौबाधितुंराक्षसराजपुत्रः ॥ मायांप्रयोक्तुंसमुपाजगामबबंधतौराजसुतौदुरात्मा ॥ ३८ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० युद्धकांडेचतुश्चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४४ ॥ ७ ॥ ॥ सतस्यगतिमन्विच्छन्राजपुत्रःप्रतापवान् ॥ दिदेशातिबलोरामोदशवानरयूथपान् ॥ १ ॥ द्वौसुषेणस्यदायादौनीलंचप्लवगाधिपम् ॥ अंगदंवालिपुत्रंचशरभंचतरस्विनम् ॥ २ ॥ द्विविदंचहनूमंतंसानुप्रस्थंमहाबलम् ॥ ऋषभंचर्षभस्कंधमादिदेशपरंतपः ॥ ३ ॥ तेसंप्रहृष्टा हरयोभीमानुद्यम्यपादपान् ॥ आकाशंविविशुःसर्वेमार्गमाणादिशोदश ॥ ४ ॥ तेषांवेगवतांवेगमिषुभिर्वेगवत्तरैः ॥ अस्त्रवित्परमास्त्रेणवारयामासरावणिः ॥ ५ ॥ तंभीमवेगाहरयोनाराचैःक्षतविक्षताः ॥ अंधकारेनदहशुर्मेघैःसूर्यमिवावृतम् ॥ ६ ॥ रामलक्ष्मणयोरेवसर्वदेहभिदःशरान् ॥ भृशमावेशयामासरावणिःसमितिंजयः ॥ ७ ॥

इन्हीं दश शत्रुओंके तपानेवाले वानरोंको श्रीरामचंद्रजीने आज्ञादी ॥ ३ ॥ यह सुनकर वह वानरगण अत्यन्त आनंदित होकर बड़े २ वृक्षोंको उठाय दशों दिशाओंको खोजते हुए आकाशमें प्रवेश करते हुए ॥ ४ ॥ अस्त्रके जाननें वाले इन्द्रजीतनें ब्रह्मास्त्र मंत्र पढ़े हुए बाणोंसे उन वेगवान वानरोंकी गति रोकदी ॥ ५ ॥ वह वेगवान वानरगण बाण जालसे छिन्नभिन्न होकर बादलसे ढके हुए सूर्यकी समान अंधकारमें छिपे हुए इन्द्रजीतको नहीं देखसके ॥ ६ ॥ इतनेही अवसरमें रणदुर्जय रावणका पुत्र मेघनाद सर्व देहके भेद करनेंवाले बाणोंसे राम लक्ष्मणजीको विद्ध

में क्यों मारे जाते? ॥ १९ ॥ श्रीरामचंद्रजी, महारथी लक्ष्मणजी जननी अथवा अपने लियेभी हमें ऐसा शोक नहीं; परन्तु तपस्विनी सास कौश ल्याजीके परिणामकी चिन्ता करके हमारी छाती फटी जाती है ॥ २० ॥वह सदा यही चिंता किया करती हैं कि--कब राम लक्ष्मण वधूके सहित व्रत समाप्त करके आवेंगे? कब हम उनको देखनें पावेंगी? ॥ २१ ॥ जब जनक कुमारी सीताजी इस प्रकारसे विलापकर रहीथीं तब त्रिजटा नाम रा क्षसीनें कहा कि--हे देवि! तुम अब विलाप न करो, कारण कि तुम्हारे स्वामी अभी जीवितहैं ॥ २२ ॥ हे देवि! भ्राता राम और लक्ष्मण जिस प्र कारसे जीवितहैं, इसका बड़ा भारी कारण हम कहती हैं; तुम उसको श्रवण करो ॥ २३ ॥ यह वानरगण क्रोध प्रकाश कररहे हैं और उनके मु

नशोचामितथारामंलक्ष्मणंचमहारथम् ॥ नात्मानंजननींचापियथाश्वश्रूंतपस्विनीम् ॥ २० ॥ सातुचिंतयतेनित्यं समाप्तव्रतमागतम् ॥ कदाद्रक्ष्यामिसीतांचलक्ष्मणंचसराघवम् ॥ २१ ॥ परिदेवयमानांतांराक्षसीत्रिजटाब्रवीत् ॥ माविषादंकुथादेविभर्ताऽयंतवजीवति ॥ २२ ॥ कारणानिचवक्ष्यामिमहांतिसदृशानिच ॥ यथेमौजीवतोदेविभ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ २३ ॥ नहिकोपपरीतानिहर्षपर्युत्सुकानिच ॥ भवंतियुधियोधानांमुखानिनिहतेपतौ ॥ २४ ॥ इदं विमानंवैदेहिपुष्पकंनामनामतः ॥ दिव्यंत्वांधारयेन्नेदंयद्येतौगतजीवितौ ॥ २५ ॥ हतवीरप्रधानाहिगतोत्साहानिरुद्यमा ॥ सेनाभ्रमतिसंख्येषुहतकर्णेवनौर्जले ॥ २६ ॥ इयंपुनरसंभ्रांतानिरुद्विग्नातपस्विनी ॥ सेनारक्षतिकाकुत्स्थौ मयाप्रीत्यानिवेदितौ ॥ २७ ॥

खों पर हर्षके चिह्नभी दिखाई देते हैं; परन्तु रणस्थलमें राजाके मरजानें पर उसकी सैनाके मुखपर कभी इस प्रकारके चिह्न प्रकाशित नहीं हो ते ॥ २४ ॥ हे वैदेही! औरभी सुनो; यदि श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजी जीवित न होते. तो यह पुष्पक विमान किसी प्रकारसे भी तुमको धार ण न करता, क्योंकि यह अपने ऊपर विधवा स्त्रियोंको नहीं चढ़ाता है ॥ २५ ॥ हम जानती हैं कि युद्धमें सेनापति या प्रधानकी मृत्यु हो जानें पर सैनाके लोगोंमें उत्साह और उद्यम नहीं रहता; परन्तु इन वानरोंमें हम यह सब बातें पातीहैं, यदि श्रीरामचंद्रजीका कोई अंग नष्ट हु आ होता तो निश्चयही बिनामांझी की नौकाके समान यह सैना संग्राम भूमिमें इधर उधर फिरती ॥ २६ ॥ परन्तु हे तपस्विनी! यह वानरोंकी

भरभी किसी ओर देखनेंको समर्थ न हुए ॥ १६ ॥ परन्तु इस समय वह बाणोंके फलकोंसे पीड़ित हो गयेथे, व उनके अंगभी कट गयेथे, इस्से वह दोनों जन रस्सीसे रहित कम्पायमान महेन्द्रके ध्वज युगलकी समान शोभित हुए ॥ १७ ॥ इस प्रकारसे महा बलवान जगतपति श्रीराम चंद्रजी व लक्ष्मणजी मर्ममें घाव लग जानेंसें पीड़ित होकर पृथ्वीपर गिरपड़े ॥ १८ ॥ वह दोनों वीर सब अंगोंमें बाण लगनेंके कारण अत्यन्त पीड़ित होकर वीरोचित सेजपर शयन करते हुए, व उनके सब अंगोंसे रुधिरकी धारा निकलनें लगी ॥ १९ ॥ उनके अंगमें एक उंगलभी ऐसा स्थान नहींथा कि जहां बाण न लगाहो, और उंगलियोंके पौरुवोंसे लेकर कोईभी उनके अंगका स्थान नागमय बाण समूहसे अविचलित या

ततोविभिन्नसर्वांगौशरशल्याचितौकृतौ ॥ ध्वजाविवमहेंद्रस्यरज्जुमुक्तौप्रकंपितौ ॥ १७ ॥ तौसंप्रबलितौ वीरौमर्मभेदेनकर्षितौ ॥ निपेततुर्महेष्वासौजगत्यांजगतीपती ॥ १८ ॥ तौवीरशयनेवीरौशयानौरुधिरोक्षितौ ॥ शरवेष्टितसर्वांगावार्तौपरमपीडितौ ॥ १९ ॥ नह्यविद्धंतयोर्गात्रेबभूवांगुलमंतरम् ॥ नानिर्विण्णंनचाध्वस्तमाकराग्रादजिह्मगैः ॥ २० ॥ तौतुक्रूरेणनिहतौरक्षसाकामरूपिणा ॥ असृक्सुस्रुवतुस्तीव्रंजलंप्रस्रवणाविव ॥२१॥ पपातप्रथमंरामोविद्धोमर्मसुमार्गणैः ॥ क्रोधादिंद्रजितायेनपुराशक्रोविनिर्जितः ॥ २२ ॥ ॥ रुक्मपुंखैःप्रसन्नाग्रैरजोगतिभिराशुगैः ॥ नाराचैरर्धनाराचैर्भल्लैरंजलिकैरपि ॥ विव्याधवत्सदंतैश्चसिंहदंष्ट्रैःक्षुरैस्तथा ॥ २३ ॥ सवीरशयनेशिश्येविज्यमाविध्यकार्मुकम् ॥ भिन्नमुष्टिपरीणाहंत्रिणतंरुक्मभूषितम् ॥ २४ ॥

साबित नहीं रहा, सबही अंग कटेथे ॥ २० ॥ वह दोनोंजन कामरूपी क्रूर राक्षस करके बाणोंसे ऐसे घायल हुए कि जिस प्रकार झरनेंसे जलकी धार निकलतीहै; वैसेही इनके सब अंगोंसे रुधिरकी धारा निकलनें लगी ॥ २१ ॥ पहले श्रीरामचंद्रजी राक्षस इन्द्रजीतके दारुण बाणसे विद्ध होकर पृथ्वीमें गिरपड़े; जिस प्रकार इन्द्रजीतनें पहले इन्द्रको युद्धमें हरायाथा वैसेही श्रीरामचंद्रजीकी पराजयभी उसको आनंदकी देनेंवाली हुई ॥ २२ ॥ फिरभी इस दुष्ट मेघनादनें सुवर्णके फोंके लगे हुए रजकी समान सब कहीं पहुंचनेंवाले बाणोंसे, व अनेक प्रकारके भालोंसे, बछडेके दांतोंके समान वह सिंह दशनके समान आकारवाले बाणोंसे श्रीरामचंद्रजीको मारा ॥ २३ ॥ तब शरसहित तीन स्थानोंपर झुकेहुए रुक्म

मिथिलाराजनन्दिनी, देवकन्याओंकी समान सीता यह समस्त वचन श्रवण कर हाथ जोड़कर बोलीं कि तुमनें जो कुछ कहा वही समस्त
वचन तुम्हारे सत्यहैं ॥ ३४ ॥ तिसके पीछे त्रिजटा उस मनके वेगकी अनुसार शीघ्र चलनेंवाले पुष्पक विमानको लौटाय कर दीन सीता
जीको फिर लंकापुरीमें प्रवेश कराती हुई ॥ ३५ ॥ तदनन्तर जनकपुत्री सीताजी त्रिजटाके सहित अशोक वनके समीपमें उपस्थित हो
समस्त राक्षसियोंके सहित फिर उसमें प्रवेश करती हुई ॥ ३६ ॥ इस प्रकारसे जानकीजीनें राक्षसोंमें इन्द्र रावणकी विहारभूमि अनेक
वृक्षोंसे युक्त अशोक वाटिकामें प्रवेश किया; परन्तु इन्होंनें दो राजकुमारोंको जिस अवस्थामें पड़ा देखाथा, अशोकवनमें आनेंके समय
वही चिन्ता आयकर इनके मनको अत्यन्त व्याकुल और हृदयको मथनें लगी ॥ ३७ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० लं० अष्टचत्वारिंशः सर्गः ४८ ॥
दशरथकुमार श्रीरामचंद्र व लक्ष्मणजी नागफाँसमें बँधे हुए बाणोंकी सेजपर पड़ेथे, व उनके सब अंगोंसे रुधिर निकल रहाथा; हाथी जिस
प्रकार गर्जन किया करताहै; उस समय यह दो भ्राताभी इसी भांति लंबे२ श्वास लेनें लगे ॥ १ ॥ सुग्रीवादि मुख्य२ बलवान वानर श्रेष्ठ गण शोकसे
अत्यन्त पीड़ित होकर उनको चारों ओरसे घेर कर खड़े होगये ॥ २ ॥ यद्यपि श्रीरामचंद्रजी दृढ़ नाग फांसमें बँधे हुएथे; परन्तु अपनी दृढ़ता

श्रुत्वातुवचनंतस्याःसीतासुरसुतोपमा ॥ कृतांजलिरुवाचेमामेवमस्त्वितिमैथिली ॥ ३४ ॥ विमानंपुष्पकंतत्तुसन्निव
र्त्यमनोजवम् ॥ दीनात्रिजटयासीतालंकामेवप्रवेशिता ॥ ३५ ॥ ततस्त्रिजटयासार्धंपुष्पकादवरुह्यसा ॥ अशोकव
निकामेवराक्षसीभिःप्रवेशिता ॥ ३६ ॥ प्रविश्यसीताबहुवृक्षखंडांतांराक्षसेंद्रस्यविहारभूमिम् ॥ संप्रेक्ष्यसंचिंत्यचरा
जपुत्रौपरंविषादंसमुपाजगाम ॥ ३७ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेअष्टचत्वारिंशः स
र्गः ॥ ४८ ॥ ॥छ॥ ॥ घोरेणशरबंधेनबद्धौदशरथात्मजौ ॥ निःश्वसंतौयथानागौशयानौरुधिरोक्षितौ ॥ १ ॥ सर्वेतेवा
नरश्रेष्ठाःससुग्रीवमहाबलाः ॥ परिवार्यमहात्मानौतस्थुःशोकपरिप्लुताः ॥ २ ॥ एतस्मिन्नंतरेरामःप्रत्यबुध्यतवीर्य
वान् ॥ स्थिरत्वात्सत्त्वयोगाच्चशरैःसंदानितोपिसन् ॥ ३ ॥

उन समस्त वानरोंनें देखा कि राम लक्ष्मण शरविद्ध होनेंके कारण चेष्टारहित हैं, उनके सब शरीरमें रुधिर वह रहा है, श्वास मन्द२चल रहा है, और वह बाणोंकी सेजपर बाणोंसे विंधेहुए पड़े हैं ॥ ४ ॥ तेजहीन सर्पकी जो अवस्था होती है, दशरथकुमार श्रीरामचंद्रजीकीभी वही अवस्था होर हीथी वह धीरे २ लंबे २ श्वास ले रहे थे, वह सर्वाङ्गमें रुधिर लगाये सुवर्णसे ध्वजाओंके डंडेकी समान पृथ्वीपर पड़ेहुए शोभायमान हो रहे हैं ॥ ५ ॥ वह वीरशय्यापर शयन करनेंके कारण हाथ पांव आदि न हिलाते डुलाते अपने उन यूथपोंके बीचमें लोटे हुएथे जो कि उनके चारों ओर खड़े रोतेथे ॥ ६ ॥ बाणजालसे विंधेहुए श्रीरामचंद्रजीको पृथ्वीपर गिरा हुआ देखकर विभीषणके सहित सबही वानर अत्यन्त व्यथित होते

अचेष्टौमंदनिःश्वासौशोणितेनपरिप्लुतौ॥शरजालचितौस्तब्धौशयानौशरतल्पगौ ॥४॥ निःश्वसंतौयथासर्पौनिश्चेष्टौदीनविक्रमौ ॥ रुधिरस्रावदिग्धांगौतपनीयाविवध्वजौ ॥५॥ तौवीरशयनेवीरौशयानौमंदचेष्टितौ ॥ यूथपैःस्वैःपरिवृतौबाष्पव्याकुललोचनैः॥ ६॥ राघवौपतितौदृष्ट्वाशरजालसमन्वितौ ॥ बभूवुर्व्यथिताःसर्वेवानराःसविभीषणाः ॥ ७ ॥ अंतरिक्षंनिरीक्षंतोदिशःसर्वाश्चवानराः ॥ नचैनंमाययाछन्नंददृशूरावणिंरणे ॥८॥ तंतुमायाप्रतिच्छन्नंमाययैवविभीषणः ॥ वीक्ष्यमाणोददर्शाग्रेभ्रातुःपुत्रमवस्थितम् ॥ तमप्रतिमकर्माणमप्रतिद्वंद्वमाहवे ॥ ९ ॥ ददर्शांतर्हितंवीरंवरदानाद्विभीषणः ॥ तेजसायशसाचैवविक्रमेणचसंयुतः ॥ १० ॥ इंद्रजित्त्वात्मनःकर्मतौशयानौसमीक्ष्यच ॥ उवाचपरमप्रीतोहर्षयन्सर्वराक्षसान् ॥ ११ ॥

हुए ॥ ७ ॥ यद्यपि इस समय वानरगण रावणके पुत्र मेघनादको आकाशमें ढूंढ़ रहेथे, परन्तु मायासे अदृश्य होनेंके कारण उसको कोईभी न देख सका ॥ ८ ॥ परन्तु विभीषण इस मायाको जानते थे, इस कारण जैसेही कि उन्होंनें दृष्टि की, वैसेही मायाके बलसे ढके हुए, उस अपने भाईके पुत्र- (भतीजे) मेघनादको इन्होंनें देखा कि वह अनुपम कर्म करनेंवाला, संग्रामभूमिमें अप्रतिद्वन्द्व ॥ ९ ॥ वरदान पानेंसे गर्वित वीर अन्तर्ध्यान होकर सन्मुखही आकाशमें टिका हुआ है, ऐसे मेघनादको तेज, यश, विक्रमसंयुक्त विभीषणजीनें देखा ॥ १० ॥ इसके पीछे इन्द्रजीत मेघनाद इन श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी दोनों वीरोंको वीरशेजपर पड़ाहुआ देखकर अत्यन्त सन्तुष्ट हो अपना कर्म सबको सुनाता हुआ

जब कि अपने पुत्र लक्ष्मणजीके लिये सुमित्राजी हमारी निन्दा करेंगी; तब वह वचन हमसे किस प्रकार सहे जायँगे;इसकारण यहींपर जीवन त्याग देना हमारा कर्तव्य है ॥ ११॥ हा! हम बड़े ही दुष्कार्यके करनेवाले और अतिशय अनार्य हैं, इसलिये हमको धिक्कारहै; अहो ! हमारेही कारण हमारे छोटे भाई लक्ष्मण बाणोंकी सेजपर लेटे हुए मृतककी समान पड़ेहैं ॥१२॥ भैया लक्ष्मण! जब हम कुछ शोक करते तब तुम सदाही हमको समझाते परन्तु आज हम इस प्रकारके पीड़ित होरहे हैं,तथापि तुम मृतककी समान हमसे कुछभी वार्तालाप नहीं करते और न हमें समझाते हो॥१३॥हाय! आज इस रणभूमिमें जिन करके असंख्य राक्षस वशको प्राप्त होकर पृथ्वीमें शयन कररहे हैं; वही शूर श्रेष्ठ लक्ष्मणजीभी बाणोंसे घायल होकर आज

उपालंभंनशक्ष्यामिसोढुमंबासुमित्रया ॥ इहैवदेहंत्यक्ष्यामिनहिजीवितुमुत्सहे ॥ ११ ॥ धिङ्मांदुष्कृतकर्माणमनार्यंमत्कृतेह्यसौ ॥ लक्ष्मणःपातितःशेतेशरतल्पेगतासुवत् ॥ १२ ॥ त्वंनित्यंसुविषण्णंमामाश्वासयसिलक्ष्मण ॥ गतासुर्नाद्यशक्तोसिमामार्तमभिभाषितुम् ॥ १३ ॥ येनाद्यबहवोयुद्धेनिहताराक्षसाःक्षितौ ॥ तस्यामेवाद्यशूरस्त्वंशेषेविनिहतःशरैः ॥१४॥ शयानःशरतल्पेऽस्मिन्सशोणितपरिप्लुतः ॥ शरभूतस्ततोभासिभास्करोऽस्तमिवव्रजन् ॥ १५॥ बाणाभिहतमर्मत्वान्नशक्नोषीहभाषितुम् ॥ रुजाचाब्रुवतोयस्यदृष्टिरागेणसूच्यते ॥ १६ ॥ यथैवमांवनंयांतमनुयातोमहाद्युतिः ॥ अहमप्यनुयास्यामितथैवैनंयमक्षयम् ॥ १७ ॥ इष्टबंधुजनोनित्यंमांचनित्यमनुव्रतः ॥ इमामद्यगतोऽवस्थांममानार्यस्यदुर्नयैः ॥ १८॥

बाणोंकी सेज पर शयन कररहे हैं ॥१४॥ हा लक्ष्मण! तुम रुधिरसे भीगे हुए होकर बाणोंकी सेजपर शयनकरके शर रूप प्राप्त अस्तगामी सूर्यकी समान शोभा धारण किये हुएहो ॥ १५ ॥ हाय! तुम्हारे सब मर्मस्थानोंमें बाणोंके लगनेंसे तुम कुछ कहनेंको समर्थ नहीं हो; परन्तु कुछ न कहनेंपरभी तुम्हारे नेत्रोंके लालेपनसे तुम्हारे मनकी समस्तही व्यथा प्रगट होरही है ॥ १६ ॥ हाय! जिस प्रकार हमारे वनमें आनेंके समय तुम महाद्युतिमान हमारे पीछे२ आयेथे, वैसेही हमभी तुम्हारे पीछे२आज यमलोकमें गमन करेंगे ॥ १७ ॥ हाय ! जो सदाही अपने बन्धुजनोंके प्रति

उनकोभी वींध डाला ॥ २० ॥ और बड़ी शीघ्रताके साथ उसने गोपुच्छ वानरोंके स्वामी ऋक्षराज धूम्र और वालिकुमार अंगदजीके ऊपर बहुत असंख्य बाण चलाये ॥ २१ ॥ महा सत्वयुक्त बलवान रावणकुमार उन अग्निकी शिखाके समान लपलपाते बाण समूहसे वानरोंको मारकर सिंह नाद करनें लगा ॥ २२ ॥ वह महाबाहु मेघनाद बाणोंकी चोटसे वानरोंको शंकित और पीड़ित करके निकट हँसनें लगा और राक्षस लोगोंको पुकारकर बोला ॥ २३ ॥ हे निशाचर गण ! श्रवण करो; हमनें बराबर बाणोंकी वर्षा करके अंतमें राम लक्ष्मणको नागफाँससे बांधही लिया॥२४॥ छलसे युद्ध करनेंवाले राक्षस लोग मेघनादकी बात सुनकर उसके कार्यसे अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और उसकी उपमारहित वीरताको देखकर अत्य

गोलांगूलेश्वरंचैववालिपुत्रमथांगदम् ॥ विव्याधबहुभिर्बाणैस्त्वरमाणोथरावणिः ॥ २१ ॥ तान्वानरवरान्भित्त्वाशरै रग्निशिखोपमैः ॥ ननादबलवांस्तत्रमहासत्त्वःसरावणिः ॥ २२ ॥ तानर्दयित्वाबाणौघैस्त्रासयित्वाचवानरान् ॥ प्रजहा समहाबाहुर्वचनंचेदमब्रवीत् ॥२३॥ शरबंधनघोरेणमयाबद्धौचमूमुखे ॥ सहितौभ्रातरावेतौनिशामयतराक्षसाः॥२४॥ एवमुक्तास्तुतेसर्वैराक्षसाःकूटयोधिनः ॥ परंविस्मयमापन्नाःकर्मणातेनहर्षिताः ॥ २५ ॥ विनेदुश्चमहानादान्सर्वेते जलदोपमाः ॥ हतोरामइतिज्ञात्वारावणिंसमपूजयन् ॥ २६ ॥ निष्पंदौतुतदादृष्ट्वाभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ वसुधायां निरुच्छ्वासौहतावित्यन्वमन्यत ॥ २७ ॥ हर्षेणतुसमाविष्टइंद्रजित्समितिंजयः ॥ प्रविवेशपुरींलंकांहर्षयन्सर्वनैर्ऋ तान् ॥ २८ ॥ रामलक्ष्मणयोर्दृष्ट्वाशरीरेसायकैश्चिते ॥ सर्वाणिचांगोपांगानिसुग्रीवंभयमाविशत् ॥ २९ ॥

न्त विस्मित होरहे ॥ २५ ॥ तब मेघाकार राक्षस लोग " राम मारे गये " यह मनमें निश्चय करके सबही सिंहनाद करते हुए इन्द्रजीतमेघनादकी बड़ाई करनेंलगे ॥ २६ ॥ और उन दोनों भ्राता श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीको विना हाथ पैर हिलाते डुलाते और श्वास रहित पृथ्वीमें पड़े देख तब राक्षसोंनें निश्चय जान लिया कि यह मृतक होगये ॥ २७ ॥ तिसके पीछे रणमें विजय करनेवाला इन्द्रजीत रणमें विजय पाय कर राक्षसोंको आनंदित कराता हुआ लंकामें प्रवेश करता हुआ ॥ २८ ॥ इसी समयमें कपिराज सुग्री वजी राक्षसराज रावणके पुत्र मेघनादके बाणोंसे श्रीराम लक्ष्मणके समस्तअंग विद्ध और रुधिरसे भींगे देखकर अत्यन्त भयको प्राप्त हुए ॥ २९ ॥

गोपुच्छके राजानें जो कठिन कर्म हमारे लिये किये तिस्से हम परम प्रसन्न हैं ॥ २५ ॥ और अंगदनेंभी बड़ेभारी कर्म किये, व मैन्द, द्विविद, केशरी और सम्पातिनाम वानरनेंभी युद्धमें हमारे लिये बड़े घोर कर्म किये ॥ २६ ॥ गवय, गवाक्ष, शरभ, गज, व औरभी दूसरे वानरोंनें अपने प्राणतककी बाजी लगाकर युद्ध करनेंके लिये तैयार होकर संग्राम कियाहै ॥ २७ ॥ हे सुग्रीव! मनुष्य भाग्यको कभी उल्लंघन नहीं करसकत्ता जो मित्रको मित्रके साथ और सुहृदको सुहृदके साथ करना उचित है; वह मेरे लिये ॥ २८ ॥ हे सुग्रीव ! तुमने धर्म और शक्तिके अनुसार सबही कुछ किया; हेवानरश्रेष्ठो! तुमनेभी हमारा मित्रकार्य भली भांतिसे किया ॥ २९ ॥ इसलिये अब हम तुमको आज्ञा देते हैं कि तुम्हारी सबकी जहां पर इच्छा हो वहांपर चले जाओ; जब रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी इस प्रकारसे विलाप करते रहे, तब उसकाल जितनें वानरोंनें उनका वह विलाप सुना; उन सबके नेत्रोंसेही आंसुओंकी धारा गिरनेलगीं ॥ ३० ॥ इतनेंमेंही विभीषणजी सब सैनाको धीरज बँधाते जहांके तहां सब को टिकाते गदा ग्रहणकर अति शीघ्रतासे श्रीरामचंद्रजीके पास आये ॥ ३१ ॥ परन्तु नील अंजनके ढेरकी समान उस वीर विभीषणको शीघ्रतासे श्रीरामचंद्रजीके समीप आते देखकर वानर उनको इन्द्रजीत समझकर चारों ओर भागनें लगे ॥ ३२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे भाषानुवादे कात्यायनकुमारपं० ज्वालाप्रसादमिश्रकृते एकोनपंचाशः सर्गः ॥ ४९ ॥

अंगदेनकृतंकर्ममैंदेनाद्विविदेनच ॥ युद्धंकेसरिणासंख्येघोरंसंपातिनाकृतम् ॥ २६ ॥ गवयेनगवाक्षेणशरभेणगजेनच ॥ अन्यैश्चहरिभिर्युद्धंदुर्धरंत्यक्तजीवितैः ॥ २७ ॥ नचातिक्रमितुंशक्यंदैवंसुग्रीवमानुषैः ॥ यत्तुशक्यंवयस्येनसुहृदावापरंमम ॥ २८ ॥ कृतंसुग्रीवतत्सर्वंभवताधर्मभीरुणा ॥ मित्रकार्यंकृतमिदंभवद्भिर्वानरर्षभाः ॥ २९ ॥ अनुज्ञातामयासर्वेयथेष्टंगंतुमर्हथ ॥ शुश्रुवुस्तस्ययेसर्वेवानराःपरिदेवितुम् ॥ वर्तयांचक्रिरेऽश्रूणिनेत्रैःकृष्णेतरेक्षणाः ॥ ३० ॥ ततःसर्वाण्यनीकानिस्थापयित्वाविभीषणः ॥ आजगामगदापाणिस्त्वरितंयत्रराघवः ॥ ३१ ॥ तंदृष्ट्वात्वरितंयांतंनीलांजनचयोपमम् ॥ वानराद्रुद्रुवुःसर्वेमन्यमानास्तुरावणिम् ॥ ३२ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० युद्धकांडेएकोनपंचाशःसर्गः ॥ ४९ ॥ ७ ॥

अथवा जबतक श्रीरामचंद्रजीका मोह छूटकर उनको संज्ञा प्राप्तहो तब तक तुम उनकी रक्षा करते रहो; जान लो कि जब काकुत्स्थ श्रीरामचंद्रजीनें चैतन्यता प्राप्त करली तब फिर हमको कोईभी भय न रहैगा॥३८॥श्रीरामचंद्रजीकी मोहकी अवस्था जो तुम देखतेहो यह सब कुछभी नहीं है,लक्षणसे अनुमान होताहै कि किसी प्रकारसेभी श्रीरामचंद्रजीकी मृत्यु होनेंवाली नहीं; जीवका जीवन नष्ट होनें पर जो श्री दुर्लभहै,इन श्रीरामचंद्रजीके शरीरमें वही श्री स्पष्ट दिखलाई देतीहै ॥३९॥ हेसुग्रीव! जो हुआ सो हुआ तुम सावधान होवो; और अपनी सैनाकोभी ढाढस बँधाओ, और हमभी अपनी सैनाको फिर स्थिर करतेहैं ॥ ४० ॥ हे वानरश्रेष्ठ! यह देखो, वानर गण नेत्र फैलाय २ भीत और शंकित होकर परस्पर एक

अथवारक्ष्यतांरामोयावत्संज्ञाविपर्ययः॥ लब्धसंज्ञौहिकाकुत्स्थौभयंनौव्यपनेष्यतः॥ ३८ ॥ नैतत्किंचनरामस्यनचरामोमुमूर्षति॥ नह्येनंहास्यतेलक्ष्मीर्दुर्लभायागतायुषाम् ॥ ३९ ॥ तस्मादाश्वासयात्मानंबलंचाश्वासयस्वकम् ॥ यावत्सैन्यानिसर्वाणिपुनःसंस्थापयाम्यहम् ॥ ४० ॥ एतेहिफुल्लनयनास्त्रासादागतसाध्वसाः ॥ कर्णेकर्णेप्रकथिताहरयोहरिसत्तम ॥ ४१ ॥ मांतुदृष्ट्वाप्रधावंतमनीकंसंप्रहर्षितम् ॥ त्यजंतुहरयस्त्रासंभुक्तपूर्वामिवस्रजम् ॥ ४२ ॥ समाश्वास्यतुसुग्रीवंराक्षसेंद्रोविभीषणः ॥ विद्रुतंवानरानीकंतत्समाश्वासयत्पुनः ॥४३ ॥ इंद्रजित्तुमहामायःसर्वसैन्यसमावृतः ॥ विवेशनगरींलंकांपितरंचाभ्युपागमत् ॥ ४४ ॥ तत्ररावणमासाद्यअभिवाद्यकृतांजलिः ॥ आचचक्षेप्रियंपित्रेनिहतौरामलक्ष्मणौ ॥ ४५ ॥ उत्पपाततततोहृष्टःपुत्रंचपरिषस्वजे ॥ रावणोरक्षसांमध्येश्रुत्वाशत्रूनिपातितौ ॥ ४६ ॥

दूसरेके कानही कानमें श्रीरामचंद्रजीकी वार्ता कर रहे हैं ॥ ४१ ॥ हमको इधर उधर घूमते हुए देखकर व समस्त वानरवाहिनीकोभी हर्षित देख पहरनेंसे मलगिजी व कुंभलाई हुई मालाके त्याग करनेंके समान सब वानर अपनी व्याकुलताको छोडेंगे ॥ ४२ ॥ तिसके पीछे वह राक्षसोंके इन्द्र बिभीषणजी वानरराज सुग्रीवजीको यह कह समझाय बुझाय फिर भागीहुई सैनाको धीरज बँधाने लगे ॥ ४३ ॥ इस ओर माया विशारद इन्द्रजीत सब सैनाको साथ लेकर लंका नगरीमें प्रवेशित हो अपने पिता रावणके निकट जायकर पहुंचा ॥ ४४ ॥ फिर रावणके निकट जाय हाथ जोड़ प्रणामकर रामचंद्र व लक्ष्मणके मारे जानेकी प्रिय वार्त्ता वह मेघनाद निवेदन करताहुआ ॥ ४५ ॥ राक्षसमंडलके बीचमें

णजीकोही वानरगणोंके भयका कारण जानकर समीपमें बैठे हुए ऋक्षराज जाम्बवान्से यह वचन बोले ॥ ८ ॥ यह विभीषण यहांपर आये हैं; इनकोही देख और रावणका पुत्र मेघनाद समझकर भयके मारे चकितनेत्र होकर वानरगण यह शंका करके कि फिर वह भय आया भागे जाते हैं ॥ ९ ॥ इस कारण आप शीघ्रही त्रासित और चारों ओरको भागी जाती हुई इस वाहिनीको पुकारकर सावधान करो, कि यह इन्द्रजीत नहीं वरन विभीषणजी आये हैं ॥ १० ॥ तव ऋक्षराज जाम्बवानजी सुग्रीवजीके ऐसे वचन सुनकर भागते हुए वानरोंको लौटनेको पुकारनें लगे ॥ ११ ॥ तिसके पीछे समस्त वानर गणभी जो कि भागे जाते थे ऋक्षराज जाम्बवान्जीके वचन सुन और विभीषणको आयाहुआ देख

विभीषणोयंसंप्राप्तोयंदृष्ट्वावानरर्षभाः ॥ द्रवंत्यागतसंत्रासारावणात्मजशंकया ॥ ९ ॥ शीघ्रमेतान्सुसंत्रस्तान्बहुधाविप्रधावितान् ॥ पर्यवस्थापयाख्याहिविभीषणमुपस्थितम् ॥ १० ॥ सुग्रीवेणैवमुक्तस्तुजांबवानृक्षपार्थिवः ॥ वानरान्सांत्वयामाससंनिवर्त्यप्रधावतः ॥ ११ ॥ तेनिवृत्ताःपुनःसर्वेवानरास्त्यक्तसाध्वसाः ॥ ऋक्षराजवचःश्रुत्वातंचदृष्ट्वाविभीषणम् ॥ १२ ॥ विभीषणस्तुरामस्यदृष्ट्वागात्रंशरैश्चितम् ॥ लक्ष्मणस्यतुधर्मात्माबभूवव्यथितस्तदा ॥ १३ ॥ जलक्लिन्नेनहस्तेनतयोर्नेत्रेविमृज्यच ॥ शोकसंपीडितमनारुरोदविललापच ॥ १४ ॥ इमौतौसत्वसंपन्नौविक्रांतौप्रियसंयुगौ ॥ इमामवस्थांगमितौराक्षसैःकूटयोधिभिः ॥ १५ ॥ भ्रातृपुत्रेणचैतेनदुष्पुत्रेणदुरात्मना ॥ राक्षस्याजिह्मयाबुद्ध्यावंचितावृजुविक्रमौ ॥ १६ ॥

भय त्यागकर लौट आये ॥ १२ ॥ तत्पश्चात् धर्मात्मा विभीषणजी श्रीराम लक्ष्मणजी दोनोंहीके शरीर बाणोंसे छाये और रुधिरसे नहाये देख मनमें बहुतही दुःखी हुए ॥ १३ ॥ विभीषणजीनें अपनें हाथमें जल लेकर स्वयं महात्मा श्रीरामचंद्रजीके और लक्ष्मणजीके नेत्र धोये और फिर शोकित मनसे नेत्रोंमें आंसू भरा देख और विलाप करनें लगे ॥ १४ ॥ हाय! यह दोनों सत्वसम्पन्न समरप्रिय भयंकरविक्रमकारी दोनों भाई कपटयुद्ध करनेंवाले निशाचरोंसे ऐसी दुरवस्थाको प्राप्त हुएहैं ॥ १५ ॥ हाय! रावणके पुत्र और हमारे भतीजे दुरात्मा मेघनादकी राक्षसी कु

सावधानतासे चारों ओर देखने लगे कि जो कहीं तनक शब्दभी हुआ तौ वह लोग "राक्षस आगया" ऐसा जान करके उसही ओरको दौड़ने लगे ॥ ४ ॥ इस ओर रावण हर्षित मनसे प्रियपुत्र इन्द्रजीतको विदा देकर सीताजीके रक्षाकार्यमें नियत हुई राक्षसियोंको बुलाता हुआ ॥ ५ ॥ त्रिजटा व और भी सब राक्षसियें रावणकी आज्ञा जानकर वहां पर आई, तब राक्षसोंका स्वामी रावण हर्ष भरे मनसे यह कहता हुआ ॥६॥ कि तुम सब सीताको समाचार दो कि इन्द्रजीतके हाथसे राम लक्ष्मण दोनों भाई मारे गये उनसे यह कह व फिर उन्हें पुष्पकविमानपर चढ़ायकर रण भूमिमें मरे हुए दोनों भाइयोंको दिखलाओ ॥ ७ ॥ उस जानकीसे तुम कहना कि जिनके आश्रयके गर्वके मारे तुम इतनें दिनोंतक हमसे विरु

रावणश्चापिसंहृष्टोविसृज्येंद्रजितंसुतम् ॥ आजुहावततःसीतारक्षणीराक्षसीस्तदा ॥५॥ राक्षस्यस्त्रिजटाचापिशासनात्तमुपस्थिताः॥ ताउवाचततोहृष्टोराक्षसीराक्षसाधिपः ॥६॥ हताविंद्रजिताख्यातवैदेह्यारामलक्ष्मणौ ॥ पुष्पकंतत्समारोप्यदर्शयध्वंरणेहतौ ॥ ७ ॥ यदाश्रयादवष्टब्धानेयंमामुपतिष्ठते ॥ सोस्याभर्तासहभ्रात्रानिहतोरणमूर्धनि ॥ ८ ॥ निर्विशंकानिरुद्विग्नानिरपेक्षाचमैथिली ॥ मामुपस्थास्यतेसीतासर्वाभरणभूषिता ॥ ९ ॥ अद्यकालवशंप्राप्तंरणेरामंसलक्ष्मणम् ॥ अवेक्ष्यविनिवृत्तासाचान्यांगतिमपश्यती ॥ अनपेक्षाविशालाक्षीमामुपस्थास्यतेस्वयम् ॥ १० ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वारावणस्यदुरात्मनः ॥ राक्षस्यस्तास्तथेत्युक्त्वाजग्मुर्वैयत्रपुष्पकम् ॥ ११ ॥ ततःपुष्पकमादायराक्षस्योरावणाज्ञया ॥ अशोकवनिकास्थांतांमैथिलींसमुपानयन् ॥ १२ ॥

द्धथीं, इस समय वही तुम्हारे स्वामी अपने भाईके सहित मार डाले गये हैं ॥ ८ ॥ अब सीता रामके सहित मिलनेंकी आशाको भली भांतिसे त्यागकर और शोक व शंकाको छोड़ सर्व गहनोंसे भूषितहो हमारे वशमें हो जाय ॥ ९ ॥ जान पड़ताहै कि आज वह बड़े नेत्रोंवाली जानकी संग्रामभूमिमें लक्ष्मणजीके सहित रामचंद्रको प्राण रहित और अपनी कोई और गति न देखकर जब वहांसे लौटेगी; तब आपही हमारे वशमें पड़ेंगी ॥ १० ॥ तब यह सब राक्षसी दुरात्मा रावणके यह वचन सुनकर और "ऐसेही होगा" कहकर जहां पुष्पक विमान रक्खाथा वहांपर गई ॥११॥ तिसके पीछे वह राक्षसी गण रावणकी आज्ञासे वह पुष्पक विमान लेकर अशोकवनमें वास करती हुई सीताजीके निकट पहुंचीं ॥ १२ ॥

राम और लक्ष्मण व और दूसरे शूर वानर वीरोंको किष्किन्धापुरीमें लेजाओ, और जबतक इन शत्रुओंके मारनेंवालोंको चैतन्यता न प्राप्त होवे, तब तक उसी स्थानमें इनकी रक्षा करते रहना॥ २४ ॥ और इस ओर हमभी, इस रावणको पुत्र पौत्र और बान्धवोंके साथ संहार करके, रावणसे हरी हुई जानकीजीका उद्धार करके लेआवेंगे, कि जैसे नष्ट हुई राज्यलक्ष्मीको इन्द्रजीनें फिर प्राप्त कियाथा ॥ २५ ॥ सुग्रीवजीके ऐसे वचन सुनकर सुषेण बोलेकि ॥ – " पहले हमनें देवता व असुरोंका बड़ाभारी संग्राम देखाथा " ॥ २६ ॥ उस संग्राममें बाण चलानेंमें अति चतुर और शस्त्रास्त्रके कर्ममें अति कुशल राक्षसोंनें जब रण करनेंमें चतुर देवता लोगोंको बाणोंके समूहसे वारंवार ढक लियाथा ॥ २७ ॥ तब देवतागुरु

अहंतुरावणंहत्वासपुत्रंसहबांधवम् ॥ मैथिलीमानयिष्यामिशक्रोनष्टामिवश्रियम् ॥ २५ ॥ श्रुत्वैतद्वानरेंद्रस्यसुषेणोवाक्यमब्रवीत् ॥ देवासुरंमहायुद्धमनुभूतंपुरातनम् ॥ २६ ॥ तदास्मदानवादेवान्शरसंस्पर्शकोविदान् ॥ निजघ्नुःशस्त्रविदुषश्छादयंतोमुहुर्मुहुः ॥ २७ ॥ तानार्तान्नष्टसंज्ञांश्चगतासूंश्चबृहस्पतिः ॥ विद्याभिर्मंत्रयुक्ताभिरोषधीभिश्चिकित्सति ॥ २८ ॥ तान्यौषधान्यानयितुंक्षीरोदंयांतुसागरम् ॥ जवेनवानराःशीघ्रंसंपातिपनसादयः ॥ २९ ॥ हरयस्तुविजानंतिपार्वतीतेमहौषधी ॥ संजीवकरणींदिव्यांविशल्यांदेवनिर्मिताम् ॥ ३० ॥ चंद्रश्चनामद्रोणश्चक्षीरोदेसागरोत्तमे ॥ अमृतंयत्रमथितंतत्रतेपरमौषधी ॥ ३१ ॥

बृहस्पतिजी उन देवताओंको पीड़ित चेतना रहित और विनाशको प्राप्त देखकर, मंत्रविद्याके प्रभावसे व यथायोग्य औषधियोंसे उनकी चिकित्सा करते रहे कि जिस्से वह समस्त देवता फिर जीवित होगये ॥ २८॥ हेराजन्! तिन औषधियोंको लानेंके अर्थ सम्पाति पनसादि वानर बहुतही शीघ्र क्षीर समुद्रके निकट जांय ॥ २९ ॥ कारणकि यह वानर उन दो पहाड़ी बूंटियोंको भली भांति जानतेहैं उन दोनों बूटियोंमें एकका नाम (संजीवनी) और एकका नाम (विशल्यकरणी) अर्थात् घावकी पीड़ाको दूर करनेंवालीहै ॥ ३० ॥ जिस स्थानपर देवता लोगोंनें समुद्रको मथन

मारे वारं वार विलाप करनें लगी ॥ २१ ॥ कृष्णलोचन वाली व कोमल अंगवाली जानकीजी अपने स्वामी और लक्ष्मणजीको धूरिमें लोटता हुआ देखकर रोदन करनें लगीं ॥ २२ ॥ इस प्रकारसे जनक कुमारी जानकीजी सुर सुत समान दोनों भाइयोंको ऐसी अवस्थामें देख " यह मृतक होगये " ऐसा मनमें स्थिर करती हुई और शोकके मारे उनका वदन मंडल आंसुओंकरके पूर्णहो जानेसे वह अत्यंत दुःखके मारे कहनें लगीं ॥ २३ ॥ इ० श्रीम० आ०यु०सप्तचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४७ ॥ अपने स्वामी और महावलवान लक्ष्मणजीको मृतक देखकर मारे शोक के दुर्वल सीताजी अत्यन्त करुणा भरी वाणीसे इस प्रकार विलाप करनेंलगीं ॥ १ ॥ हाय; सामुद्रिकके जाननेंवाले पुरुष हमको देखकर कहतेहैं

भर्तारमनवद्यांगीलक्ष्मणंचासितेक्षणा ॥ प्रेक्ष्यपांसुषुचेष्टंतौरुरोदजनकात्मजा ॥ २२ ॥ सबाष्पशोकाभिहतासमीक्ष्यतौभ्रातरौदेवसुतप्रभावौ ॥ वितर्कयंतीनिधनंतयोःसादुःखान्वितावाक्यमिदंजगाद ॥ २३ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेसप्तचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४७ ॥ भर्तारंनिहतंदृष्ट्वालक्ष्मणंचमहाबलम् ॥ विललापभृशंसीताकरुणंशोककर्शिता ॥ १ ॥ ऊचुर्लाक्षणिकायेमांपुत्रिण्यविधवेतिच ॥ तेऽद्यसर्वेहतेरामेऽज्ञानिनोऽनृतवादिनः ॥ २ ॥ यज्वनोमहिषींयेमामूचुःपत्नींचसत्रिणः ॥ तेऽद्यसर्वेहतेरामेज्ञानिनोऽनृतवादिनः ॥ ३ ॥ वीरपार्थिवपत्नीनांयेविदुर्भर्तृपूजिताम् ॥ तेऽद्यसर्वेहतेरामेज्ञानिनोऽनृतवादिनः ॥ ४ ॥ ऊचुःसंश्रवणेयेमांद्विजाःकार्तांतिकाः शुभाम् ॥ तेऽद्यसर्वेहतेरामेज्ञानिनोऽनृतवादिनः ॥ ५ ॥

कि तुम पुत्रवती होकर सदा सुहागन रहोगी, परन्तु आज श्रीरामचंद्रजीके मृतक हो जानेंसे उनके वह वचन मिथ्या हुए ॥ २ ॥ और जो लोग हमको देखकर कहते हैं कि तुम यज्ञ करने वाले राजाकी स्त्री होगी; हाय;आज श्रीरामचंद्रजीके मृतक हो जानेसे वह ज्ञानी लोगभी मिथ्यावादी हुए ॥ ३ ॥ हाय! और उन ज्ञानी लोगोंने हमको देखकर यहभी कहाथा कि तुम वीरराजाकी सब रानियोंमें बडी होगी, परन्तु बड़े शोककी वात है कि आज श्रीरामचंद्रजीके मरजानेंसे उन ज्ञानी लोगोंकी वातभी मिथ्या हुई ॥ ४ ॥ ज्योतिष शास्त्रके जाननेंवाले ब्राह्मणोंने हमको देख

शरीरमें जितने घाव थे वह सब भर गये, और वह दोनों ज   की समान चिकना शरीर और प्रथमहीकी समान शोभा धारण करते हुए ॥३९॥ इनका तेज, पराक्रम, शरीरका बल, महागुण, उत्साह, दर्शन शक्ति, बुद्धि और स्मरण शक्ति यह सब बातें पहलेसे दुगनी हो गईं ॥ ४० ॥ तिस समय महा तेजस्वी गरुडजीनें इन्द्र तुल्य भाइयोंको उठाकर अति हर्षसे अपने हृदयसे लगा लिया; तब श्रीरामचंद्रजी हर्षित अंतःकरण युक्त गरुड़जीसे बोले ॥ ४१ ॥ कि तुम्हारेही प्रसादसे हम इन्द्रजित कृत घोर विपदसे शीघ्र छूट गये, और अब हमारे शरीरोंमें भी प्रथम हीकी समान बल आगयाहै ॥ ४२ ॥ अधिक क्याकहैं पितामह अज और पिता दशरथजीको देख हमें जिस प्रकारका आनंद होता,

तेजोवीर्यंबलंचौजउत्साहश्चमहागुणाः॥प्रदर्शनंचबुद्धिश्चस्मृतिश्चद्विगुणातयोः॥४०॥तावुत्थाप्यमहातेजागरुडोवासवोपमौ ॥ उभौचसस्वजेहृष्टोरामश्चैनमुवाचह ॥ ४१ ॥ भवत्प्रसादाद्व्यसनंरावणिप्रभवंमहत् ॥ उपायेनव्यतिक्रांतौशीघ्रंचबलिनौकृतौ ॥ ४२ ॥ यथातातंदशरथंयथाऽजंचपितामहम् ॥ तथाभवंतमासाद्यहृदयंमेप्रसीदति ॥ ४३ ॥ कोभवान्रूपंसपन्नोदिव्यस्रगनुलेपनः ॥ वसानोविरजेवस्त्रेदिव्याभरणभूषितः ॥ ४४ ॥ तमुवाचमहातेजावैनतेयोमहाबलः ॥ पतत्रिराजःप्रीतात्माहर्षपर्याकुलेक्षणम् ॥ ४५ ॥ अहंसखातेकाकुत्स्थप्रियःप्राणोबहिश्चरः ॥ गरुत्मानिहसंप्राप्तोयुवयोःसाह्यकारणात् ॥ ४६ ॥

आपका दर्शन करनेंसे भी हमारे हृदयनें वैसीही प्रसन्नता प्राप्तकीहै॥४३॥आपनें स्वर्गीय हार और दिव्य अनुलेपन धारण कियाहै; दिव्य अलंकारसे अलंकृत होकर आपने विमल वस्त्र युगल धारण कियेहैं; इस कारण सत्यही सत्य बताइये कि आप कोनहैं? ॥ ४४ ॥ तब ऐसा सुनकर महा तेजस्वी विनताके पुत्र महाबल पक्षिराज गरुड़जी आनंदसे उत्फुल्लनेत्रहो प्रीति सहित श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ ४५ ॥ कि हे श्रीरामचंद्रजी ! हम आपके प्राणके समान प्रिय बाहर घूमनेंवाले सखाहैं; हमारा नाम गरुड़है; आपकी सहायता करनेंके अर्थही यहांपर आयेहैं ॥ ४६ ॥

हैं, इस प्रकार दश इन्द्रियें और मन बुद्धिसे हमको सब शुभ लक्षणवालीही कहते हैं ॥ १२ ॥ हमारे उंगलियोंके पोरुवोंपर सब यव पूरे हैं. कोई रेखासे खंडित नहीं और हाथ पैरकी सब उंगलियें घनीहैं, और समस्त अंग शोभासे युक्त हैं; इन सब लक्षणोंसे लक्षण जाननेंवाले लोग हमको मन्दस्मिता कहा करतेथे ॥ १३ ॥ हा! ज्योतिष शास्त्रके जाननें वाले ब्राह्मण लोगोंनें कहाथा कि "पतिके साथ तुम अधिराज्यपर अभिषिक्त होगी" परन्तु यह सबही आज मिथ्या होगया ॥ १४ ॥ हा! यह दोनों भ्राता जनस्थानके कंटकको दूर करके हमारा पता लगाय लांघनें के अयोग्य समुद्रके पार होकर अंतमें हमारे भाग्यसे गायके खुरके गढ़ेमें भरेहुए जलमें डूबगये ॥१५॥ हाय! इन दोनों वीरोंने वरुण आग्नेय इन्द्र वायव्य

समग्रयवमच्छिद्रंपाणिपादंचवर्णवत ॥ मंदस्मितेत्येवचमांकन्यालाक्षणिकाविदुः ॥ १३ ॥ आधिराज्येभिषेकोमे ब्राह्मणैः पतिनासह ॥ कृतांतकुशलैरुक्तंतत्सर्वंवितथीकृतम् ॥ १४ ॥ शोधयित्वाजनस्थानंप्रवृत्तिमुपलभ्यच ॥ तीर्त्वासागरमक्षोभ्यंभ्रातरौगोष्पदेहतौ ॥ १५ ॥ ननुवारुणमाग्नेयमैंद्रंवायव्यमेवच ॥ अस्त्रंब्रह्मशिरश्चैवराघवौप्रत्यपद्यत ॥ १६ ॥ अदृश्यमानेनरणेमाययावासवोपमौ ॥ ममनाथावनाथायानिहतौरामलक्ष्मणौ ॥ १७ ॥ नहिदृष्टिपथंप्राप्यराघवस्यरणेरिपुः ॥ जीवन्प्रतिनिवर्तेतयद्यपिस्यान्मनोजवः ॥ १८ ॥ नकालस्यातिभारोस्तिकृतांतश्चसुदुर्जयः ॥ यत्ररामःसहभ्रात्राशेतेयुधिनिपातितः ॥ १९ ॥

और ब्रह्मशिर नामक जिन अस्त्रोंको प्राप्त कियाथा. किस कारणसे यह सब अस्त्र इन्होंनें इस कुसमयमें स्मरण नहीं किये * ॥१६॥ हाय! हाय! मुझ अनाथिनीके नाथ इन्द्रकी समान पराक्रमकारी राम और लक्ष्मणजी मायाके बलसे अन्तर्ध्यान हुए इन्द्रजीतके हाथसे संग्राम भूमिमें मारे गये हैं ॥ १७ ॥ इन्द्रजीतनें अदृश्य रह करही ऐसा किया है; परन्तु संग्राममें वह किसी प्रकारसेभी ऐसा नहीं कर सकता कारण कि रणभूमिमें रघुनंदनकी दृष्टिके सामनें पड़कर मनकी समान वेगवान् शत्रुभी जीता हुआ लौटकर नहीं जाय सकता ॥ १८ ॥ जो कुछभी हो कालके लिये कोईभी कार्य दुष्कर नहीं है. और को तौ जीतभी लियाजाय सकता है, परन्तु कालको कोई जीतनेंवाला नहीं, यदि ऐसा न होता तो यह दोनों भ्राता रण

* "किस कारणसे उन्होंनें यह सब अस्त्र इस कुसमयमें स्मरण नहीं किये।" यह कथा मूलमें नहीं है; परन्तु टीकाकारका अभिप्रायहै.

दृष्टान्तसे जान गये कि राक्षस लोग कैसे कुटिल होतेहैं ॥ ५४ ॥ महा बलवान विनताके पुत्र गरुड़जी यह कहकर दशरथ कुमार श्रीरामचंद्रजीको भेंट स्नेह सहित यह वचन बोले ॥ ५५ ॥ हे मित्रश्रीरामचंद्रजी! हे धर्मज्ञ ! शत्रुके प्रतिभी आप बहुतही अनुग्रह किया करतेहैं । इस समय हम आपकी आज्ञा लेकर अपने स्थानमें जानेंकी इच्छा करतेहैं ॥ ५६ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी हमारे प्रति तुम्हारा सखा संबन्ध किस प्रकारसे हुआ इसके जाननेंको आप कौतूहल प्रकाश नकीजिये, युद्धमें विजय प्राप्त करके जिस समय आप अपने देशको लौटेंगे उसी समय यह सम्बन्ध आपको ज्ञात हो जायगा ॥ ५७ ॥ हे वीर श्रीरामचंद्रजी ! आपके बाणोंकी तरंगोंके वेगसे लंकापुरी विध्वंस होकर केवल बालक और बूढे

एवमुक्कातदारामंसुपर्णःसमहाबलः ॥ परिष्वज्यचसुस्निग्धमाप्रष्टुमुपचक्रमे ॥ ५५ ॥ सखेराघवधर्मज्ञरिपूणामपिवत्सल ॥ अभ्यनुज्ञातुमिच्छामिगमिष्यामियथासुखम् ॥५६॥ नचकौतूहलंकार्यंसखित्वंप्रतिराघव ॥ कृतकर्मारणेवीरसखित्वंप्रतिवेत्स्यसि ॥५७॥ बालवृद्धावशेषांतुलंकांकृत्वाशरोर्मिभिः ॥ रावणंतुरिपुंहत्वासीतांत्वमुपलप्स्यसे॥५८॥ इत्येवमुक्कावचनंसुपर्णःशीघ्रविक्रमः ॥ रामंचनीरुजंकृत्वामध्येतेषांवनौकसाम् ॥५९॥ प्रदक्षिणंततःकृत्वापरिष्वज्यचवीर्यवान् ॥ जगामाकाशमाविश्यसुपर्णःपवनोयथा ॥ ६० ॥ नीरुजौराघवौदृष्ट्वाततोवानरयूथपाः ॥ सिंहनादंतदानेदुर्लांगूलंदुधुवुश्चते ॥६१॥ ततोभेरीःसमाजघ्नुर्मृदंगांश्चाप्यवादयन् ॥ दध्मुःशंखान्संप्रहृष्टाःक्ष्वेलंत्यपियथापुरम्॥६२॥

लोगोंकी रहनेंकी भूमि हो जायगी हम निश्चय कहते हैं कि आप बहुतही शीघ्र संग्राममें रावणका संहार करके सीताजीको प्राप्त कर सकेंगे ॥ ५८ ॥ शीघ्र विक्रम वीर्यवान सुपर्ण (गरुड) जी श्रीरामचन्द्रजी व लक्ष्मणजो दोनोंको रोगरहित करते यह कहकर वानरोंके बीचमें बैठे श्रीरामचन्द्रजीकी ॥ ५९ ॥ प्रदक्षिणा कर पवनकी समान वेग धारण कर आकाशमार्गको गरुडजी चलेगये ॥ ६० ॥ तिसके उपरान्त दोनो रघुवीरोंको रोग रहित देखकर वानर यूथपगण मनमें आनंद मनाय सिंहनादकर अपनी पूंछको कम्पायमान करने लगे ॥ ६१ ॥ इसके पीछे भेरियोंका शब्द उठा मृदंगोंकी नाद होनें लगी इतने शंख बजेकि उनकी ध्वनि आकाशमें गुंजारती रही और सब वानर लोग हर्षित

सैना बड़ी सावधानतासे उद्वेग रहितहो दोनों भ्राता राम लक्ष्मणजीकी रक्षा करती हैं; इस कारण हमें ज्ञात होताहै, कि यह मृतक न होकर मूर्छित होगये हैं यह बात हमने प्रीतिके कारण तुमसे कहीहै. ॥ २७ ॥ हेजानकी! तुम इस समय सावधान होवो, हमको स्पष्ट अनुमान करनेंसे जान पड़ताहैकि राम लक्ष्मणजीका कुछ अमंगल नहीं हुआ, तुम्हारे प्रति हमारा स्नेह जोहै इसी कारण तौ हम तुमसे यह बात कहती हैं ॥ २८ ॥ हेमैथिलि! हमनें पहले कभी तुमसे कोई मिथ्या वार्त्ता न कही, न अब कहैं, हे देवि! अधिक क्या कहैं तुमने अपने निर्मल चरित्रके प्रभावसे हमारे अंतःकरणको अपने वशमें कर लियाहै ॥ २९ ॥ हमनें श्रीरामचंद्र व लक्ष्मणजीकी जो सौम्यमूर्त्ति देखीहै; तिसको देखकर

सात्वंभवसुविस्रब्धाअनुमानैःसुखोदयैः॥ अहतौपश्यकाकुत्स्थौस्नेहादेतद्ब्रवीमिते ॥२८॥ अनृतंनोक्तपूर्वंमेनचवक्ष्यामिमैथिलि ॥ चारित्रसुखशीलत्वात्प्रविष्टासिमनोमम ॥ २९ ॥ नेमौशक्यौरणेजेतुंसेंद्रैरपिसुरासुरैः ॥ तादृशंदर्शनंदृष्ट्वामयाचोदीरितंतव ॥ ३० ॥ इदंतुसुमहच्चित्रंशरैःपश्यस्वमैथिलि ॥ विसंज्ञौपतितावेतौनैवलक्ष्मीर्विमुंचति ॥ ३१ ॥ प्रायेणगतसत्वानांपुरुषाणांगतायुषाम् ॥ दृश्यमानेषुवक्त्रेषुपरंभवतिवैकृतम् ॥ ३२ ॥ त्यजशोकंचदुःखंचमोहंचजनकात्मजे ॥ रामलक्ष्मणयोरर्थेनाद्यशक्यमजीवितुम् ॥ ३३ ॥

हम निश्चयही कह सकतीहैं कि इनको पराजित करनेकी सुर व असुरोंके सहित इन्द्रमेंभी सामर्थ्य नहीं है, फिर यह राक्षस बिचारे तौ हैं ही क्या वस्तु? ॥ ३० ॥ हेरामप्राणवल्लभे! और एक बात आश्चर्यकी यहभी है कि यह दोनों बाणोंसे विद्ध और संज्ञाहीन होकर पृथ्वी पर गिर पड़े हैं; परन्तु जिस परभी इनकी सुन्दरताईमें कुछ अन्तर नहीं आयाहै ॥ ३१ ॥ बहुधा देखनेंमें आताहै कि प्राणियोंका जीवन नष्ट या शक्तिहीन होनेपर उनके मुखकी शोभा नहीं रहती वरन मुखकी आकृति बिगड़ जातीहै हेजनककुमारी! हम इसीलिये कहतीहैं कि तुम शोक दुःख और मोहको छोड़ो; कारणकि यदि राम लक्ष्मण जीवरहित होते तौ इनके शरीरोंपर ऐसा लावण्य किसी प्रकारसेभी नहीं रहता ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

समय उन वानरवृन्दोंका यह बड़ा भारी शब्द उठनेंसे हमको अत्यन्तही शंका होतीहै ॥ ५ ॥ राक्षसोंका स्वामी रावण निज मंत्रियोंसे ऐसा कह अपने निकट बैठे हुए राक्षसोंसे बोला ॥ ६ ॥ कि इन वनवासी वानर लोगोंका ऐसे शोकके समय एकाएकी आनंदित होंनेका कारण तुम लोग जानकर शीघ्र आओ ॥ ७ ॥ राक्षसगण इस प्रकारसे रावणकी आज्ञा पाय सावधानहो एक धवरहरे पर जोकि अति ऊंचाथा चढ़े और तब उन्होंने देखा कि महात्मा सुग्रीवजी उस वानर वाहिनीकी रक्षा करते हैं ॥ ८ ॥ श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी यह दोनों भ्राता भी नाग फांससे छुटकर उठ बैठेहैं, यह देखकर यह राक्षस अत्यन्तही विषादित हुए ॥९॥ उस समय यह राक्षस त्रासित मनसे कोटकी अति ऊंची भीतसे नीचे

एवंचवचनंचोक्त्वामंत्रिणोराक्षसेश्वरः ॥ उवाचनैर्ऋतांस्तत्रसमीपपरिवर्तिनां ॥ ६ ॥ ज्ञायतांतूर्णमेतेषांसर्वेषांचवनौकसाम् ॥ शोककालेसमुत्पन्नेहर्षकारणमुत्थितम् ॥ ७ ॥ तथोक्तास्तेसुसंभ्राताःप्राकारमधिरुह्यच ॥ ददृशुःपालितांसेनांसुग्रीवेणमहात्मना ॥८॥ तौचमुक्तौसुघोरेणशरबंधेनराघवौ ॥ समुत्थितौमहाभागौविषेदुःसर्वराक्षसाः ॥९॥ संत्रस्तहृदयाःसर्वेप्राकारादवरुह्यते ॥ विवर्णाराक्षसाघोराराक्षसेंद्रमुपस्थिताः ॥१०॥ तदप्रियंदीनमुखारावणस्यचराक्षसाः ॥ कृत्स्नंनिवेदयामासुर्यथावद्वाक्यकोविदाः ॥ ११ ॥ यौताविंद्रजितायुद्धेभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ निबद्धौशरबंधेननिष्प्रकंपभुजौकृतौ ॥ १२ ॥ विमुक्तौशरबंधेनदृश्येतेतौरणाजिरे ॥ पाशानिवगजौछित्त्वागजेंद्रसमविक्रमौ ॥ १३ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतेषांराक्षसेंद्रोमहाबलः ॥ चिंतारोपसमाक्रांतोविवर्णवदनोऽभवत् ॥ १४ ॥

उतरनें लगे, उनके मुखकी कान्ति मलीन होगई और वह सब अत्यन्त दीन भावसे रावणके निकट आये ॥ १० ॥ उन दीन मुख वचन बोलनेंमें चतुर राक्षसोंनें रावणके अप्रिय वचन यथार्थ २ निवेदन किये ॥ ११ ॥ कि जो राम लक्ष्मण संग्राम भूमिमें इन्द्रजीतके द्वारा वाणोंसे विंध गयेथे और तिसके वाद जिनकी दोनो भुजायें कुछ भी हिलडुल नहीं सकती थीं ॥ १२ ॥ इस समय हमनें देखाकि गजेन्द्रविक्रमकारी वह दोनों भ्राता दो गजोंकी समान नागफांशको तोडकर बाणबन्धनसे छूट रणभूमिमें विराजमान होरहेहैं ॥ १३ ॥ महाबलवान राक्षसोंका स्वामी राक्षसोंके मुखसे यह समाचार सुनकर चिन्ताके वशमें हुआ, और शोचके मारे उस समय उसका मुखमंडलभी प्रभाहीन होगया ॥ १४ ॥

और बलकी अधिकाईके अनुसार वह इस समय सचेत हुए ॥ ३ ॥ जाग कर श्रीरामचंद्रजी अपने छोटे भइया लक्ष्मणजीको दीन वदन किये शरीरसे रक्त वहाते पृथ्वीपर शयन करते हुए देखकर आतुर पुरुषकी समान रोदन करनें लगे ॥ ४ ॥ कि जब हमनें प्राणोंसेभी अधिक अपने प्रिय भ्राता लक्ष्मणजीको युद्धमें पराजित और पृथ्वी पर पड़े हुए देखा, फिर भला अब हम सीताका उद्धार करके क्या करेंगे, और हमारे इस जीवन धारण करनेंकाभी क्या प्रयोजनहै? ॥ ५ ॥ हाय ! पृथ्वीपर ढूंढ़नेंसे सीताकी समान अनेक स्त्रियां पाई जासकतीहैं; परन्तु त्रिलोकीमें ढूंढ़नेंसेंभी लक्ष्मणकी समान संग्रामका मंत्री भाई हम नहीं पाय सकेंगे "मिलहिं न जगत सहोदर भ्राता" ॥ ६ ॥ जो यह सुमित्राजीके आनंद बढ़ानें

ततोदृष्ट्वासरुधिरंनिषण्णंगाढमर्पितम् ॥ भ्रातरंदीनवदनंपर्यदेवयदातुरः ॥ ४ ॥ किंनुमेसीतयाकार्यंलब्धयाजीवितेनवा ॥ शयानंयोद्यपश्यामिभ्रातरंयुधिनिर्जितम् ॥ ५ ॥ शक्यासीतासमानारीमर्त्यलोकेविचिन्वता ॥ नलक्ष्मणसमोभ्रातासचिवःसांपरायिकः ॥ ६ ॥ परित्यक्ष्याम्यहंप्राणान्वानराणांतुपश्यताम् ॥ यदिपंचत्वमापन्नःसुमित्रानंदवर्धनः ॥७॥ किंनुवक्ष्यामिकौसल्यांमातरंकिंनुकैकयीम् ॥ कथमंबांसुमित्रांचपुत्रदर्शनलालसाम् ॥ ८ ॥ विवत्सांवेपमानांचवेपंतींकुररीमिव ॥ कथमाश्वासयिष्यामियदियास्यामितंविना ॥ ९ ॥ कथंवक्ष्यामिशत्रुघ्नंभरतंचयशस्विनम् ॥ मयासहवनंयातोविनातेनाहमागतः ॥ १० ॥

वाले लक्ष्मणजी मृतक होगयेहों तब हम इसी मुहूर्त्तमें समस्त वानरोंके सन्मुखही प्राण त्याग करेंगे ॥ ७ ॥ क्या कष्टहै ? जबकि हम अयोध्याजीमें लौटकर जांयगे तब माता, कौशल्या, कैकेयी, और पुत्रके दर्शनकी लालसा किये माता सुमित्राजीसे क्या कहेंगे ॥ ८ ॥ हादैव! जो हम अयोध्यापुरीको विना लक्ष्मणकेही चलेजांय; तौ कुररीकी समान कम्पायमान उन वत्सरहित सुमित्राजीको हम क्या कहकर समझावेंगे ॥ ९ ॥ हा! हम जिनके साथ वनमें आयेथे, उन लक्ष्मणजीके विना अयोध्यामें लौट कर हम यशस्वी भरत और शत्रुघ्नसे क्या कहेंगे कुछ समझमें नहीं आता ॥ १० ॥

नाद करते हुए हर्षित मनसे धूम्राक्षके चारों ओर खड़े होगये, वह समस्त राक्षस अतिशय बलवानथे उनकी कमरमें घंटे लगे हुए बज रहेथे ॥२३॥ विविध भांतिके अस्त्र शस्त्र ग्रहणकर, शूल, मुद्गर, गदा, पटा, दंड, मूसल आदि धारण किये ॥ २४ ॥ बड़े २ मुद्गर, धनवासी, भाले, फांसी, फरसे आदि अस्त्र शस्त्र लिये समस्त राक्षसगण मेघकी समान गर्जन करते हुए चले ॥ २५ ॥ उन राक्षसोंमें कोई २ कवच धारण करके ध्वजा पताकासे शोभायमान विचित्र चित्रित रथोंमें सवार हुए और कोई २ सुवर्ण जाल मंडित विविध भांतिके मुखवाले गधोंपर चढ़े ॥२६॥ और कोई २ राक्षस अति शीघ्रतासे चलनेंवाले घोडों पर चढ़ चले और कोई २ मदान्ध हाथियोंकी पीठपर सवार हुए; इस प्रकारसे वह राक्षसव्याघ्र लोग अजेय व्या

विविधायुधहस्ताश्चशूलमुद्गरपाणयः ॥ गदाभिःपट्टिशैर्दंडैरायसैर्मुसलैरपि ॥ २४ ॥ परिघैर्भिंदिपालैश्चभल्लैः पाशैःपरश्वधैः ॥ निर्ययूराक्षसाघोरानर्दंतोजलदायथा ॥ २५ ॥ रथैःकवचिनस्त्वन्येध्वजैश्चसमलंकृतैः ॥ सुवर्ण जालविहितैःखरैश्चविविधाननैः ॥ २६ ॥ हयैःपरमशीघ्रैश्चगजैश्चैवमदोत्कटैः ॥ निर्ययुर्नैर्ऋतव्याघ्राव्याघ्राइवदुरा सदाः ॥ २७ ॥ मृगसिंहमुखैर्युक्तंखरैःकनकभूषितैः ॥ आरुरोहरथंदिव्यंधूम्राक्षःखरनिःस्वनः ॥ २८ ॥ सनिर्या तोमहावीर्योधूम्राक्षोराक्षसैर्वृतः ॥ हसन्वैपश्चिमद्वाराद्धनूमान्यत्रातिष्ठति ॥ २९ ॥ रथप्रवरमास्थायखरयुक्तंखर स्वनम् ॥ प्रयांतंतुमहाघोरंराक्षसंभीमदर्शनम् ॥ ३० ॥ अंतरिक्षगताःक्रूराःशकुनाःप्रत्यषेधयन् ॥ रथशीर्षेम हाभीमोगृध्रश्चनिपपातह ॥ ३१ ॥

घ्रकी समान गमन करनें लगे ॥ २७ ॥ महावीर धूम्राक्ष कनकभूषित भेडियां सिंह और व्याघ्र मुखवाले गधे जुते हुए रथमें बैठकर रणमें जानें लगा ॥ २८ ॥ इस प्रकार महावीर धूम्राक्ष बड़ीभारी राक्षसोंकी सैनाके साथ जहां पर हँसते हुए मुखसे हनुमानजी डट रहेथे लंकाके उस पश्चिम द्वारपर आया ॥ २९ ॥ कठोर शब्द करनेंवाले गधे जुते, श्रेष्ठ रथपर सवार हो, महाघोर, भयंकर विक्रमकारी राक्षसको जाताहुआ देख ॥ ३० ॥ आकाशमें प्राप्त हुए क्रूर शकुन विविध अमंगलकारी चिह्नोंसे उस राक्षस को निवारण करते हुए कि पहले तो धूम्राक्षके रथकी छत्रीपर एक बड़ा

प्रीति दिखलातेथे और हमारीभी आज्ञामें सदाही रहतेथे; आज इस कुभागी मुझ दशरथके पुत्रकी कुनीतिसेही उन लक्ष्मणजीकी ऐसी दशा हुई॥१८॥ हाय! यह वीर लक्ष्मणजी भी जब कि महा कोपके वश होजाते; तबभी कभी इन्होंनें हमको कोई कठोर वचन न सुनायाथा. ऐसा तौ हमको स्मरणनहीं होता अर्थात् इन्होंनें कभी हमको कठोर वचन नहीं कहा॥१९॥हाय! जो लक्ष्मण दोबांहोंवाले होकरभी जबकि एक वेगमेंही पांच २ शत बाण छोडतेथे. तब अस्त्र चलानेमें यह सहस्र बाहोंवाले कार्त्तवीर्यसेभी अधिकथे; कारणकि वह तौ हजार बाहें होंनेपर एक कालमें पांचशत बाण चलाताथा; परन्तु यह दोबांहोंसेंही एक कालमें पांच शत बाण छोड़तेथे ॥ २० ॥ हा! जो वीर अपने अस्त्रोंके बलसे इन्द्रके वज्रादि अस्त्रोंको,"भी निवारणकरसकतेथे;और पहले जिनको बड़े मोलकी शय्या पर शयन करनेंसेभी निद्रा न आतीथी; आज वही लक्ष्मणजी मेघनादके बाणोंसे मृतक

सुरुष्टेनापिवीरेणलक्ष्मणेननसंस्मरे ॥ परुषंविप्रियंचापिश्रावितंतुकदाचन॥ १९ ॥ विससर्जैकवेगेनपंचबाणशतानि यः ॥ इष्वस्त्रेष्वधिकस्तस्मात्कार्तवीर्याच्चलक्ष्मणः॥ २० ॥ अस्त्रैरस्त्राणियोहन्याच्छक्रस्यापिमहात्मनः ॥ सोयमुर्व्यां हतःशेतेमहार्हशयनोचितः ॥ २१ ॥ तत्तुमिथ्याप्रलप्तंमांप्रधक्ष्यतिनसंशयः ॥ यन्मयानकृतोराजाराक्षसानांविभीषणः॥ २२॥ अस्मिन्मुहूर्तेसुग्रीवप्रतियातुमिहार्हसि॥ सत्त्वहीनंमयाराजन्रावणोभिभविष्यति॥ २३ ॥ अंगदंतुपुरस्कृत्यससैन्यंसपरिच्छदम्॥ सागरंतरसुग्रीवनीलेनचनलेनच ॥ २४ ॥ कृतंहिसुमहत्कर्मयदन्यैर्दुष्करंरणे ॥ ऋक्षराजेनतुष्यामिगोलांगूलाधिपेनच ॥ २५ ॥

होकर पृथ्वीपर शयन कररहे हैं ॥ २१ ॥ हाय! हमनें जो " विभीषणको लंकाका राजा बनावेगे " ऐसी प्रतिज्ञा कीथी, और अब इस प्रतिज्ञाको पूरा न करसके बस इस समय वही मिथ्या प्रलाप हमारी आत्माको दग्ध किये डालताहै ॥ २२ ॥ हे सुग्रीव! जबकि हम प्राणत्याग करेंगे; तब रावण तुमको बलहीन समझकर अवश्यही कोई न कोई उपद्रव करेगा, इस कारण तुम इसी मुहूर्त यहां परसे अपनें देश किष्किन्धाको चले जाओ ॥२३॥ हे सुग्रीव! तुम अंगद व सब सैनाकोभी आगे२ करकै नील नल और भी सैनाके सब सामान सहित समुद्रके पार होकर शीघ्रता करकै यहांसे चले जाओ ॥ २४ ॥ हनुमाननें हमारे लिये रणभूमिमें औरसे न होनेके योग्य जो कठिन कर्म किये, और ऋक्षराज जाम्बवान व

युद्ध प्रारंभ हुआ उस समय वह बड़े २ वृक्ष, शूल, मुद्गर चलाय २ कर परस्पर परस्परके ऊपर प्रहार करनें लगे ॥ २ ॥ निशाचरोंनें वानर लोगोंको सब भांतिसे घेर लिया, और, वानर गणभी वृक्षोंको चलाय २ राक्षसोंको पृथ्वीपर शयन करानें लगे ॥ ३ ॥ राक्षसभी क्रोधमें भरकर तीखे बाण समूह और सीधे चलनेंवाले घोर रूप कंकपत्रयुक्त बाणोंसे वानरोंका नाश करनें लगे ॥ ४ ॥ उस समय महाबलवान वानरगण भयंकर गदा, शूल, पटा, मुद्गर घोर परिघ और चित्र विचित्र शूलोंके द्वारा॥५॥राक्षसोंसे विदारितहो क्रोधमें भरकर और उत्साहसे भरपूरहो भयरहितकी समान युद्धके कर्म करनें लगे ॥ ६ ॥ वानरोंके शरीर बाणोंसे घायल होनें लगे; उनकी देहमें स्थान २ पर घाव होगये, वह वानर यूथप राक्ष

राक्षसैर्वानराघोराविनिकृत्ताःसमंततः ॥ वानरैराक्षसाश्चापिद्रुमैर्भूमिसमीकृताः ॥ ३ ॥ राक्षसास्त्वभिसंक्रुद्धावानरान्निशितैःशरैः ॥ विव्यधुर्घोरसंकाशैःकंकपत्रैरजिह्मगैः ॥ ४ ॥ तेगदाभिश्चभीमाभिःपट्टिशैःकूटमुद्गरैः ॥ घोरैश्चपरिघैश्चित्रैस्त्रिशूलैश्चापिसंश्रितैः ॥ ५ ॥ विदार्यमाणारक्षोभिर्वानरास्तेमहाबलाः ॥ अमर्षजनितोद्धर्षाश्चक्रुःकर्माण्यभीतवत् ॥ ६ ॥ शरनिर्भिन्नगात्रास्तेशूलनिर्भिन्नदेहिनः ॥ जगृहुस्तेद्रुमांस्तत्रशिलाश्चहरियूथपाः ॥ ७ ॥ तेभीमवेगाहरयोनर्दमानास्ततस्ततः ॥ ममंथूराक्षसान्वीरान्नामानिचबभाषिरे ॥ ८ ॥ तद्बभूवाद्भुतंघोरंयुद्धंवानररक्षसाम् ॥ शिलाभिर्विविधाभिश्चबहुशाखैश्चपादपैः ॥ ९ ॥ राक्षसामथिताःकेचिद्वानरैर्जितकाशिभिः ॥ प्रवेमूरुधिरंकेचिन्मुखैरुधिरभोजनाः ॥ १० ॥ पार्श्वेषुदारिताःकेचित्केचिद्राशीकृताद्रुमैः ॥ शिलाभिश्चूर्णिताःकेचित्केचिद्दंतैर्विदारिताः ॥ ११ ॥

सोंके निकटसे अपनी पराजय सहन न करके बड़े २ वृक्षोंको ग्रहणकर उनकी ओर दौड़े ॥ ७ ॥ भयंकर वेगवान वानर लोग सिंहनाद करके वीर राक्षसोंका संहार करनें लगे ; चोट चलानेंके समय सबही एक दूसरेको अपना २ नाम बतानें लगे ॥ ८ ॥ उस कालमें अनेक शाखाओंसे युक्त वृक्ष और विविध भांतिकी शिलाओंके चलाये जानेंसे वह वानर और राक्षसोंका घोर युद्ध अद्भुत जान पड़नें लगा ॥ ९ ॥ उस समय कितनेंही रुधिर पान करनेंवाले निशाचरगण जीतेजानेंसे प्रसन्न वानरोंसे मारखाय रुधिर उगलनें लगे ॥ १० ॥ इसी प्रकारसे किसी २ की देह छिन्न होगई , कोई २ वृक्षोंकी चोटसे मरगये, कोई २ शिलाओंकी चोटसे पिसकर चूर्णकी समान होगये, और कोई २ तीक्ष्ण दातोंके

इसके पीछे महाबलवान् महातेजवान् वानरराज सुग्रीवजी बोले कि जलके बीचमें प्रचंड पवनके लगनेंसे नौकाकी समान किस प्रकारसे यह वानरोंकी सैना ऐसी चलायमान हुई ॥ १ ॥ सुग्रीवजीके ऐसे वचन सुन वालिके पुत्र अंगद बोले क्या तुम महारथी श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी को नहीं देखते ! ॥ २ ॥ जो दशरथकुमार बड़े वीर होनेपरभी बाणजालसे विंधे हैं, इनके सब अंगोंसे रुधिर निकल रहा है, और बाणोंकी शय्या पर सोय रहे हैं जबकि यही ऐसी अवस्थामें पड़कर दुःख पाय रहे हैं तब सैनाके इस प्रकारसे चलायमान होनेंका कारण इसके अतिरिक्त और क्या हो सकता है? तिसके पीछे वानरोंके स्वामी सुग्रीवजी अपने भतीजे अंगदसे बोले कि वत्स! वानरगण जो ऐसे चलायमान हुए हैं,इसका कोई बड़ा भारी

अथोवाचमहातेजाहरिराजोमहाबलः ॥ किमियंव्यथितासेनामूढवातेवनौर्जले ॥ १ ॥ सुग्रीवस्यवचःश्रुत्वावालिपुत्रोंगदोब्रवीत् ॥ नत्वंपश्यसिरामंचलक्ष्मणंचमहारथम् ॥ २ ॥ शरशालाचितौवीरावुभौदशरथात्मजौ ॥ शरतल्पेमहात्मानौशयानौरुधिरोक्षितौ ॥३॥ अथाब्रवीद्वानरेंद्रःसुग्रीवःपुत्रमंगदम् ॥ नानिमित्तमिदंमन्येभवितव्यंभयेनतु ॥ ४ ॥ विषण्णवदनाह्येतेत्यक्तप्रहरणादिशः ॥ पलायंतेत्रहरयस्त्रासादुत्फुल्ललोचनाः ॥ ५ ॥ अन्योन्यस्यनलज्जंतेननिरीक्षंतिपृष्ठतः ॥ विप्रकर्षंतिचान्योन्यंपतितंलंघयंतिच ॥ ६ ॥ एतस्मिन्नंतरेवीरोगदापाणिर्विभीषणः ॥ सुग्रीवंवर्धयामासराघवंचजयाशिषा ॥ ७ ॥ विभीषणंचसुग्रीवोदृष्ट्वावानरभीषणम् ॥ ऋक्षराजंमहात्मानंसमीपस्थमुवाचह ॥ ८ ॥

कारण है ऐसा समझ पड़ताहै कि कोई भय आया होगा॥ ३ ॥४॥ यह देखो वानर गण व्याकुल मुख किये समस्त अस्त्र शस्त्रोंको त्याग चारों ओरको भागे जाते हैं; और भयके मारे उन सबके नेत्र लाल और चंचल हो रहे हैं ॥ ५ ॥ देखो ! यह सब ऐसे डरगये हैं कि भागनेंमें कुछभी लाज नहीं करते, कोई सन्मुख पड़कर गतिको रोकै तो उसको खैंचकर पीछे ढकेल देते; और कोई गिरजाय तो उसको लांघते हुए सब भागे जाते हैं; और कोई पीछेकी ओरको दृष्टि नहीं करता ॥ ६ ॥ सुग्रीवजी ऐसा कहरहे थे कि इतनेमें वीर विभीषणजी गदा हाथमें लिये वहां आय पहुंचे और विजयसूचक आशीर्वाद देकै वचनोंसे रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी और वानरराज सुग्रीवजीको प्रणाम करते हुए ॥ ७ ॥ तब सुग्रीवजी विभीष

विह्वलहो जीव गँवाय संग्रामभूमिमें गिरपड़े ॥ २० ॥ और बहुतसे वानर क्रोधित राक्षसों करके रणभूमिमें मारे जायकर रुधिर बहतीहुई देहसे
पृथ्वीपर गिर पड़े और कोई २ लोहू लुहान होकर भागनें लगे ॥ २१ ॥ इस दारुण संग्राममें राक्षस गण क्रोधके मारे यमराजकी समान मूर्त्ति धार
णकर वानरोंके हृदय चीरनें फाड़नें लगे, कि जिस्से कोई २ वानर एक ओर को गिर पड़े; और कोई २ त्रिशूलसे घायल हुए और बहुतसे अस्त्रके
प्रभावसे भाग निकले ॥२२ ॥ इस प्रकारसे वानर और राक्षसोंका भयंकर युद्ध होने लगा, दोनो ओरसे अनेक अस्त्र शस्त्र चले, और शिला समेत
वृक्षोंकी वृष्टि होनें लगी ॥ २३ ॥ धीरे २ रणभूमि गीत विद्याका रूप धारण करती हुई, राक्षसोंके धनुषोंके रोदोंका शब्द वीनाके तारका कार्य

केचिद्विनिहताभूमौरुधिरार्द्रावनौकसः ॥ केचिद्विद्राविताःनष्टाःसंक्रुद्धैराक्षसैर्युधि ॥ २१ ॥ विभिन्नहृदयाःकेचिदेकपा
र्श्वेनशायिताः ॥ विदारितास्त्रिशूलैश्चकेचिदांत्रैर्विनिःसृताः ॥ २२ ॥ तत्सुभीमंमहद्युद्धंहरिराक्षससंकुलम् ॥ प्रबभौ
शस्त्रबहुलंशिलापादपसंकुलम् ॥ २३ ॥ धनुर्ज्यातंत्रिमधुरंहिक्कातालसमन्वितम् ॥ मंदस्तनितगीतंतद्युद्धगांधर्वमा
बभौ ॥ २४ ॥ धूम्राक्षस्तुधनुष्पाणिर्वानरान्रणमूर्धनि ॥ हसन्विद्रावयामासदिशस्ताञ्छरवृष्टिभिः ॥ २५ ॥ धू
म्राक्षेणार्दितंसैन्यंव्यथितंप्रेक्ष्यमारुतिः ॥ अभ्यवर्ततसंक्रुद्धःप्रगृह्यविपुलांशिलाम् ॥ २६ ॥ क्रोधाद्विगुणताम्राक्षः
पितुस्तुल्यपराक्रमः ॥ शिलांतांपातयामासधूम्राक्षस्यरथंप्रति ॥ २७ ॥ आपतंतींशिलांदृष्ट्वागदामुद्यम्यसंभ्रमात् ॥
रथादाप्लुत्यवेगेनवसुधायांव्यतिष्ठत ॥ २८ ॥

करनें लगा और वीरोंको गिरनेंके समय जो हिचकियें आनें लगीं, वही ताल गिनीगई, और हाथियोंका गर्जनाही उस समय गीतकी समान जान पड़
ताथा, इस प्रकार यह द्वन्द्वयुद्ध गन्धर्वविद्याकी तुल्य शोभाको प्राप्त हुआ ॥ २४ ॥ राक्षस धूम्राक्ष इस प्रकारसे संग्राम भूमिमें धनुष धार बा
णवर्षाय सर्व दिशा छाय हँसते २ सब वानरोंको मार भगाय देता हुआ॥२५॥धूम्राक्षके हाथसे वानरोंकी सैनाको अत्यन्त पीड़ित देखकर हनुमा
न्जी क्रोधके मारे घुमाते बड़ी भारी शिला ग्रहण करके उस्से युद्ध करनेंके लिये आगे बढ़े ॥ २६ ॥ पिता पवनकी त[illegible]
क्रोधके मारे अरुणनयन हो उस बडी भारी शिलाको धूम्राक्षके रथपर अति जोरसे मारते [illegible]

टिल बुद्धिसे यह सरल बुद्धिवाले दोनों राजकुमार धोखा खाय गये हैं ॥ १६ ॥ यह बाणोंसे युक्त और शरीरमें रुधिर निकलनेंके कारण पृथ्वीमें पड़े रहनेंसे कांटोंसे युक्त सैंजनेके वृक्षकी समान जान पड़ते हैं ॥ १७ ॥ हाय! जिनके वीर्यके ऊपर भरोसा करकेही हमनें लंकाकी राज्यगद्दीपर बैठनेंकी अभिलाषा की थी, इस समय वही पुरुषश्रेष्ठ दोनों राजकुमार अपनी देहका नाश करनेके लियेही पृथ्वीपर पड़े हैं ॥ १८ ॥ हाय! इनकी ऐसी अवस्था होनेपर हम तो जीते हुए मर गये; और मनमें जो राज्यप्राप्त करनेंकी बलवती आशा हुईथी, वहभी नाशको प्राप्त हुई, परन्तु शत्रु रावणकी प्रतिज्ञाभी पूरी हुई और इसके मनोरथभी पूरे हुए ॥ १९ ॥ जब कि विभीषणजी इस

शरैरिमावलंविद्धौरुधिरेणसमुक्षितौ ॥ वसुधायामिमौसुप्तौदृश्येतेशल्यकाविव ॥ १७ ॥ ययोर्वीर्यमुपाश्रित्यप्रतिष्ठा
कांक्षितामया ॥ ताविमौदेहनाशायप्रसुप्तौपुरुषर्षभौ ॥ १८॥ जीवन्नद्यविपन्नोस्मिनष्टराज्यमनोरथः ॥ प्राप्तप्रतिज्ञश्च
रिपुःसकामोरावणःकृतः॥१९॥एवंविलपमानंतंपरिष्वज्यविभीषणम् ॥सुग्रीवःसत्वसंपन्नोहरिराजोऽब्रवीदिदम् ॥२०॥
राज्यंप्राप्स्यसिधर्मज्ञलंकायांनेहसंशयः ॥ रावणःसहपुत्रेणस्वकामंनेहलप्स्यते ॥ २१ ॥ गरुडाधिष्ठितावेतावुभौरा
घवलक्ष्मणौ ॥ त्यक्त्वामोहंवधिष्येतेसगणंरावणंरणे ॥ २२ ॥ तमेवंसांत्वयित्वातुसमाश्वास्यतुराक्षसम् ॥ सुषेणंश्वशु
रंपार्श्वेसुग्रीवस्तमुवाचह॥२३॥सहशूरैर्हरिगणैर्लब्धसंज्ञावरिंदमौ ॥ गच्छत्वंभ्रातरौगृह्यकिष्किंधांरामलक्ष्मणौ ॥२४॥

प्रकारसे विलाप कररहेथे, तब बलवान सत्वसंयुक्त वानरराज सुग्रीवजी उनको हृदयसे लगाय भलीभांति भेंटकर बोले ॥ २० ॥ हेधर्मज्ञ! आप निश्चय जानलें कि रावण अथवा इन्द्रजीतका मनोरथ किसी प्रकारसे पूर्ण नहीं होगा । और निश्चयही लंकापुरीका राज्य आपको मिलेगा, इसमें कुछभी संशय नहीं ॥ २१ ॥ यह दोनों भ्राता गरुड़जीके उपासकहैं, बस गरुड़जीके आतेही राम लक्ष्मण दोनों भाई संज्ञा प्राप्त करेंगे, और इनका मोह दूर होजायगा,और फिर यह बहुतही शीघ्र संग्रामभूमिमें रावणको वंश सहित विध्वंस करेंगे ॥ २२ ॥ सुग्रीवजी राक्षसश्रेष्ठ विभीषणजीको इस प्रकारसे समझा बुझाकर निकट बैठे हुए अपने श्वशुर सुषेणनामक यूथपसे बोले ॥ २३ ॥ कि तुम इन दोनों भ्राता

वड़ी भारी शिला धूम्राक्षके ऊपर चलाई,कि जिस गिरिशृङ्गके प्रहारसे उस राक्षसके अंग फटकर फैलगये ॥३६॥पर्वत जिस प्रकार फटकर गिर जाता है, वैसेही धूम्राक्षके अंग फट जानेंके कारण पृथ्वीपर गिर पड़ा और उसके प्राण निकल गये;और मरनेंसे बचे बचाये राक्षस गण सैनापति धूम्राक्षको मरा हुआ देखकर अत्यन्तही त्रासित हुए;और वानर गणोंकी मार खाय मरनेके निकट पहुंच भयके मारे शीघ्रही लंकापुरीको भागगये॥३७॥महाबलवान् पवनकुमार हनुमानजी इस प्रकारसे शत्रुओंका संहार करते हुए रणभूमिमें रुधिर की नदी बहाय शत्रुके मारनेंके श्रमसे अत्यन्त थकित होंनेपरभी वानर गणों करके पूजितहो अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त करते हुए ॥३८॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे द्विपंचाशःसर्गः ॥ ५२ ॥

पपातसहसाभूमौविकीर्णइवपर्वतः ॥ धूम्राक्षंनिहतंदृष्ट्वाहतशेषानिशाचराः ॥ त्रस्ताःप्रविविशुर्लंकांवध्यमानाःप्लवंगमैः ॥ ३७ ॥ सतुपवनसुतोनिहत्यशत्रून्क्षतजवहाःसरितश्चसंविकीर्य ॥ रिपुवधजनितश्रमोमहात्मामुदमगमत्कपिभिःसुपूज्यमानः ॥ ३८ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआ०युद्धकांडेद्विपंचाशःसर्गः ॥ ५२ ॥ ॥छ॥ धूम्राक्षंनिहतंश्रुत्वारावणोराक्षसेश्वरः ॥ क्रोधेनमहताविष्टोनिःश्वसन्नुरगोयथा ॥ १ ॥ दीर्घमुष्णंविनिःश्वस्यक्रोधेनकलुषीकृतः ॥ अब्रवीद्राक्षसंक्रूरंवज्रदंष्ट्रंमहाबलम् ॥ २ ॥ गच्छत्वंवीरनिर्याहिराक्षसैःपरिवारितः ॥ जहिदाशरथिंरामंसुग्रीवंवानरैःसह ॥ ३ ॥ तथेत्युक्त्वाद्रुततरंमायावीराक्षसेश्वरः ॥ निर्जगामबलैःसार्धंबहुभिःपरिवारितः ॥ ४ ॥ नागैरश्वैःखरैरुष्ट्रैःसंयुक्तःसुसमाहितः ॥ पताकाध्वजचित्रैश्चबहुभिःसमलंकृतः ॥ ५ ॥

राक्षसोंका स्वामी रावण धूम्राक्षका संग्राममें मरना सुन अत्यन्त क्रोधयुक्तहो सर्पकी समान लंबे २ श्वास त्याग करनें लगा ॥ १ ॥ तिसके पीछे क्रोधसे अधीरहो लंबे २ और गरम २ श्वास छोड़ताहुआ रावण क्रूरस्वभावी महाबलवान वज्रदंष्ट्र नामक राक्षससे बोला ॥ २ ॥ हेवीर! तुम राक्षसोंकी सैनाके साथ रणभूमिमें जायकर दशरथकुमार रामचंद्र और वानरगणोंके साथ सुग्रीवका नाश कर आओ ॥ ३ ॥ रावणकी ऐसी आज्ञा पाय अति शीघ्रतासे मायावी राक्षसोंका ईश्वर वज्रदंष्ट्र बहुतसे राक्षसोंको संग लेकर चला ॥ ४ ॥ और उसके साथमें, हाथी, घोड़े, गधे

कियाथा वहांपर चन्द्र और द्रोण नामक दो पर्वतहैं उन्हीं पर्वतपर यह दोनों बूटियें हैं ॥ ३१ ॥ इन दोनों बूटियोंको देवताओंनें क्षीर समुद्रके बीचमें स्थापित कर दियाहै; इस कारण, हेराजन्! और किसी वानरको वहाँ जानेंकी आवश्यकता नहीं; यह पवनके पुत्र वेगवान हनुमानही वहाँ पर जांय; सुषेण यह वचन कहही रहेथेकि इतनेमें दामिनीमाला शोभित मेघ, और प्रबल आंधी उठकर समुद्रके जल और पर्वतोंको कम्पायमान करनें लगी ॥ ३२ ॥ ३३ ॥प्रबल पंखोंकी पवनके लगनेंसे द्वीपोंमें लगे हुए जो बड़े २ वृक्षथे उनकी शाखायें टूट गईं, और वह वृक्ष सब महासमुद्रके जलमें उड़कर जायगिरे ॥ ३४ ॥ देखते २ समुद्रके निवासी बड़े शरीरवाले सर्पगण भयंकराकारसे व्याकुल होंने लगे, । और जलजन्तु गण

तौतत्रविहितौदेवैःपर्वतौतौमहोदधौ ॥ अयंवायुसुतोराजन्हनूमांस्तत्रगच्छतु ॥ ३२ ॥ एतस्मिन्नंतरेवायुर्मेघाश्चापिस विद्युतः॥ पर्यस्यसागरेतोयंकंपयन्निवपर्वतान्॥ ३३ ॥ महतापक्षवातेनसर्वद्वीपमहाद्रुमाः ॥ निपेतुर्भग्नविटपाःसलि लेलवणांभसि ॥ ३४ ॥ अभवन्पन्नगास्त्रस्ताभोगिनस्तत्रवासिनः ॥ शीघ्रंसर्वाणियादांसिजग्मुश्चलवणार्णवम् ॥ ३५ ॥ ततोमुहूर्ताद्गरुडंवैनतेयंमहाबलम् ॥ वानरादद्दृशुःसर्वेज्वलंतमिवपावकम् ॥ ३६ ॥ तमागतमभिप्रेक्ष्यनागास्तेवि प्रदुद्रुवुः॥ यैस्तुतौपुरुषौबद्धौशरभूतैर्महाबलैः ॥ ३७ ॥ ततःसुपर्णःकाकुत्स्थौस्पृष्ट्वाप्रत्यभिनंद्यच ॥ विममर्शचपाणि भ्यांमुखेचंद्रसमप्रभे॥ ३८॥ वैनतेयेनसंस्पृष्टास्तयोःसंरुरुहुर्व्रणाः ॥ सुवर्णेचतनूस्निग्धेतयोराशुबभूवतुः ॥ ३९ ॥

बड़ी शीघ्रतासे लवण समुद्रके जलमें प्रवेश कर गये ॥ ३५ ॥ तिसके पीछे समस्त वानरलोगोंनें एक मुहूर्त्त भरके बीचमें प्रदीप्त अग्निकी समान प्रकाशित विनताके पुत्र गरुड़जीको आते हुए देखा ॥ ३६ ॥ उन गरुड़जीके आतेही, जिन्होंने बाण रूपसे श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीको बांध रक्खाथा, और जो अतिशय बलवान्थे, ऐसे वह समस्त नाग डरके मारे अतिशीघ्रतासे भाग गये ॥ ३७ ॥ तिसके पीछे विनतानन्दन गरुड़जी रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजीको प्रणाम करके उनके अंगको अपने हाथोंसे स्पर्श करते हुए इन दोनों भ्राताओंको चंद्रमाकी समान द्युतिवाले मुख मंडल अपने हाथसे सुहरानें लगे ॥ ३८ ॥ गरुड़जीके करस्पर्शसे इन दोनों भ्राताओंके

शृगालियें अग्निकी लपटें उगालती हुई अशुभ शब्द करनें लगीं ॥ १४ ॥ और मृगादि पशुगण चिल्लाय २ कर राक्षसोंके संहारको बतानें लगे, चलते २ वीर योद्धा लोग एकाएक पैर फिसलनेंसे भयंकर भांतिसे गिरनें लगे ॥ १५ ॥ परन्तु महा बलवान वज्रदंष्ट्र राक्षस यह समस्त उत्पात उठानेंवाले लक्षण देखकर भी धीरज धारण कर समरका अभिलाषी हो लंकागढ़से बाहर निकला ॥ १६ ॥ इस ओर विजयी वानर समूह राक्षसोंको आया हुआ देखकर ऐसा सिंहनाद करनें लगे, कि उसकी गुंजारसे दशों दिशायें पूर्ण होगईं ॥ १७ ॥ तिसके पीछे परस्पर एक दूसरेको मार डालनेंकी आशा किये भयंकर रूप महाबलवान वानर और राक्षसोंका घोर संग्राम आरंभ हुआ ॥ १८ ॥ उस समय उन अति उत्साह

व्याहरंतमृगाघोरारक्षसांनिधनंतदा ॥ समापतंतोयोधास्तुप्रास्खलंस्तत्रदारुणम् ॥ १५ ॥ एतानौत्पातिकान्दृष्ट्वा वज्रदंष्ट्रोमहाबलः ॥ धैर्यमालंब्यतेजस्वीनिर्जगामरणोत्सुकः ॥ १६ ॥ तांस्तुविद्रवतोदृष्ट्वावानराजितकाशिनः ॥ प्रणेदुःसुमहानादान्दिशःशब्देनपूरयन् ॥ १७ ॥ ततःप्रवृत्तंतुमुलंहरीणांराक्षसैःसह ॥ घोराणांभीमरूपाणामन्योन्यवधकांक्षिणाम् ॥ १८ ॥ निष्पतंतोमहोत्साहाभिन्नदेहशिरोधराः ॥ रुधिरोक्षितसर्वांगान्यपतन्धरणीतले ॥ १९ ॥ केचिदन्योन्यमासाद्यशूराःपरिघबाहवः ॥ चिक्षिपुर्विविधाञ्छस्त्रान्समरेष्वनिवर्तिनः ॥ २० ॥ द्रुमाणांचशिलानांचशस्त्राणांचापिनिःस्वनः ॥ श्रूयतेसुमहांस्तत्रघोरोहृदयभेदनः ॥ २१ ॥ रथनेमिस्वनस्तत्रधनुषश्चापिघोरवत् ॥ शंखभेरीमृदंगानांबभूवतुमुलःस्वनः ॥ २२ ॥ केचिदस्त्राणिसंत्यज्यबाहुयुद्धमकुर्वत ॥ तलैश्चचरणैश्चापिमुष्टिभिश्चद्रुमैरपि ॥ २३ ॥

वाले वीरोंकी देह, मस्तक, अधर, इत्यादि अंग कटजानेंसे व रुधिरमें शरीर डूबजानेंसे वह पृथ्वीपर गिर जानें लगे ॥ १९ ॥ समरसे न लौटनेवाले और परिघकी समान लंबी २ बांहवाले वीरगण लड़ते २ परस्पर पर लिपट जाते, और तिसके पीछे विविध भांतिके अस्त्र शस्त्र चलानें लगते ॥ २० ॥ उस घोर संग्राम भूमिमें वृक्ष पर्वत और अस्त्र शस्त्रोंका भयंकर हृदयको फाड़नेंवाला शब्द सुनाई आनें लगा ॥ २१ ॥ संग्राममें रथके चक्रोंका घर घर शब्द धनुषकी टंकार शंख भेरी और मृदंगोंका बड़ा कठोर शब्द हुआ ॥ २२ ॥ अनन्तर कोई राक्षस वानर वीर

कारणकि महा पराक्रमकारी दैत्य महाबलवान वानर गण और गन्धर्वादिकोंके सहित देवतालोग या स्वयं इन्द्रभी ॥४७॥ मायाके बलसे क्रूर कर्म कारी मेघनादका रचा हुआ यह अति दारुण नागरूपी बाण बन्धन नहीं छुड़ा सकतेथे, इसी कारण आपको इस संकटसे छुटानेंके लिये हम आये॥४८॥ तीक्ष्ण दन्त युक्त महा विषधर यह कद्रूके पुत्र नाग गण राक्षसी मायाके प्रभावसेही बाण रूप होकर आपका आश्रय किये हुएथे ॥ ४९ ॥ हे धर्मज्ञ! सत्य पराक्रमकारी श्रीरामचंद्रजी! समरमें रिपुघाती इन भ्राता लक्ष्मणजीके सहित आप अपनेको बड़ाही भाग्यवान समझें; कारणकि भाग्यहीसे आप इस घोर बन्धनसे मुक्त हुएहैं ॥ ५० ॥ आपकी यह अत्यन्त शोचनीय दशा सुनकर हम बड़ीही शीघ्रतासे इस स्थानमें आये

असुरावामहावीर्यावानरावामहाबलाः ॥ सुराश्चापिसगंधर्वाःपुरस्कृत्यशतक्रतुम् ॥ ४७ ॥ नेमंमोक्षयितुंशक्ताःशरबंधंसुदारुणम् ॥ मायाबलादिंद्रजितानिर्मितंक्रूरकर्मणा ॥ ४८ ॥ एतेनागाःकाद्रवेयास्तीक्ष्णदंष्ट्राविषोल्बणाः ॥ रक्षोमायाप्रभावेणशरभूतास्त्वदाश्रयाः ॥ ४९ ॥ सभाग्यश्चासिधर्मज्ञरामसत्यपराक्रम ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्रासमरेरिपुघातिना ॥ ५० ॥ इमंश्रुत्वातुविक्रांतस्त्वरमाणोहमागतः ॥ सहसैवावयोःस्नेहात्सखित्वमनुपालयन् ॥ ५१ ॥ मोक्षितौचमहाघोरादस्मात्सायकबंधनात् ॥ अप्रमादश्चकर्तव्योयुवाभ्यांनित्यमेवहि ॥ ५२ ॥ प्रकृत्याराक्षसाःसर्वेसंग्रामेकूटयोधिनः ॥ शूराणांशुद्धभावानांभवतामार्जवंबलम् ॥ ५३ ॥ तन्नविश्वसनीयंवोराक्षसानांरणाजिरे ॥ एतेनैवोपमानेननित्यंजिह्माहिराक्षसाः ॥ ५४ ॥

हैं, हमारा यह आना केवल आपसे स्नेह करनेंहीके कारण हुआ ॥ ५१ ॥ इस समय अनायासमें यह कार्य हुआ कि हमनें आपको इस महाघोर सर्प रूपी बाण बन्धनसे छुटा दिया, अब आगेको आप सदाही सावधान रहाकरें ॥ ५२ ॥ आपकी समान शुद्ध स्वभाववाले शूर लोग रण भूमिमें सदा सरलतासेही युद्ध किया करतेहैं; परन्तु राक्षसगण सदाही संग्राममें छलते युद्ध किया करतेहैं ॥ ५३ ॥ इस कारण आप रणभूमिमें इन राक्षस लोगोंका किसी प्रकारसे भी विश्वास न कीजिये, कारण कि यह लोग सदाहीसे क्रूर बुद्धिवाले होतेहैं; अब तो आप एक इन्द्रजीतहीके

ढकनेंके कारण वह रणमूर्ति अत्यन्त भयंकरी होगई । हार, बाजू वस्त्र और कटे हुए शस्त्रोंसे सजनेंके कारण ॥ ३१ ॥ वह रणभूमि शरद ऋतुकी रात्रिके समान शोभा धारण करती हुई जिस प्रकार पवनके वेगसे मेघोंका जाल तितर वितर होकर पड़जाता है, वैसेही अंगदजीकी वीरता और उन करकै मर्दित होनेंसे राक्षसोंकी सैना कम्पायमान हुई ॥३२॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे त्रिपंचाशः सर्गः ॥५३॥ तब महाबलवान वज्रदंष्ट्र राक्षस अपनी सेनाका नाश और अंगदजीके बलका प्रकाश देखकर अत्यन्तही क्रोध करता हुआ ॥ १ ॥ उस समय वह वज्रदंष्ट्र वज्रकी समान प्रभावाला भयंकर धनुष बाण शब्दितकर और उसे चढ़ाय वानरोंकी सैनापर बाणोंकी वर्षा करनें लगा ॥ २ ॥ रथपर चढ़े हुए

भूमिर्भातिरणेतत्रशारदीवयथानिशा॥ अंगदस्यचवेगेनतद्राक्षसबलंमहत् ॥ प्राकंपततदातत्रपवनेनांबुदोयथा॥२२॥
इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवा० आदिकाव्येयुद्धकांडेत्रिपंचाशःसर्गः ॥ ५३ ॥ ॥ स्वबलस्यचघातेनअंगदस्यबलेन
च ॥ राक्षसःक्रोधमाविष्टोवज्रदंष्ट्रोमहाबलः ॥ १ ॥ विस्फार्यचधनुर्घोरंशक्राशनिसमप्रभम् ॥ वानराणामनीकानि
प्राकिरच्छरवृष्टिभिः ॥ २ ॥ राक्षसाश्चापिमुख्यास्तेरथैश्वसमवस्थिताः ॥ नानाप्रहरणाःशूराःप्रायुध्यंततदारणे ॥३॥
वानराणांचशूरास्तुतेसर्वेप्लवगर्षभाः ॥ अयुध्यंताशिलाहस्ताःसमवेताःसमंततः ॥ ४ ॥ तत्रायुधसहस्राणितस्मिन्न्रा
योधनेभृशम् ॥ राक्षसाःकपिमुख्येषुपातयांचक्रिरेतदा ॥ ५ ॥ वानराश्चैवरक्षःसुगिरिवृक्षान्महाशिलाः ॥ प्रवीराः
पातयामासुर्मत्तवारणसन्निभाः ॥ ६ ॥ शूराणांयुध्यमानानांसमरेष्वनिवर्तिनाम् ॥ तद्राक्षसगणानांचसुयुद्धंसमवर्त
त ॥ ७ ॥अभग्नशिरसःकेचिच्छिन्नैःपादैश्वबाहुभिः ॥ शस्त्रैरर्दितदेहास्तुरुधिरेणसमुक्षिताः ॥ ८ ॥

विविध भांतिके अस्त्र शस्त्र धारण किये बड़े २ शूर निशाचरभी युद्ध करनेंलगे ॥३॥ कूदनें फादनेंमे चतुर शूर वानर गणभी एकत्र हो शिला हाथमें लेकर सर्व प्रकारसे युद्ध करनें लगे ॥ ४ ॥ उस रणभूमिमें राक्षसोंने वानरश्रेष्ठोंके ऊपर सहस्र २ घोर कठोर बाण चलाये ॥ ५ ॥ मतवाले हाथियोंकी समान वानर वीर गणभी राक्षसोंको ताक २ कर बडे २ वृक्ष और बडी २शिलायें चलाने लगे ॥ ६ ॥ इस प्रकार संग्राममें न लौटने वाले और समराभिलाषी उन राक्षस और वानरोंका महाघोर युद्ध आरंभहुआ ॥७॥ उनमें से किसी २ के शिर कट गये और किसी किसीके चरण

होकर प्रथमहीकी समान क्रीडा करने लगे ॥ ६२ ॥ व औरभी शत सहस्र पर्वतोंसे युद्ध करनेवाले विकराल वानरगण विविध भांतिके वृक्षों को उखाडते फांदते कूदते दलके दल खडेहो ॥ ६३ ॥ राक्षसोंको त्रासित करते हुए बड़ाभारी नादकरने लगे और वह सब वानर युद्धकी कामनासे आगे बढकर लंकापुरीके द्वारपर जाय पहुंचे ॥ ६४ ॥ ग्रीष्म कालके अंत समय रात्रिके समय शब्दायमान घनघटा समूहके भयंकर गर्जनकी समान उन वानर यूथनाथोंका भयंकर कठोर सिंहनाद श्रवण गोचर होने लगा ॥ ६५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे पंचाशः सर्गः ॥ ५० ॥ ॥ छ ॥ इस ओर विभीषण इत्यादि राक्षस गणोंके सहित शब्दायमान उन महातेजस्वी

अपरेस्फोट्यविक्रांतावानरानगयोधिनः ॥ द्रुमानुत्पाट्यविविधांस्तस्थुःशतसहस्रशः ॥ ६३ ॥ विसृजंतोमहानादां स्त्रासयंतोनिशाचरान् ॥ लंकाद्वाराण्युपाजग्मुर्युद्धकामाःप्लवंगमाः ॥ ६४ ॥ तेषांसुभीमस्तुमुलोनिनादोबभूवशाखा मृगयूथपानाम् ॥ क्षयेनिदाघस्ययथाघनानांनादःसुभीमोनदतांनिशीथे ॥ ६५ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०युद्धकांडेपं चाशःसर्गः ॥ ५० ॥छ॥ तेषांतुतुमुलंशब्दंवानराणांमहौजसाम् ॥ नर्दतांराक्षसैःसार्धंतदाशुश्रावरावणः ॥ १ ॥ स्नि ग्धगंभीरनिर्घोषंश्रुत्वातंनिनदंभृशम् ॥ सचिवानांततस्तेषांमध्येवचनमब्रवीत् ॥ २ ॥ यथाऽसौसंप्रहृष्टानांवानरा णामुपस्थितः ॥ बहूनांसुमहान्नादोमेघानामिवगर्जताम् ॥ ३ ॥ सुव्यक्तंमहतीप्रीतिरेतेषांनात्रसंशयः ॥ तथाहिविपुलै र्नादैश्चुक्षुभेलवणार्णवः ॥ ४ ॥ तौतुबद्धौशरैस्तीक्ष्णैर्भ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ अयंचसुमहान्नादःशंकांजनयतीवमे ॥ ५ ॥

वानरवृन्दोंका तुमुल कठोर सिंहनाद राक्षसोंके स्वामी रावणने सुना ॥ १ ॥ वह रावण स्पष्ट गंभीर और कठोर सिंहनाद वार २ श्रवण करके अपने मंत्रियोंसे जोकि वहां बैठेथे यह कहने लगा ॥ २ ॥ जब कि हर्षितचित्त हुए उन वानरोंका यह घोर सिंहनाद सुनाई आता है, जब कि वादलकी समान वह वानर गंभीर गर्जन कर रहे हैं ॥ ३ ॥ तव इसमे कोईभी सन्देह नहीं है कि उनको कोई बड़ी प्रसन्नता प्राप्त हुईहै यह देखो उनके बड़े भारी शब्दसे क्षार समुद्रभी खल बलाय रहाहै ॥ ४ ॥ वह दोनों भाई राम और लक्ष्मण तीक्ष्ण बाणोंसे बंध गयेथे; परन्तु इस

वज्रदंष्ट्रभी अंगदजीको वार २ क्रोधकी दृष्टिसे देखनें लगा ॥ १६ ॥ तब वज्रदंष्ट्र और अंगदजी दोनोही अत्यन्त क्रोधमें भरकर युद्ध करनें लगे उस समय वह दोनो मतवाले हाथी और केशरी (सिंह) की समान जान पड़तेथे ॥ १७ ॥ तिसके पीछे राक्षसोंकी सैनाके पति वज्रदंष्ट्रने अग्निकी शिखाके समान हजार बाण चलायकर वानर सैनापति अंगदजी के मर्म स्थानमें प्रहार किया ॥ १८ ॥ उस अत्यन्त हजार बाणका प्रहार लगनेंसे वालिकुमार अंगदजीके सब शरीरसे रुधिर निकलने लगा और इन्होंनें भयंकर शब्दसे गर्जकर उस राक्षस वज्रदंष्ट्रके ऊपर एक बडा भारी वृक्ष चलाया ॥ १९ ॥ राक्षस वज्रदंष्ट्रने उस बडे भारी वृक्षको अपने ऊपर गिरता हुआ देखकर अति सावधानीसे बाण चलाय उसके

वज्रदंष्ट्रोंऽगदश्चोभौयोयुध्येतेपरस्परम् ॥ चेरतुःपरमक्रुद्धौहरिमत्तगजाविव ॥ १७ ॥ ततःशरसहस्रेणहरिपुत्रं महाबलम् ॥ जघानमर्मदेशेषुशरैरग्निशिखोपमैः ॥ १८ ॥ रुधिरोक्षितसर्वांगोवालिसूनुर्महाबलः ॥ चिक्षेपवज्रदंष्ट्रायवृक्षंभीमपराक्रमः ॥ १९ ॥ दृष्ट्वापतंतंतंवृक्षमसंभ्रांतश्चराक्षसः ॥ चिच्छेदबहुधासोपिमथितःप्रापतद्भुवि ॥ २० ॥ तंदृष्ट्वावज्रदंष्ट्रस्यविक्रमंप्लवगर्षभः ॥ प्रगृह्यविपुलंशैलंचिक्षेपचननादच ॥ २१ ॥ तमापतंतंदृष्ट्वासरथादाप्लुत्यवीर्यवान् ॥ गदापाणिरसंभ्रांतःपृथिव्यांसमतिष्ठत ॥ २२ ॥ अंगदेनशिलाक्षिप्तागत्वातुरणमूर्धनि ॥ सचक्रकूबरंसाश्वप्रममाथरथंतदा ॥ २३ ॥ ततोऽन्यच्छिखरंगृह्यविपुलंद्रुमभूषितम् ॥ वज्रदंष्ट्रस्यशिरसिपातयामासवानरः॥२४॥अभवच्छोणितोद्गारीवज्रदंष्ट्रःसुमूर्च्छितः ॥ मुहूर्तमभवन्मूढोगदामालिंग्यनिःश्वसन् ॥ २५ ॥

टुकडेकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ २० ॥ वानरश्रेष्ठ अंगदजीनें वज्रदंष्ट्रका ऐसा विक्रम देखकर एक अत्यन्त बडी शिला ग्रहण करके उसके ऊपर चलाय सिंह नादकरने लगे ॥ २१ ॥ परन्तु वीर्यवान राक्षस वज्रदंष्ट्र उस शिलाको गिरता हुआ देख रथसे छलांग मार भ्रमरहितहो गदा हाथमें ले पृथ्वीपर खड़ा होगया ॥ २२ ॥ तिसकाल अंगदजीकी चलाई हुई शिलाने अत्यन्त जोरसे गिरकर रणभूमिके बीचमें टिका हुआ, चक्र और कूबरके सहित वज्रदंष्ट्रके रथको चूर्ण कर डाला ॥ २३ ॥ तब वानरोंके सैनापति अंगदजीनें वृक्षोंसे शोभायमान एक पर्वतका शिखर उखाड़कर उस राक्षस वज्रदंष्ट्रके शिरपर देमारा ॥ २४ ॥ उस घोर शैलशृङ्गकी चोट लगनेंसे रुधिर वमन करता हुआ वज्रदंष्ट्र मूर्च्छित होगया, और एक मुहूर्त भर

तब रावण कुछ एक रुष्ट होकर कहनें लगा कि मेघनादनें संग्राम स्थलमें भलीभांति मान मर्दनकर अति घोर वर प्राप्त किये हुए विषधर सर्पोंकी समान सफल और सूर्यवत्प्रकाशित बाणोंसे जिनको बंधन कियाथा॥१५॥जब कि वह शत्रु ऐसे बाण बन्धनसेभी छुटगये तब हमको ऐसा नहीं जान पड़ता कि हम इस राक्षसोंकी सैनासे विजयको प्राप्त करेंगे ॥ १६ ॥ आश्चर्यहै कि जिन सब अस्त्रोंने संग्राम भूमिमें वारंवार शत्रुगणोके प्राण हरण कियेथे, आज वही अग्निकी समान तेजस्वी अस्त्र हमारे कुभाग्यहीसे निष्फल होगये ॥ १७ ॥ यह कहकर रावण अत्यन्त क्रोधमें भरकर सर्प की समान लंबे २ श्वासलेने लगा; और कुछ देर पीछे रावण राक्षसोंके बीचमें बैठे हुए धूम्राक्षसे कहता हुआ ॥ १८ ॥ कि हे भयंकर विक्रमका

घोरैर्दत्तवरैर्बद्धौशरैराशीविषोपमैः ॥ अमोघैःसूर्यसंकाशैःप्रमथ्येंद्रजितायुधि ॥ १५ ॥ तदस्त्रबंधमासाद्ययदिमुक्तौ रिपूमम ॥ संशयस्थमिदंसर्वमनुपश्याम्यहंबलम् ॥ १६ ॥ निष्फलाःखलुसंवृत्ताःशराःपावकतेजसः॥ आदत्तंयैस्तुसं ग्रामेरिपूणांजीवितंमम ॥१७॥एवमुक्त्वातुसंक्रुद्धोनिःश्वसन्नुरगोयथा ॥अब्रवीद्रक्षसांमध्येधूम्राक्षंनामराक्षसम्॥१८॥ बलेनमहतायुक्तोराक्षसैर्भीमविक्रमैः ॥ त्वंवधायाशुनिर्याहिरामस्यसहवानरैः ॥ १९ ॥ एवमुक्तस्तुधूम्राक्षोराक्षसेंद्रे णधीमता ॥ परिक्रम्यततःशीघ्रंनिर्जगामनृपालयात् ॥ २० ॥ अभिनिष्क्रम्यतद्वारंबलाध्यक्षमुवाचह ॥ त्वरयस्व बलंशीघ्रंकिंचिरेणयुयुत्सतः ॥ २१ ॥ धूम्राक्षवचनंश्रुत्वाबलाध्यक्षोबलानुगः ॥ बलमुद्योजयामासरावणस्याज्ञया भृशम् ॥ २२ ॥ तेबद्धघंटाबलिनोघोररूपानिशाचराः ॥ विनद्यमानाःसंहृष्टाधूम्राक्षंपर्यवारयन् ॥ २३ ॥

री ! वानर गणोंके और रामचंद्रका संहार करनेंके लिये तुम बड़ीभारी सैनाको संग लेकर शीघ्र युद्ध करनेंको जाओ ॥ १९ ॥ राक्षस धूम्राक्ष, बुद्धिमान राक्षसोंके स्वामी रावणकी ऐसी आज्ञा पाय उसकी प्रदक्षिणा करता हुआ अतिशीघ्र राजभवनसे बाहर निकला ॥ २० ॥ राक्षस धूम्राक्षनें राजद्वारके बाहर आयकर सैनाध्यक्षसे कहा कि,—हम युद्धमें जाना चाहते हैं, इस कारण कुछभी विलंब न लगायकर झटपट सैनाको सजाओ ॥ २१ ॥ धूम्राक्षके वचन सुन सैनाध्यक्षनें रावणकी आज्ञानुसार समस्त सैनाको बहुतही शीघ्र सजाया ॥ २२ ॥ घोररूपी राक्षसगण सिंह

तव महाबलवान अंगदजीने अत्यन्त तीक्ष्ण और विमल चमकते दमकते खड्गकी चोटसे वज्रदंष्ट्रका शिर काटकर पृथ्वीपर गिरादिया ॥ ३४ ॥ राक्षस वीर वज्रदंष्ट्रकी देह दोखंड होकर गिर पड़ी; सर्व शरीरसे रुधिर निकलनें लगा, उसकी दोनों आंखें उलट गईं और रुण्डपरसे पृथक् होकर शिर नीचे गिरपड़ा ॥३५॥ राक्षसगण वज्रदंष्ट्रको माराहुआ देखकर भयके मारे विह्वलहो लंकापुरीको भागगये। भागनेंके समय वानरवीरोंनें उनके ऊपर ऐसी मार धाड़ मचाईकि राक्षसोंके मरनेंमें कुछ कसर न रही। यह समस्त राक्षस इस अवस्थामें व्याकुलवदन और दीनभावयुक्तहो लज्जा से मुखको नीचा करके लंकामें प्रवेश करते हुए ॥ ३६ ॥ इस प्रकारसे इन्द्रकी समान प्रतापवान वह महाबलशाली वालिकुमार अंगदजी वानरोंकी

निर्मलेनसुधौतेनखड्गेनास्यमहच्छिरः ॥ जघानवज्रदंष्ट्रस्यवालिसूनुर्महाबलः ॥ ३४ ॥ रुधिरोक्षितगात्रस्यबभूवप
तितंद्विधा ॥ तच्चतस्यपरीताक्षंशुभंखड्गहतंशिरः ॥ ३५ ॥ वज्रदंष्ट्रंहतंदृष्ट्वाराक्षसाभयमोहिताः ॥ त्रस्ताह्यभ्यद्रवँल्लं
कांवध्यमानाःप्लवंगमैः ॥ विषण्णवदनादीनाह्रियाकिंचिदवाङ्मुखाः ॥ ३६ ॥ निहत्यतंवज्रधरःप्रतापवान्सवालिसूनुः
कपिसैन्यमध्ये ॥ जगामहर्षमहितोमहाबलःसहस्रनेत्रस्त्रिदशैरिवावृतः ॥ ३७ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०युद्धकांडेच
तुष्पंचाशःसर्गः ॥ ५४ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ वज्रदंष्ट्रंहतंश्रुत्वावालिपुत्रेणरावणः ॥ बलाध्यक्षमुवाचेदंकृतांजलिमुपस्थित
म् ॥ १ ॥ शीघ्रंनिर्यांतुदुर्धर्षाराक्षसाभीमविक्रमाः ॥ अकंपनंपुरस्कृत्यसर्वशस्त्रास्त्रकोविदम् ॥ २ ॥

सैनाके वीचमें उस राक्षस वज्रदंष्ट्रको मार परम प्रसन्नता प्राप्त करतेहुए, और देवतालोगोंके वीचमें बैठे सहस्रलोचन इन्द्रकी नाईं वानरगणोंसे पूजित हुए ॥ ३७ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० चतुष्पंचाशः सर्गः ॥ ५४ ॥ तिसके पीछे लंकापति रावण वालिके पुत्र अंगदजीके हाथसे वज्रदंष्ट्र राक्षसको माराहुआ सुन निकटही हाथ जोड़कर खड़ेहुए सैनापति प्रहस्तसे बोला ॥ १ ॥ कि भयंकर विक्रम करनेंवाले दुर्द्धर्ष निशाचर लोक समस्त अस्त्र शस्त्रोंके जाननेंमें पंडित राक्षस अकम्पनको अपना

भयंकर गिद्ध आकाशसे गिरा ॥ ३१ ॥ मांसके खानेंवाले, पक्षिगण गुँधी हुई मालाकी समान लंगार (श्रेणी) से उसके रथकी ध्वजापर गिरनें लगे और रुधिरमें सना हुआ अत्यंत श्वेत कबंध धूम्राक्षके निकट पृथ्वी पर गिरा ॥ ३२ ॥ अत्यन्त भयंकर शब्द करता हुआ कबंध धूम्राक्षके सन्मुख गिरा । बादलोंसे रुधिरकी वर्षा होनें लगी, और पृथ्वी कंपायमान हुई ॥ ३३ ॥ और वज्रकी समान शब्द करताहुआ पवन चलनें लगा, घोर अंधकारसे ढकजानेंके कारण दशोंदिशा अप्रकाशित होगईं ॥ ३४ ॥ राक्षस धूम्राक्ष राक्षस लोगोंके यह अमंगल भयजनक घोर उत्पात देखकर हृदयमें अत्यन्त भय करता हुआ;और उसके साथ चलनेंवाली राक्षसोंकी सैनाभी यह अचानक अमंगल शकुन देखकर मूर्च्छित

ध्वजाग्रेग्रथिताश्चैवनिपेतुःकुणपाशनाः ॥ रुधिरार्द्रोमहान्श्वेतःकबंधःपतितोभुवि ॥ ३२ ॥ विस्वरंचोत्सृजन्नादा न्धूम्राक्षस्यनिपातितः ॥ ववर्षरुधिरंदेवःसंचचालचमेदिनी ॥३३॥ प्रतिलोमंववौवायुर्निर्घातसमनिःस्वनः ॥ तिमिरौ घावृतास्तत्रदिशश्चनचकाशिरे ॥ ३४ ॥ सतूत्पातांस्ततोदृष्ट्वाराक्षसानांभयावहान् ॥ प्रादुर्भूतान्सुघोरांश्चधूम्राक्षो व्यथितोभवत् ॥ मुमुहूराक्षसाःसर्वेधूम्राक्षस्यपुरःसराः ॥ ३५ ॥ ततःसुभीमोबहुभिर्निशाचरैर्वृतोभिनिष्क्रम्यरणोत्सु कोबली ॥ ददर्शतांराघवबाहुपालितांमहौघकल्पांबहुवानरींचमूम् ॥ ३६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआ दिकाव्येयुद्धकांडेएकपंचाशःसर्गः ॥ ५१ ॥ ॥ ७॥ धूम्राक्षंप्रेक्ष्यनिर्यांतंराक्षसंभीमविक्रमम् ॥ विनेदुर्वानराःसर्वेप्र हृष्टायुद्धकांक्षिणः ॥ १ ॥ तेषांसुतुमुलंयुद्धंसंजज्ञेकपिरक्षसाम् ॥ अन्योन्यंपादपैर्घोरैर्निघ्नतांशूलमुद्गरैः ॥ २ ॥

होगई ॥ ३५ ॥ तिसके पीछे रण करनेंकी इच्छा किये महाबलवान भयंकररूप राक्षस धूम्राक्ष असंख्य निशाचरगणोंके सहित, लंकापुरीसे बाहर आय श्रीरामचंद्रजीकी बाहुसे रक्षित प्रलयके समुद्रकी समान उन वानरोंकी सैनाको देखता हुआ कि जिसका कुछ ओर छोर नथा ॥ ३६ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० एकपंचाशः सर्गः ॥ ५१ ॥ युद्धकी अभिलाषा किये वानरगण भयंकर विक्रमकारी राक्षस धूम्रा क्षको युद्ध करनेंके लिये आये हुए देखकर हर्षित मनसे सिंहनाद करनें लगे ॥ १ ॥ तिसके पीछे धीरे २ उन वानर और राक्षसोंका घोर कठोर

अचानक दीनभाव प्राप्त हुआ,युद्ध करनेंको प्रसन्नतासे चलेजाते हुए अकम्पनका वांया नेत्रभी फडकनें लगा ॥ १० ॥ इसका मुखमंडल मलीन
होगया, और कंठस्वर विरूपताको प्राप्त हुआ, उस दिनके समय दुर्दिन आय पहुंचा पवन रूखेपनसे वहनें लगी ॥ ११ ॥ और मृग पक्षीगण सवहीके
भयका उपजानेंवाला क्रूर शब्द करना आरंभ करनें लगे; परन्तु सिंहकी समान ऊँचे कंधोंवाला और शार्दूलकी समान विक्रमकारी ॥ १२ ॥ वह
अकम्पनवीर; इन उत्पातोंको कुछभी नहीं समझताहुआ रणभूमिको चला; वह निशाचर राक्षसोंकी सैनाके साथ लंकापुरीसे निकला ॥ १३ ॥
इस सैनाका इस प्रकारका वड़ाभारी शब्द हुआ कि जिस्से समुद्रमेंभी खलबली पडगई, और वानरोंकी सैनाभी उस शब्दसे त्रासित होकर ॥१४॥
विवर्णोमुखवर्णश्चगद्गदश्चाभवत्स्वनः ॥ अभवत्सुदिनेकालेदुर्दिनंरूक्षमारुतम् ॥ ११ ॥ ऊचुःखगमृगाःसर्वेवाचःक्रू
राभयावहाः ॥ ससिंहोपचितस्कंधःशार्दूलसमविक्रमः ॥ १२ ॥ तानुत्पातानचिंत्यैवनिर्जगामरणाजिरम् ॥ तथानि
र्गच्छतस्तस्यरक्षसःसहराक्षसैः ॥ १३ ॥ बभूवसुमहान्नादःक्षोभयन्निवसागरम् ॥ तेनशब्देनवित्रस्तावानराणांमहा
चमूः ॥ १४ ॥ द्रुमशैलप्रहाराणांयोद्धुंसमुपतिष्ठताम् ॥ तेषांयुद्धंमहारौद्रंसंजज्ञेकपिरक्षसाम् ॥ १५ ॥ रामरावण
योरर्थेसमभित्यक्तदेहिनः ॥ सर्वेह्यतिबलाःशूराःसर्वेपर्वतसन्निभाः ॥ १६ ॥ हरयोराक्षसाश्चैवपरस्परजिघांसया ॥
तेषांविनर्दतांशब्दःसंयुगेऽतितरास्विनाम् ॥ १७ ॥ शुश्रावसुमहान्कोपादन्योन्यमभिगर्जताम् ॥ रजश्चारुणवर्णाभ
सुभीममभवद्भृशम् ॥ १८ ॥ उद्धूतंहरिरक्षोभिःसंरुरोधदिशोदश ॥ अन्योन्यंरजसातेनकौशेयोद्धतपांडुना ॥ १९ ॥
उसी समय वृक्ष और पर्वतोंको उठाय २ युद्ध करनेंके लिये आगे वढ़ी। तव उन वानर और राक्षसोंका महा घोरयुद्ध आरंभ हुआ ॥ १५ ॥
अनन्तर श्रीरामचंद्रजी और रावणके लिये प्राणतक त्यागना दोनो ओरके वीरोंनें विचारा दोनोंही वलवान विक्रमशाली और पर्वताकारथे ॥ १६ ॥
राक्षस और वानरगण परस्पर एक दूसरेको मार डालनेंके लिये तैयारथे । अतिवेगवान तिन वानर और राक्षसोंका शब्द समरमें ॥ १७ ॥ श्रवण
गोचर होंनें लगा, दोनो दलोंकेही क्रोधसहित गर्जनेंका महाभयानक शब्द उठा, दोनो दलोंमें धूम पड़नेसे वड़ी भारी लाल २ धूल उड़ी ॥१८॥
वानर और राक्षसोंके चरणोंकी उडीहुई धूलसे दशोंदिशा पूर्ण होगई, यह धूल धूसर वर्णकी कुछ २ लालपन लिये हुएथी ॥ १९ ॥

ही प्रहारसे चीर फाड़कर काटे गये ॥ ११ ॥ कोई २ ध्वजाओंसे मल डाले गये कोई खड्गसे पृथ्वीपर खड़ा होगया ॥ २८ ॥ हनुमानजीकी चलाई
कितनेही राक्षस अत्यन्त व्यथित हुए ॥ १२ ॥ पर्वतोंके शिखरकी समान पर्वताकार हाथी वानर गण ओर वह शिला पृथ्वीमें गिरी ॥ २९ ॥
वह समर भूमि पूर्ण होगई ॥ १३ ॥ भयंकर विक्रमकारी वेगवान वानरगण वारंवार छलांग मारते हुए अपने नखोंसे निशाचरोंके मुँह लगे ॥ ३० ॥
फाड़नें लगे ॥ १४ ॥ तब राक्षस इस अवस्थाको पाय अत्यन्त विषादित हुए, उनके बाल खुलगये, और वह बराबर बहते हुए रुधिर गन्
मूर्च्छितहो पृथ्वीपर गिरनें लगे ॥ १५ ॥ इसी समयमें बहुत सारे राक्षस गण क्रोधसे प्रदीप्त हो वेगवान वानरोंको, वज्रकी समान लात मारनेंके

ध्वजैर्विमथितैर्भग्नैःखड्गैश्चविनिपातितैः ॥ रथैर्विध्वंसिताःकेचिद्व्यथितारजनीचराः ॥ १२ ॥ गजेंद्रैःपर्वताकारैःपर्व
ताग्रैर्वनौकसाम् ॥ मथितैर्वाजिभिःकीर्णंसारोहैर्वसुधातलम् ॥ १३ ॥ वानरैर्भीमविक्रांतैराप्लुत्योत्प्लुत्यवेगितैः ॥ राक्ष
साःकरजैस्तीक्ष्णैर्मुखेषुविनिदारिताः ॥ १४ ॥ विषण्ण[illegible] भूयोविप्रकीर्णशिरोरुहाः ॥ मूढाःशोणितगंधेननिपेतुर्धर
णीतले ॥ १५ ॥ अन्येतुपरमक्रुद्धाराक्षसाभीमविक्र[illegible] तलैरेवाभिधावंतिवज्रस्पर्शसमैर्हरीन् ॥ १६ ॥ वानरैः
पातयंतस्तेवेगितावेगवत्तरैः ॥ मुष्टिभिश्चरणैर्दंतैःपादपैश्चावपोथिताः ॥ १७ ॥ सैन्यंतुविद्रुतंदृष्ट्वाधूम्राक्षोराक्षसर्षभः॥
रोषेणकदनंचक्रेवानराणांयुयुत्सताम् ॥ १८ ॥ प्रासैःप्रमथिताःकेचिद्वानराःशोणितस्रवाः ॥ मुद्गरैराहताःकेचित्पति
ताधरणीतले ॥ १९ ॥ परिघैर्मथिताःकेचिद्भिंदिपालैश्चदारिताः ॥ पट्टिशैर्मथिताःकेचिद्विह्वलंतोगतासवः ॥ २० ॥

लिये उनकी ओर दौड़े ॥ १६ ॥ परन्तु वेगवान वानरगण;—घूंसा, लात, दांत, और वृक्षोंसे उनको इस प्रकारकि मार देनें लगे, कि वह राक्षस उन
के सामने स्थिर न रहकर भाग निकले ॥ १७ ॥ तिसके पीछे राक्षसश्रेष्ठ धूम्राक्ष अपनी सैनाको चलायमान देखकर क्रोधमें भर वानरोंके ऊपर
प्रहार करनें लगा ॥ १८ ॥ तब कोई २ वानर तो बाण लगनेंसे मर्दित होगये और उनके शरीरसे रुधिर बहनें लगा, और अनेक वानर मुद्गरोंसे घा
यल होकर पृथ्वीपर गिरते हुए ॥ १९ ॥ कोई २ वानर परिघसे, और कोई पटेसे कुचल डाले गये,और कोई धनवासी लगनेंके कारण घायल होनेंसे

हर्षित करानें लगा;वानर लोगभी राक्षसोंको बड़े २ वृक्ष और बड़ीर शिलायें ग्रहण कर ॥ २९ ॥ बलपूर्वक राक्षसोंके अस्त्र शस्त्र उनको विदारण करनें लगे, कि उसी अवसरमें वानर वीर, कुमुद, नल, ॥३०॥ मैन्दादि सब महाक्रोध कर बड़ावेग करनेंलगे। यह महावीर वानर गण बड़े २ वृक्षोंको लेकर सैनाके मुखमें टिके हुए ॥३१॥ लीलासेही खेलसा करते हुए राक्षसोंकी बड़ीभारी दुर्दशा करनें लगे; इन वानरश्रेष्ठोंनें यहां तक वृक्ष चलाये, कि बहुतसे राक्षस मृतक होगये। इन वानरोंनें औरभी अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंसे राक्षसोंका मान मथडाला ॥ ३२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पंचपंचाशः सर्गः ॥ ५५ ॥ तब वानर वीरगणोंका अद्भुत विक्रम देखकर और उनके बड़ेभारी

विदारयंत्यभिक्रम्यशस्त्राण्याच्छिद्यवीर्यतः ॥ एतस्मिन्नंतरेवीराहरयःकुमुदोनलः ॥ ३० ॥ मैंदश्चपरमक्रुद्धश्चक्रुर्वेगमनुत्तमम् ॥ तेतुवृक्षैर्महावीराराक्षसानांचमूमुखे ॥ ३१ ॥ कदनंसुमहच्चक्रुर्लीलयाहरिपुंगवाः ॥ ममंथूराक्षसान्सर्वान्नानाप्रहरणैर्भृशम् ॥ ३२ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० युद्ध० पंचपंचाशः सर्गः ॥५५॥ ॥ छ ॥ ॥ तद्दृष्ट्वासुमहत्कर्मकृतंवानरसत्तमैः ॥ क्रोधमाहारयामासयुधितीव्रमकंपनः ॥ १ ॥ क्रोधमूर्छितरूपस्तुधुन्वन्परमकार्मुकम् ॥ दृष्ट्वातुकर्मशत्रूणांसारथिंवाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥ तत्रैवतावत्त्वरितोरथंप्रापयसारथे ॥ एतेचबलिनोघ्नंतिसुबहून्राक्षसान्रणे ॥ ३ ॥ एतेचबलवंतोवाभीमकोपाश्चवानराः ॥ द्रुमशैलप्रहरणास्तिष्ठंतिप्रमुखेमम ॥ ४ ॥ एतान्निहंतुमिच्छामिसमरश्लाघिनोह्यहम् ॥ एतैःप्रमथितंसर्वंरक्षसांदृश्यतेबलम् ॥ ५ ॥

कार्यको विचारकर राक्षस सैनापति अकंपननें अत्यन्त क्रोधकिया ॥ १ ॥वह वीर अकंपन शत्रुलोगोंका ऐसा कर्म देखकर बड़ा भारी विचित्र शरासन ग्रहण कर उसपर टंकारदे क्रोधसे मूर्छितहो अपने सारथिसे बोला ॥ २ ॥ हेसारथे! यह बलवान वानर गण संग्राममें अगणित राक्षसोंको संहार कर रहेहैं, इस कारण जहांपर यह वानरहैं, वहीं पर हमारा रथ ले चलो ॥३॥ जो वानर लोग कि वृक्ष और शिलारूप हथियार धारण किये हुए हमारे सामने टिकेहैं; यह समरकी अभिलाषा किये भयंकर कोप करनेंवाले वानर अतिशय बलवानहैं ॥ ४ ॥ इस कारण हम पहले इन

शिलाको अपने ऊपर आती देख बडी शीघ्रताके साथ रथसे छलांगमार गदा ग्रहण कर पृथ्वीपर खड़ा होगया ॥ २८ ॥ हनुमानजीकी चलाई गदाके प्रहारसे केवल धूम्राक्षका रथही चूर्ण नहीं हुआ, वरन, चक्र, कूवर, ध्वजा और धनुष बाणतक नष्ट करके वह शिला पृथ्वीमें गिरी ॥ २९ ॥ तिसके पीछे हनुमानजी धूम्राक्षके रथको छोड़ कर शाखा और पत्तोंके सहित वृक्षोंसे राक्षसोंका विध्वंस करनें और उनको भगानें लगे ॥ ३० ॥ तब वृक्षोंके द्वारा पीड़ित होनेंसे राक्षसोंके शिर फूट गये और इस कारण रुधिरकी धारा निकलनेंसे वह पृथ्वी पर गिरनें लगे कुछेक राक्षस मार डालेगये और कितनोंनें अपने प्राणोंकी आशा छोड़दी ॥ ३१ ॥ पवनकुमार हनुमानजी इस प्रकारसे राक्षसोंकी सैनाको तितर वितर कर भगाय

साप्रमथ्यरथंतस्यनिपपाताशिलाभुवि ॥ सचक्रकूबरमुखंसध्वजंसशरासनम् ॥ २९ ॥ सत्यक्त्वातुरथंतस्यहनूमान्मारुतात्मजः ॥ रक्षसांकदनंचक्रेसस्कंधविटपैर्द्रुमैः ॥ ३० ॥ विभिन्नशिरसोभूत्वाराक्षसारुधिरोक्षिताः ॥ द्रुमैः प्रमथिताश्चान्येनिपेतुर्धरणीतले ॥ ३१ ॥ विद्राव्यराक्षससैन्यंहनूमान्मारुतात्मजः ॥ गिरेःशिखरमादायधूम्राक्षमभिदुद्रुवे ॥ ३२ ॥ तमापतंतंधूम्राक्षोगदामुद्यम्यवीर्यवान् ॥ विनर्दमानःसहसाहनूमंतमभिद्रवत् ॥ ३३ ॥ तस्यक्रुद्धस्यरोषेणगदांतांबहुकंटकाम् ॥ पातयामासधूम्राक्षोमस्तकेऽथहनूमतः ॥ ३४ ॥ ताडितःसतयातत्रगदयाभीमवेगया ॥ सकपिर्मारुतबलस्तंप्रहारमचिंतयत् ॥ ३५ ॥ धूम्राक्षस्यशिरोमध्येगिरिशृंगमपातयत् ॥ सविस्फारितसर्वांगोगिरिशृंगेणताडितः ॥ ३६ ॥

एक पर्वतका शृङ्ग ग्रहण करके धूम्राक्षके सामनें दौड़े ॥ ३२ ॥ वीर्यवान राक्षस धूम्राक्षभी हनुमानजीको अपनी ओर आता हुआ देख सिंहनादकर एक गदा उठाय उनके सन्मुख हुआ ॥ ३३ ॥ तिसके पीछे धूम्राक्षनें क्रोधमे भरकर वह अपनी बहुत कांटोंसे युक्त गदा क्रोधित हनुमानजीके शिरपर मारी ॥ ३४ ॥ परन्तु पवनकी समान बलवान हनुमानजी उस भयंकर वेगवाली गदाका प्रहार अपनें शिरमें लगनेंसेभी उस प्रहारको कुछभी नहीं समझते हुए कि जानें कहां लगा ॥ ३५ ॥ तिसके पीछे अञ्जनीहृदयनंदन पवनकुमार हनुमानजीनें अपनी वह पहली ग्रहणकीहुई

घोर सिंहनाद करतेहुए उनका रूप अत्यन्त असह होगया और वह प्रदीप्त अग्निकी समान अपने तेजसे आपही प्रकाशित हुए ॥ १४ ॥ वानर श्रेष्ठ क्रोधयुक्त हनुमानजीनें अपने आपको जब आयुधसे हीन जाना तब अतिवेगसे इन्होंनें एक पर्वत उखाड लिया ॥ १५ ॥ और एक हाथसे उस महापर्वतको ग्रहण कर पवननंदन हनुमानजी वारंवार सिंहनादकरकै उस पर्वतको घुमानेंलगे ॥ १६ ॥ पहले देवराज इन्द्रजी संग्राममें जिस प्रकार नमुचि दैत्यपर दौड़ेथे, वैसेही श्रीहनुमानजी राक्षसश्रेष्ठ अकंपनकी ओर दौड़े ॥ १७ ॥ परन्तु अकम्पननें हनुमानजीको गिरि शृंग लिये आता हुआ देखकर दूरसेही बड़े भारी अर्द्धचन्द्र बाण चलाय इस पर्वतको खंड २ कर डाला ॥ १८ ॥ हनुमानजी उस पर्वतको राक्ष

आत्मानंत्वप्रहरणंज्ञात्वाक्रोधसमन्वितः ॥ शैलमुत्पाटयामासवेगेनहरिपुंगवः ॥ १५ ॥ गृहीत्वासुमहाशैलंपाणि नैकेनमारुतिः ॥ सविनद्यमहानादंभ्रामयामासवीर्यवान् ॥ १६ ॥ ततस्तमभिदुद्रावराक्षसेंद्रमकंपनम् ॥ पुराहिन मुचिंसंख्येवज्रेणेवपुरंदरः ॥ १७ ॥ अकंपनस्तुतदृष्ट्वागिरिशृंगंसमुद्यतम् ॥ दूरादेवमहाबाणैरर्धचंद्रैरदारयत् ॥ १८ ॥ तंपर्वताग्रमाकाशेरक्षोबाणविदारितम् ॥ विकीर्णपतितंदृष्ट्वाहनूमान्क्रोधमूर्छितः ॥ १९ ॥ सोश्वकर्णसमासाद्यरोषदर्पा न्वितोहरिः ॥ तूर्णमुत्पाटयामासमहागिरिमिवोच्छ्रितम् ॥ २० ॥ तंगृहीत्वामहास्कंधंसोश्वकर्णमहाद्युतिः ॥ प्रगृह्य परयाप्रीत्याभ्रामयामासभूतले ॥ २१ ॥ प्रधावन्नुरुवेगेनबभंजतरसाद्रुमान् ॥ हनूमान्परमक्रुद्धश्चारणैर्दारयन्मही म् ॥ २२ ॥ गजांश्चसगजारोहान्सरथान्रथिनस्तथा ॥ जघानहनुमान्भीमान्राक्षसांश्चपदातिगान् ॥ २३ ॥

सके बाणोंसे आकाशमार्गमेंही कटा और इधर उधर छितराया देखकर क्रोधके मारे अधीर होगये ॥ १९ ॥ तब क्रोध और गर्व किये हुए उन वानरश्रेष्ठ हनुमानजीनें महापर्वतकी समान ऊंचे एक अश्वकर्ण वृक्षके नीचे जाय अति शीघ्रताके सहित उसको उखाड़ लिया ॥ २० ॥ तिसके पीछे महाद्युतिमान हनुमानजीनें शाखा फुलंची युक्त उस अति ऊंचे अश्वकर्णके वृक्षको ग्रहण करकै परम प्रसन्नता सहित उसको रणस्थलमें घुमाय कर एक वार पृथ्वीपर देमारा ॥ २१ ॥ उस कालमें क्रोधपूर्ण हनुमानजी करकै उस वृक्षके घुमानेंसे अनेक वृक्ष टूट गये, और उनके चरणोंके वेगसे वसुमती पृथ्वी घूमनें लगी ॥ २२ ॥ महावीर हनुमानजी उस वृक्षको घुमाय २ हाथी, हाथियोंके साथ, रथी, रथ और भयंकर परा

ऊंट, इत्यादि जीवगणभी चलनेंलगे, और चित्र विचित्र ध्वजा पताकाओंसे यह सब विशेष सुशोभितथे ॥ ५ ॥ वीर वज्रदंष्ट्र विचित्र बाजू बांधे शोभायमान मुकुट शिर पर धारे युद्ध करनेंको चला, उसका शरीर बख्तरसे ढकाहुआथा, और हाथोंमें धनुष बाणथा ॥ ६ ॥ उसका रथ ध्वजा पताकाओंके लगनेसे शोभायमानथा, तपायाहुआ सुवर्णभी उसमें बहुत स्थानोंपर लगा हुआथा, ऐसे रथकी प्रदक्षिणा करके वज्रदंष्ट्र उस पर सवार हुआ ॥ ७ ॥ तेगा, तोमर, मूसल, तीक्ष्ण फरसे, भिण्डिपाल, धनुष, शक्ति पटा ॥ ८ ॥ खड्ग, चक्र, गदा; इत्यादि और अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र लिये पैदल सैना वज्रदंष्ट्र नामक राक्षसके साथ २ चली ॥ ९ ॥ वह राक्षसश्रेष्ठ सबही उजले और दीप्त चित्रित वस्त्र पहर रहेथे, उस

ततोविचित्रकेयूरमुकुटेनविभूषितः ॥ तनुत्रंचसमावृत्यसधनुर्निर्ययौद्धतम् ॥ ६ ॥ पताकालंकृतंदीप्तंतप्तकांचनभूषितम् ॥ रथंप्रदक्षिणंकृत्वासमारोहच्चमूपतिः ॥ ७॥ ऋष्टिभिस्तोमरैश्चित्रैःश्लक्ष्णैश्चमुसलैरपि ॥ भिंदिपालैश्चचापैश्चशक्तिभिःपट्टिशैरपि ॥ ८ ॥ खड्गैश्चक्रैर्गदाभिश्चनिशितैश्चपरश्वधैः ॥ पदातयश्चनिर्यांतिविविधाःशस्त्रपाणयः ॥ ९ ॥ विचित्रवाससःसर्वेदीप्ताराक्षसपुंगवाः ॥ गजामदोत्कटाःशूराश्चलंतइवपर्वताः ॥ तेयुद्धकुशलारूढास्तोमरांकुशपाणिभिः ॥ अन्येलक्षणसंयुक्ताःशूरारूढामहाबलाः ॥ ११ ॥ तद्राक्षसबलंसर्वंविप्रस्थितमशोभत ॥ प्रावृट्कालेयथामेघानर्दमानाःसविद्युतः ॥ १२ ॥ निःसृतादक्षिणद्वारादंगदोयत्रयूथपः ॥ तेषांनिष्क्रममाणानामशुभंसमजायत ॥ १३ ॥ आकाशाद्विघनात्तीव्रादुल्मुकान्यपतंस्तदा ॥ वमंतःपावकज्वालाःशिवाघोरावववाशिरे ॥ १४ ॥

सैनाके पीछे २ मदमाते हाथी, गमन करनेंके समय चलते हुए पर्वतोंकी समान ज्ञात होतेथे ॥ १० ॥ वह समस्त हाथी युद्ध करनेंमें बड़े कुशलथे, उन पर भाला अंकुशादि धारण किये वीर लोग चढ़ेथे व औरभी महाबली सर्व लक्षण सम्पन्न वीर गण उन पर चढ रहेथे ॥ ११ ॥ उस समय वह चलती हुई राक्षस सैना वर्षा समयकी श्रेणीसे शोभित गर्जती हुई मेघ मालाकी समान शोभायमान होनें लगी ॥ १२ ॥ उस समय वह सैना निकलकर वहां पर जहां कि यूथपति अंगदजी लंकाके दक्षिणद्वारपर टिके हुएथे राक्षसोंकी सैना जैसेही निकलीकि उसके अशुभकी सूचना करनें वाले अमंगल दृष्टि आनें लगे ॥ १३ ॥ आकाशसे विनाही मेघके तीव्र बिजलीके सहित उल्का गिरनें लगीं । घोर रूपवाली

भागनें लगे ॥ ३२ ॥ उन राक्षसोंके वाल छूट रहेथे उन्होंने पराजित होकर मान मर्यादाको जल दे दिया, भयके मारे उनके सब अंगोंमें पसीना आ रहाथा, और प्राणोंका डर करके उनके चित्त स्थिर नहींथे ॥ ३३ ॥ उस समय उनको इस प्रकारका भय हुआथा कि वह राक्षस भागनेंके समय वारंवार पीछे को देखनें लगे, और आपही परस्पर एक दूसरेको मारते हुए नगरमें प्रवेश करते हुए ॥ ३४ ॥ जब वह महावल राक्षस लंका पुरीको चले गये तब समस्त वानर एकत्रहो हनुमानजीकी पूजा करनें लगे और उन नीतिविशारद सत्वसम्पन्न हनुमानजीनेभी भेंटकरके, व संभाषण करके उन सब वानरोंकी यथायोग्य रूपसे बडाईकर प्रतिपूजित किया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ तिसके पीछे वह विजयी वानर गण मृतक

तेमुक्तकेशाःसंभ्रांताभग्नमानाःपराजिताः॥भयाच्छ्रमजलैरंगैःप्रस्रवद्भिर्विदुद्रुवुः॥३३॥ अन्योन्यंतेप्रमथ्नंतोविविशुर्नगरंभयात्॥ पृष्ठतस्तेतुसंमूढाःप्रेक्षमाणामुहुर्मुहुः॥३४॥ तेषुलंकांप्रविष्टेषुराक्षसेषुमहाबलाः॥ समेत्यहरयःसर्वेहनूमंतमपूजयन्॥३५॥ सोपिप्रवृद्धस्तान्सर्वान्हरीन्संप्रत्यपूजयत्॥ हनूमान्सत्त्वसंपन्नोयथार्हमनुकूलतः॥ ३६॥ विनेदुश्चयथाप्राणंहरयोजितकाशिनः॥ चकृषुश्चपुनस्तत्रसप्राणानेवराक्षसान्॥ ३७॥ सवीरशोभामभजन्महाकपिःसमेत्यरक्षांसिनिहत्यमारुतिः॥ महासुरंभीमममित्रनाशनंविष्णुर्यथैवोरुबलंचमूमुखे॥३८॥ अपूजयन्देवगणास्तदाकपिंस्वयंचरामोतिबलश्चलक्ष्मणः॥तथैवसुग्रीवमुखाःप्लवंगमाविभीषणश्चैवमहाबलस्तदा॥ ३९॥ इत्यार्षेश्रीम०वाल्मीकीयेआ० युद्धकांडेषट्पंचाशःसर्गः॥५६॥अकंपनवधंश्रुत्वाक्रुद्धोवैराक्षसेश्वरः॥किंचिद्दीनमुखश्चापिसचिवांस्तानुदैक्षत॥ १॥

राक्षसोंको ऐसा समझकर कि कदाचित् यह जीवित न हों फिर इधर उधर खेंचने लगे ॥ ३७ ॥ जिस प्रकार शत्रुओंके मारनेंवाले विष्णुजीने संग्रामभूमिमें भयंकर रूप महा वलवान मधुकैटभादि महा असुरोंको मारकर बडी भारी शोभा धारण कीथी वैसेही यह महाकपि पवनकुमार हनुमानजी राक्षसोंको ऐसा संहारकरके वीरोंकी शोभासे शोभित हुए ॥ ३८ ॥ उस समय आकाशमें टिके हुए देवतागण सुग्रीवादि मुख्य २ वानर गण, महावलवान विभीषण अति वलवान लक्ष्मण और स्वयं श्रीरामचंद्रजीभी उन महाकपि हनुमानजीकी वारंवार प्रशंसा करने लगे ॥ ३९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे षट्पंचाशःसर्गः ॥ ५६ ॥ अकम्पनके मारे जानेका वृत्तान्त सुनकर निशाचरपति रावण अ

सब अस्त्र शस्त्रोंको त्याग करके, तल, चरण और घूमनेंसे मल्ल युद्ध और कोई वृक्षोंको लेकर युद्ध करनें लगे ॥ २३ ॥ उस समय कोई २ राक्षस युद्धमें मतवाले वानर गणोंसे जांघसे मारे जाकर अपने शरीरको तुडवाते हुए, और कोई राक्षस वानरोंकी चलाई हुई शिलाओंके प्रहारसे पिसकर चूर्ण होगये ॥ २४ ॥ तिसके पीछे वज्रदंष्ट्र यह समस्त व्यापारदेख वानरोंको त्रासित करता हुआ लोक संहार करनेंके लिये तैयार फांसी हाथमें लिये हुए यमराजकी समान रणभूमिमें घूमनें लगा ॥ २५ ॥उस समय विविध अस्त्र शस्त्र धारी अस्त्रावित् बलवान निशाचर गण क्रोधसे मूर्छित होकर वानरोंकी सैनाका संहार करनें लगे ॥ २६ ॥ परन्तु महा वीरजी रणभूमिमें राक्षसों करके वानर लोगोंको मरते देखकर प्रलय

जानुभिश्चहताःकेचिद्भग्नदेहाश्चराक्षसाः ॥ शिलाभिश्चूर्णिताःकेचिद्वानरैर्युद्धदुर्मदैः ॥ २४ ॥ वज्रदंष्ट्रोथतंदृष्ट्वारणेवि
त्रासयन्हरीन् ॥ चचारलोकसंहारेपाशहस्तइवांतकः ॥ २५ ॥ बलवंतोऽस्त्रविदुषोनानाप्रहरणारणे ॥ जघ्नुर्वानरसैन्यानि
राक्षसाःक्रोधमूर्छिताः ॥ २६ ॥ जघ्नेतान्राक्षसान्सर्वान्दृष्ट्वावायुसुतोरणे ॥ क्रोधेनद्विगुणाविष्टःसंवर्तकइवानलः ॥ २७॥
तान्राक्षसगणान्सर्वान्वृक्षमुद्यम्यवीर्यवान् ॥ अंगदःक्रोधताम्राक्षःसिंहःक्षुद्रमृगानिव ॥ २८॥ चकारकदनंघोरंशक्रतु
ल्यपराक्रमः ॥ अंगदाभिहतास्तत्रराक्षसाभीमविक्रमाः ॥ २९ ॥विभिन्नशिरसःपेतुर्निकृत्ताइवपादपाः ॥ रथैश्चित्रैर्ध्वजै
रश्वैःशरीरैहरिरक्षसाम् ॥ ३० ॥ रुधिरौघेणसंछन्नाभूमिर्भयकरीतदा ॥ हारकेयूरवस्त्रैश्चछत्रैश्चसमलंकृता॥ ३१ ॥

कालके अग्निकी समान द्विगुण कोप करते हुए ॥ २७ ॥ इन्द्रतुल्य पराक्रम शाली अंगदजी भी क्रोधके मारे लाल २ नेत्रकर सिंह जिस प्रकार छोटे २ मृगोंका नाश करताहै वैसेही वृक्षोंको उठाय २ यह राक्षसोंकाघोर विनाश करनें लगे॥ २८॥यद्यपि यह राक्षस लोग भी बड़े विक्रमीथे परन्तु इन्द्रकी समान घोर विक्रम कारी अंगदजीके द्वारा मारे जानेंसे ॥ २९ ॥ इन राक्षसोंके शिर कट गये, कि जिस्से यह राक्षस कटे हुए वृक्षकी समान पृथ्वीपर गिरनें लगे। रथ चित्र विचित्र ध्वजा पताका अश्व और वानर राक्षसोंके मृतक शरीरोंसे ॥ ३० ॥ और रुधिरके सोतेसे

सिंहकी सिंहनादको नहीं सहसकतेहैं; वैसेही वह नीतिरहित चपल और चंचलचित्त वानरोंकी सैना तुम्हारा भयंकर गर्जना नहीं सहसकेगी हे प्रहस्त! सब वानरोंकी सैनाके इधर उधर भाग जानेंसे वह स्वामी शक्तिहीन सहायरहित रामचंद्र और सुमित्राके पुत्र लक्ष्मणके सहित तुम्हारे वशमें होजांयगे ॥९॥ १० ॥ हे वीर! यद्यपि आपत् अर्थात् युद्धमें मरण संशय युक्तहै; कारण कि यह नहीं जाने कि कौन मारा जायगा. और निःसंशयमें अमंगलहै, इस कारण इसका प्रतिलोम और अनुलोम, जिसमें प्रवृत्तिहो वही तुम करो * ॥ ११ ॥ जब रावणनें यह कहा तब सैनापति प्रहस्त शुक्राचार्य जिस प्रकार दैत्येन्द्रसे कहा करते हैं वैसेही राक्षसोंके स्वामी रावणसे यह बोला ॥ १२ ॥ हे महाराज! पहले हम

विद्रुतेचबलेतस्मिन्रामःसौमित्रिणासह ॥ अवशस्तुनिरालंबः प्रहस्तवशमेष्यति ॥ १० ॥ आपत्संशयिताश्रेयोनात्रनिःसंशयीकृता ॥ प्रतिलोमानुलोमंवायत्तुनोमन्यसेहितम् ॥ ११ ॥ रावणेनैवमुक्तस्तुप्रहस्तोवाहिनीपतिः ॥ राक्षसेंद्रमुवाचेदमसुरेंद्रमिवोशना ॥ १२ ॥ राजन्मंत्रितपूर्वंनःकुशलैःसहमंत्रिभिः ॥ विवादश्चापिनोवृत्तःसमवेक्ष्यपरस्परम् ॥१३॥ प्रदानेनतुसीतायाःश्रेयोव्यवसितंमया ॥ अप्रदानेपुनर्युद्धंदृष्टमेवतथैवनः ॥१४॥ सोहंदानैश्चमानैश्चसततंपूजितस्त्वया ॥ सांत्वैश्चविविधैःकालेकिंनकुर्यांहितंतव ॥ १५ ॥

लोगोंनें नीतिके जाननेंवाले मंत्रियोंके सहित इस सम्बन्धमें परामर्श कियाथा. परन्तु उसकालमें परस्पर एकमत न होनेसे हम लोगोंमें विवाद भी हुआ ॥ १३ ॥ उस समय हमनें जानकीका दे देनाही निश्चय कियाथा; और यह भी हमनें कहाथा कि सीता न देनेंसे युद्धभी होगा सो हे महाराज! इस समय हमें वही युद्ध प्राप्त हुआहै ॥ १४ ॥ हे राक्षसनाथ! जो कुछभी हो आप दान, सन्मान और मीठे वचनोंसे सदाही हमारा सन्मान किया करतेहैं; इस कारण इस समय हम आपके लिये किसी प्रकार हितकारी कार्य करनेंमें कोई कसर न रक्खेंगे ॥ १५ ॥

* तात्पर्य;—युद्ध क्षेत्रमें तुम्हारीभी मृत्यु होगी इसकी क्या स्थिरता है? परन्तु इसमे जयलाभ करना एक प्रकारसे स्थिर सिद्धान्त है इसकारण युद्धमें तुम्हारे लिये जानाही अच्छा हैं युद्धसे विमुख होना तुम्हारा कर्त्तव्य नहींहैं ॥

और हाथ कटगये और शस्त्रोंसे कट जानेके कारण उनके सब अंगोंमें रुधिर बहने लगा ॥ ८ ॥ असंख्य वानर और राक्षसगण मर २ कर पृथ्वीपर गिर पडे, तब उनके मृतक शरीरोंपर सहस्रों काक, गिद्ध, व गीदड बैठ मांस खाय २ नाचनें लगे ॥ ९ ॥ डरपोकोंको डरावने वाले कबंध उडनें लगे रणभूमिमें असंख्य सैनाके हाथ पैर शिर कटकर शरीरसे अलग होने लगे ॥ १० ॥ तिसके पीछे वानरोंकी सैनाकरके मारीहुई निशाचरोंकी वह सैना राक्षस वज्रदंष्ट्रके सन्मुखही रणभूमि छोड कर भागनेका आरंभ करनेंलगी ॥ ११ ॥ वानरोंकी सैनाके हाथसे राक्षसोंको मारा जाता हुआ और भयसे भीत देखकर ॥ १२ ॥ प्रतापशाली राक्षसोंका सैनापति वज्रदंष्ट्र कोपसे परिपूर्ण हो गया उसके दोनोंनेत्र

हरयोराक्षसाश्चैवशेरतेगांसमाश्रिताः ॥ कंकगृध्रबलाढ्याश्चगोमायुकुलसंकुलाः ॥९ ॥ कबंधानिसमुत्पेतुर्भीरूणांभीषणानिवै ॥ भुजपाणिशिरश्छिन्नाश्छिन्नकायाश्चभूतले ॥ १० ॥ वानरराराक्षसाश्चापिनिपेतुस्तत्रभूतले ॥ ततोवानरसैन्येनहन्यमानंनिशाचरम् ॥ ११ ॥ प्राभज्यतबलंसर्ववज्रदंष्ट्रस्यपश्यतः ॥ राक्षसान्भयवित्रस्तान्हन्यमानान्प्लवंगमैः ॥१२॥ दृष्ट्वासरोषताम्राक्षोवज्रदंष्ट्रःप्रतापवान् ॥ प्रविवेशधनुष्पाणिस्त्रासयन्हरिवाहिनीम् ॥१३॥ शरैर्विदारयामासकंकपत्रैरजिह्मगैः ॥ बिभेदवानरांस्तत्रसप्ताष्टौनवपंचच ॥ विव्याधपरमक्रुद्धोवज्रदंष्ट्रःप्रतापवान् ॥ १४ ॥ त्रस्ताःसर्वेहरिगणाःशरैःसंकृत्तदेहिनः ॥ अंगदंसंप्रधावंतिप्रजापतिमिवप्रजाः ॥ १५ ॥ ततोहरिगणान्भग्नान्दृष्ट्वावालिसुतस्तदा ॥ क्रोधेनवज्रदंष्ट्रंतमुदीक्षंतमुदैक्षत ॥ १६ ॥

क्रोधके मारे लाल हो आये वह धनुष करकै वानरोंकी सैनामें प्रवेश करकै उसको ताडित करने लगा ॥ १३ ॥ और अपनी कुटिल गतिसे कंक पत्र लगे हुए अगणित बाण चलाय २ वानर सैनाको घायल करने लगा, उस महाप्रतापी वज्रदंष्ट्रने अत्यन्त कोपमें भरकर वानर गणोंको यथा क्रमसे सात, आठ; नौ और पांच २ बाण चलाय उन वानरोंके शरीरको भेदा ॥ १४ ॥ तब भयके मारे सब वानर गण भागने लगे उनके शरीर बाणोंके लगनेंसे छिन्नभिन्न होगये सताई हुई प्रजा जिस प्रकार ब्रह्माजीके निकट जाया करतीहै वैसेही वानर गण अंगदजीके निकट दौडकर आने लगे ॥ १५ ॥ तब महा बलवान अंगदजी वज्रदंष्ट्रके द्वारा वानरोंको भागा हुआ देखकर उसकी ओर क्रोधसें दृष्टि करते हुए। राक्षस सैनापति

सर्व अस्त्र शस्त्रोंसे पूर्ण और तैयार रथपर सजा सजाया प्रहस्त नाम सैनापति सवार हुआ इस रथमें अत्यन्त वेगवान् घोड़े जुतेथे और सर्व भांतिसे चतुर सारथीभी इसपर चढ़ा हुआथा॥२५॥ इस रथका शब्द बड़े भारी मेघगर्जनकी समानथा चन्द्र सूर्यकी समान इसमें प्रकाशथा, सर्पाकार ध्वजा इसपर लटक रहीथीं। सुन्दर गुम्मजदार ॥ २६ ॥ सुवर्णके जालसे युक्त अपनी सुन्दरताईकी शोभाको मानो आपही हँसरही है, ऐसे रथपर रावणकी आज्ञासे सैनापति प्रहस्त सवार होकर ॥ २७ ॥ बड़ी भारी राक्षसोंकी सैना संगले लंकासे बहुतही शीघ्र निकला। उस समय मेघकी गर्जनेंकी समान नगाडोंका शब्द होनें लगा व और दूसरे बाजोंके शब्दसेभी पृथ्वी और दशोंदिशा पूर्ण होगई ॥ २८ ॥ जब वह सैनापति प्रहस्त

आरुरोहरथंयुक्तःप्रहस्तःसज्जकल्पितम् ॥ हयैर्महाजवैर्युक्तंसम्यक्सूतंसुसंयतम् ॥ २५॥ महाजलदनिर्घोषंसाक्षाच्चंद्रार्कभास्वरम् ॥ उरगध्वजदुर्धर्षसुवरूथंस्वपस्करम् ॥२६॥ सुवर्णजालसंयुक्तंप्रहसंतमिवश्रिया ॥ ततस्तंरथमास्थाय रावणार्पितशासनः ॥ २७॥ लंकायानिर्ययौतूर्णंबलेनमहतावृतः ॥ ततोदुंदुभिनिर्घोषःपर्जन्यनिनदोपमः ॥ वादित्राणां चनिनदःपूरयन्निवमेदिनीम् ॥ २८ ॥ शुश्रुवेशंखशब्दश्चप्रयातेवाहिनीपतौ ॥ निनदंतःस्वरान्घोरान्राक्षसाजग्मुरग्रतः ॥ २९ ॥ भीमरूपामहाकायाःप्रहस्तस्यपुरःसराः ॥ नरांतकःकुंभहनुर्महानादःसमुन्नतः ॥ प्रहस्तसचिवाह्येते निर्ययुःपरिवार्यतम् ॥ ३० ॥ व्यूढेनैवसुघोरेणपूर्वद्वारात्सनिर्ययौ ॥ गजयूथनिकाशेनबलेनमहतावृतः ॥ ३१ ॥ सागरप्रतिमौघेनवृतस्तेनबलेनसः ॥ प्रहस्तोनिर्ययौक्रुद्धःकालांतकयमोपमः ॥ ३२ ॥

चला, तब बहुत सारे शंखभी बजनेंलगे और बड़े उच्च शब्दसे घोर गर्जन करते हुए राक्षस गणभी आगे २ चले ॥२९॥ प्रहस्तके साथ इस प्रकारसे महाकाय और भयंकर रूपवाले यह राक्षस आगे बढ़े।नारान्तक, कुम्भहनु,महानाद, समुन्नत, प्रहस्तके यह चार मंत्री प्रहस्तको घेरकर लंकासे निकले ॥ ३० ॥ हाथियोंके यूथकी समान बडीभारी राक्षसोंकी सैनाके साथ वह प्रहस्त घोर व्यूहकी रचना करता हुआ लंकाके पूर्वद्वारसे निकला ॥३१॥ प्रहस्तकी सैना बड़े भारी विस्तारवाले समुद्रकी समानथी। वह प्रहस्त कराल कालकी समान भयंकर मूर्ति धारण कर सेनाको संगले समरभूमिके

तक चेतना रहित हो अपनी गदाको पकड़े हुए लंबे श्वास चलानें लगा ॥२५॥ फिर कुछ देरमें चेतना पाय राक्षस वज्रदंष्ट्रनें क्रोधमें भर सन्मुख खडे हुए वालिकुमार अंगदजीको छातीमें एक गदा मारी ॥ २६ ॥ तिसके पीछे गदा युद्ध छोड वह वानर और राक्षस दोनों मूका,लात,चनकटा इत्यादि मार२बाहु युद्धकर परस्पर एक दूसरे पर चोट चलानें लगे ॥२७॥दोनोकेही शरीरसे रुधिर निकलनें लगा.घोर कठोर प्रहारोंके लगनेंसे दोनों वीरही थक गये; उस समय वह ऐसे ज्ञात होतेथे मानों रणभूमिमें मंगल और बुध ग्रह घूम रहेहैं ॥२८॥ तब परम तेजस्वी वानर श्रेष्ठ अंगदजी पुष्प और फलोंसे शोभायमान एक बडा भारी वृक्ष उखाडकर रणभूमिमें खडे होगये ॥२९ ॥ परन्तु निशाचर वज्रदंष्ट्रने किंकिणीजालसे युक्त विमल ऋषभके चर्मसे

सलब्धसंज्ञोगदयावालिपुत्रमवस्थितम् ॥ जघानपरमक्रुद्धोवक्षोदेशेनिशाचरः ॥ २६ ॥ गदांत्यक्त्वाततस्तत्रमुष्टियुद्धमकुर्वत ॥ अन्योन्यंजघ्नतुस्तत्रतावुभौहरिराक्षसौ ॥२७॥ रुधिरोद्गारिणौतौतुप्रहारैर्जनितश्रमौ ॥ बभूवतुःसुविक्रांतावंगारकबुधाविव ॥ २८ ॥ ततःपरमतेजस्वीअंगदःप्लवगर्षभः ॥ उत्पाट्यवृक्षंस्थितवानासीत्पुष्पफलैर्युतः ॥ २९ ॥ जग्राहचार्षभंचर्मखड्गंचविपुलंशुभम् ॥ किंकिणीजालसंछन्नंचर्मणाचपरिष्कृतम् ॥३०॥ चित्रांश्चरुचिरान्मार्गांश्चेरतुःकपिराक्षसौ ॥ जघ्नतुश्चतदान्योन्यंनर्दंतौजयकांक्षिणौ ॥३१॥ व्रणैःसमुत्थैःशोभेतांपुष्पिताविवकिंशुकौ ॥ युध्यमानौपरिश्रांतौजानुभ्यामवनींगतौ ॥ ३२॥ निमेषांतरमात्रेणअंगदःकपिकुंजरः ॥ उदतिष्ठतदीप्ताक्षोदंडाहतइवोरगः॥३३॥

बनी ढाल और चमड़ेके म्यानसे ढकी हुई तलवार निकाली तब वालिकुमार अंगदजीनेंभी मृगचर्मसे बनी हुई जयकी सूचना करनेंवाली बडी ढाल और खड्ग ग्रहण किया ॥ ३० ॥ उस समय विजयकी अभिलाषा किये वह दोनों वानर और राक्षस विचित्रमार्गेमें घूमतेहुए परस्परमें एक दूसरेके ऊपर चोट चलानें लगे ॥ ३१ ॥ परस्पर युद्ध करते हुए उन दोनों वीरोंके सर्वाङ्गोंमें रुधिर निकलनेंके कारण वह दोनों फूले हुए दो टेसू वृक्षोंकी समान शोभायमान हो रहेथे, परस्पर जांघोंको सकोड़ कर यह दोनों वीर थककर पृथ्वीमें बैठतेहुए ॥ ३२ ॥ कपि कुंजर अंगदजी एक निमेष मात्रमें दंडसे आहत हुए सर्पकी समान तड़ककर उठे, उनके दोनों नेत्रोंनें दीप्तिमान अग्निके समान प्रभाव धारण किया ॥ ३३ ॥

और बड़ी शिलायें ग्रहण करके पर्वतोंके शृङ्गोंको तोड़ते हुए धीरे २ आगे बढ़े ॥ ४१ ॥ तिसके पीछे वानर और निशाचरोंकी सैना ऐसा गर्जन और सिंहनाद करनें लगी ! दोनोंही ओरकी सैना युद्धकी वासनासे हर्षितचित्त होरहीथी ॥ ४२ ॥ यह दोनों वानर और राक्षसगण एक दूसरेका नाश करना चाहतेथे, उस कालमें दोनों सैनाके वीर दोनों ओरके वीरोंको लड़नेंके लिये पुकारतेथे, वस यही शब्द उस काल श्रवण होताथा ॥ ४३ ॥ तिसके पीछे राक्षसोंकी सैनाका पति खोटीमतिवाला प्रहस्त युद्धमें जय पानेंकी वासनासे; पतंग जिस प्रकार मृत्युके निकट पहुंचकर प्रदीप्त अग्निकी शिखामें गिरजाताहै, वैसेही अत्यन्त वेगसे वानरोंकी सैनामें प्रवेश करता हुआ ॥ ४४ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०यु०सप्तपंचाशःसर्गः ॥ ५७ ॥

नदतांराक्षसानांचवानराणांचगर्जताम् ॥ उभेप्रमुदितेसैन्येरक्षोगणवनौकसाम् ॥ ४२ ॥ वेगितानांसमर्थानामन्योन्य वधकांक्षिणाम् ॥ परस्परंचाह्वयतांनिनादःश्रूयतेमहान् ॥ ४३ ॥ ततःप्रहस्तःकपिराजवाहिनीमभिप्रतस्थेविजया यदुर्मतिः ॥ विवृद्धवेगश्चविवेशितांचमूंयथामुमूर्षुःशलभोविभावसुम् ॥ ४४ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेसप्तपंचाशःसर्गः ॥ ५७ ॥ ॥ छ ॥ ॥ ततःप्रहस्तंनिर्यांतंदृष्ट्वारणकृतोद्यमम् ॥ उवाच सस्मितंरामोविभीषणमरिंदमः ॥ १ ॥ कएषसुमहाकायोबलेनमहतावृतः ॥ आगच्छतिमहावेगःकिंरूपबलपौरुषः ॥ २ ॥ आचक्ष्वमेमहाबाहोवीर्यवंतंनिशाचरम् ॥ राघवस्यवचःश्रुत्वाप्रत्युवाचबिभीषणः ॥ ३ ॥ एषसेनापतिस्तस्यप्रहस्तोनामराक्षसः ॥ लंकायांराक्षसेंद्रस्यत्रिभागबलसंवृतः ॥ वीर्यवानस्त्रविच्छूरःसुप्रख्यातपराक्रमः ॥ ४ ॥

तिसके पीछे शत्रुदमनकारी श्रीरामचंद्रजी प्रहस्तको संग्राम करनेंके लिये तैयार देख हँसकर विभीषणजीसे पूछनेंलगे ॥ १ ॥ यह महाकाय वीर्यवान् निशाचर जो बड़ी भारी सैनाके साथ अतिवेगसे यहांपर आय रहाहै; इसका बल और पौरुष कैसा है ॥ २ ॥ हेमहाबाहो ! हमको इस वीर्यवान् निशाचरका यह समस्त वृत्तान्त सुनाओ, तव श्रीरामचंद्रजीके ऐसे वचन सुनकर विभीषणजी उत्तर देतेहुए ॥ ३ ॥ कि यह प्रहस्तनामक निशाचर राक्षसराज रावणका सैनापतिहै; लंकापुरीमें जितनीभर रावणकी सैनाहै यह विख्यातपराक्रम अस्त्रोंका जाननेंवाला

सेनापति बनायकर युद्ध करनेके लिये जाँय ॥ २ ॥ यह अकम्पन वीर शत्रु लोगोंको दमन करनेंमें बड़ा चतुरहै,यह अपनी सैनाकी रक्षा करनें वाला और युद्ध कार्यका प्रेरकहै; विशेष करके यह हमारा एक हितकारी बन्धुहै युद्ध कार्यमें इसका बड़ा अनुरागहै ॥ ३ ॥ यही महाबल वान् सुग्रीवके सहित रामचंद्र और लक्ष्मणको युद्धमे पराजित करेंगे; और इसमेंभी कोई सन्देह नहीं कि इनके हाथसे युद्धमें और वानरवीर गणभी मारे जायँगे ॥ ४ ॥ शीघ्र पराक्रम करनेंवाला महाबलवान् प्रहस्त रावणकी ऐसी आज्ञाको पायकर सब सैनाको युद्ध करनेंके लिये चलनेंकी आज्ञा देताहुआ ॥ ५ ॥ तब वह अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र धारी भयंकर नेत्र और भयंकराकार प्रधान २ राक्षसगण सैनापतिकी यह

एषशास्ताचगोप्ताचनेताचयुधिसत्तमः ॥ भूतिकामश्चमेनित्यंनित्यंचसमरप्रियः॥३॥ एषजेष्यतिकाकुत्स्थौसुग्रीवंच महाबलम्॥वानरांश्चापरान्घोरान्हनिष्यतिनसंशयः ॥४॥परिगृह्यसतामाज्ञांरावणस्यमहाबलः॥स्वबलंप्रेरयामासतदा लघुपराक्रमः॥५॥ततोनानाप्रहरणाभीमाक्षाभीमदर्शनाः ॥ निष्पेतूराक्षसामुख्याबलाध्यक्षप्रचोदिताः ॥६॥ रथमास्था यविपुलंतप्तकांचनभूषणम् ॥ मेघाभोमेघवर्णश्चमेघस्वनमहास्वनः ॥ ७ ॥ राक्षसैःसंवृतोघोरैस्तदानिर्यात्यकंपनः ॥ नहिकंपयितुंशक्यःसुरैरपिमहामृधे ॥ ८ ॥ अकंपनस्ततस्तेषामादित्यइवतेजसा ॥ तस्यनिर्धावमानस्यसंरब्धस्य युयुत्सया ॥ ९ ॥ अकस्माद्दैन्यमागच्छद्धयानांरथवाहिनाम् ॥ विस्फुरन्नयनंचास्यसव्यंयुद्धाभिनंदिनः ॥ १० ॥

आज्ञा पायकर युद्ध करनेंके लिये निकले ॥ ६ ॥ राक्षसोंके सेनापतिका वर्ण मेघतुल्य और शब्द मेघके गर्जन करनेंकी समान था; वह तपाये हुए सुवर्णसे विभूषित रथपर सवार होता हुआ ॥ ७ ॥ उसके साथ २ भयंकराकार अगणित राक्षसोंकी सैना युद्ध करनेंके लिये निकली इस वीर अकंपनको संग्रामस्थानमें देवतालोगभी कंपायमान करनेंको समर्थ नहीं थे ॥ ८ ॥ यह तेजस्वी अकंपन अपनी सेनाके बीचमें साक्षात् सूर्य भग वान् की समान शोभायमान होंनेलगा जब यह युद्ध करनेंकी इच्छासे चला, तब क्रोधकर दौडतेहुए अकम्पनके ॥ ९ ॥ रथमें जुतेहुए घोडोंको

खङ्गमें दो टुकडे कर डाले गये; किसी २ वानरकी बगलही कटगईथी; इस्से वहभी पृथ्वीपर पड़ेथे ॥ १४ ॥ इसी प्रकारसे बड़ा क्रोध करके वानरोंनें राक्षसोंके ऊपर पर्वतोंके शिखर और वृक्षोंका प्रहार किया, कि जिस्से वह पिसकर पृथ्वीपर गिर पडे ॥ १५ ॥ कोई २ राक्षस वानरोंके चनकटे खाय और कोई २ घूंसे खाय २ कर मारे गये, कोई २ रुधिर उगलनेंलगे, और किसी २ राक्षसके मुख सूखकर फैल गयेथे ॥ १६ ॥ इस प्रकारसे राक्षस और वानरोंकी सैनाके बीचमें आरत वाणी सिंहनाद और गर्जन करनेंका कठोर शब्द उत्पन्न हुआ ॥ १७ ॥ इस प्रकारसे वह विकराल वदन क्रूर निशाचर और वानर गण वीर मार्गमें टिके हुए क्रोधमें भर भय छोड़ युद्ध करते हुए

वानरैश्चापिसंक्रुद्धैराक्षसौघाःसमंततः ॥ पादपैर्गिरिशृंगैश्चसंपिष्टावसुधातले ॥ १५ ॥ वज्रस्पर्शतलैर्हस्तैर्मुष्टिभिश्च हताभृशम् ॥ वमञ्छोणितमास्येभ्योविशीर्णवदनेक्षणाः ॥ १६ ॥ आर्तस्वनंचस्वनतांसिंहनादंचनर्दताम् ॥ बभूवतु मुलःशब्दोहरीणांरक्षसामपि ॥ १७ ॥ वानराराक्षसाःक्रुद्धावीरमार्गमनुव्रताः ॥ विवृत्तवदनाःक्रूराश्चक्रुःकर्माण्यभी तवत् ॥ १८ ॥ नरांतकःकुंभहनुर्महानादःसमुन्नतः ॥ एतेप्रहस्तसचिवाःसर्वेजघ्नुर्वनौकसः ॥ १९ ॥ तेषांनिपततां शीघ्रंनिघ्नतांचापिवानरान् ॥ द्विविदोगिरिशृंगेणजघानैकंनरांतकम् ॥२०॥ दुर्मुखःपुनरुत्थायकपिःसविपुलद्रुमम् ॥ राक्षसंक्षिप्रहस्तंतुसमुन्नतमपोथयत् ॥ २१ ॥ जांबवांस्तुसुसंक्रुद्धःप्रगृह्यमहतींशिलाम् ॥ पातयामासतेजस्वीमहा नादस्यवक्षसि ॥ २२ ॥ अथकुंभहनुस्तत्रतारेणासाद्यवीर्यवान् ॥ वृक्षेणमहतासद्यःप्राणान्संत्याजयद्रणे ॥ २३ ॥

अद्भुत कर्म करनें लगे ॥ १८ ॥ प्रहस्तके मंत्री नरान्तक, कुम्भहनु, महानाद, और समुन्नत, नामक यह चारों राक्षस भी अनेक वानरोंका संहार करनें लगे ॥ १९॥ परन्तु द्विविद नाम वानरनें इनको इस प्रकारसे कूद२ कर वानरोंको मारते देख पर्वतका शृङ्ग उठाय उस्से राक्षस नरान्तकका प्राण संहार किया ॥ २० ॥ कपिश्रेष्ठ दुर्मुखनें एक बड़ा भारी वृक्ष उठाय उस्से शीघ्र कर्मकारी निशाचर समुन्नतको मार डाला ॥२१ ॥ महावीर तेजस्वी जाम्बवानजीनें अत्यन्त क्रोधमें भरकर महानादकी छातीमें एक बड़ी भारी शिलामार उसको पृथ्वीपर गिरा दिया ॥२२॥ कपिवर वीर्यवान

इस धूरनें सब दिशाओंको ढक लिया, न राक्षस, न वानर,न ध्वजा, न पताका, न ढाल, न अश्व,न गज॥२०॥न हथियार, न रथ,कुछभी उस धूलके उड़नेंसे नहीं दीख पड़तेथे। संग्राममें गर्जन करके धावमान होते हुए वानर और राक्षसोंका बड़ा भारी शब्दही॥२१॥ केवल कठोर युद्धमें सुनाई देताथा, परन्तु किसीका कोई रूप दिखाई नहीं देताथा। अधिक क्या कहैं यहांतक हुआकि रूप न दिखाई देनेके कारण वानरगण वानरोंकोही मारनें लगे, और राक्षस लोग अंधकारके मारे राक्षसोंहीको संहार करनें लगे, वानर और राक्षस दोनोंही अपनी २ ओरवालोंको; और अपने २ शत्रुओंकोभी मारतेथे ॥ २२ ॥ २३ ॥ वानर और राक्षसगण यहांतक लड़े कि पृथ्वी रुधिरसे गीली होगई और इनके शरीरोंमें रुधिरकी कीच लिपट

संवृतानिचभूतानिददृशुर्नरणाजिरे ॥ नध्वजोनपताकावाचर्मवातुरगोपिवा ॥ २० ॥ आयुधंस्यंदनोवापिददृशेते नरेणुना ॥ शब्दश्चसुमहांस्तेषांनर्दतामभिधावताम् ॥२१॥ श्रूयतेतुमुलेयुद्धेनरूपाणिचकाशिरे ॥ हरीनेवसुसंरुष्टाहरयोजघ्नुराहवे ॥ २२॥ राक्षसाराक्षसांश्चापिनिजघ्नुस्तिमिरेतदा ॥ तेपरांश्चविनिघ्नंतःस्वांश्चवानरराक्षसाः ॥ २३ ॥ रुधिरार्द्रंतदाचक्रुर्महींपंकानुलेपनाम् ॥ ततस्तुरुधिरौघेणसिक्तंह्यपगतंरजः ॥ २४ ॥ शरीरशवसंकीर्णाबभूवचवसुंधरा ॥ द्रुमशक्तिगदाप्रासैःशिलापरिघतोमरैः ॥ २५ ॥ राक्षसाहरयस्तूर्णंजघ्नुरन्योन्यमोजसा ॥ बाहुभिःपरिघाकारैर्युध्यंतःपर्वतोपमान् ॥ २६ ॥ हरयोभीमकर्माणोराक्षसान्जघ्नुराहवे ॥ राक्षसास्त्वभिसंक्रुद्धाःप्रासतोमरपाणयः ॥२७॥ कपीन्निजघ्निरेतत्रशस्त्रैःपरमदारुणैः ॥ अकंपनःसुसंक्रुद्धोराक्षसानांचमूपतिः ॥२८॥ संहर्षयतितान्सर्वान्राक्षसान्भीमविक्रमान् ॥ हरयस्त्वपिरक्षांसिमहाद्रुममहाश्मभिः ॥ २९ ॥

गई, जब रुधिरसे कीच उठी तब धूल जातीरही ॥२४॥तिसके पीछे देखते२ पृथ्वी मृतक शरीरोंसे पूर्ण होगई। वृक्ष,शक्ति, गदा, फांसी, शिला, परिघ, तोमर, आदि अस्त्र शस्त्रोंसे ॥ २५ ॥ वानर और राक्षसगण परस्पर एक दूसरेपर चोट चलानें लगे। परिघाकारवाली बाहोंसे युद्ध करते हुए पर्वतकी समान ॥ २६ ॥ भयंकर कर्मकारी वानरगण राक्षसोंका संहार करनें लगे; और राक्षसोंनेंभी प्रास तोमर हाथोंमें ले ॥ २७ ॥ व औरभी परम दारुण अस्त्र शस्त्रोंसे वानरोंको मारा तिसके पीछे राक्षसोंका सैनापति अकंपन क्रोध करता हुआ ॥ २८ ॥ भयंकर कर्मकारी सब राक्षसोंको

कायर पुरुषोंके लिये यह युद्धमय नदी अतिदुःखसे पार होनेके योग्यहै, शरदकालमें जैसे श्रेष्ठ नदी हंस सारस पक्षियोंसे सेवित
होतीहै ऐसी ॥ ३२ ॥ नदीमें गजयूथपतिगण जिस प्रकारसे पद्मरजशालिनी नलिनीके पार उतर जातेहैं; वैसेही वह राक्षस और वानर मुख्य २
गण अति सरलतासे इस नदीके पार उतरनें लगे ॥ ३३ ॥ तिसके पीछे प्रहस्तको रथपर सवार हुआ बाणोंकी वर्षा करते हुए वानर गणोंको
विदारित करते देख सैनापति नील अत्यन्त वेगसे धाये ॥ ३४॥ सैनापति प्रहस्त बड़े भारी मेघकी समान बलशाली और आकाशमें टिके हुए पवनकी
समान नीलको रणभूमिमें अपनी ओर झपटकर आता हुआ देख ॥ ३५ ॥ अपने सूर्यकी समान रथको चलायकर नीलके सन्मुख आया तिसके पीछे

तांकापुरुषदुस्तारांयुद्धभूमिमयींनदीम् ॥ नदीमिवघनापायेहंससारससेविताम् ॥ ३२ ॥ राक्षसाःकपिमुख्यास्ते
तेरुस्तांदुस्तरांनदीम् ॥ यथापद्मरजोध्वस्तांनलिनींगजयूथपाः ॥ ३३ ॥ ततःसृजंतंबाणौघान्प्रहस्तंस्यंदनेस्थितम् ॥
ददर्शतरसानीलोविधमंतंप्लवंगमान् ॥ ३४ ॥ उद्धूतइववायुःखेमहदभ्रबलंबलात् ॥ समीक्ष्याभिद्रुतंयुद्धेप्रहस्तोवाहि
नीपतिः ॥ ३५ ॥ रथेनादित्यवर्णेननीलमेवाभिदुद्रुवे ॥ सधनुर्धन्विनांश्रेष्ठोविकृष्यपरमाहवे॥ ३६ ॥ नीलायव्यसृज
द्बाणान्प्रहस्तोवाहिनीपतिः ॥ तेप्रेत्यविशिखानीलंविनिर्भिद्यसमाहिताः ॥ ३७ ॥ महींजग्मुर्महावेगारोषिताइवपन्न
गाः ॥ नीलःशरैरभिहतोनिशितैर्ज्वलनोपमैः ॥ ३८ ॥ सतंपरमदुर्धर्षमापतंतंमहाकपिः ॥ प्रहस्तंताडयामासवृक्षमु
त्पाट्यवीर्यवान् ॥ ३९ ॥ सतेनाभिहतःक्रुद्धोनदन्राक्षसपुंगवः ॥ ववर्षशरवर्षाणिप्लवंगानांचमूपतौ ॥ ४० ॥

धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ सैनापति प्रहस्त अपने बडे भारी धनुषको खेंचकर ॥ ३६ ॥ सैनापति नीलके ऊपर बाणोंकी वर्षा करनेंलगा; वह
समस्त महावेगवान बाण नीलके शरीरपर गिर और नीलकी देहको फोड़ उसमें प्रवेश करते हुए ॥ ३७ ॥ मानो क्रोधित सर्प पृथ्वीमें प्रवेश
कर रहेहैं, सैनापति नील अग्निकी समान बाणोंसे घायल होकर ॥ ३८ ॥ वह परम दुर्द्धर्ष वीर्यवान् महाकपि एक वृक्ष उखाड़कर प्रहस्तके ऊपर
प्रहार करतेहुए ॥ ३९ ॥ राक्षसश्रेष्ठ प्रहस्त इस घोर प्रहारसे अत्यन्त दुःखित और व्यथित होकर अत्यन्त क्रोधयुक्त हो वारंवार सिंहनादकर

केही संहार करनेंकी इच्छा करतेहैं, कारण कि हम देखते हैं कि कईएक वानरोंसेही समस्त राक्षसोंकी सैना मथी जा रहीहै॥५॥ ऐसा सुनकर जब सारथिनें घोड़े हाँके तब राक्षसश्रेष्ठ अकंपन, वानर गणोंके सामने जाय दूरसेही उन वानरोंके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ६ ॥ तिस समय उस अकम्पनके साथ युद्ध करना तौ दूर रहै वानर गण रणमें उसके सामनेभी नहीं टिकसके, वरन उसके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित और छिन्नभिन्न होकर सबही इधर उधरसे भागनें लगे ॥ ७ ॥ परन्तु महाबलवान हनुमानजी अपनी जातिवाले वानरोंको अकम्पनके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित और मृत्युके मुखमें धरे हुए देखकर उसके सामनेंको बढ़े ॥ ८ ॥ तिस समय उन महाकपिको देखकर सब महावीर वानरगण फिर रण

ततःप्रचलिताश्वेनरथेनरथिनांवरः ॥ हरीनभ्यपतद्दूराच्छरजालैरकंपनः ॥६॥ नस्थातुंवानराःशेकुःकिंपुनर्योद्धुमाहवे॥ अकंपनशरैर्भग्नाःसर्वएवाभिदुद्रुवुः ॥७॥ तान्मृत्युवशमापन्नानकंपनशरानुगान् ॥ समीक्ष्यहनुमान्ज्ञातीनुपतस्थेम हाबलः ॥ ८ ॥ तंमहाप्लवगंदृष्ट्वासर्वेतेप्लवगर्षभाः ॥ समेत्यसमरेवीराःसहिताःपर्यवारयन् ॥ ९ ॥ व्यवस्थितंहनूमं तंतेदृष्ट्वाप्लवगर्षभाः ॥ बभूवुर्बलवंतोहिबलवंतमुपाश्रिताः ॥ १० ॥ अकंपनस्तुशैलाभंहनूमंतमवस्थितम् ॥ महेंद्रइववर्धा राभिःशरैरभिववर्षह ॥११॥ अचिंतयित्वाबाणौघान्शरीरेपातितान्कपिः ॥ अकंपनवधार्थायमनोदध्रेमहाबलः ॥१२॥ सप्रहस्यमहातेजाहनूमान्मारुतात्मजः ॥ अभिदुद्रावतद्रक्षःकंपयन्निवमेदिनीम् ॥ १३ ॥ तस्याथनर्दमानस्यदीप्य मानस्यतेजसा ॥ बभूवरूपंदुर्धर्षंदीप्तस्येवविभावसोः ॥ १४ ॥

भूमिमें आ करके हनुमानजीको घेरकर खड़े होगये ॥ ९ ॥ हनुमानजीको युद्ध करनेंके लिये पहुंचाहुआ देखकर वह भागे हुए वानरश्रेष्ठगणभी, बल प्राप्त करते हुए कारण कि बलवानसे सहाय पायकर दुर्बल भी बलवान होजातेहैं ॥ १० ॥ पर्वताकार हनुमानजीको आगे खड़ाहुआ देखकर राक्षस अकम्पन उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करनेंलगा, कि जिस प्रकार इन्द्रजी पृथ्वीपर जलकी धारा वर्षातेहैं ॥ ११ ॥ परन्तु महाबलवान वानर हनुमानजी अपने शरीर पर गिरते उन बाणोंकी कुछभी चिन्ता न करते हुए अकम्पनके संहार करनेंका विचार करते हुए ॥ १२ ॥ वह महातेजस्वी पवनकुमार हनुमानजी पृथ्वीको कंपायमान करते हँसते २उस राक्षस अकम्पनके सन्मुख धाये ॥ १३ ॥ इस समय यह हनुमानजी

वासनासे युद्धकरने लगे दोनो ही परस्पर एक दूसरेको विना जीते हुए समरसे लौटनेंवाले नहीं थे ॥ ४८ ॥ तिसके पीछे विपुलबलशाली सैनापति प्रहस्तनें नीलके माथेपर मूसलका प्रहार किया; जिसके प्रहारसे नीलके माथेसे रुधिर बहनेंलगा ॥ ४९ ॥ जब अंगोंसे रुधिर निकलने लगा, तब महाकपि सैनापाति नीलनें अत्यन्त क्रोधित हो एक बड़ा भारी वृक्ष ग्रहणकर प्रहस्तकी छातीमें प्रहार किया ॥ ५० ॥ परन्तु सैनापति वीर प्रहस्त उस प्रहारको कुछभी न समझता हुआ वही बड़ाभारी मूसल ग्रहण कर अत्यन्त जोरसे बलवान् वानरश्रेष्ठ नीलके सन्मुख धाया। महाकपि नील उस उग्र वेगवान् राक्षसको सन्मुख दौड़े आते हुए ॥ ५१ ॥ देख एक महाशिला ग्रहण करके उस समरकी अभिलाषा करनेंवाले

अजघानतदानीलंललाटेमुसलेनसः ॥ प्रहस्तःपरमायत्तस्ततःसुस्रावशोणितम् ॥ ४९ ॥ ततःशोणितदिग्धांगःप्रगृह्यचमहातरुम् ॥ प्रहस्तस्योरसिक्रुद्धोविससर्जमहाकपिः ॥ ५० ॥ तमाचिंत्यप्रहारंसप्रगृह्यमुसलंमहत् ॥ अभिदुद्रावबलिनंबलान्नीलंप्लवंगमम् ॥ तमुग्रवेगंसंरब्धमापतंतंमहाकपिः ॥ ५१ ॥ ततःसंप्रेक्ष्यजग्राहमहावेगोमहाशिलाम् ॥ तस्ययुद्धाभिकामस्यमृधेमुसलयोधिनः ॥ ५२ ॥ प्रहस्तस्यशिलांनीलोमूर्ध्नितूर्णमपातयत् ॥ नीलेनकपिमुख्येन विमुक्तामहतीशिला ॥ बिभेदबहुधाघोराप्रहस्तस्याशिरस्तदा ॥ ५३ ॥ सगतासुर्गतश्रीकोगतसत्त्वोगतेंद्रियः ॥ पपातसहसाभूमौछिन्नमूलइवद्रुमः ॥ ५४ ॥ विभिन्नशिरसस्तस्यबहुसुस्रावशोणितम् ॥ शरीरादपिसुस्रावगिरेःप्रस्रवणो यथा ॥ ५५ ॥ हतेप्रहस्तेनीलेनतदकंप्यंमहाबलम् ॥ राक्षसानामहृष्टानांलंकामभिजगामह ॥ ५६ ॥

मूसलसे युद्ध करते हुए ॥ ५२ ॥ प्रहस्तके मूसल प्रहार करनेंसे पहलेही उसके मस्तकपर वह शिला मारी कपिश्रेष्ठ नीलकी चलाई हुई उस घोर और महाशिलानें प्रहस्तके मस्तकको खंड २ कर डाला; उस समय उस प्रहस्तकी इन्द्रियें लोप होगईं, बल जाता रहा, देहकी श्री नष्ट होगई; और वह प्राण रहित होकर जड़ कटे हुए वृक्षकी समान पृथ्वीमें गिर पडा ॥५३॥॥५४॥ तिस काल प्रहस्तका मस्तक धड़से अलग हो जानेंपर उससे और उसके शरीरसे इस प्रकारसे रुधिरकी धारें गिरनें लगी, कि जिस प्रकार पर्वतसे झरना झरते हैं ॥ ५५ ॥ इस प्रकार सैनापति नीलके हाथसे

क्रम करनेंवाले राक्षसोंको संहार करनें लगे ॥ २३ ॥ तब राक्षस गण वृक्षका प्रहार करते हुए प्राणहरण करनेंवाले यमराजकी समान उन क्रोधित अंजनीके पुत्र हनुमानजीको देखकर भागनें लगे ॥ २४ ॥ राक्षस सैनापति महावीर अकम्पन उन महावीर्य क्रोधित हनुमानजीको राक्षसोंके लिये भय उत्पन्न कराते देखकर अत्यन्तही क्रोध करताहुआ और उस समय उस अकम्पननें घोरनादसे गर्जन करना आरंभ किया ॥ २५ ॥ और शरीरको विदारण करनेंवाले अत्यन्त तीखे चौदह बाण उसनें हनुमानजीके देहमें मारे ॥ २६ ॥ उस कालमें तीखे नाराच और शक्तियोंके लग नेंसे हनुमानजीका शरीर ऐसा विद्ध हो रहाथा कि उस समय वह वृक्ष युक्त गिरिवरकी समान शोभित होतेथे ॥ २७ ॥ महाबलवान् महाकाय

तमंतकमिवक्रुद्धंसद्रुमंप्राणहारिणम् ॥ हनूमंतमभिप्रेक्ष्यराक्षसाविप्रदुद्रुवुः ॥ २४ ॥ तमापतंतंसंक्रुद्धंराक्षसानांभयाव हम् ॥ ददर्शाकंपनोवीरश्चुक्षोभचननादच ॥ २५ ॥ सचतुर्दशभिर्बाणैर्निशितैर्देहदारणैः ॥ निर्बिभेदमहावीर्यंहनूमं तमकंपनः ॥ २६ ॥ सतथाविप्रकीर्णस्तुनाराचैःशितशक्तिभिः ॥ हनूमान्ददृशेवीरःप्ररूढइवसानुमान् ॥ २७ ॥ विररा जमहावीर्योमहाकायोमहाबलः ॥ पुष्पिताशोकसंकाशोविधूमइवपावकः ॥ २८ ॥ ततोन्यंवृक्षमुत्पाट्यकृत्वावेगम नुत्तमम् ॥ शिरस्यभिजघानाशुराक्षसेंद्रमकंपनम् ॥ २९ ॥ सवृक्षेणहतस्तेनसक्रोधेनमहात्मना ॥ राक्षसोवानरेंद्रे णपपातचममारच ॥ ३० ॥ तंदृष्ट्वानिहतंभूमौराक्षसेंद्रमकंपनम् ॥ व्यथिताराक्षसाःसर्वेक्षितिकंपइवद्रुमाः ॥ ३१ ॥ त्यक्तप्रहरणाःसर्वेराक्षसास्तेपराजिताः ॥ लंकामभिययुस्त्रासाद्वानरैस्तैरभिद्रुताः ॥ ३२ ॥

और महावीर्यवान हनुमानजी फूलेहुए अशोक और धूमरहित अग्निकी समान शोभायमान होनेंलगे ॥ २८ ॥ तिसके पीछे पवनकुमार हनुमानजीनें अति शीघ्रतासे एक वृक्ष उखाड़ कर अत्यन्त वेगसे राक्षसोंके सैनापति अकंपनके शिरपर मारा ॥ २९ ॥ क्रोधसे पूर्ण महाबल वान् वानरोंमें इन्द्र हनुमानजी करके इस प्रकारसे वृक्षद्वारा घायलहो वह राक्षस तत्क्षणही पृथ्वीमें गिरकर मृतक होगया ॥ ३० ॥ समस्त राक्षस राक्षसोंके स्वामी अकम्पनको मृतक और पृथ्वीमें पड़ा हुआ देखकर अत्यन्त दुःखित हुए, और भूडोलके समय जिस प्रकार वृक्ष काँपतेहैं, ऐसेही कम्पायमान होनें लगे ॥ ३१ ॥ उस समय वह हारे हुए राक्षस वानरलोगोंसे खेदे जाकर अपने अस्त्र शस्त्र त्यागकर लंकाके सन्मुख

चित्त होकर देवराज इन्द्रजी जिसप्रकार देवसैनाके अधिनायकोंसे कहतेहैं इसीभांति रावण राक्षस दलके यूथनाथोंसे बोला ॥ ३ ॥ कि जिनकरके इन्द्रके वलका मथनकारी हमारा वह सैनापति अपने अनुयायी वर्ग और हाथी घोडेके सहित मार डालागया ऐसे शत्रुको अब तुच्छ नहीं समझना चाहिये ॥ ४ ॥ इसकारण शत्रुओंका विनाशकरनें और विजय प्राप्त करनेंके लिये हम स्वयंही अद्भुत रणभूमिमें जायँगे अब शोच विचार करनें कीभी कुछ आवश्यकता नहीं ॥५॥ प्रदीप्त अग्निसे वनके जलनेंकी समान आज हम वाणसमूहोंसे रामचंद्र व लक्ष्मणके सहित उस वानरोंकी सैनाको मार डालेंगे ॥ ६ ॥ अपने प्रकाशित शरीरसे प्रकाशमान होता हुआ अमरराज इन्द्रजीका शत्रु रावण यह कह कर दामिनीकी समान

नावज्ञारिपवेकार्यायैरिंद्रबलसादनः ॥ सूदितःसैन्यपालोमेसानुयात्रःसकुंजरः ॥ ४ ॥ सोहंरिपुविनाशायविजया याविचारयन् ॥ स्वयमेवगमिष्यामिरणशीर्षंतदद्भुतम् ॥ ५ ॥ अद्यतद्वानरानीकंरामंचसहलक्ष्मणम् ॥ निर्द हिष्यामिबाणौघैर्वनंदीप्तैरिवाग्निभिः ॥ ६ ॥ सएवमुक्त्वाज्वलनप्रकाशंरथंतुरंगोत्तमराजियुक्तम् ॥ प्रकाशमानंवपु षाज्वलंतंसमारुरोहामरराजशत्रुः ॥ ७ ॥ सशंखभेरीपणवप्रणादैरास्फोटितक्ष्वेडितसिंहनादैः ॥ पुण्यैःस्तवैश्चापि सुपूज्यमानस्तदाययौराक्षसराजमुख्यः ॥ ८ ॥ सशैलजीमूतनिकाशरूपैर्मांसाशनैःपावकदीप्तनेत्रैः ॥ बभौवृतोरा क्षसराजमुख्योभूतैर्वृतोरुद्रइवामरेशः ॥ ९ ॥ ततोनगर्याःसहसामहौजानिष्क्रम्यतद्वानरसैन्यमुग्रम् ॥ महार्णवा भ्रस्तनितंददर्शसमुद्यतंपादपशैलहस्तम् ॥ १० ॥

दमकते हुए उत्तम घोडे जोते हुए रथपर सवार हुआ ॥ ७ ॥ उस समय शंख, भेरी, और ढोल वजनें लगे; वीरगण कोई बांहोंको थपकनें लगे कोई २ किल किलानें लगे और कोई २ सिंहनाद करनें लगे! इस प्रकारसे राक्षस रावण पवित्र स्तोत्रसे पूजित होकर शीघ्रही युद्ध करनेंको चलता हुआ ॥ ८ ॥ उस कालमें पर्वत व वादलकी समान आकारवाले और अग्निकी समान दीप्त नेत्र युक्त मांस खानेवाले राक्षसोंके संगमें वह राक्षसपति रावण भूतोंके संग अमरनाथ रुद्रकी समान शोभायमान होनेलगा ॥ ९ ॥ तिसके पीछे उस महातेजस्वी रावणनें सैनाके

त्यन्त क्रोधयुक्त हुआ और दीन मलीन मुखहो मंत्रीलोगोंके मुखकी ओर देखनें लगा ॥ १ ॥ रावण एक मुहूर्त्तभरतक चिन्ता करके मंत्रीलोगोंके सहित सलाहकर समस्त लंकाकी मोरचेबंदी देखनेके लिये दशघडी दिन चढे लंकाके तीर घूमने को चला ॥ २ ॥ रावणने नगर मे घूमकर देखाकि ध्वजा पताका युक्त और बहु व्यूह समन्वित वह लंकानगरी राक्षस लोगों करके सब भांतिसे रक्षित हो रहीहै ॥ ३ ॥ तब राक्षसोंका स्वामी रावण उस लंका नगरीको सब भांतिसे वानरोंके द्वारा रूंधीहुई देखकर यथा समयमें युद्धविशारद प्रहस्तसे अपने हितकारी यह वचन बोला ॥ ४ ॥ रावण बोला कि हे युद्धविशारद शत्रुकी सैना चारो ओरसे रूंधकर पुरीको जिस प्रकारसे संताप देरहीहै इस्से तो युद्ध करनेके सिवाय छुटकारा पानेंका हम

सतुध्यात्वामुहूर्तंतुमंत्रिभिःसंविचार्यच ॥ ततस्तुरावणःपूर्वंदिवसेराक्षसाधिपः ॥ पुरींपरिययौलंकांसर्वान्गुल्मानवेक्षि
तुम् ॥ २ ॥ तांराक्षसगणैर्गुप्तांगुल्मैर्बहुभिरावृताम् ॥ ददर्शनगरींराजापताकाध्वजमालिनीम् ॥ ३ ॥ रुद्धांतुनगरींदृष्ट्वा
रावणोराक्षसेश्वरः॥ उवाचात्महितंकालेप्रहस्तंयुद्धकोविदम्॥४॥पुरस्योपनिविष्टस्यसहसापीडितस्यह ॥ नान्यंयुद्धा
त्प्रपश्यामिमोक्षंयुद्धविशारदाः ॥ ५ ॥ अहंवाकुंभकर्णोवात्वंवासेनापतिर्मम ॥ इंद्रजिद्वानिकुंभोवावहेयुर्भारमीदृ
शम् ॥ ६ ॥ सत्वंबलमतःशीघ्रमादायपरिगृह्यच ॥ विजयायाभिनिर्याहियत्रसर्वेवनौकसः ॥ ७ ॥ निर्याणादेवतूर्णंच
चलिताहरिवाहिनी ॥ नर्दतांराक्षसेंद्राणांश्रुत्वानादंद्रविष्यति ॥ ८ ॥ चपलाह्यविनीताश्चचलचित्ताश्चवानराः ॥ नस
हिष्यंतितेनादंसिंहनादमिवद्विपाः ॥ ९ ॥

दूसरा उपाय नहीं देखते ॥ ५ ॥ परन्तु इस समय हमारे इन्द्रजितके कुम्भकर्णके निकुम्भके अथवा हमारे सैनापति तुम्हारे सिवाय, और कौन इस बड़े भारी भारको उठासकताहै ॥ ६ ॥ इस कारण तुम शीघ्रही रथ पर सवारहो सैनाको साथले जिस स्थानपर वानरगण टिके हुएहैं, वहां पर युद्ध करनेंके लिये जाओ ॥ ७ ॥ ऐसा हम जानतेहैं कि "तुम लड़नेंके लिये आयेहो" यह बात सुनतेही वह वानरोंकी सैना चलायमान होजा यगी; हम निश्चय कहतेहैं कि राक्षसोंका सिंहनाद सुनकर यह वानर भयके मारे इधर उधर भाग जांयगे ॥ ८ ॥ हे वीर ! जिस प्रकारसे हाथी

समान लाल २ नेत्र किये जो महाबलवान् राक्षस घंटेके नादकी समान नादकरते हुए क्रूर स्वभाववाले हाथीके ऊपर चढकर गर्जन कर रहाहै यही महात्मा महोदर नाम वीर है ॥ १७ ॥ जो सन्ध्या कालके मेघ और पर्वतकी समान आकार वालाहै और सुवर्णके गहनोंसे भूषित घोडों पर चढकर मरीच्याकार झालर लगा प्रास उठाये हुएहै इस वज्रकी समान वेगवान वीरका नाम पिशाचहै ॥१८॥ जो तीक्ष्ण शूल ग्रहण करके वज्रसे भी अधिक वेगवान चंद्रमाकी समान प्रकाशमान और बिजलीकी समान श्रेष्ठ बैलपर चढ़कर चला आताहै वह बडा यशस्वी त्रिशिरानामक राक्षसहै ॥ १९ ॥ विशाल और चौडी छातीवाला और सौदामिनीकी समान रूपवान जो वीर स्थिरभावसे अपने धनुषको टंकारता और

योसौहयंकांचनचित्रभांडमारुह्यसंध्याभ्रगिरिप्रकाशः ॥ प्रासंसमुद्यम्यमरीचिनद्धंपिशाचएषोशनितुल्यवेगः ॥ १८ ॥
यश्चैषशूलंनिशितंप्रगृह्यविद्युत्प्रभंकिंकरवज्रवेगम् ॥ वृषेंद्रमास्थायशशिप्रकाशमायातियोसौत्रिशिरायशस्वी ॥ १९ ॥
असौचजीमूतनिकाशरूपःकुंभःपृथुव्यूढसुजातवक्षाः ॥ समाहितःपन्नगराजकेतुर्विस्फारयन्यातिधनुर्विधुन्वन् ॥ २० ॥
यश्चैषजांबूनदवज्रजुष्टंदीप्तंसधूमंपरिघंप्रगृह्य ॥ आयातिरक्षोबलकेतुभूतोयोसौनिकुंभोऽद्भुतवीरकर्मा ॥ २१ ॥
यश्चैषचापासिशरौघजुष्टंपताकिनंपावकदीप्तरूपम् ॥ रथंसमास्थायविभात्युदग्रोनरांतकोसौनगशृंगयोधी ॥ २२ ॥
यश्चैषनानाविधघोररूपैर्व्याघ्रोष्ट्रनागेंद्रमृगाश्ववक्त्रैः ॥ भूतैर्वृतोभातिविवृत्तनेत्रैर्योसौसुराणामपिदर्पहंता ॥ २३ ॥

कंपायमान करता चला आताहै और जिसके रथकी ध्वजापर शेषजीका चिह्न दिखाई देताहै उसका नाम कुम्भहै ॥ २० ॥ निशाचरोंकी सैनाका पताकारूप जो अद्भुत कर्म करनेंवाला वीर सुवर्ण और हीरोंसे खचित प्रकाशमान धूम सहित परिघलिये हुए आगमन करताहै इसका नाम निकुम्भहै ॥ २१ ॥ जो बड़े शरीरवाला वीर अग्निकी समान तेज युक्त पताका शोभित, चाप खड्ग बाण समूहसे परिपूर्ण रथपर चढ़ा हुआ शोभायमान होरहाहै इसकाही नाम नरान्तक कहतेहैं ॥ महाराज ! यह वीर अपनी समान योद्धा न पायकर अपनी बांहोंकी चुलबुलाहट मिटानेंको पर्वतके शृङ्गोंसेही युद्ध किया करताहै ॥ २२ ॥ जिसनें देवतालोगोंकाभी गर्व नाश कियाहै, और विविध

अपना प्राण पुत्र परिवार और धन कुछभी हम रखना नहीं चाहते;इस कारण हम कहते हैं कि इस समय आपके अर्थही युद्धमें इस जीवनको भी हमदें गे ॥ १६ ॥ सैनापति प्रहस्तनें राक्षसपति रावणसे यह कहकर सामने आकर खडे हुए सैनाध्यक्षसे कहा ॥ १७ ॥ कि जलदीसे बडीभारी राक्षसोंकी सैनाको सजायकर लेआओ;हमारे बाणोंके वेगसे रणमें मृतक हुए॥१८॥ वानरोंके मांससे आज वनके रहनेंवाले पशुपक्षी भलीभांति तृप्तहोंगे । प्रह स्तके यह वचन सुनकर महाबलवान् सैनाध्यक्ष लोगोंनें ॥ १९ ॥ तिस राक्षसराजके गृहमें लायकर सैनाको इकट्ठा कर दिया, एक मुहूर्तमें अनेक

नहिमेजीवितंरक्ष्यंपुत्रदारधनानिच ॥ त्वंपश्यमांजुहूषंतंत्वदर्थेजीवितंयुधि ॥ १६ ॥ एवमुक्त्वातुभर्तारंरावणंवाहिनीपतिः ॥ उवाचेदंबलाध्यक्षान्प्रहस्तःपुरतःस्थितान् ॥ १७ ॥ समानयतमेशीघ्रंराक्षसानांमहाबलम् ॥ मद्बाणानांतुवेगेनहतानांतुरणाजिरे ॥ १८ ॥ अद्यतृप्यंतुमांसादाःपक्षिणःकाननौकसः ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाबलाध्यक्षामहाबलाः ॥ १९ ॥ बलमुद्योजयामासुस्तस्मिन्राक्षसमंदिरे ॥ साबभूवमुहूर्तेनभीमैर्नानाविधायुधैः ॥ २० ॥ लंकाराक्षसवीरैस्तैर्गजैरिवसमाकुला ॥ हुताशनंतर्पयतांब्राह्मणांश्चनमस्यताम् ॥ २१ ॥ आज्यगंधप्रतिवहःसुरभिर्मारुतोववौ ॥ स्रजश्चविविधाकाराजगृहुस्त्वभिमंत्रिताः ॥ २२ ॥ संग्रामसज्जाःसंहृष्टाधारयन्राक्षसास्तदा ॥ सधनुष्काःकवचिनोवेगादुत्सृज्यराक्षसाः ॥ २३ ॥ रावणंप्रेक्ष्यराजानंप्रहस्तंपर्यवारयन् ॥ अथामंत्र्यतुराजानंभेरीमाहत्यभैरवाम् ॥ २४ ॥

प्रकारके अस्त्र शस्त्र धारण किये॥२०॥राक्षस वीरोंसे लंकापुरी ऐसी पूर्ण हुई मानो हाथियोसे पूर्ण होगई । कोई राक्षस अग्निको तृप्त करते हुए कोई ब्राह्मणोंको प्रणाम करते हुए ॥२१॥ ऐसे राक्षसोंके घृतकी सुगन्धिसे युक्त होकर सुगन्धित पवन चलनें लगा और विविध प्रकारकी मालायें जो मंत्रोंसे पढ़ी हुईथीं राक्षसोंने ग्रहणकी ॥२२॥ और संग्राममें जानेंके लिये वह राक्षस रणके आयुधोंसे सजनें लगे, तिसके पीछे कवच और धनुषधारी वह राक्षसगण अतिवेगसे राक्षसराज रावणको देखकर प्रहस्तनाम सैनापतिको घेर खड़े होगये । फिर राजाकी आज्ञा ले अतिघोर भेरी बजवाय ॥ २३ ॥ २४ ॥

कि आज यह पापात्मा हमारे दृष्टि गोचर हुआहै इस लिये सीता हरण होंनेसे जो क्रोध हमारे मनमें उत्पन्न हुआहै, वह क्रोध आज हम इसके ऊपर छोडेंगे ॥ ३१ ॥ वीर्यवान् श्रीरामचन्द्रजी यह कहकर धनुषपर रोदा चढ़ाय आगे बढे, और लक्ष्मणजीभी इनके पीछे २ चले ॥ ३२ ॥ तिसके पीछे महात्मा राक्षसपति रावण उन महा बलवान राक्षसोंसे बोला कि तुम लोग हमारी आज्ञासे इस समय जाय लंकाके चार पुर द्वार राजमार्ग और घरोंमें शंका रहित मनके सुख सहित टिके रहो ॥ ३३ ॥ कारण कि एकत्र हुए महाबलवान वनवासी वानरगण तुम लोगोंके सहित हमारी पुरीसे बाहर आनेका यह छिद्र पाय, प्रवेश करनेंके अयोग्य वीर शून्य लंका पुरीको मर्दन करके विध्वंश कर डालेंगे ॥ ३४ ॥ जब

एवमुक्त्वाततोरामोधनुरादायवीर्यवान् ॥ लक्ष्मणानुचरस्तस्थौसमुद्धृत्यशरोत्तमम् ॥ ३२ ॥ ततःसरक्षोधिपतिर्महा त्मारक्षांसितान्याहमहाबलानि ॥ द्वारेषुचर्यागृहगोपुरेषुसुनिर्वृतास्तिष्ठतनिर्विशंकाः ॥ ३३ ॥ इहागतंमांसहितंभव द्भिर्वनौकसश्छिद्रमिदंविदित्वा ॥ शून्यांपुरींदुष्प्रसहांप्रमथ्यप्रधर्षयेयुःसहसासमेताः ॥ ३४ ॥ विसर्जयित्वासचि वांस्ततस्तान्गतेषुरक्षःसुयथानियोगम् ॥ व्यदारयद्वानरसागरौघंमहाझषःपूर्णमिवार्णवौघम् ॥ ३५ ॥ तमापतंतं सहसासमीक्ष्यदीप्तेषुचापंयुधिराक्षसेंद्रम् ॥ महत्समुत्पाट्यमहीधराग्रंदुद्रावरक्षोधिपतिंहरीशः ॥ ३६ ॥ तच्छैलशृं गंबहुवृक्षसानुंप्रगृह्यचिक्षेपनिशाचराय ॥ तमापतंतंसहसासमीक्ष्यचिच्छेदबाणैस्तपनीयपुंखैः ॥ ३७ ॥

राक्षस लोग रावणकी आज्ञाके अनुसार पुरीकी रक्षा करनेको उसमें प्रवेश करते हुए; तब निशाचर पति रावणभी अपने मंत्रियोंको बिदा देकर स्वयं बडे २ मत्स्य आदि जीवोंसे परिपूर्ण महा समुद्रकी समान उस बडी भारी वानरोंकी सैनाको विदारण करने लगा ॥ ३५ ॥ तब वानरराज सुग्रीवजी, प्रदीप्त बाण सहित धनुष धारण किये राक्षसोंके स्वामी रावणको अचानक आया हुआ देख एक बडा भारी पर्वतका शिखर उखाडकर निशाचर पतिकी ओर दौडे ॥ ३६ ॥ तिसके पीछे बहुत वृक्ष और कंगूरोंसे शोभित वह पर्वतका शृङ्ग इन्होंने राक्षस रावणके ऊपर चलाया परन्तु रावणनें अपने ऊपर गिरते २ उस पर्वतके शृङ्गको सुवर्णकी फोंका लगे हुए बाणोंसे सहसा खंड २ कर डाला ॥ ३७ ॥

सन्मुख गमन करनें लगा ॥ ३२ ॥ जब प्रहस्त निकला तब उसके साथवाले शब्द करते हुए. राक्षसोंके निकलनेसे ऐसा बड़ा भारी नाद उत्पन्न हुआ कि लंका नगरीके समस्त प्राणी पुञ्जविकट स्वरसे चिल्लानें लगे॥३३॥मांस रुधिरके खानें पीनेंवाले गिद्ध आदि, विना मेघके आकाशमें मंडलाकारसे रथके ऊपर घूमने लगे ॥ ३४ ॥ भयंकर रूपवाली शृगालियें भयंकर शब्दसे बोलकर मुखसे अग्निकी लपटें छोडती चिल्लाने लगीं अन्तरिक्षसे वार २ उल्का गिरनें लगीं,पवनभी रूखेपनसे चलनें लगा ॥३५॥ परस्पर एक दूसरेके क्रोधितहो युद्ध करनेंसे सब ग्रहोंकी प्रभा हीन होगई राक्षस सैनापतिके रथपर मेघमाला गंभीर शब्दसे गर्जन करके ॥३६॥ रुधिरकी वर्षा करनें लगी और उसके आगे चलती हुई सैनापरभी रुधिर वर्षा रथ

तस्यनिर्याणघोषेणराक्षसानांचनर्दताम् ॥ लंकायांसर्वभूतानिनिनेदुर्विकृतैःस्वरैः ॥ ३३ ॥ व्यभ्रमाकाशमाविश्यमांसशोणितभोजनाः ॥ मंडलान्यपसव्यानिखगाश्चक्रूरथंप्रति ॥ ३४ ॥ वमंतिपावकज्वालाःशिवाघोरावबाशिरे॥अंतरिक्षात्पपातोल्कावायुश्चपरुषंववौ ॥ ३५ ॥ अन्योन्यमभिसंरब्धाग्रहाश्चनचकाशिरे ॥ मेघाश्चखरनिर्घोषारथस्योपरिरक्षसः ॥ ३६ ॥ ववर्षूरुधिरंचास्यसिषिचुश्चपुरःसरान् ॥ केतुमूर्धनिगृध्रस्तुविलीनोदक्षिणामुखः ॥ ३७॥ नदन्नुभयतःपार्श्वंसमग्रांश्रियमाहरत् ॥ सारथेर्बहुशश्चात्रसंग्राममनिवर्तिनः ॥ ३८ ॥ प्रतोदोन्यपतद्धस्तात्सूतस्यहयसादिनः ॥ निर्याणश्रीश्चयाचस्याद्भास्वराचसुदुर्लभा ॥ ३९ ॥ साननाशमुहूर्तेनसमेचस्खलिताहयाः ॥ प्रहस्तंतंहिनिर्यांतंप्रख्यातगुणपौरुषम् ॥ युधिनानाप्रहरणाकपिसेनाऽभ्यवर्तत ॥ ४० ॥ अथघोषःसुतुमुलोहरीणांसमजायत ॥ वृक्षानारुजतांचैवगुर्वीर्वैगृह्णतांशिलाः ॥ ४१ ॥

की ध्वजापर गिद्ध बैठ गया; और दक्षिण मुख होकर शब्द करने लगा ॥३७॥ और अपनें दोनों पंखोंको फैलायकर सैनापति प्रहस्तकी समस्त प्रभा और श्रीको हरण कर लेता हुआ । समरसे विमुख नहोनेंवाले सारथिकीभी श्री जाती रही ॥ ३८ ॥ और घोड़ोंके सिखानेंवालेके हाथसे, व सारथिके हाथसे वारंवार चाबुक गिर पड़नें लगा जो युद्धमें जानेंके समयकी शोभा और दीप्तिथी वह एक मुहूर्तभरमें नाशको प्राप्त हुई, घोड़ोंका पैर फिसलनें लगा इस प्रकारसे विख्यात बलपौरुषवाला प्रहस्त जब लंकासे युद्ध करनेंको निकला, तब रणभूमिमें वानरगण, वृक्ष शिला इत्यादि अनेक प्रकारके आयुध धारण किये हुए उसके सन्मुख दौड़े ॥ ३९ ॥ ४० ॥ इस समय वानरगण कटकटाय कर गर्जनेंलगे और वह बड़े २ वृक्ष

तब वह भयंकर शरीरवाले वानर गणभी राक्षसनाथ रावणके बाणोंकेलगनेसे छिन्न भिन्न शरीरहो पृथ्वीपर गिरनें लगे ॥४३॥ तब राक्षस रावण बाणोंके ढेरके ढेर चलायकर उग्र स्वभाववाली उस वानरोंकी सैनाको बाण जालसे छानें लगा इस प्रकार रावणके बाणोंसे मर्ममें चोट खाय वानरोंमेसे अनेक मर गये और अनेक गिर पड़े, अनेक छिन्न भिन्न होगये और उनमेंसे अनेक भयके मारे विह्वल होकर शरणागत प्रतिपालक अनाथ नाथ श्रीरामचंद्रजीकी शरणमें गये ॥ ४४ ॥वानरोंको शरणमें आया हुआदेखकर धनुष धारियोंमें श्रेष्ठ महात्मा श्रीरामचंद्रजी सहसा आगे बढ़नेंको तैयार हुए कि इतने हीमें लक्ष्मणजीनें हाथ जोड़कर उनसे यह परमार्थ युक्त वचन कहे॥४५॥हे आर्य ! हम अकेलेही इस दुरात्मा रावणका संहार

ततस्तुतद्वानरसैन्यमुग्रंप्रच्छादयामाससबाणजालैः ॥ तेवध्यमानाःपतिताश्चवीरानानद्यमानाभयशल्यविद्धाः ॥
शाखामृगारावणसायकार्ताजग्मुःशरण्यंशरणंस्मरामम् ॥ ४४ ॥ ततोमहात्मासधनुर्धनुष्मानादायरामःसहसाज
गाम ॥ तंलक्ष्मणःप्रांजलिरभ्युपेत्यउवाचरामंपरमार्थयुक्तम् ॥ ४५ ॥ काममार्यसुपर्याप्तोवधायास्यदुरात्मनः ॥
विधमिष्याम्यहंचैतमनुजानीहिमांविभो ॥ ४६ ॥ तमब्रवीन्महातेजारामःसत्यपराक्रमः ॥ गच्छयत्नपरश्चापि
भवलक्ष्मणसंयुगे ॥ ४७ ॥ रावणोहिमहावीर्योरणेऽद्भुतपराक्रमः ॥ त्रैलोक्येनापिसंक्रुद्धोदुष्प्रसह्योनसंश
यः ॥ ४८॥ तस्यच्छिद्राणिमार्गस्वस्वच्छिद्राणिचलक्षय ॥ चक्षुषाधनुषात्मानंगोपायस्वसमाहितः ॥ ४९ ॥ राघ
वस्यवचःश्रुत्वासंपरिष्वज्यपूज्यच ॥ अभिवाद्यचरामाययौसौमित्रिराहवे ॥ ५० ॥

कर सकतेहैं, इस कारण हे विभो! आप निश्चय जानें कि इस निशाचरको हमहीं मार डालेंगे ॥ ४६ ॥ यह वचन सुनकर सत्य पराक्रम महा तेजवान श्रीरामचंद्रजीनें कहा कि हे लक्ष्मण ! जाओ परन्तु रणमें भली भांति सावधान रहना ॥ ४७ ॥ तुमसे इतना कहनेंका यही अभिप्रायहै, कि रावण अत्यन्त वीर और महाबलवानहै, उसका पराक्रम अद्भुतहै, जब उसको क्रोध उत्पन्न होजाताहै. तब त्रिलोकवासी समस्त जनभी इसके पराक्रमको नही सह सकते इसमें कोईभी सन्देह नहीं ॥ ४८ ॥ तुम उस रावणके प्रहार करनेंका अवसर खोजते रहना और सावधान चित्तसे अपनी रक्षा करते रहकर अपने प्रहारके समय शत्रुपर दृष्टि रक्खो. व धनुष परबाण चलाय संभालकर रिपुपर चलाओ ॥४९॥ श्रीरामचंद्रजीके यह वचन

वीर्यवान और शूर निशाचर उस तीन भागवाली सैनामेंसे एक भाग सैना अपने साथ लेकर यहां आयाहै ॥ ४ ॥ और इस ओर सैनापति प्रहस्त भयंकर पराक्रम दिखाता, गर्जता हुआ बहुत सारे राक्षसोंकी सैनाके साथ निकला ॥ ५ ॥ महाबलवान वानरगण बड़ी भारी प्रहस्तकी सैनाको देखकर अत्यन्त क्रोध युक्त होकर गर्जन करनें लगे ॥ ६ ॥ खड्ग, शक्ति, छंड, ऋष्टि, शूल, बाण, मूसल, गदा, परिघ, प्रास, विविध भांतिके फरसे, ॥ ७ ॥ चित्र विचित्र, धनुष लिये, जीतनेंकी इच्छा किये वानरोंके ऊपर धावमानहोते हुए राक्षसोंके अस्त्र शस्त्र शोभायमान होतेथे, यह देखकर समरके अभिलाषी वानरगणभी पुष्पित वृक्ष, और पर्वतोंके शिखर, और बड़ी २ शिलायें ग्रहण करते हुए ॥ ८ ॥ ९ ॥ दोनों ओरकी

ततःप्रहस्तंनिर्यांतंभीमंभीमपराक्रमम्॥ गर्जंतंसुमहाकायंराक्षसैरभिसंवृतम्॥५॥ददर्शमहतीसेनावानराणांबलीयसाम् ॥ अभिसंजातघोषाणांप्रहस्तमभिगर्जताम् ॥ ६ ॥ खड्गशक्त्यृष्टिशूलाश्चबाणानिमुसलानिच ॥ गदाश्चपरिघाःप्रासाविविधाश्चपरश्वधाः॥७॥धनूंषिचविचित्राणिराक्षसानांजयैषिणाम् ॥ प्रगृहीतान्यराजंतवानरानभिधावताम्॥८॥ जगृहुःपादपांश्चापिपुष्पितांस्तुगिरींस्तथा ॥ शिलाश्चविपुलादीर्घायोद्धुकामाःप्लवंगमाः ॥ ९ ॥ तेषामन्योन्यमासाद्यसंग्रामःसुमहानभूत् ॥ बहूनामश्मवृष्टिंचशरवर्षंचवर्षताम् ॥ १० ॥ बहवोराक्षसायुद्धेबहून्वानरपुंगवान् ॥ वानराराक्षसांश्चापिनिजघ्नुर्बहवोबहून् ॥ ११ ॥ शूलैःप्रमथिताःकेचित्केचित्तुपरमायुधैः ॥ परिघैराहताःकेचित्केचिच्छिन्नाःपरश्वधैः॥ १२ ॥ निरुच्छ्वासाःपुनःकेचित्पतिताजगतीतले ॥ विभिन्नहृदयाःकेचिदिषुसंधानसादिताः ॥ १३ ॥ केचिद्द्विधाकृताःखड्गैःस्फुरंतःपतिताभुवि ॥ वानराराक्षसैःशूरैःपार्श्वतश्चविदारिताः ॥ १४ ॥

सैनामें भयंकर संग्राम आरंभ हुआ; दोनोंही ओरके वीर शिला और बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ १० ॥ राक्षसगणोंनें संग्राममें अगणित वानरोंको मार डाला और वानरोंनेभी असंख्य राक्षसोंका प्राण संहार किया॥ ११ ॥वानरोंमेंसे कोई२ राक्षसोंके शूलप्रहारसे मारे गये और कोई२ दूसरे अस्त्र शस्त्रोंसे मृतक हुए; कोई परिघकी चोटसे रणभूमिमें गिरे और फरसेके प्रहारसे किसी २ का शिर कटगया ॥ १२ ॥ किसीनें पृथ्वीपर गिरकर प्राणत्याग, दिया किसी २ का हृदय छिन्नभिन्न होगया किसी२ के शरीरमें बाणही लगे,कि जिस्से वह गिरे ॥ १३ ॥ कोई २ वानर शूरराक्षसों करके

एवमुक्तोमहातेजारावणोराक्षसेश्वरः ॥ आजघानानिलसुतंतलेनोरसिवीर्यमान् ॥ सतलाभिहतस्तेनचचालचमुहु
र्मुहुः ॥ ५९ ॥ स्थितोमुहूर्ततेजस्वीस्थैर्यंकृत्वामहामतिः ॥ आजघानचसंक्रुद्धस्तलेनैवामरद्विषम् ॥ ६० ॥ ततःस
तेनाभिहतोवानरेणमहात्मना ॥ दशग्रीवःसमाधूतोयथाभूमिचलेऽचलः ॥ ६१ ॥ संग्रामेतंतथादृष्ट्वारावणंतलताडि
तम् ॥ ऋषयोवानराःसिद्धानेदुर्देवाःसुरासुरैः ॥ ६२ ॥ अथाश्वास्यमहातेजारावणोवाक्यमब्रवीत् ॥ साधुवानरवी
र्येणश्लाघनीयोसिमेरिपुः ॥ ६३ ॥ रावणेनैवमुक्तस्तुमारुतिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ धिगस्तुममवीर्यस्ययत्त्वंजीवसिराव
ण ॥ ६४ ॥ सकृत्तुप्रहरेदानींदुर्बुद्धेकिंविकत्थसे ॥ ततस्त्वांमामकोमुष्टिर्नयिष्यतियमक्षयम् ॥ ६५ ॥ ततोमारुति
वाक्येनकोपस्तस्यप्रजज्वले ॥ संरक्तनयनोयत्नान्मुष्टिमावृत्यदक्षिणम् ॥ पातयामासवेगेनवानरोरसिवीर्यवान् ॥ ६६ ॥

हमारा पराक्रम जानही लेना चाहतेहो तौ हमसे विनाशको प्राप्त हुए अपनेपुत्र अक्षकुमारकी याद करलो ॥ ५८ ॥ महातेजस्वी वीर्यवान राक्षसोंके स्वामी रावणने हनुमानजीसे ऐसा सुन उन पवनकुमारकी छातीमें एक लातमारी; उस लातके लगनेसे हनुमानजी वारंवार विचलित भी हुए॥५९॥ परन्तु उन महातेजस्वी हनुमानजीनेंभी एक मुहूर्तमें स्थिरहो अत्यन्त क्रोध सहित एक लात रावणके ऊपर चलाई ॥ ६० ॥ तब दशमुख रावण उन महावलवान हनुमानजीके चरणकी चोट खाय भूडोलके समय कांपते हुए पर्वतकी समान कम्पायमान होंनेलगा ॥ ६१ ॥ उस कालमें सिद्ध चारण ऋषि देवता और असुरगण रावणको संग्राम भूमिमें इस प्रकारसे लातके प्रहारसे चेतना रहित होते देखकर आनंदके मारे सिंहनाद करनें लगे ॥ ६२ ॥ तिसके पीछे रावण कुछ देरमें चेतना पायकर स्थिर हो हनुमानजीसे बोला कि हे वानर ! तुम अपने वीर्यके प्रभावसे बड़ाई करनेंके योग्य हुए हो और इस बातसे हमभी बड़ाई करनेंके योग्य हुए हैं कि तुम समान बलवान हमारे शत्रु हुए हैं ॥ ६३ ॥ जब रावणनें इस प्रकारसे कहा तब हनुमानजी बोले हे रावण ! मेरे वीर्यको धिक्कारहै, कारणकि मेरी लातके प्रहारको खायकर भी तू अबतक जीवितहै ॥ ६४ ॥ रेनिर्बोध तू वृथा क्यों गर्व करताहै ! और एक वार प्रहार कर देख; तिसके पीछे हमारा यह घूंसा तुझको यमराजके भवनमें पहुंचावेगा ॥ ६५ ॥ पवनकुमार हनुमानजीके ऐसे वचन सुनकर वीर्यवान रावणके क्रोधकी अग्नि भड़क उठी, और दोनों नेत्र लाल हो आये, और

तारनें बड़े भारी वृक्षके प्रहारसे कुम्भहनुके ऊपर चोट चलाई कि जिस्से उसका प्राण निकल गया ॥ २३ ॥ परन्तु रथपर चढ़ा हुआ प्रहस्त उन वानर लोगोंके इस कर्मको न सहकर धनुष धारण करके वानरोंका घोर नाश करनें लगा ॥ २४ ॥ उस कालमें दोनों ओरकी सैनाके वेगसे इधर उधर भ्रमण करनेंसे उनकी वह विचित्र गति आवर्तके समान जान पड़नें लगी, और उससे खलबलायमान अप्रमेय समुद्रकी समान शब्द होनें लगा ॥ २५ ॥ उस रणभूमिमें दुर्मद निशाचर प्रहस्तनें अत्यन्त क्रोधित होकर बाणोंका झड लगाकर वानरोंको मारने लगा ॥२६॥ उस समय वह रणभूमि वानर और राक्षसगणोंके मृतक देहोंसे परिपूर्ण होगई कि जिस्से वह ऐसी ज्ञात होनें लगी मानों यह भयंकर पर्वतोंसे घिररही

अमृष्यमाणस्तत्कर्मप्रहस्तोरथमाश्रितः ॥ चकारकदनंघोरंधनुष्पाणिर्वनौकसाम् ॥ २४ ॥ आवर्तइवसंजज्ञेसेनयोरुभयोस्तदा ॥ क्षुभितस्याप्रमेयस्यसागरस्येवनिःस्वनः ॥ २५ ॥ महताहिशरौघेणराक्षसोरणदुर्मदः ॥ अर्दयामास संक्रुद्धोवानरान्परमाहवे ॥२६॥ वानराणांशरीरैस्तुराक्षसानांचमेदिनी ॥ बभूवातिचिताघोरैःपर्वतैरिवसंवृता ॥२७॥ सामहीरुधिरौघेणप्रच्छन्नासंप्रकाशते ॥ संछन्नामाधवेमासिपलाशैरिवपुष्पितैः ॥ २८॥ हतवीरौघवप्रांतुभग्नायुधमहाद्रुमाम् ॥ शोणितौघमहातोयांयमसागरगामिनीम् ॥ २९ ॥ यकृत्प्लीहमहापंकांविनिकीर्णांत्रशैवलाम् ॥ भिन्नकायशिरोमीनामंगावयवशाद्वलाम् ॥ ३० ॥ गृध्रहंसवराकीर्णांकंकसारससेविताम् ॥ मेदःफेनसमाकीर्णामावर्तस्वननिःस्वनाम् ॥ ३१ ॥

है॥२७॥ वसन्तऋतुके आगमनसे खिले हुए पलाशके फूलोंसे जिस प्रकार पृथ्वी शोभायमान होतीहै, वैसेही रणभूमिमें रुधिरकी नदीनें प्रवाहित होकर अत्यन्त शोभा धारणकी ॥ २८ ॥ मरे हुए वानर राक्षस इसके तट टूटे हुए अस्त्र शस्त्रही किनारे वाले बड़े २ वृक्ष रुधिरका वहनाही जल राशि ऐसी यह रणभूमि उस कालमें यमसागरगामिनी नदीसी ज्ञात हुई ॥ २९ ॥ प्लीहा और यकृत जिसकी घनी कीचड इधर उधर पडे हुए इसके शिवार वीरोंकें कटे हुए रुण्डही इस नदीके बड़े मच्छ व काटे हुए अंग जलकी घासके समान ॥३०॥ रक्त मांसकी चाहना करनेंवाले गृध्रही इस नदीके हंस,कंक रूप सारसही जिसमें बैठेहैं,और चरबीही जिसका फेनरूपहै;और आरत वाणीही जिसका वादलोंका गर्जना रूपशब्दहै॥ ३१ ॥

प्रलयकी अग्निके समान जल उठे ॥ ७४ ॥ उस समय वह सैनापति नील अश्वकर्ण, धव,
खंड २ होकर पृथ्वीपर गिरा हुआ देख कोपके मारे प्रलयकी अग्निके समान जल उठे ॥ ७५ ॥ राक्षसोंके राजा रावणने इन समस्त चलाये हुए
शाल और बौरे हुए आम इत्यादि वृक्ष उखाड़ २ समरमें रावणके ऊपर चलानें लगे ॥ ७६ ॥ मेघ जिस प्रकार जल वर्षातेहैं वैसेही लंकेश्वर राव
वृक्षोंको देखते २ खंड २ कर डाला और नीलके ऊपर वाणोंकी घोर वर्षाकरने लगा ॥ ७७ ॥ तब दशानन रावण अग्नि
णके वाण वर्षासे घवड़ाय वानर सैनापति नील अपनी देहको छोटा बनाय कूदकर रावणकी ध्वजापर कूद गये ॥ ७८ ॥ इस
पुत्र नीलको अपनी ध्वजापर बैठा हुआ देखकर क्रोधके मारे जल उठा यह देखकर वानर सैनापति नीलनें घोर सिंहनाद किया ॥ ७८ ॥ इस

सोश्वकर्णद्रुमान्शालांश्चूतांश्चापिसुपुष्पितान् ॥ अन्यांश्चविविधान्वृक्षान्नीलश्चिक्षेपसंयुगे ॥ ७५ ॥ सतान्वृक्षान्समासा
द्यप्रतिचिच्छेदरावणः ॥ अभ्यवर्षच्चघोरेणशरवर्षेणपावकिम् ॥ ७६ ॥ अभिवृष्टःशरौघेणमेघेनेवमहाबलः ॥ ह्रस्वं
कृत्वाततोरूपंध्वजाग्रेनिपपातह ॥ ७७ ॥ पावकात्मजमालोक्यध्वजाग्रेसमवस्थितम् ॥ जज्वालरावणःक्रोधात्ततो
नीलोननादच ॥ ७८ ॥ ध्वजाग्रेधनुषश्चाग्रेकिरीटाग्रेचतंहरिम् ॥ लक्ष्मणोथहनूमांश्चरामश्चापिसुविस्मिताः ॥ ७९ ॥
रावणोपिमहातेजाःकपिलाघवविस्मितः ॥ अस्त्रमाहारयामासदीप्तमाग्नेयमद्भुतम् ॥ ८० ॥ ततस्तेचुक्रुशुर्हृष्टालब्ध
लक्षाःप्लवंगमाः ॥ नीललाघवसंभ्रांतंदृष्ट्वारावणमाहवे ॥ ८१ ॥ वानराणांचनादेनसंरब्धोरावणस्तदा ॥ संभ्रमावि
ष्टहृदयोनकिंचित्प्रत्यपद्यत ॥ ८२ ॥

प्रकारसे वानरोंके सैनापति नील कभी रावणकी ध्वजाके डंडेपर, कभी धनुषपर, और कभी २ रावणके मुखके आगे विराजमान होनें लगे, से
नापति नीलकी यह अनुपम वीरता देखकर श्रीरामचंद्र, लक्ष्मण हनुमानजी अत्यन्त विस्मित हुए ॥ ७९ ॥ रावणनें भी सैनापति नीलकी यह
अद्भुत रणकी चतुरता देख अत्यन्त विस्मितहो एक अद्भुत प्रदीप्त अग्नि वाण ग्रहण किया ॥ ८० ॥ इस ओर वानरगण रावणको नीलकी शीघ्रता
और चंचलतासे रावणको सम्भ्रान्त चित्त देख आनंदसे कुलाहल करनें लगे ॥ ८१ ॥ रावणभी वानर दलका ऐसा शब्द सुनकर इस प्रकारका

एकही वानरोंके सैनापति नीलके ऊपर बाणोंकी वर्षा करनें लगा ॥४०॥ वानरोंके सैनापति नील इन दुरात्मा प्रहस्तके बाणोंको न रोक सके और नेत्र मूंदकर उन समस्त बाणोंको सहन कर लिया। जैसे कि शरद ऋतुकी शीघ्र वर्षाको वृषभ सहन कर लेताहै ॥ ४१ ॥ इसी प्रकार बडे दुःखसे सहनेके अयोग्यभी प्रहस्तके बाण सैनापति नीलनें नेत्र मूंद करकै सहन कर लिये ॥४२॥ तिसके पीछे वह महाबलवान् सैनापति नील प्रहस्तके बाणोंकी वर्षा देख क्रोधित हो एक बडाभारी शालका वृक्ष ग्रहण करते हुए, और उसको चलाय कर प्रहस्तके रथमें जुते हुए चार घोडोंका संहार किया ॥ ४३ ॥ और क्रोधमें भरकर उस दुरात्मा राक्षस प्रहस्तका धनुषभी नीलनें बल पूर्वक ग्रहण करकै तोड डाला; धनुष तोडकर वानर

तस्यबाणगणानेवराक्षसस्यदुरात्मनः ॥ अपारयन्वारयितुंप्रत्यगृह्णान्निमीलितः ॥ यथैवगोवृषोवर्षंशारदंशीघ्रमागतम् ॥ ४१ ॥ एवमेवप्रहस्तस्यशरवर्षान्दुरासदान् ॥ निमीलिताक्षःसहसानीलःसेहेदुरासदान् ॥ ४२ ॥ रोषितःशरवर्षेणसालेनमहतामहान् ॥ प्रजघानहयान्नीलःप्रहस्तस्यमहाबलः ॥ ४३ ॥ ततोरोषपरीतात्माधनुस्तस्यदुरात्मनः ॥ बभंजतरसानीलोननादचपुनःपुनः ॥ ४४ ॥ विधनुःसकृतस्तेनप्रहस्तोवाहिनीपतिः ॥ प्रगृह्यमुसलंघोरंस्यंदनादवपुप्लुवे ॥ ४५ ॥ तावुभौवाहिनीमुख्यौजातवैरौतरस्विनौ ॥ स्थितौक्षतजसिक्तांगौप्रभिन्नाविवकुंजरौ ॥४६॥ उल्लिखंतौसुतीक्ष्णाभिर्दंष्ट्राभिरितरेतरम् ॥ सिंहशार्दूलसदृशौसिंहशार्दूलचेष्टितौ ॥ ४७ ॥ विक्रांतविजयौवीरौसमरेष्वनिवर्तिनौ ॥ कांक्षमाणौयशःप्राप्तुंवृत्रवासवयोरिव ॥ ४८ ॥

सैनापति नील वारंवार सिंहनाद करनें लगे ॥ ४४ ॥ धनुषहीन होनेपर सैनापति प्रहस्त घोर मूसल ग्रहण करकै रथसे छलांग मारकर पृथ्वीपर कूद पडा ॥ ४५ ॥ दोनों घोर युद्ध करनें लगे; दोनों जिस प्रकार वैर बांधे हुएथे; वैसेही बलवानभीथे। युद्ध करते २ दोनोंका शरीर कट गया; और दोनोंहीके शरीरसे रुधिर बहनें लगा ॥४६॥ दोनोंही तीक्ष्ण दाँतोंके प्रहारसे परस्पर एक दूसरेको काटनें लगे, दोनोंका विक्रम और चेष्टा सिंह शार्दूल की समानथी॥४७॥वृत्रासुर और वृत्रासुरके मारनेंवाले इन्द्रमें जिस प्रकारसे युद्धहुआथा; इसही प्रकारसे यह दोनों वीर समरमें यश प्राप्त करनेकी

चेतना रहित देख मेघके समान शब्द करते हुए अपने रथको चलायकर सुमित्रा कुमार लक्ष्मणजीकी ओर चला ॥ ९० ॥ प्रतापवान रावण लक्ष्मणजीको प्राप्त होकर वानरोंको निवारण कर अपने तेजसे विराज मान हो वारंवार अपने धनुषको टंकारनें लगा ॥ ९१ ॥ तब प्रबल बल शाली सुमित्रानंदन लक्ष्मणजी रावणको इस प्रकारसे धनुषपर टंकार देते देखकर बोले; हे राक्षस नाथ ! वानरोंके साथ युद्ध करना तुमको उचित नहीं है, क्योंकि वह तुम्हारी समानके नहीं हैं, इस कारण उनसे युद्ध न करके हमारे साथ युद्ध करो हम तुमसे युद्ध करनेंके लिये तैयार हैं ॥ ९२ ॥ यह कहकर लक्ष्मणजी धनुषपर टंकार देंने लगे; तब राक्षस राज दशानन उनके प्रति शब्द पूर्ण वचन और धनुषकी टंकारका उग्र

आसाद्यरणमध्येतुवारयित्वास्थितोज्वलन् ॥ धनुर्विस्फारयामासराक्षसेंद्रःप्रतापवान् ॥ ९१ ॥ तमाहसौमित्रिरदी
नसत्त्वोविस्फारयंतंधनुरप्रमेयम् ॥ अवेहिमामद्यनिशाचरेंद्रनवानरांस्त्वंप्रतियोद्धुमर्हसि ॥ ९२ ॥ सतस्यवाक्यंप्रति
पूर्णघोषंज्याशब्दमुग्रंचनिशम्यराजा ॥ आसाद्यसौमित्रिमुपस्थितंतंरोषान्वितंवाचमुवाचरक्षः ॥ ९३ ॥ दिष्ट्यासिमे
राघवदृष्टिमार्गंप्राप्तोंतगामीविपरीतबुद्धिः ॥ अस्मिन्क्षणेयास्यसिमृत्युलोकंसंसाद्यमानोममबाणजालैः ॥ ९४ ॥
तमाहसौमित्रिरविस्मयानोगर्जंतमुद्वृत्तशिताग्रदंष्ट्रम् ॥ राजन्नगर्जंतिमहाप्रभावाविकत्थसेपापकृतांवरिष्ठ ॥ ९५ ॥
जानामिवीर्यंतवराक्षसेंद्रबलंप्रतापंचपराक्रमंच ॥ अवस्थितोहंशरचापपाणिरागच्छकिंमोघविकत्थनेन ॥ ९६ ॥

शब्द श्रवण करके और सुमित्राके पुत्र लक्ष्मणजीको इस प्रकारसे आगे खड़ा देखकर क्रोधसे पूर्ण यह वचन बोला ॥ ९३ ॥ हे लक्ष्मण ! तुम्हारा समय पूर्ण होगया इस कारणसे तुम्हारी बुद्धिमेंभी विपरीतता आगई है; इसही कारणसे हो या हमारे सौभाग्य हीसेही जबकि तुम आज हमारी दृष्टिके मार्गमें पड़ेहो तब निश्चयही हमारे बाणोंसे छिन्न भिन्न इसी मुहूर्तमें तुम यमलोककी यात्रा करोगे ॥ ९४ ॥ रावणके यह वचन सुनकर महावीर लक्ष्मणजी विस्मय रहितहो बोले; हे रावण ! तुम पापी लोगोंके अगुएहो, इसीसे निर्लज्जहो, गर्ज २ कर अपने उज्ज्वल दांत बाहर निकाल ऐसी बकवादकर रहेहो परन्तु महा प्रभाव लोग कभी ऐसा नहीं कहते ॥९५॥ हे राक्षसेन्द्र ! हम तुम्हारे वीर्य बल प्रताप और पराक्रमको भली भांति

जब प्रहस्त मारा गया, तब निशाचरोंकी बची हुई वह कंपायमान करनेंके अयोग्य बड़ी भारी सैना शिर झुकायकर लंकाको चली गई ॥५६॥ जिस प्रकार पुल पांव देके टूट जानें पर सब जल निकल जाताहै और नहीं रुक सकताहै, वैसेही सैनापति प्रहस्तके मारे जानेंपर वह निशाचरगण वहां टिकनेंको समर्थ न हुये ॥ ५७ ॥ उस सैनापति प्रहस्तके मारे जानेंपर वह निशाचर गण शोकके समुद्रमें डूबकर चेतना रहित होगये, और पीछे सब उद्यम छोड़ राक्षसपति रावणके मन्दिरमें आय ध्यान करते हुए पुरुषकी समान मौन धारण किये रहे ॥ ५८ ॥ इस ओर महावीर सैनापति नील युद्धमें जय प्राप्त करके श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजीके निकट आये, तत्काल सबही उनकी इस

नशेकुःसमवस्थातुंनिहतेवाहिनीपतौ ॥ सेतुबंधंसमासाद्यविशीर्णंसलिलंयथा ॥ ५७॥ हतेतस्मिंश्चमूमुख्येराक्षसास्ते निरुद्यमाः ॥ रक्षःपतिगृहंगत्वाध्यानमूकत्वमागताः ॥ प्राप्ताःशोकार्णवंतीव्रंविसंज्ञाइवतेभवन् ॥ ५८ ॥ ततस्तुनीलो विजयीमहाबलःप्रशस्यमानःसुकृतेनकर्मणा ॥ समेत्यरामेणसलक्ष्मणेनप्रहृष्टरूपस्तुबभूवयूथपः ॥ ५९ ॥ इत्यार्षे श्री० वा० आ० यु०अष्टपंचाशःसर्गः ॥ ५८ ॥ ॥ ७ ॥ तस्मिन्हतेराक्षससैन्यपालेप्लवंगमानामृषभेणयुद्धे ॥ भी मायुधंसागरवेगतुल्यंविदुद्रुवेराक्षसराजसैन्यम् ॥ १ ॥ गत्वातुरक्षोधिपतेःशशंसुःसेनापतिंपावकसूनुशस्तम् ॥ तच्चा पितेषांवचनंनिशम्यरक्षोधिपःक्रोधवशंजगाम ॥ २ ॥ संख्येप्रहस्तंनिहतंनिशम्यक्रोधार्दितःशोकपरीतचेताः ॥ उ वाचतान्राक्षसयूथमुख्यानिंद्रोयथानिजरयूथमुख्यान् ॥ ३ ॥

वीरताकी बहुतसी बडाई करनें लगे ॥ ५९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे अष्टपंचाशः सर्गः ॥ ५८ ॥ वानर श्रेष्ठ नीलके हाथसे जब सैनापति प्रहस्त संग्रामभूमिमें मारा गया तब भयंकर अस्त्र शस्त्रधारी समुद्रके वेगकी समान राक्षस रावणकी भागी हुई ॥ १ ॥ उस सैनानें लंका नगरीमें रावणके निकट जाय "अग्निके पुत्र नीलके हाथसे प्रहस्त मारा गया" उसको यह सम्वाद सुनाया। राक्षस रावण सैनाके मुखसे प्रहस्तका मरना सुनकर अत्यन्त क्रोधित हुआ ॥२॥ रणभूमिसें प्रहस्तको माराहुआ सुनकर रोषके परवश और शोकसे विकल

किया ॥ १०२ ॥ लक्ष्मणजीनें रावणके बाणसे अत्यन्त पीडित आरत होकर क्षण भरको चलायमान हुए, परन्तु अनेक कष्ट करके क्षणभरमेंही चेतना पाय अपने गिरे हुए धनुषको उठायकर उसपर बाण चढ़ाय इन्द्रके शत्रु रावणका धनुष काट डाला ॥ १०३ ॥ दशरथ कुमार लक्ष्मणजीनें इस प्रकारसे रावणका धनुष काटकर अत्यन्त तीखे तीन बाण उस राक्षस राजके मारे रावण उन बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर मोहित होगया और फिर अत्यन्त कष्टसे मूर्छासे जागा ॥ १०४ ॥ लक्ष्मणजीसे धनुष कट जानें और उनके बाणोंसे ताडित होनेंके कारण उग्र सामर्थ्यवान देव शत्रु रावणके अंगोंमें चरबीसे मिला हुआ रुधिर निकलनेसे और दूसरा उपाय नदेखकर उसने ब्रह्माजीकी दीहुई अमोघ(अव्यर्थ)शक्ति ग्रहणकी॥१०५॥

सलक्ष्मणोरावणसायकार्तश्चचालचापंशिथिलंप्रगृह्य ॥ पुनश्चसंज्ञांप्रतिलभ्यकृच्छ्राच्चिच्छेदचापंत्रिदशेंद्रशत्रोः ॥ ३॥
निकृत्तचापंत्रिभिराजघानबाणैस्तदादाशरथिःशिताग्रैः ॥ ससायकार्तोविचचालराजाकृच्छ्राच्चसंज्ञांपुनराससाद ॥४॥
सुकृत्तचापःशरताडितश्चमेदार्द्रगात्रोरुधिरावसिक्तः ॥ जग्राहशक्तिंस्वयमुग्रशक्तिःस्वयंभुदत्तांयुधिदेवशत्रुः ॥१०५॥
सतांसधूमानलसन्निकाशांवित्रासनींसंयतिवानराणाम् ॥ चिक्षेपशक्तिंतरसाज्वलंतींसौमित्रयेराक्षसराष्ट्रनाथः ॥ ६ ॥
तामापतंतींभरतानुजोस्त्रैर्जघानबाणैश्चहुताग्निकल्पैः ॥ तथापिसातस्यविवेशशक्तिर्भुजांतरंदाशरथेर्विशालम् ॥ ७ ॥ स
शक्तिमाञ्छक्तिसमाहतःसञ्जज्वालभूमौसरघुप्रवीरः ॥ तंविह्वलंतंसहसाभ्युपेत्यजग्राहराजातरसाभुजाभ्याम् ॥ ८॥

राक्षसोंके राजा रावणनें सुमित्राकुमार लक्ष्मणजीको ताककर संग्राम भूमिमें वानरोंको त्रास उपजानेंवाली और धुरों सहित अग्निकी समान जलती हुई वह शक्ति छोड़दी ॥ १०६ ॥ भरतजीके छोटे भाई लक्ष्मणजीनें उस शक्तिको अपने ऊपर गिरता हुआ देखकर उसको ताक असंख्य अग्निकी समान बाण छोड़े तथापि वह शक्ति किसी प्रकारसे व्यर्थ न होकर लक्ष्मणजीकी विशाल भुजामें आनकर प्रवेश करती हुई ॥ १०७ ॥ तब वह शक्तिमान रघुवीर लक्ष्मणजी शक्तिसे घायल होकर पृथ्वीमें गिर पडे; उनको इस प्रकारसे पृथ्वीमें गिरते हुए देखकर राक्षसराज रावण सहसा

सहित नगरसे बाहर आय महासमुद्र और महामेघकी समान शब्दायमान पर्वत, वृक्ष, हाथमें लिये रण करनेंको तैयार और उग्ररूप वाली बलशाली निराली वानरोंकी सैनाको देखा ॥ १० ॥ इस ओर भुजगेन्द्र सदृश बाहुयुगल शाली अपनी सैनामें टिके हुए सुन्दरदर्शन रघुनन्दन श्रीरामचंद्रजी उस परम प्रचंड राक्षसकी सैनाको देखकर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ विभीषणजीसे बोले ॥ ११ ॥ रंगविरंगी ध्वजा पताकाओंसे शोभित महेन्द्राचलकी समान हाथी घोड़ोंसे युक्त और प्रास खड्ग शूल इत्यादि भांति २ के अस्त्र शस्त्रोंसे परिपूर्ण यह किस वीरकी सैना है ॥ ॥ १२ ॥ श्रीरामचंद्रजकि यह वचन सुनकर इन्द्र तुल्य वीर्यवान विभीषणजी उन महाबलवान राक्षसश्रेष्ठोंकी सैनाका परिचय श्रीरामचंद्रजीके

तद्राक्षसानीकमतिप्रचंडमालोक्यरामोभुजगेंद्रबाहुः ॥ विभीषणंशस्त्रभृतांवरिष्ठमुवाचसेनानुगतःपृथुश्रीः ॥ ११ ॥
नानापताकाध्वजछत्रजुष्टंप्रासासिशूलायुधशस्त्रजुष्टम् ॥ कस्येदमक्षोभ्यमभीरुजुष्टंसैन्यंमहेंद्रोपमनागजुष्टम् ॥ १२ ॥
ततस्तुरामस्यनिशम्यवाक्यंविभीषणःशक्रसमानवीर्यः ॥ शशंसरामस्यबलप्रवेकंमहात्मनांराक्षसपुंगवानाम् ॥ १३ ॥
योसौगजस्कंधगतोमहात्मानवोदिताकोंपमताम्रवक्त्रः ॥ संकंपयन्नागशिरोभ्युपैतिह्यकंपनंत्वेनमवेहिराजन् ॥ १४ ॥
योसौरथस्थोमृगराजकेतुर्धुन्वन्धनुःशक्रधनुःप्रकाशम् ॥ करीवभात्युग्रविवृत्तदंष्ट्रःसइंद्रजिन्नामवरप्रधानः ॥ १५ ॥
यश्चैषविंध्यास्तमहेंद्रकल्पोधन्वीरथस्थोऽतिरथोतिवीरः ॥ विस्फारयंश्चापमतुल्यमानंनाम्नातिकायोतिविवृद्धकायः ॥ १६ ॥ योसौनवार्कोदितताम्रचक्षुरारुह्यघंटानिनदप्रणादम् ॥ गजंखरंगर्जतिवैमहात्मामहोदरोनामसएषवीरः ॥ १७ ॥

समीप निवेदन करने लगे ॥ १३ ॥ विभीषणजी बोले हे राजन्! प्रभात कालके उदय होते हुए सूर्यकी समान जो महाबलवान राक्षस हाथीपर चढ़कर उसके मस्तकको कम्पायमान करता हुआ आता है उसका नाम अकम्पन है (यह दूसरा अकम्पन था) ॥ १४ ॥ जो रथपर चढ़कर वारंवार इन्द्रके धनुषकी तुल्य अपने धनुषको कंपायमान करता है जिसके रथपर सिंह ध्वज लगाहै,जो तिरछे दांतवाले हाथीकी समान शोभायमान होरहाहै वही वरदान पाया हुआ राक्षसोंमें श्रेष्ठ इन्द्रजीतहै ॥१५॥ विन्ध्याचल अस्ताचल और महेन्द्र पर्वतकी समान अप्रमेय देहवालाहै जो धनुषधारी अतिरथहै और अपने धनुषपर टंकार देता हुआ आय रहा है इसही बडे आकारवाले वीरका नाम अतिकायहै ॥ १६ ॥ प्रभातकालके सूर्यकी

वानर ऋषि सिद्ध और इन्द्रादि देवगण सिंहनाद करनें लगे तिसके पीछे तेजस्वी हनुमानजी रावणसें पीडित लक्ष्मणजीको ॥ ११६ ॥ अपनी दोनों बाहोंसे ग्रहण करके श्रीरामचंद्रजीके पास लाये सुमित्रानंदन लक्ष्मणजी शत्रु लोगोंसे कंपायमान होनेके योग्य नहीं इसकारण रावणके उठाने से न उठे परन्तु हनुमानजीका सौहार्दता और परम भक्तिसे प्रसन्न होकर वह उनके लिये बहुतही हलके होगये ॥ ११७ ॥ तिसके पीछे वह शक्ति संग्रामभूमिको छोड़े हुए लक्ष्मणजीको त्याग कर रावणके रथमें आय अपने स्थानपर विराजमान हुई ॥ ११८ ॥ अतुल तेजस्वी रावणनेभी उस बड़े भारी संग्राममें चैतन्यताको पाय फिर अपना बड़ा भारी धनुष और तीक्ष्ण बाण ग्रहणकिये ॥ ११९ ॥ इस ओर

ऋषयोवानराश्चैवनेदुर्देवाश्चसासुराः ॥ हनुमानथतेजस्वीलक्ष्मणंरावणार्दितम् ॥ १६ ॥ आनयद्राघवाभ्याशंबाहु
भ्यांपरिगृह्यतम् ॥ वायुसूनोःसुहृत्त्वेनभक्त्यापरमयाचसः ॥ शत्रूणामप्यकंप्योपिलघुत्वमगमत्कपेः ॥ ११७ ॥
तंसमुत्सृज्यसाशक्तिःसौमित्रिंयुधिनिर्जितम् ॥ रावणस्यरथेतस्मिन्स्थानंपुनरुपागमत् ॥ १८ ॥ रावणोपिमहाते
जाःप्राप्यसंज्ञांमहाहवे ॥ आददेनिशितान्बाणान्जग्राहचमहद्धनुः ॥ १९ ॥ आश्वस्तश्चविशल्यश्चलक्ष्मणःशत्रुसूद
नः ॥ विष्णोर्भागममीमांस्यमात्मानंप्रत्यनुस्मरन् ॥ २० ॥ निपातितमहावीरांवानराणांमहाचमूम् ॥ राघवस्तुर
णेदृष्ट्वारावणंसमभिद्रवत् ॥ २१ ॥ अथैनमनुसंक्रम्यहनूमान्वाक्यमब्रवीत् ॥ ममपृष्ठंसमारुह्यराक्षसंशास्तुमर्ह
सि ॥ २२ ॥ विष्णुर्यथागरुत्मंतमारुह्यामरवैरिणाम् ॥ तच्छ्रुत्वाराघवोवाक्यंवायुपुत्रेणभाषितम् ॥ २३ ॥

शत्रुओंके मारनेंवाले लक्ष्मणजीभी अपने अचिन्तनीय वैष्णव अंशको स्मरणकर व्यथित और सावधानचित्त हुए ॥ १२० ॥ तब रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी वानरोंकी सैनाके अनेक वीरोंको रावणके हाथसे मृतक होते देखकर शीघ्रतासे उसकी ओर चले॥१२१॥ श्रीरामचंद्रजीको संग्राम करनेंके लिये तैयार देखकर वीर हनुमानजी उनसे हाथ जोड़कर बोलेकि हमारी पीठपर सवार होकर आप रावणका वध कीजिये॥१२२॥विष्णुजीने जिस प्रकार गरुड़जी पर सवार होकर देवताओंके वैरी दैत्योंका संहार कियाथा, श्रीरामचंद्रजी हनुमानजीके कहे हुए ऐसे वचन सुनकर॥१२३॥

प्रकारके घोर रूप वाले विकट नेत्र युक्त व्याघ्र, ऊंट हाथी, मृग, घोड़ेके समान मुखवाले भूतोंके सँग जो शोभितहैं ॥ २३ ॥ और भूतोंसे घिरे हुए शिवजीकी समान शोभायमान हो रहाहै, और जहांपर महीन सौ कमानियोंका बना हुआ चंद्रमाकी समान उज्ज्वल व श्रेष्ठ छत्र लगा दिखाई देताहै, इसी स्थानमें राक्षसोंका स्वामी विराजमानहै ॥ २४ ॥ हेमहाराज! जिसने इन्द्र और यमराजके गर्वकाभी नाश कियाहै,और जिसके मुखपर हलते हुए कुण्डल दीख पडतेहैं, यह वही हिमालय और विन्ध्याचल पर्वतकी समान भयंकराकार निशाचर पति सूर्यकी समान प्रकाशमान हो रहाहै ॥ २५ ॥ तिसके पीछे शत्रुनाशी श्रीरामचंद्रजी विभीषणसे कहने लगे कि अहो ! राक्षसराज रावणका तेज कैसा प्रदीप्तहै! और बडाही

यत्रैतदिंदुप्रतिमंविभातिच्छत्रंसितंसूक्ष्मशलाकमग्र्यम् ॥ अत्रैवरक्षोधिपतिर्महात्माभूतैर्वृतोरुद्रइवावभाति ॥ २४ ॥ असौकिरीटीचलकुंडलास्योनगेंद्रविंध्योपमभीमकायः ॥ महेंद्रवैवस्वतदर्पहंतारक्षोधिपःसूर्यइवावभाति ॥ २५ ॥ प्रत्युवाचततोरामोविभीषणमरिंदमः ॥ अहोदीप्तमहातेजारावणोराक्षसेश्वरः ॥ २६ ॥ आदित्यइवदुष्प्रेक्ष्योरश्मिभिर्भातिरावणः ॥ नव्यक्तंलक्षयेह्यस्यरूपंतेजःसमावृतम् ॥ २७ ॥ देवदानववीराणांवपुर्नैवंविधंभवेत् ॥ यादृशंराक्षसेंद्रस्यवपुरेतद्विराजते ॥ २८ ॥ सर्वेपर्वतसंकाशाःसर्वेपर्वतयोधिनः ॥ सर्वेदीप्तायुधधरायोधास्तस्यमहात्मनः ॥ २९ ॥ विभातिरक्षोराजोसौप्रदीप्तैर्भीमदर्शनैः ॥ भूतैःपरिवृतैस्तीक्ष्णैर्देहवद्भिरिवांतकः ॥ ३० ॥ दिष्ट्यायमद्यपापात्मामममदृष्टिपथंगतः ॥ अद्यक्रोधंविमोक्ष्यामिसीताहरणसंभवम् ॥ ३१ ॥

तेजस्वीहै ॥ २६ ॥ इसके देहकी किरणें चारों ओर ऐसी फैल रहीहैं, और यह सूर्यकी समान ऐसा दुष्प्रेक्ष्य हुआहै कि इसका तेजसे ढका हुआ रूप हमको नहीं दीख पाताहै ॥ २७ ॥ इस राक्षसोंके स्वामी रावणका शरीर जिस प्रकारसे प्रकाशित हो रहाहै, देवता और दानव वीर गणोंका शरीरभी ऐसा प्रकाशित नहीं हुआ करताहै ॥ २८ ॥ महावलवान राक्षस जो कि रावणके अनुगामी वर्ग हैं वह सवही पर्वतोंके समान बड़े आकारवाले दीप्तायुधधारीहैं; और देहकी चुलबुलाहट निवारण करनेके लिये सबही पर्वतोंके सहित युद्ध किया करतेहैं ॥ २९ ॥ यह राक्षस रावण प्रदीप्त भयंकर दर्शन और तीक्ष्ण देह वाले राक्षसोंके संग होनेसे भूत गणोंके साथ यमराजकी समान जान पडताहै ॥ ३० ॥ बडेही भाग्यकी बातहै

जोकि श्रीरामचंद्रजीको अपने ऊपर चढ़ा रहेथे ॥ १३१ ॥ अत्यन्त क्रोध युक्तहो पहला वैर संभाल, कालाग्निकी समान प्रकाशित अत्यन्त तीखे
बाण मारे ॥ १३२ ॥ जोकि,हनुमानजीके लगे, परन्तु संग्राममें रावणके बाणोंसे ताड़ित हुए स्वभावसेही महातेजस्वी हनुमानजीका तेज औरभी
अधिक चढ़ा ॥ १३३ ॥ तिसके पीछे महा तेजस्वी श्रीरामचंद्रजी हनुमानजीकी पीठमें रावणके बाणोंसे घाव हुआ देख अत्यन्त क्रोध करते
हुए ॥ १३४ ॥ उन श्रीरामचंद्रजीनें तीक्ष्ण बाणोंको चलायकर पहिये, घोड़े, छत्र, पताका, सारथि, शूल और खड्गके सहित रावणका रथ चूर्ण
और छिन्नभिन्न करके रत्ती २ काट डाला ॥ १३५ ॥ जिस प्रकार भगवान इन्द्रजीनें सुमेरु पर्वतको चूर्ण कियाथा, वैसेही वज्र और अशनि समान

रोषेण महताविष्टः पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ आजघानशरैर्दीप्तैःकालानलशिखोपमैः ॥३२॥राक्षसेनाहतेतस्यताडितस्यापि
सायकैः ॥ स्वभावतेजोयुक्तस्यभूयस्तेजोभ्यवर्धत ॥ ३३ ॥ ततोरामोमहातेजारावणेनकृतव्रणम् ॥ दृष्ट्वाप्लवगशार्दू
लंक्रोधस्यवशमेयिवान् ॥ ३४ ॥ तस्याभिसंक्रम्यरथंसचक्रंसाश्वध्वजच्छत्रमहापताकम् ॥ ससारथिंसाशनिशूल
खड्गंरामःप्रचिच्छेदशितैःशराग्रैः ॥ ३५ ॥ अथेंद्रशत्रुंतरसाजघानबाणेनवज्राशनिसन्निभेन ॥ भुजांतरेव्यूढसुजात
रूपेवज्रेणमेरुंभगवानिवेंद्रः ॥ ३६ ॥ योवज्रपाताशनिसन्निपातान्नचुक्षुभेनापिचचालराजा ॥ सरामबाणाभिहतो
भृशार्तश्चचालचापंचमुमोचवीरः ॥ ३७ ॥ तंविह्वलंतंप्रसमीक्ष्यरामःसमाददेदीप्तमथार्धचंद्रम् ॥ तेनार्कवर्णसहसा
किरीटंचिच्छेदरक्षोधिपतेर्महात्मा ॥ ३८ ॥ तंनिर्विषाशीविषसन्निकाशंशांतार्चिषंसूर्यमिवाप्रकाशम् ॥ गतश्रियंकृ
त्तकिरीटकूटमुवाचरामोयुधिराक्षसेंद्रम् ॥ ३९ ॥

बाणोंसे उन्होंनें इन्द्रके शत्रु रावणकी छातीमें चोटदी,और विविध भांतिके गहनोंसे युक्त भुजामेंभी प्रहार किया ॥ १३६ ॥ पहले वज्र अथवा अश
निके आघातसेभी क्षुभित या चलायमान नहीं हुआ; वही वीरश्रेष्ठ रावण श्रीरामचंद्रजीके बाणसे घायल होकर ऐसा आरत और
चलायमान हुआकि उसका धनुष उसके हाथसे गिर पड़ा ॥ १३७ ॥ महाबलवान श्रीरामचंद्रजीनें रावणको ऐसा व्याकुल देख एक अर्द्ध
चंद्र दीप्तबाण ग्रहण कर उससे राक्षसपतिका सूर्यकी समान प्रकाशित मुकुट काट डाला ॥ १३८ ॥ इस समयमें राक्षस

वह बड़े भारी और उत्तम कंगूरे व तट श्रेणी विराजित पर्वतके शृङ्ग जब पृथ्वीमें गिर पड़े तब निशाचर नाथ रावणने क्रोधित होकर महा सर्पकी तुल्य यमराजकी समान एक बाण ग्रहण करता हुआ ॥ ३८ ॥ इस कुमति वाले रावणनें सुग्रीवजीके मार डालनेंकी वासनासे यह महा वेगवान बाण उनके ऊपर चलाया यह बाण चिनगार निकलते अग्निकी समान प्रदीप्तथा उसकी गति वज्र और पवनके समान थी ॥ ३९ ॥ षड़ानन स्वामी कार्त्तिक जीकी चलाई हुई उस शक्तिनें जिस प्रकार क्रौञ्च पर्वतको भेद डालाथा, वैसेही रावणकी वाहोंसे छूटे हुए उस बाणनें इन्द्रजीके वज्रकी समान प्रकाशित देह वानर राज सुग्रीवजीके ऊपर गिरकर उनके हृदयको भेद डाला ॥ ४० ॥ वीर

तस्मिन्प्रवृद्धोत्तमसानुवृक्षेशृंगेविदीर्णेपतितेपृथिव्याम् ॥ महाहिकल्पंशरमंतकाभंसमादधेराक्षसलोकनाथः ॥ ३८॥
सतंगृहीत्वाऽनिलतुल्यवेगंसविस्फुलिंगज्वलनप्रकाशम् ॥ बाणंमहेंद्राशनितुल्यवेगंचिक्षेपसुग्रीववधायरुष्टः ॥ ३९ ॥
ससायकोरावणबाहुमुक्तःशक्राशनिस्पर्शवपुःप्रकाशम् ॥ सुग्रीवमासाद्यविभेदवेगाद्गुहेरिताक्रौंचमिवोग्रशक्तिः ॥ ४०॥
ससायकार्तोविपरीतचेताःकूजन्पृथिव्यांनिपपातवीरः ॥ तंवीक्ष्यभूमौपतितंविसंज्ञंनेदुःप्रहृष्टायुधियातुधानाः ॥ ४१ ॥
ततोगवाक्षोगवयःसुषेणस्त्वथर्षभोज्योतिमुखोनलश्च ॥ शैलान्समुत्पाट्यविवृद्धकायाःप्रदुद्रुवुस्तंप्रतिराक्षसेंद्रम्॥ ४२ ॥ तेषांप्रहारान्सचकारमोघान्रक्षोधिपोबाणशतैःशिताग्रैः ॥ तान्वानरेंद्रानपिबाणजालैर्बिभेदजांबूनदचित्रपुंखैः ॥ तेवानरेंद्रास्त्रिदशारिबाणैर्भिन्नानिपेतुर्भुविभीमकायाः ॥ ४३ ॥

श्रेष्ठ वानरराज सुग्रीवजी उस बाणके प्रहारसे अत्यन्त आरत और चेतना रहित हो घोर शब्द करते हुए पृथ्वीपर गिरपड़े राक्षसगण उन को रणभूमिके मध्य मूर्छित होकर पृथ्वीमें पड़ा हुआ देखकर आनंद के मारे सिंहनाद करनें लगे ॥ ४१ ॥ फिर गवाक्ष गवय सुषेण ऋषभ ज्योतिर्मुख नल इत्यादि वानरगण अपनी २ देहको बढाय उठाय २ राक्षसराज रावणके सन्मुख दौड़े ॥ ४२ ॥ परन्तु राक्षसोंके पर्वतोंको स्वामी रावणनें अत्यन्त तीखे शत बाण चलाय उनके प्रहारको व्यर्थकर सुवर्णकी फोंक लगे हुए बाणोंसे उन वानरश्रेष्ठोंके ऊपर प्रहारकिया

इसके पीछे लंकेश्वर दशानन श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे व्यथित हृदय होकर लंकापुरीमें प्रवेश करता हुआ, उसके हृदयमें श्रीरामचंद्रजीका भय तबतक प्रबलथा दिग्विजयी होनेंका इतने दिनोंतक जो अभिमान था आज वह अभिमान चूर्ण होगया ॥ १ ॥ सिंहके निकट हाथी और पन्नग राज गरुड़जीके निकट सर्पकी अवस्था जिस प्रकार होजातीहै, श्रीरामचंद्रजीके निकट रावणकी भी आज वही अवस्था हुई थी ॥ २ ॥ रावण घरमें बैठकर विकसित सौदामिनीकी समान तेजशाली और ब्रह्मदंडकी समान बाणोंको याद करके अत्यन्त दुःखी हुआ ॥ ३ ॥ तिसके पीछे सुवर्णके बने सिंहासन पर बैठ राक्षसोंकी ओर निहार रावण बोला ॥ ४ ॥ हा ! हमनें जो कठोर तप कियाथा; हम जानतेहैं कि आज वह तप वृथा

सप्रविश्यपुरींलंकांरामबाणभयार्दितः ॥ भग्नदर्पस्तदाराजाबभूवव्यथितेंद्रियः ॥ १ ॥ मातंगइवसिंहे नगरुडेनेवपन्नगः ॥ अभिभूतोभवद्राजाराघवेणमहात्मना ॥ २ ॥ ब्रह्मदंडप्रतीकानांविद्युच्चलितवर्चसाम् ॥ स्मरन्राघवबाणानांविव्यथेराक्षसेश्वरः ॥ ३ ॥ सकांचनमयंदिव्यमाश्रित्यपरमासनम् ॥ विप्रेक्षमाणोरक्षांसिरा वणोवाक्यमब्रवीत् ॥ ४ ॥ सर्वंतत्खलुमेमोघंयत्तप्तंपरमंतपः ॥ यत्समानोमहेंद्रेणमानुषेणविनिर्जितः ॥ ५ ॥ इदंत द्ब्रह्मणोघोरंवाक्यंमामभ्युपस्थितम् ॥ मानुषेभ्योविजानीहिभयंत्वमितितत्तथा ॥ ६ ॥ देवदानवगंधर्वैर्यक्षराक्षसप न्नगैः ॥ अवध्यत्वंमयाप्रोक्तंमानुषेभ्योनयाचितम् ॥ ७ ॥ तमिमंमानुषंमन्येरामंदशरथात्मजम् ॥ इक्ष्वाकुकुल जातेनअनरण्येनयत्पुरा ॥ ८ ॥

होगया; हम इन्द्र तुल्य प्रतापी होकर जब कि एक साधारण मनुष्यसे रणभूमिमें हार गये; तब हमारी वीरताही क्या हुई ॥५॥ पूर्व कालमें प्रजापति ब्रह्माजीनें हमसे कहाथा कि हे राक्षसराज ! मनुष्यके हाथसेही तुमको भयहै, इस समय उनकी वही बात हमको याद आतीहै; देखतेहैं कि अब सत्य सत्यही मनुष्यसे हमको घोर भय आ पहुँचा; कि जिसका ठिकाना नहीं ॥ ६ ॥ हमनें वरदान पानेंके समय ब्रह्माजीसे, देवता, गन्धर्व, दानव यक्ष, राक्षस, और सर्प इन सब जातियोंसे न मारे जांय, यह वर मांगा था मनुष्यकी जातिको अपदार्थ समझकर "मनुष्य जातिसे भी हम न मारे जाँय" ऐसा वरदान हमनें नहीं मांगा ॥ ७ ॥ पूर्व समय इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न हुए महाराजाधिराज अनरण्यनें जो शाप हमको दियाथा

सुनकर सुमित्राके पुत्र लक्ष्मणजी उनको प्रणाम करते हुए, और उनकी पूजाकी, व श्रीरामचंद्रजीनेंभी इनको गलेसे लगाय कर भेंटा जब लक्ष्मणजी युद्ध करनेंको गये ॥५०॥ तब युद्धमें आगे बढ़कर लक्ष्मणजीनें देखा कि हाथीकी शुण्डके समान चढ़ा उतार बांहोंवाला राक्षस रावण भयं कर धनुष उठाय अनिवार बाणोंकी वर्षा करता हुआ वानरोंको ढक रहाहै, और वानर लोगभी छिन्नभिन्न शरीरहो पृथ्वीपर गिर रहेहैं ॥ ५१ ॥ इतने हीमें पवनकुमार हनुमानजी लक्ष्मणजीको आगे बढ़ा हुआ देखकर उनको रोक आप रावणके बाणजालको चीरते फाड़ते उसके सन्मुख धाये ॥ ५२ ॥ तिसके पीछे बुद्धिमान हनुमानजी रावणके रथपर चढ़ दहिनी भुजाका तमाचा उठाय उसको भय दिखाते हुए बोले ॥ ५३ ॥ कि

सरावणंवारणहस्तबाहुंददर्शभीमोद्यतदीप्तचापम् ॥ प्रच्छादयंतंशरवृष्टिजालैस्तान्वानरान्भिन्नविकीर्णदेहान् ॥ ५१ ॥ तमालोक्यमहातेजाहनूमान्मारुतात्मजः ॥ निवार्यशरजालानिविदुद्रावसरावणम् ॥ ५२ ॥ रथंतस्यसमासाद्यबाहुमुद्यम्यदक्षिणम् ॥ त्रासयन्रावणंधीमान्हनूमान्वाक्यमब्रवीत् ॥ ५३ ॥ देवदानवगंधर्वैर्यक्षैश्चसहराक्षसैः ॥ अवध्यत्वंत्वयाप्राप्तंवानरेभ्यस्तुतेभयम् ॥ ५४ ॥ एषमेदक्षिणोबाहुःपंचशाखःसमुद्यतः ॥ विधमिष्यतितेदेहेभूतात्मानंचिरोषितम् ॥ ५५ ॥ श्रुत्वाहनूमतोवाक्यंरावणोभीमविक्रमः ॥ संरक्तनयनःक्रोधादिदंवचनमब्रवीत् ॥ ५६ ॥ क्षिप्रंप्रहरनिःशंकंस्थिरांकीर्तिमवाप्नुहि ॥ ततस्त्वांज्ञातविक्रांतंनाशयिष्यामिवानर ॥ ५७ ॥ रावणस्यवचःश्रुत्वावायुसूनुर्वचोब्रवीत् ॥ प्रहतंहिमयापूर्वमक्षंतवसुतंस्मर ॥ ५८ ॥

तुम वरदानके प्रभावसे देवता, दानव, गन्धर्व और राक्षस लोगोंसेही अवध्य हुएहो, परन्तु वानर लोगोंसे तुमको सम्पूर्ण भयकी सम्भावनाहै ॥ ५४ ॥ इससमय पांच उँगलियोंके सहित हमारा दहना हाथ जो उठा हुआ देखते हो यही तेरी देहमें बहुत कालके वसे हुए प्राणोंको सदाके लिये निकाल कर अलग करेगा ॥ ५५ ॥ भयंकर पराक्रमकारी रावण हनुमानजीके वचन सुन क्रोधके मारे लाल २ नेत्रकर उनसे कहता हुआ ॥ ५६ ॥ कि हे वानर! तुम शंकारहित होकर शीघ्र हमारे ऊपर प्रहार करके अचल कीर्त्ति को प्राप्त करो; तिसके पीछे तुम्हारे पराक्रमकी परीक्षा करके फिर हमभी तुम्हारा संहार करेंगे ॥ ५७ ॥ रावणके वचन सुनकर हनुमानजी बोले कि हमारे पराक्रमको और अधिक जाननेंकी क्या आवश्यकताहै, यदि तुम

आज्ञादी, कि सब द्वारोंपर प्रथम यत्न करो, और फिर सब प्राकार पर चढकर उसको रखाओ ॥ १५ ॥ और नींदके वश हुए कुंभकर्णकोभी जगाओ, कारण कि वह कामके मारे हमारे विचले भाई सदा सोयेही रहतेहैं ॥१६॥ पितामह ब्रह्माजीसे वर पानेके अनुसार निशाचर कुंभकर्ण छैमहीनेतक सो या हुआ रहकर केवल एक दिनको जागताहै परन्तु इससमय उसको सोये हुए केवल नौही दिन * हुएहैं,इसकारण उसको यत्न सहित इससमय जगा नाही कर्तव्यहै ॥ १७ ॥ एक वही महाबाहु इस भयंकर युद्धमें बड़ा चतुर है;वही सब वीरोंका शिरोमणिहै, वही राम लक्ष्मण और समस्त वानरोंका बहुत शीघ्र विनाश करैगा ॥ १८ ॥ सम्पूर्ण राक्षसोंमें श्रेष्ठ कुंभकर्ण ऐसा महाबल शाली होकरभी ग्राम्यसुखमें (स्त्रीपुत्रादिकोंके सुख) अनुरा

निद्रावशसमाविष्टःकुंभकर्णोविबोध्यताम् ॥ सुखंस्वपितिनिश्चिंतःकामोपहतचेतनः ॥ १६ ॥ नवसप्तदशाष्टौचमा सान्स्वपितिराक्षसः ॥ मंत्रंकृत्वाप्रसुप्तोयमितस्तुनवमेहनि ॥१७॥ सहिसंख्येमहाबाहुःककुदंसर्वरक्षसाम् ॥ वान रान्राजपुत्रौचक्षिप्रमेवहनिष्यति ॥ १८ ॥ एषकेतुःपरंसंख्येमुख्योवैसर्वरक्षसाम् ॥ कुंभकर्णःसदाशेतेमूढोग्रा म्यसुखेरतः ॥ १९ ॥ रामेणाभिनिरस्तस्यसंग्रामेस्मिन्सुदारुणे ॥ भविष्यतिनमेशोकःकुंभकर्णेविबोधिते ॥ २० ॥ किंकरिष्याम्यहंतेनशक्रतुल्यबलेनहि ॥ ईदृशेव्यसनेघोरेयोनसाह्यायकल्पते ॥ २१ ॥ तेतुतद्वचनंश्रुत्वाराक्षसें द्रस्यराक्षसाः ॥ जग्मुःपरमसंभ्रांताःकुंभकर्णनिवेशनम् ॥ २२ ॥

गी रहकर मूढ सोयाही रहताहै ॥ १९ ॥ हम उस दारुण संग्राम भूमिमें रामचंद्रसे यद्यपि हारगयेहैं परन्तु कुंभकर्णके जागनेंपर हमको यह शोक नहीं दुःखित करैगा ॥ २० ॥ हमपर ऐसी घोर विपद पड़नेंके समयभी यदि इन्द्रकी समान पराक्रम करनेंवाला कुम्भकर्ण हमारी किसी प्रकारकी सहायताके कामोंमें न आवैगा.तब फिर हम उसको लेकर क्या करेंगे॥२१॥राक्षसोंके राजा रावणके ऐसे वचन सुनकर सब राक्षसगण अति शीघ्र तासे कुम्भकर्णके स्थानको गये ॥२२ ॥ रक्त मांस प्रिय वे राक्षस लोग रावणकी आज्ञाके अनुसार कुंभकर्णके लिये सुगन्धितमाला और श्रेष्ठ २

* कुंभकर्णके जागनेका नियम नहींथा वर्षों सोताही रहताथा क्योंकि "नव सप्तदशाष्टौचमासानिति" इस्से महीनौ और अगस्त्यके वाक्यसे वर्षोंका सोना पाया जाताहै ॥

उसनें अपने दहिने हाथकी मुट्ठी बांधकर वानर श्रेष्ठ हनुमानजीकी छातीमें एक घूंसा मारा ॥ ६६ ॥ हनुमानजी भी बड़ी छातीमें घूंसेका प्रहार लगनेंसे वारंवार चलायमानहो चेतना रहित हुए महा बलवान हनुमानजीको विह्वल देखकर ॥ ६७ ॥ अतिरथ रावण रथपर चढ़ा हुआ शीघ्र नीलके सन्मुख आया, राक्षसोंके राजा दशग्रीव प्रतापशाली रावणनें ॥ ६८ ॥ पराये मर्मको भेदनेंवाले भयंकर सर्पके विषकी समान बाणोंके समूहसे वानरोंके सैनापति नीलको मारा॥ ६९ ॥ परन्तु वानरोंके सैनापति नीलनें बाणोंसे घायल होकर भी एक हाथसे एक पर्वतका शृङ्ग ग्रहण कर राक्षसपति रावणके ऊपर चलाया ॥ ७० ॥ इतनेही में इस ओर महा तेजस्वी हनुमानजी चेतना प्राप्तकर सावधान हो समर करनेंकी वास

हनूमान्वक्षसिव्यूढेसंचचालपुनःपुनः ॥ विह्वलंतंतदादृष्ट्वाहनूमंतंमहाबलम् ॥ ६७ ॥ रथेनातिरथःशीघ्रंनीलंप्रति समभ्यगात् ॥ राक्षसानामधिपतिर्दशग्रीवःप्रतापवान् ॥ ६८ ॥ पन्नगप्रतिमैर्भीमैःपरमर्माभिभेदनैः ॥ श रैरादीपयामासनीलंहरिचमूपतिम् ॥ ६९ ॥ सशरौघसमायस्तोनीलोहरिचमूपतिः ॥ करेणैकेनशैलाग्रंरक्षोधिपत येसृजत् ॥ ७० ॥ हनूमानपितेजस्वीसमाश्वस्तोमहामनाः ॥ विप्रेक्षमाणोयुद्धेप्सुःसरोषमिदमब्रवीत् ॥ ७१ ॥ नी लेनसहसंयुक्तंरावणंराक्षसेश्वरम् ॥ अन्येनयुद्ध्यमानस्यनयुक्तमभिधावनम् ॥ ७२ ॥ रावणोथमहातेजास्तंशृंगंस प्तभिःशरैः ॥ आजघानसुतीक्ष्णाग्रैस्तद्विशीर्णंपपातह ॥ ७३ ॥ तद्विशीर्णंगिरेःशृंगंदृष्ट्वाहरिचमूपतिः ॥ कालाग्निरि वजज्वालकोपेनपरवीरहा ॥ ७४ ॥

नासे चारों ओर निहार राक्षस रावणको नीलके साथ युद्ध करते हुए देख क्रोधमें भरकर बोले ॥ ७१ ॥ कि हे रावण ! इस समय तुम नीलके साथ युद्ध कर रहेहो, इस कारण इस समय तुम्हारे ऊपर धावमान होना हमेंउचित नहींहै;नहीं तौ अभी तुम्हें हम भलीभांति सिखावन देते ॥ ७२ ॥ परन्तु अतुल तेजस्वी बलशाली राक्षसेन्द्र रावणनें हनुमानजीके वचनोंका निरादर करके, उस नीलके छोड़े हुए पर्वतके शिखरको ताककर, ऐसे सात बाण छोड़े कि जिस्से वह शृङ्ग खंड२ होकर पृथ्वीमें गिर पड़ा॥७३॥तब परवीरघाती वानर सैनापति नील संग्राम भूमिमें उस पर्वतके शृङ्गको

नाश करनेंवाले कुम्भकर्णको राक्षसोंने देखा ॥ ३० ॥ तिसके पीछे राक्षसोंने कुम्भकर्णके निकट पर्वताकार तृप्तिकर जीवजन्तुओंकी राशि उसके खानेंको खडी करदी ॥ ३१ ॥ असंख्य मृग महिष और शूकर इकट्ठे किये गये इसके पीछे अद्भुत ढेरका ढेर अन्नभी राक्षसव्याघ्रोंने वहांपर संग्रह किया ॥ ३२ ॥ तिसके पीछे राक्षस लोगोंनें रुधिरके भरे हुए घड़े और विविध भांतिके माँस भी इकट्ठे करकै कुम्भकर्णके निकट रखदिये ॥ ३३ ॥ तिसके पीछे उसकी देहमें सुगन्धित उत्तम चंदन लगाया और वह सब राक्षस उसको श्रेष्ठ २ हार और श्रेष्ठ चन्दनकी सुगन्धिको सुँघानें लगे ॥ ३४ ॥ निशाचर गण उस शत्रुनाशी कुम्भकर्णके सन्मुख तीव्रगंधवाली धूप इत्यादि सुगन्धियें रखकर बादलके समान गंभीर

ततश्चक्रुर्महात्मानःकुंभकर्णस्यचाग्रतः ॥ भूतानांमेरुसंकाशंराशिंपरमतर्पणम् ॥ ३१ ॥ मृगाणांमहिषाणां चवराहाणांचसंचयान् ॥ चक्रुर्नैर्ऋतशार्दूलाराशिमन्नस्यचाद्भुतम् ॥ ३२ ॥ ततःशोणितकुम्भांश्चमांसानिविविधानिच ॥ पुरस्तात्कुंभकर्णस्यचक्रुस्त्रिदशशत्रवः ॥ ३३ ॥ लिलिपुश्चपरार्ध्येनचंदनेनपरंतपम् ॥ दिव्यैराश्वासयामासुर्माल्यैर्गंधैश्चगंधिभिः ॥ ३४ ॥ धूपंगंधांश्चससृजुस्तुष्टुवुश्चपरंतपम् ॥ जलदाइवचानेदुर्यातुधानास्ततस्ततः ॥ ३५ ॥ शंखांश्चपूरयामासुःशशांकसदृशप्रभान् ॥ तुमुलंयुगपच्चापिविनेदुश्चाप्यमर्षिताः ॥ ३६ ॥ नेदुरास्फोटयामासुश्चिक्षिपुस्तेनिशाचराः ॥ कुंभकर्णविबोधार्थंचक्रुस्तेविपुलंस्वरम् ॥ ३७ ॥ सशंखभेरीपणवप्रणादंसास्फोटितक्ष्वेलितसिंहनादम् ॥ दिशोद्रवंतस्त्रिदिवंकिरंतःश्रुत्वाविहंगाःसहसानिपेतुः ॥ ३८ ॥

शब्दसे गर्ज कर उसकी स्तुति करनें लगे ॥ ३५ ॥ चन्द्रमाकी समान श्वेत शंखोंको वायु पूरित कर बजाने लगे जब कुम्भकर्ण न जागा तौ क्रोधमें भरकर सिंहनादभी करनें लगे ॥ ३६ ॥ कोई २ राक्षस बडे शब्दसे चिल्लानें लगे; कोई २ बाजे आदि अंग बजाय २ ताल देते, कोई उसके चरण उठाय पृथ्वीपर पटक देते; और कोई २ कुम्भकर्णके जागनें के लिये विविध भांतिसे शब्दही करनें लगे ॥ ३७ ॥ उस समय शंख, भेरी और ढोलकी नादके सहित बाहु स्फोटन और सिंहनादका शब्द श्रवण करकै पक्षीगण चारों ओरको उड़े परन्तु उडते हुए पृथ्वीपर गिरपड़े ॥ ३८ ॥

क्रोधयुक्त और सम्भ्रान्त चित्त हुआ कि अपने कर्तव्यको वह निश्चय न कर सका कि अब क्या करना चाहिये ॥ ८२ ॥ तिसके पीछे उस महा तेजस्वी राक्षसोंके पति रावणनें आग्नेयास्त्रसे युक्त बाण ग्रहण करके ध्वजापर बैठे हुए नीलकी ओर दृष्टि करके कहा ॥ ८३ ॥ तब महातेज वान राक्षसोंके स्वामी रावणनें नीलसे कहाकि हे वानर ! तुमने वारंवार मायासे अपना छोटारूप बनायकर हमको धोखा दिया ॥ ८४ ॥ परन्तु अब जो समर्थ हो तौ अपने जीवनकी रक्षा कर कारणकि हमनें देखा कि तैंने मायाके प्रभावसे वारंवार अपने रूपको छोटा बनायाहै सो अबभी वही छोटा रूप बनाकर अपने जीवनकी रक्षाकर ॥ ८५ ॥ परन्तु तुम्हारे अनंत चेष्टाओं करके जीवनकी रक्षामें यत्नवान होने पर

आग्नेयेनापिसंयुक्तंगृहीत्वारावणःशरम् ॥ ध्वजशीर्षस्थितंनीलमुदैक्षतनिशाचरः ॥ ८३ ॥ ततोऽब्रवीन्महातेजाराव णोराक्षसेश्वरः ॥ कपेलाघवयुक्तोसिमाययापरयासह ॥ ८४ ॥ जीवितंखलुरक्षस्वयदिशक्तोसिवानर ॥ तानिता न्यात्मरूपाणिसृजसित्वमनेकशः ॥ ८५ ॥ तथापित्वांमयामुक्तःसायकोस्त्रमयोजितः ॥ जीवितंपरिरक्षंतंजीविता द्भ्रंशयिष्यति ॥ ८६ ॥ एवमुक्त्वामहाबाहूरावणोराक्षसेश्वरः ॥ संधायबाणमस्त्रेणचमूपतिमताडयत् ॥ ८७ ॥ सो स्त्रमुक्तेनबाणेननीलोवक्षसिताडितः ॥ निर्दह्यमानःसहसासपपातमहीतले ॥ ८८ ॥ पितृमाहात्म्यसंयोगादात्मन श्चापितेजसा ॥ जानुभ्यामपतद्भूमौनतुप्राणैर्वियुज्यत ॥ ८९ ॥ विसंज्ञंवानरंदृष्ट्वादशग्रीवोरणोत्सुकः ॥ रथेनांबुदनादे नसौमित्रिमभिदुद्रुवे ॥ ९० ॥

भी आग्नेयास्त्र युक्त हमारा यह बाण प्राण रक्षा करते हुए तुम्हारे प्राणोंका नाश कर देगा ॥ ८६ ॥ महाबाहु राक्षसराज रावणनें यह कहकर आग्नेयास्त्रसे शर सन्धानकर सैनापति नीलके ऊपर वह बाणचलाया ॥ ८७ ॥ तब सैनापति नीलकी छातीमें वह अग्निबाण लगा, कि जिसके लगनेंसे वह जलते हुए सहसा गिर पडे ॥ ८८ ॥ परन्तु अपने तेज और पिता अग्निके माहात्म्यसे इस आग्नेयास्त्रसे उनके प्राणोंका नाश नहीं हुआ वह केवल दोनों जांघोंको पकडे हुए पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ८९ ॥ इस ओर समरका अभिलाषी रावण वानरश्रेष्ठ नीलको

और मुद्गर व मूसलसेभी कुंभकर्णको यह राक्षस अति जोरसे मारनें लगे,तिस कालमें उस तुमुलनिनादसे पर्वत और समस्त वनोंके सहित लंका
पूर्ण होगई, परन्तु कुम्भकर्णकी नींद न टूटी ॥ ४७ ॥ तिसके पीछे सुवर्णके बने हुए सहस्रों नगाड़े एकही संग बजाये गये और चारों ओर
उनकी ध्वनि गूंज उठी परन्तु कुम्भकर्ण न जागा ॥ ४८ ॥ जबकि कुंभकर्ण शापसे ग्रसित रहनेंके कारण ऐसी घोर निद्रामें सोया रहकर किसी
प्रकारसे न जागा तब यह सब राक्षस अत्यन्त क्रोधित हुए ॥ ४९ ॥ तिसके पीछे उन कोप युक्त भयंकर कर्मकारी राक्षस कुम्भकर्णको जगानेंके
लिये अपना २ पराक्रम दिखानें लगे ॥ ५० ॥ कोई २ नगाड़े और भेरी बजानें लगे, कोई २ सिंहनादही करते हुए किसी २ नें उसके बाल पकड़

मुद्गरैर्मुसलैश्चापिसर्वप्राणसमुद्यतैः ॥ तेननादेनमहतालंकासर्वाप्रपूरिता ॥ सपर्वतवनासर्वासोऽपिनैवप्रबुध्यते ॥ ४७ ॥
ततोभेरीसहस्रंतुयुगपत्समहन्यत ॥ मृष्टकांचनकोणानामसक्तानांसमंततः ॥ ४८ ॥ एवमप्यतिनिद्रस्तुयदानैवप्रबु
ध्यत ॥ शापस्यवशमापन्नस्ततःक्रुद्धानिशाचराः ॥ ४९ ॥ ततःकोपसमाविष्टाःसर्वेभीमपराक्रमाः ॥ तद्रक्षोबोधयिष्यं
तश्चक्रुरन्येपराक्रमम् ॥५० ॥ अन्येभेरीःसमाजघ्नुरन्येचक्रुर्महास्वनम् ॥ केशानन्येप्रलुलुपुःकर्णानन्येदशंतिच ॥ ५१ ॥
उदकुंभशतानन्येसमसिंचंतकर्णयोः ॥ नकुंभकर्णःपस्पंदेमहानिद्रावशंगतः ॥ ५२ ॥ अन्येचबलिनस्तस्यकूटमुद्गर
पाणयः ॥ मूर्ध्निवक्षसिगात्रेषुपातयन्कूटमुद्गरान् ॥ ५३ ॥ रज्जुबंधनबद्धाभिःशतघ्नीभिश्चसर्वशः ॥ वध्यमानोमहाका
योनप्राबुध्यतराक्षसः ॥ ५४ ॥ वारणानांसहस्रंचशरीरेस्यप्रधावितम् ॥ कुंभकर्णस्तदाबुद्ध्वास्पर्शंपरमबुध्यत ॥ ५५ ॥

कर खेंचे और कोई२ उसके कानोंको काटनें लगे ॥ ५१ ॥ और बहुतसे राक्षस सैकड़ों जलके भरे हुए घड़े लेकर कुम्भकर्णके कानोंको जलसे
भरनें लगे, तथापि नींदमें मस्त कुम्भकर्ण कुछभी चलायमान न हुआ ॥ ५२ ॥ और दूसरे कूट, मुद्गरादि हाथसें लिये बलवान निशाचर
गण मुद्गरोंसे उसके मस्तक, छाती, और सब अंगोंमें चोट देनें लगे॥५३॥ बहुत सारे राक्षस रस्सियोंके बन्धनसे बांधकर उसके शरीरमें शतघ्नियोंका
प्रहार करनें लगे; इस प्रकारसेभी मार खाय कर कुम्भकर्णनें निद्राके सुखको नहीं त्यागा ॥ ५४ ॥ तब राक्षसोंनें उसके ऊपर अति वेग सहित

जानतेहैं (अर्थात् सूने आश्रमको पायकर जानकीको हर लायेहो इस्से यह ध्वनि निकलतीहै) इसलिये अब ऐसे बकवाद करनेंका कुछ प्रयोजन नहीं है,हम धनुष बाण धारण करके टिके हुए हैं, तुमभी आगेको वढ़ो ॥ ९६ ॥ जब लक्ष्मणजीनें ऐसा कहा तब रावणनें लक्ष्मणजीके ऊपर श्रेष्ठ फोंक लगे हुए सात बाण चलाये सुमित्राके पुत्र लक्ष्मणजीनें तीखे धार युक्त सुपुंख बाणोंसे उन रावणके चलाये बाणोंको काट डाला ॥ ९७ ॥ तब लंकापति रावण शरीर कटे सर्पोंकी समान उन बाणोंको सहसा खंड २ देखकर अत्यन्त क्रोधित हुआ, व और दूसरे तीखे बाण लक्ष्मणजीके ऊपर चलानें लगा ॥ ९८ ॥ परन्तु श्रीरामचन्द्रजीके छोटे भाई वीर लक्ष्मणजीनें उन बाणासे चलायमान होकर अपने धनुपको चढ़ाकर बाणोंकी

सएवमुक्तःकुपितःससर्जरक्षोधिपःसप्तशरान्सुपुंखान्॥ताँल्लक्ष्मणःकांचनचित्रपुंखैश्चिच्छेदबाणैर्निशिताग्रधारैः॥९७॥ तान्प्रेक्षमाणःसहसानिकृत्तान्निकृत्तभोगानिवपन्नगेंद्रान् ॥ लंकेश्वरःक्रोधवशंजगामससर्जचान्यान्निशितान्पृषत्कान् ॥ ९८ ॥ सबाणवर्षंतुववर्षतीव्रंरामानुजःकार्मुकसंप्रयुक्तम् ॥ क्षुरार्धचंद्रोत्तमकर्णभल्लैःशरांश्चचिच्छेदनचुक्षुभे च ॥ ९९ ॥ सबाणजालान्यपितानितानिमोघानिपश्यंस्त्रिदशारिराजः ॥ विसिस्मियेलक्ष्मणलाघवेनपुनश्चबाणान्निशितान्मुमोच ॥१०० ॥ सलक्ष्मणश्चापिशितान्शिताग्रान्महेंद्रतुल्योशनिभीमवेगान् ॥ संधायचापेज्वलनप्रकाशान्ससर्जरक्षोधिपतेर्वधाय ॥ १ ॥ सतान्प्रचिच्छेदहिराक्षसेंद्रःशिताञ्छराँल्लक्ष्मणमाजघान ॥ शरेनकालाग्निसमप्रभेण स्वयंभुदत्तेनललाटदेशे ॥ २ ॥

वर्षा करनें लगे; और छुरे, अर्द्धचन्द्र, व तीखे फलके लगे हुए भालोंसे रावणके चलाये हुए बाणोंको खंड २ कर डाला ॥ ९९ ॥ उन अमोघ बाणोंके जालको निष्फल देख और लक्ष्मणजीकीभी शीघ्रतासे विस्मित हो रावणनें फिर तीक्ष्ण बाण चलाये ॥ १०० ॥ तब लक्ष्मणजीनेंभी अपने धनुषको चढ़ाय इन्द्रके वज्रकी समान वेगवान अग्निकी समान तीक्ष्ण धारवाले बाण राक्षसपति रावणके वध करनेंके लिये छोड़े ॥ १०१ ॥ परन्तु राक्षसोंके स्वामी रावणनें उन समस्त बाणोंको काटकर ब्रह्माजीके दिये हुए प्रलयकी अग्निके प्रचंड बाणसे लक्ष्मणजीके माथेमें प्रहार

बढ़ते गये और शिर झुकायकर प्रणाम कर उसके चारों ओर खड़े होगये ॥ ६४ ॥ उसकी
राक्षसगण उसको तृप्त जानकर धीरे २ उसके आगे बढ़ते गये और शिर झुकायकर प्रणाम कर उसके चारों ओर दृष्टि डालकर राक्षसोंको देखा ॥ ६५ ॥ राक्षस
आंखें नींदके वश होनेसे कुछ एक खुली, और लाल २ हो रहींथीं; उस कुम्भकर्णनें चारों ओर दृष्टि डालकर राक्षसोंको देखा ॥ ६६ ॥ हेराक्षस गण! तुमनें
श्रेष्ठ कुम्भकर्ण इन सब राक्षसोंको समझाय बुझाय फिर अकालमें जगानेंके कारण विस्मितहो इन सबसे बोला ॥ ६६ ॥ हेराक्षस गण! तुमनें
आदर सहित अति यत्नसे किस कारण हमको जगाया! महाराज निशाचर नाथ कुशलसे तौहैं? इस समय भयका तौ कोई कारण नहीं है?॥ ६७ ॥

ततस्तृप्तइतिज्ञात्वासमुत्पेतुर्निशाचराः ॥ शिरोभिश्चप्रणम्यैनंसर्वतःपर्यवारयन् ॥ ६४ ॥ निद्राविशदनेत्रस्तुकलुषी
कृतलोचनः ॥ चारयन्सर्वतोदृष्टिंतानुवाचनिशाचरान् ॥ ६५ ॥ ससर्वान्सांत्वयामासनैर्ऋतान्नैर्ऋतर्षभः ॥ बोधना
द्विस्मितश्चापिराक्षसानिदमब्रवीत् ॥ ६६ ॥ किमर्थमहमादृत्यभवद्भिःप्रतिबोधितः ॥ कच्चित्सुकुशलंराज्ञोभयंवाने
हकिंचन ॥ ६७ ॥ अथवाध्रुवमन्येभ्योभयंपरमुपस्थितम् ॥ यदर्थमेवत्वरितैर्भवद्भिःप्रतिबोधितः ॥ ६८ ॥ अद्य
राक्षसराजस्यभयमुत्पाटयाम्यहम् ॥ दारयिष्येमहेंद्रंवाशीतयिष्येतथानलम् ॥ ६९ ॥ नह्यल्पकारणेसुप्तंबोधयिष्य
तिमादृशम् ॥ तदाख्यातार्थतत्त्वेनमत्प्रबोधनकारणम् ॥ ७० ॥ एवंब्रुवाणंसंरब्धंकुंभकर्णमरिंदमम् ॥ यूपाक्षः
सचिवोराज्ञःकृतांजलिरभाषत ॥ ७१ ॥

अथवा इस पूछनेंका क्या प्रयोजनहै जबकि तुमनें हमको ऐसी शीघ्रतासे जगायाहै तब तौ कोई बड़ा भारी भय आ पहुंचाहै इसमें कोईभी संदेह
नहीं ॥ ६८ ॥ जो कुछभीहो आज हम राक्षस राजका भय दूर कर देंगे; महेन्द्र पर्वतको उखाड़ और तोड़ फोड़कर फेंक देंगे अथवा अग्निके तेजको
खर्वकर देंगे॥६९॥जब कि हमारी समान सोते हुए वीरको जगाया गयाहै; तब इसका साधारण कारण नहीं जान पड़ता;इससे हमारे जगानेंका क्या
कारण है वह तुम यथार्थ२कहो॥७०॥ शत्रुओंके नाश करनें वाले कुम्भकर्ण के ऐसा कहनें पर रावणका यूपाक्ष मंत्री हाथ जोड़कर बोला ॥ ७१ ॥

उनके निकट चला गया, और उनको उठानेंके अभिप्रायसे भुजाओंसे बल सहित ग्रहण करता हुआ ॥ १०८ ॥ परन्तु आश्चर्य! जो महावीरनें हिमालय, मन्दर, सुमेरु; वरन सब प्राणियोंके सहित त्रिलोकके उठानेंको समर्थ हैं, परन्तु वही वीर रावण आज लक्ष्मणजीके उठानेंको किसी प्रकारसे समर्थ नहीं हुआ ॥ १०९ ॥ ब्रह्माजीकी शक्तिके छातीमें लगनेंसे यद्यपि लक्ष्मणजी मूर्च्छितभी हुए तथापि विष्णुजीभी जिन श्रीरामचन्द्रजीको यथार्थतासे नहीं जानते कि इनमें कितनी सामर्थ्य है; ऐसे ऐश्वर्य युक्त सबके प्रेरणा करनेंवाले श्रीरामचन्द्रजीका इन लक्ष्मणजीनें स्मरण किया, इस कारण चौदह भुवनोंसे कोटि गुणी अधिक गरुआई लक्ष्मणजीमें आगई कि जिससे रावण इनको उठा नहीं सका ॥ ११० ॥ देवताओंका कण्टक रावण इस बातको जानकरही देव दानवोंका गर्व हरनें वाले लक्ष्मणजीको उठानेंके लिये अपनी बीसों भुजा ओंसे बहुतेरी चेष्टा करता

हिमवान्मंदरोमेरुस्त्रैलोक्यंवासहामरैः ॥ शक्यंभुजाभ्यामुद्धर्तुंनशक्योभरतानुजः ॥ ९ ॥ शक्त्याब्राह्म्यातुसौमित्रिस्ताडितोपिस्तनांतरे ॥ विष्णोरमीमांस्यभागमात्मानंप्रत्यनुस्मरत् ॥ ११० ॥ ततोदानवदर्पघ्नंसौमित्रिंदेवकंटकः॥ तंपीडयित्वाबाहुभ्यांनप्रभुर्लंघनेभवत् ॥ ११ ॥ ततःक्रुद्धोवायुसुतोरावणंसमभिद्रवत् ॥ आजघानोरसिक्रुद्धोवज्रकल्पेनमुष्टिना ॥ १२ ॥ तेनमुष्टिप्रहारेणरावणोराक्षसेश्वरः ॥ जानुभ्यामगमद्भूमौचचालचपपातच ॥ १३ ॥ आस्यैश्चनेत्रैःश्रवणैःपपातरुधिरंबहु ॥ विघूर्णमानोनिश्चेष्टोरथोपस्थउपाविशत् ॥ १४ ॥ विसंज्ञोमूर्छितश्चासीन्नचस्थानंसमालभत् ॥ विसंज्ञंरावणंदृष्ट्वासमरेभीमविक्रमम् ॥ ११५ ॥

हुआ परन्तु इस्से किसी प्रकारसे लक्ष्मणजीकी मर्यादा उल्लंघन नहीं हो सकी ॥ १११ ॥ इतनेहीमें पवनकुमार हनुमानजी लक्ष्मणजीको मूर्छित हुआ देख क्रोधित हो रावणके सन्मुख धाये और वज्रकी समान मूका बांधकर अति वेगसे उसकी छातीमें मारा ॥ ११२ ॥ राक्षसोंका स्वामी रावण उस मूकेके प्रहारसे चेतना रहित और रथसे गिरकर अपनी दोनों जांघों के बल कांपता थर थराता पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥११३॥ इस समय रावणके मुख नेत्र और कानोंसे बहुतही रुधिर बहनें लगा और वह ज्ञानरहित हो घूमता २ फिर अपने रथपर जाकर गिरा ॥११४॥ ऐसा मूर्छित यह रावण हुआ कि हाथ पैर कुछभी इसके नहीं चलतेथे, तब भयंकर विक्रमकारी रावणको मूर्छित हुआ देखकर ॥ ११५ ॥

राक्षस सैनापति वीरोंमें मुख्य महोदर कुम्भकर्णके ऐसे गर्वित और रोषके मारे दोष युक्त वचन सुनकर हाथ जोड़कर बोला ॥ ८१ ॥ कि हे महा बाहो ! रावणके वचन सुनकर और उनके गुण दोष विचार पीछेसे शत्रु लोगोंको आप जीतें ॥ ८२ ॥ विपुल बलशाली महा तेजस्वी कुम्भकर्ण महोदरके ऐसे वचन सुनकर राक्षसोंके साथ २ उस स्थानसे चलनेंका अभिलाषी हुआ ॥ ८३ ॥ उस कालमें कुछ एक निशाचर भयंकर नेत्र वाले भीमरूप और भयंकर पराक्रम कुम्भकर्णको जागा हुआ देखकर पहले हीसे रावणके निकट चले गयेथे ॥ ८४ ॥ उन्होंनें वहां जाकर देखा कि रावण दिव्य सिंहासन पर बैठाहै; तब उन राक्षसोंने यह देखतेही हाथ जोड़कर रावणसे कहा ॥ ८५ ॥ हे राक्षसेश्वर ! आपके भ्राता कुम्भकर्ण

तत्तस्यवाक्यंब्रुवतोनिशम्यसगर्वितंरोषविवृद्धदोषम् ॥ महोदरोनैर्ऋतयोधमुख्यःकृतांजलिर्वाक्यमिदंबभाषे ॥ ८१ ॥ रावणस्यवचःश्रुत्वागुणदोषौविमृश्यच ॥ पश्चादपिमहाबाहोशत्रून्युधिविजेष्यसि ॥ ८२ ॥ महोदरवचःश्रुत्वाराक्षसैःपरिवारितः ॥ कुंभकर्णोमहातेजाःसंप्रतस्थेमहाबलः ॥ ८३ ॥ सुप्तमुत्थाप्यभीमाक्षंभीमरूपपराक्रमम् ॥ राक्षसास्त्वरिताजग्मुर्दशग्रीवनिवेशनम् ॥ ८४ ॥ तेभिगम्यदशग्रीवमासीनंपरमासने ॥ ऊचुर्बद्धांजलिपुटासर्वएवनिशाचराः ॥ ८५ ॥ कुंभकर्णःप्रबुद्धोसौभ्रातातेराक्षसेश्वर ॥ कथंतत्रैवनिर्यातुद्रक्ष्यसेतमिहागतम् ॥ ८६ ॥ रावणस्त्वब्रवीद्धृष्टोराक्षसांस्तानुपस्थितान् ॥ द्रष्टुमेनमिहेच्छामियथान्यायंचपूज्यताम् ॥ ८७ ॥ तथेत्युक्तातुतेसर्वेपुनरागम्यराक्षसाः ॥ कुंभकर्णमिदंवाक्यमूचूरावणचोदिताः ॥ ८८ ॥ द्रष्टुंत्वांकांक्षतेराजासर्वराक्षसपुंगवः ॥ गमनेक्रियतांबुद्धिर्भ्रातरंसंप्रहर्षय ॥ ८९ ॥

जाग गये हैं अब वह सीधेही वहांसे रणभूमिको चले जाँय या आप इस स्थानमें उनके साथ साक्षात् करनेंकी इच्छा करतेहैं ॥ ८६ ॥ तब लंका पति रावणनें हर्षित होकर उनसे कहाकि हम एकवार कुम्भकर्णको देखनेंकी इच्छा करते हैं; तुम परम आदर मानके साथ उसको संग लेकर यहांपर चले आओ ॥८७॥ वे राक्षस रावणकी आज्ञाके अनुसार उसके वचनोंको स्वीकारकर कुम्भकर्णके निकट आनकर निवेदन करते हुए ॥८८॥ राक्षस राज रावण आपके देखनेंकी इच्छा करतेहैं; इस कारण आप गमन करनेंमें स्थिर निश्चय कीजिये; हम लोगोंके निवेदन करनेंसे आप अपनें

महाबाहु हनुमानजीकी पीठपर चढ़े और श्रीरामचंद्रजीनें रावणकोभी रथपर चढ़ेहुए देखा ॥ १२४ ॥ महातेजस्वी श्रीरामचंद्रजी उस रावणको देखकर विष्णुजीनें जिस प्रकार क्रोधितहो अस्त्र धारण कर राजा बलिपर दौड़ेथे वैसेही रावणके सन्मुख धाये ॥ १२५ ॥ तब श्रीरामचंद्रजी अपने धनुष पर वज्रके शब्दकी समान कठोर टंकारदे रावणसे यह गंभीर वचन बोले ॥१२६॥ रेराक्षसशार्दूल खड़ा रह खडारह ! तू हमारे ऐसे कुप्यारे कार्यको करके क्या स्थानमें भागकर छुटकारा पायसकताहै? ॥१२७॥ तुम यदि भागकर इन्द्र, यम, सूर्य, ब्रह्मा, अग्नि अथवा श्रीशंकरजीकेभी शरणमें

अथारुरोहसहसाहनूमंतंमहाकपिम् ॥ रथस्थंरावणंसंख्येददर्शमनुजाधिपः ॥ २४ ॥ तमालोक्यमहातेजाःप्रदुद्राव सरावणम् ॥ वैरोचनमिवक्रुद्धोविष्णुरभ्युद्यतायुधः ॥ २५ ॥ ज्याशब्दमकरोत्तीव्रंवज्रनिष्पेषनिष्ठुरम् ॥ गिरागंभीरया रामोराक्षसेंद्रमुवाचह ॥ २६ ॥ तिष्ठतिष्ठममत्वंहिकृत्वाविप्रियमीदृशम् ॥ क्वनुराक्षसशार्दूलगत्वामोक्षमवाप्स्यसि ॥ २७ ॥ यदींद्रवैवस्वतभास्करान्वास्वयंभुवैश्वानरशंकरान्वा ॥ गमिष्यसित्वंदशधादिशोवातथापिमेनाद्यगतोवि मोक्ष्यसे ॥ २८ ॥ यश्चैषशक्त्यानिहतस्त्वयाद्यगच्छन्विषादंसहसाभ्युपेत्य ॥ सएषरक्षोगणराजमृत्युःसपुत्रपौत्र स्यतवाद्ययुद्धे ॥ २९ ॥ एतेनचात्यद्भुतदर्शनानिशरैर्जनस्थानकृतालयानि ॥ चतुर्दशान्यात्तवरायुधानिरक्षःसहस्रा णिनिषूदितानि ॥ १३० ॥ राघवस्यवचःश्रुत्वाराक्षसेंद्रोमहाबलः ॥ वायुपुत्रंमहावेगंवहंतंराघवंरणे ॥ ३१ ॥

जाओ, या दशों दिशाओंमें कहीं जाकर छिपो तथापि आज हमारे हाथसे तुम किसी प्रकारसे निस्तार नपासकोगे ॥ १२८ ॥ राक्षसराज! तेरे द्वारा घायल होकर लक्ष्मण विषादित हुएहैं, हम इसी दुःखसे आज प्रतिज्ञा करके तुम्हारे पुत्रोंके सहित तुम्हारी मृत्युके स्वरूप हो रणभूमिमें आयेहैं ॥ १२९ ॥ विचारकर याद कर ले कि जनस्थानके रहनेंवाले श्रेष्ठ अस्त्र शस्त्र धारण किये अद्भुत दर्शन चौदह हजार (१४०००) राक्षसोंका हमनेंही प्राण संहार कियाहै ॥ १३० ॥ महाबलवान रावणनें श्रीरामचंद्रजीके ऐसे वचन सुन महावेगवान पवनकुमार हनुमानजीकी पीठमें

उन वानरोंमेसे कोई२ सबके शरण देनेंवाले श्रीरामचंद्रजीकी शरणमें गये और कोई २ दुःखी होकर पृथ्वीपर गिर पड़े, कोई २ दशों दिशा ओंमें भागगये; और कोई २ मारे भयके पृथ्वीपर गिरकर सोयरहे ॥ ९७ ॥ अधिक क्या कहें? जिसनें अपने तेजसे सूर्यको भी उल्लंघन कर दियाहै; उस पर्वतके शृङ्गकी समान किरीट धारी बड़े ऊंचे और अद्भुत दर्शन वीर कुम्भकर्णको देखतेही,वानरोंमें जिसनें जहां सुभीता पाया वह भयके मारे उसी स्थानमें भाग गया ॥ ९८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥ तिसके पीछे महा तेजस्वी वीर्यवान् धनुष धारण करनें वाले श्रीरामचंद्रजीनें उस किरीट धारी महाकाय कुम्भकर्णको देखा ॥ १ ॥ पहले

केचिच्छरण्यंशरणंस्मरामंव्रजंतिकेचिद्व्यथिताःपतंति ॥केचिद्दिशश्चव्यथिताःपतंतिकेचिद्भयार्ताभुविशेरतेस्म९७॥ तमद्रिशृंगप्रतिमंकिरीटिनंस्पृशंतमादित्यमिवात्मतेजसा ॥ वनौकसःप्रेक्ष्यविवृद्धमद्भुतंभयार्दितादुद्रुविरेयतस्त तः ॥ ९८ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० षष्टितमःसर्गः ॥ ६० ॥ ॥ छ ॥ ततोरामोमहातेजाधनुरादाय वीर्यवान् ॥ किरीटिनंमहाकायंकुंभकर्णंददर्शह ॥ १ ॥ तंदृष्ट्वाराक्षसश्रेष्ठंपर्वताकारदर्शनम् ॥ क्रममाणमि वाकाशंपुरानारायणंयथा ॥ २ ॥ सतोयांबुदसंकाशंकांचनांगदभूषणम् ॥ दृष्ट्वापुनःप्रदुद्राववानराणांमहाचमूः ॥ ॥ ३ ॥ विद्रुतांवाहिनींदृष्ट्वावर्धमानंचराक्षसम् ॥ सविस्मितमिदंरामोविभीषणमुवाचह ॥ ४ ॥ कोसौपर्वतसंकाशः किरीटीहरिलोचनः ॥ लंकायांदृश्यतेवीरःसविद्युदिवतोयदः ॥ ५ ॥

समयमें आकाश मापते समय वामनजीके समान उस पर्वताकार राक्षस श्रेष्ठ कुम्भकर्णको देखकर श्रीरामचंद्रजी सतर्क हुए ॥ २ ॥ परन्तु सजल जलद, (पानी सहित बादल) की समान आकार वाले सुवर्णके बाजू पहरे उस वीरको धीरे २ बढ़ता हुआ देखकर वानरोंकी बड़ी सैना फिर भाग खड़ी हुई ॥ ३ ॥ तब रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी वानरोंकी सैनाको त्रासित और राक्षस कुम्भकर्णको बढ़ा हुआ देखकर विस्मय युक्तहो विभीषणजीसे बोले ॥ ४ ॥ लंकाके बीचमें पर्वतकी समान मस्तक पर किरीट धारण किये, वानरोंकेसे नेत्र वाला दामिनी युक्त मेघकी समान

राज रावणकी अवस्था विषहीन सर्प और तेजहीन सूर्यकी समान हुई । मुकुटके कट जानेंसे रावणकी समस्त सुन्दरता जाती रही तब श्रीरामचंद्रजी उस्से बोले ॥ १३९ ॥ हेराक्षस! तुमनें घोर युद्ध कियाहै तुम्हारे हाथसे हमारी सैनाके अनेक वीर मारे गयेहैं इस समय हम तुमको इसी कारणसे बहुत थका हुआ देखतेहैं; यही विचारकर हमनें आज अपने बाणोंसे तुमको यमराजके गृहमें नहीं पठाया ॥ १४० ॥ हेराक्षसराज! तुम संग्राम करके श्रमके मारे अत्यन्त कातर हुएहो इस लिये हम सलाह देतेहैं कि तुम इस समय लंकामें जायकर सावधान होवो। सावधान होनेंके पीछे धनुष धारण कर जबकि फिर संग्राम भूमिमें आगमन करोगे उसी समय तुम हमारा पराक्रम जान सकोगे ॥ १४१ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा तो लंकानाथ रावण लंका पुरीको झटपट चला गया, उसका वीर गर्व और उत्साह जातारहा, धनुष कट कुट गया घोड़े

कृतंत्वयाकर्ममहत्सुभीमंहतप्रवीरश्चकृतस्त्वयाहम्॥तस्मात्परिश्रांतइतिव्यवस्यनत्वांशरैर्मृत्युवशंनयामि॥ ४०॥ प्रयाहिजानामिरणार्दितस्त्वंप्रविश्यरात्रिंचरराजलंकाम्॥आश्वस्यनिर्याहिरथीसधन्वीतदाबलंप्रेक्ष्यसिमेरथस्थः ४१॥ सएवमुक्तोहतदर्पहर्षोनिकृत्तचापःसहताश्वसूतः ॥ शरार्दितोभग्नमहाकिरीटोविवेशलंकांसहसास्मराजा ॥ ४२ ॥ तस्मिन्प्रविष्टेरजनीचरेंद्रेमहाबलेदानवदेवशत्रौ ॥ हरीन्विशल्यान्सहलक्ष्मणेनचकाररामःपरमाहवाग्रे ॥ ४३ ॥ तस्मिन्प्रभग्नेत्रिदशेंद्रशत्रौसुरासुराभूतगणादिशश्च ॥ ससागराः सर्वमहोरगाश्चतथैवभूम्यंबुचराःप्रहृष्टाः ॥ १४४ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०यु०एकोनषष्टितमःसर्गः ॥ ५९ ॥ ॥ छ ॥ ॥छ॥ ॥छ॥ ॥

और सारथीभी नष्ट हुए रावणका शरीर बाणोंके लगनेंसे घायल होरहा उसकी चूडामणि लुप्त होगई ऐसी अवस्थाको पाय मनमें अति दुःखित रावण लंकापुरीमें प्रवेश करता हुआ ॥ १४२ ॥ देवता और दानव गणोंका शत्रु महाबलवान निशाचरपति रावण जब इस प्रकारसे लंकाको चलगया तब श्रीरामचंद्रजीनें लक्ष्मणजीके सहित रणभूमिमें जो वानर पड़ेथे; और उनके अंगोंमें जो बाण गड़ेथे उनको निकलवा डाला और सबकी व्यथा निवारणकी ॥ १४३ ॥ इस ओर इन्द्रके शत्रु रावणको रणसे भागा इस प्रकारसे लंकामें प्रवेश करते देखकर, सुर, असुर, महर्षि, उरग, भूतगणादिक और समस्त सागर व भूचर जलचरादि सबही प्राणी प्रसन्न हुए ॥ १४४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये कात्यायनकुमार पंडित ज्वालाप्रसादमिश्रकृते भाषानुवादे युद्धकांडे एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥ ॥ छ ॥

इन्द्रकी शरणमें जायकर उनसे अपनी इस दुर्गतिको निवेदन किया॥१४॥यह सुनकर इन्द्रनें क्रोधितहो इनके ऊपर वज्र चलाया यह महात्मा कुम्भ
कर्ण वज्रसे कुछ चोट खाय और विचलित होकर भी वारंवार सिंहनाद करनेंलगा ॥ १५ ॥ उस कालमें सिंहनाद करते हुए राक्षसश्रेष्ठ कुम्भकर्णका
वह घोर शब्द सुनकर प्रजा फिर बहुतही भयभीत हुई ॥ १६ ॥ तिसके पीछे महावलवान कुम्भकर्णनें ऐरावत हाथीके दांत खेंचकर उखाड़
उस्से इन्द्रकी छातीमें प्रहार किया ॥ १७ ॥ अत्यन्त दारुण प्रहारसे वज्रधर इन्द्रजी बहुत व्याकुल हुए उनके सब शरीरसे रुधिर वहनें
लगा; ब्रह्मर्षि और दानवगण यह अवस्था देखकर अत्यन्त विषाद करनें लगे ॥ १८ ॥ और सबही इन्द्र और प्रजाके साथ मिलकर सहसा

सकुंभकर्णंकुपितोमहेंद्रोजघानवज्रेणशितेनवज्री ॥ सशक्रवज्राभिहतोमहात्माचचालकोपाच्चभृशंननाद ॥ १५ ॥
तस्यनानद्यमानस्यकुंभकर्णस्यरक्षसः ॥ श्रुत्वानिनादंवित्रस्ताःप्रजाभूयोवितत्रसुः ॥ १६ ॥ ततःक्रुद्धोमहेंद्रस्य
कुंभकर्णोमहाबलः ॥ निष्कृष्यैरावताद्दंतंजघानोरसिवासवम् ॥ १७ ॥ कुंभकर्णप्रहारार्तोविजज्वालसवासवः ॥
ततोविषेदुःसहसादेवाब्रह्मर्षिदानवाः ॥ प्रजाभिःसहशक्रश्चययौस्थानंस्वयंभुवः ॥ १८ ॥ कुंभकर्णस्यदौरात्म्यंशशं
सुस्तेप्रजापतेः ॥ प्रजानांभक्षणंचापिशशंसुस्तेदिवौकसाम् ॥ आश्रमध्वंसनंचापिपरस्त्रीहरणंतथा ॥ १९ ॥ एवं
प्रजायदित्वेषभक्षयिष्यतिनित्यशः ॥ अचिरेणैवकालेनशून्योलोकोभविष्यति ॥ २० ॥ वासवस्यवचःश्रुत्वासर्वलो
कपितामहः ॥ रक्षांस्यावाहयामासकुंभकर्णंददर्शह ॥ २१ ॥ कुंभकर्णंसमीक्ष्यैववितत्रासप्रजापतिः ॥ कुंभकर्ण
मथाश्वस्तःस्वयंभूरिदमब्रवीत् ॥ २२ ॥

प्रजापति ब्रह्माजीके निकट गये; और वहां उन्होंनें प्रजागणोंको भक्षण करना देवता लोगोंको सताना, आश्रमोंका विध्वंसित होना और पराई
स्त्रीका हरण, रूपी कुम्भकर्णकी यह सब दुष्टता ब्रह्माजीसे निवेदनकी ॥ १९ ॥ तब इन्द्रजीनें कहाकि यह यदि नित्य प्रति प्रजाको भक्षण
किया करैगा; तौ बहुतही शीघ्रतासे सब लोग उजाड़ होजांयगे ॥ २० ॥ सर्व लोगोंके पितामह ब्रह्माजीने इन्द्रजीके वचन सुनकर गायत्र्यादि
मंत्रोंसे राक्षसोंको आह्वान करकै उनमें कुम्भकर्णकोभी देखा ॥ २१ ॥ परन्तु कुम्भकर्णको देखतेही ब्रह्माजीको अत्यन्त भय उपस्थित हुआ

सो जान पड़ताहै कि उसही शापका फल फलनेंके लिये उनके वंशमें दशरथ कुमार रामचंद्रका जन्म हुआ होगा ॥ ८ ॥ महाराज अनरण्यनें कहाथा कि हे राक्षसोंमें नीच! हमारे वंशमेंसे एक ऐसे वीर पुरुष जन्म ग्रहण करेंगे कि जिसके हाथसे तुम, तुम्हारे पुत्र, मंत्री, समस्त सैना, अश्व, सारथि, ॥ ९ ॥ इन सबके साथ हे दुर्मति नराधम! तुम संग्राममें मारे जाओगे; हमनें पूर्वकालमें एक वार वेदवतीके प्रति बल प्रकाश करके उसके सतीपनका अपमान कियाथा ॥ १० ॥ सो अब जान पड़ताहै कि उन वेदवती हीनें इन महाभागा जनकनंदिनीके रूपसें जन्म ग्रहण कियाहै, इनसेही हमारा नाश होगा, इनके अतिरिक्त देवी उमा, नन्दीश्वर, रम्भा, और वरुणजीकी कन्या पुञ्जिकस्थलीनें ॥ ११ ॥ जो

उत्पत्स्यतिहिमद्वंशपुरुषोराक्षसाधम ॥ यस्त्वांसपुत्रंसामात्यंसबलंसाश्वसारथिम् ॥ ९ ॥ निहनिष्यतिसंग्रामेत्वां कुलाधमदुर्मते ॥ शप्तोहंवेदवत्याचयथासाधर्षितापुरा ॥ १० ॥ सेयंसीतामहाभागाजाताजनकनंदिनी ॥ उमानंदीश्वरश्चापिरंभावरुणकन्यका ॥ ११ ॥ यथोक्तास्तन्मयाप्राप्तंनमिथ्याऋषिभाषितम् ॥ एतदेवसमागम्ययत्नंकर्तुमिहार्हथ ॥ १२ ॥ राक्षसाश्चापितिष्ठंतुचर्यागोपुरमूर्धसु ॥ सचाप्रतिमगांभीर्योदेवदानवदर्पहा ॥ १३ ॥ ब्रह्मशापाभिभूतस्तुकुंभकर्णोविबोध्यताम् ॥ समरेजितमात्मानंप्रहस्तंचनिषूदितम् ॥ १४ ॥ ज्ञात्वारक्षोभीमबलमादिदेशमहाबलः ॥ द्वारेषुयत्नःक्रियतांप्राकारश्चाधिरुह्यताम् ॥ १५ ॥

शाप हमको दियेहैं, ❋ इससमय हमको वही शापकी दशा उपस्थित हुईहै; ऋषिलोगोंके वचन कभी मिथ्या होंनेवाले नहीं, हे राक्षसगण! यह समस्त जान बूझकर अब जो कुछ कर्तव्यहो सो तुम करो ॥ १२ ॥ इससमय राजमार्ग और कोटकी भीतके किनारे २ राक्षसलोग रक्षाकरनेंको टिक रहेहैं अति गंभीरता युक्त देव दानव गर्व खर्व कारी ॥ १३ ॥ पितामह ब्रह्माजीके शापसे सोतेहुए कुम्भकर्णको भी अब जगाना उचितहै । अपने आपको समरमें श्रीरामचंद्रजीसे हारा और प्रहस्तको मारा हुआ जान ॥ १४ ॥ और कुम्भकर्णको महाबलवान् जाना तब महाबली रावणनें राक्षसोंको

❋ जब रावणने कैलाश उठाया तब पार्वतीने शाप दिया कि स्त्रीके निमित्त तेरा मरण होगा नंदीश्वरकी वानराकार मूर्त्ति देखकर हँसा तब उन्हौने शाप दिया कि वानरही तेरा नाश करैगे रंभा निमित्त नल कूबरके शापकी कथा लिख चुकेहैं । वरुणकी कन्या पुंजिकस्थालीको रावणने पकडा तौ ब्रह्माने शाप दिया कि स्त्रीहरणसे मरण होगा ॥

तैयार होगा ॥ ३० ॥ इस कुम्भकर्णको देखते ही वानरगण भाग रहे हैं परन्तु जब यह क्रोधित होकर रणभूमिमें खड़ा होगा उस काल वानरोंमेंसे कौन इसको निवारणकर सकैगा ॥३१॥ इस कारणसे सब वानरोंके सैनाके मध्यमें इस वातका प्रचारित कर दियाजाय कि यह मूर्ति सजीव नहीं है वरन रावणनें तुम लोगोंको डरवानेके लिये यह कल बनाई है बस इस वातको सुन सब वानर भयरहित होजांयगे ॥ ३२ ॥ वानर लोगोंके हितकारी और युक्ति युक्त विभीषणजीके कहे हुए वचन सुनकर रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी सेनापति नीलसे बोले ॥ ३३ ॥ हे अग्निकुमार! तुम जायकर सब वानरों

कुंभकर्णप्रतीक्ष्यैवहरयोद्यप्रदुद्रुवुः ॥ कथमेनंरणेक्रुद्धंवारयिष्यंतिवानराः ॥ ३१ ॥ उच्यंतांवानराःसर्वैयंत्रमेतत्समुच्छ्रितम् ॥ इतिविज्ञायहरयोभविष्यंतीहनिर्भयाः ॥ ३२ ॥ विभीषणवचःश्रुत्वाहेतुमत्सुमुखोद्गतम् ॥ उवाचराघवोवाक्यंनीलंसेनापतिंतदा ॥ ३३ ॥ गच्छसैन्यानिसर्वाणिव्यूह्यतिष्ठस्वपावके ॥ द्वाराण्यादायलंकायाश्चर्याश्चास्याथसंक्रमान् ॥ ३४ ॥ शैलशृंगाणिवृक्षांश्चशिलाश्चाप्युपसंहरन् ॥ भवंतःसायुधाःसर्वेवानराःशैलपाणयः ॥ ३५ ॥ राघवेणसमादिष्टोनीलोहरिचमूपतिः ॥ शशासवानरानीकंयथावत्कपिकुंजरः ॥ ३६ ॥ ततोगवाक्षःशरभोहनूमानंगदस्तथा ॥ शैलशृंगाणिशैलाभागृहीत्वाद्वारमभ्ययुः ॥ ३७ ॥ रामवाक्यमुपश्रुत्यहरयोजितकाशिनः ॥ पादपैरर्दयन्वीरावानराःपरवाहिनीम् ॥ ३८ ॥

का व्यूह बनाओ और सावधान होकर लंकाके पुरद्वार राजमार्ग व और भी सब मोर्चे घेरलो ॥ ३४ ॥ हमारी आज्ञानुसार तुम सब शैल शृंग वृक्ष और शिला इकट्ठी कर रक्खो तुम लोग अस्त्र और पर्वतादि धारण करकै सावधानतासे टिके रहो॥३५॥वानर सैनापति कपिकुंजर नीलनें श्रीरामचंद्रजीकी ऐसी आज्ञा पाय समस्त वानरोंमें उस आज्ञाका प्रचार करादिया॥३६॥तिसके पीछे गवाक्ष, शरभ, हनुमान, और अंगद, यह समस्त वानर पर्वतोंके शृङ्ग ग्रहण करकै लंकाके द्वारपर उपस्थित हुए ॥ ३७ ॥ इस प्रकारसे वह जययुक्त वानरगण श्रीरामचंद्रजीके वचनोंसे सावधानहो शत्रुकी

भोजन करनेंकी सामग्री इकट्ठी करके लेजानें लगे ॥ २३ ॥ तिसके पीछे वह राक्षस कुम्भकर्णकी गुहामें प्रवेश करते हुए, यह गुफा अतिरमणीक थी, यहांपर फूलोंकी सुगन्धि आय रहीथी, इस गुहाका द्वार अति विस्तार वालाथा; यह गुफा चार कोशकी लंबी चौड़ी थी ॥ २४ ॥ वह महाबली राक्षस कुम्भकर्णके श्वासोंकी पवन लगनेके कारण बहुतही कंपायमान हुए और बड़े कष्टसे स्थिर हो अति यत्न सहित उस गुफामें पैठे ॥ २५ ॥ तिसके पीछे राक्षसोंनें रत्नकांचन बनें हुए फर्ससे युक्त उस रमणीक गुफामें प्रवेश करके सोते हुए भयंकर विक्रम कारी कुम्भकर्णको देखा ॥ २६ ॥ सब राक्षस लोग मिलकर कुम्भकर्णकी निद्रा तोड़नेका उपाय करने लगे इन राक्षसोंनें देखा कि महावीर्य

तेरावणसमादिष्टामांसशोणितभोजनाः ॥ गंधंमाल्यंमहद्भक्ष्यमादायसहसाययुः ॥ २३ ॥ तांप्रविश्यमहाद्वारां सर्वतोयोजनायताम् ॥ कुंभकर्णगुहांरम्यांपुष्पगंधप्रवाहिनीम् ॥२४॥ कुंभकर्णस्यनिःश्वासादवधूतामहाबलाः ॥ प्रतिष्ठमानाःकृच्छ्रेणयत्नात्प्रविविशुर्गुहाम् ॥ २५ ॥ तांप्रविश्यगुहांरम्यांरत्नकांचनकुट्टिमाम् ॥ ददृशुर्नैर्ऋतव्याघ्राः शयानंभीमविक्रमम् ॥ २६ ॥ तेतुतंविकृतंसुप्तंविकीर्णमिवपर्वतम् ॥ कुंभकर्णमहानिद्रंसमेताःप्रत्यबोधयन् ॥ २७॥ उर्ध्वलोमांचिततनुंश्वसंतमिवपन्नगम् ॥ भ्रामयंतंविनिःश्वासैःशयानंभीमविक्रमम् ॥ २८ ॥ भीमनासापुटंतंतुपातालविपुलाननम् ॥ शयनेन्यस्तसर्वांगंमेदोरुधिरगंधिनम् ॥ २९ ॥ कांचनांगदनद्धांगंकिरीटेनार्कवर्चसम् ॥ ददृशुर्नैर्ऋतव्याघ्रंकुंभकर्णमरिंदमम् ॥ ३० ॥

कुम्भकर्ण सोता हुआ विकराल हो रहा है और पर्वतकी समान पड़ा है ॥ २७ ॥ कुम्भकर्णके सब रूँये ऊपरको खड़ेथे वह सर्पकी समान लंबे २ श्वासोंकी पवनसे मानों राक्षसोंको घूमाय रहाथा ऐसा भयंकर कर्मकारी कुम्भकर्णको राक्षसोंने देखा ॥ २८ ॥ इसका मुख पातालकी समान बड़ाथा नाक के स्वरभी बहुतही लंबे चौडेथे उसके सब शरीरमें (जोकि शेजपर पड़ाथा) चरबी और रुधिरकी दुर्गन्ध आय रहीथी॥२९॥ वह सुवर्णका बाजू पहरे हुएथा उसके शिरपर मुकुट सूर्य भगवानकी किरणोंकी समान प्रकाशित हो रहाथा ऐसे राक्षसव्याघ्र शत्रुओंका

पातेही शीघ्रता सहित हर्षित अंतःकरणसे उठकर कुंभकर्णको अपने समीप लाया ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त रावणके आसनपर बैठनेंके पीछे महा बलवान कुंभकर्ण अपने भ्राताके चरणयुगल वंदन करके बोलाकि "हमें क्या करना होगा?"॥८॥ रावण कुम्भकर्णको प्रणाम करता हुआ देखकर हर्षित अंतःकरणसे फिर उठकर उसे भलीभांति अपने हृदयसे लगाता हुआ ॥ ९ ॥ महा बलवान् कुम्भकर्णभी अपने भ्राता करकै भेंटे जाकर और यथायोग्य रूपसे आदर पाय श्रेष्ठ व देवताओंके बैठनेंके योग्य आसनपर बैठा ॥ १० ॥ तब कुम्भकर्ण क्रोधके मारे लाल २ नेत्र करके रावण से बोला कि हे महाराज ! किसकारणसे आपने ऐसे यत्नसे हमको जगवायाहै? ॥ ११ ॥ किससे आपको भय पहुंचाहै? और किसको आज हम

अथासीनस्यपर्यंकेकुंभकर्णोमहाबलः ॥ भ्रातुर्ववंदेचरणौकिंकृत्यमितिचाब्रवीत् ॥८॥ पुनःसमुदितोत्पत्यरावणःपरिषस्वजे ॥ सभ्रात्रासंपरिष्वक्तोयथावच्चाभिनंदितः ॥ ९ ॥ कुंभकर्णःशुभंदिव्यंप्रतिपेदेवरासनम् ॥ सतदासनमाश्रित्यकुंभकर्णोमहाबलः ॥ १० ॥ संरक्तनयनःक्रोधाद्रावणंवाक्यमब्रवीत् ॥ किमर्थमहमादृत्यत्वयाराजन्प्रबोधितः ॥ ११ ॥ शंसकस्माद्भयंतेत्रकोवाप्रेतोभविष्यति ॥ भ्रातरंरावणःक्रुद्धंकुंभकर्णमवस्थितम् ॥ रोषेणपरिवृत्ताभ्यांनेत्राभ्यांवाक्यमब्रवीत् ॥ १२ ॥ अयंतेसुमहान्कालःशयानस्यमहाबल ॥ सुषुप्तस्त्वंनजानीषेममरामकृतंभयम् ॥ १३ ॥ एषदाशरथिःश्रीमान्सुग्रीवसहितोबली ॥ समुद्रंलंघयित्वातुकुलंनःपरिकृंतति ॥ १४ ॥ हंतपश्यस्वलंकायांवनान्युपवनानिच ॥ सेतुनासुखमागत्यवानरैकार्णवंकृतम् ॥ १५ ॥

यमराजके भवनोंमें भेजें ? यह समस्त वृत्तान्त आप हमारे निकट प्रकाश करकै कहिये; कुम्भकर्ण क्रोधसे यह वचन कह मौनरहा, और अपने लघुभ्राताके वचन सुनकर रावणभी क्रोधके मारे अपनी दोनों आँखोंको घुमानें लगा ॥ १२ ॥ हेमहाबलवान् ! तुम बराबर शयन करकै सुखसे सो रहेथे इसलिये रामचंद्रसे जो भय हमको उपस्थित हुआहै वह तुम कुछभी नहीं जानतेहो ? ॥ १३ ॥ महाबलशाली श्रीमान् दशरथके पुत्र रामचंद्र सुग्रीव सहित समुद्रके पार आयकर हमारे जाति कुलका नाश कररहेहैं ॥ १४ ॥ लंकाके वन उपवनोंकी ओर एकवार

परन्तु जब नीदसे अचेत हुआ महाबलवान महात्मा कुम्भकर्ण निशाचर गणोंके घोर सिंहनाद करनेंसेभी न जागा, तब राक्षसोंनें क्रोधित होकर भुशुण्डी, मूशल, और गदा इत्यादि अस्त्र शस्त्र ग्रहण किये ॥ ३९ ॥ तिसके पीछे प्रचंड निशाचर गण पर्वतोंके शिखर, मूसल गदा और मूकोंसे पृथ्वीपर सुखसे सोये हुए कुम्भकर्ण की छातीमें अत्यन्त बलसे प्रहार करनें लगे, परन्तु किसीसेभी कुछ न हुआ ॥ ४० ॥ यह राक्षसगण महाबलवान होकरभी कुम्भकर्णके प्रबल श्वासोंकी पवनके आगे किसी प्रकार ठहरनेंको समर्थ नहीं हुए ॥ ४१ ॥ तिसके पीछे भयंकर विक्रमकारी वह राक्षस गण धोती जांघिये आदि अपने वस्त्रोंको संभालकर मृदंग, ढोल, भेरी शंख और कुम्भ नामक बाजोंको बजानें

यदाभृशार्तैर्निनदैर्महात्मानकुंभकर्णोबुबुधेप्रसुप्तः ॥ ततोभुशुंडीमुंसलानिसर्वेरक्षोगणास्तेजगृहुर्गदाश्च ॥ ३९ ॥ तंशैलशृंगैर्मुसलैर्गदाभिर्वक्षस्थलेमुद्गरमुष्टिभिश्च ॥ सुखप्रसुप्तंभुविकुंभकर्णंरक्षांस्युदग्राणितदानिजघ्नुः ॥ ४० ॥ तस्यनिःश्वासवातेनकुंभकर्णस्यरक्षसः ॥ राक्षसाःकुंभकर्णस्यस्थातुंशेकुर्नचाग्रतः ॥ ४१ ॥ ततःपरिहितागाढंराक्षसाभीमविक्रमाः ॥ मृदंगपणवान्भेरीःशंखकुंभगणांस्तथा ॥ ४२ ॥ दशराक्षससाहस्रंयुगपत्पर्यवारयत् ॥ नीलांजनचयाकारंतेतुतंप्रत्यबोधयन् ॥ ४३ ॥ अभिघ्नंतोनदंतश्चनचसंबुबुधेतदा ॥ यदाचैनंनशेकुस्तेप्रतिबोधयितुंतदा ॥ ४४ ॥ ततोगुरुतरंयत्नंदारुणंसमुपाक्रमत् ॥ अश्वानुष्ट्रान्खरान्नागाञ्जघ्नुर्दंडकशांकुशैः ॥ ४५ ॥ भेरीशंखमृदंगांश्चसर्वप्राणैरवादयन् ॥ निजघ्नुश्चास्यगात्राणिमहाकाष्ठकटंकरैः ॥ ४६ ॥

लगे ॥ ४२ ॥ इस प्रकारसे दश हजार नीले अंजनकी ढेरकी समान उस कुम्भकर्णको जगानेके लिये बड़ेही यत्न करनें लगे ॥ ४३ ॥ वह राक्षस अनेक प्रकारके प्रहार, गर्जन और भांति २ के बाजे बजाकरभी उस कुम्भकर्णको नहीं जगाय सके ॥ ४४ ॥ जब वह राक्षस इन सब कार्योंके करनेंका कुछ फल न पाते हुए, तब उन राक्षसोंकी मति इस्सेभी भारी उपाय करनें की हुई, वह राक्षसगण उन्हींके अनुसार ऊंट गधे और हाथियोंको, वारंवार दंडोंसे चाबकोंसे और अंकुशोंसे मार कर कुम्भकर्णके ऊपर चलानें लगे ॥ ४५ ॥ सब इकट्ठे होकर भेरी शंख, और अति जोरसे मृदंग बजानें लगे और कुम्भकर्णके शरीरमें बड़े भारी कांटे लगे काठोंसे ठोकनें लगे ॥ ४६ ॥

तुम हमारे हितार्थ यह उत्तम कार्य पूराकरो ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥
शरद समयके मेघको उड़ा देतीहै; वैसेही तुम अपने तेजके प्रभावसे शत्रुकी सेनाके धुर्रे उड़ादो हे बान्धवप्रिय ! हे समराभिलाषी!
कोभी तुम्हारी समान बलवान नहीं देखते; कारण तुमही हमारे लिये अधिक वीर्य प्रकाश करो ॥ २१ ॥ प्रचंड पवन जिस प्रकारसे
राक्षसराज रावणके ऐसे विलापके वचन सुनकर कुम्भकर्ण हँसता हुआ बोला ॥ १ ॥ हमनें परामर्श होनेके समयमें जिस दोषकी शंका
कीथी, आपने उन हितकारी वचनोंपर श्रद्धा नहीं की, इसी कारणसे अब आपको वही दोष आय प्राप्त हुआहै ॥ २ ॥ कुकर्म करनेंवाले जन जिस

कुरुष्वमेप्रियहितमेतदुत्तमंयथाप्रियंप्रियरणबांधवप्रिय ॥ स्वतेजसाव्यथयसपत्नवाहिनींशरद्धनंपवनइवोद्यतोमहा
न् ॥२२॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०युद्धकांडेद्विषष्टितमःसर्गः ॥६२॥ ॥छ॥ तस्यराक्षसराजस्यनिशम्यपरिदेवितम् ॥
कुंभकर्णोबभाषेदंवचनंप्रजहासच ॥ १ ॥ दृष्टोदोषोहियोस्माभिःपुरामंत्रविनिर्णये ॥ हितेष्वनभियुक्तेनसोयमासा
दितस्त्वया ॥ २ ॥ शीघ्रंखल्वभ्युपेतंत्वांफलंपापस्यकर्मणः ॥ निरयेष्वेवपतनंयथादुष्कृतकर्मणः ॥ ३ ॥ प्रथमंवै
महाराजकृत्यमेतदचिंतितम् ॥ केवलंवीर्यदर्पेणनानुबंधोविचारितः ॥ ४ ॥ यःपश्चात्पूर्वकार्याणिकुर्यादैश्वर्यमास्थि
तः ॥ पूर्वंचोत्तरकार्याणिनसवेदनयानयौ ॥ ५ ॥ देशकालविहीनानिकर्माणिविपरीतवत् ॥ क्रियमाणानिदुष्यंति
हवींष्यप्रयतेष्विव ॥ ६ ॥ त्रयाणांपंचधायोगंकर्मणांयःप्रपद्यते ॥ सचिवैःसमयंकृत्वाससम्यग्वर्ततेपथि ॥ ७ ॥

प्रकार शीघ्रही नरकमें पड़ा करतेहैं; ऐसेही तुमको अपने पापकर्म करनेंका फल बहुत शीघ्र मिलगया ॥ ३ ॥ हेमहाराज ! आपनें केवल वीर्यके
घमंडके वशमें हो पहले इस सम्बन्धमें कुछ चिन्ता नहींकी; और ऐसे निन्दनीय कार्यके विषयमें कुछ सुविचारभी नहीं किया ॥ ४ ॥ जो ऐश्वर्यके
मदसे मदवाले होकर पहले करनें योग्य कार्य पीछे, और पीछे करनें योग्य कार्योंको पहले किया करतेहैं; उन्होंनें नीति अनीतिको कुछभी
नहीं जाना ॥ ५ ॥ जिस प्रकार संस्कारके अयोग्य अग्निमें दीहुई आहुति विफल होजातीहै वैसेही देशकालको विना विचारे जो कार्य किये जातेहैं;
वह समस्तही विपरीत और दूषित होजातेहैं ॥ ६ ॥ जो राजा विचार करनेंके पीछे, कर्त्तव्य, क्षय, वृद्धि स्थान और सभादिके विषयमें चिन्ता

हजारों हाथियोंकी दांय चलाई, तब हाथियोंके पैरोंसे दबनेंका सुख पाय कुम्भकर्ण जाग उठा ॥ ५५ ॥ कुम्भकर्ण उन गिराये हुए पर्वतोंके शिखर और वृक्षोंसे मार खाय करभी निद्रा नाशके वश, भूंखसे व्याकुलहो वारंवार जंभाई लेता सहसा उठ कर बैठ गया ॥ ५६ ॥ तिसके पीछे राक्षसेन्द्र कुम्भकर्ण वज्रसेभी अधिक सारवान और अचल शृङ्ग व नाग भोगकी समान दोनों वांहोंको फैलाय घोड़ीके समान अपने विकट मुखको खोल ॥ ५७ ॥ जँभाई लेंनेके समय उसका वदन पातालकी समान गंभीर और मुख मंडल सुमेरु गिरिपर उदय हुए सूर्यकी समान दृष्टि आया ॥ ५८ ॥ जब जँभाई लेता हुआ वह निशाचर जागा तब जिस प्रकार पर्वत परसे निकल कर पवन वहतीहै उसही भांति कुम्भकर्णकी

सापत्यमानैर्गिरिशृंगवृक्षैरचिंतयंस्तान्विपुलान्प्रहारान्॥ निद्राक्षयात्क्षुद्भयपीडितश्चविजृंभमाणःसहसोत्पपात॥५६॥ सनागभोगाचलशृंगकल्पोविक्षिप्यबाहूजितवज्रसारौ ॥ विवृत्यवक्रंवडवामुखाभंनिशाचरोसौविकृतंजजृंभे ॥ ५७॥ तस्यजाजृंभमाणस्यवक्रंपातालसन्निभम् ॥ ददृशेमेरुशृंगाग्रेदिवाकरइवोदितः ॥ ५८॥ सजृंभमाणोतिबलःप्रबुद्ध स्तुनिशाचरः ॥ निःश्वासश्चास्यसंजज्ञेपर्वतादिवमारुतः ॥ ५९ ॥ रूपमुत्तिष्ठतस्तस्यकुंभकर्णस्यतद्बभौ ॥ युगां तेसर्वभूतानिकालस्येवदिधक्षतः ॥ ६० ॥ तस्याग्निदीप्तसदृशेविद्युत्सदृशवर्चसी ॥ ददृशातेमहानेत्रेदीप्ताविवमहाग्र हौ ॥ ६१ ॥ ततस्त्वदर्शयन्सर्वान्भक्ष्यांश्चविविधान्बहून् ॥ वराहान्महिषांश्चैवबभक्षसमहाबलः ॥ ६२ ॥ आदद्बुभुक्षि तोमांसंशोणितंतृषितोपिबत् ॥ मेदःकुंभांश्चमद्यांश्चपपौशक्ररिपुस्तदा ॥ ६३ ॥

श्वासका पवन वहनें लगा ॥ ५९ ॥ जब कुम्भकर्ण जागा तब उसका रूप संसारको जलानेंके लिये तैयार प्रलय कालीन कालकी समान जान पड़नें लगा ॥ ६० ॥ उसकी दोनों आंखें प्रकाशमान अग्निकी समान थीं, उनसे विजलीसी निकल रहीथी; मानों वह कुम्भकर्ण प्रकाशमान महा ग्रह था ॥ ६१ ॥ तिसके पीछे उसके भोजन करनेंको जो महिष शूकरादि विविध प्रकारकी सामग्री गईथी वह इकट्ठी कीगई; वह सब उन राक्षसोंनें कुम्भकर्णको दिखाये, तब महाबलवान कुम्भकर्ण उन सबको भक्षण करनेंमें लगा ॥ ६२ ॥ बहुत दिनोंसे भूंखा प्यासा वह इन्द्रका शत्रु राक्षस कुम्भकर्ण ढेरके ढेर विविध भांतिके मांस खाय और असंख्य चरवी; व मदिराके घड़ोंको पान करके अपनी प्यास बुझाता हुआ ॥ ६३ ॥

जो शास्त्रको न जानतेहों; उनका वचन राजा कभी ग्रहण नहीं करे; कारण कि वह अहितकाही करनेंवाला होताहै, कारण कि वे लोग अर्थशास्त्रके न जाननेंसे धनकी बड़ी आशा रखते, और ठकुर सुहाती बात कह देतेहैं इससे उनकी बातका क्या ठीकहै ? ॥ १५ ॥ जो पुरुष अहित बातको ऐसा नोन मिर्च लगायकर कहते, कि मानों यह बड़ाही हित कर रहेहैं,ऐसे धूर्तोंको मंत्रणा कार्यसे बाहर निकालदेना चाहिये, कारण कि उनसे सब कार्य भ्रष्ट होजाते हैं ॥ १६ ॥ हे महाराज ! ऐसेभी अनेक मंत्री होतेहैं, जो सब कुछ जाननेंवाले शत्रुओंके साथ सलाह करके विपरीत कार्य करके स्वामीका विनाश कर देतेहैं ॥ १७ ॥ राजाको उचितहै कि उन मंत्रियोंको जो मित्र बने हुए वैरी हैं व्यवहारसे जानले और जान बूझकर उनका त्याग

अहितंचहिताकारंधाष्ट्यांज्जल्पंतियेनराः ॥ अवश्यंमंत्रबाह्यास्तेकर्तव्याःकृत्यदूषकाः ॥ १६ ॥ विनाशयंतोभर्त्तारंसहिताःशत्रुभिर्बुधैः ॥ विपरीतानिकृत्यानिकारयंतीहमंत्रिणः ॥ १७ ॥ तान्भर्तामित्रसंकाशानमित्रान्मंत्रनिर्णये ॥ व्यवहारेणजानीयात्सचिवानुपसंहितान् ॥ १८ ॥ चपलस्येहकृत्यानिसहसानुप्रधावतः ॥ छिद्रमन्येप्रपद्यंतेक्रौंचस्यखमिवद्विजाः ॥ १९ ॥ योहिशत्रुमवज्ञायआत्मानंनाभिरक्षति ॥ अवाप्नोतिहिसोऽनर्थान्स्थानाच्चव्यवरोप्यते ॥ २० ॥ यदुक्तमिहतेपूर्वंप्रियायामेनुजेनच ॥ तदेवनोहितंवाक्यंयथेच्छसितथाकुरु ॥ २१ ॥ तत्तुश्रुत्वादशग्रीवःकुंभकर्णस्यभाषितम् ॥ भ्रुकुटिंचैवसंचक्रेक्रुद्धश्चैनमभाषत ॥ २२ ॥

अशास्त्रविदुषांतेषांकार्यंनाभिहितंवचः ॥ अथशास्त्रानभिज्ञानांविपुलांश्रियमिच्छताम् ॥ १५ ॥

करदे ॥ १८ ॥ जिस प्रकार पक्षीगण स्वामिकार्तिकजीसे विदारित किये हुए क्रौञ्च पर्वतके छिद्रमें प्रवेश करतेहैं, वैसेही शत्रु लोगभी चपल और इधर उधर दौड़कर धानेंवाले राजामें छिद्र पायकर प्रवेश किया करतेहैं ॥ १९ ॥ जो शत्रुको तुच्छ समझकर अपनी रक्षा नहीं करतेहैं; वह बड़े भारी अनर्थको प्राप्त होकर स्थानसे भी भ्रष्ट होजातेहैं ॥ २० ॥ रानी मन्दोदरी और हमारे छोटे प्रिय भ्राता विभीषणजीनें जो कुछ कहाथा, वही कहना हमारे हितका करनें वालाहै; तिसके पीछे जो आपकी इच्छा हो सो कीजिये ॥ २१ ॥ तब दशमुख रावण कुम्भकर्णके ऐसे वचन सुनकर भ्रुकुटि

हेमहाराज ! हम लोगोंको देवकृत कोई भय नहीं पड़ाहै परन्तु इस समय मनुष्योंसे हमको तुमुल भय आन पहुंचाहै ॥ ७२ ॥ हे राजन् ! मनुष्योंसे इस समय जैसा भय हमको पहुंचाहै दैत्य अथवा दानवोंसेभी ऐसा भय हमको कभी नहीं हुआ ॥ ७३ ॥ सीताके हरणसे संतापित हुए श्रीरामचन्द्रही हमारे इस बड़े भारी भयके कारण हैं, उनकीही पर्वताकार वानरोंकी सैनासे लंकापुरी घिरी हुईहै ॥ ७४ ॥ पहले केवल एकही वानर करके लंका जलाई गई, और कुंजर वा अपने साथियोंके सहित हितकुमार अक्षभी मारा गयाहै ॥७५॥ और की वात तो क्याकहैं देवता लोगोंका कण्टक स्वयं पुलस्त्यनंदन राक्षस राज रावणभी सूर्यकी समान तेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीके सामनेंसे भागकर चले आये हैं, सोभी

ननोदेवकृतंकिंचिद्भयमस्तिकदाचन ॥ मानुषान्नोभयंराजंस्तुमुलंसंप्रबाधते ॥ ७२ ॥ नदैत्यदानवेभ्योवाभयमस्तिननःक्वचित् ॥ यादृशंमानुषंराजन्भयमस्मानुपस्थितम् ॥ ७३ ॥ वानरैःपर्वताकारैर्लंकेयंपरिवारिता ॥ सीताहरणसंतप्ताद्रामान्नस्तुमुलंभयम् ॥ ७४ ॥ एकेनवानरेणेयंपूर्वंदग्धामहापुरी ॥ कुमारोनिहतश्चाक्षःसानुयात्रःसकुंजरः ॥ ७५ ॥ स्वयंरक्षोधिपश्चापिपौलस्त्योदेवकंटकः ॥ व्रजेतिसंयुगेमुक्तोरामेणादित्यवर्चसा॥७६॥यन्नदेवैःकृतोराजानापिदैत्यैर्नदानवैः ॥ कृतःसइहरामेणविमुक्तःप्राणसंशयात् ॥ ७७ ॥ सयूपाक्षवचःश्रुत्वाभ्रातुर्युधिपराभवम् ॥ कुंभकर्णोविवृत्ताक्षोयूपाक्षमिदमब्रवीत् ॥ ७८ ॥ सर्वमद्यैवयूपाक्षहरिसैन्यंसलक्ष्मणम् ॥ राघवंचरणेजित्वाततोद्रक्ष्यामिरावणम् ॥ ७९ ॥ राक्षसांस्तर्पयिष्यामिहरीणांमांसशोणितैः ॥ रामलक्ष्मणयोश्चापिस्वयंपास्यामिशोणितम् ॥ ८० ॥

जब श्रीरामचन्द्रजीनें दया करके उनसे कहाकि " जाओ भागजाओ " इस समय हमनें तुम्हें छोड़ दिया ॥७६॥ देव, दैत्य, और दानवोंसेभी जिन महाराजकी कभी पहले दुरवस्था नहीं हुई, आज रामचन्द्र करके ऐसी प्राण संशयकारिणी दशा उनको आई, उन रामचन्द्रनें दया करके राजाको प्राणोंसे नहीं मारा ॥ ७७ ॥ उस समय कुम्भकर्ण यूपाक्षके वचन सुनकर और संग्राम भूमिमें अपने भ्राता रावणका पराजय होना जानकर नेत्र घुमाय उससे बोला ॥ ७८ ॥ हे यूपाक्ष ! हम प्रथम सबसे पहले वानरोंकी सैनाके सहित राम और लक्ष्मणका नाश करके पीछेसे अपने बड़े भाई के चरणोंको देखेंगे ॥ ७९ ॥ हम वानर लोगोंके मांस और रुधिरसे राक्षसोंको तृप्त करेंगे; और हम स्वयं राम और लक्ष्मणका रुधिर पियेंगे॥८०॥

आप मनमें कभी ऐसे सन्तापको स्थान न दीजिये । हम
छोड़कर सावधानचित्त होजाइये ॥ ३० ॥ हे पृथ्वीनाथ ! हमारे जीवित रहतेहुए आप मनमें कभी ऐसे सन्तापको स्थान न दीजिये । हम
निश्चय कहतेहैं कि जिनके लिये आपको इतना संतापित होना पड़ाहै; हम उनका नाश कर डालेंगे ॥ ३१ ॥ हे महाराज ! आप चाहें जिस अव
स्थामें हों वही समय हमको हितके वचन कहने चाहिये, इस कारणही बन्धुभाव और भ्राताके स्नेहके वश होकर हमने आपसे ऐसा कहा॥३२॥
संकट पड़नेके समयमें स्नेहके आधीन हुए बन्धुके लिये जो कुछ करना उचितहै, हम उससे विमुख नहीं हैं. आज युद्धमें जाकर हम शत्रुओंकी
सैनाका नाश करतेहैं सो आप देखैं ॥ ३३ ॥ हे महाबाहो ! आज हमसे संग्रामभूमिमें भ्राताके सहित रामचंद्रके मारनेंपर आप वानरोंकी सैनाको

नैतन्मनसिकर्तव्यंमयिजीवतिपार्थिव ॥ तमहंनाशयिष्यामियत्कृतेपरितप्यते ॥३१॥ अवश्यंचहितंवाच्यंसर्वावस्थां
गतंमया ॥ बंधुभावादभिहितंभ्रातृस्नेहाच्चपार्थिव ॥ ३२ ॥ सदृशंयच्चकालेस्मिन्कर्तुंस्नेहेनबंधुना ॥ शत्रूणांकदनं
पश्यक्रियमाणंमयारणे ॥ ३३ ॥ अद्यपश्यमहाबाहोमयासमरमूर्धनि ॥ हतेरामेसहभ्रात्राद्रवंतींहरिवाहिनीम् ॥३४॥
अद्यरामस्यतद्दृष्ट्वामयानीतंरणाच्छिरः ॥ सुखीभवमहाबाहोसीताभवतुदुःखिता ॥ ३५ ॥ अद्यरामस्यपश्यंतुनि
धनंसुमहत्प्रियम् ॥ लंकायांराक्षसाःसर्वेयेतेनिहतबांधवाः ॥ ३६ ॥ अद्यशोकपरीतानांस्वबंधुवधशोचिनाम् ॥
शत्रोर्युधिविनाशेनकरोम्यश्रुप्रमार्जनम् ॥ ३७ ॥ अद्यपर्वतसंकाशंससूर्यमिवतोयदम् ॥ विकीर्णंपश्यसमरे
सुग्रीवंप्लवगेश्वरम् ॥ ३८ ॥

भागता हुआ देखैंगे ॥ ३४॥ हे महाभुज ! आज मुझ करके रणभूमिसे लायेहुए रामचंद्रके मस्तकको देखकर आप सुखी और जानकी दुःखी
होंगी ॥३५॥ युद्धमें जिनके बन्धु बान्धव मारे गयेहैं आज लंकावासी वह निशाचरगण बड़े भारी सुखका मूल रामचंद्रका मारा जाना देखेंगे ॥ ३६ ॥
युद्धमें बान्धव लोगोंका विनाश होनेंके कारण जो लोग शोकाकुल होकर अश्रु छोड़ रहेहैं आज रणभूमिमें शत्रुओंको विनाश करकै उनके आंसु
ओंको पोंछेंगे ॥३७॥ आज पर्वताकार वानरराज सुग्रीव रणभूमिमें सूर्यके सहित बादलके समान फैलाहुआ, और रुधिरसे भीगा हुआ देखोगे ॥३८॥

बड़े भ्राताका आनंद बढ़ावें ॥ ८९ ॥ महावीर दुर्द्धर्ष कुम्भकर्ण अपने भ्राताकी आज्ञाको जान और उसे माथे पर चढ़ाकर (बहुत अच्छा) कह से जपरसे उठा ॥ ९० ॥ और हर्षित मनसे मुखधो स्नानकर परम सुखपाय बलको बढ़ानेंवाली मदिराके पीनेंका अभिलाष करता हुआ ॥ ९१ ॥ तब राक्षस लोग रावणकी आज्ञाके अनुसार विविध भांति मदिरा और विविध प्रकारके भोजन पदार्थ लेआये ॥ ९२ ॥ तेज बल युक्त कुम्भकर्ण मदिराको पीकर कुछ एक मतवाला और तीव्र स्वभाव होकर चलनेंके लिये तैयार हुआ ॥ ९३ ॥ कुम्भकर्ण हर्षित होकर कालान्तक यम राजकी समान शोभायमान होनें लगा उस कालमें कुम्भकर्ण जब राक्षसोंके साथ २ अपने भ्राता रावणके भवनमें गमन करनें लगा; तब उसके

कुंभकर्णस्तुदुर्धर्षोभ्रातुराज्ञायशासनम् ॥ तथेत्युक्त्वामहावीर्यःशयनादुत्पपातह ॥ ९० ॥ प्रक्षाल्यवदनंहृष्टःस्नातः परमहर्षितः ॥ पिपासुस्त्वरयामासपानंबलसमीरणम् ॥ ९१ ॥ ततस्तेत्वरितास्तत्रराक्षसारावणाज्ञया ॥ मद्यंभक्ष्यांश्चविविधान्क्षिप्रमेवोपहारयन् ॥ ९२ ॥ पीत्वाघटसहस्रेद्वेगमनायोपचक्रमे ॥ ईषत्समुत्कटोमत्तस्तेजोबलसमन्वितः ॥ ९३ ॥ कुंभकर्णोबभौरुष्टःकालांतकयमोपमः ॥ भ्रातुःसभवनंगच्छन्रक्षोबलसमन्वितः ॥ कुंभकर्णः पदन्यासैरकंपयतमेदिनीम् ॥ ९४ ॥ सराजमार्गंवपुषाप्रकाशयन्सहस्ररश्मिर्धरणीमिवांशुभिः ॥ जगामतत्रांजलिमालयावृतःशतक्रतुर्गेहमिवस्वयंभुवः ॥ ९५ ॥ तंराजमार्गस्थममित्रघातिनंवनौकसस्तेसहसाबहिःस्थिताः ॥ दृष्ट्वाप्रमेयंगिरिशृंगकल्पंवितत्रसुस्तेसहयूथपालैः ॥ ९६ ॥

वारंवार चरण धरनें उठानेंसे पृथ्वी कंपायमान होनें लगी ॥ ९४ ॥ जिस प्रकार सूर्य भगवान् अपनी किरणोंके जालसे पृथ्वीको प्रकाशित करतेहैं,वैसेही कुम्भकर्ण भी अपनी कान्तिसे राज मार्गको प्रकाशित करता हुआ चला । इन्द्रनीके ब्रह्माजीके भवनमें जानेंकी समान हाथ जोड़े हुए राक्षस रूपी मालासे घिरकर कुम्भकर्ण अपने भ्राताके स्थानको जानें लगा ॥ ९५ ॥ वह पर्वतके शृङ्गकी समान शत्रु ओंका नाश करनें वाला अप्रमेय वीर जब राजमार्गमें चला जाताथा तब बाहर खड़े हुए वनवासी वानर अपने यूथपतियोंके साथ इसको देखतेही त्रासित हुए ॥ ९६ ॥

राम हमारे मूकेके वेगको सहकर जीवित रहैं ॥ ४६ ॥ तो हमारे बाण उस रामचन्द्रके रुधिरको पान करेंगे। इसलिये हे महाराज! आप हमारे जीवित रहते हुए आप किस कारणसे संतापकरतेहैं ॥ ४७ ॥ लीजिये हम आपके शत्रुका प्राण संहार करनेंके लिये जातेहैं आप रामचंद्रका भय छोड़ दीजिये, क्योंकि हम घोर युद्धमें उनको मार डालेंगे ॥ ४८ ॥ हम राम लक्ष्मण सुग्रीवको और जिस वानरनें राक्षसोंका नाश करके लंकापुरी जलाईथी उस हनुमानकोभी संहार करैंगे ॥ ४९ ॥ और वहांपर जो वानरगण युद्ध करनेंके लिये आयेहैं उनकोभी हम खाडालेंगे! हे महाराज! हमनें आपके बड़े भारी यशकी कामना करके इस असाधारण कामके करनेंकी अभिलाषा कीहै ॥ ५० ॥ हेराजन्! यदि इन्द्र अथवा

ततःपास्यंतिबाणौघारुधिरंराघवस्यमे ॥ चिंतयातप्यसेराजन्किमर्थंमयितिष्ठति ॥ ४७ ॥ सोहंशत्रुविनाशायतव निर्यातुमुद्यतः ॥ मुंचरामाद्भयंघोरंनिहनिष्यामिसंयुगे ॥ ४८ ॥ राघवंलक्ष्मणंचैवसुग्रीवंचमहाबलम् ॥ हनूमंतं चरक्षोघ्नंयेनलंकाप्रदीपिता ॥ ४९ ॥ हरींश्चभक्षयिष्यामिसंयुगेसमुपस्थिते ॥ असाधारणमिच्छामितवदातुंमहद्य शः ॥ ५० ॥ यदिचेंद्राद्भयंराजन्यदिचापिस्वयंभुवः ॥ अपिदेवाःशयिष्यंतेमयिक्रुद्धेमहीतले ॥ ५१ ॥ यमंचशम यिष्यामिभक्षयिष्यामिपावकम् ॥ आदित्यंपातयिष्यामिसनक्षत्रंमहीतले ॥ ५२ ॥ शतक्रतुंवधिष्यामिपास्यामि वरुणालयम् ॥ पर्वतांश्चूर्णयिष्यामिदारयिष्यामिमेदिनीम् ॥ ५३ ॥ दीर्घकालंप्रसुप्तस्यकुंभकर्णस्यविक्रमम् ॥ अद्यपश्यंतुभूतानिभक्ष्यमाणानिसर्वशः ॥ नत्विदंत्रिदिवंसर्वमाहारोममपूर्यते ॥ ५४ ॥

ब्रह्मासेभी आपको भय पहुंचाहो तौ हम उनकोभी मारडालेंगे। हमारे क्रोधित होनेंपर देवता लोग पृथ्वीपर सोते हुए दीखेंगे ॥ ५१ ॥ हम यम राजकाभी नाश करदेंगे अग्निको भक्षण कर डालेंगे; और हम सूर्यकोभी आकाशसे तारागणोंके सहित पृथ्वीपर गिरादेंगे ॥ ५२ ॥ इन्द्रको मार डालेंगे, समुद्रको पान कर जायँगे, पर्वतोंको चूर्ण २ करदेंगे और पृथ्वीको भी हम विदीर्ण करैंगे ॥ ५३ ॥ हम बहुत समयसे सोय रहेथे, परन्तु आज समस्त जीव इस कुम्भकर्णसे भक्षित होकर इसका विक्रम देखें अधिक क्या कहैं यह त्रिलोकभी हमारे पेटको भरनेंके लिये पूरी न होगी॥ ५४ ॥

यह कौन वीरहै ? ॥ ५ ॥ यह तौ पृथ्वीका एक बड़ा पताकारूप अकेलाही जान पड़ताहै; कारणकि इसके केवल देखनेहीसे समस्त वानरोंकी सैना भागी जातीहै ॥ ६ ॥ हमनें पहले कभी इस प्रकारका अद्भुत प्राणी नहीं देखा; इसलिये यह महाप्राणी राक्षसहै या असुरहै; यह हमको ठीक २ बताओ ॥ ७ ॥ सरलतासे कठिन कर्म करनेवाले रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीसे इस भांति कहे जाकर महाप्राज्ञ विभीपणजी बोले ॥ ८ ॥ जिसनें संग्राम भूमिमें यमराज और इन्द्रकोभी हरा दियाथा यह वही विश्रवाका पुत्र प्रतापवान् कुम्भकर्ण है, इसके प्रमाण की समान और कोई राक्षस नहीं है ॥ ९ ॥ हे रामचंद्रजी ! इस करके ही संग्रामभूमिमें दानव, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, विद्याधर और पन्नगगण हजारों वार हारकर इसके

पृथिव्यांकेतुभूतोसौमहानेकोत्रदृश्यत ॥ यंदृष्ट्वावानराःसर्वेविद्रवंतियतस्ततः ॥ ६ ॥ आचक्ष्वसुमहान्कोसौरक्षोवा यदिवासुरः ॥ नमयैवंविधंभूतंदृष्टपूर्वंकदाचन ॥ ७ ॥ संपृष्टोराजपुत्रेणरामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ विभीषणोमहाप्रज्ञः काकुत्स्थमिदमब्रवीत् ॥ ८ ॥ येनवैवस्वतोयुद्धेवासवश्चपराजितः ॥ सैषविश्रवसःपुत्रःकुंभकर्णःप्रतापवान् ॥ अस्यप्रमाणसदृशोराक्षसोन्योनविद्यते ॥ ९ ॥ एतेनदेवायुधिदानवाश्चयक्षाभुजंगाःपिशिताशनाश्च ॥ गंधर्वविद्याधरपन्नगाश्चसहस्रशोराघवसंप्रभग्नाः ॥ १० ॥ शूलपाणिंविरूपाक्षंकुंभकर्णंमहाबलम् ॥ हंतुंनशेकुस्त्रिदशाःकालोऽयमितिमोहिताः ॥ ११ ॥ प्रकृत्याह्येषतेजस्वीकुंभकर्णोमहाबलः ॥ अन्येषांराक्षसेंद्राणांवरदानकृतंबलम् ॥ १२ ॥ बालेनजातमात्रेणक्षुधार्तेनमहात्मना ॥ भक्षितानिसहस्राणिप्रजानांसुबहून्यपि ॥ १३ ॥ तेषुसंभक्ष्यमाणेषुप्रजाभयनिपीडिताः ॥ यांतिस्मशरणंशक्रंतमप्यर्थंन्यवेदयन् ॥ १४ ॥

सामनेसे भागे हैं ॥ १० ॥ हे राजन् ! इस महाबलवान् टेढे नेत्रवाले कुम्भकर्णको मारना तौ दूर रहे; जब यह शूल हाथमें लेकर खड़ा होताहै; तब देवतागणभी इसको काल समान समझकर मोहित होजाते हैं ॥ ११ ॥ और दूसरे राक्षसश्रेष्ठ तो वरदान पाय उसकेही बलसे बलवान् हुएहैं, परन्तु यह महाबलवान् कुम्भकर्ण स्वभावसेही तेजस्वीहै ॥ १२ ॥ इस महाबलवान् महात्मा कुम्भकर्णने जन्म ग्रहण करतेही जब यह बहुत बालक था हजारों प्रजापुञ्जोंको भक्षण कर लिया ॥ १३ ॥ तब प्रजागण ऐसी अवस्था देखकर प्राणके भयसे अत्यन्त भीत हुए, और देवराज

तुमने जो धर्म अर्थ और कामको पृथक् २ समयमें सेवन करनेंका वर्णन किया, इन सबका उपदेश औरोंको देना तो दूररहा; तुम स्वयंही स्वभावसे इन सबको नहीं जानते ॥६॥ देखो, कर्महीं, धर्म, अर्थ, और काम इन तीनोंका कारणहै, क्रियाहीन पुरुषका किसी प्रकारसेभी पुरुषार्थ नहीं है;इसकारण अनुष्ठाताको शुभाशुभ कर्मोंका फल भोगना पड़ताहै॥७॥ धर्म, अर्थ, यह दोनों मोक्षकोभी देतेहैं; और इन करके स्वर्गकी प्राप्ति व महाराज्यादिक लोगभी मिल सकतेहैं, जो अधर्म और अनर्थकी प्राप्तिहो तौभी कभी २ अपराधीको सुख प्राप्त होजाताहै ॥ ८ ॥ पुरुष इस लोक और परलोकके लियेभी कर्म करतेहैं और कामपर आरूढ हुआ पुरुषभी सामर्थ कर्मोंके फलोंको प्राप्त कर लेताहै ॥ ९ ॥

यांस्तुधर्मार्थकामांस्त्वंब्रवीषिपृथगाश्रयान् ॥ अवबोद्धुंस्वभावेननहिलक्षणमस्तितान् ॥ ६ ॥ कर्मचैवाहिसर्वेषां कारणानांप्रयोजनम् ॥ श्रेयःपापीयसांचात्रफलंभवतिकर्मणाम् ॥ ७ ॥ निःश्रेयसफलावेवधर्मार्थावितरावपि ॥ अध र्मानर्थयोःप्राप्तंफलंचप्रात्यवायिकम् ॥ ८ ॥ ऐहलौकिकपारक्यंकर्मपुंभिर्निषेव्यते ॥ कर्माण्यपितुकल्पानिलभते काममास्थितः ॥ ९ ॥ तत्रक्लृप्तमिदंराज्ञाहृदिकार्यंमतंचनः ॥ शत्रौहिसाहसंयत्तत्किमिवात्रापनीयते ॥ १० ॥ एक स्यैवाभियानेतुहेतुर्यःप्राहृतस्त्वया ॥ तत्राप्यनुपपन्नंतेवक्ष्यामियदसाधुच ॥ ११ ॥ येनपूर्वंजनस्थानेबहवोतिबला स्तदा ॥ राक्षसाराघवंध्वस्ताःकथमेकोजयिष्यसि ॥ १२ ॥ येपूर्वंनिर्जितास्तेनजनस्थानेमहौजसः ॥ राक्षसांस्तान्पुरे सर्वान्भीतानद्यनपश्यसि ॥ १३ ॥

हमनें महाराजके इस विषयको अपने अन्तरके साथ भला कहाहै, इस लिये राक्षसराजके मनमें जोकि निश्चय होगया है उस कार्यकाही अनु ष्ठान करना ठीक है कारण कि शत्रुगणोंके प्रति साहस प्रगट करनेंमें कुछ भी अनीति दृष्टि नहीं आती ॥ १० ॥ और तुमने जो अभिमानके वश होकर विना दूसरेकी सहायताके अकेलेही शत्रुओंको जीतनेकी वात कही यहभी हमारे विचारमें असंगत और असाधुपन है श्रवणकरो ॥११॥ कि जिन रामचंद्रने पहले जनस्थानमें असंख्य महाबलवान राक्षसोंका संहार किया है विना किसीकी सहायता लिये तुम उनको अकेले किस प्रकारसे विनाश करोगे ॥ १२ ॥ उस समय जनस्थानमें जो महातेजस्वी राक्षसगण रामचंद्रजीसे हारकर संग्रामसे भाग आयेथे वे रामचंद्रके

तब क्षणभरके पीछे घबडाये हुएसे ब्रह्माजी कुम्भकर्णसे बोले ॥ २२ ॥ हम निश्चयही जानते हैं कि विश्रवाने तुमको लोकका विनाश ही करनेंके लिये उत्पन्न किया है; हम इसीलिये तुमको यह शाप देतेहैं कि तुम आजसे मृतक की समान होकर बराबर शयन करते रहो ॥ २३ ॥ जब पितामह ब्रह्माजीनें ऐसा शापदिया तब कुम्भकर्ण उनके आगेही नींदसे ग्रसित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा यह देख रावण अत्यन्त व्याकुल होकर बोला॥२४॥ भगवन् यह कांचन वृक्ष बढाहै सो फल आनेंके समय आप क्यों इसको काटते हैं हे प्रजापते! विशेष करके अपने नातीको ऐसा शापदेना आपको किसी प्रकारसे उचित नहीं है ॥ २५ ॥ आपके वचन किसी प्रकारसे मिथ्या होनेवाले नहींहै निश्चयही कुम्भकर्णको निद्रा घेरेगी परन्तु आपके

ध्रुवंलोकविनाशायपौलस्त्येनासिनिर्मितः ॥ तस्मात्त्वमद्यप्रभृतिमृतकल्पःशयिष्यसे ॥ २३ ॥ ब्रह्मशापाभिभूतो थनिपपाताग्रतःप्रभोः ॥ ततःपरमसंभ्रातोरावणोवाक्यमब्रवीत् ॥ २४ ॥ प्रवृद्धःकांचनोवृक्षःफलकालेनिकृंत्यते ॥ ननप्तारंस्वकंन्याय्यंशप्तुमेवंप्रजापते ॥ २५ ॥ नमिथ्यावचनश्चत्वंस्वप्स्यत्येवनसंशयः ॥ कालस्तुक्रियतामस्यशयने जाग्रणेतथा ॥ २६ ॥ रावणस्यवचःश्रुत्वास्वयंभूरिदमब्रवीत् ॥ शयिताह्येषषण्मासमेकाहंजागरिष्यति ॥ २७ ॥ एकेनाह्नात्वसौवीरश्चरन्भूमिंबुभुक्षितः ॥ व्यात्तास्योभक्षयेल्लोकान्संवृद्धइवपावकः ॥ २८ ॥ सोसौव्यसनमापन्नः कुंभकर्णमबोधयत् ॥ त्वत्पराक्रमभीतश्चराजासंप्रतिरावणः ॥ २९ ॥ सएषनिर्गतोवीरःशिबिराद्भीमविक्रमः ॥ वानरान्भृशसंक्रुद्धोभक्षयन्परिधावति ॥ ३० ॥

निकट यह प्रार्थना है कि आप इसके जागनें और सोनेका उपयुक्त समय नियत कर दीजिये ॥ २६ ॥ राक्षसपतिके यह वचन सुनकर प्रजापति ब्रह्माजी बोले कि यह छःमहीनेतक सोता रहकर केवल एक दिनके लिये जागा करैगा और फिर दूसरे दिन छैः महीनेके लिये सो जाया करेगा ॥ २७ ॥ जागनेके दिन यह क्षुधासे व्याकुलहो पृथ्वीपर घूमा करैगा और प्रदीप्त अग्निकी समान मुख फैलायकर सब लोकोंको भक्षण करेगा ॥२८॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! इस समय तुम्हारे प्रतापसे भीत और विपदमें पड़कर लंकापति रावणनें कुम्भकर्णको जगवायाहै ॥ २९ ॥ हे रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी ! हम निश्चय कहते हैं कि यह भयंकरविक्रमकारी वीर कुम्भकर्ण अपनी गुफासे निकलकर क्रोधमें भर वानरोंके भक्षण करनेंको

आप सब कहीं ऐसा ढंडोरा पिटवादीजिये कि द्विजिह्व, संहारी, कुम्भकर्ण वितर्दन, और मैं (महोदर) यह पांच राक्षस रामचन्द्रका विनाश करनेंके लिये गमन करेंगे ॥ २२ ॥ इस ओर हम रणभूमिमें गमन करके यत्न सहित युद्ध करके यदि आपके शत्रुको जीतसकें तब तो हमको और किसी उपायके करनेकी आवश्यकता न पड़ैगी ॥ २३ ॥ परन्तु यदि हम लोगोंके बड़ाभारी युद्धकरनेंपर भी आपका शत्रु जीवित रह जाय तब हमनें मनमें जो उपाय स्थिर कियाहै उसको ही किया जाय ॥ २४ ॥ वह उपाय यहहै कि हम लोग रामनामाङ्कित तीक्ष्ण बाणोंसे अपनी देहको कटाय अंगोंसे रुधिर वहाय समरभूमिसे यहां आमेंगे ॥ २५ ॥ हमलोग आप पर प्रगट करैंगे कि हम राम लक्ष्मणको भक्षण करके

ततोगत्वावयंयुद्धंदास्यामस्तस्ययत्नतः ॥ जेष्यामोयदितेशत्रून्नोपायैःकार्यमस्तिनः ॥ २३ ॥ अथजीवतिनः शत्रुर्वयंचकृतसंयुगाः ॥ ततःसमभिपत्स्यामोमनसायत्समीक्षितम् ॥ २४ ॥ वयंयुद्धादिहैष्यामोरुधिरेणसमुक्षिताः ॥ विदार्यस्वतनुंबाणैरामनामांकितैःशरैः ॥ २५ ॥ भक्षितोराघवोस्माभिर्लक्ष्मणश्चेतिवादिनः ॥ ततःपादौग्रहीष्यामस्त्वन्नःकामंप्रपूरय ॥ २६ ॥ ततोऽवघोषयपुरेगजस्कंधेनपार्थिव ॥ हतोरामःसहभ्रात्राससैन्यइतिसर्वतः ॥ २७ ॥ प्रीतोनामततोभूत्वाभृत्यानांत्वमरिंदम ॥ भोगांश्चपरिवारांश्चकामान्वसुचदापय ॥ २८ ॥ ततोमाल्यानिवासांसिवीराणामनुलेपनम् ॥ देयंचबहुयोधेभ्यःस्वयंचमुदितःपिब ॥ २९ ॥ ततोस्मिन्बहुलीभूतेकौलीनेसर्वतोगते ॥ भक्षितःससुहृद्रामोराक्षसैरितिविश्रुते ॥ ३० ॥

चले आये तिसके पीछे इस कार्यका पुरस्कार पानेंको हम आपके चरणोंमें प्रार्थना करेंगे ॥ २६ ॥ हे महीपाल, तिसके पीछे नगरमें आय सबकहीं हाथीपर एक राक्षसको चढवाय इस प्रकारसे पुकारवादेना कि भ्राता और अपनी सब सैनाके सहित रामचन्द्र मारा गयाहै ॥ २७ ॥ आप मानों ऐसा होनेसे बड़ेही प्रसन्न हुएहैं; इस प्रकारसे दास दासियोंको और नौकरों चाकरोंको भोजनके पदार्थ धन धान्य रत्नादि देना ॥ २८ ॥ तिसके उपरान्त वस्त्र, भूषण, और गन्ध प्रदान कीजियेगा और उनके सन्तोष करानेंको उन्हैं सुरादेना; और आपभी मन सहित आनंदमें मग्नहो सुरा पान करना ॥ २९ ॥ तिसके पीछे सुहृद गणोंके सहित राम लक्ष्मण सब राक्षसोंके सहित भक्षण कर लिये गये;इस प्रकारकी जनश्रुति (अफवाह)

ओरके राक्षसोंको वृक्षोंसे मारनेंलगे ॥ ३८ ॥ वानरगण जब कि वृक्ष और पर्वतोंके शृङ्ग ग्रहण करकै लंकाके द्वारपर जाय डटे; तब पर्वतके निकटवाली मेघमाला जिस प्रकार प्रकाशित होतीहै, वैसेही यह वानर प्रकाशित हुए ॥ ३९ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०यु० एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥ इस ओर निद्राके मदसे आकुल विपुल विक्रमकारी राक्षसशार्दूल कुम्भकर्ण शोभायमान राजमार्गमें गमन करनें लगा ॥ १ ॥ वह परम दुर्जय वीर कुम्भकर्ण सहस्र राक्षसोंके साथ जिस समय राजमार्गमें जाय रहाथा, उस समय दोनों ओर जो धवरहरोंकी श्रेणी थीं उनके ऊपरसे कुम्भकर्णके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा होनें लगी ॥ २ ॥ कुम्भकर्णनें इसप्रकारसे गमन करते हुए अति निकट अपने भाई रावणके सुवर्णकी जालियोंसे युक्त, सूर्यकी

ततोहरीणांतदनीकमुग्रंरराजशैलोद्यतवृक्षहस्तम् ॥ गिरेःसमीपानुगतंयथैवमहन्महांभोधरजालमुग्रम् ॥ ३९ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेएकषष्टितमःसर्गः ॥ ६१ ॥ ॥ ७॥ सतुराक्षसशार्दूलोनिद्रामदसमाकुलः ॥ राजमार्गंश्रियाजुष्टंययौविपुलविक्रमः ॥ १ ॥ राक्षसानांसहस्रैश्चवृतःपरमदुर्जयः ॥ गृहेभ्यःपुष्पवर्षेणकीर्यमाणस्तदाययौ ॥ २ ॥ सहेमजालविततंभानुभास्वरदर्शनम् ॥ ददर्शविपुलंरम्यंराक्षसेंद्रनिवेशनम् ॥ ३ ॥ सतत्तदासूर्यइवाभ्रजालंप्रविश्यरक्षोधिपतेर्निवेशनम् ॥ ददर्शदूरेग्रजमासनस्थंस्वयंभुवंशक्रइवासनस्थम् ॥ ४ ॥ भ्रातुःसभवनंगत्वारक्षोगणसमन्वितः ॥ कुंभकर्णःपदन्यासैरकंपयतमेदिनीम् ॥ ५ ॥ सोभिगम्यगृहंभ्रातुःकक्ष्यामभिविगाह्यच ॥ ददर्शोद्विग्नमासीनंविमानेपुष्पकेगुरुम् ॥ ६ ॥ अथदृष्ट्वादशग्रीवःकुंभकर्णमुपस्थितम् ॥ तूर्णमुत्थायसंहृष्टःसन्निकर्षमुपानयत् ॥ ७ ॥

समान प्रकाशमान विपुल और रमणीक गृहको देखा ॥ ३ ॥ जिस प्रकार सूर्य भगवान् बादलके मध्यमें प्रवेश करतेहैं वैसेही उस वीरनें राक्षसपति रावणके स्थानमें प्रवेश करकै, देवराजके हंसासनसमासीन ब्रह्माजीके दर्शनकीनाईं सिंहासनपर बैठे हुए अपने बड़े भाई रावणको देखा ॥ ४ ॥ वीरश्रेष्ठ कुम्भकर्ण राक्षसगणोंके साथ जिस समयकि रावणके भवनमें जारहाथा, उससमय उसके प्रति पगके धरनेंसे पृथ्वी कंपायमान होरहीथी ॥ ५ ॥ वीर कुंभकर्णनें गमन कर भवनमें जाय उदासमनसे पुष्पक विमानमें बैठे हुए अपने भ्राताको देखा ॥ ६ ॥ रावणभी आयेहुए कुंभकर्णके दर्शन

जब महोदरने यह कहा तब महाबलवान् कुम्भकर्ण उसकी निन्दा करता हुआ राक्षसराज रावणसे यह वचन बोला ॥ १ ॥ हेमहाराज ! आप यथा सुखसे विचरण करैं हम उस दुरात्मा रामचंद्रको वध करके आपका घोर भय दूर करके आपको शत्रुरहित कर देंगे ॥ २ ॥ शूर लोग कालमेंभी बिना जलके बादलकी समान कभी गर्जन नहीं करते हमनें जो गर्जन कियाहै;आप संग्रामभूमिमेंभी हमको वही कार्य करते हुए देखेंगे ॥ ३ ॥ अधिक क्या कहैं वीर लोग अपनी बड़ाई करके कभी अपनेको छोटा नहीं बनाते; और वह लोग जो कार्य किया करतेहैं; उसको वह अद्भुत और दूसरेसे न होनेंयोग्य न होनें पर कभी नहीं करते ॥ ४ ॥ हेमहोदर ! तुमनें जो वृथा ऐसे वचन कहे यह कायर बुद्धि रहित अपने

सतथोक्तस्तुनिर्भर्त्स्यकुंभकर्णोमहोदरम्॥अब्रवीद्राक्षसश्रेष्ठंभ्रातरंरावणंततः ॥१॥ सोहंतवभयंघोरंवधात्तस्यदुरात्मनः॥ रामस्याद्यप्रमार्जामिनिर्वैरोहिसुखीभव ॥ २ ॥ गर्जंतिनवृथाशूरानिर्जलाइवतोयदाः ॥ पश्यसंपद्यमानंतुगर्जितंयुधिकर्मणा ॥ ३ ॥ नमर्षयंतिचात्मानंसंभावयितुमात्मना ॥ अदर्शयित्वाशूरास्तुकर्मकुर्वंतिदुष्करम् ॥ ४ ॥ विक्लवानांह्यबुद्धीनांराज्ञांपंडितमानिनाम् ॥ रोचतेत्वद्वचोनित्यंकथ्यमानंमहोदर ॥ ५ ॥ युद्धेकापुरुषैर्नित्यंभवद्भिःप्रियवादिभिः ॥ राजानमनुगच्छद्भिःसर्वंकृत्यंविनाशितम् ॥ ६ ॥ राजशेषाकृतालंकाक्षीणःकोशोबलंहतम् ॥ राजानमिममासाद्यसुहृच्चिह्नममित्रकम् ॥ ७ ॥ एषनिर्याम्यहंयुद्धमुद्यतःशत्रुनिर्णये ॥ दुर्नयंभवतामद्यसमीकर्तुंमहाहवे ॥८॥ एवमुक्तवतोवाक्यंकुंभकर्णस्यधीमतः ॥ प्रत्युवाचततोवाक्यंप्रहसन्राक्षसाधिपः ॥ ९ ॥

आपको पंडित माननेंवाले, और उजड्ड राजाहीको रुचिकर हो सकतेहैं ॥ ५ ॥ तुम लोग डरपोक और कायर पुरुष हो प्यारे वचनोंसे राजाके मनको सन्तुष्ट रखनाही तुम्हारा कार्यहै । तुम लोगोंसे राजाके कर्त्तव्यकर्मोंकी भली भांति अंगहीनता होतीहै ॥ ६ ॥ हा ! लंकापुरीकी कैसी दुर्दशाहै? केवल एक राजाही बचगयेहैं, कोषागार (खजाना) शून्य होगया,सैना मारी गई, और मित्रोंका चिह्न धारण किये शत्रुलोगोंसे महाराज घिररहेहैं ॥ ७॥ हम तुम्हारी इस दुर्नीतको युद्धसे भगानेंके लिये शत्रुके जीतनेंको कृतनिश्चय होकर संग्राममें जातेहैं ॥ ८ ॥ बुद्धिमान् कुम्भ

निहार कर देखो कि वानरोंनें सेतुबांध उसकी सहायतासे सुखपूर्वक समुद्रके पारहो इन सबको वानर सागरकी समान कर दिया ॥ १५ ॥ जो राक्षस बड़े २ प्रधान कहकर प्रसिद्धथे; वही सब रणभूमिमें वानरगणोंसे मारे गयेहैं, परन्तु हमनें वानरोंका मरना एक दिनभी नहीं श्रवण किया, और न कभी पहले हमनें वानरोंको युद्धमें जीता ॥१६॥ इनसेही हमको भय उत्पन्न हुआहै, और इस समय तुम इस शंकटसे हमारा त्राण उद्धार करो तुमहीसे यह विपद नाशको प्राप्त होगी, इसी कारणसे तुमको जगाया गयाहै ॥ १७ ॥ हमारा समस्त खजाना खाली होगयाहै; इसलिये

येराक्षसामुख्यतमाहतास्तेवानरैर्युधि ॥ वानराणांक्षयंयुद्धेनपश्यामिकथंचन ॥ नचापिवानरायुद्धेजितपूर्वाःकदा
चन ॥ १६ ॥ तदेतद्भयमुत्पन्नंत्रायस्वेहमहाबल ॥ नाशयत्वमिमानद्यतदर्थंबोधितोभवान् ॥ १७ ॥ सर्वक्षपितकोशंचसत्वमभ्युपपद्यमाम् ॥ त्रायस्वेमांपुरींलंकांबालवृद्धावशेषिताम् ॥ १८ ॥ भ्रातुरर्थेमहाबाहोकुरुकर्मसुदुष्करम् ॥ मयैवंनोक्तपूर्वोहिभ्राताकश्चित्परंतप ॥ १९ ॥ त्वय्यस्तिममचस्नेहःपरासंभावनाचमे ॥ देवासुरेषुयुद्धेषुबहुशोराक्षसर्षभ ॥ त्वयादेवाःप्रतिव्यूह्यनिर्जिताश्चामरायुधि ॥ २० ॥ तदेतत्सर्वमातिष्ठवीर्यंभीमपराक्रम ॥ नहिते सर्वभूतेषुदृश्यतेसदृशोबली ॥ २१ ॥

तुम हमारा उद्धार करो, और बालक बूढ़ेही जिस पुरीमें रहेहैं, ऐसी लंका पुरीकी तुम रक्षा करो ॥ १८ ॥ हेशत्रुओंके नाश करनेवाले ! हे महाबाहो! हमनें पहले कभी किसी भ्रातासे ऐसे दीन वचन नहीं कहे परन्तु आज तुम हमारा कहना मान अपने भ्राताके लिये अति कठिन कर्म करनेंके लिये तैयार होवो! ॥ १९ ॥ हेराक्षसश्रेष्ठ! तुमनें देवासुरसंग्रामके समयमें व्यूह बनाकरके अनेक वार देवताओंको रणभूमिमें पराजित कियाथा; इस कारण तुम्हारा तो हमें बड़ा भारी भरोसा है और हम तुमसे स्नेहभी अधिक करतेहैं ॥ २० ॥ हेभयंकरपराक्रमकारी ! हम त्रिलोकीमें किसी

शत्रुओंको मारनेंवाला वीर कुंभकर्णने अतिवेगसे काले लोहेका बनाहुआ अति तीक्ष्ण शूल लिया। यह शूल प्रदीप्त, तपाये हुए सुवर्णसे भूषि
तथा ॥ १८ ॥ यह शूल इन्द्रके वज्रकी समान और अशनिके समान भारीथा, देव, दानव, गंधर्व, यक्ष, और पन्नगोंके मारनेंको यह समर्थथा ॥ १९ ॥
बड़ी भारी रत्नमालासे शोभित होनेंके कारण उस शूलसे अग्नि निकल रहीथी ऐसे शत्रुओंके रुधिरसे रँगे हुए शूलको ग्रहण करके ॥ २० ॥ महा
तेजस्वी कुम्भकर्णनें रावणसे कहा; हम अकेलेही रणमें जाते हैं, तुम्हारी सैना यहीं पर रहे ॥ २१ ॥ आज हम क्षुधित होनेंके कारण क्रोधित होकर

आददेनिशितंशूलंवेगाच्छत्रुनिबर्हणः ॥ सर्वंकालायसंदीप्तंतप्तकांचनभूषणम् ॥ १८ ॥ इंद्राशनिसमप्रख्यं
वज्रप्रतिमगौरवम् ॥ देवदानवगंधर्वयक्षपन्नगसूदनम् ॥ १९ ॥ रक्तमाल्यमहादामंस्वतश्चोद्गतपावकम् ॥ आदाय
विपुलंशूलंशत्रुशोणितरंजितम् ॥ २० ॥ कुंभकर्णोमहातेजारावणंवाक्यमब्रवीत् ॥ गमिष्याम्यहमेकाकीतिष्ठत्विहब
लंमहत् ॥ २१ ॥ अद्यतान्क्षुधितःक्रुद्धोभक्षयिष्यामिवानरान् ॥ कुंभकर्णवचःश्रुत्वारावणोवाक्यमब्रवीत् ॥ २२ ॥
सैन्यैःपरिवृतोगच्छशूलमुद्गरपाणिभिः ॥ वानराहिमहात्मानःशूराःसुव्यवसायिनः ॥ २३ ॥ एकाकिनंप्रमत्तंवानये
युर्दशनैःक्षयम् ॥ तस्मात्परमदुर्धर्षैःसैन्यैःपरिवृतोव्रज ॥ रक्षसामहितंसर्वंशत्रुपक्षंनिषूदय ॥ २४ ॥ अथासनात्स
मुत्पत्यस्रजंमणिकृतांतराम् ॥ आबबंधमहातेजाःकुंभकर्णस्यरावणः ॥ २५ ॥

वानर गणोंको भक्षण करैंगे, कुंभकर्णके वचन सुनकर रावणनें कहा ॥२२॥ कि हे कुंभकर्ण! तुम शूल, मुद्गर ग्रहण किये सैनाको साथ लेकर यहांसे
जाओ, कारण कि वह वानर गण महाबलवान शूर और रण करनेंमें बड़े निपुणहैं ॥ २३ ॥ तुम सदाही मतवाले रहतेहो; इसलिये तुमको अकेला
देखकर वह उसी समय विनाश कर डालेंगे; हम इसी कारणसे कहते हैं कि तुम परम दुर्द्धर्ष सैनाको साथ लेकर राक्षस लोगोंके अहितकारी शत्रु
गणोंका विनाश कर आओ ॥ २४ ॥ यह कह महा तेजस्वी रावणनें आसनपरसे उठ मणिकी माला कुंभकर्णके गलेमें पहरायदी ॥ २५ ॥

करके मंत्रियोंके साथ सब कार्योंका आरम्भोपाय पुरुष, द्रव्य, सम्मत, देशकाल विभाग, विपरीतप्रतिकार और कार्यसिद्धि, इन पांचोको विचार करता हुआ कार्य करताहै;वह नीतिमार्गसे कभी चलायमान नहीं होता ॥ ७ ॥जो राजा मंत्रिलोगोंके सहित सभादिके कार्याकार्यका विचार करते हैं, वह बुद्धिबलसे मंत्रिलोगोंके मनका भाव और उनमें कौन यथार्थ सुहृद् और कौन केवल खुशामद करके मनको वहलाया करताहै, यह सब वह जानतेहैं ॥ ८ ॥ हे राक्षसनाथ ! सब लोगोंमें कोई प्रभातकाल, कोई मध्याह्नकाल और कोई रात्रिकाल इन तीनों कालमें यथाक्रमसे धर्म और कामकी सेवा करते हैं, कोई २ एकही समयमें धर्म कामादि रूप दंडका सेवन करतेहैं; और कोई २ एक कालमेंही तीनोंकी सेवा किया करते हैं ॥ ९ ॥ इन तीनोंमेसे कौन श्रेष्ठहै, इसको जो सुनकरभी नहीं जान सकतेहैं; वह राजाही हो अथवा राजकुमारहीहो, सबके सबही विफल हो

यथागमंचयोराजासमयंचचिकीर्षति ॥ बुध्यतेसचिवैर्बुद्ध्यासुहृदश्चानुपश्यति ॥ ८ ॥ धर्ममर्थंहिकामंवासर्वान्वा रक्षसांपते ॥ भजतेपुरुषःकालेत्रीणिद्वंद्वानिवापुनः ॥ ९ ॥ त्रिषुचैतेषुयच्छ्रेष्ठंश्रुत्वातन्नावबुध्यते ॥ राजावाराजमात्रोवाव्यर्थंतस्यबहुश्रुतम् ॥१०॥ उपप्रदानंसांत्वंचभेदंकालेचविक्रमम् ॥ योगंचरक्षसांश्रेष्ठतावुभौचनयानयौ ॥११॥ कालेधर्मार्थकामान्यःसंमंत्र्यसचिवैःसह ॥ निषेवेतात्मवाँल्लोकेनसव्यसनमाप्नुयात् ॥ १२ ॥ हितानुबंधमालोक्यकुर्यात्कार्यमिहात्मनः ॥ राजासहार्थतत्त्वज्ञैःसचिवैर्बुद्धिजीविभिः ॥ १३ ॥ अनभिज्ञायशास्त्रार्थान्पुरुषाःपशुबुद्धयः॥ प्रागल्भ्याद्वक्तुमिच्छंतिमंत्रिष्वभ्यंतरीकृताः ॥ १४ ॥

जातेहैं और वह बहुश्रुत कहकर नहीं मानाजाता अर्थात् उसका शास्त्रज्ञान व्यर्थ है ॥ १० ॥ हे राक्षसश्रेष्ठ ! साम, दान, भेद, विक्रम पहले कहे हुए पांच योग नीति और अनीति ॥ ११ ॥ और अर्थ धर्म काम सम्बन्धी मंत्रणा मंत्रीलोगोंके साथ उचित समय पर जो बुद्धिमान राजा किया करते हैं उनको कभी दुःख प्राप्त नहीं होता ॥ १२ ॥ बुद्धिमान अर्थके तत्त्वोंको जाननेंवाले मंत्रिलोगोंके सहित अपने शुभ परिणामका विचार करके जो राजा कार्य किया करताहै; उसकी भाग्यलक्ष्मी अचल होकर टिकी रहती है ॥ १३ ॥ परन्तु कोई २ पुरुष किसी प्रकारसे जो परामर्श करनेंमें बुलाये गये, तौ वे पशुबुद्धिलोग मारे ढिठाईके शास्त्रका अर्थ न जाननें वाले पुरुषसे कुछ औरका औरही अर्थ कह देतेहैं; ॥ १४॥

मेघकी समान शब्दायमान रथ, हाथी, घोड़े और रथी लोग उस सैनाके पीछे २ चलनें लगे ॥ ३४ ॥ सर्प, ऊंट, गधे, सिंह, हाथी मृगादि पक्षियोंके ऊपर सवार होहोकर राक्षस लोग महा बलवान कुंभकर्णके पीछे २ गमन करनें लगे ॥ ३५ ॥ इस प्रकारसे वह महोत्कट रुधिरकी गन्धसे मतवाला और तीक्ष्ण शूल धारण किये हुए देव दानवोंका शत्रु कुंभकर्ण चला; उस कालमें उसके मस्तकपर छत्रलग रहाथा, और चारों ओरसे उसके ऊपर फूलोंकी वर्षा हो रहीथी ॥ ३६ ॥ कुंभकर्णके पीछे २ बहुतसे पैदल सारवान महाबलवान भयंकर पराक्रमकारी और भयंकर नेत्रवाले राक्षस हाथोंमें शस्त्र लिये चले ॥३७॥ राक्षसोंकी आँखें लाल होरहीथीं मूर्त्तिनीले अंजनके ढेरकी समान थी; वह राक्षसगण शूल, खड्ग फरसोंको और

सर्पैरुष्ट्रैःखरैश्चैवसिंहद्विपमृगद्विजैः ॥ अनुजग्मुश्चतंघोरंकुंभकर्णमहाबलम् ॥ ३५ ॥ सपुष्पवर्षैरवकीर्यमाणो धृतातपत्रःशितशूलपाणिः ॥ महोत्कटःशोणितगंधमत्तोविनिर्ययौदानवदेवशत्रुः ॥ ३६ ॥ पदातयश्चबहवोमहा सारामहाबलाः ॥ अन्वयूराक्षसाभीमाभीमाक्षाःशस्त्रपाणयः ॥ ३७ ॥ रक्ताक्षाःसुबहुव्यामानीलांजनचयोपमाः ॥ शूलानुद्यम्यखड्गांश्चनिशितांश्चपरश्वधान् ॥ ३८ ॥ भिंदिपालांश्चपरिघान्गदाश्चमुसलानिच ॥ तालस्कंधांश्चविपु लान्क्षेपणीयान्दुरासदान् ॥ ३९ ॥ अथान्यद्वपुरादायदारुणंघोरदर्शनम् ॥ निष्पपातमहातेजाःकुंभकर्णोमहाबलः ॥ ॥ ४० ॥ धनुःशतपरीणाहःसषट्शतसमुच्छ्रितः ॥ रौद्रःशकटचक्राक्षोमहापर्वतसन्निभः ॥ ४१ ॥ सन्निपत्यचरक्षांसि दग्धशैलोपमोमहान् ॥ कुंभकर्णोमहावक्त्रःप्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ४२ ॥

दूसरे अस्त्र शस्त्र धारण करके गमन करनें लगे ॥ ३८ ॥ और भिन्दिपाल, परिघ, गदा, मूसल, तालस्कन्ध बड़े २ क्षेपणीय शस्त्रादि लिये वह दुष्ट राक्षस चले ॥ ३९ ॥ इसके उपरान्त महावीर कुम्भकर्णनें इस समस्त सैनाको साथ ले भयंकर मूर्त्ति धारण कर युद्ध करनेंके लिये यात्रा की॥४०॥उस समय कुंभकर्णका देह शत धनुष अर्थात् तीन शत हाथही चौडाईमें था, और एक शत छैः धनुष अर्थात् ११८ हाथका लंबाथा छकड़ेके पहियोंकी समान नेत्र थे; और पर्वतकी समान दिखाई देताथा ॥ ४१ ॥ भस्म हुए पर्वतकी समान बड़े भारी मुखवाला कुंभकर्ण व्यूहकी रचना

चढ़ाय क्रोध प्रगटकर यह कहनेंलगा ॥ २२ ॥ हे कुम्भकर्ण ! हम तुम्हारे गुरु और आचार्यकी समान पूजनीयहैं सो तुम हमको उलटा उप देश देतेहो ! जो कुछभीहो इस वार्त्तालापसे क्या प्रयोजनहै ? जो कुछ हमनें कहा उसको तुम पूरा करो ॥ २३ ॥ और हमने, विभ्रमसे चित्तके मोहसे और बल वीर्यके घमंडके मोहसे वशमें होकर पहले जो तुम सबका उपदेश नहीं सुना; सो उसही उपदेशको अब फिरसे कहनेंकी क्या आवश्य कताहै ? ॥ २४ ॥ वीत गये हुए कार्यके लिये सोच करना कर्तव्य नहीं है,कारणकि जो वीतगया वह तौ वीतही गया, इसलिये हे वीर ! इस समय जो करना उचितहो; उसकीही चिन्ता तुम करो; हमको अन्याय करनेंसे जो दुःख उत्पन्न हुआहै वह तुम अपने विक्रमसे दूर करो ॥ २५ ॥ यदि

मान्योगुरुरिवाचार्यःकिंमांत्वमनुशाससि ॥ किमेवंवाक्छ्रमंकृत्वायद्युक्तंतद्विधीयताम् ॥ २३ ॥ विभ्रमाच्चित्तमो हाद्वाबलवीर्याश्रयेणवा ॥ नाभिपन्नमिदानींयद्व्यर्थातस्यपुनःकथा ॥ २४ ॥ अस्मिन्कालेतुयद्युक्तंतदिदानींविचिंत्य ताम् ॥ ममापनयजंदुःखंविक्रमेणसमीकुरु ॥ २५ ॥ यदिखल्वस्तिमेस्नेहोविक्रमंवाधिगच्छसि ॥ यदिकार्यंममै तत्तेहृदिकार्यतमंमतम् ॥२६॥ ससुहृद्योविपन्नार्थंदीनमभ्युपपद्यते ॥ सबंधुर्योऽपनीतेषुसाहाय्यायोपकल्पते ॥ २७ ॥ तमथैवंब्रुवाणंसवचनंधीरदारुणम् ॥ रुष्टोऽयमितिविज्ञायशनैःश्लक्ष्णमुवाचह ॥ २८ ॥ अतीवहिसमालक्ष्यभ्रातरंक्षु भितेंद्रियम् ॥ कुंभकर्णःशनैर्वाक्यंबभाषेपरिसांत्वयन् ॥ २९ ॥ शृणुराजन्नवहितोममवाक्यमरिंदम ॥ अलंराक्षस राजेंद्रसंतापमुपपद्यते ॥ रोषंचसंपरित्यज्यस्वस्थोभवितुमर्हसि ॥ ३० ॥

हमारे प्रति तुम्हारा स्नेहहो, यदि तुम्हारे शरीरमें बल विक्रमहो; यदि हमारा यह कार्य तुम्हारे मनमें बड़ा भारी कार्यहो तौ हमको इस दुःखसे छुटा ओ ॥२६॥ जोविपदमें पड़े हुए और दीनभावापन्न लोगोंके ऊपर दया कियाकरतेहैं वह सुहृदहै परन्तु नीतिके मार्गसे चलायमान होंनेपरभी जो सहायता कियाकरतेहैं बन्धु उनकोही कहतेहैं ॥२७॥ रावणके इस प्रकार धीर और करुणा वचन कहनेंपर कुंभकर्णनें (भाई साहब क्रोधित होगये) यह जानकर धीरे २ मधुर वाणीसे कहनेका अभिलाष किया॥२८॥ महावीर कुम्भकर्ण अपने भ्राताको महाविकलेन्द्रिय देखकर समझाता बुझाताहुआ कुंभकर्ण बोला ॥ २९ ॥ हे राजन् ! एकाग्रचित्त होकर हमारे वचन सुनो ऐसे संतापित होनेंकी कुछ आवश्यकता नहीं है; क्रोध

परन्तु कालवशसे प्रेरित हुआ कुंभकर्ण उन रोमहर्षण बडे २ उत्पातोंको कुछभी न समझता हुआ चला ही गया ॥ ५२ ॥ पर्वताकार कुंभकर्ण पैदल ही चलकर कोटकी भीतके वाहर आया कि उसमें मेघमाला की समान अद्भुत वानरोंकी सैनाको देखा ॥५३॥ पर्वताकार राक्षस वीर कुंभकर्णको निहारकर पवनसे उडाये हुए मेघकी समान सब वानर लोग इधर उधर भागने लगे ॥ ५४ ॥ वीर कुंभकर्ण प्रचंड वानरोंकी सैनाको मेघ जालकी समान इधर उधर भागता हुआ देखकर हर्षके मारे मेघकी समान गंभीर शब्दसे सिंहनाद करनें लगा ॥ ५५ ॥ जिस प्रकार आकाशमें मेघोंका

अचिंतयन्महोत्पातानुदितान्रोमहर्षणान् ॥ निर्ययौकुंभकर्णस्तुकृतांतबलचोदितः ॥ ५२ ॥ सलंघयित्वाप्राकारंप द्भ्यांपर्वतसन्निभः ॥ सददर्शघनप्रख्यंवानरानीकमद्भुतम् ॥ ५३ ॥ तेदृष्ट्वाराक्षसश्रेष्ठंवानराःपर्वतोपमम्॥ वायुनुन्नाइव घनाययुःसर्वदिशस्तदा ॥ ५४ ॥ तद्वानरानीकमतिप्रचंडंदिशोद्रवद्भिन्नमिवाभ्रजालम् ॥ सकुंभकर्णःसमवेक्ष्यहर्षान्न नादभूयोघनवद्घनाभः ॥ ५५ ॥ तेतस्यघोरंनिनदंनिशम्ययथानिनादंदिविवारिदस्य ॥ पेतुर्धरण्यांबहवःप्लवंगानि कृत्तमूलाइवशालवृक्षाः ॥ ५६ ॥ विपुलपरिघवान्सकुंभकर्णोरिपुनिधनायविनिःसृतोमहात्मा ॥ कपिगणभयमाददत्सु भीमंप्रभुरिवकिंकरदंडवान्युगांते ॥ ५७ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०युद्धकांडेपंचषष्टितमःसर्गः ॥ ६५ ॥ ॥ छ ॥ सलंघयित्वाप्राकारंगिरिकूटोपमोमहान् ॥ निर्ययौनगरात्तूर्णंकुंभकर्णोमहाबलः ॥ १ ॥

गर्जना शब्द हुआ करता है ऐसेही कुंभकर्ण की घोर सिंहनाद सुनकर वानरोंमेंसें वहुतसे जड़कटे शाल वृक्षकी समान पृथ्वीपर गिर पडे ॥ ५६ ॥ इस प्रकारसे शत्रुका विनाश करनेंके लिये आया हुआ बड़ाभारी शूल हाथमें लिये हुए महा बलवान कुंभकर्ण किंकर गणोंके साथ प्रलयकालीन दंड हाथमें लिये शंकरजीकी समान वानर लोगोंको भयंकर भय उत्पन्न करानें लगा ॥ ५७ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०यु० पंचषष्टितमःसर्गः ॥ ६५ ॥ इसके उपरान्त पर्वताकार महावीर कुंभकर्ण लंकाके प्राकार (कोटकीभीत) को लांघ अति शीघ्रता पूर्वक नगरके वाहर निकला ॥ १ ॥

हे अनघ! कैसा आश्चर्यहै कि रामचंद्रके विनाशकी अभिलाष किये यह समस्त राक्षसगण व हम यह सबही आपको अनेक प्रकारसें समझा रहेहैं, तथापि आप क्यों ऐसे व्यथित होतेहैं ॥ ३९ ॥ हेराक्षसोंके नाथ! रामचंद्रके लिये आपको भय अच्छा! वह पहले हमारा नाश करे पीछे आपका अधिक क्या कहैं यदि हम पहले मारे जांय तौ हमको इसकेलिये कुछ संतापित न होंना चाहिये ॥ ४० ॥ हे शत्रुओंके तपानेवाले! हे अतुल विक्रम! इस समय जैसी इच्छाहो वैसीही आज्ञा हमको दीजिये। शत्रुओंके साथ युद्ध करनेंके लिये आपके जानेंका क्या प्रयोजनहै अब और किसीको युद्धमें भेजनेंके लिये न देखिये ॥ ४१ ॥ हमही अकेले आपके महाबलवान शत्रुका प्राण संहार कर डालेंगे यदि इन्द्र, यम, अग्नि, वायु ॥ ४२॥ कु

कथंचराक्षसैरेभिर्मयाचपरिसांत्वितः ॥ जिघांसुभिर्दाशरथिंव्यथसेवंसदानघ ॥ ३९ ॥ मांनिहत्यकिलत्वांहिनिह निष्यतिराघवः ॥ नाहमात्मनिसंतापंगच्छेयंराक्षसाधिप ॥ ४० ॥ कामंत्विदानीमपिमांव्यादिशत्वंपरंतप ॥ नपरःप्रे क्षणीयस्तेयुद्धायातुलविक्रम ॥ ४१ ॥ अहमुत्सादयिष्यामिशत्रूंस्तवमहाबलान् ॥ यदिशक्रोयदियमोयदिपावकमा रुतौ ॥ ४२ ॥ तानहंयोधयिष्यामिकुबेरवरुणावपि ॥ गिरिमात्रशरीरस्यशितशूलधरस्यमे ॥ ४३ ॥ नर्दतस्तीक्ष्णदंष्ट्र स्यबिभीयाद्वैपुरंदरः॥अथवात्यक्तशस्त्रस्यमृद्नतस्तरसारिपून् ॥ ४४ ॥ नमेप्रतिमुखःकश्चित्स्थातुंशक्तोजिजीविषुः ॥ नैवशक्त्यानगदयानासिनानिशितैःशरैः ॥ ४५ ॥ हस्ताभ्यामेवसंरभ्यहनिष्यामिसवज्रिणम् ॥ यदिमेमु ष्टिवेगंसराघवोद्यसहिष्यति ॥ ४६ ॥

बेर और वरुण यह समस्तभी हमारे विमुख युद्धमें खड़े होजांय तौ हम उनकोभी संहार करेंगे युद्ध करनेंकी कथा तौ दूर रहै जिस समय हम तीक्ष्ण शूल धारण करके खड़े होजांयगे तौ उस कालमें हमारा यह पर्वताकार शरीर ॥ ४३ ॥ और तीक्ष्ण दंत देख व सिंहनाद श्रवण करके इन्द्र भी डरकर भाग जायगा ; अथवा अधिक कहनेंकी क्या आवश्यकताहै, जबकि हम अस्त्र शस्त्रोंको चलाय २ कर शत्रुओंको मलते होंगे ॥ ४४ ॥ उस कालमें अपने जीवन बचानेंकी आशा किये कोई जन हमारे सन्मुख टिकनेंके लिये समर्थ न होगा; न शक्ति, न गदा, न असि, न तीखे बाण, इनमेंसे किसीकोभी हम नहीं चाहते ॥ ४५ ॥ हम क्रोधित होकर केवल अपनी बाहोंके बलहीसे जो इन्द्रभी हो तौ उसकोभी मार डालेंगे, यदि वह

परन्तु महावलवान् कुम्भकर्ण वड़े २ पर्वतोंके शृङ्ग, शिला, और फूले फले हुए वृक्षोंसे ताड़ित होकरभी क्षणभरके लियेभी चलायमान नहीं हुआ ॥ १० ॥ अधिक करके शिला और वृक्ष फूले हुए उसके शरीर पर गिर खंड २ हो पृथ्वीपर गिरनें लगे ॥ ११ ॥ अग्निके वनको जलानेंकी समान क्रोधमें भरकर महा तेजस्वी कुंभकर्णभी वानरोंकी उस सैनाको अति यत्नके साथ मथनें लगा ॥ १२ ॥ उस कालमें बहुतसे वानरगण अरुण रंगके पुष्पोंसे शोभित वृक्षोंकी समान लाल २ रुधिरसे देह भिगाये पृथ्वीपर गिर २ कर शयन करनें लगे ॥ १३ ॥ उनमेंसे कोई २ वानर किसी ओरको न देखकर भागते हुए लांघनेंके अभिप्रायसे समुद्रमें गिरनें लगे; और कोई २ सघन वनोंमें छिप गये ॥ १४ ॥ अधिक

प्रांशुभिर्गिरिशृंगैश्चशिलाभिश्चमहाबलाः ॥ पादपैःपुष्पिताग्रैश्चहन्यमानोनकंपते ॥ १० ॥ तस्यागात्रेषुपतिताभिद्यंतेब हवःशिलाः ॥ पादपाःपुष्पिताग्राश्चभग्नाःपेतुर्महीतले ॥ ११ ॥ सोपिसैन्यानिसंक्रुद्धोवानराणांमहौजसाम् ॥ ममंथ परमायत्तोवनान्यग्निरिवोत्थितः ॥ १२ ॥ लोहितार्द्रास्तुबहवःशेरतेवानरर्षभाः ॥ निरस्ताःपतिताभूमौताम्रपुष्पाइव द्रुमाः ॥ १३ ॥ लंघयंतःप्रधावंतोवानरानावलोकयन् ॥ केचित्समुद्रेपतिताःकेचिद्गगनमास्थिताः ॥ १४ ॥ वध्य मानास्तुतेवीराराक्षसेनचलीलया ॥ सागरंयेनतेतीर्णाःपथातेनैवदुद्रुवुः ॥ १५ ॥ तेस्थलानितदानिम्नंविवर्णवदना भयात् ॥ ऋक्षावृक्षान्समारूढाःकेचित्पर्वतमाश्रिताः ॥ १६ ॥ निपेतुःकेचिदपरेकेचिन्नैवावतस्थिरे ॥ केचिद्भूमौनिपतिताः केचित्सुप्तामृताइव ॥ १७ ॥ तान्समीक्ष्यांगदोभग्नान्वानरानिदमब्रवीत् ॥ अवतिष्ठतयुध्यामोनिवर्तध्वंप्लवंगमाः ॥ १८ ॥

क्या कहें उसकालमें अनेक वानर वीर उस राक्षस कुंभकर्णसे लीला सहित मारे जाकर मरनेके निकट पहुंच जिस मार्गसे समुद्रके पार हुएथे उसी मार्गसे भागनें लगे ॥ १५ ॥ रीछ गणभी भयके मारे विवर्ण मुखहो कोई २ गुफामें प्रवेश करगये, कोई २ वृक्षोंपर चढ़े, और कोई २ पर्वतोंपर आरोहण करते हुए ॥ १६ ॥ कोई २ पर्वतों परसे नीचे उतर आये और कोई २ नीचे नहीं उतरे वही पर रहे; कोई २ मृतक होगये, और कोई २ मृतक तुल्य होकर पृथ्वीपर सोरहे ॥ १७ ॥ तब अंगदजी वानरोंकी यह अवस्था देखकर उनसे बोले तुम लोग लौटो, हम फिर युद्ध करेंगे ॥ १८ ॥

हेराजन्! हम दशरथकुमार रामचंद्रको वध करके आपको असीम सुख प्राप्त करनेंके लिये चले लक्ष्मणके सहित रामचंद्रका विनाश करके हम समस्त वानरोंके यूथपोंको खालेंगे ॥ ५५ ॥ इस समय आप मनके सुखसे मदिरा पानकर स्त्रियोंके सहित विहार करते रहैं, और जितनाभर मनका दुःखहै वह आप छोड़दें । आप निश्चय रक्खें कि यमराजके भवनमें रामचन्द्रके पहुंच जानेंपर सीता सदाके लिये आपके वशमें होजायगी ॥ ५६ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥ विशालबाहु बड़े भारी देहवाले महाबलवान् कुम्भकर्णके ऐसे वचन सुन कर राक्षस महोदर कहने लगा॥१॥हे कुंभकर्ण! तुम बड़े भारी कुलमें जन्मे तौ हो परन्तु ढिठाई और गर्वके मारे तुम यथार्थ अवस्थाको नहीं जान सकते,

वधेनतेदाशरथेःसुखावहंसुखंसमाहर्तुमहंव्रजामि ॥ निहत्यरामंसहलक्ष्मणेनखादामिसर्वान्हरियूथमुख्यान् ॥ ५५ ॥ रमस्वराजन्पिबचाद्यवारुणींकुरुष्वकृत्यानिविनीयदुःखम् ॥ मयाद्यरामेगमितेयमक्षयंचिरायसीतावशगाभविष्यति ॥ ५६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेत्रिषष्टितमःसर्गः ॥ ६३ ॥ ॥ ७ ॥ तदुक्तमतिकायस्यबलिनोबाहुशालिनः ॥ कुंभकर्णस्यवचनंश्रुत्वोवाचमहोदरः ॥ १ ॥ कुंभकर्णकुलेजातोधृष्टप्राकृतदर्शनः ॥ अवलिप्तोनशक्नोषिकृत्यंसर्वत्रवेदितुम् ॥ २ ॥ नहिराजानजानीतेकुंभकर्णनयानयौ ॥ त्वंतुकैशोरकाद्धृष्टःकेवलंवक्तुमिच्छसि ॥ ३ ॥ स्थानंवृद्धिंचहानिंचदेशकालविधानवित् ॥ आत्मनश्चपरेषांचबुध्यतेराक्षसर्षभः ॥ ४ ॥ यत्त्वशक्यंबलवतावक्तुंप्राकृतबुद्धिना ॥ अनुपासितवृद्धेनकःकुर्यात्तादृशंनरः ॥ ५ ॥

इसी कारणसे कौन समय क्या करना चाहिये यहभी तुम नहीं जानते॥ २ ॥हमारे राजा क्या नीति अनीतिको नहीं जानतेहैं;तुम बालक पनसेही ढीठहो, इसी कारणसे ऐसे अनर्थक वचनोंका जाल फैलाया करतेहो ॥३॥राक्षसराज देश और कालके विभागको जानतेहैं;इनसे अपने ओरकी और शत्रुके ओरकी उन्नति छिपी नहीं है,और अपने पक्षके क्षय वृद्धिके अभावमें किसप्रकारसे रहना होताहै,इन सब बातोंकोही यह जानतेहैं ॥ ४ ॥ जिसनें कभी बड़े बूढेकी पूजानहीं की ऐसी प्राकृत बुद्धिवाले और बलसे गर्वित लोग जो कार्य किया करतेहैं,क्या नीति जाननेंवाले लोग वैसे कार्योंको कर सकतेहैं॥५॥

लोगोंका नाश करसके तौ इस लोकमें अतुल कीर्त्तिको प्राप्त करेंगे ॥२५॥ जिस प्रकार पतंग दीप्तिमान अग्निके निकट होकर अपने जीवनकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं होता, वैसेही कुंभकर्णभी रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीके निकट आयकर फिर जीता हुआ लंकाको लौटकर नहीं जासकैगा॥२६॥ विशेष करके हम लोग महावीर और बहुत सारे होकरभी यदि एक राक्षससे भय पायकर भाग जांयगे और इस प्रकार अपने प्राणोंकी रक्षाकरेंगे तौ इस्से हमारा यश नष्ट होजायगा ॥ २७ ॥ कनकका बाजू पहरे शूर श्रेष्ठ अंगदजीके यह वचन सुन भागकर चले जाते हुए वानर लोग शूर गणोंके आगे निन्दा पानेके योग्य वचन बोले ॥ २८ ॥ हे वीरश्रेष्ठ! महाबलवान् कुम्भकर्ण अति घोर संग्राम कर रहाहै, इस समय हम लोग उसके सन्मुख किसी प्रकारसे खड़े नहीं हो सकते हैं, जो कुछभीहो हमें अपना प्राण अत्यन्त प्याराहै;इस कारण भाग जानेमेंही हमारी भलाई है॥ २९॥

नकुंभकर्णःकाकुत्स्थंदृष्ट्वाजीवन्गमिष्यति ॥ दीप्यमानमिवासाद्यपतंगोज्वलनंयथा ॥ २६ ॥ पलायनेनचोद्दिष्टाः प्राणान्रक्षामहेवयम् ॥ एकेनबहवोभग्नायशोनाशंगमिष्यति ॥ २७ ॥ एवंब्रुवाणंतंशूरमंगदंकनकांगदम् ॥ द्रवमाणास्ततोवाक्यमूचुःशरविगर्हितम् ॥ २८ ॥ कृतंनःकदनंघोरंकुंभकर्णेनरक्षसा ॥ नस्थानकालोगच्छामोदयितंजीवितंहिनः ॥ २९ ॥ एतावदुक्त्वावचनंसर्वेतेभेजिरेदिशः ॥ भीमंभीमाक्षमायांतंदृष्ट्वावानरयूथपाः॥ ३० ॥ द्रवमाणास्तु तेवीराअंगदेनवलीमुखाः ॥ सांत्वनैश्चानुमानैश्चततःसर्वेनिवर्तिताः ॥ ३१ ॥ प्रहर्षमुपनीताश्चवालिपुत्रेणधीमता ॥ आज्ञाप्रतीक्षास्तस्थुश्चसर्वेवानरयूथपाः ॥ ३२ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेषट्षष्टितमःसर्गः॥ ६६ ॥ ७ ॥ तेनिवृत्तामहाकायाःश्रुत्वांगदवचस्तदा॥ नैष्ठिकींबुद्धिमास्थायसर्वेसंग्रामकांक्षिणः॥ १॥

वानरोंके यूथपति भयंकर नेत्रवाले भयंकर रूपवान कुम्भकर्णको आया हुआ देखकर केवल इतनाही कहकर चारों ओरको भागनें लगे ॥ ३० ॥ परन्तु अंगदजीनें समझाय बुझाय लालच दिवाय, उन भागते हुए वानर गणोंके यूथनाथोंको किसी प्रकारसे फिर लौटारा ॥ ३१ ॥ तब बुद्धिमान अंगदजीने उन सब वानरोंको उत्साहित किया, और यूथपति लोगभी युद्ध करनेके लिये वाट जोहनें लगे ॥ ३२ ॥ (इसके उपरान्त शरभ, मैन्द धूम्र, नील, कुमुद, सुषेण, गवाक्ष, रम्भ, तार, द्विविद और पवनकुमार हनुमानादि मुख्य २ वानर अतिशीघ्रतासे समरभूमिकी ओर चले) इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि० युद्धकांडे षट्षष्टितमः सर्गः॥६६॥अंगदजीके वचन सुनकर समस्त वानर लौटपडे; और अपनी मृत्युका

भयसे भीत होकर ऐसे छिपे हुएहैं कि तुम अबभी उनको युद्धमें आया हुआ नहीं देखोगे ॥ १३ ॥ आहा ! कैसे आश्चर्यकी बातहै कि तुम जान बूझकर भी क्रोधित होकर सोये हुए केसरी और श्रेष्ठ सर्पकी समान दशरथकुमार रामचंद्रको जगानेकी इच्छा करते हो ॥ १४ ॥ जो रामचंद्र अपने तेजसे प्रदीप्त हैं और क्रोधवश होनेके कारण अत्यन्त दुर्द्धर्ष हैं सो कौन पुरुष मृत्युकी समान सहन करनेके अयोग्य उन वीरश्रेष्ठके निकट बढ़नेंकी इच्छा करताहै॥१५॥हे तात!यह समस्त राक्षस गण इकट्ठे होकर रामचंद्रके सन्मुख टिक कर जीते हुए नहीं रह सकते हैं हमेंतो इसमें भी सन्देहहै इसलिये रामचंद्रसें युद्ध करनेके लिये अकेले तुम्हारा जाना हमारी सम्मतिमें नहीं आता॥१६॥स्वयं हीनबल होकरभी कौन पुरुष अपना जीवही देनेंके लिये

तंसिंहमिवसंक्रुद्धंरामंदशरथात्मजम् ॥ सर्पंसुप्तमहोबुद्ध्वाप्रबोधयितुमिच्छसि ॥ १४ ॥ ज्वलंतंतेजसानित्यंक्रोधेनच दुरासदम् ॥ कस्तंमृत्युमिवासह्यमासादयितुमर्हति ॥ १५ ॥ संशयस्थमिदंसर्वंशत्रोःप्रतिसमासने ॥ एकस्यगमनं तातनहिमेरोचतेभृशम्॥१६॥हीनार्थस्तुसमृद्धार्थंकोरिपुंप्राकृतंयथा ॥ निश्चितंजीवितत्यागेवशमानेतुमिच्छति॥१७॥ यस्यनास्तिमनुष्येषुसदृशोराक्षसोत्तम ॥ कथमाशंससेयोद्धुंतुल्येनेंद्रविवस्वतोः ॥ १८ ॥ एवमुक्त्वातुसंरब्धंकुंभकर्णंमहोदरः ॥ उवाचरक्षसांमध्येरावणंलोकरावणम् ॥ १९ ॥ लब्ध्वापुरस्ताद्वैदेहींकिमर्थंत्वंविलंबसे ॥ यदीच्छसि तदासीतावशगातेभविष्यति ॥ २० ॥ दृष्टःकश्चिदुपायोमेसीतोपस्थानकारकः ॥ रुचितश्चेत्स्वयाबुद्ध्याराक्षसेंद्रततः शृणु ॥ २१ ॥ अहंद्विजिह्वःसंह्रादीकुंभकर्णोवितर्दनः ॥ पंचरामवधायैतेनिर्यांतीत्यवघोषय ॥ २२ ॥

दूसरे प्राकृत शत्रुकी समान बलवान शत्रुको अपने वशमे लानेंकी इच्छा कर सकताहै ? ॥ १७ ॥ हे राक्षसोंमें श्रेष्ठ ! त्रिलोकीमें जिनकी समान कोईभी नहीं है तुम किसलिये सूर्य और इन्द्रकी समान इन इक्ष्वाकुवंशावतंस श्रीरामचन्द्रजीके साथ अकेलेही युद्ध करनेंका अभिलाष करतेहो ॥ १८ ॥ राक्षस महोदरनें क्रोधित होकर कुम्भकर्णसे ऐसा कह राक्षसोंके बीचमें बैठे हुए फिर लोगोंके रुवानें वाले रावणसे कहा ॥ १९ ॥ आप सीताको प्राप्त करनेंमें किसलिये देर कर रहे हैं, यदि आपकी इच्छाहो तौ सीता इसी समय आपके वशमें होसकतीहै ॥ २० ॥ हमनें सीताको वशमें करनेंका एक उपाय स्थिर कियाहै; यदि आपकी बुद्धिमेंभी वह भला ज्ञातहो तौ उसको सुनकर आप कीजिये ॥ २१ ॥ वह उपाय यहहै कि

कार कुम्भकर्णकी ओर दौड़ा ॥ ९ ॥ उस वानर श्रेष्ठनें पर्वतका शिखर उखाड़तेही कुम्भकर्ण पर चलाया, परन्तु वह पर्वतका शिखर कुम्भकर्णके ऊपर न गिरके उसकी सैनापर गिरा ॥ १० ॥ उस पर्वत शृङ्गके गिरनेंसे उस सैनाके अश्व, गज, और रथ समस्त चूर्ण होगये । तब वानर द्विविद और एक पर्वतका शृङ्ग चलायकर और राक्षसोंका नाश करनें लगे ॥ ११ ॥ वानर श्रेष्ठ द्विविदके चलाये शैल शृङ्गनें अत्यन्त वेगसे गिरकर राक्षसोंके रथ सारथियोंके सहित चूर्णकर डाले ॥ क्षण भरमें रण भूमि राक्षसोंके रुधिरसे गीली होगई ॥१२॥ तब रणमें बैठे हुए महावीर राक्षस लोग भयंकर सिंहनाद करके कालाग्निकी समान बाण चलाय २ वानरोंका नाश करनें लगे ॥ १३ ॥ इस ओर महा बलवान् वानर गणभी बड़े वृक्षोंको

तंसमुत्पाट्यचिक्षेपकुंभकर्णायवानरः ॥ तमप्राप्यमहाकायंतस्यसैन्येपतत्ततः ॥ १० ॥ ममर्दाश्वान्गजांश्चापिरथां
श्चापिगजोत्तमान् ॥ तानिचान्यानिरक्षांसिएवंचान्यद्गिरेःशिरः ॥ ११ ॥ तच्छैलवेगाभिहतंहताश्वंहतसारथिम् ॥
रक्षसांरुधिरक्लिन्नंबभूवायोधनंमहत् ॥ १२ ॥ रथिनोवानरेंद्राणांशरैःकालांतकोपमैः ॥ शिरांसिनदतांजह्रुःसहसाभी
मनिःस्वनाः ॥१३॥ वानराश्चमहात्मानःसमुत्पाट्यमहाद्रुमान् ॥ रथानश्वान्गजानुष्ट्रान्राक्षसानभ्यसूदयन् ॥१४॥
हनूमाञ्छैलशृंगाणिशिलाश्चविविधान्द्रुमान् ॥ ववर्षकुंभकर्णस्यशिरस्यंबरमास्थितः ॥ १५ ॥ तानिपर्वतशृंगाणिशूले
नसबिभेदह ॥ बभंजवृक्षवर्षंचकुंभकर्णोमहाबलः ॥ १६ ॥ ततोहरीणांतदनीकमुग्रंदुद्रावशूलंनिशितंप्रगृह्य ॥
तस्थौसतस्यापततःपुरस्तान्महीधराग्रंहनुमान्प्रगृह्य ॥ १७ ॥ सकुंभकर्णंकुपितोजघानवेगेनशैलोत्तमभीमकायम् ॥
संचुक्षुभेतेनतदाभिभूतोमेदार्द्रगात्रोरुधिरावसिक्तः ॥ १८ ॥

उखाड़कर रथ, अश्व, हाथी, ऊंट, और राक्षसोंको विध्वंश करनें लगे ॥१४॥ महावीर हनुमानजीनें आकाश मार्गमें टिककर पर्वतोंके शृङ्ग विविध शिलाखंड और अनेक वृक्ष कुम्भकर्णके मस्तकपर चलाये ॥ १५ ॥ राक्षसवीर महाबलवान कुंभकर्णने देखते २ इन सब शैल शृंगादिकोंको शूलसे खंड २ कर डाला और पलक मारतेमे वृक्षादिकोंको चूर्ण करदिया ॥ १६ ॥ इसके उपरान्त कुंभकर्ण तीक्ष्ण शूल हाथमें लेकर वानर सैनाकी ओर दौड़ा, यह देखकर हनुमानजी एक बड़ा भारी पर्वतका शृङ्ग ग्रहण करके उसके सन्मुख खडे रहे ॥१७॥ तब हनुमानजीनें अत्यन्त क्रोधमें

जब सब ओर फैलेगी,तब इसको सीताभी सुनेंगी,॥३०॥तब आप अशोक वनमें प्रवेश करके एकान्तमें सीताको समझाना बुझाना और धन धान्य रत्न और कामना करने लायक वस्तुओंसे लुभाना ॥ ३१ ॥ हे राजन्! नाथ हीन सीताका अभिलाष होनेपरभी ऐसे शोकके उत्पन्न करानें वालेसे धोखाखाय आपके वशमें होजायगी ॥ ३२ ॥ जानकी अपने प्यारे पतिको नाश हुआ देख सब भांतिकी आशा छोड़ स्त्रीस्वभावकी लघुताईसे आपके वशमें पड़कर आपहीका आश्रय ग्रहण करैंगी ॥ ३३ ॥उन सीतानें पहले अनेक प्रकारके भोग सुख भोगेथे, कभी दुःखका मुखभी नहीं देखा, इस समय वह महादुःख भोग रही हैं; बस वह यह समझकर कि आपके निकट रहनेंसे बड़ा सुख मिलेगा; आपके वशमें होनेंके लिये

प्रविश्याश्वास्यचापित्वंसीतांरहसिसांत्वयन् ॥ धनधान्यैश्चकामैश्चरत्नैश्चैनांप्रलोभय ॥ ३१ ॥ अनयोपधयाराजन्भूयःशोकानुबंधया ॥ अकामात्वद्वशंसीतानष्टनाथागमिष्यति॥ ३२॥ रमणीयंहिभर्तारंविनष्टमधिगम्यसा॥ नैराश्यात्स्त्रीलघुत्वाच्चत्वद्वशंप्रतिपत्स्यते ॥ ३३ ॥ सापुरासुखसंवृद्धासुखार्हादुःखकर्षिता ॥ त्वय्यधीनंसुखंज्ञात्वा सर्वथैवागमिष्यति ॥ ३४ ॥ एतत्सुनीतंममदर्शनेनरामंहिदृष्ट्वैवभवेदनर्थः ॥ इहैवतेसेत्स्यतिमोत्सुकोभूर्महानयुद्धेनसुखस्यलाभः ॥ ३५ ॥ अनष्टसैन्योह्यनवाप्तसंशयोरिपुंत्वयुद्धेनजयञ्जनाधिप ॥ यशश्चपुण्यंचमहान्महीपतिःश्रियंचकीर्तिंचचिरंसमश्नुते॥ ३६ ॥इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेचतुःषष्टितमःसर्गः ॥ ६४ ॥

असम्मत नहीं होगी ॥ ३४ ॥ हे महाराज! हमारे विचारमें तो यही बात उचित जान पड़ताहै और इससेही आपका अभिलाष पूर्ण होगा; इस कारण आप संग्रामभूमिमें रामचन्द्रके सहित युद्ध करनेंका अभिलाष न कीजिये, क्योंकि उस्से सुख प्राप्त न होकर बरन बड़े भारी अनर्थके होनेकी संभावनाहै ॥३५॥हेजनाधिप! जो महान् महीपति अपने आप संशयमें न पड़कर और सैनाको नाश न करके विना युद्ध किये शत्रुलोगोंको जीतलेतेहैं; वह विपुल यश,सुख,सम्पत्ति और कीर्त्तिको प्राप्त करतेहैं ॥ ३६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे चतुःषष्टितमःसर्गः॥६४॥

वह वालिकी छातीमें जाकर महावेगसे लगा ॥ ३५ ॥ तब महातेजमान् वीर्यवान् वानरराज वालि वाणसे घायल होकर पृथ्वीपर गिर पडा ॥ ३६॥
जिस प्रकार आश्विन मासमें पूर्णमासीके अंतमें इन्द्रध्वज गिर पडताहै, वैसेही वालिके प्राण निकलनें लगे, और वह वनाथ मूर्च्छित होगया॥३७॥
कफके मारे उसका कंठ रुकगया और सहज २ आरत स्वर उसनें प्रगट किया ॥ ३८॥ जिस प्रकार श्रीशंकरजी मुखसे धूम अग्नि छोडतेहैं वैसेही
कालकी समान नरोत्तम श्रीरामचंद्रजीनें सुवर्णविभूषित शत्रुओंका नाश करनेंवाला बाण वालिपर छोडा ॥ ३९ ॥ फिर शरीरसे रुधिर निकलता
हुआ पर्वत परसे उत्पन्न हुए अशोक वृक्षकी समान इन्द्रसुत वालि चेतनारहित, पवनवेगसे टूटे हुए इन्द्रध्वजकी समान पृथ्वीपर गिरपडा ॥ ४० ॥

ततस्तेनमहातेजावीर्ययुक्तःकपीश्वरः ॥ वेगेनाभिहतोवालीनिपपातमहीतले ॥ ३६ ॥ इंद्रध्वजइवोद्धूतःपौर्णमास्यां महीतले ॥ आश्वयुक्समयेमासिगतसत्त्वोविचेतनः ॥ ३७ ॥ बाष्पसंरुद्धकंठस्तुवालीचार्तस्वरःशनैः ॥ ३८ ॥ नरोत्तमःकालइवांतकोपमंशरोत्तमंकांचनरूपभासितम्॥ससर्जदीप्तंतममित्रमर्दनंसधूममग्निंमुखतोयथाहरः ॥ ३९॥ अथोक्षितःशोणिततोयविस्रवैःप्रपुष्पिताशोकइवाचलोद्गतः ॥ विचेतनोवासवसूनुराहवेप्रभ्रंशितेंद्रध्वजवत्क्षितिंगतः ॥ ४० ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेषोडशः सर्गः ॥ १६ ॥ ॥ छ ॥

ततःशरेणाभिहतोरामेणरणकर्कशः ॥ पपातसहसावालीनिकृत्तइवपादपः ॥ १ ॥ सभूमौन्यस्तसर्वांगस्तप्तकांचनभूषणः ॥ अपतद्देवराजस्यमुक्तरश्मिरिवध्वजः ॥ २ ॥ अस्मिन्निपतितेभूमौहर्यृक्षाणांगणेश्वरे ॥ नष्टचंद्रमिवव्योमनव्यराजतमेदिनी ॥ ३ ॥ भूमौनिपतितस्यापितस्यदेहंमहात्मनः ॥ नश्रीर्जहातिनप्राणानतेजोनपराक्रमः ॥ ४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीयेआदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे षोडशःसर्गः॥१६॥ जब श्रीरामचन्द्रजीनें बाण मारा, तब वह रणशूर वालि उस बाणसे घायल हो कटे हुये वृक्षकी समान पृथ्वीपर गिर पडा ॥ १ ॥ उज्ज्वल सुवर्णके भूषण धारण किये हुये वालि डोरी छोड दिये हुये इंद्रध्वजकी समान गिरकर अपने सब अंग पृथ्वीपर लुटाता हुआ ॥ २ ॥ जब वानर गणोंका राजा वालि पृथ्वीपर गिर पडा तब उसके राज्यकी भूमि चंद्रमा रहित आकाशकी समान शोभाहीन होगई ॥ ३ ॥ यद्यपि वालि पृथ्वीपर गिर पडा, परन्तु उस महात्माके लक्ष्मी, तेज, प्राण और पराक्रम कुछ न गये॥४॥

कर्णने जब यह कहा तब राक्षस रावण उस्से हँसकर बोला ॥ ९ ॥ हेवत्स !युद्धविशारद ! हम निश्चय कहतेहैं कि महोदर रामचंद्रको देखकर डर गया होगा इसी कारणसे इसका युद्ध करनेंका अभिलाष नहींहोता ॥१०॥ हेकुम्भकर्ण ! क्या सुहृदतामें, क्या बलके प्रभावमें तुम्हारी समान अपना पुरुष हमारा कोईभी नहींहै, इस कारण तुम शत्रुलोगोंका वध साधन करनेंके लिये और विजय पानेंके अर्थ शीघ्र लंकापुरीसे बाहर चलो ॥ ११ ॥ हेशत्रुनाशी ! तुम घोर नींदमें मग्नथे, हमनें शत्रुको जीत लेनेहीके अर्थ तुमको जगवायाहै; इस समय राक्षस लोगोंपर घोर संकट पड़ा देखकर ॥१२॥ फांसी हाथमें लिये यमराज जिस प्रकारसे दौड़तेहैं; उनकीही समान तुमभी शूल हाथमें धारण कर युद्धकी यात्रा करो । और

महोदरोयंरामात्तुपवित्रस्तौनसंशयः ॥ नहिरोचयतेतातयुद्धंयुद्धविशारद ॥ १० ॥ कश्चिन्मेत्वत्समोनास्तिसौहृदेनबलेनच ॥ गच्छशत्रुवधायत्वंकुंभकर्णजयायच ॥ ११ ॥ शयानःशत्रुनाशार्थंभवान्संबोधितोमया ॥ अयंहिकालःसुमहान्राक्षसानामरिंदम ॥ १२ ॥ संगच्छशूलमादायपाशहस्तइवांतकः ॥ वानरान्राजपुत्रौचभक्षयादित्यतेजसौ ॥ १३ ॥ समालोक्यतुतेरूपंविद्रविष्यंतिवानराः ॥ रामलक्ष्मणयोश्चापिहृदयेप्रस्फुटिष्यतः ॥ १४ ॥ एवमुक्त्वामहातेजाःकुंभकर्णमहाबलम् ॥ पुनर्जातमिवात्मानंमेनेराक्षसपुंगवः ॥ १५ ॥ कुंभकर्णबलाभिज्ञोजानंस्तस्यपराक्रमम् ॥ बभूवमुदितोराजाशशांकइवनिर्मलः ॥ १६ ॥ इत्येवमुक्तःसंहृष्टोनिर्जगाममहाबलः ॥ राज्ञस्तुवचनंश्रुत्वायोद्धुमुद्युक्तवांस्तदा ॥ १७ ॥

सूर्यकी समान प्रभावाले राम लक्ष्मणको मार कर पीछेसे वानरोंकोभी भक्षण कर लेना ॥ १३ ॥ हम जानतेहैं कि तुम्हारी भयंकर मूर्त्ति देखनें पर वानर लोग प्राणोंके डरसे भाग जायँगे, और राम लक्ष्मणकाभी हृदय विदीर्ण होजायगा ॥ १४ ॥ राक्षसश्रेष्ठ रावण महाबलवान् कुम्भकर्णसे यह कहकर जयकी आशासे यह समझाकि, मानो दूसरा जन्म हुआ ॥ १५ ॥ उस समय रावणका अंतःकरण पूर्णमासीके चंद्रमाकी समान निर्मल होगया, रावण कुम्भकर्णके बल विक्रमको जानताथा; इसलिये उसको युद्धके लिये तैयार देख इसके आनंदकी सीमा न रही ॥ १६ ॥ कुम्भकर्णभी राक्षसराज रावणके कहे हुए ऐसे वचन सुनकर परम सन्तुष्ट हुआ, और युद्धमें जानेंकी तैयारियें करनें लगा ॥ १७ ॥

जाय युद्धके लिये समयको देखनें लगा ॥ १७ ॥ सुग्रीवजीभी दृढ मुक्का बाँधकर दर्पमें भर हेमशाली वालिकी ओर गमन करनें लगे ॥१८॥ वालि रणपण्डित क्रोधसे लाल२ नेत्र किये सुग्रीवको महावेगसे आता हुआ देखकर बोला ॥ १९ ॥ यह देखो सब उंगलियोंको सकोड कर हमनें दृढ रूपसे जो यह महामुष्टिका बाँधीहै हम इसको महा वेगसे तुम्हारे ऊपर चलामेंगे इसमें कोई संदेह नहींकि इसके लगतेही तुम्हारा प्राण निकल जायगा जब वालिनें ऐसा कहा तब सुग्रीवजीभी उस्से क्रोधित होकर बोले कि देखा यह हमनें जो मुक्का बांधाहै यहभी तुम्हारे मस्तकपर पडकर प्राण लेहीलेगा ॥२०॥२१॥तब वालिनें अत्यन्त क्रोधित होकर वेगसे जाकर सुग्रीवजीके मुक्का मारा।उस मुक्केके लगनेंसे सुग्रीवजी झरनें सहित पर्वतकी समान रुधिर

श्लिष्टंमुष्टिंसमुद्यम्यसंरब्धतरमागतः ॥ सुग्रीवोपिसमुद्दिश्यवालिनंहेममालिनम् ॥ १८ ॥ तंवालीक्रोधताम्राक्षंसुग्रीवंरणकोविदम् ॥ आपतंतंमहावेगमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १९ ॥ एषमुष्टिर्महान्बद्धोगाढःसुनियतांगुलिः ॥ मयावेगविमुक्तस्तेप्राणानादाययास्यति ॥ २० ॥ एवमुक्तस्तुसुग्रीवःक्रुद्धोवालिनमब्रवीत् ॥ तवचैषहरन्प्राणान्मुष्टिःपततु मूर्धनि ॥ २१ ॥ ताडितस्तेनतंक्रुद्धःसमभिक्रम्यवेगतः ॥ अभवच्छोणितोद्गारीसापीडइवपर्वतः ॥ २२ ॥ सुग्रीवेणतुनिःशंकंसालमुत्पाट्यतेजसा ॥ गात्रेष्वभिहतोवालीवज्रेणेवमहागिरिः ॥ २३ ॥ सतुवृक्षेणनिर्भग्नःसालताडनविह्वलः ॥ गुरुभारभराक्रांतानौःससार्थेवसागरे ॥ २४ ॥ तौभीमबलविक्रांतौसुपर्णसमवेगितौ ॥ प्रयुद्धौघोरवपुषौचंद्रसूर्याविवांबरे ॥ २५ ॥ परस्परममित्रघ्नौछिद्रान्वेषणतत्परौ ॥ ततोऽवर्धतवालीतुबलवीर्यसमन्वितः ॥ २६ ॥

उगलते २पृथ्वीपर गिरे॥२२॥फिर सुग्रीवजीनें झटपट उठकर अति तेजीसे निःशंकहो एक शालका वृक्ष उखाड वालिके मारा, जैसे इन्द्रजीनें वज्रसे पर्वतोंको माराथा ॥ २३ ॥ उस वृक्षके लगनेंसे विह्वलहो वालि समुद्रके मध्य चलती बहुत बोझसे लदीहुई नावके समान चल विचल होनें लगा ॥ २४ ॥वह भयंकर बल वीर्यशाली चन्द्रमा सूर्यकी समान, गरुडतुल्य वेगवान् घोरतरदेहधारी वालि और सुग्रीव महाघोर युद्ध करनें लगे ॥ २५ ॥ परस्पर एक दूसरेका दोष ढूंढनेंमें तैयारहुये दोनों वीर परस्पर चोट चलानें लगे। लड़ते २ बलवीर्य युक्त वालि समरमें जय

फिर बाजू अंगूठी आदि श्रेष्ठ २ भूषण और चंद्रमाकी समान उज्ज्वल हार महात्मा कुंभकर्णको रावणने पहराया ॥ २६ ॥ कुंभकर्णके कानोंमें मनो हर दो कुंडल शोभायमान हुए, और उसके गलेमें अतिसुगन्धित शोभायमान माला रावणनें पहराई ॥ २७ ॥ बड़े कानवाला कुम्भकर्ण सुवर्णके बाजू, केयूर और वह दूसरे आभूषणोंसे भूषित होकर प्रदीप्त अग्निकी समान शोभायमान होने लगा ॥ २८ ॥ उसकी कमरमें काला तगड़ीका डोरा देखनेसे ऐसा जान पड़ताथा, मानो समुद्रसे अमृत मथन करनेंके समय सर्पद्वारा मन्दर पर्वत दृढरूपसे बँधा हुआहै ॥ २९ ॥ कुम्भकर्णनें सुवर्ण का बना हुआ बिजलीकी प्रभाके समान वर्म (बख्तर) धारण किया, वह तेजके प्रभावसे दमकरहाथा, बड़ा भारी था, अभेद्य था, इस बख्तरसे,

अंगदान्यंगुलीवेष्टान्वराण्याभरणानिच ॥ हारंचशशिसंकाशमाबबंधमहात्मनः ॥ २६ ॥ दिव्यानिचसुगंधीनिमाल्यदामानिरावणः ॥ गात्रेषुसज्जयामासश्रोत्रयोश्चास्यकुंडले ॥ २७ ॥ कांचनांगदकेयूरनिष्काभरणभूषितः ॥ कुंभकर्णोबृहत्कर्णःसुहुतोग्निरिवाबभौ ॥ २८ ॥ श्रोणीसूत्रेणमहतामेचकेनविराजता ॥ अमृतोत्पादनेनद्धोभुजंगेनेवमंदरः ॥ २९ ॥ सकांचनंभारसहंनिवातंविद्युत्प्रभंदीप्तमिवात्मभासा ॥ आबध्यमानःकवचंरराजसंध्याभ्रसंवीतइवाद्रिराजः ॥ ३० ॥ सर्वाभरणसर्वांगःशूलपाणिःसराक्षसः ॥ त्रिविक्रमकृतोत्साहोनारायणइवाबभौ ॥ ३१ ॥ भ्रातरं संपरिष्वज्यकृत्वाचापिप्रदक्षिणम् ॥ प्रणम्यशिरसातस्मैप्रतस्थेसमहाबलः ॥ ३२ ॥ तमाशीर्भिःप्रशस्ताभिःप्रेषयामासरावणः ॥ शंखदुंदुभिनिर्घोषैःसैन्यैश्चापिवरायुधैः ॥ ३३ ॥ तंगजैश्चतुरंगैश्चस्यंदनैश्चांबुदस्वनैः ॥ अनुजग्मुर्महात्मानोरथिनोरथिनांवरम् ॥ ३४ ॥

सन्ध्या समयके मेघसे रँगे हुए हिमालय पर्वतकी समान कुम्भकर्णनें अपूर्व शोभा धारणकी ॥ ३० ॥ कुंभकर्ण समस्त भूषणोंसे भूषित और हाथमें बड़ा भारी शूल लेकर ऐसा ज्ञात हुआ, कि मानों त्रिविक्रमसे विष्णुजी, स्वर्ग मृत्यु, और पाताल लोकके तापनेंको तैयार हुएहैं ॥ ३१ ॥ महाबली कुम्भकर्ण रावणसे भलीभांति मिल भेंटकर उसकी प्रदक्षिणा कर प्रणाम करकें युद्ध करनेंके लिये चला ॥ ३२ ॥ राक्षसराज रावणनें उस समय उसको मंगलसूचक आशीर्वाद दिया, उस कालमें शंख व नगाड़ोंका कठोर शब्द उत्पन्न हुआ ॥ ३३ ॥ श्रेष्ठ हथियार लगाये हुए सैना चली

जाय युद्धके लिये समयको देखनें लगा ॥ १७ ॥ सुग्रीवजीभी दृढ मुक्का बाँधकर दर्पमें भर हेमशाली वालिकी ओर गमन करनें लगे ॥१८॥ वालि रणपण्डित क्रोधसे लाल२ नेत्र किये सुग्रीवको महावेगसे आता हुआ देखकर बोला ॥ १९ ॥ यह देखो सब उंगलियोंको सकोड कर हमनें दृढ रूपसे जो यह महामुष्टिका बाँधीहै हम इसको महा वेगसे तुम्हारे ऊपर चलामेंगे इसमें कोई संदेह नहींकि इसके लगतेही तुम्हारा प्राण निकल जायगा जब वालिनें ऐसा कहा तब सुग्रीवजीभी उस्से क्रोधित होकर बोले कि देखो! यह हमनें जो मुक्का बांधाहै यहभी तुम्हारे मस्तकपर पडकर प्राण लेहीलेगा ॥२०॥२१॥तब वालिनें अत्यन्त क्रोधित होकर वेगसे जाकर सुग्रीवजीके मुक्का मारा।उस मुक्केके लगनेंसे सुग्रीवजी झरनें सहित पर्वतकी समान रुधिर

श्लिष्टंमुष्टिंसमुद्यम्यसंरब्धतरमागतः ॥ सुग्रीवोपिसमुद्दिश्यवालिनंहेममालिनम् ॥ १८ ॥ तंवालीक्रोधताम्राक्षंसुग्रीवंरणकोविदम् ॥ आपतंतंमहावेगमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १९ ॥ एषमुष्टिर्महान्बद्धोगाढःसुनियतांगुलिः ॥ मयावेगविमुक्तस्तेप्राणानादाययास्यति ॥ २० ॥ एवमुक्तस्तुसुग्रीवःक्रुद्धोवालिनमब्रवीत् ॥ तवचैषहरन्प्राणान्मुष्टिःपततुमूर्धनि ॥ २१ ॥ ताडितस्तेनतंक्रुद्धःसमभिक्रम्यवेगतः ॥ अभवच्छोणितोद्गारीसापीडइवपर्वत. ॥ २२ ॥ सुग्रीवेणतुनिःशंकंसालमुत्पाट्यतेजसा ॥ गात्रेष्वभिहतोवालीवज्रेणेवमहागिरिः ॥ २३ ॥ सतुवृक्षेणनिर्भग्नःसालताडनविह्वलः ॥ गुरुभारभराक्रांतानौःससार्थेवसागरे ॥ २४ ॥ तौभीमबलविक्रांतौसुपर्णसमवेगितौ ॥ प्रयुद्धौघोरवपुषौचंद्रसूर्याविवांबरे ॥ २५ ॥ परस्परममित्रघ्नौछिद्रान्वेषणतत्परौ ॥ ततोऽवर्धतवालीतुबलवीर्यसमन्वितः ॥ २६ ॥

उगलते २पृथ्वीपर गिरे॥२२॥फिर सुग्रीवजीनें झटपट उठकर अति तेजीसे निःशंकहो एक शालका वृक्ष उखाड वालिके मारा, जैसे इन्द्रजीनें वज्रसे पर्वतोंको माराथा ॥ २३ ॥ उस वृक्षके लगनेंसे विह्वलहो वालि समुद्रके मध्य चलती बहुत बोझसे लदीहुई नावके समान चल विचल होनें लगा ॥ २४ ॥वह भयंकर बल वीर्यशाली चन्द्रमा सूर्यकी समान, गरुडतुल्य वेगवान् घोरतरदेहधारी वालि और सुग्रीव महाघोर युद्ध करनें लगे ॥ २५ ॥ परस्पर एक दूसरेका दोष ढूंढनेंमें तैयारहुये दोनों वीर परस्पर चोट चलानें लगे। लड़ते २ बलवीर्य युक्त वालि समरमें जय

करके अपनी सैनासे मृदु हँसकर बोला ॥ ४२ ॥ हे राक्षसगण! तुम लोग वानरोंके यूथ पतियोंको देखते हो हम इनकों इस प्रकारसे भस्म कर डालेंगे कि जैसे अग्नि पतंगको भस्म कर देतीहै ॥ ४३ ॥ अथवा वनचारी वानरलोगोंका अपराध ही क्या है वह तो हम समान पुरुषोंकी पुरी और फुलवाडियोंके ही भूषणहैं ॥ ४४ ॥ हमारे विचारमें रामचंद्र ही लंका घेरनेकी मूल हैं इसलिये आज रामचंद्र व लक्ष्मणको मारडालनेसे और सब अपने आपही से मर जांयगे ॥ ४५ ॥ कुंभकर्ण यह वात कह ही रहाथा कि इतनेंमें ही महाबलवान योद्धा लोग समुद्रको कंपायमान ही करने से मानो घोर सिंहनाद करने लगे ॥ ४६ ॥ महा बुद्धिमान कुंभकर्ण युद्धके लिये निकल रहाथा कि इतनेहीमे चारों ओर अति घोर दुर्नि

अद्यवानरमुख्यानांतानियूथानिभागशः ॥ निर्दहिष्यामिसंक्रुद्धःपतंगानिवपावकः ॥ ४३ ॥ नापराध्यंतिमेकामंवा नरावनचारिणः ॥ जातिरस्मद्विधानांसापुरोद्यानविभूषणम् ॥ ४४ ॥ पुररोधस्यमूलंतुराघवःसहलक्ष्मणः ॥ ह तेतस्मिन्हतंसर्वंतंवधिष्यामिसंयुगे ॥ ४५ ॥ एवंतस्यब्रुवाणस्यकुंभकर्णस्यरक्षसः ॥ नादंचक्रुर्महाघोरंकंपयंतइवार्णव म् ॥ ४६ ॥ तस्यनिष्पततस्तूर्णंकुंभकर्णस्यधीमतः ॥ बभूवुर्घोररूपाणिनिमित्तानिसमंततः ॥ ४७ ॥ उल्काशनियुतामेघाब भूवुर्गर्दभारुणाः ॥ ससागरवनाचैववसुधासमकंपत ॥ ४८ ॥ घोररूपाःशिवानेदुःसज्वालकवलैर्मुखैः ॥ मंडलान्यपसव्या निबबंधुश्चविहंगमाः ॥ ४९ ॥ निष्पपातचगृध्रोस्यशूलेवैपथिगच्छतः ॥ प्रास्फुरन्नयनंचास्यसव्योबाहुरकंपत ॥ ॥ ५० ॥ निष्पपाततदाचोल्काज्वलंतीभीमनिःस्वना ॥ आदित्योनिष्प्रभश्चासीन्नवातिचसुखोनिलः ॥ ५१ ॥

मित्त होनें लगे ॥ ४७ ॥ उल्का व वज्रसे युक्त मेघ गण गर्दभकी समान अरुण रंग होगये और समुद्र वनके सहित पृथ्वी कंपायमान होने लगी ॥ ४८ ॥ घोर रूप शृगालियें अँगारोंको मुखमें दिये शब्द करने लगीं और पक्षी गण अशुभ मंडल बांधकर दहिनी ओर चलने लगे ॥ ४९ ॥ जबकि कुंभकर्ण मार्ग चल रहाथा तब उस समय उसके शूल पर गिद्ध बैठगया और उसका वांया नेत्र फड़ककर वांया हाथभी कंपायमान होने लगा ॥ ५० ॥ सन्मुख बडी भारी भयंकर जलती हुई उल्का गिर पडी सूर्य भगवान प्रभाहीन होगये और जिस्से सुख प्राप्त हो सके ऐसी वायु भी नहीं चली ॥ ५१ ॥

राजा महा तेजमान जाम्बवान॥२६॥दशकोटि ऋक्षोंकी सेनाले सुग्रीवजीके वशमें आया रुमण नामक तेजस्वी पराक्रमी वानर पति बहुतसे वानरोंके साथ ॥ २७ ॥ और महाबलवान् सौ करोड वानर सेना संग लिये आया तिसके पीछे लक्ष २ करोड २ वानर संग लिये ॥ २८ ॥ महा पराक्रम करने वाला गन्धमादन नामक यूथप आया तिसके पीछे हजार पद्म और हजार शंख कपियोंकी सेनाको साथ लिये ॥ २९ ॥ अपने पिता वालिके तुल्य पराक्रम करनेवाले अतिबुद्धिमान वानरसेनापतियोंके शिरमौर युवराज अंगदजी आये फिर तारागणोंके समान प्रकाशमान अतिभयं कर पराक्रम करनेवाले वानरोंको संग लिये तार नाम यूथनाथ आया ॥ ३० ॥ उस तारके साथ अति प्रचंड पांच कोटि वानर सेना थी

कोटिभिर्दशभिर्व्याप्तःसुग्रीवस्यवशेस्थितः ॥ रुमणोनामतेजस्वीविक्रांतैर्वानरैर्वृतः ॥ २७ ॥ आगतोबलवांस्तूर्णं कोटीशतसमावृतः ॥ ततःकोटिसहस्राणांसहस्रेणशतेनच ॥ २८ ॥ पृष्ठतोऽनुगतःप्राप्तोहरिभिर्गंधमादनः ॥ ततः पद्मसहस्रेणवृतःशंखशतेनच ॥ २९ ॥ युवराजोंगदःप्राप्तःपितुस्तुल्यपराक्रमः ॥ ततस्ताराद्युतिस्तारोहरिभिर्भीम विक्रमैः ॥ ३० ॥ पंचभिर्हरिकोटीभिर्दूरतःपर्यदृश्यत ॥ इंद्रजानुःकपिर्वीरोयूथपःप्रत्यदृश्यत ॥ ३१ ॥ एकादशा नांकोटीनामीश्वरस्तैश्चसंवृतः ॥ ततोरंभस्त्वनुप्राप्तस्तरुणादित्यसन्निभः ॥ ३२ ॥ अयुतेनवृतश्चैवसहस्रेणशतेनच ॥ ततोयूथपतिर्वीरोदुर्मुखोनामवानरः ॥ ३३ ॥ प्रत्यदृश्यतकोटीभ्यांद्वाभ्यांपरिवृतोबली ॥ कैलासशिखराकारैर्वानरै र्भीमविक्रमैः॥ ३४ ॥ वृतःकोटिसहस्रेणहनुमान्प्रत्यदृश्यत ॥ नलश्चापिमहावीर्यःसंवृतोद्रुमवासिभिः ॥ ३५ ॥ को टीशतेनसंप्राप्तःसहस्रेणशतेनच ॥ ततोदरीमुखःश्रीमान्कोटिभिर्दशभिर्वृतः ॥ ३६ ॥

तदनन्तर इन्द्रजानु नामक महावीर यूथनाथ ॥ ३१ ॥ ग्यारह कोटि वानरोंको संगलिये हुये दिखाई दिया फिर प्रभातकालके बालसूर्यके वर्णकी समान रंभ नामक वानर यूथपति ॥३२॥ दशहजार एक शत वानरोंकी सेनाको संग लिये हुये सुग्रीवजीके निकट उपस्थित हुआ; इसके पीछे महावीर यूथपति दुर्मुख नामक वानर ॥३३ ॥ महाबली दोकरोड वानरोंकी सेनाको संग लिये हुये दिखाई दिया ॥ फिर कैलास पर्वतके शिखरकी तुल्य आकार वाले भयंकर पराक्रमकारी वानरों की ॥ ३४ ॥ हजार करोड सेना संग लिये आते हुये हनुमानजी दिखाई दिये ॥ फिर महा वीर्यवान् नल नामक यूथनाथ वृक्षोंपर रहनेवाले ॥ ३५ ॥ शत कोटि एक सहस्र येक वानरों की सेना संग लिये हुये आया फिर श्रीमान दधि

वह कुंभकर्ण समुद्रको कंपायमान पर्वतोंको चलायमान, और वज्रको पराजित करके घोर सिंहनाद करनें लगा ॥ २ ॥ वानर गण, इन्द्र, यम और वरुणसेभी न मारे जानें योग्य भयंकर नेत्रवाले उस राक्षसको देखकर डरके मारे भागनें लगे ॥३॥ तब वालिके पुत्र अंगदजी वानरोंको भागते हुए देखकर नल नील गवाक्ष और कुंमुदसे बोले॥ ४ ॥ यह क्या! और साधारण वानर लोगोंकी समान तुम लोगभी भयके मारे विह्वलहो कहांको भागे जाते हो? क्या तुम अपनेर परिवार और अपने २ बड़े भारी वीर्यकों भूलगये॥५॥ हेसौम्यस्वभाव वालो ! भाग करके प्राणरक्षा करनेंकी क्या आवश्य

ननादचमहानादंसमुद्रमभिनादयन् ॥ विजयन्निवनिर्घातान्विधमन्निवपर्वतान् ॥ २ ॥ तमवध्यंमघवतायमेनवरुणेनवा ॥ प्रेक्ष्यभीमाक्षमायांतंवानराविप्रदुद्रुवुः ॥ ३ ॥ तांस्तुविप्रद्रुतान्दृष्ट्वाराजपुत्रोंगदोब्रवीत ॥ नलंनीलंगवाक्षंचकुमुदंचमहाबलम् ॥ ४ ॥ आत्मनस्तानिविस्मृत्यवीर्याण्यभिजनानिच ॥ क्वगच्छतभयत्रस्ताःप्राकृताहरयोयथा ॥ ५ ॥ साधुसौम्यानिवर्तध्वंकिंप्राणान्परिरक्षथ ॥ नालंयुद्धायवैरक्षोमहतीयंविभीषिका ॥ ६ ॥ महतीमुत्थितामेनांराक्षसानांविभीषिकाम् ॥ विक्रमाद्विधमिष्यामोनिवर्तध्वंप्लवंगमाः ॥ ७ ॥ कृच्छ्रेणतुसमाश्वस्यसंगम्यचततस्ततः ॥ वृक्षान्गृहीत्वाहरयःसंप्रतस्थूरणाजिरे ॥ ८ ॥ तेनिवर्त्यतुसंरब्धाःकुंभकर्णवनौकसः ॥ निर्जघ्नुःपरमक्रुद्धाःसमदाइवकुंजराः ॥ ९ ॥

कताहै? जो कुछभीहो इस समय तुम लौट आओ,जिसको देखकर तुम लोग भय करतेहो यह तौ केवल धोखाही धोखाहै, इसमें युद्ध करनेकी सामर्थ्य नहींहै ॥ ६ ॥ हेवानर लोगो ! तुम सबके लौट आनेंपर हम सब एकत्रहो मिलकर विक्रम प्रकाश करके राक्षसोंके उठाये हुए बड़े भारी धोखेको नाश कर देंगे ॥ ७ ॥ अंगदजीके ऐसे वचन सुनकर वानरगण धीरज बांध बड़ी कठिनाईसे लौटे और वृक्ष पर्वतादि ग्रहण करके युद्ध करनेंके लिये तैयार हुए ॥ ८ ॥ मदमाते हाथियोंकी समान वह वानर गणोंनें उत्साह सहित लौटतेही क्रोधमें भरकर कुंभकर्णके ऊपर प्रहार करनें लगे ॥ ९ ॥

फिर कपिराज सुग्रीवजी; नरश्रेष्ठ परबलविनाशी श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ १ ॥ कि हमारे राज्यमें रहनेंवाले इन्द्रकी समान बलवान् काम चारी वानरयूथप लोग यहां पहुंचकर अपनी२ सेनाओंमें टिके हुयेहैं॥२॥ यह सब बहुत स्थानोंमें अपना पराक्रम प्रगट कियेहैं; ऐसे भयंकर विक्रम कारी, दैत्य दानवोंकी तुल्य घोररूप बलवान् समस्त वानरोंकी सेना आय पहुँचीहै ॥ ३॥ यह सब कर्म करनेंमें विख्यात, अपने वीर्यमें विख्यात बडे बलवान् युद्धमें कभी थकतेही नहीं,पराक्रम करनेंमें विख्यात अर्थका निश्चय करनेंमें स्थिर प्रतिज्ञावान॥४॥बडे श्रेष्ठ, समुद्रके तीरपर बसनें वाले, और अनेक पर्वतोंके वासी,आपके दास यह करोड २ वानर गण यहां पर आगयेहैं ॥ ५ ॥ हे शत्रुनाशी ! वह सब वानर देशोंके पालनेंवाले स्वामीके

अथराजासमृद्धार्थःसुग्रीवःप्लवगेश्वरः॥उवाचनरशार्दूलंरामंपरबलार्दनम्॥१ ॥आगताविनिविष्टाश्चबलिनःकामचारिणः॥वानरेंद्रामहेंद्राभायेमद्विषयवासिनः॥२॥तइमेबहुविक्रांतैर्बलिभिर्भीमविक्रमैः॥आगतावानराघोरादैत्यदानवसन्निभाः ॥ ३ ॥ ख्यातकर्मापदानाश्चबलवंतोजितक्लमाः ॥ पराक्रमेषुविख्याताव्यवसायेषुचोत्तमाः ॥ ४ ॥ पृथिव्यंबुचरारामनानानगनिवासिनः ॥ कोटयोघाश्चइमेप्राप्तावानरास्तवकिंकराः ॥ ५ ॥ निदेशवर्तिनःसर्वेसर्वेगुरुहितेस्थिताः ॥ अभिप्रेतमनुष्ठातुंतवशक्ष्यंत्यरिंदम ॥ ६ ॥ तइमेबहुसाहस्रैरनेकैर्बहुविक्रमैः ॥ आगतावानराघोरादैत्यदानवसन्निभाः ॥ ७ ॥ यन्मन्यसेनरव्याघ्रप्राप्तकालंतदुच्यताम् ॥ त्वत्सैन्यंत्वद्वशेयुक्तमाज्ञापयितुमर्हसि ॥ ८ ॥ काममेवमिदंकार्यंविदितंममतत्त्वतः ॥ तथापितुयथायुक्तमाज्ञापयितुमर्हसि ॥ ९ ॥ तथाब्रुवाणंसुग्रीवंरामोदशरथात्मजः ॥ बाहुभ्यांसंपरिष्वज्यइदंवचनमब्रवीत् ॥ १० ॥

हित कार्यमें रत आपके इच्छानुसार कार्यको साधन करनेंमें निःसन्देह समर्थ होंगे ॥ ६ ॥ वही यह हजार २ कोटि २ बहुत स्थानोंमें अपने पराक्रमको प्रकाश किये घोररूपी, दैत्य दानवोंकी समान वानरगण यहां पर आगयेहैं॥७ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! अब समय उपस्थितहै; अब जैसा आपका विचारहो वह कहिये, यह सब आपकी सेना आपके वशमेंहै; इस समय जो ठीक और उचित आज्ञाहो वह इनको दीजिये ॥ ८ ॥ हम इन लोगोंका ठीक बल जानतेहैं; तथापि आप इन सबकों युक्तिसे युक्तहो वही आज्ञा दीजिये ॥ ९ ॥ जब सुग्रीवजीनें इस प्रकार कहा तब दशरथ कुमारश्रीरा

हे वानर गण ! तुम रणभूमिको छोड़कर भागे जातेहो परन्तु हम सारी पृथ्वीपर भी तुम्हारे कहीं रहनेंका स्थान नहीं देखते कि तुम वहां भयरहित होकर बच जाओ और अपने २ प्राणोंकी रक्षा कर सको, इसलिये शीघ्र लौट आओ; इस प्रकारकी प्राण रक्षा करनेंसे क्या होगा; क्योंकि जहां रहोगे वहां सुग्रीव तुम्हें मरवा डालेंगे ॥ १९ ॥ हे अतुल गतिवान् पौरुषयुक्त वानरो! तुम यदि अपने आयुधोंका त्याग करके इस प्रकारसे भाग अपने प्राणोंकी रक्षा करोगे; तब तुम्हारी स्त्रियें जो तुम्हारा उपहास करेंगी; वह उनका हँसना ही मृत्युकी समान होजायगा ॥ २० ॥ आश्चर्य! तुम सबने बडे २ कुलोंमें जन्म ग्रहण कियाहै सो तुम साधारण वानरोंकी समान भयभीत होकर कहां भागे जातेहो ? तुम लोग जबकि अपना

भग्नानांवोनपश्यामिपरिक्रम्यमहीमिमाम् ॥ स्थानंसर्वैर्निवर्तध्वंकिंप्राणान्परिरक्षथ ॥ १९ ॥ निरायुधानां क्रमतामसंगगतिपौरुषाः ॥ दाराह्युपहसिष्यंतिसवैघातःसुजीवताम् ॥ २० ॥ कुलेषुजाताःसर्वेस्मिन्विस्तीर्णेषुमहत्सुच ॥ क्वगच्छतभयत्रस्ताःप्राकृताहरयोयथा ॥ अनार्याःखलुयद्भीतास्त्यक्त्वावीर्यंप्रधावत ॥ २१ ॥ विकत्थनानिवायानिभवद्भिर्जनसंसदि ॥ तानिवःक्वनुयातानिसोदग्राणिहतानिच ॥ २२ ॥ भीरोःप्रवादाःश्रूयंतेयस्तुजीवतिधिक्कृतः ॥ मार्गःसत्पुरुषैर्जुष्टःसेव्यतांत्यज्यतांभयम् ॥ २३ ॥ शयामहेवानिहताःपृथिव्यामल्पजीविताः ॥ प्राप्नुयामोब्रह्मलोकंदुष्प्रापंचकुयोधिभिः ॥ २४ ॥ अवाप्नुयामःकीर्तिंवानिहत्वाशत्रुमाहवे ॥ निहतावीरलोकस्यभोक्ष्यामोवसुवानराः ॥ २५ ॥

विपुल विक्रम भूलकर भीत हुए हो तब तुम अति नीच और राजद्रोही हो ॥ २१ ॥ अपनी २ उग्रता दिखलानें, और वानर राज सुग्रीवका हित साधन करनेंके लिये तुमनें उस समय जो बड़ी २ बातें मारी थीं वह समस्त बातें कहां अन्तर्ध्यान होगईं ॥ २२ ॥ जिसको सत्पुरुष लोग धिक्कार दिया करते हैं, उस भीरुके नरकमें गिरने आदिके प्रवाद सुनाई देतेहैं इस कारण सत्पुरुषोंके सेवन करनें योग्य मार्गमें चलकर भयको त्यागदो; क्यों भय खातेहो? ॥ २३ ॥ यदि आयुके पूरा होजानेसे हम सब शत्रुओंसे नाशको प्राप्त होकर रणभूमिमें दैवात् पृथ्वीपर गिरें तौ अवीर गणोंको प्राप्त होंनेके अयोग्य ब्रह्म लोकको हम प्राप्त करेंगे ॥ २४ ॥ और वीर गणोंके सुखसे भोग करनेंके धनको प्राप्त करेंगे, और जो समरमें शत्रु

ढूँडनेकेसमय सब पर्वतोंकी कन्दरा ओंमें दुर्गम स्थानोंमें, सब बनोंमें और नदियोंमें; रमणीय गंगा सरयू कौशिकी ॥ २० ॥ कालिन्दी, मनोहर यमुनाऔर यमुनाके समीप वाले सब पर्वतोंको, और सरस्वती,सिन्धु, मणि तुल्यस्वच्छ जल वाला शोणभद्र॥ २१ ॥मही और शैल कानन सहित काल मही औरभी समस्त नदियोंमें और ब्रह्ममाल विदेह, मालव, काशिराज, और कौशलदेश ॥ २२॥ मागध, महाग्राम. पुण्ड्र, अंग, इन समस्त देशोंमें और कोषाकार रेशमकेकीडे जहां होतेहैं, व चांदीकी खानि वालीभूमिमें जहाँ खानोंसे चांदी निकलतीहै ॥ २३ ॥ उन सब स्थानोंमें तुम लोग सीताजी और रावणका स्थान खोजते हुये, जहां कहींभी स्त्री रामचंद्रजीकी भार्या और दशरथजीकी पुत्र वधू जानकीजीहों देखना ॥ २४ ॥

मार्गध्वंगिरिदुर्गेषुवनेषुचनदीषुच ॥ नदींभागीरथींरम्यांसरयूंकौशिकींतथा॥२०॥कालिंदींयमुनांरम्यांयामुनंचमहा
गिरिम् ॥ सरस्वतींचसिंधुंचशोणंमणिनिभोदकम्॥ २१ ॥ महींकालमहींचापिशैलकाननशोभिताम् ॥ ब्रह्ममाला
न्विदेहांश्चमालवान्काशिकोसलान् ॥ २२ ॥ मागधांश्चमहाग्रामान्पुंड्रांस्त्वंगांस्तथैवच ॥ भूमिंचकोशकाराणांभूमिं
चरजताकराम् ॥ २३ ॥ सर्वंचतद्विचेतव्यंमृगयद्भिस्ततस्ततः ॥ रामस्यदयितांभार्यांसीतांदशरथस्नुषाम् ॥ २४ ॥
समुद्रमवगाढांश्चपर्वतान्पत्तनानिच॥मंदरस्यचयेकोटिंसंश्रिताःकेचिदालयाः ॥ २५ ॥ कर्णप्रावरणाश्चैवतथाचाप्यो
ष्ठकर्णकाः॥घोरलोहमुखाश्चैवजवनाश्चैकपादकाः॥२६॥अक्षयाबलवंतश्चतथैवपुरुषादकाः॥किरातास्तीक्ष्णचूडाश्चहे
माभाःप्रियदर्शनाः॥२७॥ आममीनाशनाश्चापिकिराताद्वीपवासिनः॥अंतर्जलचराघोरानरव्याघ्राइतिस्मृताः ॥२८ ॥

और जो जो पर्वत और नगर समुद्रके टापुओंमें हों, और मन्दराचल पर्वतके किनारोंपर जो देश वसते हों, उन सबमें तुम भली प्रकार ढूँडना भालना ॥ २५ ॥ जो कानों तक वस्त्र लपेटेहों और जिनके कान अधरपर्यन्तहों, । और जिनका घोर लोह सम मुखहो, बडे वेगसे चलनें वाले व एक पादक लोग जो टापुओंमेंहैं ॥ २६ ॥ और अक्ष संतान बलवान्राक्षस, किरात तीक्षण चूडा वाले बडे बाल वाले सुवर्ण समान दीप्तिमान्, प्रियदर्शन ॥ २७ ॥ और जिन किरात देशोंमें कच्ची मछलियें भक्षणकी जातीहैं, ऐसे किरात गण; नीचेके भागमें मनुष्योंकी समान आकार

होना मनमें ठान युद्ध करनेंका अभिलाष करते हुए ॥ १ ॥ तिसके पीछे बलवान अंगदजीके वचनोंसे वह सब प्रकारसे युद्ध करनेंको आरूढ हुए और उन लोगोंका वीर्य प्रदीप्त होनेंसे वह सब फिर पराक्रम प्रकाश करनें लगे ॥ २ ॥ वह समस्त वानरगण अपने प्राणोंकी आशा छोड़कर मरणमें कृत निश्चयहो कठोर युद्धका आरंभ करतेहुए ॥ ३ ॥ तिसके उपरान्त वह बड़े शरीर वाले वानर गण, वृक्ष और पर्वतोंके शृङ्ग उठायकर कुम्भ कर्णके सन्मुख धाये ॥ ४ ॥ परन्तु वीर्यवान महाकाय कुम्भकर्ण क्रोधमें भर गदा उठाय शत्रुओंको धर्षित करके चारों ओरसे उनके

समुदीरितवीर्यास्तेसमारोपितविक्रमाः ॥ पर्यवस्थापितावाक्यैरंगदेनबलीयसा ॥ २ ॥ प्रयाताश्चगताहर्षंमरणेकृत
निश्चयाः ॥ चक्रुःसुतुमुलंयुद्धंवानरास्त्यक्तजीविताः ॥ ३ ॥ अथवृक्षान्महाकायाःसानूनिसुमहांतिच ॥ वानरास्तूर्ण
मुद्यम्यकुंभकर्णमभिद्रवन् ॥ ४ ॥ कुंभकर्णःसुसंक्रुद्धोगदामुद्यम्यवीर्यवान् ॥ धर्षयन्समहाकायःसमंताद्व्यक्षिपद्रिपू
न् ॥ ५ ॥ शतानिसप्तचाष्टौचसहस्राणिचवानराः ॥ प्रकीर्णाःशेरतेभूमौकुंभकर्णेनताडिताः ॥ ६ ॥ षोडशाष्टौचदश
चविंशत्रिंशत्तथैवच ॥ परिक्षिप्यचबाहुभ्यांखादन्सपरिधावति ॥ भक्षयन्भृशसंक्रुद्धोगरुडःपन्नगानिव ॥ ७ ॥ कृच्छ्रे
णचसमाश्वस्ताःसंगम्यचततस्ततः ॥ वृक्षाद्रिहस्ताहरयस्तस्थुःसंग्राममूर्धनि ॥८॥ ततःपर्वतमुत्पाट्यद्विविदःप्लवग
र्षभः ॥ दुद्रावगिरिशृंगाभंविलंबइवतोयदः ॥ ९ ॥

ऊपर प्रहार करनें लगा ॥ ५ ॥ उस समय असंख्य वानरवीर कुम्भकर्णके प्रहारसे ताडितहो अपनी देह पृथ्वीपर पसारकर सोगये ॥ ६ ॥ जिस प्रकार गरुडजी सर्पोंको भक्षण करतेहैं वैसेही अत्यन्त क्रोधित हुआ कुम्भकर्ण, एक २ वारमें सोलह अठारह, और बीस तीसतक वानरोंको अपनी बांहोंसे पकडकर मुखमें डालकर खाय जाताथा ॥ ७ ॥ वानर लोगभी बड़े कष्टसे सावधान चित्तहो इकट्ठे हुए और वृक्ष व पर्वतोंको हाथमें ग्रहणकर रणभूमिमें विराजमान होंने लगे ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त लंबमान बादलकी समान वानरश्रेष्ठ द्विविद एक पर्वत उखाड़के पर्वता

इसलिये तिस समयमें मेघोंके समान गर्जते और बडे २ सर्पोंसे सेवितहोनेके कारण पार जानेके अयोग्य उस समुद्रमें सुघाट पर उतरना ॥ ३८ ॥
जब इसके पार होजाओगे, तब लाल रंगके जलसे भरे भयंकर लोहित नामकसागर पर जाकर वहां एक बडा भारी शाल्मलीका वृक्ष देखोगे * ॥ ३९ ॥
वहांपर पक्षीनाथ गरुडजीका, कैलाश पर्वतकी समान अनेक रत्नोंसे भूषित विश्वकर्मीका बनाया हुआ गृह विराजमानहै ॥ ४० ॥ वहांपर सुरा समुद्रके
पर्वतोंके शृंगोंपर पर्वत तुल्य भयंकर देह धारी, नाना रूपी, भयावह, मंदेह नाम वाले राक्षस गण नीचे मुख किये लटके रहते हैं ॥ ४१ ॥
यह राक्षस सूर्यके उदय होनेपर उनसे युद्ध करनेंको आकर सूर्यके तेजसे तीनों वर्णोंके दिये हुये सन्ध्या समयके जलसे घायल होकर समुद्रके

तंकालमेघप्रतिमंमहोरगनिषेवितम् ॥ अभिगम्यमहानादंतीर्थेनैवमहोदधिम् ॥ ३८ ॥ ततोरक्तजलंभीमंलोहितं
नामसागरम् ॥ गत्वाप्रेक्ष्यथतांचैवबृहतींकूटशाल्मलीम् ॥ ३९ ॥ गृहंचवैनतेयस्यनानारत्नविभूषितम् ॥ तत्रकैलाससं
काशंविहितंविश्वकर्मणा ॥ ४० ॥ तत्रशैलनिभाभीमामंदेहानामराक्षसाः ॥ शैलशृंगेषुलंबंतेनानारूपाभयावहाः ॥ ४१ ॥
तेपतंतिजलेनित्यंसूर्यस्योदयनंप्रति ॥ अभितप्ताःस्मसूर्येणलंबंतेस्मपुनःपुनः ॥ ४२ ॥ निहताब्रह्मतेजोभिरहन्यहनि
राक्षसाः ॥ ततःपांडुरमेघाभंक्षीरोदंनामसागरम् ॥ ४३ ॥ गत्वाद्रक्ष्यथदुर्धर्षामुक्ताहारमिवोर्मिभिः ॥ तस्यमध्ये
महाञ्छ्वेतोऋषभोनामपर्वतः ॥ ४४ ॥ दिव्यगंधैःकुसुमितैराचितैश्चनगैर्वृतः ॥ सरश्चराजतैःपद्मैर्ज्वलितैर्हैमकेसरैः ॥ ४५ ॥

जलमें गिर पडते हैं; और फिर जीवित होकर इन पर्वतके कँगूरोंपर लटकनें लगते हैं ॥ ४२ ॥ इन राक्षसोंको सन्ध्याके समय प्रतिदिन ब्राह्मण
लोग मारते हैं; उनके मारनेंसे सूर्य रूपी भगवान प्रसन्न हो जाते हैं,इससे आगे बढकर उजले बादरकी समान क्षीर सागर देखोगे ॥ ४३ ॥ यह क्षीर
सागर अपनी लहरोंसे ऐसा शोभायमान हो रहा है; मानों मोतियोंका हार पहर रहा हो;उस क्षीर सागरके मध्य में तुम अति श्वेत ऋषभ नामक प
र्वत देखोगे ॥ ४४ ॥ इस पर्वतके ऊपर सुवासित पुष्प युक्त अनेक प्रकारके वृक्ष लगे हैं और वहीं पर एक तलावभी बडा उत्तम है जिसमें अनेक

* इस्से शाल्मली द्वीपका अनुमान होताहै ।

इन्द्रकी दी हुई अति उत्तम रत्नभूषित सुवर्णकी माला, उस वानरश्रेष्ठके प्राण, तेज, और देह लक्ष्मीको धारण किये रही ॥ ५ ॥ वानरराज उस सुवर्णकी मालासे संध्याकालीन जलधरकी समान शोभा धारण करता हुआ ॥६॥ यद्यपि वालि गिर पडा, परंतु उस समयभी ऐसा शोभित होताथा कि मानों लक्ष्मी, माला, देह,और मर्म घाती शर इन तीन रूपोंमें प्रगटहो शोभायमान होरहा हैं॥७॥श्रीरामचंद्रजीके धनुषसे छूटा हुआ स्वर्गका साधक वह बाण उस वीर वालिको परम गतिका देनेंवाला हुआ ॥८॥ युद्धस्थलमें शिखारहित अग्निकी समान गिरे पुण्य क्षय होनेंपर देवलोकसे खसे यया

शक्रदत्तावरामालाकांचनीरत्नभूषिता ॥ दधारहरिमुख्यस्यप्राणांस्तेजःश्रियंचसा ॥ ५ ॥ सतयामालयावीरोहैमयाहरियूथपः ॥ संध्यानुगतपर्यंतःपयोधरइवाभवत् ॥ ६ ॥ तस्यमालाचदेहश्चमर्मघातीचयःशरः ॥ त्रिधेवरचितालक्ष्मीः पतितस्यापिशोभते ॥ ७ ॥ तदस्त्रंतस्यवीरस्यस्वर्गमार्गप्रभावनम् ॥ रामबाणासनक्षिप्तमावहत्परमांगतिम् ॥ ८ ॥ तंतथापतितंसंख्येगतार्चिषमिवानलम् ॥ ययातिमिवपुण्यांतेदेवलोकादिहच्युतम् ॥ ९ ॥ आदित्यमिवकालेनयुगांतेभुविपातितम् ॥ महेंद्रमिवदुर्धर्षमुपेंद्रमिवदुःसहाम् ॥ १० ॥ महेंद्रपुत्रंपतितंवालिनंहेममालिनम् ॥ व्यूढोरस्कंमहाबाहुंदीप्तास्यंहरिलोचनम् ॥ ११ ॥ लक्ष्मणानुचरोरामोददर्शोपससर्पच ॥ तंतथापतितंवीरंगतार्चिषमिवानलम् ॥ १२ ॥ बहुमान्यचतंवीरंवीक्षमाणंशनैरिव ॥ उपयातौमहावीर्यौभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ १३ ॥ तंदृष्ट्वाराघवंवालीलक्ष्मणंचमहाबलम् ॥ अब्रवीत्परुषंवाक्यंप्रश्रितंधर्मसंहितम् ॥ १४ ॥

तिकी तुल्य ॥ ९ ॥ युगान्तके समय पृथ्वीमें गिरे हुये सूर्यकी समान इन्द्रकी समान दुर्द्धर्ष उपेन्द्रकी समान दुस्सह ॥ १० ॥ चौडी छातीवाले महाबाहु प्रदीप्तवदन सिंहलोचन इन्द्रके पुत्र हेममाली वालिको ॥ ११ ॥ रणस्थलमें देख श्रीरामचंद्र लक्ष्मणजीके सहित उसके निकट गये जहां वह वीर बुझी हुई अग्निके समान पृथ्वीपर गिरा पडाथा ॥ १२ ॥ वह मानके करने योग्य श्रीराम लक्ष्मणजी उस वीरश्रेष्ठ वालिके निकट उसको देखते २ गये ॥ १३ ॥ वालि महाबलवान् श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीको देखकर धर्मयुक्त

चिह्न स्वरूप सीमाके अंतमें बिन्दुकी समान निर्माण कर रक्खा है उसके आगे परम हेममय देवता ओंका होता श्रीमान् उदय पर्वत है ॥ ५४ ॥ इस पर्वतकी एक कोटि सौ योजन चौडीहै, और उसके कँगूरे ऐसे ऊंचे हैं कि आकाशको स्पर्शही किये लेते हैं। वह सुवर्णकी बनी वेदी आधार पर्वतके सहित विराजमान है ॥ ५५ ॥ इस पर्वतपर फूले हुये सुवर्ण मय सूर्यकी समान ताल, तमाल, और कर्णिकारके वृक्ष शोभायमान हो रहे हैं ॥ ५६ ॥ वहांपर एक योजन विस्तार वाला और दश योजन ऊंचा सुवर्ण मय सौमनस शृङ्ग है ॥ ५७ ॥ पूर्वकालमें पुरुषोत्तम विष्णुजीनें राजा वलिको छलकर जब सब लोक नापेथे तब पहला चरण उन्होंने वहां रखकर दूसरा चरण मेरुके शिखर पर रक्खाथा ॥ ५८ ॥ सूर्य

तस्यकोटिर्दिवंस्पृष्टाशतयोजनमायता ॥ जातरूपमयीदिव्याविराजतिसवेदिका ॥ ५५ ॥ सालैस्तालैस्तमालैश्चक
र्णिकारैश्चपुष्पितैः ॥ जातरूपमयैर्दिव्यैःशोभतेसूर्यसन्निभैः ॥ ५६ ॥ तत्रयोजनविस्तारमुच्छ्रितंदशयोजनम् ॥
शृंगंसौमनसंनामजातरूपमयंध्रुवम् ॥ ५७ ॥ तत्रपूर्वपदंकृत्वापुराविष्णुस्त्रिविक्रमे ॥ द्वितीयंशिखरेमेरोश्चकारपुरुषो
त्तमः ॥ ५८ ॥ उत्तरेणपरिक्रम्यजंबूद्वीपंदिवाकरः ॥ दृश्योभवतिभूयिष्ठंशिखरंतन्महोच्छ्रयम् ॥ ५९ ॥ तत्रवै
खानसानामवालखिल्यामहर्षयः ॥ प्रकाशमानादृश्यंतेसूर्यवर्णास्तपस्विनः ॥ ६० ॥ अयंसुदर्शनोद्वीपःपुरोय
स्यप्रकाशते ॥ तस्मिंस्तेजश्चचक्षुश्चसर्वप्राणभृतामपि ॥ ६१ ॥ शैलस्यतस्यपृष्ठेषुकंदरेषुवनेषुच ॥ रावणःसहवैदे
ह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥ ६२ ॥

नारायण उत्तर दिशामें घूम जम्बूद्वीपकी परिक्रमा करके फिर उसी ऊंचे शिखर वाले पहले कहे सौमनस शिखर पर टिके हुए फिर जम्बूद्वीपमें रहनेवाले मनुष्योंको दृष्टि आतेहैं॥५९॥और इसी शिखर पर, सूर्य समान प्रकाशमान तपस्वी, दीप्ति प्रयुक्त वैखानस वाल्यखिल्य महर्षि गण प्रकाशित होतेहैं ॥६०॥ जिसके समीप सुदर्शन द्वीप प्रकाशित होताहै, और जब इस सौमनस शिखर पर सूर्य उदय होतेहैं; तभी सब प्राणियोंके नेत्रों में उजाला आताहै, इसका प्रकाश सबको ज्ञातहै ॥६१॥ उस पर्वतकी पीठ कन्दरा, और वनमें तुम लोग रावण सहित जानकीजीका अनुसन्धा

शाली हो बढा ॥ २६ ॥ और सूर्यपुत्र महा बलवान् सुग्रीवजी हीनबल होने लगे, वालिनें इनका गर्व खर्वकर डाला; और इनका विक्रमभी कम होनें पर आया ॥ २७ ॥ परन्तु सुग्रीवजी श्रीरामचन्द्रजीके दिखानेंके अर्थ वालिके ऊपर बडा कोपकर, जड़ व शाखा सहित वृक्ष उखाड, पर्वत शिखर, और वज्र सम धार वाले नखोंसे ॥ २८ ॥ और मुष्टिका, जांघ, चरण, और बाहोंसे फिर लडनें लगे और वालिभी इन्ही आयुधोंसे लड ताथा; इस कारण इन दोनों जनोंका संग्राम ऐसा हुआकि जैसा इन्द्रजीके साथ वृत्रासुरका हुआथा ॥ २९ ॥ वह वनचारी दोनों वानर रुधिरसे न हाय महामेघकी समान घोर शब्दसे परस्पर तर्जन गर्जन करनें लगे॥३०॥तव श्रीरामचन्द्रजीनें देखा कि सुग्रीव अब बहुतही हीनबल होगयेहैं; इस

सूर्यपुत्रोमहावीर्यःसुग्रीवःपरिहीयत ॥ वालिनाभग्नदर्पस्तुसुग्रीवोमंदविक्रमः ॥२७॥ वालिनंप्रतिसामर्षोदर्शयामासराघवम् ॥ वृक्षैःसशाखैःशिखरैर्वज्रकोटिनिभैर्नखैः ॥ २८ ॥ मुष्टिभिर्जानुभिःपद्भिर्बाहुभिश्चपुनःपुनः ॥ तयोर्युद्धमभूद्घोरंवृत्रवासवयोरिव॥२९॥तौशोणिताक्तौयुध्येतांवानरौवनचारिणौ॥मेघाविवमहाशब्दैस्तर्जमानौपरस्परम्॥३०॥ हीयमानमथापश्यत्सुग्रीवंवानरेश्वरम् ॥ प्रेक्षमाणंदिशश्चैवराघवःसमुहुर्मुहुः ॥ ३१ ॥ ततोरामोमहातेजाआर्तंदृष्ट्वाहरीश्वरम् ॥ सशरंवीक्षतेवीरोवालिनोवधकांक्षया ॥ ३२ ॥ ततोधनुषिसंधायशरमाशीविषोपमं ॥ पूरयामासतच्चापंकालचक्रमिवांतकः ॥ ३३ ॥ तस्यज्यातलघोषेणत्रस्ताःपत्ररथेश्वराः ॥ प्रदुद्रुवुर्मृगाश्चैवयुगांतइवमोहिताः ॥ ३४ ॥ मुक्तस्तुवज्रनिर्घोषःप्रदीप्ताशनिसन्निभः ॥ राघवेणमहाबाणोवालिवक्षसिपातितः ॥ ३५ ॥

कारणसेही वारंवार सब दिशाओंकी ओर निहारतेहैं ॥ ३१ ॥ महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजी सुग्रीवको भयातुर देखकर वालिके संहार करनेंकी इच्छासे वारंवार बाणोंकी ओर दृष्टि पात करनें लगे ॥ ३२ ॥ फिर विषधर सर्पकी समान बाण धनुषपर चढाकर यमराजके काल चक्रकी समान धनुषको टंकारनें लगे ॥ ३३ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीनें धनुपको टंकारा तो उस शब्दसे मृग व पक्षीगण युगान्त होनेंके दुकालकी समान मोहको प्राप्तहो वेग सहित भागने लगे ॥ ३४ ॥ फिर श्रीरामचन्द्रजीनें प्रदीप्त अग्निकी समान वज्रतुल्य शब्द करताहुआ वह महाबाण छोडा

डालेंगे, जाओ जनककुमारी जानकीजी को ढूंढभाल और उनका पतालगाकर आओ ॥ ७० ॥ इन्द्रकी स्त्री, वनादिकोंसे सुशोभित पूर्व दिशाको तुम चतुर वानर उत्तम रीतिसे खोज करके राघव प्रिया सीताजीको पायकर फिर सब जन सुखी होना ॥ ७१ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० कि० चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४० ॥ वानर राज वीर वर सुग्रीवजीनें उस वानरोंकी सेनाको पूर्व दिशाकीओर भेजकर कार्यके साधनका निर्णय करनेंमें चतुर वानरोंको दक्षिण दिशामें भेजा ॥ १ ॥ उनमें अग्नि पुत्र नील महाबलवान् हनुमानजी ब्रह्माका पुत्र महा बलवान् जाम्बवान् ॥ २ ॥ सुहोत्र, शरारि, शर गुल्म, गज, गवाक्ष, गवय, सुषेण, वृषभ ॥ ३ ॥ मैन्द, द्विविद, गन्धमादन, ताराके पिता सुषेण, उल्कामुख, अनंग, यह दोनों अग्निके

महेंद्रकांतांवनषंडमंडितांदिशंचरित्वानिपुणेनवानराः ॥ अवाप्यसीतांरघुवंशजप्रियांततोनिवृत्ताःसुखिनोभविष्यथ ॥ ॥ ७१ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४० ॥ ॥ ६५ ॥

ततःप्रस्थाप्यसुग्रीवस्तन्महद्वानरंबलम् ॥ दक्षिणांप्रेषयामासवानरानभिलक्षितान् ॥ १ ॥ नीलमग्निसुतंचैवहनूमंतंचवानरम् ॥ पितामहसुतंचैवजांबवंतंमहौजसम् ॥ २ ॥ सुहोत्रंचशरारिंचशरगुल्मंतथैवच ॥ गजंगवाक्षंगवयंसुषेणंवृषभंतथा ॥ ३ ॥ मैंदंचद्विविदंचैवसुषेणंगंधमादनम् ॥ उल्कामुखमनंगंचहुताशनसुतावुभौ ॥ ४ ॥ अंगदप्रमुखान्वीरान्वीरःकपिगणेश्वरः ॥ वेगविक्रमसंपन्नान्संदिदेशविशेषवित् ॥ ५ ॥ तेषामग्रेसरंचैवबृहद्बलमथांगदम् ॥ विधायहरिवीराणामादिशद्दक्षिणांदिशम् ॥ ६ ॥ येकेचनसमुद्देशास्तस्यांदिशिसुदुर्गमाः ॥ सतेषांकपिमुख्यानांकपीशःसमुदाहरत् ॥ ७ ॥ सहस्रशिरसंविंध्यंनानाद्रुमलतायुतम् ॥ नर्मदांचनदींरम्यांमहोरगनिषेविताम् ॥ ८ ॥

पुत्र ॥ ४ ॥ व अंगद इत्यादि वेगसे चलनेंवाले महा महापराक्रमी वानरोंको सब देशोंके जाननें वाले सुग्रीवजीनें दक्षिण दिशामें पठाया ॥ ५ ॥ जितनें वानर दक्षिणदिशाको भेजे गये उन समस्त वानरोंका मुखिया बडे बली अंगदजीको करके सुग्रीवजीनें दक्षिण दिशाको भेजा ॥ ६ ॥ कपीश्वर सुग्रीवजी, उस दिशामें जो जो देश दुर्गमथे, वह समस्तही उन वानर यूथपोंको बताने लगें ॥ ७ ॥ कि तुम लोग, सहस्र शिखरवाले विविध वृक्ष लताओंसे विराजमान, विन्ध्याचलपर्वतको प्रथम देखोगे फिर महाभुजंग गण सेवित रमणीक नर्मदा नदी मिलैगी ॥ ८ ॥

अत्याचार नहीं करेंगे केवल वृक्षोंके प्रहारसे और घूसोंसे उन्हें मारेंगे जिस्से वह पीडित हो अपनी गुफाको चला जायगा ॥ ८ ॥ हे तारे! वह दुरात्मा हमारा हंकार और प्रहारादि नहीं सह सकैगा इसमें कुछ संदेह नहीं, कि तुमनें हमारी बुद्धिकी सहायता करके सुहृदता दिखाई॥९॥ तुमको हमारे प्राणोंकी शपथ है कि तुम इन सब स्त्रियोंके साथ लौट जाओ, हम रणस्थलमें भ्राताको केवल जीतही कर लौट आवेंगे, और उसे प्राणोंसे नहीं मारेंगे ॥ १० ॥ प्रियवादिनी दक्षिणा नायका तारा वालिको भेंटकर उसकी प्रदक्षिणाकर रोते २ वहांसे लौटी ॥ ११ ॥ शोकसे मोहित हुई, स्वस्तिके मंत्र जाननेंवाली तारा विजयकी इच्छा किये स्वस्त्ययन करके सब स्त्रियोंके साथ अन्तःपुरमें चली गई ॥ १२ ॥ जब सब स्त्रियोंके

नमेगर्वितमायस्तंसहिष्यतिदुरात्मवान् ॥ कृतंतारेसहायत्वंदर्शितंसौहृदंमयि ॥ ९ ॥ शापितासिममप्राणैर्निवर्त स्वजनेनच ॥ अलंजित्वानिवर्तिष्येतमहंभ्रातरंरणे ॥ १० ॥ तंतुतारापरिष्वज्यवालिनंप्रियवादिनी ॥ चकाररुदती मंदंदक्षिणासाप्रदक्षिणम् ॥ ११ ॥ ततःस्वस्त्ययनंकृत्वामंत्रविद्विजयैषिणी ॥ अंतःपुरंसहस्त्रीभिःप्रविष्टाशोकमोहिता ॥ १२ ॥ प्रविष्टायांतुतारायांसहस्त्रीभिःस्वमालयम् ॥ नगर्यानिर्ययौक्रुद्धोमहासर्पइवश्वसन् ॥ १३ ॥ सनिःश्वस्यम हारोषोवालीपरमवेगवान् ॥ सर्वतश्चारयन्दृष्टिंशत्रुदर्शनकांक्षया ॥ १४ ॥ सददर्शततःश्रीमान्सुग्रीवंहेमपिंगलम् ॥ सुसंवीतमवष्टब्धंदीप्यमानमिवानलम् ॥ १५ ॥ तंसदृष्ट्वामहाबाहुःसुग्रीवंपर्यवस्थितम् ॥ गाढंपरिदधेवासोवाली परमकोपनः ॥ १६ ॥ सवालीगाढसंवीतोमुष्टिमुद्यम्यवीर्यवान् ॥ सुग्रीवमेवाभिमुखोययौयोद्धुंकृतक्षणः ॥ १७ ॥

साथ तारा अपने घरमें चली गई, तब वालि क्रोधित हुये महासर्पकी समान श्वास लेता हुआ नगरीसे बाहर निकला ॥ १३ ॥ वानरराज वालिनें लंबे २ श्वास लेकर बडे वेगसे आय रोषमें भर शत्रुको देखनेंकी वासनासे चारों ओरको दृष्टि डाली ॥ १४ ॥ तिसके पीछे श्रीमान् वालिनें सुवर्णसम पिंगलनेत्र, कच्छ, कसकर बाँधे हुये, पृथ्वीपर दृढरूपसे खडे देदीप्यमान अनलतुल्य सुग्रीवजीको देखा ॥ १५ ॥ महाबलवान् परम क्रोधित वालि सुग्रीवजीको इस प्रकारसे खडा देख आपभी वस्त्रोंको कसकर पहन लेता हुआ ॥ १६ ॥ वीर्यवान् वालि कच्छ बाँध मुक्का उठाय सुग्रीवजीके सन्मुख

स्त्रीकी समान अपनें पतिरूप समुद्रमें जा मिलती है। फिर हेममय दिव्य मुक्ता मणि विभूषित ॥ १८ ॥ कपाट युक्त पाण्ड्य वंशियोंका फाटक देखोगे। हे वानरो! फिर तुम निश्चय समुद्रके निकट पहुंचोगे, उस समुद्र पार होनेंके विषयमें समर्थ और असमर्थ विचारकर उसके पार होना ॥ १९ ॥ उस समुद्रके पार होनेंका उपाय कहते हैं सो तुम श्रवण करो कि इसका उपाय अगस्त्यजी तुमको वतावेंगे उनसे सब समाचार जान महेन्द्र पर्वतपर जाय चित्र विचित्र शृङ्गोंपर चढ ॥ २० ॥ समुद्रके पार होजाना, यह पर्वत सुवर्णमय और समुद्रके एक पार्श्वमें डूबा हुआ है और नाना प्रकारके फूले फले वृक्षोंसे शोभायमान है ॥ २१ ॥ यह पर्वत देव, यक्ष, अप्सरा, सिद्ध और चारण गणोंसे सेवित होनेंके कारण

युक्तंकवाटपांडचानांगताद्रक्ष्यथवानराः ॥ ततःसमुद्रमासाद्यसंप्रधार्यार्थनिश्चयम् ॥ १९ ॥ अगस्त्येनांतरेतत्रसागरे
विनिवेशितः॥चित्रसानुनगःश्रीमान्महेंद्रःपर्वतोत्तमः ॥२०॥ जातरूपमयःश्रीमानवगाढोमहार्णवम्॥नानाविधैर्नगैःफु
ल्लैर्लताभिश्चोपशोभितम् ॥ २१ ॥ देवर्षियक्षप्रवरैरप्सरोभिश्चशोभितम् ॥ सिद्धचारणसंघैश्चप्रकीर्णंसुमनोरमम् ॥ २२
तमुपैतिसहस्राक्षःसदापर्वसुपर्वसु ॥ द्वीपस्तस्यापरेपारेशतयोजनविस्तृतः ॥ २३ ॥ अगम्योमानुषैर्दीप्तस्तंमार्गध्वं
समंततः ॥ तत्रसर्वात्मनासीतामार्गितव्याविशेषतः ॥ २४ ॥ सहिदेशस्तुवध्यस्यरावणस्यदुरात्मनः ॥ राक्षसाधि
पतेर्वासःसहस्राक्षसमद्युतेः ॥ २५ ॥ दक्षिणस्यसमुद्रस्यमध्येतस्यतुराक्षसी ॥ अंगारकेतिविख्याताछायामाक्षि
प्यभोजनी ॥ २६ ॥

परम मनोहर है ॥ २२ ॥ देवराज इन्द्रजी प्रत्येक अमावास्या और पूर्णमासीको इस पर्वतपर आगमन किया करते हैं। इसी समुद्रकी दूसरीपार सौ योजन विस्तारवाला एक द्वीप है ॥२३॥ वहांपर कोई मनुष्य नहीं जा सकता वहांपर चारोंओर विशेष करके द्वीपमें सीताजीकोढूंढना ॥२४॥ हम जानते हैं कि वही स्थान इन्द्रतुल्य दीप्तिमान राक्षसपति दुरात्मा और वध करनेंके योग्य रावणका वासस्थल है ॥ २५ ॥ इस दक्षिण समुद्रके बीचमें अङ्गारिका नाम विख्यात परछांई पकडकर जीवोंको खेंचकर भक्षण करनेंवाली राक्षसी वास किया करती हैं ॥ २६ ॥

नामक वानर यूथप, हजार करोड वानरोंकी सेनाके सहित आया ॥ १६ ॥ फिर, पद्मपरागकी समान वर्णवाला. और घोर प्रभात कालीन सूर्यके रंगकी समान मुख वाला महा बुद्धिमान वानर श्रेष्ठ. और सब वानरोंमें अति उत्तम ॥ १७ ॥ बहुत सहस्र वानरोंकी सेनाके सहित. हनुमानजी का पिता श्रीमान केशरी नामक वानर आया ॥ १८ ॥ गोपुच्छ वानरोंका राजा भयंकर विक्रमकारी गवाक्ष, करोड सहस्र वानरोंको साथ लेकर आ पहुँचा ॥ १९ ॥ भयंकर वेगवान रीछोंका राजा शत्रुओंका मारनेवाला धूम्र नामक ऋक्ष दो सहस्र किरोड ऋक्षोंकी सेना लिये हुये आया ॥ २० ॥ पनस नामक वीर्यवान यूथपति वानर महाबलवान घोर रूप तीन करोड वानर संग लिये वहां आगमन करता हुआ ॥२१॥

पद्मकेसरसंकाशस्तरुणार्कनिभाननः ॥ बुद्धिमान्वानरश्रेष्ठःसर्ववानरसत्तमः ॥ १७ ॥ अनेकैर्बहुसाहस्रैर्वानराणां समन्वितः ॥ पिताहनुमतःश्रीमान्केसरीप्रत्यदृश्यत ॥ १८ ॥ गोलांगूलमहाराजोगवाक्षोभीमविक्रमः ॥ वृतःकोटि सहस्रेणवानराणामदृश्यत ॥ १९ ॥ ऋक्षाणांभीमवेगानांधूम्रःशत्रुनिबर्हणः ॥ वृतःकोटिसहस्राभ्यांद्वाभ्यांसमभिव र्तत ॥२०॥ महाबलनिभैर्घोरैःपनसोनामयूथपः ॥ आजगाममहावीर्यस्तिसृभिःकोटिभिर्वृतः ॥२१॥ नीलांजनचया कारोनीलोनामैषयूथपः ॥ अदृश्यतमहाकायःकोटिभिर्दशभिर्वृतः ॥ २२ ॥ ततःकांचनशैलाभोगवयोनामयूथपः ॥ आजगाममहावीर्यःकोटिभिःपंचभिर्वृतः ॥ २३ ॥ दरीमुखश्चबलवान्यूथपोभ्याययौतदा ॥ वृतःकोटिसहस्रेणसुग्री वंसमवस्थितः ॥ २४ ॥ मैंदश्चद्विविदश्चोभावाश्विपुत्रौमहाबलौ ॥ कोटिकोटिसहस्रेणवानराणामदृश्यताम् ॥ २५ ॥ गजश्चबलवान्वीरस्तिसृभिःकोटिभिर्वृतः ॥ ऋक्षराजोमहातेजाजांबवान्नामनामतः २६ ॥

नील वर्णी अंजन पुंजकी समान द्युतिमान महा काय नील नामक यूथपति दशकोटि वानरोंको संग लिये हुये आया ॥२२॥ सुवर्ण पर्वतके तुल्य द्युतिवाला महा वीर्यवान गवय नामक यूथपति पांच करोड सेनाके संग उपस्थित हुआ ॥ २३ ॥ दरी मुख नामक बलवान यूथपति हजार कोटि वानरोंकी सेना संग लिये हुये सुग्रीवजीके निकट आय पहुँचा॥२४॥मैन्द और द्विविद नामक महा बलवान वानर अश्विनीके पुत्र दोनों कोटि २ सहस्र वानरोंकी सेना संग लिये हुये आये ॥ २५ ॥ गज नामक बलवान वीर तीनकरोड वानरोंकी सैनाको ले आया और ऋक्षोंका

रहनेंका स्थान भोगवती नाम पुरीहै ॥ ३६ ॥ यह पुरी बडे मार्गवाली, दुर्द्धर्षहै, और सब ओरसे रक्षितहै, और महा विषैले तेज दांत वाले घोर
सर्पभी इसकी रक्षा करतेहैं ॥ ३७ ॥ जहांपर महा घोर सर्पराज वासुकीजी वसतेहैं, ऐसी भोगवती पुरीमें जाय सबलोग ॥ ३८ ॥ वहांपरके
ढके ढकाये सब गुप्त देशोंको भली भांतिसे ढूंडना; उस देशको नांघ आगे बढ़कर बैलके आकारवाला बडा भारी ॥ ३९ ॥ सर्व रत्नमय परम
सुन्दर ऋषभ नामक पर्वत मिलैगा । इसपर गोशीर्षक, पद्मक; हरिश्यामा, ॥ ४० ॥ दिव्य विशेष २ चंदन अग्निसम प्रभाशाली उत्पन्न होतेहैं
उन चंदनोंको देखकर तुम कुछ वात न करना और उनको छूनाभी मत ॥ ४१॥ कारणकि उस बनकी रक्षा रोहित नामक घोर गन्धर्व किया

विशालरथ्यादुर्धर्षासर्वतःपरिरक्षिता ॥ रक्षितापन्नगैर्घोरैस्तीक्ष्णदंष्ट्रैर्महाविषैः ॥ ३७ ॥ सर्पराजोमहाघोरोयस्यां
वसतिवासुकिः ॥ निर्यायमार्गितव्याचसाचभोगवतीपुरी ॥ ३८ ॥ तत्रचानंतरोद्देशायेकेचनसमावृताः ॥ तंचदेशम
तिक्रम्यमहानृषभसंस्थितिः ॥ ३९ ॥ सर्वरत्नमयःश्रीमानृषभोनामपर्वतः ॥ गोशीर्षकंपद्मकंचहरिश्यामंचचंदनम् ॥
॥ ४० ॥दिव्यमुत्पद्यतेयत्रतच्चैवाग्निसमप्रभम् ॥ नतुतच्चंदनंदृष्ट्वास्प्रष्टव्यंतुकदाचन ॥ ४१ ॥ रोहितानामगंधर्वाघोरंर
क्षंतितद्वनम् ॥ तत्रगंधर्वपतयःपंचसूर्यसमप्रभाः ॥ ४२ ॥ शैलूषोग्रामणीःशिक्षःशुकोबभ्रुस्तथैवच ॥ रविसोमाग्निवपुषां
निवासःपुण्यकर्मणाम्॥४३॥अंतेपृथिव्यादुर्धर्षास्ततःस्वर्गजितःस्थिताः॥ततःपरंनवःसेव्यःपितृलोकःसुदारुणः॥४४॥
राजधानीयमस्यैषाकष्टेनतमसावृता॥एतावदेवयुष्माभिर्वीरवानरपुंगवाः॥शक्यंविचेतुंगंतुंवानातोगतिमतांगतिः॥४५

करतेहैं वहांपर पांच गन्धर्वोंके पति सूर्यकी समान प्रभावाले ॥ ४२ ॥ शैलूप, ग्रामणी, शिक्ष, शुक, और बभ्रु रहतेहैं उसपर सूर्य चंद्र और अग्नि
के समान प्रकाशित देह पुण्यात्मा लोगोंके रहनेंके स्थान बनेहैं ॥ ४३ ॥ ऐसे पृथ्वीके अंतमें दुर्द्धर्ष तथा स्वर्गके सुख जीतनेंवाले लोग रहतेहैं
इसके आगे दारुण पितृलोकहै, जहांपर मनुष्य नहीं जा सकते ॥ ४४ ॥ यहां अंधकारसे ढकीहुई यमराजकी राजधानी संयमिनी नाम पुरीहै
वहांपर तुम क्षण मात्रभी नहीं ठहर सकतेहो, हे वानर श्रेष्ठगण ! तुमलोग यहींतक ढूंडनेंको समर्थहो इस्से और फिर मनुष्यादिक किसीकीभी

मुख नामक वानर पति नदीप्रदेशसे दशकोटि वानरोंकी अनी संगालिये हुये ॥ ३६ ॥ महात्मा सुग्रीवजीके निकट प्राप्त हुआ शरभ कुमुद व
ह्नि और रंभ ॥ ३७ ॥ व और भी बहुतसे इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले वानरोंके यूथप सब पृथ्वी वन और पर्वत आदिकोंको ढकते हुये
आये ॥ ३८ ॥ व अनेक प्रकारके नामधारी यूथप आये कि जिनकी संख्या नहीं है इन सब वानरदलोंके मध्यमें कोई कोई २ दल आता
जाताथा, और कोई आय २ करके बैठता जाताथा ॥ ३९ ॥ उन दलोंमें के कोई २ वानर उन्हें घेरते छलांग मारते कोई २ गर्जते सुग्रीवजीके
निकट पहुँचने लगे, जिस प्रकार मेघ सूर्यके निकट गमन करते हैं॥४०॥ और सबही वानर बहुत शब्द कर रहे थे वह सब महाबली सुग्रीवजीके

संप्राप्तोभिनदंतस्यसुग्रीवस्यमहात्मनः ॥ शरभःकुमुदोवह्निर्वानरोरंभएवच ॥ ३७ ॥ एतेचान्येचबहवोवानराः
कामरूपिणः ॥ आवृत्यपृथिवींसर्वांपर्वतांश्चवनानिच ॥ ३८ ॥ यूथपाःसमनुप्राप्तायेषांसंख्यानविद्यते ॥ आगता
श्चनिविष्टाश्चपृथिव्यांसर्ववानराः ॥ ३९ ॥ आप्लुवंतःप्लवंतश्चगर्जंतश्चप्लवंगमाः ॥ अभ्यवर्ततसुग्रीवंसूर्यमभ्रगणाइव
॥ ४० ॥ कुर्वाणाबहुशब्दांश्चप्रकृष्टाबाहुशालिनः ॥ शिरोभिर्वानरेंद्रायसुग्रीवायन्यवेदयन् ॥ ४१ ॥ अपरेवानरश्रे
ष्ठाःसंगम्यचयथोचितम् ॥ सुग्रीवेणसमागम्यस्थिताःप्रांजलयस्तदा ॥ ४२ ॥ सुग्रीवस्त्वरितोरामेसर्वांस्तांस्त्वरिता
स्तदा ॥ निवेदयित्वाधर्मज्ञःस्थितःप्रांजलिरब्रवीत् ॥ ४३ ॥ यथासुखंपर्वतनिर्झरेषुवनेषुवर्षेषुचवानरेंद्राः ॥ निवेशयि
त्वाविधिवद्बलानिबलंबलज्ञःप्रतिपत्तुमीष्टे॥४४॥इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०किष्किंधाकांडेएकोनचत्वारिंशःसर्गः ॥ ३९॥

निकट पहुँच कर मस्तक झुकाय २ अपना २ आना निवेदन कर रहे थे ॥ ४१ ॥ और कोई २ सुग्रीवजीके निकट पहुँचकर, उनका यथो
चित आदर सन्मान कर हाथ जोड कर खडे होनेंलगे ॥ ४२ ॥ तिसके पीछे धर्मात्मा सुग्रीवजीने शीघ्रताके सहित श्रीरामचंद्रजीके
निकट जाय हाथ जोड उनसे समस्त वानर और वानरयूथपतियोंका आगमन निवेदन किया फिर वानर यूथपोंसे बोले ॥ ४३ ॥
हे समस्तवानरेन्द्रगण। पर्वत, झरने, और वनके समूहोंमें उस सैनाको टिकाकर कि जिसका बल अच्छी तरहसे तुम सब जानते हो । विधि
पूर्वक इस बातका निर्णय करो कि कौन वानर आया और कौन नहीं आया ॥ ४४ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० कि० एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥३९॥

कार वाला और प्रकाश मानथा॥३॥ और बुद्धिमें खगपति तुल्य द्युतिमान और मरीचिके सुन्दर माला धारण किये मारीच नाम अति गुण धाम और
महाबलवान ॥ ४ ॥ ऋषिपुत्रथे उन सबको पश्चिम दिशामें जानेके लिये सुग्रीवजीनें आज्ञादी, इनके साथ दो लक्ष यूथपथे व और वानरोंकी तो
कुछ गिन्तीही नहीं ॥ ५ ॥ हे वानरो ! सुषेण सहित तुम लोग वैदेहीजीको जाय कर ढूंडो, प्रथम सौराष्ट्र देश फिर बाह्लीक, तिसके आगे चंद्र
चित्र ॥ ६ ॥ इत्यादि मनोहर विभवशाली जनपद, और बहुतसे पुर और पुन्नाग, गहन, बकुल, उद्दालक ॥ ७ ॥ तथा केतक आदिके वृक्षोंसे

बुद्धिविक्रमसंपन्नंवैनतेयसमद्युतिम् ॥ मरीचिपुत्रान्मारीचानर्चिर्माल्यान्महाबलान् ॥ ४॥ ऋषिपुत्रांश्चतान्सर्वान्प्रती
चीमादिशद्दिशम् ॥ द्वाभ्यांशतसहस्राभ्यांकपीनांकपिसत्तमाः ॥ ५ ॥ सुषेणप्रमुखायूयंवैदेहींपरिमार्गथ ॥ सौरा
ष्ट्रान्सहबाल्हीकांश्चंद्रचित्रांस्तथैवच ॥ ६ ॥ स्फीताञ्जनपदान्रम्यान्विपुलानिपुराणिच ॥ पुन्नागगहनंकुक्षिंबकु
लोद्दालकाकुलम् ॥ ७॥ तथाकेतकखंडांश्चमार्गध्वंहरिपुंगवाः ॥ प्रत्यक्स्रोतोवहाश्चैवनद्यःशीतजलाःशिवाः ॥ ८ ॥
तापसानामरण्यानिकांतारगिरयश्चये ॥ तत्रस्थलीर्मरुप्रायाअत्युच्चशिशिराःशिलाः ॥ ९ ॥ गिरिजालावृतांदुर्गांमा
र्गित्वापश्चिमांदिशम् ॥ ततःपश्चिममागम्यसमुद्रंद्रष्टुमर्हथ ॥ १० ॥ तिमिनक्राकुलजलंगत्वाद्रक्ष्यथवानराः ॥ ततः
केतकखंडेषुतमालगहनेषुच॥११॥कपयोविहरिष्यंतिनारिकेलवनेषुच॥तत्रसीतांचमार्गध्वंनिलयंरावणस्यच ॥१२॥

व्याप्त कुक्षि देशको ढूंडना; हे वानरश्रेष्ठो ! पश्चिमकी ओरको वहनें वाली शीतल जल युक्त पवित्र नदियेंभी ढूंडना ॥ ८ ॥ तपस्वियोंके वन बडे
दुर्गम पर्वत, अति ऊँची वनस्थलियें, जल रहित देश, शीतल शिलायें ॥ ९ ॥ और जालके भांतिके पर्वत समूहसे युक्त पश्चिम दिशाको खोज
ना फिर पश्चिम दिशाको आकर पश्चिम समुद्र देखोगे ॥ १० ॥ इस समुद्रमें बडे २ नाके मगर आदि जल जीव भरे हैं इसके आगे केतक खंड
और गहन तमाल वनके मध्य ॥ ११ ॥ और नारियलके काननमें वानरगण विहरेंगे; इन सब स्थानोंमें दुष्ट रावणके स्थान सहित सीताजीको

मचंद्रजी दोनों बाहें पसार उनसे भेंटकर बोले ॥ १० ॥ हे सौम्य ! हेमहा पंडित ! जनककुमारी सीताजी जीवितहैं; अथवा नहीं; और रावण किस देशमें रहताहै इस बातका पता लगाना उचितहै ॥ ११ ॥ जब यह बात जानली जायगी तब रावणके स्थानपर और वैदेहीजीके निकट पहुंचकर तुम्हारे साथ परामर्श करके समयानुसार उचित्त कार्यकाविधान किया जायगा ॥ १२ ॥ हे वानरनाथ! हम या लक्ष्मण इस कार्यके साधन करनेमें समर्थ नहींहैं! तुमही इस कार्यके कारणहो और तुम्ही इसकेसिद्ध करनेमें समर्थहो ॥ १३ ॥ हेवीर! तुम निःसन्देह हमारे कार्यको जानतेहो इसलिये तुमही इस विषयमें निश्चित कार्यको सोच विचार करआज्ञादेदो ॥ १४ ॥ तुम हमारे अनुपम सुहृद, बलवान् पंडित, समयको

ज्ञायतांसौम्यवैदेहीयदिजीवतिवानवा ॥ सचदेशोमहाप्राज्ञयस्मिन्वसतिरावणः ॥ ११ ॥ अभिगम्यतुवैदेहींनिलय रावणस्यच ॥ प्राप्तकालंविधास्यामितस्मिन्कालेसहत्वया ॥ १२ ॥ नाहमस्मिन्प्रभुःकार्येवानरेंद्रनलक्ष्मणः ॥ त्वमस्यहेतुःकार्यस्यप्रभुश्चप्लवगेश्वर ॥ १३ ॥ त्वमेवाज्ञापयविभोममकार्यविनिश्चयम् ॥ त्वंहिजानासिमेकार्यममवीरनसंशयः ॥ १४ ॥ सुहृद्द्वितीयोविक्रांतःप्राज्ञःकालविशेषवित् ॥ भवानस्मद्धितेयुक्तःसुहृदाप्तोर्थवित्तमः ॥ १५ ॥ एवमुक्तस्तुसुग्रीवोविनतंनामयूथपम् ॥ अब्रवीद्रामसान्निध्येलक्ष्मणस्यचधीमतः ॥१६॥ शैलाभंमेघनिर्घोषमूर्जितंप्लवगेश्वरम् ॥ सोमसूर्यनिभैःसार्धवानरैर्वानरोत्तम ॥ १७ ॥ देशकालनयैर्युक्तोविज्ञःकार्यविनिश्चये ॥ वृतःशतसहस्रेणवानराणांतरस्विनाम् ॥ १८ ॥ अधिगच्छदिशंपूर्वांसशैलवनकाननाम् ॥ तत्रसीतांचवैदेहींनिलयंरावणस्यच ॥ १९ ॥

भली प्रकारसे जाननें वाले अर्थ विचारनें वालोंमें अग्रगण्यहो और हमाराहितकारी कार्य करनेंमें लगे हुयेहो ॥ १५ ॥ जब सुग्रीवजीसे श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा तब सुग्रीवजी बुद्धिमान श्रीराम लक्ष्मणजीके आगेही वानर श्रेष्ठ ॥ १६ ॥ पर्वत सम आकार वाले मेघकी समान शब्दकारी विनत नाम यूथपसे बोलेकि हे वानरोत्तम ! चंद्रमा व सूर्यकी समान वर्णवाले वानर संगले ॥ १७ ॥ जो देश काल और नीति शास्त्रके जाननें वालेहों उनको साथले, कार्य करनेंमें निश्चय किये औरभी सैकडों सहस्रों वानरोंको साथ लिये ॥ १८ ॥ पूर्वदिशाको चलेजाओ. वहांपर पर्वत, वन इत्यादि स्थलोंमें जनककुमारी सीताजी और रावणके बसनेंके स्थानकोढूंडो (चारों दिशा ओंमें रावणके रहनेंके स्थानथे) ॥ १९ ॥

को पावककी शिखाके तुल्य प्रकाशित चारों ओर घूमा करतेहैं ॥ २१ ॥ भयंकर कर्मकारी वानर गण ऐसे चले जांय कि मानो उनको देखाही नहीं और उनके साथ कोई छेड छाडभी न कीजाय और वहांका कोई फल भी न तोडा जाय ॥ २२ ॥ क्योंकि वह धीर्य वीर्य शाली महाबलवान दुर्द्धर्ष वीर गण उन फलोंकी रक्षा किया करते हैं ॥ २३ ॥वहां पर जानकीजीके ढूंडनेमें यत्न करना कर्त्तव्यहै यद्यपि उन गन्धर्वोंका प्रभाव बडाहै तथापि विना अपराध किये उन लोगोंसे किसीको भयका कारण नहींहोता॥२४॥ वहीं पर वैदूर्य मणिके रंगका और हीरेकी चमककी समान अनेक भांतिके वृक्षोंसे शोभित ॥ २५ ॥ शत योजनका चौडा और शोभायमान वज्रनाम महा पर्वत है उस पर्वतकी समस्त बडी २ कन्दरायें देखना॥२६॥

नात्यासादयितव्यास्तेवानरैर्भीमविक्रमैः ॥ नादेयंचफलंतस्माद्देशात्किंचित्प्लवंगमैः ॥ २२ ॥ दुरासदाहितेवीराःसत्त्ववंतामहाबलाः ॥ फलमूलानितेतत्ररक्षंतेभीमविक्रमाः ॥ २३ ॥ तत्रयत्नश्चकर्तव्योमार्गितव्याचजानकी ॥ नहितेभ्योभयंकिंचित्कपित्वमनुवर्तताम् ॥ २४ ॥ तत्रवैदूर्यवर्णाभोवज्रसंस्थानसंस्थितः ॥ नानाद्रुमलताकीर्णोवज्रोनाममहागिरिः ॥ २५ ॥ श्रीमान्समुदितस्तत्रयोजनानांशतंसमम् ॥ गुहास्तत्रविचेतव्याःप्रयत्नेनप्लवंगमाः ॥ २६ ॥ चतुर्भागेसमुद्रस्यचक्रवान्नामपर्वतः ॥ तत्रचक्रंसहस्रारंनिर्मितंविश्वकर्मणा ॥ २७ ॥ तत्रपंचजनंहत्वाहयग्रीवंचदानवम् ॥ आजहारततश्चक्रंशंखंचपुरुषोत्तमः ॥ २८ ॥ तत्रसानुषुरम्येषुविशालासुगुहासुच ॥ रावणःसहवैदेह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥ २९ ॥ योजनानिचतुःषष्टिर्वराहोनामपर्वतः ॥ सुवर्णशृंगःसुमहानगाधेवरुणालये ॥ ३० ॥ तत्रप्राग्ज्योतिषंनामजातरूपमयंपुरम् ॥ तस्मिन्वसतिदुष्टात्मानरकोनामदानवः ॥ ३१ ॥

उसके आगे समुद्रके चतुर्थ भागमें टिका हुआ चक्र वान नाम पर्वतहै; वहीं पर विश्वकर्माजीने सहस्र आरागजका चक्र बनायाथा ॥२७॥ वहींपर पुरुषोत्तम विष्णु भगवानजीने पञ्चजन और हयग्रीव नामक दो दानवोंका संहार करके शंख और चक्र ग्रहण कियाथा ॥ २८ ॥ उस पर्वतके मनोहर शृङ्गों पर और समस्त विशाल गुफाओंमें वैदेहीजी और रावणको ढूंडना तुम्हारा कर्त्तव्य है ॥ २९ ॥ इसके आगे अगाध समुद्रमें चौंसठ योजनकी उँचाई वाला सुवर्णशृङ्ग युक्त वराहनामक पर्वत है ॥ ३० ॥ उस पर्वत पर प्राग्ज्योतिष नामक सुवर्ण मय पुरहै

वाले और ऊपरके भागमें व्याघ्रकी समान आकार वाले नर व्याघ्र लोग जोकि जलके मध्यमें रहतेहैं ॥ २८ ॥ इन सब राक्षसोंके स्थानोंमें भली भांति देखना भालना पर्वतोंको देखते भालते, जिन देशोंमें अथवा द्वीपोंमें उछल कूदकर जाना होसके, ऐसे सब देशोंमें ढूंडना तुम्हारा परम कर्त्तव्यहै ॥ २९ ॥ और तुम बडे यत्नके साथ सप्त राज्य सुशोभित यव द्वीपमें जाना; और सुवर्ण कारी पुष्पोंसे शोभित रूपक द्वीपमें ढूँडना तुम्हारा कर्त्तव्यहै ॥ ३० ॥ जब सुवर्ण द्वीपको ढूंडकर आगे चलोगे, तब देव दानव गण करके सेवित शिशिर नामक पर्वत मिलैगा, उसके कँगूरे आकाशको भेद करके मानों स्वर्गको छू रहेहैं ॥ ३१ ॥ इन सब द्वीपादिकोंकेपर्वतोंके दुर्गोंमें वनोंमें, और नदियोंके अप्रगट होनेंके स्थानोंमें, तुम यश

एतेषामाश्रयाःसर्वेविचेयाःकाननौकसः ॥ गिरिभिर्येचगम्यंतेप्लवनेनप्लवेनच ॥ २९ ॥ यत्नवंतोयवद्वीपंसप्तराज्योपशोभितम् ॥ सुवर्णरूप्यकद्वीपंसुवर्णकरमंडितम् ॥ ३० ॥ यवद्वीपमतिक्रम्यशिशिरोनामपर्वतः ॥ दिवंस्पृशतिशृंगेणदेवदानवसेवितः ॥ ३१ ॥ एतेषांगिरिदुर्गेषुप्रपातेषुवनेषुच ॥ मार्गध्वंसहिताःसर्वेरामपत्नींयशस्विनीम् ॥ ३२ ॥ ततोरक्तजलंप्राप्यशोणाख्यंशीघ्रवाहिनम् ॥ गत्वापारंसमुद्रस्यसिद्धचारणसेवितम् ॥ ३३ ॥ तस्यतीर्थेषुरम्येषुविचित्रेषुवनेषुच ॥ रावणःसहवैदेह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥ ३४ ॥ पर्वतप्रभवानद्यःसुभीमबहुनिष्कुटाः ॥ मार्गितव्यादरीमंतःपर्वताश्चवनानिच ॥ ३५ ॥ ततःसमुद्रद्वीपांश्चसुभीमान्द्रष्टुमर्हथ ॥ ऊर्मिमंतंमहारौद्रंक्रोशंतमनिलोद्धतम् ॥ ३६ ॥ तत्रासुरामहाकायाश्छायांगृह्णंतिनित्यशः ॥ ब्रह्मणासमनुज्ञातादीर्घकालंबुभुक्षिताः ॥ ३७ ॥

स्विनी राम भार्या जानकीजीको ढूंढना ॥ ३२ ॥ फिर समुद्रके उस पारजाकर, सिद्ध चारण सेवित लाल जल वाला शोण नामक नद मिलेगा ॥ ३३ ॥ वहां उसके रमणीक तीर्थमें, विचित्र वनोंमें, और कन्दरायुक्त सब पर्वतोंमें और वनोंमें खोज करना ॥ ३४ ॥ भयंकर अनेक उपवनोंसे युक्त पर्वतोंसे निकली हुई समस्त नदियोंमें, और कन्दरा युक्त सबपर्वतोंमें और वनोंमें खोज करना तुम्हारा अवश्य कर्त्तव्यहै ॥ ३५ ॥ फिर भयंकर पवनके सन्नाटेसे भयंकर शब्द करता हुआ, अति उग्र तरंग युक्तसमुद्रके द्वीप तुम लोग देखोगे॥ ३६॥ इस इक्षु समुद्रमें ब्रह्माजीकी आज्ञा पाये हुये, भूंखसे सताये असुर गण नित्य २ परछांयी ग्रहण करके प्राणियोंको भक्षण किया करतेहैं, सो यहां पर बडी सावधानीसे जाना॥ ३७॥

गण, वसुगण, मरुद्गण, और सुरलोकके रहनेंवाले देवता लोग आगमन करकै पश्चिमसन्ध्यामें ॥ ४१ ॥ सूर्यदेवकी उपासना करते हैं सूर्य
देव उनसे पूजित और सर्व जीवोंकी दृष्टिसे अदृश्य हो अस्ताचलको प्राप्तहोजातेहैं ॥ ४२ ॥ इसके आगे दशहजार योजनके विस्तार वाले अस्ता
चल पर्वत पर सूर्य नारायण आधे मुहूर्तमें मेरु पर्वतसे पहुँचते हैं ॥ ४३ ॥ उसी पर्वतके शिखरपर बडे २ दिव्य, सूर्यकी समान प्रभावाला बहुत ध
वरहरेवाला भवन विश्वकर्माका बनाया हुआ है ॥ ४४ ॥ वह अनेक प्रकारके पक्षी और वृक्ष समूहके चित्रित होनेंसे शोभायमान है; यही पाश
हस्त वरुण देवजी का स्थान है ॥ ४५ ॥ आगे मेरुकी चोटीमें दश शाखा वाला सुवर्ण मय परम सुन्दर एक ताल वृक्ष शोभायमान हो रहाहै, उस

आदित्यमुपतिष्ठंतितैश्चसूर्योभिपूजितः ॥ अदृश्यःसर्वभूतानामस्तंगच्छतिपर्वतम् ॥ ४२ ॥ योजनानांसहस्राणि
दशतानिदिवाकरः ॥ मुहूर्तार्धेनतंशीघ्रमभियातिशिलोच्चयम् ॥ ४३ ॥ शृंगेतस्यमहद्दिव्यंभवनंसूर्यसन्निभम् ॥ प्रासा
दगणसंबाधंविहितंविश्वकर्मणा ॥ ४४ ॥ शोभितंतरुभिश्चित्रैर्नानापक्षिसमाकुलैः ॥ निकेतंपाशहस्तस्यवरुणस्य
महात्मनः ॥ ४५ ॥ अंतरामेरुमस्तंचतालोदशशिरामहान् ॥ जातरूपमयःश्रीमान्भ्राजतेचित्रवेदिकः ॥ ४६ ॥ ते
षुसर्वेषुदुर्गेषुसरस्सुचसरित्सुच ॥ रावणःसहवैदेह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥ ४७ ॥ यत्रतिष्ठतिधर्मज्ञस्तपसास्वेनभा
वितः ॥ मेरुसावर्णिरित्येषख्यातोवैब्रह्मणासमः ॥ ४८ ॥ प्रष्टव्योमेरुसावर्णिर्महर्षिःसूर्यसन्निभः ॥ प्रणम्यशिरसा
भूमौप्रवृत्तिंमैथिलींप्रति ॥ ४९ ॥ एतावज्जीवलोकस्यभास्करोरजनीक्षये ॥ कृत्वावितिमिरंसर्वमस्तंगच्छतिपर्व
तम् ॥ ५० ॥ एतावद्वानरैःशक्यंगंतुंवानरपुंगवाः ॥ अभास्करममर्यादंनजानीमस्ततःपरम् ॥ ५१ ॥

पर्वतके मूलमें विचित्र वेदी बनी हैं ॥ ४६ ॥ उस पर्वत के समस्त दुर्गम स्थानोंमें, सरोवरोंमें, और नदियोंमें, तुम सब जनोंको जानकी जी और रा
वणका ढूंडना उचित है ॥ ४७ ॥ इसी मेरु पर्वतपर ब्रह्माजी के तुल्य देदीप्यमान अपने तेजसे प्रकाशित धर्मात्मा मेरु सावर्णि नाम विख्यात तप
स्वी वास करते हैं ॥ ४८ ॥ उन सूर्यकी समान प्रकाशित महर्षि मेरु सावर्णिजी को शिर झुका प्रणाम करकै जानकीजीका समाचार पूछना॥४९॥
रात्रिके वीत जानेपर सूर्य नारायण उदयाचलपर्वतसे मेरु सावर्णितकप्रकाश करकै अस्त हो जातेहैं ॥ ५० ॥ हे कपिवरगण! वानर गण यहीं

भांतिके पुष्प खिल रहे हैं ॥ ४५ ॥ इसका नाम सुदर्शनसर है, यह राजहंसोंसे व्याप्त है और इसके किनारे २ देव,चारण, यक्ष, किन्नर, अप्सरा गण ॥ ४६ ॥ हर्षित हो विहार करनेंके लिये उसी घरमें घूमा करते हैं । क्षीर सागर उतरनेके बाद हे वानरगण! ॥ ४७ ॥ जलोद सागरको शीघ्रही देखोगे, यह समुद्र सब प्राणियोंको भय उपजानें वाला है । कारणकि वहां पर और्व ऋषिके क्रोधसे उत्पन्न तेजसे महा हय मुख तेज उत्पन्न हुआ है ॥ ४८ ॥ उस अद्भुत महा वेग हय मुख तेजका प्रलयकालमें सचराचर जगत् अन्न स्वरूप कहाता है । उस स्थानमें असमर्थ विनाशकी शंकासे डरे हुये प्राणियोंका महा आरत शब्द श्रवण आया करता है; यह प्राणी उस हय मुखके देखनेंसे डरकर रोया करते हैं ॥ ४९ ॥ स्वादु समुद्रके

नाम्नासुदर्शनंनामराजहंसैःसमाकुलम् ॥ विबुधाश्चारणायक्षाःकिन्नराश्चाप्सरोगणाः ॥ ४६ ॥ हृष्टाःसमधिगच्छंतिनलिनींतांरिरंसवः ॥ क्षीरोदंसमतिक्रम्यतदाद्रक्ष्यथवानराः ॥ ४७ ॥ जलोदंसागरंशीघ्रंसर्वभूतभयापहम् ॥ तत्रतत्कोपजंतेजःकृतंहयमुखंमहत् ॥ ४८ ॥ अस्याद्भुतंमहावेगमोदनंसचराचरम् ॥ तत्रविक्रोशतांनादोभूतानांसागरौकसाम् ॥ श्रूयतेचासमर्थानांदृष्ट्वाभूद्वडवामुखम् ॥ ४९ ॥ स्वादूदस्योत्तरेतीरेयोजनानित्रयोदश ॥ जातरूपशिलोनामसुमहान्कनकप्रभः ॥ ५० ॥ तत्रचंद्रप्रतीकाशंपन्नगंधरणीधरम् ॥ पद्मपत्रविशालाक्षंततोद्रक्ष्यथवानराः ॥ ५१ ॥ आसीनंपर्वतस्याग्रेसर्वदेवनमस्कृतम् ॥ सहस्रशिरसंदेवमनंतंनीलवाससम् ॥ ५२ ॥ त्रिशिराःकांचनःकेतुस्तालस्तस्यमहात्मनः ॥ स्थापितःपर्वतस्याग्रेविराजतिसवेदिकः ॥ ५३ ॥ पूर्वस्यांदिशिनिर्माणंकृतंतत्रिदशेश्वरैः ॥ ततःपरंहेममयःश्रीमानुदयपर्वतः ॥ ५४ ॥

उत्तर तीरमें तेरह योजन विस्तार वाला कनक तुल्य प्रभाशाली सुवर्णकी चट्टानोंसे युक्त एक महान पर्वत है ॥ ५० ॥ वहांपर हे वानरो! तुम चन्द्रमाकी तुल्य श्वेत वर्णवाले कमल दलकी समान विशाल नेत्र वाले धरणी धर भुजंगोंको देखोगे ॥ ५१ ॥ वहीं सहस्र शिरवाले नीलाम्बर धारण किये सब देवताओंके नमस्कार करनेंके योग्य अनन्तजी पर्वतके शिखरपर बैठे रहते हैं ॥ ५२ ॥ इनके शिरके निकट तीन स्कंध वाली सुवर्णकी केतु–स्वरूप ताल वृक्षके आधारसे बनी हुई वेदी विराजित है उस पर अनंतजी प्रतिष्ठित हैं ॥ ५३ ॥ इन्द्रजीनें उस तरुवरको पूर्व दिशाके

वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजी; अपने श्वशुरको पश्चिम दिशामें भेजते हुये और शतबलनामक वानरनाथसे सुग्रीवजी ॥ १ ॥ बोले; सर्वज्ञ कपिराजनें जो वचन कहे वह सबही अपने और श्रीरामचन्द्रजीके हितके लियेथे ॥२॥ सुग्रीवजी बोले कि हे विक्रमशालिन्! तुम अपने मेलके शतसहस्र वनवासी वानरोंके साथ समस्त यमसुत मंत्रि गणोंके सहित यात्रा करो ॥३॥ और हिमालय पर्वतको कर्णफूल बनाये उत्तर दिशामें जायकर यशस्विनी श्रीरामचन्द्रजीकी भार्याको ढूँडो ॥ ४ ॥ हे कृतार्थोंके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ! श्रीरामचन्द्रजीका यह प्रियकार्य पूरा हो जानेंपर हम उनके ऋणसे छूट

ततःसंदिश्यसुग्रीवःश्वशुरंपश्चिमांदिशम् ॥ वीरंशतबलंनामवानरंवानरेश्वरः ॥ १ ॥ उवाचराजासर्वज्ञःसर्ववानरसत्तमः ॥ वाक्यमात्महितंचैवरामस्यचहितंतदा ॥ २ ॥ वृतःशतसहस्रेणत्वद्विधानांवनौकसाम् ॥ वैवस्वतसुतैःसार्धं प्रविष्टःसर्वमंत्रिभिः ॥ ३ ॥ दिशंह्युदीचींविक्रांतहिमशैलावतंसिकाम् ॥ सर्वतःपरिमार्गध्वंरामपत्नींयशस्विनीम् ॥ ४ ॥ अस्मिन्कार्येविनिर्वृत्तेकृतेदाशरथेःप्रिये ॥ ऋणान्मुक्ताभविष्यामःकृतार्थार्थविदांवर ॥ ५ ॥ कृतंहिप्रियमस्माकं राघवेणमहात्मना ॥ तस्यचेत्प्रतिकारोऽस्तिसफलंजीवितंभवेत् ॥ ६ ॥ अर्थिनःकार्यनिर्वृत्तिमकर्तुरपियश्चरेत् ॥ तस्यस्यात्सफलंजन्मकिंपुनःपूर्वकारिणः ॥ ७ ॥ एतांबुद्धिंसमास्थायदृश्यतेजानकीयथा ॥ तथाभवद्भिःकर्तव्यमस्मत्प्रियहितैषिभिः ॥ ८ ॥ अयंहिसर्वभूतानांमान्यस्तुनरसत्तमः ॥ अस्मासुचगतःप्रीतिंरामःपरपुरंजयः ॥ ९ ॥

जाँयगे ॥५॥ महात्मा श्रीरामचन्द्रजीनें हमारा प्रियकार्य सिद्ध कियाहै सो यदि हम उनका कुछभी प्रत्युपकार करसकें तो हमारा जीवन सफल होजाय ६॥ जिसने अपने साथमें कोई उपकार नहीं कियाहो, यदि उसके साथभी कोई उपकार कर दिया जाय तोभी जीवन सफल होजाता है फिर जोकि पहले ही उपकार कर चुका हो उसका कार्य सिद्ध करनेंमें और कहना ही क्या है ॥ ७॥ तुम लोग हमारे हितकी कामना करते हुए जिससे जानकीजी मिलजाँय या उनका पता लगजाय, इस प्रकारकी बुद्धि धारण करो, ऐसा करना सब भाँतिसे तुमको उचित है ॥ ८ ॥ शत्रुओंके पुर जीतनें वाले

न करना ॥ ६२ ॥ सुवर्ण शैलके और महात्मा सूर्यके तेजसे युक्त हो अरुण वर्णकी पूर्व संध्या प्रकाशित होतीहै ॥ ६३ ॥ जिस्से कि समस्त भुवनोंमें प्रकाश करनेंके लिये सूर्यके उदयकी आवश्यकता देख प्रथमही ऊपरमें टिके हुए सब जनोंका प्रवेश द्वार स्वरूप उदयगिरिको ब्रह्माजीनें बनायाथा इससेही इसको पूर्व दिशा कहतेंहैं ॥ ६४ ॥ उस पर्वतकी पीठ पर झरनोंमें, और गुफाओंमें, तुम लोग रावण और जानकीजीका खोज करना ॥ ६५ ॥ उदयाचलके आगे इस पूर्व दिशामें जिसके अधिष्ठाता इन्द्रादि देवताहैं वहां सूर्य चंद्रमाका प्रकाश नहींहै इस कारणसे अंधेराही

कांचनस्यचशैलस्यसूर्यस्यचमहात्मनः ॥ आविष्टातेजसासंध्यापूर्वारक्ताप्रकाशते ॥ ६३ ॥ पूर्वमेतत्कृतंद्वारंपृथिव्याभुवनस्यच ॥ सूर्यस्योदयनंचैवपूर्वाह्येषादिगुच्यते ॥ ६४ ॥ तस्यशैलस्यपृष्ठेषुनिर्झरेषुगुहासुच ॥ रावणःसहवैदेह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥ ६५ ॥ ततःपरमगम्यास्याद्दिक्पूर्वात्रिदशावृता ॥ रहिताचंद्रसूर्याभ्यामदृश्यातमसावृता ॥ ६६ ॥ शैलेषुतेषुसर्वेषुकंदरेषुनदीषुच ॥ येचनोक्तामयोद्देशाविचेयातेषुजानकी ॥ ६७ ॥ एतावद्वानरैःशक्यंगंतुंवानरपुंगवाः ॥ अभास्करममर्यादंनजानीमस्ततःपरम् ॥ ६८ ॥ अभिगम्यतुवैदेहींनिलयंरावणस्यच ॥ मासेपूर्णेनिवर्तध्वमुदयंप्राप्यपर्वतम् ॥ ६९ ॥ ऊर्ध्वंमासान्नवस्तव्यंवसन्वध्योभवेन्मम ॥ सिद्धार्थाःसन्निवर्तध्वमधिगम्यचमैथिलीम् ॥ ७० ॥

अंधेराहै, इसलिये यहांसे आगे कोई नहीं देख सकता ॥ ६६ ॥ इन सबपर्वतोंमें, कन्दराओंमें, नदियोंमें, जितने कि समस्त स्थान हमनें कहे इन सब स्थानोंमें तुम लोग जानकीजीका पता लगाना ॥ ६७ ॥ हे कपि श्रेष्ठगण! वस यहीं तक तुमलोग जानेंको समर्थ हो; इसके आगे सूर्य भगवान रहित और सीमा रहित जो स्थान हैं उन सबको हम नहीं जानते ॥ ६८ ॥ जहां जानकीजी हों, और रावणके स्थान में उदयाचल पर्वत तक जाकर एक मासके पूर्ण होते २ तुम लोग फिर आना ॥ ६९ ॥ एक मासके ऊपर वहां पर न रहना यदि कोई एक मासके ऊपर रहेगा तो उसको हम मार

जनका लंबा चौडा एक मयदानहै, जिसमें पर्वत, नदी, वृक्ष, और कोई जन्तुभी नहीं है ॥ १९ ॥ तुम सब इस रोमहर्षण मयदानको नांघकर श्वेत वर्णवाले कैलासपर्वतको पाकर हर्षित चित्त होगे ॥ २० ॥ उस कैलास पर्वतपर श्वेतवर्ण मेघकी प्रभाके समान सुवर्णसे सजाया हुआ मनोहर कुबेरजीका भवन विश्वकर्माजीनें बनायाहै ॥ २१ ॥ उस भवनमें बहुत सारे कमल फूलोंके सहित हंस और कारंडवादि जल पक्षियोंसे परिपूर्ण अप्सरा झुन्डोंसे सेवित एक तलैया विद्यमानहै ॥ २२ ॥ उस भवनमें धनद यक्षराज सर्व लोकोंके नमस्कार किये जानेंके योग्य विश्रवाके पुत्र श्रीमान् कुबेरजी गुह्यक गणोंके साथ आनंद सहित वास किया करतेहैं ॥२३॥ उस कैलासपर्वतकी चन्द्र तुल्य प्रकाशित, पर्वतश्रेणीमें और गुफाओंमें

तञ्चशीघ्रमतिक्रम्यकांतारंरोमहर्षणम् ॥ कैलासंपांडुरंप्राप्यहृष्टायूयंभविष्यथ ॥ २० ॥ तत्रपांडुरमेघाभंजांबूनदपरिष्कृतम् ॥ कुबेरभवनंरम्यंनिर्मितंविश्वकर्मणा ॥ २१ ॥ विशालानलिनीयत्रप्रभूतकमलोत्पला ॥ हंसकारंडवाकीर्णाअप्सरोगणसेविता॥२२॥तत्रवैश्रवणोराजासर्वलोकनमस्कृतः ॥ धनदोरमतेश्रीमान्गुह्यकैःसहयक्षराट् ॥२३॥ तस्यचंद्रनिकाशेषुपर्वतेषुगुहासुच ॥ रावणःसहवैदेह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥ २४ ॥ क्रौंचंतुगिरिमासाद्यबिलंतस्यसुदुर्गमम् ॥ अप्रमत्तैःप्रवेष्टव्यंदुष्प्रवेशंहितत्स्मृतम् ॥ २५ ॥ वसंतिहिमहात्मानस्तत्रसूर्यसमप्रभाः ॥ देवैरभ्यर्थिताःसम्यग्देवरूपामहर्षयः ॥ २६ ॥ क्रौंचस्यतुगुहाश्चान्याःसानूनिशिखराणिच ॥ दर्दराश्चनितंबाश्चविचेतव्यास्ततस्ततः ॥२७॥अवृक्षंकामशैलंचमानसंविहगालयम् ॥ नगतिस्तत्रभूतानांदेवानांनचरक्षसाम् ॥ २८ ॥

जरा जरा करके रावण और जानकीजीको तुम लोग ढूंडना ॥ २४ ॥ वहांसे चलकर तुम लोग क्रौंचगिरि देखोगे; उस पर्वतके दुर्गम विलोंमें बडी सावधानीसे प्रवेश करना, क्योंकि उसके ऊपरके बिल बडी कठिनाईसे प्रवेश करनेके योग्यहैं ॥ २५ ॥ और उस पर्वतपर सूर्यकी समान प्रभावाले महात्मा देवरूप, महर्षि गण देवता लोगोंसे प्रार्थना किये जानेपर वहां वास करतेहैं ॥ २६ ॥ क्रौञ्च पर्वतकी और दूसरी गुफायें, और कंगूरे, दर्रे व नितम्बोंको भली प्रकार ढूंडना ॥ २७ ॥ इसी पर्वतका एक शिखर वृक्षोंसे रहित कामतप शैल और पक्षी गणोंका आश्रय स्थान मा

फिर गोदावरी और रमणीक कृष्णवेणी नदी मिलैगी; तदनन्तर मेकल,उत्कल, दशार्ण आदि देश मिलेंगे ॥ ९ ॥ फिर आस्रवन्ती, अवन्ती पुरी दिखलाई देगी । पश्चात् विदर्भ, ऋष्टिक, माहीषक ॥ १० ॥ इत्यादि सबदेश दृष्टि आवेंगे, फिर मत्स्य, कुलिंग, कौशिकादि देशोंको भली भांति खोजना; और नदी गुफा सहित दंडकारण्यमेंभी ढूंडना ॥ ११ ॥ तिसके पीछे तुम सबोंको दूसरी गोदावरी नदी दिखाई देगी इसके आगे, अन्ध्र, पुन्ड्र, चोल, पाण्ड्य, केरल ॥ १२ ॥ आदि देश और अयोमुख नामक अनेक धातुओंसे युक्त पर्वत जिसपर बडे विचित्र शिखरहैं, मिलेगा; इसका

ततोगोदावरींरम्यांकृष्णवेणींमहानदीम् ॥ मेकलानुत्कलांश्चैवदशार्णनगराण्यपि ॥ ९ ॥ आस्रवंतीमवंतींचसर्वमेवानुपश्यत ॥ विदर्भानृष्टिकांश्चैवरम्यान्माहिषकानपि ॥ १० ॥ तथामत्स्यकलिंगांश्चकौशिकांश्चसमंततः ॥ अन्वीक्ष्यदंडकारण्यंसपर्वतनदीगुहम् ॥ ११ ॥ नदींगोदावरींचैवसर्वमेवानुपश्यत ॥ तथैवांध्रांश्चपुंड्रांश्चचोलान्पांड्यांश्च केरलान् ॥ १२ ॥ अयोमुखश्चगंतव्यःपर्वतोधातुमंडितः ॥ विचित्रशिखरःश्रीमांश्चित्रपुष्पितकाननः ॥ १३ ॥ सुचंदनवनोद्देशोमार्गितव्योमहागिरिः ॥ ततस्तामापगांदिव्यांप्रसन्नसलिलाशयाम् ॥ १४ ॥ तत्रद्रक्ष्यथकावेरींविहृतामप्सरोगणैः ॥ तस्यासीनंनगस्याग्रेमलयस्यमहौजसः ॥ १५ ॥ द्रक्ष्यथादित्यसंकाशमगस्त्यमृषिसत्तमम् ॥ ततस्तेनाभ्यनुज्ञाताःप्रसन्नेनमहात्मना ॥ १६ ॥ ताम्रपर्णींग्राहजुष्टांतरिष्यथमहानदीम् ॥ साचंदनवनैश्चित्रैःप्रच्छन्नद्वीपवारिणी ॥ १७ ॥ कांतेवयुवतीकांतंसमुद्रमवगाहते ॥ ततोहेममयंदिव्यंमुक्तामणिविभूषितम् ॥ १८ ॥

वनभी सदा फूला फलाही रहताहै ॥ १३ ॥ चन्दनका वनभी इस पर लगा हुआहै; इस मलयाचलको भली भांति अनुसन्धान करना फिर स्वच्छ जलवाली दिव्य ॥ १४ ॥ अप्सराओंके झुन्डोंसे सेवित कावेरी नदी देखोगे, तिसके पीछे मलय पर्वतके अग्रभागमें बैठे हुए ॥ १५ ॥ महातेज सम्पन्न आदित्य तुल्य ऋषि श्रेष्ठ अगस्त्यजी को देखोगे. फिर प्रणामादि द्वारा उनको प्रसन्न करकै उनकी आज्ञासे चल ॥१६॥ विविध ग्राह युक्त महानदी ताम्रपर्णीके पार होगे । चंदनके वनके द्वारा विचित्र ढकी हुई द्वीपोंसे युक्त, स्वच्छजलवाली वह नदी ॥ १७ ॥ सर्व शृंगार किये

नदी बहतीहै, उसके दोनों किनारोंपर कीचक नामक वांस उत्पन्न होतेहैं ॥ ३७ ॥ वही वांस सिद्ध लोगोंको शैलोदके पार लेजातेहैं और फिर वही इस पारको लेआतेहैं । इसी नदीके दूसरी पार पुण्यात्मा जनोंके निवासका स्थान उत्तर कुरु देशहै ॥ ३८ ॥ उस उत्तरकुरुके रहनेवाले जन, सुवर्ण, पद्मसमन्वित पुष्करणियोंके जलसे तर्पण किया करतेहैं॥ ३९ ॥ वहांपर नीलवर्णके जिनमें वैदूर्य मणियोंके पत्ते लगरहे ऐसे सुवर्णमय लाल कमल फूलोंसे विभूपित सहस्र २ नदियां विराजमानहैं ॥ ४० ॥ प्रभात कालके सूर्यकी समान प्रकाशित समस्त जलाशय, महामणि, महारत्न, और विचित्र सुवर्णकी केशरवाले ॥ ४१ ॥ नील वर्णके कमल फलोंसे व वनोंके समूहसे बडे २ मोलके मुक्तामणियोंसे और धनसे यह

तेनयंतिपरंतीरंसिद्धान्प्रत्यानयंतिच ॥ उत्तराःकुरवस्तत्रकृतपुण्यप्रतिश्रयाः ॥ ३८ ॥ ततःकांचनपद्माभिःपद्मिनीभिःकृतोदकाः॥ ३९ ॥ नीलवैदूर्यपत्राढ्यानद्यस्तत्रसहस्रशः ॥ रक्तोत्पलवनैश्चात्रमंडिताश्चहिरण्मयैः ॥ ४० ॥ तरुणादित्यसंकाशाभांतितत्रजलाशयाः ॥ महार्हमणिरत्नैश्चकांचनप्रभकेसरैः॥४१॥ नीलोत्पलवनैश्चित्रैःसदेशःसर्वतोवृतः॥ निस्तुलाभिश्चमुक्ताभिर्मणिभिश्चमहाधनैः ॥ ४२ ॥ उद्भूतपुलिनास्तत्रजातरूपैश्चनिम्नगाः ॥ सर्वरत्नमयैश्चित्रैरवगाढानगोत्तमैः ॥४३॥ जातरूपमयैश्चापिहुताशनसमप्रभैः॥नित्यपुष्पफलास्तत्रनगाःपत्ररथाकुलाः ॥४४॥दिव्यगंधरसस्पर्शाःसर्वकामान्स्रवंतिच॥ नानाकाराणिवासांसिफलंत्यन्येनगोत्तमाः ॥४५॥मुक्तावैदूर्यचित्राणिभूषणानितथैवच॥ स्त्रीणांयान्यनुरूपाणिपुरुषाणांतथैवच ॥ ४६ ॥

देश पूर्णहै ॥ ४२ ॥ वहांपर सब नदियोंके किनारे सुवर्णमय होरहेहैं जिस्सेकि बडी शोभा होतीहै, और उनके किनारोंपर रत्नोंके तरुवर लग रहे हैं ॥ ४३ ॥ उन सब अग्निसमान प्रकाशित वृक्षोंमें सुवर्णके फूल लगे हैं;उन वृक्षोंमें नित्य फल फूल लगे रहते और पक्षीगण मीठी वाणीसे वोला करतेहैं ॥ ४४ ॥ किसी २ वृक्षमें दिव्य रसकी सुगन्धि और समस्त कमनीय पदार्थ उत्पन्न हुआ करतेहैं व और जितने उत्तम २ वृक्षहैं वह अनेक प्रकारके वसन उत्पन्न किया करतेहैं ॥ ४५ ॥ किसी २ श्रेष्ठ वृक्षमें स्त्रीऔर पुरुषोंके पहरने योग्य उत्तम गहने उत्पन्न होतेहैं जो मुक्ता और

इस प्रकारके संशय युक्त देशोंमें विशेष ढूंढ भाल संशय रहित होकर अमित तेजवान नरेन्द्र श्रीरामचंद्रजीकी भार्याका पता लगाओ ॥ २७ ॥ उस लंकाद्वीपको नांघकर शत योजन वाले समुद्रके बीचमें परम सुन्दरपुष्पितक नाम पर्वत सिद्ध चारण गणोंसे सेवित ॥ २८ ॥ चंद्र सूर्यकी किरणोंसे प्रभाशाली सागरके जलका आश्रय लेकर अपने विपुलकंगूरोंसे मानों स्वर्गको छूलेता टिका हुआहै ॥ २९ ॥ उसके कांचनमय एक शृङ्गकी सेवा सूर्य भगवान् किया करतेहैं, कृतघ्न, नास्तिक औरनिर्लज्ज मनुष्य गण इन शृङ्गोंको नहीं देख सकते ॥ ३० ॥ हे वानरगण! तुम लोग इस पर्वत श्रेष्ठको प्रणाम करके सीताजीको खोजना उस दुर्द्धर्षपर्वतको नांघकर आगे सूर्यवान नाम पर्वत ॥ ३१ ॥ पर पहुँचोगे। इसका

एवंनिःसंशयान्कृत्वासंशयानष्टसंशयाः ॥ मृगयध्वंनरेंद्रस्यपत्नीममिततेजसः ॥२७॥ तमतिक्रम्यलक्ष्मीवान्समुद्रेशत योजने ॥ गिरिःपुष्पितकोनामसिद्धचारणसेवितः ॥२८॥ चंद्रसूर्यांशुसंकाशःसागरांबुसमाश्रयः ॥ भ्राजतेविपुलैःशृंगै रंबरंविलिखन्निव ॥ २९ ॥ तस्यैकंकांचनंशृंगंसेवतेऽयंदिवाकरः ॥ नतंकृतघ्नाःपश्यंतिननृशंसाननास्तिकाः ॥३० ॥ प्रणम्यशिरसाशैलंतंविमार्गथवानराः ॥ तमतिक्रम्यदुर्धर्षंसूर्यवान्नामपर्वतः ॥ ३१ ॥ अध्वनादुर्विगाहेनयोजनानि चतुर्दश ॥ ततस्तमप्यतिक्रम्यवैद्युतोनामपर्वतः ॥ ३२ ॥ सर्वकामफलैर्वृक्षैःसर्वकालमनोहरैः ॥ तत्रभुक्त्वावराहाणि मूलानिचफलानिच ॥ ३३ ॥ मधूनिपीत्वाजुष्टानिपरंगच्छतवानराः ॥ तत्रनेत्रमनःकांतःकुंजरोनामपर्वतः ॥ ३४ ॥ अगस्त्यभवनंयत्रनिर्मितंविश्वकर्मणा ॥ तत्रयोजनविस्तारमुच्छ्रितंदशयोजनम् ॥ ३५ ॥ शरणंकांचनंदिव्यंनाना रत्नविभूषितम् ॥ तत्रभोगवतीनामसर्पाणामालयःपुरी ॥ ३६ ॥

विस्तार चौदह योजनहै और यह अति दुर्गमहै, फिर इस्से आगे चलकर वैद्युत नाम पर्वतहै ॥ ३२ ॥ यह सर्वकालमेंही मनोहरहै और सब कामना युक्त फलोंको देनेवाले वृक्ष इसपर लगे हुयेहैं। वहांपर उत्तम भोजन फल मूल खाय ॥ ३३ ॥ और मधु पीकर तृप्तहो तुम सब लोग आगे बढना तहां नेत्र और मनको आराम देने वाला कुंजर नामक पर्वतहै ॥ ३४ ॥ वहांपर पहले विश्वकर्माजीनें अगस्त्यजीका भवन बनायाथा। यह भवन विस्तारमें एक योजन और ऊंचाईमें दश योजनहै ॥ ३५ ॥ इस सुवर्ण मय गृहमें अनेक प्रकारके दिव्य रत्न भूपितहोरहेहैं। इसी कुंजर पर्वत पर सर्पोंके

साथ वास करते हैं ॥ ५६ ॥ कुरुके उत्तर देशमें तुम लोग कदापि मतजाना, क्योंकि वहांपर और कोई जीवधारी नहीं जा सकता ॥ ५७ ॥ वह सोमगिरि नामक पर्वत देवता लोगोंकेभी जानेंके योग्य नहीं है तुम लोग केवल उसका दर्शनही करके लौट आना ॥ ५८ ॥ हे वानर श्रेष्ठगण! वानर लोग यहींतक जा सकते हैं; इसके आगे सीमा रहित और सूर्य रहित स्थानोंको हम नहीं जानते॥ ५९॥ हमनें जो स्थान बताये, उन सबही स्थानोंको तुम लोग ढूंढना; और जो स्थान कि हमारे बतलानेंसे रह गये हों; उन सबको अपनी बुद्धिके अनुसार तुम लोग खोजना ॥६०॥ऐसा करनेंसे श्रीरामचन्द्रजीका और हमारा अति प्रियकार्य हो जायगा। हे अनिलतुल्य! और अनल तुल्य वानरगण! उन जनककुमारीका पता लगानेंसे,

नकथंचनगंतव्यंकुरूणामुत्तरेणवः ॥ अन्येषामपिभूतानांनानुक्रामतिवैगतिः ॥ ५७ ॥ सहिसोमगिरिर्नामदेवानामपि दुर्गमः ॥ तमालोक्यततःक्षिप्रमुपावर्तितुमर्हथ ॥ ५८ ॥ एतावद्वानरैःशक्यंगंतुंवानरपुंगवाः ॥ अभास्करममर्यादंनजानीमस्ततःपरम् ॥५९॥ सर्वमेतद्विचेतव्यंयन्मयापरिकीर्तितम् ॥ यदन्यदपिनोक्तंचतत्रापिक्रियतांमतिः ॥ ६० ॥ ततःकृतंदाशरथेर्महत्प्रियंमहत्प्रियंचापिततोममप्रियम् ॥ कृतंभविष्यत्यनिलानलोपमाविदेहजादर्शनजेनकर्मणा॥६१॥ ततःकृतार्थाःसहिताःसबांधवामयार्चिताःसर्वगुणैर्मनोरमैः॥चरिष्यथोर्वींप्रतिशांतशात्रवाःसहप्रियाभूतधराःप्लवंगमाः ॥६२॥इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेत्रिचत्वारिंशःसर्गः ॥४३ ॥ विशेषेणतुसुग्रीवोहनूमत्यर्थमुक्तवान् ॥ सहितस्मिन्हरिश्रेष्ठेनिश्चितार्थोऽर्थसाधने ॥ १ ॥ अब्रवीच्चहनूमंतंविक्रांतमनिलात्मजम् ॥ सुग्रीवःपरमप्रीतःप्रभुःसर्ववनौकसाम् ॥२॥ नभूमौनांतरिक्षेवानांबरेनामरालये ॥ नाप्सुवागतिसंगंतेपश्यामिहरिपुंगव॥३॥

हम तुम सबही निःसन्देह कृत कृत्य हो जांयगे ॥ ६१ ॥ फिर कृतार्थ हो हमसे पूजित और शत्रुरहित हो सब मनोहर गुणोंसे विभूषित और भूत गणोंसें आश्रय स्वरूप हो अपनी प्रियाके सहित सुख स्वच्छन्दतासे तुम लोग घूमना ॥ ६२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥ यद्यपि सब वानरोंको सुग्रीवजीनें सब ओरको जानेंके लिये आज्ञादी तथापि सुग्रीवजीनें निश्चय कियाथा कि कार्यकी सिद्धि हनुमानजीसेही होगी इस कारण कपि श्रेष्ठ हनुमानजीसे ॥ १ ॥ वानर नाथ सुग्रीवजी परम प्रीतिसे बोले; क्योंकि यह हनुमानजी पवनके पुत्र और बडे पराक्रमीथे ॥ २ ॥ हे वानर श्रेष्ठ! भूमिमें, वा पक्षियोंके उडनेंके स्थान अन्तरिक्षमें

गति नहींहै ॥ ४५ ॥ जो जो स्थान हमनें बताये तुम सब इनमें व और स्थानभीजो कि दिखाईदें इन सबको देखभाल सीताजीकी गतिजान कर फिर आओ ॥ ४६ ॥ जो वानर एक मासके भीतर लौटकर "हमनें सीताजीको देखाहै" यह वचन कहैगा वह हमारी समान विभवशाली होकर सुखसे विहार करैगा ॥ ४७ ॥ उस्से अधिक और कोईभी हमारा प्रिय न होगा, व अनेक वार अपराध करने परभी हमारा बन्धु रहैगा ॥४८॥ हे वानर गण ! तुम लोग अमित बल विक्रम शाली और विपुल गुण सम्पन्न कुलमें उतपन्न हुये हो, इस समय तुम सब, कि जिस्से जनककुमारी

सर्वमेतत्समालोक्ययच्चान्यदपिदृश्यते ॥ गतिंविदित्वावैदेह्याःसन्निवर्तितुमर्हथ ॥ ४६ ॥ यश्चमासान्निवृत्तोग्रेदृष्टासीतेतिवक्ष्यति ॥ मत्तुल्यविभवोभोगैःसुखंसविहरिष्यति ॥ ४७ ॥ ततःप्रियतरोनास्तिममप्राणाद्विशेषतः ॥ कृतापराधो बहुशोममबंधुर्भविष्यति ॥ ४८ ॥ अमितबलपराक्रमाभवंतोविपुलगुणेषुकुलेषुचप्रसूताः ॥ मनुजपतिसुतांयथालभध्वं तदधिगुणंपुरुषार्थमारभध्वम् ॥ ४९ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०किष्किधाकांडेएकचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४१ ॥ ७ ॥ अथप्रस्थाप्यसहरीन्सुग्रीवोदक्षिणांदिशम् ॥ अब्रवीन्मेघसंकाशंसुषेणंनामवानरम् ॥ १ ॥ तारायाःपितरंराजाश्वशुरं भीमविक्रमम् ॥ अब्रवीत्प्रांजलिर्वाक्यमभिगम्यप्रणम्यच ॥ २ ॥ महर्षिंपुत्रंमारीचमर्चिष्मंतंमहाकपिम् ॥ वृतंकपिवरैःशूरैर्महेंद्रसदृशद्युतिम् ॥ ३ ॥

सीताजी प्राप्त होजाँय इस विषयमें अनुकूल पुरुषार्थ प्रकाशकर विशेषभांतिसे यत्न करते रहो ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि काव्ये किष्किन्धाकांडे एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥ अनन्तर सुग्रीवजी उन समस्त वानरवृन्दोंको दक्षिणदिशामें भेजकर सुषेण नाम वानरसे बोले ॥ १ ॥ यह सुषेण ताराके पिता, और वालि सुग्रीवके श्वशुर, भयंकर विक्रम करने वालेथे, इस्से उनके हाथ जोड प्रणाम कर सुग्रीवजी बोले ॥ २ ॥ और महर्षि मरीचिके पुत्र अर्च्चिष्मान् नामक महावानरसे जो कि अति शूरवीर कपिगणोंसे सेवित, महेन्द्राचल सम आ

देनेंके लिये हनुमानजीको अर्पण करदी ॥ १२ ॥ हे वानर श्रेष्ठ ! इसनिशानीसे जानकीजी तुमको निश्चित हमारे निकटसे आया हुआ झट पट जान जांयगी ॥ १३ ॥ हे वीरेन्द्र ! तुम्हारी दृढ चित्तता और अनुपम विक्रम और सुग्रीवजीका आदेश इन सबसेही हमको अपने कार्यकी सिद्धि जान पडतीहै ॥ १४ ॥ यह कपि श्रेष्ठ हनुमानजी उस अँगूठीको माथे चढा हाथ जोडकर श्रीरामचंद्रजीके दोनों चरणोंकी वन्दना करके गमन करनेको तैयार हुये ॥ १५ ॥ पवनपुत्र कपिवीर; वह बडीभारी सेना संगलेकर मेघ रहित विमल आकाशमें तारा गणोंसे शोभित

अनेनत्वांहरिश्रेष्ठचिह्नेनजनकात्मजा ॥ मत्सकाशादनुप्राप्तमनुद्विग्नाऽनुपश्यति ॥ १३ ॥ व्यवसायश्चतेवीरसत्त्व युक्तश्चविक्रमः ॥ सुग्रीवस्यचसंदेशःसिद्धिंकथयतीवमे ॥ १४ ॥ सतद्गृह्यहरिश्रेष्ठःकृत्वामूर्ध्निकृतांजलिः ॥ वंदित्वा चरणौचैवप्रस्थितःप्लवगर्षभः ॥ १५ ॥ सतत्प्रकर्षन्हरिणांमहद्बलंबभूववीरःपवनात्मजःकपिः ॥ गतांबुदेव्योम्नि विशुद्धमंडलःशशीवनक्षत्रगणोपशोभितः ॥ १७ ॥ अतिबलबलमाश्रितस्तवाहंहरिवरविक्रमविक्रमैरनल्पैः ॥ पव नसुतयथाऽधिगम्यतेसाजनकसुताहनुमंस्तथाकुरुष्व ॥ १७ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०किष्किंधाकांडेचतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ सर्वांश्चाहूयसुग्रीवःप्लवगान्प्लवगर्षभः ॥ समस्तांश्चाब्रवीद्राजारामकार्यार्थसिद्धये ॥ १ ॥ एवमेतद्विचेतव्यंभवद्भिर्वानरोत्तमैः ॥ तदुग्रशासनंभर्तुर्विज्ञायहरिपुंगवाः ॥२॥ शलभाइवसंछाद्यमेदिनींसंप्रतस्थिरे ॥ रामःप्रस्रवणेतस्मिन्न्यवसत्सहलक्ष्मणः ॥ ३ ॥

विशुद्ध मंडल चंद्रमाकी समान शोभापाने लगे ॥ १६ ॥ हेसिंह विक्रम ! अति बल शालीन ! पवन पुत्र ! हमनें तुम्हारेही बलका आश्रय कियाहै; तुम इस समय ऐसा विधान विपुल विक्रमसे करोकिजिस्से जानकीजी प्राप्त हो जांय ॥ १७ ॥ इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०कि०चतुश्चत्वारिंशःसर्गः॥४४॥ अनन्तर कपिराज सुग्रीवजी सब वानरोंको पुकारकर उनसे श्रीरामचंद्रजीके कार्यकी सिद्धि करनेंके लिये कहने लगे ॥ १ ॥ हे वानर श्रेष्ठ गण ! तुम सबही हमारी अति उग्र आज्ञाको जानकर रावण और जानकीजीको खोजो ॥ २ ॥ टीडीकी समान पृथ्वीको छायकर समस्त वानर

ढूँडना ॥ १२ ॥ और समुद्रके किनारे की भूमिवाले सब पर्वत, वन, और मुरची पत्तन, और रमणीक जटापुर ॥ १३ ॥ अवंती, और दो पुरी, अंग लेपा व आलक्षित नामक समस्त वन विशाल राज्य और विशाल वाणिज्यके स्थान देखना ॥ १४ ॥ वहांपर सिन्धुनद और सगर संगमके स्थल में महा तरु समूह समन्वित शत शिखरवाला, सोमगिरि नामक एक महान पर्वतहै ॥ १५ ॥ उस पर्वतके रमणीक प्रस्थ देशमें सिंह नामक पक्षी वास करतेहैं; वह पक्षी तिमि, मत्स्य, और हाथियोंको पंजेसे पकडकर अपने घोंसलेमें लेजाय भक्षण कर लेतेहैं ॥ १६ ॥ उन सिंह पक्षियोंमें गये और गिरिशृङ्गोंपर संतापित व उद्दीप्त हाथी मेघोंके गर्जनकी समान शब्द किया करतेहैं ॥ १७ ॥ यह हाथियोंके झुन्ड उस पर्वतके किनारे जो स

वेलातलनिविष्टेषुपर्वतेषुवनेषुच ॥ मुरचीपत्तनंचैवरम्यंचैवजटापुरम् ॥ १३ ॥ अवंतीमंगलेपांचतथाचालक्षितंवनम् ॥ राष्ट्राणिचविशालानिपत्तनानिततस्ततः ॥ १४ ॥ सिंधुसागरयोश्चैवसंगमेतत्रपर्वतः ॥ महान्सोमगिरिर्नामशतशृंगो महाद्रुमः ॥ १५ ॥ तत्रप्रस्थेषुरम्येषुसिंहाःपक्षगमास्थिताः ॥ तिमिमत्स्यगजांश्चैवनीडान्यारोपयंतिते ॥ १६ ॥ तानिनीडानिसिंहानांगिरिशृंगगताश्चये ॥ दृप्तास्तृप्ताश्चमातंगास्तोयदस्वननिःस्वनाः ॥ १७ ॥ विचरंतिविशालेस्मिंस्तोयपूर्णेसमंततः ॥ तस्यशृंगंदिवस्पर्शंकांचनंचित्रपादपम् ॥ १८ ॥ सर्वमाशुविचेतव्यंकपिभिःकामरूपिभिः ॥ कोटिंतत्रसमुद्रस्यकांचनींशतयोजनाम् ॥ १९ ॥ दुर्दर्शांपारियात्रस्यगत्वाद्रक्ष्यथवानराः ॥ कोटयस्तत्रचतुर्विंशद्गंधर्वाणांतपस्विनाम् ॥ २० ॥ वसंत्यग्निनिकाशानांघोराणांपापकर्मणाम् ॥ पावकार्चिःप्रतीकाशाःसमवेताःसमंततः ॥ २१ ॥

मुद्रहै उस परभी विचरा करतेहैं उस पर्वतका एक सुवर्ण मय शृंग इतनाऊँचाहै मानों स्वर्गको चला गयाहै, और उसपर भांति २ के चित्र विचित्र वृक्ष लगेहैं; वहांपर तुम सब वानर लोग काम रूप धारण करके शीघ्रतासहित सब स्थानोंको ढूंडना। उसी समुद्रमें पारियात्र नाम पर्वतकी कोटि शत योजन विस्तारकीहै ॥ १८ ॥ १९ ॥ हे वानर गणो ! उस कोटिका देखना दुर्गम होनें परभी तुम लोग उसे देखोगे। जहांपर चौवीस कोटि२४०००००० गन्धर्व और तपस्वी गण मिलकर तपस्या करतेहैं ॥ २० ॥ यह सब अग्निकी तुल्य दीप्तमान घोर पापकारियोंके जलानें

हम वृक्षोंको उखाड डालेंगे, हम पर्वतोंको तोड फोड डालेंगे, हम पृथ्वीको विदीर्ण कर डालेंगे, हम समुद्रको खल बला डालेंगे ॥१४॥ हम एक छलांगमें येक योजन, हम येक शतसे भी अधिक योजन येक छलांगमें कूदजांयगे ॥ १५ ॥ हमारी गति पृथ्वीमें, समुद्रमें, पर्वतोंमें व वनोंमें पातालमें कहीं भी नहीं रुक सकती, हम सबही स्थानोंमें जा सकतेहैं ॥ १६ ॥ उन वानरराज सुग्रीवजीके निकट येक २ वानर अपने बलके दर्प से ऐंठते अकडते ऐसा कहनें लगे ॥ १७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे पंच चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

विधमिष्याम्यहंवृक्षान्दारयिष्याम्यहंगिरीन् ॥ धरणींदारयिष्यामिक्षोभयिष्यामिसागरान् ॥ १४ ॥ अहंयोजन
संख्यायाःप्लवेयंनात्रसंशयः ॥ शतयोजनसंख्यायाःशतंसमधिकंह्यहम् ॥ १५ ॥ भूतलेसागरेवापिशैलेषुचवनेषुच ॥
पातालस्यापिवामध्येनममाच्छिद्यतेगतिः ॥ १६ ॥ इत्येकैकस्तदातत्रवानराबलदर्पिताः ॥ उचुश्चवचनंतस्यहरिरा
जस्यसन्निधौ ॥ १७ ॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०किष्किंधाकांडेपंचचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४५ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ गतेषु
वानरेंद्रेषुरामःसुग्रीवमब्रवीत् ॥ कथंभवान्विजानीतेसर्वंवैमंडलंभुवः ॥ १ ॥ सुग्रीवश्चततोराममुवाचप्रणतात्मवान् ॥
श्रूयतांसर्वमाख्यास्येविस्तरेणवचोमम ॥ २ ॥ यदातुदुंदुभिंनामदानवंमहिषाकृतिम् ॥ प्रतिकालयतेवालीमलयंप्र
तिपर्वतम् ॥ ३ ॥ तदाविवेशमहिषोमलयस्यगुहांप्रति ॥ विवेशवालीतत्रापिमलयंतज्जिघांसया ॥ ४ ॥ ततोहंतत्र
निक्षिप्तोगुहाद्वारिविनीतवत् ॥ नचनिष्क्रामतेवालीतदासंवत्सरेगते ॥ ५ ॥

जब चारों ओरको सब वानरोंके झुन्ड चले गये तब श्रीरामचंद्रजीने सुग्रीवसे कहाकि तुमनें समस्त पृथ्वी मण्डलका समाचार किसप्रकारसे जाना? ॥ १ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीने ऐसा कहा तो सुग्रीवजी शिरनवायश्रीरामचंद्रजीसे बोले कि आप श्रवण करें हम सब विस्तार सहित कहते हैं ॥ २ ॥ जब भैंसे की समान आकार वाले दुन्दुभी नामक दानवके पीछेधावमान होकर वालि मलयाचल पर्यंत तक चलागया॥३॥जब वह महिष मलयाचलकी गुफामें प्रवेश करगया तब वालि भी उसके वध करनेकी वासना से उस पर्वतकी गुफामें बैठा ॥ ४ ॥ हम उस गुफाकेद्वार

उसमें नरक नामक दुष्टात्मा दानव वास करता है ॥ ३१ ॥ उस पर्वतके रमणीक कँगूरों और गुफाओंमें रावणके सहित जानकीजीको ढूंडना तुम्हारा कर्त्तव्य है ॥ ३२ ॥ उस कांचन गर्भ शैलराजको नांघकर धारा और झरनो करके सहित सर्व सौवर्ण नाम पर्वत दिखाई देगा॥ ३३ ॥ उस पर्वत पर वराह सिंह व्याघ्रादि जन्तु गण सर्वदाही अपने शब्दकी प्रति ध्वनि श्रवण कर दर्पित हो शीघ्रतासे फिर गर्जन करनें लगते हैं ॥३४॥ इसके आगे मेघ नामक पर्वत है इस पर्वतपर पाकशासन श्रीमान इन्द्रजीका देवता ओंनें सुरराज्यपर अभिषेक कियाथा॥ ३५ ॥ इस महेन्द्र परिपालित अचल राजको नांघकर तुम सुवर्णके साठ हजार पर्वत देखोगे ॥३६॥ यह सब पर्वत प्रभात कालके सूर्यकी समान प्रकाशित

तत्रसानुषुरम्येषुविशालासुगुहासुच ॥ रावणःसहवैदेह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥ ३२ ॥ तमतिक्रम्यशैलेंद्रंकांचनांतरदर्शनम् ॥ पर्वतःसर्वसौवर्णोधाराप्रस्रवणायुतः ॥ ३३ ॥ तंगजाश्चवराहाश्चसिंहाव्याघ्राश्चसर्वतः ॥ अभिगर्जंति सततंतेनशब्देनदर्पिताः॥३४॥यस्मिन्हरिहयःश्रीमान्महेंद्रःपाकशासनः॥अभिषिक्तःसुरैराजामेघोनामसपर्वतः॥३५॥ तमतिक्रम्यशैलेंद्रंमहेंद्रपरिपालितम् ॥ षष्टिंगिरिसहस्राणिकांचनानिगमिष्यथ ॥ ३६ ॥ तरुणादित्यवर्णानिभ्राजमानानिसर्वशः॥जातरूपमयैर्वृक्षैःशोभितानिसुपुष्पितैः ॥३७॥ तेषांमध्येस्थितोराजामेरुरुत्तमपर्वतः ॥ आदित्येनप्रसन्नेनशैलोदत्तवरःपुरा ॥ ३८ ॥ तेनैवमुक्तःशैलेंद्रःसर्वएवत्वदाश्रयाः ॥ मत्प्रसादाद्भविष्यंतिदिवारात्रौचकांचनाः ॥३९॥ त्वयियेचापिवत्स्यंतिदेवगंधर्वदानवाः ॥तेभविष्यंतिभक्ताश्चप्रभयाकांचनप्रभाः ॥ ४० ॥ विश्वेदेवाश्चवसवोमरुतश्च दिवौकसः ॥ आगत्यपश्चिमांसंध्यांमेरुमुत्तमपर्वतम् ॥ ४१ ॥

हैं और फूले फले हुये सुवर्ण मय वृक्षोंके समूहसे शोभायमान हैं ॥ ३७ ॥ उन साठ हजार पर्वतोंके मध्यमें येक अति उत्तम राजाकी समान सुवर्ण मय मेरुपर्वत है; पहले सूर्यनारायणने प्रसन्न होकर इसको वरदान दियाथा ॥ ३८ ॥ वह वरदान इस प्रकार दियाथा कि येक समय सूर्य नारायणने उस अचलसे कहाकि हमारे प्रसादसे तुम्हारे आश्रित समस्त पर्वत दिन रात्रिमें सुवर्ण मय हो जांयगे ॥ ३९ ॥ और तुम्हारे ऊपर जो देव दानव और गन्धर्व गण वास करेंगे वह हमारे भक्त गण सुवर्णकी समान प्रभावान हो जायँगे ॥ ४० ॥ इस सावर्णि-मेरु पर्वत पर विश्वदेव

प्रकारके विविध रमणीक सरोवर देखे ॥ १४ ॥ वहांपर धातुमंडित उदय पर्वत और अप्सराओंके रहनेंका स्थान क्षीरसमुद्रभी देखा॥ १५ ॥
वहां भी हमारे पोछेर वालि आया तब वहांसे हम भागतेरफिर उदयाचलपर्वतपर आये ॥ १६ ॥ पूर्व दिशासे हम विन्ध्याचल और विविध वृक्षोंसे
युक्त चन्दन वृक्ष परिशोभित दक्षिणदिशाको भागे ॥ १७ ॥ वहां परभी दूसरे पर्वत पर हमनें अपने पोछे वालिको भागते हुए देखा
तब हम वहांसेभी भागे और फिर पश्चिम दिशाको आये ॥ १८ ॥ पश्चिम दिशामें विविध देश अनेक पर्वत, और गिरिश्रेष्ठ अस्ताचलको

उदयंतत्रपश्यामिपर्वतंधातुमंडितम् ॥ क्षीरोदंसागरंचैवनित्यमप्सरसालयम् ॥ १५ ॥ परिकाल्यमानस्तुतदावा
लिनाभिद्रुतोह्यहम् ॥ पुनरावृत्यसहसाप्रस्थितोऽहंतदाविभो ॥ १६ ॥ दिशस्तस्यास्ततोभूयःप्रस्थितोदक्षिणां
दिशम् ॥ विंध्यपादपसंकीर्णांचंदनद्रुमशोभिताम् ॥ १७ ॥ द्रुमशैलांतरेपश्यन्भूयोदक्षिणतोपराम् ॥ अपरां
चदिशंप्राप्तोवालिनासमभिद्रुतः ॥ १८ ॥ सपश्यन्विविधान्देशानस्तंचगिरिसत्तमम् ॥ प्राप्यचास्तंगिरिश्रेष्ठमुत्तरं
संप्रधावितः ॥ १९ ॥ हिमवंतंचमेरुंचसमुद्रंचतथोत्तरम् ॥ यदानाविंदेशरणंवालिनासमभिद्रुतः ॥ २० ॥ ततो
मांबुद्धिसंपन्नोहनुमान्वाक्यमब्रवीत् ॥ इदानींमेस्मृतंराजन्यथावालीहरीश्वरः ॥ २१ ॥ मतंगेनतदाशप्तोह्यस्मिन्ना
श्रममंडले ॥ प्रविशेद्यदिवावालीमूर्धास्यशतधाभवेत् ॥ २२ ॥ तत्रवासःसुखोऽस्माकंनिरुद्विग्नोभविष्यति ॥ तत्र
पर्वतमासाद्यऋष्यमूकंनृपात्मज ॥ २३ ॥

देख, वहांभी वालिके आनेंका समाचार पाय फिर उत्तर दिशाको भागे ॥ १९ ॥ उत्तर दिशामें पहुँच हिमवान्, मेरु और उत्तर समुद्रतक
हम चले गये, परन्तु वालिके भयसे हमको कहीं शरण नहीं मिली ॥२० ॥तब बुद्धिमान् हनुमानजीनें हमसे कहा कि हे राजन् ! इस समय हमको
याद आया कि यह वानरराज वालि ॥ २१ ॥ मतंग मुनिके शापसे शापित जब उस आश्रममंडलमें प्रवेश करेगा तब उसके मस्तकके शत खंड
हो जाँयगे ॥ २२ ॥वहांपर वास करनेंसे हम सब वेखटके सुखसे वास कर सकेंगे; जब हनुमानजीनें ऐसा कहा तो हम ऋष्यमूक पर्वत पर आये॥२३॥

तक जासकतेहैं कि जहांतक सूर्यका प्रकाश और मर्यादा है ; और इसके आगे हम कुछभी नहीं जानते हैं ॥ ५१ ॥ रावणका स्थान और जानकी जीके निकट गमन करनेंके लिये अस्ताचलतक चले जाकर एक मास पूर्ण होते २ लौट आओ ॥ ५२ ॥ एक माससे ऊपर वहांपर मत लगाना और जो एक माससे पीछे आवैगा उसको हम मार डालेंगे, हमारे श्वशुर महावीर्य सुषेण तुम लोगोंके साथ जाँयगे ॥ ५३ ॥ तुम सब उनकी आज्ञामें रहना; और जो कुछ यह कहैं वह श्रवण करना क्योंकि यह हमारे श्वशुर महाबलवान् और महाबलशाली हैं इस्से गुरू हैं ॥ ५४ ॥ और

अवगम्यतुवैदेहींनिलयंरावणस्यच ॥ अस्तंपर्वतमासाद्यपूर्णेमासेनिवर्तत ॥ ५२ ॥ ऊर्ध्वंमासान्नवस्तव्यंवसन्वध्यो भवेन्मम ॥ सहैवशूरोयुष्माभिःश्वशुरोमेगमिष्यति ॥ ५३ ॥ श्रोतव्यंसर्वमेतस्यभवद्भिर्दिष्टकारिभिः ॥ गुरुरेषम हाबाहुःश्वशुरोमेमहाबलः ॥ ५४ ॥ भवंतश्चापिविक्रांताःप्रमाणंसर्वएवहि ॥ प्रमाणमेनंसंस्थाप्यपश्यध्वंपश्चिमांदि शम् ॥ ५५ ॥ कृतकृत्याभविष्यामःकृतस्यप्रतिकर्मणा ॥ अतोन्यदपियत्कार्यंकार्यस्यास्यप्रियंभवेत् ॥ संप्रधार्य भवद्भिश्चदेशकालार्थसंहितम् ॥ ५६ ॥ ततःसुषेणप्रमुखाःप्लवंगमाःसुग्रीववाक्यंनिपुणंनिशम्य ॥ आमंत्र्यसर्वेप्लवगाधि पास्तेजग्मुर्दिशंतांवरुणाभिगुप्ताम् ॥ ५७ ॥ ॥ इतिश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेद्वि चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४२ ॥

पश्चिम दिशाको खोजो ॥ ५५ ॥ तुम सबभी पराक्रमी और कर्त्तव्य कार्यका निश्चय करनेंवाले हो; तथापि इनको नियम बतलानेंवाला जानकर जो समस्त प्रिय कार्य हैं उन जब उपकारका बदला प्रत्युपकार देदेंगे तब हम लोग कृतकार्य हो जांयगे इसके सिवाय रावणका वध होनेंतक सबको तुम लोग देश काल और अर्थके अनुसार विचार लेना ॥ ५६ ॥ तब सुषेणादि निपुण वानरगण सुग्रीवजीके विनीत वचन सुन उनसे बिदाले प्रीति सहित पश्चिम दिशाको चले गये ॥ ५७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

सब वानरोंके सहित सीताजीको ढूंडकर सुग्रीवजीके निकट उपस्थित हुआ ॥ ९ ॥ उस प्रस्रवणगिरिपर लक्ष्मण सहित रामचन्द्रको प्रणाम कर सुग्रीवजीसे बोला ॥ १० ॥ हमनें समस्त पर्वत, गहन, वन, सागर, नदी, जनपद, ग्राम, पुरादि ढूंडे ॥ ११ ॥ आपके बताये हुए सब गुहादि स्थान ढूंडे और अनेक भांतिके कुंजभी बार २ खोजे ॥ १२ ॥ उनमें जो गहन देशथे उनको वारंवार ढूंढा जो दुर्ग गहन विषम स्थानथे बडे २ जीवोंके रहनेंके स्थानमें ढूंड और उन्हें मार जो रुरु देशहैं उन्हें बार २ देखा ॥ १३ ॥ हे वानरेन्द्र ! महावीर्यवान् और महाकुलमें उत्पन्न

तंप्रस्रवणपृष्ठस्थंसमासाद्याभिवाद्यच ॥ आसीनंसहरामेणसुग्रीवमिदमब्रुवन् ॥१०॥ विचिताःपर्वताःसर्वेवनानिगहनानिच ॥ निम्नगाःसागरांताश्चसर्वेजनपदाश्चये ॥ ११ ॥ गृहाश्चविचिताःसर्वायाश्चतेपरिकीर्तिताः ॥ विचिताश्चमहागुल्मालतावितससंतताः ॥ १२ ॥ गहनेषुचदेशेषुदुर्गेषुविषमेषुच ॥ सत्त्वान्यतिप्रमाणानिविचितानिहतानिच ॥ येचैवगहनादेशाविचितास्तेपुनःपुनः ॥ १३ ॥ उदारसत्त्वाभिजनोहनूमान्समैथिलींज्ञास्यतिवानरेंद्र ॥ दिशंतुयामेवगतातुसीतातामास्थितोवायुसुतोहनूमान् ॥ १४ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येकिष्किंधाकांडेसप्तचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४७ ॥ सहतारांगदाभ्यांतुसहसाहनुमान्कपिः ॥ सुग्रीवेणयथोद्दिष्टंगंतुंदेशंप्रचक्रमे ॥ १ ॥ सतुदूरमुपागम्यसर्वैस्तैःकपिसत्तमैः ॥ ततोविचित्यविंध्यस्यगुहाश्चगहनानिच ॥ २ ॥ पर्वताग्रनदीदुर्गान्सरांसिविपुलद्रुमान् ॥ वृक्षखंडांश्चविविधान्पर्वतान्वनपादपान् ॥ ३ ॥ अन्वेषमाणास्तेसर्वेवानराःसर्वतोदिशम् ॥ नसीतांददृशुर्वीरामैथिलींजनकात्मजाम् ॥ ४ ॥

हुए हनुमानजी सीताको अवश्यही जानसकेंगे क्योंकि सीताजी जिस दिशाको गईहैं; पवनकुमार हनुमान्जी उसी दक्षिण दिशामें गयेहैं॥१४॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० किष्किन्धाकांडे सप्तचत्वारिंशःसर्गः॥ ४७ ॥ इधर कपिवर हनुमानजी तार और अंगदजीके सहित सुग्रीवजीकी बताई हुई दिशामें गमन करने लगे ॥ १ ॥ वह समस्त कपिगणोंके सहित दूर गमन करके विन्ध्याचलकी सघन गुहादि खोजनें लगे ॥ २ ॥ पर्वत और उनके आगे वहती हुई नदी दुर्गम स्थान सरोवर अनेक तरुवर सघनवृक्षोंसे युक्त विविध पर्वत ॥ ३ ॥भली भांति सब वानरोंनें दक्षिण दिशामें

श्रीरामचन्द्रजी सर्व प्राणियोंके मान्य और प्रियहैं; सो यह हमारे ऊपर परम प्रसन्न होरहेहैं; तुम लोग अपनी बुद्धि और विक्रमसे जैसे होसके वैसे बहुतसे दुर्गम स्थान, नदी और पर्वत सबमें जानकीजीको ढूंडो॥९॥१०॥ उस उत्तर दिशाकी ओर जानेमें म्लेक्ष, पुलिन्द, शूरसेन, प्रस्थल, भरत, कुरु, मद्रक, ॥ ११ ॥ कम्बोज, वरद, यवन, और शकोंके नगर देखकर हिमालय पर्वतको खोजना ॥ १२ ॥ लोध्र और पद्मक वनमें और देवदारुके वनमें जानकीजी और रावण का अनुसन्धान करना तुम्हारा कर्तव्यहै ॥ १३ ॥ फिर सोमाश्रमपर जाय देवता और गन्धर्वगणोंसे सेवित

इमानिबहुदुर्गाणिनद्यःशैलांतराणिच ॥ भवंतःपरिमार्गंतुबुद्धिविक्रमसंपदा ॥ १० ॥ तत्रम्लेछान्पुलिंदांश्चशूरसेनांस्तथैवच ॥ प्रस्थलान्भरतांश्चैवकुरूंश्चसहमद्रकैः ॥ ११ ॥ कांबोजयवनांश्चैवशकानांपत्तनानिच ॥ अन्वीक्ष्यवरदांश्चैवहिमवंतंविचिन्वथ ॥ १२ ॥ लोध्रपद्मकखंडेषुदेवदारुवनेषुच ॥ रावणःसहवैदेह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥ १३ ॥ ततःसोमाश्रमंगत्वादेवगंधर्वसेवितम् ॥ कालंनाममहासानुंपर्वतंतंगमिष्यथ ॥ १४ ॥ महत्सुतस्यशैलेषुपर्वतेषुगुहासुच॥ विचिन्वतमहाभागांरामपत्नीमनिंदिताम् ॥ १५ ॥ तमतिक्रम्यशैलेंद्रंहेमगर्भंमहागिरिम् ॥ ततःसुदर्शनंनामपर्वतंगंतुमर्हथ ॥ १६ ॥ ततोदेवसखानामपर्वतःपतगालयः ॥ नानापक्षिसमाकीर्णोविविधद्रुमभूषितः ॥ १७ ॥ तस्यकांचनखंडेषुनिर्दरेषुगुहासुच ॥ रावणःसहवैदेह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥ १८ ॥ तमतिक्रम्यचाकाशंसर्वतःशतयोजनम् ॥ अपर्वतनदीवृक्षंसर्वसत्त्वविवर्जितम् ॥ १९ ॥

बडे २ कँगूरोंसे युक्त काल नामक पर्वतको तुम लोग देखोगे ॥ १४ ॥ उस पर्वतकी बडी कन्दराओंमें और सब दुर्गम स्थानोंमें उन निन्दा रहित श्रीरामचन्द्रजीकी भार्याको तुम लोग ढूंडना ॥ १५ ॥ उस काल पर्वतको नाँघकर हेमगर्भ महापर्वत सुदर्शनपर तुम लोग जाओगे ॥ १६ ॥ फिर अनेक भांतिके पक्षियोंसे परिपूर्ण और विविध प्रकारके वृक्षोंसे शोभायमान पक्षि लोगोंका वासस्थान देवसखा नाम महा पर्वतहै ॥ १७ ॥ उसकी सुवर्णमय कन्दराओंमें, और समस्त निर्झरोंमें रावण और जानकीजीको तुम लोग ढूंडना ॥ १८ ॥ उस देवसखा पर्वतके आगे शत यो

तोंकी कन्दरायें ॥ १४ ॥ व नदियें आदि सबही खोजे पर उन महात्माओंनें वहांभी जनककुमारी सीताजीको न पाया ॥ १५ ॥ अथवा सुग्रीवजीके प्रियकारी श्रीरामचंद्रजीकी वनिता हरण करनेंवाले रावणकोभी नहीं देखा वह सब वानर लता और झाडियोंसे ढके उस भयंकर ॥ १६ ॥ वनमें प्रवेश करके देवताओंसे निर्भय हुए भयंकर कर्म करनेवाले एक राक्षसको देखते हुए वानरोंनें उस पर्वताकार घोर असुरको देखकर ॥ १७ ॥ दृढ रूपसे जांघिया आदि वस्त्र पहरे वह बली राक्षसभी उनसमस्त पर्वताकार वानरोंको देखकर उनसे बोला कि देखो मैं अभी तुम

प्रभवानिनदीनांचविचिन्वंतिसमाहिताः ॥ तत्रचापिमहात्मानोनापश्यन्जनकात्मजाम् ॥ १५ ॥ हर्तारंरावणं वापिसुग्रीवप्रियकारिणः ॥ तेप्रविश्यतुतंभीमंलतागुल्मसमावृतम् ॥ १६ ॥ ददृशुर्भीमकर्माणमसुरंसुरनिर्भयम् ॥ तंदृष्ट्वावानराघोरंस्थितंशैलमिवासुरम् ॥ १७ ॥ गाढंपरिहिताःसर्वेदृष्ट्वातंपर्वतोपमम् ॥ सोपितान्वानरान्सर्वान्नष्टाःस्थेत्यब्रवीद्बली ॥ १८ ॥ अभ्यधावतसंक्रुद्धोमुष्टिमुद्यम्यसंगतम् ॥ तमापतंतंसहसावालिपुत्रोंगदस्तदा ॥ १९ ॥ रावणोऽयमितिज्ञात्वातलेनाभिजघानह ॥ सवालिपुत्राभिहतोवक्राच्छोणितमुद्वमन् ॥ २० ॥ असुरोन्यपतद्भूमौपर्यस्तइवपर्वतः ॥ तेतुतस्मिन्निरुच्छ्वासेवानराजितकाशिनः ॥ २१ ॥ विचिन्वन्प्रायशस्तत्रसर्वंतेगिरिगह्वरम् ॥ विचितंतुततःसर्वंसर्वेतेकाननौकसः ॥ २२ ॥

सबको मारे डालताहूं ॥ १८ ॥ यह कहकर घूसातान क्रोधकर वह उनसब वानरोंपै धाया उसको इस भांतिसे आता हुआ देखकर सहसा वालिकुमार अंगदजीने ॥ १९ ॥ यही रावणहै यह समझकर उसके एक चपेटलगाई वह वालिपुत्र अंगदजीके चपटाघातसे व्याकुल हो मुखमें रुधिर वमन करता ॥ २० ॥ उखडेहुए पर्वतकी समान वह राक्षस पृथ्वीपर गिरा, उस असुरके मृतक हो जानेंसे वानरगण विजयलक्ष्मी पाय परमानंदको प्राप्त हुए ॥ २१ ॥ फिर उन समस्त वानरोंनें पर्वतकी समस्त कंदराओंको और बनको ढूंढा

नस सरोवरहै, वहांपर देवता, राक्षस और मनुष्यादि जीव गणोंके पहुँचनेंकी गति नहींहै ॥ २८ ॥ इसकारणसे युक्ति पूर्वक तुम सब उस पर्वतके छोटे और बडे शृंगोंको देखना, क्रौञ्च पर्वतसे आगे चलनें पर मेनाक नामपर्वत दिखाई देगा ॥ २९ ॥ उस पर मयदानवने आपही अपनें रहनेंके स्थानको बनायाहै । उस मेनाकके शृंग; प्रस्थ; और कन्दराओंमें सीताजीको ढूंडना ॥ ३० ॥ यह मेनाक पर्वत अश्वमुखी (किन्नरी) स्त्रियोंका भवनहै, इस देशको नांघकर सिद्धसेवित आश्रमोंपर पहुँचोगे ॥ ३१ ॥ वहांपर सिद्ध, वैखानस, वालखिल्य, आदि तपस्वी गण वास करतेंहैं; वह पाप रहित सिद्ध व तपस्वियों गणोंके वन्दन करनेके योग्यहैं ॥ ३२ ॥ इस कारण विनय सहित उन सब लोगोंसे सीताजीका समाचार पूछना

सचसर्वैर्विचेतव्यःससानुप्रस्थभूधरः ॥ क्रौंचंगिरिमतिक्रम्यमेनाकोनामपर्वतः ॥ २९ ॥ मयस्यभवनंतत्रदानवस्यस्वयंकृतम् ॥ मैनाकस्तुविचेतव्यःससानुप्रस्थकंदरः ॥ ३० ॥ स्त्रीणामश्वमुखीनांतुनिकेतस्तत्रतत्रतु ॥ तंदेशंसमतिक्रम्यआश्रमंसिद्धसेवितम् ॥ ३१ ॥ सिद्धावैखानसायत्रवालखिल्याश्चतापसाः ॥ वंदितव्यास्ततःसिद्धास्तपसावीतकल्मषाः ॥ ३२ ॥ प्रष्टव्याचापिसीतायाःप्रवृत्तिर्विनयान्वितैः ॥ हिमपुष्करसंछन्नंतत्रवैखानसंसरः ॥ ३३ ॥ तरुणादित्यसंकाशैर्हंसैर्विचरितंशुभैः ॥ औपवाह्यःकुवेरस्यसार्वभौमइतिस्मृतः ॥ ३४ ॥ गजःपर्येतितंदेशंसदासहकरेणुभिः ॥ तत्सरःसमतिक्रम्यनष्टचंद्रदिवाकरम् ॥ अनक्षत्रगणंव्योमनिष्पयोदमनादितम् ॥ ३५ ॥ गभस्तिभिरिवार्कस्यसतुदेशःप्रकाश्यते ॥ विश्राम्यद्भिस्तपःसिद्धैर्देवकल्पैःस्वयंप्रभैः ॥ ३६ ॥ तंतुदेशमतिक्रम्यशैलोदानामनिम्नगा ॥ उभयोस्तीरयोस्तस्याःकीचकानामवेणवः ३७ ॥

उचितहै । वहांपर एक वैखानस नाम सरोवरहै । जिसमें सुवर्णके कमल खिल रहेहैं ॥ ३३ ॥ उस सरोवरपर प्रभात कालके सूर्यकी समान रंग वाले शुभ हंसगण भ्रमण किया करतेहैं और कुबेरजीको सवारीका सार्वभौम नामक ॥ ३४ ॥ गज अपनी हथनियोंके साथ वहां विचरा करताहै; इस सरोवरके नांघनेपर सूर्य चंद्र विहीन और नक्षत्र व मेघोंसे रहित नित्य आकाश स्थलहै ॥ ३५ ॥ वहांपर तो केवल सूर्य नारायणकी किरणोंसे प्रकाश होता रहताहै; वहांपर अपनेही तेजकी प्रभासे दीप्तिमान देव समान सिद्ध लोग तप किया करतेहैं ॥ ३६ ॥ उस देशके आगे शैलोदा नामक

सबको जरा २ करके खोजो ॥ ७ ॥ जो लोग कार्यको करते हैं उनको उस कार्यका फल अवश्यही मिलता है परन्तु एक बार खेदयुक्त होनेसे फिर उत्साह आना अत्यन्त कठिन हो जाता है ॥ ८ ॥ हे वानरगण! सुग्रीवजी बडे क्रोधी राजा हैं; वह बडा कडा दंड दिया करते हैं; इसलिये उन से और महात्मा श्रीरामचन्द्रजीसे भय करना उचित है ॥ ९ ॥ तुम्हारे सबके हित करनेंहीके लिये हमनें ऐसा कहा है; यदि रुचि हो तो इस कार्य को करो; जिस्से जितना कार्य होसके उतनाही कार्य करे; और तुमनें जो कुछ हितकारी बात विचारी हो वहभी कहो ॥ १० ॥ अंगदजीके वचन सुनकर गन्धमादन नामक वानर प्यासके मारे और परिश्रमसे व्याकुल हो कहने लगा ॥ ११ ॥ अंगदजीने जो कुछ कहा वह हितकारी और अनुकू

अवश्यंकुर्वतांतस्यदृश्यतेकर्मणःफलम् ॥ परंनिर्वेदमागम्यनहिनोन्मीलनंक्षमम् ॥ ८ ॥ सुग्रीवःक्रोधनोराजाती
क्ष्णदंडश्चवानराः ॥ भेतव्यंतस्यसततंरामस्यचमहात्मनः ॥ ९ ॥ हितार्थमेतदुक्तंवःक्रियतांयदिरोचते ॥ उच्यतां
हिक्षमंयत्तत्सर्वेषामेववानराः ॥ १० ॥ अंगदस्यवचःश्रुत्वावचनंगंधमादनः ॥ उवाचव्यक्तयावाचापिपासाश्रमखिन्न
या ॥ ११ ॥ सदृशंखलुवोवाक्यमंगदोयदुवाचह ॥ हितंचैवानुकूलंचक्रियतामस्यभाषितम् ॥ १२ ॥ पुनर्मार्गाम
हेशैलान्कंदरांश्चशिलास्तथा ॥ काननानिचशून्यानिगिरिप्रस्रवणानिच ॥ १३ ॥ यथोद्दिष्टानिसर्वाणिसुग्रीवेणमहा
त्मना ॥ विचिन्वंतुवनंसर्वेगिरिदुर्गाणिसंगताः ॥ १४ ॥ ततःसमुत्थायपुनर्वानरास्तेमहाबलाः ॥ विंध्यकाननसंकी
र्णांविचेरुर्दक्षिणांदिशम् ॥ १५ ॥ तेशारदाभ्रप्रतिमंश्रीमद्रजतपर्वतम् ॥ शृंगवंतंदरीवंतमधिरुह्यचवानराः ॥ १६ ॥
तत्रलोध्रवनंरम्यंसप्तपर्णवनानिच ॥ विचिन्वंतोहरिवराःसीतादर्शनकांक्षिणः ॥ १७ ॥

ल है इसलिये इनके कहनेंके अनुसार कार्य करो ॥ १२ ॥ हम सब जन पर्वत कन्दरायें, शिला, वन और पर्वतोंके शूने स्थान ढूंडे ॥ १३ ॥ जिस प्रकार सुग्रीवजीनें बताया है उसी प्रकारसे गिरिदुर्ग और पर्वतोंके झरनें सब फिरकर ढूंडो ॥ १४ ॥ यह सुनकर समस्तही बलवान वानरगण फिर उठे और विन्ध्याचलकी कानन पूर्ण दक्षिण दिशामें घूमने लगे ॥ १५ ॥घूमते २ उन्होंनें एक शरदकालकी मेघकी तुल्य रंगवाला शिखर और गुफादि युक्त चांदीका एक पर्वत देखा उसपर चढ ॥ १६ ॥ और उसी गिरिपर सीताजीके देखनेंकी इच्छा किये समस्त वानरोंनें सातपत्तेवाले

र्दूर्य मणियोंसे चित्रित होतेहैं ॥ ४६ ॥ किसी २ वृक्षोंमें सब ऋतुओंमेंपहरनेके योग्य वस्त्रही फला करतेहैं; और तरुवरमें बडे मोलके खिलौनें फला करतेहैं ॥ ४७ ॥ बहुतसे वृक्षोंमें चित्र विचित्र विस्तरे फले करतेहैं किसी २ वृक्षोंमें मनोहर हार ॥ ४८ ॥ और बहुतसे वृक्षोंमें बडे मोलकी सवारियां और खानें पीनेंकी वस्तुयें उत्पन्न होतीहैं; उस स्थानमें रूपयौवन सम्पन्न गुण युक्त स्त्रियांभी फलतीहैं ॥ ४९ ॥ दीप्यमान गन्धर्वगण किन्नरगण, सिद्धगण, नागगण, विद्याधरगण, अपनी २ स्त्रियोंके सहित वहां विहार करतेहैं ॥ ५० ॥ वह सबही पुण्यवान्, सबही रति परायण सबही कामभोग युक्त होते और अपनी २ स्त्रियोंके सहित वास करतेहैं ॥ ५१ ॥ वहांपर समस्त जीव गणोंके रमणीक हास्य स्वरके सहित

सर्वर्तुसुखसेव्यानिफलंत्यन्येनगोत्तमाः॥ महार्हमणिचित्राणिफलंत्यन्येनगोत्तमाः ॥ ४७ ॥शयनानिप्रसूयंतेचित्रास्तरणवंतिच ॥ मनःकांतानिमाल्यानिफलंत्यत्रापरेद्रुमाः॥ ४८ ॥पानानिचमहार्हाणिभक्ष्याणिविविधानिच ॥ स्त्रियश्चगुणसंपन्नारूपयौवनलक्षिताः ॥ ४९ ॥ गंधर्वाःकिन्नराःसिद्धानागाविद्याधरास्तथा ॥ रमंतेसततंतत्रनारीभिर्भास्वरप्रभाः ॥ ५० ॥सर्वेसुकृतकर्माणःसर्वेरतिपरायणाः॥ सर्वेकामार्थसहितावसंतिसहयोषितः ॥ ५१ ॥ गीतवादित्रनिर्घोषःसोत्कृष्टहसितस्वरैः ॥ श्रूयतेसततंतत्रसर्वभूतमनोरमः ॥ ५२ ॥ तत्रनामुदितःकश्चिन्नात्रकश्चिदसत्प्रियः ॥ अहन्यहनिवर्धंते गुणास्तत्रमनोरमाः ॥ ५३ ॥ तमतिक्रम्यशैलेंद्रमुत्तरःपयसांनिधिः ॥ तत्रसोमगिरिर्नाममध्येहेममयोमहान् ॥ ५४ ॥ सतुदेशोविसूर्योपितस्यभासाप्रकाशते॥सूर्यलक्ष्म्याभिविज्ञेयस्तपतेवविवस्वता ॥ ५५ ॥ भगवांस्तत्रविश्वात्माशंभुरेकादशात्मकः ॥ ब्रह्मावसतिदेवेशोब्रह्मर्षिपरिवारितः ॥ ५६ ॥

गीत, और वाजोंकी ध्वनि सदाही सुनाई आया करतीहै ॥ ५२ ॥ वहांपर कोईभी असन्तुष्ट नहीं, किसीको किसी प्यारी वस्तुका वियोग नहीं वहांपर दिन २ मनोहर गुणोंकी भरती हुआ करतीहै ॥ ५३ ॥ जब उस पर्वतसे तुम आगे चलोगे तो उत्तर समुद्र आवैगा वहांपर सुवर्णमय सोमनामक एक महा पर्वत विद्यमान है ॥ ५४ ॥ यद्यपि वहांपर सूर्यका प्रकाश नहीं है तथापि सोम पर्वतकी प्रभासे ही वहां ऐसा प्रकाश रहता है कि जैसा सूर्य युक्त देशमें रहता है ॥ ५५ ॥ वहांपर विश्वात्मा एकादश रुद्रात्मक महादेवजी और देवेश्वर ब्रह्माजी सब ब्रह्मर्षि गणोंके

कि अनेक प्रकारकी गुफा व सघन विस्तारित वन विद्यमानथे; हनुमानजीनें उन समस्त पर्वतोंको ढूंडा ॥ ४ ॥ परस्पर एक दूसरेके निकट रह कर एक २ करके गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गंधमादन, ॥ ५ ॥ मैन्द, द्विविद, हनुमान, जाम्बवान्, युवराज अंगद, तार, इन सबने वनमें फिरते हुये ॥ ६ ॥ पर्वतके समूहसे युक्त दक्षिणदिशाको ढूंडते भालते हुये एक अति ऐंडी गुफा देखी ॥७॥ उस का ऋक्षबिल नामथा, वह अति दुर्गम और दानवोंसे रक्षित बेल पत्तोंसे ढक रहीथी. क्षुधा, और प्यास लगनेंके कारण थके जलपान करनेंकी इच्छा किये ॥८॥ लता पातादिकों से छाये उस महाबिलको देखते हुये, उसमें से क्रौञ्च, हंस, सारस आदि पक्षी निकल रहेथे ॥ ९ ॥ जलसे भीगे कमल परागसे रँगीले अरुण चकवा चकवीभी

परस्परेणरहिताअन्योन्यस्याविदूरतः ॥ गजोगवाक्षोगवयःशरभोगंधमादनः ॥५॥ मैंदश्चद्विविदश्चैवहनूमान्जांबवानपि॥अंगदोयुवराजश्चतारश्चवनगोचरः॥६॥ गिरिजालावृतान्देशान्मार्गित्वादक्षिणांदिशम्॥विचिन्वंतस्ततस्तत्रददृशुर्विवृतंबिलं॥७॥दुर्गमृक्षबिलंनामदानवेनाभिरक्षितं॥ क्षुत्पिपासापरीतास्तुश्रांतास्तुसलिलार्थिनः॥८॥अवकीर्णंलतावृक्षैर्ददृशुस्तेमहाबिलम् ॥ तत्रक्रौंचाश्चहंसाश्चसारसाश्चापिनिष्क्रमन् ॥ ९ ॥ जलार्द्राश्चक्रवाकाश्च रक्तांगाःपद्मरेणुभिः ॥ ततस्तद्बिलमासाद्यसुगंधिदुरतिक्रमम् ॥ १० ॥ विस्मयव्यग्रमनसोबभूवुर्वानरर्षभाः ॥ संजातपरिशंकास्तेतद्बिलंप्लवगोत्तमाः ॥ ११ ॥ अभ्यपद्यंतसंहृष्टास्तेजोवंतोमहाबलाः ॥ नानासत्त्वसमाकीर्णंदैत्येंद्रनिलयोपमम् ॥ ॥ १२ ॥ दुर्दर्शमिवघोरंचदुर्विगाह्यंचसर्वशः ॥ ततःपर्वतकूटाभोहनूमान्मारुतात्मजः ॥ १३ ॥ अब्रवीद्वानरान्घोरान्कांतारवनकोविदः ॥ गिरिजालावृतान्देशान्मार्गित्वादक्षिणांदिशम् ॥ १४ ॥

दृष्टि आये, उस सुगन्धिवान, बडे कठिनसे प्रवेश करने योग्य बिलको प्राप्त होकर ॥ १० ॥ सब वानरयूथपोंका मन विस्मयसे व्याकुल होगया उन सब वानर श्रेष्ठोंको उस बिलके विषयमें बडी शंका उत्पन्न हुई ॥ ११ ॥ वह तेजस्वी महा बलवान् वानर गण अनेक प्रकार के जीवोंसे परिपूर्ण राजा बलिके स्थानके तुल्य उस बिलके द्वारपर आये ॥ १२ ॥ वह बिल बडे कष्टसे दर्शन करनेंके योग्य अतिघोर सब स्थानोंमें दुर्गम थी, तब पर्वतकी समान पवनकुमार हनुमानजी ॥ १३ ॥ जोकि वनपर्वतोंका विषय भली भांति जानतेथे घोरदर्शन वानरोंसे बोले कि हम सबनें दक्षिणदिशामें

था मेघोंके चलनेंके स्थान अम्बरमें; अथवा स्वर्गमें किम्वा सलिलमें,कहींभी तुम्हारी गति नहीं रुक सकती ॥ ३ ॥ असुर, गन्धर्व, नाग, नर, और
देवता ओंके लोक व समुद्र पृथ्वी और पातालादि समस्त लोकोंको तुमजानते हो ॥ ४ ॥ हे महावीर! क्या गतिमें, क्या तेजमें, क्या शीघ्रतामें,
सबमें तुम अपने पिता तेजस्वी पवनकीही समान हो ॥ ५ ॥ और तुम्हारी समान तेजशाली जीव तीनों लोकमें नहीं है; इस कारण जिस्से
सीताजीका पता लगजाय ऐसा यत्न करनेंमें तुमको विशेष यत्न करनाउचित है ॥ ६ ॥ हे नीति पंडित हनुमन्! तुममेंही बल बुद्धि, पराक्रम दे
श और कालज्ञान और नीति यह समस्तही विद्यमान हैं ॥ ७ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजी हनुमान्‌जीसेही कार्यकी सिद्धि विचार करकै, और हनुमानजीके

गतिर्वेगश्चतेजश्चलाघवंचमहाकपे॥ सासुराःसहगंधर्वाःसनागनरदेवताः॥विदिताःसर्वलोकास्तेससागरधराधराः॥४॥ तद्यथालभ्यतेसीतातत्त्वमेवानु
पितुस्तेसदृशंवीरमारुतस्यमहौजसः ॥ ५ ॥ तेजसावापितेभूतंनसमंभुविविद्यते ॥ चिंतय ॥ ६ ॥ त्वय्येवहनुमन्नस्तिबलंबुद्धिःपराक्रमः ॥ देशकालानुवृत्तिश्चनयश्चनयपंडित ॥ ७ ॥ ततःकार्यसमा
संगमवगम्यहनूमति ॥ विदित्वाहनुमंतंचचिंतयामासराघवः ॥ ८ ॥ सर्वथानिश्चितार्थोयंहनूमतिहरीश्वरः ॥ निश्चि
तार्थतरश्चापिहनूमान्कार्यसाधने ॥ ९ ॥ तदेवप्रस्थितस्यास्यपरिज्ञातस्यकर्मभिः ॥ भर्त्रापरिगृहीतस्यध्रुवःकार्यफ
लोदयः ॥ १० ॥ तंसमीक्ष्यमहातेजाव्यवसायोत्तरंहरिम् ॥ कृतार्थइवसंहृष्टःप्रहृष्टेंद्रियमानसः ॥ ११ ॥ ददौतस्य
ततःप्रीतःस्वनामांकोपशोभितम् ॥ अंगुलीयमभिज्ञानंराजपुत्र्याःपरंतपः ॥ १२ ॥

बल विक्रमकी ओर सीताजीके उद्धार करनेंकी गुरुताको मनहीमनमें विचारकरनेलगें ८ श्रीरामचंद्रजीनें विचाराकि,कपिराजसुग्रीवजी यहसमझेहुयेहैं कि
हनुमानजीसेही कार्यकी सिद्धि होगी और हमाराभी अधिक तर यही विचारहै कि इनसेही कार्यकी सिद्धिहोगी ॥ ९ ॥ यह हनुमानजी अपने कर्मोंसे
प्रसिद्ध हुयेहैं और राजाभी इनके ऊपर कृपा करताहै, यदि यह वीरकेशरो सीताजीके ढूँडनेंको जांयगे तो अवश्यही कार्यकी सिद्धिहोगी ॥१०॥
महा तेजवान रामचंद्रजी हनुमानजीको कार्यके साधन करनेंमें श्रेष्ठ विचारकरके कृतार्थकी समान सन्तुष्ट होगये हर्षके कारण उनकी सब इन्द्रियां
प्रफुल्लित होगई ॥ ११ ॥ तिसके पीछे पर वीर घाती श्रीरामचंद्रजीनें प्रसन्नहोकर एक अंगूठी जिसपर उनका नाम खुदा हुआथा सीताजीको निशानी

पडे रहे क्योंकि वह बहुत दुर्बलहोरहेथे ॥ २३ ॥ उन वानरोंनें इधर उधर देखकर समझा कि वस अब यहींपर हमारा मरण होगा फिर
बडे कष्ट और यत्नसे चले तौ आगे एक बहुत प्रकाशमय वन दृष्टि आया ॥ २४ ॥ उस वनके सुवर्ण मय वृक्षोंकी प्रभा अग्निकी प्रभाके तु
ल्यथी, उन वृक्षोंमें ताल, तमाल, पुन्नाग, वंजुल, धव, ॥ २५ ॥ चंपक, नाग, कर्णिकार यह सब वृक्ष फूलरहेथे और विचित्र लाल वर्णके गुच्छे
और कोंपल इन वृक्षोंमें लगेथे ॥ २६ ॥ उन वृक्षोंपर जो बेलें छाईहुईथीं, वही उनके गहनेंकी समान शोभायमान हो रहीथीं, उन सबके थांवले
वैदूर्य्यमणिके बनाये गयेथे ॥ २७ ॥ यह सब वृक्ष कांचन मय होनेंसे प्रकाशमानथे और सरोवरोंमें नील वैदूर्यमणिके सजीव पक्षी गुंजार कर

आलोकंददृशुर्वीरानिराशाजीवितेयदा ॥ ततस्तंदेशमागम्यसौम्यावितिमिरंवनम्॥ २४॥ददृशुःकांचनान्वृक्षान्दीप्तवै
श्वानरप्रभान् ॥ सालांस्तालांस्तमालांश्चपुन्नागान्वंजुलान्धवान् ॥ २५ ॥ चंपकान्नागवृक्षांश्चकर्णिकारांश्चपुष्पितान् ॥
स्तबकैःकांचनैश्चित्रैररक्तैःकिसलयैस्तथा ॥ २६ ॥ आपीडैश्चलताभिश्चहेमाभरणभूषितान् ॥ तरुणादित्यसंकाशान्वैदू
र्यमयवेदिकान् ॥ २७ ॥ विभ्राजमानान्वपुषापादपांश्चहिरण्मयान् ॥ नीलवैदूर्यवर्णाश्चपद्मिनीः पतगैर्वृताः ॥२८॥
महद्भिःकांचनैर्वृक्षैर्वृतंबालार्कसन्निभैः ॥ जातरूपमयैर्मत्स्यैर्महद्भिश्चाथपंकजैः॥२९॥नलिनीस्तत्रददृशुःप्रसन्नसलिला
युताः ॥ कांचनानिविमानानिराजतानितथैवच ॥ ३० ॥ तपनीयगवाक्षाणिमुक्ताजालावृतानिच ॥ हैमराजतभौमानिवै
दूर्यमणिमंतिच ॥ ३१ ॥ ददृशुस्तत्रहरयोगृहमुख्यानिसर्वशः ॥ पुष्पितान्फलिनोवृक्षान्प्रवालमणिसन्निभान् ॥ ३२ ॥
कांचनभ्रमरांश्चैवमधूनिचसमंततः ॥ मणिकांचनचित्राणिशयनान्यासनानिच ॥ ३३ ॥

रहेथे ॥ २८ ॥ बालसूर्यके समान रंगवाले बडे २ वृक्ष सुवर्णके ही लग रहेथे,और सरोवरोंमें मीनभी सुवर्णके हीथे, कमलभी सब हेममयथे ॥२९॥
इस प्रकारकी स्वच्छ जल वाली पुष्करिणियोंके देखनेंके अतिरिक्त शत २ विमान वहांथे जिनमें अनेक चांदीके वनेथे अनेक सोनेके थे ॥३०॥ सब
सुवर्णमय झरोखोंमें मोतियोंकी झालर लगीथीं, सुवर्ण व चांदीके बने वैदूर्यमणियुक्त ॥ ३१ ॥ वहां अनेक प्रकारके गृह वानरोंने देखे और
फल पुष्प युक्त मूंगे मणियोंके वृक्षभी देखते हुए॥ ३२ ॥ सुवर्णमय भ्रमर और मधु और मणि काञ्चन सेवित सुवर्णके शयन करनें उठनें बैठनेंके

गण गमन करने लगे; श्रीरामचंद्रजी, लक्ष्मणजीके सहित उस प्रस्रवणपर्वतपर बसे ॥ ३ ॥ सीताजीका समाचार जाननेंमें एक महीनेंकी अवधि निश्चय कर रामचंद्रजी वहां बसे फिर हिमाचलसे युक्त रमणीक उत्तरदिशाको ॥ ४ ॥ कपिश्रेष्ठ शतवलि अपनी सेनाको लेकर गया और विनत नामक यूथनाथ उत्तर दिशाको चला ॥ ५ ॥ और तार अंगदादिसहित पवनपुत्र हनुमानजी अगस्त्यजीसे सेवित दक्षिण दिशाको गये ॥ ६ ॥ और वानर शार्दूल सुषेण वरुणजीसे पाली जातीहुई घोर पश्चिम दिशाकी ओर सिधारा, ॥ ७ ॥ तब सब ओरको यथानुरूप वानरोंकी सेनाको भेजकर कपिनाथ राजा सुग्रीवजी हर्षित चित्त हुये ॥ ८ ॥इस प्रकार भेजे जाकर सकल वानर यूथप अपनी २ बताई हुई दिशा

प्रतीक्षमाणस्तंमासंसीताधिगमनेकृतः ॥ उत्तरांतुदिशंरम्यांगिरिराजसमावृताम् ॥ ४ ॥ प्रतस्थेसहसावीरोहरिः शतबलिस्तदा ॥ पूर्वांदिशंप्रतिययौविनतोहरियूथपः ॥ ५ ॥ तारांगदादिसहितःप्लवगःपवनात्मजः ॥ अगस्त्याचरितामाशांदक्षिणांहरियूथपः ॥ ६ ॥ पश्चिमांचदिशंघोरांसुषेणःप्लवगेश्वरः ॥ प्रतस्थेहरिशार्दूलोदिशंवरुणपालिताम् ॥ ७ ॥ ततःसर्वादिशोराजाचोदयित्वायथातथम् ॥ कपिसेनापतिर्वीरोमुमोदसुखितःसुखम्ः ॥ ८ ॥ एवंसंचोदिताः सर्वेराज्ञावानरयूथपाः ॥ स्वांस्वां दिशमभिप्रेत्यत्वरिताःसंप्रतस्थिरे ॥ ९ ॥ नदंतश्चोन्नदंतश्चगर्जंतश्चप्लवंगमाः ॥ क्ष्वेडंतो धावमानाश्चविनदंतोमहाबलाः ॥ १० ॥ एवंसंचोदिताःसर्वेराज्ञावानरयूथपाः ॥ आनयिष्यामहेसीतांहनिष्यामश्चरावणम् ॥ ११ ॥ अहमेकोवधिष्यामिप्राप्तंरावणमाहवे ॥ ततश्चोन्मथ्यसहसाहरिष्येजनकात्मजाम् ॥ १२ ॥ वेपमानांश्रमेणाद्यभवद्भिःस्थीयतामिति ॥ एकएवाहरिष्यामिपातालादपिजानकीम् ॥ १३ ॥

ओंको शीघ्रतासे गमन करते हुये ॥ ९ ॥ महा बलवान् वानर दल, नाद,उच्चनाद, गर्जन और क्रोध पूर्वक अनेक प्रकारके शब्द करते हुये दौडे॥ १० ॥ वानरराज सुग्रीवजी करके भेजे हुये सब वानर हाथ जोडकर "हमरावणको मार डालेंगे" हम जानकीजीको ले आमेंगे ॥ ११ ॥ कोई २ बोलेकि हम इकलेही रणस्थलमें रावणको पाय सहित सहाय उसको मार जानकीजीको ले आमेंगे ॥ १२ ॥ कोई बोलेकि यदि जानकीजी पातालमें भीहों तो उन श्रमसे कम्पमान होती हुई कामनीको "स्थिर होओ" इस प्रकारसेसमझा दृढ सहित हम अकेलेही उनको वहांसे ले आमेंगे ॥ १३ ॥

धर्मचारिणी महाभागा तपस्विनीसे बोले॥१॥हम लोग सब भांतिसे थकित प्यासे और खिन्न होकर सहसा इस अंधकारसे ढके हुए बिलमें चले आयेहैं॥२॥ हम लोग अधिक करकै प्यासे होनेंके कारणही इस बडे भारी बिलमें प्रवेश कर आये हैं। परन्तु यहांपर आय यह विविध भांतिके अद्भुत पदार्थ देखे ॥ ३ ॥ जिनके देखतेही हम सब व्यथित, सम्भ्रान्त चित्त और हतबुद्धि होगये हैं, यह प्रभात कालीन सूर्यकी समान प्रभावाले सुवर्ण मय वृक्ष किसके हैं? ॥ ४ ॥ यह पवित्र भोजन करनेंके पदार्थ फल मूलादि किसके हैं? सुवर्णमय विमान चांदीके बने गृह ॥ ५ ॥

इदंप्रविष्टाःसहसाबिलंतिमिरसंवृतम् ॥ क्षुत्पिपासापरिश्रांताःपरिखिन्नाश्चसर्वशः ॥ २ ॥ महद्धरण्याविवरंप्रविष्टाःस्म पिपासिताः ॥ इमांस्त्वेवंविधान्भावान्विविधानद्भुतोपमान् ॥ ३ ॥ दृष्ट्वावयंप्रव्यथिताःसंभ्रांतानष्टचेतसः ॥ कस्यैते कांचनावृक्षास्तरुणादित्यसन्निभाः ॥ ४ ॥ शुचीन्यभ्यवहाराणिमूलानिचफलानिच ॥ कांचनानिविमानानिराजता निगृहाणिच ॥ ५ ॥ तपनीयगवाक्षाणिमणिजालावृतानिच ॥ पुष्पिताःफलवंतश्चपुण्याःसुरभिगंधयः ॥ ६ ॥ इमेजां बूनदमयाःपादपाःकस्यतेजसा ॥ कांचनानिचपद्मानिजातानिविमलेजले ॥ ७ ॥ कथंमत्स्याश्चसौवर्णादृश्यंतेस हकच्छपैः ॥ आत्मनस्त्वनुभावाद्वाकस्यवैतत्तपोबलम् ॥ ८ ॥ अजानतांनःसर्वेषांसर्वमाख्यातुमर्हसि ॥ एवमुक्ता हनुमतातापसीधर्मचारिणी ॥ ९ ॥ प्रत्युवाचहनूमंतंसर्वभूतहितेरता ॥ मयोनाममहातेजामायावीवानरर्षभ ॥ १० ॥

सुवर्णमय मणियोंके जाल लगे यह झरोखे पुष्पित फलवान् पुण्य दायक सुगन्धिसे महकते ॥ ६ ॥ जाम्बूनदके सुवर्णमय वृक्ष किसके तेजसे उत्पन्न हुये हैं सुवर्णमय कमल फूलसे विमल जलमें कैसे बने ॥ ७ ॥ मछलियां और कछुये किसके तेजसे सुवर्णमय हुये?यह सब आपके प्रभा वसे अथवा और किसी तपस्याके बलसे बनेहैं? ॥ ८ ॥ हम सब इस बातको कुछ भी नहीं जानते आप अनुग्रह करकै यह सब वृत्तान्त हमसें कहदी जिये, जब हनुमानजीनें उस धर्मचारिणी तपस्विनीसे ऐसा कहा ॥९॥ तब सब प्राणियोंके ऊपर दया करनेवाली वह तपस्विनी हनुमानजीको उत्तर

वालि नहीं लौटा ॥ ५ ॥फिर रुधिरकी धारासे वह बिल परिपूर्ण होगया तिसको देख
पर विनीत हो टिके रहे और येक संवत वीत गया तौभी वालि नहीं लौटा ॥ ५ ॥ फिर हमने बुद्धि रहित होकर स्थिर किया कि बडा भाई वालि मारागया ऐसा
हम विस्मित और भाईके शोकसे जर्जरित हो गये ॥ ६ ॥ फिर हमने बुद्धि रहित होकर स्थिर किया कि बडा भाई वालि मारागया ऐसा
समझ कर पर्वतकी समान येक शिला खंड बिलके द्वारपर लगाय उसको बंद किया ॥ ७ ॥ हमने विचाराकि महिष इसमेंसे निकलनेंका उद्योग करेगा
तो आपही इस्से दबकर मर जायगा ऐसा विचार, और भ्राता वालिके जीवनसे निराशहो हम किष्किन्धाको चले आये ॥ ८ ॥ नगरमें आय ता
रा और रुमा व बडे राज्यको पाय बन्धु बान्धवोंके सहित हम सुखसे वास करने लगे ॥ ९ ॥ फिर वानरश्रेष्ठ वालि उस दानवको मारकर

ततःक्षतजवेगेनआपुपूरेतदाबिलम् ॥ तदहंविस्मितोदृष्ट्वाभ्रातुःशोकविषार्दितः ॥ ६ ॥ अथाहंगतबुद्धिस्तुसुव्यक्तं
निहतोगुरुः ॥ शिलापर्वतसंकाशाबिलद्वारिमयाकृता ॥ ७ ॥ अशक्नुवन्निष्क्रमितुंमहिषोविनशिष्यति ॥ ततोहमागां
किष्किंधांनिराशस्तस्यजीविते ॥ ८ ॥ राज्यंचसुमहत्प्राप्यतारांचरुमयासह ॥ मित्रैश्चसहितस्तस्यवसामिविगत
ज्वरः ॥ ९ ॥ आजगामततोवालीहत्वातंवानरर्षभः ॥ ततोहमददांराज्यंगौरवाद्भययंत्रितः ॥ १० ॥समांजिघांसुर्दुष्टा
त्मावालीप्रव्यथितेंद्रियः ॥ परिकालयतेवालीधावंतंसचिवैःसह ॥ ११ ॥ ततोहंवालिनातेनसोनुबद्धःप्रधावितः ॥ न
दीश्च विविधाःपश्यन्वनानिनगराणिच ॥१२॥ आदर्शतलसंकाशाततोवैपृथिवीमया ॥ अलातचक्रप्रतिमादृष्टागोष्प
दवत्कृता ॥ १३ ॥ पूर्वांदिशंततोगत्वापश्यामिविविधान्द्रुमान् ॥ पर्वतान्सदरीन्रम्यान्सरांसिविविधानिच ॥ १४ ॥

नगरमें आया तब हमनें भयसे भीतहो और गौरवके हेतु फिर उसको राज्य देदिया ॥ १० ॥ दुष्टात्मा वालि व्यथित हो हमारे मार डालनेंकी
इच्छा करता हुआ हमारे पीछे दौडा तब हमभी अपने मंत्रियोंके सहित भागने लगे ॥ ११ ॥ वरन हमारे सबही साथी वालिके भयसें भागे
हमनें भागते २ मार्गमें अनेक भांतिकी नदियें वन नगर इत्यादि देखे ॥ १२ ॥ इसी प्रकारसे सब भूमि जिसका आकार अलातचक्रकी
समानहै, हमने गोपदके गढेकी समान अवलोकन करली ॥ १३ ॥ फिर पूर्व दिशामें जायकर विविध भांतिके वृक्ष गुफा सहित पर्वत और अनेक

महा २ वानरोंके भक्षण करनेंसे जिनके सर्वाङ्गोंमें वानरोंका रुधिर लगा हुआथा उस कुंभकर्णको सन्मुख खडा हुआ देखकर सुग्रीवजी कहनें लगे॥ ५४ ॥ हेवीर! तुमनें हमारी ओरके प्रधान २ वीरोंको मारकर वीरताका परिचय दियाहै, हमारी बहुत सारी सैना तुमने भक्षणभी करली है, अधिक क्याकहैं तुमनें यह कार्य करके अनुपम यश प्राप्त कियाहै ॥ ५५ ॥ इसलिये इस समय तुम इन वानरोंको छोडदो, साधारण वानरोंके साथ युद्ध करनेंसे तुमको क्या फल मिलेगा ? हे राक्षस ! जो युद्धकी वासना हो तौ हम यह पर्वतका शृङ्ग चलाते हैं, तुम आज हमारे साथ युद्ध करो ॥ ५६ ॥ वानरराज सुग्रीवजीके वीरता धीरता युक्त ऐसे वचन सुनकर राक्षस शार्दूल कुंभकर्ण बोला ॥ ५७ ॥ तुम प्रजापति ब्रह्माजीके

कपिशोणितदिग्धांगंभक्षयंतंमहाकपीन् ॥ कुंभकर्णंस्थितंदृष्ट्वासुग्रीवोवाक्यमब्रवीत् ॥ ५४ ॥ पातिताश्चमयावी राःकृतंकर्मसुदुष्करम् ॥ भक्षितानिचसैन्यानिप्राप्तंतेपरमंयशः ॥ ५५ ॥ त्यजतद्वानरानीकंप्राकृतैःकिंकरिष्यसि ॥ सहस्वैकंनिपातंमेपर्वतस्यास्यराक्षस ॥ ५६ ॥ तद्वाक्यंहरिराजस्यसत्त्वधैर्यसमन्वितम् ॥ श्रुत्वाराक्षसशार्दूलः कुंभकर्णोऽब्रवीद्वचः ॥५७॥ प्रजापतेस्तुपौत्रस्त्वंतथैवर्क्षरजःसुतः ॥ धृतिपौरुषसंपन्नस्तस्माद्गर्जसिवानर ॥ ५८ ॥ सकुंभकर्णस्यवचोनिशम्यव्याविध्यशैलंसहसामुमोच ॥ तेनाजघानोरसिकुंभकर्णंशैलेनवज्राशनिसन्निभेन ॥ ५९ ॥ तच्छैलशृंगंसहसाविभिन्नंभुजांतरेतस्यतदाविशाले ॥ ततोविषेदुःसहसाप्लवंगारक्षोगणाश्चापिमुदाविनेदुः ॥ ६० ॥ सशैलशृंगाभिहतश्चुकोपननादरोषाच्चविवृत्यवक्त्रम् ॥ व्याविध्यशूलंचतडित्प्रकाशंचिक्षेपहर्यृक्षपतेर्वधाय ॥ ६१ ॥

पोते और ऋक्षराज वानरके पुत्रहो विशेष करकै तुममें धीरता और पौरुषहै; इसीलिये तुम ऐसा गर्जन करतेहो ॥ ५८ ॥ तिसके पीछे वानर राज सुग्रीवजीनें राक्षसराज रावणके छोटे भ्राता कुंभकर्णके ऐसे वचन सुनकर, उस पर्वतके शिखरको घुमाय कुंभकर्णके ऊपर चलाया, वज्र और अशनिके समान वह शैल शृङ्ग कुंभकर्णकी छातीमें लगा ॥ ५९ ॥ परन्तु वह पर्वतका शृङ्ग कुंभकर्णकी बड़ी छातीमें लगकर सहसा चूर्ण होगया, तिसके चूर्ण होंनेसे वानरगण शोकित हुए और राक्षस गण आनंदके मारे सिंहनाद करनें लगे ॥ ६० ॥ शैल शृङ्गकी ताड़नासे कुंभकर्ण

प्रदीप्त सूर्य अग्निके समान प्रकाशित, और इन्द्रके वज्रकी तुल्य वेगवाला यह बाण निशाचर कुंभकर्णके ऊपर चलाया ॥ १६६ ॥ श्रीरामचंद्रजीकी भुजाओंसे चलाहुआ वह बाण अपनी प्रभासे प्रकाशित कराता हुआ धुंआरहित अग्निकी समान भयंकर दर्शनहो, इन्द्रवज्रकी समान विक्रमकारी उस राक्षसके ऊपर पहुंचा ॥१६७॥ जिसप्रकार पूर्वकालमें पुरन्दर इन्द्रजीनें वृत्रासुरका मस्तक काट डालाथा वैसेही हिलतेहुए दोकुंडलोंसे शोभायमान दांत निकलाहुआ कुंभकर्णका मस्तक पहुंचतेही उस बाणने काटडाला ॥ १६८ ॥ उसकालमें कुंभकर्णका कुंडलहीन बड़ा भारी मस्तक सूर्यके उदय होनेसे मलीन हुए आकाशमें टिके चन्द्रमाकी समान शोभायमान हुआ॥१६९॥ राक्षस कुंभकर्णका पर्वतकी समान मस्तक श्रीरामचं

ससायकोराघवबाहुचोदितोदिशःस्वभासादशसंप्रकाशयन् ॥ विधूमवैश्वानरभीमदर्शनोजगामशक्राशनिभीमविक्रमम् ॥ ६७ ॥ सतन्महापर्वतकूटसन्निभंसुवृत्तदंष्ट्रंचलचारुकुंडलम् ॥ चकर्तरक्षोधिपतेःशिरस्तदायथैववृत्रस्यपुरापुरंदरः ॥ ६८ ॥ कुंभकर्णशिरोभातिकुंडलालंकृतंमहत् ॥ आदित्येऽभ्युदितेरात्रौमध्यस्थइवचंद्रमाः ॥ ६९ ॥ तद्रामबाणाभिहतंपपातरक्षःशिरःपर्वतसन्निकाशम् ॥ बभंजचर्यागृहगोपुराणिप्राकारमुच्चंतमपातयच्च ॥ १७० ॥ तच्चातिकायंहिमहत्प्रकाशंरक्षस्तदातोयनिधौपपात ॥ ग्राहान्परान्मीनवरान्भुजंगमान्ममर्दभूमिंचतथाविवेश ॥ ७१ ॥ तस्मिन्हतेब्राह्मणदेवशत्रौमहाबलेसंयतिकुंभकर्णे ॥ चचालभूर्भूमिधराश्चसर्वेहर्षाच्चदेवास्तुमुलंप्रणेदुः ॥ ७२ ॥ ततस्तुदेवर्षिमहर्षिपन्नगाःसुराश्चभूतानिसुपर्णगुह्यकाः ॥ सयक्षगंधर्वगणानभोगताःप्रहर्षितारामपराक्रमेण ॥ ७३ ॥

द्रजीके बाणसे कटकर जब लंकाके कोटकी भीत सैना निवास स्थान और प्राकारपर जैसेही गिरा,कि उसके गिरतेही धमाकेसे यह ढह पड़े ॥१७०॥ हिमालयकी समान बड़े आकारवाले उस राक्षसका धड़ समुद्रमें जायकर गिरा, और बड़े २ ग्राह, मीन, सर्पगण, और पृथ्वीकोभी मर्दित करता हुआ जलमें डूबगया ॥ १७१ ॥ देवता और ब्राह्मण लोगोंके शत्रु महाबलवान उस कुंभकर्णके रणभूमिके मध्य मारे जानेंपर पृथ्वी और समस्त पर्वत कंपायमान होनेलगे और देवतालोग हर्षके मारे कठोर सिंहनाद करनेंलगे ॥ १७२ ॥ आकाशमें टिके हुए देव, देवर्षि, पन्नग, गरुड़, गुह्यक

घोर पराक्रमकारी वानरेन्द्र सुग्रीवके निकट आय उनको काखमें दबाय उडा ले चला ॥ ६८ ॥ उस कालमें सुमेरु पर्वतकी समान आकार वाला कुंभकर्ण, महामेघकी समान सुग्रीवजीको ग्रहण करके बड़े ऊंचे शृङ्गोंसे युक्त चलते हुए मेरु पर्वतकी समान शोभायमान होनें लगा ॥ ६९ ॥ और वानरराज सुग्रीवजीको पकड़ा हुआ देखकर देवता लोग अत्यन्त विस्मितहो अनेक प्रकारसे शोकका जताने वाला हाहाकार शब्द करनें लगे और वीरश्रेष्ठ राक्षसेन्द्र कुंभकर्ण उन समस्त शब्दोंको श्रवण करता हुआ निशाचरोंसे बड़ाई पाता लंकाको चला ॥ ७० ॥ इन्द्रकी समान वीर्यवान् इन्द्रका शत्रु कुंभकर्ण उस समय इन्द्रकी समान वानरोंके स्वामी सुग्रीवजीको पकड़कर मनमें निश्चय करता हुआ कि, इस सुग्रीवके

सतंमहामेघनिकाशरूपमुत्पाट्यगच्छन्युधिकुंभकर्णः ॥ रराजमेरुप्रतिमानरूपोमेरुर्यथाव्युच्छ्रितघोरशृंगः ॥ ६९ ॥ ततस्तमादायजगामवीरःसंस्तूयमानोयुधिराक्षसेंद्रः ॥ शृण्वन्निनादंत्रिदिवालयानांप्लवंगराजग्रहविस्मितानाम् ॥ ॥ ७० ॥ ततस्तमादायतदासमेनेहरींद्रमिंद्रोपममिंद्रवीर्यः ॥ अस्मिन्हृतेसर्वमिदंहृतंस्यात्सराघवंसैन्यमितींद्रशत्रुः ॥ ७१ ॥ विद्रुतांवाहिनींदृष्ट्वावानराणामितस्ततः ॥ कुंभकर्णेनसुग्रीवंगृहीतंचापिवानरम् ॥ ७२ ॥ हनूमांश्चिंतयामासमतिमान्मारुतात्मजः ॥ एवंगृहीतेसुग्रीवेकिंकर्तव्यंमयाभवेत् ॥ ७३ ॥ यद्धिन्याय्यंमयाकर्तुंतत्करिष्याम्यसंशयम् ॥ भूत्वापर्वतसंकाशोनाशयिष्यामिराक्षसम् ॥ ७४ ॥ मयाहतेसंयतिकुंभकर्णेमहाबलेमुष्टिविशीर्णदेहे ॥ विमोचितेवानरपार्थिवेचभवंतुहृष्टाःप्लवगाःसमग्राः ॥ ७५ ॥

मरनें पर रामचंद्र व लक्ष्मणके सहित समस्त वानरोंकी सेना अपने आप मर जायगी ॥ ७१ ॥ उस समय इधर उधर भागती हुई वानरोंकी सेनाको निहार और कुंभकर्णसें पकड़े हुए सुग्रीवजीको देख वानर ॥ ७२ ॥ पवन कुमार वडे बुद्धिमान हनुमानजी अपने मनमें चिन्ता करनें लगे; कि सुग्रीवजी तो इस भांतिसे पकडे गये अब हमको क्या करना उचितहै ॥७३॥इस समय जो कुछ करना उचितहै, हम वही समस्त पूर्ण करनेंके निमित्त पर्वताकार देह धारण करके निश्चयही निशाचर कुंभकर्णका संहार करेंगे ॥ ७४ ॥ हम देखते हैं कि हमारे हाथके मूका लगनेंसे युद्धमें

हे राजन्! कालकी समान आपके भ्राता कुंभकर्ण कालधर्म संयुक्त हुए प्रथम रणभूमिमें पहुंचतेही पहुंचते उन्होंनें समस्त वानरोंकी सैनाको भगादिया और जब वानरगण उनके निकट आये तौ सहस्रों लक्षोंको उन्होंनें खा लिया ॥ २ ॥ इस प्रकार एक मुहूर्तभरतक सबको संतापितकर और आपभी संतप्त हो फिर वह कुंभकर्ण श्रीरामचंद्रजीके तेजसे आपही बुझ गये उनका मस्तकविहीन देह (अगण्ड) भयंकर दर्शनवाले समुद्रमें प्रवेश करगया ॥ ३ ॥ उनका नाक कान विहीन रुधिरसे सनाहुआ पर्वतकी समान मस्तक लंकाके द्वारको रूंधे हुए डटा हुआहै ॥ ४ ॥ अधिक क्या कहे तुम्हारे भ्राता कुंभकर्णको श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे पीड़ित और हाथ पाँव रहित होकर दावानलसे भस्म हुए वृक्षकी समान अनावृत

राजन्सकालसंकाशःसंयुक्तःकालकर्मणा ॥ विद्राव्यवानरींसेनांभक्षयित्वाचवानरान् ॥ २ ॥ प्रतपित्वामुहूर्तंतु प्रशांतोरामतेजसा ॥ कायेनार्धप्रविष्टेनसमुद्रंभीमदर्शनम् ॥ ३ ॥ निकृत्तनासाकर्णेनविक्षरद्रुधिरेणच ॥ रुद्ध्वा द्वारंशरीरेणलंकायाःपर्वतोपमः ॥ ४ ॥ कुंभकर्णस्तवभ्राताकाकुत्स्थशरपीडितः ॥ अगंडभूतोविवृतोदावदग्ध इवद्रुमः ॥ ५ ॥ श्रुत्वाविनिहतंसंख्येकुंभकर्णमहाबलम् ॥ रावणःशोकसंतप्तोमुमोहचपपातच ॥ ६ ॥ पितृव्यंनिहतं श्रुत्वादेवांतकनरांतकौ ॥ त्रिशिराश्चातिकायश्चरुरुदुःशोकपीडिताः ॥ ७ ॥ भ्रातरंनिहतंश्रुत्वारामेणाक्लिष्टक र्मणा ॥ महोदरमहापार्श्वौशोकाक्रांतौबभूवतुः ॥ ८ ॥ ततःकृच्छ्रात्समासाद्यसंज्ञांराक्षसपुंगवः ॥ कुंभकर्ण वधादीनोविललापाकुलेंद्रियः ॥ ९ ॥

देहसे प्राण त्याग करनें पड़े हैं ॥ ५ ॥ महाबलवान कुंभकर्णको रणभूमिमे मरा हुआ सुनकर रावण शोकसे संतापित हो मूर्छा खाय पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ६ ॥ उस देवान्तक नरान्तक त्रिशिरा और अतिकाय यह सब अपने चचाके मरनेंका समाचर पाय शोकसे आतुर रोंनें लगे ॥ ७ ॥ महोदर और महापार्श्व यह अपने सौतेले भाईको सरल कर्मकारी श्रीरामचंद्रजीके हाथसे नष्ट हुआ सुनकर शोकसे अत्यन्त अधीर होगये ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त राक्षसश्रेष्ठ रावण बडे कष्टसें चेतना पाय कुंभकर्णके मारेजानेसे इन्द्रियोंकी व्याकुलताके वश दीनभावसे

मार्गकी शीतलताई लगनेंसे धीरे २ महा बलवान सुग्रीवजीकी मूर्छा जागी ॥ ८३ ॥ इस प्रकारसे वह महा बलवान सुग्रीवजी बहुत कष्टसे चेतना पाय अपनेको लंकापुरीके मार्ग बीच उस महा बलशाली कुम्भकर्ण की बाहोंमें फँसा देख विचार करनें लगे ॥ ८४ ॥ कि इस प्रकारसे जब यह हमको पकड़े हुए हैं तब हमसे क्या होसकताहै? जो कुछभीहो आज इस अवस्थामेंभी हम ऐसा कार्य करेंगे कि जिस्से वानर गणोंका मंगल और हितकारी कार्य सिद्ध हो ॥ ८५ ॥ यह विचारकर महा बलवान सुग्रीवजीनें तीखे दांत और नखोंके आघातसे अति शीघ्रता पूर्वक कुम्भ कर्णकी नाक काट डाली, व दोनों कानभी साफ उडादिये और अपने पावोंके तीक्ष्ण नखोंसे उसकी दोनों बगलें चीर फाड़ डालीं ॥ ८६ ॥ उस

ततःससंज्ञामुपलभ्यकृच्छ्राद्बलीयसस्तस्यभुजांतरस्थः ॥ अवेक्षमाणःपुरराजमार्गंविचिंतयामासमुहुर्महात्मा ॥८४॥
एवंगृहीतेनकथंनुनामशक्यंमयासंप्रतिकर्तुमद्य ॥ तथाकरिष्यामियथाहरीणांभविष्यतीष्टंचहितंचकार्यं ॥ ८५ ॥
ततःकराग्रैःसहसासमेत्यराजाहरीणाममरेंद्रशत्रोः ॥ खरैश्चकर्णौदशनैश्चनासांददंशपादैर्विददारपार्श्वौ ॥ ८६ ॥
सकुंभकर्णोहृतकर्णनासोविदारितस्तेनरदैर्नखैश्च ॥ रोषाभिभूतःक्षतजार्द्रगात्रःसुग्रीवमाविध्यपिपेषभूमौ ॥ ८७ ॥
सभूतलेभीमबलाभिपिष्टःसुरारिभिस्तैरभिहन्यमानः ॥ जगामखंकंदुकवज्जवेनपुनश्चरामेणसमाजगाम ॥ ८८॥ कर्ण
नासाविहीनस्तुकुंभकर्णोमहाबलः ॥ रराजशोणितोत्सिक्तोगिरिःप्रस्रवणैरिव ॥ ८९ ॥ शोणितार्द्रोमहाकायोराक्षसो
भीमदर्शनः ॥ आमर्षाच्छोणितोद्गारीशुशुभेरावणानुजः ॥ ९० ॥

समय नाक कानके कटजानेंसे नख और दांतोंसे भली भांति विदीर्ण होनेंसे और सर्वाङ्ग रुधिर द्वारा भीगजानेंसे कुम्भकर्णनें अत्यन्त क्रोधित होकर सुग्रीवजीको पृथ्वीपर पटक दिया और उनको पीसनें लगा ॥ ८७ ॥ परन्तु वानरराज सुग्रीवजी उस भयंकर बलवान कुम्भकर्ण करके पीसे जाकर व और दूसरे राक्षस लोगोंसे सर्व प्रकार मार खाकरभी गेंदकी समान लुढ़कते हुए झटपट बडे वेगसे आकाशको उछलगये और श्रीरामचन्द्रजीके निकट आयकर खड़े हुए ॥ ८८ ॥ उस कालमें महा बलवान् कुंभकर्ण नाक कान विहीन होकर रुधिर उगलता हुआ बहुत सारे झरनोंसे युक्त पर्वतराजकी समान शोभायमान होनें लगा ॥ ८९ ॥ रुधिरसे भीगा हुआ भयंकर रूप और बड़े आकारवाला रावणका छोटाभाई

क्या प्रयोजन है और हम सीताको भी अब लेकर क्या करेंगे कारण कि कुंभकर्णविहीन होकर अबहम जीवन धारण करनेंका भी अभिलाष नहीं करते ॥१७॥ हम यदि उस भाईके मारनेंवाले रामचंद्रको संग्राममें नहीं मार सकते तो वृथा इस जीवनके बोझको रखनेंसे हमारे लिये मरना ही भला है ॥ १८ ॥ हम भ्राताहीन होकर एक क्षणभरकों भी प्राण नहीं रखसकते इस कारण जिस स्थानमें हमारे भाई कुंभकर्ण सोये हैं हमभी आज उसी स्थानमें गमन करेंगे॥ १९ ॥ हा! कुंभकर्ण हमनें पहले देवता लोगोंके अनेक अपकार कियेहैं परन्तु आज तुम्हारे मारे जानेसे जो हम इन्द्रको नहीं जीतसकेंगे तो देवता लोग हमारी हँसी करेंगे ॥२०॥ हाय! हमनें अज्ञानके मारे महात्मा विभीषणके जो शुभ वचन नहीं

यद्यहंभ्रातृहंतारंनहन्मियुधिराघवम् ॥ ननुमेमरणंश्रेयोनचेदंव्यर्थजीवितम् ॥१८॥ अद्यैवतंगमिष्यामिदेशंयत्रानुजो मम ॥ नहिभ्रातॄन्समुत्सृज्यक्षणंजीवितुमुत्सहे ॥१९॥ देवाहिमांहसिष्यंतिदृष्ट्वापूर्वापकारिणम् ॥ कथमिंद्रंजयिष्या मिकुंभकर्णहतेत्वयि ॥२०॥ तदिदंमामनुप्राप्तंविभीषणवचःशुभम् ॥ यदज्ञानान्मयातस्यनगृहीतंमहात्मनः ॥२१॥ वि भीषणवचस्तावत्कुंभकर्णप्रहस्तयोः ॥ विनाशोयंसमुत्पन्नोमांव्रीडयतिदारुणः ॥२२॥ तस्यायंकर्मणःप्राप्तोविपाकोम मशोकदः ॥यन्मयाधार्मिकःश्रीमान्सनिरस्तोविभीषणः ॥२३॥ इतिबहुविधमाकुलांतरात्माकृपणमतीवविलप्यकुंभक र्णम् ॥ न्यपतदपिदशाननोभृशार्तस्तमनुजामिंद्ररिपुंहतंविदित्वा ॥ २४ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रा० वा० आ० युद्धकांडेअष्ट षष्टितमःसर्गः ॥ ६८ ॥ ७ ॥ एवंविलपमानस्यरावणस्यदुरात्मनः ॥ श्रुत्वाशोकाभिभूतस्यत्रिशिरावाक्यमब्रवीत् ॥१॥

माने आज उसका ही परिणाम हमारे ऊपर आय पहुंचाहै ॥ २१ ॥ जबसे हमनें कुंभकर्ण और प्रहस्तके मारेजानेंका संवाद सुनाहै तबसे विभीषण के वचन हमको लज्जा देरहे हैं ॥ २२ ॥ हाय! हमने धार्मिक श्रीमान् विभीषणको जो यहांसे निकाल दियाहै, आज उसी दारुण कर्मका शोक दिलानेंवाला परिणाम आय पहुंचाहै ॥ २३ ॥ उस समय रावण इन्द्रके शत्रु कुंभकर्णको माराहुआ सुनकर शोकाकुल मनसे दीनभावयुक्तहो अनेक प्रकारके विलाप करनेंलगा इसके उपरान्त शोकका वेग अत्यन्त प्रबल होनेसे रावण मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २४ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० अष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥ शोकसे व्याकुल दुरात्मा रावणके इस प्रकारसे विलापके वचन सुन

भक्षण करते दौड़ने पर वानरगण भक्ष्यमाण होकर श्रीरामचंद्रजीकी शरणागतमें गये ॥ ९७ ॥ इस ओर कुंभकर्ण, सात, आठ, वीस, तीस वानरोंको अपने हाथोंसे पकड़२कर उनको अपने पेटमें डालता हुआ रणभूमिमें दौड़ने लगा ॥ ९८ ॥ इसके उपरान्त मेद, चरबी और रुधिर अंगोंमें लगाये तीक्ष्ण दांत वाला कुंभकर्ण दोनों कानोंके शेषमें आंतोंकी माला पहरे महा प्रलयमें बढ़े हुए कराल मूर्त्ति कालकी समान वानरोंकी सैनापर शूल चलानें लगा ॥ ९९ ॥ उसी समयमें गोहके चर्मसे बनाहुआ अंगुलित्राण (गुस्ताना) पहरे वीर वेषधारी शत्रुकी सैनाका नाश करनें वाले सुमित्रा कुमार लक्ष्मणजी युद्ध करनेंके लिये आये ॥ १०० ॥ वीर्यवानलक्ष्मणजीनें कुंभकर्णके शरीरमें सात बाण मारकर फिर औरभी बाण ग्रहण करके

शतानिसप्तचाष्टौचविंशत्रिंशत्तथैवच ॥ संपरिष्वज्यबाहुभ्यांखादन्विपरिधावति ॥ ९८ ॥ मेदोवसाशोणितदिग्धगात्रः कर्णावसक्तग्रथितांत्रमालः ॥ ववर्षशूलानिसुतीक्ष्णदंष्ट्रःकालोयुगांतस्थइवप्रवृद्धः ॥ ९९ ॥ तस्मिन्कालेसुमित्रायाःपुत्रः परबलार्दनः ॥ चकारलक्ष्मणःक्रुद्धोयुद्धंपरपुरंजयः ॥ १०० ॥ सकुंभकर्णस्यशरान्शरीरेसप्तवीर्यवान् ॥ निचखा नाददेचान्यान्विससर्जचलक्ष्मणः ॥ १ ॥ पीड्यमानस्तदस्त्रंतुविशेषंतत्सराक्षसः ॥ ततश्चुकोपबलवान्सुमित्रानंदव र्धनः ॥ २ ॥ अथास्यकवचंशुभ्रंजांबूनदमयंशुभम् ॥ प्रच्छादयामासशरैःसंध्याभ्रमिवमारुतः ॥ ३ ॥ नीलांज नचयप्रख्यःशरैःकांचनभूषणैः ॥ आपीड्यमानःशुशुभेमेघैःसूर्यइवांशुमान् ॥ ४ ॥ ततःसराक्षसोभीमःसुमित्रानंदव र्धनम् ॥ सावज्ञमेवप्रोवाचवाक्यंमेघौघनिःस्वनः ॥ ५ ॥

उसके ऊपर छोड़े ॥ १०१ ॥ कुंभकर्णने उन अस्त्रोंके प्रहारोंसें पीडित हो उन बाणोंको हाथोंसे पकड२ अपने विक्रम प्रभावसे खंड२ करके फेंक दिये यह देख सुमित्राजीके आनंद बढानेवाले बलवान लक्ष्मणजीनें महा कोप किया ॥ १०२ ॥ पवन जिस प्रकार संध्या समयके मेघको उड़ालें जाताहै वैसेही कुंभकर्णके सुवर्णमय शुभ शुक्ल कवचको लक्ष्मणजीनें बाणोंसें रूंध दिया ॥ १०३ ॥ उस कालमें नीले अंजनकी समान कुंभ कर्ण सुवर्णभूषित बाणोंसे पीड़ित होकर मेघमाला घिरे हुए सूर्यभगवानकी समान शोभायमान होनें लगा ॥ १०४ ॥ तिसके पीछे राक्षस

प्रकाश करनें लगे ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त इन्द्रकी समान पराक्रम शाली राक्षसश्रेष्ठ वीर वर रावणके पुत्र गण "आगे हम जांयगे आगे हम जांयगे" ऐसा कह गर्जन करनें लगे ॥ १० ॥ सबही अंतरिक्षमें चलनेंवाले सबही सब प्रकारकी माया जाननेंवाले, सबही देवता लोगोंका दर्प तोड़नें वाले, और सबही समरमें जीतनेंके अयोग्यथे ॥ ११ ॥ सबही बलशालीथे, सबहीकी कीर्त्ति फैली हुईथी, और सबही जायकर कभी हारे हुए नहीं सुने गयेथे ॥ १२ ॥ देवता, गन्धर्व, किन्नर, और उरग चाहें किसीसेभी उन्होंनें युद्ध किया परन्तु पराजित नहीं हुए कारणकि युद्ध करनेंमें बड़े पंडितथे ॥ १३ ॥ सबही बड़े भारी विज्ञानीथे, और सबही वरदान पाये हुएथे ॥ १४ ॥ उस समय सूर्यकी तुल्य शत्रुकी सैनाको मथनेंवाले अपने

ततोहमहमित्येवगर्जतोनैर्ऋतर्षभाः ॥ रावणस्यसुतावीराःशक्रतुल्यपराक्रमाः ॥ १० ॥ अंतरिक्षगताःसर्वेसर्वेमायावि
शारदाः ॥ सर्वेत्रिदशदर्पघ्नाःसर्वेसमरदुर्मदाः ॥ ११ ॥ सर्वेसुबलसंपन्नाःसर्वेविस्तीर्णकीर्तयः ॥ सर्वेसमरमासाद्यनश्रूयंते
स्मनिर्जिताः ॥ १२ ॥ देवैरपिसगंधर्वैःसकिन्नरमहोरगैः ॥ सर्वेस्त्रविदुषोवीराःसर्वेयुद्धविशारदाः ॥ १३ ॥ सर्वेप्रवरवि
ज्ञानाःसर्वेलब्धवरास्तथा ॥ १४ ॥ सतैस्तथाभास्करतुल्यदर्शनैःसुतैर्वृतःशत्रुबलश्रियार्दनैः ॥ रराजराजामघवान्य
थामरैर्वृतोमहादानवदर्पनाशनैः ॥ १५ ॥ सपुत्रान्संपरिष्वज्यभूषयित्वाचभूषणैः ॥ आशीर्भिश्चप्रशस्ताभिःप्रेषया
मासवैरणे ॥ १६ ॥ युद्धोन्मत्तंचमत्तंचभ्रातरौचापिरावणः ॥ रक्षणार्थंकुमाराणांप्रेषयामाससंयुगे ॥ १७ ॥ तेभिवा
द्यमहात्मानंरावणंलोकरावणम् ॥ कृत्वाप्रदक्षिणंचैवमहाकायाःप्रतस्थिरे ॥ १८ ॥ सर्वौषधीभिर्गंधैश्चसमालभ्यम
हाबलाः ॥ निर्जग्मुर्नैर्ऋतश्रेष्ठाःषडेतेयुद्धकांक्षिणः ॥ १९ ॥

वीर पुत्र गणोंके बीचमें बैठाहुआ राक्षसराज रावण दानवगर्वखर्वकारी देवता लोगोंके बीचमें बैठे देवराज इन्द्रजीकी समान शोभायमान होनें लगा ॥ १५ ॥ इसके पीछे रावणनें अपने पुत्रोंको छातीसे लगाय उत्तम२ भूषण पहराय बड़े आशीर्वाद देकर उनको समरमें भेजा ॥१६॥ रावणनें युद्ध करनेंको उत्तम वीर सहोदर महोदर, और महापार्श्व दो भाइयोंको अपने पुत्रोंकी रक्षा करनेंके निमित्त समरमें भेजा ॥ १७ ॥ वह सब शत्रुओंके मारनेंवाले महात्मा रावणको प्रणाम और प्रदक्षिणा करके युद्ध करनेंके लिये यात्रा करते हुए ॥१८॥ वह छैः राक्षस घावको भरनें

णजी हँसते हुए यह वचन बोले ॥ ११२ ॥ हेवीर! तुमने जो इन्द्रादि देवताओंसे असह्य पराक्रम पायाहै, वह सत्यहैं, और हमने आज तुम्हारा वह पराक्रम सत्य देखा ॥११३॥ और श्रीरामचंद्रजीको जो तुमनें पूछा यह दशरथकुमार श्रीरामचंद्रजी अचल पर्वतकी समान विराजमानहो रहेहैं। यह सुन लक्ष्मणजीका अनादर कर वह निशाचर चला ॥ ११४ ॥ महाबलवान कुंभकर्ण लक्ष्मणजीको छोड़ पृथ्वीको कंपायमान करता हुआ श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख दौड़ा ॥ ११५ ॥ इसके उपरान्त दशरथ कुमार श्रीरामचंद्रजीनें घोर अस्त्रोंका प्रयोग करके कुंभकर्णके हृदयको ताककर उसमें तीखे बाण मारे ॥ ११६ ॥ राक्षस कुंभकर्ण श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे विंधकर सहसा उनकी ओर धाया । उस समय

यस्त्वंशक्रादिभिर्देवैरसह्यःप्राप्यपौरुषम् ॥ तत्सत्यंनान्यथावीरदृष्टस्तेद्यपराक्रमः ॥ १३ ॥ एषदाशरथीराम स्तिष्ठत्यद्रिरिवाचलः ॥ इतिश्रुत्वाह्यनादृत्यलक्ष्मणंसनिशाचरः ॥ १४ ॥ अतिक्रम्यचसौमित्रिंकुंभकर्णोमहा बलः ॥ राममेवाभिदुद्रावकंपयन्निवमेदिनीम् ॥ १५ ॥ अथदाशरथीरामोरौद्रमस्त्रंप्रयोजयन् ॥ कुंभकर्णस्यहृदये ससर्जनिशितान्छरान् ॥ १६ ॥ तस्यरामेणविद्धस्यसहसाभिप्रधावतः ॥ अंगारमिश्राःक्रुद्धस्यमुखान्निश्चेरुरर्चिं षः ॥ १७ ॥ रामास्त्रविद्धोघोरंवैनर्दन्राक्षसपुंगवः ॥ अभ्यधावततंक्रुद्धोहरीन्विद्रावयन्रणे ॥११८॥ तस्योरसिनि मग्नास्तेशराबर्हिणवाससः ॥ हस्ताच्चास्यपरिभ्रष्टागदाचोर्व्यांपपातह ॥ १९ ॥ आयुधानिचसर्वाणिविप्रकीर्यंतभूतले॥ सनिरायुधमात्मानंयदामेनेमहाबलः ॥ १२० ॥ मुष्टिभ्यांचकराभ्यांचचकारकदनंमहत् ॥ सबाणैरतिविद्धांगःक्षतजे नसमुक्षितः ॥ रुधिरंपरिसुस्रावगिरिःप्रस्रवणंयथा ॥ २१ ॥

कुंभकर्णका शरीर क्रोधके मारे फडकने लगा ॥ ११७ ॥ राक्षसश्रेष्ठ कुंभकर्ण रणभूमिमें श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे विंधकर श्रीरामचंद्रजीको छोड क्रोधके मारे वानरोंको तित्तर वित्तर करता हुआ धाया ॥ ११८ ॥ इसी समयमें श्रीरामचंद्रजीके छोडे हुए मोरपंखोंसे शोभित उन समस्त बाणोंके कुंभकर्णकी छातीमे घुसजानेसे इस कुंभकर्णकी हाथसे गदा छुट कर पृथ्वीपर गिर पडी ॥ ११९ ॥ वह कुंभकर्ण औरभी जितने हथियार लगाये था वहभी सब पृथ्वीपर गिरपडे इस प्रकारसे जब उस महाबलवान कुंभकर्णने अपनेको आयुधहीन देखा ॥ १२० ॥ तब उसने मूकों और

वीरश्रेष्ठ अतिकायके शिरपर विचित्र कांचनमय मुकुटथा वह अनेक प्रकारके गहनोंसे भूषितथा; सुमेरु जिस प्रकार अपनी प्रभासे सबको प्रकाशित करताहै, वैसेही अतिकाय अनुपम शोभा पानें लगा ॥ २८ ॥ राक्षसशार्दूलगण उन महाबलवान राजकुमारोंको चारों ओरसे घेरे हुएथे, इस्से वह राजकुमार देवता लोगोंसे घिरे हुए इन्द्रजीकी समान शोभित होनें लगे ॥ २९ ॥ निशाचर नरान्तक उच्चैःश्रवाकी समान एक श्वेतवर्ण कनक भूषित पवनकी समान वेगसे जानेवाले एक बडे भारी घोड़ेपर चढ़ा ॥ ३० ॥ तेजस्वी नरान्तक उल्काको तुल्य भाला हाथमें लिये हुए मोरपर चढे शक्ति हाथमें लिये स्वामिकार्तिककी समान शोभायमान होने लगा ॥ ३१ ॥ राक्षस देवान्तक सुवर्ण लगा हुआ एक

सकांचनविचित्रेणकिरीटेनविराजता ॥ भूषणैश्चबभौमेरुःप्रभाभिरिवभासयन् ॥ २८ ॥ स रराजरथेतस्मिन्राजसूनुर्महाबलः ॥ वृतोनैर्ऋतशार्दूलैर्वज्रपाणिरिवामरैः ॥ २९ ॥ हयमुच्चैःश्रवःप्रख्यंश्वेतंकनकभूषणम् ॥ मनोजवंमहाकायमारुरोहनरांतकः ॥ ३० ॥ गृहीत्वाप्रासमुल्काभंविरराजनरांतकः ॥ शक्तिमादायतेजस्वीगुहःशिखिगतो यथा ॥ ३१ ॥ देवांतकःसमादायपरिघंहेमभूषणम् ॥ परिगृह्यगिरिंदोर्भ्यांवपुर्विष्णोर्विडंबयन् ॥ ३२ ॥ महापार्श्वोमहातेजागदामादायवीर्यवान् ॥ विरराजगदापाणिःकुबेरइवसंयुगे ॥ ३३ ॥ तेप्रतस्थुर्महात्मानोऽमरावत्याःसुराइव ॥ तान्गजैश्चतुरंगैश्चरथैश्चांबुदनिःस्वनैः ॥ ३४ ॥ अनूत्पेतुर्महात्मानोराक्षसाःप्रवरायुधाः ॥ तेविरेजुर्महात्मानःकुमाराःसूर्यवर्चसः ॥ ३५ ॥ किरीटिनःश्रियाजुष्टाग्रहादीप्ताइवांबरे ॥ प्रगृहीताबभौतेषांशस्त्राणामावलिःशिवा ॥ ३६ ॥

परिघ ग्रहण करके इसप्रकार शोभित हुआ, कि समुद्र मथनेंके समय विष्णुजीनें जिस प्रकार बांहोंसे मन्दराचलको धारण कियाथा ॥ ३२ ॥ महातेजस्वी वीर्यवान् महापार्श्व गदा ग्रहण करके रणभूमिमें कुबेरजीकी समान शोभा धारण करता हुआ ॥ ३३ ॥ जिस प्रकार देवता लोग अमरावतीसे चलते हैं; वैसेही वह वीरगणभी लंकापुरीसे युद्ध करनेंके लिये चले, तुरंग घोडे, मातंग हाथी, और मेघकी समान शब्दायमान रथोंपर चढ़ २ कर ॥३४॥ बड़े २ आयुध लेर कर महाकाय, महात्मा राक्षस लोग चले, व सूर्यकी समान तेजस्वी महात्मा राजकुमार ॥ ३५ ॥ किरीट धारण किये हुए आकाशमें प्रकाशमान ग्रहोंके समान शोभायमान हुए उन राक्षसलोगोंके हाथोंमेंकी ग्रहणकीहुई आयुधोंकी श्रेणी(पांति) ॥ ३६ ॥

इस्से यह दुर्मति राक्षस वानरोंके बोझसे अत्यन्तही पीडितहो पृथ्वीपर घूमता हुआ और वानरोंको संहार नहीं कर सकैगा ॥१२९॥ बुद्धिमान राजकुमार लक्ष्मणजीके ऐसे वचन सुनकर महाबलवान वानरगण कुंभकर्णके ऊपर चढ़ गये ॥ १३० ॥ परन्तु वानरोंके चढ़नेंपर कुंभकर्णनें अत्यन्त पीड़ितहो हाथी जिस प्रकार अपने ऊपर चढनेंवालेको गिराताहै ऐसेही गरदन कंपायमान करके वानरोंको गिरा दिया ॥ १३१ ॥ वानरोंको गिरा हुआ देखकर श्रीरामचंद्रजी " कुंभकर्ण क्रोधित हुआहै " यह विचार उत्तम धनुष बाण धारण कर सहसा उठ खड़े हुए ॥ १३२ ॥ तव मारे क्रोधके लाल नेत्रकर नेत्रोंसे मानों भस्महो करतेहुए श्रीरामचंद्रजी उसके ऊपर अतिवेगसे दौड़े ॥ १३३ ॥ और कुंभकर्णके बलसे पीड़ित

अद्यायंदुर्मतिःकालेगुरुभारप्रपीडितः ॥ प्रचरन्राक्षसोभूमौनान्यान्हन्यात्प्लवंगमान् ॥ २९ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाराजपुत्रस्यधीमतः ॥ तेसमारुरुहुर्हृष्टाःकुंभकर्णंमहाबलाः ॥१३०॥ कुंभकर्णस्तुसंक्रुद्धःसमारूढैःप्लवंगमैः॥व्यधूनयत्तान्वेगेनदुष्टहस्तीवहस्तिपान् ॥३१॥तान्दृष्ट्वानिर्धुतान्रामोरुष्टोऽयमितिराक्षसम् ॥ समुत्पपातवेगेनधनुरुत्तममाददे॥३२॥ क्रोधरक्तेक्षणोधीरोनिर्दहन्निवचक्षुषा ॥ राघवोराक्षसंवेगादभिदुद्राववेगितः ॥ ३३ ॥ यूथपान्हर्षयन्सर्वान्कुंभकर्णबलार्दितान् ॥ ३४ ॥ सचापमादायभुजंगकल्पंदृढज्यमुग्रंतपनीयचित्रम् ॥ हरीन्समाश्वास्यसमुत्पपातरामोनिबद्धोत्तमतूणबाणः ॥ ३५ ॥ सवानरगणैस्तैस्तुवृतःपरमदुर्जयैः ॥ लक्ष्मणानुचरोवीरःसंप्रतस्थेमहाबलः ॥ ३६ ॥ सददर्शमहात्मानंकिरीटिनमरिंदमम् ॥ शोणितावृतरक्ताक्षंकुंभकर्णंमहाबलम् ॥ ३७ ॥

हुए उन यूथपति वानरोंको हर्षित कराया ॥ १३४ ॥ महावीर श्रीरामचंद्रजीके हाथमें दृढ़ प्रत्यंचा सहित सुवर्णके वेल बूटेसे बना हुआ धनुष और कंधेपर उत्तम बाणोंसे भराहुआ तरकश लगाथा, वह श्रीरामचंद्रजी वानर लोगोंको समझाते बुझाते कुंभकर्णके साथ युद्ध करनेके लिये आगो बढ़े ॥ १३५ ॥ महाबलवान वीरधुरीण श्रीरामचंद्रजीके चलनेंपर लक्ष्मणजी उनके पीछे २ चले और परम दुर्जय वानर गण उनको चार ओरसे घेरे हुए गमन करनें लगे ॥ १३६ ॥ इस प्रकार गमन करते हुए दशरथकुमार श्रीरामचंद्रजीनें, रुधिरसे शरीर भीगे महाबलवान महावीर

करके राक्षसलोगोंनें उसको असह्य समझ और परमानंदसे सब मिलकर अपने आपही आप सिंहनाद करनेंलगे ॥ ४५ ॥ इसके पीछे वानर वीर गण पर्वत धारण करके शिखरधारी पर्वतोंकी समान राक्षसोंकी सैनामें प्रवेश करते हुए ॥ ४६ ॥ वृक्ष और पर्वतको ग्रहण करके कोई २ वानर तौ क्रोधके मारे आकाशको चले गये और वहांसे राक्षसोंपर टूटे और कोई२ वृक्ष शिलादि ग्रहण करके पृथ्वीपरही राक्षसोंसे जाय जुटे ॥ ४७ ॥ कोई २ वानरश्रेष्ठ बहुतशाखावाले वृक्षोंको ग्रहणकर युद्ध करनें लगे इस प्रकारसे वानर और राक्षसोंका तुमुल संग्राम होनेंलगा ॥ ४८ ॥ वानरगण बराबर वृक्ष और शिला राक्षसोंके ऊपर वर्षारहेथे और राक्षस लोगभी वानरोंके शरीरोंमें बाण गाड़ रहेथे ॥४९॥ धीरे२ दोनों ओरसे घोर

तेराक्षसबलंघोरंप्रविश्यहरियूथपाः ॥ विचेरुरुद्यतैःशैलैर्नगाःशिखरिणोयथा ॥ ४६ ॥ केचिदाकाशमाविश्यकेचि
दुर्व्यांप्लवंगमाः ॥ रक्षःसैन्येषुसंक्रुद्धाःकेचिद्द्रुमशिलायुधाः ॥ ४७ ॥ द्रुमांश्चविपुलस्कंधान्गृह्यवानरपुंगवाः ॥ तद्युद्ध
मभवद्घोरंरक्षोवानरसंकुलम् ॥ ४८ ॥ तेपादपशिलाशैलैश्चक्रुर्वृष्टिमनूपमाम् ॥ बाणौघैर्वार्यमाणाश्चहरयोभीमवि
क्रमाः ॥ ४९ ॥ सिंहनादान्विनेदुश्चरणेराक्षसवानराः ॥ शिलाभिश्चूर्णयामासुर्यातुधानान्प्लवंगमाः ॥ ५० ॥ नि
जघ्नुःसंयुगेक्रुद्धाःकवचाभरणावृतान् ॥ केचिद्रथगतान्वीरान्गजवाजिगतानपि ॥ ५१ ॥ निजघ्नुःसहसावीरान्या
तुधानान्प्लवंगमाः ॥ शैलशृंगान्वितांगास्तेमुष्टिभिर्वांतलोचनाः ॥ ५२ ॥ चेलुःपेतुश्चनेदुश्चतत्रराक्षसपुंगवाः ॥
राक्षसाश्चशरैस्तीक्ष्णैर्बिभिदुःकपिकुंजरान् ॥ ५३ ॥

सिंहनाद होनें लगा शिलाधारी वानरलोग शिलाके प्रहारसे राक्षसोंको चूर्ण करनेंलगे ॥ ५० ॥ वानरगण रणमें क्रोध करकै कवच धारण किये हुए राक्षसोंका संहार करनेंलगे कोई रथपर चढ़े हुए वीरोंको ॥ ५१ ॥ वानरलोग मारते हुए इस प्रकारसे असंख्य राक्षसोंकी सैना वानरोंके हाथसे मारीगई । बहुत राक्षसोंकी सैना वानरोंके हाथसे मारीगई । बहुत राक्षसोंका शरीर शृङ्गोंके प्रहारसे चूर्ण होगया, और किसी २ का नेत्र घूंसा मारनेंसे निकल पड़ा ॥ ५२ ॥इस प्रकार दारुण प्रहारसे राक्षसगण विचलित और गिरकर कठोर आरत शब्द करनें लगे, और राक्षसलोगभी

श्रीरामचंद्रजीके ऐसा कहनें पर "यही रामचंद्रहैं" ऐसा जानकर कुंभकर्ण विकट स्वरसे हँसता हुआ क्रोधके मारे वानरोंकी सैनाको भगाता श्रीराम चंद्रजीके सन्मुख दौड़ा ॥ १४५ ॥ इसके उपरान्त सब वनवासी वानरोंके हृदय विदारण करता, मेघके गर्जनकी समान विकट भयंकर स्वरसे हँसता हुआ ॥ १४६ ॥ महातेजस्वी कुंभकर्ण श्रीरामचंद्रजीसे बोला, हमको, विराध कबन्ध खर अथवा मारीच मनमें न समझ लेना हम कुंभकर्ण आयेहैं॥१४७॥हमारा यह काले लोहेका बना हुआ बड़ा भारी मुद्गर देखो हमने इस्सेही पहले देवता और दानव लोगोंको जीत लिया है ॥ १४८ ॥ हमको नाक कान हीन हुआ जानकर तुम हमारा निरादर मत करना, कारणकि नासिका और कान कटजानेंसे हमको कुछभी

रामोयमितिविज्ञायजहासविकृतस्वनम् ॥ अभ्यधावतसंक्रुद्धोहरीन्विद्रावयन्रणे ॥ ४५ ॥ दारयन्निवसर्वेषांहृदया
निवनौकसाम् ॥ प्रहस्यविकृतंभीमंसमेघस्तनितोपमम् ॥ ४६ ॥ कुंभकर्णोमहातेजाराघवंवाक्यमब्रवीत् ॥ नाहं
विराधोविज्ञेयोनकबंधःखरोनच ॥ नवालीनचमारीचःकुंभकर्णःसमागतः ॥ ४७ ॥ पश्यमेमुद्गरंभीमंसर्वकालायसं
महत् ॥ अनेननिर्जितादेवादानवाश्चपुरामया ॥ ४८ ॥ विकर्णनासइतिमांनावज्ञातुंत्वमर्हसि ॥ स्वल्पापिहिनमेपी
डाकर्णनासाविनाशनात् ॥ ४९ ॥ दर्शयेक्ष्वाकुशार्दूलवीर्यंगात्रेषुमेनघ ॥ ततस्त्वांभक्षयिष्यामिदृष्टपौरुषविक्रम
म् ॥ १५० ॥ सकुंभकर्णस्यवचोनिशम्यरामःसपुंखान्विससर्जबाणान् ॥ तैराहतोवज्रसमप्रवेगैर्नचुक्षुभेनव्यथतेसुरा
रिः॥५१॥ यैःसायकैःसालवरानिकृत्तावालीहतोवानरपुंगवश्च॥तेकुंभकर्णस्यतदाशरीरंवज्रोपमानव्यथयांप्रचक्रुः॥५२॥

पीड़ा नहीं हुईहै ॥ १४९ ॥ हेपापरहित इक्ष्वाकुशार्दूल! तुम हमारे शरीर पर पहले अपना बल वीर्य दिखाओ तिसके पीछे तुम्हारा विक्रम और पौरुष देखकर हम तुमको भक्षण करेंगे ॥ १५० ॥ कुंभकर्णके वचन सुनकर रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीनें फोंकलगेहुए बाण उसके ऊपर चलाये, परन्तु वज्रकी समान वेगवान उन सब बाणोंके लगनेंपरभी देवताओंका शत्रु कुंभकर्ण कुछभी दुःखी या चलायमान नहीं हुआ॥ १५१ ॥ जिन बाणोंसे और दूसरे राक्षस मार डाले गये और वानरश्रेष्ठ वाली मारागया. वही वज्रकी समान बाण कुंभकर्णके शरीरमें कुछभी

राक्षसलोगोंके देहसे रुधिरकी धारा वहनें लगी ॥ ६१ ॥ वानरलोग रथको चलाय २ कर रथ तोड़नें लगे,हाथीको उठाय २ हाथीपर मारनेंलगे और घोड़ोंको उठायकर घोड़ोंका संहार करते हुए ॥ ६२ ॥ वानरगण शिला वृक्षसे राक्षसोंको मारतेथे और राक्षसगण वानरोंके छोड़े वह शिला वृक्ष, तेज छूरे अर्द्धचन्द्र और भाला आदि अस्त्र शस्त्रोंसे काट डालतेथे ॥ ६३ ॥ उस समय फेंकेहुए पर्वतोंसे अस्त्र शस्त्रोंके कटेहुए वृक्षोंसे और राक्षस वानरोंके शरीरसे रणभूमि दुर्गम होगई ॥ ६४ ॥ गर्वित और हर्षित चित्त प्रदीनता युक्त समरमें अनुषंगी वानरगण भय छोड, नख, दांत, वृक्ष,शिला, आदि अस्त्र शस्त्रोंको चलाय २ राक्षसोंके साथ युद्ध करनेंलगे ॥ ६५ ॥ इस प्रकारसे कठोर युद्धमें वानरगण हर्षित होकर

रथेनचरथंचापिवारणेनापिवारणम् ॥ हयेनचहयंकेचिन्निर्जघ्नुर्वानरारणे ॥ ६२ ॥ क्षुरप्रैरर्धचंद्रैश्चभल्लैश्चनिशितैः शरैः ॥ राक्षसावानरेंद्राणांबिभिदुःपादपान्शिलाः ॥ ६३ ॥ विकीर्णाःपर्वतास्तैश्चद्रुमच्छिन्नैश्चसंयुगे ॥ हतैश्चकपिरक्षोभिर्दुर्गमावसुधाभवत् ॥ ६४ ॥ तेवानरागर्वितहृष्टचेष्टाःसंग्राममासाद्यभयंविमुच्य ॥ युद्धंस्मसर्वेसहराक्षसैस्तेनानायुधाश्चक्रुरदीनसत्त्वाः ॥ ६५ ॥ तस्मिन्प्रवृत्तेतुमुलेविमर्देप्रहृष्यमाणेषुवलीमुखेषु ॥ निपात्यमानेषुचराक्षसेषुमहर्षयोदेवगणाश्चनेदुः ॥ ६६ ॥ ततोहयंमारुततुल्यवेगमारुह्यशक्तिंनिशितांप्रगृह्य ॥ नरांतकोवानरसैन्यमुग्रंमहार्णवंमीनइवाविवेश ॥ ६७ ॥ सवानरान्सप्तशतानिवीरःप्रासेनदीप्तेनविनिर्बिभेद ॥ एकः क्षणेनेंद्ररिपुर्महात्माजघानसैन्यंहरिपुंगवानाम् ॥ ६८ ॥ ददृशुश्चमहात्मानंहयपृष्ठप्रतिष्ठितम् ॥ चरंतंहरिसैन्येषुविद्याधरमहर्षयः ॥ ६९ ॥

जब निशाचरोंका संहार करनेंलगे; तब महर्षि और देवतालोग यह युद्ध देखकर आनंदका कुलाहल करतेथे ॥ ६६ ॥ इसके उपरान्त मत्स्य जिस प्रकार महासमुद्रमें प्रवेश करताहै, वैसेही नरान्तक पवनकी समान वेगवान एक घोड़े पर सवार हुआ तीक्ष्ण शक्ति ग्रहण करके वानरोंकी सैनामें प्रवेश कर गया ॥ ६७ ॥ उस महाबलवान वीर नरान्तकनें प्रकाशमान भालेसे सातसौ वानरोंको मारडाला व उसनें एकही क्षणमें इन्द्रके शत्रु महात्मा इस राक्षसनें वानरश्रेष्ठों की औरभी बहुतसी वानरोंकी सैना मारडाली ॥ ६८ ॥ इस महात्माको घोड़ेकी पीठपर संग्रामभूमिके मध्य

उतार ऊपरको उठा हुआ उसका वह हाथभी काट डाला ॥ १५९ ॥ कुंभकर्णकी पर्वतकी समान उस कटी हुई भुजानें चेष्टाहीन हो पृथ्वीपर गिर तडपते हुए वृक्ष पर्वत और वानर राक्षसोंको चूर्ण कर डाला ॥ १६० ॥ तिसके पीछे श्रीरामचन्द्रजीनें उस राक्षसको फिरभी सिंहनाद करके आते हुए देख दो तीखे अर्द्ध चन्द्रबाण ग्रहण करके उसके दोनों पांव काटडाले ॥ १६१ ॥ उसके वह दोनों पांव दिशा, विदिशा, पर्वतोंकी गुफा, समुद्र लंका और वानर व राक्षसोंकी सैनाको शब्दायमान करते हुए पृथ्वीमें गिरे ॥ १६२ ॥ जैसे अन्तरिक्षमें राहु चन्द्रमाको ग्रास करनेंके लिये दौड़ताहै वैसेही हाथ पांव कटा कुंभकर्ण उस समय घोड़ेके मुखकी समान अपना मुख फैलाय शब्द करता हुआ आकाश मार्गसे होकर सहसा

सकुंभकर्णस्यभुजोनिकृत्तः पपातभूमौगिरिसन्निकाशः ॥ विचेष्टमानोनिजघानवृक्षान्शैलान्शिलावानरराक्षसांश्च ॥ १६० ॥ तंच्छिन्नबाहुंसमवेक्ष्यरामःसमापतंतंसहसानदंतम् ॥ द्वावर्धचंद्रौनिशितौप्रगृह्यचिच्छेदपादौयुधिराक्षसस्य ॥ ६१ ॥ तौतस्यपादौप्रदिशोदिशश्चगिरेर्गुहाश्चैवमहार्णवंच ॥ लंकांचसेनांकपिराक्षसानांविनादयंतौविनिपेततुश्च ॥ ६२ ॥ निकृत्तबाहुर्विनिकृत्तपादोविदार्यवक्त्रंवडवामुखाभम् ॥ दुद्रावरामंसहसाभिगर्जन्राहुर्यथाचंद्रमिवांतरिक्षे ॥ ६३ ॥ अपूरयत्तस्यमुखंशिताग्रैरामःशरैर्हेमपिनद्धपुंखैः ॥ संपूर्णवक्त्रोनशशाकवक्तुंचुकूजकृच्छ्रेणमुमूर्छचापि ॥ ६४ ॥ अथाददेसूर्यमरीचिकल्पंसब्रह्मदंडांतककालकल्पम् ॥ अरिष्टमैंद्रंनिशितंसुपुंखंरामःशरंमारुततुल्यवेगम् ॥ १६५ ॥ तंवज्रजांबूनदचारुपुंखंप्रदीप्तसूर्यज्वलनप्रकाशम् ॥ महेंद्रवज्राशनितुल्यवेगंरामःप्रचिक्षेपनिशाचराय ॥ ६६ ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी ओर दौड़ा ॥ १६३ ॥ कुंभकर्णको इस प्रकारसे आता हुआ देखकर रघुनंदन श्रीरामचन्द्रजीनें सुवर्णके फोंक लगेहुए बाणोंसे उसका मुख पूर्ण कर दिया, तब बाणोंसे समस्त मुख पूर्ण हो जानेंके कारण कुंभकर्ण कुछभी नहीं बोल सका और सूक्ष्मसा शब्द करके मूर्छित हो गया ॥ १६४ ॥ तिसके पीछे श्रीरामचंद्रजीनें सूर्यकी किरणोंके समान प्रकाशमान दीप्तियुक्त, ब्रह्मदंड और कालदंडकी सदृश शत्रुओंको नाश करनेवाला अति तीक्ष्ण सुन्दर फोंकलगा प्रचंड पवनके वेगकी समान ऐन्द्र नामक बाण लिया ॥ १६५ ॥ जिसमें कि हीरे और सुवर्णकी फोंक लगीथी,

अपूर्व मूर्त्ति प्रकाशकी ॥ ७८ ॥ इसके उपरान्त जो महावीर वानरश्रेष्ठगण पहले कुंभकर्णके मारेहुए संग्राममें मूर्छित पडेथे, वह सावधान होकर सुग्रीवजीके निकट गये ॥ ७९ ॥ और सुग्रीवजीनें नरान्तकके भयसे वानरोंकी सैनाको इधर उधर भागताहुआ देखा ॥ ८० ॥ सुग्रीवजीनें वानरोंकी सैनाको भागता हुआ देखकर दूरको निहारकर देखा कि भाला धारण किये घोडेपर सवारहुआ नरान्तक आगमन कररहा है ॥८१॥उसको आता हुआ देखकर महा तेजस्वी वानर राज सुग्रीवजी इन्द्रके समान पराक्रमशाली वालिके पुत्र वीरश्रेष्ठ अंगदजीसे कहनें लगे,यह घोडे पर चढ़ा हुआ निशाचर जोकि वानरोंकी सैनाको भगाताहुआ चला आताहै, जाओ इस वीर राक्षसको तुम शीघ्र मारकर आओ ॥८२॥ ८३ ॥

येतुपूर्वंमहात्मानःकुंभकर्णेनपातिताः ॥ तेस्वस्थावानरश्रेष्ठाःसुग्रीवमुपतस्थिरे ॥ ७९ ॥ प्रेक्षमाणःससुग्रीवोददृशेहरिवाहिनीम् ॥ नरांतकभयत्रस्तांविद्रवंतींयतस्ततः ॥ ८० ॥ विद्रुतांवाहिनींदृष्ट्वासददर्शनरांतकम् ॥ गृहीतप्रासमायांतंहयपृष्ठप्रतिष्ठितम् ॥ ८१ ॥ दृष्ट्वोवाचमहातेजाःसुग्रीवोवानराधिपः ॥ कुमारमंगदंवीरंशक्रतुल्यपराक्रमम् ॥ ८२ ॥ गच्छैनंराक्षसंवीरंयोसौतुरगमास्थितः ॥ भक्षयंतंपरबलंक्षिप्रंप्राणैर्वियोजय ॥ ८३ ॥ सभर्तुर्वचनंश्रुत्वानिष्पपातांगदस्तदा ॥ अनीकान्मेघसंकाशादंशुमानिववीर्यवान् ॥ ८४ ॥ शैलसंघातसंकाशोहरीणामुत्तमोंगदः ॥ रराजांगदसन्नद्धःसधातुरिवपर्वतः ॥८५॥ निरायुधोमहातेजाःकेवलंनखदंष्ट्रवान् ॥ नरांतकमभिक्रम्यवालिपुत्रोऽब्रवीद्वचः ॥ ८६ ॥ तिष्ठकिंप्राकृतैरेभिर्हरिभिस्त्वंकरिष्यसि ॥ अस्मिन्वज्रसमस्पर्शंप्रासंक्षिपममोरसि ॥ ८७ ॥

वीर्यवान् अंगदजी वानरोंके राजा सुग्रीवजीके ऐसे वचन सुनकर वानरोंकी सैनामेंसे इस प्रकार निकले, कि जिस प्रकार सूर्य भगवान घटासे निकल आतेहैं ॥ ८४ ॥उस कालमें निविड कृष्ण पर्वतकी समान आकारवाले वह वानरश्रेष्ठ अंगदजी बाहोंमे दो बाजू धारण कियेहुए धातुमय पर्वतकी समान शोभायमान होनें लगे ॥ ८५ ॥ केवल नख, दांतके अतिरिक्त और कोई भी आयुध नहीं धारण किये महा तेजस्वी वालिकुमार अंगदजी नरान्तकके निकट पहुंचकर बोले ॥ ८६ ॥ खडा रह, साधारण वानरोंके मारनेंसे क्या होगा ? इस वज्रकी समान भालेसे तू

यक्ष और गन्धर्वगणोंके सहित समस्त प्राणीही श्रीरामचंद्रजीका पराक्रम देखकर परम प्रसन्न हुए ॥ १७३ ॥ राक्षसराज रावणके चिन्ताशील बन्धुबान्धवगण कुंभकर्णके ऐसे दारुण वधसे अत्यन्त दुःखीहो जिसप्रकार मृगराजसिंहको देख हाथी भागतेहैं वैसेही श्रीरामचंद्रजी और वानरोंको देखकर शब्द करते हुए भागनें लगे ॥ १७४ ॥ उसकालमें श्रीरामचंद्रजी देवता लोगोंके कालस्वरूप कुंभकर्णका संग्रामभूमिमें संहारकर अपनी सेनाके बीचमें बैठे राहुके मुखसे छूटे हुए सूर्यकी समान शोभायमान हुए ॥ १७५ ॥ उस भयंकर बलवान शत्रुके मारे जानेपर हर्षके मारे वानरलोगोंके मुख कमलके फूलकी समान खिलगये और वह सब उस समय जगत्पूज्य श्रीरामचंद्रजीकी पूजा करनेलगे ॥ १७६ ॥

ततस्तुतेतस्यवधेनभूरिणामनस्विनोनैर्ऋतराजबांधवा॥विनेदुरुच्चैर्व्यथितारघूत्तमंहरिंसमीक्ष्यैवयथामतंगजाः ७४॥
सदेवलोकस्यतमोनिहत्यसूर्योयथाराहुमुखाद्विमुक्तः ॥ तथाव्यभासीद्धरिसैन्यमध्येनिहत्यरामोयुधिकुंभकर्णम् ॥
॥ १७५ ॥ प्रहर्षमीयुर्बहवश्चवानराःप्रबुद्धपद्मप्रतिमैरिवाननैः ॥ अपूजयन्राघवमिष्टभागिनंहतेरिपौभीमबलेनृपा
त्मजम् ॥ ७६ ॥ सकुंभकर्णंसुरसैन्यमर्दनंमहत्सुयुद्धेषुकदाचनाजितम् ॥ ननंदहत्वाभरताग्रजोरणेमहासुरंवृत्रमि
वामराधिपः ॥ १७७ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रा०वा०आ०यु०सप्तषष्टितमःसर्गः ॥ ६७ ॥ कुंभकर्णंहतंदृष्ट्वाराघवेणमहात्म
ना ॥ राक्षसाराक्षसेंद्रायरावणायन्यवेदयन् ॥ १ ॥

अमरराज इन्द्रजी महाअसुर वृत्रासुरका संहारकरके जिस प्रकारसे आनंदित हुयेथे वैसेही भरतजीके बड़े भ्राता श्रीरामचंद्रजीनें जो कभी किसीसे महारणमें नहीं हाराथा उस देवताओंकी सैनाके मर्दन करनेवाले कुंभकर्णका नाशकरके परम हर्ष प्राप्तकिया ॥ १७७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये भाषानुवादे कात्यायनकुमारपंडितज्वालाप्रसाद मिश्रकृत सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥ कुंभकर्णको महाबलवान श्रीरामचंद्रजीसे माराहुआ देखकर राक्षस लोगोंनें राक्षसोंके स्वामी रावणके समीप जाकर निवेदन किया ॥ १ ॥

महाबलवान वालिके पुत्र अंगदजीनें नरान्तककी छातीमें मृत्युकी समान महावेगसे पर्वतके शृङ्गकी नांई एक मूका मारा ॥ ९४ ॥ उस मूकेके लगनेसे राक्षसकी छाती उकड २ कर टूट गई; उसके मुखसे रुधिरकी धारा निकलनेंलगी सर्व शरीर रुधिरसे भीग गया, उस समय वह नरान्तक वज्रके गिरनेंसे टूटे हुए पर्वतकी समान पृथ्वीपर गिरकर मरगया ॥ ९५ ॥ उस संग्राममें जब वालिनंदन अंगदजी करके उग्र वीर्यवान् निशाचर नरान्तक मारा गया तब आकाशसे देवता गणोंका और रण भूमिमें वानरोंका बड़ा भारी शब्द होनें लगा ॥ ९६ ॥ इस प्रकारसे भयंकर कर्म कारी अंगदजी श्रीरामचंद्रजीके हर्ष जनक इस प्रकारका कठिन विक्रम प्रगट करके श्रीरामचंद्रजीको हर्षित कराय, और फिर आप भी समर

समुष्टिनिर्भिन्ननिमग्नवक्षाज्वालावमन्शोणितदिग्धगात्रः ॥ नरांतकोभूमितलेपपातयथाऽचलोवज्रनिपातभग्नः ॥९५॥
तदांतरिक्षेत्रिदशोत्तमानांवनौकसांचैवमहाप्रणादः ॥ बभूवतस्मिन्निहतेऽग्र्यवीर्येनरांतकेवालिसुतेनसंख्ये ॥ ९६ ॥ अ
थांगदोराममनःप्रहर्षणंसुदुष्करंतंकृतवान्हिविक्रमम् ॥ विसिस्मियेसोप्यथभीमकर्मापुनश्चयुद्धेसबभूवहर्षितः ॥९७॥
नरांतकंहतंदृष्ट्वाचुक्रुशुर्नैर्ऋतर्षभाः ॥ देवांतकस्त्रिमूर्धाचपौलस्त्यश्चमहोदरः ॥ ९८ ॥ आरूढोमेघसंकाशंवारणेंद्रं
महोदरः ॥ वालिपुत्रंमहावीर्यमभिदुद्राववेगवान् ॥ ९९ ॥ भ्रातृव्यसनसंतप्तस्तदादेवांतकोबली ॥ आदायपरिघं
घोरमंगदंसमभिद्रवत् ॥ १०० ॥ रथमादित्यसंकाशंयुक्तंपरमवाजिभिः ॥ आस्थायत्रिशिरावीरोवालिपुत्रमथा
भ्यगात् ॥ १ ॥ सत्रिभिर्देवदर्पघ्नैराक्षसेंद्रैरभिद्रुतः ॥ वृक्षमुत्पाटयामासमहाविटपमंगदः ॥ २ ॥ देवांतकायतंवी
रश्चिक्षेपसहसांगदः ॥ महावृक्षंमहाशाखंशक्रोदीप्तामिवाशनिम् ॥ ३ ॥

करनेंके लिये उत्साह प्रगट करनें लगे॥ ९७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा०आ०यु०एकोनसप्ततितमः सर्गः (कतक मतसें सर्ग समाप्ति नही) ॥ ६९ ॥ नरान्तकको मरा हुआ देखकर देवान्तक, त्रिशिरा और महोदर इत्यादि निशाचर गण अत्यन्त क्रोध करते हुए ॥ ९८ ॥ वेगवान राक्षस महोदर मेघकी समान हाथीपर चढ़ा हुआ वालिकुमार वीर्यवान अंगदजीके सन्मुखदौड़ा ॥९९॥ और बलवान देवान्तकभी अपने भाईके वधसे अत्यन्त दुःखी होकर घोर परिघ धारण करके अंगदजीकी ओरको धाया ॥१००॥ वीर त्रिशिरा उत्तम घोड़ोंसे जुते हुए आदित्यकी समान रथपर सवार होकर

विलाप करताहुआ कहनें लगा ॥ ९ ॥ हावीर! हा शत्रुगर्वखर्वकारी! हा महाबलवान्! हा कुंभकर्ण! प्रारब्धके वश तुम हमको छोड़कर यमराजके भवनको चले गये ॥ १० ॥ हा महाबलवान्! तुम हमारे और व हमारे बन्धु बान्धवोंके हृदयमें गडे हुए फलके विनाही उखाडे हम सबको छोड़ शत्रुकी सैनाको भगाय अकेले ही कहांको चले गये* ॥ ११ ॥ हा वीर! तुम हमारे दाहिने हाथथे इसी कारणसे हम सुर या असुरलोगोंसे भय नहीं करतेथे परन्तु आज हम अपनी उस बांहके गिरनेंसे लोप होनेंके निकट पहुंचगये ॥ १२ ॥ हाय! जिस कालके समयकी अग्निके समान वीरनें देवता

हावीररिपुदर्पघ्नकुंभकर्णमहाबल ॥ त्वंमांविहायवैदैवाद्यातोसियमसादनम् ॥ १० ॥ ममशल्यमनुद्धृत्यबांधवानांमहाबल ॥ शत्रुसैन्यंप्रताप्यैकःक्वमांसंत्यज्यगच्छसि ॥ ११ ॥ इदानींखल्वहंनास्मियस्यमेपतितोभुजः ॥ दक्षिणोयंसमाश्रित्यनबिभेमिसुरासुरात् ॥ १२ ॥ कथमेवंविधोवीरोदेवदानवदर्पहा ॥ कालाग्निप्रतिमोह्यद्यराघवेणरणेहतः ॥ १३ ॥ यस्यतेवज्रनिष्पेषोनकुर्याद्व्यसनंसदा ॥ सकथंरामबाणार्तःप्रसुप्तोसिमहीतले ॥ १४ ॥ एतेदेवगणाःसार्धमृषिभिर्गगनेस्थिताः ॥ निहतंत्वांरणेदृष्ट्वानिनदंतिप्रहर्षिताः ॥ १५ ॥ ध्रुवमद्यैवसंहृष्टालब्धलक्षाःप्लवंगमाः ॥ आरोक्ष्यंतीहदुर्गाणिलंकाद्वाराणिसर्वशः ॥ १६ ॥ राज्येननास्तिमेकार्यंकिंकरिष्यामिसीतया ॥ कुंभकर्णविहीनस्य जीवितेनास्तिमेमतिः ॥ १७ ॥

और दानव गणोंका भी गर्व खर्व कियाथा सो एक दशरथकुमार रणभूमिमे किसप्रकारसे उसको मार डालनेके अर्थ समर्थ हुआ ॥ १३ ॥ हा वज्रकी चोट खानेंपरभी जिसको कुछ पीडा नहीं ज्ञात होतीथी वही वीर किस प्रकारसे आज रामचंद्रके बाणसे पीड़ितहो पृथ्वीपर शयन कररहा है ॥ १४ ॥ हा! यह देखो भइया ऋषि लोगोंके साथ आकाशमें टिके हुए देवता गण तुमको रणमें मराहुआ देखकर हर्षके मारे सिंहनाद कर रहे हैं ॥ १५ ॥ हम निश्चय जानते हैं कि वानरगण अवसर पायकर आज ही लंकाके द्वार और दुर्गपरचढ़ आवेंगे ॥ १६ ॥ हमको अब राज्यसें

* हाय भ्राता किधरको सिधारे॥आजतक दुःख मैने नमाना युद्ध संसारमें भीत ठाना मुझको दीखे कही ना ठिकाना फिर जियूंगा मै किसके सहारें ॥१॥ जोवडे शूरमाथे निशाचर जिनका मुझको भरोसा सहोदर युद्धमें जो न हारे कहींपर अब गये वीरवे सारे मारे॥२॥जो विभीषणने हमको सुनाया उसका कहना सभी आगे आया अपनी मुंह जाता अब ना दिखाया कौन धीरज बंधावै हमारे ॥३॥ जानकी कालके रूप आई गढकू मेरे हुई दुःखदाई उसकी माय नही जानि जाई जो लिखा है टरै वो न टारे ॥ ४ ॥

प्रतापवान् अंगदजी कुछभी व्यथित न हुए ॥१०९॥ इसके उपरान्त परम दुर्जेय वानर श्रेष्ठ अंगदजीनें महा वेगसे उस हाथीके मस्तकमें एक लात मारी जिसपर महोदर चढ़ा हुआथा॥११०॥उस लातके घोर प्रहारसे उस हस्तिराजके दोनों नेत्र बाहर निकल आये; और वह हाथी अत्यन्त दारुण शब्द करनें लगा और मरगया तब वालिके पुत्र महाबलवान् अंगदजीनें उस हाथीका एक दांत निकालकर ॥१११॥ देवान्तककी ओर दौड़ उस दांतसे रणभूमिमें उसको मारा जिसके लगनेसे वह तेजस्वी देवान्तक ऐसा विह्वल हुआ जैसे पवनके लगनेंसे वृक्ष कंपित होताहै ॥ ११२ ॥ उसके मुखसे लाखके रंग कैसा बहुतही रुधिर निकलनें लगा इसके पीछे महा तेजस्वी वीर वर देवान्तकनें अति कष्टसे चेतना पाय ॥ ११३ ॥ अंगदजीकी

लाक्षारससवर्णंचसुस्रावरुधिरंमहत् ॥ अथाश्वस्यमहातेजाःकृच्छ्राद्देवांतकोबली ॥ १३ ॥ आविध्यपरिघंवेगादाजघानदतांगदम् ॥ परिघाभिहतश्चापिवानरेंद्रात्मजस्तदा ॥ १४ ॥ जानुभ्यांपतितोभूमौपुनरेवोत्पपातह ॥ तमुत्पतंतंत्रिशिरास्त्रिभिर्बाणैरजिह्मगैः ॥ १५ ॥ घोरैर्हरिपतेःपुत्रंललाटेभिजघानह ॥ ततोंगदंपरिक्षिप्तंत्रिभिर्नैर्ऋतपुंगवैः ॥१६॥ हनूमानथविज्ञायनीलश्चापिप्रतस्थतुः ॥ ततश्चिक्षेपशैलाग्रंनीलस्त्रिशिरसेतदा ॥ १७ ॥ तद्रावणसुतोधीमान्बिभेदनिशितैःशरैः ॥ तद्बाणशतनिर्भिन्नंविदारितशिलातलम् ॥ १८ ॥ सविस्फुलिंगंसज्वालंनिपपातगिरेःशिरः ॥ सविजृंभितमालोक्यहर्षाद्देवांतकोबली ॥ १९ ॥ परिघेणाभिदुद्रावमारुतात्मजमाहवे ॥ तमापतंतमुत्पत्यहनूमान्कपिकुंजरः ॥ १२० ॥ आजघानतदामूर्ध्निवज्रकल्पेनमुष्टिना ॥ शिरसिप्राहरद्वीरस्तदावायुसुतोबली ॥ नादेनाकंपयच्चैवराक्षसान्समहाकपिः ॥ २१ ॥

छातीमें अति वेगसे एक गदा मारी वानरोंमें इन्द्र अंगदजी गदाके प्रहारसे घायलहो ॥११४॥ जांघोंके बल पृथ्वीपर गिरे, और क्षणभरके पीछे फिर उठ बैठे उनके उठनेंके समय तीन सीधे चलनेंवाले बाण ॥ ११५ ॥ जो कि अति घोरथे अंगदजीके माथेमें मारे, अंगदजीको तीन राक्षस श्रेष्ठों करकै घिरा हुआ जान ॥ ११६ ॥ हनुमान् और नीलभी उनके निकट चले आये; तब नीलनें त्रिशिराको ताककर उसके मस्तकपर एक पर्वतका शिखर चलाया ॥ ११७ ॥ परन्तु बुद्धिमान रावणके पुत्र त्रिशिराने तीखे बाणोंसे उस शिखरको खंड २ कर डाला उस कालमें शत बाणोंसे वह

त्रिशिरा नाम राक्षस कहनें लगा॥ १ ॥ हेमहाराज! आपनें जिस प्रकारसे कहा, हमारे ऐसे गुणसम्पन्न मध्यम चचा मारे तो अवश्य गये, परन्तु कोईभी वीर पुरुष आपकी समान विलाप नहीं करता ॥ २ ॥ हेस्वामी! आप किस कारणसे साधारण पुरुषकीनांई अपने आपही आप ऐसे शोकसे संतापित हो रहेहो? हम निश्चय जानतेहैं कि आप इस त्रिभुवनकाभी नाश कर सकतेहैं ॥ ३ ॥ आपके पास पितामह ब्रह्माजीकी दी हुई शक्ति, कवच, बाण, धनुष और मेघकी समान शब्दायमान रथहै कि जिसमें सहस्र गधे जुतेहैं ॥ ४ ॥ आपने तो विनाही शस्त्र ग्रहणकिये अनेक वार देवता लोगोंको पराजय कियाहै; इस कारण अब सर्वभांतिके आयुध धारण करनेंसे निश्चयही आप रामचंद्रके जीतनेंको समर्थ होंगे ॥ ५ ॥

एवमेवमहावीर्योहतोनस्तातमध्यमः ॥ नतुसत्पुरुषाराजन्विलपंतियथाभवान् ॥ २ ॥ नूनंत्रिभुवनस्यापिपर्याप्तस्त्वमसिप्रभो ॥ सकस्मात्प्राकृतइवशोचस्यात्मानमीदृशम् ॥ ३ ॥ ब्रह्मदत्तास्तितेशक्तिःकवचंसायकोधनुः ॥ सहस्रखरसंयुक्तोरथोमेघसमस्वनः ॥ ४ ॥ त्वयाऽसकृद्विशस्त्रेणविशस्तादेवदानवाः ॥ ससर्वायुद्धसंपन्नोराघवंशास्तुमर्हसि॥५॥ कामंतिष्ठमहाराजनिर्गमिष्याम्यहंरणे ॥ उद्धरिष्यामितेशत्रून्गरुडःपन्नगानिव ॥ ६ ॥ शंबरोदेवराजेननरकोविष्णुना यथा॥ तथाद्यशयितारामोमयायुधिनिपातितः ॥ ७॥ श्रुत्वात्रिशिरसोवाक्यंरावणोराक्षसाधिपः ॥ पुनर्जातमिवात्मानं मन्यतेकालचोदितः ॥ ८ ॥ श्रुत्वात्रिशिरसोवाक्यंदेवांतकनरांतकौ ॥ अतिकायश्चतेजस्वीबभूवुर्युद्धहर्षिताः ॥ ९ ॥

अथवा आप सुखसहित विश्राम करें हम अकेलेही समरमें जायकर आपके शत्रुओंका नाश करेंगे कि जिसप्रकार गरुड़ सर्पोंका नाश करतेहैं ॥ ६ ॥ जिस प्रकार इन्द्रनें शम्बरासुरको और विष्णुजीनें नरकासुरको मार डालाथा, वैसेही हमभी रणभूमिमें रामचंद्रका संहारकर उनको पृथ्वी पर लुटा देंगे ॥ ७ ॥ राक्षसोंके स्वामी रावणनें त्रिशिराके ऐसे वचन सुनकर कालप्रेरितहो अपना दूसरा जन्म होना मानता हुआ (अर्थात्) रावणनें तो जान लियाकि वस अब हम मरगये, और सब आशा जाती रहीथी, परन्तु त्रिशिराके वचन सुन फिर हमको आशा हुई और इस प्रकार हमनें अपना दूसरा जन्म समझा ॥८॥तब त्रिशिराके ऐसे वचन सुनकर तेजस्वी अतिकाय, देवान्तक; और नरान्तक युद्ध करनेंके लिये हर्ष

विरकर विद्ध शरीर और बाणोंसे रोके जाकर और देहमें घाव खायकर अत्यन्त व्यथित हुए, उनका शरीर अवश हुआ, चेतना जाती रही और मूर्छा आय गई ॥ २६ ॥ परन्तु महावीर नीलनें एक क्षणभरमें चेतना पाय वृक्षोंके सहित एक पर्वत उखाड़ और कूदकर वह पर्वत महावीर महोदरके शिरपर देमारा ॥ २७ ॥ महोदरभी पर्वतके लगनेसे उस बड़े भारी हाथीके सहित चूर्णित और प्राण रहित होकर वज्रसे छूटे हुए पर्वतकी समान पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २८ ॥ अपने चचा महोदरको मरा हुआ देखकर त्रिशिरा अत्यंत क्रोधित हुआ; और यह धनुष पर बाण चढ़ाय तीखे बाणोंसे हनुमानजीको बींधनें लगा ॥ २९ ॥ तब पवनकुमार हनुमानजीनेंभी क्रोधित होकर एक पर्वतका शिखर चलायाकि तिसको

सवायुसूनुःकुपितश्चिक्षेपशिखरंगिरेः ॥ त्रिशिरास्तच्छरैस्तीक्ष्णैर्बिभेदबहुधाबली ॥ १३० ॥ तद्व्यर्थंशिखरंदृष्ट्वाद्रुमवर्षंतदाकपिः ॥ विससर्जरणेरणेतस्मिन्रावणस्यसुतंप्रति ॥ ३१ ॥ तमापतंतमाकाशेद्रुमवर्षंप्रतापवान् ॥ त्रिशिरानिशितैर्बाणैश्चिच्छेदचननादच ॥ ३२ ॥ हनूमांस्तुसमुत्पत्यहयंत्रिशिरसस्तदा ॥ विददारनखैःक्रुद्धोनागेंद्रंमृगराडिव ॥ ३३ ॥ अथशक्तिंसमासाद्यकालरात्रिमिवांतकः ॥ चिक्षेपानिलपुत्रायत्रिशिरारावणात्मजः ॥ ३४ ॥ दिवःक्षिप्तामिवोल्कांतांशक्तिंक्षिप्तामसंगताम् ॥ गृहीत्वाहरिशार्दूलोबभंजचननादच ॥ ३५ ॥ तांदृष्ट्वाघोरसंकाशांशक्तिंभग्नांहनूमता ॥ प्रहृष्टावानरगणाविनेदुर्जलदायथा ॥ ३६ ॥ ततःखड्गंसमुद्यम्यत्रिशिराराक्षसोत्तमः ॥ निचखानतदाखड्गंवानरेंद्रस्यवक्षसि ॥ ३७ ॥

बलशाली त्रिशिरानें खंड २ कर डाला ॥ १३० ॥ संग्राम भूमिमें पर्वतके शिखरको व्यर्थ हुआ देखकर कपि श्रेष्ठ हनुमानजीनें रावणके पुत्रको निशाना बनाय उसके ऊपर वृक्षोंकी वर्षा करनी आरंभकी ॥ १ ॥ परन्तु प्रतापशाली त्रिशिरा उन सब वृक्षोंको तीखे बाणोंके समूहसे आकाश मार्गमेंही काट कर सिंहनाद कर उठा ॥ २ ॥ यह देख हनुमानजी कूदकर त्रिशिराके घोड़े पर चढ़ उस घोड़ेको अपने नखोंसे इस प्रकार चीर फाड़ डालाकि जैसे सिंह हाथीको चीर डालताहै ॥ ३ ॥ इसके उपरान्त रावणके पुत्र त्रिशिरानें जिस प्रकार यमराज प्रलय कालमें काल

वाली बूटी और सब सुगन्धित पदार्थ स्पर्श करके संग्राममें विजय पानेंकी वासनासे चले ॥१९॥ त्रिशिरा, अतिकाय, देवान्तक, नरान्तक, महोदर, और महापार्श्व, यह छैः निशाचर मानो कालसेही भेजे जाकर संग्राममें गमन करते हुए ॥ २० ॥ नीले बादरके रंगकी समान ऐरावतके कुलसे उत्पन्न हुए सुदर्शननाम हाथीपर महोदर सवार हुआ ॥ २१ ॥ तरकस और बाणोंसे अलंकृत सर्वायुधधारी, वह वीर हाथीपर सवार होकर अस्ता चलपर आरोहण करते हुए सूर्यभगवानकी समान शोभायमान होनें लगा ॥ २२ ॥ रावणका पुत्र त्रिशिरा दिव्य घोड़े जिसमें जुते, और सब भांतिके अस्त्र शस्त्रभी भर रहेथे ऐसे एक श्रेष्ठ रथपर सवार हुआ ॥ २३ ॥ धनुष धारण किये हुए त्रिशिरा रथपर सवार होकर बिजली, उल्का

त्रिशिराश्चातिकायश्चदेवांतकनरांतकौ ॥ महोदरमहापार्श्वौनिर्जग्मुःकालचोदिताः ॥ २० ॥ ततःसुदर्शनंनागंनी लजीमूतसन्निभम् ॥ ऐरावतकुलेजातमारुरोहमहोदरः ॥ २१ ॥ सर्वायुधसमायुक्तस्तूणीभिश्चाप्यलंकृतः ॥ रराज गजमास्थायसवितेवास्तमूर्धनि ॥ २२ ॥ हयोत्तमसमायुक्तंसर्वायुधसमाकुलम् ॥ आरुरोहरथश्रेष्ठंत्रिशिराराव णात्मजः ॥ २३ ॥ त्रिशिरारथमास्थायविरराजधनुर्धरः ॥ सविद्युदुल्कःसज्वालःसेंद्रचापइवांबुदः ॥ २४ ॥ त्रिभिः किरीटैस्त्रिशिराःशुशुभेसरथोत्तमे ॥ हिमवानिवशैलेंद्रस्त्रिभिःकांचनपर्वतैः ॥ २५ ॥ अतिकायोतितेजस्वीराक्षसें द्रसुतस्तदा ॥ आरुरोहरथश्रेष्ठंश्रेष्ठःसर्वधनुष्मताम् ॥ २६ ॥ सुचक्राक्षंसुसंयुक्तंसानुकर्षसकूबरम् ॥ तूणीबाणासनै दीप्तंप्रासासिपरिघाकुलम् ॥ २७ ॥

ज्वाला, और इन्द्र धनुषयुक्त बादलकी समान शोभायमान हुआ ॥ २४ ॥ तीन सुवर्णके शृङ्गोंसे हिमवान पर्वतकी जैसी शोभा होतीहै, वैसेही त्रिशिरा अपने तीन मस्तकोंपर तीन किरीट धारण करके श्रेष्ठ रथपर सवार हो शोभित होनें लगा ॥ २५ ॥ धनुष धारण करनेंवालोंमें प्रथम गिनें जानेंके योग्य रावणका पुत्र अतितेजस्वी अतिकाय श्रेष्ठ रथपर आरोहण करता हुआ ॥ २६ ॥ इस रथके पहिये और धुरे सुगठितथे अनुकर्ष और कूबरयुक्त दो विशेष अंगोंसे यह शोभितथा, इसमें बाण शरासन, प्रास, खड्ग और परिघ यह सब सजे सजाये रक्खेथे ॥ २७ ॥

तस्मिन्हतेभ्रातरिरावणस्यतन्नैर्ऋतानांबलमर्णवाभम्॥त्यक्तायुधंकेवलजीवितार्थंदुद्रावभिन्नार्णवसन्निकाशम्॥१६३॥
इत्यार्षेश्रीमद्रा०वा०आ०युद्धकांडेसप्ततितमःसर्गः ॥ ७० ॥ छ ॥ स्वबलंव्यथितंदृष्ट्वातुमुलंलोमहर्षणम् ॥ भ्रातॄंश्चनि
हतान्दृष्ट्वाशक्रतुल्यपराक्रमान् ॥ १ ॥ पितृव्यौचापिसंदृश्यसमरेसंनिपातितौ ॥ युद्धोन्मत्तंचमत्तंचभ्रातरौराक्षसो
त्तमौ ॥ २ ॥ चुकोपचमहातेजाब्रह्मदत्तवरोयुधि ॥ अतिकायोद्रिसंकाशोदेवदानवदर्पहा ॥ ३ ॥ सभास्करसहस्र
स्यसंघातमिवभास्वरम् ॥ रथमारुह्यशक्रारिरभिदुद्राववानरान् ॥ ४ ॥ सविस्फार्यतदाचापंकिरीटीमृष्टकुंडलः ॥
नामसंश्रावयामासननादचमहास्वनम् ॥ ५ ॥

आदि धातु वहा करती हैं ॥ ५९ ॥ इसके उपरान्त महात्मा ऋषभके सन्मुख वह महापार्श्व दौड़ा परन्तु फिर महात्मा उस वानरनें उस भयंकर गदाको तोल और जांचकर वारंवार बल पूर्वक ग्रहणकर ॥१६०॥ महा पार्श्वके शिरपर प्रहारकिया अपनी ही गदासे इसप्रकार घायलहो महापार्श्वकी जीभ निकल आई और दांतभी टूटकर बाहर आन पडे ॥ ६१ ॥ और वह वज्रसें टूटे हुए पर्वतकी समान पृथ्वीपर गिरपड़ा उसके दोनों नेत्र निकल पडे और वह प्राणरहित होगया उस राक्षस महापार्श्वके गिर तेही राक्षसोंकी सैना भागगई ॥ ६२ ॥ इसप्रकारसे उस रावणके भ्राता महापार्श्वके मरजानेसें वह समुद्र समान निशाचरोंकी सेना अस्त्र शस्त्र त्यागकरके केवल अपना जीवही बचानेंको उछलतेहुए समुद्रकी भांति चारों ओरको भागगई ॥ १६३ ॥ इ० श्रीम०वा० आ० यु० सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥ अति भयंकर लोमहर्षणकारी अपनी सेनाका संहार देख और इन्द्रकी समान पराक्रमकारी देवान्तक नरान्तक त्रिशिरा इन तीन भाइयोंको मृतक देख ॥ १ ॥ और अपने दोनो चचा महोदर व महापार्श्वको भी संग्राममें मरा हुआ निहारकर ॥ २ ॥ ब्रह्माजीसे वरदान पाया हुआ देवता दानवोंका अहंकार तोड़नें वाला पर्वताकार अतिकाय नामक राक्षस समरमें बडा क्रोध करता हुआ॥३॥ सहस्र सूर्योंके उदय होनसे जिसप्रकार तेज होताहै ऐसे ही यह राक्षस अतिकाय अति तेजस्वी था यह इस समय रथपर चढ़कर वानरोंकी सेनाके सन्मुख दौड़ा ॥ ४ ॥ यह कुंडलसें अलंकृत और किरीटधारी वीर अतिकाय धनुष पर टंकार देता हुआ

ऐसी शोभितहुई जैसे शरदऋतुके समय आकाशमें उडती हुई हंसोकी पांति शोभायमान होती है; या तो मरहीजायँगे या शत्रुलोगोंको ही जीतलेंगे ॥ ३७ ॥ ऐसा निश्चयकर वह सब महात्मा वीर युद्ध करनेंके लिये चले, उनमेंसे कोई २ गर्जनेंलगे कोई २ सिंहनाद करनें लगे और कोई २ शत्रुकी ओर बाणोंकी वर्षा करनेंलगे ॥ ३८ ॥ इस प्रकारसे रणमें दुर्मद वह महात्मा वीर चले, उन राक्षसोंके घोर सिंह नाद करनेंसे पृथ्वी कंपायमान होनें लगी ॥ ३९ ॥ वह और दूसरे राक्षसोंकेभी सिंहनाद करनेंसे आकाशभी मानों फूटही गया; इस प्रकारसे वह महाबलवान राक्षस हर्षयुक्त होकर समर करनेंको चले ॥ ४० ॥ उन महाबली अत्यन्त आनंदित राक्षसोंनें वृक्ष शिलादि हाथमें लिये ऊप

शरदभ्रप्रतीकाशाहंसावलिरिवांबरे ॥ मरणंवापिनिश्चित्यशत्रूणांवापराजयम् ॥ ३७ ॥ इतिकृत्वामतिंवीराःसंजग्मुःसंयुगार्थिनः ॥ जगर्जुश्चप्रणेदुश्चचिक्षिपुश्चापिसायकान् ॥ ३८ ॥ जगृहुश्चमहात्मानोनिर्यातायुद्धदुर्मदाः ॥ क्ष्वेडितास्फोटितानांवैसंचचालेवमेदिनी ॥ ३९ ॥ रक्षसांसिंहनादैश्चसंस्फोटितमिवांबरम् ॥ तेभिनिष्क्रम्यमुदिताराक्षसेंद्रामहाबलाः ॥ ४० ॥ ददृशुर्वानरानीकंसमुद्यतशिलानगम् ॥ हरयोपिमहात्मानोददृशूराक्षसंबलम् ॥ ४१ ॥ हस्त्यश्वरथसंबाधंकिंकिणीशतनादितम् ॥ नीलजीमूतसंकाशंसमुद्यतमहायुधम् ॥ ४२ ॥ दीप्तानलरविप्रख्यैर्नैर्ऋतैःसर्वतोवृतम् ॥ तद्दृष्ट्वाबलमायातंलब्धलक्षाःप्लवंगमाः ॥ ४३ ॥ समुद्यतमहाशैलाःसंप्रणेदुर्मुहुर्मुहुः ॥ अमृष्यमाणारक्षांसिप्रतिनर्दतवानराः ॥ ४४ ॥ ततःसमुत्कृष्टरवंनिशम्यरक्षोगणावानरयूथपानाम् ॥ अमृष्यमाणाःपरहर्षमुग्रंमहाबलाभीमतरंप्रणेदुः ॥ ४५ ॥

रको उठाये हुए वानरोंको देखा ॥ ४१ ॥ वानरलोगोंनेभी देखाकि राक्षसोंकी सैना, युद्ध करनेंके लिये आगे बढ़रहीहै; यह समस्त सैना हाथी घोड़े और रथोंसे परिपूर्णथी और किंकिणियोंके शब्दसे शब्दायमानथी ॥ ४२ ॥ इस सैनाका आकार नीले मेघकी समानथा और इस सैनाके हाथमें अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्रथे और उसका तेज दीप्त अग्नि और सूर्यकी समान उज्ज्वलथा ॥ ४३ ॥ वानर लोग राक्षसोंको युद्धके लिये आयाहुआ देखकर पर्वतोंको ग्रहण करके वारंवार सिंहनाद करनेंलगे ॥ ४४ ॥ इसके उपरान्त वानरयूथपतिलोगोंका घोर शब्द श्रवण

जोकि कालजिह्वाकी समान प्रकाशमान रथ और शक्तियोंको धारण कियेहुए विराजमान हो रहाहै ॥ १४ ॥ इन्द्रधनुष जिस प्रकार आकाशको शोभित करताहै, वैसेही यह वीर सुवर्णका सुसाज शरासन धारण करकै रथको सुशोभित कर रहाहै ॥ १५ ॥ जो सूर्यकी समान तेजमय रथपर आरोहण करके प्रधान रथीके स्वरूपमें रणभूमिको शोभायमान करता हुआ युद्ध करनेंके लिये चलाआताहै ॥ १६ ॥ जिसके रथकी ध्वजापर राहुकी मूर्तिहै,जो सूर्यकी किरणोंके समान बाण चलाय करके दशों दिशाओंको ढकताहुआ आगमन कर रहाहै ॥ १७ ॥ जो निशाचर मेघकी समान शब्दायमान तीन जगहसे झुका हुआ सुवर्णकी पीठसे युक्त अलंकृत धनुष लियेहुये इन्द्र धनुषकी समान शोभायमान हो रहाहै ॥ १८ ॥

कालजिह्वाप्रकाशाभिर्यएषोभिविराजते ॥ आवृतोरथशक्तीभिर्विद्युद्भिरिवतोयदः ॥ १४ ॥ धनूंषिचास्यसज्जानिहेमपृष्ठानिसर्वशः ॥ शोभयंतिरथश्रेष्ठंशक्रचापमिवांबरम् ॥ १५ ॥ यएषरक्षःशार्दूलोरणभूमिंविराजयन् ॥ अभ्येतिरथिनांश्रेष्ठोरथेनादित्यवर्चसा ॥ १६ ॥ ध्वजशृंगप्रतिष्ठेनराहुणाभिविराजते ॥ सूर्यरश्मिप्रभैर्बाणैर्दिशोददशविराजयन् ॥ १७ ॥ त्रिनतंमेघनिर्ह्रादंहेमपृष्ठमलंकृतम् ॥ शतक्रतुधनुःप्रख्यंधनुश्चास्यविराजते ॥ १८ ॥ सध्वजःसपताकश्चसानुकर्षोमहारथः ॥ चतुःसादिसमायुक्तोमेघस्तनितनिःस्वनः ॥१९॥ विंशतिर्दशचाष्टौचतूणास्यरथमास्थिताः ॥ कार्मुकाणिचभीमानिज्याश्चकांचनपिंगलाः ॥२०॥ द्वौचखड्गौचपार्श्वस्थौप्रदीप्तौपार्श्वशोभितौ ॥ चतुर्हस्तत्सरुचितौव्यक्तहस्तदशायतौ ॥२१॥ रक्तकंठगुणोधीरोमहापर्वतसन्निभः॥कालःकालमहावक्त्रोमेघस्थइवभास्करः२२॥

जिसका मेघकी समान शब्दायमान ध्वजा पताकासे शोभित चार सारथियोंसे चलाया जाताहुआ रथ घर्घराता हुआ चला आताहै ॥ १९ ॥ जिस रथपर अड़तीश तर्कस भयंकर धनुषभी इतनेही और कांचनके समान पिंगल वर्णवाली जिसपर बहुतसी ज्या रक्खी हुई हैं ॥ २० ॥ जिसके दो खड्ग जिसकी दोनों बगलोंको शोभायमान कर रहेहैं;जिनके चार २ हाथके कब्जेही देखकर मालूम पड़ताहै कि इन दोंनो खड्गोंमेंसे प्रत्येक दश२ हाथका लंबा होगा ॥ २१ ॥ जिसके गलेमें पड़ी हुई लाल माला शोभायमान हो रहीहै; जिसका वदन कालकी समान है; यह महापर्वतकी समान

कपिकुंजरोंको तीक्ष्ण बाणोंसे मारतेथे ॥ ५३ ॥ शूल,मुद्गर, खड्ग, भाला, शक्ति, इत्यादिसेभी मारतेथे, और दूसरे अस्त्र शस्त्रोंसे परस्पर जयकी इच्छा किये एक दूसरेको मारतेथे ॥ ५४ ॥ धीरे २ इस प्रकारका युद्ध हुआ कि वानर और राक्षसगणोंका शरीर परस्परके शत्रुओंके रुधिरसे रंगगया वानर और राक्षस लोगोंके चलाये पर्वत खड्ग इत्यादि अस्त्र शस्त्रोंसे ॥ ५५ ॥ केवल मुहूर्तभरमें रणभूमि ढकगई और वहांपर रुधिरकी नदी वहनेंलगी, उस कालमें वानरोंसे मारेहुए रणमें मतवाले राक्षसोंके पड़ेहुए पर्वताकार देहोंसें रणभूमि परिपूर्ण होगई ॥ ५६ ॥ जब मारते २ और चलाते २ वृक्षपर्वतादि टूट फूट गये तब वानरगण अपनें अंगोंसे युद्ध करनेंलगे ॥ ५७ ॥ वानरश्रेष्ठगण राक्षसोंको

शूलमुद्गरखड्गैश्चजघ्नुःप्रासैश्चशक्तिभिः ॥ अन्योन्यंपातयामासुःपरस्परजयैषिणः ॥ ५४ ॥ रिपुशोणितदिग्धांगा स्तत्रवानरराक्षसाः ॥ ततःशैलैश्चखड्गैश्चविसृष्टैर्हरिराक्षसैः ॥ ५५ ॥ मुहूर्तेनावृताभूमिरभवच्छोणितोक्षिता ॥ विकीर्णैःपर्वताकारैरक्षोभिरभिमर्दितैः ॥ आसीद्वसुमतीपूर्णातदायुद्धमदान्वितैः ॥ ५६ ॥ आक्षिप्ताःक्षिप्यमाणाश्चभग्नशैलैश्चवानरैः ॥ पुनरंगैस्तदाचक्रुर्वानरायुद्धमद्भुतम् ॥ ५७ ॥ वानरान्वानरैरेवजघ्नुस्तेनैर्ऋतर्षभाः ॥ राक्षसान्राक्षसैरेवजघ्नुस्तेवानराअपि ॥ ५८ ॥ आक्षिप्यचशिलाःशैलाञ्जघ्नुस्तेराक्षसास्तदा ॥ तेषांचाच्छिद्यशस्त्राणिजघ्नूरक्षांसिवानराः ॥ ५९ ॥ निर्जघ्नुःशैलशृंगैश्चबिभिदुश्चपरस्परम् ॥ सिंहनादान्विनेदुश्चरणेराक्षसवानराः ॥ ६० ॥ छिन्नवर्मतनुत्राणाराक्षसावानरैर्हताः ॥ रुधिरंप्रस्रुतास्तत्ररससारमिवद्रुमाः ॥ ६१ ॥

उठाय २ राक्षसोंपर दे दे मारतेथे और राक्षसश्रेष्ठगण वानरोंको उठाय२ वानरोंपर देदे मारतेथे ॥ ५८ ॥ राक्षसलोग वानरोंके चलाये शिला और पर्वतोंको बलसे ग्रहण करके उनको उनकेही ऊपर चलानेंलगे; और वानर गणभी राक्षसोंके अस्त्र शस्त्र छीनकर उनसेही राक्षसोंका नाश करनें लगे ॥ ५९ ॥ इस प्रकारसें वह वानर और निशाचरगण पर्वतोंके शृङ्गोंसे रणभूमिमें परस्पर एक दूसरेपर चोट चलाते हुए सिंहनाद करनें लगे ॥ ६० ॥ वानरोंके हाथसे राक्षसोंके धनुष टूटगये कवच किर्च २ होगये, और वह मरनेंभी लगे। जिस प्रकार वृक्षसे गोंद निकलताहै वैसेही

मालिनी राक्षसीके गर्भसे उत्पन्न हुआहै इसका नाम अतिकायहै ॥ ३० ॥ इस निशाचरनें पूर्वकालमें पवित्रभावसे बहुत सारी तपस्या करके पिताम
ह ब्रह्माजीको प्रसन्न कियाथा और उनकेही अनुग्रहसे इसनें अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र पायकर अपने शत्रुओंको पराजित कियाहै ॥ ३१ ॥
यह स्वयंभू प्रजापति ब्रह्माजीके वरसे सुर असुर किसीसेभी नहीं मरसकता इसनें तपोबलसे दिव्य कवच और सूर्यकी समान प्रकाशित रथभी
पायाहै ॥ ३२ ॥ बहुत सारे देव दानवगण इसके हाथसे हारगयेहैं, इसनें राक्षसोंकी रक्षा करके यक्षोंका संहार कियाहै ॥ ३३ ॥ इसनें रणभूमिमें
बाणोंसे बुद्धिमान देवराज इन्द्रजीके वज्रको रोक दिया, और जलराज वरुणजीकी फांसीकोभी इसनें व्यर्थ करदिया ॥३४॥ देवता और दानवलो

एतेनाराधितोब्रह्मातपसाभावितात्मना ॥ अस्त्राणिचाप्यवाप्तानिरिपवश्चपराजिताः ॥ ३१ ॥ सुरासुरैरवध्यत्वंदत्तम
स्मैस्वयंभुवा ॥ एतच्चकवचंदिव्यंरथश्चरविभास्वरः ॥ ३२ ॥ एतेनशतशोदेवादानवाश्चपराजिताः ॥ रक्षितानिचरक्षां
सियक्षाश्चापिनिषूदिताः ॥३३॥ वज्रंविष्टंभितंयेनबाणैरिंद्रस्यधीमता ॥ पाशःसलिलराजस्ययुद्धेप्रतिहतस्तथा ॥३४॥
एषोतिकायोबलवान्राक्षसानामथर्षभः ॥ सरावणसुतोधीमान्देवदानवदर्पहा ॥ ३५ ॥ तदस्मिन्क्रियतांयत्नःक्षिप्रं
पुरुषपुंगव ॥ पुरावानरसैन्यानिक्षयंनयतिसायकैः ॥ ३६ ॥ ततोतिकायोबलवान्प्रविश्यहरिवाहिनीम् ॥ विस्फारया
मासधनुर्ननादचपुनःपुनः ॥३७॥ तंभीमवपुषंदृष्ट्वारथस्थंरथिनांवरम् ॥ अभिपेतुर्महात्मानःप्रधानायेवनौकसः ॥३८॥
कुमुदोद्विविदोमैंदोनीलःशरभएवच ॥ पादपैर्गिरिशृंगैश्चयुगपत्समभिद्रवन् ॥ ३९ ॥

गोंके दर्पका नाश करनेंवाला यह वही राक्षसश्रेष्ठ बलवान अतिकायहै॥३५॥ हे पुरुषोत्तम! शीघ्रतासे इसका विनाश करनेंमें यत्न कीजिये कारण कि
यह सबसे पहले वानरोंकी सैनाकोही बाणोंसे संहारकररहाहै ॥ ३६ ॥ इसके उपरान्त बलवान् अतिकायनाम राक्षस वानरोंकी सैनाके बीचमें
प्रवेश करके धनुष पर टंकारदे वारंवार सिंहनाद करनें लगा ॥ ३७ ॥ भयंकराकार उस राक्षसको श्रेष्ठ रथपर चढ़ा हुआ देखकर मुखिया २
वानर गण उनके सामनेको दौड़े ॥ ३८ ॥ कुमुद, द्विविद, मैन्द, नील, शरभ यह कई एक वानरवीर इकट्ठे होकर वृक्ष और पर्वतोंके शृङ्ग धारण

वानरोंकी सैनामें घूमता हुआ विद्याधर और महर्षि लोगोंनें देखा ॥ ६९ ॥ वह जिस ओरको चला जाताथा उसी ओर मार्गमें रुधिर मांसकी कीच और गिरेहुए पर्वताकार वानरोंके शरीरोंसे ढकता जाताथा ॥ ७० ॥ वानर लोग जिस २ स्थानमें भाग जानेंलगे नरान्तक उसही स्थानपर जाकर उनका संहार करनें लगा ॥ ७१ ॥ अग्निके वनको जलानें की समान निशाचर नरान्तक जब वानरोंकी सैनाको भस्म करनेंलगा वैसेही वनचारी वानरोंनेभी वृक्ष उखाड़ने आरंभ किये और जैसेही कि उसपर चलाये वैसेही भालेसे कटकर ऐसे गिरे कि जैसे वज्रसे कटकर पर्वत गिरेथे संग्राममें नरान्तकनें प्रकाशमान उस भालेको उठाया ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ वह महाबलवान राक्षस नरान्तक संग्रामभूमिमें चारोंओर घूमनें लगा

सतस्यदहशेमार्गोमांसशोणितकर्दमः ॥ पतितैःपर्वताकारैर्वानरैरभिसंवृतः ॥ ७० ॥ यावद्विक्रमितुंबुद्धिंचक्रुःप्लवगपुंगवाः ॥ तावदेतानतिक्रम्यनिर्बिभेदनरांतकः ॥ ७१ ॥ ददाहहरिसैन्यानिवनानीवविभावसुः ॥ यावदुत्पाटयामासुर्वृक्षान्शैलान्वनौकसः ॥ ७२ ॥ तावत्प्रासहताःपेतुर्वज्रकृत्ताइवाचलाः ॥ ज्वलंतंप्रासमुद्यम्यसंग्रामांतेनरांतकः ॥७३॥ दिक्षुसर्वासुबलवान्विचचारनरांतकः॥प्रमृद्नन्सर्वतोयुद्धेप्रावृट्कालेयथानिलः ॥ ७४ ॥ नशेकुर्धावितुंवीरानस्थातुंस्पंदितुंकुतः ॥ उत्पतंतंस्थितंयांतंसर्वान्विव्याधवीर्यवान् ॥७५॥ एकेनांतककल्पेनप्रासेनादित्यतेजसा ॥ भग्नानिहरिसैन्यानिनिपेतुर्धरणीतले ॥ ७६ ॥ वज्रनिष्पेषसदृशंप्रासस्याभिनिपातनम् ॥ नशेकुर्वानराःसोढुंतेविनेदुर्महास्वनम् ॥ ७७ ॥ पततांहरिवीराणांरूपाणिप्रचकाशिरे ॥ वज्रभिन्नाग्रकूटानांशैलानांपततामिव ॥ ७८ ॥

और सर्व वानरोंको इस प्रकारसे युद्धमें मर्दित करताथा जैसे वर्षा कालमें प्रचंड पवन झोके देकर सर्वको व्याकुल करताहै ॥ ७४ ॥ वीर्यवान् राक्षसका पराक्रम देखकर वानर लोग न तौ भागही सके न युद्धही करसके, वह घोर विपदमें घिरगये, उन वानरोंनें कुछ उपाय न देखकर जैसेही कूदकर और कहीं जानेंका उद्योग किया, वैसेही अस्त्र चलाकर नरान्तकनें ऊपरही सबको मार डाला ॥ ७५ ॥ सूर्यकी समान तेज युक्त केवल उस एकही शूलके मारनेंसे समस्त सैना भागगई और कुछ पृथ्वीपर गिर पडी ॥ ७६ ॥ वानरलोग वज्र पड़नेंकी तुल्य उस भालेके प्रहारको न सहकर अत्यन्त दारुण आरत नाद करनें लगे ॥७७॥ जिसप्रकार वज्रके गिरनेंसे पर्वतका शृङ्ग गिर पड़ताहै, वैसेही वानरोंकी सैनाने गिरकर

वैसेही शिवजीके शूलकी समान यह बाण तुम्हारा रुधिर पान करेंगे ॥५६॥ बलशाली मनस्वी श्रीमान् राजकुमार लक्ष्मणजी रणभूमिमें अतिकायके ऐसे सरोष और गर्वित वचन सुन अत्यन्त क्रोधित होकर बोले ॥ ५७ ॥ हे दुरात्मन् ! तुम केवल वचनोंहीके कहनेसे वीर नहीं होसकते, कारण कि केवल अपनी बड़ाई करनेसे लोग गुणवान् कहाकर नहीं विख्यात होते यह मैं धनुष बाण हाथमें लेकर टिकाहुआहूं तुममें जितनी कुछ सामर्थ्य हो अपना पराक्रम दिखाओ ॥ ५८ ॥ जिसमें पौरुषहै लोग उसकोही शूर कहते हैं; इसलिये तुम वृथा अपनी बड़ाई न मार करके कार्यके द्वारा अपनेको प्रकाश करो ॥ ५९ ॥ तुम रथपर सवार होकर अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र ले युद्ध करनेके लिया आये हो इस

श्रुत्वातिकायस्यवचःसरोषंसगर्वितंसंयतिराजपुत्रः ॥ ससंचुकोपातिबलोमनस्वीउवाचवाक्यंचततोबृहच्छ्रीः ॥५७॥ नवाक्यमात्रेणभवान्प्रधानोनकत्थनात्सत्पुरुषाभवंति ॥ मयिस्थितेधन्विनिबाणपाणौनिदर्शयस्वात्मबलंदुरात्मन् ॥ ५८ ॥ कर्मणासूचयात्मानंनविकत्थितुमर्हसि ॥ पौरुषेणतुयोयुक्तःसतुशूरइतिस्मृतः ॥ ५९ ॥ सर्वायुधसमायुक्तोधन्वीत्वंरथमास्थितः ॥ शरैर्वायदिवाप्यस्त्रैर्दर्शयस्वपराक्रमम् ॥ ६० ॥ ततःशिरस्तेनिशितैःपातयिष्याम्यहंशरैः ॥ मारुतःकालसंयुक्तंवृंतात्तालफलंयथा ॥ ६१ ॥ अद्यतेमामकाबाणास्तप्तकांचनभूषणाः ॥ पास्यंतिरुधिरंगात्राद्बाणशल्यांतरोत्थितम् ॥ ६२ ॥ बालोयमितिविज्ञायनचावज्ञातुमर्हसि ॥ बालोवायदिवावृद्धोमृत्युंजानीहिसंयुगे ॥ ६३ ॥ बालेनविष्णुनालोकास्त्रियःक्रांतास्त्रिविक्रमैः ॥ लक्ष्मणस्यवचःश्रुत्वाहेतुमत्परमार्थवत् ॥ अतिकायःप्रचुक्रोधबाणंचोत्तममाददे ॥ ६४ ॥

समय बाण छोड़कर या और कोई अस्त्र चलायकर तुमही अपना पराक्रम दिखाओ ॥ ६० ॥ तिसके पीछे पवन जिस प्रकार पके हुए तालके पत्तेको गुच्छेसे गिरा देती है, वैसेही तीखे बाणोंसे हम तुम्हारा मस्तक गिरादेंगे ॥ ६१ ॥ आज हमारे तपाये हुए सुवर्णसे भूषित बाण, बाणोंसे किये हुए छेदमेंसे निकलते हुए तेरे शरीरमेंके रुधिरको पानकरेंगे ॥६२॥ बालक समझकर निरादर करना उचित नहींहै हम बालकही हों या वृद्धहीहों हमारेही हाथसे रणमें निश्चय तेरी मृत्यु होगी ॥ ६३ ॥ कारणकि बालकरूपी विष्णुजीके तीन चरणोंसे त्रिलोकी नांपलीगईथी

हमारी छातीमें प्रहार कर ॥ ८७ ॥ अंगदजीके वचन सुनकर नरान्तक अत्यन्त क्रोधित हुआ, और क्रोधके मारे लंबे २ श्वास लेता हुआ, दांतोसे होठोंको चाटता वालिकुमार अंगदजीके निकट गया ॥ ८८ ॥ इसके उपरान्त प्रकाशमान भाला उठाकर उसनें अंगदजीके ऊपर चलाया परन्तु वह भाला अंगदजीकी वज्र समान छातीमें लगकर और टूटकर पृथ्वीमें गिर पडा ॥ ८९ ॥ गरुडजी जिस प्रकार सर्पका शरीर छिन्न भिन्न कर डालते हैं; वैसेही उस भालेको चूर्ण देखकर नरान्तकके घोडेके मस्तकमें एक लात मारी ॥ ९० ॥ उस दारुण प्रहारसे उस पर्वताकार घोडेके

अंगदस्यवचःश्रुत्वाप्रचुक्रोधनरांतकः ॥ संदश्यदशनैरोष्ठंनिःश्वस्यचभुजंगवत् ॥ अभिगम्यांगदंक्रुद्धोवालिपुत्रं नरांतकः ॥ ८८ ॥ सप्रासमाविध्यतदांगदायसमुज्ज्वलंतंसहसोत्ससर्ज ॥ सवालिपुत्रोरसिवज्रकल्पेबभूवभग्नो न्यपतच्चभूमौ ॥ ८९ ॥ तंप्रासमालोक्यतदाविभग्नंसुपर्णकृत्तोरगवीर्यकल्पम् ॥ तलंसमुद्यम्यसवालिपुत्रस्तुरंगम स्याभिजघानमूर्ध्नि ॥ ९० ॥ निमग्नपादःस्फुटिताक्षितारोनिष्क्रांतजिह्वोचलसन्निकाशः ॥ सतस्यवाजीनिपपातभू मौतलप्रहारेणविकीर्णमूर्धा ॥ ९१ ॥ नरांतकःक्रोधवशंजगामहतंतुरंगंपतितंसमीक्ष्य ॥ समुष्टिमुद्यम्यमहाप्रभावो जघानशीर्षेयुधिवालिपुत्रम् ॥ ९२ ॥ अथांगदोमुष्टिविशीर्णमूर्धासुस्रावतीव्रंरुधिरंभृशोष्णम् ॥ मुहुर्विजज्वालमुमो हचापिसज्ञांसमासाद्यविसिस्मियेच ॥ ९३ ॥ अथांगदोमृत्युसमानवेगंसंवर्त्यमुष्टिंगिरिशृंगकल्पम् ॥ निपातयामा सतदामहात्मानरांतकस्योरसिवालिपुत्रः ॥ ९४ ॥

चारों पांव टूट गये, नेत्रोंकी पुतलियें बाहर निकल आईं, जीभ मुंहसे निकल आई, मस्तक चूर्ण होगया, घोडा मृतक होकर पृथ्वीमें गिर पडा ॥ ९१ ॥ घोडेको मृतक होकर पृथ्वीपर पडाहुआ देखकर महा प्रभाव नरान्तकनें अत्यन्त कोप किया, और मूका उठायकरै वालि कुमार अंगदजीके मस्तकमें मारा ॥ ९२ ॥ उस प्रहारसे अंगदजीका मस्तक फट गया और उस्से गरम २ रुधिरकी धारा वहनें लगी, और वह मूर्छित होगये, परन्तु एक क्षणभरमेंही वह चेतना पाय अत्यन्त विस्मित और क्रोधसे दूने प्रज्वलित होगये ॥ ९३ ॥ उसके उपरान्त उन

करके अतिकायपर एकही संग धाये ॥ ३९ ॥ परन्तु अस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी अतिकायनें कनकभूषित बाणोंसे उन वानरोंके चलाये समस्त वृक्ष और पर्वतोंको काटडाला ॥ ४० ॥ तिसके पीछे उस रणपंडित अस्त्रविशारद बलशाली निशाचरनें स्वच्छ लोहेके बाणोंसे सन्मुखको दौड़े आतेहुए उन वानरोंको ताड़ित किया ॥ ४१ ॥ वानर लोग भी अतिकायकी बाण वर्षासे छिन्न गात्र और पराजित होकर वह इसका कुछभी बदला उस राक्षससे न लेसके ॥ ४२ ॥ युवाअवस्थाके आनेंसे गर्वित मृगराज (सिंह) जिस प्रकार मृगके झुण्डोंको भयभीत करताहै वैसेही वह अतिकायनाम राक्षस वानरोंकी सैनाको त्रासित करनें लगा ॥ ४३ ॥ जो वानर रीछ कि युद्धमें विमुख थे उनपर अतिकायनें

तेषांवृक्षांश्चशैलांश्चशरैःकनकभूषणैः ॥ अतिकायोमहातेजाश्चिच्छेदास्त्रविदांवरः ॥ ४० ॥ तांश्चैवसर्वान्सहरीञ्छरैः सर्वायसैर्बली ॥ विव्याधाभिमुखान्संख्येभीमकायोविशारदः ॥ ४१ ॥ तेऽर्दिताबाणवर्षेणभिन्नगात्राःपराजिताः ॥ नशेकुरतिकायस्यप्रतिकर्तुमहाहवे ॥ ४२ ॥ तत्सैन्यंहरिवीराणांत्रासयामासराक्षसः ॥ मृगयूथमिवक्रुद्धोहरियौवनदर्पितः ॥ ४३ ॥ सराक्षसेंद्रोहरियूथमध्येनायुध्यमानंनिजघानकंचित् ॥ उत्पत्यरामंसधनुःकलापीसगर्वितं वाक्यमिदंबभाषे ॥ ४४ ॥ रथेस्थितोहंशरचापपाणिर्नप्राकृतंकंचनयोधयामि ॥ यस्यास्तिशक्तिर्व्यवसाययुक्तो ददातुमेशीघ्रमिहाद्ययुद्धम् ॥ ४५ ॥ तत्तस्यवाक्यंब्रुवतोनिशम्यचुकोपसौमित्रिरमित्रहंता ॥ अमृष्यमाणश्चसमुत्पपातजग्राहचापंचततःस्मयित्वा ॥ ४६ ॥ क्रुद्धःसौमित्रिरुत्पत्यतूणादाक्षिप्यसायकम् ॥ पुरस्तादतिकायस्य विचकर्षमहद्धनुः ॥ ४७ ॥

अस्त्रका प्रहार नहीं किया इसके उपरान्त वीरवर अतिकाय धनुष धारण करके श्रीरामचंद्रजीके सन्मुखहो उनसे गर्वसहित यह वचन बोला ॥ ४४ ॥ हम किसी साधारण वीरके साथ युद्ध करनेंका अभिलाष नहीं करते यह हम धनुष बाण हाथमें लिये बैठेहैं यदि किसीको युद्ध करना आता हो या किसीमें शक्ति हो तौ वह शीघ्र आकर हमारे साथ युद्ध करै ॥ ४५ ॥ राक्षस अतिकायके ऐसे वचन सुनकर शत्रुनाशी लक्ष्मणजी न सहकर मुसकातेहुए धनुष बाण हाथमें लेकर उठे ॥ ४६ ॥ लक्ष्मणजीनें उठतेही तरकससे बाण ग्रहण किया, और अतिकायके सन्मु

वालिकुमार अंगदजीकी ओर झपटा ॥ १०१ ॥ उन अंगदजीके ऊपर जब दर्पके नाश करनेंवाले तीन राक्षस श्रेष्ठ इस प्रकारसे दौड़े तब अंगदजीनें बहुत शाखाओंसे युक्त एक बड़ा भारी वृक्ष उखाड़ डाला ॥ १०२ ॥ इसके उपरान्त देवराज इन्द्रजी जिसप्रकारसे वज्र चलातेहैं; वैसेही अंगदजीनेंभी देवान्तकको लक्ष करके बहुत शाखा -युक्त उस वृक्षको चलाया ॥ १०३ ॥ परन्तु राक्षस त्रिशिरानें विषधर सर्पकी समान उसको काट डाला और अंगदजीभी उस वृक्षको कटा हुआ देखकर कूदगये ॥ १०४ ॥ अनन्तर उन कपि कुंजर अंगदजीके पर्वत और वृक्षोंकी वर्षा करनें पर, त्रिशिरानें क्रो

त्रिशिरास्तंप्रचिच्छेदशरैराशीविषोपमैः ॥ सवृक्षंकृत्तमालोक्यउत्पपाततदांगदः ॥ ४ ॥ सववर्षततोवृक्षाञ्शि
लाश्चकपिकुंजरः ॥ तान्प्रचिच्छेदसंक्रुद्धस्त्रिशिरानिशितैःशरैः ॥ ५ ॥ परिघाग्रेणतान्वृक्षान्बभंजसमहोदरः ॥
त्रिशिराश्चांगदंवीरमभिदुद्रावसायकैः ॥ ६ ॥ गजेनसमभिद्रुत्यवालिपुत्रंमहोदरः ॥ जघानोरसिसंक्रुद्धस्तो
मरैर्वज्रसन्निभैः ॥ ७ ॥ देवांतकश्चसंक्रुद्धःपरिघेणतदांगदम् ॥ उपगम्याभिहत्याशुव्यपचक्रामवेगवान् ॥ ८ ॥ सत्रि
भिर्नैर्ऋतश्रेष्ठैर्युगपत्समभिद्रुतः ॥ नविव्यथेमहातेजावालिपुत्रःप्रतापवान् ॥ ९ ॥ सवेगवान्महावेगंकृत्वापरमदुर्ज
यः ॥ तलेनसमभिद्रुत्यजघानास्यमहागजम् ॥ ११० ॥ पेततुर्नयनेतस्यविननाशसकुंजरः ॥ विषाणंचास्यनिष्कृ
ष्यवालिपुत्रोमहाबलः ॥ ११ ॥ देवांतकमभिद्रुत्यताडयामाससंयुगे ॥ सविह्वलस्तुतेजस्वीवातोद्धूतइवद्रुमः ॥ १२ ॥

धित होकर उन समस्त वृक्ष पर्वतोंको काट डाला ॥१०५॥ दूसरी ओरसे महोदरभी बाणोंकी वर्षा करके जब उन अंगदजीके चलाये वृक्ष और पर्वतोंको काटनें लगा, तब त्रिशिरा अवसर पाय बाण हाथमें ले वीर वालिकुमार अंगदजीकी ओर धाया॥१०६॥हाथीपर सवार हुआ महोदरनेंभी अंगदजीकी ओरको झपटकर क्रोध सहित वज्रकी समान भालेसे उनकी छातीमें प्रहार किया ॥ १०७॥ क्रोध युक्त देवान्तकभी अति वेगसे आय अंगदजीकी छातीमें परिघ मारकर भागा ॥ १०८॥ इस प्रकारसे यद्यपि तीन राक्षस वीरोंने एक साथही अंगदजीके मारा तथापि वालिकुमार महा तेजस्वी

करके अतिकायपर एकही संग धाये ॥ ३९ ॥ परन्तु अस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी अतिकायनें कनकभूषित बाणोंसे उन वानरोंके चलाये समस्त वृक्ष और पर्वतोंको काटडाला ॥ ४० ॥ तिसके पीछे उस रणपंडित अस्त्रविशारद बलशाली निशाचरनें स्वच्छ लोहेके बाणोंसे सन्मुखको दौड़े आतेहुए उन वानरोंको ताड़ित किया ॥ ४१ ॥ वानर लोग भी अतिकायकी बाण वर्षासे छिन्न गात्र और पराजित होकर वह इसका कुछभी बदला उस राक्षससे न लेसके ॥ ४२ ॥ युवाअवस्थाके आनेंसे गर्वित मृगराज (सिंह) जिस प्रकार मृगके झुण्डोंको भयभीत करताहै वैसेही वह अतिकायनाम राक्षस वानरोंकी सैनाको त्रासित करनें लगा ॥ ४३ ॥ जो वानर रीछ कि युद्धमें विमुख थे उनपर अतिकायनें

तेषांवृक्षांश्चशैलांश्चशरैःकनकभूषणैः ॥ अतिकायोमहातेजाश्चिच्छेदास्त्रविदांवरः ॥ ४० ॥ तांश्चैवसर्वान्सहरीञ्छरैः सर्वायसैर्बली ॥ विव्याधाभिमुखान्संख्येभीमकायोविशारदः ॥ ४१ ॥ तेऽर्दिताबाणवर्षेणभिन्नगात्राःपराजिताः ॥ नशेकुरतिकायस्यप्रतिकर्तुंमहाहवे ॥ ४२ ॥ तत्सैन्यंहरिवीराणांत्रासयामासराक्षसः ॥ मृगयूथमिवक्रुद्धोहरियौं वनदर्पितः ॥ ४३ ॥ सराक्षसेंद्रोहरियूथमध्येनायुध्यमानंनिजघानकंचित् ॥ उत्पत्यरामंसधनुःकलापीसगर्वितं वाक्यमिदंबभाषे ॥ ४४ ॥ रथेस्थितोहंशरचापपाणिर्नप्राकृतंकंचनयोधयामि ॥ यस्यास्तिशक्तिर्व्यवसाययुक्तो ददातुमेशीघ्रमिहाद्ययुद्धम् ॥ ४५ ॥ तत्तस्यवाक्यंब्रुवतोनिशम्यचुकोपसौमित्रिरमित्रहंता ॥ अमृष्यमाणश्चस मुत्पपातजग्राहचापंचततःस्मयित्वा ॥ ४६ ॥ क्रुद्धःसौमित्रिरुत्पत्यतूणादाक्षिप्यसायकम् ॥ पुरस्तादतिकायस्य विचकर्षमहद्धनुः ॥ ४७ ॥

अस्त्रका प्रहार नहीं किया इसके उपरान्त वीरवर अतिकाय धनुष धारण करके श्रीरामचंद्रजीके सन्मुखहो उनसे गर्वसहित यह वचन बोला ॥ ४४ ॥ हम किसी साधारण वीरके साथ युद्ध करनेंका अभिलाष नहीं करते यह हम धनुष बाण हाथमें लिये बैठेहैं यदि किसीको युद्ध करना आता हो या किसीमें शक्ति हो तो वह शीघ्र आकर हमारे साथ युद्ध करे ॥ ४५ ॥ राक्षस अतिकायके ऐसे वचन सुनकर शत्रुनाशी लक्ष्मणजी न सहकर मुसकातेहुए धनुष बाण हाथमें लेकर उठे ॥ ४६ ॥ लक्ष्मणजीनें उठतेही तरकससे बाण ग्रहण किया, और अतिकायके सन्मु

पर्वतका शिखर जब चूर्ण करडाला गया ॥ १८ ॥ तब चिनगारियें और अग्नि निकलता हुआ वह पर्वतका शृङ्ग पृथ्वीपर गिर पड़ा उस पर्वतके शृङ्गको व्यर्थ देख हर्षितहो महाबली देवान्तक ॥ १९ ॥ परिघ ग्रहण करके समरमें हनुमानजीकी ओर दौड़ा, उसको सामनेंसे आता हुआ देखकर कपि कुंजर हनुमानजीनें ॥ २० ॥ कूदकर वज्रकी समान मूका उसके शिरपर मारा तब उन महाकपि बलशाली वीर पवनकुमारने उसके मस्तकपर प्रहार करके सिंहनाद किया कि जिससे समस्त निशाचर गण कंपायमान होनेंलगे ॥ २१ ॥ उस घूंसेके लगनेसे राक्षस राजके पुत्र देवान्तकका मस्तक पिसकर टूटगया दांत और नेत्र निकल पड़े और जीभ लंबी होकर मुखके बाहर निकलआई, और वह प्राण रहितहो सहसा पृथ्वीपर गिरपड़ा २२

समुष्टिनिष्पिष्टविभिन्नमूर्धानिर्वांतदंताक्षिविलंबिजिह्वः ॥ देवांतकोराक्षसराजसूनुर्गतासुरुर्व्यांसहसापपात ॥ २२ ॥
तस्मिन्हतेराक्षसयोधमुख्येमहाबलेसंयतिदेवशत्रौ ॥ क्रुद्धस्त्रिशीर्षानिशितास्त्रमुग्रंववर्षनीलोरसिबाणवर्षम् ॥ २३ ॥
महोदरस्तुसंक्रुद्धःकुंजरंपर्वतोपमम् ॥ भूयःसमधिरुह्याशुमंदरंरश्मिवानिव ॥ २४ ॥ ततोबाणमयंवर्षंनीलस्योपर्यपातयत् ॥ गिरौवर्षंतडिच्चक्रंसगर्जन्निवतोयदः ॥ २५ ॥ ततःशरौघैरभिवृष्यमाणोविभिन्नगात्रःकपिसैन्यपालः ॥
नीलोबभूवाथविसृष्टगात्रोविष्टंभितस्तेनमहाबलेन ॥ २६ ॥ ततस्तुनीलःप्रतिलब्धसंज्ञःशैलंसमुत्पाट्यसवृक्षखंडम् ॥
ततःसमुत्पत्यमहोग्रवेगोमहोदरंतेनजघानमूर्ध्नि ॥ २७ ॥ ततःसशैलाभिनिपातभग्नोमहोदरस्तेनमहाद्रिपेन ॥ व्यामोहितोभूमितलेगतासुःपपातवज्राभिहतोयथाद्रिः ॥ २८ ॥ पितृव्यंनिहतंदृष्ट्वात्रिशिराश्चापमाददे ॥ हनूमंतंचसंक्रुद्धोविव्याधनिशितैःशरैः ॥ २९ ॥

उस राक्षस वीर प्रधान महाबलवान् देवताओंके शत्रु देवान्तकके रणभूमिमें मारे जानेंपर त्रिशिरानें क्रोधितहो नीलकी छातीको ताककर उग्र और तीखे बाणोंकी वर्षा करनें लगा ॥ २३ ॥ इस ओर वीर श्रेष्ठ महोदर क्रोधित होकर पर्वताकार हाथीपर सवारहो सूर्य जिस प्रकार मन्दराचलपर आरोहण करतेहैं वैसेही नीलके सामनेको झपटता हुआ ॥ २४ ॥ अनन्तर नीलके शरीरको बाणोंके जालसे बींधनें लगा उस समय ऐसा जान पड़ाकि इन्द्र धनुष युक्त मेघ वारंवार गर्जन करके पर्वतपर जलकी वर्षा कर रहाहै ॥ २५ ॥ वानरोंकी सैनाके पति नील उस बलवान राक्षससे

करो; कारण, कि इस ब्रह्मास्त्रके अतिरिक्त और किसी बाणसे तुम इसको नहीं मार सकोगे ॥ ९७ ॥ इन्द्रकी समान वीर्यवान सुमित्रारानीके पुत्र लक्ष्मणजीने पवनके वचन सुन ब्रह्ममंत्रसे अभिमंत्रित कर एक उग्र वेगवान् बाणले धनुष पर चढाया ॥ ९८ ॥ सुमित्राकुमार लक्ष्मणजीनें श्रेष्ठ अभिमंत्रसे अभिमंत्रित कर जब वह तीक्ष्ण फलकयुक्त बाण धनुषपर चढ़ाया; तब दिशा, विदिशा, चंद्रमा इत्यादि समस्त महाग्रह पृथ्वी व आकाश त्रासितहोगये और शब्दायमान हुए ॥ ९९ ॥ लक्ष्मणजीनें, रणभूमिमें यमदूत और वज्रकी समान वह तीक्ष्ण फोंकवाला बाण ब्रह्मास्त्रसे अभिमंत्रित करके इन्द्रशत्रु रावणपुत्र अतिकायके ऊपर चलाया ॥ १०० ॥ उत्तम सुवर्णसे चित्रित वज्रकी फोंक लगाहुआ और

ततस्तुवायोर्वचनंनिशम्यसौमित्रिरिंद्रप्रतिमानवीर्यः ॥ समादधेबाणमथोग्रवेगंतद्ब्राह्ममस्त्रंसहसानियुज्य ॥ ९८ ॥ तस्मिन्वरास्त्रेतुनियुज्यमानेसौमित्रिणाबाणवरेशिताग्रे ॥ दिशश्चचंद्रार्कमहाग्रहाश्चनभश्चतत्रासररासचोर्वी॥९९॥ तंब्रह्मणोस्त्रेणनियुज्यचापेशरंसपुंखंयमदूतकल्पम् ॥ सौमित्रिरिंद्रारिसुतस्यतस्यससर्जबाणंयुधिवज्रकल्पम् ॥ १००॥ तंलक्ष्मणोत्सृष्टविवृद्धवेगंसमापतंतंश्वसनोग्रवेगम् ॥ सुपर्णवज्रोत्तमचित्रपुंखंतदातिकायःसमरेददर्श ॥ १०१ ॥ तंप्रेक्षमाणःसहसातिकायोजघानबाणैर्निशितैरनेकैः ॥ ससायकस्तस्यसुपर्णवेगस्तदातिवेगेनजगामपार्श्वम् ॥ १०२॥ तमागतंप्रेक्ष्यतदातिकायोबाणंप्रदीप्तांतककालकल्पम् ॥ जघानशक्त्यृष्टिगदाकुठारैःशूलैःशरैश्चाप्यविपन्नचेष्टः ॥ १०३ ॥ तान्यायुधान्यद्भुतविग्रहाणिमोघानिकृत्वासशरोग्निदीप्तः॥ प्रगृह्यतस्यैवकिरीटजुष्टंतदातिकायस्यशिरोजहार१०४॥

पवनकी समान वेगसे आतेहुए लक्ष्मणजीके छोड़नेंसे औरभी प्रचंड वेगवान् उस संग्रामभूमिमें अतिकायनें देखा ॥ १०१ ॥ उस बाणको वेगसे आताहुआ देखकर अतिकाय बड़ी शीघ्रताके साथ अत्यन्त पैंने बाणोंसे उस बाणको काटनें लगा; परन्तु गरुड़जीके समान वेगवान वह बाण बाणोंसे न रुककर अतिकायके निकट पहुंचही तौ गया ॥१०२ ॥ महावीर रावणका पुत्र अतिकाय प्रदीप्त कालकी अग्निके समान उस ब्रह्मास्त्रको निकट आते देखकर उसके ऊपर यद्यपि शक्ति, ऋष्टि, शूल, गदा, बाण, फरशा इत्यादि चलाकर उसको काटनें लगा; परन्तु किसी सेभी कुछ न हुआ ॥ १०३ ॥ परन्तु उस अग्निकी समान प्रदीप्त बाणनें उन समस्त अद्भुत आयुधोंको विफल करके अतिबलसे ॥

रात्रिको पाय सब प्रजाको भक्षण कर लेतेहैं वैसेही शक्ति ग्रहण करके पवनकुमार हनुमानजीकी ओर चलाई ॥ ३४ ॥ वानर शार्दूल हनुमानजीनें आकाशसे छूटती हुई उल्काकी समान उस बड़ी भारी शक्तिको पकड़ कर तोड़ डाला और बड़ा भारी सिंहनाद करनें लगे ॥ ३५ ॥ उस भयंकरी शक्तिको हनुमानजीसे टूटा हुआ देखकर वानर लोग हर्षसे मेघकी समान गर्जन करनें लगे ॥ ३६ ॥ उसके उपरान्त राक्षस श्रेष्ठ त्रिशिरानें खड्ग उठाय कर वानरोंमें इन्द्र हनुमानजीकी छातीमें मारा ॥३७॥ वीर्यवान पवनकुमार हनुमानजीनेभी खड्गके प्रहारसे घायलहो त्रिशिराकी छातीमें एक लातमारी ॥ ३८ ॥ उस लातके लगनेसे राक्षसके हाथसे सब अस्त्र शस्त्र छूटपड़े और वह महा तेजस्वी अति शीघ्र मूर्छित होकर

खड्गप्रहाराभिहतोहनूमान्मारुतात्मजः ॥ आजघानत्रिमूर्धानंतलेनोरसिवीर्यवान् ॥ ३८ ॥ सतलाभिहतस्तेनस्रस्तहस्तांबरोभुवि ॥ निपपातमहातेजास्त्रिशिरास्त्यक्तचेतनः ॥ ३९ ॥ सतस्यपततःखड्गंतमाच्छिद्यमहाकपिः ॥ ननादगिरिसंकाशस्त्रासयन्सर्वराक्षसान् ॥ १४० ॥ अमृष्यमाणस्तंघोषमुत्पपातनिशाचरः ॥ उत्पत्यचहनूमंतंताडयामासमुष्टिना ॥ ४१ ॥ तेनमुष्टिप्रहारेणसंचुकोपमहाकपिः ॥ कुपितश्चनिजग्राहकिरीटेराक्षसर्षभम् ॥ ४२ ॥ सतस्यशीर्षाण्यसिनाशितेनकिरीटजुष्टानिसकुंडलानि ॥ क्रुद्धःप्रचिच्छेदसुतोनिलस्यत्वष्टुःसुतस्येवशिरांसिशक्रः ॥ ४३ ॥ तान्यायताक्षाण्यगसन्निभानिप्रदीप्तवैश्वानरलोचनानि ॥ पेतुःशिरांसींद्ररिपोःपृथिव्यांज्योतींषिमुक्तानियथेंद्रमार्गात् ॥ ४४ ॥ तस्मिन्हतेदेवरिपौत्रिशीर्षेहनूमताशक्रपराक्रमेण ॥ नेदुःप्लवंगाःप्रचचालभूमीरक्षांस्यथोदुद्रुविरेसमंतात् ॥ ४५ ॥ हतंत्रिशिरसंदृष्ट्वायुद्धोन्मत्तंतथैवच ॥ हतौप्रेक्ष्यदुराधर्षौदेवांतकनरांतकौ ॥ ४६ ॥

पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ३९ ॥ महाकपि हनुमानजी उसके हाथसे खड्ग छीनकर राक्षसोंके मनमें शंका उपजाय सिंहनाद करनें लगे ॥ १४० ॥ परन्तु राक्षस त्रिशिरा उस शब्दको न सहन करके उसी समय उठा और कूदकर उसनें हनुमानजीकी छातीमें एक घूंसा मारा ॥ १४१ ॥ महाकपि हनुमानजी उस मुष्टिके प्रहारसे अत्यन्त क्रोधित हुए और क्रोधमें भरकर उन्होंने राक्षस श्रेष्ठके मुकुटको पकड़ लिया ॥ १४२ ॥ देवराज इन्द्रजीनें जिस प्रकार वृत्रासुरका मस्तक काट डालाथा वैसेही हनुमानजीनें अत्यन्त क्रोधसे उस तीक्ष्ण खड्गसे उस कुंडलसे अलंकृत और किरीट

हाथसे पराजित होनेंवाले नहींथे; और सदा शत्रुको जीततेथे ॥ ३ ॥ हाय!सरलस्वभाववाले श्रीरामचंद्रजीके हाथसे सैना सहित यह सबही वीर मारे गये अनेकशस्त्रविशारद महाकाय राक्षस ॥ ४ ॥ और भी अनेक राक्षस जोकि बड़े शूरथे मारे गये और विख्यात बलवीर्यवाले हमारे पुत्र इन्द्रजीतने ॥ ५ ॥ वरदान पाये हुए घोर बाणोंसे दोनो भाइयोंको बांध लियाथा कि जिस बन्धको महाबलवान सुर असुर कोई भी नहीं छुटा सकतेथे ॥ ६ ॥ वरन इस घोर बन्धनको यक्ष गन्धर्व पन्नग कोईभी नहीं छुटा सकतेथे; फिर हम नहीं जानते कि अपने प्रभावसे, मायासे अथवा किसी मोहन मंत्रसे ॥ ७ ॥ वह दोनों भाई राम लक्ष्मण उस शर बन्धनसे छूट गये; और जो शूर योद्धा वीर राक्षस भेजे हुए रणमें गये ॥ ८ ॥

ससैन्यास्तेहतावीरारामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ राक्षसाःसुमहाकायानानाशस्त्रविशारदाः ॥ ४ ॥ अन्येचबहवःशूराम हात्मानोनिपातिताः ॥ प्रख्यातबलवीर्येणपुत्रेणेंद्रजितामम ॥ ५ ॥ तौभ्रातरौतदाबद्धौघोरैर्दत्तवरैःशरैः ॥ यन्नश क्यंसुरैःसर्वैरसुरैर्वामहाबलैः ॥ ६ ॥ मोक्तुंतद्बंधनंघोरंयक्षगंधर्वपन्नगैः ॥ तन्नजानेप्रभावैर्वामाययामोहनेनवा ॥ ७ ॥ शरबंधाद्विमुक्तौतौभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ येयोधानिर्गताःशूराराक्षसाममशासनात् ॥ ८ ॥ तेसर्वेनिहतायुद्धेवानरैःसुम हाबलैः ॥ तंनपश्याम्यहंयुद्धेयोघरामंसलक्ष्मणम् ॥ नाशयेत्सबलंवीरंससुग्रीवंविभीषणम् ॥ ९ ॥ अहोसुबलवान्रामो महदस्त्रबलंचवै ॥ यस्यविक्रममासाद्यराक्षसानिधनंगताः ॥ १० ॥ अप्रमत्तैश्चसर्वत्रगुल्मैरक्ष्यापुरीत्वियम् ॥ अशोकव निकाचैवयत्रसीताभिरक्ष्यते ॥ ११ ॥ निष्कामोवाप्रवेशोवाज्ञातव्यःसर्वदैवनः ॥ यत्रयत्रभवेद्गुल्मस्तत्रतत्रपुनःपुनः ॥ १२ ॥

वह सबही युद्धमें महाबलवान वानरोंसे मारडाले गये; हम ऐसा किसीको नहीं देखते जो आज युद्धमें जायकर लक्ष्मणके सहित रामचंद्रको सुग्रीव व विभीषण और उनकी सैनाके सहित मार डालै ॥ ९ ॥ अहो ! जिसके विक्रमसे निशाचर मारेगयेहैं; वह रामचंद्र अत्यन्त बलवानहै और उसके अस्त्रबलकोभी धन्यवादहै ॥ १० ॥ [हमको बोध होताहै कि वह अनामय वीर रघुनंदन नारायणही होंगे, कारण कि भयसेही लंकानगरीके द्वार और तोरण सब रुकेहुयेहैं] इस समय अति सावधानीसे लंका पुरीकी रक्षा करना कर्तव्यहै जहां पर सीता देवी विराजमानहैं उस अशोकवाटिकाकीभी रक्षा भलीभांति करनी चाहिये ॥ ११ ॥ अशोक वन राजपुर, या और कहीं सैनानिवासस्थानोंमें कोई आवै, या कोई

वारंवार अपना नाम सबको सुनाय घोर शोरसे सिंहनाद करने लगा॥५॥उसके सिंहकी समान गर्जनसे वारंवार नामके कीर्तनसे और रोदेकी टंकारका भयंकर शब्द श्रवण करनेसे वानरोंको भयसे अत्यन्त त्रास उपजा ॥६॥वानर लोग उसकी भयंकर मूर्त्ति देखकर" यह एक दूसरा कुंभकर्ण आया है" ऐसा विचार भयके मारे परस्पर एक दूसरेका आसरा ग्रहण करनें लगे॥७॥राजा बलिको छलनेंके समय विष्णुजीनें जिस मूर्त्तिसे तीनों लोकों का नाप लियाथा ऐसेही मूर्ति इस राक्षसकी देखकर वानरोंके यूथप इधर उधर भागनें लगे ॥ ८ ॥ वह मूढचित्त वानरगण अतिकाय राक्षसको संग्राम भूमिमें आता हुआ देखकरही सबको शरण देने वाले लक्ष्मणजीके बडे भ्राता श्रीरामचंद्रजीकी शरणमें आये ॥ ९ ॥

तेनसिंहप्रणादेननामविश्रावणेनच ॥ ज्याशब्देनचभीमेनत्रासयामासवानरान् ॥ ६ ॥ तेदृष्ट्वादेहमाहात्म्यंकुंभकर्णोयमुत्थितः ॥ भयार्तावानराःसर्वेसंश्रयंतेपरस्परम् ॥ ७ ॥ तेतस्यरूपमालोक्ययथाविष्णोस्त्रिविक्रमे ॥ भयाद्वानरयोधास्तेविद्रवंतिततस्ततः ॥ ८ ॥ तेऽतिकायंसमासाद्यवानरामूढचेतसः ॥ शरण्यंशरणंजग्मुर्लक्ष्मणाग्रजमाहवे ॥९॥ ततोतिकायंकाकुत्स्थोरथस्थंपर्वतोपमम् ॥ ददर्शधन्विनंदूराद्गर्जंतंकालमेघवत् ॥ १० ॥ सतंदृष्ट्वामहाकायंराघवस्तुसुविस्मितः॥ वानरान्सांत्वयित्वाचविभीषणमुवाचह ॥११॥ कोऽसौपर्वसंकाशोधनुष्मान्हरिलोचनः॥ युक्तेहयसहस्रेणविशालेस्यंदनेस्थितः॥१२॥सएषनिशितैःशूलैःसुतीक्ष्णैःप्रासतोमरैः ॥ अर्चिष्मद्भिर्वृतोभातिभूतैरिवमहेश्वरः॥१३॥

इसके उपरान्त रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीनें देखाकि राक्षस वीर अतिकायका आकार पर्वतकी समानहै, वह रथपर बैठा हुआहै, वह हाथमें प्रचंड धनुष लिये दूरसेही गंभीर गर्जन करताहुआ चला आताहै, देखनेंसे वह काल मेघकी समान जान पड़ताथा ॥ १० ॥ श्रीरामचंद्रजी उस मायावी अतिकायकी मूर्ति देखकर अत्यन्त विस्मित हुए, और वानरोंको समझाते हुए विभीषणजीसे बोले ॥ ११ ॥ कि सिंहकी समान आंखोंवाला जो पर्वतकी समान धनुष धारण किये हुए वीर हजार घोड़ोंके नंहेहुए विशाल रथमें सवार होकर चला आताहै, सो यह कोन वीरहै? ॥ १२ ॥ तीक्ष्ण शूल और तीक्ष्ण भाले मुद्गरादिद्वारा सजनेंसे तौ भूतगणोंसे वेष्टित महेश्वर शिवजीकी समान जान पड़ताहै; इस वीरका क्या नामहै? ॥ १३ ॥

वार्ता सुनकर रोते २ मोहको प्राप्तहुआ; इसके पीछे पुत्रोंके नाश और भ्राताओंके संहारकी घोर विपत्तिकी चिन्ता करते हुए कुछ समयतक ध्यान साधे रहा ॥ २ ॥ तब शोक सागरमें डूबते हुए राजा रावणको देख परमश्रेष्ठ राक्षसराज रावणका पुत्र इन्द्रजित (मेघनाद) बोला ॥ ३ ॥ हे राक्षसनाथ ! हे पिता! इन्द्रजितके जीवित रहते आप इस प्रकार संतापमें न जलिये; आप निश्चय जानें कि रणमें इन्द्रजीतके बाणसे घायल होकर कोईभी अपने प्राण नहीं रख सकता ॥ ४ ॥ आप देखेंगे कि लक्ष्मणजीके सहित आजही रामचन्द्रके सब अंग हमारे बाणोंसे कट जायँगे; वह मेरे अस्त्रसे प्राण त्याग करके आजही पृथ्वीपर शयन करेंगे ॥ ५ ॥ आप इन्द्रजीतकी दैव और पौरुष संयुक्त यह निश्चित प्रतिज्ञा

ततस्तुराजानमुदीक्ष्यदीनंशोकार्णवेसंपरिपुप्लुवानम् ॥ रथर्षभोराक्षसराजसूनुस्तामिंद्रजिद्वाक्यमिदंबभाषे ॥ ३ ॥
नतातमोहंपरिगंतुमर्हसेयत्रेंद्रजिज्जीवतिनैर्ऋतेश ॥ नेंद्रारिबाणाभिहतोहिकश्चित्प्राणान्समर्थःसमरेऽभिपातुम् ॥ ४ ॥
पश्याद्यरामंसहलक्ष्मणेनमद्बाणनिर्भिन्नविकीर्णदेहम् ॥ गतायुषंभूमितलेशयानंशितैःशरैराचितसर्वगात्रम् ॥ ५ ॥
इमांप्रतिज्ञांशृणुशक्रशत्रोःसुनिश्चितांपौरुषदैवयुक्ताम् ॥ अद्यैवरामंसहलक्ष्मणेनसंतर्पयिष्यामिशरैरमोघैः ॥ ६ ॥
अद्येंद्रवैवस्वतविष्णुरुद्रसाध्याश्चवैश्वानरचंद्रसूर्याः ॥ द्रक्ष्यंतुमेविक्रमममप्रमेयंविष्णोरिवोग्रंबलियज्ञवाटे ॥ ७ ॥
सएवमुक्त्वात्रिदशेंद्रशत्रुरापृच्छ्यराजानमदीनसत्त्वः ॥ समारुरोहानिलतुल्यवेगंरथंखरश्रेष्ठसमाधियुक्तम् ॥ ८ ॥
समास्थायमहातेजारथंहरिरथोपमम् ॥ जगामसहसातत्रयत्रयुद्धमरिंदमः ॥ ९ ॥

श्रवण करें, कि हम आजही लक्ष्मणके सहित रामचन्द्रको अमोघ बाणोंसे नाश करदेंगे ॥ ६ ॥ अधिक क्याकहैं बलिके यज्ञमें वामनरूपी विष्णुजीकी समान आज इन्द्र, यम, रुद्र, अग्नि, साध्यगण, और सूर्य यह सबही आज हमारे अप्रमाण विक्रमको देखेंगे ॥ ७ ॥ इस प्रकार रावणसे कह व उसकी आज्ञा लेकर प्रसन्न चित्तहो मेघनाद श्रेष्ठ गधेजुते वायुकी समान वेगसे चलनेवाले रथपर सवार हुआ ॥ ८ ॥ सूर्यके समान दिव्य रथपर सवार होकर महातेजस्वी मेघनाद झटपट युद्ध भूमिको गया; कि जहां पर शत्रुनाशी श्रीरामचन्द्रजी विराजमानथे ॥ ९ ॥

॥

घोर रूपवाला काले रंगका राक्षस मेघमें छिपे हुए सूर्यकी समान शोभायमान होरहाहै ॥ २२.॥ जिस प्रकार हिमवान अति ऊंचे अपने दो शृङ्गोंसे शोभितहों वैसेही यह निशाचरभी सोनेके बाजू जिनमें बंधे हुए, ऐसी दो बांहोंसे वैसाही शोभायमान होरहाहै ॥ २३ ॥ इसका सुन्दर नेत्रयुक्त मुख कुंडल युगलसे ऐसा शोभायमान हो रहाहै, कि जो पुनर्वसु नक्षत्रके मध्यमें गये हुए परिपूर्ण निशाकर(चंद्रमा)की समान जान पड़ताहै ॥ २४ ॥ हे महाबाहो ! जिसको देखकर वानरगण मारे भयके चारों ओरको भागे जातेहैं यह राक्षस कौन है; यह तुम हमारे निकट प्रकाश करो ॥ २५ ॥ अमित तेजस्वी रघुवंशावतंस राजकुमार श्रीरामचंद्रजी करकै इसप्रकारसे पूछे जाकर महातेजमान विभीषणजी बोले ॥ २६ ॥ कि दशगर

कांचनांगदनद्धाभ्यांभुजाभ्यामेषशोभते ॥ शृंगाभ्यामिवतुंगाभ्यांहिमवान्पर्वतोत्तमः ॥ २३ ॥ कुंडलाभ्यामुभाभ्यां चभातिवक्त्रंसुभीषणम् ॥ पुनर्वस्वंतरगतःपरिपूर्णोनिशाकरः ॥ २४ ॥ आचक्ष्वमेमहाबाहोत्वमेनंराक्षसोत्तमम् ॥ यंदृष्ट्वावानराःसर्वेभयार्ताविद्रुतादिशः ॥ २५ ॥ सपृष्टोराजपुत्रेणरामेणामिततेजसा ॥ आचचक्षेमहातेजाराघवाय विभीषणम् ॥ २६ ॥ दशग्रीवोमहातेजाराजावैश्रवणानुजः ॥ भीमकर्मामहात्माहिरावणोराक्षसेश्वरः ॥ २७ ॥ तस्यासीद्वीर्यवान्पुत्रोरावणप्रतिमोबले ॥ वृद्धसेवीश्रुतबलःसर्वास्त्रविदुषांवरः ॥ २८ ॥ अश्वपृष्ठेनागपृष्ठेखड्गेधनुषि कर्षणे ॥ भेदेसांत्वेचदानेचनयेमंत्रेचसंमतः ॥ २९ ॥ यस्यबाहुंसमाश्रित्यलंकाभवतिनिर्भया ॥ तनयंधान्यमालिन्याअतिकायमिमंविदुः ॥ ३० ॥

दनवाला महा तेजमान राजा कुबेरजीका छोटा भाई, भयंकर कर्मकारी राक्षसोंका स्वामी जो महात्मा रावणहै ॥ २७ ॥ यह वीर्यवान उसकाही पुत्र है और रावणकीही समान इसमें बलहै; वृद्धोंकी सेवा करनेंवाला विख्यात बलवाला और सब शस्त्र धारणकरनेंवालोंमें यह अगुआहै ॥ २८ ॥ यह वीर घोड़ेपर चढ़नेमें रथ अथवा हाथीपर सवार होनेंमें खड्ग धनुष अथवा भालादि अस्त्र शस्त्रोंसे युद्ध करनेंमें और साम दान भय भेद विषयक राजनीति और मंत्र (सलाह) देनेंमें चतुरहै ॥ २९ ॥ इसकेही बाहु बलका आश्रय करके लंकापुरी निर्भय विराजमान हो रहीहै । यह धान्य

समस्त आकाश मंडल त्रासित होगया ॥ २५ ॥ इन्द्रकी समान प्रभावशाली और अग्निकी समान प्रदीप्त वह अप्रमेय वीर्यवाला इन्द्रजीत इस प्रकारसे अग्निमें आहुति दे धनुष बाण शूल अश्व और रथके सहित आकाशमें जाय अन्तर्ध्यान होगया ॥ २६ ॥ तिसके उपरान्त ध्वजा पताका शोभित और अश्व रथयुक्त वह राक्षसोंकी सैना भी युद्धकी वासनासे सिंहनाद करती हुई चली ॥ २७ ॥ इस सैनाके राक्षस निकुंभिलासे निकलते ही महावेगसे अलंकृत असंख्य बाण तोमर और अंकुशोंसे वानर वीरोंको मारने लगे ॥ २८ ॥ रावणका पुत्र मेघनाद अपनी सैनाको समर करता हुआ देखकर क्रोधमें भरकर कहने लगा; कि तुम सब वानरोंका संहार करनेंकी इच्छासे युद्ध करते रहो ॥ २९ ॥ विजयकी अभि

सपावकंपावकदीप्ततेजाहुत्वामहेंद्रप्रतिमप्रभावः ॥ सचापबाणासिरथाश्वशूलःखेंतर्दधेत्मानमचिंत्यवीर्यः ॥ २६ ॥
ततोहयरथाकीर्णपताकाध्वजशोभितम् ॥ निर्ययौराक्षसबलंनर्दमानंयुयुत्सया ॥ २७ ॥ तेशरैर्बहुभिश्चित्रैस्तीक्ष्णवेगैरलंकृतैः ॥ तोमरैरंकुशैश्चापिवानरान्जघ्नुराहवे ॥ २८ ॥ रावणिस्तुसुसंक्रुद्धस्तान्निरीक्ष्यनिशाचरान् ॥ हृष्टाभवंतोयुध्यंतुवानराणांजिघांसया ॥ २९ ॥ ततस्ते राक्षसाःसर्वेगर्जंतोजयकांक्षिणः ॥ अभ्यवर्षंस्ततोघोरान्वानराञ्छरवृष्टिभिः ॥ ३० ॥ सतुनालीकनाराचैर्गदाभिर्मुसलैरपि ॥ रक्षोभिःसंवृतःसंख्येवानरान्विचकर्षह ॥ ३१ ॥ तेवध्यमानाःसमरेवानराःपादपायुधाः ॥ अभ्यवर्षंतसहसारावणिंशैलपादपैः ॥ ३२ ॥ इंद्रजित्तुतदाक्रुद्धोमहातेजामहाबलः ॥ वानराणांशरीराणिव्यधमद्रावणात्मजः ॥ ३३ ॥ शरेणैकेनचहरीन्नवपंचचसप्तच ॥ बिभेदसमरेक्रुद्धोराक्षसान्संप्रहर्षयन् ॥ ३४ ॥

लाषा किये हुए राक्षसगण यह बात सुनतेही वानरोंके ऊपर घोर बाणोंकीवर्षा करनें लगे ॥ ३० ॥ वानरोंकी सैनाके ऊपर आकाशमें टिका हुआ इन्द्रजीतभी नालीक, नाराच, गदा और मूसल इत्यादि अस्त्र शस्त्रोंसे वानरगणोंको विद्ध करनें लगा ॥ ३१ ॥ वृक्षोंको आयुध बनाये हुए वानरगणभी राक्षसोंसे इस प्रकार समरमें मारे जाकर उन राक्षसोंके ऊपर पर्वत और वृक्षोंकी वर्षा करनें लगे ॥ ३२ ॥ महातेजस्वी महाबलवान रावणका पुत्र इन्द्रजीत इससे अत्यन्त क्रोधित होकर वानरोंकी देहको छिन्न भिन्न करनें लगा ॥ ३३ ॥ वह इन्द्रजीत संग्राम भूमिमें राक्षस लोगोंको

करके अतिकायपर एकही संग धाये ॥ ३९ ॥ परन्तु अस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी अतिकायनें कनकभूषित बाणोंसे उन वानरोंके चलाये समस्त वृक्ष और पर्वतोंको काटडाला ॥ ४० ॥ तिसके पीछे उस रणपंडित अस्त्रविशारद बलशाली निशाचरनें स्वच्छ लोहेके बाणोंसे सन्मुखको दौड़े आतेहुए उन वानरोंको ताड़ित किया ॥ ४१ ॥ वानर लोग भी अतिकायकी बाण वर्षासे छिन्न गात्र और पराजित होकर वह इसका कुछभी बदला उस राक्षससे न लेसके ॥ ४२ ॥ युवाअवस्थाके आनेंसे गर्वित मृगराज (सिंह) जिस प्रकार मृगके झुण्डोंको भयभीत करताहै वैसेही वह अतिकायनाम राक्षस वानरोंकी सैनाको त्रासित करनें लगा ॥ ४३ ॥ जो वानर रीछ कि युद्धमें विमुख थे उनपर अतिकायनें

तेषांवृक्षांश्चशैलांश्चशरैःकनकभूषणैः ॥ अतिकायोमहातेजाश्चिच्छेदास्त्रविदांवरः ॥ ४० ॥ तांश्चैवसर्वान्सहरीञ्छरैः सर्वायसैर्बली ॥ विव्याधाभिमुखान्संख्येभीमकायोविशारदः ॥ ४१ ॥ तेऽर्दिताबाणवर्षेणभिन्नगात्राःपराजिताः ॥ नशेकुरतिकायस्यप्रतिकर्तुमहाहवे ॥ ४२ ॥ तत्सैन्यंहरिवीराणांत्रासयामासराक्षसः ॥ मृगयूथमिवक्रुद्धोहरियौवनदर्पितः ॥ ४३ ॥ सराक्षसेंद्रोहरियूथमध्येनायुध्यमानंनिजघानकंचित् ॥ उत्पत्यरामंसधनुःकलापीसगर्वितंवाक्यमिदंबभाषे ॥ ४४ ॥ रथेस्थितोहंशरचापपाणिर्नप्राकृतंकंचनयोधयामि ॥ यस्यास्तिशक्तिर्व्यवसाययुक्तोददातुमेशीघ्रमिहाद्ययुद्धम् ॥ ४५ ॥ तत्तस्यवाक्यंब्रुवतोनिशम्यचुकोपसौमित्रिरमित्रहंता ॥ अमृष्यमाणश्चसमुत्पपातजग्राहचापंचततःस्मयित्वा ॥ ४६ ॥ क्रुद्धःसौमित्रिरुत्पत्यतूणादाक्षिप्यसायकम् ॥ पुरस्तादतिकायस्यविचकर्षमहद्धनुः ॥ ४७ ॥

अस्त्रका प्रहार नहीं किया इसके उपरान्त वीरवर अतिकाय धनुष धारण करके श्रीरामचंद्रजीके सन्मुखहो उनसे गर्वसहित यह वचन बोला ॥ ४४ ॥ हम किसी साधारण वीरके साथ युद्ध करनेंका अभिलाष नहीं करते यह हम धनुष बाण हाथमें लिये बैठेहैं यदि किसीको युद्ध करना आता हो या किसीमें शक्ति हो तो वह शीघ्र आकर हमारे साथ युद्ध करै ॥ ४५ ॥ राक्षस अतिकायके ऐसे वचन सुनकर शत्रुनाशी ल
णजी न सहकर मुसकातेहुए धनुष बाण हाथमें लेकर उठे ॥ ४६ ॥ लक्ष्मणजीनें उठतेही तरकससे बाण ग्रहण किया, और अतिकायके सन्मु

जब मेघनादको रणमें जानेंके लिये तैयार देख श्रेष्ठ धनुषधारी भयंकरविक्रमकारी अनेक महाबलवान् राक्षस हर्ष सहित उस महात्माके पीछे २
चले॥१०॥कोई २ हाथीपर चढ़कर चले कोई २ घोड़ेपर सवार होकर गमन करनें लगे, कोई २ व्याघ्रपर कोई२ वृश्चिक * पर, कोई २ मार्जार
(बिलाव) पर कोई २ गधे ऊंट और सिंहपर आरोहण करके चले ॥ ११॥ कोई २ पर्वताकार सिंहोंके ऊपर, और गीदड़ोंके ऊपर, और काक हँस
और मयूरादि पक्षियोंके ऊपर भीम विक्रम राक्षस सवार होकर,भाला,मुद्गर,निस्त्रिंश,फरसा,गदा,भुशुण्डि, ऋष्टि, शतघ्नी और परिघादि आयुध उठाय
सज्जित होकर गमन करनें लगे ॥ १२ ॥ क्रमसे शंख और भेरि बजनेंके शब्दसे दशोंदिशा पूर्ण होगई इस प्रकारसे वीर्यवान राक्षसराजका पुत्र
तंप्रस्थितंमहात्मानमनुजग्मुर्महाबलाः ॥ संहर्षमाणाबहवोधनुःप्रवरपाणयः ॥ १० ॥ गजस्कंधगताःकेचित्केचित्प
रमवाजिभिः ॥ व्याघ्रवृश्चिकमार्जारखरोष्ट्रैश्चभुजंगमैः ॥११॥ वराहैःश्वापदैःसिंहैर्जंबुकैःपर्वतोपमैः ॥ काकहंसमयूरै
श्चराक्षसाभीमविक्रमाः ॥ प्रासमुद्गरनिस्त्रिंशपरश्वधगदाधराः ॥ १२ ॥ सशंखनिनदैःपूर्णैर्भेरीणांचापिनिःस्वनैः ॥
जगामत्रिदशेंद्रारिराजिंवेगेनवीर्यवान् ॥ १३ ॥ सशंखशशिवर्णेनच्छत्रेणरिपुसूदनः ॥ रराजप्रतिपूर्णेननभश्चंद्रम
सायथा ॥ १४ ॥ वीज्यमानस्ततोवीरोहैमैर्हेमविभूषणः ॥ चारुचामरमुख्यैश्चमुख्यःसर्वधनुष्मताम् ॥ १५ ॥ तत
स्त्विंद्रजितालंकासूर्यप्रतिमतेजसा ॥ रराजाप्रतिवीर्येणद्यौरिवार्केणभास्वता ॥ १६ ॥ ससंप्राप्यमहातेजायुद्धभूमि
मरिंदमः ॥ स्थापयामासरक्षांसिरथंप्रतिसमंततः ॥ १७ ॥
इन्द्रजित युद्ध करनेंके लिये चला ॥ १३ ॥ पूर्ण चन्द्रमाके उदय होनेंपर आकाशकी जिस प्रकारसे शोभा होती है वैसेही शत्रुओंके मारनेंवाले
इन्द्रजीतके शिरपर शंख और चन्द्रमाकी नाईं उज्ज्वल श्वेत वर्णका छत्रथा ॥ १४ ॥ धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ वह मेघनादके ऊपर हेमभूषित सुंदर
चामर ढल रहाथा ॥१५॥ उस कालमें सूर्यकी समान तेजस्वी उस अप्रमेय वीर्यवान इन्द्रजीतके रूपसे लंकानगरी तेजसे प्रकाशमान सूर्य नाराय
णसे शोभित आकाश मंडलकी नाईं प्रकाशमान होनें लगी॥१६॥ अनन्तर वह अग्निकी समान शत्रुदमनकारी महातेजस्वी राक्षसश्रेष्ठ इन्द्रजित

* वृश्चिकादि आंकरके वाहन भीथे ।

खडी अपने बड़े धनुष पर टंकोर दी ॥ ४७॥ उनके धनुषकी टंकोरसे वहां की सब पृथ्वी सागर और समस्त दिशायें परिपूरित होगईं, और राक्षसोंको बहुतही त्रास हुआ ॥ ४८ ॥ सुमित्राकुमार लक्ष्मणजीके धनुषकी टंकारका ऐसा भयंकर शब्द सुनकर महा तेजस्वी रावणका पुत्र भी अत्यन्त विस्मित हुआ ॥ ४९ ॥ अतिकायनें लक्ष्मणजीको युद्धके लिये उठाहुआ देख क्रोधितहो तीक्ष्ण बाण धारण कर उनसे यह कहा ॥ ५० ॥ अरे लक्ष्मण ! तुम बालकहो; इसलिये समर कार्यमें भी चतुर नहीं हो हम तौ तुम्हारे लिये कालकी समानहैं इस कारण हमारे संगमें युद्धका अभिलाष त्याग करके शीघ्र भाग जाओ ॥ ५१ ॥ तुम्हारी बात तौ दूर रहै; पृथ्वी आकाश, अथवा हिमवान पर्वत भी हमारी बांहोसे छोड़े हुए

पूरयन्समहींसर्वामाकाशंसागरंदिशः ॥ ज्याशब्दोलक्ष्मणस्योग्रस्त्रासयन्रजनीचरान् ॥ ४८ ॥ सौमित्रेश्चापनिर्घोषंश्रुत्वाप्रतिभयंतदा ॥ विसिस्मियेमहातेजाराक्षसेंद्रात्मजोबली ॥ ४९ ॥ तदातिकायःकुपितोदृष्ट्वालक्ष्मणमुत्थितम् ॥ आदायनिशितंबाणमिदंवचनमब्रवीत् ॥ ५० ॥ बालस्त्वमसिसौमित्रेविक्रमेष्वविचक्षणः ॥ गच्छकिंकालसंकाशंमांयोधयितुमिच्छसि ॥ ५१ ॥ नहिमद्बाहुसृष्टानांबाणानांहिमवानपि ॥ सोढुमुत्सहतेवेगमंतरिक्षमथोमही ॥ ५२ ॥ सुखप्रसुप्तंकालाग्निंविबोधयितुमिच्छसि ॥ न्यस्यचापंनिवर्तस्वप्राणान्नजहिमद्गतः ॥ ५३ ॥ अथवात्वंप्रतिस्तब्धोननिवर्तितुमिच्छसि ॥ तिष्ठप्राणान्परित्यज्यगमिष्यसियमक्षयम् ॥ ५४ ॥ पश्यमेनिशितान्बाणान्रिपुदर्पनिषूदनान् ॥ ईश्वरायुधसंकाशांस्तप्तकांचनभूषणान् ॥ ५५ ॥ एषतेसर्पसंकाशोबाणःपास्यतिशोणितम् ॥ मृगराजइवक्रुद्धोनागराजस्यशोणितम् ॥ इत्येवमुक्त्वासंक्रुद्धःशरंधनुषिसंदधे ॥ ५६ ॥

इन बाणोंका वेग सहन करनेंको समर्थ नहींहै ॥ ५२ ॥ सुखसे सोई हुई कालकी अग्निको क्यों जगानेंकी इच्छा करतेहो ! क्यों हमारे हाथसे प्राण खोतेहो धनुष बाण त्यागकर शीघ्रही भाग जाओ ॥ ५३ ॥ अथवा यदि गर्वके वश होकर लौटना नहीं चाहतेहो तौ एक क्षणभर खडे रहो बस प्राणोंका त्याग करके एक वारही सीधे यमराजके घरपर चले जाना ॥ ५४ ॥ शत्रुके दलका गर्व खर्व करनेंवाले शिवजीके त्रिशूलकी समान तपाये हुए सुवर्णसे भूषित हमारे इन तीखे बाणोंको तुम देखो ॥ ५५ ॥ सिंह जिस प्रकार क्रोधित होकर गजराजके रुधिरको पान करताहै

मैन्द, द्विविद, नाल, गवाक्ष, गवय, केशरी, हरिलोम विद्युदंष्ट्र यह वानर ॥५९॥ और सूर्यानन ज्योतिर्मुख तथा दधिमुख वानर पावकाक्ष नल और कुमुद वानरोंको ॥ ६० ॥ शूल से वानरश्रेष्ठोंको मारा और तीखे अभिमंत्रितबाणोसे राक्षसोंमें श्रेष्ठ इन्द्रजीत मेघनाद सूर्यकी समान वर्णवाले बाणोंसे और गदा इत्यादि अस्त्र शस्त्रोंसे वानरोंके यूथनाथोंको इस प्रकार बींधताहुआ श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीके ऊपर सूर्यके किरणोंकें समान बाणोंकी वर्षा करनें लगे ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ अद्भुत श्रीसम्पन्न श्रीरामचंद्रजीके ऊपर सर्व प्रकारसे वह बाणोंकी वर्षा वर्षाई गई, परन्तु वह उस समय बाण वर्षाको जलकी धाराके तुल्य विचार करकै लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ६३ ॥ हे लक्ष्मण ! यह देखो इन्द्रका शत्रु

मैंदंचद्विविदंनीलंगवाक्षंगवयंतथा ॥ केसरिंहरिलोमानंविद्युदंष्ट्रंचवानरम् ॥ ५९ ॥ सूर्याननंज्योतिमुखंतथादधिमुखंहरिम् ॥ पावकाक्षंनलंचैवकुमुदंचैववानरम् ॥ ६० ॥ प्रासैःशूलैःशितैर्बाणैरिंद्रजिन्मंत्रसंहितैः ॥ विव्याधहरिशार्दूलान्सर्वांस्तान्राक्षसोत्तमः ॥ ६१ ॥ सवैगदाभिर्हरियूथमुख्यान्निर्भिद्यबाणैस्तपनीयवर्णैः ॥ ववर्षरामंशरवृष्टिजालैःसलक्ष्मणंभास्कररश्मिकल्पैः ॥ ६२ ॥ सबाणवर्षैरभिवृष्यमाणोधारानिपातानिवतानचिंत्य ॥ समीक्षमाणःपरमाद्भुतश्रीरामस्तदालक्ष्मणमित्युवाच ॥ ६३ ॥ असौपुनर्लक्ष्मणराक्षसेंद्रोमहास्त्रमाश्रित्यसुरेंद्रशत्रुः ॥ निपात्यित्वाहरिसैन्यमस्माञ्छितैःशरैरर्दयतिप्रसक्तम् ॥ ६४ ॥ स्वयंभुवादत्तवरोमहात्मासमाहितोंतर्हितभीमकायः ॥ कथंनुशक्योयुधिनष्टदेहोनिहंतुमद्येंद्रजिदुद्यतास्त्रः ॥ ६५ ॥ मन्येस्वयंभूर्भगवानचिंत्यस्तस्यैतदस्त्रंप्रभवश्चयोस्य ॥ बाणावपातंत्वमिहाद्यधीमन्मयासहाव्यग्रमनाःसहस्व ॥ ६६ ॥

राक्षसोंमें श्रेष्ठ मेघनाद इन्द्रजित महा अस्त्रका आश्रय लेकर उग्र वानरोंकी सैनाको मार रहाहै, यह ब्रह्माजीके वरदानसे पाये हुए बाणोंके समूहसे फिर भी हमको पीडित कर रहाहै ॥ ६४ ॥ यह भयंकर शरीर वाला अस्त्र उठाये महा बलवान इन्द्रजित ब्रह्माजीसे वर पायकर आकाशमें अन्तर्धान होगयाहै, फिर भला इस प्रकार छिपे हुए रहकर युद्ध करते हुए इस राक्षस मेघनादका हम किस प्रकारसे वध करनेंमें समर्थ होंगे ॥ ६५ ॥ हे बुद्धिमान ! जिन्हौंनें इस विश्वको बनायाहै यह सब बाणभी उन्हीं ब्रह्माजीके बनाये जान पड़तेहैं, कि जिनका विजय चिन्तासे बाहर होंनेके

रुधिरकी धारा निकलता हुआ उस समय ऐसा जानपड़ा मानों पर्वतमें रुधिरसे सनाहुआ सांप घुसरहाहै ॥ ७३ ॥ जिसप्रकार पूर्वकालमें शिवजीके बाणसे त्रिपुरासुरके पुरद्वार कंपायमान हुएथे वैसेही लक्ष्मणजीके बाणोंसे राक्षस वीर व्यथित होकर कांपा, इसके उपरान्त महाबलवान् अतिकाय क्षण भरमें सावधान हो मनही मनमें विचारकर कहनें लगा॥७४॥ धन्य लक्ष्मण ! तुम्हारा बाण चलाना देखकर हम तुमको बड़ाई करनेंके योग्य शत्रु समझते हैं । तिसके पीछे यह अतिकाय, मुख वाय, दोनों बाहें फैलाय अपने रथपर चढ़ा हुआ रणभूमिमें इधर उधर घूमनें लगा ॥ ७५ ॥ उस कालमें वह राक्षस धनुषको खेंचकर एकही वारमें एक, तीन, पांच और साततक बाण धनुषपर चढ़ायकर छोड़नें लगा ॥७६॥

राक्षसःप्रचकंपेऽथलक्ष्मणेषुप्रपीडितः ॥ रुद्रबाणहतंघोरंयथात्रिपुरगोपुरम् ॥ चिंतयामासचाश्वस्यविमृश्यचमहाबलः ॥ ७४ ॥ साधुबाणनिपातेनश्लाघनीयोसिमेरिपुः ॥ विधायैवंविदार्यास्यंविनम्यचमहाभुजौ ॥ सरथोपस्थमास्थायरथेनप्रचचारह ॥ ७५ ॥ एकंत्रीन्पंचसप्तेतिसायकान्राक्षसर्षभः ॥ आददेसंदधेचापिविचकर्षोत्ससर्जच ॥ ७६ ॥ तेबाणाःकालसंकाशाराक्षसेंद्रधनुश्च्युताः ॥ हेमपुंखारविप्रख्याश्चक्रुर्दीप्तमिवांबरम् ॥ ७७ ॥ ततस्तान्राक्षसोत्सृष्टान्शरौघान्राघवानुजः ॥ असंभ्रांताःप्रचिच्छेदनिशितैर्बहुभिःशरैः ॥ ७८ ॥ ताञ्छरान्युधिसंप्रेक्ष्यनिकृत्तान्रावणात्मजः ॥ चुकोपत्रिदशेंद्रारिर्जग्राहनिशितंशरम् ॥ ७९ ॥ ससंधायमहातेजास्तंबाणंसहसोत्सृजत् ॥ तेनसौमित्रिमायांतमाजघानस्तनांतरे ॥ ८० ॥

जिस प्रकार सूर्यनारायण आकाशमंडलको दीप्ति युक्त करते हैं वैसेही राक्षसोंमें इन्द्र अतिकायके धनुषसे छूटे हुए कालसमान सुवर्णकी फोंक वाले बाणोंनें आकाशमें अग्निसी लगाकर उसको प्रदीप्त कर दिया ॥७७॥ यह देखकर श्रीरामचन्द्रजीके छोटे भाई लक्ष्मणजीनें सावधान चित्तसे तीखे बाणोंकेद्वारा उस राक्षसके चलाये हुए वह समस्त बाण काट डाले ॥ ७८ ॥ महा तेजस्वी इन्द्रके शत्रु रावणका पुत्र अत्यन्त क्रोध करता हुआ तब उसनें एक और तीखा बाण ग्रहण किया ॥ ७९ ॥ उसने एक पलकके मध्यमें बाण चढ़ायकर जैसेही

अतिकायका किरीटशोभित मस्तक काट डाला ॥१०४॥ लक्ष्मणजीके बाणसे कटाहुआ और लोहेकी टोपी इत्यादि शोभित राक्षस अतिकायका शिर हिमाचलके शृङ्गके समान सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ १०५ ॥ मरनेंसे बचे बचाये राक्षस उस वीर अतिकायको पृथ्वी पर गिराहुआ देखकर अत्यन्त दुःखी हुए ॥ १०६ ॥ वानरलोगोंके प्रहारसे जर्जरित विषादित मुख और दीनभावयुक्त वह निशाचरगण सहसा महाशब्दकर विकट स्वरसे शब्द करनें लगे ॥ १०७ ॥ इस प्रकारसे वह राक्षसगण अपने सैनापतिके मारे जानें पर अत्यन्त दुःखित और भीत होकर अति शीघ्रतासे लंकाकी ओर भागे ॥ १०८ ॥ भयंकर और दुर्द्धर्ष राक्षसके मारे जानेंपर वानर लोगोंके आनंदकी सीमा न रही उन वानरोंके मुखके

तच्छिरःसशिरस्त्राणंलक्ष्मणेषुप्रमर्दितम् ॥पपातसहसाभूमौशृंगंहिमवतोयथा ॥१०५॥तंभूमौपतितंदृष्ट्वाविक्षिप्तांबरभूषणम् ॥ बभूवुर्व्यथिताःसर्वेहतशेषानिशाचराः ॥ १०६ ॥ तेविषण्णमुखादीनाःप्रहारजनितश्रमाः ॥ विनेदुरुच्चैर्बहवःसहसाविस्वरैःस्वरैः ॥१०७॥ ततस्तत्परितोयातानिरपेक्षानिशाचराः ॥ पुरीमभिमुखाभीताद्रवंतोनायकेहते ॥१०८॥प्रहर्षयुक्ताबहवस्तुवानराःप्रफुल्लपद्मप्रतिमाननास्तदा ॥ अपूजयँल्लक्ष्मणमिष्टभागिनंहतेरिपौभीमबलेदुरासदे ॥१०९॥ इत्यार्षेश्रीमद्रा०वा०आ०युद्धकांडेएकसप्ततितमःसर्गः ॥ ७१ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ अतिकायंहतंश्रुत्वालक्ष्मणेनमहात्मना ॥ उद्वेगमगमद्राजावचनंचेदमब्रवीत् ॥ १ ॥ धूम्राक्षःपरमामर्षीसर्वशस्त्रभृतांवरः ॥ अकंपनःप्रहस्तश्चकुंभकर्णस्तथैवच ॥ २ ॥ एतेमहाबलावीराराक्षसायुद्धकांक्षिणः ॥ जेतारःपरसैन्यानांपरैर्नित्यापराजिताः ॥ ३ ॥

रंगनें खिलेहुए कमलको पराजित किया । वह सबही वीरश्रेष्ठ लक्ष्मणजीकी वीरताको सराहसराहकर उनका उचित सन्मान करते हुए ॥ १०९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० युद्ध०एकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥ महात्मा लक्ष्मणजीसे अतिकायका संहार हुआ सुनकर राक्षसराज रावण बहुतही उदासहुआ और कहनें लगा ॥ १ ॥ सर्व शस्त्रास्त्र धारण करनेंवालोंमें श्रेष्ठ, दारुण क्रोधयुक्त धूम्राक्ष वीरश्रेष्ठ अकम्पन, प्रहस्त और कुंभकर्ण ॥ २ ॥ इत्यादि महाबलशाली वीरगण जो युद्धमें अद्वितीय और संग्राम जीतनेंका अभिलाष करतेथे; यह सबही शत्रुके

रुधिरकी धारा निकलता हुआ उस समय ऐसा जानपड़ा मानों पर्वतमें रुधिरसे सनाहुआ सांप घुसरहाहै ॥ ७३ ॥ जिसप्रकार पूर्वकालमें शिवजीके बाणसे त्रिपुरासुरके पुरद्वार कंपायमान हुएथे वैसेही लक्ष्मणजीके बाणोंसे राक्षस वीर व्यथित होकर कांपा, इसके उपरान्त महाबलवान् अतिकाय क्षण भरमें सावधान हो मनही मनमें विचारकर कहनें लगा॥७४॥ धन्य लक्ष्मण ! तुम्हारा बाण चलाना देखकर हम तुमको बड़ाई करनेंके योग्य शत्रु समझते हैं। तिसके पीछे यह अतिकाय, मुख वाय, दोनों बाहैं फैलाय अपने रथपर चढ़ा हुआ रणभूमिमें इधर उधर घूमनें लगा ॥ ७५ ॥ उस कालमें वह राक्षस धनुषको खेंचकर एकही वारमें एक, तीन, पांच और साततक बाण धनुषपर चढ़ायकर छोड़नें लगा ॥७६॥

राक्षसःप्रचकंपेऽथलक्ष्मणेषुप्रपीडितः ॥ रुद्रबाणहतंघोरंयथात्रिपुरगोपुरम् ॥ चिंतयामासचाश्वस्यविमृश्यचमहाबलः ॥ ७४ ॥ साधुबाणनिपातेनश्लाघनीयोसिमेरिपुः ॥ विधायैवंविदार्यास्यंविनम्यचमहाभुजौ ॥ सरथोपस्थमास्थायरथेनप्रचचारह ॥ ७५ ॥ एकंत्रीन्पंचसप्तेतिसायकान्राक्षसर्षभः ॥ आददेसंदधेचापिविचकर्षोत्ससर्जच ॥ ७६ ॥ तेबाणाःकालसंकाशाराक्षसेंद्रधनुश्च्युताः ॥ हेमपुंखारविप्रख्याश्चक्रुर्दीप्तमिवांबरम् ॥ ७७ ॥ ततस्तान्राक्षसोत्सृष्टान्शरौघान्राघवानुजः ॥ असंभ्रांताःप्रचिच्छेदनिशितैर्बहुभिःशरैः ॥ ७८ ॥ तान्छरान्युधिसंप्रेक्ष्यनिकृत्तान्रावणात्मजः ॥ चुकोपत्रिदशेंद्रारिर्जग्राहनिशितंशरम् ॥ ७९ ॥ ससंधायमहातेजास्तंबाणंसहसोत्सृजत् ॥ तेनसौमित्रिमायांतमाजघानस्तनांतरे ॥ ८० ॥

जिस प्रकार सूर्यनारायण आकाशमंडलको दीप्ति युक्त करते हैं वैसेही राक्षसोंमें इन्द्र अतिकायके धनुषसे छूटे हुए कालसमान सुवर्णकी फोंक वाले बाणोंनें आकाशमें अग्निसी लगाकर उसको प्रदीप्त कर दिया ॥७७॥ यह देखकर श्रीरामचन्द्रजीके छोटे भाई लक्ष्मणजीनें सावधान चित्तसे तीखे बाणोंकेद्वारा उस राक्षसके चलाये हुए वह समस्त बाण काट डाले ॥ ७८ ॥ महा तेजस्वी इन्द्रके शत्रु रावणका पुत्र अत्यन्त क्रोध करता हुआ तब उसनें एक और तीखा बाण ग्रहण किया ॥ ७९ ॥ उसने एक पलकके मध्यमें बाण चढ़ायकर जैसेही

बाहर जावे, उसको वारंवारसे सर्व प्रकार परीक्षा करके देखना ॥ १२ ॥ सब ओरसे तुम लोग जा टिके रहो और सब कहीं सैनाभी टिकी रहै, हे निशाचरो वानरोंके स्थान और उनके पद सदा देखते रहो ॥ १३ ॥ प्रदोषके समय, आधीरातके समय या प्रातःकालके समय किसी समय भी वानरोंको छोटा मत समझो कि यह हैं ही क्या?॥ १४॥ कारणकि हम सबके निकट बड़ी भारी वानरोंकी सैना तैयार पड़ीहै न जानें किस समय लंकापर आन कर धावा करदे! यह सब राक्षस लंकापति रावणके वचन सुनकर ॥१५॥ महाबलवान तौ येही उस रावणकी आज्ञानुसार जहां तहां टिके॥ १६॥

सर्वतश्चापितिष्ठध्वंसैन्यैःपरिवृताबलैः ॥ द्रष्टव्यंचपदंतेषांवानराणांनिशाचराः ॥ १३ ॥ प्रदोषेवार्धरात्रेवाप्रत्यूषे वापिसर्वशः ॥ नावज्ञातत्रकर्तव्यावानरेषुकदाचन ॥ १४ ॥ द्विषतांबलमुद्युक्तमापतत्किंस्थितंयथा ॥ ततस्ते राक्षसाःसर्वेश्रुत्वालंकाधिपस्यतत् ॥ १५ ॥ वचनंसर्वमातिष्ठन्यथावत्तुमहाबलाः ॥ १६ ॥ तान्सर्वान्हिसमादिश्यरावणोराक्षसाधिपः ॥ मन्युशल्यंवहन्दीनःप्रविवेशस्वमालयम् ॥ १७॥ ततःससंदीपितकोपवन्हिर्निशाचराणामधिपोमहाबलः ॥ तदेवपुत्रव्यसनंविचिंतयन्मुहुर्मुहुश्चैवतदाविनिःश्वसन् ॥ १८ ॥ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणे वाल्मीकीयेआदिकाव्येयुद्धकांडेद्विसप्ततितमःसर्गः ॥ ७२ ॥ ॥ ततोहतान्राक्षसपुंगवांस्तान्देवांतकादित्रिशिरोतिकायान् ॥ रक्षोगणास्तत्रहतावशिष्टास्तेरावणायत्वरिताःशशंसुः ॥ १ ॥ ततोहतांस्तान्सहसानिशम्यराजामहाबाष्पपरिप्लुताक्षः ॥ पुत्रक्षयंभ्रातृवधंचघोरंविचिंत्यराजाविपुलंप्रदध्यौ ॥ २ ॥

राक्षस राज रावण सब राक्षसोंको ऐसी आज्ञा देकर हृदयमें शोक रूप प्रदीप्त वाण धारण किये हुए अपने भवनमें प्रवेश करता हुआ ॥ १७ ॥ शोकसे पीड़ित निशाचर पति रावण अपने पुत्रोंकी शंकटकी अवस्था विचारकर कोपसे जलबल उठा और वारंवार लंबे २ श्वास लेनें लगा ॥ १८॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० युद्ध० द्विसप्ततितमःसर्गः॥ ७२ ॥ इसके उपरान्त जब मरनेंसे बचे बचाये राक्षसोंनें देवान्तक अतिकाय और त्रिशिरा इत्यादि निशाचरोंको मारा हुआ देख राक्षसराज रावणसे यह समाचार कहते हुए ॥ १ ॥ तब रावण उन राक्षसोंके मुखसे यह अशुभ

जब मेघनादको रणमें जानेंके लिये तैयार देख श्रेष्ठ धनुषधारी भयंकरविक्रमकारी अनेक महाबलवान् राक्षस हर्ष सहित उस महात्माके पीछे २ चले॥१०॥कोई २ हाथीपर चढ़कर चले कोई २ घोड़ेपर सवार होकर गमन करनें लगे, कोई २ व्याघ्रपर कोई२ वृश्चिक * पर, कोई २ मार्जार (बिलाव) पर कोई २ गधे ऊंट और सिंहपर आरोहण करके चले ॥ ११॥ कोई २ पर्वताकार सिंहोंके ऊपर, और गीदडोंके ऊपर, और काक हँस और मयूरादि पक्षियोंके ऊपर भीम विक्रम राक्षस सवार होकर,भाला,मुद्गर,निस्त्रिंश,फरसा,गदा,भुशुण्डि, ऋष्टि, शतघ्नी और परिघादि आयुध उठाय सज्जित होकर गमन करनें लगे ॥ १२ ॥ क्रमसे शंख और भेरि बजनेंके शब्दसे दशोंदिशा पूर्ण होगई इस प्रकारसे वीर्यवान राक्षसराजका पुत्र

तंप्रस्थितंमहात्मानमनुजग्मुर्महाबलाः ॥ संहर्षमाणाबहवोधनुःप्रवरपाणयः ॥ १० ॥ गजस्कंधगताःकेचित्केचित्प रमवाजिभिः ॥ व्याघ्रवृश्चिकमार्जारखरोष्ट्रैश्वभुजंगमैः ॥११॥ वराहैःश्वापदैःसिंहैर्जंबुकैःपर्वतोपमैः ॥ काकहंसमयूरै श्वराक्षसाभीमविक्रमाः ॥ प्रासमुद्गरनिस्त्रिंशपरश्वधगदाधराः ॥ १२ ॥ सशंखनिनदैःपूर्णैर्भेरीणांचापिनिःस्वनैः ॥ जगामत्रिदशेंद्रारिराजिंवेगेनवीर्यवान् ॥ १३ ॥ सशंखशशिवर्णेनच्छत्रेणरिपुसूदनः ॥ रराजप्रतिपूर्णेननभश्चंद्रम सायथा ॥ १४ ॥ वीज्यमानस्ततोवीरोहैमैर्हेमविभूषणः ॥ चारुचामरमुख्यैश्वमुख्यःसर्वधनुष्मताम् ॥ १५ ॥ तत स्त्विद्रजितालंकासूर्यप्रतिमतेजसा ॥ रराजाप्रतिवीर्येणद्यौरिवार्केणभास्वता ॥ १६ ॥ ससंप्राप्यमहातेजायुद्धभूमि मरिंदमः ॥ स्थापयामासरक्षांसिरथंप्रतिसमंततः ॥ १७ ॥

इन्द्रजित युद्ध करनेंके लिये चला ॥ १३ ॥ पूर्ण चन्द्रमाके उदय होनेंपर आकाशकी जिस प्रकारसे शोभा होती है वैसेही शत्रुओंके मारनेंवाले इन्द्रजीतके शिरपर शंख और चन्द्रमाकी नाईं उज्ज्वल श्वेत वर्णका छत्रथा ॥ १४ ॥ धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ वह मेघनादके ऊपर हेमभूषित सुंदर चामर ढल रहाथा ॥१५॥ उस कालमें सूर्यकी समान तेजस्वी उस अप्रमेय वीर्यवान इन्द्रजीतके रूपसे लंकानगरी तेजसे प्रकाशमान सूर्य नाराय णसे शोभित आकाश मंडलकी नाईं प्रकाशमान होनें लगी॥१६॥ अनन्तर वह अग्निकी समान शत्रुदमनकारी महातेजस्वी राक्षसश्रेष्ठ इन्द्रजित

* वृश्चिकादि आंकरके वाहन भीथे ।

युद्धमें जय दिलानेंवाले निकुम्भलास्थित रणभूमिमें पहुंचगया और वहां पहुंचते ही उसनें अपने रथके चारों ओर सैनाको स्थापित किया ॥१७॥ इस स्थानका नाम निकुम्भिलाथा अग्नि तुल्य तेजस्वी इन्द्रजित यहां पर उत्तम मंत्रोंसे विधिपूर्वक अग्निमें होम करनें लगा ॥ १८ ॥ उस प्रतापशाली राक्षसोंमे श्रेष्ठ इन्द्रजितनें प्रथम अग्निमें माला और सुगन्धित द्रव्य चढ़ायकर तिसके पीछे खीर अक्षतसे उसका संस्कार पूराकरके हवन कर्मको आरंभ करता हुआ ॥१९॥ उस यज्ञकुण्डके चारों ओर जहां शरपत विछानें चाहिये वहां उसनें सब शस्त्र विछाये व बहेडीकी लकडीका ईधन बनाया समस्त लालही वस्त्र धारण किये और लोहेका स्रुवा बनाया कारण कि मारणमें यही पदार्थ कार्यमें आतेहैं ॥२०॥ पतभालोंके ऊपर अग्निस्था

ततस्तुहुतभोक्तारंहुतभुक्सदृशप्रभः ॥ जुहुवेराक्षसश्रेष्ठोविधिवन्मंत्रसत्तमैः ॥ १८ ॥ सहविर्लाजसत्कारैर्माल्यगंध पुरस्कृतैः ॥ जुहुवेपावकंतत्रराक्षसेंद्रःप्रतापवान् ॥ १९ ॥ शस्त्राणिशरपत्राणिसमिधोथबिभीतकाः ॥ लोहितानिच वासांसिस्रुवंकार्ष्णायसंतथा ॥ २० ॥ सतत्राग्निंसमास्तीर्यशरपत्रैःसतोमरैः ॥ छागस्यकृष्णवर्णस्यगलंजग्राहजी वतः ॥ २१ ॥ सकृदेवसमिद्धस्यविधूमस्यमहार्चिषः ॥ बभूवुस्तानिलिंगानिविजयंयान्यदर्शयन् ॥ २२ ॥ प्रदक्षि णावर्तशिखस्तप्तकांचनसन्निभः ॥ हविस्तत्प्रतिजग्राहपावकःस्वयमुत्थितः ॥ २३ ॥ सोस्त्रमाहारयामासब्राह्ममस्त्र विशारदः ॥ धनुश्चात्मरथंचैवसर्वंतत्राभ्यमंत्रयत् ॥ २४ ॥ तस्मिन्नाहूयमानेस्त्रेहूयमानेचपावके ॥ सार्कग्रहेंदुनक्षत्रं वितत्रासनभःस्थलम् ॥ २५ ॥

पन कर सम्पूर्ण काले वर्णका छाग ले उसकी गर्दन पकड़ जीवितही उसे अग्निमें डालदिया ॥ २१ ॥ उस छागकी जैसेही आहुति दीगई कि वैसेही अग्नि विधूम होगई और शिखा विस्तार करके जल उठी और अग्निमें जो जयसूचक सब चिह्न दृष्टि आतेहैं वह सब प्रकाशितहुये ॥ २२ ॥ इसके उपरान्त तपायेहुए सुवर्णकी समान अग्नि दाहिनी ओरको घूमतीहुई अपनी शिखाके साथ स्वयं अग्निकुंडमेंसे उठे और मेघनादकी दीहुई आहुती उन्होंनें ग्रहणकी ॥ २३ ॥ इसके उपरान्त अस्त्रविशारद इन्द्रजीतनें अपना अस्त्र धनुष रथ कवच मंत्रसे अभिमंत्रित किया ॥ २४ ॥ जब उस वीर मेघनादनें अग्निमें आहुति दी और सब अस्त्रोंको ब्रह्म मंत्रसे अभिमंत्रित किया उस समय चंद्र सूर्य इत्यादि ग्रह नक्षत्र गणोंके सहित

अठारह बाणोंसे नीलको और नव बाणोंसे नलनाम वानरको दूरसेही खड़े रहकर रणभूमिमें मारा ॥ ४३ ॥ उस महावीर्यवाननें सात मर्म विदारी बाणोंसे नीलको बींधडाला और पांच बाणसे संग्रामभूमिमें गजको विद्ध किया ॥४४॥ इस प्रकारसे दश बाणोंसे जाम्बवानकोव फिर तीस बाणोंसे नलको मर्माहत किया; इसके उपरान्त वानरराज सुग्रीव, ऋषभ अंगद और द्विविदको तीक्ष्ण बाणोंसें मारकर मृतकतुल्य कर दिया ॥ ४५ ॥ इस प्रकारसे उस मेघनादनें अत्यन्त घोर वरदानसे प्राप्त तीक्ष्ण बाणोंसे इन वानरोंको मारा और समस्त वानरोंकोभी असंख्य बाणोंसें मारा ॥ ४६ ॥ क्रोधसें कालाग्निकी समान मूर्छितहो उस महा पराक्रमी मेघनादनें सूर्यकी समान प्रकाशित शीघ्रगामी भली भांतिसे चलाये हुए बाणोंसे ॥ ४७ ॥

सप्तभिस्तुमहावीर्योमैंदंमर्मविदारणैः ॥ पंचभिर्विशिखैश्चैवगजंविव्याधसंयुगे ॥ ४४ ॥ जांबवंतंतुदशभिर्नीलंत्रिंशद्भिरेवच ॥ सुग्रीवमृषभंचैवसोंगदंद्विविदंतथा ॥ ४५ ॥ घोरैर्दत्तवरैस्तीक्ष्णैर्निष्प्राणानकरोत्तदा ॥ अन्यानपितदासुख्यान्वानरान्बहुभिःशरैः ॥ ४६ ॥ अर्दयामाससंक्रुद्धःकालाग्निरिवमूर्छितः ॥ सशरैःसूर्यसंकाशैःसुमुक्तैःशीघ्रगामिभिः ॥ ४७ ॥ वानराणामनीकानिनिर्ममंथमहारणे ॥ आकुलांवानरींसेनांशरजालेनपीडिताम् ॥ ४८ ॥ हृष्टःसपरयाप्रीत्याददर्शक्षतजोक्षिताम् ॥ पुनरेवमहातेजाराक्षसेंद्रात्मजोबली ॥ ४९ ॥ संसृज्यबाणवर्षंचशस्त्रवर्षंचदारुणम् ॥ ममर्दवानरानीकंपरितस्त्विंद्रजिलद्बली ॥ ५० ॥ स्वसैन्यमुत्सृज्यसमेत्यतूर्णंमहाहवेवानरवाहिनीषु ॥ अदृश्यमानःशरजालमुग्रंववर्षनीलांबुधरोयथांबु ॥ ५१ ॥

वानरोंको एक बारही मर्दित कर डाला बाणोंसे पीड़ित होनेंके कारण व्याकुल और रुधिरसेभीगी हुई वानरोंकी सैनाको ॥ ४८ ॥ देखकर मेघनाद अत्यन्त हर्षित हुआ और फिर महातेजस्वी रावणका पुत्र मेघनाद ॥ ४९ ॥ दारुण शब्द और बाणोंकी वर्षा करके वानरोंकी सैनाको यह इन्द्रजीत सब प्रकारसे मर्दित कर कंपायमान करनें लगा ॥ ५० ॥ मेघनाद सहसा अपनी सैनाको छोड़कर वानरोंकी दृष्टिसे लोप होगया और अदृश्य रहकर नीला बादर जिस प्रकार जलकी वर्षा करताहै वैसेही वानरोंको ताककर उनके ऊपर अनिवारित बाणोंकी वर्षा करनें लगा॥५१॥